# श्रीरामचरितमानस

## विजया टीका

प्रथम भाग

टीकाकार
मानसराजहंस पं० श्री विजयानन्दजी त्रिपाठी

सम्पादक
डॉ० श्रीनाथ मिश्र रामायणी
डॉ० सहजानन्द त्रिपाठी

ankurnagpal108@gmail.com

प्रकाशक
इण्डियन डवलपमेण्ट ट्रस्ट
३१, नेताजी सुभाष रोड
कलकत्ता, ७००००१

प्रकाशन तिथि
विजयादशमी

संशोधित मूल्य Rs 6.00

मुद्रक :
विश्वम्भरनाथ द्विवेदी
आनन्दकानन प्रेस
सीके. ३६/२०, ढुण्ढिराज
वाराणसी, २२१००१

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

## श्री १०८ पूज्यपाद स्वामी करपात्रीजी की सम्मति

श्रीहरि

वेदवेद्य परब्रह्म के दशरथात्मज रामरूप से प्रकट होने पर वेदों का भी श्रीमहामुनि प्राचेतस वाल्मीकि से रामायण के रूप में आविर्भाव हुआ। उसी रामायण का गोस्वामी श्रीतुलसीदासजी से रामचरितमानस के रूप में प्राकट्य हुआ है। सामान्यतया वेदार्थ ही रामायणार्थ है। उसमे निर्गुण सगुण राम और उनकी मङ्गलमयी लीलाकथा का ही प्राधान्येन वर्णन है। प्रसङ्गानुसार सामाजिक नैतिक धार्मिक अनेक आवश्यक वस्तुओ का भी वर्णन है। भक्ति मुक्ति मुक्ति और अभीष्टसिद्धि सब कुछ मानस सेवन से प्राप्त होता है। अतएव विमुक्त विरत और विषयी सभी लोगो को अभीष्टसिद्धि का साधन रामायण है। आजकल के प्राणियो को हिन्दू सभ्यता संस्कृति की रक्षा तथा चतुर्वर्गप्राप्ति का सुलभ साधन मानस से ही प्राप्त हो सकता है।

मानस की व्याख्याएँ अनेक हैं। उनमे व्याख्याता महानुभाव अनेक रूपेण प्रभु का गुणगान करते हैं। परन्तु श्री पण्डित विजयानन्दजी त्रिपाठी की यह व्याख्या अपना असाधारण महत्त्व रखती है। कारण पण्डितजी वेदादि शास्त्रो, पुराणो, इतिहासों, धर्मशास्त्रो, तन्त्रो और संस्कृत प्राकृत भाषाओ एवं उनके व्याकरणो से परिचित हैं। अतएव इस व्याख्या मे पाण्डित्यपूर्ण शास्त्रीय मर्यादाओ के अनुसार विषयप्रदर्शन किया गया है। इतने पर भी विस्तार न कर सिद्धान्त एव सूत्ररूप से ही प्रत्येक चतुष्पदी की व्याख्या की गयी है, जिसका अधिकाधिक विस्तार किया जा सकता है। त्रिपाठी के व्याख्यान मे पाण्डित्य के अतिरिक्त सदाचार धर्माचरण तथा भक्ति ज्ञान निष्ठा का भी प्रभाव स्थान-स्थान पर स्पष्ट झलकता है। लोगों को इससे अधिकाधिक लाभ उठाना चाहिए।

—हरिहरानन्दसरस्वती करपात्रीपाद्

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

सर्वतन्त्रस्वतन्त्र कवितार्किकचक्रवर्ती

## पण्डित श्रीमहादेव शास्त्री

अध्यक्ष · संस्कृत महाविद्यालय

## हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी की सम्मति

श्रीशितिकण्ठ शरणम्

अब्धिर्लंङ्घित एव वानरभटैः किन्त्वस्य गम्भीरताम् ।
आपातालनिमग्नपीवरतनुर्जानाति मन्थाचल ।।—मुरारि.

दूसरे मानस के ऊपर ही तैरते रहे। उसके अन्तस्तल का अवगाहन कर निगूढ रत्नो का वहिर्नयन प्रकृत महानुभाव का ही कौशल है। राजहंस के अतिरिक्त मानस के अनुपम रहस्य की पारमार्थिक अभिज्ञान-पारगामिता कहाँ प्राप्त की जा सकती है। सम्मानभाजन श्रीत्रिपाठीजी ने मानस की सुकठिन ग्रन्थियो का अद्भुत भेदन, गुप्त रहस्यो का प्रगुमर प्रकाश, रसो का लावण्यपूर्ण अभिव्यञ्जन, भक्ति सुरसरिणी का अखण्ड पीयूष प्रवाह जिस अदूष्य वैदुष्य और श्लाघनीय कौशल से निर्माणकर्मत्व में ला दिया है वह उन्ही महापुरुष का स्तुत्य कृत्य है। ऐसा प्रत्यय होता है कि इस निर्मल, ललित, सरल, गम्भीर, विशद तथा सुश्लिष्ट भाष्य निर्माण की प्रवृत्ति सर्वत्र भगवत्प्रेरणावश विजृम्भित हुई है।

श्रीभगवान् के चरणारविन्द मे मेरा विनीत निवेदन है कि

यावन्मूर्ध्नि हिमांशुकन्दलभृति श्रीजाह्नवीधूर्जटे-
लंक्ष्मीर्वक्षसि कौस्तुभस्तबकिते यावन्मुरद्वेषिण. ।
यावच्चित्तभुवस्त्रिलोकविजयप्रौढ धनुः कौसुमं
भूयात्तावदियं कृतिः कृतधिया कर्णावतंसोत्पलम् ।।— भोजराज

—महादेव पाण्डेयः

१९—अस्सी, बनारस
दिनाङ्क श्रा. शु. ६. बु.
२०११ वि.

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

# अनन्तश्री विभूषित जगद्गुरु शङ्कराचार्य

## गोवर्द्धन पीठाधीश्वर

## श्रीनिरञ्जन देव तीर्थ जी महाराज

## की

## शुभ सम्मति

श्री हरि

मानसराजहंस श्री विजयानन्द त्रिपाठी काशीवासी श्री रामचरितमानस के मर्मज्ञ इने-गिने विद्वानो मे भी अद्वितीय थे। सबसे बडी विशेषता उनमे यह थी कि वे मानस प्रवचन अथवा तत्सम्बन्धी लेखा मे कभी भी शास्त्रीय मर्यादा का उल्लङ्घन नही होने देते थे। आज कल के मानसव्यास प्राय इसके अपवाद देखे जाते हैं। पर श्री राजहंसजी के प्रवचन के समय ऐसा लगता था कि नाना पुराणनिगमागम सम्मत का साक्षात् अवतार हो रहा है।

सौभाग्य की बात है कि उनके अन्यतम प्रिय पट्टशिष्य श्री श्रीनाथजी व्यास के प्रयास मे उनकी मानस टीका का द्वितीय संस्करण प्रकाशित होने जा रहा है। मेरी हार्दिक कामना है कि श्री श्रीनाथजी इस कार्य मे पूर्ण सफल हो जिससे मानस की वास्तविक विशेषताएँ विद्वानो और मानस रस रसिको को आप्यायित करने मे समर्थ हो।

—निरञ्जन

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

# अनन्तश्री स्वामी अखण्डानन्द सरस्वतीजी महाराज

का

## आशीर्वचन

श्रीरामचरितमानस पर विद्वान् भक्त एवं महात्माओं के द्वारा अनेक टीका टिप्पणियाँ लिखी गयी हैं। उनके बड़े-बड़े संग्रह भी हुए हैं। वे सब अपने-अपने सम्प्रदाय एवं शैली के अनुसार ठीक हैं। अपने-अपने दृष्टिकोण से सब सुसगत हैं। मैंने अब तक जितनी टीकाएँ देखी हैं उनमें श्री विजयानन्द त्रिपाठीजी की विजया टीका सर्वोत्तम है। यह मैं निस्सन्देह कह सकता हूँ। इसका कारण यह है कि यह टीका सर्वथा वैदिक पद्धति के अनुसार सनातन धर्म के अनुरूप लिखी गयी है। जो वेद शास्त्र के अनुकूल होता है वही धर्म होता है। मनमानी पद्धति से धर्म का निर्णय नहीं हो सकता। गोस्वामीजी ने जिस भक्ति का निरूपण किया है वह वेद-वेदान्त के अनुकूल शास्त्रीय दृष्टिकोण से सम्पन्न है। त्रिपाठीजी ने इतनी उत्तम टीका लिखकर बहुत बड़ा लोककल्याण किया है। भगवान् करे इस टीका का जन-जन में प्रचार-प्रसार हो और जनता गोस्वामीजी के शास्त्रीय भक्ति भावना से सदाचार, अध्यात्म विद्या एवं भगवत्प्रसाद को प्राप्त करे।

टीका का पुनः प्रकाशन डॉ० श्रीनाथ मिश्र रामायणी के प्रयास से हो रहा है। यह कार्य प्रशंसनीय और लोककल्याण में सहायक है।

—अखण्डानन्द सरस्वती

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

# अनुप्रवेश

भगवान् वेदव्यास ने कहा है

वासुदेवकथाप्रश्न पुरुषा स्त्रीन्पुनाति हि ।
वक्तार पृच्छक श्रोतृंस्तत्पादसलिल यथा ॥
—श्रीमद्भागवत

लीला से अवतार धारण किये हुए भगवान् की कथा के विषय म जा प्रश्न वि जाता है वह प्रश्नकर्त्ता, वक्ता तथा श्रोताओ तीना को पवित्र करता है। जैसे भगवान् पूर्ण पुरुषोत्तम के चरणारविन्दो से नि सृत जलधारा श्री गङ्गाजी मन्दाकिनी रूप स्वर्गलोक, भागीरथी रूप मे मर्त्यलोक तथा भोगावती रूप म पाताललोक को पा करती हैं।

श्री भगवान् के अवतार के नानाविध प्रयोजन शास्त्रो मे निर्दिष्ट है। सबस प्र प्रयोजन श्रीमद्भगवद्गीता मे स्वय श्रीमुख से बताया गया है। जब जब सन वैदिक वर्णाश्रम धम की ग्लानि तथा अधर्म का अभ्युत्थान होता है तब तब सनातन मार्गस्थ सज्जनो के परित्राणार्थ तथा दुष्टो के विनाशार्थ युग युग म भगवान् स्वय अव्ययात्मा सर्वभूतो के ईश्वर होते हुए भी स्वीया प्रकृति का अधिष्ठानकर आत्ममाय मानो जन्म सा लेते है।

कुछ भावुक भक्तो का कथन है कि जिनके भृकुटी विलास से अनन्तकोटि ब्रह्म का उत्पादन, पालन, प्रलय होता है उसका अपनी ही सृष्टि के अन्तर्गत स्वय द्वार उत्पादित हिरण्याक्ष, हिरण्यकशिपु रावण, कुम्भकर्ण आदि के विनाशार्थ स्वय को अव लेना पड़े—यह बात जँचती नही। जा प्रभु सकल्पमात्र से अनन्तकोटि ब्रह्माण्डमण्डल सर्जन पालन, सहार कर सकते है वे सकल्पमात्र से ही हिरण्यकशिपु आदि का वि तथा प्रह्लाद आदि का परित्राण कर सकते हैं। इसलिए यह प्रयोजन अवतार के बहुत ही छोटा लगता है। यह तो वही बात हो गयी जैसे चीटी को मारने के लिए ब्रह का प्रयोग। इन भक्ता की दृष्टि म भगवान् के अवतार का अधिक उपयुक्त प्रयोजन व जिसे माता कुन्ती ने बताया है

तथा च परमहसाना मुनीनाममलात्मनाम् ।
भक्तियोगविधानार्थं कथ पश्येम हि स्त्रिय ॥

पूज्यचरण श्री स्वामी करपात्रीजी महाराज इस श्लोक की व्याख्या कर कहते हैं कि परमहसो को श्री परमहस बनाने के लिए प्रभु अवतार धारण कर श्री गोस्वामीजी ने भी कहा

राम प्रेम बिनु सोह न ग्यानू। करनधार बिनु जिमि जल जानू ॥
जाग कुजोग ग्यान अग्यानू। जहँ नहि राम प्रेम परधानू ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सद्-असत्, शाश्वत-नश्वर, तत्त्व-अतत्त्व का पूर्ण विवेक करनेवाले महापुरुष क्षीर-नीर-विवेकी हंस हैं। उनमे असत् अतत्त्व का पूर्ण परित्यागकर केवल मात्र सन्निष्ठ तत्त्वनिष्ठ मनीषी परमहंस हैं। वे भी अन्तःकरण मे निर्गुण, निराकार, निर्विकल्प, ब्रह्मानन्द की पुञ्जीभूत राशि के रूप मे भगवान् श्री राघवेन्द्र रामचन्द्र, श्री यादवेन्द्र कृष्णचन्द्र आदि की उपासना पारमार्थिक अद्वैत होते हुए भी भक्त्यर्थं द्वैत कल्पनाकर भजन करने से मुक्ति शताधिक भक्ति आने पर, श्री परमहंस कहलाते हैं।

ब्रह्मलोकपर्यन्त को तृणवत् समझ चुके हुए ब्रह्मनिष्ठो का चित्ताकर्षण करने के लिए श्री भगवान् को ऐसा कोई रस बनाना ही पडेगा जिसके अवलोकन से श्री भरद्वाज जैसे महर्षि को लगे कि 'ब्रह्मानन्द रासि जनु पाई।' सार्थक नामवाले विदेहराज को लगे 'इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहि मन त्यागा।' श्री कागभुशुण्डिजी जैसो का मन हो 'भरि लोचन बिलोकि अवधेसा। तब सुनिहौं निर्गुन उपदेसा।' स्वय भगवान् अपने दिव्य स्वरूप का प्रतिबिम्ब निहारकर नाच उठते है नाचहि निज प्रतिबिम्ब निहारी।

परन्तु यह भी अत्यन्त उच्चकोटि के महापुरुषो के काम की बात है। भगवान् राम कृष्ण आदि की भक्ति मे रत होनेवाले दुर्लभ हैं। अत आज कलियुग के दम्भ, पाखण्ड प्रधान काल मे ऐसो की आशा कदाचित् मृगमरीचिकावत् ही हो।

परन्तु श्री भगवान् के अवतार का एक और बडे महत्त्व का प्रयोजन शास्त्रो ने बताया है और वह आज भी सबसे बड काम का है। परब्रह्मतत्त्व का शास्त्रीय तथा स्वानुभूति रूप विज्ञान विरले ही महापुरुषो के भाग्य मे होता है। परन्तु भगवान् ने अवतार धारणकर जो लोकोत्तर लोकवत् लीलाएँ की हैं उनके कथन, श्रवण, गान, चिन्तन मे आत्मकल्याण का मार्ग सामान्य जन भी प्रशस्त कर सकते है। गीताजी मे श्री भगवान् ने स्वय कहा है .

जन्म कर्म च मे दिव्यमेव यो वेत्ति तत्त्वत ।
त्यक्त्वा देह पुनर्जन्म नेति मामेति सोऽर्जुन ॥

हे अर्जुन ! मेरे जन्म, कर्म दानो दिव्य हैं। इस बात को जो तत्त्वत जान लेता है वह जन्म, कर्म के बन्धन से मुक्त हो जाता है। सासारिक लोगो के जन्म कर्म का वर्णन करने से बार बार ससार मे आना पडता है।

श्रीमद्भागवत मे माता कुन्ती ने ही प्रभु के अवतार के अनेक कारणो का उल्लेख करते हुए अन्त मे इसी कारण का निर्देश किया है

भवेस्मिन् क्लिश्यमानानामविद्याकामकर्मभि ।
श्रवणस्मरणार्हाणि करिष्यन्निति केचन ॥ १ ८ ३५ ॥

अविद्या आत्मा के परमानन्दस्वरूप के अज्ञान, काम उस अज्ञान से उत्पन्न देहाभिमान तथा तज्जन्य कर्मो से इस ससार मे क्लेश पा रहे जीवो को श्रवण स्मरण करने योग्य कर्म करने की इच्छा से ही आप शरीर धारण करते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

श्रीरामचरितमानस में भी भगवान् के अवतार का प्रयोजन निर्दिष्ट किया है। जाम्बवानजी ने हनुमान्‌जी से कहा है

कपिसेन संग सँघारि निसिचर रामु सीतहि आनिहैं।
त्रैलोक पावन सुजस सुर मुनि नारदादि बखानिहैं॥
जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।
रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई॥

इतना ही नहीं, जिनसे अनुपम मानव सृष्टि हुई उन श्री स्वायम्भुव मनु को वरदान देते हुए स्वयं प्रभु ने कहा

इच्छामय नरबेष सँवारें। होइहउँ प्रगट निकेत तुम्हारें॥
अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहउँ चरित भगत सुखदाता॥
जो सुनि सादर नर बड़भागी। भव तरिहहिं ममता मदत्यागी॥

आगे रावणवध तथा विभीषण के राज्याभिषेक के पश्चात् श्री भगवान् ने अपनी ही नहीं अपने साथ वानर भालुओं की शुभ कीर्ति का भी परम प्रीति से गान करनेवाले अपार संसार सिन्धु का पार अनायास पायगा ऐसा बताया है

मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी परम प्रीति जो गाइहैं।
संसार सिन्धु अपार पार प्रयास बिनु नर पाइहैं॥

कहने को आज संसार में नास्तिकों का बोलबाला है। पर विचार करने से विदित होगा कि 'जुग कलिजुग मलमूल' के प्रभाव से नर नारी सब वेद प्रतिकूल अधर्मरत भले ही हों परन्तु नास्तिक कोई नहीं हो सकता। सच्चा नास्तिक तो वही है जो अपने आपसे, स्वयं से, आत्मा से द्वेष करे जो कोई नहीं करता। यदि प्राणी ठीक जान ले कि वही आत्मा ही अनादि अवधपति श्रीराम हैं तो भला उनसे विरोध कौन कर सकता है? गोस्वामीजी ने स्वयं बताया है कि विषय, इन्द्रियाँ, उनके अधिष्ठाता देवगण, जीव ये सब एक से अधिक सचेत हैं और इन सबका परम प्रकाशक जो भी तत्त्व है आत्मा. वही राम अनादि अवधपति है। इसलिए श्रीभरतजी कहते हैं

अस को जीव जन्तु जग माहीं। जेहि रघुबीर प्रान प्रिय नाहीं॥

और तभी आदिकवि महर्षि श्री वाल्मीकिजी कहते है

लोके नहि स विद्येत यो न राममनुव्रत।

तभी महर्षि विश्वामित्रजी राजर्षि जनकजी से प्रभु का परिचय देते हुए कहते है

ये प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी।

तभी माता कौशल्या कहती हैं.

पूत परम प्रिय तुम सबही के। प्रान प्रान के जीवन जी के॥

और माता सुमित्रा कहती हैं

गुरु पितु मातु बन्धु सुर साँई। सेइअहि सकल प्रान की नाँई॥
रामु प्रान प्रिय जीवन जी के। स्वारथ रहित सखा सबही के॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते। सब मानिअहि राम के नाते॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

अधिक कहाँतक कहा जाय, शास्त्र कहते है :

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा। आदावन्ते च मध्ये च हरि. सर्वत्र गीयते ॥

वेदो मे, रामायण मे, पुराणो मे, महाभारत मे आदि, अन्त, मध्य मे सर्वत्र भगवान् श्री हरि का ही गान हो रहा है। श्री रामचरितमानस भी यही कह रहा है .

एहि महँ आदि मध्य अवसाना। प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना ॥

सो प्राण के भी प्राण, जीवन के भी जीवन का प्रतिपादन जिस ग्रन्थरत्न मे हो उससे विरोध किस समझदार प्राणी को हो सकता है ?

यद्यपि हित अनहित पशु पक्षी भी जानता है और जीव के परम कल्याण का साधन कम से कम इस कलियुग मे तो इस भगवद्गुणानुवाद से अधिक कुछ नही है। तथापि जन्म जन्मान्तरो के पुण्यपुञ्जो के बिना श्री हरिकृपा नही प्राप्त हो सकती और अति हरिकृपा जिस पर हो वही इस मार्ग पर पाँव दे सकता है। साथ ही स्वय भगवान् का यह भी कथन है :

पापवत कर सहज सुभाऊ। भजनु मोर तेहि भाव न काऊ ॥

अतएव .

अति खल जे बिषई बक कागा। एहि सर निकट न जाहि अभागा ॥

तथापि अकारण करुणा के वशीभूत होकर महात्माओ ने ऐसे लोगो को भी भगवान् की ओर अभिमुख करने के प्रयास मे अपनी ओर से कोई कसर नही उठा रखी। इस नदी मे अनेक पटु प्रश्न नाव है और विवेकयुक्त उत्तर कुशल केवट है। यदि जिज्ञासा के सद्भाव से कुछ प्रश्न या शकाएँ मन मे आये तो उनका उत्तर अवश्य ही स्वय ग्रन्थ मे ही प्राप्त हो जायेगा। जो हरि विमुख हैं तथा श्रुति, स्मृति, पुराणोक्त सनातन वर्णाश्रम धर्म मे जिनकी रति नही है, ऐसे विमूढ अवश्य मोह प्राप्त करते हैं। अन्यथा यह रस कभी विरस नहीं होता। इसका श्रवण जीवन्मुक्त महामुनि भी करते है और वे परमहस से श्री परमहस बनते हैं। भवसागर से पार पाने की इच्छावाले विरक्त जनो के लिए तो यह दृढ नाव ही है। यहाँ तक कि विषयी जनो को भी यह श्रवण सुखद और मनोभिराम लगता है। क्योंकि कथा है ही ऐसी। जिसके श्रवणेन्द्रिय है और शब्दो का अर्थ जो समझ सकता है वह सामान्य नाटक, उपन्यास, काव्यकी दृष्टि से भी इसमे रम जाता है। इससे जो ऊबे, उसने रस विशेष जाना ही नही। मानना पडता है कि श्री रघुपति कथा जिसे नही सुहाती वे जड जीव निजात्मघाती आत्महत्यारे ही हैं।

हमारे गुरुवर्य पूज्यपाद साहित्यरञ्जन मानसराजहस पण्डितप्रवर श्री विजयानन्द त्रिपाठी जी महाराज ने सस्कृत, हिन्दी, फारसी, अग्रेजी आदि अनेक भाषाओ तथा उनके साहित्यो का सुचारु अध्ययनकर फिर अपना समग्र जीवन इसी ग्रन्थरत्न मे समर्पित कर दिया था। करीब ३५ वर्ष तक निरन्तर अपने ही निवास-स्थान : मदैनी, काशी : पर इसका नियमित प्रवचनकर न जाने कितने ही जिज्ञासु जनो की ज्ञान-पिपासा आपने शान्त की थी। काशी के साहित्य के मूर्धन्य विद्वान् प० श्री महादेव शास्त्री भी अनेक वर्षों तक गुरुदेव की कथा मे निरन्तर आते थे। काशी के सस्कृत के विद्वानो मे श्रीरामचरित-मानस का प्रचार गुरुदेव के ही ओजस्वी एव विद्वत्तापूर्ण प्रवचन के द्वारा हुआ। मानस

मूल, मानसप्रसङ्ग, मानस पचरत्न, सत पच चौपाई, समुझाई, मानस-व्याकरण आदि कई पुस्तकें भी आपकी मानससघ सतना, गीताप्रेस गोरखपुर आदि से प्रकाशित हुईं। आपके ही सम्पादकत्व मे प्रकाशित मासिक 'सन्मार्ग' मे भी आपकी कई लेखमालाएँ छपी। सम्वत् १९९३ विक्रम मे लीडर प्रेस प्रयाग से आपके द्वारा सम्पादित मानस के शुद्धतम पाठ का सस्करण भी प्रकाशित हुआ। मानस-पीयूष मे भी आपके भाव यत्र-तत्र सङ्कलित हुए। परन्तु इस सग्रह से भी मर्मज्ञ मानस-प्रेमियो को सन्तोष न हुआ। उनके सतत आग्रह के फलस्वरूप आपने सम्पूर्ण मानस की सक्षिप्त टीका भी लिखी जो शास्त्रमर्मविद् मनीषियो की दृष्टि मे मानस की सर्वाधिक प्रामाणिक टीका समझी गयी। सक्षिप्त परन्तु सकल ग्रन्थि-विमोचिका तथा विशद होने से तथा मूलग्रन्थकार के ही मतानुसार नानापुराणनिगमागम-सम्मत कर्मकाण्ड . वर्णाश्रम धर्म उपासनाकाण्ड भक्तिशास्त्र तथा ज्ञानकाण्ड वेदान्त पर्यवसित आस्तिक षड्दर्शन मत का निचोड होने के कारण इस टीका का विद्वानो के बीच मे वही स्थान माना गया जो स्थान श्रीमद्भागवत की श्रीधरी टीका का है।

इसका प्रथम सस्करण उनके जीवनकाल मे ही छपना प्रारम्भ हो गया था। अयोध्याकाण्ड छप रहा था, उसी समय ३-४ दिनों के साधारण अस्वास्थ्य से ही ता० १६ मार्च १९५५ को प्रात काल ३ बजकर २० मिनट पर, मङ्गलवार को ७५ वर्ष की पार्थिव आयु भोगकर, आपने शिव सायुज्य प्राप्त किया। उसके बाद उनका एक स्वरचित पद्य भी प्राप्त हुआ जिसे उन्होने शरीर शान्त होने के एक सप्ताह पूर्व ही लिखकर रख दिया

बनेगी क्या ऐसी भी बात ?
भोलेनाथ स्वय आवेंगे अन्नपूर्णा साथ ॥
तारक मन्त्र सुनाकर सिर पर फेरेंगे निज हाथ।
विजयानन्द महामगल को दिन अब केवल सात ॥

इससे मालूम पडता है कि वे भगवान् शकर के कितने बडे कृपापात्र थे। उनका शरीर मङ्गलवार को ही शान्त हुआ था।

टीकाकार के शिव-सायुज्य प्राप्ति के साथ ही कुछ समस्याएँ उत्पन्न हुईं। परन्तु भूतभावन भगवान् शकर की कृपा से सब बाधाएँ शनै शनै हटती चली गयी। पुस्तक ज्यो-ज्यों विद्वानों, मानस-प्रेमियो तथा साहित्य-रसिकों के हाथो मे पहुँचती गयी त्यो-त्यो उसकी माँग बढती गयी। इस टीका की सबसे बडी विशेषता यह रही कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई। इस परिभाषा पर खरी उतरी।

सो थोडे ही समय मे प्रथम सस्करण की तीन सहस्र प्रतियाँ समाप्त हो गयी और पिछले अनेक वर्षों मे यह टीका अलभ्य हो गयी थी। इस बीच कागज, छपाई आदि उत्तरोत्तर इतने महँगे होन गये कि द्वितीय सस्करण का अवसर अनेक वर्षों तक नही आ सका। श्रीराघवेन्द्र सरकार की कृपा से गतवर्ष जुलाई मे कलकत्ता के प्रसिद्ध उद्योगपति श्री के पी. गोयनका के यहाँ कथा कहने का अवसर मिला। कथा से गोयनका-परिवार बहुत ही प्रभावित हुआ। गोयनकाजी के ज्येष्ठ पुत्र श्री आर. पी. गोयनका ने मुझसे आग्रह किया कि आप कोई ग्रन्थ लिखें तो हम उसे छपवा दें। मैंने उनसे कहा कि हमारे गुरुदेव की टीका का

ankurnagpal108@gmail.com



दूसरा संस्करण आप करवा दें। इस बात पर उन्होंने पिताजी से परामर्शकर सहर्ष स्वीकार किया। इस कार्य के द्वारा गोयनकाजी ने आस्तिक जगत् का बहुत बड़ा उपकार किया। गोयनकाजी को आशीर्वाद के सहित हम धन्यवाद देते हैं।

इस कार्य में गोस्वामी तुलसीदासजी के अखाड़े के वर्तमान महन्त प. वीरभद्रजी का हमें पूरा सहयोग प्राप्त हुआ। अत उनके भी हम आभारी हैं। महन्तजी काशी हिन्दूविश्व-विद्यालय में इंजनियरिंग कालेज में प्राफेसर होते हुए भी अपनी आस्तिक परम्परा का पूर्ण निर्वाह कर रहे हैं। यह बड़े ही सन्तोष का विषय है। हमारे चिकित्सा क्षेत्र के गुरु काशी के प्रसिद्ध चिकित्सक डॉ. गंगा सहायजी पाण्डेय का भी आशीर्वाद हमें इस कार्य में प्राप्त हुआ। अत उनके चरणों में भी हमारा शत शत नमन है। बम्बई के प्रसिद्ध चिकित्सक स्वर्गीय गुरुदेव के प्रिय शिष्य प. वासुदेवजी वि. व्यास वैद्य का सहयोग हमें प्रथम संस्करण में भी प्राप्त हुआ था और इस संस्करण में तो उनकी बड़ी प्रेरणा रही। हम उनके भी आभारी हैं। गुरुदेव के पुत्र डॉ. सहजानन्दजी त्रिपाठी ने बड़े ही उदारतापूर्वक ग्रन्थ के प्रकाशन की स्वीकृति हमें दी। अत हम उनके भी हृदय से आभारी हैं। श्रीराम प्रसादजी पोद्दार अध्यक्ष सेंचुरी मिल बम्बई ने भी इस कार्य में हमारा उत्साहवर्द्धन किया। अत हम उन्हें भी आशीर्वाद के साथ-साथ धन्यवाद देते हैं। हमारे प्रधान शिष्य प. रामनारायणजी शुक्ल शास्त्री व्यास का इस ग्रन्थ के प्रकाशन में बहुत बड़ा सहयोग रहा। अत उन्हें भी हम आशीर्वाद सहित धन्यवाद देते हैं। हमारे गुरु भाई प. देवकीनन्दनजी शास्त्री व्यास एवं प. श्यामनारायणजी शास्त्री व्यास का भी हमें पूर्ण सहयोग मिला। उनके भी हम आभारी हैं। इस अवसर पर एक मित्र का नामोल्लेख परमावश्यक जान पड़ता है वह है हमारे गुरुभाई प. मनोरञ्जनजी ज्योतिषी आयुर्वेदाचार्य (ए बी एम एस) एम ए जिनका प्रथम संस्करण में बहुत बड़ा सहयोग रहा। द्वितीय संस्करण में भी ज्योतिषीजी ने वैसा ही सहयोग किया। उन्हें भी हम धन्यवाद देते हैं। हमारे शिष्य प. लक्ष्मीकान्त मिश्र ने भी टीका के प्रकाशन में बहुत परिश्रम किया। अत उन्हें भी धन्यवाद के साथ साथ आशीर्वाद देते हैं।

अन्त में आनन्द कानन प्रेस के स्वामी श्री विश्वम्भरनाथजी द्विवेदी का हम आभार स्वीकार करते हैं जिन्होंने अपने व्यक्तिगत देखरेख में इस ग्रन्थ की शुद्ध तथा स्वच्छ छपाई करवाकर इसे इतने अल्प समय में पाठकों को सुलभ किया है। द्विवेदीजी की व्यक्तिगत योग्यता का भी हमें इस ग्रन्थ के प्रकाशन में बहुत बड़ा लाभ मिला है।

—डॉ. श्रीनाथ मिश्र रामायणी
३/१८, शिवाला
वाराणसी (उ. प्र.)

ता. १९-१०-८० ई०

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

# समर्पण

प्रिय बाँकेराम !

मैं जानता हूँ कि कितनी प्रसन्नता तुम्हे इस टीका के पूरी होने और प्रकाशित होने मे होती। श्रीगोस्वामी जी के अखाड़े के महन्त होने से तुम शिष्य होने पर भी पूज्य थे और आज तो तुम मुक्त होकर साक्षात् विश्वनाथ हो गये हो !

अतः इस टीका को मै तुम्हे ही समर्पण करता हूँ।

त्वदीयं वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये ।

—विजयानन्द

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

वेदन उधारयो हिन्दू जगत सँभारयो
धर्म डूबत उबारयो फारयो उदर कली को है ।
भाषा कविताई की बडाई तिहुँ लोक छाई
गई कुटिलाई वामपथ परयो फीको है ॥
दूरि भए दुरित दया की पैज पूरी भई
प्रगट जवाल भयो जवनन के जी को है ।
दशो अवतारन महँ कीन्ह्यो करतार जौन
तौन करिबे को अवतार तुलसी को है ॥

—विजयानन्द त्रिपाठी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

श्रीगुरवे नम

# प्रस्तावना

कविकुलचूडामणि भक्ताग्रगण्य महात्मा गोस्वामी तुलसीदासजी के रामचरितमानस से जो उपकार जनता का हो रहा है वह किसी से छिपा नही है। यह ऐसा अद्भुत ग्रन्थ है कि एक बच्चा भी उसे आनन्द से गान करता है और उसे समझने मे अच्छे बुद्धिमान् की भी बुद्धि चक्कर खाने लगती है। एक से एक महात्माओ ने, विद्वानो ने उस पर टीकाएँ लिखी हैं। फिर भी अन्य महानुभावो को उस पर नयी टीका लिखने की आवश्यकता मालूम पडी। कविवर केशवदास की यह उक्ति कि बानी जगरानी की उदारता बखानी कहा। कहि कहि हार्‍यो नहि कहि काहू पै गई। पति बरन्यौ चारमुख पूत बरन्यौ पाँच मुख नाती बरन्यौ षट्मुख तदपि नई नई। मुझे तो श्रीगोस्वामीजी की ही वाणी पर पूर्णत घटती-सी दिखायी पडती है।

मुझे बचपन से श्रीरामचरितमानस से प्रेम है। ढलती अवस्था मे जब अपने जीवन को सफल बनाने का विचार मन म उठा तो सिवा श्रीगोस्वामीजी के शरण ग्रहण करने के दूसरा उपाय दिखायी नही पडा। कोई तीस वर्ष से मैं अपने निवासस्थान पर ही मानस का प्रवचन करता हूँ। रिटायर्ड जज बाबू वैजनाथ प्रसादजी तथा कविकञ्जजी आदि श्रोताओ की ओर से बडा आग्रह हुआ कि मैं भी मानस पर टीका लिखूँ। मेरे प्रिय शिष्य महन्त बांकेराम मिश्र अखाडा गोस्वामी तुलसीदासजी काशी तो इस तरह पीछे पडे कि मुझे लिखना आरम्भ कर देना ही पडा।

अन्तर्यामी की कृपा से टीका पूरी हुई। परन्तु पाठक इसम किसी चमत्कारिक अर्थ, अद्भुत-अद्भुत भाव या विचित्र कथानको की आशा न करे। इसम विशेषता इतनी ही है कि ग्रन्थ से ग्रन्थ के लगाने की चेष्टा की गयी है। जहाँ आवश्यकता जान पडी वहाँ अन्य ग्रन्थो स भी प्रमाण उद्धृत किये गय हैं। जहाँ तक हो सका पूज्यपाद ग्रन्थकार के आशय के अनुसरण का प्रयत्न किया गया है। अर्थ करने मे वाक्यो की सगति पर विशेष ध्यान रक्खा गया है। इसम भूल मुझसे चाहे जैसी हो गयी हो पर जानबूझकर पक्षपात तथा लोकरञ्जनादि कारणो से मैंने अर्थ का अनर्थ नही होने दिया है। जो जो विचार गुरुजनो और महात्माओ से मुझे प्राप्त हुए हैं या ग्रन्थ के मनन करने मे जो नये-नये विचार मेरे मन में उठे हैं उन सबो को निर्भीकता से यथासाध्य प्रकट कर देना मैंने अपना कर्तव्य समझा है।

अपने गिरते हुए स्वास्थ्य को देखकर मुझे इस ग्रन्थ के पूरे होने की कोई आशा न थी। इसलिए बीच म मैंने कई छोटी-छोटी पुस्तक लिखकर अपने विचारो और भावो को सर्वसाधारण के सामने रक्खा और कहना नही होगा कि जनता ने उसका स्वागत किया जिससे मेरा उत्साह बढता गया। वस्तुत कृपालु मित्रो और हितचिन्तको के प्रोत्साहन से ही इस कार्य का सम्पादन हो सका। लौकिक दृष्टि से तो यही बात है। परन्तु मेरा हृदय

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जानता है कि उस अन्तर्यामी से मुझे किस भाँति प्रेरणा मिलती गयी है और कैसी परिस्थिति सम्पन्न होती गयी है, जिससे इसकी पूर्ति का कठिन कार्य सम्पन्न हुआ और छपना भी आरम्भ हो गया।

जब गोद में खेलता था तभी पिताजी ने नमामि भक्तवत्सलम्। कृपालुशीलकोमलम् कण्ठ कराया था। वे नित्य रामचरितमानस का पाठ करते थे। सुनते-सुनते मुझे बहुत कुछ कण्ठ हो गया। प० अयोध्याधर द्विवेदी उपनाम पाठपण्डित पिताजी के यहाँ प्रायः आया-जाया करते थे। उनकी कथा मैं बड़े मनोयोग से सुनता था। बड़े होने पर मानस के अद्वितीय वक्ता प० रामकुमारजी से मुझे सुन्दरकाण्ड और किष्किन्धाकाण्ड के विधिपूर्वक अध्ययन का सौभाग्य प्राप्त हुआ। उन्हीं को मैं इस विषय का गुरु मानता हूँ। क्योंकि ग्रन्थ लगाने की पद्धति मुझे उन्हीं से प्राप्त हुई। वैसे तो कई प्रसङ्ग मैंने उनके पट्टशिष्य प० देवीपलटजी से भी सुने। प्रख्यात रामायणी प० श्रीभूषणजी मेरे मित्र ही थे। उनसे भावों का आदान-प्रदान हुआ करता था और अयोध्याकाण्ड में मेरा प्रवेश तो उन्हीं की कृपा से हुआ। फिर भी इस टीका के लिखने में मुझे अनेक ऐसे स्थल मिले जिनकी संगति लगाने में मुझे महीनों रुकना पड़ा। कितनी बातें ऐसी मिलीं जिनका पता लगाने में बहुत कुछ मनन करना पड़ा। कुछ बातें अकस्मात् श्रोताओं से भी मिलीं। अतः मैं इन सभी महापुरुषों का आभारी हूँ। ऐसे अवसर पर इनका सादर स्मरण करना मेरा परम कर्तव्य है।

श्रीगुरुदेव भगवान् शिवराम किङ्कर योगत्रयानन्दजी तथा विद्यागुरु श्री स्वामीजी घनश्यामानन्दजी महाराज मुमुक्षु भवन को क्या धन्यवाद दूँ। मुझमें जो कुछ भलाई है वह इन्हीं चरणों के कृपालेश से है और जो बुराइयाँ हैं वे सब मेरी हैं।

जिस ग्रन्थरत्न श्रीरामचरितमानस की यह टीका लिखी गयी है वह वस्तुतः मनुष्य जाति के मूलपुरुष स्वायम्भूमनु की बड़े परिश्रम से कमायी हुई सम्पत्ति मीरास है जिसे वे अपनी भावी सन्तान मनुष्य जाति के लिए छोड़ गये हैं। यह प्रकट रहने पर भी सर्वसाधारण के लिए गुप्त ही थी। पर श्री गोस्वामीजी ने उसे सबके लिए सुलभ कर दिया। फिर भी इसे बपौती सम्पत्ति की दृष्टि से देखनेवाले थोड़े ही हैं। अब भी कोई इससे यदि लाभ न उठाये तो उसका अभाग्य ही समझना चाहिए।

जो ब्रह्म अगुण अनन्त और अनादि है जिसका परमार्थवादी चिन्तन करते हैं, जिसका निरूपण वेद नेतिनेति कहकर करता है, जो निजानन्द निरुपाधि और अनूप है जिसके अंश से अनेक शम्भु, विरंचि और विष्णु भगवान् उत्पन्न होते हैं वह प्रभु मन और वाणी से परे है और उसकी प्राप्ति ही मनुष्य जाति का परमध्येय है।

पर वेद कहता है कि ऐसा प्रभु भी सेवक के वश है और भक्त के लिए लीलाशरीर ग्रहण करता है। इसी वचन के बल पर भगवान् मनु ने सस्त्रीक अत्युग्र तपस्या करके उनको प्रत्यक्ष किया और विश्व के कल्याण के लिए उन्हें पुत्ररूप से प्राप्त होने का वर माँग लिया। जिससे उनका दर्शन संसार को सुलभ हो जाय और उनके रूप के ध्यान चरित्र के गान तथा नाम के स्मरण से उनकी सन्तति सदा लाभ उठाती रहे। उनके चरित्रगान से धर्ममार्ग की प्राप्ति हो। उनके नामस्मरण से ज्ञान की प्राप्ति हो। उनके ध्यान से वैराग्य की प्राप्ति हो और उनके पूजन से ऐश्वर्य की प्राप्ति हो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इस भाँति श्री रामोपासना मनुष्यजाति की बपौती सम्पत्ति है। सो पूज्यपाद गोस्वामीजी ने मानस द्वारा उसे सबकी पहुँच के भीतर ला दिया। उनके समकालीन महात्मा नाभाजी ने अपनी प्रसिद्ध रचना भक्तमाल में इसी बात को स्पष्ट करते हुए कहा है

त्रेता काव्य प्रबन्ध कियो सतकोटि रमायन।
एक अक्षर उद्धरै ब्रह्महत्यादि परायन ॥
अब भक्तन के हेतु बहुरि लीलावपुधारी।
रामभक्तिरसमत्त रहत निसिदिन व्रतधारी ॥
संसार अपार के तरनहित सुगमरूप नौका लयो।
कलिकुटिल जीव निस्तारहित बालमीक तुलसी भयो ॥

भाव यह कि जिस महर्षि वाल्मीकि ने त्रेता मे रामायण रचकर उस काल के लोगों का उद्धार किया उसी ने कलियुग के कुटिलजीवों के निस्तार के लिए तुलसीदास रूप से अवतार धारण किया। वाल्मीकीय रामायण माधुर्यप्रधान ग्रन्थ है। उसमे श्रीरामचन्द्र के ईश्वरावतार होने का अति सूक्ष्मरूप से कहीं-कहीं वर्णन है, पर अब उसके कलियुग के कुटिलजीवों का कल्याण होना कठिन है। उनमे इतनी शक्ति नहीं कि सम्पूर्ण ग्रन्थ को उस दृष्टि से देख सकें। अतः उसी भगवान् वाल्मीकि ने तुलसीदास रूप में अवतीर्ण होकर श्रीरामचरितमानस नाम का ऐश्वर्यप्रधान ग्रन्थ प्रणयन करके पदे-पदे श्रीरामचन्द्र के ऐश्वर्य का स्थापन कलि कुटिल जीव के गले उतारने के लिए किया जिसमे मानसपाठ काव्य के आनन्द के अतिरिक्त भजन रूप मे परिणत हो सके।

सम्भव है वाल्मीकि महर्षि के अवतीर्ण होनेवाली बात कुछ लोगों के मन मे न बैठे। फिर भी विचारशील महात्माओं ने इसे प्रमाण माना है और इसके लिए वे समुचित युक्ति देते हैं। अतः इसे उपेक्षणीय नहीं कहा जा सकता।

श्री गोस्वामीजी वैदिक मत प्रतिष्ठापनाचार्य थे। उनके रचित मानस की परिधि के भीतर नाना पुराण निगमागम तथा जितने वैदिक सम्प्रदाय द्वैत अद्वैत विशिष्टाद्वैत, द्वैताद्वैत और शुद्धाद्वैतादि हैं सभी आ जाते हैं और सबको उचित स्थान मिलता है। उन्होंने सर्वसाधारण के बोधगम्य होने के लिए प्राकृत भाषा को अपनाया, जिसका बहुत बड़ा अधिकार है। तत्सम रूप से उसमे शुद्ध संस्कृत प्रयोगों का तद्भव रूप से विकृत प्रयोगों का तथा देशोद्भव रूप से अनेक प्रचलित भाषाओं का समावेश है। मानस के मङ्गलाचरण के श्लोकों में भी प्राकृत के नियमों की छाप है। इस टीका मे प्राकृतानभिज्ञ महाशयों के लिए जहाँ-तहाँ इन बातों के दिखाने का भी प्रयत्न किया गया है जिसमे किसी को अपने भ्रम का आरोप श्रीगोस्वामीजी पर करने का अवसर न मिले। वे स्वयं कहते हैं कि मेरी ग्राम्यगिरा कृष्णा गौ है। संस्कृत कपिला गौ है। परन्तु कृष्णा गौ का दूध अधिक विशद सफेद होता है। उसका पाक भी लघु होता है और उसे पान करने का सबका अधिकार है। इसी भाँति ग्राम्यगिरा में भी कहा हुआ रामयश अधिक स्पष्ट है। सुख बोध्य है और उसे कथन श्रवण का सबको शास्वत अधिकार है, यथा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



स्याम सुरभि पय विसद अति गुनद करहिं सब पान ।
गिरा ग्राम्य सिय रामजस गावहिं सुनहिं सुजान ॥

उन्होंने सब शास्त्रों का मन्थन करके उनका सार निकालकर ग्राम्यगिरा में ऐसा समन्वय किया है कि वह शैव वैष्णव शाक्त आदि सभी धर्मप्रेमियों के गले का हार हो रहा है। अतः इसकी टीका में यह प्रयत्न किया गया है कि श्री गोस्वामीजी का अभिप्राय कहीं से दबने न पावे। मुझे इस बात के लिखते हुए हर्ष होता है कि इस टीका को साक्षात् शङ्करस्वरूप श्री १०८ करपात्रीजी महाराज का आशीर्वाद प्राप्त है और पण्डिताग्रगण्य सर्वतन्त्रस्वतन्त्र कवितार्किकचक्रवर्ती श्री महादेव शास्त्रीजी प्रिन्सिपल अध्यक्ष संस्कृत महाविद्यालय हिन्दू विश्वविद्यालय काशी ने इसका अनुमोदन किया है। अतः कम से कम मैं इतनी आशा अवश्य कर सकता हूँ कि यह टीका मानसप्रेमियों के लिए उपयोगी सिद्ध होगी और इतने से ही मेरे जीवन का साफल्य है।

एक बात और कहनी है : आज से सत्तर वर्ष पहिले तक लोग हिन्दी की वर्णमाला को संस्कृत की वर्णमाला से कुछ भिन्न सी मानते थे और लिखने में उन्हीं अक्षरों का प्रयोग करते थे जो हिन्दी के सुखोच्चार्य शब्द के लिखने के लिए पर्याप्त थे। श्री गोस्वामीजी ने भी उसी परिपाटी को अङ्गीकार किया था। पर अब प्रवाह दूसरा बह उठा है। संस्कृत शब्दों का शुद्ध रूप भाषा में लिखा तथा बोला जाता है। परन्तु प्राचीन भाषा की रक्षा के लिए मूल में शब्दों के वे ही रूप रक्खे गये हैं जिनमें ग्रन्थकार ने उनका प्रयोग किया है। केवल षकार को उन स्थलों से हटा दिया गया है जहाँ वह खकार का भी बोधक बन बैठा था। शब्द के रूप में भी कहीं-कहीं विकल्प से काम लिया गया है। उच्चारण सादृश्य से औ अऊ ऐ अइ के ए में कोई भेद नहीं माना गया है। मैंने किसी एक का बहिष्कार न करके यथासाध्य प्राचीन प्रतियों के प्रयोग का ही अनुसरण किया है। समस्त पदों में बार-बार योजिका हाइफन का प्रयोग करके उन्हें गूंथने की चेष्टा मैंने नहीं की है। सामासिक संज्ञाओं के समस्यमान पद तो सटाकर रक्खे हैं और शेष समासों के पद स्वतन्त्र ही छोड़ दिये हैं। जैसे वे प्राचीन प्रतियों में मिलते हैं। ऐसे शब्द सटाकर लिखे बिना भी अविभक्तिक पदों के समान अपना अर्थ स्पष्ट ही प्रकट कर देते हैं। अर्थात् मूलपाठ मैंने अपने उस संस्करण के अनुसार रक्खा है जो सवत् १९९३ वि० में लीडर प्रेस प्रयाग से प्रकाशित हो चुका है।

इस टीका के छपने का पूरा श्रेय प० श्रीनाथ मिश्रजी को है जिनके उत्साह और परिश्रम से ही यह टीका छप सकी। प० मनोरञ्जन जोशीजी ने भी बहुत परिश्रम किया है। बाबू महेशनारायण सिंह रिटायर्ड ओवरसियर गया निवासी ने इसके सम्पादन में उत्साह के साथ बड़ी सहायता की है तथा श्रीमान् सेठ लक्ष्मीनारायण पोद्दारजी के उत्साह से यह कार्य अग्रसर हुआ है। अतः उपर्युक्त महाशयों को मैं धन्यवाद ही नहीं आशीर्वाद भी देता हूँ। अन्ततः मोतीलाल बनारसीदास फर्म को भी धन्यवाद है जिसने बड़े उत्साह से इसके मुद्रण के कार्य को अपने समर्थ हाथों में लिया है।

—विजयानन्द त्रिपाठी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

॥ श्रीः ॥

# रामचरितमानस के भाष्यकार की जीवनी

शाण्डिल्य गोत्र सरयूपारी ब्राह्मण । पूज्यपाद पिताजी का नाम प० रघुवीर त्रिपाठी । सवत् १९३८ विजयादशमी के दिन मुहल्ला मदैनी मद्रवनी काशी मे हुआ । विजयादशमी को जन्म होने से माता पिता ने विजयानन्द नाम रक्खा । जन्मस्थान ही स्थायी पता है ।

पिताजी के गोद में ही नमामि भक्तवत्सल, कृपालु शील कोमल । को ही सर्व प्रथम मौखिक शिक्षा मिली । एफ ए तक अग्रेजी पढ़ा । सामान्यज्ञान सस्कृत, हिन्दी, उर्दू, फारसी और बँगला का भी है । श्रीरामचरितमानस का व्यसन बाल्यकाल से ही है । इतने महान् प्राचीनतम तथा युक्तिसम्मत धर्म पर पत्र पत्रिकाओ द्वारा किये हुए आक्षेपों को सहन न कर सकने के कारण लेख लिखना आरम्भ किया । उस समय प्रयागराज से अभ्युदय निकलता था । वह कृपा करके लेख छाप देता था । अन्य समाचारपत्रों की पालिसी के विरुद्ध मेरे लेख पड जाते थे । अत वे नही छापते थे । पिछले दिनो में सूर्य तथा कल्याण मे मेरे लेख छपते थे ।

धर्मविरोधी प्रचार से दुःखी होकर श्रीस्वामी करपात्रीजी ने मासिक सन्मार्ग निकालने की आज्ञा सेठ मूलचन्द चोपडा को दी और मुझे सम्पादन का भार दिया गया । कार्तिक शुक्ल १५ स० १९९६ मे उसका प्रथम अङ्क निकला । तब से ६ वर्ष तक मैंने उसका सम्पादन किया । अब परमेश्वर की कृपा से उसने साप्ताहिक तथ दैनिक का रूप धारण किया है । अस्वस्थता के कारण सम्पादन का कार्य बन्द करना पडा ।

१ सवत् १९६५ मे मैंने पंक्तिपावन परिचय सरयूपारी ब्राह्मणो का सक्षिप्त इतिवृत्त लिखा जो प० चन्द्रशेखर वाजपेयी द्वारा गौरीश प्रेस मे छपा ।
२ इसके बाद कल्किविजय नाटक लिखा जो हितचिन्तक प्रेस मे छपा । पुस्तक अप्राप्य है इसलिए सम्वत् नही दे सकता ।
३ तत्पश्चात् प्रबोधचन्द्रोदय का गद्य पद्यमय अनुवाद महाराज प्रभुनारायण सिंह काशी नरेश की आज्ञा से किया जो हितचिन्तक प्रेस मे छपा ।
४ मन्दिर प्रवेशमीमासा लिखा जो सूर्य प्रेस मे छपा ।
५ शतपञ्चचौपाई लिखी जो स० १९९३ म गीताप्रेस गोरखपुर से प्रकाशित हुई ।
६ काशीकेदारमाहात्म्य का भाषानुवाद किया जो स० १ ८८ म अच्युतग्रन्थमाला कार्यालय से प्रकाशित हुआ ।

---

सौभाग्य से मानसराजहंसजी की जीवनी स्वय उनके हाथ की लिखी हुई उनके प्रधान शिष्य मानसरत्न प० श्रीनाथमिश्र वैद्य से हमे प्राप्त हुई जिसे हम सादर छाप रहे हैं ।

प्रकाशक प्रथम सस्करण

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



७ श्रीरामचरितमानस का सम्पादन किया जो सं० १९९३ मे अच्युतग्रन्थमाला कार्यालय से प्रकाशित हुआ ।
८ मानसप्रसग लिखा जो मानससघ सतना द्वारा सं० १९९८ मे प्रकाशित हुआ ।
९ समुझाई नामक पुस्तिका लिखी जो मानससघ सतना द्वारा सं० १९९९ मे प्रकाशित हुआ ।
१० मानसमूल लिखा जो सं० २००० मे मानससघ सतना द्वारा प्रकाशित हुआ ।
११ मानसव्याकरण लिखा । वह भी मानससघ द्वारा प्रकाशित हुआ ।
१२ श्रीरामचरितमानस की टीका लिख रहा हूं । जिसे देखकर श्री श्रीस्वामी करपात्रीजी महाराज बहुत प्रसन्न हुए और उसका विजयाटीका नामकरण कर दिया ।
१३ १४ वीरसिंह नाटक और शतशत्रुञ्जय हनुमत्स्तोत्र अभी तक प्रकाशित नही हुए हैं ।
१५ त्रिपुरारहस्य के ज्ञानकाण्ड का हिन्दी अनुवाद ।
१६ सूक्तिमुक्तावली । १७ अन्य लेख ।

इस भांति थोडी सी सेवा हिन्दी की भी मुझसे बन पडी । मेरी सेवाओ से प्रसन्न होकर श्रीभारतधर्म महामण्डल ने मुझे महोपदेशक, साहित्यभूषण तथा धर्मरत्न की पदवी प्रदान की ।

ब्रह्मचारी सच्चिदानन्दजी गीतानन्द ने मानसराजहंस की पदवी दी । अ० भा० धर्मसघ का मैं आज तक प्रधान मन्त्री हूं । यद्यपि अब मेरी कोई सेवा वार्धक्य के कारण नही हो सकती ।

## शान्ति

राजा साहिब भिनगा के यहां एक कारबारी थे । नाम उनका बाबू रामशरण दास था । दिल्ली के रहने वाले अग्रवाल वैश्य थे । उन्हें राजा साहिब ने श्री गो० तुलसीदासजी की रामलीला के इन्तजाम के लिए भेजा । इसी सिलसिले मे उनसे मेरी मुलाकात हुई । बडे ही सज्जन पुरुष थे । धीरे धीरे उनसे प्रेम बढ गया ।

एक दिन उन्होने एकान्त मे मुझे समझाया कि तुम अच्छे आदमी हो । परमेश्वर ने तुम्हे बुद्धि दी है । पढे लिखे भी हो । तुमने इतना वैर क्यो कर रक्खा है ? तुम्हे क्रोध आता है तो मालूम होता है कि तुम्हे भूतावेश हो गया है । तुम ब्राह्मण के बालक हो । क्षमा तुम्हारा धर्म है । तुम इतना क्रोध क्यो करते हो ?

मैंने सब कच्चा चिट्ठा कह सुनाया कि मैंने किसी का कुछ बिगाडा नही । नाहक लोग मुझसे वैर रखते हैं । बाप का कुछ न कर सके इसलिए मुझे नीचा दिखाना चाहते हैं । मैंने प्रण कर लिया है कि दब कर न रहूंगा ।

कहने लगे कि वह प्रण तो पूरा हो गया । इतने दिन बीत गये । तुम नही दबे । अब वैर को धो बहाओ । मैंने कहा कि तब मैं क्या करूं ? कहने लगे कि सबसे प्रेम करो । सबके काम मे आवो । सबका भला चाहो, बल से दबाना न चाहो, प्रेम से दबाओ, वैर से वैर शान्त नही होता, आप से आप वैर मिट जायगा ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पिता की भाँति उन्होंने मुझे समझाया और पिता की भाँति ही मेरे ऊपर दृष्टि रखने लगे। मैंने उनके आज्ञानुसार चलना आरम्भ किया। साल के भीतर ही सब लोग मुझसे प्रेम करने लगे।

मैंने मुहल्ले के बच्चो की शिक्षा के लिए बाल-पाठशाला स्थापित की, पुस्तकालय खोला। मैं स्वय अध्यापक का काम करने लगा। प० योगेश्वर झा की सहायता ली। मेरे बालसखा बाबू बलदेवदासजी ने कोषाध्यक्ष का पद स्वीकार किया। मध्यमा तक की पढाई होने लगी। मुहल्ले के बहुत से बच्चो ने शिक्षा पायी, कितने बाल-पाठशाला के विद्यार्थी आज प्रतिष्ठित पदो पर हैं। लगभग अठारह वर्ष तक यह पाठशाला चलती रही।

उसके बाद विद्यापीठ मुहल्ले मे आ गया। तब पाठशाला चलाने की कोई आवश्यकता न प्रतीत हुई। अत बाल-पाठशाला विद्यापीठ मे मिला दी गयी।

उक्त बाबूसाहब के सत्सङ्ग से मुझे बडा लाभ हुआ। मेरी प्रवृत्ति सार्वजनिक कार्यो मे हुई। परलोक के सुधारने की चिन्ता हुई। जो कोई भली बात मेरे मे हैं वह सब उन्ही के प्रसाद से है। अब उनका शरीर नही है। पर उनके गुण गान करने म मेरा मन अघाता नही।

## श्रीभारतधर्म महामण्डल

मेरे मित्रों मे कई एक आर्यसमाजी थे। धार्मिक चर्चा हुआ करती थी। उनके सिद्धान्तो पर विचार करने से मालूम हुआ कि वे हिन्दू धर्म को प्राटेस्टेण्टी ढाँचा मे ढालना चाहते हैं और इस भाँति हिन्दू धर्म की विशेषता ही मिटा देना चाहते है। वे मूर्तिपूजा श्रद्धादि के आध्यात्मिक स्तर तक न पहुँचकर, विधर्मियों की भाँति उसका खण्डन करते हैं और उसे अवैदिक बतलाते हैं।

नई रोशनी वालों को ये सब बाते पसन्द थी। उनके बूढे माँ-बाप का उनसे पिण्ड पाने की आशा टूट गयी और वे उनके विचारो से दु खी होकर आँसू बहाते थ। उस समय आर्यसमाज का बडे जोरो से प्रचार चलता था। जहाँ-तहाँ सनातनियो से शास्त्रार्थ भी होता था। उस समय भारतधर्म महामण्डल ही एक ऐसी सस्था थी जिसने आर्यसमाज के प्रचार के रोकने मे बडा काम किया।

अत आर्यसमाजी उसे बदनाम करते थे और उसके सस्थापक श्रीस्वामी ज्ञानानन्दजी को बुरा-भला कहते थे। उनकी बातें सुनते-सुनते मेरे चित्त मे भी उस ओर से अश्रद्धा हो गयी। पर वही एक सस्था ऐसी थी जो आर्यसमाजियो की कटूक्ति से सन्तप्त हृदयो को शीतलता पहुँचाती थी।

दैवयोग से वह सस्था मेरे मकान के निकट गुरुधाम मे आ गयी थी। अश्रद्धा होते हुए भी मैं स्वामी ज्ञानानन्दजी महाराज जिन्हे श्रीजी कहते थे मिला। उनके दर्शन से ही चित्त प्रभावित हुआ। प्रवचन सुनने पर तो श्रद्धा और बढ गयी। मैं नित्य जाने लगा और सत्सङ्ग से लाभ उठाने लगा। श्रीजी महाराज ने भी मुझ पर बड़ी कृपा की। सेवा करने के लिए आज्ञा भी होने लगी और मैं शिरोधार्य करके बडे उत्साह से काम करने लगा। उस समय श्रीजी के शिष्य स्वामी दयानन्दजी की अवस्था थोडी थी। लज्जालु स्वभाव था, बहुत कम बोलते थे। श्रीजी के शिष्य विवेकानन्द और प्रेमानन्द सेवा मे रहते थे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मेरी सेवाओ से प्रसन्न होकर श्रीजी ने श्रीभारतधर्म महामण्डल की ओर से महोपदेशक की पदवी दी। कुछ दिनो बाद भारतधर्म महामण्डल का कार्यालय चेतगज चला गया। स्वामीजी भी वही चले गये। दूर होने से मेरा आना-जाना बहुत कम हो गया।

इसी बीच मे मैंने 'कलिविजय' नाम का नाटक लिखा। स्वामीजी उसे सुनकर बडे प्रसन्न हुए और मुझे साहित्य भूषण की पदवी प्रदान की। कुछ प्रपञ्च ऐसे आ पडे कि भारतधर्म महामण्डल मे मेरा आना-जाना बहुत कम हो गया। फिर भी स्वामीजी ने मेरा सम्बन्ध महामण्डल से टूटने नही दिया और वह आज भी चला आ रहा है। मेरा आना-जाना कम होने पर भी श्रीजी महाराज की कृपा म कोई कमी न हुई और वे बराबर ध्यान रखते थ कि मैं कैसी परिस्थिति मे हूँ और क्या करता हूँ।

मैंने अ० भा० धर्मसघ की सेवा स्वीकार की और छ वर्ष तक मासिक सन्मार्ग का सम्पादन किया। इससे श्रीजी महाराज बड प्रसन्न हुए उन्हे धार्मिक कार्य को देखकर प्रसन्नता होती थी चाहे वह कार्य किसी सस्था द्वारा किया जाय। और मुझे श्रीभारतधर्म महामण्डल से धर्मरत्न की पदवी मिली।

## ब्रह्मचारी श्रीसच्चिदानन्दजी

यद्यपि मैंने पितृ-चरण के गोद मे ही नमामि भक्तवत्सल, कृपालुशीलकोमल इस अत्रिकृत स्तुति को अति अबोधावस्था मे कण्ठ की पर बहुत थोडी सी हिन्दी पढाकर ही पितृ चरणो ने मुझे फारसी और अग्रेजी पढ़ने मे लगा दिया। वे वृद्ध हो गये थे। रुग्ण रहते थे। समझते थे कि जमीदारी का काम बिना फारसी, अग्रेजी के न चलेगा। अत जितनी जल्दी मेरा प्रवेश इन भाषाओ मे हो जाय उतना ही अच्छा। अत एफ ए तक मेरी शिक्षा अँग्रेजी, फारसी मे ही हुई।

उनके देहावसान के बाद मुझ ग्लानि हुई कि मैंने परलोक सुधारनेवाली विद्या सस्कृत नही पढी। उस समय ब्रह्मचारी सच्चिदानन्दजी नगवा मे रहते थे। अद्भुत विरक्त पुरुष थ। उनकी अपरिग्रहवृत्ति देखकर मैं चकित रह गया। तीखी तलवार की धार सी पैनी बुद्धि थी। सस्कृत और अंग्रेजी के प्रगाढ विद्वान् थे। महाराष्ट्र होने पर भी बँगला और हिन्दी मातृभाषा की भाँति बोलते थे।

मैंने उनसे प्रार्थना की कि गीता के श्लोको की सङ्गति मुझे नही लगती। कहने लगे कि उसका पाठ किया करो। सङ्गति आप से आप लग जायगी।

महात्माओ के चरणो मे प्रीति मुझे लडकपन से थी और सौभाग्य मेरा ऐसा था कि जिसके पास मैं गया उसने मुझ पर कृपा की। परन्तु उस कृपा से लाभ उठाने मे मैं सदा विफलमनोरथ ही रहा। कुछ दिन आने-जाने के बाद मुझे मालूम हुआ कि गीता के मनन करने वालो मे ये महात्मा बेजोड हैं। लोकमान्य तिलक उनकी धाक मानते थे। मैंने प्रार्थना की कि कुछ मुझे बतलाइये। आज्ञा हुई कि पञ्चदशी पढो। मैं पञ्चदशी लेकर उपस्थित हुआ। उनमे स केवल पहला प्रकरण पढाया और कहा कि बस इतना बहुत है। इसी का मनन करो।

ankurnagpal108@gmail.com



मनन तो मैं कुछ नही कर पाया पर उन महात्मा के प्रवचन का यह प्रभाव पडा कि मालूम हुआ कि आँखे खुल गयी। आज तक मुझे उसी पहिले प्रकरण का विस्तार ही अन्य ग्रन्थो मे दिखायी पडता है।

मेरा प्रेम बचपन से श्री रामचरितमानस मे रहा। कभी-कभी उसकी चर्चा मैं ब्रह्मचारीजी से करता। एकदम अपरिचित ग्रन्थ मे उनकी बुद्धि ऐसा चमत्कार कर देती कि मैं अवाक् रह जाता। कहना अत्युक्ति न होगा कि ग्रन्थ लगाने की कला मैंने उनसे ही सीखी। मानस मे उनके प्रसाद से ऐसी-ऐसी बाते दृष्टिगोचर हुई जो टीकाओ मे नही पायी जाती।

उन्ही के प्रसाद से मुझे दृष्टि मिली, और वे ही मेरी सूझ पर प्रसन्न होकर मुझे मानसराजहस कहने लगे। जब से उनका निवास ढुण्ढिराज गणेश पर हुआ तब से मेरा आना-जाना कम हो गया। पर उनकी कृपा सदा एक सी रही। एक साल हुआ उस महात्मा का काशीवास हो गया।

## वाक्सिद्ध महात्मा

काशी सिद्धो की सराय कहलाती है। यहाँ एक से एक महात्मा आया-जाया करते हैं। अत काशीवासियो की किसी महात्मा पर श्रद्धा बडी कठिनता से होती है। मैंने भी अनेक विरक्त, ज्ञानी और उपासक देखे। परन्तु वाक्सिद्ध महात्मा के दर्शन नही हुए।

अपने जीवन भर मे मैंने केवल दो वाक्सिद्ध महात्मा देखे और दोनो अघोरपन्थ साधु थे। एक मेरे बचपन मे थे। उनका नाम बाबा करात्रदास था। गङ्गा उस पार रहते थे। उनका बाँस का किला बनता था। उसमे मुर्दे की खोपडियाँ लटकायी जाती थी। किसी का नाम कलक्टर, किसी का नाम जण्ट, निदान वे सब बडे-बडे अफसरो का प्रातिनिध्य करती थी। बाबाजी चले जा रहे हैं। सिर पर एक पत्थर रक्खे हुए हैं। उसके ऊपर चूल्हे पर खिचडी पक रही है। जहाँ वह पक के तैयार हुई वही बैठकर खा लिया। एक बार मेरे पडोस मे बाबाजी की खिचडी पकने लगी। कोई सुरती लेकर आया। बाबाजी सुरती खाइयेगा। हुकुम हुआ छोड दो खिचडी मे। कोई तेल लेकर आया, कोई गुड लेकर आया। सब उसी खिचडी मे छोडा चला जा रहा है। खिचडी तैयार होने तक उसमे पचासो चीज पडी। बाबाजी सब खा गये। मेरी आँखो देखी बात है।

एक रईस से बाबाजी पाँच सौ रुपया लेने के लिए अड गये। रईस देना नही चाहता था। उसने एक पण्डितजी के हाथ सौ रुपये भेजे। पण्डितजी ने कहा कि आप महात्मा हैं जो देता है ले लीजिए। किसी को कष्ट देकर लेना आपको उचित नही।

कहने लगे उसका बड़ा अनिष्ट होने वाला है। मैं चाहता था कि उसे हटा दूँ। पर मालूम होता है कि वह होकर रहेगा। तुम रुपया ले जाओ। मुझे रुपया लेकर क्या करना है, जो मुझसे मोल-भाव करता है। वह तो उसी के कल्याण मे खर्च होता। साल के भीतर उसके एकलौते बेटे की मृत्यु हो गयी। सुनी तो बहुत बातें जाती हैं पर यह तो स्वय मेरी जानी हुई बात है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दूसरे कुत्ता बाबा थे। वे रामनगर मे किला के पिछवाडे रहते थे। उन्होने एक गूंगे को वाक्‌शक्ति दी और उसने इन्ट्रेन्स पास किया। राणा जगत्प्रकाश वीरजङ्ग जेनरल मिनिस्टर टेहरीराज मृत्युशय्या पर पडे थे। डॉक्टरो ने जवाब दे दिया था। उनकी माता की करुणा पर द्रवीभूत होकर कुत्ता बाबा ने उनके घर आकर राणा साहिब को चङ्गा कर दिया। परमेश्वर की कृपा से इस बात की सचाई क प्रमाण मे राणा साहिब मौजूद हैं।

मैं कभी-कभी उनके दर्शनो को जाता। वडा मान करते थे। मेरा नाम पण्डित रख छोडा था। एक बार मैं बैठा था। एक बगालिन एक बोतल मद्य ले आयी। उनके एक भक्त ने मेरी आँख बचाकर उसे छिपा देना चाहा। बाबा जी बोले चोरी किस बात की। जो बात है वह तो हुई है। बोतल मंगवाकर अपन सामने रखवा लिया।

मेरे मन म आया कि म इनका कैसे सत्कार करूँ। सो भांग बनाकर उसम केवडा जल आदि छोडकर ले गया। बडे नाराज हुए। तुम यह लेकर क्यो आये। हाथ जोडा कि बडा अपराध हुआ। तब आप उसे गरम करके पी गय।

बाबाजी रघुवशी क्षत्रिय थ। अघोरपन्थी होने पर भी वर्णमर्यादा का इतना ख्याल करते थे कि ब्राह्मण को चरण छूने नही देते थे।

गङ्गाजी पर बडी प्रीति थी। गङ्गा-गङ्गा किया करते थ। नहाते नही थ। कहते थे कि गङ्गा के नाम से काम है। गङ्गा से काम क्या है। सब लोग जय गङ्गा कहकर उन्हे प्रणाम करते थे।

## योग मे अभिरुचि

प० षडानन जी ब्रह्मचारी मेरे मकान मे रहते थे। बड तपस्वी और ब्रह्मनिष्ठ थ। वे दो बार चारो धाम की यात्रा पैदल कर चुके थ। उनके सत्सङ्ग से मुझे योग मे रुचि हुई। उनसे मैंने नेती धोती सीखी। उस समय उसी को बडा योग समझता था। कुछ दिनो तक नेती धोती करता रहा। पर उससे सिवा कफ शुद्धि के और कोई विशष लाभ नही हुआ। पण्डितजी ने मुझे कई आसन सिखाये। षण्मुखी प्राणायाम सिखाया। छायापुरुष का दर्शन कराया। अनाहतनाद सुनाया। इन सभी क्रियाओ म कुछ न कुछ चमत्कार था। परन्तु मेरा सन्तोष इनसे न हुआ।

खेचरी मुद्रा का बडा नाम सुना था। पर उसे सिखाने वाला कोई नही मिलता था। गुरुजी की कृपा से ब्रह्मचारी सदानन्दजी का दर्शन हुआ। इन्हे लोग पहाडी महात्मा कहते थे। ये प्रणवोपासना करते थे। इन्होने मुझे खेचरी मुद्रा सिखायी। समाधि के लिए मेरी उत्कट इच्छा थी। पर इन महात्मा ने कहा कि जब आहार घटाकर नौ तोले दूध पर ला दो, तब समाधि हो सकेगी।

मुझसे यह कभी न हो सका। अत खेचरी से सिवा ध्यान मे सहायक होने के और कोई लाभ न हुआ। कालक्रम से मेरे पास एक मेरठ के जमींदार गृहस्थी से विरक्त होकर सन्यास लेने काशी आये। मुझसे पूछने लगे कि किससे सन्यास लूँ। मैंने कहा जल्दी न कीजिए। यहाँ बहुत से सन्यासी हैं। उनसे मिलिए जिस पर आपकी श्रद्धा हो औ रउनसे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

दीक्षा ग्रहण कीजिये। एक सप्ताह मिलने-जुलने के बाद वे मुझसे कहने लगे कि काशी में तो कोई गुरु बनाने योग्य नहीं है। मुझे बुरा तो अवश्य लगा। पर मैं चुप हो गया।

कुरुक्षेत्र पर एक स्वामी नवीनानन्दजी उदासी रहते थे। लोग उन्हें लगडा बाबा कहते थे। एक पैर से वे खञ्ज थे। उन्हे मैं प्राय कचहरी में देखता था और मन ही मन कुढ़ता था कि ये ही लोग हिन्दू धर्म को बदनाम करते हैं।

एक दिन अकस्मात् वे मेरे यहाँ पधारे। कहने लगे कि तेरा बाप मेरा बड़ा ख्याल रखता था और तू कुछ ख्याल नहीं करता। मैंने बात टालने की नीयत से कहा कि मेरठ से एक व्यक्ति आये हैं। वे कहते हैं कि काशी में कोई साधु ऐसा नहीं है जो गुरु बनाया जा सके।

बोले कि बुलाओ उसको। मैंने उन्हें बुला दिया और कहा कि देखिये ये एक महात्मा हैं। वे कहने लगे कि महात्मा के खोज में ही मैं सब छोड़कर आया हूँ। स्वामीजी ने पूछा कि शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध इनमें से क्या छोड़कर आया है? वे कोई उत्तर न दे सके। उन्होंने बात ही बात में उन्हें ऐसा लपेटा कि उनकी बुद्धि कुण्ठित हो गयी और मैं भी चकित हो गया।

स्वामीजी इतना कह कर चले गये कि कल मेरे यहाँ आना। वे गये, बड़े प्रभावित होकर लौटे। वे नित्य जाते और लौटकर स्वामीजी के गुण वर्णन करते। अन्त में मुझे भी श्रद्धा हुई। उनके साथ जाने लगा। तब उनके माहात्म्य का ज्ञान हुआ। जिसे दुष्ट समझता था उसे महासाधु पाया। रामायण की यह चौपाई याद आयी कि सदा अपन पौ रहहिं दुराय। सब विधि कुसल कुवेष बनाये।

स्वामीजीने हम लोगो पर बड़ी कृपा की और हम दोनो को प्राणोपासना की विधि बतलायी। काम क्रोध को गुरुदक्षिणा में माँगा। हम लोगो को नित्य जाकर प्राणोपासना का अनुभव कहना पडता था और शिक्षा लेनी पडती थी। हम दोनो के अनुभव में कभी मेल न खाया। सिवा इसके कि दोनों को साधन में परम सुख मिलता था।

जैसा-जैसा अनुभव प्राणोपासना में हुआ वह वर्णनातीत था और यदि वर्णन भी किया जाय तो कोई विश्वास न करेगा। नित्य नवीन आनन्द और प्रायश अद्भुत चमत्कार का अनुभव होता था। इस भाँति छ महीने बीते। बड़ी-बड़ी आशा बँधने लगी। एक दिन मुझसे चूक हो गयी। मैं ब्रह्मचर्य न सँभाल सका। सारा करा धरा मिट्टी हो गया। जैसे कोई आसमान से जमीन पर आ पड़े। वही क्रिया थी। वही मैं था। पर वह आनन्द और चमत्कार न जाने कहाँ चला गया। बड़ी ग्लानि हुई। आत्महत्या के लिए जी चाहने लगा। स्वामीजी के सामने जाने में लज्जा लगने लगी। मन में निश्चय हो गया कि मैं इस क्रिया का पात्र नहीं हूँ और मैंने साधन परित्याग कर दिया। साहस करके मैं फिर भी स्वामीजी के यहाँ गया। पर साधन की चर्चा नहीं की और न उन महात्मा ने पूछा कि तुम्हारा साधन कैसा चल रहा है।

## श्री गुरुचरणों की प्राप्ति

श्रीराजेन्द्र बाबू नाम के एक बंगाल के जमींदार थे। उनसे मेरा परिचय हो गया था।

ankurnagpal108@gmail.com



दूसरे कुत्ता बाबा थे। वे रामनगर मे किला के पिछवाड़े रहते थे। उन्होने एक गूंगे को वाक्‌शक्ति दी और उसने इन्ट्रेन्स पास किया। राणा जगत्प्रकाश वीरजङ्ग जेनरल मिनिस्टर टेहरीराज मृत्युशय्या पर पड़े थे। डॉक्टरो ने जवाब दे दिया था। उनकी माता की करुणा पर द्रवीभूत होकर कुत्ता बाबा ने उनके घर आकर राणा साहिब को चङ्गा कर दिया। परमेश्वर की कृपा से इस बात की सचाई व प्रमाण मे राणा साहिब मौजूद हैं।

मैं कभी-कभी उनके दर्शनो को जाता। बडा मान करते थे। मेरा नाम पण्डित रख छोडा था। एक बार मैं बैठा था। एक बगालिन एक बोतल मद्य ले आयी। उनके एक भक्त ने मेरी आँख बचाकर उसे छिपा देना चाहा। बाबा जी बोले चोरी किस बात की। जो बात है वह तो हुई है। बोतल मँगवाकर अपने सामने रखवा लिया।

मेरे मन मे आया कि मैं इनका कैसे सत्कार करूँ। सो भाँग बनाकर उसम केवडा जल आदि छोडकर ले गया। बडे नाराज हुए। तुम यह लेकर क्यो आये। हाथ जोडा कि बडा अपराध हुआ। तब आप उसे गरम करके पी गय।

बाबाजी रघुवशी क्षत्रिय थे। अघोरपथी होने पर भी वर्णमर्यादा का इतना ख्याल करते थे कि ब्राह्मण को चरण छूने नही देते थे।

गङ्गाजी पर बडी प्रीति थी। गङ्गा गङ्गा किया करते थ। नहाते नही थ। कहते थे कि गङ्गा के नाम से काम है। गङ्गा स काम क्या है। सब लोग जय गङ्गा कहकर उन्हे प्रणाम करते थे।

## योग मे अभिरुचि

प० षडानन जी ब्रह्मचारी मेरे मकान म रहते थे। बड तपस्वी और ब्रह्मनिष्ठ थे। वे दो बार चारो धाम की यात्रा पैदल कर चुके थे। उनके सत्सङ्ग से मुझे योग म रुचि हुई। उनसे मैंने नेती धोती सीखी। उस समय उसी को बडा योग समझता था। कुछ दिनो तक नेती धोती करता रहा। पर उससे सिवा कफ शुद्धि के और कोई विशेष लाभ नही हुआ। पण्डितजी ने मुझे कई आसन सिखाये। षण्मुखी प्राणायाम सिखाया। छायापुरुष का दर्शन कराया। अनाहतनाद सुनाया। इन सभी क्रियाओं मे कुछ न कुछ चमत्कार था। परन्तु मेरा सन्तोष इनसे न हुआ।

खेचरी मुद्रा का बडा नाम सुना था। पर उसे सिखाने वाला कोई नही मिलता था। गुरुजी की कृपा से ब्रह्मचारी सदानन्दजी का दर्शन हुआ। इन्हे लोग पहाडी महात्मा कहते थे। ये प्रणवोपासना करते थे। इन्होने मुझे खेचरी मुद्रा सिखायी। समाधि के लिए मेरी उत्कट इच्छा थी। पर इन महात्मा ने कहा कि जब आहार घटाकर नौ तोले दूध पर ला दो, तब समाधि हो सकेगी।

मुझसे यह कभी न हो सका। अत खेचरी से सिवा ध्यान मे सहायक होने के और कोई लाभ न हुआ। कालक्रम से मेरे पास एक मेरठ के जमीदार गृहस्थी से विरक्त होकर सन्यास लेने काशी आये। मुझसे पूछने लगे कि किससे सन्यास लूँ। मैंने कहा जल्दी न कीजिए। यहाँ बहुत से सन्यासी हैं। उनसे मिलिए जिस पर आपकी श्रद्धा हो औ र उनसे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



क्षा ग्रहण कीजिये। एक सप्ताह मिलने-जुलने के बाद वे मुझसे कहने लगे कि काशी मे ो कोई गुरु बनाने योग्य नही है। मुझे बुरा तो अवश्य लगा। पर मैं चुप हो गया।

कुरुक्षेत्र पर एक स्वामी नवीनानन्दजी उदासी रहते थे। लोग उन्हे लगडा बाबा कहते थे। एक पैर से वे खञ्ज थे। उन्हे मै प्राय. कचहरी मे देखता था और मन ही मन कुढता था कि ये ही लोग हिन्दू धर्म को बदनाम करते हैं।

एक दिन अकस्मात् वे मेरे यहाँ पधारे। कहने लगे कि तेरा बाप मेरा बडा ख्याल रखता था और तू कुछ ख्याल नही करता। मैंने बात टालने की नीयत से कहा कि मेरठ से एक व्यक्ति आये हैं। वे कहते हैं कि काशी मे कोई साधु ऐसा नही है जो गुरु बनाया जा सके।

बोले कि बुलाओ उसको। मैंने उन्हे बुला दिया और कहा कि देखिये ये एक महात्मा हैं। वे कहने लगे कि महात्मा के खोज मे ही मैं सब छोडकर आया हूँ। स्वामीजी ने पूछा कि शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध इनमे से क्या छोडकर आया है ? वे कोई उत्तर न दे सके। उन्होंने बात ही बात मे उन्हे ऐसा लपेटा कि उनकी बुद्धि कुण्ठित हो गयी और मैं भी चकित हो गया।

स्वामीजी इतना कह कर चले गये कि कल मेरे यहाँ आना। वे गये, बडे प्रभावित होकर लौटे। वे नित्य जाने और लौटकर स्वामीजी के गुण वर्णन करते। अन्त मे मुझे भी श्रद्धा हुई। उनके साथ जाने लगा। तब उनके माहात्म्य का ज्ञान हुआ। जिसे दुष्ट समझता था उसे महासाधु पाया। रामायण की यह चौपाई याद आयी कि सदा अपन पौ रहहिं दुराये। सब विधि कुशल कुवेष बनाये।

स्वामीजीने हम लोगों पर बडी कृपा की और हम दोनों को प्राणोपासना की विधि बतलायी। काम क्रोध को गुरुदक्षिणा मे मांगा। हम लोगो को नित्य जाकर प्राणोपासना का अनुभव कहना पडता था और शिक्षा लेनी पडती थी। हम दोनो के अनुभव मे कभी मेल न खाया। सिवा इसके कि दोनो को साधन मे परम सुख मिलता था।

जैसा-जैसा अनुभव प्राणोपासना मे हुआ वह वर्णनातीत था और यदि वर्णन भी किया जाय तो कोई विश्वास न करेगा। नित्य नवीन आनन्द और प्रायेण अद्भुत चमत्कार का अनुभव होता था। इस भाँति छ. महीने बीते। बडी-बडी आशा बँधने लगी। एक दिन मुझसे चूक हो गयी। मैं ब्रह्मचर्य न सँभाल सका। सारा करा धरा मिट्टी हो गया। जैसे कोई आसमान से जमीन पर आ पडे। वही क्रिया थी। वही मैं था। पर वह आनन्द और चमत्कार न जाने कहाँ चला गया। बडी ग्लानि हुई। आत्महत्या के लिए जी चाहने लगा। स्वामीजी के सामने जाने में लज्जा लगने लगी। मन में निश्चय हो गया कि मैं इस क्रिया का पात्र नहीं हूँ और मैंने साधन परित्याग कर दिया। साहस करके मैं फिर भी स्वामीजी के यहाँ गया। पर साधन की चर्चा नही की और न उन महात्मा ने पूछा कि तुम्हारा साधन कैसा चल रहा है।

## श्री गुरुचरणों की प्राप्ति

श्रीराजचन्द्र बाबू नाम के एक बंगाल के जमींदार थे। उनसे मेरा परिचय हो गया था।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



एक दिन प्रसङ्गात् मैंने श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी की प्रशसा उनसे की। कहने लगे कि चलो तुम्हे गोस्वामीजी का दर्शन करावें। मैं भी चल पडा। वे मुझे सोनारपुरा के एक मकान मे ले गये। भीतर जाने पर मैंने अपने को एक महात्मा के सम्मुख पाया। जैसे पुस्तको के वन मे कोई सिह बैठा हो। बडी गम्भीर मुद्रा, करुणापूर्ण दृष्टि, उज्ज्वल तेजोमयमूर्ति का दर्शन करते ही मेरा सिर आप से आप चरणो मे झुक गया और हृदय ने बोल दिया कि यही तेरे गुरु हैं।

उस पाणिपवज का सिर से स्पर्श मे जो सुख हुआ उससे पितृ चरणो के करकमल के स्पर्श का सुख याद आया। जो कि बीमारी की घोर वेदना के समय सर्वाबाधासु घोरासु मन्त्र का पाठ करते हुए सिर पर उनके हाथ फेरने से मुझे मिलता था।

तब से मैं बराबर श्रीचरणो के दर्शन के लिए जाने लगा। गुरुजी प्रायेण सस्कृत या बँगला में शास्त्रो का व्याख्यान भक्त मण्डली मे करते थे। हिन्दी थोडी जानते थे। मैं भी बँगला और सस्कृत से अपरिचित नही था। फिर भी विषय की गहनता के कारण ठीक समझ नही पाता था।

पाँच-चार महीना बराबर सेवा मे जाते मेरा प्रवेश कुछ उन उपदेशो मे हो चला। सुनने की प्यास बढती गयी। गुरुजी की कृपा को बढते देखकर मैं फूला नही समाता था। मेरी सेवा भी स्वीकार होने लगी। एक दिन मुझे बुलाकर श्रीरामषडक्षर मत्रराज की दीक्षा दी और ध्यान की विधि बतलायी। अपनी बनायी हुई पुस्तक आर्यशास्त्रप्रदीप तथा भूत और शक्ति पढने को दिया।

मुझे भी श्रीचरणो के सामने ससार भूल सा जाता था। दर्शन से न तो नेत्र तृप्त होते थे। और न वचनों से श्रवण तृप्त होते थ।

कुछ दिनो के बाद श्रीचरणो ने मकान बदल दिया और राजघाट जाकर रहने लगे। दूर हो जाने से मेरा नित्य का जाना तो रुक गया पर प्रायेण आया-जाया करता था। उनके मध्यम पुत्र फणिभूषण सान्याल से मेरी मित्रता हो गयी। उनके बडे लडके विभूति-भूषण ठाकुरजी की पूजा और बाबा की सेवा मे रहते थे। छोटे लडके इन्दुभूषण उस समय पढते थे। सतीश नाम के एक सेवक थे। उन्हे बाबा की सेवा से तृप्ति ही नही होती थी। बडे रईस और प्रोफेसर सतीश की खुशामद करते थे कि जिसमें उन्हे बाबा का दर्शन मिल सके।

वैसा धर्म पर वज्र विश्वास, वैसा ज्ञान, वैसी उपासना, वैसी चतुरस्र विद्या, वैसी व्याख्यान शक्ति, वैसा चिकित्सा नैपुण्य, वैसी साधना कहीं दिखायी नही पडती और न वैसी उदारता या वैसी दया ही कहीं दृष्टिगोचर होती है जैसा कि मैंने श्रीचरणों मे देखा। वह आनन्द और वह समाज अब देखने को कहाँ मिलनेवाला है। कई वर्ष मेरे बडे सुख से बीते। अपने जीवन का सुखमय समय मैं तभी तक मानता हूँ जब तक गुरुजी काशी मे आसीन थे। मैं तो यही कहूँगा कि मेरे दुर्भाग्य से उनका जाना कलकत्ते हुआ और फिर मैं दर्शन नही पा सका।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



## श्रीमुमुक्षभवन

मेरे मुहल्ले म एक प्रसिद्ध सत बाबा अमरदासजी रहते थे। एक दिन उन्होंने बुलवा भेजा और कहा कि तेरा नाम विजयी है तू विजय कर।

## राजा साहिब नागौद की श्रद्धा

श्रीमान् राजा यादवेन्द्र सिंह उचेहरा नागौद के राजा थे। परिहारो मे यह प्रधान गद्दी है। राजा साहिब बड सच्चरित्र और सच्चे सनातनधर्मी थे। नयी सभ्यता उन्हें नही रुचती थी। वे कहा करते थे कि उसने अपने देश के पहिरावा का परित्याग किया। उसने अपने देश से इनकार कर दिया। और जिसने अपने देश से इनकार किया वह अपने बाप से इनकार कर चुका। अगरेज के छू जाने पर गोमय लगाकर स्नान करते थे।

भला ऐसे विचार के नरेश से रेजिडण्ट की क्या पटने लगी। बृटिश गवर्नमेंट न मान लिया कि राजा साहिब का दिमाग सही नही है और उन्ह मासिक मिलने लगा। राज्य से अलग रहने लगे।

काशी मे ठहरे हुए थ। बड आग्रह से मर्दनी के ब्राह्मणो को निमत्रण दिया। उसमे मैं भी गया था। देखा कि वहाँ पक्की की व्यवस्था थी अत मैंने स्पष्ट कह दिया मैं भोजन नही करूँगा।

बात राजा साहिब तक पहुँची। बोले किसने ऐसी बात कही? लोगो न कहा तिवारीजी ने। कहा कि जाकर उनसे कहो कि वे ब्राह्मण है। मैं क्षत्रिय हूँ। मरे यहाँ क्यों न खावेंगे? मेरे में दोष बतला दें तब भले ही न खावें।

मैंने कहा कि रानी तो रसोई बनावेंगी नही और राजा साहिब तो परोसेंगे नही। इन रसोइया क गुण कर्म स्वभाव का मुझे पता नही इसलिए मैं नहा खा सकता। महाराज क यहाँ से जवाब आया कि रानी रसोई बनावेंगी और मैं परोसूँगा। वही बात हुई, रानी ने रसोई बनाई और स्वय बूढ महाराज अपने छोट छोटे बच्चो के साथ परोसने उठे। उन्हे मरे कहने का मलाल नहीं हुआ। उन्हे इस उत्तर से बडी खुशी हुई। थाल म ब्राह्मणो के पैर स्वय धोये और भोजन परोसा। भोजन के समय उपनिषद के उपाख्यान सुनाते रहे। मैं राजा साहिब की श्रद्धा देखकर अवाक् रह गया।

उनकी रानी साहिबा आज भी जब काशी आती हैं मर्दनी के ब्राह्मणो को अपने हाथ स रसोई बनाकर खिलाती है। राजा साहिब को कोई सतान नही थी। एक लडका गोद ले रक्खा था। वे लाल साहिब कहलाते थे। उनका विवाह शिवगढ म ठीक हुआ। राजा साहिब की ओर से निमत्रण आया। उसी समय प्रयागराज में किसी बडे नेता के भाषण का समाचार मिला। मित्रमण्डली में यही निर्णय हुआ कि व्याख्यान सुनकर राजा साहिब की बारात करनी चाहिए। हमलोग चल पडे। प्रयागराज पहुँचने पर समाचार गलत सिद्ध हुआ।

बडी निराशा हुई। अब यह निश्चय हुआ कि बारात करने हुए चित्रकूट की यात्रा कर लेनी चाहिये। शङ्करगढ पहुँचे। अभी बारात नही आयी थी। दुकान बद थीं। सौदा बेचने की आज्ञा नही थी। दरबार से चिट्ठी लेकर आवे तब सामान मिले। दरबार जाकर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



एक दिन प्रसङ्गात् मैंने श्रीगोस्वामी तुलसीदासजी की प्रशसा उनसे की। कहने लगे कि चलो तुम्हे गोस्वामीजी का दर्शन करावें। मैं भी चल पडा। वे मुझे सोनारपुरा के एक मकान मे ले गये। भीतर जाने पर मैंने अपने को एक महात्मा के सम्मुख पाया। जैसे पुस्तको के वन मे कोई सिंह बैठा हो। बडी गम्भीर मुद्रा, करुणापूर्ण दृष्टि, उज्ज्वल तेजोमयमूर्ति का दर्शन करते ही मेरा सिर आप से आप चरणो मे झुक गया और हृदय ने बोल दिया कि यही तेरे गुरु हैं।

उस पाणिपकज का सिर से स्पर्श मे जो सुख हुआ उससे पितृ चरणो के करकमल के स्पर्श का सुख याद आया। जो कि बीमारी की घोर वेदना के समय सर्वाबाधासु घोरासु मन्त्र का पाठ करते हुए सिर पर उनके हाथ फेरने से मुझे मिलता था।

तब से मैं बराबर श्रीचरणो के दर्शन के लिए जाने लगा। गुरुजी प्रायेण सस्कृत या बँगला मे शास्त्रो का व्याख्यान भक्त मण्डली म करते थे। हिन्दी थोडी जानते थे। मैं भी बँगला और सस्कृत से अपरिचित नही था। फिर भी विषय की गहनता के कारण ठीक समझ नही पाता था।

पाँच चार महीना बराबर सेवा मे जाते मेरा प्रवेश कुछ उन उपदेशो मे हो चला। सुनने की प्यास बढती गयी। गुरुजी की कृपा को बढते देखकर मैं फूला नही समाता था। मेरी सेवा भी स्वीकार होने लगी। एक दिन मुझे बुलाकर श्रीरामषडक्षर मत्रराज की दीक्षा दी और ध्यान की विधि बतलायी। *अपनी बनायी हुई पुस्तक आर्यशास्त्रप्रदीप तथा भूत और* शक्ति पढने को दिया।

मुझे भी श्रीचरणो के सामने ससार भूल सा जाता था। दर्शन से न तो नेत्र तृप्त होते थे। और न वचनो से श्रवण तृप्त होते थे।

कुछ दिनो के बाद श्रीचरणो ने मकान बदल दिया और राजघाट जाकर रहने लगे। दूर हो जाने से मेरा नित्य का जाना तो रुक गया पर प्रायेण आया-जाया करता था। उनके मध्यम पुत्र फणिभूषण सान्याल से मेरी मित्रता हो गयी। उनके बडे लडके विभूति भूषण ठाकुरजी की पूजा और बाबा की सेवा मे रहते थे। छोटे लडके इन्दुभूषण उस समय पढते थे। सतीश नाम के एक सेवक थे। उन्हे बाबा की सेवा से तृप्ति ही नही होती थी। बडे रईस और प्रोफेसर सतीश की खुशामद करते थे कि जिसमे उन्ह बाबा का दर्शन मिल सके।

वैसा धर्म पर वज्र विश्वास, वैसा ज्ञान, वैसी उपासना, वैसी चतुरस्र विद्या, वैसी व्याख्यान शक्ति, वैसा चिकित्सा नैपुण्य, वैसी साधना कहीं दिखायी नही पडती और न वैसी उदारता या वैसी दया ही कही दृष्टिगोचर होती है जैसा कि मैंने श्रीचरणो मे देखा। वह आनन्द और वह समाज अब देखने को कहाँ मिलनेवाला है। कई वर्ष मेरे बडे सुख से बीते। अपने जीवन का सुखमय समय मैं तभी तक मानता हूँ जब तक गुरुजी काशी म आसीन थे। मैं तो यही कहूँगा कि मेरे दुर्भाग्य से उनका जाना कलकत्ते हुआ और फिर मैं दर्शन नही पा सका।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

## श्रीमुमुक्षभवन

मेरे मुहल्ले में एक प्रसिद्ध संत बाबा अमरदासजी रहते थे। एक दिन उन्होंने बुलवा भेजा और कहा कि तेरा नाम विजयी है, तू विजय कर।

## राजा साहिब नागौद की श्रद्धा

श्रीमान् राजा यादवेन्द्र सिंह उचेहरा नागौद के राजा थे। परिहारों में यह प्रधान गद्दी है। राजा साहिब बड़े सच्चरित्र और सच्चे सनातनधर्मी थे। नयी सम्यता उन्हें नहीं रुचती थी। वे कहा करते थे कि उसने अपने देश के पहिरावा का परित्याग किया। उसने अपने देश से इनकार कर दिया। और जिसने अपने देश से इनकार किया वह अपने बाप से इनकार कर चुका। अंगरेज के छू जाने पर गोमय लगाकर स्नान करते थे।

भला ऐसे विचार के नरेश से रेजिडण्ट की क्यों पटने लगी। बृटिश गवर्नमेंट ने मान लिया कि राजा साहिब का दिमाग सही नहीं है और उन्हे मासिक मिलने लगा। राज्य से अलग रहने लगे।

काशी में ठहरे हुए थे। बड़े आग्रह से मदैनी के ब्राह्मणों को निमंत्रण दिया। उसमें मैं भी गया था। देखा कि वहाँ पक्की की व्यवस्था थी अतः मैंने स्पष्ट कह दिया मैं भोजन नहीं करूँगा।

बात राजा साहिब तक पहुँची। बोले किसने ऐसी बात कही? लोगों ने कहा तिवारीजी ने। कहा कि जाकर उनसे कहो कि वे ब्राह्मण है। मैं क्षत्रिय हूँ। मेरे यहाँ क्यों न खावेंगे? मेरे मे दोष बतला दें तब भले ही न खावें।

मैंने कहा कि रानी तो रसोई बनावेंगी नहीं और राजा साहिब तो परोसेंगे नहीं। इन रसोइयों के गुण कर्म स्वभाव का मुझे पता नहीं इसलिए मैं नहीं खा सकता। महाराज के यहाँ से जवाब आया कि रानी रसोई बनावेंगी और मैं परोसूँगा। वही बात हुई, रानी ने रसोई बनाई और स्वयं बूढ़े महाराज अपने छोटे-छोटे बच्चों के साथ परोसने उठे। उन्हें मेरे कहने का मलाल नहीं हुआ। उन्हे इस उत्तर से बड़ी खुशी हुई। थाल मे ब्राह्मणों के पैर स्वयं धोये और भोजन परोसा। भोजन के समय उपनिषद् के उपाख्यान सुनाते रहे। मैं राजा साहिब की श्रद्धा देखकर अवाक् रह गया।

उनकी रानी साहिबा आज भी जब काशी आती हैं मदैनी के ब्राह्मणों को अपने हाथ से रसोई बनाकर खिलाती हैं। राजा साहिब को कोई संतान नहीं थी। एक लड़का गोद ले रक्खा था। वे लाल साहिब कहलाते थे। उनका विवाह शिवगढ़ मे ठीक हुआ। राजा साहिब की ओर से निमंत्रण आया। उसी समय प्रयागराज में किसी बड़े नेता के भाषण का समाचार मिला। मित्रमण्डली में यही निर्णय हुआ कि व्याख्यान सुनकर राजा साहिब की बारात करनी चाहिए। हमलोग चल पड़े। प्रयागराज पहुँचने पर समाचार गलत सिद्ध हुआ।

बड़ी निराशा हुई। अब यह निश्चय हुआ कि बारात करते हुए चित्रकूट की यात्रा कर लेनी चाहिये। शङ्करगढ़ पहुँचे। अभी बारात नहीं आयी थी। दूकाने बंद थी। सौदा बेचने की आज्ञा नहीं थी। दरबार से चिट्ठी लेकर आवे तब सामान मिले। दरबार जाकर

ankurnagpal108@gmail.com



चिट्ठी लेने से उसी की खुशामद करना उचित मालूम पडा। अत मे उसने मुँह माँगे दाम पर सौदा दिया। छिपकर रसोई बनायी। अपराह्न मे बारात आयी।

पहली हाथी पर पुरोहितजी ठाकुरजी के साथ आसीन थे। दूसरी पर राजा साहिब थे। तीसरी पर लालसाहिब दूल्हा थे। राजा साहिब की श्रद्धा देखकर चित्त प्रसन्न हुआ।

जनवासे मे बारात के पहुँचने पर राजा साहिब तक पहुँचने का यत्न करने लगा। जो कारबारी काशी मे मेरे यहाँ आते-जाते थे उन्होने पहिचाना तक नही। खैर जब रसद बँटने लगी तब अवसर मिला। राजा साहिब के पास गया पर उन्होने भी नही पहिचाना। बडा अपमान बोध हुआ। मेरे साथ महन्त सीतारामदास सस्थापक पाठशाला—थे। उन्हे सूझ गयी। मेरा नाम बोल दिया। राजा साहिब उठकर खडे हो गये। पूछने लगे कि आपने सर्वमुण्डन क्यो कराया है? इसी से भ्रम हुआ। मैंने कहा प्रयागराज से होता आ रहा हूँ।

हम लोगो को चित्रकूट के लिए जल्दी थी। बिना विदा हुए ही सवेरे चित्रकूट को प्रयाण किया।

एक बार श्री गो० तुलसीदासजी के लीला मे भरत मिलाप का दिन था। भेलूपुर के थानेदार बडे कट्टर मुसलमान थे। कहला दिया कि तुम लोगो ने सुपरिण्टेण्डेण्ट साहिब से हुकुम नही लिया है। इसलिए लीला नही हो सकती। लीला का समय बहुत सन्निकट था। उस समय कुछ हो नही सकता था। थानेदार साहिब को राजी करना असाध्य व्यापार था।

जाकर राजा साहिब से सब बात कही। कहने लगे कि हम अपना धार्मिक कार्य करेंगे। सुपरिण्टेण्डेण्ट कौन होते हैं। आप लीला आरम्भ कराइये मैं आया।

लीला आरम्भ हुई। और इधर तहकीकात आरम्भ हुई कि कौन लीला कराता है। राजा साहिब ने कहा मेरी आज्ञा से लीला हो रही है। इसकी जिम्मेदारी मेरे ऊपर है। पुलिस सलाम करके चली गयी।

## ज्ञानवापी का मुकदमा

मुसलमानो ने डिक्लेरेशन सूट गवर्नमेण्ट के ऊपर दाखिल किया कि अदालत घोषणा कर दे कि ज्ञानवापी के अहाते की सब जमीन मुसलमानो की है और उस पर हिन्दू लोग उनकी आज्ञा से पूजा-पाठ करते हैं। जो मसजिद उस अहाते के बीच मे है वह विश्वनाथ मन्दिर को तोडकर नही बनी है। बल्कि बादशाह अकबर के चलाये हुए दीनइलाही मजहब के मन्दिर को तोडकर बनायी गयी है। उस स्थान पर विश्वनाथ का मन्दिर कभी था ही नही। वह कही पर विश्वेश्वरगज मे था। काशीखण्ड नाम की एक पुस्तक हिन्दुओ ने मुसलमानो से लडने के लिए पचास वर्ष से बना ली है।

सरकार की ओर से पैरवी के लिए तहसीलदार मुकर्रर हुए। वे बिचारे बहुत जगह घूमे, मुसलमानो से बैर हो जाने के भय से कोई यह कहने को तैयार नहीं होता था कि ज्ञानवापी हिन्दुओ की है।

लाचार होकर बेचारे तहसीलदार धर्मप्राण सेठ गौरीशङ्करजी के यहाँ आये। उस समय मैं भी वहाँ था। कहने लगे कि मैं कितने हिन्दुओ के यहाँ गया। कोई यह कहन को तैयार नही है कि ज्ञानवापी हिन्दुओं की है। सेठजी बड असमञ्जस म प", मुझसे रहा न

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

गया। बात बैठा कि आप किसी हिन्दू के पास गये नहीं, तहसीलदार साहिब घूम पड़े, कहने लगे कि क्या आप बयान देवेंगे ? मैंने कहा बड़ी खुशी से और दस हज़ मिश्रा के साथ।

तब तो तहसीलदार साहिब ने रङ्ग बदला। कहने लगे कि आपके बयान से तो पूरा काम नहीं चलेगा। मुझे बड़े-बड़े आदमियों की आवश्यकता है।

मैंने कहा कि बड़ा-बड़ा आदमी दूँगा। कहने लगे कि नाम बतलाइये, और जेब से पेंसिल और डायरी निकाला। मैंने कहा कि नाम लिखिये। महाराजा बनारस और महामना मालवीयजी।

बोले कि इनके पास चलिये। मैंने कहा कि मैं कहीं न जाऊँगा। आप इन्हें तलब कराइये, न आवें तो वारण्ट से बुलाइये। ये लोग आकर कह देवेंगे कि ज्ञानवापी मुसलमानों की है तो हम लोग मान जायेंगे।

तहसीलदार साहिब कहने लगे कि ऐसी बात तो किसी ने न कही। मैंने कहा कि इतना ही नहीं मैं प्राचीन पुस्तक काशीखण्ड भी भी दूँगा।

मुकदमा पेश हुआ। मेरा बयान हुआ, मैंने सवा सौ वर्ष पुरानी लिखी हुई काशीखण्ड की टीका पेश की और अपनी की हुई केदारमाहात्म्य की हिन्दी टीका पेश की। जिसमें ज्ञानवापी के अहाते के देवमूर्तियों का उल्लेख था। बयान समाप्त होने पर मौलवीसाहिब वकील जिरह करने उठे। कहने लगे कि काशीखण्ड में तो लिखा है कि आसमान धुएँ से बना है। मैं कहा ऐसा नहीं हो सकता।

उन्होंने काशीखण्ड खोलकर सामने रक्खा। उसमें एक राजा की कथा थी कि उन्होंने ऐसा यज्ञ किया कि उसके धुएँ से आसमान भर गया, और आज तक काला है।

मैंने कहा कि इसका यह अर्थ तो नहीं है कि आसमान धुएँ से बना है। मौलवी साहिब बोले कि आज तक काला है का क्या अभिप्राय है ?

मैंने कहा कि हजरत इब्राहीम ने जब अपने लड़के को हलाल किया तो छुरी को ऊपर फेंका, उससे टिड्डी की कमर कट गयी और वह छुरी जब नीचे गिरी तो मछली की कमर कट गयी और आजतक कटी है। ऐसा ही अभिप्राय आजतक काला है का भी समझ लीजिए। अदालत ने वकील साहिब को रोका कि ऐसा सवाल न किया कीजिये। और बहुत सी बातें पूछने के बाद वकील साहिब ने पूछा कि आप दीनइलाही के बारे में जानते हैं। उस मजहब के मन्दिर जहाँ-तहाँ बने थे की नहीं ?

मैंने जवाब दिया कि मैं जानता हूँ। उसके मन्दिर क्या बनते, उसका तो बिस्मिल्ला ही गलत हो गया। वकील साहिब और अदालत दोनों साकाक्ष हुए। पूछने लगे कैसे ?

मैंने कहा बादशाह अकबर को पैगम्बर बनने का शौक था और पैगम्बर होने के लिए चिह्न विशेष की आवश्यकता होती है। बादशाह दीनइलाही के पैगम्बर बने। बिना नुक्ता की किताब बनी। वह डिठोरी के पेड में उसे चीरकर रक्खी गयी। डिठोरी के पेड का चीरा शीघ्र ही जुट जाता है। जुट जाने पर मालिन का सपना हुआ कि बादशाह पैगम्बर है। उन पर किताब नाजिल हुई है। वह डिठोरी के पेड में है, उसमें नुक्ते नहीं हैं।

सो प्रजाओ की बडी भीड इकट्ठी हुई। पेड़ चीरा गया, किताब निकली। सब लोग आश्चर्य से देखने लगे कि किताब भर मे कोई नुक्ता नही है। किसी मसखरे ने कहा बिस्मिला ही गलत है। ये बे नीचे आरम्भ मे ही नुकता है। सो दीनइलाही हँसी खेल ही मे समाप्त हो गया। उसका कोई रूप बनने ही नही पाया।

वकील साहिब ने फरमाया कि यह तो आपने नयी बात कही। आपको कैसे मालूम हुआ। मैंने कहा कि मैंने मौलवी अताहुसेन साहिब मौलवी नासिरअली साहिब तथा मौलवी वाकरहुसेन साहिब से पढा है। उन लोगो से ये बातें मालूम हुईं।

इस भाँति द दिन तक मेरा बयान होता रहा। अदालत मे यथेष्ट चहल पहल थी। इसके बाद हिन्दू युनिवर्सिटी के प्रोफेसरा तथा महाराज बनारस के यहाँ के अफसरो के बयान हुए। कहना नही होगा कि उस मुकदमे मे मुसलमान लोग हाईकोर्ट तक लडे, पर हारते ही गये।

## पुलिस-प्रकोप

मैं अपने पिछवारे के बगीचे मे बैठा था। गली मे से चिल्लाने की आवाज आयी। मैं किवाड खोलकर बाहर निकला। देखा कि मेरे पडोसी दुर्गादत्त वैद्य का चार दरयायी पुलिस बलपूर्वक घर से बाहर खैंच रहे हैं और वे चिल्ला रहे हैं। मैंने पूछा कि इन्होने क्या किया है जो इन्हे इतनी निर्दयता से खैंचे लिये जाते हो? कहने लगे कि इन्होंने रण्डी रख ली है। मैंने कहा रण्डी रखना कब से जुर्म हुआ? उत्तर मिला कि मैं तो इन्हें ले जाता हूँ। देखें क्या कर लेते हो।

उस समय मिस्टर श्रामली सुपरिण्टेण्डेण्ट थे। उन्होने दरयायी पुलिस का मुहकमा खोला था। दरयायी पुलिसो को बडा प्यार करते थे। इसलिए उन सबो का मिजाज बहुत बढा-चढा था।

मैंने उन लोगो से और कुछ कहना बेकार समझा। पर एक आदमी को थाने मे इत्तला के लिए भेज दिया। तब से दरयायी पुलिस भी वैद्यजी को पकडे हुए पहुँच गयी। उसने भी रिपोर्ट लिखायी। इन्सपेक्टर इचार्ज ने वैद्यजी को छोड दिया।

मैंने उनसे मिलकर कहा कि क्या इण्डियन पेनलकोड पुलिस के लिए नही है। उन्होने अपनी लाचारी जाहिर की। कहने लगे कि सुपरिण्टेण्डेण्ट इनके सामने किसी की नही सुनता। तब मैंने वैद्यजी को शहर कोतवाल के पास भेजा, पर उन्होंने भी टालमटोल बतला दिया।

मुझमे वैद्यजी से सहन शक्ति बहुत कम थी। अत अपने पास से रुपया खर्च करके वैद्यजी द्वारा उन पुलिसो पर दावा दायर करा दिया। तहकीकात के लिए पुलिस को हुकुम हुआ। कोतवाल साहिब तहकीकात के लिए आये। लेकिन क्रोध से भरे हुए। इसपेक्टर इनचार्ज अलग जाम के बाहर थे। सारा पुलिस का मुहकमा खिलाफ हो गया लेकिन दस बारह गवाह पुलिस के खिलाफ गुजर ही गये।

अब क्या था। गवाहों को धमकाने मे पुलिस ने कुछ उठा न रक्खा। स्वय वैद्यजी का आसन डोल उठा। पैसा मेरा खर्च होता था, फिर भी वैद्यजी की यह दशा हुई कि मुकदमे

ankurnagpal108@gmail.com



मे जो इजहार देते थे मानों मुझ पर एहसान करते थे। मुझे भी जिद्द हो गयी थी, सब कुछ सहता था, पर मुकद्दमे मे ढिलाई नही पडने देता था। अब तो मेरे ऊपर चारो ओर से दबाव आने लगा। हितैषियों ने भी समझाया कि पुलिस से वैर लेना अच्छा नही, पर मैं न माना। अन्ततोगत्वा उन चारो की सजा हो गयी। एक को छ महीने की, और शेष की शायद चार-चार महीने की।

तब से मैं पुलिस के कोप का भाजन हो गया। पुलिस-विभाग मे कितनी बडी सहानुभूति आपस मे है इस बात का पता मुझे उसी समय लगा। कोतवाल से लेकर साधारण पुलिस तक दरयायी पुलिसो से जलते थे। पर चूँकि वे पुलिस थे अत उनका सजा पा जाना किसी को सह्य न हुआ।

पुलिस मुझसे और मेरे साथियो से बदला लेने के ताक मे था। पुलिस जिसने बुरा मानती है, उसका चार्ज अपने स्थानापन्न को दे जाती है, और वे उसका ख्याल रखते हैं।

प० जगमोहन शरण अवस्थी नाम के कोई आदमी बाबू गयाप्रसाद के क्षेत्र मे नौकर थे। उनको किसी ने रात को मार डाला। प्रात काल वे मरे पाये गये। खूनी का पता पुलिस न लगा सकी। उसने यही अवसर मुझसे बदला लेने का उपयुक्त समझा, अब उसने मेरे विरुद्ध गवाह खडा करने के प्रयत्न मे लगी। परन्तु इतने बडे अनर्थ को अपने सिर लेने को कोई तैयार नही होता था।

धीरे-धीरे बात मेरे कानो तक पहुँची, मैं भी सावधान हुआ। पता लगने लगा कि आज अमुक पुरुष पर पुलिस जोर डाल रही थी तो कल दूसरे को बहका रही थी। खोज-खोजकर मेरे शत्रुओं से मिली, पर वे भी इतने बडे अनर्थ मे सहायक होने पर राजी नही था।

तब उसने एक विचित्र माया गढी। प० मथुराप्रसाद पाडे उर्फ नबुआ पाण्डे मेरे पिता के प्रेमियो मे से थे। मेरे ऊपर पुत्र सा स्नेह करते थे और मैं भी उन्हे बहुत मानता था। एक दिन उन्होंने मुझे बुलवा भेजा। रात का समय था। मैं उनके पास गया। देखा कि बडी गम्भीर मुद्रा मे बैठे हुए हैं। मुझे देखकर कहने लगे कि अवस्थी के खून के मामले मे पुलिस ने तुम्हारे खिलाफ गवाह पैदा कर लिये। अब कल सबेरे तुम लोगो की चालान होगी। थानेदार मेरा प्रेमी है। तुम्हारा और मेरा सम्बन्ध जानकर मेरे पास आया था और कहता था कि तुम यदि सरकारी गवाह हो जाओ तो वह तुम्हें छोड सकता है।

मैंने कहा कि सरकारी गवाह होकर मुझे कहना क्या होगा? कहने लगे कि अपने साथियो पर इजहार देना होगा कि इन लोगो ने खून किया और मैं भी साथ-साथ देखता रहा।

मैंने कहा कि यह सरासर झूठ है। मैं ऐसा नही कह सकता। उनसे कहिये कि इसी समय मुझे ले जाकर फांसी लटका दें। सुनकर पाडेजी एकदम चुप हो गये। मैंने पूछा कि अब मैं जाऊँ। कहा कि बहुत अच्छा। मैं घर लौट आया।

लौट तो आया पर मुझे यह होश नहीं कि मैं कौन हूँ। कहाँ जा रहा हूँ। विचारधारा एकदम रुक गयी। घर आकर सो रहा। कह नही सकता कि नीद लगी या बेहोशी हुई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बड़े सवेरे उठा। अपना चित्त स्वस्थ पाया। पांडेजी के मुख से सुनने से सब बातें मेरे गले उतर गयी थी। मन मे आया कि स्नान करके अन्तिम पूजा तो ठाकुरजी का कर लूँ। स्नान करके पूजा किया। चित्त प्रसन्न हो गया। आकर दरवाजे पर बैठ गया और गिरफ्तारी का आसरा देखने लगा।

सात बजा, आठ बजा, नौ बजा, दस बजा, कोई गिरफ्तार करने नही आया। ग्यारह बजा। घर से कडा खटखटाने की आवाज आई अर्थात् रसोई तैयार है। मैं सीढी चढने लगा कि एकाएक आँख खुल गयी। बात समझ मे आ गयी कि यह सब पुलिस की माया थी। कोई गवाह कही नहीं मिला। सब बातें झूठी थी। पांडेजी भी धोखा खा गये। पांडेजी के द्वारा पुलिस ने माया रची थी।

पांडेजी के साथियो से भेंट हुई जो उस समय वहाँ थे। कहने लगे कि उस समय तुम्हारी बात हम लोगो को नही रुची पर तुमने मर्द की सी बात कही।

उसके बाद भी पुलिस का प्रयत्न चलता था पर ढीला पड गया। मैंने वकीलो से राय ली। उन्होंने कहा कि पुलिस के इस प्राइवेट प्रयत्न की कोई दवा नही है। जब तक कोई बात सामने नही आती तब तक हम लोग क्या कह सकते हैं।

इस भाँति बहुत दिनो तक मैं पुलिस का कोपभाजन बना रहा। पर जब उन लोगो ने देख लिया कि वस्तुत मैं उन लोगो का बुरा नहीं चाहता। केवल अन्याय न सहन कर सकने से ही मैंने विरोध किया था तो उन लोगों ने भी मेरा पीछा छोड दिया बल्कि प्रतिष्ठा की दृष्टि से देखने लगे।

●

सोचि सोचि भावगत भेद को मिलान करि,
मानस के सही अर्थ को न बतलावते।
तो कम पढे लिखे श्रेणीवाले श्रद्धालु जीव,
तुलसी के आशय को नही जान पावते॥
वंचक विपन्नमति दुराग्रही पक्षपाती,
आपस में तर्क करि रार ही बढावते।
पावते न संशय की साँकल छुड़ाइ काटि
जौ पै यह टीका श्री विजयानन्द न बनावते॥

—लक्ष्मीकान्त मिश्र
मानसरत्न डॉ० श्रीनाथ जी मिश्र के शिष्य

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

# विषयानुक्रमणिका


**मङ्गलाचरण :** तत्सम : वाणी-विनायक, भवानी-शङ्कर, गुरु, कवीश्वर, कपीश्वर, सीता और राम की वन्दना, भाषाबद्ध-चिकीर्षा, पहिली : पृ० १ से

**सुरवन्दना :** गणनायक, दयालु, क्षीरशायी, उमारमण विनय, गुरुपद कञ्ज वन्दन, गुरुपद पद्म पराग वन्दन, उसके गुण तथा नख के गुणो का वर्णन, रज से विवेक विलोचन विमलीकरण। राम-चरित वर्णन चिकीर्षा, दूसरी : अर्धाली २ तक पृ० ८ से।

**समष्टिवन्दना :** महीसुर चरण वन्दन, सुजन समाज वन्दन, तद्गुण कथन, सन्त वन्दन, तद्गुण कथन, रामचरण रति याचना। खलगण वन्दन, तद्दोष कथन, खलवन्दन, तद्दोष कथन, अपनी ओर से निहोरा। सन्त, असज्जन चरण वन्दन। संग्रह-त्यागार्थ भेद कथन : यही वैदिक रीति। गुणदोषमय विधि प्रपञ्च। सन्त की गुण-ग्राहकता। भले से भी चूक बुरे से भी चूक। वेष का अकिञ्चित्करत्व। कुसङ्ग सुसङ्ग से हानि-लाभ। तीन बार समष्टि वन्दना और तीन बार सुनने के लिए प्रार्थना। ग्राम्यगिरा मे रामयश की उपादेयता। कवित्व की अन्यत्र उत्पत्ति और अन्यत्र शोभा। रामचरित्र गान से सरस्वती का श्रमापनोदन उनको कृपा से सज्जन के पहिनने योग्य काव्य मुक्ताहार निर्माण। कवि की आर्ति विनय और दीनता। चरित का अपार होना। कवियो द्वारा निजगिरापावनकरण यश कथन। इसी बल पर रघुपति गुण गाथाचिकीर्षा, तीसरी : आर्षमार्गावलम्बन-पूर्वक रघुपति कथा चिकीर्षा, चौथी : अन्य युग के कवि व्यासादि का वन्दन। मनोरथ पूर्ति के लिए प्रार्थना . दो० १३ अ० १ तक। पृ० १६ से।

**कविसमाज वन्दना :** कलि के कवियो की वन्दना, सयाने प्राकृत कवियो की वन्दना, वरदान प्रार्थना, तीन बार कृपा भिक्षा, उसी आशा से हरियश चिकीर्षा, पाँचवी। वाल्मीकि वेद ब्रह्मदेव वन्दन। विबुध विप्र बुध ग्रह चरण वन्दन, मनोरथ पूर्ति के लिए प्रार्थना। शारद सुरसरिता वन्दन। राम के सर्वार्थकारी तथा शावर मन्त्र जाल के रचयिता महेश भवानी वन्दन। तत्प्रसादप्राप्तिपूर्वक रामचरित वर्णन चिकीर्षा, छठी फल-श्रुति। दो० १५ पृ० ५८ से।

**अवध समाज वन्दना :** अवधपुरी, सरयू, पुर नर नारि, कौसल्या, सब रानियो सहित दशरथ राजवन्दन, कृपा के लिए प्रार्थना। अवध भुआल वन्दन। परिजनसहित विदेह वन्दन, भरत वन्दन। लक्ष्मण वन्दन सानुकूलता के लिए प्रार्थना। रिपुसूदन, हनुमान्, कपिपति, रीछराज, निशाचरराज, अङ्गदादि कीश समाज चरण वन्दन। राम के निष्काम भक्तो की वन्दना। शुक सनकादि नारद, विज्ञानविशारद मुनि वन्दन, कृपा के लिए प्रार्थना। जनकसुता वन्दन, निर्मल मति के लिए प्रार्थना। रघुनायक चरणकमल वन्दन, सीताराम पद वन्दन। रामनाम वन्दन। प्रणवरूप नाम महामन्त्र। नाम की महिमा, प्रताप, प्रभाव, गुण-वर्णन। नाम और रूप दोनो ईश्वर की उपाधि।


(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उनमे नाम की श्रेष्ठता। निर्गुण सगुण का साक्षी नाम। नाम मणिदीप। चारो प्रकार के भक्त तथा पुष्टिभक्त को भी नाम ही का आधार। निर्गुण से नाम की श्रेष्ठता। सगुण से नाम की श्रेष्ठता कहते हुए अध्यात्म रामायण कथन। भक्तो का उदाहरण। नाम कल्पतरु, सब काल और सब देशो मे नाम की कार्यकारिता। कलि मे एकमात्र अवलम्ब। भाव कुभाव अनख और आलस्य से भी नाम के जप से मङ्गल। उस नाम तथा नामी रघुनाथ को प्रणाम करके राम गुण गाथा चिकीर्षा सातवी. दो० २७ १ पृ० ६६।

निज गुण दोष कवि की रघुनाथजी से क्षांति विनय और दीनता। पुन समष्टि वन्दना। रघुवर यश वर्णन चिकीर्षा, आठवी अथ पूर्व घाट प्रारम्भ। दो० २९ पृ० १०७ से

कथा परिचय भरद्वाज याज्ञवल्क्य सवाद-कथन चिकीर्षा, नवी सज्जनो से सुनने की प्रार्थना। १ गुरुपरम्परा। गुरुमुख से कथित का भाषा म बाँधने की चिकीर्षा, दसवी बुद्धिविवेकानुसार हरिप्रेरणा से चिकीर्षा, ग्यारहवी स्वसन्देह भ्रमनिवारणार्थ रामकथा चिकीर्षा बारहवी दैन्य, ज्ञान और भक्ति साध्य फलदायिनी राम कथा। राम-कथा माहात्म्य। रामचरित पेटक का निचला ढकना चिन्तामणि और ऊपर का राकेशकर उसीमे नक्षत्रो की भाँति २८ गुण ग्राम अर्थात् स्तुतियाँ जो यथास्थान ग्रन्थ में दी गयी हैं। हेतुसहित भवानीशङ्कर सवाद विधि की विचित्र कथा के निर्माण की चिकीर्षा, तेरहवी अमित विस्तार। गुरुपद धूलि शिरोधार्य करके दोष न देने के लिए पुन समष्टि-वन्दना। शङ्कर को प्रणाम करके रामगुण-गाथा चिकीर्षा, चौदहवी हरिपद शीश धर की कथा चिकीर्षा, पन्द्रहवी ग्रन्थारम्भ का देश और काल। ग्रन्थ का नाम। महेश की रचना का भी यही नाम। उसी कथा की चिकीर्षा, सोलहवी सज्जनो से सुनने के लिए प्रार्थना। ३ " दो० ३४ ७ पृ० ११४ से।

मानसरूपक प्रसङ्ग मानसस्वरूप, विधि, प्रचार प्रसङ्ग वर्णन चिकीर्षा, सत्रहवी . शम्भु प्रसाद से सुमति का उल्लास। मनोहर निर्माण के लिए कवि चिकीर्षा,अठारहवी साधुमतकी राम सुयश वर्षा, उससे मानस का भर जाना श्रवण, चार घाट, सात सोपान, सर का रूपक। अमराई बाग, वन भक्त रखवारे अधिकारी, यात्रा म कठिनाई, स्नान दुर्घट, सर निन्दा राम-कृपा से मज्जन। उससे बुद्धिनैर्मल्य। प्रेम प्रमोद प्रवाह का उमङ्ग निदिध्यासन, सरयू का उद्गम, सरयू का रूपक, हिन्दी भाषी देश का विस्तार। ग्रन्थ प्रचार। षट् ऋतु-वर्णन। स्नान। भवानीशङ्कर स्मरणपूर्वक कथा चिकीर्षा उन्नीसवी रघुपति पदपङ्कुरुह हृदय में रखकर और प्रसाद पाकर भरद्वाज याज्ञवल्क्य मिलन तथा सवाद कथन चिकीर्षा बीसवी २ दो० ४३, क पृ० १३९।

भरद्वाज याज्ञवल्क्यसवाद ' भरद्वाज का प्रयाग निवास माघ मकर सक्रान्ति म सब का प्रतिवर्ष आगमन, भरद्वाज के आश्रम मे ऋषि मुनियों का सत्सङ्ग। कल्पवास विधि। अथ दक्षिण घाट प्रारम्भ। एक बार याज्ञवल्क्य को रोकने के लिए

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



१. मोहहरण के लिए प्रार्थना २ राम-विषयक प्रश्न ३. दशरथकुमार राम या दूसरे ४. मोह भ्रमहारी कथा के लिए प्रार्थना। शिष्य की प्रशंसा। कथा की स्तुति। भवानी का भी इसी प्रकार का संशय। उमा-शम्भु-संवाद के समय और हेतु-कथन की प्रतिज्ञा दो० ४६. पृ० १६९।

क उमा चरित : (२८ दोहो मे) किसी त्रेता मे सती के साथ शम्भु का अगस्त्यजी के आश्रम पर जाना। वहाँ सत्सङ्ग। लौटते समय सीता को खोजते हुए विरह-विकल रामचन्द्र का दर्शन। जय सच्चिदानन्द जगपावन कहकर शङ्कर का प्रणाम। सती का संशय। शङ्कर के उपदेश पर भी भ्रम की अनिवृत्ति। अत परीक्षा के लिए अनुमति। परीक्षार्थ सती का सीतारूप धारण। रामजी की प्रणामपूर्वक वृषकेतु समाचार जिज्ञासा। सती का पश्चात्ताप। शङ्कर कथित प्रभाव का राम द्वारा दिग्दर्शन। सती का शङ्कर से बहाना। सती का त्याग। शङ्करजी की १०८७ वर्ष की समाधि। सती का शोक। देवताओं का विमानारूढ होकर दक्ष यज्ञ मे जाना। शिवजी के समझाने पर भी सती का न रुकना। सती की विदाई। सती का अपमान। यज्ञ मे शिवजी का भाग न देखकर सती का क्रोध। सती का योगाग्नि से देह त्याग। दक्षयज्ञ विध्वंस। सती का हिमगिरगृह जन्म। नारद का आगमन। उमा के तप के लिए हिमगिरि को उपदेश। तप के लिए उमा का प्रस्थान। वेदशिरामुनि के उपदेश से माता पिता का शोकापनयन। उमा का ४४११ वर्ष पाँच रुद्री तप। आकाशवाणी। उमा का हर्ष। दो० ७८ ३ पृ० १७५ स।

ख शम्भु चरित : २८ दोहा मे सती-मरण से शिवजी को दुःख। शङ्कर का नेम-प्रेम। रामजी का प्रादुर्भाव। पार्वती-परिणय के लिए विनय। शिवजी की स्वीकृति। प्रेम-परीक्षा के लिए शङ्कर द्वारा सप्तऋषि का भेजा जाना। सप्तऋषि उमा संवाद। प्रेम देखकर प्रणाम। सप्त ऋषि प्रेरित हिमगिरि का पार्वती को घर लिवा जाना। सप्तऋषि द्वारा स्नेह कथा सुनकर शिवजी का मग्न होना। फिर समाधि मे बैठना। तारकासुर से देवो का पराभव। ब्रह्मदेव के यहाँ पुकार। ब्रह्मदेव की सम्मति। देवताओं का कामदेव से अपना दुखडा रोना। काम की शिवजी पर चढाई। क्रोधपूर्वक धनुष हाथ मे लेने से ही जगत् मे मर्यादाभङ्ग। विवेक राजा की हार। देव-लोक से कैलाश तक पहुँचने मे दो घडी का समय। शिवजी का दर्शन। काम का सशङ्क होना और संसार का स्वास्थ्य लाभ। काम सेना का पराभव। काम दाह। रति को वरदान। देवताओ की स्तुति। ब्याह के लिए विनय। शिवजी की स्वीकृति। विधि की आज्ञा से सप्तऋषि का जाकर हिमगिरि के यहाँ से लग्नपत्री ले आना। शिवजी का शृङ्गार। बरात का प्रस्थान। तीनो प्रकार के इष्टदेवो का सम्मिलित होना। हिमगिरि के यहाँ तैयारी। बरात का आगमन। बालको मे भय। द्वार पूजा। मैना का विलाप। नारद का उपदेश। विषाद का त्याग। जेवनार। विवाह। विदाई। हिमगिरि का पहुँचाकर लौटना। सब की विदाई। शिवजी का कैलाश आना। विविध विधि भोग विलास। षडानन जन्म। तारकासुर संहार। उमा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



शम्भु विवाह की फल श्रुति ""दो० १०३ पृ० २३५ से ।

सगति वाक्य गिरिजारमण के चरित्र की अपारता । कथा सुनकर शिष्य की कृत-कृत्यता । गुरु द्वारा शिष्य की प्रशसा । रामभक्त का लक्षण । विश्वनाथ पद प्रेम । योग्य शिष्य की प्राप्ति से गुरु को अवर्णनीय सुख । राम की कृपा से कवि के हृदय मे सरस्वती का नृत्य । ऐसे गिरापति प्रभु को प्रणाम । अथ पश्चिम घाट प्रारम्भ कैलाश वर्णन । वट विटप के नीचे शिवजी का बैठना । शिवजी का ध्यान । पार्वतीजी - प्रथम प्रकार के भक्त का आना । शिवजी का अति आदर से वाम भाग मे आसन देना । पार्वतीजी को पूर्व जन्म की स्मृति " दो० १ ६ ३.४ पृ० २९८ से

अथ शिव गीता ३०५ से

उमा के प्रश्न * १. नानाविधि रघुनाथ कथा कहकर अज्ञान - आवरण हरण के लिए प्रार्थना २ मति भ्रम : विक्षेप हरण के लिए प्रार्थना । ३. राम नृपतनय हैं कि ब्रह्म हैं, इस बात को समझाकर कहने के लिए प्रार्थना । ४. जिस विधि से मोह मिटे वैसा ही करने के लिए प्रार्थना ५ अब भी सशय है, अत कृपा करने के लिए प्रार्थना ६ राम गुण गाथा कहने के लिए प्रार्थना ७ रघुवर विशद यश वर्णन के लिए प्रार्थना ८. रघुपति कथा दया-पूर्वक कहने के लिए प्रार्थना । १. निर्गुण ब्रह्म के सगुणरूप धारण करने का कारण कहने के लिए प्रश्न २. रामावतार कहने के लिए प्रश्न ३. उदार बालचरित कहने के लिए प्रश्न ४ जानकी विवाह कथा के लिए प्रश्न ५ किस दूषण से राज्य छोड़ा ? ६ वन गये और रावण को कैसे मारा ? ७ राज पर बैठकर कौन कौन सी लीला की ? ८. प्रजा सहित निजधाम कैसे गये ? ९ मुनि ज्ञानी किस तत्त्व मे मग्न रहते हैं ? १०. विभागसहित ज्ञान वैराग्य कथन के लिए प्रश्न ११ राम के अनेक रहस्य कथन के लिए प्रश्न और १२ जो कुछ पूछने से रह गया हो उन सबके लिए प्रश्न । शिवजी की प्रसन्नता । मानस मे राम चरित और रामरूप का प्रादुर्भाव । ध्यान मे दो दण्ड मग्न । तत्पश्चात् उत्तर ' दो० १११ ' पृ० ३०८ से ।

शम्भु के उत्तर : जगत् के अधिष्ठान बालरूप राम को प्रणाम । गिरिराजकुमारी की प्रशसा । ३१६ से

प्रथम विनय का उत्तर : हरिकथा न सुननेवाले कान, सन्त के दर्शन न करने-वाली आँख, हरि गुरु चरणो मे न झुकने-वाले सिर, हरि भक्ति रहित हृदय, रामगुणगान वर्जित जिह्वा और हरिचरित से न हर्षित होनेवाले हृदय की निन्दा । और पहिली प्रार्थना की स्वीकृति । ३२१ से

दूसरी का उत्तर - रामकथा कामधेनु । रामकथा सशय दूर करनेवाली । राम-कथा कलि विटप कुठारी दूसरी प्रार्थना की स्वीकृति । पृ० ३२१

---

* उमा की पहिली और दूसरी विनय का भरद्वाज को प्रथम प्रार्थना मे अन्तर्भाव । भरद्वाज के दूसरे और तीसरे प्रश्न का उमा के तीसरे विनय मे अन्तर्भाव । उमा के शेष प्रश्नो का भरद्वाज के चौथे प्रश्न मे अन्तर्भाव ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



री का उत्तर^1 राम के नाम गुण चरित जन्म और कर्म अगणित और वेदविहित। यथा राम अनन्त तथा कथा और कीर्ति अनन्त, यथाश्रुति यथामति कथन तथा कथा और कीर्ति अनन्त यथा-श्रुति यथामति कथन की प्रतिज्ञा। वेदप्रतिपाद्य मुनिगण ध्येय चरण रामजी में ब्रह्मबुद्धि न होना शिवजी को अप्रिय। ऐसी बुद्धिवाले की निन्दा। लाभ हानि न देखनेवाले की वेद विरुद्ध वाणी। निर्गुण सगुण विवेक रहितों के कल्पित वचन। माया से मूढ़ पुरुषों की बात सुनने योग्य नहीं। विचारपूर्वक संशय त्याग तथा रामभजन का उपदेश। दो० ११५ पृ० ३२२

थी का उत्तर निर्गुण सगुण में अभेद। निर्गुण का सगुण होना। निर्गुण सगुण में केवल स्थूल सूक्ष्म अवस्था कृत भेद। रामनाम से अज्ञान का नाश। राम सच्चिदानन्द। वहाँ मोह निशा के लेश का भी अभाव। सहज प्रकाशरूप में विज्ञान प्रभात का भी अभाव। हर्ष, विषाद, ज्ञान, अज्ञान, जीवधर्म अस्मिता का भी अभाव। राम ब्रह्म, व्यापक प्रसिद्ध स्थूल सूक्ष्म के नाथ को नमस्कार। अपने अज्ञान का राम पर आरोप। विषय, करण, सुर और जीव के प्रकाशक। उन्हीं की सत्यता से माया का सत्य सा भासना। सीप में रजत और मरु मरीचिका में जल की भाँति राम में माया का भासना। राम की कृपा से भ्रम का मिटना। जिसमें सर्वेन्द्रियगुणाभास है और जो सर्वेन्द्रिय-विवर्जित है वही दाशरथि राम है उसी के नाम के बल से काशी में मुक्ति। विवश होकर भी उसके नाम ग्रहण से पापों का नाश। आदर स्मरण करने से भव सन्तरण। राम परमात्मा। इसमें सन्देह करनेवाली वाणी अति अविहित। सन्देह को मन में स्थान देने ही से ज्ञान विरागादि का नाश। इस उत्तर से गिरिजा के मोह और संशय की निवृत्ति, सुख की प्राप्ति। फिर भी पहिले पूछे हुए प्रश्नों के उत्तर की प्रार्थना। राम ब्रह्म के नरदेह धारण का कारण समझा कर कहने की प्रार्थना शङ्कर का प्रसन्न होकर उमा की प्रशंसा करना। दो० १२० पृ० ३२८ से

पाँचवीं का उत्तर रामचरित मानस गरुड भुशुण्डि संवाद सुनने के लिए आज्ञा। पृ० ३३९

छठी का उत्तर. रामावतार सुनने के लिए आज्ञा अथ उत्तर घाट प्रारम्भ। पृ० ३३९

सातवीं का उत्तर. कथा कहने की प्रतिज्ञा। सुनने की आज्ञा। पृ० ३४०

आठवीं का उत्तर: हरि अवतार हेतु का निश्चित रूप से निरूपण न हो सकना। साधु का परित्राण तथा दुष्टों का नाश ही शास्त्रानुमोदित कारण। उसी के यश गान से भव सन्तरण। रामजन्म के अनेक हेतु। तीन जन्मों के वर्णन की प्रतिज्ञा दो० १२१-२ पृ० ३४० से

प्रथम^2 प्रश्न का उत्तर अधिदैव

---

१ रघुपति कथा कहहु करि दाया।

२ प्रथम सो कारन कहहु बिचारी।
निर्गुन ब्रह्म सगुन वपुधारी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



शम्भु विवाह की फल श्रुति ...दो० १०३ पृ० २३५ से ।

सगति वाक्य गिरिजारमण के चरित की अपारता । कथा सुनकर शिष्य की कृत-कृत्यता । गुरु द्वारा शिष्य की प्रशसा । रामभक्त का लक्षण । विश्वनाथ पद प्रेम । योग्य शिष्य की प्राप्ति से गुरु को अकथनीय सुख । राम की कृपा से कवि के हृदय मे सरस्वती का नृत्य । ऐसे गिरापति प्रभु को प्रणाम । अथ पश्चिम घाट प्रारम्भ कैलाश वर्णन । वट विटप के नीचे शिवजी का बैठना । शिवजी का ध्यान । पार्वतीजी . प्रथम प्रकार के भक्त का आना । शिवजी का अति आदर से वाम भाग मे आसन देना । पार्वतीजी को पूर्व जन्म की स्मृति ...दो० १०६.३.४ पृ० २९८ से

अथ शिव गीता . ३०५ से

उमा के प्रश्न : १. नानाविधि रघुनाथ कथा कहकर अज्ञान : आवरण हरण के लिए प्रार्थना २. मति भ्रम : विक्षेप हरण के लिए प्रार्थना । ३. राम नृपतनय हैं कि ब्रह्म हैं, इस बात को समझाकर कहने के लिए प्रार्थना । ४. जिस विधि से मोह मिटे वैसा ही करने के लिए प्रार्थना ५ अब भी सशय है, अत कृपा करने के लिए प्रार्थना ६ राम गुण गाथा कहने के लिए प्रार्थना ७ रघुवर विशद यश वर्णन के लिए प्रार्थना ८ रघुपति कथा दया-पूर्वक कहने के लिए प्रार्थना । १. निर्गुण ब्रह्म के सगुणरूप धारण करने का कारण कहने के लिए प्रश्न २. रामावतार कहने के लिए प्रश्न ३. उदार बालचरित कहने के लिए प्रश्न ४. जानकी विवाह कथा के लिए प्रश्न ५ किस दूषण से राज्य छोडा ? ६ वन गये और रावण को कैसे मारा ? ७. राज पर बैठकर कौन कौन सी लीला की ? ८. प्रजा सहित निजधाम कैसे गये ? ९. मुनि ज्ञानी किस तत्त्व मे मग्न रहते हैं ? १०. विभागसहित ज्ञान वैराग्य कथन के लिए प्रश्न ११ राम के अनेक रहस्य कथन के लिए प्रश्न और १२ जो कुछ पूछने से रह गया हो उन सबके लिए प्रश्न । शिवजी की प्रसन्नता । मानस मे राम चरित और रामरूप का प्रादुर्भाव । ध्यान मे दो दण्ड मग्न । तत्पश्चात् उत्तर '' दो० १११ : पृ० ३०८ से ।

शम्भु के उत्तर : जगत् के अधिष्ठान बालरूप राम को प्रणाम । गिरिराजकुमारी की प्रशसा । ३१६ से

प्रथम विनय का उत्तर : हरिकथा न सुननेवाले कान, सन्त के दर्शन न करने-वाली आँख, हरि गुरु चरणो मे न झुकने-वाले सिर, हरि भक्ति रहित हृदय, रामगुणगान वर्जित जिह्वा और हरिचरित से न हर्षित होनेवाले हृदय की निन्दा । और पहिली प्रार्थना की स्वीकृति । ३२१ से

दूसरी का उत्तर : रामकथा कामधेनु । रामकथा सशय दूर करनेवाली । राम-कथा कलि विटप कुठारी दूसरी प्रार्थना की स्वीकृति । पृ० ३२१

---

: उमा की पहिली और दूसरी विनय का भरद्वाज की प्रथम प्रार्थना मे अन्तर्भाव । भरद्वाज के दूसरे और तीसरे प्रश्न का उमा के तीसरे विनय मे अन्तर्भाव । उमा के शेष प्रश्नो का भरद्वाज के चौथे प्रश्न मे अन्तर्भाव ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तीसरे का उत्तर : राम के नाम गुण चरित जन्म और कर्म अगणित और वेदविहित। यथा राम अनन्त तथा कथा और कीर्ति अनन्त, यथाश्रुति यथामति कथन तथा कथा और कीर्ति अनन्त यथाश्रुति यथामति कथन की प्रतिज्ञा। वेदप्रतिपाद्य मुनिगण ध्येय चरण रामजी मे ब्रह्मबुद्धि न होना शिवजी को अप्रिय। ऐसी बुद्धिवाले की निन्दा। लाभ हानि न देखनेवाले की वेद विरुद्ध वाणी। निर्गुण सगुण विवेक रहितों के कल्पित वचन। माया से मूढ़ पुरुषों की बात सुनने योग्य नहीं। विचारपूर्वक संशय त्याग तथा रामभजन का उपदेश। दो० ११५ पृ० ३२२

चौथी का उत्तर : निर्गुण सगुण मे अभेद। निर्गुण का सगुण होना। निर्गुण सगुण मे केवल स्थूल सूक्ष्म अवस्था कृत भेद। रामनाम से अज्ञान का नाश। राम सच्चिदानन्द। वहाँ मोह . निशा के लेश का भी अभाव। सहज प्रकाशरूप मे विज्ञान प्रभात का भी अभाव। हर्ष, विषाद, ज्ञान, अज्ञान, जीवधर्म अस्मिता का भी अभाव। राम ब्रह्म, व्यापक, प्रसिद्ध, स्थूल, सूक्ष्म के नाथ को नमस्कार। अपने अज्ञान का राम पर आरोप। विषय, करण, सुर और जीव के प्रकाशक। उन्ही की सत्यता से माया का सत्य सा भासना। सीप मे रजत और मरु मरीचिका मे जल की भाँति राम मे माया का भासना। राम की कृपा से भ्रम का मिटना। जिसमे सर्वेन्द्रियगुणाभास है और जो सर्वेन्द्रिय-विवर्जित है वही दाशरथि राम है उसी के नाम के बल से काशी मे मुक्ति। विवश होकर भी उसके नाम ग्रहण से पापो का नाश। सादर स्मरण करने से भव सन्तरण। राम परमात्मा। इसमें सन्देह करनेवाली वाणी श्रुति अविहित। सन्देह का मन मे स्थान देने ही से ज्ञान विरागादि का नाश। इस उत्तर से गिरिजा के मोह और संशय की निवृत्ति, सुख की प्राप्ति। फिर भी पहिले पूछे हुए प्रश्नो के उत्तर की प्रार्थना। राम ब्रह्म के नरदेह धारण का कारण समझा कर कहने की प्रार्थना शङ्कर का प्रसन्न होकर उमा की प्रशंसा करना। दो० १२० : पृ० ३२८ स

पाँचवाँ[1] का उत्तर : रामचरित मानस गरुड भुशुण्डि संवाद सुनने के लिए आज्ञा। पृ० ३३९

छठी का उत्तर . रामावतार सुनने के लिए आज्ञा . अथ उत्तर घाट प्रारम्भ। पृ० ३३९

सातवां का उत्तर : कथा कहने की प्रतिज्ञा। सुनने की आज्ञा। पृ० ३४०

आठवीं का उत्तर : हरि अवतार हेतु का निश्चित रूप से निरूपण न हो सकना। साधु का परित्राण तथा दुष्टो का नाश ही शास्त्रानुमोदित कारण। उसी के यश गान से भव सन्तरण। रामजन्म के अनेक हेतु। तीन जन्मो के वर्णन की प्रतिज्ञा . दो० १२१-२ पृ० ३४० से

प्रथम[2] प्रश्न का उत्तर अधिदैव

---

१. रघुपति कथा कहहु करि दाया।

२ प्रथम सो कारन कहहु बिचारी।
निर्गुन ब्रह्म सगुन बपुधारी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रामायण : एक कल्प मे जय और विजय का विप्र शाप से हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु होना। वाराह और नृसिंह अवतार से उनका वध। उन्ही का कुम्भकर्ण रावण होना। उनके वध के लिए एक बार विष्णु का रामावतार। उस अवतार मे कश्यप अदिति का दशरथ कौशल्या होना। एक कल्प मे जलन्धर का रावण होना। जलन्धर की स्त्री के शाप से रामावतार। एक कल्प मे नारद के शाप से क्षीरशायी का रामावतार। गिरिजा का नारद मोह सुनकर चकित होना और कारण पूछना। दो० १२४ . क : पृ० ३४३ से।

**नारद मोह प्रसङ्ग :** नारद की समाधि। इन्द्र के भेजे हुए काम का विघ्नाचरण। हार मानकर मुनि का शरण ग्रहण। मुनि की क्षमा। इन्द्रसभा मे काम द्वारा मुनि की प्रशंसा। शङ्कर के यहाँ जाकर नारद का मार चरित कहना। विष्णु से न कहने के लिए शङ्कर का उपदेश। नारद का विरुद्धाचरण। विष्णुमाया द्वारा मार्ग मे नगर निर्माण और राजकुमारी का स्वयवर। नारद मोह। नारद की स्तुति पर विष्णु का प्रादुर्भाव। परम हित करने की प्रतिज्ञा। नारद की कुरूप प्राप्ति। हरगण की वाक्कृति मजाक उडाना। राजा के वेष मे प्रभु का आगमन। राजकुमारी का वरण। प्रभु का उसे ले जाना। हरगण के कहने से नारद का जल मे मुख देखना। नारद का क्रोध। हरगण को शाप। विष्णु से भेंट, उन्हे भी शाप। मायापनयन। अपराध क्षमापन। रुद्रगण का शापानुग्रह। उन्ही को रावण कुम्भकर्ण होना। दो० १३९ पृ० ३४८ से।

प्रतिकल्प प्रभु का अवतार। चरित्र का मुनियो द्वारा गान। अत. विविध अनुपम प्रसङ्ग। आश्चर्य का अनवकाश। कथा की अपारता। ब्रह्म के रामावतार का कारण। उसी चरित्र से सती रूप मे उमा को मोह। उमा का सकोच से मुसकराना। कथा प्रारम्भ। दो० १४१ तक : पृ० ३७९

**स्वायम्भूव मनु का इतिहास :** स्वायम्भूव मनु और शतरूपा से नर सृष्टि। उनकी सन्तति। चिरकाल राज्यशासन पर भी विराग नही। अत पुत्र को राज्य देकर दम्पती का नैमिषारण्य आगमन। २३००० वर्ष का तप। विधि हरि हर के प्रलोभन से भी चलायमान न होना। आकाशवाणी। शङ्कर मन मानस मराल : राम के दर्शन का वरदान। भगवान् का प्रादुर्भाव। शिख-नख वर्णन। वरदान। दम्पती के दूसरे वरदान मे भेद। अमरावती निवास के लिए अनुशासन। अभिलाष पूर्ति की प्रतिज्ञा। दो० १५२ : पृ० ३८३ से

**भानु प्रताप की कथा :** केकय देश के सत्यकेतु राजा के दो पुत्र . १. भानुप्रताप और २. अरिमर्दन। ज्येष्ठ को राज्य देकर सत्यकेतु का वनवास। भानुप्रताप का दिग्विजय। धर्मचर्या मे वेदाज्ञानुसरण। मृगयार्थ विन्ध्याचल वन मे जाना। एक वाराह का बहुत दूर तक पीछा करना। मार्ग भूलकर भटकते हुए एक आश्रम मे पहुँचना। वहाँ राजा के शत्रु का मुनिवेष मे रहना। कपटमुनि के अनुरोध से आश्रम मे ठहरना। उसपर राजा की श्रद्धा। उससे वरदान माँगना। वरदान लाभ। ब्राह्मणो से भय। उपाय मे साल भर के लिए नित्य नये एक लक्ष

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ब्राह्मणों का वरण। कपटी मुनि का पुरोहित रूप से नित्य जेवनार बनाने की प्रतिज्ञा। राजा को सोते हुए घर पहुँचाने की प्रतिज्ञा। राजा का शयन। शूकर बनकर मार्ग भुलवानेवाले कालकेतु निशाचर का आगमन। राजा को सोते हुए घर पहुँचाना। उठने पर राजा को आश्चर्य। चुपके से आखेटस्थल को प्रस्थान। दोपहर को घर लौटना। पुरोहित रूप में कालकेतु का आगमन। मायामय रसोई परोसने के समय कालकेतु द्वारा आकाशवाणी। कपटी मुनि को समाचार। उसकी लिखा पढ़ी। भानुप्रताप पर चढ़ाई। भानुप्रताप का सत्यानाश दो० १७५ पृ० ४०७ से

रावणावतार प्रसङ्ग : काल पाकर उसी राजा का रावण अरिमर्दन का कुम्भकर्ण और धर्मरुचि मन्त्री का विभीषण होना। राजा के सुत सेवकों का भी घोर राक्षस होना। तीनों भाइयों का तप। शङ्कर और ब्रह्मदेव का वरदान। तीनों भाइयों का ब्याह। लङ्का पर धावा, विजय, यक्षों का पलायन। लङ्का को राजधानी बनाना। पुष्पक हरण। कैलाश उठाना। नित्य नयी अभिवृद्धि। कुम्भकर्ण, मेघनाद, कुमुख, अकम्पन, वज्रदंष्ट्र, धूम्रकेतु, अतिकाय का पौरुष वर्णन। रावण की सभा। द्विज भोजन, यज्ञ, होम, श्राद्ध में बाधा के लिए आज्ञा। इससे देवताओं में क्षीणता। मेघनाद को शिक्षा . वैर और बढ़ावा। समरधीर बलवान् देवताओं का बन्दी होना। रावण का अत्याचार। निशाचरों की अवर्णनीय अनीति। पृथ्वी की व्याकुलता। देवताओं की शरण लेना। सबका ब्रह्मलोक जाना। ब्रह्मदेव भी निरुपाय। अविनाशी के शरण ग्रहण का उपदेश। देवताओं की गोष्ठी। ब्रह्म स्तुति। आकाशवाणी। ब्रह्मदेव द्वारा देवताओं को वानर शरीर से हरिपद सेवन की शिक्षा। देवताओं की त्वरा : दो० १८०-३ पृ० ४५३ से

दूसरे[1] प्रश्न का उत्तर अधिभूत रामायण

रामावतार प्रसङ्ग : अवधपुरी के राजा दशरथ रानी कौसल्यादि। राजा को पुत्रहीनता से ग्लानि। गुरु से विनय। पुत्रेष्टि याग। अग्नि का प्रकट होकर हवि देना। हवि विभाग। रानियों के गर्भ। जन्म समय। गर्भस्तुति। कृपालु का प्रादुर्भाव। माता की स्तुति। माता को समझाना। शिशु लीला के लिए माता की प्रार्थना। फलश्रुति। शिशु रुदन से पुनर्जन्म समाचार का प्रचार। गुरु वशिष्ठ के यहाँ बुलावा। नान्दी श्राद्ध। उत्सव। कैकयी सुमित्रा के भी पुत्र जन्म। अवधपुरी की शोभा। सूर्य भी स्थगित। महीने भर का दिन। भुशुण्डिसहित शिवजी का विचारना। राजा की उदारता दो० १९५ पृ० ४५३ से

तीसरे[2] प्रश्न का उत्तर : शिशु चरित्र-प्रसङ्ग नामकरण। राम लक्ष्मण भरत शत्रुघ्न की प्रीति। राम में गुणाधिक्य। नख शिख वर्णन। रघुनाथचरित रति का माहात्म्य। राम को गोद खिलाना : दो० २०० पृ० ५११ से

बालचरित प्रसङ्ग : माता का पाक बनाना। विश्वरूप दर्शन। माता को विस्मय।

---

१. पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा।

२ बाल चरित पुनि कहहु उदारा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रबोधन। फिर माया न व्यापने के लिए विनय। चूड़ाकरण। अजिर विहार। मेलने में प्रेम। उपनयन। गुरु-कुल वास। विद्या प्राप्ति। वीथियों मे विहार। रामजी की लोकप्रियता। आखेट। भाइयो के साथ भोजन। पुर-वासियों को सुखी करने का सयोजन। वेद पुराण श्रवण तथा भाइयों से अनु-कथन। प्रात काल माता पिता गुरु को प्रणाम। आज्ञा लेकर पुरुषार्थ करना। राजा को हर्ष। नानाविध अनूप चरित्र। दो० २०५ पृ० ५२३ से

**चौथे[1] प्रश्न का उत्तर ऋषि आगमन प्रसङ्ग** . यज्ञ मे निशाचरो द्वारा विघ्न। विश्वामित्रजी का अयोध्याप्रस्थान। चक्रवर्ती द्वारा सत्कार। मुनि का अनुज-सहित रघुनाथ को माँगना। वसिष्ठजी के समझाने पर राजा का देना। ताड़का वध। विद्यादान। मख रखवारी। धनुष-यज्ञ देखने के लिए प्रस्थान। अहल्योद्धार। स्तुति। गङ्गाजी की कथा। दो २११-२ पृ ५३७ से।

**सीय स्वयम्बर** . जनकपुर वर्णन। अमराई मे निवास। जनकजी का आगमन। साथ ले जाकर सुन्दर सदन मे ठहराना। दोनो भाइयो का नगर देखने जाना। रूप वर्णन। अष्ट सखी सम्वाद। धनुष-यज्ञ भूमि निरीक्षण। बालकों का प्रेम। लौटना। निशि कृत्य। प्रात कृत्य। फूल लेने जाना। फुलवारी वर्णन। फूल चुनना। गौरी पूजन के लिए सखी सहित सीता का आगमन, स्नान, पूजा, राज-कुँवर के आने का सन्देश। सब की उत्कण्ठा। देखने के लिए जाना। राम सीता का प्रथम साक्षात्कार। सीताजी का गिरिजा मन्दिर मे फिर जाना। स्तुति। मनोरथ-प्रार्थना। गौरी का आशीर्वाद। सबका प्रस्थान। दोनो भाइयो का लौटना। गुरुजी से सम्पूर्ण इतिवृत्त-निवेदन। गुरुजी का आशीर्वाद। भोजनोपरान्त कथा। सन्ध्या-वन्दन। चन्द्र के व्याज से सिय-मुख छवि वर्णन। विश्राम। अरुणोदय के व्याज से लक्ष्मण द्वारा प्रभुप्रताप-वर्णन। नित्यकृत्य। गुरु को प्रणाम। शतानन्द द्वारा जनक का बुलावा। मुनिवृन्दसहित कृपालु का जाना। भीड़। राजा की सुव्यवस्था। कुँवरों का रङ्गभूमि-प्रवेश। भावानुसार अनेक रूप से कोशलराज किशोर का दर्शन। शिख-नख-वर्णन। उच्च मञ्च पर आसन। राजाओं की बातचीत। सीताजी का प्रवेश। छवि-वर्णन। नर-नारियो की लालसा। बन्दियो द्वारा राजा जनक के प्रण की घोषणा। राजाओं का धनुष-भङ्ग के लिए उद्योग। राजा जनक के क्रोधयुक्त वचन। लक्ष्मण का क्रोध। विश्वामित्र की आज्ञा से रामजी का उठना। मुनियो से आज्ञा माँगना। पुर-नरनारी। रानी और सीताजी की भावनाएँ। लक्ष्मण द्वारा उत्साह-वर्धन। सबके हृद्गत भावो का धनुष मे केन्द्रीभूत होना। राम द्वारा सबके भावो की परख। धनुष-भङ्ग। उत्सव। सबको हर्ष। जयमाल पहिनाना। क्रूर कपूत मूढ़ राजाओं का क्रोध। साधु राजाओं का उत्तर। सीता का प्रस्थान। लक्ष्मण का क्रोध। पुर-नरनारी की विकलता दो २६७-पृ ५५५ से।

---

१ कहहु जथा जानकी बिबाही।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



परशुराम आगमन प्रसङ्ग : परशुराम-आगमन। मुनि वेष मे वीररस शान्तिरस की सन्धि। राजाओ मे त्रास। वन्दना। राजाओ की भीड का कारण जनक से पूछना। धनुर्भङ्ग सुन और देखकर क्रोध। तोडनेवाले के विषय मे प्रश्न। राम का उत्तर। परशुराम-लक्ष्मण-सम्वाद। परशुराम द्वारा सात बार लक्ष्मण का तथा दो बार राम का कुल नव बार अपमान। राम के उत्तर से बुद्धि का परदा खुलना। नौ बार उत्कर्ष-सूचक जय-शब्द-उच्चारणपूर्वक स्तुति। परशुराम का प्रस्थान। राजाओं को भय। कायरो का पलायन : दो. २७५-८ तक पृ. ६८१ से।

विवाह प्रसङ्ग मङ्गलाचरण। विश्वामित्रजी की आज्ञा से अवध दूत भेजना। जनकपुर मे मण्डप-रचना। पुर-रचना। चक्रवर्ती के दरबार मे जनक दूत। दूत के साथ महाराज का गुरुजी के पास जाना। बारात शीघ्र ले चलने की गुरुजी की आज्ञा। महाराज का महल मे जाना। अयोध्या मे उत्सव। बारात की तैयारी के बारह कार्य। बारह सगुन। मार्ग मे बारात का सत्कार। अगवानी। जनवास। रामलखन का चक्रवर्तीजी से मिलन। अगवानी का सत्कार। नगर वासियो का मनोरथ। स्वयम्वर मे आये हुए राजाओ का प्रस्थान। विवाह। दायज। जनक विनय। परस्पर-विनय। कोहबर। चारो जोडियो का जनवास को प्रस्थान। जेवनार। गवादि-दान। बिदाई। बारात को पहुँचाना। बारात का घर लौटना। अवध मे उत्सव। परिछन। बरातियो की बिदाई। महाराज का रनिवास मे जाना। वसिष्ठ-कौशिक की पूजा। विश्वामित्र की कथा। कङ्कन छूटना। विश्वामित्र की बिदाई। विश्वामित्र-*कथा* की पुनरावृत्ति। फल-स्तुति : दो. ३६१ तक : बालकाण्ड की समाप्ति। पृ. ७२३ से ९०७ तक।

•

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

मानसराजहंस पं० श्रीविजयानन्द जी त्रिपाठी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

# श्रीरामचरितमानस

## विजया टीका

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

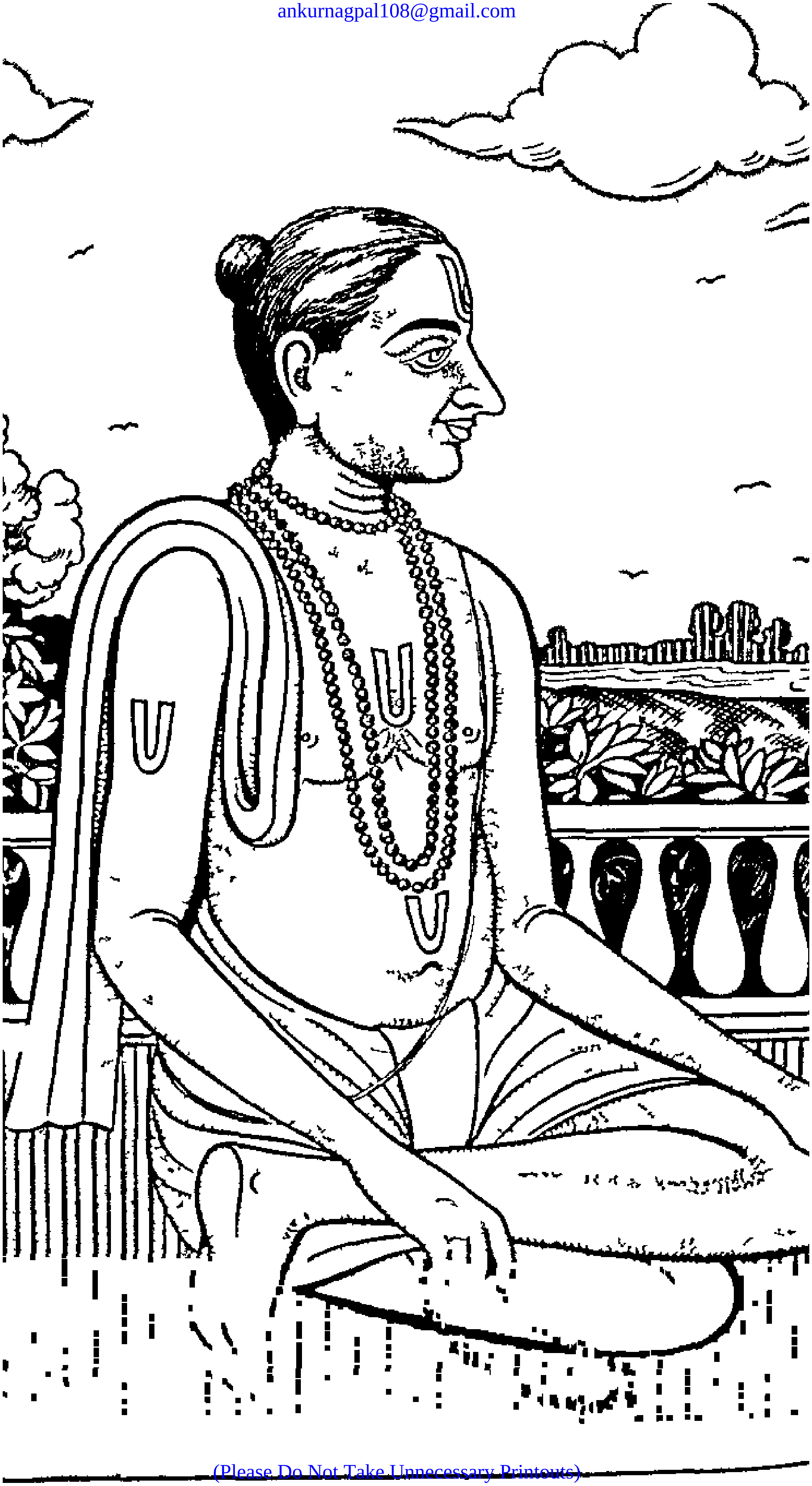

ankurnagpal108@gmail.com

श्रीराम

श्रीगणेशाय नमः। श्रीगुरवे नमः

# श्रीरामचरितमानस

## बालकाण्ड : प्रथम सोपान

## सटीक

### मङ्गलाचरण

श्लो. वर्णानामर्थ[1] संघानां रसानां [1]छंदसामपि।
[1]मंगलानां[1] च कर्तारौ [1]वंदे वाणीविनायकौ ॥१॥

जय गणेश गुरु गौरि हर, गिरा लखन श्रीराम।
वन्दौं पद धरि धरणि शिर, पूरौ जनमनकाम ॥१॥
करत ग्रन्थ शुभ राखि उर, श्रीमारुति पदद्वंद।
जाते जग नित होइ मुद, मंगल विजयानन्द ॥२॥
मातु तात श्री मङ्गला, सहित देव रघुवीर।
वन्दि चरन मागौ हिये, जागौ भगति गँभीर ॥३॥
तुलसीदास के चरन युग, वंदौ वारंवार।
जातें मानस-सरस में, होइ दृष्टि सचार ॥४॥
रामगुलाम आदि लै, पंडित रामकुमार।
मानस के आचार्यगन, जेते टीकाकार ॥५॥
सब के पद वन्दन करौं, करम वचन अरु काय।
करुनाकरि जन जानिमोहि, सब मिलि होउ सहाय ॥६॥
अवगाहत रघुपति चरित सरित मिटहि दुखद्वंद।
मानस की टीका करत यह गुनि विजयानंद ॥७॥

अर्थ : अक्षरों के, अर्थसमूहों के, रसों के और छन्दों के भी : तथा : मङ्गलों के करनेवाली वाणी : सरस्वती : और : उनके आश्रय : विनायक : गणेश : की मैं वन्दना करता हूँ।

---

१ प्राकृत सूत्र है 'ङ, ञ, ण, नो व्यञ्जने' व्यञ्जन परे रहते 'ङ ञ ण और न' का अनुस्वार हो जाता है। इस नियम से वर्ण्ण, छन्द, मङ्गलानाञ्च और वन्दे का क्रम से वर्ण, छंद, मंगलानां च और वंदे रूप हो गया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या श्रीगोस्वामी जी ने मगण से ग्रन्थारम्भ किया। मगण में तीन गुरु होते हैं। यहाँ वर्, णा, नाम् ये तीनों गुरु हैं। इसका फल है श्री का विस्तार। यथा मो भूमि श्रियमातनोति।

ग्रन्थारम्भ 'व'कार से किया तथा ग्रन्थ की समाप्ति भी 'व' से की है। 'व' जलतत्त्व है। भाव यह कि यह रामचरित मानस प्रेमाम्बु से पूर्ण है।

बिना चार कृपा के किसी का कल्याण नहीं होता। १ शास्त्रकृपा २ ईश्वरकृपा ३ गुरुकृपा और ४ आत्मकृपा। श्रीगोस्वामीजी क्रम से चारों श्लोकों में चारों कृपाओं को लक्ष्य रखके वन्दना करते हैं। पहिले ही शास्त्रकृपा के लिए वाणी विनायक की वन्दना की है।

पद, पदार्थ, रस और छन्द से काव्य में काम पड़ता है। यथा आखर अरथ अलंकृत नाना, छंद प्रबन्ध अनेक विधाना, भाव भेद रस भेद अपारा। और मङ्गल, काव्य का प्रयोजन है। अतः पहिले ही इनके कर्त्ताओं की वन्दना करते हैं। सरस्वती वाक् हैं और गणेश जी वाङ्मय हैं, यथा 'त्वं वाङ्मयस्त्वं चिन्मयः' इति श्रुतिः। अतः दोनों में स्वभावसाम्य है। दोनों रामोपासक हैं। गणेशजी नाम प्रभाव से प्रथम पूज्य हुए और वाणी सरस्वती रामचरित सर में स्नान करने के लिए भक्त के स्मरण करने पर ब्रह्मलोक से दौड़ती हुई आती हैं। अतः दोनों रामभक्त हैं। दोनों मङ्गल के कर्त्ता हैं। यथा मङ्गलं दिशतु नो विनायको मङ्गलं दिशतु नः सरस्वती। इति श्रुतिः। अतः दोनों की साथ ही वन्दना ग्रन्थ के आरम्भ में की गई। इनकी कृपा से ही शास्त्रकृपा होगी। वर्णों की संख्या में अनेक मत हैं, कोई छत्तीस, कोई बयालीस और कोई पचास वर्ण मानते हैं परन्तु मौलिक भेद नहीं है। यहाँ वर्णों से पद का अभिप्राय है। पदार्थ सात हैं। द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य, विशेष, समवाय और अभाव। रस नौ हैं शृङ्गार, हास्य, करुणा, रौद्र, वीर, भयानक, वीभत्स, अद्भुत और शान्त। भक्तलोग तीन रस और मानते हैं सख्य, वात्सल्य और दास्य। छन्द प्रबन्ध के अनेक विधान हैं। काव्य से चतुर्वर्ग की प्राप्ति होती है, वही मङ्गल है, यथा

एक लहैं तपपुंजन को फल, ज्यों तुलसी अरु सूर गोसाईं।
एक लहैं सुख संपति केसव, भूपन ज्यों बलवीर बड़ाईं॥
एकन को जस ही से प्रयोजन, है रसखानि रहीम की नाईं।
दास कवित्तन की चरचा, बुधिवन्तन को सुख दै सब ठाईं॥

काव्यनिर्णये

इस प्रथम श्लोक का अनुष्टुप् छन्द है। इसमें ८ अक्षरों का एक पाद होता है, चारों पादों में पाँचवाँ वर्ण लघु और छठा गुरु होता है, दूसरे और चौथे पाद में सातवाँ अक्षर लघु होता है।

---

१ गणपति सहस्रहोम पद्धति में गणपतिपरक निम्नलिखित मन्त्र ध्यान देने योग्य हैं पञ्चाशद्वर्णमातृकालयाय स्वाहा। सप्तछन्दोनिधये नमः स्वाहा। सरस्वत्याश्रयाय नमः स्वाहा। गद्यपद्यसुधार्णवाय नमः स्वाहा। अष्टादशलिपिव्यष्टिसमष्टिज्ञानकोविदाय नमः स्वाहा। इत्यादि।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


[1]श्लो. भवानीशंकरौ वंदे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ ।
याभ्यां विना न पश्यंति सिद्धाः स्वान्त:स्थमीश्वरं[2] ॥२॥

अर्थ : भवानी और शङ्कर : दोनों : की वन्दना करता हूँ, जो श्रद्धा और विश्वास के रूप हैं जिनके विना सिद्ध लोग, अपने अन्तःकरण में स्थित ईश्वर को नहीं देखते।

व्याख्या : श्रद्धा और विश्वास में नाममात्र का भेद है, वस्तु एक ही है। इसी भाँति भवानी और शङ्कर में नाम का भेद है, तत्त्व एक ही है। वे वाक् और अर्थ की भाँति मिले हुए हैं। यथा : वागर्थाविव सम्पृक्तौ। सिद्ध लोगों ने दुष्प्राप्य अणिमादिक सिद्धि प्राप्त कर ली, पर वे अपने अन्तःकरण में स्थित ईश्वर का दर्शन नहीं कर सके। इसका कारण श्रद्धा और विश्वास का अभाव है, श्रद्धारूपिणी भवानी है और विश्वासरूपी शङ्कर हैं। यथा : या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता। नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमोनमः। अर्थ : जो देवी सब प्राणियों में श्रद्धारूप से विराजमान हैं, उन्हें बार बार नमस्कार है। श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई। बिनु महि गंध कि पावै कोई। कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा। बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न राम। इस प्रकार से श्रद्धा-विश्वास की अनिवार्य उपयोगिता श्री गोस्वामीजीने दिखलाई है। ईश्वर अन्तर्यामी सबके हृदय में निवास करते हैं, परन्तु जीव उन्हें अपने हृदय में ढूँढने का प्रयत्न नहीं करता, क्योंकि उसे इस विषय में श्रद्धा-विश्वास नहीं है। जब ढूँढता ही नहीं तब पावेगा कैसे ? सो कृपा करके जब भवानी और शङ्कर, जो कि हृत्कमल : अनाहत चक्र : के अधिष्ठाता हैं, श्रद्धा-विश्वास रूप में आविर्भूत हों तब ईश्वर का दर्शन सम्भव है। ईश्वर तभी दर्शन देंगे जब श्रद्धाविश्वासरूपी भवानीशङ्कर कृपा करें। अतः श्रीगोस्वामीजी उनकी वन्दना करते हैं, जिससे उनकी कृपा से ईश्वरकृपा का लाभ हो सके। इस दूसरे श्लोक का भी अनुष्टुप् छन्द है।

श्लो. वंदे बोधमयं नित्यं गुरुं शंकररूपिणं ।
यमाश्रितो हि वक्रोपि चन्द्रः सर्वत्र वंद्यते ॥३॥

---

१ यहाँ 'शङ्करौ, वन्दे, पश्यन्ति', का तद्भवरूप 'शंकरौ, वंदे और पश्यंति' क्रम से हुआ। इसका नियम प्रथम श्लोक की व्याख्या में दिया हुआ है। इसी भाँति और स्थलों में समझ लेना चाहिए। प्रत्येक स्थान पर सूत्र देकर साधना असम्भव है। अतः यही निश्चय किया कि जो बात एक स्थल में दिखला दी गई, उसे बार बार दिखाने के लिए हम बाध्य नहीं हैं, पाठकों से आशा की जाती है कि एक बात को एक स्थल में समझ लेने पर दूसरे वैसे स्थलों पर भी उसी तरह लगा लेंगे।

२. इस श्लोक में नई बात यह आई कि कोई व्यञ्जन परे नहीं है, फिर भी ईश्वरम् का ईश्वरं रूप हो गया। यहाँ सूत्र लगा 'मो बिन्दुः' : प्रा. प. ४-१२ : अन्त्यस्य हलो मकारस्य बिन्दुर्भवति। अन्त के हल् मकार का बिन्दु हो जाता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ मैं ज्ञानमय, नित्य, शङ्कररूपी गुरुदेव की वन्दना करता हूँ, जिनका आश्रित होकर ही टेढा चन्द्रमा भी सर्वत्र वन्दित होता है।

व्याख्या मङ्गलाचरण करने और श्रद्धा विश्वास का आश्रयण करने पर भी गुरु के आश्रयण की आवश्यकता है। बिना गुरु का आश्रयण किये शिष्य पूजित नहीं होता और ग्रन्थकार को साधु समाज मे भणित से सम्मान की अभिलाषा है। यथा होइ प्रसन्न देहु बरदानू। साधु समाज भनित सनमानू। गुरु शङ्कररूप हैं, यथा गुरुर्देवो महेश्वर। उन्ही के आश्रयण से अतिक्षीण और टेढे द्वितीया के चन्द्र की वन्दना जगत् करता है, अत ग्रन्थकार श्रीशङ्कर कल्याणकर रूपी गुरुदेव की वन्दना करके, आश्रय ग्रहण करते हैं, जिसमे कुटिल और क्षीणसामर्थ्य होने पर भी, जगत् मे सम्मानभाजन हो सकें। मनुष्य का गुरु मनुष्य नही हो सकता, नित्य बोधमय शङ्कर ही सबके गुरु हैं पूर्वेषामपि गुरु कालेनानवच्छेदात् यो सू। तुम त्रिभुवनगुरु वेद बखाना। फिर जिस शरीर द्वारा शङ्कर भगवान् जीव का कल्याण करते हैं, उस शरीर की, शङ्कर की मूर्ति की भाँति वह जीव, पूजा क्यो न करे? इस तीसरे श्लोक का भी अनुष्टुप् छन्द है। इसमे श्रीगोस्वामीजी ने गुरुकृपा चाही। श्रीगोस्वामीजी को आत्मकृपा प्राप्त है। यथा ·

श्लो सीतारामगुणग्राम - पुण्यारण्यविहारिणौ।
वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ ॥४॥

अर्थ सीता और राम के गुणगणरूपी पुण्यवन मे विहार करनेवाले और *विशुद्ध विज्ञानवाले कवीश्वर वाल्मीकि और कपीश्वर हनुमानजी की वन्दना* करता हूँ।

व्याख्या सीता और राम के गुणगणो को दुर्गम और दुष्पार होने से अरण्य कहा, दिव्य होने से पुण्यारण्य कहा। अरण्य वन के मर्मज्ञ के बिना वन्य पदार्थों के हेतु, नाम, गुण, पुण्य और प्रभाव का न पता चल और न यात्रा ही हो सके यथा : पुन्य जलाश्रय भूमि बिभागा। खग मृग तरु तृन गिरि बन बागा। चारु बिचित्र पवित्र बिसेषी। बूझत भरत दिव्य सब देखी। सुनि मनमुदित कहत रिषि राऊ। हेतु नाम गुन पुन्य प्रभाऊ। सो इस पुण्यारण्य के दो बड़े जानकार हैं। एक तो माधुर्य-प्रधान कवीश्वर [1]वाल्मीकेर्मुनिसिंहस्य कवितावनचारिण। शृण्वन् रामकथानाद को न याति परा गतिम्। बंदौ मुनिपदकंज रामायन जेहि निरमयेउ। सखर सकोमल मंजु दोषरहित दूषनसहित। और दूसरे ऐश्वर्यप्रधान कपीश्वर [2]रामायणमहामाला-रत्न वन्देऽनिलात्मजम्। महा नाटक निपुन कोटि कविकुलतिलक। अत श्रीसीता-राम-गुणग्रामरूपी पुण्यारण्य की जानकारी के लिए दोनो की वन्दना करते हैं। कपि समाज को हनुमानजी प्राण के समान प्यारे हैं। यथा मिले सकल अति भये सुखारी।

---

१ कविता वन म विचरण करनेवाले मुनिसिंह के रामकथानाद को सुनकर कौन परागति को नही प्राप्त होता।

२ रामायणमहामाला के रत्न हनुमानजी की मैं वन्दना करता हूँ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तलफत मीन पाव जिमि वारी। इसलिए कपीश्वर कहा। सीताराम गुणग्राम के परिचय से ही सारा कल्याण सधता है। यथा : जग मंगल गुनग्राम राम के। दानि मुकुति धन धर्म धाम के। सद्गुरु ग्यान बिराग जोग के। बिबुध बैद भव भीम रोग के।

श्लो. उद्भवस्थितिसंहारकारिणीं क्लेशहारिणीम्।
सर्वश्रेयस्करीं सीतां नतोऽहं रामवल्लभाम्॥५॥

अर्थ : उत्पत्ति, स्थिति, संहार करनेवाली, क्लेशों को हरण करनेवाली तथा सम्पूर्ण कल्याणों की करनेवाली, राम की प्यारी सीताजी की मैं वन्दना करता हूँ।

व्याख्या : जिनके गुणग्राम से परिचय प्राप्ति के लिए कवीश्वर कपीश्वर की वन्दना की, अब उन्हीं गुणी श्रीसीताराम की वन्दना करते हैं। सीताजी आद्या शक्ति हैं। अतः उत्पत्ति, स्थिति और लय इन्हीका कार्य है। यथा : आदि शक्ति जेहि जग उपजाया। सो अवतरिहि मोरि यह माया। क्लेश पाँच हैं : अविद्यास्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः, यो. सू.। [1]अविद्या, [2]अस्मिता, [3]राग, [4]द्वेष और [5]अभिनिवेश। श्रीसीताजी इन पाँचों क्लेशों की हरण करनेवाली हैं। लौकिक और पारलौकिक सब कल्याणों की करनेवाली हैं। रामजी की प्यारी हैं। इनके वचनसहाय से ही भवसन्तरण सम्भव है। यथा :

कबहुँक अम्ब अवसर पाइ।
मेरिऔ सुधि द्याइबी कछु, करुन कथा चलाइ।
जानकी जग जननि जन की, किये बचन सहाइ।
तरइ तुलसीदास भव तव, नाथ गुन गन गाइ॥ विनय

सीता नाम का उल्लेख करके हल की रेखा से उत्पन्न, अयोनिजा, वेदप्रतिपादित आह्लादिनी शक्ति कहा। बच्चे स्वभाव से ही पिता की अनुकूलता के लिए माँ को साधन बनाते हैं। इसलिए ग्रन्थकार सीताजी की वन्दना करते हैं।

श्लो. यन्मायावशवर्तिविश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुराः
यत्सत्त्वादमृषैव भाति सकलं रज्जौ यथाहेर्भ्रमः।
यत्पादप्लव एक एव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावतां
वंदेऽहं तमशेषकारणपरं रामाख्यमीशं हरिम्॥६॥

अर्थ : जिसकी माया के वश में समस्त संसार, ब्रह्मादिक देवता और असुर हैं, जिसकी सत्ता से रस्सी में सर्प के भ्रम की भाँति सम्पूर्ण जगत् सच्चा ही प्रतीत होता है और जिसका चरण ही संसार समुद्र का पार चाहनेवालों के लिए एकमात्र नौका है। उन समस्त कारणों से परे राम नामवाले ईश हरि की मैं वन्दना करता हूँ।

---

१. अनित्य, अशुचि, दुःख और अनात्मा में नित्य, शुचि, सुख और आत्मा का ज्ञान होना अविद्या है। २. दृक्शक्ति और दर्शनशक्ति की एकात्मता अस्मिता है। ३. सुख का अनुस्मरण करते हुए सुख के साधनों में तृष्णा राग कहलाती है। ४. दुःख का अनुस्मरण करते हुए दुःख के साधनों के प्रति क्रोध को द्वेष कहते हैं। ५. मरण के भय को अभिनिवेश कहते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या इस श्लोक में ग्रन्थकार ने हरि के १ माया का प्रभाव २ सत्ता का प्रभाव ३ चरण का प्रभाव और ४ स्वरूपवर्णन क्रम से चारों चरणों में किया है। पहिले माया का प्रभाव कहते हैं

१ ब्रह्मादि सुर और असुर भी उसके वशवर्ती हैं। यथा हरिमाया बलवत भवानी। जाहि न मोह कवन अस ज्ञानी। नारद भव विरंचि सनकादी। जे मुनि नायक आतमवादी। मोह न अंध कीन्ह केहि कही। को जगकाम नचाव न जेही। जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा। इस भांति माया को अघटितघटनापटीयसी कहा। श्रीहरि के बल से वह सब कुछ करती है, उसे निज बल कुछ नहीं है। अत माया के बल के वर्णन द्वारा श्रीहरि का ही वर्णन है। यथा एक रचइ जग गुन बस जाके। प्रभु प्रेरित नहि निज बल ताके।

२ उस हरि की सत्ता ऐसी है कि सम्पूर्ण ससार उसकी सत्ता से सत्तावान है। जिस भांति रस्सी की सत्ता से सर्प की सत्ता की प्रतीति होती है। मन्दान्धकार में पडी हुई रस्सी सर्प मालूम होती है। इसी भाँति श्रीहरि में ससार की प्रतीति हो रही है। श्रीहरि के स्वरूप में विचार नहीं आया और ससार की रचना हो गई। यथा रजत सीप महं भास जिमि, यथा भानुकरवारि। जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ भ्रम न सकै कोउ टारि। एहि विधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई।

३ उस हरिका चरण ही ससार-सागर के पार जाना चाहनेवाले के लिए नौकारूप है, अन्य साधन फेन हैं। नौका की भाँति वे भी ससार-सागर के ऊपर दिखाई पडते हैं पर आश्रय योग्य नहीं हैं। यथा महा मोह सरिता अपार महं सतत फिरत बह्यौ। श्रीरघुवीर चरन नौका तजि फिरि फिरि फेन गह्यौ।

४ अब उनका स्वरूप कहते हैं कि वे अशेष कारणो से परे हैं, अर्थात् कार्य-कारण की शृंखला वहा जाकर समाप्त हो जाती है। अर्थात् वह प्रभु, माया और उसके घेरा के बाहर हैं। यथा फिरत सदा माया कर प्रेरा। कालकर्म सुभाव गुन घेरा। जिस घेरे के कारण जीव बँधा हुआ फिरता है। यहाँ श्रीग्रन्थकार, श्रीहरि के रामावतार की वन्दना करते हैं। क्योंकि वे ही श्रीग्रन्थकार के इष्टदेव हैं और उन्हीं का चरित वर्णन करना है।

इस छठे श्लोक का शार्दूलविक्रीडित छन्द है। इसमें १९ अक्षरो का एक पाद होता है। बारह अक्षर पर एक यति विराम होती है। इसमें एक मगण, एक सगण, एक जगण एक सगण दो तगण और अन्त में एक गुरु होता है SSS, IIS, ISI, IIS, SSI, SSI, S।

श्लो नानापुराणनिगमागमसम्मतं यद्रामायणे निगदितं क्वचिदन्यतोऽपि।
स्वान्तःसुखाय तुलसी रघुनाथगाथाभाषानिबन्धमतिमंजुलमातनोति ॥७

अर्थ जो नाना पुराण, वेद तथा तन्त्र शास्त्र से सम्मत है वही इस रामायण में कहा गया है और कही अन्यत्र से भी लिया गया है। अपने अन्तःकरण के सुख के लिए तुलसीदास श्रीरघुनाथ की कथा को भाषा में अति सुन्दर निबन्ध रूप में रचता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या प्रायेण यही बात ग्रन्थकार ने 'रामायण' जी की आरती मे कही है। यथा गावत वेद पुराण अष्टदस। छवो शास्त्र सब ग्रथन को रस। मुनिजन धन सतन को सर्वस। सार अस सम्मत सबही की। 'क्वचिदन्यतोऽपि' से सब ग्रन्थ, काव्य, नाटकादि का रस तथा महात्माओ का अनुभव भी अभिप्रेत है। सस्कृत मे मङ्गलाचरणपूर्वक सकल्प करते है, कि मै भाषा मे निबन्ध करता हूँ। भाषा से अभिप्राय प्राकृत भाषा का है। यथा जे प्राकृत कवि परम सयाने। भाषा जिन हरि चरित बखाने। लौकिक प्राकृत भाषा मे तत्समरूप से सस्कृत का भी ग्रहण है। यथा . तद्भव.[1] तत्समो देशीत्यनेकप्राकृतक्रम। भाषा का लक्षण कहते हुए काव्य निर्णयकार लिखते है :

ब्रजभाषा भाषारुचिर, कहै सुमति सब कोय।
मिलै सस्कृत पारस्यौ, पै अति प्रगटी होय॥
ब्रजमागधी मिलै अमर, नागयमनभाषानि।
सहज पारिसीहू मिलै षट्विधि कवित बखानि॥
तुलसी गग दोऊ भये, सुकविन के सरदार।
इनके काव्यन मे मिली भाषा विविध प्रकार॥

सरस्वतीकण्ठाभरण मे कहा गया है 'नाल्पबुद्धेषु सस्कृतम्' अर्थात् सस्कृत अल्प बोधवालो के लिए नही है। रसिको का मत है कि 'सस्कृतात् प्राकृत श्रेष्ठ ततोऽपभ्रशभाषणम्' सस्कृत से प्राकृत श्रेष्ठ है और उससे भी अपभ्रश श्रेष्ठ है। अपभ्रशस्तुयच्छुद्ध तत्तद्देशेषु भाषितम्। देशोद्भव वाणी अपभ्रश कहलाती है। उसकी भी बहुतायत इस भाषा निबन्ध मे है। इसीलिए लिखते है कि 'अतिमजुलमातनोति' तुलसीदास अति सुन्दर विस्तृत करता है। प्रयोजन कहते है 'स्वान्त सुखाय' सो सिद्ध हुआ यथा . पायो परम विश्राम राम समान प्रभु नाही कहूँ। इन सातो श्लोको मे क्रमश सातो काण्डो की कथाओ के बीज है। प्रथम श्लोक से वर्ण, रस, छन्द और मङ्गल का उल्लेख करके, प्रभु का अक्षर ग्रहण, विश्वविजय, रङ्गभूमि मे अखिल रसामृतमूर्ति का प्रदर्शन, विवाहविधि आदि मङ्गलो का होना सूचित किया। दूसरे श्लोक से श्रद्धा विश्वास का उल्लेख करते हुए, प्रजा के साथ चक्रवर्तीजी का रामजी पर श्रद्धा विश्वास और रामजी का श्रीचक्रवर्तीजी, वशिष्ठजी और भरतलाल आदि पर श्रद्धाविश्वास तथा श्रीभरतजी, लक्ष्मणजी आदि का श्रीरामजी पर श्रद्धाविश्वास सूचित किया। तीसरे श्लोक से शङ्कररूप गुरु का उल्लेख करते

---

[1] तद्भव, तत्सम और देशी, इस भाति अनेक प्राकृत क्रम हैं। तत्सम उस कहते है जहाँ शुद्ध सस्कृत शब्द या वाक्य का प्रयोग हो। जो शब्द सस्कृत से निकला हो उसे तद्भव कहते है, यथा सोता से सोया। अनेक देश की भाषा के शब्दो को देशोद्भव कहते है, यथा : नव रेब . तिरहुत की बोली है, धुवा मृतक शरीर . बुदेलखण्ड की बोली है, म्हाको मेरा . जयपुर की बोली है, काठे ठौर दक्षिणी भाषा है, राउर . मन्दिर उदयपुर की बोली है, असा ऐसा दक्षिणी भाषा है, आउज ताशा अन्य देश की भाषा है, इत्यादि।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


हुए अगस्त्य जी से मन्त्रग्रहण तथा ब्रह्मकुल में निवास सूचित किया। चौथे श्लोक से कवीश्वर और कपीश्वर का उल्लेख करके कोटिकविकुलतिलक हनुमान जी और सुग्रीव जी से भेंट होना सूचित किया। पाँचवें श्लोक से सीता जी का उल्लेख करते हुए, उनकी सुधि का मिलना सूचित किया। छठे श्लोक से संसार सन्तरण का उल्लेख करते हुए विरोधी समाज रावणादि का समार सन्तरण सूचित किया। सातवें श्लोक से नानापुराणनिगमागम का उल्लेख करते हुए, धर्म के चारों चरणों से युक्त रामराज्य तथा सिद्धान्त निरूपण सूचित किया।

इस सातवें श्लोक का वसन्ततिलका छन्द है। इसमें १४ अक्षरों का एक पाद होता है और उसमें एक तगण, एक भगण, दो जगण और अन्त में दो गुरु होते हैं। ऽऽ।, ऽ।।, ।ऽ।, ।ऽ।, ऽऽ

## सुरवन्दना

सो जेहि सुमिरत सिधि होइ गननायक करिबरबदन।
करौ अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि सुभगुनसदन ॥१॥

अर्थ जिनके स्मरण मात्र से सिद्धि होती है, जिनका मुख श्रेष्ठ हाथी का सा है, वे ही बुद्धि की राशि और शुभगुणों के घर गणनायक अनुग्रह करें।

व्याख्या आगे चलकर यह रूपक मिलेगा, जिसमें रामचरित को सर माना है, छन्द सोरठा और दोहा को उस सर का कमल तथा चौपाइयों का पुरइन कमल की लता माना है। इस ग्रन्थ के लगाने का रहस्य इसी कमल और पुरइन की जानकारी में भरा पड़ा है। कौन सा कमल किस पुरइन से निकला है, इस बात के बिना जाने किस छन्द, सोरठा और दोहा का किस चौपाई से सम्बन्ध है, इस बात का पता नहीं चलता और सम्बन्ध बिना जाने अभ्रान्त अर्थ हो नहीं सकता। तालाब में की पुरइन कहीं तो वहीं पर फूल दे देती है और कहीं भीतर दूर जाकर फूल देती है, कहीं दूसरी-दूसरी पुरइनों से उलझती चली जाती है। अर्थ करनेवालों को इसकी जानकारी की बड़ी आवश्यकता है। स्थान स्थान पर यथाशक्ति इसे दिखाने का प्रयत्न किया जायगा।

यथा इन चार सोरठों कमलों की पुरइन अयोध्या काण्ड से आई है। इसी बात को दिखलाने के लिए कवि ने इन सोरठाओं में 'बन्दौं' पद नहीं दिया, किसी में वन्द्य का नाम भी नहीं है। इन त्रुटियों की पूर्ति टीकाकारों को अन्दाज से करनी पड़ती है। इससे मतभेद भी होता है और अर्थ में संशय रह ही जाता है। अवधवासियों की उपासना का नियम है कि पञ्चदेव की उपासना करके उनसे रामभक्ति माँगते हैं। तदनुसार चित्रकूट प्रकरण में पुरवासी पञ्चदेव का पूजन करते हैं और विनय करते हैं। यथा करि मज्जन पूजहिं नरनारी। गनप गौरि त्रिपुरारि तमारी। रमा रमन पद बंदि बहोरी। विनवहिं अंजुलि अंचल जोरी। श्रीगोस्वामीजी की भी अवध वासियोंवाली उपासना है। अतः ये भी पञ्चदेव को अञ्जलि जोड़कर वन्दना करते हैं। वन्दना यहाँ पर पुरइन से ली जायगी तथा जहाँ वन्द्य का नाम नहीं है, उसकी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पहिचान भी इसी पुरइन चौपाई से होगी। यह पुरइन अयोध्याकाण्ड से भीतर ही भीतर चली आई है और इसने चार फूल बालकाण्ड के आदि में दिये। उनमें से पहिला यह है।

गणनायक बहुत है, इसलिए करिवरवदन विशेषण देकर उनकी प्रधानता दिखलाई। ये ऐसे दयालु हैं कि बिना करणी-करतूत के केवल स्मरणमात्र से कृपा करते है, इसीलिए 'अनुग्रह' पद दिया। श्रीग्रन्थकार का अपने बुद्धिबल का भरोसा नही है। यथा निज बुधिबल भरोस मोहि नाही। सकल कला सब विद्या हीनू। इसलिए बुद्धिराशि शुभगुणसदन गणनायक के चरणों की वन्दना करके साञ्जलि होकर अनुग्रह के लिए विनय करते है, जिससे रघुपति की अथाह गुणगाथा के वर्णन की सिद्धि प्राप्त हो।

बुद्धिमान् को यदि शुभ गुण न हो तो वह बुद्धि अनर्थकारिणी होती है, अत 'बुद्धि राशि शुभगुन सदन' कहकर 'मुद मगल दाता' कहा, गणनायक कहकर प्रभुता द्योतित की और 'जेहि सुमिरत सिधि होय' कहकर 'वरदायक देव' बतलाया। सोरठा छन्द से ही बालकाण्ड प्रारम्भ करके सोरठा से ही समाप्ति की, क्योंकि इसमे मात्राओं का वृद्धिक्रम है।

यह सोरठा छन्द है। इसके प्रत्येक दल मे २४ मात्राएँ होती हैं। पहिले और तीसरे चरणों मे ११ मात्राएँ और दूसरे तथा चौथे चरणों म १३ मात्राएँ होती है। इसके सम चरणों मे जगण ।ऽ। का निषेध है, और उनके आदि के त्रिकल के पश्चात् दो गुरु नही आते। 'णो न' प्रा प्र १०५। इस सूत्र से गणनायक के ण का न हो गया और गणनायक रूप सिद्ध हुआ।

**सो मूक होइ बाचाल, पगु चढै गिरिवरगहन।**
**जासु कृपा सो दयाल, द्रवौ सकल कलिमलदहन ॥२॥**

अर्थ जिनकी कृपा से गूगा अच्छी तरह से बोलने लगता है और लगडा दुर्गम पहाड पर चढ जाता है, वे कलियुग के सब पापो के जलानेवाले दयालु कृपा करे।

व्याख्या यहाँ वन्द्य का नाम ही नही है। अत गुणो से तथा पुरइन के बल से वन्द्य का ग्रहण करना है। मूक करोति वाचाल पङ्गु लघयते गिरिम्। यत्कृपा तमह वन्दे परमानदमाधवम्। सो यहाँ आदित्यानामह विष्णु विष्णु नामक आदित्य की वन्दना है। मनुष्य मूक और पङ्गु रूप ही उत्पन्न होता है। दिन-रात करनेवाले, छ ऋतु बनानेवाले, काल के नियामक सूर्य नारायण की कृपा से, समय पाकर मनुष्य वाचाल और गिरिलघन मे समर्थ होता है, परिशेष न्याय से भी आदित्य का ही होना प्राप्त है। विनय मे इनका स्तवन 'दलन दाप दुख दुरितरुजाली' कहकर किया गया है। यह तमारि द्युलोक की अग्नि है, काल और कर्म के प्रवर्तक है, कलिमल के जलानेवाले है। ग्रन्थकार कलिमलग्रसित प्राणियो मे अपनी प्रथम श्रेणी समझते हैं। यथा जे जनमे कलिकाल कराला। करतब वायस वेष मराला। चलत कुपथ वेद मग छाडे। कपट कलेवर कलिमल भाँडे। तिनमह प्रथम रेख जग मोरी। अत. कलिमलदहन आदित्य की वन्दना करके कृपा चाहते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

करुणातरंगिनी तृपातरगमालिके क० रामा० ।
हमर जान सदाशिव योगी । अज अनवद्य अकाम अभोगी ॥
जौ मैं शिव सेएउ अस जानी । प्रीति समेत करम मन बानी ॥
तौ हमार पन सुनहु मुनीसा । करिहैं सत्य कृपा निधि ईसा ॥

इस भाँति गौरीत्रिपुरारि की वन्दना हुई। पञ्चदेव की वन्दना करके गुरुदेव की वन्दना करते हैं

सो बंदौं गुरपद कंज, कृपासिंधु नररूप हर ।
महामोह तमपुंज, जासु बचन रविकरनिकर ॥५॥

•अर्थ मैं गुरु जी के चरण कमलों की वन्दना करता हूँ, जो कृपा समुद्र और नर रूप में हर हैं। महा मोहरूपी अन्धकार के समूह के लिए जिनके वचन सूर्य की किरणों के समान हैं।

व्याख्या इस सोरठा में 'वन्दौं' स्पष्ट कहा, अतः उस पुरइन का यह सोरठा कमल नहीं है। यहाँ पुरइन सन्निकट है 'वन्दौं गुरपदपदुम परागा'। बहुत लोग यहाँ 'हरि' पाठ मानते हैं, हरि और हर में कोई भेद नहीं है। कहा है 'उभयो प्रकृति एका प्रत्ययभेदात्पृथगिवत् भाति। कल्पयति कश्चिन्मूढो हरिहरभेद विना शास्त्रम्' दोनों की प्रकृति एक है। प्रत्यय भेद से अलग की भाँति मालूम होते हैं। कोई मूढ ही हरिहर में भेद विनाशास्त्र की सम्मति के मानता है। अथवा हरिहर भेदरूपी विनाश के अस्त्र को स्वीकार करता है। यहाँ तुकान्त के ध्यान से तथा प्रसङ्गार्थ के विचार से 'हर' पाठ माना गया है। गुरुजी नररूप में साक्षात् कृपासिन्धु हर हैं। यथा वन्दे बोधमयं नित्यं गुरुं शङ्कररूपिणम्। शंकर भगवान् ने स्वयं कहा है 'सुनु गिरिराजकुमारि भ्रमतम रविकर बचन मम' यहाँ भी ठीक वही बात कह रहे हैं 'महामोह तमपुंज जासु बचन रविकर निकर'। इस विशेषण से गुर शब्द का अर्थ भी कह दिया। यथा गुकारस्त्वन्धकारस्तु रकारस्तु निरोधकः। 'गु' शब्द का अर्थ है अन्धकार और 'र' उसका रोकनेवाला है।

यहाँ गुरु के लिए गुर शब्द आया है। यह अशुद्ध नहीं है। 'अन्मुकुटादिषु' प्राकृत प्रकाश का एक सूत्र है। इससे उकार का अकार हो गया।

बंदौं गुर पद पदुम परागा । सुरुचि सुबास सरस अनुरागा ॥
अमिअ मूरिमय चूरन चारू । समन सकल भव रुज परिवारू ॥१॥

अर्थ गुरु चरण कमल की धूलि की वन्दना करता हूँ, जो स्वाद से सुन्दर, गन्ध से सुन्दर और अनुराग से सरस है। अमृतमय जड़ी सञ्जीवनी बूटी का सुन्दर चूर्ण है, संसार के रोगों के परिवार को दूर करनेवाला है।

व्याख्या पराग पुष्प की धूलि में तीन गुण होते हैं। १ सुरुचि २ सुवास और ३ सरसता। रुचि स्वाद को कहते हैं। यथा मुनि सुरसरि रुचि निदरि सुधाहू। और वास गन्ध को कहते हैं। मकरन्द के कारण पराग में स्वाद, गन्ध और रस का प्रवेश होता है। चरण कमल की मकरन्द अनुराग है। यथा पदकमल

ankurnagpal108@gmail.com



सो नीलसरोरुहस्याम तरुन अरुन वारिजनयन ।
करौ सो मम उर धाम सदा छीरसागर सयन ।।३।।

अर्थ जो नील कमल के समान श्याम हैं, जिनके नेत्र खिले हुए लाल कमल के समान है, जो सदा क्षीरसागर मे शयन करते हैं, वे मेरे हृदय मे निवास करे ।

व्याख्या यह रमारमण[1] की वन्दना है । इन्हे हृदय मे धाम करने के लिए कर सम्पुटित करके वन्दना और प्रार्थना करते है । ये सदा योगनिद्रा मे रहते है, यदि आजायँ तो सदा हृदय मे बने रहे । ये रमारमण, द्विभुज, चतुर्भुज, अष्टभुज, सहस्रभुज सब कुछ हैं । अत द्विभुज, चतुर्भुज का झगडा छेडना व्यर्थ है । इनका रामरूप से सर्वात्मना अभेद है । यथा पयपयोधि तजि अवध विहाई । जहँ सिय राम लखन रहे आई । जयराम रमारमन समन । इत्यादि द्वि चत्वारिषडष्टाऽऽसा दश द्वादश षोडश । अष्टादशामी कथिता हस्ता शखादिभिर्युता । सहस्रान्तास्तथा तासा वर्ण-वाहनकल्पना । रामतापनीये । दो, चार, छ, आठ, दश, बारह, सोलह तथा अठारह हाथ शखादि से युक्त कहे गये हैं । सहस्र भुजाएँ भी मानी गई है । इसी भाँति वर्ण और वाहन की कल्पना है । श्यामस्वरूप स्वभाव से ही सोहावन, मङ्गलमय तथा अतिपावन-पावन है, अरुण वारिज नयन, प्रणत भय मोचन है, यथा

स्याम सरूप सुभाय सोहावन । मगलमय अति पावन पावन[2] ।।
भुजप्रलब कजारुनलोचन । स्यामलगात प्रनत भय मोचन ।।

इस रूप और रामरूप मे एकदम अभेद है । इसलिए ग्रन्थकार हृदय मे बसाना चाहते हैं । 'शषो स ' प्रा प्र २४३ से शकार का सकार आदेश हुआ । श्याम शब्द का रूप स्याम हो गया ।

सो कुद इदु सम देह उमारमन करुनाअयन ।
जाहि दीनपर नेह करौ कृपा मर्दन मयन ।।४।।

अर्थ कुन्द और चन्द्र के समान शरीरवाले, उमा के पति, करुणा के घर जिनकी दीनजनो पर प्रीति रहती है, सो काम के मर्दन करनेवाले कृपा करो ।

व्याख्या यह अर्धनारीश्वर[3] शिवजी की वन्दना है, इसलिए कुद इदु सम देह कहा । कुद की भाँति उज्ज्वल, मृदु और सुगन्धित उमा की देह और इन्दु की भाँति उज्ज्वल और अमृतस्रावी शङ्कर भगवान् की देह है । करुणा के तो मानो घर ही है, दीनजन को हाथ जोडे देख नही सकते । यथा औढरदानि द्रवत पुनि थोरे । सकत न देखि दीन कर जोरे । मदन के मर्दन करनेवाले हैं । इनकी कृपा होने से काम की बाधा न होगी । जगदम्बिका भी करुणाअयन तथा मर्दनमयन है, यथा

---

१ 'एतन्नानावताराणा निधान बीजमव्ययम् । भागवत । यह ही नाना अवतारो का निधान अव्यय बीज हैं ।

२ स्याम सरीर सुभायँ सुहावन । सोभा कोटि मनोज लजावन । यह पाठ भी मिलता है । इसके अनुरूप अर्थ कर लेना चाहिए ।

३ अजा अनादि शक्ति अविनाशिनि । सदा सभु अरधग निवासिनि ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



करुणातरंगिनी कृपातरंगमालिके क० रामा० ।

हमरे जान सदाशिव योगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी ॥
जौं मैं शिव सेएउ अस जानी। प्रीति समेत करम मन बानी ॥
तौ हमार पन सुनहु मुनीसा। करिहैं सत्य कृपा निधि ईसा ॥

इस भाँति गौरीत्रिपुरारि की वन्दना हुई। पञ्चदेव की वन्दना करके गुरुदेव को वन्दना करते हैं

सो वंदौ गुरपद कंज, कृपासिंधु नररूप हर।
महामोह तमपुंज, जासु वचन रविकरनिकर ॥५॥

अर्थ मैं गुरु जी के चरण कमलो की वन्दना करता हूँ, जो कृपा समुद्र और नर रूप मे हर हैं। महा मोहरूपी अन्धकार के समूह के लिए जिनके वचन सूर्य की किरणों के समान है।

व्याख्या इस सोरठा मे 'वन्दौ' स्पष्ट कहा, अत उस पुरइन का यह सोरठा कमल नहीं है। यहाँ पुरइन सन्निष्ट है 'वन्दौ गुरुपदपदुम परागा'। बहुत लोग यहाँ 'हरि' पाठ मानते है, हरि और हर मे कोई भेद नहीं है। कहा है 'उभयो प्रकृति एका प्रत्ययभेदात्पृथग्वत् भाति। कलयति कश्चिन्मूढो हरिहरभेद विना शास्त्रम्' दोनो की प्रकृति एक है। प्रत्यय भेद से अलग की भाति मालूम होते है। कोई मूढ ही हरिहर मे भेद विनाशास्त्र की सम्मति के मानता है। अथवा हरिहर भेदरूपी विनाश के अस्त्र को स्वीकार करता है। यहा वृत्तान्त के ध्यान से तथा प्रसङ्गार्थ के विचार से 'हर' पाठ माना गया है। गुरुजी नररूप मे साक्षात् कृपासिन्धु हर है। यथा वन्दे बोधमय नित्य गुरु शङ्कररूपिणम्। शकर भगवान् ने स्वय कहा है 'सुनु गिरिराजकुमारि भ्रमतम रविकर वचन मम' यहाँ भी ठीक वही बात कह रहे हैं 'महामोह तमपुंज जासु वचन रविकर निकर'। इस विशेषण से गुरु शब्द का अर्थ भी कह दिया। यथा गुकारस्त्वन्धकारस्तु रकारस्तु निरोधक। 'गु' शब्द का अर्थ है अन्धकार और 'र' उसका रोकनेवाला है।

यहाँ गुरु के लिए गुर शब्द आया है। यह अशुद्ध नही है। 'अन्मुकुटादिषु' प्राकृत प्रकाश का एक सूत्र है। इससे उकार का अकार हो गया।

वंदौ गुर पद पदुम परागा। सुरुचि सुवास सरस अनुरागा ॥
अमिअ मूरिमय चूरनु चारू। समन सकल भव रुज परिवारू ॥१॥

अर्थ गुरु चरण कमल की धूलि की वन्दना करता हूँ, जो स्वाद से सुन्दर, गन्ध मे सुन्दर और अनुराग से सरस है। अमृतमय जडी सञ्जीवनी बूटी का सुन्दर चूर्ण है, ससार के रोगो के परिवार को दूर करनेवाला है।

व्याख्या पराग पुष्प की धूलि मे तीन गुण होते है। १ सुरुचि २ सुवास और ३ सरसता। रुचि स्वाद को कहते है। यथा सुचि सुरसरि रुचि निदरि सुधाहू। और बास गन्ध को कहते है। मकरन्द के कारण पराग मे स्वाद, गन्ध और रस का प्रवेश होता है। चरण कमल की मकरन्द अनुराग है। यथा पदकमल

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना। इसी कारण गुरुपदरज मे सुरुचि सुवास और सरसता है।

अमिअ मूरि : अमृतमय बूटी : कहकर 'स्वाद' कहा। अमिअ मूरि चूर्ण से शारीरिक रोग के परिवार का नाश होता है और इस परागरूपी चूर्ण से भवरोग · मानस रोग · के परिवार का नाश कहते हैं। यह श्रीरामचरितमानस मानस चिकित्सा का अपूर्व ग्रन्थ है। यथा · भवभेषज रघुनाथ जस। इसलिए पहिले चूर्ण का ही निरूपण किया। निदान प्रकरण उत्तरकाण्ड मे है। यथा · 'मोह सकल व्याधिन कर मूला। तेहि ते पुनि उपजै बहु मूला।' से लेकर 'एक व्याधि वस नर मरहिं ए असाधि बहु व्याधि। पीडहिं सतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि।' तक। समाधि अवस्था ही स्वस्थावस्था है। इस अमिअ मूरिमय चूर्णरूपी गुरुपद पद्मपराग के सेवन से स्वास्थ्य लाभ होता है। मानसरोग की शान्ति के लिए औषधि भी मानसिक ही होनी चाहिए। अतः यह पराग भी मानसिक ही है। इससे सम्पूर्ण भवरोग नष्ट होते हैं।

यह चौपाई छन्द है, इसी को पुरइन कहा है, छन्द, सोरठा, दोहा इसीके कमल हैं। इस चौपाई छन्द के प्रत्येक चरण मे सोलह मात्राएँ होती हैं और अन्त मे जगण ।ऽ। या तगण ऽऽ। नही आते। जैसे 'वंदौ गुरुपद पदुम परागा' मे ऽऽ।।।।।।।।ऽऽ सोलह मात्राएँ आईं। यहाँ चूर्ण के लिए 'चूरनु' शब्द आया है। विप्रकर्ष प्रा० प्र० ३ ५९ इस सूत्र से चूर्ण का चूरन रूप हुआ। 'उच्च स्वमो' इस सूत्र से प्रथमा और द्वितीया के एकवचन मे अन्त्य अकार को 'उ' आदेश होता है। सो चूर्ण का चूरनु हो गया। 'इदृष्यादिषु' प्रा० प्र० १ २८ तथा 'क ग च ज त द प य वा प्रायो लोप.' प्रा० प्र० २ २ इन सूत्रों से अमृत का अमिअ रूप हुआ।

सुकृत संभुतन विमल विभूती। मंजुल मगल मोद प्रसूती॥
जन मन मजु मुकुर मल हरनी। किये तिलकु गुनगन बस करनी॥२॥

अर्थ : यह पुण्यरूपी शम्भु के शरीर के लिए निर्मल विभूति है और सुन्दर मङ्गल मोद की जननी है, जन के मन रूपी सुन्दर दर्पण के मल को हरण करनेवाली है और तिलक करने से गुणगण को वश करती है।

व्याख्या . सुकृत : पुण्य : को ईप्सित फलदाता होने से शम्भु कहा। यथा : वदि पितर सुर सुकृत सभारे। जो कुछ पुन्य प्रभाव हमारे। तौ सिव धनुप मृनाल की नाईं। तोरहुँ राम गनेस गोसाईं। शम्भु का शृङ्गार विभूति है। यथा : सिवहिं सभुगन करहिं सिगारा। जटा मुकुट अहि मौर सवारा। कुंडल कंकन पहिरे ब्याला। तन विभूति पट केहरिछाला। इसी भाँति विना गुरुपदधूलि के सुकृत का शृङ्गार नही होता। या यो कहिए कि विना विभूतिलेप के शङ्कर नही तथा विना गुरुचरण रजलेप के सुकृत ही नही। विभूति से मङ्गल सुगन्धि निकलती है। यहाँ मोद शब्द श्लिष्ट है। इसका अर्थ आनन्द भी है, सुगन्ध भी है। भाव यह है कि गुरुपदरज से जब सुकृत शृगारित होता है, तो सुगन्ध की भाँति चतुर्वर्ग का आनन्द दूर तक फैलता है। इस भाँति 'सुवास' कहकर अब 'सरस' कहेगे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


प्राचीन काल मे जब शीशे का प्रचार नही था तब लोहे का दर्पण बनता था। उसे ऐसा माँज देते थे कि उसमे मुँह दिखलाई पडता था। उसमें मुर्चा न लग जाय इसलिए सरस भस्म से उसे माँजा जाता था। यहाँ भक्त का मन सुन्दर दर्पण है। उसे अनुराग से सरस गुरुपदरज द्वारा निर्मल बनाया जाता है। सो मन मुकुर के निर्मल बनाने के लिए, गुरुचरण का सरस रज ही साधन है। वस्तु के रूप का दर्शन तो केवल नेत्रो से और उजेले मे हो जाता है पर आत्मदर्शन के लिए निर्मल मुकुर की भी आवश्यक्ता पडती है। यथा मुकुर मलिन अरु नैन विहीना। रामरूप देखहिं किमि दीना। अत आत्माराम के दर्शन के लिए श्री ग्रन्थकार मन मुकुर को निर्मल कर रहे हैं।

इस सरस रज मे और भी गुण है। यह केवल दोषापनयन ही नही गुणाधान भी करता है। तान्त्रिक लोग वशीकरण तिलक बनाते हैं, जिसे लगाने से देखनेवाले मोहित हो जाते है, इसी भाँति इस सरस रज का तिलक लगाने से गुणगण वश मे आजाते है अथवा जिस भाँति राजतिलक होने से सेना तथा प्रजागण वश हो जाते हैं। यथा : जे गुरु चरन रेनु सिर धरही। ते जनु सकल विभव वस करही। भाव यह कि सच्चे गुरुभक्त के लिए अन्य किसी साधन की अपेक्षा नही है। गुरुभक्ति से ही सब कुछ हो जाता है। गुरुभक्ति से अब नेत्र चिकित्सा भी कहते हैं।

श्रीगुरपद नख मनिगन जोती। सुमिरत दिव्य दृष्टि हिय होती।
दलन मोह तम सो सुप्रकासू। बड़े भाग उर आवइ जासू ॥३॥

अर्थ श्रीगुरु के चरणनखरूपी मणिगण की ज्योति के स्मरण से हृदय मे दिव्य दृष्टि उत्पन्न होती है। वह सुन्दर प्रकाश ज्योति : बडे भाग्य से जिसके हृदय मे आवे, उसके मोहान्धकार का नाश करनेवाला होता है।

व्याख्या श्रीगुरुपदरज से मन मुकुर निर्मल हुआ, अब दर्शन के लिए नेत्र और प्रकाश की आवश्यक्ता है। गुरभक्ति से यह आवश्यक्ता भी पूर्ण हो जायेगी। श्रीगुरु के पदनख ही मणिगण है। उनकी ज्योति अर्थात् ठण्ढी रोशनी. के स्मरण से हृदय मे दिव्य दृष्टि होती है। मणिगण की ज्योति के देखने से नेत्र मे ठण्ढक आती है और दृष्टि को लाभ पहुँचाता है, पर गुरुचरण नखरूपी मणिगण ऐसे हैं कि इनके स्मरण से दिव्य दृष्टि उत्पन्न होती है और मोहान्धकार का भी नाश हो जाता है। ठण्ढी रोशनी होने से ही सु-प्रकाश कहा, हृदय की दृष्टि होने से दिव्य दृष्टि कहा, उपाय की सरलता दिखाने के लिए 'सुमिरत' कहा। सूर्य, चन्द्र का प्रकाश तो अभागे को भी सुलभ है, पर मणिगण का प्रकाश तो किसी बडे भाग्यवान् को ही प्राप्त

१ 'ऋतम्भरा तत्र प्रज्ञा' यो० सू-१-४८। ऋत सत्य बिभर्ति कदाचिदपि न विपर्ययेणाच्छाद्यते सर्तंभरा प्रज्ञा। तस्मिन् सति भवति इत्यर्थ। तस्माच्च प्रज्ञालोकात् सर्वं यथावत्पश्यन्योगी प्रकृष्ट योग प्राप्नोति। ऋत भरा प्रज्ञा मे सत्य ज्ञान होना है विपर्यय मे कभी नही ढकता। यह गुरु चरणो मे समाधि होने पर होती है। उस प्रज्ञालोक दिव्य दृष्टि से सब कुछ ठीक ठीक देखना हुआ प्रकृष्ट योगी हो जाता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



होता है। इसी भाँति गुरु चरणनख का प्रकाश सबके हृदय मे नही आता, किसी भाग्यवान् के हृदय मे आता है। अर्थात् श्रीगुरुपदनख मणिगण का स्मरण अभागा नही कर सकता, किसी भाग्यवान् को ही उनके स्मरण-ध्यान की वृद्धि मन मे आती है। दृष्टि होने पर भी यदि आँख न खुले तो दिखाई न पडे, इसलिए कहते हैं

उघरहि विमल बिलोचन हीके। मिटहि दोष दुख भव रजनी के॥
सूझहि रामचरित मनिमानिक। गुपुत प्रगट जहँ जो जेहि खानिक॥४॥

अर्थ हृदय के निर्मल नेत्र खुल जाते हैं और ससाररूपिणी रात्रि के दोष और दुख मिट जाते हैं। रामचरित्ररूपी मणिमाणिक्य, गुप्त और प्रकट जहाँ और जिस खानि के है, दिखलाई पडने लगते हैं।

व्याख्या सभी के हृदय म आँखे होती हैं, पर वे बन्द रहती हैं, बिना गुरु कृपा खुलती नही। 'श्रीगुर पदनख मनिगन जोती' जिस भाग्यवान् के हृदय मे आती है उसीकी आँखे खुल जाती है। और रात्रि के दोष दुख भी मिट जाते हैं। भाव यह कि रात्रि नही जाती, वह तो बिना ज्ञानरवि के उदय हुए नही जा सकती। यथा जासु ज्ञानरवि भवनिसि नासा। पर उससे जो दोष हैं और उन दोषो के कारण जो दुख है, वह मिट जाता है। रात्रि मे रज्जु म सर्प का भ्रम होता है, यह रात्रि का दोष है और उस भ्रम से भय उत्पन्न होता है, लोग गिर पडते है, चोट खा जाते है, यह दुख है, सो गुरुपदनख मणिगण ज्योति के आजाने से दोनो मिट जाते हैं।

तब रामचरित्र मणिमाणिक्य सूझने लगते हैं। मणिमाणिक्य भी पहिले से ही हैं। मणि सर्पादि के शिर म है, माणिक्य पर्वत म है, दिखाई नही पडते। इसी भाँति रामचरित्र आचार्यो के पास है, वेद पुराणो म है, आवरण शक्ति से घिरे हुए है, दिव्य दृष्टि की अव्याहत गति होती है, हृदय की आँख जब खुले तब दिखाई पडे। रामचरित्र म कुछ चरित्र तो प्रकट हैं, कुछ गुप्त है। यथा 'सोइ लरिकाई मो सन करन लगे पुनि राम' यह प्रकट चरित है और 'तेहि कौतुक कर मरम न काहू। जाना अनुज न मातु पिताहू' यह गुप्त चरित है। उसे दिव्य दृष्टिवाले को सब दिखाई पडने लगते हैं। अत ऐसी शङ्का न करनी चाहिए कि जिस मरम को अनुज और मातु पिता ने न जाना उसे तुलसीदास ने कैसे जाना ? ग्रन्थकार का स्पष्ट उत्तर है कि गुरु के प्रसाद से जाना।

मणिमाणिक्य की खान होती है। सामान्य मनुष्य को तो काँच और मणि पहिचानना कठिन हो जाता है पर यह मणि या माणिक्य किस खानि का है ? यह सर्पमणि है, या सूकरमणि है ? यह पन्ना के खानि का हीरा है या दूसरे खानि का ? इन सबकी पहिचान तो जौहरी की ही आँखें कर सकती हैं। श्रीगुरुपद नखमणिज्योति से इसको भी पहिचान हो जाती है। यथा पावन पर्वत वेद पुराना। राम कथा रुचिराकर नाना। मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ज्ञान विराग नयन उरगारी। श्रीरामचरित मानस म भी चार खानि की कथाएँ चार घाट मे कही गई हैं। श्रीगुरुकृपा से ही उनकी पहिचान होती है, पर इसके लिए नेत्र के सस्कार की भी आवश्यकता पडती है। अत कहते है

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


दो॰ जथा सुअंजन अंजि दृग, साधक सिद्ध सुजान।
कौतुक देखहिं सैल बन, भूतल भूरि निधान ॥१॥

अर्थ—जिस प्रकार साधक और सुजान सिद्ध, उत्तम अञ्जन को नेत्रों में आँज कर पर्वत, वन और भूमि में बड़े बड़े खजानों का तमाशा देखते हैं।

व्याख्या—गुरुभक्ति से दिव्य दृष्टि मिली, मोहान्धकार दूर हुआ, हृदय की आँखें खुली, भव रजनी के दोष दुःख मिटे, गुप्त प्रकट रामचरित्र मणिमाणिक्य भी सूझने लगे। उनका हाल मालूम होने लगा। परन्तु उन चरित्रों के साक्षात्कार के लिए संस्कार विशेष की आवश्यकता पड़ती है। तान्त्रिक लोग सिद्धाञ्जन बनाते हैं, जिसके लगाने से व्यवधान दूर हो जाता है। निधानों का साक्षात् दर्शन होता है। सिद्धाञ्जन की आवश्यकता सिद्ध साधक दोनों को रहती है। इसी भाँति गुरु पद रज की भी दोनों को आवश्यकता है, इसके बिना रामचरित का साक्षात्कार नहीं हो सकता। जिस भाँति निधान शैल, वन और भूतल में रहता है उसी भाँति रामचरित भी शैल, वन या भूतल से सम्बद्ध है। शैल, यथा—पावन पर्वत वेद पुराना। राम कथा रुचिराकर नाना। वन, यथा—सीतारामगुणग्रामपुण्यारण्यविहारिणौ। वन्दे विशुद्धविज्ञानौ कवीश्वरकपीश्वरौ। भूतल, यथा—अति अपार जे सरित वर जौं नृप सेतु कराहिं। चढ़ि पीपीलिकउ परम लघु बिनु श्रम पारहिं जाहिं। मुनिन प्रथम हरि कीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई। अथवा, धन्य भूमि बन पथ पहारा। जहँ जहँ नाथ पाँव तुम धारा। शैल का चरित्र शैल का निधान है, वन का चरित्र वन का निधान है और भूतल का चरित्र भूतल का निधान है। भूतल पर बहुत चरित्र किया इसलिए 'भूतल भूरि निधान' कहा। यह शङ्का कोई न करे कि रामचरित्र तो भूतकाल का विषय है, उसका साक्षात्कार इस समय कैसे हो सकता है? योगियों[1] के लिए अतीत और अनागत सभी वर्तमान हैं। श्रीवाल्मीकि[2] जी ने समाधि में सब लीलाएँ स्वयं देखी।

यह दोहा छन्द है। इसके प्रत्येक दल में २४ मात्राएँ होती हैं। यह सोरठा का उलटा है। प्रथम और तृतीय चरणों में १३ मात्राएँ होती हैं, उनके आदि में जगण ।ऽ। न होना चाहिए, नहीं तो वह सुन्दर नहीं रह जाता, उसकी चाण्डालिनी संज्ञा हो जाती है। दूसरे और चौथे चरण में ११ मात्राएँ रहती हैं यह दोहा छन्द का अति संक्षेप वर्णन है।

गुर पद रज मृदु मंजुल अंजन। नयन अमिअ दृग दोष बिभंजन॥
तेहि करि बिमल बिबेक बिलोचन। बरनउँ रामचरित भव मोचन॥१॥

---

१ अतीतानागतं स्वरूपतोऽस्त्यध्वभेदाद् धर्माणाम्। या॰ सू॰ ४ १२। भूत और भविष्य स्वरूप से वर्तमान हैं, धर्मों के अध्व रास्ते के भेद से।

२ ततः पश्यति धर्मात्मा तत्सर्वं योगमास्थितः। पुरा यत्तत्रनिर्वृत्तं पाणावामलकं यथा। जो जो पहिले हुआ था वह सब उस धर्मात्मा ने समाधि में स्थित होकर इस तरह देखा, जैसे हाथ में लिया हुआ आँवला।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ गुरु के चरण की धूलि मृदु और सुन्दर अञ्जन है, आँखो के लिए अमृत और दृष्टि के दोषो को दूर करनेवाली है। उसी से विवेकरूपी नेत्रो को निर्मल करके, मै ससार छुडानेवाले रामचरित का वर्णन करता हूँ।

व्याख्या प्रायेण अञ्जन सुन्दर नही होता और आँखो मे लगता है, पर गुरुपदरजरूपी अञ्जन सुन्दर भी है और आँखो म लगता नही, आँखो के लिए अमृत है, ठढक पहुँचाता है, दृष्टि को सदा स्थिर रखता है, घटने नही देता। यदि दृष्टि म दोष हो तो उसे भी दूर करता है। दोषापनयन भी करता है, गुणाधान भी करता है।

जिसे हृदय की आँख कहा गया है, वह विवेक है। इस अञ्जन से विवेक रूपी नयन निर्मल होता है, अत इसे लगाकर रामचरित का वर्णन करता हूँ। क्योकि रामचरित भवमोचन है, ससार से छुडानेवाला है, इसे बहुत सँभालकर वर्णन करना चाहिए, थोडा सा भी अविवेक रह जाने से वर्णन करने मे अर्थ का अनर्थ हो जायगा। यह अधिक अभेद रूपक है।

## समष्टि वन्दना

बदौ प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित ससय सब हरना ॥
सुजन समाज सकल गुनखानी। करौ प्रनाम सप्रेम सुबानी ॥२॥

अर्थ पहिले ब्राह्मण के चरणो की वन्दना करता हूँ, जो मोह से उत्पन्न सब सशयो के हरण करनेवाले है। सज्जनो का समाज सब गुणो की खान है, मै प्रेम सहित, सुन्दर वाणी म उसको प्रणाम करता हूँ।

व्याख्या सुर वन्दना के पश्चात् प्रथम महीसुर की वन्दना करते है। गुरु ब्रह्मा गुरुर्विष्णुर्गुरुर्देवो महेश्वर। इसलिए गुरु की गणना देवताओ मे है। गुरु के साथ ही ब्राह्मण की भी वन्दना होनी चाहिए। क्योकि 'कवच अभेद विप्रगुरु पूजा' सो कवच म भेद करना उचित नही। मनुष्य कोटि म प्रथम महीसुर की वन्दना करते है ऐसे ही भ्रातृवर्ग म प्रथम भरतलाल की वन्दना करगे। यथा बदौं प्रथम भरत के चरना। ब्राह्मण, रामभक्ति के प्रथम साधन है, इस भाँति भी प्रथम वन्दना करना प्राप्त है। यथा प्रथमहि विप्रचरन अति प्रीती।

यहाँ यह सशय न करना चाहिए कि 'महीसुर चरण' के साथ कमल का प्रयोग क्या नही किया? क्योकि अन्यत्र कमल का प्रयोग है। यथा विप्रचरन पकज अति प्रेमा। यहा न करने का कारण यह है कि प्रथम वन्दना से चरण की प्रधानता द्योतित हो चुकी और विशेषण के साथ कमल की सार्थकता भी नही है। विशेषण है 'मोह जनित ससय सब हरना' मोह हटने पर भी छाया रूप से कुछ सशय रह जाता है। यथा अजहूँ कछु ससय मन मोरे। सो समग्रसशय का हरण करना ब्राह्मणो का काम है। श्रुतिभगवती कहती है कि विद्या ब्राह्मणो के पास[1] गई और कहा कि मेरी रक्षा करो मै तुमलोगो की निधि हूँ। अत ब्राह्मण अपनी

१ विद्या ह वै ब्राह्मणमाजगाम गोपाय मा शेवधिष्टेऽहमस्मि।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विद्या द्वारा नि शेष सशय का हरण करगे। अब समष्टि की वन्दना करते हैं। इस लोक मे दो प्रकार की सृष्टि है, एक दैवी और दूसरी आसुरी। दैवी सृष्टि सज्जनो की ह और आसुरी सृष्टि खलो की है। सो पहिले सज्जन समाज की वन्दना करते हैं यही समाज सब गुणा की खान है। यथा सुनु मुनि साधुन के गुन जेते। कहि न सकहि सारद श्रुति तेते। यही से गुणसमूह निकलकर ससार मे फैले हुए हैं, जैसे ससार मे जितनी धातुएँ हैं, वे सब खान से ही आई हुई हैं। यथा मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेही जतन जहाँ जेहि पाई। सो जानव सतसग प्रभाऊ। लोकहुँ वेद न आन उपाऊ। अत इस समाज को श्री ग्रन्थकार सप्रेम मनसा सुवाणी। वाचा प्रणाम करते हैं कर्मणा।

साधु चरित सुभचरित कपासू। निरस विसद गुनमय फल जासू॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। वदनीय जेहि जग जस पावा॥३॥

अर्थ सज्जनो का शुभ चरित कपास के चरित के समान है, जिसका फल नीरस, उज्ज्वल और गुणमय होता है, जो दु ख सहकर दूसरे के दोषो को ढकता है और जो वन्दनीय है, जिससे ससार को यश मिला है।

व्याख्या कपास का फल नीरस होता है, उज्ज्वल होता है और उसमे महीन महीन रेशा को छोडकर और कुछ होता नही। मूल पाठ म 'गुण' शब्द श्लिष्ट दिया हुआ है उसका अर्थ रेशा भी होता है। साधुचरित के पक्ष म उसका अर्थ गुण होगा और कपासचरित के पक्ष म उसका अर्थ रेशा अशु लना होगा। साधु-चरित का फल तात्पर्य भी नीरस विषय रस रूखा उज्ज्वल और गुण मय होता है, उसम सिवा गुण के और कुछ होता ही नही। इसी से कपास से उपमित किया।

इसी भाँति छिद्र शब्द भी श्लिष्ट है। छिद्र का अर्थ छेद भी है और दोष भी है। कपास पक्ष म उसका अर्थ इन्द्रिया का छिद्र होगा और साधु पक्ष मे 'दोष' अर्थ होगा। भावार्थ यह कि कपास से रूई निकाली जाती है उसे ओटा जाता है, धुना जाता है। उसका सूत बनाकर कपडा बुना जाता है, जिससे प्राणियो के छिद्र ढके जाते हैं। इसी भाँति साधु नाना यातनाएँ सहकर भी दूसरे के दोषो पर परदा डालते हैं। यही उपमा और उपमेय म समान धर्म हैं। अत वन्दनीय है, इनके कारण मिथ्या ससार ने यश पाया। 'ससार' का अर्थ यह हुआ कि 'सम्यक् रूप से सार है जिसम'। यथा प्रमुदित हृदय सराहत भलभवसागर। जहँ उपजहि अस मानिक विधिवड नागर। जानकी मङ्गल

मुद मगल मय सत समाजू। जो जग जगम तीरथ राजू॥
राम भगति जहँ सुरसरि धारा। सरसइ[1] ब्रह्म विचार प्रचारा॥४॥

१ कगचजतदपयवा प्रायो लोप प्रा प्र २ २ और सर्वत्र लवराम् प्रा प्र ३ ३ इन दोना सूत्रो से सरस्वती के 'व और 'त का लोप हुआ और सरस्वती का सरसइ रूप सिद्ध हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ सन्तो का समाज आनन्द मङ्गलमय है, जो संसार मे चलता-फिरता तीर्थराज प्रयाग है। जहाँ राम भक्ति गङ्गा की धारा है और ब्रह्म विचार का प्रचार सरस्वती है।

व्याख्या सज्जन, साधु और सन्त समानार्थक शब्द है। कुछ महात्मा लोग इन शब्दो के अर्थों मे कुछ बारीक सूक्ष्म भेद निकालते है, पर यहाँ उनका समानार्थक रूप मे ही व्यवहार हुआ है। मुद मन के हर्ष को कहते है और मङ्गल उसी का बाहरी रूप है। सो सन्तसमाज मे सदा मुद मङ्गल बना रहता है। शोक मोह का वहाँ काम नही। राम अवनि थल तीन बडेरे। ते किये साधु समाज धनेरे। तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि। साधु समाज ही तीर्थ को तीर्थ बनाता है, इसलिए उसे चलता फिरता जगम तीर्थराज कहा।

रामभक्ति को गङ्गा की धारा कहकर भक्ति की प्रधानता कही। मेल तो यमुना और सरस्वती का भी हुआ, पर सब मिलकर गगा ही हो गई। और ब्रह्म विचार की भाँति सरस्वती गुप्त है, अत ब्रह्म विचार प्रचार की उपमा सरस्वती से दी।

विधि निषेधमय कलिमल हरनी। करम कथा रवि नदिनि बरनी ॥
हरिहर[1] कथा बिराजति बेनी। सुनत सकल मुद मगल देनी ॥५॥

अर्थ करने योग्य विधि और न करने योग्य निषेध कर्मो की कथा, जो कलिमल की हरण करनेवाली है, उसे यमुना सूर्यपुत्री रूप मे वर्णन किया गया है। हरि विष्णु और हर शिव की कथा वेणी रूप से शोभित है, जो सुनते ही आनन्द मङ्गल की देनेवाली है।

व्याख्या विधि, निषेध मे ही समस्त कर्मकाण्ड का पर्यवसान है। इसी से मनुष्य की शास्त्रीया प्रवृत्ति हो जाती है, स्वाभाविकी प्रवृत्ति रुक जाती है। कलिमल हरणी कहने का यही कारण है। सूर्य से ही सब कर्मो का आरम्भ होता है। उनकी पुत्री यमुनाजी है अत उन्हे कर्मकथा से उपमित किया। प्रयागराज मे तीनो पृथक पृथक् भी है फिर मिली भी है, इसी भाति सन्तसमाज म तीनो काण्ड ज्ञान, कर्म और भक्ति पृथक् पृथक् भी शोभित है और मिलकर भी शोभित होत है।

तीनो नदिया मिलकर त्रिवेणी होती है। हरिहरकथा म कर्म, उपासना, ज्ञान तीनो चलते है, अत हरिहर कथा को 'वेणी' कहा। गङ्गा श्वेत और यमुना श्यामा है दोनो की मिलकर सौभाग्यवती स्त्री क काले केश मोतियो की लर से युक्त की सी शोभा हुई। सूत म मोती पिरोए हुए है यह नही दिखलाई पडता, इसी भाति सरस्वती गुप्त है। वेणी मुद मङ्गल देता है इसी भाँति हरिहर कथा भी श्रवण मात्र से मुद मङ्गल देनी है।

बट बिस्वासु अचल निज धरमा। तीरथ राज समाज सुकरमा ॥
सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा ॥६॥

अर्थ अपने धर्म मे अचल विश्वास ही अक्षयवट है और सुकर्म तीर्थराज

---

[1] यहाँ अधिक तद्रूप रूपक है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


का समाज है। यह सब दिन सब देशों में सबको सुलभ है, आदर सहित सेवन करने से दुःखों का नाश करनेवाला है।

व्याख्या जिस भाँति प्रयागराज में अक्षयवट है, उसी भाँति जङ्गम प्रयागराज में अचल स्वधर्म विश्वास है। जिस भाँति दिव्य अक्षयवट का नाश प्रलय में नहीं होता, उसी भाँति प्रलय उपस्थित होने पर भी स्वधर्म से साधु समाज का विश्वास नहीं उठता। जिस भाँति वट पत्र पर बाल मुकुन्द का निवास है, उसी भाँति स्वधर्म में भगवान् का निवास है। उस प्रयागराज का बड़ा समाज है। त्रिवेणी माधव सोम भारद्वाजञ्च वासुकीम्। वन्देऽक्षयवटं शेष प्रयागं तीर्थनायकम्। माधव, सोमेश्वर, महादेव और शेष प्रधान देव हैं तथा भारद्वाज, वासुकी आदि गौण देव हैं। इसी भाँति जङ्गम प्रयाग के समाज में प्रधान कर्म और गौण कर्म दोनों हैं।

तीर्थराज तो केवल अधिकारियों[1] को सुलभ हैं, फिर सब दिन सुलभ भी नहीं हैं, जब संयोग हो तब यात्रा होवे, पर जङ्गम तीर्थराज तो सबको सुलभ हैं और सब दिन सुलभ हैं। वह प्रयागराज देश परित्याग नहीं कर सकते, केवल अपने प्रान्त में सुलभ हैं। यथा जिमि सिंघल वासिन्ह भयउ विधि बस सुलभ प्रयाग। पर यह तो जङ्गम होने के कारण सब देशों में आते जाते रहते हैं। जङ्गम तीर्थराज का यदि आदर के साथ सेवन किया जाय तो सद्य क्लेशों का हरण करते हैं।

अकथ अलौकिक तीरथ राऊ। देइ सद्य फल प्रकट प्रभाऊ ॥७॥

अर्थ यह तीर्थराज अकथनीय और अलौकिक है, तत्काल फल देता है। इसका प्रभाव प्रकट है।

व्याख्या उस तीर्थराज का माहात्म्य शेषजी ने कहा है, जिसे प्रयाग-माहात्म्य कहते हैं, पर इसका माहात्म्य तो वे भी नहीं कह सकते। यथा कहि सक न सारद शेष नारद सुनत पदपंकज गहे। अस दीनबन्धु कृपालु अपने भगत गुन निजमुख कहे। यह तीर्थराज अलौकिक है, क्योंकि इसका प्रभाव प्रकट है, तत्काल फल देता है, वह प्रयागराज तो मरने के बाद फल देता है। यथा काशी विधि बसि तनु तजे हठि तनु तजे प्रयाग।

दो० सुनि समुझहि जन मुदित मन, मज्जहिं अति अनुराग।
लहहिं चारिफल अछत तनु, साधु समाज प्रयाग ॥२॥

अर्थ जो मनुष्य प्रसन्न चित्त से सुनकर समझते हैं, वे ही अति अनुराग से मानो मज्जन करते हैं और उन्हीं को इसी शरीर से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों फलों की प्राप्ति होती है।

व्याख्या इस जङ्गम तीर्थराज में प्रसन्न चित्त होकर सुनना और समझना ही आदर पूर्वक मज्जन करना है। इसी से अविवेक का नाश होता है और अविवेक ही आपत्तियों का घर है। अविवेक . परमापदां पदं, 'चारि पदारथ भरा भंडारू'

---

१ जिनके दोउ कर दोउ चरण मनहु सुधारा होय। विद्या तप अरु इन्द्रियहु तेहि तीर्थ फल होय। प्र० च

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भण्डार तो भरा हुआ है, पर जीते जी नही मिलेगा, मिलता है मरने के बाद, सो यहाँ तो चार फल की प्राप्ति शरीर रहते ही हो जाती है।

मज्जन फलु पेखिअ ततकाला। काक होहिं पिक बकउ मराला॥
सुनि आचरज करै जनि कोई। सतसंगति महिमा नहिं गोई॥१॥

अर्थ : स्नान करने का फल तत्काल देखने मे आता है कि कौवा तो कोयल, और बगले हस हो जाते है। यह सुनकर कोई आश्चर्य न करे। सत्सङ्गति की महिमा छिपी नही है।

व्याख्या : 'मुद मगलमय संत समाजू' कहा था, सो 'सुनि समुझहिं जन मुदित मन मज्जहिं अति अनुराग' इस दोहे तक मुदमय कहा, अब मङ्गलमय कहते हैं। काक और बक अमङ्गल है, सो क्रमश पिक और हस होकर मङ्गलमय हो जाते है। काक की वाणी करकस होती है और पिक की वाणी मधुर होती है, रूप दोनो का एक सा होता है। इसी भाँति बक अविवेकी दाम्भिक होता है और हस विवेकी होता है, क्षीर नीर का विवरण करता है, पर रूप दोनो का एक सा होता है। भाव यह कि मज्जन से भीतरी परिवर्तन बडा भारी होता है, बाहर का स्वरूप तो वैसा ही बना रहता है। भुसुण्डिजी काक से पिक हो गये यथा - मधुर वचन बोलेउ तब कागा और बक से हस स्वय ग्रन्थकार हो गये, यथा हस कियो बक ते बलिजाउँ। पहिले कहा था 'देइ सद्य फल प्रकट प्रभाऊ' सो उसी की सार्थकता 'पेखिअ तत्काला' कहकर दिखलाते है। भाव यह कि इतना बडा परिवर्तन होता है और समय नही लगता। यहाँ अनुगुणालङ्कार है।

सद्य कायापलट बडे आश्चर्य की बात है, परन्तु सत्सग के लिए आश्चर्य नही है। आश्चर्य तो उसमे होता है, जो जानी हुई बात नही है और सत्सङ्ग की महिमा तो सब जानते है कि यह सद्य फलद होता है। अब इसी का उदाहरण देते है।

बालमीक नारद घटजोनी। निज निज मुखनि कही निज होनी॥
जलचर थलचर नभचर नाना। जे जड़ चेतन जीव जहाना॥२॥

अर्थ : वाल्मीकि, नारद और अगस्त्यमुनि ने अपना अपना इतिवृत्त, अपने ही मुंह मे कहा। जल मे रहनेवाले, भूमि पर रहनेवाले और आकाश मे विचरने-वाले, जो नाना प्रकार के जड चेतन जीव ससार मे है।

व्याख्या : वाल्मीकि, नारद और अगस्त्य ने अपने मुख से अपनी कथा कही। इसलिए अविश्वास को स्थान नही है। वाल्मीकिजी व्याध की जीविका करते थे और ऐसे अपढ थे कि राम-राम जप करने मे असमर्थ थे। महात्मा को उन्हे मरा मरा का उपदेश देना पडा, सो वेद के समान हो गये। नारद जी ब्राह्मण की एक वृद्धा सेविका के पुत्र थे। उन्हे उसी जन्म मे ध्यान मे भगवद्दर्शन हुआ और दूसरे जन्म मे साक्षात् ब्रह्मदेव के पुत्र हुए। अगस्त्य जी घट से उत्पन्न थे, इनका इतना प्रभाव बढा कि रुष्ट होकर समुद्र का पान कर गये। इनसे ही मन्त्र लाभ कर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



राम जी ने रावण को मारा। सो इन महात्माओं का इतना प्रभाव सत्सङ्ग के माहात्म्य से ही हुआ। वाल्मीकि का कर्म खोटा था अगस्त्य जी का जन्म खोटा था और नारद जी नितान्त असहाय थे। इनकी इतनी महिमा सत्सङ्ग के प्रताप से हुई। अत तीन उदाहरण दिये गये।

भाव यह कि जलचर, थलचर, नभचर के कथन से जीवमात्र का ग्रहण हुआ। उसमे भी केवल चेतन नही, जडजीव का भी कल्याण सत्सङ्ग से हुआ। ऊपर के उदाहरणो से प्रादेश मात्र दिखलाया गया है।

मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई ॥
सो जानब सतसग प्रभाऊ। लोकहुँ वेद न आन उपाऊ ॥३॥

अर्थ उनमे से बुद्धि, कीर्ति, गति, ऐश्वर्य और कल्याण को जब कभी, जिस किसी उपाय से, जहाँ कही, जिस किसी ने पाया है, उसे सत्सङ्ग का ही प्रभाव जानो। लोक मे और वेद मे दूसरा उपाय ही नही है।

व्याख्या मति, कीर्ति, गति, भूति और भलाई कहने से श्रेय और प्रेय दोनो ही आगये। श्रेय मोक्ष का साधन है और प्रेय अभ्युदय का साधन है। अर्थात् श्रेय और प्रेय की प्राप्ति का सिवा सत्सङ्ग के दूसरा उपाय ही नही है। 'जब' से काल, 'जेहि जतन' से उपाय, 'जहाँ' से 'देश' और 'जेहि' से अधिकारी कहा। भावार्थ यह कि सभी देश, सभी काल म, सभी के लिए, सभी उपायो से सत्सग द्वारा ही सिद्धि की प्राप्ति सम्भव है। लोक मे तो सत्सङ्ग प्रसिद्ध ही है अज्ञातार्थज्ञापक शास्त्र भी कोई दूसरा उपाय नही बतलाता।

जलचर, थलचरादि के साथ यथाक्रम मति, कीरति, गति आदि को लगाकर भी कुछ लोग अर्थ करते है। यथा जलचर को मति की प्राप्ति, यथा प्रभुहि बिलोकहि टरहि न टारे। मन हरखित सब भये सुखारे। थलचर को कीर्तिकी प्राप्ति यथा मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी परम प्रीति जे गाइहै। इत्यादि।

नभचर को गति की प्राप्ति यथा अबिरल भगति माँगि बर गीध गयउ हरिधाम।

जडजीव को भूति की प्राप्ति यथा परसि चरन रज अचर सुखारी। भये परमपद के अधिकारी।

चेतन को भलाई की प्राप्ति, यथा ते सब भय परमपद जोगू। भरत दरस मेटेउ भवरोगू।

बिनु सतसग बिवेक न होई। रामकृपा बिनु सुलभ न सोई ॥
सतसगत मुद मगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला ॥४॥

अर्थ बिना सत्सङ्ग के विवेक नही होता और वह बिना हरिकृपा के प्राप्त नही होता। सत्सगति मुद मङ्गल का मूल है, वही फल सिद्धि है और सब साधन फूल है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : विवेक नेत्र है। यथा तेहि करि विमल विवेक विलोचन। विना विवेक का प्राणी अन्धा है। सो विवेक बिना सत्सङ्ग के होता ही नही। यद्यपि सत्सङ्ग सबको सुलभ सब दिन सब देशो मे है, सन्त सन्निकट ही रहते है पहिचान मे नही आते। सदा अपन पौ रहहि दुराये। सब विधि कुसम कुवेष बनाये। राम कृपा हो तो सत्सङ्ग हो सकता है। इस भाँति रामकृपा को साधन और सत्सङ्ग को साध्य कहा। अर्थात् सत्सङ्ग का अमोघ फल है। फल सिद्धि कहने के कारण, मूल शब्द का अर्थ लक्षणा से बीज करना होगा। बीज से अङ्कुर, डार, पात, फूल, फल होता है और फल मे फिर बीज होता है। भावार्थ यह कि बीज भी सत्सङ्ग और फल भी सत्सङ्ग, अन्य साधन डार, पात, फूल हैं। यथा तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला इक अग। तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसग। ऊपर कह भी आये है कि 'मुद मगलमय सत समाजू'। सो इससे उपक्रम करके 'सतसगति मुद मगल मूला' से उपसहार कर रहे है।

सठ सुधरहि सतसंगति पाई। पारस परस कुधातु सोहाई॥
विधि[1] वस सुजन कुसगति परही। फनि मनि सम निज गुन अनुसरही॥५॥

अर्थ · शठ भी सत्सङ्गति पाकर सुधर जाते है, पारस के छू जाने से लोहा सुन्दर धातु हो जाता है। यदि दैवयोग से सज्जन कुसङ्गति मे पड जाते है, तो वे साँप की मणि के समान अपने गुणो का ही अनुसरण करते है।

व्याख्या साधारण पुरुषो का लाभ कहकर शठ का भी लाभ कहते है। शठ कपटी होता है, हठी होता है, किसी की सुनता नही। यथा कपट सार सूची सहस, बाँधि वचन पर वास। करि दुराव चहचातुरी, सो सठ तुलसीदास। सठ सन विनय कुटिल सन प्रीती। शठ लोहा है, पर सन्त पारस हैं, उनके स्पर्श मात्र से लोहा सोना हो जाता है, शठ का कायापलट हो जाता है, वह कुधातु से सुधातु हो जाता है, पर पारस नही हो सकता, क्योकि सन्त पैदा होते है, बनाये नही जाते। यथा पर उपकार वचन मन काया। सत सहज सुभाउ खगराया। भावार्थ यह कि सत्सग के लेश से शठ का व्यवहार ही दूसरा हो जाता है।

सुजन कुसगति चाहते नही, उससे दूर भागते है, पर दैवयोग से कुसङ्ग मे पड जाते है, पर उन पर कुसग का प्रभाव कुछ भी नही पडता। मणि सर्प के सिर मे रहती है, पर उसके अघ अवगुण का ग्रहण नही करती, वह विष हरण करती है और दुःख दरिद्र को दूर करती है। यथा अहि अघ अवगुन नहि मनि गहई। हरइ गरल दुख दारिद दहई।

सत्सग के गुण कथन के बाद शठ के सुसग मे पडने और साधु के कुसग मे पडने की व्यवस्था कही। अब सन्त समाज के सरदार स्वय सन्त की महिमा कहते है। सन्त समाज की महिमा तो कुछ कही, पर स्वय सन्त की महिमा कहने मे ग्रन्थकार अपने को सर्वथा असमर्थ पा रहे हैं। यथा

---

१. यहाँ अवज्ञा अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विधि हरिहर कवि कोविद[1] बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी ॥
सो मोसन कहि जात न कैसे। साक बनिक मनि गुन गन जैसे ॥६॥

अर्थ ब्रह्मा, विष्णु, महादेव, कवि, पण्डित की वाणी साधुओं की महिमा कहने में सकुचाती है, वह मुझसे कैसे नहीं कही जाती, जैसे साग भाँजी बेचनेवाला मणियों के गुणगण नहीं कह सकता।

व्याख्या इतने बड़े लोगों की वाणी जब साधु महिमा कहने में सङ्कुचित होती है, तब ग्रन्थकार कहते हैं कि मेरी क्या गिनती है? स्वयं रामजी कहते हैं, कि 'सुनु मुनि साधुन के गुन जेते। कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते'। नहीं कह सकते, इसलिए कहने में सङ्कोच है। जयन्त ब्रह्मधाम, शिवपुर आदि सभी लोकों में व्याकुल होकर घूमा, पर किसी ने उसे बैठने को नहीं कहा, पिता ने भी नहीं रखा, पर नारद साधु हैं, उनसे नहीं देखा गया। यथा धरि निज रूप गयउ पितु पाहीं। राम बिमुख राखा तेहि नाहीं नारद देखा बिकल जयंता। लागि दया कोमल चित संता। पठवा तुरत राम पहिं ताही। कहेसि पुकारि प्रणत हित पाही। रामविमुख पर भी दया करना सन्त का ही काम है।

साग भाँजीवाला शाक का ही गुण नहीं कह सकता, वह मणिगण के गुणों को क्या जाने, जिसे जानने में बड़े-बड़े जौहरी चक्कर में पड़ जाते हैं, सो ग्रन्थकार कहते हैं कि विधि हरिहर कवि कोविद जौहरी हैं, जब वे सन्त की महिमा नहीं कह सकते तो मैं तो ग्राम्य कवि हूँ, मैं कैसे कह सकता हूँ। यथा बरनै तुलसीदास किमि अति मति मंद गँवार।

दो० बंदौ संत समान चित, हित अनहित नहि कोइ।
अंजलिगत सुभ सुमन जिमि, सम सुगंध कर दोइ ॥३॥

अर्थ मैं सन्त की वन्दना करता हूँ, जिसका चित्त समान है, न कोई उनका मित्र है न शत्रु है, जैसे अञ्जलि में आये हुए अच्छे फूल दोनों हाथों को बराबर सुगन्धित कर देते हैं।

व्याख्या अब सन्त की स्तुति करके वन्दना करते हैं। चेतन जीव में उपमा नहीं मिलती, अतः जड की उपमा देते हैं। ऐसी सम दृष्टि अच्छे फूलों में ही सम्भव है। वह यह नहीं विचारता कि दक्षिण हाथ ने ही उसे तोड़ा है। अतः वह अनुग्रह का पात्र नहीं है और बायें हाथ ने उसे आश्रय प्रदान किया है। अतः विशेषरूप से उस पर अनुग्रह करना चाहिए। वह दोनों पर समान रूप में अनुग्रह करता है। दोनों को सुगन्धित कर देता है। इसी भाँति सन्त अपने अपकारी और उपकारी के ऊपर समान रूप में अनुग्रह करते हैं। यह सन्त का विशेष गुण है, इसकी नकल नहीं की जा सकती। यथा उमा संत कइ इहै बड़ाई। मंद करत जो करै भलाई। ऐसे उपकारी सन्त की ग्रन्थकार वन्दना करते हैं।

---

१ कोविदस्य विदो वेत्ता कोविद इत्यभिधा बुधैः। श. चि. वेदवेत्ता को कोविद कहते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



केतु कालग्रह है, इसके उदय से देश वा देश आपद्ग्रस्त हो उठता है। यथा : दुष्ट उदय जग आरति हेतू। यथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू। इसी भाँति खलगण के उदय से संसार पर विपत्ति आती है। जब जब संसार पर विपत्ति आई है, तब तब दुष्ट के उदय से ही आई है। खल के पक्ष में 'उदय' का अर्थ बढ़ोत्तरी है।

'मोह निसा सब सोवनिहारा' पर सबकी निद्रा और कुम्भकर्ण की निद्रा में बड़ा अन्तर है। उनकी निद्रा दीर्घकालीन थी और उन्हें जगाना असाधारण व्यापार था और उनके जागने पर त्रैलोक्य सन्त्रस्त हो उठता था। यथा करइ पान सोवै षटमासा। जागत होइ तिहूँपुर त्रासा। कुम्भकर्ण का जागना कोई नहीं चाहता था। इसलिए कहते हैं कि दुष्ट कुम्भकर्ण की भाँति यदि सोते रहें तभी अच्छा है।

'अन्मुकुटादिषु' इस सूत्र से केतु का केत रूप हो गया। हित शब्द 'लिए' के अर्थ में भी आता है, यथा मोहि हित महेउ बहुत सतापू।

पर अकाज लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिमि उपल कृषी दलि गरहीं॥
बदौं खल जस सेष सरोषा। सहस बदन बरनहि पर दोषा॥४॥

अर्थ जो दूसरों का अकाज करने के लिए शरीर तक का त्याग कर देते हैं, जैसे ओले खेती का नाश करके स्वयं गल जाते हैं। मैं खलों की वन्दना करता हूँ, जो शेष की भाँति हजार मुख से परदोष का सरोष वर्णन करते हैं।

व्याख्या दूसरे की हानि सा प्रिय उन्हें कोई पदार्थ नहीं है। 'देह प्रान सम प्रिय कछु नाहीं'। सो दूसरे की हानि के लिए वे उसका भी परित्याग कर सकते हैं। इनकी उपमा योग्य भी कोई चेतन पदार्थ नहीं है, अत जड़ से ही उपमा दी है। ओला गल गलकर नष्ट हो जाता है, पर खेती का नाश तो पहिले ही कर डालता है।

पहिली चौपाई 'पर अकाज लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिमि उपल कृषी दलि गरहीं।' में खलगण की मति का वर्णन किया। दूसरी 'हरिहर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से।' से उनकी कीर्ति का वर्णन किया। तीसरी 'जे पर दोष लखहिं सहसाँखी। परहित घृत जिनके मन माखी।' से उनकी गति का वर्णन किया। चौथी 'तेज कृसानु रोष महिषेसा। अघ अवगुन धन धनी धनेसा।' तथा 'उदयकेतु सम हित सब ही के।' से उनकी भूति का वर्णन किया और पाँचवीं 'पर अकाज लगि तनु परिहरहीं।' में उनकी भलाई का वर्णन किया। यहाँ तक खलगण का वर्णन है। चक्र का वर्णन पूरा होने पर स्वयं खल की वन्दना करते हैं।

प्रलय काल में शेष सरोष होते हैं, तब सहस्रों मुखों से ज्वालमाला वमन करते हैं। यथा प्रलय पावक महा ज्वालमाला वमन। ये प्रलय की ज्वाला की भाँति परदोष वर्णन करते हैं। खलगण का क्रोध महिषेश सा था, पर स्वयं खल का शेष सा प्रलयकारी क्रोध है।

पुनि प्रनवौं पृथुराज समाना। पर अघ सुनइ सहस दस काना॥
बहुरि सक्रसम बिनवौं तेहीं। संतत सुरा नीक हित जेहीं॥५॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ फिर मैं पृथुराज[1] के समान उनको मानकर प्रणाम करता हूँ जो दस हजार कानों से पर अघ दूसरों की बुराइयाँ सुनते हैं। फिर इन्द्र के समान उनको मानकर विनय करता हूँ, जिन्हें सदा सुरानीक देवसेना या सुरा मद्य नीक हित है।

व्याख्या खल को दूसरे की बुराई बडी प्रिय है। महाराज पृथु का भगवद्-गुणानुवाद बडा प्रिय था, इसलिए भगवान् से वरदान माँगा कि आप का यश सुनने के लिए मेरे कानों को दश हजार कानों का बल हो जाय। सो उनके कानों की शक्ति दशसहस्रगुणित हो गई। इन खलों को स्वभाव से ही वह सामर्थ्य प्राप्त है, ये दूसरों का पाप दश हजार कानों से सुना करते हैं। भाव यह कि सूक्ष्मातिसूक्ष्म पाप चर्चा, इन्हें अनायास स्पष्ट दशसहस्रगुणित होकर प्रतिभात होती है। कितनी ही गुप्तचर्चा हो ये सुन ही लेते हैं, और बडे प्रेम से सुनते हैं।

यहाँ 'सुरानीक हित' शब्द श्लिष्ट है। इन्द्र के पक्ष में इसका अर्थ होगा 'देवताओं की सेना का हित होना' और खलपक्ष में अर्थ होगा मद्य शराब का नीकहित होना'। भावार्थ यह कि जिस भाँति देवसेना से इन्द्र के हृदय में उल्लास होता है, वैसा ही उल्लास खल को सुरा से होता है, जिस भाँति बिना देवसेना के इन्द्र निर्बल रहते हैं, उसी भाँति बिना सुरा के खल की तबीयत खराब हो जाती है।

वचन वज्र जेहि सदा पिआरा। सहसनयन परदोष निहारा ॥६॥

अर्थ जिनको वचन रूपी वज्र सदा प्यारा लगता है और हजारों आँखों से पराया दोष देखते हैं।

व्याख्या जैसा इन्द्र को अपने वज्र का भरोसा रहता है, उसी भाँति खल को अपने वाग्वज्र का भरोसा रहता है। इन्द्र को वज्र बडा प्यारा है, सदा धारण किए रहते हैं उसी भाँति खल के होठों पर वाग्वज्र प्रतिक्षण बना रहता है। न इन्द्र का वज्र कोई सह सके और न खल के वचन सह सके। इन्द्र सहस्र नेत्रों से देवताओं का हित देखते हैं खलगण परदोष को सहस्र नेत्रों से लखते हैं, पर स्वयं खल उसको प्रेम से निहारते हैं। तीनों लोक के बडे इकट्ठे हुए तब खल की खलता तौली गई। १ स्वर्ग के बडे, यथा बहुरि सक्र सम बिनवौं तेही। २ पृथ्वी के बडे, यथा पुनि प्रनवौं पृथुराज समाना और ३ पाताल के बडे, यथा बंदौं खल जस सेष सरोषा।

दो उदासीन अरिमीत हित, सुनत जरहि खलरीति।
जानु पानि जुग जोरि जनु, बिनती करइ सप्रीति ॥८॥

अर्थ खल की यह रीति है कि वे उदासीन, शत्रु और मित्र के हित का

---

[1] राजा पृथु, राजा वेन के पुत्र थे वेन अधर्मी राजा था ऋषियों ने उसे मन्त्र से मारा और उसके दाहिने हाथ को मथा जिससे पृथु की उत्पत्ति हुई। ये बड़े भगवद्भक्त थे इन्होंने भगवान् से वरदान माँगा था कि आपके चरित सुनने के लिए मेरे कानों में दस हजार कानों की शक्ति आ जाय।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुनते ही जल उठते हैं। अत दोनो हाथ पाँव जोडकर यह सेवक प्रीति के साथ विनती करता है।

व्याख्या जिस भाँति सन्त समानचित्त होते हैं, उनका न कोई हित है न शत्रु है, वे शत्रु मित्र दोनो का कल्याण चाहते हैं, उसी भाति खल भी उदासीन, शत्रु और मित्र सब पर समान दृष्टि रखते हैं। वे किसी का कल्याण सहन नही कर सकते। किसी के कल्याण की वात सुनते ही उनके कलेजे मे आग लग जाती है। वे सन्तो के जोडीदार हैं। दोष के भी अत्यधिक उत्कर्ष से उसमे अलौकिकता आ जाती है। यथा देखि खलन अधिकार सुप्रभु मेरी भूरि भलाई भनिहैं। इसी से उनकी उपमा शेष, महाराज पृथु और देवराज इन्द्र से दी गई है।

यद्यपि जानु का अर्थ घुटना है, परन्तु यहाँ जानु उपलक्षण है, पाँव के अर्थ मे आया है। अत्यन्त विनय प्रार्थना मे हाथ पाव दोनो जोडना कहा जाता है, यथा 'वहुत हाथ पाँव जोडा पर सुनवाई न हुई।' इसलिए गोसाँई जी भी दोनो हाथ पैर जोडकर प्रीति के साथ विनती करते हैं। अर्थात् विनती करने मे ये कपट को स्थान नही देते। 'बहुरि वदि खलगन सति भाएँ' से उपक्रम करके 'विनती करौं सप्रीति' से उपसहार कर रहे हैं। 'मै सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवत', इस सिद्धान्त के अनुसार अपने को सेवक भी मान रहे हैं।

मै अपनी दिसि कीन्ह निहोरा। तिन्ह निज ओर न लाउव भोरा ॥
वायस पलिअहि अति अनुरागा। होहि निरामिप कवहु कि कागा ॥१॥

अर्थ मैने अपनी ओर से तो निहोरा कर दिया। वे अपनी ओर से चूक न करेगे। वायस यदि अति अनुराग से पाले जाँय, तो भी क्या काग निरामिष हो सकता है।

व्याख्या गोस्वामी जी कहते है कि निहोरा करना मेरा काम है, क्योकि चराचर विश्व भगवान् का रूप है, खल भी कोई दूसरे नहीं है, अत मैने अपना कर्त्तव्य कर दिया, वे भी अपना कर्त्तव्य पालन करेगे, खलता करने मे न चूकेगे। यह मैं जानता हूँ। मैने विनय प्रार्थना उन्हे अपने स्वभाव से च्युत करने के लिए नही की है। स्वभाव किसी का हटाये नही हटता। वायस कौवे स्वभाव से ही अशुचिभक्षी होते हैं। उन्ह चाहे कितने ही आदर से पाला जाय, पर वे 'काक' ठहरे अपने कुत्सित स्वभाव को नही छोड सकते। वे निरामिषभोजी हो नही सकते उन्हे दूध म आमिष की भावना होगी और अण्डे उन्हे फल मालूम होगे। श्वाकाक इति कुत्सायाम्। यहाँ काक शब्द उनके कुत्सित स्वभावद्योतन के लिए आया है।

वदौ सत असज्जन चरना। दुख प्रद उभय वीच कछु वरना ॥
विछुरत एक प्रान हरि लेई। मिलत एक दुख दारुन देई ॥२॥

अर्थ अब मे सज्जन और दुर्जन दोनो के चरणो की वन्दना करता हूँ। दोनो दुखदाई हैं, पर कुछ अन्तर कहा जाता है, एक विछुडते ही प्राण ले लेते हैं और एक मिलते ही दारुण दुख देते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या सन्त और खल की पृथक् पृथक् वन्दना की, क्योंकि एक का गुण-कर्म स्वभाव दूसरे से विपरीत है। सन्त के जोड होने से खल की वन्दना की। अब दोनो की साथ वन्दना करते हैं, क्योंकि 'दुखदाई' होने का गुण दोनो मे समान है, सयोग वियोग मात्र का बीच है।

सन्त बिछुडते समय मरणाधिक कष्ट देते है। यथा जौ पै प्रिय बिधि कीन्हा। तौ कस मरन न माँगे दीन्हा असन्त मिलते ही दारुण दु ख देते है। उनसे मिलते ही अपयश लगता है और 'सभावित कहँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू'। अत इनसे भी प्राणान्त कष्ट होता है।

उपजहि एक सग जग माही। जलज जोक जिमि गुन बिलगाही ॥
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू ॥३॥

अर्थ दोनो एक साथ ससार मे पैदा होते हैं, पर कमल और जोक की भाति उनके गुण अलग अलग होते है। साधु अमृत और असाधु मदिरा के समान है। दोनो का पैदा करनेवाला ससाररूपी अगाध समुद्र एक ही है।

व्याख्या साधु और असाधु होने मे जन्म कारण नही है, जैसे जल मे कमल भी पैदा होता है, जोक भी पैदा होती है, पर दोनो के गुणा मे बडा अन्तर है। कमल रक्तवर्धक है और जोक रक्तशोषक है। कमल जल मे रहकर भी निर्लेप रहता है, जोक जल मे लिप्त आर्द्र रहती है। कमल स्थिर है, जोक की वक्रगति है। यथा चलै जोक जल वक्रगति जद्यपि सलिल समान। इसी भाति साधु असाधु दोनो ससार मे उत्पन्न होते हैं, पर साधु द्वारा क्षमा-दयादि गुणो की वृद्धि होती है और खलो द्वारा उनका ह्रास होता है। यथा सत सग अपवर्ग कर, कामी भव कर पथ। सत, ससार मे रहकर भी उसमे निर्लेप रहते है और खल उसी मे डूबा रहता है। साधु स्थिरबुद्धि होते हैं तथा खल की कुटिल बुद्धि होती है। पृथ्वी मे उत्पत्ति कहकर माता की एकता कही।

समुद्रमन्थन से सुधा सुरा दोनो की उत्पत्ति हुई। अत समुद्र को जनक पिता कहा। जग और जलधि समुद्र मे, अगाध होना साधारण धर्म है। इसी समार मे ही साधु, असाधु की उत्पत्ति हुई द्वौ भूतसर्गौ लोकेऽस्मिन् दैव आसुर एव च। पर साधु अमृत के समान लाभकारी है और खल मदिरा के समान अपावन है।

भल अनभल निज निज करतूती। लहत सुजस अपलोक बिभूती ॥
सुधा सुधाकर सुरसरि साधू। गरल अनल कलिमल सरि ब्याधू ॥४॥

अर्थ भले और बुरे अपनी-अपनी करनी से यश और अपयश का ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं। अमृत, चन्द्र, गङ्गा और साधु भले हैं। विष, अग्नि, कलिमल की नदी और व्याधा अनभल हैं।

व्याख्या भल और अनभल होने का कारण अपनी करतूति है, जन्म नही है। भले के लिए सुयश ऐश्वर्य है और बुरे के लिए अपयश ऐश्वर्य है। यथा मोह रावन जग विदित प्रतापी। सुनेहि न श्रवन अलीक प्रलापी। साधु का वचन अमृत

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मा, दर्शन चन्द्र सा और स्पर्श गङ्गा सा है। यथा मुख देखत पातक हरैं परसत कर्म बिलाहिं। बचन सुनत मन मोह गत पूरब भाग मिलाहिं। और खल ठीक इसके विपरीत है। 'व्याधा' के हिंसक होने से खल का उपलक्षण माना।

गुन अवगुन जानत सब कोई। जो जेहि भाव नीक तेहि सोई ॥५॥

अर्थ इनके गुण और अवगुण को सब कोई जानते हैं, पर जिसे जो भाता है वही उसे अच्छा लगता है।

व्याख्या यह बात नही है कि असत्यवादी न जानता हो कि झूठ बोलना बुरा है, चोर यह न जानता हो कि चोरी करनी बुरी बात है, यह सब खूब जानता है फिर भी उसे प्रकृति-वश झूठ बोलना, चोरी करना ही अच्छा लगता है। अत बुरे या भले होने मे अज्ञान कारण नही है, अपनी रुचि कारण है।

दो भलो[1] भलाइहि पै लहै, लहै निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरता, गरल सराहिअ मीचु ॥५॥

अर्थ भले भलाई से ही शोभा को प्राप्त होते हैं और नीच निचाई से शोभा को प्राप्त हैं, अमृत की अमरता सराही जाती है और विष की मारकता सराही जाती है।

व्याख्या उत्कर्ष की ही शोभा है, अपकर्ष की नही। सन्तो मे गुणोत्कर्ष है और खलो मे दोषोत्कर्ष है। अत सन्तो के गुणागार होने मे शोभा है। यथा गुनागार ससार दुख रहित विगत सदेह। तजि मम चरन सरोज प्रिय जिनकहु देह न गेह। और खलो के दोषागार होने मे शोभा है। यथा दिगपालन मैं नीर भरावा। भूप सुजस खल मोहि सुनावा। लोकप जाके बदी खाना, तथा वेद पढैं विधि सभु सभीत पुजावन रावन ते नित आवैं। दानव देव दयावने दीन दुखी नित दूरहिं ते सिर नावैं।

खल अघ अगुन साधु गुन गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा ॥
तेहि ते कछु गुन दोष बखाने। सग्रह त्याग न बिनु पहिचाने ॥१॥

अर्थ खलो के पाप और अवगुण की एव सज्जनो के गुणो की गाथाएँ अपार और अथाह समुद्र है, इसी से मैने कुछ गुणो और दोषो का वर्णन किया है, क्योकि बिना पहिचान के सग्रह या त्याग हो नही सकता।

व्याख्या न तो खलो के पाप और अवगुण की गहराई का अन्त है, न साधु के गुणो की गहराई और विस्तार का अन्त है। इसलिए उनकी गाथाओ का भी अन्त नही है। जो कुछ लिखा गया है, वह प्रादेश मात्र है। तीन असुरो, तीन राजाओ, तीन देवताओ का दृष्टान्त दिया गया है यह दिखाने के लिए कि तीनो लोक के पराक्रमी उनके सामने नगण्य हैं। लिखने की आवश्यकता इसलिए पडी कि साधुओ तथा उनके गुणो के सग्रह का एव खलो के तथा उनके पाप और अवगुणो के त्याग

१ यहाँ प्रतिवस्तूपमा अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


का विधान है और यह बिना उनके पहिचाने हो नही सकता। इसलिए थोडा-बहुत गुण-दोष कहना पडा। 'खघथधमाह्' प्रा प्र २ २७। इस सूत्र से 'थ का ह' हो गया, अत गाथा का गाहा रूप हो गया।

भलेउ पोच सब विधि उपजाये। गनि गुन दोष वेद बिलगाये॥
कहहि वेद इतिहास पुराना। विधि प्रपंचु गुन अवगुन साना॥२॥

अर्थ विधाता ने भले बुरे सभी पैदा किये है, पर वेदो ने उनके गुण दोष गिनकर अलग कर दिये है। वेद, पुराण और इतिहास बतलाते हैं कि ब्रह्मा का प्रपञ्च गुण और अवगुण मे सना हुआ है।

व्याख्या भवसागर के कर्ता ब्रह्मा है। उस सागर मे गुण दोष सब मिलकर एक हो गये है। किसी की सामर्थ्य नही कि उन्हे अलग कर सके। वेद का बडा भारी कार्य यह है कि उसने गुण दोष को गिनकर अलग कर दिया। अब उसी को लेकर चाहे जितने मत मतान्तर बने, पर आरम्भ में इनको अलग अलग कर बतला देना वेद का ही काम था। यदि कहिये कि मनुष्य ने अपने पसन्द के अनुसार गुण दोष को अलग किया तो यह नही हो सकता। सबकी पसन्द अलग-अलग है। बुरे को बुराई पसन्द है इसलिए बुराई गुण नही हो सकती। हानि लाभ भी इसका ठीक मापक नही है। प्रायेण पुण्य से ही हानि और पाप से ही लाभ होते देखा जाता है, और न बहुमत ही ठीक मापक हो सकता है, क्योकि बहुमत सदा मूर्खो का ही रहता है। अत वेद के अतिरिक्त गुण दोष का विवेचक कोई हो नही सकता।

वेद से अङ्ग और उपाङ्ग के सहित ऋक्, यजु और साम का ग्रहण है। इतिहास और पुराण पाँचवाँ वेद है। गुण और दोष ऐसे सने हुए हैं, जैसे आटा और पानी। सने हुए आटे से आटा और पानी का शुद्ध स्वरूप पृथक् करना असाध्य व्यापार है। इसी भाँति गुण और दोष का शुद्ध स्वरूप, शास्त्रदृष्टि से दिखाई पडता है। गुण मे सूक्ष्म रूप से अवगुण भी रहता है और अवगुण मे भी सूक्ष्म रूप से गुण अवस्थान करता है। जैसे

दुख सुख पाप पुन्य दिनराती। साधु असाधु सुजाति कुजाती॥
दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिअ सुजीवनु माहुरु मीचू॥३॥
माया ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा॥
कासी मग सुरसरि कविनासा। मरुमारव महिदेव गवासा॥४॥
सरग नरक अनुराग बिरागा। निगम अगम गुनदोष विभागा॥५॥

अर्थ दुख और सुख, पाप और पुण्य, दिन और रात, साधु और असाधु, सुजाति और कुजाति, दानव और देवता, ऊँच और नीच, अमृत और विष तथा सुजीवन और मृत्यु, माया और ब्रह्म, जीव और जगदीश, लक्ष्मी और दरिद्रा, रङ्क और राजा, काशी और मगध, देवनदी और कर्मनाशा, मारवाड और मालवा,

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ब्राह्मण और गोभक्षक, स्वर्ग और नरक तथा प्रीति और वैराग्य : ये सने हुए हैं परन्तु वेद और शास्त्र ने इनके गुणो और दोपो को बिलगाया है।

व्याख्या · यहाँ सब कुछ सापेक्ष है, निरपेक्ष कुछ भी नही, दु ख मे सुख सना है और सुख मे दु ख सना है, दोनो मे से एक का शुद्ध रूप दुर्घट है। इसी भाँति सभी द्वन्द्वो मे समझ लेना चाहिए। दु ख सुख कहकर फल कहा, यथा फल जुगल विधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आश्रित रहे। पाप पुण्य कहकर बीज कहा, यथा पाप पुन्य द्वै बीज है। वै स । 'दिनराती' से काल कहा। दिन रात की व्यवस्था ब्रह्मदेव के दिन रात तक चली जाती है। यथा सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद्ब्रह्मणो विदु । रात्रि युगसहस्रान्ता तेऽहोरात्रविदो जना ॥ एक सहस्र युग का ब्रह्मदेव का दिन होता है और उतनी ही बडी रात होती है। जो इसे जानता है, वह रात्रि और दिन का जानने वाला है। इसी बात को 'निसि अरु दिवस निमेष अपारा' कहकर द्योतित किया। साधु, असाधु, सुजाति कुजाती, दानव देव और ऊँच नीच से कर्त्ता भोक्ता कहा, यथा बवै सो लवै निदान। वै म । अमिअ मृत्यु तथा माहुर सुजीवन से पथ्य कुपथ्य कहा। यथा विषय कुपथ्य पाइ अकुरे। सजम यह न विषय कर आसा। माया ब्रह्म से मिथ्या और सत्य कहा। यथा समुझि न परै झूठ का साँचा। जीव और जगदीश से अश और अशी कहा। यथा ईश्वर अश जीव अविनासी। लच्छि अलच्छि और रक अवनीस से ऐश्वर्य-अनैश्वर्य कहा। 'काशी मग, सुरसरि कविनासा[2]। मरु मारव' से देश भेद कहा। महिदेव गवासा से दैवासुर सर्ग कहा। मरग नरक से भोग की परकाष्ठा कही, अनुराग विराग से आकर्षण विप्रकर्षण कहा। इन द्वन्द्वो मे से निरपेक्ष कोई नही, देखने म एक दूसरे के विरोधी मालूम पडते है, पर सूक्ष्मरूपेण एक का गुण दूसरे मे वर्तता है।

'अधो मनयाम् प्रा प्र ३ २' से लक्ष्मी के 'म' का लोप होकर लक्षी रूप हुआ। तब सूत्र लगा 'अक्ष्यादिषु च्छ प्रा प्र ६ ३०' इससे क्ष का च्छ हो गया। तब लच्छी रूप सिद्ध हुआ।

दो जड चेतन गुन दोष मय, विश्व कीन्ह करतार।
संत हस गुन गहहि पय, परिहरि बारि विकार ॥६॥

अर्थ विधाता ने जड और चेतन तथा गुण और दोपमय ससार को बनाया। हसरूपी सत, दूधरूपी गुण को ग्रहण करते है और जलरूपी दुर्गुण को छोड देते है। सशयान् हिनस्ति इति हस। जो सशयो का नाश करे उसे हस कहते है।

व्याख्या जड चेतन मिलकर बीस जोडे हुए। जोडो मे से एक म गुण का

---

१ तुलसी यह तन खेत है, मन वच कर्म किसान।
पाप पुण्य द्वै बीज है, बवै सो लवै निदान॥

२ राजा त्रिशङ्कु जब स्वर्ग से गिराये जाने पर अधोमुख होकर अन्तरिक्ष मे लटके, तो उनके मुख से जो लार गिरी। उमस कर्मनाशा नदी हुई और जहाँ तक उनके रथ की छाया पडी वह देश मगध कहलाया। वह २४ योजन लम्बा और १६ योजन चौडा है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बाहुल्य है और दूसरे मे दोष का बाहुल्य है। वेद ने तो गुण दोष का स्वरूप अलग-अलग दिखला दिया, पर गुण को अलग करके ग्रहण कर लेना विवेकी सन्तो का काम है। हस मिले हुए नीर मे से क्षीर को ग्रहण कर लेता है और जलाश को छोड देता है। ब्रह्म भी कहे सुने जाते हैं, इतने अश मे वे भी विधि प्रपञ्च के भीतर है। माया से परे कहकर ही उनका वर्णन होता है, बिना माया का उल्लेख किये ब्रह्म का वर्णन दुरूह व्यापार है। इसलिए प्रपञ्च की गणना मे उन्हे भी गिना दिया, नही तो ब्रह्म सर्वथा निष्प्रपञ्च है।

अस विवेक जब देइ विधाता। तब तजि दोष गुनहि मनु राता॥
काल सुभाउ करम बरिआई। भलेउ प्रकृति बस चुकइ भलाई॥१॥

अर्थ जब विधाता इस प्रकार का विवेक देते है, तब मन दोषो को छोडकर गुणो मे लग जाता है, काल स्वभाव और कर्मों की प्रबलता से, भले भी प्रकृति स्वभाव के वश होकर भलाई मे चूक जाते हैं।

व्याख्या गुण को पृथक् करके ग्रहण करने का विवेक क्रियासाध्य नही है, यह तो विधाता की देन है। ऐसे विवेकी का मन गुण म लग जाता है, दोष की ओर जाता ही नहीं। 'सता हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्त करणप्रवृत्तय'। अत सन्त होना किसी के वश को बात नही है, पर उनके सङ्ग के लिए प्रयत्न मात्र किया जा सकता है। 'काल कर्म गुण स्वभाव सबके सीस तपत' इसलिए कहते है कि काल, स्वभाव और कर्म की यहाँ प्रबलता है। 'काल सदा दुरतिक्रम भारी।' 'स्वभावो दुरतिक्रम।' 'कठिन कर्मगति जान विधाता।' अत काल, स्वभाव और कर्म का अतिक्रमण करना अत्यन्त कठिन है। जीव काल, कर्म, स्वभाव, गुण से घिरा माया मे प्रेरित होकर नाचा करता है। यथा फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म स्वभाव गुन घेरा। साधु लोग इनमे सदा सावधान रहते हैं, फिर भी कभी चूक हो ही जाती है। प्रकृति यान्ति भतानि निग्रह किं करिष्यति। प्राणिमात्र अपनी प्रकृति का ही अनुसरण करते हैं, निग्रह क्या करेगा। जान-बूझकर भले लोग चूक नही करते पर चूक होने पर दोष दु ख होता है, कलङ्क लगता है।

सो सुधारि हरिजन जिमि लेही। दलि दुख दोष बिमल जसु देही॥
खलउ करहिं भल पाइ सुसगू। मिटइ न मलिन सुभाव अभगू॥२॥

अर्थ · उसे हरि इस भाँति सुधार लेते हैं, जैसे शरीर को सुधार लिया जाता है और दुख दोष को मिटाकर निर्मल यश देते हैं, वैसे ही खल भी सुसङ्ग पाकर भलाई कर बैठते हैं, पर उनका मलिन स्वभाव नही जाता, क्योकि वह मिट नही सकता।

व्याख्या जैसे किसी के शरीर मे धूलि लग जाती है तो वह उसे झाड देता है, इसी भाँति भले की चूक को भगवान् सुधार लेते हैं क्योकि साधु उन्ही की मूर्ति हैं और दु ख दोष का नाश करके निर्मल यश देते हैं। यथा मा मैं मन विधि कीन्ह

१ यहाँ अतद्गुणालङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ढिठाई। प्रभु मानी सनेह सेवकाई। कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर। दूषन भे भूषन सरिस, सुजसु चारु चहुँ ओर। जहाँ 'हरिजन' पाठ है, वहाँ ऐसा अर्थ करना चाहिए कि भगवान् के भक्त जिस भाँति उस चूक को सुधार लेते हैं इसी भाँति खल से भी चूक हो जाती है, सत्सङ्ग मे पडकर भलाई कर बैठते है, पर उनका स्वभाव नही मिटता। अत. कभी भलाई या बुराई कर बैठना साधु या खल का परिचायक नही है।

लखि सुवेष जग वंचक जेऊ। वेष प्रताप पूजिअहि तेऊ॥
उघरहिं अंत न होहि निबाहू। कालनेमि जिमि रावन राहू॥३॥

अर्थ : अच्छा वेष बनाये देखकर, वेष के प्रताप से, ससार के ठगनेवालो की भी पूजा होती है, परन्तु अन्त उनका खुल जाता है, वेष का निर्वाह उनका किया नही होता, जैसे कालनेमि, रावण और राहु का हुआ।

व्याख्या : तथैव साधु वेष साधुता का परिचायक नही है, न लिङ्गं धर्मकारणम्, न वेष द्वारा पूजित होना परिचायक है। खल भी साधु वेष धारण कर लेते है और उनकी पूजा भी होने लगती है। वेष तो वे बनाये रहते हैं पर तदनुकूल गुण, कर्म, स्वभाव का सँभार वे नही कर सकते। कालनेमि ऋषि बना, रावण संन्यासी बना, राहु देवता बना, क्रम से उनका सम्मान भी हनुमानजी, जानकीजी तथा देवताओ द्वारा हुआ, पर पीछे से भेद खुल गया।

यहाँ राहु की कथा मानस के बाहर की चिड़िया[1] है। यहाँ पूर्वरूपालङ्कार है।

कियेहु कुवेष साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत हनुमानू॥
हानि कुसग सुसंगति लाहू। लोकहुँ वेद विदित सब काहू॥४॥

अर्थ : कुवेष किये रहने पर भी साधु का सम्मान होता है, जैसे ससार मे जाम्बवान् और हनुमान् का सम्मान होता है। कुसङ्ग से हानि और सुसङ्ग से लाभ होता है, यह लोक और वेद मे प्रकट है और सब लोग जानते हैं।

व्याख्या: असाधु वेष मे भी साधु का सम्मान होता है। कितने महात्मा अव्यक्तलिङ्ग घूमा करते हैं, जिसमे कोई उनका मान न करे। क्योकि लोक मान्यता अनल सम कर तप कानन दाहू। पर वे भी छिप नही सकते। बन्दर वेष मे हनुमान् और भालू वेष में जाम्बवान् का कौन सम्मान नही करता?

निचोड यह है कि कुसग से हानि और सुसग से लाभ होता है। १ मति, २ कीर्ति, ३ गति, ४ भूति और ५. भलाई, सुसङ्ग से मिलती है और कुसङ्ग से १ कुमति, २ अकीर्ति, ३ दुर्गति, ४. अनैश्वर्य और ५ बुराई मिलती है। इस

---

१ समुद्र मन्थन मे अमृत निकला और मोहिनी मूर्ति धारणकर भगवान् ने दैत्यो से अमृत घट ले लिया और देवताओं को अमृत परोसने लगे तो राहु भी देवता का रूप धारण कर देवपंक्ति मे बैठ गया। सूर्य चन्द्र के लखाने पर भगवान् ने राहु का सिर काट दिया, पर वह अमृत पी चुका था। इसलिए सिर और धड दोनो जीते रह गये। ब्रह्मदेव की आज्ञा से वे दोनो ग्रह हो गये और राहुकेतु कहलाये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विषय मे सबका ऐकमत्य है। सुसङ्ग और कुसङ्ग से इन पाँचो की प्राप्ति को उदाहरण देकर दिखलावेंगे।

'आल्विल्लोल्लाल वन्तेन्तामतुप' प्रा० प्र० ४ २५। आलु, इल्ल, उल्ल, वन्त, इन्त इत्येते आदेशा मतुप स्थाने भवन्ति। इससे जाम्बवान् का जामवन्त रूप सिद्ध हुआ।

गगन चढइ रज पवन प्रसगा। कीचहि मिलइ नीच जल सगा ॥
साधु असाधु सदन सुकसारी। सुमिरहि रामु देहि गनि गारी ॥५॥

अर्थ वायु के सङ्ग से धूल आकाश मे चढ जाती है और वही नीच जल के साथ कीचड मे मिल जाती है। साधु के घर मे तोता मैना राम स्मरण करते है और असाधु के घर मे गिन गिनकर गालियाँ देते है।

व्याख्या सत्सङ्ग और कुसङ्ग से ३ सुगति दुर्गति का उदाहरण देते हैं। पवन की उच्चगति है अत पवन को ऊँचा कहा। उसके सङ्ग से धूलि भी आकाश म चढ जाती है। जल की नीची गति है इसलिए उसे नीच कहा। उसी धूलि का जब जल से साथ होता है तो वह कीचड मे मिल जाती है।

शुकसारी से १ सुमति कुमति का उदाहरण देते हैं। साधु के घर दिन रात भगवन्नामोच्चारण होता है, खल के घर गाली बकी जाती है, तो उसका प्रभाव शुक सारिका पर पडता है। नही तो पक्षी को भगवन्नामस्मरण या गालिप्रदान से ही क्या सम्बन्ध। गिनकर गाली देने का भाव यह कि जितनी गाली देने का अभ्यास उस खल को है, उतनी ही गालियो का उच्चारण उसी क्रम से उसके तोता-मैना किया करते हैं।

धूम कुसगति कारिख होई। लिखिअ पुरान मजु मसि सोई ॥
सोइ जल अनल अनिल सघाता। होइ जलद जगजीवन दाता ॥६॥

अर्थ कुसङ्ग मे पडकर धूआँ कारिख हो जाता है, पर वही सुन्दर स्याही है, जिससे पुराण लिखा जाता है और वही धूआँ जल, अग्नि और वायु के सयोग से ससार को जीवन देनेवाला बादल होता है।

व्याख्या सत्सङ्ग और कुसङ्ग से ४ ऐश्वर्य और अनैश्वर्य का उदाहरण देते हुए ग्रन्थकार लिखते हैं कि धूम कारिख होकर दुर्दशा को प्राप्त होता है और वही स्याही होकर पुराणो को लिपिबद्ध करके पूजनीय होता है।

कवि मूर्धन्य कालिदास भी लिखते है 'धूमज्योति सलिलमरुता सन्निपात क्व मेघ' धूआँ अग्नि, जल और वायु के सयोग से होता है। उससे ससार को जीवन दान मिलता है। यहाँ जीवन शब्द मे श्लेष है। जीवन का अर्थ जल भी है। मेघ से जल मिलता है और तद्द्वारा जीवन रक्षा होती है।

दो ग्रह भेषज जल पवन पट, पाइ कुजोग सुजोग।
होहि कुवस्तु सुवस्तु जग, लखहि सुलच्छन लोग ॥७॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



समप्रकास[1] तम पाख दुहुँ, नाम भेद विधि कीन्ह ।
ससि पोषक सोषक समुझि, जग जस अपजस दीन्ह ॥७क॥
जड चेतन जग[2] जीवजत, सकल राममय जानि ।
बंदौ सबके पद कमल, सदा जोरि जुगपानि ॥७ख॥
देव दनुज नर नाग खग, प्रेत पितर गधर्व ।
बंदौ किन्नर रजनिचर, कृपा करहु अब सर्व ॥७ग॥

अर्थ ग्रह, औषधि, जल, पवन और वस्त्र ये सब कुयोग और सुयोग पा बुरे और भले हो जाते हैं। इसे लखनेवाले ही लखते हैं। महीने के दो पखवारे उजेला और अँधेरा समान ही होता है। नाम में भेद विधाता ने कर दिया। को चन्द्रमा का घटानेवाला और दूसरे को बढानेवाला समझकर ससार मे को २ सुयश और दूसरे को अपयश दिया क । जगत् में जितने जड चे जीव हैं सबको राममय जानकर, मैं उन सबके चरण कमलों को सदा हाथ जो कर वन्दना करता हूँ ख । देवता, दैत्य, मनुष्य, सर्प, प्रेत, पितर, गन्धर्व, कि और निशाचर सबकी वन्दना करता हूँ। सब लोग कृपा करो ग ।

व्याख्या एक ही वस्तु देश, काल, और प्रकृति के भेद से सुख और दु:ख पैदा करती है, उसमे निश्चयात्मिका प्रतिष्ठा नही है। प्रकृति और मात्रा के भेद भी सुख दु:ख होता है। पापग्रह, तीसरे और ग्यारहवे स्थान के योग मे, शुभ देते हैं। शुभ ग्रह आठवे और बारहवें स्थान के योग से मन्द फल देते हैं। च शुभग्रह है, पर क्षीण हो या पाप ग्रह से युक्त हो, तो अशुभ फल देता है। इसी भ बुध यदि पाप ग्रह से युक्त हो, तो अशुभ फल देता है। चीनी कफकारक है, पर मधु, अद्रक से युक्त हो तो कफनाशक हो जाती है। कर्मनाशा का जल अपावन है, उसी का योग यदि गङ्गाजल से हो जाय तो पावन है। गङ्गा का जल पावन पर वह मद्य के घट मे रख देने से अपावन है। पश्चिम की वायु रोगहर है, वही यदि अनूप देश से होकर आवे तो रोगकारक हो जाय। कपडा यदि देवता चढे तो पवित्र और मृतक से सयोग हो जाय तो अपवित्र। इस भाँति कुयोग सुय पाने से सुवस्तु कुवस्तु होती है और कुवस्तु सुवस्तु होती है, पर सब कोई यह ब नही समझ सकते। अच्छे लखनेवाले ही इस बात को लखते हैं। यह भलाई बु का उदाहरण है।

अमावास्या और प्रतिपद की रात्रि को रात भर अधेरा रहता है अ पूर्णमासी तथा कृष्णपक्ष के प्रतिपद को पूर्ण प्रकाश रहता है। इसी भाँति दो

---

१ उन्मीलितालङ्कार है।

२ राम सत्य पर ब्रह्म रामात् किञ्चिन्न विद्यते। तस्माद्रामस्य रूपोऽयं सत्यं सत्यं जगत्। सनत्कुमार सहिता। अर्थ - रामजी सत्य पर ब्रह्म हैं। राम से कुछ भी पृथक् नहीं इसलिए यह जगत् रामरूप है यह सत्य है, सत्य है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पक्षो मे प्रकाश और अन्धकार बराबर हो रहता है, पर विधाता ने एक का नाम शुक्ल रक्खा और दूसरे का कृष्ण रक्खा। शुक्लपक्ष मे चन्द्रमा बढता है और। कृष्ण मे घटता है। तदनुसार ससार मे शुक्लपक्ष को पोषक शक्ति के योग से यश है, कृष्ण को शोषक शक्ति के योग से अपयश है। यह कीर्ति और अपकीर्ति का उदाहरण है।

'भल अनभल निज-निज करतूती। लहत सुजस अप लोक बिभूती' का प्रसङ्ग समाप्त करके अब समष्टि की वन्दना करते है। समष्टि पर भगवत् दृष्टि रखते हुए, सेवक-सेव्य भाव बनाये रखना ही अनन्योपासना है। यथा सो अनन्य अस जाकर मति न टरै हनुमत। मै सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवत। अत श्री गोस्वामी जी कहते हैं कि जड चेतन जितने जीव हैं, सबको राममय जानकर, सबके चरण कमलो की वन्दना सदा दोनो हाथ जोडकर करता हू ख । अत इस समय मङ्गलाचरण के लिए देव, दनुज, नर, नाग, खग, प्रेत, गन्धर्व, किन्नर, रजनीचर आदि सबकी वन्दना करता हूँ कि सबलोग मुझपर कृपा करे ग ।

'हानि कुसग सुसगति लाहू' इस पुरइन से यहा आकर दोहारूपी दो कमल निकले ७ और ७ क तथा 'आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ बासी' इस पुरइन ने भी यहाँ दो कमल दिये ७ ख और ७ ग। इस भाँति यहा चार कमलो का एक गुच्छा बन गया।

आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव नभ जल थल बासी ॥
सीयराम मय सब जग जानी। करौ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥१॥

अर्थ चार खानि, चौरासी लाख योनि के जीव, धरती और आकाश मे रहते है। सारे जगत् को सीताराम मय जानकर, मै दोनो हाथ जोडकर प्रणाम करता हूँ।

व्याख्या शास्त्रकारो ने जीवो के प्रकारो की गणना की है। पहिले उनके चार बडे-बडे विभाग है १ स्वेदज २ उद्भिज्ज ३ अण्डज और ४ जरायुज। इनमे से, एक-एक मे अनेक[1] लाख योनि जीव रहते है, उनमे से कितने जलमे रहते हैं, कितने धरती पर रहते है और कितने आकाश मे विचरते है। 'जलचर थलचर नभचर नाना' कहकर जो बात कही थी, उसीका विस्तार यहाँ कहा।

पहिले 'राममय' कहा था, यथा सकल राममय जानि। सो भगवती सीता को कोई पृथक् न समझ ले अत तुरन्त 'सीयराममय' कहे देते हैं। तीन बार समष्टि-वन्दना से मनसा वाचा कर्मणा प्रणाम कहा। 'क ग च ज त द पवा प्रायेण लोप' इस सूत्र से तकार का लोप होकर सीता का 'सीआ' रूप हो गया। 'दीर्घह्रस्वौ मिथो

१ स्थावर तृण-वृक्षादि बीस लक्ष, जलके जीव नवलक्ष, पृथ्वी खोदकर रहनेवाले कूर्म आदि ग्यारह लक्ष, नभचर दशलक्ष, चौपाये तीस लक्ष, बन्दर चार लक्ष। इस प्रकार चौरासी लक्ष योनियाँ हैं। यथा 'स्थावर विंशतेर्लक्ष, जलज नवलक्षकम्। कूर्माद्ये रुद्रलक्षञ्च, दशलक्ष च पक्षिण। त्रिशल्लक्ष पशूनाञ्च चतुर्लक्षञ्च वानर। ततो मनुष्यता प्राप्य तत कर्माणि साधयेत्। शास्त्रमारे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वृत्तौ' इस सूत्र से 'आ' का 'अ' हो गया और 'सीअ' रूप हुआ। 'अवर्णे य श्रुति' इससे 'अ' का 'य' होकर 'सीय' रूप सिद्ध हुआ।

**जानि कृपाकर किंकर मोहू। सबमिलि करहु छाँडि छल छोहू ॥**
**निज बुधिबल भरोस मोहि नाही। ताते विनय करौं सब पाही ॥२॥**

अर्थ मुझे भी कृपा की खानि राम जी का किंकर समझकर सब मिलकर छल छोडकर छोह करो। मुझे अपनी बुद्धि बल का भरोसा नही है, इसलिए सबसे विनय कर रहा हूँ। जहाँ 'कृपा करि' पाठ है वहाँ यह अर्थ करना पडेगा कि मुझे भी कृपा करके किंकर जानकर सब कोई मिलकर छोह करो। कृपाकर सम्बोधन भी हो जायगा हे कृपाकर!

व्याख्या बडे का छोटे पर प्रेम करने को छोह कहते है। यहाँ श्री गोस्वामीजी सम्पूर्ण जगत् से विनय करते है कि आप लोग साक्षात् भगवद्रूप हैं। मै भी कृपा की खानि भगवान् का सेवक हूँ। ऐसा जानकर, स्वार्थ को मनमे स्थान न देकर, सब कोई मिलकर मुझपर छोह कीजिये अथवा मुझे भी अपना सेवक जानकर निश्छल रूप से सबलोग मिलकर छोह कीजिये। इसीलिए मैंने सबको मिलाकर वन्दना की है। इस वन्दना मे खल का भी समावेश है। अत छल छोडकर छोह करने को कहते हैं। अथवा देव, पितर अपना-अपना भाग पाने के लिए राम-परायण नही होने देते। छल के सहित छोह करते हैं, ऐश्वर्यादि देते हैं। अत श्रीग्रन्थकार छल छोडकर छोह करने की प्रार्थना करते है। इन्द्रिय सुरन्ह न ग्यान सोहाई। विषय भोग पर प्रीति सदाई। आवत देखहिं विषय बयारी। तब हठि देहि कपाट उघारी।

'आरति विनय दीनता मोरी। लघुता ललित सुबारिनखोरी' यहाँ ग्रन्थकार अपनी आर्ति विनय और दीनता कहते हैं। जिसे अपने बुद्धि, बल का भरोसा होता है, वह शास्त्रमर्यादा निर्वाह के लिए मङ्गलाचरण कर देता है, मुझे भरोसा नही है, इसलिए सबसे विनय करता हूँ।

'निज बुधिबल भरोस मोहि नाही' यही दीनता है। 'ताते विनय करौ सब पाही' यह आर्ति है। आगे ७ दोहो मे विनय है।

**करन चहौ रघुपति गुन गाहा। लघुमति मोरि चरित अवगाहा ॥**
**सूझ न एकउ अग उपाऊ। मन मति रक मनोरथ राऊ ॥३॥**

अर्थ मै रघुपति के गुणो की गाथा की रचना करना चाहता हूँ, परन्तु मेरी बुद्धि छोटी है और चरित अथाह है। मुझे एक भी उपाय का अङ्ग नही सूझ रहा है, मेरे मन-बुद्धि कगाल है और मनोरथ राजा सा है।

व्याख्या चरित सिन्धु मे बिना डूबे गुणो का पता नही चलता। क्योकि गुणरूपी मोती युक्तिरूपी सीपी के पेट म है। यथा युक्ति मजु मनि सीप सोहाई। मुकाहल गुनगन चुनइ, राम बसौ हिय तासु। सीप समुद्र के तल मे रहती है, मेरी लघु बुद्धि ऊपर ही ऊपर रह जाती है, अथाह चरित के तल तक नही पहुँचती।

रघुपति गुन गाथा की रचना का कोई अङ्ग नही सूझता का भाव यह कि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



काव्य रचना के चार अङ्ग है १ शास्त्र ज्ञान २ व्यवहार ज्ञान, ३ शुभसंस्कार और ४ सत्कवियो की शिक्षा।

ग्रन्थकार कहते हैं कि इनमे मेरा प्रवेश नही। कगाल का मनोरथ राजा सा है। उस मनोरथ की पूर्ति का उपाय जैसे उस कगाल को नहीं सूझता, उसी भाँति मैं भी असमञ्जस मे पडा हूँ। मेरे मन, बुद्धि और मनोरथ मे सामञ्जस्य का कोई मार्ग ही नही है।

अथवा मोती निकालने के लिए लोग अनेक उपाय करते है, सिक्कड पकड कर समुद्र तल मे प्रवेश करते है। श्वास लेने के लिए नाक मे नली लगाते है। जल जन्तु से बचने के लिए कवच पहनते है। वहा उन्हे सीपियाँ मिलती है, जिनमे से मोतियाँ निकलती है, परन्तु 'गुणरूपी मोतियो के निकालने के लिए मै क्या करूँ' यह उपाय मुझे नही सूझता, जिस भाँति राजाओ के करने योग्य मनोरथ के साधन का कोई अङ्ग कगाल को नही सूझता।

मति अति नीचि ऊचि रुचि आछी। चहिय अमिअ जग जुरै न छाँछी ॥
छमिहहि सज्जन मोरि ढिठाई। सुनिहहि बाल बचन मन लाई ॥४॥

अर्थ मेरी बुद्धि अति नीच है और रुचि ऊँची और अच्छी है। चाहिए अमृत और मट्ठा भी नही जुरता। अत सज्जन मेरी ढिठाई को क्षमा करेगे और बालक के वचनो को मन लगाकर सुनगे।

व्याख्या : स्वार्थरत मति को नीच कहते है। ग्रन्थकार कहते है कि मेरी मति अति नीच है और रुचि अत्यन्त ऊँची है। राम गुणगान की अभिरुचि है, जिस गुणगान को समाधिविस्मरण पूर्वक परम अधिकारी सादर सुना करते हैं। मेरी वही गति है जैसे किसी अभागे को ग्राम्य भाग छाँछी दुर्लभ हो और वह देवभोग अमृत चाहे, जो बडे-बडे भाग्यवानो को नही मिलता। 'मति अतिरक मनोरथ राऊ' का स्पष्टीकरण यहाँ किया। रघुपति गुणगाथा को अमृत और प्राकृत जन गुणगान की उपमा छाँछ से दी।

यदि कहिये कि रक को राजा की इच्छा, अति नीच को उच्च बनने की इच्छा ढिठाई है। पौरुष की अपेक्षा न करके इच्छा करना तामस है। इसपर कहते हैं कि सज्जन : माता-पिता तो इस ढिठाई को क्षमा ही करेंगे। असमर्थ बालक की ऊँची रुचि की वाणी को माँ-बाप परम प्रसन्न होकर सुनते हैं।

जौ बालक कह तोतरि बाता। सुनहि मुदित मन पितु अरु माता ॥
हँसिहहि कूर[1] कुटिल कुबिचारी। जे पर दूषन भूषन धारी ॥५॥

व्याख्या : श्रीग्रन्थकार कहते है कि बच्चो की भाँति मुझसे कहते न बनेगा,

---

१ 'सर्वत्र लवराम्' इस सूत्र से 'र' का लोप होकर क्रूर का कूर हो गया।

अर्थ · यदि बालक तोतली बाते कहता है तो उसके माँ बाप प्रसन्न मन से सुनते है और जो क्रूर है, खोटे हैं, बुरे विचारवाले है और जो दूसरो के दूषणो का ही भूषण धारण करते है वे हँसेगे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



टूटे फूटे शब्दो मे हरियश कहूँगा। वह बच्चो की तोतली वाणी की भाँति, सज्जनो के लिए अत्यन्त मोदकारी होगी। वाक्पटुता से उतना मोद नही होता। बच्चो की तोतली वाणी सबका प्रिय लगती है। उसका उपहास, क्रूर, कुटिल और कुविचारी ही कर सकते हैं। उन्हे अपने मे तो कोई गुण है नही, जो भूषण हो सके तो दूसरे के दूषण को अपना भूषण बनाते है। भाव यह कि दूसरो को बुरा कहकर आप अच्छे बनते है। दूषण का प्रिय होना उनकी क्रूरता है, उसे भूषण समझना कुटिलता है और उसे धारण करना कुविचार है। परन्तु ससार मे क्रूर, कुटिल, कुविचारी की ही सख्या अधिक है। यथा जहँ तहँ काक उलूक वक मानस सकृत मराल।

निज कवित्त केहि लाग न नीका। सरस होउ अथवा अति फीका ॥
जे पर भनित सुनत हरखाहीं। ते वरपुरुप वहुत जग नाही ॥६॥

अर्थ चाहे रसीली हो चाहे अत्यन्त फीकी हो, अपनी कविता किसे अच्छी नही लगती। जो दूसरो की कविता सुनकर प्रसन्न होते है ऐसे श्रेष्ठ पुरुष ससार म वहुत नही है।

व्याख्या अपनी रचना सबको अच्छी लगती है तो क्या क्रूर, कुटिल, कुविचारी अच्छी कविता करते है जो तुम्हारी कविता पर हँसेगे। इसपर कहते है कि उन्हे अपनी बनाई हुई रसोई की भाँति अपनी बनाई कविता अच्छी लगेगी ही चाहे वह सरस बने चाहे फीकी बने। परन्तु जो दूसरे के परिश्रम क साफल्य के लिए तथा उत्साह वर्धन के लिए उसकी बनाई हुई कविता सुनकर प्रसन्न होते है ऐसे पुरुष वहुत थोडे है, इसीका उदाहरण देते हैं, यथा

जग वहु नर सरि सर समभाई। जे निज वाढि वढहि जलपाई ॥
सज्जन सकृत सिधु सम कोई। देखि पूरविधु बाढ़ै जोई ॥७॥

अर्थ भाई, ससार म नदी और तालाव के समान मनुष्य वहुत है जो जल पाकर अपनी वढोत्तरी से बढते है पर समुद्र के समान कोई विरला ही होता है जो चन्द्रमा को पूर्ण देखकर वढता है।

व्याख्या अपनी वढोत्तरी स बढनेवालो की उपमा नदी और तालाव से द दी नदी और तालाव असख्य है और समुद्र को दूसरे की वढोत्तरी से वढने वाल के साथ उपमित किया, जिनकी सख्या चार कही जाती है। आछे लोग ही ससार मे अधिक है, उन्हे अपनी ही कामनाओ से छुट्टी नही, वे दूसरो की वढोत्तरी से नही वढ सकते। समुद्र पूर्णकाम है, वह दूसरे की वढोत्तरी से वढ सकता है। भावार्थ यह कि मेरी कविता से पूर्णकाम महात्माओ को प्रसन्नता होगी पर जिन्ह अपनी ही इच्छा की पूर्ति के लिए विकलता है, वे प्रसन्न नही हो सकते।

दो भाग छोट अभिलाप वड, करौ एक विश्वास।
पैहहि सुख मुनि सुजन सव, खल करिहहि उपहास ॥८॥

अर्थ भाग्य छोटा और अभिलाप बडी है, परन्तु एक भरोसा करता हूँ कि इसे सुनकर सब सज्जन सुख पायेंगे और खल उपहास करेंगे हँसी उडावेंगे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या ऋषियो सा भाग्य नही, मन मति रक है और गुण ग्राहक भी थोडे है, इसलिए कहा कि भाग्य छोटा है और अभिलाषा बडी है कि ऐसी कविता बने जिससे सबका हित हो। यथा : कीरति भनिति भूति भलि सोई। सुरसरि सम सब कहँ हित होई। यह असामञ्जस्य है, फिर भी एक विश्वास है, जिसके बल पर कविता करता हूँ। जितना विश्वास सज्जन के सुख पाने पर है, उतना ही विश्वास खल के परिहास करने पर है। भाव यह कि सुख सबको मिल जायगा। सज्जन मुदित मनसे सुनेंगे ही और खल भी उपहास करते हुए मुदित होंगे।

खल परिहास होइ हित मोरा। काक कहहिं कलकंठ कठोरा ॥
हंसहि बक गादर चातकही। हँसहि मलिन खल बिमल बतकही ॥१॥

अर्थ खलों की हँसी से मेरी भलाई होगी। कौवे मधुरकण्ठ कोयल को कठोर कण्ठ कहा करते हैं। बगुले हंसो को और चमगादड पपीहो को हँसा करते है, इसी भाँति मलिन खल निर्मल वार्ता की हँसी उडाते है।

व्याख्या . जिसका खल परिहास करते है, वह बात अच्छी होती है। सो खल के परिहास से ससार समझेगा कि तुलसीदास ने अच्छा कहा होगा तब ही खल मजाक उडा रहे है। क्योकि ससार कोयल के कूक पर मुग्ध है, कोयल के कण्ठ को कठोर कहने की सामर्थ्य काक मे ही है इससे क्रूर का हँसना कहा। खल के परिहास से पाप भी कटता है, अत इसमे हित है।

हस और बक एक ही रूप के होते है, पर हस विवेकी है और बक अविवेकी दगाबाज है सो बक हस को हँसता है कि यह सरस आमिष को छोडकर मोती चुगता है। कहा गया है कि 'चरन चोंच लोचन रँगौ चलै मराली चाल। छीर नीर विवरन समय बक उघरत तनकाल।' इससे कुटिल का हँसना कहा।

भलो कहै बिनु जाने ही बिनु जाने अपवाद। तेंगर गादुर जानि जिअ करिअ न हरख बिषाद। और एक भरोसो एक बल एक आस बिस्वास। एक राम घनस्याम हित चातक तुलसीदास। सो गादुर चातक को हँसता है कि यह तो स्वाती का बूंद पीते है और गादुर अपने मुख से अध इन्द्रिय का कार्य करना अच्छा समझता है। हस का विवेक और चातक का टेक श्लाघ्य है। यथा चातक हस सराहियत टेक विवेक बिभूति। इन्हे ऐसे टेक विवेकवाले को मलिन खल हँसते है। इस भाँति कुविचारी का हँसना कहा।

कबित रसिक न राम पद नेहू। तिन्ह कह सुखद हास रस एहू ॥
भाषा भनिति भोरि मति मोरी। हँसिबे जोग हसे नहि खोरी ॥२॥

अर्थ जो कवित्व के रसिक नही है और जिन्हे श्रीरामजी के चरण से स्नेह नही है उनके लिए यह सुख देनेवाला हास्य रस है। भाषा की कविता है और मेरी बुद्धि भोरी है। अत हँसने योग्य है, हँसने मे कोई दोष नही।

व्याख्या खल न कवित्व के रसिक हो सकते है और न उन्हे रामजी के चरणो मे स्नेह ही हो सकता है। खल किसी का बखान नही करते क्योकि उन्हे रस नही

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मिलता। वे तो हरिहर यश राकेश के लिए राहु समान है। उन्हे रामपद मे नेह नही है। मेरी रचना उन्हे अटपटी मालूम पडेगी, वे हँस पडेगे। उनके हृदय मे हास्यरस का प्रादुर्भाव होगा। यथा हँसी भरघौ चित हँसि उठे जो रचना सुनि दास। कवि पडित ताको कहे यह पूरन रसहास। का नि उन्हे भी सुख मिलेगा। इस भाँति कुविचारी का हँसना कहा।

भाषा मे अक्षरार्थ के प्रकाश की यथार्थ शक्ति नही और मेरी बुद्धि मे कवित्त रचना की यथार्थ शक्ति नही। अत निश्चय कविता बेढङ्गी होगी। बेढङ्गी वस्तु के देखने सुनने से हँसी आना स्वाभाविक है, हँसने मे दोष नही है। अत उनके हँसने पर मुझे दु ख मानने के लिए स्थान नही है। 'खल परिहास होइ हित मोरा' से उपक्रम करके 'हँसे नहि खोरो' से परिहास प्रकरण का उपसहार करते है।

प्रभु पद प्रीति न सामुझि नीकी। तिन्हहि कथा सुनि लागिहि फीकी ॥
हरिहर पद रतिमति न कुतरकी। तिन्ह कहुँ मधुर कथा रघुवर की ॥३॥

अर्थ जिन्हे न तो प्रभु के चरणो मे प्रीति है और न अच्छी समझ ही है उन्हे यह कथा सुनने पर फीकी लगेगी। जिन्हे हरिहर के चरण मे प्रीति है और जिनकी बुद्धि कुतर्क करनेवाली नही है। उनके लिए रघुवर की कथा मीठी है।

व्याख्या इस कथा के मीठी लगने का कारण एकमात्र प्रभुपद प्रीति है सो जिसे है नही और न अच्छी समझ ही है अच्छी समझ होती तो समझते कि गुण गण के ज्ञान से व्यक्ति के स्वरूप का ज्ञान होता है तब वे राम गुणगान मे मन लगाते, वक्ता के गुण दोष पर दृष्टि न देते। ऐसे पुरुष को यह कथा फीकी लगेगी।

हरि और हर मे भेद नही है, इसीलिए दोनो को मिलाकर कहते है। दोनो पदो के और दोनो स्वरूपो के भूषण और आयुधो के भाव एक ही है। गदा और विभूति पृथ्वीतत्त्व, कमल और गङ्गा जलतत्त्व, सुदर्शन और भालनेत्र अग्नितत्त्व, पाञ्चजन्य और सर्प वायुतत्त्व, नन्दक और डमरू आकाशतत्त्व। इनके धारण करने वाले हरिहर है। अत जिसको हरिहर चरण मे भक्ति है, कुतर्क उठाकर इनके चरित्र मे न्यूनाधिक भाव का आरोप जो नही करते, उन्हे रघुवर की कथा मीठी लगेगी क्योकि कथा भक्ति का साधन है। यथा समुझि समुझि गुनग्राम राम के उर अनुराग बढाउ। हरिहर पद के अर्थ मे भी भेद नही। 'हरति दु खानि इति हरि' और 'हरति दु खानि इति हर।'

राम भगति भूषित जिय जानी। सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी ॥
कवि न होउँ नहि बचन प्रवीनू। सकल कला सब बिद्या हीनू ॥४॥

अर्थ सज्जन लोग अपने जी मे श्रीरामजी की भक्ति से भूषित समझकर इस कथा को सुन्दर वाणी से बडाई करते हुए सुनगे। मै न कवि हूँ और न बोलने मे चतुर हूँ। मै सब कलाओ और विद्या से हीन हूँ।

व्याख्या सज्जन ऐसे रामभक्ति के रसिक है कि कविता पर ध्यान न देकर रामभक्ति से भूषित जानकर प्रशसा करते हुए इसे सुनेगे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



शक्ति कवित्त बनाइवे की, जेहि जन्म नछत्र मे दीन्ह विधातेँ।
काव्य की रीति सिखै सुकवीन ते, देखे सुनै बहु लोग की बातें॥
दास जू जामे एकत्र ए तीन, बनै कविता मन रोचक तातें।
एक विमान चलै रथ जैसे, धुरधर सूत कि चक्र निपातें॥

'कवि न होउँ' से शक्ति की हीनता कही, 'नहीं बचन प्रवीनू' से लोक चातुरी का अभाव कहा 'सकल कला सब विद्या हीनू' से शिक्षा का अभाव कहा। कलाएँ[1] चौसठ हैं। विद्या चौदह है। इन सबका ज्ञान होना कवि के लिए अनिवार्य है। सो मैं सबसे अनभिज्ञ हूँ।

आखर अरथ अलङ्कृति नाना। छद प्रबध अनेक विधाना॥
भाव भेद रस भेद अपारा। कवित दोषगुन विविध प्रकारा॥५॥

अर्थ शब्द और अर्थ के अनेक अलङ्कार हैं, छन्द और प्रबन्ध के अनेक विधान हैं, भावों और रसों के अपार भेद हैं तथा कविता के नाना प्रकार के गुण और दोष हैं।

व्याख्या शब्द और अर्थ कविता का शरीर है। अलङ्कार गहने हैं। रस आत्मा है। गुण शोभा है। दोष शरीरविकृति अर्थात् खञ्जत्व, काणत्वादि है। छन्द नृत्य है। शब्दालङ्कार के अनेक भेद हैं। अर्थालङ्कार के भेद उससे भी अधिक हैं। छन्दों के भेद और उसके प्रस्तार का बहुत विस्तार है। यहाँ काव्यादि प्रबन्ध के अनेक विधान हैं कोई पारावार नहीं है। कवित्वके माधुर्यादि गुण हैं, अश्लील आदि अनेक दोष हैं।

कवित विवेक एक नहि मोरे। सत्य कहौ लिखि कागर कोरे॥६॥

---

[1] कला तीन सौ से अधिक हैं। उनमें से ६४ के नाम शिवतन्त्र में पाये जाते हैं १ गीतम् २ वाद्यम् ३ नृत्यम् ४ नाट्यम् ५ आलेख्यम् ६ विशेषकच्छेद्यम् ७ तण्डुल-कुसुमबलिविकारा ८ पुष्पशय्या ९ दशनवसनाङ्गरागा १०. मणिभूमिकाकर्म ११ शयन-रचनम् १२ उदकवाद्यम् १३ उदकघात १४ माल्यग्रथनविकल्पा १५ चित्रा योगा १६ शेखरापीडयोजनम् १७ नेपथ्ययोगा १८ कर्णपत्रभङ्गा १९ गन्धयुक्ति २० भूषणयोजना २१ इन्द्रजाला २२ कौचुमारयोगा २३ हस्तलाघवम् २४ चित्रशाकपूपविकारक्रिया २५ पानकरसरागासवयोजनम् २६ सूचीवायकर्माणि २७ सूत्रक्रीडा २८ प्रहेलिका २९ प्रति-माला ३० दुर्वचकयोगा ३१ पुस्तकवाचनम् ३२ नाटिकाख्यायिकादर्शनम् ३३ काव्यसमस्या-पूरणम् ३४ पट्टिकावेत्रवाणविकल्पा ३५ तर्कुकर्माणि ३६ तक्षणम् ३७ वास्तुविद्या ३८ रूप्यरत्नपरीक्षा ३९ धातुवाद ४० मणिरागज्ञानम् ४१ आकरज्ञानम् ४२ वृक्षायुर्योगा ४३ मेषकुक्कुटलावकयुद्धविधि ४४ शुकसारिकाप्रलापनम् ४५ उत्सादनम् ४६ केशमार्जन-कौशलम् ४७ अक्षरमुष्टिकाकथनम् ४८ म्लेच्छितविकल्पा ४९ देशभाषाज्ञानम् ५० पुष्प-शकटिकानिमित्तज्ञानम् ५१ यन्त्रमातृका ५२ धारणमातृका ५३ सम्पाठ्यम् ५४ मानसी-काव्यक्रिया ५५ क्रियाविकल्पा ५६ छलितकयोगा ५७ अभिधानकोषछन्दोज्ञानम् ५८ वस्त्र-गोपनानि ५९ द्यूतविशेष ६० आकर्षक्रीडा ६१ बालक्रीडनकानि ६२ वैनायकीनां विद्यानां ज्ञानम् ६३ वैजयिकीनां विद्यानां ज्ञानम् ६४ वैतालिकीनां विद्यानां ज्ञानम्।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मिलता। वे तो हरिहर यश राकेश के लिए राहु समान हैं। उन्हे रामपद मे नेह नही है। मेरी रचना उन्हे अटपटी मालूम पडेगी, वे हँस पडेगे। उनके हृदय में हास्यरस का प्रादुर्भाव होगा। यथा हँसी भरयौ चित हँसि उठे जो रचना सुनि दास। कवि पडित ताको कहे यह पूरन रसहास। वा नि उन्हे भी सुख मिलेगा। इस भाँति कुविचारी का हँसना कहा।

भाषा मे अक्षरार्थ के प्रकाश की यथार्थ शक्ति नही और मेरी बुद्धि में कवित्त रचना की यथार्थ शक्ति नही। अत निश्चय कविता बेढङ्गी होगी। बेढङ्गी वस्तु के देखने सुनने से हँसी आना स्वाभाविक है, हँसने में दोष नही है। अत उनके हँसने पर मुझे दु ख मानने के लिए स्थान नही है। 'खल परिहास होइ हित मोरा' से उपक्रम करके 'हँसे नहि खोरी' से परिहास प्रकरण का उपसहार करते हैं।

प्रभु पद प्रीति न सामुझि नीकी। तिन्हहि कथा सुनि लागिहि फीकी॥
हरिहर पद रतिमति न कुतरकी। तिन्ह कहुँ मधुर कथा रघुवर की॥३॥

अर्थ जिन्हे न तो प्रभु के चरणो मे प्रीति है और न अच्छी समझ ही है उन्हे यह कथा सुनने पर फीकी लगेगी। जिन्हे हरिहर के चरण मे प्रीति है और जिनकी बुद्धि कुतर्क करनेवाली नही है। उनके लिए रघुवर की कथा मीठी है।

व्याख्या इस कथा के मीठी लगने का कारण एकमात्र प्रभुपद प्रीति है सो जिसे है नही और न अच्छी समझ ही है अच्छी समझ होती तो समझते कि गुण गण के ज्ञान से व्यक्ति के स्वरूप का ज्ञान होता है तव वे राम गुणगान में मन लगाते, वक्ता के गुण दोष पर दृष्टि न देते। ऐसे पुरुष को यह कथा फीकी लगेगी।

हरि और हर मे भेद नही है, इसीलिए दोनो को मिलाकर कहते है। दोनो पदो के और दोनो स्वरूपो के भूषण और आयुधो के भाव एक ही है। गदा और विभूति पृथ्वीतत्त्व, कमल और गङ्गा जलतत्त्व, सुदर्शन और भालनेत्र अग्नितत्त्व, पाञ्चजन्य और सर्प वायुतत्त्व, नन्दक और डमरु आकाशतत्त्व। इनके धारण करने वाले हरिहर हैं। अत जिसको हरिहर चरण मे भक्ति है, कुतर्क उठाकर इनके चरित्र मे न्यूनाधिक भाव का आरोप जो नही करते, उन्हे रघुवर की कथा मीठी लगेगी क्योकि कथा भक्ति का साधन है। यथा समुझि समुझि गुनग्राम राम के उर अनुराग बढाउ। हरिहर पद के अर्थ मे भी भेद नही। 'हरति दु खानि इति हरि' और 'हरति दु खानि इति हर।'

राम भगति भूषित जिय जानी। सुनिहहि सुजन सराहि सुबानी॥
कवि न होउँ नहि वचन प्रवीनू। सकल कला सब विद्या हीनू॥४॥

अर्थ सज्जन लोग अपने जी म श्रीरामजी की भक्ति से भूषित समझकर इस कथाको सुन्दर वाणी से बडाई करते हुए सुनेगे। मैं न कवि हूँ और न बोलने म चतुर हूँ। मैं सब कलाओ और विद्या से हीन हूँ।

व्याख्या सज्जन ऐसे रामभक्ति के रसिक है कि कविता पर ध्यान न देकर रामभक्ति मे भूषित जानकर प्रशसा करते हुए इसे सुनेगे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



शक्ति कवित्त बनाइवे की, जेहि जन्म नछत्र मे दीन्ह विधातैं ।
काव्य की रीति सिखै सुकवीन ते, देखै सुनै बहु लोग की बातैं ॥
दास जू जामे एकत्र ए तीन, बनै कविता मन रोचक तातैं ।
एक विमान चलै रथ जैसे, धुरधर सूत कि चक्र निपातैं ॥

'कवि न होउँ' से शक्ति की हीनता कही, 'नहीं बचन प्रवीनू' से लोक चातुरी का अभाव कहा 'सकल कला सब विद्या हीनू' से शिक्षा का अभाव कहा। कलाएँ[1] चौंसठ हैं। विद्या चौदह है। इन सबका ज्ञान होना कवि के लिए अनिवार्य है। सो मैं सबसे अनभिज्ञ हूँ।

आखर अरथ अलकृति नाना। छद प्रबध अनेक विधाना ॥
भाव भेद रस भेद अपारा। कवित दोपगुन विविध प्रकारा ॥५॥

अर्थ शब्द और अर्थ के अनेक अलङ्कार हैं, छन्द और प्रबन्ध के अनेक विधान हैं, भावो और रसो के अपार भेद हैं तथा कविता के नाना प्रकार के गुण और दोष है।

व्याख्या शब्द और अर्थ कविता का शरीर है। अलङ्कार गहने है। रस आत्मा है। गुण शोभा है। दोष शरीरविकृति अर्थात् खञ्जत्व, काणत्वादि है। छन्द नृत्य है। शब्दालङ्कार के अनेक भेद है। अर्थालङ्कार के भेद उससे भी अधिक है। छन्दो के भेद और उसके प्रस्तार का बहुत विस्तार है। यहाँ काव्यादि प्रबन्ध के अनेक विधान है कोई पारावार नही है। कवित्वके माधुर्यादि गुण हैं, अश्लील आदि अनेक दोष है।

कवित विवेक एक नहि मोरे। सत्य कहौं लिखि कागर कोरे ॥६॥

---

१ कला तीन सौ स अधिक हैं। उनम से ६४ के नाम शिवतन्त्र म पाये जाते ह १ गीतम् २ वाद्यम् ३ नृत्यम् ४ नाट्यम् ५ आलेख्यम् ६ विशेषकच्छेद्यम् ७ तण्डुल कुसुमबलिविकारा ८ पुष्पशय्या ९ दशनवसनाङ्गरागा १० मणिभूमिकाकर्म ११ शयन-रचनम् १२ उदकवाद्यम् १३ उदकघात १४ माल्यग्रथनविकल्पा १५ चित्रा योगा १६ शेखरापीडयोजनम् १७ नेपथ्ययोगा १८ कर्णपत्रभङ्गा १९ गन्धयुक्ति २० भूषणयोजना २१ इन्द्रजाला २२ कौचुमारयोगा २३ हस्तलाघवम् २४ चित्रशाकपूपविकारक्रिया २५ पानकरसरागासवयोजनम् २६ सूचीवायकर्माणि २७ सूत्रक्रीडा २८ प्रहेलिका २९ प्रति-माला ३० दुर्वचकयोगा ३१ पुस्तकवाचनम् ३२ नाटिकाख्यायिकादर्शनम् ३३ काव्यसमस्या-पूरणम् ३४ पट्टिकावेत्रवाणविकल्पा ३५ तर्कुकर्माणि ३६ तक्षणम् ३७ वास्तुविद्या ३८ रूप्यरत्नपरीक्षा ३९ धातुवाद ४० मणिरागज्ञानम् ४१ आकरज्ञानम् ४२ वृक्षायुर्योगा ४३ मेषकुक्कुटलावकयुद्धविधि ४४ शुकसारिकाप्रलापनम् ४५ उत्सादनम् ४६ केशमार्जन कौशलम् ४७ अक्षरमुष्टिकाकथनम् ४८ म्लेच्छितकविकल्पा ४९ देशभाषाज्ञानम् ५० पुष्प शकटिकानिमित्तज्ञानम् ५१ यन्त्रमातृका ५२ धारणमातृका ५३ सम्पाठ्यम् ५४ मानसी-काव्यक्रिया ५५ क्रियाविकल्पा ५६ छलितकयोगा ५७ अभिधानकोषच्छन्दोज्ञानम् ५८ वस्त्र गोपनानि ५९ द्यूतविशेष ६० आकर्षक्रीडा ६१ बालक्रीडनकानि ६२ वैनायिकीना विद्याना ज्ञानम् ६३ वैजयिकीना विद्याना ज्ञानम् ६४ वैतालिकीना विद्याना ज्ञानम्।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अथ काव्य का एक भी विवेक मुझे नही है। मै कोरे कागज पर लिखकर कहे देता हूँ।

व्याख्या जिसे काव्य के स्वरूप का दर्शन हुआ है वही कह सकता है कि 'कवित विवेक एक नहि मोरे।कोरे कागज पर लिखना प्रमाण है, लिखे हुए पर लिखना प्रमाण नही है, सम्भव है कि हाथ बैठाने के लिए लिखा गया हो। कहा जा सकता है कि ग्रन्थकार ने अपना कार्पण्य दिखलाया हो यथा तापर मै रघुवीर दोहाई। जानहुँ नहि कछु भजन उपाई। परन्तु जब वस्तुस्थिति मानने से काम चल सकता है तो कार्पण्य का आड क्यो लिया जाय।

---

अर्थ १ गाना २ बजाना ३ नाच ४ नाट्य ५ लेख चित्र ६ हीरा मोती बेधना ७ चावल पुष्प का रग निकालना ८ पुष्प शय्या विधान ९ दाँत, वस्त्र तथा अङ्ग का रँगना १० मणि से भूमि रचना ११ सेज लगाना १२ जल का बजाना १३ जल का ताडन १४ माला गूँथन का विकल्प १५ चित्र योग १६ शिर परकी माला बनाना १७ नेपथ्य योग १८ कर्ण पत्र योग १९ इत्र आदि बनाना २० गहना पहिनाना २१ इन्द्रजाल २२ खाना पका आदि २३ हाथ की सफाई २४ अनेक प्रकार से भोजन बनाना २५ शर्बत, रस, राग और आसव बनाना २६ सीना, बुनना वगैरह २७ सूत का खेल २८ वुझौवल २९ प्रतिमाला ३० दूर्व वक्र योग ३१ पुस्तक बाँचना ३२ नाटिकाख्यायिका दर्शन ३३ काव्य की समस्या की पूर्ति ३४ पट्टी, बेंत, बाण आदि बनाना ३५ तर्कु के कर्म ३६ बढइ के कर्म ३७ वास्तु विद्या ३८ रूपा रत्न की परीक्षा ३९ धातुवाद ४० मणि राग का ज्ञान ४१ खान का ज्ञान ४२ वृक्ष के आयु का योग ४३ मेढा, मुर्गा और बटेर के लडाने की विधि ४४ तोता मैना पढाना ४५ निकालने की विधि ४६ बाल के मार्जन करने का कौशल ४७ अक्षरमुष्टिका कथन ४८ म्लेच्छित विद्या ४९ देश भाषा ज्ञान ५० पुष्प शकटिका निमित्तिक ज्ञान ५१ यन्त्र मात्रिका ५२ धारण मातृका ५३ सम्पाठ्यम् ५४ मानसी काव्य क्रिया ५५ क्रिया विकल्प ५६ छलितक योग ५७ अभिधान कोष और छद का ज्ञान ५८ वस्त्रका रक्षा ५९ विशेष प्रकार का जूआ ६० आकर्ष क्रीडा ६१ लडको के खिलौने ६२ वैनायकी के विद्या का ज्ञान ६३ वैजयकी विद्या का ज्ञान ६४ वैतालिकी के विद्या का ज्ञान।

ये सब विद्याएँ भारतवर्ष मे था, धीरे धीरे लुप्त हो गई। बहुतो के नाम मात्र ऊपर गिना दिये गये है अब परिचय देनेवाला नही है। बहुत सी एसी है जो सुनने मे तुच्छ मालूम होती हैं पर वे कभी चामत्कारिक थी जैसे तोता मैना पढाना। अभी थोडे दिन की बात है कि पूज्यपाद प० रक्षपाल दूबे जीका तोता रामरक्षा का पाठ करता था। तोते को कैसे पढाना जिसमे उसे रामरक्षा कण्ठ हो जाय, अब कोई नही जानता। इसी भाँति और विद्याओ के विषय मे समझना चाहिए।

चौदह विद्या ब्रह्मज्ञान रसज्ञान वेदा स्वरधरन्तथा। व्याकृति ज्यौतिषश्चैव धनुर्विद्या तथा मता। जलोत्तरणक न्याय काव्याश्वारोहणन्तथा। नटविद्या कृषिर्वैद्य विद्या ह्येता' चतुर्दश।

अथ ब्रह्मज्ञान रसायन वेद स्वरज्ञान, व्याकरण, ज्यौतिष धनुर्वेद, तैरना, न्याय, काव्य, घोडे की सवारी, नटविद्या, खेती और वैद्यक ये चौदह विद्याएँ हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो भनिति मोरि सब गुन रहित, बिस्व बिदित गुन एक।
सो बिचारि सुनिहहिं सुमति, जिन्ह के बिमल बिवेक ॥९॥

अर्थ मेरी कविता सारे गुणो से रहित है, पर एक गुण ऐसा है कि ससार मे विख्यात है, यह विचारकर इसे सुमति जिन्हे निर्मल विवेक है सुनेंगे।

व्याख्या मुझे कविता का विवेक नही है, इसलिए मेरी कविता भी सब गुण रहित है, निर्मल विवेकी वे ही हैं जो दोषो पर दृष्टि न देकर गुण ग्रहण करते हैं और कविता मे जो गुण है वह विश्वविदित है। अत उस गुण के कारण वे अवश्य सुनेंगे। फलत बुध समाज मे मेरी कविता का आदर होगा।

एहि महँ रघुपति नाम उदारा। अति पावन पुरान श्रुति सारा ॥
मंगल भवन अमगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी ॥१॥

अर्थ इसमे रघुपति का उदार नाम है, जो अति पवित्र पुराण और श्रुतियो का सार है। यह कल्याण का घर और अमङ्गल को दूर करनेवाला है और जिसे उमा सहित पुरारि शिवजी जपा करते हैं।

व्याख्या अब उस विश्व विदित गुण को स्पष्ट करते हैं कि उसमे रघुपति का नाम है और वह १ उदार २ अतिपावन ३ पुराण श्रुतिसार ४ मङ्गल भवन और ५ अमङ्गल हारी है और ६ उसकी महिमा ऐसी है कि उसे उमाके सहित पुरारि शिवजी जपते हैं।

| | |
|---|---|
| १ उदार | यथा नाम राम को कल्पतरु कलि कल्यान निवास। |
| २ अति पावन यथा | आभीर जवन किरात खल स्वपचादि अति अघरूप जे।<br>कहि नाम बारक तेऽपि पावन होहि राम नमामि ते ॥ |
| ३ पुराण श्रुतिसार | यथा बिधि हरि हर मय बेद प्रान सो।<br>अगुन अनूप सगुन निधान सो ॥ |
| ४ मगल भवन | यथा नाम जपत मगल दिसि दसहूँ। |
| ५ अमगल हारी | यथा जिन्हकर नाम लेत जग माही।<br>सकल अमगल मूल नसाही ॥ |
| ६ उमा सहित जेहि जपत पुरारी यथा | सहस नाम सम सुनि सिव बानी।<br>जपति सदा पिय सग भवानी ॥ |

भनिति बिचित्र सुकबि कृत जोऊ। राम नाम बिनु सोह न सोऊ ॥
बिधुबदनी सब भाँति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी ॥२॥

अर्थ कविता अनोखी हो और सुकवि की की हुई हो परन्तु राम नाम बिना उसकी भी शोभा नही है। स्त्री चन्द्रमुखी हो और सब प्रकार से शृङ्गारित हो तो भी उस श्रेष्ठ नारी की कपडे बिना शोभा नही होती।

व्याख्या 'जग ते अद्भुत सुग मदन सुन्दर अर्थ कवित्त' अत सुन्दर कविता को सुन्दर स्त्री कहा। यदि कविता सुकवि कृत हो अर्थात् शब्दालङ्कार, अर्थालङ्कार

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



स युक्त हो और उसम कवितोचित सब गुण हो तब वह सब प्रकार से शृङ्गारित कही जायगी। पर यदि उस कविता म राम नाम न हो तो उसकी शोभा उसी भाँति नही हे जिस भाति सब प्रकार से शृङ्गारित नायिका की शोभा कपडा न होने से नही होती।

आज तक साहित्यकारो ने कविता बनिता के शरीर, आत्मा, अलकार, गुण और दोषो की कल्पना तो की पर किसी ने साडी आदि की कल्पना न की। श्री ग्रन्थकार का मत है कि भगवन्नाम की साडी बिना कविता बनिता नग्न है, आदर्शनीया है, उसका देखना पाप है उसकी शोभा भी नही, भयानक मालूम पडती है। यथा न नग्ना स्त्रियमीक्षेत पुरुषो वा कदाचन कूर्म पुराणे।

सब गुन रहित कुकवि कृत बानी। राम नाम जस अकित जानी ॥
सादर कहहि सुनहि बुध ताही। मधुकर सरिस सत गुन ग्राही ॥३॥

अर्थ सब गुणो से रहित कुकवि की कविता को भी राम नाम के यश से अङ्कित जानकर पण्डित जन उसे आदर पूर्वक कहते सुनते हैं, क्योकि सन्त जन भौरें की तरह गुणग्राही होते हैं।

व्याख्या जो कविता बनिता सब गुण रहित महाकुरूपा है, कुकवि कृत होने से अलङ्कारादि से भी रहित है पर रामनाम यश से अलङ्कृत है, साडी आदि पहिने हुए है, वही बुधजनो द्वारा दर्शनीया है। क्याकि जिस भाँति भौंरा फूल म रस लता है और किसी बात स उसका प्रयोजन नही उसी भाँति सन्त गुण ग्रहण कर लते हैं, अन्य प्रपञ्च से प्रयोजन नही रखते। आदर के साथ राम यश युक्त बेढङ्गी कविता को भी कहा सुना करते हैं।

जदपि कवित रस एको नाही। नाम प्रताप प्रगट एहि माही ॥
सोइ भरोस मोरे मन आवा। केहि न सुसग बडप्पनु पावा ॥४॥

अर्थ यद्यपि इसम कविता का एक भी आनन्द नही है तथापि रामजी का प्रताप इसमे प्रकट है। यही भरोसा मेरे मन म आया कि किसने सत्सग से बडप्पन बडाई नही पाया?

व्याख्या मेरी कविता म कविनोचित गुण नही सही पर रामनाम का प्रताप इसम प्रकट है। जैसे शम्भु का प्रताप साबर मन्त्र म प्रकट है। यथा अनमिल आखर अथ न जापू। प्रगट प्रभाव महेस प्रतापू। वह सस्कृत के मन्त्रो की भाति कीलित नही है। मैं जो कविता करने चला सो 'रामनाम के प्रताप के भरोसे कि रामनाम के सम्पर्क से मेरी कविता म भी महिमा आजावेगी।

धूमौ तजै[1] सहज करुआई। अगर प्रसग सुगध बसाई ॥
भनिति भदेस बस्तु भलि बरनी। राम कथा जगमगल करनी ॥५॥

अर्थ धूआँ भी अगर के साथ स सुगन्धित हो जाता है और अपने स्वाभाविक

---

१ यहाँ तद्गुणालङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


कडुएपन को छोड देता है। मेरी कविता यद्यपि भद्दी है परन्तु इसमे अच्छी वस्तु का वर्णन किया गया है। क्योंकि : रामकथा जगत् का मङ्गल करनेवाली है।

व्याख्या : प्रश्न उठता है कि सुसङ्ग से बड़ाई भले ही मिल जाय पर कविता का दोष तो बना ही है। जो बात अच्छी है, उसीकी प्रशंसा प्राप्त है। पर जो अश बुरा है वह अच्छा कैसे हो जायगा ? इसपर कहते हैं कि अगर के साथ से धूम मे सुगन्ध आजाती है और धूम का कडआपन मिट जाता है। इसी भाँति रामयशरूपी अगर के साथ होने से सुभाषा रूपी सुवास आ जावेगी और भद्दापनरूपी कटुता मिट जावेगी।

वर्णनीय वस्तु के भली होने से ग्राम्य गिरा का दोष अकिञ्चित्कर हो जाता है। भदेस शब्द का अर्थ महात्माओने किया है कि 'भ्रष्ट है अङ्ग जिसका' उसे भदेस कहते हैं अर्थात् अपभ्रंश भाषा, परन्तु भदेस शब्द का प्रयोग ऐसे देशों के प्रति होते देखा जाता है, जहां के निवासी अत्यन्त ही गँवार हों। अत्यन्त गँवार को 'भदेसिया' कहते हैं।

राम कथा को जगमङ्गलकरणी कहकर उदार कहा। छः गुण नाम के 'उदारादि' ऊपर कह आये हैं, वे ही छ. गुण चरित के भी कहेगे। यथा :

छं. मंगल[1] करनी कलिमल हरनि, तुलसी कथा रघुनाथ की।
गति कूर कविता सरित की ज्यौं, सरति पावन पाथ की॥
प्रभु सुजस संगति भनिति भल, होइहि सुजन मन भावनी।
भव अंग भूति मसान की, सुमिरत सुहावनि पावनी॥

अर्थ : तुलसीदासजी कहते है कि राम की कथा कल्याण करनेवाली और कलियुग के पापो को दूर करनेवाली है। कविता सरिता की टेढी गति, पवित्र जल वाली गङ्गा की गति के समान है। प्रभु के सुयश के साथ यह कविता भली और सुजन मन भावनी होगी। महादेव जी के अङ्ग के साथ मसान की राख भी स्मरण करने में सुहावनी और पवित्र है।

व्याख्या : कविता सरिता की गति टेढी है। पर रामयशरूपी जल से भरी है। गङ्गा की भाँति सब लोग पवित्रता पर ध्यान देते हैं। काशी की गङ्गा की भाँति टेढी गति की अधिक शोभा है। मुझसे कविता करते नहीं बना, उसकी गति टेढी हो गई, पर रामयश से भरी है, अतः सुजन मन भावनी है। इससे गुण दोष कहा। अब कहते हैं कि रामयश शङ्कर का शरीर है। मेरी कविता मसान की राख है। भयावनी और अपावनी है, सो शिवजी के शरीर के सम्बन्ध से सुहावनी और पावनी हो गई इससे अलङ्कृता कहा, क्योंकि विभूति शिवजी का अलङ्कार है। भावार्थ यह कि रामयश के साथ होने से मेरे शब्दों मे चित्ताकर्षकता, अर्थ मे माधुर्य आजायगा। दोष तुच्छ हो जायँगे और सुहावनी पावनी होकर कविता अलंकृत भी हो जायगी। 'क्रूर' का ही प्राकृतरूप कूर है। गति के साहचर्य से इसका अर्थ टेढा माना गया।

---

१. यह हरिगीतिका छन्द है। इस छन्द मे २८ मात्रा का एक पाद होता है। सोलह पर यति होती है अन्त मे लघु और गुरु होना है। किसी चौकल मे जगण न पडना चाहिए।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



'मगल करणि' से 'मगल भवन' कहा। कलिमलहरणि से 'अमगलहारी' कहा। 'कथा रघुनाथ की' कहकर 'पुराण श्रुतिसार' कहा। 'पावनपाथ की' कहकर 'अति-पावन' कहा। 'सुजन मनभावनी' से 'उमा महेश प्रिय' कहा। सो जो कुछ छ गुण नाम मे कहे थे वे शब्दान्तर से मेरी कविता सरिता मे आगये।

दो. प्रिय लागिहि अति सबहि मम, भनिति राम जस संग।
दारु बिचारु कि करइ कोउ, बंदिअ मलय प्रसंग ॥१०॥
स्याम सुरभि पय बिसद अति गुनद करहि सब पान।
गिरा ग्राम्य सियराम जस गावहि सुनहि सुजान ॥१०क॥

अर्थ गाय काली है, पर दूध तो उसका अत्यन्त उज्ज्वल और अत्यन्त गुण-कारी है। उसे सब लोग पीते हैं। इसी भाँति गँवारी बोली मे भी सीताराम का यश, सज्जन गाते है और सुनते है।

व्याख्या जो शब्द, अर्थ, गुण, दोष, अलङ्कारादि कुछ नही समझते, उन्हे भी छन्दोबद्ध कविता सुनने मे प्रिय लगती है। रामयश के साहचर्य से मेरी कविता सबको अति प्रिय लगेगी 'प्रिय लागिहि अति सबहि'। रामयश मलय-मारुत है, इसके साथ से सभी लकडियाँ चन्दन होकर वन्द्य हो जाती है। क्या कोई लकडी का विचार करता है। मन्यामहे मलयमेव यदाश्रयेण कङ्कोलनिम्बकुटजा अपि चन्दना स्यु। इसी भाँति मेरी छन्दोबद्ध कविता भी जगवल्लभ हो जायगी। मेरी कविता के दोषो की ओर कोई दृष्टिपात न करेगा, रामयश के साथ होने से ही सब को अत्यन्त प्रिय हो जायगी।

कृष्णा गौ का दूध कपिला के दूधसे अधिक श्वेत और अधिक गुणद होता है। यथा कृष्णाया गोर्भवं दुग्ध वातहारिगुणाधिकम्। इति वैद्यरहस्ये। कपिला के दूध मे कुछ पीलापन और पाक म गुरुता होती है और शूद्रो को उसके पीने का अधिकार नही है। कृष्णा गौ के दूध म सफेदी अधिक होती है और पाक मे भी लघु होता है, उसके पीने के सभी अधिकारी हैं। संस्कृत, कपिला गौ सी श्रेष्ठ है और भाषा कृष्णा गौ सी कनिष्ठ है, सियराम यश उनका दूध है। सुजान कृष्णा गौ के दूध से ही काम लेते हैं जिसमे शूद्र को भी लाभ हो सके और समझने मे भी आयास न हो। 'पान करना यह रस भाव का पान कहा। भाव ही, विभाव, अनुभाव तथा सचारी भाव मे पुष्ट होकर रस होता है। अत भाव मे रस का भी अन्तर्भाव है।' इस भाँति 'आखर अरथ अलंकृत नाना। छन्द प्रबध अनेक विधाना। भाव भेद रस भेद अपारा। कवित दोष गुन बिबिध प्रकारा। कबित्त बिबेक एक नहिं मोरे।' इस बडे दोष का मार्जन किया।

मनि[1] मानिक मुकुता छबि जैसी। अहि गिरि गज सिर सोह न तैसी॥
नृप किरीट तरुनी तनु पाई। लहहिं सकल सोभा अधिकाई ॥१॥

१ यहाँ पर्यायालङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

अर्थ मणि, मानिक और मोती की जैसी शोभा होनी चाहिए, वैसी साप, पर्वत और हाथी के मस्तक पर नही होती। राजा, मुकुट और नवयौवना स्त्री का शरीर पाकर वे अधिक शोभा को प्राप्त होते हैं।

व्याख्या अब कहते हैं कि संस्कृत के महाकवियो की भणिति मेरे भाषा बन्ध मे आकर अधिक शोभित होगी। अहि के सिर में मणि, गिरि मे माणिक और गज के सिर मे मुक्ता होती है। ये सब शुचि अमोल और सुन्दर हैं। पर जैसी इनकी शोभा है, वैसी उत्पत्तिस्थल मे नही होती। सर्प के सिर पर मणि की क्या शोभा है? पर्वत में माणिक और हाथी के सिर में मुक्ता की क्या शोभा है? राजा के धारण करने पर मणि की, मुकुट में जटित होने पर माणिक की और सुन्दरी के शृङ्गार मे मुक्ता की, स्वाभाविक शोभा से भी अधिक शोभा हो जाती है।

तैसेहि सुकवि कवित बुध कहही। उपजहि अनत अनत छवि लहही॥
भगति हेतु विधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवति धाई॥२॥

अर्थ इसी तरह सुकवि की कविता के लिए भी पण्डित कहते हैं कि पैदा दूसरे जगह होती है और शोभा दूसरे जगह पाती है। भक्ति के कारण सरस्वती देवी ब्रह्मदेव के घर को छोडकर स्मरण करते ही दौडी हुई आती है।

व्याख्या यहाँ तीन सुकवि है १ शम्भु २ याज्ञवल्क्य और ३ भुसुण्डि। ये ही क्रमश १ अहि २ गिरि और ३ गज से उपमित हैं। गरल कण्ठ होने से शम्भु को अहि से उपमित किया। वेद के सब तत्त्वो के धारण करने से याज्ञवल्क्य को गिरि से उपमित किया यथा करगत वेद तत्त्व सब तोरे। पावन पर्वत वेद पुराना। खाने के दाँत और, तथा दिखाने के दाँत और होने से भुसुण्डि जी को गज से उपमित किया। भुसुण्डि जी देखने मे कटुभाषी काग हैं, पर हैं बडे मधुर भाषी। यथा मधुर वचन बोलउ तब कागा। ये तीन सुकवि है। यथा यत्पूर्वं प्रभुणा कृत सुकविना श्री शम्भुना। इनकी कही हुई कथाएँ यथाक्रम मणि, माणिक और मुक्ता है।

जहाँ ये कथाएँ हुईं, वहाँ इनकी जैसी चाहिए वैसी शोभा नही हुई। कैलास पर्वत पर एकान्त मे शम्भु ने गिरिजा से, देववाणी म कथा कही। सब मुनियो के विदा हो जाने पर प्रयागराज म याज्ञवल्क्य ने भारद्वाज से देववाणी मे कथा कही। समाज म केवल भुसुण्डि की कथा हुई, सो भी पक्षीभाषा मे और पक्षियो के मध्य मे। इसलिए कहते हैं कि 'अहि, गिरि, गज सिर सोह न तैसी।' छविप्राप्ति के स्थान भी तीन हैं। १ नृप २ किरीट और ३ युवती। सो ज्ञान नृप है। यथा सचिव विराग विवेक नरेसू। धर्म मुकुट है। यथा मुकुट न मोहि भूप गुन चारी। यहाँ अपन्हुति अलङ्कार द्वारा भूप के चारो गुण साम, दान भेद और दण्ड को मुकुट कहा। उपासना तरुणी है। यथा भगति सुतिय कल करन विभूषन।

अत उमा शम्भु सवाद की शोभा मानस के ज्ञानघाट पर हुई। भारद्वाज याज्ञवल्क्य सवाद की शोभा मानस के कर्मघाट पर हुई ~~और गरुड भुसुण्डि~~ सवाद की शोभा मानस के उपासनाघाट पर हुई। यथा सुठि सुन्दर सवाद बर, बिरचेउँ बुद्धि

ankurnagpal108@gmail.com



विचारि। ते येहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि। इस भाँति तीन घाट कह कर अब चौथा कहते हैं :

सबके स्वाधिष्ठान चक्र मे ब्रह्मदेव का वास है, वही ब्रह्मभवन है। परावाणी वही पर मूलाधार मे रहती है। वहाँ से जब यह नाभिदेश को प्राप्त होती है, तब इसका नाम पश्यन्ती होता है और जब यह हृदय देश मे अवस्थान करती है, तब इसका नाम मध्यमा पडता है और जब कण्ठ, ताल्वादि स्थान मे आकर वर्णरूप से अभिव्यक्त होती है तब इसका नाम वैखरी पडता है। वैखरी वाक् को ही अर्थबोधन का सामर्थ्य है। इसी के द्वारा अपना मनोगत भाव दूसरे को बतलाया जाता है। परा, पश्यन्ती, मध्यमा और वैखरी यथाक्रम वाणी की सूक्ष्मतर, सूक्ष्म सूक्ष्मतम, और स्थूल अवस्थाएँ हैं। सूक्ष्मतम अवस्था से स्थल अवस्था मे आना ही वाणी का ब्रह्मभवन से यहाँ पधारना है।

यही वाणी भगवती कविकुल की इष्ट देवता है, भक्ति के कारण यह सूक्ष्मतम अवस्था से सूक्ष्मतर मे और उससे फिर सूक्ष्म मे तथा उसे भी पारकर स्थूल अवस्था मे बडे वेग से आती है। यह उसकी भक्तवत्सलता है। इसी बात को महाकवि ग्रन्थकार ने 'भगति हेतु विधि भवन विहाई। सुमिरत सारद आवत धाई।' इस एक अर्धाली म कितनी पण्डिताई से कहा है।

रामचरित सर बिनु अन्हवायें। सो श्रम जाइ न कोटि उपायें ॥
कवि कोबिद अस हृदय बिचारी। गावहिं हरिजस कलिमल हारी ॥३॥

अर्थ रामचरित्र सर मे बिना नहलाये, वह श्रम करोड उपाय करने पर भी नही जाता, पण्डित कवि ऐसा हृदय मे विचार करके कलिमल के हरण करनेवाले हरियश का गान करते हैं।

व्याख्या भाव यह कि इस भाँति पधारने पर सरस्वती के श्रमापनोदन का उपाय तथा पूजन होना चाहिए और वह रामयशगान से ही होता है। रामयशगान मे ही सरस्वती का साफल्य है, अन्य कोई उपाय सरस्वती के श्रमापनोदन का नही है यथा मज्जन कीन्ह पथ श्रम गयऊ। सुचि जल पियत मुदित मन भयऊ। राम-चरित मे स्नान कराने से सरस्वती का पथ-श्रम जाता रहता है और उनके स्वामी का गुणानुवाद ही उनका पूजन है। यथा सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी। कवियो मे जो पण्डित हैं, वे इस बात को समझते हैं। 'मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्। आत्मवत् सर्वभूतेषु य. पश्यति स पण्डित। जो दूसरे की स्त्री को माता और दूसरे के द्रव्य को मिट्टी का ढेला और समस्त प्राणियो को अपने जैसा समझता है, उसे पण्डित कहते हैं। ऐसा पण्डित कवि भगवान् का गुणानुवाद छोडकर, प्राकृतजनका गुणगान क्यो करने लगा? लोभी कवि ही प्राकृत जन का गुणगान करते हैं, उन्हें पण्डित नही कहा जा सकता। पण्डित कवि हरियश का गान करके सरस्वती का श्रमापनोदन तथा पूजन करता है और उसके द्वारा कलिमल का नाश करके, जगत् का उपकार करता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कीन्हे प्राकृत जन गुनगाना । सिर धुनि गिरा लगत पछिताना ॥
हृदय सिंधु मति सीप समाना । स्वाति सारदा कहहि सुजाना ॥४॥

अर्थ सासारिक पुरुषो का गुणगान करने से, सरस्वती सिर धुनकर पछताने लगती है। हृदय को सिन्धु और वुद्धि को सीप तथा सरस्वती को सुजान लोगो ने स्वाती नक्षत्र के समान वतलाया है।

व्याख्या ससारी जीवों मे ईश्वरत्व विना माने स्तुति वन नही सकती। अत उनकी स्तुति मिथ्या है। इसलिए सरस्वती पछताती है कि इसके अधीन मैंने अपने को क्यो किया ? सरस्वती का पछताना स्पष्ट दिखाई देता है। स्तुतिकर्ता खिन्न हो जाता है और दीन हो जाता है, पर लोभवश रचना करता जाता है।

समुद्र की सीपी मे मोती होती है। सरस्वती का आगमन स्वाती नक्षत्र का आगमन है। सो सब वर्षावाले नक्षत्रो के पीछे आती है, प्रायेण वरसती भी कम है। इसी भाँति रामसुयश की वर्षा होती है और सुकृती लोग उससे लाभ भी उठाते हैं।

जौ वरखै वर वारि विचारू । होहि कवित मुकुतामनि चारू ॥५॥

अर्थ यदि विचाररूपी जल की वर्षा करे, तो कवितारूपी सुन्दर मुक्तामणि उत्पन्न हो।

व्याख्या सरस्वतीरूपी स्वाती नक्षत्र यदि विचाररूपी जल की वर्षा करें और उसे वुद्धिरूपी सीपी ग्रहण कर सके तव कवितारूपी सुन्दर मोती उत्पन्न होती हैं। भाव यह कि सच्चिदानन्द रामके चिदशका विवर्त ही वाणी है, उसीकी कृपा मे कवि को प्रतिभा होती है जिसके द्वारा सुन्दर मोती कविता वनती है।

दो०. जुगुति वेधि पुनि पोहिअहि, रामचरित वर ताग ।
पहिरहि सज्जन विमल उर, सोभा अति अनुराग ॥११॥

अर्थ युक्ति से वेधकर उन्हे रामचरितरूपी सुन्दर तागे मे पिरोना चाहिए। सज्जन लोग उसे अपने निर्मल हृदय मे धारण करते हैं, अति अनुराग ही उसकी शोभा है।

व्याख्या उन मोतियो को युक्तिरूपी सूक्ष्म वरमे से वेधे, जिसमे टूट न जाँय, अर्थ वा अनर्थ न हो जाय और उसे क्रम से उतार चढाव के साथ रामचरित के श्रेष्ठ तागे मे पिरोए। यही तागा उन मोतियो के धारण मे समर्थ है। तव वह माला सज्जनो के धारण योग्य होती है और उनमे शोभारूपी अनुराग को वढाती है। भावार्थ यह कि ग्रन्थकार की दीनघाट की कथा सीपीवाली मुक्ता है।

देव, आर्ष और सिद्ध कविताएँ, मणि, माणिक और गजमुक्ताएँ है पर मानुष कविता तो सीपी की मोती है। ग्रन्थकार कहते हैं कि उसका भी मैं ठीक पात्र नही। उसमे तो मोती उत्पन्न करने की शक्तिवाली तथा समुद्रतल से उठकर स्वाती विन्दु ग्रहण की सामर्थ्यवाली सीपी जैसी वुद्धि की आवश्यकता है जिसमे कविताकी शक्ति हो और प्रतिभा हो। अत अपना परिचय देते हैं :

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जे जनमे कलिकाल कराला । करतब बायस बेप मराला ॥
चलत कुपथ वेद मग छाँडे । कपट कलेवर कलिमल भाँडे ॥१॥

अर्थ इस कराल कलियुग मे जिन्होने जन्म ग्रहण किया है जिनकी करनी कौए के समान और वेष हस के समान है, वेद के मार्ग को छोडे हुए कुमार्ग मे चलते है कपट की मूर्ति और कलियुग के दोषो के पात्र हैं।

व्याख्या इस कराल कलिकाल मे सज्जन बहुत कम जन्म ग्रहण करते हैं, अधम खल ही अति अधिक उत्पन्न होते है। यह काल ही विपरीत है, इसीलिए इसे कराल कहा। यथा यत्र कामगिरो वेदा यत्र धर्मोऽर्थसाधनम्। यत्र स्वप्रतिभा मान तस्मै श्रीकलये नम । जहाँ आराम की बातें ही श्रुति है, जहाँ धर्म अर्थ का साधन होता है, जहाँ अपनी ही बुद्धि प्रमाण है, उस कलि को नमस्कार है। भगवान् ने स्वय कहा है, ऐसे अधम मनुज खल कृतजुग त्रेता नाहि। द्वापर कछुक वृंद बहु, होइहहिं कलिजुग माहि। मैं उन 'वृन्द बहु' मे से हूँ। 'करतब बायस' अर्थात् 'छली मलीन न कतहुँ प्रतीती और वेष हस का साधु का ' बनाए रहता हूँ। यथा करि हस को वेष बडो सब ते तजिदे बक बायस की करनी।

वेद मार्ग नही छोडते हुए जो कुपथ मे पैर डाल देते हैं, उनकी वेद मार्ग पर लौट आने की आशा है। और जिन्होने वेद मार्ग छोड दिया, वे रास्ता ही भूल जाते है, फिर लौट नही सकते। कपट कलेवर का भाव यह कि उनका तिलक, मुद्रा, पूजा-पाठ सब कपट मात्र है। वस्तुत उनमे राग-द्वेषादि कलिमल भरा पडा है।

बचक भगत कहाइ रामके। किंकर कचन कोह काम के॥
तिनमहँ प्रथम रेख जग मोरी। धीग धरमध्वज धँधरच (धधक) धोरी॥२॥

अर्थ ठग लोग राम के भक्त कहलाकर भी कञ्चन, क्रोध और काम के दास है उन धीग, धर्मध्वज और पाखण्ड रचनेवालो के धुरिया म पहिली गिनती मेरी है।

व्याख्या हैं तो ठग, पर ऐसा मायाजाल फैलाते है कि लोग उन्हे रामभक्त कहने लगे। वे राम के दास नही है, लोभ, क्रोध और काम के दास है। है कौवे[2] पर धीगाधीगी से हस बने हुए है। इसलिए उन्हे धीग कहा। वैदिक मार्ग का परित्याग करके कुपन्थ[3] पर पाँव दिये है। कपट से साधु वेष बना रक्खा है, पर कलिमल से

---

१ अपनायो तुलसी सा धीग धम धूसरो यथा ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर, करहिं न दूसरि बात। कौडी लागि लोभ बस करहिं विप्र गुरु घात।

२ यथा वारविलासिनी के घर म अधरासव पान किये सुखसे।
चाँदनी रात कटी मदनोत्सव म ललनागन सग बसे॥
प्रातहि दीक्षित है मखज्ञ हैं, पावक सेवक हैं मनसे।
तज्ञ हैं, तापस है मुनि है इन धूर्तन ने सब लोग ग्रसे॥

३ गगा तीर तरग शीतल शिलापै है जमा आसन।
बैठे हैं कुश दड हस्त बेणु के हैं धरे बासन॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


पूर्ण हैं। अत धर्मध्वज कहा। वस्तुतः काम, क्रोध, लोभ के गुलाम हैं, दुनिया को ठगने के लिए अपने को रामभक्त घोषित करते हैं। अतः धँधरच धोरी कहा।

ढगरच : पाखण्डी : शब्द का धँधरच हो गया। 'धधक' पाठ मानने से 'धर्म ध्वज के धन्धा' का धुरी अर्थ करना पड़ेगा।

श्रीगोस्वामीजी कहते हैं कि ऐसे लोगो में भी दोषोत्कर्ष के कारण मेरी प्रथम गणना है। धीग, धर्मध्वज तथा पाखण्डियों की धुरी हूँ।

जौं अपने अवगुन सब कहऊँ। बाढइ कथा पार नहिं लहऊँ॥
ताते मै अति अलप बखाने। थोरे महुँ जानिहहिं सयाने॥३॥

अर्थ : जो अपने सब अवगुण कहने लगूँ तो कथा बढ जायगी। पार न पा सकूँगा। इसलिए मैंने बहुत कम वर्णन किया। बुद्धिमान् थोडे में ही समझ लेंगे।

व्याख्या : बड़ा होने का कारण कहते हैं कि मेरे अवगुण असख्य हैं। यथा :

तेऊ न मेरे अघ अवगुन गनिहैं।
जौं जमराज काज सब परिहरि इहै ख्याल उर अनिहैं।
चलिहैं छूटि पुंज पापिन के, असमजस जिअ जनिहैं॥
देखि खलक अधिकार प्रभू सों, मेरी भूरि भलाई भनिहैं।
हँसि करिहैं परतीति भगत की, भगत सिरोमनि मनिहैं॥
ज्यौं त्यौं तुलसीदास कोसलपति, अपनाएहि पर बनिहैं।

विनय प ९५

'धीग धरमध्वज धँधरच धोरी' कहना अत्यल्प वर्णन है। सयाने इतने मे ही समझ लेंगे कि कविता मुक्ता उपजाने योग्य शक्ति मुझमें हो नहीं सकती फिर भी मैं कविता करता हूँ : किसी भाँति तुकबन्दी करता हूँ। जो दूसरे मेरे लिए कहते सो मैं स्वय कह रहा हूँ।

समुझि बिबिध बिधि बिनती मोरी। कोउ न कथा सुनि देइहि खोरी॥
एतेहु पर करिहहिं जे असंका। मोहिते अधिक ते जड़ मति रंका॥४॥

अर्थ : मेरी अनेक प्रकार की विनती को समझकर, कथा सुनकर कोई दोष न देगा। इतने पर भी वे ही आशङ्का करेंगे जो मुझसे भी अधिक मूर्ख और बुद्धिहीन हैं।

व्याख्या : 'करन चहौं रघुपति गुन गाहा' से 'सुनिहहिं बाल बचन मन लाई' तक एक विधि। 'पैहहिं सुख सुनि सुजन सब खल करिहहिं उपहास' तक दूसरी विधि। 'सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी' तक तीसरी विधि। 'सो विचारि सुनिहहि

---

फेरें चचल अगुली पटु बढी रुद्राक्ष माला महा।
दानो के सग खैंचने घगघनी के ढोग वाले सदा॥
ठोढी मस्तक ओठ पीठ उरमें जानू गले गालमें।
जपा कुसिर मे किये तिलक हैं दवेता घलोरे घने॥
चाटी मे तथा कमर मे क्याही हिलै कानमे।
दर्मों के अगुए मनो तनु घर हैं दम्भजी ध्यान म॥ प्र च

ankurnagpal108@gmail.com



सुजन जिनके विमल विवेक' तक चौथी विधि। 'गिरा ग्राम्य सियराम जस गावहिं सुनहिं सुजान' तक पाँचवी विधि। 'थोरेमहु जानिहै सयाने' तक छठी विधि। इस भाति मैंने विविध विधि से विनती की। उसे समझकर यह कोई न कहे कि तुलसीदास की मोतियाँ कविता अच्छी नही है।

अब दोष देने की कौन सी बात है ? दोष वहाँ दिया जाता है, जहाँ गुणाभिमान हो। बाल वचन आशङ्का योग्य नही होता, वहाँ तो पदे-पदे त्रुटि रहती है।

कवि न[1] होउँ नहि चतुर कहावो। मति अनुरूप राम गुन गावो॥
कह रघुपति के चरित अपारा। कहँ मति मोरि निरत ससारा॥५॥

अर्थ न मै कवि हूँ, न चतुर कहलाता हूँ, बुद्धि के अनुसार रामगुण गाता हूँ। कहा अपार अघुपति के चरित और कहाँ ससार के प्रपच मे सनी हुई मेरी बुद्धि।

व्याख्या 'चतुर कहावो' से भाव यह कि न मेरा ऐसा आचरण है कि कोई चतुर कहे और न कोई मुझे चतुर कहता है। कवि होते तो दोष निकालना उचित था। चतुर कहलाते तो आशङ्का करना उचित था। फिर भी मैं राम गुण गाने चला हूँ जिसे काई यथार्थ रूप म गा ही नही सकता।

'मति अनुरूप' को स्पष्ट करते है। कहँ रघुपति के चरित अपारा। कहँ मति मोर निरत ससारा। यहाँ दो बार कहँ कहँ कहकर महान् अन्तर दिखला रहे हैं। यथा द्वौ क्वशब्दौ महदन्तर सूचयत। यथा काम क्रोध मद लोभ रत गृहासक्त दुखरूप। ते किमि जानहिं रघुपतिहि मूढ परे भवकूप। स्वय कूप मे पडा हुआ अपार का पार क्या पायेगा ?

जेहि मारुत गिरि मेरु उडाही। कहहु तूल केहि लेखे माही॥
समुझत अमित राम प्रभुताई। करत कथा मन अति कदराई॥६॥

अर्थ जो हवा मेरु पर्वत को उडाती है, वहा उसके सामने रूई की क्या गिनती है। श्रीरामजी की अपार प्रभुता समझकर कथा रचने मे मेरा मन अति कातर हो रहा है।

व्याख्या राम गुण को अपार कहकर अब अवर्णनीय भी कहते है। मेरु सा भारी कुछ नही और तूल सा हलका कुछ नही। मरुत उनचास है। मेरु पर्वत के उडाने मे समर्थ हैं। पुराणो मे कथा आई है किसी समय मारुत मेरु को उडाने के लिए तैयार हो गये थे, सो गरुड द्वारा रक्षा हुई। राम कथा को मरुत से और बडे भारी कवि कहनेवालों की उक्ति को मेरु से उपमित किया। सो उनका भी कहना उखड जाता है जमता नही। मैं तो तूल रुई हूँ, मेरी क्या गिनती है ? मुझसे कहते न बनेगा, इसमे सन्देह ही क्या है।

दो सारद सेष महेस विधि, आगम निगम पुरान।
नेति नेति कहि जासु गुन, करहि निरतर गान॥१२॥

१. यहाँ आक्षेप द्वितीय . है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ सरस्वती, शेष, महादेव, ब्रह्मदेव शास्त्र, वेद और पुराण। ये सब नेति नेति यह नहीं यह नहीं कहकर जिसका गुण सदा गाया करते हैं।

व्याख्या ये सातों शारद शेषादि कुलाचल हैं। बड़े भारी हैं। इनके कहने का बड़ा वजन गौरव है। सो निरन्तर कहते हैं, परन्तु 'नेति-नेति' बोलकर कहते हैं। इदमित्थ रूप से कुछ नहीं कहते। सो जहाँ नेति कहा, वहाँ पहिले का कहा हुआ उड़ गया। अत नेति नेति पूर्वक कहने से कोई बात जमने नहीं पाती।

सब जानत प्रभु प्रभुता सोई। तदपि कहे बिनु रहा न कोई॥
तहाँ बेद अस कारन राखा। भजन प्रभाउ भाँति बहु भाखा॥१॥

अर्थ प्रभु की वही प्रभुता सामर्थ्य सब जानते हैं तो भी कोई कहे बिना न रहा। इससे वेद ने ऐसा कारण रक्खा कि भजन का प्रभाव अनेक प्रकार से कहा।

व्याख्या सभी बड़ों की जानी बात है कि रामयश ऐसी हवा है जिसके सामने मेरु मन्दर स गौरवशाली भी नहीं टिकते, हम भी नहीं टिक सकेंगे। फिर भी यश वर्णन से कोई विरत नहीं हुआ। यथाशक्ति सबने वर्णन किया। इसका कारण है और वह यह है कि वे वेद के बल पर कहते हैं। वेद ने भजन का बड़ा प्रभाव कहा है। भाव यह है कि वे इसलिए गुण वर्णन नहीं करते कि रामजी के सब गुण कह डालें बल्कि वे गुण वर्णन करके भजन करते हैं।

एक[1] अनीह अरूप अनामा। अज सच्चिदानंद परधामा॥
ब्यापक बिस्व रूप भगवाना। तेहि धरि देह चरित कृत नाना॥२॥

अर्थ जो एक है, कामना से रहित है, जिसका न रूप है, न नाम है, जिसका जन्म नहीं होता, सच्चिदानन्द परधाम है, व्यापक है, विश्व रूप है, भगवान् है उसी ने शरीर[2] धारण करके नाना प्रकार के चरित्र किये हैं।

व्याख्या १ एक अर्थात् अद्वितीय। द्वितीय के द्वारा ही कथन होता है। २ क्रियारहित को कोई ज्ञान का विषयीभूत नहीं कर सकता। ३ ४ अरूप अनामा। नाम और रूप, ये ही ईश्वर की उपाधियाँ हैं। यथा नाम रूप दोउ ईस उपाधी। सो उपाधि रहित को कोई कैसे कहे। ५ अज अर्थात् अजन्मा है, प्रागभाव उनका

---

१ द्वितीय विष्णुसंज्ञस्य योगिध्येय महामते। अमूर्तं ब्रह्मणो रूप यत्सदित्युच्यते बुधैः।
समस्ता शक्तयश्चैता नृपमत्र प्रतिष्ठिता। तद्विश्वरूप वैरूप्य रूपमन्यद्धरेर्महत्॥
२ समस्तशक्तिरूपाणि तत्करोति जनेश्वर। देवतिर्यङ्मनुष्यादि चेष्टावन्ति स्वलीलया।
जगतामुपकाराय न सा कर्मनिमित्तजा। चेष्टा यस्याप्रमेयस्य व्यापिन्या व्याहतात्मिका। वि पु।

अर्थ हे महामते। विष्णु नामक ब्रह्म का दूसरा अमूर्त रूप है जिसका योगिजन ध्यान करते हैं और जिसे बुधजन सत् कहकर पुकारते हैं। राजन्! जिसमें ये सम्पूर्ण शक्तियाँ प्रतिष्ठित है वह विलक्षण विश्वरूप भगवान् का बड़ा भारी दूसरा रूप है। हे नरेश! भगवान् का वही रूप अपनी लीला से देव, तिर्यक् और मनुष्यादि की चेष्टा से युक्त सर्वशक्ति मय रूप धारण करता है। इन रूपों में अप्रमेय भगवान् की जो व्यापक एव अव्याहत चेष्टा होती है वह संसार के उपकार के लिए होती है कर्म जन्य नहीं होती।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नही है। ६ सच्चिदानन्द वह्वर सबका मूल वहा। ७ पर धाम। यथा सबकर परम प्रकाशक जाई। राम अनादि अवध पति सोई। ८ व्यापक जिसका आरन्छोर नही। ९ विश्वरूप रूप अर्थात् सर्वरूप और १० भगवान्। यथा प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च कार्याकार्ये भयाभये। वन्ध मोक्षञ्च यो वेत्ति स वाच्यो भगवानिति। जो प्रवृत्ति, निवृत्ति, कार्य, अकार्य, भय, अभय, वन्ध और मोक्ष को जाने उसे भगवान् कहते हैं। जो उपर्युक्त दश लक्षणवाला है उसी अशरीर ने शरीर धारण करके नाना प्रकार के चरित किये।

सो केवल भगतन हित लागी। परम कृपाल प्रनत अनुरागी ॥
जेहि जन पर ममता अतिछोहू। जेहि करुना करि कीन्ह न कोहू ॥३॥

अर्थ सो भी केवल भक्तो के लिए। वे बडे कृपालु और प्रणत पर अनुराग करनेवाले है। जिसकी भक्तो पर वडी ममता और छोह है और जिसने करुणा करके फिर कभी क्रोध नही किया।

व्याख्या दह धारण करने का कारण कहते है कि केवल भक्तो के लिए भगवान् देह धारण करते हैं। यथा तुम सारिखे सत प्रिय मोरे। धरहुँ देह नही आन निहोरे। देह धारण करने पर, जानने और वर्णन करने योग्य होते हैं। १ परम कृपाल २ प्रनत अनुरागी कहने का भाव यह है कि श्रीरामजी शरणागतवत्सल हैं। एक प्रणाम मे प्रसन्न होते हैं। भक्त के लिए देह धारण करके सब कुछ करते हैं। यहाँ तक कि अपने यश की भी परवाह नही करते। यथा

सत्य कहौ मेरो सहज सुभाउ।
सुनहु सखा कपिपति लकापति, तुम्हमन कौन दुराउ।
सबविधि हीन दीन अति जड मति, जाको कतहुँ न ठाँउ ॥
आयो सरन भजौ न तजौ तेहि यह जानत रिषि राउ।
जिन्हके हौं हित सब प्रकार चित नाहिन और उपाउ ॥
तिनहि लागि धरि दह करौ सब, डरौ न सुजस नसाउ ॥ गी ५४५

३ जन पर ऐसी ममता और छोह है कि उसके लिए सब कुछ देय है। यथा जन कहँ कछु अदेय नहि मोरे। अस विस्वास तजहुँ जनि भोरे। और ४ सतत करुणा है। एक बार जिस पर कृपा कर दी, फिर उस पर क्रोध होता ही नही। यथा जेहि अघ बधेउ व्याध जिमि बाली। फिरि सुकठ सोइ कीन्हि कुचाली। सोइ करतूति बिभीषन केरी। सपनेहुँ सो न राम हिय हेरी।

गई वहोर गरीब नेवाजू। सरल सवल साहिब रघुराजू ॥
बुधवर नहि हरि जस अम जानी। करहि पुनीत सकल निज वानी ॥४॥

अर्थ गई हुई को पलटानेवाले, दीनवन्धु, सरल, बलवान्, स्वामी रघुराज है। यह समझकर पण्डित लोग उनका यश वर्णन करते हैं और अपनी वाणी को पवित्र और सफल करते हैं।

व्याख्या श्रीरामजी गई बहोर है। यह नया नाम ग्रन्थकार ने श्रीराम जो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



का रक्खा है। सब कुछ जाकर लौट सकता है, पर सतीत्व फिर नही लौटता, सो भी अहल्या को लौटा दिया। यथा : गौतम गये गृह गवनो सो त्वाय के। ६ दीनबन्धु ७ सरल ८ सबल साहिब अर्थात् प्रभु और १० रघुकुल के राजा हैं एव जिस भाँति दश विशेषण निर्गुण रूप के दे चुके हैं उसी भाँति दश विशेषण सगुण के भी दे रहे हैं। बीसो बिस्वे पूरे हुए।

पण्डित लोग यह जानकर कि 'ऐसउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीला तनु गहई। हरियश वर्णन करते हैं, चाहे वर्णन किया हो सके चाहे न हो सके। आहार, निद्रा, भय और मैथुन तो पशु को भी सुलभ है। इसकी कथा से वाणी का साफल्य नही। वाणी का साफल्य हरियश वर्णन से है।

तेहि बल मै रघुपति गुन गाथा। कहिहउँ नाइ राम पद माथा ॥
मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई ॥५॥

अर्थ उसी बल से मैं श्रीराम जी के चरण कमलो मे सिर नवाकर, रघुनाथ जी के गुणो की गाथा कहूँगा। हे भाई ! मुनियो ने पहिले हरि की कीर्ति का गान किया है। उसी मार्ग पर चलना मुझे सुगम है।

व्याख्या : उसी वेदवचन के बल से जिसने भजन का प्रभाव कहा है और 'यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जन। स यत्प्रमाण कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।' इस न्याय से, मैं रघुनाथ के चरणो मे सिर झुकाकर, अपराधक्षमापन पूर्वक रामगुण गाथा कहूँगा।

वाल्मीकि, व्यास आदि मुनियो ने हरि की कीर्ति का गान किया है। उसी मार्ग का अनुसरण करने मे मुझे सुभीता है। उस मार्ग मे जल भी है, थल भी है। जल, यथा चरित सिंधु गिरिजा रमन, वेद न पावहि पार। राम अमित गुन सागर थाह कि पावै कोइ। थल, यथा लोक वेद मत मजुल कूला। अत थल मे मुनियो के चरणपूत मार्ग का अनुसरण करूँगा।

दो. अति अपार जे सरित बर, जौ नृप सेतु कराहि।
चढि पिपीलिकउ परम लघु, बिनु श्रम पारहि जाहि ॥१३॥

अर्थ : अति अपार जो नदियाँ है, यदि उन पर राजा पुल बँधवा देता है तो उसपर चढकर बहुत छोटी चीटी भी बिना परिश्रम के पार चली जाती है।

व्याख्या जल मे मुनियो के बँधाये पुलपर चढकर पार होगे। लोक, वेद का सामञ्जस्य ही पुल है। पुल बाँधने से दोनो कूलो मे सामञ्जस्य स्थापन हो जायगा। रामचरित्र मे लोकविधि और वेदविधि दोनो है। मुनि लोगो ने रामचरित्र लिखकर इस भाँति सामञ्जस्य स्थापन कर दिया है।

पिपीलिका पानी की रेखा नही डाँक सकती सो पुल पर से होकर अपार नदी बिना श्रम पार करती है। ग्रन्थकार अपने को चीटी मानते हैं, रामचरित्र मे कुछ भी गति नही। मुनियो को राजा कहा, वे चरित गान करके पुल बाँध गये। उसी के

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अवलम्ब से मैं भी गान करके बिना श्रम पार पाऊँगा। यहाँ तक सात दोहो मे समष्टि विनय है।

एहि प्रकार बल मनहि देखाई। करिहौं रघुपति कथा सुहाई ॥
व्यास आदि कवि पुगव नाना। जिन्ह सादर हरि सुजस बखाना ॥१॥

अर्थ इस प्रकार का बल मन को दिखाकर मैं रघुपति की सुहावनी कथा बनाऊँगा। व्यास आदि जो अनेक श्रेष्ठ कवि हो गये है जिन्होने आदर से हरिसुयश वर्णन किये हैं।

व्याख्या पहिले कहा था 'करत कथा मन अति कदराई' और मन के कादर होने पर फिर कार्य नही हो सकता। इसलिए मन को ढाँढस बँधाते है कि पुल बँधा हुआ है, उसी पर चल जाओ। पुल पर से जानेवाले को जल की गम्भीरता और विस्तार की क्या चिन्ता है?

अब जिन के मार्ग का अनुसरण करना है, जिनके बँधाये पुलपर चढकर पार जाना है, उनकी वन्दना करते हैं। व्यासोच्छिष्ट जगत् त्रयम्, यह तीनो लोक व्यास का उच्छिष्ट है, इसलिए पहिले व्यास द्वैपायन को कहा। आदि से मार्कण्डेय, अग्निवेशादि का ग्रहण है, जिन्होने आदर के सहित हरि के सुयश का बखान किया है। भाव यह है कि बौद्धो और जैनो मे भी रामायण है, पर उन्होने आदर के साथ बखान नही किया। अत उनकी इसमे गिनती नही है।

चरन कमल बदौ तिन्ह केरे। पूरहुँ सकल मनोरथ मेरे ॥
कलि के कविन्ह करौ परनामा। जिन्ह बरने रघुपति गुन ग्रामा ॥२॥

अर्थ मै उन सबके चरण कमलो की वन्दना करता हूँ। सब मेरे मनोरथ को पूरा करो। मैं कलियुग के उन कवियो को प्रणाम करता हूँ जिन्होने रघुपति के गुण समूहो का वर्णन किया है।

व्याख्या इसलिए उनके चरण कमलो की वन्दना करते है क्योकि मनोरथ एकाधिक है। यथा १ हरि यश कहो २ साधु समाज मे भणिति का सम्मान हो ३ परम विश्राम की प्राप्ति हो ४ रामचरण मे रति हो इत्यादि।

ऊपर जिनकी वन्दना की है, वे मुनि लोग है। उन्होने त्रेता, द्वापरादि मे रामयश को सस्कृत वाणी मे कहा है। कलियुग मे ऋषि नही है, फिर भी कालिदास, भवभूति, जयदेवादि महाकवियो ने सस्कृत का ही आश्रय लेकर काव्य, नाटक तथा गीतो मे हरियश कहा है, अत वे भी प्रणम्य हैं।

जे प्राकृत कवि परम सयाने। भाषा जिन्ह हरि चरित बखाने ॥
भये जे अहहि जे होइहहि आगे। प्रनवौ सबहि कपट सब त्यागे ॥३॥

अर्थ जो परम सयाने प्राकृत के कवि है जिन्होने भाषा मे हरि चरित वर्णन किये हैं, जो पहिले हो चुके, जो आँखो के सामने मौजूद है और जो आगे भविष्य मे होगे उन सबको मैं कपट को छोडकर प्रणाम करता हूँ।

व्याख्या संस्कृत से देववाणी और प्राकृत से लोकभाषा का ग्रहण है। यथा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



संस्कृत नाम दैवीवागन्वाख्याता महर्षिभि । संस्कृत दैवी वाणी है, जिसे महर्षियो ने कहा है । प्रकृति संस्कृतम् । तत्र भव तत आगत वा प्राकृतम् । हेम । प्रकृति संस्कृत है, उमसे जो उत्पन्न हो या आया हो उसे प्राकृत कहते हैं । उस प्राकृत के कवियो को परम सयाना कहा है । भाव यह कि संस्कृत के कवि सयाने, प्राकृत के कवि परम सयाने हैं, इनकी भणिति से विशेष लोकोपकार हुआ है । अधिकार का भी टण्टा नही रह गया । क्योंकि उन्होने लोकभाषा मे हरिचरित कहा है । यहाँ स्पष्ट है कि भाषा से प्राकृत भाषा अभिप्रेत है । प्राकृत मे तत्सम रूप से शुद्ध संस्कृत प्रयोग, तद्भव रूपसे संस्कृत के अपभ्रंश रूप तथा देशोद्भव रूपसे देशी भाषा का ग्रहण है ।

यहाँ 'आगे' शब्द का तीनो क्रियाओ के माथ सम्बन्ध है जो आगे : पहिले हुए, जो आगे · सामने · अहहि और जो आगे · भविष्य मे · होइहहि । उन सबको सब कपट छोडकर प्रणाम करता हूँ । संस्कृत के कवियो के साथ कपट की प्राप्ति ही नही थी । परन्तु भाषा के कवियो के साथ कपट की प्राप्ति है, क्योकि साफ्ल्यभाव की सम्भावना है इसलिए कहते हैं कि सब कपट छोडकर प्रणाम करता हूँ । भूतकाल के प्राकृतकवि सेतुबन्धकार, चन्द बरदाई आदि, उस समय के कवि सूर, हितहरिवंश आदि और भविष्य के कवि वृजविलासीदास, काष्ठ जिह्व स्वामी देव आदि सभी को ग्रन्थकार प्रणाम करते हैं ।

होहु प्रसन्न देहु बरदानू । साधुसमाज भनिति सनमानू ॥
जो प्रबंध बुध नहि आदरही । सो श्रम बादि बाल कवि करही ॥४॥

अर्थ मुझ पर प्रसन्न होकर वरदान दो कि मेरी कविता साधु समाज मे आदर पावे क्योकि जिस प्रबन्ध का पण्डित लोग आदर नही करते, उसके लिए व्यर्थ परिश्रम बाल कवि करते हैं ।

व्याख्या कवियो से वरदान माँगते है । वरदान और किसी से नही माँगा । क्योकि ये 'रघुबर चरित मानस मजु मराल' है । ये रामगुण-मुक्ताफल चुगते हैं । इनसे मुक्ता मिलेगी । उसे रामचरितरूपी तागे मे गूँथेंगे । तब उसका सन्तसमाज मे आदर होगा ।

यदि सन्तसमाज मे या पण्डितसमाज मे आदर न हुआ तो परिश्रम ही व्यर्थ गया । जिसने शास्त्र न पढा हो उसे 'बाल' कहते हैं । मूर्ख कवि कटु शब्द है, इसलिए बाल कवि कहा ।

कीरति भनिति भूति भलि सोई । सुरसरि सम सब कह हित होई ॥
राम सुकीरति भनिति भदेसा । असमंजस अस मोहि अँदेसा ॥५॥

अर्थ कीर्ति, कविता और सम्पत्ति वही अच्छी है जो गङ्गाजी के समान सबका हित करे । रामजी की सुकीर्ति और कविता गँवारी : भद्दी · यह बडी ही अटपटी बात है, मुझे इसी का अन्देशा है ।

*व्याख्या* : जिससे सबका हित न हो, न तो वह कीर्ति भली, न कविता भली और न भूति भली । इसीलिए श्रीग्रन्थकार ने प्रणव तारक मन्त्र का वर्णन न

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



करके रामतारक रामनाम का वर्णन किया। संस्कृत म ग्रन्थ न लिखकर भाषा म लिखा।

यही बडा भारी असामञ्जस्य है कि गुणसागर नागर श्रीरामजी की सुकीर्ति और गाई जाय ग्राम्य गिरा मे, इसी बात का मुझे खटका है कि साधु समाज मे मेरे भणित का सम्मान न होगा।

तुम्हरी कृपा सुलभ सोउ मोरे। सिअनि सुहावनि टाट पटोरे ॥६॥

अर्थ तुम्हारी कृपा से मुझ वह सामञ्जस्य भी सुलभ है। टाट और रेशमी वस्त्र दोनो पर बेल वूटा होता है।

व्याख्या संस्कृत कवियो ने रेशमी वस्त्र पर बेल बूटा काढा है और प्राकृत कवियो ने टाटपर कारीगरी की है। आपका कृपा से मैं भी बेल बूटे टाट पर बनाऊँगा। जिस भाति रेशमी वस्त्रा म रेशमी बेल-बूटेवाल वस्त्रो का आदर होता है उसी भाँति टाटो मे मेरे बेल-बूटेवाल टाट का आदर टाट के ग्राहक साधु लोग करेगे। अत आपकी कृपा से साधु समाज से कविता का सम्मान मेरे लिए सुलभ हो जायगा।

दो सरल कवित कीरति विमल, सोइ आदरहिं सुजान।
सहज वयर बिसराइ रिपु, जो सुनि करहि बखान ॥१४॥
सो न होइ बिनु विमल मति, मोहि मति बल अति थोर।
करहु कृपा हरि जस कहौं, पुनि पुनि करउँ निहोर ॥१४॥क
कवि कोविद रघुबर चरित, मानस मजु मराल।
बाल विनय सुनि सुरुचि लखि, मोपर होहु कृपाल ॥१४॥ख

अर्थ उसी सरल कविता और निर्मल कीर्ति का सुजान आदर करते हैं, जिसे सुनकर शत्रु भी स्वाभाविक वैर छोडकर प्रशसा करने लगे।

यह बात विना निर्मल बुद्धि हुए नही हो सकती और मुझ बुद्धि का बल बहुत ही थोडा है। मै बार-बार निहोरा करता हूँ, आप लोग कृपा करो। मैं हरियश वर्णन करता हूँ।

पण्डित कवि लाग ही रामचरितमानस के सुन्दर हस हैं, सो बालक की विनय सुनकर और सुरुचि देखकर मुझपर कृपा करो।

व्याख्या जिस भाँति दाष कीर्ति का मलिन करता है, उसी भाँति क्लिष्टता कविता का मलिन करती है। कविता म जा अलौकिक आनन्द है उसे क्लिष्टता ढक दती है। अत प्रसादगुणयुक्त कविता हानी चाहिए। ऐसी कविता और निर्मल यश म ही यह सामर्थ्य है कि सुनते ही शत्रु सहज वैर भलकर बखान करने लग जाता है। नही ता सहज वैर प्राण रहते नही छूटता। कृत्रिम नाशमभ्येति वैर द्राक् कृत्रिमैर्गुणे। प्राणदान विना वैर सहज याति न क्षयम्। वैर अन्धा है, अपने वैरी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



का गुण अपने को सूझता ही नही। यथा बैर अध प्रेमहि न प्रबोधू। इस कमल[1] की पुरइन है साधुसमाज भनिति सनमानू।

निर्मल मति हो तो प्रसाद गुणयुक्त कविता बने। प्रकृति के अनुकूल बेल-बूटे बन जाँय, इसलिए 'मति बल' माँगते हैं। 'हरियश कहउँ' कहकर अपने को सहायता का पात्र कहा। इस कमल की भी उपर्युक्त पुरइन है।

कवि कोविद रामचरितमानस के हंस हैं और उनकी जिह्वा हंसिनी है। यथा जस तुम्हार मानस विमल हंसिनि जीहा जासु। मुका हल गुन-गन चुनइ, राम बसहु हिय तासु। इसलिए इनकी कृपासे, रामगुणगणरूपी मुक्ताफल चाहते हैं। 'होहु प्रसन्न देहु बरदानू' से उपक्रम करके, 'मोपर होहु कृपाल' से उपसहार करते हैं। सुरुचि लखि' से आर्ति कही। 'बाल विनय सुनि' से विनय कहा। 'मोपर होउ कृपाल' से दीनता कही।

इस कमल की पुरइन है कवि कोविद अस हृदय विचारी। गावहि हरिजस कलिमल हारी।

सो बदौं मुनि पद कजु, रामायन जेहि निरमयेउ।
सखर सुकोमल मजु, दोष रहित दूषन सहित ॥ग॥
बदौ चारिउ बेद, भव बारिधि बोहित सरिस।
जिन्हहि न सपनेहु खेद, बरनत रघुबर बिसद जसु ॥घ॥
बदौं बिधिपद रेनु, भवसागर जेहि कीन्ह जह।
सत सुधा ससि धेनु, प्रगटे खल बिप बारुनी ॥ङ॥

अर्थ मैं उन मुनि के चरणकमलो की वन्दना करता हूँ, जिन्होने रामायण बनाया, जो खर सहित होने पर भी सुकोमल है और दूषण सहित होने पर भी निर्दोष है।

मै चारो वेदो की वन्दना करता हूँ जो ससार-समुद्र के लिए जहाज है, जिन्हे रामजी का यश वर्णन करते हुए, सपने म भी खेद नही होता।

मैं ब्रह्मदेव की चरणधूलि को प्रणाम करता हूँ, जिन्होने यह भवसागर बनाया। जहाँ सन्त, अमृत, चन्द्रमा और धेनु देवसर्ग तथा खल, विष एव मदिरा आसुर-सर्ग उत्पन हुई।

व्याख्या इस कमल[2] की पुरइन है व्यास आदि कवि पुगव नाना। जिन सादर हरि चरित बखाना। 'आदि कवि' शब्द पुरइन म आ चुका है। इसलिए यहाँ नही देते। ब्रह्म का रामावतार हुआ उसी समय ब्रह्मयश वेद का भी रामायणावतार हुआ। रामावतार महाराज दशरथ के घर म हुआ और रामायणावतार श्रीवाल्मीकि

---

१ कमल = दोहा। पुरइन = तत्सम्बन्धी चौपाई।

२ कमल = दोहा। पुरइन तत्सम्बन्धी चौपाई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



के हृदय मे हुआ। यथा · वेद[1] प्राचेतसादासीत् साक्षात् रामायणात्मना। अत
ायण शब्द से मुख्यत: वाल्मीकीय रामायण का ग्रहण है। रामायण शब्द का
: रामस्य अयनम् रामायणम्। सो राम जी को वाल्मीकि ने चौदह प्रकार के
ो के हृदय को ही, उनके रहने योग्य स्थान वतलाया। यथा : सुनहु राम अव
हुँ निकेता। जहाँ वसहुँ सिय लखन समेता। इन्ही चौदह प्रकार के भक्तो की कथाएँ
कर ही सब रामायणें निर्मित हैं। रामायण मञ्जु है। श्रीराम जी के रहने लायक
सुकोमल है। इसमे 'खर' नाम के राक्षस का नाम आगया है। वस, इतनी ही
ता : तीक्ष्णता · है। दोप रहित है। दूषण नाम के राक्षस का नाम आगया है,
से दूषण सहित कही गई है, नही तो इसमे खरता और दोप कहाँ ? नमस्तमै
येन रम्या रामायणी कथा। सदूषणापि निर्दोषा सखरापि[2] सुकोमला। यहाँ
ायण चम्पू के इस श्लोक से अर्थ स्पष्ट हो जाता है। शब्दो के तोड-फोड को स्थान
रह जाता।

वेदावतार का उल्लेख करके अब स्वय वेदो की वन्दना करते हैं। इन्हे जहाज
उपमित किया। समुद्र चार हैं। उनके लिए वेदरूपी जहाज भी चार है। जहाज
ावर समुद्र का आरपार किया करते है, उन्हे खेद नही होता। जहाज स्वय जल
रहते हैं, परन्तु यात्री को पानी से बचाकर पार कर देते हैं। इस भाँति वेद यद्यपि
ुण्यविषयक हैं पर अपने भक्तो को निस्त्रैगुण्य पद पर पहुँचा देते है। जहाँ एक हो
त को वेद ने दोहराया है, वहाँ टीकाकार लिखते हैं 'मन्त्राणामालस्याभावात्'
ात् वेदो को आलस्य नही है। यही बात ग्रन्थकार भी कहते हैं · जिनहि न
नेहु खेद, वरनत रघुवर विसद जस। इस कमल की पुरइन है गनि गुन दोप वेद
लगाये।

भवसागर के कर्ता ब्रह्मदेव की वन्दना करते हैं। दुष्पार और दुरवगाह्य होने
भव · समार . को सागर कहा। जिस भाँति समुद्र से अमृत, चन्द्रमा और कामधेनु
न्न हुई और विप वारुणी . सुरा : भी उत्पन्न हुई। उसी भाँति ससार सागर मे
सर्ग भी उत्पन्न हुआ और आसुरसर्ग भी उत्पन्न हुआ। सन्त कहकर देवसर्ग को
क्षित किया और खल कहकर आसुरसर्ग को लक्षित किया। भवसागर के अन्तर्गत
यह सागर : जलनिधि : है। अत सबके उत्पन्न करनेवाले ब्रह्मदेव हैं। ये ही विश्व
सविता · पिता हैं। इसीलिए पितामह कहलाते हैं। ये सर्वथा वन्दनीय हैं।

दो. विबुध विप्र बुध ग्रह चरन, वंदि कहौ कर जोरि।
होइ प्रसन्न पुरवहु सकल मजु मनोरथ मोरि ॥ १४ च ॥

अर्थ · देवता, ब्राह्मण, पण्डित तथा ग्रहो के चरणो की वन्दना करके, हाथ
ड़कर कहता हूँ कि प्रसन्न होकर सब लोग मेरे सुन्दर मनोरथ को पूरा करो।

---

१. वेद वाल्मीकि जी से रामायण रूप मे उत्पन्न हुआ।

२ यहाँ परिसख्या अलङ्कार है। यथा परिसख्या एक थल वरजि दूजे थल ठहराय।
स्नेह हानि मन मे नही रही दीप महँ आय॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या चार दिव्य साधन मनोरथ सिद्धि के हैं। १ देवता २ ब्राह्मण ३ पण्डित और ४ ग्रह। देवता सहाय करते हैं। यथा होउ सहाय महेस भवानी। ब्राह्मण आशीर्वाद देते हैं। यथा औरौ एक आसिषा मोरी। अप्रतिहत गति होइहि तोरी। पण्डित युक्ति बतलाते हैं। यथा जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। ग्रह प्रभाव डालते हैं। यथा जोग लगन ग्रह बार तिथि, सकल भये अनुकूल। ये चारो देवता हैं। दिव्य साधन हैं विबुध देवता, ब्राह्मण देवता, पण्डित देवता। यथा विद्वांसो हि देवा। और ग्रह देवता। विप्र वेद के पण्डित, बुध अन्य शास्त्र के पण्डित। मनोरथ शब्द पुँल्लिङ्ग है इसके विशेषण 'मोरि' का मुख्य रूप 'मोर' ही समझना चाहिए। 'जोरि' के जोड मे 'मोरि' कर दिया।

इस कमल की पुरइन है सूझ न एकौ अग उपाऊ। मनमति रक मनोरथ राऊ। मनोरथ राऊ है, इसलिए दिव्य साधनो से काम लेते हैं। यहाँ 'मजु मनोरथ मोरि' से 'मनोरथ राऊ' कहा। इस भाँति यहाँ कमलो का गुच्छा हुआ।

**पुनि बदौं सारद सुर सरिता। जुगल पुनीत मनोहर चरिता ॥**
**मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत एक हर अविवेका ॥१॥**

अर्थ फिर सरस्वतीजी और गङ्गाजी की वन्दना करता हूँ। दोनो पवित्र और मनोहर चरित्रवाली हैं। एक स्नान करने और पान करने से पाप दूर करती है और एक कहने सुनने से अविवेक हर लेती है।

व्याख्या सारद, सुरसरिता की साथ वन्दना गुणसाम्य के कारण करते हैं। सद्य पातकसहन्त्री सुरसरिता का पाप हरण करना पुनीतता है और केवल मज्जन, पान द्वारा पाप हरण करना चरित की मनोहरता है एव जाड्यान्धकारापह्रा सारदा का अविवेक हरण करना पुनीतता है और केवल कहने सुनने से अविवेक हरण चरित की मनोहरता है। जो पाप हो चुके हैं उसे श्रीगङ्गा हरण करेंगी और आगे भी पाप का रूप विवेक द्वारा सरस्वती भगवती नहीं होने देंगी। 'सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा' कहकर द्रवीभूता सरस्वती का उल्लेख किया था। यहाँ अधिष्ठात्री देवी की वन्दना करते हैं।

**गुरु पितु मातु महेस भवानी। प्रनवौं दीन बधु दिन दानी ॥**
**सेवक स्वामि सखा सिय पीके। हित निरुपधि सब बिधि तुलसी के ॥२॥**

अर्थ दीनबन्धु, सदा देनेवाले, महेश और भवानी गुरु, माता और पिता हैं वे सीतापति के सेवक, स्वामी और सखा हैं और तुलसी के सब प्रकार से सच्चे निश्छल हितकारी है।

व्याख्या वेद की आज्ञा है मातृदेवो भव, आचार्यदेवो भव। श्री ग्रन्थकार कहते हैं मेरो मातुपितु गुरु शकर भवानियै। गुरु, आचार्य या मन्त्रदाता को कहते हैं। शङ्कर भगवान् त्रिभुवन के गुरु हैं और माता पिता हैं। यथा तुम त्रिभुवन गुर बेद बखाना। जगत मातु पितु सभुभवानी। अत तीनो नाता इनमे जोडना प्राप्त है। दीनबन्धु हैं। यथा सकत न देखि दीन करजोरे। दिनदानी। यथा 'दीनदयाल दिवोइय भावै जाचक सदा सोहाही।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सीतापति के सेवक स्वामी और सखा हैं अर्थात् सर्वाधिकारी है। महात्माओ से सुना है कि जब भगवान् ने लिङ्गस्थापन किया और रामेश्वर नाम रखा तो मुनियो ने पूछा कि 'रामेश्वर' नाम का अर्थ क्या होगा ? तब रामजी ने कहा 'अर्थ' बडा सीधा है, यहा तत्पुरुष समास है रामस्य ईश्वर रामेश्वर ।' राम के ईश्वर रामेश्वर है। तब लिङ्ग से शब्द हुआ, कि बहुव्रीहि समास है। अर्थात् राम ईश्वरो यस्य। जिसके ईश्वर राम हैं, वह रामेश्वर हैं। ऋषि लोग बडे विचार मे पडे कि क्या मानें ? तब इस निर्णय पर पहुँचे कि यहां 'कर्मधारय' समास है। रामश्चासौ ईश्वर रामेश्वर । जो राम है वही ईश्वर है । अथवा हनुमान् रूप से सेवक, रामेश्वर रूप से स्वामी और समर-सागर म जहाज होने से सखा। यथा ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भये समर सागर कहँ बेरे। और तुलसी के तो सब प्रकार से सच्चे हितकारी हैं। उपधि का अर्थ है छल या झूठ। अत निरुपधि का अर्थ सच्चा या असली हुआ। यथा मातु पिता स्वारथ रत ओऊ।

कलि बिलोकि जगहित हर गिरिजा। साबर मंत्र जाल जिन सिरिजा ॥
अनमिल आखर अरथ न जापू। प्रगट प्रभाउ महेस प्रतापू ॥३॥

अर्थ जिन शिव पार्वती ने कलियुग को देखकर जगत् के हित के लिए शावर मन्त्र समूहो की रचना की। जिनके अक्षर बेमेल है, न कोई अर्थ है, न जप है पर महेश के प्रताप से उनका प्रभाव प्रत्यक्ष है।

व्याख्या मन्त्रों की सिद्धि के लिए शास्त्रोक्त अधिकारी और साधन कलियुग मे दुर्लभ हैं। अत हितकर मनोरथों की सिद्धि के लिए शावर भील रूप से शावर मन्त्रो की जिन्होने सृष्टि की। जिस देश म जो भाषा प्रचलित है उसी भाषा मे शावर मन्त्र भी हैं। उन मन्त्रो के न शब्दो म मेल[1] है, न अर्थ ही कुछ होता है और न उन मन्त्रो के जप का ही कोई विधान है। 'हनइ् हनैया हनाइ् बचवा चुण्ड भया इस शावर मन्त्र से भिड के काटे हुए को आराम होते देखा गया है। सम्भव है कि मेरे सुनने म कुछ चूक हुई हो, फिर भी वह मन्त्र कुछ ऐसा ही था। प्रत्यक्ष फल होता है। यह महेश का प्रताप है। मन्त्र दाता होने से गुरु[2] है।

सोउ महेस मोपर अनुकूला। करिहि कथा मुद मंगल मूला ॥
सुमिरि सिवा सिव पाइ पसाऊ। बरनउँ राम चरित चित चाऊ ॥४॥

अर्थ वे महेश भी मुझपर अनुकूल हैं। वे इस कथाको मुदमङ्गल का मूल कर देंगे। मैं शिव-पार्वती का स्मरण करके और प्रसाद पाकर आनन्दित चित्त से राम चरित वर्णन करूँगा।

व्याख्या माता पिता अनुकूल होकर बिगडी बात बनाया करते हैं। मुझ

---

१ मेल से यहाँ अन्वय अभिप्रेत है और जप से जपविधि मालासंस्कार पञ्चशुद्धि आदि अभिप्रेत है।

२ गुरु पितु मातु महेस भवानी। प्रनवौं दीनबंधु दिन दानी। आदि पदो से जो स्तुति की है उन सबो का एक एक करके साफल्य दिखा रहे हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



'धीग धरम ध्वज धँधरच धोरी' की वर्णित कथा को मुद मङ्गलमूल करगे। शावर मन्त्र को जिस भाँति उन्होने शक्ति दी उसी भाँति मेरी भनिति को भी शक्ति देकर मुद मङ्गलमूल करेंगे। एव 'पितुमातु' कहने का साफल्य दिखाया। शिवपार्वती स्मरण मात्र से कृपा करते हैं। मुझपर कृपा हुई। पहिले मेरा मन कथा करने मे हिचकता था। अव रामचरित वर्णन मे वडा उत्साह है। यह शिवाशिव की कृपा है। इस भाँति 'दीनवन्धु' कहने का साफल्य दिखाया।

भनिति मोरि सिव कृपा विभाती। ससि समाज मिलि मनहु सुराती॥

जे एहि कथहि सनेह समेता। कहिहहि सुनिहहि समुझि सचेता॥५॥

अर्थ मेरी कविता शिवजी की कृपा से ऐमी प्रकाशित होगी जैसे चन्द्रमा के समाज से मिलकर रात्रि सुन्दर होती है। जो लोग इस कथा को प्रेम के साथ कहेगे, सुनेंगे और सावधान होकर समझेंगे।

व्याख्या मेरी कविता तो रात है, उसमे प्रकाश कहाँ ? शिव की कृपा शशि-समाज है। सो उसमे जा मिली तो वह सदा के लिए सुराति हो गई। भक्तिमय होकर पूर्णिमा की रात हो गई। इस भाँति 'दिनदानी' कहने का साफल्य दिखाया।

रामजी के सर्वार्थकारी शङ्कर भगवान् हैं। अत इस कथा के कहने सुनने और समझनेवाले

होइहहि राम चरन अनुरागी। कलिमल रहित सुमगल भागी॥६॥

अर्थ वे रामचरण के अनुरागी होंगे कलिमल से रहित होकर सुमगल के भागी होगें।

व्याख्या कहनेवाले को श्रीराम चरणानुराग देंगे। सुननेवाले का कलिमल हरण करेंगे और समझनेवाले को सुमङ्गलभागी करेंगे। अथवा प्रत्येक को तीनो गुणो से युक्त करेंगे। इस भाँति सर्वार्थकारित्व का साफल्य दिखाया।

दो सपनेहुँ साँचेहु मोहि पर, जौ हर गौरि पसाउ।
तौ फुर होउ जो कहेउँ सव, भाषा भनिति प्रभाउ॥१५॥

अर्थ जो मुझपर हरगौरी का स्वप्न मे भी सचमुच प्रसाद हो तो मैंने जो भाषा कविता का प्रभाव वतलाया है, वह सव सत्य हो।

व्याख्या स्पष्ट है कि स्वप्न मे हरगौरी ने प्रसन्न होकर रामयशगान की आज्ञा दी। जो वात स्वप्न की देखी है, उसे ग्रन्थकार 'स्वप्न' शब्द देकर स्पष्ट कह देते हैं। यथा रूप सकहि नहि कहि श्रुति सेखा। सो जानइ सपनेहु जेहि देखा। यहाँ सपने म दर्शन हुआ था। विशेष वात इस अर्धाली के व्याख्यान मे कही जायेगी। 'फुर होइ' कहकर ग्रन्थकार दिखलाते हैं कि यह ग्रन्थ भी महेश के प्रताप से सिद्ध शावर मन्त्रजाल हो गया। अत शावर मन्त्र की परिपाटी ग्रहण करते हैं। शावर मन्त्रो मे प्रायेण 'फुरो मन्त्र ईश्वरोवाच' रहता है, सो ग्रन्थकार ने भी 'सो फुर होउ जो कहेउँ सव, भाषा भनिति प्रभाउ' कहा। यह भी दिखलाया कि सस्कृत भणिति इस युगमे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



काम नही देती, भाषा भणिति या प्रभाव हरगौरी प्रसाद से काम देगा। इससे 'हित निरुपधि सब विधि तुलसी के' का साफल्य दिखलाया।

सन्तो से रामचरण रति माँगी। समष्टि से बुद्धिबल माँगा। कविसमाज से 'साधु समाज भनिति सम्मान' माँगा। अब कहते हैं कि मेरी सब गुण रहित कविता की फलश्रुति शङ्कर के प्रताप से शाबर मन्त्र की भाँति सत्य होगी।

## अवधसमाज वदना

बंदौ अवध[1]पुरी अति पावनि। सरजू[2]सरि कलि कलुप नसावनि ॥
प्रनवौ पुरनर नारि वहोरी। ममता जिनपर प्रभुहि न थोरी ॥१॥

अर्थ मै अति पवित्र अयोध्यापुरी और कलियुग के पापो की नाश करनेवाली सरयू नदी की वन्दना करता हूँ। फिर पुरी के नर-नारियो को प्रणाम करता हूँ, जिनपर प्रभु की थोडी ममता नही है।

व्याख्या सातो मोक्षदा पुरी पावनी है। यथा अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका। पुरी द्वारावती ज्ञेया सप्तैता मोक्षदायिका। इनमे से प्रथम होने से अयोध्या अति पावनी है। न योध्या अयोध्या और न वध अवध। इस भाँति समानार्थक होने से अयोध्या का नाम अवधपुरी है। यह स्वय प्रभुकी जन्म भूमि है। जब जब श्रीरामावतार हुआ है तब तब अवधपुरी मे हुआ है और जब होगा तब अयोध्या मे ही होगा। अवधपुरी और श्रीरामजी मे वही सम्बन्ध है जो दिन और प्रभाकर मे है। यथा अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइ दिवस जहँ भानु प्रकासू। अवधपुरी के साथ श्रीसरयूजी को प्रणाम करते है। यह अवधपुरी की उत्तर ओर बहती है। इनमे मज्जन करने से बिना प्रयास सामीप्य मुक्ति होती है। कलिकलुप के रहते मुक्ति नही होती, अत कहते हैं कलि कलुप नसावनि। स्वय श्रीरामजी ने भी एक साथ

---

१. अवध की महिमा अपरपार, गावत है श्रुति चार ॥टेक॥
विस्मित अचल समाधिन स जो ध्याई बारबार ॥
तात नाम अयोध्या गायो यह रिग वेद प्रकार ॥१॥
राजधानि पर बल कचन नव आठ चक्र नव द्वार।
ताते नाम अयोध्या पावन अस यजु करत विचार ॥२॥
अकार उकार मकार देवत्रय ध्याई जो लखिसार।
ताते नाम अयोध्या ऐसो साम करत निरधार ॥३॥
जगमग कोस जहाँ अपराजित ब्रह्म देव आगार।
ताते नाम अयोध्या ऐसो कहत अथर्व उदार ॥४॥

यह पुरी बाल्मीकि के मत से ४८ कोस लम्बी बारह कोस चौडी थी। देवकृत रामसुधा।

२ यह मानस सरस निकलकर अयोध्या होते हुए श्रीगगाजी मे जा मिली है।
यथा कैलासपर्वते राम मनसा निर्मित सर।
तस्मात् सुस्राव सरस सायोध्यामवगूहते ॥
सर प्रवृत्ता सरयू पुण्यब्रह्मसरश्च्युता। बाल्मीकीये

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ही वर्णन किया है। यथा जनम भूमि मम पुरी सोहावनि। उत्तर दिसि वह सरयू पावनि।

संसार चाहता है कि मुझे रामजी 'अपना' समझें। यथा राम कहै जेहि आपनो, तेहि भजु तुलसी दास। अथवा हम सम पुन्य पुंज जग थोरे। जिन्हहि राम जानत करि मोरे। इसलिए रामजी पर ममता करते हैं। यहाँ अवधवासियों पर स्वयं श्रीरामचन्द्र अधिक ममता करते हैं। अतः ग्रन्थकार इन्हें रामजी का प्रिय समझकर प्रणाम करते हैं। यथा अतिप्रिय मोहि इहाँ के वासी।

**सिय निंदक अघ ओघ नसाए। लोक बिसोक बनाइ बसाए॥**
**बंदौं कौसल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जगमाची॥२॥**

सीताजी की निन्दा करनेवाले के पापों के समूहों को नाशकर और शोकरहित करके लोक में बसाया। मैं पूर्व दिशा के समान कौसल्या माता की वन्दना करता हूँ। जिसकी कीर्ति की संसार में धूम है।

व्याख्या परनिन्दा सम अघ न गिरीसा। परनिन्दा के समान कोई पाप नहीं है। मनु भगवान् ने कहा है परिवादात् खरो भवति श्वा वै भवति निन्दकः। सच्चा दोष कहनेवाला गधा होता है और झूठा दोष कहनेवाला कुत्ता होता है। जितने बड़े की जो निन्दा करेगा उतना ही बड़ा उसे पाप होगा। अतः जगज्जननी सीता की निन्दा करनेवाले को नरक में भी स्थान नहीं है। यह अपराध एक अवधवासी से ही हो पड़ा। श्रीरामजी की इतनी बड़ी ममता अवधवासियों पर है कि ऐसे अधम प्रजाजन के भी पापसमूह का नाश किया और लोक में उसे विशोक करके बसाया। दण्ड भी नहीं दिया। सम्मान के साथ उसे बसाया कि यह मेरे मिथ्या अपवाद के दूरीकरण में सहायक हुआ।

प्राची पूर्व दिक् में ही पूर्णचन्द्र का उदय होता है। जब श्रीरामावतार हुआ या होगा तब कौसल्या से ही होगा। अतः कीर्ति प्राचीदिक् की ही है। जितने देवकार्य हैं पूर्वमुख होकर ही उनके करने का विधान है। इससे संसार में पूर्वदिक् की धूम है। इसी प्रकार संसार में कौसल्या की कीर्ति की धूम है। यथा कौसल्या सुत सो गुन खानी। नाम राम धनुसायक पानी।

**प्रगटेउ जहँ रघुपति ससि चारू। बिस्व सुखद खल कमल तुसारू॥**
**दसरथ राउ सहित सब रानी। सकल सुमंगल मूरति मानी॥३॥**

अर्थ जहाँ सुन्दर चन्द्रमा के समान रघुपति प्रकट हुए, जो संसार को सुख देनेवाले और खलरूपी कमल के लिए पालारूप हैं। रानियों सहित राजा दशरथ को पुण्य और मङ्गल की मूर्ति समझकर

व्याख्या 'ससिचारू' से पूर्णचन्द्र का ग्रहण करते हैं। अथवा यह चन्द्र सदोष है। यथा जन्म सिंधु पुनि बंधु विष, दिन मलीन सकलंक। सिय मुख समता पाव किमि, चंद बापुरो रंक। घटै बढ़ै बिरहिन दुख दाई। ग्रसै राहु निज संधिहि पाई। कोक सोकप्रद पंकज द्रोही। अवगुन बहुत चंद्रमा तोही। पर श्रीरामचन्द्र

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



निर्दोष है, इसलिए 'चारु' कहा। रघुपति कहकर श्रीरामावतार कहा जो रघुकुल में हुआ। जो रामावतार भृगुकुल में हुआ अथवा जो यदुकुल में हुआ उनका यहाँ ग्रहण नहीं है।

अवतार के दो प्रधान कारण शङ्करजीने कहे हैं 'असुर मारि थापहिं सुरन्ह' दैवी सम्पत्वालो की रक्षा और आसुर सम्पत्वालो का संहार सो 'विस्व सुखद खल कमल तुसारू' कहकर दोनो बातें कही। खल की कमल से उपमा इसलिए दी कि कमल अपने जनक जल से ही विमुख रहता है। ऊपर की ओर मुख किये रहता है। जिस भाँति तुषार से कमलवन का संहार हो जाता है उसी भाँति श्रीरामावतार मे पृथ्वी का निशिचर हीन होना द्योतित किया।

अब माता पिता की वन्दना करते हैं। सुकृतमूर्ति महाराज दशरथ और सुमङ्गलमूर्ति सब रानियाँ यथा सुकृती तुम समान जग माही। भयउ न है कोउ होतेउ नाही। सब रानी से सात सौ रानियो का ग्रहण है। यथा पागलपन दुलहि-नन्हि सिखावत मुदित सासु सत साता। अमगल पाप से होता है, पुण्य का मङ्गल से नित्य सम्बन्ध है, अत रानियो को मङ्गलमूर्ति कहा।

करौ प्रनाम करम मन बानी। करहु कृपा सुत सेवक जानी॥
जिनहि विरचि बड भयउ विधाता। महिमा अवधि राम पितु माता॥४॥

अर्थ मैं मन, वचन और कर्म से प्रणाम करता हूँ। पुत्र का सेवक जानकर कृपा करो जिनको रचकर ब्रह्मदेव भी बडे हुए। राम के माता पिता महिमा की सीमा हैं।

व्याख्या इष्टदेव के माता-पिता हैं, इसलिए बडी सावधानी से प्रणाम करते हैं। सुत का सेवक भी माता-पिता को प्रिय होता है। अत प्रार्थना करते हैं कि सुत का सेवक जानकर कृपा करो।

रामजी तो 'आपु प्रकट भये विधि न बनाए' पर इनके माता पिता तो ब्रह्मदेव की सृष्टि म हैं। इस नाते ब्रह्मदेव बडे हुए क्योकि राम के पिता माता महिमा की अवधि हैं। यथा सुनहु महीपति मुकुट मनि तुम सम धन्य न कोउ। राम लखन जिनके तनय विस्वविभूषन दोउ। और उनके बनानेवाले ब्रह्मदेव हैं।

दो बदौ अवध भुआल, सत्य प्रेम जेहि रामपद।
बिछुरत दीनदयाल, प्रियतनु तृन इव परिहरेउ॥१६॥

अर्थ मैं अवध क राजा की वन्दना करता हूँ, जिनको रामजी के चरणो म सच्चा प्रेम था, जिन्होने दीनदयाल के बिछुडते ही अपने प्रिय शरीर को तिनके के समान छोड दिया।

व्याख्या सच्चा प्रेम उसी को है जो प्रमपात्र का विरह न सह सके। चक्रवर्ती जी के सामने सबका प्रेम कच्चा दिखाई पडता है क्योकि रामविरह मे ये ही शरीर छोडने मे समर्थ हुए और सब लोग इस सच्चे प्रेम के लिए तरसते ही रह गये। स्वय माँ कह रही हैं असविचारि नही करउँ हठ झूठ सनेह बढाइ। मेरा प्रेम

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

झूठा है क्योकि मै तुम्हारे विरह मे मर नही सकती। अत इस झूठे प्रेम को न वढाऊँगी। भरतजी कहते हैं सकर साखि रहेउँ एहि घाएँ। सुमन्त जी कहते है रहिहि न अतहु अधम सरीरू। जस न न्हइ बिछुरत रघुबीरू। इत्यादि।

केवल छ दिन सुमन्तजी के वन पहुँचाने और लौटने मे लगे। वह चक्रवर्तीजी को अपार मालूम पडता है। लौटने की आशा से शरीर धारण किये हुए थे। यथा हा रघुनदन प्रान पिरीते। तुम बिनु जिअत बहुत दिन बीते। अत कहते हैं' प्रिय तन तृन इव परिहरेउ'। जैसे ममतारहित होकर कोई तृण तोड देते हैं, उसी भाँति शरीर छोडा। सत्य प्रेम मे इनका साथी माताओ मे भी कोई नही। इसलिए इनकी अलग वन्दना अकेले की।

प्रनवो परिजन सहित बिदेहू। जाहि राम पद गूढ सनेहू॥
जोग भोग महुँ राखेउ गोई। राम बिलोकत प्रगटेउ सोई॥१॥

अर्थ मैं कुटुम्ब सहित राजा विदेह को प्रणाम करता हूँ। जिनको रामजी के चरणो मे छिपा प्रेम था। जिसे योग और भोग मे छिपा रक्खा था, पर रामजी के देखते ही वह प्रकट हो गया।

व्याख्या 'परिजन' शब्द से महारानी सुनयना आदि समस्त परिवार का ग्रहण हुआ। अवध भुआल के सत्यसनेह की प्रशसा है और विदेहराज के गुप्त प्रेम की प्रशसा है। कोई उन्हे योगी और कोई भोगी जानता था। सामान्य लोग तो भोगी ही जानते थे, परन्तु जानकार लोग जानते थे कि योगी हैं। इन्हे प्रेमी कोई नही जानता था। जिस भाँति डब्बे मे रत्न छिपाकर रक्खा जाता है उसी भाति महाराज जनक ने योग-भोग के डब्बे मे प्रेमरत्न छिपा रक्खा था। यथा रागऊ बिराग भोग जोगवत मन, जोगी जागवलिक प्रसाद सिद्धि लही है 'गीतावली'। सो रामजी के देखते ही प्रकट हो गया। अपने स्वरूप को छिपा न सके। यथा इनहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहि मन त्यागा। श्रीरामजी के प्रेमी धन्य हैं और उनके परिजन भी धन्य है। अत सबकी वन्दना करते हैं।

प्रनवो प्रथम भरत के चरना। जासु नेम ब्रत जाइ न बरना॥
राम चरन पकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजै न पासू॥२॥

अर्थ मै पहिले भरतजी के चरणो को प्रणाम करता हूँ, जिनका नियम और व्रत वर्णन नही किया जा सकता। जिनका मन भौरे के समान लुब्ध होकर राम-चरणरूपी कमल के पास से नही हटता।

व्याख्या भाइयो की वन्दना मे ग्रन्थकार प्रथम वन्दना भरतलाल की करते हैं, क्योकि तीनो भाइयो मे बडे है। विश्व के भरण पोषण करनेवाले हैं। शुचि सुबन्धु है। धर्म की मर्यादा हैं। कुलके दीपक हैं। शठको भी राममम्मुख करनेवाले है। यथा · बिस्व भरण पोषण कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई। लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबन्धु नहि भरत समाना। ससुझब कहब करब तुम जोई।

ankurnagpal108@gmail.com



धर्म सार जग होइहिं सोई। जानेउ सदा भरत कुल दीपा। बार बार मोहि कहेउ महीपा। कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को।

जिसके नेम प्रेम का वर्णन हो नहीं सकता। यथा : मुनि व्रत नेम साधु सकुचाही। ऐसा नेम प्रेम है, जैसा भौंरे का कमल के साथ होता है। यथा : सिसुपन ते परिहरेउ न संगू। बीते अवधि जाउँ जौ जिअत न पावौ बीर।

यह शङ्का उचित नहीं है कि ग्रन्थकार ने भरत के चरण को कमल क्यो नही कहा ? क्योकि अन्य स्थान मे कहा है झलका झलकत पायन कैसे। पकज कोप ओसकन जैसे। प्रथम वन्दना करके प्रधानता दे ही दी, तब चरण को कमल कहने की आवश्यकता न रही। यथा वदौ प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित ससय सब हरना।

वदौ लछिमन पद जलजाता। सीतल सुभग भगत सुखदाता।
रघुपति कीरति विमल पताका। दंड समान भयेउ जस जाका ॥३॥

अर्थ : मैं लक्ष्मणजी के चरणकमलो की वन्दना करता हूँ, जो शीतल, सुन्दर और भक्तो को सुख देनेवाले है और रघुपति की कीर्तिरूपी विमल पताका मे जिनका यश दण्ड के समान हुआ।

व्याख्या लक्ष्मणजी के चरणकमलो के गुण कहते है। वे चरण पाप, ताप, माया का हरण करते है इसलिए शीतल है। ध्यान करनेवालो के चित्ताकर्षक होने से सुभग है। यथा 'चारु चपक बरन बसन भूपन धरन दिव्यतर भव्य लावण्य सिधो' और कल्याण मङ्गल भवन होने से 'भक्त सुख दाता' है। यथा उर्मिला रमन कल्यान मगल भवन दास तुलसी दोष दवन हेतू।

रावणवधरूपी विमल कीर्ति की पताका जो श्रीरामचन्द्र की फहरा रही है, उसका आधार लक्ष्मणजी का यश है। मेघनाद वध होने पर लङ्का अजेय नही रह गई। मेघनाद वध लक्ष्मणजी ने किया। देवताओ को प्रत्यक्ष होकर स्तुति करने का साहस हुआ। यथा जय अनत जय जगदाधारा। तुम प्रभु सब देवन्हि निस्तारा। पताका दूर से ही दृष्टिगोचर होती है पर दण्ड तो निकट आने पर दिखाई पडता है। इसी भाँति श्रीरामजी की कीर्ति विख्यात है, परन्तु लङ्का के युद्ध के देखने पर लक्ष्मणजी की कीर्ति का पता चलता है।

सेष सहस्र सीस जग कारन। सो अवतरेउ भूमि भय टारन॥
सदा सो सानुकूल रहु मोपर। कृपासिंधु सौमित्रि गुनाकर ॥४॥

अर्थ · जो जग के कारण, हजार सिरवाले शेषजी है। उन्होने पृथ्वी का भार उतारने के लिए अवतार धारण किया। वे कृपासिन्धु, गुणो की खानि सुमित्रा के पुत्र सदा मुझपर अनुकूल रहे।

व्याख्या वाल्मीकिजी ने लक्ष्मणजी को साक्षात् शेषावतार बतलाया। यथा जो सहसमीस अहीस महिधर लखन सचराचर धनी। अत· 'सेष सहस्रसीस' कहकर ग्रन्थकार स्तुति करते हैं। जाग्रत् अवस्था के विभु होने से जगकारण कहते है। जाग्रत्

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


के आधार पर ही जगत् की स्थिति है। यथा लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत आधार। इनका अवतार भूभार-हरण के लिए हुआ था। यथा जयति सग्राम सागर भयङ्कर तरन रामहित करन वरबाहु सेतू।

रामभक्त के लिए लक्ष्मणजी की सानुकूलता परमावश्यक है। लक्ष्मणजी ने ही ग्रन्थकार की ओर प्रभु का ध्यान आकृष्ट कराया। यथा मारुति मत रुचि भरत की लखि लखन कही है। कलि कालहू नाथ नाम सो प्रतीति प्रीति एक किंकर की निबही है विनय प। कृपासिन्धु और गुणाकर कहकर सेवनीय कहा और सौमित्र कहकर भगवती सुमित्रा के गुणो का इनमे होना जनाया। यथा सिय रघुवर सेवा सुचि ह्वैहो तौ जानिहौ सही सुत मोरे। कीजहु इहै विचार निरन्तर राम समीप सुकृत नही थोरे।

रिपु सूदन पद कमल नमामी। सूर सुसील भरत अनुगामी॥
महावीर विनवौ हनुमाना। राम जासु जस आपु बखाना॥५॥

अथ मै शत्रुघ्न के चरणकमलो को प्रमाण करता हूँ। वे शूर, सुशील और भरत जी के पीछे चलनेवाले हैं। महावीर हनुमान् जी की विनती करता हूँ। उनके यश का राम जी ने स्वय बखान किया है।

व्याख्या शत्रुघ्नजी ऐसे शूर हैं कि इनके स्मरण से शत्रु का नाश होता। यथा जाके सुमिरन ते रिपु नासा। नाम सत्रुहन वेद प्रकासा। जयति जय सत्रुकरि-केसरी सत्रुतम तुहिनहर किरनकेतू। 'रिपु' शब्द से लौकिक रिपु तथा पड् रिपु काम-क्रोधादि का भी ग्रहण है। शत्रुघ्न जी सुशील ऐसे हैं कि बडे भाइयो क समाने कभी बोले ही नही और भरत जी के अनुगामी हैं। अर्थात् रामसेवक के सेवक है। यथा जयति सर्वागसुन्दर सुमित्रासुवन भुवनविख्यात भरतानुगामी विनय। अर्थात् रामजी के दासानुदास हैं। अब भ्रातृकोटि म परिगणित भक्तो की वन्दना करते हैं।

वीर बहुत हुए, पर महावीर शब्द रूढ हनुमान् जी के लिए है। बडे बडे वीरो ने त्रैलोक्य विजय किया पर काम के वशवर्ती कभी न हुए हो ऐसे तो एक हनुमान्जी ही हैं। सब कोई रामयश का बखान करके अपने को कृतकृत्य मानते हैं पर हनुमान्जी के यश का तो स्वय रामजी बखान करते हैं। यथा सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहि कोउ सुर नर मुनि तनुधारी। सुनु सुत तोहि उरिन मैं नाही। देखेउँ करि विचार मनमाही। ऐसे महावीरजी के विनय करने से कामादि शत्रु भी नष्ट होगे और रामजी की कृपा भी होगी।

सो प्रनवौ पवन कुमार, खल बन पावक ग्यान घन।
जासु हृदय आगार, बसहि राम सर चाप धर॥१७॥

अर्थ मैं पवनकुमार हनुमान्जी को प्रणाम करता हूँ जो खलरूपी वन के लिए अग्नि हैं और जिन्हें घना ज्ञान है और जिनके हृदयरूपी घर म धनुष-बाण धारण किये श्रीरामजी निवास करते हैं।

व्याख्या प्रनवौ से प्रणाम कहा। पवन से अग्नि की उत्पत्ति कही। यथा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



'वायोरग्नि ।' सो पवनकुमार भी अग्निरूप ही हैं। भेद यह है कि अग्नि जड है। उसे विचार नही है। सभी को अवसर पडने पर जलाता है। पर हनुमान्जी तो 'खलवन-पावक' हैं। अग्नि जड प्रकाश है। हनुमान् जी मे चित्प्रकाश है। इसलिए ज्ञानघन कहा। अग्नि भगवान् की विभूति हैं। यथा 'वसूना पावकश्चास्मि। और हनुमान्जी के हृदय मे स्वय भगवान् बसते हैं। 'सर चाप धर' कहने का भाव यह कि : तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना। जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि माथा।

'पवनकुमार' कहकर दिव्य जन्म बताया। 'खलवन पावक' कहकर दिव्य कर्म बताया। 'ज्ञानघन' कहकर दिव्य ज्ञान बताया और 'जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर' कहकर साक्षात् रामायणरूप बतलाया। अथवा 'पवनकुमार कहकर समुद्रोल्लघन ध्वनित किया। 'खलवन पावक' कहकर लकादहन ध्वनित किया। ज्ञानघन कहकर सीता प्रबोध, रावण प्रबोध ध्वनित किया। बसहिं राम सरचाप धर से 'राम प्राप्ति' ध्वनित की। इसी वन्दना मे सक्षेप से हनुमतच्चरित कह डाला क्योकि हनुमान्जी 'भानुकुलभानु कीरति पताका' हैं।

कपिपति रीछ निसाचर राजा। अंगदादि जे कीस समाजा ॥

वंदौ सबके चरन सोहाये। अधम सरीर राम जिन्ह पाये ॥१॥

अर्थ : वानरो के पति रीछ तथा राक्षसो के राजा और अङ्गद आदि जो वानर समाज है उन सबके सुन्दर चरणो की मैं वन्दना करता हूँ। जिन्होने अधम शरीर से रामजी को प्राप्त किया।

व्याख्या : कपिपति अर्थात् सुग्रीवजी, रीछ राजा जाम्बवानजी, निशाचरराज विभीषणजी, अङ्गदादि अर्थात् द्विविद मयन्द, नील, नल, गद, विकटास्य, दधिमुख, केहरि, निशठ, शठ आदि वानरसमाज। इन सब महानुभावो के सुन्दर चरणो की वन्दना करते हैं, क्योकि ये रामजी के सखा हैं। यथा ये सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भये समर सागर कहँ बेरे। हनुमान्जी की प्रथम वन्दना का कारण यह है कि ये सर्वाधिक बडभागी और रामानुरागी हैं। यथा 'हनूमान सम नहि बडभागी। नहि कोउ रामचरन अनुरागी। इन सबो मे बडी विशेषता है। नर शरीर से भी रामजी की प्राप्ति दुर्लभ है, सो इन लोगो ने अधम शरीर से रामजी की प्राप्ति की है। यथा : प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा। अस मैं अधम सखा सुनु मोहू पर रघुवीर। कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर।

रघुपति चरन उपासक जेते। खगमृग सुर नर असुर समेते ॥

बंदौ पद सरोज सब केरे। जे बिनु काम राम के चेरे ॥२॥

अर्थ . पशु, पक्षी, देवता, मनुष्य और असुर समेत जितने रघुनाथ के चरणो के उपासक हैं, जो बिना कामना के रामजी के दास हैं। मैं सबके चरण कमलो की वन्दना करता हूँ।

व्याख्या भाव यह कि नर से व्यतिरिक्त शरीरो मे भी उपासक पाये जाते

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हैं। सो वन्दना उपासकों की है, शरीरों की नहीं। खग से गरुड, भुसुण्डि, जटायु आदि का ग्रहण है। मृग से बानरों तथा रीछों की सेना के सैनिक आदि, सुर से गणेश सुरेश आदि, नरों से अयोध्या, मिथिला निवासी आदि, असुर माल्यवान आदि। भाव यह कि चाहे जिस योनिके हो, निष्काम भक्त अन्तरङ्ग हैं। यथा सकल कामना हीन जे राम भगति रसलीन। अस सज्जन मम उर बस कैसे। लोभी हृदय बसहि धन जैसे।

सुक सनकादि भगत मुनि नारद। जे मुनिवर बिग्यान बिसारद॥
पनवौं सबहि धरणि धरि सीसा। करहु कृपा जन जानि मुनीसा॥३॥

अर्थ शुकाचार्य, सनक, सनन्दन, सनातन, सनत्कुमार, भक्तमुनि नारद तथा जितने विज्ञान-विशारद मुनि हैं, उन सबको मैं धरती पर मस्तक रखकर प्रणाम करता हूँ। हे मुनीश्वरो! अपना जन जानकर कृपा करो।

व्याख्या भाव यह है कि उपर्युक्त महानुभाव विज्ञान-विशारद अर्थात् ब्रह्मज्ञ होने पर भी भक्त है। यथा अस बिचारि पंडित मोहि भजही। पायेहु ज्ञान भगति नहि तजही। ग्रन्थकार कहते हैं कि इनके चरणस्पर्श की भी मेरी योग्यता नहीं है। इससे धरती पर सिर रखकर प्रणाम करते हैं और अपने को इनका सेवक मानते हैं। अथवा बहुतो को युगपत् प्रणाम धरणी पर सिर रख करके ही किया जाता है, एक हो तो उसके चरणों पर सिर रखकर प्रणाम किया जाय।

जनक सुता जग जननि जानकी। अतिसय प्रिय करुना निधान की॥
ताके जुग पद कमल मनावों। जासु कृपा निरमल मति पावों॥४॥

अर्थ जनक की बेटी, जगत् की माता और करुणानिधान की अत्यन्त प्यारी श्रीजानकीजी के दोनो चरण कमलों को मनाता हूँ। ध्यान करता हूँ जिनकी कृपा से निर्मल मति की प्राप्ति हो।

व्याख्या जनक सुता और जानकी ये दोनो शब्द एक अर्थ के बोधक मालूम पड़ते हैं, पर यह बात नहीं है। गायत्रीसहस्रनाम मे पठित जानकी नाम सदा से ही गायत्री माता का है। अत जानकी कहकर ब्राह्मणो की इष्ट देवता गायत्री देवी कहा। जनक सुता कहकर उनका दिव्य जन्म कहा। जगजननि कहकर उनका सावित्री होना कहा। यथा आदिसक्ति जेहि जग उपजाया। सो अवतरिहि मोरि यह माया। 'अतिसय प्रिय करुना निधान की' कहकर उनका जगत्पिता सविता से अनादि सम्बन्ध सूचित किया। यथा प्रभा जाइ कहँ भानु बिहाई। कहँ चन्द्रिका चन्द तजि जाई। उस महामाया के दोना चरणो का ध्यान ग्रन्थकार करते हैं। बोलने मे तो केवल चरणकमल कहने से काम चल जाता है, पर ध्यान करने म तो बड़ी सावधानी की आवश्यकता है। अत 'जुग पद कमल मनावों' कहते है। ये ही बुद्धि की प्रेरणा करनेवाली देवी है। अत निर्मल मतिप्राप्ति के लिए प्रार्थना करते हैं। अथवा श्रेय और प्रेय दोनो की प्राप्ति के लिए दोनो चरणो का ध्यान करते है। उपासना करने से यही देवी बुद्धिरूप मे परिणत होकर मृत्युजाल से छुडा देती है। जब यह देवी प्रसन्न होती है तब सूर्य की भाँति चित्ताकाश मे निष्कम्पता को प्राप्त होती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सबके हृदय मे निवास करनेवाली इस देवी की कृपा हो, यही सबसे अधिक परम साधन है।

पुनि मन वचन कर्म रघुनायक। चरन कमल वदौ सब लायक॥
राजिव नयन धरे धनु सायक। भगत विपति भजन सुख दायक॥५॥

अर्थ फिर मै मन, वाणी और कर्म से सब लायक रघुनायक के चरणकमलो की वन्दना करता हूँ। जो कमलनयन धनुष बाण धारण किये हुए भक्तो की विपत्ति को दूर करनेवाले तथा सुख के देनेवाले है।

व्याख्या रघुनायक पद से रघुकुल मे अवतार कहा। सबलायक पद से सर्वशक्तिमान् कहा तथा चक्रवर्तीजी की अत्यन्त प्रीति कही। यथा भये राम सब विधि सब लायक। राजिव नयन से सुन्दरता तथा कृपालुता कही। धरे धनु सायक पद से काल का भी नियन्ता ब्रह्म कहा। यथा लव निमेप परमानु जुग वर्ष कल्प सर चड। भजसि न मन तेहि राम कहँ काल जासु कोदड। भगत विपति भजन पदसे दुष्कृतो का विनाश कहा और सुखदायक पद से साधुपरित्राण तथा धर्मसस्थापन कहा।

इसी चौपाई मे सातो काण्डो की कथाओ का बीज निहित है। यथा रघुनायक पद से जन्म, नामकरण, मुण्डन, यज्ञोपवीत तक की कथा इङ्गित की। सबलायक पद से मखरखवारी, अहल्योद्धार, पिनाकभङ्ग, सीता-परिणय, पिताजी के यौवराज्य देने तक की कथा द्योतित की। राजिवनयन से वनवास। यथा राजिव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं। तथा मुनियो पर कृपा कही। धरे धनु सायक पद से निसिचर हीय करौ महि ऐसी प्रतिज्ञा करना कहा। भगत विपति भजन पद से सूर्पणखा-नासिकाछेदन से रावणवध तक द्योतित किया। सुख दायक पद से राज्य कहा अर्थात् राम राज वैठे त्रैलोका। हर्पित भये गये सब सोका। तक की कथा ध्वनित की।

इसी चौपाई मे अवतार के सब कारण भी कहे। यथा असुर मारि थापहि सुरन्ह राखहि निज स्रुति सेतु। जग विस्तारहि विसद जस राम जन्म कर हेतु। भगत विपति भजन सुख दायक रघुनायक। सब लायक

दो गिरा अरथ जल वीचि सम, कहिअत भिन्न न भिन्न।
वदौ सीताराम पद, जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न॥१८॥

अर्थ वाणी और अर्थ, जल लहर जैसे अलग-अलग कह जाते है पर अलग-अलग नही है, वैसे ही सीताराम पद है उनको मे वन्दना करता हूँ, जिनको दुखी अत्यन्त प्यारे है।

व्याख्या सीताजी की उपमा गिरा से, रामजी की अर्थ से, फिर सीता जी की उपमा वीचि से और रामजी की जल से है एव एक बार सीता को पहिले कहा दूसरी बार राम को पहिले कहा। अभेदार्थ दृढ करने के लिए। सीता राम है और

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



राम ही सीता हैं। [1]गिरा अर्थ से मानसिक अभेद कहा और जल वीचि से तात्त्विक अभेद कहा। सीताराम पद कहकर यह दिखलाया कि वह ब्रह्म पद एक है। उसीका राम नाम से पुँल्लिङ्ग मे व्यवहार होता है और सीता नाम से स्त्रीलिङ्ग मे व्यवहार होता है। इसलिए कहने मात्र मे भेद है, भेद कुछ भी नही। अथवा यह दिखलाया कि चरण मे भी भेद नही। जो चिह्न रामजी के दक्षिण पद मे है वे ही चिह्न सीताजी के वाम पद मे है और जो चिह्न सीताजी के दक्षिण पद मे है वे ही चिह्न रामजी के वाम पद मे है। जिन्हहिं परम प्रिय खिन्न कहकर रुचि मे भी अभेद दिखलाया।

**बंदौ नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को ॥**
**बिधि हरिहरमय बेद प्रान सो। अगुन अनूपम गुन निधान सो ॥१॥**

अर्थ मैं रघुवर के नाम की वन्दना करता हूँ, जो कृशानु अग्नि भानु सूर्य और हिमकर चन्द्र का कारण है और ब्रह्मा, विष्णु तथा महादेवमय वेद के प्राण सा है तथा निर्गुण, निरुपम और गुणनिधान सा है।

व्याख्या जैसे राजा की सवारी सेना सामन्तो के पीछे रहती है। उसी न्याय से कवि ने सबकी वन्दना करके अन्त मे श्रीसीतारामपद की वन्दना की है और उसके भी बाद नौ दोहो मे नाम की वन्दना की है। नाम का इतना आदर इसलिए है कि वह नामी को अत्यन्त प्रिय है। लोक मे भी देखा जाता है कि नामी नाम के पीछे अपना प्राण दे देता है। दूसरी बात यह है कि नाम मे रूप सूक्ष्मरूप से अवस्थान करता है। रघुवर राम का उत्कर्ष यदुवर और भृगुवर राम से अधिक है। क्योकि जिस नित्यानन्द चिदात्मामें योगी लोग रमण करते है उसीको तापनीय श्रुति ने रघुवर राम कहा है। यथा रमन्ते योगिनो यस्मिन्नित्यानन्दे चिदात्मनि। इति रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते। चिन्मयेऽस्मिन्[2] महाविष्णौ जाते दाशरथे हरौ। रघो कुलेऽखिल राति राजते यो महीस्थित। स राम इति लोकेऽस्मिन् विद्वद्भि प्रकटीकृत। सो रघुवर के राम नाम मे रघुवर का रूप से सूक्ष्मरूप अवस्थान करता है।

उसी राम नाम को यहाँ कृशानु, भानु और हिमकर का कारण बतलाया है,

---

१ एकस्यैवात्मनो भेदौ शब्दार्थवत्पृथक् स्थितौ। प्रकाशक प्रकाश्यश्च कार्यकारण-रूपता। वाक्यपदीय। अर्थ परमार्थ दृष्टि से शब्द और अर्थ अभिन्न है। आत्मा ही शब्द और आत्मा ही अर्थ है। ब्रह्म प्रकाशक है और ब्रह्म ही प्रकाश्य है। व्यावहारिक दृष्टि से शब्द और अर्थ प्रकाशक प्रकाश्य रूप से कार्यकारणभाव मे उपलब्ध होते हैं। इसीलिए कहा है कि दाम्पत्य नैव लोकेऽस्मिन् विद्यते नैव लभ्यते। अलौकिक हि दाम्पत्य विद्यते रामसीतयो।

अर्थ न ऐसा स्त्री पुरुषभाव न लोक मे है और न पाया जाता है, रामसीता का दाम्पत्य अलौकिक है।

२ इस रघुकुल मे चिन्मय, महाविष्णु हरि दशरथ के यहाँ जन्म लेकर भक्तो का सम्पूर्ण अभीष्ट प्रदान करते हुए पृथ्वी पर शोभायमान होते हैं। उन्हीका राम कहकर विद्वान् लोग अभिहित करते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



परन्तु छान्दोग्यश्रुति[1] कहती है कि उनके कारण है, तेज, अप् और अग्नि। अग्नि का जो लाल रूप है वह तेज का रूप है। जो शुक्ल रूप है वह जल का है। जो काला रूप है वह पृथ्वी का है। अग्नि से अग्नित्व ही चला गया। तीन रूप ही सत्य हैं। इसी भाँति आदित्य का जो लाल रूप है वह तेज का है। जो शुक्ल है वह जल का है। जो काला है वह पृथ्वी का है। आदित्य से आदित्यत्व गया। तीन रूप ही सत्य ठहरे। चन्द्र का जो लाल रूप है वह तेज का है। जो शुक्ल है वह जल का है। जो काला है वह पृथ्वी का है। गया चन्द्र से चन्द्रत्व। तीन रूप ही सत्य हैं। अत कहना पडेगा कि यहाँ कृशानु, भानु, हिमकर से लोक प्रसिद्ध तीनो ज्योतियाँ जिन्हे अग्नि, सूर्य और चन्द्र कहा जाता है, अभिप्रेत नही है।

मन्त्रशास्त्र कहता है कि चिन्मय ब्रह्म मे जब सिसृक्षा होती है तो उसे पर-बिन्दु कहते है। यही परबिन्दु वैष्णवो का महाविष्णु, शैवो का पर शिव और शाक्तो का अनपायिनी परा वाक् है। यही पर बिन्दु काल पाकर १ शोणबिन्दु २ सितबिन्दु तथा ३ मिश्रबिन्दु रूप से प्रकट होता है। इन्ही का पारिभाषिक नाम क्रम से १ कृशानु २ भानु और ३ हिमकर हैं। जब राम नाम महामन्त्र है तब उसकी व्याख्या मे मन्त्रशास्त्र की परिभाषा न मानने का कोई कारण नही है।

राम शब्द के विश्लेषण से र, आ और म निकलते है और ये ही क्रम से रुद्र, ब्रह्मा और विष्णु हैं। अत राम से त्रिदेव की उत्पत्ति कही गई। यथा स्कन्दयामले [2]रुद्र उवाच। रेफोऽग्निरहमेवोक्तो विष्णु सोमो म उच्यते। आवयोर्मध्यगो ब्रह्मा रविराकार उच्यते। अत स्पष्ट है कि यहाँ कृशानु भानु हिमकर से क्रमश रुद्र, ब्रह्मा और विष्णु का ग्रहण है। इनका कारण रघुवर का राम नाम है। ऐसे महामहिम राम नाम की कवि वन्दना करते है।

अब राम नाम की व्युत्पत्ति दूसरे प्रकार से कहते है। राम नाम ब्रह्मा, विष्णु और महादेवमय है। रामपूर्वतापनीय के द्वितीय उपनिषत् मे कहा है कि 'रेफारूढा मूर्तय स्यु शक्तयस्तिस्र एव च' इस पर टीकाकार लिखते हैं 'अकारद्वय मकारश्चेति वर्णास्त्रय समुदिता रेफारूढा बीज स्यु। प्रथमोऽकारो विराडात्मकब्रह्मारूप, द्वितीयोऽकारो हिरण्यगर्भात्मकविष्णुरूप, मकारस्तु अव्याकृतात्मकसदाशिवरूप'। शक्तय इति सृष्ट्यादिशक्तय इत्यर्थ तदा रेफेण स्वभूरित्यादिप्रतिपादित स्वप्रकाश ब्रह्मोपस्थाप्यते। अर्थात् रकार को रेफ कहते हैं, उसके साथ ही तीन मूर्तियाँ और तीन शक्तियाँ है। दो अकार और एक मकार र्+अ+अ+म=राम। इसमे पहिला

---

१ यदग्ने रोहितं रूप तेजसस्तद्रूप यच्छुक्ल तदपा यत्कृष्ण तदन्नस्यापागादग्नेरग्नित्व वाचारम्भण विकारोनामधेय त्रीणि रूपाणीत्येव सत्यम्। यदादित्यस्य रोहित रूप तेजसस्तद्रूप यच्छुक्ल तदपा यत्कृष्ण तदन्नस्यापागादादित्यादादित्यत्वाम् वाचारम्भण विकारो नामधेयम्। त्रीणिरूपाणीत्येव सत्यम्। यच्चन्द्रस्य रोहित रूप तेजसतद्रूप यच्छुक्ल तदपा यत्कृष्ण तदन्नस्या पागाद् चन्द्राच्चन्द्रत्वम् वाचारम्भण विकारो नामधेय त्रीणिरूपाणीत्येव सत्यम्।

२. रुद्र ने कहा कि रेफरूप अग्नि मैं हूँ। विष्णुरूप सोमम कहा जाता है। हम दोनो के बीच म ब्रह्मा सूर्य आकार कहलाते है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अकार विराडात्मक ब्रह्मदेव रूप है। दूसरा अकार हिरण्यगर्भात्मक विष्णुरूप है। मकार अव्याकृतात्मक शिवरूप है। शक्तियों से यहाँ सृष्टि, स्थिति और संहार शक्ति से अभिप्राय है और रेफ से स्वप्रकाश ब्रह्म अभिप्रेत है। इस भाँति राम नाम विधि-हरिहरमय है। वेद के प्राण सा है।

वेद का प्राण प्रणव[1] है। क्योंकि भगवान् कहते हैं कि सब वेदों में प्रणव : ओंकार : मैं हूँ। प्रणव में अकार, उकार, मकार और अर्धमात्रा है। अकार विराडात्मक ब्रह्मदेव है। उकार हिरण्यगर्भात्मक विष्णुरूप है। मकार अव्याकृतात्मक शिवरूप है। अर्धमात्रा स्वप्रकाशात्मक ब्रह्मरूप है। अतः ऊपर से मिलान करने पर प्रणव और राम नाम एक ही वस्तु प्रमाणित[2] होती हैं। इसीलिए रामनाम को रामतारक कहते हैं। यथा : राम एव परं ब्रह्म राम एव परं तपः। राम एव परं तत्त्वं श्रीरामो ब्रह्मतारकम्। राम ही परब्रह्म है। राम ही परम तप है। राम ही परम तत्त्व हैं। श्रीराम ब्रह्म तारक : प्रणव हैं।

त्रिकालातीत स्वप्रकाश ब्रह्म के रेफरूप से अवस्थित होने से तथा दोनों अकार और मकार के क्रमशः ब्रह्मा, विष्णु तथा शिवरूप से अवस्थित होने से राम नाम निर्गुण भी है और गुणनिधान भी है। एक बात में राम नाम प्रणव से भी अधिक है, वह यह कि प्रणव में केवल अमलात्मा परमहंस का ही अधिकार है किन्तु राम नाम में सबका[3] अधिकार है। अत राम नाम अनुपम है।

महा मंत्र जोइ जपत महेसू। कासीं मुकुति हेतु उपदेसू॥
महिमा जासु जान गनराऊ। प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ॥२॥

अर्थ : जिस महामन्त्र को महेश जपते हैं। जो : काशी में मुक्ति के लिए उप-देश्य है। जिसकी महिमा को गणेशजी जानते हैं। नाम के प्रभाव से उनकी प्रथम पूजा होती है।

व्याख्या : महामंत्र : यह रामनाम महामन्त्र है। मननात् त्रायते भयत इति मन्त्रः। मनन करने पर जो भय से रक्षा करे उसे मन्त्र कहते हैं। यह रामनाम

---

१. वायुपुत्र महाबाहो किं तत्त्वं ब्रह्मवादिनाम्। पुराणेष्वष्टादशसु स्मृतिष्वष्टादशस्वपि। चतुर्वेदेषु शास्त्रेषु वयस्व त्वं महाबल। हनुमान् होवाच। भो योगीन्द्राश्च ऋषयो विष्णुभक्तास्तथैव च। शृणुध्वं मामकीं वाचं भवबन्धविनाशिनीम्। एतेषु चैव सर्वेषु तत्त्वं च ब्रह्मतारकम्। सनकादिकों ने पूछा कि हे वायु पुत्र महाबाहो! अठारह पुराण, अठारह स्मृति, चारों वेद और शास्त्रों में ब्रह्मवादियों का कौन सा तत्त्व है, हे महाबल! यह बताओ। तब हनुमान् जी ने कहा कि हे योगीन्द्र ऋषियो विष्णुभक्तो! भवबन्धविनाशिनी मेरी वाणी सुनो। इन सबों में तत्त्व ब्रह्म तारक श्रीराम नाम है।

२ प्रणवत्वात् सदा ध्येयो यतीनाञ्चविशेषत। राम रहस्ये। प्रणव रूप होने से यतियों द्वारा विशेष रूप से ध्यान करने योग्य है।

३. मनुष्येषु सर्वेषामधिकारोऽस्ति देहिनाम्। राम मन्त्र में सभी देहधारियों का अधिकार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मनन करने से, हेतु सहित संसार से उपासक की रक्षा करता है इसलिए महामन्त्र है। अथवा जिस किसी भाँति जपे जाने से जापक का मङ्गलविधान करता है। इसलिए महामन्त्र है। यथा भावकुभाव अनख आलसहूँ। राम जपत मगल दिसि दसहूँ।

जोइ जपत महेसू महाईश महादेव जिसका रात दिन जप करते हैं, उसके महामन्त्र होने में सन्देह को स्थान कहाँ है। यथा तुम पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनग अराती।

कासी मुकुति हेतु उपदेसू इसकी तापनीय में कथा है। श्री वृषभध्वज ने काशी में एक सहस्र मन्वन्तर तक जप, होम, अर्चनादि करते हुए राम मन्त्र का जप किया। तब प्रसन्न होकर भगवान् राम ने शङ्करजी से कहा कि हे परमेश्वर! जो तुम्हारा अभीष्ट हो, सो माँगो मैं दूँगा। तब ईश्वर ने सच्चिदानन्द आत्मा श्रीराम से कहा कि मणिकर्णिका में, मेरे क्षेत्र में या गङ्गा के तट पर जो शरीरधारी मरे उसकी मुक्ति हो यही वरदान माँगता हूँ दूसरा नहीं। तब श्रीरामजी बोले हे देवेश! तुम्हारे इस क्षेत्र में जहाँ कहीं जो कोई मरेगा चाहे वह कृमि हो, कीट हो तुरन्त मुक्त हो जायगा। तुम्हारे अविमुक्त क्षेत्र में सबकी मुक्ति के लिए मैं पाषाणादि प्रतिमाओं में सन्निहित रहूँगा। हे शिवजी! जो इस क्षेत्र में इस मन्त्र से मेरी पूजा भक्ति के साथ करेगा उसके ब्रह्महत्यादि पापों को मैं छुड़ाऊँगा, तुम सोच न करो। तुमसे या ब्रह्मदेव से जो षडक्षर मन्त्र प्राप्त करेंगे वे जीते ही मन्त्रसिद्ध होंगे। जिस मरणशील प्राणी के दक्षिण कर्ण में तुम मेरे मन्त्र का उपदेश करोगे हे शिवजी! वह मुक्त हो जायगा। यथा

श्रीरामस्य मनुं काश्यां जजाप वृषभध्वजः।
मन्वन्तरसहस्रैस्तु जपहोमार्चनादिभिः ॥१॥
ततः प्रसन्नो भगवान् श्रीरामः प्राह शङ्करम्।
वृणीष्व यदभीष्टं तद्दास्यामि परमेश्वर ॥२॥

इति। स होवाच

मणिकर्ण्यां मम क्षेत्रे गङ्गायां वा तटे पुनः।
म्रियते देही तज्जन्तोर्मुक्तिर्नातो वरान्तरम् ॥३॥

अथ स होवाच श्रीरामः।

क्षेत्रेऽस्मिन् तव देवेश यत्र कुत्रापि वा मृताः।
कृमिकीटादयोप्याशु मुक्ताःसन्तु न चान्यथा ॥४॥
अविमुक्ते तव क्षेत्रे सर्वेषां मुक्तिसिद्धये।
अहं सन्निहितस्तत्र पाषाणप्रतिमादिषु ॥५॥
क्षेत्रेऽस्मिन् योऽर्चयेद् भक्त्या मन्त्रेणानेन मां शिव।
ब्रह्महत्यादिपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥६॥
मुमूर्षोर्दक्षिणे कर्णे यस्य कस्यापि वा स्वयम्।
उपदेक्ष्यसि मन्मन्त्रं स मुक्तो भविता शिव ॥ रा उ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मो काशी मे मरणशील को प्रतिक्षण मन्त्र देते हुए विश्वनाथ दिन रात घूमा करते हैं, इस भाँति उनका जप अब भी निरन्तर चलता जाता है।

महिमा जासु जान गनराऊ गणेशजी मातृमान् हैं, पितृमान् हैं, अपने माता-पिता को दिन रात नाम जप करते देखते हैं। उसी की बदौलत काशी मे मुक्ति का सदावर्त शिवजी ने खोल रक्खा है। यह भी जानते हैं और स्वय उनका अनुभूत विषय है कि ऐसे नामजापक मातापिता की प्रदक्षिणा करके वे लोक मे प्रथम पूज्य हुए। उनके प्रथम पूज्य होने के मूल मे भी राम नाम की महिमा है। अत राम नाम की महिमा के यथार्थ जानकार गणराउ गणेशजी हैं। उनके नाम स्मरण से सिद्धि होती है। यथा - जेहि सुमिरत सिधि होइ, गन नायक करिवरवदन। करहु अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि सुभगुनसदन।

**जान आदिकवि नाम प्रतापू। भयउ सुद्ध करि उलटा जापू॥**
**सहस नाम सम सुनि सिव बानी। जपति सदा पिय संग भवानी॥३॥**

अर्थ आदिकवि वाल्मीकि नाम का प्रताप जानते हैं। वे उलटा जप करके शुद्ध हो गये। सहस्र नामके बराबर राम नाम है। ऐसी शिवजी की वाणी सुनकर भवानी सदा पतिके सङ्ग जप किया करती हैं।

व्याख्या जान आदिकवि · पहले पहल ससार मे छन्दोमयी वाक् की प्रवृत्ति इन्ही[१] को हुई। इसी से आदिकवि कहलाते हैं। ग्रन्थकार कहते हैं कि नाम का प्रताप इन्हे मालूम है। महामन्त्र जेहि जपत महेसू कहकर रामनाम का गुण कहा। महिमा जासु जान गनराऊ कहकर महिमा ज्ञान का प्रभाव कहा। अब प्रताप ज्ञान की महिमा कहते हैं। कवियो ने यशको उज्ज्वल और प्रताप को उष्ण माना है। यथा जाके जस प्रताप के आगे। ससि मलीन रवि सीतल लागे। सो नाम मे ऐसी दाहिका शक्ति है कि पापो को रूई की भाँति भस्म कर देती है। यथा जासु नाम पावक अघ तूला। इसके जानकार आदिकवि हैं क्योंकि उनका अनुभूत विषय है।

वे राम नाम का उलटा जप करके व्याध से महर्षि हो गये। पूर्व के किये हुए सब पाप नष्ट होगये और ऐसे शुद्ध हो गये कि माया का लेश भी शेष नही रह गया। यथा उलटा नाम जपत जग जाना। वाल्मीकि भए ब्रह्मसमाना। ससार राम राम जप करता है, उन्होने मरा मरा जप किया। मरा मरा का धाराप्रवाह जप चलने से राम राम हो जाता है। फिर भी मरा मरा जपने का कोई कारण होना चाहिए।

श्रीगोस्वामीजी कहते है तुलसी रा के कहत ही निसरत सकल विकार। पुनि आवन पावत नही देत मकार किवार। इस दोहे मे राम नाम जप की विधि है। 'रा' कहते हुए श्वास को बाहर निकाले और 'म' कहते हुए भीतर खीच ले। इस भाँति प्रति श्वास नि श्वास मे रामनाम का जप करे। मनुष्य का स्वभाव है

१ श्लोक एवास्त्वय बद्धो नात्र कार्या विचारणा। मच्छन्दादेव ते ब्रह्मन् प्रवृत्तेय सरस्वती। वा ग। ब्रह्मदेव ने वाल्मीकि से कहा। यह तुम्हारा बनाया हुआ श्लोक यशरूप हो, यहाँ सन्देह न करो। हे ब्रह्मन् मेरे सकल्प से ही यह सरस्वती प्रवृत्त हुई है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कि कार्यारम्भ के लिए सावधान होते ही श्वास को भीतर खीचता है। अतः स्वभाव से ही मनुष्य को मकार के प्रथम उच्चारण मे सुभीता पड़ता है। इनकी मूढ़ता विचार करके इन्हे उलटा जप का उपदेश दिया। यह प्रत्यक्ष फलदायिनी योग की बडी भारी क्रिया है।

तात्पर्य यह है कि इस नाम का इतना बड़ा प्रताप है कि मन्त्र के उलट जाने पर भी फल में कोई व्यतिक्रम नही हुआ।

शिवजी ने पार्वतीजी से रामनाम को सहस्रनाम[1] के तुल्य बतलाया। क्योकि शिवपार्वतीसंवाद के पहिले ही नारदजी भगवान् से वर माँग चुके हैं कि : राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खगगन बधिका। राकारजनी भगति तव, राम नाम सोइ सोम। अपर नाम उडगन विमल, बसहु भगत उर व्योम। भक्तिरूपी पूर्णिमा की रात्रि मे रामनाम चन्द्रमा हो और शेष नाम तारागण होकर भक्त के हृदयकाश मे बसे। सो अन्धकार का नाश एक चन्द्र से होता है, हजार तारागण से तो नही होता। इसीलिए रामनाम को सहस्रनाम के तुल्य बतलाया। उस शिक्षा को शिरोधार्य करके पति के साथ पार्वतीजी भी दिन रात नाम जपने लगी।

हरषे हेतु हेरि हरही को। किय भूषनु तिय भूषन तीको ॥
नाम[2] प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फल दीन्ह अमीको ॥४॥

अर्थ : शिवजी हृदय का प्रेम देखकर हर्षित हुए और स्त्रियो मे भूषण जो स्त्री : पार्वतीजी : थी उन्हे अपना भूषण बना लिया। शिवजी भली भाँति नाम के प्रभाव को जानते है। उन्हे कालकूट ने अमृत का फल दिया। हेतु = प्रेम। यथा : चले संग हिमवंत पहुचावन अति हेतु।

व्याख्या : पार्वतीजी का राम नाम पर हार्दिक प्रेम देखकर शङ्कर भगवान् प्रसन्न हो गये। रामजी पर प्रेम न देखकर असन्तुष्ट भी हुए थे। नाम पर सच्चा प्रेम देखकर ऐसे प्रसन्न हुए कि उन्हे सदा के लिए अपना भूषण बनाकर अर्धनारीश्वर रूप हो गये और विछोह की शङ्का को ही निर्मूल कर दिया। भावार्थ यह कि रामनाम के प्रेमी के ऊपर शङ्कर भगवान् का विशेष अनुग्रह होता है।

अब भली भाँति प्रभाव ज्ञान की महिमा कहते है कि इसके जानकार शिवजी हैं। दिन रात राम राम जपा करते है। जप करते करते करुणा के आवेश मे कालकूट का ही पान कर डाला। श्री गोस्वामी जी कहते हैं : जरत सकल सुर बृंद, विषम गरल जेहि पान किय। तेहि न भजसि मन मंद, को कृपालु संकर सरिस।

समुद्रमन्थन के समय जो अच्छी वस्तुएँ निकली उन्हे देवताओं और असुरो ने बाँटा। जब कालकूट निकला तब सब जलने लगे। उसके क्षार से ही जले जाते थे

---

१ राम रामेति रामेति रमे रामे मनोरमे। सहस्रनाम तत्तुल्य रामनाम वरानने ॥
अर्थ : हे मनोरमे ! हे वरानने ! राम राम राम जप करता हुआ मैं राम मे रमण करता हूँ। राम नाम उनके तथा सहस्र नाम के तुल्य है।

२. यहाँ व्याघातालङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उसे कौन ग्रहण करता ? तब शङ्करजी ने करुणा करके उसे ग्रहण कर लिया। पर कालकूट उनके ऊपर कोई प्रतिक्रिया न कर सका बल्कि उससे उनका शरीर अजर अमर हो गया। यथा : पीयो कालकूट भयो अजर अमर तनु · विनय। अमृत पान करके देवताओं का अमरत्व सापेक्ष ही रह गया और नाम के प्रताप से विप पीने पर भी शङ्कर भगवान् का अमरत्व निरपेक्ष है। ये महाकल्पान्त करनेवाले हैं। इनका अन्तक कौन हो सकता है ? यथा :

तांडवित नृत्यपर डमरु डिमडिम प्रवर, असुभ इव भाति कल्यानरासी।
महाकल्पांत ब्रह्माण्ड मण्डलदवन, भवन कैलास आसीन कासी॥ विनय.

यहां तक नाम का प्रभाव वर्णन किया। अब नाम के दोनों अक्षरो का वर्णन करेंगे।

दो. वरपा ऋतु रघुपति भगति, तुलसी सालि सुदास।
राम नाम वर वरन जुग, सावन भादव मास॥१९॥

अर्थ : रघुपति की भक्ति वर्षा ऋतु है और तुलसी : कहते है कि : सुदास धान हैं और राम नाम के दोनों अक्षर श्रावण और भाद्रपद महीने है।

व्याख्या : यद्यपि ऋतु छः होती हैं, पर स्थूल रूप से तीन ही ऋतु मानी जाती हैं। जाड़ा, गरमी और बरसात। बरसात के चार महीने, असाढ़, सावन, भादो और कुआर को चौमासा कहते हैं। यही चौमासा संसार का उपजीव्य है। पृथ्वी, जो शस्यश्यामला, सजला, सुफला है वह चौमासा की ही कृपा से है। इसी भाँति साधनों में जो सरसता है वह भक्ति की कृपा से है।

इस चौमासे का भी सार श्रावण और भाद्रपद मास है। इसी भाँति भक्ति का भी सार 'रा' और 'म' ये ही दो अक्षर है। जिस भाँति श्रावण और भाद्रपद की वर्षा मे ही धान उपजता है क्योंकि धान के पौदो को बड़ी प्यास होती है। इन्हे बराबर पानी चाहिए और पानी पाकर ये रात दिन बढ़ते हैं। इसी भाँति सुदास को भजन की प्यास होती है। जब राम नाम की रटन चले तो उसका सब भाँति से कल्याण हो।

सुदास उसे कहते है जिसे केवल रामजी की ही आशा है। जिसे मनुष्य की भी आशा हो वह सुदास नही हो सकता। यथा : मोरदास कहाइ नर आसा। करै तो कहहुँ कहाँ विस्वासा।

आखर मधुर मनोहर दोऊ। वरन विलोचन जन जियँ जोऊ॥
सुमिरत सुलभ सुखद सव काहू। लोक लाहु परलोक निवाहू॥१॥

अर्थ : दोनों अक्षर मधुर और मनोहर है। अक्षरों के तो नेत्र है, भक्त के मन को देखनेवाले है। स्मरण करने मे सुलभ हैं और सबको सुख देते है। लोक में लाभप्रद है और परलोक का निर्वाह करते हैं।

व्याख्या : राम नाम के दोनों अक्षर मधुर हैं। कहने सुनने मे अच्छे लगते

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है। इनका उच्चारण वाल्मीकि रूपी कोकिल¹, कविता शाखा पर से किया करते हैं और देखने मे अति सुन्दर है। यथा राम नाम अक्षित अति सुन्दर। ये दोनो अक्षर रेफ और मकार अनुस्वार अक्षरो की आँखे है। आँखे देखती हैं और ये दोनो अक्षर भक्तो के जी मन को देखा करते है कि भक्त का जी क्या चाहता है ?

रूप भी इनका नेत्र-सा है। रेफ भौंह की तरह टेढा है और मकार अनुस्वार पुतली की भाँति गोल है। महात्माओ ने वर्णसमाम्नाय के आठो वर्गों को सरस्वती का अष्टाङ्ग माना है। चरणो के क्रम से रकार और मकार दोनो नेत्र स्थान पर पडता है। बीच म वायु बीज मकार नासिका है। इस भाँति भी इसे वर्ण विलोचन कहा जा सकता है।

ऐसा होने पर भी राम नाम का स्मरण सुलभ है। रूप के स्मरण की भाँति दु साध्य नही है। भगवान् की सुन्दर मनोहर मूर्ति के ध्यान के लिए जैसा सरस मन होना चाहिए वैसा मन होना दुर्लभ है और निर्गुण रूप तक मन की पहुँच नही है। यथा सगुन ध्यान मन सरस नहिं निर्गुन मन ते दूरि। तुलसी सुमिरहु राम को नाम सजीवन मूरि।

सबको सुखद है, क्योकि इसम सबका अधिकार है। जिस वस्तु म जिसका अधिकार नही होता, वह वस्तु उसे सुखद नही होती। अत कल्याण चाहनेवाले, वह वस्तु उसे नही देते। यथा कुपथ भोग रुज व्याकुल रोगी। वैद न देइ सुनहु मुनि जोगी। इस भाँति भगवान् के नामो मे प्रणव सबसे उत्तम है, पर उसम सन्यासियो का अधिकार है ब्राह्मणो का भी अधिकार नही। अकेले उसकी उपासना से लाभ की अपेक्षा हानि की ही सम्भावना अधिक है। अत केवल प्रणव की उपासना गृहस्थो के लिए वर्जित है। परन्तु रामतारक प्रणव की उपासना मे सबका² अधिकार है। अत यह स के लिए सुखद है। इसके अतिरिक्त राम नाम से लोक परलोक दोनो

---

१ मधुर और मधुराक्षर राम नाम के उच्चारण से ही सिद्धि पानेवाले वाल्मीकि को कोकिल कहा। आह्लादकत्व माधुर्य है राम शब्द की व्युत्पत्ति ही यही है कि जिसम योगी लोग रमण कर। यथा रमन्ते योगिनो यस्मिन्। इस भाँति रामनाम मधुर है। 'र अन्त स्थ है। आ अवर्ण है। म अन्तिम वर्ण है। इनका उच्चारण मधुर है। इसलिए मधुराक्षर कहा। यथा कूजन्त राम रामेति मधुर मधुराक्षरम्। आरुह्य कविताशाखा वन्दे वाल्मीकि-कोकिलम् वाल्मीकि टीका। कोकिल की प्रशसा, उसके मधुर मनोहर कूजने से है। इसी भाँति वाल्मीकि की प्रशसा उनके राम राम उच्चारण मे है जो कि उच्चारण म मधुर और अर्थ म मनोहर है।

२ मनुष्यत्वेपु सर्वेषामधिकारोऽस्ति देहिनाम्।
मुमुक्षूणा विरक्ताना तथा चाश्रमवासिनाम्॥
प्रणवत्वात् सदा ध्येयो यतीनाश्च विशेषत।
राममन्त्रार्थविज्ञानी जीवन्मुक्तो न सशय॥ रामरहस्ये

आञ्जनेय महाबल विप्राणा गृहस्थाना प्रणवाधिकार कथ स्यादिति। स होवाचेति। येषामेव षडक्षराधिकारो वर्तते तथा प्रणवाधिकार स्यान्नान्येषाम्। रामरहस्ये

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुधरता है। 'तत्त्वमसि'[1] आदि महावाक्यों का उपयोग केवल मुक्ति में है। भुक्ति भोग से उनका कोई सम्बन्ध नहीं रहता। रामनाम भुक्ति मुक्ति दोनों देता है। लोक थोड़े दिन के लिए है, इसलिए 'लोक लाहु' कहा। परलोक तो अनन्त काल के लिए है। इसलिए 'परलोक निबाहू' कहा।

कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके। राम लखन सम प्रिय तुलसी के॥
बरनत बरन प्रीति बिलगाती। ब्रह्म जीव सम सहज सँघाती॥२॥

अर्थ कहने, सुनने और स्मरण करने में बहुत अच्छे हैं। तुलसी को तो राम लक्ष्मण के समान प्रिय हैं। वर्णों को पृथक् वर्णन करते हुए प्रीति अलग अलग हो जाती है। परन्तु ये दोनों अक्षर ब्रह्म जीव की भाँति स्वभाव से ही साथी हैं।

व्याख्या कहते सुनते अर्थात् चरचा करते हुए सुठि नीके हैं। स्मरण करते हुए भी सुठि नीके अर्थात् अत्यन्त अच्छे हैं। यथा काल कर्म गुन सुभाउ सबके सीस तपत। राम नाम महिमा की चरचा चले चपत। राम सो प्रतीति प्रीति हृदय सुथिर थपत। पावन किये राम नाम तुलसी हूँ से अपत। इसलिए कहा कहत सुनत सुमिरत सुठि नीके।

राम, लक्ष्मण दोनों भाइयों की जोड़ी ऐसी थी कि अमलात्मा परमहंसों का भी मन इनकी ओर खिंच जाता था। ज्ञानियों के शिरोमणि जनक जी इन दोनों भाइयों को देखकर मुग्ध हो गये। विश्वामित्रजी से पूछने लगे

ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय बेष धरि सोइ कि आवा॥
सहज बिराग रूप मन मोरा। थकित होत जिमि चंद चकोरा॥
इनहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहि मन त्यागा॥
कह मुनि बिहँसि कहेहु नृप नीका। बचन तुम्हार न होइ अलीका॥
ये प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी। मन मुसुकाहि राम सुनि बानी॥

इसी भाँति रा और म की जोड़ी श्रीतुलसीदासजी को प्रिय है।

सुष्ठु शब्द का तद्भव रूप सुठि है। 'उपरि लोप कगडतदपषसाम्' प्रा प्र ३ १। इस सूत्र से षकार का लोप हुआ। 'इत्पुरुषेरो' प्रा प्र १ २३। इस सूत्र से उकार का इकार होकर सुठि शब्द सिद्ध हुआ।

---

अर्थ राम मन्त्र में सभी देहधारियों का अधिकार है। मुमुक्षुओं का, विरक्तों का तथा आश्रमवासियों का। प्रणव होने से यह राम नाम विशेषत संन्यासियों द्वारा ध्यान करने योग्य है। राम मन्त्र का अर्थ जाननेवाला जीवन्मुक्त है इसमें संशय नहीं है।

उन लोगों ने पूछा हे महाबल हनुमानजी! गृहस्थ ब्राह्मणों का प्रणवाधिकार कैसे हो? उन्होंने कहा कि श्रीरामजी ने कहा है कि जिनका षडक्षर का अधिकार है उन्हें ही प्रणव का अधिकार है।

१ तत्त्वमस्यादि वाक्यं तु केवलं मुक्तिदं यत। भुक्तिमुक्तिप्रदं चैतत्तस्मादप्यतिरिच्यते॥
अर्थ तत्त्वमस्यादि महावाक्य केवल मुक्ति दायक हैं। राम मन्त्र भुक्ति और मुक्ति दोनों देता है। इसलिए बढ़कर है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नाम के प्रत्येक अक्षरो का वर्णन कोई नही करता क्योकि ऐसा करने से वे निरर्थक हो जाते हैं। पर राम नाम के दोनो अक्षरो का पृथक् वर्णन हो सकता है। क्योकि स्वय श्रुति प्रत्येक अक्षर का अर्थ बतलाती है। 'रा' तत्पदार्थ[1] का बोधक है और 'म' त्वम् पदार्थ है। जो तामसी माया को ग्रहण करके जगत् का उपादान कारण है और शुद्धसत्त्वा माया को ग्रहण करके निमित्त कारण है। उसी उभयरूपी ब्रह्म को[2] तत् कहते हैं। जब कामकर्मादिदूषित मलिनसत्त्वा माया को उपाधि रूप से ग्रहण करता है तब उसी परब्रह्म को 'त्वम्' पद से अभिहित करते हैं।

परन्तु स्वय भगवती श्रुति इनके सयोजन का विधान करती है। यथा तयो सयोजनमसीत्यर्थे तत्त्वविदो विदु । रा और म को क्रम से तत् और त्व पदार्थ कहकर उनके सयोजन को 'असि' बतलाया है। अत रा और म के पृथक् वर्णन से वाक्य भेद हो जाता है। वह महावाक्य का अर्थ नही देता। इसलिए कहते हैं बरनत बरन प्रीति बिलगाती।

कारण देते है कि इन दोनो अक्षरो का ब्रह्म-जीव की भाँति स्वाभाविक साथ है। ब्रह्म सच्चिदानन्द है। मोह से परे है। जीव भी ' अविनासी चेतन सहज सुख-रासी है। दोनो मे भेद[3] माया ने कर रक्खा है। तत्त्वत दोनो एक ही है। अत दोनो सहज साथी हैं। इनका साथ छूट नही सकता। क्योकि 'रा' उच्चारण के बाद स्वभाव से ही 'म' उच्चरित होता है। विवृत प्रयत्न के बाद स्पृष्ट प्रयत्न स्वाभाविक है। अर्थात् 'रा' के उच्चारण मे मुँह खुलता है उसके बाद मुख बन्द करने मे स्वभाव से ही 'म' उच्चारित हो जाता है। इसीलिए 'सहज सँघाती' कहा।

नर नारायन सरिस सुभ्राता । जग पालक बिसेषि जन त्राता ।।
भगति सुतिअ कल करन बिभूषन । जगहित हेतु बिमल बिधु पूषन ।।३।।

अर्थ ये दोनो वर्ण नर नारायण के सदृश सुबन्धु है। जगत् के पालक हैं। पर विशेषरूप से भक्तो के रक्षक है। भक्तिरूपी सुतिय के कान के गहने है और जगत् के हित के लिए तो निर्मल सूर्य और चन्द्र हैं।

व्याख्या जिस भाति नर-नारायण सुभ्राता हैं, उसी भाँति 'रा' और 'म' भी सुभ्राता हैं। नारायण का प्रादुर्भाव पहिले हुआ अत वे बडे है। नर का प्रादुर्भाव उनके पीछे हुआ इसलिए वे छोटे है। 'नर' शब्द मे 'नारायण' की अपेक्षा कम अक्षर होने से समास के नियमानुसार नर का नाम पहिले आया नारायण का पीछे। यहाँ

---

१ आद्यो रा तत्पदार्थ स्यात् मकारस्त्व पदार्थवान् ।
तयो सयोजनमसीत्यर्थं ब्रह्मविदो विदु. ।। रा ता

२ जगतो यदुपादान मायामादाय तामसीम् ।
निमित्त शुद्धसत्त्वा तामुच्यते ब्रह्म तद् गिरा ।।
यदा मलिनसत्त्वा तां कामकर्मादिदूषिताम् ।
आदत्ते तत्पर ब्रह्म त्व पदेन तदोच्यते ।। प द

३ मुधा भेद जद्यपि कृत माया । बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रथम उच्चारित होने से 'रा' अग्रज है और पीछे से उच्चारित होने से 'म' अनुज है। परस्पर अत्यन्त प्रेम होने, साथ न छोडने, ध्येय के एक होने से जिस भाँति नर नारायण सुभ्राता हैं उसी भाँति 'रा' और 'म' मे भी बडी प्रीति है। इनका सदा साथ बना रहता है। 'रा' के ठीक उच्चारण मे रेचक[1] करना पडता है। तत्पश्चात् पूरक करने मे 'म' का उच्चारण आप से आप होता है। ध्येय भी दोनो का एक है। जिस भाँति दोनो भाई अखिल ससार के कल्याण के लिए तप करते हैं और भक्तो की विशेषरूप से रक्षा करते हैं उसी भाँति ये दोनो अक्षर जप द्वारा प्रादुर्भूत होकर सम्पूर्ण ससार का कल्याण करते हैं और जापक की रक्षा तो विशेषरूप से करते हैं। यथा

नौमि नारायन नर करुनायन ध्यान पारायन ज्ञानगम्य ज्ञानमूल।
अखिल ससार उपकार कारन सदय हृदय तपनिरत प्रनतानुकूल ॥ विनय

तथा हरन अमगल अघ अखिल, करन सकल कल्यान।
राम नाम नित कहत हर, गावत वेद पुरान ॥
यथा भूमि सब बीजमय, नखत निवास अकास।
राम नाम सबधर्ममय, जानत तुलसीदास ॥
राम नाम कलि काम तरु, सकल सुमगल कद।
सुमिरत करतल सिद्धि सब पग-पग परमानद ॥ दोहावली

पहिले 'जग पालक बिसेपि जन त्राता' कहकर लौकिक लाभ कहा। अब पारलौकिक लाभ कहते हैं ये दोनो अक्षर अव्यभिचारिणी भक्ति के कानो के कुण्डल हैं, अर्थात् सौभाग्य के चिह्न हैं। यथा मदोदरी सोच उर बसेऊ। जबते श्रवन पूर महि खसेऊ। इनका गिरना वैधव्य सूचक माना जाता है। सुतिय पतिव्रता स्त्री को कहते हैं। यथा पति देवता सुतीय मँह मातु प्रथम तव रेख। बिना नाम के अक्षरो के पता ही नही लगता कि किसकी भक्ति है? इनके बिना भक्ति अनाथा रहती है। रेफ और मकार अनुस्वार के ऊपर नीचे रखने से कुण्डल का आकार बन जाता है। इसलिए भी इसे कुण्डल से उपमित करना प्राप्त हैं।

ससार के कल्याण करनेवाला म प्राधान्य बिधु और पूषण का है। जिस भाँति चन्द्रनाडी इडा और सूर्यनाडी पिङ्गला से पिण्ड की स्थिति है उसी भाँति चन्द्र और सूर्य के कारण ब्रह्माण्ड की स्थिति है। 'बिधुपूषन' जगत् के प्रकाशक होकर हित हैं और 'रा' और 'म' परात्मतत्त्व के प्रकाशक होकर हित हैं। यथा बिस्व सुखद जनु इन्दु तमारी।

स्वाद तोषसम सुगति सुधा के। कमठ सेष सम धर बसुधा के ॥
जनमन मजु कज मधुकर से। जीह जसोमति हरि हलधर से ॥४॥

अर्थ सुगतिरूपी अमृत के स्वाद और तोष के समान हैं। पृथ्वी को धारण

१ प्राणायाम करते समय श्वास को बाहर निकालने को रेचक कहते हैं। श्वास को भीतर खीचना पूरक कहलाता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



करने के लिए कच्छप और शेप के समान हैं। भक्तों के मनरूपी सुन्दर कमल के लिए भौंरे के समान हैं। जिह्वारूपी यशोदा के लिए कृष्ण और बलराम जी के समान हैं।

व्याख्या लौकिक और पारलौकिक लाभ कहकर, अब सुगति मुक्ति के विषय मे कहते हैं। 'ज्ञानमार्गं तु नामत ' नाम से ज्ञानमार्ग की प्राप्ति होती है और ज्ञान से ही मुक्ति है। मुक्ति को अमृत माना है। बल्कि यह कहना चाहिए कि वास्तविक अमृत तो मुक्ति ही है। जिस भाँति अमृत में स्वाद और तोप होता है उसी भाँति मुक्तिरूपी अमृत म रा और म है। ऊपर कहा जा चुका है कि रा तत्पद है और म त्व पद है, दोनों का सयोग असि है। इस भाँति राम पदार्थ महावाक्य है। इसीके ज्ञान स मुक्ति होती है। बिना पाप के नाश के ज्ञान नही होता। सो राम नाम पापरूपी रूई के लिए अग्नि है। यथा जासु नाम पावक अघ तूला। पाप ही पृथ्वी का भार है। यथा अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी। गिरि सर सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही। अत 'रा' और 'म' पाप का नाश करके पृथ्वी पर भार नही होने देते[1]। वे इस पृथ्वी को उसी भाँति ऊपर से धारण किये हुए हैं। जिस भाँति नीचे से शेप और कमठ धारण किये हुए है। रेफ और मकार बिन्दु को ऊपर नीचे रख देने से रेफ शेपाकार और बिन्दु कमठाकार हो जाता है।

अब साधन की सुकरता कहते है। भक्त के हृदयकमल मे, 'रा' और 'म' रस के लोभ से भौंरे की भाँति पहुँचकर गुनगुनाया करते है और भक्त की जिह्वा को भी बिना उनके कल नही पडता। जैसे यशोदाजी को बिना हरि कृष्ण और हलधर बलदेव के कल नही। भक्त का देह ही व्रज है। मुख ही नन्दगृह का आँगन है। जिह्वारूपी यशोदा वहा रा और म रूपी कृष्ण, बलदेव को सदा खेलाया करती है। इसी मे उन्हे आनन्द है।

दो एकु छत्र एकु मुकुट मनि, सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के, बरन बिराजत दोउ ॥२०॥

अर्थ तुलसीदासजी कहते है एक छत्र के समान और दूसरा मुकुट मणि के समान है। सब अक्षरो के ऊपर देख लो। ये ही रघुवर नाम के दोनो अक्षर विराज रहे हैं।

व्याख्या अब पहिचान बतलाते है कि पुस्तको म अक्षर पक्तियो को देखो तो 'रा' रेफ के रूप से और 'म' अनुस्वार के रूप से सब वर्णों के ऊपर दिखलाई पडेगा। रेफ का आकार छत्र सा और बिन्दु का आकार मुकुट मणि सा है। सो 'रघुवर' नाम के दोना अक्षर विराजमान दिखाई पडेंगे। अर्थात् अक्षर-समाम्नाय की शोभा भी इन्ही दोनो वर्णो से है। ये नाद बिन्दु को भाँति सबके ऊपर शोभायमान हैं।

---

१ तेन तप्त हुत दत्तमेवाखिल तेन सर्वं कृत कर्मजाल।
येन श्रीरामनामामृत पानकृतमनिशमनवद्यमवलोक्य कालम्॥ विनय



(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इस भाँति दोनो अक्षरो के वर्णन का उपक्रम 'राम नाम वर बरन जुग सावन भादो मास' से करके 'तुलसी रघुबर नाम के बरन बिराजत दोउ' से उपसहार करते है।

समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी ॥
नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी ॥१॥

अर्थ समझने मे नाम और नामी एक से है। दोनो मे परस्पर प्रभु और अनुगामी की भाँति प्रीति है। नाम और रूप ये दोनो परमेश्वर की उपाधियाँ है। अकथनीय हैं और अनादि हैं। ये बाते अच्छी समझ से ही साध्य हैं।

व्याख्या 'सदृश'[1] शब्द का ही तद्भव रूप 'सरिस' है। 'समुझत सरिस' से नाम शब्द और नामी अर्थ मे मानसिक अभेद कहा। नाम और नामी से नाम और रूप का ग्रहण है। नाम प्रभु है और रूप अनुगामी सेवक है। प्रभु की सेवक पर प्रीति और सेवक की प्रभु पर प्रीति है। नाम लेते ही रूप सम्मुख उपस्थित होता है और रूप के उपस्थित होने पर नाम की जिज्ञासा होती है। यही परस्पर प्रीति है। नाम स्वामी की भाँति सदा रूप पर दृष्टि रखता है और रूप सेवक की भाँति नाम के लिए प्राण देने को तैयार रहता है।

नाम और रूप दोनो ईश्वर की उपाधियाँ[2] है। 'उप' समीप को कहते हैं आधान स्थापन को कहते है, अर्थात् जो समीप मे स्थापन करने से अपने मे माना जाय उसे उपाधि कहते है। जैसे रक्खे हुए फूलो की छाया पडने से, वे रग दर्पण मे माने जाते है।

इसी भाँति कर्मो की छाया पडने से जीवो म नाम रूप माने गये। पर ईश्वर की बात दूसरी है। ईश्वर का कर्म से सम्बन्ध नही। उसमे केवल भक्तो के भाव की छाया पडती है और भाव सत्ता रूप अविनाशी है। अत ईश्वर के नामरूपादि नित्य हैं। ऐसी समझ आवे तब ईश्वर के नामरूप म ईश्वर का भाव सध सकेगा। इस भाँति नाम और रूप दोनो अनादि है और अकथ है, क्योकि उनकी उपमा नही है। सुकथ वे ही पदार्थ हैं जिनकी उपमा होती है, अनुपम को कोई कैसे कहे ? पूर्व परिचित पदार्थ से सादृश्य बतलाकर ही किसी वस्तु का वर्णन किया जा सकता है। भगवान् तो अनुपम हैं ही, उनकी उपाधियाँ भी अनुपम हैं। यथा इनके नाम अनेक अनूपा। मै नृप कहव स्वमति अनुरूपा। निरुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहै। जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहै।

---

१ कगचजतदपयवा प्रायेण लाप प्रा प्र इस सूत्र से द का लाप होकर सऋश रूप हुआ। तब 'अयुक्तस्यरि' इस सूत्र मे ऋ का 'रि' हो गया। 'सदृश' का 'सरिश' रूप हुआ। 'शषो स' इस सूत्र से 'श' का 'स' हुआ। इस भाँति 'सदृश' का 'सरिस' रूप सिद्ध हुआ।

२ उपाधि कार्यानन्वयी व्यावर्तको वर्तमानश्च।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



करने के लिए कच्छप और शेष के समान है। भक्तो के मनरूपी सुन्दर कमल के लिए भौरे के समान है। जिह्वारूपी यशोदा के लिए कृष्ण और बलराम जी के समान है।

व्याख्या : लौकिक और पारलौकिक लाभ कहकर, अब सुगति : मुक्ति : के विषय मे कहते है। 'ज्ञानमार्गं तु नामत ' नाम से ज्ञानमार्ग की प्राप्ति होती है और ज्ञान से ही मुक्ति है। मुक्ति को अमृत माना है। बल्कि यह कहना चाहिए कि वास्तविक अमृत तो मुक्ति ही है। जिस भाँति अमृत मे स्वाद और तोष होता है उसी भाँति मुक्तिरूपी अमृत मे रा और म है। ऊपर कहा जा चुका है कि रा तत्पद है और म त्व पद है, दोनो का सयोग असि है। इस भाँति राम पदार्थ महावाक्य है। इसीके ज्ञान से मुक्ति होती है। बिना पाप के नाश के ज्ञान नही होता। सो राम नाम पापरूपी रुई के लिए अग्नि है। यथा जासु नाम पावक अघ तूला। पाप ही पृथ्वी का भार है। यथा अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी। गिरि सर सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरूअ एक परद्रोही। अत 'रा' और 'म' पाप का नाश करके पृथ्वी पर भार नही होने देते[1]। वे इस पृथ्वी को उसी भाँति ऊपर से धारण किये हुए हैं। जिस भाँति नीचे से शेष और कमठ धारण किये हुए हैं। रेफ और मकार बिन्दु को ऊपर नीचे रख देने से रेफ शेषाकार और बिन्दु कमठाकार हो जाता है।

अब साधन की सुकरता कहते है। भक्त के हृदयकमल मे, 'रा' और 'म' रस के लोभ से भौरे की भाँति पहुँचकर गुनगुनाया करते है और भक्त की जिह्वा को भी बिना उनके कल नही पडता। जैसे यशोदाजी को बिना हरि कृष्ण : और हलधर बलदेव के कल नही। भक्त का देह ही व्रज है। मुख ही नन्दगृह का आँगन है। जिह्वारूपी यशोदा वहाँ रा और म रूपी कृष्ण, बलदेव को सदा खेलाया करती है। इसी मे उन्हे आनन्द है।

दो एकु छत्र एकु मुकुट मनि, सब बरननि पर जोउ।
तुलसी रघुबर नाम के, बरन बिराजत दोउ ॥२०॥

अर्थ : तुलसीदासजी कहते है : एक छत्र के समान और दूसरा मुकुट मणि के समान है। सब अक्षरो के ऊपर देख लो। ये ही रघुवर नाम के दोनो अक्षर विराज रहे है।

व्याख्या अब पहिचान बतलाते है कि पुस्तको मे अक्षर पक्तियो को देखो तो 'रा' रेफ के रूप से और 'म' अनुस्वार के रूप मे सब वर्णों के ऊपर दिखलाई पड़ेगा। रेफ का आकार छत्र सा और बिन्दु का आकार मुकुट मणि सा है। सो 'रघुवर' नाम के दोनो अक्षर विराजमान दिखाई पड़ेगे। अर्थात् अक्षर-समाम्नाय की शोभा भी इन्ही दोनो वर्णों से है। ये नाद बिन्दु की भाँति सबके ऊपर शोभायमान है।

---

१ तेन तप्तं हुतं दत्तमेवाखिलं तेन सर्वं कृतं कर्मजालं।
येन श्रीरामनामामृतं पानकृतमनिशमनवद्यमवलोक्य कालम् ॥ विनय

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इस भाँति दोनो अक्षरो के वर्णन का उपक्रम 'राम नाम वर वरन जुग सावन भादो मास' से करके 'तुलसी रघुवर नाम के वरन विराजत दोउ' से उपसहार करते है।

समुझत सरिस नाम अरु नामी। प्रीति परसपर प्रभु अनुगामी ॥
नाम रूप दुइ ईस उपाधी। अकथ अनादि सुसामुझि साधी ॥१॥

अर्थ समझने मे नाम और नामी एक से है। दोनो मे परस्पर प्रभु और अनुगामी की भाँति प्रीति है। नाम और रूप ये दोनो परमेश्वर की उपाधियाँ है। अकथनीय है और अनादि है। ये वाते अच्छी समझ से ही साध्य है।

व्याख्या 'सदृश'[1] शब्द का ही तद्भव रूप 'सरिस' है। 'समुझत सरिस' से नाम शब्द और नामी अर्थ मे मानसिक अभेद कहा। नाम और नामी से नाम और रूप का ग्रहण है। नाम प्रभु है और रूप अनुगामी सेवक है। प्रभु की सेवक पर प्रीति और सेवक की प्रभु पर प्रीति है। नाम लेते ही रूप सम्मुख उपस्थित होता है और रूप के उपस्थित होने पर नाम की जिज्ञासा होती है। यही परस्पर प्रीति है। नाम स्वामी की भाँति सदा रूप पर दृष्टि रखता है और रूप सेवक की भाँति नाम के लिए प्राण देने को तैयार रहता है।

नाम और रूप दोनो ईश्वर की उपाधियाँ[2] है। 'उप' समीप को कहते हैं, आधान स्थापन को कहते हैं, अर्थात् जो समीप मे स्थापन करने से अपने मे माना जाय उसे उपाधि कहते है। जैसे रक्खे हुए फूलो की छाया पडने से, वे रग दर्पण मे माने जाते है।

इसी भाँति कर्मो की छाया पडने से जीवो म नाम रूप माने गये। पर ईश्वर की वात दूसरी है। ईश्वर का कर्म से सम्बन्ध नही। उसम केवल भक्तो के भाव की छाया पडती है और भाव सत्ता रूप अविनाशी है। अत ईश्वर के नामरूपादि नित्य हैं। ऐसी समझ आवे तव ईश्वर के नामरूप मे ईश्वर का भाव सध सकेगा। इस भाँति नाम और रूप दोनो अनादि है और अकथ है, क्योकि उनकी उपमा नही है। सुकथ वे ही पदार्थ हैं जिनकी उपमा होती है, अनुपम को कोई कैसे कहे ? पूर्व परिचित पदार्थ से सादृश्य वतलाकर ही किसी वस्तु का वर्णन किया जा सकता है। भगवान् तो अनुपम है ही, उनकी उपाधियाँ भी अनुपम है। यथा इनके नाम अनेक अनूपा। मै नृप कहव स्वमति अनुरूपा। निरुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहै। जिमि कोटि मत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहै।

---

१ कगचजतदपवा प्रायेण लोप प्रा प्र इस सूत्र से द का लोप होकर सऋश रूप हुआ। तव 'अयुक्तस्यरि' इस सूत्र म ऋ का 'रि' हो गया। 'सदृश' का 'सरिश' रूप हुआ। 'शषा स' इस सूत्र से 'श' का 'स' हुआ। इस भाँति 'सदृश' का 'सरिस' रूप सिद्ध हुआ।

२ उपाधि कार्यानन्वयी व्यावर्तको वर्तमानश्च।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



को बड़ छोट कहत अपराधू। सुनि गुन भेद समुझिहहिं साधू ॥
देखिअहि रूप नाम आधीना। रूप ग्यान नहिं नाम बिहीना ॥२॥

अर्थ : कौन बड़ा है, कौन छोटा है? इसके कहने मे अपराध है। गुणो के भेद को सुनकर साधु समझ लेंगे। नाम के अधीन रूप देखा जाता है। नाम के बिना रूप का ज्ञान हो नही सकता।

व्याख्या : नाम और रूप जब दोनो ईश्वर की उपाधियाँ है, तब दोनो की कोटि समान है, किसे बड़ा कहे, किसे छोटा कहे? किसी को छोटा बडा कहने मे अपराध है, परगुण भेद देखकर साधन करनेवाले के समझने मे रोक कैसे लगेगी? वे तो जिसमे साधनसौकर्य हो, उसीका ग्रहण करेंगे।

नाम लेते ही रूप आँख के सामने खडा हो जाता है। इसलिए स्पष्ट देखा जाता है कि रूप नाम के अधीन है। रूप देखने पर भी नाम का पता नही चलता। अत यह भी स्पष्ट है कि नाम रूप के अधीन नही है।

रूप बिसेष नाम बिनु जाने। करतल गत न परहि पहिचाने ॥
सुमिरिय नाम रूप बिनु देखे। आवत हृदयँ सनेह बिसेखे ॥३॥

अर्थ . रूप विशेष बिना नाम के जाने, हाथ मे आने पर भी पहिचाना नही जा सकता। रूप के बिना देखे ही यदि नाम का स्मरण किया जाय तो हृदय मे अधिक प्रीति उत्पन्न होती है।

व्याख्या : नाम की प्रधानता के विषय मे दूसरी बात यह है कि कोई वस्तु यदि हाथ मे भी आजाय तो भी यदि नाम नही मालूम तो पहिचान मे नही आती। किसी फल का यदि नाम न मालूम हो तो हाथ मे लेकर चखने पर भी पहिचाना नही जाता और उसीको जिसने कभी नही चखा हो और नाम जानता हो तो वह दूर से ही देखकर पहिचान लेगा।

बहुत से लोगो ने अपने पिता, पितामह को नही देखा है। कितनो को अपनी माता के रूप का स्मरण नही है। पर उनके नाम के स्मरण से हृदय मे विशेष स्नेह होता है। देवताओ की आराधना करनेवाले बिना रूप देखे ही नाम स्मरण करते है और प्रेम मे विभोर होकर अपने को भूल जाते है।

नाम रूप गति अकथ कहानी। समुझत सुखद न परति बखानी ॥
अगुन सगुन बिच नाम सुसाखी। उभय प्रबोधक चतुर दुभाखी ॥४॥

अर्थ . नाम और रूप की गति की कथा अकथनीय है। समझने से सुखदायक है। पर वर्णन नही की जा सकती। निर्गुण और सगुण के बीच मे नाम सुन्दर साक्षी है। दोनो का ज्ञान कराने के लिए चतुर दुभाषिया है।

व्याख्या : कहाँ तक नाम काम करता है, कहाँ तक रूप काम करता है, कहाँ तक इनका सम्बन्ध है, कहाँ तक भेद है, ये सब बातें अकथनीय है, पर विचारणीय अवश्य हैं। ऐसा सूक्ष्म विषय है कि उसके प्रकाश के लिए शब्द नही हैं पर विचार मे बडा आनन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ब्रह्म के दो स्वरूप हैं : १. निर्गुण और २ सगुण । दोनों के बीच में साक्षी नाम है । नाम का अर्थ निर्गुण का बोध कराता है । यथा ' रमन्ते योगिनो यस्मिन् नित्यानन्दे चिदात्मनि स राम- । और उसके अक्षर सगुण ब्रह्म का बोध कराते हैं । यथा : राजते यो मही स्थितः, राक्षसा येन मरणं यान्ति इत्यादि । जिस भाँति द्रविड़ बँगला नहीं समझते और बंगाली द्रविड़ भाषा नहीं समझते उसी भाँति निर्गुणवादी सगुणवादी की बोली नहीं समझते और न सगुणवादी निर्गुणवादी की बोली समझे । यदि चतुर दुभाषिया हो तो दोनों को समझा दे और स्वयं पृथक् रहे । इसी भाँति नाम दोनों : निर्गुणवादी और सगुणवादी को समझा देता है और स्वय पृथक् रहता है । यथा : सगुन ध्यान मन सरस नहिं, निर्गुण मनते दूरि । तुलसी सुमिरहु राम को नाम सजीवन मूरि ।

दो. राम नाम मनि दीप धरु, जीह देहरी द्वार ।
तुलसी भीतर बाहरहु, जौं चाहसि उजिआर ॥२१॥

अर्थ : तुलसीदास जी कहते हैं कि यदि तू बाहर और भीतर उजाला चाहता है तो जीभरूपी द्वार की देहली पर राम नामरूपी मणि का दीप रख ।

व्याख्या : निर्गुण से भीतर उजेला होता है बाहर नहीं, क्योंकि निर्गुण रूप सूक्ष्म बुद्धि से जाना जाना है और सगुण रूप से बाहर उजेला होता है क्योंकि वह नेत्रों से जाना जाता है । यथा : हिय निर्गुन नैननि सगुन रसना राम सुनाम । मनहु पुरट सम्पुट लसत तुलसी ललित ललाम । श्रीगोस्वामी जी कहते हैं कि यदि भीतर बाहर दोनों ओर उजेला चाहे तो राम नामरूपी मणिदीप देहली द्वार रूप जीभ पर रक्खे । द्वार की देहली पर दीप रखने से अर्थात् जीभ से राम नाम उच्चारण करने से भीतर बाहर दोनों ओर उजेला बना रहता है । बाहर हवा से न बुझे इसलिए मणिदीप कहा तथा नामोच्चारण भक्ति है । बरखा रितु रघुपति भगित तुलसी सालि सुदास । राम नाम बर बरनजुग सावन भादो मास । इसलिए भी मणिदीप कहा । यथा : मोह दरिद्र निकट नहिं आवा । लोभ बात नहि ताहि बुझावा ।

नाम जीहँ जपि जागहिं जोगी । बिरति बिरंचि प्रपंच बियोगी ॥
ब्रह्म सुखहि अनुभवहि अनूपा । अकथ अनामय नाम न रूपा ॥१॥

अर्थ : वैराग्य से ब्रह्मा के प्रपञ्च के वियोगी योगीजन जीभ से नाम को जपकर जागते हैं । अनुपम ब्रह्म सुख का अनुभव करते हैं, जो अकथनीय, निर्दोष और बिना नाम रूप का है । 'ब्रह्म सुख' में कर्मधारय समास है, जो ब्रह्म है वही सुख है ।

व्याख्या : परमार्थ की ओर से सब सो रहे हैं, यही मोहनिशा है और उसी में संसाररूपी स्वप्न देख रहे हैं : यथा : मोहनिसा सब सोवनिहारा । देखहिं स्वप्न अनेक प्रकारा । विषय विलास से विराग होना ही जागना है यथा : जानिय तबहिं जीवजग जागा । जब सब विषय बिलास बिरागा । मोहनिशा में जागनेवाले योगी लोग हैं, जिन्हें ब्रह्मा के प्रपञ्च से वैराग्य के कारण दुःख मयोग से वियोग है यथा : तं

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विद्याद्दुःखसंयोगवियोगं योगसंज्ञितम् । ऐसे विराग की रक्षा जीभ से रामनाम जप करने से होती है ।

विधिप्रपञ्च दुःख से सना है । संसारी पुरुष दुःखसंसर्गशून्य सुख से अपरिचित है । यथा : कविहिं अगम जिमि ब्रह्म सुख, अहं मम मलिन जनेषु । परिच्छिन्न होने से सांसारिक सुखों के लिए नाम है । उनका स्वरूप है, उनमें दोष है, वे कथनीय हैं । परन्तु ब्रह्म सुख अनूप है, जगत् से विलक्षण है, अतः अकथ अनामय और अरूप है । इससे ज्ञानी[1] भक्त कहा ।

जाना चहहिं गूढ गति जेऊ । नाम जीह जपि जानहिं तेऊ ॥
साधक नाम जपहिं लय लाए । होहिं सिद्ध अनिमादिक पाए ॥२॥

अर्थ : जो लोग गूढ गति जानना चाहते हैं, वे भी नाम को जीभ से जपकर जानते हैं, साधक लौ लगाकर नाम जप करते हैं और अनिमा आदि सिद्धियाँ पाकर सिद्ध हो जाते हैं ।

व्याख्या : जगत् कैसे हुआ ? कहाँ से हुआ ? इसका आधार क्या है ? हम क्या हैं ? ईश्वर क्या है ? संसार से छुटकारा कैसे हो ? इत्यादि प्रश्न बड़े गूढ हैं । इन्हें जो जानना चाहते हैं वे ही गूढ गति के जिज्ञासु हैं । इनके लिए भी साधन जिह्वा से राम नाम का जप है । राम नाम की रटन लगने से आप से आप हृदय में प्रकाश हो जाता है । यथा : जौं लौं नहिं निज हृदि प्रकास अरु विषय आस मन माहीं । तौं लौं कोटि उपाय करिअ संसय निर्मूल न जाहीं । स्वभाव से ही सबको ज्ञान रहता है, पर वह अज्ञान से ढँका रहता है । यथा : अज्ञानेनावृतं ज्ञानं तेन मुह्यन्ति जन्तवः । गी इस अज्ञान का नाश भी नाम जप से होता है । नाम जप बिना सारे वेदान्तग्रन्थ पढ़ने पर भी ज्ञान न होगा । इससे जिज्ञासु भक्त कहा ।

खण्ड सिद्धियाँ बहुत हैं । उनकी प्राप्ति तो नाम जप से होती ही है, अणिमादिक[2] महासिद्धियों की भी प्राप्ति होती है । अणिमादिक आठ सिद्धियाँ हैं १ अणिमा २ महिमा ३ गरिमा ४ लघिमा ५ प्राप्ति ६ प्राकाम्य ७ ईशित्व और ८ वशित्व । इन्हें चाहनेवाले भक्त साधक कहलाते हैं । इन्हीं को गीता में अर्थार्थी कहा । इनका साधन भी नाम का जप ही है । कोई सिद्धि भी बिना संयम के नहीं होती । धारणा, ध्यान, समाधि तीनों का एकत्र होना संयम है । नाम जप में धारणा, ध्यान और समाधि होनी चाहिए । अर्थात् पूरी एकाग्रता होनी चाहिए तब सिद्धि होती है । इसीलिए 'लौ लाये' कहा ।

जपहिं नामु जन आरत भारी । मिटहिं कुसंकट होहिं सुखारी ॥
राम भगत जग चारि प्रकारा । सुकृती चारिउ अनघ उदारा ॥३॥

---

१ चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ ॥ गी

२ छोटा हो जाना २ बड़ा हो जाना ३ भारी हो जाना ४ हलका हो जाना ५ सब पदार्थों की प्राप्ति ६ इच्छा का अनभिघात ७ सामर्थ्य ८ भूत भौतिक वश्यता ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ अत्यन्त आर्त भक्त नाम का जप करते हैं, बुरे सकट मिट जाते है और वे सुखी होते है। ससार मे चार प्रकार के भक्त हैं। चारो पुण्यात्मा, पापहीन और उदार हैं।

व्याख्या : जो सङ्कट मिटने के लिए भजन करते हैं, वे आर्तभक्त है। इनका भी साधन नामोच्चारण है। नाम के जप से आर्त का कुसकट दूर होता है। जैसे द्रौपदी को कुसकट पडा था। यथा : नर नारि उघारि सभामहँ होत दियो पट सोच हर्यो मनको। इतना ही नही कि सकट दूर होकर रह जाय, उन्हे सुख भी मिलता है।

इस भाँति चार प्रकार के भक्त हुए। चारो रामनाम रूपी सुकृत से कार्यसिद्धि चाहते है। इसलिए सुकृती है। यथा · राम को सुमिरिवो सव विधिही को राज रे। राम को विसारिवो निषेध सिरताज रे। लौकिक साधनो मे पाप का अनुवेध रहता ही है। सो ये लोग जपयज्ञ से सिद्धि चाहते हैं। जिसमे किसी प्रकार का पापसम्पर्क न होने पावे। अत: 'अनघ' कहा। और अपनी सिद्धि के लिए किसी से याचना नहीं करते। न किसी के स्वार्थ मे वाधा पहुँचाते है। इसलिए उदार कहा।

चहूँ चतुर कहुँ नाम अधारा। ग्यानी प्रभुहि विसेप पियारा ॥
चहुँजुग चहुँ श्रुति नाम प्रभाऊ। कलि विसेपि नहिं आन उपाऊ ॥४॥

अर्थ : चारो चतुरो को नाम ही आधार है पर ज्ञानी प्रभु को वहुत प्यारा है। चारो युगो, चारो वेदो मे नाम का प्रभाव है, परन्तु कलियुग मे विशेप करके है। क्योकि अन्य कोई उपाय ही नही है।

व्याख्या : यहाँ चारो को चतुर इसलिए कहा कि इन लोगो ने अन्य साधनो को छोडकर नाम का आधार ग्रहण किया। श्रीग्रन्थकार कहते है कि अन्य साधनो का भरोसा नही है। यथा :

नाहिन आवत आन भरोसो।
एहि कलिकाल सकल साधनतरु है श्रम फरनि फरोसो।
तप तीरथ उपवास दानमख जो जेहि रुचै करोसो।
पाएहि पै जानिवो कर्म फल, भरि भरि वेद परोसो।
आगम विधि जप जाग करत नर, सरत न काज खरोसो।
सुख सपनेहु न योग सिधिसाधन रोगवियोग धरोसो ॥
कामक्रोध मद लोभ मोहमिलि, ज्ञानविराग हरोसो।
विगरत मन सन्यास लेत, जल नावत आम घरोसो ॥
वहुमत मुनि वहु पथ पुराननि, जहाँ तहाँ झगरोसो।
गुरु कह्यो राम भजन नीको, मोहि लगत राज डगरोसो ॥
तुलसी विनु परतीति प्रीति, फिरि-फिरि पचिमरै मरोसो।
राम नाम वोहित भवसागर, चाहै तरन तरोसो ॥ विनय.

इन चारो का नाम ही आधार है। इनमे भी प्रभु को ज्ञानी अधिक प्यारा है। क्योकि ज्ञानी उनकी आत्मा है। यथा : ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चारो युगो मे नाम का प्रभाव है। यथा चहुँयुग तीन काल तिहुँ लोका। भये नाम जपि जीव विसोका। चारो श्रुतियो मे है। यथा इहै कह्यो सुनु वेद चहूँ। श्रीरघुवीर चरन चिंतन तजि नाहिन ठौर कहूँ। कलि मे विशेष है क्योकि और उपाय नही है। यथा ' एकही साधन सब रिधि सिधि साधि रे। ग्रसे कलिरोग जोग सजम समाधि रे। राम नाम छोडि जो भरोसो करै और रे। तुलसी परोसो त्यागि माँगे कूर कौर रे।

दो सकल कामना हीन जे, राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष हृद, तिन्हहु किये मन मीन ॥२२॥

अर्थ जो सम्पूर्ण कामना से रहित रामभक्ति रस मे लीन है उन्होने भी नाम रूपी सुन्दर प्रेम के अमृतकुण्ड मे अपने मनको मछली बना रक्खा है।

व्याख्या जिन्हे उपर्युक्त कामनाओ मे से एक भी नही है उन्हे भजन करने मे ही आनन्द आता है। ऐसे पुष्ट भक्तिवाले तो नाम के विस्मरण से व्याकुल हो उठते है। नाम ही प्रेमामृत का कुण्ड है। उसी मे उनका मन मछली की भाँति विश्राम मानता है। इन चार प्रकार के भक्तो का उल्लेख करते हुए भगवद्गीता मे कहा गया है चतुर्विधा भजन्ते मा जना सुकृतिनोऽर्जुन। आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ। श्रीमधुसूदन स्वामी का यह मत[१] है कि इस श्लोक मे 'ज्ञानी च' पद है। सो 'चकार' से ऐसे ही निष्काम भक्तो का सग्रह है जिनका वर्णन इस दोहे मे किया गया है।

अगुन सगुन दुइ ब्रह्म सरूपा। अकथ अगाध अनादि अनूपा॥
मोरे मत बड नामु दुहूँते। किय जेहि जुग निज बस निज बूते॥१॥

अर्थ निर्गुण और सगुण ब्रह्म के दो स्वरूप हैं। दोनो अकथ, अथाह, अनादि और अनुपम हैं। मेरी सम्मति मे नाम दोनो से बडा है। जिसने अपने बल से दोनो को अपने वश मे कर रक्खा है।

व्याख्या पहिले राम शब्द की व्युत्पत्ति कही। फिर उसका महामन्त्र होना कहा। उसकी महिमा, प्रभाव और प्रताप कहा। गुण कहा, नामी से अधिक बतलाया। उसको एक मात्र सर्वसम्मत साधन बतलाया। अब निर्गुण सगुण दोनो स्वरूपो से भी बढकर कह रहे हैं।

निर्गुण स्वरूप, अकथ, अगाध, अनादि और अरूप है। यथा अज अद्वैत अगुन हृदयेसा। अकल अनीह अनादि अरूपा। अनुभव गम्य अखड अनूपा। मन-गोतीत अमल अविनासी। निर्विकार निरवधि सुखरासी। सो तैं तोह ताहि नहि भेदा। वारि वीचि इव गावहिं वेदा। इसी भाँति सगुण रूप भी अकथ, अगाध, अनादि और अनूप है। यथा दिखरावा मातहिं निज अद्भुत रूप अखड। रोम रोम

१ चकारो यस्य कस्यापि निष्कामप्रेमभक्तस्य ज्ञानिन्यन्तर्भावार्थं। जिस किसी निष्काम प्रेम भक्त का ज्ञानी मे अन्तर्भाव के लिए चकार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रति लागे काटि कोटि ब्रह्मड। यहाँ ग्रन्थकार अपनी सम्मति कहते हैं नाम मे इतना सामर्थ्य है कि नामी उसके वश में रहता है। नाम लेकर स्तुति करनेवाले के सम्मुख होता है। निन्दा करनेवाले के विमुख होता है। रात-दिन नामस्मरण करनेवाले के वशीभूत रहता है। नामी के दो स्वरूप हैं निर्गुण और सगुण। और दोनो नाम के सामर्थ्य से उसके वश मे हैं।

प्रौढि सुजन जनि जानहि जनकी। कहउँ प्रतीति प्रीति रुचि मनकी ॥
एकु दारु गत देखिअ एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू ॥२॥

अर्थ सज्जन लोग इसे जन तुलसी की प्रौढि जबरदस्ती न समझें। मैं अपने मनका विश्वास, प्रीति और रुचि कहता हूँ। दोनो प्रकार के ब्रह्म का विवेक अग्नि के समान है। एक अग्नि तो लकडी के भीतर है और दूसरी बाहर दिखाई पडती है।

व्याख्या ग्रन्थकार कहते हैं कि नाम को सगुण ब्रह्म और निर्गुण ब्रह्म से बढ़-कर कहने मे मैं हठ से नही काम ले रहा हूँ। श्रुति के बल से मुझे प्रतीति हुई। गुरुओ के उपदेश से प्रीति हुई और प्रारब्ध से रुचि हुई। उसी को मैं कहता हूँ।

जिस भाँति व्यक्त अग्नि से ही हम लोग परिचित हैं और वही हमलोगो के काम आती है उसी भाँति सगुण ब्रह्म से ही जगत् परिचित है और उसी से सब काम चलता है। जिस भाति लकडी मे भी अग्नि अव्यक्त है पर लकडी को नही जलाती बल्कि लकडी की आधारभूत वही अग्नि है। उसी भाँति निर्गुण ब्रह्म अव्यक्त है, निष्क्रिय है और सबका आधार है। जिस भाँति व्यक्त और अव्यक्त अग्नि तत्त्वत एक ही है उसी भाँति निर्गुण और सगुण ब्रह्म भी तत्त्वत एक ही है।

उभय अगम जुग सुगम नामते। कहेउँ नाम बड ब्रह्म राम ते ॥
ब्यापकु एकु ब्रह्म अविनासी। सत चेतन घन आनँद रासी ॥३॥

अर्थ दोनो दुर्गम हैं, पर नाम से दोनो सुगम है। ब्रह्म और राम दोनो मे मैं नाम को बडा कहता हूँ। ब्रह्म एक, अविनाशी सत्, चेतन और घन आनन्द की राशि है।

व्याख्या निर्गुण ब्रह्म अति सुलभ होने से अगम है। जिस प्रकार अति सन्निहित वस्तु इन्द्रिय गोचर न होने से अदृश्य होती है उसी प्रकार निर्गुण ब्रह्म आत्मस्वरूप होने से ज्ञेय नही है। यथा निर्गुन रूप सुलभ अति सगुन न जानै कोय। और सगुण ब्रह्म अपार होने से अगम है। अत स्वरूपत दोनो ही अगम हैं पर नामत दोनो सुगम हैं। अत ब्रह्म निर्गुण और राम सगुण दोनो से नाम बडा है।

नाम के बल से निर्गुण ब्रह्म को सगुण बनाकर काम लिया जा सकता है। उसी की प्रक्रिया बतलाते हुए निर्गुण ब्रह्म का निरूपण करते हैं। पहिले उसे व्यापक कहा। पर व्यापक मानने से किसी दूसरे व्याप्यकी भावना उठती है, इसलिए एक कहा। माया का ग्रहण न हो जाय इसलिए अविनाशी ब्रह्म कहा। 'सत चेतन आनद रासी' कहकर स्वरूप लक्षण बतलाया। घन कहकर द्वितीय का निषेध किया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अस प्रभु हृदयँ अछत अविकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी॥
नाम निरूपन नाम जतनते। सोउ प्रकटत जिमि मोल रतनते॥४॥

अर्थ ऐसे निर्विकार प्रभु के हृदय मे रहते हुए भी, जगत् के सब जीव दीन और दुखी हैं। नाम निरूपण और नाम-यत्न से वह वैसे ही प्रकट होता है जैसे रत्न से उसका मूल्य प्रकट होता है।

व्याख्या : ऐसे निर्विकार सच्चिदानन्द घन प्रभु के हृदय मे रहने पर अमङ्गल का नाश और परम मङ्गल होना चाहिए। यथा सेवक सदन स्वामि आगमनू। मगलमूल अमगल दमनू। सो वे घरमे भी नही, हृदय मे मौजूद है ईश्वर सर्वभूताना हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। गीता। फिर भी ससार के जितने जीव हैं, सबके सब दीन और दुखारी हैं, सुखी कोई भी नही। इसका कारण यही है कि वे व्यक्त रूप मे आवें तो काम चले। अग्नि के अव्यक्त रूप मे होने से काम नही चलता। व्यक्त रूप मे अग्नि को लाकर ही ससार अपना काम चलाता है। जिस भाँति अग्नि को व्यक्त रूप मे लाने का विधान है उसी भाँति प्रभु को भी व्यक्त रूप मे लाने का विधान है। कल्याण चाहनेवाले जीव का यह काम है कि उसे व्यक्त रूप मे लाने के लिए यत्नशील हो। यथा सहेउ सुरन बहु काल विषादू। नरहरि प्रकट कीन्ह प्रहलादू।

अब प्रकट करने का उपाय कहते है : नाम निरूपण अर्थात् नाम की अर्थ-भावना से और नामयत्न अर्थात् नाम के जप से वही स्वान्त स्थ पुरुष प्रकट होता है। यथा अगजगमय सबरहित विरागी। प्रेमते प्रभु प्रकटै जिमि आगी। प्रकट होने के लिए पहिले अग्नि का उदाहरण दिया था पर प्रकट होने म वह उदाहरण ठीक नही बैठता। लकडी की अग्नि अविकृत रहकर स्थूलाग्नि नही प्रकट कर सकती। अत 'मोल रतनते' का उदाहरण दे रहे हैं। रत्न स्वय अविकृत रहता हुआ मोल मूल्य को प्रकट किया करता है। निर्गुण रत्न है और सगुण उसका मूल्य है। तात्पर्य यह कि रत्न से काम नही चलता। उसके मूल्य से काम चलता है। अत निर्गुण को सगुण रूप मे लाने का प्रयत्न होना चाहिए और वह प्रयत्न नाम निरूपण और नाम-यत्न है। यथा [1] तज्जपस्तदर्थभावनम्। यो सू

दो निरगुन ते इहि भाँति बड़, नाम प्रभाउ अपार।
कहउँ नामु बड रामते, निज विचार अनुसार॥२३॥

अर्थ निर्गुण से इस भाँति नाम का अपार प्रभाव बडा है। अब अपने विचार के अनुसार नाम को राम सगुण ब्रह्म से बडा कहता हूँ।

व्याख्या बडे होने का प्रकार कहते हैं। 'ब्रह्म' शब्द का अर्थ ही 'सबसे बडा' है। अत निर्गुण ब्रह्म या सगुण ब्रह्म से बडा कुछ हो नही सकता। इसलिए जिस दृष्टि मे बडा कहा उसे स्पष्ट कहते हैं। नाम के प्रभाव का कोई पारावार नही है, जिसके बल मे निर्गुण ब्रह्म को सगुण होना पडता है। अत निर्गुण मे बडा है। अब

१. उसका जप और उसके अर्थ की भावना करनी चाहिए।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सगुण से बडा कहेंगे। यह कहे देते है कि निज विचार अनुसार मै कहता हूँ। यहाँ ग्रन्थकार अपना अनुभव कह रहे हैं।

राम भगत हित नरतनु धारी। सहि सकट किय साधु सुखारी॥
नामु सप्रेम जपत अनयासा। भगत होंहि मुद मगल वासा॥१॥

अर्थ रामजी ने भक्तो के लिए मनुष्य शरीर धारणकर और सकट सहकर, साधुओ को सुखी किया, किन्तु प्रेम से नाम का जप करने से भक्त सहज मे ही मुद और मगल के घर हो जाते हैं।

व्याख्या रामजी सगुण ब्रह्म को सौ कोटि काम सा सुन्दर कहना, सौ कोटि दुर्गा सा अरिमर्दन कहना, कोटि शत मरुत सा बलवान् कहना, कोटि शत सूर्य सा तेजस्वी कहना, कोटि शत चन्द्र सा शीतल कहना वैसा ही है, जैसे कोई सूर्य के लिए कहे कि वे कोटि शत जुगनू के बराबर हैं। ऐसे प्रभु का नर शरीर धारण करना उसकी प्रतिष्ठा के विरुद्ध है और सकट सहना उसके स्वरूप के प्रतिकूल है। सो साधुओ को सुखी करने के लिए श्रीरामजी को सब कुछ करना पडा। यथा जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि रिसि पतनी तरी। नख निर्गता मुनि बदिता त्रैलोक्य पावन सुर सरी। ध्वज कुलिस अकुस कज जुत बन फिरत कटक किन लहे। पद कज द्वद मुकुद राम रमेस नित्य भजामहे।

नाम का सप्रेम जप नामावतार है। जिस भाँति ब्रह्माण्ड मे रामावतार होता है, उसी भाँति पिण्ड मे नामावतार होता है। सगुण ब्रह्म ने नर शरीर धारण पूर्वक सङ्कट सहन करके, साधुओ को सुखी किया, पर पिण्ड के नामावतार द्वारा अनायास ही जापक भक्त मुद मङ्गल का निवास स्थान हो जाता है परन्तु जप प्रेम के साथ होना चाहिए। अर्थात् वह स्वय जङ्गम तीर्थराज हो जाता है, दूसरो का दुःख हटाने लगता है। यथा मुद मगलमय सत समाजू। ज्यो जग जगम तीरथ राजू।

राम एक तापस तिय तारी। नाम कोटि खल कुमति सुधारी॥
रिषिहित राम सुकेतु सुता की। सहित सेन सुत कीन्हि बिबाकी॥२॥

अर्थ रामजी ने एक तापसपत्नी अहल्या का उद्धार किया, पर नाम ने करोडा खलो की कुमति को सुधारा। रामजी ने ऋषि के हित के लिए सुकेतु की बेटी ताटका को उसके बेटे और सेना सहित नि शेष कर दिया।

व्याख्या भक्त को मुद मङ्गल का आवास बनाने के लिए पहिले उसकी मति का ही सुधार करना पडता है। अत ग्रन्थकार यहाँ अपने क्रम के अनुसार चल।

---

१ अहल्या गौतम ऋषि की स्त्री थी। इन्द्र उसके सौन्दर्य पर मोहित होकर गौतमजी के स्नानार्थ जाने पर, उनका रूप धर के आये और अहल्या का धर्म नष्ट किया। गौतमजी ने जब यह वृत्तान्त जाना तो दोनो को शाप दिया। इन्द्र को सहस्र भग हो गये अहल्या पत्थर हो गई। अनुनय विनय करने पर गौतमजी ने शापानुग्रह भी किया। इन्द्र को सहस्र नेत्र हो गये और अहल्या भगवान् रामचन्द्र के चरण रज के स्पर्श से शापविनिर्मुक्त हुई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



श्रीरामावतार के घटना क्रम का अनुसरण नही किया। ताटका वध के पहिले ही अहल्योद्धार की कथा कहने लगे।

यहाँ तापसतिय से अहल्या अभिप्रेत है। जिस भाँति ब्रह्माण्ड में अहल्या पत्थर हो गई थी और उसका उद्धार रामचन्द्र ने किया। यथा : गौतम गये घर गौनो सो लिवाय के।''''''''इसी भाँति मति जड़ीभूत होकर कुमति हो गई है, उसका उद्धार नामावतार द्वारा होगा। इस भाँति नाम ने करोड़ों का उद्धार किया अतः नाम में कार्यकारिता करोड़ो गुना अधिक है।

खल की बुद्धि सत्सङ्ग से भी नही सुधरती। यथा : मिटइ न मलिन सुभाउ अभंगू। नाम को ही उसके उद्धार का सामर्थ्य है।

ब्रह्माण्ड मे ताटका थी। यह यक्षिणी सुन्द से ब्याही थी। जब अगस्त्य ऋषि के शाप से सुन्द मारा गया तो यह और इसका बेटा मारीच ऋषिजी को खाने दौड़े। अतः अगस्त्यजी ने इन्हें भी शाप दिया और ये राक्षस हो गये। वे ही सुबाहु मारीच थे। उनके पास सेना थी। ये विश्वामित्र ऋषि के यज्ञ में विघ्नाचरण करते थे। यथा : तहँ जप जोग जग्य मुनि करही। अति मारीच सुबाहुहि डरही। अत. ऋषि के लिए श्रीरामजी ने उन सबोका संहार कर डाला।

सहित दोष दुख दास दुरासा। दलइ नामु जिमि रबिनिसि नासा ॥
भंजेउ राम आपु भव चापू। भवभय भंजन नाम प्रतापू ॥३॥

अर्थ : दोष और दु.ख के सहित दास की दुराशा का नाम इस भाँति विनाश करता है जैसे सूर्य रात का नाश करते है। स्वय रामजी ने शिवजी के धनुष को तोड़ा, पर संसार के भय को नाम का प्रताप भञ्जन करता है।

व्याख्या : पिण्ड मे ताटका स्थानीय दुराशा है। उसके दोष और दु ख ये ही दो पुत्र है। वे भक्त के शुभाचरण मे बड़ी बाधा उपस्थित करते है। उनका नामावतार द्वारा अनायास ऐसा नाश होता है जैसे सूर्य रात का नाश करते है। सूर्य दूर ही रहते है और रात का नाश हो जाता है। यथा : उदय भानु बिनुश्रम तम नासा। श्रीरामजी को ताड़का-सुबाहु-वध के लिए वन में जाकर युद्ध करना पड़ा था।

'भव' शब्द का अर्थ ससार भी है और शङ्करजी भी है। भवचाप को स्वय रामजी को जनकपुर जाकर तोड़ना पड़ा। इधर भवभय नाम के प्रताप से टूट जाता है। नाम स्वयं कुछ नहीं करता। भवभय शङ्कर के धनुष की भाँति भारी और कठोर है। किसी साधन से नही जाता पर नाम के प्रताप से दूर हो जाता है।

दंडक बनु प्रभु कीन्ह सुहावन। जनमन अमित नाम किये पावन ॥
निसिचर निकर दले रघुनंदन। नामु सकल कलि कलुष निकंदन ॥४॥

अर्थ : प्रभु राम ने [1]दण्डकवन को सुहावना बनाया। किन्तु नाम ने असंख्यात

---

१. दण्डकवन पूर्व काल मे राजा दण्ड का समृद्ध राज्य विन्ध्याचल,और नीलगिरि के बीच मे था। इस अन्यायी राजा ने अपने गुरु शुक्राचार्य की सुन्दरी पुत्री अरजा के साथ बलात्कार किया। उसने पिता से राजा का अन्याय कह सुनाया। उनके शाप से सौ योजन

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भक्तो के मनो को पवित्र किया। श्रीराम ने राक्षसो के समूह को मारा और नाम कलियुग के सारे मलों को दूर करनेवाला है।

अर्थ ब्रह्माण्ड मे जैसे दण्डकवन अपवित्र और भयानक हो गया था और उसे श्रीरामजी ने सुहावन बनाया। यथा : जब ते राम कीह्न तँह वासा। सुखी भये मुनि वीती त्रासा। गिरिवन नदी ताल छविछाए। दिन दिन प्रति अति होहिं सुहाए। सो वन वरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रगट रघुवीर विराजा। उसी भाँति नाम के आगमन से असंख्यात भक्तो के मन पवित्र हो गये। उस दण्डक वन मे खरदूपणादि ससैन्य रहते थे। उनका रामजी ने वध किया। उसी भाँति मन मे कलिकलुप दम्भ, पाखण्डादि निवास करते है। नाम उनके मूल को उखाड़ फेंकता है।

दो. सवरी गीध सुसेवकनि, सुगति दीह्न रघुनाथ।
नाम उधारे अमित खल, वेद विदित गुन गाथ ॥२४॥

अर्थ . रामजी ने शवरी, गीध आदि सुसेवको को मुक्ति दी परन्तु नाम ने अगनित खलो का उद्धार किया। गुणगाथा वेद मे विदित है।

व्याख्या . शवरी, गीध, अधम योनि होने पर भी सुसेवक थे। इसलिए रामजी ने उन्हे मुक्ति दी। पर नाम ने तो ऐसे खलो को मुक्ति दी जो मरते दम तक खल ही रहे। साधु कभी हुए ही नही। यथा : सुरमुनि सभय प्रभु देखि माया नाथ अस कौतुक करयौ। देखत परस्पर राम करि सग्राम रिपुदल लरि मरयौ। रामराम कहि तनु तजहिं पावहि पद निर्वान। करि उपाय रिपु मारेउ छन महँ कृपानिधान। नाम की गुणगाथा वेदो मे कही गई है। अत उसमे शङ्का को स्थान नही है।

राम सुकठ विभीपन दोऊ। राखे सरन जान सब कोऊ॥
नाम गरीब अनेक नेवाजे। लोक वेद वर विरद विराजे ॥१॥

अर्थ रामजी ने सुग्रीव और विभीपण दोनो को अपने शरण मे रक्खा। यह सब कोई जानते है। पर नाम ने अनेक दीनो पर कृपा की है, जिसका विरद, लोक और वेद मे विराज रहा है।

व्याख्या : श्रीरामजी का सुग्रीव और विभीपण इन दो ही को शरण में रखना प्रसिद्ध है। पर नाम ने तो कितने गरीबो पर कृपा की है जिनकी गिनती नही है। भाव यह है कि जो गरीब ऐसे भाग्यवान् थे जिनका जन्म रामावतार के समय हुआ था, उन्ही पर दया करने का अवसर रामजी को मिला। पर नाम को तो सदा काम गरीबो से पडा हो करता है और नाम की कृपा से उनकी गरीबी जाती रहती है और वे सुखी हो जाते हैं। उनका नाम भी कोई नही जानता। पर 'गरीब नेवाज' विरद लोक और वेद म प्रसिद्ध है। यथा : विरद गरीब नेवाज राम को। गावत वेद पुरान सभु सुक प्रकट प्रभाव नाम को। गनिका कोल किरात आदि कवि

---

तक धूलि की वृष्टि हुई और वह राज्य नष्ट हो गया। मुनि के शाप से, सभी ऋषियो ने उस स्थान को पहिले ही छोड दिया था और वहाँ नही जाते थे। यह दण्ड राजा इक्ष्वाकु का कनिष्ठ पुत्र था।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इनते अधिक धाम को। वाजिमेध कब कियो अजामिल, गज गायो कब साम को। छली मलीन हीन सबही अंग, तुलसी सो छीन छाम को। नाम नरेस प्रताप प्रबल जग, जुगजुग चलत चामको।

राम भालु कपि कटकु बटोरा। सेतु हेतु श्रमु कीन्ह न थोरा॥
नाम लेत भवसिंधु सुखाहीं। करहु बिचारु सुजन मनमाहीं॥२॥

अर्थ रामजी ने भालू और बन्दरो की सेना इकट्ठा की और पुल बाँधने मे कम परिश्रम नही किया। पर नाम लेते ही संसार समुद्र सूख जाता है, हे सज्जनो! मन मे विचार तो करो।

व्याख्या श्रीराम जी वन मे थे उस समय रावण ने सीता हरण किया। पास सेना नही और शत्रु राजा पर आक्रमण के लिए शास्त्रविधि के अनुसार सेना अवश्य चाहिए। अत बन्दर भालुओ की सेना इकट्ठी की। यह असाधारण श्रम का कार्य था। सेना इकट्ठी होने पर भी समुद्र मे सेतु बाँधना महा दुष्कर कार्य था। जिसे सिवा श्रीरामजी के ससार मे कोई आज तक कर न सका। जिसे सुनकर रावण भी घबरा उठा। उस सेतु बाँधने के लिए श्रीरामजी को तीन दिन तक समुद्र के किनारे धरना देना पडा। यथा विनय न मानत जलधि जड गये तीनि दिन बीति। इसलिए कहते हैं कि 'श्रमकीन्ह न थोरा।'

भवसिन्धु मे लवणसिन्धु ऐसे न जाने कितने सिन्धु पडे है, वह केवल नाम लेने से सूख जाता है। यहाँ ग्रन्थकार सुजन से कहते हैं कि आप विचार करके देखिये, सूख जाता है कि नही। बिना विचार किये यह बात समझ मे न आवेगी कि भव-सागर नाम लेने से कैसे सूख जाता है। पर विचार करने पर यह भावना दृढ हो जाती है कि निश्चय ही भवसागर सूख जाता है।

मिथ्या वस्तु के दूर करने के लिए सत्य वस्तु का नाम लेना ही यथेष्ट है। मिथ्या सर्प किसी अस्त्र शस्त्र से दूर नही किया जा सकता। पर केवल रज्जु के नाम से दूर हो जाता है। मृगजल का समुद्र किसी नौका या जहाज से पार नही किया जा सकता। परन्तु 'सूर्य की किरणो' के कथन से ही वह समुद्र कही रह नही जाता। इसी भाँति मिथ्या भवसागर मे डूबता हुआ पुरुष, सत्य राम के नाम से ही बचाया जा सकता है। यथा निजभ्रम ते रविकर सभव सागर अति भय उपजावै। अव गाहत वोहित नौका चढि कबहूँ पार न पावै। सुभग सेज सोवत सपने वारिधि बूडत भय लागै। कोटिहु नाव न पार पाव सो, जबलगि आपुन जागै।

राम सकुल रन रावनु मारा। सीय सहित निज पुर पगुधारा॥
राजा रामु अवध रजधानी। गावत गुन सुर मुनिवर बानी॥३॥

अर्थ रामजी ने युद्ध मे कुटुम्ब सहित रावण को मारा और सीता सहित अपने नगर को लौटे। रामजी राजा हुए। अयोध्या उनकी राजधानी हुई। देवता मुनि श्रेष्ठ वाणी से उनके गुण गाते हैं।

व्याख्या श्रीराम जी ने जटायु से कहा था। जौ मैं राम तो कुल सहित,

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हिहि दसानन जाय, सो सत्य किया। कुल सहित संग्राम में रावण को मारा। सीता रण हुआ था सो सीता मिली। रामजी उनके साथ अयोध्याजी पधारे। पुरवासी ोग पञ्चदेव की उपासना करके माँगते थे : राजा राम जानकी रानी। आनद अवधि वध रजधानी। सुवस बसहु पुनि सहित समाजा। भरतहि रामु करहिं जुवराजा। नका भी मनोरथ पूर्ण हुआ।

ेवक सुमिरत नामु सप्रीती। बिनुश्रम प्रबल मोह दल जीती॥
फिरत सनेह मगनसुख अपने। नाम प्रसाद सोच नहि सपने॥४॥

अर्थ सेवक प्रेमपूर्वक नाम स्मरण करता हुआ मोह की सेना को बिना परिश्रम जीत लेता है और प्रेम मे मग्न होकर आत्मानन्द मे विचरता है। नाम के प्रसाद से उसे सपने मे भी चिन्ता नही रहती।

व्याख्या विनय पत्रिका मे ग्रन्थकार ने अध्यात्म प्रकरण को बहुत स्पष्ट करके दिखलाया है। यथा

वपुष ब्रह्माण्डसु प्रवृत्ति लंका दुर्ग, रचित मन दनुज मय रूप धारी।
विविध कोसौध अतिरुचिर मंदिर निकर, सत्वगुण प्रमुख त्रय कटक कारी॥
कुनप अभिमान सागर भयंकर घोर, विपुल अवगाह दुस्तर अपार।
नक्र रागादि संकुल मनोरथ सकल संग संकल्प वीची विकार॥
मोह दस मौलि तद् भ्रात अहँकार, पाकारिजित काम विश्राम हारी।
लोभ अतिकाय मत्सर महोदर दुष्ट, क्रोध पापिष्ट विबुधातकारी॥
द्वेष दुर्मुख दंभ खर अकंपन कपट, दर्प मनुजाद मद सूलपानी।
अमित बल परम दुर्जय निसाचर निकर, सहित पड्वर्ग सो यातुधानी॥
जीव भवदङ्घ्रिसेवक विभीषन बसत, मध्य दुष्टाटवी ग्रसित चिंता।
नियम यम सकल सुर लोक लोकेस लंकेस बस नाथ अत्यंत भीता॥
ज्ञान अवधेस गृह गेहनी भक्ति सुभ, तत्र अवतार भूभार हर्ता।
भक्त संकष्ट अवलोकि पितु वाक्य कृत, गमन किय गहन वैदेहि भर्ता॥
कैवल्य साधन अखिल भालु मर्कट विपुल, ज्ञान सुग्रीव कृत जलधि सेतू।
प्रबल वैराग्य दारुन प्रभंजन तनय, विषय वन भवन मिव धूमकेतू॥
दुष्ट दनुजेस निर्वंस कृत दासहित विश्व दुखहरन बोधैक रासी।
अनुज निज जानकी सहित हरि सर्वदा दास तुलसी हृदय कमल वासी॥

विनय प ५८

दास को जीतने म श्रम नही पडता, वह नाम द्वारा ज्ञान मार्ग मे अग्रसर होता चला जाता है। नामावतार से मोहादिक सब नाश को प्राप्त हो जाते है और दास को स्वाराज्य की प्राप्ति हो जाती है।

दो ब्रह्म राम ते नामु बड, बरदायक बरदानि।
राम चरित सत कोटि महँ, लिये महेस जिय जानि॥२५॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ वरदायक को भी वर देनेवाला नाम, ब्रह्म और राम दोनो से बडा है। सौ करोड रामचरित मे से मन मे जानकर महादेव जी ने इसी को ग्रहण किया।

व्याख्या 'कहउँ नाम बड ब्रह्म रामते' ऐसा उपक्रम करके अब 'ब्रह्म रामते नाम बड' कहकर उपसहार करते है। वरदायक शङ्कर ब्रह्मादि को वर देनेवाला राम नाम है। महापुरुषो ने नाम जपकर के ही सिद्धि प्राप्त की है।

श्रीग्रन्थकार कहते है कि रामचरित पूर्णचन्द्र की किरणे हैं। यथा राम-चरित राकेस कर सरिस सुखद सबकाहु। तमाम समार मे फैली हुई है अत असख्यात है। सौ करोड से असख्यात का ही तात्पर्य है। भक्ति रूपी पूर्णिमा की रात्रि मे चन्द्र 'रामनाम' है। यथा राकारजनी भगति तव रामनाम सोइ सोम। इस बात को समझकर शङ्कर भगवान् ने रामनाम रूपी चन्द्र को ही ग्रहण कर लिया कि चन्द्रिका चन्द्र को छोडकर कहाँ जायगी। यथा कहँ चन्द्रिका चन्द्र तजि जाई।

महात्मा लोग ऐसा भी अर्थ करते है कि[1] ब्रह्मदेव ने पहिले शतकोटि सख्यक श्लोको के रामायण की रचना की। स्वर्ग, मर्त्य और पाताल लोक निवासी उसपर अपना अपना स्वत्व जमाने लगे। झगडा बढा तो शङ्कर जी के पास गये। उन्होने तीनो के लिए विभाग कर दिया। पहिले तैंतीस, तैंतीस कोटि एक एक को दिया। बचा एक कोटि। उसमे तैंतीस तैंतीस लाख का भाग लगाया। बचा हजार। उसका भी तीन तीन सौ का भाग लगा। तब बचा सौ। उसमें भी तैंतीम तैंतीस का भाग लगा। बचा एक। एक अनुष्टुप मे बत्तीस अक्षर होते है और अनुष्टुप मे ही ग्रन्थ की सख्या की जाती है। सो उसमें से दस दस अक्षर तीनो को दे दिया। अब दो अक्षर बचे, वे थे रा और म और विभाग करना था तीन। अत हो न सका। तब शङ्कर भगवान् ने उन दोनो अक्षरो रा और म को अपने पारिश्रमिक मे ले लिया और ये ही दो अक्षर सम्पूर्ण रामायण के सार हैं।

**नाम प्रसाद सभु अविनासी। साजु अमगल मगल रासी॥**
**सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्मसुख भोगी॥१॥**

अर्थ नाम के प्रसाद मे शिवजी अविनाशी है और अमगल साज रखने पर भी मङ्गल की राशि है। शुकाचार्य, सनकादिक सिद्ध, मुनि और योगी लोग नाम के प्रसाद से ही ब्रह्मानन्द के भोगनेवाल हैं।

व्याख्या राम और नाम की तुलना म ग्रन्थकार ने रामजी की ओर से भक्तो का नाम लेकर उदाहरण दिया। यथा राम एक तापस तियतारी। राम सुकठ विभीषन दोऊ। राखेउ सरन जान सब कोऊ। सबरी गीध सुसेवकनि सुगति दीन्ह रघुनाथ इत्यादि। पर नाम की ओर से किसी व्यक्ति विशेष का नाम लेकर

१ वाल्मीकिना च यत्प्रोक्त रामोपाख्यानमुत्तमम्। ब्रह्मणा चोदित तच्च शतकोटि प्रविस्तरम्। आहुत नारदेनैव वाल्मीकये निवेदितम्। ब्रह्मदेव से प्रेरित होकर वाल्मीकि ने जो रामोपाख्यान कहा उसका शतकोटि विस्तार था। ब्रह्मदेव से प्राप्त करके उस नारद जी ने वाल्मीकि से कहा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

उदाहरण न दिया। केवल बहुवचन का प्रयोग करते गये। यथा भक्त होहिं मुद मंगल बासा। नाम कोटि खल कुमति सुधारी : इत्यादि। अत नाम से जिनका कल्याण हुआ है, उन महानुभावों में से प्रधान व्यक्तियों का नाम लेकर उदाहरण : नजीर : देते हैं।

शिवजी नाम के प्रभाव से अविनाशी हैं। नाम के प्रभाव से अमरत्व की प्राप्ति होती है। इसकी प्रक्रिया भी ग्रन्थकार ने बतलाई। यथा : हनुमन् वचन नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट। लोचन निज पद जन्त्रित प्रान जाहिं केहि बाट। नाम के प्रसाद से ही मुण्डमाल, कपाल, चिताभस्मधारी होने पर भी शिवजी मङ्गलमय हैं। यथा : नाम सप्रेम जपत अनयासा। भक्त होहिं मुदमंगल बासा। 'सेवक सुमिरत नाम सप्रीती। बिनुश्रम प्रबल मोहदल जीती। फिरत सनेह मगन सुख अपने। नाम प्रसाद सोच नहिं सपने।' पहिले कह आये हैं। उसीका उदाहरण दे रहे हैं : 'सुक सनकादि सिद्ध मुनि जोगी। नाम प्रसाद ब्रह्म सुख भोगी।' योगियों के लिए यही निर्णय है कि भगवन्नामानुकीर्तन किया करे। यथा योगिना नृपनिर्णीत हरेर्नामानुकीर्तनम् : भागवते।

**नारद जानेउ नाम प्रतापू। जगप्रिय हरि हरि हर प्रिय आपू॥**
**नाम जपत प्रभु कीन्ह प्रसादू। भगत सिरोमनि भे प्रहलादू॥२॥**

अर्थ : नारदजी ने नाम का प्रताप जाना। संसार को हरि प्रिय है, हरि को हर प्रिय है और हर को आप : नारदजी : प्रिय हैं। नाम जपने से भगवान् प्रसन्न हुए। सो प्रह्लाद भक्तों के शिरोमणि हो गये।

व्याख्या : सम्पूर्ण संसार को हरि प्रिय हैं। यथा : ये प्रिय सबहिं जहाँ लगि प्रानी। हरि को हर प्रिय हैं। यथा : कोउ नहिं सिवसमान प्रिय मोरे। अस परतीति तजिअ जनि भोरे और हर को नारदजी प्रिय हैं। यथा : अति प्रिय जानि महेस सिखाये। यह प्रियतम होने का पद जो नारदजी को प्राप्त हुआ है, सो नाम के प्रताप की जानकारी से हुआ है।

नाम के जपने से प्रभु प्रसन्न होते हैं और जापक को भक्त शिरोमणि बना लेते हैं। [1]प्रह्लाद ने सिवा नाम जप के और कौन साधन किया? प्रह्लाद को जब पिता : हिरण्यकश्यप ने अग्नि में डाला तब प्रह्लाद ने पिता से कहा कि नाम

---

१ प्रह्लाद दैत्यराज हिरण्यकश्यप के पुत्र थे। बचपन से ही भगवद्भक्त थे। इनका पिता विष्णु का बैरी था। प्रह्लाद पढने में मन न लगाकर भगवन्नाम कीर्तन करते थे। इस पर उनका पिता बड़ा क्रुद्ध हुआ। बहुत कुछ समझाया। नहीं मानने पर पर्वत से गिराया, जल में डुबाया, हाथी से रौंदवाया, अग्नि में जलाया पर प्रह्लाद का कुछ न हुआ। तब स्वयं खड्ग लेकर मारने को प्रस्तुत हुआ। पूछा तेरे राम कहाँ हैं। प्रह्लाद ने कहा 'सर्वत्र'। पूछा कि खम्भे में भी हैं? कहा 'हाँ'। हिरण्यकश्यप के गर्जन पर भगवान् उसी खम्भे में नृसिंह रूप में प्रकट हुए और उसका वध करके प्रह्लाद की रक्षा की।

ankurnagpal108@gmail.com



जप का प्रभाव देखो। मेरे शरीर के पास आकर अग्नि भी जल की भाँति शीतल हुई जाती है। यथा : रामनाम जपता कुतोभयम् सर्वतापशमनैकभेषजम्। पश्य तात मम गात्रसन्निधौ पावकोऽपि सलिलायतेऽधुना। भक्तो की गणना में प्रह्लाद का प्रथम नाम आता है। यथा : प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीकव्यासाम्बरीषशुक-शौनकभीष्मकाद्याः। स्वयं भगवान् ने उन्हे भक्तशिरोमणि माना। यथा : भवन्ति पुरुषा लोके मद्भक्तास्त्वामनुव्रताः। भवान् मे खलु भक्ताना सर्वेषा प्रतिरूपधृक् : भागवते।

ध्रुव सगलानि जपेउ हरि नाऊँ। पायेउ अचल अनूपम ठाऊँ॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखेउ रामू॥३॥

अर्थ : ध्रुव[१] ने ग्लानि के साथ नाम को जपा, सो अचल अनुपम स्थान पाया। हनुमान्‌जी ने पवित्र नाम स्मरण करके रामजी को अपने वश मे कर रक्खा।

व्याख्या . पिता और सपत्नि माता से अनादृत होकर ध्रुव ने ग्लानि के साथ जप किया अर्थात् ध्रुवजी अर्थार्थी भक्त थे और वे बिल्कुल बच्चे थे, सो ऐसा पद पाया जैसा कभी किसी ने पाया नही और जो कभी चलायमान नही होता। यह 'नाम अनेक गरीब नेवाजे। लोक वेद वर बिरद बिराजे' का उदाहरण है।

हनुमान्‌जी का मन पावन नाम का जप करते करते ऐसा पवित्र हो गया कि रामजी उनके वशमें हो गये। श्रीरामजी को मलिन मन पसन्द नही है। यथा : मोहि कपट छल छिद्र न भावा। ग्रन्थकार विनय पत्रिका मे लिखते हैं कि साहिब कही न राम सो तोसे न वसीले। अर्थात् न तो कही राम सा स्वामी है और न हनु-मान्‌जी सा कोई साधन है। क्योकि रामजी हनुमान् के वश मे है, हनुमान्‌जी के चाहने से ही रामप्राप्ति सुलभ है। ऐसा दूसरा साधन कोई नही है। यह 'जनमन अमित नाम किये पावन' का उदाहरण है।

अपतु अजामिलु गजु गनिकाऊ। भये मुकुत हरि नाम प्रभाऊ॥
कहउँ कहाँ लगि नाम बड़ाई। रामु न सकहिं नाम गुन गाई॥४॥

---

१. ध्रुव राजा उत्तानपाद का बेटा था। एक बार वह पिता की गोद मे जा बैठा। उसकी विमाता सुरुचि ने यह कहकर कि तू जा भगवान् की आराधना करके मेरे पेट से उत्पन्न हो। तब राजा की गोद मे बैठने का अधिकारी होगा। उसे गोद से उतार दिया। ध्रुव को बडी ग्लानि हुई। उसने जाकर यह कथा अपनी माता सुनीति को सुनाई। सुनीति ने कहा कि सुरुचि ने परुष वचन कहा। पर बात सत्य ही कही। ध्रुव उसी अवस्था में घर से निकले और नारदजी के उपदेश से। मथुरा मे जाकर भगवन्नाम जप किया। उन्हें भगवद्दर्शन हुआ और ध्रुव पद मिला। जिसकी महर्षि सदा प्रदक्षिणा किया करते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : पतित अजामिल[1], गज[2], गणिका[3] भी हरिनाम के प्रभाव से मुक्त हो गये। मैं नाम की बड़ाई कहाँ तक कहूँ, नाम के गुणो को : स्वय · राम भी नही गान कर सकते।

व्याख्या : अजामिल, गज, गणिका सभी साधनों से रहित थे। इसीलिए इन्हे अपत : अपत्र : कहा। ये केवल नाम के प्रभाव से मुक्त हुए। यह 'नाम उधारे अमित खल वेद विदित गुन गाथ' का उदाहरण है।

ग्रन्थकार कहते है कि नाममहिमा की सीमा नही है और कथन करने का अर्थ ही सीमित करना है। चाहे कितना ही वडा वक्ता हो, स्वय राम ही क्यो न हो, जव किसी वस्तु का कथन करेंगे तो उसे सीमित करना पडेगा और राम नाम की महिमा असीम है, वह राम : सगुण ब्रह्म से भी वड़ी है और ब्रह्म निर्गुण ब्रह्म से भी वडी है। इनमे से एक एक के गुण नही गाये जा सकते। तव नाम के गुण कैसे गाये जा सकते है ?

दो. नाम राम को कलपतरु, कलि कल्यान निवासु।
जो सुमिरत भयो भाँगते, तुलसी तुलसीदासु ॥२६॥

अर्थ : राम का नाम कल्पवृक्ष है। जो कलियुग मे कल्याण का निवास स्थान है। जिसके स्मरण करने से तुलसीदास भाँगसे तुलसी हो गये।

व्याख्या : कलिनाम कामतरु राम को।

दलनिहार दारिद दुकाल दुख, दोप घोर घन धाम को ॥१॥
नाम लेत दाहिनो होत मन, वाम विधाता वाम को।
कहत मुनीस महेस महातम उलटे सूधो नाम को ॥२॥

---

१ यह : अजामिल कन्नौज का रहनेवाला एक ब्राह्मण था। पहिले सद्वृत्त था, पीछे से एक व्यभिचारिणी पर आसक्त होकर उसे घर लाया। उसके लिए उसने अपनी पाणिगृहीता भार्या का परित्याग किया। मद्य मासादि का सेवन करने लगा। चोरी डकैती करने लगा। महापतित हो गया। मरने के समय जव उसे लेने यमदूत आये तव वहुत डरा। अपने छोटे लडके नारायण को पुकारा। मरने के समय नामोच्चारण के माहात्म्य से विष्णु-दूत आगये और उसे छुडा लिया। उसकी आयु वढ गई और उसने शेप जीवन भगवद्भक्ति मे विताया।

२. क्षीरसागर मे त्रिकूट नाम का एक पर्वत है। उसपर एक बहुत बडा सरोवर है। उसी मे गज अपनी हथिनियो के साथ जलक्रीडा करता था, उसे ग्राह ने पकड लिया। दोनो मे बडा युद्ध हुआ पर अन्त मे गज थक गया। डूबने के समय भगवान् को पुकारा। भगवान् प्रकट हुए और ग्राह को मारकर गज का उद्धार किया। दोनो को मुक्ति दी। गज पूर्व जन्म मे इन्द्रद्युम्न नाम का राजा था। ग्राह भी गन्धर्व था। शाप से इन योनियो को प्राप्त हुए थे।

३ इस गणिका का नाम जीवन्ती था। परतु नामी वैश्य की स्त्री थी। उसके मरने पर इसने वेश्या वृत्ति कर ली। उसने एक तोता पाल रक्खा था। उसे राम नाम पढाती थी। सो नाम के प्रभाव से तर गई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भलो लोक परलोक तासु, जाके बल ललित ललाम को।
तुलसी जग जानियत नामते सोचन कूच मुकाम को ॥३॥

कलियुग में कोई दूसरा कल्पतरु नहीं है, कारण बताते हैं कि कलियुग मे यही कल्याण का निवास है अथवा कल्याण का यही पता है। जिसे कल्याण की कामना हो, वह नामकल्पतरु की उपासना करे। उदाहरण मे ग्रन्थकार अपने को देते हैं कि मैं भाँग की भाँति अग्राह्य था। सो आज नाम के प्रभाव से 'तुलसी माई' की भाँति मेरी पूजा होती है। भगवान् की प्रीति चाहनेवाले भी मेरी पूजा करके रामजी का अनुग्रह चाहते हैं।

चहुँजुग तीनि काल तिहुँ लोका। भये नाम जपि जीव बिसोका॥
वेद पुरान संत मत एहू। सकल सुकृत फल राम सनेहू ॥१॥

अर्थ चारो युगो मे, तीनो कालो मे और तीनो लोको मे नाम जपकर जीव शोक रहित हुए हैं। वेदपुराण और सन्तो का यही मत है कि सारे पुण्य-कर्मो का फल रामजी मे प्रेम का होना है।

व्याख्या चहुँ युग से एक ही चौकडी चतुर्युग का ग्रहण होगा। इसलिए तीन काल कहा। तिहुँलोक से सब देश कहा। अर्थात् सभी देश और सभी काल म नाम जप सार्वभौम धर्म है। इसके करने से मनुष्य अभय पद को प्राप्त होता है।

'यस्य नाम[1] महद्यश' यह वेदमत है और 'यस्य स्मृत्या[2] च नामोक्त्या तपोयज्ञक्रियादिषु। न्यून सम्पूर्णतां याति सद्यो वन्दे तमच्युतम्।' यह पुराणमत है। 'तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग विराग ज्ञान निपुनाई। नाना कर्म धर्म व्रत दाना। सजम दम जप तप मख नाना। भूत दया द्विज गुरु सेवकाई। विद्या विनय विवेक बडाई। जहँ लगि साधन वेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी।' यह शिवमत है। अथवा 'भगवन्त विभु नित्य पूर्ण बोधसुखात्मकम्। [3]यद् गृह्णाति द्रुत चित्त किमन्यदवशिष्यते।' यह सन्त मधुसूदन स्वामी का मत है।

सब साधनो की त्रुटि भगवत्स्मरण तथा नाम कीर्तन से दूर होती है। भगवद्भक्ति ही सब साधनो का फल है। इस बात को दिखलाकर अब यह दिखलाते है कि अन्य युगो मे और भी साधन हैं। यथा

ध्यानु प्रथम जुग मख विधि दूजे। द्वापर परितोषत प्रभु पूजे॥
कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जन मन मीना ॥२॥

अर्थ प्रथम युग मे ध्यान से, दूसरे मे यज्ञ से, द्वापर मे पूजन से भगवान्

---

१ जिसके नाम का बडा यश है।

२ जिसके स्मरण से, नाम लेने से, तप यज्ञादि क्रिया की न्यूनता तुरन्त पूरी हो जाती है, उस अच्युत भगवान् को मैं नमस्कार करता हूँ।

३ चित्त विगलित होने पर यदि विभु नित्य पूर्ण बोध सुखात्मक भगवान् का ग्रहण करे, तो शेष ही क्या रह जाता है ?

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रसन्न होते हैं, पर कलियुग केवल मल का मूल, मलिन और पाप का समुद्र है और जिसमें मनुष्य का मन मछली हो रहा है।

व्याख्या . प्रथम युग सत्ययुग में शुद्ध सत्त्वगुण वर्तता है। सबका मन प्रसन्न रहता है। निर्विकार चित्तैकसाध्य ध्यान सम्भव है। अत सत्ययुग के लिए ध्यान से प्रभुका प्रसन्न होना बतलाया। त्रेता में सत्त्व बहुत रहता है, पर रजोगुण का अनुवेध आ जाता है। ध्यान की योग्यता नहीं रहती। सपत्नीक होकर यज्ञकर्म कर सकता है और भगवान् यज्ञ से प्रसन्न हो जाते हैं। द्वापर में सत्त्व बहुत थोडा रह जाता है। रजोगुण का बाहुल्य हो जाता है। कुछ तमोगुण का भी प्रवेश हो जाता है। इसलिए दीर्घकालिक यज्ञ असम्भव हो जाता है। इस युग में अल्पायास तथा अल्पकालसाध्य पूजन सम्भव है। अत भगवान् पूजन से प्रसन्न होते हैं।

कलियुग में सत्त्व का नाम नहीं। तमोगुण का बाहुल्य रहता है। थोडा रजोगुण का अनुवेध रहता है। इसलिए कलियुग को मल का मूल और मलीन कहा। पापसमुद्र में मनुष्य का मन मछली की भाँति विहार करता है। पाप से बाहर निकाल दिया जाय तो छटपटाकर मर जाय। इसमें लोगो को अन्य धर्म में अधिकार ही नहीं है। यथा रामेति वर्णद्वयमादरेण सदा जपन् मुक्तिमुपैति जन्तु । कलौ युगे कल्मषमान-सानामन्यत्रधर्मे खलु नाधिकार । कलि से कलुषित मनवाले को नामस्मरण छोडकर दूसरे धर्म में अधिकार नहीं है।

नाम कामतरु काल कराला। सुमिरत समन सकल जगजाला ॥
राम नाम कलि अभिमत दाता। हित परलोक लोक पितु माता ॥३॥

अर्थ इस कराल काल में नाम कल्पवृक्ष है जो स्मरण करने से ससार के जाल का नाश कर देता है। राम का नाम कलियुग में मनचाहा देनेवाला है। परलोक में हित है और इस लोक में माता-पिता है।

व्याख्या राम नाम को कल्पतरु कहकर जिस प्रसङ्ग को आरम्भ किया, 'नाम कामतरु काल कराला' कहकर उसका उपसहार करते हैं। इस भयानक काल में ध्यान, यज्ञ, पूजा कुछ भी फलदायक नहीं हो सकता। केवल नाम ही कल्पवृक्ष है। विशेषता यह है कि इसके स्मरण से जगजाल कट जाता है जिसमें फँसकर पापपयोनिधि की मछली मारी जाती है। कल्पवृक्ष के जब निकट जाय, उसे पहिचाने, उसकी छाया में जाय तब शोकहरण करता है। माँगने पर अभिमत देता है। यथा · जाय निकट पहिचानि तरु, छाँह समति सब सोच। माँगत अभिमत पाव जग, राउ रक भलपोच।

सो कामतरु भी कलि में अभिमतदाता नहीं है। अभिमत दाता है रामनाम। कामतरु लोक परलोक दोनों नहीं सँभालता। नाम सँभालता है। यथा रोटी लूगा नीके राखै, आगेहू कै वेद भाखै विनय।

नहि कलि करम न भगति बिबेकू। राम नाम अवलंबन एकू ॥
कालनेमि कलि कपट निधानू। नाम सुमति समरथ हनुमानू ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थं कलियुग मे न कर्म है, न भक्ति है, न ज्ञान है एक रामनाम का अवलम्ब है। कपट के निधान कलियुगरूपी कालनेमि के लिए राम का नाम सुमति वाला समर्थ हनुमान् है।

व्याख्या · कलियुग मे तीनो काण्डो मे से किसी की कुछ नही चलती। अत इसका भरोसा नही कर सक्ते। केवल रामनाम का भरोसा है।

लका मे वडे वडे मायावी थे। पर कालनेमि के नीचे सव थे। जहाँ किसी का वल नही चलता था वहाँ कालनेमि का कपट काम करता था। यहाँ कलियुग कालनेमि है। इसने ध्यान, यज्ञ, पूजन, कर्म, ज्ञान और उपासनादि सभी साधनो को पराभूत कर दिया। पर इसकी मौत नामरूपी हनुमान् के हाथ से है। सुमति और समर्थ के आगे कपट चलता नही। नामरूपी हनुमान् सुमति भी है और समर्थ भी है। अत केवल नाम पर कलियुग का वल नही चलता। वहाँ कलियुग मारा जाता है। इससे यह दिखलाया कि नाम कलियुग से अपनी रक्षा मे समर्थ है।

दो. राम नाम नरकेसरी, कनककसिपु कलिकालु।
जापक जन प्रह्लाद जिमि, पालिहि दलि सुरसालु ॥२७॥

अर्थ : राम नाम नृसिह है। कलियुग हिरण्यकश्यप है। देवताओ को दु ख देने वाले को मारकर प्रह्लाद की भाँति जप करनेवालो की रक्षा करेगा।

व्याख्या यहाँ यह दिखलाते है कि नाम अपनी रक्षा तो कर ही लेता है, अपने जापक की भी रक्षा करता है। इस रूपक मे रामनाम तो नृसिह है और कलिकाल हिरण्यकश्यप है, जापक जन प्रह्लाद है। परन्तु वे देवता कौन है जिन्हे *कलिरूपी हिरण्यकश्यप दु ख देता था ? अत बिना इस कमल की पुरइन खोजे काम* चल नही सकता। इसकी पुरइन है 'सदगुन सुरगन अव अदिति सी।' यहाँ सद्गुण ही सुरगण है जिन्हें कलिरूपी हिरण्यकश्यप दु ख देता है। पर 'महेउ सुरन्ह वहु काल विषादू। नरहरि प्रकट कीन्ह प्रहलादू।' कलिकाल सद्गुणो का वैरी है, सद्गुण वाले महात्माओ को महादु ख देता है। यथा

दीनदयाल दुरित दारिद दुख, दुनी दुसह तिहुँ ताप तई है।
देवदुवार –पुकारत आरत, सवकी सब सुख हानि भई है ॥१॥
प्रभु के वचन वेद वुध सम्मत, मम मूरति महिदेव भई है।
तिनकी मति रिसि राग मोह मद, लोभ लालची लीलि लई है ॥२॥
राज समाज कुसाज कोटि कटु, कलपत कलुप कुचाल नई है।
नीति प्रतीति प्रीति परमिति पति, हेतु वाद हठि हेरि हई है ॥३॥
आश्रम वरन धरम विरहित जग, लोक वेद मरजाद गई है।
प्रजा पतित पाखण्ड पापरत, अपने अपने रग रई है ॥४॥
साति सत्य सुभरीति गई घटि, वढी कुरीति कपट कलई है।
सीदत साधु साधुता सोचति, खल विलसत हुलसत खलई है ॥५॥
परमारथ स्वारथ साधन भए, अफल सकल नहि सिद्धि सई है।
कामधेनु धरनी कलि गोमर, विवस विकल जामति न वई है ॥६॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कलि करनी बरनिये कहाँलौ, करत फिरत बिनु टहल टई है।
तापर दात पोसि कर मीजत, को जानै चित कहा ठई है ॥७॥
त्यौ त्यौ नीच चढत सिर ऊपर, ज्यौ ज्यौ सील बस ढील दई है।
मरुख बरजि तरजिए तरजनी, कुम्हिलैहै कोहडेकी जई है ॥८॥
विनय प १३९

पर जब रामनाम के जापक को दु ख देता है तो नाम द्वारा ही मारा जाता है।

भाय कुभाय अनख आलसहूँ । नाम जपत मंगल दिसि दसहूँ ॥
सुमिरि सो नाम राम गुन गाथा । करौ नाइ रघुनाथहि माथा ॥१॥

अर्थ : भाव से, कुभाव से क्रोध से या आलस्य से भी नाम जपने से दशो दिशाओ मे मङ्गल होता है। उसी नाम का स्मरण करके रघुनायक जी को मस्तक नवाकर राम के गुणो की गाथा रचता हूं।

व्याख्या : भाव से नाम जप : 'सादर सुमिरन जे नर करही। भव बारिधि गोपद इव तरही।' कुभाव से नाम जप : 'विवसहु जासु नाम नर कहही। जनम अनेक रचित अघ दहही।' अनख से नाम जप : 'उमा राम मृदु चित करुना कर। वैरभाव सुमिरत मोहि निसिचर। देहि परम गति अस जियजानी। को कृपाल अस अहै भवानी।' आलस से नाम जप 'राम राम कहि जे जमुहाही। तिनहि न पाप पुज समुहाही।' ऐसे नाम का स्मरण और नामी को प्रणाम करके, ग्रन्थकार रामगुन गाथा की रचना का सकल्प करते है। 'बन्दौ नाम राम' से उपक्रम करके 'सुमिरि सो नाम राम' से प्रकरण का उपसहार करते है। क्योकि .

एकस्यैवात्मनो भेदौ शब्दार्थवत्पृथक् स्थितौ।
प्रकाशक प्रकाश्यश्च कार्यकारणरूपता ॥

अर्थ : परमार्थ दृष्टि से शब्द और अर्थ अभिन्न है। आत्मा ही शब्द है और आत्मा ही अर्थ है। ब्रह्म ही प्रकाशक है और ब्रह्म ही प्रकाश्य रूप से, कार्यकारणभाव से उपलब्ध होते है। नव दोहो मे नाम वन्दना की। नौ तक ही अङ्क है। इसी भाँति धर्म और लोक परलोक का सुख नाम तक ही है। इस बात को द्योतित किया। 'नाम जपत मगल दिसि दसहूँ' तक नाम प्रकरण समाप्त हुआ। अब 'करौ नाइ रघुनाथहि माथा' यहाँ से रूप वर्णन आरम्भ हुआ।

रामस्य नाम रूपञ्च लीलाधाम परात्परम्।
एतच्चतुष्टयं नित्य सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥ व स

अर्थ : रामजी के नाम, रूप, लीला और परात्पर धाम ये चारो नित्य सच्चिदानन्द विग्रह है। सो नाम का वर्णन हो चुका। शेष तीनो का वर्णन भी क्रम से होगा।

## निज गुण दोष

मोरि सुधारिहि सो सब भाँती। जासु कृपा नहि कृपाँ अघाती ॥
राम सुस्वामि कुसेवकु मोसो। निजदिसि देखि दयानिधि पोसो ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ जिनकी कृपा, कृपा करने से अघाती नही वे ही सब प्रकार से मेरी बिगडी सुधारेंगे। राम ऐसे अच्छे मालिक और सेवक मुझसा बुरा सो अपनी ओर देखकर दयानिधान ने पालन किया।

व्याख्या सभी प्रभुओ मे कृपा होती है, सेवक पर कृपा भी करते हैं, पर उनकी एक सीमा होती है, जहाँ पहुँचने पर उनकी कृपा समाप्त हो जाती है। आगे जाना नही चाहती। यथा रावन कुभकरन वर माँगत सिव विरचि वाचा छल्यो। परन्तु कृपानिधि की अपूर्व कृपा तो बिगडी हुई बात को बनाती है। यथा • बिगरी बनावै कृपानिधि की कृपा नई। बिगरी जन्म अनेक की सुधरै अबही आज। अघाती नही, कृपा करती ही चली जाती है। इसलिए अपूर्व कहा। भाव यह कि 'भनिति मोरि सबगुनरहित' है उसे कृपानिधि सुधार देंगे।

श्रीरामजी बडे शीलनिधान हैं, इसलिए 'सुस्वामि' कहा। यथा तुलसी कहूँ न राम ते साहिब सील निधान और ग्रन्थकार कहते है कि मैं शठ सेवक हूँ। शठ सेवक किसी प्रकार पोषण योग्य नही है क्योकि वह मालिक को सदा शूल की भाँति कष्टदायक है। यथा सेवक सठ नृप कृपिन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी फिर भी कृपालु ने अपनी ओर देखकर मेरा पालन किया। यथा तबहुँ कृपाल हेरि निज ओरा। सबहि भाँति भल मानेउ मोरा।

लोकहुँ वेद सुसाहिब रीती। विनय सुनत पहिचानत प्रीती ॥
गनी गरीब ग्राम नर नागर। पडित मूढ मलीन उजागर ॥३॥

अर्थ लोक और वेद म अच्छे स्वामी की यही रीति है कि विनय सुनते ही प्रीति को पहिचान लते हैं। धनी और निर्धन, गँवार और नगर निवासी, पण्डित और मूढ मलीन और उज्ज्वल उजागर।

व्याख्या ऊपर सुस्वामी कह आये। अब उनकी रीति कहते है कि विनय सुनते ही प्रीति की पहिचान कर लते हैं। यथा प्रीति पहिचान, यह रीति दरबार की। सुस्वामी का यह लक्षण लाक और वेद मे प्रसिद्ध है अर्थात् सर्वसम्मत है। विनय करनेवाला की पाँच जोडी हैं। १ अमीर गरीब २ गँवार-चतुर ३ पण्डित-मूढ ४ मलीन और निर्मल

सुकवि कुकवि निज मति अनुहारी। नृपहि सराहत सब नर नारी ॥
साधु सुजान सुसील नृपाला। ईस असभव परम कृपाला ॥४॥

अर्थ सुकवि और कुकवि, सब स्त्री पुरुष अपनी बुद्धि के अनुसार राजा की प्रशसा करते हैं। राजा, साधु सुजान, सुशील, ईश्वर के अश से उत्पन्न और परम कृपालु होता है।

व्याख्या चार जोडी पहिल कह आये तथा ५ सुकवि और कुकवि, इन पाँचा जोडियो मे स्त्री और पुरुष दोनो का ग्रहण है। इधर राजा म भी पाँच गुण होते हैं १ साधु २ सुजान ३ सुशील ४ ईश-अशभव और ५ परम कृपाल। यदि राजा म ये गुण न हो तो समझना चाहिए कि वह ईश-अशभव नही है असुर अश से है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुनि सनमानहिं सबहिं सुबानी । भनिति भगति नति गति पहिचानी ॥
यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ । जानि सिरोमनि कोसलराऊ ॥५॥

अर्थ प्रशमा सुनकर राजा, सुवाणी, भनिति, भक्ति, नति और गति को पहिचानकर सबका सम्मान करता है। यह तो साधारण राजाओं का स्वभाव है। कोसल के राजा तो जानकारों के शिरोमणि हैं।

व्याख्या विनय के गुणों के भी पाच भेद हैं १ सुवाणी २ भनिति ३ भगति ४ नति और ५ गति। राजा अपने पाँचों गुणों को काम में लाकर पाँचों प्रकार के प्रशसकों के विनयों में पाँचो गुणों पर क्रमश विचार करता हुआ यथोचित सबका सम्मान करता है। राजा साधु है। अमीर गरीब की अमीरी गरीबी नही देखता उनकी सुवाणी[1] देखता है। राजा सुजान है, गँवार चतुर के गँवारपन और चतुरता पर ध्यान न करके, उनकी भणिति उक्ति परखता है। राजा सुशील है। पण्डित मूढ की पण्डिताई और मूढतापर नही जाता। उनकी भक्ति लखता है। राजा ईश अशभव है। मलीन उजागर के स्थूल मालिन्य के तारतम्य पर विचार नही करता। उनकी नति देखता है। राजा परम कृपाल है। सुकवि कुकवि सबकी कविता सुनता है। पर उनकी गति देखता है कि इसकी पहुँच कहाँ तक है।

---

१ १ मधुर कोमल और मनोहर वाणी को सुवाणी कहते हैं। यथा मृगविलोकि खग बोलि सुबानी। सेवहिं सकल राम प्रिय जानी। सुवाणी का आदर करता है। यथा ऐसी बानी बोलिय मन का आपा खोय। औरन को शीतल करै, आपौ सीतल होय। चाहे उसे धनी ने कहा हो चाहे कगाल ने। २ ग्राम नर की भणिति ग्राम्य भाषा मे होती है और नागर की भणिति सुसस्कृत होती है, पर राजा सुजान है, वह भाषा की परीक्षा नही करता, यह देखता है कि लोकहितैषिता किस भणिति में है। यथा कीरति भनिति भूत भलि सोई। सुरसरि सम सबकर हित सोई। ३ पण्डित जो कहना चाहता है, उसे बडी पण्डिताई से सामने रखता है। मूढ के कहने मे बनी बात बिगड जाती है। पर राजा सुशील है दोनो की सुनता है और देखता है कि भक्ति किसमे है। ४ मलिन पुरुष की उपस्थिति अस्पृहणीय होती है। उज्ज्वल पुरुष की उपस्थिति सभी चाहते हैं। पर राजा ईश-अश-भव है, वह उसकी नति नम्रता का आदर करता है। ५ सुकवि की रचना परम मनोहर होती है। कुकवि की रचना आकर्षक नही होती। पर राजा परम कृपाल है, दोनों की सुनता है और देखता है कि किसकी कितनी गति है। जिससे उपमा देत न बा वही कुकवि है। यथा सीयबरनि जो उपमा देई। कुकवि कहाइ अजस को लेई। किसी कवि ने ब्रह्म की उपमा अपनी पुरानी धोती से दे डाली। उसके कुकवि होने म क्या सन्देह है, पर उसकी गति देखिये। वह कहता है 'आदि-मध्यान्तरहित दशाहीन पुरातन। अद्वितीयमह वन्दे मद्धौतसदृश हरिम्। मैं उस हरि की वन्दना करता हूँ, जो मेरी धोती जैसे हैं। क्योंकि मेरी धोती भी आदि, मध्य, अन्त रहित दशाहीन बिना किनारे की : हरि पक्ष में जाग्रदादि अवस्थात्रय हीन पुरातन और अद्वितीय है। पर राजा ने उस कवि का आदर किया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ऐसा स्वभाव सामान्य राजाओ मे भी पाया जाता है। कोसलाधिपति रामजी तो जानि शिरोमणि है। उनकी सारग्राहिता के लिए क्या कहा जाय ?

रीझत राम सनेह निसोते। को जग मद मलिन मति मोते ॥६॥

अर्थ रामजी तो शुद्ध स्नेह से रीझ जाते है, मुझ सा मन्द और मलिन बुद्धि-वाला ससार मे कौन है ?

व्याख्या रामजी जानि शिरोमणि है। वे और कुछ नही देखते वे तो शुद्ध स्नेह पर रीझते है। यहाँ स्नेह शब्द श्लिष्ट है। स्नेह का अर्थ तेल भी है सो तैलधारावत् अविच्छिन्न प्रेम होना चाहिए। मै मन्द और मलिन मतिवालो का सिरताज हूँ। मनुष्य शरीर पाकर भवसन्तरण का उपाय न किया। अवसर चूक गया इसलिए मन्द-मति हूँ। यथा अहह मन्द मन अवसर चूका। और मन मे बोध नही आता। इसलिए मलिनमति हूँ। यथा सदपि मलिन मन बोध न आवा। मुझमे पाँचो का अभाव है।

दो सठ सेवक की प्रीति रुचि, रखिहहिं राम कृपालु।
उपल किये जलजान जेहि, सचिव सुमति कपि भालु ॥२८॥ क
हौहु कहावत सबु कहत, राम सहत उपहास।
साहिब सीतानाथ सो, सेवक तुलसीदास ॥२८॥

अर्थ कृपालु रामजी शठ सेवक की प्रीति और रुचि रक्खेंगे, जिन्होने पत्थर को जहाज और बन्दर भालु को बुद्धिमान् मन्त्री बनाया। मै भी कहलाता हूँ और सब लोग कहते है और रामजी उपहास सहते हैं कि सीतानाथजी से स्वामी को तुलसीदास जैसा सेवक मिला है।

व्याख्या ग्रन्थकार की प्रीति 'रघुपति गुणगाथा की रचना' मे है। यथा करन चहौं रघुपति गुनगाहा और रुचि है कि उसका 'साधु समाज मे सम्मान हो।' यथा साधु समाज भनिति सनमानू और ग्रन्थकार अपने को शठ सेवक मानते हैं। शूलरूप शठ सेवक से सभी दूर रहना चाहते हैं, उसकी प्रीति और रुचि कौन रखने लगा ? पर राम कृपालु रक्खेंगे, क्योकि वे ऐसी कृपा करते आये हैं। उन्होने ही पत्थर को जहाज सन्तरण की सामग्री और बन्दर भालु को सुमति सचिव बनाया है।

ग्रन्थकार कहते हैं कि मेरी बुद्धि पत्थर सी है। जो स्वय डूबता है और उसके साथ सम्बन्ध रखनेवाले को भी डुबाता है। मैं सेवक बनकर रघुनाथ की गुणगाथा करने चला, इससे मेरा उपहास तो होगा ही श्रीरामजी का भी उपहास होगा। मेरी मति कपिभालु सी है। यथा प्रभु तरु तर कपि डार पर। मेरे भणित का सम्मान साधु समाज मे कैसे होगा ? सो रामकृपाल मेरी प्रीति रक्खेंगे। उसे सच्ची भक्ति मे परिणत कर देंगे और रचना को जहाज बना देंगे, जो स्वय तरेगा और अपने आश्रित को भी तारेगा। मेरी रुचि को भी वे ही रक्खेंगे। मेरी रचना का साधुसमाज मे सम्मान होगा। सुमति सचिव की भाँति मेरा मत ग्रहण किया जायगा।

मैंने कपट से ऐसा वेष बना रक्खा है। कण्ठी, छापा तिलक लगा रक्खा है कि मुझे लोग रामसेवक कहने लगें। मुझे ऐसा कहलाना प्रिय है, पर सेवक स्वामी के

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



स्वरूपानुकूल होता है। यथा सेवक भयो पवनपूत साहिब अनुहरत। सो मेरे जैसे के सेवक कहे जाने से स्वामी रामजी का उपहास है। रामजी उपहास सह लते हैं मुझ पर अप्रसन्न नही होते।

अति वडि मोरि ढिठाई खोरी। सुनि अघ नरकहु नाक सँकोरी ॥
समुझि सहम मोहि अपडर अपने। सो सुधि राम कीन्हि नहि सपने ॥१॥

अर्थ यह मेरी बहुत बडी ढिठाई और दोष है इस पाप को सुनकर नरक ने भी नाक सिकोडा। यह समझकर मैं कल्पित डर से सहम गया था पर रामजी ने इसका स्वप्न म भी ख्याल नही किया।

व्याख्या १ प्रभु की स्वीकृति विना मैं अपने मन से सेवक बन बैठा। यह ढिठाई की परा सीमा है और २ इससे रामजी का उपहास होता है। यह बडा भारी दोष अर्थात् रामापराध है। दानो ही बडे भारी पाप हैं जिनको सुनकर नरक ने नाक सिकोडा कि क्या ऐसे पापी को भी मुझ स्थान देना होगा? श्रीग्रन्थकार कहते हैं कि मैं तो ऐसा समझकर अपने कल्पित भय से डर गया। यथा अपडर डरचा न सोच समूल पर रामजी ने मेरी प्रीति रक्खी, उन महापापो का भी ख्याल नही किया।

सुनि अवलोकि सुचित चख[1] चाही। भगति मोरि मति स्वामि सराही ॥
कहत नसाइ होइ हिअ नीकी। रीझत राम जानि जन जी की ॥२॥

अर्थ सुनकर और सुचित की आँखो से देखकर मेरी भक्ति से भोरीमति की स्वामी ने प्रशसा की। जो कहने म बिगड जाय पर हृदय से अच्छी हा तो रामजी जन के जी की जानकर रीझ जाते हैं।

व्याख्या सुना कि तुलसीदास सेवक बना फिरता है। समझा भी कि इसके सेवक बनने से मेरी हँसी होती है फिर भी प्रभु ने मेरी रुचि रक्खी। कहा कि भक्ति से उसकी बुद्धि भोरी हो गई है। बिना स्वीकृति के ही भक्त बना फिरता है। मेरी भक्ति की सराहना करने से मेरी भक्ति भी सच्ची हो गई। अब साधु समाज म भणित का सम्मान भी होगा। 'होइहि अतिनीकी' पाठ मानने से यह अथ करना होगा कि जो कहते न बने वह भी अत्यन्त अच्छी हो जायगी। क्याकि रामजी तो जन के जी की बात जानकर रीझ जात हैं। यथा को जिय की रघुबर बिन बूझै।

ग्रन्थकार कहते हैं कि मेरे जी म है कि रघुपति गुनगान करूँ।' यथा करन चहौं रघुपति गुनगाहा इतने पर ही रामजी रीझेंगे। मुझसे कहते नही बनेगा। इस बात पर ध्यान न देंगे। क्याकि उनका ऐसा स्वभाव है कि जन के जी की जानकर रीझ जाते हैं। मने गठना की। अयाग्य हाकर रामदास बनना चाहा सा सरकार म चूक का लगा न हागा। मेरी सच्ची लगन देखी जायगी।

रहति न प्रभुचित चूक किये की। करत सुरति सय बार हियेकी ॥
जेहि अघ बधेउ व्याध जिमि बाली। फिरि सुकठ सोइ कीन्हि कुचाली ॥३॥

---

१ चाही=स।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ऐसा स्वभाव सामान्य राजाओ मे भी पाया जाता है। कोसलाधिपति रामजी तो जानि शिरोमणि है। उनकी सारग्राहिता के लिए क्या कहा जाय ?

रीझत राम सनेह निसोते। को जग मद मलिन मति मोते ॥६॥

अर्थ रामजी तो शुद्ध स्नेह से रीझ जाते है, मुझ सा मन्द और मलिन बुद्धि-वाला ससार मे कौन है ?

व्याख्या रामजी जानि शिरोमणि है। वे और कुछ नही देखते वे तो शुद्ध स्नेह पर रीझते हैं। यहाँ स्नेह शब्द श्लिष्ट है। स्नेह का अर्थ तेल भी है सो तैलधारावत् अविच्छिन्न प्रेम होना चाहिए। मै मन्द और मलिन मतिवालो का सिरताज हूँ। मनुष्य शरीर पाकर भवसन्तरण का उपाय न किया। अवसर चूक गया इसलिए मन्द-मति हूँ। यथा अहह मन्द मन अवसर चूका। और मन मे बोध नही आता। इसलिए मलिनमति हूँ। यथा तदपि मलिन मन बोध न आवा। मुझमे पाँचो का अभाव है।

दो सठ सेवक की प्रीति रुचि, रखिहहिं राम कृपालु।
उपल किये जलजान जेहि, सचिव सुमति कपि भालु ॥२८॥ क
हौंहु कहावत सबु कहत, राम सहत उपहास।
साहिब सीतानाथ सो, सेवक तुलसीदास ॥२८॥

अर्थ कृपालु रामजी शठ सेवक की प्रीति और रुचि रक्खेंगे, जिन्होने पत्थर को जहाज और बन्दर भालु को बुद्धिमान् मन्त्री बनाया। मै भी कहलाता हूँ और सब लोग कहते है और रामजी उपहास सहते हैं कि सीतानाथजी से स्वामी को तुलसीदास जैसा सेवक मिला है।

व्याख्या ग्रन्थकार की प्रीति 'रघुपति गुणगाथा की रचना' मे है। यथा करन चहौ रघुपति गुनगाहा और रुचि है कि उसका 'साधु समाज मे सम्मान हो।' यथा साधु समाज भनिति सनमानू और ग्रन्थकार अपने को शठ सेवक मानते हैं। शूलरूप शठ सेवक से सभी दूर रहना चाहते हैं, उसकी प्रीति और रुचि कौन रखने लगा ? पर राम कृपालु रक्खेंगे, क्योकि वे ऐसी कृपा करते आये है। उन्होने ही पत्थर को जहाज सन्तरण की सामग्री और बन्दर भालु को सुमति सचिव बनाया है।

ग्रन्थकार कहते हैं कि मेरी बुद्धि पत्थर सी है। जो स्वय डूबता है और उसके साथ सम्बन्ध रखनेवाले को भी डुबाता है। मैं सेवक बनकर रघुनाथ की गुणगाथा करने चला, इससे मेरा उपहास तो होगा ही श्रीरामजी का भी उपहास होगा। मेरी मति कपिभालु सी है। यथा प्रभु तरु तर कपि डार पर। मेरे भणित का सम्मान साधु समाज मे कैसे होगा ? सो रामकृपाल मेरी प्रीति रक्खेगे। उसे सच्ची भक्ति मे परिणत कर देंगे और रचना को जहाज बना देंगे, जो स्वय तरेगा और अपने आश्रित को भी तारेगा। मेरी रुचि को भी वे ही रक्खेंगे। मेरी रचना का साधुसमाज मे सम्मान होगा। सुमति सचिव की भाँति मेरा मत ग्रहण किया जायगा।

मैंने कपट से ऐसा वेष बना रक्खा है। कण्ठी, छापा तिलक लगा रक्खा है कि मुझे लोग रामसेवक कहने लगें। मुझे ऐसा कहलाना प्रिय है, पर सेवक स्वामी के



(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



स्वरूपानुकूल होता है। यथा सेवक भयो पवनपूत साहिब अनुहरत। सो मेरे जैसे के सेवक कहे जाने से स्वामी रामजी का उपहास है। रामजी उपहास सह लते हैं मुझ पर अप्रसन्न नही होते।

अति वडि मोरि ढिठाई खोरी। सुनि अघ नरकहु नाक सँकोरी ॥
समुझि सहम मोहिं अपडर अपने। सो सुधि राम कीन्हि नहिं सपने ॥१॥

अर्थ यह मेरी बहुत वडी ढिठाई और दोष है इस पाप को सुनकर नरक ने भी नाक सिकोडा। यह समझकर मैं कल्पित डर से सहम गया था पर रामजी ने इसका स्वप्न म भी ख्याल नही किया।

व्याख्या १ प्रभु की स्वीकृति विना मै अपने मन से सेवक बन बैठा। यह ढिठाई की परा सीमा है और २ इससे रामजी का उपहास होता है। यह वडा भारी दोष अर्थात् रामापराध है। दोनो ही वडे भारी पाप है जिनको सुनकर नरक ने नाक सिकोडा कि क्या ऐसे पापी को भी मुझे स्थान देना होगा ? श्रीग्रन्थकार कहते है कि मैं तो ऐसा समझकर अपने कल्पित भय से डर गया। यथा अपडर डरयो न सोच समूल पर रामजी ने मेरी प्रीति रक्खी, उन महापापो का भी ख्याल नही किया।

सुनि अवलोकि सुचित चख[1] चाही। भगति भोरि मति स्वामि सराही ॥
कहत नसाइ होइ हिअ नीकी। रीझत राम जानि जन जी की ॥२॥

अर्थ सुनकर और सुचित की आँखो से देखकर मेरी भक्ति से भोरीमति की स्वामी ने प्रशसा की। जो कहने म बिगड जाय पर हृदय से अच्छी हो तो रामजी जन के जी की जानकर रीझ जाते हैं।

व्याख्या सुना कि तुलसीदास सेवक वना फिरता है। समझा भी कि इसके सेवक वनने से मेरी हँसी होती है फिर भी प्रभु ने मेरी रुचि रक्खी। कहा कि भक्ति से उसकी बुद्धि भोरी हो गई है। विना स्वीकृति के ही भक्त वना फिरता है। मेरी भक्ति की सराहना करने से मेरी भक्ति भी सच्ची हो गई। अब साधु समाज म भणित का सम्मान भी होगा। 'होइहि अतिनीकी पाठ मानने से यह अर्थ करना होगा कि जो कहते न वने वह भी अत्यन्त अच्छी हो जायगी। क्योकि रामजी तो जन के जी की वात जानकर रीझ जाते हैं। यथा को जिय की रघुवर बिन बूझै।

ग्रन्थकार कहते हैं कि मेरे जी म है कि 'रघुपति गुनगान करूँ।' यथा करन चहौं रघुपति गुनगाहा इतने पर ही रामजी रीझेंगे। मुझसे कहते नही बनेगा। इस वात पर ध्यान न दगे। क्योकि उनका ऐसा स्वभाव है कि जन के जी की जानकर रीझ जाते है। मैंने शठता की। अयोग्य होकर रामदास वनना चाहा सो सरकार म चूक को रुखा न होगा। मेरी सच्ची लगन देखी जायगी।

रहति न प्रभुचित चूक किये की। करत सुरति सय वार हियेकी ॥
जेहि अघ वधेउ व्याध जिमि वाली। फिरि सुकठ सोइ कीन्हि कुचाली ॥३॥

---

१ चाही = से।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ श्रीरामजी के चित्त मे चूक किये की स्मृति नही रहती। हृदय की स्मृति सौ वार करते हैं। जिम पाप से वालि को व्याध की भाँति मारा वही कुचालि फिर सुग्रीव से हो पडी।

व्याख्या . जो पाप वालि से हुआ वही सुग्रीव से हुआ। अनुज अग्रज के भेद से पाप मे भेद नही। अनुज वधू कन्या सम है, तो अग्रज वधू माता सम है। 'अनुज वधू भगिनी सुत नारी' मे जो 'अनुज' शब्द का प्रयोग है सो प्रसङ्गानुकूल होने के कारण से है। यथा वन्धु वधू रत यहि कियो वचन निरुत्तर वालि। तुलसी प्रभु सुग्रीव की चितइ न कछू कुचालि। जानबूझकर कि ऐसे कुचाल का प्रभु ऐसा दण्ड देते हैं। स्त्रीचरित्र मे फँस गये। वालि की भाँति हृदय दूपित नही था, जिसने कि दण्ड रूप मे सर्वस्व और स्त्री भी हरण की और सुग्रीव के वध के लिए सदा सचेष्ट रहता था।

सोइ करतूति विभीपन केरी। सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी॥
ते भरतहि भेटत सनमाने। राजसभाँ रघुवीर बखाने॥४॥

अर्थ वही करतूति विभीषण की है। पर इसे रामजी ने स्वप्न मे भी हृदय से नही देखा . मन मे नही लाये। भरतजी से मिलने के समय रामजी ने उनका सम्मान किया और सभा मे उनका वखान किया।

व्याख्या विभीषण भी इसी भाँति मायाजाल मे जा पडे। मन्दोदरी परम सुन्दरी नारि ललामा थी, सो उसकी माया मे आ जाना चूक है। हृदय मे अभिलाषा न थी कि लङ्का और मन्दोदरी प्राप्त करें। रामजी ने इसका ख्याल ही नही किया। क्योकि उनकी कृपा अघाती कृपा नही है।

इतना ही नही, भरत ऐसे भाई से मिलने के समय, सुग्रीव और विभीषण का सम्मान किया। यथा राम सराहे उठि, भरत मिले राम समजानि : और राजसभा मे सप्तद्वीप के राजा प्रजा, श्रीवशिष्ठजी तथा सुमन्त आदि के सम्मुख, उनका बखान किया।

दो. प्रभु तरुतर कपि डार पर, ते किये आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से, साहिव सील निधान॥२९॥ क
राम निकाई रावरी, है सवही को नीक।
जौ यह साँची है सदा, तौ नीको तुलसीक॥२९॥ ख
एहि विधि निजगुन दोप कहि, सवहि वहुरि सिरनाइ।
वरनउँ रघुवर विसद जसु, सुनि कलि कलुप नसाइ॥२९॥

अर्थ · प्रभु तो वृक्ष के नीचे और वन्दर डारपर, उन्हे अपने समान बना लिया। तुलसीदासजी कहते है कि राम के समान शीलनिधान स्वामी कही नही है। हे रामजी! आपकी भलाई सबको भली है। यदि यह बात सदा सत्य है तो तुलसीदास को भी भली है। इस प्रकार अपना गुण और दोप कहकर और

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सबको सिर नवाकर रघुवर का निर्मल यश वर्णन करता हूँ। जिसके सुनने से कलि-मल नष्ट हो जाते हैं।

व्याख्या : सुग्रीव और विभीषण प्रसिद्ध थे अतः इनका नाम लेकर कहा, नहीं तो अपराध बहुतों से बन पड़ा, किसका किसका नाम लिया जाय। प्रभु पेड़ तले बैठे, बन्दर पूँछ लटकाकर प्रभु के ऊपरवाली डाली पर जाकर बैठे। अमर्याद की सीमा हो गई। रामापराध भी बन पड़ा। पर यह उनकी चूक थी। उन्होंने अपनी समझ में न ढिठाई की न अपराध किया। उन्हें अपने समान बनाया। यथा : मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी, पर प्रीति जे गाइहैं। ससार सिंधु अपार पार, प्रयास बिनु नर पाइहैं।

यहाँ स्वरूप वर्णन[1] प्रकरण समाप्त होता है।

रामजी किसी के विरोधी नहीं हैं। यथा : अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा। रामजी को सब प्रिय हैं। यथा : सब मम प्रिय सब मम उपजाये। सब पर प्रीति प्रतीति जिय, जानिय आपु समान। राम ही भले हैं। यथा : जग अनभल भल एक गोसाँई। कहहु होइ भल कासु भलाई। उनकी भलाई सबके लिए भली है। अतः तुलसी के लिए भी भली है। विनय में कहा है :

राम भलाई आपनी भल कियो न काको।
जुग जुग जानकीनाथ को जग जागत साको ॥१॥
ब्रह्मादिक बिनती करी, कहि दुख बसुधा को।
रविकुल कैरव चन्द्रभो, आनन्द सुधा को ॥२॥
कौसिक गरत तुषार ज्यौं, लखि तेज तिया को।
प्रभु अनुदिन हित को दियो, फल कोप कृपा को ॥३॥
हरयौ पाप आप जाइके, संताप सिला को।
सोच मगन काढ्यौ सही साहिब मिथिला को ॥४॥
रोष रासि भृगुपति धनी, अहमिति ममता को।
चितवत भाजन करिलियो, उपशम समता को ॥५॥
मुदित मानि आयसु चले, बन मातु पिता को।
धरम धुरंधर धीर धुर, गुनसील जिता को ॥६॥
गुह गरीब गत ज्ञातिहू, जेहि जिउ न भखा को।
पायो पावन प्रेम ते, सनमान सखा को ॥७॥
सद्गति सबरी, गीध की, सादर करता को।
सोच सींव सुग्रीव के, संकट हरता को ॥८॥
राखि बिभीषन को सकै अस काल गहा को।
आज बिराजत राज है दसकंठ जहाँ को ॥९॥

---

१. पहिले नव दोहों में नाम वर्णन किया। फिर दो दोहों में स्वरूप वर्णन किया। इसके बाद क्रम से लीला और धाम वर्णन करेंगे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बालिस वासी अवध को, बूझिये न खाको।
सो पाँवर पहुँचो तहाँ जहँ मुनि मन थाको ॥१०॥
गति न लहै रामनाम सों, विधिसो सिरिजा को।
सुमिरत कहत प्रचारि कै, वल्लभ गिरिजा को ॥११॥
अकनि अजामिल की कथा, सानद न भाको।
नाम लेत कलि कालहू, हरि पुरहिं न गा को ॥१२॥
रामनाम महिमा करै काम भूरुह आको।
साखी वेद पुरान है, 'तुलसी तन ताको' ॥ २ : वि. प. १५२

इस विधि से अपना गुण दोष कहा। यह कवि की आर्ति है। सबको फिर से प्रणाम किया। यह दीनता और विनय है। इस भाँति तीसरी बार जल का हलकापन कहा : समष्टि और कवि समाज से पहिले कह आये है : आरति विनय दीनता मोरी। लघुता ललित सुवारि न खोरी। भाव यह है कि हलकापन की सराहना जलके आचमन के बाद की बात है। इस भाँति मानससर मे अवगाहन के पहिले, तीन बार आचमन करने की बात कही।

'काल सदा दुरति क्रम भारी' सो उसका मल भी रघुवर यश के सुनने से नष्ट हो जाता है। अब समष्टि को फिर से प्रणाम करके श्रीग्रन्थकार रघुवर-विशद-यश वर्णन करते है।

## कथापरिचय

जाग[1] वलिक जो कथा सुहाई। भरद्वाज मुनिवरहिं सुनाई ॥
कहिहौ सोइ संवाद बखानी। सुनहु सकल सज्जन सुख मानी ॥१॥
संभु कीन्ह यह चरित सुहावा। बहुरि कृपा करि उमहि सुनावा ॥
सोइ सिव कागभुसुडिहि दीन्हा। राम भगति अधिकारी चीन्हा ॥२॥

अर्थ : याज्ञवल्क्य ने जो सुहावनी कथा मुनिवर भरद्वाज जी को सुनाई थी उसी सवाद को मैं बखानकर कहूँगा। सब सज्जन सुखपूर्वक सुनो। १. यह सुहावना चरित शिवजी ने रचा और फिर कृपा करके उमा को सुनाया। उसी को शिवजी ने रामभक्ति का अधिकारी पहिचानकर, कागभुशुण्डि को दिया।

व्याख्या : चारो घाटो के वक्ताओ का वर्णन करते हुए कहते हैं कि योगी याज्ञवल्क्य ने भारद्वाज जी को कथा सुनाई। योगी याज्ञवल्क्य से ही यजुर्वेद की कृष्ण और शुक्ल शाखाएँ चली। इनका आख्यान वेदो मे पाया जाता है। इन्ही की स्मृति उत्तर भारत में मान्य है। इन्होने राम वनवास के पहिले ही श्रीरामचरित अपने शिष्य जनकजी को सुना रखा था। यथा : यह सब जागवलिक कहि राखा। देवि न मुधा होइ मुनिभाखा। भारद्वाज जी भी वैदिक ऋषि हैं। सप्तर्षियों मे एक हैं। इन्होने वेदप्राण प्रणव को इन्द्र से प्राप्त किया था। वक्ता भी ऐसे महान् और श्रोता भी ऐसे

१. दाढादयो बहुलम् : प्रा. प्र · इस सूत्र से याज्ञवल्क्य का जागवलिक रूप हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



महान्। इन्हीं दोनों महात्माओं का संवाद तापनीय श्रुतियों[1] में है। वहीं रामकथा

---

१ श्रीरामपूर्वतापिन्या चतुर्थोपनिषदि वेदोक्तरामचरितम्। अत्र रामोऽन्त तत्परते नसावह्निनासम ।
सत्वगुणगुर्विदवगैदग्नीषोमात्मक जगत्। उत्पन्न सीतया भाति चन्द्रश्चन्द्रिकया यथा ॥
प्रकृत्या सहित श्याम पीतवासा जटाधर। द्विभुज कुण्डली रत्नमाली धीरो धनुर्धर ॥
प्रसन्नवदनो जेता धृत्यष्टकविभूषित। प्रकृत्या परमेश्वर्या जगद्योन्याऽङ्किताङ्कभृत् ॥
हेमाभया द्विभुजया सर्वालङ्कृतया चिता। श्लिष्ट कमलधारिण्या पुष्ट कोसलजात्मज ॥
दक्षिणे लक्ष्मणेनाथ सधनुष्पाणिना पुन। हेमाभेनाऽनुजेनैव तदा कोणत्रय भवेत् ॥
तथैव तस्य मन्त्रस्य यशोऽणुश्चस्वङेन्तया। एव त्रिकोणरूप स्यात् त देवा ये समाययु ॥
स्तुर्ति चक्रुश्च जगत पर्ति कल्पतरौ स्थितम्। कामरूपाय रामाय नमो मायामयाय च ॥
नमो वेदादिरूपाय ॐकाराय नमोनम। रमाधराय रामाय श्रीरामायात्ममूर्तये ॥
जानकी देहभूषाय रक्षोघ्नाय शुभाङ्गिने। भद्राय रघुवीराय दशास्यान्तकरूपिणे ॥
रामभद्र महेष्वास रघुवीर नृपोत्तम। भो दशास्यान्तकास्माकं रक्षा देहि श्रियं च ते ॥
त्वमैश्वर्यं कुर्वन्ति सम्प्रत्यास्वरिमारणम्। कुर्वितिस्तुत्यदेवाद्यास्तेन सार्धं सुख स्थिता ॥
स्तुवन्त्येव हि ऋषयस्तदा रावण आसुर। रामपत्नी वनस्था य स्वनिवृत्त्यर्थमाददे ॥
स रावण इति ख्यातो यद्वा रावाच्च रावण। तद्व्याजेनेक्षितु सीता रामो लक्ष्मण एव च ॥
विचेरतुस्तदा भूमौ देवी सदृश्य चासुरम्। हत्वा कबन्ध शबरी गत्वा तस्याज्ञया तया ॥
पूजिता वीरपुत्रेण मर्त्तेन च कपीश्वरम्। आहूय शसता सर्वमाद्यन्त रामलक्ष्मणौ ॥
स तु रामे शङ्कित सन् प्रत्ययार्थं च दुन्दुभे। विग्रह दर्शयामास यो रामस्तमचिक्षिपत् ॥
सप्ततालान् विभिद्याशु मोदते राघवस्तदा। तेन हृष्ट कपीन्द्रोऽसौ सरामस्तस्य पत्तनम् ॥
जगामाऽगर्जदनुजो वालिनो वेगतो गृहात्। वाली तदा निर्जगाम त वालिनमथाहवे ॥
निहत्य राघवा राज्ये सुग्रीव स्थापयेत् तत। हरीनाहूय सुग्रीवस्त्वाह चाशाविदोऽधुना ॥
आदाय मैथिलीमद्य ददताश्वाशु गच्छत। ततस्तताार हनुमानब्धि लङ्का समाययौ ॥
सीतादृष्ट्वाऽसुरान् हत्वा पुर दग्ध्वा तथा स्वयम्। स्वयमागत्य रामाय न्यवेदयत तत्त्वत ॥
तदाराम क्रोधरूपी तानाहूयाथ वानरान्। तं सार्धमादायास्त्राश्च पुरी लङ्का समाययौ ॥
ता दृष्ट्वा तदधीशेन सार्धं युद्धमकारयत्। घटश्रोत्रसहस्राक्षजिद्भ्या युक्त तमाहवे ॥
हत्वा विभीषण तत्र स्थाप्याथ जनकात्मजाम्। आदायाङ्कस्थिता कृत्वा स्वपुर तैर्जगाम ह ॥
तत सिंहासनस्थ सन् द्विभुजो रघुनन्दन। धनुर्धर प्रसन्नात्मा सर्वाभरणभूषित ॥
मुद्रा ज्ञानमयी याम्ये वामे तेज प्रकाशनम्। धृत्वा व्याख्याननिरतश्चिन्मय परमेश्वर ॥
उदग्दक्षिणयो स्वस्य शत्रुघ्नभरतौ धृत। हनुमन्त च श्रोतारमग्रत स्यात्त्रिकोणगम् ॥
भरताधस्तु सुग्रीव शत्रुघ्नाधो विभीषणम्। पश्चिमे लक्ष्मण धृत्वा धृतच्छत्र सचामरम् ॥
तदधस्तौ तालवृन्तकरौ त्र्यस्र पुनर्भवेत्। एव षट्कोणमादौ स्वदीर्घाङ्गै रेफसयुत ॥
द्वितीय वासुदेवाद्यैराग्नेयादिषु सयुतम्। तृतीय वायुसूनु च सुग्रीव भरत तथा ॥
विभीषण लक्ष्मण च अङ्गद चारिमर्दनम्। जाम्बवन्त च तैर्युक्तस्ततो धृष्टिर्जयन्तक ॥
विजयश्च सुराष्ट्रश्च राष्ट्रवर्धन एव च। अकोपो धर्मपालश्च सुमन्त्रस्त्वैभिरावृत ॥
तत सहस्रदृग्वह्नि धर्मरक्षोवरुणानिला। इन्द्वीशधात्रनन्ताश्च दशभिस्त्वैभिरावृत ॥
बहिस्तदायुधै पूज्यो नीलादिभिरलङ्कृत। वसिष्ठवामदेवादिमुनिभि समुपासित ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अति संक्षेप में वर्णित है। ग्रन्थकार अपने श्रोता सज्जन वृन्द से कह रहे हैं कि उ सवाद को मैं बखानकर कहूँगा। आप लोग सुख मानकर सुनो। यथा : राम भग भूषित जिय जानो। सुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी। रचि महेस निज मानस राखा पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा। आर्त अधिकारी को सुनाया। इसलिए 'कृपाकर' कहते हैं। उसी को शिवजी ने कागभुसुण्डि को दिया, सुनाया नहीं। सुनाया लोम

---

अर्थ इस जडात्मक प्रपञ्च मे अनन्त रूप राम तेज से अग्नि रूप हैं। वही विश्व शीतरश्मिरूप है। सीता के साथ चाँदनी से युक्त चन्द्रमा की भाँति सुशोभित हैं। उन्हीं से य अग्निसोमात्मक जगत् उत्पन्न हुआ है। प्रकृति के सहित, श्यामवर्ण, पीतवस्त्र धारण कि हुए, जटा रखे हुए, द्विभुज कुण्डल पहिने, रत्नो की माला धारण किये, धीर, धनुर्ध प्रसन्न वदन, जेता, धृति आदि आठ मन्त्रियो से युक्त, परमेश्वरी जगद्योनि प्रकृति स आभूषणो को धारण किये, दो भुजावली हाथ मे कमल लिये हुए, जिसके वामाङ्ग मे वर्तमा हैं। इसी भाँति पुष्ट कोसल्यानन्द वर्धन विराजते हैं। उनके दक्षिण ओर हेमवर्ण, धनुष हा मे लिये छोटे भाई लक्ष्मण विराजमान हैं। इस भाँति त्रिकोण होता है। इसी भाँति उनर मन्त्र है जो लक्ष्मण सम्बन्धी मन्त्र बीज और नाम मे चतुर्थी एक वचन की विभक्ति लगाने र बनता है। इस भाँति त्रिकोण रूप होता है। उस त्रिकोण के अधिष्ठाता भगवान् के पास इन्द्रा दिक देवता गये। कल्पवृक्ष के नीचे स्थित भगवान् जगत्पति की स्तुति की। अपनी इच्छ से रूप धारण करनेवाले! आपको नमस्कार है। हे राम, हे माया के नाश करनेवाले आपको नमस्कार है! हे वेदादिरूप! हे ॐ कार! आपको नमस्कार है। हे रमा के धारण करनेवाले राम! हे सीतारमण! हे आत्ममूर्ति! हे सीता रूप अलङ्कार के धारण करने वाले! राक्षसो को नाश करनेवाले, शुभ अङ्गवाले, हे मङ्गलरूप, हे रघुवीर, हे दशकण्ठ के अन्तकरूप, हे रामभद्र, हे महा धनुर्धर, हे रघुवीर, हे नृपोत्तम, हे रावणान्तक हमलोगो की रक्षा करो और ऐश्वर्य दो। ईश्वरी द्वारा रक्षा और श्री दिलाओ। इस समय शीघ्र शत्रु का वध करो। देवादिको ने ऐसी स्तुति की और परमेश्वर के साथ ही सुख से स्थित हुए। वशिष्ठादिक ऋषियो ने इसी भाँति स्तुति की। तब असुर रावण वन मे स्थित रामपत्नी को अपनी निवृत्ति के लिए हरण कर ले गया। इसी से उसका नाम रावण हुआ या ससार को रुलाता था इसलिए रावण कहलाया। उसी व्याज मे सीता को खोजते हुए राम और लक्ष्मण पृथ्वी पर विचरने लगे। कबन्धासुर को देखा और वध किया। शबरी के पास गये और उसके कहने से जाकर भक्त हनुमान्‌जी से पूजित हुए। सुग्रीव को बुलाकर उन्हें सब वृत्तान्त सुनाया। वह रामजी के विषय मे शङ्कित हुआ और उसने अपने विश्वास के लिए दुन्दुभी की अस्थि दिखलाई। जिसे रामजी ने फेंक दिया और सात तालो का भेदन करके राघव प्रसन्न हुए। इससे सुग्रीव भी प्रसन्न हुए और रामजी के साथ किष्किन्धापुरी गये। सुग्रीव ने गर्जन किया तब बाली वेग से घर के बाहर निकला। उस बाली को राघव ने संग्राम मे मारा और सुग्रीव को राजा बनाया। दिशाओ के जाननेवाले वानरो को बुलाकर सुग्रीव ने कहा जल्दी जल्दी तुमलोग मैथिली को खोज लाओ। तब हनुमान् समुद्र पार करके लङ्का गये। सीता को देखकर, राक्षसो को मारकर लङ्का जलाई। और स्वयं आकर रामजी को सब वृत्तान्त सुनाया। तब रामचन्द्र ने क्रुद्ध

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ऋषि ने। यथा : मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा। रामचरित मानस तब भाखा। शङ्कर भगवान् की प्रेरणा से लोमश ऋषि ने सुनाया। इसीलिए शिवजी का 'देना' कहते हैं। यथा : रामचरित सर गुप्त सोहावा। सभु प्रसाद तात मैं पावा। शम्भु ने जो ऐसी कृपा भुसुण्डिजी पर की। उसका कारण कहते हैं कि उसे रामभक्ति का अधिकारी चीह्ना, इससे उसे दिया।

तेहि सन जागवलिक पुनि पावा। तिह्न पुनि भरद्वाज प्रति गावा ॥
ते श्रोता वक्ता सम सीला। सब दरसी जानहिं हरिलीला ॥३॥

अर्थ . उससे याज्ञवल्क्य ने पाया और फिर उन्होंने भरद्वाजजी से कहा। वे श्रोता और वक्ता समान स्वभाववाले थे, सर्वदर्शी थे और हरि की लीला को जानते थे।

व्याख्या : यहाँ पर यह स्पष्ट नही होता कि याज्ञवल्क्यजी ने शिवजी से सुना या भुसुण्डिजी से सुना। परन्तु 'पावा' शब्द से तो यही झलकता है कि देनेवाले नि सन्देह शिवजी हैं पर उन्होंने उसी भाँति दिया जिस भाँति भुसुण्डिजी को दिया था। अर्थात् . भुसुण्डिजी के गुरु . महर्षि लोमश द्वारा भुसुण्डिजी को दिया और याज्ञवल्क्यजी को उनके गुरु द्वारा दिया। सुनावा, दिया और पावा इन क्रियाओं पर ध्यान देने से तो यही अर्थ निकलता है। ये तीनो वक्ता और श्रोता समान कक्षा के थे। सर्वदर्शी थे। हरिलीला के साक्षात्कार करनेवाले थे। जगत् के कल्याणार्थ श्रोता, वक्ता बने थे।

जानहिं तीनि काल निज ग्याना। करतलगत आमलक समाना ॥
औरो जे हरिभगत सुजाना। कहहिं सुनहिं समुझहिं बिधि नाना ॥४॥

---

होकर उन वानरो को अपने पास बुलाया और उनके साथ अस्त्रों को लेकर लङ्का गये। उसे देखकर उसके स्वामी के साथ युद्ध किया। कुम्भकर्ण और मेघनाद के साथ उसे लडाई मे मारा। वहाँ का राजा विभीषण को बनाया। सीताजी को गोद मे लेकर उनके साथ अयोध्या गये। तब द्विभुज रघुनन्दन सिंहासन पर बैठे। द्विभुज रघुनन्दन धनुष धारण किये हुए, सब अलङ्कारो को धारण किये हुए, प्रसन्न वदन दक्षिण हाथ मे ज्ञानमयी मुद्रा धारण किये हुए और बाएँ हाथ से वामजानु मण्डल को दबाए हुए, चिन्मय परमेश्वर व्याख्यान मे निरत हुए। बाएँ और दक्षिण ओर शत्रुघ्न और भरत स्थित हुए। श्रोता रूप से हनुमान् भी सन्मुख स्थित हुए। इस भाँति फिर त्रिकोण हुआ। भरत के नीचे सुग्रीव और शत्रुघ्न के नीचे विभीषण तालवृन्त धारण किये हुए और पीछे लक्ष्मणजी छत्र और चामर धारण किये हुए स्थित हुए। इस भाँति दो त्रिकोणो के मिलने से षट्कोण हुआ। इस भाँति स्वकीय बीज, दीर्घ अक्षरो से युक्त हृदयादिको से श्रीरामजी का पूजन होना चाहिए। दूसरा आवरण वासुदेव आदि है। तीसरे आवरण मे हनुमान्, सुग्रीव, भरत, विभीषण, लक्ष्मण, अङ्गद, शत्रुघ्न, जाम्बवान् है। इसके बाद विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अशोक, धर्मपाल, और सुमन्त्र का आवरण है। इसके बाद इन्द्र, अग्नि, धर्म, निर्ऋति, वायु, चन्द्र, धाता और शेष का आवरण है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अति सक्षेप मे वर्णित है। ग्रन्थकार अपने श्रोता सज्जन वृन्द से कह रहे हैं कि उसी सवाद को मैं बखानकर कहूँगा। आप लोग सुख मानकर सुनो। यथा : राम भगति भूपित जिय जानी। मुनिहहिं सुजन सराहि सुबानी। रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा। आर्त अधिकारी को सुनाया। इसलिए 'कृपाकरि' कहते हैं। उसी को शिवजी ने कागभुसुण्डि को दिया, सुनाया नही। सुनाया लोमश

---

अर्थ इस जडात्मक प्रपञ्च मे अनन्त रूप राम तेज रो अग्नि रूप हैं। वही विश्वरूप शीतरश्मिरूप है। सीता के साथ चाँदनी से युक्त चन्द्रमा की भाँति सुशोभित हैं। इन्हीं से यह अग्निसोमात्मक जगत् उत्पन्न हुआ है। प्रकृति के सहित, श्यामवर्ण, पीतवस्त्र धारण किये हुए, जटा रक्खे हुए, द्विभुज कुण्डल पहिने, रत्नो की माला धारण किये, धीर, धनुर्धर, प्रसन्नवदन, जेता, धृति आदि आठ मन्त्रियो से युक्त, परमेश्वरी जगद्योनि प्रकृति सब आभूषणो को धारण किये, दो भुजावली हाथ मे कमल लिये हुए, जिसके वामाङ्ग मे वर्तमान हैं। इसी भाँति पृष्ट कौसल्यानन्द वर्धन विराजते हैं। उनके दक्षिण ओर हेमवर्ण, धनुष हाथ मे लिये छोटे भाई लक्ष्मण विराजमान हैं। इस भाँति त्रिकोण होता हैं। इसी भाँति उनका मन्त्र है जो लक्ष्मण सम्बन्धी मन्त्र बीज और नाम मे चतुर्थी एक वचन की विभक्ति लगाने से बनता है। इस भाँति त्रिकोण रूप होता है। उस त्रिकोण के अधिष्ठाता भगवान् के पास इन्द्रादिक देवता गये। कल्पवृक्ष के नीचे स्थित भगवान् जगत्पति की स्तुति की। अपनी इच्छा से रूप धारण करनेवाले! आपको नमस्कार है। हे राम, हे माया के नाश करनेवाले! आपको नमस्कार है! हे वेदादिरूप! हे ॐकार! आपको नमस्कार है। हे रमा के धारण करनेवाले राम! हे सीतारमण! हे आत्ममूर्ति! हे सीता रूप अलङ्कार के धारण करनेवाले! राक्षसो को नाश करनेवाले, शुभ अङ्गवाले, हे मङ्गलरूप, हे रघुवीर, हे दशकण्ठ के अन्तकरूप, हे रामभद्र, हे महा धनुर्धर, हे रघुवीर, हे नृपोत्तम, हे रावणान्तक, हमलोगो की रक्षा करो और ऐश्वर्य दो। ईश्वरी द्वारा रक्षा और श्री दिलाओ। इस समय शीघ्र शत्रु का वध करो। देवादिको ने ऐसी स्तुति की और परमेश्वर के साथ ही सुख से स्थित हुए। वशिष्ठादिक ऋषियो ने इसी भाँति स्तुति की। तब असुर रावण वन मे स्थित रामपत्नी को अपनी निवृत्ति के लिए हरण कर ले गया। इसी से उसका नाम रावण हुआ या ससार को रुलाता था इसलिए रावण कहलाया। उसी व्याज से सीता को खोजते हुए राम और लक्ष्मण पृथ्वी पर विचरने लगे। कबन्धासुर को देखा और वध किया। शबरी के पास गये और उसके कहने से जाकर भक्त हनुमान्जी से पूजित हुए। सुग्रीव को बुलाकर उन्हे सब वृत्तान्त सुनाया। वह रामजी के विषय मे शङ्कित हुआ और उसने अपने विश्वास के लिए दुन्दुभी की अस्थि दिखलाई। जिसे रामजी ने फेंक दिया और सात तालो का भेदन करके राघव प्रसन्न हुए। इससे सुग्रीव भी प्रसन्न हुए और रामजी के साथ किष्किन्धापुरी गये। सुग्रीव ने गर्जन किया तब बाली वेग से घर के बाहर निकला। उस बाली को राघव ने सग्राम मे मारा और सुग्रीव को राजा बनाया। दिशाओ के जाननेवाले वानरो को बुलाकर सुग्रीव ने कहा जल्दी जल्दी तुमलोग मैथिली को खोज लाओ। तब हनुमान् समुद्र पार करके लङ्का गये। सीता को देखकर, राक्षसों को मारकर लङ्का जलाई। और स्वयं आकर रामजी को सब वृत्तान्त सुनाया। तब रामचन्द्र ने क्रुद्ध

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ऋषि ने। यथा मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा। रामचरित मानस तब भाखा। शङ्कर भगवान् की प्रेरणा से लोमश ऋषि ने सुनाया। इसीलिए शिवजी का 'देना' कहते हैं। यथा रामचरित सर गुप्त सोहावा। सभु प्रसाद तात मैं पावा। शम्भु ने जो ऐसी कृपा भुसुण्डिजी पर की। उसका कारण कहते हैं कि उसे रामभक्ति का अधिकारी चीह्ना, इससे उसे दिया।

तेहि सन जागवलिक पुनि पावा। तिह्न पुनि भरद्वाज प्रति गावा॥
ते श्रोता बक्ता सम सीला। सब दरसी जानहि हरिलीला॥३॥

अर्थ . उससे याज्ञवल्क्य ने पाया और फिर उन्होने भरद्वाजजी से कहा। वे श्रोता और वक्ता समान स्वभाववाले थे, सर्वदर्शी थे और हरि की लीला को जानते थे।

व्याख्या . यहाँ पर यह स्पष्ट नही होता कि याज्ञवल्क्यजी ने शिवजी से सुना या भुसुण्डिजी से सुना। परन्तु 'पावा' शब्द से तो यही झलकता है कि देनेवाले नि सन्देह शिवजी है पर उन्होने उसी भाँति दिया जिस भाँति भुसुण्डिजी को दिया था। अर्थात् भुसुण्डिजी के गुरु महर्षि लोमश द्वारा भुसुण्डिजी को दिया और याज्ञवल्क्यजी को उनके गुरु द्वारा दिया। सुनाया, दिया और पावा इन क्रियाओ पर ध्यान देने से तो यही अर्थ निकलता है। ये तीनो वक्ता और श्रोता समान कक्षा के थे। सर्वदर्शी थे। हरिलीला के साक्षात्कार करनेवाले थे। जगत् के कल्याणार्थ श्रोता, वक्ता बने थे।

जानहि तीनि काल निज ग्याना। करतलगत आमलक समाना॥
औरो जे हरिभगत सुजाना। कहहि सुनहि समुझहि बिधि नाना॥४॥

---

होकर उन वानरो को अपने पास बुलाया और उनके साथ अस्त्रो को लेकर लङ्का गये। उसे देखकर उसके स्वामी के साथ युद्ध किया। कुम्भकर्ण और मेघनाद के साथ उस लडाई मे मारा। वहाँ का राजा विभीषण को बनाया। सीताजी को गोद मे लेकर उनके साथ अयोध्या गये। तब द्विभुज रघुनन्दन सिंहासन पर बैठे। द्विभुज रघुनन्दन धनुष धारण किये हुए, सब अलङ्कारो को धारण किये हुए, प्रसन्न वदन दक्षिण हाथ मे ज्ञानमयी मुद्रा धारण किये हुए और बाएँ हाथ से वामजानु मण्डल को दबाए हुए, चिन्मय परमेश्वर व्याख्यान मे निरत हुए। बाएँ और दक्षिण ओर शत्रुघ्न और भरत स्थित हुए। श्रोता रूप से हनुमान् भी सम्मुख स्थित हुए। इस भाँति फिर त्रिकोण हुआ। भरत के नीचे सुग्रीव और शत्रुघ्न के नीचे विभीषण तालवृन्त धारण किये हुए और पीछे लक्ष्मणजी छत्र और चामर धारण किये हुए स्थित हुए। इस भाँति दो त्रिकोणो के मिलने से षट्कोण हुआ। इस भाँति स्वकीय बीज, दीर्घ अक्षरो से युक्त हृदयादिको से श्रीरामजी का पूजन होना चाहिए। दूसरा आवरण वासुदेव आदि है। तीसरे आवरण मे हनुमान्, सुग्रीव, भरत, विभीषण, लक्ष्मण, अङ्गद, शत्रुघ्न, जाम्बवान् है। इसके बाद विजय, सुराष्ट्र, राष्ट्रवर्धन, अकोप, धर्मपाल, और सुमन्त्र का आवरण है। इसके बाद इन्द्र, अग्नि, धर्म, निर्ऋति, वायु, चन्द्र, धाता और शेष का आवरण है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : वे अपने ज्ञान से हाथ पर रक्खे हुए आँवले के समान तीनों कालो का जानते थे और भी जो सुजान हरिभक्त हैं, नाना विधान से कहते, सुनते और समझते है।

व्याख्या : जो आँवले का फल हाथ में होता है उसका ज्ञान निरावरण होता है। इसी भाँति उनके लिए भूत और भविष्य भी वर्तमान के तुल्य था। इसलिए 'निज ज्ञाना' कहते हैं, दूसरे को जानने की उन्हे आवश्यकता नही है। वे महात्मा भक्त हैं अतः 'आमलक समाना' कहा। ज्ञानी के लिए दूसरी उपमा देते है। उनके हाथ में विश्व को वेर के फल के समान कहते है। यथा : जिन्हहि विस्व कर वदरि समाना : क्योंकि भक्त को विश्व पथ्य है और ज्ञानी को अपथ्य है : धात्री फलं सदापथ्यं अपथ्य बदरी फलम्।

इनके बाद कहने सुनने और समझने पर ही निर्भर रहकर कथा की परम्पराएँ चली क्योंकि चरित के साक्षात्कार करने की सामर्थ्य तो पूर्वोक्त तीनो वक्ताओ और श्रोताओ में ही थी। अतः सुजान हरिभक्त होने पर भी बुद्धिभेद से कथा के विधानो मे भेद पड़ने लगा। इसीलिए 'कहहि सुनहि समुझहि विधि नाना' कहा।

दो. मै पुनि निज गुर सन सुनी, कथा सो सूकरखेत।
समुझी नहि तसि बालपन, तब अति रहेउँ अचेत ॥३०॥ क
श्रोता वकता ग्याननिधि, कथा राम कै गूढ़।
किमि समुझौ मै जीव जड़, कलि मल ग्रसित विमूढ़ ॥३०॥ ख

अर्थ : मैंने अपने गुरु से सूकर-क्षेत्र मे यह कथा सुनी, परन्तु : जैसी कथा होती थी : वैसी अति बालकपन होने के कारण, समझ न पायी, तब बहुत अचेत था। श्रोता, वक्ता दोनो ज्ञाननिधि थे और राम की कथा गूढ है। मैं कलियुग के पापो से ग्रसा हुआ, महा मूढ, जड़ जीव उसे कैसे समझ सकता था ?

व्याख्या : जो कथा ग्रन्थकार ने गुरुमुख से सुनी, वह सम्भवतः सोरो के घाट पर हुई थी, उस स्थल में वाराहावतार होने से उसे 'सूकर खेत' कहा जाता था। अति अचेत कहने का भाव ग्रन्थकार का यह है कि अचेत तो अब भी हूँ, पर *उस समय अति अचेत था। जैसी कही गई वैसी नहीं समझा।*

गुरुजी साधु समाज मे कथा कहते थे। जिस भाँति वे ज्ञानी थे उसी भाँति श्रोता समाज भी महा ज्ञानी था। अतः उन लोगों के सुनने योग्य कथा हो रही थी। अन्य श्रोता लोग साधु थे। मै कलिमल ग्रसित था। अन्य श्रोता लोग महा विद्वान् थे। मैं विमूढ था। अतः वे समझ पाते थे, मै नही समझ पाता था।

तदपि कही गुर बारहि बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा ॥
भाषा बद्ध करबि मै सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई ॥१॥

अर्थ : फिर भी गुरजी ने बार-बार कही तो अपनी बुद्धि के अनुसार कुछ समझ में आई। उसीको मै भाषा मे छन्दोबद्ध करूँगा जिससे मेरे मन मे प्रबोध : तसल्ली हो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या गुरुजी बडे दयालु थे, मेरे समझने के लिए बार-बार कहा। यही समझाने का रास्ता है। बार-बार कहने से गूढ विषय भी मन मे आजाता है। धीरे-धीरे सस्कार पड जाता है। यथा . अति दयालु गुरु स्वल्प न क्रोधा। पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा। तब कुछ कुछ बात समझ मे आई।

जब तब अच्छी भाँति समझ मे न आवे तब तक उसे छन्दोबद्ध नहीं किया जा सकता। ग्रन्थकार कहते है कि अपने प्रबोध के लिए मै उसे भाषा मे छन्दोबद्ध करूँगा। बहुत से गूढ विषय ऐसे है जिनके विषय मे धारणा हो जाती है कि मैने समझ लिया पर उसे जब छन्दोबद्ध करने लगे तो कितनी ही शङ्काएँ उत्पन्न हो जाती है। उन्हे समाधान करके अपनी भाषा मे छन्दोबद्ध कर पावे तब उसके अभ्रान्त होने मे सन्देह नही रह जाता। इसलिए ग्रन्थकार कहते हैं कि मै अपने जी की तसल्ली के लिए भाषाबद्ध करता हूँ।

जस कछु बुधि विवेक बल मोरे। तस कहिहौं हिय हरि के प्रेरे ॥
निज संदेह मोह भ्रम हरनी। करौ कथा भव सरिता तरनी ॥२॥

अर्थ जैसा कुछ मुझमे बुद्धि और विवेक का बल है मै हिय मे हरि की प्रेरणा से वैसा ही कहूँगा। मैं अपने सन्देह, मोह और भ्रम को रहनेवाली कथा रचता हूँ। वह ससारनदी के लिए नाव के समान है।

व्याख्या पहले तो समझ ही कम है। यथा · समुझि परी कछु मति अनुसारा। फिर अपने बुद्धि बल का भरोसा नही। यथा निजबुद्धि बल भरोस मोहि नाही। अत जो चूक हो वह मेरी और जो गुण हो वह गुरुजी का। मै अपने काबू मे नही हरि की प्रेरणा से कहता हूँ। हरि का अर्थ बन्दर भी होता है। अत कुछ महात्माओ का मन है कि मङ्गल मूर्ति हनुमान्‌जी की प्रेरणा से कहते है। ऐसा अर्थ करना चाहिए। यहाँ से लीलावर्णन प्रारम्भ हुआ।

श्रीग्रन्थकार कहते है कि अपने सन्देह, मोह, भ्रम के नाश के लिए मै कथा की रचना करता हूँ। दूसरे के सन्देह, मोह, भ्रम के नाश करने का सामर्थ्य मुझमे नही है।

सन्देह, उभय कोटि अवलम्बी ज्ञान का कहते है। मोह अज्ञान को कहते है। भ्रम विपरीत ज्ञान को कहते है। यह कथा इन सबो को हरण करनेवाली है। यह कथा नौकारूप है। इसमे ऐसा दिव्य सामर्थ्य है कि इसके लिए भवसागर सरिता हो जाता है। रामनाम को राकेश कहकर आगे वर्णन करेगे। अत पहिले उसकी सोलह कलाओ का वर्णन करते है निज सदह मोह भ्रम हरनी। करौ कथा भव सरिता तरनी। रामनाम राकेश की पहिली कला है।

बुध विश्राम सकल जन रंजनि। रामकथा कलि कलुष विभंजनि ॥
राम कथा कलि पन्नग भरनी। पुनि विवेक पावक कहु अरनी ॥३॥

अर्थ राम कथा विद्वानो को विश्राम देनेवाली है। सब मनुष्यो के मन को प्रसन्न करनेवाली है। कलियुग के पाप को दूर करनेवाली है। राम कथा कलियुगरूपी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



साँप के लिए भरणी : मन्त्र है। विवेक रूपी अग्नि : के मन्थन . के लिए अरणी : लकडी है।

व्याख्या विद्वान् लोग अनेक शास्त्रो के अभ्यास से श्रमित रहते हैं। उनको रामकथा विश्राम देती है। सभी भक्तो को सुख देती है। विधि निषेध मय कलिमल हरणी। कर्म-कथा की भाँति कलियुग के मलो का हरण करती है। यह दूसरी कला है।

भरणी, सर्प के विष उतारनेवाले मन्त्र को कहते हैं। किसी के मत से भरणी नामक चूहे जैसा एक जन्तुविशेष है जो सर्प का नाश करता है। किसी के मत से भरणी नक्षत्र का जल विषनाशक है। कोई भरणी का अर्थ मयूरी करते है। परन्तु रामकथा कहने की वस्तु है अत इसकी उपमा मन्त्र से लेना ही अधिक उपयुक्त है। इस कलियुग का बल नही चलता। इसके मन्थन से उसी भाँति ज्ञान का प्रादुर्भाव होता है। जिस भाँति यज्ञ मे अरणि मन्थन से अग्नि उत्पन्न होता है। यह तीसरी कला है।

राम कथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवन मूरि सुहाई ॥
सोइ वसुधा तल सुधा तरंगिनि। भय भजनि भ्रम भेक भुअंगिनि ॥४॥

अर्थ : रामकथा कलि मे कामधेनु है और सज्जनो के लिए तो सुन्दर सजीवन मूरि है। यही पृथ्वी तल पर अमृत की नदी है। भय को दूर करनेवाली और भ्रम-रूपी मेढक के लिए तो सर्पिणी ही है।

व्याख्या : कलियुग मे न कामधेनु है, न कल्पवृक्ष है और न चिन्तामणि है। मनोवाञ्छित देनेवाले तीनो मे एक नही है पर रामकथारूपी कामधेनु है। रामनाम-रूपी कल्पवृक्ष है। यथा : नाम राम को कल्पतरु . और रामचरितरूपी चिन्तामणि है। यथा : रामचरित चिन्तामनिचारू। सुजन लोग काम किरात के प्रहार से मृत-प्राय हो रहे हैं। यथा : मनुजाद किरात निपात किये। मृगलोग कुभोग सरेन हिये। उनके लिए रामकथा सजीवनी बूटी है। इसीसे वे आराम हो सकते हैं। यह चौथी कला है।

वसुधा तल मे सुधा : अमृत नही है, किसी युग मे भी नही रही पर वसुधा तल मे अमृत की नदी रामकथा है। यह सदा यहाँ बहा करती है। रामावतार के पहिले भी रामकथा थी। उसे[१] रामजानकी ने श्रवण किया था। वह उस रामावतार के पहिले रामावतार की कथा थी। इस भाँति रामकथा से वसुधा शून्य कभी नही

---

१. अन्यत्किञ्चित्प्रवक्ष्यामि श्रुत्वा मा नय काननम्।
रामायणानि बहुश श्रुतानि बहुभिर्द्विजै ।
सीतां विना वनं रामो गत. किं कुत्रचिद्वद। अध्यात्मरामायणे।

अर्थ : श्रीजानकी जी ने कहा कि मैं और कुछ कहती हूँ, उसे सुनकर मुझे बन ले चलो। बहुत से रामायण ब्राह्मणो द्वारा अनेक बार सुने गये हैं, कहो तो क्या किसी मे बिना सीता के राम बन गये है ?

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रहती। यथा कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरही। चारु चरित नाना विधि करही। तव तव कथा मुनीसन्हि गाई। परम पुनीत प्रबन्ध बनाई। यह रामकथा भय की नाश करनेवाली है। जन्ममरणादि प्रवाह ही यहाँ भय है उस नाश करके अभय पद देती है। भ्रम विपरीत ज्ञान को कहते हैं, वह व्यर्थ मेढक की भाँति टर्र-टर्र करता है। उसके बकवाद म कोई सार नही। उस भ्रमरूपी मेढक को नाश करने के लिए यह सर्पिणी है। उसे निगल जाती है अर्थात् रामकथा का आहार ही भ्रमतम है। यह पाँचवी कला है।

असुर सेन सम नरक निकंदिनि। साधु विबुध कुल हित गिरि नंदिनि॥
संत समाज पयोधि रमासी। विस्व भारभर अचल छमासी॥५॥

अर्थ यह रामकथा असुर की सेना की भाँति नरक की नाश करनेवाली तथा साधुरूपी देवकुल के हित के लिए पार्वती है। सन्तसमाजरूपी क्षीरसिन्धु के लिए लक्ष्मी सी है और ससार का भार धारण करने के लिए तो अचल पृथ्वी सी है।

व्याख्या जिस भाँति दुर्गा पार्वती असुरसेन नाश करनेवाली हैं उसी प्रकार रामकथा नरक का नाश करती है। यथा महामोह महिषेस बिसाला। रामकथा कालिका कराला और जिस भाँति देवताओं के कुल का दुर्गा हित विधान करती हैं उसी भाति रामकथा साधु समाज का हित विधान करती है। भावार्थ यह कि दुर्गा ऐसी प्रबला हैं कि जो असुर किसी के मारे नही मरत, उन्हे दुर्गा मारती हैं। इसी भाँति जो दुर्गति किसी के हटाये नही हटती उसे रामकथा हटाती है। साधु समाज का सदा कल्याण करती है। कुछ महात्मा लोग असुरसेन का अर्थ गया तीर्थ करते है। वहाँ यह अर्थ करना होगा कि जिस भाँति गया तीर्थ से नरक मे पडे प्राणियो का उद्धार होता है उसी भाँति रामकथा स भी होता है। यह छठी कला है।

लक्ष्मी क्षीरसिन्धु मे ही उत्पन्न हुई और क्षीरसिन्धु की शोभा बढाती हुई वही नारायण के साथ विराजमान है। अर्थात् क्षीरसिन्धु मे ऐसी रति है कि उसे छोडती ही नही। वही उनका मैका है और वही निवास स्थान है। इसी भाति रामकथा की भी उत्पत्ति साधु समाज म है और वही साधु समाज की शोभा बढाती हुई सदा विद्यमान रहती है। यह सातवी कला है। जिस भाँति पृथ्वी सबका आधार है उस भाँति रामकथा भी सबकी आधारभूता है। रामकथा के प्रतिपादित गुणो से ही विश्व की स्थिति बनी हुई है। यह आठवी कला है।

जमगन मुह मसि जग जमुनासी। जीवन मुकुति हेतु जनु कासी॥
रामहि प्रिय पावनि तुलसी सी। तुलसिदास हित हिय हुलसी सी॥६॥

अर्थ यमगण के मुख म कालिख लगाने के लिए यह रामकथा यमुना के समान है। जीवन्मुक्ति के लिए मानो काशी है। रामजी को पवित्र तुलसी की भाँति प्रिय है। तुलसीदास के लिए हुलसी के हृदय के समान है।

व्याख्या जहाँ तक यमुना का प्रचार है वह स्थान यमराज के अधिकार के बाहर है। वहाँ यमगण का किया कुछ होता नही। यमगण मुँह नही दिखाने पाता

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उनके मुख मे कालिख लगा हुआ है यथा ' जमुना ज्यो ज्यों लागि बाढन । ज्यों ज्यों जल मलीन त्यो त्यो जमगन मुख मलीन लहै आढन । उसी भाँति जहाँ जहाँ रामकथा का प्रचार है वहाँ वहाँ यमगण मुख नही दिखलाते क्योकि वह स्थल यमराज के अधिकार के बाहर हो जाता है । यह नवी कला है ।

जिस भाँति विदेह मुक्ति का कारण काशी है काशी के सेवन से शरीर त्यागने पर मुक्ति होती है ' उसी भाँति रामकथा जीवन्मुक्ति का कारण है । रामकथा का सेवन करनेवाला जीता हुआ ही मुक्त हो जाता है । यह दसवी कला है । जिस भाति तुलसी रामजी की हृदयानन्दकारिणी ' है उसके विना भगवान् को पारिजात पुष्प और अन्य दिव्य गन्धो से भी तृप्ति नही होती । सब कर्म ही निष्फल हो जाता है उसी भाति[१] रामकथा भी भगवान् की हृदयानन्दकारिणी है । इसके विना षोडशोपचार पूजन से भी उनकी तृप्ति नही होती । यह ग्यारहवी कला है । तुलसीदास के लिए तो साक्षात् माता के हृदय सी है, सहस्रो अपराधो को क्षमा करते हुए पालन करती हैं । हुलसी श्रीगोस्वामीजी की माता का नाम था । यथा गोद लिये हुलसी फिरै तुलसी सो सुत होय ।

यद्यपि हुलसी का अर्थ 'उल्लसित हुई' है और इससे अर्थ भी ठीक बैठ जाता है पर बहुत से लोगो का यह मत है कि 'हुलसी' तुलसीदासजी की माता का नाम था । ऐसा मानने से अर्थ भी अधिक स्पष्ट हो जाता है । तुलसीदासजी हुलसी माता के आँखो के तारे थे । वह सदा ही इनका हित चाहती थी । इसी भाँति राम कथा भी माता की भाँति सेवन करनेवालो के हित मे निरत रहती है । उन्हे प्रकाश प्रदान करके उनका कल्याण करती है । यह बारहवी कला है ।

सिव प्रिय मेकल सैल सुतासी । सकल सिद्धि सुख संपति रासी ॥
सदगुन सुरगन अंब अदिति सी । रघुबर भगति प्रेम परमिति सी ॥७॥

अर्थ : शिवजी को नर्मदा के समान प्यारी है । सब सिद्धि, सुख और सम्पत्ति की राशि है । सद्गुण रूपी देवताओ के लिए यह माता अदिति के समान है । रघुवर की प्रेमभक्ति की तो मानो सीमा सी है ।

व्याख्या ' मेकल शैल से नर्मदाजी निकली है । इसीलिए उसकी सुता कहलाती

---

१. मातस्तुलसि गोविन्दहृदयानन्दकारिणि ।
नारायणस्य पूजार्थं चिनोमि त्वा नमोऽस्तुते ॥
कुसुमै. पारिजाताद्यै सुगन्धैरपि केशव ।
त्वया विना नैव तृप्ति चिनोमि त्वामत शुभे ॥
त्वया विना महाभागे समस्त कर्म निष्फलम् । इत्यादि

तुलसी दल लेने के समय स्तुति की जाती है । हे तुलसी माता तुम गोविन्द की हृदयानन्दकारिणी हो । तुम्हारे विना गोविन्द को पारिजात के पुष्प और सुगन्धादि से तृप्ति नही होती । तुम्हारे विना सब कर्म निष्फल हो जाता है । इसीलिए मैं तुम्हारे पत्रो को चुनता हूँ । नारायण की पूजा इसी से करूँगा ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हैं। इनका लोप कभी नहीं होता। यह शङ्करजी को इतनी प्यारी है कि शिव इनमें असख्य रूप से नर्मदेश्वर बने लुढकते फिरते है। इसी भाँति रामकथा शङ्कर भगवान् को अत्यन्त प्यारी है। यथा . रचि महेस निज मानस राखा। ' सुसमउ सिवा सन भाखा। जैसी नर्मदाजी की शोभा है वैसी ही रामकथा की भी शो है। जितनी सिद्धियाँ हैं अणिमा, महिमा आदिक और जितनी सम्पत्ति और सुख उनकी रामकथा राशि है। इसके सेवन से सम्पूर्ण लौकिक सुख की भी प्राप्ति हो है। अत: सब भाँति प्रीति की आस्पद है। यह तेरहवी कला है। जिस भाँति देवो की उत्पत्ति अदिति देवी से हुई है, उसी भाँति सभी सद्गुणो की उत्पत्ति र कथा से हुई है। कोई गुण ऐसा नही है जिसे रामकथा ने उत्पन्न न किया हो। अ इसके आश्रयण से सद्गुणों की प्राप्ति होती है। यह चौदहवी कला है। सवकर ' हरिभगति भवानी। रामकथा भगवान् की प्रेमाभक्ति की परा सीमा सी है। यथ ब्रह्म पयोनिधि मदर, ज्ञान सत सुर आहि। कथा सुधा मथि काढहि भगति मधुर जाहि। भक्तिरूपी माधुर्य कथा मे ही है। अत. कृतकृत्यता रामकथा से ही होती ह यह पन्द्रहवी कला है।

दो. राम कथा मंदाकिनी, चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह वन सिय रघुवीर विहारु ॥३१॥

अर्थ : रामकथा मन्दाकिनी है। सुन्दर चित्त चित्रकूट है। तुलसीदास कहते है सुन्दर स्नेह ही वन है। जिसमे सीताजी और रामजी विहार करते हैं।

व्याख्या ' मन्दाकिनी पुण्या नदी है। यथा . सुरसरिधार नाउँ मदाकिनि। सब पातक पोतक डाकिनि। उसीको यहाँ रामकथा से उपमित किया है। उस योग जब चित्रकूट से हो अर्थात् निर्मल चित्त का योग रामकथा से हो तब सा के मन मे स्नेह का वन लग जाता है। वही सीतानाथ का विहारस्थल है। सोलहवी कला है।

रामचरित चिंतामनि चारू। संत सुमति तिअ सुभग सिंगारू॥
जग मंगल गुन ग्राम राम के। दानि मुकुति धन धरम धाम के॥१

अर्थ ' रामचरित सुन्दर चिन्तामणि है। सन्तो की सुमति रूपी स्त्री का सु शृङ्गार है। रामजी के गुणो के समूह जगत् के लिए मङ्गलरूपी है। मुक्ति, धन, ध और धाम देनेवाला है।-

व्याख्या : रामचरित को चिन्तामणि कहते हैं। क्योकि चिन्तामणि से चि मिटती है। रामचरित सुन्दर चिन्तामणि है। यह मणि शृङ्गार के काम मे भी आ है परन्तु सब के भाग्य मे चिन्तामणि नही है कि उससे वह अपनी मतिरूपी स्त्री शृङ्गार करे। केवल महा भाग्यवान् सन्त अपनी सुमतिरूपी स्त्री का उससे शृङ्ग करते हैं। अर्थात् सन्तों की स्त्री उनकी सुमति है। सदा उसी मे रमण करते हैं। सुमति जब रामचरित धारण करती है तब शृङ्गारित होती है। पहिले मुक्ताम

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



से स्वय सन्तो का शृङ्गार कर चुके हैं। यथा : पहिरहिं सज्जन विमल उर सोभा अति अनुराग।

रामकथा के अन्तर्गत रामचरित है, उसके अन्तर्गत रामगुणग्राम हैं। इसलिए कथा का माहात्म्य कहकर चरित का माहात्म्य कहा। अब गुणग्राम का माहात्म्य कहते हैं। श्रीरामचरितमानस मे स्तुति कही गई है। उन्ही स्तुतियो मे गुणग्राम है। गुणग्राम का कथन ही स्तुति है। स्तुति कोई दूसरा पदार्थ नही है। इस ग्रन्थ मे स्तुतियो की सख्या अट्ठाईस है। यहाँ गुणग्राम के माहात्म्य के विभाग भी अट्ठाईस हैं। अत. स्पष्ट है कि क्रमश ये माहात्म्य, अट्ठाइसो स्तुतियो के है। रामजी के अनन्त गुण हैं। उनमे से कुछ से कवि का परिचय है। किन गुणो के योग के कथन से क्या फल होता है, यही फलश्रुति है।

१ पहिली ब्रह्मदेवकृत स्तुति है। उसका माहात्म्य कहते हैं : 'जग मगल गुन ग्राम राम के। ब्रह्मदेव की स्तुति पर ही श्रीरामअवतार हुआ। इससे ससार का मङ्गल हुआ। इसलिए ब्रह्मदेव की स्तुति को अथवा उसमे वर्णित गुणग्राम को जगमङ्गल कहना सर्वथा उचित है।

२ कौसल्या कृत स्तुति है। उसमे जो गुणग्राम है उसका माहात्म्य है : दानि मुकुति धन धरम धाम[1] के। श्रीकन्त के प्रकट होने से यह गुणग्राम धन धर्म का दानी है। यथा सो ममहित लागी जन अनुरागी प्रकटभये श्रीकन्ता। मुक्ति तथा धाम का देना तो कण्ठरवसे कहा है। यथा ' यह चरित जो गावहि हरिपद पावहि ते न परहिं भव कूपा।

सद् गुरु ग्यान बिराग जोग के। बिबुध बैद भव भीम रोग के॥
जैनँनि जनक सियराम प्रेम के। बीज सकल ब्रत धरम नेम के ॥२॥

अर्थ ज्ञान, विराग और योग के सद्गुर है और ससाररूपी भयङ्कर रोग के लिए देववैद्य अश्विनीकुमार हैं। ये सीताराम के प्रेम के माता पिता हैं और सारे व्रत, धर्म और नियमो के बीज है।

व्याख्या ३ अहल्याकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है 'सद्गुरु ज्ञान बिराग जोग के।' 'धीरज मन कीन्हा प्रभु कहँ चीन्हा' से ज्ञान का, 'मुनि शाप जो दीन्हा अति भल कीन्हा' से वैराग्य का, और 'पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना' से योग का सद्गुरु कहा।

४ परशुरामकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है . 'बिबुध बैद्य भव भीम रोग के'। भगवत् और भागवत का अपराध ही भव भीम रोग है। उसी का क्षमापन इस स्तुति से हुआ है। इसी से इसे भव भीम रोग के लिए अश्विनीकुमार बतलाया है। अश्विनीकुमार दो भाई हैं। साथ ही रहते है। यहाँ भी दोनो भाई

---

१. चारो फल मे काम ह धाम नही है। परन्तु यह माता कौसल्या की स्तुति है उनके लिए धाम ही काम है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



राम लक्ष्मण की स्तुति है। भवरोग सब रोगो मे भयङ्कर है। इसलिए राम गुणग्राम रूपी देववैद्य की आवश्यकता पडी।

५ सुनयनाकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : जननि सियराम प्रेम के 'सनेहसानी मृदुबानी' है। इसलिए सियराम प्रेम की जननी कहा। ६ जनककृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : जनक सियराम प्रेम के। बोले वचन प्रेम जनु जाये : इसलिए सियराम प्रेम का जनक कहा। यहाँ जनक शब्द देकर स्पष्ट जनक की स्तुति दरसायी है।

७ भरद्वाजकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : बीज सकल व्रत धरम नेम के। इससे मुनिजी को तप, तीर्थ, त्याग, जप, योग, विराग का फल मिला। फल मे बीज रहता है, इसलिए कहा : बीज सकल व्रत धर्म नेम के।

**समन पाप संताप सोक के। प्रिय पालक परलोक लोक के ॥**
**सचिव सुभट भूपति विचारि के। कुंभज लोभ उदधि अपार के ॥३॥**

अर्थ पाप सन्ताप और शोक के नाश करनेवाले और इस लोक तथा पर-लोक के प्यारे पालक हैं। विचाररूपी राजा के मन्त्री और सुभट हैं और लोभरूपी अपार समुद्र के लिए कुम्भज : अगस्त्य ऋषि हैं।

व्याख्या : ८ वाल्मीकिकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है समन पाप सताप सोक के। अतः जानत तुम्हहि होइ जाई कहकर पाप, सन्ताप और शोक का नाश कहा। ९ अत्रिकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : प्रिय पालक पर-लोक लोक के। नरादरेण ते पदं। व्रजन्ति नात्र संसयं। त्वदीय भक्ति संयुता। कहकर लोक और परलोक का प्रिय पालक कहा। १० सरभंगकृत स्तुति का माहात्म्य है : सचिव भूपति विचार के। अध्रुव साधनो को देकर ध्रुवपद लिया। यथा जोग जग्य जप तप जत कीन्हा। प्रभु कहँ देइ भगति बर लीन्हा। इसलिए भूपति विचार का सचिव कहा। ११. सुतीक्ष्णकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : सुभट भूपति विचार के। विचार मे आगे बढते चले जाते हैं। पहिले कहा : तदपि अनुजश्री सहित खरारी। बसतु मनसि मम कानन चारी। फिर विचार[1] करके आगे बढे बोले : सो कोमल पति राजिव नयना। करहु सो राम हृदय मम अयना। फिर विचारकर और आगे बढे कहा : अनुज जानकी सहित प्रभु चाप बान धर राम। मम हिय गगन इन्दु इव बसहु सदा यह काम। इस भाँति विचार मे सुभट की भाँति आगे बढते ही चले जाते हैं। इसलिए इस गुणग्राम का माहात्म्य ग्रन्थकार ने 'विचार का सुभट' बतलाया। १२ अगस्त्यकृत स्तुति का माहात्म्य है : कुभज लोभ उदधि अपार के। इसमें जगत् की अनित्यता कही। इसलिए

---

१. विचार किया कि काननचारी तो थोड़े ही दिन रहेंगे। इसलिए कोसलपतिरूप मे हृदय मे वास माँगा। फिर विचार किया कि कोसलपतिरूप मे भी दससहस्र वर्ष तक ही रहेंगे। अत सदा के लिए अपने हृदयाकाश मे चन्द्र की भाँति विचरण करने के लिए वर माँगा। विचार मे उत्तरोत्तर उत्कर्ष आता ही गया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अपार लोभ उदधि के लिए इस गुणग्राम को कुम्भज : अगस्त्य बतलाया। इस भाँति स्पष्ट दिखला दिया कि यह अगस्त्यकृत स्तुति का फल है।

काम कोह कलिमल करिगन के। केहरि[1] सावक जन मन वन के ॥
अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। कामद घन दारिद दवारि के ॥४॥

अर्थ : भक्तों के मनरूपी वनमें, काम, क्रोध और कलियुग के पापरूपी हाथियों के लिए सिंह के बच्चे हैं। त्रिपुरारि के अतिथि से पूज्य और प्रियतम हैं। दरिद्ररूपी वन की अग्नि के लिए कामना की वर्षा करनेवाले मेघ हैं।

व्याख्या : १३. जटायुकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : काम कोह कलिमल करिगन के। केहरि सावक जन मन वन के। इस स्तुति में 'कामादि खल दल गंजनं' स्पष्ट ही लिखा है। 'केहरि सावक' कहने का भाव यह कि सिंह के बच्चों को हाथी पर चोट करने का बड़ा चोप होता है। यथा : यथा मत्तगजगन निरखि, सिंह किसोरहि चोप। १४. हनुमत्कृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : अतिथि[2] पूज्य प्रियतम पुरारि के। यहाँ हनुमानरूपी रुद्र को अतिथिरूप में भगवत्प्राप्ति हुई। अतः 'अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के' कहा। १५. रावणसभा में विभीषणकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : कामद घन दारिद दवारि के। क्योंकि इस स्तुति की भावना से प्रसन्न होकर भगवान् ने लङ्का दे दी। इसलिए यह स्तुति 'कामद घन' है। 'ब्रह्म अनामय अज भगवन्ता' से 'प्रनतारति भंजन रघुनाथा' तक विभीषणोक्त गुणग्राम है।

मंत्र महा मनि विषय व्याल के। मेटत कठिन कुअंक भाल के ॥
हरन मोह तम दिनकर कर से। सेवक सालिपाल जलधर से ॥५॥

अर्थ : विषयरूपी सर्प के लिए महा मन्त्रमणि हैं। ललाट में लिखे बुरे लेखों के मेटनेवाले हैं। अन्धकार को दूर करने के लिए सूर्य के किरणरूप हैं। सेवकरूपी धानों को पालनेवाले मेघ के समान हैं।

व्याख्या : १६. रावणवध के समय जो देवताओं ने स्तुति की उसी के गुणग्राम का माहात्म्य है : मंत्र महा मनि विषय व्याल के। विषय को सर्प कहा। उसे रुद्धवीर्य करने के लिए महा मन्त्र और महा मणि का प्रयोग होता है। मन्त्रजप और महामणि के स्पर्श से सर्प बेकार हो जाता है। कुछ लोगों की सम्मति है कि मन्त्र और मणि शब्द के बीच में महा शब्द के प्रयोग से महौषधि का ग्रहण है अथवा यह गुणग्राम महा मणिमन्त्र है। इसका जप सद्यः लाभकर है। सत्कारादि की आवश्यकता नहीं। अङ्गन्यास, करन्यास आदि का झमेला इसमें नहीं। इस

१. रूपक तद्रूप सम है।

२. अतिथि सभी भाँति पूज्य है। फिर यदि वह प्रियतम हो तो उसकी पूजा में बड़ा आनन्द मिलता है। किष्किन्धा काण्ड में हनुमत्कृत रामजी के जिन गुणगणों का उल्लेख है वे शिवजी को अतिथि की भाँति पूज्य और प्रिय हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



स्तुति के पाठमात्र से विषय व्याल के विष का नाश होता है। भक्ति के बिसारने से देवता भी भव प्रवाह मे पडे हैं। इस उक्ति के कारण इसे विषयव्याल का महा मणिमन्त्र कहा।

१७ रावणविजय के समय की ब्रह्मदेव की स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है मेटत कठिन कुअंक भाल के। कुअङ्क का लिखना और मिटाना इन्ही का काम है। यथा जिनके भाग लिखी लिपि मेरी सुख की नही निसानी। तिन रकन को नाक सवारत हौं आयो नकवानी · विनय। इस उक्ति से, ब्रह्मकृत स्तुति का माहात्म्य होना ध्वनित है। स्तुति मे कहा गया है येहिते विपरीत क्रिया करिये। दुख को सुख मानि सुखी चरिये। जब दु ख को भी सुख मान लिया गया तब कुअङ्क करेगा ही क्या ? वह मिटा मिटाया ही है। इसलिए कहा मेटत कठिन कुअक भाल के।

१८ इन्द्रकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है हरन मोह तम दिनकर करसे। इसमें कहा गया है गत मान प्रद दुख पुज। इस उक्ति से 'हरन मोह तम दिनकर करसे' सिद्ध हुआ।

१९ शङ्करकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है सेवक सालिपाल जलधर से। सम्पूर्ण स्तुति मे सेवक की रक्षा के लिए ही प्रार्थना है। अत 'सेवक सालिपाल जलधर से' कहना प्राप्त है।

अभिमत दानि देव तरु वर से। सेवत सुलभ सुखद हरि हर से ॥
सुकवि सरद नभ मन उडगन से। राम भगत जग जीवन धन से ॥६॥

अर्थ वाञ्छित फल देने मे कल्पवृक्ष से हैं। सेवा करने मे हरिहर की भांति सुलभ और सुख देनेवाले हैं। सुकवि के मनरूपी शरद् ऋतु के आकाश मे तारागण के समान हैं। रामभक्तो के तो जीवनधन से हैं।

व्याख्या २० वेदस्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है। अभिमत दानि देव तरुवर से। इसमे प्रणतपाल कृपाल की शक्ति के साथ स्तुति है। इसलिए इसकी कल्पवृक्ष से उपमा दी है। कल्पवृक्ष कहने पर भी 'वर' शब्द के प्रयोग का यह अभिप्राय है कि कल्पवृक्ष मोक्ष नही दे सकता। परन्तु यह ऐसा कल्पवृक्ष है कि भुक्ति, मुक्ति दोनो देता है।

२१ राज्याभिषेक के समय की शङ्कर भगवान् की स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है सेवक सुलभ सुखद हरिहर से। इस स्तुति मे प्रार्थना की गई है महिपाल बिलोकय दीन जन। इसलिए इस स्तुति को 'सेवक सुलभ सुखद' कहा। 'हरिहर से' कहकर हरकृत स्तुति का होना द्योतित किया।

२२ पुरजनकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है सुकवि सरद नभ मन उडगन से। शरत् काल के आकाश मे ही तारो का स्पष्ट दर्शन होता है। आकाश के निर्मल होने से जो तारक पुञ्ज अन्य ऋतुओ मे नही दिखाई पडते वे भी दिखाई देने लगते हैं। इस स्तुति मे 'तुलसीदास से प्रभुहि उदारहि' कहा गया है। इसलिए 'सुकवि सरद नभ मन उडगन से' कहना प्राप्त है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



२३ सनकादिककृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : रामभगत जन जीवन धन से। इस स्तुति मे 'सेवत सुलभ सकल सुख दायक' कहा है। इसलिए यह रामभक्तो के लिए जीवनधन है।

सकल सुकृत फल भूरि भोग से। जगहित निरुपधि साधुलोग से ॥
सेवक मन मानस मराल से। पावन गंग तरंग माल से ॥७॥

अर्थ : सम्पूर्ण पुण्यो के फलस्वरूप भोग के समूह के समान है। जगत् के निश्छल हित के लिए साधुओ के समान है। सेवक के मनरूपी मानस सरोवर के लिए हस के समान है। गङ्गाजी की तरंगो के समान पवित्र है।

व्याख्या : २४ नारदकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : सकल सुकृत फल भूरि भोग से। सुकृत का फल सुख और दुष्कृत का फल दुःख है। तव सव सुकृत का फल भूरि भोग होना ही प्राप्त है। अर्थात् जो सुख भूरि भोग मे है वही सुख इस गुणग्राम के कथन, श्रवण मे है। स्तुति मे 'सुख रूप भूपवर' कहा है। इसलिए माहात्म्य मे कहा। सकल सुकृत फल भूरिभोग।

२५ भुसुण्डिकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : जगहित निरुपधि[1] साधु लोग से। भाव यह कि सुर, नर, मुनि की यही रीति है कि स्वार्थ के लिए प्रेम करते हैं। हेतु रहित दोनो लोक के हितकारी या तो भगवान् है या भागवत है। इसलिए साधु लोग को निश्छल हित कहा। भुसुण्डिकृत स्तुति मे शत कोटि दुर्गादि देवताओ से रामजी को उपमित किया है। दुर्गादि देवता सोपधि हित हैं पर रामजी निरुपधि हित हैं। इसीलिए स्तुति का माहात्म्य भी वैसा ही है।

२६ विप्रकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : सेवक मन मानस मराल से। मराल सदा मानस सरोवर मे निवास करते हैं। यथा : जहँ तहँ काक उलूक वक, मानस सकृत मराल। सो 'नतोहं सदा सर्वदा सभु तुभ्य' स्तुति मे कहा। अतः माहात्म्य में 'सेवक मन मानस मराल' कहते हैं।

२७ भुसुण्डिकृत दूसरी स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है : पावन गंग तरंग माल से। इस स्तुति मे दुस्तर तरने का प्रसङ्ग आया है। यथा : हरि नरा भजति येऽति दुस्तरं तरति ते। इसलिए माहात्म्य मे वतलाया : पावन गग तरंग माल से।

दो. कुपथ कुतरक कुचालि कलि, कपट दंभ पाखंड।
दहन राम गुनग्राम जिमि, इन्धन अनल प्रचंड ॥३२॥
रामचरित राकेस कर, सरिस सुखद सव काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित, हित विसेषि वड़ लाहु ॥३२॥ क

अर्थ : कुमार्ग, कुतर्क, कलि की कुचाल, कपट, दम्भ और पाखण्ड को जलाने के लिए श्रीरामजी के गुणो के समूह वैसे ही है जैसे इंधन के लिए प्रचण्ड अग्नि।

---

१. उपधि = छल।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रामजी का चरित पूर्णचन्द्र की किरणो के समान सबको समानरूप से सुख देने वाला है, पर सज्जनरूपी कुमुद और चकोरो के चित्त को विशेप हित देनेवाला है। वडा लाभकारी है। किरण के स्पर्श से कुमुद खिल उठते हैं। इसलिए उनका हित है और चकोर उसका पान करते हैं। अत उन्हे वडा लाभ है।

व्याख्या २८ वेदविरुद्ध मार्ग को कुपथ कहते हैं। मनमानी तर्कना को कुतर्क कहते हैं। गर्हित चाल को कुचाल कहते हैं। ठगपन को कपट, धर्म के दिखावे को दम्भ और वेदो के न मानने को पाखण्ड कहते हैं। इन सबको जलाने के लिए राम गुणग्राम प्रचण्ड अग्नि है। अर्थात् ये सब अनायास भस्म हो जाते हैं। राम के सभी गुणग्राम सभी फल दे सकते हैं, फिर भी पृथक्-पृथक् गुणग्राम माहात्म्योक्त फल को विशेष रूप से देते हैं। यह तुलसीदासकृत स्तुति के गुणग्राम का माहात्म्य है। गणिका, अजामिल, गीध आदि का सन्तरण कहने से कुपथ, कुतर्क आदि का नाश कहा।

इस भाँति अट्ठाइसो गुणग्रामो का माहात्म्य कहा। यही उन स्तुतियो की फलश्रुति है। गुणग्राम कहकर फिर चरित्र की महिमा कहने लगे। पहिले कहा था 'रामचरित चिन्तामनि चारू उसके बाद अट्ठाइसो गुणग्रामो की फलश्रुति कही। अव 'रामचरित राकेस कर' कहकर गुणग्रामा को चरित से सम्पुटित कर रहे हैं।

'रामचरित राकेस कर' कहने से बहुत सी बाता का प्रसङ्ग आ पडा। राकेश कर के लिए रात चाहिए। राकेश का समाज चाहिए। राकेश की सोलहो कलाएँ चाहिए। रामयशरूपी मानससरोवर के वर्णन म दिन का वर्णन स्पष्ट न करके रात के वर्णन का विशेष कारण चाहिए।

मानसरोवर के जिन यात्रिया ने अपनी यात्रा पर पुस्तकें लिखी हैं, उन सबो ने चाँदनी रात म मानसरोवर की महा शोभा वर्णन की है क्योंकि उसके स्वच्छ जल म प्रकाशित आकाश, चन्द्र, ग्रहमण्डल, तारामण्डल के साथ प्रतिविम्बित होता है। श्रीग्रन्थकार ने मानसरोवर यात्रा निसन्देह की है। उस मार्ग की कठिनाइयो का वर्णन आगे करेंगे। यथा ते अति दुर्गम सैल विसाला। बन बहु विपम मोह मद माना। नदी कुतर्क भयकर नाना। इत्यादि। अब यहाँ चाँदनी के वर्णन का प्रसङ्ग आगया। इसी भाँति यथास्थान सम्पूर्ण समाज का वर्णन करते चल जायँगे। पाठका के सुभीते के लिए यहाँ उसका दिग्दर्शन मात्र कराया जा रहा है।

जिस राकेश कर को यहाँ रामचरित कहा गया है वह राका पूर्णमासी की रात रामभक्ति है। राकेश स्वयं रामनाम है। रामजी के अन्य नाम तारागण हैं। ये सब भक्त के हृदयरूपी आकाश मे बसते हैं। यथा राका रजनी भगति तव, राम नाम सोइ सोम। अपर नाम उडगन बिमल, बसहु भगत उर व्योम। राकेश पूर्णमासी के चन्द्र तभी होते है, जब सोलह कलाओ से पूर्ण हो।

जिस भाँति चन्द्र की प्रत्येक कला कुमुद और चकोर के लिए विशेप हितकारिणी और लाभदायिनी है उसी भाँति नामचन्द्र की कलाएँ अर्थात् रामचरित के कथानक सुज्जनरूपी कुमुद और चकोर के लिए विशेप हितकारिणी और लाभ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दायिनी है। अमृता मानदा पूषा पुष्टिस्तुष्टी रतिर्धृति । शशिनी चन्द्रिका कान्ति-ज्योत्स्ना श्री प्रीतिरङ्गदा। पूर्णा-पूर्णामृता चैव विज्ञेया शशिन कला। ये ही चन्द्र की सोलह कलाओ के नाम हैं। इनका मिलान नामचन्द्र की सोलहो कलाओ से नीचे दिया जाता है।

| चन्द्रकला | नाम चन्द्रकला |
|---|---|
| १ अमृता | निज सदेह मोह भ्रम हरनी। करौं कथा भव सरिता तरनी॥ |
| २ मानदा | बुध विश्राम सकल जन रजनि। रामकथा कलिकलुष विभजनि॥ |
| ३ पूषा | राम कथा कलि पन्नग भरनी। पुनि विवेक पावक कहुँ अरनी॥ |
| ४ पुष्टि | राम कथा कलि कामद गाई। सुजन सजीवन मूरि सुहाई॥ |
| ५ तुष्टि | सोइ वसुधा तल सुधा तरगिनि। भव भेषज भ्रमभेक भुअगिनि॥ |
| ६ रति | असुर सेन सम नरक निकदनि। साधु विबुध कुल हित गिरिनदिनि॥ |
| ७ धृति | सत समाज पयोधि रमासी। |
| ८ शशिनि | विस्व भारभर अचल छमासी। |
| ९ चन्द्रिका | जमगन मुह मसि जग जमुनासी। |
| १० कान्ति | जीवन मुकुति हेतु जिमि कासी। |
| ११ ज्योत्स्ना | रामहि प्रिय पावन तुलसी सी। |
| १२ श्री | तुलसिदास हित हिय हुलसी सी। |
| १३ प्रीति | सिव प्रिय मेकल सैल सुतासी। सकल सिद्धि सुख सपति रासी। |
| १४ अङ्गदा | सदगुन सुरगन अब अदिति सी। |
| १५ पूर्णा | रघुपति भगति प्रेम परमिति सी। |
| १६ पूर्णामृता | राम कथा मदाकिनी, चित्रकूट चित चारु। तुलसी सुभग सनेह वन, सिय रघुवीर विहारु॥ |

इस भाँति रामनाम राकेश की सोलहो कलाओ की फलश्रुति श्रीग्रन्थकार ने कही। अब रह गई रामजी के दूसरे नामो की बात जो तारागण से उपमित हैं। जिस भाँति तारागणो से आकाश भरा पडा है उसी भाँति रामजी के नामो से रामचरित मानस भरा पडा है। परमेश्वर के सभी नाम गौण हैं अर्थात् गुणसूचक हैं। उन सब नामो के अर्थ हैं। जिस भाँति आकाश मे ताराओ के गुच्छे हैं जिन्हें नक्षत्र कहते हैं उनकी अभिजित को मिलाकर अट्ठाईस सख्या शास्त्रो मे कही है। उसी भाँति रामचरितमानस मे अट्ठाईस स्तुतियाँ अर्थात् गुणग्राम हैं जिनकी फलश्रुतियाँ ग्रन्थ मे दी गई हैं। इतना ही नही उन नक्षत्रो मे जितने तारे चमकते हैं जैसा उनका आकार है, इत्यादिक बातो का भी आभास उन स्तुतियो मे पाया जाता है। यह उनकी व्याख्या के समय दिखाया जायगा। यहाँ पर इतना ही दिखाया जाता है कि किस स्तुति को कौनसा नक्षत्र माना गया है।

| सख्या | स्तुति | नक्षत्र | फलश्रुति |
|---|---|---|---|
| १ | ब्रह्मकृत | अश्विनी | जग मगल गुन ग्राम राम के। |
| २ | कौसल्याकृत | भरणी | दानि मुकुति धन धर्म धाम के॥ |

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



| संख्या | स्तुति | नक्षत्र | फलश्रुति |
|---|---|---|---|
| ३. | अहल्याकृत | कृतिका | सदगुरु ज्ञान विराग जोग के। |
| ४. | परशुरामकृत | रोहिणी | विबुध वैद भव भीमरोग के॥ |
| ५. | सुनयनाकृत | मृगशिरा | जननि : सियराम प्रेम के : । |
| ६ | जनककृत | आर्द्रा | जनक सियराम प्रेम के। |
| ७. | भरद्वाजकृत | पुनर्वसु | बीज सकल व्रत धर्म नेम के॥ |
| ८. | वाल्मीकिकृत | पुष्य | समन पाप संताप सोक के। |
| ९ | अत्रिकृत | अश्लेषा | प्रियपालक परलोक लोक के॥ |
| १०. | शरभङ्गकृत | मघा | सचिव : भूपति विचार के : । |
| ११. | सुतीक्ष्णकृत | पूर्वा फाल्गुनी | सुभट भूपति विचार के॥ |
| १२ | अगस्त्यकृत | उत्तरा फाल्गुनी | कुंभज लोभ उदधि अपार के। |
| १३. | जटायुकृत | हस्त | काम कोह कलिमल करिगन के। |
| | | | केहरि सावक जनमन वन के॥ |
| १४. | हनुमत्कृत | चित्रा | अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारि के। |
| १५. | विभीषणकृत | स्वाती | कामद घन दारिद दवारि के॥ |
| १६. | वेदकृत | विशाखा | मन्त्र महा मनि विषय व्याल के। |
| १७. | ब्रह्मदेवकृत | अनुराधा | मेटत कठिन कुअंक भाल के॥ |
| १८. | इन्द्रकृत | ज्येष्ठा | हरन मोह तम दिनकर कर से। |
| १९. | शङ्करकृत | मूल | सेवक सालिपाल जलधर से॥ |
| २० | देवकृत | पूर्वाषाढ | अभिमत दानि देव तरुवर से। |
| २१. | शङ्करकृत | उत्तराषाढ | सेवत सुलभ सुखद हरिहर से॥ |
| २२. | पुरवासीकृत | अभिजित | सुकवि सरद नभ मन उडगन से। |
| २३. | सनकादिकृत | श्रवण | रामभगत जन जीवन धन से॥ |
| २४. | नारदकृत | धनिष्ठा | सकल सुकृत फल भूरि भोग से। |
| २५ | भुसुण्डिकृत | शत तारक | जगहित निरुपधि साधु लोग से॥ |
| २६ | विप्रकृत | पूर्वा भाद्रपद | सेवक मन मानस मराल से। |
| २७. | भुसुण्डिकृत | उत्तराभाद्रपद | पावन गंग तरंग माल से॥ |
| २८. | तुलसीदासकृत | रेवती | कपट कुतरक कुचालि कलि कपट दंभ पाखंड। |
| | | | दहन राम गुनग्राम जिमि इन्धन अनल प्रचंड॥ |

निर्गलितार्थ यह है कि जिस भाँति मानसरोवर पूर्णमासी की रात्रि को सोलह कलायुक्त चन्द्र, नक्षत्र, तारामण्डल से युक्त होकर अपार शोभा को धारण करता है उसी भाँति यह रामचरित सर भी भक्तिरूपी पूर्णमासी की रात्रि में सोलह कलायुक्त रामनाम गुणग्रामों तथा अपार नामों के साथ अपार शोभा को प्राप्त होता है। जिसका अनुभव भक्त का हृदय ही कर सकता है। यहाँ लीला वर्णन समाप्त हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कीन्ह प्रस्न जेहि भाँति भवानी । जेहिं विधि सकर कहा बखानी ॥
सो सब हेतु कहब मै गाई । कथा प्रबध बिचित्र बनाई ॥१

अर्थ जिस भाँति भवानी ने प्रश्न किया और जिस विधि मे शङ्करजी ने बख किया वह सब कारण मैं विचित्र कथा प्रसङ्ग बनाकर विस्तार से कहूँगा ।

व्याख्या प्रश्न मे भाँति है और उत्तर मे विधि है और प्रश्न करने का कार है । जिस भाँति सुश्रूषा, विनय और आर्तिपूर्वक भवानी ने प्रश्न किया और शङ्कर ने जिस विधि से दो दण्ड तक ध्यान म रामचरित्र का साक्षात्कार करके इष्ट देव के प्रणतिपूर्वक प्रस्ताव क्रम से उत्तर दिया और इस भाँति सवाद होने का जो कार हुआ, इन सब बातो को विस्तार पूर्वक कहने का श्रीग्रन्थकार सकल्प करते है । सा ही साथ यह भी कहते हैं कि कथाप्रबन्ध को विचित्र बनाकर कहूँगा । वस्तुत ग्र मे प्रबन्ध की विचित्रता है । चार कल्प के रामावतार की कथा एक साथ कही ज रही है । सूक्ष्म दृष्टि से विचार करने पर इस बात का पता चलता है । प्रधान कथ तो ब्रह्म के रामावतार की है, पर साथ ही साथ क्षीरशायी भगवान् और विष्ण भगवान् के रामावतार की कथाएँ हैं । जहाँ जहाँ भेद पडा है वहाँ कथा मे भी भे दिखला दिया है । ऐसी विचित्रता अन्य ग्रन्थो म नही पाई जाती ।

जेहि यह कथा सुनी नहिं होई । जनि आचरज करै सुनि सोई ॥
कथा अलौकिक सुनहिं जे ग्यानी । नहि आचरज करहिं अस जानी ॥२॥

अर्थ जिसने यह कथा न सुनी हो वह इसे सुनकर आश्चर्य न करे । ज अलौकिक कथा ज्ञानी सुनते हैं, वे यह जानकर आश्चर्य नही करते ।

व्याख्या इस ग्रन्थ मे रहस्यादि अलौकिक ऐसी कथाएँ हैं जिनसे सर्व साधारण के परिचित न होने की भी सम्भावना है । अत वे आश्चर्य न कर, क्योकि ज्ञानी आश्चर्य नही करते । वे जानते है कि 'नहि सर्व सर्वं वेत्ति सबलोग सब बात नही जानते । अतर्क्या खलु ये भावा न तास्तर्केण योजयेत् । जो बातें तर्क की विषय नही उनम तर्क करना उचित नही है अज्ञानी ही, अभिमान से उन सब बातो को मानने से इनकार करते है जो उनकी समझ के बाहर हैं ।

नई बात के सुनने से आश्चर्य होना स्वाभाविक है । पर रामकथा के लिए यह नियम नही है । जिस भाँति गूलर के फल के कीडे उस फल के बाहर की बात नही जानते और न उसमे उनका तर्क चलता है । उसी भाँति मनुष्य भी मर्त्यलोक के बाहर की बात नही जानते और तद्विषयक उनका तर्क वास्तविकता से बहुत दूर चला जाता है । यथा उमरि तरु बिसाल तव माया । फल ब्रह्माड अनेक निकाया । जीव चराचर जतु समाना । भीतर बसहिं न जानहि आना ।

रामकथा कै मिति जग नाही । असि प्रतीति तिन्हके मन माही ॥
नाना भाँति राम अवतारा । रामायन सत कोटि अपारा ॥३॥

अर्थ रामजी की कथा की सीमा जगत् मे नही है । उनके मनम ऐसा विश्वास

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रहता है। रामजी के नाना अवतार हुए हैं तथा रामायण सौ करोड़ हैं और अपार हैं।

व्याख्या रामजी के चरित्र का अन्त नहीं। कितने चरित्र ऐसे हुए जिनका पता न दशरथ, कौसल्या को लगा न भाइयों को लगा, दूसरों की कौन चलावे। अतः इनके चरित्र अपार हैं। यदि एक ही रामावतार हुआ होता तब तो यह भी प्रश्न उठ सकता था कि एक रामायण की कथा दूसरे से क्यों नहीं मिलती? यहाँ तो प्रत्येक कल्प में रामावतार होता है और उन अवतारों के चरित सर्वथा समान नहीं होते। अनन्त कोटि कल्प बीत गये। सबमें रामावतार हुआ। सबमें कुछ न कुछ भिन्नता थी। सबका वर्णन ऋषियों ने रामायण बनाकर किया। इसलिए असंख्य रामायण हैं।

कलप भेद हरि चरित सुहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए॥
करिअ न संसय अस उर आनी। सुनिअ कथा सादर रति मानी॥४॥

अर्थ रामजी के सुन्दर चरित कल्पभेद से अनेक भाँति मुनीश्वरों ने गान किया है। यह बात हृदय में लाकर संशय न कीजिये। कथा को आदरपूर्वक भक्ति से सुनिये।

व्याख्या किसी कल्प की कथा वाल्मीकि ने कही, किसी की व्यास ने कही, किसी की मार्कण्डेय ने कही। अतः कथाओं में भेद पड़ना स्वाभाविक है। अठारह पुराण व्यासकृत हैं और सबमें श्रीरामकथाएँ हैं और सब भिन्न हैं। क्योंकि सब पुराणों में भिन्न कल्पों[१] की कथाएँ हैं। अतः कथाभेद के विषय में संशय करना बड़ी भारी भूल है। संशय करने से मूल प्रयोजन नष्ट हो जाता है। कथा के प्रति आदर या प्रेम नहीं रह जाता। अतः श्रोता का अकल्याण होता है।

दो० राम अनंत अनंत गुन, अमित कथा बिस्तार।
सुनि आचरजु न मानिहहिं, जिनकें बिमल बिचार॥३३॥

अर्थ रामजी अनन्त हैं। उनके गुण अनन्त हैं। उनकी कथा का विस्तार अपार है। जिनके निर्मल विचार हैं वे सुनकर आश्चर्य न मानेंगे।

व्याख्या रामजी देशतः अनन्त हैं। यथा कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाहीं।

---

१ वराहकल्पवृत्तान्तमधिकृत्य पराशरः। श्वेतकल्पप्रसङ्गेन धर्मान् वायुरथाब्रवीत्॥
यत्राह नारदो धर्मान् बृहत् कल्पाश्रयाणि च। इत्यादि।

विष्णु पुराण में वाराह कल्प की, वायुपुराण में श्वेत कल्पकी, नारद पुराण में बृहत् कल्प की कथाएँ हैं। इत्यादि। ब्रह्मदेव के एक दिन को कल्प कहते हैं। वह एक सहस्र चतुर्युगियों का होता है। उसके बाद प्रलय हो जाता है। उतने दिनों तक प्रलय रहता है। फिर सृष्टि होती है। दूसरा कल्प आरम्भ होता है। एक ब्रह्मदेव का काल ३६००० कल्प का होता है। सब कल्पों में रामावतार होता है। इस भाँति अगणित ब्रह्मदेव हुए और होंगे। अतः राम कथा की मिति नहीं है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कालत अनन्त है। यथा : काल व्याल कर भक्षक जोई। वस्तुत. अनन्त हैं। यथा · दिखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखंड। रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मड। गुण अनन्त हैं। यथा : जल सीकर महिरज गनि जाही। रघुपति गुन नहि बरनि सिराही। अमित कथा विस्तार है। यथा : श्रीराम रावन समर चरित अनेक कल्प जे गावही। सत सेप, सारद, निगम कवि तेउ तदपि पार न पावही।

अत विचारशील आश्चर्य न करेंगे। नहि आचरज करहि अस जानी से उप-क्रम और सुनि आचरज न मानिहैं जिनके विमल विचार से उपसहार किया।

एहि विधि सब संसय करि दूरी। सिरधरि गुरपद पंकज धूरी ॥
पुनि सबही बिनवौ करजोरी। करत कथा जेहि लाग न खोरी ॥१॥

अर्थ · इस भाँति सब सन्देहो को दूर करके और गुरुजी के चरण कमल की धूलि को सिर पर रखकर फिर हाथ जोडकर सबकी विनती करता हूँ जिससे कथा की रचना मे कोई दोष न लगे।

व्याख्या : करिय न सशय अस उरआनी से उपक्रम करके एहि विधि सब ससय करि दूरी से उपसंहार करते हैं। सशय दूर करने की विधि ऊपर लिख आये हैं। पदपकजरज का बाह्य उपयोग तीन प्रकार से होता है। १ सिर पर रक्खा जाता है। २ हृदय मे लगाया जाता है और ३. आँख में लगाया जाता है। यथा . रज सिर धरिहिय नयनन्हि लावहि। रघुपति मिलन सरिस सुख पावहि। सो ग्रन्थकार ने ग्रन्थारम्भ करते ही गुरुपदरज को नेत्रो मे लगाकर विवेक विलोचन को निर्मल किया। यथा : तेहि करि विमल विवेक विलोचन। बरनौ रामचरित भवमोचन। तब समष्टि की वन्दना करने लगे। वन्दना समाप्त होने पर कथा आरम्भ करने के पहिले गुणगणो को वश मे करने के लिए उम धूलि को सिर पर रक्खा : यथा सिर धरि गुर पद पकज धूरी। अयोध्या काण्ड के आरम्भ मे हृदय मे लागावेंगे।

व्यष्टि जीव और समष्टि ईश्वर है। अत. तीसरी बार समष्टि की वन्दना करते हैं। एक बार कर चुके हैं : समुझि विविध-विधि विनती मोरी। कोउ न कथा सुनि देइय खोरी। अब फिर वैसी ही विनय कर रहे है। दूसरी बात यह कि ग्रन्थकार ने बुधिबल के लिए सबसे प्रार्थना की है। यथा · निज बुधिबल भरोस मोहि नाही। ताते विनय करौ सब पाही। अब यदि कथा मे दोप रह जाय तो दोप देखनेवाला ही दोषी है। क्योकि ग्रन्थकार ने तो कृपा के लिए विनय की थी। उन्होने कृपा क्यो नही की ?

सादर सिवहि नाइ अब माथा। बरनौ बिसद रामगुन गाथा ॥
संवत सोरह सै इकतीसा। करौ कथा हरिपद धरि सीसा ॥२॥

अर्थ : अब मै शिवजी को आदर सहित सिर नवाकर रामजी के विमल गुणो की गाथा का वर्णन करता हूँ। हरि के चरणो मे सिर रखकर मैं सवत् १६३१ मे कथा की रचना करता हूँ।

व्याख्या : व्यास में वन्दना करके अब समास मे वन्दना करते हैं। समास मे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चार की वन्दना है। यथा १ गुरु की २ समष्टि की ३ शिव की और ४ हरि की। कथा के प्रारम्भ मे आचार्य की वन्दना आवश्यक है। अतः तीसरी बार शिवजी को प्रणाम किया। यहाँ से पूर्व घाट की कथा प्रारम्भ हुई।

पहिले चरणकमल की वन्दना की थी। अब प्रारम्भ करते समय हरिके चरणो पर सिर रक्खे देते हैं। रचना का काल कहते हैं कि विक्रमीय सम्वत् १६३१ मे रचना प्रारम्भ की। जब उसके उल्लेख का अवसर आया तब लिख दिया। यहाँ से पूर्व दीन : घाट की रचना मे हाथ लगाया। नाम, रूप और लीला का वर्णन पहिले कर आये। अब यहाँ से धामवर्णन आरम्भ करते हैं।

नौमी भौमवार मधु मासा। अवधपुरी यह चरित प्रकासा ॥
जेहि दिन राम जनम श्रुति गावहि। तीरथ सकल तहाँ चलि आवहि ॥३॥

अर्थ : चैत्रमास, नौमी, मङ्गलवार को अवधपुरी[1] मे इस चरित्र का प्रकाश किया। जिस दिन रामजी का जन्म वेद कहते है सारे तीर्थ वहाँ चले आते हैं।

व्याख्या : तिथि, वार, मास कहकर देश कहते हैं। भाव यह कि रामजन्म का काल और देश तथा रामचरित मानस के जन्म का काल और देश एक ही है। 'जेहि दिन राम जन्म' कहकर शुक्ल पक्ष भी कह दिया। 'नौमी भौमवार' कहने का भाव यह कि ऐसा होने से सर्वसिद्धिप्रदयोग पड जाता है। यथा : शनिभौमगता रिक्ता सर्वसिद्धिप्रदायिनी। श्रीरामनवमी के दिन अयोध्या का माहात्म्य और भी अधिक हो जाता है क्योकि उस दिन सभी काशी, प्रयागादि तीर्थ वहाँ आजाते हैं। देशकाल की उत्तमता कहकर, अब वातावरण कहते हैं।

असुर नाग खग नर मुनि देवा। आइ करहि रघुनायक सेवा ॥
जनम महोत्सव रचहि सुजाना। करहि राम कल कीरति गाना ॥४॥

अर्थ : उस दिन : असुर, नाग, पक्षी, मुनि और देवता आकर रघुनायक की सेवा करते हैं। सुजान लोग रामजी के जन्म का महोत्सव करते है और उनकी सुन्दर कीर्ति का गान करते है।

व्याख्या : रामजी के सभी उपासक वहाँ रामनौमी को जुट जाते हैं। देवता असुर आदि अदृश्य रूप से आकर रामजी की सेवा करते है और सुजान : मनुष्य : तो जन्म महोत्सव मनाते है और सुन्दर कीर्ति का गान करते हैं।

दो. मज्जहि सज्जन वृन्द बहु, पावन सरजू नीर।
जपहि राम धरि ध्यान उर, सुन्दर स्याम सरीर ॥३४॥

अर्थ : सज्जनो के झुण्ड के झुण्ड पवित्र सरयू नदी के जल मे स्नान करते है और सुन्दर श्याम शरीर का हृदय मे ध्यान करके रामजी का जप करते है।

व्याख्या : खल कदाचित् ही कोई सज्जनसङ्ग मे पडकर चला जाता हो नही

१. तिथिर्धन्या च नवमी यस्या जातो हरि: स्वयम्। नवमी तिथि धन्य है, जिसमे स्वय हरि का अवतार है। ऋतूना कुसुमाकर, ऋतुओ मे वसन्त धन्य है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तो प्रायेण नही जाते । सज्जन लोग पावन सरयू नीर मे मज्जन करते हैं । जा मज्जन ते बिनहिं प्रयासा । मम समीप नर पावहिं बासा । मनसा वाचा कर्मणा रामोपासना वहाँ होती है । 'मज्जन' से कर्मणा, 'जपहिं' से वाचा, 'धरिध्यान उर' से मनसा कहा । जानकीजी की चरचा नही की क्योकि उसदिन 'बालभाव' की उपासना की प्रधानता है ।

दरस परस मज्जन अरु पाना । हरै पाप कह वेद पुराना ॥
नदी पुनीत अमित महिमा अति । कहि न सकै सारदा विमल मति ॥१॥

अर्थ वेदपुराण कहते है कि दर्शन, स्पर्श, मज्जन और पान पाप हरण करता है । यह नदी पवित्र है । इसकी महिमा अत्यन्त असीम है । निर्मल बुद्धिवाली सरस्वती भी नही कह सकती ।

व्याख्या दूर से दर्शन करते ही पाप भागता है । निकट आने पर स्पर्श, प्रवेश करके मज्जन तत्पश्चात् आचमन । यही विधान है । इनमे से एक-एक पापनाशक हैं । यहाँ वेदपुराण का प्रमाण देते हैं क्योकि वे ही अदृष्टार्थ ज्ञापक हैं ।

नदी पुनीत और भी हैं । यथा नदी पुनीत पुरान बखानी । अत्रिप्रिया निज तपबल आनी । सुरसरि धार नाम मदाकिनि । जो सब पातक पोतक डाकिनि । पर अति अमित महिमा इसी की है । स्वर्ग लोक की वक्ता सारदा नही कह सकती । वाग्देवता ही नही कह सकती । अत सर्वथा अकथनीय महिमा है ।

राम धामदा पुरी सुहावनि । लोक समस्त विदित अति पावनि ॥
चारि खानि जग जीव अपारा । अवध तजे तनु नहि ससारा ॥२॥

अर्थ यह सुहावनी पुरी रामजी के धाम को देनेवाली है । सभी लोको मे प्रसिद्ध अति पवित्र है । जगत् मे चार प्रकार के जीव हैं । जिनका पारावार नही पर अवध मे शरीर छोडने से ससार फिर नही होता है ।

व्याख्या . राम वचन । यथा मम धामदा पुरी सुखरासी । सुखराशि होने से 'सोहावनि' कहा । लोक समस्त विदित अति पावनि । यथा जद्यपि सब बैकुण्ठ बखाना । वेदपुरान विदित जग जाना । अवध सरिस प्रिय मोहिं न सोऊ । यह प्रसग जानै कोऊ कोऊ । अवधपुरी प्रति भुवन निनारी । अवध तहाँ जहँ राम निवासू । तहँइ दिवस जहँ भानु प्रकासू ।

मोक्षदायिनी सातो पुरियो मे प्रथम है । अत 'अवध तजे तनु नहिं ससारा' कहते हैं ।

सबविधि पुरी[1] मनोहर जानी । सकल सिद्धिप्रद मगल खानी ॥
विमल कथा कर कीन्ह अरभा । सुनत नसाहि काम मद दभा ॥३॥

---

१ रामस्य नाम रूपश्च लीलाधाम परात्परम् । एतच्चतुष्टय नित्य सच्चिदानन्दविग्रहम् ॥

अर्थ रामजी का नाम, रूप, लीला और परात्पर धाम चारो नित्य हैं । सच्चिदानन्द की मूर्ति हैं ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ ' सब भाँति से पुरी को मनोहर, सब सिद्धियो की देनेवाली और मङ्गल की खानि जानकर निर्मल कथा का मैंने आरम्भ किया है। जिसके सुनने से काम, मद और दम्भ दूर हो जाते हैं।

व्याख्या पुरी के मनोहर होने की सब विधि कह चुके हैं। मोक्ष की विधि कही कि पुरी मे शरीर छोडने से होता है। सिद्धि की विधि कहते है कि माँगने से मिलती है। मङ्गल की विधि कहते है कि अवध पुरी म उसकी खानि है। भक्ति की विधि कहते हैं कवनेउ जनम अवध बस जोई। रामपरायन सो परि होई। यहाँ तक धाम का वर्णन किया।

श्रीरामजी के नाम, रूप, लीला और धाम चारो सच्चिदानन्द रूप हैं। यहाँ धाम का वर्णन समाप्त करते हैं। शेप तीन का वर्णन पीछ हो चुका है।

अवधपुरी विमल है। यथा लोक समस्त विदित अति पावनि। सरयू विमल है। यथा नदी पुनीत अमित महिमा अति। समय विमल है। यथा जेहि दिन रामजन्म श्रुति गावहिं। अत ऐसे विमल सयोग म विमल कथा का प्रारम्भ किया। कथा की रचना पहिल ही करके उस दिन 'अथ' और 'इति' नही लिख दिया। कथा ऐसी निमल है कि तदनुसार आचरण तो दूर की बात है उसके श्रवण मात्र से काम, मद और दम्भ का नाश हो जाता है।

रामचरितमानस एहि नामा। सुनत श्रवन पाइअ विश्रामा ॥
मन करि विषय अनल वन जरई। होइ सुखी जौ येहि सर परई ॥४॥

अर्थ इसका नाम रामचरितमानस है। जिसे कानो स सुनने से विश्राम मिलता है। मनरूपी हाथी विषयरूपी दावानल म जल रहा है। यदि इस सरोवर म आ पडे तो सुखी हो जाता है।

व्याख्या सुनत नसाहिं काम मद दभा कहकर दोपापनयन कहा। अब गुणाधान कहते है कि कानसे सुनते ही विश्राम मिल जाता है। उदाहरण दते है कि जैस हाथी दावानल म फँस गया हो, महा विकल होकर इधर उधर दौडने पर भी शरण कही न मिलती हो, प्राणसकट उपस्थित हा उस समय यदि सरोवर मिल जाय तो उसम प्रवेश करके वह सुखी हो जाता है। इसी भाँति यह मन विषय वन के दावानल म जल रहा है। कही शरण नही है। वह यदि इस रामचरितमानस म जा पडे तो सुखी हो जाता है। इसलिए इसका नाम 'रामचरितमानस है।

रामचरितमानस मुनिभावन। विरचेउ सभु सुहावन पावन ॥
त्रिविध दोप दुख दारिद दावन। कलि कुचालि कुलि कलुप नसावन ॥५॥

अर्थ मुनियो को प्रिय, पवित्र और सुहावने रामचरितमानस को शिवजी ने रचा। यह तीनो प्रकार के दोप दु ख और दरिद्रता को नष्ट करनेवाला है। कलि के कुचाल और सब पापो का नाश करता है।

व्याख्या यह रामचरित सर मुनियो को मनभावन है खल का नही। उसे तो जातइ नीद जुडाई होई और 'जौ बहोरि कोउ पूछन आवा। सर निंदा करि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


ताहि बुझावा। सर मे दोष नही, यह तो देवखात है। महादेवजी का बनाया है। अत इसके सुहावन पावन होने मे सन्देह को स्थान नही है।

दोष, दु ख और दारिद्रय को तीन प्रकार का माना। आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक। दोष होने से ही दु ख होता है। दोष कारण है, दु ख कार्य है। अभावरूप दारिद्रय सब दु खो से बडा है। धनाभाव आधिभौतिक दारिद्रय है। पुण्याभाव आधिदैविक दारिद्रय है। ज्ञानाभाव आध्यात्मिक दारिद्रय है। यह रामचरितमानस वनाग्नि के समान इनका नाश करनेवाला है। यह 'सुहावन' पद की व्याख्या है।

कलि की कुचालि। यथा भए लोग सब मोहवस, लोभ ग्रसे सुभ कर्म। और सब पापो का रामचरितमानस नाश करता है। यथा करहिं पाप दुख पावहिं।

रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवासन भाखा॥
ताते रामचरितमानस वर। धरेउ नाम हियँ हेरि हरषि हर॥६॥

अर्थ इसे रचकर महादेवजी ने अपने मन मे रक्खा और सुअवसर पाकर भवानी से कहा। इसीसे हर शिवजी ने सोच समझकर और प्रसन्न होकर इसका नाम श्रेष्ठ रामचरित्तमानस रक्खा।

व्याख्या महादेवजी ने बनाया तो सही पर अपने मनमे ही रहने दिया। किसी से कहा नही। सुसमय पाकर अर्थात् जब उमा कथा सुनने के लिए आर्त हुई, उन्हे कथा सुनने की उत्कट इच्छा हुई, तब उनसे कहा। सतीस्वरूप मे नही कहा।

जब कथा कहनी पडी तो उसका कुछ नाम भी चाहिए। अत विचारने पर यह बात मन मे आई कि यह कथा मानससर सी सुहावन पावन है। मानससर म और इनम गुणसाम्य भी यथेष्ट है। अत नाम अच्छा मिल जाने से प्रसन्न होकर इसका नाम 'रामचरितमानस' रखा।

कहउँ कथा सोइ सुखद सुहाई। सादर सुनहु सुजन मन लाई॥७॥

अर्थ उसी सुहाई और सुख देनेवाली कथा को मे कहता हूँ। सज्जनो! आदर पूर्वक मन लगाकर इसे सुनो।

व्याख्या हित मनोहारि च दुर्लभ वच। हित भी हो और मनका हरण करनेवाला भी हो, ऐसा वचन दुर्लभ है। सो यह पूरी की पूरी कथा हित और मनोहारी है। इसलिए 'सुखद सुहाई' कहते हैं। श्रीग्रन्थकार के तीन घाट के श्रोता सुजन हैं। क्योकि उनको इसे सुनकर सुख होता है। यथा पढ़हिं सुख मुनि सुजन जन, खल करिहहिं उपहास। यथार्थ फल प्राप्ति के लिए सावधान करते है कि आदर के साथ मन लगाकर सुनो। यह कथा बहुत बडे महान् लोगो का प्रसाद है। अत आदर क साथ ग्रहण करो और यह बडी हितकारिणी है, इससे मन लगाओ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



## १. मानससर प्रसङ्ग

दो. जस मानस जेहि विधि भयेउ, जगप्रचार जेहिं हेतु।
अब सोइ कहउँ प्रसंग सब, सुमिरि उमा वृषकेतु ॥३५॥

अर्थ : यह मानस जैसा है जिस विधि से हुआ और जिस कारण से जगत् मे इसका प्रचार हुआ अब वही सब प्रसङ्ग उमा वृषकेतु को स्मरण करके कहता हूँ।

व्याख्या : १ मानस का मानचित्र खीचने, उसके बनने की विधि वर्णन करने और ससार में उसके प्रचार का कारण बतलाने का ग्रन्थकार सकल्प करते है। सकल्प भगवत्स्मरण पूर्वक होना चाहिए। इसलिए उमा वृषकेतु का स्मरण करते हैं। क्योंकि उमा प्रणवरूपा है। उमा का नाम प्रणव के अक्षरो से ही बना हुआ है : उ+म+अ=उमा। चतुष्पाद धर्म ही वृष है। ऐसा वृष है केतु पताका जिसका, उस सत् रूप ब्रह्म को वृषकेतु कहते हैं। इस भाँति सकल्प के पहिले ॐतत्सत्[१] का 'उमा-वृषकेतु' के रूप मे स्मरण करते हैं, जिसमे सबका अधिकार है। दूसरा कारण उमा-वृषकेतु के स्मरण का यह भी है कि उमा और वृषकेतु ही इस रामचरितमानस के प्रथम श्रोता और वक्ता हैं। उन्ही से इसकी परम्परा चली है।

सभुप्रसाद सुमति हियँ हुलसी। रामचरितमानस कवि तुलसी ॥
करइ मनोहर मति अनुहारी। सुजन सुचित सुनि लेहुँ सुधारी ॥१॥

अर्थ : शिवजी की कृपा से हृदय मे सुमति उल्लसित हुई और तुलसी रामचरितमानस का कवि हुआ। बुद्धि के अनुसार मनोहर बनाता है। सुजन जन सुन्दर चित्त से सुनकर सुधार लें।

व्याख्या : पहिले सुमति का बडा घाटा था, मति ससार मे निरत थी। यथा कहँ मति मोरि निरत ससारा। मति अति नीच ऊँचि रुचि आछी। निज बुधि बल भरोस नहि मोरे। इसलिए अपने को कवि नही मानते थे। यथा . कवि न होउँ नहि चतुर कहावो। कवित विवेक एक नहि मोरे। अब शङ्कर के प्रसाद से सुमति उल्लसित हुई है। अत स्वय अपने को कह रहे हैं : रामचरितमानस कवि तुलसी।

रामजी का नाम मनोहर है। यथा आखर मधुर मनोहर दोऊ ॥
रामजी का रूप मनोहर हैं। यथा : राजकुँअर तेहि अवसर आए।
मनहु मनोहरता तन छाए ॥
रामजी की लीला मनोहर है। यथा : परम मनोहर चरित अपारा।
करत फिरत चारिउ सुकुमारा ॥

---

१ ॐतत्सदिति निर्देशो ब्रह्मणस्त्रिविध. स्मृत । ब्राह्मणास्तेन वेदाश्च यज्ञाश्च विहिता पुरा।
ओम्, तत्, सत्, यह तीन प्रकार का ब्रह्म का निर्देश है। पूर्व काल मे इस तीन प्रकार के नाम से ही ब्राह्मण, वेद और यज्ञ का विधान किया गया है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रामजी का धाम मनोहर है। यथा सब विधि पुरी मनोहर जानी।
सकल सिद्धि प्रद मगलखानी ॥

अत इनकी कथा भी मनोहर होनी चाहिए सो मैं मति अनुसार मनोहर कर रहा हूँ इसे सुजन प्रसन्न मन होकर सुने और मनोहरता मे जहाँ त्रुटि हो वहाँ सुधार लें। यथा सो सुधारि हरि तन जिमि लेही। दलि दुख दोप विमल जस देही।

सुमति[1] भूमि थल हृदय अगाधू। वेद पुरान उदधि घन साधू ॥
बरषहिं राम सुजस बर बारी। मधुर मनोहर मगल कारी ॥२॥

अर्थ सुमति भूमिका है। हृदय गहरा स्थान है। वेद, पुराण समुद्र हैं। साधु वादल हैं। वे रामजी के सुयशरूपी मधुर मनोहर मङ्गलकारी जल की वर्षा करते हैं।

व्याख्या तो सुमति भूमिका की प्राप्ति शम्भुप्रसाद से हो गई। उसी के कारण हृदय मे भी गहराई आगई। अब वर्षा हो तो भरकर तालाब हो जाय। सो चार वेद बडे बडे चारो समुद्र हैं। अठारह पुराण छोटे समुद्र हैं। जल का परमेश्वरी भण्डार समुद्र है। पर वह खारा है, सबके लिए उपयोगी नहीं है। उसके अधिकारी मेघ है। उन्ही मे यह सामर्थ्य है कि उसमे से प्राणियो के उपयोगी अश को ले लेव। खारे जल को मीठा करके वरसे। इसी प्रकार वेद, पुराणो म सब कुछ भरा है। सो साधुओ मे ही यह सामर्थ्य है कि उसमे से रामयश तथा भक्ति का पृथक् करके ले लेवे। और ससार मे उसकी वर्षा कर दे। यथा सुजस पुरान निगम आगमवद। जासु सुजस त्रैलोक उजागर रामचरित अमृतवत् मीठा है। यथा श्रवनामृत जेहि कथा सुहाई। नाथ तवानन ससि श्रवत कथा सुधा रघुवीर। श्रवन पुटनि मन पान करि नहि अघात मति धीर। भगवान् के नाम, रूप, लीला, धाम चारो मगलमय है।

नाम मगलमय है। यथा भाव कुभाव अनख आलसहूँ।
राम जपत मगल दिसि दसहूँ ॥
रूप मगलमय है। यथा मगल भवन अमगल हारी।
द्रवहु सो दसरथ अजिर विहारी ॥
लीला मगलमय है। यथा मगल करनि कलिमल हरनि,
तुलसी कथा रघुनाथ की।
धाम मगलमय है। यथा सब विधि पुरी मनोहर जानी।
सकल सिद्धि प्रद मगलखानी ॥

यहाँ सुयश वारि के तीन गुण कहे। १ मधुर २ मनोहर ३ मगलकारी।

लीला सगुन जो कहहि बखानी। सोइ स्वच्छता करै मल हानी ॥
प्रेम भगति जो बरनि न जाई। सोइ मधुरता सुसीतल ताई ॥३॥

---

१ आठ दोहों मे 'मानस प्रसङ्ग' कहा गया है, इस पर भाव प्रकाशिका' नाम की वृहत् टीका प्रकाशित हो चुकी है। अत यहाँ सक्षेप से टीका की जाती है।



(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ सगुण लीला जो बखान करते हैं वही स्वच्छता मल की हानि करती है। प्रेम और भक्ति जिनका वर्णन नही किया जा सकता, वही मिठास तथा सुन्दर तरावट है।

व्याख्या तीनो गुणो मे से पहिले मनोहरता कहते हैं। जल की स्वच्छता ही मनोहरता है। साधु लोग सगुण लीला को बखानकर कहते हैं, वही स्वच्छता है। रामजी की लीला दो प्रकार की होती है, एक निर्गुण लीला, दूसरी सगुण लीला। निर्गुण लीला यथा लव निमेष महँ भुवन निकाया। रचै जासु अनुसासन माया। सगुण लीला यथा . कपि सेन संग सहारि निसिचर रामसीतहिं आनि हैं। त्रैलोक पावन सुजस सुरमुनि नारदादि बखानि हैं।

उस सगुण लीला से मल की हानि होती है। सबकी उपकारिणि नही होने से निर्गुण लीला बखानकर नहीं कहते। इसीलिए वर्षा के जल मे गहराई नही के बराबर रहती है। बूँद बूँद बरसता है। क्योकि गहराई तो निर्गुण महिमा मे है। यथा ' रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा। मानस सरोवर का जल बाहर का मल दूर करता है। पर यह जल भीतर का मल दूर करता है।

इस जल मे प्रेम मधुरता है और भक्ति शीतलता है। जल के चार गुण कहे गये हैं निर्मलता इक जानिये पुनि शीतलता मान। मधुर सुवासित चारगुन जल के प्रकट बखान। सो वर्षा के जल मे सुगन्ध नही होती, तीन ही गुण होते हैं। यहाँ मधुरता के साथ शीतलता भी कहा। अब मङ्गलकारित्व कहेगे।

सो जल सुकृत सालि हित होई। रामभगत जन जीवन सोई ॥
मेधा महिगत सो जल पावन। सकिलि श्रवन मग चलेउ सुहावन ॥४॥

अर्थ वह जल सुकृतरूपी धान के लिए हितकारी है। वही रामजी के भक्तो का जीवन है। वह पवित्र और सोहावन जल मेधा . धारण शक्ति ' रूपी पृथ्वी पर पडकर और सिमिटकर कानरूपी मार्ग से : भीतर चला।

व्याख्या वह वर्षा का जल पुण्यरूपी धान को बडा लाभ पहुँचाता है। दूसरे जल से धान वैसा सुख नही मानता। अर्थात् रामयश की वर्षा मे ही पुण्य की रात दिन बढोत्तरी होती है। यदि साधु द्वारा रामयश का श्रवण न हुआ तो कितना ही सुकृत हो, वह सूख जाता है। क्योकि सुकृतरूपी धान के पौधो को रामयश की बडी प्यास होती है। यदि प्यास न हुई तो समझना चाहिए कि वह पुण्य शालि नही है कोई दूसरी घास है। वही जल रामभक्तो का जीवन है। यथा राम उपासक जे जग माही। एहि सम प्रिय तिनके कछु नाही। सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ।

उसी वर्षा के जल से धान भी होता है और उसी से जलाशय भी भर जाते हैं। जो जल ढालुएँ स्थल पर पडता है वह सिमिटकर नाली द्वारा जलाशय मे पहुँचता है। उसी भाँति यह रामसुयश जल मेधा धारण शक्ति ' रूपी ढालुएँ स्थल पर पड़कर श्रवण मार्ग से सिमिटकर भीतर जाता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भरेउ सुमानस सुथल थिराना । सुखद सीत रुचि चारु चिराना ॥५॥

अर्थ : सुन्दर मानस भर उठा और सुन्दर स्थल पाकर थिराया । सुखद, शीत रुचिवाला सुन्दर और पुराना हुआ : पक गया ।

व्याख्या : गुरुजी के उपदेश द्वारा पहिले ही से मानस सजल था । यथा : तदपि कही गुरु बारहिं बारा । समुझपरी कछु मति अनुसारा । अब साधुओ की राम-यश वर्षा से भर उठा । पहिले मेघामहिगत होने से ढावर हो गया था । यथा : भूमि परत भा ढावर पानी । अब सुथल पाकर थिराया । पहिले नया पानी दु खद और गरम था । अब सुखद हुआ, शीतरुचि हुआ : आश्विन मे पुराना और कार्तिक मे चिराना हुआ । इसी भाँति सुयश, नागपाश बन्धन, सीता विरह, रावण वधादि चरित्रो से ढावर हो गया था । फिर शिव, भुसुण्डि, याज्ञवल्क्यादि के उत्तरो से निर्मल हुआ । विरहाभास के निश्चय से सुखद, क्रोधाभास के निश्चय से शीतरुचि और बन्धनाभास के निश्चय से चिराना : पक्का हुआ । अथवा मनन, निदिध्यासन से उपर्युक्त गुणयुक्त हुआ ।

दो. सुठि सुदर संवाद वर, बिरचे बुद्धि बिचारि ।
तेइ एहि पावन सुभग सर, घाट मनोहर चारि ॥३६॥

अर्थ बुद्धि से विचारकर अत्यन्त सुन्दर श्रेष्ठ सवादो की रचना की । वे ही इस सुन्दर और पवित्र सरोवर मे चार मनोहर घाट है ।

व्याख्या : मानस तो पूर्ववक्ताओं का भी बना, पर घाट न बाँधने से दुर्गम रहा । यथा : यत् पूर्वं प्रभुणाकृत सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमम् । अत बुद्धि से विचारकर चार घाट बाँधा । जिसमे स्नान करनेवालो को सुभीता हो । सब प्रकार के अधिकारियो के लिए उपयोगी हो । पहिला पूर्व घाट स्वय ग्रन्थकार का है, जिसके वे वक्ता हैं और उनका मन या सुजन श्रोता है । यह दीनघाट या गोघाट है । यथा दूरि फराक रुचिर सो घाटा । जहँ जल पियहिं बाजि गज ठाटा । यहाँ लँगडे लूले सभी पानी पी सकते हैं । इसका दीनघाट होना स्पष्ट है । ग्रन्थकार अपने लिए कहते हैं अति बडि मोरि ढिठाई खोरी । सुनि अघ नरकहुँ नाक सकोरी । इत्यादि ।

दूसरा घाट भारद्वाज और याज्ञवल्क्य सवाद दक्षिण ओर बँधा हैं । यह कर्म घाट है : मज्जहिं तहाँ बर्ण चारिउ नर । इसमे शङ्कर भवानी पूजन आदि कर्म कहकर तब कथा कहेगे । तीसरा पश्चिम घाट भवानी शङ्कर सम्वाद है । इसे ज्ञान घाट कहते हैं । यहाँ 'झूठेहु सत्य जाहि बिनु जाने' इत्यादि ज्ञान निरूपण करके तब कथा कही । इसे राजघाट भी कहते है । चौथा उत्तर घाट, पनिघट या उपासना घाट है । तहाँ न पुरुष करहिं असनाना । यहाँ न कर्म कहा, न ज्ञान कहा, न दीनता कही, पहिले ही कथा कहना प्रारम्भ कर दिया । तीन सवाद बालकाण्ड मे दिखलाये और चौथा उत्तर मे दिखलाकर, इसे पनिघट की भाँति अलग होना सूचित किया ।

पहिले कहा था . जस मानस जेहि बिधि भयउ । सो 'जेहि बिधि भयउ' का ही वर्णन पहिले किया । अब 'जस मानस' का वर्णन करेंगे ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



| घाट | समय | देश | वक्ता | श्रोता | भाषा |
|---|---|---|---|---|---|
| पूर्व | रामनौमी | अयोध्या | गोस्वामीजी | सुजन, मन | प्राकृत |
| दक्षिण | फाल्गुन | प्रयागराज | याज्ञवल्क्य | भरद्वाज | संस्कृत |
| पश्चिम | अनियत | कैलास | शिवजी | उमा | संस्कृत |
| उत्तर | अनियत | नीलगिरि | भुसुण्डि | गरुड़ | पक्षी भाषा |

कही वक्ता श्रोता के यहाँ और कही श्रोता वक्ता के यहाँ। इसका नियम नही है। मणि, माणिक्य मुक्तामय होने से ये घाट मनोहर हैं।

सप्त प्रबंध सुभग सोपाना। ज्ञान नयन निरखत मन माना ॥
रघुपति महिमा अगुन अबाधा। बरनब सोइ बर बारि अगाधा ॥१॥

अर्थ : सातों प्रबन्ध सात सीढ़ियाँ : फलको की पंक्तियाँ हैं। जिनको ज्ञानरूपी नेत्र द्वारा देखने से मन प्रसन्न हो जाता है। मैं रामजी की निर्गुण और अगाध महिमा वर्णन करूँगा। वही जल की गहराई है।

व्याख्या : ये सातो प्रबन्ध रामभक्ति की सात सीढ़ियाँ अर्थात् सात मार्ग हैं। यथा : एहि महँ सुभग सप्त सोपाना। रघुपति भगति केर पंथाना। भक्ति को छोड़कर मुक्ति कही रह नही सकती। यथा : जिमि थल जल बिनु रह न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई। तथा मोक्ष सुख सुनु खगराई। रहि न सकै हरि भगति बिहाई। सो ये सातो प्रबन्ध सातो पुरियो की भाँति मोक्ष प्रापक हे। इन्हें यदि ज्ञान की आँखो से देखें तो मन सन्तुष्ट हो जाता हैं।

छप्पय : बालकाण्ड है अवध, अवध मथुरा मन भावन।
हरद्वार आरण्य, काशिका किष्किन्धा भन ॥
काञ्ची सुन्दर लसत लङ्क उज्जैन सुहावन।
उत्तर द्वारावती पुरी सातो मन भावन ॥
लसत जहाँ सोपान प्रति ऐसो रामचरित्र सर।
विजयानंद सेवत सुलभ सब सुखकर सब पापहर ॥

बालकाण्ड : अवध, अवधवासी, सरयू, रामनवमी आदि का माहात्म्य इसमें वर्णन है, इसलिए बालकाण्ड को अयोध्या कहा। अयोध्याकाण्ड : इसमें रामजी के बनवास का वर्णन है। श्रीकृष्णजी की विरह कथा की समता से इसे मथुरा कहा। आरण्यकाण्ड : माया के बाहुल्य से इसे मायापुरी : हरद्वार कहा। किष्किन्धाकाण्ड : राममन्त्र के जप से काशी में ही शिवजी को रामजी मिले, यहाँ हनुमान् जी को मिले, इसलिए किष्किन्धा को काशी कहा। सुन्दरकाण्ड : काञ्ची दो हैं : शिवकाञ्ची और विष्णुकाञ्ची। सुन्दरकाण्ड में भी दो भाग है, हनुमच्चरित और रामचरित, इसलिए इसे काञ्ची कहा। लंकाकाण्ड : लंका और उज्जैन दोनों के निरंश देश होने से तथा महाकालेश्वर : रुद्र की प्रधानता से लंका को उज्जैन : अवन्तिका कहा। उत्तरकाण्ड : इस काण्ड में रामजी ने राज्य किया। द्वारका में कृष्णजी ने किया। इसलिए उत्तर को द्वारका माना।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कुछ महात्माओं का यह मत है कि बालकाण्ड में श्रीसीताजी का रामजी से संयोग हुआ, यही सांख्यशास्त्र है। अयोध्याकाण्ड विराग है। आरण्यकाण्ड मीमांसा, किष्किन्धाकाण्ड योगशास्त्र, सुन्दरकाण्ड न्यायशास्त्र और उत्तरकाण्ड साम्राज्य शास्त्र हैं। ये बातें ज्ञाननयन से देखी जा सकती हैं, तब मन मान जाता है। बालकाण्ड में प्रकृति, पुरुष का संयोग वर्णन है, इसलिए इसे किसी भाँति सांख्यशास्त्र से सम्बद्ध कह सकते हैं। अयोध्या में वैराग्य का निरूपण स्पष्ट है। लङ्काकाण्ड को वेदान्त कहना भी अध्यात्मदृष्टि से बन जाता है। उत्तरकाण्ड को भी साम्राज्यशास्त्र कहने में आपत्ति नहीं है। परन्तु आरण्य को मीमांसा, किष्किन्धा को योग और सुन्दरकाण्ड को न्यायशास्त्र कहने का कोई आधार नहीं मिलता। अन्त और आदि का मिलना ही दबाव हैं। यथा : १ आए ब्याहि राम घर जबते और जबते राम ब्याहि घर आए। २ भरतचरित करि नेम जे सप्रेम गावहिं सुनहिं तथा पुरनर भरत प्रीति मैं गाई। ३ बैठे अनुज सहित रघुराया तथा आगे चले बहुरि रघुराया। ४ जामवन्त कह सुनु हनुमाना। जामवन्त के वचन सोहाए। ५ निज भवन गवनेउ सिंधु तथा सिंधु वचन सुनि राम। ६ प्रभु हनुमंतहि कहेउ बुझाइ। तथा विप्ररूप धरि पवनसुत आइगये जनु पोत। इन छवो को दबाव कहिये या फर्श कहिये। सब सीढ़ियाँ जल से पूरित हैं। मानसर का दर्शन नेत्र से होता है और रामचरितमानस का दर्शन ज्ञाननेत्र से होता है। रघुपति की गुणातीत महिमा का बाध नहीं होता। सत् का किसी अवस्था में बाध नहीं हो सकता। इस महिमा का थाह नहीं क्योंकि थाह तो गुणों से मिलता है। परन्तु इस महिमा में गुण नहीं। इसलिए अथाह है। यथा : अस रघुपति महिमा अवगाहा। तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा। गुणातीत सचराचर स्वामी। राम उमा सब अंतर जामी। थाह तो सगुण महिमा का भी नहीं है पर, राम काम सतकोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरिमर्दन। इत्यादि कहकर कुछ दिग्दर्शन कराया जा सकता है। पर निर्गुण महिमा में उतना भी अवकाश नहीं है। साधु मेघ ने जो राम सुयश वारि की वर्षा की थी उसमें गहराई बहुत कम थी। अब वह जल जब मानस में इकट्ठा हुआ तो बड़ी गहराई आगई। निर्गुण महिमा का आधिक्य बहुत बढ़ गया।

रामसीय जस सलिल सुधासम। उपमा बीचि बिलास मनोरम ॥
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मंजु मनि सीप सोहाई ॥२॥

अर्थ रामजी और सीताजी का यश ही अमृत के समान जल है। उपमा सुन्दर तरंगों का विलास : कार्य वर्ग है। सुन्दर चौपाइयाँ सघन पुरइन कमल का पत्ता है। युक्तियाँ सुन्दर मणिवाली मनोहर सीपियाँ हैं।

व्याख्या रामजी और सीताजी के यश का मेल है। वही मिठास है जो अमृत तुल्य है। पहिले कह आये हैं कि रामचरित मधुर है। अब 'सीययश' के साथ योग होने से वह माधुर्य अमृत तुल्य हो गया। यथा गावहिं छवि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल राम उर मेली। रामजी ने सीता का यश [illegible] यथा कंकन किंकिनि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नूपुर धुनि सुनि। कहत लखन मन राम हृदय गुनि। इत्यादि। सीताजी ने राम यश कहा। यथा सोभा सीव सुभग दोउ बीरा। इत्यादि। कही 'वीचि' पाठ न होकर 'बीच' पाठ है। वहाँ अर्थ करना पडेगा कि बीच बीच म जो उपमा है वही जल का विलास है। यहाँ उपमा अलङ्कार मात्र का उपलक्षण है।

उस मानस मे पुरइन सघन है। इसम चारु चौपाइयाँ सघन हैं। वहा पुरइन के कारण जल नही दिखाई पडता, पुरइन हटाई जाय तो जल दिखाई पडे। यथा पुरइन सघन ओट जल, बेगि न पाइय मर्म। यहाँ चौपाई के शब्दो को अलग करे अर्थात् ध्यान दे तब राम सुयशरूपी जल दिखाई पडे। युक्ति मणि सीप है। उसम मुक्ता फल छिपा है। मुक्ता फल रामजी के गुणगण हैं। यथा जस तुम्हार मानस विमल हसिनि जीहा जासु। मुकता हल गुनगन चुनइ राम वसहु हिय तासु। युक्ति उपाय को कहते हैं। जो सिद्धि उपाय से होती है, वह पराक्रम से नही होती। श्रीरामचरितमानस मे उपाय युक्ति की उपमा मोतीवाली सीपी से दी गई है। जो उपाय काम म लाये गये हैं, उनसे जो गुणगण प्रकट होते हैं, वे ही मोती कहे गये हैं। यथा रावणवध के लिए युक्ति सरस्वती जी ने की। नाम मथरा मदमती चेरी कै कैं केरि। अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि। यह भी सरस्वतीजी ने रामजी का रुख पाकर किया। यथा तब कछु कीन्ह रामरुख जानी। इससे महाराज दशरथ के पूर्वजन्म के वरदान की पूर्ति हुई। यथा मम जीवनमिति तुमहि अधीना। साधुओ के लिए प्रेमामृत प्रकट हुआ। यथा प्रेम अमिअ मदर विरह भरत पयोधि गँभीर। मथि प्रकटेउ सुर साधु हित कृपा सिंधु रघुबीर। और जगत् का कल्याण हुआ। इस भाँति सभी युक्तिया म गुणगण निहित हैं। ये युक्तियाँ सुन्दर हैं। इसलिए 'सोहाई' कहा। इसी भाँति वालि वध, जानकी परित्यागादि युक्तिया म गुणगण छिपे हुए हैं।

छद सोरठा सुन्दर दोहा। सोइ वहुरग कमलकुल सोहा॥
अरथ[1] अनूप सुभाव सुभासा। सोइ पराग मकरद सुवासा॥३॥

अर्थ छन्द सोरठा और सुन्दर दोहे हैं, वे बहुरग के शोभित कमल के फूल हैं अनुपम अर्थ, सुन्दर भाव। और सुन्दर भाषा ही क्रम से पराग फूलो की धूलि, मकरन्द पुष्परस और सुगन्ध हैं।

व्याख्या श्वेत, लाल, नील और पीत, चार रङ्ग के कमल होते है। सात्त्विक श्वेत, राजस लाल, तामस नील और गुणातीत छन्द, सोरठा, दोहा को पीत कहा है।

सात्त्विक यथा लागे पखारन पाय पकज प्रेम तन पुलकावली।
राजस यथा हरित मनिन के पत्रफल पदुमराग के फूल।
तामस यथा कोपे समर श्रीराम। चले विसिख निसित निकाम।
गुणातीत यथा जयरामरूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही।

[1] यहाँ यथासख्यालङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कुछ महात्माओ का यह मत है कि बालकाण्ड मे श्रीसीताजी का रामजी से सयोग हुआ, यही साख्यशास्त्र है। अयोध्याकाण्ड विराग है। आरण्यकाण्ड मीमासा, किष्किन्धाकाण्ड योगशास्त्र, सुन्दरकाण्ड न्यायशास्त्र और उत्तरकाण्ड साम्राज्य शास्त्र है। ये बातें ज्ञाननयन से देखो जा सकती हैं, तब मन मान जाता है। बालकाण्ड मे प्रकृति, पुरुष का सयोग वर्णन है, इसलिए इसे किसी भाँति साख्यशास्त्र से सम्बद्ध कह सकते है। अयोध्या मे वैराग्य का निरूपण स्पष्ट है। लङ्काकाण्ड को वेदान्त कहना भी अध्यात्मदृष्टि से बन जाता है। उत्तरकाण्ड को भी साम्राज्यशास्त्र कहने मे आपत्ति नही है। परन्तु आरण्य को मीमासा, किष्किन्धा को योग और सुन्दरकाण्ड को न्यायशास्त्र कहने का कोई आधार नही मिलता। अन्त और आदि का मिलना ही दवाव हैं। यथा १ आए ब्याहि राम घर जबते और जबते राम ब्याहि घर आए। २ भरतचरित करि नेम जे सप्रेम गावहि सुनहि तथा पुरनर भरत प्रीति मैं गाई। ३ बैठे अनुज सहित रघुराया तथा आगे चले बहुरि रघुराया। ४ जामवन्त कह सुनु हनुमाना। जामवन्त के वचन सोहाए। ५ निज भवन गवनेउ सिधु तथा सिधु वचन सुनि राम। ६ प्रभु हनुमतहि कहैउ बुझाइ। तथा विप्ररूप धरि पवनसुत आइगये जनु पोत। इन छवो को दवाव कहिये या फर्स कहिये। सब सीढियाँ जल से पूरित है। मानसर का दर्शन नेत्र से होता है और रामचरितमानस का दर्शन ज्ञाननेत्र से होता है। रघुपति की गुणातीत महिमा का बाध नही होता। सत् का किसी अवस्था मे बाध नही हो सकता। इस महिमा का थाह नही क्योकि थाह तो गुणो से मिलता है। परन्तु इस महिमा मे गुण नही। इसलिए अथाह है। यथा अस रघुपति महिमा अवगाहा। तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा। गुणातीत सचराचर स्वामी। राम उमा सब अतर जामी। थाह तो सगुण महिमा का भी नही है पर, राम काम सतकोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरिमर्दन। इत्यादि कहकर कुछ दिग्दर्शन कराया जा सकता है। पर निर्गुण महिमा मे उतना भी अवकाश नही है। साधु मेघ ने जो राम सुयश वारि की वर्षा की थी उसमे गहराई बहुत कम थी। अब वह जल जब मानस मे इकट्ठा हुआ तो बडी गहराई आगई। निर्गुण महिमा का आधिक्य बहुत बढ गया।

रामसीय जस सलिल सुधासम। उपमा बीचि बिलास मनोरम॥
पुरइनि सघन चारु चौपाई। जुगुति मजु मनि सीप सोहाई॥२॥

अर्थ रामजी और सीताजी का यश ही अमृत के समान जल है। उपमा सुन्दर तरगो का विलास कार्य वर्ग है। सुन्दर चौपाइयाँ सघन पुरइन कमल का पत्ता है। युक्तियाँ सुन्दर मणिवाली मनोहर सीपियाँ हैं।

व्याख्या रामजी और सीताजी के यश का मेल है। वही मिठास है जो अमृत तुल्य है। पहिले कह आये हैं कि रामचरित मधुर है। अब 'सीययश' के साथ योग होने से वह माधुर्य अमृत तुल्य हो गया। यथा गावहि छवि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल राम उर मेली। रामजी ने सीता का यश कहा। यथा कक्न किकिनि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नूपुर धुनि सुनि । कहत लखन मन राम हृदय गुनि । इत्यादि । सीताजी ने राम यश कहा । यथा : सोभा सीव सुभग दोउ बीरा । इत्यादि । कही 'बीचि' पाठ न होकर 'बीच' पाठ है । वहाँ अर्थ करना पड़ेगा कि बीच बीच में जो उपमा है वही जल का विलास है । यहाँ उपमा अलङ्कार मात्र का उपलक्षण है ।

उस मानस में पुरइन सघन है । इसमें चारु चौपाइयाँ सघन हैं । वहाँ पुरइन के कारण जल नही दिखाई पड़ता, पुरइन हटाई जाय तो जल दिखाई पड़े । यथा : पुरइन सघन ओट जल, बेगि न पाइय मर्म । यहाँ चौपाई के शब्दो को अलग करे अर्थात् ध्यान दे तब राम सुयशरूपी जल दिखाई पड़े । युक्ति मणि सीप है । उसमे मुक्ता फल छिपा है । मुक्ता फल रामजी के गुणगण हैं । यथा : जस तुम्हार मानस विमल हंसिनि जीहा जासु । मुक्ता हल गुनगन चुनइ राम बसहु हिय तासु । युक्ति उपाय को कहते हैं । जो सिद्धि उपाय से होती है, वह पराक्रम से नही होती । श्रीरामचरितमानस में उपाय : युक्ति की उपमा मोतीवाली सीपी से दी गई है । जो उपाय काम मे लाये गये हैं, उनसे जो गुणगण प्रकट होते हैं, वे ही मोती कहे गये हैं । यथा : रावणवध के लिए युक्ति सरस्वती जी ने की । नाम मथरा मदमती चेरी कै कै केरि । अजस पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि । यह भी सरस्वतीजी ने रामजी का रुख पाकर किया । यथा : तब कछु कीन्ह रामरुख जानी । इससे महाराज दशरथ के पूर्वजन्म के वरदान की पूर्ति हुई । यथा : मम जीवनमिति तुमहि अधीना । साधुओं के लिए प्रेमामृत प्रकट हुआ । यथा : प्रेम अमिअ मंदर विरह भरत पयोधि गँभीर । मथि प्रकटेउ सुर साधु हित कृपा सिंधु रघुवीर । और जगत् का कल्याण हुआ । इस भाँति सभी युक्तियों मे गुणगण निहित है । ये युक्तियाँ सुन्दर हैं । इसलिए 'सोहाई' कहा । इसी भाँति बालि वध, जानकी परित्यागादि युक्तियो मे गुणगण छिपे हुए है ।

छंद सोरठा सुन्दर दोहा । सोइ बहुरंग कमलकुल सोहा ॥
अरथ[1] अनूप सुभाव सुभासा । सोइ पराग मकरंद सुबासा ॥३॥

अर्थ : छन्द सोरठा और सुन्दर दोहे हैं, वे बहुरग के शोभित कमल के फूल हैं अनुपम अर्थ, सुन्दर भाव । और सुन्दर भाषा ही : क्रम से : पराग : फूलो की धूलि, मकरन्द : पुष्परस और सुगन्ध हैं ।

व्याख्या : श्वेत, लाल, नील और पीत, चार रङ्ग के कमल होते है । सात्त्विक श्वेत, राजस लाल, तामस नील और गुणातीत · छन्द, सोरठा, दोहा · को पीत कहा है ।

सात्त्विक यथा : लागे पखारन पाय पकज प्रेम तन पुलकावली ।
राजस यथा : हरित मनिन के पत्रफल पदुमराग के फूल ।
तामस यथा : कोपे समर श्रीराम । चले विसिख निमित निकाम ।
गुणातीत यथा : जयरामरूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही ।

१. यहाँ यथासख्यालङ्कार है ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कमल के कुल का हिसाब दलो की सख्या से है। यथा अष्टदल कमल • नमामि भक्तवत्सल। चौसदल नमामीसमीसान निर्वानरूप। सोलह दल जयराम रमारमन समन। बत्तीस दल परसत पदपावन सोक नसावन प्रगट भई तपपुज सही। इत्यादि।

जैसे पुरइन मे कमल निकलता है उसी भाँति चौपाई से छन्द, सोरठा, दोहा निकलते है। यथा सो वर मिलिहि जाहि मनराचा। यह पुरइन है। इससे कमल निकला 'मन जाहि राच्यौ मिलिहि सो वर सहज सुदर सावरो।

जैसे कमल मे पराग स्पष्ट है। मकरन्द अन्तर्गत है। केवल भौंरे को ही प्राप्त होता है। सुवास दूर तक पहुँचता है। उसी भाँति अर्थ स्पष्ट रहता है। भाव अन्तर्गत रहता है। सुकृतपुज को ही मिलता है। और सुभाषा का प्रसार दूर तक होता है। अर्थ और भाव दूर रहे, केवल पदावली के श्रवण मात्र से मन मोहित होता है। तथा कवितया किवा किवा वनितया तथा। पादनिक्षेपमात्रेण यथा न हरते मन।

कया कविता कया कामिनी दोनो एक समान।
चरन धरत ही मन हरैं तौ कीजिये वखान॥

आधिभौतिक, आधिदैविक और आध्यात्मिक तीनो अर्थों की उपस्थिति ही अनूपता है।

सुकृत पुज मजुल अलिमाला। ग्यान विराग विचार मराला॥
धुनि अवरेव कवित गुनजाती। मीन मनोहर ते बहुभाँती॥८॥

अर्थ पुण्य के समूह ही सुन्दर भौंरो के झुण्ड हैं। ज्ञान, विराग और विचार हस हैं। ध्वनि, अवरेव तथा कविता के गुण और जाति, चार भाँति की मनोहर मछलियाँ हैं।

व्याख्या उस कमल के रस की प्राप्ति तो सुकृतपुञ्ज भौरो को ही होती है। पराग और सुगन्ध के ता अधिकारी अनेक हैं। इसी भाँति भाव का आस्वादन तो सुकृतपुञ्ज ही करते हैं, अर्थ और भाषा के अधिकारी तो बहुत लोग हैं। ज्ञान राजहस, विराग कलहस और विचार हस है। यथा सखी सग लै कुँअरि तब चलि जनु राज मराल। बोलहि जलकुक्कुट कलहसा। क्षीर नीर विवरन गति हसी। धुनि वर्ण अर्थ ते अधिक कछु उपजावै जो बात। ध्वन्यात्मक सो कहत हैं, जिनकी मति अवदात। यथा पुनि आउब एहि बिरिआ काली। अर्थात् इस समय चलो।

अवरेव अवर+इव=अवरेव। अवर के ऐसा होना अर्थात् उत्तम न होना। जहाँ व्यग्यार्थ वाच्यार्थ से उत्तम नहीं होता उसे गुणीभूत व्यग्य कहते हैं। उसे ही यहाँ अवरेव कहा है। काव्य के दो ही भेद हैं १ ध्वनि और २ गुणीभूत व्यग्य। अत अवरेव से यहाँ गुणीभूत व्यग्य ही अभिप्रेत है।

कुछ लोग अवरेव की परिभाषा इस भाँति करते है अन्त को अच्छर आदि धरि, मध्य को अन्त लगाय। या क्रम से जो कीजिये, सो अवरेव कहाय। यथा राम कथा कलिपनग भरनी। यह कथन अवरेव से हुआ। जब अन्त का 'भरनी' शब्द आदि म रख दिया भरनी राम कथा कलिपनग तब ऐसा रूप

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हो जाने से अर्थ स्पष्ट हो जाता है। वे इसी अवरेव को 'बामी' मछली कहते हैं। यह मुख और पूंछ मिलाकर चलती है। परन्तु इतने फटाटोप की क्या आवश्यकता है, यह तो सीधे-सीधे अन्वय है।

कोई इसे कपडे के काट के आधार पर वक्रोक्ति कहते हैं। परन्तु ध्वनि के साहचर्य से इसे गुणीभूत व्यंग्य कहना ही अधिक उपयुक्त मालूम पडता है।

माधुर्य, ओज और प्रसाद ये कविता के तीन गुण है। केशव कवि ने कविता की चार जाति भी बतलाई हैं। १ कौशिकी २ भारती ३ आरभटी और ४ सात्त्विकी। कहिये केसोदास जहँ करुना हाँस सिङ्गार। सरस करन सुभ भाव जहँ सो कौसिकी विचार। बरनिय जामहँ वीर रस भय अरु अद्भुत हास। कह केसव सुभ अर्थ जहँ सो भारती प्रकास। केसव जा कहँ वीररस अरु वीभत्सक जान। आरभटी प्रारभ यह पद पद जमक बखान। अद्भुत रुद्र सुवीररस समरस करत बखान। सुनतहि समुझत भाव मन सो सात्तकी बखान। इन धुनि, अवरेव, गुण और जाति को चार भाँति की मछली बतलाया है। अन्यत्र भी मछली की चार जाति ही कही हैं। यथा बुधि बल सील सत्य सब मीना। आचार्यो ने उन मछलियो का नाम गिनाया है पहिना, बामी, सिधरी और चेल्हवा। इनमे ध्वनि स्थानीय पहिना है। यह मछली बडी होती है और शीघ्र पकड म नही आती। अवरेव बामी मछली है। मुख पूँछ का आकार एक सा होता है। व्यग्य मुख्यार्थ से अधिक न होने से मेल खा जाता है इसलिए अवरेव को बामी कहा। गुण सिधरी मछली है। छोटी होती है। गोल बाँधकर चलती है। इसी भाँति गुण म विशेप अक्षर के समूहो से काम लिया जाता है। जाति चेल्हवा मछली है। पृथक् रहती है और चमकती है। इसी भाँति जाति मे रस की चमक है और धर्मविशेप के भिन्न होने से ही जाति सज्ञा है।

धुनि, अवरेव, गुण और जाति को मछली इसलिए कहा कि इनका सञ्चार सर से बाहर नही है और इनमे सर की शोभा है।

अरथ धरम कामादिक चारी। कहब ग्यान बिग्यान बिचारी॥
नवरस जप तप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तडागा॥५॥

अर्थ अर्थ, धर्म, कामादिक चारो को और ज्ञान विज्ञान को विचारकर कहेगे तथा नवरस जप, योग और वैराग्य ये सब सुन्दर तडाग के जलचर है।

व्याख्या नौ रस अथ शृङ्गार अरु हास्य करुण अरु वीर। अद्भुत रुद्र विभत्स भय शान्ति कहँ कवि धीर। यहाँ ज्ञान से परोक्षज्ञान, विज्ञान से अपरोक्षज्ञान और वैराग्य से परम वैराग्य कहा। क्योकि इसी रूपक मे ऊपर ज्ञान, विराग और विचार को मराल कह आये हैं। इन जलचरो के फेर मे नही पडना। ये चोट कर बैठते हैं। भक्ति और आनन्द के बाधक हैं।

कामादिक से मोक्ष का भी ग्रहण है। काम के वर्ग म मोक्ष को रखने का यह अभिप्राय है कि काम और मोक्ष साध्य हैं। अर्थ और धर्म साधन हैं। यहाँ भक्तिशास्त्र म मोक्ष से भी सावधान रहना पडता है। यह तो मगर है, निगल ही जायगा,

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



आत्मसात् कर लेगा। यथा सगुन उपासक मोक्ष न लेहीं। तिन कहँ रामभगति निज देहीं। यहाँ अर्थ धर्म, काम, मोक्ष, ज्ञान, विज्ञान, नवरस, जप, तप, योग और विराग सभी का वर्णन है। परिचय सभी से रखना होगा, परन्तु इनके वश में आने से सदा सावधान रहना पड़ेगा। क्योंकि रीझत राम सनेह निसोतें[१]। यहाँ तो एक मात्र ध्येय राम को रिझाना है। वह भक्ति के अतिरिक्त दूसरे उपाय से सम्भव नहीं है।

सुकृती साधु नाम गुन गाना। ते विचित्र जल विहग समाना॥
संत सभा चहुदिसि अँवराई। श्रद्धा रितु बसंत सम गाई॥६॥

अर्थ: सुकृती का गुणगान, साधु गुणगान और नाम गुणगान ये चित्र विचित्र जलपक्षी हैं। और सन्त सभा ही सरोवर के चारों ओर लगी हुई आम की वाटिका है और श्रद्धा को वसन्तऋतु करके वर्णन किया गया है।

व्याख्या: सुकृती गुणगान। यथा: सुकृती तुम समान जगमाहीं। भयउ न है कोउ होनेउ नाहीं। साधु गुणगान। यथा: सुजन समाज सकल गुनखानी। करौं प्रनाम सप्रेम सुबानी। इत्यादि। नाम गुणगान। यथा: बंदी नाम राम रघुबर को। हेतु कृसानु भानु हिमकर को। इत्यादि। ये विचित्र जलपक्षी चक्रवाक, वक, जलकुक्कुट आदि हैं। इसी सरोवर में रहते हैं। कभी बाहर भी विचरण करते हैं। पर जल से दूर नहीं जाते।

तीन प्रकार का सम्बन्ध होता है। १ तद्गत २ तल्लीन और ३ तदाश्रय। सो पुरइन का जलाशय से तद्गत सम्बन्ध है। मछलियों का तल्लीन सम्बन्ध है। वृक्षों का तदाश्रय सम्बन्ध है। सन्तसभा मानस के चारों ओर की आम की बारी है। मानस का कभी नहीं छोड़ती। उससे मानस की शोभा है और मानस उसका आश्रय है। श्रद्धारूपी वसन्त में अमराई आम बारी फलती फूलती है। यहाँ सदा वसन्त रहता है। जहाँ मानस तैयार हुआ वहाँ यह साज आपसे आप जुट जाता है। मछली, कछुआ, पुरइन को कोई बुलाने नहीं जाता।

भगति निरूपन विविध विधाना। छमा दया द्रुमलता विताना॥
सम जम नियम फूल फल ग्याना। हरिपद रस वर वेद बखाना॥७॥

अर्थ: भक्ति निरूपण के अनेक विधान, क्षमा दया पेड़ के लतामण्डप हैं। शम, यम और नियम फूल हैं। ज्ञान फल है और हरि का चरण ही श्रेष्ठ रस है। ऐसा वेदने वर्णन किया है।

व्याख्या: १ रामजी द्वारा, वाल्मीकि द्वारा, भुसुण्डि द्वारा अनेक विधान से भक्ति निरूपण है। २ असह्य बातको सामर्थ्य रहते सह लेना क्षमा है। ३ अनुकम्पा को दया कहते हैं। ये लताओं के मण्डप हैं। इन लताओं ने सन्तविटप को परिवेष्ठित कर रखा है। ४ भीतर की वृत्तियों को रोकना शम है। ५ अहिंसा, सत्य, अस्तेय

---

१ अन्याभिलाषिता शून्यं ज्ञानकर्माद्यनावृतम्।
आनुकूल्येन कृष्णानुशीलनं भक्तिरुत्तमा। भक्तिरसामृतसिन्धु।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह पाँच यम है। ६ शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय, ईश्वरप्रणिधान पाँच नियम है। ये फूल है, जिनसे लतामण्डप की शोभा है और ज्ञान फल है। यह सोपास्ति ज्ञान है, क्योंकि इसका श्रेष्ठ रस हरिपद है। यथा रसो वै स । 'पदरति रस' ऐसा पाठ मानने से अर्थ करना होगा कि हरिचरणो की प्रीति ही रस है।

औरो कथा अनेक प्रसगा । तेइ सुक पिक बहु बरन बिहगा ॥८॥

अर्थ और भी अनेक प्रसङ्ग की कथाएँ है। वे ही तोते, कोकिल आदि अनेक रग के पक्षी है।

व्याख्या ये मानस रस के पक्षी नही है। बाहर से आते है। फलफूल खा पीकर चले जाते है। यथा सुधि करि अबरीष दुर्वासा। तनय ययातिहि यौवन दयऊ। इत्यादि। कुछ के वक्ता शुक व्यासपुत्र है। कुछ के पिक वाल्मीकि है। यथा वन्दे वाल्मीकिकोकिलम्। कुछ के बहुरग विहग व्यासादि है। व्यास आदि कविवर्य बखानी। कागभुसुडि गरुड के ही की।

दो पुलक वाटिका बागबन, सुख सुबिहग बिहारु।
माली सुमन सनेह जल, सीचत लोचन चारु ॥३७॥

अर्थ रामाञ्च ही वाटिका, बाग और वन है। वहाँ सुखरूपी सुन्दर पक्षी बिहार करते है। सुन्दर मनरूपी माली स्नेहरूपी जल से सुन्दर नेत्रो द्वारा उसे सीचता है।

व्याख्या भक्ति का पुलक वाटिका फुलवारी है। जल की नित्य आवश्यकता पडती है। ज्ञान का पुलक बाग फलदार वृक्ष का समूह। यथा चला नाइ सिर बैठेउ बागा है। आठवे सातवें दिन जल चाहिए। कर्म का पुलक वन है, जल का मिलना दैवाधीन है। इनसे जा सुख है सो सुविहग है। ये यही बसते है। यहाँ कुविहग नही बसते। वहाँ देवता की ओर से माली है। वे ही सीचते है। यहाँ वशीकृत मन माली है। वह स्नेहजल से नेत्ररूपी घट द्वारा सीचा करता है।

जे गावहि[१] यह चरित सभारे। तेइ एहि ताल चतुर रखवारे ॥
सदा सुनहि सादर नर नारी। तेइ सुर बर मानस अधिकारी ॥१॥

अर्थ जो लोग इस चरित को सँभालकर गाते है, वे ही इस तालाब के चतुर रखवाले है। जो नर नारी इसे सदा आदरपूर्वक सुनते है, वे ही मानस के अधिकारी श्रेष्ठ देवता है।

व्याख्या इस चरित के गान करनेवाल व्यासो पर बडा भार जिम्मेदारी है, क्योकि वे ही रखवाले है। पनघट मे पुरुष न जाने पावे और पुरुषो के घाटपर स्त्री स्नान न करें। कोई गन्दी वस्तु जल म न पडने पावे, यह काम रखवाले का है। इसी भाँती साधन भक्ति से ज्ञानप्राप्ति तथा साधन भक्ति से सिद्धि भक्ति प्राप्त करने के रास्ते भिन्न भिन्न है। अत श्रोताओं को बराबर अपने अपने मार्ग से चलने

१ मुद्रालङ्कार है।

4364
...ोध प्रतिष्ठान

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



के लिए सचेत करना, चरित्रगान करनेवाले व्यासो का काम है। तथा जैसा प्राचीन पाठ है उसमे उलट पलट न होने पावे, अर्थ का अनर्थ न होने पावे, इस बात पर स्वय ध्यान रक्खें, और दूसरो को ऐसा करने से रोकें। इन सब बातो का सँभाल रखना भी उन्ही का काम है। इसीलिए 'चतुर रखवाले' कहा।

'आदर के साथ जो नर नारी नियमपूर्वक नित्य सुनते है, वे उसी भाँति रामचरित के अधिकारी है जिस भाँति देवगण मानससरोवर के अधिकारी हैं। भाव यह कि यहाँ श्रोता का पद वक्ता से बडा है। वक्ता रखवाला है और श्रोता अधिकारी है। श्रोताओ की कुरुचि से वक्ता बिगड जाते हैं और श्रोताओ की सुरुचि से वक्ताओ मे सुधार होते देखा गया है।

अति[1] खल जे बिपई बक कागा। एहि सर निकट न जाहि अभागा ॥
सबुक भेक सेवार समाना। इहाँ न बिषय कथा रस नाना ॥२॥

अर्थ जो अत्यन्त खल और विषयी बक काग है, वे अभागे उस सर के निकट नही जाते। यहाँ घोघे, मेढक और सेवार के समान विषय कथा तथा नाना रस नही हैं।

व्याख्या दाम्भिक होने से बक अति खल है। वे ध्यान नाट्य करते हुए हिंसा करते है। काग विषयी है। यथा वायस पलिअहि अति अनुरागा। कबहुँ निरामिष होहि कि कागा। इनसे विषय छूट नही सकता। वे इस सर तालाब के निकट नही जाते। न जाने म अभाग कारण है। पापवत कर सहज सुभाऊ। भजन मोर तेहि भाव न काऊ।

विषय कथा को घोघा, मेढक कहा और नाना रस को सेवार कहा। सेवार मे सूक्ष्म कीट होते है। बक, काग इनके भक्षक है। विषयियो को विषय कथा श्रवण मे विषय का मानसिक आस्वादन होता है। इसलिए उन्हे विषयकथा प्रिय है। उसके सुनने के लिए वे लालायित रहते हैं। नाना रसनिरूपण मे भी विषय रस का सूक्ष्म आस्वादन होता है, अत वह भी प्रिय है। रामचरित मे यदि नाना रस भी आये है, तो वे भी भक्ति से मिश्रित है। अत विषयी जीवो के काम के नही। अत वे रामकथा के निकट नही आते। उन्हे जन्म-मरणरूपी ससार मे बहुत भटकना है। इसलिए उन्हे अभागा कहा।

तेहि कारन आवत हिअँ हारे। कामी काक बलाक बिचारे ॥
आवत एहि सर अति कठिनाई। राम कृपा बिनु आइ न जाई ॥३॥

अर्थ इस कारण से हृदय से हारे हुए, यहाँ कामी काक और बेचारे बगले आते है। इस सर पर आने म बडी कठिनता है। बिना राम की कृपा के आते नही बनता।

व्याख्या : काक और बगले हियहारे आवत, अर्थात् बिना मन के आते है,

---

१. रूपक अभेद न्यून।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



क्योकि वहाँ उनको चारा नही मिलता, अत उन्हे 'वे चारे' कहा। इसी भाँति अति खल और विषयी जन रामचरित के निकट हिय हारे और वे चारे होकर आते हैं, यदि चारा चले तो न आवें।

आने मे भी साधारण कठिनता नही है, बडे-बडे विघ्न है, जिनका आगे वर्णन करेगे। राम कृपा से विघ्न की बाधाएँ हटती हैं, तभी मनुष्य आने मे समर्थ होता है। यथा सकल विघ्न व्यापँ नहि तेही। राम सुकृपा बिलोकहि जेही।

कठिन कुसग कुपथ कराला। तिन्हके वचन वाघ हरि व्याला ॥
गृह कारज नाना जजाला। तेइ अतिदुर्गम सैल बिसाला ॥८३॥

अर्थ कठिन कुसग ही भयानक बुरा रास्ता है, उनके वचन व्याघ्र, सिंह और सर्प हैं। घर के काम और अनेक प्रकार की उलझनें, ये ही अत्यन्त दुर्गम बडे-बडे पर्वत हैं।

व्याख्या सुत, दार, अगार, सखा, परिवार बिलोकु महा कुसमाजहि रे। कवित्त रा०। इन्ही का सग कुसग है, छूटता नही, इसीसे कठिन कहा। इसी की उपमा कराल पन्थ से दी, प्राण लेकर ही छोडता है। व्याल का अर्थ सर्प और दुष्ट हाथी भी है। कराल पन्थ मे व्याघ्र, हरि और व्याल की बाधा रहती है यहाँ पिता का वचन सिंह, भाई का वचन व्याघ्र और स्त्री-पुत्र के वचन सर्प या दुष्ट हाथी हैं।

गृहकार्य अर्थात् शास्त्रोक्त, घर का काज और जजाल अर्थात् ससारी झमेला बडा भारी दुर्गम पहाड है। पहाड पर पगडडी का रास्ता ऐसा भयानक होता है कि पैर रखते ही सारा शरीर डगमगाने लगता है। किसी भाँति एक पर्वत पार भी करे तो पार करने के पहिले ही दूसरा पहाड उससे भी ऊँचा दिखाई पडने लगता है। इसी भाँति गृहस्थी का कार्य किसी भाँति पूरा भी करे तो उसकी पूर्ति के पहिले ही, उससे कही अधिक आवश्यकीय कार्य का सूत्रपात हो जाता है।

वन बहु विषम मोह मद माना। नदी कुतर्क भयकर नाना ॥५॥

अर्थ मोह, मद, मान बडे विषम बीहड वन है और नाना कुतर्क भयकर नदी है।

व्याख्या पहाड पर जाने का रास्ता चक्करदार होता है। घूमता हुआ पहाड पर जाता है और कही जो नदी पहाड काटकर आयी है, उसका तीर पकडना पडता है। पहाड पर वन ही वन है। यहाँ मोह, मद और मान को वन कहा। इसम पडकर मनुष्य मार्गभ्रष्ट हो जाता है और अनेक प्रकार का भय, विषाद और सन्ताप सहता है। एक एक नदी ऐसी विकट मिलती है कि उसका पार होना असाध्य व्यापार मालूम होता है। कुतर्क को नदी कहा। एक कुतर्क का पार पाना कठिन है। यहाँ तो नाना कुतर्क हैं।

यहाँ ग्रन्थकार सम्भवत निपनिया घाटी की चढाई का उल्लेख कर रहे है। जिसे मानस के यात्री को पार करना ही पडता है। ऊपर दृष्टि दीजिये तो भयङ्कर पहाडो की चट्टानें साक्षात् यम की भाँति डराती हैं। और नीचे अन्धकूप की भाँति

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हजारो फीट गहरी खाई । यात्री के मुख से राम का नाम निकलना कठिन हो जाता है । सिर घूमने लगता है । दृष्टि, पाव रास्ते पर ही जमे रहते हैं ।

दो जे श्रद्धा सवल रहित, नहि सतन्ह कर साथ ।
तिन्हकहँ मानस अगम अति, जिनहि न प्रिय रघुनाथ ॥३८॥

अर्थ जिन्हे श्रद्धारूपी राहखर्च नही है, न सन्तो का साथ है और रघुनाथ प्रिय नही हे उन्हे मानस अत्यन्त अगम है ।

व्याख्या यात्रा के लिए तीन बाते आवश्यकीय है । १ पहिले तो अपने पास राह खर्च होना चाहिए । २ रास्ता दिखानेवाला चाहिए । ३ यात्रा का लक्ष्य कोई प्रिय पदार्थ चाहिए । जब यह तीनो बात एकत्रित हो तभी यात्रा सम्भव है । मानस मानसरोवर की यात्रा म कोई सामान रास्ते म नही मिलता । यहाँ तक कि कुछ दूर तक लकडी भी नही मिलती । इसलिए सामान साथ चाहिए । रास्ता किसी का देखा नही है । वहाँ की यात्रा साधु लोग ही करते है । उन्ही को रास्ता मालूम हैं । उनका साथ मिले तभी यात्रा हो सकती है । पर, इतना सकट और खतरा तो वही उठा सकता है जिसे भगवान् प्रिय हो । उन्ही की प्राप्ति के लिए यात्रा की जाती है ।

इस भाँति रामचरितमानस की कथा तक पहुँचना बडा कठिन है । यहाँ श्रद्धा ही संवल है । जिसे श्रद्धा नही वह नही जा सकता । सन्त का साथ हो तो वे राम कथा तक पहुँचा द, नही तो नही पहुँच सकता । जिसे रघुनाथ प्रिय नही है वह कथा मे जाकर व्यर्थ समय का अपव्यय क्यो करेगा ।

वस्तुत वडे ही अनुभव की बात ग्रन्थकार ने कही । भगवान् की अति उत्तम कथाएँ जहाँ तहाँ होती है, पर कुछ ही लोग वहाँ तक पहुँच पाते है । दूर दूर से लोग आ जाते है और सन्निकट के लोग नही पहुँच पाते है ।

जौ करि कष्ट जाइ पुनि कोई । जातहि नीद जुडाई होई ॥
जडता जाड विषम उर लागा । गएहुँ न मज्जन पाव अभागा ॥१॥

अर्थ यदि कोई मनुष्य कष्ट उठाकर वहाँ तक पहुँच भी जाय तो वहाँ जाते ही उसे नीदरूप जूडी घेर लेती है । उसके हृदय मे जडतारूपी जाडा ऐसा लगता है कि पहुँचने पर भी अभागा स्नान नही कर पाता ।

व्याख्या विना श्रद्धा और सन्तो के साथ के और विना रघुनाथ की प्रीति के कोई ही पहुँचता है सो भी अतिकष्ट से पर, उसे कोई लाभ नही होता । क्योकि उसे नीदरूपी जूडी जडैया बोखार आ जाती है । जिस भाँति जूडी आजाने से मानस मे स्नान, आचमन नही हो सकता उसी भाँति नीद आजाने से कुछ कह सुन नही सकता । 'उरलागा' कहने का भाव यह है कि जाडा कलेजे मे पैठ जाता है । किसी प्रकार हटता नही । पुरुषार्थ करने पर भी फलसिद्धि नही हुई । इसलिए अभागा कहा । मानस के यात्री श्रीशिवनन्दन सहायजी कैलासदर्शनकार लिखते है सर्दी की प्रबलता बढ गई । मुझे बेहोशी आने लगी । विना यात्रा किये कोई 'जडता

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जाइ विषम उरलागा' नही लिख सकता। इसी भाँति, अभागो को रामकथा मे पहुँचने पर नीद आ जाती है। कितना भी पार्श्ववर्ती लोग सावधान करते हैं, पर वह नीद टूटती ही नही।

करि न जाइ सर मज्जन पाना। फिरि आवै समेत अभिमाना ॥
जौ बहोरि कोउ पूछन आवा। सरनिंदा करि ताहि बुझावा ॥२॥

अर्थ उससे उस सर मे न तो स्नान किया जाता है और न जल ही पीया जाता है। वह अभिमान के साथ लौट आता है। यदि फिर कोई उससे पूछने आता है तो सरोवर की निन्दा करके उसे समझा-बुझा लेता है।

व्याख्या रामचरित कहना मज्जन है और सुनना पान है। यथा मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत एक हर अविवेका। सो वह न तो रामचरित के विषय मे कोई चरचा कर सकता है और न उसका श्रवण ही कर सकता है, जाना एकदम निष्फल हुआ। वह अभिमान लिये हुए लौट आता है। यदि कथाश्रवण किये होता तो अभिमान खोकर लौटता। यदि मज्जन पान किये होता तो उस सरोवर मे निन्दाबुद्धि न होती। घरपर शोर हो जाता है कि अमुक व्यक्ति मानससर की यात्रा करके लौटा है। तीर्थ करके लौटे हुए लोगो के चरण स्पर्श करने आलिङ्गन करने मे लोग पुण्य मानते हैं। लोग उत्कण्ठा से भी तीर्थ का वर्णन सुनने आते है, तो वह मानससर की निन्दा करके उन्हे इस भाँति समझा बुझा देता है कि फिर वे मानससर का नाम न ले। यथा

क मानसर मानसर सोर चहुँओर सुन्यौ, पडित बखानै मानसर अतिनीको है।
देखो तो पखान सूनसान सो मसान जैसो, मारग अगम वेग विषम नदी को है॥
मनमे उचाट, बाट श्रमते शिथिल गात, तीरथ नहि जुलुम जवाल यह जीको है।
लीजिये न नाम काम कीजिये आपनो जाय, ऊँची है दुकान पकवान तहँ फीको है॥
पग पग मगबीच मीचही दिखाई देत, नाकदम आवै निशिदिन दुख झेलते।
गाजपरे ऐसे देश जहँ सुख लेश नही, जूडी चढै आँखिन तुषार गिरि देखते॥
शूल उठै सिर मे प्रचण्ड हिय हूल उठै, कूलते कराल उठै बान अग बेधते।
मानस तलैया से तलैया भली गावही की, कूदि कै कलैया छोटे छैया जहाँ खेलते॥

सकल विघ्न व्यापहि नहि तेही। राम सुकृपा बिलोकहि जेही ॥
सोइ सादर सर मज्जनु करई। महा घोर त्रयताप न जरई ॥३॥

अर्थ ये सम्पूर्ण विघ्न उसे नही व्यापते जिसे रामजी सुन्दर कृपा की दृष्टि से देखते हैं। वही आदरपूर्वक उस सरोवर मे स्नान करता है और महा भयकर तीनो प्रकार के तापो से नही जलता।

व्याख्या अब अधिकारी कहते हैं। विघ्न तो होते ही है पर उसे नही व्यापते। आज भी मानससर की कठिनाई का वे ही सामना कर सकते है जिन पर रामजी की कृपा हो। 'पछी पग ध्यान मुख राम राम' की कहावत मानस के मार्ग की कठिनाई की ही द्योतक है। इसी भाँति जिसपर रामजी की कृपा होती है वह

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



गृह कारज नाना जजाल के रहते हुए भी रामकथा के श्रवण के लिए समय निकाल ही लेता है।

जिस पर रामकृपा होती है वही आदर के साथ मानससरोवर मे स्नान करता है। अर्थात् आदरपूर्वक रामकथा का श्रवण करता है और महाघोर जो तीनो ताप हैं १ आधिभौतिक २ आधिदैविक ३ आध्यात्मिक उनसे जलता नही। यथा मनकरि विषय अनल वन जरई। होइ सुखी जौ एहि सर परई। कैलासदर्शनकार लिखते है कि मैं दूर तक मानससरोवर के जल मे चला गया। जो आनन्द मानस-सरोवर के स्नान से मिला वह लेखनी द्वारा व्यक्त नही किया जा सकता। गोता लगाते ही मार्ग के सम्पूर्ण कष्ट विस्मृत हो गये। थकावट जाती रही।

सो जिस पर रामकृपा नही, उसका मन विषयरूपी दावानल मे जला करेगा फिर भी वह मज्जन नही कर सकेगा। हरिकथा-श्रवण उसके भाग्य मे नही है।

ते नर यह सर तजहि न काऊ। जिन्हके रामचरन भल भाऊ॥
जो नहाइ चह एहि सर भाई। सो सतसग करौ मन लाई॥४॥

अर्थ वे मनुष्य इस सरोवर को कभी नही छोडते, जिनके हृदय मे रामजी के चरणो मे भल दृढ भाव है। जो इस सरोवर मे स्नान करना चाहे वह जी लगाकर सत्सङ्ग करे।

व्याख्या जितने सहृदय यात्री मानससरोवर के है वे सभी एक स्वर से वहाँ की अपार शोभा और अलौकिक छटा का वर्णन करते है और कहते हैं कि वहाँ से लौटने की इच्छा नही होती। विरक्त महात्मा तो वहा रह ही जाते हैं। इसी भाति जिन्हें रामजी के चरणो मे दृढ अनुराग है वे रामचरित्र म ही मन को बसा देते हैं। यथा सत सभा चहुँ दिसि अँवराई।

'कहत सुनत हरखहि पुलकाही। ते सुकृती मन मुदित नहाही। रामकथा कहने सुनने मे हरखित और पुलकित होने की याग्यता बिना सत् सङ्ग के नही होती और न बिना सत्सङ्ग के रामचरित तक पहुँच ही हो सकती है। सो सत्सङ्ग भी जी लगाकर करे, बेगार टालने से काम नही चलेगा। सत्सङ्ग मानस सर तथा रामचरित सर दोनो के लिए उपयोगी है और सत्सङ्ग सबको सब देशम सुलभ है।

अस मानस मानस चप चाही। भइ कवि बुद्धि विमल अवगाही॥
भयउ हृदय आनद उछाहू। उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू॥५॥

अर्थ ऐसे मानस को मानस के नेत्रो से देखकर और उसमे स्नान करके कवि की बुद्धि निर्मल हो गई। हृदयमे आनन्द उत्साह भर गया और प्रेम व प्रमोद का प्रवाह उमड आया।

व्याख्या पहिले कहा था जस मानस जेहि विधि भयउ, जगप्रचार जेहि हेतु। सो पहिले 'जेहि विधि भयउ' का वर्णन किया तब 'जस मानस' का निरूपण किया। अब उपसहार करते हुए कहते हैं अस मानस। इसके बाद 'जग प्रचार जेहि हेतु' का वर्णन करेगे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जब मानस बन गया तो उसे मानस नेत्र से कवि ने देखा। यही वस्तुत रामचरित सर का मानचित्र था। बुद्धि ने उसमे प्रवेश किया, उसमे डूबाडूब हुई। बुद्धि का मल दूर हुआ। इसी बात को कवि ने कहा कि स्नान करके बुद्धि निर्मल हुई।

पहिले मानस मे जो जल था, वर्षा हुई तो उमग चला। यहाँ भी गुरुजी से सुना था सो मन मे था, सन्तो से सुना तो उमग चला। भीतर भीतर सब मसाला तैयार था, कलम चलने की देर थी। सो आनन्द का उछाह होते ही जो प्रेम प्रमोद का प्रवाह उमगा तो नदी की भाँति कविता बह चली। लिखना कठिन हो गया। नदी मे जल भरा रहता है। कविता नदी मे रामयश भरा था। नदी मे प्रवाह उमगता है। यहाँ प्रेम प्रमोद उमगा। रोके न रुका।

**चली सुभग कविता सरिता सो। राम विमल जस जल भरिता सो॥**
**सरजू नाम सुमगल मूला। लोक वेद मत मजुल कूला॥६॥**

अर्थ कविता सुन्दर नदी सी वह निकली। जिसमे रामजी का विमल यश रूपी जल भरा हुआ है। उसका नाम सरयू है जो सारे मङ्गलो का मूल है। लोकमत और वेदमत उसके दोनो सुन्दर किनारे हैं।

व्याख्या मानस जो उमगा तो सरयू[1] नदी निकली और कवि के मानस के उमग मे कवितारूपी सरयू निकली। दोनो सरयू सुमगल मूल है। यथा जा मज्जनते बिनहि प्रयासा। मम समीप नर पावहि बासा। तथा, जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई। लोकमत दक्षिण कूल है और वेदमत वाम कूल है। दोनो सुन्दर हैं।

**नदी पुनीत सुमानस नदिनि। कलिमल तृन तरु मूल निकदिनि॥७॥**

अर्थ यह पवित्र नदी मानसर की कन्या है। कलियुग के पापरूपी तृण और वृक्ष के मूल को खोद बहानेवाली है।

व्याख्या सरयू मानस से उत्पन्न है, इसलिए मानस नन्दिनी बेटी कहा। बेटी कुछ अश मे माँ के सदृश होती है और कुछ अश मे नही होती। मानस तो साठ मील के भीतर ही भीतर चारो घाटो से परिवेष्टित है। पर सरयू यद्यपि चारो घाटो के जल से ही भरी है तथापि वह और नदियो से जाकर मिली है। उसका प्रचार कई प्रान्तो मे हो गया है। मानस की गहराई २६४ फीट तक है। पर सरयू

---

१. कैलासपर्वते राम मनसा निर्मित सर। ब्रह्मणा नरशार्दूल तेनेद मानस सर॥
तस्मात् सुस्राव सरस सयोध्यामुपगूहते। सर प्रवृता सरयू पुण्या ब्रह्मसरश्च्युता॥
वा रा

अर्थ हे रामजी कैलास पर्वत मे ब्रह्मदेव के मन से निर्माण किया हुआ सर है। इसी से उसका नाम मानस सर है। उसी से सरयू निकली है जो अयोध्या से जा मिली है। यह पुण्यनदी है क्योकि मानससरोवर से निकली है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



की गहराई कदाचित् ही कही तीरा फुट हो। अत कविता द्वारा जिस कथा का प्रचार प्रान्तो मे हुआ उसमे मूल की अपेक्षा बहुत कम गहराई होना स्वाभाविक है।

क्षुद्रपाप तृण और महापाप वृक्ष है इन्हे कवितारूप सरयू जल से धो वहाती है। क्योकि सरयू नदी मानसनन्दिनी है। जल से भरी है। कवितारूपी सरयू सुमानस-नन्दिनी है। रामयश से भरी है।

दो. श्रोता त्रिविध समाज पुर, ग्राम नगर दुहु कूल।
संत सभा अनुपम अवध, सकल सुमगल मूल ॥३९॥

अर्थ तीनो प्रकार के श्रोताओ का समूह ही दोनो किनारो के पुर, ग्राम और नगर है और सब मङ्गलो की मूलभूता सन्तो की सभा ही अनुपम अयोध्या है।

व्याख्या ' तीन प्रकार के श्रोता होते हैं। १ विमुक्त २ विरत और ३ विषयी। यथा सुनहि विमुक्त, विरत अरु विषयी। लहहिं भगति, गति, सपति नई। विषयी जनो का समाज वडा भारी है। इसे नगर कहा। विरत वहुत कम हैं। यथा ' धर्म-सील कोटिन्ह महँ कोई। विषय विमुख विरागरत होई। अत उनके समाज को ग्राम कहा। विमुक्त तो विरला ही कोई होता है। यथा कोटि विरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यग ज्ञान सकृत कोउ लहई। सो इनका समाज वहुत ही विरल है, इसलिए इसे पुर कहा। जिस भाँति सरयू के दायें वायें पुर, ग्राम, नगर वसे हैं और वे सब पावन हैं। उसी भाँति कविता सरयू के वेदप्रधान तट तथा लोकप्रधान तट पर विमुक्त, विरत और विषयी श्रोताजन का समाज है और यह सब पावन है। सरयू के तट पर अवधपुरी है। पुरी राजधानी को कहते हैं, अवधपुरी रामजी की राजधानी है। यथा आनँद अवधि अवध रजधानी। यह पुर, ग्राम, नगर, सभी से अधिक पावनि और मङ्गलकरणि है। इसलिए इसे अनुपम कहा। इसी भाँति कवितासरयू के श्रोतावर्ग मे साधुसमाज है। यह रामानुरागी समाज तीनो विमुक्त, विरत और विषयी समाज से अधिक पावन और मङ्गलमूल है। धर्म निरत पडित विज्ञानी। जीवन्मुक्त ब्रह्म पर प्रानी। सबते सो दुर्लभ सुर राया। राम भगति रत गत मद माया। अत रामानुरागी साधु समाज अनुपम है। इसे पाकर रामकथा की महिमा अत्यन्त वढ जाती है।

रामभगति सुरसरितहि जाई। मिली सुकीरति सरजु सुहाई॥
सानुज राम समर जसु पावन। मिलेउ महानदु सोन सोहावन ॥१॥

अर्थ सुकीर्तिरूपी सरयू जाकर रामभक्तिरूपी गङ्गा से मिली। छोटे भाई के सहित रामजी का समरयश महानद सोन उसमे जा मिला।

व्याख्या यहाँ स्वायम्भु मनु और शतरूपा का चरित रामभक्तिरूप है। आदि मे भक्ति यथा जनम गयउ हरि भगति विनु। मध्य मे भक्ति यथा ग्यान भक्ति जनु धरे सरीरा। अन्त मे भक्ति यथा दपति उरधरि भगति कृपाला। इसलिए इसे भक्तिरूपी गगा कहा। इसी मे उत्तर से आकर सुकीर्तिरूपी सरयू मिली अर्थात् यह कविता सरित् भक्तानुग्रहयश से परिपूर्ण थी। परन्तु लक्ष्मणजी के सहित रामजी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



का पावन समरयश दक्षिण से इधर आया। मारीच, सुबाहु आदि से युद्ध सिद्धाश्रम मे हुआ। यह गङ्गाजी से दक्षिण पड़ता है। यह समर मुनि जी के यज्ञ की रक्षा के लिए हुआ। इसलिए पावन कहा।

शोन का अर्थ ही लाल है। लालरङ्ग सभी रंगो मे उग्र है अत. शोन को समरयश कहा। यह महानद दक्षिण से आकर भक्ति गङ्गा में ही लीन हुआ।

जुगबिच भगति देवधुनि धारा। सोहति सहित सुबिरति बिचारा ॥
त्रिबिध ताप त्रासक त्रिमुहानी। रामसरूप सिंधु समुहानी ॥२॥

अर्थ : दोनो के बीच मे भक्तिरूपी गङ्गा की धारा, सुन्दर विराग और विचार के सहित शोभित है। ऐसी त्रिविध ताप को भय देनेवाली त्रिमुहानी, रामस्वरूप सिन्धु के सम्मुख चली।

व्याख्या : उत्तर से भक्तानुग्रह यश से परिपूर्ण सरयू आई और दक्षिण से सानुज समरयश मे पूर्ण शोन महानद आया। दोनो भक्ति गङ्गा से जो विरति विचार के साथ शोभित थी, मिल गये। यहाँ 'होइ न विषय विराग भवन बसत भा चौथपन। हृदय बहुत दु ख लाग, जनम गयउ हरि भगति बिन' यह विचार है, और 'बरबस राज सुतहि नृप दीन्हा। नारि समेत गमन बन कीन्हा।' यह विरति है। इसलिए 'सोभित सहित सुविरति विचारा।' कह रहे हैं। सरयू और सोन के गङ्गा मे मिलने से तिमुहानी का रूप हो गया। यह तिमोहानी ऐसी है कि इसे देखकर तीनो ताप[1] डर जाते है। अब सबको लिये दिये गङ्गा समुद्र की ओर चली।

यहाँ रामस्वरूप ही सिन्धु है। भक्ति गङ्गा उपर्युक्त सरितो को अपने मे मिलाये रामस्वरूप की ओर उन्मुख हुई। अर्थात् कवि की चित्तवृत्ति कल्याणवहा[2] हो गई।

गण्डकी नदी ही अवध की पूर्वी सीमा है। इसके बाद बोली बदल जाती है। इसलिए इस रूपक में उतने ही नदीनद परिगृहीत हैं। इनके निवासी उस भाषा को बोलते और समझते है जिसमे यह रामचरितमानस लिखा गया है। अर्थात् गङ्गा, यमुना, सरयू और सोन तक हिन्दी भाषी संसार है।

मानसमूल मिली सुरसरिही। सुनत सुजन मन पावन करही ॥
बिचबिच कथा बिचित्र बिभागा। जनु सर तीर तीर बन बागा ॥३॥

अर्थ : जिसका मूल मानस है वह सरयू, गङ्गाजी मे जा मिली। यह सुनते ही सुजन के मन को पवित्र कर देती है। बीच बीच में जो कथाओ के विचित्र विभाग हैं वे ही नदी के तीर के वन और बाग हैं।

---

१. आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक।

२. चित्त नदी दोनो ओर बहती है। जब पाप की ओर बहती है तो उसे पापवहा कहते हैं। जब कल्याण की ओर उसका प्रवाह हो जाता है तो उसे कल्याणवहा कहते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या जिस मानससर से सरयू निकली है वह तो तिब्बत के पास है। परन्तु इस मानस का स्थान तो मन है। वही से कविता सरिता उद्भूत होकर भक्ति मे जा मिली और भक्तिमय हो गई। इस बात के सुनने मात्र से सुजन का मन उसी भाँति पवित्र होता है जिस भाँति उस मानससर से निकली हुई सरयू और गङ्गा के सङ्गम पर स्नान करने से शरीर पवित्र हो जाता है।

सरयू नदी के मानससर से निकलने के बाद और गङ्गा मे मिलने से पहिले तटो पर अनेक बाग और वन मिलते हैं। बाग सुखदायक होता है। यथा ' बाग तडाग विलोकि प्रभु हरखे बन्धु समेत। और वन दु खदायक होता है। यथा डरपहि धीर गहन सुधि आये।

इसी भाँति इस कवितारूपी सरयू के किनारे किनारे भी विचित्र कथा विभाग है। जो बाग और वन स्थानीय हैं। सती मोह, नारद मोह, भानु प्रताप की कथाएँ वन हैं। इनमे सती, नारद और भानुप्रताप सभी रास्ता भूल गये और कष्ट उठाया। पार्वती जन्मकथा, तपस्याकथा बाग है। इनमे ही सुख हुआ।

उमा महेस बिवाह बराती। ते जलचर अगनित बहु भाँती ॥
रघुबर जनम अनद बधाई। भँवर तरग मनोहरताई ॥४॥

अर्थ शिव-पार्वती के विवाह के बराती ही अनेक प्रकार के असख्य जलजीव हैं। रामचन्द्र के जन्म की आनन्द बधाई ही इस नदी के भँवर और तरगो की मनोहरता है।

व्याख्या जलचर बदल गये। मानस मे नरवस जपतप जोग बिरागा। ते सब जलचर चारु तडागा थे। सरयूजी मे उतनी गहराई नही है। इसलिए दूसरे प्रकार के जलचर वर्णन किये। यहाँ महादेवजी के बराती जलचर हैं। भाव यह कि महादेवजी की बरात इष्टदेवो की बारात है। 'यजन्ते सात्त्विका देवान् यक्षरक्षासि राजसा। प्रेतान् भूतगणाश्चैव यजन्ते तामसा जना। सात्त्विक लोगो के इष्ट देवता हैं। वे देवताओ को पूजते है। राजस लोगो के इष्ट यक्षराक्षस हैं। वे इनकी पूजा करते है। तामस लोगो के इष्ट भूत, प्रेत हैं। वे इनकी उपासना करते हैं। इन्हे जलचर इसलिए कहा कि महादेव के बराती देव, राक्षस, यक्ष, भूत, पिशाच सभी थे। पर वे रामयश मे विचरण करनेवाले थे। जलचर के वश मे पडा हुआ पुरुष बडी विपत्ति म पडता है। अत इनके वश मे पडने से रामभक्ति नही मिल सकेगी। जन्म मरणरूप ससार के चक्र म ही पडे रह जायँगे। महादेवजी की बारात मे देवता यथा हिय हरखे सुरसेन निहारी। हरिहि देखि अति भये सुखारी। राक्षस भूत प्रेत आदि यथा मग भूत प्रेत पिशाच जोगिनि बिकटमुख रजनीचरा सभी थे। भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्। भूतो को पूजनेवाले भूतो को प्राप्त होते है और भगवान् के पूजनेवाले भगवान् को प्राप्त होते हैं।

रामजी के जन्म म जो आनन्द हुआ वह तो कवितासरिता का भँवर है और जो बधाई हुई वह तरग है। तरग ऊपर ले जाता है और भँवर नीचे डुबाता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तरंग, यथा बृंद बृंद मिलि चली लोगाई । सहज सिंगार किये उठि धाई ॥
कनक कलस मंगल भरि थारा । गावत पैठहिं भूप दुआरा ॥
करि आरती नेछावरि करहीं । बारबार सिसु चरनन्हि परहीं ॥
भँवर यथा सुमन वृष्टि आकास ते होई । ब्रह्मानंद मगन सब लोई ॥
कागभुसुंडि संग हम दोऊ । मनुज रूप जानहि नहि कोऊ ॥
परमानंद प्रेम सुख फूले । बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले ॥

दो० बालचरित चहुँ बंधु के, बनज बिपुल बहु रंग ।
नृप रानी परिजन सुकृत, मधुकर बारि बिहंग ॥४०॥

अर्थ चारो भाइयो के जो बालचरित हैं वे ही रंग रंग के अनेक कमल हैं। राजा और रानी तथा कुटुम्बियो के पुण्य ही भ्रमर तथा जलपक्षी हैं।

व्याख्या पहिले कह आये हैं कि कवियो ने सत्त्वगुण का श्वेत, रजोगुण का लाल, तमोगुण का नीला तथा गुणातीत का पीला रंग माना है। बाललीला में सभी प्रकार के चरित होते हैं, इसलिए 'बनज बिपुल बहु रंग' कहा।

राजसिक चरित कबहूँ ससि लागत आरि करैं, कबहूँ प्रतिबिम्ब निहारि डरैं।
सात्त्विक कबहूँ करताल बजाइ के नाचत, मातु सबै मन मोद भरैं॥
तामसिक कबहूँ रिसियाइ रहैं हठि कै, पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
गुणातीत अवधेस के बालक चारि सदा, तुलसी मनमंदिर मे बिहरैं॥

नृप और रानी के सुकृत को मधुकर कहा। मधुकर कमल का रस लेता है। उसे जूठा कर देता है। इसी भाँति राजा रानी बच्चो को चूमते चाटते है। कुटुम्बियो को जलपक्षी कहा। वे भी कमल के साथ कलोल करते हैं। परन्तु मधुकर की भाँति मकरन्द के अधिकारी नही है।

सीय स्वयंबर कथा सुहाई। सरित सुहावनि सो छबि छाई॥
नदी नाव पटु प्रस्न अनेका। केवट कुसल उतर सबिबेका॥१॥

अर्थ सीताजी के स्वयंवर की जो सुन्दर कथा है, वही इस सुहावनी नदी मे लाई हुई छवि है। अनेक प्रकार के उत्तम प्रश्न ही इस नदी म नाव हैं और उनके विवेकमय उत्तर ही चतुर केवट है।

व्याख्या सीयस्वयंबर कथा म राम-जानकी की छवि का वर्णन है। रामकथा सरिता मे जो छवि वर्णन है वह प्रायेण इसी युगलमूर्ति का है। इसीलिए सरित सोहावनि सो छवि छाई कहा।

रामछवि यथा सखि इन कोटि काम छबि जीती। यह छबि सखी पटतरिअ जाही। देखि राम छबि कोउ एक कहही। बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू। थके नयन रघुपति छबि देखे। मुख छबि कहि न जात मोहि पाही। निरखि निरखि रघुबीर छबि। नखसिख मंजु महा छबि छाए।

सीताछवि यथा छबि गृह दीप सिखा जनु बरई। सियमुख छबि बिधु ब्याज

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वखानी । जगत जननि अतुलित छवि भारी । जौं छवि सुधा पयोनिधि होई । छवि गन मध्य महाछवि जैसी ।

युगलमूर्ति छवि : भरिलोचन छवि लेहु निहारी । रामरूप अरु सिय छवि देखें । गावहि छवि अवलोकि सहेली । छवि सिंगार मनहु इकठौरी, आदि ।

पण्डित की भाँति प्रश्न करने से सक्षेप मे उत्तर मिलता है और मूढ की भाँति प्रश्न करने से उत्तरदाता को एक एक बात अलग करके समझानी पडती है । अत मूढ न होते हुए भी मूढ की भाँति प्रश्न करना । जिससे उत्तर लोकोपकारी हो । प्रश्न की पटुता है यथा चाहहु सुनै रामगुन गूढा । कीन्हिहु प्रश्न मनहुँ अति मूढा । प्रश्नकर्ता के मर्म को समझकर यथार्थ उत्तर देना । यथा : प्रथमहि कहि मै सिवचरित बूझा मर्म तुम्हार । सुचि सेवक तुम्ह राम के रहित समस्त विकार । मै जाना तुम्हार गुनसीला । कहौं सुनहु अब रघुपति लीला उत्तर की पटुता है ।

प्रश्न को नाव और केवट को उत्तर कहा । नाव का और केवट का साथ छूटने न पावे तभी पार मिलता है । सदा यह ध्यान रहे कि किस प्रश्न का उत्तर हो रहा है तभी बात समझ मे आ सकती है नही तो पार न मिलेगा ।

सुनि अनुकथन परस्पर होई । पथिक समाज सोह सरि सोई ॥
घोर धार भृगुनाथ रिसानी । घाट सुबद्ध राम बरबानी ॥२॥

अर्थ कथा सुन लेने पर श्रोताओ मे जो परस्पर अनुकथन होता है वही मानो उस नदी का पथिक समाज शोभित है । परशुरामजी का क्रोध घोर धारा है और रामजी की श्रेष्ठ वाणी सुदृढ पक्का घाट है ।

व्याख्या अनुकथन करनेवाले ही यात्री हैं । उन्हे पार जाना है जो कथा सुनकर पुनर्विचार नही करते उन्हे पार जाना नही है । नदी की सैर करने आये हैं ।

सरयू की धारा ऐसी घोर है कि कोसो काटती चली जाती है । भृगुनाथ की रिसानी भी वैसी ही घोर है । कहते हैं उलटौ महि जँह लहि तव राजू । रामजी की सुवाणी सुन्दर बँधा हुआ पक्का घाट है । नव गोले गलाये गये हैं नौ बार उत्तर दिया गया है । रिसानी की घोर धारा घूम गई । यथा उघरे पटल परसुधर मति के ।

सानुज राम विवाह उछाहू । सो सुभ उमग सुखद सबकाहू ॥
कहत सुनत हरर्षाह पुलकाही । ते सुकृती मन मुदित नहाही ॥३॥

अर्थ भाइयो सहित रामजी के विवाहके उछाह ही इस नदी की शुभ उमग है, जो सबको सुख देनेवाली है । कहते सुनते जो लोग पुलकित और हर्षित होते हैं वे ही पुण्यात्मा प्रसन्न मन से स्नान करनेवाले हैं ।

व्याख्या जब नदी उमगती है, तो दूर के रहनेवालो के भी समीप पहुँच जाती है । इसी भाँति अनुजो के सहित रामजी के विवाह मे जो उछाह हुआ । वह दूर दूर तक पहुँच गया । यथा सकल भुवन भरि रहा उछाहू । जनक सुता रघुवीर विवाहू । बहुत उछाह भवन अतिथोरा । मानहु उमगि चला चहुँओरा ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



क. भले भूप कहत भले भदेस भूपनि सो, लोक लगि बोलिए पुनीत रीति मारखी।
जगदम्बा जानकी जगत पितु राम भद्र, जानि जिय जोवो जोन लागै मुख कारखी॥
देखे हैं अनेक व्याह सुने हैं पुरान वेद, बूझे है सुजान साधु नर नारि पारखी।
ऐसे सम समधी समाज ना विराजमान, राम से न वर दुलही न सिय सारखी॥
बानी विधि गौरी हर शेषहू गनेस कही, सही भरी लोमस भुसुण्डि बहु बारिखो।
चारि दस भुवन निहारि नर नारि सब, नारद सो परदा न नारद सो पारिखो॥
तिन कही जगमे जगमगत जोरी एक, दूजो को कहैया को सुनैया चष चारिखो।
रमा रमारमन सुजान हनुमान कही, सीय-सी न तीय न पुरुष राम सारिखो॥

इससे सुखद सब काहू कहा।

कथा को कहते सुनते जो ऐसे आनन्द मे आजाते हैं कि उन्हे रोमाञ्च हो उठता है, वे पुण्यात्मा लोग हैं। वे ही इस नदी में स्नान करनेवाले हैं। पापी को इसका स्नान दुर्लभ है। पापवत कर सहज सुभाऊ। भजन मोर तेहि भाव न काऊ।

रामतिलक हित मंगल साजा। परव जोग जनु जुरे समाजा॥
काई कुमति केकई केरी। परी जासु फल विपति घनेरी॥४॥

अर्थ : रामजी तिलक के लिए जो मंगल साज हुआ वही पर्व के दिन की भीड़भाड़ है। कैकेयी की कुमति काई है। जिसके फलरूप मे घोर विपत्ति पडी।

व्याख्या : रामतिलक पर्वयोग है। अयोध्या मे पर्वयोग रामनवमी ही है। यथा : जेहि दिन राम जन्म श्रुति गावहि। तीरथ सकल तहाँ चलि आवहि। सो उस दिन समाज जुटा। यथा : एक समय सब सहित समाजा। राजसभा रघुराज विराजा। रामजी की छब्बीसवी वर्ष गांठ थी। दूसरे दिन पुष्य मे तिलक होनेवाला था। यथा : सफल रसाल पूगफल केरा। रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा। रचहु मंजु मनि चौके चारू। कहहु बनावन वेगि वजारू। कैकेयी की कुबुद्धि काई हो गई। स्वयं चक्रवर्ती जी फिसल पड़े। रामजी को वनवास दे दिया। राजा की मृत्यु हुई। साज अमङ्गल मे परिणत हो गया। यथा : भयउ कोलाहल अवध अति सुनि नृप राउरसोर। विपुल विहगवन परेउ निसि मानहु कुलिस कठोर।

दो. समन अमित उतपात सब, भरत चरित जपजाग।
कलि अघ खल अवगुन कथन, ते जलमल बक काग॥४१॥

अर्थ : असीम उत्पात की शान्ति के लिए, भरत का चरित्र ही जप यज्ञ है। कलियुग के पापो और दुष्टो के दोषों के जो वर्णन है, वे ही जलमल : काई के लिए बगले और कौवे हैं।

व्याख्या : अवसि चलिअ वन राम पहँ, भरत मन्त्र भल कीन्ह। सोक सिंधु बूडत सबहि तुम अवलंबन दीन्ह। सब लोगों ने भरत जी को राज्य स्वीकार करने के लिए कहा। परन्तु भरत जी ने स्वीकार नही किया। रामजी को वन से लौटा लाने के लिए वन जाना निश्चित किया। रामजीके विरह से व्याकुल प्रजा के लिए भरत जी का मन्त्र मानों डूबते हुए को सहारा हो गया। यथा : मन्त्र सबीज सुनत

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जनु जागे। रामजी के समझाने बुझाने पर लौटे भी तो रामजी से राज्य की स्वीकृति कराके उनके प्रतीक रूप से पादुका लेकर लौटे। चरन पीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के। इस भाँति भरतचरित से वे सब उत्पात उसी भाँति शान्त हुए जिस भाँति जपयज्ञ से सब आपत्तियाँ टल जाती हैं। भगवान् ने स्वय कहा है यज्ञाना जपयज्ञोस्मि। यज्ञो मे जपयज्ञ मैं हूँ। बक काग जलमल काई को खा जाते हैं। कुमति ही काई है। कलि के अघ और खल के अवगुण कहने से लोगो की कुमति दूर होती है। अत कलिअघ, खल अवगुण कथन भी यहाँ उपयोगी है।

रामजी का प्रधान चरित्र अयोध्याकाण्ड तक ही है। निशाचरारि और रामराजसुख आदि का वर्णन चरित-सरित का ऋतुवर्णन मात्र है।

**कीरति सरित छहूँ रितु रूरी। समय सुहावनि पावनि भूरी॥**
**हिम हिमसैलसुता सिव ब्याहू। सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू॥१॥**

अर्थ यह कीर्तिरूपिणी नदी छ ऋतुओ मे सुन्दर है। समय समय पर सुहावनी और अत्यन्त पवित्र है। पार्वती और शिवजी का ब्याह हिम ऋतु है और प्रभु का जन्मोत्सव सुख देनेवाला शिशिर ऋतु है।

व्याख्या नदियो की शोभा म ऋतुभेद से अन्तर पडता है परन्तु यह कीर्ति-सरित छ ऋतु म सुहावन है। दूसरी नदियाँ वर्षा काल मे अपावन हो जाती है और यह सभी काल म अत्यन्त पवित्र है। जिस ऋतु मे जैसी शोभा होनी चाहिए वैसी शोभा रहती है। ग्रन्थकार ने जिस प्रसङ्ग को जिस ऋतु से उपमित किया है उस ऋतु का धर्म भी कथा वर्णन मे दरशाया है। ऋतुओ म पहले हिम ऋतु को ही माना क्योकि वेदो म वर्ष का अन्त शरद में माना है। इसलिए शरद वर्ष का नामान्तर माना गया है और भगवान् ने मार्गशीर्ष मास को अपनी विभूति बतलाया है। हिम ऋतु मे दो मास होते हैं। १ अगहन मार्गशीर्ष और पूस पौष। इसी भाँति इस प्रसङ्ग म दो चरित हैं। १ उमा चरित और २ शम्भु चरित। इसमे हिम जाडा की प्रखरता रहती है। पार्वतीजी ने हिम की उपमा काम से, शिवजी की उपमा अग्नि से दी है। यथा . तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तहि निकट जाइ नहिं काऊ। गए समीप सो अवसि नसाई। अस मन्मथ महेस की नाई। सो इस प्रसङ्गमे कामका प्रकोप दिखलाकर ससार को उसके वश मे दिखलाया पर शिवजी का सामना पडने पर वह सशक हो गया। यथा सिवहिं बिलोकि ससकेउ मारू। भयेउ यथा थिति सब ससारू। पूस के अन्त मे अग्नि भी मन्दे पडे। यथा करहिं बिबिध बिध भोग बिलासा। गनन्ह समेत बसहिं कैलासा। इत्यादि। अत हिमशैल सुता शिव ब्याह को हिमऋतु कहा।

प्रभु जन्म उछाह को ग्रन्थकार ने शिशिर ऋतु रूप वर्णन किया है। शिशिर ऋतु मे दो मास है, १ माघ और २ फाल्गुन। सो प्रभु जन्म हुआ माघ और उछाह फाल्गुन हुआ।

बसन्त पञ्चमी से ही फगुआ का महोत्सव प्रारम्भ हो जाता है। उसे श्रीपञ्चमी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कहते हैं। सरस्वती का जन्मदिन माना जाता है। उसे प्रभुजन्म दिन से उपमित किया। यथा हरषित जहँ तहँ धाईं दासी। आनद मगन सकल पुरवासी। इत्यादि। प्रभु जन्मोत्सव में तो ग्रन्थकार ने पूरा फगुआ मना दिया है। गीले सूखे रङ्ग का भी वर्णन है। यथा अगर धूप जनु बहु अँधियारी। उडइ अबीर मनहु अरुनारी। मृग मद चदन कुकुम कीचा। मची सकल बीथिन्ह बिचबीचा। सन्ध्या को अभिसारिका बनाकर प्रभु के पास भेजा। बूढे शङ्कर को भी स्वाँग बदले हुए दिखलाया। त्रिविध ताप होली जलै खेलिअ असफाग। इस पद को सार्थक कर दिया।

**बरनब राम बिबाह समाजू। सो मुद मगलमय [1]रितुराजू॥**
**ग्रीषम दुसह राम बन गमनू। पथकथा खर आतप पवनू॥२॥**

अर्थ रामजी के विवाह के समाज का वर्णन आनन्दमङ्गलमय ऋतुराज है। रामजी का वनगमन असह्य ग्रीष्म ऋतु है और मार्ग की कथा कडी धूप और लू है।

व्याख्या ऋतुराज वसन्त के दो महीने होते हैं। १ मधु चैत्र और २ माधव वैशाख। सो राजादशरथ और जनक को ही ग्रन्थकार ने मधु और माधव माना है। यथा मधुमाधव दशरथजनक मिलब राज ऋतुराज। बारात और अगवानी के समाज को ही वसन्त की सेना माना है डेरा कीन्ह्यो मनहु तब कटक हटकि मनजात।

ग्रन्थकार ने वसन्त ऋतु के त्यौहारो को भी झलका दिया है। यथा देवी पूजा, परशुराम जयन्ती, गङ्गा सप्तमी आदि।

श्रीराम वनगमन को ग्रन्थकार ने ग्रीष्म रूप से उपमित किया है। ग्रीष्म के दो मास होते हैं १ ज्येष्ठ २ आषाढ। जिस भाँति गरमी ससार को असह्य हो जाती है। उसी भाँति रामगमन प्रजा को असह्य हो गया। यथा बागन बिटप बेलि कुम्हिलाही। सरित सरोवर देखि न जाही। सहि न सके रघुवर बिरहागी। चले लोग सब व्याकुल भागी। इत्यादि। जो सरकार को इस अवस्था मे देखता है वही दु खी हो जाता है मानो उसे लू लग गई। आषाढ मे पहिला पानी भी बरस जाता है, जिसे दँवगरा कहते हैं। सो पहिला सग्राम खरदूषण युद्ध भी हुआ। गुरुपूर्णिमा द्योतित करते हुए शङ्कर स्थापन भी करते है।

**बरषा घोर निसाचर रारी। सुरकुल सालि सुमगलकारी॥**
**राम राज सुख बिनय बडाई। बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई॥३॥**

अर्थ राक्षसो के साथ घोर लडाई वर्षा ऋतु है। जो देवताओं के समूह रूपी धान के लिए सुन्दर कल्याण करनेवाली है। रामजी के राज्य म सुख, विनय और बडाई है। वही सुख देनेवाली सुन्दर निर्मल शरद ऋतु है।

व्याख्या निशाचररारि को ग्रन्थकार ने घोर वर्षा कहा है। वर्षा के दो महीने होते हैं। १ श्रावण और २ भाद्रपद। सो बाईस दोहा म चारो फाटक की लडाई

---

१ अयुक्तस्य रि इस सूत्र से ऋ का रि हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जनु जागे। रामजी के समझाने बुझाने पर लौटे भी तो रामजी से राज्य की स्वीकृति कराके उनके प्रतीक रूप से पादुका लेकर लौटे। चरन पीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के। इस भाँति भरतचरित से वे सब उत्पात उसी भाँति शान्त हुए जिस भाँति जपयज्ञ से सब आपत्तियाँ टल जाती हैं। भगवान् ने स्वय कहा है यज्ञाना जपयज्ञोस्मि। यज्ञो मे जपयज्ञ मैं हूँ। बक काग जलमल काई को खा जाते हैं। कुमति ही काई है। कलि के अघ और खल के अवगुण कहने से लोगो की कुमति दूर होती है। अत कलिअघ, खल अवगुण कथन भी यहाँ उपयोगी है।

रामजी का प्रधान चरित्र अयोध्याकाण्ड तक ही है। निशाचररारि और रामराजसुख आदि का वर्णन चरित-सरित का ऋतुवर्णन मात्र है।

कीरति सरित छहूँ रितु रूरी। समय सुहावनि पावनि भूरी॥
हिम हिमसैलसुता सिव ब्याहू। सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू॥१॥

अर्थ यह कीर्तिरूपिणी नदी छ ऋतुओ मे सुन्दर है। समय समय पर सुहावनी और अत्यन्त पवित्र है। पार्वती और शिवजी का व्याह हिम ऋतु है और प्रभु का जन्मोत्सव सुख देनेवाला शिशिर ऋतु है।

व्याख्या नदियों की शोभा मे ऋतुभेद से अन्तर पडता है परन्तु यह कीर्ति-सरित छ ऋतु मे सुहावन है। दूसरी नदियाँ वर्षा काल मे अपावन हो जाती हैं और यह सभी काल मे अत्यन्त पवित्र है। जिस ऋतु मे जैसी शोभा होनी चाहिए वैसी शोभा रहती है। ग्रन्थकार ने जिस प्रसङ्ग को जिस ऋतु से उपमित किया है उस ऋतु का धर्म भी कथा वर्णन मे दरशाया है। ऋतुओ मे पहले हिम ऋतु को ही माना क्योकि वेदो मे वर्षा का अन्त शरद मे माना है। इसलिए शरद वर्ष का नामान्तर माना गया है और भगवान् ने मार्गशीर्ष मास को अपनी विभूति बतलाया है। हिम ऋतु मे दो मास होते है। १ अगहन मार्गशीर्ष और पूस पौष। इसी भाँति इस प्रसङ्ग मे दो चरित हैं। १ उमा चरित और २ शम्भु चरित। इसमे हिम जाडा की प्रखरता रहती है। पार्वतीजी ने हिम की उपमा काम से, शिवजी की उपमा अग्नि स दी है। यथा . तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ। गए समीप सो अवसि नसाई। अस मन्मथ महेस की नाई। सो इस प्रसङ्ग मे कामका प्रकोप दिखलाकर ससार को उसके वश मे दिखलाया पर शिवजी का सामना पडने पर वह सशक हो गया। यथा सिवहि बिलोकि ससकेउ मारू। भयेउ यथा थिति सब ससारू। पूस के अन्त मे अग्नि भी मन्द पडे। यथा करहि विविध विध भोग विलासा। गनन्ह समेत वसहि कैलासा। इत्यादि। अत हिमशैल सुता शिव व्याह को हिमऋतु कहा।

प्रभु जन्म उछाह को ग्रन्थकार ने शिशिर ऋतु रूप वर्णन किया है। शिशिर ऋतु मे दो मास हैं, १ माघ और २ फाल्गुन। सो प्रभु जन्म हुआ माघ और उछाह फागुन हुआ।

वसन्त पञ्चमी से ही फगुआ का महोत्सव प्रारम्भ हो जाता है। उसे श्रीपञ्चमी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कहते हैं। सरस्वती का जन्मदिन माना जाता है। उसे प्रभुजन्म दिन से उपमित किया। यथा : हरसित जहँ तहँ धाई दासी। आनंद मगन सकल पुरवासी। इत्यादि। प्रभु जन्मोत्सव में तो ग्रन्थकार ने पूरा फगुआ मना दिया है। गीले सूखे रङ्ग का भी वर्णन है। यथा : अगर धूप जनु बहु अँधियारी। उड़इ अबीर मनहु अरुनारी। मृग मद चंदन कुंकुम कीचा। मची सकल बीथिन्ह बिचबीचा। सन्ध्या को अभिसारिका बनाकर प्रभु के पास भेजा। बूढ़े शङ्कर को भी स्वाँग बदले हुए दिखलाया। विविध ताप होली जले खेलिअ असफाग। इस पद को सार्थक कर दिया।

**बरनव राम बिबाह समाजू। सो मुद मंगलमय [1]रितुराजू ॥**
**ग्रीषम दुसह राम बन गमनू। पंथकथा खर आतप पवनू ॥२॥**

अर्थ : रामजी के विवाह के समाज का वर्णन आनन्दमङ्गलमय ऋतुराज है। रामजी का वनगमन असह्य ग्रीष्म ऋतु है और मार्ग की कथा कड़ी धूप और लू है।

व्याख्या : ऋतुराज वसन्त के दो महीने होते हैं। १ मधु चैत्र और २ माधव वैशाख। सो राजादशरथ और जनक को ही ग्रन्थकार ने मधु और माधव माना है। यथा : मधुमाधव दशरथजनक मिलव राज ऋतुराज। बारात और अगवानी के समाज को ही वसन्त की सेना माना है : डेरा कीन्ह्यौ मनहु तव कटक हटकि मनजात।

ग्रन्थकार ने वसन्त ऋतु के त्यौहारों को भी झलका दिया है। यथा : देवी पूजा, परशुराम जयन्ती, गङ्गा सप्तमी आदि।

श्रीराम वनगमन को ग्रन्थकार ने ग्रीष्म रूप से उपमित किया है। ग्रीष्म के दो मास होते हैं : १. ज्येष्ठ २ आषाढ। जिस भाँति गरमी संसार को असह्य हो जाती है। उसी भाँति रामगमन प्रजा को असह्य हो गया। यथा : बागन बिटप बेलि कुम्हिलाहीं। सरित सरोवर देखि न जाहीं। सहि न सके रघुबर बिरहागी। चले लोग सब ब्याकुल भागी। इत्यादि। जो सरकार को इस अवस्था में देखता है वही दुखी हो जाता है मानो उसे लू लग गई। आषाढ़ में पहिला पानी भी बरस जाता है, जिसे दँवगरा कहते हैं। सो पहिला सग्राम खरदूषण युद्ध भी हुआ। गुरुपूर्णिमा द्योतित करते हुए शङ्कर स्थापन भी करते हैं।

**बरषा घोर निसाचर रारी। सुरकुल सालि सुमंगलकारी ॥**
**राम राज सुख बिनय बड़ाई। बिसद सुखद सोइ सरद सुहाई ॥३॥**

अर्थ : राक्षसों के साथ घोर लड़ाई वर्षा ऋतु है। जो देवताओं के समूह रूपी धान के लिए सुन्दर कल्याण करनेवाली है। रामजी के राज्य में सुख, विनय और बड़ाई है। वही सुख देनेवाली सुन्दर निर्मल शरद ऋतु है।

व्याख्या : निशाचररारि को ग्रन्थकार ने घोर वर्षा कहा है। वर्षा के दो महीने होते हैं। १ श्रावण और २ भाद्रपद। सो बाईस दोहों में चारों फाटक की लड़ाई

१. अयुक्तस्य रि[illegible]

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कुम्भकर्णवध और मेघनादवध दिखलाया गया। इस भाँति श्रावण की वर्षा समाप्त हुई। बाईस दोहो मे रावण वध दिखलाया गया। यह भाद्रपद की वर्षा थी। इसमे वर्षा के नक्षत्र भी दिखलाये गये है। इन दृष्टियो को लेकर प्रसङ्गो के लगाने मे बडा आनन्द आयेगा। मैंने प्रादेश मात्र दिखलाया है।

ग्रन्थकार ने रामराज्य को शरद माना है। शरद मे दो मास होते है। १ आश्विन और कार्तिक। इस भाँति रामराज्य प्रकरण के भी दो विभाग हैं। एक राज्याभिषेक और दूसरा रामराज्य का सुख। इसमे भी व्याज से पितृपक्ष, देवपक्ष, दीपावली आदि का वर्णन किया गया है।

सती सिरोमनि सियगुन गाथा। सोइ गुन अमल अनूपम पाथा॥
भरत सुभाउ सुसीतलताई। सदा एक रस बरनि न जाई॥४॥

अर्थ सतियो की शिरोमणि सीताजी के गुणो की गाथा ही उस निर्मल अनुपम जल का गुण है। भरतजी का स्वभाव ही सुन्दर शीतलता है। जो सदा एक रस रहती है। जिसका वर्णन नही हो सकता।

व्याख्या सीताजी सती शिरोमणि हैं। इनके स्मरण से स्त्रियाँ पतिव्रत आचरण करती है। यथा सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करहि। इनके गुणो से दोनो कुल पवित्र हुए। इनकी उज्ज्वल कीर्ति से अनन्त ब्रह्माण्ड व्याप्त हैं। यथा पुत्रि पवित्र किए कुल दोऊ। सुजस धवल जग कह सब कोऊ। जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवन कीन्ह विधि अड करोरी। इनके गुणो की गाथा ही इस निर्मल अनुपम जल के गुण है। इस जल के रामयश रूप होने से निर्मल तथा निरुपम कहा।

भरत का स्वभाव सदा एक रस है और सर्वथा अवर्णनीय है। यथा भरतहि होइ न राजमद बिधि हरिहर पद पाइ। कबहुँ कि काँजी सीकरनि छीर सिन्धु बिनसाइ। सुनहु लखन भल भरत सरीखा। बिधि प्रपच महँ सुना न दीखा। सुनि भूपाल भरत व्यवहारू। सोन सुगध सुधा ससि सारू। इत्यादि। वही इस जल की शीतलता कही। जो सदा एकरस रहती है और जल को ऐसा सुस्वादु बनाए रहती है कि उसका वर्णन नही हो सकता।

दो अवलोकनि बोलनि मिलनि, प्रीति परस्पर हास।
भायप भलि चहु बधु की, जल माधुरी सुबास॥४२॥

अर्थ : देखना, बोलना, मिलना, प्रीति और परस्पर हँसी तथा चारो भाइयो का उत्तम भाईपन, जल की मिठास और सुगन्ध है।

व्याख्या जल अमृत सा मीठा है। चारो भाइयो के देखने, बोलने, मिलने, प्यार करने और हँसने मे अमृत सी मिठास है। इसलिए जल की मिठास से उपमा दी।

अवलोकन बोलनि, यथा महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कह्यौं न बैन।
दरसन तृपित न आज लगि प्रेम पियासे नैन॥
राम करहि भ्रातन्ह पर प्रीती।
नाना भाँति सिखावहि नीती॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मिलनि प्रीति, यथा मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी।
कविकुल अगम करम मनबानी ॥

इस जल मे स्वभाववश सुगन्ध है। इस भाँति भाइयो के हास मे बडा ही माधुर्य है। यथा हृदय अनुग्रह इन्दु प्रकासा। सूचत किरिण मनोहर हासा।

जल मे सुगन्ध स्वभाव से नही होता पर इसमे स्वाभाविक सुगन्ध है। जिससे दिगन्त व्याप्त है और वह सुगन्ध चारो भाइयो का भाईपन है। जिसे ससार जानता है। यथा इनके प्रीति परस्पर पावनि। कहि न जाय मन भाव सुहावनि। इस भाँति जल के तीन गुण निर्मलता, शीतलता और माधुर्य कहे। वस्तुत जल म सोलह[१] गुण कहे गये है। शेप तेरह आगे कहे जावेंगे।

आरति विनय दीनता मोरी। लघुता ललित सुवारि न थोरी ॥
अदभुत सलिल सुनत गुनकारी। आस पियास मनोमलहारी ॥१॥

अर्थ मेरी आर्ति विनय और दीनतारूपी सुन्दर हलकापन सुन्दर जल म कम नही है। बडा ही अद्भुत जल है, सुनते ही गुण करता है। और आशारूपी प्यास तथा मनोमल को दूर करता है।

व्याख्या टिप्पणी मे दिये हुए चौदहवे, बारहवें और सोलहवे गुणो को क्रम से ऊपर कह आये। प्रसङ्ग से सुगन्ध भी कहा जो रामयश सलिल के लिए स्वभाविक है। परन्तु लौकिक जल के लिए आगन्तुक है। अत वैद्यक शास्त्र ने उसे जल के गुणो की गणना मे स्वीकार नही किया है। अब तेरहवाँ गुण लघुता कहते है। रामयशरूपी सुवारि मे लघुता कैसे कहे और जल म गुरता भारीपन बडा भारी दोप तथा लघुता बडा भारी गुण है। इसलिए ग्रन्थकार कहते है कि रामयश-रूपी जल म जो बडी लघुता है वह मेरे कारण है। लघुता का दोप उस यश मे नही है। मेरी आर्ति, विनय और दीनता जो इस कविता सरिता मे दिखलाई गई है बडी भारी लघुता है। अब नवाँ गुण 'गुप्त रसत्व[२]' कहते है कि इस जल का रसत्व भी गुप्त है। यह पीने से नही श्रवण मात्र से गुण करता है। अद्भुत जल है।

---

१ पानीय श्रमनाशन क्लमहर मूर्च्छापिपासाहरम्।
तन्द्राच्छर्दिविबन्धहृद्बलकर निद्राहर तर्पणम् ॥
हृद्य गुप्तरस ह्यजीर्णशमक नित्य हित शीतलम्।
लघ्वच्छ रसकारण निगदित पीयूषवज्जीवनम् ॥

अर्थ . जल १ श्रमनाशक है २ ग्लानिहर है ३ मूर्च्छा और प्यास हरण करता है ४ तन्द्रा, वमन, कब्जायत हरण करता है ५ बल देता है ६ निद्रा हरण करता है ७ तृप्ति देता है ८ हृदय को हित है ९ रस उसका गुप्त है १० अजीर्ण दूर करता है ११ नित्य हित है १२ शीतल है १३ लघु है १४ स्वच्छ है १५ रस का कारण है और १६ जीवन के लिए अमृत सा है।

२ जल स्वाभाव स मधुर होता है पर मालूम नही होता। हरीतकी आदि भक्षण से माधुर्य का अनुभव होता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अब तीसरा गुण कहते हैं। लौकिक जल प्यास और मूर्च्छा दूर करता है। और यह अलौकिक जल आशारूपी प्यास और मनोमलरूपी मूर्च्छा को दूर करता है। प्यास तो बुझ जाती है। पर आशारूपी प्यास नहीं बुझती हते भीष्मे हते द्रोणे हते कर्णे महाबले। आशा बलवती राजन् शल्यो जेत्स्यति पाण्डवान्। सञ्जय कहते हैं कि हे राजा धृतराष्ट्र! आशा बड़ी बलवान् है। भीष्म मारे गये। द्रोण मारे गये। महाबल कर्ण मारे गये तुम्हारे पुत्रो ने अब पाण्डवो को जीतने की आशा से शल्य को सेनापति बनाया है। सो यह अलौकिक जल उसे भी दूर करता है। मूर्च्छा तो दूर हो जाती है पर मनोमल नही दूर होता। वह भी इस जल से दूर हो जाता है।

राम सुपेमहि पोषत पानी। हरत सकल कलिकलुष गलानी ॥
भौ श्रम सोषक तोषक तोषा। समन दुरित दुख दारिद दोषा ॥२॥

अर्थ यह जल रामजी के सुन्दर प्रेम को पोषण करता है और कलियुग के पापो की ग्लानि को हरण करता है। समार की थकावट को सोख लेता है। तोष को भी तुष्ट करता है। पाप, दुःख और दरिद्रतारूप दोषो को नष्ट करता है।

व्याख्या जल रस का कारण है। रस बनने से ही रक्त आदि बनकर अनित्य शरीर का पोषण होता है, पर यह अलौकिक जल तो रामजी के सुन्दर प्रेम को पोषण करता है जो नित्य सुख का कारण है। इस भाँति जल के पन्द्रहवे गुण 'रसकारणत्व' का निरूपण करके दूसरे गुण 'क्लमहरत्व' का निरूपण करते है।

जल ग्लानि को दूर करता है। ऐसी ग्लानिया कितनी बार हुईं और दूर हुईं परन्तु कलिकलुषग्लानि तो कभी नही गई। अलौकिक जल उसे भी हरण करता है। अब पहिला गुण कहते है जल श्रम का नाश करता है। शरीर से काम लने से थकावट आती है। वह जल से दूर होती है। यथा मज्जन कीन्ह पथश्रम गयऊ। परन्तु भवश्रम के नाश का तो कोई लौकिक उपाय नही है। वह तो इस अलौकिक जल से ही जाता है। यथा देखेउँ करि सब कर्म गोसाईं। सुखी न भयेउँ अबहि की नाईं। अब सातवाँ गुण 'तर्पण' कहते है जल से तोष होता है। यथा स्वाद तोष सम सुगति सुधा के। परन्तु वह तोष जल के भरोसे कितनी देर ठहरेगा। उस तोष का भी तोषण करनेवाला यह अलौकिक जल है। यथा अब कछु नाथ न चाहिअ मोरे। दीनदयाल अनुग्रह तोरे। अब दसवाँ गुण कहते है। जल अजीर्ण दोष को दूर करता है, पर दुःख-दरिद्र-दोषरूपी अजीर्ण का हटना तो कठिन है। वह भी इस अलौकिक जल से दूर होता है।

काम क्रोध मद मोह नसावन। विमल विवेक विराग बढावन ॥
सादर मज्जन पान किए ते। मिटहिं पाप परिताप हिए ते ॥३॥

अर्थ काम, क्रोध, मद और मोह को नष्ट करनेवाला है और निर्मल विवेक और वैराग्य को बढानेवाला है। आदर सहित स्नान करने और पान करने से हृदय के सारे पाप और दुःख मिट जाते हैं।

व्याख्या अब चौथा गुण कहते हैं। जल तन्द्रा, छर्दि वमन विबन्ध कोष्ठ-

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बद्धता का हरण करता है। तन्द्रा अज्ञानावस्था मे ला देती है। छर्दि वमन से बडा कष्ट होता है। अङ्ग अङ्ग मे पीडा होती है। वायु की गति ऊर्ध्व हो जाती है। कोष्ठबद्धता अनेकानेक रोगो का कारण है। ये सब यत्किञ्चित् जल से दूर होते है। इनके लिए प्रभावशाली औषधियाँ दूसरी हैं, पर काम की भाँति अज्ञान लानेवाला, क्रोध की भाँति अनर्थ करनेवाला और मदमोह की भाँति सम्पूर्ण मानसिक व्याधियो का मूल तो दूसरा कुछ नही है। उनका भी निश्चित नाश इस अलौकिक जल से होता है।

अब पाचवाँ गुण कहते है। जल बल बढाता है। भौतिक शरीर मे शक्ति आती है। परन्तु बलकारिणी प्रभावशालिनी औषधियाँ दूसरी ही है। विवेक और विराग बल ही वास्तविक बल है। यथा जब उर बल विराग अधिकाई। मोहि सो कहहु कृपाल ज्ञान प्रभाव कि योग बल। उसे तो यह अलौकिक जल बढाता है।

अब आठवाँ गुण कहते हैं। जल हृदय के लिए हित है। कुछ शान्ति ला देता है। परन्तु पाप और परिताप को हृदय से हटाकर उसका सच्चा हित तो यह अलौकिक जल है। इस भाँति इस अलौकिक जल मे जल के सोलहो गुण दिव्यातिदिव्य रूप मे वर्तमान हैं।

जिन्ह येहि वारि न मानस धोए। ते कायर कलिकाल बिगोए॥
तृषित निरखि रविकर भव वारी। फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी॥४॥

अर्थ जिन्होने इस जल से अपना मानस नही धोया, उन कायरो को कलिकाल ने ठग लिया है। जैसे प्यासा हिरन सूर्य की किरणो की चमक मे मृग जल मे जलबुद्धि से उसके पास जाना चाहता है और दु ख के सिवा उसे कुछ नही मिलता। इसी भाँति मनुष्य भी दु खी होते फिरेंगे।

व्याख्या अब तो विषम वन, दुर्लंघ्य पर्वत और भयानक नदियो को पार करके मानसरोवर नही जाना है। खुले मैदान मानसरोवर का जल सरयू मे बह रहा है। अब तो ग्रन्थकार या किसी पण्डित के यहाँ भी नही जाना है। अपनी भाषा मे रामयश बह रहा है। अब भी जिसने इस जल से अपने मन को न धोया अर्थात् इससे लाभ नही उठाया वह कायर है। उसे इतना भी साहस नही कि खुले मैदान बहते हुए परम पुनीत लाभदायक अलौकिक जल से मन को पवित्र करे। उसे नि सन्देह कलियुग ने ठग लिया। उसका जन्म व्यर्थ गया। मरकर न जाने किस योनि मे जायगा। सिवा कलियुग के ठगने के अन्य कोई कारण उसके लाभ न उठाने का नही मालूम होता।

जिसने इस अलौकिक सुख से लाभ न उठाया वह सुख के लिए मृगतृष्णा के पीछे दौडेगा। विषय मे सुख चाहेगा और विषय मे सुख है नही। सुखाभास मात्र दिखाई पडता है। उसी के पीछे दौडेगा और अब मिला तब मिला इसी आशा मे दौडते दौडते मर जायगा। मृग इसी भाँति मरीचिका के पीछे जलबुद्धि से दौडते दौडते मर जाता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो मति अनुहारि सुवारि गुन, गन गनि मन अन्हवाइ।
सुमिरि भवानी संकरहि, कह कवि कथा सुहाइ ॥४३॥
अब रघुपति पद पंकरुह, हिय धरि पाइ प्रसाद।
कहौं जुगल मुनिवर्ज कर, मिलन सुभग संवाद ॥४३॥ क

अर्थ अपनी बुद्धि के अनुसार सुन्दर जल के गुणों को गिनकर मन में स्नान कराकर और महादेव पार्वती को स्मरण करके कवि · श्रीगोस्वामीजी सुहावनी कथा कहता है।

प्रसाद रूप में पाकर श्रीरामजी के चरण कमलों को हृदय में धरकर दोनो मुनिवरो का मिलन और सुन्दर संवाद वर्णन करता हूँ।

व्याख्या अब सरयू जी का स्नान कहते है। यथा मज्जहिं सज्जनवृंद बहु पावन सरयू नीर। राम सुयश जल के गुणो का गिनना ही स्नान है। यहाँ भवानी शङ्कर का फिर स्मरण करते हैं। तीन बार प्रणाम करके ही बात समाप्त नही होती। कथा करते समय भी शङ्कर विस्मरण न हो क्योंकि उन्हींके प्रसाद से ग्रन्थकार कवि हुए। यथा संभु प्रसाद सुमति हिय हुलसी। रामचरितमानस कवि तुलसी। वे सुकवि हैं कथा कर चुके है। यथा यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमम्। ग्रन्थकार उन्ही के प्रसाद से कविता कर रहे हैं। कह कवि कथा सोहाइ। उपक्रम उपसंहार का मिलान

| | | |
|---|---|---|
| उपक्रम | करइ मनोहर मति अनुहारी उपसंहार | मति अनुहारी सुवारिवर गुन गन गनि मन अन्हवाइ कहकवि कथा सोहाइ |
| | बरखहिं रामसुयस बरबारी | सुवारि गुन |
| | भइ कवि बुद्धि विमल अवगाही | गनि मन अन्हवाइ |
| | कहौं कथा सोइ सुखद | कह कवि कथा सोहाइ |

कवित्व तो प्रसाद मे पहिले ही मिल चुका था। इस बार प्रसाद में भगवान् के चरण कमल मिले। शङ्कर भगवान् के मानस मे चरण थे। यथा जे पद सरोज मनोज अरि उर सर सदैव विराजही। भुसुण्डि के मानस म भी है। यथा जो भुसुण्डि मन मानस हंसा। याज्ञवल्क्य के मानस में भी चरणकमल हैं। यथा मुनिमन मानस हंस निरंतर। पर ग्रन्थकार के मानस मे नही थे, अत इन्होने मानस के रूपक मे छन्द, सोरठा, दोहा को कमल का स्थान दिया। यह त्रुटि समझकर शङ्कर भवानी ने रघुपति पद पङ्करुह को प्रसाद रूप मे दिये। ग्रन्थकार ने तुरन्त हृदय मे रख लिया। जो प्रसाद सिर पर रक्खा जाता है उसका विसर्जन किया जाता है। इसका विसर्जन ग्रन्थकार को इष्ट नही है। इससे हृदय में धारण किया।

इसके बाद दो वस्तु का वर्णन आरम्भ करते हैं। १ याज्ञवल्क्य भरद्वाज मिलन और २ उनका संवाद। पहिले मिलन कहेंगे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



## भरद्वाज याज्ञवल्क्य सवाद

भरद्वाज मुनि बसहि प्रयागा । तिन्हहि राम पद अति अनुरागा ॥
तापस सम दम दया निधाना । परमारथ पथ परम सुजाना ॥१॥

अर्थ भरद्वाज मुनि प्रयागराज मे वसते थे । उन्हे रामजी के चरणो मे वडा अनुराग था । वे तपस्वी शम, दम, दया के निधान थे और परमार्थ मार्ग मे वडे निपुण थे ।

व्याख्या [1]प्रयागराज मे रहना कहकर भरद्वाज ऋषि की तीर्थ सेवा कही । वाल्मीकि जी के शिष्य हैं अत रामपद अति अनुराग कहा । अथवा रामपद अति अनुराग पद से भरद्वाज जी को तीर्थराज का भी पावन करनेवाला महातीर्थ कहा । यथा

सो सुकृती सुचिमत सुसत, सुजान सुसील सिरोमनि स्वै ।
सुर तीरथ ताही मनावत आवत, पावन होत है तात नछ्वै ॥
गुनगेह सनेह को भाजन सो, सबही सो उठाइ कहौ भुजद्वै ।
सति भाय सदा छल छाडि सबै, तुलसी जो रहै रघुवीर को ह्वै ॥ क

जिन्होने तपस्या करके इन्द्र से तीन सौ वर्ष की आयु वेदाध्ययन के लिए पाई और अन्त मे वेदो के सारभूत ॐकार को प्राप्त किया, इसलिए तापस कहा । शम से अन्त करण का नियमन तथा दम से बाह्येन्द्रियो का दमन और दया से परम धर्म म निष्ठा कही और 'परमारथ पथ परम सुजाना' कहकर ज्ञान निष्ठा कही । इस भाँति कर्म, ज्ञान और उपासना तीनो काण्डो का नैपुण्य कहा ।

माघ मकर गत रवि जब होई । तीरथ पतिहि आव सब[2] कोई ॥
देव दनुज किनर नर श्रेनी । सादर मज्जहि सकल त्रिवेनी ॥५॥

अर्थ माघ के महीने मे जब सूर्य मकर राशि मे आते है, तब सब कोई तीर्थराज प्रयाग मे आते हैं । देव दैत्य किन्नर और मनुष्यो के समूह सभी आदर पूर्वक त्रिवेणी[3] मे स्नान करते हैं ।

व्याख्या प्रयागराज प्राजापत्य तीर्थ है और ब्रह्मनक्षत्र अभिजित् पर मकर मे ही सूर्य आते हैं अत मकर मे प्रयागराज का अत्यधिक माहात्म्य है । सौर और चान्द्र दो प्रकार का मास प्रचलित है । सङ्क्रान्ति से सौर और पूर्णिमा से चान्द्र मास

---

१ 'क्षेत्र प्रजापते पुण्य सर्वेषामपि दुर्लभम् । लभ्यते पुण्यसम्भारै नान्यथार्थस्य राशिभि ।'
सबसे दुर्लभ यह ब्रह्मदेव का तीर्थ प्रयागराज है, इनकी प्राप्ति पुण्य राशि से होती है । धन की राशियो से नही होती ।

२ भुवो लोकाच्च भूर्लोकान्नागलोकात् तथा लिखात् स्नातु माघे समायान्ति प्रयाग अम्णोदये काशी खण्डे ऊपर के सब लोको से तथा पाताल तक से प्राणी प्रयाग म अरुणोदय स्नान के लिए चले आते हैं ।

३ इय वर्णोहि नि श्रेणी ब्रह्मणो वर्त्मं यास्यत । यह वणा ब्रह्म के मार्ग की सीढी है ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



का हिसाब चलता है। मकर की सक्रान्ति और माघ मास मे कुछ दिनो का ही हेर फेर पडता है। अत माघ और मकर एक ही समझा जाता है। कल्पवास करनेवाले, कोई सक्रान्ति भर और कोई माघ की पूर्णिमा तक, एक मास प्रयागराज मे रहते हैं। यथा पूर्णिमाया समारभ्य पूर्णिमाया समापयेत्। मकरे वा समारभ्य कुम्भे वाऽथ समापयेत्। ग्रन्थकार का कथन है कि केवल मनुष्य ही एक मास नित्य त्रिवेणी मे स्नान नही करते, बल्कि देवता और असुर भी आदर के साथ स्नान करते है। लौकिक दृष्टि से न देखे जाने पर भी शास्त्रदृष्टि से यह बात देखी गई है। जो भीड प्रयागराज मे दिखाई पडती है वह वास्तविक भीड की चौथाई मात्र है क्योकि देव-दनुज-किन्नरो की भीड तो मनुष्यो के लिए अदृश्य है।

पूजहि माधव[1] पद जल जाता। परसि अखयवटु हरषहि गाता॥
भरद्वाज आश्रम अतिपावन। परम रम्य मुनिवर मन भावन॥३॥

अर्थ माधव के चरणकमलो की पूजा करते है, और अक्षयवट का स्पर्श कर के पुलकित होते हैं। भरद्वाज का आश्रम अतिपावन, बडा ही रमणीय और मुनिवर मनभावन था।

व्याख्या अब कल्पवास की विधि कहते है कि त्रिवेणी के स्नान के बाद वेणीमाधव का पूजन करते थे और अक्षयवट के स्पर्श से उनका शरीर पुलकित हो उठता था क्योकि अक्षयवट का स्पर्श दुर्लभ है। उसका प्रलय मे भी नाश नही होता और इसी के पत्ते पर बालमुकुन्द विराजमान होते हैं।

अतिपावन और मनभावन होने से ही भरद्वाज जी ने आश्रम बनाया था। रामकथा के चारो स्थान अतिपावन और मनभावन हैं। अथवा जगम प्रयाग स्वरूप भरद्वाज मुनि के निवास से अतिपावन हुआ। अत वही आश्रम अन्य मुनिवरो को भी मनभावन था। इसीलिए मुनिलोग वही एकत्रित होते थे। यथा

तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा। जाहि जे मज्जन तीरथ राजा।
मज्जहि प्रात समेत उछाहा। कहहि परस्पर हरिगुन गाहा॥४॥

अर्थ प्रयाग मे जो स्नान करने जाते थे उन ऋषि मुनियो का जमाव वही होता था। प्रात काल सब उत्साह के साथ स्नान करते थे और एक दूसरे से भगवान् के गुणो की गाथा कहते थे।

व्याख्या रामजी के चरणो मे अति अनुराग होने के कारण भरद्वाज मुनि के प्रति सब ऋषि-मुनियो का बडा आदर था और उनका आश्रम भी अत्यन्त पावन और मनभावन था। अत वही सबका जमाव होता था। जो स्नान करने जाते थे वे वही ठहरते थे। कल्पवास की सक्षेप विधि यही है कि माघ के विकट जाडे मे भी

---

१ यत्र लक्ष्मीपति साक्षात् वैकुण्ठादेत्य मानवान्। श्रीमाधवस्वरूपेणानयद्विष्णो पर पदम्॥

यहाँ रमापति साक्षात् वैकुण्ठ से आकर मनुष्यो को माधव स्वरूप मे विष्णुपद प्राप्त कराते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्धोदय स्नान उत्साह के साथ करना और शेष समय भजन मे व्यतीत करना। भगवान् के गुणो का कथन श्रवण भगवान् की वाड्मयी पूजा है। उसी मे लगे रहते थे।

दो. ब्रह्म निरूपन धर्म बिधि, बरनहि तत्वबिभाग।
कहहि भगति भगवंत कै, संजुत ग्यान बिराग ॥४८॥

अर्थ : ब्रह्मनिरूपण करते थे। धर्म की विधि और तत्त्व का विभाग वर्णन करते थे तथा ज्ञान और वैराग्य से सयुक्त ईश्वरभक्ति का कथन करते थे।

व्याख्या : ब्रह्मनिरूपण और तत्त्वविभाग के वर्णन से ज्ञानकाण्ड अथवा ब्रह्म-विचार कहा। धर्मविधि के निरूपण से विधिनिषेधमय कर्मकथा कही और ज्ञान-विराग युक्त भगवान् की भक्ति निरूपण से रामभक्ति कहा एव स्थावर तीर्थराज में जगम तीर्थराज की उपस्थिति कही। यथा : मुदमगलमय सतसमाजू। जो जग जगम तीरथराजू। राम भगति जहँ सुरसरिधारा। सरसइ ब्रह्म बिचार प्रचारा। बिधि-निषेधमय कलिमलहरनी। करमकथा रबिनंदनि बरनी। आदि। तत्त्वविभाग का वर्णन पुरुष-प्रकृति के भेदज्ञान मे बड़ा उपकारक होता है।

एहि प्रकार भरि माघ नहाही। पुनि सब निज निज आश्रम जाही॥
प्रति संबत अति होई अनंदा। मकर मज्जि गवनहि मुनिबृन्दा ॥१॥

अर्थ : इस प्रकार वे माघ भर स्नान करते और फिर सब अपने अपने आश्रमो को जाते थे। हर साल अत्यन्त आनन्द होता था। मुनि लोग मकरस्नान करके चले जाते थे।

व्याख्या : इस चौपाई से यह दिखलाया कि सौरमास और चान्द्रमास दोनो में प्रयाग का माहात्म्य है फिर भी यह झलकता है कि यद्यपि सब लोगो मे चान्द्रमास प्रचलित है, सब लोग उपर्युक्त विधि से माघ भर स्नान करके अपने आश्रम को लौटते थे, पर मुनिवृन्द मकर भर स्नान करके तब जाते थे। कभी कभी मकर माघ की पूर्णिमा डाककर आगे तक चला जाता है, तब सब लोग तो पूर्णिमा स्नान कर चले जाते हैं परन्तु मुनिवृन्द मकर का स्नान पूरा करके तब जाते हैं।

एक बार भरि मकर नहाए। सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए॥
जागबलिक मुनि परम बिबेकी। भरद्वाज राखे पद टेकी ॥२॥

अर्थ : एक बार मकर भर स्नान करके सब मुनीश्वर अपने अपने आश्रमो को चले गये। परन्तु परम विवेकी याज्ञवल्क्य मुनि को भरद्वाज जी ने चरण पकड़-कर रोक रक्खा।

व्याख्या : समय निश्चित नही इसलिए एक बार कहा। माघ भी बीत गया और मकर भी बीत गया। भाव यह कि भरद्वाज-याज्ञवल्क्य सवाद फाल्गुन मास कुम्भ के सूर्य मे हुआ। मुनि सभी विवेकी थे। पर याज्ञवल्क्य परम विवेकी थे। शुक्ल यजुर्वेद का प्रादुर्भाव इन्ही से हुआ है। बृहदारण्यक उपनिषद् इन्हीका कहा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



का हिसाब चलता है। मकर की सक्रान्ति और माघ मास मे कुछ दिनो का ही हेर फेर पडता है। अत माघ और मकर एक ही समझा जाता है। कल्पवास करनेवाले, कोई सक्रान्ति भर और कोई माघ की पूर्णिमा तक, एक मास प्रयागराज मे रहते है। यथा पूर्णिमाया समारभ्य पूर्णिमाया समापयेत्। मकरे वा समारभ्य कुम्भे वाऽथ समापयेत्। ग्रन्थकार का कथन है कि केवल मनुष्य ही एक मास नित्य त्रिवेणी मे स्नान नही करते, वल्कि देवता और असुर भी आदर के साथ स्नान करते है। लौकिक दृष्टि से न देखे जाने पर भी शास्त्रदृष्टि से यह बात देखी गई है। जो भीड प्रयागराज मे दिखाई पडती है वह वास्तविक भीड की चौथाई मात्र है क्योकि देव-दनुज-किन्नरो की भीड तो मनुष्यो के लिए अदृश्य है।

पूजहिं माधव[1] पद जल जाता। परसि अपयवटु हरखहिं गाता ॥
भरद्वाज आश्रम अतिपावन। परम रम्य मुनिवर मन भावन ॥३॥

अर्थ माधव के चरणकमलो की पूजा करते है, और अक्षयवट का स्पर्श कर के पुलकित होते है। भरद्वाज का आश्रम अतिपावन, बडा ही रमणीय और मुनिवर मनभावन था।

व्याख्या अब कल्पवास की विधि कहते है कि त्रिवेणी के स्नान के बाद वेणीमाधव का पूजन करते थे और अक्षयवट के स्पर्श से उनका शरीर पुलकित हो उठता था क्योकि अक्षयवट का स्पर्श दुर्लभ है। उसका प्रलय म भी नाश नही हाता और इसी के पत्ते पर वालमुकुन्द विराजमान होते है।

अतिपावन और मनभावन होने से ही भरद्वाज जी ने आश्रम बनाया था। रामकथा के चारो स्थान अतिपावन और मनभावन हैं। अथवा जगम प्रयाग स्वरूप भरद्वाज मुनि के निवास से अतिपावन हुआ। अत वही आश्रम अन्य मुनिवरा को भी मनभावन था। इसीलिए मुनिलोग वही एकत्रित होते थे। यथा

तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा। जाहिं जे मज्जन तीरथ राजा।
मज्जहिं प्रात समेत उछाहा। कहहिं परस्पर हरिगुन गाहा ॥४॥

अर्थ प्रयाग म जो स्नान करने जाते थे उन ऋषि मुनियो का जमाव वही होता था। प्रात काल सब उत्साह के साथ स्नान करते थे और एक दूसरे से भगवान् के गुणो की गाथा कहते थे।

व्याख्या रामजी के चरणो मे अति अनुराग होने के कारण भरद्वाज मुनि के प्रति सब ऋषि-मुनियो का बडा आदर था और उनका आश्रम भी अत्यन्त पावन और मनभावन था। अत वही सबका जमाव होता था। जो स्नान करने जाते थे वे वही ठहरते थे। कल्पवास की सक्षेप विधि यही है कि माघ के विकट जाडे म भी

---

१ यत्र लक्ष्मीपति साक्षात् वैकुण्ठादेत्य मानवान्। श्रीमाधवस्वरूपेणानयद्विष्णो पर पदम् ॥

यहाँ रमापति साक्षात् वैकुण्ठ से आकर मनुष्यो को माधव स्वरूप मे विष्णुपद प्राप्त कराते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्धोदय स्नान उत्साह के साथ करना और शेष समय भजन मे व्यतीत करना। भगवान् के गुणो का कथन श्रवण भगवान् की वाङ्मयी पूजा है। उसी मे लगे रहते थे।

दो. ब्रह्म निरूपन धर्म विधि, बरनहि तत्वविभाग।
कहहि भगति भगवंत कै, संजुत ग्यान बिराग ॥४८॥

अर्थ : ब्रह्मनिरूपण करते थे। धर्म की विधि और तत्त्व का विभाग वर्णन करते थे तथा ज्ञान और वैराग्य से सयुक्त ईश्वरभक्ति का कथन करते थे।

व्याख्या : ब्रह्मनिरूपण और तत्त्वविभाग के वर्णन से ज्ञानकाण्ड अथवा ब्रह्म-विचार कहा। धर्मविधि के निरूपण से विधिनिषेधमय कर्मकथा कही और ज्ञान-विराग युक्त भगवान् की भक्ति निरूपण से रामभक्ति कहा एव स्थावर तीर्थराज मे जगम तीर्थराज की उपस्थिति कही। यथा : मुदमगलमय संतसमाजू। जो जग जगम तीरथराजू। राम भगति जहँ सुरसरिधारा। सरसइ ब्रह्म विचार प्रचारा। विधि-निषेधमय कलिमलहरनी। कर्मकथा रविनंदिनि बरनी। आदि। तत्त्वविभाग का वर्णन पुरुष-प्रकृति के भेदज्ञान मे बड़ा उपकारक होता है।

एहि प्रकार भरि माघ नहाही। पुनि सब निज निज आश्रम जाही ॥
प्रति संबत अति होई अनंदा। मकर मज्जि गवनहिं मुनिवृन्दा ॥१॥

अर्थ : इस प्रकार वे माघ भर स्नान करते और फिर सब अपने अपने आश्रमो को जाते थे। हर साल अत्यन्त आनन्द होता था। मुनि लोग मकरस्नान करके चले जाते थे।

व्याख्या : इस चौपाई से यह दिखलाया कि सौरमास और चान्द्रमास दोनो मे प्रयाग का माहात्म्य है फिर भी यह झलकता है कि यद्यपि सब लोगो मे चान्द्रमास प्रचलित है, सब लोग उपर्युक्त विधि से माघ भर स्नान करके अपने आश्रम को लौटते थे, पर मुनिवृन्द मकर भर स्नान करके तब जाते थे। कभी कभी मकर माघ की पूर्णिमा डाककर आगे तक चला जाता है, तब सब लोग तो पूर्णिमा स्नान कर चले जाते हैं परन्तु मुनिवृन्द मकर का स्नान पूरा करके तब जाते हैं।

एक बार भरि मकर नहाए। सब मुनीस आश्रमन्ह सिधाए ॥
जागबलिक मुनि परम बिबेकी। भरद्वाज राखे पद टेकी ॥२॥

अर्थ : एक बार मकर भर स्नान करके सब मुनीश्वर अपने अपने आश्रमो को चले गये। परन्तु परम विवेकी याज्ञवल्क्य मुनि को भरद्वाज जी ने चरण पकड़-कर रोक रक्खा।

व्याख्या : समय निश्चित नही इसलिए एक बार कहा। माघ भी बीत गया और मकर भी बीत गया। भाव यह कि भरद्वाज-याज्ञवल्क्य सवाद फाल्गुन मास कुम्भ के सूर्य मे हुआ। मुनि सभी विवेकी थे। पर याज्ञवल्क्य परम विवेकी थे। शुक्ल यजुर्वेद का प्रादुर्भाव इन्ही से हुआ है। बृहदारण्यक उपनिषत् इन्हीका कहा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हुआ है। इन्हीको स्मृति को आज भी उत्तर भारत अवनत मस्तक होकर मानता है। ये भी जाने को तैयार हुए, पर चरण पकडकर भरद्वाज जी ने रोक रक्खा।

सादर चरन सरोज पखारे। अति पुनीत आसन बैठारे॥
करि पूजा मुनि सुजस बखानी। बोले अति पुनीत मृदुबानी॥३॥

अर्थ आदर सहित उनके चरण कमल धोये, अति पुनीत आसन पर उन्हे विठाया। पूजा करके मुनि के सुयश की प्रशसा की और अति पुनीत मृदुवाणी बोले।

व्याख्या यह चरण प्रक्षालन पूजा का अङ्ग है। इसलिए सादर प्रक्षालन कहते है। आसनो मे अति पुनीत आसन व्यासासन है जिस पर वेद शास्त्र के व्याख्याता विठाये जाते हैं। अति पुनीत होने से इसका पद सिंहासन से ऊँचा है। राजा भी व्यासासन से नीचे बैठते हैं। ऐसे व्यासासन पर बिठाया, गन्धमाल्यादि से पूजा की, स्तुति की। सकल लोक हितकारिणी कथा पूछी। इसलिए उस वाणी को अति पुनीत कहा। श्रवण सुखद होने से मृदु कहा।

नाथ एक ससउ[1] बड मोरे। करगत वेद तत्त्व सब तोरे॥
कहत सो मोहि लागति भय लाजा। जौं न कहौ बड होई अकाजा॥४॥

अर्थ हे नाथ! मेरे हृदय मे एक बडा सन्देह है और वेदो का सब तत्त्व आपके हाथो मे है। उसे कहते हुए मुझे डर और लज्जा मालूम होती है और बिना कहे भी बडी हानि है।

व्याख्या उभयकोटि अवलम्वी ज्ञान को सशय कहते हैं। ईश्वर सम्बन्धी होने से उस सशय को बडा कह रहे हैं क्योकि वह लौकिक उपायो से जा नही सकता। उसका उच्छेद वेदादि शास्त्रो से ही सम्भव है। वेदादि शास्त्र ही अज्ञातार्थ ज्ञापक हैं। सो उनका जो कुछ तत्त्व है वह आपके करगत है अर्थात् करामलकवत् आपको सम्यक् प्रकार से ज्ञात है।

उसे कहते हुए लज्जा और भय दोनो मालूम होते हैं। लज्जा इस बात की कि स्वय वाल्मीकिजी का शिष्य होकर भी मुझे रामविषयक शङ्का है और भय इस बात का कि *वेद-असम्मत वाणी सुनकर आप अप्रसन्न न हो जायँ। यथा कहहिं* सुनहिं अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच। पाखडी हरिपद विमुख जानहिं झूठ न साँच। और यदि मैं नही पूछता तो बडी हानि है, रामविषयक सन्देह हृदय मे बना ही रहेगा।

दो सत कहहि अस नीति प्रभु, श्रुति पुरान मुनि गाव।
होइ न विमल विवेक उर, गुर सन किये दुराव॥४५॥

---

१ उच्चस्वमो। इस सूत्र से 'सु' विभक्ति को 'उ' हुआ। इस भाँति 'सशय' का सशयु रूप हुआ। 'कगचजतदपयवा प्रायेण लोप' इस सूत्र से 'य' का लोप होकर 'सशउ' रूप हुआ। तब 'शषो स' सूत्र से 'श' का 'स' होकर 'ससउ' रूप सिद्ध हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : हे प्रभो ! सन्तजन ऐसी नीति कहते हैं और श्रुति, पुराण और मुनि भी यह गान करते हैं कि गुरु से छिपाव रखने से हृदय में निर्मल विवेक नहीं होता।

व्याख्या : जिस प्रकार का सन्तों में व्यवहार चलता है वही सन्तों की नीति है। यह नीति स्वयं परम आदरणीय है किं पुनः श्रुति पुराण और मुनिगण से भी अनुमोदित होने पर। अत: अवश्य आचरणीय है। वह नीति यह है कि . गुरु से छिपाव करने से निर्मल विवेक नहीं होता। महामोह तमपुञ्ज के नाश के लिए जिसके वचन सूर्य की किरणें हैं उन्हींसे छिपाव करने से मोहान्धकार का नाश कैसे होगा! उनसे छिपाव करना तो मानो अन्धकार को हृदय में स्थान देना है। मुनि-समाज एक महीने तक यहाँ था और नित्य ब्रह्मनिरूपण, धर्मविधि, तत्त्वविभाग, भगवान् की भक्ति का निरूपण होता था परन्तु भय और लज्जा के कारण उन लोगों से अपना संशय प्रकट नहीं किया। आप गुरु हैं, आपसे छिपाव नहीं कर सकता।

अस बिचारि प्रगटौं निज मोहू। हरहु नाथ करि जन पर छोहू ॥
राम नाम कर अमित प्रभावा। संत पुरान उपनिषद गावा ॥१॥

अर्थ : ऐसा विचारकर मैं अपना मोह प्रकट करता हूँ। हे नाथ ! आप जन पर छोह करके हरण कीजिये। राम नाम का अपार प्रभाव है। सन्त, पुराण और उपनिषद् ने गान किया है।

व्याख्या : याज्ञवल्क्यजी को गुरु मानकर उनसे कहते हैं कि भय और सङ्कोच-वाली बात ऋषिमुनि समाज में नहीं प्रकट की। आपसे प्रकट करता हूँ। शिष्य और पुत्र समान रूप से ही वात्सल्य भाजन हैं। अत: छोह करके मेरा मोह, अज्ञान हरण कीजिये। मैं आपका जन अर्थात् भक्त हूँ। तीनों लोकों की सम्पत्ति भी ज्ञान प्रदान के तुल्य नहीं है। अत. गुरु का वात्सल्य . चाह ही शिष्य के मोह हरण का कारण होता है। अब संशय प्रकट करते हैं :

राम नाम के प्रभाव की इयत्ता नहीं है : इस बात को सन्त, पुराण और उपनिषत् वेद के शिरोभाग ने कहा है। सन्त ! यथा : सो प्रभु सब में रमि रह्यौ सर्व रूप सब ओर। ताते नाम सँभारि गहु सब नामन को मोर। पुराण। यथा : नाम्नोऽस्ति यावती शक्ति: पापनिर्दहणे हरे:। तावत्कर्तुं न शक्नोति पातकं पातकी जन:[1]। उपनिषत्। यथा : [2]यथा हि वटबीजस्थ: प्राकृतो हि महान् द्रुम। तथा हि रामबीजस्थं जगदेतच्चराचरम्।

सतत जपत संभु अबिनासी। सिव भगवान ग्यान गुन रासी ॥
आकर चारि जीव जग अहहीं। कासीं मरत परम पद लहहीं ॥२॥

---

१. नाम में पाप जलाने की जितनी शक्ति है, उतने पाप पापी कर ही नहीं सकता।

२. जिस भाँति वट के बीज में इतना बड़ा वटवृक्ष सूक्ष्म भाव से अवस्थान करता है उसी भाँति राम बीज में चराचर विश्व अवस्थान करता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ अविनाशी, ज्ञानगुणराशि भगवान् शिव सदा जपा करते हैं। ससार के जीवों की चार खानि हैं। सो सब काशी म मरकर परम पद को प्राप्त होते हैं।

व्याख्या स्वय षडैश्वर्यसम्पन्न, ज्ञानगुणसम्पन्न, अविनाशी, मङ्गलमय शिवजी जो कि सदा पूर्णकाम हैं नित्य जप किया करते है। यथा तुम पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनग अराती। यह नाममहिमा की परासीमा का उदाहरण है। सब प्रकार से आप्तकाम किसी क्रिया मे प्रवृत्त नही होते। फिर भी शिवजी रात दिन जपा करते है। ऐसा प्रभाव इस नाम का है।

स्वेदज, उद्भिज्ज, अण्डज और पिण्डिज ये ही जीवो की चार खानि हैं, इनमे से जो काशी मे शरीर त्यागता है उसे परम पद की प्राप्ति होती है। यथा जो गति अगम महामुनि दुर्लभ कहत सत श्रुति सकल पुरान। सोइ गति मरन काल अपने पुर देत सदासिव सबहि समान।

सोपि राम महिमा मुनिराया। सिव उपदेस करत करि दाया ॥
रामु कवन प्रभु पूछौं तोही। कहिय बुझाइ कृपानिधि मोही ॥३॥

अर्थ हे मुनिराज! सो यह भी रामजी की महिमा से होता है। शिवजी दया करके उपदेश देते हैं। हे प्रभो! मैं आपसे पूछता हूँ कि वे राम कौन हैं? हे कृपासागर मुझे समझाकर कहिये।

व्याख्या सो काशी की यह महामहिमा राम नाम के प्रताप से है। यहाँ प्राणोत्क्रमण के समय करुणा करके भगवान् शङ्कर तारक मन्त्र का उपदेश देते है। उस उपदेश के प्रभाव से उसे ज्ञान हो जाता है। ज्ञान होने से मुक्ति हो जाती है। अत्र हि जन्तो प्राणेपूत्क्रममाणेषु रुद्रस्तारक ब्रह्म व्याचष्टे। येनासौ अमृतीभूत्वा मोक्षी भवति। तस्मादविमुक्तमेव निषेवेत। अविमुक्त न विमुञ्चेदिति।

जिसके नाम का ऐसा माहात्म्य है, वे राम कौन हैं? यह बात मैं दूसरे से नही पूछ सकता था। इसलिए आपसे पूछता हूँ। केवल इङ्गित कर देने से काम न चलगा। मुझ समझाकर कहिये। जिसके नाम की ऐसी महिमा है उस नामी को भी महामहिम होना चाहिए।

एक राम अवधेस कुमारा। तिन्ह कर चरित विदित ससारा ॥
नारि विरह दुख लहेउ अपारा। भयउ रोषु रन रावनु मारा ॥४॥

अर्थ एक राम अवधनरेश के पुत्र हैं। उनका चरित सारे जगत् म विख्यात है। उन्होने स्त्री के विरह म अपार दुख पाया। जब क्रोध हुआ तो रावण को युद्ध मे मार डाला।

व्याख्या यदि कहिये कि तुम वाल्मीकिजी के शिष्य होकर राम को नही जानते? उन्हीके चरित निरूपण के लिए वाल्मीकीय रामायण बनी। सम्पूर्ण ससार उनके चरित को जानता है। इस पर कहते हैं कि उन राम को तो मैं भी जानता हूँ। समार जानता है। उनका चरित तो ऐसा नही है जिससे नाम का ऐसा माहात्म्य कहा जा सके। स्त्री का विरह बहुतो को होता है पर कोई तो उनकी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भाँति छता और तरु से पूछता नही फिरता। वे ऐसे कामासक्त थे कि उनके स्त्री विरह दु:ख का पारावार नही था। क्रोधी भी ऐसे थे कि रावण ऐसे वेदज्ञ को मार डाला। यथा रहा न कुल कोउ रोवनिहारा। ब्राह्मणकुल के सहार पर ध्यान न दिया। ऐसे कामी क्रोधी के नाम का ऐसा माहात्म्य कैसे हुआ ? दूसरा कोई ऐसे नामवाला सुना नही जाता। यही भारी सशय है।

दो० प्रभु सोइ राम कि अपर कोउ, जाहि जपत त्रिपुरारि।
सत्य धाम सर्बग्य तुम्ह, कहहु बिबेक बिचारि ॥४६॥

अर्थ हे प्रभो! वही राम हैं कि कोई दूसरे हैं जिनको त्रिपुरारि जपते हैं। आप सत्यधाम और सर्वज्ञ हैं। विचारकर कहिये।

व्याख्या त्रिपुरारि पद से महा सामर्थ्यवान् तथा महाज्ञानी कहा। दानवो के तीनो पुरो का एक बाण से दाह करनेवाले अथवा तीनो पुर स्थूल सूक्ष्म और कारण का नाश करके मुक्ति देनेवाले शिवजी क्या इन्ही सीताविरही रावणहन्ता राम के नाम का जप करते हैं या वे राम कोई और हैं। आप सत्य के आश्रय हैं। आपका कहा हुआ मिथ्या हो नही सकता। यथा देवि न मुधा होइ मुनि भाषा। आपने जनक की सभा मे शाकल्य ऋषि से कहा कि मूर्धा ते व्यपतिष्यतीति। त ह न मेने शाकल्य तस्य ह मूर्धा निपतात। तेरा सिर गिरेगा, फिर शाकल्य ने न माना तो उसका सिर गिर गया। अत मुझे विश्वास है आपके कहने से मेरा सशय जायगा। कोई सत्यवाक् भी हो और सर्वज्ञ न हो तब भी उसके कहने मे भ्रम की शङ्का रहती है। आप तो सर्वज्ञ हैं। यथा करगत वेदतत्व सब तोरे। अत भ्रम को भी स्थान नही है। आप परम विवेकी हैं। विचारकर कहिय कि क्या ऐसे विषयासक्त पुरुष के नाम का ऐसा माहात्म्य सम्भव है ?

जैसे मिटै मोर भ्रम भारी। कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी ॥
जागबलिक बोले मुसुकाई। तुम्हहि बिदित रघुपति प्रभुताई ॥१॥

अर्थ जैसे मेरा भारी भ्रम मिट जाय हे नाथ! आप वैसी ही कथा विस्तार के साथ कहिये। याज्ञवल्क्य जी मुसकराकर बोले तुम्हे रघुपति की प्रभुता मालूम है।

व्याख्या विपरीत ज्ञान को भ्रम कहते हैं। भरद्वाजजी का कहना है कि मुझे भारी भ्रम हो गया है। एक महीने तक रात दिन मेरे यहाँ ब्रह्मनिरूपण, धर्मविधि, तत्त्वविभाग का वर्णन और ज्ञानविराग युक्त भक्ति का निरूपण बडे बडे महात्माओ द्वारा होता रहा पर मेरा भ्रम नही गया। इससे जाना कि मेरा भ्रम भारी है। यह विस्तारपूर्वक कथाश्रवण से जायगा। सो जिस कथा से जाय उसे विस्तार मे कहिये। भाव यह कि वाल्मीकीय रामायण माधुर्यप्रधान ग्रन्थ है। उसके पढने से मूढजनो को भारी सशय उठ खडा होता है। आप राम कथा को विस्तार मे कहिये जिसमे ऐश्वर्य को भी यथेष्ट स्थान मिले। तब यह सशय दूर हो। इसी प्रश्न का उत्तर सम्पूर्ण रामायण है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जो रोगी रोग का निदान भी जानता हो तथा उसकी अचूक औषध भी जानता हो उसे वैद्य की क्या आवश्यकता है ? और उसे रोगी भी कैसे कहे ? भरद्वाजजी ने अपने कथन को स्वय मोहमूलक और भ्रान्त बतलाया। और उसके मिटने का उपाय विस्तारयुक्त रामकथा भी बतला दी। इस पर याज्ञवल्क्य जी हँस पडे। कहा तुम रामजी की प्रभुता जानते हो। तुम्हारा प्रश्न विनोद मात्र है। तुमने कहा नाथ एक सशय बड मोरे। सो तुम्हे सशय नही है।

राम भगत तुम मन क्रम बानी। चतुराई तुम्हारि मै जानी ॥
चाहहु सुनै रामगुन गूढा। कीन्हिहु प्रश्न मनहु अति मूढा ॥२॥

अर्थ तुम मनसा वाचा कर्मणा रामभक्त हो। मैंने तुम्हारी चतुराई जान ली। तुम रामजी के छिपे हुए गुणो को सुनना चाहते हो। इसलिए तुमने अत्यन्त मूढ की भाँति प्रश्न किया है।

व्याख्या 'सत्यधाम और 'सर्वज्ञ' विशेषणो से स्तुति की। उसका साफल्य दिखाते हुए ग्रन्थकार लिखते हैं कि याज्ञवल्क्यजी सब जान गये। प्रोत्साहन के लिए कह भी दिया कि तुम मन, कर्म और वाणी से रामभक्त हो। यह पूछना तुम्हारी चतुराई है। अवजानन्ति मा मूढा मानुषी तनुमाश्रितम्। पर भावमजानन्तो मम लोक-महेश्वरम्। भ गी। मुझ मानुष शरीर धारण करनेवाले की मूढ लोग अवज्ञा करते है क्योकि वे मेरे महेश्वर पर भाव को नही जानते। ऐसा भगवान् ने कहा है। सो भरद्वाजजी ने अत्यन्त अवज्ञा करके पूछा है। इसलिए कहते हैं मनहु अति मूढा। प्रकट गुण वाल्मीकिजी से सुन चुके हो। बिना मूढ की भाँति प्रश्न किये उत्तर म गूढ गुण सुनने मे नही आता।

तात सुनहु सादर समुझाई। कहहुँ राम कै कथा सुहाई ॥
महा मोहु महिषेसु बिसाला। रामकथा कालिका कराला ॥३॥

अर्थ हे तात ! तुम आदरपूर्वक जी लगाकर सुनो। मै रामजी की सुहावनी कथा कहता हूँ। महामोह विशाल महिषासुर है। और राम की कथा भयङ्कर कालिका है।

व्याख्या कहहु सो कथा नाथ बिस्तारी का उत्तर दे रहे है। कथा सुनने के समय दूसरी बात मन म न सोचना ही आदर के साथ सुनना है। कोई बात मन म आने से छूट न जाय। इसलिए मन लाई कहा। महिषासुर ने देवताओ को बडा कष्ट दिया। किसी के मारे नही मरता था। पर उसकी मौत काली के हाथ थी। महिषासुर बडा विशाल था। उसके सीग हिलाने से बादल फट पडते थे। पूँछ की फटकार से समुद्र उछलता था। खुर के प्रहार स पृथ्वी विदीर्ण होती थी। पर वह महामोह के सामने कुछ नही था। महामोह से तो त्रैलोक्य व्याप्त है। अत उसके वध के लिए कराल कालिका की आवश्यकता है। महामोह की मौत रामकथा के हाथ है। यहाँ से दक्षिणघाट से भी कथा प्रारम्भ हुई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



राम कथा ससि किरन समाना। संत चकोर करहिं जेहि पाना॥
ऐसेइ संसय कीन्ह भवानी। महादेव तब कहा बखानी॥४॥

अर्थ : रामजी की कथा चन्द्रमा की किरणों के समान है। इसे सन्तरूपी चकोर पान करते हैं। ऐसा ही सन्देह भवानी ने भी किया था। तब महादेव जी ने बखानकर कहा था।

व्याख्या रामकथा दुष्ट के लिए कराल है। पर सज्जन के लिए सौम्य है। जैसे चन्द्रमा की किरण होती है। चन्द्रमा की किरण को तो चकोर पान करते हैं। रामकथा का पान सज्जनरूपी चकोर करते हैं। जिस चन्द्रमा की रामकथा किरण है वह चन्द्र रामनाम है। यों तो यह चाँदनी सब को सुखद है पर चकोर के लिए विशेष लाभ है। यथा रामचरित राकेसकर सरिस सुखद सब काहु। सज्जन कुमुद चकोर चित हित विशेष बड लाहु।

याज्ञवल्क्य जी अति सक्षेप मे कथा माहात्म्य कहकर कहते है कि यही संशय तो नही पर ऐसा ही संशय उमा ने महादेव जी से किया था। यथा जौ नृप तनय त ब्रह्म किमि नारि विरह मति भोरि। देखि चरित महिमा सुनत भ्रमति बुद्धि अति मोरि। इत्यादि। यह भारतवर्ष की प्राचीन प्रणाली है कि प्रश्नकर्ता के उत्तर मे किसी दूसरे बडे के सम्वाद को दिखलाते हुए उत्तर देते हैं। सो याज्ञवल्क्य जी उमा-महेश्वर सम्वाद कहेंगे। साथ ही भरद्वाज जी को उत्साहित करते हैं कि इस शङ्का को सामने लाते हुए तुम लज्जा और भय को चित्त मे स्थान न दो। स्वय साक्षात् भवानी ने ऐसी ही शङ्का की थी तब महादेव जी ने बखानकर कहा था।

दो० कहौ सो मति अनुहारि अब, उमा संभु संवाद।
भयउ समय जेहि हेतु जेहि, सुनु मुनि मिटिहि विषाद॥४६॥

अर्थ मैं अब अपनी बुद्धि के अनुसार उमा-शम्भु का संवाद जिस समय और जिस कारण से हुआ कहता हूँ। हे मुनि जी! सुनने से विषाद मिट जायगा।

व्याख्या उमा-शम्भु का संवाद है इसलिए कहते हैं कि यथा बुद्धि कहूँगा। शिष्य के प्रोत्साहन के लिए प्ररोचन के वाक्य कहने चाहिए। अत 'तुम्हहि विदित रघुपति प्रभुताई। रामभगत तुम मन क्रम बानी। आदि वाक्य कहे। अब भरोसा देते हैं कि सुनु मुनि मिटिहि बिषाद। विस्तार से कथा पूछी है। इसलिए कथा का समय और हेतु दोनो का वर्णन पहिले करेंगे। भरद्वाज जी ने तीन बार 'कहहु' कह-कर प्रश्न किया। यथा १ कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही। २ सत्य धाम सर्वज्ञ तुम कहहु विवेक विचारि। तथा ३ कहहु सो कथा नाथ विस्तारी। उत्तर में याज्ञवल्क्य जी भी तीन बार सुनहु कह रहे हैं। यथा १ तात सुनउ सादर मन लाई। २ कहौं सो मति अनुहारि अब उमा संभु संवाद। भयउ समय जेहि हेतु जेहि सुनु मुनि मिटिहि बिषाद और ३ कहहुँ सुनहु अब रघुपति लीला।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



एक बार त्रेता जुग माही। सभु गए कुभज रिषि पाही॥
सग सती जगजननि भवानी। पूजे रिषि अखिलेस्वर जानी॥१॥

अर्थ एक बार त्रेता युग म शिवजी अगस्त्य ऋषि के पास गये। उनके साथ जगजननी सतीजी भी थी। ऋषि ने उन्हे सारे जगत् का ईश्वर जानकर पूजा।

व्याख्या पहिले कह आये है भयउ समय जेहि हेतु जेहि। सो पहिले समय कहते है कि त्रेता युग की बात है। देवताओ का आना जाना अगस्त्यजी के यहाँ लगा ही रहता था। देवताओ के बैठने के लिए अगस्त्यजी के आश्रम म स्थान बने हुए थे। यथा स तत्र ब्रह्मण स्थानमग्ने स्थान तथैव च। विष्णो स्थान महेन्द्रस्य स्थान चैव विवस्वत । सामस्थान भवस्थान स्थान कौवेरमेव च। धातुर्विधातु स्थानञ्च वायो स्थान तथैव च। स्थानञ्च पाशहस्तस्य वरुणस्य महात्मन । स्थान तथैव गायत्र्या वसूना स्थानमेव च। स्थानञ्च नागराजस्य गरुडस्थानमेव च। कार्तिकेयस्य च स्थान धर्मस्थान च पश्यति। शिवजी भी जाया करते थे सो एक बार त्रेता युग म गये। भगवती सती भी साथ म थी। भवानी कहकर उनका शिवजी से सम्बन्ध कहा और 'जग जननि' कहकर अनादि शक्ति कहा। अखिलेश्वर जानकर पूजा करने का भाव यह कि अन्य देवताओ के जाने पर जैसी पूजा होती थी उससे अधिक पूजा मुनिजी ने की। क्योकि शिवजी विश्वनाथ है। ब्रह्मादि देवो के भी ईश्वर ठहरे। इसीलिए देवाधिदेव महादेव कहलाते हैं।

रामकथा मुनिबर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुखु मानी॥
रिषि पूछी हरि भगति सुहाई। कही सभु अधिकारी पाई॥२॥

अर्थ मुनिवर ने रामकथा वर्णन की और महेश्वर ने परम सुख मानकर सुनी। फिर कवि ने सुहाई हरि भक्ति पूछी और शिवजी ने अधिकारी पाकर कही।

व्याख्या पूजनोपरान्त रामकथा सुनाना शिवजी को प्रिय है। इसलिए ममज्ञ मुनिजी ने रामकथा का बखान किया। सम्भवत मुनिजी के आश्रम म भगवान् पधारे थे। उसी वृत्तान्त का वर्णन किया। पूजनोपरान्त प्रिय समाचार सुनाया। महेश्वर ने बडे प्रेम म सुना। सती को रुचि नही थी। अत आदर से नही सुना। यथा तत्र कर अस बिमोह मोहि नाही। रामकथा पर रुचि मन माही। मोह के बीज का वपन यही हुआ।

फिर ऋषिजी ने सुहाई हरिभक्ति अर्थात् फलरूपा सिद्धा हरिभक्ति पूछी। यथा सब कर फल हरि भगति सुहाई। साधनरूपा भक्ति के तो सभी अधिकारी है। यथा पुरुष नपुसक नारि वा जीव चराचर कोइ। सर्व भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ। परन्तु सिद्धा भक्ति के जिसे अविरल, निर्भर आदि अनेक नाम से पुकारते ह अधिकारी विरल हैं। यथा नान्या स्पृहा रघुपत हृदयेऽस्मदीये। सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा। भक्ति प्रयच्छ रघुपुगव निर्भरा म कामादिदोषरहितं कुरु मानस च। सो कामादि दोषो से रहित स्पृहान्तर रहित पुरुष ही सुहाई भक्ति के अधिकारी हैं। मुनिजी उस भक्ति के अधिकारी थे। इसलिए शिवजी ने उनसे कहा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कहत सुनत रघुपति गुन गाथा । कछु दिन तहाँ रहे गिरिनाथा ॥
मुनि सन बिदा मागि त्रिपुरारी । चले भवन सँग दच्छकुमारी ॥३॥

अर्थ रघुपति के गुणो की गाथा कहते और सुनते गिरिनाथ कुछ दिनो तक वही रहे । मुनिजी से विदा माँगकर त्रिपुरारि दक्ष की कन्या के साथ घर चले ।

व्याख्या यद्यपि कैलासनाथ हैं, फिर भी सत्सङ्ग के तथा हरिकथा के ऐसे रसिक हैं कि कुछ दिन वहाँ दण्डकारण्य मे ठहर गये । रघुपति के गुण ग्राम के कहनेवाले को अनिर्वाच्य विश्राम होता है और सुननेवाले को तृप्ति नही होती । यथा एहि विधि कहत राम गुनग्रामा । पावा अनिर्वाच्य विश्रामा । रामचरित जे सुनत अघाही । रस बिसेष जाना तिन्ह नाही । जिनका नयन पथ मे आगमन क्षण भर के लिए दुर्लभ है वे कुछ दिन वहाँ रह गये ।

अतिथि की भाँति आये थे । अत अतिथि की भाँति ही विदा माँगी । देवता की भाँति प्रादुर्भाव-तिरोभाव नही हुआ । विदा माँगने मे कारण दक्षकुमारी मालूम होती हैं । नही तो गिरिनाथ तो ऐसे रामकथा के रसिक है कि भुसुण्डि के यहाँ मराल बनकर पूरी कथा सुनी थी । दक्षकुमारी को घर जाने की जल्दी थी । दक्षकुमारी शब्द का प्रयोग दक्ष के स्वभाव की छाया सूचित करता है ।

तेहि अवसर भजन महि भारा । हरि रघुबश लीन्ह अवतारा ॥
पिता बचन तजि राज उदासी । दडक बन बिचरत अविनासी ॥१४॥

अर्थ इन्ही दिनो पृथ्वी का भार उतारने के लिए हरि ने रघुकुल मे अवतार लिया था । पिता के वचन से राजपाट छोडकर उदासीन होकर दण्डक वन मे विचरते थे ।

व्याख्या तेहि अवसर का अन्वय 'विचरत' के साथ है । हरि का अवतार पृथ्वी का भार उतारने के लिए होता है । यथा जब जब नाथ सुरन्ह दुख पावा । नाना तनु धरि तुमहि नसावा । मीन कमठ सूकर नरहरी । बामन परसुराम बपुधरी । रघुवश मे अवतार कहकर रामावतार सूचित किया । यहाँ कथा का प्रतीक मात्र कहते हैं । रघुबस लीन्ह अवतारा बालकाण्ड का प्रतीक है । पिता बचन तजि राज उदासी अयोध्याकाण्ड का प्रतीक है । दण्डक बन बिचरत अरण्यकाण्ड का प्रतीक है । पिता बचन तजि राज उदासी से धर्म सस्थापन कहा । दंडक बन बिचरहि अविनासी से दुष्कृतो का विनाश कहा । अविनाशी हैं इसीलिए दण्डक बन मे विचरते हैं । नही तो शापित दण्डक बन राक्षसो से भरा था । उसमे प्रवेश उनके नाश के लिए ही किया ।

दो हृदय बिचारत जात हर, केहि बिधि दरसनु होइ ।
गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु, गएँ जान सबु कोइ ॥४८॥
सकर उर अति छोभु, सती न जानहि मरमु सोइ ।
तुलसी दरसन लोभु, मन डरु लोचन लालची ॥४८॥ क

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ महादेवजी अपने मन मे विचारते जाते थे कि किस भाँति दर्शन हो प्रभु गुप्त रूप से अवतीर्ण हुए है। जाने से सब कोई जान जायँगे।

महादेवजी के मन मे बडा क्षोभ था सती इस भेद को जानती न थी। तुलसीदासजी कहते हैं कि मन मे तो डर है और आँखे दर्शन की लालची हैं।

व्याख्या महादेवजी विचार कर रहे हैं कि मै जा नही सकता। मेरे जाने से बात खुल जायगी। सब लोग जान जायँगे कि यह अवतार है। सरकार गुप्त रूप से प्रकट हुए हैं। यह जनाना नही चाहते कि मैं अवतार हूँ। इसीलिए रावणवध तक ऐश्वर्य गुप्त रखेंगे। तब दर्शन की कौन विधि है? मै उनके पास जा नही सकता और बिना गये दर्शन कैसे हो?

जाने से स्वामी की इच्छा की प्रतिकूलता का डर था और न जाने से दर्शन कैसे होगा? सो दर्शन का लालच बढा हुआ था। मन की विभिन्न गति हो रही थी। इसीलिए 'क्षोभ' कहते है। सतीजी ने यदि मन लगाकर कथा सुनी होती तो कुछ मर्म समझती। उन्होने मन दिया ही नही। अत इस मर्म से अनभिज्ञ थी।

रावन मरनु मनुज कर जाँचा। प्रभु बिधि बचनु कीन्ह चह साँचा ॥
जौ नहि जाउँ रहै पछतावा। करत बिचारु न बनत बनावा ॥१॥

अर्थ रावण ने अपनी मौत मनुष्य के हाथ माँगी है। प्रभु ब्रह्मदेव की बात सच्ची करना चाहते हैं। यदि नहीं जाता हूँ तो जी मे पछतावा रहेगा। विचार करते थे पर कोई बात ठीक बैठती नही थी।

व्याख्या मनुष्यशक्ति की इयत्ता को रावण जानता था। ऐसा मनुष्य उत्पन्न करना जो रावण को मार सके ब्रह्मदेव की शक्ति के बाहर की बात थी। उसने अपनी समझ म मनुष्य के हाथ अपना वध माँगकर ब्रह्मदेव के वचन को मिथ्या करना चाहा था। यथा नर के कर आपन वध बाँची। हँसेउ जानि बिधिगिरा असाँची। पर प्रभु अपने भक्त ब्रह्मदेव की वाणी सच्ची करना चाहते थे। इसीलिए नरावतार धारण किया। इस समय ध्वज, कुलिश, अङ्कुश और कञ्जादि चिह्नो स युक्त चरणो से वन के काँटो म घूम रहे हैं। यथा ध्वज कुलिस अकुस कजजुत बन फिरत कटक किन लहे। ऐसी भक्तानुग्रहकारिणी अवस्था यदि भक्तवत्सल प्रभु की अवस्था की झाँकी का दर्शन न किया तो पछतावा रह जायगा। इसी बात को मन मे बैठाते थे पर कोई युक्ति ठीक नही बैठती थी।

एहि बिधि भए सोच बस ईसा। तेही समय जाइ दससीसा ॥
लीन्ह नीच मारीचहि संगा। भयउ तुरत सोइ कपट कुरंगा ॥२॥

अर्थ इस प्रकार महादेवजी सोचवश हुए। उसी समय नीच रावण ने जाकर नीच मारीच को साथ मे लिया। वह तुरत कपट का मृग हो गया।

व्याख्या तेही समय का अन्वय यथार्थ मे 'खोजत बिपिन फिरत' के साथ है। पर बीच के बिना कहे अर्थ न लगता। इसीलिए यहाँ पर 'तेही समय' लिख दिया। इस भाँति महादेवजी सोच के वश हुए। अब 'राम सदा सेवक रुचि राखी'

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इस बात को दिखाते हुए कहते है, दशशीश ने सीताहरण विचारा। दशशीश कहने से उसकी निर्भयता दिखलायी। यथा है काके द्वै सीस ईसके जो हठि जन की सीम चरै। दशशीश भी नीच है, मारीच भी नीच है। दशशीश की नीचता। यथा तब सी गयउ जहाँ मारीचा। नाई माथ स्वारथ रत नीचा। मारीच की नीचता। यथा लछिमन कर प्रथमहि लै नामा। पाछे सुमिरेसि मन महुँ रामा। मारीच कपट मृग बना। रावण ने सीता हरण किया।

करि छल मूढ हरी वैदेही। प्रभु प्रभाउ तस विदित न तेही ॥
मृग[1] वधि बधु सहित हरि आए। आश्रमु देखि नयन जलु छाए ॥३॥

अर्थ उस मूढ ने छल करके वैदेही का हरण किया। प्रभु का प्रभाव जैसा था वैसा उसने न जाना। हिरन को मारकर भाई सहित हरि लौटे। आश्रम को देखकर[2] आँखो मे आँसू आगये।

व्याख्या वैदेही बदल गई। माया की सीता हरण करके चला इसलिए रावण का मूढ कहा। अथवा निशिचर की कालरात्रि को इतने परिश्रम से हरण करके ले जाकर लङ्का म स्थापित करने चला इसलिए मूढ कहते है। उसको प्रभु का प्रभाव यथार्थ रूप से नही मालूम था। उसका चित्त सन्देह म था। यथा सुररजन भजन महि भारा। जौ भगवत लीन्ह अवतारा। तउ मै जाइ बयरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ। जौ नर रूप भूपसुत कोऊ। हरिहौ नारि जीति रन दोऊ। जब बल से जीतने का साहस नही हुआ तब मायापति को माया से जीतना चाहा।

मृगवध करके आ रहे है इसलिए 'हरि' कहना ही उपयुक्त है। आश्रम देखि जानकी हीना। भए बिकल जस प्राकृत दीना। व्रजन्ति मूढधिय पराभव भवन्ति मायाविपु ये न मायिन। मायावी के साथ जो माया नही करता वह मूढ पराभव को प्राप्त होता है। अत प्राकृत दीन की भाँति विकल होना यह रामजी की माया है। माया की जानकी को ही वह असली जानकी समझता है। वह सीता हरण करने म स्वय ठगा गया। इस बात का उसे भान नही था।

बिरह बिकल नर इव रघुराई। खोजत बिपिन फिरत दोउ भाई ॥
कबहूँ जोग बियोग न जाके। देखा प्रगट बिरह दुखु ताके ॥४॥

अर्थ रघुराई मनुष्या की भाँति व्याकुल है। दोनों भाई वन मे सीता को

---

१ समासोक्ति।

२ आश्रम निरखि भूल द्रुमन फले न फूल, अलि खग मृग माना कबहूँ न हे।
मुनि न मुनि बधूटी उजरो परन कुटी पचबटी पहिचानि ठाढई रहे।
उठा न सलिल लिए प्रेम मुदित हिये, प्रिया न पुकारि प्रिय बचन कहे।
पल्लवसाल्न हरी प्रानवल्लभा न टरी बिरह बिथकि ल्खिल्खन गहे। गो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ढूँढते हुए फिरने लगे। जिन्हे कभी सयोग वियोग नही होता उन्हे प्रत्यक्ष विरह के दु ख मे देखा।

व्याख्या · अद्वितीय को योग वियोग कहाँ ? योग वियोग तो जीव को होता है। इसी को भ्रम का फद कहा गया है। यथा जोग वियोग भोग भल मदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फदा। रामजी को प्रत्यक्ष विरह के दु ख मे देखना माया है। माया अघटित घटना पटीयसी है। जो बात तीन काल मे नही है · उसे प्रत्यक्ष करके दिखला दिया। जस काछिय तस चाहिय नाचा। सो ठीक मनुष्य का अनुकरण करके नर की भाँति रामजी विकल दिखाई पड रहे है और तमाम जगल दोनो भाई ढूँढ रहे है।

दो अति विचित्र रघुपति चरित, जानहिं परम सुजान।
जे मतिमद विमोह बस, हृदय धरहि कछु आन ॥४९॥

अर्थ रघुपति का चरित्र बडा ही विचित्र है। इसे परम सुजान ही जानते है। जो मतिमन्द है वे विमोह बस मन मे कुछ और बात समझते है।

व्याख्या · ब्रह्म का कौसलपुर भूप होना ही विचित्र बात है। यथा कहहुँ विचित्र कथा विस्तारी। जेहि कारन अज अगुन अनूपा। ब्रह्म भयउ कोसलपुर भूपा। और उनका विरह-विकल होना तो अति विचित्र है। परम सुजान से अति उच्च अधिकारी कहा। परम सुजान शम्भु है। उन्हे देखकर अति हर्ष हुआ। आगे कहेगे उपजा हिअ अति हर्ष विसेखा। जो मतिमन्द है वे उन्हे सीधे मनुष्य समझेगे। यथा उमा राम गुन गूढ, पडित मुनि पावहिं विरति। पावहिं मोह विमूढ, जे हरि विमुख न धर्म रति। यथा अनेक वेप धरि नृत्य करै नट कोई। सोइ सोइ भाव दिखावै, आपुन होइ न सोइ। अस रघुपति लीला उरगारी। दनुज विमोहन जन सुखकारी।

सभु समय तेहि रामहि देखा। उपजा हिअ अति हरपु विसेखा॥
भरि लोचन छविसिधु निहारी। कुसमउ जानि न कीन्हि चिन्हारी ॥१॥

अर्थ शिवजी ने उस समय रामजी को देखा तो उनके मन मे अति विशेष हर्ष हुआ। छवि के समुद्र को शिवजी ने आँख भर देखा पर अवसर ठीक न समझकर जान पहचान नही की।

व्याख्या विचार करते थे दर्शन के लिए पर बात बैठती नही थी। एकाएक दर्शन हो गया। देखा कि विरह-विकल सीता को खोज रहे है। प्रेमास्पद को दु खी देखकर दु खी होना चाहिए सो न हुआ। परम सुजान है। जानते है कि 'राम सहज-आनन्द-निधान' है। बात बन गई। दर्शन हो गया। इसलिए हर्ष और अद्भुत भाव प्रदर्शन देखकर अति विशेष हर्ष हुआ। सो शम्भु राम को देख रहे हैं। रामजी नही देखते हैं। अत दर्शन का सुअवसर है।

जे हर हिय नयनन्हि कबहुँ निरखे नाहिं अघाय। सो अघायकर देखने का अवसर मिला। अन्य समय मे वसन विभूषण से अङ्ग ढके रहते थे। पूरा सौन्दर्य देखने को नही मिलता था। इस समय वस्त्राभूषण से अनावृत शोभा देखने को

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मिली। यथा कागर कीर विभूषन चीर सरीर लस्यौ तजि नीर ज्यौं काई। प्रभु शोभा के सिन्धु हैं। नित्य शोभा की नई लहरें उठा करती हैं। सदा अपूर्व शोभा है। दर्शन तो कर लिया पर सामना न किया। ऐश्वर्य छिपाने का अभिनय हो रहा है। इस समय कुसमय है। सामना करना ठीक नहीं। जब रावण वध से ऐश्वर्य प्रकट हो जायगा उस समय सुअवसर होगा। यथा देखि सुअवसर प्रभु पहँ आये सभु सुजान।

जय सच्चिदानंद जगपावन। अस कहि चले मनोजनसावन॥
चले जात सिब सती समेता। पुनि पुनि पुलकत कृपा निकेता॥२॥

अर्थ . जगत् के पवित्र करनेवाले सच्चिदानन्द की जय हो। ऐसा कहकर कामदेव के मारनेवाले कृपानिधान शिवजी चले। बार बार आनन्द से पुलकित होते हुए सती के साथ चले जाते थे।

व्याख्या सच्चिदानन्द से ब्रह्म कहा। जगपावन से अवतार कहा। यथा चरित पवित्र किये ससारा। 'जय' शब्द से अपनी प्रणति सूचित की। मनोजनसावन शिवजी हैं। यथा . तुम्हरे जान काम अब जारा। अब लगि सभु रहे सविकारा। हमरे जान सदा सिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी। इनका प्रणाम विरही के लिए नही हो सकता। यही सती के सशय का बीज है। 'चले' कहने से पता चलता है कि दर्शन के समय ठहर गये थे।

कृपानिकेत हैं। दक्षकुमारी का मन नही लगा। इसलिए भवन चले थे। यहाँ भी थोड़ा ही ठहरे। पर स्वामी के स्मरण से बार बार सात्त्विक भाव हो रहा है। त्रैलोक्यसुन्दरी सती साथ रहती हुई भी विस्मृत हो रही हैं।

सती[1] सो दसा संभु कै देखी। उर उपजा सदेहु बिसेखी॥
संकर जगतबद्य जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावत सीसा॥३॥

अर्थ · सती ने महादेवजी की वह दशा देखी। उनके मन मे विशेष सन्देह हुआ कि सारा जगत् तो शिवजी की वन्दना करता है। वे सारे जगत् के स्वामी हैं। इनको देवता, मनुष्य, मुनि सब सिर नवाते हैं।

व्याख्या : सती ने ऐसी दशा शम्भु की देखी नही थी। प्रकट रूप से शिवजी से सन्देह का प्रकाश न किया पर हृदय में सन्देह विशेष उपजा। शिवजी के आनन्द-विशेष से सती जी को सन्देहविशेष हुआ। जगत् के वन्द्य ने किसकी वन्दना की? जगदीश ने किसको ईश माना? जिसको सुर नर मुनि सिर नवाते है उसने किसे सिर नवाया? ऐसे को तो शङ्कर से भी बडा होना चाहिए।

तिन्ह नृपसुतहि कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानंद परधामा॥
भए मगन छबि तासु बिलोकी। अजहुँ प्रीति उर रहित न रोकी॥४॥

---

१. जिस भाँति आज कल भूतकालिक सकर्मक क्रिया के कर्ता के पीछे 'न' जोड़ते है वैसे ही पहिले अनुस्वार जोड़ते थे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ उन्होने राजपुत्र को सच्चिदानन्द परधाम कहकर प्रणाम किया। [illegible]की छवि देखकर ऐसे मग्न हुए कि अब तक हृदय मे प्रीति रोकने से नही रुक [illegible]ा है।

व्याख्या सती हैं, जिसकी छवि देखकर शिवजी मग्न है। उसकी छवि को [illegible]सी गिनती मे नही ला रही हैं न उसकी महत्ता को गिन रही है। सशय को और [illegible]ष्ट करते हुए कहती है कि केवल शीश ही नही नवाया सच्चिदानन्द परधाम कहा। जगपावन और परधाम एक ही बात है। जो परधाम है वही जग को [illegible]त्र कर सकता है। इसी भाँति मनुष्य को ब्रह्मलक्षण से स्तुति की।

अपरोक्ष मे वन्दना और स्तुति की और उनके परोक्ष मे ध्यान कर रहे [illegible]। प्रेम का प्रवाह उमड पडा है। उसके रोकने से बार बार सात्त्विक भाव हो[illegible]ा है।

दो ब्रह्म जो व्यापक बिरज अज, अकल अनीह अभेद।
सो कि देह धरि होइ नर, जाहि न जानत बेद ॥५०॥

अर्थ जो ब्रह्म सबमे व्याप्त मायारहित अजन्मा कलाहीन इच्छा और [illegible] रहित है और जिसे वेद नही जानते वह देह धारण करके क्या मनुष्य हो[illegible]ता है ?

व्याख्या ब्रह्म व्यापक मायारहित अज अकल अनीह अभेद और अज्ञेय है। [illegible]यदि शरीरधारी हो तो परिच्छिन्न मायावश जन्ममरणशील कलायुक्त सचेष्ट भेद-[illegible]न्न और ज्ञेय हो जायगा। अर्थात् ब्रह्म ही न रह जायगा। जीवकोटि मे आ पडेगा। [illegible]द तुष्यतु दुर्जनन्यायेन मान भी ले कि वह शरीर धारण करता है तो उत्तम शरीर [illegible]रण न करके मरणशील मनुष्य का देह क्यो धारण करेगा ? भूलना नही चाहिए सम्पूर्ण ग्रन्थ इसी शङ्का के उत्तर मे कहा गया है।

[illegible]स्नु जो सुर हित नरतनु धारी। सोउ सर्वग्य यथा त्रिपुरारी॥
[illegible]जै सो कि अग्य इव नारी। ग्यानधाम श्रीपति असुरारी ॥१॥

अर्थ विष्णु ने यदि देवताओ के लिए मनुष्य शरीर धारण किया है तो वे भी [illegible]वजी के समान सर्वज्ञ है। वे ज्ञानधाम, श्रीपति, असुरारि क्या अज्ञानियो की भाँति [illegible] खोजेगे ?

व्याख्या विष्णु बराबर के हैं शिवजी को प्रिय भी है। वे मत्स्यकूर्मादि [illegible]तार भी धारण करते है। उनके प्रति प्रणामादिक बन सकता है। परन्तु वे भी उसी भाँति सर्वज्ञ है जैसे त्रिपुरारि सर्वज्ञ है। वे ज्ञानधाम है। अज्ञ कैसे हो[illegible]गे ? वे श्रीपति हैं। मानुषी को क्यो खोजेगे। वे असुरारि है। उनके निकट असुर [illegible]हरण करने कैसे आवेगा ? अत यह राजपुत्र विष्णु भी नही हैं।

[illegible]गिरा पुनि मृषा न होई। सिव सर्बग्य जान सबु कोई॥
[illegible] ससय मन भयउ अपारा। होइ न हृदय प्रबोध प्रचारा ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ फिर शङ्कर भगवान् की वाणी भी झूठी नहीं हो सकती। सब कोई जानते है कि शिवजी सर्वज्ञ है। ऐसा अपार सशय मन मे हुआ। किसी भाँति ज्ञान का प्रसार नहीं होता था।

व्याख्या उभय कोटि अवलम्बी ज्ञान को सशय कहते हैं। एक कोटि ऊपर कह चुके कि विचार करने से न तो ब्रह्म ठहरते हैं, न विष्णु ठहरते हैं। परन्तु दूसरी कोटि यह है कि जगत् विख्यात सर्वज्ञ की वाणी झूठी कैसे हो सकती है। यथा वचन अन्यथा होइ न मोरा। इस व्यवस्था मे मन कहीं ठहरता नहीं। अत सशय का पार नहीं मिल रहा है। पहिले 'सदेह विशेष' कहा था अब 'अपार सशय' कह रहे हैं। अर्थात् सशय वृद्धिक्रम पर है।

जद्यपि प्रगट न कहेउँ भवानी। हर अतरजामी सब जानी॥
सुनहि सती तव नारि सुभाऊ। ससय अस न धरिय उर काऊ॥३॥

अर्थ यद्यपि भवानी ने प्रगट नहीं कहा। पर अन्तर्यामी हर ने सब जान लिया। कहा कि सती ! सुनो तुम्हारा स्वभाव स्त्री का है। ऐसा सन्देह मन में कभी नहीं लाना चाहिए। जहाँ 'तन काऊ' पाठ है वहाँ यह अर्थ करना चाहिए कि ऐसा तनिक भी सशय मन म नहीं धारण करना चाहिए।

व्याख्या मन मे तो सोचती ही थी, प्रकट न कहा। डर था कि अप्रसन्न हो जायेगे कि मुझ पर इसे विश्वास नहीं है। जिसे मैं प्रणम्य समझता हूँ उसपर जीव होने का सशय करती है। पर हर अन्तर्यामी है, सब जान गये। समझा कि पूछने पर कहने से सामान्य बात हो जायगी। विना पूछे कहेगे तो विश्वास होगा कि जो मन की बात जान लेता है उसका कहना अन्यथा नहीं हो सकता और सशय जाता रहेगा।

'नापृष्ट कस्यचिद् ब्रूयात्' यह नियम ऐसे अवसर के लिए नहीं। ऐसे सशय का इनके हृदय मे क्षण भर के लिए होना भी इन्हे अपने पद से गिरा सकता है। उस महाप्रभु के पररूप के देखने म देवता भी असमर्थ है। जब वह कृपासिन्धु लोकमङ्गल के लिए शरीर धारण करते हैं तभी उनके पूजन का मार्ग निरर्गल होता है। तो उनके अवतीर्ण होने पर सशय करना तो उस कृपाधारा से अपने को वञ्चित करना है जो लोकमङ्गल के लिए पृथ्वी पर बह रही है। 'यस्यावतारूपाणि समर्चन्ति दिवौकस। अपश्यन्त पर रूप नमस्तस्मै महात्मने। वि० पु०। अत विना पूछे भी कहते हैं। 'नारिस्वभाव' से भाव यह कि तुममे जडता हो। यथा राजकुमारि विनय हम करही। तिय सुभाव कछु पूछ्त डरही। विचार होता तो सशय उत्पन्न होते ही तुमको उसके निरसन का यत्न करना चाहिए था। सो मन मे छिपाये बैठी हो। सशय छोडने से छूटता है, उसके बनाये रखने का प्रयत्न न होना चाहिए।

जासु कथा कुभज रिषि गाई। भगति जासु मै मुनिहि सुनाई॥
सोइ मम इष्टदेव रघुबीरा। सेवत जाहि सदा मुनि धीरा॥४॥

अर्थ जिनकी कथा का गान कुम्भज ऋषि ने किया और जिनकी भक्ति

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मैंने मुनिजी को सुनाई वही रघुवीर मेरे इष्टदेव है जिनकी सेवा धीर मुनि सदा किया करते है।

व्याख्या सकर जगत वद्य जगदीसा। सुर नर मुनि सब नावति सीसा। का उत्तर देते है कि अभी-अभी उनकी कथा साक्षात् अगस्त्य जी ने गान की है और जिनकी भक्ति मैंने मुनिजी को सुनाई। यथा रामकथा मुनिवर्ज बखानी। सुनी महेस परम सुख मानी। रिपि पूछी हरि भगति सोहाई। कही सभु अधिकारी पाई। अत उनके माहात्म्य से तुम परिचित हो। उनका दर्शन भी आज हो गया। उन्हे स्त्रीविरही न मानो। वे ही मेरे इष्टदेव हैं। राजपुत्र नही हैं। धीर मुनि उनकी सेवा करते है।

छ. मुनि धीर जोगी सिद्ध सतत विमल मन जेहि ध्यावही।
कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावही॥
सोइ रामु व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति मायाधनी।
अवतरेउ अपने भगत हित निजतत्र नित रघुकुलमनी॥

अर्थ मुनि, धीर, योगी और सिद्ध निरन्तर शुद्ध चित्त से जिनका ध्यान करते हैं। वेद पुराण और शास्त्र नेति-नेति कहकर जिनकी कीर्ति का गान करते हैं। उन्ही ब्रह्म व्यापक भुवनसमूह के पति, माया के स्वामी रामजी ने अपने भक्तो के लिए अवतार लिया है। क्योकि रघुकुलमणि नित्य स्वतन्त्र है।

व्याख्या भये मगन छवि तासु विलोकी। अजहुँ प्रीति उर रहत न रोकी। के उत्तर मे शिवजी कहते है चारो मार्गवाल इन्हीका ध्यान करते है। १ मुनि से ज्ञानमार्गी कहा। २ धीर से उपासनामार्गी कहा। यथा अस विचारि पडित मोहि भजही। ३ योगी से योगमार्गी कहा। ४ सिद्ध से कर्ममार्गी कहा। 'ब्रह्म जो व्यापक' के उत्तर मे कहते हैं सोइ राम व्यापक ब्रह्म और विरज अज अकल अनीह अभेद के उत्तर मे कहते है भुवन निकाय पति मायाधनी तथा जाहि न जानत वेद के उत्तर मे कहते हैं कहि नेति निगम पुरान आगम जासु कीरति गावही। यथा वेदे रामायणे चैव हरि सर्वत्र गीयते। अब 'सो कि देह धरि होइ नर' के उत्तर म कहते है 'अवतरेउ अपने भगतहित निज तत्र नित रघुकुल मनी।

यह अट्ठाइस दल का कमल है। हरिगीतिका छन्द है। इस छन्द का वर्णन पहिले हो चुका है।

सो लाग न उर उपदेसु, जदपि कहेउ सिव बार बहु।
बोले विहँसि महेसु, हरि माया बलु जानि जिय॥५१॥

अर्थ यद्यपि शिवजी ने अनेक बार कहा तो भी सती जी के हृदय मे उपदेश न लगा। महेश मन मे हरिमाया का बल जानकर हँसकर बोल।

व्याख्या शिवजी के वचन भ्रमतम के लिए सूर्य की किरणें है। सो हृदय मे काम नही कर रहा है। बार बार प्रकाश डाल रहे है। भ्रमतम नही मिट रहा है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


समझ लिया कि इनके हृदय मे हरिमाया काम कर रही है। तभी हमारे उपदेश का वल नही चल रहा है। हरिमाया के बल को पहचान लिया इसलिए हँसे। सशय[1] किसी तरह हटना ही चाहिए। अत बोले :

जौ तुम्हरे मन अति सदेहू। तौ किन जाइ परीछा लेहू॥
तव लगि वैठ अहौ वट छाही। जव लगि तुम ऐहहु मोहि पाही॥१॥

अर्थ यदि तुम्हारे मन मे अति सन्देह है तो तुम जाकर परीक्षा क्यो नही लेती ? जव तक तुम मेरे पास आओ तव तक मैं इसी वरगद की छाया मे वैठा हूँ।

व्याख्या मेरे कहने पर भी यदि तुम्हारा सन्देह न जाता हो अति सन्देह हो तव तो दूसरा उपाय नही है। जाकर परीक्षा ले लो कि मेरे कहे हुए लक्षण रामजी मे घटते हैं या नही। अति सन्देह विना परीक्षा के जाता नही। सन्देह मिटाना ही चाहिए। परीक्षा लेने मे मै सहायक नही होऊँगा। तुम जाओ परीक्षा लो। मै वट की छाया मे वैठकर तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगा। परीक्षा लेकर यही चली आना। जल्दी न करना। विचारकर काम करना। तुम्हारे लौटने तक यही ठहरा रहूँगा।

जैसें जाइ मोह भ्रम भारी। करेहु सो जतनु विवेक विचारी॥
चली सती सिव आयसु पाई। करहिं विचारु करौं का भाई॥२॥

अर्थ · जिस प्रकार तुम्हारा यह भारी मोह भ्रम दूर हो वही यत्न विवेक से विचारकर करना। शिवजी की आज्ञा पाकर सती चली और मन मे सोचने लगी कि 'भाई ! क्या करूँ।'

व्याख्या · तुम्हे मोहान्धकार मे भारी भ्रम हो गया है। उसे मिटाने के लिए परीक्षा करना। परन्तु मोहाविष्ट होने से परीक्षा लेने मे अविवेक न हो जाय। वडे की परीक्षा लेनी है। सो परीक्षा की ओर मत जाना। अपने भारी मोह भ्रम को मिटाने का यत्न करना।

परीक्षा लेने की तो इच्छा थी ही। पर सती है विना स्वामी की आज्ञा कैसे लें। सो आज्ञा पाते ही चल पडी। अव विचार करने लगी कि क्या करूँ। 'भाई' सम्वोधन मन के लिए है। यथा : तरुपल्लव महँ रहा लुकाई। करै विचार करौ का भाई।

इहाँ संभु अस मन अनुमाना। दच्छ सुता कहु नहि कल्याना॥
मोरेहु कहे न संसय जाही। विधि विपरीत भलाई नाही॥३॥

अर्थ : यहाँ शिवजी ने मन मे यह अनुमान किया कि दक्ष की वेटी का कल्याण

---

१. जिन भक्तो पर अनुग्रह करके भगवान् ने नर शरीर धारण किया वे ही यदि उनकी अवज्ञा करें तो इससे बढकर कृतघ्नता और क्या होगी। फिर भी शिवजी को परीक्षा के लिए सती को भेजना मजूर है। पर उनके हृदय मे एक क्षण के लिए ऐसा सशय रहने देना मजूर नहीं है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नही है। मेरे समझाने से भी सन्देह नही दूर होता। तो विधि विपरीत हैं। भलाई नही है।

व्याख्या . कथा मे यह देखना आवश्यक होता है कि[1] ग्रन्थकार कहाँ हैं? बात स्पष्ट है कि ग्रन्थकार सती के साथ नही गये। महादेव जी के साथ रह गये। इसलिए कहते हैं कि यहाँ शङ्करजी ने मन मे अनुमान किया कि जिसका मेरे उपदेश पर भी सशय नही जाता उसका कल्याण नही होता। दक्षसुता का भी मेरे कहने पर सशय नही जाता। अत दक्षसुता का कल्याण नही। मेरे उपदेश से सशय जाने की विधि है। जिस भाँति सूर्य की किरणो से अन्धकार के हटने की विधि है। मेरे कहने पर सशय का न जाना और सूर्य के किरण पडने पर भी अन्धकार का न हटना एक बात है। इसलिए यह बात विधि विपरीत है। अत निश्चय भलाई होनेवाली नही है। अथवा ब्रह्मा बाएँ हो गये हैं। तभी हमारे कहने पर भी सशय नही जाता। नही तो हमारे सकल्प से सशय चला जाता है। यथा चित्र वटतरोर्मूले वृद्धा शिष्या गुरुर्युवा। गुरोर्मौनेन व्याख्यान शिष्या सक्षीणसशया। वट के पेड के नीचे विचित्र बात है कि शिष्य तो बूढे-बूढे हैं और गुरु जी युवा हैं। गुरुजी मौन होकर व्याख्यान दे रहे हैं और शिष्यो के सब सशय दूर हो जाते हैं। अत 'भलाई नाही।'

होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढावैं साखा॥
अस कहि लगे जपन हरि नामा। गई सती जहँ प्रभु सुखधामा॥४॥

अर्थ जो कुछ रामजी ने रच रक्खा है वही होगा। तर्क करके शाखा कौन बढावे। ऐसा कहकर हरिनाम जप करने लगे। और सती वहाँ गई जहाँ सुख के धाम प्रभु थे।

व्याख्या पहिले सूक्ष्म जगत् मे जो मानचित्र रामजी बना देते है वैसा ही इस जगत् मे स्थूल रूप से होता है। उसे अन्यथा कोई नही कर सकता। अत पुरुषार्थ परमार्थ सुधारने मे करना चाहिए। यथा मयैवैते निहता पूर्वमेव निमित्तमात्र भव सव्यसाचिन्। भगवान् अर्जुन से कहते हैं कि इन कौरवो को मैं पहिले ही मार चुका हूँ। हे अर्जुन तू निमित्तमात्र हो जा। तर्क करने से, उसमे शाखा पर शाखा निकलती ही जाती है। इसलिए कहा है कि तर्कोऽप्रतिष्ठ। तर्क की कोई प्रतिष्ठा नही। अत सती जाकर क्या क्या करेगी और उसका क्या क्या फल होगा यह सोचना व्यर्थ है। सोच से कोई उपकार नही होता। ऐसा कहकर 'हरि नाम' का जप करने लगे। क्योकि यही श्रेष्ठ पुरुषार्थ है। यथा उमा राम सुभाव जेहि जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना। चली सती सिव आयसु पाई से प्रसङ्ग छोडा था। अब फिर वही से उठाते हैं, गई सती जहँ प्रभु सुख धामा। प्रभु और सुखधाम कहकर सती का

---

१ ग्रन्थकार सदा भगवान् के साथ रहते हैं और यदि भक्त और भगवान् दोनो की कथा आ पडे तो अपने समाज के साथ अर्थात् भक्त के साथ रहते है। अत सम्पूर्ण ग्रन्थ मे 'इहाँ' और 'उहाँ' का प्रयोग ध्यान देने योग्य है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


भ्रम दिखलाया। जिसे उन्होंने स्त्रीविरह मे दु खी समझ रक्खा है वह सुखधाम है। यथा . सो सुखधाम राम अस नामा। जिसे 'नृपसुत' समझ रक्खा है वह प्रभु हैं।

दो पुनि पुनि हृदय विचार करि, धरि सीताकर रूप ॥
आगे होइ चलि पंथ तेहि, जेहि आवत नरभूप ॥५२॥

अर्थ : बार बार मन में विचार करके और सीता का रूप धारण करके उस मार्ग मे आगे होकर चली। जिस मार्ग से मनुष्यो के राजा आ रहे थे।

व्याख्या जहाँ से चली वही से विचार प्रारम्भ हुआ। यथा करौ का भाई। रास्ते भर विचार करती रही। स्वामी का आदेश है अत बार बार विचार करके बात ठीक कर ली कि सच्ची परीक्षा तो तभी होगी जब मैं सीता का रूप धरूँ। यदि मनुष्य होंगे तो मेरी माया का पार न पा सकेंगे। अत सीता का रूप धारण करके जिधर से रामजी आते रहे उधर ही चली। मानो सीता वन मे भूलती भटकती चली आ रही हैं। अभी रामजी आश्रम से बहुत दूर नही हैं। खोजना प्रारम्भ हुआ है। अत सीता के धोखे मे आ जावेंगे। देखते ही खिल उठेंगे। तब मैं अन्तर्धान हो जाऊँगी। इस भाँति परीक्षा भी हो जायगी और उनकी कोई हानि भी न होगी।

लछिमन दीख उमा कृत वेषा। चकित भये भ्रम हृदयँ बिसेषा ॥
कहि न सकत कछु अति गंभीरा। प्रभु प्रभाउ जानत मति धीरा ॥१॥

अर्थ : उमा के बनावटी रूप को लक्ष्मणजी ने देखा। चकित हो उठे। हृदय मे विशेष भ्रम हुआ। अति गम्भीर थे। कुछ कह नही सकते थे। वे मतिधीर प्रभु का प्रभाव जानते थे।

व्याख्या · उमा कहने का भाव यह कि यह तो शिवजी की शक्ति हैं। ओमाँ उमा। उ जो शिव उनकी लक्ष्मी हैं। लक्ष्मणजी चकित हैं कि यह तो शिवजी की शक्ति हैं। इन्होंने जानकी जी का वेष क्यो बनाया है ? विशेष भ्रम हो रहा है कि मेरे समझने मे कुछ चूक तो नही हो रही है। या कोइ ऐसी माया हो रही है जो मैं समझ नही रहा हूँ।

श्रीराम जी के प्रभाव को मतिधीर लक्ष्मणजी जानते हैं कि इनसे कोई बात छिप नही सकती। ये स्वय जैसा उचित समझेंगे करेंगे। मेरे कुछ भी कहने का मतलब यह होगा कि मुझे सरकार की सर्वज्ञता मे सन्देह है। अत कुछ नही कह सकते। गम्भीर भाव मे स्थित हैं।

सती कपटु जानेउ सुर स्वामी। सबदरसी सबअंतरजामी ॥
सुमिरत जाहि मिटै अग्याना। सोइ सरबग्य रामु भगवाना ॥२॥

अर्थ सती के कपट को सुरस्वामी जान गये। क्योकि सब कुछ देखनेवाले और सबके हृदय के प्रेरक हैं। जिनके स्मरण से अज्ञान मिट जाता है वही सर्वज्ञ भगवान् रामजी हैं।

व्याख्या . सती साक्षात् माया है। यथा : तुम्ह माया भगवान् सिव सकल

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जगत् पितु मातु । इनके कपट को ब्रह्मादि नही जान सकते । परन्तु देवताओ के स्वामी रामजी जान गये कि सीता के वेष मे सती हैं। वे सर्वदर्शी हैं। सब देख रहे हैं कि महादेव जी बरगद तले बैठे हैं और वही से ये आई है। वे अन्तर्यामी हैं। भली भाँति जानते हैं कि शङ्करजी का उपदेश इनके गले नही उतरा। इसलिए परीक्षा लेने के लिए सीता बनकर आई हैं।

ज्ञानमार्गं तु नामत । जिनके नाम से ज्ञानमार्ग की प्राप्ति होती है। अज्ञान का हटना और ज्ञान का होना एक बात है। वही सर्वज्ञ भगवान् रामजी नामी हैं। उत्पत्ति प्रलयञ्चैव भूतानामगतिं गतिम् । वेत्ति विद्यामविद्याञ्च स वाच्यो भगवानिति। उत्पत्ति, प्रलय, प्राणियो की गति और अगति, विद्या और अविद्या को जानता हो उसे भगवान् कहते हैं। सो सर्वज्ञ भगवान् रामजी को क्या अज्ञात रह सकता है ?

सती कीन्ह चह तहहुँ दुराऊ। देखहु नारि सुभाव प्रभाऊ ॥
निजमायाबलु हृदय बखानी। बोले बिहँसि राम मृदु बानी ॥३॥

अर्थ सती ने वहाँ भी छिपाव करना चाहा। स्त्री के स्वभाव का प्रभाव देखो। अपनी माया के बल की प्रशसा मनमे करके रामजी हँसकर कोमल वाणी बोले।

व्याख्या भगवान् सर्वज्ञ से छिपाव चाहना चपलता है। यह स्त्रीस्वभाव है जो बात छिप नही सकती उसे भी छिपाती रहती हैं। कवि कहते हैं कि यह स्वभाव का प्रभाव है। स्वभावो दुरतिक्रम ।

कथा के अनादर के समय से ही माया की प्रेरणा हुई। उसी के सामने शिवजी के उपदेश का बल न चला। बात यहाँ तक बढी कि अब ये भी सीता बनकर आई हैं। अत अघटितघटनापटीयसी की हृदय से प्रशसा की। और मृदु वाणी हँसकर बोले। सती के सीता बनने पर हँसे हैं।

जोरि[1] पानि प्रभु कीन्ह प्रनामू। पिता समेत लीन्ह निज नामू ॥
कहेउ बहोरि कहाँ बृषकेतू। बिपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू ॥४॥

अर्थ प्रभु ने हाथ जोडकर प्रणाम किया और पिता के सहित अपना नाम लिया। फिर कहा कि वृषकेतु कहाँ है। आप अकेली वन मे क्यो फिर रही है ?

व्याख्या प्रभु ने सविधि प्रणाम किया मानो बहुत दिनो का परिचय है। फिर भी सन्देह न रहे इसलिए पिता के समेत अपना नाम लिया। दाशरथी रामोऽहं त्वामभिवादये[2]। यथा पितु समेत कहि कहि निज नामा। लगे करन सब दण्ड प्रनामा। पिता के समेत अपना नाम लेकर बडे को प्रणाम करना शास्त्रसम्मत है। जहाँ 'पिता समेत लीन्ह हरि नामू' पाठ है वहाँ यह अर्थ करना चाहिए कि सती को पिता समेत नाम लेकर प्रणाम किया। यथा सति ! दाक्षायनि[3] ! त्वामभि-

१ विहितालङ्कार है।
२ मै दशरथ का बेटा राम हूँ तुम्हे प्रणाम करता हूँ।
३ हे दक्ष की पुत्री सती मैं तुम्हे प्रणाम करता हूँ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


वादये। इस भाँति धर्मपत्नी को प्रणाम नही किया। भाव यह कि आप देवी हैं, सीता नही हैं, मैं पहिचानता हूँ। दूसरा यह कि मैं नृपसुत हूँ। अत आप सर्वथा प्रणम्य हैं।

देवियों मे भी सती हैं। वृषकेतु को छोडकर आयी हैं। इसलिए पूछते हैं ' कहाँ वृषकेतू। परीक्षा लेने के लिए अकेली आयी हैं। इसलिए कहते हैं विपिन अकेलि फिरहु केहि हेतू। अकेले स्त्री को वन मे घूमना निन्द्य है। अत इसका कारण पूछा। जिस सेवा के लिए आज्ञा हो मैं प्रस्तुत हूँ। कम से कम विष्णु तो अवश्य है। यह प्रमाण तो सती को मिल गया।

दो राम वचन मृदु गूढ सुनि, उपजा अति सकोचु।
सती सभीत महेस पहि, चली हृदय बड सोचु ॥५३॥

अर्थ रामजी के कोमल और गूढ वचन सुनकर अति सङ्कोच उत्पन्न हुआ और सती डरती हुई महेश के पास चली और हृदय मे बडा सोच उत्पन्न हुआ।

व्याख्या रामजी के वचन मृदु थे परन्तु गूढ थे। उनमे छिपा हुआ अर्थ था। हाथ जोडकर पितृनामोच्चारण पूर्वक प्रणाम। वृषकेतु के विषय मे प्रश्न। जगल मे घूमने के विषय मे प्रश्न, अत्यन्त स्वाभाविक थे। फिर भी सती के लिए उसमे बडे बडे अर्थ भरे थे। ऐसे वचन को सुनकर सती को अति सङ्कोच हुआ। उत्तर न दे सकी। अपने रूप मे हो गयी। मुँह फेर लिया और शङ्कर भगवान् के पास चली। हृदय मे बडा सोच हुआ उसे कहती हैं।

मै सकर कर कहा न माना। निज अग्यानु राम पर आना॥
जाइ उतरु अब देहौ काहा। उर उपजा अति दारुन दाहा॥१॥

अर्थ मैंने शङ्कर जी का कहा न माना और अपने अज्ञान को रामजी पर रक्खा। अब जाकर मैं क्या उत्तर दूँगी? हृदय मे बडा दारुण दाह जलन उत्पन्न हुआ।

व्याख्या मुझसे दो-दो चूके हुई और दोनो असाधारण। पहिले तो यह कि मैंने शङ्कर की आज्ञा नही मानी। यदि मानी होती तो इस दुर्गति मे न फँसती। दूसरी यह कि अज्ञान मुझे था और मैंने रामजी को अज्ञानी माना। मेरी आँख बादल से ढकी थी और मैं समझती थी कि सूर्य बादल से ढक गय।

अब तो यही उत्तर देना शेष रहा कि मेरे सीता के रूप धारण करने पर भी उन्होने पहिचान लिया। बडी भारी चूक से बडा भारी दाह हृदय मे हुआ।

जाना राम सती दुखु पावा। निज प्रभाउ कुछ प्रगटि जनावा॥
सती दीख कौतुक मग जाता। आगे राम सहित श्री भ्राता॥२॥

अर्थ रामजी ने जान लिया कि सती दुःखी हो गयी। अत अपना कुछ प्रभाव प्रकट करके दिखलाया। सती ने मार्ग मे जाते यह कौतुक तमाशा देखा कि रामजी सीता और लक्ष्मण के सहित आगे हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या दु खी को और दु खी कैसे करें और शिवजी के वचन को सत्य करके दिखलाना भी कर्त्तव्य है। अत पहाड जैसे प्रभाव मे से राई भर दिखल दिया। पहिले वातचीत मे ही जना दिया था। अव प्रकट रूप मे दिखावेंगे। यह अल्प माया दिखलाते है। वहाँ कौतुक शब्द का प्रयोग होता है। यथा ' माया नाथ अस कौतुक करचौ। देखत परस्पर राम करि सग्राम रिपुदल लरि मरचौ। दिखलाया कि सीता का वियोग नही हुआ है। साथ मे है परन्तु तापस वेष है।

फिर चितवा पाछे प्रभु देखा। सहित वंधु सिय सुदर वेषा॥
जहँ[1] चितवहि तहँ प्रभु आसीना। सेवहि सिद्ध मुनीस प्रवीना॥३॥

अर्थ पीछे की ओर फिरकर देखा तो भाई और सीता जी के साथ प्रभु को सुन्दर वेष मे पाया। जिधर देखती हैं उधर ही रामजी विराजमान है और प्रवीण सिद्ध और मुनीश उनकी सेवा कर रहे हैं।

व्याख्या पीछे देखा तो उधर भी रामजी हैं। सोचा कि मैने तो उनको ओर से मुँह फेर लिया था। इधर कहाँ से आगये। इधर भी सीता-लक्ष्मण साथ हैं परन्तु तीनो मूर्ति नृप वेष मे है। जिसमे यह न समझे कि जिधर मुँह फेरती हूँ उधर ही आ खडे होते हैं। माया का वेग बढा। अब जहा देखती हैं वही प्रभु विराजमान हैं। सिद्ध मुनि सेवा कर रहे हैं। सोइ मम इष्ट देव रघुवीरा। सेवत जाहि सदा मुनिधीरा। की सत्यता दिखला रहे है। भाव यह कि निर्गुण रूप से तो वे व्यापक है ही सगुण रूप से भी व्यापक हैं।

देखे सिव विधि विस्नु अनेका। अमित प्रभाउ एक ते एका॥
वदत चरन करत प्रभु सेवा। विविध वेष देखे सव देवा॥४॥

अर्थ अनेक शिव ब्रह्मा और विष्णु देखे जो एक से एक वढकर असीम प्रभाव वाले थे प्रभु के चरणो की वन्दना सेवा करते थे। देवताओ को अनेक वेषो मे देखा।

व्याख्या माया का वेग और वढा। अव देखती है कि सिद्ध मुनियो के स्थान पर त्रिदेव सेवा कर रहे है। भाव यह कि ये विष्णु नही है। उपजहिं जासु अस ते नाना। सभु विरचि विष्णु भगवाना। ऐसे देव है। मुनि धीर योगी सिद्ध सतत विमल मन जेहि ध्यावही। कहि नेति निगम पुराण आगम जासु कीरति गावही। सो राम व्यापक ब्रह्म भुवन निकाय पति मायाधनी। अवतरेउ अपने भगत हित निज तत्र नित रघुकुल मनी। इस शिवजी के कहे हुए वाक्य की सत्यता दिखला रहे है। भुसुण्डि ने लोक लोक प्रति भिन्न विधाता। भिन्न विष्णु सिव मनु, दिसि त्राता। देखा था। यहाँ लोक न दिखाकर सक्षेप मे अनेक त्रिदेव दिखाया। 'मासाना मासोत्तमे मासे' की भाति मत्र का प्रभाव विचित्र था इसलिए 'एक से एका' कहा।

दो सती विधात्री इदिरा, देखीं अमित अनूप।
जेहि जेहि वेष अजादि सुर, तेहि तेहि तन अनुरूप॥५४॥

---

१ यहाँ विशेष द्वितीय है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ असख्य अनुपम सती ब्रह्माणी और लक्ष्मी देवी। जिस जिस वेष मे ब्रह्मादि देवता थे उसी उसी के अनुरूप वेष मे वे भी थीं।

व्याख्या यहाँ वेष से अभिप्राय रूप भूषण और वाहन से है। यथा यस्य देवस्य यद्रूप यथाभूषणवाहनम्। तस्य देवस्य तच्छक्तिरसुरान् योद्धुमाययौ। दु स श । जिस देवता का जैसा रूप था जैसा भूषण और वाहन था उस देवता की वैसी ही शक्ति असुरो से युद्ध करने आई।

भुसुण्डिजी ने कोटिन्ह ब्रह्मा, शिव, सूर्य, चन्द्र और उडुगन देखे थे। सती ने भी वैसा ही देखा। सब शिव मूर्तियो के साथ उन्ही के रूप वेष और वाहनवाली सती थी। ब्रह्मदेव के साथ वैसी ही ब्रह्माणी थी। विष्णु मूर्तियो के साथ लक्ष्मी थी। असख्य होने से अमित कहा। सभी देवता विविध वेष मे थे। इसीलिए उनकी शक्तियाँ भी विविध वेष मे थी। एक की उपमा दूसरे से नही दी जा सकती थी। माया का वेग और बढा।

देखे जहँ तहँ रघुपति जेते। सक्तिन्ह सहित सकल सुर तेते ॥
जीव चराचर जे ससारा। देखे सकल अनेक प्रकारा ॥१॥

अर्थ जहाँ तहाँ जितने रघुपति देखे, शक्तियो के सहित उतने ही सारे देवताओ को भी देखा। ससार मे जितने चराचर जीव है उन सबको अनेक प्रकार का देखा।

व्याख्या पहिले कह चुके है कि जहँ देखहि तहँ प्रभु आसीना। सेवहि सिद्ध मुनीस प्रवीना। सो वहाँ केवल सिद्ध मुनीश ही नही रहे, शक्तियो के साथ सारे देवता भी वहाँ वहाँ थे। प्रत्येक ब्रह्माण्ड के ब्रह्मा विष्णु और शिव दूसरे ही दूसरे होते हैं और उन ब्रह्माण्डो के जीव भी भिन्न भिन्न आकार प्रकार के होते हैं। सो पृथक् पृथक् ब्रह्माण्ड के त्रिदेवा के साथ साथ उन उन ब्रह्माण्डो के सारे जीव भी दिखलाई पडे।

पूजहि प्रभुहि देव वहु वेषा। रामरूप दूसर नहि देखा ॥
अवलोके रघुपति बहुतेरे। सीता सहित न वेष घनेरे ॥२॥

अर्थ अनेक वेष धारण किये हुए देवता लोग रामजी की पूजा कर रहे हैं परन्तु रामजी का दूसरा वेष नही देखा। सीता सहित रामजी भी बहुत देखे पर उनके अनेक वेष नही थे।

व्याख्या वे सारे ब्रह्मादि देवता जहाँ तहाँ रामजी की पूजा कर रहे है। उन उन ब्रह्माण्ड के देवताओ के रूप मे तो भेद है। यथा सब प्रपच तहँ आनहि आना। पर राममूर्तियो के रूप मे भेद नही है क्योकि रामजी माया से परे हैं। सब राममूर्तियो के साथ सीता जी भी हैं। कही सीतारहित राम हैं ही नही। यहाँ सीताजी अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड के प्रधान प्रधान दृश्य ही देख रही हैं। सो भी उस वर्णन के अनुसार जो शिवजी ने पहिले किया था। यथा सोइ मम इष्ट देव रघुवीरा। सेवत जाहि सदा मुनिधीरा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सोइ रघुबर सोइ लछिमनु सीता । देखि सती अति भई सभीता ॥
हृदयकंप तन सुधि कछु नाहीं । नयन मूंदि बैठीं मगमाहीं ॥३॥

अर्थ उन्ही रामजी, उन्ही लक्ष्मणजी और उन्ही सीताजी को देखकर सती जी बहुत डर गईं। हृदय काँपने लगा और तन की सारी सुधबुध जाती रही। आँख मीचकर रास्ते में ही बैठ गई।

व्याख्या सती जी का ध्यान पहिले रामजी पर गया। सो जगद्व्यापी वैषम्य में एक ही साम्य दृष्टिगोचर हुआ। रामजी सर्वत्र एक ही देख पडे। तब सीताजी पर दृष्टि डाली तो वे भी सर्वत्र एक सी ही देख पडी अर्थात् मूल प्रकृति में भी कहीं भेद नहीं दिखाई पडा। तब लक्ष्मण जी पर ध्यान गया तो वे भी सर्वत्र एक से ही दिखाई पडे। जाग्रत् के विभु में भी कहीं अन्तर नहीं प्रतिभात हुआ। अपनी माया उन्हें दिखाने चली थी। उसने बिल्कुल काम नहीं किया। अब जिसे माया दिखाने चली थी उसकी ही माया का उन्हें स्वयं पार नहीं मिल रहा है। शिवजी की बातें आँख के सामने आ गईं। यह मैं क्या देख रही हूँ? क्या हो रहा है? अत्यन्त आश्चर्यमय दृश्य की बढ़ती हुई विषमता को देखकर अत्यन्त भय उत्पन्न हुआ। गूढ वचन सुनकर ही डर गई थी। अब उनकी माया आँखों देखकर तो अत्यन्त डर गईं। चेत नहीं कि मैं कहां हूँ। रास्ते में ही बैठ गई। अब माया के देखने में भी असमर्थ हैं। इसलिए आँखें मीच ली।

बहुरि बिलोकेउ नयन उघारी । कछु न दीख तहँ दच्छकुमारी ॥
पुनि पुनि नाइ रामपद सीसा । चलीं तहाँ जहँ रहे गिरीसा ॥४॥

अर्थ फिर जब आँख खोलकर देखा तो दक्षकुमारी को कुछ भी दिखाई न पडा। बार बार रामजी के चरणों में सिर नवाकर जहाँ शङ्कर जी थे वहाँ चली।

व्याख्या परीक्षा हो गई। जितना शङ्कर जी ने संशयापनोदन के लिए कहा था उतनी बातें स्पष्ट दिखला दी गईं। अत्यन्त भयभीत सती जी को देखकर करुणाकर भगवान् ने अपनी माया हटा ली। तो वहाँ कुछ भी नहीं। यथा जब हरि-माया दूरि निवारी। नहिं तहँ राम न राजकुमारी।

'भगवान् स्वतन्त्र हैं, निश्चय उन्होंने ही अवतार धारण किया है।' यह विश्वास हृदय में हो गया। मुझसे बडा अपराध बन पडा जो मैंने उनकी परीक्षा ली। उन्हें नृपतनय माना। अतः अपराध क्षमापन के लिए बार बार प्रणाम करती है। अब वहाँ ठहरने का काम न रह गया। और माया हटने से विकलता भी दूर हुई। इसलिए उस वट विटप के पास चली। जहाँ बैठे हुए शिवजी उनकी बाट जोह रहे थे।

दो० गईं समीप महेस तब, हँसि पूछी कुसलात ।
लीन्हि परीछा कवन बिधि, कहहु सत्य सब बात ॥५५॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ जब पास पहुँची तब शिवजी ने हँसकर कुशल पूछी कि तुमने किस तरह परीक्षा ली। सब बातें सत्य सत्य कहो।

व्याख्या वहाँ रामजी ने हँसकर प्रणाम किया। यथा बोले बिहँसि राम मृदुबानी। यहाँ शङ्करजी हँसकर कुशल पूछ रहे हैं। कैसा ही बड़ा कोई क्यो न हो चूक हो जाने से हँसी का पात्र हो जाता है। अकल्याण की आशंका से पहिले कुशल ही पूछी। यथा दच्छसुता कर नहिं कल्याना। उसके बाद परीक्षा की विधि पूछी। परीक्षा की विधि से चूक होने का पहिले से ही भय था। यथा जैसे मिटइ मोह भ्रम भारी। करेउ सो जतन बिबेक बिचारी। उत्तर देते न देखकर कहते हैं। कहो सत्य सब बात, चूक छिपाने का प्रयत्न न करो।

सती समुझि रघुबीर प्रभाऊ। भयबस सिव सन कीन्ह दुराऊ॥
कछु[1] न परीछा लीन्हि गुसाईं। कीन्ह प्रनामु तुम्हारिहि नाईं॥१॥

अर्थ सती ने रामजी के प्रभाव को समझकर डर के मारे शिवजी से छिपाव किया और कहा हे स्वामिन्! मैंने कुछ परीक्षा नहीं ली। आप की ही भाँति प्रणाम कर दिया।

व्याख्या सती ने रामजी के अचिन्त्य प्रभाव को जब समझा शिवजी के उपदेश पर जब ध्यान दिया कि 'जैसे मिटै मोह भ्रम भारी। करेउ सो जतन बिबेक बिचारी। और अपने अविवेक को देखा 'तब भय के वश मे हो गईं। अपने वश म न रह गईं। यथा मैं बन दीख राम प्रभुताई। अति भय बिकल न तुमहिं सुनाई। इसीलिए सर्वज्ञ शिवजी से छिपाव किया। कह दिया कछु न परीछा लीन्ह गोसाईं। इस पर पूछगे। अन्ततोगत्वा तुमने उनके सामने जाकर किया क्या? इसलिए साथ ही यह भी कह दिया कि कीन्ह प्रनाम तुम्हारिहि नाईं बात सत्य ही कही, पर कुछ बीच की बात छिपा ली।

जो तुम्ह कहा सो मृषा न होई। मोरे मन प्रतीति अति सोई॥
तब संकर देखेउ धरि ध्याना। सती जो कीन्ह चरित सबु जाना॥२॥

अर्थ जो आपने कहा वह झूठ नहीं हो सकता, मेरे मन मे इस बात का अत्यन्त विश्वास है। तब शिवजी ने ध्यान धरके देखा तो सती ने जो जो चरित किये थे सो सब जान गये।

व्याख्या इतना कहने पर भी शङ्का समाप्त नहीं होती। फिर शङ्का उठेगी कि तुम तो यहाँ से परीक्षा लेने गई थी। पर परीक्षा ली क्यो नहीं। इसलिए यह भी कह डाला कि आपकी बात झूठी नहीं हो सकती। इस बात पर मेरा पूरा विश्वास है। उस विश्वास के सामने तुच्छ संशय ठहर न सका। पर शङ्करजी को इस बात पर विश्वास नहीं हुआ। विश्वासो नैव कर्तव्य स्त्रीषु राजकुलेषु च। स्त्रियों का और राजकुल का विश्वास नहीं करना चाहिए। भरत

[1] छलापहुति है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जी कैकेयी से कहते हैं भूप प्रतीति तोर विमि कीन्ही। मरन काल विधि मति हरि लीन्ही। सो शिवजी ने विश्वास नहीं किया। जो संशय मेरे इतने समझाने पर न मिटा वह एकाएक कैसे मिट गया। इसलिए ध्यान किया। शङ्करजी को सब बातो के जानने के लिए केवल वृत्ति के अन्तर्मुखीन करने की आवश्यकता थी। ऋतभरा प्रज्ञा द्वारा सती के किये हुए सब चरित को जान लिया। सती ने यहाँ भी माया की। तुम जो कहा सो मृषा न होई। मोरे मन प्रतीति अति सोई। यह बात उन्होंने बिलकुल ठीक कही। इस समय उनके मन मे पूरी प्रतीति है कि शिवजी का कहा मिथ्या नही हो सकता। स्वय आँख से देख चुकी हैं। पहले भी ऐसी ही प्रतीति थी। यथा सभु गिरा पुनि मृषा न होई। सिव सरवज्ञ जान सबु कोई। पर यहाँ ऐसे अवसर पर कहा गया कि वह कछु न परीछा लीन्ह गोसाईं का पोषक हो गया। सती ने छिपाना चाहा। इसलिए शिवजी को ध्यान करना पडा नही तो बिना ध्यान किये ही सती के मन की बात जान ली थी। यथा हर अन्तर्यामी सब जाना।

वहुरि राममायहि सिरु नावा। प्रेरि सतिहि जेहिं झूँठ कहावा ॥
हरि इच्छा भावी वलवाना। हृदय विचारत सभु सुजाना ॥३॥

अर्थ फिर उन्होने रामजी की माया को प्रणाम किया। जिसने प्रेरणा करके सती से झूठ बोलवा दिया। सुजान महादेव जी मन मे विचार करते हैं कि हरिइच्छा रूपिणी भवितव्यता बलवती है।

व्याख्या शिवजी भलीभाँति जानते हैं कि सती झूठ बोलनेवाली नही चाहे जो हो। पर यह जानते हैं कि इस समय सती मे हरिमाया काम कर रही है। यथा लाग न उर उपदेस जदपि कहेउ सिव बार बहु। बोल बिहँसि महेस हरिमाया बल जानि जिय। उस समय भी हरिमाया को सिर नवाया था। अब फिर उसे सिर नवा रहे हैं। सती के प्रसङ्ग मे हरिमाया को यत्न करना पडा था। नही तो सती किसी के वश म आनेवाली नही। श्रीरामजी सती को सीताजी के रूप म देखकर स्वय अपनी माया के बल की प्रशसा करने लगे। यथा निज माया बल हृदय बखानी। बोल बिहँसि राम मृदु बानी। अब सती जी को झूठ बोलते जानकर शिवजी उसे नमस्कार कर रहे हैं। क्योकि उस माहामाया के आगे किसी का वश नही चलता। यथा सिव बिरचि कहँ मोहइ को है बपुरा आन। अस जिअ जानि भजहिं मुनि, मायापति भगवान्। ज्ञानी भगत सिरोमनि, त्रिभुवन पति कर जान। ताहि मोह माया नर, पामर करहिं गुमान।

फिर भी सुजान शिवजी ने सती को दोष नही दिया। देखा कि यहाँ हरि इच्छा रूपिणी भवितव्यता काम कर रही है। इसके आगे हमारे उपदेश ने भी काम नही किया। मोह मिटाने के यत्न ने भी नही काम किया। सामान्य भावी होती तो कभी मिट गई होती। यथा भाविहु मेटि सकैं त्रिपुरारी। पर यह हरिइच्छा रूपी भावी मिटनेवाली नही है। यह कुछ करके रहेगी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सती कीन्ह सीता कर वेपा। सिव उर भयउ विपाद विसेपा ॥
जौं अव करउँ सती सन प्रीती। मिटइ भगति पथु होइ अनीती ॥८॥

अर्थ : सती ने जो सीता का वेप किया। इस वात से शिवजी के हृदय मे विशेप विपाद हुआ। यदि मैं सती से प्रीति करता हूँ तो भक्ति-मार्ग गिरता है और वड़ी अनीति होती है।

व्याख्या : विपाद तो पहिले ही हुआ था। जव उनके उपदेश देने पर भी सती का संशय नही गया और उन्हे परीक्षा लेने की आज्ञा देनी पड़ी। यथा : दच्छसुता कर नहि कल्याना। मोरेउ कहे न संशय जाही। विधि विपरीत भलाई नाही। अव यह जानने पर कि सती ने सीता का वेप धारण किया विशेप विपाद हुआ। स्वामिनी का वेप धारण करनेवाली स्त्री पर पत्नीभाव नही रखा जा सकता। पत्नीभाव का त्याग ही वास्तविक त्याग है और स्वजन के लिए त्याग ही वध है। अत: विशेप विपाद हुआ।

भक्ति के आचार्य होकर मर्यादा पालन न करने से भक्तिपथ ही मिट जायगा। ईश्वर हैं मर्यादापथ किसी प्रकार नष्ट न होने देंगे। यथा : जौं नहि दड करौं खल तोरा। भ्रष्ट होय श्रुति मारग मोरा। यहाँ प्रीति शब्द से दाम्पत्यभाव अभिप्रेत है। नीतिविरोध रामजी को अच्छा नही लगता। यथा : नीति विरोध सोहाइ न मोही। पापाण भी जव एक वार पूज्य के आकार से आकारित हो जाता है तो उस पर से पापाण वुद्धि हटा ली जाती है। यह नीति है। अत: दाम्पत्यभाव न रखना ही प्राप्त हुआ।

दो. परम पुनीत[1] न जाइ तजि, किये प्रेम वड़ पापु।
प्रगटि न कहत महेसु कछु, हृदयँ अधिक संतापु ॥५६॥

अर्थ : बहुत ही पवित्र है इसलिए छोड़ा नही जा सकता और प्रेम करने मे वड़ा पाप है। प्रकट रूप से महादेव जी कुछ नही कहते हैं। पर उनके हृदय मे वड़ा दु ख है।

व्याख्या : पापिनी स्त्री त्यागी जाती है। नही तो किसी अवस्था मे स्त्री नही त्यागी जाती। भगवती श्रुति कहती है 'अर्धो वा एप आत्मनो यत्पत्नी' भगवान् वशिष्ठदेव कहते हैं : आत्मा हि दारा सर्वेपां दारसग्रहवर्तिनाम्। वा. रा। अर्थात् पत्नी

---

१ परीक्षा लेने मे छल से काम लिया ही जाता है। वह छल दोपावह नही है। यथा 'प्रथम गये जहँ रही भवानी। बोले मधुर वचन छलसानी। क्योकि उसमे भाव दुष्ट नही रहता। यहाँ परीक्षा लेने मे थोडा सा अविवेक हो गया। रामजी का अपमान हो गया। वह भी हरिमाया के वश होने के कारण। यथा वहुरि राम मायहि सिर नावा। प्रेरि सतिहि जेहि झूठ कहावा। अत शिवजी सती का 'अघ' नही मानते। याज्ञवल्क्य ने भी नही माना। इसलिए परम पुनीत कहते हैं। शिवजी विचारते हैं कि सती को पाप नहीं है। पर इनसे प्रेम करने मे मुझे पाप है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अपनी आधी देह है। श्रुति । सभी गृहस्थो की स्त्री अपनी देह होती है। फिर सती ऐसी पवित्र स्त्री का त्याग कैसे किया जाय। प्रेम का त्याग ही त्याग है और प्रेम करने से सनातन सेतुभङ्ग का भक्तिपथ के मिटाने का पाप होता है। सती को कष्टकर होने से शिवजी प्रकट कुछ नही कहते हैं। परन्तु हृदय मे इष्ट वियोग जनित सन्ताप अधिक हो रहा है। अथवा त्यागने से सती को महान् दुःख होगा। इस बात का सन्ताप है।

तब संकर प्रभुपद सिरु नावा। सुमिरत रामु हृदय अस आवा ॥
एहि तन सतिहि भेट मोहि नाही। सिव संकल्पु कीन्ह मन माही ॥१॥

अर्थ तब शिवजी ने रामजी के चरणो मे सिर नवाया। और रामजी को स्मरण करते ही यह बात मन म आई कि इस शरीर से सती की मेरी भेंट नही होगी। ऐसा सकल्प शिवजी ने मन मे किया।

व्याख्या पहिले माया को सिर नवाया था। यथा बहुरि राम मायहि सिर नावा। प्रेरि सतिहि जेहिं झूठ कहावा। अब अधिक सन्ताप होने से उस मायी को सिर नवाते है। यथा राम प्रनाम महा महिमाखनि। सकल सुमगल मनिजनी। शिवजी का यह शिद्धान्त है कि तर्क कोटि बढने नही देते। उसे रोककर नाम स्मरण म लग जाते हैं। यथा होइहि सोइ जो राम रचि राखा। को करि तर्क बढावै साखा। अस कहि जपन लगे हरिनामा। इसी भाँति यहाँ भी तर्क करना बन्द करके प्रभु को प्रणाम किया और नाम जपने लगे। विचार करने मे निश्चय पर नही पहुँच सके थे। सा नामस्मरण करत ही आप स आप निश्चयकारक बात मन मे उठी।

जो शरीर एक बार परमाराध्य दवता के रूप मे परिणत हो चुका उसे अङ्कारूढ तो नही करूँगा। ऐसा सकल्प मन म किया। 'शिव सकल्प' यहाँ श्लिष्टपद है। अर्थ होगा शिव ने सकल्प मन म किया। अथवा कल्याणकारी सकल्प मन म किया। यथा तन्मे मन शिवसकल्पमस्तु। सकल्प को कल्याणकारी इसीलिए कहा कि सदा की सङ्गिनी सती का सर्वथा त्याग भी नही हुआ और नीति तथा भक्तिपक्ष की रक्षा हो गई।

अस बिचारि संकरु मतिधीरा। चले भवन सुमिरत रघुबीरा ॥
चलत गगन भै गिरा सुहाई। जय महेस भलि भगति दृढाई ॥२॥

अर्थ ऐसा विचारकर मतिधीर शिवजी रघुवीर को स्मरण करते हुए घर चले। चलते समय सुन्दर आकाशवाणी हुई महेश की जय हो, आपने भक्ति की अच्छी दृढता की।

व्याख्या ऐसा विचार करके अर्थात् ऐसा मानसिक सकल्प करके घर चले। पहिले ही मुनि से बिदा माँगकर घर चले थे। पर भवानी के कारण बीच मे बरगद तले रुकना पडा। भवानी परीक्षा करके लौट आयी। उनकी बातें सुनी। ध्यान करके सब बात जान गये। विशेष विषाद हुआ। सती के त्याग का सकल्प करके

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तब फिर घर चले। इतना बडा स्वार्थ त्याग किया। इसलिए मतिधीर कहते हैं। पहिले कहा था चले भवन सग दच्छकुमारी। इस समय दक्षकुमारी का साथ नही कहते हैं। क्योकि इस समय वे परित्यक्ता हैं। 'सुमिरत रघुबीरा' कहने का यह भाव है कि सतीविषयक विचार अब मन मे नही है। इष्टदेव का स्मरण करते चले।

किसी भारी कार्य की उपस्थिति मे अधिकारी देवता लोग आकाशवाणी द्वारा अपनी सम्मति व्यक्त करते है। यथा भई बहोरि वरगिरा अकासा। बिप्रहु साप बिचारि न दीन्हा। नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा। जग भय मगन गगन भइ बानी। लखन बाहुबल बिपुल बखानी। मनभवानी होने से वाणी को सुहाई कहा। इस समय भक्ति पथ के मिटने का सयोग उपस्थित हो गया था। महामङ्गलमय मार्ग[1] का लोप हुआ चाहता था। महेश ने अपने सुख-दु ख का विचार न करके उस मार्ग को और भी दृढ बना दिया। इसलिए देवताओ ने जय जय कार किया।

अस पन तुम्ह बिनु करै को आना। राम भगत समरथ भगवाना ॥
सुनि नभ गिरा सती उर सोचा। पूछा सिवहिं समेत सकोचा ॥३॥

अर्थ तुम्हारे विना ऐसी प्रतिज्ञा कौन कर सकता है। आप रामजी के भक्त समर्थ और भगवान् हैं। आकाशवाणी सुनकर सती के मन मे सोच हुआ। शिवजी से सकोच के साथ पूछा।

व्याख्या रामव्रतधारियो म शिवजी ही सर्वश्रेष्ठ है। दूसरे किसी मे ऐसा सामर्थ्य नही कि निष्पाप सती ऐसी स्त्री का परित्याग कर सके। यथा सिव सम को रघुपति ब्रतधारी। बिनु अघ तजी सती अस नारी। शिवजी भगवान् हैं। समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य को भग कहते हैं। जिसमे ये छहो गुण हो वह भगवान् है। बिना प्रबल वैराग्य और अप्रतिम ज्ञान के सर्वगुणसम्पन्ना निष्पापा प्रियतमा का त्याग अशक्य है। इसलिए 'रामभगत समरथ भगवाना' कहा।

सती से इसी समय बडी भारी चूक हुई है और इसी समय शङ्कर जी के प्रण करने का सवाद मिल रहा है। अत सन्देह के लिए यथेष्ट स्थान है कि कोई प्रतिज्ञा सती के विरुद्ध हुई है। स्त्री को अधिकार है कि पति के किसी कार्य करने का कारण पूछे? क्योकि विवाह के समय प्रतिज्ञा हो जाती है कि अर्थ, धर्म और काम मे मैं इसका अतिक्रमण नही करूँगा। अत पूछने मे कोई सकोच की बात न थी परन्तु सापराध होने से सकोच हो रहा है।

कीन्ह कवन पन कहहु कृपाला। सत्यधाम प्रभु दीनदयाला ॥
जदपि सती पूछा बहु भाँती। तदपि न कहेउ त्रिपुर आराती ॥४॥

अर्थ हे कृपालु! कहिये आपने कौन सी प्रतिज्ञा की है? हे प्रभो! आप

---

[1] प्रतीकोपासना भक्तिपथ का प्राण है। मूर्तिपूजा ईश्वरोपासना की स्वाभाविकी वैज्ञानिक पद्धति है। सम्यता प्रतीकोपासना के सिद्धान्त पर ही खडी है।

'प्रीति प्रतीत बढी तुलसी तबते सब पाहन पूजन लाग।' कवि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सत्यधाम और दीनदयाल है। यद्यपि सती ने बहुत भाँति पूछा पर त्रिपुरान्तक ने नहीं कहा।

व्याख्या आकाशवाणी सुनकर सती जी उत्सुकता के अत्यन्त बढ जाने से दीन हो रही है। इसलिए दीनदयालु विशेषण दे रही हैं कि मैं दीन हूँ। आप दीन-दयाल हैं। मैं कृपा की भिखारिणी हूँ। आप कृपालु हैं। कृपा करके कहिये। आप सत्यधाम हैं मैं ऐसी नही हूँ। आप प्रभु हैं मैं अबला हूँ। मुझे सशय मे न रखिये। अपनी शपथ दिलाई। अपने प्रेम की शपथ दिलाई। सभी उपाय सामर्थ्य भर किये पर शिवजी त्रिपुरान्तक हैं। अपने लक्ष्य पर बडे दृढ हैं। एक सहस्र वर्ष तक त्रिपुर पर लक्ष्य बाँधे ही रह गये। उन्होने नही ही कहा। यहाँ बात को खोलना और लक्ष्य से विचलित होना एक बात थी। बात को खोलना अनुनय विनय को अवसर प्रदान करना था। इसलिए नही कहा।

दो सती हृदय अनुमान किय, सबु जानेउ सरबग्य।
कीन्ह कपटु मै सभु सन, नारि सहज जड अग्य ॥५७॥ क
सो जलु पय सरिस बिकाइ, देखहु प्रीति की रीति भलि।
बिलग होइ रस जाइ, कपटु खटाई परत पुनि ॥५७॥

अर्थ सती ने अपने मन म अनुमान किया कि सर्वज्ञ ने सब जान लिया। मैंने शम्भु से कपट किया। स्त्री स्वभाव से ही जड और मूर्ख होती है।

प्रीति की अच्छी रीति देखिये कि पानी दूध के समान बिकता है। कपट खटाई के पडते ही दोनो अलग हो जाते हैं और रस नही रह जाता।

व्याख्या शिवजी के कुछ उत्तर न देने से सती को मालूम हो गया कि सम्बन्ध नीरस हो गया। मेरे कपट को सर्वज्ञ शिवजी ने जान लिया। यह सती द्वारा अपने मन का अनुमान है।

कपट करौं अतरजामिहु ते अघ ब्यापकहि दुरावो यह जडता और अज्ञता है। शिवजी धीर हैं मैं जड हूँ। यथा सुख हरखहि जड दु ख बिलखाही। दोउ समधीर धरहि मन माही। मैंने भय से विकल होकर कपट किया। सर्वज्ञ से बात छिपानी चाही। यह अज्ञता है।

उदाहरण से स्पष्ट करती है। जल और दूध के मिलने से जल दूध के भाव बिकता है। यह दूध की भलाई है। आग पर चढने से पहिले पानी जलता है। दूध को नही जलने देता। यह पानी की भलाई है। पानी के जलने के समय दूध उफन कर आग म कूदता है। यह दूध की भलाई है। यह प्रीति की रीति है। कपट खटाई पडते ही दूध पानी अलग हो जाता है। न दूध मे रस रह जाय न पानी म और दूध के सार भाग घी स्नेह का तो कही पता नही चलता कि क्या हुआ ?

हृदय सोचु समुझत निज करनी। चिता अमित जाइ नहिं बरनी ॥
कृपासिधु सिव परम अगाधा। प्रगट न कहेउ मोर अपराधा ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ अपनी करणी को समझकर हृदय मे सोच है और ऐसी चिन्ता है जिसका वर्णन नही हो सकता। शिवजी कृपासिन्धु हैं, वडे गम्भीर है। मेरे अपराध को प्रकट रूप से नही कहा।

व्याख्या सोच ही सोच चला। सती सभीत महेस पहँ चली हृदय वड सोच। सुनि नभगिरा सती उर सोचा। हृदय सोच समुझत निज करनी। परिणाम क्या होगा इसकी चिन्ता का वर्णन नही हो सकता। मानस से सरयू के मैदान मे अवतीर्ण होते ही पहिले वन मे मिला। वन मे घनेरा भय, विषाद और परिताप होता है। भय भयवस सिवसन कीन्ह दुराऊ। विषाद सिव उर भयउ विषाद विसेखा। परिताप पाछिल दु ख अस हृदय न व्यापा। जस यह भयउ महा परितापा।

शिवजी कृपासिन्धु हैं। दु ख की वात नही कहेगे। परम अगाध हैं छिछले से विना कहे नही रहा जाता गम्भीर हैं। प्रकट करने का स्वभाव नही है। मेरे अपराध को प्रकट रूप से नही कहा पर उत्तर न देकर जना दिया।

सकर रुख अवलोकि भवानी। प्रभु मोहि तजेउ हृदय अकुलानी ॥
निज अघ समुझि न कछु कहि जाई। तपै अवाँ इव उर अधिकाई ॥२॥

अर्थ भवानी ने शङ्कर का रुख देखकर जान लिया कि प्रभु ने मुझे त्याग दिया। अत मन म बहुत व्याकुल हुईं। अपना अपराध समझकर कुछ कहते नही बनता। आँवे की भाँति हृदय अधिक जलने लगा।

व्याख्या सती हैं पति के रुख देखने का अभ्यास है। ठीक मनोगति समझ लेती है। शिवजी प्रभु है। उन्हे त्यागने का अधिकार है। उन्हाने मेरा त्याग किया। यह समझकर मन आकुल हो उठा। यथा तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति विहीन सव सोक समाजू। भोग रोग सम भूपन भारू। जम जातना सरिस ससारू। प्राननाथ तुम विनु जगमाही। मो कहुँ सुखद कतहुँ कोउ नाही। परन्तु कहते कुछ बनता नही। अपने से ऐसा पाप[१] ही हो पडा है कि जिसका जो दण्ड दिया जाय थोडा है। किस मुँह से क्षमा प्रार्थना करे। चिन्ता ज्वाल सरीरवन दावा लगि लगि जाय। प्रकट धुआँ नहि देखिये उर अतर धुधुवाय। उर अतर धुधुवाय जरे जिमि काँच की भट्ठी। जरि गये लोहू माँस रह गयी हाड की ठठ्ठी।

सतिहिं ससोच जानि वृपकेतू। कही कथा सुन्दर सुख हेतू ॥
वरनत पथ विविध इतिहासा। विस्वनाथ पहुँचे कैलासा ॥३॥

अर्थ सती को शोकयुक्त जानकर वृषकेतु ने सुख के लिए सुन्दर कथाएँ कही। रास्त म अनेक प्रकार के इतिहास कहते हुए विश्वनाथ कैलास पहुँच गये।

व्याख्या वृषकेतु हैं। धर्म ही उनकी ध्वजा है। शरणागतपालन धर्म का

---

१ भगवती सती अपना ही पाप मानती हैं १. रघुपति अपमान और २ पति क वचन पर असत्य का भ्रम।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



स्मरण करते हुए परित्यक्ता सती के सुख के लिए मनोरञ्जन के लिए शोक हटाने के लिए सुन्दर सुन्दर कथाएँ सुनायी। प्रेम विशेष का त्याग है। सहानुभूति का त्याग नही है। अत रास्ता काटने के लिए अनेक इतिहास वर्णन करते-करते कैलास पहुँच गये। यही उनका भवन है। यथा पथ कहत निज भगति अनूपा। पुनि आश्रम पहुँचे सुरभूपा। भाव यह है कि मैंने बोलना नही बन्द किया है। केवल प्रतिज्ञा नही बतलावेंगे।

तहँ पुनि संभु समुझि पन आपन। बैठे बट तर करि कमलासन ॥
संकर सहज सरूपु संभारा। लागि समाधि अखंड अपारा ॥४॥

अर्थ वहा फिर अपने प्रण को समझ करके शिवजी वट के वृक्ष के नीचे पद्मासन लगाकर बैठ गये। शङ्कर ने अपने सहज स्वरूप को सँभाला तो अखण्ड और अपार समाधि लग गई।

व्याख्या एहि तन सतिहि भेट अब नाही का अत्यन्त सरल उपाय समाधि लगा लेना है। यथा सिव समाधि बैठे सब त्यागी। कैलास पर एक दिव्य वट वृक्ष है। वह सदा नवीन रहता है। यथा तेहि गिरि पर बट बिटप बिसाला। नित नूतन सुदर सब काला। त्रिविध समीर सुसीतल छाया। सिव बिश्राम बिटप श्रुति गाया। उसी के नीचे पद्मासन लगाकर बैठे। योग के चौरासी आसनो मे पद्मासन और सिद्धासन अत्यन्त श्रेष्ठ हैं। रमणीय स्थान और आसन कहकर अब चित्तवृत्तिनिरोध पूर्वक द्रष्टृस्वरूपावस्थान कहते हैं। दूसरे की जो समाधि लगती है उसकी अवधि होती है। शङ्कर भगवान् की समाधि की अवधि नही। इसीलिए अखण्ड अपारा कहा। प्रकृति पुरुष के परस्पर अभ्यास के विच्छेद से ही सहज स्वरूप मे समाधि होती है। यथा त विद्याद्दु खसयोगवियोग योगसज्ञितम्। यहाँ प्रकृति सती से पुरुष शिव के प्रेम का विच्छेद ही समाधि का कारण हुआ।

दो सती बसहि कैलास तब, अधिक सोचु मन माहि।
मरमु न कोऊ जान कछु, जुग सम दिवस सिराहि ॥५८॥

अर्थ सती कैलास मे रहने लगी। मन मे अधिक सोच था। भेद किसी को कुछ मालूम नही एक दिन युग के समान बीतता था।

व्याख्या शिवजी जब समाधि मे नही थे तो कैलास शिवउमानिवास कहा जाता था। अब वे समाधि मे है। सती जी अकेले कैलास मे रह रही हैं। कोई बाल-बच्चे भी नही हैं। शिवजी के समाधि मे बैठने से सती के मन मे त्याग की भावना पुष्ट हुई। अत अधिक सोच मन माहि कहते हैं। यह घटना रास्ते मे हुई। अत गणो को कोई पता नही है। दु ख के दिन बडी कठिनता से कटते हैं। इसलिए कहते है युग सम दिवस सिराहि। अखण्ड अपार समाधि है न जाने कब खुलेगी। बिना खुले दु ख पार जाने का कोई रास्ता नही। कहने से भी दु ख घटता है पर कहे किससे ? उसका जानकार कोई नही। कैलास मे बसकर भी सती महादु खी है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नित नव सोचु सती उर भारा। कब जैहौं दुःख सागर पारा ॥
मै जो कीन्ह रघुपति अपमाना। पुनि पति वचन मृषा करि जाना ॥१॥

अर्थ : सती के हृदय मे नित्य नया और भारी सोच है कि कब दुःखसागर के पार जाऊँगी। मैंने जो रघुपति का अपमान किया और पति के वचन को झूठ समझा।

व्याख्या : सती भगवती दुःख के समुद्र मे पड गई। उसका वार-पार नही सूझ रहा है और नित्य नये सोच की भारी तरगे उठ रही हैं। न शरीर छूटता है न पार मिलता है। न कोई ठिकाना है कि कब पार मिलेगा। विना समाधि खुले दुःख का पार मिल नही सकता। असौ चिन्ताज्वरस्तीव्र प्रत्यह नवता व्रजेत्। काशी-खण्डे। यह तीव्र चिन्ता ज्वर नित्य नया होता जाता है।

उनसे भगवान् और भागवत, ईश्वर और उनके प्रतिनिधि पतिदेव दोनो का अपराध वन पडा। १ परमेश्वर भगवान् का अपमान किया और २ पतिदेव के वाक्य को झूठा माना।

सो फलु मोहि विधाता दीन्हा। जो कछु उचित रहा सोइ कीन्हा ॥
अब विधि अस बूझिअ नहि तोही। संकर विमुख जिआवसि मोही ॥२॥

अर्थ : वह फल मुझे विधाता ने दिया और जो उचित था सो किया। पर हे विधाता अब तुझे यह उचित नही है कि शङ्कर से विमुख होकर मुझे जीवित रक्खे।

व्याख्या : सती कहती हैं कि कर्म शुभाशुभ का फल विधाता देते हैं। यथा कर्म सुभासुभ देइ विधाता। सो ब्रह्मदेव ने मुझे फल दिया। उन्हे यही उचित जान पडा कि इन अपराधो का दण्ड पति-परित्याग है सो मैं फल पा चुकी। यहाँ तक तो विधि ठीक है। अब शङ्कर विमुख करके मुझे जिलाना विधि को उचित नही है। अर्थात् : हानि लाभ जीवन मरन जस अपजस विधि हाथ। जीवन मरण ब्रह्मदेव के हाथ मे है। अपने हाथ मे नही होता है। मरण स्वीकार है परन्तु शङ्करविमुख होकर जीना स्वीकार नही। अब कौन अपराध शेष है जिसके बदले ब्रह्मदेव मुझे शङ्कर से विमुख करके जिला रहे हैं।

कहि न जाय कछु हृदयँ गलानी। मन महुँ रामहि सुमिरि सयानी ॥
जौं प्रभु दीनदयालु कहावा। आरति हरन वेद जसु गावा ॥३॥

अर्थ : हृदय की ग्लानि कुछ कही नही जाती। सयानी ने मन मे रामजी का स्मरण किया और कहा : हे प्रभो ! यदि आप दीनदयाल कहलाते हैं और यदि आर्तिहरण कहकर वेद ने यशगान किया है।

व्याख्या : हृदय मे जैसी ग्लानि हुई उसका एक अश भी कथन मे नही आ सकता। आगे जो करेगी उसी से अनुमान हो सकता है। सती जी सयानी हैं उपाय सोचा कि जिसका अपराध बन पडा हो उसी की शरण ग्रहण करनी चाहिए। अत: मन से रामजी का स्मरण किया और प्रार्थना की।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रामजी का लोक मे दीनदयाल विरद प्रसिद्ध है और वेद भी आर्तिहरण कहकर यशगान करता है और मै दीन हूँ और आर्त हूँ। भाव यह कि लोक वेद के बल पर खडी हो गयी जिस भाँति मनु-शतरूपा खडे हो गये थे। यथा जौ अस वचन सत्य श्रुति भाखा। तौ हमार पूजिहि अभिलाखा।

तौ मै विनय करउँ कर जोरी। छूटौ वेगि देह यह मोरी॥
जौ मोरे सिव चरन सनेहू। मन क्रम वचन सत्य व्रतु एहू॥४॥

अर्थ तो मै हाथ जोडकर विनय करती हूँ कि यह मेरा शरीर जल्दी छूट जाय। यदि मेरा स्नेह शिवजी के चरण कमलो मे हो और मन वचन कर्म से यह व्रत सच्चा हो।

व्याख्या यदि विरद आपका सत्य है और मेरी दीनता तथा आर्ति सच्ची है तो शरीर न छूटने का कोई कारण नही है। आर्ति और दीनता के छूटने के दो ही उपाय है। या तो शिवजी अपनी प्रतिज्ञा छोडें या सतीजी का देह छूटे। तीसरा उपाय तो है नही। सतीजी कहती हैं कि शिवजी की प्रतिज्ञा न छूटे। मेरी देह छट जाय। दीनता और आर्ति का कारण शिवचरणस्नेह है। अत कहती हं कि यदि मेरा शिवजी के चरणो मे सच्चा स्नेह हो तो आप अपने विरद को सत्य करिये।

दो तौ सबदरसी सुनिअ प्रभु, करउ सो वेगि उपाइ।
होइ मरन जेहिं बिनहि श्रम, दुसह विपत्ति विहाइ॥५९॥

अर्थ तो हे सर्वदर्शी प्रभो! सुनो, ऐसा उपाय करो कि मेरा मरण बिना श्रम के ही सम्पन्न हो और न सहने योग्य विपत्ति छूटे।

व्याख्या आप सर्वदर्शी हैं। मेरे हृदय को देख सकते है। प्रभु है। मनोरथ पूर्ण कर सकते है। ऐसा उपाय जल्द कीजिये जिसमे शीघ्रातिशीघ्र मरण हो। आत्म घात का दोष न हो। इसलिए उपाय से मरण चाहती हं। मरण के समय दु सह दु ख होता है। यथा जन्मत मरत दुसह दु ख होई। इसलिए बिना श्रम मरण चाहती हं। दु सह विपत्ति से शङ्कर के विमुख होने के कष्ट से घुल घुलकर मृत्यु तो हो ही जायगी। अत अनायासेन मरणम् के लिए प्रार्थना है।

एहि विधि दुखित प्रजेस कुमारी। अकथनीय दारुन दुखु भारी॥
बीते सवत[1] सहस सतासी। तजी समाधि सभु अविनासी॥१॥

अर्थ इस भाँति प्रजापति की पुत्री नही कहने योग्य भारी कठिन दु ख से दु खी थी। एक हजार सत्तासी १०८७ सवत बीतने पर अविनाशी शम्भु ने समाधि परित्याग किया।

व्याख्या यद्यपि प्रजापति की बेटी हैं, फिर भी पति के वचन को मृषा मानने और रामजी के अपमान से पति-परित्यक्ता होकर दु खी हं। सती है। अत पति परित्याग का भारी दारुण दु ख हो रहा है। जो कि किसी प्रकार से व्यक्त नही किया जा

१ सवत से मानुषी मान का वर्ष ही परिगृहीत है। यथा सवत सारद मैं एकतीसा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


सकता है। पति ही स्त्री के लिए गति है। पिता की महिमा काम नहीं आती। अथवा ऐसा अपराध करने से प्रजेशकुमारी पर ऐसी आपत्ति आई, अन्यो की क्या गणना।

एक सहस्र सत्तासी वर्ष वियोग दु ख सहते सहते आर्त होकर रामजी से प्रार्थना की। अन्तर्यामी रामजी की प्रेरणा से उसी समय समाधि खुल गई। १०८७ वर्ष देव-मान से लगभग तीन वर्ष के होते हैं।

राम नाम सिव सुमिरन लागे। जानेउ सती जगतपति जागे ॥
जाइ संभु पद वंदनु कीन्हा। सनमुख संकर आसनु दीन्हा ॥२॥

अर्थ शिवजी रामनाम सुमिरने लगे। सतीने जाना कि विश्वनाथ जाग गये। जा करके शिवजी के चरणो को प्रणाम किया। शङ्कर ने बैठने के लिए सम्मुख आसन दिया।

व्याख्या जबतक समाधि थी नामोच्चारण बन्द था। क्योंकि बिना चित्त की वृत्तियो के निरोध के समाधि होती नही। व्युत्थान होते ही नामस्मरण प्रारम्भ हुआ। यथा तुम पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनग अराती। सती दिन रात शङ्करजी मे ही मनोयोग दिये रहती थी। अतएव विश्वनाथ के जागने का पता पहिले उन्ही को लगा।

उन्होने जाकर चरण बन्दन किया। शिवजी ने वामभाग म आसन न देकर सन्मुख आसन बैठने के लिए दिया। भक्त की भाँति सत्कार किया, प्रिया की भाँति नही।

लगे कहन हरिकथा रसाला। दच्छ प्रजेस भये तेहि काला ॥
देखा बिधि बिचारि सब लायक। दच्छहि कीन्ह प्रजापति नायक ॥३॥

अर्थ हरि की रसीली कथाएँ कहने लगे। उसी समय दक्षजी प्रजेश हुए। ब्रह्मदेव ने विचारकर देखा कि सब भाँति योग्य है तो दक्ष को प्रजापतियो का नायक बना दिया।

व्याख्या भगवती के साथ परित्याग वाली बात न छिडने पाये अत कथा छेड देते है। अथवा शिवजी का स्वभाव है कि समय को व्यर्थ नही जाने देते। यथा कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहि ज्ञाना। कतहुँ रामगुन करहि बखाना। भगवान् की रसीली कथा कहते है जिनम सती का मन लगे। उन्ही दिनो म सती जी के पिता दक्ष का बडा अभ्युदय हुआ। ब्रह्मदेव ने विचारकर देखा कि दक्ष सब कार्यो म दक्ष हैं तो उन्हे प्रजापतियो का नायक बना दिया।

बड अधिकार दच्छ जब पावा। अति अभिमानु हृदय तब आवा ॥
नहि कोउ अस जनमा जग माही। प्रभुता पाइ जाहि मद नाही ॥४॥

अर्थ दक्ष ने जब बडा अधिकार पाया तब उनके मन म बडा भारी घमण्ड हो गया। संसार म ऐसा कोई जन्मा ही नही जिसे प्रभुता पाकर मद न हुआ हो।

व्याख्या प्रजापति का पद इन्द्र बृहस्पति आदि से बडा है। सो दक्ष प्रजा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पतियो के नायक बना दिये गये। ब्रह्मदेव के बाद फिर यही पद है। इससे ऊँचा दूसरा कोई पद नही। पद पाने के साथ ही बडा भारी घमण्ड भी हुआ। अति अभिमान का भाव यह कि शिवजी को अपमानित करने की वासना उनके मन मे उठने लगी।

यहाँ पर यह शङ्का न करनी चाहिए कि स्वयं प्रजापति को अभिमान कैसे हुआ। श्री गोस्वामीजी कहते हैं कि जिस भाँति यह नियम है कि जो उत्पन्न होगा वह मरेगा। इसी भाँति यह भी नियम है कि प्रभुता पाने पर मद होता है। यथा 'श्रीमद वक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि।

दो० दच्छ लिये मुनि बोलि सब, करन लगे बड़ जाग।
नेवते सादर सकल सुर, जे पावत मख भाग ॥६०॥

अर्थ दक्ष ने सब मुनियो को बुला भेजा और बडा यज्ञ करने लगे और जो देवता यज्ञ मे भाग पाते थे उन सबको आदर सहित निमन्त्रित किया।

व्याख्या यह यज्ञ सात्त्विक भाव से नही किया गया। इसके करने का कारण दम्भ, दर्प और अभिमान था। यक्ष्ये दास्यामि मोदिष्ये इत्यज्ञानविमोहिता। मै यज्ञ करूँगा दान करूँगा आनन्द मनाऊँगा। इस अभिमान से आसुरी प्रकृतिवाले मोहित होते हैं। इतना बडा यज्ञ था कि सब मुनि बुलवा लिये गये। सादर निमन्त्रण नही गया, निम्न कोटि के समझे गये। देवताओ मे भी जो यज्ञ मे भाग पानेवाले थे वे ही आदर सहित निमन्त्रित किये गये। उनके भी आदर सहित निमन्त्रित करने मे कारण था। वह यह कि कही ऐसा न हो कि शिवजी के निमन्त्रित न होने से ये लोग निमन्त्रण अस्वीकार कर दें। फिर यज्ञ ही कैसे होगा? यही साङ्ग सायुध सशक्ति निमन्त्रित करना ही सादर निमन्त्रण है।

किन्नर[१] नाग सिद्ध गधर्बा। बधुन्ह समेत चले सुर सर्बा ॥
बिष्णु बिरंचि महेसु बिहाई। चले सकल सुर जान बनाई ॥१॥

अर्थ किन्नर, नाग, सिद्ध गन्धर्व आदि सब देवता अपनी अपनी बहुओ के साथ चले। विष्णु विरञ्चि महेश को छोडकर शेष सब देवता अपना अपना विमान सजाकर चले।

व्याख्या यज्ञो म देवताओ का आवाहन होता है। तब देवता अदृश्य रूप से आते हैं। यहाँ तो भाई बिरादरी की भाँति नेवते मे जा रहे हैं। किन्नर, नाग, सिद्ध, गन्धर्व यह सब देवजाति के भेद है। दक्ष को सन्तुष्ट रखना सबको इष्ट है। अत सस्त्रीक चले। शिवजी का यज्ञभाग बन्द करने के लिए ही यज्ञ हो रहा है। यह जानकर भी चले क्योकि सब उनके अधीन थे। उनके अति अभिमान से चिढने भी

१ किन्नरा नरविग्रहा अश्वमुखा देवयोनय। नागा वासुकिप्रभृतयो नराकारा। सिद्धा विश्वावसुप्रभृतय हाहा-हूहूचित्ररथादय। मनुष्य सा शरीर घोडे सा मुख किन्नरो का होता है। वासुकी आदि सर्पों का भी मनुष्य का शरीर है। विश्वावसु आदि सिद्ध हैं। हाहा हूहू चित्ररथ आदि गन्धर्व हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


थे फिर भी महोत्सव मे सम्मिलित होने के लिए बडे सज धज से चले। दक्ष की दुरभिसन्धि समझकर त्रिदेव नही गये।

सती बिलोके ब्योम बिमाना। जात चले सुन्दर बिधि नाना ॥
सुर सुदरी करहिं कल गाना। सुनत श्रवन छूटहिं मुनि ध्याना ॥२॥

अर्थ सती ने देखा कि आकाश मे अनेक प्रकार के सुन्दर विमान चले जा रहे हैं। देवताओ की स्त्रियाँ ऐसे मधुर गीत गा रही हैं जिनको सुनकर मुनियो का ध्यान छूट जाय।

व्याख्या यद्यपि विमान बहुत ऊँचे से जा रहे है पर कैलासपर्वत इतना ऊँचा है कि वहाँ से विमानो पर गाये हुए गीत भी सुनाई पडते थे। वे गीत देवियो के गाये हुए इतने मधुर थे कि उनके सुनने से मुनियो के ध्यान भी छूट जाँय। दु खेष्वनुद्विग्नमना सुखेपु विगतस्पृह । वीतरागभयक्रोध स्थितधीर्मुनिरुच्यते। जिसका दु ख मे मन उद्विग्न न हो और जिसे सुख की इच्छा न हो जिसका राग, भय और क्रोध दूर हो गया हो ऐसे स्थितप्रज्ञको मुनि कहते है। ऐसे मुनि का भी ध्यान उस गान को सुनकर छूटता था। ऐसी चत्मकृत शक्ति देवियो के गान मे थी। सतीजी का ध्यान उधर आकृष्ट हुआ तो देखती है कि अनेक विधि के सुन्दर विमान चले जा रहे हैं। शङ्कर भगवान् का ध्यान आकृष्ट न हुआ। अत उनका देखना नही कहते।

पूछेउ तब सिव कहेउ बखानी। पिता जग्य सुनि कछु हरषानी ॥
जौ महेसु मोहि आयसु देहीं। कछु दिन जाइ रहौं मिसु एही ॥३॥

अर्थ पूछा तो शिवजी ने बखानकर कहा। पिता का यज्ञ सुनकर कुछ हर्ष हुआ। यदि महेश मुझ आज्ञा दें तो इसी वहाने से मैं कुछ दिन जाकर रहूँ।

व्याख्या शिवजी सर्वज्ञ हैं। सब जानते है। यह समझकर कारण पूछा। स्त्रियाँ चाहे कितनी ही दु खी हो पर पिता के घर महोत्सव सुनकर कुछ हर्ष होता ही है। कम से कम एक हजार सत्तासी वर्ष तक न पिता ने पूछा ,और न ये स्वय मैके गईं। किस मिस बहाने से जायँ ? सो अब मिस मिल गया। पर यदि महेश आज्ञा दें तो वहाँ जाकर जी वहलावें, पर आज्ञा मिलनी कठिन है कहेगे कि वहाँ से कोई पूछता भी है ?

पति परित्याग हृदय दुखु भारी। कहै न निज अपराध विचारी ॥
बोली सती मनोहर बानी। भय सकोच प्रेमरस सानी ॥४॥

अर्थ पति के परित्याग का मन मे बडा भारी दु ख था। पर अपना अपराध समझकर कुछ नही कहती थी। सती भय, सङ्कोच और प्रेम से सनी हुई मनोहर वाणी बोली।

व्याख्या समाधि खुल गई। शङ्कर भगवान् के साथ हैं। अत 'अकथनीय दारुण' न कहकर केवल 'दुखु भारी' कहते हैं। अपराध मैंने किया दु ख कौन सहेगा ? इसलिए शिवजी से कुछ कहती नही है। पर अब बोली। ऐसी मधुर वाणी बोली जो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भय सङ्कोच, प्रेमरस से सनी हुई थी। क्षमा मिलने के पहिले जाने की आज्ञा माँगने मे भय। कोई बुलाने नही आया इस बात का संकोच। कुछ ही दिन के लिए आज्ञा चाहती हैं यह प्रेम।

दो. पिता भवन उत्सव परम, जौ प्रभु आयसु होइ।
तौ मै जाउँ कृपायतन, सादर देखन सोइ ॥६१॥

अर्थ : पिता के घर वड़ा उत्सव है। हे प्रभो ! यदि आपकी आज्ञा हो तो हे कृपानिधान ! मै आदर सहित उसे देखने जाऊँ।

व्याख्या : आज भी हिन्दू के घर यज्ञ से वड़ा कोई उत्सव नही माना जाता यज्ञ मे अनाहूत : विना बुलाए जाने का विधान है। किं पुनः जव पिता के घर मे हो। वहाँ जाना तो सभी तरह से प्राप्त है। यज्ञ दर्शन के लिए जाना सर्वथा उचित है। सो आदर के साथ अर्थात् तैयारी से जाना चाहती हैं। जाने का औचित्य वर्णन करके आज्ञा माँग रही हैं। हरिकथा फिर अधूरी ही रह गई। यथेष्ट आदर सती द्वारा न हो सका।

कहेहु नीक मोरेहुँ मन भावा। यह अनुचित नहि नेवत पठावा ॥
दच्छ सकल निज सुता वोलाई। हमरे वयर तुम्हौ विसराई ॥१॥

अर्थ . तुमने अच्छा कहा। मुझे भी पसन्द है। पर यह अनुचित है कि नेवता : नवेद नही भेजा। दक्ष ने अपनी सव पुत्रियाँ बुलाईं। पर मेरे वैर से तुम्हे भी भुला दिया।

व्याख्या : अर्थ स्वीकार है। पिता के यहाँ महोत्सव पडने पर जाना अवश्य चाहिए। पर तुम्हारे पिता का व्यवहार अनुचित हो रहा है। क्योंकि नेवता नही भेजा। जव 'नेवते सादर सकल सुर जे पावत मख भाग' तव मुझे नेवता क्यो नही आया ? मे तो जा नही सकता। उनको कम से कम मखभाग पानेवाले देवता के नाते भेजना था। तुम्हे भी वुलावा नही आया। दक्ष ने अपनी सव बेटियो को वुलाया है। मैं तो उनसे बैर नही मानता पर वे मुझसे मानते है। उस वैर के कारण मुझे भुलाया। और मेरे कारण तुम्हे भी भुलाया। मुझे न वुलाते तुम्ही को वुला लेते। मेरी स्त्री होने से तुम्हारा वहाँ जाना उन्हे पसन्द नही है।

ब्रह्मसभाँ हम सन दुखु माना। तेहि ते अजहु करहि अपमाना ॥
जौं विनु वोले जाहु भवानी। रहै न सीलु सनेहु न कानी ॥२॥

अर्थ : ब्रह्मदेव की सभा मे हमसे अप्रसन्न हुए थे। इसीसे वे अव तक अपमान करते है। हे भवानी ! यदि विना बुलाये जाओगी तो शील, स्नेह और प्रतिष्ठा न रहेगी।

व्याख्या शिवजी कहते हैं : बहुत दिन हुए, ब्रह्मदेव की सभा मे मैं बैठा था। दक्षजी आये। सव देवता उनकी प्रतिष्ठा के लिए खडे हो गये। मै नही उठा। इसी पर अप्रसन्न होकर भरी सभा मे मेरा घोर अपमान किया। यज्ञ मे भाग न मिलने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

का शाप दिया। मैं चुपकर रह गया। पर नन्दिकेश्वर से नही सहा गया। उसने उनके यज्ञ के विध्वंस होने का शाप दिया। वहाँ सभा थी। उनका पद इतना ऊँचा नही है कि मैं उठ खड़ा होता। फिर भी उन्हे जितना अपमान करते बना उतना किया। मैंने सह लिया। बात वही समाप्त हो गई। पर वे हृदय से वैर मान गये हैं। मेरे इतने सहने पर और इतना दिन बीतने पर भी यज्ञ मे मुझे न बुलाकर मेरा अपमान कर रहे हैं। बल्कि मेरे अपमान के लिए ही यह यज्ञ किया जा रहा है। यदि तुम भवानी होकर बिना बुलाये चली गई तो तुम्हारा शील, स्नेह और प्रतिष्ठा जो कुछ बना हुआ है वह नष्ट हो जायगा।

जदपि मित्र प्रभु पितु गुरु गेहा। जाइअ बिनु बोलेहु न सदेहा॥
तदपि बिरोध मान जहँ कोई। तहाँ गएँ कल्यान न होई॥३॥

अर्थ यद्यपि इसमे सन्देह नही कि मित्र, स्वामी, पिता और गुरु के घर बिना बोलाये भी जाना चाहिए। फिर भी जहाँ कोई विरोध मानता हो वहाँ जाने से भलाई नही होती।

व्याख्या चार स्थानो मे नेवते की आवश्यकता नही। मित्र, प्रभु, पिता और गुरु के घर। पर यहाँ केवल नेवता देने की बात नही है। दक्ष हमारे कारण तुमसे भी विरोध मानते हैं। मित्र, स्वामी, पिता और गुरु भी यदि विरोधी हो जायँ तो उनके यहाँ कल्याण चाहनेवाले को न जाना चाहिए। यही गृहस्थी का नियम है। पत्नी पति की आज्ञा माँगकर ही कोई काम करे। पति को यदि निषेध करना हो तो उसे समझावे। बलपूर्वक निषेध न करे।

भाँति अनेक संभु समुझावा। भावी बस न ग्यानु उर आवा॥
कह प्रभु जाहु जो बिनहि बोलाए। नहि भलि बात हमारे भाए॥४॥

अर्थ शिवजी ने अनेक भाँति से समझाया। पर होनहार के वश हृदय मे ज्ञान न हुआ। प्रभु ने कहा कि यदि बिना बुलाये जाओगी तो हमारी समझ मे बात ठीक न होगी।

व्याख्या शिवजी का समझाना। यथा :

करि भरोस वात्सल्य को, करौं तहाँ जनि गौन।
दक्षघृणा करिहैं अधिक समुझि रहौ तुम मौन॥
तुम्हरे जैबे ते अधिक, बढि जैहै अभिमान।
ह्वै निशङ्क तब करहिंगें, पग-पग पर अपमान॥
बिन बोले आगमन सुनि, जन करिहैं उपहास।
बैर और अधिकाइ है, नही प्रीति की आस॥
बहिष्कार मेरो चहत, सुरसमाज ते दक्ष।
औरन के अनुसरन हित, आप भये प्रत्यक्ष॥
करि नहि सकिहैं हानि कछु, किये कोटि अपकार।
संभव तव हिय हारि फिरि, चाहैं प्रीति उदार॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

हार हमारी समुझिहै, देखि तुम्हे निज जीत।
अभिमानी के हृदय नहिं, उपजत प्रीति पुनीत ॥
अन्तहु सहि सकि हौ सती, नहिं मेरो अपमान।
अति अनर्थ सम्भावना, ते जनि करहु पयान ॥

इतना समझाने पर बात समझ मे आ जानी चाहिए थी, पर सतीजी भवितव्यता के वश मे थी फिर शिवजी का समझाना व्यर्थ गया। बात मन मे न बैठी। युक्ति पर युक्ति देती ही गई। तब शिवजी ने निचोड कह दिया कि तुम्हारी समझ मे भले ही जाना उचित हो पर मेरी समझ मे भलाई नही होगी।

दो कहि देखा हर जतन बहु, रहै न दच्छकुमारि।
दिए मुख्यगन संग तब, बिदा कीन्हि त्रिपुरारि ॥६३॥

अर्थ जब शिवजी ने बहुत यत्न से कहकर देखा कि दक्ष की बेटी नही रुकती तब मुख्य गणो को सङ्ग मे देकर त्रिपुरारि ने विदा किया।

व्याख्या समझाने की जहाँ तक सीमा है वहाँ तक समझाया। यहाँ तक कहा कि अब तुम्हे फिर मेरा दर्शन न होगा। तुम्हे पूर्व जाना है। आज शनिवार है। नवमी तिथि है। सभी योग बुरे हैं। न जाओ। देख लिया कि बात गले नही उतरती। समझाने से अधिक अपने अधिकार को काम मे नही लाते। ढोल गँवार सूद्र पसु नारी। ये सब ताडन के अधिकारी इस नीति को मन्थरा, सूर्पणखा, लङ्किनी और ताडका को छोडकर श्रीरामकथा मे कही वर्तते नही देखा जाता। दक्ष कुमारी कहने से तात्पर्य यह कि पिता का बडा पक्ष मन मे है। क्रोध से भरी कहने लगी कि यदि आपके चरणो मे प्रेम है तो दूसरे जन्म मे आपको पा जाऊँगी। यह कहकर अकेली चल पडी। फिर भी अरक्षित नही भेजते। मुख्य गणो को साथ मे कर दिया। प्रतिष्ठा के साथ विदा किया। त्रिपुरारि बिदा कर रहे है, लौटेंगी नही।

पिता भवन जब गई भवानी। दच्छ त्रास काहु न सनमानी ॥
सादर भलेहि मिली एक माता। भगिनी मिली बहुत मुसुकाता ॥१॥

अर्थ जब भवानी पिता के घर पहुँची तो दक्ष के डर से किसी ने उनका सम्मान नही किया। केवल एक माता आदर के साथ मिली। बहने[1] भी मिली पर मुसुकराती हुई।

---

१ प्रसूति मानवी दक्ष उपयेमेह्यजात्मज। तस्या ससर्ज दुहितृ षोडशामललोचना ॥
त्रयोदशादाद्धर्माय तथैकामग्नये विभु। पितृभ्य एका युक्तेभ्यो भवायैका भवच्छिदे ॥
भवस्य पत्नी तु सती भव देवमनुव्रता। आत्मन सदृश पुत्र न लेभे गुणशीलत. ॥
श्रीमद्भागवत

स्वायम्भू मनुने अपनी तीसरी पुत्री प्रसूति ब्रह्मा के पुत्र दक्ष को दी। दक्ष से प्रसूती को सोलह लडकियाँ हुई। उनमे से तेरह धर्म को, एक अग्नि को, एक पितरो को और एक शिवजी को दी। शिवजी की पत्नी का नाम 'सती' था। उन्हे कोई सन्तान नही हुई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या : वहाँ जाने पर दाक्षायणी : दक्ष की बेटी की दृष्टि से नहीं भवानी भव की स्त्री भवानी : की दृष्टि से देखी गईं। भवानी के सम्मान की इच्छा सब को है। पर कोई करता नहीं। सब जानते है कि इनका आना दक्ष को इष्ट नहीं। इनका सम्मान करके दक्ष के कोप का भाजन कौन बने ? अत शिवजी ने जो कहा था कि रहै न सील सनेह न कानी। सो कानि · प्रतिष्ठा : तो गई। माँ किसी अवस्था मे भी वात्सल्य नहीं छोड सकती। अतः सादर मिली। बहन भी सब मिली। पर बहुत मुसुकुराती हुई। भाव यह कि आगई बिना बुलाए। जिस गौरव से मेरे पिता का अपमान किया था वह कहाँ रहा। नेगजोग लेने के लिए भेज दिया। गहना नहीं। कपड़ा नहीं। बडा भारी नाम महादेव। नाम बडेरा दर्शन थोरा। इस भाँति प्रतिष्ठा नहीं हुई।

दच्छ न कछु पूछी कुसलाता। सतिहि बिलोकि जरे सब गाता ॥
सती जाइ देखेउ तब जागा। कतहुँ न दीख संभु कर भागा ॥२॥

अर्थ · दक्ष ने कुछ कुशल भी नहीं पूछी। सती को देखकर सारा शरीर जल उठा। तब सती ने जाकर यज्ञ देखा तो वहाँ शिवजी का भाग कहीं दिखाई न पडा।

व्याख्या : दक्ष ने भद्रता का भी पालन नहीं किया। कुशल भी नहीं पूछी। शील भी गया। सती को देखने से वात्सल्य का उदय तो दूर की बात है। यह भावना उठी कि इसी के पति ने मेरा अपमान किया था सो सारा शरीर जल उठा। स्नेह भी गया।

सती को भरोसा था कि मुझे देखते ही पिता सारी बातें भूल जायेंगे और जो कुछ बिगडी बात है सब बन जायगी। तुरन्त शिवजी को नेवता भेजा जायगा और सब व्यवहार प्रेममय हो जायगा। जब देखा कि पिता के स्नेह का लेश नहीं है तो यज्ञ देखने गईं कि कहीं ऐसा न हो कि शिवजी को यज्ञ मे भाग न दिया हो सो सचमुच वहाँ शम्भु का भाग था ही नहीं।

तब चित चढेउ जो संकर कहेऊ। प्रभु अपमानु समुझि उर दहेऊ ॥
पाछिल दुख न हृदय अस ब्यापा। जस यह भयउ महापरितापा ॥३॥

अर्थ : तब शिवजी ने जो कहा था वह बात याद आई। स्वामी का अपमान समझकर हृदय जल उठा। पहिला दु ख हृदय मे वैसा नहीं व्यापा था जैसा कि यह महापरिताप हुआ।

व्याख्या · शिवजी के समझाने के समय कोई बात मन मे नहीं बैठी। समझती थी कि मनोमालिन्य मिटाने का यही एक उपाय है कि मैं बिना बुलाये चली जाऊँ। अब यहाँ की व्यवस्था देखकर मोह का पर्दा हटा। शिवजी की बात प्रत्यक्ष ठीक दिखाई पडी। वस्तुत यह यज्ञ ही शिवजी के अपमान के लिए रचा गया है। पति परित्याग का भारी दु ख था। परन्तु पति के अपमान का जो दु ख हुआ वह उससे कहीं बढ गया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जद्यपि जग दारुन दुख नाना। सब ते कठिन जाति अपमाना ॥
समुझि सो सतिहि भयउ अति क्रोधा। बहु विधि जननी कीन्ह प्रबोधा ॥४॥

अर्थ यद्यपि जगत् मे अनेक प्रकार के कठिन दुख है पर स्वजाति से अपमानित होना सबसे कठिन है। यही सोचकर सती को अत्यन्त क्रोध हुआ। माता ने उन्हे बहुत तरह से समझाया बुझाया।

व्याख्या महादेवजी को यज्ञ मे भाग न देना इससे बढकर उनका क्या अपमान होगा? इसका मतलब तो सीधे सीधे यही है कि देवजाति से महादेवजी का बहिष्कार हो गया। यह समझकर सती को अति क्रोध हुआ। अपने को सँभाल न सकी। क्रोध के लक्षण व्यक्त हो चले। किसकी सामर्थ्य जो इस बीच मे पडे। पर माँ सती को दुखी देखकर संग संग दौडी आई थी सो आगे आईं। समझाने लगी।

सवैया पितुते अपमान बडो सनमान कह्यौ जिन वेद को भेद विचारयौ।
तेहि को झझकारन मे अधिकार जो अक मे लै बहुभाँति दुलारयौ।
तुम नाहक ग्लानि सती उर आनि दुखी अति होत न जात सभारयौ।
करिहै मनुहारि गये दिन चारि सोई जिन रोपते दोष निहारयौ।

दो सिव अपमानु न जाइ सहि, हृदय न होइ प्रबोध।
सकल सभहि हठि हठकि तब, बोली बचन सक्रोध ॥६३॥

अर्थ शिवजी का अपमान सहा नही गया और न मन समझाए समझता है। तब सारी सभा को हठ से रोककर क्रोध से वचन बोली।

व्याख्या सती के क्रोध करने पर दक्ष तथा अन्य ठकुरसोहाती बोलनेवाले शिवजी की निन्दा करने लगे। उन्हे रोककर बोली। अथवा यज्ञ म सभासद होते हैं। उन्ही के निरीक्षणावेक्षण मे यज्ञ होता है। शिवजी के भाग न दिये जाने मे वे भी अपराधी थे। उन्हे अपने काम से रोककर क्रोध से बोली। सिव अपमान न जाइ सहि। मनसा क्रोध। सकल सभहि हठि हटकि। कर्मणा क्रोध। और बोली बचन वाचा क्रोध दिखलाया।

सुनहु सभासद सकल मुनिंदा। कही सुनी जिन संकर निंदा ॥
सो फलु तुरत लहब सब काहू। भली भाँति पछिताब पिताहू ॥१॥

अर्थ हे सभासदो और सब मुनीश्वरो! सुनो जिन लोगो ने यहाँ शिवजी की निन्दा कही या सुनी है उन सबको उसका तुरन्त फल मिलेगा। और पिता जी भी भली भाँति पछतायेंगे।

व्याख्या · उस यज्ञ मे सब मुनि तथा यज्ञभाग पानेवाले सब देवता इकट्ठे थे। इसलिए सबको सम्बोधन करती हैं। सभा म प्रवेश नही करना चाहिए और यदि जाय तो यथार्थ कहे। चुप रह जानेवाला या अन्याय कहनेवाला समान पापी होता है। यथा सभाया न प्रवेष्टव्य वक्तव्य वासमञ्जसम्। अब्रुवन् विब्रुवन् वापि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नरो भवति किल्विषी। अतः जिसने शङ्कर की निन्दा की वह पापी है और जिसने सुनकर प्रतिवाद न किया चुप रह गया वह भी समान पापी है।

अत्युग्र पुण्य पाप का फल यही मिल जाता है। चाहे तीन दिन भीतर मिले, तीन महीने भीतर मिले या तीन वर्ष के भीतर मिले। यथा : अत्युग्रपुण्यपापानामिहैव फलमश्नुते। त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिः पक्षैस्त्रिभिर्मासैस्त्रिभिर्दिनैः। अथवा मेरी आज्ञा से तुरन्त फल मिलेगा। इन सबके कारण पिताजी हैं। इनको भारी दुर्गति होगी और इनका कोई पुरुषार्थ न चलेगा तब पछतायेगे।

संत संभु श्रीपति अपवादा। सुनिय जहाँ तहँ असि मरिजादा ॥
काटिअ तासु जीभ जो बसाई। श्रवन मूँदि न त चलिअ पराई ॥२॥

अर्थ : सन्त, शम्भु और विष्णु भगवान् की निन्दा जहाँ सुनी जाय वहाँ ऐसी मर्यादा है कि वश चले तो उसकी जीभ काट ले और नही तो कान बन्द करके वहाँ से भाग चले।

व्याख्या : क्योकि यहाँ अन्याय की पराकाष्ठा हो गई। साक्षात् शङ्कर की निन्दा की जा रही है। और मर्यादा यह है कि सन्त, शम्भु और विष्णु के निन्दक का जिह्वाछेदन करना चाहिए। और यदि अपना वश न चले तो कान बन्द करके वहाँ से भाग जाना चाहिए। जिसमें और निन्दा के शब्द कान मे न पड़े। इसमे दोनो का हित होता है। 'होहि उलूक सत निंदारत। मोहनिसाप्रिय ज्ञान भानुगत। हरगुरु निंदक दादुर होई। जन्म सहस्र पाव तन सोई। निन्दक को दण्ड हो जाने से वह शुद्ध हो जाता है और दण्ड देनेवाला निन्दाश्रवण के पास से बच जाता है। यदि दण्ड देने मे असमर्थ हो तो कान मूँदकर भाग जाने से इस महान् पातक से अपनी रक्षा कर ले। पर यहाँ इन लोगो मे से न किसी ने निन्दक को दण्ड दिया और न कोई सभा छोडकर बाहर गया। अत. यह सभा पापियो की हो गई।

जगदातमा महेसु पुरारी। जगत जनक सब के हितकारी ॥
पिता मदमति निंदत तेही। दच्छ सुक्र संभव यह देही ॥३॥

अर्थ : जो जगत् की आत्मा है, जो महेश्वर है, त्रिपुरान्तक है, जगत् का पिता है और जगत् का हित करनेवाला है उसकी निन्दा मन्दमति पिता कर रहा है और इसी दक्ष के वीर्य से यह देह उत्पन्न हुआ है।

व्याख्या : जो अपनी ही आत्मा, अपने ही स्वामी, अपने ही रक्षक, अपने ही पिता और अपने ही हितकारी की निन्दा करे वह मन्दमति है और जो जगदात्मा, जगत् स्वामी जगद्रक्षक जगत् पिता और जगत् के हितकारी की निन्दा करे उसे क्या कहा जाय। ऐसे अत्याचारी के शुक्र से मेरा स्थूल शरीर बना है। यह रखने योग्य नहीं है।

तजिहौं तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चन्द्रमौलि बृषकेतू ॥
अस कहि जोग अगिनि तनु जारा। भयउ सकल मख हाहाकारा ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ इसलिए चन्द्रमौलि वृषकेतु को हृदय मे रखकर मैं देह का परित्याग करूँगी। ऐसा कहकर योगाग्नि से शरीर को भस्म कर दिया और सारी यज्ञशाला मे हाहाकार मच गया।

व्याख्या अपने आश्रित चन्द्र को शिर पर धारण करनेवाले धर्म के एक मात्र शरण को हृदय मे धारण करके तुरन्त देह को त्यागूँगी। मेरे लिए यही एक मात्र उपाय शिव विरोधी से सम्पर्क त्याग का है। ऐसा कहकर दक्ष की यज्ञशाला मे उत्तर मुख बैठ गई। चुप हो गईं। आँखे बन्द कर ली। प्राणापान को समान करके उदान के सहित नाभि चक्र से उठाया। फिर धीरे से हृदय मे स्थापित किया। फिर वहाँ से उठाकर कण्ठ मे फिर भ्रूमध्य मे स्थापित किया। फिर अपने शरीर मे वायु और अग्नि की धारणा की। इस भाँति शिव जी के चरणो का ध्यान करती हुई सती ने समाधिज अग्नि से अपने शरीर को भस्म कर दिया। सम्पूर्ण यज्ञशाला मे हाहाकार मच गया। दक्ष का भय भी लोगो को हाहाकार करने से रोक न सका।

दो सती मरनु सुनि संभु गन, लगे करन मख खीस।
जग्य बिधंस बिलोकि भृगु, रक्षा कीन्हि मुनीस ॥६४॥

अर्थ सती का मरना सुनकर रुद्रगण यज्ञ विध्वस करने लगे। यज्ञ का विध्वस देखकर मुनीश्वर भृगुजी ने उसकी रक्षा की।

व्याख्या हाहाकार सुना। स्पष्ट शब्दो मे लोगो के मुख से दक्ष की निन्दा सुनी कि इसके अत्याचार से सती ने शरीर त्याग दिया। तब शिवजी के पार्षद हथियार उठाये हुए दक्ष को मारने तथा यज्ञ विध्वस के लिए उद्यत हुए। उनके वेग को देखकर यज्ञविध्वसको के नाशक यजुमन्त्रो से भृगुजी ने दक्षिणाग्नि मे आहुति दी। उससे ऋभु नाम के हजारो देवता उत्पन्न हुए। उन्होने रुद्रगणो को मार भगाया।

समाचार सब संकर पाए। बीरभद्रु करि कोपु पठाए॥
जग्य बिधंस जाइ तिन्ह कीन्हा। सकल सुरन्ह बिधिवत फलु दीन्हा॥१॥

अर्थ सब समाचार शिवजी को मिला। तब उन्होने क्रोध करके वीरभद्र को भेजा। उन्होने जाकर यज्ञविध्वस किया और सारे देवताओ को विधिवत् फल दिया।

व्याख्या नारदजी ने सब समाचार अर्थात् शिवजी की निन्दा होने पर सती का शरीर त्याग और भृगुजी के उत्पन्न किये हुए देवगणो से रुद्रगणो के पराभव का समाचार शिवजी को सुनाया। तब उन्होने अत्यन्त क्रोध किया। उनकी जटा से वीरभद्र उत्पन्न हुए। उन्हें अपने गणो का अग्रणी बनाकर भेजा।

वीरभद्र जी ने जाकर यज्ञविध्वस किया। इनके ऊपर यज्ञानिष्टनाशकारी मन्त्रो का बल न चला। वीरभद्रजी अत्यन्त क्रुद्ध थे फिर भी फल देने म अविधि न होने पाई। जो दाँत निकालकर हँसे थे उनका दाँत तोडा गया। जिन्होने आँख से इशारा किया था उनकी आँख फोडी गई। जिन्होने दाढी हिलाकर अनुमोदन किया था उनकी दाढी नोची गई। भाव यह कि भगवान् वीरभद्र के सामने देवताओ का पराक्रम कुछ न ठहरा। यहाँ 'सुरन्ह' शब्द उपलक्षण है। ऋषि भी इन्ही के अन्तर्गत हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भै जग विदित दच्छ गति सोई। जसि कछु संभु विमुख कै होई॥
यह इतिहास सकल जग जानी। ताते मैं संक्षेप बखानी॥२॥

अर्थ दक्ष की जगत् प्रसिद्ध वही गति हुई जैसी कि शिव विमुख की होती है। यह इतिहास तमाम संसार जानता है। इसलिए मैंने संक्षेप में वर्णन किया।

व्याख्या आज भी लोग शङ्कर की पूजा के बाद बकरे का-सा शब्द गाल बजाकर उच्चारण करते हैं जिसमें शङ्कर प्रसन्न हों। कारण यह कि देवताओं का विधिवत् दण्ड देने के बाद दक्ष का शिर काटकर दक्षिणाग्नि में ही होमा गया। जिसमें आहुति देकर भृगु ऋषि ने यज्ञविघ्न नाशक ऋभु देवों को उत्पन्न किया था। तत्पश्चात् ब्रह्मादिक की स्तुति से प्रसन्न होकर शिवजी ने बकरे का शिर दक्ष के शरीर में जोड़ दिया। दक्ष ने जीकर बकरे-सा ही शब्द किया। इस पर भगवान् प्रसन्न हो गये। यही जानकर संसार बकरे का सा शब्द करता है। यह दक्ष की जगत् विदित गति है। उस समय सन्त्रस्त देवताओं ने जो स्तुति की है वही रुद्री कहलाती है। महाभारत द्रोणपर्व में पौराणिक शतरुद्री है।

अत यह इतिहास संसार जानता है। इस कारण से ग्रन्थकार ने संक्षेप में कहा। फिर भी दक्ष की दुर्दशा अपने मुख से स्पष्ट नहीं कही जस कछु संभु विमुख कर होई। कहकर समाप्त कर दिया। यह ग्रन्थकार की सज्जनता है।

सती मरत हरि सन बर माँगा। जनम जनम सिव पद अनुरागा॥
तेहि कारन हिमगिरि गृह जाई। जनमी पारबती तनु पाई॥३॥

अर्थ मरते समय सती ने हरि से वर माँगा कि जन्म-जन्म में शिवजी के चरणों में प्रेम हो। इस कारण हिमवान् के घर जाकर पार्वती शरीर धारणकर जन्म लिया।

व्याख्या योगाग्नि प्रकट करने के समय हरि वरद होकर प्रकट हुए। पहिले जो प्रार्थना[1] की थी उसे पूरा करके अब क्या चाहती हो ऐसा बोले। भगवती ने जन्म-जन्म में शिवचरणानुराग माँगा। यह सती का सतीत्व है।

शिवजी का ध्यान करते हुए योगाग्नि से शरीर छोड़नेवाले का पुनर्जन्म नहीं होता। यथा तजि जोग पावक देह हरिपद लीन भइ जहँ नहिं फिरे। परन्तु हरि से पुनर्जन्म के लिए वर माँगा था। इसलिए हिमगिरि गृह में जनमी। हिम ऋतु का आरम्भ सूचित करते हैं। यथा हिम हिमसैलसुता सिव ब्याहू। गृह कहकर सूचित किया कि हिमगिरि से कोई भौतिक पहाड़ न समझ लें। यहाँ पर्वत के अधिष्ठातृ देवता से तात्पर्य है। त्रेता के आदि में चैत्रसुदी नवमी अर्धरात्रि को भगवती का जन्म हुआ।

---

१ तौ सब दरसी सुनहु प्रभु करहु सो बेगि उपाय।
होय मरन जेहि बिनहिं श्रम दुसह बिपत्ति बिहाय॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जब ते उमा सैल गृह जाई। सकल सिद्धि सपत तहँ छाई ॥
जहँ तहँ मुनिन्ह सुआस्रमु कीन्हे। उचित वास हिम भूधर दीन्हे ॥४॥

अर्थ जब से उमा ने हिमवान् के घर जाकर जन्म लिया तब से वहाँ सारी सिद्धियाँ और सम्पत्ति छा गई। मुनियो ने जहाँ तहाँ अच्छे अच्छे आश्रम बना लिये। हिमवान् ने उन्हे यथोचित स्थान दिये।

व्याख्या यद्यपि तप से विरत करने के लिए माँ का उमा उच्चारण करना उमा नाम पडने का हेतु बतलाया जाता है पर भगवती का सदा से उमा नाम है। उमा मे भी वे ही अक्षर है जो प्रणव म है। इसलिए उमा को देवी प्रणव कहा गया है।

जगदम्बा के अवतार ग्रहण करते ही हिमालय पर सिद्धि और सम्पत्ति छा गई। सिद्धि सम्पत्ति का छा जाना अवतार का सूचक है। यथा जा दिन ते हरि गर्भहि आये। सकल लाक सुख सपति छाये। सिद्धि प्राप्ति के लिए मुनियो का आगमन प्रारम्भ हुआ। हिमगिरि की ओर से भी यथायोग्य सत्कार होने लगा।

दो. सदा सुमन फल सहित सब, द्रुम नव नाना जाति।
प्रकटी सुन्दर सैल पर, मनि आकर बहु भाँति ॥६५॥

अर्थ पर्वत पर भाँति भाँति के नवीन वृक्ष सदा फल फूल सहित हुए और मणियो की अनेक प्रकार की खाने प्रकट हुई।

व्याख्या प्रकृति मे परिवर्तन कहते है। अथवा मुनिगण आगये। उनके सत्कार के लिए सदा सुमन फल सहित सब द्रुम नव नाना भाँति प्रकटे। ऐसा कहकर सिद्धि का आना द्योतित किया। अब मनि आकर बहु भाँति का प्रकटना कहकर सम्पत्ति का छा जाना कहते हैं।

जिस भाँति सती की कथा वन है उसी भाँति गिरिजा की कथा बाग है। सब सुख ही सुख हुआ।

सरिता सब पुनीत जलु बहही। खग मृग मधुप सुखी सब रहही ॥
सहज बयरु सब जीवन्ह त्यागा। गिरि पर सकल करहि अनुरागा ॥१॥

अर्थ सारी नदियाँ पवित्र जल बहाने लगी। पक्षी, पशु, भौरे सब सुखी रहने लगे। जीवो ने स्वाभाविक वैर छोड दिया। पर्वत पर सब प्रेम करने लगे।

व्याख्या नदी मे निर्मल जल का प्रवाह महानुभाव की उपस्थिति का सूचक है। यथा वह सरयू अति निर्मल नीरा। खग मृग एक दूसरे से भयभीत रहते हैं। यथा सहवासी काचो गिलहि पुरजन पाक प्रवीन। कालछेप केहि मिलि करहि तुलसी खगमृग मीन। मधुप मधु छीने जाने के भय से दुर्गम स्थानो मे छत्ते लगाते हैं। वहाँ भी बन्दरो की बाधा रहती है। यहाँ सुखी रहने लगे।

कुछ जीवो म सहज वैर है। यथा काक उलूक मे, अश्व महिष म, मूषक बिलाव म, गज सिंह म। जगजननी क आगमन से उन जीवो का सहज वैर उस

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पर्वत पर नही रह गया। यथा : अहिंसा प्रतिष्ठाया तत्सन्निधौ वैरत्याग। अहिंसा की प्रतिष्ठा होने से उनके सन्निकट वैर छूट जाता है। वहाँ तो प्रेम करते थे। पर्वत के नीचे आने पर फिर वही हालत हो जाती थी। यथा खगहा करि हर बाघ वराहा। देखि महिष वृष साज सराहा। वैर विहाइ चरैं इक सगा। जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा।

सोह सैल गिरिजा गृह आएं। जिमि जन राम भगति के पाएं॥
नितनूतन मंगल गृह तासू। ब्रह्मादिक गावहिं जसु जासू॥२॥

अर्थ : घर मे गिरिजा के आने से पर्वत की ऐसी शोभा हुई जैसी रामभक्ति पाकर मनुष्य की होती है। जिसका यश ब्रह्मा आदिक गान करते हैं उसके घर नित्य नये मङ्गल[1] हैं।

व्याख्या . रामभक्ति की प्राप्ति से जन की शोभा हो जाती है। महाप्रभावा भगवती भक्ति के प्रभाव से उसके निकट काम क्रोध लोभ मोहादि नही आते। उसका अविद्यान्धकार मिट जाता है। उसके लिए विप अमृत और शत्रु मित्र हो जाता है। वही वास्तव मे सुखी होता है। उसे मानस रोग नही होते। सपने मे भी उसे दु ख का लेश नहीं होता। यथा : राम भगति चितामनि सुन्दर। वसइ गरुड जाके उर अन्तर। खल कामादि निकट नहि जाही। वसइ भगति जाके उरमाही। गरल सुधा सम अरिहित होई। तेहि मनि विनु सुख पाव न कोई। इत्यादि। जिस भाँति हृदय मे भक्ति की प्राप्ति से पूर्ण रूपेण सुखी होकर प्राणी शोभा को प्राप्त होते हैं उसी भाँति पर्वतराज भी भगवती गिरिजा के पादार्पण से सब प्रकार की सुख समृद्धि से युक्त होकर शोभा को प्राप्त हुए।

गिरिजा के आने से गिरिराज की ऐसा महिमा बढी कि ब्रह्मादिक देव पर्वतराज का यशोगान करने लगे। उनके भाग्य की सराहना करने लगे। और उनके घर नित्य नया मगल होने लगा। नये मङ्गल के लिए सर्वमङ्गला, मङ्गलागौरी का लोग पूजन करते हैं। सो जहाँ वे स्वय अवतीर्ण हैं वहाँ नित्य नया मङ्गल क्यो न हो।

नारद समाचार सब पाए। कौतुकहीं गिरि गेह सिधाए॥
सैलराज बड आदर कीन्हा। पद पखारि वर आसनु दीन्हा॥३॥

अर्थ : नारद ने सब समाचार पाया तो कौतुक के लिए हिमवान् के घर आये। पर्वतराज ने बडा आदर किया और पाँव धोकर श्रेष्ठ आसन दिया।

व्याख्या : ब्रह्मदेव के मुख से वारवार यशोगान सुना। इसलिए कहते है कि नारद समाचार सब पाये। कौतुकी मुनि हैं। यथा मुनि कौतुकी नगर तेहि गएऊ।

---

[1] मङ्गलमभिप्रेतार्थसिद्धि । मङ्गललक्षणम् ।
प्रशस्ताचरण नित्यमप्रशस्तस्य वर्जनम्। एतद्धि मङ्गल प्रोक्त ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभि ।
चाहे हुए अर्थ की सिद्धि को मङ्गल कहते हैं। नित्य अच्छे काम करना बुरा न करना, इसी को तत्त्वदर्शी ऋषियों ने मङ्गल बतलाया है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ब्रह्मलोक से मृत्युलोक मे कौतुक के लिए चले आये क्योंकि कौतुकियो को आलस्य नही होता। यथा तौ कौतुकिअन्ह आलस नाही। पर इनके कौतुक का सदा कल्याण लक्ष्य रहता है।

पर्वतराज साधुसेवी है। मुनियो का आदर अपने यहाँ उचित स्थान देकर किया करते है। नारद जी तो देव ऋषि है। इसलिए इनका बडा आदर किया। इनके पैर धोये और उत्तम आसन पर विठाया।

नारि सहित मुनि पद सिरु नावा। चरन सलिल सबु भवनु सिचावा॥
निज सौभाग्य बहुत गिरि बरना। सुता बोलि मेली मुनि चरना॥४॥

अर्थ हिमवान् ने स्त्री के सहित मुनि के चरणो मे शिर नवाया और उनके चरणोदक को सारे घर म छिडकवाया। अपने भाग्य की बडी सराहना की और बेटी को बुलाकर मुनिजी के चरणो मे डाल दिया।

व्याख्या सस्त्रीक होकर शिर नवाना तथा चरणोदक से सम्पूर्ण घर को सिञ्चित करना गुरु के समान आदर करना है। यथा गहे चरन सिय सहित बहोरी। बडे के आगमन पर ही अपने सौभाग्य के वर्णन की विधि है। क्योकि उसका पर्यवसान बडे की स्तुति मे होता है। बेटी के कल्याण के लिए उसे लेकर मुनिजी के चरणो मे डाल दिया। अथवा उसके भविष्य के विपय मे प्रश्न करना है इसलिए चरणो मे डाल दिया।

दो त्रिकालग्य सर्वग्य तुम्ह, गति सर्वत्र तुम्हारि।
कहहु सुता के दोप गुन, मुनिवर हृदय विचारि॥६६॥

अर्थ हिमवान् ने कहा आप त्रिकालज्ञ हैं। आप की सर्वत्र गति है। हे मुनिवर! हृदय से विचारकर बेटी के दोप और गुण कहिये।

व्याख्या योगी लोग प्रज्ञालोक के प्रभाव से वस्तु विशेप का भूत भविष्य जान लेते है। इस भाँति त्रिकालज्ञ होते हुए भी सर्वज्ञ नही होते। नारद जी त्रिकालज्ञ भी है, सर्वज्ञ भी है और इनकी सर्वत्र गति है। अव्याहत गति है, सभी विपयो मे सभी लोको मे गति है। कही रोक नही है। यथा नारद को परदा न नारद सो पारखी। इससे गिरजा के योग्य वर की ओर इङ्गित है। यथा कुअरि सयानि विलोकि मातु पितु सोचहि। गिरिजा जोगु मिलिहि वर अनुदिन लोचहिं। पा म। केवल गुण और केवल दोप की जगत् म स्थिति भी नही है। इसलिए दोप गुण दोनो पूछते हैं। दोप लक्षित नही होता है। अत जिज्ञासा मे प्रधानता दोप को है। इसलिए दोप को ही पहिले कहा।

कह मुनि विहँसि गूढ मृदु वानी। सुता तुम्हारि सकल गुनखानी॥
सुदर सहज सुसील सयानी। नाम उमा अविका भवानी॥१॥

अर्थ मुनिजी हँसकर गूढ और मृदुवानी बोले। तुम्हारी बेटी सब गुणो की

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



खानि है। स्वभाव से ही सुन्दर सुशील और सयानी है। इसके नाम उमा, अम्बिका और भवानी हैं।

व्याख्या माता-पिता के वात्सल्य पर हँस[1] पडे और मृदुबानी बोले १ कि तुम्हारी बेटी सब गुणो की खानि है। यही गूढ वाणी है। तीनो गुण सत्त्व, रज और तम की खानि तो साक्षात् मूल प्रकृति है २ सहज सुन्दर अर्थात् शृगारादि की अपेक्षा नही है। स्त्री यदि सुशील न हुई तो सुन्दरता अकिञ्चित्कर है। इसलिए ३ सुशील कहते हैं। इतना होने पर भी यदि मतिमन्द हो तो सब गुण फीके पड जाते हैं। इसलिए ४ सयानी कहते हैं और फिर वाक्य की गूढता यह है कि नाम बतलाने लगते हैं। इतनी बडी कन्या का नाम माता-पिता से पूछना चाहिए न कि माता-पिता को उसका नाम बतलाना चाहिए। सो ५ वेदोक्त नाम, उमा प्रणव अम्बिका और भवानी बतलाकर उनका अनादि शक्ति होना द्योतित करते हैं।

सब लच्छन सम्पन्न कुमारी। होइहि सतत प्रियहि पियारी॥
सदा अचल एहि कर अहिवाता। इहि ते जसु पैहहि पितुमाता॥२॥

अर्थ लडकी सब लक्षणो से युक्त है। यह अपने पति को सदा प्यारी होगी। इसका सोहाग सदा अचल रहेगा। इसके माता-पिता यश पावेंगे।

व्याख्या सदा अचल अहिवात कहकर वर और कन्या दोनो को अमर कहा। सब लक्षण सम्पन्न कहकर भी छ लक्षण गिनाते हैं। पाँच गुण पहिले गिना आए हैं। एव अब ग्यारह विशेषण देकर इनका रुद्राणी होना सूचित करते हैं। १ सदा पति की प्रियतमा होना। यथा बरदायिनी त्रिपुरारि पियारी। २ अहिवात का सदा अचल होना। ३ इनसे पिता माता को यश मिलना। पुत्र मेनाक से वैसा यश नही। यथा ब्रह्मादि सुरनर नाग अति अनुराग भाग बखानही पा म ।

होइहि पूज्य सकल जग माही। एहि सेवत कछु दुर्लभ नाही॥
एहि कर नामु सुमिरि ससारा। त्रिय चढिहहि पतिव्रत असिधारा॥३॥

अर्थ यह सारे जगत् म पूज्य होगी। इसकी सेवा करने से कुछ भी दुर्लभ न होगा। ससार मे इसका नाम स्मरण करके स्त्रियाँ पतिव्रत रूपी तलवार की धार पर चढ जायँगी।

व्याख्या ४ बिना इनकी पूजा के कोई सुखी नही हो सकेगा। शैव वैष्णव आदि सभी इनकी पूजा करेंगे। यथा देवि पूजि पद कमल तुम्हारे। सुर नर मुनि सब होहि सुखारे। ५ इनकी सेवा करने से अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारो मे से कोई दुर्लभ नही। चारो सुलभ हैं। यथा सेवत तोहि सुलभ फल चारी। ६ इनके नाम स्मरण से पतिव्रत रूपी खड्गधार पर चढने की सामर्थ्य होती है। अत यह अनादि

---

[1] जिसकी देह से उत्पन्न होकर भगवती कौशिकी न अभी शुम्भ निशुम्भ का वध किया है, उस य सीधे-सीध बटी मान रह हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



देवी हैं। पतिव्रताओ मे प्रथम रेखा इन्ही की है। यथा पति देवता सुतीय महँ मातु प्रथम तव रेख।

सैल सुलच्छन सुता तुम्हारी। सुनहु जे अब अवगुन दुइ चारी ॥
अगुन अमान मातु पितु हीना। उदासीन सब संसय छीना ॥४॥

दो. जोगी जटिल अकाम मन, नगन अमगल भेख।
अस स्वामी इह कहँ मिलिहि, परी हस्त असि रेख ॥४॥

अर्थ हे गिरिराज। तुम्हारी बेटी सुलच्छनी है। अब दो चार दोप हैं उन्हे भी सुनो। अगुन, अमान, मातृ-पितृ हीन, उदासीन, क्षीणसशय, योगी, जटिल, कामरहित मनवाला, नगा, अशुभ वेपवाला। ऐसा स्वामी इसको मिलगा। ऐसी रेखा इसके हाथ मे पड गई है।

व्याख्या शैलराज ने दोपगुण पूछा था। पर नारदजी गुण दोप कहते हैं। जो वही दोप पहिल कह देते तो गुण सुनाने का अवसर ही न मिलता। सकल गुनखानी से उपक्रम सब लच्छन सम्पन्न कुमारी से अभ्यास और सुलच्छिनी से उपसहार करते है। गुण बहुत है। दोप दो ही चार है और वे भी पतिविपयक है। पति विपयक अवगुण भी पत्नी म समझे जाते है। इसलिए उमा का अवगुण कहते हैं। यही मुनिजी का कौतुक है। उमा को तप के लिए भेजना चाहते है जिसम उनका परम कल्याण हो। दोप न दिखावे तो माता पिता तप के लिए आज्ञा देगे नहीं। अत पतिविपयक ऐसे विशेपण देगे जो महादेव मे जाकर गुण हो जाते हैं। सामान्य जीव के लिए तो महा अवगुण हैं। उन्ही विशेपणो को जो सख्या म दस हैं दोष कहकर गिनाने हैं। यह गूढ वाणी है। १ अगुन गुण से परे या निर्गुणी। २ अमान अपरिच्छिन्न या उपेक्षित। ३ मातृपितृहीन स्वयभू या अनाथ। ४ उदासीन रागद्वेष रहित या उदासी। ५ क्षीणसशय ज्ञानी या नरपशु। ६ योगी योगेश्वर या भिक्षुक। ७ जटिल लौकिक-सस्कार से परे या विरक्त। ८ नगन मायावरण रहित या निर्लज्ज। ९ अकाममन कामजयी या नपुसक। १० अमगल वेप शिवधाम या अघोरी परी हस्त असरेख। अन्यथा हो ही नही सकता।

सुनि मुनि गिरा सत्य जिय जानी। दुख दपतिहि उमा हरखानी ॥
नारदहू यह भेद न जाना। दसा एक समुझब बिलगाना ॥१॥

अर्थ मुनि की बात सुनकर और उसे हृदय से सत्य जानकर दोनो प्राणियो को दु ख हुआ और उमा हर्षित हुईं। नारद ने भी इस मर्म को न जाना क्योकि सबकी दशा एक सी थी। केवल समझने मे भेद था।

व्याख्या मुनि मे विश्वास है कि मुनि की वाणी मिथ्या हो ही नही सकती। ऐसी गुणवती मेरी कन्या और उसे ऐसा निर्गुणी वर मिलेगा। इस बात का हिमवान् और मेना को दु ख हुआ। शङ्कर भगवान् म ये सब लक्षण घटते हैं। अत वर रूप म उनकी प्राप्ति की आशा से उमा हर्पित हुई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


मेना-हिमवन्त शोक से विह्वल, उमा प्रेम मे विह्वल अत बाह्य दशा सबकी एक सी हुई। नारद सो परदा न नारद सो पारखी। सो ऐसे पारखी भी यह न परख सके कि किसे शोकाश्रु है और किसे आनन्दाश्रु है। शोक और हर्ष दोनो के अनुभाव अश्रु और पुलक हैं। अनुभाव एक से होने से भेद का पता न चला।

सकल सखी गिरिजा गिरि मैना। पुलक ससीर भरे जल नैना ॥
होइ न मृषा देवरिपि भाखा। उमा सो वचनु हृदय धरि राखा ॥२॥

अर्थ सारी सखियाँ, उमा हिमवान् और मेना के शरीर पुलकित हो गये। आँखो मे आँसू भर आये। देवर्षि का कहा झूठ न होगा। यह बात उमा ने हृदय म रख ली।

व्याख्या पिछली चौपाई मे जो दो बातें कही थी १ दसा एक और २ समुझव विलगाना। उनमे से दसा एक को स्पष्ट कर रहे हैं कि सभी सखियो के तथा गिरिजा, गिरि और मेना के शरीरो में पुलक हो उठा था और आंखो मे आंसू छलछला उठे थे। अब 'समुझव बिलगाना' को स्पष्ट कर रहे है। उमा तो यह समझ रही है कि नारदजी समस्त देवताओ मे ऋषि हैं। इनका कहा अन्यथा कैसे होगा। इसलिए उस वचन को गाँठ बाँध लिया।

उपजेउ सिव पद कमल सनेहू। मिलन कठिन मन भा सदेहू ॥
जानि कुअवसरु प्रीति दुराई। सखी उछग[१] बैठि पुनि जाई ॥३॥

अर्थ शिवजी के चरण कमलो मे स्नेह उत्पन्न हुआ। पर मन मे सन्देह हुआ कि मिलना कठिन है। कुअवसर जानकर प्रीति को छिपा लिया और जाकर सखी की गोद मे बैठ गईं।

व्याख्या नारद के वचन से शिवपद मे प्रेम उपजा। इसीलिए नारद जी को गुरु माना। यथा गुरु के वचन प्रतीत न जेही। सपनेहु सुलभ न सुख सिधि तेही। नारद वचन न मैं परिहारऊँ। इत्यादि। स्नेह तो बीज भाव से था ही। उसके उद्बोधन के कारण शिवजी का गूढ भाव से वर्णन हुआ। स्नेह बढने से मिलने की इच्छा हुई। पर वह कठिन बात थी। क्योकि त्याग कर चुके थे। नारदजी आशा दिलाते हैं कि अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि। पर अभी निश्चय कुछ नही। इससे सन्देह हुआ।

पिता-माता की अनुज्ञा नही हुई है। अत प्रीति के प्रकट करने का उपयुक्त अवसर न था। नारद वचन से उद्बोधित प्रीति को छिपाया। सखी के उछङ्ग गोद से लेकर नारदजी के पैरो मे डाला था। जबतक हाथ देखकर फल कहते थे तबतब वही बैठी थी। जब कह चुके तो फिर सखी की गोद मे चली गईं।

झूठि न होइ देवरिपि बानी। सोचहि दपति सखी सयानी ॥
उर धरि धीर कहइ गिरिराऊ। कहहु नाथ का करिअ ऊपाऊ ॥४॥

---

१ 'थत्सप्सा छ' इस सूत्र मे 'त्स' का छ होकर 'उत्सङ्ग' का 'उछग' रूप सिद्ध हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ : देव ऋषि की वाणी झूठी न होगी। यह बात दोनो प्राणी 'मेना हिमवान् और चतुर सखियाँ सोचने लगी। हृदय मे धैर्य धारण कर हिमवान् ने कहा 'हे नाथ! कहिये, क्या उपाय किया जाय ?

व्याख्या : दम्पति और सखी सयानी भी यही समझती है कि देवऋषि का कथन अन्यथा नही हो सकता। पर उन्हे शोक है क्योकि उनके समझने मे उक्त विशेषणविशिष्ट वर के मिलने से उमा का जीवन ही नष्ट हो जायगा। शोक से धैर्य छूट गया है। कुछ कहते नही बनता। धैर्य धारणकर हिमवान् बोले अब आप ही उपाय भी बतलावें जिससे यह कुयोग मिट जाय। हिमवान् के धैर्य की बडी प्रशसा है। धैर्येण हिमावानिव।

दो कह मुनीस हिमवत सुनु, जो विधि लिखा लिलार।
देव दनुज नर नाग मुनि, कोउ न मेटनिहार ॥६८॥

अर्थ मुनीश ने कहा . हे हिमवान्! सुनो जो ब्रह्मदेव ने ललाट मे लिख दिया है। उसे देव दनुज, नर, नाग, मुनि कोई मिटाने वाला नही है।

व्याख्या भाव यह कि ललाट का लेख और हाथ की रेखा एक ही बात है। ललाट का लेख छिपा रहता है पढा नही जाता। अत हस्तरेखा से ललाट के लेख का पता चलता है। त्वचा के हटने पर ललाट का लिखा पढा जा सकता है। यथा 'जरत विलोकेउँ जबहि कपाला। विधि के लिखे अक निज भाला। नर के कर आपन वध बाँची। हसेउँ जानि विधि गिरा असाँची। देव, दनुज, नर, नाग, मुनि तो विधि की सृष्टि मे है उनका सामर्थ्य नही कि स्रष्टा के लेख को मिटा सके। प्रारब्ध कर्म का उल्लेख ललाट पटल मे कर दिया जाता है जिस भाँति कैदियो के गले की तख्ती मे उनके अपराधादि का उल्लेख रहता है।

तदपि एक मै कहेउँ उपाई। होइ करइ जौ दैउ सहाई ॥
जस वरु मै बरनेउँ तुम्ह पाही। मिलहि उमहि तस ससय नाही ॥१॥

अर्थ फिर भी मै एक उपाय कहता हूँ। यदि प्रारब्ध साथ दे तो हो सकता है। जैसा वर मैंने तुमसे वर्णन किया है वैसा ही उमा को मिलेगा इसमे सन्देह नही है।

व्याख्या यहाँ पर प्रारब्ध और पुरुषार्थ के बलाबल का बडा ही सुन्दर विचार किया गया है। जैसा प्रारब्ध है वैसा होकर रहेगा। इसमे सन्देह को स्थान नही है। फिर भी पुरुषार्थ को एक बारगी कोई स्थान न हो यह बात नही है। प्रारब्ध को हस्त रेखा ज्योतिष आदि शास्त्रो से निश्चय करके ऐसा उपाय पुरुषार्थ करें जो प्रारब्ध के अनुकूल हो। प्रारब्ध उसका साथ दे सके। प्रारब्ध के प्रतिकूल पुरुषार्थ करना व्यर्थ है। पुरुषार्थ ऐसा होना चाहिए कि प्रारब्ध की घटना ज्यों की त्यो घटने दे पर सुख दु ख के तारतम्य मे भेद पड जाय। अत एक उपाय नारदजी बतलाते हैं पर उसका सिद्ध होना प्रारब्ध के साथ देने पर निर्भर करता है। अत नारदजी कहते है कि वर ता उमा को वैसा ही मिलेगा। यह प्रारब्ध है मिट नही सकता और वैसा वर मिलने से उमा के दु ख का पारावार नही। अब पुरुषार्थ यह

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

करना है कि ऐसा वर खोजा जाय जिसमे ये सब बातें हो फिर भी उमा को दुःख न होकर परम सुखकारी हो।

जे जे बर के दोष बखाने। सब सिव पहिं मैं अनुमाने ॥
जौं बिबाहु संकर सन होई। दोषौ गुन सम कह सबु कोई ॥२॥

अर्थ मैंने वर के जो जो दोष कहे हैं मैं अनुमान करता हूँ कि वे सब शिवजी मे हैं। यदि शिवजी से विवाह हो तो उमा मे जो दोष कहे जाते हैं उन्हे सब कोई गुण के समान कहेंगे।

व्याख्या सामान्य जीव वर के लिए जो दश दोष मैंने बतलाये हैं उन दशो का शिवजी मे होना मैं अनुमान करता हूँ। शिवजी मे दोष कहाँ ? वे भी गुण ही हैं लौकिक दृष्टि से दोष से दिखाई पडते हैं। इसलिए वे दोष शिवजी मे हैं ऐसा न कह कर सिवपँह मैं अनुमाने कह रहे हैं। शिवजी अगुण, अमान, मातु पितु हीन, संसयछीन, योगी, जटिल, अकाममन, दिगम्बर और अमंगल वेष हैं। उनसे यदि उमा का विवाह हो तो वर के दोष गुण हो जायेंगे। इन दशो विशेषणो के भाव ही पलट जायँगे और संसार उन्हे गुण कहेगा।

जौं अहि सेज सयन हरि करहीं। बुध कछु तिन्ह कर दोषु न धरहीं ॥
भानु कृसानु सर्ब रस खाहीं। तिन्ह कहँ मंद कहत कोउ नाहीं ॥३॥

अर्थ यदि विष्णु सर्प की शैया पर शयन करते हैं तो भी पण्डित लोग उनमें दोष नही लगाते। सूर्य और अग्नि सभी रस का भक्षण करते हैं। उन्हे कोई बुरा नहीं कहता।

व्याख्या दोष के गुण हो जाने के चार उदाहरण देते हैं। सँपेरा पेटारी मे साँप रखता है। उसे सब बुरा कहते हैं। नारायण सर्प पर ही सोते हैं। नारायण के सोने से वह भी गुण हो गया। लोग स्तुति करते हैं शान्ताकारं भुजगशयनम्। यह तो परोक्ष का उदाहरण है। अब अपरोक्ष की बात सुनिये। सूर्य और अग्नि कौन-सा रस नही खाते सो उन्हे मन्द कहने की बात दूर गई स्तुति होती है भास्वते सर्व-भक्षाय रौद्राय वपुषे नमः। ते नमः उक्तिं विधेम। इत्यादि।

सुभ अरु असुभ सलिल सब बहई। सुरसरि कोउ अपुनीत न कहई ॥
समरथ कहुँ नहिं दोषु गोसाईं। रबि पावक सुरसरि की नाईं ॥४॥

अर्थ पवित्र और अपवित्र सब प्रकार का जल बहता है पर कोई गंगा को अपवित्र नही कहता। समर्थ को दोष नही होता १ गोसाईं हरि २ सूर्य ३ अग्नि और ४ गङ्गाजी की भाँति।

व्याख्या गङ्गाजी मे यमुना और सरस्वती का जल भी बहता है और कर्म-नासा का भी जल बहता है पर अपुनीत कहना तो दूर रहा। वही अशुभ जल गङ्गा मे मिलकर पुनीत हो जाता है। यथा कर्मनास जल सुरसरि परई। तेहि को कहो सीस नहिं धरई।

ankurnagpal108@gmail.com

जहाँ दोष विकार उत्पन्न कर सकता है वहीं उसकी निन्दा है। जहाँ दोष अपनी क्रिया नही कर सकता वहाँ वह निन्दित भी नही है। समर्थ मे दोष विकार उत्पन्न कर नही सकता। अतः वहाँ उसकी दोष मे गणना भी नही होती।

गोसाईं अर्थात् विष्णु समर्थ है। सर्पशैया से उनका क्या बिगडा ? सर्वभक्षक होने पर भी सूर्य और अग्नि के भास्वरतेज मे क्या विकार हुआ ? कर्मनाशा का जल पडने से गङ्गा मे क्या अपवित्रता आई।

दो. जौं अस हिसिषा करहिं नर, जड़ विवेक अभिमान।
परहि भरि नरक महुँ, जीव कि ईस समान ॥६९॥

अर्थ : जो जड मनुष्य ज्ञान के अभिमान से इनकी बराबरी : दाँज करते हैं वे कल्प भर के लिए नरक मे पडते हैं : क्या जीव ईश्वर के समान है ?

व्याख्या मायावस्य जीव अभिमानी। ईस वस्य माया गुनखानी। परवस जीव स्वबस भगवता। जीव अनेक एक श्रीकता। ईश्वर के वश मे माया है और माया के वश मे जीव है। ईश्वर बेजोड है और अभिमानी जीव अनेक हैं। अत जीव को विवेक ज्ञान के अभिमान से ईश्वर की बराबरी : दाँज नही करनी चाहिए। जो ऐसा करता है वह जड़ है। अपना सामर्थ्य नही देखता। सम्पूर्ण विद्या स्नात होकर एक तृण की रचना नही कर सकता। उसकी जगत् की सृष्टि स्थिति और प्रलय करने वाले ईश्वर से कौन समता है ? ईश्वर की समता की इच्छा होती है तो यह उसके बडे भारी अकल्याण का कारण है। जगत् मे जो दुर्दशा उसकी होती है सो तो होगी ही। मरने पर उसे पूरे कल्प भर नरक भोगना पडेगा। जो ज्ञानाभिमानी मूढ ईश्वर की बराबरी करके हलाहल विषपान करेगा वह अवश्य मरेगा। और आत्मघाती होकर घोरतर नरक मे जायगा। अत ईश्वर के लिए वह दोष नही है। जीव के लिए वह महादोष है।

सुरसरि जल कृत बारुनि जाना। कबहुँ न संत करहिं तेहि पाना॥
सुरसरि मिले सो पावन जैसे। ईस अनीसहि अंतरु तैसे॥१॥

अर्थ मदिरा को गङ्गा जल से बनाई हुई जानकर भी सन्त जन कभी पान नही करते। फिर वही गङ्गा म मिलकर जैसे पवित्र हो जाती है। वैसा ही भेद ईश्वर और अनीश्वर मे है।

व्याख्या गङ्गा को मद्य मे परिणत करने का सामर्थ्य किसी को नही है। इसी भाँति ईश्वर दोषी हो नही सकता। थोडा सा गङ्गा जल लेकर यदि मद्य बनाया जाय तो वह मद्य है गङ्गा जल नही है। कोई हठी भले ही कहे कि गङ्गा जल सदा गङ्गा जल ही रहेगा पर कोई सन्त उसे ग्रहण नही करेगा। इसी भाँति जीव ईश्वर अश होने पर भी ईश्वर से पृथक् होने पर अनीश्वर हो जाता है। मायावश होकर दोषयुक्त हो जाता है। कोई विवेकाभिमानी भले ही कहे कि वह ईश्वर से व्यतिरिक्त और कुछ नही है। दोष से उसका ससर्ग हो नही सकता पर कोई सन्त इसे मानने को तैयार नही हो सकता। वही मद्य यदि गङ्गा मे छोड दिया जाय तो वह गङ्गा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



को दूषित नहीं कर सकेगा। गङ्गा में मिलकर स्वयं गङ्गा हो जायगा। वही जीव यदि मुक्त हो जाय या ईश्वर के शरण में चला जाय तो ईश्वर में लय होकर तारण तरण हो जाता है। भाव यह कि अंश में अल्पता के कारण दोष का प्रभाव पड जाता है। अंशी में महत्ता के कारण दोष का कोई प्रभाव नहीं पडता।

संभु सहज समरथ भगवाना। एहि बिबाहु सब बिधि कल्याना॥
दुराराध्य पै अहहिं महेसू। आसुतोष पुनि किएँ कलेसू॥२॥

अर्थ : शिवजी स्वभाव से ही समर्थ और भगवान् हैं। इसलिए इस विवाह में सब भाँति से कल्याण है। महादेवजी की आराधना बडी कठिन तो है पर कष्ट उठाने पर प्रसन्न भी शीघ्र ही होते हैं।

व्याख्या : औरों मे ऐश्वर्य और सामर्थ्य उपार्जित है। शिवजी में स्वभाव से ही है। अत: उनमें उपर्युक्त दोष भी गुण हैं। अकल्याण का भय न करो। इस विवाह मे सभी विधियों से कल्याण ही कल्याण है। विवाह के लिए वर की स्वीकृति आवश्यक है और महेश दुराराध्य हैं पर क्लेश करने पर अवढर दानी भी हैं। शीघ्र प्रसन्न भी होते हैं। इसलिए उपाय वतलाते हैं।

जौं तपु करै कुमारि तुम्हारी। भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी॥
जद्यपि बर अनेक जग माहीं। एहि कहँ सिव तजि दूसर नाहीं॥३॥

अर्थ : यदि तुम्हारी वेटी तप करे तो शिवजी होनहार को भी मिटा सकते हैं। यद्यपि संसार में अनेक वर हैं पर इसे शिवजी को छोड़कर दूसरा वर नहीं है।

व्याख्या : प्रारब्ध और नियति भी महेश विमुख को होती है। नियति ईश्वर की शक्ति है। उसका रूप सङ्कल्प है। ईश्वर सत्य संकल्प है पर नियति का स्वभाव है कि ईश्वरपरायण के सम्मुख कुण्ठिता हो जाती है। वह महेश अपनी नियति को भी हटाकर भक्त से साधन का सम्पादन कराके उसे फल से युक्त करता है। यही उसका बड़ा भारी स्वातन्त्र्य है।

अति सुकुमारि न तन जप जोगू। अत्यन्त सुकुमारी होने पर भी यदि तुम्हारी बेटी तप करे तो कार्य सिद्धि हो सकती है। त्रिपुरारि का सामर्थ्य कहते हैं कि वे भावी : विधि के अङ्क को जिसे देव-दनुज मुनि कोई मिटा नहीं सकता : भी मिटा सकते हैं। यथा : जिनके भाल लिखी लिपि मेरी सुख की नहीं निसानी। तिन रंकन को नाक सँवारत हौं आयो नकबानी : यह इसलिए कहा कि जिसमें यह शङ्का न उठे कि जब त्रिपुरारि मे दोष भी गुण ही जाते हैं तब दोषयुक्त वर से विवाह होनेवाली भावी कैसे टलेगी ?

उपर्युक्त दोषवाले वर भी बहुत हैं पर इसके लिए शङ्कर ही हैं। क्योंकि इसमें ऐसे-ऐसे चमत्कृत गुण हैं कि दूसरा वर इसे मिल नहीं सकता।

बरदायक प्रनतारति भंजन। कृपासिंधु सेवक मन रंजन॥
इच्छित फल बिनु सिव अवराधें। लहिअ न कोटि जोग जप साधें॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : शिवजी वरदायक हैं। प्रणत की आर्ति को हरण करनेवाले कृपा के समुद्र है। सेवक के मन को प्रसन्न करनेवाले है। बिना शिव की आराधना किये करोड़ों योग और जप के साधन से वाञ्छित फल नही मिलता।

व्याख्या : कारण कह रहे है। वरदायक, प्रणतार्तिभञ्जन, सेवक मनोरञ्जन तो शिव ही हैं और इस कन्या को रेखा पडी है : होइहि पूज्य सकल जगमाही : तो यदि इसका विवाह शिवजी से नही होता तो यह फल घटेगा कैसे ?

कन्या को रेखा पडी है कि ' एहि सेवत कछु दुर्लभ नाही। और बिना शिव की आराधना वाञ्छित की प्राप्ति नही होती तो यह सामञ्जस्य तभी बैठेगा जब इसका विवाह शिव से हो।

दो. अस कहि नारद सुमिरि हरि गिरिजहि दीन्हि असीस।
होइहि यह कल्यान अब संसय तजहु गिरीस ॥७०॥

अर्थ · ऐसा कहकर और हरि का स्मरण करके नारदजी ने पार्वतीजी को आशीर्वाद दिया कि हे गिरीश ! संशय छोडो। अब यह कल्याण होगा अर्थात् यह विवाह होगा अब सन्देह छोड दो।

व्याख्या · अपने इष्ट का स्मरण किया। यथा : मोरे हित हरि सम नहि कोऊ · दूसरा भाव हरि के स्मरण का यह कि आप पूर्व जन्म मे इसे वर दे चुके हैं : जन्म-जन्म शिवपद अनुराग के लिए मो इसे शिवजी की दासी बनाइये। अब से भाव यह कि कल्याण के लिए प्रयत्न आरम्भ हो जायगा। और सिद्धि भी होगी क्योकि प्रारब्ध अनुकूल है। शिवपद अनुराग का पूर्वजन्मार्जित वर है।

कहि अस ब्रह्मभवन मुनि गयऊ। आगिल चरित सुनहु जस भयऊ ॥
पतिहि एकान्त पाइ कह मैना। नाथ न मै समझे मुनि बैना ॥१॥

अर्थ · ऐसा कहकर मुनि तो ब्रह्मलोक चले गये। अब जो कुछ आगे हुआ उसे सुनो। पति को एकान्त मे पाकर मेना ने कहा · नाथ ! मैने मुनि की बातें नही समझी।

व्याख्या · कौतुक करके मुनिजी तो जहाँ से आये थे वहाँ चले गये। नारद समाचार सब पाये से उपक्रम करके 'कहि अस ब्रह्म भवन मुनि गयऊ से नारद प्रसङ्ग का उपसहार करते है। याज्ञवल्क्यजी भरद्वाज से कहते हैं कि इस कौतुक से क्या क्या हुआ इसे सुनो।

एकान्त मे पति को पाकर जहाँ नि सङ्कोच होकर कहा-सुना जा सके मेना ने कहा। व्याह करना तो अपने हाथ ठहरा। जोगी, जटिल, अकाममन, नग्न अमङ्गलवेप से यदि हम कन्या का व्याह न करेंगे तो आपसे आप कैसे हो जायगा ? इसलिए कहती हैं कि मुनि की बात मेरी समझ मे नही आती।

जौ घरु वरु कुलु होइ अनूपा। करिअ विवाह सुता अनुरूपा ॥
नत कन्या वरु रहउ कुआँरी। कंत उमा मम प्रानपिआरी ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ यदि घर, वर कुल अनुपम हो तो कन्या के अनुरूप विवाह करना चाहिए। नहीं तो चाहे कन्या बिना ब्याही रह जाय यह स्वीकार है हे कान्त! उमा मुझे प्राण समान प्यारी है।

व्याख्या 'घर' से ऐश्वर्य, वर से गुण सम्पत्ति और कुल से मातृमान् पितृमान् होना अभिप्रेत है। यही तीनों बात कन्यापक्ष की ओर से देखी जाती हैं। सो मेरी कन्या के लिए ऐसा घर, वर कुल ठीक करना चाहिए जिसका जोड कहीं न हो। क्योंकि मेरी कन्या अनूप है। उसके अनुरूप ब्याह होना चाहिए। धर्म शास्त्र की आज्ञा है कि चाहे बेटी कुंआरी रह जाय पर निर्गुणी वर को नहीं ब्याहना चाहिए। निर्गुणी वर से उसे पदे पदे कष्ट होगा। आप सुख देनेवाले हो। इसे समझ लो कि उमा मुझे प्राणों से प्यारी है। उसे दुखी मैं नहीं देख सकती। कन्या मुझे भार नहीं है। परमेश्वर ने सौ पुत्र दिये हैं। यही एक कन्या है इसलिए प्राणप्यारी है। जैसे सौ वैसे एक सौ एक मैं समझूँगी कि यह भी पुत्र ही है।

जौ न मिलिहि बरु गिरिजहि जोगू। गिरि जड सहज कहिहि सब लोगू॥
सोइ बिचार पति करेहु बिवाहू। जेहि न बहोरि होइ उर दाहू॥३॥

अर्थ यदि पार्वती के योग्य वर न मिलेगा तो लोग कहेंगे कि पर्वत स्वभाव से ही जड हैं। हे नाथ! विचार करके वही विवाह कीजिये। जिससे फिर पीछे कलेजे में जलन न हो।

व्याख्या अपयश भी बडा भारी होगा सभावित कहँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू। लोग कहेंगे कि अन्ततोगत्वा पत्थर ही ठहरे। ऐसी कन्या को जोगी जटिल अमङ्गलवप से ब्याह दिया। नारद जी के वचन पर विचार करके अभी से ही 'जोगी जटिल अकाममन' वर ढूंढने चले, इससे यावज्जीवन कलेजा जलेगा। पछतावा होगा कि मैंने क्या किया?

अस कहि परी चरन धरि सीसा। बोले सहित सनेह गिरीसा॥
बरु पावक प्रगटै ससि माहीं। नारद बचनु अन्यथा नाहीं॥४॥

अर्थ ऐसा कहकर चरणों में सिर रखकर गिर पडी। तब पर्वतराज ने प्रेम से कहा चाहे चन्द्रमा में अग्नि प्रकट हो। पर नारद का कथन अन्यथा हो नहीं सकता।

व्याख्या मेना जानती थी कि पति का नारद के वचन पर कितना विश्वास है। ये शीघ्र नारदजी का वचन न छोडेंगे और 'जोगी जटिल अकाममन' वालों में कौन अच्छा है इस प्रयत्न में लगेंगे। वर खोजने का जो प्रशस्त मार्ग घर, वर कुल की उत्तमता का अन्वेषण है वह बिल्कुल ही छूट जायगा। इसलिए चरणों पर गिरकर पति की कार्य पद्धति का बदलना चाहती हैं। हिमवान् ने कहा कि नारद की बात टल नहीं सकती। चाहे चाँद से आग निकल पडे। यह असम्भव भी सम्भव हो पर नारदजी के वचन का अन्यथा होना असम्भव है। सोइ बिचारि पति करेहु बिवाहू का उत्तर है। सुनकर मेना सोच में पड गई। तब कहते हैं

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो प्रिया सोचु परिहरहु सबु, सुमिरहु श्रीभगवान ।
पारवतिहि निरमयउ जेहि, सोइ करिहि कल्यान ॥७१॥

अर्थ प्रिये ! तुम सब चिन्ता छोड दो। श्रीभगवान् का स्मरण करो जिन्होने पार्वती को रचा है वे ही कल्याण करेंगे ।

व्याख्या चिन्ता कार्यविनाशिनी । सोच करने से सिद्धि नही होती चाहे कोई लाख बार सोचे । कल्याण का मार्ग श्रीभगवान् के स्मरण से खुलता है । जिसने पार्वती को रचा है वास्तविक माता पिता वही है । वही कल्याण करेगा । जीव की गति सदा ईश्वर के अधीन है । पर्वतराज को नारदजी पर अटल विश्वास है । उन्होने कह दिया है होइहि यह कल्यान अब, ससय तजहु गिरीस । अत गिरीश ने सशय छोड दिया है । गुरु के उपदेश पर अटल हैं ।

अब जौ तुमहि सुता पर नेहू । तौ अस जाइ सिखावनु देहू ॥
करै सो तपु जेहिं मिलहिं महेसू । आन उपाय न मिटहि कलेसू ॥१॥

अर्थ अब जो तुम्हे अपनी बेटी पर स्नेह हो तो उसे जाकर उपदेश दो कि ऐसा तप करे जिससे महेश्वर मिलें । दूसरे उपाय से कष्ट दूर न होगा ।

व्याख्या तुमने कहा है कि उमा मम प्रान पियारी । तो जो प्रिय हो उसका सच्चा हित देखना चाहिए । हित के साधन मे कष्ट होता ही है । उस कष्ट को उठाने के लिए अपने प्रिय को उपदेश देना ही सच्चा हित चाहना है । अत यदि सच्चा प्रेम हो तो सोच छोडो । तबीयत कडी करके सिखावन दो कि महेश्वर की प्राप्ति के लिए तप करे । पति के लिए तप करने को तुम कह सकती हो । मैं नही कह सकता । जो तुमने कहा कि करिय विवाह सुता अनरूपा । सो हो नही सकता । नारदजी ने जो उपाय बतला दिया वही यथार्थ उपाय है । दूसरे उपाय से कष्ट मिटेगा नही ।

नारद बचन सगर्भ सहेतू । सुदर सब गुननिधि बृषकेतू ॥
अस बिचारि तुम्ह तजहु असका । सबहि भाँति सकरु अकलका ॥२॥

अर्थ नारदजी का वचन साभिप्राय है । युक्तियुक्त है । वृषकेतु सुन्दर और गुणो के निधान है । ऐसा विचार करके तुम आशङ्का न करो । शिवजी सभी भाँति से निष्कलङ्क हैं ।

व्याख्या नारदजी ने जो कहा कि एहि कहँ सिव तजि दूसर नाही इसका अभिप्राय है । दोषयुक्त वर मिलने से यह सम्पूर्ण जगत् म पूज्य कैसे होगी ? इसकी सेवा से वाञ्छित फल कैसे मिलेगा ? पर यह भी ब्रह्मा का लेख है । यह भी टल नही सकता । शिवजी ही एक ऐसे हैं जिनम उपर्युक्त दोष हैं वे उनकी महिमा को और भी बढाते हैं । अत इसका विवाह शिवजी से ही होगा । उमा को तप के लिए उनका उपदेश करना भी युक्तियुक्त है । यद्यपि यह विवाह बिना यत्न के भी होकर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रहेगा। पर बीच की विघ्नबाधाओं को दूर करने के लिए तप करना अत्यन्त उत्तम होगा।

कन्या वरयते रूप माता वित्त पिता श्रुतम्। बान्धवा कुलमिच्छन्ति मिष्टान्न-मितरे जना। कन्या रूप का वरण करती है इसलिए कहते हैं कि वृषकेतु सुन्दर हैं। पिता श्रुत का वरण करता है इसलिए कहते हैं गुणनिधि वृषकेतू। माता वित्त का वरण करती है इसलिए कहते हैं कि शङ्कर हैं। दूसरो का कल्याण किया करते हैं, उन्हे वित्त का क्या घाटा है। यथा सिव की दई सम्पदा देखत श्रीसारदा सिहानी। बान्धव कुल की इच्छा करते हैं। इसलिए कहते हैं सबहि भाँति सङ्कर अकलंका। इस भाँति घर वर कुल का अनूपत्व कहा।

सुनि पति वचन हरखि मन माही। गई तुरत उठि गिरिजा पाही ॥
उमहि विलोकि नयन भरे बारी। सहित सनेह गोद बैठारी ॥३॥

अर्थ पति का वचन सुनकर मन मे हर्ष हुआ। तुरन्त उठकर गिरिजा के पास गईं। उमा को देखकर आँखो मे आँसू भरे हुए प्रेम सहित गोद म बिठा लिया।

व्याख्या पतिव्रता हैं। पति के वचन पर बडा विश्वास है। उनके कहत ही आशङ्का जाती रही हर्षित हो उठी। वहाँ से बडी मुस्तैदी से चली पर उमा को देखते ही वात्सल्य उमड आया। गोद मे बिठा लिया। कठोर भूमि पर उनका बैठना सह्य नही। यथा पलग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पद अवनि कठोरा।

बारहि बार लेति उर लाई। गदगद कठ न कछु कहि जाई ॥
जगत मातु सर्बग्य भवानी। मातु सुखद बोली मृदु बानी ॥४॥

अर्थ बार बार हृदय से लगा लेती है। गला भर आने से कुछ कहते नही बनता। भवानी तो जगत् की माता है। सर्वज्ञ है। माता को सुख देनेवाली कोमल वाणी बोली।

व्याख्या विरह का ध्यान करके बार बार हृदय से लगाती है। मन अलग करने को नही चाहता। तप के लिए कहना चाहती है पर गला भर आता है। कैसे कहे ? भवानी जगत् की माता है। उनका वात्सल्य मेना पर भी है। सर्वज्ञ है। मेना का हृदय जानती हैं और स्वय भवानी है। यथा जनम कोटि लगि रगर हमारी। बरौ सभु न त रहौं कुमारी। सोचा कि माँ को कहने मे कष्ट हो रहा है। इस समय जो मैं अपना सपना सुना दूँ तो माता को विश्वास भी बढ जाय और जो उसे कहना है सो मैं स्वय करने के लिए सन्नद्ध हो जाऊँ।

दो सुनहि मातु मै दीख अस, सपन सुनावौ तोहि।
सुदर गौर सुविप्रवर, अस उपदेसेउ मोहि ॥७२॥

अर्थ माँ मै तुमसे कहती हूँ। सुनो। मैंने ऐसा स्वप्न देखा है कि एक सुन्दर गौर वर्ण के श्रेष्ठ ब्राह्मण ने मुझे उपदेश दिया है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या स्वप्नाध्यायी के अनुसार सुन्दर और सुविप्रवर का कहा हुआ सत्य होता है। इसे स्वप्न को किसी से नहीं कहा। तुमसे कहती हूँ क्योंकि उत्तम पुरुष से ही स्वप्न सुनाने का विधान है। इससे यह मालूम होता है कि प्रातःकाल उठकर मेना पार्वतीजी के पास गई थी। हिमालय से बातचीत रात को हुई थी। यथा पतिहि एकांत पाय कह मेना।

करहि जाइ तपु सैलकुमारी। नारद कहा सो सत्य विचारी॥
मातु पितहि पुनि यह मत भावा। तपु सुखप्रद दुख दोष नसावा॥१॥

अर्थ हे पार्वती! नारदजी ने जो कहा है उसे सत्य समझकर जाकर तप करो। तेरे माता पिता को भी यही पसन्द है। तप सुख देनेवाला और दुःख का मिटानेवाला है।

व्याख्या जाइ से वन जाना कहा। घर में तप नहीं होता। शैलकुमारी से तप की योग्यता कही। नारद कहा सो सत्य विचारी से हिमवान् की उक्ति नारद वचन सगर्भ सहेतू की पुष्टि हुई। मातु पितहि पुनि यह मत भावा इस उक्ति से सुंदरगौर सुविप्रवर की सर्वज्ञता द्योतित हुई। अवगुण का परिहार तप से होगा। तप सुखप्रद है। दुःख-दोषों का नाश करता है। अतः तप के लिए भेजने में आगा पीछा न होना चाहिए।

तप बल रचै प्रपंचु बिधाता। तप बल बिस्नु सकल जग त्राता॥
तप बल संभु करहिं संघारा। तपबल सेषु धरै महि भारा॥२॥

अर्थ तप के बल से ब्रह्मा संसार को रचते हैं। तपोबल से विष्णु समस्त संसार के रक्षक हैं। तप के बल से शम्भु संहार करते हैं। और तप के बल से शेषजी पृथ्वी का भार वहन करते हैं।

व्याख्या विश्व की सृष्टि, स्थिति और संहार भौतिक बल से नहीं हो सकता। यह सब तपोबल से ही होता है। ब्रह्मपद विष्णुपद और रुद्रपद की प्राप्ति भी तपोबल से होती है। पृथ्वी का भारवहन भौतिक बल से असाध्य है। तपोबल से ही पृथ्वी शेष द्वारा धृत है।

तप अधार सब सृष्टि भवानी। करहि जाइ तपु अस जिय जानी॥
सुनत बचन बिसमित महतारी। सपन सुनायउ गिरिहि हँकारी॥३॥

अर्थ हे भवानी! सारी सृष्टि तप के ही सहारे है ऐसा जी से जानकर तप करो। यह बात सुनकर माता को बड़ा आश्चर्य हुआ। हिमवान् को बुलाकर सपना सुनाया।

व्याख्या जब सब सृष्टि ही तप के आधार पर है तब भवानी पद की प्राप्ति भी बिना तप कैसे सम्भव है इसलिए तप करो। करहि जाइ तप सैलकुमारी से उपक्रम करके करहि जाइ तप अस जिय जानी से उपसंहार दिखलाया।

जो बात हिमवान् से एकान्त में हुई उसकी सूचना स्वप्न दिखानेवाले देव ने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दी। यथा 'मातु पितहि पुनि यह मत भावा। इसलिए विस्मित हुईं। बाहर से स्वप्न सुनने के लिए हिमवान् बुलाये गये।

मातु पितहि बहु विधि समुझाई। चली उमा तप हित हरखाई॥
प्रिय परिवार पिता अरु माता। भए बिकल मुख आव न बाता॥४॥

अर्थ माता पिता को बहुत भाँति से समझाकर उमा तप के लिए सानन्द चली। प्रिय परिवारवाले माता पिता सब विकल हो गए। मुख से बात न निकली।

व्याख्या माता पिता को समझाना। यथा

मेरे हित नहि नेकहू, सोच करै तू माय।
मोहि योग नीको लगै भोग न भूलि सोहाय॥
शिशुपन ते तापसन मे मेरी प्रीति विशेखि।
जे तप मे बाधा करैं, तिन्है सकौ नहि देखि॥
षड्रिपुयुत प्रासाद ते, वन मे बडो अनन्द।
जहाँ जाइ नर भजत हैं, ब्रह्म सच्चिदानन्द॥
भयो, होइहै, होत है, तपते ही कल्यान।
तब तप साधन मे कहा मनको करत मलान॥
शैल छाडि कहुँ जात नहि सखी हमारे सग।
अति उछाह तप हेतु मोहि, व्यर्थ करौ जनि भग॥
तुम्हरे दु ख कीन्हे सबल, तपबल जाइ नसाय।
सो साधन सब सिद्धिप्रद जो पितु मातु सोहाय॥
जानि बूझि कल्यान मग, तबहू विषम विषाद।
तात कबहुँ नहि कीजिये यह प्रियप्रेम प्रमाद॥

उमा ने इस भाँति समझाया। फिर भी वात्सल्य के कारण कुटुम्बीजन तथा माता पिता अत्यन्त विकल हुए। चलने मे हर्ष कार्यसिद्धि द्योतक है।

दो० बेदसिरा मुनि आइ तब, सबहि कहा समुझाइ।
पारबती महिमा सुनत, रहे प्रबोधहि पाइ॥७३॥

अर्थ वेदशिरा मुनि ने तब आकर सबको समझाकर कहा। पार्वतीजी की महिमा सुनकर सन्तुष्ट होकर रह गये।

व्याख्या पार्वतीजी को पुत्री भाव से देखते रहे और उसी अज्ञान से दु खी हो रहे थे। परहितैकव्रत मुनि ने उनका यथार्थ माहात्म्य समझाकर सबका अज्ञान दूर किया। मुनिजी ने कहा

क तनया तुम्हारी तुहिनाचल सँवारै विश्व,
धारै औ सँहारै, याकी महिमा कही ना जाय।
पूजि पद कज मजु याके सुर वृद जग,
करत अनन्द विधि हरि सुरपद पाय॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

लीला तनु धारिनि सँघारिनि असुर सघ,
सतसुख कारिनी विहारिनी सुछन्द माय।
करुना अपार गुनगन को न पारावार,
भारभूमि हरनि धरनि प्रकटी है आय॥
तनया तिहारी नही जननी जगत की सो,
कौन काज अगम सुगम नहिं ताको जौन।
योगी मुनि वृन्दन को दुर्लभ दरस जासु,
सकति अनादि सोई प्रकटी तिहारे भौन॥
जाते त्रयलोक की भलाई भूरि होनहार,
अव जगदव विजय आनन्द करैगी तौन।
व्यर्थ ही विपाद तव ताके हित मोहवस,
मन मे विचारो नेक तोसो वड भागी कौन॥

तव सबको ढाढस वँधा। घर रह गये। नही तो साथ चलने को तैयार थे। वेदशिराजी भृगुवशी थे। भृगु के विधाता, विधाता के प्राण और प्राण के पुत्र वेदशिरा थे।

उरधरि उमा प्रानपति चरना। जाइ बिपिन लागी तप करना॥
अति सुकुमार न तनु तप जोगू। पति पद सुमिरि तजेउ सब भोगू॥१॥

अर्थ . प्राण पति के चरणो को हृदय मे धारण करके उमा वन मे जाकर तप करने लगी। अत्यन्त सुकुमार शरीर तप के योग्य नही था। फिर भी पति के चरणो का स्मरण करके सब भोगो का त्याग किया।

व्याख्या . उपजेउ सिव पद कमल सनेहू पहिले कह आये है। अब वन में जाकर उन्ही चरणो को हृदय मे धारणकर तप करने लगी। प्राणपति कहकर दुष्कर तप की सुकरता दिखलाई। प्राणपति के लिए दुष्कर कुछ भी नही है। इसी से एकाग्रता भी सूचित की। नारदजी ने कहा था कि आसुतोप पुनि किये कलेसू। अत सब भोगो का त्याग किया। प्राणपति के स्मरण मे जो सुख है उसके सामने जितने भोग है सब तुच्छ है। अत अति सुकुमारी होने पर भी तप के लिए सन्नद्ध हो गई। यथा जननि जनक उपदेस महेसहि सेवहि। अति उदार अनुराग भगति मन मेवहि। पा म।

नित नव चरन उपज अनुरागा। बिसरी देह तपहि मनु लागा॥
सवत सहस मूल फल खाए। सागु खाइ सत वरप गँवाए॥२॥

अर्थ चरणो मे नित्य नया प्रेम उत्पन्न होने लगा। देह की सारी सुधि विसर गई और तप म ही मन लग गया। एक हजार वर्ष तक उन्होंने मूल फल खाये और सौ वर्ष साग पात खाकर विताये।

व्याख्या · प्राणपति के चरणो को हृदय मे धारण करने से उसमे नित्य नया अनुराग उत्पन्न होने लगा। अब तप म ही मन ने सुख माना। देहाध्यास जाता रहा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पहिले अन्न खाती थी फिर अन्न छोड दिया। एक सहस्र वर्ष तक फलमूलाहार किया। क्रम से तप की तीव्रता बढती गई। फल मूल भी छोडा। शाक खाने लगी। सौ वर्ष तक शाकाहार चला।

कछु दिन भोजनु बारि बतासा। किए कठिन कछु दिन उपवासा॥
बेलपाती[1] महि परै सुखाई। तीनि सहस सवत सोइ खाई॥३॥

अर्थ कुछ दिनों तक जल और वायु भक्षण करके रही। फिर कुछ दिनों तक कठिन उपवास किया। बेल की पत्ती जो सूखकर पृथ्वी पर गिर जाती हैं उसे तीन हजार वर्ष तक खाया।

व्याख्या यद्यपि बारि और वायुभक्षण का समय नहीं दिया फिर भी पूर्वक्रम से बोध होता है कि दस वर्ष तक बारि और वायु का आहार किया। कोई कोई बारि बतासा का अर्थ जल का बबूला करते है। यथा जैसे बारि को बतासा तैसे तन को तमासा है। इसी भाँति एक वर्ष तक कठिन उपवास किया। कठिन उपवास म बारि बतासा का भी ग्रहण नही है। ग्यारह सौ वर्ष की एक रुद्री हुई। फिर ग्यारह वर्ष की दूसरी रुद्री हुई।

इतने पर भी कार्य सिद्धि नही हुई। अत फिर से नया तप आरम्भ हुआ। तीन हजार वर्ष तक सूखी बेल की पत्तियाँ खाईं।

पुनि परिहरे सुखानेउ परना। उमहि नामु तब भयउ अपरना॥
देखि उमहि तप खीन सरीरा। ब्रह्मगिरा भै गगन गभीरा॥४॥

अर्थ फिर सूखे पत्ते भी छोड दिये। तब उमा का नाम अपर्णा हुआ। तप से उमा का शरीर क्षीण देखकर आकाश म गम्भीर ब्रह्म वाणी हुई।

व्याख्या सूखी पत्तियों का खाना भी छोड दिया। समय नही देते। अत पूर्वोक्त रीति से मालूम पडता है कि तीन सौ वर्ष तक सूखी पत्ती भी नही खायी। तब उमा का नाम 'अपर्णा' हुआ। पर्ण कहते है पत्ती को। जो पत्ती भी छोड दे उसे अपर्णा कहते है। नाम अपरना भयउ परन जब परिहरे। नवल धवल कल कीरति सकल भुवन भरे। अत यह दूसरा तप ३३०० वर्ष का हुआ। अर्थात् ग्यारह ग्यारह सौ वर्ष की तीन रुद्रियाँ हुईं। कुल पाँच हुईं। शरीर अत्यन्त क्षीण हो गया। प्राणावशेष रह गया। तब ब्रह्मवाणी हुई। रुद्राणी पद देना है अत इसके देनेवाले ब्रह्म ही है ब्रह्मा नही। यथा विधिहि विधिता, हरिहि हरिता, हरहि हरता जो दई। सो जानकीपति मधुर मूरति मोदमय मगल मई।

दो भयउ मनोरथ सुफल तव, सुनु गिरिराजकुमारि।
परिहरु दुसह कलेस सब, अब मिलिहहि त्रिपुरारि॥७४॥

अर्थ हे गिरिराज की पुत्री! तेरा मनोरथ सफल हुआ। तू अब सब दु सह क्लेशों को छोड दे। अब तुझे त्रिपुरारि मिलेंगे।

१ पो व ' इस सूत्र से बलपाती का रूप 'बेलपाती' हो गया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या ब्रह्मवाणी ने पहिले मनोरथ की प्रशसा की कि तेरा मनोरथ कल्प-वृक्ष है। अब उसमे फल लग गया। क्षीण शरीर होने से उसमे फूल लगा था। अब इस वाणी द्वारा फल लगा। परिहरु दुसह कलेस सब कहने से घोर तप करना रोकते हैं। त्रिपुरारि हैं · निश्चय से नही हटते। उन्होने त्याग किया है · ग्रहण कैसे करेंगे? यथा मिलन कठिन मन भा सदेहू। इसपर कहते हैं अब मिलिहहिं त्रिपुरारि। यही मनोरथ का सफल होना है। ब्रह्मवाणी इतनी ही सूत्र रूप मे हुई।

अस तपु काहु न कीन्ह भवानी। भए अनेक धीर मुनि ग्यानी ॥
अब उर धरहु ब्रह्म बर बानी। सत्य सदा सतत सुचि जानी ॥१॥

अर्थ हे भवानी! अनेक धीर, मुनि और ज्ञानी हुए पर ऐसा तप किसी ने नही किया। अब तुम ब्रह्म की श्रेष्ठ वाणी को सदा सत्य और निरन्तर पवित्र समझकर अपने हृदय मे रखो।

व्याख्या ब्रह्मवाणी पर ब्रह्माजी की टीका हो रही है। कष्ट सहन, मनन और ज्ञान तीनो प्रकार का तप तुमने किया। ऐसा तप धीर, मुनि और ज्ञानी किसी ने नही किया। धैर्य। यथा देखि उमहिं तपखीन सरीरा। मनन। यथा नित नव चरन उपज अनुरागा। ज्ञान। यथा मातु पितहि बहु विधि समुझाई। यह उमा की स्तुति है। ब्रह्मदेव ने कहा तप के लिए हठ न करो। सन्देह छोडो। ब्रह्मवाणी हो गई अब मिलिहहिं त्रिपुरारि। सो सदा सत्य है वियोग भी नही होगा। तप छोडने को कहते हैं। इसमे अशुचि की आशङ्का न करो। ब्रह्मवाणी सन्तत शुचि है।

आवें पिता बोलावन जबही। हठ परिहरि घर जाएहु तबही ॥
मिलहि तुम्हहि जब सप्त रिषीसा। जानेहु तब प्रमान बागीसा ॥२॥

अर्थ जब तुम्हारे पिता बुलाने आये तब हठ छोडकर घर चली जाना। जब तुमको सप्तर्षि मिलें तब वाणी का प्रमाण जानना कि ब्रह्मगिरा कार्य मे परिणत हो रही है।

व्याख्या पहिले पिता तुम्हे बुलाने आये थे पर तुमने हठपूर्वक जाने से इनकार किया। अब ऐसा न करना। पिता के बुलाने पर घर चली जाना। तुमसे मिलने सप्तऋषि आवेगे तब समझ लेना कि अब कार्य सिद्धि होना ही चाहती है। पिता के आने तक तप की अवधि है। अभी तो दुसह क्लेश मात्र त्याग के लिए आदेश है।

वागीशा वाणी या सरस्वती को कहते हैं। यथा वागीशा यस्य वदने लक्ष्मी-र्यस्य च वक्षसि। वाणी का प्रमाण कार्य मे परिणत होना है। यथा जौं फुर होय तो नाथ निज कीजै बचन प्रमान। अर्थात् सप्तर्षियो के आने पर वाणी कार्य मे परिणत होगी। कश्यपोऽत्रिर्वसिष्ठश्च विश्वामित्रोऽथगौतम। जमदग्निर्भरद्वाज एते सप्तर्षयस्तथा। वा प्र।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुनत गिरा बिधि गगन बखानी । पुलक गात गिरिजा हरषानी ॥
उमा चरित सुंदर मैं गावा । सुनहु संभु कर चरित सुहावा ॥३॥

अर्थ : आकाश से कही हुई ब्रह्माजी की वाणी सुनते ही उमा के रोम खड़े हो गये। वे बहुत प्रसन्न हुईं। याज्ञवल्क्य जी भरद्वाज मुनि से कहते हैं कि मैंने उमा का सुन्दर चरित्र वर्णन किया। अब शम्भु का सुहावना चरित सुनो।

व्याख्या : ब्रह्मदेव की टीका का उपसंहार करते हैं। आकाश में प्रत्यक्ष होकर ब्रह्मदेव बोल रहे थे। ब्रह्मदेव की वाणी से हर्ष हुआ। ब्रह्मवाणी में बात स्पष्ट नहीं हुई थी। अब हमें क्या करना चाहिए ? त्रिपुरारि कब मिलेंगे ? इत्यादि बात ब्रह्माजी की वाणी से स्पष्ट हुई। अतएव हर्ष हुआ। इति उमाचरितम्। अथ शम्भुचरितम्। सती शरीर से जड़ता, दक्ष की महाजड़ता, रुद्र के कोप से त्रैलोक्य को कम्प, हिमालय में सती का जन्म। ये सब जाड़े के लक्षण हैं। क्योंकि जड़ता को ही जाड़ा माना गया है। यथा : जड़ता जाड़ बिषम उर लागा। अतः यह हिम[1] ऋतु का प्रथम मास अगहन है। रोमाञ्च से समाप्त हो रहा है। यथा : पुलक गात गिरिजा हरखानी। शम्भु चरित्र पौषमास है। सो आरम्भ हो रहा है। दोनों मिलकर हिमऋतु हुआ। यथा : हिम हिमसैलसुता सिव ब्याहू। अट्ठाइस दोहा उमा[2] चरित और अट्ठाइस दोहा शम्भुचरित है।

## : ख : शम्भुचरित

जब तें सती जाइ तनु त्यागा । तब तें सिव मन भयउ बिरागा ॥
जपहिं सदा रघुनायक नामा । जहँ तहँ सुनहिं राम गुन ग्रामा ॥४॥

अर्थ : जब से सती ने जाकर शरीर छोड़ा तब से शिवजी के मन में विराग हो गया। सदा रामनाम का जप करते हैं। जहाँ तहाँ रामजी का गुण ग्राम सुनते हैं।

व्याख्या : सदा विरागरूप होने पर भी गृहस्थ को लोक संग्रह के लिए स्त्री रक्षा कर्त्तव्यरूप से प्राप्त रहती ही है। घर पर रहना ही पड़ता है। यदि बाहर जाय तो स्त्री को साथ रखना पड़ता है। रागाभास को स्वीकार करना पड़ता है। अब वह भी नहीं रह गया। अतः कहते हैं : तब तें सिव मन भयउ बिरागा। पहिले सती से बातचीत करनी ही पड़ती थी। उतनी देर तक जप बन्द हो ही जाता था। अब सदा जप होता है। यथा : जपहिं सदा रघुनायक नामा। जहँ तहँ सुनहिं राम गुनग्रामा। तथा : तब कछु काल मराल तन धरि तहँ कीन्ह निवास। सादर सुनि रघुपति चरित पुनि आयो कैलास।

---

१ यथा : हिम हिमसैलसुता सिव ब्याहू। श्रीगोस्वामी जी ने उमा महेश्वर के विवाह की उपमा हिमऋतु से दी है।

२ श्रीरामचरितमानस में भगवान् के चरित के साथ साथ पाँच महाभागवत चरित हैं। १ उमा चरित २. शम्भु चरित ३ भरत चरित ४ हनुमान चरित और ५ भुसुण्डि चरित।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. चिदानंद सुखधाम सिव, विगत मोह मद काम।
विचरहिं महि धरि हृदयँ हरि, सकल लोक अभिराम ॥७५॥

अर्थ : चिदानन्द, सुख के धाम, मोह मद और काम से रहित, सारे लोक को आनन्द देनेवाले शिवजी हरि को हृदय में धरकर पृथ्वी पर विचरने लगे।

व्याख्या : चिदानन्द से स्वरूप कहा। अखिल लोक विश्राम दायक कहकर सर्वाश्रय कहा। विगत मोह मद कहकर ईश्वर कहा। ऐसे प्रभु महादेव जी पृथ्वी पर विचरण करते है। यथा : सुंदर गिरि बन सरित तडागा। कौतुक देखत फिरौं बिरागा। ससार से विराग है पर हरि से राग है। उन्ही को हृदय मे धारण करके पृथ्वी पर विचर रहे है। सकल लोक अभिराम : पद हरि का विशेषण भी हो सकता है।

कतहुँ मुनिन्ह उपदेसहिं ग्याना। कतहुँ राम गुन करहिं बखाना॥
जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत बिरह दुख दुखित सुजाना॥१॥

अर्थ : कही मुनियो को ज्ञान का उपदेश देते और कही रामजी के गुणो का वर्णन करते थे। यद्यपि अकाम है फिर भी सुजान है। भगवान् है, भक्त के विरह के दुःख से दुःखी हुए है।

व्याख्या : शिवजी ज्ञान और भक्ति दोनो के आचार्य है। निर्गुण और सगुण दोनो मत के उपदेष्टा हैं। जहाँ जैसा पात्र देखते है वहाँ वैसा उपदेश करते है। विचरहिं महि से शारीरक तप कहा। धरि हृदय हरि से मानस तप कहा। अब वाङ्मय तप कहते है कि योग्य पात्रो को यथोचित उपदेश घूम घूमकर दे रहे है। फिर भी दु खी हैं स्त्री के विरह से नही क्योकि अकाम है। कामी स्त्री के विरह से दु खी होता है। भगवान् है अतः भक्त के विरह से दुःखी है। भगवान् का बड़ा प्यार भक्त पर होता है। यथा : यद्यपि सम नहिं राग न रोपू। गहहिं न पाप पुन्य गुन दोपू। तदपि करहिं सम विपम विहारा। भक्त अभक्त हृदय अनुसारा। सुजान है, जन के जी की जाननेवाले है। अत· दु खी हैं।

एहि बिधि गयउ कालु बहु बीती। नित नै होइ राम पद प्रीती॥
नेमु प्रेमु संकर कर देखा। अबिचल हृदयँ भगति कै रेखा॥२॥

अर्थ : इस प्रकार बहुत समय बीत गया। रामजी के चरणो मे नित्य नई प्रीति होने लगी। जब शिवजी के नेम और प्रेम को देखा कि भक्ति की रेखा सस्कार हृदय मे अविचल है।

व्याख्या · इस विधि से कई मन्वन्तर बीत गये। प्रीति तो वही है, जिसमे पुरानापन आने न पावे। रामजी ने शङ्कर का नेम देखा। यथा : जपहिं सदा रघुनायक नामा। इत्यादि। प्रेम देखा। यथा विचरहिं महि धरि हृदय हरि। हृदय मे ऐसी भक्ति की रेखा · छाप देखी जो भक्त विरह दु ख दु खी होने पर भी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चलायमान नहीं होते बल्कि नित्य नई होती जाती है। इधर बहुत काल से शिवजी का व्रत चल रहा है। उधर ४४११ वर्ष से उमा का तप चल रहा है।

प्रगटे रामु कृतग्य कृपाला। रूप सील निधि तेज बिसाला॥
बहु प्रकार संकरहि सराहा। तुम्ह बिनु अस ब्रतु को निरबाहा॥३॥

अर्थ : तब कृतज्ञ कृपालु, रूपशील के भण्डार और महातेजस्वी रामजी प्रकट हुए। बहुत प्रकार से शिवजी की बड़ाई की कि तुम्हारे बिना ऐसा व्रत कौन निबाह सकता है।

व्याख्या : अविचल भक्ति देखकर प्रकटे : इसलिए कृतज्ञ कहा। भक्त विरह दु:ख दु:खी देखकर प्रकटे : इसलिए कृपाल कहा। जैसा रूप हृदय में धारण करके विचर रहे थे वही रूप अक्षिगोचर हुआ। शङ्कर भगवान् रूपशीलनिधि महातेजस्वी रूप को हृदय में धारण करते हैं। अतः यहाँ वैसा ही वर्णन है।

इधर : नेम प्रेम संकर कर देखा : तब प्रकट हुए। उधर : देखि उमहि तप खीन सरीरा : तब : ब्रह्म गिरा भइ गगन गभीरा। इधर व्रत की प्रशंसा हो रही है कि : तुम बिनु अस व्रत को निर्बाहा : उधर उमा के तप की प्रशंसा हो रही है : अस तप काहु न कीन्ह भवानी। भये अनेक धीर मुनि ज्ञानी। देवताओं ने शिवजी के प्रण की प्रशंसा की। रामजी उस प्रतिज्ञा के निर्वाह की प्रशंसा करते हैं।

बहुबिधि राम सिवहि समुझावा। पारबती कर जन्मु सुनावा॥
अति पुनीत गिरिजा कै करनी। बिस्तर सहित कृपानिधि बरनी॥४॥

अर्थ : रामजी ने बहुत प्रकार से शिवजी को समझाया और पार्वती का जन्म सुनाया। कृपानिधि ने पार्वती की अति पवित्र करनी का विस्तार के सहित वर्णन किया।

व्याख्या : रामजी ने समझाया दूसरा जगद्गुरु को कौन समझाये। यथा :

क. जगत कुटुम्ब के कुटुम्बी आप ही हैं एक,
आपके सहारे सारे जीव बसुधा के हैं।
माय बिनु हाय को सुनैया कौन या जग मे,
ताके बिनु तातहू के पौरुष बिथा के हैं॥
पाय माय बिरव हरखाय सो उपाय कीजे,
तापित हृदय आज सकल प्रजा के हैं।
आप मन मोरै, तौ निहोरैं केहि जाय,
माय बाप के भरोसे शिशु जीवत जहाँ के हैं॥१॥

इत्यादि। तब हिमालय के घर पार्वती का जन्म कहा। कृपानिधि हैं : संक्षेप से कहने में सन्तोष नहीं। अत: विस्तार के सहित गिरिजा की अति पुनीत करनी का वर्णन किया। सती परम पुनीत थी पर गिरिजा अति पुनीत हैं। इस भाँति दिव्य जन्म और दिव्य कर्म कहा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो अब बिनती मम सुनहु सिव, जौ मो पर निज नेहु ।
जाइ बिबाहहु सैलजहि, यह मोहि माँगे देहु ॥७६॥

अर्थ हे शिव ! अब मेरी विनती सुनो । यदि तुम्हारा मुझ पर स्नेह हो तो मुझे यही माँगन दो कि जाकर पार्वती के साथ ब्याह कर लो ।

व्याख्या भगवान् आविर्भूत होकर वर देते हैं पर यहाँ स्वय माँग रहे हैं । कहते हैं कि सबकी विनती तुम सुनते हो । मेरी न सुनने का कोई कारण नही । अथवा मैं विनती सुनता हूँ करता नही । सो आज तुमसे करता हूँ इसलिए सुनो । यदि मुझ पर स्नेह हो तो स्वीकार करो । न हो तो मत स्वीकार करो । मै मागता हूँ । मुझे दो । भाव यह है कि भगवान् उमा से वाक्यवद्ध हो चुके है कि अब मिलिहहि त्रिपुरारि । अत माँगते है जाइ बिबाहहु सैलजहि ।

कह सिव जदपि उचित अस नाही । नाथ बचन पुनि मेटि न जाही ॥
सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा । परम धरमु यह नाथ हमारा ॥१॥

अर्थ शिवजी ने कहा यद्यपि ऐसा उचित नही है तो भी नाथ की बात टाली नही जा सक्ती । आपकी आज्ञा शिरोधार्य करके मानूँ हे नाथ ! यही मेरा परम धर्म है ।

व्याख्या यद्यपि स्वय रामजी ने समझाया फिर भी शिवजी कहते है कि यह उचित नही है । यदि आपकी ओर से सम्मति ही दी गई होती तो मैं अस्वीकार करता । क्याकि बचन अन्यथा होइ न मोरा । परन्तु यहाँ सम्मति के साथ साथ आज्ञा भी दी जा रही है । उसे हटाने का मुझ सामर्थ्य नही । अपने प्रण पर स्थिर रहना धर्म है पर स्वामी की आज्ञा मानना परम धर्म है । धर्म के लिए परम धर्म नही मिटाया जा सक्ता । इसलिए मै शिरोधार्य करता हूँ । दूसरे का वचन मेटा जा सकता है पर प्रभु आज्ञा अपेल श्रुति गाई । अत आपकी आज्ञा प्रमाण है ।

मातु पिता गुर प्रभु कै बानी । बिनहि बिचार करिअ सुभ जानी ॥
तुम्ह सब भाँति परम हितकारी । अग्या सिर पर नाथ तुम्हारी ॥२॥

अर्थ माता पिता, गुरु और स्वामी की बात को बिना किसी बिचार के शुभ जानकर करना चाहिए । आप ता सब तरह से मेरे परम हितकारी है । हे नाथ ! आपकी आज्ञा मेरे सिर पर है ।

व्याख्या गुरु पितु मातु स्वामिहित बानी । सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी । उचित कि अनुचित किये बिचारू । धरम जाइ सिर पातक भारू । गुर पितु मातु स्वामि सिख पालें । चलेहु कुमग पग परहि न खालें । इनम से एक एक की वाणी प्रत्याख्यान योग्य नही है । आप ता माता पिता, गुरु, प्रभु हित सब कुछ है । आप यह मोहि मागे देहु क्या कहते हैं । आपकी आज्ञा मेरे सिर माथे पर है ।

प्रभु तोषेउ सुनि संकर बचना । भगति बिबेक धर्म जुत रचना ॥
कह प्रभु हर तुम्हार पन रहेऊ । अब उर राखेहु जो हम कहेऊ ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ शिवजी की भक्ति, विवेक और धर्म युक्त वचनरचना सुनकर प्रभु सतुष्ट हुए। प्रभु ने कहा हे हर! तुम्हारा प्रण रह गया। अब मैंने जो कहा है उसे हृदय म रखना।

व्याख्या शकरजी के वचन की रचना भक्ति, विवेक और धर्मयुक्त थी। इससे प्रभु सन्तुष्ट हुए। प्रभु की सन्तुष्टि के लिए तीन उपाय हैं भक्ति, विवेक और धम। शङ्करजी के वाक्य मे तीनो का सँभार था।

धर्म, यथा सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परमधर्म यह नाथ हमारा॥
विवेक, यथा मातु पिता गुरु प्रभु कै बानी। बिनहिं बिचार करिअ सुभ जानी॥
भक्ति, यथा तुम सब भाँति परम हितकारी। आज्ञा सिर पर नाथ तुम्हारी॥

शिवजी ने जो कहा था कि उचित अस नाही। उसका उत्तर देते हुए रामजी कहते हैं तुम्हार पन रहेऊ। तुम्हारा यही प्रण था कि एहि तन सतिहि भेंट अब नाही। सो वह तन भस्म हो गया। अब तो पार्वती तन है। अब उर राखेउ जो हम कहेऊ। भाव यह है कि विवाह के लिए तुम्हे कुछ उद्यम नही करना होगा। कारण कार्य आप ही उपस्थित होगा। तुम्हारा एतावन्मात्र कर्त्तव्य है कि मेरे कहने का ध्यान रखना। अवसर आने पर उसे कार्य म परिणत करना।

अतरधान भए अस भाषी। सकर सोइ मूरति उर राखी॥
तबहिं सप्तरिषि सिव पहिं आए। बोले प्रभु अति बचन सुहाए॥४॥

अर्थ ऐसा कहकर रामजी अन्तर्धान हो गये। शिवजी ने वही मूर्ति हृदय म रख ली। उसी समय सप्तर्षि शिवजी के पास आये। प्रभु ने उनसे अति सुन्दर वचन कहे।

व्याख्या रामजी के प्रकरण का प्रकटे से उपक्रम और अन्तर्धान भए से उपसहार किया। शिवजी ने वही रूपशीलनिधि तेज बिसाला मूर्ति को हृदय म रख लिया। क्षण भर का वियोग असह्य है। या तो इन आँखो के सामने रहे या मानसिक दृष्टि के सामने रहें। तभी सप्तर्षियो ने आकर प्रणाम किया। शिवजी ने ऐसा वचन कहा जो सबका मनभाया हो। इसलिए उस वचन को 'अति सुहाए' कहा।

दो पारबती पहिं जाइ तुम्ह, प्रेम परीछा लेहु।
गिरिहि प्रेरि पठएहु भवन, दूरि करेहु सदेहु॥७७॥

अर्थ तुम पार्वती के पास जाकर प्रेम की परीक्षा लो। हिमाचल को प्रेरणा करके उनके घर भिजवाओ और उनके सन्देह को दूर कर देना।

व्याख्या प्रभु लोग जन की प्रीति की परीक्षा करते है। यथा सोइ प्रभु जनकर प्रीति परिच्छा। इससे प्रभु का अज्ञान नही समझना। उसका उद्देश्य नीति रक्षा है। यथा यद्यपि प्रभु जानत सब बाता। राजनीति राखत सुरत्राता। यदि कोई प्रेम के लिए तपस्या करता हो तो उसके प्रेम की परीक्षा लनी नीति है। परीक्षोत्तीर्ण होने का यश उसे मिलेगा। परीक्षक का मान हुआ कि वे अमुक की परीक्षा लने के योग्य समझ गये। यहाँ कितना बडा मान सप्तर्षि को मिला कि वे पार्वतीजी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व प्रेम व परीक्षक नियत हुए। सती शरीर से स्वामी की परीक्षा लेना उचित समझा था अत स्वीकार के पहिले शिवजी ने इनकी भी परीक्षा लेना उचित समझा। परीक्षा म उत्तीर्ण होना निश्चत ही है। अत कहते हैं गिरिहि पेरि पठयेउ भवन। जिसम ब्रह्मदेव की वाणी का सामञ्जस्य बैठ जाय और पार्वती को अपने इष्ट से त्रिपुरारि से मिलने की दृढ आशा हो जाय। हिमालय और मेना के सन्देह को दूर करना इम कथन का यह भाव है कि वे भी जान लें कि शिवजी को विवाह स्वीकार है। शिवजी के ये वचन सबके लिए अति मनभावने थे इसलिए अतिसुहाए कहा।

रिषिन्ह गौरि देखि तहँ कैसी। मूरतिमत तपस्या जैसी॥
बोले मुनि सुनु सैलकुमारी। करहु कवन कारन तपु भारी ॥१॥

अर्थ ऋषियो ने वहाँ पार्वती को कैसा देखा। मानो स्वय तपस्या मूर्ति धारण किये हुए हो। मुनि बोले हे शैलकुमारी। किसलिए भारी तप कर रही हो?

व्याख्या सप्त ऋषि है। अपने मन्वन्तर के अधिकारी है। बडे भारी तपस्वी है। उन्हे गौरी स्वय तपस्या की अधिष्ठात्री देवी सी प्रतीत हुई। तप के तेज का विस्तार हो रहा है। इसलिए गौरी नाम दिया। दु सह क्लेश छोड दिया है क्योकि ब्रह्मवाणी की ऐसी आज्ञा हो चुकी है, फिर भी तप चल रहा है।

परीक्षा लने म ही सती से चूक हुई थी। अत ग्रन्थकार इनके परीक्षा लेने की विधि बतलाते है। सप्तर्षियो ने अपना स्वरूप नही पलटा। केवल मन्वन्तर के सप्त-ऋषि होने के नाते पूछते हैं कि किस कारण भारी तप करती हो? जिसम उत्तर पाने पर शङ्कर भगवान् मे वरोचित गुणा का अभाव दिखलावें और विष्णु मे सभी वराचित गुणो की स्थिति निरूपण करें। इतने से ही परीक्षा हो जावेगी कि शुद्ध प्रेम है कि उसमे कुछ स्वार्थ भी है।

केहि अवराधहु का तुम्ह चहहू। हम सन सत्य मरमु किन कहहू॥
कहत वचन मनु अति सकुचाई। हँसिहहु सुनि हमारि जडताई ॥२॥

अर्थ तुम किसकी आराधना करती हो और क्या चाहती हो? तुम हमसे अपना सच्चा भेद क्यो नही कहती? गौरी बोली बात कहते मन बहुत सकुचाता है। हमारी मूर्खता सुनकर हँसोगे।

व्याख्या तीन बात क्रम से पूछी। १ भारी तप का कारण क्या? २ आराध्यदेव कौन है? ३ ईप्सित क्या है? चुप देखकर कहते हैं कि मन्वन्तर के हम सप्तर्षि हैं। तपस्वियो की देखभाल हमारे सुपुर्द है। हम वर भी दे सकते है। अत हमसे मर्म कहना चाहिए।

ऋषियो का अभिप्राय समझते हुए गौरी बोली। हम सन सत्य मरम किन कहहू पहिले इस तीसरे प्रश्न का उत्तर देती है कि मनु अति सकुचाई अपने विवाह की बात कहने मे सङ्कोच और उस पर हँसने के भय से अति सङ्कोच। जडताई अर्थात् स्नेह जाड्य है। यथा मो सनेह जडता बस कहहू। मैं स्नेह स जड हूँ। मुझम समझने की सामर्थ्य नही है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मनुहठ परा न सुनै सिखावा। चहत वारि पर भीति उठावा ॥
नारद कहा सत्य सोइ जाना। बिनु पखन्ह हम चहहि उडाना ॥३॥

अर्थ मन हठ कर बैठा है। सिखावन सुनता ही नही। पानी के ऊपर दीवार खडी करना चाहता है। नारदजी ने जो कहा है उसे हमने सत्य जाना है। मैं बिना पख के उडना चाहती हूँ।

व्याख्या मन मेरा हठी है। मेरी ही सीख नही सुनता, दूसरे की क्या सुनेगा। भाव यह कि यदि आप लोग मेरे सङ्कल्प मे कुछ सुधार चाहते हो, कुछ शिक्षा देना चाहते हो तो न देने की कृपा करें। तृतीय प्रश्न का उत्तर समाप्त हुआ। दीवार को दृढ आधार की आवश्यकता होती है। जल एक ईंटे का भार नही सह सकता। उस पर दीवार नही उठ सकती। यह मै स्वयं जानती हूँ। इस भाँति गृहिणी दीवार है। उसे पक्के गृहस्थ की आवश्यकता होती है। उदासीन को मित्रता बोझ है। उसे वह नही सह सकता। स्त्री को गले वाँधे फिरना उससे कथञ्चित् सम्भव नही। यह सब जानती हुई भी मै असम्भव को सम्भव किया चाहती हूँ। यह प्रथम प्रश्न करहु कवन कारन तप भारी। का उत्तर है।

अब दूसरे प्रश्न केहि अवराधहु का उत्तर देती है। आराधना मे गुरु के वचन पर विश्वास चाहिए। अत कहती है नारद कहा सत्य सोइ जाना। आराधन के साधन विरति और विवेक है। जैसे उडने के साधन दोनो पख होते हैं। यथा श्रुति सम्मत हरि भगति पथ सजुत विरति विवेक। मुझमे दोनो नही न विरति है, न विवेक है। आराधना करना चाहती हूँ। अथवा कार्यसिद्धि के दो साधन हैं। १ दैव २ पुरुषार्थ। सो दैव प्रतिकूल है। यथा जस वर मै वरन्यौ तुम पाही। मिलिहि उमहि तस ससय नाही। और पुरुषार्थ मुझमे है नही। यही मेरा बिना पख के उडना चाहना है।

देखहु मुनि अविवेक हमारा। चाहिअ सदासिवहि भरतारा ॥४॥

अर्थ हे मुनियो! हमारा अविवेक देखो मैं सदाशिवजी को पति चाहती हूँ।

व्याख्या तीसरे प्रश्न का तुम चहहु का उत्तर देती है। चाहिअ सदासिवहि भरतारा। अब अपनी चाह मे भी बडा भारी अविवेक दिखलाती है कि लोग इष्टदेव से सुगति चाहते हैं। मैं उन्ही को भर्तार रूप से चाहती हूँ। ऋषियो के तीनो प्रश्नो का उत्तर पूरा हुआ।

दो सुनत वचन विहँसे ऋषय, गिरि सभव तव देह।
नारद कर उपदेसु सुनि, कहहु बसेउ किसु गेह ॥७८॥

अर्थ बात सुनते ही ऋषि लोग हँस पडे और कहा तुम्हारा देह ही पहाड से पैदा है। भला नारद का उपदेश सुनकर किसका घर बसा है?

व्याख्या पहिले ही कहा था हँसिहहु सुनि हमार जडताई। सो ठीक उतरा। देवीजी हँसने से ही डरती थी सो वे महात्मा विहँसे और बोले। 'मन हठ परा न सुनै

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मिखावा। चहत वारि पर भीत उठावा। का उत्तर देते है ' गिरि सभव तव देह। और नारद कहा सत्य सोइ जाना का उत्तर देते हुए कहते हैं कि जिसने नारद के उपदेश को सत्य करके जाना उसका घर उजडा। भाव यह कि आराधना के उपदेष्टा मे दोष दिखाकर आराधना मे विरुद्ध फलोत्पादकता दिखाते है। विवाह तो घर बसाने के लिए होता है। नारद के उपदेश से सदा बसा हुआ घर उजडा है। किसी घर के बसने का तो उदाहरण ही नही है।

दच्छ सुतन्ह उपदेसिन्हि जाई। तिन्हि फिरि भवनु न देखा आई॥
चित्रकेतु कर घरु उन घाला। कनककसिपु कर पुनि अस हाला॥१॥

अर्थ दक्ष के पुत्रो को जाकर उपदेश दिया। उन्होने लौटकर फिर घर नही देखा। चित्रकेतु का घर उन्ही ने नष्ट किया और हिरण्यकश्यप का फिर ऐसा हाल हुआ।

व्याख्या दक्ष के बेटे उपदेश लेने नही गये थे। नारद ने स्वय जाकर उपदेश दिया। तुमने भी बुलाया न होगा। वे आप ही उपदेश देने पहुँच गये होगे। दक्ष ने हर्यश्व नाम के पाँच सौ पुत्र उत्पन्न किये और उन्हे सृष्टि करने की आज्ञा दी। नारदजी ने उन्हे जाकर उपदेश किया कि पहिले तुम लोग जाकर भूमि के परि-णाम का पता लगा लो तब सृष्टि करना। वे भूमि के परिमाण का पता लगाने चल पडे। सो आज तक न लौटे। फिर दक्षजी ने एक सहस्र पुत्र उत्पन्न करके उन्हे भी सृष्टि करने की आज्ञा दी। नारदजी ने उन्हे भी वही उपदेश दिया और वे भी आज तक नही लौटे।

चित्रकेतु राजा को पुत्र न था। अगिरा मुनि की कृपा से छोटी रानी को एक पुत्र हुआ। अन्य रानियो ने ईर्ष्यावश उसे विष देकर मार डाला। राजा व्याकुल हुआ। अगिरा मुनि के समझाने पर भी व्याकुलता न गई। मुनिजी ने नारदजी का स्मरण किया। नारदजी ने भी आकर बहुत समझाया पर कोई फल न हुआ। तब नारदजी ने उस मृत पुत्र से कहा उठ, तेरे पिता व्याकुल है। वह उठा और कहने लगा कि कौन किसकी माता और कौन पिता? यह सब भगवान् की माया का विलास है। अब मेरा वृत्तान्त सुनो। मैं पाञ्चाल देश का राजा हूँ। राज्य छोडकर भजन करने गया। एक दिन भिक्षा माँग लाया। उसका पाक बनवाया। एक कण्डे मे १६०० चीटियाँ थी। वे जल मरी। मुझे पीछे पता लगा। वे ही राजा की १६०० रानियाँ हुई। मुझे जिसने कण्डा दिया था वह छोटी रानी हुई। उस भिक्षा का शाल-ग्राम को भोग लगाया था। इसीसे एक जन्म मे सब बैर सध गया। ऐसा कहकर बालक मर गया। राजा रानी ने राजपाट छोडा और विरक्त हो गये। इस भाति नारदजी के उपदेश से चित्रकेतु का घर गया।

हिरण्यकश्यप का हाल जगत् विख्यात है। इसलिए अस हाला कहते है। उसके पुत्र के लिए नृसिहजी ने उसका पेट फाड डाला। बात यह हुई कि हिरण्यकश्यप तप करने गये। उसकी रानी को गर्भ था। नारदजी ने उसे राम तत्त्व का उपदेश दिया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इससे रानी का तथा गर्भ का रामाकार मन हो गया। उसी रानी से जो लडका जनमा, प्रह्लाद नाम हुआ। उसीके कारण हिरण्यकश्यप मारा गया।[1] यहाँ फिर शुक तथा बहु वरन विहंग बोल उठे।

नारद सिष जे सुनहिं नर नारी। अवसि होहि तजि भवनु भिखारी ॥
मन कपटी तन सज्जन चीन्हा। आपु सरिस सबही चह कीन्हा ॥२॥

अर्थ : जो स्त्री पुरुष नारद का सिखावन सुनते हैं वे घरबार छोड अवश्य भिखारी हो जाते हैं। उनका मन कपटी है। शरीर पर सज्जन के चिह्न हैं। अपने समान सभी को बनाना चाहते हैं।

व्याख्या : नर ही नही नारी भी जो नारद का उपदेश सुने तो उसकी भी गृहस्थी छूटे। हिरण्यकश्यपु की स्त्री ने नारद का उपदेश सुना था जिससे वैरागी लडका पैदा हुआ और अपनी माँ के वैधव्य का कारण हुआ। नारद के उपदेश से घर उजडता है। तुम घर बसाना चाहती हो। अत उनके उपदेश का परित्याग करो।

ऐसे उपदेश का कारण यह है कि उसका मन कपटी है। बाहर से साधु वेष बनाए रहता है। उसे धन, धाम, जाया कुछ नही है। चाहता है कि सारा ससार ऐसा ही हो जाय। कैसी सुन्दर व्याजस्तुति है। नारद अपने सा ही सारे ससार को सुखी बनाना चाहते है पर ससार स्वय सुखी होना चाहता नही।

तेहि के बचन मानि बिस्वासा। तुम्ह चाहहु पति सहज उदासा ॥
निर्गुन निलज कुबेष कपाली। अकुल अगेह दिगंबर ब्याली ॥३॥

अर्थ · उनके वचन का विश्वास करके तुम ऐसा पति चाहती हो। जो १ सहज उदासी २ गुणहीन ३ निर्लज्ज ४ कुवेष ५ कपाल धारण करनेवाला ६ कुलहीन ७ गृहहीन ८ नङ्गा और ९ साँप धारण करनेवाला है।

व्याख्या . नारद के वचन का कोई विश्वास नही करता। यदि करते होते तो सब विरक्त हो गये होते। तुम उसी के धोखे मे आकर सहज उदासीन पति चाहती हो। वर के लिए उदासीन होना बडा भारी दुर्गुण है। उदासीन का अर्थ है रागद्वेष रहित। वह स्त्री से प्रेम कैसे करेगा ? यहाँ जो नौ विशेषण शिवजी के लिए दिये हैं इन सबके दो दो अर्थ है। पहिला शिवजी की स्तुति मे लगेगा। दूसरा अर्थ प्रसङ्गानुकूल निन्दा मे है।

१ उदासीन : समदर्शी या उपेक्षक २ निर्गुण : गुणातीत या सद्गुण रहित ३ निलज : आत्मदर्शी या बेहया ४ कुवेष : वैराग्य से या दरिद्रता से ५ कपाली . ब्रह्मदेव का शिरश्च्छेत्ता महापराक्रमी या अघोरी। ६ अकुल : स्वयम्भू या निगोडा ७. अगेह · सर्वाश्रय या निराश्रय ८ दिगम्बर . चिदाकाश रूप या नङ्गा ९. व्याली : विश्वम्भर या सँपेरा।

---

१ औरौ कथा अनेक प्रसंगा। ते सुक पिक बहु बरन विहगा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अब वश स्वभाव कहती है। सोना भी पहाड से ही उत्पन्न होता है। जला डालिये अपना स्वभाव नहीं छोडता। कनकहिं बान चढै जिमिदाहे। प्रियतम पद प्रीति निवाहे। जितना तपाइयेगा उतनी ही चमक सोने की व वह अपना रग कभी नही छोडेगा। उसी भाँति प्रियतम पद प्रीति निर्वाह मे सोना सा स्वभाव होना स्वाभाविक है। मै अपना हठ कैसे छोडूँ?

नारद वचन न मै परिहरऊ। बसौ भवन उजरौ नहि डरऊ।
गुरु के वचन प्रतीति न जेही। सपनेहु सुगम न सुख सिधि तेही।

अर्थ मैं नारदजी के वचन को नही छाडूँगी, चाहे घर बसे या उजडे डर नही है। गुरु के वचन का जिसे विश्वास नही उसे सुख की सिद्धि सपने सुगम नही होती।

व्याख्या नारद सिख जे सुनहिं नर नारी। अवसि होहि तजि भवन भिख नारद कर उपदश सुनि कहहु बसउ किसु गेह का उत्तर देती हैं कि नारद के के सामने घर का उजडना क्या है? तेहि के वचन मानि विस्वासा का उत्तर देती गुर के वचन प्रतीत न जेही। नारद को गुरु मानती हैं। उन्ही के उपदेशानुसार आरम्भ किया है। उन्ही से शिवपञ्चाक्षर की दीक्षा ली है। गुरु के वचन की प्र सुख सिद्धि का असाधारण कारण है।

दो महादेव अवगुन भवन, बिस्नु सकल गुन धाम।
जेहि कर मनु रम जाहि सन, तेहि तेही सन काम ॥८०॥

अर्थ महादेव अवगुणो के घर हैं। विष्णु सारे गुणो के धाम हैं। पर जि मन जिससे रमता है उसको उसी से काम है।

व्याख्या परम श्रद्धास्पद के गुण दोष विवेचन पर शास्त्रार्थ इष्ट नही है न विष्णु के विरुद्ध एक शब्द मुख से निकालना इष्ट है। अत वाद विवाद का बन्द करने के लिए तुष्यतु दुर्जनन्यायेन मान लेती हैं कि उनका कहना ठीक महादेव अवगुण के और विष्णु गुणो के धाम है पर मीठ कहा कवि कहै। ज जो भावइ। पा म। जिसे जो पसन्द हो वही उसके लिए मीठा है। मुझे विष्णु काम नही है।

जौ तुम्ह मिलतेहु प्रथम मुनीसा। सुनति सिख तुम्हारि धरि सीसा ॥
अब मैं जन्मु सभु हित हारा। को दूपन करै विचारा ॥१

अर्थ हे मुनीश्वरो! जो तुम पहल मिलते तो मैं तुम्हारा उपदेश सिर धरकर सुनती। अब तो मैंने अपना जन्म शम्भु के लिए हार दिया। अब गुण का विचार कौन करे?

व्याख्या सम्मति देने या मानने का समय निकल गया। विचार का स मन से वरण करने के पहिले था। अब तो शम्भु के लिए जन्म हार चुकी। आ प्रति मेरा अनादर नही है पर अब मैं गुरु कर चुकी। गुरु के वचन क सामने अ

ankurnagpal108@gmail.com



सब वचन अमान्य है। यदि पहले आप आये होते तो मैं आप को ही गुरु बनाए होती आपकी ही आज्ञा मानती दूसरे की न मानती।

इष्टदेव का भी वरण हो चुका। अब गुण दोष विचार अनुचित है। बात बहुत आगे बढ़ गई।

जौं तुम्हरे हठ हृदय बिसेषी। रहि न जाय बिनु किए बरेषी ॥
तौ कौतुकिअन्ह आलसु नाहीं। बरकन्या अनेक जग माहीं ॥२॥

अर्थ यदि तुम्हारे मन में बहुत हठ हो वर खोजे वरईक्षण बिना रहा न जाता हो तो कौतुकी लोगों को आलस्य तो होता ही नहीं और संसार में वर कन्या की कमी भी नहीं है।

व्याख्या बात समाप्त हो गई। ऋषियों को चला जाना चाहता था पर वे ठहरे हुए हैं। कुछ कहना चाहते हैं। ऐसी परिस्थिति देखकर भगवती कहती हैं मुझ तो आप लोगों की आवश्यकता नहीं है पर यदि आप लोगों का ही विशेष हठ हो वरदिखौआ किये बिना जी न मानता हो भाव यह कि इस विषय में विशेष बात सुनना नहीं चाहती तो आप लोग कौतुकी जान पड़ते हैं बिना प्रार्थना किये वर भी विचार लिया। हठात् आकर वरण किये हुए वर की निन्दा करने लगे। यहाँ आप के कौतुक की सामग्री नहीं है। जहाँ कौतुक चल सके वहाँ जाइये।

जनम कोटि लगि रगरि हमारी। बरौं संभु न त रहौं कुमारी ॥
तजौं न नारद कर उपदेसू। आपु कहहिं सत बार महेसू ॥३॥

अर्थ करोड़ों जन्म तक हमारी यही रगड़ है कि या शम्भु को वरूँगी या कुँआरी रहूँगी। शिवजी स्वयं सौ बार कहें तो भी नारदजी के उपदेश को न छोड़ूँगी।

व्याख्या अस वर तुम्हहि मिलाउब आनी का उत्तर देती है। इस जन्म की क्या कथा करोड़ों जन्म के लिए यही हठ है। शिवजी को वरूँ या क्वारी रहूँ। भाव यह कि उपदेश के लिए यहाँ कोई स्थान नहीं है। भली भूलिउ ठग के बौराएँ का उत्तर देती हैं कि भले तुम ठग समझो पर मेरा विश्वास अटल है। स्वयं महेश जो महा कल्याण के अधिकारी हैं सौबार आकर कहें तो भी मैं नारदजी का उपदेश नहीं छोड़ सकती। आप लोग तो केवल एक मन्वन्तर के अधिकारी ठहरे।

मैं पा परौं कहै जगदंबा। तुम्ह गृह गवनहु भयउ बिलंबा ॥
देखि प्रेमु बोले मुनि ग्यानी। जय जय जगदंबिके भवानी ॥४॥

अर्थ जगदम्बा ने कहा मैं आपके पाँव पड़ती हूँ आप जाँय बहुत देर हुई। प्रेम देखकर ज्ञानी मुनि बोले जगदम्ब! तेरी जय हो। भवानी तेरी जय हो।

व्याख्या महेश के विरुद्ध एक बात भी सुनना नहीं चाहती। उन्हें न जाते देखकर बोली। देर हुई घर जाइये। भाव यह कि आपको घर उजड़ने बसने की बड़ी चिन्ता रहती है सो आपका घर स्वयं सूना पड़ा है। उसे शीघ्र अशून्य कीजिये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रेम की परीक्षा हो चुकी। दो बार प्रश्नोत्तर हुआ। अत दो बार जय जयकार किया। शिवजी ने कहा था दूर करेउ सदेहु। अत जगदम्बिके भवानी कहते हैं। इसके पहिले शैलकुमारी कहकर सम्बोधन किया था।

दो तुम माया भगवान सिव, सकल जगत पितु मातु ॥
नाइ चरन सिर मुनि चले, पुनि पुनि हरषत गातु ॥८१॥

अर्थ तुम माया हो, शिवजी भगवान् हैं। समस्त जगत् के माता पिता हो। चरण मे सिर नवाकर मुनि बार बार पुलकित होते चले।

व्याख्या माया होने से तुम जगन्माता, भगवान् होने से शिवजी जगत्पिता है। दानो का सम्बन्ध अनादि सिद्ध है। अर्थात् विवाह हुआ हवाया है। निश्चित है। आने के समय प्रणाम नही किया क्योकि वरद बनकर आये थे। परीक्षा हो चुकने पर प्रणाम किया शिवजी की योग्या समझकर। जगदम्बा का निर्मल अचल प्रेम देखकर बार बार रोमाञ्च हो रहा है।

जाइ मुनिन्ह हिमवतु पठाए। करि बिनती गिरिजहिं गृह ल्याये ॥
बहुरि सप्तरिषि सिव पहिं जाई। कथा उमा कै सकल सुनाई ॥१॥

अर्थ मुनियो ने जाकर हिमवान् को भेजा। बिनती करके पार्वती को घर ले आये। फिर सप्तर्षियो ने शिवजी के पास जाकर उमा की सब कथा सुनाई।

व्याख्या शिवजी की आज्ञा थी कि गिरिहि प्रेरि पठएउ भवन। इसलिए सप्तर्षियो ने जाकर हिमवान् को प्रेरणा की कि अपनी बेटी को घर ले आओ। उसका तप पूरा हुआ। महादेवजी ने विवाह स्वीकार कर लिया। तदनुसार हिमवान् गये और विनय करके घर ल आये। हिमवान् शिव पार्वती की महिमा के जानकार थे। अत बेटी होने पर भी उनसे विनय की, घर चलने की आज्ञा नही दी। अथवा अति प्रेम हाने स विनय किया कि किसी तरह से यह घर तो चल। पार्वती जी ब्रह्मवाणी के अनुसार यथा, आवैं पिता बुलावन जबहीं। हठ परिहरि गृह जायेहु तबही घर चली गईं। फिर सप्तर्षियो ने जाकर शिवजी से उमा का तप तेज तथा अपना और उनका सवाद सब सुनाया।

भए मगन सिव सुनत सनेहा। हरषि सप्तरिषि गवने गेहा ॥
मनु थिरु करि तब सभु सुजाना। लगे करन रघुनायक ध्याना ॥२॥

अर्थ प्रीति सुनकर शिवजी मगन हो गय। सातो मुनि हर्षित होकर घर गये। तब सुजान शिवजी मन को स्थिर करके रघुनायक का ध्यान करने लगे।

व्याख्या शिवजी बडे स्नेही है। स्नेह सुनकर बडे मग्न हो गये। इस बात का आनन्द हुआ कि अब उमा को विश्वास हो गया होगा कि मै स्वीकार करूँगा। उनकी विरह व्यथा कम हुई होगी अथवा प्राण पड जाने से आनन्दित हुए। भगवती इ है बिना उनके शिव शव हैं। अत पुन शिवत्व प्राप्ति के निश्चय से आनन्दित हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



शिवजी की यह दशा देखकर सप्तर्षि भी प्रसन्न हो गये। इस आनन्द का हेतु अपने को जानकर कृत्यकृत्य हुए। तब घर गये। भगवती की आज्ञा भी पालन करनी थी। तुम गृह गवनउ भयेउ बिलंबा।

स्नेह में डूबे हुए चितको शिव जी ने शान्त किया और रघुनायक का ध्यान करने लगे। आनन्द की घटना उपस्थित होने पर महात्मा लोग भगवान् का ध्यान करते हैं। अथवा भक्त विरह दुःख से दुःखी थे। इसलिए ध्यान नहीं करते थे। पृथ्वी में इधर उधर उपदेश करते फिरते थे। अब वह दुःख मिट गया। अतः ध्यान करने लगे।

तारकु असुर भयउ तेहि काला। भुज प्रताप बल तेज बिसाला॥
तेहिं सब लोक लोकपति जीते। भए देव सुख संपति रीते॥३॥

अर्थ : उन्हीं दिनों तारकासुर हुआ। जिसकी भुजाओं का प्रताप बल और तेज बहुत बड़ा था। उसने सब लोक और लोकपालों को जीत लिया और देवता सुखसम्पत्ति से रहित हो गये।

व्याख्या : कालिकापुराण में कहा है कि विद्राव्य सकलान् देवान् दैत्यान् स्वान् तत्पदेषु च। स्वयं नियोजयामास देवयोनिषु चाप्यसौ। सब देवताओं को युद्ध में भगाकर अपने दैत्यों को उनके पदों पर देवयोनियों में भी उसने तारकासुर ने नियुक्त किया। अर्थात् देवताओं पर भी उसके नियुक्त किये हुए दैत्य शासन करते थे। शङ्कर भगवान् उस समय ध्यान में बैठे थे। बल शब्द के पहिले प्रताप शब्द के प्रयोग का भाव यह कि उसकी भुजाओं के प्रताप के बल से उसके अनुचर लोकपालों को बाँधकर पशुओं की भाँति खींच लाये। इस भाँति प्रताप कहा।

अजर अमर सो जीति न जाई। हारे सुर करि बिबिध लराई॥
तब बिरंचि सन जाइ पुकारे। देखे बिधि सब देव दुखारे॥४॥

अर्थ : वह अजर अमर था। जीता नहीं जाता था। अनेक प्रकार की लड़ाई करके देवता लोग हार गये। तब ब्रह्मदेव के यहाँ पुकार मचाई। ब्रह्मदेव ने देखा कि देवता दुःखी हैं।

व्याख्या : अब बल कहते हैं कि वह अजेय था और साथ ही न उसे बुढ़ापा आता था न मौत आती थी। तेज कहते हैं कि देवता अनेक प्रकार से लड़कर उस तेजस्वी से हार गये। लोकपालों के स्वामी ब्रह्मदेव हैं। निरुपाय होकर उनके शरण गये। ब्रह्मदेव ने उनकी पुकार सुनी और प्रत्यक्ष देखा कि देवता लोग श्रीहीन होकर दुःखी हैं।

दो. सब सन कहा बुझाय बिधि, दनुज निधन तब होइ।
संभु शुक्र संभूत सुत, एहि जीतै रन सोइ॥८२॥

4364

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ सबको समझाकर[१] विधि ने कहा कि दैत्य का मरना तो तब होगा जब शिवजी के शुक्र से पुत्र उत्पन्न हो। वही इसे रण मे जीत सकेगा।

व्याख्या दु ख दूर वे भी नही कर सके। पर उपाय बतलाया जिससे दु ख दूर हो सके। उपाय यह था कि शिवजी के वीर्य से यदि पुत्र उत्पन्न हो तो वह इसे जीत सकेगा। तारकासुर ने छ दिन के उत्पन्न हुए बालक मे अपनी मृत्यु माँगी थी। शिवजी के सिवा दूसरे के वीर्य मे इतना सामर्थ्य नही कि उससे उत्पन्न बालक छठी के भीतर तारकासुर का वध कर सके। शरीर सम्भूत पुत्र से काम न चलेगा। शुक्र सम्भूत होना चाहिए। नही तो शरीर सम्भूत तो वीरभद्रादिक थे ही।

मोर कहा सुनि करहु उपाई। होइहि ईस्वर करिहि सहाई॥
सती जो तजी दच्छ मख देहा। जनमी जाइ हिमाचल गेहा॥१॥

अर्थ मेरी बात सुनकर उपाय करो। काम बन जायगा। ईश्वर सहायता करेगा। सती ने जिसने दक्ष के यज्ञ मे शरीर छोडा है हिमाचल के घर मे जाकर जन्म लिया है।

व्याख्या बात पीछे बतलायेंगे। अभी प्रोत्साहन दते है कि मेरे कथनानुसार उद्योग करने से कार्य सिद्धि होगी। आशीर्वाद भी देते है कि ईश्वर सहायता करेगा। क्योकि मनुष्य का कर्म मे अधिकार है। फल मे नही। फल ईश्वर के हाथ है। यथा सुभ अरु असुभ कर्म अनुहारी। ईस देइ फल हृदय विचारी। सो ईश्वर सहाय करेगा। तुम्हारा उद्यम सफल होगा।

दक्षमख भूलने की वस्तु नही है। उसी मे सती ने शरीर त्याग किया था। वही जाकर हिमाचल के घर जनमी है। तमूर्ध्वरेतस शम्भु सैव प्रच्युतरेतसम्। कर्तुं समर्था नान्यास्ति काचिदप्यबलापरा। का पु। उन ऊर्ध्वरेता शम्भु के वीर्य को स्थान से प्रचलित करने मे वही समर्थ है और किसी स्त्री मे ऐसा सामर्थ्य नही है।

तेइ तपु कीन्ह संभु पति लागी। सिव समाधि बैठे सब त्यागी॥
जदपि अहै असमंजस भारी। तदपि बात येक सुनहु हमारी॥२॥

अर्थ उसने शिवजी को पतिरूप से प्राप्त करने के लिए तप किया है। पर

---

१ षट दिन के सिसु हाथ वध तारक को वर दीन्ह
तेहि बल ते अति प्रबल ह्वै सकल सुरन्ह बस कीन्ह॥१॥
वीर्यवन्त अस को जगत जाको अस सुत होय
जनमत ही जाके सदृश जग मे होय न कोय॥२॥
ऐसे तो प्रभु संभु ही समरथ परैं लखाय
सती तासु वनिता तजी देह दक्ष मख जाय॥३॥
सबसन कहा बुझाइ विधि दनुज निधन तब होय
संभु शुक्र संभूत सुत एहि जीते रन सोय॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



शिवजी सब त्यागकर समाधि मे बैठे है। यद्यपि असमञ्जस तो बड़ा भारी है। फिर भी हमारी एक बात सुनो।

व्याख्या : पिछले जन्म मे भी शम्भु को पति पाया। इस जन्म मे भी उन्ही के लिए तप किया। तप कीन्ह कहकर तप की सिद्धि भी बतलाई। विवाह होगा। अतः शुक्र सम्भूत सुत का योग है। पर कठिनाई यह है कि जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति तीनो अवस्था त्यागकर अथवा पहिले सती को त्यागा अब सब त्यागकर शिवजी इस समग्र तुरीय में स्थिर हैं। स्वरूप का विमर्श ही समाधि है। न जाने कब समाधि खुलेगी और विवाह समाधि खुलने पर ही सम्भव है। शिवजी की समाधि भङ्ग करना साधारण व्यापार नही है और इधर तुम लोगो को वेदना भी असह्य है। अतः भारी असमञ्जस है फिर भी उपाय कहते हैं।

पठवहु काम जाइ सिव पाही। करै छोभु संकर मनमाही ॥
तब हम जाइ सिवहि सिर नाई। करवाउब बिबाहु बरिआई ॥३॥

अर्थ : काम को भेजो शिवजी के पास जाय। शङ्करजी के मन मे क्षोभ, हलचल पैदा करे। तब हम जाकर शिवजी को प्रणाम करके बलपूर्वक उनका ब्याह करावेंगे।

व्याख्या : तप में तथा समाधि में निष्कारण विघ्न करना कामदेव का काम है; परन्तु वह शिवजी के सन्निकट नही जाता। उसे शिवजी के पास तुम लोग भेजो। वहाँ जाकर वह अपना सामर्थ्य दिखलावे। शङ्करजी के मन में क्षोभ उत्पन्न करे। क्योंकि समाधि निर्विकारचित्तैकसाध्य है। जहाँ मन क्षुब्ध हुआ तहाँ समाधि छूटी। समाधि से जागने पर विवाह करवाना कुछ कठिन नही है। मै तुम लोगो के साथ चलकर सिर नवाकर बलपूर्वक विवाह करवाऊँगा। सप्तर्षि को भेजकर हिमाचल से कहला चुके हैं न क्यो करेंगे ? विनय के बल से करवायेंगे।

एहि बिधि भलेहि देवहित होई। मति अति नीक कहै सबु कोई ॥
अस्तुति सुरन्ह कीन्हि अति हेतू। प्रगटेउ बिषम बान झखकेतू ॥४॥

अर्थ : इस विधि से भले ही देवताओं का कल्याण होगा। सब कोई कहने लगे कि यह राय बहुत अच्छी है। देवताओं ने बड़े प्रेम से प्रकर्ष करके स्तुति की तो पञ्चबाण[1] मीनकेतु प्रकट हुए।

व्याख्या : काम की उत्पत्ति ही मनःक्षोभ के लिए है। अतः उसके समाधिभङ्ग करने पर कारण की खोज न होगी। समाधिभङ्ग के अन्य उपाय भी हैं। पर उनके करने से समाधिभङ्ग होने पर शिवजी कारण की खोज करेंगे। देवताओं पर बिना

---

१. बसी करन मोहन कहत, आकर्षण कवि लोग।
उन्मादन मारन समुझि पंच बान ये योग ॥
पुन करना केतकि केवरा कदम आम के बौर।
ए पाँचो शर काम के केशवदास न और ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विपत्ति आये न रहेगी। अत भली प्रकार से हित न होगा। सबने इस उपाय का एक मत से अनुमोदन किया। देवता लोग आर्त थे। इसलिए प्रकर्ष रूप से कामदेव की स्तुति की। नही तो कामदेव बुलवा लिये जाते थे। यथा : कामहि बोलि कीन्ह सनमाना। प्रस्तुति से प्रसन्न होकर कामदेव प्रकट हुए। कामदेव, मनोज है। अत· उनका निवास मन मे रहता है वहाँ प्रकट होते हैं। इसलिए स्तुति के लिए कही जाना न पडा। *'विषमबान झखकेतु' कहने का भाव यह है कि युद्ध के* लिए तैयार होकर आये। यह स्तुति देवलोक मे हुई। क्योंकि काम से वार्तालाप मे ब्रह्मदेव सम्मिलित नही है।

दो. सुरन्ह कही निज विपति सब, सुनि मन कीन्ह विचार।
संभु विरोध न कुसल मोहि, विहँसि कहेउ अस मार ॥८३॥

*अर्थ देवताओं ने अपनी सब विपत्ति कह सुनाई। सुनकर मन मे विचार* किया। और हँसकर कहा कि शम्भु के विरोध से मेरा कुशल नही है।

व्याख्या कामदेव को देवताओ के पराभव पर भी विपत्ति नही आती। क्योकि काम का मान तो असुरो मे और भी अधिक है। अत देवताओं ने अपनी विपत्ति कही। मोहदल के प्रथम वीर हैं अत मृत्यु पर हँसते हैं। शूराणा मरण तृणम्। अथवा देवताओं के विनय पर हँसे कि तुम्हारा कुशल तो है। मेरा नही है। मन मे विचार करने पर यही बात निश्चय हुई कि शम्भु की समाधि भङ्ग करने पर उनके क्रोध से मेरी रक्षा हो नही सकती।

तदपि करब मै काज तुम्हारा। श्रुति कह परम धर्म उपकारा॥
परहित लागि तजै जो देही। सतत सत प्रससहि तेही ॥१॥

अर्थ फिर भी मै तुम्हारा काम करूँगा। क्योकि वेदो मे परोपकार को ही परम धर्म बतलाया है। परउपकार के लिए जो देह छोडता है सन्त सदा उसकी प्रशसा करते हैं।

व्याख्या भले ही मेरा कुशल न हो पर सम्पूर्ण ससार का तो कुशल होगा। धर्म मे वेद ही प्रमाण है। सो वेद परोपकार को परम धर्म बतलाते हैं। आत्म रक्षा धर्म है और परोपकार परम धर्म है। अत तुम्हारा काम मैं करूँगा। आज तक मेरी गिनती षड्रिपु मे रही। सन्त मेरी निन्दा करते रहे। अब परोपकार के लिए जब मै देह छोडूंगा तो सन्त समाज मे मेरी प्रशसा सदा होगी। देह है तो एक दिन छूटे ही गा। तब ऐसे सुअवसर को मैं हाथ से क्यों जाने दूँ। कीर्तिर्यस्य स जीवति जिसकी कीर्ति है वही जीता है।

अस कहि चलेउ सबहि सिरु नाई। सुमन धनुक कर सहित सहाई॥
चलत मार अस हृदय विचारा। सिव विरोध ध्रुव मरन हमारा ॥२॥

*अर्थ ऐसा कहकर और सबको सिर नवाकर पुष्प का धनुष हाथ मे ले,*

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सेना सहित चला। चलते समय कामदेव ने यह विचार कर लिया कि शिव के विरोध मे मेरी मृत्यु निश्चित है।

व्याख्या पञ्च परमेश्वर को प्रणाम किया। यथा अस कहि नाइ सबन्हि कहँ माथा उन्मादन नामका धनुष हाथ मे लिया। यथा तत कामोपि कोदण्डमादाय कुसुमोद्भवम्। उन्मादनेतिविख्यात कान्ताभ्रूतुल्यवल्लितम्। का पु। फूलो का बना हुआ धनुष जिसका नाम उन्मादन प्रसिद्ध है और जो स्त्री के भौहो के तुल्य चलनेवाला था ले लिया। और अपनी सेना भी साथ ले ली।

चलते समय विचार किया कि सबके विरोध से तो बचे, शिव विरोध से न बचेंगे। उनका तेज मेरे विपरीत है। अत मै उनके निकट नही गया। यथा तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहिं काऊ। गये समीप सो अवसि नसाई। अस मनमथ महेस की नाई। तिस पर मुझे ब्रह्मशाप भी है। यथा प्राप्तकालश्च सस्मार शाप ब्रह्मकृत पुरा। शम्भुनेत्राग्निदग्धस्त्व भविष्यसि न संशय। का पु। अवसर आने पर जो शाप पहिले ब्रह्मा ने दिया था। उसे उसने स्मरण किया कि तू शम्भु की नेत्राग्नि से नि सशय जल जायगा। अत मेरे मरने म कोई सन्देह नही है।

तब आपन प्रभाव विस्तारा। निज बस कीन्ह सकल ससारा॥
कोपेउ जबहि वारिचरकेतू। छन महुँ मिटे सकल श्रुति सेतू॥३॥

अर्थ तब उसने अपना प्रभाव फैलाया। सारे ससार को अपने वश म कर लिया। जिस समय मकरध्वज ने कोप किया तो एक क्षण मे वेद के सारे सेतु[1] मिट गये। सेतु = पुल।

व्याख्या कामदेव ने निश्चय किया कि पूरा बल लगाना चाहिए। मरना तो है ही। ससार को अपनी प्रभुता दिखा दें। अथवा विश्वनाथ पर प्रहार करने के पहिले विश्व को वश्य करना चाहिए। राजा पर वार करने से पहिले उसके राज्य पर आक्रमण करना चाहिए। सो पहिले उसने विश्व को वश मे किया।

काम का ऐसा प्रबल प्रभाव है कि उसके कोप मात्र से वेद की मर्यादाएँ टूट गईं। चढाई मे जिन पुलो से सहायता मिलती है वे पहले तोडे जाते हैं। अत पहिला काम यह किया कि श्रुतिसेतु को तोड डाला।

ब्रह्मचर्य व्रत सजम नाना। धीरज धर्म ग्यान विज्ञाना॥
सदाचार जप जोग बिरागा। सभय विवेक कटकु सब भागा॥४॥

---

१ धर्म सामान्य वेद के सेतु हैं। भगवान् रामचन्द्र ने कहा है कि यह धर्मरूपी सेतु सबके लिए है। यथा भूयो भूयो भाविनो भूमिपाला नत्वा नत्वा याचते रामचन्द्र। सामान्योऽय धर्मसेतुर्नराणा काले काले पालनीयो भवद्भि।
इन सतुओ की सख्या तैतीस है, जो सबके लिए सामान्य हैं। यथा सत्य, दया, तप, शौच, तितिक्षा आदि। श्रीमद्भा ७ ११।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विपत्ति आये न रहेगी। अत भली प्रकार से हित न होगा। सबने इस उपाय का एक मत से अनुमोदन किया। देवता लोग आर्त थे। इसलिए प्रत्यर्प रूप से कामदेव की स्तुति की। नही तो कामदेव बुलवा लिये जाते थे। यथा कामहि बोलि कीन्ह सनमाना। प्रस्तुति से प्रसन्न होकर कामदेव प्रकट हुए। कामदेव, मनोज है। अत उनका निवास मन मे रहता है वहाँ प्रकट होते हैं। इसलिए स्तुति के लिए कही जाना न पडा। 'विषमवान झषकेतु' कहने का भाव यह है कि युद्ध के लिए तैयार होकर आये। यह स्तुति देवलोक मे हुई। क्योकि काम से वार्तालाप मे ब्रह्मदेव सम्मिलित नही हैं।

दो सुरन्ह कही निज विपति सब, सुनि मन कीन्ह विचार।
सभु विरोध न कुसल मोहि, विहँसि कहेउ अस मार ॥८३॥

अर्थ देवताओ ने अपनी सब विपत्ति कह सुनाई। सुनकर मन मे विचार किया। और हँसकर कहा कि शम्भु के विरोध से मेरा कुशल नही है।

व्याख्या कामदेव को देवताओ के पराभव पर भी विपत्ति नही आती। क्योकि काम का मान तो असुरो मे और भी अधिक है। अत देवताओ ने अपनी विपत्ति कही। मोहदल के प्रथम वीर हैं अत मृत्यु पर हँसते हैं। शूराणा मरण तृणम्। अथवा देवताओ के विनय पर हँसे कि तुम्हारा कुशल तो है। मेरा नही है। मन मे विचार करने पर यही बात निश्चय हुई कि शम्भु की समाधि भङ्ग करने पर उनके क्रोध से मेरी रक्षा हो नही सकती।

तदपि करब मै काज तुम्हारा। श्रुति कह परम धर्म उपकारा ॥
परहित लागि तजै जो देही। सतत सत प्रससहि तेही ॥१॥

अर्थ फिर भी मैं तुम्हारा काम करूँगा। क्योकि वेदो मे परोपकार को ही परम धर्म बतलाया है। परउपकार के लिए जो देह छोडता है सन्त सदा उसकी प्रशसा करते हैं।

व्याख्या भले ही मेरा कुशल न हो पर सम्पूर्ण ससार का तो कुशल होगा। धर्म मे वेद ही प्रमाण है। सो वेद परोपकार को परम धर्म बतलाते हैं। आत्म रक्षा धर्म है और परोपकार परम धर्म है। अत तुम्हारा काम मैं करूँगा। आज तक मेरी गिनती षड्‌रिपु मे रही। सन्त मेरी निन्दा करते रहे। अब परोपकार के लिए जब मैं देह छोडूँगा तो सन्त समाज मे मेरी प्रशसा सदा होगी। देह है तो एक दिन छूटे ही गा। तब ऐसे सुअवसर को मैं हाथ से क्यो जाने दूँ। कीर्तिर्यस्य स जीवति जिसकी कीर्ति है वही जीता है।

अस कहि चलेउ सबहि सिरु नाई। सुमन धनुक कर सहित सहाई ॥
चलत मार अस हृदय विचारा। सिव विरोध ध्रुव मरन हमारा ॥२॥

अर्थ ऐसा कहकर और सबको सिर नवाकर पुष्प का धनुष हाथ मे ले,

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सेना सहित चला। चलते समय कामदेव ने यह विचार कर लिया कि शिव के विरोध मे मेरी मृत्यु निश्चित है।

व्याख्या : पञ्च परमेश्वर को प्रणाम किया। यथा : अस कहि नाइ सबन्हि कहँ माथा : उन्मादन नामका धनुप हाथ मे लिया। यथा : ततः कामोपि कोदण्डमादाय कुसुमोद्भवम्। उन्मादनेतिविख्यातं कान्ताभ्रूतुल्यवल्लितम्। का. पु। फूलों का बना हुआ धनुप जिसका नाम उन्मादन प्रसिद्ध है और जो स्त्री के भौहो के तुल्य चलनेवाला था ले लिया। और अपनी सेना भी साथ ले ली।

चलते समय विचार किया कि सबके विरोध से तो बचे, शिव विरोध से न बचेंगे। उनका तेज मेरे विपरीत है। अत. मैं उनके निकट नही गया। यथा : तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाइ नहि काऊ। गये समीप सो अवसि नसाई। अस मनमथ महेस की नाई। तिस पर मुझे ब्रह्मशाप भी है। यथा : प्राप्तकालश्च सस्मार शापं ब्रह्मकृत पुरा। शम्भुनेत्राग्निदग्धस्त्वं भविष्यसि न संशयः। का पु। अवसर आने पर जो शाप पहिले ब्रह्मा ने दिया था। उसे उसने स्मरण किया कि तू शम्भु की नेत्राग्नि से नि सशय जल जायगा। अतः मेरे मरने मे कोई सन्देह नही है।

तब आपन प्रभाव विस्तारा। निज बस कीन्ह सकल संसारा ॥
कोपेउ जबहि बारिचरकेतू। छन महुँ मिटे सकल श्रुति सेतू ॥३॥

अर्थ : तब उसने अपना प्रभाव फैलाया। सारे संसार को अपने वश मे कर लिया। जिस समय मकरध्वज ने कोप किया तो एक क्षण मे वेद के सारे सेतु[1] मिट गये। सेतु = पुल।

व्याख्या : कामदेव ने निश्चय किया कि पूरा बल लगाना चाहिए। मरना तो है ही। ससार को अपनी प्रभुता दिखा दें। अथवा विश्वनाथ पर प्रहार करने के पहिले विश्व को वश्य करना चाहिए। राजा पर वार करने से पहिले उसके राज्य पर आक्रमण करना चाहिए। सो पहिले उसने विश्व को वश में किया।

काम का ऐसा प्रबल प्रभाव है कि उसके कोप मात्र से वेद की मर्यादाएँ टूट गईं। चढाई मे जिन पुलो से सहायता मिलती है वे पहले तोडे जाते हैं। अतः पहिला काम यह किया कि श्रुतिसेतु को तोड डाला।

ब्रह्मचर्य ब्रत संजम नाना। धीरज धर्म ग्यान बिग्याना ॥
सदाचार जप जोग बिरागा। सभय बिबेक कटकु सब भागा ॥४॥

---

१. धर्म सामान्य . वेद के सेतु हैं। भगवान् रामचन्द्र ने कहा है कि यह धर्मरूपी सेतु सबके लिए है। यथा . भूयो भूयो भाविनो भूमिपाला नत्वा नत्वा याचते रामचन्द्र। सामान्योऽय धर्मसेतुर्नराणा काले काले पालनीयो भवद्भिः।

इन सेतुओ की सख्या तैंतीस है, जो सबके लिए सामान्य हैं। यथा सत्य, दया, तप, शौच, तितिक्षा आदि। श्रीमद्भा. ७.११।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अथ ब्रह्मचर्य, व्रत, नाना प्रकार के सयम, धैर्य, धर्म, ज्ञान, विज्ञान, सदाचार, जप, जोग और विरागादि विवेक की सारी सेना भाग खडी हुई।

व्याख्या ससार को वश्य करने मे काम की बाधक विवेक की सेना है। सो लड भी न सकी। डरकर भाग गई। सेना के प्रधान अधिकारियो के नाम गिनाते हैं। १ ब्रह्मचर्य अर्थात् अष्टविध मैथुन त्याग २ व्रत अर्थात् उपवासादि ३ सयम अर्थात् धारणा, ध्यान और समाधि तीनो का एकत्र होना। धारणा मे भेद होने से सयम मे भेद होता है। ४ धैर्य अर्थात् विपय के सन्निधान मे भी इन्द्रिय निग्रह ५ धर्म अर्थात् वेद की आज्ञा ६ ज्ञान अर्थात् समदर्शन ७ विज्ञान अर्थात् ब्रह्मलीनता ८ सदाचार अर्थात् जातिधर्म, कुलधर्म ९ जप अर्थात् मन्त्र का अभ्यास १० योग अर्थात् चित्तवृत्ति निरोध और ११ वैराग्य अर्थात् देखे हुए और सुने हुए पदार्थों मे तृष्णा न होना। इन ग्यारहो का नाम गिनाया। पर पूरी सेना भाग गई।

छ भागेउ विवेक सहाइ सहित, सो सुभट सजुगमहि मुरे।
सद्ग्रन्थ पर्वत कदरन्हि महुँ, जाइ तेहि अवसर दुरे॥
होनिहार का करतार को, रखवार जग खरभर परा।
दुइ माथ केहि रतिनाथ, जेहि कहुँ कोपिकर धनु सरु गहा॥

अर्थ विवेक सेना सहित भाग गये। सुभट लोगो ने लडाई के मैदान मे पीठ दिखाई और सद्ग्रन्थरूपी पर्वत कन्दरो मे जा-जाकर छिपे। हे कर्तार! क्या होनेवाला है? कौन रक्षा करेगा? जगत् मे खलबली मच गई। ऐसा दो सिरवाला कौन है? जिसके लिए कामदेव ने क्रोधपूर्वक हाथ मे धनुप वाण उठाया है।

व्याख्या सेना भी भाग गई। राजा विवेक भी भाग गये। प्रवल शत्रु से भागकर सैनिक पर्वत के कन्दरो मे छिपते है। यथा रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन तकेउ मेरु गिरि खोहा। सो राजा विवेक और उनकी सेना भागकर सद्ग्रन्थरूपी पर्वत के कन्दरो मे जा छिपी। अर्थात् विवेक ब्रह्मचर्यादि केवल पोथी मे रह गये। व्यवहारभूमि मे उनका पता नही रह गया। विश्वनाथ समाधि मे है। रक्षा कौन करे? ससार भर म खलबली मची।

एक सिर तो काम काट ही लेंगे। अत जिसे दो सिर हो वह काम को क्रोधित करे। यथा केहि दुइ सिर केहि जम चह लीन्हा। ध्वनि यह कि आज पाँच सिरवाले से काम पड गया है।

धर्म सकल सरसीरुह वृदा। होइ हिम तिनहि दहै सुखमदा। धर्मकमल के लिए स्त्री हिम है और वही काम का परम वल है। यथा तेहि के एक परम वल नारी। इस समय जगत् स्त्रीमय दिखाई पड रहा है। हिम की भारी वर्षा हुई। ससार हिममय हो गया। अत धर्म सरसीरुह की दुर्दशा कहते है। भागेउ विवेक सहाय सहित। हिमसैलसुता सिव व्याह प्रकरण हिमऋतु हो गया।

सभय विवेक कटकु सब भागा। इस पुरइन से भागेउ विवेक सहाय सहित। इत्यादि। अट्ठाईस दल का कमल निकला। यह भी हरिगीतिका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. जे सजीव जग अचर चर, नारि पुरुष अस नाम।
ते निज निज मरजाद तजि, भए सकल बस काम ॥८४॥

अर्थ : संसार मे जितने चर अचर जीव थे[1] और जिनकी स्त्री पुरुष संज्ञा थी वे सब अपनी अपनी मर्यादा छोडकर काम के वश हो गये।

व्याख्या : प्रभाव विस्तार का साफल्य दिखाते है। पुंशक्ति और स्त्रीशक्ति से ही जगत् की उत्पत्ति स्थिति है। सभी पदार्थों मे ये दोनो शक्तियाँ हैं। अत स्थूल या सूक्ष्मरूप से काम सब मे वर्तता है पर उस बर्तने की मर्यादा बँधी हुई है। उसका भङ्ग नही होता। यहाँ वेदमर्यादा तो भङ्ग हुई ही थी प्रकृति की मर्यादा भी भङ्ग हुई। जो न नारि है न पुरुष है। केवल उनके नाम के साथ स्त्रीलिङ्ग और पुंलिङ्ग के प्रत्यय लगे हुए हैं वे कामवश नही होते। आज वह मर्यादा भी टूट गई। वे भी कामवश हुए। उनमे भी मानो जीवन आगया क्योकि काम जीवनी शक्ति है।

सबके हृदय मदन अभिलाखा। लता निहारि नवहि तरु साखा॥
नदी उमुगि अंबुधि कहुँ धाई। सगम करहि तलाव तलाई॥१॥

अर्थ : सबके हृदय मे काम की चाह हुई। लता को देखकर वृक्षो की डालियाँ झुकने लगी। नदियाँ उमडकर समुद्र की ओर दौडी और ताल तलैया आपस मे मिलने लगी।

व्याख्या : जे सजीव जग के विषय मे कहते हैं कि सबके हृदय मे काम की चाह उत्पन्न हुई। अचर : नारि पुरुष अस नाम के विषय मे कहते है कि लता मे कुच केशादि कोई लक्षण नारी के नही हैं और न वृक्ष में कोई लक्षण पुरुष के हैं। केवल लता शब्द स्त्रीलिङ्ग है और तरु : वृक्ष शब्द पुंलिङ्ग है। इसी भाँति नदी तलाई आदि मे स्त्रीलिङ्ग का व्यवहार है और समुद्र, ताल आदि मे पुंलिङ्ग का व्यवहार है। सो इस व्यवहार के नाते ये मर्यादा त्यागकर एक दूसरे से मिलना चाहते है।

वृक्षो का देखना शास्त्र से सिद्ध है। यथा 'तस्मात्पश्यन्ति पादपाः। नियम यह है कि लता शाखा की ओर बढती है। यथा : बढत बौंड जिमि लही सुसाखा। यहाँ मर्यादा त्यागकर शाख लता की ओर झुकने लगा। यहाँ अचर नर नामधारी का कामवश होना दिखाया।

मर्यादा यही है कि वर्षा मे उमगकर नदी समुद्र की ओर दौडती है। यहाँ विना वर्षा ही समुद्र की ओर दौडी। यहाँ नारी नामधारी अचर का कामवश होना दिखाया। तालाव और तलाई का जल उमगकर एक दूसरे मे जाना दिखलाकर नारी नामधारी अचर और नर नामधारी अचर का परस्पर कामवश होना दिखाया। अचर से अभिप्राय निर्जीव पदार्थ से है। सो प्रकृति मे काम की उमङ्ग आगयी।

---

१. यहाँ से चार हरिगीतिका छन्दो में कामदहन प्रसङ्ग कहा गया है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जहँ असि दसा जड़न्ह कै बरनि। को कहि सकै सचेतन्ह करनी ॥
पसु पच्छी नभ जल थल चारी। भए काम बस समय बिसारी ॥२॥

अर्थ . जब जड की यह दशा कही गई तब चेतन जीवो की करणी कौन वर्णन कर सकता है। आकाश और थल के रहनेवाले पशु और पक्षी समय भुलाकर कामवश हो गये।

व्याख्या : जड की दशा वर्णन करके दिग्दर्शन करा देते हैं। जड मे काम देखा नही जाता। भी जब उनकी यह दशा है तो चेतन की क्या गति हुई होगी ? मनुष्य कामवश हो प्रकृति के नियम को भङ्ग करता है। पशु पक्षी नियम भङ्ग नही करते। वे समय के नियम से बँधे रहते है। सबके जोडा खाने का पृथक् पृथक् समय है। वह नियम टूट गया।

मदन अंध ब्याकुल सब लोगा। निसि दिनु नहि अवलोकहि कोका ॥
देव दनुज नर किंनर ब्याला। प्रेत पिसाच भूत बेताला ॥३॥

अर्थ . सब लोग कामान्ध होकर व्याकुल हो गये। चकवा चकई को रात दिन का ज्ञान नही रहा। देव, दनुज, नर, किन्नर, सर्प, प्रेत, पिशाच, भूत और बेताल।

व्याख्या ' देश, काल, पात्र कुछ नही देखते। इसलिए अन्ध कहा। दिवा पश्यति नोलूक' कामान्धो नैव पश्यति। उल्लू तो दिन मे नही देखता कामान्ध देखता ही नही। इन्द्रिय निग्रह मे नितान्त असमर्थ हो गये। इसलिए व्याकुल सब लोगा रहते है। चकवा चकई के रात दिन का विचार प्रसिद्ध है। यथा ' सपत चकई भरत चक मुनि आयसु खेलवार। तेहि निसि आस्रमु पीजरा राखे भा भिनुसार। सो उन्हे यह ज्ञान नही रह गया कि यह दिन है या रात। यह दशा वे सम्पूर्ण जगत् की कह रहे है और पृथ्वी मे सर्वत्र केवल दिन नही होता, कही रात्रि रहती है, कही दिन रहता है। जहाँ रात्रि थी वहाँ के चकवा चकई ने रात्रि नही देखी और जहाँ दिन था वहाँ के चकवा चकई दिन क्यो देखने लगे। दिन का निषेध तो केवल मनुष्य के लिए है।

१ देव अर्थात् अदिति के सन्तान स्वर्ग के निवासी २ दनुज अर्थात् दनु या दिति के सन्तान, पाताल निवासी ३ नर अर्थात् मनु के सन्तान, मर्त्यलोक निवासी ४ किन्नर अर्थात् गानवाद्य करनेवाले उपदेव ५. व्याल अर्थात् सुरसा तथा कद्रू के सन्तान सर्प, पाताल निवासी ६ प्रेत, पिशाच, भूत, वेताल अर्थात् वे मृतजीव जिनकी ऊर्ध्वगति नही हुई और अन्तरिक्ष मे रहते है।

इन्हकै दसा न कहेउँ बखानी। सदा काम के चेरे जानी ॥
सिद्ध बिरक्त महामुनि जोगी। तेपि काम बस भए बियोगी ॥४॥

अर्थ मैने इनकी दशा तो . यह जानकर . वर्णन नही की कि ये तो सदा कामदेव के दास हैं। जो सिद्ध, विरागी, महामुनि और योगी थे वे भी काम के वश होकर वियोगी हो गये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या ये नव जाति काम के गुलाम हैं। पशु पक्षी ऐसे नहीं हैं। समय से नियन्त्रित हैं। अत इन नवो की दशा भी कहते हैं पर बखान के नहीं। सिद्ध विरक्त महामुनि और योगी। ये चार इन्द्रियजयी हैं। स्त्री नही रखते। सो योगी ने अष्टाङ्ग योग छोडा, अष्टाङ्ग मैथुन मे प्रवृत्त हुए। इसलिए वियोगी हो गये। स्त्री ढूँढने लगे उसके लिए विलाप करने लगे।

छ भये कामवस जोगीस तापस पामरन की को कहै।
देखहिं चराचर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे॥
अबला बिलोकहिं पुरुषमय जग पुरुष सब अबलामय।
दुइ दंड भरि ब्रह्मांड भीतर कामकृत कौतुक अय॥

अर्थ जब योगी और तपस्वी भी काम के वश हो गये तब अधमो की कौन कहे? जो सब चराचर को ब्रह्ममय देखते थे वे सब स्त्रीमय देख रहे हैं। स्त्रियाँ पुरुषमय ससार को देखने लगीं और पुरुष स्त्रीमय देखने लगे। कामदेव ने दो घडी के लिए ससार मे यह तमाशा कर दिया।

व्याख्या पामर तो कामवश है ही। योगेश्वरो और तपस्वियो की तो सारी सिद्धि ही ब्रह्मचर्य पर खडी है। वे भी कामवश हो गये। ब्रह्ममय देखनेवाले ज्ञानियो को समदर्शन का अभ्यास है। उन्हे जब नारी का ध्यान आया तो ब्रह्म की भाँति चराचर मे नारी ही देखने लगे। यह नही कि पुरुष ही नारीमय देखे। नारी भी ससार को पुरुषमय देखने लगी। दो दण्ड ४८ मिनट का होता था। सो ४८ मिनट तक ब्रह्माण्ड म यह तमाशा रहा। काम के लिए विश्वविजय खेल है।

सो धरी न काहू धीर, सबके मन मनसिज हरे।
जेहि राखे रघुबीर, ते उबरे तेहि काल महु॥८५॥

अर्थ सबके मन कामदेव ने हर लिये। किसी के भी हृदय मे धैर्य नही रहने दिया। जिनकी रघुवीर ने रक्षा की वे ही उस समय बच सके।

व्याख्या सब पर काम का बल चल गया परन्तु जिनकी रघुवीर ने रक्षा की उन पर बल न चला। यथा सीमकि चाँपि सकै कोउ तासू। बड रखवार रमा पति जासू वे बच गये। यथा जिनहिं मोर बल निज बल ताही। दोउ कहँ काम क्रोध रिपु आही। गहमिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखै जननी अरगाई। अस विचारि पंडित मोहि भजही। पायेउ ज्ञान भगति नहि तजही।

तेपि कामबस भए वियोगी। इस पुरइन का भए कामबस जोगीस तापस इत्यादि अट्ठाइस दलवाला कमल हरिगीतिका छन्द म है। लक्षण का वर्णन पहिले हो चुका है।

उभय घरी अस कौतुक भयऊ। जौ लगि कामु सभु पहँ गयऊ॥
सिवहि बिलोकि ससकेउ मारू। भयउ जथाथिति सबु ससारू॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ दो घडी तक यह खेला हुआ। जब तक कामदेव शिवजी के पास गया। शिवजी को देखकर कामदेव डर गया और सारा ससार जैसा का तैसा हो गया।

व्याख्या · देवलोक से शिवजी के पास आने मे कामदेव को ४८ मिनट लगे। घडी और दण्ड का मान एक ही है। इतनी देर तक पुरुष स्त्रीमय और स्त्री पुरुषमय ससार को देखती रही। शिवजी को देखकर काम डर गये। डर से सङ्कोच होता है सो फैला हुआ प्रभाव सिकुड गया। ससार यथास्थिति को प्राप्त हुआ। यहाँ शिवजी का प्रभाव दिखाते है कि जिस कामदेव के धनुप हाथ मे उठाने से ससार मे उथल पुथल मच गई वह मोह की सेना का सर्व प्रथम वीर शिवजी के दर्शन मात्र से भयभीत हो गया। उनसे युद्ध क्या करेगा ?

भए तुरत जग जीव सुखारे। जिमि मद उतरि गये मतवारे ॥
रुद्रहि देखि मदन भय माना। दुराधरप दुर्गम भगवाना ॥२॥

अर्थ तुरन्त जग के सब जीव ऐसे सुखी हो गये जैसे मतवाला मद उतरने पर सुखी होता है। रुद्र को देखकर कामदेव डर गया। क्योकि भगवान् दुराधर्प और दुर्गम हैं।

व्याख्या सब लोग काम से अन्धे होकर व्याकुल हो रहे थे सो सुखी हो गये। शराब के नशे की भाँति काम सबके सिर पर सवार हो गया था। उसके उतर जाने से लोग होश मे आगये। रौद्ररूप के अधिष्ठाता के सामने काम की गति नही। सो सामना पडते ही डर गया। क्योकि दुराधर्प है। काम का नल उन पर चल नही सकता और न वह उनमे प्रवेश कर सकता था। भगवान् म ज्ञान वैराग्य की स्थिति सर्वदा बनी रहती है।

फिरत लाज कछु कहि नहि जाई। मरनु ठानि मन रचेसि उपाई ॥
प्रगटेसि तुरत रुचिर रितुराजा। कुसमित नव तरु राज बिराजा ॥३॥

अर्थ लौट चलने मे लज्जा है। कुछ कहा नही जाता। मन मे मरना निश्चय करके उसने उपाय रचा। तुरन्त सुन्दर वसन्त ऋतु को प्रकट किया। नयें आम के वृक्षो मे बौर लग गये। बडी शोभा हुई।

व्याख्या मरकर भी कार्य साधने की प्रतिज्ञा करके चले है और देखते ही डर गये। मन मे हुआ कि भाग जाँय पर लब्धप्रतिष्ठ वीर है। भागने म बडी लज्जा है। पुरुपार्थ चलता नही। क्या कहे, क्या न कहे। निश्चय किया कि कार्य न कर सकेंगे तो क्या हुआ मर तो जावेंगे। यशरूपी शरीर की रक्षा होगी। विरद बाँधि वर वीरु कहाई। चलेउ समर जिमि सुभट पराई। यह दशा तो नही होगी। अत उपाय रचा। जहा करि नहि जाई पाठ है वहाँ यह अर्थ करना चाहिए कि किये कुछ होता नही और लौट जाने से लज्जा है।

ब्रह्मदेव ने काम के मित्र रूप मे ऋतुराज की सृष्टि की। अत वसन्त का समय न होने पर भी कामदेव की प्रेरणा से वह प्रकट हो गया। तरुराज से यहाँ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



आम के वृक्ष या पारिजात का तात्पर्य है। आगे चलकर कहेंगे भी देखि रसाल बिटपबर साखा। आम फूलते ही वायुमण्डल सुवासित हो जाता है।

बन उपबन बापिका तडागा। परम सुभग दस दिसा बिभागा ॥
जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा। देखि मुएहुँ मन मनसिज जागा ॥४॥

अर्थ परम सुन्दर वन, उपवन, बावली, सरोवर और दिशाओ के विभाग प्रकट हुए। जहाँ तहाँ मानो प्रेम उमगा पडता है जिसे देखकर मरे हुए मन मे भी काम जाग जाय।

व्याख्या सुन्दर वन उपवन विहार के योग्य, वापिका तडाग जल क्रीडा के योग्य प्रकट हुए। दशदिसा विभाग को परम सुभग कहकर यावत् दृष्टिगोचर वस्तु की मनोहरता कही।

उद्दीपन का वर्णन हो रहा है। उद्दीपन ऐसा तीव्र है कि तनु भाव को प्राप्त हुआ भी काम जाग उठे मानो प्रसुप्त मात्र था। सब ओर से मानो प्रेम उमग पडता है। यहाँ मुएहुँमन कली है। इसका विकास आगे के छन्द मे होगा।

छ जागै मनोभव मुएहुँ मन बन सुभगता न परै कही।
सीतल सुगध सुमद मारुत मदन अनल सखा सही ॥
बिकसे सरन्हि बहु कज गुजत पुज मजुल मधुकरा।
कलहस पिक सुक सरस रव करि गान नाचहिं अपछरा ॥

अर्थ मरे हुए मन म भी काम जाग आवे। ऐसी वन की शोभा कही नही जा सकती। कामरूपी अग्नि का सच्चा मित्र, शीतल मन्द सुगन्ध युक्त पवन चलने लगा। सरोवर मे अनेक भाँति के कमल खिल गये। जिनपर सुन्दर भौरा के झुण्ड गुजार करने लगे। कलहम कोकिल और तोते रसीली बोली बोलने लगे और अप्सराएँ गाकर नाचने लगी।

व्याख्या मन का बीज वामना है। निर्वासन मन मरा हुआ है। क्याकि उसका बीज नष्ट हो चुका है। पर सुन्दरता मे वह प्राणदा शक्ति है कि मरा हुआ मन भी थोडी देर के लिए जाग उठा। अग्नि का सखा वायु प्रख्यात है। पर वह मच्चा मित्र नही है। दीप को वह बुझा देता है। यथा सबइ सहायक मबल के कोउ न अबल सहाय। बात बढावत अगिन को दीपहिं देत बुझाय। परन्तु शीतल मन्द सुगन्धित वायु कामाग्नि का सच्चा सखा है। कैसी ही दुर्बल कामाग्नि हो, पर मलयमारुत उस बढा ही देगा। कभी बुझावेगा नही। इसीलिए कहते हैं मदन अनल सखा सही। तालावा म कमल का खिलना, भौरो का गूँजना, कल्हम, कोकिल और शुक का बोलना। यह सब उद्दीपन है। अब आलम्बन कहते ह। करि गान नाचहिं अपछरा।

दो सकल कला करि कोटि बिधि, हारेउ सेन समेत।
चली न अचल समाधि सिव, कोपेउ हृदयनिकेत ॥८६॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ अपनी सना के साथ करोडो तरह से सब कला करके हार गया। पर शिवजी की अचल समाधि न डिगी। तब कामदेव कुपित हुआ।

व्याख्या काम का सेनापति शृङ्गार है और हावभावादि सैनिक हैं। यथा सेनाधिपो मे शृङ्गारो हावाभावाश्च सैनिका। भाव चार है १ स्थायी २ सञ्चारी ३ अनुभाव और ४ विभाव। स्थायी के नव, सञ्चारी के तैंतीस, विभाव के दो और अनुभाव के अन्तर्गत हाव के ग्यारह भेद हैं। कलाएँ चौसठ है। यथा 'बिव्वोकाद्यास्तथा हावाश्चतु षष्ठि कलास्तथा। का पु। सो सब कलाएँ और सब हाव भाव अप्सराओ के नृत्य मे दिखाए गये। काम के सैनिक मारगण जिनका काम धर्माचरण मे विघ्न करना है। वे भी समाधि मे विघ्न करके हार गये। पर समाधि चलायी न चली। क्रोध तो पहिले ही किया था। सो रुद्र के देखने मे भय का सञ्चार हुआ। क्रोध अभिभूत हो गया। मरण ठानकर उपाय किया सो भी खाली गया। 'अत काम पुन कुपित हुआ।

देखि रसाल विटप वर साखा। तेहि पर चढेउ मदन मन माखा ॥
सुमन चाप निज सर सधाने। अति रिपि ताकि स्रवन लगि ताने ॥१॥

अर्थ एक आम के वृक्ष की सुन्दर डाली देखकर कामदेव क्रोध करके उस पर चढ गया। उसने फूलो के धनुप पर अपने वाण चढाये और क्रोध से ताककर उन्हे कान तक तान लिया।

व्याख्या ऊँचे पर से निशाना भी खूब बैठता है और मारनेवाला भी सुरक्षित रहता है। इसलिए आम की शाखा पर चढ गया। वह शाखा भी बौर से सुशोभित थी। काम के मन मे बडा आमप हुआ। दूसरे का अहङ्कार न सहकर उसके नष्ट करने की इच्छा को आमर्प कहते हैं।

सधाने कहकर पाँचो वाणो का चलाना द्योतित किया। यथा हर्पण रोचनाख्यञ्च मोहन शोपण तथा। मारणश्चेति सञ्ज्ञाभिर्मुनिमोहकराण्यपि। का पु। हर्पण, रोचन, मोहन, शोपण और मारण। ये पाँचो वाण, उन्मादन नाम धनुप पर चढाकर कान तक ताना जिसमे गहरी चोट हो।

छाँडे विपम वान उर लागे। छूटि समाधि संभु तब जागे ॥
भयउ ईस मन छोभु विसेखी। नयन उघारि सकल दिसि देखी ॥२॥

अर्थ पाँच वाण मारे। वे शिवजी के हृदय मे लगे। तब समाधि भङ्ग हुई और शिवजी जाग पडे। शिवजी के मन म विशेप क्षोभ हुआ। तो आख खोलकर सब ओर देखा।

व्याख्या विपम वाण कहने से स्पष्ट पाँचो वाणो का प्रहार कहा। विपम का अर्थ भयङ्कर भी होता है सो भी ठीक है। काम के पाँचो वाण बडे भयङ्कर हैं। यथा त्वदाशुगाना यद्वीर्य तद्वीर्य न भविष्यति। वैष्णवानाञ्च रौद्राणा ब्रह्मास्त्राणाञ्च तादृशम्। इनका वीर्य वैष्णवास्त्र, रौद्रास्त्र और ब्रह्मास्त्र से भी अधिक है। ये पाँचो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

शिवजी के हृदय में लगे। समाधि छूट गई। ब्रह्मदेव का वरदान काम को था कि विष्णु, शिव और मैं भी तुम्हारे अस्त्र के वशवर्ती रहूँगा। यथा · अहं विष्णुर्हरश्चापि तवास्त्रवशवर्त्तिन । का पु । अत शिवजी की समाधि भी खुली और विशेष क्षोभ भी हुआ। समाधि के समय आँखें बन्द थी। अत खोलकर सब ओर देखा कि किधर से वाण आया।

सौरभ पल्लव मदन बिलोका। भयउ कोपु कपेउ त्रयलोका ॥
तब सिव तीसर नयन उघारा। चितवत काम भयउ जरिछारा ॥३॥

अर्थ आम के पत्तो मे छिपे हुए . काम को देखा। जो क्रोध हुआ तो तीनो लोक काँप उठे। तब शिवजी ने तीसरा नेत्र खोला। देखते ही काम जलकर भस्म हो गया।

व्याख्या काम शिकारियो की भाँति पेड पर चढा हुआ पत्तो मे छिपा था। पर शिवजी ने देख लिया। चोट करनेवाले का पता चल गया। काम धर्माचरण मे प्रख्यात विघ्नकारी है। समाधि इसी ने भङ्ग की। अत उस पर क्रोध हुआ। रुद्र के कोप से ही प्रलय होता है। अत उस प्रलयकारी कोप से तीनो लोक कॉप उठे। तीसरा नेत्र शिवजी कृपा के कारण बन्द रखते है। यथा देखन ते जरि जाहिं न लोक खोलत नैन कृपा उरधारे। मुद्राराक्षस। सो क्रोध होने से तीसरी आँख खुल गई। काम जल कर भस्म हो गया। शिव विरोध से काम की मृत्यु हुई।

हाहाकार भयउ जगभारी। डरपे सुर भए असुर सुखारी ॥
समुझि कामसुख सोचहि भोगी। भए अकटक साधक जोगी ॥४॥

अर्थ सारे जगत् मे बडा हाहाकार मच गया। देव डर गए और दैत्य सुखी हुए। भोगी लोग कामसुख का स्मरण करके सोच करने लगे और साधक योगियो का कण्टक जाता रहा।

व्याख्या सनातनी सृष्टि के लोप के भय से हाहाकार मच गया। क्योकि ब्रह्मदेव ने काम को आज्ञा दी थी कि तुम इस सुन्दर फूल के पाँच वाणो से, पुरुष और स्त्रियो को मोहित करते हुए सनातनी सृष्टि करो। यथा अनेन चारुरूपेण पुष्पवाणैश्च पञ्चभि । मोहयन् पुरुषान् स्त्रीश्च कुरु सृष्टि सनातनीम्। का पु । सो काम मारा गया। अब सृष्टि कैसे चलेगी ? काम के मारे जाने से देवताओ का भी काम बिगडा। शम्भुशुक्र सम्भूत सुत का योग ही नही रह गया। अब तारकासुर से कैसे रक्षा होगी ? अत देवता डरे और इसी कारण से असुर सुखी हुए कि अब तारकासुर का राज्य अचल हो गया। भोगियो को परिचित सुखो मे से सर्वश्रेष्ठ सुख के नाश से सोच हुआ और योगियो को बडे भारी योगविघ्नकारी के नाश से निर्भयता की प्राप्ति हुई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



छ जोगी अकटक भए पति गति सुनति रति मुरछित भई।
रोदति वदति बहु भाँति करुना करति संकर पहिं गई॥
अति प्रेम करि विनती विविध विधि जोरि कर सनमुख रही।
प्रभु आसुतोष कृपाल सिव अबला निरखि बोले सही॥

अर्थ योगी अकटक हुए। पति की गति सुनते ही रति मूर्च्छित हो गई। वह रोती कलपती अनेक प्रकार करुणा करती शङ्कर के पास गई। बडे ही प्रेम से अनेक प्रकार से विनती करके हाथ जोड सामने खडी हो गई। शीघ्र प्रसन्न होने वाले प्रभु कृपाल शिवजी स्त्री को देखकर अमोघ वचन बोले।

व्याख्या कामदेव ने विभाव प्रस्तुत कर दिया था। पर वहाँ अनुभाव ही नही हुआ। स्थायी भाव पुष्ट कैसे हो? अत रति का आगमन न हो सका था। उसने पति की गति सुनी। पहिले तो मूर्च्छित हो गई। पर संज्ञा प्राप्त करने पर रोती विलपती शिवजी के पास गई। रति उनके सामर्थ्य को जानती है। वे मार भी सकते हैं जिला भी सकते हैं। रति की असहायावस्था देखकर वे अमोघ वचन बोले। शिवजी प्रबल पर कोप करते हैं। अबल पर कृपा करते हैं।

दो अब ते रति तव नाथ कर, होइहि नामु अनगु।
बिनु वपु व्यापिहिं सबहि पुनि, सुनु निज मिलन प्रसगु॥८७॥

अर्थ हे रति! अब से तेरे पति का नाम अनग होगा। यह बिना शरीर के ही सबको व्यापेगा। अब तू अपने मिलने का प्रसङ्ग सुन।

व्याख्या वैधव्य दोष से मुक्त किया। यद्यपि शरीर नही रहेगा। पर क्रिया-कारिता रहेगी। तेरा पति काम जैसा पहिले सबको व्यापता था, वैसे ही व्यापेगा। क्रिया से कर्ता अनुमित होता है। बिना शरीर का होकर रहेगा। अत अनङ्ग नाम होगा अर्थात् स्थूल शरीर का अभाव होगा। परन्तु अशरीरी से मिलन नही होता सो भी होगा। वह प्रसङ्ग अब सुनो।

जब जदुबस कृस्न अवतारा। होइहि हरन महा महि भारा॥
कृस्न तनय होइहि पति तोरा। वचन अन्यथा होइ न मोरा॥१॥

अर्थ जब यदुवंश मे कृष्णावतार पृथ्वी के बडे भारी भार के हरण के लिए होगा तब तुम्हारा पति कृष्णजी का बेटा होगा। मेरा वचन अन्यथा नही हो सकता।

व्याख्या कृषि शब्द का अर्थ है भूलोक और 'ण' का अर्थ है निर्वृत्ति अर्थात् आनन्द या मोक्ष। इन दोनो भावो के योग स सनातन विष्णु ही सात्वत कृष्ण हैं। यथा कृषिर्भूवाचक शब्दो णश्च निर्वृत्तिवाचक। विष्णुस्तद्भावयोगाच्च कृष्णो भवति सात्वत। विष्णु का ही अपर नाम कृष्ण है। उनके दश अवतार प्रसिद्ध हैं। सो जब उनका यदुवंश म पृथ्वी का भार हरण के लिए अवतार होगा तब तेरा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


पति कृष्णजी का पुत्र होकर प्रद्युम्न नाम से जन्म ग्रहण करेगा। 'जब' कहने का भाव यह कि वह अवतार द्वापर के अन्त मे होगा और इस समय त्रेता का आदि है। अत तुम्हे दो युग का वियोग सहना पडेगा। उसके बाद प्रद्युम्न रूप से तुम्हें पति की प्राप्ति होगी। अब इस वाक्य मे कोई घटती बढती नही हो सकती। तुम्हे पति की प्राप्ति अवश्य होगी। पर दो युगो के बाद। जो मैने कह दिया वही होकर रहेगा। क्योकि मेरा वचन अन्यथा होता नही। अमोघ है इसीलिए कवि ने भी कहा अवला निरखि बोले सही।

रति गवनी सुनि संकर बानी। कथा अपर अब कहौ बखानी॥
देवन्ह समाचार सब पाए। ब्रह्मादिक बैकुंठ सिधाए॥२॥

अर्थ शिवजी की बात सुनकर रति चली गई। अब दूसरी कथा वर्णन करता हूं। जब समाचार देवताओ को मिला तब ब्रह्मा आदि देव वैकुण्ठ गये।

व्याख्या . रति ने समझ लिया कि अब अधिक कहना सुनना व्यर्थ है। जो कृपा होनी थी सो हो गई। सद्य पति की प्राप्ति न होने से रति को हर्ष नही है और मिलने की ध्रुव आशा है। इसलिए विषाद भी नहीं। रोती गाती आई थी। शान्त होकर चली गई। रति की कथा समाप्त हुई। सुरन्ह कही निज बिपति सब से प्रसङ्ग छोडा था। अब वही से फिर प्रसङ्ग उठाते है कि यह सब समाचार अर्थात् कामदाह और रति के वरदान का समाचार पाया। तो सब देव मिलकर ब्रह्मदेव के पास गये। वे सबको लिये दिये विष्णु के पास गये। बरियाई ब्याह कराना है। विष्णु पर शिवजी की प्रीति है। विष्णु वल्लभ कहलाते हैं। इनको ले चलने से शिवजी पर अधिक दबाव पडेगा। इसलिए सब लोग वैकुण्ठ गये।

सब सुर बिस्नु बिरंचि समेता। गए जहाँ सिव कृपा निकेता॥
पृथक पृथक तिन्ह कीन्ह प्रसंसा। भए प्रसन्न चन्द्र अवतंसा॥३॥

अर्थ विष्णु और ब्रह्मा सहित सब देवगण वहाँ गये जहाँ कृपा के घर शिवजी थे। उन लोगो ने अलग-अलग स्तुति की तो चन्द्रभूषण प्रसन्न हो गये।

व्याख्या . वहाँ से सब लोगो ने विष्णु को साथ लिया और अब ब्रह्मदेव और विष्णु को साथ लेकर जहाँ शिवजी थे वहाँ गये। कृपानिकेत : विशेषण देकर कार्य-सिद्धि दिखलायी कृपानिकेत हैं। अवश्य देवताओं पर कृपा करेंगे। उन देवताओ ने आदरातिशय से अलग अलग स्तुति की। बडी भारी स्तुति करके भगवान् चन्द्रावतंस शिवजी को प्रसन्न कर लिया। चन्द्रावतंस है। अवश्य देवताओ का तापहरण करेंगे।

बोले कृपासिंधु बृषकेतू। कहहु अमर आए केहि हेतू॥
कह बिधि तुम प्रभु अंतरजामी। तदपि भगति बस बिनवौं स्वामी॥४॥

अर्थ कृपासागर शिवजी कहने लगे हे अमरगण! कहो किसलिए आये। ब्रह्मदेव ने कहा हे प्रभो! आप अन्तर्यामी हैं फिर भी हे स्वामिन्! मैं भक्तिवश विनती करता हूं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या वृषो हि भगवान् धर्म । भगवान् धर्म ही वृष है। वह है केतु ध्वजा जिसके ऐसे शिवजी को वृषकेतु कहते है, अर्थात् जिधर धर्म रहता है उधर ही शिवजी रहते है और कृपासिन्धु भी है। नित्य नई नई तरङ्गें कृपा की उठा करती है। देवताओ की स्तुति सुनकर बोले। अमर सम्बोधन से अभयदान दे रहे है। जिस भाँति रघुनाथजी ने विभीपण को आते ही लङ्केश कहकर सम्बोधन किया था फिर आने का कारण पूछने है।

ब्रह्मदेव के कहने से ही सब कुछ हो रहा है। अत वे ही प्रमुख वक्ता है, वाल कि आप प्रभु है, सब कुछ करने म समर्थ हैं और सबके अन्तर के प्रेरक भी हैं। आप ही के प्रेरणा से आया भी हूँ। फिर भी विनय करना भक्त का कर्तव्य है।

दो सकल सुरन्ह के हृदय अस, संकर परम उछाहु।
निज नयनन्हि देखा चहै, नाथ तुम्हार विवाहु ॥८८॥

अर्थ हे कल्याण करनेवाले, हे नाथ! सब देवताओ के मन मे इस बात का बडा उत्साह है। सब चाहते है कि तुम्हारा विवाह अपनी आँखो से देखें।

व्याख्या मैंने तो पहिला व्याह जो सती के साथ हुआ था सो देखा है। उस मन्वन्तर के देवता अब रहे नही। ये इस मन्वन्तर के देवता हैं। इन्होने नही देखा है। केवल तुम्हारे व्याह की कथा सुनते आये है। अत ये लाग आपका व्याह अपनी आँखो से देखना चाहते हं। यह विनय की रीति है कि अन्य कारणो के रहते हुए भी अपनी प्रीति को ही आगे रक्खा।

यह उत्सव देखिअ भरि लोचन। सोइ कछु करहु मदन मद मोचन ॥
काम जारि रति कहु बर दीन्हा। कृपासिधु यह अति भल कीन्हा ॥१॥

अर्थ हे कामदेव का मद भङ्ग करनेवाले! आप ऐसा कुछ कीजिये जिसम हम लोग उस उत्सव को आख भरकर देखें। हे कृपासिन्धु! आपने कामदेव को भस्मकर रति को जो वर दिया सो वहुत अच्छा किया।

व्याख्या आप काम का मद भङ्ग करनेवाले है। आपको विवाह से कोई प्रयोजन नही है पर भक्तो की रुचि रखने के लिए विवाह की ओर अपनी प्रवृत्ति कीजिये और इसम शीघ्रता हो, जिसम दवता लोग आख भरकर देख ल और अपने जन्म को सफल कर। नही तो कौन जाने तारकासुर द्वारा किस समय कौन गति इनकी हो। फिर ये उस उत्सव का न देख सकगे।

अपराधी को दण्ड देना भली बात है। यथा जगजय मद निदरेसि हर, पायेसि फर तेउ। काम ने जैसा किया वैसा पाया पर रति का जो वरदान आपने दिया यह और भी अच्छा हुआ। सनातनी सृष्टि का लोप भी न हुआ और काम भस्म भी हो गया।

सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ ॥
पारवती तपु कीन्ह अपारा। करहु तासु अब अंगीकारा ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : हे नाथ ! यह प्रभुओ का सहज स्वभाव है कि पहिले दण्ड देते हैं और पीछे से कृपा करते है। पारवती ने अपार तप किया है। अव उसे अङ्गीकार कीजिये।

व्याख्या : यह कार्य आपके सदृश हुआ। वडे लोग पहिले दण्ड देते हैं पीछे से कृपा करते हैं। यह उनका सहज स्वभाव होता है। वेदमार्ग की रक्षा के लिए दण्ड देते हैं। यथा : जौं नहिं दंड करौं खल तोरा। भ्रष्ट होय श्रुति मारग मोरा। पर जिसे दण्ड मिला उसे दुःख हुआ यह समझकर पीछे से कृपा करते है। वस्तुतस्तु उनका कोप किसी पर नही होता। कोप भी उनकी कृपा ही है। काम को भस्म किया यह सासत करने का उदाहरण है। उसकी स्त्री रति को वर दिया यह पुनि कीन्ह पसाऊ का उदाहरण है। इसी भाँति सती की साधारण ताडना नहीं हुई। अव उन्होंने पार्वती होकर अपार तप किया है। यथा : अस तप काहु न कीन्ह भवानी। भए अनेक धीर मुनि ज्ञानी। अव उन पर कृपा होनी चाहिए। उन्हे अङ्गीकार करना चाहिए। रुद्राणीपद के योग्य तपस्या हो चुकी।

सुनि विधि विनय समुझि प्रभु वानी। ऐसइ होउ कहा सुखमानी ॥
तव देवन्ह दुंदुभी वजाई। वरषि सुमन जयजय सुरसाई ॥३॥

अर्थ : ब्रह्मा की विनती सुनकर और प्रभु की वाणी समझकर शिवजी ने सुख मानकर कहा : एवमस्तु। तव देवताओ ने नगाडे वजाए। फूलो की वर्षा की और कहने लगे : हे देवताओ के स्वामी ! तुम्हारी जय हो जय हो।

व्याख्या : ब्रह्मा विश्व के कर्ता हैं। उनके विनय का मूल्य है। जिस पर प्रभु ने जाते समय जो कहा था कि हर ! तुम्हार पन रहेऊ। अव उर राखहु जो हम कहेऊ। उसे समझा कि इसी अवसर के लिए ऐसा आदेश हुआ था। वह परिस्थिति सामने आगई। अत शिवजी ने स्वीकार कर लिया। एवमस्तु कहने की देर थी कि देवताओ ने जीत का नगाड़ा वजा दिया। कामदाह से डर गये थे। असुर लोग सुखी हो गये थे सो पासा पलट गया। जीत के मार्ग का भारी असमञ्जस दूर हुआ। अथवा व्याह की स्वीकृति का उत्सव मनाया जा रहा है, इसलिए पुष्प वर्षा हो रही है।

अवसर जानि सप्तरिषि आए। तुरतहि विधि गिरि भवन पठाए ॥
प्रथम गए जहँ रही भवानी। वोले मधुर वचन छलसानी ॥४॥

अर्थ : अवसर जानकर सप्तर्षि आये। ब्रह्मदेव ने उन्हे तुरन्त हिमवन्त के घर भेज दिया। वे पहले वहाँ गए जहाँ भवानी थी और छल से भरे हुए मीठे वचन वोले।

व्याख्या : सप्तर्षि भी अवसर देखते रहे। जगदम्बा ने कहा है : रहिं न जाइ विनु किए वरेखी। सो हम लोग ही वरेखी करेंगे। यही अभिप्राय है कि इस महा-मङ्गल मे हम भी किसी प्रकार से निमित्त वनें। अव अवसर आया है कि ब्राह्मण लग्नपत्री लिखाने के लिए भेजा जाय तो सप्तर्षि पहुँच गये। ब्रह्मदेव को स्वय जल्दी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पडो थी परन्तु हिमवान् के यहाँ भेजा। क्या कहकर भेजा ? यह बात यहाँ नही लिखते। कार्य देखकर आपही पता लग जायगा।

भगवती के मुख से प्रेममय उत्तर सुनने के लिए उत्साह से भरे हुए पहले भवानी के पास पहुँचे। छल से सना हुआ मीठा वचन बोले। भावोपहत न होने से यहाँ छलयुक्त वचन भी प्रशस्त है। जगदम्बा के मुख से प्रीति और विश्वासयुक्त वचन सुनना चाहते हैं। अतएव अतिमूढ की भाँति बात बोलते हैं।

दो. कहा हमार न सुनेउ तब, नारद कें उपदेस।
अब भा झूठ तुम्हार पनु, जारेउ काम महेस ॥८९॥

अर्थ नारद के उपदेश से तब तुमने हमारा कहना नही सुना। अब तुम्हारा प्रण झूठा हो गया। क्योकि महेश ने काम को जला दिया।

व्याख्या उस समय हमारी बात सुनने से विवाह सार्थक होता। नारद के उपदेश से तुमने सहज उदासी पति चाहा। उस उदासी ने काम को ही भस्म कर दिया। विवाह ही निष्प्रयोजन हो गया। ब्राह्म विवाह मे भी कन्यादान अथवा प्रतिग्रह मे काम की ही प्रधानता है। मन्त्र पढा जाता है। को दात् कस्मा अदात्, कामोदात् कामायादात् कामो दाता काम प्रतिगृहीता कामैतत्ते। किसने दिया किसको दिया, काम को दिया। हे काम! यह सब तेरे लिए है। जब काम ही नही तब विवाह क्या ? पुत्रप्रयोजना भार्या। पुत्र के लिए ही स्त्री है। अत जो तुमने प्रण किया था कि बरौ सभु न त रहौ कुमारी। वह प्रण झूठ पड गया। क्योकि अब तो विवाह होना ही बन्द हो जाने का लक्षण है।

सुनि बोली मुसुकाइ भवानी। उचित कहेउ मुनिवर बिग्यानी ॥
तुम्हरे जान काम अब जारा। अब लगि सभु रहे सबिकारा ॥१॥

अर्थ यह सुनकर भवानी मुसकरा कर बोली हे विज्ञानी मुनिश्वरो! तुमने ठीक कहा। तुम्हारी समझ मे शिवजी ने अब काम को जलाया है। अब तक शिवजी सविकार रहे।

व्याख्या मुसकराहट मुनियो की अज्ञान भरी उक्ति पर अथवा इस बात पर कि पहिली परीक्षा से सन्तुष्ट न हुए अब फिर परीक्षा लेने आये। 'उचित कहेउ' का भाव यह कि मननशील और ब्रह्मलीन महात्माओ के ऐसे विचार! व्यङ्गोक्ति से कहती हैं कि तुम लोग अनुचित बोल रहे हो। तुम लोग विज्ञानी मुनि होकर भी आज तक शिवजी को कामवश समझते थे ? शिवजी का स्वरूपज्ञान तुम लोगो को हुआ ही नही। मुनि विज्ञानी कैसे हुए ?

हमरे जान सदासिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी ॥
जौ मै सिव सेयेउँ असजानी। प्रीति समेत करम मन बानी ॥२॥

अर्थ हमारा समझ मे तो सदा शिव सदा योगी है। जन्म रहित, निन्दा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


रहित, काम रहित और भोग रहित हैं। जो मैंने यह समझकर मन वचन और कर्म से शिव जी की सेवा प्रीति से की हो।

व्याख्या : 'हमरे जान' का भाव यह है कि तुम्हे मेरे स्वरूप का भी ज्ञान नहीं है। विवाह की इच्छा मे यहाँ काम का प्रश्न ही नही है। लौकिक प्रीति मे काम का प्रश्न उठता है। मैंने तो शिवजी को सदा योगी, अकाम और अभोगी समझकर उनके लिए तप किया है। काम के जलने से विवाह मे क्या बाधा हुई ? मेरे लिए तो काम सदा ही दग्ध है। रागद्वेषयुक्त पुरुष का ही जन्म होता है। उसी की निन्दा होती है। वह सकाम होता है। भोगलिप्त होता है। शिवजी द्वन्द्व से परे हैं। अज, अनवद्य, अकाम और अभोगी है। यही जानकर मैंने उनकी सेवा प्रीति के साथ मनसा वाचा कर्मणा की है।

तौ हमार पन सुनहु मुनीसा। करिहहि सत्य कृपानिधि ईसा ॥
तुम्ह जो कहेउ हर जारेउ मारा। सो अति बड़ अविवेक तुम्हारा ॥३॥

अर्थ : तो हे मुनीश्वरो ! सुनो, कृपासागर शिवजी मेरी प्रतिज्ञा को सत्य करेंगे और तुमने जो यह कहा कि शिवजी ने काम को भस्म कर दिया। सो यह तुम्हारा बडा भारी अविवेक है।

व्याख्या : तुमने क्या समझा कि मैंने शिवजी को सकाम और भोगी समझ कर सेवा की थी ? मैं जिन गुणो पर लुब्ध थी वे ये है कि शिवजी, अजन्मा, निर्दोष, अकाम और अभोगी है। अब अपने प्रण को प्रमाण देती है कि यदि वह बात सत्य है तो मेरे प्रण को कृपानिधान शङ्कर पूरा करेंगे। तुम्हारे झूठ कह देने से झूठ न हो जायगा। यदि नारद के मुख से निकला हुआ षडक्षर मन्त्र मनन करनेवाले का त्राण करनेवाला हो और यदि भक्तिपूर्वक मैंने जप किया हो तो हर कृपा करे। यथा : यदि नारदवक्त्रोत्थो मन्त्रोऽयं स्यात्षडक्षरः। यदि भक्त्या मया जप्त हरस्तेन प्रसीदतु।

मैंने कामवासना से शङ्कर की उपासना की है : ऐसी धारणा तुम लोगो का बडा अविवेक है। पर शङ्कर मे अभिमान का आरोप करना कि उन्होने काम को जलाया : यह तुम्हारा और बडा अविवेक है। दीपक पतङ्गो को जलाने नही जाता : वे स्वयं दीपक मे जा जाकर जलते हैं।

तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाय नहि काऊ ॥
गए समीप सो अवसि नसाई। अस मनमथ महेस की नाई ॥४॥

अर्थ : अग्नि का सहज स्वभाव ही गरम है। पाला उसके निकट कभी नही जाता। और यदि पास जाय तो अवश्य नष्ट होगा। यही गति काम और महादेव जी की है।

व्याख्या : अग्नि का स्वभाव ही पाला के एकदम विपरीत है अर्थात् उष्ण है। पाला सबके निकट जाता है। आग के निकट नही जाता। जहाँ आग जलती

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रहती है उसके दो चार हाथ दूर तक पाला नही गिरता। इसी भाँति शिवजी का स्वभाव ही निर्वासिन कामनाशन है। काम सबके निकट जाता है शिवजी के समीप नही फटकता। निकट जायगा तो जलेगा ही इसमे शिवजी का क्या अपराध है ?

दो हिय हरषे मुनिवचन सुनि, देखि प्रीति बिस्वास।
चले भवानी नाइ सिर, गये हिमाचल पास ॥९०॥

अर्थ बात सुनकर और प्रीति विश्वास देखकर मुनि लोग हर्षित हुए। भवानी को सिर नवाकर हिमाचल के पास गये।

व्याख्या मुनिजी भवानी के मुख से प्रीति और विश्वास के उद्गार सुनने के लिए ही आये थे। प्रीति देखो कि शिवजी ने काम को जलाया यह दोषारोपण नही सह सकी। तुरन्त बोली यह अति बड अविवेक तुम्हारा। विश्वास देखा कि गुरु रूप से नारद पर और इष्टदेव रूप म शिवजी पर कैसा अटल विश्वास है। कहती है तौ हमार प्रण सुनहु मुनीसा। करिहहिं सत्य कृपानिधि ईसा। प्रथम गये जहँ रही भवानी। से उपक्रम और चले भवानी नाइ सिर। से उपसहार किया। तुरतहि विधि गिरि भवन पठाए का साफल्य है। गये हिमाचल पास।

सबु प्रसगु गिरिपतिहि सुनावा। मदन दहन सुनि अति दुख पावा॥
बहुरि कहेउ रति कर बरदाना। सुनि हिमवत बहुत सुखु माना ॥१॥

अर्थ हिमाचल को सारी बात कह सुनाई। काम के भस्म होने की बात सुनकर बडे दु खी हुए। फिर रति के वरदान की बात कही। उसे सुनकर हिमवान् ने बहुत सुख माना।

व्याख्या इस व्याह मे ये ही अगुआ हैं। इन्होने ही आकर शिवजी की स्वीकृति कही और गिरिजा को घर लाने के लिए कहा था। अब फिर इतने दिन के बाद आये है। अत उसके बाद की वरपक्ष की सब घटनाएँ सुनाई। काम के जलने का समाचार सुनकर हिमाचल बडे दु खी हुए। इतने दिन की बडी तपस्या लडकी की व्यर्थ गई। फिर रति का वरदान सुनकर बडे प्रसन्न हुए कि कन्या की तपस्या सफल हुई। माता पिता की अब भी वही लौकिकी दृष्टि है।

हृदय बिचारि सभु प्रभुताई। सादर मुनिवर लिए बोलाई॥
सुदिनु सुनखतु सुघरी सोचाई। बेगि बेदबिधि लगन धराई ॥२॥

अर्थ शिवजी की प्रभुता को मन मे सोचकर हिमाचल ने मुनियो को आदर सहित बुलवाया और शुभ दिन, शुभ नक्षत्र और शुभ घडी सोधवायी। जल्दी वेद की विधि से लग्न निश्चय कराया।

व्याख्या पहिले यही भाव मन मे आया कि वर वस्तुत उदासीन है। पर जब उनकी प्रभुताई का विचार किया कि काम को मार भी सकते है, जिला भी सकते हैं तो सब शङ्का जाती रही। ऐसे समर्थ से जिसकी प्रभुता काम पर भी चले अवश्य व्याह करना चाहिए। अत सादर ज्योतिर्विद् मुनि बुलाये गये। वैशाख

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुदी पञ्चमी गुरुवार, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र, मेष लग्न, भरणी के आदि मे सूर्य यही लग्न मुनियो ने स्थिर किया। यथा माधवे मासि पञ्चम्या सिते पक्षे गुरोदिने। चन्द्रे चोत्तरफाल्गुन्या भरण्यादौ स्थिते रवौ। का पु। चौथे दिन ब्याह का निश्चय हुआ। दूर का लग्न ठीक नही।

पत्री सप्तरिषिन्ह सो दीन्ही। गहिपद विनय हिमाचल कीन्ही ॥
जाइ बिधिहि तिन्ह दीन्ही पाती। बाँचत प्रीति न हृदय समाती ॥३॥

अर्थ लग्नपत्रिका ऋषियो को दी और हिमाचल ने पाँव पकडकर विनती की। वह पत्री उन्हाने जाकर ब्रह्मदेव को दी। पढते समय हृदय मे प्रेम समाता नही।

व्याख्या · वह लग्नपत्री सप्तर्षि को दी गई। उन्ही के हाथ भेजना है। सप्तर्षि को आज्ञा कैसे दे। इसलिए चरण पकडकर विनय की। विधि ने ही हिमालय के घर भेजा था। उन्हे छोडकर समधी कौन बने? सो लग्नपत्री लाकर ब्रह्मदेव को सप्तर्षियो ने दी। शङ्कर के चरणो मे अतिप्रेम है। अत लग्नपत्री बाँचने मे प्रेम का उद्गार हो आया।

लगन बाँचि अज सबहि सुनाई। हरषे मुनि सब सुर समुदाई ॥
सुमन वृष्टि नभ बाजन बाजे। मगल कलस दसहु दिसि साजे ॥४॥

अर्थ लग्न पढकर ब्रह्मा जी ने सबको सुनाया। सब मुनि और देवगण हर्षित हुए। आकाश से फूलो की वर्षा हुई। बाजे बजने लगे और दशो दिशाओ मे मङ्गल कलश सजाये गये।

व्याख्या सकल सुरन्ह के हृदय अस सकर परम उछाहु। निज नयनन्ह देखा चहहि नाथ तुम्हार बिबाहु। सब देवताओ के हृदय मे शिवजी का विवाह देखने का बडा उत्साह था। इसलिए सबको लग्नपत्री बाँचकर सुनाई। लग्न निश्चित सुनकर देवसमाज मे बडा हर्ष हुआ। शिवजी की विवाह के लिए स्वीकृति देते ही देवताओ ने दुन्दुभी बजायी थी। पुष्पवृष्टि की थी। यथा तब देवन्ह दुदुभी बजाई। बरषि सुमन जय जय सुरसाई। अब लग्नपत्री सुनकर फिर पुष्पवृष्टि हो रही है, बाजे बज रहे है। ब्याह को चार ही दिन हैं। इसलिए दशो दिशाओ मे दिक्पालो ने मङ्गलकलश स्थापित किए। दशो दिशाओ मे परम उत्साह है।

दो लगे सँवारन सकल सुर, बाहन विविध बिमान।
होहिं सगुन मगल सुभद, करहि अपछरा गान ॥९१॥

अर्थ सब देवता अपने भाँति भाँति के वाहन और विमान साजने लगे और शुभ देनेवाले सगुन मगल होने लगे, अप्सराएँ गाने लगी।

व्याख्या . ब्रह्मदेव ने सब देवताओ के पास रुद्रगणो द्वारा नेवता भेजा। देवताओ ने अपना अपना वाहन और विमान साजा। अपना साज समाज ठीक किया। ठाट बाट से बारात करनी है, हृदय मे उत्साह है। अप्सराएँ मङ्गल गान गाने लगी। जो बरात के लिए बाहर निकलता है, उसे भले भले सगुन होते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यथा विधि पठाए जहँ तहँ सब सिवगन धावन। सुनि हरखहिं सुर बहहिं निसान बजावन। रचहिं विमान बनाइ सगुन पावहिं भले। निजनिज साज समाज साजि सुरगन चले।

सिवहि संभु गन करहिं सिंगारा। जटा मुकुट अहि मौरु सँवारा॥
कुंडल कंकन पहिरे ब्याला। तन बिभूति पट केहरि छाला॥१॥

अर्थ शिवजी का शृङ्गार उनके गण कर रहे हैं। जटा के मुकुट में साँपो का मौर सँवारा गया। साँप के ही कुण्डल और कंकन पहने। शरीर पर विभूति और कपडे के स्थान पर व्याघ्राम्बर था।

व्याख्या : बारातियों का साज बाज कहकर दुलहे का शृङ्गार कहते हैं। शम्भुगण शिवजी का शृङ्गार करने लगे। दूसरे को उनके शृङ्गार की विधि का पता नहीं और न गणो को सांसारिक शृङ्गार की विधि का पता है। सो जटा मुकुटाकार लपेटी गई और सब शृङ्गारो के पहिले ही रङ्ग विरङ्गी साँपो का मौर पहना दिया गया। माला का भी काम साँपो से ही लिया गया। सँपेले कान मे कुण्डल और हाथ मे कगन की जगह पहनाये गये क्योंकि गणो ने कान मे कुण्डल हाथ मे कगन पहिने तथा मौर बाँधे दुलहो को देखा था। अङ्गराग की जगह विभूति लगाई गई। और जामा जोडा की जगह व्याघ्राम्बर से काम लिया गया। व्याह करने जा रहे हैं अत नग्न रहना ठीक नही। यह शृङ्गार का कौतुक हो रहा है।

ससि ललाट सुंदर सिर गंगा। नयन तीन उपबीत भुजंगा॥
गरल कंठ उर नर सिर माला। असिव बेष सिवधाम कृपाला॥२॥

अर्थ मस्तक पर चन्द्रमा। सिर मे सुन्दर गङ्गाजी। तीन नेत्र और साँपो का जनेऊ। कण्ठ मे विष और गले मे नरमुण्डों की माला। वेष तो अमङ्गल है पर कृपाल कल्याण के धाम हैं।

व्याख्या दो वस्तुएँ अनूठी भी थी। एक ललाट पर चन्द्रमा और दूसरी शिरा पर गङ्गाजी। सो ये भी चण्डपुरुषार्थ के द्योतक हैं। दुलहे के शृङ्गार योग्य नही। इधर तीन आँखें और साँपो के यज्ञोपवीत से करालता बढ गई। गरल कण्ठ मे था ही। जब शृङ्गार की पूर्ति के लिए मुण्डमाल पहना दिया गया तो भयानक अमङ्गल वेष हो गया और बडे क्रूर जँचने लगे। पर अलौकिकता यह कि जिसका वेष ऐसा अमङ्गल, वे स्वय मङ्गलमय है। जिसका शृङ्गार ऐसा कराल है वे स्वय कृपाल हैं। लोक मे ठीक इसके विपरीत है। सौम्य को सौम्य वेष और कराल को कराल वेष प्रिय लगता है। पर, यद्यप्यमङ्गलानीह सेवते शङ्कर सदा। तथापि मङ्गलन्तस्य

१. शिवजी तमोगुण के अधिष्ठाता होने पर भी त्रिगुणातीत हैं इसीलिए अशुभ भेष शिवधाम है। भस्म, गङ्गाजी, तृतीय नयन, सर्प और डमरू के व्याज से पाँचो तत्त्वो को धारण किए हुए हैं। चन्द्र और गरल के व्याज से सञ्जीवनी और मारण शक्ति जो सब शक्तियो की सार हैं : धारण किये हुए हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



स्मरणादेव जायते। शिव. पु०। यद्यपि शङ्कर अमङ्गलों का ही सेवन करते हैं परन्तु उनके स्मरण से मङ्गल होता है।

कर त्रिसूल[1] अरु डमरु बिराजा। चले बसहँ चढ़ि बाजहिं बाजा ॥
देखि सिवहि सुरतिय मुसुकाहीं। बर लायक दुलहिनि जग नाहीं ॥३॥

अर्थ : हाथ मे त्रिशूल और डमरू शोभायमान हुआ। बैल पर चढकर चले। बाजे बजने लगे। शिवजी को देखकर देवताओं की स्त्रियाँ मुसकराईं कि वर के योग्य ससार मे दुलहिन नही है।

व्याख्या भयानकता मे यदि कोई कमी रह गई तो वह त्रिशूल से पूरी कर दी गई और आनन्द का समय है कदाचित् ताण्डव की आवश्यता पड जाय। अत हाथ मे डमरू भी दे दिया गया। यथा ताडवित नृत्य पर डमरू डिमि डिमि प्रवर अशुभ इव भाँति कल्यान रासी। सवारी के लिए बैल खड़ा ही था उसी पर सवार हो गये। दुलहे की सवारी पहिले ही चली। बाजा पीछे बज रहा है। शची सारदा आदिमुसकराईं कि वाह रे वर का शृङ्गार। इनके अनुरूप दुलहिन ससार म कहाँ मिलेगी? अनुपयुक्त रूप रचना से आह्लाद युक्त मनोविकार हुआ। 'मुसुकाहीं' से उत्तम हास कहा।

बिस्नु बिरंचि आदि सुरब्राता। चढ़ि चढ़ि बाहन चले बराता ॥
सुर समाज सब भाँति अनूपा। नहिं बरात दूलह अनुरूपा ॥४॥

अर्थ विष्णु और ब्रह्मा आदि देवसमूह वाहनों पर चढ चढकर बारात मे चले। समाज सब प्रकार से अनुपम था। फिर भी बारात दुलहे के अनुरूप नहीं थी।

व्याख्या पहिले दुलहा, उसके पीछे बाजा और उसके भी पीछे विष्णु, ब्रह्मादि बराती चले। अनुरूप दुलहिन तो मिलने की नही, बारात भी अनुरूप नही। देवताओं का समाज अति सुन्दर था। बारात का नियम पालन के लिए देवताओं ने चारो ओर से शिवजी को घेर लिया। यह समाज सात्त्विकों के इष्टदेवों का है। यथा यजन्ते सात्त्विका देवान्।

दो० बिस्नु कहा अस बिहँसि तब, बोलि सकल दिसिराज।
बिलग बिलग होइ चलहु सब, निज निज सहित समाज ॥९२॥

अर्थ तब विष्णु ने सब दिक्पालों को बुलाया और हँसकर कहा कि सब लोग अलग अलग अपने अपने समाज के साथ चलो।

व्याख्या विकृत वेषभूषा और वाक्य ही हास्यरस का आलम्बन है। सो दूल्हे के वेष भूषा पर विष्णु विहँसे। विहँसना मध्यम हास है। दस दिक्पालों के

---

१ त्रिशूल आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक शूलों का प्रतीक है। वृष धर्म का प्रतीक है। भुजङ्ग अनन्त्य का प्रतीक है। नरशिरमाल मनुष्य मात्र का प्रतीक है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



धकार मे ही सब देवता हैं। विष्णु ने सब दिक्पालो को बुलाकर कहा कि अपना-ना समाज लेकर अलग-अलग होकर चलो। जिसमे स्पष्ट प्रतीत हो कि यह अमुक क्पाल का समाज है। अपनी अपनी तैयारी और त्रुटि का अपने को ही जिम्मेदार ना चाहिए। एक की त्रुटि के सब जिम्मेदार न समझे जायँ। आपलोग अपना-ना वाहन विमानादि साजकर आये हैं। अत सबकी अलग-अलग शोभा दिखाई । शिवजी स्वय ईशान कोण के दिक्पाल हैं। इनकी शोभा अलग रहे।

अनुहारि बरात न भाई। हँसी करैहहु पर पुर जाई ॥
स्नु वचन सुनि सुर मुसुकाने। निज निज सेन सहित बिलगाने ॥१॥

अर्थ यह बारात वर के मेल की नही है। पराए गाँव मे चलकर हँसी राओगे। विष्णु की बात सुनकर सब देवता मुस्कुराए और अपनी सेना लेकर ग हो गये।

व्याख्या बारात के अननुरूप वर को देखकर यही हँसी हो रही है। कन्या । के लोग हँसी के लिए वर पक्ष का छिद्रान्वेषण करते हैं। सो हमलोगो के बीच के चलने से सबकी हँसी होगी। विवाह के समय भी ये इसी रूप से चले तो इनकी ी कराने की इच्छा है। अत इन्हे अलग चलने दो। परन्तु वर को छोडकर रात चल भी नही सकती। अतः सब कोई अपना अपना समाज अलग करके चलो समे स्पष्ट प्रतीत हो कि कौन समाज किसका है। यथा : विबुध बोलि हरि कहेउ कट पुर आएउ। आपन आपन साज सर्वाहि बिलगाएउ।

यह वचन भी समयानुरूप ही है। जब सब लोग विलग विलग हो जायँगे शिवजी को अपना समाज बुलाना पडेगा। तब हँसी मे जो कुछ कसर है सो पूरी कर देने की विष्णु भगवान् की इच्छा है। अत देवता लोग मुस्कराए र विष्णु की आज्ञानुसार बारात सजी।

नही मन महेसु मुमुकाही। हरि के बिंग वचन नहि जाही ॥
ति प्रिय वचन सुनत प्रिय केरे। भृंगिहि प्रेरि सकल गन टेरे ॥२॥

अर्थ शिवजी मन ही मन मुस्कराते है कि हरि का व्यङ्ग बोलना नही टता। प्रिय के अति प्यारे वचन सुनकर भृङ्गी को भेजकर सब गणो को ला लिया।

व्याख्या देवियाँ मुस्कराई। विष्णु विहँसे। फिर सब देवता मुस्कराए। अब स्यरस की पूर्ति मे केवल वर के हँसने की देर थी। सो वह भी मन ही मन कराते रहे हैं। हरि के वचन मे व्यङ्ग रहता है। सो यहाँ भी इनके वचन मे ङ्ग्य है। इनकी इच्छा है कि हमारे गण भी बारात मे सम्मिलित हो। इस साह से वञ्चित न रहे और बारात भी मेरे जैसी विचित्र दिखाई पडे। शिवजी । आज्ञा भृङ्गीगण को हुई कि सब गणो को बुलाओ। अर्थात् पहिले केवल मुख्य ा साथ रहे। अब सबके लिए आज्ञा हुई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सिव अनुसासनु सुनि सब आए। प्रभुपद जलज सीस तिन्ह नाए ॥
नाना वाहन नाना बेषा। बिहँसे सिव समाज निज देखा ॥३॥

अर्थ : शिवजी की आज्ञा सुनकर सब आये। और उन्होंने प्रभु के चरण कमलों में सिर झुकाया। उनके नाना प्रकार के वाहन थे और नाना प्रकार का वेष था। शिवजी अपना समाज देखकर हँसे।

व्याख्या : ये दूसरे का अनुशासन सुननेवाले नहीं। शिवजी का अनुशासन टालनेवाले भी नहीं। भृङ्गी द्वारा सब बुलाये गये। इसलिए सब आये। प्रभु के चरणों में प्रणाम करते हैं और किसी को नहीं। सेना का नियम है कि एक सा वाहन और एक सा वेष प्रयत्नपूर्वक रक्खा जाता है। परन्तु शङ्कर की सेना विलक्षण है। न एक सा वाहन और न एक सा वेष है। यहाँ सेना और समाज समानार्थक शब्द हैं। यथा : बिलग बिलग होइ चलहु सब, निज निज सहित समाज तथा : निज निज सेन सहित बिलगाने। व्यङ्ग वचन सुनकर शिवजी तो मन ही मन मुसकराए थे। अब अपना समाज देखा तो हँस पडे।

कोउ मुखहीन बिपुल मुख काहू। बिनु पद कर कोउ बहु पद बाहू ॥
बिपुल नयन कोउ नयन बिहीना। रिष्ट पुष्ट कोउ अति तनखीना ॥४॥

अर्थ : कोई बिना मुख का है और किसी को कई मुख हैं। कोई बिना हाथ पाँव का है और किसी को बहुत से हाथ पाँव हैं। किसी को बहुत सी आँखें हैं किसी को एक भी नहीं। कोई बडा मोटा है और कोई अत्यन्त दुबला पतला है।

व्याख्या : अति आश्चर्यमय दृश्य है। कोई तो रुण्डरूप ही है और किसी को मुण्ड ही मुण्ड है। कोई बिना हाथ पैर के वर्तुलाकार है। कोई केकडे की भाँति बहुत हाथ पैरवाला है। इत्यादि। निदान शङ्कर के गण सब एक से एक विचित्र हैं। किसी के रूप और वाहन से दूसरे का मेल नहीं और वे असख्यात हैं। इन्हीं में राजस के इष्टदेव यक्ष राक्षसों का अन्तर्भाव है। यक्ष राक्षस राजसिक लोगों के पूज्य हैं। यथा यक्षरक्षांसि राजसा।

छं तन[1] खीन कोउ अति पीन पावन कोउ अपावन गति धरे।
भूषन कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरें ॥
खर स्वान सुअर सृगाल मुख गन बेष अगनित को गनै।
बहु जिनिस प्रेत पिसाच जोगि जमात बरनत नहिं बनै ॥

---

१ यहाँ से बराबर रुद्रसंज्ञक छंदों में भगवान् का विवाह वर्णित है। ये सब छन्द हरिगीतिका हैं। इसी भाँति आदित्य संज्ञक छंदों में श्रीआदित्यकुलतिलक श्रीरामचन्द्र का विवाह वर्णित है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सो. नाचहि गावहि गीत, परम तरगी भूत सव।
देखत अति विपरीत, वोलहि वचन विचित्र विधि ॥९३॥

अर्थ . कोई विल्कुल दुवला कोई खूव मोटा कोई पवित्र कोई अपवित्र दशा धारण किये हुए हैं। भयङ्कर गहना पहने हाथ मे कपाल लिये और सब शरीर मे टटका ताजा खून लपेटे हुए है। किसी का मुँह गधे का सा किसी का कुत्ते का सा किसी का सुअर का सा और किसी का गीदड का सा था। गणो के असख्य वेष को कौन गिने। वहुत प्रकार के प्रेत पिशाच और जोगियो[१] की जमात है। जिसका वर्णन नही किया जा सकता।

सव भूत प्रेत बडे मौजी है। वे नाचते हैं और गीत गाते हैं। देखने मे अत्यन्त वेढङ्गे हैं और उनके बोलने की विधि भी विचित्र है।

व्याख्या तावदन्ये सामायाता भूतप्रेतपिशाचका। वक्रतुण्डास्तथाकेचित् विरूपाश्च तथा परे। विरुद्धवाहना· केचित् दुरालापकरास्तथा। डमरूवादयन्तो वै गल्लनादास्तथापरे। शिवपुराणे। कमठ खपर मढि खाल निसान बजावहि। नर कपाल भरि सोनित पियहि पियावहि। पा म।

प्रेत और भूत तामस लोगो के इष्ट देवता हैं। यथा : प्रेतान् भूतगणाश्चैव यजन्ते तामसा जना। अत. इस वारात मे सात्त्विक राजस तामस तीनो प्रकृति के लोगो के इष्टदेव हैं। निदान यह बारात ही इष्टदेवो की है। इसीलिए कहा कि उमा महेस विवाह वराती। ते जलचर अगनित वहुभाँती। ये रामयशसरित् · सरयू : के जलचर हैं। रामभक्तो को इनसे बचकर रहना चाहिए। जलचर मनुष्यो को निगल जाते है। इसी भाँति इष्टदेव भी उपासक को अपने मे मिला लेते हैं। प्रेत भूत के उपासक प्रेत भूत हो जाते हैं। यक्ष राक्षस के उपासक यक्षराक्षस हो जाते हैं और देवताओ के उपासक देवता हो जाते हैं। और प्रभु कहते हैं कि मेरे उपासक मुझे प्राप्त होते हैं। यथा देवान् देवयजो यान्ति मद्भक्ता यान्ति मामपि। अत· रामभक्तो को अन्य की उपासना मे तन्मय न हो जाना चाहिए।

नाचहि नाना रग तरग वढावहि। अज उलूक वृकनाद गीत गनगावहि। पा म

देखत अति विपरीत का भाव यह है कि वस्तुत विपरीत नही है शङ्कर के गण भी मङ्गलमय हैं।

जस[२] दूलहु तसि वनी वराता। कौतुक विविध होहि मग जाता॥
इहाँ हिमाचल रचेउ विताना। अति विचित्र नहि जाइ बखाना॥१॥

अर्थ जैसा दूल्हा था वैसी वरात वन गई। रास्ते मे जाते जाते अनेक भाँति के कौतुक होते जा रहे है। यहाँ हिमाचल ने ऐसी विचित्र मण्डप की रचना की कि जिसका वर्णन नही हो सकता।

---

१ एक विशेष प्रकार के रुद्र गण जिनकी गणना भूत वेताल के समकक्षो मे है।

२. यहाँ समालङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या वर अनुहार बरात बनी हरि हँसि कहा पा म । अत्र प्रधान बरात गणो की सेना हो गई। मार्ग मे नाच गाना भी हो रहा है अत कौतुक की क्या कमी है। श्रीग्रन्थकार इस समय हिमाचल की ओर हैं। अत इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना कह रहे हैं। माँ का साथ अत्यन्त सुखद समझकर ग्रन्थकार उसी समाज मे हैं। वितान वर्णन अशक्य समझकर उसे अति विचित्र कह रहे हैं। विचित्र वस्तु का वर्णन नही हो सकता। अति विचित्र तो सर्वथा वर्णनातीत है। यथा रचना देखि विचित्र अति मन विरचि कर भूल जैसा मण्डप जनकपुर मे बना था वैसा ही समझना चाहिए।

**सैल सकल जहँ लगि जग माही। लघु बिसाल नहि बरनि सिराही ॥**
**बन सागर सब नदी तलावा। हिमगिरि सब कहुँ नेवत पठावा ॥२॥**

अर्थ जगत् मे जितने पहाड थे। क्या बडे क्या छोटे, जिनका वर्णन नही हो सकता बन, समुद, नदियाँ और तालाब, सबको हिमाचल ने न्यौता नवेद भेजा।

व्याख्या शैलराज का बरताव सब शैल, सागर, बन, नदी और तालाबो से है। शैल, सागर, नदी आदि के दो रूप होते हैं। स्थूल रूप तो वही है जैसा हम लोग देखते हैं। पर इसी के अन्तर्गत उनका दूसरा रूप है। जिस भाँति शख घोंघा आदि के दो रूप होते हैं। एक तो ऊपरवाली खोपडी जडरूप दूसरा भीतर का जन्तु चेतनरूप। यथा कालिका पुराणे। नद्यश्च पर्वता सर्वे द्विरूपास्तु स्वभावत । तोय नदीना रूपन्तु शरीरमपरन्तथा। स्थावर पर्वतानान्तु रूप काय तथा परम्। शुक्तीनामथ कम्बूना यथैवान्तर्गता तनु । बहिरस्थिस्वरूपन्तु सर्वदैव प्रवर्त्तते। एव जल स्थावरन्तु नदीपर्वतयोस्तदा। अन्तर्वसति कायस्तु सतत नोपपद्यते। नदीना कामरूपित्व पर्वतानान्तथैव च। जगत् स्थित्यै पुरा विष्णु कल्पयामास यत्नत । अत नदी पर्वतादि का कामरूपत्व सिद्ध है। अत उनके यहाँ नेवता जाना और उनके नर नारी रूप से आगमन मे शङ्का को स्थान नही है।

**कामरूप सुदर तन धारी। सहित समाज सहित बर नारी ॥**
**गए सकल तुहिनाचल गेहा। गावहि मगल सहित सनेहा ॥३॥**

अर्थ अपनी इच्छानुसार शरीर धारण करनेवाले सुन्दर शरीर धारण किये हुए समाज के सहित तथा श्रेष्ठ स्त्री के सहित हिमाचल के घर गये। स्नेह के साथ मङ्गल गान भी करते थे।

व्याख्या कामरूप हैं। अत सुन्दर तन धारण किया। विवाह मे जा रहे हैं। और बिरादरी है। इसलिए सस्त्रीक और सबन्धु बान्धव गये। जिनके जिनके पास न्यौता नवेद गया वे सब आये। बडा प्रेम है। इसलिए स्त्रियाँ मङ्गलगान कर रही है।

**प्रथमहि गिरि बहु गृह सँवराए। जथा जोगु जहँ तहँ सब छाए ॥**
**पुर सोभा अवलोकि सुहाई। लागइ लघु बिरचि निपुनाई ॥४॥**

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : हिमालय ने पहिले ही बहुत से घरो को सजा रखा था। सब यथायोग्य जहाँ तहाँ ठहर गये। उस पुर की सुन्दर शोभा देखकर ब्रह्मदेव की चतुराई भी थोड़ी मालूम हुई।

व्याख्या शैलराज की सुव्यवस्था का वर्णन करते हैं। इकट्ठा ठहरने से कष्ट होगा। अत. सबको जहाँ तहाँ ठहराया। अनुकरण की वस्तु : नकली असली से अच्छी बनी हुई हैं। नकली कमल असली कमल से सुन्दर बने हैं। इसलिए विरञ्चि की निपुणता थोड़ी मालूम होती है।

छं. लघु लागि विधि की निपुनता अवलोकि पुर सोभा सही।
वन बाग कूप तड़ाग सरिता सुभग सब सक को कही॥
मगल विपुल तोरन पताका केतु गृह गृह सोहही।
बनिता पुरुष सुदर चतुर छवि देखि मुनि मन मोहही॥

दो. जगदबा जह अवतरी, सो पुर बरनि कि जाइ।
रिद्धि सिद्धि सपत्ति सुख, नित नूतन अधिकाइ॥९४॥

अर्थ : पुर की सुन्दर सच्ची शोभा देखकर ब्रह्मा की रचना हलकी लगी। वन, बाग, कूएँ तालाब, नदियाँ सब सुन्दर हैं। उनका वर्णन कौन कर सकता है। घर घर बहुत से शुभ बन्दनवार और अनेक पताका ध्वजा शोभित हैं। सुन्दर और चतुर स्त्री पुरुषो की छवि देखकर मुनियों के मन मोहित होते हैं।

जिस पुर मे जगदम्बा ने जन्म लिया क्या उस पुर की शोभा कही जा सकती है? वहाँ नई नई ऋद्धि सिद्धि सम्पदा और सुख बढ़ता ही जाता है।

व्याख्या : जगदम्बा के अवतार से पुर की शोभा सही है। पुर की शोभा सुन्दर जलाशय, मङ्गलमयगृह और लोकद्वय साधन मे चतुर निवासियो मे होती है। यहाँ यह सब इस भाँति सम्पन्न है कि छवि देखकर मुनियो का मन मोहित हो गया जिनका मन विरञ्चि की निपुणता से विरक्त रहा।

जगदम्बा के अवतार योग्य जो देश है उसका वर्णन असभव है। ऋद्धि-सिद्धि सपत्ति होने पर भी सुख दुर्लभ होता है। अतः उसको पृथक् गणना की। सब कुछ होने पर भी जैसा का तैसा बना रहने से साधारण बात हो जाती है। अत. कहते हैं : नित नूतन अधिकाइ।

नगर निकट बरात [illegible] पुर मरभर [illegible] ॥
[illegible] बनाव सब [illegible] लेन [illegible] ॥१॥

अर्थ : बारात [illegible] गारे [illegible] गया
और बड़ो [illegible] बादर
गहित अग [illegible]

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बारात का प्रसङ्ग छूटा था। अब फिर वही से उठाते है। बारात चली आ रही थी। इस बीच ग्रन्थकार हिमाचल के यहाँ का वर्णन करने लगे थे। अब बारात नगर के निकट आ पहुँची। लोग कहते हैं कि नेपाल मे शिवजी का विवाह हुआ है। काष्ठ मण्डप जहाँ बना था उसी का नाम काठमाण्डू है। बारात आने के पहिले ही समाचार मिल जाता है। अत सुनि आई कहते हैं। बारात के लिए अगवानी मे भी बारात ही की सी तैयारी की जाती है। सो नेवता मे आये हुए गिरि, सागर तालावादि जितने बडे लोग थे और नगर के लोग अगवानी के लिए चले।

हिय हरखे सुर सेन निहारी। हरिहि देखि अति भए सुखारी ॥
सिव समाज जब देखन लागे। बिडरि चले बाहन सब भागे ॥२॥

अर्थ देवसेना देखकर सब लोग प्रसन्न हुए। और विष्णु भगवान् को देखकर बहुत खुशी हुए। जब शिवजी का समाज देखने लगे तब हाथी घोडे भडके और भाग चले।

व्याख्या विष्णु भगवान् के बताये हुए क्रम से बारात सजी थी। आगे आगे देवताओ की सेना चल रही थी। लोकपाल लोग अपनी अपनी सेना के साथ क्रम से चले आ रहे थे। अत पहिले वे ही दिखाई पडे। अगवान को हर्ष हुआ कि ऐसे ऐसे महान् लोग बारात मे आये हैं। बारात मे प्रधान उत्तरोत्तर पीछे रहते हैं। अत लोकपालो के समाज के पीछे विष्णु का समाज था। उन्हे देखकर अत्यन्त सुखी हुए। सबके पीछे अपने समाज सहित स्वय वर की सवारी थी। जो उस समाज को देखकर हाथी, घोडे ऐसे भडके कि सवारो के रोकने पर भी नही रुके। भाग निकले अत सवार का भागना न कहकर वाहन का भागना कहते है।

धरि धीरजु तह रहे सयाने। बालक सब लै जीव पराने ॥
गए भवन पूछहि पितु माता। कहहि बचन भय कपित गाता ॥३॥

अर्थ धैर्य धारण करके सयाने लोग रह गये। लडके तो अपना प्राण लेकर भागे। घर पहुँचे तो माता पिता पूछने लगे। वे भय से काँपते हुए बोले।

व्याख्या पैदल भी भागे। केवल सयाने लोग जिन्हे शिवजी के समाज की व्यवस्था मालूम थी धैर्य धारण करके रह गये। भाव यह कि डर तो वे भी गये परन्तु उन्होने धैर्य से काम लिया। बालक भागने मे सबसे बढकर निकले। अत लै जीव पराने कहते हैं। अर्थात् वस्त्राभूषण के गिर जाने की भी उन्हे सुध बुध न रह गई। यथा चले भागि गज बाजि फिरहिं नहिं फेरत। बालक भभरि भुलान फिरहिं घर हेरत। पा म। फिर जडता की जाडा आई। अत कपित गात कहते हैं। माँ बाप बच्चा की विकलता देखकर पूछते हैं कि इसे क्या हुआ? बारात देखने गया था। कोई दुर्घटना तो नही हुई?

कहिअ कहा कहि जाइ न बाता। जम कर धारि किधौ बरिआता ॥
बरु बौराह बसह असवारा। ब्याल कपाल बिभूषन छारा ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ : क्या कहे ! कोई बात कही नही जाती । यह यमराज की सेना है कि बारात है । पगला वर बैल पर बैठा हुआ है । साँप, खोपड़ी और राख ही उसके गहने हैं ।

व्याख्या : लड़के अपने माँ बाप के पूछने पर कहते हैं : भय के मारे हमारे मुख से बात नही निकल रही है । क्या कहे ? वह बारात नही है । यमराज की सेना है । यद्यपि यम की सेना देखी नही है । फिर भी भयङ्करता से अनुमान करते हैं कि ऐसी ही होगी जिसे देखकर लोग मर जाँय । लड़के वर को पागल बतलाते है । क्योंकि वह बैल पर सवार है । जिसे घोडा नही होता वह भी व्याह मे घोडा मँगनी ले लेता है । जिसकी बारात मे लक्ष्मीपति आवें उसे घोड़ा न मिले यह हो नही सकता । समर्थ रहते भी बैल पर चढकर व्याहने आया है । अतः निश्चय ही पागल है । और भी पागल के लक्षण हैं । यदि गहना मँगनी न मिला तो बिना गहने ही आता । साँप, खोपडी और राख कौन सा गहना है ।

छं. तन छार व्याल कपाल भूषन, नगन जटिल भयंकरा ।
संग भूत प्रेत पिसाच जोगिनि, बिकटमुख रजनीचरा ॥
जो जिअत रहिहि बरात देखत, पुन्य बड़ तेहि कर सही ।
देखहि सो उमा बिवाह घरघर, बात असि लरिकन्ह कही ॥

दो. समुझि महेस समाज सब, जननि जनक मुसुकाहिं ।
बाल बुझाए बिबिध बिधि, निडर होहु डरु नाहिं ॥९५॥

अर्थ : वर देह मे राख लपेटे, साँप और खोपडी का गहना पहने, नगा धडगा, जटा बढाए, भयङ्कर रूप है । उसके सग भूत, प्रेत, पिशाच और विकट मुखवाले[1] राक्षस हैं । जो बारात को देखते हुए जीता रहेगा उसका सचमुच बडा पुण्य होगा और वही उमा का विवाह देखेगा । यह बात लड़को ने घर कह डाली ।

महादेवजी के सब समाज को समझकर माँ बाप मुस्कराए और लडको को अनेक प्रकार से समझाया कि डरो मत, कोई डर की बात नही है ।

व्याख्या : वर ने जोड़ा जामा नही पहन रक्खा है इसलिए नग्न बतला रहे हैं । विवाह के समय तो क्षौर करा लेना था । सो भी नही कराया, जटा रखाये हुए हैं । सक्षेपत. वर भी भयङ्कर है । उसका समाज भूत प्रेत पिशाच जोगिनी और विकराल मुँह के राक्षसो का है । बारात देखकर नगरवासी सब मर जायँगे । नही देख सके इसलिए हम लोग भाग आये हैं । जो विवाह देखेगा उसके सच्चे और बडे पुण्यात्मा होने मे सन्देह नही है । क्योंकि इस यम की सेना के बीच में पड़कर सकुशल रहना थोडे पुण्य से साध्य नही है । यथा कुशल करइ करतार कहहिं हम साँचिय । देखब कोटि बिवाह जिअत जो बाँचिअ । पा म । जननी जनक सयाने हैं ।

---

१ खर स्वान सुअर सृगाल मुख गन बेष अगनित को गनै ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


शिव समाज का रहस्य जानते हैं। उनके झूठे भय पर मुसकराते हैं। समझाने पर भी बच्चों का भय दूर नहीं होता। अतः विविध भाँति समुझाए। यथा :

एहि विवाह मंगल परम मंगल उमा विवाह।
हयपथ पाए भूतपति होइहि अधिक उछाह॥
भस्म गंग पावक उरग स्वास डमरु के व्याज।
पंच भूत धर भूत पति अति अभूत सब साज॥
विष पियूषकर मिस धरत सकल शक्ति को सार।
व्याल विभूषन विश्व को विजयानन्द भरतार॥
मुंडमालधर जगत के जीवन को आधार।
बनि वृष सेवत धर्म हू जाके चरन उदार॥
व्यसनी निसिदिन आपने रूपहि रहे सँवार।
विकट रूप धर एकहीं काम जरावनि हार॥
गन सब मङ्गलरूप अति सरल गलित अभिमान।
रहत दुराए अपनपौ ये विज्ञान निधान॥
याते निर्भय होइ तुम विचरौ करौ अनंद।
उमा शंभु के ब्याह में नितनव विजया नंद॥

लै अगवान बरातहि आए। दिए सबहि जनवास सुहाए॥
मैना सुभ आरती सँवारी। संग सुमंगल गावहि नारी॥१॥

[illegible] दिये। मैन
[illegible]
[illegible] को साथ
[illegible] अनिष्ट नहीं
[illegible] हर के साथ
[illegible]

कंचन थार सोह बर पानी। परिछन चली हरहि हरषानी॥
बिकट बेष रुद्रहि जब देखा। अबलन्ह उर भय भयउ बिसेषा॥२॥

अर्थ : सुन्दर हाथों में सोने का थाल शोभायमान था। प्रसन्नता से वे ह[illegible] को परछने चलीं। जब रुद्र का भयङ्कर वेष देखा तब स्त्रियों के भी हृदय में विशे[illegible] भय हुआ।

व्याख्या : सोने के थाल में आरती साजी गई। दुःखों के हरनेवाले को ह[illegible] कहते हैं ऐसा सुना है। उनका परिछन करने चल रही हैं। बड़ा उत्साह मन में है[illegible] बराती ऐसे हैं न जाने वर कैसा होगा। वरुण कुबेर धर्मराज इन्द्र एक एक को देखकर भ्रम होता है कि यही वर है। पीछे जब मालूम होता है कि ये तो उनके सेवक हैं। तब वर के देखने की उत्कण्ठा और भी बढ़ जाती है। ऐसे अवसर प[illegible]

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वंश ही मङ्गलगान करती हुई स्त्रियाँ, परिछन करनेवालों के साथ चलती है। सा नियम है।

विकट वेष तो नारदजी से सुना था। यथा नगन अमङ्गल वेष। पर देखना सरी बात है। रुद्र है, रौद्ररस के अधिष्ठाता हैं। उसपर विकट वेष धारण किया है। इनके द्वार पर आते ही सब डर गये। पर अबला ठहरी, ये विशेष डर गईं। लड़के तो पहिले से ही डरे थे।

भागि भवन पैठी अति त्रासा। गए महेसु जहाँ जनवासा॥
मैना हृदयँ भयउ दुखु भारी। लीन्ही बोलि गिरीसकुमारी॥३॥

अर्थ भागकर डर से घर में घुस गई। शिवजी जनवासे गये। मैना के हृदय में बड़ा दुःख हुआ। उन्होंने पार्वतीजी को बुलाया।

व्याख्या परिछन के लिए द्वार पर आगई थी। सो भीतर भाग गईं। परिछन नहीं हुआ। बिना परिछन के ही वर जनवासे गया। इसपर दुःख तो सबको हुआ। ऐसा भयानक वर देखने में नहीं आया था। सुना भी नहीं गया था। माँ होने से मैना को बड़ा भारी दुःख हुआ।

अधिक सनेहँ गोद बैठारी। स्याम सरोज नयन भरे बारी॥
जेहिं बिधि तुम्हहि रूपु अस दीन्हा। तेहिं जड़ बरु बाउर कस कीन्हा॥४॥

अर्थ अधिक स्नेह से गोद में बिठाया और नीलकमल के समान नेत्रों में आँसू भरकर बोली जिस ब्रह्मा ने तुम्हें ऐसा रूप दिया। उस जड़ ने वर को पागल कैसे बनाया ?

व्याख्या लड़की पर इतना दुःख आ पड़ा। इससे प्रेम अधिक हो गया, आँखों में आँसू भर आया। लड़की को गोद में लेकर प्रेम प्रलाप प्रारम्भ किया। जो प्रश्न ब्रह्मदेव से करना चाहिए वह अपनी कन्या से करने लगी। विधि को उपालम्भ देती है। अथवा इस व्याज से कन्या की अस्वीकृति चाह रही है।

छं० कस कीन्ह[1] बरु बौराह बिधि जेहिं तुम्हहि सुंदरता दई।
जो फलु चहिअ सुरतरुहिं सो बरबस बबूरहिं लागई॥
तुम्ह सहित गिरि तें गिरौं पावक जरौं जलनिधि महुँ परौं।
घरु जाउ अपजसु होउ जग जीवत बिबाहु न हौं करौं॥
दो० भईं बिकल अबला सकल, दुखित देखि गिरिनारि।
करि बिलापु रोदति बदति, सुता सनेहु सँभारि॥९६॥

अर्थ जिसने तुम्हें सुन्दरता दी उस ब्रह्मा ने पगला वर कैसे बनाया ? जो फल कल्पवृक्ष में लगना चाहिए वह जबरदस्ती से बबूल में लग रहा है। मैं

१ विषमालङ्कार।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


तुम्हारे साथ पहाड़ पर से कूद पड़ूँगी। आग में जल जाऊँगी। समुद्र में डूब मरूँगी। घर जाय। अपयश हो। पर मैं जीते जी विवाह न होने दूँगी।

हिमाचल की स्त्री को दु खी देखकर सारी स्त्रियाँ व्याकुल हो गईं। और बेटी के प्रेम का सभाल करते हुए विलाप करके रो-गा रही हैं।

व्याख्या . एक नया अवगुण दिखाई पड़ा जिसकी चरचा भी नारदजी ने नही की थी कि वर पागल है। विधि के लिलार मे लिखने से सब होता है। अत कहती हैं कि नाम उसका विधि है। वह अविधि क्यो करते है? अपनी बेटी को अमृत फल, विष्णु को कल्पवृक्ष और शिवजी को बबूल कहती है। बबूल मे काँटा ही काँटा होता है। इस वर मे भी सर्प, विभूति, मुण्डमाल, व्याघ्राम्बर, जटा सब कण्टक ही कण्टक हैं। कल्पवृक्ष से सबका मनोरथ पूर्ण होता है। बबूल से मनोरथ भङ्ग होता है। यथा · आप नही कछु काम के डार पात फल फूल। औरन को रोकत फिरै रहिमन पेड बबूल।

मेना कहती है कि तुझे साथ लेकर प्राण दूँगी। पर जीते जी ऐसे वर से व्याह न होने दूँगी। भाव यह कि यदि लोग बल पूर्वक व्याह कर देना चाहेगे तो कन्या भी मरेगी मैं भी मरूँगी। ऐसे के साथ व्याह होने से मरना अच्छा। इस पर यदि कोई कहे कि घर नष्ट हो जायगा। और तुम्हे अपयश होगा। लोक, परलोक दोनो बिगडेगा। तो दोनो का बिगड़ना मजूर, पर व्याह मजूर नही।

कोई-कोई महात्मा ऐसा अर्थ करते है कि बारात 'घर जाउ' लौट जावे। इससे अपयश हो तो होने दो व्याह मजूर नही। कोई ऐसा अर्थ करते है · देवदानव, यक्षराक्षस बराती घर लूट लेगे। और अपयश होगा कि मेना के हठ से घर लुट गया। सो लूट मजूर है पर व्याह मंजूर नही।

पहिले से ही स्त्रियाँ दु खी थी। अब मैना का दु ख देखकर विकल हो गईं। स्त्रियाँ रोने के साथ कुछ कहती भी जाती हैं। अत 'रोदति बदति' कहते है। यथा · रोदति बदति बहु भाँति करुना करत सकर पहँ गई। 'सुता सनेह सँभारि' बेटी के स्नेह को सँभाले हुए है। कोई त्रुटि नही होने पावे। यदि ऐसे वर से व्याह हो गया तो माँ के प्रेम : वात्सल्य मे त्रुटि समझी जायगी।

नारद कर मै काह बिगारा। भवनु मोर जिन्ह बसत उजारा॥
अस उपदेसु उमहि जिन्ह दीन्हा। बौरे बरहि लागि तपु कीन्हा॥१॥

अर्थ · मैने नारद का क्या बिगाडा था? जिसने मेरा बसता हुआ घर उजाड दिया। जिन्होने उमा को ऐसा उपदेश दिया कि उसने पगले वर के लिए तप किया।

व्याख्या : ऊपर जो रोदति बदति कहा है उसी का स्पष्टीकरण करते है। मैना कहती है कि नारद के उपदेश से मेरा सर्वनाश हो रहा है। जो किसी का कोई कुछ बिगाडता है तो उसके बदले मे वह उसके उजाडने की चिन्ता करता है। मैने तो नारद का कुछ बिगाडा नही। मेरा घर बस रहा था। सप्तर्षियो ने विष्णु से व्याह लगाया था। पर इन्ही के उपदेश से मेरी बेटी दृढ रह गई। यथा : नारद

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वचन न मैं परिहरऊँ। बसै भवन उजरै नहिं डरऊँ। नारद का कहा हुआ तप जहर हो गया। फल यह हुआ कि पागल वर मिला। नारद वर के दोष से परिचित थे। इन्होंने जानबूझकर ऐसा उलटा उपदेश दिया। भला तप ऐसा वर न मिलने के लिए होना चाहिए था न कि ऐसे वर के मिलने के लिए।

साँचेहु उनके मोह न माया। उदासीन धनु धामु न जाया ॥
पर घर घालक लाज न भीरा। बाँझकि जान प्रसव कै पीरा ॥२॥

अर्थ सचमुच उन्हें न मोह है और न माया है। वे उदासीन ठहरे। उन्हें न धन है, न घर है, न स्त्री है। दूसरे का घर बिगाड़नेवाले हैं। न उन्हें लज्जा है न डर है। भला वन्ध्या प्रसव की पीड़ा क्या जानें।

व्याख्या नारदजी का माहात्म्य सुन रक्खा था काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा। मोह का अर्थ अज्ञान भी है। प्रीति भी है। इसी भाँति माया का अर्थ प्रपञ्च भी है। दया भी है। यहाँ दूसरे अर्थ को लक्ष्य करके कहती हैं कि यह बात तो सच्ची है कि न इन्हें प्रेम है, न दया है। अज्ञान और प्रपञ्च न होने की बात जो जाने सो जाने। मैं तो नहीं देखती। जिसे धन, धाम और कुटुम्ब होता है उसे सब वेदना भी होती है। इन्हें कुछ नहीं उदासीन हैं। कोई शत्रु मित्र नहीं। हम लोग इतनी पूजा करते थे इतना मान करते थे उसका कोई ख्याल नहीं किया।

सप्तर्षियों ने इन्हें ठीक पहिचाना था। उन महात्माओं ने स्पष्ट कह दिया था कि नारद कर उपदेस सुनि कहहु बसेउ किसु गेहु। दक्ष केतु कर घर इन घाला। कनक कसिपु कर पुनि अस हाला। ये स्वभाव से ही परघरघालक हैं। हमारा घर भी ये ले बढ़े। लाज नहीं है कि ऐसा खोटा उपदेश मैं दे रहा हूँ। संसार मुझे क्या कहेगा। न डर है। हत्या के भरोसे खेत खाते हैं। इन्हें कोई कुटुम्ब नहीं। ये कुटुम्बी के दुःख को नहीं समझ पाते। वन्ध्या भले ही और सब पीड़ा जानती हो पर प्रसव की पीड़ा कभी उसे हुई ही नहीं। उसे वह नहीं जान सकती। निगोड़े क्या जानें कि बाल बच्चों का दुःख किस भाँति मर्म को काटता है।

जननिहि बिकल बिलोकि भवानी। बोली जुत बिबेक मृदुबानी ॥
अस बिचारि सोचहि मति माता। सो न टरै जो रचै बिधाता ॥३॥

अर्थ माता को विकल देखकर भवानी विवेक से युक्त कोमल वाणी बोली हे माता! जो विधाता ने रच रक्खा है वह नहीं टल सकता। ऐसा सोचकर तुम सोच न करो।

व्याख्या भवानी हैं भव की स्त्री। इनका शिवजी का नित्य सम्बन्ध है। सबको वर नापसन्द है पर इन्हें पसन्द है। देखा कि माँ विकल है तभी ऐसी वाणी का प्रयोग नारदजी के प्रति कर रही है। तप के लिए जाने के समय माँ को गद्‌गद कण्ठ देखकर सुखद मृदुवाणी बोली थी। आज विकल देखकर युत विवेक

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मदुवानो वह रही हैं। क्योंकि शोक का नाश ज्ञान ही से होता है। यथा सोक निवारेउ सबहि नर निज विज्ञान प्रकास। इस समय महेश की प्रशसा अपने मुख से अनुपयुक्त समझकर कहती हैं सो न टरै जो रचै विधाता। अत शोक करना व्यर्थ है। नारदजी ने पहिले ही कह दिया था। यह कोई नई बात नही है। नारदजी गुरु हैं। उन पर दोषारोपण नही सुन सकती। अत कहती हैं।

करम लिखा जौ बाउर नाहू। तौ कत दोसु लगाइअ काहू ॥
तुम्ह सन मिटहि कि बिधि के अंका। मातु ब्यर्थ जनि लेहु कलंका ॥४॥

अर्थ जो मेरे प्रारब्ध म बावला ही पति लिखा है तो किसी को दोष क्या लगाया जाय। क्या विधाता के अङ्क तुम्हारे मिटाये मिटगे ? हे माता वृथा कलक न लो।

व्याख्या नारदजी ने कहा था अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि परी हस्त अस रेख। तब नारदजी को दोष क्या लगाती हो। उन्होने यहाँ तक कह दिया था कि कह मुनीस हिमवत सुनु जो विधि लिखा लिलार। देव दनुज नर नाग मुनि कोउ न मेटनिहार। अब वह विधि का लिखा जिसे देव दनुज नर नाग मुनि कोई नही मिटा सकता वह तुम्हारे मिटाए कैसे मिटेगा ? तुम उसके लिए अपयश लने को प्रस्तुत हो। यह तुम्हारी वृथा चेष्टा है।

छ जनि लेहु मातु कलकु करुना परिहरहु अवसर नही।
दु खु सुखु जो लिखा लिलार हमरे जाब जह पाउब तही ॥
सुनि उमा बचन विनीत कोमल सकल अबला सोचही।
बहु भाति बिधिहि लगाइ दूषन नयन बारि बिमोचही ॥
दो तेहि अवसर नारद सहित, अरु रिषि सप्त समेत।
समाचार सुनि तुहिनगिरि, गवने तुरत निकेत ॥९७॥

अर्थ माँ ! तुम अपयश मत लो। विवाद को छोडो। मौका नही है। जो दु ख सुख मेरे कर्म म लिखा है उसे मै जहा जाऊँगी वही पाऊँगी। उमा के विनीत और कोमल वचनो को सुनकर सब स्त्रियाँ सोचने लगी। और बहुत भाति से ब्रह्मा को दोष लगाकर आँसू गिराने लगी।

उसी समय इस समाचार को सुनकर हिमाचल, नारद ऋषि और सप्तर्षि के सहित तुरन्त घर गये।

व्याख्या उमा ने माँ को समझाया कि यह अवसर करुणा का नही है। करुणा का अवसर तो तभी था जब कि नारद से पहिल पहल समाचार सुना। अब बारात आने पर करुणा करना अनवसर की करुणा है। इसे छोडो। अपयश लना भी व्यथ है। होनहार होकर रहगा। जब भाग्य म पागल वर लिखा है तो अच्छा चगा आदमी भी ब्याह के बाद पागल हो सकता है। नही तो पागल भी अच्छा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. सुनि नारद के बचन तब, सब कर मिटा बिषाद।
छन महुँ ब्यापेउ सकल पुर, घर घर यह संवाद ॥९८॥

अर्थ : सती ने जो सीता का रूप धारण किया। इसी अपराध से शिवजी ने उन्हें त्याग दिया। शिवजी के वियोग से पिता के यज्ञ में जाकर योगाग्नि से भस्म हो गईं। अब तुम्हारे घर में जन्म लेकर अपने पति के लिए कठिन तप किया है। ऐसा जानकर सन्देह दूर करो। पार्वती सदा शङ्कर की प्यारी हैं।

नारद की बात सुनकर सबका विषाद मिट गया और क्षणभर में यह संवाद सारे नगर में घर घर फैल गया।

व्याख्या : छन्द के प्रथम दो चरणों में नव दोहों : पचपन से चौंसठ : का अति संक्षेप में वर्णन किया। यहाँ वह प्रसङ्ग देखने योग्य है। वही इसकी व्याख्या है।

भाव यह कि शिवजी तो इसके पति हैं ही। जिसके लिए इन्होंने इतना भारी तप किया। वे तुम्हे पागल समझ पड़ रहे है। यह तुम्हारा अज्ञान है। गिरिजा को ही सदा शङ्कर प्यारे नहीं है। शिवजी को भी गिरिजा सदा प्यारी हैं।

जिस रहस्य के खोलने मे भगवती को सङ्कोच था उसे नारदजी ने खोल दिया। सप्तर्षि और स्वयं गिरिजा नारदजी की सत्योक्ति के साक्षी हैं। अतः सबका विषाद मिट गया। क्योंकि गिरिजा के दुःखी होने के भय से सब दुःखी हो रहे थे। उनको ही यह विवाह जब परम इष्ट है तब किसी को विषण्ण होने का कारण नहीं रह गया। गिरिजा के पहिले समझाने से विकलता घटी थी। अब विषाद मिटा। इस संवाद को नारदगीता भी कह सकते हैं।

तमाम नगर में आतङ्क फैल गया था। अत: इस संवाद के फैलने में देर न लगी।

तब मयना हिमवंतु अनंदे। पुनि पुनि पारबती पद बंदे॥
नारि पुरुष सिसु युबा सयाने। नगर लोग सब अति हरषाने ॥१॥

अर्थ : तब मैना और हिमवान् आनन्दित हुए। बार बार पार्वती के चरणों की वन्दना की। स्त्री, पुरुष, बालक, युवा और वृद्ध नगर के सभी लोग प्रसन्न हुए।

व्याख्या : मैना अत्यन्त दुःखी हो गई थी। अतः आनन्दित होने में पहिले उन्ही का उल्लेख किया। हिमवान् ने यद्यपि धैर्य नहीं छोड़ा था पर वर को देखकर वे भी विषण्ण थे। अब नारदजी का व्याख्यान और सप्तर्षि तथा स्वयं उमा की मौनरूपेण स्वीकृति देखकर समझ गये कि उमा साक्षात् जगदम्बा है। शिवजी जगत् पिता है। अत: अपना सौभाग्य मानकर आनन्दित हुए और बार बार पार्वती के चरणो की वन्दना जगदम्बा दृष्टि से की। जगदम्बा की ओर से वन्दना का निषेध भी नहीं हुआ। नगर में कोई ऐसा न रहा जो यह सुनकर अति हर्षित न हुआ हो। इससे हिमवान् की प्रजापालकता कही। हिमवान् को आनन्द और प्रजा को हर्ष कहकर आनन्द और हर्ष का सूक्ष्म भेद दिखलाया। हर्ष की परिपक्वावस्था ही आनन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


लगे होन पुर मंगलगाना । सजे सबहिं हाटक घट नाना ॥
भाँति अनेक भई जेवनारा । सूपशास्त्र जस कछु व्यवहारा ॥२॥

अर्थ नगर में मङ्गलगान होने लगा और सबने अनेक प्रकार के सुवर्ण घट सजाये। पाक शास्त्रानुसार जैसा व्यवहार है अनेक भाँति की ज्यौनार हुई।

व्याख्या जब से बारात आई मङ्गलगान बन्द हो गया था। सुवर्ण के घट उठाकर लोगों ने घर के भीतर रख लिये थे। अब मङ्गलगान भी नगर में होने लगा। सुवर्ण के घट भी द्वार पर सजाये गये।

बारात के सत्कार के लिए ज्यौनार हुई। देवता लोग बारात में आये हैं। अत पाकशास्त्र के अनुसार भोजन की तैयारी हुई। चर्व्य, चोष्य लेह्य, पेय ये ही चार भाँति के भोजन हैं। यथा चार भाँति भोजन विधिगाई। एक एक विधि बरनि न जाई। छरस रुचिर विंजन बहु जाती। एक एक रस अगनित भाँती।

सो जेवनार कि जाइ बखानी । बसहिं भवन जेहिं मातु भवानी ॥
सादर बोले सकल बराती । बिस्नु बिरंचि देव सब जाती ॥३॥

अर्थ जिस घर में माता भवानी रहती हो वहाँ की ज्यौनार का क्या वर्णन किया जाय। आदर के साथ विष्णु ब्रह्मा आदि सब जाति के देवता तथा सब बाराती बुलाये गये।

व्याख्या माँ अन्नपूर्णा जहाँ निवास करती हैं वहाँ की जेवनार का वर्णन नहीं हो सकता। वस्तुतस्तु माँ का दिया हुआ ही भोजन भोजन है। वह अमृत से भी मधुर है। शैलराज के यहाँ न ज्यौनार की कमी है न स्थान का सङ्कोच है। अत सब बराती एक साथ बुला लिये गये। संसार में सर्वत्र और सब वस्तुओं में प्रकृति के अनुसार चार जातियाँ हैं। इसी भाँति देवताओं में भी चार जातियाँ हैं। अत विष्णु विरञ्चि आदि सब जाति के देवता बुलाये गये। सकल बराती से तात्पर्य यह कि भूत, प्रेत, पिशाच, निशिचर आदि भी बुला लिये गये।

बिबिध पाँति बैठी जेवनारा । लगे परोसन निपुन सुआरा ॥
नारिबृंद सुर जेवत जानी । लगीं देन गारी मृदु बानी ॥४॥

अर्थ अनेक पंगतें पक्तियाँ बैठी। चतुर सूपकार ज्यौनार परोसने लगे। स्त्रियाँ देवताओं को भोजन करते हुए जानकर कोमल स्वर से गाली गान करने लगी।

व्याख्या भोजन करनेवालों की जाति के अनुसार अलग अलग पक्तियाँ लगी। ऐसे ऐसे स्थलों में ही परोसनेवालों की निपुणता देखी जाती है। अत निपुण सूपकार रसोइये परोसने लगे। परोस जाने पर भोजन आरम्भ हुआ। तब स्त्रियों का सत्कार आरम्भ हुआ। मृदु स्वर में गाली गाने लगी। यह देश की चाल है। उत्तर भारत में मङ्गल के समय में गालीगान होता है। अति आनन्द में मर्यादा भङ्ग को किसी सीमा तक स्थान दिया जाता है। श्रीगोस्वामीजी ने कहा है कि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अमिअ गारि गारथौ गरल गारि कीन्ह करतार । प्रेम बैर की जननि जुग जानहिं बुध न गँवार । जब क्रोध की गाली का बहिष्कार करने मे सभ्य समाज नितान्त असमर्थ है तब प्रेम की गाली की ओर अधिक क्रूर दृष्टि रखने का कोई कारण नही है ।

छ गारी मधुर स्वर देहिं सुदरि बिग्य वचन सुनावही ।
भोजन करहिं सुर अति बिलब बिनोद सुनि सचु पावही ॥
जेवँत जो बढेउ अनद सो मुख कोटिहूँ न परै कह्यो ।
अँचवाइ दीन्हे पान गवने वास जहँ जाको रह्यो ॥
दो बहुरि मुनिन्ह हिमवत कहुँ, लगन सुनाई आइ ।
समय बिलोकि बिवाह कर, पठए देव बोलाइ ॥९९॥

अर्थ सुन्दरियाँ मधुर स्वर से गालियाँ देने लगी । देव लोग भोजन मे अत्यन्त देर लगा रहे है । और विनोद मजाक सुनकर सुख पा रहे हैं । जेवनार के समय जो आनन्द बढा वह करोडो मुखो से नही कहा जा सकता । सबको हाथ मुँह धुलाकर पान दिया गया । जहाँ जिसका डेरा था वहाँ सब लोग चले गये । फिर मुनियो ने आकर हिमाचल को लगन सुनाई । विवाह का समय जानकर देवताओ को बुलवा भेजा ।

व्याख्या व्यङ्ग वचन ही गाली है । प्रेम का व्यङ्ग अत्यन्त प्रिय होता है । अत देवता लोग भोजन मे जान बूझकर देर कर रहे हैं । यज्ञभुक् देवता लोग आज भोजन करने बैठे हैं । स्तुति के स्थान पर गाली हो रही है । उनके लिए गाली नई वस्तु है । सो प्रेम की गाली सुन सुनकर आनन्द बढ रहा है । यथा समय सुहावन गारि बिराजा । हँसत राउ सुनि सहित समाजा । यह दृश्य देखकर लोग फूल नही रामाते थे । अत कहते हैं कि वर्णन नही हो सकता । भोजन के बाद हाथ मुँह धोना, और उसके बाद पान देना यही बारात का मुख्य सत्कार है ।

व्याह मेष लग्न मे सूर्योदय के समय होनेवाला था । अत रात को बारात व्याह के पहिल ही जिमाई गई । रामजी का व्याह रात्रि के समय था । अत बारात का अपने घर जिमाना दूसरे दिन हुआ ।

प्रात काल के समय सप्तर्षि लोग लग्न सुनाने फिर आये । अर्थात् वर पक्ष से कहलाया गया कि बुलावा जल्दी भेज । नही तो हिमवान् ने ही ऋषियो को बुलाकर लग्न स्थिर कराया था । उन्हे फिर से सुनाने की आवश्यकता क्या थी ?

बोलि सकल सुर सादर लीन्हे । सबहि जथोचित आसन दीन्हे ॥
बेदी बेद बिधान सँवारी । सुभग सुमगल गावहि नारी ॥१॥

अर्थ सब देवताओ को आदर के सहित बुलवा लिया । और सबको यथायोग्य आसन दिये । वेदी वेद के विधान से बनाई गई । और स्त्रियाँ सुन्दर सुमङ्गल गान करने लगी ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : यज्ञ में वेद मन्त्र से जिन देवताओं का आवाहन होता है वे आज आदमी भेजकर बुलवाए जाते है। कन्या पक्ष का इतना मान है क्योंकि दान दाता के अधीन है। अतः कन्यादान : विवाह मे कन्या पक्ष का प्राधान्य है। और सब वस्तुओं में लौकिक कारीगरी दिखलाई गई। पर वेदी वेदविधान से बनाई गई : जिससे अशुद्ध न होने पावे। विवाह के प्रत्येक कर्म के लिए वैदिक मन्त्र हैं। और साथ ही सबके लिए मङ्गल गान हैं। जो समय समय पर स्त्रियाँ गाती हैं।

सिंहासनु अति दिव्य सुहावा। जाइ न बरनि बिरंचि बनावा॥
बैठे सिव बिप्रन्ह सिरु नाई। हृदय सुमिरि निज प्रभु रघुराई॥२॥

अर्थ : बड़े दिव्य सिंहासन पर जो ऐसा विचित्र बना था कि उसका वर्णन नही किया जा सकता ब्राह्मणों को प्रणाम करके, और हृदय में अपने प्रभु रघुनाथजी का स्मरण करके शिवजी बैठ गये।

व्याख्या : विष्टर के स्थान पर अति दिव्य सिंहासन दिया गया। जब मण्डप अति विचित्र बना है। यथा : अति विचित्र नहि जाइ बखाना : तब सिंहासन के लिए 'अति दिव्य सुहावा' 'जाइ न बरनि' कहना प्राप्त ही है। शिवजी ने पहिले विप्रों को प्रणाम किया। शिवजी भक्तिपथ के मुख्य आचार्य हैं और भक्तिपथ का प्रथम पाद विन्यास है। प्रथमहि विप्रचरन अति प्रीति। तत्पश्चात् निज प्रभु रघुनाथजी का स्मरण करते हैं। जिनकी आज्ञा से इस विवाह में प्रवृत्त हुए हैं। अथवा यह विवाह कृत्य है अतः मङ्गल के लिए रघुनाथजी का स्मरण करते हैं। अथवा बार बार रघुनाथजी को सँभारने का स्वभाव है। यथा : मनमाधव को नेकु निहारिहि। सुनु सठ सदा रंक के धन ज्यो पुनि पुनि प्रभुहि सँभारिहि।

बहुरि मुनीसन्ह उमा बोलाईं। करि सिंगार सखीं लेइ आईं॥
देखत रूप सकल सुर मोहे। बरनै छबि अस जग कबि को है॥३॥

अर्थ : फिर मुनियों ने उमा को बुलाया। शृङ्गार करके सखियाँ लिवा आईं। रूप को देखकर सब देवता मोह गये। संसार में ऐसा कवि कौन है। जो उस छवि का वर्णन कर सके।

व्याख्या : पद्धति के अनुसार समय पर उमा बुलाई गईं। अलङ्कृत कन्या के दान का विधान है। अतः शृङ्गार करके सखी ले आईं। अलौकिक सौन्दर्य है, लौकिक कवि की गति नही। वर्णन करने में समर्थ देवता लोग तो मोहित ही हो गये। शोभा के तरङ्ग के सहने की शक्ति किसी मे नही थी। सासारिक कवि किस आधार पर वर्णन करे। यथा : केहि छाया कवि मति अनुसरई।

जगदम्बिका जानि भव भामा। सुरन्ह मनहि मन कीन्ह प्रनामा॥
सुंदरता मरजाद भवानी। जाइ न कोटिहु बदन बखानी॥४॥

अर्थ : जगदम्बिका को भव : शिवजी की स्त्री समझकर देवताओ ने मन

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ही मन प्रणाम किया। भवानी सुन्दरता की सीमा है। करोड़ों मुखों से भी बखानी नहीं जा सकती।

व्याख्या रूप देखने पर मोह हुआ। प्रबोध होने पर प्रणाम किया। कर्मणा वाचा प्रणाम का उपयुक्त अवसर नहीं है। फिर भी जगदम्बा हैं, भवानी हैं, इसलिए मानसिक प्रणाम कहा। इन्हीं तक सुन्दरता की इतिश्री है। अब इससे उत्कृष्ट सुन्दरता नहीं है अत अवर्णनीया हैं। 'कोटि मुख मे वर्णन' कहने का भाव यह कि दस सहस्र शेष भी नहीं कह सकते। समानता के पदार्थ रहे तभी वर्णन सम्भव होता है।

छ कोटिहु वदन नहिं बनै बरनत जग जननि सोभा महा।
सकुचहिं कहत श्रुति सेष सारद मद मति तुलसी कहा॥
छबिखानि मातु भवानि गवनी मध्य मंडप सिव जहाँ।
अवलोकि सकहि न सकुचि पतिपद कमल मन मधुकर तहाँ॥

दो मुनि अनुसासन गनपतिहि, पूजेउ सभु भवानि।
कोउ सुनि ससय करै जनि, सुर अनादि जिअ जानि॥१००॥

अर्थ जगजननी की महाशोभा का वर्णन करोड़ों मुँखो से भी नहीं किया जा सकता। वेद, शेष, सरस्वती भी कहने मे सङ्कोच करती हैं। मन्दमति तुलसी की गणना ही क्या है। छवि की खानि भवानी शिव के पास मण्डप मे गईं। सङ्कोच के कारण देख नहीं सकती। पर मनरूपी भौंरा तो पतिपदकमल मे ही था।

मुनियो की आज्ञा से शम्भु और भवानी ने गणपति का पूजन किया। उनको अनादि देव समझकर कोई इस बात को सुनकर सशय न करे।

व्याख्या औरो की शोभा है पर जगजननी की महाशोभा है। अन्य शोभाएँ उस महाशोभा की अश कलाएँ हैं। वेद इस लोक के वक्ता, शेष पाताल लोक के वक्ता, सारद स्वर्गलोक की वक्ता है। उन्हे भी वर्णन करने म सङ्कोच है। क्योकि तीनो लोको मे ऐसी शोभा है नहीं। फिर तुलसी किस गणना मे है। कि तत्र परमाणुर्वै यत्र मज्जति मन्दर। जहाँ मन्दर डूबे जाते है वहाँ परमाणु की क्या गिनती हो सकती है। बरनै छवि से उपक्रम करके छविखानि से वर्णन का उपसहार करते है। मन मधुकर चरणो मे कब से लगा है प्राप्त होने पर देखने मे सङ्कोच बाधक हो रहा है। भाव यह है कि शिवजी का सौन्दर्य कैसा था जिस पर त्रैलोक्यसुन्दरी उमा मुग्ध थी। अग-अग पर उदितरूपमय पूपन। पा म।

कर्मकाण्ड प्रारम्भ हुआ। शास्त्रमर्यादा पालन के लिए गणपतिपूजन हुआ। यथा प्रथम पूजिअत नाम प्रभाऊ। अत मुनियो का अनुशासन शम्भु भवानी को मान्य है। गणपति पूजन किया। ये 'सुर अनादि हैं। गणपति जन्म के पहिले भी गणपति पूजा होती थी। अथवा मन्त्रमयी मूर्ति तो सनातन है। इसलिए गणपति अनादि देव हैं। सशय करने से अकल्याण होगा। इसलिए निषेध करते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जसि विवाह कै विधि श्रुति गाई । महामुनिन्ह सो सब करवाई ॥
गहि गिरीस कुस कन्या पानी । भवहि समरपी जानि भवानी ॥१॥

अर्थ वेद ने विवाह की जैसी रीति बताई है वह सब महामुनियो ने करवाई। हिमाचल ने अपने हाथ मे कुश लेकर कन्या के हाथ को उसे भवानी जानकर शिवजी को अर्पण किया।

व्याख्या विवाह की जैसी वेदोक्त विधि हैं उसे ठीक ठीक वैसा ही महामुनियो ने सम्पन्न कराया। श्रीरामजी के विवाह मे शाखोच्चार का उल्लेख किया। यथा साखोच्चार दोउ कुलगुरु करैं। यहाँ नही करते। क्योकि यहाँ शाखोच्चार हुआ ही नही। यथा ' साखोच्चार समय सब सुर मुनि विहँसहि। शङ्कर ब्रह्मा से उत्पन्न, ब्रह्मा विष्णु से उत्पन्न, विष्णु शङ्कर से उत्पन्न। जो पुत्र वही प्रपितामह। इसलिए मुनि लोग हँस रहे हैं। अथवा स्वयम्भू हैं इसलिए शाखोच्चार की आवश्यकता ही नहीं है।

कन्यादान मे हिमालय ने अपने को निमित्तमात्र माना। नारदजी से सुन चुके हैं कि गिरिजा सर्वदा सकर प्रिया। अत त्वदीय वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समपये। इस बुद्धि से दान किया। लक्ष्मीरूपा कन्या विष्णुरूपाय वराय ऐसा सकल्प न होकर भवानी भवाय इस रूप से सकल्प हुआ।

पानि ग्रहन जब कीन्ह महेसा । हिय हरषे तब सकल सुरेसा ॥
वेद मत्र मुनिवर उच्चरही । 'जय जय जय सकर सुर करही ॥२॥

अर्थ जब शिवजी ने पाणिग्रहण किया तब सब लोकपाल हृदय से हर्षित हुए। मुनिवर्यो ने वेदघोष किया। देवताओ ने जय जय जय शङ्कर का जयकारा लगाया।

व्याख्या पाणिग्रहण के पहिले तक डर रहा कि बात बिगडने न पावे। परम विरक्त का ब्याह है। इन्हे राजी करने मे क्या क्या नही करना पडा। सब कुछ ठीक होने पर मैना ही मचल पडी कि चाहे प्राण जाय ब्याह न होने दूँगी। लोकपाल लोगो को आर्तिवश विश्वास नही हो रहा है। अधरे को आँख मिले तब जानें वाली कहावत चरितार्थ हो रही है। अत पाणिग्रहण होने पर ही विश्वास हुआ और तब हृदय से हर्षित हुए। अब डर नही रह गया।

पाणिग्रहण के समय उत्साह से भरकर मुनियो ने वेदध्वनि और देवताओ ने जयध्वनि की। आदि, मध्य, अन्त, सर्वकाल मे शिवजी की जय है। अत देवता लोग तीन बार जय शब्द का प्रयोग कर रहे है।

बार्जाह बाजा विविध विधाना । सुमन वृष्टि नभ भै विधि नाना ॥
हर गिरिजा कर भयउ विवाहू । सकल भुवन भरि रहा उछाहू ॥३॥

अर्थ अनेक प्रकार से बाजे बजने लगे। आकाश से नाना भाँति के फूलो का वर्षा हुई। शिव-पार्वती का ब्याह हो गया। सारा ससार उछाह से भर गया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या बाहर वाद्यध्वनि हो रही है। आकाश से सुमनवृष्टि हो रही है। ह भी नानाविधि से। फूलो की पखुरियो की वृष्टि हुई। पूरे फूलो की वृष्टि हुई। ल्पवृक्ष के फूल बरसाये गये। मालाओ की वर्षा हुई। रग बिरगी फूलो की मालाएँ गरी। इत्यादि। शिव पार्वती के ब्याह का प्रभाव देवलोक पर विशेषरूपेण पडा। तः बार-बार पुष्पवर्षा हो रही है।

यह उत्साह इतना अधिक हुआ कि हिमालय सकीर्ण स्थल हो गया। उसमे उछाह समा नही सका, उमगकर सारे भुवन मे भर गया। यथा बहुत उछाह भवन अति थोरा। मानहु उमगि चला चहुँओरा।

दासी दास तुरग रथ नागा। धेनु बसन मनि वस्तु बिभागा॥
अन्न कनक भाजन भरि जाना। दाइज दीन्ह न जाइ बखाना॥४॥

अर्थ दासी, दास, घोडे, रथ, हाथी, गौ, वस्त्र, मणि आदि वस्तुओ का विभाग, अन्न और सोने के बरतन गाडियो मे भरकर दायज दिया जिसका वखान नही हो सकता।

व्याख्या · चतुरङ्गिणी सेना और वस्तु विभाग दिये। दासी-दास से पदाति कहा। तुरग रथ नाग से शेष तीनो अङ्ग कहे और भी तीन विभाग दिये धेनु विभाग, बसन विभाग और मणि विभाग। अन्न सोने के बर्तनो मे भरे हुए सो भी गाडियो मे भर-भर कर दिये। हिमगिरि की सभी करणी अवर्णनीय है। ब्राह्म विवाह म धर्म, अर्थ, काम तीनो की सिद्धि होती है। पुत्रादि की उत्पत्ति से कुलधर्म की रक्षा होती है। अत शिव पार्वती का ब्राह्म विवाह सम्पन्न हुआ।

छ दाइज दियो बहुभाँति पुनि करजोरि हिम भूधर कह्यो।
का देउँ पूरन काम सकर चरन पकज गहि रह्यो॥
सिव कृपासागर ससुर कर सतोषु सब भाँतिहि कियो।
पुनि गहे पद पाथोज मैना प्रेम परिपूरन हियो॥
दो नाथ उमा मम प्रानप्रिय, गृह किंकरी करेहु।
छमेहु सकल अपराध अब, ह्वै प्रसन्न वर देहु॥१०१॥

अर्थ बहुत प्रकार के दहेज देकर फिर हाथ जोडकर हिमाचल ने कहा। हे शङ्कर! आप पूर्णकाम है। मै आपको क्या दे सकता हूँ यह कहकर पाँव पकड लिये। कृपासागर शिवजी ने ससुर को सभी प्रकार से सन्तुष्ट किया। फिर प्रेमपूर्ण हृदय से मैना ने चरणकमल पकड लिये और बोली हे नाथ! उमा मुझे प्राणो के समान प्यारी है। इसे घर की दासी बनाना। इसके समस्त अपराधो को अब क्षमा करते रहना। यही वर प्रसन्न होकर मुझे दो।

व्याख्या इतना देने पर भी चित्त मे दीनता है कि मैने कुछ दिया नही। पूर्ण काम को कोई क्या दे सकता है। कुछ न देनेवाला श्रद्धालु जिस भाँति चरण पकड़

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लेता है कि मै किसी लायक नही उसी भाँति चरण पकड़ लिये कि हम क्या दे सकते हैं ? हमारे यहाँ तो आपकी पूजा के लिए विल्वपत्र भी नही है। हिमालयपर विल्व वृक्ष नही होता। शिवजी का स्वभाव है : सकत न देखि दीन कर जोरे : क्योकि कृपासागर हैं। इस समय हिमवान् और मैना का भाव श्वसुर और सास का सा देखकर ठीक दामाद की भाँति वरताव करते हैं। इसीलिए : ससुर कर सन्तोप सव भाँतिहि कियो कहा। फिर मैना ने प्रेम परिपूर्ण हृदय से चरण पकड़ा। भाव यह कि मैना को भी पूर्ण श्रद्धा विश्वास और प्रेम श्रीचरणो मे हो गया है।

गृहकिंकरी। कहने का भाव यह कि उमा सव गृहपरिचर्या करेगी। आपकी आज्ञा मानेगी। यथा · निजकर गृह परिचर्या करई। रामचंद्र आयसु अनुसरई। नारदजी के मुख से सुन चुकी है कि : सिय वेप सती जो कीन्ह तेहि अपराध सकर परिहरी। इसलिए वर माँगती हैं :

छमेहु सकल अपराध अव . पहिले की भाँति परित्याग न करना।

बहु विधि संभु सास समुझाई। गवनी भवन चरन सिरुनाई ॥
जननी उमा बोलि तव लीन्ही। लै उछंग सुन्दर सिख दीन्ही ॥१॥

अर्थ शिवजी ने बहुत भाँति से सास को समझाया। तव चरणो मे प्रणाम करके घर गईं। फिर माँ ने उमा को बुलाया और गोद मे विठाकर सुन्दर शिक्षा दी।

व्याख्या . बहुत प्रकार से शिवजी ने सास को समझाया। ससुर का सन्तोप किया था क्योकि उन्हे चिन्ता थी कि मैने कुछ दिया नही। परन्तु सास को चिन्ता है कि एक बार त्याग कर चुके है। अपराध हो ही जाता है, कही फिर न त्यागे। अत. बहुत प्रकार से समझाना पड़ा। यथा :

दो. : मैं रिसात नहिं जो करै कोउ मेरो अपराध।
पै प्रिय विजयानद भगति पथमें परै न वाध॥
दुखित हृदय निरुपाय ह्वै कियो सती को त्याग।
पै मो मन ते घटेउ नहिं कवहुँ नेक अनुराग॥
सती अनादर ते कियों दक्ष महामख नाश।
तासु विरह दुखदुखित ह्वै तज्यौ वास कैलास॥
अव मोहिं हित करि कठिन तप लियो उमा मोहि मोल।
तापै आयसु स्वामिकी जाको मोल न तोल॥
प्रभु अनुशासन ते भयौ यह सम्वन्ध उदार।
होइहि नित कल्यान अव अभिमत फल दातार॥

इस भाँति समझाकर सास को भी सन्तुष्ट किया। वे भी प्रणाम करके गईं।

अब विदाई की तैयारी है। अधिक स्नेह के कारण उमा को लेकर गोद मे विठाया। तप के लिए विदा करते समय भी इसी भाँति गोद में भी विठाया था। यथा : उमहि बिलोकि नयन भरे वारी। सहित सनेह गोद वैठारी। बहुमान पुरसर शिक्षा देती हैं जिसमे विस्मरण न हो और ससुराल जाकर वैसा ही वरताव

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



माँ बाप का नाम न धरा जाय। यह चाल बराबर आज तक चली आती है।

सदा सकर पद पूजा। नारि धरम पति देव न दूजा ॥
कहत भरे लोचन बारी। बहुरि लाइ उर लीन्हि कुमारी ॥२॥

अर्थ सदा शिवजी के चरणो की पूजा करना। नारियो का यही धर्म है। लिए पति के सिवा दूसरा दवता नही है। बातें कहते कहते आँखो मे आँसू र कन्या को फिर छाती से लगा लिया।

व्याख्या एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पतिपद प्रेमा। उसी र्म की शिक्षा देती है। पति के दक्षिण अङ्गुष्ठ म सब तीर्थो का निवास है। ही एक मात्र देवता है। उन्ही की पूजा से लोक परलोक दोनो बनता है। धम, नियम, व्रत, उपवास का स्त्री को अधिकार नही। पति की आज्ञा से के कल्याण के लिए स्त्री नियम, व्रत, उपवास भी कर सकती है। सीताजी की ई के समय उन्ह शिक्षा दी गई थी कि सास ससुर गुर पूजा करेहू। पति लखि आयसु अनुसरेऊ। पर यहाँ एसी शिक्षा नही दी जा रही है क्योकि यहाँ सास, ससुर और गुरु तीना का अभाव है।

उमा प्राणो से प्यारी है। अत बार बार हृदय म लगा रही है। आखो म भरा हुआ है। पहिले गोद म लिया। अब हृदय से लगाती है।

विधि सृजी नारि जगमाही। पराधीन सपनेहु सुख नाही ॥
अति प्रेम विकल महतारी। धीरजु कीन्ह कुसमं विचारी ॥३॥

अर्थ कहने लगी ब्रह्मा ने ससार म स्त्रियो को क्यो बनाया? पराधीन स्वप्न म भी सुख नही है। माता प्रेम म अत्यन्त विकल हो गई पर कुसमय नकर धैय धारण किया।

व्याख्या विधि प्रपञ्च, गुण और दोष मिलाकर बना है। इसम सुख भी है र दुःख भी है पर स्त्रियो को तो स्वप्न म भी सुख नही है। मैना कहती है कि ा ने स्त्री को बनाया क्यो? सपने मे भी सुख न होने का कारण यह है कि हे सदा पराधीन रहना पडता है। पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। ास्तु स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति। कुमारावस्था म पिता रक्षा करता। युवावस्था म भर्त्ता रक्षा करता है। बेटे वृद्धावस्था म रक्षा करते है। स्त्री में तन्त्रता की योग्यता नही है। उनके शरीर का सगठन ऐसा है कि उन्ह सदा ता की आवश्यकता रहती है। स्वतन्त्र रहने से वे बिगड जाती है। यथा जिमि तन्त्र हूँ बिगरहिं नारी। उमा का बिदा कर रही है। अत स्त्राजाति की स्वशता पर आक्षेप करती है। माँ है बेटी के विरह स अति विकल हो उठी। कूल के समय अति विकलता समयानुकूल नही है। इसलिए धैर्य धारण किया।

नि पुनि मिलति परति गहि चरना। परम प्रमु कछु जाइ न बरना ॥
ब नारिन मिलि भेटि भवानी। जाइ जननि उर पुनि लपटानी ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ बार बार भेंटने और उनके चरणो मे पडने लगी। परम प्रेम का कुछ वर्णन नही किया जा सकता। भवानी सब स्त्रियो से मिल भेंटकर फिर जाकर माँ को छाती से लिपट गईं।

व्याख्या पुत्रीभाव से तो भेटती है और जगदम्बा भाव से चरणो मे गिरती है। अथवा परम प्रेम मे कोई सुध बुध नही है। गल भी लगती है। पैर भी गिरती है। मिलि भेंटि शब्द का साथ ही प्रयाग होता है। अर्थ केवल आलिङ्गन करना है। अन्तिम विदा माता से लनी है। अत तीसरी बार जाकर माँ से फिर लिपट गईं।

छ जननिहि बहुरि मिलि चली उचित असीस सब काहू दई।
फिरि फिरि बिलोकत मातु तन तब सखीलै सिव पह गई॥
जाचक सकल सतोषि सकरु उमा सहित भवन चले।
सब अमर हरषे सुमन बरषि निसाननभ बाजे भल॥

दो चले सग हिमवनु तब, पहुँचावन अति हेतु।
बिबिध भाति परितोषु करि, बिदा कीन्ह बृषकेतु॥१०२॥

अर्थ फिर माता से मिलकर चली तब सबने उचित आशीर्वाद दिया। फिर फिरकर माता को देखती थी। तब सखियाँ उन्हे शिवजी के पास ल गईं। महादेवजी सब मँगनो को सन्तुष्ट करके उमा के साथ घर चल। सब देवगण प्रसन्न होकर फूलो की वर्षा करने लगे और आकाश म खूब डके बजे।

तब हिमाचल अत्यन्त प्रीति से पहुँचाने चल। शिवजी ने उन्हे बहुत भाँति से समझा बुझाकर विदा किया।

व्याख्या सौभाग्यवती भव पुत्रवती भव। यही समयोचित आशीर्वाद है। सो सब लोगो ने दिया। माता पर बडा प्रेम है अत घूम घूमकर देखती हैं। माँ बाप और मैके का इतना प्रम होता है कि पतिपदकमल म मन मधुकर के रहने पर भी उनका विरह दु खदायक ही रहा है। बिछोह की व्यथा का बढना ठीक नही। अत सखी शिवजी के पास लिवा ल गईं।

शिवजी उमा सहित भवन चल। दायज की कोई वस्तु साथ नही है। सब याचको को द दी गई। बिदाई क समय फिर डका बजा। तीसरी बार फिर पुष्पवृष्टि हुई। देवताओ का मनोरथ पूर्ण हुआ। अत बडा उत्साह हुआ है।

सीमान्त तक पहुँचाने की विधि है। अत हिमाचल शिवजी को पहुँचाने चल। शैलराज को अत्यन्त प्रेम है। अत शिवजी ने बहुत परितोष दिया तब फिरे प्रेम के कारण फिरते ही न थे।

तुरत भवन आए गिरि राई। सकल सैल सर लिये बोलाई॥
आदर दान बिनय बहु माना। सब कर बिदा कीन्ह भगवाना॥१॥

अर्थ तब हिमाचल तुरन्त घर आये। सब पर्वतो और नदियो को बुलाया। आदर, दान, विनय और बहुत सम्मानपूर्वक हिमवान् ने सबको विदा किया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या . लड़की की विदाई के बाद पहिला काम नेवतहरियों · मेहमानों को विदा करना है। सो सब वन, सागर, नदी और तालाब को जो नेवते मे आये थे हिमवान् ने बुलाया और सबकी आदर, दान, विनय और सम्मान से विदाई की। कोई ऐसे भी होते हैं जो दान या विनय के पात्र नही हैं। पर आदर और सम्मान के सभी पात्र हैं। सम्मान दान सब दानो से बड़ा है। यथा तुलसी कहत पुकारि के सुनहु सकल दे कान। हेमदान गजदान ते बडो दान सनमान। अथवा आने पर आदर, विदाई के समय दान और विनय फिर सम्मान से ग्रामसीमान्त तक पहुँचाना।

जबहि संभु कैलासहि आए। सुर सब निज निज लोक सिधाए ॥
जगत मातु पितु संभुभवानी। तेहि सिंगारु न कहउँ बखानी ॥२॥

अर्थ . जब शिवजी कैलास आये तब सब देवगण अपने अपने लोक को चले गये। शम्भु भवानी जगत् के माता पिता है। इसलिए उनके शृङ्गार का वर्णन मे नही करता।

व्याख्या · देवगण महादेव के आज्ञाकारी हैं। आज्ञा माँग माँगकर अपने अपने लोको को गये। अत इधर · आदरदान विनय बहु माना नही करते। विवाह के बाद शृङ्गाररस प्राप्त ही है। शम्भुशुक्रसम्भूत सुत की इस समय जगत् को बडी आवश्यकता थी। अत शृङ्गार रस का विधान बडे विस्तार से हुआ। जिसे देखकर भगवान् नन्दिकेश्वर ने कामशास्त्र की रचना की। परन्तु ग्रन्थकार कहते हैं कि उसके वर्णन का मुझे अधिकार नही है। क्योकि शम्भु भवानी जगत् के माता पिता है।

करहिं बिबिध बिधि भोग बिलासा। गनन्ह समेत बसहिं कैलासा ॥
हर गिरिजा बिहार नित नयऊ। एहि बिधि बिपुल काल चलि गयऊ ॥३॥

अर्थ विविध विधि से भोग-विलास करते हुए, अपने गणो के साथ कैलास मे रहने लगे। हरगिरिजा का विहार नित्य नया हुआ और इस भाँति बहुत समय चला गया।

व्याख्या प्रवृत्ति सदा शास्त्रीया होनी चाहिए। कामशास्त्र के अनुसार काम मे प्रवृत्ति होने से यथार्थ सुख की उपलब्धि होती है और काम से चित्त भी समय पाकर उपरत हो जाता है। भोग-विलास की विधि जिसने कामशास्त्र नही देखा उसे क्या मालूम ? पशु की भाँति सन्तति उत्पन्न कर लेना दूसरी बात है। भोग-विलास की विस्तृत विधि है कामशास्त्र मे उसका उल्लेख है। गृहस्थ हो गये इसलिए कहते हैं बसे कैलासा।

नितनवविहार पर महाकवि कालिदास ने 'कुमारसम्भव' काव्य लिख डाला परन्तु ग्रन्थकार ने इसे अनुचित समझकर दिग्दर्शन मात्र करा दिया। 'नित नयऊ' से भाव यह कि सेवत विषय विवर्ध जिमि नित नित नूतन मार। इस प्रकार क्षण की भाँति बत्तीस वर्ष बीत गये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तब जनमेउ षट बदन कुमारा। तारकु असुर समर जेहि मारा ॥
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। षन्मुख जन्मु सकल जग जाना ॥४॥

अर्थ : तब छः मुँहवाले पुत्र का जन्म हुआ। जिसने लड़ाई में तारकासुर को मारा। यह बात वेद शास्त्र और पुराण मे प्रसिद्ध है। सारा संसार षडानन के जन्म का वृतान्त जानता है।

व्याख्या : तब शम्भुशुक्रसम्भूत सुत का जन्म हुआ। रजोमिश्रण से देवासुरों का संहारकर्ता पुत्र उपजा। जन्म के बाद ही तारकासुर का वध कहा अर्थात् छठी के पहिले ही मारा। अति प्रसिद्ध होने से जन्म को विस्तार से न कहा। पण्डित, मूर्ख सभी यह कथा जानते हैं। पांच मुखवाले पिता और एक मुखवाली माता से छः मुँहवाला पुत्र उत्पन्न हुआ।

छं. जगु जान षन्मुख जन्मु कर्मु प्रताप पुरुपारथु महा।
तेहि हेतु मैं वृषकेतु सुत कर चरित संछेपहि कहा ॥
यह उमा संभु बिबाहु जे नर नारि कहहिं जे गावही।
कल्यान काज बिबाह मंगल सर्वदा सुखु पावही ॥

दो. चरित सिंधु गिरिजा रमन, बेद न पावहिं पारु।
बरनै तुलसीदासु किमि, अति मतिमंद गवाँरु ॥१०३॥

अर्थ : षडानन : स्वामिकार्तिक के जन्म, कर्म, प्रताप और महापुरुपार्थ को सारा जगत् जानता है। इसलिए मैंने वृषकेतु के पुत्र का चरित्र संक्षेप मे कहा है। इस उमाशम्भु विवाह को जो नर-नारी कहेंगे या गायेंगे वे कल्याण के कामों और विवाहोत्सवों मे सदा सुख पायेंगे।

गिरिजारमण शिवजी का चरित समुद्र है। उसका पार वेद नही पा सकते। अति मतिमन्द और गँवार तुलसीदास कैसे वर्णन कर सकता है ?

व्याख्या : केवल शम्भुशुक्रसम्भूत होना : जन्म। तारकासुरवध : कर्म। जन्म ग्रहण करते ही सुरसेनापति पद पर अभिषेक : प्रताप और उनकी शक्ति का किसी देवता से न उठना : महापुरुपार्थ है। वृषकेतु सुत कहकर पिता का सा महापराक्रम द्योतित किया। जिस बात को संसार जानता है उसे विस्तार से कहने मे आनन्द नही होता। इसलिए संक्षेप मे कहा। इस उमाशम्भु विवाह प्रसङ्ग मे ग्यारह रुद्र संज्ञक छन्द इकट्ठे आये हैं। चार चौपाई समाप्त होते ही एक छन्द एक दोहा। यह क्रम पूरे प्रसङ्ग में है। फलश्रुति कहते हैं कि जो कल्याणकार्य विवाह मङ्गल मे यह उमाशम्भु विवाह प्रसङ्ग गायेंगे या सुनेंगे वे सुख पायेंगे और जो सर्वदा सुनेंगे गायेंगे वे सर्वदा सुख पायेंगे। यह भवानीशङ्कर की वाङ्मयी पूजा का फल है। अतः वाङ्मयी पूजा भवानी शङ्कर की करके तब रामकथा आरम्भ होगी।

सीतारमण के चरित्र की भाँति गिरिजारमण का भी चरित्र अपार है। तुलसीदास जी कहते हैं जिसकी बुद्धि मन्द और असंस्कृत है उसके लिए तो विशेष-

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या लडकी की विदाई के बाद पहिला काम नेवतहरियो • मेहमानो को विदा करना है। सो सब वन, सागर, नदी और तालाब को जो नेवते मे आये थे हिमवान् ने बुलाया और सबको आदर, दान, विनय और सम्मान से विदाई की। कोई ऐसे भी होते हैं जो दान या विनय के पात्र नही हैं। पर आदर और सम्मान के सभी पात्र हैं। सम्मान दान सब दानो से बडा है। यथा तुलसी बहुत पुकारि के सुनहु सकल दै कान। हेमदान गजदान ते बडो दान सनमान। अथवा आने पर आदर, विदाई के समय दान और विनय फिर सम्मान से ग्रामसीमान्त तक पहुँचाना।

जर्बाह सभु कैलासहि आए। सुर सब निज निज लोक सिधाए ॥
जगत मातु पितु संभुभवानी। तेहि सिंगारु न कहा बखानी ॥२॥

अर्थ जब शिवजी कैलास आये तब सब देवगण अपने अपने लोक को चले गये। शम्भु भवानी जगत् के माता पिता हैं। इसलिए उनके शृङ्गार का वर्णन मैं नही करता।

व्याख्या देवगण महादेव के आज्ञाकारी हैं। आज्ञा माँग माँगकर अपने अपने लोको को गये। अत इधर आदरदान विनय बहु माना नही करते। विवाह के बाद शृङ्गाररस प्राप्त ही है। शम्भुशुक्रसम्भूत सुत की इस समय जगत् को बडी आवश्यकता थी। अत शृङ्गार रस का विधान बडे विस्तार से हुआ। जिसे देखकर भगवान् नन्दिकेश्वर ने कामशास्त्र की रचना की। परन्तु ग्रन्थकार कहते है कि उसके वर्णन का मुझे अधिकार नही है। क्योकि शम्भु भवानी जगत् के माता पिता है।

करहिं विविध विधि भोग बिलासा। गनन्ह समेत बसहिं कैलासा ॥
हर गिरिजा बिहार नित नयऊ। एहि बिधि बिपुल काल चलि गयऊ ॥३॥

अर्थ विविध विधि से भोग विलास करते हुए, अपने गणो के साथ कैलास म रहने लगे। हरगिरिजा का विहार नित्य नया हुआ और इस भाँति बहुत समय चला गया।

व्याख्या प्रवृत्ति सदा शास्त्रीया होनी चाहिए। कामशास्त्र के अनुसार काम मे प्रवृत्ति होने स यथार्थ सुख की उपलब्धि होती है और काम से चित्त भी समय पाकर उपरत हो जाता है। भोग विलास की विधि जिसने कामशास्त्र नही देखा उसे क्या मालूम? पशु की भाँति सन्तति उत्पन्न कर लना दूसरी बात है। भोग-विलास को विस्तृत विधि है कामशास्त्र म उसका उल्लेख है। गृहस्थ हो गये इसलिए कहते हैं बसै कैलासा।

नितनवविहार पर महाकवि कालिदास ने 'कुमारसम्भव' काव्य लिख डाला परन्तु ग्रन्थकार ने इसे अनुचित समझकर दिग्दर्शन मात्र करा दिया। 'नित नयऊ' से भाव यह कि सेवत विषय विवर्ध जिमि नित नित नूतन मार। इस प्रकार क्षण की भाँति बत्तीस वर्ष बीत गये।


(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तब जनमेउ षट बदन कुमारा। तारकु असुर समर जेहि मारा॥
आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। षन्मुख जन्मु सकल जग जाना॥४॥

अर्थ तब छ मुँहवाले पुत्र का जन्म हुआ। जिसने लडाई मे तारकासुर को मारा। यह बात वेद शास्त्र और पुराण मे प्रसिद्ध है। सारा ससार षडानन के जन्म का वृतान्त जानता है।

व्याख्या तब शम्भुशुक्रसम्भूत सुत का जन्म हुआ। रजोमिश्रण से देवासुरो का सहारकर्ता पुत्र उपजा। जन्म के बाद ही तारकासुर का वध कहा अर्थात् छठी के पहिले ही मारा। अति प्रसिद्ध होने से जन्म को विस्तार से न कहा। पण्डित, मूर्ख सभी यह कथा जानते है। पाँच मुखवाले पिता और एक मुखवाली माता से छ मुँहवाला पुत्र उत्पन्न हुआ।

छ जगु जान षन्मुख जन्मु कर्मु प्रताप पुरुषारथु महा।
तेहि हेतु मै वृषकेतु सुत कर चरित सछेपहि कहा॥
यह उमा सभु बिबाहु जे नर नारि कहहि जे गावही।
कल्यान काज बिबाह मगल सर्वदा सुखु पावही॥

दो चरित सिंधु गिरिजा रमन, बेद न पावहि पारु।
बरनै तुलसीदासु किमि, अति मतिमद गवाँरु॥१०३॥

अर्थ षडानन स्वामिकार्तिक के जन्म, कर्म, प्रताप और महापुरुषार्थ को सारा जगत् जानता है। इसलिए मैने वृषकेतु के पुत्र का चरित्र सक्षेप मे कहा है। इस उमाशम्भु विवाह को जो नर-नारी कहेगे या गायेंगे वे कल्याण के कामो और विवाहोत्सवो म सदा सुख पायेंगे।

गिरिजारमण शिवजी का चरित समुद्र है। उसका पार वेद नही पा सकते। अति मतिमन्द और गँवार तुलसीदास कैसे वर्णन कर सकता है ?

व्याख्या केवल शम्भुशुक्रसम्भूत होना जन्म। तारकासुरवध कर्म। जन्म ग्रहण करते ही सुरसेनापति पद पर अभिषेक प्रताप और उनकी शक्ति का किसी देवता से न उठना महापुरुषार्थ है। वृषकेतु सुत कहकर पिता का सा महापराक्रम द्योतित किया। जिस बात को ससार जानता है उसे विस्तार से कहने मे आनन्द नही होता। इसलिए सक्षेप मे कहा। इस उमाशम्भु विवाह प्रसङ्ग म ग्यारह रुद्र सज्ञक छन्द इकट्ठे आये हैं। चार चौपाई समाप्त होते ही एक छन्द एक दोहा। यह क्रम पूरे प्रसङ्ग म है। फलश्रुति कहते है कि जो कल्याणकार्य विवाह मङ्गल म यह उमाशम्भु विवाह प्रसङ्ग गायेंगे या सुनेंगे वे सुख पावेंगे और जो सर्वदा सुनेंगे गायेंगे वे सर्वदा सुख पायेंगे। यह भवानीशङ्कर की वाङ्मयी पूजा का फल है। अत वाङ्मयी पूजा भवानी शङ्कर की [illegible] होगी।

सीतारमण के चरित्र की भाँति [illegible] का भी चरित्र अपार है। तुलसीदास जी कहते हैं जिसकी बुद्धि मन्द [illegible] उसके लिए तो विशेष-

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रूपेण अपार है। अत वर्णन करते न बना, इसमे सन्देह नहीं। जीवों के लिए वेद ही सब कुछ है। जब उसी को पार नहीं मिलता तो तुलसीदास की गिनती ही क्या है ?

## संगति वाक्य

संभु चरित मुनि सरस सुहावा। भरद्वाज मुनि अति सुखु पावा॥
बहु लालसा कथा पर बाढ़ी। नयनन्हि नीरु रोमावली ठाढ़ी॥१॥

अर्थ शम्भु के रसयुक्त और सुहावने चरित्र को सुनकर भरद्वाज जी ने बहुत सुख पाया। कथा पर लालसा बढ़ी। आँखो मे जल भर आया। रोमावली खड़ी हो गई।

व्याख्या शम्भुचरित को सरस कहा क्योंकि वह रसयुक्त है। रस नौ होते है। सो सभी शम्भुचरित मे हैं। १ शृङ्गार, यथा करि शृगार सखी लै आई। सिवहि सभुगन करहि सिगारा। करहिं विविध विधि भोग बिलासा। २ हास्य, यथा देखि सिवहि सुरतिय मुसुकाही। बरलायक दुलहिन जग नाही। बिहँसे सिव समाज निज देखा। इत्यादि। ३ करुण, यथा रोदति बदति बहु भाँति करुना करत सकर पहँ गई। ४ वीर, यथा दुइ माथ केहि रतिनाथ जेहि कहुँ कोपकरि धनु सर गहा। ५ अद्भुत, यथा इहाँ हिमाचल रचेउ बिताना। अति बिचित्र नहि जाइ बखाना। इत्यादि। ६ रुद्र, यथा बिकट बेप जय रुद्रहि देखा। ७ भयानक, यथा अबलन्ह उर भय भयउ बिसेखा। भागि भवन पैठी अति त्रासा। ८ बीभत्स, यथा सब सब मानित तन भरे। ९ निर्वेद, यथा सकर सहज सरूप सभारा। लागि समाधि अखड अपारा। 'सुहावा' से उपक्रम। यथा सुनहु सभुकर चरित सुहावा। और 'सुहावा' से ही उपसहार। यथा सभुचरित सुनि सरस सुहावा। उमाचरित स सुख पावा और शम्भुचरित से अति सुख पावा।

कथा पर लालसा तो पहिले से ही थी। अब शम्भुचरित के श्रवण से बहुत बढी। नयननीर रोमावलि ठाढी से सात्त्विक भावोदय दिखलाया।

प्रेम बिबस मुख आव न बानी। दसा देखि हरषे मुनि ग्यानी॥
अहो धन्य तव जन्मु मुनीसा। तुम्हहि प्रान सम प्रिय गौरीसा॥२॥

अर्थ प्रेम विवस होने से मुख से बोली तक न निकली। दशा देखकर ज्ञानी, मुनि बहुत प्रसन्न हुए। कहने लगे हे मुनीश ! तुम्हारा जन्म धन्य है। तुमको शिवजी प्राण के समान प्यारे हैं।

व्याख्या बहु लालसा कथा पर बाढी से मानसिक दशा कही। नयननीर रोमावलि ठाढी से शारीरिक दशा कही। अब वचन की दशा कहते हैं कि प्रेम के वश होने से मुख मे वाणी नहीं निकल रही है। ज्ञानी मुनि याज्ञवल्क्य को शिष्य का अत्यन्त प्रेम शङ्कर के चरणो म देखकर बड़ा हर्ष हुआ कि मुझे रामचरित का परम अधिकारी श्रोता मिला।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



- भगवान् याज्ञवल्क्य ने भरद्वाज जी को पहिले मुनि करके सम्बोधन किया था। यथा : सुनु मुनि मिटिहि विषाद। अब प्रेम मे विभोर देखकर मुनीश कहते हैं। जिसे गौरीश प्राणसम प्रिय हो, उसी का जन्म धन्य है। क्योंकि .

सिव पद कमल जिन्हहि रति नाही। रामहि ते सपनेहुँ न [1]सोहाही ॥
बिनु छल बिस्वनाथ पद नेहू। राम भगत कर लच्छन [2]एहू ॥३॥

अर्थ : शिवजी के चरणकमलो मे जिन्हे प्रीति नही है वे रामजी को स्वप्न मे भी अच्छे नही लगते। रामभक्त का लक्षण ही यही है कि शिवजी के चरणो मे छलरहित प्रीति हो।

व्याख्या व्यतिरेक मुख से शङ्कर के प्रेमी का ही रामप्रिय होना कहते हैं। 'सपनेहु' कहने का भाव यह कि किसी अवस्था मे भी रामजी को प्रिय नही है। क्योंकि ' प्रिय सम प्रिय सनेह भाजन सखि, प्रीतिरीति जगजानी। भूषन भूति गरल परिहरि कै हर मूरति उर आनी। मज्जन पान कियो कै सुरसरि कर्मनास जल छानी। पूछ सो प्रेम विरोध सीग सों, एहि विचार हित हानी। कृष्ण गीतावली।

असाधारण धर्म का लक्षण कहते हैं। यहाँ भरद्वाजजी की परीक्षा ली गई कि लक्षित मे लक्षण घटता है या नही। सो लक्षण घटा। विश्वनाथ के प्रेम मे विभोर देखकर जान लिया कि रामभक्त हैं अत कथा सुनने के अधिकारी हैं।

सिव सम को रघुपति ब्रत धारी। बिनु अघ तजी सती असि नारी ॥
पनु करि रघुपति भगति देखाई। को सिव सम रामहि प्रिय भाई ॥४॥

अर्थ शिवजी के समान रघुपति[3]व्रतधारी कौन है ? जिन्होने निष्पाप सती ऐसी स्त्री का त्याग किया। प्रण करके रघुपतिभक्ति दिखलायी। हे भाई ! रामजी को शिवजी के समान कौन प्यारा है ?

व्याख्या प्रण करना और उसका निर्वाह करना ही व्रत है। यथा अस व्रत

---

१ रामभक्तो के आदर्श शिवजी है। जिस भक्त को शिवजी प्रिय नही ह वह अपने आदर्श स गिर गया। उसे भक्ति नही हो सकती। इसलिए आदर्शभ्रष्ट पुरुष रामजी को प्रिय नही हो सकता।

, २ जिसे सच्चा प्रेम विश्वनाथ के चरण मे नही है वह रामभक्त नही है। क्योंकि रामभक्त का लक्षण उसमे नही घटता।

३ रघुपति के चरणो म मनसा वाचा कर्मणा प्रेम करना और उसके सामने स्त्री, शरीर, पुत्र, धाम और धरणी को तृण समझना यही रघुपति व्रत है, इसी व्रत को अक्षुण्ण बनाये रखने के लिए शिवजी ने प्रण किया कि एहि तन सती भेट अब नाही। जैसे सत्यव्रत सत्य के ऊपर सब कुछ निछावर कर देते हैं। यथा तनु तिय तनय धाम धनु धरनी। सत्यसध कहँ तृन सम बरनी। इसी भाँति रघुपति व्रतधारी शिवजी ने सती-सी स्त्री का रघुपति भक्ति के लिए परित्याग किया और जगत् को दिखला दिया कि रामभक्ति इसे कहते है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सेवक तुम राम के रहित समस्त विकार। अब रघुपति लीला कहूँगा सुनो। आसुरी सम्पत्तिवालो को सुनाने से उनका अकल्याण होता है। यथा अस रघुपति लीला उरगारी। दनुज विमोहनि जन सुखकारी। अत कथा कहने के पहिले यह समझ लेना चाहिए कि इससे सुननेवाले की हानि तो नही होगी तब कथा कहनी चाहिए। सती पर बडी विपत्ति, कथा के अनादर से आई। यथा रामकथा मुनिवज बखानी। सुनी महेस परम सुख मानी। सती ने ध्यान नही दिया। कैलास पर भी कथा सुनने के समय विमान देखने लगी।

उत्तम वक्ता मिलने से श्रोता को सुख तो होता ही है। पर योग्य श्रोता मि ने से वक्ता को भी बडा सुख मिलता है। कि पुन रामभक्त के मिलने से। यथा तुमहि न ससय मोह न माया। मो पर नाथ कीन्ह तुम दाया। अत कहते हैं कहि न जाइ जस सुखु मन मोरे।

राम चरित अति अमित मुनीसा। कहि न सकहिं सत कोटि अहीसा ॥
तदपि जथाश्रुत कहउँ बखानी। सुमिरि गिरापति प्रभु धनुपानी ॥२॥

अर्थ हे मुनीश! रामचरित अत्यन्त असीम है। उसे सौ करोड शेष भी नही कह सकते तो भी जैसा मैंने सुन रक्खा है वैसा वाणी के पति धनुष्पाणि प्रभु को स्मरण करके कहता हूँ।

व्याख्या दीनघाट के वक्ता श्री गोस्वामीजी कह चुके हैं वहँ रघुपति के चरित अपारा। कहँ मति मोरि निरत ससारा। मुनिन्ह प्रथम हरि कीरति गाई। तेहि मग चलत सुगम मोहि भाई। अब कर्मघाट के वक्ता याज्ञवल्क्यजी भी प्राय वही बात कह रहे हैं। उन्होने कहा था सारद शेष महेस विधि आगम निगम पुरान। नेति नेति कहि जासु गुन करहिं निरतर गान। और यहाँ कहते ह कहि न सकहिं सत कोटि अहीसा। बात एक ही है नेतिनेति करके कहना भी सीधे-सीधे नही कह सकना ही है। भेद यही है कि भगवान् याज्ञवल्क्य यथाश्रुत कहने म समर्थ है। यथा ते श्रोता वक्ता समसीला। सवदरसी जानहिं हरि लीला। दीनघाट के वक्ता यथाश्रुत कहने म अपने को असमथ पाते हैं। यथा किमि समझौं मै जीव जड कलिमल ग्रसित विमूढ। तदपि कही गुर बारहि बारा। समुझि परी कछु मति अनुसारा। भाषाबद्ध करब मैं सोई। भगवान् याज्ञवल्क्य गिरापति धनुष्पाणि प्रभु को स्मरण करके कथा आरम्भ करते ह। रामसच्चिदानन्द की तीन शक्तियाँ हैं। सत् शक्ति महालक्ष्मी। चित् शक्ति महासरस्वती और आनन्द शक्ति महाकाली। इस भाति रामजी गिरापति है। अखण्डदण्डायमान कालरूपधनुष उनके हाथ म है अर्थात् जो बुद्धि और बल की परम सीमा ह यथा काल जासु कोदड। वे ही कृपा करके वाणी का नृत्य हृदय म करा देंगे। धनुष्पाणि है विघ्नसमूह को दूर कर देंगे। अब रामजी का गिरापतित्व कहते हैं। यथा

सारद दारु नारिसम स्वामी। राम सूत्रधर अतरजामी ॥
जेहि पर कृपा करहि जनु जानी। कवि उर अजिर नचावहि बानी ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ सरस्वती कठपुतली के समान है। स्वामी अन्तर्यामी रामजी सूत्रधार है। जिस पर वे भक्त जानकर कृपा करते हैं उस कवि के हृदयरूपी आँगन मे सरस्वती का नृत्य करा देते है।

व्याख्या उमा दारु जोषित की नाईं। सबहिं नचावत राम गोसाईं। सो सर्वहिं मे सरस्वती का भी अन्तर्भाव है। ये भी उस अन्तर्यामी प्रभु के हाथ की कठपुतली है। जिस भाँति सूत्रधार आड मे रहकर पुतली नचाया करता है उसी भाँति रामगुसाईं दिखाई नही पडते और सरस्वती को भक्त कवि के हृदयरूपी आँगन मे नचाया करते है। साधारण पुरुष केवल सरस्वती की क्रिया देखते है। याज्ञवल्क्य ऐसे जानकार जानते है कि सूत्रधार दूसरा ही है। जिसकी यह करामत है।

कवि होना अपने हाथ की बात नही है। यथा शक्ति कवित्त बनाइवे की जेहि जन्म नक्षत्र मे देइ विधातो। देह भर मे हृदय ही नाचघर है। वही सरस्वती का नाच होता है। प्रभु सबके उर के अन्तर बसते है। अत वाणी भी वही सरकार के सामने नृत्य करती है। और वे ही सूत्रधार की भाँति उसे नचाते है।

प्रनवौ सोइ कृपालु रघुनाथा। बरनौ बिसद तासु गुन गाथा ॥
परम रम्य गिरिवरु कैलासू। सदा जहाँ सिव उमा निवासू ॥८॥

अर्थ उन्ही कृपालु रघुनाथजी को मै प्रणाम करता हूँ। उन्ही के निर्मल गुणो की गाथा वर्णन करता हूँ। गिरिश्रेष्ठ कैलास परमरमणीय है। वहाँ शिव-पार्वती सदा निवास करते है।

पहिले प्रभु का स्मरण किया। यथा सुमिरि गिरापति प्रभु धनु पानी। अब उन्ही रघुनाथजी का वन्दन करते है। जिससे वे सरस्वती को प्रेरित कर। और मेरे हृदय मे उनका नृत्य हो। तब निर्मल यश कहा जा सकता है। भगवान् याज्ञवल्क्य कर्म • दक्षिण घाट के वक्ता है। अत नचानेवाल की वन्दना करते है। अब पश्चिम घाट अर्थात् ज्ञानघाट की कथा प्रारम्भ होती है।

पहिले कथा के स्थान का वर्णन करते है। कैलास पर्वतो मे श्रेष्ठ है और परमरम्य है। वहाँ शिव उमा का सदा निवास रहता है। यथा जहँ बस सभु भवानि सो कासी सेइअत कस न। परन्तु राजा दिवोदास के समय मे शिवजी के काशी छोडने की कथा सुनी जाती है। परन्तु कैलास मे सदा निवास रहता है। अब उसका माहात्म्य कहते है।

दो सिद्ध तपोधन जोगिजन, सुर किंनर मुनिबृंद।
बसहिं तहाँ सुकृती सकल, सेवहिं सिव सुखकंद ॥१०५॥

अर्थ वहाँ सिद्ध, तपस्वी, योगी, देव, किन्नर, मुनिजन और सब पुण्यात्मा रहते हैं। और सुख के मेघरूप शिवजी की सेवा करते है।

व्याख्या नर की वहाँ पहुँच नही है। नरयोनि पुण्य पाप दोनो के होने से

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



होती है, अत वहां केवल पुण्यात्मा लोग शिवजी की सेवा के लिए बसते है। सांसारिकों का वहाँ जाना दुर्लभ है। बसने की तो कोई बात ही नही है।

हरिहर विमुख धर्मरत नाही। ते नर तहँ सपनेहुँ नहिं जाही ॥
तेहि गिरि पर वट विटप विसाला। नित नूतन सुंदर सव काला ॥१॥

अर्थ : जो हरि और हर के विमुख है और जिन्हें धर्म मे प्रीति नही है वे मनुष्य स्वप्न मे भी वहाँ नही जा सकते। उस पर्वत पर वट का बडा भारी पेड है। जो नित्य नया और सब काल मे सुन्दर रहता है।

व्याख्या : कैलास का मार्ग अत्यन्त दुर्गम है। और वहाँ सासारिक प्रलोभन की कोई वस्तु भी नही है। अत. धर्म के चाहनेवाले अथवा हरिहर के चरण मे प्रीति रखनेवाले ही प्राण की बाजी लगाकर वहाँ जा सकते हैं। दूसरे के मन मे वहाँ जाने का संकल्प ही नही उठेगा। कैलास जाने का कोई स्वप्न भी नहीं देखता। यह वात स्पष्ट ही है। आसुरी प्रवृत्ति के लोगो को वहाँ जाने मे अधिक सुविधा है। क्योंकि वे मद्यमांसादि के प्रयोग से उस भयानक शीत का सामना कर सकते है। पर उनका जाना न जाने के बराबर है। यही ठीक है कि वे नही जाते। क्योंकि उन्हे वहाँ सिवा हिम और पाषाण के कुछ दिखाई ही नही पडता। दिव्यप्रदेश के लिए दिव्यदृष्टि की आवश्यकता होती है। बिना सूर्य मे संयम द्वारा दृष्टि प्राप्त किये कैलाश के दिव्यांश का, जिसका यहाँ वर्णन है दर्शन नहीं प्राप्त हो सकता।

यह पर्वत इतना ऊँचा है कि वादल भी इसके कटि भाग तक नही पहुँचते। उससे ऊपर उनकी गति नही है। ऐसे उच्च पर्वत के ऊपर एक वटवृक्ष है। वह सव समय मे सुन्दर रहता है और कभी पुराना नही होता। इससे उस वृक्ष का दिव्य होना कहा। क्योंकि पाञ्चभौतिक वस्तु सदा षड्डूर्मि अस्ति, जायते, वर्धते, विपरिणमते, अपक्षीयते, विनश्यति के वशीभूत रहते हैं।

त्रिविध समीर सुसीतलि छाया। सिव विस्राम विटप श्रुतिगाया ॥
एक वार तेहि तर प्रभु गएऊ। तरु विलोकि उर अति सुख भएऊ ॥२॥

अर्थ : वहाँ शीतल मन्द सुगन्ध पवन चला करता है और उसकी छाया सुन्दर शीतल है। वेद उस पेड को शिवजी के विश्राम का विटप बतलाते हैं। एक बार प्रभु उस वृक्ष के नीचे गये। उसे देखकर उनके हृदय मे बहुत सुख हुआ।

व्याख्या : उस हिममण्डित देश मे त्रिविध समीर कहाँ ? शिव विश्राम विटप का यह प्रभाव है कि उसके तले त्रिविध समीर भी बहता है और छाया मे भी उत्कृष्ट शीत या उष्णता नही रहती। महल से बाहर आकर, वटविटप के तले शिवजी गये। वृक्ष की रमणीयता देखिये कि उसे देखकर शिवजी को अत्यन्त सुख हुआ। उसके नीचे बैठने से शिवजी को विश्राम मिलता है। भाव यह कि ज्ञानघाट की कथा कैलास के ऊपर वटवृक्षतले हुई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अथवा जटामुकुट से तपस्वियों का राजा कहा। सुरसरित सिर से भक्तवत्सल, लोचन नलिन विशाल से सर्वद्रष्टा, नीलकण्ठ से आर्तिहर, लावण्यनिधि से छविधाम और बालविधु भाल से महिमाप्रद कहा।

## अथ शिवगीता

श्रीरामचरितमानस भरद्वाज जी के इस प्रश्न पर खड़ा है कि : रामु कवन प्रभु पूछहुँ तोही। कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही। ऐसा ही प्रश्न भगवती हिमगिरिनन्दिनी ने शिवजी से किया था और शिवजी ने उसका समाधान किया था। उसी प्रसङ्ग को याज्ञवल्क्यजी ने उक्त प्रश्न के उत्तर में कह डाला। यही रामचरिमानस है। अपने संशय के उन्मूलन के लिए गिरिजा ने आठ प्रश्न किये। तत्पश्चात् बारह प्रश्न श्रीरामावतार के चरित्रवर्णन तथा भक्ति, ज्ञानादि विषयक किये एवं गिरिजा के बीसों प्रश्नो का उत्तर ही श्रीरामचरितमानस है। अन्त में भगवती ने यह भी विनय किया कि जो कुछ मुझसे पूछने मे रह गया हो उसे भी छिपा नही रखिये। अर्थात् जानने योग्य जितनी बातें है वे सब गिरिजा ने पूछी और शिवजी ने उत्तर दिया। परन्तु प्रथम चार प्रश्नो के उत्तर में ही गिरिजा का सब संशय जाता रहा और वे कृतकृत्य हो गईं। अतः मैं उतने ही अंश को शिवगीता कहता हूँ। अवतारवाद में जो कुछ कहना है उतने मे सब कुछ कहा गया।

श्रीगोस्वामीजी ने कहा है कि : नदी नाव पटु प्रस्न अनेका। केवट कुसल उतर सबिबेका। अतः यह जानना परमावश्यक है कि किस प्रश्न का कौन सा उत्तर है। गिरिजा बीस प्रश्न बराबर करती गईं और शिवजी ने भी सबका उत्तर क्रम से इकट्ठा ही दिया। उनमें से पहिले आठ के पृथक्करण में बडी कठिनता पडती है। यद्यपि श्रीग्रन्थकार ने प्रश्नों को पृथक् करने के लिए हरहु मोर अज्ञाना, कहहु इत्यादि प्रार्थनासूचक लोट् लकार का आठ वार बराबर प्रयोग किया। तथैव उत्तर में सुनहु, तजु आदि क्रियाओं का भी आठ वार प्रयोग किया है फिर भी हम जैसे अल्पज्ञो को प्रश्न उत्तर के मिलान में बड़ी कठिनता पड़ती है। अतः उनका मिलान नीचे दिया जा रहा है।

| प्रश्न | उत्तर |
|---|---|
| १. जौ मोपर प्रसन्न सुखरासी।<br>जानिय सत्य मोहि निज दासी।<br>तौ प्रभु हरहु मोर अज्ञाना।<br>कहि रघुनाथ कथा विधि नाना। १०७ २ | १ धन्य धन्य गिरि राजकुमारी<br>गिरिजा सुनहु राम कै लीला।<br>सुर हित दनुज विमोहन सीला<br>१११ ५ से ११३ तक |
| २ जासु भवन सुर तरु तर होई।<br>सहकि दरिद्र जनित दुखु सोई।<br>ससि भूषन अस हृदय बिचारी।<br>हरहु नाथ मम मतिभ्रम भारी। १०७ ३ ४ | राम कथा सुन्दर करतारी<br>सादर सुनु गिरिराजकुमारी<br>११३ १ २ |

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



निज कर डासि नागरिपु छाला। बैठे सहजहि संभु कृपाला ॥
कुंद इंदु दर गौर सरीरा। भुज प्रलंब परिधन मुनि चीरा ॥३॥

अर्थ अपने हाथ से व्याघ्राम्बर बिछाकर कृपालु शिवजी स्वाभाविक रीति से बैठ गये। शरीर कुंद के फूल, चन्द्रमा और शंख सा गौर है। भुजाएँ लम्बी हैं, मुनिवस्त्र धारण किये हुए हैं।

व्याख्या उस समय एकदम एकान्त था। कोई गण भी निकट नहीं था। स्वयं दासास्तपस्विन। अतः अपने हाथ से ही व्याघ्राम्बर बिछाया। पहिले की भाँति पद्मासन लगाकर नहीं बैठे। यथा बैठे बट तर करि कमलासन। बल्कि स्वाभाविक रीति से यथा सुख आसन से बैठे।

कुन्द से सुन्दरता, कोमलता, गन्ध और वर्ण कहा। इन्दु से प्रकाश तथा आह्लादकता कही। दर से दृढता कही। प्रलम्बबाहु से विक्रम कहा। परिधन मुनीचीर से मुनिव्रत कहा।

तरुन[1] अरुन अंबुज सम चरना। नख दुति भगत हृदय तम हरना ॥
भुजग भूति भूपन त्रिपुरारी। आननु सरद चंद छबिहारी ॥४॥

दो० जटा मुकुट सुरसरित सिर, लोचन नलिन बिसाल।
नीलकण्ठ लावन्यनिधि, सोह बालबिधु भाल ॥१०६॥

अर्थ चरण लाल कमल के समान था और नखों की ज्योति भक्तों के हृदय का अन्धकार दूर करनेवाली थी। साँप और भस्म के भूपणधारी, त्रिपुरासुर के शत्रु शिवजी का मुख शरत्काल के चन्द्रमा की छवि का हरण करनेवाला था।

शिर पर जटाओं का मुकुट और गङ्गाजी थी। उनके बड़े-बड़े नेत्र कमल के समान थे। नीलकण्ठ लावण्य के भण्डार शिर पर द्वितीया का चन्द्र धारण किये हुए थे।

व्याख्या तरुन अरुन अंबुज से मुनिमन मधुप का आश्रय कहा, अथवा ध्यान मे सुखद कहा। उस कमलदल पर रत्नों की भाँति नखों की शोभा है। ध्याता के हृदयतम की निवृत्ति इन्हीं नखमणि की ज्योतियों से होती है।

भुजग भूति भूपन से वैराग्य कहा। त्रिपुरारी से सत्यसन्ध कहा। चन्द छबिहारी से सौन्दर्य कहा। उनका चरित ही रसमय नहीं है मूर्ति भी रसमयी है। लावण्य निधि कहकर शृङ्गार, जटामुकुट कहकर हास्य, कृपालु कहकर करुणा, भुज प्रलंब कहकर वीर, नखद्युति भक्त हृदयतम हरना कहकर अद्भुत, त्रिपुरारि कहकर रौद्र, भूतिभूपण कहकर बीभत्स, भुजगभूपण कहकर भयानक, निज कर डासि नाग रिपु छाला। बैठे सहजहि संभु कृपाला कहकर शान्तरस द्योतित किया।

---

१ पूर्णोपमा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अथवा जटामुकुट से तपस्वियो का राजा कहा। सुरसरित सिर से भक्तवत्सल, लोचन नलिन विशाल से सर्वद्रष्टा, नीलकण्ठ से आर्तिहर, लावण्यनिधि से छविधाम और बालविधु भाल से महिमाप्रद कहा।

## अथ शिवगीता

श्रीरामचरितमानस भरद्वाज जी के इस प्रश्न पर खडा है कि रामु कवन प्रभु पूछहुँ तोही। कहिअ बुझाइ कृपानिधि मोही। ऐसा ही प्रश्न भगवती हिमगिरिनन्दिनी ने शिवजी से किया था और शिवजी ने उसका समाधान किया था। उसी प्रसङ्ग को याज्ञवल्क्यजी ने उक्त प्रश्न के उत्तर मे कह डाला। यही रामचरिमानस है। अपने सशय के उन्मूलन के लिए गिरिजा ने आठ प्रश्न किये। तत्पश्चात् बारह प्रश्न श्रीरामावतार के चरित्रवर्णन तथा भक्ति, ज्ञानादि विषयक किये एव गिरिजा के बीसो प्रश्नो का उत्तर ही श्रीरामचरितमानस है। अन्त मे भगवती ने यह भी विनय किया कि जो कुछ मुझसे पूछने मे रह गया हो उसे भी छिपा नही रखिये। अर्थात् जानने योग्य जितनी बातें है वे सब गिरिजा ने पूछी और शिवजी ने उत्तर दिया। परन्तु प्रथम चार प्रश्नो के उत्तर मे ही गिरिजा का सब सशय जाता रहा और वे कृतकृत्य हो गईं। अत मैं उतने ही अश को शिवगीता कहता हूँ। अवतारवाद मे जो कुछ कहना है उतने मे सब कुछ कहा गया।

श्रीगोस्वामीजी ने कहा है कि नदी नाव पटु प्रश्न अनेका। केवट कुसल उतर सविवेका। अत यह जानना परमावश्यक है कि किस प्रश्न का कौन सा उत्तर है। गिरिजा बीस प्रश्न बराबर करती गईं और शिवजी ने भी सबका उत्तर क्रम से इकट्ठा ही दिया। उनमे से पहिले आठ के पृथक्करण मे बडी कठिनता पडती है। यद्यपि श्रीग्रन्थकार ने प्रश्नो को पृथक् करने के लिए हरहु मोर अज्ञाना, कहहु इत्यादि प्रार्थनासूचक लोट् लकार का आठ बार बराबर प्रयोग किया। तथैव उत्तर मे सुनहु, तजु आदि क्रियाओ का भी आठ बार प्रयोग किया है फिर भी हम जैसे अल्पज्ञो को प्रश्न उत्तर के मिलान मे बडी कठिनता पडती है। अत उनका मिलान नीचे दिया जा रहा है।

| प्रश्न | उत्तर |
|---|---|
| १ जौ मोपर प्रसन्न सुखरासी।<br>जानिय सत्य मोहि निज दासी।<br>तौ प्रभु हरहु मोर अज्ञाना।<br>कहि रघुनाथ कथा विधि नाना। १०७ २ | १ धन्य धन्य गिरि राजकुमारी<br>गिरिजा सुनहु राम कै लीला।<br>सुर हित दनुज विमोहन सीला<br>१११ ५ से ११३ तक |
| २ जासु भवन सुर तरु तर होई।<br>सहकि दरिद्र जनित दुखु सोई।<br>ससि भूषन अस हृदय विचारी।<br>हरहु नाथ मम मतिभ्रम भारी। १०७ ३ ४ | राम कथा सुन्दर करतारी<br>सादर सुनु गिरिराजकुमारी<br>११३ १ २ |

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



| प्रश्न | उत्तर |
|---|---|
| ३ प्रभु जे मुनि परमारथ वादी।<br>कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ।<br>१०७ ५ से १०८ १ तक | रामनाम गुन चरित सुहाए<br>अस निज हृदय विचारि तजु संशय<br>११३ ३ से ११५ |
| ४ अज्ञजानि रिसि उर जनि धरहू।<br>जेहि विधि मोह मिटै सो करहू।<br>१०८ २ | भजु रामपद मे<br>बोले कृपा निधान<br>११५ से १२० क तक |
| ५ मै बन दीख राम प्रभुताई।<br>हरहु कृपा विनवौं कर जोरे।<br>१०८ ३ से ५ तक | सुनु सुभकथा भवानि, रामचरितमानस विमल<br>कहा भुसुडि बखानि सुना विहग नायक गरुड<br>१२० क |
| ६ प्रभु मोहि तब बहुभाँति प्रबोधा।<br>कहहु पुनीत रामगुन गाथा।<br>१०८ ६ से ८ तक | सो सवाद उदार, जेहि विधि भा आगे कहब।<br>सुनहु राम अवतार चरित परम सुन्दर सुखद ॥<br>१२० ख |
| ७ बदौं पद धरि धरनि सिरु,<br>विनय करौं कर जोरि।<br>बरनहुँ रघुबर विसद जस,<br>श्रुति सिद्धात निचोरि ॥ १०९ | हरिगुन नाम अपार,<br>कथा रूप अगनित अमित।<br>मैं निज मति अनुसार,<br>कहौं उमा सादर सुनहु ॥ १२० |
| ८ जदपि जोषिता नहि अधिकारी।<br>रघुपति कथा कहहु करि दाया ॥<br>१०९ १ ३ | सुनु गिरिजा हरि चरित सुहाए।<br>विपुल विसद निगमागम गाए ॥<br>१२० १ |

यदि पाठक मिलान के अनुसार प्रश्न और उत्तर को मिला मिलाकर पढेंगे तो उनको ग्रन्थ के समझने मे बडा सुभीता होगा। और ग्रन्थकार की पण्डिताई पर चकित होना पडेगा कि जितनी बार कहहु कहकर प्रश्न है ठीक उतनी ही बार सुनहु कहकर उत्तर है। शिवजी ने पाँचो मुख से सुनहु सुनहु नही कहा है। प्रत्येक कहहु के उत्तर मे सुनहु कहा गया है।

ग्रन्थकार मे बीस बार ग्रन्थचिकीर्षा का कारण भी ये ही बीस प्रश्न मालूम पडते हैं।[1]

---

१ १ भाषाबद्धमिदञ्चकार २ भाषाबद्ध करब मैं सोई ३ करिहौं नाइ रामपद माथा ४ करिहौं रघुपति कथा सुहाई ५ करहु कृपा हरि जस कहउँ ६ बरनउँ रामचरित चित चारु ७ सुमिरि सो नाम रामगुनगाथा करउँ ८ बरनउ रघुबर विमल जसु ९ कहिहौं सोइ सवाद बखानी ० भाषाबद्ध करवि मैं सोई ११ तस कहिहौ हिय हरि के प्रेरे १२ कहउँ कथा भवसरिता तरनी १३ कहब मै गाई। कथा प्रसग विचित्र बनाई १४ बरनौं विसद रामगुन गाथा १५ करौं कथा हरिपद धरि सीसा १६ कहौं कथा सोई सुखद सोहाई १७ अब सोइ कहौं प्रसग सब १८ करइ मनोहर मति अनुहारी १९ कहु कवि कथा सुहाइ २० कहउँ जुगल मुनिवर्य कर मिलन सुभग सवाद।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बैठे सोह कामरिपु कैसें। धरे सरीरु सांत रसु जैसें॥
पारवती भलि अवसरु जानी। गईं संभु पहिं मातु भवानी॥१॥

अर्थ : काम के शत्रु बैठे हुए कैसे शोभित हैं जैसे शान्तरस शरीर धारण किये हुए हो। माता भवानी पार्वती अच्छा अवसर जानकर शम्भु के पास गईं।

व्याख्या : शिवजी काम के शत्रु हैं। उन्हे कामना नही है। उनका भोग विलास भी कामाभास है। सो भी देवताओ के कल्याण के लिए है। काम के रहते शान्ति नही मिलती। यथा : काम अछत सुख सपनेहुँ नाही। काम का शत्रु ही वस्तुत शान्त हो सकता है। अतः धरे सरीर सतरस कहा। जिस समय गुरु एकान्त मे अव्यग्र भाव से बैठे रहे वही प्रश्न के लिए अच्छा अवसर है। यही देखकर भवानी शम्भु के पास गईं। भवानी पर्वत की बेटी है। पर्वत परोपकारी होते हैं। यथा : सत विटप सरिता गिरि धरनी। पर हित हेतु सबन की करनी। अत. ये भी परोपकारी हैं। दूसरी बात यह कि लोक की माँ अपने बच्चो के कल्याण के लिए प्रश्न करेंगी। इसलिए पास गईं।

जानि प्रिया आदरु अति कीन्हा। बामभाग आसनु हर दीन्हा॥
बैठीं सिव समीप हरखाई। पूरुब जनम कथा चित आई॥२॥

अर्थ : शिवजी ने प्रिया जानकर अत्यन्त आदर किया और वाम भाग मे आसन दिया। शिवजी के पास हर्षित होकर बैठ गईं। पूर्वजन्म की कथा याद पडी।

व्याख्या : अभ्युत्थान देकर अत्यन्त आदर किया और अपने वाम भाग मे बिठाया। नही तो परित्यक्त होने से जब सतीरूप मे शिवजी के पास गई थी तब न आदर ही हुआ था और न वाम भाग मे आसन ही मिला था। यथा : जाइ सम्भु पद वन्दन कीन्हा। सनमुख सकर आसन दीन्हा। अत्यन्त आदर से पति प्रसन्नता जानकर हर्षित हुईं। शिवजी के पास बैठ गईं। याद पड़ा कि पूर्वजन्म मे इसी वटवृक्ष के नीचे मुझे सम्मुख आसन मिला था। अभ्युत्थान और वामभाग मे आसन की प्राप्ति ही पूर्व जन्म की कथा के स्मृतिपथारूढ होने के कारण हुए।

पूर्व जन्म मे भी लोकशिक्षा के लिए लीला की थी और इस जन्म मे लोकहित के लिए रघुनाथकथा विषयक प्रश्न करेंगी।

पति हियँ हेतु अधिक अनुमानी। बिहँसि उमा बोलीं प्रिय बानी॥
कथा जो सकल लोक हितकारी। सोइ पूछन चह सैलकुमारी॥३॥

अर्थ पति के हृदय मे अधिक प्रेम का अनुमान करके उमा हँसकर प्रियवाणी बोली। जो कथा सकल लोकहित करनेवाली है उसे ही शैलकुमारी पूछना चाहती हैं।

व्याख्या अति आदर से पति के हृद्गत प्रेम के आधिक्य का अनुमान हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पूर्वजन्म की कथा की स्मृति से हँस पडी। प्रियवाणी बोली। प्रियवाणी वही है जो सुननेवालो को अच्छी लगे।

लोक माता हैं। इसलिए सकल लोक हितकारिणी कथा पूछना चाहती हैं। अपना मोह, सशय और भ्रम प्रकट करना उनकी लीला है। मुख्य प्रयोजन श्री रघुनाथ कथा श्रवण से है।

## उमा के प्रश्न

विस्वनाथ मम नाथ पुरारी। त्रिभुवन महिमा बिदित तुम्हारी ॥
चर अरु अचर नाग नर देवा। सकल करहिं पद पकज सेवा ॥४॥

अर्थ हे विश्वनाथ! हे मेरे नाथ! हे पुरारे! तीनों भुवनों मे तुम्हारी महिमा विदित है। चर, अचर नाग, नर और देवता सब तुम्हारे चरण कमलो की सेवा करते हैं।

व्याख्या सामान्यत शिवजी सभी के नाथ हैं। पर विशेषत उमा कहती हैं कि मेरे नाथ है। तीना पुर जो जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति स्थान हैं उनका नाश करके आप तुरीय पद के देनेवाले हैं। अत पुरारि हैं। इस भाँति सम्बोधन करके मनोरथ सिद्धि की प्रबल आशा द्योतित की। अब शुश्रूषा के लिए स्तुति करती हैं। आप तीनो लोका के कल्याणकारक हैं। इसीलिए सर्वत्र आपकी महिमा प्रसिद्ध है। इस बात को स्पष्ट करती हैं। आप विश्वात्मा हैं। अत स्थावर जङ्गम सब आपकी सेवा करते हैं। आप विस्वनाथ है। इसलिए पाताल निवासी नाग, मर्त्यलोक निवासी मनुष्य और स्वर्गलोक निवासी देवता सब आपके चरणो की सेवा करते है। यथा सेइय सिवचरन सरोज रेनु। कल्यान अखिल प्रद कामधेनु।

दो० प्रभु समरथ सर्बग्य सिव, सकल कला गुन धाम।
जोग ग्यान बैराग्य निधि, प्रनतकल्पतरु धाम ॥१०७॥

अर्थ हे शिव! आप प्रभु हैं, समर्थ हैं, सर्वज्ञ हैं। सभी कलाओं और गुणो के धाम हैं। योग, ज्ञान और वैराग्य के भण्डार हैं। आप का नाम प्रणतकल्पतरु है।

व्याख्या प्रभु कहकर प्रभाव द्योतित किया। यथा प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी। थकित भई रजनीचर धारी। समर्थ से सर्वशक्तिमत्ता कही। सर्वज्ञ कहकर ज्ञान की निरतिशयता कही। सकल कला गुणधाम से विद्यापति होना और योग ग्यान वैराग्य निधि से जगद्गुरु होना द्योतित किया। प्रणतकल्पतरु नाम कहकर शिवजी का प्रणत के लिए कल्पवृक्ष कहा।

जौं मोपर प्रसन्न सुखरासी। जानिय सत्य मोहि निज दासी ॥
तौ प्रभु हरहु मोर अज्ञाना। कहि रघुनाथ कथा बिधि नाना ॥१॥

अर्थ हे सुखराशि! जो मुझ पर आप प्रसन्न हो और मुझे सचमुच निज दासी समझते हो तो हे प्रभो! रघुनाथजी की नाना विधि की कथा कहकर मेरे अज्ञान का हरण कीजिय।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : राशि से ही अन्न जाकर संसार मे फैलता है। आप सुख की राशि है। आनन्द के एक मात्र स्रोत हैं। अज्ञान ही दुःख का मूल है। इसी से ज्ञान आवृत ढका रहता है। इसके नाश से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। अतः इसके हरण मे सुखराशिरूप आप ही समर्थ हैं। सो यदि आप मुझे सचमुच निज दासी जानते हो मेरी माँ ने आपसे मेरे लिए कहा था : 'गृह किंकरी करेहुँ।' यदि आप मुझपर प्रसन्न हो तो मेरे अज्ञान को हरण करिये। महात्माओ की प्रसन्नता अमोघ होती है, व्यर्थ नही जाती। अज्ञानहरण का उपाय भी यही कहती है कि नानाविधि से श्रीरघुनाथजी की कथा कहकर अज्ञान हरण कीजिये।

जासु भवनु सुर तरु तर होई। सहिकि दरिद्र जनित दुखु सोई॥
ससिभूषन अस हृदय विचारी। हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी॥२॥

अर्थ : जिसका घर कल्पवृक्ष के नीचे हो क्या वही दरिद्र से उत्पन्न दुःख को सहे। हे चन्द्रभूषण ! हे नाथ ! ऐसा हृदय मे विचारकर मेरे भारी मतिभ्रम को हरण कीजिये।

व्याख्या : आप अमितदानी कल्पवृक्ष है। यथा 'प्रनत कल्पतरु नाम। आप जगद्गुरु है, ससार का अज्ञान नष्ट करनेवाले है। और मै आपकी छाया मे रहनेवाली हूँ। मुझे मोहदरिद्र कैसे सताता है ? आप विचार करिये। इससे तो कल्पवृक्ष का अपयश होगा। आप शशिभूषण हैं : यमाश्रितो हि वक्रोपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते। आश्रित को जगत्वन्द्य बनानेवाले है। मेरे मतिभ्रम को दूर कीजिये। गुरु से पूछने पर ही ज्ञान होता है। अतः पहिले अज्ञान के दूर करने की प्रार्थना माया की आवरण शक्ति दूर करने के लिए की थी। और अब दूसरी प्रार्थना माया की विक्षेप-शक्ति भ्रम को दूर करने के लिए हो रही है। पहिले वस्तु का अज्ञान होता है। उसके बाद अन्यथा ज्ञान होता है। ये ही दोनो क्रमशः माया की आवरण शक्ति और विक्षेप शक्ति कहलाते हैं।

प्रभु जे मुनि परमारथ वादी। कहहि राम कहुँ ब्रह्म अनादी॥
सेष सारदा वेद पुराना। सकल करहि रघुपति गुनगाना॥३॥

अर्थ : हे प्रभो ! जो परमार्थवादी मुनि है वे रामजी को अनादि ब्रह्म बतलाते है। शेष, सारदा, वेद और पुराण सभी रघुपति का गुणगान करते है।

व्याख्या : जितने १ परमार्थवादी अर्थात् ब्रह्मवादी मुनि है उन सबका इस विषय मे ऐकमत्य है कि रामजी अनादि ब्रह्म हैं। यथा : रामब्रह्म परमारथ रूपा। सुनहु राम तुम कहँ मुनि कहही। राम चराचर नायक अहही। भावार्थ यह कि अन्य विषयो मे मतभेद रहता है। वह मुनि ही नही जिसका मत भिन्न न हो। नासौ मुनिर्यस्य मत न भिन्नम्। परन्तु राम के विषय मे मतभेद नही है। २. शेष पाताल के वक्ता, ३ शारदा स्वर्गलोक की वक्ता है। ४ वेद और ५ पुराण मर्त्यलोक के वक्ता एव तीनो लोक के वक्ता भी रघुपति के गुणो का गान करते है। इनमे भी ऐक्यमत है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तुम पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनंग अराती ॥
रामु सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुन अलख गति कोई ॥८॥
दो० जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि, नारि बिरहँ मति भोरि।
देखि चरित महिमा सुनत, भ्रमति बुद्धि अति मोरि ॥१०८॥

अर्थ हे काम के शत्रु! आप भी दिन रात आदर पूर्वक राम राम जपा करते हैं। आपकी तत्परता इतनी बढी हुई है कि विस्मृत होती ही नही। क्या अयोध्या के राजा के पुत्र ही राम है? या कोई अज जन्मरहित: निर्गुण और अलक्ष्यगतिके हैं?

जो राजा के पुत्र हैं सो ब्रह्म कैसे हैं। जिनकी मति स्त्री के विरह में भोरी हो गई थी। उनके चरित्र को देख और महिमा को सुनकर मेरी बुद्धि बडे चक्कर भ्रम मे पड गई है।

व्याख्या भवानी कहती हैं कि ६ आप विश्व के नाथ होकर काम के दाहक होकर सब भाँति भीति रहित होकर भी अनवरत रामधुन लगाये रहते हैं। आपको उसी मे विश्राम मिलता है। ऐसे राम वही राजकुमार हैं या कोई दूसरे हैं। जिन्हे लोग अजन्मा निर्गुण और अलख कहा करते हैं। देखि चरित यथा विरह विकल नर इव रघुराई। खोजत विपिन फिरत दोउ भाई। मैने चरित भी देखा कि स्त्री के विरह मे विकल है। प्रभाव भी देखा। उनकी महिमा भी आप से सुनी कि वे ही ब्रह्म हैं। अपने भक्तो के लिए अवतार लिया है। फिर भी इन सब बातो का सामञ्जस्य नही बैठता। इस भाँति १ परमार्थवादी २ शेष ३ शारदा ४ वेद ५ पुराण ६ स्वयं शिवजी के सिद्धान्त पर भगवती उमा ने सन्देह किया।

जौं अनीह ब्यापक बिभु कोऊ। कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ ॥
अग्य जानि रिस उर जनि धरहू। जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहू ॥१॥

अर्थ यदि कोई इच्छा रहित व्यापक ब्रह्म हों तो हे नाथ! मुझे समझाकर कहिये। अनजान समझकर जी मे क्रोध न कीजिये। जिस भाँति मेरा मोह मिटे वही कीजिये।

व्याख्या 'कोई' अर्थात् इदम् रूप से अवर्णनीय, अनीह अर्थात् इच्छारहित वा निष्क्रिय, व्यापक अर्थात् सर्वत्र विद्यमान, विभु अर्थात् प्रभु। यहाँ ब्रह्म के तीन विशेषण देकर राम और ब्रह्म मे भेद दिखलाती हैं। १ राम तो अवधनृपति के तनय है। २ स्त्री की इच्छा वाले हैं और ३ परिच्छिन्न हैं। वे ब्रह्म कैसे हो सकते है। यदि कहिये कि वे अवतीर्ण हुए हैं तो ब्रह्म मे स्त्रीविरह से वैकल्य नही बन सकता। ये सब बातें मुझे समझाकर कहिये।

राम विपयिणी शङ्का करते हुए भगवती डर रही है कि शिवजी अप्रसन्न न हो जांय, कि इसने इतना भोगा अब भी शङ्का नही गई, फिर वही बात पूछती है। इस पर कहती है कि मैं अज्ञ हूँ, मुझपर क्रोध न कीजिये। मै बहुत दण्ड पा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चुकी। मैं वह विधि नही जानती, जिससे मोह मिट जाय। यदि कथा कहने के अतिरिक्त कोई विधि हो तो उसे ही काम मे लाइये।

मै वन दीख राम प्रभुताई। अति भय विकल न तुम्हहि सुनाई ॥
तदपि मलिन मन वोधु न आवा। सो फलु भली भाँति हम पावा ॥२॥

अर्थ : मैंने वन मे रामजी की प्रभुताई देखी। मे अत्यन्त डर से व्याकुल थी, इसलिए आपसे नही सुनाया। फिर भी मेरे मलिन मन मे ज्ञान न हुआ। उसका फल भी मैंने भली भाँति पाया।

व्याख्या : जो प्रभुता श्री रामजी की सती शरीर से देखी थी उसे अब स्पष्ट रूप से शिवजी से कह रही हैं। उस समय अतिभय से नही सुनाया था। इतना देखने पर तो बोध हो जाना ही चाहता था, फिर भी नही हुआ। इसका कारण मन का मालिन्य है। पहिले आवरण और विक्षेप कह चुकी। अब मनोमल कहती है। अर्थात् अपने मे माया की तीनो शक्तियाँ आवरण, विक्षेप और मल दिखलाया। अज्ञान का फल ही दु ख है। सो भली भाँति मैं पा चुकी। फिर भी दण्ड से अज्ञान पूरी तरह नष्ट नही हुआ।

अजहूँ कछु संसउ मन मोरे। करहु कृपा विनवौ कर जोरे ॥
प्रभु तव मोहि बहु भाँति प्रबोधा। नाथ सो समुझि करहु जनि क्रोधा ॥३॥

अर्थ : हे नाथ! मेरे मन मे अब भी कुछ सशय है। आप कृपा करिये। मैं हाथ जोडकर विनती करती हूँ। हे प्रभो! उस समय आपने मुझे बहुत तरह से समझाया था। उसे समझकर क्रोध न कीजिये।

व्याख्या · सती शरीर से जो दु ख उठाना पडा उससे कुछ फल न हुआ हो। यह वात नही है। बहुत कुछ अज्ञान और भ्रम दूर हुआ। पर उसका लेश यत्किञ्चित् सशयरूप मे वर्तमान है। आपकी कृपा से वह भी मिटे। तब सीताजी के विरह मे विकल रामजी को देखने पर मुझे आपने बहुत समझाया था। यथा लाग न उर उपदेसु जदपि कहेउ सिव वार वहु। अत क्रोध करने के लिए यथेष्ट कारण है।

तव कर अस विमोह मोहि नाही। राम कथा पर रुचि मन माँही ॥
कहहु पुनीत राम गुन गाथा। भुजगराज भूषन सुरनाथा ॥४॥

अर्थ . अब पहिले जैसा विमोह नही है। रामकथा पर मन मे रुचि है। हे भुजगराजभूषण! हे सुरनाथ! रामजी के गुणो की पवित्र गाथा कहिये।

व्याख्या : परन्तु उस समय मुझे विमोह था। रामकथा पर रुचि नही थी। अगस्त्यजी ने रामकथा कही पर मैंने ध्यान नही दिया। यथा रामकथा मुनिवर्य वखानी। सुनी महेस परम सुख मानी। अब भीतर से कथा सुनने की रुचि है। अत शङ्का कर रही हूँ। आप भुजगराजभूषण हैं। भुजगराज स्वय रामकथा के वक्ता हैं। यथा सुकसनकादि सेप अरु सारद। वरनि पवनसुत कीरति नीकी। आप

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

सुरनाथ है। आपने अपने आश्रितो की रक्षा के लिए कृपा करके विषपान कर लिया था। यथा जरत सकल सुर बृंद, विषम गरल जेहि पान किय। आप मुझपर कृपा करिये और पवित्र रामगुणगाथा कहिये।

दो वदौ पद धरि धरनि सिरु, विनय करौ कर जोरि।
बरनहु रघुवर विसद जसु, श्रुति सिद्धांत निचोरि ॥१०९॥

अर्थ मैं पृथ्वी पर सिर रखकर आपके चरणो को प्रणाम करती हूँ। और हाथ जोडकर विनती करती हूँ कि आप वेदो के सिद्धान्त को निचोडकर रघुवर का निर्मल यश वर्णन कीजिये।

व्याख्या अति लालसा कथा सुनने की है। अत धरणी पर सिर रखकर वन्दन करती हूँ और हाथ जोडकर रघुवर विमलयश सुनने के लिए विनय करती हूँ। सो रघुवर विमलयश तो वेद वर्णन करते है। यथा जिनहि न सपनेहुँ खेद बरनत रघुवर विसद जस। और वेद का अन्त नही है। यथा 'अनन्ता वै वेदा' भरद्वाज। अत कहती है कि वेद मे से उसके सिद्धान्त को निचोडकर कहिये। अर्थात् उसका सार भजनोपयोगी अश रघुवरयश कहिये। यथा श्रुति सिद्धात इहै उरगारी। भजिअ राम सब काम विसारी।

जदपि जोषिता नहि अधिकारी। दासी मन क्रम वचन तुम्हारी ॥
गूढौ तत्व न साधु दुरावहिं। आरत अधिकारी जहँ पावहि ॥१॥

अर्थ यद्यपि स्त्री अधिकारिणी नही है। पर मै तो मन, कर्म, वचन से आपकी दासी हूँ। साधु लोग जब आर्त अधिकारी पाते है तो गूढ तत्त्व को नही छिपाते।

व्याख्या स्त्रियो का वेद के सिद्धान्तो मे अधिकार नही है। अर्थित्व तथा सामर्थ्य न होने पर अधिकार नही होता। केवल लौकिक सामर्थ्य भी अधिकार का कारण नही होता। शास्त्रीय अर्थ म शास्त्रीय सामर्थ्य की अपेक्षा होती है। अत शास्त्रीय सामर्थ्य न होने से वेद मे स्त्री का अधिकार नही है। पर भगवती कहती है कि मै तो वेदस्वरूप आपकी मनसा वाचा कर्मणा दासी हूँ। अर्थात् सदा आपके अर्धाङ्ग मे निवास करनेवाली हूँ। औरो को न हो पर मुझे शास्त्रीय सामर्थ्य कैसे नही है ? दूसरी बात यह है कि आर्त होने से भी मै अधिकारिणी हूँ। नियम यह है कि जिस पर जिसका सत्य स्नेह हो वह उसको मिलना चाहिए। यथा यत् यत्कामयते तत्तल्लभते। अत साधु लोग आर्त अधिकारी से गूढ तत्त्व को भी नही छिपाते है और मै आर्त हूँ।

अति आरति पूछौ सुरराया। रघुपति कथा कहहु करि दाया ॥
प्रथम सो कारन कहहु विचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन वपु धारी ॥२॥

अर्थ हे देवताओ के राजा ! मै अत्यन्त आर्त होकर पूछती हूँ। रघुवर की

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कथा दया करके कहिये। पहिले उस कारण को विचारकर कहिये जिससे निर्गुण ब्रह्म ने सगुण शरीर धारण किया।

व्याख्या मैं आर्त हूँ और आप सुरराय हैं। देवसर्ग के प्रभु हैं। और 'दया मे वसत देव सकल धरम' · वि प। अत दया करके रघुपतिकथा कहिये।

पहिले यह विचारकर कहिये कि निर्गुण ब्रह्म को सगुण शरीर धारण करने का कौन सा कारण आ पडा ? पूर्णकाम को प्रयोजन नही हो सकता। सत्यसकल्प को शरीरधारण की आवश्यकता नही हो सकती। इसलिए इसका कारण कहिये।

पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा। बाल चरित पुनि कहहु उदारा॥
कहहु जथा जानकी बिवाही। राज तजा सो दूषन काहीं॥३॥

अर्थ हे प्रभो! फिर आप राम का अवतार कहिये। फिर उदार बालचरित कहिये। फिर जैसे जानकी से ब्याह किया सो कहिये। किस दोष से राम का त्याग किया ?

व्याख्या प्रयोजन कहने के बाद, रामजी कैसे अवतीर्ण हुए ? भाव यह कि सभी अवतारो के अवतीर्ण होने की विधि पृथक् पृथक् है। नृसिंह भगवान् खम्भे से अवतीर्ण हुए। बाराह ब्रह्मदेव की नासिका से उत्पन्न हुए। सो रामजी कैसे अवतीर्ण हुए और क्या क्या हुआ ?

बालचरित को उदार कहा। क्योंकि इस चरित मे दासो को अधिक आनन्द मिलता है। यथा बालचरित हरि बहु बिधि कीन्हा। अति अनद दासन्ह कहँ दीन्हा। भुसुण्डीजी पाँच ही वर्ष तक प्रभु के साथ रहते है। सो बालचरित कहिये।

'जानकी बिवाही' से भाव यह कि माता पिता ने कन्या देखकर विवाह नही किया। अपने पुरुषार्थ से श्रीरामचन्द्र ने जानकी ब्याही। सो वह कथा कहिये। राज्य के लिए ससार म लोग क्या नही करते। सो राज्य मे क्या दूषण था। जो उसे छोडकर वन मे घूमते फिरे।

बन बसि कीन्हे चरित अपारा। कहहु नाथ जिमि रावन मारा॥
राज बैठि कीन्ही बहु लीला। सकल कहहु संकर सुख लीला॥४॥

अर्थ · हे नाथ! फिर उन्होने वन मे वसकर जो अपार चरित किये तथा जिस भाँति रावण को मारा सो कहिये। हे सुखशील शङ्कर! आप सो सब कहिये जो जो उन्होंने राज्य पर बैठकर बहुत सी लीलाएँ की।

व्याख्या यहाँ वनवास का चरित और रावणवध दोनो एक साथ पूछती हैं। क्योकि दोनो मे एक ही क्रिया 'कहहु' प्रयुक्त है। अत प्रश्न का पूर्वार्ध और उत्तरार्ध दो भाग हुआ। वनवास के चरित को अपार कहती है। क्योंकि वे स्वय उस चरित का पार न पा सकी। अत पूछती हैं। 'जिमि रावन मारा' का भाव यह कि रावन के मारने की विधि पूछती हैं इसका मारना बडा कठिन था। दुर्गम स्थान मे निवास, मेघनाद कुम्भकर्ण प्रभृति से रक्षित, स्वय तपस्या वरदानादि से अजेय। सिर कटने पर भी न मरना आदि ऐसी अनेक अनेक बातें थी। विधि विपरीत चरित सब करई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जनकनन्दिनी भी त्रिजटा से इसके मरने की विधि पूछने लगी : कि केहि विधि मरिं बिस्वदु खदाता। सो उसके मरने की विधि बताइये।

राजगद्दी पर बैठकर जितनी लीलाएँ की। सो सब कहिये। 'सुखशील' कह का भाव यह कि रामराज्य से ऐसा सुख हुआ कि आजतक भारत उसे भूलत नहीं। जब बहुत सुख मिलता है तब लोग कहते हैं कि रामराज्य है। आ' सुखशील है। ऐसे सुख की सब कथा कहिये।

दो. बहुरि कहहु करुनायतन, कीन्ह जो अचरज राम।
प्रजा सहित रघुवंसमनि, किमि गवने निज धाम ॥११०॥

अर्थ हे कृपायतन! रामजी ने जो आश्चर्य का काम किया रघुवशमणि प्रजा सहित अपने धाम को गये। सो कैसे? यह भी कहिये।

व्याख्या प्रजा प्रेम की परकाष्ठा हो गई। सम्पूर्ण प्रजा को कैसे अपने साथ निज धाम ले गये? 'कर्मवैचित्र्यात् सृष्टिवैचित्र्यम्।' कर्म की विचित्रता से ही सृष्टि मे वैचित्र्य है। सबका कर्म एक साथ ही कैसे समाप्त हुआ? जो सबके सब मुक्त हो गये। जहाँ जाकर नही लौटते वही प्रभु का धाम है। यथा यद् गत्वा न निवर्त्तन्ते तद्धाम परम मम।

पुनि प्रभु कहहु सो तत्त्व बखानी। जेहि बिग्यान मगन मुनिज्ञानी ॥
भगति ग्यान बिग्यान बिरागा। पुनि सब बरनहु सहित बिभागा ॥१॥

अर्थ हे प्रभो! फिर आप उस तत्त्व का वर्णन कीजिये जिस विज्ञान मे ज्ञानी मुनि लोग मग्न रहते है। फिर भक्ति, ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य सभी को विभागो के साथ कहिये।

व्याख्या उस तत्त्व के विषय मे भवानी प्रश्न करती हैं जिसका नाम नही है और जिसके अनुभव मे ज्ञानी मुनि मग्न रहते हैं। सगुण विषयक प्रश्न करके अब शुद्ध निर्गुणरूप पूछती हैं। सिद्धि विषयक बाते पूछकर अब साधन के विषय मे पूछती है कि भक्ति, ज्ञान, विज्ञान और वैराग्य को विभाग के सहित वर्णन कीजिये। भाव यह कि चारो साधन पृथक् होने पर भी परस्पर उपकारी हैं। एक की प्रधानता मे दूसरे गौण होकर रहते हैं। अत विभाग के सहित सुनने के लिए प्रश्न किया।

औरौ राम रहस्य अनेका। कहहु नाथ अति बिमल बिबेका ॥
जो प्रभु मै पूछा नहि होई। सोउ दयाल राखहु जनि गोई ॥२॥

अर्थ · हे अति निर्मल ज्ञानवाले नाथ! रामजी के और जो रहस्य हैं उन्हे वर्णन कीजिये। हे दयालु! जो बात मैंने न पूछी हो उसे भी गोप्य न रखिये।

व्याख्या जितना भाँति की माया है उन सबमे रहस्य होता है। उस रहस्य के जानने से वह माया समझ मे आजाती हैं। सो सबसे प्रबल राम की माया है। यथा सुनु खग प्रबल राम की माया। उस माया का रहस्य ही राम का रहस्य

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है। उसके जानने से राम माया का पता चलता है। अत उसके जानने की बडी आवश्यकता है जिसके सामने महेश के उपदेश का बल नही चलता। यथा लाग न उर उपदेस जदपि कहेउ सिव बार बहु। बोल बिहँसि महेस हरिमाया बल जानि जिय। वह माया भी एक प्रकार की नही है। उमा का स्वय अनुभूत विषय है। एक माया ने उन्हे मोहित किया था। और दूसरी ने अनेक ब्रह्माण्ड ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र सहित पलभर मे रचे। यह दो प्रकार की माया तो उनको स्वय अनुभूत थी। अत रहस्य भी कम से कम दो होने चाहिए। इसलिए रहस्य अनेक कहती है।

भवानी कहती है कि इतनी बाते तो मैं जानना चाहती हूँ। इनके अतिरिक्त जो जो बातें मेरे लिए उपकारी हो और मै उन्हे पूछ न सकी हूँ उन्हे भी आप कहिये। इसीलिए 'नापृष्ट कस्यचिद् ब्रूयात्' पर ध्यान न देकर उन्हे गोप्य न रहने दीजिये। यह प्रश्न है।

तुम त्रिभुवन गुरु वेद बखाना। आन जीव पावँर का जाना ॥
प्रस्न उमा कै सहज सुहाई। छल बिहीन सुनि सिव मन भाई ॥३॥

अर्थ वेद ने बतलाया है कि आप तीनो लोको के गुरु है। दूसरे पामर जीव क्या जानते हैं। उमा के स्वाभाविक सुन्दर और छलरहित प्रश्नो को सुनकर शिवजी प्रसन्न हुए।

व्याख्या भवानी कहती है कि आप सब उत्तरो के देने म समर्थ हैं क्योकि आप सर्वज्ञ है। वेद आपको त्रिभुवनगुरु कहता है। अन्य लोग तो जीव हैं। अल्पज्ञ हैं। स्वय अज्ञान मे पडे है। दूसरे का अज्ञान क्या हटा सकते है।

इन प्रश्नो म बनावट का नाम नही है। स्वभाव से ही सुन्दर हैं। बात को स्पष्ट करने के लिए है। अत छल बिहीन कहा। क्योकि बनावट ही छल है और छलयुक्त प्रश्न के उत्तर देने का विधान नही है।

हरहिय राम चरित सब आए। प्रेम पुलक लोचन जल छाए ॥
श्री रघुनाथ रूप उर आवा। परमानद अमित सुख पावा ॥४॥

अर्थ महादेवजी के हृदय मे सब रामचरित्र आगये। प्रेम से रोमाञ्च हुआ। आँखें डबडबा आईं। श्रीरघुनाथ का रूप हृदय म आगया। अत परम आनन्द और असीम सुख पाया।

व्याख्या प्रश्न अच्छे लगे। अत उत्तर रूप मे सम्पूर्ण रामचरित हृदय मे उदय हो उठा। सात्त्विक भाव हुआ। पहिले चरित्र का उदय हुआ। तब रूप का उदय हुआ। अर्थात् पहिले सात्त्विक भाव हुआ था। अब रूप के उदय से परमानन्द हुआ। परमानन्द में सुख की इयत्ता ही नही रह जाती। यही स्थायी भाव है।

दो मगन ध्यान रस दड जुग, पुनि मन बाहेर कीन्ह।
रघुपति चरित महेस तब, हरषित बरनै लीन्ह ॥१११॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ शिवजी दो घडी तव ध्यान के रस मे मग्न रहे। फिर मन को बाहर किया। तब प्रसन्न होकर महेश रघुपतिचरित वर्णन करने लगे।

व्याख्या ध्यानजनित सुख मे दो दण्ड तक मग्न रहे। यथा जाग न ध्यान जनित सुख पावा। मन अन्तर्मुख होकर सुख ले रहा था। वहिर्मुख होना नही चाहता था। पर महेश ने उसे दो दण्ड के वाद वहिर्मुख किया। ढाई दण्ड का एक घण्टा होता है। अत अडतालिस मिनट का दो दण्ड हुआ और तव रामचरित हर्षित होकर वर्णन करने लगे। समाधि के आनन्द से भी रामचरित कथन के आनन्द का अधिक माना। यथा सुनि गुनगान समाधि विसारी। सादर सुनहिं परम अधिकारी।

भावार्थ यह कि कथा कहने के पहिले ध्यानस्थ होकर कथा पर विचार करे। प्रभु का ध्यान करे तभी कथा कहने सुनने का आनन्द है।

## शम्भु के उत्तर

झूठेउ सत्य जाहि विनु जाने। जिमि भुजग विनु रजु पहिचाने॥
जेहि जाने जग जाइ हेराई। जागे जथा सपन भ्रम जाई॥१॥

अर्थ जिसके विना जाने झूठ भी सच मालूम होता है। जैसे विना पहिचाने रस्सी साँप जान पडती है। जिसके नाम से ससार खो जाता है। जैसे जागने पर स्वप्न का भ्रम जाता रहता है।

व्याख्या झूठ और सत्य का विभाग बुद्धि के अधीन है। जिस पदार्थ को विषय करनेवाली बुद्धि का नाश नही होता वह पदार्थ सत्य है। और जिसको विषय करनेवाली बुद्धि नष्ट हो जाती है वह झूठ है। झूठविषयक बुद्धि तभी तक बनी रहती है जब तक सत्य का ज्ञान न हो। सत्य का ज्ञान होते ही झूठ विषयक बुद्धि का नाश हो जाता है। जैसे जब तक रज्जु का ज्ञान नही होता तब तक साँपविषयक बुद्धि वनी रहती है। रज्जु का ज्ञान होते ही साँपविषयक बुद्धि का नाश हो जाता है। अत रज्जु सत्य है और उसमे भासित होनेवाला साँप झूठ है।

इसी न्याय से ससार का मिथ्यात्व सिद्ध करते है कि ब्रह्म के ज्ञान से ससार खो जाता है। अर्थात् ससार को विषय करनेवाली बुद्धि नष्ट हो जाती है। जैसे जागने से स्वप्न को विषय करनेवाली बुद्धि का नाश हो जाता है। इससे सिद्ध होता है कि ब्रह्म सत्य है और जगत् मिथ्या है। यहाँ हेराई[1] पद ध्यान देने योग्य

---

१ किमस्त किं ध्वस्त किमु विगलित किन्नु गलितम्
विशीर्णं चाजीर्णं ननु सपदि गीर्णं किमथवा।
अमन्दे स्वच्छन्दे निरुपमनिजानन्दजलधौ
मयि स्वान्ते शान्ते जगदिदमशेष न कलये॥

अर्थ क्या अस्त हो गया क्या नष्ट हो गया क्या मसल दिया गया या गल गया या छितरा गया या सड गल गया या किसी ने इसे निगल लिया? अत्यन्त स्वच्छन्द निरुपम निजानन्द के समुद्र मे मेरे अन्त करण के शान्त होने पर इस पूरे ससार का पता नही चलता।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है। जिसकी जो वस्तु खो जाती है उसके लिए उस वस्तु का अभाव हो जाता है। दूसरे के लिए भले ही उसका अस्तित्व बना रहे। जागनेवाले के लिए स्वप्न झूठा हो जाता है। सोनेवाले तो परिदृश्यमान दृश्य को उस समय सच्चा ही जानते हैं।

वदौ वाल रूप सोई रामू। सव सिधि सुलभ जपत जिसु नामू॥
मगल भवन अमगल हारी। द्रवौ सो दसरथ अजिर विहारी॥२॥

अर्थ मैं उन्ही वालरूप रामजी की वन्दना करता हूँ जिनका नाम जपने से सब सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं। मङ्गल के घर अमङ्गल के हरनेवाले वे दशरथ के आँगन मे खेलनेवाले कृपा करें।

व्याख्या वालरूप राम और किशोररूप राम एकही हैं। फिर भी वालरूप के उपासक वालरूप को ही इष्ट मानते हैं। यथा इष्ट देव मम बालक रामू। प्रसङ्ग यहाँ निर्गुण ब्रह्म का है। निर्गुण ब्रह्म में ही जगत् का भ्रम होता है। अत वालक राम की उपासना से निर्गुण ब्रह्म की उपासना कही। निर्गुण सगुण मे कोई वास्तविक भेद नही है। यथा जो गुनरहित सगुन सो कैसे। जल हिम उपल विलग नहि जैसे। अवस्था भेद मात्र है। सगुण को किशोरावस्था मानिये तो निर्गुण वाल्यावस्था है। जगत् मे रहते हुए भी प्रपञ्च से पृथक् होने से वालरूप मे निर्गुण उपासना ही कही। वालरूप की वन्दना और नामजप से सब सिद्धि सुलभ हो जाती है। कहा भी है विनाप्यर्थं समर्थं हि दातुमर्थचतुष्टयम्। मङ्गलायतन तन्मे वाल्ये यद्रामभाषितम्। विना अर्थ के भी जो धर्मार्थ काम मोक्ष देने मे समर्थ है। ऐसा रामजी का वाल्यावस्था का भाषण मेरे लिए मङ्गल का आयतन हो। दशरथ अजिर विहारी कहने से आँगन मे खेलना द्योतित किया। अभी वाहर जाने लायक नहीं हैं। अभी शक्ति और गुणो का विकास नही हुआ है। अत प्रौढापेक्षाकृत यह अवस्था निर्गुण ही है। यद्यपि भगवद्विग्रह नित्य ही मगल भवन अमगल हारी है। तथापि भक्तो को वाल्यावस्था के चरित मे अधिक आनन्द मिलता है। यथा 'वाल चरित हरि वहुविधि कीन्हा। अति आनन्द दासन्ह कहँ दीन्हा।

करि प्रनाम रामहि त्रिपुरारी। हरपि सुधासम गिरा उचारी॥
धन्य धन्य गिरिराजकुमारी। तुम्ह समान नहि कोउ उपकारी॥३॥

अर्थ रामजी को प्रणाम करके और हर्षित होकर, त्रिपुरारि ने अमृत सी वाणी कही। हे गिरिराजकुमारी! तुम धन्य हो, तुम्हारे समान कोई उपकारी नही है।

व्याख्या त्रिपुरारि के प्रणाम से वालरूप की महामहिमा सूचित की। अति रुचिकर वाणी होने से सुधासम कहा। यहाँ से तीनो घाटो की कथा चली।

प्रथम विनय तो प्रभु हरहु मोर अज्ञाना। कहि रघुनाथ कथा विधिनाना। की पूर्ति म यहाँ से हाथ लगा'। इस विनय मे दो अभिलापाएँ हैं १ राम कथा सुनने की और २ अज्ञानहरण की। अत दोना अभिलापाओं के लिए दो बार धन्य

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


धन्य कहा। ये दोनो अभिलाषाएँ लोक के परमोपकार के लिए हैं। यह समझकर शिवजी कहते है कि : तुम समान नहि कोउ उपकारी।

पूँछेहु रघुपति कथा प्रसंगा। सकल लोक जग पावनि गंगा ॥
तुम्ह रघुबीर चरन अनुरागी। कीन्हिहु प्रश्न जगत नित लागी ॥४॥

अर्थ तुमने रामजी की कथा का प्रसङ्ग पूछा। जो सब लोक के पवित्र करने के लिए गङ्गा है। तुम तो रघुवीर के चरणो मे अनुराग करनेवाली हो, जगत् के हित के लिए तुमने प्रश्न पूछे हैं।

व्याख्या 'कहि रघुनाथ कथा विधि नाना। कहने से रघुपति कथा प्रसङ्ग पूछा। इसके उत्तर मे ससार के लोगो को पवित्र करनेवाली गङ्गा बहेगी। गङ्गा को भगीरथ लाये थे। इसे उमा ला रही हैं। यह पुरारिरूपी पर्वत से निकलकर श्रीरामस्वरूपसिन्धु मे जा मिलेगी। यह तीनो लोको को पवित्र करनेवाली गङ्गा है। [1]यथा पुरारिगिरिसम्भूता श्रीरामार्णवसङ्गता। अध्यात्मरामगङ्गेय पुनाति भुवनत्रयम्।

जो हरहु मोर अज्ञाना कहा था। उस पर शकर जी कहते है कि तुम राम-चरण-अनुरागिणी हो। तुम्हे अज्ञान कहाँ? जिसको जिसका ज्ञान नही वह उसका अनुरागी कैसे हो सकता है। अत. तुम्हारा प्रश्न अपने लिए नही जगत् के हित के लिए है। निरूपण का बीज प्रश्न है। तुम्हारा प्रश्न ऐसा है कि इसके निरूपण मे जो बातें कही जायँगी उनके जानने से जगत् का हित होगा।

दो राम कृपा ते पारबति, सपनेहुँ तव मन माहि।
मोक मोह संदेह भ्रम, मम बिचार कछु नाहि ॥११२॥

अर्थ हे पार्वती! मेरे विचार से स्वप्न मे भी तुम्हारे हृदय मे रामकृपा से शोक, मोह, सन्देह भ्रम कुछ नही है।

व्याख्या पार्वती जी पर रामजी की कृपा देख चुके है कि रामजी ने स्वय प्रकट होकर माँगा कि 'जाइ बिबाहहु सैलजहि यह मोहि माँगे देहु। उस पार्वती को शोक मोह, सन्देह, भ्रम क्या कभी हो सकता है? क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटै सकल राम की दाया। अत कहते हैं 'शोक मोह सदेह भ्रम मम विचार कछु नाहि।

तदपि असका कीन्हिहु सोई। कहत सुनत सबकर हित होई ॥
जिन्ह हरि कथा सुनी नहि काना। स्रवन रंध्र अहि भवन समाना ॥१॥

अर्थ फिर भी तुमने ऐसी आशङ्का की जिसके कहने-सुनने से सबका भला हो। जिन्होने हरिकथा कान से नही सुनी, उनके कान के छिद्र साँप के बिल के समान हैं।

---

१ पुरारिरूपी पर्वत से निकलकर श्रीरामरूपी समुद्र म मिलनेवाली यह रामगङ्गा अध्यात्म है। यह तीनो लोको को पवित्र करती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : तुम्हारी आशङ्का का अभिप्राय यह है कि चरित्र देखकर जब मुझे मोह हो गया तो वही चरित्र सुनकर जीवों को मोह होना कौन बड़ी बात है। अतः शङ्का के व्याज से वे बातें मुझसे कहलाना चाहती हो जिनसे संसार मोह से छूटकर कल्याण प्राप्त करे। जो विकलेन्द्रिय या विकृतमस्तिष्क हैं उन्हें सम्यक् ज्ञान किसी वस्तु का हो नहीं सकता। उनका कथन सर्वथा उपेक्षणीय है। ऐसे लोग छः प्रकार के होते हैं : इनसे शिवजी श्रोता को सावधान किये देते हैं।

प्रथम विनय : जौं मोपर प्रसन्न सुखरासी। जानिअ सत्य मोहि निज दासी। तौ प्रभु हरहु मोर अज्ञाना। कहि रघुनाथ कथा विधि नाना। का उत्तर हरिविमुख[1] निन्दा तथा प्रार्थना की स्वीकृति द्वारा शिवजी दे रहे हैं। यथा : कान के छिद्र का स्वरूप बिल-सा ही है। यदि उसमें सचमुच साँप रहने लगे तो उसके बिल होने में सन्देह क्या है। जो रामकथा नहीं सुनता वह कामकथा सुनेगा। कान है तो सुनना ही पड़ेगा। चाहे रामकथा सुने, चाहे कामकथा सुने। काम सर्प है। यथा : काम भुजंग डसत जब जाही। विषय निम्ब कटु लगत न ताही। साँप बिल नहीं बनाता। जिस बिल में वह घुस जाता है, वही उसकी हो जाती है। इसी भाँति कामकथा भी कानों द्वारा हृदय में घुस जाती है। अतः उसे सर्पबिल से उपमित किया। श्रवण का फल रामयश का श्रवण है। सो तो हुआ ही नहीं। अतः काम कथारूपी सर्प के निवास से उसके श्रवणरन्ध्र सर्प के बिल के समान भयङ्कर हो गये। उसके कलेजे पर साँप लोट रहा है। उसके कहने का कौन प्रमाण : यह पहिला हरिविमुख है।

नयनन्हि संत दरस नहिं देखा। लोचन मोर पंख कर लेखा॥
ते सिर कटु तुंबरि समतूला। जे न नमत हरि गुर पद मूला॥[illegible]॥

अर्थ : जिन्होंने अपनी आँखों से सन्तों के दर्शन नहीं किये, उनकी आँखें मोरपंख की आँखों की गिनती में हैं। वे सिर कड़वी तुम्बी के समान और तुल्य हैं। जो हरि और गुरु के चरणों में नमित नहीं होते।

व्याख्या : सन्त का लक्षण है कि उनको भगवान् के चरणों को छोड़कर न शरीर प्यारा है और न घर प्यारा है। यथा : तजि मम चरन सरोज प्रिय जिन्ह कहुँ देह न गेह। सो राम प्रेम से ही सन्त का आदर है। जिसने रामकथा सुनी ही नहीं वह सन्त के दर्शन के लिए क्यों जायगा? नेत्रों का फल सन्तदर्शन है। यथा : होइहैं सुफल आज मम लोचन। देखि बदन पंकज भव मोचन। सो सन्तदर्शन दुर्लभ है। परन्तु भगवान् की चलमूर्ति सन्तजन का दर्शन तो सुलभ है। यदि इसे नहीं देखा तो वे आँखें मोरपंख की भाँति व्यर्थ हैं। केवल आँखें [illegible] हैं : सुझाई कुछ नहीं पड़ता। सन्त के दर्शन से पाप दूर होता है। यथा : [illegible]

1. न निन्दा निन्द्य निन्दितु प्रवृत्ता किन्तु विधेयं स्तोतुम्। निन्दा विधि की स्तुति के लिए की जाती है। निन्दायोग्य की निन्दा के लिए नहीं। यहाँ पर [illegible] कथाश्रवण की स्तुति के लिए की गई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जिमि पातक टरई। सो उसे हुआ नही। वह पापी है जो चाहेगा बकेगा। ये दूसरे हरि विमुख है।

जिसने हरिकथा नही सुनी वह हरि को क्या जाने और जिसने हरि को न जाना वह गुरु को क्यो माने ? अत हरिकथा श्रवण का ही यह फल है कि सम्राट् का सिर भी हरि और गुरु के चरणो पर झुकता है। सिर का फल यह है कि वह हरि और गुरु के चरणा पर झुके और यदि ऐसा न हुआ तो वह सिर कडुई तूंबी के समान आकार मे है और गुण मे भी उसी के तुल्य है। जैसे कडुई तूंबी लोकसाधन या परलोकसाधन म से किसी काम नही आती उसी भाँति उस सिर से भी लोक-परलोक कुछ नही सधता। यथा खारी वेलि की खारी तुमडिया सब तीरथ करि आई। पुण्य तीर्थ को जल भरि लीन्ही तजत नही करुआई। ऐसा अविनीत जो चाहे कह सकता है। यह तीसरा हरिविमुख है।

जिन्ह हरि भगति हृदय नहि आनी। जीवत सव समान तेइ प्रानी ॥
जो नहि करै राम गुन गाना। जीह सो दादुर जीह समाना ॥३॥

अर्थ जो अपने हृदय मे हरिभक्ति नही ले आये वे प्राणी मुर्दे के समान जीते हैं। जो रामगुणगान नही करती वह जिह्वा मढक की जिह्वा के समान है।

व्याख्या॰ मुर्दे के समान जीने का भाव यह है कि शरीर की बनावट ज्यो की त्यो बनी है। पर अमङ्गलरूप है। निष्प्रयोजन है। हरिकथा श्रवण ही हरिभक्ति का कारण है। कथा श्रवण बिना हरिभक्ति हो नही सकती और हरिभक्ति बिना जीवन ही व्यर्थ है। वह जीवित ही मुर्दा है। पृथ्वी का भार मात्र है। नर शरीर भवसागर के सन्तरण का साधन है। इससे ससारसागर के पार जाने का यत्न होना चाहता था, सो इसने भक्ति को हृदय म स्थान ही नही दिया। माया म ही पडा रह गया। अत नर शरीर निष्फल गया। ऐसा पुरुष सब कुछ कह सकता है। यह चौथा हरिविमुख है।

भगवान् के गुणानुवाद के गान से भवसागर की अगाधता चली जाती है। वह थाह हो जाता है। अत जिह्वा का साफल्य रामगुणगान मे है। यदि यह न हुआ तो वह व्यर्थ मेढक की जिह्वा[1] की भाँति टरटर किया करेगी। व्यर्थ का बकवाद करेगी। वाणी मनुष्य के लिए परमेश्वर की एक विशेष देन है। वही व्यर्थ चली गई तो वह मनुष्य नही रह गया। विचारपूर्वक कैसे बोलगा ? यह पाँचवाँ हरिविमुख है

कुलिस कठोर निठुर सोइ छाती। सुनि हरि चरित न जो हरखाती ॥
गिरिजा सुनहु राम कै लीला। सुरहित दनुज विमोहनसीला ॥४॥

---

१ मढको को जिह्वा नही होती फिर भी वे टरटर किया करते हैं। इसी भाँति जो रामगुणगान नही करते उन्हें वाणी का वस्तुत अभाव है। केवल टरटर करने से जिह्वा का साफल्य नही है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो रामकथा सुरधेनु सम, सेवत सब सुखदानि।
सत समाज सुरलोक सब, को न सुनै असजानि ॥११३॥

अर्थ वह छाती वज्र के समान कठोर और निर्दय है जो हरिचरित को सुनकर प्रसन्न नही होती। हे गिरजे! रामजी की लीला सुनो जो देवताओ का कल्याण करनेवाली और राक्षसो को मोहित करनेवाली है।

रामजी की कथा कामधेनु के समान है। सेवा करते ही सब सुखो को देनेवाली है। और सत्पुरुषो के सभी समाज देवताओ के लोक हैं जहाँ कामधेनु रहती है ऐसा जानकर कौन इसे न सुनेगा ?

व्याख्या द्रवीभूत न होने से छाती को कुलिसकठोर कहा। निष्करुण होने से निठुर कहा। इसे हरिचरित सुनने मे आनन्द नही आया। यह सद्गुणो से पराङ्मुख है। इसकी बातें सुनने योग्य नही हैं। यथा हिय फाटहु फूटहु नयन जरहु सो तन केहि काम। द्रवै स्रवै पुलकै नही तुलसी सुमिरत राम। यह छठा हरि-विमुख है।

'गिरिजा सुनहु' कहकर शिवजी प्रथम विनय का उत्तर देते है। सुर से दैवी प्रकृति और असुर से आसुरी प्रकृति के लोग अभिप्रेत हैं। यथा उमा रामगुन गूढ, पडित मुनि पावहिं बिरति। पावहिं मोह बिमूढ जे हरि बिमुख न धर्म रति। 'हरहु मोर अज्ञाना कहकर विनय किया था। 'सुनहु राम कै लीला' कहकर उत्तर हो रहा है।

विनय[1] करते हुए गिरिजा ने कहा कि जासु भवन सुरतरु तर होई। सहकि दरिद्र जनित दुःख सोई। इसी के उत्तर मे शिवजी कहते हैं कि दरिद्रजनित दुःख सहने का कोई कारण नही। रामकथा रूपी सब सुखदानी कामधेनु का सेवन करो। रामकथारूपी कामधेनु ग्यान विराग सकल सुखदेनी है। कामधेनु तो ज्ञान विराग का सुख नही दे सकती और दुर्लभ भी है क्योकि स्वर्ग म रहती है पर रामकथा यही सन्त समाज मे रहती है और सब सुख देती है। अज्ञान से ही लोग दुःख सह रहे है। नहीं तो रामकथारूपी कामधेनु के रहते दुःख की कौन सी बात है ?

रामकथा सुदर कर तारी। ससय विहग उडावनहारी ॥
रामकथा कलि विटप कुठारी। सादर सुनु गिरिराजकुमारी ॥१॥

अर्थ रामजी की कथा सशयरूपी पक्षी को उडानेवाली सुन्दर करतारी है। रामकथा कलिरूपी पेड के लिए कुल्हाडी है। हे गिरिराजसुते! उसे आदर के साथ सुनो।

व्याख्या दूसरे प्रश्न ससिभूषन अस हृदय बिचारी। हरहु नाथ मम मति भ्रम भारी। के उत्तर मे कहते हैं ससय विहग उडावनिहारी। चिडिया उडाने का सबसे सुगम उपाय यही है कि बैठे बैठे ताली बजा दे। चिडिया स्वय उड जायँगी।

[1] तौ प्रभु हरहु मार अज्ञाना। कहि रघुनाथ कथा विधि नाना॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


इसी भाँति कथा आरम्भ कर दे। सशय आप ही भाग जायगा। ताली दोनो हाथो के बजाने से बजती है। इसी भाँति रामकथा भी वक्ता श्रोता दोनो के उन्मुख होने से होती है।

वह सशयरूपी पक्षी जो कलिविटप पर बैठा रहता है करतारी सुनकर उड गया। पर पेड बना है तो फिर आकर बैठेगा। अत कहते है कि कथा कुल्हाडी का भी काम देती है। कुछ दिनो तक चलती रहने से वह कलिविटप भी कट जायगा जिस पर सशय ने डेरा जमा रक्खा है। सादर सुनु से दूसरे विनय के उत्तर का उपसहार किया।

राम नाम गुन चरित सुहाए। जनम करम अगनित श्रुति गाए ॥
जथा अनत राम भगवाना। तथा कथा कीरति गुन नाना ॥२॥

अर्थ राम जी के नाम गुण और चरित सब सुन्दर हैं। जन्म कर्म अगणित हैं। जिन्हे वेद ने गान किया है। जिस भाँति भगवान् रामजी अनन्त है उसी तरह उनकी कथा उनकी कीर्ति तथा उनके गुण अनन्त है।

व्याख्या अब तीसरे विनय का अर्थात् 'प्रभु जे मुनि परमारथ बादी। कहहि राम कहुँ ब्रह्म अनादी। कहहु बुझाइ नाथ मोहि सोऊ। का उत्तर देते हैं। १ परमार्थवादी २ शेष ३ सारदा ४ वेद ५ पुराण के और ६ अपने गुणगान करने का कारण कहते हैं। राम के सोहाए नाम और गुण अगणित है। यदि कोई भी पूरा कह पाता तो दूसरे न कहते। अत सबको कहने का अवसर है। और वे यथासामर्थ्य कहते है। जन्म कर्म अगनित श्रुति गाये से दिव्य जन्म और दिव्य कर्म कहा। यथा जन्म कर्म च मे दिव्यम् और उन जन्मकर्मो की गिनती नही है। *यथा अवतारा ह्यसख्येया हरे सत्त्वनिधेर्द्विजा* । भागवते।

'अनन्त राम भगवाना' कहकर उनके स्वरूप और ऐश्वर्य सबको अनन्त कहा। दिव्य जन्म कर्म को अगणित पहिले ही कह आये हैं। अत उनकी कीर्ति अनन्त है। फलत गुणगान भी अनन्त है। इसीलिए सब सतत गान किया करते हैं। अन्त नही मिलता।

तदपि जथाश्रुत जसिमति मोरी। कहिहौ देखि प्रीति अति तोरी ॥
उमा प्रस्न[1] तव सहज सुहाई। सुखद सत समत मोहि भाई ॥३॥

अर्थ फिर भी जैसा मैने सुना है और जैसी मेरी बुद्धि है तुम्हारी अति प्रीति देखकर कहूँगा। हे उमा ! तुम्हारा प्रश्न स्वभाव से ही सोहावना है। सुखदायक और सन्तो से अनुमोदित है और मुझे भी अच्छा लगा।

व्याख्या अनन्त वस्तु के कथन मे यही होता है कि वह यथाश्रुत और

---

१ श्री रामचरितमानस म सर्वत्र प्रश्न शब्द को स्त्री लिङ्ग माना है। सम्भव है कि उस समय देश विदेश मे उसका स्त्रीलिङ्ग म प्रयोग होता रहा हो। प्राकृत व्याकरण म 'ता लिङ्गमतन्त्रम्' यह सूत्र है। अत शब्द के लिङ्ग के प्रयोग मे स्वतन्त्रता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यथामति कहा जाता है। अत. मै भी वैसा ही कहूँगा। मैने तो रचना करके मन मे ही रख छोडा था। तुम्हे अति प्रीति है। इससे कहता हूँ। यथा यह न कहिअ सठही हठसीलहि। जो मन लाइ न सुन हरिलीलहि।

प्रश्न की प्रशसा करते हैं। 'जौं नृप तनय त ब्रह्म किमि' यह वहुत सुन्दर प्रश्न है और इसमे स्वाभाविकता है। ऐसे मार्मिक प्रश्न के उत्तर मे वक्ता को भी सुख होता है। सन्तो की भी यही सम्मति है कि प्रकृत जिज्ञासु की यथार्थ जिज्ञासा का उत्तर देना चाहिए। शुष्क तर्क की प्रतिष्ठा नही है। वलवान् तार्किक निर्वल को दवा लेता है। और जो उससे भी बडा तार्किक है वह उसके तर्क का भी खण्डन कर देता है। अत शास्त्र की मर्यादा के भीतर भीतर तर्क होना चाहिए। तुम्हारा तर्क शास्त्र के भीतर है। शास्त्र के समझने के लिए है। अत 'जौ नृप तनय त ब्रह्म किमि' यह तर्क मुझे अच्छा लगा।

**एक बात नहि मोहि सुहानी। जदपि मोह वस कहेहु भवानी॥**
**तुम्ह जो कहा राम कोउ आना। जेहि [१]श्रुति गाव धरहिं मुनि ध्याना॥४॥**

अर्थ हे भवानी! एक बात मुझे अच्छी नही लगी। यद्यपि तुमने मोह के वश होकर कही है। तुमने जो कहा कि वे राम कोई और है। जिन्हे वेद गाते है और जिनका मुनि लोग ध्यान करते हैं।

व्याख्या · आँखें तो वहुतो को है। पर सभी रत्न का पहिचान नही सकते। उन्हे शीशे मे और रत्न मे भेद नही मालूम पडता। उस भेद को तो केवल रात्निक : जौहरी की आँखें देखती है। अत रत्न का ग्रहण, दो-एक रात्निको को दिखाकर सत् तर्क द्वारा श्रद्धा करके ही ससार करता है। जो अभागा रात्निको पर कुतर्क के वल से श्रद्धा नही करता वह सदा रत्न से वञ्चित रहता है। इसी भाँति राम ब्रह्म है या नही इसका निर्णय सामान्य पुरुष नही कर सकता। इस वात के जौहरी परमार्थ-वादी मुनि शेष शारदादि हैं। उनके वचन पर सत् तर्क द्वारा श्रद्धा करना ही प्राप्त है।

शिवजी का कहना है कि जव तुम स्वयं कहती हो कि 'प्रभु जे १ मुनि परमारथवादी। कहहिं राम कहुँ ब्रह्म अनादी। २ शेष ३ सारदा ४ वेद ५ पुराना। सकल करहिं रघुपति गुन गाना। ६ तुम पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहु अनग अराती।' तव तुमने कुतर्क का आश्रयण करके इनके वचनो मे अश्रद्धा क्यो की? ये लोग जव कहते हैं कि ये वही राम हैं जिनका वेद गान करता है और मुनि ध्यान धरते है तव तुम्हारे मन मे 'राम कोउ आना' की भावना क्यो उठी? यही मोह की छाया है कि जिसे विशेषज्ञ महानुभाव एक स्वर से कहे उस

---

[१] वेद के तीन भाग हैं . १ मन्त्र २ ब्राह्मण और ३ उपनिषत्। उपनिषदो मे १०८ प्रधान हैं उनम से कई एक उपनिषत् श्रीरामपरक हैं। रामतापनीय मे पूरी रामकथा सूत्र रूप से दी हुई है। जिसे पहिले उद्धृत कर दिया गया है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विषय मे भी सशय को बनाये रखना। यही बात मुझे भी अच्छी नही ल इस प्रकार की धारणा तो हरिविमुखो को होती है। जिनका उल्लेख ऊपर i जा चुका है। अब उन्ही छ हरिविमुखो की भर्त्सना पार्वती जी का भ्रम मिटा लिए शिवजी क्रम से करते हैं।

दो कहहिं सुनहिं अस अधम नर, ग्रसे जे मोह पिसाच।
पाखडी हरि पद विमुख, जानहिं झूठ न साँच ॥११

अर्थ जिनके ऊपर मोह पिशाच सवार है जो पाखण्डी है जो भगवच्च से पराङ्मुख हैं जो झठ-सच को नही जानते ऐसे ही अधम पुरुष ऐसी बातें क और सुनते है।

व्याख्या पहिले प्रकार के हरिमुख के लिए कहते हैं कि ऐसे ही अधम र ऐसी बाते कहते है और सुनते है। वे अपने वश मे नही। जैसा मोह पिशाच करा है वैसा ही करते हैं। वे झूठी झूठी कल्पनाएँ किया करते हैं। हरिकथा तो क सुनी नही। वे मिथ्या ससार को ही सत्य माने बैठे हैं। ब्रह्म सत्य उनके ि कोई वस्तु ही नही है।

अब दूसरे प्रकार के हरिविमुख के विषय मे कहते हैं जिसने आँखो से स कभी देखे ही नही।

अग्य अकोविद अध अभागी। काई विषय मुकुर मन लागी ॥
लपट कपटी कुटिल बिसेखी। सपनेहु सत सभा नहिं देखी ॥१।

अर्थ जो अज्ञानी, मूर्ख, अन्धे, भाग्यहीन है और जिनके मनरूपी दर्प पर विषयरूपी काई मल लगी हुई है। जो लम्पट, कपटी और विशेष रूप कुटिल है और जिन्होने स्वप्न मे भी सन्त सभा नही देखी है।

व्याख्या वेद असम्मत वाणी बोलनेवाले यदि विज्ञ भी हो तो उन्हे अ ही समझना चाहिए। जिसे इतना अभिमान है कि अपनी समझ के सामने ईश्वरी वाणी को नही गिनता। अथवा ऐसा अविश्वासी है कि सनातन वेद पर विश्वा नहीं करता। अथवा मन से भी अचिन्त्य रचनावाल ससार को देखने प भी उसके रचयिता की ओर जिसका ध्यान नही जाता। वह विज्ञ होने पर भ अज्ञ है। पण्डित होने पर भी मूर्ख है। आँख रहते अन्धा है। यह मन दर्पण है इस में परमात्मा की छाया पडती है। जो दर्पण मलिन है उसम नही पडती है। व परमात्मा मे विश्वास नही कर सकता। यदि ईश्वर मे विश्वास हो तो यह बात भी समझ मे आवे कि इस विश्व का रचनेवाला विश्व के कल्याण के लिए विन कुछ उपदेश दिये उसे उपेक्षित नही छोड सकता। अत उसे वेदशास्त्र क आवश्यकता मालूम पडेगी। और जिसे ईश्वर पर विश्वास नही, वह वे क्यो मानेगा?

तव वह अभागी है। भवभञ्जनपदविमुख है। मुनिजन धनसर्वस्व शिवप्राण उसके भाग्य मे नही हैं। वह सदा जन्म मरणरूपी ससार में पडा हुआ अधम

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



गति को प्राप्त होता चला जायगा। उसके मनरूपी दर्पण पर विषयरूपी काई : मल लगी हुई है। उसमे ईश्वर की छाया नही पड़ती। ऐसे विषय के गीध, कपटी और विशेषरूप से कुटिल होते हैं। उन्हे विषय : शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध छोड़कर कुछ दिखाई नही पड़ता। यथा ' नयन मलिन परनारि निरखि, मन मलिन विषय सग लागे। हृदय मलिन वासना मान मद जीव सहज सुख त्यागे। पर निंदा सुनि श्रवण मलिन भे वचन दोष पर गाये। सब प्रकार मल भारलाग निज नाथ चरन विसराये। कपटी अपनी अन्तरात्मा से कपट करता है। उसे सत्य ज्ञान हो ही नही सकता। यथा ' कपट करौं अन्तर्जामिहु ते, अघ व्यापकहि दुरावो। कुटिल परम सरल वचन मे भी पेंच देखता है। यथा : चलइ जोंक जल वक्रगति, यद्यपि सलिल समान। ऐसे लोगो को वेद पर विश्वास नही हो सकता। वे सन्तसभा का स्वप्न क्यो देखने जाँय ? जिस विषय का सस्कार होता है उसी का स्वप्न दिखाई पडता है। उन्हे सन्तसभा का सस्कार ही नहीं होता। इसलिए वे स्वप्न मे भी नही देखते। उन्हे जगत् खलमय दिखाई पडता है। और जबतक यह विश्वास न हो कि परहितैव व्रत, दिव्यदर्शी महापुरुषो का होना सम्भव है तब तक वह आप्तवाक्य पर विश्वास नही कर सकता। सन्तसभा मे प्रवेश करने का सामर्थ्य ही पापी को नही हो सकता। सन्त का दर्शन ही नही तो कल्याण कैसे हो। उसे लाभ-हानि का यथार्थ रूप कैसे दृष्टिगोचर हो।

कहहिं ते वेद असमत बानी। जिन्हके सूझ लाभ नहि हानी॥
मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना। रामरूप देखहिं किमि दीना॥२॥

अर्थ ' जिसे अपना लाभ और हानि नही सूझता। वे ही वेदो के विरुद्ध वाणी बोला करते है। एक तो मैला दर्पण दूसरे आँख का अभाव। भला वे विचारे राम का रूप कैसे देख सकते है ?

व्याख्या ' हानि कि कछु एहिसम जग भाई। भजिअ न रामहि नर तनु पाई। और लाभ कि कछु हरि भगति समाना। अर्थ और काम का लाभ वास्तविक लाभ नही है। सो जिन्हें लाभ और हानि नही सूझती, जो पारस : स्पर्शमणि, को काँच के टुकडे के बदले मे बेचते है, जो मनुष्यशरीर को उस विषयसुख के बदले मे खोते हैं, जो श्वान शूकर योनि मे भी सुलभ है वे ही वेद-असम्मत वाणी बोलते है। वेद तो कहता है कि [1]चिन्मय महाविष्णु हरि रघुकुल मे दशरथ के यहाँ उत्पन्न हुए। देखिये राम तापनीय[2]। रामरहस्योपनिषत् कहता है कि राम ही परब्रह्म हैं। मुक्तिकोपनिषत्[3] म कहा है कि राम ! तुम परमात्मा सच्चिदानन्द-

---

१ चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दाशरथे हरौ।
रघो कुलेऽखिल राति राजते यो महीस्थित ।

२ राम एव पर ब्रह्म राम एव पर तप । राम एव पर तत्त्व श्रीरामो ब्रह्म तारकम्।

३ रात त्व परमात्मासि सच्चिदानन्दविग्रह । इदानी त्वा रघुश्रेष्ठ प्रणमामि मुहुर्मुहु ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


विग्रह हो। हे रघुश्रेष्ठ ! तुमको बार बार प्रणाम। सामवेद[1] के उत्तरार्चिक अ १५ ख २ सू १ म ३ में सक्षेप से रामकथा भी वर्णित है। मन्त्ररामायण प्रसिद्ध ही है। पर वे कहेंगे कि राम कोई दूसरे हैं। अब तीसरे हरिविमुख के विषय में कहते हैं कि जिसने हरि और गुरु का समाश्रय नही किया उसे विवेक हो नही सकता। यथा बिनु गुरु होइ कि ज्ञान। और विवेक ही नेत्र है जगदात्मा प्राणपतिराम हैं। सो आत्माराम के देखने के लिए दो सामग्रियों की आवश्यकता रहती है। १ मनमुकुर और २ विवेकनेत्र की। दोनो में से एक के भी न होने मे राम सुझाई नही पडते। सो जिसे विवेक नही है और मन भी मलिन है उसे राम की छाया भी दिखाई नही पडती। उस अभागे को ईश्वर पर विश्वास नही हो सकता। न भक्ति हो सकती है। अत वह वेदो की उपेक्षा अवश्य करेगा।

जिन्ह के अगुन न सगुन बिबेका। जल्पहिं कल्पित बचन अनेका॥
हरिमाया बस जगत भ्रमाही। तिन्हहि कहत कछु अघटित नाही॥३॥

अर्थ जिन्हें न निर्गुण का ज्ञान है और न सगुण का वे मनगढन्त बात बका करते हैं। जो हरि की माया के वश में होकर जगत् म चक्कर खाया करते हैं उनके लिए कुछ भी कहना असम्भव नही है।

व्याख्या जिन्हे निर्गुण और सगुण का विवक है वे समझते हैं कि निर्गुण और सगुण मे वास्तविक भेद नही है। निर्गुण रूप से कोई लीला नही होती। अत उसका ज्ञान सुगम है, सगुण रूप से लीला होती है। उसमे नाना प्रकार के चरित्र होते हैं जिसम मुनि के मन मे भी भ्रम हो जाता है। यथा निर्गुण रूप सुगम अति, सगुन जान नहि कोइ। सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होइ। सगुण होने पर भी उनकी निर्गुणता बनी रहती है। यथा अनेक वेष धरि नृत्य करै नट कोइ। जाइ जोइ भाव दिखावै, आपुह होइ न सोइ। जिन्हे निर्गुण सगुण

---

१ भद्रोभद्रया सह सचमान आगात्, स्वसार जारोऽभ्यति पश्चात्।
सुप्रकेतैर्द्युभिरग्नि वितिष्ठन्नुशद्भिर्वर्णैरभिराममस्थात्।

भद्र कल्याणकरो रामचन्द्र भद्रया सीतया सचमान सहित यदा वनमागात् तदा जार धर्मविरुद्धाचरणेन स्वायुषा जरयिता रावण पश्चाद् रामासान्निध्य स्वसार स्वपित्रादि-ऋषिरक्तोत्पन्नत्वेन भगिनीतुल्या सीताम् अभ्यति हरणार्थमायात् तदनन्तर सु प्रकेतै शोभनध्वजै द्युभि अग्नौविर्वर्णार्द्भि कमनीयैर्वर्णै रथै कुम्भकर्णादिभिश्च सह अग्नि क्रोधाग्निप्रज्वलितहृदयो रावण वितिष्ठन् युद्धाय सनद्ध सन् रामम् अभिस्थात् रामस्य सान्निध्य गतवान्।

अर्थ कल्याणकर श्रीरामचन्द्र जब कल्याणकरी सीता के साथ वन गये तब धर्मविरुद्धाचरण स अपने आप को नष्ट करनेवाले रावण ने रामजी की अनुपस्थिति म स्वपित्रादि ऋषियो क रक्त स उत्पन्न भगिनी क समान सीता के समीप जाकर उन्हे हरण किया। तदन्तर क्रोधाग्नि स जलता हुआ वह विचित्र वर्णवाले रथो से सज्जित होकर कुम्भक दिको से युक्त रामजी के साथ युद्ध करने गया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



का विवेक नहीं है वे तथ्य को न जानकर बिना समझे अपने मन की कल्पना को ही सत्य समझकर पागल की तरह बका करते हैं।

अब चौथे प्रकार के हरिविमुख के विषय में कहते हैं। जिसने हरिभक्ति को हृदय में स्थान नहीं दिया।

हरि की माया बड़ी प्रबल है। जो ज्ञानी के भी चित्त का अपहरण करके बलपूर्वक मोहगर्त में डाल देती है। यथा सुनु खग प्रबल राम की माया। जो ज्ञानिहु कर चित्त अपहरई। बरिआई बिमोह बस करई। जो हरिमाया के वश में पड गये जैसा नाच वह नचाती है, वैसा नाचते हैं। अब पाँचवे हरिविमुख के विषय में कहते हैं जो राम गुणगान नहीं करता।

वातुल भूत बिबस मतवारे। ते नहिं बोलहिं बचन बिचारे॥
जिन्ह कृत महामोह मद पाना। तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना॥४॥

अर्थ जिन्हें वायु का रोग हो गया हो पागल हो गये हो, या सन्निपात हो गया हो भूत लगा हो या नशे में हो। ऐसे लोग विचारकर वचन नहीं बोलते। जिसने महामोह रूपी मदिरा पी रक्खी हो। ऐसो के वचनो पर ध्यान न देना चाहिए।

व्याख्या बिना विचारे बोलनेवाले तीन हैं १ वातुल २ भूतविवश ३ मतवारे। जो विषयासक्त हो रामगुणगान नहीं करता उसकी बुद्धि मलिन हो जाती है। वह वातुल, भूतविवश या मतवाले की भाँति विचारहीन बातें बोलता है। अब छठे प्रकार के हरिविमुख के विषय में कहते हैं जो हरिचरित सुनकर हर्षित नहीं होता उसने महामोहरूपी मद्य का पान किया है। मद्य पीनेवाले प्रत्यक्ष देखते हैं कि मद्यप की बुद्धि का लोप हो जाता है। स्वयं भी बुद्धिलोप का अनुभव करते हैं। उन्हे बुद्धिलोप की अवस्था अच्छी लगती है। वे उसी पर आसक्त हैं। इसलिए वे मद्य पीते हैं। इसी भाँति कुछ लोग ऐसे हैं जिन्हे धर्मविरुद्ध, शास्त्रविरुद्ध तथा ईश्वर के विरुद्ध बोलना अच्छा लगता है। जानते हैं कि यह बात बुरी है पर उन्हें व्यसन हो गया है। उसका त्याग नहीं कर सकते। जिस भाँति मद्यप मद्य के दोषो को जानता हुआ भी उसको त्याग नहीं सकता। बल्कि उसकी प्रशंसा करता है। मद्यप के कहने का कोई ख्याल नहीं करता। न कोई उसका कहना मानता है। मोहमयी मदिरा तो बड़ी प्रबल है, उसे पान करनेवाले की बात तो कभी सुननी नहीं चाहिए। उसका क्या ठिकाना। वह सब कुछ कह सकता है। तुम तो परीक्षा तक ले चुकी हो। तुम्हें रामकथा पर रुचि है, तुमने ऐसी बात मुँह से निकाली कैसे? कहहिं सुनहिं अस अधम नर। से उपक्रम करके तिन्ह कर कहा करिअ नहिं काना। से उपसंहार करते हैं अर्थात् इन छहो की बातें उपेक्षणीय हैं। उनमें तुम्हारी गिनती नहीं होनी चाहिए।

सो अस निज हृदय बिचारि, तजु संसय भजु रामपद।
सुनु गिरिराजकुमारि, भ्रम तम रबिकर बचन मम॥११५॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

अर्थ : ऐसा अपने मन मे विचारकर सन्देह को छोडो। और रामजी के चरणो को भजो। हे पार्वती ! सुनो मेरे वचन भ्रमरूपी अन्धकार को नाश करने के लिए सूर्य की किरणों के समान हैं।

व्याख्या : अधम नर वातुल, भूतविवश और मतवारे की भाँति श्रुतिसिद्ध विषयो पर शङ्का उठाते है। शास्त्रविरुद्ध बाते बोलते हैं। ससारसागर के पार जाना चाहने वाले को वेद पर विश्वास करना ही होगा। सशय और विपर्यय ये दोनो तत्परत्व के मुख्य प्रतिबन्धक हैं। इनका नाश विपरीत निश्चय से होता है। अत॰ इस विषय की शङ्का छोडो। रामजी को ब्रह्म समझकर भजो। मेरे वचन सुनने पर भ्रम नही रह सकता। मनन निदिध्यासन भी श्रवण के अन्तर्गत हैं। जिसने सुनकर मनन निदिध्यासन नही किया उसने वस्तुत श्रवण ही नही किया। क्योकि उसका सुनना न सुनने के बराबर है। अत कहते है कि मेरे वचन को हृदय मे स्थान देने से भ्रम रह नही सकता। जिस भाँति सूर्य की किरण के प्रवेश से अन्धकार नही रह जाता। यहाँ सुनु कहकर तीसरी विनती के उत्तर की समाप्ति कही गई। कहहु कहकर प्रश्न किया गया। अत सुनहु कहकर उत्तर दिया जा रहा है।

**सगुनहि अगुनहि नहि कछु भेदा। गावहि मुनि पुरान बुध बेदा॥**
**अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई॥१॥**

अर्थ : सगुण और निर्गुण मे कुछ भेद नही है। मुनि, पुराण, वेद और पण्डित गाते है। जो निर्गुण, अरूप, अलख और अजन्मा है वही भक्तो के प्रेमवश सगुण हो जाता है।

व्याख्या : अग्य जानि रिसि जनि उर धरहू। जेहि बिधि मोह मिटै सो करहू। इस चौथे विनय के उत्तर मे कहते हैं कि मोह तो यही है कि जो नृपतनय त ब्रह्म-किमि। सो सगुन और निर्गुण मे वास्तविक भेद कुछ नही, अवस्थाभेदमात्र है। इस बात को वेद और शास्त्र तथा शास्त्रज्ञ मुनि और पण्डित सभी कहते है। शास्त्र का अनुवाद बाँच लेने से कोई शास्त्र के मर्म को नही जान सकता। उसे तो गुरुपरम्परा से मननशील महात्मा लोग जानते हैं। अत वेद-पुराण के साथ ही मुनि और बुध को भी प्रमाण दे रहे हैं।

अगुण, अरूप, अव्यक्त और अज जिस ब्रह्म को कहते है वह भक्त के प्रेम के वश हो जाता है। जैसा भक्त चाहता है वैसा ही वह बन जाता है। साधकाना हितार्थाय ब्रह्मणो रूपकल्पना इति। यो यो या या तनु भक्त श्रद्धयार्चितुमिच्छति। तस्य तस्याचला श्रद्धा तामेव विदधाम्यहम्। भगवती श्रुति कहती है कि साधको के हित के लिए ब्रह्म की रूपकल्पना है। भगवद्गीता कहती है कि जो भक्त जिस-जिस तनु की श्रद्धा से अर्चना करना चाहता है, उसकी उस श्रद्धा को मै अचल कर देता हूँ। वह निर्गुण से सगुण, अरूप से रूपवान्, अव्यक्त से व्यक्त और अज से जन्मवाला हो जाता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे । जलु हिम उपल बिलग नहि जैसे ॥
जासु नाम भ्रम तिमिर पतगा । तेहि किमि कहिअ बिमोह प्रसगा ॥२॥

अर्थ जो गुण से रहित है वह सगुण कैसे है ? जैसे जल और आला भिन्न नही हैं। जिसका नाम भ्रमरूपी अन्धकार के लिए सूर्य के समान है। उसके लिए मोह का प्रसङ्ग भी कैसे कहा जा सकता है ?

व्याख्या शास्त्र की मर्यादा कहकर अब उसी मर्यादा के भीतर तर्क भी दे देते है। प्रश्न यह है कि निर्गुण और सगुण दोनो परस्पर विरोधी पदार्थ है। एक मे ही विरुद्धधर्माश्रयत्व कैसे सम्भव है ? उत्तर देते है कि दो पदार्थ नही हैं। अवस्था-भेद से स्वरूप म भेद मालूम पडता है। वास्तव म भेद कुछ नही। जैसे जल का स्वाभाविक गुण द्रवत्व है। परन्तु शीत के वश होकर द्रवत्व अभिभूत होकर उसम दृढता आ जाती है और वह पत्थर सा दृढ हो जाता है। जो बात उसम नही थी वह आ जाती है। इस भाँति जौ नृप तनय त ब्रह्म किमि। इस मोहाश को मिटाया।

नाम और रूप माया के अश हैं। इसलिए उन्हे उपाधि कहा यथा नामरूप दुइ ईस उपाधी। स्वरूप तो उनका सच्चिदानन्द है। पर इस नाम उपाधि म जिसके सम्बन्ध से ऐसा सामर्थ्य आजाता है कि सूर्यकान्त मणि की भाँति पापरूपी रूई की राशि को भस्म करके ज्ञान का कारण होता है। यथा जासु नाम पावक अघ तूला। नाम निरूपन नाम जतन ते। सोउ प्रकटत जिमि मोल रतन ते। वह विरह विकल नही हो सकता। उसे विरहविकल समझनेवाले को ही मोह है। वह उसके स्वरूप को नही जान पाया। इस भाँति नारि बिरह मति भोरि। इस मोहाश को मिटाया। अब शिवजी उन छहो आशो रात्निका की ओर से उत्तर दगे जिनके सिद्धान्त का उमा ने अनादर किया था। पहिले परमार्थवादी की आर से कहते है।

राम सच्चिदानद दिनेसा। नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा ॥
सहज प्रकास रूप भगवाना। नहिं तहँ पुनि बिग्यान बिहाना ॥३॥

अर्थ रामजी सच्चिदानन्द सूर्य हैं। वहाँ अज्ञान रात्रि के लव का लश भी नही है। भगवान् स्वभाव ही से प्रकाश स्वरूप है। वहाँ विज्ञानरूपी प्रात काल भी नही होता।

व्याख्या अब रामजी का स्वरूप कहते हैं कि वे सच्चिदानन्द रूप हैं। उनमे षडैश्वर्य स्वभाव से सिद्ध है। वे मोहनिशानाशक हैं। अत उन्ह सूर्य कहा। यथा उदय भानु बिनु श्रम तम नासा। जहाँ उक्त सूर्य नही रहते वहाँ मोहनिशा रहती है।

रामजी तो सहज प्रकाश रूप अर्थात् स्वय प्रकाश हैं। अब जीवधर्म का उनमे अभाव दिखलाते है। यद्यपि विज्ञान मोक्षप्रद है। पर वह जीव को ही होता है। पहिले मोह रहा पीछे से विज्ञान हुआ। जहाँ रात पहिले रह चुकी है वही प्रात

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


काल भी होता है। अत विज्ञान भी जीवधर्म है। ब्रह्म मे १ विज्ञानरूपी प्रात काल भी सम्भव नही।

हरप विपाद ग्यान अग्याना। जीव धर्म अहमिति अभिमाना ॥
राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। परमानद परेस पुराना ॥८॥

अर्थ २ हर्ष ३ शोक ४ ज्ञान ५ अज्ञान ६ अस्मिता और ७ गर्व जीव-धर्म है। ये सात ब्रह्म मे नही है। रामजी तो व्यापक ब्रह्म है। परमानन्द स्वरूप है, सबके स्वामी और पुराण पुरुष है। यह ससार जानता है।

व्याख्या बन्ध से लेकर मोक्ष तक द्वैत जीव कल्पित है। इससे उन्हे जीवधर्म कहा। रामजी जीव नही है। वे ब्रह्म है। उनमे जीवधर्म कहाँ ? अब सात धर्म ब्रह्म के कहते है। १ ससार जानता है कि व्यापक है। यथा 'राम ब्रह्म व्यापक जग जाना। २ परमानन्द। यथा जो आनद सिधु सुख राशी। ३ परेश। यथा तुम ब्रह्मादि जनक जग स्वामी। ४ पुराना। यथा उपजहि जासु अस विधिनाना। सभु विरचि विस्नु भगवाना।

दो० पुरुप प्रसिद्ध प्रकास निधि, प्रगट परावर नाथ।
रघुकुलमनि मम स्वामि सोइ, कहि सिवँ नायउ माथ ॥११६॥

अर्थ जो प्रसिद्ध पुरुष है स्पष्ट प्रकाश के निधि है। सूक्ष्म स्थूल के स्वामी है। वे ही रघुकुल मणि मेरे स्वामी है। ऐसा कहकर शिवजी ने उन्हे मस्तक झुकाया।

व्याख्या ५ पुरुप प्रसिद्ध। यथा जगदात्मा प्रानपति रामा। ६ प्रकाश निधि। यथा जिमि घट कोटि एक रवि छाही। ७ प्रकट परावर नाथ राम रजाय मेटि जग माही। देखा सुना कतहुँ कोउ नाही। उमा दारु जोषित की नाई। सबहि नचावत राम गोसाई। वही राम रघुकुलमनि ब्रह्म है। व ही मेरे स्वामी है। अत उन्ही को रात दिन सादर जपता हूँ। यथा तुम पुनि राम राम दिन राती। सादर जपहुँ अनग अराती। ऐसा कहकर सिर नवाया। अब शेषजी की ओर से कहते है

निज भ्रम नहि समुझहि अग्यानी। प्रभु पर मोह धरहि जड प्रानी ॥
जथा गगन घन पटल निहारी। झापेउ भानु कहहि कुबिचारी ॥१॥

अर्थ अपने भ्रम को अज्ञानी नही समझते। अविवेकी प्राणी प्रभु पर मोह का आरोप करते है। जैसे आकाश मे बादलो का पर्दा देखकर बुरे विचारवाले कहते है कि सूर्य ढक गया।

व्याख्या अपने भ्रम को न समझनेवाले ही अज्ञानी है जो अपने भ्रम को समझता है वह ज्ञानी है। दर्पण के प्रतिबिम्ब का ज्ञान जानकार के लिए प्रमा और अनजान के लिए भ्रमात्मक है। मन्दान्धकार मे रज्जु का सर्प दिखाई पडना अज्ञान है। वह तो सभी को सर्परूप म ही दिखाई पडेगी। परन्तु जानकार का वहाँ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भ्रमप्रयुक्त क्रिया का अभाव है। अविवेकी प्राणी अपने भ्रम को न समझगे। वे रज्जु को ही दोप देंगे कि वह सर्परूप मे क्यो परिणत हो गई।

जिसे सूर्य के परिमाण का ज्ञान है वह समझ सकता है कि बादल बिचारा सूर्य को क्या ढक सकता है। वह हमारी आँखो को नि सन्देह ढक सकता है। उसी को अविवेकी पुरुप सूर्य का ढका जाना समझते है। इसी भाति अज्ञान अपने को होता है। अविवेकी पुरुप उसका आरोप रामजी पर करते है। इससे आवरण-शक्ति कहा।

चितव जो लोचन अगुलि लाए। प्रगट जुगल ससि तेहि के भाएँ ॥
उमा राम विपइक अस मोहा। नभ तम धूम धूरि जिमि सोहा ॥२॥

अर्थ जो अपनी आखो मे उँगली लगाकर देखता है उसके मत से दो चन्द्रमा स्पष्ट है। उमा! रामजी के विपय मे ऐसा ही मोह है। जैसे आकाश म अन्धकार, धूम और धूलि शोभित होती है।

व्याख्या अब विक्षेप कहते हैं। आवरण से आत्मा का अज्ञान होता है। विक्षेप से द्वैत की प्रतीति होती है। अपनी आँख मे उँगली द्वारा विक्षेप हुआ। चन्द्रमा के कोई विक्षेप नही हुआ। अच्छी तरह मालूम है कि एक है। पर चन्द्रमा दो दिखलाई पडने लगते है। जगत् का आभास कर्म दोपो से उत्पन्न है। उसकी निवृत्ति ज्ञानमात्र से नही हो सकती। चूक अपनी है चन्द्रमा की नही। इसी भाँति अपना द्वैत भाव राम मे दिखाई पडता है। जबतक कार्य का लय नही होगा व्यवहार लय नही हो सकता। इसी भाँति स्वय मलावृत होने से रामजी मे मलिनता दिखाई पडने लगती है। हमे जब अन्धकार, धूम और धूलिका अनुभव होता है तब कहते हैं कि आकाश अन्धकार, धूम और धूलि से भर गया। तम से सूक्ष्म, धूम से स्थूल और धूलि से स्थूलतर मल कहा। यहा ब्रह्म की उपमा आकाश से दी गई। क्योकि आकाश और चिदात्मा विलक्षण नही हैं। दोनो ही सूक्ष्म, निर्मल, अज, अनन्त, निराकार, असङ्ग और सबके भीतर बाहर व्याप्त है। चैतन्य-पूर्ण आत्मा ही आकाश है। उसमे किसी वस्तु का लेप नही हो सकता। जीव समझता है कि जैसी हमे सच्ची विकलता है वैसी ही रामजी को भी सच्ची विकलता है। यह निर्गुण निराकार मे अध्यास का उदाहरण है। वह सबका प्रकाशक है। उसमे अज्ञानान्धकार कहाँ?

विपय[१] करन सुर जीव समेता। सकल एक ते एक सचेता ॥
सब कर परम प्रकासक जोई। राम अनादि अवधपति सोई ॥३॥

अर्थ विपय से इन्द्रियाँ, उनसे देवता और उनसे भी बढकर जीवात्मा सचेत है। इन सबका जो परम प्रकाशक है वही अनादि राम अयोध्याधिपति हैं।

व्याख्या . विपय। यथा . शब्द, स्पर्श, रूप, रस और गन्ध। करण पाँच

१. एकावली अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

कर्मेन्द्रिय, पाँच ज्ञानेन्द्रिय और चार अन्तःकरण है। यथा १ वाक् २ पाणि ३ पाद ४ पायु ५ उपस्थ ये कर्मेन्द्रियाँ है। ६ श्रोत्र ७ त्वक् ८ चक्षु ९ जिह्वा १० घ्राण ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। ११ मन १२ बुद्धि १३ चित्त और १४ अहकार ये चार अन्तःकरण हैं। इनके देवता क्रम से १ अग्नि २ इन्द्र ३ उपेन्द्र ४ प्रजापति ५ मृत्यु ६ दिशा ७ वायु ८ सूर्य ९ वरुण १० अश्विनी कुमार ११ चन्द्र १२ ब्रह्मा १३ वासुदेव और १४ रुद्र हैं। इनमे विषय से अधिक सचेत इन्द्रियाँ हैं। इन्द्रियो से अधिक चेतन देवता है। इन्ही के अनुग्रह से इन्द्रियाँ अपने विषय के ग्रहण करने मे समर्थ होती हैं। देवताओ से भी अधिक सचेतन जीव है। जिसके होने से देवता भी अनुग्रह करने मे समर्थ होते है।

परन्तु इन सबका परम प्रकाशक अन्तर्यामी है। जैसे राजा, सभासद, नर्तकी और तालधारी सभी को दीप प्रकाशित करता है। इसी भाँति अनादि अन्तर्यामी राम सबको प्रकाशित करता है। वही अयोध्याधिपति राम हैं। अब शारदा की ओर से कहते हैं

जगत प्रकास्य प्रकासक रामू। मायाधीस ग्यान गुन धामू ॥
जासु सत्यता ते जड माया। भास सत्य इव मोह सहाया ॥४॥

अर्थ जगत् प्रकाश्य है और रामजी प्रकाशक है। वे माया के स्वामी और ज्ञान तथा गुणो के धाम हैं। जिनकी सचाई से जड माया मोह की सहायता से सत्य की भाँति भासित होती है।

व्याख्या इस भाँति जगत् और रामजी के प्रकाश्य प्रकाशक का सम्बन्ध है। वे ज्ञान गुणधाम मायाधीश हैं। माया अघटितघटनापटीयसी है। उसके अधीश बनकर सगुण हुए। मिथ्या माया जड है। उसम प्रकाशन शक्ति नही है। परिच्छेद के अवभास को अनात्माभास कहते है। वही अविद्या, जडशक्ति, शून्य या प्रकृति कहलाता है। ब्रह्म चेतन है। उसकी सत्यता से जड माया ससार मोह अज्ञान की सहायता से सत्य भी मालूम हाती है। भाव यह कि रामजी मे जो विरह विकलतादि तुमने देखा वह माया थी। सत्य नही था। जब रामजी म सारा ससार बिना हुए दिखाई पडता है तो उतना विरह विकलतादि का बिना हुए दिखाई पडना कौन सी बडी बात थी। तुम्हारे अज्ञान की सहायता से वह सब सत्य दिखाई पडा।

दो रजत सीप महुँ भास जिमि, जथा भानु कर वारि।
जदपि मृषा तिहुँ काल सोइ, भ्रम न सकइ कोउ टारि ॥११७॥

अर्थ जैसे सीप म चाँदी और सूर्य की किरणो मे जल भासित होता है। यद्यपि ये बातें तीना काल मे झूठी हैं पर उस भ्रम को कोई टाल नही सकता।

व्याख्या सीप म रजत तीन काल मे असत्य है। सीपी की सत्यता से उसमे सत्यता की प्रतीति होती है। सीपी का इदमश रजत म प्रतीत होता है और सीपी का नील पृष्ठ त्रिकोणादि रूप तिरोहित रहता है। इसी भाति परमात्मा म इस

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मिथ्या जगत् की प्रतीति होती है। असग आनन्दादि गुण तिरोहित हो जाते हैं और रजत की भाँति जगत् भासित होने लगता है। यह हुआ मन्द अन्धकार का भ्रम। अब प्रकाश का भ्रम कहते हैं। जेठ की दुपहरिया मे जल का भ्रम होता है। वह जल तीन काल मे असत्य है पर दिखलाई पडता है। ज्ञान से भ्रम की निवृत्ति मात्र होती है। ससार दर्शन की निवृत्ति नही होती, वह तो उसी भाँति भासित होता रहता है। भ्रम न सकै कोउ टारि का यही अभिप्राय है कि असत्य प्रतीति के बाद भी उसका दिखाई देना नही बन्द होता। उसी भ्रम को कोई टाल नही सकता। ससारभ्रम क्या टलेगा ?

**एहि विधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई॥**
**जौं सपने सिर काटै कोई। बिनु जागे न दूरि दुख होई॥१॥**

अर्थ इस भाँति जगत् हरि के सहारे रहता है। यद्यपि असत्य है पर दुख दे रहा है। जैसे कोई सपने मे सिर काटता हो तो बिना जागे दुख नही दूर होता।

व्याख्या ऊपर सीप मे रजत और भानुकर मे वारि के रहने की विधि कह आये कि उनकी भ्रान्तिमात्र होती है। इसी भाँति हरि मे जगत् के होने की भ्रान्ति मात्रा है। वस्तुत जगत् कुछ हुआ नही। भ्रान्तिमात्र है, मिथ्या है। फिर भी यह दुख देता रहता है। उदाहरण देते हैं कि जैसे सपने मे कोई सिर काटता हो। सिर तो वस्तुत सुरक्षित है सिर का कटना बिल्कुल झूठ है। सपना देखनेवाला सिर के कटने की पीडा और मरने का दुख ठीक ठीक अनुभव करता है। उसे उस दुख से कोई छुटा नही सकता। बडे बडे वीर शस्त्रधारी कुटुम्बी या मित्र उस दुख से उसे बचा नही सकते। उसको दुख से बचा देने का एकमात्र उपाय उसका जगाना है। जागने से ही उसका भ्रम मिट सकता है। स्वप्न के विकल्प मे केवल मन ही द्रष्टा, दर्शन और दृश्यरूप होकर विचित्रता से भासता है। इसी प्रकार शुद्ध सवित् भी विचित्राकार से भासती है।

**जासु कृपाँ अस भ्रम मिटि जाई। गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई॥**
**आदि अत कोउ जासु न पावा। मति अनुमान निगम अस गावा॥२॥**

अर्थ हे पार्वती! जिसकी कृपा से ऐसा भ्रम मिट जाता है वही कृपाल रघुराई हैं। जिसका आदि और अन्त किसी को नही मिला। वेदो ने अपनी बुद्धि के अनुसार इस प्रकार गान किया है।

व्याख्या अर्थात् भगवत् कृपा सुजान जीवो को जगाती है कि तू जाग अर्थात् हरिपद मे अनुराग कर यथा जानकीस की कृपा जगावती सुजान जीव जागु त्यागु मूढतानुरागु श्री हरे। यहाँ मूढता का त्याग और हरिपद म अनुराग करना ही जागना है। इसीसे भ्रम मिट जाता है। और फिर ससार के दुख से छूट जाता है। उनके चरणो मे अनुराग भी उनकी कृपा से ही होता है। अत भगवत्कृपा प्राप्ति के लिए ही सारे शास्त्रीय प्रयत्न हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जिसकी कृपा से मसारभ्रम की निवृत्ति होती है और जिसकी सत्ता से ही मिथ्या जगत् सत्तावान् है वही कृपाल रघुराई है। इसके बाद वेद की ओर से कहते है : जो अनादि और अनन्त है। मनुष्य की बुद्धि मे सादि और सान्त पदार्थ ही आ सकते है। अनादि और अनन्त की मनुष्य भावना नही कर सकता। जिसका आदि और अन्त हो उसी का वर्णन सम्भव है। अनादि और अनन्त का कोई वर्णन भी नही कर सकता। वेद भी उसका वर्णन यावद्बुद्धिबलोदय ही करता है। अब उस श्रुति का अनुवाद श्री गोस्वामी जी करते हैं :

बिनु[1] पद चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु करम करै बिधि नाना ॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु बानी बकता बड़ जोगी ॥३॥
तन बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहै घ्रान बिनु बास असेखा ॥
असि सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा जासु जाइ नहिं बरनी ॥४॥

अर्थ : वह बिना पैर के चलता है। बिना कान के सुनता है। बिना हाथ के नाना प्रकार के कर्म करता है। बिना मुँह के वह सारे रसो का भोग करता है। वह महायोगी बिना वाणी के बडा भारी वक्ता है। वह शरीर के बिना छूता है। और बिना आँख के देखता और नाक के बिना सब गन्ध सूँघ लेता है। जिसकी करणी इस भाँति सब प्रकार से अलौकिक है उसकी महिमा वर्णन नही की जा सकती।

व्याख्या : अब निगम देखिये : श्वेताश्वतर उपनिषत् मे कहा है। 'अपाणिपादो जवनो गृहीता पश्यत्यचक्षु. स शृणोत्यकर्ण'। स वेत्ति वेद्य न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्य पुरुष महान्तम्। परमात्मा अपाणिपाद होने पर भी सब कुछ ग्रहण करते है। सर्वत्र गमन करते है। भौतिक चक्षु न होने पर भी वे सब देखते है। भौतिक कर्ण न होने पर भी वे सब सुनते हैं। अमनस्क होने पर भी वे सर्वज्ञ हैं। उनका कोई द्रष्टा या ज्ञाता नही है। वे सबके कारण है। इसलिए उन्हे प्रथम पूर्ण महापुरुष कहा जाता है।

योगी लोग आज भी ऐसे बहुत से कार्य कर दिखलाते है जिन्हे साधारण पुरुष विश्वास नही कर सकते। जिसकी प्रकृति जिस वस्तु के विश्वास करने की नही होती वह उस वस्तु का विश्वास नही कर सकता। आँख मे पट्टी बाँधकर पीठ के द्वारा पुस्तक पढने का कौतुक जिसने देखा है वह बिना हाथ के ग्रहण करने पर, बिना पैर के चलने पर, बिना आँख के देखने पर, बिना कान के सुनने पर अविश्वास

---

१ एक स्थान से पैर उठाकर दूसरे स्थान मे रखना ही चलना है। जहाँ पहिले पैर था वहाँ भी वह है, जहाँ रक्खा जायगा वहाँ भी वह है, अत वह बैठे ही बैठे दौड़नेवाले के आगे निकल जाता है। तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्। वह श्रोत्र का भी श्रोत्र है, अत बिना कान के सुनता है। उसके पाणि पाद सर्वत्र हैं। सर्वत्र शिर, मुख हैं। सर्वत्र कान है। सबको ढके हुए ठहरा है। यथा सर्वत पाणिपाद तत्सर्वतोक्षि शिरोमुखम्। सर्वत श्रुतिमल्लोके सर्वमावृत्य तिष्ठति। सर्वत्र पाणिपाद है, इसीलिए उसे अपाणिपाद कहते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नही कर सकता। फिर जिन कामो को योगिवर्य कर सकते हैं उन्हे परमेश्वर जो नित्य योगी है जो सर्वदा ऐश्वर्यशाली हैं अवश्य कर सकते हैं। वे विना पैर के चल सकते हैं। विना हाथ के ग्रहण कर सकते हैं। विना कान के सुन सकते हैं। विना आँख के देख सकते हैं। इसमे आश्चर्य की कोई बात नही है। इसी से बडयोगी अर्थात् महायोगी कहा है। लौकिक करणी के वर्णन के लिए शब्द हैं। अलौकिक पदार्थ के वर्णन के लिए शब्द नही मिलते। इसलिए जिस महाप्रभु की करणी सब भाँति से अलौकिक है उसकी महिमा नही वर्णन की जा सकती। यहाँ विभावना प्रथम है।

दो जेहि इमि गावहि वेद बुध, जाहि धरहि मुनि ध्यान।
सोइ दसरथ सुत भगत हित, कोसल पति भगवान ॥११८॥

अर्थ जिसको वेद और पण्डित इस भाँति गाते हैं और मुनि जिसका ध्यान करते हैं वही दशरथ के पुत्र, भक्तो के हितकारी कोशलपति भगवान् हैं।

व्याख्या जब शास्त्र और शास्त्रज्ञ दोनो जिनका इस प्रकार से गान करते हैं। मुनि लोग ध्यान मे ऐसा ही अनुभव करते हैं। तब प्रश्न यह उठता है कि ऐसे के शरीर धारण करने की क्या आवश्यकता पडी। सब कुछ तो वे विना इन्द्रियो के ही कर सकते हैं। इसके उत्तर मे कहते हैं कि वे भक्तो के हित करनेवाले हैं। भक्त के हित के लिए दशरथसुत कोशलपति हुए। स्वयम्भू मनु ने वर माँगा चाहहुँ तुमहि समान सुत प्रभुसन कौन दुराव। आपने कहा आप सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होव हम आई। अब पुराण की ओर से शिवजी कहते हैं

कासी मरत जतु अवलोकी। जासु नाम वल करौ विसोकी ॥
सोइ प्रभु मोर चराचर स्वामी। रघुवर सव उर अतरजामी ॥१॥

अर्थ काशी मे मरते हुए प्राणी को देखकर जिसके नाम के बल से मैं उसे शोकरहित कर देता हूँ वही रघुवर अन्तर्यामी जडचेतन के और मेरे स्वामी सबके हृदय मे हैं।

व्याख्या उसी दशरथसुत कोसलपति की महिमा कहते हैं। काशी मे उन्ही के नाम के प्रताप से शिवजी मोक्ष का सदावर्त्त चलाते हैं। यहाँ आये हुए प्राणियो को मरते हुए देखकर शिवजी उसे रामनाम का उपदेश करते हैं। यथा सिव उपदेस करत करि दाया। और उसी नामोपदेश के प्रभाव से वह शोक से पार होकर मुक्त हो जाता है। शिवजी कहते हैं कि वही मेरा स्वामी है और चराचर का स्वामी है। उसका निवास हृद्देश म है। भाव यह है कि वह अत्यन्त सूक्ष्म होने से सबके अन्तर मे विराजमान हैं। अब अपनी ओर से कहते हैं

विवसहु जासु नाम नर कहही। जनम अनेक रचित अघ दहही ॥
सादर सुमिरन जे नर करही। भव वारिधि गोपद इव तरही ॥२॥

अर्थ विवश होकर भी जिसका नाम यदि मनुष्य उच्चारण करते हैं तो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

अनेक जन्मो के किये हुए पापो को जला डालते हैं। जो मनुष्य आदर के साथ स्मरण करते है वे संसार सागर को गोपद की भाँति तर जाते है।

व्याख्या · नाम मे ऐसी पापदाहिका शक्ति है कि उसके उच्चारण होते ही पापराशि · अनेक जन्मकृत · रूई की भाँति जल जाती है। यथा : जासु नाम पावक अघ तूला · परन्तु पुण्य बच जाते हैं। जिनके भोगने मे फिर पाप-पुण्य होते हैं। जिससे जन्म-मरण रूपी ससार बना रहता है। परन्तु सादर स्मरण करनेवाले के कर्ममात्र का दाह हो जाता है और ज्ञान उदय होता है। जिससे वे अनायास संसार-सागर से पार चले जाते है। कीचड मे गौ के पैर पड़ने से जो गड्ढा हो जाता है, उसमे कुछ जल रहता है। उसे ही यहाँ गोपद कहा है।

**राम सो परमातमा भवानी। तहँ भ्रम अति अवहित तव बानी ॥**
**अस ससय आवत उर माही। ग्यान विराग सकल गुन जाही ॥३॥**

अर्थ हे भवानी! वही परमात्मा राम हैं। उनमे भ्रम है, यह कहना तुम्हारा अत्यन्त अनुचित है। ऐसा सशय मन मे लाने से ज्ञान वैराग्य सब गुण चले जाते हैं।

व्याख्या जिसके नाम का ऐसा प्रभाव है वह नामी परमात्मा है। यह सिद्ध हो चुका। तब वहाँ भ्रम का सशय करना अति अनुचित है। वहाँ यदि भ्रम दिखाई पडे तो उसे अपना भ्रम समझना चाहिए। जिसे सूर्य तमोमय दिखाई पड़ें, उसे समझना चाहिए कि यह अपना भ्रम है। कुछ दोष मुझमे ऐसा आगया है जिससे ऐसा दिखाई पड रहा है। इस भाँति 'राम सो अवध नृपति सुत सोई' को छ बार दोहराया।

परमात्मा मे भ्रम का सशय करना, ज्ञान विरागादि गुणो को निराश्रय करना है। जो उस परमात्मा मे भ्रम होने का सशय करेगा जिसने कृपा करके हमारे लिए शरीर धारण किया सो इस दोषारोपण से उसी का अकल्याण होगा। भगवान् ने गीता मे कहा है कि पापी मूढ मेरे शरण नही आते उन अधमो का ज्ञान माया से अपहृत हुआ है। वे आसुरभाव को प्राप्त हुए हैं। न मा दुष्कृतिनो मूढाः प्रपद्यन्ते नराधमा। माययापहृतज्ञाना आसुर भावमास्थिता·।

**सुनि सिव के भ्रम भजन बचना। मिटिगै सब कुतरक कै रचना ॥**
**भइ रघुपति पद प्रीति प्रतीती। दारुन असभावना बीती ॥४॥**

अर्थ शिवजी के भ्रमनाशक वचनो को सुनकर सब कुतर्क की रचना मिट गई। रघुपति के चरणो मे प्रीति हुई, विश्वास हुआ और कठिन अविश्वास जाता रहा।

व्याख्या 'सुनि' से चतुर्थ विनय[1] के उत्तर की समाप्ति दिखलाते हैं। और शिवजी के इस कथन का कि 'भ्रमतम रबिकर वचन मम' का साफल्य भी दिखलाते हैं। इसीलिए उनके वचन का भ्रमभञ्जन विशेषण देते हैं। वेद विरुद्ध तर्क को

---

१. अज्ञ जनि रिसि जनि उर धरहू। जेहि बिधि मोह मिटै सोइ करहू ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कुतर्क कहा। वही प्रतीति का बाधक होता है। और जो दारुण असम्भावना रही 'जो नृप-तनय त ब्रह्म किमि' वह भी समाप्त हो गई।

दो० पुनि पुनि प्रभु पद कमल गहि, जोरि पकरुह पानि।
बोली गिरिजा बचन बर, मनहुँ प्रेमरस सानि ॥११९॥

अर्थ बार बार प्रभु के चरण कमलो को पकडकर गिरिजा मानो प्रेम रस से सानी हुई श्रेष्ठ वाणी बोली।

व्याख्या बार बार चरणस्पर्श से शिष्या की शुश्रूषा दिखलाई। अथवा चरणग्रहण से कर्मणा प्रेम, 'बचन बर' बोलने से वाचा और 'प्रेमरस सानि' से मनसा प्रेम दिखलाया।

ससिकर सम सुनि गिरा तुम्हारी। मिटा मोह सरदातप भारी॥
तुम्ह कृपाल सब ससउ हरेऊ। राम स्वरूप जानि मोहि परेऊ ॥१॥

अर्थ चन्द्र की किरणो के समान आपके वचन सुनकर शरद ऋतु की धूप के समान मेरे मोह का भारी ताप मिट गया। ह कृपालु! आपने सारे सन्देह हर लिये। मुझे रामजी का स्वरूप जान पडा।

व्याख्या शिवजी ने स्वय कहा था सुनु गिरिराजकुमारि, भ्रमतम रविकर वचन मम। परन्तु भगवती ने शीतलता का अनुभव किया। इसलिए कहती हैं कि ससिकर सम सुनि गिरा तुम्हारी। शशिकर मे मृगतृष्णा का भ्रम भी नही होता। अन्धकार भी मिटता है और शरद् काल की चित्रा[1] की कडी धूप का ताप भी मिटता है। यथा सरदातप निसि ससि अपहरई। सत दरस जिमि पातक टरई। सो उमा कहती हैं कि चन्द्र के किरण सी आपकी वाणी सुनकर मोहरूपी शरद् काल की कडी धूप का ताप मिट गया। विनती की थी कि जेहि विधि मोह मिटै सोइ करहू। सो अब कह रही हैं कि मिटा मोहू। चौथी विनती के उत्तर मे ही सब सशय मिट गया। अत पाँचवें विनय अजहूँ कछु ससउ मन मोरे। के उत्तर की आवश्यकता नही रह गई। चन्द्र के किरण सी वाणी से *मोहरूपी शरदातप का* मिटना कह आई हैं। अब उससे सशयरूपी अन्धकार का नाश भी कहती हैं। और उसके प्रकाश मे रामजी के स्वरूप की जानकारी का होना भी कहती हैं। शिवजी ने कहा था कि मुकुर मलिन अरु नयन विहीना। रामरूप देखहिं किमि दीना। सो कहती हैं कि तुम्ह कृपालु सब ससउ हरेऊ। रामसरूप जानि मोहि परेऊ। राम सच्चिदानद दिनेसा। से राम सो परमात्मा भवानी तक रामजी के स्वरूप का निरूपण शिवजी ने किया है। उसी पर कहा राम स्वरूप जानि मोहि परेऊ।

नाथ कृपा अब गएउ बिषादा। सुखी भइउँ प्रभु चरन प्रसादा॥
अब मोहि आपनि किंकरि जानी। जदपि सहज जड नारि अयानी ॥२॥

---

१ जब सूर्य चित्रा नक्षत्र पर जाते हैं तब समय की धूप कडी कही जाती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ हे नाथ ! आपकी कृपा से मेरा विषाद जाता रहा। आपके चरणो के प्रसाद से मै सुखी हो गई। यद्यपि मैं स्वभाव से ही जड तथा अनजान स्त्री हूँ। फिर भी आप मुझे अपनी दासी जानकर

व्याख्या पहिले संशय के रहने से विषाद था। यथा ससय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहरि कुतर्क बहु व्राता। शिवजी के वचनो से सशय जाता रहा। उसी के साथ विषाद भी मिट गया। अत कहती हैं नाथ कृपा अब गयउ विषादा। और रामजी के स्वरूप का ज्ञान हुआ। अत कहती है सुखी भइउँ प्रभु चरन प्रसादा।

सती से शिवजी ने कहा था ' सुनहि सती तव नारि सुभाऊ। ससय अस न धरिअ उर काऊ। सो सती का शरीर छूटकर पार्वती देह मिलने पर भी वही सशय उठा। इसलिए अपना जडत्व तथा अज्ञान स्वीकार करती हैं। अथवा पार्वती शरीर होने से अपने मे जडत्व और अज्ञान मान रही हैं। यथा सत्य कहहु गिरि भव तनु एहा। हठ न छूट छूटै वरु देहा। फिर भी अपने को शिवजी की दासी मानती हैं। अपना निवास शङ्कर रूप कल्पवृक्ष के नीचे वतलाती है। इस भाँति श्रवण मे अपना अधिकार द्योतित करती है।

प्रथम जो मै पूछा सोइ कहहू। जौ मोपर प्रसन्न प्रभु अहहू ॥
राम ब्रह्म चिनमय अविनासी। सर्ब रहित सब उर पुरवासी ॥३॥

अर्थ हे प्रभो ! यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो जो वात मैने आपसे पहिल पूछी थी उसे कहिये। रामजी ब्रह्म, चिन्मय और अविनाशी हैं। सबसे रहित और सबके उररूपी पुर मे निवास करते हैं।

व्याख्या अव शेष तीन जिनयो के उत्तर की भी आवश्यकता नही रह गई। अत पहिले प्रश्न की ओर ध्यान दिलाती है। यथा प्रथम सो कारन कहहु विचारी। निगुन ब्रह्म सगुन वपुधारी। और उसी वात को स्पष्ट करती है। ब्रह्म, चिन्मय, अविनाशी, सवरहित, सव उरपुर वासी। ये पाँचो विशेषण ऐसे हैं जिससे रामजी के नर तन धारण करने की कोई आवश्यकता नही प्रतीत होती। और प्रयाजन के विना कार्य मे प्रवृत्ति होती नही। केवल इसी वात का उत्तर चाहती है।

नाथ धरेउ नर तनु केहि हेतू। मोहि समुझाइ कहहु वृषकेतू ॥
उमा वचन सुनि परम विनीता। राम कथा पर प्रीति पुनीता ॥४॥

अर्थ हे नाथ ! हे वृषकेतु ! यह समझाकर कहिये कि उन्होने मनुष्य का शरीर किस कारण से धारण किया ? उमा के अत्यन्त विनीत वचन सुनकर और राम कथा पर पवित्र प्रेम दखकर

व्याख्या ब्रह्म, चिन्मय, अविनाशी, सर्वरहित और सर्वान्तर्यामी का नर शरीर धारण करना किसी भाँति उपयुक्त नही है। यदि शरीर धारण करना ही था तो देव शरीर धारण करते। नर देह तो भवपार उतरने के लिए है। यथा नरतन

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भववारिधि कहुँ बेरो। परमेश्वर तो नित्य मुक्त हैं। उन्हे तो भवपार उतरना नही है कि नर शरीर धारण करें। अत समझाकर कहने के लिए प्रार्थना करती हैं।

उमा के वचन परम विनीत हैं। यथा सुखी भइउँ प्रभुचरन प्रसादा। अब मोहि आपनि किंकरि जानी। जदपि सहज जड नारि अयानी। तथा रामकथा पर पुनीत प्रेम है। यथा नाथ धरेउ नर तनु केहि हेतू। मोहि समुझाइ कहहु वृषकेतु। वृषकेतु सम्बोधन का भाव यह है कि आप वृषकेतु हैं। वृषो हि भगवान् धर्म। भगवान् धर्म ही वृष है। अत आप धर्म की सूक्ष्म गति जानते हैं। नरतन धारण करने म भी धर्म ही कारण होगा। सो आप बतला सकते है। प्रीति पुनीत स्वार्थ रहित प्रीति का ग्रहण है। यथा प्रीति पुनीत भरत कै देखी। सकल सभा सुख लहेउ विसेखी।

दो हिय हरखे कामारि तब, संकर सहज सुजान।
बहु विधि उमहि प्रसंसि पुनि, बोले कृपा निधान ॥१२०॥

अर्थ कामदेव के शत्रु, सुजान, कृपानिधान शिवजी मन म प्रसन्न हुए और उमा की अनेक विधि से प्रशसा करके फिर बोले।

व्याख्या शिवजी कामारि हैं। भक्ति देखकर ही हर्षित होते है। सहज सुजान हैं। अत विनीत वचन से सुखी होते हैं। रामकथा पर प्रीति देखकर उन्होने बहु विधि से प्रशसा की। पहले कृपा करके सशय हरण कर लिया। फिर भी कृपा करके शेष विनयो का उत्तर देते हैं। किसी विनय की उपेक्षा नही होने देते अत कृपानिधान कहा।

सो सुनु सुभ कथा भवानि, रामचरितमानस विमल।
कहा भुसुंडि बखानि, सुना विहग नायक गरुड ॥१२०॥क
सो संवाद उदार, जेहिं विधि भा आगे कहब।
सुनहु राम अवतार, चरित परम सुंदर अनघ ॥१२०॥ख
हरि गुन नाम अपार, कथा रूप अगनित अमित।
मैं निज मति अनुसार, कहौं उमा सादर सुनहु ॥१२०॥ग

अर्थ हे भवानि! रामचरितमानस की शुभ कथा सुनो जिसे कागभुसुण्डि ने बखानकर कहा था और पक्षिराज गरुडजी ने सुना था।

वह उदार संवाद जिस भाँति हुआ इसे मैं आगे कहूँगा। अभी तुम रामचन्द्रजी के अवतार का परम सुन्दर और पापरहित चरित सुनो।

हरि के गुण और नाम अपार हैं। कथा के रूप भी अगणित और असीम हैं। हे उमा! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहता हूँ। आदर पूर्वक सुनो।

व्याख्या अजहूँ कछु ससउ मन मोरे। इस पाँचवें विषय का उत्तर पाँचवें गुनु शब्द से सूचित करते हैं। भाव यह कि प्रसङ्ग प्राप्त रचे बचाये समय के

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

निरसन के लिए गरुड भुसुण्डि सवाद अन्त मे कहेगे। यहाँ से चारो घाट की कथाएँ प्रारम्भ हुईं।

कहहु पुनीत रामगुन गाथा। इस छठे विनय का उत्तर देते हैं। कहते हैं कि वह सवाद उदार है। अर्थात् सुन्दर है। यथा उदार अग विभूषणम्। भाव यह कि इस कथा का ऐसा माहात्म्य है कि यदि काक प्रेम से कथा कहने बैठे तो विहङ्ग-नायक साक्षात् प्रभु की विभूति गरुड सुनने के लिए आजावें। इस समय रामकथा कहेगे। भुसुण्डि गरुड सवाद होने की विधि आगे चलकर कहेगे। क्योंकि उक्त सवाद में ही उमा के चार प्रश्न नवे, दशवे, ग्यारहवें और बारहवें का उत्तर है। इस समय उन्हे कहने से उत्तर का क्रम भङ्ग हो जायगा।

बरनहु रघुवर विमल जस। इस सातवे विनय का उत्तर देते हैं कि हरि के असीम होने से उनके नाम और गुण भी अपार हैं। कल्प भेद हरि चरित सोहाए। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए। कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरही। चारु चरित नाना विधि करही। अत कथारूप अगणित हैं। और उनमे से एक एक का रूप अमित है। ऐसी अवस्था मे मति अनुसार ही कहा जा सकता है। अब सादर सुनने के लिए आज्ञा देते हैं। सादर न सुनने से कथन का प्रभाव नही पडता। यथा एहि विधि अमित जुगुति मन गुनेऊँ। मुनि उपदेस न सादर सुनेऊँ। और कथा का अनादर होता है।

सुनु गिरिजा हरिचरित सुहाए। विपुल विसद निगमागम गाए॥
हरि अवतार हेतु जेहि होई। इदमित्थ कहि जाइ न सोई॥१॥

अर्थ हे पार्वती सुनो! वेद और शास्त्रो ने भगवान् के सुन्दर, विस्तृत और निर्मल चरित का गान किया है। हरि का अवतार जिस कारण होता है वह कारण यह है और ऐसा ही है। इस रूप से नही कहा जा सकता।

व्याख्या रघुपति कथा कहहु करि दाया। इस आठवें विनय का उत्तर देते हैं। सुहावा न कहकर बहुवचन सुहाए का प्रयोग करते हैं। अर्थात् एक कल्प की कथा कहेगे। यह दिखलाने के लिए कि लीलाएँ सामान्यत एक रूप की होती हुई भी विस्तार मे प्रत्येक की विशेषता है।

प्रथम सो कारन कहहु विचारी। निर्गुन ब्रह्म सगुन वपुधारी। अथवा सर्व रूप सब रहित उदासी। नाथ धरेहु नर तनु केहि हेतू। मोहि समुझाइ कहहु वृषकेतू। ये दोनो प्रश्न एक ही है और एक ही मानकर उमा ने पूछा है। यथा प्रथम जो मैं पूछा सोइ कहहू। उसी प्रथम प्रश्न का उत्तर आरम्भ होता है। इदमित्थम् का अभिप्राय यह है कि निश्चय करके एक कारण का नाम नही लिया जा सकता।

राम अतर्क्य बुद्धि मन बानी। मत हमार अस सुनहि सयानी॥
तदपि सत मुनि वेद पुराना। जस कछु कहहि स्वमति अनुमाना॥२॥

अर्थ हे भवानी! सुनो मेरा मत तो यह है कि रामजी मे बुद्धि मन और

ankurnagpal108@gmail.com



वाणी से तर्क चल नही सकता। फिर भी सन्त, मुनि, वेद और पुराण जैसा कुछ अपनी बुद्धि की गति के अनुसार कहते हैं।

व्याख्या राम मे तर्क की गति नही है। यदि तर्क की गति होती तो उनके अवतार के विषय मे इदमित्थम् कुछ कहा जा सकता था। बुद्धि, मन और वाणी द्वारा ही तर्क की प्रक्रिया होती है। सो बुद्धि, मन और वाणी की गति समीप परिच्छिन्न पदार्थों म होती है। अनादि अनन्त पदार्थ बुद्धि मे आही नही सकता। किं पुन राम सर्वाश्चर्यमय देव म। यथा सर्वाश्चर्यमय देवमनन्त विश्वतोमुखम्। वहाँ न चक्षु की पहुँच है न वाणी की पहुँच है न मन की पहुँच है। हमलोग नही जानते कि उसे कैसे बतलावें। वह जाने हुए और न जाने हुए से पृथक् है। यथा न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्या-दन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि। श्रुति। इसलिए शिवजी कहते है कि रामजी बुद्धि मन वाणी से अतर्क्य है। अत उनके अवतार के विषय मे भी तर्क नही चल सकता। यहाँ पर मुनि, वेद, पुराण तथा सन्तो का कथन भी उनकी बुद्धि की गति के अनुसार ही माना जायगा। इदमित्थ कहने की उन्हे भी योग्यता नही है। उमा ने अपने को जदपि सहज जड नारि अयानी कहा था। अत शिवजी उनका प्रोत्साहन करते हुए सयानी कहकर सम्बोधन करते है।

तस मै सुमुखि सुनावौ तोही। समुझि परै जस कारन मोही ॥
जब जब होइ धरम कै हानी। बाढहि अधम असुर अभिमानी ॥३॥

अर्थ हे सुमुखि! जैसा कारण मेरी समझ मे आता है वैसा मैं तुम्हे सुनाता हूँ। जब जब धर्म की हानि होती है और अधम अभिमानी असुर बढते हैं।

व्याख्या इदमित्थ तो नही कहा जा सकता। परन्तु वेद, पुराण, मुनि और सन्तो की इस विषय म जो सम्मति है वही मेरी भी सम्मति है। बहुत काल से धर्मानुष्ठान चलता रहता है। फिर काल पाकर धर्मानुष्ठान करनेवालो के अन्त करण म वासनाओ का विकास होने से अधर्म की उत्पत्ति होती है। ऐसे अधर्म से जब धर्म दबने लगता है और अधर्म की वृद्धि होने लगती है तब अधम अभिमानी असुर बढते है। अधम अभिमानी कहने का भाव यह कि प्रभु के आश्रितो को पीडा देनेवालो यथा मम भुजबल आश्रित तेही जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी का अभ्युदय होता है। सुमुखि सम्बोधन से उमा पर अपनी प्रीति दिखलाई।

करहि अनीति जाइ नहि बरनी। सीदहि बिप्र धेनु सुर धरनी ॥
तब तब प्रभु धरि बिबिध सरीरा। हरहि कृपानिधि सज्जन पीरा ॥४॥

अर्थ ऐसी अनीति करते हैं जिसका वर्णन नही किया जा सकता। ब्राह्मण, गाय, और पृथ्वी पीडित होती हैं, तब तब प्रभु विविध शरीर धारण करके कृपानिधि सज्जन की पीडा हरण करते है।

व्याख्या यज्ञ यागादि ही मुख्य धर्म है। यथा यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



धर्माणि प्रथमान्यासन्। उनके मुख्य साधन हैं ब्राह्मण और गाय। ब्राह्मण में मन्त्र प्रतिष्ठित है और गाय में हवि प्रतिष्ठित है। सो अधम अभिमानी असुर इन्ही को पीड़ा पहुँचाते हैं। और ऐसे अधर्मों का भार पृथ्वी सह नहीं सकती। अत. वह भी पीड़ित होती है। तब सब जगत् की स्थिति सुरक्षित रखने की इच्छावाले आदि कर्त्ता श्रीरामजी : सभु बिरञ्चि विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अस ते नाना। भूलोक के ब्रह्म की अर्थात् ब्राह्मणत्व की रक्षा के लिए: क्योंकि ब्राह्मणत्व की रक्षा से ही वैदिक धर्म सुरक्षित होगा। कारण यह है कि वर्णाश्रम के भेद उसी के अधीन हैं। ज्ञान, ऐश्वर्य, शक्ति, बल, वीर्य और तेज आदि गुणो से सदा सम्पन्न भगवान् त्रिगुणात्मिका मूल प्रकृति वैष्णवी माया को वश मे करके अपनी लीला से उत्पन्न हुए से और लोगो पर अनुग्रह करते हुए से दिखाई पडते हैं। यथा : मीन कमठ सूकर नरहरी। वामन परसुराम बपुधरी। जब जब नाथ सुरन्ह दुख पायो। नाना तनु धरि तुम्हहि नसायो।

दो. असुर मारि थापहि सुरन्ह, राखहिं निज श्रुति सेतु।
जग बिस्तारहि बिसद जस, राम जनम कर हेतु ॥१२१॥

अर्थ असुरो को मारकर देवताओ को स्थापन करते है। अपने वेदरूपी पुल की रक्षा करते है। निर्मल यश का जगत् मे विस्तार करते है। यही रामजन्म के कारण है।

व्याख्या रामजी ही नाना अवतारो के निधान अव्यय बीज है। ये ही अवतीर्ण होकर असुरो को मारकर सुरो की थापना करते है। भाव यह कि असुर लोग देवताओ को बलपूर्वक उनके पद से हटा देते है। यथा करजोरे सुर दिसिप बिनीता। भ्रुकुटि बिलोकत सकल सभीता। भगवान् ही उन्हे अपने स्थान पर पुन स्थापन मे समर्थ है अपने श्रुतिसेतु की रक्षा करते हैं। और इस भाँति निर्मल यश का विस्तार करते है। जिसे गा गाकर लोग भवसागर को पार करते है। यही रामजन्म का कारण है। गीता मे भी भगवान् ने कहा है यदा यदाहि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्। परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसस्थापनार्थाय सभवामि युगे युगे।

सोइ जस गाइ भगत भव तरही। कृपासिधु जन हित तनु धरही ॥
राम जनम के हेतु अनेका। परम बिचित्र एक ते एका ॥१॥

अर्थ . उसी यश का गान करके भक्त ससार को तर जाते है। कृपासिन्धु भक्तो के लिए शरीर धारण करते हैं। रामजन्म के अनेक कारण है और वे एक से एक विचित्र है।

व्याख्या उस यश का गान भवसन्तरण का उपाय है। निष्कर्ष यह निकला कि भक्तो के लिए शरीर धारण करते हैं क्योंकि कृपासिन्धु हैं। करुणा की तरङ्गें उठा करती हैं। यथा सहे सुरन्ह बहुकाल बिषादा। नरहरि किये प्रगट प्रहलादा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सभी अवतारो का साधारण कारण कहकर अब रामावतार के कारण कहते हैं। रामावतार के कारण एक से नही होते। प्रति अवतार के लिए भिन्न कारण होते हैं। इसीलिए उन्हे एक से एक परम विचित्र कहा।

जनम एक दुइ कहौं बखानौ। सावधान सुनु सुमति भवानी ॥
द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु विजय जान सब कोऊ ॥२॥

अर्थ हे सुमति। भवानि। सावधान होकर सुनो, मै एक दो जन्म का वर्णन करता हूँ। हरि के प्रिय दो[1] द्वारपाल हैं। जिनका नाम जय और विजय परम प्रसिद्ध है।

व्याख्या : भगवती ने अपने को 'जदपि सहज जड नारि अयानी' कहकर अत्यन्त कार्पण्य दिखलाया है। अत सुमति भवानी कहकर उनके दैन्य का मार्जन शिवजी करते हैं। तीन जन्म न कहकर एक दुइ कहने का यह भाव है कि एक बार तो अपने सेवको के हित के लिए शरीर धारण किया और दो बार शाप के कारण जन्म ग्रहण किया था। सर्व रूप सब रहित उदासी। नाथ धरेउ नरतन केहि हेतू। सो समुझाइ कहौ वृषकेतू का उत्तर सावधान सुनु सुमति भवानी कहकर दे रहे हैं। सावधान का भाव चञ्चल मन ही सब दु खो का आदि कारण है। अत श्रवण करने मे मन स्थिर रखना चाहिए। अनादर से सुना हुआ नही सुनने के बराबर है। द्वारपाल बहुत हैं। पर हरि के प्रिय होने से जय और विजय को सभी जानते है।

विप्र साप ते दूनौ भाई। तामस असुर देह तिन्ह पाई ॥
कनक कसिपु अरु हाटकलोचन। जगत विदित सुरपति मद मोचन ॥३॥

अर्थ ब्राह्मण के शाप से उन दोनो भाइयो ने तमाम असुर का देह पाया। वे ही हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष हुए। वे इन्द्र के मद को दूर करनेवाल सारे विश्व मे प्रसिद्ध हुए।

व्याख्या सनक, सनन्दन, सनातन और सनत्कुमार की उपमा मूर्तिमान् चारो वेदो से दी गई है। यथा रूप धरे जनु चारिउ वेदा। इसलिए उन्हे विप्र कहा गया। उनका शाप विप्रशाप है, उसे कोई अन्यथा नही कर सकता। यथा किये अन्यथा होइ नहि विप्रशाप अतिघोर। सनकादिक को जय और विजय ने वैकुण्ठ मे प्रवेश करने से रोका था। इसी पर रुष्ट होकर उन लोगो ने शाप दिया था। वैकुण्ठ के द्वारपाल होने से उनका सात्त्विक शरीर था। सनकादिक के शाप से उनका वैकुण्ठ से पतन हुआ। उन्हे तामस शरीर असुर का मिला।

वे ही हिरण्यकश्यप और हिरण्याक्ष नामी आदि दैत्य दिति के गर्भ से उत्पन्न हुए। देवराज इन्द्र वीर रस के अधिष्ठाता हैं। उन्हे युद्ध का अभिमान है। यथा : जे सुर समर धीर बलवाना। जिनके लरिबे कर अभिमाना। तो इन दोनो ने उनका युद्धाभिमान छुडा दिया। यह कथा लोक मे प्रसिद्ध है

---

१ वैकुण्ठ के पश्चिम द्वार पर इन्हीं का पहरा रहता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

विजई समर वीर विख्याता। धरि वराह वपु एक निपाता ॥
होइ नरहरि दूसर पुनि मारा। जन प्रहलाद सुजस विस्तारा ॥४॥

अर्थ वे विजय करनेवाले युद्ध मे विख्यात वीर थे। वाराहावतार धारण करके भगवान् ने एक को मारा। नृसिंहावतार धारण करके दूसरे को मारा और भक्त प्रह्लाद का सुयश फैलाया।

व्याख्या ' ये दोनो दैत्य समर मे विख्यात वीर थे। इनकी हार कभी हुई ही नही, जीतते ही गये। सो भगवान् ने वाराहावतार धारण करके हिरण्याक्ष को मारा। हिरण्यकश्यप के पुत्र प्रह्लाद भगवान् के भक्त थे। अत हिरण्यकश्यप ने क्रुद्ध होकर प्रह्लाद को बडी बडी यन्त्रणाएँ दी। पर प्रह्लाद ने हरिभजन नही छोडा। कवितावली मे कहा है

तानि कृपान कृपा न कहूँ, पितुकाल कराल विलोकि न भागे।
राम कहाँ? सब ठाँउ हैं खम्भ में? हाँ सुनि हाँक नृकेहरि जागे॥
वैरि विदारि भये विकराल कहे प्रहलादहि के अनुरागे।
प्रीति प्रतीति बढी तुलसी तबते सब पाहन पूजन लागे॥

नरहरि कहने से हिरण्यकश्यप का ब्रह्मसृष्ट प्राणी से अवध्य होना सूचित किया। उसने भक्त प्रह्लाद को रामनाम ग्रहण से रोकना चाहा। प्रह्लाद के लिए खम्भ मे से नृसिंह भगवान् का प्रकट होना ससार जानता है। प्रह्लाद पुण्यश्लोक हो गये। प्रात स्मरणीय हो गये। सभी प्रात काल उठकर 'प्रह्लाद नारद पराशर पुण्डरीक' इत्यादि पाठ करते हैं।

दो भए निसाचर जाइ तेइ, महावीर बलवान।
कुंभकरन रावन सुभट, सुर विजई जग जान ॥१२२॥

अर्थ वे ही दोनो जाकर बलवान् और महावीर राक्षस हुए, उनका नाम कुम्भकर्ण और रावण हुआ। ससार जानता है कि ये सुरविजयी सुभट थे।

व्याख्या असुर से निशाचर हुए। निशाचर की सङ्करी सृष्टि होती है। ये दोनो दैत्यकन्या[1] मे विश्रवा मुनि से उत्पन्न हुए थे। पहिले जन्म मे भी जगविदित हुए थे और इस जन्म मे भी परम प्रसिद्ध हुए। इसी कल्प की कथा म सेतु बन्ध के बाद मन्दोदरी का समझाना कहा। यथा महावीर दिति सुत सहारे।

मुकुत न भए हते भगवाना। तीनि जनम द्विज वचन प्रवाना ॥
एक बार तिन्ह के हित लागी। धरेउ सरीर भगत अनुरागी ॥१॥

अर्थ भगवान् ने मारा पर मुक्त न हुए। ब्राह्मण के वचन का प्रमाण तीन जन्म के लिए था। एक बार उनके लिए भक्तानुरागी ने शरीर धारण किया।

व्याख्या भगवान् के हाथो वध होने से मुक्ति होती है। पर जय और विजय

---

१ देखिये अध्यात्म उत्तर काण्ड प्रथम सर्ग। वाल्मी० काण्ड ७ सर्ग ९।

ankurnagpal108@gmail.com



की मुक्ति न हुई। क्योंकि उनकी मुक्ति मे सनकादिक का शाप बाधक था। सनकादिक ने शाप दिया था कि तीन बार युद्ध करके मरेंगे। तब वैकुण्ठ मे गति होगी। पहिली बार हिरण्याक्ष और हिरण्यकश्यप होकर क्रम से वाराह और नृसिह के हाथ मारे गये। दूसरी बार वे ही कुम्भकर्ण और रावण हुए। तब रामजी के हाथ मारे गये। फिर वे ही वक्रदष्ट्र और शिशुपाल हुए। तब क्रम से बलराम और कृष्ण भगवान् के हाथ से मारे गये तब मुक्ति हुई। सो एक बार उनके लिए भगवान् ने भक्तानुरागी शरीर धारण किया। अर्थात् रामावतार हुआ। रामावतार भक्तानुरागी अवतार है। यथा ध्वज कुलिस अकुस कजजुत बन फिरत कटक किन लहे। भगवान् के चरण के चार चिह्नो का वर्णन बार बार रामचरितमानस म आता है। सो इन चार चिह्नो ध्वज कुलिश अकुश और कञ्ज से युक्त जो चरण है उनके वन मे फिरते हुए कण्टकविद्ध होने का योग किसे हुआ ? अर्थात् सिवा रामावतार के और किसी अवतार म ऐसा योग नही हुआ। क्योकि रामावतार भक्तानुरागी अवतार है। ये भक्त पर इतना अनुराग करते हैं कि उनके लिए वन वन म फिरे। चरणो मे काँटे लगे। यह देखकर ज्योतिषी चकित हुए। यथा राजलखन सब अग तुम्हारे। देखि सोच अति हृदय हमारे। मारग चलहु पयादेहि पाएँ। ज्योतिषु झूठ हमारेहि भाएँ।

कस्यप अदिति तहाँ पितु माता। दसरथ कौसल्या बिख्याता॥
एक कलप एहि बिधि अवतारा। चरित पवित्र किए ससारा॥२॥

अर्थ वहाँ कश्यप और अदिति पिता माता हुए। दशरथ कौसल्या के नाम से प्रसिद्धि हुई। एक कल्प मे इस प्रकार अवतार हुआ। और चरित्र से ससार को पवित्र किया।

व्याख्या जय और विजय जिस कल्प म कुम्भकर्ण और रावण हुए थे उस कल्प मे कश्यप और अदिति दशरथ कौसल्या हुए। भाव यह कि तीन काल म जब रामावतार होगा तब दशरथ और कौसल्या नामधारी ही पिता माता होगे। अत श्रीरामजी के पिता माता का नाम दशरथ कौसल्या विख्यात है।

श्रीरामावतार प्रत्येक कल्प मे एक ही बार होता है। यथा कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरही। सो एक ही कल्प म इस विधि से अवतार हुआ और चरित्र से ससार को पवित्र किया। यथा जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।

एक कलप सुर देखि दुखारे। समर जलधर सन सब हारे॥
सभु कीन्ह सग्राम अपारा। दनुज महाबल मरइ न मारा॥३॥
परम सती असुराधिप नारी। तेहि बल ताहि न जितहि पुरारी॥४॥

अर्थ एक कल्प म जलन्धर से सब देवता युद्ध म हार गये। उन्हे दु खी देखकर शिवजी ने अपार युद्ध किया। पर वह महाबली दैत्य मारे नही मरता था।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उस असुरराज की स्त्री वडो पतिव्रता थी। उस वल से शिवजी उसे जीत नही सकते थे।

व्याख्या दूसरे कल्प की कथा कहते है। प्रत्येक जन्म के कारण भिन्न हैं। अत कथा अमित है। जलन्धर से सब देवता लडे और हार गये। जलन्धर असुरो का राजा था। विना उसके मारे देवताओ का दु ख दूर नही हो सकता था। उन्हें दु खी देखकर शिवजी स्वय युद्ध के लिए खडे हुए। जलन्धर उन्हे जीत तो न सका पर मारा भी नही गया। न मारे जाने का कारण कहते है कि परम सती के पति को शङ्कर भी नही मार सकते। और उसकी स्त्री वृन्दा परम सती थी। इसलिए वह मरता नही था। सग्राम जारी रहा। अतएव उस सग्राम को अपार कहा। जलन्धर भी पार पाने म असमर्थ था। अब बात वृन्दा के सतीत्व पर आ गई। उसका सतीत्व टले तो जलन्धर मरे।

दो छल करि टारेउ तासु व्रत, प्रभु सुर कारज कीन्ह।
जब तेहि जानेउ मरम तव, स्राप कोप करि दीन्ह ॥१२३॥

अर्थ छल से उसका व्रत टाला और प्रभु ने देवताओ का काम किया। जब उसने यह मर्म जाना तब क्रोध करके शाप दिया।

व्याख्या उस वृन्दा का व्रत टालना विष्णु के लिए भी साध्य नही था। अत जलन्धर के रूप से उसका व्रत भङ्ग किया। जलन्धर भी उसी उद्योग म शङ्कर का रूप धारण करके उमा के पास गया था। तव तक वृन्दा का व्रत भङ्ग हो गया। समाचार पाकर क्रोध से युद्ध के लिए शिवजी के सम्मुख गया और मारा गया। यश के नाश को न डरे। भक्तो का कार्य किया। जब वृन्दा को अपने सतीत्व भङ्ग और जलन्धरवध का पता चला तो उसने क्रोध करके शाप दिया।

तासु स्राप हरि दीन्ह प्रवाना। कौतुक निधि कृपाल भगवाना ॥
तहाँ जलधर रावन भएउ। रन हति राम परम पद दएऊ ॥१॥

अर्थ भगवान् वडे कौतुकी और कृपाल है। उसके शाप को स्वीकार किया। उस कल्प मे जलन्धर रावण हुआ। जिसे युद्ध म मारकर रामजी ने परमपद दिया।

व्याख्या भगवान् को शुभाशुभ कर्म का लेप नही है। यथा कर्म सुभासुभ तुमहि न बाधा। उनके लिए शाप अप्रमाण था। पर स्वय उस प्रामाण्य प्रदान किया। इसके लिए दो कारण कहते हैं १ एक तो भगवान् कौतुकनिधि हैं। शाप मान लेने से कौतुक के लिए अवसर मिलगा और जलन्धर भी मुक्त हो जायगा। २ दूसरे कृपाल हैं। वृन्दा छली गई है। उस पर वडी कृपा है। उसका कोप व्यर्थ जाने से उसे और भी दु ख होगा। अत उसके शाप का प्रमाण दिया।

उस कल्प मे जलन्धर रावण हुआ। प्रति कल्प म रामावतार होता है, पर उसके पहिल रावणावतार भी होता है। यह बात दूसरी है कि रावण दूसरे ही दूसरे होते हैं। उस कल्प म कुम्भकर्ण और विभीषण के होने का पता नही चलता।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जलन्धर की रावणरूप मे मुक्ति हुई। इसलिए परमपद दयऊ कहते है। जलन्धर रावन भयऊ : कहने से ही जलन्धर का वध द्योतित किया। रावन भयऊ कहकर यह दिखलाया कि जलन्धर जन्म मे तो दुःख देता ही था। रावण जन्म मे तो देवताओ को रुलाने लगा। रावण का अर्थ ही रुलानेवाला है।

एक जनम कर कारन एहा। जेहि लगि राम धरी नर देहा ॥
प्रति अवतार कथा प्रभु केरी। सुनु मुनि बरनी कबिन घनेरी ॥२॥

अर्थ : एक जन्म का यह कारण था जिससे रामजी ने नर देह धारण किया। हे मुनि ! प्रभु के प्रत्येक अवतार की बहुत सी कथाएँ मुनियो ने वर्णन की हैं।

व्याख्या : एक जन्म का कारण तो वृन्दा का शाप हुआ। उसके व्रत भङ्ग के समय दो बन्दर जलन्धर की कटी शरीर लेकर आये। जिसे जोडकर महात्मा-वेषधारी विष्णु ने जिला दिया। उसे विश्वास हो गया कि यही मेरा पति है। युद्ध मे मारा गया था। सो महात्मा के प्रसाद से जी उठा है। अतः उसी जिलाये हुए जलन्धर द्वारा उसका व्रत भङ्ग हुआ। पीछे से उसे मालूम हुआ कि यह सब विष्णु की माया थी। अतः उसने उन्हे मनुष्य हो जाने का और बन्दरो द्वारा सहायता प्राप्त करने का शाप दिया। इसी भाँति प्रति अवतार की विचित्र कथाएँ है। उन्हे मुनियो ने वर्णन किया है। यहाँ भरद्वाज को मुनि कहकर सम्बोधन किया। इससे पता चलता है कि इस कल्प की कथा कर्मघाट पर हुई।

नारद स्राप दीन्ह एक बारा। कलप एक तेहि लगि अवतारा ॥
गिरिजा चकित भई सुनि बानी। नारद बिस्नु भगत पुनि ग्यानी ॥३॥

अर्थ : एक बार नारद मुनि ने शाप दिया। एक कल्प उसी के लिए अवतार हुआ। यह बात सुनकर गिरिजा बडी चकित हुई। और बोली कि नारद तो विष्णु-भक्त और ज्ञानी हैं।

व्याख्या : जय विजय वाले कल्प मे उनके उद्धार के लिए विष्णु ने अवतार ग्रहण किया था। पर दो अवतारो मे शाप के कारण नर देह ग्रहण किया। इसीलिए सीधे-सीधे तीन कल्प न कहकर जनम एक दुई कहौ बखानी कहा। नारदजी का शाप देना सुनकर भवानी एकदम चकित हो गईं। शाप तो क्रोधी देते है। सो भगवान् को शाप भक्त कैसे देगा ? नारद[1] का अर्थ ही अज्ञान हरण करनेवाला है। उन्हे क्रोध कैसे हुआ ? वे भक्त है। उन्होंने अपने स्वामी को शाप कैसे दिया ?

कारन कवन स्राप मुनि दीन्हा। का अपराध रमापति कीन्हा ॥
यह प्रसंग मोहि कहहु पुरारी। मुनि मन मोह आचरज भारी ॥४॥

अर्थ : मुनि ने किस कारण से शाप दिया ? रमापति ने उनका क्या अपराध

१. नार अज्ञानम् द्यति खण्डयतीति नारदः।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

किया ? हे पुरारि ! यह प्रसग मुझसे कहो। मुनि के मन म मोह हुआ यह भारी आश्चर्य की बात है।

*व्याख्या* मुनि के शाप का कोई कारण हो नही सकता। रमापति का अपराध पूछती हैं। नारद मे अपराध की कल्पना भी नही करती। इतनी श्रद्धा गुरु पर है। दो कल्पो की कथा सुनी, प्रसङ्ग नही पूछा। नारद को मोह सुनकर चकित हैं। मोह बिना क्रोध कैसे हुआ ? बिना क्रोध शाप कैसे दिया ? सक्षेप मे कथा समाप्त करते देखकर पूरा प्रसङ्ग सुनने के लिए प्रार्थना करती हैं।

दो बोले बिहँसि महेस तब, ग्यानी मूढ न कोइ।
जेहि जस रघुपति करहिं जब, सो तस तेहि छन होइ ॥१२४॥
सो कहौ रामगुन गाथ, भरद्वाज सादर सुनहु।
भव भजन रघुनाथ, भजु तुलसी तजि मान मद ॥१२४॥ क

अर्थ शिवजी ने तब बिहँसकर कहा न कोई ज्ञानी है, न मूढ है। जब रघुपति जिसको जैसा कर देते हैं वह उस समय वैसा ही हो जाता है।

हे भरद्वाज ! मै रामजी की गुणगाथा कहता हूँ। तुम आदर से सुनो। रघुनाथ भवभञ्जन हैं। तुलसीदासजी अपने को कहते है कि तू मान मद छोडकर उनका भजन कर।

व्याख्या उमा की इतनी आस्था ज्ञान और ज्ञानी पर देखकर शिवजी हँसे और कहा कि ज्ञान और मोह दोनो के प्रेरक रघुपति है। इसम जीव का कोई चारा नही। यथा *नट मर्कट इव सबहि नचावत। राम खगेस बेद अस गावत।* मर्कट की ज्ञान चेष्टा या अज्ञान चेष्टा, उसकी की हुई नही है। वह सब नट की करामात है। यथा पसु नाचत सुक पाठ प्रबीना। गुन गति नट पाठक आधीना।

याज्ञवल्क्यजी भरद्वाज को सावधान करते है कि सादर सुनहु। गोसाईं जी अपने मन का सावधान करते हैं कि तू मान मद छोडकर भजन कर। भजन करने मे भी तुम्हारा पुरुषार्थ नही है। उसकी कृपा से ही तुम भजन करते हो। अत भजन का श्रेय तुम्हे कुछ नही। इसलिए मान मद छोडने को कहते है। भरद्वाज जी प्रेम म डूबाडूब है। यथा प्रेम बिबस मुख आव न बानी। अत याज्ञवल्क्यजी बारम्बार उन्हे सावधान करते हैं कि कथा सुनने से ही भक्ति उपजती है। अत कथा के प्रति अनवधानता न होने पावे।

## २ नारद मोह प्रसङ्ग

हिमगिरि गुहा एक अति पावनि। बह समीप सुरसरी सुहावनि ॥
आश्रमु परम पुनीत सुहावा। *देखि देवरिषि मन अति भावा* ॥१॥

अर्थ हिमालय म एक बडी पवित्र गुफा थी। उसके पास ही सुन्दर गङ्गाजी बहती थी। उस परम पवित्र और सुन्दर आश्रम को देखकर नारदजी के मन को अत्यन्त अच्छा लगा।

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या हिमालय मे बहुत सी पवित्र गुफाएँ हैं। उनमे से एक अत्यन्त पवित्र थी। पर्वत मे गुफा, सामने सुन्दर गङ्गा का प्रवाह, उस पार वन। यह दृश्य इतना मनोहर था कि ब्रह्मलोक निवासी नारदजी को बहुत प्रिय लगा। यह आश्रम परम पवित्र और रमणीय है। समाधि योग्य स्थान है।

निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा। भयउ रमापति पद अनुरागा॥
सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी। सहज बिमल मन लागि समाधी॥२॥

अर्थ पर्वत नदी और वन के विभाग को देखकर रमापति के चरणो म अनुराग हुआ। हरि को स्मरण करते ही शाप की गति रुक गई और स्वभाव से ही निर्मल मन था। समाधि लग गई।

व्याख्या प्रकृति की शोभा देखकर उसके रचयिता के चरणो मे अनुराग हुआ। शैल का विभाग जहाँ से समाप्त होता है वहाँ से सरिता का विभाग आरम्भ हो जाता है। उसे समाप्त होते न होते वनविभाग आरम्भ हो जाता है और फिर भी सब म सामञ्जस्य रहता है। प्रकृति की शान्त शोभा देखकर मन भी शान्त हो जाता है। वन की श्री देखकर श्रीपति के चरणो मे अनुराग होता है। नारदजी वहीं ठहर कर हरि का स्मरण करने लगे अर्थात् भगवन्नाम जप और उसके अर्थ की भावना आरम्भ हुई। इसके प्रत्यक् चेतन का अधिगम हुआ और अन्तराय का अभाव हुआ। तत प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽन्तरायाभावश्च। यो सू। शाप की गति रुक गई। नारदजी को दक्ष का शाप था कि वे कही स्थिर न रहे सो स्थिर हो गये। मन स्वभाव से ही निर्मल था। भगवच्चरणो म अनुराग उठा ही था। समाधि लग गई। यथा ईश्वर-प्रणिधानाद्वा। यो सू।

मुनि गति देखि सुरेस डराना। कामहि बोलि कीन्ह सनमाना॥
सहित सहाय जाहु मम हेतू। चलेउ हरषि हिय जलचरकेतू॥३॥

अर्थ मुनि की गति देखकर इन्द्र डरे। कामदेव को बुलाकर सम्मान किया और कहा कि मेरे लिए तुम सेना के सहित जाओ। कामदेव हृदय मे हर्षित होकर चले।

व्याख्या भारी तपस्वियो से इन्द्र को भय रहता है। इतनी बडी समाधि लगी कि इन्द्र भयभीत हो उठे। विघ्नाचरण के लिए काम को बुलाया। कार्य लेना है इसलिए सम्मान किया। जहाँ प्राण लेना था वहाँ बडी स्तुति की। यथा प्रस्तुति सुरन्ह कीन्ह अति हेतू। यहाँ उतना बडा काम नहीं है इसलिए केवल बुलाकर सम्मानित किया। देवराज हैं। कामदेव को आज्ञा देते हैं कि मेरी प्रीति के लिए जाओ और अपनी सेना मारगण को साथ ले लो। अकेले काम न चलेगा। कामदेव भी बडे वीर हैं। पराक्रम करने का अवसर मिलने से प्रसन्न हैं। सेना सहित चले। अत पताका का वर्णन करते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुनासीर मन महुँ असि त्रासा। चहत देवरिषि मम पुर वासा॥
जे कामी लोलुप जग माही। कुटिल काक इव सबहि डेराही॥४॥

अर्थ इन्द्र के मन मे यह डर था कि देव ऋषि मेरे पुर मे अपना वास चाहते हैं। जो लोग ससार मे कामी और लोलुप है वे कुटिल कौवे की भाँति सबसे डरा करते हैं।

व्याख्या प्रकट नही करते पर भीतर से बडा डर है कि देवऋषि मेरा आसन छीनना चाहते है। अमरावती मे उनका बसना ही मेरे प्रभुत्व के लोप का कारण होगा। देवताओ वे ऋषि हैं अत उनका वैसा ही सन्मान करना पडेगा। उनकी आज्ञा के वशवर्ती होना पडेगा। जब दूसरे के आज्ञावशवर्ती हुए तब इन्द्र किस बात के रह जायँगे ? सुनासीर है। देवताओ के स्वामी हैं। फिर भी उन्हे तपस्वी से भय रहता है। यथा तुम सम अधन भिखारि अगेहा। होत बिरचि सिवहि सदेहा।

इन्द्रपद वैषयिक सुख की पराकाष्ठा है। इसलिए कामी लोलुप और कुटिल कहा। काक की उपमा देते है। यथा काक समान पाक रिपु रीती। छली मलीन न कतहुँ प्रतीती। छली यथा सहित सहाय जाहु मम हेतु। मलीन। यथा चहत देव ऋषि मम पुर वासा। न कतहुँ प्रतीती। यथा मुनि गति देखि सुरेस डेराना।

दो० सूख हाड ले भाग सठ, स्वान निरखि मृगराज।
छीनि लेइ जनि जानि जड, तिमि सुरपतिहि न लाज॥१२५॥

अर्थ जैसे सिंह को देखकर शठ कुत्ता सूखा हड्डी लेकर भागे और यह समझ कि कही उस सूखे हाड को सिंह छीन न ले। वैसे ही इन्द्र को लज्जा नही है।

व्याख्या नारदजी को मृगराज कहा। वे काम क्रोह कलिमल करिगन के कुम्भ को विदारण करके ब्रह्मानन्दरसास्वाद करनेवाले है। इन्द्रासन का सुख कितना भी हो तो ब्रह्मानन्द के सामने सूखी हड्डी है। रज और तम के सघर्षण पूर्वक अभिभूत होने से जब क्षणिक सत्त्व का उदय होता है तब उसी म ब्रह्मानन्द की झलक प्रतिफलित होती है। यही विषयानन्द है। उसकी ओर भला नारदजी आँख उठाकर क्या देखने लगे। इन्द्र को श्वान से उपमित किया। उन्हे ब्रह्मानन्द दुर्लभ है। उनका सिंहासन सूखा हाड है। उसम कुछ नही है। उसके द्वारा इन्द्र अपने ही पुण्य का फल भोगते हैं और अज्ञान से समझते है कि इन्द्रासन म सुख है। उसे कही नारद छीन न ले। यथा अस्थि पुरान छुधित स्वान अति ज्यो भरि मुख पकरै। निज तालूगत रुधिर पान करि मन सन्तोष धरै।

तेहि आश्रमहि मदन जब गयऊ। निज माया बसत निरमयऊ॥
कुसुमित विविध विटप बहु रगा। कूजहि[1] कोकिल गुजहि भृ गा॥१॥

अर्थ जब उस आश्रम म कामदेव गये तब उन्होने अपनी माया से वसन्त

१ दीपकावृत्ति द्वितीय।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



का निर्माण किया। अनेक प्रकार के पेडो मे रग बिरग के फूल खिल गये। उनपर कोयल कूजने और भौंरे गूँजने लगे।

व्याख्या चलउ हरखि हिय जलचरकेतू से कामदेव का प्रसङ्ग उठाया था। बीच म इन्द्र की लोलुपता कहने लगे। अब कामदेव के उस आश्रम मे पहुँचने पर फिर वही कथा प्रारम्भ कर दी। वसन्त कामदेव के मित्र हैं। उद्दीपन मे बडे सिद्धहस्त हैं। काम उन्हे समय पडने पर माया से अपने पास बुला लते हैं। भाव यह कि उस समय वसन्त ऋतु नही था। माया से हो गया।

वसन्त ऋतु के आजाने से प्रकृति म कामशक्ति वढ जाती है। पेडो म नये पत्ते आ जाते हैं। अच्छे अच्छ फूल खिलने लगते हैं। कोयल कूकने लगते हैं। फूलो की सरसता के कारण भौंरे गूँजने लगते हैं। ये सब उद्दीपन हैं।

चली सुहावनि त्रिविध बयारी। काम कृसानु बढावनि हारी ॥
रभादिक सुर नारि नवीना। सकल असमसर कला प्रवीना ॥२॥

अर्थ काम की आग बढानेवाली त्रिविध शीतल मन्द और सुगन्ध हवा चलने लगी। रम्भा आदिक नवयुवती स्वर्ग की अप्सराएँ जो काम की सब कलाओ मे चतुर थी।

व्याख्या सीतल सुगध सुमद मारुत मदन अनल सखा सही। त्रिविध समीर को कामाग्नि का सच्चा मित्र कहा है। क्योकि वह कामाग्नि को बढाता है। अब आलम्बन कहते है कि अप्सराएँ प्रकट हुईं। सामान्य अप्सराएँ नही। ख्यातनामा रम्भादिक जो कामकला म बडी प्रवीण ह और जिन्ह जरा आती ही नही। नित्य नवयौवना बनी रहती हैं।

करहिं गान बहु तान तरगा। बहु बिधि क्रीडहि पानि पतगा ॥
देखि सहाय मदन हरषाना। कीन्हेसि पुनि प्रपच बिधि नाना ॥३॥

अर्थ अनेक प्रकार की ताना के तरङ्ग उठाती हुई गान कर रही है। जलपक्षी अनेक प्रकार की क्रीडाएँ कर रहे है। सेना को देखकर कामदेव हर्षित हुए। फिर उन्हाने अनेक प्रकार का प्रपञ्च किया।

व्याख्या अब ध्यानभङ्ग के लिए उन लोगो ने सगीत आरम्भ किया। अनेक प्रकार की तानें लने लगी। यथा कलगान सुनि मुनि ध्यान त्यागहिं काम कोकिल लाजही। जलपक्षियो का कलोल भी उद्दीपन है। कुछ लोगा ने पानि पतगा का अर्थ पतङ्ग उडाना हाथ नचाना अथवा गद खेलना भी किया है। फिर काम ने अनेक प्रपञ्च किया। जिन्हे कवि लिखना नही चाहते। वायु के झोके से अप्सराओ के अञ्चल आदि का हट जाना इत्यादि प्रकार क प्रपञ्च काम ने किय।

काम कला कछु मुनिहि न ब्यापी। निज भय डरेउ मनोभव पापी ॥
सीम कि चाँपि सकै कोउ तासू। बड रखवार रमापति जासू ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ कामदेव की किसी कला ने मुनि पर काम न किया तब पापी कामदेव अपने ही डर से डरा। क्या कोई उसकी सीमा दबा सकता है जिसके बड़े भारी रक्षक रमापति हैं।

व्याख्या जब काम की कल्पना का कोई प्रभाव मुनि पर नहीं पड़ा तब शाप के डर से भीत हुआ। बड़े हर्षित होकर चले थे कि देवऋषि को आज जीतना है सो कुछ भी किया न हुआ। जिसपर प्रभाव न चले उसी से काम को भय रहता है। जिस पर प्रभाव चल गया वह तो उसका चेरा हो हो जाता है। उससे डर क्या ?

रमापति के पद मे अनुराग था। इसलिए रमापति रक्षा कर रहे थे। ऐसे समय किसका सामर्थ्य है कि उनकी मर्यादा को ठेस पहुँचा सके। अत ब्रह्मास्त्र, रौद्रास्त्र, वैष्णवास्त्र से भी विशेष कराल कामास्त्र निष्फल हुआ।

दो सहित सहाय सभीत अति, मानि हारि मन मयन।
गहेसि जाइ मुनि चरन तब, कहि सुठि आरत वयन ॥१२६॥

अर्थ फिर अपने सहाय समेत कामदेव ने बहुत डरकर और मन से हार मानकर अत्यन्त आर्त वचन कहते हुए जाकर मुनिजी का चरण पकड़ लिया।

व्याख्या काम भी डरे, अप्सराएँ भी डरी, वसन्त भी डरे। नारदजी का बड़ा अपराध जहाँ तक हो सका किया। अब अधिक नहीं कर सकते। तब डरे कि अभी तक तो हमारी ओर से चोट होती थी मुनिजी सह रहे थे। अब उनकी पारी है। उनकी चोट हम नही सह सकेंगे। तब त्राहि त्राहि करता हुआ सेना के सहित मुनिजी के चरणो म गिरा। हारि मानि से मनसा भय। गहेसि जाइ मुनिवर चरन से कर्मणा और कहि आरत सुठि वयन से वाचा भय द्योतित किया।

भयउ न नारद मन कछु रोषा। कहि प्रिय वचन काम परितोषा ॥
नाइ चरन सिरु आयसु पाई। गयउ मदन तब सहित सहाई ॥१॥

अर्थ नारदजी के मन मे कुछ भी क्रोध न हुआ। उन्होने प्रिय वचन कहकर काम को सन्तुष्ट किया। चरण मे सिर झुकाकर और आज्ञा पाकर कामदेव सेना लेकर चले गये।

व्याख्या जानते हुए भी कि विघ्नाचरण मे काम ने कुछ उठा न रक्खा नारदजी को क्रोध नही हुआ। उमा सत कइ इहै बडाई। मंद करत जो करै भलाई। प्रिय वचन कहकर उसका सन्तोष किया कि ब्रह्माजी ने इसीलिए तुम्हारी सृष्टि की है। सनातन सृष्टि तुम्हारे आधार से चल रही है। तुमने अपना कर्त्तव्य पालन किया। मैं अप्रसन्न नही हूँ। इत्यादि। उसे अपने अपराध की गुरुता विचारकर शीघ्र सन्तोष नही होता था। सन्तुष्ट होने पर प्रणाम किया। और जाने की आज्ञा पाकर सेना के सहित चला गया।

मुनि सुसीलता आपनि करनी। सुरपति सभा जाइ सब वरनी ॥
सुनि सब के मन अचरजु आवा। मुनिहि प्रसंसि हरिहि सिरु नावा ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : मुनि की सुशीलता और अपनी करणी सब जाकर इन्द्र की सभा में वर्णन की। सुनकर सबके मन में आश्चर्य हुआ। मन में मुनि की प्रशंसा करके हरि को प्रणाम किया।

व्याख्या : कामदेव के ऊपर मुनिजी की सज्जनता का बड़ा प्रभाव पड़ा। वह देवसभा में जाकर मुनि की सुशीलता का वर्णन करने लगा कि मेरे इतने अपराध करने पर भी उन्हें क्रोध न आया। मैंने कुछ उठा न रक्खा। नाना प्रकार का प्रपञ्च किया। पर मुनिजी बड़े क्षमाशील हैं। सब क्षमा कर दिया। मुनि की सुशीलता का वर्णन पहिले और अपनी करणी का वर्णन पीछे किया।

सुनकर सबने आश्चर्य किया। को जग काम नचाव न जेही। अर्थात् ऐसा कोई संसार में है नहीं जिसे काम न नचावे। मुनि पर उसका बल क्यों नहीं चला? अपकारी पर क्रोध होना स्वाभाविक है। क्रोध काम से भी बलवान् है। मुनिजी ने उसे भी जीत लिया। अन्त में हरि को सिर नवाया जो इस प्रकार भक्तों की रक्षा करता है।

तब नारद गवने सिव पाही। जिता काम अहमिति मन माही॥
मार चरित संकरहि सुनाए। अतिप्रिय जानि महेस सिखाए॥३॥

अर्थ : तब नारद शिवजी के पास गये। मन में अहंकार हुआ कि मैंने काम को जीत लिया। उन्होंने कामदेव का चरित शिवजी को सुनाया। अत्यन्त प्रिय जानकर शिवजी ने सिखाया।

व्याख्या : शत्रु को मरना स्वीकार होता है। प्रणत होना नहीं। काम सभी का शत्रु है और विशेषतः तपस्वियों का। नारद जी सोचते हैं कि सब कला करके काम मुझसे हार गया। अन्त में मेरे सामने प्रणत हुआ। शिवजी की सदा से कामारि नाम से ख्याति है। उन्होंने काम को भस्म कर दिया। पर प्रणत न कर सके। मेरा प्रभाव शिवजी से अधिक हो गया। यह अहङ्कार तो मन में है। बाहर में प्रिय कामजयका समाचार सुनाने चले।

संसार को हरि प्रिय हैं। हरि को हर प्रिय हैं। और हर को नारद प्रिय हैं। यथा : जगप्रिय हरि हर हरप्रिय आपू। भगवान् के अनन्य भक्त होने से शिवजी को अतिप्रिय हैं। सो शिवजी के पास जाकर कामदेव का सब चरित सुनाया। शिवजी ने नारद में अभिमान देखा। अतिप्रिय में यदि दोष देखे तो उसे सिखावन देना उचित है। यथा : कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। जिसमें वह किसी दुःख में न आ पड़े। अतः शिवजी ने नारदजी को सिखाया।

बार बार बिनवौं मुनि तोही। जिमि यह कथा सुनायहु मोही॥
तिमि जनि हरिहि सुनावहु कबहूँ। चलेहुँ प्रसंग दुराएहु तबहूँ॥४॥

अर्थ : हे मुने! मैं तुमसे बारबार विनती करता हूँ कि जिस भाँति यह कथा मुझे सुनाई है उसी भाँति कहीं हरि को न सुनाना। यदि चरचा भी चले तो इस बात को छिपा ले जाना।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : सत्य कथा सुनाने में कोई रोक नही। परन्तु सुनाने का ढङ्ग ठीक नही है। इससे अभिमान टपकता है। नारदजी हरि के पास जावेंगे ही और यह कथा भी सुनावेंगे। यदि इन्होने वहाँ भी इसी ढङ्ग से कहा तो इनकी कुशल नही। भगवान् गर्वप्रहारी है। अत नारदजी को सिखाते हैं कि इस ढङ्ग से यह कथा हरि को कभी न सुनाना। अच्छा तो यह है कि इस कथा को सुनाना ही नही। क्या जाने वहाँ भी तुमसे कहने मे बिगड जाय। यह भी सम्भव है कि वे स्वय इम प्रसङ्ग को छेडें। फिर भी तुम इम बात को छिपा ही ले जाना।

दो० संभु दीन्ह उपदेस हित, नहि नारदहि सोहान।
भरद्वाज कौतुक सुनहु, हरि इच्छा बलवान ॥१२७॥

अर्थ शिवजी ने तो भले के लिए उपदेश दिया। पर नारद को अच्छा न लगा। हे भरद्वाज! कौतुक सुनो, हरि की इच्छा बलवती है।

व्याख्या जिसके ऊपर आपत्ति आनेवाली होती है उसे हितोपदेश अच्छा नही लगता। शिवजी ने भले के लिए कहा पर नारद ने समझा कि इन्हे मेरी ख्याति अच्छी नही लगती। अकेले आप ही 'कामारि' बने रहना चाहते हैं। याज्ञवल्क्यजी भरद्वाज जी को सावधान करते हैं कि यह कौतुक सुनने योग्य है। शिवजी का वचन भ्रमतम के मिटाने के लिए सूर्य की किरण के सदृश है। सो उसी से नारदजी को भ्रम हो गया। इसी को हरि इच्छा कहते हैं। इसके सामने किसी का बल नही लगता। इसी भाँति सती को समझाया था पर उनके भी समझ मे बात न आयी तब शिवजी ने विचार किया कि यहाँ हरि इच्छा रूपी बलवती भावी काम कर रही है। सामान्य भावी होती तो मैं मेट देता। यथा हरि इच्छा भावी बलवाना। हृदय विचारत संभु सुजाना। सो यहाँ तो शिवजी के हितोपदेश से ही भ्रम हो रहा है। इसलिए योगी याज्ञवल्क्य कहते है कि हरिइच्छा बलवान।

राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करै अन्यथा अस नहि कोई॥
संभु बचन मुनि मन नहि भाए। तब बिरंचि के लोक सिधाए ॥१॥

अर्थ जो राम किया चाहते है वही होता है। उसे ऐसा कोई नही है जो अन्यथा कर सके। शिवजी के वचन मुनि के मन मे अच्छे न लगे। तब ब्रह्मलोक चले गये।

व्याख्या जब से नारदजी के मन मे यह बात आई कि मैने काम को जीता है। यह मेरी विजय है, यह मेरी महिमा है। तब से विजय देनेवाले भक्तवत्सल की कुछ दूसरी इच्छा हो गई। नारदजी अपनी जीत के ख्यापन के फेर मे पड गये। शिवजी ने देखा कि यह किसी आपत्ति मे पडा चाहते है, इसलिए हितोपदेश दिया। उसका नारदजी को उलटा अर्थ लगा। योगी याज्ञवल्क्य कहते है कि हरि इच्छा को शिवजी भी अन्यथा नही कर सकते। जिसे बात अच्छी नही लगती वह उठकर वहाँ से चला जाता है। सो नारदजी ब्रह्मलोक को चले गये। यह भी नही पूछा कि आप क्यो मुझे चरचा करने से रोकते हैं ?

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



एक बार करतल बर बीना । गावत हरिगुन गान प्रबीना ॥
छीर सिंधु गवने मुनिनाथा । जहँ बस श्रीनिवास श्रुति माथा ॥३॥

अर्थ : एक बार संगीत कला में निपुण मुनीश्वर नारदजी हाथ में श्रेष्ठ वीणा लिये हुए हरिगुण गाते-गाते क्षीरसागर गये । जहाँ वेदमस्तक श्रीनिवास बसते हैं ।

व्याख्या : पहिले शिवजी के पास गये । वहाँ से ब्रह्मदेव के पास गये । अब विष्णु के पास जाते हैं । गान में ऐसे प्रवीण हैं कि वीणा पर गान करते हैं । इस समय जगत् में कोई ऐसा गायक नहीं है जो वीणा पर गान कर सके । तानपूरा पर ही गानेवाले कम हैं । नारदजी रास्ते-रास्ते हरिगुनगान करते चलते हैं ।

छन्दास्यनन्तस्य शिरो गृणन्ति । भागवते । उस सहस्रशीर्षा पुरुष का शिर वेद है इसलिए उन्हें श्रुतिमाथ कहा । उनका नित्य निवास क्षीरसागर में रहता है । नारदजी मुनिनाथ हैं । उनकी अव्याहत गति है । अतएव वहाँ गये नहीं तो क्षीरसागर महा अगम्य है ।

हरषि मिलेउ उठि रमानिकेता । बैठे आसन रिषिहि समेता ॥
बोले बिहँसि चराचर राया । बहुते दिनन्ह कीन्हि मुनि दाया ॥४॥

अर्थ : रमानिकेत उठकर उनसे हर्षित होकर मिले और ऋषिजी के साथ आसन पर बैठे । चराचर के स्वामी भी बिहँसे और कहा कि मुनिजी ! बहुत दिनो पर आपने दया की ।

व्याख्या : हर्षित होकर अभ्युत्थान देना और रमापति का आलिङ्गन करना तथा आधा आसन देना बड़ा भारी सत्कार है । कहा है कि उचित से अधिक सत्कार अनादर के तुल्य है । भाव यह है कि अब आप त्रिदेव के समकक्ष हो गये । काम को जीत लिया । अब ऐसा ही सत्कार होना उचित है ।

स्मितपूर्वाभिभाषी हैं सो आज विहँसकर बोल रहे हैं । समझ रहे हैं कि अपनी महिमा सुनाने आगये । माया उनकी हँसी है । यथा : माया हास बाहु दिग-पाला । भाव यह कि माया द्वारा भी अगवानी हो रही है । शिवजी का कहना सामने आया । वही प्रसङ्ग चलाया । पूछते हैं कि आपने बहुत दिनो पर दर्शन दिया ? कितना स्वाभाविक प्रश्न है । परन्तु इसके गर्भ में यह बात है कि नारदजी को अपने समाधि की कथा तथा कामविजय के वर्णन के लिए अवसर मिले ।

काम चरित नारद सब भाखे । जद्यपि प्रथम बरजि सिव राखे ॥
अति प्रचंड रघुपति कै माया । जेहि न मोह अस को जग जाया ॥५॥

अर्थ : यद्यपि शिवजी ने पहिले ही मना कर रक्खा था । फिर भी नारदजी ने सब कह डाला । रघुपति की माया अति प्रचण्ड है । ऐसा कौन जगत् में पैदा हुआ जिसे उसने न मोहित किया हो ।

व्याख्या : शिवजी का सिखावन नारदजी के मन में अच्छा नहीं लगा था । यद्यपि वहाँ उसका स्पष्ट निषेध नहीं किया । पर अभिमान आने पर उनके सिखावन ...

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कर ही डाला। कह चले कि मैं समाधि मे था। सो इन्द्र भयभीत हो गये। उनका भेजा हुआ कामदेव अप्सरादि के साथ आया। बडी बडी माया की। जब एक न चली तो शाप के भय से त्राहि त्राहि करके मेरे शरण आया। मुझपर काम का कोई प्रभाव न हुआ। न क्रोध ही आया। काम आश्चर्य मे आगया। मेरी बडी विनती की। मैंने क्षमा कर दिया।

नारदजी के इस मोह पर उन्हे कोई कम न समझे। ससार मे जो पैदा हुआ वह रामजी की माया से मोहित होता ही है। वह बडी प्रचण्ड है। उसके आगे किसी का वल नही चलता। यथा सुनु खग प्रबल राम कै माया। जो ज्ञानिन्ह कर चित्त अपहरई। वरिआई विमोह मन करई।

दो रूख वदन करि वचन मृदु, बोले श्रीभगवान।
तुम्हरे सुमिरन ते मिटहि, मोह मार मद मान ॥१२८॥

अर्थ श्रीभगवान् रुखा चेहरा करके कोमल वचन बोले कि तुम्हारे स्मरण से ही मोह काम और मान का नाश होता है।

व्याख्या नारदजी को जिन गुणो का अभिमान था उन्ही को लेकर प्रशमा करते हैं। जिसकी कृपा से समाधि लगी, जिसकी रक्षा से कामास्त्र निष्फल हुआ, काम पर विजय पाया, उसकी चरचा तक नारदजी नही करते। अत रूखा चेहरा करके बोले आपका दर्जा बहुत ऊँचा है। काम का विजय आपके लिए बडी बात नही है। आपका स्मरण करके लोग मोह, काम और अभिमान को जीत लिया करते हैं। वीतराग मे चित्त की धारणा करने से समाधि सिद्ध होती है।

सुनु मुनि मोह होइ मन ताके। ग्यान विराग हृदय नहि जाकें॥
ब्रह्मचरज व्रत रत मतिधीरा। तुम्हहि कि करइ मनोभव पीरा ॥१॥

अर्थ हे मुनिजी! सुनिये, जिसके हृदय मे ज्ञान विराग नही होता उनके मन मे मोह होता है। आप तो ब्रह्मचर्य व्रत मे रत स्थितप्रज्ञ हैं। क्या आपको काम पीडा पहुँचा सकता है?

व्याख्या हमलोग तो गृहस्थ हैं। मुझे रमा है, शिवजी को उमा हैं, ब्रह्मदेव को सारदा हैं। अत हमलोग राग और अज्ञान की सीमा के भीतर हैं। आप परिव्राजक हैं, ब्रह्मचर्य व्रत मे रत हैं। मतिधीर हैं। दु खेष्वनुद्विग्नमना सुखेषु विगतस्पृह। वीतरागभयक्रोध स्थितधीर्मुनिरुच्यते। दु ख मे जिनका मन उद्विग्न न हो, सुख की जिसे इच्छा न हो, जिसे राग, भय और क्रोध न हो ऐसे स्थितप्रज्ञ को मुनि कहते हैं। आपके हृदय मे ज्ञान वैराग्य है। आपको क्या काम पीडा पहुँचावेगा?

नारद कहेउ सहित अभिमाना। कृपा तुम्हारि सकल भगवाना॥
करुनानिधि मन दीख विचारी। उर अकुरेउ गर्व तरु भारी ॥२॥

अर्थ नारदजी ने अभिमान के साथ कहा : भगवन्! यह सब आपकी कृपा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है। करुनानिधान ने मन मे विचार कर देखा कि इनके हृदय मे भारी अभिमानवृक्ष का अङ्कुर तो हो आया।

व्याख्या : अभिमान के साथ कहने के कारण सच्ची बात भी विनयप्रदर्शन मात्र हो गई। यदि अभिमान के साथ न कहते तो उत्तर बिल्कुल ठीक था सब कुछ भगवान् की कृपा से हुआ था। करुणानिधि हैं, अभिमान की बात सुनकर उनके कल्याण का विचार करने लगे कि इनकी छाती पर पीपल जम रहा है। यथा अश्वत्थमेनं सुविरूढमूलम्। यह ससार ही बड़े दृढमूल वाला पीपल है। सो अभी अङ्कुर मात्र हैं।

बेगि सो मै डारिहौ उखारी। पन हमार सेवक हितकारी॥
मुनि कर हित मम कौतुक होई। अवसि उपाय करबि मै सोई॥३॥

अर्थ : मै उसे तुरन्त उखाड़ डालूँगा। हमारा प्रण सेवक हितकारी है। मुनि की भलाई हो और मेरे लिए एक खेल मिल जाय। ऐसा ही उपाय मैं अवश्य करूँगा।

व्याख्या : उस अभिमान वृक्ष के उखाड़ने मे जल्दी की आवश्यकता है। शतपत्र न होने पावे नही तो बडी बडी अडचनें पैदा होगी। मुझे अपना प्रण सच्चा करना है। सेवक हितकारी मेरा प्रण है, सेवक प्रियवादी प्रण नही है।

उपाय ऐसा हो जिसमे मुनि का कल्याण हो और मेरा कौतुक खेल भी हो। एका क्रिया द्वयर्थकरी हो। मैं ऐसा उपाय अवश्य करूँगा।

तब नारद हरिपद सिरु नाई। चले हृदय अहमिति अधिकाई॥
श्रीपति निज माया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि करी॥४॥

अर्थ : तब नारदजी हरि के चरणो मे सिर नवाकर चले। हृदय मे अभिमान और बढ गया। श्रीपति ने अपनी माया को प्रेरित किया। अब उसकी कठिन करणी सुनो।

व्याख्या : केवल काम पर अपना विजय सुनाने आये थे। वह कार्य हो गया। अत यथापूर्व हरिपद मे सिर नवाकर चले। पर अभिमान और बढ गया। सोचने लगे हरि ने ठीक कहा। त्रिदेव गृहस्थ हैं। ये काम को क्या जीतेंगे? अभिमान को और भी बढता देखकर श्रीपति ने अपनी माया को प्रेरणा की। वह अघटित-घटनापटीयसी है। जो काम तीन काल में सम्भव न हो उसे कर दिखानेवाली है। यथा लव निमेष महँ भुवन निकाया। रचै जासु अनुसासन माया। चित् के ब्रह्म के अति दुर्घटस्वातन्त्र्य को माया कहते हैं। लोक मे योगी, मन्त्रशास्त्री और ऐन्द्रजालिक थोडा सा आच्छादित स्वातन्त्र्य पाकर के युक्ति से दुर्घट घटना घटा देते हैं। तब श्रीपति की माया के लिए क्या कहना है। भासनकाल मे भी स्वरूप से अतिवर्त्तन उसकी दुर्घटना है।

दो. बिरचेउ मग महु नगर तेहि, सत जोजन बिस्तार।
श्रीनिवास पुर तें अधिक, रचना बिबिध प्रकार॥१२९॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : उसने मार्ग में सौ योजन विस्तृत एक नगर की रचना की जिसमें भाँति भाँति की रचनाएँ वैकुण्ठ से भी अधिक थी।

व्याख्या : जिस रास्ते को पकड़कर नारदजी जा रहे थे उसी रास्ते पर पलक मारते चार सौ कोस का नगर रच दिया। लोको में सबसे अधिक शोभा वैकुण्ठ की है। सो वहाँ से भी अधिक कारीगरी इस नगर के बनाने में दिखाई गई। जिसमे नारद का मन आकृष्ट हो और नगर देखने आवे। संसार मे जितनी अद्भुत वस्तुएँ हैं सब नारदजी की देखी हुई हैं। सबसे सुन्दर वैकुण्ठ है। वह भी नारदजी का देखा हुआ है। अतः वैकुण्ठ से भी अधिक सुन्दर नगर माया ने क्षण भर मे बनाया।

बसहिं नगर सुन्दर नर नारी। जनु बहु मनसिज रति तनुधारी ॥
तेहि पुर बसइ सील निधि राजा। अगनित हय गय सेन समाजा ॥१॥

अर्थ : उस नगर में सुन्दर नर नारी बसते थे। मानो काम और रति ने ही बहुत से शरीर धारण कर रक्खे हो। उस नगर मे शीलनिधि नामी राजा रहता था। घोडे हाथी और सेना की गिनती न थी।

व्याख्या : वैकुण्ठ सा सुन्दर नगर था। इतना ही नही वहाँ के निवासी भी वैकुण्ठवासियो की भाँति सुन्दर थे। नर काम से सुन्दर और नारियाँ रति सी सुन्दर थी।

नगर अभी बना है। परन्तु शीलनिधि राजा उसमे कई पीढी से बसते थे। घोडे हाथी सेना सब अनेक देश के भिन्न कालो मे आये हैं तथा भर्ती हुए हैं इत्यादि। टेहरी राज्य मे एक शहर है। जिसका नाम श्रीनगर है। उसे लोग शीलनिधि राजा की राजधानी कहते हैं। प्राचीन श्रीनगर को तो गङ्गाजी बहा ले गईं। अब वहाँ सिवा रमापति के मन्दिर के और कुछ नही है। उसी के सन्निकट अब दूसरा श्रीनगर बसा है।

सत सुरेस सम बिभव बिलासा। रूप तेज बल नीति नेवासा ॥
बिस्व मोहिनी तासु कुमारी। श्री बिमोह जिसु रूप निहारी ॥२॥

अर्थ : उसके वैभव का विलास सौ इन्द्र के समान था। रूप, तेज, बल और नीति का वह निवास स्थान है। उसकी विश्वमोहिनी नाम्नी कन्या थी। जिसका रूप[1] देखकर लक्ष्मी भी मोहित हो जाँय।

व्याख्या : विलास ऐसा कि उसके सामने इन्द्र का विलास कुछ नही। शीलनिधि राजा वस्तुतः शीलनिधि थे। रूप मोहक होता है। पर बिना तेज के उसकी महत्ता नही। दोनो होने पर भी बिना बल के सुभट समाज मे आदर नही होता। यह सब होने पर भी बिना नीति के राज्य नही टिकता। यथा : राजकि रहै नीति बिनु जाने। राजा मे सब था।

१ यह रूप की अलौकिकता है। नही तो लोकरीति यह है कि मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


शीलनिधि का ब्याह हुए बहुत दिन हो गये थे। उन्हे उस ब्याह से एक बेटी भी थी जो ब्याहने योग्य हो गई थी। नगर ऐसा सुन्दर बना, निवासी ऐसे सुन्दर, विभव ऐसा, राजा ऐसे फिर कुमारी अलौकिक क्यो न हो ? उसे अलौकिक सुन्दरता थी। उसे देखकर लक्ष्मी भी मोहती थी। लक्ष्मी को देखकर तो अभी नारदजी चले आ रहे हैं। यदि उनसे अधिक सुन्दरता न हो तो नारदजी मोहेंगे कैसे ?

सोइ हरि माया सब गुनखानी। सोभा तासु कि जाइ बखानी ॥
करै स्वयम्बर सो नृप बाला। आए तहँ अगनित महिपाला ॥३॥

अर्थ वही सब गुणो की खानि हरि की माया थी। क्या उसकी शोभा वर्णन की जा सकती थी ? वह राजकन्या स्वयम्बर करती थी। वहाँ असख्य राजा लोग आये थे।

व्याख्या यह सब रचना रचकर वह हरि की माया स्वय राजा की बेटी बनी। उसकी शोभा कौन कह सकता है। इतना ही नही नगर तो अभी बना है। पर उस कन्या का सौन्दर्य तथा स्वयम्बर का समाचार सुनकर देश देश के राजाओ के आये कई दिन हो गये थे। यह हरिमाया की कठिन करणी है। किसी भाँति वुद्धि नही काम करती। देश काल का कोई ही नियम ही नहीं रह गया। छोटे से सङ्कीर्ण स्थान मे चार सौ कोस का नगर कैसे बना ? सम्पूर्ण राजसमाज प्रजामण्डल सहित कहाँ से आगये ? स्वयम्बर का समाचार सब देश देश मे कब फैला ? सब देशो के राजा कहाँ से चले आये ? अघटितघटनापटीयसी माया की ऐसी करामात है कि सब असम्भव सम्भव हुआ।

मुनि कौतुकी नगर तेहि गयऊ। पुरबासिन्ह सब पूछत भयऊ ॥
सुनि सब चरित भूप गृह आए। करि पूजा नृप पुनि बैठाए ॥४॥

अर्थ कौतुकी मुनि उस नगर मे गये। नगर वासियो से सब पूछा। अब चरित सुनकर राजमन्दिर मे गये। राजा ने पूजा करके मुनिजी को बिठाया।

व्याख्या नारद जी के रास्ते मे ही नगर पडा। बडा सुन्दर था। नारदजी ने इसे कभी नही देखा था। देश देश के राजा लोग भी नगर के बाहर उतरे हुए थे। जाने का काम कोई न था। पर यह सब समारोह देखकर कौतुकियो से नही रहा जाता। सो मुनिजी नगर मे चले गये। पता लगाया कि इतना समारोह क्यो है ?

स्वयम्बर की कथा सुनकर कौतुक और बढा। राजा के यहाँ चले गये। राजा ने पहचान लिया कि नारदजी हैं। सो उसने पूजा सत्कार करके मुनिजी को बिठलाया।

दो आनि देखाई नारदहि, भूपति राजकुमारि।
कहहु नाथ गुन दोष सब, एहिके हृदय बिचारि ॥१३०॥

अर्थ राजा ने राजकुमारी को लाकर दिखाया। और कहा हे नाथ। आप मन मे विचार करके इसके गुणदोष कहिये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : सामुद्रिक शास्त्र द्वारा केवल अवयव संगठन, हस्तरेखा आदि देखकर फल कहा जाता है। स्वयम्बर सन्निकट है। अत कन्या के विषय मे चिन्ता है कि कैसे घर पडेगी इत्यादि।

देखि रूप मुनि बिरति बिसारी। बड़ी बार लगि रहे निहारी ॥
लच्छन तासु बिलोकि भुलाने। हृदय हरख नहिं प्रगट बखाने ॥१॥

अर्थ रूप देखकर तो मुनिजी वैराग्य भूल गये। बडी देर तक देखते रह गये। उसके लक्षण देखकर तो अपने को भूल गये। हृदय मे हर्ष हुआ। प्रकट कुछ न कहा।

व्याख्या मोह न नारि नारि के रूपा। सो उसकी अलौकिक सुन्दरता देखकर लक्ष्मी मोहती थी। नारदजी तो वैराग्य भूल गये। कभी उन्हे वैराग्य था। यह भी स्मरण न रहा मोहित हो गये आँखें उस अलौकिक शोभा मे बँध गई। राजा समझते है कि सामुद्रिक से लक्षण मिलान कर रहे हैं।

लक्षण देखकर अपने को ही भूल गये ज्ञान भी गया : यह भी स्मरण न रहा कि मैं ब्रह्मचर्यरत मुनि हूँ : ऋजुता भी गई : प्रकट बखान नही करते। हृदय मे हर्ष है कि लोग इसके गुणो से अपरिचित हैं, सो अपरिचित बने रहे : तभी ठीक है। यह तो त्रिदेव की योग्या है। इसके गुण जान जायेंगे तो त्रिदेव मे से ही किसी को देगे। इसलिए प्रकट नही कहा।

जो एहि बरै अमर सो होई। समर भूमि तेहि जीत न कोई ॥
सेवहि सकल चराचर ताही। बरै सीलनिधि कन्या जाही ॥२॥

अर्थ जो इसे व्याहेगा वह अमर होगा। और संग्रामभूमि मे कोई उसे जीत न सकेगा। शीलनिधि की कन्या जिसे वरेगी उसकी सेवा चराचर जगत् करेगा।

व्याख्या इसका सीधा सीधा अर्थ है कि शीलनिधि की कन्या को अमर, अजेय और चराचर से सेव्य वर मिलेगा। जैसे उमा के लिए अगुण, अमान, उदासीनादि गुणयुक्त वर मिलना लिखा था। उसका यह अर्थ नही था कि उमा जिसे व्याहेगी वह अगुण, अमान और उदासीन हो जायगा। पर मुनिजी इस समय माया के बस मे हैं। यह अर्थ लगा रहे हैं कि यदि मेरा व्याह इससे हो जाय तो मै अमर, अजेय और चराचर से सेव्य हो जाऊँगा। पर कठिनता यह है कि शीलनिधि की कन्या सुन्दर युवा राजकुमार छोडकर मुझे क्यो वरने लगी। चराचर तो त्रिदेव की सेवा करते है अत इससे व्याह करना और त्रिदेव के समान हो जाना एक बात है।

लच्छन सब बिचारि उर राखे। कछुक बनाइ भूप मन भाखे ॥
सुता सुलच्छन कहि नृपपाही। नारद चले सोच मन माही ॥३॥

अर्थ सब लक्षणों को विचारकर मन मे रख लिया। कुछ बाते बनाकर राजा से कह दी। राजा से कहकर कि कन्या सुलक्षण है नारदजी चले गये। मन मे सोचते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या कहने से बात बिगडती है। जब असली बात छिपायी तो कुछ कहने के लिए बात बनानी ही पडी। स्त्रीसग्रह की इच्छा होते ही प्रपञ्च म फँसे। सुलक्षण कन्या के जो गुण हैं वे ही बतला दिये। अलौकिक बातें छिपा रक्खी। जल्दी है इसलिए चल पडे। नारदजी प्रभु की विमल कीर्तिगान करते चलते थे। यथा गावत हरिगुन गान प्रवीना। सो आज वह गान भी बन्द हो गया। क्योंकि मन म सोच है। अब उसे कहते हैं।

करौं जाइ सोइ जतन बिचारी। जेहि प्रकार मोहि बरै कुमारी ॥
जप तप कछु न होइ तेहि काला। हे बिधि मिलै कवन बिधि बाला ॥४॥

अर्थ जाकर ऐसा यत्न विचारकर करें जिस प्रकार कुमारी मुझे वरे। जप तप उस समय हो नही सकता। हे विधाता ! कुमारी किस भाँति हाथ लगेगी।

व्याख्या सोचते हैं कि मैं तो उसे वरने को तैयार हूँ। यत्न यह करना है कि वह कुमारी मुझे वरे। यत्न म तनिक सी चूक हो जाने से मामला हाथ से निकल जायगा। अत विचार करके जिसम निश्चय कार्य सिद्ध हो ऐसा यत्न करना चाहिए।

यज्ञ कामधेनु है। और यज्ञो मे जपयज्ञ उत्तम है। और तप के लिए ससार मे कुछ अगम्य नही है। ये ही दोनो कार्यसिद्धि के महान् साधन हैं। पहिले मालूम होता तो जप तप करते। पर समय इतना कम है कि दोनो उपायो मे से कोई भी सम्भव नही है मुनि हैं, इसलिए जप तप पर ध्यान गया। ये ही तो उपाय उनके जाने हुए थे। अत कहते हैं कि हे विधि ! हाय रे बाप तब उसके मिलने की कौन विधि है ? पहिला 'विधि' शब्द उनके पिता ब्रह्मदेव का बोधक है। दूसरा उपाय का बोधक है।

दो एहि अवसर चाहिअ परम, सोभा रूप बिसाल।
जो बिलोकि रीझै कुअँरि, तब मेलै जयमाल ॥१३१॥

अर्थ इस अवसर पर परम शोभा और विशाल रूप चाहिए। जिसे देखकर कुमारी मोहित हो जाय तब जयमाल पहिनावेगी।

व्याख्या कन्या वरयते रूपम्। कन्या तो कुछ नही देखती केवल रूप ही देखती है। सो स्वयवर है। वरण करना कन्या के हाथ म है। वह रूपवान् को वरेगी। सो यहाँ बडी चमक दमक और बडे सौन्दर्य की आवश्यकता है जिसे देखकर वह रीझ जाय। इसके जोड की या इससे अधिक शोभा और रूप की आवश्यकता है। वह मुझम कहाँ से आवे ? पर आना ही चाहिए। नही तो वह जयमाल न पहनावगी।

हरि सन मागौं सुदरताई। होइहि जात गहरु अति भाई ॥
मोरे हित हरि सम नहिं कोऊ। एहि अवसर सहाय सोइ होऊ ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ हरि से सुन्दरता माँगू। पर जाने में बहुत देर लग जायगी। मुझे तो हरि के समान दूसरा कोई हित नहीं है। इस अवसर पर वे ही मेरे सहायक हों।

व्याख्या इस कन्या के जोड की सुन्दरता केवल हरि में है और रूप देने का सामर्थ्य भी है। जप तप नहीं हो सकता तो मँगनी माँगकर ही काम चलालें। पर वे ठहरे क्षीरसागर में। जब से वहाँ जावेंगे तब तक यहाँ स्वयम्वर समाप्त हो जायगा। दूसरा कोई हित उनके समान मेरा है नहीं। जो सकट के समय म काम आवे उसी को हित कहते हैं। यथा तोहि सम हितु न मोर ससारा। बहे जात कह भइसि अधारा। सो इस समय वे ही सहाय हो। अर्थात् मैं तो उन तक पहुँच नहीं सकता। पर वे तो आ सकते हैं। आकर सहायता करें।

बहुविधि विनय कीन्ह तेहि काला। प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला ॥
प्रभु विलोकि मुनि नयन जुडाने। होइहि काजु हिएँ हरषाने ॥२॥

अर्थ उस समय बहुत विधि से विनती की। कौतुकी और कृपाल प्रभु प्रकट हुए। प्रभु को देखकर मुनिजी के नेत्र शीतल हो गये। और वे मन में बडे प्रसन्न हुए कि अब काम बन जायगा।

व्याख्या आर्त पुरुष ही जानता है कि किन किन विधियों से विनय किया जाता है। भक्त भी कौतुकी। यथा मुनि कौतुकी नगर तेहि गयऊ। भगवान् भी कौतुकी। यथा प्रगटे प्रभु कौतुकी कृपाला। यहाँ 'कृपाला' कहने का भाव यह कि भगवान् को कौतुक के साथ साथ मुनि का हित भी इष्ट है। यथा मुनि कर हित मम कौतुक होई।

प्रभु की शोभा और रूप कहते है। जो आँख रूप और शोभा के लिए सन्तप्त थी वे इस रूप और शोभा को देख ठण्ढी हो गईं। भगवान् का वचन है कि 'मोर दरस अमोघ जग माही। अत कार्य सिद्धि की आशा दृढ हो गई।

अति आरति कहि कथा सुनाई। करहु कृपा करि होहु सहाई ॥
आपन रूप देहु प्रभु मोही। आन भाँति नहि पावौं ओही ॥३॥

अर्थ अत्यन्त आर्त होकर कथा कह सुनायी। हे प्रभो! कृपा करो और कृपा करके सहाय हो। हे प्रभो! अपना रूप मुझे दो। और किसी भाँति मैं उसे नहीं पा सकता।

व्याख्या जानते है कि दीनदयाल हैं, अत अत्यन्त आर्त होकर सब वृत्तान्त सुनाया। मनम अभिलाषा थी कि एहि अवसर सहाय सो होऊ। अत कहते हैं कि केवल कृपा से काम न चलेगा। कृपा करके होहु सहाई।

प्रभु का दिव्य रूप है। अत दिया जा सकता है। जिस भाँति एक दीपक से दूसरा दीपक जलाया जा सकता है। यथा गीध देह तजि धरि हरिरूपा। उपाय का निर्णय स्वय कर लिया। कहते हैं आन भाँति नहि पावौ ओही। नाम नहीं लेते, मानो ब्याह हो गया है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जेहि बिधि नाथ होइ हित मोरा। करहु सो बेगि दास मैं तोरा ॥
निज माया बल देखि बिसाला। हियँ हँसि बोले दीनदयाला ॥४॥

अर्थ : हे नाथ! जिस विधि से मेरा हित हो वही जल्दी से कीजिये। मैं आप का दास हूँ। अपनी माया का विशाल बल देखकर दीनदयाल हँसकर बोले।

व्याख्या : मैने तो यही विधि निश्चय की है कि बिना आपका रूप पाये मुझे वह मिल नहीं सकती। परन्तु आप नाथ हैं। यदि किसी दूसरे उपाय से मेरा हित हो सकता हो तो उसे ही शीघ्र कर डालिये। सम्बन्ध की भी याद दिलाते हैं कि मैं आपका दास हूँ।

प्रभु ने अपनी माया का विशाल बल देखा जिसने स्थितव्रत मुनि को आतुर कर दिया। तब प्रभु हृदय में हँसे कि इतने में ही ब्रह्मचर्य व्रत वे भूल गये। अथवा माया की करामात पर हँसे जिसके दर्शन मात्र से इतने बड़े महर्षि अपने स्वरूप को भूल गये हैं। मन में हँसे। प्रकट हँसने से मुनिजी को कष्ट होता। दीनदयाल हैं। नारदजी को दीन देखकर बड़ी दया हुई।

दो. जेहि बिधि होइहि परम हित, नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु, बचन न मृषा हमार ॥१३२॥

अर्थ : हे नारद! सुनो जिस विधि से तुम्हारा परम हित होगा वही हम करेंगे, दूसरा नहीं। हमारा वचन असत्य नहीं होता।

व्याख्या : भगवान् कहते हैं कि मैं तुम्हारा परम हित करूँगा। क्योंकि तुम मुझे परम हित मानते हो। यथा : मोरे हित हरिसम नहि कोऊ। तुम्हारी प्रार्थना हित के लिए है। अतः मेरा कर्त्तव्य है कि तुम्हारा परम हित करूँ। नारद! सुनहु का भाव यह है कि मेरे शब्दों पर ध्यान दो। मैं क्या कह रहा हूँ। जो परम हित न होगा वह मैं नहीं करूँगा। मेरे वचन में उलट फेर नहीं होगा। इसलिए कहते हैं कि : बचन न मृषा हमार।

कुपथ[1] माँग रुज ब्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी ॥
एहि बिधि हित तुम्हार मैं ठयऊ। कहि अस अंतरहित प्रभु भयऊ ॥१॥

अर्थ : रोग से व्याकुल होकर रोगी कुपथ्य माँगता है। हे योगी मुनि! सुनो : वैद्य उसे नहीं देता। इसी विधि से मैंने तुम्हारा हित निश्चय किया है। ऐसा कहकर प्रभु अन्तर्धान हो गये।

व्याख्या : बात को और भी स्पष्ट करते हैं। शरीर के रोग और मानसिक रोग की एक सी गति है। जिस भाँति जितने शूल हैं वे सब वातप्रधान हैं। उसी भाँति विषय मनोरथ सभी कामप्रधान हैं। यथा : विषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना। सो इस समय शूल उठा है। रोगी एकदम अस्वस्थ है।

---

१. अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ हरि से सुन्दरता माँगू। पर जाने मे बहुत देर लग जायगी। मुझे तो हरि के समान दूसरा कोई हित नहीं है। इस अवसर पर वे ही मेरे सहायक हो।

व्याख्या इस कन्या के जोड की सुन्दरता केवल हरि मे है और रूप देने का सामर्थ्य भी है। जप तप नही हो सकता तो मँगनी माँगकर ही काम चलाले। पर वे ठहरे क्षीरसागर मे। जब से वहाँ जावेंगे तब तक यहाँ स्वयम्वर समाप्त हो जायगा। दूसरा कोई हित उनके समान मेरा है नही। जो सकट के समय म काम आवे उसी को हित कहते है। यथा तोहि सम हितु न मोर ससारा। बहे जात कह भइसि अधारा। सो इस समय वे ही सहाय हो। अर्थात् मैं तो उन तक पहुँच नही सक्ता। पर वे तो आ सकते है। आकर सहायता करें।

बहुविधि विनय कीन्ह तेहि काला। प्रगटेउ प्रभु कौतुकी कृपाला॥
प्रभु बिलोकि मुनि नयन जुड़ाने। होइहि काजु हिएँ हरषाने॥२॥

अर्थ उस समय बहुत विधि से विनती की। कौतुकी और कृपाल प्रभु प्रकट हुए। प्रभु को देखकर मुनिजी के नेत्र शीतल हो गये। और वे मन म बडे प्रसन्न हुए कि अब काम बन जायगा।

व्याख्या आर्त पुरुष ही जानता है कि किन किन विधियो से विनय किया जाता है। भक्त भी कौतुकी। यथा मुनि कौतुकी नगर तेहि गयऊ। भगवान् भी कौतुकी। यथा प्रगटे प्रभु कौतुकी कृपाला। यहाँ 'कृपाला' कहने का भाव यह कि भगवान् को कौतुक के साथ साथ मुनि का हित भी इष्ट है। यथा मुनि कर हित मम कौतुक होई।

प्रभु की शोभा और रूप कहते है। जो आँखें रूप और शोभा के लिए सन्तप्त थी वे इस रूप और शोभा को देख ठण्ढी हो गईं। भगवान् का वचन है कि 'मोर दरस अमोघ जग माही। अत कार्य सिद्धि की आशा दृढ हो गई।

अति आरति कहि कथा सुनाई। करहु कृपा करि होहु सहाई॥
आपन रूप देहु प्रभु मोही। आन भाँति नहि पावौ ओही॥३॥

अर्थ अत्यन्त आर्त होकर कथा कह सुनायी। हे प्रभो! कृपा करो और कृपा करक सहाय हो। हे प्रभो! अपना रूप मुझ दो। और किसी भाति मैं उस नहीं पा सकता।

व्याख्या जानते है कि दीनदयाल है अत अत्यन्त आर्त होकर सब वृतान्त सुनाया। मनम अभिलाषा थी कि एहि अवसर सहाय सो होऊ। अत कहत हैं कि केवल कृपा से काम न चलेगा। कृपा करके होहु सहाई।

प्रभु का दिव्य रूप है। अत दिया जा सकता है। जिस भाँति एक दीपक से दूसरा दीपक जलाया जा सकता है। यथा गीध देह तजि धरि हरिरूपा। उपाय का निर्णय स्वय कर लिया। कहते है आन भाति नहि पावौ ओही। नाम नही लते, मानो ब्याह हो गया है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जेहि विधि नाथ होइ हित मोरा। करहु सो वेगि दास मै तोरा ॥
निज माया बल देखि विसाला। हिय हँसि बोले दीनदयाला ॥४॥

अर्थ : हे नाथ ! जिस विधि से मेरा हित हो वही जल्दी से कीजिये। मै आप का दास हूँ। अपनी माया का विशाल बल देखकर दीनदयाल हँसकर बोले।

व्याख्या मैंने तो यही विधि निश्चय की है कि बिना आपका रूप पाये मुझे वह मिल नही सकती। परन्तु आप नाथ हैं। यदि किसी दूसरे उपाय से मेरा हित हो सकता हो तो उसे ही शीघ्र कर डालिये। सम्बन्ध की भी याद दिलाते हैं कि मै आपका दास हूँ।

प्रभु ने अपनी माया का विशाल बल देखा जिसने स्थितव्रत मुनि को आतुर कर दिया। तब प्रभु हृदय मे हँसे कि इतने मे ही ब्रह्मचर्य व्रत वे भूल गये। अथवा माया की करामात पर हँसे जिसके दर्शन मात्र से इतने बडे महर्षि अपने स्वरूप को भूल गये हैं। मन मे हँसे। प्रकट हँसने से मुनिजी को कष्ट होता। दीनदयाल हैं। नारदजी को दीन देखकर बडी दया हुई।

दो जेहि विधि होइहि परम हित, नारद सुनहु तुम्हार।
सोइ हम करब न आन कछु, बचन न मृषा हमार ॥१३२॥

अर्थ : हे नारद ! सुनो जिस विधि से तुम्हारा परम हित होगा वही हम करेंगे, दूसरा नही। हमारा वचन असत्य नही होता।

व्याख्या : भगवान् कहते हैं कि मैं तुम्हारा परम हित करूँगा। क्योंकि तुम मुझे परम हित मानते हो। यथा : मोरे हित हरिसम नहि कोऊ। तुम्हारी प्रार्थना हित के लिए है। अत मेरा कर्त्तव्य है कि तुम्हारा परम हित करूँ। नारद ! सुनहु का भाव यह है कि मेरे शब्दो पर ध्यान दो। मैं क्या कह रहा हूँ। जो परम हित न होगा वह मै नही करूँगा। मेरे वचन मे उलट फेर नही होगा। इसलिए कहते हैं कि . वचन न मृषा हमार।

कुपथ[1] माँग रुज व्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी ॥
एहि विधि हित तुम्हार मै ठयऊ। कहि अस अंतरहित प्रभु भयऊ ॥१॥

अर्थ . रोग से व्याकुल होकर रोगी कुपथ्य माँगता है। हे योगी मुनि ! सुनो : वैद्य उसे नही देता। इसी विधि से मैंने तुम्हारा हित निश्चय किया है। ऐसा कहकर प्रभु अन्तर्धान हो गये।

व्याख्या : बात को और भी स्पष्ट करते हैं। शरीर के रोग और मानसिक रोग की एक सी गति है। जिस भाँति जितने शूल हैं वे सब वातप्रधान हैं। उसी भाँति विषय मनोरथ सभी कामप्रधान हैं। यथा : विषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना। सो इस समय शूल उठा है। रोगी एकदम व्याकुल है।

१. अप्रस्तुतप्रशंसा अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


कुपथ्य मांगता है। विषय की आशा करता है। यथा 'सयम यह न विषय की आसा। भोगी होने की योगी की इच्छा अस्वस्थता है। चिकित्सक उसको कुपथ्य नही दे सकता। वह उसका परम हित है। उसके आर्तनाद पर वह कभी ध्यान नही देगा।

रोगी विषय को ही हित मानता है। पर चिकित्सक निश्चय किये हुए हैं कि इसे कुपथ्य कभी नही देंगे। और इस प्रकार इसका परम हित करेंगे। वह कहता है घबराओ मत। मैं तुम्हारा परम हित करता हूँ। इसी भाँति कहकर प्रभु अन्तर्धान हो गये। जिसमे अधिक वार्तालाप का अवसर न रहे।

माया बिवस भए मुनि मूढा। समुझी नहि हरि गिरा निगूढा॥
गवने तुरत तहाँ रिषि राई। जहाँ स्वयवर भूमि बनाई॥२॥

अर्थ माया विवश मुनि मूढ हो गये। हरि की स्पष्ट उक्ति को नही समझे। ऋषिराज तुरन्त वहाँ गये जहाँ कि स्वयम्वर भूमि रची हुई थी।

व्याख्या स्पष्ट कहने पर भी जिसकी समझ मे बात न आवे वह मूढ है। बडे मनन करनेवाले आज मायावश मूढ हो गये है। गूढ मर्मो के समझानेवाले नारद आज हरि की स्पष्टोक्ति समझने मे असमर्थ हैं। विरागियो के शिरोमणि बडी त्वरा मे है कि कैसे स्वयम्वर भूमि मे पहुँचूँ, कही ऐसा न हो कि मेरी अनुपस्थिति म ही जयमाल किसी दूसरे के गले मे पड जाय। मुनिजी समझे हुए है कि मुझे हरि का रूप मिल गया।

निज निज आसन बैठे राजा। बहु बनाव करि सहित समाजा॥
मुनि मन हरष रूप अति मोरे। मोहि तजि आनहि बरिहि न भोरे॥३॥

अर्थ सज-धजकर राजा लोग अपने समाज के साथ अपने अपने आसन[१] पर बैठे थे। मुनि के मन म बडा हर्ष था कि मुझमे बडी सुन्दरता है। मुझे छोडकर दूसरे को भूलकर भी न वरेगी।

व्याख्या यहाँ कार्यारम्भ हो गया था। राजा लोग सज-धजकर बैठे थे। शोभा के लिए अथवा रक्षा के लिए समाज भी साथ म था। मुनिजी को दो मे एक भी नही। फिर भी बडा हर्ष मन मे है कि मुझे बनाव और समाज नही है तो क्या? अत्यन्त रूप तो मुझ मे ही है। थोडा बहुत रूप म उत्कर्षापकर्ष हो तो कन्या से चूक हो सकती है। मुझे तो हरि का रूप मिला हुआ है। उसके सामने ये राजा क्या है? वह मुझे छोडकर अन्य को भूलकर भी वर नही सकती।

मुनि हित कारन कृपानिधाना। दीन्ह कुरूप न जाइ बखाना॥
सो चरित्र लखि काहु न पावा। नारद जानि सबहि सिरु नावा॥४॥

---

१ रङ्गभूमि मे राजाओ के लिए पहिले से ही आसन निश्चित था। कौन किसके दाहिने बैठेगा। कौन बाएँ बैठेगा। इस विषय की व्यवस्था साधारण व्यापार नहीं है। सो वहाँ सब व्यवस्था ठीक थी। राजा लोग अपने अपने आसन पर बैठ गये थे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : मुनि के हित के लिए कृपानिधान ने ऐसी कुरूपता दी कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। परन्तु वह चरित्र किसी ने न जान पाया। सबने नारद जानकर प्रणाम किया।

व्याख्या कन्या के देखने के लिए जो स्वरूप उन्हे मिला था उसका दर्शन किसी को न हुआ। वह स्वरूप तो उनके हित के लिए मिला था। यदि उसे दूसरे देखते तो उनकी बडी अप्रतिष्ठा होती। अत उसे कोई न देख पाया। न किसी ने यह बात लख पाई कि नारदजी अपने को विष्णुरूप देख रहे है। हमलोग नारद रूप देख रहे हैं। और कन्या कुरूप देख रही है। सबने उन्हे नारद जानकर प्रणाम किया। नारदजी समझते हैं कि सब मुझे विष्णु समझकर प्रणाम कर रहे है।

दो. रहे तहाँ दुइ रुद्रगण, ते जानहिं सब भेउ।
विप्र वेष देखत फिरहि, परम कौतुकी तेउ ॥१३३॥

अर्थ : वहाँ दो रुद्रगण थे। वे सब भेद जानते थे। विप्ररूप से सब कुछ देखते फिरते थे। वे बडे कौतुकी थे।

व्याख्या नारदजी तो कौतुकी थे ही। पर रुद्रगण परम कौतुकी थे। उनको सब भेद मालूम था। वे भी अपने रूप मे नही थे। अपने रूप मे होते तो 'बिडरि चले वाहन सब भागे' वाली कहावत सार्थक होती। किसी का ध्यान आकर्षित न हो, और न कही रोक हो, इसलिए विप्रभेष मे थे। वे उनके पीछे कैलाश से ही लगे हुए थे कि देखें इनकी क्या दशा होती है। परम कौतुकी होने से उन्हे आलस्य का नाम नही था। उस समाज भर मे इस मर्म के जानकार केवल वे दोनो रुद्रगण ही थे।

जेहि समाज बैठे मुनि जाई। हृदयरूप अहमिति अधिकाई ॥
तहँ बैठे महेसगन दोऊ। विप्रवेष गति लखै न कोऊ ॥१॥

अर्थ जिस समाज मे मुनिजी जाकर बैठे मन मे रूप का अहकार अधिक हो रहा था। वही दोनो रुद्रगण भी बैठे थे। वे दोनो ब्राह्मण के वेप मे थे। उनकी गति कोई लखता न था।

व्याख्या . पहिले जिसे काम के जीतने का अभिमान था आज उसी को अपने रूप के अधिक होने का अभिमान हो रहा है। मुनिजी किसी समाज मे जाकर बैठ सकते हैं। नारद जानि सबहि सिर नावा। नारदजी अपने मे विष्णुरूप की धारणा से सर्वत्र अपने को सम्मानार्ह समझते थे। जहाँ नारदजी बैठे वही जाकर दोनो रुद्रगण भी बैठे। वे दोनो ब्राह्मण वेप मे थे। लोगो ने समझा कि नारदजी के शिष्य हैं। नारदजी ने समझा कि दर्शक हैं। ये कौन हैं ? और किस प्रयोजन से यहाँ आये हैं ? इस बात का पता किसी को नही।

करहि कूटि नारदहि सुनाई। नीकि दीन्हि हरि सुदरताई ॥
रीझिहि राज कुँअरि छवि देखी। इन्हहि वरिहि हरि जानि बिसेषी ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : नारदजी को सुना सुनाकर वे व्यङ्ग्य बोलते थे। हरि ने इन्हे अच्छी सुन्दरता दी है। यह छवि देखकर राजकुमारी लट्टू हो जायगी। और इन्हे विशेष हरि समझकर वरेगी।

व्याख्या : नारदजी को सुनाकर बोली कस रहे है। समझते है कि इनकी बुद्धि मारी गई है। ये समझ न सकेगे। वे अपनी बडाई ही समझेगे। नीकि दीन्हि हरि सुदरताई। इत्यादि की ध्वनि यह है कि : हरि ने इन्हे अच्छा उल्लू बनाया। ये अपने को बडा सुन्दर मान रहे है। राजकुमारी इन्हे देखकर जल उठेगी समझेगी कि कोई विशेष बन्दर है। 'वरिहि' का अर्थ जल उठेगी और 'हरि' का अर्थ बन्दर भी है। इन शब्दो के प्रयोग से इस वचन को कूट कहा।

मुनिहि मोह मन हाथ पराएँ। हँसहि संभुगन अति सचुपाएँ॥
जदपि सुनहि मुनि अटपट बानी। समुझि न परइ बुद्धिभ्रम सानी॥३॥

अर्थ मुनिजी को मोह हो गया। उनका मन दूसरो के हाथ मे है और रुद्र-गण को आनन्द हो रहा है। वे हँस रहे हैं। यद्यपि मुनिजी उनकी अटपटी वाणी सुनते है। पर बुद्धि भ्रम से सनी हुई है। समझ नही पड रहा है।

व्याख्या मन के पराये हाथ मे पड जाने से फिर उसे कुछ सुधि नही रहती। यथा बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही। उनके बात समझने पर रुद्रगण हँसी उडा रहे है कि ये मुनि हैं। इनकी मननशीलता देखो।

मुनिजी की मननशीलता मे त्रुटि नही है। पर बुद्धि मे भ्रम हो गया है। बुद्धि विषयासक्ति और अभिमान से दूषित हो गई है। अत ध्वनि व्यजना समझ नही रहे हैं। समझते है कि ये कोई जानकार है। प्रशसा कर रहे है।

काहु न लखा सो चरित बिसेखा। सो स्वरूप नृपकन्याँ देखा॥
मरकट बदन भयंकर देही। देखत हृदय क्रोध भा तेही॥४॥

अर्थ उस विशेष चरित्र को किसी ने नही लखा। उस स्वरूप को केवल राजकन्या ने देखा। बन्दर सा मुख और भयङ्कर देह। देखते ही उसके हृदय मे क्रोध हुआ।

व्याख्या एक नारद मुनि के आज तीन रूप दिखाई पड रहे है। सब लोग तो इन्हे नारद देख रहे है। पर वे अपने को विष्णुरूप देख रहे हैं। नृपकन्या मर्कटरूप देख रही है। इस बात को किसी ने न लखा। राजकन्या देखती है कि यह बन्दर सा मुख और भयङ्कर देहवाला कौन है? इसे मुझे वरण करने की धृष्टता हुई। इस बात से उसके हृदय मे क्रोध हुआ। क्रोध करने का समय नही था। इससे चुप रह गई।

दो॰ सखीं संग लै कुँअरि तब, चलि जनु राज मराल।
देखत फिरै महीप सब, कर सरोज जयमाल॥१३४॥

अर्थ तब सखियो को लेकर राजकुमारी राजहस की भाँति चली। सब राजाओ को देखती फिरती थी। उसके करकमल मे कमल की जयमाला थी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : स्वयम्वर मे सखियो के साथ कन्या के आने की चाल है। यथा सग सखी सुन्दर सकल सादर चली लवाइ। राजमराल से उपमा देकर उसकी शोभा और सुन्दर गति की प्रशसा की। जयमाल हाथ मे लिये हुए राजाओ को देखती फिरती है, कोई आँख तले आता नही। किसे पहिनावे ? अथवा किसी व्यक्ति विशेष को देख रही है। पर वह दिखाई नही पड रहा है। इसलिए किसी को पहिनाती नही। जयमाल हाथ की ही शोभा बढा रही है।

जेहि दिसि बैठे नारद फूली। सो दिसि तेहि न बिलोकी भूली ॥
पुनि पुनि मुनि उकसहि अकुलाही। देखि दसा हरगन मुसुकाही ॥१॥

अर्थ जिस ओर नारद फूलकर बैठे थे। उस ओर उसने भूलकर भी नही देखा। बार बार मुनिजी उसकते और आकुल होते हैं। यह दशा देखकर हरगण मुसकरा रहे हैं।

व्याख्या रङ्गभूमि मे आते ही मुनिजी के अद्भुत रूप पर जो दृष्टि पडी तो उनकी धृष्टता पर राजकुमारी रुष्ट हो गई है। जानबूझकर उधर नही देखती। देखने मे अपना अनादर समझती है। और मुनिजी फूले बैठे है कि मुझे छोडकर वरती किसे है ? जब उसने उस ओर ही न देखा तब घबडाए। कही इधर देखना ही भूल गई तो अवश्य किसी दूसरे को वर लेगी। अत आगे खिसकने लगे कि किसी भाँति उसकी दृष्टि पड जाय। फिर भी उसने नही ध्यान दिया तो अकुलाने लगे कि अब क्या करें।

धरि नृप तनु तहँ गएउ कृपाला। कुँअरि हरषि मेलेउ जयमाला ॥
दुलहिन लै गे लच्छि निवासा। नृप समाज सब भएउ निरासा ॥२॥

अर्थ कृपालु हरि वहाँ राजा का शरीर धारण करके गये। राजकुमारी ने प्रसन्न होकर जयमाल पिन्हाई। लक्ष्मीनिवास दुलहिन लेकर चले गये। सारा राज समाज निराश हो गया।

व्याख्या कृपालु हैं, कृपा करके ठीक समय पर पहुँच गये। द्विभुजमूर्त्ति होकर गये। जिसमे किसी को देवबुद्धि न हो और नारद भी पहिचान न पावें। कुँअरि इन्ही को ढूँढती थी। इसलिए प्रसन्न हो उठी और जयमाला पहिना दी। लक्ष्मीनिवास हैं। दुलहिन लेकर चले भी गये। और किसी का किया कुछ न हुआ। उनके प्रभाव से सब दब गये। इससे राजसमाज निराश हो गया। न जाने वह कौन था जो वर ले गया। राजा तो सब जाने हुए हैं। सबके लिए पहिले से आसन निश्चित है। इसके लिए कोई आसन भी नही था। खडे खडे आया और काम करके चला गया। युद्ध का भी अवसर नही है। अत पूरी निराशा हुई।

मुनि अति बिकल मोह मति नाठी। मनि गिरि गई छूटि जनु गाँठी ॥
तब हरगन बोले मुसुकाई। निज मुख मुकुर बिलोकहु जाई ॥३॥

अर्थ मुनिजी अति विकल थे। मोह ने उनकी बुद्धि नष्ट कर दी थी। मानो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



गांठ से छूटकर मणि वही गिर गई। तब महादेव के गणो ने मुसकराकर कहा कि दर्पण मे जाकर अपना मुख देख लो।

व्याख्या . पूरा राजसमाज विकल हो उठा। पर मुनिजी अत्यन्त विकल हो उठे। क्योकि उन्हे अपनी सफलता पर पूरी आस्था थी। गांठ से छूटकर मणि के गिर जाने से अकिंचन को जैसी विकलता होती है वैसी विकलता हुई। हरगणो से अब रहा न गया। बोल बैठे 'दर्पण मे अपना मुँह देख लो।' भाव यह कि तुम्हारा मुँह क्या राजकन्या के वरने योग्य है ?

अस कहि दोउ भागे भय भारी। बदन दीख मुनि बारि निहारी॥
बेष बिलोकि क्रोध अति बाढ़ा। तिन्हहि सराप दीन्ह अति गाढा ॥४॥

अर्थ · ऐसा कहकर दोनो अत्यन्त डरकर भागे। मुनि ने पानी मे झाँककर मुँह देखा। वेष देखकर अत्यन्त क्रोध बढा। उनको बडा कठोर शाप दिया।

व्याख्या · कह तो दिया। पर पीछे से रुद्रगण अत्यन्त डरे। सोचने लगे कि हमारा सामना पडते ही उन्हे हमलोगो का दिल्लगी उडाना याद पड जायगा। तब शाप देंगे। सामना न पडने पर कदाचित् बच जायँ। जल मे मुख देखना मना है। फिर भी आतुर होकर जल में ही देखा। भगवान् की लीला अत्यन्त अद्भुत है। जल मे उन्हे वह रूप दिखाई पडा जो नृप कन्या ने देखा था। तब तो मुनिजी को बडा क्रोध हुआ। और पहिले उन रुद्रगणो को बडा कठोर शाप दिया।

दो. होहु निसाचर जाइ तुम्ह, कपटी पापी दोउ।
हँसेहु हमहि सो लेहु फल, बहुरि हँसे मुनि कोउ ॥१३५॥

अर्थ तुम दोनो कपटी और पापी राक्षस होओ। मेरी हँसी की, उसका फल ले लो। अब फिर किसी मुनि की हँसी न करना।

व्याख्या ब्राह्मण के पद से इतना घोर पतन हो कि निशाचर हो जाओ। तुम ब्राह्मण होने के योग्य नही हो। तुम निशाचर होने योग्य हो। तुमको मेरी दुर्दशा पर तनिक दया न आई। उलटा हँसते थे। अत कर्म का फल मै दूँगा जिसमे मुनियो पर हँसने की आदत छूट जाय।

पुनि जल दीख रूप निज पावा। तदपि हृदय संतोष न आवा॥
फरकत अधर कोप मन माही। सपदि चले कमलापति पाही ॥१॥

अर्थ फिर जल मे देखा, तो अपना रूप मिल गया था। फिर भी हृदय मे सन्तोष न हुआ, ओठ फडक रहे थे और मन मे क्रोध था। जल्दी जल्दी रमापति के पास चले।

व्याख्या मैंने हरि से उनका रूप माँगा था। सो उन्होने हमारा रूप भी बिगाडकर बन्दर का रूप कर दिया। अब मुझे इस रूप मे जीना होगा। यह समझ क्रोध बहुत बढा। उसी क्रोध मे रुद्रगण को शाप भी दे डाला। मन मे चिन्ता उठी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



क्या मेरा सदा के लिए यह रूप हो गया ? क्या मुझे अपना रूप वापस मिलेगा ? अब तो जो बात हमारी बिगडनी थी वह हरि बिगाड ही चुके। अब तो हमारा रूप वापस दे देना चाहता था। अत फिर जल मे देखा तो मालूम हुआ कि उनका रूप वापस मिल गया। सर्वनाशे समुत्पन्ने अर्धं त्यजति पण्डित । इस न्याय से मुनिजी को सन्तोष होना चाहता था कि किसी भाँति बन्दर के मुख से तो प्राण बचा पर सन्तोष हुआ नही। राजकुमारी के न मिलने की चोट किसी तरह जाती नही। अत शीघ्रता से कमलापति के पास चल। क्रोध की मात्रा म कमी भी नहीं हुई। अधर का फडकना क्रोध का अनुभाव है।

देहौ साप कि मरिहौ जाई। जगत मोरि उपहास कराई ॥
बीचहि पथ मिले दनुजारी। सग रमा सोइ राजकुमारी ॥२॥

जाकर शाप दूँगा या प्राण दे दूँगा। जगत् मे मेरी हँसी इन्होने करायी। मार्ग मे ही असुरो के शत्रु मिले और साथ मे लक्ष्मी तथा वही राजकुमारी थी।

व्याख्या कहा सुनी करके शाप दूँगा। यदि शाप न लगा तो प्राण दे दूँगा। सभावित कहँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू।

दनुजारी कहने का भाव यह कि रुद्रगण के निशाचर होने का शाप हो चुका है। अत उनके उद्धार के लिए अवतार ग्रहण करना है। रुद्रगण के मारने मे समर्थ कौन है ? अत मुनिजी की पहिली इच्छा को सार्थक करने के लिए बीच रास्ते मे ही मिल। क्रोध बढाने के लिए रमा और वही राजकुमारी साथ लिये हैं। दोनो को साथ लेने का यह भाव कि नारदजी जान जायँ कि उनका स्वरूप ही नही बिगाडा, बल्कि वेष बदलकर राजकन्या को भी वही ल गये। यह भी नही कि इन्हे स्त्री का घाटा हो, लक्ष्मीजी साथ है ही।

बोले मधुर वचन सुरसाईं। मुनि कहँ चले बिकल की नाईं ॥
सुनत वचन उपजा अति क्रोधा। माया बस न रहा मन बोधा ॥३॥

अर्थ देवताओ के स्वामी ने मीठे वचन से कहा मुनिजी। व्याकुल पुरुषो की भाँति कहाँ चल ? वचन सुनते ही बडा क्रोध उत्पन्न हुआ। मायावश होने से ज्ञान नहीं रह गया।

व्याख्या मुनि अपनी धुन मे चले जा रहे थे तो आपने स्वय बात छेड दी। सुरसाई हैं जानते हैं कि रुद्रगण निसाचर होकर सुरो को दु ख देंगे। उनकी रक्षा के लिए स्वामी स्वय शाप पाने का उपाय कर रहे हैं। बिकल की नाईं कहने का यह भाव है कि आप मुनि हैं विकल तो हो नही सकते। यथा ब्रह्मचर्यव्रत रत मति धीरा। तुम्हहि कि करै मनो भव पीरा। यह विकलता का आभास होगा। अत बिकल की नाईं कहते है। पहिले कोप मन म था। अब उमड पडा। इसके पहिले ज्ञान बिराग मन म रहा। यथा मुनि मुनि मोह होइ मन ताके। ज्ञान बिराग हृदय नहि जाके। अब मायावश हो जाने से ज्ञान नही रह गया। परम हितकारी, परम गुरु, परमेश्वर पर आक्षेप करते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पर संपदा सकहु नहिं देखी। तुम्हरे इरषा कपट बिसेषी॥
मथत सिंधु रुद्रहि बौराएहु। सुरन्ह प्रेरि बिषपान कराएहु॥४॥

अर्थ : तुम दूसरो की सम्पदा नही देख सकते। तुम्हे डाह और कपट अधिक है। सिन्धु मथने के समय महादेव को पागल तुमने बनाया। देवताओ को प्रेरणा करके उन्हे विष तुमने पिलवा दिया।

व्याख्या तुम्हें सुन्दर स्त्री भी है। तुम अमर भी हो। अजेय भी हो। चराचर तुम्हारी सेवा भी करते है। यह सब सम्पदा तुम्हे प्राप्त है। पर ऐसी ही सम्पदा हमे भी प्राप्त हो जाय। यह तुम नही देख सकते। डाह से तुमने मेरे साथ कपट किया। डाह तो अन्य देवताओ मे भी है। पर तुममे अधिक है।

तुम्हे रुद्र से डर रहा कि ये मुझे अपने मन का नही करने देंगे तो उन्हे विष दिलवा दिया। प्राण नही गया, पर पागल तो हो गये। यह सब तुम्हारी प्रेरणा से हुआ।

दो असुर[1] सुरा बिष[2] संकरहि, आपु रमा मनि चारु।
स्वारथ साधक कुटिल तुम्ह, सदा कपट ब्यवहारु॥१३६॥

अर्थ : असुरो के लिए शराब, शङ्कर के लिए विष और अपने लिए लक्ष्मी और कौस्तुभ। तुम बडे स्वार्थसाधक और कुटिल हो। तुम्हारा सदा कुटिल व्यवहार चलता है।

व्याख्या दूसरा भय असुरो से था। उन्हे सुरा दे दी। जब दोनो पागल हो गये तब रमा और कौस्तुभ मणि को स्वय ले लिया। स्त्री और धन के पीछे तुम्हे विष दिलवाना, मद्य पिलवाना कोई बडी बात नही है। तुम्हारा स्वार्थ सिद्ध होना चाहिए। स्वभाव से ही कुटिल हो। अत सदा कपट व्यवहार करते हो। मुझसे भी कपट करके स्त्री तथा तदनुगामिनी सम्पदा हरण कर ली।

परम स्वतंत्र न सिर पर कोई। भावै मनहि करहु तुम्ह सोई॥
भलेहि मद मदहि भल करहू। बिसमउ हरख न हिअँ कछु धरहू॥१॥

अर्थ परम स्वतन्त्र हो। सिर पर कोई है नही। जो जी चाहता है वही करते हो। भले का बुरा और बुरे का भला करते हो। तुम्हारे हृदय मे न विस्मय होता है न हर्ष होता है।

---

१ अथासीत् वारुणी देवी कन्या कमललोचना। असुरा जगृहुस्ता वै हरेरनुमतन ते।
तब कमल लोचना कन्यावारुणी उत्पन्न हुई। उसे हरि की अनुमति से असुरो ने ग्रहण किया। भागवत ॥

२ प्रीते हरौ भगवति प्रीयेह् सचराचर.। तस्मादिद गरं भुञ्जे प्रजाना स्वस्तिरस्तु मे।
भगवान् हरि के प्रसन्न होने से मैं चराचर को प्रसन्न करता हूँ। इसलिए मैं यह विष खाता हूँ। मेरी प्रजाओ का कल्याण हो। भागवत।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : परवस जीव स्ववस भगवंता। तुम्हारे सिर पर यदि कोई होता तो तुम इस तरह अन्याय न कर सकते। तुम्हे उचित अनुचित का विचार करना पड़ता। स्वतन्त्र हो। उचित अच्छा लगा तो वही किया। अनुचित अच्छा लगा तो वही कर डाला।

मैं गुण गाता फिरता हूँ तो मुझे बन्दर का रूप दे दिया। और वे राक्षसी वृत्तिवाले जो मेरी दुर्दशा पर आनन्द मनाते थे उन्हे ब्राह्मण का शरीर दे दिया। मन्द करने का तुम्हें विस्मय नही। भला करने का हर्ष नही।

डहकि डहकि परिचेहु सब काहू। अति असंक मन सदा उछाहू ॥
कर्म सुभासुभ तुम्हहि न बाधा। अब लगि तुम्हहि न काहू साधा ॥२॥

अर्थ : सबको ठग ठगकर ढीठ हो गये हो। अति अशङ्क होने से तुम्हारे मन मे सदा उत्साह रहता है। शुभाशुभ कर्म तुम्हे बाधा नही करता। अबतक तुमको किसी ने ठीक नही किया।

व्याख्या : कोई ठगाई से नही बचा। धर्म करते बलि को ठग लिया। ठग को तो दण्ड का डर रहता है। अत. वह सशङ्क रहता है। तुम सदा अशङ्क हो। क्योंकि तुम्हे दण्ड देनेवाला कोई नही। इसलिए सदा उछाह रहता है।

भले भवन अब बायन दीन्हा। पावहुगे फल आपन कीन्हा ॥
बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा ॥३॥

अर्थ : अब अच्छे घर बयना दिया है। अपने किये का फल पाओगे। जिस शरीर को धारण करके तुमने मुझे ठगा है वही शरीर धारण करो। यह मेरा शाप है।

व्याख्या : अच्छे घर बायन देने से उससे भी अच्छा बायन बदले में मिलता है। आज तक तुमने दरिद्रो के घर बायन दिया था। इससे बदले मे बायन नही मिला। इसबार मुझे बायन दिया है। इसके बदले मे बायन मिलेगा। अपने कर्म का फल पाओगे।

कपि आकृति तुम्ह कीन्हि हमारी। करिहहिं कीस सहाय तुम्हारी ॥
मम अपकार कीन्ह तुम भारी। नारि विरह तुम होय दुखारी ॥४॥

अर्थ : तुमने मेरी आकृति बन्दर की कर दी। तो बन्दर ही तुम्हारी सहायता करेंगे। तुमने मेरा बड़ा अपकार किया। तुम भी स्त्री के विरह मे दुःखी होओगे।

व्याख्या : तुम्हारी ऐसी असहायावस्था हो जायगी कि बन्दरो के पास जाकर सहायता चाहोगे। बन्दर तुम्हे सहायता देंगे। तब तुम्हारा संकट से उद्धार होगा। यथा :

एष दत्वा च वित्तानि प्राप्य चानुत्तमं यशः।
लोकनाथ पुरा भूत्वा सुग्रीवं नाथमिच्छति ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सीता यस्य स्नुषाचासीच्छरण्यो धर्मवत्सल ।
तस्य पुत्र शरण्यश्च सुग्रीव शरण गत ॥
यस्य प्रसादे सतत प्रसीदेयुरिमा प्रजा ।
स रामो वानरेन्द्रस्य प्रसादमभिकाङ्क्षते ॥
येन सर्वगुणोपेता पृथिव्या सर्वपार्थिवा ।
मानिता सतत राजा सदा दशरथेन वै ॥
तस्यायं पूर्वज पुत्रस्त्रिषु लोकेषु विश्रुत ।
सुग्रीव वानरेन्द्र तु राम शरणमागत ॥
शोकाभिभूते रामे तु शोकार्ते शरण गते ।
कर्तुमर्हति सुग्रीव प्रसाद सह यूथपै ॥

सीताहरण के बाद जब रामजी शवरी के आश्रम से पंपासर होते ऋष्यमूक पहुँचे वहाँ हनुमानजी से भेट हुई । उस समय लक्ष्मणजी हनुमान् जी से कहते हैं इन्होने धन दान देकर अनुत्तम यश प्राप्त किया है । पहिले लोकनाथ रह चुके हैं । सुग्रीव को नाथ बनाना चाहते है । जिसकी पुत्रवधू सीता थी, जो शरण्य और धर्म-वत्सल थे । उस शरण्य के पुत्र सुग्रीव की शरण म आये हैं । जिसके प्रसाद से सदा प्रजा सुखी रहती थी वह रामचन्द्र वानरेन्द्र की कृपा चाहते है । जिस महाराज दशरथ ने सर्वगुणोपेत पृथ्वी के सब राजाओं को मान दिया था उनके ज्येष्ठपुत्र जिनकी ख्याति तीनो लोको म है वही राम वानरेन्द्र सुगीव की शरण मे आये है । ऐसे शोकाभिभत और शोकार्त्त राम के शरण आने पर सुग्रीव को चाहिए कि सेनापतियो के साथ उनपर कृपा करें । वा रा कि । इस भाँति शाप का साफल्य दिखाया । तुम्हारे कारण मुझ स्त्रीविरह हुआ । तुम भी स्त्रीविरह म ऐसे ही दुखी होगे ।

दो श्राप सीस धरि हरखि हिय, प्रभु बहु बिनती कीन्हि ।
निज माया कै प्रबलता, करषि कृपानिधि लीन्हि ॥१३७॥

अर्थ प्रभु ने शाप को सिरपर धारण करके हृदय म हर्षित होकर बहुत विनती की और कृपानिधि ने अपनी माया की प्रबलता खीच ली ।

व्याख्या शाप को सिरपर चढ़ाया । कहा कि इस शाप से मैं प्रसन्न हूँ । पर आप अप्रसन्न न रहे । इसलिए बहुत विनती की । दिखला दिया कि वस्तुत विस्मय हर्ष नही है । दण्ड क्रिया नही करता प्रत्युत हर्ष का कारण होता है । माया नही खीची उसकी प्रबलता खीच ली । पूरी माया खीच लने से मोक्ष हो जाता । लीला ही समाप्त हो जाती ।

श्रीकृष्णावतार म जैसी स्तुति नारद की भगवान् ने की है । उससे इस विनती का भी कुछ आभास मिल जायगा । अत उस स्तुति का भी यहाँ उल्लेख किया जाता है

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यह स्तुति स्कन्द पुराण मे इस प्रकार है

अहं हि सर्वदा स्तौमि नारदं देवदर्शनम् ।
महेन्द्रगदितेनैव स्तोत्रेण शृणु तन्नृप ॥१॥
उत्सङ्गाद् ब्रह्मणो जातो यस्याहन्ता न विद्यते ।
अगुप्तश्रुतिचारित्रं नारदं तं नमाम्यहम् ॥२॥
अरतिं क्रोधचापल्ये भयं नैतानि यस्य च ।
अदीर्घसूत्रं तं धीरं नारदं प्रणमाम्यहम् ॥३॥
कामाद्वा यदि वा लोभाद् वाचं यो नान्यथा वदेत् ।
उपास्यं सर्वजन्तूनां नारदं तं नमाम्यहम् ॥४॥
अध्यात्मगतितत्त्वज्ञं ज्ञानशक्तिं जितेन्द्रियम् ।
ऋजुं यथार्थवक्तारं नारदं तं नमाम्यहम् ॥५॥
तेजसा यशसा बुद्ध्या नयेन विनयेन च ।
जन्मना तपसा वृद्धं नारदं प्रणमाम्यहम् ॥६॥
सुखशीलं सुसंवेषं सुभोजं भास्वरं शुचिम् ।
सुचक्षुषं सुवाक्यं च नारदं प्रणमाम्यहम् ॥७॥
कल्याणं कुरुते वाढं पापं यस्मिन्न विद्यते ।
न प्रीयते परार्थेन योऽसौ तं नौमि नारदम् ॥८॥
वेदस्मृतिपुराणोक्तं धर्मं यो नित्यमास्थितः ।
प्रियाप्रियविमुक्तं तं नारदं प्रणमाम्यहम् ॥९॥
अशनादिष्वलिप्तं च पण्डितं नालसं द्विजम् ।
बहुश्रुतं चित्रकथं नारदं प्रणमाम्यहम् ॥१०॥
नार्थे क्रोधे च कामे च भूतपूर्वोऽस्य विभ्रमः ।
येनैते नाशिता दोषा नारदं तं नमाम्यहम् ॥११॥
वीतसम्मोहदोषो यो दृढभक्तिश्च श्रेयसि ।
सुनयं सत्रपं तं च नारदं प्रणमाम्यहम् ॥१२॥
असक्तः सर्वसङ्गेषु यः सक्तात्मेव लक्ष्यते ।
अदीर्घसंशयो वाग्मी नारदं प्रणमाम्यहम् ॥१३॥
नासूयत्यागमं किञ्चित् तपः कृत्येन जीवति ।
अवध्यकालो वश्यात्मा तमहं नौमि नारदम् ॥१४॥
कृतश्रमं कृतप्रज्ञं न च तृप्तं समाधितः ।
नित्ययत्नाप्रमत्तं च नारदं तं नमाम्यहम् ॥१५॥
न हृष्यत्यर्थलाभेन योऽलाभेन व्यथत्यपि ।
स्थिरबुद्धिरसक्तात्मा तमहं नौमि नारदम् ॥१६॥
तं सर्वगुणसम्पन्नं दक्षं शुचिमकातरम् ।
कालज्ञं च नयज्ञं च शरणं यामि नारदम् ॥१७॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इम स्तव नारदस्य नित्य राजन् जपाम्यहम्।
तेन मे परमा प्रीति करोति मुनिसत्तम ॥१८॥
अन्योऽपि य शुचिर्भूत्वा नित्यमेता स्तुति जपेत्।
अचिरात्तस्य देवर्षि प्रसाद कुरुते परम् ॥१९॥
एतान् गुणान्नारदस्य त्वमप्याकर्ण्य पार्थिव।
जप नित्य स्तव पुण्य प्रीतस्ते भविता मुनि ॥२०॥

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र महाराज उग्रसेन से कह रहे हैं। मैं देवराज इन्द्र द्वारा किये गये स्तोत्र से दिव्यदृष्टिसम्पन्न श्रीनारदजी की सदा स्तुति करता हूँ। वह स्तोत्र श्रवण कीजिये। जो ब्रह्माजी की गोद से प्रकट हुए हैं। जिनके मन मे अहङ्कार नही है। जिनका शास्त्रज्ञान और चरित्र किसी से छिपा नही है। उन देवर्षि नारद को मैं नमस्कार करता हूँ। जिनमे उद्वेग, क्रोध, चपलता और भय का सर्वथा अभाव है। जो धीर होते हुए भी दीर्घसूत्री किसी काम मे अधिक विलम्ब करनेवाले नही हैं। उन नारदजी को मै प्रणाम करता हूँ। जो कामना वश अथवा लोभ से झूठी बात मुँह से नही निकालते और समस्त प्राणी जिनकी उपासना करते है। उन नारदजी को मैं नमस्कार करता हूँ। जो अध्यात्मगति के तत्त्व को जाननेवाले ज्ञानशक्ति सम्पन्न तथा जितेन्द्रिय हैं। जिनमे सरलता भरी है तथा जो यथार्थ बात कहनेवाले है। उन नारदजी को मे प्रणाम करता हूँ। जो तेज, यश, वुद्धि, नय, विनय, जन्म तथा तपस्या सभी दृष्टियो से बढ़े हुए हैं उन नारदजी को मैं नमस्कार करता हूँ। जिनका स्वभाव सुखमय, वेप सुन्दर तथा भोजन उत्तम है। जो प्रकाशमान, पवित्र, शुभदृष्टिसम्पन्न तथा सुन्दर वचन बोलनेवाले हैं। उन नारदजी को मैं प्रणाम करता हूँ। जो उत्साहपूर्वक सबका कल्याण करते हैं। जिनमे पाप का लेश भी नही है तथा जो परोपकार करने से कभी अघाते नही हैं। उन नारदजी को मैं नमस्कार करता हूँ। जो सदा वेद, स्मृति और पुराणो मे बताये हुए धर्म का आश्रय लेते हैं तथा प्रिय और अप्रिय से रहित है। उन नारदजी को मैं प्रणाम करता हूँ। जो खानपान आदि भोगो मे कभी लिप्त नही होते हैं। जो पण्डित, आलस्य रहित तथा बहुश्रुत ब्राह्मण हैं। जिनके मुख से अद्भुत बाते, विचित्र कथाएँ सुनने को मिलती है। उन नारदजी को मै प्रणाम करता हूँ। जिन्हे अर्थ धन के लोभ, काम अथवा क्रोध के कारण भी पहले कभी भ्रम नही हुआ है। जिन्होने इन काम क्रोध लोभ तीनो दोपो का नाश कर दिया है। उन नारद जी को मै प्रणाम करता हूँ। जिनके अन्त करण से सम्मोह रूप दोप दूर हो गया है। जो कल्याणमय भगवान् और भागवत धर्म मे दृढभक्ति रखते है। जिनकी नीति बहुत उत्तम है तथा जो सङ्कोची स्वभाव के हैं। उन नारद जी को मैं प्रणाम करता हूँ। जो समस्त सङ्गो से अनासक्त है तथापि सबमे आसक्त हुए से दिखाई देते हैं। मन मे किसी सशय के लिए स्थान नही है। जो बडे अच्छे वक्ता है। उन नारदजी को मैं नमस्कार करता हूँ। जो किसी भी शास्त्र मे दोपदृष्टि नही करते। तपस्या का अनुष्ठान ही जिनका जीवन है। जिनका समय कभी भगवच्चिन्तन

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विना व्यर्थ नही जाता और जो अपने मन को सदा वश मे रखते हैं उन श्री नारद जी को मैं प्रणाम करता हूँ। जिन्होने तप के लिए श्रम किया है। जिनकी बुद्धि पवित्र एव वश मे है। जो समाधि से कभी तृप्त नही होते। अपने प्रयत्न मे सदा सावधान रहनेवाले उन नारद जी को मैं नमस्कार करता हूँ। जो अर्थलाभ होने से हर्ष नही मानते और लाभ न होने पर मन मे क्लेश का अनुभव नही करते। जिनकी बुद्धि स्थिर तथा आत्मा अनासक्त है। उन नारद जी को मैं नमस्कार करता हूँ। जो सर्वगुण सम्पन्न, दक्ष, पवित्र, कातरतारहित कालज्ञ हैं उन देवर्षि नारद को मैं भजता हूँ। नारद जी के इस स्तोत्र का मैं नित्य जप करता हूँ। इससे वे मुनिश्रेष्ठ मुझ पर अधिक प्रेम रखते हैं। दूसरा कोई भी यदि पवित्र होकर प्रतिदिन इस स्तुति का पाठ करता है तो देवर्षि नारद बहुत शीघ्र उसपर अपना अतिशय कृपाप्रसाद प्रकट करते हैं। राजन्! आप भी नारद जी के इन गुणो को सुनकर प्रतिदिन इस स्तोत्र का जप करें। इससे वे मुनि आप पर बहुत प्रसन्न होगे।

जव हरि माया दूरि निवारी। नहिं तहँ रमा न राजकुमारी ॥
तव मुनि अति सभीत हरि चरना। गहे पाहि प्रनतारति हरना ॥१॥

अर्थ जव हरि ने माया दूर हटा दी तव वहाँ न लक्ष्मी रह गई न राजकुमारी रह गई। फिर तो मुनि ने अत्यन्त भयभीत होकर प्रभु का चरण पकड लिया। और कहा कि हे प्रणत के दु ख हरनेवाले! मेरी रक्षा करो।

व्याख्या . वहाँ रमा और राजकुमारी पहिले भी नही थीं। पर माया के वल से मुनिजी उनको प्रभु के साथ देखते थे। अव मुनिजी के समझ मे आया कि यह सव माया थी। मैंने क्या किया? भगवान् को दुर्वचन कहा शाप दिया। अत अति डर गये। चरण पकड लिया। 'पाहि पाहि' चिल्लाने लगे।

मृषा होउ मम श्राप कृपाला। मम इच्छा कह दीन दयाला ॥
मैं दुर्वचन कहे वहु तेरे। कह मुनि पाप मिटिहिं किमि मेरे ॥२॥

अर्थ . हे कृपाल मेरा शाप झूठा पड जाय। दीनदयाल ने कहा यह मेरी इच्छा है। मुनि ने कहा कि मैंने वहुत से दुर्वचन आपको कहे। मेरे पाप कैसे मिटेंगे?

व्याख्या : मुनिजी चरण पकडकर यही विनती करते हैं कि कृपा करके मेरे शाप को मिथ्या कर दीजिये। दीनदयाल कहते हैं कि वह शाप नही था मेरी इच्छा थी। सत्य सकल्प मिथ्या कैसे होगा? भला शाप तो आपकी इच्छा थी, पर मैंने दुर्वचन भी तो वहुत से कहे हैं। इस पाप से मेरी रक्षा कैसे होगी?

जपहु जाइ संकर सत नामा। होइहि हृदय तुरत विश्रामा ॥
कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरे। असि परतीति तजहु जनि भोरे ॥३॥

अर्थ : जाकर शङ्कर के शत नाम का जप करो। तुरन्त ही हृदय मे शान्ति होगी। शिव के समान मुझे कोई प्रिय नही है। ऐसा विश्वास भूलकर भी नही छोडना।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या मुनिजी की शान्ति नष्ट हो गई। माया गई तो दुर्वचन का पश्चात्ताप रह गया। अत विश्राम का उपाय कहते है। अशान्ति शङ्करशतनाम जप से दूर होगी। शङ्कर शतनाम स्तोत्र निम्नलिखित है

अथ श्रीशिवाष्टोत्तरशतनाममहामन्त्रस्य आदिनारायणऋषिरनुष्टुप्छन्द श्रीसदाशिवो देवता श्रीसदाशिवप्रीत्यर्थे जपे विनियोग ।

वज्रदंष्ट्र त्रिनयन कालकण्ठमरिन्दमम्।
सहस्रकरमत्युग्र वन्दे देवमुमापतिम्॥
ॐ शिवो महेश्वर शम्भु पिनाकी शशिशेखर।
वामदेवो विरूपाक्ष कपर्दी नीललोहित॥
शङ्कर शूलपाणिश्च खट्वाङ्गी विष्णुवल्लभ।
शिपिविष्टोऽम्बिकानाथ श्रीकण्ठो भक्तवत्सल॥
भव शर्वस्त्रिलोकेश शितिकण्ठ शिवाप्रिय।
उग्र कपाली कामारिरन्धकासुरसूदन॥
गङ्गाधरो ललाटाक्ष कालकाल कृपानिधि।
भीम परशुहस्तश्च मृगपाणिर्जटाधर॥
कैलासवासी कवची कठोरस्त्रिपुरान्तक।
वृषाङ्को वृषभारूढो भस्मोद्धूलितविग्रह॥
सामप्रिय स्वरमयस्त्रयीमूर्तिरनीश्वर।
सर्वज्ञ परमात्मा च सोमसूर्याग्निलोचन॥
हविर्यज्ञमय सोम पञ्चवक्त्र सदाशिव।
विश्वेश्वरो वीरभद्रो गणनाथ प्रजापति॥
हिरण्यरेता दुर्धर्षो गिरीशो गिरिशोऽनघ।
भुजङ्गभूषणो भर्गो गिरिधन्वा गिरिप्रिय॥
अष्टमूर्तिरनेकात्मा सात्त्विक शुद्धविग्रह।
शाश्वत खण्डपरशुरज पाशविमोचक॥
कृत्तिवासा पुरारातिर्भगवान् प्रमथाधिप।
मृत्युञ्जय सूक्ष्मतनुर्जगद्व्यापी जगद्गुरु॥
व्योमकेशो महासेनो जनकश्चारुविक्रम।
रुद्रो भूतपति स्थाणुरहिर्बुध्न्यो दिगम्बर॥
मृड पशुपतिर्देवो महादेवोऽव्यय प्रभु।
पूषदन्तभिदव्यग्रो दक्षाध्वरहरो हर॥
भगनेत्रभिदव्यक्त सहस्राक्ष सहस्रपात्।
अपवर्गप्रदोऽनन्तस्तारक परमेश्वर॥
इमानि दिव्यनामानि जप्यन्ते सर्वदा मया।
नामकल्पलतेयं मे सर्वाभीष्टप्रदायिनी॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नामान्येतानि सुभगे शिवदानि न संशय ।
वेद सर्वस्वभूतानि नामान्येतानि वस्तुत ॥
एतानि यानि नामानि तानि सर्वार्थदान्यत ।
जप्यन्ते सादर नित्य मया नियमपूर्वकम् ॥
वेदेपु शिवनामानि श्रेष्ठान्यघहराणि च ।
सन्त्यनन्तानि सुभगे वेदेपु विविधेष्वपि ॥
तेभ्यो नामानि सगृह्य कुमाराय महेश्वर ।
अष्टोत्तरसहस्रन्तु नाम्नानुपदिशत्पुरा ॥

इति श्री गौरीनारायणसम्वादे शिवाष्टोत्तरशतनाम सम्पूर्णम् ।

सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ । निज अपराध रिसाहि न काऊ । जो अपराध भक्त कर करई । राम रोष पावक सो जरई । तुमने शिवजी के हितोपदेश का अनादर किया, उनकी स्पर्धा की, उसका फल यह हुआ है । यदि तुम्हे प्रतीति होती कि शिव के समान मुझे कोई प्यारा नही तो उनके हितोपदेश का अवहेलन न करते । और तुम्हारा मन भक्ति छोडकर स्त्री का दास न बनता ।

जेहि पर कृपा न करहि पुरारी । सो न पाव मुनि भगति हमारी ॥
अस उर धरि महि विचरहु जाई । अब न तुम्हहि माया नियराई ॥४॥

अर्थ जिसपर पुरारि कृपा नही करते वह हे मुनि ! मेरी भक्ति नही पाता । ऐसा मनम धारण करके पृथ्वी पर विचरो । अब तुम्हारे निकट माया नही आवेगी ।

व्याख्या मेरी भक्ति शिवजी की कृपा पर अवलम्बित है । ऐसा मन म रखकर पृथ्वी पर विचारो । डरो न कि कही फिर माया म फँस जायँगे । शिक्षा यथेष्ट दे दी गई । तब वर दिया कि अब तुम्हारे निकट माया नहीं आयेगी । परन्तु यह न भूलना कि शिवजी से अधिक प्रिय मुझ कोई नही है ।

दो बहु विधि मुनिहि प्रबोधि प्रभु, तब भये अतरध्यान ।
सत्य लोक नारद चले, करत राम गुनगान ॥१३८॥

अर्थ प्रभु बहुत प्रकार से मुनि को समझा बुझाकर तब अन्तर्धान हो गये । नारदजी रामगुण का गान करते सत्यलोक चल ।

व्याख्या प्रभु है, सेवक पर ममता है और प्रीति है इसलिए अनेक विधि से समझाया । यथा

मेरे ही बलते विजय सदा भक्त को होय ।
पै शिवकृपाकटाक्ष बिनु भक्त होय नहि कोय ॥
पाइ मोर बल जो करै सकर ते अभिमान ।
अवसि तासु छीजै भगति होय महाहित हान ॥
याते तब अभिमान को दीन्ह्यौ मूल उखारि ।
निज कौतुक के हेतु ही शाप लीन्ह सिरधारि ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हानि ग्लानि जिय जनि करौ मानि मोर उपदेस।
प्रीति किये शिवपदकमल नहि क्लेस को लेस॥

इस भाँति समझाकर अन्तर्धान हो गये। गुणगान बन्द था फिर आरम्भ हो गया। गुणगान करते सत्यलोक को चले। सत्यलोक ब्रह्मलोक के ही अन्तर्गत है। परन्तु सबसे ऊँचा है जहाँ ब्रह्मदेव रहते हैं। पिताजी को सब समाचार सुनाने नारदजी वहाँ चले।

हरगन मुनिहि जात पथ देखी। बिगत मोह मन हरष बिसेखी॥
अति सभीत नारद पहँ आये। गहि पद आरत बचन सुनाये॥१॥

अर्थ हरगणो ने मुनिजी को रास्ते मे जाते देखा। लख लिया कि वे विगत-मोह हैं और बहुत हर्षित हैं। बहुत डरे हुए नारदजी के पास आये और उनके चरण पकडकर आर्त वचन कहे।

व्याख्या हरगण वहाँ से तो भागे। परन्तु शाप का प्रभाव उनपर पडने लगा। हरगण हैं जान गये कि नारदजी ने शाप दे दिया। अत अनुग्रह कराने का समय देख रहे हैं। नारदजी ने मोहवश क्रुद्ध होकर शाप दिया था। हरगणो ने देखा कि इस समय विगतमोह भी हैं और हर्षित भी हैं। वरदान पाया है कि अब न तुम्हहि माया नियराई। अत अपराधक्षमापन का यही उपयुक्त समय है।

'अति सभीत' मनसा। 'गहि पद' कर्मणा। 'आरत वचन सुनाये' वाचा। अर्थात् मनसा वाचा कर्मणा नारदजी के शरण गये।

हरगन हम न बिप्र मुनिराया। बड अपराध कीन्ह फल पाया॥
श्राप अनुग्रह करहु कृपाला। बोले नारद दीन दयाला॥२॥

अर्थ हे मुनिराज! हम हरगण हैं, विप्र नही है। बडा अपराध किया है, फल भी पाया। हे कृपालु अब शापानुग्रह करिये। दीनदयाल नारदजी बोले

व्याख्या शरण आये हैं। अत रुद्रगण छल कपट का त्याग करते हैं। कहे देते है कि हम हरगण है, ब्राह्मण नही हैं। अर्थात् हमने कपट से ब्राह्मण वेष धारण किया था। बडा अपराध किया। आप महात्मा है, साधु है। आपकी हमलोगो ने हँसी उडाई। उसका फल पाया। रोने की बारी आगई। हरगण पद प्राप्त करके राक्षस हुआ चाहते है। पतन के लक्षणो का अनुभव हो रहा है।

हम जानते है कि शाप नही हट सकता। जिसके शाप को भगवान् सिरपर धारण करते हैं उसका शाप हटाने के लिए सोचा भी नही जा सकता। परन्तु शापानुग्रह हो सकता है। अत जो सम्भव हो वही हमारे लिए कीजिये। नारदजी दीनदयाल हैं। उन्हे उनकी दीनता पर दया आगई।

निसिचर जाइ होहु तुम्ह दोऊ। बैभव बिपुल तेज बल होऊ॥
भुजबल बिस्व जितब तुम जहिआ। धरिहहि बिस्नु मनुज तनु तहिआ॥३॥

तुम दोनो जाकर राक्षस होओ। तुमको बडा ऐश्वर्य, तेज और बल हो। तुम

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जिस दिन अपनी भुजाओ के बल से ससार को जीत लोगे उसी दिन विष्णु मनुष्य का शरीर धारण करेगे ।

व्याख्या शापानुसार राक्षस तुम लोगो को होना होगा। अब अनुग्रह यह है कि राक्षसयोनि से ही तुम्हारे दोनो लोक बनेंगे। इस लोक मे तुम्हे बडा ऐश्वर्य, तेज और बल होगा। तुम लोग अपनी भुजा के बल से ससार को जीतोगे। यथा भुजबल विस्व बस्य करि, राखेसि कोउ न स्वतत्र। मडलीक मनि रावन राज्य करै निज मत्र। परलोक भी बनेगा। जिस दिन ससार जीत लोगे उसी दिन विष्णु नर रूप मे अवतीर्ण होगे। इस कल्प मे रावण ने बहुत दिन तक राज्य नही किया।

समर मरन हरि हाथ तुम्हारा। होइहहु मुकुत न पुनि ससारा ॥
चले जुगुल मुनिपद सिरु नाई। भये निसाचर कालहि पाई ॥४॥

अर्थ तुम्हारी मृत्यु विष्णु के हाथ से युद्ध मे होगी। मुक्त हो जाओगे। फिर ससार मे आना न होगा। दोनो मुनि के चरणो पर सिर नवाकर चले और काल पाकर राक्षस हुए।

व्याख्या रणाङ्गण मे सन्मुखमरण का बडा माहात्म्य है। यथा द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ। परिव्राट् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखे हत। अर्थ ये दो पुरुष इस लोक मे सूर्यमण्डल भेदनेवाले है एक तो योगी परिव्राजक और दूसरा रण म सन्मुख मरनेवाला। उसमे भी हरि के हाथ से मरण होगा। तुम लोगो की निर्वाण मुक्ति होगी। जय विजय की भाँति तीन जन्म म नही।

दोनो कृतार्थ होकर चले, राक्षस होकर शापानुग्रह के अनुकूल ग्रहस्थिति म उनका जन्म हुआ।

दो एक कलप एहि हेतु प्रभु, लीन्ह मनुज अवतार।
सुर रजन सज्जन सुखद, हरि भजन भुवि भार ॥१३९॥

अर्थ एक कल्प मे इस कारण प्रभु ने मनुष्य का अवतार धारण किया। हरि देवताओ को प्रसन्न करनेवाले सज्जनो को सुख देनेवाले तथा पृथ्वी का भार हरण करनेवाले हैं।

व्याख्या तीसरे कल्प की कथा है। जिसम भगवान् क्षीरशायी का रामावतार हुआ। यह नारदजी के शाप के कारण हुआ था। अत मार साप करि अगीकारा। सहत राम नाना दु ख भारा। यह विचार करके नारदजी के अरण्य काण्ड के अन्त मे मिलन की कथा इसी अवतार की है।

अवतार के तीन कारण देते हैं १ सुररञ्जन २ सज्जन सुखद ३ और भजन भुविभार भी हरि है।

एहि बिधि जनम करम हरि केरे। सुदर सुखद बिचित्र घनेरे ॥
कलप कलप प्रति प्रभु अवतरही। चारु चरित नानाविध करही ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ इस विधि से हरि के जन्म और कर्म सुन्दर सुख देनेवाले और बहुत विचित्र हैं। प्रत्येक कल्प मे प्रभु अवतार लेते हैं। और अनेक प्रकार की सुन्दर लीलाएँ करते हैं।

व्याख्या शापादि यद्यपि देखने मे अवतार के कारण है। पर वस्तुत उनकी इच्छा ही कारण है। शापादि भी उनकी इच्छा से ही होते है। यथा मृषा होउ मम श्राप कृपाला। मम इच्छा कह दीनदयाला। तथा निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गो द्विज लागि। इसीलिए प्रभु के जन्म कर्म दिव्य कहे जाते हैं। वे सुन्दर, सुखद और बडे विचित्र होते है।

प्रतिकल्प भवेद्रामो रावणश्चापि राक्षस। एव रामसहस्राणि रावणाना सहस्रश। भवितव्यानि भूतानि तथा देवी प्रवर्तते। अ ६१ ३९ ४१। कालिकापुराण मे कहा है कि प्रत्येक कल्प मे राम होते हैं और रावण होता है। इस भाँति हजारो राम और हजारो रावण हो गये और होनेवाले है। उसी भाँति देवी भी प्रवृत्त होती हैं। दूसरे अवतार तो कल्प मे कई बार होते है। पर रामावतार एक कल्प मे एक ही बार होता है और प्रत्येक कल्प के चरित्रो म विधिभेद रहता है। चरित्र का ढाँचा प्राय एक सा होता है।

तब तब कथा मुनीसन्ह गाई। परम पुनीत प्रबध बनाई ॥
बिबिध प्रसग अनूप बखाने। करहि न सुनि आचरजु सयाने ॥२॥

अर्थ तब तब मुनीश्वरो ने बहुत प्रबन्ध बनाकर कथा का गान किया है। अनेक प्रकार के अनोखे प्रसङ्गो का वर्णन किया है। जिसको सुनकर चतुर लोग आश्चर्य नही करते।

व्याख्या कल्पभेद से चरित्र मे भेद पडता है। प्रत्येक कल्प के चरित्र को मुनीश्वर गान करते है। अत एक रामायण की कथा दूसरे से सर्वत्र मेल नही खाती। प्रसङ्गो मे भेद पडता है। वाल्मीकीय मे एक प्रकार की कथा है, अध्यात्म मे दूसरे प्रकार की है। अद्भुत म तीसरे प्रकार की और आनन्दरामायण मे चौथे प्रकार की। इससे समझदार लोग आश्चर्य नही करते।

हरि अनत हरिकथा अनता। कहहि सुनहि बहु बिधि सब सता ॥
रामचद्र के चरित सुहाए। कलप कोटि लगि जाहि न गाये ॥३॥

अर्थ हरि अनन्त हैं। हरि की कथा अनन्त है। सन्त लोग उसे बहुत प्रकार से कहा सुना करते हैं। श्रीरामचन्द्र के सुन्दर चरित्र करोड कल्पो मे भी गाये नही जा सकते।

व्याख्या उनकी स्थिति सदा सर्वत्र है। इसलिए अनन्त हैं। उनके अवतारो की सख्या नही हैं इसलिए भी अनन्त हैं एव उनकी कथाएँ रामायण भी अनन्त है। अत सब सन्त उसे अनेक प्रकार से कहते सुनते हैं।

एक एक अवतार के चरित्रो का पारावार नही है। यथा श्रीराम रावन

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



समर चरित अनेक कल्प जे गावही। सत सेष सारद निगम कवितेउ तदपि पार न पावही। अत कहते है कि कोटि कल्प तक गाये नही जा सकते।

यह प्रसंग मै कहा भवानी। हरिमाया मोहहि मुनि ग्यानी॥
प्रभु कौतुकी प्रनत हितकारी। सेवत सुलभ सकल दुख हारी॥४॥

अर्थ हे भवानी! मैंने यह प्रसङ्ग कहा कि ज्ञानी मुनि भी हरि की माया से मोहित होते है। प्रभु कौतुकी हैं। प्रणत का हित करनेवाले हैं। सेवा करने म सुलभ और सब दुखो के हरण करनेवाले है।

व्याख्या शिवजी उमा से कहते हैं कि तुमने सन्देह किया था। यथा गिरिजा चकित भईं सुनि बानी। नारद विष्णु भक्त पुनि ज्ञानी। कारन कवन श्राप मुनि दीन्हा। का अपराध रमापति कीन्हा। कि नारदजी को मोह हुआ। यह बडा आश्चर्य है। इसलिए मैने यह प्रसङ्ग कहा कि ज्ञानी मूढ न कोय जेहि छन जस रघुवर करहिं। ज्ञानी मुनि भी हरिमाया से मोहित होते हैं। प्रसङ्ग मे जो बातें दिखलाई गई हैं उन्ही को सक्षेप से प्रभु के विशेषण मे दिखलाते है १ कौतुकी। यथा मुनि कर हित मम कौतुक होई। २ प्रनत हितकारी। यथा जेहि विधि होइहि परमहित नारद सुनहु तुम्हार। सोइ हम करब न आन कछु बचन न मृषा हमार। ३ सेवत सुलभ। यथा बहु विधि विनय कीन्ह तेहि काला। प्रकटे प्रभु कौतुकी कृपाला। ४ सकल दुखहारी। यथा बिगत मोह मन हरख बिसेखी।

सो सुर नर मुनि कोउ नाहिं, जेहि न मोह माया प्रबल।
अस विचारि मन माहिं, भजिअ महामाया पतिहि॥१४०॥

अर्थ देवता, मनुष्य और मुनि ऐसा कोई नही है जिसे प्रबल माया न मोह ले। ऐसा मन मे विचार करके महामाया के पति को भजना चाहिए।

व्याख्या सुनु खग प्रबल राम की माया। जो ज्ञानिहु कर चित अपहरई। बरिआई बिमोह बस करई। उस महामाया पर केवल उसके पति की आज्ञा चल सकती है यथा भृकुटि बिलास नचावै ताही। अस प्रभु छाडि भजिय कहु काही। क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहि सकल राम की माया।

अपर हेतु सुनु सैलकुमारी। कहौं बिचित्र कथा बिस्तारी॥
जेहि कारन अज अगुन अरूपा। ब्रह्म भयउ कोसलपुर भूपा॥१॥

अर्थ हे पार्वती! भगवान् के अवतार का अन्य हेतु सुनो। मैं उनकी विचित्र कथा को विस्तार करके कहता हूँ जिस कारण से अज, अगुण, अरूप ब्रह्म कोसलपुर के भूप हुए।

व्याख्या अब चौथे कल्प की कथा कहते है। तीन कल्पो मे विष्णु का रामावतार कहकर अब ब्रह्म का रामावतार कहते है। इस अवतार को वल्लभ मत मे भी षोडशकल अर्थात् पूर्णविहाररूपेण स्वीकार किया है। विष्णु के अवतार का व्याज

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रायेण कोई न कोई ब्रह्मशाप है, उसकी पूर्ति के लिए हरि का अवतार होता है और ब्रह्म के अवतार में केवल भक्तानुग्रह कारण है। इसी अवतार की कथा विस्तार से कहने का श्रीगोस्वामी जी का सकल्प है। भावार्थ यह कि तीन कल्पो के अवतारो का कारण सक्षेप से कह आये हैं। ब्रह्म के अवतार की कथा विस्तार से कहने का संकल्प है। शेष तीन कल्पो की कथाएँ भी वैसी ही हुई थी। जहाँ कोई विशेषता आ पडी है उसका भी विस्तृत कथा मे समावेश कर दिया गया है। वह स्पष्ट मालूम पडता है। इस ब्रह्मावतार की विशेषता यह है कि इसमे रघुवीर ने सब चरित्रो को अतिशय रूप मे किया है। यथा एक बार अतिशय सब चरित किये रघुवीर। इसी अवतार मे उमा को मोह हुआ था।

अजन्मा, त्रिगुणातीत, स्थूल सूक्ष्म से परे जो ब्रह्म है सो कोसलाधीश हुआ, विष्णु भी उसी निर्गुण ब्रह्म के सगुण स्वरूप हैं। इनके रामावतार मे तथा साक्षात् राम ब्रह्म के अवतार मे कोई भेद नही है। फिर भी परत्वापरत्व का तारतम्य स्वीकार किया जाता है।

जो प्रभु बिपिन फिरत तुम देखा। बधु समेत धरे मुनि बेखा ॥
जासु चरित अवलोकि भवानी। सती सरीर रहिहु बौरानी ॥२॥

अर्थ जिस प्रभु को तुमने भाई के साथ मुनि के वेष मे बन मे फिरते हुए देखा है। जिसका चरित देखकर हे भवानि! तुम सती शरीर मे बावली बन गयी थी।

व्याख्या सती जन्म की याद दिलाते हैं कि उस जन्म मे जो तुमने विरहावस्था मे रामजी को देखा था वह साक्षात् ब्रह्म का अवतार का चरित बड़ा गहन था। इसी अवतार के चरित ने तुम्हे पागल कर दिया था। इससे उस अवतार का अधिक परत्व कहते है।

अजहु न छाया मिटति तुम्हारी। तासु चरित सुनु भ्रम रुजहारी ॥
लीला कीन्हि जो तेहि अवतारा। सो सब कहिहौं मति अनुसारा ॥३॥

अर्थ आज भी तुम्हारे ऊपर से वह छाया हटती नही है। उसी का चरित्र सुनो। जो भ्रम रूपी रोग को हरण करनेवाला है। उन्होंने अवतार ग्रहण करके जो लीलाएँ की मैं अपनी बुद्धि के अनुसार सब कहूँगा।

व्याख्या यद्यपि सती शरीर दक्षशुक्रसम्भव अब नही रह गया। अब तुम्हारा पार्वतीतनु है। फिर भी उस जन्म के पागलपन की छाया भ्रम अब भी बना हुआ है। वह भ्रम उनके चरित्र सुनने से ही जायगा। अत उस अवतार की तो सब लीला मति अनुसार कहेगे। अर्थात् विष्णु के तीन अवतार की सब कथा नही कहेगे। प्रसङ्गात् कही कही कहगे। लीला से पता चल जायगा कि किस कल्प की कथा हो रही है। यथा आरण्यकाण्ड मे नारद मिलन की कथा ब्रह्म के अवतार वाली नही है। स्पष्ट ही वह नारदकल्प की कथा है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भरद्वाज सुनि संकर बानी । सकुचि सप्रेम उमा मुसुकानी ॥
लगे बहुरि बरनै वृषकेतू । सो अवतार भयेउ जेहि हेतू ॥४॥

अर्थ हे भारद्वाज ! शङ्कर की वाणी सुनकर उमा सङ्कुचित हुईं और मुसुकराईं । फिर वृषकेतु, जिस कारण से वह अवतार हुआ उसे वर्णन करने लगे ।

व्याख्या सती सरीर रहिहु बौरानी सुनने से सङ्कोच, सो सब कहिहौं मति अनुसारा सुनने से प्रेम । और अजहुँ न छाया मिटत तुम्हारी सुनने से मुसकराहट । एक जन्म के कर्मफल भोग पूरा हो जाने पर भी कर्मलेश रह जाता है जो दूसरे जन्म का कारण होता है । यह कर्मघाट की बात है । अत इसे कर्मघाट के वक्ता के मुख से ही कहलाया ।

इतना कहकर कर्मघाट के वक्ता योगी याज्ञवल्क्य फिर उमाशङ्कर संवाद आरम्भ करते हैं कि वृषकेतु ब्रह्म के रामावतार का कारण वर्णन करने लगे ।

दो सो मै तुम सन कहौं सबु, सुनु मुनीस मनलाइ ।
रामकथा कलि मल हरनि, मंगल करनि सुहाइ ॥१४१॥

अर्थ वह सब मै तुमसे कहता हूँ । हे मुनीश ! मन लगाकर सुनो । रामकथा कलि के मल की हरण करनेवाली, मङ्गल करनेवाली और सुन्दर है ।

व्याख्या वह सब कारण मैं तुमसे कहूँगा क्योंकि तुम मुनीश हो । अर्थात् दूसरे से नही कहता । इस कथा मे मनको बहुत सावधान रखना । रामकथा म तनिक सी असावधानी करने से पार्वती आज आपत्ति म फँस गईं । इसका अनादर नहीं होना चाहिए । क्योंकि इससे महाफलोदय होता है । कलिमल का नाश होकर मङ्गल की प्राप्ति होती है और यह कथा सुन्दर भी है ।

## स्वायम्भू मनु का इतिहास

स्वायम्भू मनु अरु सतरूपा । जिन्हते भै नर सृष्टि अनूपा ॥
दंपति धरम आचरण नीका । अजहुँ गाव श्रुति जिन्हकै लीका ॥१॥

अर्थ स्वायम्भू मनु और शतरूपा जिनसे अनूप नर सृष्टि हुई दोनो प्राणियो का आचरण बहुत अच्छा था । आज भी वेद उनके प्रामाण्य का गान करता है ।

व्याख्या ब्रह्मदेव को स्वयम्भू कहते हैं । उनसे उत्पन्न होने के कारण आदि मन्वन्तर के मनु स्वायम्भू कहलाये । ब्रह्मदेव के ही अर्धभाग से स्वायम्भू मनु और दूसरे अर्धभाग से शतरूपा हुईं । अनेक रूप धारण करने से उनका नाम शतरूपा हुआ । इनके पहिले मानसी सृष्टि का प्रचार था । इन्होने पहिले पहल मनुष्य की सृष्टि की । जिसकी उपमा नही है । यथा नर तन सम नहि कवनिउ देही । जीव चराचर जाचत जेही । नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी । ग्यान बिराग भगति सुभ देनी ।

इनका धर्माचरण इतना उत्तम था कि महर्षियों ने इनसे धर्म पूछा । इनके बतलाये हुए धर्म का ही धर्मशास्त्र बना जिसे मनुस्मृति कहते हैं । इनके बाद पाँच

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


मन्वन्तर में पाँच मनु हुए। यह सातवाँ वैवस्वत मन्वन्तर चल रहा है। परन्तु स्वायम्भू मनु की ही मनुस्मृति आजतक परम प्रमाण मानी जाती है। वेद भी 'यन्मनुरवदत् तद्भेषजम्' जो मनु कहते हैं वही भवरोग के लिए औषध है कहकर मनु के प्रामाण्य का स्थापन करता है। वेद अपौरुषेय है। उसमे व्यक्तिविशेष का नाम नही है। उसमे जो व्यक्तिविशेष के नाम आते भी हैं वे पदो के नाम हैं। प्रत्येक कल्प जो पहिले मनु होते हैं वे स्वायम्भू कहलाते है। और ऐसे ही ज्ञानी महात्मा होते है। उनमे से किस स्वायम्भू की चरचा की जाती है। इसे बतलाते हुए कहते है कि जिनके बेटे उत्तानपाद और प्रियव्रत हैं।

नृप उत्तानपाद सुत जासू। ध्रुव हरि भगत भयेउ सुत जासू॥
लघुसुत नाम प्रियव्रत ताही। वेद पुरान प्रससहि जाही॥२॥

अर्थ जिसके बेटे राजा उत्तानपाद थे जिसके पुत्र ध्रुव हरिभक्त हुए। उनके मनु के छोटे बेटे का नाम प्रियव्रत था। जिसकी प्रशसा वेद पुराण करते है।

व्याख्या स्वायम्भू मनु के सन्तानो की योग्यता कहते हैं। राजा उत्तानपाद उनके पुत्र हुए। उत्तानपाद के पुत्र ध्रुव हुए। जिन्होने बचपन मे ही तप से नारायण को प्रसन्न किया। यथा ध्रुव सगलानि जप्यौ हरि नाऊँ। पायेउ अचल अनूपम ठाऊँ। मनुजी के दूसरे बेटे प्रियव्रत थे। ये आत्माराम तथा महाभागवत थे। इनकी पुराणो मे बडी प्रशसा है। उत्तानपाद और प्रियव्रत दोनो भगवान् के अश से उत्पन्न थे।

देवहूति पुनि तासु कुमारी। जो मुनि कर्दम कै प्रिय नारी॥
आदिदेव प्रभु दीन दयाला। जठर धरेउ जेहि कपिल कृपाला॥३॥

अर्थ उनकी बेटी का नाम देवहूति था। जो कर्दम मुनि की प्रिय स्त्री थी। आदिदेव, दीनदयाल कृपाल प्रभु कपिल को जिसने गर्भ मे धारण किया था।

व्याख्या कर्दम प्रजापति ने बहुत बडी तपस्या करके भगवान् से अपने अनुरूप पत्नी माँगी। तब उन्हे देवहूति तपश्चर्या के फलरूप मे प्राप्त हुईं। अत 'प्रियनारी' कहा। इन्ही देवहूति के उदर से कपिलावतार हुआ। भावार्थ यह कि पुण्यशील के वश मे ही अवतार होता है।

साख्यसास्त्र जिन्ह प्रगट बखाना। तत्त्व विचार निपुन भगवाना॥
तेहि मनु राज कीन्ह बहु काला। प्रभु आयसु सब विधि प्रतिपाला॥४॥

अर्थ जिन्होने साख्य शास्त्र को प्रकट करके वर्णन किया। भगवान् तत्त्व के विचार मे बडे निपुण थे। उस मनु ने बहुत समय तक राज किया। और प्रभु की आज्ञा का सब प्रकार से पालन किया

व्याख्या भगवान् कपिलदेव ने लुप्त हुए साख्यशास्त्र का उपदेश अपनी माता देवहूति को दिया। यह सेश्वर साख्य था। इसका वर्णन भागवत मे है। कपिलदेवजी के शिष्य आसुरि हुए।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बहत्तर चतुर्युगी के लगभग एक मनु और उनके पुत्रों का राज्य रहता है। इसलिए कहते हैं कि स्वायम्भू मनु ने बहुत काल तक राज्य किया। प्रभु की आज्ञा ही धर्म है। चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म । वेद मे जो वाक्य आज्ञारूप से कहे गये हैं। यथा सत्य वद, धर्मं चर, मातृदेवो भव। इत्यादि। सत्य बोलो। धर्म करो। माँ को देवता मानो। ये ही धर्म हैं। वेद ईश्वर का वाक्य है। अत उसकी आज्ञा ईश्वर की आज्ञा है। सो उन आज्ञाओ का मनुजी ने सब भाँति से पालन किया। और आज्ञा पालन से बडी दूसरी सेवा नही है। यथा आज्ञा समान सुसाहिब सेवा। अत उनका राज्य करना भी भगवत्सेवा रूप था। 'सब विधि' कहकर मनुजी का श्रद्धातिरेक दिखलाया।

सो होइ न विषय विराग, भवन बसत भा चौथपनु।
हृदय बहुत दुख लाग, जनम गयउ हरि भगति बिनु ॥१४२॥

अर्थ घर मे बसते चौथापन आगया। और विषय से विराग होता नही। अत हृदय म बडा दु ख हुआ कि बिना हरिभक्ति के जन्म बीत गया।

व्याख्या वृद्धावस्था आगई। अर्थात् विषय भोग का सामर्थ्य घट चला फिर भी विषय से विराग नही हुआ। स्वय मनुजी ने कहा है न जातु काम कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते। कभी भी विषयोपभोग से काम की तृप्ति नही होती। हवि पाकर अग्नि की भाँति वह अधिक बढता है। विषयविराग, बिना विषय मे विरसता का ज्ञान हुए नही होता। कामी पुरुष को अत्यन्त घृणित अङ्ग मे सुन्दरता का बोध होता है। उसमे और विष्ठा के कृमि मे कौन अन्तर है? इस प्रकार का विचार करने से विषय विरसता का ज्ञान होता है। विषय वासना का चिरसस्कार होने से, विरसता का ज्ञान होने पर भी एकाएक विषय नही छूटता। जबतक विषयो से हटकर मन हरिचरणो मे न लगे तबतक भक्ति का उदय नही कहा जा सकता। इतना कर्मकाण्ड करते रहने पर भी बिना भक्ति के मनुजी ने कृतार्थता नही मानी। कहते हैं कि जन्म गएउ हरि भकि बिनु। अर्थात् भक्ति से ही जन्म का साफल्य है।

बरबस राज सुतहि तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा ॥
तीरथबर नैमिष बिख्याता। अति पुनीत साधक सिधि दाता ॥१॥

अर्थ राजा ने पुत्र को राज्य आग्रह पूर्वक दिया और स्त्री सहित आप वन को गये। तीर्थो मे श्रेष्ठ नैमिष प्रसिद्ध है। वह अत्यन्त पवित्र और साधको को सिद्धि देनेवाला है।

व्याख्या पुत्र भी ऐसे विषयविमुख कि राज्य लेने को तैयार नही। राजा के आग्रह से उन लोगो ने राज्य स्वीकार किया। महाराज मनु ने गृहस्थाश्रम त्याग करके वानप्रस्थाश्रम मे प्रवेश किया। यथा चौथेपन जाइय नृप कानन।

ब्रह्मदेव स ऋषियो ने तपस्या के लिए पवित्र भूमि पूछी। उन्होने एक चक्र

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दिभि. । अर्थ · त्याग करने योग्य गुण आदि को छोडकर ज्ञान, शक्ति, बल, ऐश्वर्य, वीर्य और तेज आदि सद्गुण भगवत् शब्द के वाच्य है।

करहि अहार साक फल कदा । सुमिरहिं ब्रह्म सच्चिदानदा ॥
पुनि हरि हेतु करन तप लागे । बारि अहार मूल फल त्यागे ॥१॥

अर्थ शाक फल कन्द का आहार करते है और सच्चिदानन्द ब्रह्म का स्मरण करते है। फिर हरि के लिए तप करने लगे, फूल-फल छोडकर केवल जल आहार रह गया।

व्याख्या अन्नाहार छोड दिया। वन्य शाक फल कन्द का आहार करने लगे। जिसका मन्त्र जपा जाता है उसी का ध्यान किया जाता है। उसी का स्मरण किया जाता है। उसी के लिए तपस्या होती है। यहा वासुदेव शब्द का अर्थ स्पष्ट हो गया ब्रह्मसच्चिदानन्द को वासुदेव कहते हैं। वही राम हैं। यथा राम सच्चिदानद दिनेसा। यह मनुजी की दिनचर्या है। द्वादशाक्षर मन्त्र जप करते-करते वासुदेव के चरणो मे मन अत्यन्त लग गया। अत जप से विरत होने पर भी उन्ही ब्रह्म सच्चिदानन्द का सुमिरन करते है। क्षुधा शान्त करने के लिए वन्य शाक फल कन्द खा लेते हैं।

यहाँ तक तो जप होता रहा। अब तप भी आरम्भ हुआ। अनशन परम तप है। सो कन्द फल शाक भी छोड दिया। केवल जल का आधार रह गया। असाध्य साधन तो तप से ही होता है।

उर अभिलाष निरतर होई । देखिअ नयन परम प्रभु सोई ॥
अगुन अखड अनत अनादी । जेहि चितहि परमारथवादी ॥२॥

अर्थ बराबर मन मे यही अभिलाषा होती थी कि उस प्रभु को आँख से देखें। जो निर्गुण, अखण्ड अनन्त और अनादि हैं। परमार्थवादी जिनकी चिन्ता करते हैं।

व्याख्या प्रेम बढने से भगवद्दर्शन के लिए प्राण समाकुल हो उठे। ध्यान मे दर्शन से सन्तोष न हुआ। आँखो से देखना चाहते हैं। यथा भरिलोचन बिलोकि अवधेसा। तब सुनिहौ निरगुन उपदेसा। ब्रह्मा, विष्णु रुद्र प्रभु हैं। श्रीरामजी महाप्रभु हैं। महाप्रभु का स्वरूप कहते हैं।

जो प्रकृतिपार होने से निर्गुण है। निरवयव होने से अखण्ड है। नाशरहित होने से अनन्त है। अज होने से अनादि है। ब्रह्मवादी जिसका चिन्तन करते हैं। एक क्षण भी बिना चिन्तन के व्यतीत नही होने देते।

नेति नेति जेहि बेद निरूपा । निजानद निरुपाधि अनूपा ॥
सभु बिरचि बिष्नु भगवाना । उपजहिं जासु अस ते नाना ॥३॥

अर्थ जिसे वेद नेति-नेति कहकर निरूपण करता है। जो निजानन्द,

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उपाधिरहित और उपमारहित है। जिसके अंश से अनेक ब्रह्मा, शम्भु और विष्णु भगवान् उत्पन्न होते है।

व्याख्या नेति-नेति अर्थात् 'यह भी नही, यह भी नही' कहकर वेद भी निरूपण करता है। भावार्थ यह कि वेद कहता है कि स्थूल भी नही है, सूक्ष्म भी नही है। दोनो अवस्थाओ के निषेध से कोई अभावात्मक न समझ ले। इसलिए निजानन्द अर्थात् स्वरूपानन्द रूप कहा। उसे निजानन्द इसलिए कहते है कि उसमे अहकार नही है। जितना-जितना अभ्यासयोग से अहकार की विस्मृति होती है उतना ही सूक्ष्मदृष्टि से निजानन्द का अनुमान होता है। यथा यावद्यावदहकारो विस्मृतोऽभ्यासयोगत । तावत्तावत् सूक्ष्मदृष्टेर्निजानन्दोऽनुमीयते । जाति, गुण, क्रिया और सज्ञा, यही चार प्रकार की उपाधियाँ है। उसमे ये चारो नही है। इसलिए वह निरुपाधि कहलाता है। उसके सदृश कुछ नही है। इसलिए वह अनूप है। ऐसा महाप्रभु नयन का विषय कैसे होगा ?

त्रिगुण के अधिष्ठाता त्रिदेव भगवान् है। उत्पत्ति-स्थिति-नाश मे समर्थ हैं। ऐसे-ऐसे अनेक त्रिदेव उसके अश प्रतिविम्ब से उत्पन्न होते हैं। ऊपर अखण्ड कह आये है। अत वह निरश है फिर भी अश कहने से 'अश इव अश' ग्रहण करना पडेगा। जिस भाँति प्रतिविम्ब विम्ब का 'अश इव अश' है। यथा लोक लोक प्रति भिन्न विधाता। भिन्न विष्णु सिव मनु दिसित्राता। इत्यादि। विधिहि विधिता हरिहि हरिता, हरहि हरता जिन्ह दई। सो जानकीपति मधुर मूरति मोदमय मगलमई। वि प।

ऐसेउ प्रभु सेवक वस अहई। भगत हेतु लीला तनु गहई ॥
जौ यह वचन सत्य श्रुति भाषा। तौ हमार पूजिहि अभिलाषा ॥४॥

अर्थ ऐसे प्रभु भी सेवक के वश म हैं और भक्त के लिए लीला से शरीर धारण करते हैं। यदि यह वचन वेद ने सत्य कहा हो तो मेरी अभिलाषा भी पूरी होगी।

व्याख्या . सभी सेवा के वशीभूत है। पर वे प्रभु लौकिक नियमो के अधीन नही हैं। क्योकि वे जगत् से विलक्षण हैं। अत समझा जा सकता है कि वे सेवा के वशीभूत न होगे। पर ऐसी बात नही है। सेवा के वश्य वे भी हैं। स्वय प्रयोजन न होने पर भी निर्विकार और असङ्ग होते हुए भी भक्तो के लिए लीलाशरीर धारण करते हैं।

मनुजी वेदमय हैं। अत वेद के बल पर तप ठान दिया कि यदि वेद ने सत्य कहा है तो मेरी अभिलाषा की पूर्ति न होने का कारण नही है। इस भाँति सत्तर्क का आश्रयण करके सीधे-सीधे साधन मे लग जाना चाहिए। सत्तर्क से उत्पन्न हुई श्रद्धा को पाकर मनुष्य फल का भागी होता है। श्रद्धा से पौरुष मे लगा हुआ पुरुष सर्वथा मारा नही पडता। दृढ पौरुष से अवश्य फल होता है। वदवचन यथा

रूप रूप प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूप प्रतिचक्षणाय।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इन्द्रो मायाभि पुरूरूप ईयते युक्ताह्यस्य हरय शतादश।

ऋ म ६ अ ४ सू ४७ म १८

सकल ऐश्वर्ययुक्त परमेश्वर माया से राम कृष्णादि अनेक रूप धारण करता है। परमेश्वर का वह रूप भक्तो के दर्शन के लिए है। रावणादि को दण्ड देने के लिए जैसा-जैसा रूप आवश्यक था वैसा-वैसा धारण किया। क्योकि भगवान् के रूप अनन्त है मुख्यत दश है। भक्तियुक्त होकर जिसने उसका जैसा ध्यान किया वैसा ही उस भक्तचिन्तामणि ने रूप धारण किया उसके देह की इच्छामात्र से परिकल्पित होने से उसकी देह भी पराचिति चेतन है। वह पराचिति ही अभिन्न होकर भिन्न सी भासती है।

दो एहि विधि बीते बरप षट, सहस बारि अहार।
संवत सप्त सहस्र पुनि, रहे समीर अधार ॥१४४॥

अर्थ इस प्रकार जल का आहार करते हुए छ हजार वर्ष बीत गये। फिर सात हजार वर्ष हवा के आधार पर रहे।

व्याख्या पहिला तप छ हजार वर्ष का किया। क्रम से तपस्या बढाते गये। पहिले कुछ दिन शाक फल कन्द खाते रहे। फिर उसे कम करते-करते अपने को केवल जल पर उतार दिया। केवल जल पीकर रहना जब से आरम्भ किया तब से पहिला तप चला। धीरे-धीरे जल कम करने लगे। और अपने को वायु पर उतारने लगे। छ सहस्र वर्ष म एकदम जल छोडने म समर्थ हो गये। अत पहिला तप पूरा हुआ। फिर धीरे-धीरे वायुपान भी कम करने लगे। सो एकदम निराधार हो जाने मे सात सहस्र वर्ष लगे। तब दूसरा तप समाप्त हुआ।

बरप सहस दस त्यागेउ सोऊ। ठाढे रहे एक पग दोऊ ॥
बिधि हरि हर तप देखि अपारा। मनु समीप आए बहुबारा ॥१॥

अर्थ दश हजार वर्षो तक उसे भी छोड दिया। दोनो एक पैर से खडे रहे। ब्रह्मा, विष्णु और शिव उनका अपार तप देखकर उनके पास बहुत बार आए।

व्याख्या फिर निराधार एक पग से खडे हो गये। भाव यह कि इसके पहिले दोनो पग से खडे थे। जैसी तपस्या मनुजी के लिए कही गई है वही शतरूपा के लिए भी समझनी चाहिए। दशसहस्र वर्ष तक निराधार रहना तीसरी तपस्या है। पहिले तपस्या पर ब्रह्मदेव आये। दूसरी मे ब्रह्मा और विष्णु दोनो देव आये। तीसरी मे ब्रह्मा विष्णु और शिव तीनो आये। अव्यक्त के अभिमान से आविष्ट होकर ईश्वर ही रुद्र, हरि और ब्रह्मदेव के रूप से तीन प्रकार के होकर दृश्यादृश्य के अवभासक हुए।

मॉगहु बर बहु भॉति लोभाए। परम धीर नहि चलहि चलाए ॥
अस्थि मात्र होइ रहे सरीरा। तदपि मनाग मनहि नहि पीरा ॥२॥

अर्थ बहुत भॉति से ललचाया कि वर मॉगो। परमधीर हिलाये नही

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हिले। शरीर मे केवल हड्डी रह गई। फिर भी उनके मन मे तनिक भी पीडा नही थी।

व्याख्या 'इन्द्र पद लो, ब्रह्मलोक लो, वैकुण्ठ लो, कैलास लो। गुण रहित ब्रह्म इन्द्रिय का विषय नही है। वह तो अनुभवगम्य है। यदि मिश्र ब्रह्म का दर्शन भी हो गया तो क्षण भर के लिए हो जायगा। हम लोग भी तो वही हैं। कुछ भी कामना यदि तुम्हे नही तो मोक्ष माँगो। हम तुम्हे देंगे। ऐसा त्रिदेवो ने कहा परन्तु मनुजी के निश्चय मे परिवर्तन नही हुआ। यथा लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहि दरस जलधर अभिलाखे। निदरहि सरित सिंधु सरवारी। रूपबिन्दु जल होहि सुखारी। साधक को यही उचित है कि सर्वथा साध्य को ही मुख्य करके साधना करे।

तेईस सहस्र वर्ष की कठिन तपस्या से रक्तमासादि सब सूख गये। सत्ययुग म अस्थिगत प्राण रहा। सब धातुओ के सूख जाने पर हड्डी-हड्डी रह गई। फिर भी प्राण नही गया। भक्ति के प्रभाव से मन भावना मे लग गया। देह की ओर था ही नही। अत तनिक भी दु ख का अनुभव नही हुआ। यथा मन तहँ जहँ रघुवर वंदेही। बिनु मन तन दु ख सुख सुधि केही।

**प्रभु सर्वग्य दास निज जानी। गति अनन्य तापस नृपरानी ॥**
**माँगु माँगु वर भै नभ बानी। परम गभीर कृपामृतसानी ॥३॥**

अर्थ सर्वज्ञ प्रभु ने जान लिया कि निज दास हैं। और मुझे छोडकर इन्हे दूसरे की गति भी नही है। तब अत्यन्त गम्भीर कृपामृत से सनी हुई आकाशवाणी हुई वर माँगो क्या चाहते हो।

व्याख्या प्रभु ने जान लिया कि स्वार्थ का दास नही है। मेरा निजदास है। यथा जे पामर भये दास आस के ते सबही चेरे। रघुपति कृपा आस जोती जिन ते सेवक हरिकेरे। अनन्यगतिक हैं त्रिदेव की भी अपेक्षा नही रखते। तब परम गम्भीर आकाशवाणी हुई। जिसके आधार का पता नही कि कहाँ से उठ रही है। यह वाणी वागिन्द्रिय से उच्चरित नही है। 'सर्वेन्द्रियगुणाभास सर्वेन्द्रियविवर्जित' की वाणी है। उनकी कृपा ही अमृत है। उसी से सनी है। आकाश से शब्द आ रहा है' माँगो, माँगो।

**मृतक जिआवनि गिरा सुहाई। श्रवन रध्र होइ उर जब आई ॥**
**हृष्ट पुष्ट तन भए सुहाए। मानहुँ अबहि भवन ते आए ॥४॥**

अर्थ वह मरे हुए को जिलानेवाली वाणी जब कर्णछिद्र से होकर हृदय मे आई तब शरीर ऐसा हृष्ट पुष्ट हो गया मानो घर से चल आ रहे हैं।

व्याख्या अमृत से सनी वाणी है। इसलिए मृतक जिआवनि कहते हैं। इनकी श्रवणेन्द्रियो ने बाहर जाकर उन शब्दो को नही ग्रहण किया। वे शब्द ही कर्णमार्ग से हृदय मे प्रविष्ट हुए। अमृत हृदय मे पहुँचा। सूखे हुए धातु हरे हो गये। ऐसे हरे हुए और वृद्धि को प्राप्त हुए कि शरीर पुन जैसा का तैसा हो गया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. श्रवन सुधा सम वचन सुनि, पुलक प्रफुल्लित गात।
बोले मनु करि दण्डवत, प्रेम न हृदय समात ॥१५४॥

अर्थ कानो से अमृत सी वाणी सुनकर पुलक से शरीर प्रफुल्लित हो उठा। मनु दण्डवत करके बोले। प्रेम हृदय में समा नही रहा है।

व्याख्या अभिलाप की पूर्ति से परम हर्ष है। अत रोमाञ्च हो रहा है। कोई मूर्ति सामने न होने पर भी दण्डवत करते हैं। आकाश से वाणी आ रही है। और पृथ्वी पर दण्डवत हो रहा है। मनो री वा इस सूत्र से ङीप् विकल्प से होता है। अत शतरूपा भी मनु हैं। यहाँ पर मनु शतरूपा दोनो का दण्डवत और बोलना कहा गया।

सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। विधि हरि हर वंदित पदरेनू॥
सेवत सुलभ सकल सुखदायक। प्रनतपाल सचराचर नायक ॥१॥

अर्थ सेवक के कल्पवृक्ष और कामधेनु सुनो। आपका पदरज विधि हरिहर द्वारा वन्दित है। आप सेवा करने मे सुलभ तथा सब सुखो के देनेवाले हैं। प्रणतपाल हैं और चर अचर के स्वामी हैं।

व्याख्या सुरतरु और सुरधेनु से पुँल्लिङ्ग और स्त्रीलिङ्ग दोनो कहा। यथा त्व स्त्री त्व पुमान्। सुरतरु से अभिमतदानी कहा। यथा अभिमत दानि देव तरुवर से और सुरधेनु से सुखखानि कहा। यथा रामकथा सुरधेनु सम, सेवत सब सुख खानि। विधि हरि हर उनके बल से ही अपना अपना कार्य सम्पादन कर सकते हैं। यथा जाके बल विरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा। अत प्रभु के चरणरज की सदा वन्दना करते हैं।

सुरतरु है। इसलिए सेवत सुलभ कहा। यथा जाइ निकट पहिचान तरु, छाँह समन सब सोच। माँगे अभिमत पाव जग, राउ रंक भल पोच। और कामधेनु हैं। इसलिए सकल सुखदायक कहा। प्रणतपाल से करुणा और सचराचरनायक से प्रभुता कही।

जौ अनाथ हित हम पर नेहू। तौ प्रसन्न होइ यह बर देहू॥
जो सरूप बस सिव मन माही। जेहि कारन मुनि जतन कराही ॥२॥

अर्थ हे अनाथहित! यदि हम लोगो पर स्नेह हो तो प्रसन्न होकर यह वर दो कि जो स्वरूप शिवजी के मन म बसता है और जिसके कारण मुनि लोग यत्न करते है।

व्याख्या सनाथ के तो सभी हित होते हैं। अनाथ के हित केवल आप ही हैं। बडा तप किया इस कारण स नेह नही। बल्कि हम अनाथ है और आप अनाथ नाथ है। इसलिए नेह का नाता है। यदि यह बात सत्य है तो यह वर दो। भाव यह कि विकल्प स्वीकार नही है।

शिवजी उस रूप को अपने मन के भीतर छिपाये हुए हैं। यथा जो हर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हृदय कमल महु गोए। और मुनि यत्न करते हैं। जिति पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुँक पावही। कभी ध्यान मे एक झलक आजाती है।

जो भुसुंडि मन मानस हंसा। सगुन अगुन जेहि निगम प्रससा॥
देखहि हम सो रूप भरि लोचन। कृपा करहु प्रनतारति मोचन॥३॥

अर्थ जो भुसुण्डि के मनरूपी मानसरोवर के हस है। जिनकी प्रशसा वेद सगुण निर्गुण रूप कहकर करते है। हम उस रूप को आँख भरकर देखे। हे प्रणत की आर्ति के हरण करनेवाले कृपा करो।

व्याख्या जिस रूप की प्रशसा सगुण अगुण कहकर वेद करते है जिस रूप से भुसुण्डिजी के मनरूपी मानस मे हस की भाँति आप विचरते है। नयनविषय होकर नही विचरते। उस रूप को मैं जबतक इच्छा हो तबतक अपने नयन का विषय करना चाहता हूँ। अत 'कृपा करहु' अर्थात् दर्शन दो। दर्शन के लिए यह तप यथेष्ट नही। अत विनिमय मे नही माँग सकते। कृपा का भरोसा है। यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैव आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम्। जिसके ऊपर वह अनुग्रह करता है उसीको प्राप्त होता है। उसी को परमात्मा अपने स्वरूप का दर्शन देता है काठके।

दपति बचन परम प्रिय लागे। मृदुल विनीत प्रेम रस पागे॥
भगत बछल प्रभु कृपा निधाना। बिस्वबास प्रगटे भगवाना॥४॥

अर्थ कोमल विनययुक्त प्रेमरस से पगे हुए दोनो प्राणियो के वचन बडे प्रिय लगे। भक्तवत्सल प्रभु, कृपानिधान और विश्वास, भगवान् प्रगट हुए।

व्याख्या . परम प्रिय लगनेवाले वचनो का लक्षण कहते है। मृदु विनीत और प्रेम मे पगे वचन ही परम प्रिय लगते है। बोले मनु करि दडवत, प्रेम न हृदय समात से उपक्रम करके दम्पति वचन परम प्रिय लागे से उपसहार करते हैं। मनुजी के साथ ही साथ शतरूपाजी भी बोलती जाती हैं। दम्पति का हृदय इतना अभिन्न है कि वे ही शब्द दोनो मुखो से एक साथ निकल रहे है।

तोन विशेषण वचन के मृदुल विनीत प्रेमरस पागे और तीन ही विशेषण भगवान् के दिये गये हैं: भगतबछल प्रभु कृपानिधाना। १ भक्तवत्सल है प्रेमरस पागे वचन प्रिय लगे। प्रभु हैं। विनीत वचन पर प्रसन्न हुए। कृपानिधान हैं। मृदु वचन पर कृपा की। बिस्वबास हैं। कही से आना जाना नही है - वही प्रकट हो गये। यथा: कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाही।

दो. नील सरोरुह नील मनि, नील नीरधर स्याम।
लाजहि तनु सोभा निरखि, कोटि कोटि सत काम॥१४६॥

अर्थ: नीलकमल, नीलमणि और नीले बादल के समान श्यामवर्ण है। शरीर की शोभा देखकर सौ करोड कामदेव भी लज्जित होते है स्याम सुभग सरीर जनु मन काम पूरनि हारु।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अद्भुत श्यामता है। जिसकी उपमा के लिए कोई वस्तु नही है। नील सरोरुह से स्निग्धता कोमलता तथा सुगन्ध कही। नीलमणि से दृढता तथा चमक कही। नीरधर से दर्शक के नेत्रो मे तरावट कही अथवा जल मे सर्वोत्तम नीलिमा नीलकमल की, थल मे नीलमणि की और नभ मे नीरधर की है। सो इन तीनो नीलिमाओ की शोभा सलोने श्यामसुन्दर मे कही गई। श्यामता 'न तत्र[1] चक्षुर्गच्छति' का प्रतीक है। यथा 'श्याम रंग शुचि प्रगट लखावत दृगते पार रहैया। सुन्दरता मे काम की ही ख्याति है। सो प्रभु के सौन्दर्य सूर्य के सामने काम जुगनू भी नही है। अत कोटि कोटि सत काम का लज्जित होना कहा। पहिले पूरे स्वरूप की शोभा कहकर शिखनख वर्णन करते है। साकार के रूप देखने की उत्कट अभिलाषा है। अत मुख पर ही पहिले दृष्टि पडी। अत कवि भी पहिले मुख का वर्णन करते है।

सरद मयक वदन छबि सीवा। चारु कपोल चिबुक दर ग्रीवा॥
अधर अरुन रद सुदर नासा। बिधु कर निकर बिनिंदक हासा॥१॥

अर्थ छवि की परमावधि मुख शरद् के चन्द्रमा के समान था। गाल और ठुड्डी सुन्दर, कण्ठ शख सा, लाल होठ, दाँत और नाक सुन्दर और हँसी चन्द्रमा की किरणो का तिरस्कार करनेवाली थी।

व्याख्या शरद्मयङ्क को मुख मण्डल से उपमित करने पर भी कवि को सन्तोष न हुआ। तब उसे छवि की परमावधि बतलाया। चारु शब्द का सम्बन्ध कपोल और चिबुक दोनो के साथ है। दोनो सुन्दर हैं। होठो के लाल होने की शोभा है। सो होठ लाल हैं। नासिका सुन्दर है। इन सब अवयवो की सुन्दरता से ही मुख की सुन्दरता है। अत प्रत्येक का विशेष वर्णन नही किया। इतना ही कहकर समाप्त किया कि इससे अधिक सुन्दरता है ही नही। जब मुख चन्द्रमा हुआ तो चन्द्रिका भी चाहिए। अत कहते हैं कि हँसी चाँदनी का भी मात करनेवाली है। यहाँ हँसी मनुशतरूपा के ऊपर अनुग्रह की सूचक है। यथा हृदय अनुग्रह इदु प्रकासा। सूचत किरन मनोहर हाँसा।

नव अबुज अबक छबि नीकी। चितवनि ललित भावती जी की॥
भृकुटि मनोज चाप छबि हारी। तिलक ललाट पटल दुतिकारी॥२॥

अर्थ नये कमल के समान आँखो की अच्छी शोभा थी। मनोहर चितवन जी को बहुत प्यारी लगती थी। भौहे कामदेव के कमान की शोभा को हरण करने-वाली थी और मस्तक पर चमकीला तिलक था।

व्याख्या आँखे बडी ही सुन्दर थी इससे नये कमल की उपमा दी। यथा नयन सुखमा निरखि नागरि सफल जीवन लेखु। मनहु बिधु जुग जलज बिरचे ससि सुपूरन मेखु गीतावली। पर कमल मे चितवन नही अत उसका अलग वर्णन करते है

---

१ वहाँ नेत्रो की पहुँच नही। ऐसा श्रुत कहती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कि वह कही नही जा सकती। जी को अच्छी लगती है। ऐसी चमत्कृत शोभा है कि कही पर निगाह ठहरती नही। इसलिए क्रम से वर्णन नही कर सकते।

टेढ़ी भौंह की उपमा काम के धनुष से दी। काम का धनुष इतना सुन्दर है कि उसका नाम उन्मादन है। उन्माद उत्पन्न कर देता है। इस भौंह के सामने उन्मादन कुछ भी नही। ललाटपटल पर होने से तिलक भी द्युतिकारी है। यथा भृकुटि भाल बिसाल राजत रुचिर कुकुम रेखु। भ्रमर द्वै रवि किरनि ल्याये करन जनु उन्मेखु। गी०। यहाँ तक केवल मुख की शोभा कही। शोभा का निर्णय मुख से ही होता है।

कुडल मकर मुकुट सिर भ्राजा। कुटिल केस जनु मधुप समाजा ॥
उर श्रीवत्स रुचिर वनमाला। पदिक हार भूपन मनिजाला ॥३॥

अर्थ मकराकृति कुण्डल कानो मे और सिर पर मुकुट शोभायमान था। घुँघराले बाल मानो भौंरो का समूह, वक्ष स्थल पर श्रीवत्स, वनमाला, मोहनमाला, भूषण और मणिजाल विराजमान था।

व्याख्या अब मकराकृत कुण्डल की शोभा कहते हैं। मनहु सवरारि मारि ललित मकर जुग विचारि दीन्हे ससि कहँ पुरारि भ्राजत दुहुँ ओरी। मकराकृति कुण्डल से कान छिपा हुआ है और मुकुट से सिर छिपा हुआ है। अत कान और सिर का पृथक् वर्णन नही है। घुँघराली लटो की उपमा मधुपसमाज से दी गयी है। उसके बीच मे मकराकृति कुण्डल और उसके ऊपर मुकुट की अलौकिक छटा है।

हृदय मे श्रीवत्सलाञ्छन रोम की भँवरी विशेष है। परतक लटकी हुई माला पहिने हैं। पादावलम्बिनी माला वनमालेति कथ्यते। मोहनमाला की शाभा अलग ही है और मणिभूपणो का तो जाल फैला हुआ है।

केहरि कधर चारु जनेऊ। बाहु विभूपन सुन्दर तेऊ ॥
करि कर सरिस सुभग भुजदडा। कटि निपग कर सर कोदडा ॥४॥

अर्थ सिंह सा कन्धा है। सुन्दर यज्ञोपवीत है और बाहु मे विभूषण हैं। वे भी सुन्दर हैं। हाथी के शुण्ड सी सुन्दर भुजाएँ है। कटि मे तरकस और हाथो मे बाण और धनुष है।

व्याख्या : वीरो मे कन्धे और भुजदण्ड की प्रशसा है। इसलिए कहते है कि सिंह सा कन्धा है। परशुरामजी का 'वृपभकन्ध उर बाहु विसाला' कहकर वर्णन है। अत उनसे भी विशेपता दिखलाते हुए केहरि कन्धर और करिकर सरिस सुभग भुजदडा कहते हैं। कटि निपङ्ग कर सर कोदडा। प्रभु की द्विभुजमूर्ति का वर्णन करते हैं। श्रुति भी अयमात्मा पुरुपविध कहती है। अर्थात् परमात्मा की मूर्ति पुरुप सी है। उस अनाम और अरूप के दिव्य नाम और दिव्य मूर्तियाँ भी हैं। सो यहाँ द्विभुज मूर्ति का प्रकट होना दिखलाते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो० तड़ित विनिंदक पीत पट, उदर रेख वर तीनि ।
नाभि मनोहर लेति जनु, जमुन भँवर छवि छीनि ॥१४७॥

अर्थ विजली की निन्दा करनेवाला पीताम्बर पहने उदर में तीन रेखाएँ शोभित हैं और मनोहर नाभि मानो यमुनाजी के भँवर की छवि को छीन लेती है।

व्याख्या पीतपट में अलौकिक चमक कही। यथा पीत निर्मल चैल, मनहुँ मरकत सैल पृथुल दामिनि रही छाइतजि सहजही। उदर रेख वर तीन से उदर की क्षीणता कही। नाभि की यमुनाजलभँवर से उपमा देकर उसकी सुन्दरता, श्यामता और गम्भीरता कही। यही द्विभुज मूर्ति शम्भु उरवासी है। इसी के लिए मुनि लोग यत्न करते हैं। और यही भुशुण्डिमनमानसहंस है। इसी को सगुण-निर्गुण कहकर वेदो ने प्रशंसा की है। यथा सगुणनिर्गुणस्वरूप ब्रह्म त्रिपादवि। इसी के उदर में अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड है। इसी के भीतर ही सब कुछ है। यह[1] परिच्छिन्न दिखाई पड़ती हुई भी अपरिच्छिन्न है। सर्वैश्वर्यमय है। यही परमेश्वरी मूर्ति विश्व ब्रह्माण्ड की प्रतीक है। इसीलिए इसे सगुणनिर्गुण रूप अनूप रूप कहा जाता है।

पद राजीव वरनि नहिं जाही। मुनि मन मधुप वसहिं जिन्ह माही॥
वाम भाग सोभति अनुकूला। आदि सक्ति छविनिधि जगमूला ॥१॥

अर्थ कमल ऐसे चरणो का वर्णन नही किया जा सकता जिसमें मुनियो के मनरूपी भौंरे बसते हैं। उनके बाएँ भाग में सदा अनुकूल शोभा की निधि और जगत् की मूलभूता आदि शक्ति शोभित है।

---

१ स्वमाया वनमालाख्या नानागुणमयी दधत्।
वासदछन्दोमय पीत ब्रह्मसूत्र त्रिवृत् स्वरम्॥
बिभर्ति साङ्ख्य योगञ्च देवो मकरकुण्डले।
मौलि पद पारमेष्ठ्य सर्वलोकाभयङ्करम्॥ श्री मद्भा
कण्ठ तु निर्गुण प्रोक्त माल्यते आद्ययाजया। गा
कूटस्थ सत्त्वरूपञ्च किरीट प्रवदन्ति माम्।
क्षरोत्तम प्रस्फुरन्त कुण्डल युगल स्मृतम्॥
ध्यायेन्मम प्रियो नित्य स मोक्षमधिगच्छति।
लवनिमेष परमान जुग वर्ष कल्पसरचड।
भजसि न मन तेहि राम कहँ काल जासु कोदड॥

अर्थ वनमाला के व्याज से नानागुणमयी माया को धारण करते हैं। पीताम्बर छन्दोमय है और यज्ञोपवीत प्रणवरूप है। मकरकुण्डल के व्याज से साङ्ख्ययोग को धारण करते हैं। सिर सब लोको को अभय करनेवाला ब्रह्मपद है। कण्ठ निर्गुण है जो आदि शक्तिरूपा माला से घिरा हुआ है। किरीट सत्त्वरूप कूटस्थ है। क्षर और अक्षर दोनो कुण्डल हैं। धनुष अखण्ड दण्डायमान कालरूप है और बाण परिच्छिन्न कालरूप है। इत्यादि।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या चरण की उपमा कमल से देकर भी उसे अवर्णनीय कहते हैं। क्योकि जैसी लालिमा चरण म है वैसी कमल म नही होती। यथा वसी मानहु चरन कमलनि अरुनता तजि तरनि गी०। कमल म भौंरे लुब्ध होकर बसते हैं। यथा कमलनि वसे निसि मधुकरा। पर ये पदकमल ऐसे हैं जिनके लिए मुनियो के मन भौंरे हो गये हैं। ससार छोड दिया पर इन्हे छोडना नही चाहते। जिस भाँति कमल के मकरन्द का पान भौंरे करते हैं उसी भाँति इन चरणकमलो का आनन्द मुनिलोग लते हैं। भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं। उनके वामभाग म आदिशक्ति योगमाया हैं। शक्ति और शक्तिमान् का अभेद है। मनुशतरूपा ने पुरुष और स्त्रीरूप दोनो रूपो से सम्बोधन किया था। यथा सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू अत भगवान् भी दो रूप से प्रकट हुए। पुरूप से छविसमुद्र हैं और स्त्रीरूप से छविनिधि हैं। स्त्रीरूप से पुरूप के अनुकूल हैं और जगमूल भी है। यथा पति अनुकूल सदा रह सीता। लव निमेप महँ भुवन निकाया। रचइ जासु अनुसासन माया पुरूप से ब्रह्म है तो स्त्रीरूप से मूलप्रकृति हैं।

जासु अस उपजहिं गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥
भृकुटि बिलास जासु जग होई। राम वाम दिसि सीता सोई॥२॥

अर्थ जिसके अश से गुणो की खानि अगणित लक्ष्मी पार्वती और ब्रह्माणी उत्पन्न होती है। जिसके भृकुटिविलास से ससार हो पडता है वही सीता रामजी के बाईं ओर हैं।

व्याख्या प्रभु के अश से त्रिदेव उपजते हैं। यथा जासु अस उपजे विधि नाना। सभु विरचि विस्नु भगवाना। और भगवती के अश से शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं। छविनिधि से गुणखानियो की उत्पत्ति बतलायी। राम और सीता म ऐसा अभेद और अनुकूलता है कि युगलमूर्ति के भृकुटिविलास म भी अन्तर नही है। यथा भृकुटिविलास जासु जग होई। राम वाम दिसि सीता सोई। और उमा राम की भृकुटि बिलासा। होइ बिस्व पुनि पावइ नासा। उसी सीताशक्ति द्वारा ही रामावतार होता है और भगवान् नयनविषय होते हैं। यथा प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भ वाम्यात्ममायया इसलिए कहा कि राम वाम दिसि सीता सोई।

छबि समुद्र हरि रूप बिलोकी। एक टक रहे नयन पट रोकी॥
चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहिं मनु सतरूपा॥३॥

अर्थ छवि के समुद्र हरिरूप को देखकर पलक गिराना बन्द करके एकटक रह गये। मनु और शतरूपा अनुपम रूप को आदर के साथ देख रहे हैं और अघाते नही।

व्याख्या समुद्र म नित्य नयी तरङ्गें उठा करती हैं। समुद्र को दखते जी नही ऊबता। सो हरि का रूप छविसमुद्र है। उसका पारावार नहीं है। उसम भी रूप की तरङ्गें उठा करती हैं। देखनेवाला तृप्त नही होता। प्रभु को छविसमुद्र और अम्बा को छविनिधि कहकर तात्त्विक अभेद द्योतित किया। आँख भर देखने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. तड़ित विनिंदक पीत पट, उदर रेख वर तीनि।
नाभि मनोहर लेति जनु, जमुन भँवर छवि छीनि ॥१४७॥

अर्थ बिजली को निन्दा करनेवाला पीताम्बर पहने उदर मे तीन रेखाएँ शोभित है और मनोहर नाभि मानो यमुनाजी के भँवर की छवि को छीन लेती है।

व्याख्या पीतपट मे अलौकिक चमक कही। यथा पीत निर्मल चैल, मनहुँ मरकत सैल पृथुल दामिनि रही छाइतजि सहजही। उदर रेख वर तीन से उदर की क्षीणता कही। नाभि की यमुनाजलभँवर से उपमा देकर उसकी सुन्दरता, श्यामता और गम्भीरता कही। यही द्विभुज मूर्ति शम्भु उरवासी है। इसी के लिए मुनि लोग यत्न करते हैं। और यही भुशुण्डिमनमानसहस है। इसी की सगुण-निर्गुण कहकर वेदो ने प्रशसा की है। यथा सगुणनिर्गुणस्वरूप ब्रह्म त्रिपादवि। इसी के उदर मे अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड हैं। इसी के भीतर ही सब कुछ है। यह[1] परिच्छिन्न दिखाई पडती हुई भी अपरिच्छिन्न है। सर्वाश्चर्यमय है। यही परमेश्वरी मूर्ति विश्व ब्रह्माण्ड की प्रतीक है। इसीलिए इसे सगुणनिर्गुण रूप अनूप रूप कहा जाता है।

पद राजीव बरनि नहि जाही। मुनि मन मधुप बसहि जिन्ह माही ॥
बाम भाग सोभति अनुकूला। आदि सक्ति छबिनिधि जगमूला ॥१॥

अर्थ कमल ऐसे चरणो का वर्णन नही किया जा सकता जिसमे मुनियो के मनरूपी भौंरे बसते हैं। उनके बाएँ भाग मे सदा अनुकूल शोभा की निधि और जगत् की मूलभूता आदि शक्ति शोभित है।

---

१ स्वमाया वनमालाख्या नानागुणमयी दधत्।
वासश्छन्दोमय पीत ब्रह्मसूत्र त्रिवृत् स्वरम् ॥
बिभर्ति साख्य योगश्च देवो मकरकुण्डले।
मौलि पद पारमेष्ठ्य सर्वलोकाभयङ्करम् ॥ श्री मद्भा
कण्ठ तु निर्गुण प्रोक्त माल्यते आद्ययाजया। गो
कूटस्थ सत्स्वरूपश्च किरीट प्रवदन्ति माम्।
क्षरोत्तम प्रस्फुरन्त कुण्डल युगल स्मृतम् ॥
ध्यायेन्मम प्रियो नित्य स मोक्षमधिगच्छति।
लवनिमेष परमानु जुग वर्ष कल्पसरचड।
भजसि न मन तेहि राम कहँ काल जासु कोदड ॥

अर्थ वनमाला के व्याज से नानागुणमयी माया को धारण करते हैं। पीताम्बर छन्दोमय है और यज्ञोपवीत प्रणवरूप है। मकरकुण्डल के व्याज से साख्ययोग को धारण करते हैं। सिर सब लोको को अभय करनेवाला ब्रह्मपद है। कण्ठ निर्गुण है जो आदि शक्तिरूपा माला से घिरा हुआ है। किरीट सत्स्वरूप कूटस्थ है। क्षर और अक्षर दोनो कुण्डल हैं। धनुष अखण्ड दण्डायमान कालरूप है और बाण परिच्छिन्न कालरूप है। इत्यादि।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या चरण की उपमा कमल से देकर भी उसे अवर्णनीय कहते है। क्योकि जैसी लालिमा चरण मे है वैसी कमल मे नही होती। यथा वसी मानहु चरन कमलनि अरुनता तजि तरनि गी०। कमल मे भौंरे लुब्ध होकर बसते हैं। यथा कमलनि बसे निसि मधुकरा। पर ये पदकमल ऐसे हैं जिनके लिए मुनियो के मन भौंरे हो गये हैं। ससार छोड दिया पर इन्हे छोडना नही चाहते। जिस भाँति कमल के मकरन्द का पान भौंरे करते है उसी भाँति इन चरणकमलो का आनन्द मुनिलोग लेते हैं। भगवान् सर्वशक्तिमान् हैं। उनके वामभाग मे आदिशक्ति योगमाया हैं। शक्ति और शक्तिमान् का अभेद है। मनुशतरूपा ने पुरुप और स्त्रीरूप, दोनो रूपो से सम्बोधन किया था। यथा सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू अत भगवान् भी दो रूप से प्रकट हुए। पुरुप से छविसमुद्र हैं और स्त्रीरूप से छविनिधि हैं। स्त्रीरूप से पुरूप के अनुकूल हैं और जगमूल भी है। यथा पति अनुकूल सदा रह सीता। लव निमेप महँ भुवन निकाया। रचइ जासु अनुसासन माया पुरुप से ब्रह्म है तो स्त्रीरूप से मूलप्रकृति हैं।

जासु अस उपजहि गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी॥
भृकुटि विलास जासु जग होई। राम वाम दिसि सीता सोई॥२॥

अर्थ जिसके अश से गुणो की खानि अगणित लक्ष्मी, पार्वती और ब्रह्माणी उत्पन्न होती हैं। जिसके भृकुटिविलास से ससार हो पडता है वही सीता रामजी के बाईं ओर हैं।

व्याख्या प्रभु के अश से त्रिदेव उपजते हैं। यथा जासु अस उपजै विधि नाना। सभु विरचि विस्नु भगवाना। और भगवती के अश से शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं। छविनिधि से गुणखानियो की उत्पत्ति बतलायी। राम और सीता म ऐसा अभेद और अनुकूलता है कि युगलमूर्ति के भृकुटिविलास मे भी अन्तर नही है। यथा भृकुटिविलास जासु जग होई। राम वाम दिसि सीता सोई। और उमा राम की भृकुटि विलासा। होइ विस्व पुनि पावइ नासा। उमी सीताशक्ति द्वारा ही रामावतार होता है और भगवान् नयनविपय होते हैं। यथा प्रकृति स्वामधिष्ठाय सम्भ-वाम्यात्ममायया इसलिए कहा कि राम वाम दिसि सीता सोई।

छवि समुद्र हरि रूप विलोकी। एक टक रहे नयन पट रोकी॥
चितवहि सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहि मनु सतरूपा॥३॥

अर्थ छवि के समुद्र हरिरूप को देखकर पलक गिराना बन्द करके एकटक रह गये। मनु और शतरूपा अनुपम रूप को आदर के साथ देख रहे हैं और अघाते नही।

व्याख्या समुद्र मे नित्य नयी तरङ्गें उठा करती हैं। समुद्र को देखते जी नही भरता। सो हरि का रूप छविसमुद्र है। उसका पारावार नही है। उसम भी रूप की तरङ्गें उठा करती हैं। देखनेवाला तृप्त नही होता। प्रभु को छविसमुद्र और अम्बा को छविनिधि कहकर तात्त्विक अभेद द्योतित किया। आँख भर देखने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मे पलक का गिरना बाधक है। अत उसका गिरना बन्द करके देखते है। फिर भी तृप्ति नही हो रही है।

हर्ष बिबस तन दसा भुलानी। परे दंड इव गहि पद पानी ॥
सिर परसे प्रभु निज करकंजा। तुरत उठाए करुना पुंजा ॥४॥

अर्थ · हर्ष के विवश हो जाने से शरीर की दशा भूल गई। चरण को हाथो से पकड़कर दण्डवत् किया। प्रभु ने अपने करकमल से उनके सिर का स्पर्श किया। और तुरन्त उठा लिया।

व्याख्या हर्षातिरेक मे शरीर की सुधि न रही। दण्ड की भाँति पृथ्वी पर गिरे, चरणो को पकड लिया। छोडते नही कि कही अन्तर्धान न हो जाँय। हृष्ट पुष्ट है, इसलिए दण्ड से उपमा दी। दुर्बल होते तो लकुट · छडी से उपमा दी जाती। यथा : परे लकुट इव चरनन लागी। सीतल सुभग छाँह जेहि करकी मेटति पाप ताप माया। निसिबासर तेहि कर सरोज की चाहत तुलसिदास छाया। वह अभय वरद हस्त जिसकी छाँह, पाप, ताप और माया को मिटाती है। करुणाकर प्रभु ने मनु शतरूपा के सिरपर रक्खा और उन्हे तुरन्त उठा लिया। वरदान देना चाहते हैं।

दो बोले कृपा निधान पुनि, अति प्रसन्न मोहि जानि।
माँगहु बर जोइ भाव मन, महादानि अनुमानि ॥१४८॥

अर्थ · कृपानिधान फिर बोले मुझे बहुत प्रसन्न जानकर और महादानी अनुमानकर जो जी चाहे सो वर माँगो।

व्याख्या : कृपानिधान है। इनकी कृपा अघाती नही। पहिले आकाशवाणी द्वारा बोले थे। अब फिर बोले मुझे अनुमान से जानो कि मैं महादानी हूँ। विधि हरि हर दानी हैं। तब अनुमान से सिद्ध है कि जिसके अश दानी हैं तो वह अशी महादानी क्यो न होगा ? तिसपर कहते हैं कि मुझे अति प्रसन्न जानो। महादानी अति प्रसन्न हो तो क्या न दे डाले। यह सब कहने का कारण यह कि ब्रह्मा, विष्णु और शिव के वरदान देने के लिए प्रस्तुत होने पर भी इन्होने नही माँगा था। इससे सिद्ध है कि मनु शतरूपा जो चाहते थे उसके मिलने की उनसे आशा न थी। इसीलिए उन्हे प्रोत्साहन देते हुए कहते हैं जो चाहो वर माँगो। तुम्हारी आशा पूर्ण होगी।

सुनि प्रभु बचन जोरि जुग पानी। धरि धीरजु बोली[1] मृदुबानी ॥
नाथ देखि पद कमल तुम्हारे। अब पूरे सब काम हमारे ॥१॥

अर्थ प्रभु के वचन सुनकर, दोनो हाथ जोडकर और धैर्य धारण करके

---

१ बोली क्रिया के कर्त्ता मनु अरु सतरूपा हैं। तृपित न मानहि मनु सतरूपा। क्रिया का सम्बन्ध शतरूपा के साथ है। इसलिए क्रिया का प्रयोग स्त्रीलिङ्ग मे हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कोमल वाणी : मनु और शतरूपा : बोली। हे नाथ ! तुम्हारे चरणकमल के दर्शन से मेरी सब कामनाएँ पूरी हो गईं।

व्याख्या : प्रभु की वाणी ही ऐसी हुई कि सेवक के हर्ष और प्रेमोद्गार का पारावार न रह गया। अतः धैर्य धरना पड़ा। जोरि जुग पानी कर्मणा, धरि धीरज मनसा, बोले मृदुवानी वचसा प्रार्थना की।

प्रकृत भक्त बिना स्वामी का दर्शन पाये सदा अधिकारीवर्ग के दर्शन से ही सन्तुष्ट नहीं रह सकता। भक्त की सब कामनाएँ भगवान् के दर्शन से ही पूर्ण होती हैं। अतः मनु शतरूपा को दर्शन की बड़ी अभिलाषा थी। और आकाशवाणी होनेपर यही वरदान भी माँगा था। सो दर्शन मिला। अत कहते हैं कि सब कामनाएँ पूर्ण हुईं।

**एक लालसा बडि उर माही। सुगम अगम कहि जाति सो नाही ॥**
**तुम्हहि देत अति सुगम गोसाईं। अगम लाग मोहि निज कृपनाईं ॥२॥**

अर्थ : मन मे एक बड़ी लालसा है। वह सुगम भी है, अगम भी है। पर कहते नहीं बनता। हे गोसाईं! आपके लिए देने मे बड़ा सुगम है। पर अपनी कृपणता से मुझे अगम मालूम हो रहा है।

व्याख्या : गृहस्थो की लालसा देखिये। जिसे भगवदश उत्तानपाद और प्रियव्रत ऐसे पुत्र हुए। किसी से न प्राप्त होनेवाले पद को प्राप्त करनेवाले ध्रुव जैसे पौत्र हुए। साक्षात् भगवदवतार कपिलदेव जैसे जिसे नाती हुए। उसे अब प्रभु सा पुत्र प्राप्त करने की लालसा हुई। अत. इस लालसा को बड़ी बतलाया। रूप देखकर लालसा हुई। परन्तु भय और सङ्कोच से कहते नहीं बनता। यथा : सभय सकोच जात कहि नाही। अतः कहते हैं :

सर्वशक्तिमान् और महादानी होने से आपको सब कुछ सुगम है। मैं कृपण हूँ। फल की इच्छा रखनेवाला हूँ। मुझे अगम मालूम होता है। मैंने क्या किया है कि जिसके पुरस्कार मे ऐसी आशा करूँ। यथा : मन ग्यान गुन गोतीत प्रभु मै दीख जप तप क्या किये। इतना बड़ा वरदान किस मुख से माँगूँ। तपस्या के फल मे दर्शन हो चुका।

**जथा दरिद्र विबुध तरु पाई। बहु संपति माँगत सँकुचाई ॥**
**तासु प्रभाउ जान नहि सोई। तथा हृदय मम संसय होई ॥३॥**

अर्थ : जैसे कोई दरिद्र कल्पवृक्ष पाकर भी बहुत सम्पत्ति माँगने से सङ्कोच करता है। क्योंकि कल्पवृक्ष के प्रभाव को वह नहीं जानता। उसी प्रकार मेरे हृदय मे संशय हो रहा है।

व्याख्या : दरिद्र ने कभी सम्पत्ति आँख से देखी नहीं। उसे कौड़ी दुर्लभ है। बहुत सम्पत्ति माँगने मे सङ्कोच होना उसके लिए स्वाभाविक है। यहाँ अज्ञान दरिद्र है। अहंता ममता से मूढ पुरुष को ब्रह्मसुख अगम है। यथा : कविहि अगम जिमि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ब्रह्म सुख अहमम मलिन जनेमु। वह समझे बैठा है कि ब्रह्मानन्द सुख नहीं मिल सकता। इसलिए वह उसके लिए यत्न भी नही करता। और न देवीदेवता की आराधना उसके लिए करता है। प्रभु कल्पवृक्ष हैं। उन्हें पाकर भी परमानन्द नहीं माँगता।

यदि दरिद्र को दैवात् कल्पवृक्ष मिल जाय तो उससे अधिक सम्पत्ति माँगने मे सङ्कोच करता है कि कदाचित् कल्पवृक्ष न दे सके। दरिद्र का मन ऐसा छोटा हो जाता है कि वह वडा लालच भी नहीं कर सकता। यथा : लालच लघु तेरो लखि तुलसी तोहि हटत।

सो तुम्ह जानहु अंतरजामी। पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी॥
सकुच विहाइ मागु नृप मोही। मोरे नहि अदेय कछु तोही॥४॥

अर्थ . हे अन्तर्यामी! आप उसे जानते हो। हे स्वामी! मेरे मनोरथ को पूरा करो। राजा! तू सङ्कोच छोडकर मुझसे माँग। तेरे लिए मुझे कुछ अदेय नही है।

व्याख्या अत माँगने मे सङ्कोच है। कहते हैं कि आप अन्तर्यामी भी है। सब जानते है, मेरे मनोरथ को पूरा करिये। विना अन्तर्यामी की प्रेरणा के यह वात मेरे मन मे आई कैसे? इसके वाद भगवान् का कथन है। वर माँगने पर भी ऐसा होता है कि वरदाता कह देते हैं: कि यह वर अदेय है दूसरा माँगो। पर तेरे ऐसे भक्तो के लिए यह बात नही है। यथा कौन वस्तु असि प्रिय मोहि लागी। जो मुनिवर न सकहु तुम माँगी। तू दरिद्र नही है राजा है। तू बहुत सम्पत्ति माँग सकता है। मुझसे माँग। सङ्कोच न कर। जन कहँ कछु अदेय नहि मोरे। अस विस्वास तजहु नहि भोरे। अथवा यदि इच्छा है तो मुझे ही माँग ले।

दो दानि सिरोमनि कृपानिधि, नाथ कहौ सति भाउ।
चाहौ तुम्हहि समान सुत, प्रभु सन कवन दुराउ॥१४९॥

अर्थ हे दानियो के शिरोमणि! हे कृपानिधान! हे नाथ! सत्य भाव से कहता हूँ। आप जैसा पुत्र चाहता हूँ। प्रभु से कौन सा छिपाव है।

व्याख्या मोरे नहि अदेय कछु तोही कहा इसलिए दानी शिरोमणि कहते हैं। सकुच विहाइ मागु कहा इसलिए कृपानिधि कहते हैं। यह सन्देह उठ सकता है कि जिसके सन्तान से सृष्टि भरी पडी है वह सुत क्यो माँगता है? अत कहते हैं सतिभाउ। मुझे प्रभु को देखकर लालसा हुई कि मुझे ऐसा पुत्र हो और आपसा दूसरा है नही। अत आपसा पुत्र माँगना आपको ही पुत्ररूप से चाहना एक वात है। इसलिए माँगने मे सङ्कोच था। वास्तविक इच्छा आप सा पुत्र पाने की है। चाहे जैसे सम्भव हो।

देखि प्रीति सुनि वचन अमोले। एवमस्तु करुनानिधि वोले॥
आपु सरिस खोजौं कहँ जाई। नृप तव तनय होव मैं आई॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : प्रीति देखकर और अनमोल वचन सुनकर करुणानिधि ने कहा ' ऐसा ही हो। मैं अपने समान दूसरा जाकर कहाँ खोजूँ। राजा ! मैं ही आकर तुम्हारा बेटा होऊँगा।

व्याख्या : प्रीति देखी। यथा : चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृपित न मानहिं मनु सतरूपा : और अनमोल वचन सुना। यथा : चाहौं तुमहिं समान सुत। जिसकी कोई कीमत ही नही। अतः उस वचन के पीछे स्वयं बिक गये। कह दिया 'एवमस्तु'। कोई भुक्ति चाहता है, कोई मुक्ति चाहता है और कोई भक्ति चाहता है। मनुजी ने कुछ न चाहा। बालरूप से रामजी को गोद खिलाने और लालन-पालन का सुअवसर चाहा। ऐसी बात चाही जिससे जगत् का कल्याण हो। अपने परलोक का भार प्रभु पर छोड़ दिया। पुन्नामनरकात् त्रायतीति पुत्र। नरक से पिता की रक्षा करता है इसलिए पुत्र कहलाता है। जैसी दृढ प्रीति पुत्र मे होती है वैसी दृढ प्रीति चाही। प्रभु से अपना सम्बन्ध सुरक्षित किया और साथ ही साथ अपनी भावी सन्तान मनुष्य जाति के लिए अमूल्य निधि सुलभ कर गये! इत्यादि। सभी भाँति से मङ्गलमयी कामनाओं से युक्त वचन था। इसलिए उसे अनमोल कहा है।

प्रभु करुणानिधि हैं। जगत्पिता होकर भी पुत्रत्व की स्वीकृति मे न हिचके। एवमस्तु कह ही दिया। अब उसी बात को स्पष्ट करते हैं।

न तो प्रभु के समान कोई है और न कोई उनसे बढकर है और न कोई स्थल ऐसा है जहाँ वे न हो। यथा : जेहि समान अतिसय नहिं कोई। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाही। इसलिए कहते हैं कि अपने समान कहाँ जाकर खोजे। जिसके समान चाहते हो, यदि उसी की प्राप्ति हो जाय तो मनोरथ की विशेषरूप से सिद्धि समझनी चाहिए। इसलिए हे राजन् ! मैं ही तुम्हारा पुत्र आकर होऊँगा अर्थात् इस समय जाता हूँ। भविष्य मे आकर मनोरथ पूर्ण करूँगा।

सतरूपहि बिलोकि कर जोरें। देबि मागु बरु जो रुचि तोरे ॥
जो बरु नाथ चतुर नृप माँगा। सोइ कृपालु मोहि अति प्रिय लागा ॥२॥

अर्थ : शतरूपा को हाथ जोड़े हुए देखकर कहा : हे देवी ! जो वर तू चाहती है सो माँग। शतरूपा ने कहा हे कृपालु ! चतुर राजा ने जो वर माँगा वही मुझे भी अत्यन्त प्रिय लगा।

व्याख्या : राजा ने ऐसा वर माँगा जिससे शतरूपा का भी कल्याण हो। और दूसरे जन्म मे भी शतरूपा से अपना सम्बन्ध बना रहे। भगवान् ने एवमस्तु कह भी दिया। फिर भी देखा शतरूपा हाथ जोडे खडी है। अत प्रभु ने कहा : तू भी माँग जो तेरी रुचि हो। भाव यह कि रुचि मे सबके भेद होता ही है। अत. यदि तेरी इच्छा हो तो तू दूसरा जीचाहा वर माँग ले।

इस पर शतरूपा कहती है कि राजा चतुर है। उन्होने ऐसा वर माँगा जो मुझे भी अतिप्रिय है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


प्रभु परंतु सुठि होति ढिठाई। जदपि भगत हित तुम्हहि सुहाई ॥
तुम्ह ब्रह्मादि जनक जग स्वामी। ब्रह्म सकल उर अंतरयामी ॥३॥

अर्थ : परन्तु हे प्रभो! बडी ढिठाई हो रही है। यद्यपि हे भक्तवत्सल! आपको अच्छा मालूम होता है। तुम ब्रह्मादि के भी पिता हो, जगत् के स्वामी हो। सबके हृदय में अन्तर्यामी रूप से स्थित : ब्रह्म हो।

व्याख्या : शतरूपा के लिए राजा के साथ ही साथ न बोलने का कारण था। उसे कहती है कि वह तो मुझे बहुत ही प्रिय है और प्रभु को भी स्वीकार है। एवमस्तु बोल चुके। फिर भी इसमे साधारण ढिठाई नही है क्योकि आप पिता के भी पिता हैं। ब्रह्मा आदि के उत्पन्न करनेवाले हैं। जगन्नाथ हैं। सबके अन्तर्यामी ब्रह्म हैं और आप पुत्र होगे।

अस समुझत मन ससय होई। कहा जो प्रभु प्रवान पुनि सोई ॥
जे निज भगत नाथ तव अहहीं। जो सुख पावहिं जो गति लहहीं ॥४॥

दो. सोइ सुख सोइ गति सोइ भगति, सोइ निज चरन सनेहु।
सोइ विवेक सोइ रहिनि प्रभु, हमहि कृपा करि देहु ॥१५०॥

अर्थ : ऐसा समझने पर मनमे सशय हो रहा है। किन्तु प्रभु ने जो कहा वही प्रमाण है। हे नाथ! जो आपके निज भक्त हैं वे जो सुख पाते हैं, जिस गति को प्राप्त होते है वही सुख, वही गति, वही भक्ति वही अपने चरणो का स्नेह, वही विवेक और वही रहन सहन मुझे कृपा करके दो।

व्याख्या : जगत् के पिता जगत् के स्वामी अन्तर्यामी पुत्र कैसे होगे! यही सशय है। परन्तु मेरा संशय प्रमाण नही आपका वचन प्रमाण है। जब आपने एवमस्तु कहा है तो आप पुत्र होगे। परन्तु पुत्र होने पर वात्सल्य भाव होगा। सेवक-सेव्य भाव जाता रहेगा। पुत्र स्नेह से विवेक जाता रहेगा। भक्तो का सा रहनसहन न रह जायगा। अत ये सब बाते न होने पावें। इसलिए जो सुख पावहि इत्यादि शतरूपाजी माँगती है।

१ जो सुख पावहि यथा — सोई सुख लवलेस, जिन बारक सपनेहुँ लहेउ।
ते नहि गनहि खगेस, ब्रह्म सुखहि सज्जन सुमति।

२ जो गति लहही यथा — जिन्ह रघुनाथ चरन रति मानी।
तिन्हकी यह गति प्रगट भवानी ॥

३ सोइ भगति यथा : — सबते सो दुर्लभ सुरराया।
राम भगति रत गत मद माया ॥

४ सोइ निज चरन सनेहु यथा : — जो तजि देह को गेह को नेह सनेह सो
राम को होइ सबेरो।

५ सोइ विवेक यथा : — राम मातु दुख सुख सम जानी।
कहि गुन राम प्रबोधी रानी ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



६. सोइ रहनि यथा : कबहुँक हौं येहि रहनि रहौंगो।
श्री रघुनाथ कृपाल कृपाते संत सुभाव गहौंगो॥
यथा लाभ संतोष सदा काहू सों कछु न चहौंगो।
पर हित निरत निरंतर मन क्रम वचन नेम निबहौंगो॥
परुष वचन अति दुसह श्रवन सुनि तेहि पावक न दहौंगो।
विगत मान सम सीतल मन पर गुन नहि दोष कहौंगो॥
परिहरि देह जनित चिंता दु:ख सुख सम बुद्धि सहौंगो।
तुलसिदास प्रभु येहि पथ रहि अविचल हरि भगति लहौंगो॥

यह गुन साधन ते नहि होई। तुम्हरी कृपा पाव कोई कोई। अत: कृपा करके देने को कहती हैं।

सुनि मृदु गूढ रुचिर वच रचना। कृपा सिंधु बोले मृदु वचना॥
जो कछु रुचि तुम्हरे मन माही। मै सो दीन्ह सब संसय नाही॥१॥

अर्थ : कोमल, गूढ और मनोहर वचन की रचना सुनकर कृपासिन्धु कोमल वचन बोले। तुम्हारे मनमे जो कुछ रुचि है मैंने सब दिया इसमे सन्देह नही है।

व्याख्या : शतरूपाजी की वचनरचना विनीत होने से मृदु गम्भीरार्थक होने से गूढ और श्रवणसुखद होने से रुचिर थी। गम्भीरार्थक इसलिए कहा कि पुत्र रूप से प्रभु की प्राप्ति से छ: बातो मे कमी पडने का भय है। सम्भव है कि १ भक्ति का दिव्य सुख पुत्र सम्बन्धी लौकिक सुख से ढक जाय। २ प्रभु को पुत्ररूप मानने की ढिठाई से परलोक बिगडे। ३ पुत्र प्रेम मे पडकर सेवक सेव्यभाव जाता रहे ४ पुत्र के चरण मे स्नेह नही होता। सो कही चरण-स्नेह से हाथ न धोना पडे। ५ जगत् पिता को पुत्र मानने मे विवेक भी जाता रहे और ६ पुत्र के गौरव से अभिमान होने के कारण भक्तो के रहन सहन मे भेद न पडे। इसलिए छ: बातें माँगती हैं।

प्रभु कृपासिन्धु हैं। शतरूपा वर माँगती चली जाती है। बस नही कहते, कोमल शब्दो से तोष देते हैं। कहते है कि यदि बोलने मे कोई त्रुटि हो तो भी उसका विचार न करके तुम्हारे मनमे जो रुचि है मै वह सब देता हूँ। तुम संशय न करो।

मातु विवेक अलौकिक तोरे। कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरे॥
वंदि चरन मनु कहेउ बहोरी। अवर एक विनती प्रभु मोरी॥२॥

अर्थ : माँ! तुम्हारा अलौकिक विवेक मेरे अनुग्रह से कभी नही मिटेगा। तब फिर मनु ने चरण वन्दन करके कहा : हे प्रभु मेरी एक और विनती है।

व्याख्या : माँ का नाता अभी से मान लिया। माँ कहकर सम्बोधन करते हैं और अलौकिक विवेक के लिए वर देते हैं। उसी से शेष पाँच भी सध जायगा। लौकिक विवेक शास्त्रजन्य ज्ञानविषयक है। पर अलौकिक की बात दूसरी है। ये ही

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


मनु शतरूपा दशरथ कौसल्या हुए। महाराज दशरथ ने लौकिक विवेक से काम लिया। यथा : तुलसी जान्यौ दसरथहि धर्म न सत्य समान। राम तज्यौं जेहि लागि बिनु राम परिहरे प्रान। परन्तु माता कौसल्या का अलौकिक विवेक सुनिये। यथा :

वारौं सत्यवचन श्रुतिसम्मत जाते हौं बिछुरत चरन तुम्हारे।
बिनु प्रयास सब साधन को फल प्रभु पायो सो तो नाहि सँभारे।
हरि तजि धरम सील भयो चाहत नृपति नारि बस सरबस हारे।
रुचिर काँच मनि देखि मूढ ज्यौं करतल ते चिन्तामनि डारे।
मुनि लोचन चकोर ससि राघव सिव जीवन धन सोउ न विचारे।

मनु महाराज ने देखा कि वहाँ वर माँगने मे रोक नही है। सो कही यह वर मुझे मिल न जाय। इसलिए मनु ने फिर से चरणवन्दना अपना अभिप्राय स्पष्ट करने के लिए की।

सुत विषैक तव पद रति होऊ। मोहि बड मूढ कहौ किन कोऊ॥
मनि बिनु फनि जिमि जलबिनु मीना। मम जीवन मिति तुम्हहि अधीना॥३॥

अर्थ . चाहे मुझे कोई बडा मूढ भले ही कहे पर मुझे आपके चरणो मे प्रेम पुत्रविषयक ही हो। जैसे मणि बिना सर्प की और जल बिना मछली की गति होती है। वैसे ही मेरे जीवन की अवधि आपके दर्शन के अधीन रहे।

व्याख्या इस बात की सम्भावना है कि जब आप स्वय पुत्ररूप से अवतीर्ण होगे और मुझे आपके चरणो मे प्रीति पुत्र की ही भाँति होगी तो कोई यह कह सकता है कि यह कितना बडा अविवेकी है कि भगवान् को पहिचान नही सकता। बेटा ही मानता है। सो यह प्रवाद मुझे स्वीकार है। पर मुझे पुत्र की ही भावना रहे। यथा . कीजिअ सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा।

मणि बिना सर्प जीता है। परन्तु व्याकुल और बेहाल रहता है। यथा . मनि बिनु फनि जियै व्याकुल बेहाल रे। परन्तु जल बिना मछली तो जी नही सकती। मनुजी दोनो की अवस्थाएँ अपने लिए माँग रहे हैं। अत दशरथ शरीर से विश्वामित्र की यज्ञरक्षा के समय मणि बिना सर्प की स्थिति का अनुभव करेंगे। यथा सुत हिय लाइ दुसह दुख मेटे। मृतक सरीर प्रान जनु भेटे। तथा राम बिरह करि मरन सवारा। मनुजी को न मोक्ष की कामना है, न यश की कामना है। वात्सल्य भाव से भजन करना चाहते हैं। विवेक से वात्सल्य बिगड जायगा। इसलिए विवेक नही चाहा।

अस बरु माँगि चरन गहि रहेऊ। एवमस्तु करुनानिधि कहेऊ॥
अब तुम्ह मम अनुसासन मानी। बसहु जाइ सुरपति रजधानी॥४॥
सो तहँ करि भोग बिसाल, तात गएँ कछु काल पुनि।
होइहहु अवध भुआल, तब मै होब तुम्हार सुत॥१५१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : ऐसा वर माँगकर चरण पकडे रह गये। करुणानिधि ने एवमस्तु कह दिया। और बोले कि अब तुम हमारी आज्ञा मानकर इन्द्र की राजधानी अमरावती मे जाकर बसो। वहाँ विशाल भोग करके हे तात! कुछ दिन बाद तुम अवध के राजा होगे। और तब मैं तुम्हारा बेटा होऊँगा।

व्याख्या : वर माँगने के बाद चरण पकडे हुए रह जाने का भाव यह है कि इस वर को लेकर मानेंगे। सरकार करुणानिधि हैं। यह बात भी मान गये। यद्यपि यह बात उनकी प्रतिष्ठा के विरुद्ध थी। जिनके वे पुत्र हो वह पिता उनके विरह मे प्राण दे। यह बात कथमपि उनके स्वरूप के अनुकूल न थी। पर भक्त इसी बात पर हठ कर बैठा है। उसे प्रेम के अत्यन्तोत्कर्ष मे शरीर छोड़ने की अभिलाषा है। अतः उसकी ही बात रक्खी एवमस्तु कह दिया। यथा : तुलसी मगल मरन तरु राम प्रेम पय सीचु।

ईश्वर हैं : कहते हैं कि अब तुम मेरा अनुशासन मानकर अमरावती मे बसो। तुम ब्रह्मलोक वैकुण्ठ कैलास मे बसने से इनकार कर चुके हो। अमरावती मे बसना तुम्हारे लिए छोटी बात होगी। पर मेरे अनुशासन से बसो और भोगविमुख न रहकर भोगविलास करो। तुमने बड़ी तपस्या भी की है। कुछ काल वही रहो। अर्थात् पाँच मन्वन्तरो तक वही रहो। इन्द्र और देवता तब तक पाँच बार बदलेंगे। पर तुम वही रहोगे। सातवें वैवस्वत मन्वन्तर मे तुम अवध के राजा होओगे। तब मै तुम्हारा बेटा होऊँगा। सब बातें स्पष्ट किये देते हैं :

इच्छामय नर वेप सँवारे। होइहौ प्रगट निकेत तुम्हारे॥
अंसन्ह सहित देह धरि ताता। करिहौं चरित भगत सुख दाता॥१॥

अर्थ : सकल्पमय मनुष्य का शरीर धारण किये हुए मैं तुम्हारे घर मे प्रगट होऊँगा। हे तात! मै अपने अशो के साथ देह धारण करके भक्तो को सुख देनेवाला चरित्र करूँगा।

व्याख्या : बेटा होने मे नर होना पडेगा। सो मेरा शरीर पाञ्चभौतिक न होगा। सकल्पमय शरीर को नर की आकृति मे सँवारूँगा और तुम्हारे घर प्रकट हो जाऊँगा। उसे दिव्य जन्म कहा। मैं अशो विराट, हिरण्यगर्भ और ईश्वर के साथ भक्तो को सुख देने के लिए देह धारण करूँगा। इससे कर्म का दिव्य होना कहा। न तो कर्मवश जन्म होगा न अहकार के साथ कर्म अनुष्ठित होगा। जिस प्रकार भक्तो को सुख होगा वही चरित प्रभु करने को कह रहे है।

जेहि सुनि सादर नर बड़ भागी। भव तरिहहिं ममता मद त्यागी॥
आदि सक्ति जेहि जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया॥२॥

अर्थ : जिसे आदर के साथ सुनकर बडभागी लोग ममता मद त्याग करके भवसागर के पार हो जायँगे। आदिशक्ति जिसने ससार को उत्पन्न किया है वह भी अवतार धारण करेगी। मेरी यह माया है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या अवतार के तिरोहित होने पर भी वह चरित जगत् के लिए बड़ा उपयोगी होगा। उसे जो आदर के साथ सुनगे वे बडे भाग्यवान् हैं। केवल सुनने से भवसागर पार हो जावेगे[१]। अब मनु का ध्यान आदि शक्ति की ओर आकर्षित करते है। अङ्गुल्या निर्देश करके कहते है कि यह मेरी माया आदि शक्ति है। यह भी अवतार धारण वरेगी। भाव यह कि मै अज हूँ। अव्ययात्मा हूँ। भूतो का ईश्वर हूँ। फिर भी अपनी प्रकृति का आश्रयण करके अपनी माया से मैं उत्पन्न होऊँगा। यथा अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्। प्रकृति स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया। बिना इनके अवतरण हो नही सकता। सब शक्तियो की मूलभूता आदिशक्ति है। वही मेरी माया है। यही ससार को उत्पन्न करती है। यह भी अवतीर्ण होगी। अर्थात् पुत्र के लिए वर माँगा है तो पतोहू पुत्रवधू भी देख लो।

पुरउब मै अभिलाप तुम्हारा। सत्य सत्य पन सत्य हमारा॥
पुनि पुनि अस कहि कृपानिधाना। अतरधान भए भगवाना॥३॥

अर्थ मै तुम्हारा अभिलाप पूरा करूँगा। मेरा प्रण सत्य है, सत्य है, सत्य है। कृपानिधान बारबार ऐसा कहकर अन्तर्धान हो गये।

व्याख्या विनती की गई थी पुरवहु मोर मनोरथ स्वामी। वरदान मिल रहा है पुरउब मै अभिलाप तुम्हारा। भाव यह है कि एक गुना अभिलाप की चौगुनी पूर्ति की जायगी। प्रभु के समान पुत्र माँगा था। सो स्वय आप और अपने समान तीन और लेकर पुत्र होगे। केवल जन्मोत्सव चाहा था। सो जन्मोत्सव कर्णवेध, उपवीत और विवाह द्वारा अभिलाषा की पूर्ति करेगे। त्रिसत्यम् के अनुसार तीन वार सत्य कहा। अथवा तीन वार सत्य कहकर अपने प्रण का तीन काल मे सत्य होना दिखलाया। अथवा वरदान देने के अतिरिक्त तीन प्रतिज्ञा की है १ इच्छामय नरवेप सँवारे। होइहौं प्रगट निकेत तुम्हारे। २ असन्ह सहित देह धरि ताता। करिहौ चरित भगत सुखदाता। और ३ आदिसक्ति जेहि जग उपजाया। सो अवतरहि मोर यह माया। सो मनु शतरूपा के आश्वासन के लिए कहते है कि तीनो प्रण मेरे सत्य होगे।

कृपानिधान हैं। शतरूपा ने सन्देह किया था। यथा अस समुझत मन ससय होई। अत बारबार निश्चय कराते हैं। सब बाते समाप्त हो गयी तो अन्तर्धान हो गये। न वही से आये थे न कही गये। विश्ववास भगवान् है। वही प्रकट हुए और वही लुप्त हो गये।

दपति उर धरि भगत कृपाला। तेहि आश्रम निवसे कछु काला॥
समय पाइ तनु तजि अनयासा। जाइ कीन्ह अमरावति बासा॥४॥

---

१ मनुष्य जाति क आदिम पुरुप अपनी भावी सन्तान के लिए यही अक्षय निधि छोड गये। अत श्रीरामावतार मनुष्यमात्र की बपौती सम्पत्ति है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ वे दोनो प्राणी भक्त के ऊपर कृपा करनेवाले को हृदय मे धारण करके उस आश्रम म कुछ काल रह। समय पाकर अनायास शरीर त्यागकर जाकर अमरावती मे वास किया।

व्याख्या तप वन्द है। हृदय मे प्रभु की मधुर मूर्ति है। नैमिषारण्य मे ही वानप्रस्थ धर्म मे बसने लगे। प्रारब्ध कर्म के समाप्त होने पर ही आयु समाप्त होती है। सो दोनो का शरीर साथ ही पूरा हुआ। हरिकृपा से अनायास मृत्यु हो गई। अनायास का मरण अल्पतप का फल नही है। प्रभु का अनुशासन था कि बसहु जाइ सुरपति रजधानी सो जाइ कीन्ह अमरावति वासा। इससे यह भी मालूम हुआ कि सुरपति रजधानी का नाम अमरावती है।

दो यह इतिहास पुनीत अति, उमहि कही वृपकेतु।
भरद्वाज सुनु अपर पुनि, राम जनम कर हेतु ॥१५२॥

अर्थ इस अति पवित्र इतिहास को वृपकेतु ने उमा से कहा था। हे भरद्वाज अव रामजन्म का दूसरा कारण सुनो।

व्याख्या ब्रह्म के साक्षात्कार का विवरण होने से तथा वैराग्य विवेक सयुक्त भक्तिगङ्गा की धारारूप होने से अति पवित्र कहा। इस इतिहास का उपक्रम अभ्यास और उपसहार भक्ति से है। और भक्ति को गङ्गारूप कह आये है। यथा रामभगति जहँ सुरसरि धारा इसलिए यह भक्ति गङ्गारूप है। उपक्रम यथा हृदय वहुत दुख लाग जनम गयउ हरिभगति विनु। अभ्यास यथा पथ जात सोहत मतिधीरा। ग्यानभक्ति जनु धरे सरीरा। उपसहार यथा दपति धरिउ भगति कृपाला। गङ्गा जिस भाँति यमुना और सरस्वती के साथ शोभित है उसी भाँति यह भक्तिगङ्गा विरति और विचार के साथ शोभित हैं। विचार यथा होइ न विपय विराग भवन वसत भा चौथपन। हृदय वहुत दुखलाग। विरति यथा वरबस राज सुतहि नृप दीन्हा। नारि समेत गवन वन कीन्हा। इस इतिहास को समाप्त करके याज्ञवल्क्य भरद्वाज से कहते हैं अब रामजन्म का दूसरा कारण सुनो

## [1]भानुप्रताप की कथा

सुनु मुनि कथा पुनीत पुरानी। जो गिरिजा प्रति सभु बखानी ॥
विस्व विदित एक कैकय देसू। सत्यकेतु तहँ बसै नरेसू ॥१॥

---

१ अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ हिन्दुत्व मे गौडजी ने निम्नलिखित रामायणो का उल्लेख किया है। जिनमे भानु प्रताप की कथा मिलती है। पर मुझे इन रामायणो के दर्शन का सौभाग्य नही हुआ है।

१ अगस्त्य रामायण। इसमे २४००० श्लोक हैं। इसका समय रैवतमन्वन्तर का पाँचवाँ सत्ययुग है।

२ मञ्जुलरामायण। इसको सुतीक्ष्ण कवि ने स्वारोचिषमन्वन्तर के १४ वें त्रेता म बनाया है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : हे मुनि पुरानी पवित्र कथा सुनो जिसे गिरिजा से शम्भु ने कहा था। केकय देश ससार मे प्रसिद्ध है। वहाँ सत्यकेतु नाम का राजा रहता था।

व्याख्या : स्वायम्भू मनु की कथा अति पुनीत थी और यह कथा पुनीत है। वह कथा अति पुरानी है और यह पुरानी है। यद्यपि सभी कथाएँ गिरिजा के प्रति शम्भु की बखानी हुई हैं। पर याज्ञवल्क्य जी इन दोनो कथाओ के लिए गिरिजाशम्भु की कही हुई बतलाते है। इसका यह आशय मालूम होता है कि इन दोनो कथाओ को भुसुण्डिजी ने नही कहा। और भुसुण्डिजी की कही हुई कथा की सूचि मूल रामचरित जो उत्तरकाण्ड मे वर्णित है मे इन कथाओ का उल्लेख भी नही है। यथा पुनि नारद कर मोह अपारा। कहेसि बहुरि रावन अवतारा। अत भुसुण्डिजी ने प्रधानत उसी कल्प की कथा कही जिसमे नारदजी को मोह हुआ था। भगवान् क्षीरशायी राम हुए थे और रुद्रगण रावण और कुम्भकर्ण हुए थे और शम्भु ने प्रधानत उस कल्प की कथा कही जिससे ब्रह्म कोसलपुर भूप हुए थे। केकय देश कश्मीर के दक्षिणी प्रान्त मे हैं। जिसे गक्कर कहते हैं।

धरम धुरंधर नीति निधाना। तेज प्रताप सील बलवाना ॥
तेहि के भये जुगल सुत बीरा। सब गुन धाम महा रनधीरा ॥२॥

अर्थ : वह धर्म की धुरी का धारण करनेवाला, नीतिनिधान, तेजस्वी, प्रतापी और बलवान् था। उसे दो वीर पुत्र हुए। जो सब गुणो के आश्रय और बडे रणधीर थे।

व्याख्या : धर्मात्मा राजा सत्यकेतु मे सभी राजोचित गुण थे। उसे दो वीर पुत्र उत्पन्न हुए। भावार्थ यह कि वीर उत्पन्न होते है बनाये नही जाते। 'सकल गुणधाम' महारणधीर कहने से तात्पर्य यह कि वे पिता से भी गुणो मे श्रेष्ठ थे और रणधीर भी अधिक थे। वीर से उनकी वीरगति की प्राप्ति तथा रणधीर कहने से उनका विश्वविजय करना सूचित किया।

राज धनी जो जेठ सुत आही। नाम प्रतापभानु अस ताही ॥
अपर सुतहि अरिमर्दन नामा। भुजबल अतुल अचल संग्रामा ॥३॥

अर्थ : राज्य का उत्तराधिकारी जो जेठा बेटा था उसका नाम भानुप्रताप था। दूसरे का नाम अरिमर्दन था। उसकी भुजाओ मे अपरिमित बेतोल बल था। और सग्राम मे अटल था।

व्याख्या : भानुप्रताप के राजधनी होने का कारण उसका ज्येष्ठ होना था नही तो गुण मे दोनो भाई समान थे। बल्कि अरिमर्दन अधिक बलवान् और योद्धा था। जेठ स्वामि सेवक लघु भाई का सिद्धान्त बहुत पुराना है। और राजाओ मे इसका अधिक आदर है। क्योकि राज्य बिना इस सिद्धान्त के माने चल नही सकता। राज्य यदि भाइयो मे विभक्त कर दिया जाय तो खण्ड खण्ड होकर शीघ्र ही नष्ट हो जाता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भाँइहि भाइहि परम समीती । सकल दोष छल बरजित प्रीती ॥
जेठे सुतहि राज नृप दीन्हा । हरिहित आपु गवन बन कीन्हा ॥४॥

अर्थ : भाई-भाई मे बडी बनती थी और सब दोष और छल से रहित प्रीति थी । राजा जेठे पुत्र को राज्य देकर भगवान् के लिए वन चले गये ।

व्याख्या : दोनों भाइयो मे बडा मेल था । जिससे मैत्री हो उसके दु ख मे दु खी न होना बड़ा भारी दोष है । और उसके सामने मीठी-मीठी बातें बनाना और उसके पीछे उसका बुरा ताकना, मन मे कुटिलता रखना आदि छल है । इन भाइयो की प्रीति मे न दोष था न कोई छल था । राजा नीतिनिधान था और धर्मधुरन्धर था इसलिए भगवान् के भजन के लिए स्वय वन चला गया । यथा सत कहहि अस नीति दसानन । चौथे बन जाइय नृप कानन । तासु भजन कीजिय तहँ भर्ता । जो कर्त्ता पालक सहर्त्ता ।

दो. जब प्रताप रवि भयउ नृप, फिरी दोहाई देस ।
प्रजापाल अति बेद बिधि, कतहुँ नही अघलेस ॥१५३॥

अर्थ : जब भानुप्रताप राजा हुआ देश मे दोहाई[1] फिरी । वह वेद की विधि से प्रजा का अत्यन्त पालन करनेवाला था । वही पाप का लेश नही रह गया ।

व्याख्या : कहावत है कि जिसका राज्य उसकी दोहाई । सो भानुप्रताप के राजा होने पर उसकी दोहाई कैकय देश मे फिरी । राज्य परिवर्तन मे दोहाई फिरने का नियम है । यथा : नगर फिरी रघुबीर दोहाई । विना वेदविधि से प्रजापालन किये राज्य मे पापाचार बना ही रहता है । वर्णाश्रम के अनुसार राज्य चलाना राजा का कर्त्तव्य है तभी देश सुखी हो सकता है । अन्य उपाय नही है । यथा : वर्णाश्रम निज निज धरम, निरत वेद पथ लोग । चलहि सदा पावहि सुखहि, नहि भयसोक न रोग ।

नृप हित कारक सचिव सयाना । नाम धरम रुचि सुक्र समाना ॥
सचिव समान बंधु बलबीरा । आपु प्रताप पुंज रनधीरा ॥१॥

अर्थ : राजा का हित करनेवाला सयाना मन्त्री था । उसका नाम था धर्म-रुचि । नीति जानने में : शुक्र के समान था । मन्त्री सयाना, भाई बली और वीर, आप स्वयं मानों प्रताप का समूह और समर मे धीर था ।

व्याख्या : सभी समाज अनोखा जुट गया था । मन्त्री बुद्धिमान् होना चाहिए । सो शुक्राचार्य के समान मन्त्री चतुर मिल गया था । भाई सहायक होना चाहिए ।

---

१. दोहाई का प्राकृत रूप 'दोहाइअं' है । सस्कृत रूप द्विधाकृतम् है । इसका वाच्यार्थ है 'दो टूक किया हुआ' । बात दो टूक तभी होती है जब स्पष्ट और नि सन्देह हो जाती है । अत इसका लक्ष्यार्थ घोषणा है । राज्य परिवर्तन होने पर जिसका राज्य होता है उसकी ओर से राज्य में घोषणा की जाती है : उसी को दोहाई फिरना कहते हैं ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


यथा होहिं कुठायें सुबधु सहाए सो भाई बली और वीर मिला था। राजा को प्रतापी होना चाहिए सो भानुप्रताप तो मानो प्रताप का पुञ्ज ही था। और रण मे तो बडा धीर था।

सेन सग चतुरग अपारा। अमित सुभट सब समर जुझारा ॥
सेन बिलोकि राउ हरषाना। अरु बाजे गहगहे निसाना ॥२॥

अर्थ साथ मे अपार चतुरङ्गिणी सेना थी। युद्ध मे जूझनेवाले असख्य योद्धा थे। इस प्रकार अपनी सेना को देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ और गहगहे डङ्के बजे।

व्याख्या मन्त्री सहायक और राजा का हाल कहकर अब सेना की व्यवस्था कहते हैं। सेना सख्या मे भी बहुत बडी और सैनिको मे उत्कृष्ट गुण थे अर्थात् वे योद्धा थे। सेना के चार अग होते हैं हाथी, घोडा, रथ और पैदल। सो चारो अगो का कोई पारावार न था।

राजा ने सेना का निरीक्षण किया तो बडा प्रसन्न हुआ कि इस सेना का पार कोई शत्रु नही पा सकता। डङ्का बजने से उत्साहवर्धन हुआ। राजा की सलामी मे डङ्के बजे। डङ्को की तुमुल ध्वनि के लिए गहगह शब्द का प्रयोग होता है। यथा गहगह गगन दुदुभी बाजी।

बिजय हेतु कटकई बनाई। सुदिन साधि नृप चलेउ बजाई ॥
जहँ तहँ परी अनेक लराई। जीते सकल भूप बरिआई ॥३॥

अर्थ दिग्विजय के लिए छोटी सी सेना बनाकर अच्छा दिन ठीक करके राजा डङ्का देकर चला। जहाँ तहाँ अनेक लडाइयाँ पडी। पर राजा ने सबको बल से जीत लिया।

व्याख्या सारी सेना मे से कुछ नगररक्षा के लिए छोड और कुछ की पृथक् सेना दिग्विजय के लिए सजाई। विजयमुहूर्त देखकर बाजे बजाकर चले। अधीनता स्वीकार न करने पर जहाँ तहाँ लडाइयाँ हुईं। सो सबको बल से जीता। सब राजाओ ने हार स्वीकार की। दिग्विजय पूरी हुई।

सप्त दीप भुज बल बस कीन्हे। लेइ लेइ दड छाँडि नृप दीन्हे ॥
सकल अवनिमडल तेहि काला। एक प्रताप भानु महिपाला ॥४॥

अर्थ अपनी भुजाओ के बल से सातो द्वीपो को वश कर लिया। राजाओ से दण्ड ले लेकर छोड दिया। सम्पूर्ण पृथ्वीमण्डल मे उस समय एक मात्र राजा भानुप्रताप थे।

व्याख्या केवल जम्बूद्वीप के विजय से ही दिग्विजय माना जाता है। सो प्लक्ष आदि शेष द्वीपो पर भी विजय पाई। यथा जम्बू और पलक्ष कुस क्रौंच कहत पुनि साक। शाल्मलि पुष्कर द्वीप ये भाखें वेद सुवाक। तुलसी शब्दावली। भुजा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



के बल से सबको विजय किया। सेना शोभा के लिए साथ थी। जीतने पर राज्य नही छीना। युद्ध मे बन्दी कर लिया। दण्ड लेकर छोड[1] दिया।

दो स्ववस बिस्व करि बाहु बल, निज पुर कीन्ह प्रबेसु।
अरथ धरम कामादि सुख, सेवै समय नरेसु ॥१५४॥

अर्थ अपने बाहु के बल से ससार को वश करके अपने पुर मे प्रवेश किया। राजा अर्थ धर्म और कामादि सुख का समय से सभी का सेवन किया करता था।

व्याख्या एक बार बाहर निकला तो सातो द्वीपो को वश करके लौटा। यद्यपि काम से सुखमात्र का ग्रहण होता है। पर यहाँ कामादि पाठ होने से स्त्रीसुख अभिप्रेत है और आदि से इतर सुखो का ग्रहण है। राजा को धर्म, अर्थ और काम तीनो के पूजन की आज्ञा है। सम्पूर्ण जगत् के लिए कर्म का प्राधान्य है। पर राजा और वेश्या के लिए अर्थ का प्राधान्य है। अत अर्थ पहिल कहा। तत्पश्चात् धर्म और अन्त म काम कहा। समयानुकूल ही इनके सेवन की मर्यादा है। राजा तदनुसार ही कार्य करता था।

भूप प्रताप भानु बल पाई। कामधेनु भै भूमि सोहाई ॥
सब दु ख वरजित प्रजा सुखारी। धरम सील सुन्दर नर नारी ॥१॥

अर्थ राजा भानुप्रताप का बल पाकर पृथ्वी सुन्दर कामधेनु हो गई। प्रजा सब दु खो से रहित होकर सुखी हो गई। स्त्री और पुरुष सुन्दर और धर्मात्मा थे।

व्याख्या कालस्य कारण राजा कालो वा राजकारणम्। इति ते सशयो माभूत राजा कालस्य कारणम्। भगवान् मनु कहते है कि काल का कारण राजा है या राजा का कारण काल है ? इस विषय म तुम्हे सशय नही होना चाहिए। राजा ही काल का कारण होता है। इसी बात को यहाँ दिखलाते हैं कि राजा भानुप्रताप का बल पाकर पृथ्वी सुन्दर कामधेनु हो गई। अर्थात् पृथ्वी को राजा से बल मिलता है। समय पलट जाता है। सो पृथ्वी कामधेनु होकर जो प्रजा चाहे वही देने लगी। यथा लता विटप माँगे मधु च्यवही। मन भावतो धेनु पय स्रवही। ससि सपन्न सदा रह धरनी। इत्यादि। सोहाई कामधेनु कहने का यह भाव है कि कामधेनु तो विष माँगने से विष देती है पर सोहाई कामधेनु अनर्थ की याचना को नही पूरा करती।

पाप से ही दु ख होता है। जब राज्य मे पाप का लेश नही रह गया तब सब दु खो से रहित सुख की प्राप्ति प्रजा को हुई। नही तो सुख मे कुछ न कुछ दु ख का अनुवेध अवश्य ही रहता। क्योकि विधि प्रपञ्च ही द्वन्द्व से बना हुआ है। यथा राजा तथा प्रजा। राजा प्रजापाल अति वेदविधि था। सो नर नारी भी धर्मशील

---

१ राज्य छीनकर अपने राज्य मे मिला लेना अच्छी नीति नही है। राज्य उतना ही बडा होना चाहिए जिसकी देख रेख स्वय राजा कर सके।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

और सुन्दर हो गये। कुरूपता भी पाप का ही परिणाम है। सो प्रजा के रूप मे भी अन्तर पडा।

सचिव धरम रुचि हरिपद प्रीती। नृप हिय हेतु सिखव नित नीती ॥
गुरु सुर सत पितर महि देवा। करै सदा नृप सबकै सेवा ॥२॥

अर्थ धर्मरुचि मन्त्री की हरि के चरणो मे प्रीति थी। वह राजा के कल्याण के लिए नित्य नीति का उपदेश देता था। गुरु, देवता, सन्त, पितर और ब्राह्मणो की सेवा राजा सदा किया करता था।

व्याख्या राजा का हाल कहकर मन्त्री का हाल कहते है। राजा कर्मयोगी था। मन्त्री भगवद्भक्त था। नीति मे उसकी शुक्र भगवान् की सी गति थी। अत राजा को सदा नीति की शिक्षा दिया करता था। जिससे राजा नीतिमार्ग से विचलित न हो। धर्माविरोधी अर्थ और धर्मार्थाविरोधी काम का सेवन नीति है। जिससे धर्म, अर्थ और काम किसी को पीडा न हो। गुरु, सुर, सन्त, पितर और ब्राह्मण की सेवा से ही सब कुछ मिलता है। इन पाँचो की सेवा राजा स्वय करे। यही नीति है। मन्त्री की शिक्षा से राजा ने क्या क्या किया सो कहते हैं

भूप धरम जे वेद बखाने। सकल करै सादर सुख माने ॥
दिन प्रति देइ विविध विधि नाना। सुनै सास्त्र बर वेद पुराना ॥३॥

अर्थ वेद ने राजा के लिए जो धर्म बतलाया है, वह सब राजा सुख मानकर करता था। नित्य अनेक प्रकार का दान देता था। सत् शास्त्र और वेद पुराण श्रवण करता था।

व्याख्या स्वधर्मे निधन श्रेय परधर्मो भयावह। अपने धर्म मे मरना अच्छा है। क्योंकि परधर्म भय का देनेवाला है। राजा यदि सन्यास धर्म का पालन करने चले तो वह उसके लिए परधर्म है। उसका फल अत्यन्त बुरा है। भगवद्गीता मे प्रधान्येन यही शिक्षा है। धर्माचरण प्रारम्भ मे विष सा मालूम होता है। पर परिणाम मे अमृततुल्य है। सो राजा बडी श्रद्धा भक्ति से स्वधर्माचरण करने मे ही सुख मानता है।

अनेक प्रकार के दान है। सबके लिए विधि है, समय है, फल है। राजा को नित्य दान करना चाहिए। जिस देश जिस काल मे जिस दान का विधान है तदनुसार दान देता था। राजा का कृपण होना बडा भारी दोष है। शास्त्र, पुराण और वेद के श्रवण का बडा फल है। यही सब प्रकार के कल्याणो का मूल है। इसलिए राजा नित्य इनका श्रवण करता था। यथा वेद पुराण बसिष्ठ बखानहिं। सुनहिं राम यद्यपि सब जानहिं। राजा की श्रद्धा धर्म पर देखकर प्रजा भी धर्मात्मा हो जाती है।

नाना बापी कूप तडागा। सुमन वाटिका सुदर बागा ॥
विप्र भवन सुर भवन सुहाए। सब तीरथन्ह विचित्र बनाए ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ उसने बहुत सी बावली, कुएँ, तालाब, फुलवारी, सुन्दर फलवाले बाग बनवाये। ब्राह्मणो के लिए घर देवताओ के लिए सुन्दर मन्दिर तथा सब तीर्थो को विचित्र बनाया।

व्याख्या • पुण्य के दो विभाग हैं १ इष्ट और २ पूर्त। सो पहिले पूर्त कहते हैं। सर्वसाधारण के जल के सुभीते के लिए वापी, कूप और तडाग फूल के लिए वाटिका फल के लिए बाग। वेद की रक्षा के लिए विप्रभवन, उपासना के लिए सुरभवन और तरने के लिए तीर्थों को ही बहुत ही सुन्दर बनाया। वापी कूपतडागादि देवतायतनानि च। अन्नप्रदानमाराम पूर्तमित्यभिधीयते। अर्थ बावली, कुवाँ, ताल्राब, देवमन्दिर, अन्न का सदाव्रत, बाग, इन सबो को पूर्त कहा जाता है।

दो जहँ लगि कहे पुरान श्रुति, एक एक सब जाग।
बार सहस्र सहस्र नृप, किए सहित अनुराग ॥१५५॥

अर्थ वेद और पुराणो ने जहाँ तक एक एक बार यज्ञ करने को कहा है। उन्हे सहस्र-सहस्र बार राजा ने अनुराग के साथ किया।

व्याख्या पूर्त कहकर इष्ट कहते है। श्रौत और स्मार्त यज्ञा का विधान है। वे अनेक प्रकार के हैं। उनम से कोई यज्ञ ऐसे हैं जिन्हे एक ही बार करने की आज्ञा है। जैसे राजसूय का कुल भर मे एक ही पुरुष एक ही बार कर सकता है। उसे भी राजा ने अनुराग के साथ सहस्रो बार कर डाला। अन्य यज्ञ कितने किये कौन कह सकता है। एकाग्निकर्म हवन त्रेताया यच्च हूयते। अन्तर्वेद्या च यद्दानमिष्ट तदभिधीयते। अर्थ एकाग्नि कर्म हवन और त्रेताग्नि मे जो हवन किया जाता है तथा अन्तर्वेदी म जो दान किया जाता है उसे इष्ट कहते हैं।

हृदय न कछु फल अनुसधाना। भूप बिवेकी परम सुजाना ॥
करै जे धरम करम मन बानी। बासुदेव अर्पित नृप ग्यानी ॥१॥

अर्थ हृदय मे फल की कोई भावना भी नही थी। राजा बडा विवेकी और जानकार था। ज्ञानी राजा कर्म, मन और वाणी से जो धर्म करता था सब वासुदेवार्पण करके ही करता था।

व्याख्या फल की कामना से कर्म करनेवालो को शास्त्रा ने कृपण बतलाया है। यथा कृपणा फलहेतव। गी। राजा भानुप्रताप फल की कोई कामना नही रखता था क्योकि विवेकी था। समझता था कि मेरा कर्म मे ही अधिकार है फल मे नही है। यथा कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन। गी। परम सुजान था। उस फल को वासुदेवार्पण करता था। वासुदेवार्पण करने से कोटि गुण अधिक फल होता है और न करने से श्रममात्र ही फल होता है। यथा हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा।

चढि बर बाजि बार एक राजा। मृगया कर सब साजि समाजा ॥
बिध्याचल गभीर बन गएऊ। मृग पुनीत बहु मारत भएऊ ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ एकबार वह राजा एक अच्छे घोडे पर सवार होकर शिकार की सब तैयारी करके विन्ध्याचल के गम्भीर वन मे गया। और उसने बहुत से मेध्य मृगो को मारा।

व्याख्या राजा को मृगया का व्यसन था। शिकार के लिए तेज घोडा चाहिए। इसलिए शीघ्रगामी घोडे पर सवार हुआ। शिकारी कुत्ते, बाजपक्षी आदि जो कुछ वस्तु मृगयोपयोगी थे उन्हे साथ लिया। व्यसन इतना चढा बढा था कि कैकेय देश से शिकार के लिए विन्ध्याचल चला आया। सो भी घोडे पर। उसने वृथा हिंसा न की। केवल मेध्य पशुओ को मारा। मेध्य पवित्र पशु उसे कहते हैं जिसके मासचर्मादि ग्राह्य हो। यथा पावन मृग मारहिं जिय जानी।

फिरत विपिन नृप दीख बराहू। जनु बन दुरेउ ससिहि ग्रसि राहू ॥
बड बिधु नहि समात मुख माही। मनहु क्रोध बस उगिलत नाही ॥३॥

अर्थ वन मे घूमते हुए राजा ने एक सुअर देखा। मानो वन मे छिपने पर भी चन्द्रमा को राहु ग्रसे हो। चन्द्रमा बडा होने से उसके मुख में न समाता हो। और वह क्रोध के वश होकर उसे उगलता न हो।

व्याख्या वन मे घूमते घूमते उसे एक सूअर दिखाई पडा। अद्भुत सूअर था। मालूम होता था कि यह राहुग्रह है। इसके डर से चन्द्रमा आकाश छोडकर वन मे छिपे। पर यहाँ भी उसने पहुँच कर ग्रस लिया। परन्तु चन्द्रमा बडे थे और वह एक ही ग्रास करना चाहता था उसके मुख मे समाते नही थे। पर वह भी मारे क्रोध के उगलता नही था।

कोल कराल दसन छवि गाई। तनु बिसाल पीवर अधिकाई ॥
घुरुघुरात हय आरौ पाएँ। चकित बिलोकत कान उठाएँ ॥४॥

अर्थ सूअर के कराल दाँतो की छवि कही गई। शरीर भी उसका चरबी की अधिकता से बडा भारी था। घोडे की आहट पाकर वह घुरघुराता हुआ कान उठाकर आश्चर्य से देखता था।

व्याख्या सूअर का मुख राहु के वर्ण सा काला था। उसके दोनो दाँत दोनो ओर चन्द्रमा की कला की भाँति उज्वल थे। मालूम होता था कि चन्द्रमा का मध्य भाग तो राहु के मुख मे है। पर चन्द्रमा के बडे होने से उनके दोनो किनारे बाहर निकले हुए है। उसके कराल दाँतो की बडी शोभा हो रही थी। उसका शरीर राहु की भाँति विशाल मालूम होता था। राजा घोडे पर सवार चले आ रहे थे। ऐसी स्थिति मे घोडे की आहट पाकर सूअर कान उठाकर जिस भाँति चकित होकर देखते है उसी भाँति वह भी देखता था।

दो नील महीधर सिखर सम, देखि बिसाल बराहु।
चपरि चलेउ हय सुटुकि नृप, हाकि न होइ निबाहु ॥१५६॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ नीलपर्वत शिखर के समान भारी वाराह सुअर को देखकर राजा ने घोडे को सिटुककर चलाया। क्योंकि हांकने से निर्वाह नही होता था।

व्याख्या सिटुकने का अर्थ धीरे से कोडा लगाना है। ऐसा वाराह राजा ने देखा नही था। इसलिए उसके शिकार का अधिक चोप हुआ। यह जल्दी हाथ न आवेगा। हांकने से जैसा घोडा चल रहा है इस वेग से काम न चलेगा। इसलिए घोडे को धीरे से कोडा लगाया। घोडा वडी जातिवाला था। उसके लिए सिटुकना ही वहुत था।

आवत देखि अधिक रव बाजी। चलेउ वराह मरुत गति भाजी ॥
तुरत कीन्ह नृप सर सधाना। महि मिलि गएउ विलोकत वाना ॥१॥

अर्थ अधिक वेग से घोडे को आते देखकर वह सूअर वायुवेग से भाग चला। राजा ने तुरन्त वाण सन्धान किया। सूअर वाण देखते ही पृथ्वी मे चिपक गया।

व्याख्या राजा ने देखा कि घोडा इतने वेग से नही चल सकता। भाले से इसका शिकार करना असम्भव है। तीर मे ही इतनी शक्ति है कि इसके वेग का उल्लघन कर सके। अत उन्होंने वाण का सन्धान किया। वाराह ने देखा कि वाण से अधिक वेग मेरा नही हो सकता। इसलिए ऐसा जमीन मे चिपका कि नील महीधरशिखर सा उसका शरीर महीतल के समतल मालूम होने लगा। रव धातुगत्यर्थक है। अत रव शब्द यहाँ गति का बोधक है।

तकि तकि तीर महीस चलावा। करि छल सुअर सरीर वचावा ॥
प्रगटत दुरत जाइ मृग भागा। रिस वस भूप चलेउ सग लागा ॥२॥

अर्थ राजा ने ताक ताक कर तीर चलाया। पर सुअर चालाकी से शरीर वचाता ही गया। इस भाँति प्रकट होते और छिपते शिकार भागा जाता था। राजा भी क्रोध के वश उसका पीछा करता चला।

व्याख्या पहिली चोट खाली गयी। अव राजा खूव निशाना बाँधकर तीर चलाने लगा। पर सूअर भी चालाकी से शरीर बचाता ही गया। सभी वार खाली गये। इतने वडे रणपण्डित के सभी वारो का खाली जाना भी असाधारण वात थी।

वह शिकार कभी दिखाई पडता था। कभी दृष्टि से ओझल हो जाता था। एकदम ओझल हो जाय तो भी राजा निराश होकर लौट जाता। पर वह दिखाई भी पडता जाता था। सभी वारो के खाली जाने पर राजा को नैराश्य के स्थान पर क्रोध हुआ और उसने हठ करके पीछा किया। विचार से काम न लिया।

गएउ दूरि घन गहन वराहू। जहँ नाहिन गज वाजि निवाहू ॥
अति अकेल वन विपुल कलेसू। तदपि न मृग मग तजइ नरेसू ॥३॥

अर्थ सूअर दूर जाकर घने जगल मे घुसा जहाँ हाथी घोडे का निर्वाह

ankurnagpal108@gmail.com


नही था। राजा बिल्कुल अकेला था और वन मे बडा कष्ट था। फिर भी उसने शिकार का पीछा न छोडा।

व्याख्या : दो एक आदमी के साथ रहते भी राजा अकेला ही समझा जाता है। यहाँ तो उसके साथ कोई भी नही था। इसलिए अति अकेल कहते हैं। वन मे पानी तक का ठिकाना नही। घने जगल मे सूअर का पीछा करना महा कष्टकर कार्य था डरपहि धीर गहन सुधि आये इसलिए कहते हैं कि वनविपुल कलेसू। फिर भी राजा उसका पीछा करने से विरत न हुआ।

कोल बिलोकि भूप बड धीरा। भागि पैठ गिरिगुहा गभीरा॥
अगम देखि नृप अति पछिताई। फिरेउ महावन परेउ भुलाई॥४॥

अर्थ सूअर ने देखा कि राजा बडा धीर है। वह भागकर पर्वत की गहिरी गुफा मे घुस गया। उसमे राजा का घुसना असम्भव था। सो अत्यन्त पछताकर लौटा। बडा भारी वन था। उसमे रास्ता भूल गया।

व्याख्या सूअर ने देखा कि राजा बडा धीर है। यह प्राण न छोडेगा तो भागकर पर्वत के गहरे खोह मे घुस गया। राजा ने देखा कि इस गहरी गुफा मे मनुष्य की गति ही नही है। इसलिए पीछा करने से विरत होना पडा। बहुत पछताया कि सम्पूर्ण परिश्रम ही व्यर्थ पड गया। परन्तु लौटते समय उस महावन मे मार्ग भूल गया। शिकारी राजा साधारण वन मे रास्ता भूलनेवाला नही था। परन्तु महावन मे बडी दूर चला गया था इसलिए राह भूला।

दो खेद खिन्न छुद्धित तृषित, राजा बाजि समेत।
खोजत ब्याकुल सरित सर, जल बिनु भयउ अचेत॥१५७॥

अर्थ राजा खेद से खिन्न, भूखा, प्यासा घोडे के साथ व्याकुल होकर नदी तालाब ढूँढता था। और पानी बिना अचेत हो रहा था।

व्याख्या खेदखिन्न से मन की गति कही। क्षुधित तृषित से प्राण की गति कही। घोडे के भूखे प्यासे होने से स्वस्थ सवार भी बेकार हो जाता है। कि पुन दोनो भूखे प्यासे हो गये थे। भूख तो सह्य है, परन्तु प्यास से तो प्राण आकुल हो उठता है। व्याकुल होकर खोजने से जानी हुई वस्तु नही मिलती। यहाँ तो महावन मे सरित सर खोजना ठहरा। राजा की दयनीय अवस्था हो रही थी।

फिरत बिपिन आश्रम एक देखा। तहँ बस नृपति कपट मुनिबेषा॥
जासु देस नृप लीन्ह छुडाई। समर सेन तजि गयउ पराई॥१॥

अर्थ वन मे फिरते हुए एक आश्रम देखा। वहाँ एक राजा कपट से मुनिवेष मे रहता था। उसके देश को राजा भानुप्रताप ने छीन लिया था। क्योंकि वह समर मे सेना को छोडकर भाग गया था।

व्याख्या उस बडे और घने जगल मे एक आश्रम दिखाई पडा। उसमे कपट से मुनि वेष मे एक राजा रहता था। अर्थात् इस अवस्था मे भीतर से वह राजा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ही था। कपट से मुनिवेष वनाए था। वह भानुप्रताप का शत्रु था। क्योंकि इन्होंने उसका राज्य छीन लिया था। और वह प्राणभय से लडाई के मैदान मे फौज छोडकर भाग गया था। कुछ लोगो का मत है कि उसका नाम समरसेन था। वह सेना को छोडकर भाग गया था। सेन शब्द देहलीदीपकन्याय से दोनो ओर लगेगा। इस भाँति अन्वय होगा कि समर सेन तजि गयउ पराई। राजा भानुप्रताप ने किसी का राज्य नही लिया था। लै लै दण्ड छाडि नृप दीन्हे। पर इसके देशत्याग से इसका राज्य छीन लिया। यह इस भय से कि राजा वडा नीतिज्ञ है। मेरा पता लगाये विना न छोडेगा। इतने घने वन मे मुनि के वेष से छिपा वैठा था।

समय प्रतापभानु कर जानी। आपन अति असमय अनुमानी ॥
गयउ न गृह मन वहुत गलानी। मिला न राजहि नृप अभिमानी ॥२॥

अर्थ भानुप्रतापका अनुकूल समय जानकर और अपना अत्यन्त प्रतिकूल समय अनुमान करके वह भागा था। घर भी नही गया। और वह अभिमानी राजा भानुप्रताप से मिला भी नही।

व्याख्या एक ही समय किसी के लिए अच्छा और किसी के लिए बुरा होता है। दिग्विजय के समय जव राजा भानुप्रताप अपनी सेना के साथ इसके राज्य मे गया तो यह सेना लेकर उसका सामना करने को आया। पर समराङ्गण मे भानु-प्रताप की सेना देखकर साहस छूट गया। जान लिया कि शत्रु के दिन अच्छे हैं। शत्रु के अच्छे दिन आने से ही अपने वुरे दिन का अनुमान होता है। सो सेना को समराङ्गण मे छोडकर भाग गया। इसी से उसका पता न चला। यदि न भागता और भानुप्रताप से जा मिलता तो इससे दण्ड लेकर राजा भानुप्रताप छोड देता। पर यह अभिमानी था। भानुप्रताप से नही मिला और ग्लानि क कारण घर भी नही गया।

रिस उर मारि रक जिमि राजा। विपिन वसइ तापस के साजा ॥
तासु समीप गवन नृप कीन्हा। यह प्रतापरवि तेहि तव चीन्हा ॥३॥

अर्थ मन मे क्रोध मारकर वह राजा दरिद्र की भाँति तपस्वी का वेष वनाकर वन मे वसता था। राजा भानुप्रताप उसी के पास गया। उसने पहिचान लिया कि यह भानुप्रताप है।

व्याख्या तपस्वी के कोई गुण उसमे नही थे। भीतर राजस क्रोध भरा था। राजा होकर दरिद्र की भाँति रहता है। भानुप्रताप के भय से वन मे तपस्वी का स्वाँग वनाये हुए काल की प्रतिज्ञा कर रहा था। भानुप्रताप उस आश्रम म पहुँचा। उसके पास गया। वह बूढा हो गया था। दृष्टि घट गई थी। जव भानुप्रताप निकट गया तव उसने पहिचान लिया कि यह भानुप्रताप है। दूर से पहिचान पाता तो सम्भवत वहाँ से भी भाग खडा होता। पर अव भागने का समय नही रह गया।

राउ तृषित नहि सो पहिचाना। देखि सुवेष महामुनि जाना ॥
उतरि तुरग ते कीन्ह प्रनामा। परम चतुर न कहेउ निज नामा ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ . राजा प्यासा था। उसे पहिचान न सका। सुन्दर वेष देखकर जाना कि यह कोई महामुनि है। घोडे से उतरकर प्रणाम किया। फिर भी परम चतुर राजा ने अपना नाम न बतलाया।

व्याख्या राजाओं के पास शत्रु, मित्र तथा मध्यस्थ सभी राजाओ के चित्र रहते है। अत एक राजा दूसरे को बिना मुलाकात के ही पहिचान लेते हैं। भानुप्रताप यदि भूख प्यास से विकल न होता तो उसे पहिचान लेता। वह व्याकुल था समझा कि उतने घने जगल मे सिवा मुनि के और कौन रह सकता है। और वेष भी महामुनि का सा देखा।

घोडे पर से ही प्रणाम करना अविनय है। नियम है कि अपना गोत्र कहकर बडे को प्रणाम करना चाहिए। सो घोडे से उतरकर प्रणाम तो किया पर धर्मरुचि की शिक्षा के प्रताप से नीति मे बडा चतुर था। प्रणाम करते समय अपना नाम न लिया।

दो. भूपति तृषित बिलोकि तेहिं, सरवरु दीन्ह देखाइ।
मज्जन पान समेत हय, कीन्ह नृपति हरषाइ ॥१५८॥

अर्थ · राजा को प्यासा देखकर उसने उसे तालाब दिखला दिया। राजा ने घोडे सहित उसमें हर्षित होकर मज्जन और पान किया।

व्याख्या भानुप्रताप को देखते ही वह समझ गया कि यह प्यासा है। अत उनके कुछ कहने के पहिले ही उसने तालाब दिखला दिया। पीने का पानी दुर्लभ था। सो तालाब मिल गया। इससे हर्षित होकर राजा ने उसमे मज्जन किया और पानी भी पीया। तथा घोडे को पानी पिलाया और नहलाया। कोई साथ नही है। अत घोडे की सेवा स्वय करनी पडी।

गै श्रम सकल सुखी नृप भयऊ। निज आश्रम तापस लै गयऊ ॥
आसन दीन्ह अस्त रवि जानी। पुनि तापस बोलेउ मृदु बानी ॥१॥

अर्थ · सब थकावट मिट गई। राजा सुखी हुआ। तपस्वी अपने आश्रम मे उसे ले गया। सूर्यास्त जानकर आसन दिया फिर तपस्वी जी कोमल वाणी बोले।

व्याख्या राजा बिना जल के अचेत था। सो तालाब मिलने से मज्जन किया। पान किया। इसलिए कहते हैं कि थकावट मिटी और राजा सुखी हुआ। यथा मज्जन कीन्ह पथ श्रम गयऊ। सुचि जल पियत मुदित मन भयऊ। जबतक राजा स्नानादि करते थे तबतक तपस्वी जी वही थे। निश्चिन्त होने पर अपने आश्रम पर ले गये। यह राजा का सत्कार है। सूर्यास्त होने पर जब अधेरा हो चला तब आसन दिया और कोमल वाणी बोले। तपस्वी जी को भय हुआ कि राजा चैतन्य हुआ है। कही मुझे पहिचान न ले। इसलिए सूर्यास्त के पहिले दूर ही दूर थे। बोल तक नही। राजा आसन पर बैठा नही। अभी घोडे की रास पकडे खडा है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



को तुम्ह कस वन फिरहु अकेले। सुदर जुवा जीव पर हेलें[1] ॥
चक्रवर्ति के लच्छन तोरें। देखत दया लागि अति मोरे ॥२॥

अर्थ तुम कौन हो ? सुन्दर युवा होकर जानपर खेले हुए अकेले वन मे क्यो घूम रहे हो। तुम मे चक्रवर्ती के लक्षण है। तुम्हे देखकर मुझे बडी दया आई।

व्याख्या जब राजा आ ही गया तो उससे बातचीत करनी ही चाहिए। न करना भी ठीक नही। अत पूर्व परिचय छिपाता हुआ नाम पूछता है। इतने बडे राजा का अकेले वन मे घूमने के लिए कोई विशेष कारण होना चाहिए। वानप्रस्थ की अवस्था नही है। इसलिए पूछता है कि अभी तो तुम युवा हो। किस सकट मे फँस गये हो कि अकेले जानपर खेलकर इस वन मे आये। जिसके भय से इतना भयभीत था सो स्वय आ पहुँचा। अत उनके आने का अभिप्राय जानने के लिए तथा उनकी परिस्थिति जानने के लिए प्रश्न करता है।

यदि राजा को सन्देह उठे कि इसने कैसे जाना कि मैं बडा राजा हूँ तो उसके निराकरण के लिए कहता है कि तुममे तो चक्रवर्ती के लक्षण हैं मैंने सामुद्रिक विद्या से जाना। ऐसे वन मे तो जिसे प्राण देना होता है वही आता है। अत तुम्हारे किसी भारी सकट म फँसने की आशङ्का से मुझे अति दया लगी।

नाम प्रताप भानु अवनीसा। तासु[2] सचिव मै सुनहु मुनीसा ॥
फिरत अहेरें परेउँ भुलाई। बडे भाग देखेउँ पद आई ॥३॥

अर्थ हे मुनीश ! सुनो। भानुप्रताप नाम का जो राजा है उसका मैं मन्त्री हूँ। शिकार के लिए घूमते हुए मैं राह भूल गया। मेरा बडा भाग्य था कि आकर चरणो के दर्शन किये।

व्याख्या राजनीति के अनुसार राजा अपने को छिपाना चाहते हैं। पर लक्षण देखकर तपस्वी चक्रवर्ती कह रहा है। अब भेद कैसे छिपे ? इसलिए राजा ने अपने को भानुप्रताप का मन्त्री बतलाया। क्योकि मन्त्री के भी लक्षण राजा से ही होते हैं। कदाचित् किसी मन्त्री से इनका परिचय हो। इसलिए नाम नही बतलाया। कहने लगा कि कोई विपत्ति कारण नही है। मृगया के लिए आया था। भाग्य यहाँ खीच लाया।

हम कहँ दुर्लभ दरस तुम्हारा। जानत हौ कछु भल होनिहारा ॥
कह मुनि तात भएउ अँधियारा। जोजन सत्तरि नगर तुम्हारा ॥४॥

अर्थ हमको तो आपका दर्शन दुर्लभ है। जान पडता है कि होनहार कुछ अच्छा है। मुनि ने कहा कि बेटा ! अँधेरा हो गया। और तुम्हारा नगर यहाँ से सत्तर योजन है।

---

१ खपयपमा ह इस सूत्र से खेलें का हेलें हुआ।

२. यहाँ व्याजोक्ति अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या बडे भाग्यशाली बात को स्पष्ट करता है कि नगरवासियो को ऐसे विरक्त का दर्शन कहाँ से हो ? और साधु का दर्शन अमोघ है। कभी व्यर्थ जाता नही।

कपटमुनि ने समझ लिया कि यह नही पहिचान सका। और मुझसे कुछ लाभ की भी आशा इसे बँध गई है। हो सके तो फन्दे मे लाकर इससे पलटा चुकाना चाहिए। अत ठहरने के लिए आग्रह करता है। कहता है कि तुम अपने नगर से बहुत दूर निकल आये। कैकय देश यहाँ से ७० योजन पर है।

दो निसा घोर गभीर वन, पथ न सुनहु सुजान।
वसहु आज अस जानि तुम्ह, जाएहु होत विहान ॥१५९॥

अर्थ घोर रात्रि है। जगल घना है। रास्ता कोई नही। हे सुजान ! ऐसा जान के आज तुम यही ठहर जाओ। प्रात काल होते ही चले जाना।

व्याख्या कपटमुनि ने देखा कि अभी यह विश्वास नही करता है। यहाँ से जाना चाहता है। अपना प्रयोजन कोई बतला नही सकते। अत इसी के कल्याण का ओट पकडना चाहिए। अत राजा को समझाता है कि घोर वन मे दिन को चलना कठिन है। अँधेरी रात मे कोई कैसे चलेगा। पगडडी पकडकर किसी भाँति चलना हो सकता है। पर यहाँ वह भी नही। कोई आता जाता नही। अत रात को वन पार करना अशक्य है। अत रात यही बिताओ।

दो तुलसी जसि भवितव्यता, तैसइ मिलै सहाइ।
आपुन आवइ ताहि पहि, ताहि तहाँ लैजाइ ॥१५९॥ क

अर्थ तुलसीदासजी कहते हैं जैसा होनहार होता है वैसा सहाय मिल जाता है। वह स्वय उसके पास आजाता है। और उसे भवितव्यतावाल को वहाँ भवितव्यता के पास पहुँचा देता है।

व्याख्या भानुप्रताप का नाश होना है। यही भवितव्यता है। और वह कपटीमुनि के आश्रम पर राजा के पहुँचने पर ही सिद्ध होगी। और वह कैकय दश से सत्तर योजन पर घोर वन म है। राजा के वहाँ जाने की कोई सम्भावना नही है। राजा सदा की भाँति मृगया शिकार के लिए जाता है। वहाँ कालकेतु असुर राजा का परम वैरी सूअर बनकर भवितव्यता का सहाय होकर आता है। और राजा को ल जाकर कपटी मुनि तक पहुँचा देता है। जहाँ राजा स्वय कपटी मुनि के कपट का शिकार हो जाता है।

भलेहि नाथ आयसु धरि सीसा। बाधि तुरग तरु बैठ महीसा ॥
नृप बहु भाँति प्रससेउ ताही। चरन वदि निज भाग्य सराही ॥१॥

अर्थ आज्ञा सिर पर धारण करके राजा ने कहा स्वामिन् ! बहुत अच्छा। और घोडे को पेड से बाँधकर बैठ गया। राजा ने बहुत भाँति से उसकी प्रशसा की। और उसके चरणो की वन्दना करके अपने भाग्य को सराहा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या . अभी तक राजा जाने को तैयार था। अपरिचित स्थान मे ठहरना नही चाहता था। अत घोडे को कही बाँधा नही था। अब मुनिजी की आज्ञा ठहरने की हुई। तो उसे मानकर घोडे को पेड मे बाँध दिया। और स्वय मुनिजी के दिये हुए आसन पर बैठ गया।

राजा ने देखा कि इस सूनसान जगल मे एकाकी रहनेवाला यह निश्चय ही कोई महात्मा है। केवल लक्षण देखकर मुझे चक्रवर्ती जान लिया। और अपरिचित होने पर भी मुझपर इतनी कृपा करता है। अत उनकी बडी स्तुति की। प्रणाम किया। उनके दर्शन से अपने को भाग्यवान् माना। समझा कि इस रास्ता भूलने से मेरा हित ही हुआ।

पुनि बोलेउ मृदु गिरा सुहाई। जानि पिता प्रभु करौ ढिठाई ॥
मोहि मुनीस सुत सेवक जानी। नाथ नाम निज कहहु बखानी ॥२॥

अर्थ फिर सुन्दर और कोमल वाणी बोला कि प्रभो! पिता जानकर मैं ढिठाई करता हूँ। हे मुनीश मुझे बेटा और सेवक जानकर हे नाथ! अपने नाम को बखानकर कहिये।

व्याख्या राजा ऐसी वाणी बोला जो कोमल और सोहाई हो। किसी विरक्त से नाम ग्राम पूछना ढिठाई है। ससार से सम्बन्ध तोडकर जो जगल मे बैठा है उससे व्यवहारस्थापन के लिए नाम ग्राम पूछने का किसी को क्या अधिकार है? और राजा पूछना चाहता है। अत ऐसी कोमल वाणी से पूछता है कि अरुन्तुद न मालूम हो। पहिले सम्बन्ध कायम करता है कि मुनि होने से आप प्रभु हैं। राजा होने से मैं सेवक हूँ। आपने 'बेटा' कहा है। मैं आपको पिता मानता हूँ। यद्यपि आप मुनीश हैं। फिर भी मुझे सुत और सेवक होने से अधिकार है कि नाम पता पूछूँ। क्योंकि अपने स्वामी और पिता के परिचय की किसे जिज्ञासा नही होती। ऐसी अवस्था मे ढिठाई क्षम्य है।

तेहि न जान नृप नृपहि सो जाना। भूप सुहृद सो कपट सयाना ॥
बैरी पुनि छत्री पुनि राजा। छल बल कीन्ह चहै निज काजा ॥३॥

अर्थ राजा ने उसे नही जाना। पर वह राजा को जान गया। राजा सुहृद था। पर वह कपट मे सयाना था। एक तो बैरी तिस पर क्षत्रिय और उसमें भी राजा। छल वे बल से अपना काम किया चाहता है।

व्याख्या राजा भी सयाना था। परन्तु शुद्धहृदय था। और यह मुनि कपट मे सयाना था। दूसरी बात यह थी कि राजा उसे पहिचान न सका। और उसने राजा को पहिचान लिया था। इस कारण से राजा उसकी माया मे जा फँसा। एक तो बैरी बुरे होते ही हैं। उसमे भी क्षत्रिय बिना बदला लिये नही रह सकता। उसमे भी यदि राजा हो तो निश्चय बल से काम लेगा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


समुझि राज सुख दुखित अराती। अवाँ अनल इव सुलगै छाती ॥
सरल वचन नृप के सुनि काना। बयर सँभारि हृदय हरषाना ॥४॥

अर्थ : वह शत्रु राजसुख का स्मरण करके दुखित था। उसकी छाती आवें की आग की भाँति सुलगती थी। राजा के सरल वचन कान से सुनकर वैर को सँभालकर हृदय में हर्षित हुआ।

व्याख्या : राजा के वैरी होने मे विशेषता यह है कि उसे पदे पदे राजसुख याद पडेगा। कलेजे मे आग धधका करेगी। वह बदला लेने मे किसी पुण्य-पाप का विचार न करेगा।

राजा सुहृद था इसलिए सरल वचन बोला। यह कपट में सयाना था। इसलिए वैर को संभालकर हर्षित हुआ। वैर सभालने का भाव यह है कि उसका हर्ष राजा की सरलता के कारण नही है। वल्कि राजा का अपने प्रति विश्वास देखकर है। वैर सभाला बदला लेने के लिए। यह देखकर कि राजा बडा सरल मालूम पडता है, इसके सरल वचनो मे चित्त न पिघले अत: वैर को सभाला कि इसी ने मेरा सर्वस्व हरण करके मुझे वनचारी वना रक्खा है। कान से सुनने का भाव यह है कि उसे हृदय मे स्थान नही दिया।

दो. कपट बोरि बानी मृदुल, बोलेउ जुगुति समेत।
नाम हमार भिखारि अब, निर्धन रहित निकेत ॥१६०॥

अर्थ वह युक्ति से कोमल वाणी कपट से पगी हुई बोला मेरा नाम तो अब भिखारी, निर्धन और गृहहीन है।

व्याख्या वह कपटमुनि भी मृदु वाणी बोला। पर सोहाई नही थी। क्योकि कपट से डूबाडूब थी और ऐसी युक्ति से बोला कि उससे स्पष्ट हृदय का उद्गार भी प्रकट हो। और राजा यह समझे कि मुनिजी अपने प्रभाव को छिपा रहे हैं। बडे गलित अभिमान हैं। अब का भाव यह कि किसी समय राज्य था। कोष था, दुर्ग था। आज मैं भिखारी निर्धन और गृहहीन हूँ। पर राजा यह समझें कि अपने त्याग को गरीबी के रूप मे छिपा रहे है।

कह नृप जे बिग्यान निधाना। तुम्ह सारिखे गलित अभिमाना ॥
सदा रहहि अपनपौ दुराएँ। सब बिधि कुसल कुबेष बनाएँ ॥१॥

अर्थ · राजा ने कहा कि जो विज्ञान के निधान है और आपके सदृश गलित अभिमान है वे अपने को सदा छिपाये रहते हैं। यद्यपि सब प्रकार से कुशल : निपुण है पर कुवेष बनाये रहते हैं।

व्याख्या . किएहु कुबेष साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत[१] हनुमानू।

१. आल्विल्लोल्लालवनोन्तामतुप। आलु इल्ल, उल्ल, आल, वन्त, इन्त इत्येत आदेशा मतुप स्थाने भवन्ति। मतुप् के स्थान मे वन्त आदेश होता है। इससे जाम्बवन्त ऐसा रूप हुआ। सर्वत्र लवराम् इस सूत्र से वकार का लोप होकर जामवत रूप सिद्ध हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जामवन्त और हनुमान् विज्ञान के निधान साक्षात् ब्रह्मदेव और शिव हैं। उन्हे अभिमान नही है। भालू वन्दर वने फिरते हैं। इसी भाँति आप भी विज्ञान के निधान और गलित अभिमान हैं। लोकमान्यता के भय से भिखारी, निर्धन और निकेतरहित बने हुए हैं।

तेहि ते कहहि सत श्रुति टेरे। परम अकिचन प्रिय हरि केरे ॥
तुम्ह सम अधन भिखारि अगेहा। होत विरचि सिवहि सदेहा ॥२॥

अर्थ इसी से वेद और सन्त पुकारकर कहते हैं कि परम अकिचन वडे गरीव हरि को प्रिय हैं। तुम्हारे ऐसे निर्धन, भिखारी और गृहहीन से ब्रह्मा और विष्णु को सन्देह होता है।

व्याख्या सन्त और श्रुति प्रमाण हैं। सो पुकारकर कहते हैं जिनसे सव कोई सुनलें कि परम अकिचन हरि को प्रिय हैं। परम अकिचन वे ही हैं जिन्हे अपना कुछ नही है। इस जगत् मे सब मानने की बात है। जिसे एक लँगोटी और तूवा है और उसमे उसकी अह और मम बुद्धि है तो वह अकिञ्चन नही है। और जिसे सव कुछ है पर किसी पर अह मम बुद्धि नही है वही अकिञ्चन है। यथा राम गरीव नेवाज हैं तै गही न गरीबी। गरीव होने से गरीवी नही होती। गरीवी ग्रहण की जाती है। गरीवी साधु का एक लक्षण है। विज्ञाननिधान होकर गलितअभिमान होना यही सच्ची गरीवी है। नही तो अति गरीब के पास भी कुछ न कुछ रहता ही है।

राजा कहते हैं कि आप ऐसे अधन, भिखारी और गृहहीन ही ब्रह्म रुद्र पद पाते हैं। अत आप ऐसे महापुरुषों से उन्हे सन्देह रहता है। ज्ञानी देवता हैं। अत उन्ह त्रास नही होता। सन्देह मात्र होता है। इन्द्र भोगी है। अत उन्हे तो त्रास हो जाता है। यथा सुनासीर मन महुँ अति त्रासा। चहत देवरिसि मम पुरवासा।

जोसि सोसि तव चरन नमामी। मोपर कृपा करिअ अव स्वामी ॥
सहज प्रीति भूपति कै देखी। आपु विषय विस्वास विसेखी ॥३॥

अर्थ आप जो हो सो हो मैं आपके चरणो को नमस्कार करता हूँ। हे स्वामिन्! मुझपर अव कृपा करिये। कपट मुनि राजा की स्वाभाविक प्रीति और अपने ऊपर विश्वास देखकर

व्याख्या भाव यह है कि मुनिजी नाम नही वतलाना चाहते ता हर्ज ही क्या है। मुझे तो इनको प्रणाम करने से मतलब है। अत कहते हैं कि आप चाहे जो हो मैं आपके चरणो मे प्रणाम करता हूँ। राजा समझता है कि ये कोई वडे ऊँचे दर्जे के महात्मा हैं। तभी तो ऐसे घोर वन मे रहते हैं। भाग्य से मेरी पहुँच इन तक हो गई है। नहीं तो इन तक कौन पहुँचता है? मैं भी फिर इन तक पहुँच पाऊँगा इसकी आशा ही क्या है? ये अपना नाम नही वतलाना चाहते तो ये मिलना कव चाहेगे। अत अवसर न चूकना चाहिए। अलभ्य लाभ तो इनसे ही

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

होगा। अत राजा कृपा करने की प्रार्थना करते है। राजा ने स्वय उनके पूछने पर अपना नाम नही बतलाया था। अत मुनिजी के अपने नाम न बतलाने पर असन्तुष्ट होने का कोई कारण नही था। मुनिजी ने देखा कि यह स्वाभाविक साधुसेवी है। यथा गुर सुर सत पितर महिदेवा। करइ सदा नृप सबकर सेवा। मुझपर विशेष विश्वास कर रहा है। ईश्वरकोटि म मान रहा है। अत

सब प्रकार राजहि अपनाई। बोलेउ अधिक सनेह जनाई ॥
सुनु सति भाउ कही महि पाला। इहा बसत बीते बहु काला ॥४॥

अर्थ सब प्रकार से राजा को अपना बनाकर अधिक स्नेह प्रकट करता हुआ बोला राजन् मै सत्यभाव से कहता हूँ सुनो। यहाँ रहते मुझे बहुत दिन बीत गये।

व्याख्या धूर्तों का पहिला काम यह होता है कि अपने ऊपर विश्वास दृढ करा लेते है। तब अपने कपटजाल के प्रसार म हाथ लगाते है। मन्थरा ने पहिले कैकेयी का विश्वास अपने ऊपर दृढ कर लिया। तब अपनी माया फैलायी। यथा सजि प्रतीति बहु बिधि गढि छोली। अवध साढ साती तब बोली। इसी भाँति कपटमुनि ने जब सब प्रकार से उसे अपना बना लिया। वह उसको ब्रह्मा रुद्र की कोटि मे समझने लगा। बिना परिचय जाने अत्यन्त विश्वास करने लगा। तब अधिक स्नेह जनाता हुआ बोला। स्नेह तो उसने पहिल ही जनाया था। यथा चक्रवर्ति के लच्छन तोरे। देखत दया लागि अति मोरे। पर अब अधिक जनाया। अपना परिचय देना प्रारम्भ किया।

बोला कि अब तुमसे न छिपाऊँगा। पुत्र या सेवक से छिपाना ठीक नही। सत्य भाव से कहता हूँ कि यहाँ रहते बहुत काल बीत गया। भाव यह कि तप से मेरा मन विरत होता ही नही। अब भी तप की ही इच्छा है। बहुत दिन एक स्थान मे रहने से ख्याति हो ही जाती है। अत कहता है

दो अब लगि मोहि न मिलेउ कोउ, मै न जनावौ काहु ॥
लोक मान्यता अनल सम, कर तप कानन दाहु ॥१६१॥क
सो तुलसी देखि सुबेषु, भूलहि मूढ न चतुर नर।
सुदर केकिहि पेखु, बचनसुधा सम असन अहि ॥१६१॥

अर्थ अबतक मुझे कोई मिला नही और मै किसी को जनाता नही। क्योकि लोकप्रतिष्ठा आग के समान तपस्या के वन को जला डालती है।

तुलसीदास जी कहते है कि सुन्दर वेष देखकर मूढ लट्टू होते है। चतुर लोग नही। सुन्दर मोर का देखो अमृत सी वाणी है पर साँप को खा जाता है।

व्याख्या इतने दिन मुझ यहाँ रहते हुए पर पहिले मनुष्य तुम ही हो जो यहाँ तक आये। यह स्थान ही ऐसा मैने चुना है कि यहाँ किसी की गति ही नही है। और मै स्वय लोगो स मिलना नही चाहता। अत मुझको कोई जानता ही नही है। इसी से तप का सञ्चय मुझम है। लोकप्रसिद्धि तपस्वी के लिए विष है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वह तपस्या के वन को आग की भाँति जला देती है। यदि किसी तपस्वी की प्रसिद्धि हो तो समझना चाहिए कि उसके तपस्या के वन मे आग लगी हुई है। लोकप्रसिद्धि उसी का उजेला है।

मुनि का वेष है। ऐसे घने जगल मे रहता है जहाँ मनुष्य की गन्ध नही। ऐसी वैराग्य युक्त वाणी बोलता है। ऐसे पुरुष के महामुनि न मानने का कोई कारण नही है। फिर भी श्रीग्रन्थकार सावधान करते है। ऐसी अवस्था म भी लट्टू हो जाना मूढ का काम है। ये सब साधु के लक्षण नही हैं। न लिङ्ग धर्मकारणम्। क्योकि खल लोग इन सब बातो की नकल कर लेते हैं। मोर को देखो कैसा सम्पूर्ण शरीर मे तिलक छापा लगाये है। कितना मनोहर है। अमृत सी वाणी बोलता है। उसे देखकर कौन समझेगा कि यह साँप खाता होगा। अत वेषवाणी आदि बाहरी चिन्हो का कोई मूल्य नही है। सन्त मे एक लक्षण ऐसा है कि उसकी नकल किसी के किये हो नही सकती। ग्रन्थकार ने स्वय उसे लिख दिया है। यथा उमा सत क इहै बडाई। मद करत जो करै भलाई।

ताते गुपुत रहौ जग माही। हरि तजि किमपि प्रयोजन नाही ॥
प्रभु जानत सब बिनहि जनाए। कहहु कवन सिधि लोक रिझाए ॥१॥

अर्थ इसी कारण मै ससार मे छिपा रहता हूँ। मुझे हरि को छोडकर कोई प्रयोजन ही नही है। और प्रभु बिना जनाये ही सब जानते हैं। लोगो के रिझाने मे भला बताओ क्या फलसिद्धि है?

व्याख्या तपोवृद्धि के लिए गुप्त रहता हूँ। बिना प्रयोजन किसी कार्य को कोई नही करता। मुझे तो केवल हरि से प्रयोजन है। लोगो से कोई प्रयोजन नही। तो फिर मैं उनसे क्यो मिलूँ प्रयोजनमनिर्दिश्य न मन्दोऽपि प्रवर्तते। तप आदिक जो किया जाता है सो सब हरि के लिए और वे बेजनाए ही सब जानते है। अत उनको भी जनाने की आवश्यकता नही। सब विधि से गुप्त रहना ही ठीक है। इसीसे मैं नाम भी नही बतलाता था। अपना परिचय छिपाता था। परन्तु अब देखता हूँ कि

तुम्ह सुचि सुमति परम प्रिय मोरे। प्रीति प्रतीति मोहि पर तोरे ॥
अब जौं तात दुरावौं तोही। दारुन दोष घटै अति मोही ॥२॥

अर्थ तुम शुचि हो, सुमति हो अत मुझे परम प्रिय हो। और मुझपर तुम्हारी प्रीति प्रतीति है। अब यदि तुमसे छिपाव करूँ तो मुझे दारुण कठिन दोष लगेगा।

व्याख्या तुम शुचि हो, निष्कल्मष हो, तुम्हे वेदविदित मार्ग मे सात्त्विकी श्रद्धा है। इसलिए तुम सुमति हो। यथा मतिर्नाम वेदविहितमार्गेषु श्रद्धा। शाण्डिल्योपनिषदि। अत मुझे अत्यन्त प्रिय हो। तिस पर तुम्हे मुझपर प्रेम है और विश्वास है। और तुम मुझसे आर्त होकर पूछते हो। नीति यह है कि गूढौ तत्त्व

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

न साधु दुरावहि। आरत अधिकारी जहँ पावहिं। क्योंकि अधिकारी से छिपाने में दारुण दोष है। अतः अब मैं तुमसे नही छिपा सकता।

जिमि जिमि तापसु कथै उदासा। तिमि तिमि नृपहि उपज विस्वासा॥
देखा स्ववस कर्म मन बानी। तब बोला तापस बक ध्यानी॥३॥

अर्थ : जैसे जैसे : वह : तपस्वी उदासीनता कथन करता चला जाता है वैसे ही वैसे राजा को विश्वास उपजता चला जाता है। जब मनसा वाचा कर्मणा उसे : अपने वश मे देख लिया तब वह वकध्यानी तपस्वी बोला।

व्याख्या : सद्गृहस्थ रहते तो हैं प्रवृत्तिमार्ग मे पर निवृत्तिमार्ग की बडी प्रतिष्ठा उनके हृदय मे रहती है। अत वह तपस्वी जितनी उदासीनता अपनी जगत् से दिखलाता है उतना ही राजा का विश्वास जमता चला जाता है। तपस्वी बोलता जाता था और देखता जाता था कि राजा पर कैसा प्रभाव पड रहा है। जब देख लिया कि मनसा वाचा कर्मणा राजा वश मे आगया तब वकध्यानी तपस्वी बोला। बगला नदी के किनारे एक पैर से खडा रहता है। इधर उधर कही नही देखता। उसका ध्यान केवल मछली पर रहता है। इसी भाँति विषय का ध्यान करता हुआ कर्मेन्द्रियो का सयम किये जो स्थित है ऐसे मिथ्याचारी को वकध्यानी कहते है। यथा 'कर्मेन्द्रियाणि सयम्य य आस्ते मनसा स्मरन्। इन्द्रियार्थान् विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते।

नाम हमार एकतनु भाई। सुनि नृप बोलेउ पुनि सिरु नाई॥
कहहु नाम कर अरथ बखानी। मोहि सेवक अति आपन जानी॥४॥

अर्थ . हे भाई! मेरा नाम एकतनु है। सुनकर राजा फिर प्रणाम कर बोले मुझे अपना अत्यन्त सेवक जानकर नाम का अर्थ वर्णन करके कहिये।

व्याख्या इतनी बडी भूमिका के बाद तो अपना नाम बताया। और चुप हो गया। नाम एसा बतलाया जिसमे जिज्ञासा के लिए कौतुक बढे। जो बातें कहना चाहता है उसे यदि बिना पूछे कहे तो जमेगी नही। इसलिए प्रश्न का बीज रखकर नाम बतला दिया। एकतनु सुनते ही राजा को जिज्ञासा हुई। फिर कुछ कहना चाहते हैं। इसलिए प्रणाम किया और प्रार्थना की कि मुझे आप अपना अत्यन्त सेवक जानिये और नाम का अर्थ बखानकर कहिये। भाविनी वृत्ति से अत्यन्त सेवक कहा। राजा अर्थ जानने के लिए आतुर है। समझता है कि अर्थ करने मे ही बहुत कुछ परिचय प्राप्त हो जायगा। इसलिए कहता है कि मैं अति सेवक हूँ। आप को छोडकर दूसरा स्वामी नही जानता।

दो. आदि सृष्टि उपजी जबहि, तब उतपति भइ मोरि।
नामु एकतनु हेतु तेहि, देह न धरी बहोरि॥१६२॥

अर्थ · जब आदि सृष्टि हुई उसी समय मेरी उत्पत्ति हुई। मेरा नाम एकतनु इसलिए पडा कि फिर मैने देह धारण नही किया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या मेरी उत्पत्ति कल्प के आरम्भ मे हुई। इन्द्र की, देवताओ की, सप्तऋषियो की सृष्टि तो पीछे से मन्वन्तर के आदि मे होती है। तब से कितने अवतार भगवान् के हुए। कितनी बार उन्होने अनेक शरीर धारण किये। पर मेरा वही शरीर चला आता है। मैने दूसरा शरीर नही धारण किया। इसी से मेरा नाम एकतनु है।

जनि आचरजु करहु मन माही। सुत तप तें दुर्लभ कछु नाही ॥
तप बल तें जगसृजै विधाता। तप बल विस्नु भए परित्राता ॥१॥

अर्थ बेटा! मनमे आश्चर्य न करो। तप से कुछ भी दुर्लभ नही है। तपबल से ब्रह्मदेव ससार की सृष्टि करते है। तप बल से विष्णु पालनेवाले हुए।

व्याख्या : राजा कुछ नही बोला। पर उसके मनमे बडा आश्चर्य हुआ। मानव शरीर इतना स्थायी नही हो सकता। कपट मुनि बराबर राजा के मनोगत भावो को उसके चेहरे से लक्ष्य करता जाता था। तुरन्त बोल उठा। मैं तुम्हारे मन की बात को समझ रहा हूँ। आश्चर्य न करो। तपबल से क्या नही हो सकता? मेरे शरीर को स्थायी[1] तप ने बना रक्खा है। यह सब सृष्टि तप के आधार से है। यथा : तप अधार सब सृष्टि भवानी। प्रारम्भ मे ब्रह्मदेव सृष्टि करने मे असमर्थ थे। आकाशवाणी हुई : तप तप। तब उन्होने बहुत बडा तप किया। तप द्वारा शक्ति-सञ्चय करके यह सृष्टि कर डाली। सृष्टि करने से भी बडा काम उसका पालन करना है। सब जगह से सब कुछ अतन्द्रित होकर सँभाले रहना। मन से भी नही सोचा जा सकता। यथा यदि ह्यहं न वर्त्तेय जातु कर्मण्यन्द्रित। सङ्करस्य च कर्त्ता स्यामुपहन्यामिमा प्रजा। यदि एक क्षण भी आलस्य कर तो सृष्टि मे गडबड मच जाय और यह सब प्रजा नष्ट हो जाँय। सो भगवान् तपबल से ही सृष्टि का पालन करते हैं।

तप बल संभु करहिं ससारा। तपतें अगम न कछु ससारा ॥
भयउ नृपहि सुनि अति अनुरागा। कथा पुरातन कहै सो लागा ॥२॥

अर्थ तपबल से शम्भु सहार करते हैं। इस ससार मे तप से कुछ भी अगम नही है। सुनकर राजा को अत्यन्त अनुराग हुआ। तब तो वह पुरानी कथाएँ कहने लगा।

व्याख्या सहार का कार्य भी बडी जिम्मेदारी का है। पालन और सहार दोनो साथ साथ चलता है। विना सहार के पालन और विना पालन के सहार नही होता। सृष्टिक्रम से विपरीत सहारक्रम है। अत अन्त मे क्रमश लय करते हुए सब कुछ ब्रह्म मे लय कर देना सहार है। यह कार्य शम्भु सम्पादन करते हैं। न

---

१. अनभ्यासेन वेदानामाचारस्य च वर्जनात्। आलस्यादन्नदोषाच्च मृत्युर्विप्राञ्जिघासति। मनु·

अर्थ वेदो का अभ्यास न करने से, आचार का पालन न करने से, आलस्य से और अन्नदोष से मृत्यु ब्राह्मण को मारती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


तो ब्रह्मा कुलाल की भाँति सब वस्तुओ की रचना करते हैं न विष्णु माँ की भाँति सबका पालन करते है और न शम्भु व्याघ्र की भाँति सहार करते हैं। यह सब कार्य उनके तपोबल से आप से आप होता रहता है। जितनी शक्तियाँ हैं, उन सबका समावेश, उत्पादन, पालन और सहार मे हो जाता है। इसलिए कहते हैं कि तप से इस ससार मे अगम कुछ भी नही है। तप करनेवाला होना चाहिए। इस ससार मे कुछ भी असाध्य नही है। मैं भी उसी तप के बल से शरीर को स्थायी बनाये बैठा हूँ।

राजा को मुनिजी की इन बातो को सुनकर और भी श्रद्धा भक्ति बढी। कपटी मुनि ने देख लिया कि उसकी यह बात भी बैठ गई। तब अपने दीर्घजीवी होने के प्रमाण मे अपनी आँखो देखी की भाँति पुरानी पुरानी घटनाओं का वर्णन करने लगा।

करम धरम इतिहास अनेका। करै निरूपन बिरति बिबेका ॥
उद्भव पालन प्रलय कहानी। कहेसि अमित आचरज बखानी ॥३॥

अर्थ : कर्म, धर्म के अनेक इतिहास वैराग्य और विवेक का निरूपण करने लगा। उत्पत्ति पालन और प्रलय की कहानियो को बडे बडे आश्चर्य की बातो के साथ वर्णन किया।

व्याख्या पुण्य श्रवण कीर्त्तन की कथा धर्म-इतिहास है। अन्य जीवो की कथा कर्म-इतिहास है। पुराणेतिहास के व्याज से कर्म, धर्म, वैराग्य और ज्ञान का निरूपण ही महात्माओ को इष्ट होता है। ठीक उसी भाँति वह भी निरूपण करने लगा। धार्मिक होना, वैराग्यवान् होना और ज्ञानी होना दूसरी बात है। और इनका निरूपण करना दूसरी बात है। अत निरूपण करना पण्डिताई है। धर्मात्मा विरागी या ज्ञानी होने का लक्षण नही है। देखिये आज कपटी मुनि ने सदा शास्त्र वेद पुराण के श्रवण करनेवाले राजा भानुप्रताप को अपनी धूर्तता के चक्कर मे डाल दिया।

उसने देख लिया कि राजा को श्रद्धा इतनी बढी हुई है कि उसको सब बाते बैठती जायँगी। तब उसने कहानी प्रारम्भ की। झूठी झूठी बाते गढकर सृष्टि स्थिति प्रलय के समय की अत्यन्त आश्चर्यमय घटनाएँ सुनाने लगा।

सुनि महीप तापस बस भयऊ। आनन नाम कहन तब लयऊ ॥
कह तापस नृप जानौं तोही। कीन्हेहु कपट लाग भल मोही ॥४॥

अर्थ यह सब सुनकर तो राजा उस तपस्वी के वश मे हो गया। तब वह अपना नाम बतलाने लगा। तपस्वी बोला कि राजा! मै तुम्हे जानता हूँ। किया तो तुमने कपट पर मुझे अच्छा लगा।

व्याख्या कपटी मुनि ने जब देखा कि राजा मनसा वाचा कर्मणा उसके वश हो गया। तब अपना नाम एकतनु बतलाया। राजा उस समय तक उसके वश

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मे नही था। अपना नाम छिपाये ही रहा। पर कथा सुनने पर वश मे आया। विचार ही निश्चय करके सब श्रेय का मूल है। और अविचार ही बडी भारी मृत्यु है। राजा ने इस समय विचार को तिलाञ्जलि दे रक्खी है। वह अपनी सिद्धि दिखलाता है कि बिना बतलाये ही मैं सब जानता हूँ। तुमने कपट किया सो भी जानता हूँ। पर वह कपट मुझे बुरा नहीं लगा। क्योंकि नीति शास्त्रानुमोदित था। यथा

सो सुनु महीस असि नीति, जँह तँह नाम न कहहिं नृप।
मोहि तोहि पर अति प्रीति, सोइ चतुरता बिचारि तव ॥१६३॥

अर्थ • राजा! सुन यह नीति है कि राजा अपना नाम जहाँ तहाँ न बतलावें। इसी तुम्हारी नीति निपुणता का विचार करके मुझे तेरे ऊपर बडी प्रीति हुई।

व्याख्या • राजाओं के लिए नीतिशास्त्र की विशेष आज्ञा है। राजाओं को प्रजा के दु ख सुख को अपनी आँखों देखने के लिए वेष बदल कर अकेले रात्रि मे घूमना पडता है। और भी अवसर ऐसे आते हैं जब कि राजा अकेले पड जाते हैं। उनके गुप्त शत्रु बहुत होते हैं। अत उन्हें अपरिचित स्थानादि मे नाम छिपाने की आज्ञा है। राजा को नीतिज्ञ होना चाहिए। तुम्हारे नाम छिपाने से मुझे तुम्हारे नीतिनैपुण्य का परिचय मिला। इसीसे तुम पर मेरी अति प्रीति है।

नाम तुम्हार प्रताप दिनेसा। सत्यकेतु तव पिता नरेसा ॥
गुरु प्रसाद सब जानिअ राजा। कहिय न आपन जानि अकाजा ॥१॥

अर्थ तुम्हारा नाम भानुप्रताप है। तुम्हारे बाप का नाम राजा सत्यकेतु है। राजन् गुरु के प्रसाद से सब कुछ जाना जाता है। पर अपनी सर्वज्ञता को बतलाता नहीं। क्योंकि इससे अपनी ही हानि है।

व्याख्या जब राजा अपना नाम बतलाने लगा। तभी कपट मुनि ने यह कहकर रोक दिया कि मैं तुमको जानता हूँ। क्योंकि राजा के बतलाने से उसको अपनी सिद्धि दिखाने का अवसर न मिलता। अब अपनी सिद्धि दिखलाते हुए बतलाता है कि तुम्हारा नाम भानुप्रताप है। तुम्हारे बाप का नाम राजा सत्यकेतु है। राजा को आश्चर्य मे देखकर कहता है कि यह ज्ञान गुरुप्रसाद से होता है। भावार्थ यह कि जब तुम्हें गुरु मिलेगा तब तुम भी इसी भाँति जान जाया करोगे। परन्तु ये बातें कही नहीं जाती। कहने से प्रसिद्धि होती है और उससे तप क्षय होता है।

देखि तात तव सहज सुधाई। प्रीति प्रतीति नीति निपुनाई ॥
उपजि परी ममता मन मोरे। कहौं कथा निज पूँछे तोरे ॥२॥

अर्थ बेटा! तुम्हारी स्वाभाविकी सिधाई, प्रीति, विश्वास, नीतिनैपुण्य देखकर मेरे मन मे ममता हो आई। तुम्हारे पूछने पर अपनी कथा कह रहा हूँ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या इतने सद्गुणो का योग कही नही देखा गया। एक ओर सहज सुधाई, प्रीति और प्रतीति और दूसरी ओर नीति निपुणता। सुधाई, प्रीति, प्रतीति से नीति का एक प्रकार से वैर ही है। सो विरोधी गुण तुम्हारे मे सहज वैर छोडकर निवास करते हैं।

सहज सुधाई। यथा सरल वचन नृप के सुनि काना।
प्रीति। यथा सहज प्रीति भूपति के देखी।
प्रतीति। यथा आपु विषय बिस्वास बिसेषी।
नीति निपुनाई। यथा नाम प्रताप भानु अवनीसा।
तासु सचिव मैं सुनहु मुनीसा।

इस बात को देखकर मेरे मन मे जो स्वभाव से ही विरागरूप है। ममता उत्पन्न हो पडी। गुणो मे सामर्थ्य ही ऐसा है कि आत्माराम मुनियो के मन को खीच लेता है। फल यह हुआ कि तुम्हारे पूछने पर मैं अपनी कथा सुनाने लगा। स्वमाहात्म्यगोपन के सिद्धान्त से हटना पडा।

अब प्रसन्न मैं ससय नाही। मागु जो भूपभाव मनमाही ॥
सुनि सुवचन भूपति हरषाना। गहि पद विनय कीन्ह विधि नाना ॥३॥

अर्थ अब मैं प्रसन्न हूँ। इसमे सशय नही है। राजा जो तेरे मन को भाता हो सो माँग लो। सुन्दर वचन सुनके राजा प्रसन्न हुआ। चरण पकडकर अनेक भाँति से विनय किया।

व्याख्या किसी को भी सब विषय की प्राप्ति नही होती। तुम चक्रवर्ती राजा हो। फिर भी तुम्हे कोई अभाव अवश्य होगा। तुमने कहा भी था कि मोपर कृपा करिअ अब स्वामी। सो अब मैं तुम पर प्रसन्न हूँ। इसमे सशय नहो हैं। भाव यह कि दिल खोलकर माँगो। इस भाति भीतरी इच्छा जानना चाहता है। भीतरी इच्छा ही कमजोरी है। उसी की पूर्ति के लिए आदमी अन्धा हो जाता है। धूर्त लोग सदा उसके जानने की चेष्टा करते है। क्योकि उसे जान लेने पर ठगने म बडा सुभीता होता है।

राजा ने कहा था जानत हौं कछु भल होनिहारा। सो बात हुआ चाहती है। अत मुनिजी के वरद होने पर हर्षित हुआ। मनोरथ सिद्धि के लिए आर्त है। चरण पकडकर नाना विधि से विनय करने लगा। क्रमश दोनो हर्षित हुए। राजा का हर्षित होना तो प्रसक्त ही है। यथा मुनि सुवचन भूपति हरषाना। और मुनि जी तो पहिले से ही हर्षित हैं। यथा सरल वचन नृपके सुनि काना। बैर सभारि हृदय हरषाना।

कृपा सिंधु मुनि दरसन तोरें। चारि पदारथ करतल मोरें ॥
प्रभुहिं तथापि प्रसन्न बिलोकी। मागि अगम बर होउ असोकी ॥४॥

अर्थ हे कृपासिन्धु मुनि आपके दर्शन से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष ये चारो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पदार्थ मेरे हाथ मे है। फिर भी प्रभु को प्रसन्न देखकर अगम पहुँच के बाहर : वर माँगकर अशोक हुआ चाहता हूँ।

व्याख्या : राजा ने सोचा बिना सेवा शुश्रूषा के बिना जप तप के चन्द मिनटो के समागम मे इतनी बडी कृपा कि मुँह माँगा वर देने को तैयार हो गये। अत मुनिजी कृपासिन्धु हैं। कृपासिन्धु सुनते रहे। पर आँख से नही देखा था। इसलिए कृपासिन्धु के दर्शन से धर्मार्थ काम मोक्ष मानो अपने हाथ मे आगया। अत. बोला :

आप प्रभु है, समर्थ हैं और प्रसन्न है। इसलिए ऐसा वर मागूंगा जहाँ तक किसी की गति आजतक न हुई हो। और शोक रहित हो जाऊँगा।

दो. जरा मरन दुख रहित तनु, समर जितै जनि कोउ।
एक छत्र रिपु हीन महि, राज कलप सत होउ ॥१६४॥

अर्थ : मैं अजर अमर हो जाऊँ शरीर मे कोई दु ख न हो। युद्ध मे कोई न जीते। शत्रुहीन पृथ्वी पर सौ कल्प तक एकछत्र राज्य हो।

व्याख्या : शीर्यंते इति शरीरम्। सो शरीर जरामरण रहित हो। यह महा दुर्गम वर है। जो आज तक किसी को न मिला। शरीर का नाम ही रोगायतन है सो दु खरहित हो। प्राणीमात्र से अजेय हो जाऊँ। इस भाँति अलौकिक पराक्रम माँगा। राजकल्पशत से अखण्ड ऐश्वर्य माँगा। मालूम हो गया कि भीतर प्रौढ देहाभिमान है। और राज्य की उत्कट वासना है। चाह ही दुःख वृक्ष का दृढशक्तिक बीज है। चाह शेष रह जाने पर जो सुख है वह भी दु ख रूप है। ज्ञानी राजा चाह के शेष रह जाने से बडी भारी विपत्ति मे पडना चाहता है।

कह तापस नृप ऐसेइ होऊ। कारन एक कठिन सुनु सोऊ॥
कालौ तुअ पद नाइहि सीसा। एक विप्र कुल छाड़ि महीसा ॥१॥

अर्थ : तपस्वी ने कहा : एवमस्तु : ऐसा ही होगा परन्तु . एक कठिन कारण है। उसे भी सुन लो। एक ब्राह्मणकुल को छोडकर काल भी तुम्हारे चरणो मे सिर झुकावेगा।

व्याख्या : तपस्वी ने वर तो दिया। पर साथ ही उसकी सिद्धि मे एक कारण भी बतलाया। जिसे करना सहल नही था। कहने लगा कि मेरे वरदान से इतना होगा कि काल भी तुम्हारा कुछ न बिगाड सकेगा। औरो की गिनती ही क्या है। पर ब्राह्मणो पर वरदान का बल न चलेगा। अजर-अमर रोगरहित शरीर अजेयत्व शत्रु का अभाव सौ कल्प राज्य और कालविजय एक ही बात है। सबका अन्तर्भाव कालविजय मे हो जाता है। सो उसके लिए तुम्हे यत्न नही करना है। मेरे तपबल से काल भी तुम्हें नमस्कार करेगा। परन्तु भय तुमको ब्राह्मण-कुल से है। कपटी मुनि ने देख लिया कि भानुप्रताप का राज्य बिना ब्रह्म शाप के जा नही सकता। अत. ब्राह्मणो से भय बतलाकर उसने ब्रह्मद्रोह का बीज बो दिया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तप बल विप्र सदा बरिआरा। तिन्हके कोप न कोउ रखवारा॥
जौं बिप्रन्ह बस करहु नरेसा। तौ तुव बस बिधि बिस्नु महेसा॥२॥

अर्थ : तप के बल से विप्र सदा प्रबल रहते हैं। उनके क्रोध से कोई रक्षा करनेवाला नहीं है। राजन्! यदि ब्राह्मणों को वश में कर लो तो तुम्हारे वश में ब्रह्मा, विष्णु और महादेव हो जावेंगे।

व्याख्या : मैं जो वर दे रहा हूँ। सो तप-बल से दे रहा हूँ। अतः मेरा वर भी तपोधन से ही कट सकता है। तप के बल से ब्राह्मण सदा बलवान् हैं। उनके कोप से मैं रक्षा नहीं कर सकता। तुमने जो अजेयत्व माँगा है सो तो तभी सम्भव है जब तुम ब्राह्मणों को वश कर लो। तब दूसरे का कौन कहे त्रिदेव तुम्हारे वश हो जायँगे। और सब मेरे वरदान से हो जायगा। तुम्हें अब केवल ब्राह्मणों से भय रह गया है। जैसे हो सके उन्हें वश में लाना तुम्हारा काम है।

चल न ब्रह्मकुल सन बरिआई। सत्य कहौं दोउ भुजा उठाई॥
बिप्र श्राप बिनु सुनु महिपाला। तोर नास नहिं कवनेउ काला॥३॥

अर्थ : मैं दोनों भुजा उठाकर सत्य कहता हूँ कि ब्राह्मणकुल से जबरदस्ती नहीं चल सकती। राजा! सुनल। ब्राह्मण के शाप के बिना तेरा नाश किसी काल में हो नहीं सकता।

व्याख्या : शस्त्रबल से संसार वश में हो जाता है। परन्तु ब्राह्मण शस्त्रबल से वश नहीं हो सकते। विश्वामित्र और वसिष्ठ के विरोध से यह सिद्ध हो गया है कि क्षात्रबल से ब्रह्मबल बहुत अधिक है। अतः ब्रह्मकुल पर बल काम नहीं देता। बात शीघ्र मन में नहीं आनेवाली है। अतः कहता है कि मैं दोनों भुजा उठाकर सत्य कहता हूँ। दोनों भुजा उठाकर कहना घोषणा करना है। यथा : भुजा उठाइ साखि संकर दै, बसम खाइ तुलसी भनी। विनय। दोनों भुजा उठाकर कहना, सबको सवधान करने और अपने ऊपर दोष न आने देने के लिए है। इस बात पर इतना बल इसलिए देता है कि कहीं राजा समझ न ले कि यह मुझे ब्रह्मद्रोह के लिए उत्तेजित करता है। क्योंकि ब्रह्म द्रोह से वंश का ही नाश हो जाता है। यथा : वंश कि रह द्विज अनहित कीन्हे।

हरषेउ राउ बचन सुनि तासू। नाथ न होइ मोर अब नासू॥
तव प्रसाद प्रभु कृपा निधाना। मो कहुँ सर्बकाल कल्याना॥४॥

अर्थ : राजा उसका वचन सुनकर प्रसन्न हुआ बोला : नाथ! अब मेरा नाश न हो। आपकी कृपा से हे कृपानिधान प्रभु! मेरा सदा कल्याण हो।

व्याख्या : बहुत से भय के कारण दूर हो गये। अब एक ब्रह्मकुल का कोप ही शेष रह गया। इसलिए राजा प्रसन्न हुआ। लाभात् लोभोपजायते। सौ कल्प से पेट नहीं भरा। अतः अब यह प्रार्थना कर रहा है कि मेरा कभी नाश न हो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



आप कृपानिधान भी हैं, समर्थ भी है और मुझपर आपकी कृपा भी है। तब मेरा सर्वकाल मे कल्याण होना चाहिए।

दो एवमस्तु कहि कपटमुनि, बोला कुटिल बहोरि।
मिलब हमार भुलाव निज, कहहु त हमहि न खोरि ॥१६५॥

अर्थ उस कुटिल कपटमुनि ने एवमस्तु कहकर फिर कहा कि मेरा मिलना और अपना रास्ता भूलना यदि कहोगे तो मुझे दोष न देना।

व्याख्या धर्मरुचि[1] से कपट मुनि डर रहा है कि कही राजा लौटकर उससे न कह दे या पुरोहित को न बता दे। नही तो सब बनी बनाई बात ही बिगड जायगी। और फिर वन मे भी छिपकर न बच पायेगे। इसलिए वह कुटिल मुनि राजा को सावधान किये देता है कि यदि तुमने मेरा मिलना या अपना भूलना किसी से कहा तो तुम्हारी खैर भला नही है। राजा को सावाक्ष देखकर कहता है

ताते मै तोहि बरजौ राजा। कहे कथा तव परम अकाजा ॥
छठे श्रवन यह परत कहानी। नास तुम्हार सत्य मम बानी ॥१॥

अर्थ इसी से राजन् मै तुम्हे रोकता हूँ कि यह कथा कह देने से तुम्हारी बडी हानि होगी। इस कथा के छठें कान मे पडते ही तुम्हारा नाश होगा। मेरी वाणी सत्य है।

व्याख्या कपट मुनि ने ऊपर कहा है कि मेरा मिलना और अपना भुलाना कहोगे तो फिर मेरा दोष नही। उसी बात को स्पष्ट करता है कि मैने जो इस कथा के कहने से रोका है वह इसलिए कि इमसे तुम्हारी बडी हानि होगी। तुमने वरदान मांगा है अपने लाभ के लिए और इस कथा की चरचा करने से जब तुम्हारी हानि होगी तो हमे दोष दोगे कि मुनिजी ने कैसा वरदान दिया कि मेरी ऐसी हानि हो गई। अत सावधान किये देता हूँ। इस विषय की बात मुख से निकालना नही।

तीसरे पुरुष की जानकारी ही बात का छठे कान मे पडना है। यहाँ छठा कान इसलिए कह रहा है कि जिससे राजा समझ कि मुनिजी मन्त्रभेद का दोष कह रहे है। मन्त्र बडे महत्व का है अत इस मन्त्रभेद का दोष भी बडा भारी होना प्राप्त है। यथा षट्कर्णो भिद्यते मन्त्र । किस प्रकार की हानि होगी उस भी बतलाये देता है कि नाश ही हो जायगा। सत्य मम बानी कहने का भाव यह है कि अनुनय विनय मे इसमे परिवर्तन नही हो सकता।

यह प्रकटे अथवा द्विज सापा। नास तोर सुनु भानुप्रतापा ॥
आन उपाय निधन तव नाही। जौं हरिहर कोपहिं मनमाही ॥२॥

---

१. राजा का मन्त्री।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ इस बात के प्रकट होने पर अथवा ब्राह्मण के शाप से तुम्हारा नाश होगा। दूसरे उपाय से तुम्हारी मृत्यु नही हो सकती। चाहे शिव विष्णु मन मे कुपित हो जांय।

व्याख्या अब दोनो बातो को समेटकर भली भाँति सावधान करता है। मेरा तुमसे मिलना न प्रकट होने पावे पहिली बात, ब्राह्मण का शाप न होने पावे दूसरी बात। विप्रशाप तो काल पाकर फलेगा। पर इस कथा के तो प्रकट होते ही नाश हो जायगा। मेरे वरदान के प्रभाव से शङ्कर और विष्णु भी तेरा कुछ बिगाड न सकेंगे। मन ही मन भले ही जला करें।

सत्य नाथ पद गहि नृप भाखा। द्विज गुर कोप कहहु को राखा ॥
राखै गुर जौ कोप बिधाता। गुर बिरोध नहि कोउ जग त्राता ॥३॥

अर्थ चरण पकडकर राजा ने कहा कि सत्य है नाथ। भला ब्राह्मण और गुरु के कोप से कौन रक्षा कर सकता है। विधाता के कोप से तो गुरु रक्षा करता है। गुरु के कोप से ससार मे कोई रक्षा करनेवाला नही है।

व्याख्या राजा ने कपटी मुनि को गुरु मान लिया। अर्थात् शिक्षा के लिए उसके शरण म गया। यथा शिष्यस्तेऽहं शाधि मा त्वा प्रपन्नम्। गुरुकोप का अर्थ कपटी मुनि का कोप है। सत्य नाथ कहने का यह भाव है कि वाजिब बात है। सभी वर्णो के गुरु ब्राह्मण है और आप तो विशेषत हमारे गुरु है। गुरु ही प्रधान रक्षक हैं। भगवान् की साक्षात् अनुग्रह शक्ति गुरु है। यदि वे ही कुपित हो जायँ तो रक्षा फिर कौन करेगा ? ब्रह्मदेव के कोप करने पर तो गुरु रक्षा करते हैं। यथा जन्म हेतु सब कहँ पितु माता। कर्म सुभासुभ देइ बिधाता। दलि दुख सजइ सकल कल्याना। अस असीस राउर जग जाना। सो गोसाईं जेहि बिधि गति छेकी। सकै को टारि टेक जो टेकी।

जौ न चलब हम कहे तुम्हारे। होउ नास नहि सोच हमारे ॥
एकहि डर डरपत मन मोरा। प्रभु महिदेव श्राप अति घोरा ॥४॥

अर्थ यदि मैं आपके आदेशानुसार बर्ताव न करूँ तो भले ही नाश हो जाय मुझे इसका सोच नही है। एक ही डर से मै बहुत डर रहा हूँ कि ब्राह्मणो का शाप बडा घोर होता है।

व्याख्या राजा कहता है कि आपके कोप का मुझे डर नही है। क्योकि मै आपका आज्ञावशवर्ती हूँ। आपकी आज्ञा का उल्लघन करूँगा ही नही। यदि करूँ तो भले ही नाश हो। इसका सोच मुझे नही है। आप मेरे स्वामी मेरे पिता मेरे गुरु है। आपकी आज्ञा उल्लघन करूँ तो नाश होना ही चाहिए।

डर दूसरी बात का है। ब्राह्मणो का शाप अति घोर होता है। रुष्ट होते ही नाश का शाप देते है। और वह अप्रतिक्रिय होता है। यथा इन्द्रकुलिस मम सूल बिसाला। कालदण्ड हरिचक्र कराला। जो इन कर मारा नहि मरई। विप्र रोष पावक सो जरई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. होहिं विप्र बस कवन विधि, कहहु कृपा करि सोउ ।
तुम्ह तजि दीनदयाल निज, हितू न देखौ कोउ ॥१६६॥

अर्थ : अब कृपा करके यह बताइये कि किस विधि से ब्राह्मण वश हों। हे दीनदयाल ! तुम्हें छोड़कर संसार में अपना कोई हितू नही दिखाई पड़ता।

व्याख्या : द्विज द्रोह का बीज उग गया। गुर सुर संत पितर महि देवा। करइ सदा नृप सबकर सेवा। वही राजा जो इससे पूर्व ब्राह्मणों का सेवक था आज स्वामी को अपना वश्य करने की विधि पूछता है। पहिले के हितू लोग तुच्छ दिखाई पडने लगे। केवल बातों के बल से कपटी मुनि बडा भारी हितू बन बैठा। यथा : तोहि सम हित न मोर संसारा। भाव यह कि जब आप कहते हैं कि ब्राह्मणो को वश करना तुम्हारा काम है तो मैं करने को तैयार हूँ। आप गुरु है। उपाय बतावे।

सुनु नृप विविध जतन जगमाही। कष्ट साध्य पुनि होहिं कि नाही ॥
अहे एक अति सुगम उपाई। तहाँ परंतु एक कठिनाई ॥१॥

अर्थ : राजन् ! सुनो, संसार में अनेक प्रकार के उपाय है। पर वे कष्टसाध्य हैं और फिर भी फल का निश्चय नही। हो या न हो एक उपाय अत्यन्त सुगम है। वहाँ भी एक कठिनाई है।

व्याख्या : विधि यत्न उपाय ये सब समानार्थक शब्द हैं। संसार में यत्नों का घाटा नही है। पर उनके करने मे बडी कठिनता है। फिर भी सफलता निश्चित नही। भाव यह कि मैं जो उपाय बतलानेवाला हूँ वह सुसाध्य भी है और निश्चित फलप्रसू है।

सरल पुरुष का तबतक पतन नही होता जबतक वह कुटिल न हो जाय। अत: पतन चाहनेवाले, हानि लाभ दिखलाकर उसे कुटिलता की ओर अग्रसर करते हैं। अत: इसने पहिले राजा को मन्त्री से भी बात छिपाना सिखाया। अब छल : माया : को स्थान देने के लिए विवश कर रहा है। बडे भारी असाध्य लक्ष्य का लोभ दिखलाकर। और उसमे एकमात्र बाधक के लिए सरल उपाय बतलाकर। उसमें ऐसी कठिनता बतलाता है जो माया से ही साध्य हो।

मम आधीन जुगुति नृप सोई। मोर जाब तव नगर न होई ॥
आजु लगे अरु जबतें भएऊं। काहू के गृह ग्राम न गएऊं ॥२॥

अर्थ : वह युक्ति मेरे ही वश की है। और मेरा जाना तुम्हारे नगर से हो नही सकता। जब से मै उत्पन्न हुआ तब से लेकर आज तक मैं किसी के गाँव या घर कभी गया नही।

व्याख्या : वह युक्ति मेरे लिए तो सुगम है। पर दूसरे के बूते की नही है। मैं ही उसे कर सकता हूँ। पर मै तुम्हारे नगर मे जा नही सकता। तुरन्त जाने के लिए तैयार होने से वह श्रद्धा राजा के हृदय मे नही होती जो इनकार करने से हुई। क्योकि श्रद्धा सदा दुर्लभ वस्तु मे होती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



किसी के नगर या गृह मे जाना मेरे नियम के विरुद्ध है। सकाम पुरुष ही नगर या दूसरे के घर मे जाया करते है। मुझे लोकरञ्जन मे कोई सिद्धि दृष्टि नही आती। यथा . कहहु कवन सिधि लोक रिझाये। कपटी मुनि नगर या दूसरे के घर जाने मे कोई ऐसी बाधा नही बतलाते जो दुरुल्लघ्य हो। केवल लोकमान्यता और ख्याति से बचने के लिए अपने ही नियत किये हुए कुछ नियमो मे से एक इसे बतला रहे है।

जो न जाउँ तव होइ अकाजू। बना आइ असमजस आजू ॥
सुनि महीस बोलेउ मृदुबानी। नाथ निगम अस नीति बखानी ॥३॥

अर्थ यदि मै नही जाता हूँ तो तुम्हारा काम बिगडता है। आज बडा असमजस आ पडा। यह सुनकर राजा कोमल वाणी बोला कि नाथ! ऐसी नीति श्रुतिसम्मत है।

व्याख्या आज भक्तवत्सलता के कारण प्रयोजन आ पडा। जाता हूँ तो नियम भङ्ग होता है। नही जाता हूँ तो भक्त का काम बिगडता है। मेरा नियम भङ्ग न हो। और भक्त का काम भी बन जाय। इन दोनो बातो का सामञ्जस्य नही बैठता। इतने दिनो मे आज ही मै असामञ्जस्य मे फँसा। भाव यह कि अब राजा के विनय-मात्र की देर है। नियम भङ्ग होते देर न लगेगी। सो राजा विनय भी करने लगे। और श्रुतिसम्मत नीति को दोहाई देने लगे।

लोभ से अन्धा करके ही धूर्त्त ससार को ठगते है। आँख खोलकर यदि देखा जाय तो जनता को वही धूर्त्त वश करने मे समर्थ होता है जो अपने दिये हुए प्रलोभन का विश्वास जनता को करा देने मे समर्थ होता है। बडे बडे बुद्धिमान् ऐसे ही प्रलोभन से अन्धे होकर महाधूर्त्त को महात्मा मानकर मारे जाते है। स्वार्थ मे अन्धा होकर राजा ने यह समझा कि केवल नीतिमत्ता तथा सरलतादि गुण को देखकर घण्टे भर मे एक महाविरक्त को ऐमी प्रीति कैसे उत्पन्न हो सकती है कि वह महा दुर्लभ वर देकर अपने तप को क्षीण करे। और अपने जन्म भर के नियम को तोड दे।

बडे[1] सनेह लघुन्ह पर करही। गिरि निज सिरनि सदा तृन धरही ॥
जलधि अगाध मौलि बह फेनू। सतत धरनि धरत सिर रेनू ॥४॥

अर्थ बडे लोग छोटो पर स्नेह करते है। पर्वत अपने सिर पर सदा तृण धारण किये रहता है। अगाध समुद्र के सिर पर फेन बहता है। पृथ्वी सदा सिर पर धूलि धारण करती है।

व्याख्या सिर पर तृण धारण दासत्व स्वीकार के लिए किया जाता है। पूर्व काल मे जब दासप्रथा थी तो लोग अपने को बेचते थे वे सिर पर तृण धारण करते थे। सो पर्वत ऐमा अशुभ वेष स्वीकार करते है। पर अपने आश्रित को सिर

---

१ यहाँ दृष्टान्तालङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चढाये रहते हैं। भाव यह कि पर्वत की गणना परहितैकव्रत सन्तो मे है। यथा : सन्त विटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबन्ह की करनी। सो अपने आश्रितो के लिए दासता का चिह्न धारण करने मे सङ्कोच नही करना चाहिए।

समुद्र अगाध है। अपार है। बडे बडे पुरुषार्थियो का पुरुषार्थ उसमें नही चलता। पर आश्रित होने के कारण फेन अवस्तु होने पर भी उसके सिर पर विचरण करता है। आप भी तपोनिधि हैं। आप की महिमा अगाध और अपार है। मै आपका आश्रित हूँ। अवस्तु हूँ। मेरे हित को अपनी तपस्या के ऊपर स्थान दीजिये। मेरे कल्याण की ओर देखिये। अपनी महिमा पर दृष्टिपात न कीजिये। समुद्र सदा फेन को नही धारण करता। इसलिए सदा या सन्तत शब्द नही दिया।

पृथ्वी जैसा गुरु कौन होगा और रेणु सा लघु कौन है ? आश्रित होने के कारण से ही पृथ्वी उसे सदा सिर पर धारण करती है। इसी भाँति आप गुरु हैं। आप ही मुझ जैसे लघु की प्रतिष्ठा करने मे समर्थ है। दोनो ओर से केवल बातो का जमा खर्च हो रहा है। कपटी मुनि केवल बातो के भरोसे भानुप्रताप का नाश करके अपना राज्य पुनः प्राप्त करना चाहता है। और राजा भानुप्रताप भी बातो के भरोसे उससे एक कल्प तक शत्रुहीन पृथ्वी को भोगना चाहता है। कही मुनिजी को यह ख्याल न हो कि इस युक्ति के बल पर मेरे सिर पर चढना चाहता है। इसलिए चरण पकड़ता है।

दो. अस कहि गहे नरेस पद, स्वामी होहु कृपाल।
मोहि लागि दुख सहिअ प्रभु, सज्जन दीनदयाल ॥१६७॥

अर्थ : ऐसा कहकर राजा ने पैर पकड लिया। और कहा स्वामिन् कृपा कीजिए। आप सज्जन हैं, दीनदयाल हैं, मेरे लिए दु ख सहिए।

व्याख्या आशा के दासो को गति दिखलाते हैं। सम्राट् होकर आशा की डोरी मे पशुओ की भाँति बँधा हुआ दीन हो रहा है। यही स्वार्थान्धता उसके नाश का कारण होगी। उसने कपटी मुनि का चरण पकड लिया। सन्त सहहि दु ख परहित लागी ' यह सन्त का स्वभाव है। अत' आप मेरे लिए दु ख सहिये। आप दीनदयाल है, मै दीन हूँ, मेरे ऊपर दया करिये।

जानि नृपहि आपन आधीना। बोला तापस कपट प्रवीना ॥
सत्य कहौ भूपति सुनु तोही। जग नाहिन दुर्लभ कछु मोही ॥१॥

अर्थ : राजा को अपने अधीन जानकर कपटचतुर तपस्वी बोला राजन्! मैं तुझसे सत्य कहता हूँ। ससार मे मुझे कुछ भी दुर्लभ नही है ?

व्याख्या : कपटमुनि जब राजा मे अत्यन्त श्रद्धा देखता है तब अपनी महिमा सूचक एक बात कहता है। फिर उसके परिपाक के लिए समय देता है। यथा . सब प्रकार राजहि अपनाई। बोलेउ अधिक सनेह जनाई। सुनु सति भाउ कहौं महिपाला। इहाँ बसत बीते बहु काला। जब राजा मे फिर श्रद्धा का उद्रेक

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उठता है तब उससे अधिक महिमा सूचक बात कहता है। यथा देखा स्ववस कर्म मन बानी। तब बोला तापस बकध्यानी। नाम हमार एकतनु भाई। अब उसी बात को जमाने के लिए बातें करता जाता है। फिर जब देखता है कि राजा की श्रद्धा बढती ही जाती है। अब तो मेरे अधीन हो गया। जो चाहूँगा कराऊँगा। तब कपट मे प्रवीण तपस्वी बतलाता है कि मुझे ससार मे कुछ भी दुर्लभ नही है। यह बात मै तुमसे कहता हूँ। दूसरे से अपना भेद नही खोलता। सत्य कहौं कहने का भाव यह है कि यह शङ्का छोड दो कि कदाचित् मेरा उपाय भी निष्फल हो। वह निष्फल हो नही सकता। मेरे लिए सब कुछ सुलभ है।

अवसि काज मै करिहौ तोरा। मन तन बचन भगत तै मोरा॥
जोग जुगुति तप मत्र प्रभाऊ। फलै तबहि जब करिअ दुराऊ॥२॥

अर्थ मै तुम्हारा काम अवश्य करूँगा। क्योकि तुम मेरे मनसा, वाचा, कर्मणा भक्त हो। योग युक्ति, तप और मन्त्र का प्रभाव गुप्त रखने से ही फलता है।

व्याख्या मेरी किसी से भेट नही हुई। इससे मैंने किसी का काम किया नही। परन्तु तुम्हारा काम अवश्य करूँगा। जो मनसा वाचा कर्मणा भक्त होता है उसके वश मे ईश्वर भी रहते है। अत मेरा वश होना अनुचित भी नही है। अपने भक्त पर सभी कृपा करते है।

छिपाने पर बडा जोर देता है। जितने कपटी हैं वे बात छिपाने पर बल देते है। क्योकि प्रकट होने पर उनकी माया चल नही सकती। अत कहता है कि काम तो मैं करूँगा। पर बात को छिपाना तुम्हारा काम है। शास्त्र का प्रमाण देता है कि इस प्रकार छिपाना शास्त्रानुमोदित है। छ कानो म पडने से मन्त्रभेद हो जाता है। अपने मुख से पुण्यकर्म के कहने से वह नष्ट हो जाता है। यथा छीजहि निसिचर दिन अरु राती। निज मुख कहे सुकृत जेहि भाँती। इसलिए योग, युक्ति, तप और मन्त्र के प्रभाव को छिपाने का शास्त्र आदेश देता है।

जो नरेस मै करौ रसोई। तुम्ह परुसहु मोहि जान न कोई॥
अन्न सो जोइ जोइ भोजन करई। सोइ सोइ तब आयसु अनुसरई॥३॥

अर्थ राजन् यदि मैं रसोई करूँ और तुम परोसो मुझे कोई न जाने तो उस अन्न को जो भोजन करेगा सो तुम्हारी आज्ञा मानेगा।

व्याख्या इसी युक्ति म कपट भरा है। पर अन्धभक्त राजा का उस ओर ध्यान नही है। राजा के भोजन म यदि कोई चूक हो जाय तो रसोईदार और परोसनेवाल की चूक समझी जाती है। उसके लिए राजा का कोई दोषी नही बतलाता। अत कहता है कि तुम परोसो और मुझ रसोईदार को कोई न जाने। अर्थात् ऐसी अवस्था म जो चूक होगी उसका जिम्मेदार राजा का छोडकर और कोई हो नही सकता। सभी समझेंगे कि यदि राजा की सम्मति न थी तो रसोईदार गुप्त क्यो रक्खा गया? इसलिए कहता है कि तुम परोसो मुझे कोई न जाने। तब फल यह होगा कि जो अन्न खाय वही वश हो जाय।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पुनि तिनके गृह जेवै जोऊ। तव वस होइ भूप सुनु सोऊ॥
जाइ उपाय रचहु नृप एहू। संवत भरि संकलप करेहू॥४॥

अर्थ : फिर उनके घर जो भोजन करेगा राजन्! वह भी तेरे वश हो जायगा। अत जाकर यही उपाय करो और वर्ष भर के लिए सकल्प छोड दो।

व्याख्या : उस अन्न मे ऐसा वशीकरण रहेगा कि खानेवाले के घर पर जो कभी खावे वह भी तेरे वश हो जायगा। मेरे पता न लगने का जाकर उपाय करो। क्योकि नियमानुसार कार्य होते न देखकर रसोईदार आदि को जानने का लोग यत्न करेंगे कि यह कौन नया रसोईदार आया है जिसके सामने हमारी पूछ नही है। मन्त्री आदि कर्मचारी भी चौंकेंगे। सवत् भर का सकल्प पहिले ही करा देता है। जिसमे राजा संकल्पभ्रष्ट भी हो और ब्राह्मण समझें कि यह सवत् भर ब्राह्मण भोजन की प्रतिज्ञा करके ब्राह्मणमात्र को पतित करना चाहता था।

दो. नित नूतन द्विज सहस सत, वरेहु सहित परिवार।
मै तुम्हरे संकलप लगि, दिनहि करवि जेवनार॥१६८॥

अर्थ : एक लाख नये ब्राह्मणो को परिवारसहित नित्य वरण करना और मैं तुम्हारे सकल्प के लिए नित्य जेवनार बनाऊँगा।

व्याख्या : एक लक्ष ब्राह्मणपरिवार एक दिन भोजन करें। दूसरे दिन नये लक्ष ब्राह्मणो का परिवार भोजन करे। इस भाँति सालभर मे पृथ्वीमण्डल के सब ब्राह्मणपरिवार भोजन कर लेंगे। और मैं बराबर साल भर रसोई बनाऊँगा। मै रसोई बनाने का कष्ट उठाऊँ, तुम परोसने का कष्ट उठाओ। राजकर्मचारी नये नये ब्राह्मण परिवार को नित्य यहाँ पहुँचाने का प्रबन्ध करे। यहाँ दिन का अर्थ नित्य है। यथा 'प्रनवौ दीनबन्धु दिन दानी। अथवा यह अर्थ है कि इतने लोगो का जेवनार मै दिन मे ही बना डालूँगा। रात न होने पावेगी।

एहि विधि भूप कष्ट अति थोरे। होइहहि सकल विप्र वस तोरे॥
करिहहिं विप्र होम मख सेवा। तेहि प्रसंग सह जेहि वस देवा॥१॥

अर्थ : राजन्! इस विधि मे अत्यन्त थोडे कष्ट मे सब ब्राह्मण तुम्हारे वश हो जावेंगे। ब्राह्मण होम, यज्ञ और पूजा करेंगे। उस प्रसङ्ग से देवगण सहज मे ही वश हो जावेंगे।

व्याख्या · इस असाध्य कार्य के लिए एक साल कोई चीज नही है। आजतक ब्राह्मणो को कोई वश न कर सका। राजाओ का नाम इसीलिए विशाम्पति है। वे वैश्यो के मालिक है ब्राह्मणो के नही। अब तुम ब्राह्मणो के मालिक हुआ चाहते हो। रसोई बनाने का कष्ट तो मुझे है। तुम्हे तो केवल परोसना है।

ब्राह्मणो की दी हुई आहुति, हवि और नैवेद्य देवता स्वीकार करते ही है। सो स्वीकार करते ही वे तुम्हारे वश हो जावेगे। उनके लिए तुम्हे कुछ करना नही पडेगा। क्योकि ब्राह्मण स्वय देवता है। उनके अधीन मन्त्रनिकाय है और

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



देवताओ के अधीन संसार है। यथा देवाधीन जगत्सर्वं मन्त्राधीनाश्च देवता। ते देवा ब्रह्मणाधीनास्तस्माद् ब्राह्मणदेवता। बिना देवलोक को जय किये ही सब देवता तुम्हारे वश मे हो जावेगे। तुमने आजतक सप्तद्वीप को ही वश किया है। देवलोक मे तुम्हारा कुछ भी प्रभुत्व नही है। सो वहाँ भी तुम्हारा प्रभुत्व हो जायगा।

और एक तोहि कहौ लखाऊ। मै एहि वेष न आउब काऊ॥
तुम्हरे उपरोहित कहुँ राया। हरि आनब मै करि निज माया॥३॥

अर्थ और मैं तुम्हे एक पहिचान भी बताये देता हूँ कि मैं इस वेष से कभी न आऊँगा। राजा मैं तुम्हारे उपरोहित को अपनी माया द्वारा हर लाऊँगा।

व्याख्या पहिचान बताने की आवश्यकता यह पडी है कि युक्ति के सफल करने के लिए मैं इस वेष से नही आऊँगा। अपने स्थान पर असुर को भेजने का मार्ग परिष्कृत करता है।

माया सबकी अलग अलग होती है। सबसे बडी राम की माया है। यथा सुनु खग प्रबल राम की माया। उसके बाद त्रिदेव की माया है। यथा विधि हरिहर माया बडि भारी। फिर देवकी माया यथा कछुक देव माया मति साई। ऋषि की माया यथा विधि विस्मय दायक विभव मुनिवर तप बल कीन्ह। फिर असुर की माया यथा जब कीन्ह तेहि पाखड। भए प्रकट जतु प्रचड। फिर मनुष्य की माया। इहाँ न लागहि राउरि माया। सो यहाँ आसुरी और मानुषी दोनो माया काम कर रही है। पुरोहित का हरण करना आदि स्पष्ट आसुरी माया है। उसे वह अपनी माया बतलाता है। जिसमे राजा समझे कि यह सब तपोबल से हो रहा है।

तप बल तेहि करि आपु समाना। रखिहौ इहाँ बरष परवाना[1]॥
मै धरि तासु वेष सुनु राजा। सब विधि तोर सवारब काजा॥३॥

अर्थ तप के बल से उसे अपने समान बनाकर यहाँ एक वर्ष तक रखूँगा। राजन् सुनो। मैं उसका वेष बनाकर, सब भाँति से तुम्हारे काम को सँवारूँगा।

व्याख्या उपरोहित से भय है क्योकि उपरोहित ऐसे होते थे जिनका दबाव राजा पर होता था। राज्य की तथा राजा की रक्षा का भार पुरोहित पर होता था। पुरोहित का पद मन्त्री से भी बडा है। इसीलिए अथर्ववेदी[2] पुरोहित बनाने का आदेश है जो मन्त्रादि से भली भाँति रक्षा कर सकता हो। वही धर्माध्यक्ष है।

---

१ मोनुनासिको वो वा इस सूत्र से परिमाण का परवान रूप हुआ। 'इ का अ और ण के न होने के नियम पहले दिये जा चुके हैं।

२ शुक्रनीति मे पुरोहित के कार्य और अधिकार का विशद वर्णन है। गीतावली म वसिष्ठजी को अथर्वणी कहा है। यथा आपु वसिष्ठ अथर्वणी महिमा जग जानी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नियमानुसार वह ब्राह्मणभोजन की देखरेख करेगा। उसे रसोई देखने से तो राजा भी नही रोक सकता तब बिना भेद खुले न रहेगा।

उपरोहित बनकर रहने से धर्मविभाग अपने हाथ मे रहेगा। दूसरा कोई निरीक्षक न रह जायगा। एक दिन बात तो फूटेगी तब धरपकड होगी। तब अपने ऊपर विपत्ति न आवे पकडे जाने पर भी राजा अपना पुरोहित समझकर मुझे छोड दे। इसलिए कहता है कि तुम्हारे पुरोहित को मै अपने ऐसा बनाकर यहाँ साल भर रक्खूँगा। राजा के समझाने के लिए यह बात है कि जब मै सालभर तुम्हारे नगर मे रहूँगा तो इस बीच मे देवता मुनि मेरे दर्शन को आवेगे। वे मुझे यहाँ न पाकर निराश होकर लौटेगे। इसलिए यहाँ मेरा प्रतिनिधित्व तुम्हारा पुरोहित करेगा।

मै तुम्हारे पुरोहित के वेष से तुम्हारे नगर मे रहूँगा। जिसमे किसी को विशेषत धर्मरुचि मन्त्री को नवागत पुरुष समझकर सन्देह न हो।

गै निसि बहुत सयन अब कीजे। मोहि तोहि भूप भेट दिन तीजे॥
मै तप बल तोहि तुरग समेता। पहुँचैहौ सोवतहि निकेता॥४॥

अर्थ : रात बहुत गई अब सोओ। मेरी भेंट तुमसे राजन्! तीसरे दिन होगी। मैं तप बल से तुम्हें घोडे समेत सोते हुए ही घर पहुँचा दूँगा।

व्याख्या : कालकेतु के आने का समय जानकर कहता है कि बातचीत मे रात अधिक बीत गई। अब सो जाओ। अपना मिलन राजा से तीसरे दिन बतलाता है। समय मिलने से कार्य मे विघ्न होने का भय रहता है। यथा अदानस्य प्रदानस्य कर्तव्यस्य च कर्मण। क्षिप्रमेव प्रकर्त्तव्य काल पिबति तद्रसम्। लेना देना या जो काम करना हो उसमे जल्दी करनी चाहिए। नही तो उसके रस आनन्द को काल पी जाता है। इसी नीति के बल पर उसे त्वरा है। दूसरे दिन राजा राजधानी मे पहुँचेगा। एक लक्ष ब्राह्मणो के वरण की व्यवस्था करेगा। तब तक तीसरे दिन मिलने के लिए यह कह ही रहा है। राजा को सन्देह हो सकता है कि क्या कल प्रात काल भेंट न होगी। इसलिए स्वय कहे देता है कि सोए ही सोए तुम अपने घर पहुँच जाओगे। घोडा भी पहुँच जायेगा। पश्य मे तपसो बलम्। देखो मेरे तप का बल।

दो मै आउब सोइ वेष धरि, पहिचानेहु तब मोहि।
जब एकात बुलाइ सब, कथा सुनावौ तोहि॥१६९॥

अर्थ : मैं वही वेष धरकर आऊँगा। तब मुझे पहिचान लेना जब मैं एकान्त मे बुलाकर यह सब कथा तुम्हे सुनाऊँ।

व्याख्या : उपरोहित कब बदल गये। इसका अन्दाज लगना तुम्हे कठिन होगा। धोखे मे कही तुम पुरोहित से भेद न खोल दो। इसलिए सावधान किये देता हूँ कि जब मै पुरोहित का वेष धारण कर लूँगा तो तुम्हे एकान्त मे बुलाकर यह

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सब कथा सुनाऊँगा। तब तुम समझना कि मैं आगया। और मेरी सम्मति से काम करना।

सयन कीन्ह नृप आयसु मानी। आसन जाइ बैठ छल ग्यानी ॥
श्रमित भूप निद्रा अति आई। सो किमि सोव सोच अधिकाई ॥१॥

अर्थ . राजा ने आज्ञा मानकर शयन किया। कपटी मुनि जाकर अपने आसन पर बैठा। राजा थका था घोर नीद मे सो गया। वह . कपट मुनि कैसे सोए। उसे तो चिन्ता बढ गई।

व्याख्या राजा सोना नही चाहता था। स्वामी के पहिले सेवक कैसे सोए। पर आज्ञा सोने के लिए हुई। वह भी टाली नही जा सकती। इसलिए सोए। मुनि जी सोते नही रात को समाधि लगाते हैं। इसलिए जाकर आसन पर बैठे। राजा के शीघ्र निद्रा आने का कारण था। मुनि की कृपा से वीतचिन्त हो गये थे। और थके भी खूब थे। कपटी मुनि के निद्रा न आने का भी यथेष्ट कारण था। जिसके बल पर राजा को सोते हुए ही घर पहुँचाने की प्रतिज्ञा की है। वह यदि न आया तो क्या होगा ? महा सर्प अपनी कुटी मे सो रहा है। यदि किसी भाँति सावधान हो गया तो फिर रक्षा का कोई उपाय नही।

परिपक्व कर्म का भोग से क्षय हो जाने पर जब दूसरे कर्मो का परिपाक नही हुआ रहता तो इसी बीच मे मन बुद्धि की गोद म सो जाता है। शरीर मे प्राण का प्रचार बना रहता है। मोहात्मिका अविद्या आवृत कर लेती है तब जीव चिति परिच्छेदक उपाधि के लय से परिपूर्णता की सम्प्राप्ति से आनन्दित होती है। इसी को सोना कहते हैं।

कालकेतु निसिचर तहँ आवा। जेहि सूकर होइ नृपहि भुलावा ॥
परम मित्र तापस नृप केरा। जानै सो अति कपट घनेरा ॥२॥

अर्थ कालकेतु नाम का राक्षस वहाँ आया। जिसने सूकर बनकर राजा को भुलवाया था। वह तपस्वी राजा का बडा मित्र था। अत्यन्त घनी माया जानता था।

व्याख्या जिसकी प्रतीक्षा मे कपट मुनि बैठे थे वह आ गया। सूकर बनकर राजा को मार्गभ्रष्ट इसी ने किया था। राजा के सामने कोई पुरुषार्थ चलता नही था। तो इतना ही किया कि रास्ता भुलवा दिया।

यह कपटी मुनि का बडा मित्र था। समानशीलव्यसनेषु मैत्री समान शील और समान व्यसनवालो मे मैत्री होती है। शत्रु के शत्रु से मैत्री होना स्वाभाविक है। मुनि कपटी और राक्षस मायावी दोनो राजा के शत्रु है अत परम मित्रता होना प्राप्त ही था। यह कालकेतु बडी माया जानता था। इसी के माया के बल पर कपटी मुनि की सब मिढाई अवलम्बित थी। उपरोहित को हरण करके उसे अपने आश्रम मे रखना। और पुरोहित का वेष धर के राजा से मिलना। नित्य एक लाख ब्राह्मण-

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



परिवारी के भोजन योग्य रसोई बनाना। सोते हुए राजा को घर पहुँचाना आदि जितनी बातें कपटी मुनि ने अपने तपबल से करने को कहा था वह सब कालकेतु की माया बल के भरोसे कहा था।

तेहि के सत सुत अरु दस भाई। खल अति अजय देव दुखदाई॥
प्रथमहि भूप समर सब मारे। विप्र संत सुर देखि दुखारे॥३॥

अर्थ उसके सौ बेटे और दस भाई थे। सबके सब बड़े खल थे। युद्ध में अत्यन्त अजेय थे। और देवताओं को दु:ख देते थे। सो विप्र सन्त और देवों को दु:खी देखकर पहिले ही राजा ने उन सबों को लड़ाई में मार डाला था।

व्याख्या मित्रता का कारण सुस्पष्ट करते हैं। शत्रु का शत्रु मित्र होता है। राजा भानुप्रताप दोनों का शत्रु था। कपटी मुनि का राज्य ले लिया था। और कालकेतु का निर्वंश कर दिया था। दोनों भानुप्रताप के भय से घोर वन में छिपे हुए दिन काटते थे। कपटी मुनि तपस्वी बने रहते थे। और कालकेतु सूकरादि अनेक रूप धारण करके किसी भाँति दिन काटता था। भानुप्रताप ने संग्राम में देवों से भी दुर्जेय कालकेतु के भाई और बेटों को मार डाला था। रिपु रिन रचन राखब काऊ। सो ये दोनों शत्रु बचे हुए थे।

तेहि खल पाछिल बयरु सँभारा। तापस नृप मिलि मंत्र विचारा॥
जेहि रिपुछय सोइ रचेन्हि उपाऊ। भावी बस न जान कछु राऊ॥४॥

अर्थ उस खल ने पिछला वैर सँभाला। तापस नृप कपटी मुनि से मिलकर मन्त्र विचार किया। जैसे शत्रु का नाश हो वही उपाय रचा। होनहार के वश राजा को कुछ पता नहीं चला।

व्याख्या अकेले होने से वैर ढीला पड़ गया था। एक साथी और मिल जाने से वैर को सँभाला। कपटी मुनि और कालकेतु दोनों ने मिलकर मन्त्रणा की। और उपाय रचा कि भानुप्रताप को मृगया का व्यसन है। दूर-दूर तक मृगया के लिए जाता है। कभी न कभी इस वन में भी आवेगा ही। तब कालकेतु सूकर बनकर उसको वन में भुलवाए। इस वन में यही जलाशय है और केवल कपटी मुनि का ही आश्रम है। अत: उसे यहाँ छोड़कर दूसरी जगह त्राण मिलनेवाला नहीं है। तब कपटी मुनि अपनी माया फैलाये और उसे ईप्सित वरदान देने के व्याज से उपर्युक्त कार्यवाही के लिए तैयार करे। तब कालकेतु आकाशवाणी करके ब्राह्मणों से शाप दिलावे। तब कपटी मुनि सब राजाओं के यहाँ पत्र भेजकर उन्हें उत्साहित करें कि शापित राजा के जीतने में सुभीता है। और वे सेना लेकर राजा पर धावा करें। जिसमें राजा का सर्वनाश हो और इस भाँति बदला चुका ले।

राजा बड़ा सावधान था; पर भावीवश उसे कुछ पता न लगा। भाव यह कि उसने कालकेतु और तपस्वी वेषधारी राजा के खोजवाने का यत्न बहुत किया था। परन्तु पता न लग सका। कालक्रम से बात पुरानी हो गई। और अब कोई उस ओर ध्यान नहीं देता था।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो रिपु तेजसी अकेल अपि, लघु करि गनिअ न ताहु ।
अजहु देत दुख रवि ससिहि, सिर अविसेषित राहु ॥१७०॥

अर्थ तेजस्वी शत्रु यदि अकेला भी हो तो उसे छोटा नही समझना चाहिए। राहु का शिरमात्र बचा हुआ है। फिर भी आजतक सूर्य और चन्द्रमा को दु ख देता है।

व्याख्या तेजवत लघु गनिअ न रानी अकेला राजा सोया पडा है। फिर भी कपटी मुनि और कालकेतु उसके वध का साहस नही करते। राजा के छ अङ्ग हैं। उनमे से पाँच मन्त्री आदि से हीन राजा यहाँ अकेला है। इसीसे 'सिर अवसेषित राहु से' उपमा दी। सूर्य-चन्द्र स्थानीय कालकेतु और कपटीमुनि के ग्रास करने मे अर्थात् निस्तेज करने मे अकेले समर्थ है।

तापस नृप निज सखहि निहारी। हरषि मिलेउ उठि भयउ सुखारी ॥
मित्रहि कहि सब कथा सुनाई। जातुधान बोला सुख पाई ॥१॥

अर्थ तपस्वी राजा अपने सखा को देखकर हर्षित होकर उठ के मिला और सुखी हुआ। तब मित्र ने सब कथा सुनायी। राक्षस सुख पाकर बोला।

व्याख्या तपस्वीराजा शब्द का प्रयोग कपटी मुनि के लिए ही किया गया है। जहाँ मुनि बनकर कपट करता है वहाँ कपटी मुनि कहते हैं। और जहाँ राजा-सा व्यवहार करता है वहाँ तपस्वी राजा लिखते हैं। यह बैठा हुआ अपने मित्र कालकेतु की बाट जोह रहा था, लेटा तक नही। उसे देखकर आदर से उठा और प्रेम से आलिङ्गन करके सुखी हुआ कि अब काम बन जायगा।

भानुप्रताप का आना और जो जो बाते उससे हुई सो सब कह सुनाया। क्योकि आगे का काम सब उसी को करना है। एक बात कहने मे छूट जाने से बात बिगड जाती है। कालकेतु के आने से कपटी मुनि सुखी हुए। और सब कथा सुनकर कालकेतु सुखी हुआ।

अब साधेउँ रिपु सुनहु नरेसा। जौ तुम्ह कीन्ह मोर उपदेसा ॥
परिहरि सोच रहहु तुम्ह सोई। बिनु औषध बिआधि बिधि खोई ॥२॥

अर्थ सुनो राजा यदि तुम मेरे कहने के अनुसार चल तो अब शत्रु को मै ठीक कर लूँगा। सोच छोडकर अब तुम जाकर सोओ। बिना दवा के ही ब्रह्मा ने रोग नष्ट कर दिया।

व्याख्या कपटी मुनि को बडा सोच था। निद्रा नही आती थी। यथा सो किमि सोच सोच अधिकाई। इसलिए कहता है परिहरि सोच रहहु तुम सोई। यह राजा नही है व्याधि है। हम लोगो को बडा कष्ट दिया। कही हम लोगो का प्रचार ही नही होने देता था। यथा प्रजापाल अति बेदविधि कतहुँ नही अघलेस। जब इससे अधिक वीर्यवान् औषध मिले तब यह मारा जा सके। उसी औषध की खोज मे हमलोग थे। सो विधि ने ऐसी विधि बैठा दी कि यह निश्चय ब्रह्मशाप स

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नष्ट हो जायगा। तुमने मेरा कहना किया। अब शत्रु नही बच सकता कालकेतु ने ही कपटी मुनि को उस विधि से बात करने की सलाह दी थी। जिस विधि से उसने राजा से बातें की।

कुल समेत रिपु मूल बहाई। चौथे दिवस मिलब मै आई ॥
तापस नृपहि बहुत परितोषी। चला महाकपटी अतिरोषी ॥३॥

अर्थ कुल के सहित शत्रु की जड को धो बहाकर चौथे दिन मै आकर मिलूँगा। तपस्वी राजा को बहुत कुछ ढाढस बँधाकर महाकपटी और क्रोधी चला।

व्याख्या कालकेतु अपने मित्र से बिदा होता है। जड के बह जाने पर मकान गिरते देर नही लगती। सो चौथे दिन ब्राह्मण शाप के द्वारा इसकी जड धो बहाऊँगा। फिर इसके राज्य की इमारत के गिरते देर न लगेगी। कोई भी निमित्त पाकर नष्ट हो जायगा। विप्र-गुरु-पूजा ही इसकी जड है। उसी को नष्ट कराकर चौथे दिन मैं आकर तुमसे मिलूँगा।

तपस्वी राजा को बडी चिन्ता थी कि क्या जाने काम किसी विघ्न के उपस्थित होने से न बने तो हमारी क्या दशा होगी? इसलिए कालकेतु ने बहुत ढाढस बँधाया कि यह दाव खाली नही जा सकता। और यदि खाली भी जाय तो भी तुमपर आँच न आवेगी राजा तुम्हे अपना पुरोहित समझेगा।

भानुप्रतापहि बाजि समेता। पहुँचाएसि छन माँझ निकेता ॥
नृपहि नारि पहि सैन कराई। हयगृह बाँधेसि बाजि बनाई ॥४॥

अर्थ भानुप्रताप को घोडे के समेत एक क्षण म घर पहुँचाया। राजा को रानी के पास सुलाकर अश्वशाला म घोडे को साजकर बाँध दिया।

व्याख्या पहिला काम यही किया कि राजा को घर पहुँचाया। जिसम राजा का विश्वास और दृढ हो। सत्तर योजन राजा को घोडे के सहित क्षणभर म पहुँचाया और राजा की नीद नही खुली। यह आसुरी माया है। इतना कर सका परन्तु राजा को मार न सका। भारतवर्ष म एक विद्या थी बला-अतिबला, उसके जानकार को कोई सोते म मार नही सकता था। अथवा उस समय के असुर भी सोते हुए शत्रु को मारना अनुचित समझते थे।

भीतर महल म राजा को ले जाकर जहाँ सोते थे सुला दिया। पहरेदारो को या रानी को पता नही। घोडे को घोडसार में जाकर बाँधा जिससे राजा जब आवे घोडे को कसा कसाया पावे।

दो राजा के उपरोहितहि, हरि लै गयउ बहोरि।
लै राखेसि गिरि खोह महु, माया करि मति भोरि ॥१७१॥

अर्थ तब राजा के उपरोहित को हरण करके ले गया। उसे पहाड की कन्दरा म माया से उसकी बुद्धि भोरी करके रख दिया।

व्याख्या दूसरा काम यह किया कि पुरोहित को हटाया। उसकी बुद्धि माया

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



द्वारा भोरी करके उसे पहाड की कन्दरा मे रख दिया। मति भोरी कर दी कि कन्दरा मे ही घूमा करे बाहर न निकल सके। उसे यही न मालूम हो कि मैं कौन हूँ और कहाँ पर हूँ। बुद्धि ठीक रहती तो सम्भव है कि पुरोहित कोई ऐसा उपाय करता जिससे शत्रु की कार्यसिद्धि मे विघ्न उपस्थित हो।

आपु बिरचि उपरोहित रूपा। परेउ जाइ तेहि सेज अनूपा॥
जागे नृप अनभएँ बिहाना। देखि भवन अति अचरजु माना॥१॥

अर्थ : अपना रूप उपरोहित सा बनाकर उसकी अनुपम शय्या पर जाकर लेट गया। प्रातःकाल का अनुभव करके राजा जगे। सो घर देखकर अत्यन्त आश्चर्य माना।

व्याख्या कपटी मुनि अपने आश्रम मे ही रहे। पुरोहित के स्थान को कालकेतु ने दखल किया। उपरोहित की जैसी शय्या थी वैसी राजा की नही थी। इसलिए अनूप कहा। इससे राजा का नीतिनैपुण्य और धर्मबुद्धि सूचित हुई। राजा के यहाँ पुरोहित का बडा सम्मान था। यह सब कार्य उसी रात मे हुआ। अभी रात बाकी है। इसलिए पुरोहित की शय्या पर जा लेटा।

प्रातःकाल जागने का राजा को अभ्यास था। पहर भर रात रहते ही प्रातः-काल माना जाता है। यथा पछिले पहर भूप नित जागा। कैसे यहाँ आ गये। सोये आश्रम मे जागे महल मे। इस बात का बडा आश्चर्य हुआ।

मुनि महिमा मन महुँ अनुमानी। उठेउ गवँहि जेहि जान न रानी॥
कानन गयउ बाजि चढि तेही। पुर नर नारि न जानेउ केही॥२॥

अर्थ : मुनि की महिमा का मन से अनुमान करके धीरे से उठे जिससे रानी न जान पावे। उसी घोडे पर सवार होकर वन गये। पुर के नर नारी कोई जान न सके।

व्याख्या : आश्चर्य होने पर यह अनुमान किया कि यह मुनिजी का तपबल है। उन्होने कहा था कि मैं तप बल तोहि बाजि समेता। पहुँचैहहु सोवतहि निकेता। सो कर दिखाया। रानी जागेगी तो पूछेगी कि कब आये कैसे आये। छठे कान मे कहानी पडना गुरुजी ने रोक दिया है। इसलिए धीरे से उठा जिसमे रानी की नीद न टूटे। गुपचुप घोडसार मे गया। देखा घोडा कसाकसाया तैयार है। उसपर सवार होकर वन मे चला गया। विन्ध्याचल नही गया। क्योकि जाने आने मे कई दिन लगेगे। पुर नर नारियो ने न जाना। राजाओ के गुप्त मार्ग होते थे। जिससे पुर के बाहर आया जाया करते थे और किसी को पता नही चलता था।

गएँ जाम[1] जुग भूपति आवा। घर घर उत्सव बाज बधावा॥
उपरोहितहि देख जब राजा। चकित बिलोकि सुमिरि सोइ काजा॥३॥

---

१. यह युक्ति अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ दोपहर बीतने पर राजा आया। घर घर उत्सव हुआ। बधावा बजने लगा। उपरोहित को जब राजा ने देखा तो उस कार्य को स्मरण करके चकित होकर देखने लगा।

व्याख्या दोपहर बीत जाने पर लौटा। जिससे लोग जानें कि दूर से लौट रहे हैं। राजा अकेला लौटा। मृगया का साज समाज साथ नहीं है। वे तो विन्ध्याचल मे राजा की बाट जोह रहे हैं। खबर दी गई कि महाराज घर लौट गये। पुरोहित मे भी लौट फेर होनेवाला था। अत राजा चकित होकर देख रहा है कि वही हैं या तपस्वी जी उनके वेष मे हैं।

जुग सम नृपहि गए दिन तीनी। कपटी मुनिपद रहि मत लीनी ॥
समय जानि उपरोहित आवा। नृपहि मते सब कहि समझावा ॥४॥

अर्थ राजा को तीन दिन युग के समान वीते। कपटी मुनि के चरणो म ही मन लगा था। समय जानकर पुरोहित आया और उसने राजा को एकान्त म सब समझाकर कह दिया।

व्याख्या प्रतीक्षा का समय कठिन होता है। तिसपर ऐसी प्रतीक्षा जिसमे बडे भारी लाभ की आशा हो। अत तीन दिन राजा के लिए तीन युग हो गये। समाप्त ही नही होते थे। उत्कण्ठा अत्यन्त वढी हुई है। और कपटी मुनि के लिए हृदय म बडी श्रद्धा है। उन्ही के चरणो मे मन लीन हो रहा है।

तीन दिन वीतने पर रात को पुरोहित जी आये और जब एकान्त बोलाइ सब कथा सुनावौं तोहि। इस वचन की भी पूर्ति हुई। एकान्त मे सब कथा समझा कर कही। यथा

लागि तृषा वन भूलि पर्‌यौ, तव जाइ सरोवर तोहि दिखायो।
देखि दुखी वरदान दियो, शतकल्पलौ कालते तोहि बचायो ॥
सोवत ही तोहि वाजि समेत, तपोबल ते घर मे पहुँचायो।
निर्भय विप्रनतें करिबे कहँ, तोहि महीप इहाँ लगि आयो ॥

दो नृप हरषेउ पहिचानि गुरु, भ्रम बस रहा न चेत।
बरे तुरत सत सहस वर, विप्र कुटुब समेत ॥१७२॥

अर्थ . राजा गुरु को पहिचान कर हर्षित हुए। भ्रमवश चेत न रहा। तुरन्त एक लाख अच्छे वैदिक ब्राह्मणो को सकुटुम्ब वरण किया।

व्याख्या और एक मे वही लगाऊ। सो लगाव पाकर पहिचान लिया कि गुरुजी हैं। यह याद न रहा कि कालकेतु के सौ पुत्र और दस भाइयो को मैने मारा है। उसका पता किसी तरह नही लग सका। वह महा मायावी है। बदला लेने की फिक्र मे लगा होगा। कही यह सब उसकी माया तो नही है। नही तो एक आदमी इतने आदमियो के लिए रसोई कैसे बनावेगा ? सो यह कुछ न हुआ। एक लाख ब्राह्मणो को निमन्त्रण दे दिया गया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उपरोहित जेवनार बनाई। छ रस चारि बिधि जसि श्रुति गाई॥
मायामय तेहि कीन्ह रसोई। बिंजन बहु गनि सकै न कोई॥१॥

अर्थ छ रस और चार विधि जैसा वेद ने कहा है वैसी जेवनार पुरोहित ने बनायी। उसने मायामय रसोई की। अनेक प्रकार के व्यञ्जन बनाए जो कोई गिन नही सकता।

व्याख्या पुरोहितजी स्वय जेवनार बनाने बैठे हैं। इसलिए वेद की विधि से रसोई बनी। छवो रस मधुर, कटु, तिक्त, अम्ल, लवण और कषाय। तथा चारो विधि चर्व्य, चोष्य, लह्य और पेय के अगणित प्रकार के व्यञ्जन बनाये। देखने मे तो रसोई वेद विधि से बनी थी पर थी वह मायामय। इतनी थोडी देर मे इतने व्यञ्जन बनाने का अभिप्राय यह कि राजा को मुनिजी के तप पर श्रद्धा और भी बढे।

बिबिध मृगन्ह कर आमिष राँधा। तेहि महु बिप्र मास खल साँधा॥
भोजन कहुँ सब बिप्र बोलाए। पग पखारि सादर बैठाए॥२॥

अर्थ अनेक प्रकार के मृगो का मास पकाया। और उस खल ने उसमे ब्राह्मण का मास भी मिला दिया। भोजन के लिए ब्राह्मणो को बोलाया और पाँव धोकर आदर के साथ बिठाया।

व्याख्या अब मायामयत्व कहते हैं। वस्तुत यहाँ कोई रसोई नही थी। केवल वहाँ अनेक जन्तुओ के मास थे। और उनमे ब्राह्मण का भी मास मिला था। सब ब्राह्मणो को एक साथ उठा दिया जिससे सब मिलकर एक साथ शाप दें। राजा के यहाँ ब्राह्मणो का बडा आदर है। राजा बन्धु बान्धवो के सहित स्वय उनके पादप्रक्षालन करने लगा।

परुसन जबहिं लाग महिपाला। भै अकास बानी तेहि काला॥
बिप्र बृंद उठि उठि गृह जाहू। है बडि हानि अन्न जनि खाहू॥३॥

अर्थ जब राजा परोसने लगा उस काल आकाशवाणी हुई। ब्राह्मणो! उठ उठकर घर जाओ, अन्न मत खाओ, बडी हानि है।

व्याख्या पहले निश्चय के अनुसार तुम परुसेहु मोहि जान न कोई। राजा स्वय परोसने[1] लगा। मालूम हुआ कि बडी श्रद्धा है। नही तो राजा के परोसने का नियम नही है। देवताओ के भोजन कराने म हिमगिरि ने स्वय नही परोसा। लगे परोसन निपुन सुआरा। रसोईदार का किसी को पता नही। अब राजा पूरी

---

१ राजा का परोसना यही है कि स्वय महाराज ने भी परोसने मे हाथ लगा दिया। सारा समाज परोस रहा था। भाव यह कि परोसने का काम पूरा होने पर राजा ने स्वय परोसने म हाथ लगाया। उसी समय आकाशवाणी हुई। परिवार के सहित राजा परोसता था। यह बात इतने से ही सिद्ध है कि ब्राह्मणो ने परिवार सहित राजा को शाप दिया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तरह रसोई का जिम्मेदार हो गया। अब निगमन यही होगा कि राजा को ऐसी ही रसोई इष्ट थी। इसी से न जाने किसको किसको बुलाकर रसोई बनवाई। पुराने रसोईदार भी सम्मिलित नहीं किये गये।

यह आकाशवाणी कालकेतु की की हुई थी। तेहि काला से कालकेतु ध्वनित है। गृह जाहू का भाव यह कि यहाँ तुम लोगो का पैर रखना भी उचित नही है। सबसे बड़ा धोखा है। खाते ही पतित हो जाओगे। कालकेतु ने यह आकाशवाणी शाप दिलाने के लिए की। यह सच्ची आकाशवाणी नहीं हो सकती। सच्ची आकाशवाणी होती तो राजा के निर्दोष होने का भी इशारा अवश्य होता। जिस भाँति लक्ष्मणजी के कोप पर आकाशवाणी ने इङ्गित किया था। यथा : अनुचित उचित काजु किछु होऊ। समुझि करिअ भल कह सब कोऊ। सहसा करि पाछे पछिताही। कहहिं वेद बुधते बुध नाही। परन्तु यहाँ अत्यन्त आवश्यक बात की ओर कुछ भी इशारा नही है। अतः यह देवकृत आकाशवाणी नही है। असुरकृत है। जिसके कारण राजा मारा गया।

भयउ रसोईं भूसुर मासू। सब द्विज उठे मानि बिस्वासू ॥
भूप बिकल मति मोह भुलानी। भावी बस न आव मुख बानी ॥४॥

अर्थ : रसोई ब्राह्मणो के मास की हुई है। सब ब्राह्मण विश्वास मानकर उठ खडे हुए। राजा विकल हो उठा। बुद्धि मोह से गडबडा गई। होनहारवश मुख से शब्द न निकले।

व्याख्या : जिसे रसोई समझते हो वह ब्राह्मणो का मास है। इस वाणी का बोलनेवाला कोई दिखाई नही पडता है। और शब्द सुनाई पड़ते हैं। अत. यह अवश्य ही आकाशवाणी है। यह कभी मिथ्या नही हो सकती। अतः विश्वास मानकर पत्तल पर से उठ गये।

जिस बात से राजा सदा डरता था वही आँख के सामने आगई। बात ऐसी गठ गई है कि इसकी सफाई नही। आकाशवाणी पर शङ्का को स्थान नही। यह हुआ क्या ? सोचकर राजा विकल हो गया। विकल होने से बुद्धि स्तब्ध हो गई। कुछ कह न सका। यही समय अपनी निरपराधता तथा ठगे जाने की बात को प्रकाश करने का था। होनहार बलवान् है। कालकेतु का अनुमान ही ठीक निकला कि इसके नाश मे ब्रह्मदेव का हाथ है। यथा : बिनु औषधि बिधि खोई।

दो. बोले बिप्र सकोप तब, नहिं कछु कीन्ह बिचार।
जाइ निसाचर होहु नृप, मूढ सहित परिवार ॥१७३॥

अर्थ : सब ब्राह्मण क्रुद्ध होकर बोले। कुछ विचार न किया। शाप दिया : मूढ राजा तू परिवार सहित राक्षस हो।

व्याख्या : आकाशवाणी के बाद राजा के कुछ न बोलने से सब दोष उस पर आ पडा। ब्राह्मणो ने भी कुछ विचार न किया। बात विचारने योग्य थी कि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ऐसा धर्मात्मा राजा, एकाएक ऐसा अनर्थ क्यो करेगा ? फिर इसे ऐसा करने से लाभ क्या ? यह आकाशवाणी सच्ची है कि माया है ?

कहने लगे : ब्राह्मण के मास की रसोई राक्षस के यहाँ होती है। यथा 'खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। सो तेरे यहाँ ऐसी रसोई बनो अत' तू राक्षस हो। 'मूढ' कहने से भाव यह कि तेरा कोई लाभ नही और हमारा धर्म चला जाता। सहित परिवार का भाव यह कि परिवार के सहित तू पादप्रक्षालनादि ब्राह्मण भोजन के कृत्य मे लगा था। तूने ही परिवार सहित रसोई इसीलिए बनाई और आप ही परोसने चला। श्रद्धा से नही हम लोगों के सर्वनाश के लिए जानबूझकर तूने सब किया। अत सबके सब राक्षस हो जाओ।

छत्र बंधु तैं विप्र बोलाई। घालै लिए सहित समुदाई ॥
ईस्वर राखा धरम हमारा। जैहसि तैं समेत परिवारा ॥१॥

अर्थ रे क्षत्रियाधम ! तूने ब्राह्मणो को बुलाकर उनको समाज सहित नष्ट करना चाहा था। ईश्वर ने हमारा धर्म रख लिया। तू परिवार के साथ नष्ट होगा।

व्याख्या बिना बुलाये हुए के साथ भी कोई ऐसा व्यवहार नही करता। तूने बुलाकर ऐसा व्यवहार किया। समाजसहित तूने सब ब्राह्मणो को नष्ट करना चाहा। जिसमे सब पतित हो जायँ। कोई प्रायश्चित करनेवाला न रह जाय। आकाशवाणी द्वारा ईश्वर ने हमारा धर्म बचाया। तू परिवारसहित इस कर्म मे सम्मिलित था। और परिवारसहित हम लोगो का नाश चाहा। इसलिए तू भी परिवारसहित नष्ट होगा।

सवत मध्य नास तव होऊ। जलदाता न रहिहि कुल कोऊ ॥
नृप सुनि साप विकल अति त्रासा। भइ बहोरिबर गिरा आकासा ॥२॥

अर्थ सम्वत् के भीतर तेरा नाश हो। कुल म कोई जल देनेवाला न रहे। राजा शाप सुनकर अत्यन्त भय से व्याकुल हो गया तो फिर आकाश से श्रेष्ठ वाणी हुई।

व्याख्या सम्वत् भर ब्राह्मणो को नष्ट करने का तेरा सकल्प था। सो सम्वत् के भीतर तेरा नाश हो जाय। तूने चाहा था कि कोई ब्राह्मण बच न जाय। अत तेरे कुल मे कोई न बचे। जलदाता भी कोई न रहे। अर्थात् दस पुश्त के भीतर जितने दायाद हैं सब नष्ट हो जायँ।

राजा पहिले ही विकल था। अब शाप सुनकर अत्यन्त विकल हुआ। तब श्रेष्ठ 'सच्ची वाणी आकाश से हुई। भाव यह कि पहिली वाणी श्रेष्ठ न थी। क्योकि कालकेतु की बोली हुई थी। अब यह श्रेष्ठ वाणी राजा के यश को रक्षा तथा शापानुग्रह के लिए हुई।

विप्रहु श्राप बिचारि न दीन्हा। नहिं अपराध भूप कछु कीन्हा ॥
चकित विप्र सब सुनि नभ बानी। भूप गयउ जहँ भोजन खानी ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : ब्राह्मणो ! तुम लोगों ने विचारकर शाप नही दिया। राजा ने कोई अपराध नही किया। सब ब्राह्मण आकाशवाणी सुनकर चकित हो गये। जहाँ भोजन की खानि थी वहाँ राजा गया।

व्याख्या : राजा की सफाई का उपाय अब सिवा आकाशवाणी के दूसरा था नही सो आकाशवाणी हुई। ब्राह्मणों की भर्त्सना की कि तुम लोगों ने विचार से काम नहीं लिया। निरपराध को शाप दे डाला। ब्राह्मण के मांस की रसोई होने में राजा का कोई अपराध नही है। विना ठीक तरह जांच किये तुम लोगों ने कैसे निर्णय किया ?

यह आकाशवाणी कैसी ? राजा का अपराध नही है तो किसका है ? अतः सब ब्राह्मण चकित हुए। यश की रक्षा आकाशवाणी ने की। तब राजा इतने सावधान हुए कि रसोईघर में गये रसोईदार और रसोई की जांच करने के लिए।

तहँ न असन नहिं विप्र सुआरा। फिरेउ राउ मन सोच अपारा ॥
सब प्रसंग महि सुरन्ह सुनाई। त्रसित परेउ अवनी अकुलाई ॥४॥

अर्थ : वहाँ न रसोई थी न रसोईदार ब्राह्मण था। तब राजा लौटा। मनमें अपार सोच हुआ। सब कथा ब्राह्मणों को सुनाकर पृथ्वी में आकुल होकर गिर गया।

व्याख्या : मुख्य अपराधी अपने अपराध के प्रमाण सहित अन्तर्धान हो गया। अब राजा के सोच का कोई पारावार न रह गया। वह सोचता है कि जिसके ऊपर इतनी आस्था थी वह घोर वैरी निकला। और वह कौन था जिसने इतनी बडी माया करके मेरा नाश किया ? मैं अत्यन्त लोभ से मारा गया। अब मेरा और मेरे कुटुम्ब का क्या होगा ? इत्यादि ऐसा सोच उठा कि उसका पारावार नही। अपना निरपराध होना सिद्ध करने के लिए सब बातें खोलकर कहनी पड़ी। कहते कहते व्याकुलता इतनी बढी कि पृथ्वी पर गिर गया।

दो. भूपति भावी मिटै नहि, जदपि न दूपन तोर।
किए अन्यथा होइ नहि, विप्र साप अति घोर ॥१७३॥

अर्थ : ब्राह्मण बोले : राजन् ! होनहार होकर ही रहता है। मिटता नही। यद्यपि तुम्हारा दोष नही। पर करने से अन्यथा नही हो सकता। ब्राह्मण का शाप अत्यन्त घोर होता है।

व्याख्या : ब्राह्मणों ने कहा ऐसी ही भावी थी। शाप निमित्त मात्र हुआ। हम लोग भी अब तुझे निर्दोष मानते हैं। पर इस शाप की प्रतिक्रिया नही है। हम भी इसे अन्यथा नही कर सकते। यहाँ शापानुग्रह को कथा नहीं कहते। रुद्रगणों पर जैसा नारदजी ने अनुग्रह किया था वैसा ही समझ लेना। यथा : वैभव विपुल तेज बल होऊ। समर मरन हरि हाथ तुम्हारा। होइहौं मुकुत न पुनि संसार ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अस कहि सब महिदेव सिधाए। समाचार पुर लोगन्ह पाए ॥
सोचहि दूषन दैवहि देही। बिचरत हंस काग किय जेही ॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर सब ब्राह्मण चले गये। पुरवासियों को समाचार मिला। लगे सोचने और दैव को दोष देने जिसने कि चलते फिरते हंस को काग बना दिया।

व्याख्या : यहाँ 'महिदेव' शब्द से ब्राह्मणों का महत्त्व सूचित किया कि पृथ्वी पर के देवता हैं। देवताओं की भाँति आवाहन से आये थे। अपवित्रता देखकर चले जा रहे हैं। जो बात उनके मुख से निकल गई वही होगी। अन्यथा नहीं हो सकता।

ऐसी विचित्र घटना विशेषतः राजघराने की छिप नहीं सकती। नगर में फैल गई। राजा बड़ा प्रजा पालक था। वेदविद् था। उसके राज्य में अधर्म का लेश नहीं था। अतः प्रजा अत्यन्त सुखी थी। इस दुर्घटना को सुनकर लोग सोच करते हैं। दुःखी होते हैं। बात किसी के समझ में नहीं आती है। इसमें न राजा का दोष दिखाई पड़ता है न ब्राह्मणों का दोष दिखाई पड़ता है। राजा से इस जन्म में कोई अनर्थ भी नहीं हुआ जिसका फल कहा जा सके। अतः दैव को दोष देते हैं कि उन्होंने नियम भङ्ग किया। जन्म से ही काग या हंस बनाने का विधान है। द्विज द्रोही बहु नरक भोग करि। जग जन्महि वायस सरीर धरि। यहाँ तो राजा जन्म से हंस था। और हंस की भाँति आचरण करता था परम धर्मात्मा था। इसे ब्राह्मण-द्रोह कहाँ से उत्पन्न हो गया? जो ब्राह्मणों को वश करने चला।

उपरोहित हि भवन पहुँचाई। असुर तापसहि खबरि जनाई ॥
तेहि खल जहँ तहँ पत्र पठाए। सजि सजि सेन भूप सब आए ॥२॥

अर्थ : असुर ने उपरोहित को पहुँचाकर तपस्वी राजा को समाचार दिया। उस खल ने जहाँ तहाँ चिट्ठियाँ भेजी। सो राजा लोग सेना सजा सजाकर आये।

व्याख्या : अब कालकेतु ने पुरोहित को घर पहुँचा दिया। जिसमें पुरोहित की खोज में कहीं भानुप्रताप के आदमी कपटीमुनि के आश्रम तक खोजते खोजते न पहुँच जायँ और अब सालभर तक उसे गिरि खोह में रखने की कोई आवश्यकता नहीं रह गई। तत्पश्चात् अपनी प्रतिज्ञानुसार कुल सहित रिपु मूल बहाकर चौथे दिन कपटीमुनि से जा मिला और कृतकार्य होने का समाचार दिया।

वह कपटीमुनि राजा था ही सब राजा लोग उसे जानते थे। जिन जिन राजाओं से दण्ड ले लेकर भानुप्रताप ने छोड़ दिया था उन सभी को उसने चिट्ठियाँ भेजी कि भानुप्रताप राजा ब्राह्मणों के शाप से दग्ध हो गया है। अब उसके नाश के निमित्त होकर जय और यश के भागी होने के लिए शीघ्रता करो। सो राजा लोगों ने सेना सहित चढ़ाई कर दी।

घेरेन्हि नगर निसान बजाई। बिबिध भाँति नित होइ लराई ॥
जूझे सकल सुभट करि करनी। बंधु समेत परेउ नृप धरनी ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : सब राजाओं ने डङ्का बजाकर नगर घेर लिया। अनेक प्रकार से युद्ध होने लगा। सभी सुभट . योद्धा पराक्रम दिखला दिखालकर जूझ गये और भाई सहित राजा भी खेत रहा।

व्याख्या : नगर घिर गया। बाहर की सहायता रुकी। चारों ओर से धावा हुआ। राजा ने सामना किया। नित्य अनेक प्रकार युद्ध होने लगे। भानुप्रताप के सुभटों ने पीठ नहीं दिखायी। खूब पराक्रम किया। परन्तु शापित होने के कारण मारे गये। राजा को अन्त में लड़ना चाहिए। इसी नीति का आश्रयण करके राजा अन्त में लड़ा और भाई सहित खेत रहा।

सत्यकेतु कुल कोउ नहि बाचा। बिप्र श्राप किमि होइ असाँचा ॥
रिपु जिति सब नृप नगर बसाई। निजपुर गवने जय जस पाई ॥४॥

अर्थ : सत्यकेतु के कुल में कोई न बचा। ब्राह्मणों का शाप मिथ्या कैसे हो सकता है? सब राजा शत्रु को जीतकर नगर को बसाकर विजय और यश पाकर घर गये।

व्याख्या : ये राजा लोग जय और यश की आकाक्षा से आये थे। भानुप्रताप से पराजित होने से ये अपनी कीर्ति खो बैठे थे। भानुप्रताप पर विजय पाने से अपनी खोई हुई कीर्ति प्राप्त की। युद्ध में नगर उजड गया था। उसे बसाकर सब घर चले गये। राज्य कपटी मुनि के हाथ लगा। क्योंकि इसी ने सबको चिट्ठी भेज कर बुलवाया था। और उद्योग सब इसी का था।

दो. भरद्वाज सुनु जाहि जब, होइ बिधाता बाम।
धूरि मेरुसम जनक जम, ताहि ब्याल सम दाम ॥१७५॥

अर्थ भरद्वाज! सुनो। जिसे सब ब्रह्मा बाएँ हो जाते हैं तो उसके लिए धूलि मेरु हो जाती है। पिता यम हो जाते हैं। रस्सी उसके लिए सर्प हो जाती है।

व्याख्या : अशुभ कर्म के उदय होने से ही विधाता बाएँ होते हैं। यथा : कठिन करम गति जान विधाता। जो सुभ असुभ सकल फल दाता। कपटी मुनि धूल के समान था। यथा : नाम हमार भिखारि अब निर्धन रहित निकेत। सो पर्वतराज सुमेरु सा हो गया। उसके बुलाने से सब राजा युद्ध करने चले आये। पितृस्थानीय विप्रवृन्द यम हो गये। ऐसा घोर शाप दे दिया। कालकेतु में कुछ नहीं रह गया था। उसकी आकृति मात्र राक्षस की थी। सूकर आदि बना वन में फिरता था। वह रज्जु था सो साँप हो गया।

## ३. रावणावतार प्रसङ्ग

काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा ॥
दस सिर ताहि बीस भुज दंडा। रावन नाम बीर बरिबंडा ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अस कहि सब महिदेव सिधाए। समाचार पुर लोगन्ह पाए ॥
सोचहिं दूषन दैवहि देही। बिचरत हंस काग किय जेही ॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर सब ब्राह्मण चले गये। पुरवासियो को समाचार मिला। लगे सोचने और दैव को दोष देने जिसने कि चलते फिरते हंस को काग बना दिया।

व्याख्या : यहाँ 'महिदेव' शब्द से ब्राह्मणो का महत्त्व सूचित किया कि पृथ्वी पर के देवता हैं। देवताओ की भाँति आवाहन से आये थे। अपवित्रता देखकर चले जा रहे हैं। जो बात उनके मुख से निकल गई वही होगी। अन्यथा नही हो सकता।

ऐसी विचित्र घटना विशेषत राजघराने की छिप नही सकती। नगर मे फैल गई। राजा बडा प्रजा पालक था। वेदविद् था। उसके राज्य मे अधर्म का लेश नही था। अत प्रजा अत्यन्त सुखी थी। इस दुर्घटना को सुनकर लोग सोच करते हैं। दु खी होते हैं। बात किसी के समझ मे नही आती है। इसमे न राजा का दोष दिखाई पडता है न ब्राह्मणो का दोष दिखाई पडता है। राजा से इस जन्म मे कोई अनर्थ भी नही हुआ जिसका फल कहा जा सके। अत दैव को दोष देते है कि उन्होने नियम भङ्ग किया। जन्म से ही काग था हंस बनाने का विधान है। द्विज द्रोही वहु नरक भोग करि। जग जन्मइ वायस सरीर धरि। यहाँ तो राजा जन्म से हंस था। और हंस की भाँति आचरण करता था परम धर्मात्मा था। इसे ब्राह्मण-द्रोह कहाँ से उत्पन्न हो गया ? जो ब्राह्मणो को वश करने चला।

उपरोहित हि भवन पहुँचाई। असुर तापसहि खबरि जनाई ॥
तेहि खल जहँ तहँ पत्र पठाए। सजि सजि सेन भूप सब आए ॥२॥

अर्थ असुर ने उपरोहित को पहुँचाकर तपस्वी राजा को समाचार दिया। उस खल ने जहाँ तहाँ चिट्ठियाँ भेजी। सो राजा लोग सेना सजा सजाकर आये।

व्याख्या अब कालकेतु ने पुरोहित को घर पहुँचा दिया। जिसमे पुरोहित की खोज मे कही भानुप्रताप के आदमी कपटीमुनि के आश्रम तक खोजते खोजते न पहुँच जायँ और अब साल भर तक उसे गिरि खोह मे रखने की कोई आवश्यक्ता नही रह गई। तत्पश्चात् अपनी प्रतिज्ञानुसार कुल सहित रिपु मूल बहाकर चौथे दिन कपटीमुनि से जा मिला और कृतकार्य होने का समाचार दिया।

वह कपटीमुनि राजा था ही सब राजा लोग उसे जानते थे। जिन जिन राजाओ से दण्ड ले लेकर भानुप्रताप ने छोड दिया था उन सबो को उसने चिट्ठियाँ भेजीं कि भानुप्रताप राजा ब्राह्मणो के शाप से दग्ध हो गया है। अब उसके नाश के निमित्त होकर जय और यश के भागी होने के लिए शीघ्रता करो। सो राजा लोगो ने सेना सहित चढाई कर दी।

घेरेन्हि नगर निसान बजाई। बिबिध भाँति नित होइ लराई ॥
जूझे सकल सुभट करि करनी। बंधु समेत परेउ नृप धरनी ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ सब राजाओं ने डङ्का बजाकर नगर घेर लिया। अनेक प्रकार से युद्ध होने लगा। सभी सुभट योद्धा पराक्रम दिखला दिखालकर जूझ गये और भाई सहित राजा भी खेत रहा।

व्याख्या नगर घिर गया। बाहर की सहायता रुकी। चारो ओर से धावा हुआ। राजा ने सामना किया। नित्य अनेक प्रकार युद्ध होने लगे। भानुप्रताप के सुभटो ने पीठ नही दिखायी। खूब पराक्रम किया। परन्तु शापित होने के कारण मारे गये। राजा को अन्त मे लडना चाहिए। इसी नीति का आश्रयण करके राजा अन्त म लडा और भाई सहित खेत रहा।

सत्यकेतु कुल कोउ नहि बाचा। विप्र श्राप किमि होइ असाँचा ॥
रिपु जिति सब नृप नगर बसाई। निजपुर गवने जय जस पाई ॥४॥

अर्थ सत्यकेतु के कुल मे कोई न बचा। ब्राह्मणो का शाप मिथ्या कैसे हो सकता है? सब राजा शत्रु को जीतकर नगर को बसाकर विजय और यश पाकर घर गये।

व्याख्या ये राजा लोग जय और यश की आकाक्षा से आये थे। भानुप्रताप से पराजित होने से ये अपनी कीर्ति खो बैठे थे। भानुप्रताप पर विजय पाने से अपनी खोई हुई कीर्ति प्राप्त की। युद्ध मे नगर उजड गया था। उसे बसाकर सब घर चले गये। राज्य कपटी मुनि के हाथ लगा। क्योकि इसी ने सबको चिट्ठी भेज कर बुलवाया था। और उद्योग सब इसी का था।

दो भरद्वाज सुनु जाहि जब, होइ बिधाता बाम।
धूरि मेरुसम जनक जम, ताहि ब्याल सम दाम ॥१७५॥

अर्थ भरद्वाज! सुनो। जिसे सब ब्रह्मा बाएँ हो जाते हैं तो उसके लिए धूलि मेर हो जाती है। पिता यम हो जाते हैं। रस्सी उसके लिए सर्प हो जाती है।

व्याख्या अशुभ कर्म के उदय होने से ही विधाता बाएँ होते हैं। यथा कठिन करम गति जान विधाता। जो सुभ असुभ सकल फल दाता। कपटी मुनि धूल के समान था। यथा नाम हमार भिखारि अब निर्धन रहित निकेत। सो पर्वतराज सुमेरु सा हो गया। उसके बुलाने से सब राजा युद्ध करने चले आये। पितृस्थानीय विप्रवृन्द यम हो गये। ऐसा घोर शाप दे दिया। कालकेतु मे कुछ नही रह गया था। उसकी आकृति मात्र राक्षस की थी। सूकर आदि बना वन मे फिरता था। वह रज्जु था सो साँप हो गया।

## ३ रावणावतार प्रसङ्ग

काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा ॥
दस सिर ताहि बीस भुज दंडा। रावन नाम बीर बरिबंडा ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ मुनि ! सुनो समय पाकर वही राजा समाज के सहित राक्षस हुआ। उसे दस सिर और बीस भुजाएँ थी। उस वीर वलिवन्य[1] का नाम रावण था।

व्याख्या सभी कार्यों के लिए काल असाधारण कारण है। जब वैसी ग्रह-स्थिति आई तो वही राजा भानुप्रताप राक्षस होकर पैदा हुआ। और उसका सब समाज राक्षस हुआ। इस जन्म मे उसे दस सिर हुए, बीस हाथ हुए। उसका नाम रावण पडा। यह बलवानो से भी वन्दित वीर हुआ। यह पुलस्त्य का नाती और विश्रवा मुनि का पुत्र था। माँ इसकी दैत्यकुल की थी। और दारुण वेला म इसके पिता को प्राप्त हुई थी। अत उन्होने इसकी माता से कह दिया कि तुझ राक्षस पुत्र उत्पन्न होगे। ऋषि जी के अनुष्ठान मे रहने के कारण रावण की माता के दस ऋतु व्यतीत हो गये। इसलिए विश्रवा जी ने दस पुत्र के स्थान पर एक पुत्र दस सिर और बीस भुजावाला दिया।

भूप अनुज अरिमर्दन नामा। भएउ सो कुंभकरन बलधामा ॥
सचिव जो रहा धरम रुचि जासू। भएउ बिमात्र बधु लघु तासू ॥२॥

अर्थ उसका छोटा भाई जिसका नाम अरिमर्दन था वह बलधाम कुम्भकर्ण हुआ। जो उसका धर्मरुचि नामी मन्त्री था वह उसका छोटा सौतेला भाई हुआ।

व्याख्या अरिमर्दन का उस जन्म मे भुजबल अतुल था। सो इस जन्म मे भी बलधाम हुआ। इसके कान कुम्भ की भाँति थे। वाल्मीकीय और अध्यात्म मे तीनो भाइयो की एक माता कही गई है। जिसका नाम कैकसी था। परन्तु यहाँ विभीषण को सौतेला भाई कह रहे हैं। अत कथा का यह भाग उन कल्पो की कथाओ से मेल नही खाता जिसका वर्णन वाल्मीकीय या अध्यात्म म है। यह कथा भाग महाभारतोक्त रामकथा से मेल खाता है। जिसमे रावण कुम्भकर्ण का जन्म पुष्पोत्कटा से विभीषण का जन्म मालिनी से और खर तथा सूर्पणखा का जन्म राका नाम राक्षसी से लिखा है जो कि कुबेर द्वारा पिता की सेवा मे नियुक्त थी। पिता इन सबके विश्रवा मुनि थे। जिस कल्प मे ब्रह्म का रामावतार हुआ उस कल्प के रावण की माता का नाम पुष्पोत्कटा और विभीषण की माता का नाम मालिनी था।

नाम बिभीषन जेहि जग जाना। बिस्नु भगत बिग्यान निधाना ॥
रहे जे सुत सेवक नृप केरे। भए निसाचर घोर घनेरे ॥३॥

अर्थ उसका नाम विभीषण पडा। जिसे ससार जानता है कि विष्णुभक्त

---

१ दोलदडदगनेषु ड । इस सूत्र से दकार का डकार बलिवद्य का बरिवड रूप सिद्ध हुआ। लकार के रेफ होने और यकार के लोप के नियम दिये जा चुके हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



और विज्ञान का निधान था। और राजा के जो बहुत से बेटे और सेवक थे वे भी घोर राक्षस हुए।

व्याख्या विभीषण का नाम पुण्यश्लोको मे है। प्रात काल ही सब लोग महाभागवत होने से स्मरण करते हैं। विभीषण जी ज्ञानी भक्त थे। इसलिए विष्णु भक्त विज्ञान निधाना कहा। विभीषण के बाद सुत सेवक का नाम आने से कोई यह न समझे कि वे सब भक्त और ज्ञानी हुए होगे। अत कहते हैं कि वे सब घोर राक्षस हुए। सेवक की भी गणना परिवार मे है। इन तीनो भाइयो से घोरता मे सुत सेवक अधिक थे।

कामरूप खल जिनिस अनेका। कुटिल भयकर विगत विवेका॥
कृपा रहित हिसक सब पापी। बरनि न जाइ बिस्व परितापी॥४॥

अर्थ : वे खल मनमाना रूप धारण करनेवाले अनेक प्रकार के कुटिल, भयकर और विवेकरहित थे। वे सब निर्दयी, हिंसक और पापी थे। उन विश्वपरितापियो का वर्णन नही किया जा सकता।

व्याख्या : उन खलो मे मनमाना रूप धारण करने की शक्ति थी। इसलिए विश्व को परिताप देना उन्हे सरल हो गया। कुटिल, विवेकरहित, निर्दय, हिंसक और पापी थे। अत॰ विश्व के परिताप देने मे वे आनन्दबोध करते थे। कामरूप से माया कही। खल से स्वभाव कहा। जिनिसि से आकृति कही। कुटिल से मन की मलिनता कही। भयकर से रूप कहा। विगत विवेक से कुमति कही। कृपा रहित हिंसक से कर्म कहा। पापी से पृथ्वी का भारभूत होना कहा।

विश्वपरितापी हैं। ऐसा परिताप पहुँचाते हैं कि उसका वर्णन नही किया जा सकता। आगे चलकर कहेगे सर्वसहा भगवती वसुन्धरा नही सह सकी।

दो. उपजे[1] जदपि पुलस्त्य कुल, पावन अमल अनूप।
तदपि महीसुर सापबस, भये सकल अघरूप॥१७६॥

अर्थ : यद्यपि वे पुलस्त्य के कुल मे उत्पन्न हुए। जो पावन, निर्मल और अनूप था फिर भी ब्राह्मणो के शाप से वे पापरूप ही पैदा हुए।

व्याख्या : पूर्वजन्म का कर्म बहुत ही अच्छा था। इसलिए पुलस्त्य ऋषि के वश मे उत्पन्न हुए। वह कुल दूसरे को पवित्र करनेवाला था। इसलिए पावन कहा। स्वय पवित्र था इसलिए अमल कहा। उसी वश मे विश्रवा मुनि तथा कुबेर जी उत्पन्न हुए इसलिए अनूप कहा अथवा कलङ्क रहित चन्द्र के समान होने से अनूप कहा। यथा : रिषि पुलस्त जस विमल मयका। जाति आयु और भोग तीनो अच्छा था। परन्तु ब्राह्मण का शाप अत्यन्त घोर था। अत सब आसुर प्रकृति के हुए, पापरूप ही थे।

---

१ यहाँ विषम द्वितीय है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


कीन्ह विविध तप तीनिहुँ भाई। परम उग्र नहिं बरनि सो जाई॥
गएउ निकट तप देखि विधाता। माँगहु वर प्रसन्न मैं ताता॥१॥

अर्थ : तीनो भाइयो ने अनेक प्रकार के तप किये। जो कि बड़े उग्र : तीव्र : थे। उनका वर्णन नही हो सकता। तप देखकर ब्रह्मदेव निकट गये। कहा कि तात मै प्रसन्न हूँ, वर मांगो।

व्याख्या : तीनो भाइयो के तप के प्रकार भिन्न थे। कुम्भकर्ण नित्य धर्म मे स्थिर रहकर ग्रीष्मकाल मे पञ्चाग्नि तापता था। और वीरासन से बैठे हुए वर्षा की धारा पावस मे सहता था। और शिशिर ऋतु मे जाकर जल मे डूवा रहता था। इस भाँति दश सहस्र वर्ष तक तपस्या करता रहा। धर्मात्मा विभीषण पाँच सहस्र वर्ष तक एक पैर से खड़े रहे। और पांच सहस्र वर्ष तक ऊपर सिर और बाहु उठाए हुए सूर्य का अनुवर्तन किया। रावण सहस्र वर्ष तक निराहार रहा। और एक सहस्र वर्ष की पूर्ति पर अपना एक सिर काटकर अग्नि मे हवन करता था। इसलिए कहते हैं कीन्ह विविध तप तीनिउ भाई। यह तो उनके शारीरतप का वर्णन हुआ। इसके साथ-साथ मानस और वाङ्मय तप कैसा हुआ। इसका कौन वर्णन कर सकता है ?

जब दश सहस्र वर्ष पूरे हुए। और रावण अपना अवशिष्ट एक सिर भी काटने

---

रावण की कुण्डली जो दक्षिण भारत के एक महाविद्वान् वी सूर्य नारायणराव के रायल हारोस्कोप नामक पुस्तक से उद्धृत की गई है।

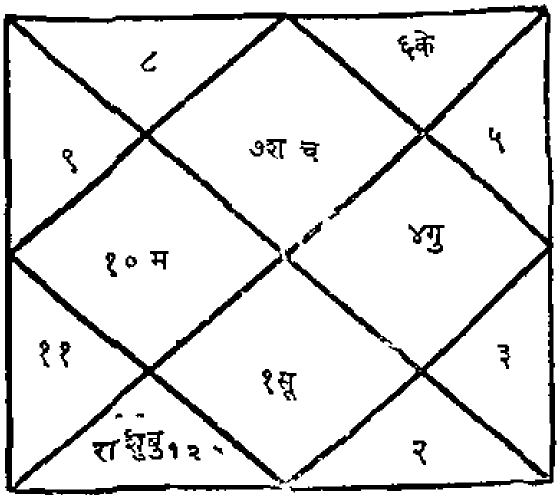


१ छठे मन्वन्तर चाक्षुष मे समुद्र मन्थन हुआ। देवासुर सग्राम हुआ। उस समय दानवेन्द्र बलि राजा थे। रावण का कोई पता नही चलता। इससे स्पष्ट है कि रावण सातवे वैवस्वत मन्वन्तर मे हुए। परशुरामावतार इसी मन्वन्तर के उन्नीसवी चतुर्युगी मे हुआ था। उन्होने कार्त्तवीर्य सहस्रबाहु को मारा। और सहस्रबाहु तथा रावण मे युद्ध हुआ था। यथा : एक बहोरि सहस भुज देखा। धाइ जनु जन्तु विसेषा। अत. कहा जा सकता है कि इस कल्प के रावण का प्रादुर्भाव उन्नीसवी चतुर्युगी मे हुआ। और चौबीसवी चतुर्युगी म वह श्रीरामचन्द्र द्वारा मारा गया। अत. रावण का राज्यकाल पाँच चतुर्युगी तक होना सिद्ध होता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चला तब ब्रह्मदेव निकट गये। बोले 'प्रीतोऽस्मि' • मैं प्रसन्न हूँ और वर माँगने को कहा। प्रपौत्र है इसलिए 'तात' कहते हैं। ब्रह्मलोक मे ब्रह्मदेव हैं। ऐसी भावना से उपासना किया था। इसलिए प्रकट नही हुए निकट गये।

करि विनती पद गहि दससीसा। बोलेउ वचन सुनहु जगदीसा ॥
हम काहू के मरहि न मारे। वानर मनुज जाति दुइ वारे ॥२॥

अर्थ विनती करके और चरण पकड के दशशीश ने कहा हे जगदीश सुनो। हम किसी के मारे न मरे। वानर और मनुष्य छोडकर।

व्याख्या रावण की तपस्या भी वडी थी और ज्येष्ठ भी था। इस समय अवशिष्ट दसवें सिर का काटना चाहता था इससे ब्रह्मदेव पहिले इसी के पास गये। रावण इस समय स्वार्थरत है। अत विनती भी की। चरण पकड लिया और अमरत्व माँगा। ब्रह्मदेव ने कहा अमरत्व नही मिल सकता। दूसरा वर माँगो। तब उसने वानर और मनुष्य को छोडकर देव दानवादिको से अपना अवध्यत्व माँगा। उसने समझ रक्खा था कि मनुष्य और वानर का शरीर ऐसा है कि ये सर्वथा मुझे मारने मे असमर्थ होगे।

एवमस्तु तुम वड तप कीन्हा। मै ब्रह्मा मिलि तेहि वर दीन्हा ॥
पुनि प्रभु कुभकरन पहि गएऊ। तेहि बिलोकि मन विसमय भएऊ ॥३॥

अर्थ एवमस्तु ऐसा ही हो तुमने बडा तप किया यह वर मैं और ब्रह्मा ने मिलकर दिया। फिर प्रभु कुम्भकर्ण के पास गये। उसे देखकर बडा विस्मय हुआ।

व्याख्या एवमस्तु कहने म शङ्कर जी आगे दिखाई पडे। अत यहाँ मैं ब्रह्ममिलि कहा। यह वर तपस्या के सामने कुछ वहुत बडा नही था। इसलिए तुम वड तप कीन्हा। यथा रावन कुम्भकरन वर माँगत सिव विरचि वाचा छयो दाना दवो ने मिलकर वर दिया। क्योकि उसने दोना की पूजा की थी।

कुम्भकर्ण के पास ब्रह्मदेव गये, शिवजी नही गये। उसे देखकर आश्चर्य किया कि इसके कान कुम्भ जैस और शरीर इतना वडा और भयङ्कर है। यह कैसा अद्भुत जीव है। यह तो विना वर के ही ससार का सहार कर देगा। देवताओ की प्रार्थना के अनुसार यह तो मोहन योग्य है।

जौ एहि खल नित करव अहारू। होइहि सब उजारि ससारू ॥
सादर प्रेरि तासु मति फेरी। माँगेसि नीद मास पटकेरी ॥४॥

अर्थ यदि यह खल नित्य भोजन करेगा तो ससार उजड जायगा। सरस्वती की प्रेरणा करके उसकी बुद्धि उलट दी। उसने छ महीने की नीद माँगी।

व्याख्या ब्रह्मदेव ने सोचा कि खल विना कारण भयकारी होते हैं। यहाँ तो वडा भारी कारण उपस्थित है। इसकी क्षुधा शान्ति के लिए अपरिमित आहार की आवश्यकता है। हिंसक है ही। सम्पूर्ण ससार का भक्षण कर जायगा। इसको वर देने से तो सृष्टि का संहार उपस्थित होगा। परन्तु इसने तो तप किया है। इसे वर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तो देना ही पडेगा। बडे असमञ्जस मे पडे। इधर देवताओ ने विनती की थी कि वर के व्याज से इसका मोहन कीजिये तभी ससार चल सकेगा। अत. सरस्वती को प्रेरणा की कि देवताओ के मनोरथ को पूर्ण करो। सरस्वती ने बुद्धि फेर दी। यथा गई गिरा मतिफेरि छ महीना जागने के स्थान मे छ महीने की नीद माँग ली।

दो० गए विभीषन पास पुनि, कहेहु पुत्र वर माँगु।
तेहि माँगेउ भगवत पद, कमल अमल अनुरागु ॥१७७॥

अर्थ · फिर विभीषण के पास गये। कहा कि बेटा! वर माँग। उसने भगवान् के चरण कमलो मे निर्मल भक्ति माँगी।

व्याख्या विभीषण पर स्नेह है कि यही पुत्र पद के योग्य है। कहा जो माँगेगा सो दूँगा। विभीषण की भगवान् के चरणो मे प्रीति तो थी ही। उसने फलाभिसन्धि रहित निर्मल भक्ति माँगी। नाम धर्म रुचि हरिपद प्रीता, यह भानुप्रताप का मन्त्री पूर्व जन्म मे था। उस जन्म मे भी इसे भक्ति थी। भगवान् के भक्त का नाश नही होता। यथा ताते नाश न होय भक्तकर। शाप होने पर भी भक्ति नही गई। उत्तरोत्तर बढती ही गई।

तिन्हहि देइ वर ब्रह्म सिधाए। हरषित ते अपने गृह आए॥
मय तनुजा मंदोदरि नामा। परम सुदरी नारि ललामा ॥१॥

अर्थ उन्हे वर देकर ब्रह्मदेव तो चले गये। वे हर्षित होकर अपने घर आये। मय दानव की बेटी जिसका नाम मन्दोदरी था। बडी सुन्दर स्त्रीरत्न थी।

व्याख्या कुम्भकर्ण और विभीषण का मागना केवल कहा था। ब्रह्मदेव का वर देना नही कहा था। सो यहाँ ब्रह्मदेव के जाने के प्रसङ्ग मे कहते है कि उन्हे वर देकर ब्रह्माजी चले गये। वे प्रसन्न होकर घर आये। भाव यह कि तपस्या के लिए गोकर्ण के आश्रम मे चले गये थे। तपस्या पूरी होने पर वहाँ से अपने घर श्लेष्मातक वन मे गये। कुम्भकर्ण की मति फिरी हुई है। वह छ महीने की सुषुप्ति से ही हर्षित है।

मय दानव असुरो के विश्वकर्मा हैं। इन्हे एक बेटी थी। जिसका नाम इन्होने मन्दोदरी रख छोडा था। बडी सुन्दर थी। स्त्रियो मे रत्न थी। इसे देखकर लङ्का मे हनुमानजी को जनकनन्दनी का भ्रम हो गया था। इससे बढकर स्त्रीरत्न होने का और प्रमाण क्या हो सकता है।

सोइ मय दीन्हि रावनहि आनी। होइहि जातुधानपति जानी॥
हरषित भयउ नारि भलि पाई। पुनि दोउ बंधु बिआहेसि जाई ॥२॥

अर्थ उसे लाकर मय ने रावण को दिया। उसने जान लिया कि यही राक्षसो का राजा होगा। रावण अच्छी स्त्री पाकर प्रसन्न हुआ। फिर जाकर दोनो भाइयो का व्याह किया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : मयदानव ने देख लिया कि रावण ही राक्षसो का राजा होनेवाला है। अत उसे लाकर रावण को दिया। उसे परम सुन्दरी देखकर रावण ने हर्षित होकर स्वीकार कर लिया। फिर विरोचन की दौहित्री जिसका नाम वृत्रज्वाला था उससे कुम्भकर्ण का व्याह कराया और शैलूष नाम के गन्धर्वराज की सरमा नाम की धर्मज्ञा बेटी का व्याह विभीषण से कराया।

गिरि त्रिकूट एक सिंधु मझारी। विधि निर्मित दुर्गम अति भारी ॥
सोइ मय दानव बहुरि संवारा। कनक रचित मनि भवन अपारा ॥३॥

अर्थ : समुद्र के बीच मे एक त्रिकूट पर्वत था। ब्रह्मा का बनाया हुआ वह अत्यन्त ही दुर्गम था। उसको मय दानव ने फिर से सँवारा। सोने और मणियो के अगणित मकान बनाये।

व्याख्या . समुद्र के बीच मे होने से उस पर्वत को ब्रह्मदेव ने ही अत्यन्त दुर्गम बनाया था। यो ही वहाँ तक किसी की पहुँच होनी कठिन थी। तिस पर मय दानव ने उसे असुरो के लिए फिर से सँवारा। किलाबन्दी की। सोने और रत्नो के बहुत से मकान बनाये। जिसमे वह स्वर्ग से टक्कर ले सके।

भोगावति जसि अहि कुल वासा। अमरावति जसि सक्र निवासा ॥
तिन्ह तें अधिक रम्य अति बंका। जग विख्यात नाम तेहि लंका ॥४॥

अर्थ : भोगावती मे जिस भाँति सर्पकुल का वास है और अमरावती जिस भाँति इन्द्र की राजधानी है। उससे भी अधिक मनोहर और बाँकी नगरी थी जिसका नाम लंका था।

व्याख्या : भोग प्रधान पुरियो मे पहिला नाम भोगावती का है। जो पाताल मे है। वहाँ सर्प रहते हैं। और इन्द्र की राजधानी अमरावती है। जिसमे इन्द्र रहते हैं। इन्द्रपद भोग की पराकाष्ठा है। इन दोनो पुरियो से अत्यन्त सुन्दर और बाँकी लङ्कापुरी थी।

दो. खाई सिंधु गभीर अति, चारिहिं दिसि फिरि आव।
कनक कोट मनि खचित दृढ, बरनि न जाइ बनाव ॥१७८॥क
हरि प्रेरित जेहि कलप जोइ, जातुधान पति होइ।
सूर प्रतापी अतुल बल, दल समेत बस होइ ॥१७८॥

अर्थ : गहिरा समुद्र खाईं की भाँति उसके चारो ओर घूम आया था। सोने का कोट : किला मणियो से जड़ा हुआ था। उसकी बनावट कही नही जा सकती थी।

भगवान् की प्रेरणा से जिस कल्प मे जो राक्षसो का राजा, शूर, प्रतापी और अतुल बल होता है वह दल सहित वही रहता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या दुर्ग के चारो ओर खाई खुदवाई जाती है जिसमे शत्रु की पहुँच किले तक न हो। इसके चारो ओर गम्भीर समुद्र ही खाई की भाँति घेरे हुए था। किला सोने का था। मणि जडे हुए थे। इससे दुर्ग की दृढता कही। जो वस्तु दृढ होती है उसकी बनावट सुन्दर नही होती और जिसकी बनावट सुन्दर होती है वह दृढ नही होता। लका मे सुन्दरता और दृढता दोनो थी। और ऐसी थी जिसका वर्णन न हो सके।

जिस भाँति प्रत्येक कल्प मे रामावतार होता है उसी भाँति रावणावतार होता है। जिस भाँति रामजी अयोध्या मे रहते हैं उसी भाँति रावण भी लङ्का को ही अपना निवासस्थान बनाते है। जय विजय, रावण कुम्भकर्ण होकर इसी मे रहे। जलन्धर रावण होकर इसी मे रहा। रुद्रगण रावण कुम्भकर्ण होकर इसी मे रहे। भानुप्रताप, अरिमर्दन और धर्मरुचि भी रावण, कुम्भकर्ण और विभीषण होकर इसी मे आकर बसे। इसलिए कहते है कि जो राक्षसराज शूर प्रतापी और अतुलित बल होते है वे यही सेना सहित बसते हैं। ऐसी हरि की इच्छा है। उसी से प्रेरित होकर प्रत्येक कल्प के राक्षसेश्वर लङ्का को ही अपनी राजधानी बनाते हैं।

रहे तहाँ निसिचर भट भारे। ते सब सुरन्ह समर सहारे॥
अब तहँ रहहि सक्र के प्रेरे। रच्छक कोटि जच्छपति केरे॥१॥

अर्थ पहले वहा बडे योद्धा राक्षस रहते थे। उन सबो को देवताओ ने लडाई मे मार डाला। अब वहाँ इन्द्र की प्रेरणा से कुबेरजी की ओर से एक करोड यक्ष रक्षक की भाँति रहते थे।

व्याख्या रावण तो कल्प के किसी मन्वन्तर मे होते है। शेष मन्वन्तरो मे तो लङ्का दूसरो के ही अधिकार मे रहती है। अत पूर्व युग मे लङ्का निशिचर भटो के अधिकार मे थी। पर देवताओ ने रण मे सबको मार डाला। बचे सो पाताल मे प्रवेश कर गये। इसलिए सहारे कहते है। एक कल्प मे चौदह मन्वन्तर और प्रत्येक मन्वन्तर म ७२ चतुर्युगियाँ होती हैं। सतयुग, त्रेता, द्वापर और कलियुग को चतुर्युगी कहते है। कई चतुर्युगी तक रावण के राज्य करने का पता चलता है।

जिस समय रावण तपस्या करके घर लौटे और व्याह किया उस समय को कथा कहते है। उस समय वहाँ इन्द्र की आज्ञा से यक्ष लोग रहते थे। राक्षसो के मारे जाने पर लङ्का देवराज इन्द्र के अधिकार मे आगई। उन्होने अपनी ओर से कुबेर को दे रक्खी थी। कुबेरजी रावण के वैमात्र बडे भाई यक्षो के राजा है।

दसमुख कतहुँ खबरि असि पाई। सेन साजि गढ घेरेसि जाई॥
देखि विकट भट बडि कटकाई। जच्छ जीव लै गए पराई॥२॥

अर्थ रावण को कही से यह पता लग गया। सेना साजकर लङ्कागढ को

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



घेर लिया। बडी भारी सेना और विकट वीरो को देखकर यक्षलोग प्राण लेकर भाग गये।

व्याख्या सब राक्षसो ने मिलकर रावण को राजा माना। अब आश्रम मे रावण का काम नही चल सकता था। वर पा लिया। त्रैलोक्य सुन्दरी स्त्री मिली। राक्षसो का आधिपत्य मिला। अब निवास स्थान चाहिए। उसी की चिन्ता थी। किसी ने कह[1] दिया कि आप के योग्य निवास स्थान लङ्का है। पहिले वह राक्षसो की ही थी। बल पूर्वक उसे देवताओ ने ले लिया। अब वह यक्षपति के अधिकार मे है। राक्षसो की सेना सजाकर रावण ने लङ्का पर चढाई कर दी और दुर्ग किले को घेर लिया। यक्षो ने जो रावण की अपार सेना और उद्भट वीरो को देखा तो उनका साहस टूट गया। सख्या मे एक करोड होने पर भी वे राक्षसी सेना के सामने कुछ भी नही थे। राक्षसी सेना मे योद्धा भी ऐसे विकट थे जिनका सामना यक्षलोग कर नही सकते थे। अत प्राण लेकर भाग गये। धन सम्पत्ति वही छूट गई। बिना रक्तपात के ही ऐसा नगर रावण के हाथ लगा।

फिरि सब नगर दसानन देखा। गयउ सोच सुख भयउ बिसेखा ॥
सुदर सहज अगम अनुमानी। कीन्हि तहाँ रावन रजधानी ॥३॥

अर्थ रावण ने घूमकर सब नगर देखा। चिन्ता मिट गई और विशेष सुख हुआ। स्वभाव से ही सुन्दर और अगम्य अनुमान करके रावण ने उसे राजधानी बनाया।

व्याख्या रावण ने जानकारी तथा व्यवस्था के लिए घूमकर सारे नगर को अपनी आँखो से देखा। बडी चिन्ता थी कहाँ रहे ? सो जाती रही। और विशेष सुख हुआ कि यह नगर तीन लोक मे बेजोड है। निश्चय किया कि यही राजधानी बनाने योग्य स्थान है। सुन्दर इतना है और अगम्य है। खाई के स्थान मे समुद्र है। और पर्वत के ऊपर दुर्ग है। यहाँ शत्रु का बल चल नही सकता। ऐसा अनुमान रावण ने किया।

जेहि जस जोग बाँटि गृह दीन्हे। सुखी सकल रजनीचर कीन्हे ॥
एक बार कुबेर पर धावा। पुष्पक जान जीति लै आवा ॥४॥

अर्थ जो जिस योग्य था उसे वैसा घर बाँट विभाग मे दिया। सभी राक्षसो को सुखी किया। एक बार कुबेर पर धावा बोल दिया। और पुष्पक विमान जीतकर ले आया।

व्याख्या योग्यता के अनुसार घर दे देकर सबको सन्तुष्ट किया। घर भी हाथ आया। घर की सम्पत्ति भी हाथ लगी। इसलिए सब राक्षस सुखी हो गये।

---

१ सुमाली नामक असुर ने रावण से सब वृत्तान्त कहा। लङ्का पहिले उसके अधिकार मे थी। यह रावण का नाना था। देवताओ के भय से पाताल चला गया था।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रावण ससार के लिए भले ही बुरा हो पर राक्षसो का बडा भारी पालक था। सबको जीविका का विधान किया। अब केवल दिव्ययान की त्रुटि थी। समुद्र के बीच मे लङ्का थी। बाहर जाने आने के लिए यान की बडी आवश्यकता थी। जानता ही था कि बडे भाई साहिब के पास पुष्पक है। उन्ही पर चढाई कर दी। उन्हे सग्राम मे जीतकर पुष्पक विमान छीन लाया। वह विमान तप से अर्जित था। उसे बल से हरण कर लिया।

दो. कौतुक ही कैलास पुनि, लीन्हिसि जाइ उठाइ।
मनहुँ तौलि निज बाहु बल, चला बहुत सुख पाइ ॥१७९॥

अर्थ · फिर खेलवाड मे ही जाकर कैलास उठा लिया। मानो अपने बाहु के बल को तौलकर बडा सुख पाकर चला।

व्याख्या · कुबेरजी की पुरी अलका है। पुष्पक के लिए रावण ने उसी पर चढाई की थी। कुबेरजी से युद्ध करने मे कुछ आयास नही पडा। अलकापुरी के पास ही कैलास पर्वत है। उसे रास्ते चलते कौतुक मे ही उठा लिया। यथा पुनि नभ सर मम करनिकर करकमलन पर बास। सोभित भयउ मराल इव संभु सहित कैलास अपने बल को तौलने के लिए कैलास को बाट : बटखरा बनाया। बडा सुखी हुआ कि मेरे बाहुबल का तौल हो गया कैलास से भारी है। इसी पर साङ्ग सायुध सशक्ति साक्षात् शङ्कर भगवान् गणेश स्वामिकार्तिक नन्दिकेश्वर वीरभद्रादि-गणो के साथ विराजमान है। मैंने पर्वत के साथ ही साथ सबको उठा लिया। अब मेरे बराबर कोई नही है।

सुख संपति सुत सेन सहाई। जय प्रताप बल बुद्धि बडाई ॥
नित नूतन सब बाढत जाई। जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई ॥१॥

अर्थ १ सुख, २ सम्पत्ति, ३ बेटे, ४ सेना, ५ सहायक, १ जय, २ प्रताप, ३ बल, ४ बुद्धि और ५ महिमा। ये सब नित्य बढते जाते है। जैसे जितना लाभ होता जाता है उतना ही लोभ भी बढता जाता है।

व्याख्या १ अधर्मेणैधते पूर्वम् २ ततो भद्राणि पश्यति। ३ तत सपत्नान् जयति समूलश्च विनश्यति। १ पहिले अधर्म से वृद्धि होती है। २ तब कल्याण दिखाई पडता है। ३ फिर शत्रुओ को जीतता है। अन्त मे मूल के सहित नष्ट हो जाता है। रावण ने अधर्म पर पैर रक्खा है। पहिले घर मे ही छीन छोर आरम्भ किया। बडे भाई की लङ्का छीनी, पुष्पक विमान छीना। इष्टदेव का वासस्थान उखाडा। देखने मे बढोत्तरी होने लगी। अधर्मेणैधते का उदाहरण है। नित्य नया सुख, नित्य नया अर्थलाभ, नित्य नई कुटुम्बवृद्धि, नित्य नई मित्रप्राप्ति, नित्य नई जीत, नित्य नये प्रताप, नित्य नया सामर्थ्य, नित्य नया आविष्कार, नित्य नई प्रतिष्ठा बढने लगी। बढोत्तरी की उपमा देते है। जैसे लाभ के साथ साथ लोभ भी बढता जाता है। लाभ के साथ लोभ के बढने की उपमा देकर दोष का बढना सूचित करते है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

अति वल कुंभकरन अस भ्राता । जेहि कहुँ नहिं प्रति भट जग जाता ॥
करै पान सोवै षट मासा । जागत होइ तिहूँ पुर त्रासा ॥२॥

अर्थ : अति वली कुम्भकर्ण-सा भाई था। जिसका जोड संसार मे पैदा ही नही हुआ था। वह मद्यपान करके छ महीने सोता था। और उसके जागते ही तीनो लोक सत्रस्त हो उठते थे।

व्याख्या : पहिले ५ सहाय का वर्णन करते हैं। सच्चा सहाय भाई है। यथा : होहि कुठाहर वंधु सहाए। यहाँ 'अस' शब्द भाईपन के उत्कर्ष का बोधक है। भाई के अन्याय को जानकर उसको मना भी करता है। पर उसके न मानने पर भी उसी के लिए प्राण देता है। ऐसा भाई। सो महावल नही अतिवल, जिसका जोड ससार मे पैदा ही नही हुआ। स्वय ब्रह्मदेव अचम्भे मे आगये। यथा : तेहि विलोकि उर विस्मय भयेऊ। उसको स्वाभाविक वल था। रावण भी प्रतिभट खोजता था और उसे नही मिला। पर उसका वल तपस्या से अर्जित था। कुम्भकर्ण मद्यपान करके छ महीने सोता था। अर्थात् छ महीने वेसुध पडा रहता था। जिस दिन जागता था त्रैलोक्य त्रस्त हो जाता था कि आज किस खण्ड का सहार होगा। कोटि घट तो मदिरा चाहिए। चिखना के स्थान मे भैंसा चाहिए। यथा : रावन मागेउ कोटि घट मद अरु महिस अनेक। तव उसके वाद कोटि-कोटि कपि धरि-धरि खाई। ऐसा भयानक सहायक भाई था।

जौ दिन प्रति अहार कर सोई । विस्व वेगि सव चौपट होई ॥
समर धीर नहिं जाइ वखाना । तेहि सम अमित वीर वलवाना ॥३॥

अर्थ : यदि वह नित्य भोजन करता तो यह ससार शीघ्र ही नष्ट हो जाता। रणधीर इतना वडा था कि वखाना नही जाता और उसके ऐसे-ऐसे असख्यात वलवान् वीर थे।

व्याख्या : ऊपर एक दिन का आहार कहा गया। इसी भाँति यदि वह नित्य खाता तो सम्पूर्ण ससार को खा जाता। ब्रह्मदेव चिन्तित हो गये। कहने लगे : जौ यह खल नित करव अहारू। होइहि वुल उजार ससारू। इसीलिए सरस्वती की प्रेरणा से उसने छ महीने की नीद माँगी। साल मे दो वार भोजन करता था।

वडे वलवान् भी यदि कापुरुष हो तो उनका वल व्यर्थ पड जाता है। पर कुम्भकर्ण अति वल होने के साथ ही साथ वडा शूर था। न उसके वल का वर्णन हो सके न शूरता का वर्णन हो सके। ४ अव सेना का वर्णन करते हैं। उससे ईषत् न्यून वहुत से वीर थे : सम ईषत् न्यून : कुछ कम के अर्थ मे प्रयुक्त होता है। उनकी सख्या नही हो सकती है।

वारिद नाद जेठ सुत तासू । भट महुँ प्रथम लीक जग जासू ॥
जेहि न होइ रन सम्मुख कोई । सुरपुर नितहिं परावन होई ॥४॥

अर्थ : उसका वडा वेटा मेघनाद था। वीरो मे जिसकी पहिली गिनती थी।

ankurnagpal108@gmail.com



धर्म का तो उन्हे सस्कार भी नही था। अर्थात् जो अकेले ससार जीतने मे असमर्थ थे वे भी परपीडा मे कुशल थे। यहाँ तक 'अधर्मणैधते' कहा। अव ततो भद्राणि पश्यति कहते हैं। रावण राक्षसो के राजा हो गये। लङ्का ऐसा गढ मिल गया। असख्य राक्षसी प्रजा नगरी मे वस गई। अत राजसभा भी लगने लगी। विशेष घटना का उल्लेख करना है। अत उस सभा की चरचा करते हुए कहते हैं कि एक बार राजसभा मे दशमुख वैठे थे। दशमुख कहने का भाव यह था कि दशो दिशाओ को एक साथ देखने का सौभाग्य उन्ही को प्राप्त था। देखा कि सभा अपने परिवार से ही भरी पडी है।

सुत समूह जन परिजन नाती। गनै को पार निसाचर जाती॥
सेन विलोकि सहज अभिमानी। वोला वचन क्रोध मद सानी॥२॥

अर्थ बेटो के समूह, स्वजन, अनुचर और पौत्रो के समूह हैं। राक्षस जाति की कौन गणना कर सकता है? स्वभाव से ही वह अभिमानी था। सेना देखकर वह क्रोध और मद से सनी हुई वाणी वोला।

व्याख्या बेटो का समूह उसी भाँति कुटुम्बी, सेवक और पौत्र भी असख्य हैं। निशाचर जाति है। इनमें वृद्धि भी वडे वेग से होती है। जव लङ्का मे पहिले पहल आये थे तव राक्षसो की सेना साथ थी। उस समय पुत्रोत्पत्ति भी नही हुई थी। परन्तु आज पुत्र पौत्रो की ही गणना कठिन है। और सव के सव योद्धा हैं। अत उनकी एक वडी भारी सेना हो गई है। उस सेना को जव देखा तो फूले न समाये। अभिमानी तो स्वभाव से ही थे। कुटुम्ब की वृद्धि देखकर और भी अभिमान वढा। तव मद और क्रोध से भरी वाणी वोले। धन यौवन सौन्दर्य ते हर्ष युक्त जो क्षोभ होता है उसे मद कहते है।

सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे वैरी बिवुध वरूथा॥
ते सनमुख नहिं करहिं लराई। देखि सवल रिपु जाहिं पराई॥३॥

अर्थ . सव राक्षसो के समूह सुनते जाओ। देवताओ के समूह हमारे वैरी हैं। वे सामने डटकर नही लडते। शत्रु को वलवान् देखकर भाग जाते हैं।

व्याख्या देख लिया कि अपना परिवार ही लङ्का की रक्षा करने मे समर्थ है। अत सम्पूर्ण सेना को आज्ञा देता है। पहिले शत्रु को अभिहित करता है। मर्त्यलोक मे नर हैं। उनकी गिनती ही क्या है। पाताल के असुर अपने ही वर्ग के हैं। ये देवता मेरे शत्रु हैं। मेरा बुरा चाहते हैं। पीठ पीछे बुराई करते है। लडाई मे सामना नही करते। हमे वलवान् देखकर भाग जाते है। यथा जच्छजीव लै गए पराई। अव उन्हे कहाँ खोजें? जल्दी हाथ नही आते। और शत्रु का शेष रहना बुरा है। इन्हे नि शेष करना चाहिए।

तिन्ह कर मरन एक विधि होई। कहौं बुझाइ सुनहु अव सोई॥
द्विज भोजन मख होम सराधा। सव कै जाइ करहु तुम वाधा॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ उनके मर जाने की एक विधि है। समझाकर कहता हूँ। अब इसे सुनो। ब्रह्मभोज, यज्ञ, होम और श्राद्ध इन कर्मों मे तुमलोग जाकर बाधा डालो।

व्याख्या मर्त्यलोक और देवलोक मे एक व्यापार चलता है। पूर्व काल मे यज्ञ के सहित प्रजा की सृष्टि करके प्रजापति ने कहा कि इसी यज्ञ से तुमलोग बढोगे। यह तुम्हारे लिए कामधेनु होगा। यज्ञ से तृप्त होकर देवता तुम लोगो को तृप्त करेंगे। इस भाँति एक दूसरे को तृप्त करते हुए परम कल्याण को प्राप्त होंगे। तब से यह व्यापार ब्रह्मभोज, यज्ञ, होम और श्राद्ध के रूप मे चल पडा है। इन्ही के द्वारा लोग देवताओ को तृप्त करते हैं। आहुति मे दिये हुए अन्न से अमृत बनता है। वही आहार है। उसी से देवता पुष्ट होते हैं और मर्त्यलोक का कल्याण करते हैं। इसलिए तुमलोग इस व्यापार मे बाधा डालकर इसे बन्द कर दो।

दो छुधा छीन बलहीन सुर, सहजेहि मिलिहहिं आइ।
तब मारिहौं कि छाड़िहौं, भली भाँति अपनाइ ॥१८१॥

अर्थ भूख से क्षीण और बलहीन होकर देवता आप से आप आकर मिलेंगे। तब उन्हे भलीभाँति अपने वश मे करके चाहे मार डालूँगा चाहे छोड दूँगा।

व्याख्या ये शत्रु यज्ञभाग पाकर ही बलवान् होते है। यज्ञ न होने पायेगा तो इन्हे भोजन न मिलगा। भूख से मरने लगेंगे। दुर्बल हो जायँगे। भाग भी न सकेंगे। आप से आप शरण मे आवेंगे। जब भलीभाँति वश में आ जायगे तब अपनी मर्जी की बात रहेगी। चाहे उन्हे मारें चाहे छोड दे। मर्त्यलोक म ब्राह्मण-भोजन, यज्ञ, श्राद्ध और होम बन्द कराने मे तुमलोगो को बडी सरलता है। यज्ञ म अन्न को जलाकर ये देश के शत्रु देश का अहित करते हैं। केवल इतने ही मौखिक आन्दोलन से यज्ञभागादि बन्द हो जायँगे। न मानने पर बलप्रयोग भी मनुष्यो मे अनायास ही किया जा सकता है।

मेघनाद कहुँ पुनि हँकरावा। दीन्ही सिख बलु बयरु बढावा॥
जे सुर समर धीर बलवाना। जिन्ह के लरिबे कर अभिमाना ॥१॥

अर्थ फिर मेघनाद को बुलवाया। उसे शिक्षा दी, सेना दी, शत्रुता दी और बढावा दिया। कहा कि जो देवता समर मे धीर बलवान् है और जिन्हें लडने का अभिमान है।

व्याख्या सभा को आज्ञा देने के बाद जेठे बेटे मेघनाद को बुलवाया। पहिले रसद बन्द किया। अब धावे का प्रबन्ध कर रहा है। कुम्भकर्ण सो रहे हैं। विभीषण साधु ही ठहरे। मेघनाद का भट मह प्रथम लोक है। अत उसे बुलवाया और शिक्षा दी। यथा मारेसि जनि सुत बाँधेसु ताही। बाँध लेने से ब्रह्मदेव छुडाने आवेगे। वरदान मिलेगा। बन्धन से छूटने पर आज्ञाकारी होकर रहेगा। इत्यादि। सेना साथ कर दी। वैर दिया कि ये देवता हमारे जाति के वैरी है। इन्हे यदि अवसर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मिले तो हम लोगों के वध मे तनिक भी आगापीछा न करेंगे। बढावा दिया कि देवताओ मे है कौन जो तुम्हारा सामना कर सके। इत्यादि।

तत्पश्चात् मन्त्र बतलाया कि सबके पीछे पडने की आवश्यकता नही है। प्रधान मल्लनिर्वहण न्याय से जो प्रधान मल्ल को पछाडता है वही सब मल्लो का सरदार हो जाता है। देवताओ मे जो वीररस के अधिष्ठाता है उन्ही के जीतने से सब देवता जीते जावेंगे।

तिन्हहि जीति रन आनेसु बाँधी। उठि सुत पितु अनुसासन काँधी ॥
एहि बिधि सबही आग्या दीन्ही। आपुन चलेउ गदा कर लीन्ही ॥२॥

अर्थ उनको रण मे जीतकर बाँध लाओ। बेटे ने उठकर पिता की आज्ञा को कन्धे पर लिया सँभाला। इस प्रकार से सबको आज्ञा देकर स्वयं गदा लेकर चला।

व्याख्या मेघनाद सिरे का वीर था। उसने उठकर पिता की आज्ञा को सँभाला। भाव यह कि वीररस के अधिष्ठाता इन्द्र को ही बाँध लाया। लङ्का के कारागार मे देवराज इन्द्र बन्द हुए। पहरे पर विभीषण थे। इन्द्र ने विभीषण से प्रार्थना की। विभीषण ने कहा कि जाने तो मै नही दूँगा। पर उपाय बतलाता हूँ। बन्दी देवी की स्तुति करो। इन्द्र ने वही किया। और ब्रह्मदेव की सिपारिश से विनिर्मुक्त हुए।

यह लङ्कापति की आज्ञा विधि है। सबको काम मे लगा दिया। चारो ओर एक साथ उपद्रव उठ खडा हुआ। आप स्वय रावण नाम वीर बरिवडा है। रणकण्डू मिटाने के लिए गदा लेकर चला। अस्त्रबल से नही भुजबल से सबको वश्य करना चाहता है।

चलत दसानन डोलत अवनी। गर्जत गर्भ स्रवहि सुर रवनी ॥
रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन्ह तकेउ मेरुगिरि खोहा ॥३॥

अर्थ दशानन के चलते समय भूडोल आ जाता था। गर्जन करने पर देवताओ की स्त्रियो के गर्भ गिरते थे। रावण का क्रोध सहित आना सुनकर देवताओ ने मेरुगिरि के कन्दराओ की राह ली।

व्याख्या रावण के पादप्रहार से पृथ्वी हिलने लगती थी। भार के सहने मे असमर्थ थी। यथा सेष कमठ सहि सकै न भारा। पृथ्वी का यह हाल है। अब आकाश की दशा सुनिये। उसकी गर्जना सुनकर देवाङ्गनाओ के गर्भ गिरते है। इतना भयङ्कर गर्जन है और इतना बडा भय देवाङ्गनाओ को है कि रावण के गर्जन से उनका गर्भ गिरता था। देवताओ की यह स्थिति थी कि उसका क्रोधपूर्वक आगमन सुनते ही अपने अपने लोको को छोडकर प्राणभय से मेरु पर्वत के खोहो म जाकर छिपे। क्रुद्ध है। अत अधीनता स्वीकार करने पर भी रक्षा नही है। मेरु सन्निकट है, अति विशाल है। उसम दुर्गम खोह है। अत देवताओ ने उसी का रास्ता लिया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दिगपालन्ह के लोक सुहाए। सूने सकल दसानन पाए ॥
पुनि पुनि सिंहनाद करि भारी। देइ देवतन्ह गारि पचारी ॥४॥

अर्थ दिग्पालों के सुन्दर सुन्दर लोकों को दशानन ने सूना पाया। बार बार सिंहनाद करके देवताओं को ललकारकर गालियाँ देने लगा।

व्याख्या तब तक रावण वहाँ पहुँच गया। पर देवता लोग हट गये थे। इतने सुन्दर लोक हैं पर सूने पडे हुए हैं। रावण जानता था कि ये सब भय से यही छिपे बैठे है। छिपे हुए भी शत्रु का गर्जन न सहकर प्रकट हो जाते हैं। अत सिंहनाद करता है। फिर भी नही प्रकट होते तो कदाचित् गाली न सहकर सामने आ जाँय। इसलिए ललकारकर गाली देता है पर यहाँ कोई था ही नही। ससार देवताओ का आवाहन करता है। रावण उन्हे भगाता है। ससार उनकी स्तुति करता है। रावण गाली देता है। इसलिए कहा गया है कि राम की भाँति वरतना चाहिए रावण की भाँति नही।

रन मदमत्त फिरइ जग धावा। प्रति भट खोजत कतहु न पावा ॥
रबि ससि पवन बरुन धनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी ॥५॥

अर्थ रण के मद मे मत्त होकर ससार में दौडता फिरता है। अपना जोड खोजता है। पर कही उसको सामना करनेवाला मिलता ही नही। सूर्य, चन्द्र, वायु, वरुण, कुबेर, अग्नि, काल और यम।

व्याख्या जैसे कोई मद से मत्त हो जाता है वैसे ही रावण रणमद से मत्त हो गया है। उसका रणकण्डू शान्त करनेवाला कोई मिलता नही है। उसी के लिए ससार मे फिरता है। काल के ध्वजभूत सूर्य, चन्द्र, जगत् प्राण वायु, पाशधारी वरुण, धनाध्यक्ष कुबेर, सर्वदाहक अग्नि, सबके सहार करनेवाले काल और सयम करनेवाले यम।

किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहि लागा ॥
ब्रह्म सृष्टि जह लगि तनुधारी। दसमुख बसबर्त्ती नरनारी ॥६॥
आयसु करहि सकल भय भीता। नवहिं आइ नित चरन बिनीता ॥७॥

अर्थ किन्नर, सिद्ध, मनुज, सुर, नाग, हठ करके वह सबके पीछे पडा। ब्रह्मा की सृष्टि मे जितने जीवधारी है क्या स्त्री क्या पुरुष सब दशमुख के वशवर्ती थे। सब डरकर उसकी आज्ञा मानते थे और नित्य विनीत होकर उसके चरणो मे सिर नवाते थे।

व्याख्या तत सपत्नान् जयति का उदाहरण दिखलाते है कि सभी देवता उससे हार गये। परन्तु वह विश्वद्रोही था केवल जीत से सन्तुष्ट नही हुआ। किन्नर, सिद्ध देवताओ की जाति विशेष और पाताल लोक के नागो के पीछे पडा। सभी लोग उससे पीछा छुडाना चाहते थे। पर वह हठपूर्वक उनका पीछा नही छोडता था।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


ब्रह्मा की सृष्टि में जितने शरीरधारी थे ब्रह्मा से स्तम्वपर्यन्त सो सब रावण के वश में थे। शरीरधारी कहने से भाव यह कि अनङ्ग देवता • कामदेव उसके वश में नही थे। उनके वश में तो वह स्वयं पडा रहता था। रावण की आज्ञा सभी डरकर मानते हैं प्रेम से नही। अत्याचारियो का आज्ञा-पालन सदा भय से ही होता है। देवता सब नित्य लङ्का में प्रणाम करने आते हैं। यथा . करजोरे सुर दिसिप विनीता। भृकुटि विलोकहिं सकल सभीता।

दो. भुजवल विस्व वस्य करि, राखेसि कोउ न सुतंत्र।
मंडलीक मनि रावन, राज करइ निज मंत्र ॥१८२॥ क

दो. देव जच्छ गंधर्व नर, किंनर नाग कुमारि।
जीति वरी निज वाहु बल, वहु सुंदर वर नारि ॥१८२॥

अर्थ : भुजा के वल से विश्व को वश करके उसने किसी को स्वतन्त्र नही छोडा। मण्डलेश्वरो का शिरोमणि रावण अपने मन्त्र से राज्य करता था। देवता, यक्ष, गन्धर्व, नर, किन्नर और नागकुमारियो को तथा अनेक सुन्दर स्त्रियों को अपने बाहुवल मे जीतकर वरण कर लिया।

व्याख्या : आयुहि चला गदा कर लीन्हे से उपक्रम करके भुजवल विस्व वस्य करि से उपसंहार करते है। ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनु धारी। दसमुख वसवर्त्ती नर नारी। इस पुरइन का यह दोहा कमल है। यद्यपि वालि, सहस्रार्जुन आदि कई एक वीरो के विषय मे सुना गया है कि वे रावण के वश्य नहीं हुए। फिर भी 'भुजवल विस्व वस्य करि' कहा गया। क्योंकि सबके वश्य होने पर दो चार का वश न होना कुछ महत्त्व नही रखता। जव पात्र मे के सब चावल पक गये तो पात्र के मुख पर लगे हुए दो चार चावलो के न पकने पर भी पाक का पूरा होना कहा जाता है। उम दो चार चावल का न पकना कोई महत्त्व नही रखता। महस्रार्जुन, वालि या बलि का रावण के मार्ग मे वाधक होने की कोई कथा नही पाई जाती। सार्वभौम राजा की भी किसी अवसर में पराजय हो जाती है। परन्तु यदि उसके शासन में उस पराजय से त्रुटि न आई हो तो उस पराजय की कोई गणना नही है। दो तीन स्थलो पर रावण का वल से पराजय सुना गया है। पर रावण में एक विशेपता थी। रावण मे केवल शारीर वल ही न था। उसमें तपवल, योगवल, अस्त्रबल, शस्त्रवल, सैन्यवल, दुर्गवल, इष्टवल आदि अनेक बल थे। जिनका समुच्चय और कही पाया नही जाता। सहस्रार्जुन का परशुरामजी द्वारा वध हो चुका था। वालि से अग्निसाक्षिक मैत्री हो चुकी थी। अतः यह कहना सर्वथा उपयुक्त है कि रावण ने विश्व को वश्य कर लिया। परन्तु यह शङ्का समाधान उन रावणो के लिए है जो जय विजय जलन्धर या रुद्रगण के अवतार थे। जिस रावण का प्रकरण चल रहा है वह भानुप्रताप का अवतार था। उसके पराभव का कोई उल्लेख नही है। इसलिए सब मण्डलेश्वर उसके अधीन थे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दिगपालन्ह के लोक सुहाए। सूने सकल दसानन पाए ॥
पुनि पुनि सिंहनाद करि भारी। देइ देवतन्ह गारि पचारी ॥४॥

अर्थ : दिग्पालो के सुन्दर सुन्दर लोको को दशानन ने सूना पाया। बार बार सिंहनाद करके देवताओ को ललकारकर गालियाँ देने लगा।

व्याख्या तब तक रावण वहाँ पहुँच गया। पर देवता लोग हट गये थे। इतने सुन्दर लोक है पर सूने पडे हुए है। रावण जानता था कि ये सब भय से वही छिपे बैठे है। छिपे हुए भी शत्रु का गर्जन न सहकर प्रकट हो जाते है। अत सिंहनाद करता है। फिर भी नही प्रकट होते तो कदाचित् गाली न सहकर सामने आ जाँय। इसलिए ललकारकर गाली देता है पर यहाँ कोई था ही नही। ससार देवताओ का आवाहन करता है। रावण उन्हे भगाता है। ससार उनकी स्तुति करता है। रावण गाली देता है। इसलिए कहा गया है कि राम की भाँति बरतना चाहिए रावण की भाँति नही।

रन मदमत्त फिरइ जग धावा। प्रति भट खोजत कतहुँ न पावा ॥
रबि ससि पवन बरुन धनधारी। अगिनि काल जम सब अधिकारी ॥५॥

अर्थ रण के मद मे मत्त होकर ससार मे दौडता फिरता है। अपना जोड़ खोजता है। पर कही उसको सामना करनेवाला मिलता ही नही। सूर्य, चन्द्र, वायु, वरुण, कुबेर, अग्नि, काल और यम।

व्याख्या . जैसे कोई मद से मत्त हो जाता है वैसे ही रावण रणमद से मत्त हो गया है। उसका रणकण्डू शान्त करनेवाला कोई मिलता नही है। उसी के लिए ससार मे फिरता है। काल के ध्वजभूत सूर्य, चन्द्र, जगत् प्राण वायु, पाशधारी वरुण, धनाध्यक्ष कुबेर, सर्वदाहक अग्नि, सबके सहार करनेवाले काल और सयम करनेवाले यम।

किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहि लागा ॥
ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसवर्त्ती नरनारी ॥६॥
आयसु करहि सकल भय भीता। नवहि आइ नित चरन बिनीता ॥७॥

अर्थ किन्नर, सिद्ध, मनुज, सुर, नाग, हठ करके वह सबके पीछे पडा। ब्रह्मा की सृष्टि मे जितने जीवधारी है क्या स्त्री क्या पुरुष सब दशमुख के वशवर्ती थे। सब डरकर उसकी आज्ञा मानते थे और नित्य विनीत होकर उसके चरणो मे सिर नवाते थे।

व्याख्या तत्त सपत्नान् जयति का उदाहरण दिखलाते है कि सभी देवता उससे हार गये। परन्तु वह विश्वद्रोही था केवल जीत से सन्तुष्ट नही हुआ। किन्नर, सिद्ध देवताओ की जाति विशेष और पाताल लोक के नागो के पीछे पडा। सभी लोग उससे पीछा छुडाना चाहते थे। पर वह हठपूर्वक उनका पीछा नही छोड़ता था।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


ब्रह्मा की सृष्टि मे जितने शरीरधारी थे ब्रह्मा से स्तम्बपर्यन्त सो सब रावण के वश मे थे। शरीरधारी कहने से भाव यह कि अनङ्ग देवता कामदेव उसके वश मे नही थे। उनके वश मे तो वह स्वय पडा रहता था। रावण की आज्ञा सभी डरकर मानते है प्रेम से नही। अत्याचारियो का आज्ञा-पालन सदा भय से ही होता है। देवता सब नित्य लङ्का मे प्रणाम करने आते हैं। यथा करजोरे सुर दिसिप विनीता। भृकुटि विलोकहिं सकल सभीता।

दो भुजबल बिस्व बस्य करि, राखेसि कोउ न सुतन्त्र।
मडलीक मनि रावन, राज करइ निज मन्त्र ॥१८२॥ क

दो देव जच्छ गधर्व नर, किंनर नाग कुमारि।
जीति बरी निज बाहु बल, बहु सुदर बर नारि ॥१८२॥

अर्थ भुजा के बल से विश्व को वश करके उसने किसी को स्वतन्त्र नही छोडा। मण्डलेश्वरो का शिरोमणि रावण अपने मन्त्र से राज्य करता था। देवता, यक्ष, गन्धर्व, नर, किन्नर और नागकुमारियो को तथा अनेक सुन्दर स्त्रियो को अपने बाहुबल से जीतकर वरण कर लिया।

व्याख्या आयुहि चला गदा कर लीन्हे से उपक्रम करके भुजबल बिस्व बस्य करि से उपसहार करते है। ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनु धारी। दसमुख बसवर्ती नर नारी। इस पुरइन का यह दोहा कमल है। यद्यपि बालि, सहस्रार्जुन आदि कई एक वीरो के विषय मे सुना गया है कि वे रावण के वश्य नही हुए। फिर भी 'भुजबल बिस्व बस्य करि' कहा गया। क्योकि सबके वश्य होने पर दो चार का वश न होना कुछ महत्त्व नही रखता। जब पात्र मे के सब चावल पक गये तो पात्र के मुख पर लगे हुए दो चार चावलो के न पकने पर भी पाक का पूरा होना कहा जाता है। उस दो चार चावल का न पकना कोई महत्त्व नही रखता। सहस्रार्जुन, बालि या बलि का रावण के मार्ग म बाधक होने की कोई कथा नही पाई जाती। सार्वभौम राजा की भी किसी अवसर मे पराजय हो जाती है। परन्तु यदि उसके शासन म उस पराजय से त्रुटि न आई हो तो उस पराजय की कोई गणना नही है। दो तीन स्थलो पर रावण का बल से पराजय सुना गया है। पर रावण म एक विशेषता थी। रावण म केवल शारीर बल ही न था। उसम तपबल, योगबल, अस्त्रबल, शस्त्रबल, सैन्यबल, दुर्गबल, इष्टबल आदि अनेक बल थे। जिनका समुच्चय और कही पाया नही जाता। सहस्रार्जुन का परशुरामजी द्वारा वध हो चुका था। बालि से अग्निसाक्षिक मैत्री हो चुकी थी। अत यह कहना सर्वथा उपयुक्त है कि रावण ने विश्व को वश्य कर लिया। परन्तु यह शङ्का समाधान उन रावणो के लिए है जो जय विजय जलन्धर या रुद्रगण के अवतार थे। जिस रावण का प्रकरण चल रहा है वह भानुप्रताप का अवतार था। उसके पराभव का कोई उल्लेख नही है। इसलिए सब मण्डलेश्वर उसके अधीन थे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


राजा को मन्त्री चाहिए इसलिए उसने मन्त्री रख लिये थे। नही तो रावण ने मन्त्रियो की सम्मति की कभी परवाह न की।

रावण की कामुकता कहते है कि स्त्री के वरण मे कोई विचार नही है। केवल उनकी सुन्दरता ब्याह के लिए यथेष्ट गुण समझा गया था। भुजवल से जीत कर वरण करने से राक्षस ब्याह कहा।

जो रावण भानुप्रताप का अवतार था उसका पराजय कही नही हुआ। अत उसके वध के लिए साक्षात् ब्रह्म का रामावतार हुआ। भानुप्रताप ने भी भुजवल से विश्व वश्य किया था। पर उसने दण्ड लेकर छोड दिया था। समय पाकर वे ही भानुप्रताप पर चढ आये और उसका नाश किया। अत रावणावतार मे उसने किसी को न छोडा। सबको अपने वश मे रक्खा। यथा दानव देव दयावने दीन दुखी नित दूरहि ते सिर नावैं।

इद्रजीत सन जो कछु कहेऊ। सो सब जनु पहिलेहि करि रहेऊ॥
प्रथमहि जिन कहुँ आयसु दीन्हा। तिन्हकर चरित सुनहु जो कीन्हा॥१॥

अर्थ इद्रजीत से उसने जो कहा था उसे उसने मानो पहिले ही कर रक्खा था। अब जिनको पहिले ही आज्ञा दी थी उनके किये हुए इतिवृत्त को सुनो।

व्याख्या इन्द्रजीत नाम देने से ही मेघनाद का इन्द्र को जीतना द्योतित किया। इसके पहिले मेघनाद, वारिदनाद नाम का ही प्रयोग किया था। मेघनाद से रावण ने कहा था जे सुर समर धीर बलवाना। जिनके लरिबे कर अभिमाना। तिन्हहि जीति रन आनेसु बाँधी। सो मेघनाद ने अति शीघ्र कर दिखाया। स्वय इन्द्र को बाध लाया।

रावण ने तीन विधि से कार्यारम्भ किया। देवताओ को रसद न मिलने पावे। इसलिए सेना को मृत्युलोक मे भेजा। इन्द्रादि से युद्ध करने के लिए मेघनाद को भेजा। अन्य देवताओ की सहायता इन्द्र को न मिलने पावे। इसलिए उनके लोको पर स्वय रावण ने आक्रमण किया। सो मृत्युलोक म भेजे हुए निशाचरो की करणी कहते है

देखत भीम रूप सब पापी। निसिचर निकर देव परितापी॥
करहि उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहि करि माया॥२॥

अर्थ देवताओ को दु ख देनेवाले पापी राक्षस देखने मे बडे भयङ्कर रूप थे। असुरो के समूह ने उपद्रव मचा दिया। माया से उन सबो ने अनेक रूप धारण किया।

व्याख्या 'देखत भीम रूप' से रूप भयानक कहा। 'पापीदेव परितापी' से हृदय भयानक कहा। और 'करहिं उपद्रव' से करणी भयानक कही। आसुरी सम्पत्ति का ज्वलन्त उदाहरण है। देवताओ की मरण-विधि मे यत्नशील हैं। इससे देवपरितापी कहा। आसुरी सेना बडी भारी उतर आई थी। पर उसने एक

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


ओर से सबके सहार मे हाथ नही लगाया। वे सब सम्पूर्ण देश मे फैल गये। कामरूप तो थे ही। उन सबो ने अनेक रूप धारण किये। कोई पण्डितजी बन गये। कोई महात्माजी बन गये। कोई गोसाईंजी बन गये। सुधारक बने, कोई जनता के अगुआ बन गये। कोई देश हितैषी बने। कोई समाज हितैषी बने। अपने रूप म कोई न रहे। सब साधु रूप में हो गये और उपद्रव आरम्भ किया।

जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला ॥
जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आग लगावहिं ॥३॥

अर्थ जिस विधि से धर्म की जड उखड जाय। वे ही वेद विरुद्ध बाते करने लगे। जिस-जिस देश मे गौ ब्राह्मण को पाते थे उस नगर गाँव और पुर को फूँक देते थे।

व्याख्या वेद ही धर्म का मूल है। उसके उखाडने की विधि वे जानते थे। पण्डितजी बनकर वे वेद का व्याख्यान करते थे। बतलाते थे कि वेद मनुष्यो का बनाया हुआ है। अब देश काल वैसा नही रह गया। नये वेद की आवश्यकता है। वेद को खीचखाँचकर मरोडकर उसका अर्थ ही दूसरा करते थे। अर्थ करने की पद्धति ही बदल देते थे। कोई महात्माजी बनकर अपने माहात्म्य से लोगो को प्रभावित करके वेदमार्ग से च्युत करते थे। कोई गोसाई बने हुए शिष्यो को अधर्म के रास्ते पर लगाते थे। कोई सुधारक बनकर सम्प्रदाय और परम्परा के मिटा देने मे ही कल्याण का मार्ग दिखलाते थे। कोई अगुवा बनकर जनता को हरा बाग दिखाते हुए उसे विपत्ति के सागर मे डुबाते थे। कोई देशहितैषी बनकर देश के देश को ईश्वर से विमुख करने में लगे थे। कोई समाजहितैषी बनकर एक जाति का दूसरे से वैर कराते थे। इस भाँति ससार मे धूर्त्तता का राज्य हो गया। साधारणधर्म, वर्णधर्म और आश्रमधर्म, सतीधर्म, श्राद्ध, तर्पण, पूजन, भजन, यज्ञयागादि सभी धर्मों के प्रतिकूल आचरण स्वय करते और लोगो से कराते थे।

जब जनता अधिक काबू मे हो गई तब स्पष्ट अत्याचार करने लगे। यज्ञ मे प्रधान साधन दो है। १ गौ और २ ब्राह्मण। उन दोनो से ससार का अकल्याण पहिले बतलाते थे। अब यह नियम कर दिया कि जिस पुर, ग्राम या नगर मे गौ या ब्राह्मण पाये जाँय उसे एकदम फूँक दो। गौ ब्राह्मण के रहते धर्म कर्म बन्द नही हो सकता। अत इनको आश्रय देना अपराध माना गया। क्यो गौ ब्राह्मण को आश्रय दिया? इस अपराध से पूरी बस्ती फूँक दी जाती थी। जिसमे यज्ञ-यागादि का कोई नाम लेनेवाला न रहे। और देवताओ को कुछ भोजन कही से मिलने न पावे।

सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव बिप्र गुरु मान न कोई ॥
नहिं हरि भगति जग्य तप ग्याना। सपनेहु सुनिअ न बेद पुराना ॥४॥

अर्थ कही शुभ आचरण नही हो पाता था। देवता गुरु और ब्राह्मण को

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कोई मानता न था। न कहीं हरिभक्ति, यज्ञ, तप और ज्ञान का पता था और वेद पुराण तो कोई सपने में भी नहीं सुनता था।

व्याख्या : ब्राह्मणों के दर्शन न करने से लोग पतित हो गये। शुभाचरण बन्द हो गया। पूज्य-पूजा व्यतिक्रम हो गया। देवता ब्राह्मण और गुरु की पूजा बन्द हो गई। उनकी पूजा आरम्भ हुई जो भवबन्धन को दृढ़ करनेवाले हैं। हरि-भक्ति, यज्ञ, तप और ज्ञान असभ्योचित कार्य माना जाने लगा। सभ्य वही माना जाता था जो भक्ति, यज्ञ, तप आदि को अन्धविश्वास माने। अतः ज्ञानकाण्ड, उपासना-काण्ड और कर्मकाण्ड तीनों का लोप हो गया। वेद पुराण तो इन्हीं तीनों काण्डों से ओत प्रोत हैं। अतः इनकी चरचा संसार से उठ गई।

छं. जप[1] जोग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनै दससीसा।
आपुन उठि धावै रहै न पावै धरि सब घालै खीसा॥
अस भ्रष्ट अचारा भा संसारा धर्म सुनिअ नहिं काना।
तेहि बहु बिधि त्रासै देस निकासै जो कह बेद पुराना॥

दो. बरनि न जाइ अनीति, घोर निसाचर जो करहिं।
हिंसा पर अति प्रीति, तिन्ह के पापहि कवनि मिति॥१८३॥

अर्थ : जप, योग, विराग, तप और यज्ञभाग को यदि रावण कान से सुन पाता था, तो स्वयं दौड़ पड़ता था। इन सबको रहने नहीं देता था। सबको नष्ट-भ्रष्ट कर डालता था। संसार में ऐसा भ्रष्टाचार फैला कि धर्म तो कान से सुनाई नहीं पड़ता था। जो वेद पुराण कहता था उसे बहुत विधि से भय देता था। और उसका देश निकाला करता था।

जो अनीति राक्षस लोग करते थे उसका वर्णन नहीं हो सकता। जिनको हिंसा पर अत्यन्त प्रीति है। उनके पापों की सीमा क्या है?

व्याख्या : इमली इमली कहने से मुँह मीठा नहीं होता। मर्चा मर्चा कहने से तीता नहीं होता। अतः जप करना व्यर्थ समय व्यतीत करना समझा गया। गाँजे की दम लगाकर बेहोश होना और समाधि लगाना एक बात समझी गई। तप करके आँतों को सुखाना, व्यर्थ अपने को दुर्बल बनाना माना गया। विराग की गिनती नालायकी में हुई। यज्ञ खाद्यान्नदाह से सम्पन्न होता है। अतः अपराध माना गया। महाराज रावण की आज्ञा थी कि ये सब दुष्कर्म हैं। ये मेरे राज्य में न होने पावें। महाराज को इन सब बातों से बड़ी चिढ़ थी। जप, योग, विराग और मख देश छोड़कर भाग गये। यथा : भागेउ बिबेक सहाय सहित सो सुभट संजुग महि मुरे। अथवा मखभागा का अर्थ यज्ञभाग कर दिया जाय। इन्हें रावण नहीं रहने देता था। अर्थात् इनका प्रचार उसे असह्य था। इन्हें देश से उठा दिया। देश का

---

१ यह चौपैया छन्द है। लक्षण के लिए १८५ वाँ दोहा देखिये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


देश स्वधा से विहीन हो गया। मुख से भी कोई मन्त्रोच्चारण नहीं करने पाता था। सब यथेच्छाचारी और विषय मे लिप्त हो गये थे। केवल उडती खबर यदि रावण को लग जाय कि कही यज्ञादि होता है तो स्वय दौड पडता था कि कही जाते जाते पूर्णाहुति न हो जाय या जिसको इस काम पर भेजें वह आलस्य न कर जायँ नही तो कुछ न कुछ देवताओ को भोजन मिल ही जायगा। इसलिए ऐसी मुस्तैदी बनी रहती थी कि उसे नष्ट करके ही मानता था। धर्म करना तो किसी से साध्य था ही नही। धर्म की चरचा तक कोई नही कर पाता था। और यदि किसी ने वेद पुराण की चरचा की तो उसको खूब डरा धमकाकर देशनिकाला का दण्ड दिया जाता था। इसलिए खूब डरा धमका देते थे कि जिसमे वह जिस देश मे जाय वहाँ कही वेद पुराण की चरचा न करे।

रावण केवल निशाचरी सेना भेजकर ही सन्तुष्ट नही थे। स्वय ऐसी मुस्तैदी दिखलाते थे जिससे सब सावधानी से काम करे। अत कवि कहते है कि घोर निशाचर जो अनीति करते थे उनका वर्णन नही हो सकता। क्योकि उस अनीति के सोचने मे भी मानव बुद्धि असमर्थ है। मन वाणी और शरीर से सब भूतो मे सर्वदा क्लेश उत्पन्न करना हिंसा है। यथा हिंसा नाम मनोवाक्कायकर्मभिस्सर्वभूतेषु सर्वदा क्लेशजननम्। शा उ। ऐसी हिंसा पर जिसकी प्रीति है। जो दूसरे को दुख देने मे ही आनान्द मानते हैं। उनके पाप का क्या ठिकाना। रावण की आज्ञा से भी अधिक अन्याय की आवश्यकता पडे तो उसे ये लोग बडी प्रीति से सम्पादन करते थे। भाव यह कि यहाँ तक धर्म का पतन होता है। अत धर्मात्मा धर्म का ह्रास देखकर अधीर न हो। धर्म का नाश हो नही सकता। उसके सभालने के लिए भगवान् को आना पडता है।

बाढे खल बहु चोर जुआरा। जे लपट परधन परदारा॥
मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहि सेवा॥१॥

अर्थ खल, चोर और जुआडियो की अभिवृद्धि हुई। जो पराई स्त्री और पराए धन के चाहनेवाले थे, माता पिता और देवता को नही मानते थे, साधुओ से सेवा कराते थे।

व्याख्या निष्कारण दूसरे का अपकार करनेवाले खल है। उन्ही के भेद का निरूपण करते है। चोरी और जूआ का साथ है। चोर ही पक्के जुआडी होते है। दूसरे के धन से उन्हे जूआ खेलना ठहरा। दूसरे के धन और स्त्री के लोभी घोर गति को प्राप्त होते हैं। यथा जे ताकहिं परधन परदारा। पावौं मैं तिनके गति घोरा। ऐसे लोगो की बढोत्तरी हुइ। चोरी और जुआ भी सभी काल म होता आया है। परन्तु कुराज मे इनका प्रचार अधिक होता है।

वेद की आज्ञा है मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव। माताओ को देवता मानो, पिता को देवता मानो, आचार्य को देवता मानो। सो देवताओ को ही वे नही मानते। मातापिता को क्या देवता मानेंगे? लोग अपने श्रेय के

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लिए साधुसेवा करते हैं। यथा सेवत साधु द्वैत भ्रम भागे खल लोग साधुओं से अपनी सेवा कराते हैं। तात्पर्य यह कि रावण के राजा होने से प्रजा भी असुर हो गई।

जिन्हके यह आचरन भवानी। ते जानहु निसिचर सब प्रानी॥
अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी॥२॥

अर्थ जिनका ऐसा आचरण हो हे भवानी! उन सब प्राणियो को राक्षस जानो। अत्यन्त धर्म की ग्लानि देखकर परम सभीत हो पृथ्वी विकल हो उठी।

व्याख्या देवासुर विभाग आचरण से लखाई पडता है। खल, चोर, जुआडी, परधन परदार के लोलुप, माता पिता और देवता के न माननेवाले, साधुओं से सेवा करानेवाले आसुरसर्ग के जीव हैं। इनके बढने से ससार की स्थिति डाँवाडोल हो जाती है। यथा प्रभवत्युग्रकर्माणो क्षयाय जगतोऽहिता। उग्रकर्माओ की बढोत्तरी होती है। जगत् के क्षय के लिए ऐसे ही प्राणी निशिचर राक्षस कहलाते हैं। लीला आदि मे राक्षसो को सीघ, दाँत आदि पशु के चिन्ह उनके अपमान के लिए लगा देते हैं। यह आवश्यक नही है कि जो राक्षस हो वे विकट रूप ही हो।

धारण करने से धर्म कहा जाता है। धर्म ही प्रजा को धारण करता है। धारणात् धर्म इत्याहुर्धर्मो धारयति प्रजा। रावण के राज्यकाल मे धर्म की बडी भारी ग्लानि अध पतन हुई। यहाँ धर्म की ग्लानि कहकर ईश्वर के अवतीर्ण होने की परिस्थिति दिखलाते हैं। यथा यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत। अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मान सृजाम्यहम्। धर्म को निष्प्राण होते देखकर पृथ्वी अत्यन्त डर गई और व्याकुल हो उठी। जब शरीर मे रोग अत्यधिक बढ जाता है तो शरीर के भीतरी यन्त्र काम नही करते। इसी भाँति पृथ्वी को रावणरूपी महारोग हो गया था। यथा इत दूरि महामहिभूरिरुजा। उसकी अभिवृद्धि स पृथ्वी की व्यवस्था चलानेवाला धर्म अति शिथिल पड गया। अत अपना नाश उपस्थित होने से पृथ्वी मारे डर के व्याकुल हो गई और सोचने लगी।

गिरि सरि सिधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही॥
सकल धर्म देखै बिपरीता। कहि न सकै रावन भयभीता॥३॥

अर्थ मुझे पर्वत नदी और समुद्र का उतना बोझ नही है जितना बोझ मुझे एक परद्रोही का होता है। पृथ्वी सब धर्मो को विपरीत देखती है। पर रावण के भय से डरी हुई कुछ बोल भी नही सकती।

व्याख्या गिरि मे कितने पत्थर हैं। सरिसिन्धु म कितना पानी है कुछ ठिकाना नही। परद्रोही म कितना बोझ होगा? पर यहाँ प्रश्न भौतिक बोझ का नही है। अपने प्रेमास्पद किसी को बोझ नही होते। अपने वर्ग म परम प्रीति होती है। गिरि सरि सिन्धु परोपकारी हैं। अत वे पृथ्वी के वर्ग के है। यथा सत बिटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबनि की करनी। अत उसे उनका बोझ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अखरता नही। परन्तु परद्रोही को पृथ्वी चाहती नही। उसके बोझ को वह सहन नही कर सकती और रावण के राज्य मे उन्ही की अभिवृद्धि थी। अत पृथ्वी के लिए बोझा असह्य हो गया।

सब धर्म को विपरीत देखती है अर्थात् अधर्म का अभ्युत्थान हो गया। सबकी बुद्धि तामसी हो गई। लोग अधर्म को ही धर्म समझने लगे। शास्त्र कहता है कि व्यवस्थितार्यमर्याद कृतवर्णाश्रमस्थिति। त्रय्या हि रक्षितो लोक प्रसीदति न सीदति। वर्णाश्रम की स्थिति मे ससार सुखी होता है। कष्ट नही पाता। परन्तु तामसी बुद्धिवालो को वर्णाश्रम आँख का काँटा हो जाता है। शास्त्र कहता है कि न स्त्रीस्वातन्त्र्यमर्हति। परन्तु तामसी बुद्धिवालो को स्त्रीस्वातन्त्र्य सब कल्याण का मूल जँचता है। शास्त्र कहता है कि शौचात् स्वाङ्गजुगुप्सा परैरससर्गश्च। शौच का अभ्यास डालने से अपने शरीर से घृणा हो जाती है। वह दूसरे का ससर्ग नही करता। पर तामसी बुद्धिवाले छुआछूत उठा देने को ही धर्म समझते हैं। यथा अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता। सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धि सा पार्थ तामसी। पर सामर्थ्य किसकी जो इसके विरुद्ध आवाज उठाए। अत पृथ्वी रावण के भय से सब कुछ देखती थी। बोल नही सकती थी तब

धेनु रूप धरि हृदय विचारी। गई तहाँ जहँ सुर मुनि झारी॥
निज सताप सुनाएसि रोई। काहू ते कछु काज न होई॥४॥

अर्थ हृदय मे विचारकर उसने गाय का रूप धारण किया। और जहाँ सुर मुनि का समूह था वहाँ गई। अपना दु ख रोकर सुनाया। पर किसी का किया कुछ हो न सका।

व्याख्या गाय दीनता का प्रतीक है। अरिहु दन्त तृन दवत ताहि नहि मारि सकत कोई। शत्रु जब दाँत तले तृण दबा लेता है अर्थात् जब गौ होने का भाव दिखलाता है तब उसे भी कोई मारता नही। अत दीनता का प्रतीक बनकर पृथ्वी वहाँ गई जहाँ देवताओ और मुनियो का समूह था। क्योकि ये ही धर्म के रक्षक हैं। देवता और मुनियो का समूह उस समय मेरु पर्वत पर था। यथा : देवन तकेउ मेरु गिरि खोहा। रोकर दु ख सुनाना इस बात का द्योतक है कि दु ख असह्य है। परन्तु जो स्वय छिपते फिरते हैं वे क्या कर सकते हैं और मुनि लोग तो भक्ष्य ही ठहरे। गौ गोहार के लिए भी देवता और मुनि तैयार नही हुए। देश की यह बडी पुरानी प्रथा है कि गो गोहार और तिरिया गोहार पर सब लोग रक्षा के लिए उठ खडे होते हैं। परन्तु रावण के भय से किसी को साहस न हुआ।

छद सुर मुनि गधर्वा मिलि करि सर्वा गे विरचि के लोक।
सग गो तनुधारी भूमि विचारी परम विकल भय सोक॥
ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई।
जाकरि तै दासी सो अविनासी हमरेउ तोर सहाई॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ · देवता, मुनि और गन्धर्व सब मिलकर ब्रह्मदेव के लोक गये। उनके साथ भय और शोक से परम विकल गाय का शरीर धारण किये हुए बेचारी पृथ्वी थी। ब्रह्मा ने सब जान लिया। मन मे विचारा कि मेरा भी कोई चारा नही है। और पृथ्वी से कहा कि जिसकी तू दासी है वही अविनाशी मेरा और तेरा भी सहायक है।

व्याख्या जब कोई बात देवताओं के वश के बाहर हो जाती है तब ब्रह्मदेव के शरण मे जाते हैं। क्योकि उन उन अधिकारो पर उनकी नियुक्ति ब्रह्मदेव द्वारा ही होती है और जब ऐसा समय आता है कि बलवान् शत्रु उनके अधिकार को छीनने लगता है सो वे स्वभावत ब्रह्मदेव के शरण जाते हैं। अत· पृथ्वी का करुण क्रन्दन सुनकर देवता, मुनि और गन्धर्व लोग सब मिलकर ब्रह्म-लोक गये। साथ मे भय और शोक से परम विकल भूमि बेचारी भी गई। विकल होकर तो वह देवताओ के शरण गई। उनकी बेबसी से यह परम विकल हो गई। जहाँ वे लोग पुकार करने चले वहाँ वह भी गई। कुछ कहने की आवश्यकता ही नही पडी। ब्रह्मदेव सब बाते जान गये। पर करते क्या ? उन्ही से वर पाकर वह सब कर रहा था। रावण स्वय कहता था कि निज तप साहस बिरंचि लियो मोल है। पृथ्वी से कहने लगे कि कोई भी विनाशी जीव तुम्हारी सहायता नही कर सकता। क्योकि विनाशी को तो रावण मार ही डालेगा। तेरे पति अविनाशी है। यथा समुद्रवसने देवि पर्वतस्तनमण्डले। विष्णुपत्नि नमस्तुभ्य पादस्पर्शं क्षमस्व मे। अत वे ही मेरे भी सहायक है।

सो. धरनि धरहि मन धीर, कह बिरंचि हरि पद सुमिरु।
जानत जन की पीर, प्रभु भजिहि दारुन बिपति ॥१८४॥

अर्थ ब्रह्मदेव ने कहा पृथ्वी ! तू धैर्य धारण कर और प्रभु के चरणो को स्मरण कर वे भक्तो की पीर को जानते है। वे दारुण विपत्ति का नाश करेगे।

व्याख्या ब्रह्मदेव ने कहा कि तेरा नाम धरणी है। तू धैर्य को न छोड और प्रभु का स्मरण कर। उनसे कुछ कहना सुनना भी नही है। वे अन्तर्यामी भी हैं। जन की पीडा को जानते हैं। केवल उनका स्मरण करना ही पर्याप्त है। वे ही दारुण विपत्ति का नाश करेंगे। भाव यह कि तुम तो उनकी पत्नी हो। तुम क्यो अधीर होती हो। स्त्री को पति ही शरण है। अत तुम उनका स्मरण करो। इसी से तुम्हारा कल्याण है।

बैठे सुर सब करहि बिचारा। कह पाइअ प्रभु करिअ पुकारा ॥
पुर बैकुंठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई ॥१॥

अर्थ बैठे हुए देवता लोग विचार करने लगे कि प्रभु को कहाँ पावे कि पुकार करे। कोई कहने लगा बैकुण्ठ चलना चाहिए। कोई कहने लगा उनका निवास क्षीरसागर मे है।

व्याख्या देवताओ को भी हरि का दर्शन दुर्लभ है। यथा जे हरहिय

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नयनन्हि कवहुँ निरखे नाहि अघाय। अत विचार करने लगे कि ब्रह्मदेव तथा शिवजी ने तो रावण को वरदान दिया है। ये लोग उसकी रक्षा के लिए वचनवद्ध हैं। रावण भी इनसे निर्भय है। कहता है कि साहिव महेस सदा सक्त रमेस मोहि निज तप साहस विरचि लियो मोल है। महेश तो मेरे स्वामी हैं। रमेश मुझसे शङ्कित रहते हैं और अपने तप के साहस से मैने ब्रह्मदेव को तो मोल ल रक्खा है। भावार्थ यह कि रावण ब्रह्मदेव और महेश की ओर से निश्चिन्त है। यद्यपि विष्णु को शङ्कित वतलाता है। पर खतरा उसी से रहता है जो अपनी ओर से शङ्कित रहे। विष्णु वचनवद्ध नही है। उन्ही से पुकार करनी चाहिए। अथवा त्रिदेव से रावण को भय नही है। अत जिसके अंश से त्रिदेव की उत्पत्ति है उस प्रभु को पुकारना चाहिए। अव प्रश्न यह रहा कि उन्हे पावे कहाँ ? ता इसमे मतभेद हुआ। किसी ने वैकुण्ठ मे चलने की राय दी और किसी ने क्षीरसमुद्र चलना विचारा।

जाके हृदय भगति जसि प्रीती। प्रभु तहँ प्रकट सदा तेहि रीती॥
तेहि समाज गिरिजा मै रहेऊँ। अवसर पाइ वचन एक कहेऊँ॥२॥

अर्थ जिसके हृदय मे जैसी भक्ति और प्रीति रहती है प्रभु उसके लिए सदा वहाँ और उसी रीति से प्रकट होते है। हे गिरिजे! मै उस समाज मे था। अवसर पाकर मैने एक वात कही।

व्याख्या मतभेद के कारण को स्पष्ट करते हुए शिवजी कहते हैं कि प्रभु की रीति है कि प्रभु को जहाँ जैसा मानकर भजता है। जहाँ पर उसकी जिस रूप मे प्रीति करता है प्रभु उसको वही और उसी रूप मे प्रकट होते हैं। अत जिसने वैकुण्ठनाथ मानकर भजा है उसके लिए वे वैकुण्ठ मे हैं और जिसने क्षीरसागर मे मान रक्खा है और वही उसकी प्रीति है उसके लिए वे क्षीरसागर मे भी हैं। इसीलिए देवताओ मे मतभेद हुआ।

शिवजी कहते है गिरिजे! उस समाज मे मैं था। अर्थात् जहाँ सुरमुनिझारी मेरु पर्वत पर थे वहाँ मैं नही था। जहाँ ब्रह्मलोक मे देवता गये और ब्रह्मदेव ने कहा कि मेरा भी कोई चारा नही वहाँ भी मैं नही था। पर जहाँ देवता लोग विचार करने बैठे उस समाज मे मैं था। इससे यह है कि यह देवसभा रुद्रलोक मे हुई। शिवजी वडे सुशील हैं। अपना उत्कर्ष नही कहते। गिरिजा से रामकथा कहने के समय कहते हैं कि जैसा भुसुण्डि ने गरुड को सुनाया है वैसा ही मैं तुम्हे सुनाऊँगा। भुसुण्डि को प्रमाण मानकर उसकी कही हुई कथा सुनाते हैं। यद्यपि तथ्य यह है कि स्वय भुसुण्डि को ही वह कथा शिवजी से मिली थी। उसके मुख्य कवि शिवजी हैं। पर भगवान् शङ्कर ऐसे सुशील हैं कि अपना मूल वक्ता होना छिपाकर भुसुण्डि को वडाई देते हैं। वस्तुस्थिति यह है कि पृथ्वी देवसमाज के पास गई। पर किसी का किया कुछ न हुआ तो देवता लोग पृथ्वी को साथ लेकर ब्रह्मलोक गये। जव ब्रह्मदेव ने भी कह दिया कि मेरो कछु न वसाई तो ब्रह्मदेव को आगे करके रुद्रलोक गये। वही विचार होने लगा कि . कहँ पाइअ हरि करिअ

ankurnagpal108@gmail.com



पुकारा। शिवजी देवताओं को अपने यहाँ पुकार के लिए आना न कहकर केवल इतना ही कहते हैं कि तेहि समाज गिरिजा मैं रहेऊँ। भावार्थ यह कि यह बात तुम्हारे जन्म के पहिले की है।

देवताओं मे मतभेद होने पर शिवजी को अवसर मिला तो उन्होने एक बात कही। बिना अवसर की बात शोभा नही देती।

हरि व्यापक सर्वत्र समाना। प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना ॥
देस काल दिसि बिदिसिहु माही। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाही ॥३॥

अर्थ हरि सर्वत्र समान रूप से व्यापक हैं। प्रेम से प्रकट होते है। यह मेरी जानी हुई बात है। देश, काल, दिशा, विदिशाओ मे वह स्थान कौन है जहाँ प्रभु नही हैं।

व्याख्या हरि अखिल विश्व मे व्यापक हैं। सर्वाधार है और सर्वत्र समान-रूप से व्यापक है। सामान्य ही अव्यय रूप है। बात नही कि वैकुण्ठ मे कुछ अधिक हो या क्षीरसागर मे कुछ अधिक हो और यहाँ कुछ कम हो। वे तो सर्वत्र समान है परन्तु अव्यक्तरूप से हैं। उनसे काम लेने के लिए उन्हे व्यक्तरूप मे लाना पडता है। वे प्रेम से ही व्यक्तरूप मे आते हैं। जिन्हे वैकुण्ठ मे प्रेम है उसके लिए वे वैकुण्ठ मे प्रकट है। जिसे क्षीरसागर मे प्रेम है उसके लिए वे क्षीरसागर मे प्रकट है। और जिसे प्रेम नही है उसके लिए वे कही भी प्रकट नही है। कोई देश, कोई काल, कोई दिशा और कोई विदिशा, ऐसी नही है जहाँ प्रभु न हो। जब सर्वत्र समानरूप से प्रभु है तब यह प्रश्न ही नही बनता कि कहँ पाइय हरि करिअ पुकारा।

अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम ते प्रभु प्रगटइ जिमि आगी ॥
मोर बचन सब के मन माना। साधु साधु करि ब्रह्म बखाना ॥४॥

अर्थ वह चराचरमय है। फिर भी सबसे अलग है। निरपेक्ष है। प्रेम से प्रभु आग की भाँति प्रकट होते हैं। मेरी बात सबके गले उतर गई। और ब्रह्मदेव तो 'वाह, वाह' कहकर प्रशसा करने लगे।

व्याख्या अगजगमय होने पर भी उससे अलग रहना यह प्रभु का ऐश्वर्य योग है। यथा न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्। गी। ये भूत मेरे मे है। और मेरे मे नही भी हैं। यह मेरा ऐश्वरयोग देखो। और बिरागी है। यथा न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रिय। गी। यद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पाप पुन्य गुन दोषू। परन्तु प्रेम से प्रभु अग्नि[1] की भाँति प्रगट होते हैं। अग्नि यावत् रूपवान् द्रव्य

---

[1] अग्नि का प्राकट्य चार प्रकार से होता है १ आवेश २ प्रवेश ३ स्फूर्ति और ४ आविर्भाव। इसी भाँति प्रभु का प्राकट्य भी चार प्रकार से होता है। बर्तन के पानी मे जैसे अग्नि का आवेश होता है वैसे ही आवेशावतार कुछ दिन के लिए होता है। लोहे के गोले मे अग्निप्रवेश की भाँति प्रवेशावतार होता है। बिजली की चमक की भाँति स्फूर्तिअवतार क्षणभर के लिए होता है। और पत्थर मे टाँकी की चोट से साक्षात् अग्नि के प्राकट्य की भाँति प्रभु का आविर्भाव होता है। अत अग्नि की उपमा दी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



में व्याप्त है। विना तेज के रूप होता ही नहीं। यथा : ज्यों विनु तेज न रूप गोसाईं। परन्तु अव्यक्तावस्था मे है। उससे दाहन प्रकाशन आदि क्रिया नही होती। जब संघर्षण किया जाय तब अग्नि प्रकट होती है। यथा : अति सघर्षण करे जो कोई। अनल प्रकट चन्दन ते होई। इसी भाँति सर्वव्यापक होने पर भी प्रभु प्रेम करने से प्रकट होते हैं। यथा : ये भजन्ति तु मा भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्। तदपि करइ सम विषम विहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा। भाव यह कि यही प्रेम करो तो यही प्रकट हो।

शिवजी की बात सबके गले उतर गई क्योंकि सामञ्जस्य बैठ गया। किसी के अनुभव का खण्डन नहीं हुआ। बल्कि उपपत्ति हो गई। कहीं न जाकर उसी स्थान मे प्रेम प्रयत्न करना निश्चय हुआ। ब्रह्मदेव तो फडक उठे 'वाह, वाह' करने लगे।

दो. सुनि विरंचि मन हरष तन, पुलकि नयन बह नीर।
अस्तुति करत जोरि कर, सावधान मतिधीर ॥१८५॥

अर्थ : सुनकर ब्रह्मदेव के मन मे हर्ष हुआ। शरीर पुलकित हो उठा। आँखो से आँसू बहने लगे। धीरमति सावधान होकर स्तुति करने लगे।

व्याख्या : शिवजी की वाणी सुनकर ब्रह्मदेव प्रेम में डूबाडूब हो गये। इसलिए मनसा वाचा कर्मणा प्रेम दिखलाया गया। फिर सावधान होकर बुद्धि स्थिर की और स्तुति करने लगे।। इसलिए 'सावधान मतिधीर' कहा गया।

छं. जय जय सुरनायक जनसुखदायक प्रनतपाल भगवंत।
गो द्विज हितकारी जय असुरारी सिंधुसुता प्रिय कंत ॥
पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मरम न जानइ कोई।
जो सहज कृपाला दीनदयाला करउ अनुग्रह सोई ॥१॥

अर्थ : हे देवताओं के नेता! भक्तो के सुख देनेवाले! प्रणत के पालन करने-वाले! आपकी जय हो जय हो! हे ब्राह्मण और गाय के हित करनेवाले! असुरो के शत्रु! लक्ष्मी के पति! आपकी जय हो! आप देवता और पृथ्वी के पालन करने-वाले हैं। आपकी करणी अद्भुत है। आपका मर्म कोई नही जानता। जो सहज कृपालु और दीनो पर दया करनेवाले हैं सो अनुग्रह करें।

व्याख्या : दुःख में पडे हुए देवता लोग आपके नेतृत्व के लिए पुकार करने आये हैं क्योंकि आप ही सुरनायक हैं। आप उनका नेतृत्व ग्रहण कीजिये। आपके भक्त दुःख मे पडे हैं। इन्हे सुख दीजिये। आप भगवान् हैं। षडैश्वर्यसम्पन्न हैं। जो आपको प्रणाम करता है उसका पालन करते हैं। सो देवसमूह आपको प्रणाम करता है उसका पालन कीजिये।

आप गाय और ब्राह्मण के हित करनेवाले हैं। सो इस समय दोनो अशरण हो रहे हैं उनका हित कीजिये। आप असुरों के अरि : शत्रु हैं। अथवा असुर आपके शत्रु हैं। उनकी इस समय बढोतरी है। इसलिए उनका नाश करिये। आप समुद्र

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



की पुत्री लक्ष्मी के सुख का विस्तार करनेवाले हैं। सो इस समय लक्ष्मी सङ्कुचित होकर लङ्का मे ही सीमित हो गई हैं। यथा : चाकि राख्यौ रासि सब जागर जहान भो। अत रावण का वध करके ससार मे लक्ष्मी का प्रसार कीजिये। आप देवता और पृथ्वी का पालन कीजिये। देवता क्षुधाक्षीण बलहीन हो रहे हैं। पृथ्वी पाप के भार से दबी चली जा रही है। सो देवताओं के आहार का मार्ग निरर्गल कीजिये। और पृथ्वी का भार उतारिये। आपकी अद्भुत करणी है। आप ही मनुष्यशरीर धारण करके रावणवध कर सकते है। नही तो मनुष्य शरीर से रावणवध नही हो सकता। आपका मर्म कोई नही जान सकता। जैसी परिस्थिति है तदनुकूल प्रार्थना करते है। ऐसी परिस्थिति होने देने मे आपका क्या तात्पर्य है। इस मर्म को हम लोग नही जानते। आप स्वभाव से ही कृपा करनेवाले अर्थात् निष्कारण कृपा करनेवाले और दीन पर दया करनेवाले हैं। आप अनुग्रह करें। तीन बार जय कहकर आध्यात्मिक, आधिदैविक और आधिभौतिक तीनो प्रकार की विजय कही।

छं.[1] जय जय अविनासी सब घट बासी ब्यापक परमानंद।<br>
अविगत[2] गोतीत चरित पुनीत माया रहित मुकुंद ॥<br>
जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी बिगतमोह मुनिबृंद।<br>
निसि बासर ध्यावहि गुन गन गावहि जयति सच्चिदानंद ॥२॥

अर्थ हे नाशरहित घट घट मे निवास करनेवाले व्यापक, परमानन्द, अव्यक्त, इन्द्रियो से परे पवित्र चरित्रवाले मायारहित और मुक्ति देनेवाले आप की जय हो। जिसके लिए विरागी अत्यन्त अनुरागी होते हैं और मुनिवृन्द मोह-रहित होते है। रात दिन ध्यान करते हैं। गुणगण का गान करते है। ऐसे सच्चिदानन्द की जय हो।

व्याख्या आप अविनाशी हैं। घटघटवासी विष्णु व्यापक है। अपनी दासी पृथ्वी पर कृपा कीजिये। यथा : जाकर तैं दासी सो अविनासी आप परमानन्द हैं। ससार निरानन्द हो रहा है। उसे आनन्दित कीजिये। आप अविगत है अव्यक्त है। अथवा आप से विशेष गति किसी की नही है। क्योकि इन्द्रियो से अतीत हैं परे हैं। यथा न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीम। फिर भी आपके चरित पुनीत हैं। यथा एक कल्प एहि लगि अवतारा। चरित पवित्र किये ससारा। आपका दिव्य जन्म होता है। आपके कर्म भी दिव्य होते हैं। यथा जन्म कर्म च मे दिव्यम् अत अपने पुनीत चरित से

---

१ यह चौपैया छन्द है। इसमे ३० मात्राएँ होती हैं। १०,८ और १२ पर विश्राम होता है। अन्त मे एक सगण और एक गुरु ।।ऽऽ होता है।

२ 'इ स्वप्नादौ' इस सूत्र से यकार को 'इ' हुआ। 'विप्रकर्ष' इस सूत्र से युक्त वर्ण पृथक् हुए। 'अजादौ स्वरादमयुक्ताना क ख थ प फा गघ दध बभा' इससे 'क' को 'ग' होकर अव्यक्त का 'अविगत' रूप सिद्ध हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



संसार को पवित्र कीजिये। आप स्वयं माया से रहित हैं। और दूसरों को भी माया-रहित करके मुक्ति देते हैं। भाव यह कि इस समय संसार खलों की अभिवृद्धि से अपवित्र हो रहा है। उसे पवित्र कीजिये। जिसके लिए विरागी अत्यन्त अनुरागी होते हैं। और मुनि लोग विगत मोह होते हैं। यथा करहिं जोग जोगी जेहि लागी। कोह मोह ममता मद त्यागी। रात दिन ध्यान करते हैं। आपके गुणगणों को गाया करते हैं। ऐसे सच्चिदानन्द भगवान् की जय हो। यहाँ भी उपर्युक्त अभिप्राय से तीन बार जय कहा गया।

छ जेहि सृष्टि उपाई त्रिविध बनाई संग सहाय न दूजा।
सो करहु अघारी चिंत हमारी जानिय भगति न पूजा॥
जो भव भय भंजन मुनि मन रंजन खंडन बिपति बरूथा।
मन बच क्रम बानी छाडि सयानी सरन सकल सुरजूथा॥३॥

अर्थ जिसने सृष्टि उत्पन्न की। तीन प्रकार की बनाई। साथ में दूसरा सहायक न था। वही पापों का शत्रु हमारी खबर ले। हमें भक्ति या पूजा का ज्ञान नहीं है। जो संसार के भय का नाश करनेवाला है और विपत्ति समूह का खण्डन करनेवाला है उसी के शरण में मनसा वाचा कर्मणा चतुराई की आदत छोड़कर सब देवताओं का समूह आया है।

व्याख्या : भगवान् क्षीरशायी ही सृष्टि के आदि कारण हैं। यद्यपि ब्रह्मदेव स्रष्टा कहे जाते हैं परन्तु उनका जन्म भी भगवान् के नाभिकमल से हुआ है। अतः 'जेहि सृष्टि उपाई' कहते हैं। देव तिर्यक् और नररूप से सृष्टि तीन प्रकार की है। इसलिए 'त्रिविध बनाई' कहते हैं। अपने संकल्प से ही सृष्टि करते हैं। यथा 'स ईक्षत बहुस्यां प्रजायेय' इसलिए कहा कि संगसहाय न दूजा। यह जगत् कार्य है। इसका कर्ता सब कर्त्ताओं से विलक्षण है। क्रिया बुद्धिपूर्वक होती है। जड़ में वह नहीं देखी जाती। कार्य के गुणानुसार कर्त्ता अचिन्त्य शक्तिमान् है। उसकी स्वतन्त्रता पूर्ण है। वह किसी वस्तु की अपेक्षा न करके सम्पूर्ण जगत् की सृष्टि करता है जिस भाँति स्वप्न में यह जीव सम्पूर्ण पदार्थों को चैतन्य देह से रचता है।

इस भाँति भगवान् में अचिन्त्य सामर्थ्य दिखलाया। अब कहते हैं कि इस समय संसार पापों से भर गया है। हमलोग चिन्तनीय दशा को प्राप्त हैं। आप पापों के शत्रु हैं। आप हमारी चिन्ता करें। आपकी ही चिन्ता से हमारा निस्तार है। क्योंकि क्षीरशायी भगवान् ही नाना अवतारों के अव्यय बीज हैं हम स्वयं पुरुषार्थ में असमर्थ हैं। न भक्ति ही जानते हैं और न पूजा जानते हैं। संसार का भय बहुत बढ़ गया है। यथा : धर्म सुनिय नहिं काना : और आप भवभयभंजन हैं। मुनि लोगों की पीड़ा का पारावार नहीं है। और आप मुनिमन रंजन हैं। संसार में विपत्ति का समूह टूट पड़ा है। और आप उसका खण्डन करनेवाले हैं। मन क्रम वचन छाँड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहैं रघुराई। यह नियम है। सो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मन क्रम वचन से चतुराई की बानी आदत छोड़कर सब देवताओ के समूह यथा आदित्यगण, रुद्रगण तथा वसुगण इत्यादि आपकी शरण आये हैं। आप कृपा करें भाव यह कि भगवान् शरणागत के उद्धार मे समर्थ है। दया के समुद्र, कृतज्ञ और सुव्यवस्थित है। श्रेय की प्राप्ति करा देते हैं। श्रेय के पीछे नही पड़ना चाहिए। निर्हेतुक उपासना ही सच्ची उपासना है। वह आर्त और अर्थार्थी को अपनी नियति से कर्मपाक की अपेक्षा न करके फल देते है। वह अनन्य शरण का योगक्षेम वहन करते है। अपनी नियति को भी हटाकर उससे साधन का सम्पादन करा के शीघ्र ही उसे युक्त करते है। यही उनका बड़ा भारी स्वातन्त्र्य है कि प्रारब्ध और नियति भी उनसे विमुख को ही होती है।

छ सारद श्रुति सेषा रिषय असेषा जा कहुँ कोउ नहि जाना।
जेहि दीन पिआरे वेद पुकारे द्रवहु सो श्री भगवाना॥
भव वारिधि मदर सब विधि सुदर गुन मदिर सुख पुज।
मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकज॥

अर्थ सरस्वती, वेद, शेप और सम्पूर्ण ऋपि समुदाय जिसे कोई न जान सका। जिसे दीन प्यारे हैं ऐसा वेद ने पुकारकर कहा है। वही भगवान् दया करें। हे ससारसमुद्र के मन्दर! सब प्रकार से सुन्दर! मुनि, सिद्ध और सब देवता लोग परम भय से आतुर होकर नाथ के चरणकमल को नमस्कार करते है।

व्याख्या शारद से स्वर्गलोक का वक्ता श्रुति तथा अशेप ऋपियो से मर्त्यलोक का वक्ता तथा शेप से पाताल लोक का वक्ता कहा। ये लोग भी जिसे न जान सके। भाव यह है कि प्रभु साक्षात् ब्रह्म है। विज्ञाता हैं। वे किसी के भी ज्ञेय नही हो सकते। यथा विज्ञातार वा अरे केन विजानीयात्। विज्ञाता को कोई कैसे जाने फिर भी वेद पुकारकर कहता है कि उन्हे दीन प्यारे है। यथा अगुन अखड अनत अनादी। जेहि चितहि परमारथवादी। नेति नेति जेहि निगम निरूपा। निजानद निरुपाधि अनूपा। ऐसउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीला तनु गहई। जौ अस वचन सत्य श्रुति भाषा। तौ हमार पूजिहि अभिलाषा वही श्री भगवान् कृपा करें। भक्त के हेतु शरीर धारण करें।

सागर के मन्थन म मन्दर पर्वत ही समर्थ था। उसी द्वारा मन्थन से समुद्र मे से १४ रत्न निकले थे। इसी भाँति भगवान् भवसागर के लिए मन्दर है। समुद्र के पार तो वानर लोग भी गये परन्तु उन्हे उसकी गहराई का पता नही। यथा अब्धिर्लङ्घित एव वानरभटै किंत्वस्य गम्भीरताम् आपातालनिमग्नपीवरतनुर्जानाति मन्थाचल। उसकी गहराई का पता तो मन्दराचल का है। इसी भाँति साधक प्रयत्न से ससारसागर के पार चले जाते है। पर उसके तल का पता श्री भगवान् को ही है। वे ही उसमे से अमृत का उद्भावन करके दैवी प्रकृतिवालो की पुष्टि कर सकते हैं। उन्हे विजययुक्त कर सकते हैं। मन्दर सब विधि सुन्दर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नहीं। पर प्रभु तो सब विधि सुन्दर हैं। गुण के मन्दिर और सुख के 'पुंज' हैं। अर्थात् निर्गुण होने पर भी सगुण हैं। जो संसार भय से भीत है उसके एकमात्र शरण हैं। इस समय मुनि, सिद्ध, सुर सब परम भयातुर हैं। अपने कल्याण के लिए प्रभुपदकंज को नमस्कार करते हैं।

दो० जानि सभय सुरभूमि सुनि, बचन समेत सनेह।
गगन गिरा गंभीर भइ, हरनि सोक संदेह ॥१८६॥

अर्थ देवता और पृथ्वी को भयभीत जानकर और स्नेहयुक्त वाणी सुनकर सब सन्देहों को हरनेवाली गम्भीर आकाशवाणी हुई।

व्याख्या ब्रह्मदेव ने प्रार्थना की थी मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर। अत सुरभूमि को सभय जाना। शिवजी ने कहा था प्रेम ते प्रगट होहिं मैं जाना। सो वचन समेत सनेह भी सुना। बोलनेवाला अदृश्य है। और शब्द सुनाई पड रहा है। इसलिए 'गगन गिरा गभीर' कहते हैं। अथवा जो वाणी का भी वाणी वाचोह वाक् है। उसकी गिरा आकाश द्वारा ही प्रकट होती है। कितने ऊपर से वाणी आ रही है। इसका थाह न होने से गम्भीर कहा अथवा वचन सक्षिप्त हैं पर अर्थ अति अधिक है। इसलिए गम्भीर कहा। पृथ्वी भय शोक से विकल थी। अत शोक सन्देह की हरण करनेवाली वाणी हुई।

यह प्रभु का प्रथम गुणग्राम जगमङ्गल रूप है। यथा जगमगल गुनग्राम राम के। इसे अश्विनी नक्षत्र माना गया है। अश्विनी नक्षत्र मे तीन तीन तारे चमकते हैं। इस स्तुति मे भी तीन रूपो की चमक है। १ विष्णु २ क्षीरशायी और ३ ब्रह्म। अश्विनी नक्षत्र की आकृति अश्वमुख सी है। ब्रह्मविद्या के प्रधान उपदेष्टा भगवान् हयग्रीव हैं। उसी ब्रह्मविद्या का निरूपण इस स्तुति मे है। इससे अश्वमुख माना। अथवा सामवेद के तुल्य होने से अश्वमुख माना। यह स्तुति ही जगमङ्गल के लिए ब्रह्मदेव ने की थी।

जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। तुम्हहि लागि धरिहौं नर बेसा ॥
असन्ह सहित मनुज अवतारा। लेहौं दिनकर बंस उदारा ॥१॥

अर्थ हे मुनि, सिद्ध और अधिकारी देवता लोग, तुम लोग डरो मत। तुम्हारे लिए मैं नर का वेष धारण करूँगा। अशो के सहित मनुष्य का अवतार उदार सूर्यवंश म ग्रहण करूँगा।

व्याख्या ब्रह्मदेव ने स्तुति मे कहा था मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकंज। अत आकाशवाणी होती है जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। भानुप्रताप रावण हुआ था। यथा काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भएउ निसाचर सहित समाजा। दस सिर ताहि बीस भुजदडा। रावण नाम बीर बरिवडा। उसी के अत्याचार से पीडित होकर देवता लोग शरण मे आये हैं। क्योकि रावण ने वर माँग लिया है कि हम काहू के मरें न मारे। बानर मनुज जाति दुइ बारे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



और वानर मनुज मे कोई ऐसा शक्तिशाली हो नही सकता। जो इस वीर वरिबंड के वध मे समर्थ हो। अत निरतिशय ऐश्वर्यसम्पन्न भगवान् ही यदि नर शरीर धारण करें तो इसका वध सम्भव है। परन्तु क्लेश कर्मविपाकाशयैरपरामृष्ट पुरुषविशेष ईश्वर यो सू । कर्म विपाक और आशय से जिसका सम्पर्क नही है ऐसा पुरुषविशेष ईश्वर है। वह मनुष्य क्यो होने लगा। अत कहते हैं कि यद्यपि कर्म विपाक और आशय से मेरा लगाव नही है फिर भी तुम्हारे लिए मैं नरशरीर धारण करूँगा। ध्वनि यह निकलती है कि मैं तुम्हारे लिए नरशरीर धारण करूँगा। परन्तु तुम लोग भी अपने लिए वानर शरीर धारण करो। मैं तुरीय का विभु अपने अशो जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति के विभुओ के सहित मनुष्य अवतार धारण करूँगा। अर्थात् जब अशी का अवतार होगा तो साथ मे अश भी आवेगे। राजा के साथ सारा समाज चलता है। यथा निज इच्छा अवतरइ प्रभु सुर महि गो द्विज लागि। सगुन उपासक सग सव तव रहहि मोच्छसुख त्यागि। उदार सूर्यवश मे अवतार ग्रहण करने का अभिप्राय यह कि बारह कलाओ मे ही पूर्णता हो जायगी। क्योकि सूर्य मे बारह कलाएँ हैं। चन्द्रवश मे अवतार ग्रहण करने से सोलह कलाओ मे पूर्णता होती है। क्योकि चन्द्र मे सोलह कलाएँ है। एक रुपये मे आठ दुअन्नियाँ और चार चवन्नियाँ होती हैं। इसलिए आठ दुअन्नियाँ चार चवन्नियो से अधिक नही हैं। इसी भाँति बारह कलाओ का रामावतार और सोलह कलाओ का कृष्णावतार दोनो ही पूर्ण है। समान ही नही दोनो एक हैं।

स्पष्ट है कि यह आकाशवाणी उस कल्प की ही है। जिसमे स्वायम्भू मनु और शतरूपा की प्रार्थना से ब्रह्म का रामावतार हुआ था और भानुप्रताप का रावणावतार हुआ था।

तुरीय ब्रह्म के अश, सुषुप्ति के प्रभु ईश्वर, स्वप्न के विभु हिरण्यगर्भ और जाग्रत् के विभु विराट् है। सो इनके साथ अवतीर्ण होने के लिए आश्वासन दिया जा रहा है। ब्रह्मदेव ने मनुष्य के हाथ से रावणवध का वरदान दिया है। अत मैं मनुष्य शरीर धारण करूँगा। अब उस वश को बतला रहे है। जिसमे अवतार ग्रहण करेंगे। सूर्यकुल उदार है। उसमे याचको को विमुख नही फेरा जाता। उसी वश मे अवतीर्ण हूँगा। इससे अवतार का समय वैवस्वत मन्वन्तर सूचित किया।

कस्यप अदिति महा तप कीन्हा। तिन्ह कहुँ मै पूरब बर दीन्हा ॥
ते दसरथ कौसल्या रूपा। कौसलपुरी प्रगट नर भूपा ॥२॥

अर्थ कश्यप और अदिति ने बडा भारी तप किया था। उनको मै पहिले ही वर दे चुका हूँ। वे ही दशरथ और कौसल्या के रूप से कोसलपुरी मे मनुष्यो के राजा होकर प्रकट हुए है।

व्याख्या जय और विजय के रावण होने के प्रकरण मे कहा है एकबार तिनके हित लागी। धरेउ सरीर भगत अनुरागी। कस्यप अदिति तहाँ पितु माता। दसरथ कौसल्या बिख्याता। ... जय और विजय रावण

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कुम्भकर्ण हुए और उनके वध के लिए जो रामावतार हुआ उसके पिता माता दशरथ और कौसल्या, कश्यप अदिति के अवतार थे। वही बात आकाशवाणी कह रही है कि कश्यप अदिति ने बड़ा भारी तप किया था। उन्हे मै पहिले ही पुत्र होने का वर दे चुका हूँ और वे दशरथ कौसल्या होकर कोसलपुरी मे अवतीर्ण भी हो चुके है। भाव यह कि स्तुति के पहिले से ही कार्यारम्भ हो चला है।

तिन्हके गृह अवतरिहौ जाई। रघुकुल तिलक सो चारिउ भाई ॥
नारद वचन सत्य सब करिहौ। परम सक्ति समेत अवतरिहौ ॥३॥

अर्थ : सो हम चार भाई उनके घर मे रघुकुलतिलक होकर अवतार ग्रहण करेंगे। नारद का वचन मैं सब सत्य करूँगा और परमशक्ति के सहित अवतार धारण करूँगा।

व्याख्या : उन्ही नर भूप : दशरथ के घर मे हम चार भाई होकर अवतार ग्रहण करेंगे। भाव यह कि देवता का आयुध वाहन आदि उनके स्वरूप से पृथक् नही होता। इस रामावतार मे शेष भगवान् लक्ष्मण हुए। पाञ्चजन्य : शंख ने भरत का अवतार धारण किया और सुदर्शनचक्र ने शत्रुघ्न का अवतार धारण किया। इससे स्पष्ट है कि यह आकाशवाणी उस कल्प की है जिसमे जय विजय रावण कुम्भकर्ण हुए थे और वैकुण्ठनाथ का रामावतार हुआ था।

दो कल्पों की आकाशवाणियाँ कहकर अब उस कल्प की आकाशवाणी कहते है जिसमे नारदजी के शाप से भगवान् क्षीरशायी का रामावतार और रुद्रगणो का रावणावतार हुआ था। इस कल्प की आकाशवाणी मे स्पष्ट उल्लेख है कि नारद का वचन सत्य करेंगे। भाव यह कि राजा का शरीर धारण करेंगे। स्त्रीविरह मे व्याकुल होंगे। बन्दरो से सहायता माँगेगे तथा समर मे रावणकुम्भकर्णरूप रुद्रगणों को मुक्ति देंगे। परम शक्ति के साथ अवतार लेने की चरचा करने का यह कारण है कि स्त्री के विरह मे विकल होने का शाप नारदजी ने दिया[१] है। इसलिए स्त्री बनने के लिए परम शक्ति के अवतीर्ण होने की नितान्त आवश्यकता है। अवतारी एक होने से जलन्धर कल्प की आकाशवाणी का पृथक् निर्देश नही है। उस कल्प की कथा का भी नारदकल्प की कथा में अन्तर्भाव है।

हरिहौ सकल भूमि गरुआई। निर्भय होहु देव समुदाई ॥
गगन ब्रह्म बानी सुनि काना। तुरत फिरे सुर हृदय जुड़ाना ॥४॥
तब ब्रह्मा धरनिहि समुझावा। अभय भई भरोस जिय आवा ॥५॥

अर्थ : मैं भूमि की सब गरुआई हरण करूँगा। देवता लोग निर्भय हो जाओ। ब्रह्म की की हुई आकाशवाणी कान से सुनकर देवता लोग तुरन्त लौटे। हृदय

---

१. क्षीरशायी का ही रामावतार दो कल्पो मे हुआ। अत पृथक् पृथक् आकाशवाणी नही लिखी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



शीतल हो गया। तब ब्रह्मदेव ने पृथ्वी को समझाया वह भी निर्भय हुई। जी मे भरोसा आगया।

व्याख्या पृथ्वी ने कहा था। गिरि सर सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही। अत कहते हैं हरिहौं सकल भूमि गरुआई। रावण ही नही निशिचरहीन पृथ्वी की जायगी। जनि डरपहु से उपक्रम और निर्भय होहु से उपसहार किया। अब फिर ब्रह्म के रामावतार की कथा उठा लेते है। इसी भाँति ब्रह्म के रामावतार की कथा ग्रन्थकार कहेगे। पर बीच मे अन्य रामावतारो की कथाओ से जो भेद पडता जायगा उसे इसी भाँति दिखलाते चले जायेंगे। यही इस प्रबन्ध की विचित्रता है।

ब्रह्म की की हुई आकाशवाणी को सब देवताओ ने सुना। उनका कलेजा जल रहा था। क्योंकि रावण के अत्याचार से सबलोग बडे दु खी थे। आकाशवाणी सुनने के बाद देवता लोग ब्रह्मदेव के शिक्षानुसार कार्य करने के लिए तुरन्त लौट पडे। ब्रह्मदेव ने जो शिक्षा दी वह आगे कही जायगी।

ब्रह्मदेव ने पृथ्वी को समझाया। यथा

तेरी सुता ह्वैके आदिशक्ति उपजैगी नेह लावैगो विदेह औ पिलावैगी सुनयना छोर।
धनु मख व्याज साज व्याह का सजैगे राम, आवैंगी अवध वन जानकी परैगी भोर॥
ताके हेतु रावन को सकुल विनास ह्वै है, नास ह्वैहै भार अब धरती धरै तू धीर।
विपति नसैया सुर सतन सहैया विजय आनँद करैया तेरी वेग ही हरैगो पीर॥

पृथ्वी ब्रह्मदेव के उपदेश से हरिपद का स्मरण करती थी। उसने बात नही समझी। जब ब्रह्मदेव ने समझाया कि आकाशवाणी हुई है। उसका तात्पर्य यह है। तब उसके मनमे भरोसा हुआ और निर्भय हो गई।

दो निज लोकहि बिरचि गे, देवन्ह इहै सिखाइ।
बानर तनु धरि धरनि महुँ, हरिपद सेवहु जाइ॥१८७॥

अर्थ ब्रह्मदेव देवताओ को यह सिखलाकर कि तुमलोग वानर का शरीर धारण करके पृथ्वी पर जाकर हरिपद की सेवा करो। अपने लोक मे चले गये।

व्याख्या आकाशवाणी के ऊपर ब्रह्मदेव की टीका हुई जैसे उमा के तप के समय आकाशवाणी की टीका की थी। देवताओ को आदेश दिया कि तुमलोग भी वानर होकर अवतीर्ण होओ और प्रभु के आने की बाट जोहो। ऐसा कहकर ब्रह्माजी रुद्रलोक से ब्रह्मलोक चले गये। कुछ महात्माओ का मत है कि ब्रह्मस्तुति ब्रह्मसभा मे ही हुई थी। निजलोकहि का अर्थ यह है कि ब्रह्मदेव 'अपने' तक को कहकर अन्त पुर मे चले अर्थात् मै भी अवतीर्ण होऊँगा।

गए देव सब निज निज धामा। भूमि सहित मन कहुँ विश्रामा॥
जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा। हरखे देव बिलब न कीन्हा॥१॥

अर्थ सब देवता अपने अपने स्थान को गये। पृथ्वी के सहित उनके मन को

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विश्राम हुआ । जो कुछ आज्ञा ब्रह्मा ने दी थी : उसके करने मे देवगण हर्षित हुए और देर नहीं की ।

व्याख्या : देवता लोग अपने अपने लोक को गये । पृथ्वी भी अपने लोक को गई । आये थे मनसे विकल पर गये मनमे विश्राम लिए हुए । अभी दु:ख हटा नही पर शीघ्र हटेगा । इस दृढ आशा मे मनमें विश्राम है ।

किस भाँति कौन कौन कहाँ वानर रूप से प्रकट हो । इस आज्ञा के पालन मे देर न हुई । क्योंकि आज्ञा पालन मे विषाद नहीं है । वानर बनने में हर्ष है । वानर बनकर भी यदि प्रभु की सेवा सुलभ हो तो अहो भाग्य है । यथा जानि राम सेवा सरस समुझि करव अनुमान । पुरखा ते सेवक भये हर ते मे हनुमान । प्रभु की रक्षा मे निशाचरो से बदला लेंगे । बडा हर्ष का समय है इसलिए देर न की ।

वनचर देह धरी छिति माही । अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाही ॥
गिरि तरु नख आयुध सब वीरा । हरि मारग चितवहि मतिधीरा ॥२॥

अर्थ . पृथ्वी मे उन लोगो ने वन्दर का शरीर धारण किया । और उन्हे वेपरिमाण बल और प्रताप था । इन सब वीरो का हथियार पर्वत, नख और पेड था । वे मतिधीर हरि का रास्ता देख रहे थे ।

व्याख्या : पृथ्वीलोक मे लोकपालो ने वन्दर का देह धारण किया था । इसलिए कहते हैं कि : अतुलित बल प्रताप तिन पाही । नही तो वन्दर मे इतना बल और प्रताप कहाँ ? अथवा देवशरीर मे जितना बल प्रताप था उतना उन्हे वानर शरीर मे हुआ । यथा : रामकृपा अतुलित बल तिन्ही । तृन समान त्रैलोकहि गिनहीं ।

वानरी देह होने से अपने अपने आयुधो से काम नही लेते । पर्वत, नख और वृक्ष ही उनके आयुध हो रहे थे । लङ्काविजय की बडी अभिलाषा है पर हरि के आगमन की प्रतीक्षा कर रहे थे । प्रभु आ जायँ तो काम चले ।

गिरि कानन जहँ तहँ भरिपूरी । रहे निज निज अनीक रचि रूरी ॥
यह सब रुचिर चरित मै भाषा । अब सो सुनहु जो बीचहि राषा ॥३॥

अर्थ · पर्वत और जङ्गलो मे अपनी अपनी सुन्दर सेना रचकर जहाँ तहाँ भर रहे थे । यह सब सुन्दर चरित्र मैंने कहा । अब उसे सुनो जो बीच मे छोड रक्खा है ।

व्याख्या तैंतीस कोटि देवता हैं । उनके गण कितने हैं जिनकी सख्या नही । सो सबके अवतीर्ण होने से पर्वत वन सब वानरमय हो गया । लोकपालावस्था मे जो सेना जिसकी थी वही यहाँ भी है ।

रावणावतार के चरित को रुचिर कहते हैं । पुनीत नही कह सकते । बहुत बडे दर्जे के जीव शापित होकर रावण होते हैं । उन्ही के कारण साक्षात् प्रभु का मृत्युलोक मे नर शरीर द्वारा आगमन होना है । अत रावण का भी चरित रुचिर है । वह जो स्वाग लेता है ऐसा पूरा निर्वाह करता है कि बिना प्रभु के आने के

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उपायान्तर नही रह जाता। पुनि प्रभु कहहु राम अवतारा उमा के इस प्रश्न का उत्तर तथा काकभुसुण्डि का प्रभु अवतार कथा पुनि गाई प्रसङ्ग का आरम्भ होता है। 'ह्वै हौ अवधभुआल तब मै होव तुम्हार सुत' यहां से प्रसङ्ग छूटा हुआ है। अत अवधपुरी रघुकुल मनि राऊ से उसे फिर आरम्भ करते हैं।

## रामावतार प्रसङ्ग [1]दूसरे प्रश्न का उत्तर

अवधपुरी रघुकुल मनि राऊ। वेद विदित तेहि दसरथ नाऊ ॥
धर्म धुरधर गुन निधि ग्यानी। हृदय भगति मति सारगपानी ॥४॥

अर्थ अवधपुरी मे रघुकुल के मणिरूप राजा थे। उनका नाम [2]दशरथ वेद म विदित है। वे धर्मधुरन्धर गुणो के निधि तथा ज्ञानी थे। भगवान् शार्ङ्गपाणि विष्णु की भक्ति और मति उनके हृदय मे थी।

व्याख्या अवधपुरी से उत्तम देश कहा। रघुकुल स उत्तम वश कहा। उस कुल मे भी मणि थे। मणि के चार गुण होते हैं १ सुजाति २ शुचि ३ अमोल और ४ सब भाँति सुन्दर। सो रघुकुल से सुजाति कहा। धमधुरन्धर से शुचि कहा। गुणनिधि से अमाल कहा। और ज्ञानी, तथा हृदय भगतिमति सारँग पानी से सब भाँति सुन्दर कहा। वेदविदित से अधिकारी कहा। वेद म व्यक्ति का नाम नही होता। पद का नाम होता है। जो उस पद के योग्य होगा सो दशरथ होगा। तीन कल्पो मे से जिनमे जय विजय या रुद्रगण रावण कुम्भकर्ण हुए थे अथवा जलन्धर रावण हुआ था जिनमे भगवान् विष्णु का रामावतार हुआ था भगवान् कश्यप ने दशरथ पद को अलङ्कृत किया था। परन्तु जिस कल्प म भानुप्रताप रावण हुए थे और साक्षात् ब्रह्म ने अवतार धारण किया था भगवान् स्वायम्भू मनु दशरथ हुए। इसलिए कहते हैं कि दशरथ नाम वेद विदित है।

दो कौसल्यादि नारि प्रिय, सब आचरन पुनीत।
पति अनुकूल प्रेम दृढ, हरिपदकमल विनीत ॥१८८॥

अर्थ उनकी प्रिय रानियाँ कौसल्या आदि सबका पवित्र आचरण था। वे पति के अनुकूल थी। उनका हरि के चरणो म दृढ प्रेम था और वे विनीत थी।

व्याख्या कौसल्या पट्टाभिषिक्ता थी। अत उन्हे पहिले कहा। आदि से कैकेयी सुमित्रा का भी ग्रहण किया। प्रिय' से दक्षिण नायक कहा। सब रानिया का पुनीत आचरण कहा। यथा तुम गुरु विप्र धेनु सुर सेवी। तसि पुनीत कौसल्या देवी। पति अनुकूल से पतिव्रत धर्म कहा। प्रेम दृढ हरिपद कमल से पति के कल्याण के लिए ईश्वराराधन कहा और विनीत से नम्रस्वभाव कहा।

---

१ पुनि कहहु राम अवतारा।

२ त्रिम्मयेऽस्मिन् महाविष्णो जात दशरथे हरौ। रा ता

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


एकबार भूपति मनमाही । भइ गलानि मोरे सुत नाही ॥
गुरुगृह गयेउ तुरत महिपाला । चरन लागि करि विनय बिसाला ॥१॥

अर्थ : एकवार राजा के मनमे ग्लानि हुई कि मुझे पुत्र नही है। तुरन्त राजा गुरुजी के घर गये। चरणो मे प्रणाम किया और बडी विनय करके

व्याख्या : ख्याल तो बहुत वार हुआ। पर एकबार ग्लानि हुई कि मुझे सब कुछ है पर पुत्र नही है। भूपति कहने का भाव यह कि सम्पूर्ण राज्य का भार जिस पर है उसे वेटा नही कि वोझा उसपर छोड सकें। सवको वेटे है मुझे नही है। बेटे के लिए ही इतने विवाह किये पर किसी को पुत्र नही हुआ। पुत्री की बात नही कहते। क्योकि शान्ता नाम की पुत्री सुनी जाती है। पुत्र न होने से ग्लानि हुई। अपुत्रस्य गृह शून्यम्। अपुत्रस्य गतिर्नास्ति। पुत्रेणैवाय लोको जय्य। नीतिशास्त्र कहता है जिसे पुत्र नही उसका घर सूना रहता है। धर्मशास्त्र कहता है कि जिसे पुत्र नही उसकी गति नही होती। स्वय वेद कहते है कि पुत्र से ही यह लोक जीता जाता है। अत ग्लानि होने का यथेष्ट कारण था।

महिपाल है। फिर भी गुरुजी को बुलाया नही। स्वय उनके घर गये। परम विश्वास गुरुचरणो मे है कि उन्ही के पूजने से सब कुछ मिल सकता है। यथा ' मोहि सम यहु अनुभयेउ न दूजे। सब पाएउ रजपायन पूजे। चरण लागि से पूजन कहा। और विनय विसाल से स्तुति कहते हैं।

निज दुख सुख सब गुरहि सुनाएउ । कहि वसिष्ठ बहुविधि समुझाएउ ॥
धरहु धीर होइहहि सुत चारी । त्रिभुवन विदित भगत भय हारी ॥२॥

अर्थ : अपना दु ख सुख गुरुजी को सुनाया। सुनकर वसिष्ठजी ने अनेक विधि से समझाया कि धैर्य धरो। चार बेटे होगे। उनकी ख्याति तीनलोक मे होगी। वे भक्तो का भय हरण करनेवाले होगे।

व्याख्या . राजा हैं सब कार्य विधिपूर्वक करते हैं। पहिले प्रणाम किया तत्पश्चात् स्तुति की फिर दु.ख सुख सुनाया कि इक्ष्वाकु से लेकर जो सन्ततिसूत्र मुझ तक चला आया उसका विच्छेद हुआ चाहता है। इतने व्याह किये। पर पुत्र किसी से न हुआ। सुख भी सुनाया कि चरणो की कृपा से और किसी वात का घाटा नही है। पुनाम नरक से त्राण करनेवाला कोई नही है। कहि वसिष्ठ बहु विधि समुझावा। कहने से पता चला कि गुरुजी का नाम वसिष्ठ था। उन्होंने वहुत विधान से समझाया। यथा .

सवैया : सुनु राजन सृष्टि विरचि रची, जवही तवही रचि यज्ञ सवारयो।
बढिहैं एहिसेइ प्रजा सिगरी, बिगरी वनिहैं अस बैन उचारयो ॥
सुरपूजित ह्वै सुख साज सजें, विजयानद नीति इहै निरधारयो।
तुम दिच्छिन ह्वै सब इच्छित सिद्ध, करो हमने यह मन्त्र विचारयो ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ऋषि शृङ्ग तपोधन हैं एहिकाल, विशाल प्रभाव सगे तुम्हरे।
सब ईति की भीति मिटी जेहिके, पग देत अनंदित मे सिगरे॥
तेहि बोलिके यज्ञ को साजसजो, विजयानद लाभ सही डगरे।
सबसिद्धि को एक ही साधन है हरितोषण यज्ञ मते हमरे॥२॥
अतिभीत दशानन के भय ते, सब देव पुकार कियो हरिपाही।
सब ओर निशाचर छाइ रहे, अवतार बिना नहिं दुष्ट नसाही॥
एहि काल भुआल सुऔसर भूरि, करौ तुम यत्न असम्भव नाही।
प्रकटैं सुत ह्वै तुम्हरे विजयानद, दीनदयाल सोई महि माही॥३॥

स्वर्ग और मर्त्यलोक से जो यज्ञरूप व्यापार चलता है उसी से लाभ उठाओ। वसिष्ठजी ग्लानि करने का निषेध करते हैं। क्योंकि महाराज अधीर हो उठे थे। एक के लिए झखते हो चार होगे। यज्ञ से पुत्र होना कहकर दिव्य जन्म कहा। और त्रिभुवन विदित भगत भयहारी कहकर दिव्य कर्म कहा। इस भाँति स्पष्ट कह दिया कि तुम्हारे यहाँ अवतार होगा।

**शृंगी रिषिहि वसिष्ठ बोलावा। पुत्र काम सुभ जग्य करावा॥**
**भगति सहित मुनि आहुति दीन्हे। प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हे॥३॥**

अर्थ वसिष्ठजी ने शृंगी ऋषि को बुलाया और पुत्रेष्टि यज्ञ कराया। भक्ति के सहित मुनिजी ने आहुति दी। हाथ मे चरु लिये अग्निदेव प्रकट हुए।

व्याख्या शृङ्गीऋषि, शान्ता के भर्ता महाराज के जामाता थे। जवान थे। तपबल बढा हुआ था। आचार्य शृङ्गीऋषि हुए। वसिष्ठजी भी सम्मिलित थे। पर यज्ञ कराया शृङ्गीऋषि से। भक्ति से कर्म का उत्कर्ष कहते है। जो भक्ति के सहित पूर्णाहुति दी तो दिव्य चरु लिये हुए अग्निदेव स्वयं प्रकट हो गये। स्थूल चरु हवि दिया गया। बदले मे दिव्य चरु मिल रहा है। आराधना का मूल श्रद्धा और भक्ति है।

**जो वसिष्ठ कछु हृदय विचारा। सकल काजु भा सिद्ध तुम्हारा॥**
**यह हवि बाँटि देहु नृप जाई। जथा जोग जेहि भाग बनाई॥४॥**

अर्थ राजा से कहा जो कुछ वसिष्ठ ने हृदय मे विचारा था वह सब कार्य तुम्हारा सिद्ध हुआ। राजन्! इस हवि को ले जाकर जिसको जैसा उचित है वैसा भाग बनाकर बाँट दो।

व्याख्या अग्निदेव राजा से कहते है कि वसिष्ठजी का विचार अमोघ है। उनके विचारानुसार सब कार्य सिद्ध हुआ अर्थात् त्रिभुवन विदित भक्त भयहारी चार पुत्र होगे। राजन्! तुम जाकर उस दिव्य हवि को रानियो मे बाँट दो। जो जितने के योग्य हो उसे उतना भाग बनाकर दो। किसको कितना दिया जायगा इसका वर्णन आगे चलकर करेंगे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. तब अदृश्य भए पावक, सकल सभहिं समुझाइ।
परमानंद मगन नृप, हरख न हृदय समाइ ॥१८९॥

अर्थ : तब सब सभा को समझाकर अग्निदेव अन्तर्धान हो गये। राजा परमानन्द में मग्न है। उनके हृदय में हर्ष समाता नहीं।

व्याख्या : अग्निदेव ने केवल राजा को ही नहीं सम्पूर्ण सभा को समझाया कि

दो चरु विभाग विधि चित्त दै सुनौ कहौं मैं टेर।
सावधान धारण करो यामें परै न फेर ॥१॥
हो श्री कीरतिसी नृपहिं पटरानी हैं तीन।
इनहीं में चरु बाँटिबे को विधि सुनहु प्रवीन ॥२॥
आधो चरु पहिले नृपति कौसल्या को देय।
करै भाग द्वै शेष को एक कैकयी लेय ॥३॥
दूजो को द्वै भाग करि नृप प्रेरित दोउ रानि।
देइ सुमित्रा को मुदित सबहिं भाँति सुखमानि ॥४॥
उलटफेर चरु में भये अनरथ होत महान।
परशुराम कौशिक जनम जानत सकल जहान ॥५॥
सावधान ह्वै आप सब करवावहु यह काज।
सकल जगत कल्याण को बीजारोपण आज ॥६॥

ऐसा समझाकर अग्निदेव अदृश्य हो गये। देवता के प्रत्यक्ष होकर हवि देने और मनोरथ सिद्धि का आश्वासन पाने से राजा के हृदय में हर्ष नहीं समा रहा है। यही परमानन्द है। ज्ञानी को ब्रह्मानन्द और भक्त को परमानन्द होता है।

तबहिं राय प्रिय नारि बोलाई। कौसल्यादि तहाँ चलि आई ॥
अर्ध भाग कौसल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा ॥१॥

अर्थ : तब राजा ने प्रिय रानियों को बुलाया। कौसल्या आदि वहाँ चली आईं। आधा भाग कौसल्या को दिया। और आधे का दो भाग किया।

व्याख्या : पत्नीशाला से यज्ञमण्डप में रानियों को बुलाया। कौसल्या, कैकेयी, सुमित्रा वहाँ आईं। वसिष्ठ और ऋषि श्रृङ्गि की अनुज्ञा से राजा ने पहिले चरु का आधा भाग कौसल्या को दिया और शेष आधे का दो भाग किया। क्योंकि कौसल्या सबसे बड़ी पट्टाभिषिक्ता महिषी थीं। अत. पहिले इन्हीं को दिया गया। फलत पहिले इन्हीं को पुत्र हुआ। शेष आधे का दो भाग किया।

कैकेई कहँ नृप सो दएऊ। रहेउ सो उभय भाग पुनि भएऊ ॥
कौसल्या कैकेई हाथ धरि। दीन्ह सुमित्रहि मन प्रसन्न करि ॥२॥

अर्थ : उसे राजा ने कैकेयी को दिया। जो बचा उसका दो भाग किया। और कौसल्या तथा कैकेयी के हाथ पर रखकर प्रसन्न मन से सुमित्रा को दिया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या यदि हवि को सोलह आने मान लिया जाय तो उसमे आठ आना कौसल्या को दिया। चार आना कैकेयी को दिया। और दो दो आना कौसल्या और कैकेयी के हाथ पर रखकर प्रसन्न मन से सुमित्रा को दिया। प्रसन्न मन से इसलिए कहा जिसमे कोई यह न समझे कि कौसल्या और कैकेयी के हाथ पर रखकर सुमित्रा को देने मे राजा की कोई अनादर की दृष्टि सुमित्रा पर थी। बल्कि इसी भाँति विभाग करके इसी क्रम से देने को अग्नि भगवान् समझा गये थे।

पहिले कौसल्या को दिया। जिसमे पहिले पुत्रोत्पत्ति उन्ही को हो। उसके पीछे कैकेयी को दिया जिसमे कौसल्या को पुत्र होने के बाद कैकेयी को पुत्र हो। कौसल्या और सुमित्रा के हाथ पर रखकर सुमित्रा को देने का भाव यह कि इनको पुत्रोत्पत्ति सबके पीछे हो और दो पुत्र हो। एक कौसल्या के पुत्र का अनुगामी हो। और दूसरा कैकेयी के पुत्र का अनुगामी हो। हवि के विभाग का भी भिन्न भिन्न रामायणो मे भिन्न भिन्न प्रकार है। उसकी व्यवस्था कल्पभेद से समझ लेनी चाहिए।

एहि विधि गर्भ सहित सब नारी। भईं हृदय हर्षित सुख भारी ॥
जादिन ते हरि गर्भहि आए। सकल लोक सुख सपति छाए ॥३॥

अर्थ इस विधि से सब नारियाँ गर्भवती हुईं। वे हृदय से हर्षित हुईं। और उन्हे बडा सुख हुआ। जिस दिन से हरि गर्भ मे आये। सब लोको मे सुख सम्पत्ति छा गई।

व्याख्या हवि भक्षण से गर्भ हुआ। यह दिव्य जन्म की विधि है। जो विधि साधारणत गर्भ की शुक्रशोणित सयोग से है उस विधि से गर्भ धारण नही हुआ। रानियाँ गर्भ धारण से हर्षित हुईं। वन्ध्या होने का कलङ्क मिटा और भारी सुख हुआ। गर्भ मे स्त्रियो को बडी पीडा होती है। पीली पड जाती है। परन्तु इस गर्भ से भारी सुख हुआ। शरीर आनन्द से भर उठा।

हवि प्राशनकाल ही गर्भधारण काल था। उसी दिन से सारे लोको म सुख सम्पत्ति छा गई। हरि के गर्भ मे आने का प्रभाव सम्पूर्ण लोको पर पडा।

मदिर महँ सब राजहि रानी। सोभा सील तेज की खानी ॥
सुख जुत कछुक काल चलि गयऊ। जेहि प्रभु प्रगट सो अवसर भएउ ॥४॥

अर्थ . मदिर राजमहल मे रानियाँ विराजती हैं। वे शोभा, शील और तेज की खानि है। सुख के सहित कुछ काल चला गया। वह अवसर आया जब कि प्रभु प्रकट होते हैं।

व्याख्या पत्नीशाला से घर आईं। अपने अपने महलो म सुशोभित है। गर्भ के कारण शोभा, शील और तेज बहुत अधिक बढ गया।

पहिले कह आये हैं कि सुख भारी हुआ। अब कहते है वह सुख यावत् गर्भकाल बना रहा। इस भाँति कुछ समय बीता। वाल्मीकि का मत है कि बारह महीने पर रामजी का जन्म हुआ। यथा ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ। अध्यात्म का मत है कि दशमे मासि कौसल्या सुषुवे पुत्रमद्भुतम्। इसम पता चलता

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है कि कल्पभेद से गर्भवासकाल में भेद है। गोस्वामीजी को चार कल्प की कथा साथ कहनी है। अत कुछ काल कहने से सबका निर्वाह हो जाता है। रामावतार का समय नियत है। जब वैसी परिस्थिति तथा ग्रहस्थिति आवेगी तभी रामावतार की सम्भावना है। सो वैसा काल आगया। उसी को स्पष्ट करते हैं

दो० जोग लगन ग्रह वार तिथि, सकल भए अनुकूल।
चर अरु अचर हरष जुत, रामजनम सुख मूल ॥१९०॥

अर्थ योग, लग्न, ग्रह, वार, तिथि सब अनुकूल हुए। चर और अचर सब हर्षित हुए। क्योकि रामजन्म सुख का मूल है।

व्याख्या : जब श्रीरामावतार होता है तो वेदसागर नामक योग पडता है। कर्क लग्न होता। कर्क के चन्द्र और गुरु, कन्या के राहु, तुला के शनैश्चर, मकर के मङ्गल, मीन के केतु और शुक्र, मेष के सूर्य और वृष के बुध होते हैं। वार मङ्गल, नक्षत्र पुनर्वसु। ऐसी अनुकूल परिस्थिति मे हरि अवतीर्ण होते हैं। चर की कौन कहे अचर म भी आनन्द का उद्रेक हो उठता है। क्योकि रामजन्म सुख का मूल है।

सकल भये अनुकूल का भाव यह है कि प्रकृति मे महान् परिवर्तन होता है। पाँच ग्रह उच्च के होते है। पुनर्वसु नक्षत्र होने से यह पता लगता है कि नौमी को मीन के दशम अश पर सूर्य रहे सो सूर्य एकाएक मेष के दशम अश पर परम उच्च होने के लिए आगये। इस भाँति सभी अनुकूलता हो गई। ऐसी परम अद्भुत घटना रामावतार मे ही होती है। परब्रह्म परमात्मा के सूर्य कुल मे अवतीर्ण होने से सूर्य की स्थिति स्वभावत परम उच्च हो जाती है[1]।

---

१ अध्यात्म रामायाण बतलाता है कि अवतारा सुबहवो विष्णोर्लीलानुकारिण । तेषा सहस्र सदृशो रामो ज्ञानमय शिव । अत अवतारो की कुण्डलियो मे भेद पडना स्वाभाविक है। श्रीरामावतार कथा है यह रामायणो से ही नही मालूम होता जो कि उनके गुणानुवाद के लिए ही बने हैं बल्कि वह अलौकिकी ग्रहस्थिति बतलाती है जिसका फलादेश महर्षि भृगु ने किया है। पाठको की जानकारी के लिए हिन्दी अनुवाद सहित फलादेश निम्नलिखित है

श्रीरामजन्मकुण्डलीयम्

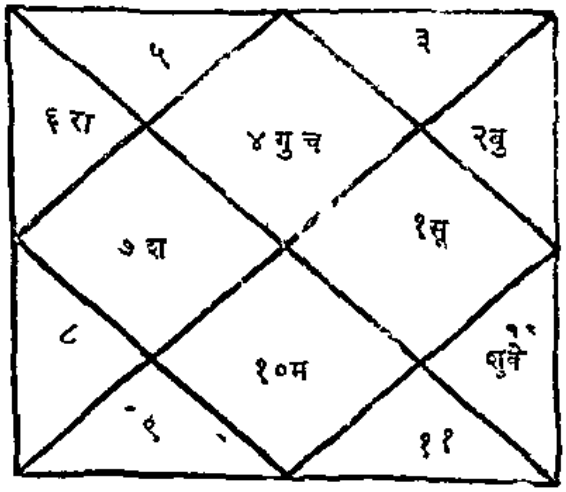


अथ वेदसागरस्तव

( पूर्णं त्रिशत्क्षपा च ) कर्कटे चन्द्रवाक्पती। कन्याया सिंहिकापुत्रस्तुलास्थो रविनन्दन ॥ पाताले मेदिनीपुत्रो वृषस्थश्चन्द्रमासुत । आकाशे मेषभे सूर्य झषस्थौ केतुमार्गवौ ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : यदि हवि को सोलह आने मान लिया जाय तो उसमे आठ आना कौसल्या को दिया। चार आना कैकेयी को दिया। और दो दो आना कौसल्या और कैकेयी के हाथ पर रखकर प्रसन्न मन से सुमित्रा को दिया। प्रसन्न मन से इसलिए कहा जिसमे कोई यह न समझे कि कौसल्या और कैकेयी के हाथ पर रखकर सुमित्रा को देने मे राजा की कोई अनादर की दृष्टि सुमित्रा पर थी। वल्कि इसी भाँति विभाग करके इसी क्रम से देने को अग्नि भगवान् समझा गये थे।

पहिले कौसल्या को दिया। जिसमे पहिले पुत्रोत्पत्ति उन्ही को हो। उसके पीछे कैकेयी को दिया जिसमे कौसल्या को पुत्र होने के वाद कैकेयी को पुत्र हो। कौसल्या और सुमित्रा के हाथ पर रखकर सुमित्रा को देने का भाव यह कि इनको पुत्रोत्पत्ति सबके पीछे हो और दो पुत्र हो। एक कौसल्या के पुत्र का अनुगामी हो। और दूसरा कैकेयी के पुत्र का अनुगामी हो। हवि के विभाग का भी भिन्न भिन्न रामायणो मे भिन्न भिन्न प्रकार है। उसकी व्यवस्था कल्पभेद से समझ लेनी चाहिए।

एहि विधि गर्भ सहित सब नारी। भई हृदय हर्षित सुख भारी ॥
जादिन ते हरि गर्भहि आए। सकल लोक सुख सपति छाए ॥३॥

अर्थ इस विधि से सब नारियाँ गर्भवती हुईं। वे हृदय मे हर्षित हुईं। और उन्हे बडा सुख हुआ। जिस दिन से हरि गर्भ मे आये। सब लोको मे सुख सम्पत्ति छा गई।

व्याख्या हवि भक्षण से गर्भ हुआ। यह दिव्य जन्म की विधि है। जो विधि साधारणत गर्भ की शुक्रशोणित सयोग से है उस विधि से गर्भ धारण नही हुआ। रानियाँ गर्भ धारण से हर्षित हुईं। वन्ध्या होने का कलङ्क मिटा और भारी सुख हुआ। गर्भ मे स्त्रियो को वडी पीडा होती है। पीली पड जाती है। परन्तु इस गर्भ से भारी सुख हुआ। शरीर आनन्द से भर उठा।

हवि प्राशनकाल ही गर्भधारण काल था। उसी दिन से सारे लोको मे सुख सम्पत्ति छा गई। हरि के गर्भ मे आने का प्रभाव सम्पूर्ण लोको पर पडा।

मदिर महँ सब राजहि रानी। सोभा सील तेज की खानी ॥
सुख जुत कछुक काल चलि गयऊ। जेहि प्रभु प्रगट सो अवसर भएउ ॥४॥

अर्थ : मदिर राजमहल मे रानियाँ विराजती है। वे शोभा, शील और तेज की खानि है। सुख के सहित कुछ काल चला गया। वह अवसर आया जब कि प्रभु प्रकट होते हैं।

व्याख्या पत्नीशाला से घर आईं। अपने अपने महलो म सुशोभित है। गर्भ के कारण शोभा, शील और तेज वहुत अधिक वढ गया।

पहिले कह आये है कि सुख भारी हुआ। अब कहते है वह सुख यावत् गर्भकाल बना रहा। इस भाँति कुछ समय बीता। वाल्मीकि का मत है कि वारह महीने पर रामजी का जन्म हुआ। यथा ततश्च द्वादशे मासे चैत्रे नावमिके तिथौ। अध्यात्म का मत है कि दशमे मासि कौसल्या सुषुवे पुत्रमद्भुतम्। इससे पता चलता

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है कि कल्पभेद से गर्भवासकाल मे भेद है। गोस्वामीजी को चार कल्प की कथा साथ कहनी है। अत. कछु काल कहने से सबका निर्वाह हो जाता है। रामावतार का समय नियत है। जब वैसी परिस्थिति तथा ग्रहस्थिति आवेगी तभी रामावतार की सम्भावना है। सो वैसा काल आगया। उसी को स्पष्ट करते हैं

दो. जोग लगन ग्रह वार तिथि, सकल भए अनुकूल।
चर अरु अचर हरप जुत, रामजनम सुख मूल ॥१९०॥

अर्थ : योग, लग्न, ग्रह, वार, तिथि सब अनुकूल हुए। चर और अचर सब हर्षित हुए। क्योकि रामजन्म सुख का मूल है।

व्याख्या : जब श्रीरामावतार होता है तो वेदसागर नामक योग पड़ता है। कर्क लग्न होता। कर्क के चन्द्र और गुरु, कन्या के राहु, तुला के शनैश्चर, मकर के मङ्गल, मीन के केतु और शुक्र, मेष के सूर्य और वृष के बुध होते हैं। वार मङ्गल, नक्षत्र पुनर्वसु। ऐसी अनुकूल परिस्थिति मे हरि अवतीर्ण होते है। चर की कौन कहे अचर मे भी आनन्द का उद्रेक हो उठता है। क्योकि रामजन्म सुख का मूल है।

सकल भये अनुकूल का भाव यह है कि प्रकृति मे महान् परिवर्तन होता है। पाँच ग्रह उच्च के होते हैं। पुनर्वसु नक्षत्र होने से यह पता लगता है कि नौमी को मीन के दशम अश पर सूर्य रहे सो सूर्य एकाएक मेष के दशम अश पर परम उच्च होने के लिए आगये। इस भाँति सभी अनुकूलता हो गई। ऐसी परम अद्भुत घटना रामावतार मे ही होती है। परब्रह्म परमात्मा के सूर्य कुल मे अवतीर्ण होने से सूर्य की स्थिति स्वभावत: परम उच्च हो जाती है[1]।

---

१. अध्यात्म रामायण बत-लाता है कि अवतारा सुबह्वो विष्णोर्लीलानुकारिण। तेषां सहस्र-सदृशो रामो ज्ञानमय शिव। अत अवतारो की कुण्डलियो मे भेद पडना स्वाभाविक है। श्रीरामा-वतार क्या है, यह रामायणो मे ही नही मालूम होता जो कि उनके गुणानुवाद के लिए ही बने हैं, बल्कि वह अलौकिकी ग्रहस्थिति बतलाती है जिसका फलादेश महर्षि भृगु ने किया है। पाठको की जानकारी के लिए हिन्दी अनुवाद सहित फलादेश निम्नलिखित है

श्रीरामजन्मकुण्डलीयम्

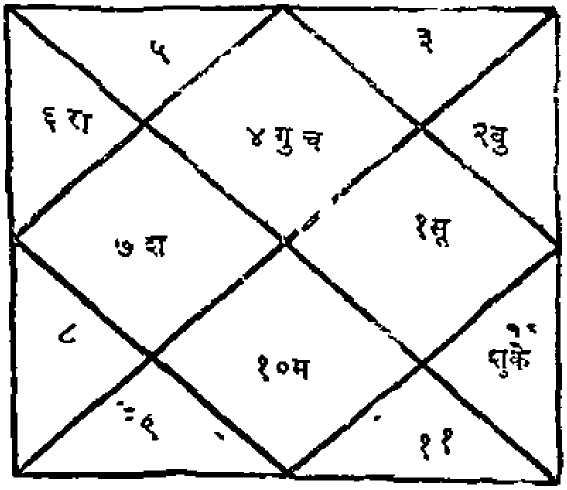


अथ वेदसागरस्तव:

(पूर्ण त्रिशत्क्षेपा च) कर्कटे चन्द्रवाक्पती। कन्यायां सिंहिकापुत्रस्तुलास्थो रविनन्दन ॥ पाताले मेदिनीपुत्रो वृषस्थश्चन्द्रमासुत। आकाशे मेषभे सूर्य. झषस्थौ केतुभार्गवौ ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नवमी तिथि मधु मास पुनीता। सुकल पच्छ अभिजित हरि प्रीता॥
मध्य दिवस अति सीतन घामा। पावन काल लोक बिश्रामा॥१॥

अर्थ नवमी तिथि थी और पवित्र चैत्र मास। शुक्ल पक्ष था और भगवान् को प्रिय अभिजित मुहूर्त मध्याह्न का समय। अत्यन्त शीत भी नही। कडी धूप भी नही। ससार मे विश्राम योग्य वह पवित्र समय था।

---

सर्वग्रहानुमानेन योगोऽथ वेदसागर। वेदसागरके जात पूर्वजन्मनि भार्गव॥
पूर्णब्रह्म स्वय कर्ता स्वप्रकाशो निरञ्जन। निर्गुणो निर्विकल्पश्च निरीह सच्चिदात्मक॥
गिराज्ञानश्च गोतीत इच्छाकारी स्वरूपधृक्। विना घ्राण सदाघ्राणी विना नेत्रे च वीक्षक.॥
अकर्णेन श्रुत सर्व गिराहीनश्च भाषितम्। करहीन कृत सर्व कर्मादिक शुभाशुभम्॥
पदहीना गति सर्वा कुशला सकला क्रिया। स्वरूपे रूपहीनश्च समर्थ सर्वकर्मसु॥
त्रैविद्यस्त्रिगुण कालस्त्रिलोकी सचराचर। महेन्द्रो देवता सर्वा नागकिन्नरपन्नगा॥
सिद्धविद्याधरो यक्षा गन्धर्वा सकला कवे। राक्षसा दानवा सर्वे मानवा वानराण्डजा॥
सागराश्च खगा वृक्षा पशुकीटादयस्तथा। शैला नद्य कला सर्वा मोहमायादिका क्रिय॥
इच्छा माया त्रिवेदाश्च निर्मिता विविधा क्रिया। शरण्य सर्वदा शान्त अलक्ष्यो लक्षक सदा॥
जरामरणविहीनश्च महाकालस्य चान्तक। सर्व सर्वेण हीनोऽपि सचराचरदर्शक॥
पूर्वापरक्रिया ज्ञानी शृणु शुक्र न चान्यथा। प्रेरित सर्वदेवैश्च कालान्तरगते कवे॥
धरित्री ब्रह्मणो लोके जगाम दु खपीडिता। शिवो ब्रह्मा सुरा सर्वे प्रार्थयाञ्चक्रुर्मुहु॥
सुदु ख वचन श्रुत्वा देववाणी भवेत् कवे। धैर्यमाध्व सुरा सर्वे प्रार्थना सफला भवेत्॥
श्रुत्वा हृष्टा सुरा सर्वे जगाम क्षितिमण्डले। नरवानररूपञ्च धृत्वा ब्रह्मेच्छया कवे॥
यत्र तत्र सुरा सर्वे हरिदर्शनमानसा। अधर्मनिरतान् लोकान् दृष्ट्वा कष्टेन पीडितान्॥
तत इच्छाप्रभावेण गोब्राह्मणसुरार्थकम्। मायामानुषरूपेण जगदानन्दहेतवे॥
आजगाम धरापृष्ठे कोशलाख्ये महापुरे। इक्ष्वाकुवशे भो शुक्र भूत्वा मानुषरूपधृक्॥
सरय्वा दक्षिणे भागे महापुण्ये च क्षेत्रके। मधुमासे च धवले नवम्या भौमवासरे॥
पुनर्वसौ च सौभाग्ये मातृगर्भात्सपुद्भव। मन्मथाना च कोटीना सुन्दर सागरोपम॥
श्यामाङ्ग मेघवर्णाभ मृगाक्ष कान्तिमत्परम्। भव्याङ्ग भव्यवर्णञ्च सर्वसौन्दर्यसागरम्॥
सर्वाङ्गेषु मनोहरमतिबल शान्तमूर्ति प्रशान्तम्। वन्दे लोकाभिराम मुनिजनसहित सेव्यमान शरण्यम्॥
कोटिवाक्पतिश्रीमान् कोटिभास्करभास्वर। दयाकोटिसागरोऽसौ यश शीलपराक्रमी॥
सर्वसार सदा शान्त. वेदसारो हि भार्गव। दशवर्षसहस्राणि भूतले स्थितिमानसौ॥
चतुर्दशसमा शक्र अभ्रमच्च वने वने। राक्षसाना वधार्थाय दुष्टानां निग्रहाय च॥
प्रादुर्भूतो जगन्नाथो मायामानुषवत्कवे। अयोध्यानगरे शुक्र बहुवत्सरसहस्रकम्॥
नानामुनिगणैर्युक्ता विहरन् धर्मवत्सल। सर्वे साक स्वमायाभिरन्तर्धानभिशात्कवे॥
इच्छया लील्या युक्त स्वीय लोके वसेत्सदा। माया क्रीडा पुनर्भयान् काले काले युगे युगे॥
लोकानाञ्च हितार्थाय कालो चैव विशापत। पठनाच्छ्रवणात्पुण्य कल्याण सतत भवेत्॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या नवमी तिथि से नवरात्रि का अन्तिम दिन कहा ' भगवान् ने स्वय कहा है कि ऋतुओ मे कुसुमाकर : वसन्त मैं हूँ। उनमे भी प्रथम मास का देवपक्ष अति पुनीत है। अभिजित मुहूर्त हरि को प्रिय है। इसी मे जन्म ग्रहण करते है। उजेले की पराकाष्ठा दोपहर का समय। प्रात काल होता तो शीत अधिक होता। जाडा का शीत सह्य है। पर चैत्र का शीत असह्य होता है। और मध्याह्नोत्तर

---

निर्भय नात्र सन्देह. सत्य सत्य न सशय.।

श्रीभृगुसहिताया श्रीभृगुशुक्रसवादे षट्त्रिंशतिक्षेपान्तरे वेदसागरफल समाप्तम्।

वेदसागरस्तव का हिन्दी अनुवाद कर्क के चन्द्र और गुरु, कन्या के राहु, तुला के शनि, मकर के मङ्गल, वृष के बुध, मेष के सूर्य, मीन के शुक्र और केतु यह वेदसागर योग है। हे भार्गव, वेदसागर मे उत्पन्न होनेवाला, पूर्व जन्म मे पूर्ण ब्रह्म, स्वय कर्ता, स्वप्रकाश, निरञ्जन, निर्गुण, निर्विकल्प, निरीह, सच्चिदात्मा, गिराज्ञानगोऽतीत, इच्छानुकूल स्वरूप धारण करनेवाला था। बिना घ्राण के सूंघता था। बिना नेत्र के देखता था। बिना कान के सुनता था और बिना वाणी के बोलता था। बिना हाथ के शुभाशुभ कर्म करता था। बिना पैर के चलता था। स्वरूप से रूपहीन होने पर भी सब कार्यों मे समर्थ था। वही वेदत्रयी रूप था। त्रिगुण था, कालरूप भी वही था, चर और अचर तीनो लोक रूप भी वही था। महेन्द्र, देवता, नाग, किन्नर, पन्नग, सिद्ध, विद्याधर, यक्ष, गन्धर्वरूप भी वही था। राक्षस दानव, मनुष्य, वन्दर, अण्डज, सागर, पक्षी, वृक्ष, पशु, कीटादिक, पर्वत, नदी सब उसकी कला है। मोहादिक क्रियाएँ हैं। उनसे इच्छा, माया, तीनो वेदो और क्रियाकलाप का बनाया।

वह सदा शान्त, शरण्य, अलक्ष्य होने पर भी सदा लक्षक है। वह जरा-मरण विहीन है और महाकाल का भी काल है। सबसे हीन होने पर भी सब कुछ है। चराचर का दर्शक है। हे शुक्र जी ! सुनो वह पहिली पिछली क्रियाओ का जानता है। इसमे सन्देह नही। हे कवि ! पूर्व काल मे सब देवताओ से प्रेरित होकर दु खी पृथ्वी ब्रह्मलोक को गई। शिव ब्रह्माजी तथा सब देवताओ ने बार-बार प्रार्थना की। हे कवि ! आर्तवाणी सुनकर देववाणी हुई हे देवताओ ! धैर्य धारण करो, तुम लोगो की प्रार्थना सफल हुई। यह सुनकर देवता लोग प्रसन्न होकर पृथ्वीमण्डल मे गये। ब्रह्माजी की इच्छा से सबने वानर का रूप धारण किया और जहाँ तहाँ हरिदर्शन की लालसा से ठहरे।

ससार मे अधर्म म लगे हुए लोगो को कष्ट मे पीडित देखकर इच्छा के प्रभाव से गो-ब्राह्मण और देवता के लिए माया से मनुष्य रूप धारण करके जगत् के आनन्द के लिए पृथ्वी पर कोशलपुर मे, हे शुक्र ! इक्ष्वाकुवश मे सरयू के दक्षिण भाग म अवतीर्ण हुए। चैत्र सुदी नवमी को मङ्गलवार, पुनर्वसु नक्षत्र मे उत्पन्न हुए। कोटि काम-सी सुन्दरता, मेघ वर्ण, श्यामाङ्ग, मृगाक्ष, परम कान्तिमान्, भव्याङ्ग, भव्यवर्ण, सभी सुन्दरताओ के समुद्र उनके सभी अङ्गो मे मनोहरता थी। अति बलवान् थे। शान्त, अति प्रसन्न, लोक को सुख देनेवाले मुनिजन के सहित सेव्यमान और शरण्य की मैं वन्दना करता हूँ। वे करोडो वाक्पति के समान श्रीमान् हैं। करोडो सूर्य के भी सूर्य हैं। करोडो दया के समुद्रो के समान हैं। बडे यशस्वी शीलवान् और

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



गरमी बढ जाती है। मध्यह्न का समय पवित्र है। इसमें ससार विश्राम करता है। प्रभु अखिल लोकदायक विश्रामा हैं। अत उनका जन्मकाल भी विश्रामदायक होना चाहिए।

सीतल मद सुरभि बह बाऊ। हर्षित सुर सतन्ह मन चाऊ॥
बन कुसुमिति गिरिगन मनि[1] आरा। स्रवहिं सकल सरिताऽमृधारा॥२॥

अर्थ शीतल मद सुगध वायु बह रहा था। देवता हर्षित थे। सन्तो के मनमे आनन्द था। वन फूल उठे। पर्वतो मे मणि खानि प्रकट हुई और सब नदियाँ अमृत की धारा बहने लगी।

व्याख्या प्रकृति मे आनन्द की उमग आगयी। जोग लग्न ग्रहवार तिथि सकल भये अनुकूल तथा गगन विमल से आकाश की अनुकूल परिस्थिति कही। सीतल मद सुरभि बह बाऊ से वायु की अनुकूल परिस्थिति कही। अति सीत न घामा से तेज की अनुकूल परिस्थिति कही। स्रवहि सकल सरितामृत धारा से

---

पराक्रमी हैं। हे भार्गव! वे सर्वसार सदा शान्त और वेदसार हैं। दश सहस्र वर्ष तक पृथ्वी पर थे। हे शुक्र! चौदह वर्षों तक वन-वन म घूमते रहे। राक्षसो के वध और दुष्टो के निग्रह के लिए माया मानुष रूप से जगन्नाथ का प्रादुर्भाव ही हुआ था। अनेक सहस्र वर्षों तक वे धर्म-वत्सल मुनि लोगो के साथ विहार करते थे। हे कवि! तत्पश्चात् सबके साथ अपनी माया मे अन्तर्धान हो गये। इच्छा से लीलायुक्त होकर अपने लोक मे सदा बसते हैं। लीला माया से फिर काल पाकर युग युग मे लोक के हित के लिए विशेषत कलियुग मे फिर होवेंगे।

इसके पढने से सुनने से सदा पुण्य और कल्याण होता है। निर्भयता प्राप्त होती है। यह सत्य है सत्य है इसम सशय नही है।

इति श्री भृगुसहिता मे भृगुशुक्रसवाद के छत्तीसवें क्षणान्तर मे वेदसागरफल समाप्त हुआ।

यह भी नहीं कह सकते कि सूय देव का रुकना या आगे बढ जाना नितान्त असम्भव है और इसका काई उदाहरण नही दिया जा सकता। क्योंकि विभिन्न पुराणा मे ऐसे अनेक उदाहरण हैं। स्वय वाल्मीकीय रामायण मे अनुसूयाजी के दश रात्रियो की एक रात्रि कर देने का वणन है। अत्रि जी भगवान् रामचन्द्र से कहते हैं

देवकार्यनिमित्तञ्च यथा सन्त्वरमानया। दशरात्र कृता रात्रि सेय मातेव तेऽनघ॥

हे अनघ रामचन्द्र! देवताओ के काय के लिए जिस अनसूया ने दस रात्रि की एक रात्रि बना दी वही यह तुम्हारी माता के तुल्य है। तो क्या इस रात्रि की एक रात्रि बिना सूर्य के रुके हो गई और फिर ग्रहमण्डल म यथोचित स्थान पाने के लिए सूय की गति म कोई विशेषता न हुई? और यहाँ तो साक्षात् पूण ब्रह्म परमात्मा का अवतार होनेवाला था।

१ 'आर' प्रत्यय हिन्दी मे वाला के अर्थ म प्रयुक्त होता है। यथा सुख से सुखार दु ख से दुखार। इसी भाँति 'मणि मे मनिआर अर्थात् मणिवाला होता है। यथा मन हरषित सब भये सुखारी इत्यादि।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जल की अनुकूल परिस्थिति कही। एवं वन कुसुमित गिरिगन मनिआरा कहकर पृथ्वी की अनुकूल परिस्थिति वतलायी और हरखित सुर संतन मन चाऊ से दैव सर्ग का आनन्दोद्रेक कहा। आसुर का नही। चर अरु अचर हर्ष युत से सृष्टि मात्र का सत्त्वोद्रेक कहा।

**सो अवसर विरंचि जब जाना। चले सकल सुर साजि विमाना॥**
**गगन विमल संकुल सुर जूथा। गावहिं गुन गंधर्व वरूथा॥३॥**

अर्थ : उस अवसर को जब ब्रह्मदेव ने जाना तो सब देवता विमान साजकर चले। निर्मल आकाश देवसमूह से भर उठा। गन्धर्व गुण गान करने लगे।

व्याख्या : प्रकृति में इस प्रकार का अनुकूल परिवर्तन ही प्रभु के अवतीर्ण होने के काल का द्योतक है। इस बात को ब्रह्मदेव ने जाना। अत गर्भस्तुति करने के लिए चले। साथ में सब देवगण अपना अपना विमान सजाकर चले। अयोध्या मे निर्मल आकाश देवगणो से भर गया। गन्धर्वसमूह ने गुणगान प्रारम्भ कर दिया। अर्थात् सब गन्धर्वो ने मिलकर सुरताल के साथ एक स्वर से गुणगान किया।

**वर्षहिं सुमन सुअंजलि साजी। गह गहि गगन दुदुंभि बाजी॥**
**अस्तुति करहिं नाग मुनि देवा। वहुविधि लावहिं निज निज सेवा॥४॥**

अर्थ : सव देवताओ ने अञ्जलि साजकर फूलो की वर्षा की। आकाश में गहगह नगाडे वजने लगे। नाग मुनि और देवता स्तुति करने लगे और अनेक विधियो से अपनी सेवा भेंट करने लगे।

व्याख्या : अञ्जलि को फूलो से सजाकर सव देवताओ ने पुष्पाञ्जलि चढाई। सो फूलो की वर्षा हो गई। आकाश मे नगाड़े भी खूब बजे। पाताल लोक से आकर नाग लोग मनुष्य लोक से मुनि लोग : क्योकि केवल वे ही लोग जान सके थे कि अवतार हुआ चाहता है : और स्वर्ग से आकर देवताओ ने स्तुति करना आरम्भ कर दिया और भी अनेक विधि आरती जयघोष आदि से पूजन करने लगे।

**दो. सुर समूह विनती करि, पहुँचे निज निज धाम॥**
**जगनिवास प्रभु प्रगटे, अखिल लोक विश्राम॥१९१॥**

अर्थ : देवताओ के समूह विनती करके अपने अपने धाम मे पहुँचे। जगत् के आश्रय सम्पूर्ण लोक विश्राम रूप प्रभु प्रगट हुए।

व्याख्या : जबतक देवता लोग मार्ग मे रहे तबतक नही प्रकट हुए। जब वे लोग अपने अपने लोको को पहुँच गये अर्थात् उनके भी विश्राम पाने पर प्रगटे। जगनिवास का प्रगटना माया का पर्दा हटने पर ही सम्भव है। लोक विश्रामवाल मे अखिल लोक विश्राम रूप प्रगट हुए। यहाँ पर जन्मे न कहकर प्रगटे अर्थात् आविर्भाव कहा। यथा : आविरासीत् तमोनुदः।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



छं[1] भए प्रगट कृपाला दीनदयाला कौसल्या हितकारी।
हरषित महतारी मुनि मनहारी अद्भुत रूप निहारी॥
लोचन अभिरामं तनु घनश्यामं निज आयुध भुजचारी।
भूषन वनमाला नयन बिसाला सोभासिंधु खरारी॥१॥

अर्थ कृपाल, दीनदयाल, कौसल्या के हितकारी प्रकट हुए। मुनि के मन का हरण करनेवाला अद्भुत रूप देखकर माँ हर्षित हुई। नयनानन्द श्याम मेघ के समान शरीर चार भुजाओ मे अपना आयुध शख, चक्र, गदा, पद्म धारण किये हुए आभूषण और वनमाला पहिने विशाल नेत्रवाले खर के शत्रु शोभा के समुद्र थे।

व्याख्या दपति उर धरि भगति कृपाला। निज आश्रम निवसे कछु काला। वही कृपाल, मनु शतरूपा से किये हुए प्रतिज्ञानुसार प्रकट हुए। ब्रह्मदेव ने स्तुति की थी। जेहि दीन पियारे वेद पुकारे द्रवहु सो श्री भगवान। सो उनकी प्रार्थनानुसार दीनो पर दया करके कौसल्या हितकारी, कौसल्या की कीर्ति दिगन्तव्यापिनी करने के लिए तथा वात्सल्य सुख प्रदान करने के लिए प्रकट हुए। यथा सो प्रभु प्रम भगति बस कौसल्या के गोद। तथा कीरति जासु सकल जग माची।

जब गर्भ मे आये तभी माँ हर्षित हुई थी। यथा भई हृदय हर्षित सुख भारी। अब रूप देखकर हर्षित हुई। रूप देखकर विचार किया कि ऐसा रूप तो देखा नही गया। इसे देखकर तो मुनि का मन मोहित हो जायगा। जिस अद्भुत रूप को देखकर शतरूपा रूप मे तृप्ति नही हुई थी उसीका दर्शन कौसल्या रूप मे हो रहा है। यथा चितवहि सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहि मनु सतरूपा।

रूप की अद्भुतता कहते हैं। घनश्याम शरीर जिसे देखकर आँखें तृप्त हो जायँ। चार भुजाएँ जिनमे शखचक्रादि धारण किये हुए हैं। गहना पहिने है। वनमाला गले मे है। पैर तक लटकी हुई माला को वनमाला कहते है। यथा पादावलम्बिनी माला वनमालेति कथ्यते। आयुध भूषण और माला सहित पुत्रोत्पत्ति न देखी गई और न कभी सुनी गई। ऐसे विशाल नेत्र भी कही देखे नही गये। शोभासिन्धु होने पर भी खरारि हैं। यहाँ खर राक्षस मात्र का उपलक्षण है। खरारि से धर्म सरक्षण कहा अथवा खरारि कहने से मायानाथ कहा। यथा सुरमुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अस कौतुक करयौ। देखत परस्पर राम, करि सग्राम रिपुदल लरि मरयौ।

छं कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि विधि करौ अनत।
माया गुन ग्यानातीत अमाना वेद पुरान भनत॥
करुना सुख सागर सब गुन आगर जेहि गावहि श्रुति सत।
सो मम हित लागी जन अनुरागी भयउ प्रगट श्रीकत॥२॥

---

१ यह भी चौपैया छद है। लक्षण पहिले कहा जा चुका है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ दोनों हाथ जोडकर कहा कि हे अनन्त, तुम्हारी स्तुति किस भाँति करूँ। तुम माया गुण और ज्ञान से परे हो, मानरहित हो ऐसा वेद पुराण ने कहा है। जिसे श्रुति वेद और सन्तो ने करुणा और सुख का सागर और सब गुणो का आगर विचक्षण कहकर गान किया, वही भक्तो पर अनुराग करनेवाले श्रीपति मेरे हित के लिए प्रकट हुए हैं।

व्याख्या नित्य की ध्येय मूर्ति को सामने देखकर माता पहिचान गई। अत प्रणाम और स्तुति करती है, माता कहती है हे अनन्त। वर्णन तो परिच्छिन्न पदार्थ का होता है, तुम तो अपरिच्छिन्न अनन्त हो तुम्हारी स्तुति कैसे करूँ? क्योकि वेद पुराण ने कहा है कि तुम मायागुण सत्त्व रज तम से परे निस्त्रैगुण्य हो, ज्ञान से परे हो क्योकि ज्ञेय नही हो, मान से रहित हो, क्योकि अप्रमेय स्वय सिद्ध हो, इस भाँति आप निर्गुणरूप हो, पर वेद और सन्त आपको सगुण रूप से भी वर्णन करते हैं। बतलाते हैं कि आप करुणा और सुख के सागर हो। और सब गुणो के आगर हो। सो हे लक्ष्मीपति विष्णो। भक्तो के अनुरागी। मेरे हित के लिए प्रकट हुए हो। मुझे पुत्रवती बनाने के लिए मेरी कीर्ति को दिगन्तव्यापिनी करने के लिए मुझे सब प्रकार से सुखी करने के लिए प्रकट हुए हो। इस प्रकार माता ने भगवान् के अवतीर्ण होने का मुख्य कारण निरूपण किया।

छ ब्रह्माड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै।
मम उर सो बासी यह उपहासी सुनत धीर गति थिर न रहै॥
उपजा जब ग्याना प्रभु मुसुकाना चरित बहुत बिधि कीन्ह चहै।
कहि कथा सुहाई मातु बुझाई जेहि प्रकार सुत प्रेम लहै॥३॥

अर्थ एक एक रोम मे माया के निर्मित ब्रह्माण्डो के समूह लगे हुए हैं। ऐसा वेद कहते हैं। वह प्रभु मेरे उर मे निवास करे। यह उपहासी की बात सुनने पर पण्डित की बुद्धि स्थिर नही रह सकती। जब ज्ञान उपजा तो प्रभु मुसकराए। बहुत प्रकार का चरित करना चाहते हैं। इसीलिए सुन्दर कथा कहकर माँ को समझाया जिससे वह पुत्रस्नेह को प्राप्त हो।

व्याख्या यह स्तुति क्षीरशायी भगवान् की है। इन्ही के रोम रोम मे ब्रह्माण्डनिकाय है। वास्तविक भेद ब्रह्म, विष्णु या क्षीरशायी भगवान् मे कुछ भी नही है। उपासको के भेद से भेद प्रतीति होती है। माता सोचती है कि ऐसा प्रभु मेरे उदरगत कैसे हुआ। यह तो अघटितघटना है और उसके लिए उपहास की बात है। देखने की कौन कहे इसके सुनने से बडे-बडे पण्डितो की बुद्धि चञ्चल हो उठेगी। इस भाँति माता को ज्ञान हुआ। शतरूपा जन्म मे इसने माँगा था 'सोइ गति सोइ मति सोइ भगति सोइ निज चरन सनेहु। सोइ बिबेक सोइ रहनि प्रभु हमहि कृपा करि देहु। सो विवेक उपजा। इसीलिए माता को ही यह रूप दिखलाया, पिता को नही। क्योकि उनका वरदान था सुत विषयिक तव पदरति

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



होऊ। मोहि वह मूढ कहै किन कोऊ। प्रभु मुस्करा पड़े। इस मुसकराहट मे माया की शक्ति भरी पडी है। यथा माया हास बाहु दिगपाला मुसकराए कि मुझे तो बहुत चरित करना है और जिससे माता का काम लेना है वह मेरे उदरवासी होने मे ही सन्देह कर रही है। अत पुत्रप्रेम की प्राप्ति के लिए माता को समझाया यथा

रावण के वध ते मिटै, महि को भार अपार।
एहि हित विधि विनयौं लयो, मैं मानुष अवतार॥
आराध्यौ साध्यौ तपहि, तुम दसरथ इक संग।
निज सुत करि जाच्यौ हमहि, हिय लालसा अभंग॥
पिछल पुण्य प्रभाव ते, तुम देख्यौ यह रूप।
जो मेरो दर्शन करै, सो न परै भव कूप॥
एहि कारन तारन भवहि, भयो प्रगट मैं आय।
सफल करौ मन कामना, मोको गोद खेलाय॥

छ माता पुनि बोली सो मति डोली तजहु तात यह रूप।
कीजै सिसु लीला अति प्रिय सीला यह सुख परम अनूप॥
सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना होइ बालक सुर भूप।
यह चरित जे गावहि हरिपद पावहि ते न परहि भवकूप॥४॥

अर्थ तब माता बोली। उसकी बुद्धि विचलित हो उठी। हे तात ! इस रूप को छोड दो अत्यन्त प्रिय शिशुलीला करो। यह सुख परम अनूप है। सुजान ने यह वचन सुनाकर रोना शुरू किया। सुरभूप बालक हो गये। इस चरित का जो गान करता है वह हरिपद पाता है। वह भवकूप म नही पडता है।

व्याख्या प्रभु ने समझाया। तदनुसार माता समझ गई। वह ज्ञानवाली बुद्धि स्थिर न रह गई। इसलिए वह स्वय प्रार्थना करती हैं कि यह चतुर्भुज रूप छोड दो और शिशुलीला करो। क्योकि यह अत्यन्त आनन्ददायिनी है। भाव यह कि अन्य अवस्थाओ की लीला भी आनन्ददायिनी है पर शिशुलीला की बात ही दूसरी है। भगवान् के दर्शन का सुख माता इस समय अनुभव कर रही है। इस सुख की उपमा नही है। पर शिशुलीला के सुख को परम अनूप बतला रही हैं। और उसके लिए इस रूप को छोडने की प्रार्थना कर रही हैं।

सुजान हैं। जो स्वय चाह रहे है वही प्रार्थना माँ कर रही है। अत उसकी पूर्ति म बडी त्वरा से काम लिया। एवमस्तु भी नही कहा और तुरन्त बालक होकर रोना ही प्रारम्भ कर दिया। रोदन ठाना, चुप होत ही नही। इस चरित की फलश्रुति कहते हैं कि जो गान करता है वह हरिपद पाता है। अर्थात् उसे हरिधाम की प्राप्ति होती है। फिर भवकूप म नही पडता अर्थात् मुक्त हो जाता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


यह दूसरा गुणग्राम कौसल्याकृत स्तुति भरणी नक्षत्र है। इसमें तीन तारे चमकते हैं। तीनों वेदोक्तियाँ ही तीन तारे हैं। यथा १ वेद पुरान भनता २ गावहि श्रुति संता और ३ रोम रोम प्रतिवेद कहै। इसकी फलश्रुति है दानि मुकुति धन धर्म धाम के। सो खरारि कहकर प्रभु द्वारा धर्म स्थापन कहा। श्रीपति कहकर धनदाता कहा। हरिपद से धाम और न परै भव कूपा से मुक्ति कही।

दो विप्र धेनु सुर संत हित, लीन्ह मनुज अवतार।
निज इच्छा निर्मित तनु, माया गुन गोपार ॥१९२॥

अर्थ ब्राह्मण, गाय, देवता और सन्त के लिए अपने संकल्प का शरीर बनकर उसने मनुष्य का अवतार धारण किया। जो माया, गुण, और इन्द्रिया के परे है। अथवा वाणी से परे ।

व्याख्या वह प्रभु मायागुण से परे है। यथा प्रकृति पार प्रभु सब उरवासी वाणी से परे है। यथा मन समेत जेहि जान न बानी। उसने इच्छामात्र स शरीर का निर्माण किया। यथा इच्छामय नरदेह सवारे। होइहौ प्रगट निकेत तुम्हारे। भाव यह कि उसका शरीर धारण जीव की भाँति कर्मपरतन्त्र नही। वह सर्वतन्त्रस्वतन्त्र है। उसने विप्र धेनु सुर संतहित मनुष्य का शरीर धारण किया। जिसने वेद के उद्धार के लिए मत्स्य शरीर धारण किया। संसार को सँभालने के लिए कूर्म शरीर धारण किया। पृथ्वी को ऊपर लाने के लिए वाराह शरीर धारण किया। दैत्य को मारने के लिए नृसिंह शरीर धारण किया। उसने विप्रधेनु सुरसंत के लिए मनुष्य शरीर धारण किया। उस समय इन्ही चार पर घोर विपत्ति थी। विप्रधेनु पर विपत्ति। यथा जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहि। नगर ग्रामपुर आगि लगावहि। सुरपर विपत्ति। यथा छुधाछीन बलहीन सुर, सहजहि मिलिहहि आइ। तब मारिहौ कि छाँडिहहु, भलीभाँति अपनाइ। तथा देइ देवतन्ह गारि प्रचारि सन्त पर विपत्ति। यथा साधुन्ह सन करवावहि सेवा तथा निसिचर निकर सकल मुनि खाए।

सुनि सिसु रुदन परम प्रिय बानी। सम्भ्रम चलि आईं सब रानी।
हरषित जहँ तहँ धाईं दासी। आनँद मगन सकल पुरबासी ॥१॥

अर्थ बच्चे के रोने की परमप्रिय वाणी सुनकर उत्कण्ठायुक्त हो सब रानियाँ चली आईं। दासियाँ आनन्दित होकर जहाँ तहाँ दौड़ चली। सब नगर निवासी आनन्द म मग्न हो गये।

व्याख्या रुदन की वाणी प्रिय तो बच्चे की ही होती है। यह तो राम शिशु के रुदन की वाणी है। इसलिए परमप्रिय वाणी कहा। पहिले कह आये हैं। सुनि वचन सुजाना रोदन ठाना ह्वै बालक सुरभूपा। अत उस रुदन को सुनकर सब रानियाँ ससम्भ्रम चली आईं। सब महलो तक वाणी पहुँची और फिर भी परम प्रिय है। परम उत्कण्ठा है अत रानियाँ स्वयं चली आ रही हैं। दासी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

भेजकर कोई समाचार नही पुछवा रहो है। पहिले से प्रसव काल की वेदना का कोई समाचार नही लगा। एकाएक शिशुरुदन ही सुनाई पडा। मालूम हुआ कि पुत्रोत्पत्ति हुई।

बडे बूढो को समाचार देने के लिए दासियां जहाँ तहाँ आनन्दित हो दौड पडी। ये आनन्द के तरग मे पडी हुई वहती चली जा रही हैं। समाचार पाकर पुरवासी आनन्द मे डूबाडूब हो गये। ये लोग भँवर मे पड गये। यथा रघुवर नयन आनद बधाई। भँवर तरग मनोहरताई।

दसरथ पुत्रजन्म सुनि काना। मानहुँ ब्रह्मानद समाना॥
परम प्रेम मन पुलक सरीरा। चाहत उठन करत मति धीरा॥२॥

अर्थ दशरथजी पुत्र का जन्म कान से सुनते ही मानो ब्रह्मानन्द म मग्न हो गय। सम्पूर्ण शरीर म रोमाञ्च हो आया। वे उठना चाहते हैं और वुद्धि को स्थिर कर रहे हैं।

व्याख्या दासी ने चक्रवर्तीजी को समाचार दिया। पुरवासी तो समाचार सुनकर आनन्द म मग्न हुए। चक्रवर्तीजी ब्रह्मानन्द मे मानो मग्न हो गये। ये भारी भँवर म पड गये। आनन्दातिरेक से शरीर शिथिल हो गया। बुद्धि चञ्चल हो उठी। अत लिखते हैं चाहत उठत करत मतिधीरा। सो उठते वना नही। अव आगे क्या करना इस निश्चय के लिए वुद्धि को स्थिर कर रहे हैं।

जाकर नाम सुनत सुभ होई। मोरे गृह आवा प्रभु सोई॥
परमानद पूरि मन राजा। कहा बुलाइ वजावहु वाजा॥३॥

अर्थ जिसका नाम सुनने से शुभ होता है। मेरे घर मे वही प्रभु आया। राजा का मन परमानन्द से पूर्ण हो गया। बुलाकर कहा कि बाजे बजाओ।

व्याख्या गुरुजी ने कहा था कि त्रिभुवन विदित भगत भयहारी बेटा होगा। गुरुजी का वाक्य अमोघ है। अत उसी का परामर्श करते है कि जिसका नाम सुनने से शुभ होता है। यथा मगल भवन अमगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी। वह प्रभु मेरे घर आये। इससे बढकर महोत्सव का समय और क्या होगा? यह सोचकर राजा का मन परमानन्द से भर उठा। ज्ञानी को ब्रह्मानन्द होता और भक्त को परमानन्द होता है। राजा को क्रम से दोनो हुआ। पहिले ब्रह्मानन्द मे डूबाडूब हो गये। जब अपने को सँभाला मतिधीर किया तो परमानन्द से पूर्ण हो उठे। सेवको को बुलाकर चक्रवर्तीजी को आज्ञा देनी पडी कि बाजे बजाओ। पुत्रोत्सव सुनते ही प्रजामात्र मे वाजा बजना चाहता था। सो आनन्द विभोर है। बाजा बजाने की सुधि ही नही है। इसलिए सावधान होते ही पहिली आज्ञा राजा की बाजा बजाने के लिए हुई।

गुरु वसिष्ठ कहँ गयउ हकारा। आए द्विजन सहित नृपद्वारा॥
अनुपम बालक देखेन्हि जाई। रूप रासि गुन कहि न सिराई॥४॥

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : गुरु वसिष्ठ के यहाँ हँकार बुलावा गया। वे ब्राह्मणो के साथ राजद्वार आये। जाकर अद्भुत बालक को देखा। रूप की तो राशि है और गुण उसके वर्णन नही किये जा सकते।

व्याख्या : दूसरी आज्ञा चक्रवर्तीजी की हुई कि गुरुजी को बुलाओ। सो गुरुजी के पास हँकार गया। ऐसे समय मे हँकार भेजा जाता है। राजा के यहाँ किसी आनन्द मे सम्मिलित होने के लिए बुलाहट आती है। तो उसे आज भी हँकार कहते हैं। कर्मकाण्ड कराना है। इसलिए गुरुजी ब्राह्मणो के साथ राजद्वार मे उपस्थित हुए। पहिला काम यह किया कि बालक को देखा। उस सद्य प्रसूत की उपमा नही। रूप की तो राशि है। यद्यपि गुण देखने की अभी कौन चरचा है? पर सामुद्रिक शास्त्र मे सब लक्षण दिये हुए हैं। जिनसे गुणो का पता केवल शरीर सगठन से चल जाता है। अत शास्त्रदृष्टि से गुरुजी ने देख लिया कि अवर्णनीय गुण है। यथा :

या सिसु के गुन नाम बडाई।
को कहि सकै सुनौ नरपति श्रीपति समान प्रभुताई॥
जद्यपि बुधिवय रूपसील गुन समय चारु चारो भाई।
तदपि लोकलोचन चकोर ससि राम भगत सुखदाई॥ गी।

दो. नंदीमुख सराध करि, जातकरम सब कीन्ह।
हाटक धेनु बसन मनि, नृप बिप्रन्ह कहँ दीन्ह॥१९३॥

अर्थ : राजा ने नान्दीमुख श्राद्ध करके सब जातकर्म किया और सुवर्ण, धेनु, वसन और मणियो से ब्राह्मणो का सत्कार किया।

व्याख्या नान्दीमुख श्राद्ध तथा जातकर्म और दान नालच्छेदन के पहिले ही पहले होता है। क्योकि उस समय प्रजातीर्थ उपस्थित होता है। उस समय के दान का बडा माहात्म्य है। नालच्छेदन के बाद वृद्धयशौच लग जाता है। फिर कोई कर्मकाण्ड नही हो सकता।

सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू। सो यह उछाह[1] सिसिर ऋतु के प्रथम

---

१. आजु सुदिन सुभघरी सुहाई।
रूप सील गुन धाम राम नृप भवन प्रकट भए आई॥
सदन बेद धुनि करत मधुर मुनि बहु बिधि बाज बधाई।
पुर बासिन्ह प्रिय नाथ हेतु निज-निज सपदा लुटाई॥
मनि तारन बहु बेतु पताकन्हि पुरी रुचिर करि छाई।
मागध सूत द्वार बदीजन जहँ तहँ करत बडाई॥
सहज सिंगार किए बनिता चली मगल बिपुल बनाई।
गावहिं देहिं असीस मुदित चिरजीवौ तनय सुखदाई॥
बीथिन्ह कुकुम कीच अरगजा अगर अबीर उडाई।
नाचहिं पुर नर नारि प्रेम भरि देह दसा बिसराई॥ गीतावली

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मास माघ सुदि पंचमी[1] से उपमित है। जिसे श्रीपञ्चमी या वसन्त पञ्चमी कहते हैं। पञ्चमी में पाँच कार्य हुए। १ रानी आई। २ दासी धाई। ३. दशरथजी को समाचार मिला। ४ वसिष्ठजी की बुलाहट हुई और ५ जातकर्म किया गया।

ध्वज पताक तोरन पुर छावा। कहि न जाइ जेहि भाँति बनावा॥
सुमन वृष्टि अकास ते होई। ब्रह्मानंद मगन सब लोई॥१॥

अर्थ ध्वजा, पताका और वन्दरवार से नगर छा सा गया। कैसी सजावट हुई। सो कही नहीं जा सकती। आकाश से पुष्पवृष्टि हो चली। सब लोग ब्रह्मानन्द में मग्न हो गये।

व्याख्या ध्वजा चतुष्कोण और पताका त्रिकोण होती है। यथा : कदलि

---

१. सहेली सुनु सोहिलोरे।
भूपति भवन सोहिलो सुनि बाजै गहगहे निसान।
जहँ तहँ सजहिं कलस धुज चामर तोरन केतु बितान॥
सीचि सुगंध रचै चौकें गृह आँगन गली बजार।
दल फल फूल दूब दधि रोचन घर घर मंगलचार॥
सुनि सानंद उठे दसस्यंदन सकल समाज समेत।
लिये बोलि गुरु सचिव भूमिसुर प्रमुदित चले निकेत॥
जात कर्म करि पूजि पितर सुर दिये महि देवन दान।
तहि अवसर सुत तीन प्रगट भये मंगलमुद कल्यान॥
सजि आरती विचित्र थार कर जूथ जूथ वर नारि।
गावत चलीं बधावन लै लै निज निज कुल अनुहारि॥
असहो दुसही मरहु मनहि मन बैरिन बढ़हु बिषाद।
नृप सुत चारि चारु चिरजीवहु संकर गौरि प्रसाद॥
लै लै ढोव प्रजा प्रमुदित चले भाँति भाँति भरि भार।
करहिं गान करि आन राम की नाचहिं राजदुआर॥
गजरथ वाजि बाहनी वाहन सबनि सवारे साज।
जनु रति पति रितु पति कोसलपुर विहरत सहित समाज॥
घटा घंटि पखाउज आउज झाझ बेनु डफ तार।
नूपुर धुनि मंजीर मनोहर कर कंकन झनकार॥
नृत्य करहिं नट नटी नारि नर अपने अपने रंग।
मनहु मदन रति विविध वेषधरि नटत सुदेस सुढंग॥
कुंकुम अगर अरगजा छिरकहिं भरहि गुलाल अबीर।
नभ प्रसून झरि पुरी कोलाहल भई मनभावति भीर॥
वारहि मुकुता रतन राजमहिषी पुरसुमुखि समान।
बगरे नगर निछावरि मनिगन जनु जुवारि जव धान॥ गीतावली

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तालवर ध्वजा पताका। तोरण वन्दवार को कहते हैं। इनसे नगर छाया हुआ मालूम पडने लगा। नगर की ऐसी सजावट हुई कि वर्णन नही की जा सकती। अब आकाश की सजावट कहते हैं कि वहाँ से फूल झर रहे हैं। ब्रह्म के आविर्भाव से सम्पूर्ण प्रजा मे ब्रह्मानन्द का अविर्भाव हुआ। क्योकि सबको प्रभु के चरणो मे प्रीति थी। यथा : ब्रह्मानन्द मगन कपि सबके प्रभु पद प्रीति।

वृंद वृंद मिलि चली लोगाई। सहज सिंगार किएँ उठि धाई ॥
कनक कलस मंगल भरि थारा। गावत पैठहिं भूप दुआरा ॥२॥

अर्थ . स्त्रियाँ झुण्ड की झुण्ड मिलकर चली। सहज शृङ्गार किये हुए दौड पडी। स्वर्णघट और थार मे मङ्गलद्रव्य भर भरकर गाती हुई राजद्वार मे प्रवेश करती हैं।

व्याख्या . स्त्रियाँ सखी सहेलियो के साथ चली। इसलिए वृन्द वृन्द मिलि कहते है। वेदी सीस तमोल मुख सीस सिलसिलेवार। दृग आंजे राजे खरी साजे सहज सिंगार। बस इतना ही शृङ्गार किये बाजा सुनते ही दौड पडी। कनक कलश सिर पर थार हाथ मे। दधि दूर्वारोचन फलफूला। नव तुलसीदल मगल मूला। इत्यादि मगल द्रव्य लिये वेग से चली। राजद्वार मे प्रवेश के पूर्व ही मङ्गलगान[1]

---

१ आजु महामगल कोसलपुर सुनि नृप के सुत चारि भये।
सदन सदन सोहिलो सोहावनो नभ अरु नगर निसान चये ॥
सजि सजि जान अमर किन्नर मुनि जानि समय सुमगान ठये।
नाचहि नभ अप्सरा मुदित मन पुनि पुनि बरसहि सुमन चये ॥
अति सुख वेगि बोलि गुरु भूसुर भूपति भीतर भवन गये।
जातकरम करि कनक बसन मनि भूषित सुरभि समूह दये ॥
दल फल फूल दूब दधि रोचन जुवतिन्ह भरि भरि थार लये।
गावत चली भीर भई बीथिन्ह बदिन बाकुरे बिरद बए ॥
कनक कलस चामर पताक ध्वज जहँ तहँ बदनवार नये।
भरहि अबीर अरगजा छिरकहि सकललोक एक रग रये ॥
उमगि चल्यो आनद लोक तिहुँ देत सबनि मदिर रितए।
तुलसीदास पुनि भरेइ देखियत, रामकृपा चितवनि चितए ॥
गावैं बिबुध बिमल बर बानी।
भुवन कोटि कल्यान कद जो जायो पूत कौसिला रानी ॥
पाइ अघाइ असीसत निकसत जाचक जन भये दानी।
यों प्रसन्न कैकई सुमित्रहि होहु महेस भवानी ॥
दिन दूसरे भूप भामिनी दोउ भई सुमगल खानी।
भयो सोहिलो सोहिलो मो जनु सृष्टि सोहिलो सानी ॥ गीतावली

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रारम्भ कर देती हैं। आज भी यही चाल है कि ऐसे अवसरो पर मङ्गलगान करती हुई स्त्रियाँ देहली का उल्लघन करती हैं।

करि आरति नेछावरि करही। वार बार सिसु चरनन्हि परही॥
मागध सूत बदि गन गायक। पावन गुन गावहिं रघुनायक॥३॥

अर्थ आरती करके निछावर करती हैं। वार-वार शिशु के चरणो मे पडती है। मागध, सूल, वन्दी और गायकलोग रघुनायक का पवित्र गुणगान करते हैं।

व्याख्या चक्रवर्तीजी के यहाँ रोक नही है। प्रसूतिकागृह तक सब पहुँच जाती है। राजा मे देवभाव है अत आरती होती है। निछावरि होती है। वार-वार प्रणाम हो रहा है। सूता पौराणिका प्रोक्ता मागधा वशशसिन। वन्दिन-स्त्वमलप्रज्ञा प्रस्तावसदृशोक्तय। सूत पौराणिक होते हैं। मागध वशप्रशसक होते हैं। निर्मल वुद्धि वाले वन्दी मौके की बात वोलनेवाले होते है। ये रघुनायक चक्रवर्तीजी के पवित्र गुणो का गान करते है। अथवा मुनियो के उपदेशानुसार भाविनी वृत्ति का आश्रयण करके रघुनायक श्रीरामजी के गुणो का गान करते है। राजा पृथु के सिंहासनासीन होने के समय मुनियो की आज्ञा से वन्दी आदिको ने भाविनी वृत्ति का आश्रय करके ही गुणगान किया था।

सर्वस[1] दान दीन्ह सब काहू। जेहि पावा राखा नहिं ताहू॥
मृगमद चदन कुकुम कीचा। मची सकल बीथिन्ह बिच बिचा॥४॥

अर्थ सब ने सर्वस्व दान दे दिया। और जिसने पाया उसने भी रक्खा नही। कस्तूरी चन्दन और केसर की कीच सभी गलियो मे फैल गई।

व्याख्या सबने वर्वस्व दान दिया। जिसने पाया उसने भी नही रक्खा। इस भाँति सम्पत्ति का हेर-फेर अवध मे हो गया। किसी समय सोमवती अमावस्या लगी। सब मुनियो की इच्छा हुई कि गोदान कर। मुनि सौ थे और एक ही के पास गौ थी। जिसके पास गाय थी उसने किसी को दान दिया। उसने भी दान कर दिया। इस भाँति वह गौ दान होती गई। अन्त मे फिर वह उसी मुनि के पास पहुँच गई। जिसकी कि वह पहिले थी और गोदान का फल सबको हो गया। लालच किसी को नही और देने की इच्छा सबको। ऐसी अवस्था मे सम्पत्ति घूमघामकर जहाँ की तहाँ आ जाती है।

कस्तूरी, केसर, चन्दन सब एक दूसरे पर फेंक रहे है। आनन्दातिशय मे सभ्यता का बन्धन ढीला हो जाता है। अत केसर कस्तूरी युक्त चन्दन का कीच गलियो मे हो गई शिशिर ऋतु के दूसरे महीने मे फाल्गुन का उत्सव प्रारम्भ हुआ।

दो गृह गृह बाज बधाव सुभ, प्रकटेउ सुखमाकद।
हरखवत सब जह तहँ, नगर नारिनर बृद॥१९४॥

---

१ यहाँ अत्युक्ति अलकार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ . घर-घर आनन्द का बधावा बजा। क्योंकि परम शोभा के बादल आज प्रकट हुए हैं। नगर के नर और नारियों के समूह सब जहाँ तहाँ हर्षित थे।

व्याख्या . अब स्त्रियाँ राजद्वार से लौटी हैं तो घर-घर मङ्गलाचार होने लगा। बधावा बजने लगा। शोर हो गया कि सुषमाकन्द प्रकट हुए हैं। वहाँ परम शोभा की वर्षा हो रही है। इससे नगर के सब नर-नारी जहाँ तहाँ हर्षित हैं।

कैकयसुता सुमित्रा दोऊ। सुंदर सुत जनमत[1] भैं ओऊ ॥
वोह् सुख संपति समय समाजा। कहि न सकै सारद अहिराजा ॥१॥

अर्थ कैकयराज की बेटी और सुमित्रा ने दोनों से सुन्दर बेटों को जन्म दिया। उस सुख सम्पत्ति समय और समाज को सरस्वती और शेष भी नहीं कह सकते।

व्याख्या ऊपर के दो दोहों मे माघ मास का उत्सव कहा। अब दो दोहों मे फाल्गुन का उत्सव कहते हैं। कुल चार दोहों मे सिसिर सुखद प्रभु जनम उछाहू कहा। यहाँ दोऊ शब्द का प्रयोग सुन्दर सुत के साथ अन्वित होकर सुमित्रा को दो पुत्र होना भी द्योतित करता है। वह १ सुख यथा

गावत नाचत मो मन भावत सुख सो अवध अधिकानी।
देत लेत पहिरत पहिरावत प्रजा प्रमोद अघानी ॥
गान निसान कोलाहल कौतुक देखत दुनी सिहानी।
हरि विरंचि हर पुर शोभा कुल कौसलपुरी लोभानी ॥
आनन्द अवनि राजरानी सब माँगहुँ कोख जुड़ानी।
आसिष दै दै सराहहिं सादर उमा रमा ब्रह्मानी ॥
विभव विलास वाढि दसरथ की देखि न जिनहि सोहानी।
कीरति कुसल भूति जय रिधि सिधि तिन्हपर सबै कोहानी ॥

२ सम्पति। यथा उमगि चल्यो आनन्द लोक तिहुँ देत सबहि मंदिर रितये। तुलसिदास पुनि भरई देखिअत राम कृपा चितवनि चितए। ३ समय। यथा : सुमन वृष्टि अकास ते होई। ब्रह्मानद मगन सब लोई। ४ समाज। यथा घर घर बाज बधाव सुभ प्रकटेऊ सुखमा कन्द। शारदा स्वर्ग की वक्ता, अहिराज पाताल के वक्ता नही कह सकते। क्योंकि वहाँ यह सुख हुआ ही नहीं। मर्त्यलोक के वक्ता का नाम नही लिया। क्योंकि वे तो उस सुख का अनुभव कर ही रहे हैं।

अवधपुरी सोहै एहि भाँती। प्रभुहि मिलन आई जनुराती ॥
देखि भानु जनु मन सकुचानी। तदपि बनी संध्या अनुमानी ॥२॥

---

१ दिन दूसर भूप भामिनि दोउ भईं सुमंगल खानी। दशमी को सूर्योदय के पूर्व पुष्य नक्षत्र मीन लग्न मे भरतजी का तथा अश्लेषा म दोपहर को लक्ष्मण और शत्रुघ्न का जन्म हुआ। तीनों भाइयों की सब ग्रहस्थिति वैसी ही है जैसी रामचन्द्र की थी। केवल नक्षत्र और लग्न में भेद है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ उस समय अवधपुरी इस भाँति शोभित हुई जैसे प्रभु से मिलने रात आई हो। सूर्य को देखकर मानो मन मे सकुचित हुई फिर भी ऐसा जान पडता है कि सन्ध्या बन गई।

व्याख्या अवधपुरी मे मध्यान्ह को ही सन्ध्या की शोभा हो गई। इसी पर कवि उत्प्रेक्षा करते हैं कि मानो प्रभु से मिलने रात अभिसारिका होकर आई। अकस्मात् सूर्य दिखाई पड गये। रात को कभी बूढे सूर्य का सामना पडा ही नही था। अत उन्हे देखकर वह सकुचित हो उठी। रग फीका पड गया। सो सन्ध्या हो गई। सन्ध्या भी रात्रि ही है। पर रङ्ग फीका रहता है।

[1]अगर धूप जनु बहु अधियारी। उडइ अबीर मनहुँ अरुनारी॥
मदिर मनि समूह जनु तारा। नृप गृह कलस सो इदु उदारा॥३॥

अर्थ अगर धूप के कारण मानो घनी अँधियारी हो उठी और जो अबीर उड रही थी वही मानो ललाई हुई। मन्दिरो घरो की कलशियाँ मानो तारे थे। और राजा के घर का कलश तो सुन्दर चन्द्र था।

व्याख्या सन्ध्या मे अन्धकार रहता है और अस्तमित सूर्य की लालिमा भी रहती है। सो अगर धूप के धूम से मालूम होता था कि अन्धकार छा गया है। लोग आनन्द से अबीर उडा रहे हैं। उसने सूर्य की लालिमा का दृश्य आँख के सामने खडा कर दिया। उस अन्धकार मे घरो की कलशियाँ तारा की भाँति चमक रही थी। और राजा के महल का कलश तो निष्कलङ्क चन्द्र-सा शोभा दे रहा था।

भवन वेद धुनि अति मृदु बानी। जनु खग मुखर समय जनु सानी॥
कौतुक देखि पतग भुलाना। एक मास तेइ जात न जाना॥४॥

अर्थ अत्यन्त कोमल वाणी से वेदध्वनि घरो म हो रही थी। माना समय के एक म मिल जाने पर चिडियाँ बोलती हो। यह कौतुक देखकर सूर्य भूल गये। एक महीना बीतने का उन्हे पता न लगा।

---

१ कुकुम अरगजा छिरकहिं भरहिं गुलाल अबीर।
नभ प्रसून झरि पुरी कोलाहल भइ मन भावत भीर॥
बडा वयस विधि भया दाहिनो सुर गुरु आसिरवाद।
दसरथ सुकृत सुधा सागर सब उमगे हैं तजि मरजाद॥
ब्राह्मण वेद वदि बिरदावलि जय धुनि मङ्गलगान।
निकसत पैठत लोग परसपर बोलत लगि लगि कान॥
जा सुख सिधु सकृत सीकरते सिव बिरचि प्रभुताई।
सोइ सुख अवध उमगि रह्यो दस दिसि कौन जतन कहौ गाई॥
जो रघुबीर चरन चितक तिन की गति प्रगट दिखाई।
अविरल अमल अनूप भगति दृढ तुलसीदास तब पाई॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : कवि सन्ध्या का रूपक बाँध रहे हैं। उस समय चिड़ियाँ बोलने लगती हैं। उसी को वेदध्वनि से उपमित कर रहे हैं। परन्तु वस्तुत: उस समय मध्याह्न था। उस उजेले में अगरधूप की अँधियारी जा मिली। मानो रात्रि मध्याह्न मे सन गई। इस भाँति सन्ध्या होने पर पक्षियो के चहचहाहट की भाँति घर में वेदध्वनि सुनी जा रही है। सूर्य ने रात्रिसुन्दरी का नाम तो बहुत सुना था। परन्तु देखा न था। सन्ध्या के रूप मे उसका साक्षात्कार होना ही कौतुक है। उसे देखकर सूर्य अपनी गति भूल गये। एकटक होकर रात्रिसुन्दरी की मधुर मूर्ति का दर्शन करने लगे। इनका नाम ही पतङ्ग है। अत सौन्दर्य पर आसक्त होना स्वभावसिद्ध है। सभ्यता की होली जैसी कही जा सकती है कवि ने कही। जन्म के समय सूर्य नारायण मीन के दश अंश पर थे। सो एकाएक मेष के दश अंश पर हो गये। अत्यन्त अलौकिक ग्रहस्थिति हो गई और यह स्थिति एक मास तक बनी रही। सूर्य नारायण ठहरे रह गये। शेष ग्रहगण बराबर चलते रहे। एक मास मे स्वाभाविक स्थिति पर पहुँचे। तब सूर्यनारायण भी चले। अत कहते है -

दो. मास दिवस कर दिवस भा, मरम न जानै कोइ।
रथ समेत रवि थाकेउ, निसा कौन विधि होइ ॥१९५॥

अर्थ : एक महीने का दिन हुआ। यह मर्म किसी ने नही जाना। रथ के सहित सूर्य ठहर गये। रात हो तो कैसे हो ?

व्याख्या : रथी तो सदा स्थिर ही रहता है। रथ का चलना ही उसका चलना है। इसलिए रथ समेत रवि थाकेउ कहा। मध्याह्न के समय रामजन्म हुआ। उसी समय रथ रुक गया। अत: एक मास तक मध्याह्न ही बना रहा। सूर्य हटते ही नही। इसलिए एक महीने तक दिन बना रहा। रात न हुई। पर इस मर्म को किसी ने न जाना। क्योंकि सब लोग ब्रह्मानन्द में मग्न थे। यथा ब्रह्मानद मगन कपि सबके प्रभु पद प्रीति। जात न जाने दिवस निसि गये मास षट बीति।

यह रहस्य काहू नहिं जाना। दिन मनि चले करत गुनगाना ॥
देखि महोत्सव सुर मुनि नागा। चले भवन बरनत निज भागा ॥१॥

अर्थ : इस मर्म को किसी ने नही जाना। सूर्य गुणगान करते चले। इस महोत्सव को देखकर देवता, मुनि और नाग अपना भाग्य वर्णन करते हुए घर चले।

व्याख्या : ब्रह्मानन्द में विभोर होने से किसी को क्षुधा पिपासादि की बाधा नही हुई। न इतने समय का बीतना ही किसी को अद्भुत हुआ। इससे आनन्दातिशय कहा। दिनमणि चले कहकर दिखलाया कि जो काल की गति इतने देर तक रुकी पड़ी थी वह फिर चल पडी थी जैसे घडी का चलना कुछ देर के लिए रुक जाय और वह फिर चल पडे। ऐसा दृश्य देखने के बाद सूर्यनारायण रामप्रभाव का गान करते चले।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



एक कल्प मे एक ही रामावतार होता है। और वह वैवस्वत मन्वन्तर मे होता है। तेरह मन्वन्तर खाली ही रह जाते है। इन्द्रादि देवो की आयु एक मन्वन्तर की ही होती है। अत सुर मुनि नाग रामावतारोत्सव देखने मे अपने भाग्य की सराहना करते है। तेरह मन्वन्तर के सुर मुनि नागो के भाग्य मे यह सुख नही था।

औरौ एक कहौ निज चोरी। सुनु गिरिजा अति दृढ मति तोरी ॥
काग भुसुडि सग हम दोऊ। मनुज रूप जानै नहि कोऊ ॥२॥

अर्थ और एक मै अपनी चोरी कहता हूँ गिरिजे। सुनो तुम्हारी मति अति दृढ है। काग भुसुडी मेरे साथ था। हम दोनो मनुष्य रूप धारण किये हुए थे। कोई जानता नही था।

व्याख्या होली मे अबीर उडने और गीतवाद्य के अतिरिक्त चोरी भी होती है। लडके लकडी चुराकर होली म डालते है। वह चोरी बुरी नही समझी जाती। सो यहाँ शङ्कर भगवान् अपनी चोरी कहते हैं। अति दृढ मति तोरी का भाव यह कि तुम्हारी मति बडी दृढ है। मेरी चोरी सुनकर भी विचलित न होगी। सप्तर्षियो ने मेरे बहुत से दोष दिखाये। पर तुम तनिक भी विचलित नही हुई। स्पष्ट कह दिया। महादेव अवगुन भवन विस्नु सकल गुन धाम। जाकर मन रम जाहि सन तेहि तेही सन काम। अत तुमसे अपनी चोरी कहता हूँ। गुप्त रूप से प्रभु अवतीर्ण हुए थे। अपने स्वरूप से जाने से बात खुल जाती। इसलिए मैंने और भुसुण्डि ने नर रूप धारण कर रक्खा था।

परमानद प्रेम सुख फूले। वीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले ॥
यह सुभ चरित जान पै सोई। कृपा राम कै जापर होई ॥३॥

अर्थ परमानन्द प्रेम सुख से फूले हुए गलियो मे मग्न मन होकर भूले फिरते थे। यह शुभ चरित वही जानता है जिसपर राम की कृपा होती है।

व्याख्या देवताओ के समाज से खिसक गये। अयोध्या की गलियो मे काग भुसुण्डि मिल गये सो उन्हे साथ लिये परमानन्द मे फूले फूले फिरते थे। राजद्वार मिलता ही नही था। अपना स्वरूप छिपाये है। यही चोरी है।

यह चोरी भी शुभचरित है। इस बात को वे ही जान सकते हैं जिन पर राम की कृपा होगी। नही तो काग को साथ लिये मार्गभ्रष्ट हुए गलिया मे भूलने को कौन अच्छी बात कहेगा ?

तेहि अवसर जो जेहि विधि आवा। दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा ॥
गज रथ तुरग हेम गो हीरा। दीन्हे नृप नाना विधि चीरा ॥४॥

अर्थ उस अवसर पर जो जिस प्रकार आया उसे राजा ने वैसा ही मन-चाहा पदार्थ दिया। हाथी, रथ, घोडा, सोना, गाय, हीरा, और नाना प्रकार के वस्त्र राजा ने दिये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



राजा और कूप का स्वभाव है कि 'बिनु गुन बूँद न देहिं। निर्गुन को कुछ भी नही देते। पर चक्रवर्ती महादेव की भाँति अवढर दानी हैं। और उस समय की तो विशेषता हो गई कि जो जिसे पसन्द हो उसे राजा दे डालता था। राजा रत्नभुक् होते हैं। जो सबसे अच्छी वस्तु होती है उसी का राजा उपभोग करते हैं। वे अदेय होती हैं। पर यहाँ यह नियम नही रह गया। रानिन्हदिये वसन मनि भूपन राजा सहन भडार। यह कोई पूछनेवाला नही कि इसे लेकर तुम क्या करोगे ?

दो. मन संतोष सबन्हि के, जहँ तहँ देहिं असीस।
सकल नयन चिरजीवहु, तुलसिदास के ईस ॥१९५॥

अर्थ : सबके मन मे सन्तोष है। सब जहाँ-तहाँ आशीर्वाद देते हैं कि तुलसीदास के प्रभु सभी पुत्र चिरञ्जीवी हो।

व्याख्या : त्रेता के याचको की प्रशसा है कि अपने अभाव की पूर्ति मात्र का ही प्रतिग्रह करते थे। सबका मन सन्तुष्ट हो गया। नही तो ससार भर की सम्पत्ति केवल एक पुरुष की इच्छा पूर्ति के लिए भी यथेष्ट नही है। जिस किसी भाँति प्राणी के मन मे सन्तोष उत्पन्न करना ही ईश्वरपूजन है। सो महाराज चक्रवर्ती द्वारा पूजन हो रहा है। राजा के परोक्ष मे जहाँ-तहाँ आशीर्वाद दे रहे हैं 'नृप तनय चारि चिरजीवहु सकर गौरि प्रसाद। तुलसीदास के ईश चारो भाई हैं। यथा अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मनमन्दिर मे विहरैं।

## ५. शिशु चरित प्रसङ्ग : तीसरे प्रश्न का उत्तर :

कछुक दिवस[1] बीते एहि भाँति। जात न जानिअ दिन अरु राती ॥
नामकरन कर अवसरु जानी। भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी ॥१॥

---

१. चैत चतुर्दसि चाँदनी अमल उदित निसिराज।
उडुगन अवलि प्रकासही, उमगत आनद आज ॥
जागिय रामछठी सजनी रजनी रुचिर निहारि।
मङ्गल मोद मढ़ी मूरति नृप के बालक चारि ॥
मूरति मनोहर चारि विरचि विरचि परमारथ मई।
अनुरूप भूपति जानि पूजन जोग विधि सकर दई ॥
तिन्हकी छठी मङ्गलमठी जग सरस जिन्हकी सरसई।
किए नींद भामिनि जागरन, अभिरामिनी जामिनि भई ॥
सेवक सजग भये समय, साधन सचिव सुजान।
मुनिवर सिखये लौकिको वैदिक विविध विधान ॥
वैदिक विधान अनेक लौकिक आचरत सुनि जानिकै।
बलिदान पूजा मूलिकामनि साधि राखि आनि कै ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : कुछ दिन इस भाँति बीत गये। दिन और रात्रि का जाना मालूम नहीं होता था। नामकरण का अवसर जानकर राजा ने ज्ञानी मुनि को बुला भेजा।

व्याख्या : उमा का तीसरा प्रश्न है : बाल चरित पुनि कहहु उदारा। इसके उत्तर मे दो प्रसङ्ग कहे जायेंगे : १ शिशु चरित तथा २ बालचरित। यथा : पुनि सिसु चरित कहेसि मन लाई। बालचरित कहि बिबिधि मन मह परम उछाह। सो पहिले शिशु चरित कहते हैं। उपर्युक्त उछाह मे ही ग्यारह दिन बीत गये। चारो भाइयो का क्रम से जन्मोत्सव हुआ। वह उत्सव छठी तक चला गया। इसलिए ग्रन्थकार लिखते हैं कि परम उछाह मे दिन बीत गये। कुछ मालूम न पडा। आनन्द मे रात दिन के बीतने का पता नही चलता।

कर्मकाण्ड के लिए गुरुजी के यहाँ बुलावा गया। गुरुजी पुरोहित भी हैं, मन्त्री भी हैं। अत पुरोहित का कार्य करने के लिए बुलावा गया। महाराज स्वय नही गये। यदि वसिष्ठजी के बिना आये काम चल जाता तो चक्रवर्ती जी स्वय जाते। मुनिजी ब्रह्मर्षि ज्ञानी है। चक्रवर्ती जी भी नृपऋषि ज्ञानी हैं।

**करि पूजा[१] भूपति अस भाखा। धरिअ नाम जो मुनि गुनि राखा ॥**
**इन्हके नाम अनेक अनूपा। मै नृप कहब स्वमति अनुरूपा ॥२॥**

---

जे देव देवी सेइयत हित लागि चित सनमानि कै।
ते जत्र मत्र सिखाइ राखत सबनि सो पहिचान कै॥
ज्यो आजु कालिहु परहु जागत होइगो नेवते दिए।
ते धन्य पुन्य पयोधि जे तेहि समय सुख जीवन जिए॥
निज लोक बिसरे लोकपति घर की न चरचा चालही।
तुलसी तपत तिहुँ ताप जग जनु प्रभु छठी छाया लही॥

१ बरे विप्र चहुँ वेद के रवि कुल गुरु ज्ञानी।
आपु बसिष्ठ अथर्वणी महिमा जग जानी॥
लोक रीति विधि वेद को करि कह्यो सुबानी।
सिसु समेत वेगि बोलिये कौसल्या रानी॥
चारु चौक बैठत भई भूप भामिनि सोहैं।
गोद मोद मूरति लिये सुकृती जन जोहैं॥
लगे पढन रच्छा रिचा ऋषिराज बिराजे।
गगन सुमन झरि जय जय बहु बाजन बाजे॥
बाल बिलोकि अथर्वणी हँसि हरहि जनायो।
सुभ को सुभ, मोद मोद को 'राम' नाम सुनायो॥
भरत लखन रिपुदवनहू धरे नाम विचारी।
फलदायक फल चारि के दसरथ सुत चारी॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ पूजा करके राजा ने ऐसा कहा कि हे मुनिजी ! जो नाम आपने सोच रखा हो उसे रख दीजिये। मुनिजी ने कहा इनके नाम अनेक हैं और अनूप है, राजन् ! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कहूँगा।

व्याख्या नामकरण की अङ्गभूत पूजा करके तथा मुनिजी की पूजा करके चक्रवर्ती जी नामकरण के लिए प्रार्थना करते हैं। मुनिजी के स्वभाव से महाराज परिचित है कि जो करना है उसे मुनिजी पहिले से विचार किये रहते हैं।

मुनिजी ने कहा कि यहाँ नाम रखने की बात ही नही है। चारो भाइयो के सहस्र नाम है और उन नामो मे से कोई अधिक या कोई न्यून नही है। एक से एक अधिक है। इसलिए अनेक और अनुपम कहा। यथा यद्यपि प्रभु के नाम अनेका। श्रुति कह अधिक एक ते एका। अब उन्ही नामो मे से एक एक चारो के लिए चुनना है। अत अपने पसन्द के अनुसार मैं कहूँगा।

जो आनन्द सिंधु सुखरासी। सीकर ते त्रैलोक सुपासी ॥
सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोकदायक बिश्रामा ॥३॥

अर्थ जो आनन्द के समुद्र और सुख की राशि है। बिन्दुमात्र से त्रैलोक्य को सुख देनेवाले है। इन्ही सुखधाम का राम ऐसा नाम है। जो सम्पूर्ण लोक को विश्राम देनेवाला है।

व्याख्या आनन्दसिन्धु कहकर परिपूर्णानन्द कहा। आनन्दमात्र का मूल निधान तथा देशत कालत वस्तुत अपरिच्छिन्न कहा। आनन्द कहने से ही सत् और चित् का आपसे आप ही ग्रहण हो जाता है। सुखराशि से व्यावहारिक आनन्द का मूल स्रोत कहा। एप ह्येवानन्दयतीति श्रुते। यथा जो सुख सुधा सिंधुसीकर ते सिव बिरंचि प्रभुताई। अत स्वरूप से सिन्धु। चरित करने मे राशि। यथा नित नव चरित देख पुरबासी। पुनि पुनि कहहिं धन्य सुखरासी।

अखिल लोक विश्रामदायक होने से सुखधाम कहा। सुखसिन्धु सुखराशि और सुखधाम कहने से उत्पत्ति स्थिति और प्रलय का कारण द्योतित किया। यथा आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते। आनन्देन जातानि जीवन्ति आनन्द प्रयन्त्यभिसंविशन्तीति। अथवा ज्ञानी के लिए आनन्दसिन्धु। कर्मठ के लिए सुखराशि स्वर्गसुखरूप तथा भक्त के लिए सुखधाम कहा। ऐसे प्रभु का नाम राम रक्खा। क्योकि रामपद का अर्थ है जिस अनन्त चिदात्मा नित्यानन्द मे योगी रमण करते हैं वही परब्रह्म राम है। यथा रमन्ते योगिनोऽनन्ते नित्यानन्दे चिदात्मनि। इति रामपदनासौ पर ब्रह्माभिधीयते। रामतापनीये।

बिस्व[१] भरन पोषन कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई ॥
जाके सुमिरन ते रिपु नासा। नाम सत्रुहन बेद प्रकासा ॥४॥

---

१ यहाँ विधि अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ जो जगत् का भरण पोषण करता है उसका नाम भरत है। जिसके स्मरण से शत्रु का नाश होता है उसका नाम शत्रुहन वेद मे प्रकाशित है।

व्याख्या जिस भाँति त्रैलोक्य सुपासी होने से रामनाम रक्खा गया। उसी भाँति जगत् के भरण पोषण करने से भरत नाम रक्खा गया। भरत पद का अर्थ ही है भरण करनेवाला। इसी भाँति शत्रुघ्न पद का अर्थ है शत्रु का नाश करनेवाला। जिस भाँति गणेश जी के स्मरण मात्र से विघ्न का नाश होता है। उसी भाँति जिसके स्मरण मात्र से शत्रु का नाश होता है उसका नाम शत्रुहन रक्खा।

दो लच्छन धाम राम प्रिय, सकल जगत आधार।
गुरु वसिष्ठ तेहि राखा, लछिमन नाम उदार ॥१९७॥

अर्थ जो लक्षण के धाम है। रामजी को प्रिय हैं और सम्पूर्ण जगत् के आधार है। गुरु वसिष्ठ ने उनका उदार नाम लक्ष्मण रक्खा।

व्याख्या असाधारण धर्म ही लक्षण है। अत जो विशेष धर्मों का निधान हो उसे लक्ष्मण कहते है। देवस्वामी जी कहते हैं गौर अग सब श्री गर्भहिते, सीस चँदोला लक्ष्म गहे। ताते नाम कियो लक्ष्मण अस सिर पर धरती भार वहे। तीन शून्यते सहस्रशीर्षता या मे कछु न प्रमान वहे। रामप्रिय शब्द मे तत्पुरुष और बहुव्रीही दोनो समास है। राम का प्रिय या राम है प्रिय जिसको। सकल जगत् आधार जाग्रत् के विभु होने से है अथवा भगवान् वाल्मीकि की उक्ति जो सहस सीस अहीस महिधर लखन सचराचर धनी के अनुसार शेषावतार होने से सकल जगत् आधार है। इनका उदार नाम लक्ष्मण है। भक्त सुखदाता तथा सकल जगत् आधार होने से उदार कहा।

धरे नाम गुरु हृदय विचारी। वेद तत्व नृप तव सुत चारी ॥
मुनि धन जन सरवस सिव प्राना। बाल केलि रस तेहि सुखमाना ॥१॥

अर्थ गुरुजी ने हृदय मे विचार के नाम रक्खा। कहा राजन् तुम्हारे चारो बेटे वेद के तत्त्व है जो मुनियो के धन भक्तो के सर्वस्व और शिवजी के प्राण हैं। वे बाललीला के आनन्द मे सुख मान रहे है।

व्याख्या वेद का तत्त्व प्रणव है। प्रणव मे चार मात्रा होती है। अ, उ, म् और अर्धमात्रा। अकार जाग्रत् अवस्था के विभु विराट् रूप लक्ष्मण[1] हैं। उकार स्वप्नावस्था के विभु हिरण्यगर्भरूप शत्रुघ्न है। मकार सुषुप्ति के विभु ईश्वर रूप

---

१ अकाराक्षरसम्भूत सौमित्रिर्विश्वभावन। उकाराक्षरसम्भूत शत्रुघ्नस्तैजसात्मक। प्राज्ञात्मकस्तु भरतो मकाराक्षरसम्भव। अर्धमात्रात्मको रामो ब्रह्मानन्दैकविग्रह ॥ रामोत्तरतापनीये अकाराक्षर से उत्पन्न विश्वभावन लक्ष्मणजी हैं उकाराक्षर मे उत्पन्न तैजसात्मक शत्रुघ्न जी हैं। मकाराक्षर स उत्पन्न प्राज्ञात्मक भरत जी हैं। ब्रह्मानन्दैकविग्रह राम अर्धमात्रात्मक हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भरत हैं और अर्ध मात्रा तुरीय के विभु ब्रह्म साक्षात् राम हैं। इस भाँति प्रणवरूप होने से चारो भाई वेद के तत्त्व हैं। चक्रवर्ती जी ने कहा था धरिय नाम जो मुनि गुनि राखा। सो हृदय से विचारकर मुनिजी ने नाम रख दिया। पहिले तुरीय के विभु साक्षात् ब्रह्म का नाम रक्खा। क्योंकि ये ही ज्येष्ठ थे। तत्पश्चात् क्रमानुरूप सुषुप्ति के विभु ईश्वर का नाम भरत रक्खा। अब तीसरे पुत्र का नाम रखना क्रमप्राप्त था। परन्तु गुरुजी ने क्रम भङ्ग करके चौथे पुत्र स्वप्न के विभु का नाम शत्रुघ्न रक्खा। क्योंकि सुषुप्ति से स्वप्न अलग नहीं किया जा सकता। तत्पश्चात् तीसरे पुत्र जाग्रत् के विभु ही जगत् के आधार है। यथा सुदरी सुदर वरन्ह सह सब एक मडप राजहीं। जनु जीव उर चारिउ अवस्था विभु न सहित विराजहीं। अत कहते हैं धरेउ नाम गुरु हृदय विचारी। तुरीय के विभु राम हैं। यथा तुरीयमेव केवल। ये ही मुनियो के धन हैं, ये ही भक्त के सर्वस्व है, ये ही शिवजी के प्राण हैं। इनकी प्राप्ति महा दुर्लभ है। सो चक्रवर्ती जी के प्रभाव से आज बाल-लीला मे सुख मान रहे है। सबके नयन विषय हा रहे हैं।

बारेहि तें निज हित पति जानी। लछिमन रामचरन रति मानी ॥
भरत सत्रुहन दूनौ भाई। प्रभु सेवक जसि प्रीति बडाई ॥२॥

अर्थ वचपन से ही अपना हित और स्वामी जानकर लक्ष्मणजी ने रामचरण मे प्रीति लगायी और भरत शत्रुहन दोनो भाइयो की स्वामी और सेवक की भाँति प्रीति की बडाई हुई।

व्याख्या कौसल्याजी ने अपने पायस का अश जो सुमित्राजी को दिया था उसी से लक्ष्मण हुए। अत लक्ष्मणजी की स्वभाव से ही श्रीरामजी के चरणो मे प्रीति हुई और कैकेयीजी ने जो अपने पायस का अश सुमित्राजी को दिया था। उसी से शत्रुघ्न हुए। अत स्वभाव से ही वे भरतजी के अनुगामी हुए। यथा लक्ष्मणो रामचन्द्रेण शत्रुघ्नो भरतेन च। द्वंद्वीभूय चरन्तौ तौ पायसांशानुसारत। अध्यात्मरामायणे। यहाँ भरत शत्रुहन दूनौ भाई पायस के अशानुसार ही कहा गया है। नही तो कैकेयी से भरत का जन्म हुआ और सुमित्रा को दो यमल जोडुए लडके हुए। क्योंकि उन्होने कौसल्या और सुमित्रा दोनो से पायसाश प्राप्त किया था। यथा कैकेयी चाथ भरतमसूत कमलेक्षणा। सुमित्रायां यमौ जातौ पूर्णेन्दु-सदृशाननौ।

दूसरी बात यह भी है कि तुरीय के विभु और जाग्रत् के विभु का सदा साथ है। क्योंकि तुरीय की प्राप्ति जब कभी होगी तो जाग्रत से ही होगी। सुषुप्ति स्वप्न से नही हो सकती। इसी भाँति सुषुप्ति और स्वप्न का साथ है। सुषुप्ति के अन्तर्गत ही स्वप्नावस्था है। अत दोनो के विभुओ का भी साथ स्वाभाविक है। पायस का जो विभाग हुआ था सो इसी बात को लक्ष्य मे रखकर हुआ था।

स्याम गौर सुदर दोउ जोरी। निरखहि छवि जननी तृन तोरी ॥
चारिउ सील रूप गुन धामा। तदपि अधिक सुखसागर रामा ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ श्याम और गौर की दोनो जोडी सुन्दर थी। तिनका तोडकर माताएँ छवि देखती थी। चारो शील रूप और गुण के धाम थे। फिर भी रामजी अधिक सुखसागर थे।

व्याख्या अव्यक्त रूप होने से राम और भरत, तुरीय और सुषुप्ति के विभु श्याम है। जाग्रत् और स्वप्न व्यक्त रूप हैं। अत उनके विभु लक्ष्मण और शत्रुघ्न गौर है। राम और लक्ष्मण की जोडी और भरत तथा शत्रुघ्न की जोडी श्याम गौर की जोडियाँ हुई। इनकी छवि माताएँ तृण तोडकर देखती थी। जिसमे अपनी डीठ बालको को न लगे। चारो भाई शील रूप और गुणो के धाम थे। पर रामजी सबसे अधिक सुखसागर थे। यथा या सिसु के गुन नाम बडाई। जद्यपि बुधि बल रूप, सील, गुन समय चारु चारयो भाई। तदपि लोक लोचन चकोर ससि राम भगत सुखदाई।

हृदय अनुग्रह इदु प्रकासा। सूचत किरन मनहोर हासा॥
कबहु उछग कबहुँ बर पलना। मातु दुलारै कहि प्रिय ललना॥४॥

अर्थ हृदय मे अनुग्रहरूपी चन्द्रमा का प्रकाश है। उसी की किरन मनोहर हासरूप से सूचित होती है। कभी गोद मे कभी सुन्दर हिंडोले पर बैठाकर माँ प्रिय ललन कहकर दुलार करती है।

व्याख्या होठो पर मृदु हँसी के आने से मुख की शोभा और भी अधिक हो गयी। हृदय म अनुग्रह का चन्द्रोदय हुआ। अत वह दृष्टिगोचर नहीं है। पर उसकी किरणें मनोहर हास के रूपम अधर पल्लवो पर खेल रही हैं। कभी माँ गोद मे लेकर खेलाती है और कभी पालने पर झुलाती है। पालने पर झुलाना ही बच्चो के लिए व्यायाम है। प्रिय ललन कहकर दुलारती है। कबहुँ उछग। यथा सुभग सेज सोभित कौसल्या रुचिर राम सिसु गोद लिये। बार बार बिधु बदन बिलोकति लोचन चारु चकोर किये। कबहुँ पौढि पयपान करावति कबहूँ राखति लाय हिये। बाल केलि गावति हलरावति पुलकति प्रेम पियूष पिये। बिधि महेस मुनि सुर सिहात सब देखत अबुद ओट दिये। तुलसिदास ऐसो सुख रघुपति पै काहू तो पायो न बिये।

कबहूँ बर पलना। यथा पालने रघुपतिहि झुलावै। लै लै नाम सप्रेम सरस स्वर कौसल्या कलकीरति गावै। केकिकठ द्युति स्यामबरन बपु बालबिभूषन बिरचि बनाए। अलकैं कुटिल ललित लटकन भ्रू नीलनलिन दोउ नयन सुहाए। सिसु सुभाय सोहत जब कर गहि बदन निकट पदपल्लव लाए। मनहुँ सुभग जुग भुजग जलज भरि लेत सुधा ससि सो सचु पाये। उपर अनूप बिलोकि खेलौना किलकत पुनि पुनि पानि पसारत। मनहुँ उभय अभोज अरुन सो बिधुभय बिनय करत अति आरत। तुलसिदास बहु बासबिबस अलिगुजत सुछबि न जात बखानी। मनहु सकल स्रुति रिचा मधुप ह्वै बिसद सुजस बरनत बरबानी।

मातु दुलारै कहि प्रिय ललना। यथा ललन लोने लरका बलि मैया। सुख

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


सोइये नोद वेरिआ भइ चारु चरित चारो भया। कहति मल्हाइ लाइ उर छिन छिन छगन छबीले छोटे छैया। मोदकद कुल कुमुद चद्र मेरे रामचद्र रघुरैया। रघुवर बाल केलि सतन की सुभग सुखद सुरगैया। तुलसी दुहि पीवत मुख जीवत पय सप्रेम घनी घैया।

दो. व्यापक ब्रह्म निरंजन, निर्गुन विगत विनोद।
सो अज प्रेम भगति बस, कौसल्या के गोद ॥१९८॥

अर्थ जो व्यापक, ब्रह्म, निरञ्जन, निर्गुण, लौकिक क्रीडा से रहित है। वही अजन्मा भक्ति प्रेम के वश होकर कौसल्या की गोद में है।

व्याख्या : यहाँ भक्ति की महामहिमा दिखला रहे हैं। पहिले कह चुके हैं। अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेमवस सगुन सो होई। जो गुन रहित सगुन सो कैसे। जलहिम उपल बिलग नहि जैसे। उसीकी सार्थकता दिखलाते है कि व्यापक ब्रह्म ही परिच्छिन्न से होकर निरञ्जन सङ्गी से होकर, निर्गुण सगुण से होकर अजन्मा जन्म लिये हुए की भाँति विगतविनोद विनोद करते हुए से आज कौसल्या की गोद मे विराजमान हैं। जो जगत् के रक्षक है वे सर्वात्मा रक्ष्य होकर कौसल्या की गोद में आगये है और कौसल्या उनकी रक्षा मे परमानन्द का अनुभव कर रही है।

काम कोटि छबि स्याम सरीरा। नील कंज बारिद गंभीरा ॥
अरुन चरन पंकज नख जोती। कमल दलन्हि बैठे जनु मोती ॥१॥

अर्थ : नील कमल और गम्भीर बादल के समान श्याम शरीर की शोभा करोडो काम की सी है। अरुण चरणकमल मे नख की ज्योति ऐसी शोभा दे रही है, जैसे कमल के दलो पर मोती बैठे हो।

व्याख्या : प्रभु की श्यामता अद्भुत है। नील कमल रहने से भी पूरा नहीं पडता तो नील नीरधर कहते हैं। फिर भी सन्तोष नही होता तो नीलमणि कहते हैं। कही केकि कंठ दुति स्यामल भगा बतलाते हैं। जब किसी भाँति काम नही चलता तो करोडो काम से उपमित करते हैं। ससार मे शोभा की मर्याद काम माना जाता है। वह भी इस श्याम रङ्ग के सामने कुछ जँचता नही।

चरणकमल अरुण वर्ण हैं। श्रीगोस्वामी जी उस लालिमा के लिए कहते हैं: बसी मानहु चरन कमलन्हि अरुनता तजि तरनि। मानो सूर्य को छोडकर लालिमा आकर इन्ही चरणो मे बसी है। जानुपानि विचरण में उन्हीं नखमणि चन्द्रिकाओ की ज्योति पृथ्वी से रुककर चरण तल में आ पडती है। उसकी ऐसी शोभा होती है जैसे कमल के दलो पर मोती बैठे हो।

रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे। नूपुर धुनि सुनि मुनि मन मोहे ॥
कटि किंकिनी उदर त्रय रेखा। नाभि गँभीर जान जिहि देखा ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ वज्र ध्वजा और अंकुश की रेखाएँ शोभायमान हैं। नूपुर की धुनि सुनकर मुनियों का मन मोह जाता है। कमर में करधनी है। उदर में तीन रेखाएँ हैं। गंभीर नाभि की शोभा वही जानता है जिसने देखा हो।

व्याख्या चरण चिन्ह अड़तालीस कहे गये हैं। उनमें से चार का ही वर्णन श्रीरामचरितमानस में आता है। यथा ध्वज कुलिस अंकुस कंजजुत वन सहत कंटक किन लहे। परन्तु यहाँ तीन का ही वर्णन है। भाव यह कि अभी अत्यन्त शिशु हैं। अतः रेखाएँ अत्यन्त सूक्ष्म हैं। परन्तु उनमें से तीन तो इस समय भी स्पष्ट हैं। अभी कमल रेखा स्पष्ट नहीं हुई है। बड़े होने पर स्पष्ट होगी। श्रीगोस्वामी जी को अत्यन्त सन्निधान से समीक्षा का अवसर नहीं मिला। परन्तु ये चार रेखाएँ तो ऐसी हैं कि जहाँ पृथ्वी पर प्रभु के चरण चिह्न पड़ते हैं वहाँ इनकी छाप पड़ जाती है। अतः श्रीगोस्वामी जी चार का ही वर्णन करते हैं।

भुज बिसाल भूषन जुत भूरी। हियँ हरि नख अति सोभा रूरी॥
उर मनिमाल पदिक की सोभा। बिप्र चरन देखत मन लोभा॥३॥

अर्थ विशाल भुजाओं में बहुत से गहने थे और हृदय में बघनहा की बड़ी शोभा थी। उर पर मणि के पदिकहार की शोभा और विप्र के चरण का चिह्न देखकर मन लुभा जाता था।

व्याख्या यद्यपि अभी खड़े नहीं हो सकते। फिर भी भुजाओं की विशालता लक्षित होती है और वे कङ्कण अङ्गदादि अनेक आभूषणों से सुशोभित हैं और हृदय में बघनहा की शोभा है। अनिष्ट निवारणार्थ बच्चे को बघनहा पिन्हाया जाता है विप्रचरण की छोटी सी छाप ऐसी मनोहारिणी है कि जिसके देखने से ही मन लुब्ध हो जाता है। यह वर्णन विष्णु भगवान् के रामावतार का है। क्योंकि विष्णु भगवान् ही ने भृगुमुनि के चरण चिन्ह को हृदय में धारण किया था। पदिकहार का वर्णन करते हुए देवस्वामी जी लिखते हैं पदिकहार रघुवर कंठन में सात मनिन का झलक रहा। मोहनमाला जाहि कहत हैं अधिक छविन सो छलकि रहा। भावी राम चरित जनु सातो काडन से हियहलकि रहा। स्ववरन सूत्रन से ग्रथित लखि देवहु को मन ललकि रहा।

कंबु कंठ अति चिबुक सुहाई। आनन अमित मदन छबि छाई॥
दुइ दुइ दसन अधर अरुनारे। नासा तिलक को बरनै पारे॥४॥

अर्थ शंख के ऐसा कण्ठ और ठुड्ढी सुन्दर और मुखपर अगणित काम की शोभा छाई हुई थी। दो दो दतुलियाँ और होंठ लाल तथा नासिका पर के तिलक का कौन वर्णन कर सकता है।

व्याख्या शंख के समान कण्ठ की ही शोभा है। चिबुक ही चूमा जाता है। सो अत्यन्त ही सोहावना है। शरीर में कोटि काम की छवि है। यथा काम कोटि छबि स्याम सरीरा। अतः मुख पर अगणित काम छवि का छाना प्राप्त है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दुइ दुइ से ऊपर नीचे की दो दो दँतुलियाँ कहा। आज भाल तिलक नहीं है। बच्चो को नासा तिलक ही दिया जाता है। यथा बाल गोपाल के उपासक आज भी नासा तिलक धारण करते हैं। उस नासा तिलक की बालगोविन्द को पाकर अपार शोभा हो गई। यथा : लटकन लसत ललाट लटूरी। दमकति द्वै द्वै दँतुरिया रूरी। मुनिमन हरत मंजु मसिबिंदा। ललित बदन बलि बाल मुकुंदा : गीतावली।

सुंदर श्रवन सुचारु कपोला। अति प्रिय मधुर तोतरे बोला॥
चिक्कन कच कुंचित गभुआरे। बहु प्रकार रचि मातु सँवारे॥५॥

अर्थ : सुन्दर कान और गाल तो अत्यन्त ही सुन्दर थे और मीठी तोतरी बोली अत्यन्त ही प्यारी मालूम होती थी। गर्भ के ही चिक्कन और घुँघराले बालों अभी तक मुण्डन संस्कार नहीं हुआ है : को माँ ने बहुत प्रकार से सँवार रक्खा था।

व्याख्या : नीलमणिमय सीपी की भाँति समान श्रवण शोभायमान थे और दर्पण से कपोल की शोभा तो अत्यन्त ही अधिक थी। बच्चो की तोतली वाणी स्वभाव से ही मधुर और प्यारी होती है। सो राम गोविन्द की तोतली वाणी अत्यन्त मधुर और प्यारी थी। यथा :

सुभग चिबुक द्विज अधर नासिका श्रवन कपोल मोहि अति भाए।
भ्रूसुदर करुनारस पूरन, लोचन मनहुँ जुगल जलजाए॥१॥
भाल बिसाल ललित लटकन वर, बालदसा के चिकुर सोहाए।
मनु दोउ गुरु सनि कुज आगे करि ससिहि मिलन तम के गन आए॥२॥
भाल तिलक मसिबिंदु बिराजत, सोहत सीस लाल चौतनियाँ।
मन मोहनी तोतरी बोलनि, मुनिमन हरति हंसति किलकनियाँ॥३॥

पीत झगुलिया तनु पहिराई। जानु पानि बिचरनि मोहि भाई॥
रूप सकहि नहि कहि श्रुति सेखा। सो जानइ सपनेहुँ जिन्ह देखा॥६॥

अर्थ : पीली झँगुली शरीर में पहिना दी गई और घुटने तथा हाथ के बल से चलने लगे। वह शोभा मुझे बहुत अच्छी लगी। रूप का वर्णन वेद और शेष नहीं कर सकते। उसे तो वे ही जान सकते हैं जिन्होने स्वप्न में भी देख पाया है।

व्याख्या : श्याम शरीर पीली झँगुली में ऐसा खिला मानो छोटे से बादल ने बाल दामिनी को लपेट लिया। गीतावली में कहते हैं : पियरी झीनी झगुली साँवरे सरीर खुली बालक दामिनी ओढी मानो बारे-बारिधर। जानु पानि बिचरण के विषय में कहते हैं : राजमराल बिराजत बिहरत जे हर हृदय तडाग। ते नृप अजिर जानुकर धावत धरन चटक चल काग। परिजन सहित राय रानिन्ह कियो मज्जन प्रेम प्रयाग। तुलसी फल ताके चारयौ मनि मरकत पंकज राग।

इस वर्णन को सुनकर कोई यह न समझ ले कि मैंने ठीक ठीक रूप का वर्णन कर दिया। इसलिए कहते हैं कि श्रुति शेष नहीं वर्णन कर सकते सर्वथा अवर्णनीय है। शारदा को नहीं कहा क्योंकि कोई भी वर्णन करेगा तो वाणी की ही सहायता

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



से वर्णन करेगा। अवर्णनीय कहने से ही वाणी का ग्रहण हो गया। फिर भी अज्ञेय नही है। सपने मे भी जिसने देखा है वह इस बात को जानता है कि वह महासौन्दर्य सर्वथा वाणी से परे है। श्रीगोस्वामी जी ने स्वप्न मे इस प्रकार दर्शन किया था, इसलिए ऐसा कहते हैं। यहाँ गोस्वामीजी ने नेत्र का वर्णन नही किया। क्योकि याद नही है। सपने की बात पूरी पूरी याद नही रहती। एकाध बात की भूल पड जाया करती है।

दो. सुख सदोह मोह पर, ग्यान गिरा गोतीत।
दंपति परम प्रेम बस, कर सिसु चरित पुनीत ॥१९९॥

अर्थ जो सुख की राशि मोह से परे है और जिस तक बुद्धि वाणी और इन्द्रिय की पहुँच नही है। वही राजा रानी के परम प्रेम के वश होकर पवित्र शिशु लीला कर रहे हैं।

व्याख्या व्यापक ब्रह्म निरजन निर्गुन विगत विनोद। सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद। तक प्रभुअवतार प्रसङ्ग कहा। अब इस १९९ वे दोहे मे शिशुचरित कहा। दोनो मे यह दिखाया कि अवतीर्ण होने या शिशुचरित करने से उनके स्वरूप मे कोई अन्तर न पडा। जब बारह दिन के थे तो कौसल्या की गोद मे थे। अब हाथ और घुटने के बल से चलने लगे तब माता और पिता दोनो को आनन्द दे रहे हैं। चक्रवर्तीजी भी गोद मे लेकर बाहर निकलते हैं। सखी-सखी से कहती है सवैया

अवधेस के द्वारे सकारे गई, सुत गोद कै भूपति लै निकसे।
अवलोकि हौं सोच विमोचन को ठगिसी रही जो न ठगे धिकसे॥
तुलसी मन रजन रजित अजन नयन सुखजन जातक से।
सजनी ससि मे समसील उभै नवनील सरोरुह से बिकसे॥

सखी महारानी से कहती है

नेकु बिलोकि धौं रघुवरनि।
चारि फल त्रिपुरारि तोको दिये कर नृप धरनि॥१॥
बाल भूषन बसन तन सुदर रुचिर रज भरनि।
परसपर खेलनि अजिर, उठि चलनि गिरि गिरि परनि॥२॥
झुकनि झांकनि छांह सो, किलकनि नटनि हठि लरनि।
तोतरी बोलनि बिलोकनि मोहनी मनहरनि॥३॥
सखि वचन सुनि कौसिला लखि सुढर पासेढरनि।
लेति भरि भरि अक सैंतति पैत जनु दुहु करनि॥४॥
चरित निरखत विबुध तुलसी ओट दै जलधरनि।
चहत सुर सुरपति भयो सुरपति भयो चहै तरनि॥५॥

जो आनन्दसिन्धु है वह आज बिन्दु सा प्रतीत होता है। जो मोह से परे है वह अबोध बाललीला कर रहा है। जो बुद्धि, वाणी और इन्द्रिय से अतीत है

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वह दशरथ कौसल्या की गोद मे है। सो यह सब प्रेमा भक्ति की करामात है। जो गुनरहित सगुन सो कैसे। जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे। अगुन अरूप अलख अज जोई। भगत प्रेम बस सगुन सो होई। का यह बडा मनोहर उदाहरण है।

एहि बिधि राम जगत पितु माता। कोसलपुर बासिन्ह सुखदाता ॥
जिन्ह रघुनाथ चरन रति मानी। तिन्ह की यह गति प्रकट भवानी ॥१॥

अर्थ जगत् के माता पिता राम इस भाँति कोसलपुरवासियो को सुख देते थे जिन्होने रघुनाथ के चरणो मे प्रीति की। हे भवानी! उनकी यह प्रत्यक्ष गति है।

व्याख्या जगत् के पिता भी राम और माता भी राम। वही उपादान कारण और वही निमित्त कारण भी हैं। जो आज माता पिता की गोद मे खेल रहे हैं वे किसी के बेटे नही हैं। सम्पूर्ण जगत् के जनक जननी हैं। आज राजकुमार बन हुए कोसलनिवासी पुरजन को सुख दे रहे हैं। यथा लोचननि को लहत फल छबि निरखि पुर नर नारि। बसत तुलसीदास उर अवधेस के सुत चारि।

शङ्कर भगवान् भवानी को सम्बोधन करके कहते हैं कि ज्ञानी की गति प्रकट नही होती। परन्तु जिनने रघुनाथ के चरणकमलो मे प्रीति की है उनकी यह प्रकट गति है कि भवबन्धन को छोडनेवाला उनकी गोद मे हैं। जिसकी गोद मे अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड हैं वह अपने भक्त की गोद मे है। मयि ते तेषु चाप्यहम्। वे मेरे मे हैं और उनमे मैं हूँ। गी। यहाँ पर गोस्वामीजी भक्ति की महिमा दिखलाते हैं।

रघुपति बिमुख जतन कर कोरी। कवन सकै भव बन्धन छोरी ॥
जीव चराचर बस कै राखे। सो माया प्रभु सो भय भाखे ॥२॥

अर्थ रघुपति विमुख होकर करोड यत्न करके भी कौन भव बन्धन को खोल सकता है? जिस माया ने चराचर जीव को वश कर रक्खा है वह प्रभु से भयग्रस्त होकर त्राहि त्राहि करती है।

व्याख्या बँधा हुआ स्वय अपने को छुडा नही सकता। जो छुडानेवाला है, यथा तुलसिदास यह मोह शृखला छूटिहि तुम्हरे छोरे। विनय। उसी से जो विमुख हो गया उसके छूटने की कौन आशा है। सरकारी कैदी को कौन छुडावे। यथा 'जौ खल भएसि रामकर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही।' वह तो उन्ही के शरण मे जाने से छूटेगा। चाहे जब जाय दूसरा उपाय नही है। भगवद्गीता म स्वय कहते हैं यह मेरी दैवी गुणमयी माया उल्लघन करने योग्य नही है। जो मेरी शरण आते हैं वे ही इसे पार कर सकते हैं। यथा दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते।

भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया। जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा। सो प्रभु भ्रूबिलास खग

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



राजा। नाच नटी इव सहित समाजा। तथा देखी माया सब विधि गाढी। अति सभीत जोरे कर ठाटी। देखा जीव नचावै जाही। देखी भगति जो छोरै ताही। ऐसी प्रबल माया से आप से आप कोई भी नहीं छूट सकता। फिर रामविमुख के छूटने का क्या उपाय है ? अत. जो मायापति है जिससे माया डरती है उसी की शरण ग्रहण करनी चाहिए।

भृकुटि बिलास नचावै ताही। अस प्रभु छाडि भजिय कहु काही ॥
मन क्रम बचन छाडि चतुराई। भजत कृपा करिहहि रघुराई ॥३॥

अर्थ जो प्रभु उसे माया को भौंह के इशारे पर नचाता है उसे छोडकर किसका भजन किया जाय। मनसा वाचा कर्मणा चतुराई छोडकर भजन करने से रघुराई कृपा करेंगे।

व्याख्या जब यह निश्चय है कि अपने प्रयत्न से कोई भव बन्धन से मुक्त नहीं हो सकता तब किसी ऐसे समर्थ का आश्रयण करना होगा जो स्वय मुक्त हो और उससे छुडा सके। इस पर गोस्वामीजी कहते है कि जिसके भौंह के इशारे पर माया नाचती है उसे छोडकर किसका आश्रय ग्रहण किया जाय ? अर्थात् वही एक भजनीय है। उसी की कृपा से सब कुछ सम्भव है।

अब प्रश्न यह उठा कि उसकी कृपा कैसे हो ? तो कहते है भजन करने से प्रभु कृपा करते है। परन्तु उसमे भी एक समय शर्त है और वह यह है कि मनसा वाचा कर्मणा चतुरता को छोडकर भजन करे। भजन म कार्पण्य और दैन्य प्रयोजनीय है। चतुरता मे तो बुद्धि का कौशल दिखाना पडता है। छल से भी काम लेना पडता है। अत चतुरता भजन का बाधक है। यथा सूधे मन सूधे वचन सूधी सब करतूति। तुलसी सूधी सकल विधि रघुवर प्रेम प्रसूति। दो ।

एहि बिधि सिसु बिनोद प्रभु कीन्हा। सकल नगरबासिन्ह सुख दीन्हा ॥
लै उछग कबहुक हलरावै। कबहु पालने घालि झुलावै ॥४॥

अर्थ इस विधि से प्रभु ने शिशु लीला की और सब नगरवासियो को सुख दिया। कभी गोद म लेकर हिलाती डुलाती है। कभी पालने मे डालकर झुलाती है।

व्याख्या एहि बिधि राम जगत पितु माता। कोसल पुरबासिन्ह सुख दाता से प्रसङ्ग छोडा था और अवसर प्राप्त भक्ति की महिमा कहने लगे थे। अब फिर वही से प्रसङ्ग उठाते है। एहि बिधि सिसु बिनोद प्रभु कीन्हा। सकल नगरबासिन्ह सुख दीन्हा। नारियाँ महारानी की गोद भरी देखकर कृत्यकृत्य है। नर लोग चक्रवर्ती जी की गोद मे दर्शन पाकर सुखी है।

मा दुलार करती है। पर स्वास्थ्य पर बहुत ध्यान है। गोद म लिये रहती है तो भी हिलाया करती है। पालने पर रखती है तो उसे झुलाया करती है। जिसमे बालोचित व्यायाम होता रहे। रातदिन बच्चे मे लगी रहती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. प्रेम मगन कौसल्या, निसदिन जात न जान ।
सुत सनेह बस माता, बाल चरित कर गान ॥२००॥

अर्थ : कौसल्या रानी प्रेम मे मग्न थी। उन्हें रात दिन के बीतने का पता नही। पुत्र के प्रेम के वश में बाल चरित्र का गान करती थी।

व्याख्या : जो प्रेम में मग्न हो उसे काल की गति का पता नही रहता। कौसल्या माता की यही गति है। कहा था : कीजिय सिसुलीला अति प्रियसीला यह सुख परम अनूपा। सो उसी परम अनूम सुख मे भूली हुई हैं। अभी प्रभु शिशुरूप ही हैं। पर माँ बालचरित का गान करती हैं। बच्चे के बडे होने के लिए बड़ी उत्सुक हैं। यथा :

ह्वै हौ लाल कबहि बडे बलि मैया।
राम लखन भावते भरत रिपुदवन चारु चारचौ भैया ॥१॥
बाल विभूषन बसन मनोहर अगनि विरचि बनैहौं।
सोभा निरखि निछावरि करि उर लाइ वारने जैहौं ॥२॥
छगनमगन अँगना खेलिहौ मिलि ठुमुकु ठुमुकु कब धैहौं।
कल बल बचन तोतरे मंजुल कहि माँ मोहि बुलैहौं ॥३॥
पुरजन सचिव राउ रानी सब सेवक सखा सहेली।
लैहैं लोचन लाहु सुफल लखि ललित मनोरथ वेली ॥४॥
जा सुख की लालसा लटू सिव सुक सनकादि उदासी।
तुलसी तेहि सुख सिंधु कौसिला मगन पै प्रेम पियासी ॥५॥

## ६. बालचरित प्रसंग

एकबार जननी अन्हवाए। करि सिंगार पलनाँ पौढ़ाए ॥
निज कुल इष्टदेव भगवाना। पूजा हेतु कीन्ह असनाना ॥१॥

अर्थ : एकबार बच्चे को माँ ने नहलाया और शृङ्गार करके पालने पर पौढा दिया। अपने कुल के इष्टदेव भगवान् की पूजा के लिए स्वयं स्नान किया।

व्याख्या : माता कौसल्या प्रति मास श्रीरामजी का शृङ्गार करके मालपुआ, लड्डू, गुझिया, गुलगुले आदि बनाकर बायन बाँटती थी। यथा : कौसल्या जननी तस्य मासि मासि प्रकुर्वती। वायनानि विचित्राणि समलङ्कृत्य राघवम्। अपूपान् मोदकान् कृत्वा कर्णशष्कुलिकास्तथा। अध्या.। तदनुसार एक बार माँ ने नहलाकर शृङ्गार किया और पालने पर लिटा दिया। क्योंकि उसे और भी कार्य करने थे।

उनके कुल के इष्टदेव श्रीरङ्गजी थे। सो उनकी पूजा के लिए स्नान किया। यह स्नान, प्रातः स्नान के अतिरिक्त पूजनार्थ था। गृहस्थ के लिए मध्याह्न का विधान ही विशेष है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



करि पूजा नैवेद्य चढ़ावा । आपु गई जहँ पाक बनावा ॥
बहुरि मातु तहवाँ चलि आई । भोजन करत देखि सुत जाई ॥२॥

अर्थ पूजा करके नैवेद्य चढ़ाया और स्वयं वहाँ गई जहाँ रसोई बनी हुई थी । फिर माँ वहाँ से चली आई देखा कि बच्चा खा रहा है ।

व्याख्या यद्यपि नैवेद्य पूजन का प्रधान अङ्ग है । फिर भी यहाँ पर नैवेद्य के विषय में विशेष रूप से कहना है । इसलिए कहते हैं कि उस पूजा में नैवेद्य चढ़ाया । उसे वहीं छोड़कर जो मालपूआ, लड्डू, आदि वायन बन रहा था उसे देखने चली गई । वहाँ से लौटने पर माँ देखती है कि बच्चा नैवेद्य खा रहा है ।

गइ जननी सिसु पहिं भयभीता । देखा बाल तहाँ पुनि सूता ॥
बहुरि आइ देखा सुत सोई । हृदय कंप मन धीर न होई ॥३॥

अर्थ डरी हुई बेटे के पास गई । देखा बच्चा वहाँ सोया हुआ है । फिर लौटकर उसी बच्चे को देखा । हृदय काँपने लगा । धैर्य न रह गया ।

व्याख्या माँ डर गई कि मैं तो बच्चे को पालने पर लिटा आई हूँ । वह यहाँ कैसे आगया ? बच्चा स्वयं आ सकता नहीं । दूसरा कोई यहाँ था नहीं । क्या कोई आया है ? देखने के लिए जहाँ बच्चे को पालने पर लिटाया था वहाँ गई तो आश्चर्य का ठिकाना नहीं रह गया । बच्चा सोया हुआ है । तो क्या वह मेरा बच्चा नहीं था ? किसी ने भरत को लाकर तो वहाँ नहीं रख दिया । इसलिए फिर वहाँ गई तो उसी बच्चे को पाया । अपने ही बच्चे को दो स्थानों में एक साथ देख रही है । एक स्थान में जागता हुआ और दूसरे स्थान में सोया हुआ । कलेजा काँप उठा । मेरे बच्चे को लेकर यह क्या विचित्र घटना हो रही है । कोई समाधान मन में नहीं आता । पहिले ही भयभीत हो गई थी । अब हृत्कम्प होने लगा । कोई अनिष्ट प्रभाव बच्चे पर पड़ रहा है । इसलिए धैर्य नहीं होता ।

इहाँ उहाँ दुइ बालक देखा । मति भ्रम मोर कि आन बिसेखा ॥
देखि राम जननी अकुलानी । प्रभु हँसि दीन्ह मधुर मुसुकानी ॥४॥

अर्थ यहाँ वहाँ दो बालक देखा । यह मेरी बुद्धि का भ्रम है कि कोई विशेष बात है । रामजी ने देखा कि माँ विकल हो गई तो मधुर मुस्कान से हँस दिया ।

व्याख्या इहाँ ठाकुरबाड़ी में और उहाँ पालने पर लड़के दो दिखाई पड़े । तब अपनी ही मति पर शङ्का करती है कि मुझे मतिभ्रम तो नहीं हो गया ? मति भ्रम कैसे कहूँ । कोई दूसरा पदार्थ तो मुझे दो नहीं दिखला रहा है । जितनी विशेष बातें होती हैं उनमें यह तो सबसे विलक्षण है । कहीं एक लड़के से दो नहीं हो जाते ।

प्रभु ऐसे प्रेमवश हैं कि माँ की आकुलता न सह सके । एकदम वात्सल्य में

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



माँ मग्न थी। इसलिए विवेक को जाग्रत करने के लिए मुसकरा दिये। अपना स्वरूप दिखलावेंगे। यथा मोहि बिलोकि राम मुसुकाही। बिहसत तुरत गयेउँ मुख माही कि दो रूप पर क्यो आश्चर्य करती हो मैं सर्वरूप हूँ।

दो देखरावा मातहि निज, अद्भुत रूप अखड।
रोम रोम प्रति लागे, कोटि कोटि ब्रह्माड ॥२०१॥

अर्थ माता को अपना अद्भुत अखण्ड रूप दिखलाया। प्रत्येक रोम मे करोडो ब्रह्माण्ड लगे हुए हैं।

व्याख्या इतना विशाल रूप दिखलाया तो सबको वह रूप दिखना चाहिए। परन्तु किसी ने नही देखा। केवल माँ ने देखा। जिसे दिखाना चाहा उसने देखा। उनका ऐसा रूप तो सदा ही रहता है। पर जीव उसे देख नही सकता। दिव्य नेत्र हो तो दिव्य रूप का दर्शन हो। अत माँ को दिव्य चक्षु दिया। जिससे उसने अखण्ड रूप का दर्शन किया। सूतिका गृह म जिस अद्भुत रूप का दर्शन दिया था वह खण्ड रूप था। वहाँ स्तुति करने मे माता ने कहा था ब्रह्माण्ड निकाया निर्मित माया रोम-रोम प्रति वेद कहै। उस माता के माने हुए रूप का दिखलाना भी आवश्यक था। इस बार ठाकुरवाडी मे वही अखण्ड रूप दिखलाया। जिसके रोम रोम मे करोडो ब्रह्माण्ड लगे हुए हैं। जो मन मे भी चिन्तन नही किया जा सकता। उस रूप को प्रत्यक्ष देखा। भाव यह कि उनके रूप मे भेद नही है। वे वैसे ही सुख सदोह मोह पर ज्ञान गिरा गोतीत है। परन्तु दृष्टि के तारतम्य से अनेक रूप से भासित होते हैं।

अगनित रवि ससि सिव चतुरानन। बहु गिरि सरित सिंधु महि कानन ॥
काल कर्म गुन ग्यान सुभाऊ। सोउ देखा जो सुना न काऊ ॥१॥

अर्थ असख्य सूर्य, चन्द्र, शिव, ब्रह्मा देखे। बहुत से पर्वत, नदियाँ, समुद्र, पृथ्वी और वन देखे। काल कर्म गुण और स्वभाव को देखा और जिसे कभी किसी ने सुना ही नही उसे देखा।

व्याख्या ऐसा दर्शन न भुसुण्डि को हुआ और न उमा को हुआ था। उमा को दुखी जानकर तो बहुत थोडी माया दिखाई। यथा जाना राम सती दुख पावा। निज प्रभाउ कछु प्रगटि जनावा। भुसुण्डिजी ने भीतर की सैर की। एक एक ब्रह्माण्ड मे सौ-सौ वर्ष रहे। इस भाँति सौ कल्प बीता। माँ भीतर बाहर सब युगपत् देख रही है। रवि, शशि, शिव, चतुरानन, पर्वत, नदी, समुद्र, वन कितने दिखाई पडते हैं। कुछ ठिकाना नही है। कारण यह है कि प्रत्येक ब्रह्माण्ड मे ब्रह्मा, विष्णु, शिव, मनु और दिक्पाल दूसरे ही प्रकार के होते हैं। नर, गन्धर्व, वेताल, किन्नर, निशिचर, पशु और व्यालभूत सब कुछ सभी ब्रह्माण्ड मे होते है। परन्तु दूसरे ब्रह्माण्ड के जीवो से मेल नही खाते। इतना ही नही पृथ्वी, समुद्र, नदी, पर्वत आदि सब प्रपञ्च ही दूसरे प्रकार के होते हैं। माँ को इस समय अनन्त

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कोटि ब्रह्माण्ड के भीतर बाहर का सब दर्शन एक साथ हो रहा है। वह शिशु देखते-देखते अखण्डरूप हो गया।

काल : भूत भविष्य वर्तमान। कर्म : सञ्चित प्रारब्ध और क्रियमाण। गुण : सत्त्व, रज और तम। ज्ञान : शास्त्रजन्य और अनुभवजन्य। स्वभाव : प्रकृति। ये सब चक्षु के विषय नहीं हैं। इनका योगज प्रत्यक्ष होता है। योगज प्रत्यक्ष होना ही इनका देखा जाना है। सो माँ कौसल्या को इन सबका प्रत्यक्ष हुआ। वैषम्य सृष्टि और साम्य प्रलय है। जितने ब्रह्माण्ड हैं वे सब एक दूसरे से विलक्षण हैं। एक ब्रह्माण्ड का जीव उसी की व्यवस्था को थोडा बहुत जानता है। दूसरे के विषय मे वह कुछ नही जानता। यथा : ऊमरि तरु विसाल तव माया। फल ब्रह्माड अनेक निकाया। जीव चराचर जतु समाना। भीतर बसहिं न जानहिं आना। अत: दूसरे ब्रह्माण्डो मे ऐसी बातें हैं जिन्हे न हम लोगो ने देखा है न सुना है। उन सब अनन्त विशेषताओं का प्रत्यक्ष माँ कौसल्या को हुआ। अर्जुन को केवल इस ब्रह्माण्ड के विश्वरूप का दर्शन हुआ था। माँ कौसल्या के प्रत्यक्ष से उसकी तुलना ही नही।

देखी माया सब विधि गाढ़ी। अति सभीत जोरें कर ठाढ़ी ॥
देखा जीव नचावै जाही। देखी भगति जो छोरै ताही ॥२॥

अर्थ : सब प्रकार से घनी माया को देखा कि वह अत्यन्त भयभीत हाथ जोडे खडी है। जीव को देखा जिसे माया नचाती है और भक्ति को देखा जो उसे छुड़ाती है।

व्याख्या : जो ज्ञानी के भी चेत को हरण करती है और बल से खीचकर मोह के वश करती है। यथा : जो ज्ञानिहु कर चित अपहरई। वरिआई विमोह बस करई। उस माया को देखा कि प्रभु के सामने अत्यन्त डरी हुई हाथ जोडे खडी है। आज्ञापालन के लिए खडी है। यथा : लव निमेष महँ भुवन निकाया। रचै जासु अनुसासन माया। जीवात्मा के स्वरूप का भी साक्षात्कार हुआ। नाचने नचाने का रहस्य भी देखा। परवस जीव स्ववस भगवता। जीव अनेक एक श्रीकंता। श्री ग्रन्थकार कहते हैं : नाचत ही निसि दिवस मर्यो। तबही ते न भयो जीव थिर जब तें हरि नाम धर्यो। वहु वासना विविध कचुकि भूषन लोभादि भर्यो। चर अरु अचर गगन जल थल महँ कौन न स्वाँग कर्यो।

मोक्षदायिनी भगवती भास्वती भक्ति का भी दर्शन पाया। यथा भगति करत बिनु जतन प्रयासा। ससृति मूल अविद्या नासा। भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया।

तन पुलकित मुख बचन न आवा। नयन मूँदि चरनन्हि सिरु नावा ॥
बिसमयवंति देखि महतारी। भए बहुरि सिसु रूप खरारी ॥३॥

अर्थ : शरीर पुलकित हो गया। मुख से वचन न निकला। आँख मूँदकर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चरणो मे सिर नवाया। माता को आश्चर्यचकित देखकर खरारि खर के शत्रु : फिर शिशु रूप हो गये।

व्याख्या : ऐसे घोर अद्भुत रूप को देखकर भय से रोगटे खडे हो गये। अब देखने का सामर्थ्य नही है। इससे आँख बन्द कर ली। पहचान लिया कि यह ऐश्वर रूप है। अतः चरनन सिर नावा। जो भी थोडा या बहुत इस रूप को देखता है उसी की यह दशा हो जाती है। भुसुण्डि जी कहते है देखि चरित यह सो प्रभुताई। समुझत देह दसा बिसराई। धरनि परयौ मुख आव न बाता। त्राहि त्राहि आरत जन त्राता। उमा तो आँख बन्द करके रास्ते मे ही बैठ गई। यथा नयन मूँदि बैठी मग माही।

माँ को चतुर्भुज देखने से हर्ष हुआ था। यथा हर्षित महतारी मुनि मन हारी अद्भुत रूप निहारी। परन्तु इस रूप को देखने से विस्मय हुआ। खरारि कहकर मायानाथ होना द्योतित किया। यथा : मायानाथ अस कौतुक करयौ। देखत परस्पर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मरयौ। मायानाथ ने उस रूप को अलक्षित कर दिया और फिर शिशुरूप हो गये। दिखला दिया कि वेदप्रतिपादित अखण्ड रूप यही है, परन्तु भक्त लोगो के लिए सुखद तो नयनाभिराम घनश्याम राममूर्ति ही है।

अस्तुति[1] करि न जाइ भय माना। जगत पिता मै सुत करि जाना॥
हरि जननी बहुविधि समुझाई। यह जनि कतहुँ कहसि सुनु माई ॥४॥

अर्थ : स्तुति करते भी नही बनता। वह डर गयी की जगत्पिता को मैने बेटा करके जाना। श्रीहरि ने माता को बहुत प्रकार से समझाया माँ सुन! यह बात कहीपर न कहना।

व्याख्या चतुर्भुज रूप से देखकर स्तुति की थी। यथा : कह दुइ कर जोरी अस्तुति तोरी केहि बिधि करउँ अनता। इस बार स्तुति करते नही बनता। बडी भारी चूक हुई किस मुँह से स्तुति करूँ ? जगत् पिता का इतना बडा अपमान मुझसे हो पडा कि मैंने उन्हे बेटा मान लिया। तब श्रीहरि ने कौसल्या जी को बहुत भाँति से समझाया। यथा .

सुत विषयिक रति नृप बरयो तुमने भगति विवेक।
दिखरायो याते तुमहि यह सरूप तजि टेक॥१॥
सुनै जो नृप यह बात सब सुत विषयिक रति जाय।
याते यह वृत्तान्त सब कतहुँ कहै जनि माय॥२॥
जौ लौं नहि दशशीश बध तौलौं मर्म दुराय।
रहिबो है एहि हेतु यह कतहुँ कहै जनि माय॥३॥

---

१ यहाँ विभावना अष्टम अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तथा छोटिऐ धनुहियाँ, पनहियाँ पगनि छोटी, छोटिऐ कछौटी कटि छोटिऐ तरकसी।
लसत झगूली झीनी, दामिनि की छवि छीनी, सुदर वदन सिर पगिया जरकसी ॥
बय अनुहरत विभूषन विचित्र अग, जोहे जिय आवत सनेह की सरकसी।
मूरति की सूरति कहै न परै तुलसी पै, जानै सोई जाके उर कसकै करक सी ॥

मन क्रम वचन अगोचर जोई। दसरथ अजिर विचर प्रभु सोई ॥
भोजन करत बोल जब राजा। नहि आवत तजि बाल समाजा ॥३॥

अर्थ जो मन कर्म और वचन तथा इन्द्रियो से परे है। वही प्रभु दशरथ के आँगन म विचरण कर रहे है। भोजन करते समय चक्रवर्तीजी बुलाते हैं। पर बालको का समाज छोडकर नही आते।

व्याख्या भरद्वाज का प्रश्न है 'प्रभु सोई राम कि अपर कोउ'। उमा का प्रश्न है 'राम सो अवध नृपति सुत सोई। की अज अगुन अलखगति कोई'। इसलिए जहाँ जहाँ चरित म अतिशयता दिखलाते है वहाँ वहाँ यह भी दिखलाते चलते हैं कि अज अगुन अलखगति जो कोई है वही अवध नृपति सुत हुआ है। यहाँ भी मन क्रम वचन अगोचर कहकर उसी अज अगुन अलखगति का ही वर्णन कर रहे है। वही भक्ति प्रेम के वश कौसल्या की गोद मे आया। दम्पति के परम प्रेम के वश म होकर पुनीत शिशुचरित किया। अब बालक होकर महाराज दशरथ के आँगन म विचर रहा है। भुसुण्डि के साथ जो चरित किया वही इसमे प्रमाण है।

भोजन करते समय चक्रवर्तीजी खिलाने के लिए बुलाते हैं। परन्तु बाल समाज छोडकर जाते नही बनता। जिसने पिता के वचन से राज्य त्याग किया वह आज पिता के बुलाने से बाल समाज छोडने को तैयार नही। युवावस्था मे जितना राज्य प्रिय है, उससे कही अधिक बाल्यावस्था म खेल और बाल समाज प्रिय है।

कौसल्या जब बोलन जाई। ठुमुक ठुमुक प्रभु चलहि पराई ॥
निगम नेति सिव अत न पावा। ताहि धरै जननी हठि धावा ॥४॥
धूसर धूरि भरे तनु आए। भूपति विहँसि गोद बैठाए ॥५॥

अर्थ कौसल्या जब बुलाने जाती है तब प्रभु ठुमुक ठुमुक भाग चलते है। वेद जिसे नेति कहते है और शिवजी अन्त नही पाते माँ उसे पकडने के लिए दौडी। धूल से भरे हुए उसी रङ्ग म रँग हुए आये। चक्रवर्तीजी ने हँसकर गोद मे बिठा लिया।

व्याख्या चक्रवर्तीजी कौसल्या के घर म भोजन कर रहे हैं। श्रीरामजी बाल समाज मे मिलकर खेलने म मग्न है। महाराज को बडी अभिरुचि है कि रामजी भी साथ खाएँ। इष्टजनै सह भुक्त भुक्तम्। प्रेमी के साथ भोजन करना ही भोजन है। रामजी सा प्यारा उन्हे कौन है ? अत रामजी को खिलाने के लिए

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बार बार पुकारते है। वे खेल की धुन मे सुनते ही नही। महाराज की अधिक रुचि देखकर कौसल्या जी स्वय बुलाने गईं तो आप ठुमुक ठुमुक भाग चले। अभी भलीभाँति दौड नही सकते। इसलिए ठुमुक ठुमुक भागना कहते हैं। फिर भी माँ पकडने मे समर्थ नही हो रही है। अत हठ करके दौडी कि पकड कर ले ही चलेंगे। इस पर ग्रन्थकार कहते है कि जिसे वेद वाणी से ग्रहण करने मे असमर्थ हैं और साक्षात् शिवजी मन से ग्रहण करने मे असमर्थ है उसे पकडने के लिए माँ ने हठ किया है। बिना पकडे न छोडूँगी। इसलिए पकड मे आ गये। धूल से धूसर रग हो गया है। शङ्कर रूप बने हैं। पकडाये हुए चले आ रहे हैं। यह दृश्य देखकर महाराज हँस पडे। धूल भी नही झाडा और गोद म बिठाकर मनोरथ पूर्ण किया।

दो भोजन करत चपल चित, इत उत अवसरु पाइ।
भाजि चले किलकत मुख, दधि ओदन लपटाइ ॥२०३॥

अर्थ भोजन करते है पर चित्त चञ्चल है। इधर उधर देख रहे है। अवसर मिलते ही भाग चले। मुँह मे दही भात लगा हुआ है।

व्याख्या महाराज खिलाते हैं और रामजी खा भी रहे हैं। परन्तु मन बालसमाज मे लगा हुआ है। इसको ग्रन्थकार इतउत शब्द से द्योतित करते हैं। इत भोजन करते हैं पर चित्त उत लगा है। अत चित्त चञ्चल है। अवसर की ताक मे हैं कि कब माता पिता का ध्यान दूसरी ओर हो और कब भाग जायँ। सो अवसर पाते ही भाग चले। बडी प्रसन्नता है। इससे किलकारी मारते हुए भागे। मुँह धोने की भी चिन्ता नही। दही और भात मुँह मे लगा है। इससे और भी शोभा बढ गई है।

माँ को चतुर्भुज रूप से तथा विश्वरूप से दर्शन देकर सावधान करते जाते है। क्योकि वह पूर्व जन्म मे विवेक भी माँग चुकी है। परन्तु चक्रवर्तीजी का पुत्रस्नेह ही दृढ करते हैं। क्योकि पूर्वजन्म म उन्होने ऐसा ही वर माँगा था। यथा सुत विषयिक तब पद रति होऊ। मोहि बड मूढ कहै किन कोऊ।

बालचरित अति सरल सुहाए। सारद सेष सभु श्रुति गाए॥
जिन्ह कर मन इन सन नहिं राता। ते जन बंचित किए बिधाता ॥१॥

अर्थ अत्यन्त सरल और सोहाए बालचरित का गान सरस्वती शेष शम्भु और वेदो ने किया है। जिनका मन इनसे अनुरक्त नही हुआ। विधाता ने उन्हे वञ्चित कर दिया है।

व्याख्या यद्यपि बालचरित के अन्तगत ही शिशु चरित है। फिर भी जहाँ शिशु और बाल का भेद किया जाता है वहाँ यह विधान है कि प्राक् चूडाकरणाद्वाल, प्रागन्नप्राशनाच्छिशु। कुमारकस्तु विज्ञेयो यावन्मौञ्जीनिबन्धनम्। अपरार्के। मुण्डन के पहिले बालक, अन्नप्राशन के पहिले शिशु, और यज्ञोपवीत के पहिले

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कुमार जानना चाहिए। अन्नप्राशन का काल छ महीना और बारह महीना तक है।

यहाँ पर बालचरित को अति सरल और सुहावना कहा। भाव यह कि शिशुचरित सरल है और बाल चरित अति सरल है। शिशुचरित मे तो ऐश्वर्य प्रदर्शन भी हुआ। माता को चतुर्भुज रूप और विश्वरूप का दर्शन दिया। परन्तु बालचरित म केवल माधुर्य दिखलाया। इसलिए अति सरल और सुहावना कहा। सरस्वती शेष शम्भु और श्रुति उसी ऋजु तथा सुन्दर चरित का गान करते हैं। जिनका मन ऐसे चरित मे अनुरक्त न हुआ उसे ब्रह्मदेव ने वञ्चित कर दिया। अर्थात् मनुष्य का शरीर तो दिया परन्तु हृदय मनुष्य का नही दिया। मनुष्य की आकृति देकर उसे ठग लिया। वह वस्तुत मनुष्य नही है पशु है।

**भए कुमार जबहि सब भ्राता। दीन्ह जनेऊ गुरु पितु माता॥**
**गुरु गृह गए पढन रघुराई। अलप काल विद्या सब पाई॥२॥**

अर्थ जब सब भाई कुमार हुए तो गुरु और माता पिता ने जनेऊ यज्ञोपवीत दिया। रघुराई गुरुकुल मे पढने गये। थोडे ही काल मे सब विद्याएँ प्राप्त कर ली।

व्याख्या जब ग्यारहवाँ वर्ष लगा, कुमारावस्था पूर्ण हो चली वर्षे त्वेकादशे नृप। ग्यारहवें वर्ष मे क्षत्रिय का यज्ञोपवीत करना चाहिए। इस वचन के अनुसार गुरु पिता और माता ने यज्ञोपवीत दिया। भाव यह कि पहिली वेदी मे गुरु माता पिता तीनो का काम पडता है। इसके बाद गुरुकुल मे भेज देने की शास्त्र की आज्ञा है। तदनुसार चक्रवर्ती के बालक भी गुरुकुल मे भेज दिये जाते थे। तदनुसार चारो भाई गुरु के घर पढने गये। दूसरी वेदी वही हुई।

बारह वर्ष एक वेद के पढने मे लगता है। इस भाँति तीनो वेदो के पढने मे छत्तीस वर्ष लगते हैं। उसी के बीच मे उपवेदादि का भी अध्ययन हो जाता था। कुछ अत्यन्त मेधावी छत्तीस वर्ष से पहले ही पारगत हो जाते थे। उन्हे विद्यास्नात कहते थे। जो मध्यम मेधावाले होते थे उन्हे पारगत होने म पूरे छत्तीस वर्ष लगते थे। वे विद्याव्रत स्नात होते थे। और जो उतने दिनो मे भी अध्ययन नही कर पाते थे वे व्रतस्नात होते थे। अर्थात् ब्रह्मचर्यव्रत बारह, चौबीस और छत्तीस वर्ष का होता था। जो एक वेद पढना चाहते थे उनका बारह वर्ष का, दो वेद पढना चाहनेवालो का चौबीस वर्ष का, तीनो वेद पढने वालो का छत्तीस वर्ष का व्रत होता था। उतने दिनो तक उन्हे ब्रह्मचर्यव्रत के सब नियमो का पालन करना पडता था। परन्तु यह आवश्यक नही था कि उतने दिनो तक अवश्य ही ब्रह्मचर्य रक्खे। जो जितना शीघ्र विद्या समाप्त कर दे उसका उतना ही शीघ्र ब्रह्मचर्यव्रत समाप्त हो जाता था। ये चारो भाई अल्पकाल मे विद्याएँ समाप्त करके विद्यास्नात हो गये।

अङ्ग और उपनिषदो के साथ सम्पूर्ण वेद रहस्य के साथ धनुर्वेद, धर्मशास्त्र, न्याय, आन्वीक्षिकी, षट्विधा राजनीति केवल गुरुमुख से श्रवण मात्र से ही चारो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भाइयों ने धारण कर ली। चौसठ दिनों में चौसठों कलाओं को ग्रहण कर लिया। इसीलिए कहते हैं कि अल्पकाल में ही सब विद्याएँ प्राप्त कर ली।

जाकी सहज स्वास श्रुति चारी। सो हरि पढ यह कौतुक भारी॥
विद्या विनय निपुन गुन सीला। खेलहिं खेल सकल नृपलीला॥३॥

अर्थ जिसका सहज श्वास चारो वेद है वह हरि पढे यह बडा भारी कौतुक है। विद्या, विनय, गुण और शील में निपुण सब राजाओ की लीला के ही खेल खेलते थे।

व्याख्या : इतने अल्पकाल में विद्याएँ समाप्त कर ली कि अभी उनके खेलने के दिन नही बीते। यह बडे कौतुक की बात थी। पर ग्रन्थकार कहते हैं कि भारी कौतुक की बात तो यह थी कि जिसका निःश्वसित वेद है उस प्रभु को भी पढना पडा। उनका पढना एक शास्त्रमर्यादा रक्षण मात्र था। अत शास्त्रमर्यादा रक्षण के लिए द्विजमात्र को ब्रह्मचर्यपूर्वक वेदाध्ययन करना चाहिए। जो ऐसा नही करते वे अपनी हानि के साथ साथ समाज की हानि करते हैं। ससार के लिए बुरा उदाहरण खडा करते हैं।

विद्या से विनय होता है, विनय होने से पात्रता आती है। वह सब गुण और शील का निधान होता है। यदि विद्या से विनय न हुआ, विवेक नही उपजा तो उसकी विद्या निष्फला हो जाती है। अत विद्या विनय निपुन गुन सीला कहकर विद्या साफल्य कहा। अब नाट्यशास्त्र की निपुणता कहते हैं। शिवि हरिश्चन्द्र आदिक की लीलाओ का नाट्य करते हैं। अथवा व्रतस्नात होकर घर लौट आये। अभी खेलने की अवस्था है। अत वही खेल खेलते हैं, जिसे राजाओ को खेलना चाहिए। यथा

रामलषन इक ओर भरत रिपुदवनलाल इक ओर भये।
सरजु तीर सम सुखद भूमि थल, गनि गनि गोइयाँ बाँटि लये॥
कदुक केलि कुसल हय चढि चढि, मन कसि कसि, ठोंकि ठांकि खये।
कर कमलनि विचित्र चौगानैं, खेलन लगे खेल रिझये॥ इत्यादि
खेल खेलि सुखेलनिहारे।
उतरि उतरि चुचुकारि तुरगन सादर जाइ जोहारे। इत्यादि।

करतल बान धनुप अति सोहा। देखत रूप चराचर मोहा॥
जिन्ह[१] बीथिन्ह बिहरैं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लुगाई॥४॥

अर्थ हाथ में बाण और धनुप बहुत ही शोभा देते हैं। रूप देखते ही चराचर मोहित हो जाते हैं। जिन गलियो में सब भाई विहार करते हैं, सभी स्त्री पुरुष ठिठक कर रह जाते हैं।

---

१ यहाँ असङ्गति अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : उपवेद की शिक्षा कहते है कि धनुर्वेदेऽतिनिष्ठित. सब शास्त्रों के तत्त्व को जानते हैं, पर धनुर्वेद मे तो अत्यन्त परायण हैं। इतना प्रेम है कि विहार में भी धनुष बाण नही छूटता। भय से धनुपधारण नही है, विद्याप्रेम के कारण है। रूप देखकर अचर भी मोहित होते है। वह उन्मादकर रूप ही ऐसा है। अचरो का देखना शास्त्र तथा विज्ञान से सिद्ध है। यथा : तेन पश्यन्ति पादपा तेन शृण्वन्ति पादपा । इत्यादि महाभारते। इसलिए वृक्ष देखते हैं सुनते हैं इत्यादि।

चराचर का मोहित होना कहकर लोग लुगाई का थकित होना : एकटक रह जाना कहते हैं। यथा :

धरे धनु सर कर, कसे कटि तरकसी, पीरे पट ओढे चले चारु चालु।
अग अग भूपन जराय के जगमगत, हरत जन के जी को तिमिर जालु।।
खेलत चौहट हाट वीथी वाटिकन प्रभु सिव सप्रेम मानस मरालु।
सोभादान दै दै सनमानत जाचक जन करत लोक लोचन निहालु।।
गीता १-४२

दो. कोसलपुर वासी नर, नारि वृद्ध अरु बाल।
प्रानहुँ तें प्रिय लागत, सब कहुँ रामकृपाल ।।२०४।।

अर्थ कोसलपुर के रहनेवाले स्त्री पुरुप वूढे और बालक सबको कृपाल रामजी प्राणो से भी प्यारे लगते है।

व्याख्या : सुख देने की परिधि बढती ही जाती है। पहले कौसल्या की गोद मे थे। तब दम्पति परम प्रेम वस कर सिसु चरित पुनीत कहा। अब बडे भये परिजन सुखदाई तब कोसलपुर वासियो को सुख देना कहते हैं। प्रान प्रान के जीवन जीके। स्वारथ रहित सखा सबही के। इसलिए प्राण से भी प्रिय लगना स्वाभाविक हे। इस भाँति शासन की योग्यता भी दिखलाई।

बंधु सखा संग लेहिं बुलाई। वन मृगया नित खेलहिं जाई ।।
पावन मृग मारहिं जियं जानी। दिन प्रति नृपहि देखावहिं आनी ।।१।।

अर्थ भाइयो और सखाओ को साथ बुला लेते थे और वन मे जाकर नित्य शिकार खेलते थे। मन मे पवित्र जानकर मृगो को मारते थे और प्रतिदिन लाकर राजा को दिखाते थे।

व्याख्या : वचपन से ही सरदारगीरी थी। बन्धु सखा पर प्रेम है। शिकार जाते समय उन्हे बुलाकर साथ ले लेते थे, शिकार खेलने का शास्त्रो मे निपेध है, पर राजाओ के लिए आज्ञा है। इससे उन्हे परिश्रम और शस्त्राभ्यास तथा सहनशक्ति बढाने का अवसर मिलता है। शिकार मे भी वृथा हिंसा निपिद्ध है। अत मेध्य पशु का ही वध करते थे जिनके चर्म शृङ्गादि का धर्मकार्य मे प्रयोजन पडता है। व्याघ्र आदि दुष्ट जन्तुओ का चर्म पवित्र माना गया है। अत मन से निश्चय करके कि यह दुष्ट जन्तु है तब उसका वध करते थे। अध्यात्म रामायण मे स्पष्ट लिखा हुआ है

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कि दुष्ट मृगो को मारकर पिता को निवेदन करते थे। यथा ' हत्वा दुष्टमृगान् सर्वान् पित्रे सर्वं न्यवेदयत्। मृग का अर्थ हिरन ही नही है। जिनका शिकार किया जाता है वे सभी जन्तु मृग है। महाराज भी बडे शिकारी थे। अत उनकी प्रसन्नता के लिए नित्य शिकार खेलते थे और मारे हुए पशुओ को लाकर चक्रवर्ती जी को दिखाते थे।

जे मृग राम बान के मारे। ते तनु तजि सुरलोक सिधारे ॥
अनुज सखा सग भोजन करही। मातु पिता अग्या अनुसरही ॥२॥

अर्थ ' जो मृग रामजी के बाण से मारे जाते थे वे शरीर छोडकर स्वर्ग सिधारते थे। भाई और सखाओ के साथ भोजन करते थे और माँ-बाप की आज्ञा म चलते थे।

व्याख्या पशुयोनि से कोई शुभ कर्म हो नही सकता। अत जायस्व म्रियस्व जन्मो मरो यही चक्र चला करता है। यज्ञ मे वध होने से ही उनका कल्याण होता है। यहाँ स्वय यज्ञपुरुष के हाथ से उनके शररूपी तीर्थ मे प्राण त्यागकर सुरलोक को जाते है। पशुयोनि से उनकी मुक्ति हो जाती है। रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पइहै सही।

इष्टजनै सह भुक्त भुक्तम्। सुख मे अनुज और सखाओ का स्मरण करते थे। और आज्ञा-पालन मे स्वय प्रस्तुत रहते थे। अनुज और सखा को नही कहते थे कि जो आज्ञा मुझे हुई है उसे तुम जाकर कर दो। माता को पिता से अधिक मानते थे। इसलिए ग्रन्थकार माता का पहिले और पिता का नाम पीछे लेते हैं।

जेहि बिधि सुखी होहिं पुर लोगा। करहिं कृपानिधि सोइ सजोगा ॥
बेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजन्ह समुझाई ॥३॥

अर्थ जिस विधि से नगर के लोग सुखी हो सकें वैसा ही सयाग कृपानिधि जुटा देते थे। वेद पुराण मन लगाकर सुनते थे और भाइयो को समझाकर कहते थे।

व्याख्या बन्धु सखा की प्रसन्नता कही। माता पिता की प्रसन्नता कही। अब पुरलोग की प्रसन्नता कहते है। सुख से ही ससार प्रसन्न होता है। अत प्रसन्न करने के लिए लोग सुख का सयोग करते है। पर सयोग जुटा देना ईश्वर का काम है मनुष्य का नही। यथा जौ बिधि बस अस बनै सजोगू। अस मजोग ईस जौ करई। श्रीरामजी पुरलोग के सुखी होने का सयोग जुटा देते थे। जिसमे कोई भी दु खी न रहे।

चक्रवर्तीजो की सभा मे नित्य वेद पुराणो की कथाएँ होती थी। उन्हे रामजी मन लगाकर सुनते थे। भली भाँति वेद पुराण के जानने पर भी पुन पुन श्रवण म उपेक्षा नही करते थे। दिखलाते थे कि बार बार सुनने से सस्कार और दृढ होता चला जाता है। यथा ' शास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि पेखिअ। फिर छोटे भाइयो से उसकी व्याख्या करते थे। चतुर्भिश्च प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवति। आगमकालेन

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

स्वाध्यायकालेन प्रवचनकालेन व्यवहारकालेनेति। चार प्रकार से विद्या अभीष्ट फल दान मे समर्थ होती हैं। आगमकाल से स्वाध्यायकाल से प्रवचनकाल से और व्यवहारकाल से। सो दोनो कह चुके है। यथा ' गुरु गृह गये पढन रघुराई। अल्प काल विद्या सब पाई। वेद पुरान सुनहि मन लाई। अब प्रवचन कहते है आप कर्हहि अनुजहि समुझाई। इसके आगे व्यवहार काल कहेगे।

प्रातकाल उठि कै रघुनाथा। मातु पिता गुरु नावहिं माथा॥
आयसु मागि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरषै मन राजा॥४॥

अर्थ रघुनाथ प्रात काल उठकर माता पिता और गुरु को मस्तक नवाते थे। आज्ञा माँगकर पुर का कार्य करते थे। चरित्र देखकर महाराज मन म प्रसन्न होते थे।

व्याख्या शास्त्र मे जो पढा था उसे व्यवहार म चरितार्थ करते थे। वेद की आज्ञा है मातृदेवो भव पितृदेवा भव आचायदेवो भव। माता को देवता मानो। पिता को देवता मानो। आचार्य को देवता मानो। अत पहिल उठकर माता पिता और गुरु को नमस्कार करते थ। अथवा अन्त पुर मे पहिल मा का ही दशन होता था। तत्पश्चात् यथावसर पिता का दर्शन होता था। गुरुजी का निवासस्थान पृथक् था। अत इन्हे प्रणाम करने का अवसर माता पिता के प्रणाम के वाद मिलता था।

पितु आयसु सब धर्म का टीका है। अत आयसु आज्ञा माँग मागकर पुर का कार्य करते थे। पिता के कार्य का भार स्वय अपने ऊपर ल रक्खा था। सो भी अपने मन से नही, पिताजी से आज्ञा माँगकर करते थे। इससे श्रीरामजी का सब लायक होना दिखलाया। पिता की आज्ञा हो तभी कुछ करें यह बात नही। काम विगडता दखकर या आवश्यकता देखकर उस कार्य के सँवारने के लिए आज्ञा माँगते थे।

दो व्यापक अकल अनीह अज, निर्गुन नाम न रूप।
भगत हेतु नाना विधि, करत चरित्र अनूप॥२०५॥

अर्थ जो व्यापक, कलारहित, इच्छारहित, जन्मरहित, गुणरहित, नाम रूपरहित है वह भक्त के लिए अनेक प्रकार के अनूप चरित्र करता है।

व्याख्या शिवजी बार बार उमा के कहे हुए की अज अगुन अलख गति कोई को ही दूसरे दूसरे शब्दा म दोहराकर उनका सगुण चरित करना दिखलाते हैं। सर्वव्यापक होने से उसम कला नही है। वह सकल नही अकल है। द्वितीय के अभाव से इच्छारहित है। अत जन्मरहित है। प्रकृतिपार होने से गुणरहित है। अमाय हाने से नामरूपरहित है। वह भक्तो क लिए अनेक प्रकार के अनूप चरित कर रहा है। अनूप इसलिए कहा कि इसके गान करने से भक्त लोग भवसागर पार हो जायँगे। यथा सोइ जस गाइ भगत भव तरहीं रामजी का नाम रूप लीला धाम सब अनूप हैं।

ankurnagpal108@gmail.com



## ७. ऋषि आगमन प्रसङ्ग : चौथे[१] प्रश्न का उत्तर :

यह सब चरित कहा मैं गाई। आगिलि कथा सुनहु मनलाई ॥
विस्वामित्र महामुनि ग्यानी। बसहि बिपिन सुभ आश्रम जानी ॥१॥

नाम अनूप, यथा : अगुन अनूपम गुननिधान सो।
रूप अनूप, यथा : चितवत सादर रूप अनूपा।
तृपित न मानहिं मनु सतरूपा ॥
धाम अनूप, यथा : भूपति भवन सुभाय सोहावा।
सुरपति सदन न पटतर आवा ॥
अब चरित्र अनूप कहते हैं।
यथा : भगति हित करत चरित्र अनूप।

सातो विशेषण चरित्र के विरोधी हैं। फिर भी भक्त के लिए चरित्र हो रहा है। भक्तहेतु जन्म, भक्तहेतु शिशुचरित और भक्त के हेतु ही नाना चरित हो रहा है।

अर्थ : यह सब चरित्र मैंने गाकर कहा। आगे की कथा मन लगाकर सुनो। विश्वामित्रजी महामुनि और ज्ञानी थे। शुभ आश्रम जानकर वन में वसते थे।

व्याख्या : यहाँ 'यह सब चरित कहा मैं गाई' कहकर बालचरित का उपसंहार कर रहे हैं। आगिल कथा से उमा के चौथे प्रश्न : कहहु यथा जानकी बिआही का उत्तर आरम्भ करते हुए तदन्तर्गत ऋषि आगमन की कथा कहते हैं। यही आगिल कथा है। प्रश्न इतना ही था कि 'बालचरित पुनि कहहु उदारा' उसे नव दोहो में कहा। अब अगली कथा को मन लगाकर अर्थात् प्रेम से सुनने के लिए कह रहे हैं। क्योकि सप्रेम सुनने का फल विशेष कहा है। यथा सिय रघुवीर बिबाहु, जे सप्रेम गावहिं सुनहिं। तिनकर सदा उछाहु, मगलायतन राम जस।

दुःखो से जिसका मन उद्विग्न न हो और सुख की जिसे लालसा न हो, भय, राग और क्रोध जिसे न हो ऐसे स्थिरबुद्धि को मुनि कहते हैं। ऐसे मुनियो में विश्वामित्रजी श्रेष्ठ थे। अर्थात् महायोगी थे, महाज्ञानी थे, बसहिं बिपिन से महा तपस्वी कहा। ऐसे महापुरुष भगवान् वामन की जन्मभूमि सिद्धाश्रम को शुभस्थान जानकर वसते थे। नही तो मगध शुभाश्रम योग्य नही समझा जाता।

जहँ जप जग्य जोग मुनि करही। अति मारीच सुबाहुहि डरही ॥
देखत जग्य निसाचर धावहिं। करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहि ॥२॥

अर्थ : वहाँ मुनि जप, योग, यज्ञ करते थे। परन्तु मारीच सुबाहु से बहुत डरते थे। यज्ञ को देखते ही राक्षस दौड़ पड़ते थे और उपद्रव मचा देते थे। जिससे मुनि लोगो को दुःख होता था।

व्याख्या : मण्डलीकपति रावण की आज्ञा असुरों को थी कि : द्विज भोजन मख होम सराधा। सब कर जाइ करहु तुम बाधा। सो मारीच सुबाहु को नियुक्ति

१ कहहु जथा जानकी बिआही।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इस ओर थी। अत मुनि लोग छिपकर जप, योग, यज्ञ करते थे। मारीच सुबाहु जान न लें। इसलिए डरते थे।

यज्ञधूम देखते ही वे दौड पडते थे कि कहीं पूरा न हो जाय। नहीं तो देवताओं को भोजन मिल जायगा। उपद्रव करते थे, यज्ञ की विधि पूरी नहीं होने देते थे। जिससे अविधि होकर वलि का भाग हो जाय अविधिर्वलिभाग। यज्ञ दिन में होता है। ये निशाचर ठहरे फिर भी जाग जागकर यज्ञ का पता लगाया करते थे।

गाधितनय मन चिंता व्यापी। हरि विनु मरिहि न निसिचर पापी॥
तव मुनिवर मन कीन्ह विचारा। प्रभु अवतरेउ हरन महि भारा॥३॥

अर्थ गाधि के पुत्र के मनमें चिन्ता समाई कि विना हरि के पापी निशिचर नहीं मरेगा। तव श्रेष्ठ मुनि ने मनमें विचार किया कि प्रभु ने पृथ्वी के भारहरण के लिए अवतार लिया है।

व्याख्या चहत महामुनि जाग जयो। नीच निसाचर देत दुसह दुख कृसतन ताप तयो। सापे पाप नये विदरत खल, तव यह मत्र ठयो। विप्र साधु सुर धेनु धरनि हित हरि अवतार लयो। गी । यदि शाप देता हूँ तो पाप लगेगा। विनती करने का निशाचर क्या मानने लगे। अत और कोई उपाय नहीं। विना पापभोग के इनका आसुरी भोगायतन शरीर नहीं छूटेगा। हरि इनके पापों को हरण करके इस योनि से मुक्ति दे सकते हैं और उनका अवतार भी पृथ्वी का भार हरण करने के लिए हो गया है।

एहू मिस देखौं पद जाई। करि विनती आनौं दोउ भाई॥
ग्यान विराग सकल गुन अयना। सो प्रभु मैं देखब भरि नयना॥४॥

अर्थ इसी वहाने से चरण का दर्शन करूँ और विनती करके दोनों भाइयों को साथ ले आऊँ। ज्ञान विराग सकल गुणों के जो घर हैं उस प्रभु को मैं आँख भर के देखूँगा।

व्याख्या गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु गएँ जान सब कोइ। अत मैं दर्शन के लिए नहीं गया। खलवध के लिए मुनि राजा के शरण जाते ही हैं। अत इस वहाने से दर्शन करूँगा। दर्शन प्रधान और खलवध गौण हो गया। ज्ञान, विराग, समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश और श्री के जो निकेत हैं जे हर हिय नयनन्हि कबहु निरख नाहि अघाय। उन्हें आँख भरकर देखूँगा।

दो वहु विधि करत मनोरथ, जात लागि नहि बार।
करि मज्जन सरऊ जल, गये भूप दरवार[१]॥२०६॥

---

१ घटनाक्रम पर विचार करने से यह मालूम होता है कि विश्वामित्रजी अयोध्या में भाद्रपद शुक्ल सप्तमीके लगभग आये। लगभग उन्नीस दिन तक अयोध्या में ठहरे रहे। योगवासिष्ठ होता रहा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : बहुत प्रकार से मनोरथ करते हुए जाते देर न लगी। सरयू में मज्जन करके राजद्वार पर गये।

व्याख्या : मुनिजी मनोरथ करते अयोध्या की ओर जा रहे हैं :

आजु सकल सुकृत फलु पाइहौं।
सुख की सीव अवधि आनंद की अवध विलोकि हौं पाइहौं ॥१॥
सुतनि सहित दसरथहि देखिहौं, प्रेम पुलकि उर लाइहौं।
रामचन्द्र मुखचन्द्र सुधा छवि नयन चकोरनि प्याइहौं ॥२॥
सादर समाचार नृप बुझिहै, हौं सब कथा सुनाइहौं।
तुलसी ह्वै कृतकृत्य आश्रमहिं, रामलषन लै आइहौं ॥३॥

इस भाँति मनोरथ करते करते समय न जान पड़ा अयोध्या पहुँच गये। विभीषणजी मनोरथ करते सौ योजन चले आये। समय मालूम न हुआ। यथा : एहि विधि करत सप्रेम विचारा। आए सपदि सिंधु एहि पारा दरबार शब्द द्वार के अर्थ में प्रयुक्त हुआ है। यथा : गयउ सभा दरबार तब सुमिरि रामपद कंज। तथा : एक प्रविसहिं एक निर्गमहि भीर भूप दरबार। पहिले मुनिजी ने सरयूस्नान किया तब राजद्वार पर गये।

**मुनि आगमन सुना जब राजा। मिलन गयउ लै विप्र समाजा ॥**
**करि दंडवत मुनिहि सनमानी। निज आसन बैठारेन्हि आनी ॥१॥**

अर्थ : जब राजाने मुनि का आगमन सुना तो विप्र समाज लेकर मिलने गये। दण्डवत् करके मुनि का सम्मान करके अपने आसन पर ला बिठाया।

व्याख्या : महाराज सबके उपास्य होते हैं। पर मुनि पर इतनी श्रद्धा कि उनका आना सुनकर स्वयं मिलने गये और ब्राह्मण समाज साथ लेकर गये। क्योंकि विश्वामित्रजी के हृदय में ब्राह्मणों का बड़ा गौरव है। स्वयं बड़ा भारी तप करके क्षत्रिय से ब्राह्मण हुए थे। पहिले ही दण्डवत् प्रणाम किया। सन्मान के साथ कुशल प्रश्न पूछकर आगमन से अपना सौभाग्य वर्णन करके मुनिजी को आगे करके घर में लाये। अपनी गद्दी पर बिठाया। भाव यह कि राज्य आपका है। मैं सेवक हूँ।

**चरन पखारि कीन्ह अति पूजा। मो सम आजु धन्य नहिं दूजा ॥**
**विविध भाँति भोजन करवावा। मुनिवर हृदय हरष अति पावा ॥२॥**

अर्थ : पाँव धोकर अति पूजा की और कहा कि मेरे समान भाग्यवान् आज दूसरा नहीं है। अनेक विधान से भोजन कराया। श्रेष्ठ मुनिजी के हृदय में बड़ा हर्ष हुआ।

व्याख्या : विश्वामित्रजी का आना असाधारण व्यापार था। जिसने तप के लिए स्वयं अपना राज्य छोड़ा वह दूसरे राजा के यहाँ क्यों जाय ? दूसरे का अर्थी क्यों बने ? महाराज दशरथ को इतने दिन राज्य करते हुआ पर कभी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विश्वामित्र जी नही आये। राजा ने अपना बड़ा भाग्य माना। इतने राजा है किसी के पास न जाकर मेरे यहाँ आये। अत: पाँव धोकर बड़ी भारी पूजा की। पूजा का प्रधान अङ्ग नैवेद्य है। सो कहते हैं कि : विविध भाँति भोजन करवावा। भोजन में भाँति होती है। जितने प्रकार के व्यञ्जन बनते हैं, उनकी भाँति संज्ञा है। छप्पन प्रकार प्रसिद्ध हैं। अर्थात् राजोपचार से पूजन किया और राजोचित नैवेद्य भी अर्पण किया। अति पूजन पाने से मुनिजी को अति हर्ष हुआ। आशा हुई कि मनोरथ सिद्धि होगी।

पुनि चरननि मेले सुत चारी। राम देखि मुनि देह बिसारी ॥
भए मगन देखत मुख सोभा। जनु चकोर पूरन ससि लोभा ॥३॥

अर्थ : फिर चारो बेटो को चरणो मे गिराया। रामजी को देखकर मुनिजी को देहाध्यास न रह गया। मुख की शोभा देखकर मग्न हो गये। जैसे चकोर पूर्ण चन्द्र पर लुब्ध हो जाता है।

व्याख्या : जब राजा ने देखा कि मुनिजी अति हर्षित है तब चारो बेटो को लाकर चरणो मे डाला कि इस समय अनायासेन इनके कल्याण की सम्भावना है। मुनिजी चारो को देखकर बडे प्रसन्न हुए। पर रामजी को देखकर तो उनको देहाध्यास ही नही रह गया। अर्थात् रामजी मे दृढरति हो गई। उनके मुख की शोभा देखने मे मगन हो गये। एकटक देखने लगे जैसे चकोर पूर्णचन्द्र को देखता है। चकोर पूर्णचन्द्र को देखते देखते आनन्द से लोटने लगता है। वैसी ही दशा मुनिजी के मन की हुई। देह की सुधि न रह गई। लोट-पोट हो गये।

तब मन हरषि बचन कह राऊ। मुनि अस कृपा न कीन्हिहु काऊ ॥
केहि कारन आगमन तुम्हारा। कहहु सो करत न लावौं बारा ॥४॥

अर्थ : तब मन मे हर्षित होकर राजा ने कहा कि मुनि जी! आपने ऐसी कृपा तो कभी नही की। आपके आगमन का क्या कारण है। उसे कहिये मैं उसके करने मे देर न लगाऊँगा।

व्याख्या पुत्र पर प्रेम देखकर महाराज मन मे हर्षित हुए। जिसका आना जाना लगा रहता है उसके आने का कारण नही पूछा जाता। विश्वामित्रजी कभी के आनेवाले नहीं। अत उनसे आगमन का कारण पूछते है। सेवा का अवसर मिलने का उत्साह है। अत. कहते है कि कहने मे देर है। मेरे करने मे देर न लगेगी।

असुर समूह सतावहिं मोही। मै जाचन आयउँ नृप तोही ॥
अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर बध मै होब सनाथा ॥५॥

अर्थ मुनिजी ने कहा : राक्षसो के समूह मुझे सता रहे हैं। राजन्! मैं अर्थी होकर आया हूँ। छोटे भाई के सहित रघुनाथ को मुझे दो। राक्षसो के वध से मैं सनाथ होऊँगा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या · दो-एक असुर नही हैं। उनका बडा भारी खेडा है। वे मुझे दु ख देते हैं। सतावँ मोही मे उनका पौरुष और उग्रता कही। इस भाँति कार्य की गुरुता दिखलायी। मैं ब्राह्मण हूँ, तुम राजा हो, मैं तुमसे माँगने आया हूँ। यही विनती है। यथा : करि विनती आनौं दोउ भाई। तुम्हारी सेना से काम न चलेगा। तुम रामजी को छोटे भाई के साथ दे दो। ये उनका वध करेंगे। मैं अनाथ हो रहा हूँ, इनके मिलने से मैं सनाथ हो जाऊँगा। यहाँ छोटे भाई से लक्ष्मण जी अभिप्रेत हैं। क्योंकि अनुज और अनुग रूप से ये ही प्रसिद्ध हैं। यथा छत्रिजाति रघुकुल जनम रामानुग जगजान।

दो. देहु भूप मन हरषित, तजहु मोह अग्यान।
धर्म सुजस प्रभु तुम्ह कौ, इन्ह कहँ अति कल्यान ॥२०७॥

अर्थ · राजन्! प्रसन्न मन से दो मोह और अज्ञान छोड दो। प्रभो! तुम्हे धम और सुयश होगा और इनका तो अत्यन्त कल्याण होगा।

व्याख्या : जहाँ लाभ ही लाभ है वहाँ हानि की शङ्का करना अज्ञान है। तुम यशोधन हो। सो तुम्हे यश और धर्म की प्राप्ति होगी और बच्चो का भी बडा कल्याण होगा। तुम स्नेह के वश व्यर्थ शङ्का मन मे ला रहो हो। अत ममता और अज्ञान छोडकर हर्षित मन से दोनो बेटे मुझे दो। यथा गीतावली मे

राजन् रामलखन जो दीजै।
जस रावरो लाभ ढोटनहू मुनि सनाथ सब कीजै॥
डरपत हौ साँचे सनेह बस सुत प्रभाव बिनु जाने।
बूझिय बामदेव अरु कुलगुरु तुम पुनि परम सयाने॥
रिपुरन दलि मखराखि कुसल अति अलप दिननि घर ऐहैं।
तुलसिदास रघुबंस तिलककी कविकुल कीरति गैहैं॥

सुनि राजा अति अप्रिय बानी। हृदय कंप मुख दुति कुमुलानी॥
चौथेपन पायउँ सुत चारी। बिप्र बचन नहि कहेहु बिचारी॥१॥

अर्थ अति अप्रिय वाणी सुनकर राजा का हृदय काँप उठा और चेहरे का तेज जाता रहा। बोले वृद्धावस्था में चार बेटे हुए। विप्र! आप विचारकर बात नही बोले।

व्याख्या बेटे का माँगना अप्रिय, तिसपर रघुनाथ का माँगना अत्यन्त अप्रिय था। रामजी को राक्षसो से युद्ध करने के लिए देना है। इससे हृदय मे कम्प हुआ और वचनबद्ध हो चुके हैं। इसमे मुख का तेज जाता रहा। कहने लगे, मेरी वृद्धावस्था, इस समय चार बेटे हुए हैं। इसलिए मुझे कितने प्रिय हैं। आप समझ सकते हैं। आप विप्र हैं, वेदपाठी हैं। आपको विचारकर बात बोलनी थी। सो आपने विचारकर नही कहा। यही बेटे भी माँगे जाते हैं। जो वृद्ध के एकमात्र आश्रय हैं। उन्हे देकर वृद्ध जी कैसे सकता है? अनुज समेत देहु रघुनाथा का उत्तर है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



माँगहु भूमि धेनु धन कोसा । सर्बस देउँ आजु सहरोसा ॥
देह प्रान ते प्रिय कछु नाही । सोउ मुनि देउँ निमिष एक माही ॥२॥

अर्थ . पृथ्वी, गौ, धन और कोप खजाना माँगिये। मैं अपना सर्वस्व उत्साह के साथ दे दूँगा। देह और प्राण से बढकर कोई वस्तु प्यारी नही है। उसे भी हे मुनि! एक पलक मे दे सकता हूँ।

व्याख्या ब्राह्मण जो माँगते हैं उसे माँगिये। ब्राह्मण अर्थी होकर आते हैं। अर्थ माँगते है। पृथ्वी, गौ, धन या कोप ये ही चार वस्तु ब्राह्मण माँगते हैं। आप उनमे वडे है सर्वस्व माँग लीजिये। मैं उत्साह के साथ दूँगा। देहु भूप मन हर्षित का उत्तर। मैं कृपण हूँ। मोह और अज्ञान के वश भी नही हूँ। सर्वोपरि प्रिय ससार मे देह और प्राण समझा जाता है। उसे पलभर मे दे सकता हूँ। तजहु मोह अज्ञान का उत्तर। अर्थात् देह प्राण देने म मुझे कोई विचार नही है। मैं स्वय उन राक्षसो से वडे उत्साह के साथ युद्ध करूँगा।

सब सुत प्रिय मोहि प्रान की नाई । राम देत नहि बनइ गुसाई ॥
कहँ निसिचर अति घोर कठोरा । कहँ सुन्दर सुत परम किसोरा ॥३॥

अर्थ मुझे सभी वेटे प्राण के समान प्यारे है। पर राम को देते नही बनता। कहाँ अत्यन्त घोर कठोर राक्षस और कहाँ परम किशोर सुन्दर बेटे ?

व्याख्या मै प्राण देने को प्रस्तुत हूँ। प्राण के समान तीनो बेटे है। उन्हे भी दे सकता हूँ। पर हे गोसाइँ! राम को देते नही बनता। भला राम का और उन राक्षसो का कौनसा जोड है। निशिचर अत्यन्त घोर कठोर होते हैं। सर्वथा असह्य होते है। अथवा मारीच घोर है। यथा मुनि न होइ यह निसिचर घोरा। और सुवाहु कठोर है। रामजी सुन्दर हैं और अभी सोलह वर्ष भी पूरा नही हुआ है। अत मृत्यु के मुख मे अपने हाथ से कैसे डाल दें ?

सुनि नृपगिरा प्रेमरस सानी । हृदय हरष माना मुनि ग्यानी ॥
तब वसिष्ठ बहुविधि समुझावा । नृप सदेह नास कहँ पावा ॥४॥

अर्थ . प्रेमरससानी राजा की वाणी सुनकर मुनिजी को मनमे प्रसन्नता हुई। तब वसिष्ठजी ने बहुत प्रकार से समझाया और राजा का सन्देह दूर हुआ।

व्याख्या राजा की वाणी प्रेम से सनी हुई थी। इसलिए मुनिजी भीतर से प्रसन्न हुए कि रामचरणो मे ऐसा ही अनुराग होना चाहिए। परन्तु बाहर से अप्रसन्न हुए। वसिष्ठजीने देखा कि बात बिगडती है। इसलिए राजा को बहुत प्रकार से समझाया। यथा

तेरो रघुकुल मे जनम स्वय धर्म को रूप।
रह्यो छाइ यश लोक तिहुँ ऐसो भयो न भूप ॥१॥
सत्यसन्ध तुम जो कह्यो करो नृपति हरखाय।
जाते पूरव पुण्य अरु कीरति नाहि नसाय ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रामलखन तन जगत् मे ताकि सकै नहि कोय।
समरथ विश्वामित्र सो जाको रक्षक होय ॥३॥
ये मूरति हैं धर्म के ये तप तेज निधान।
शास्त्र शस्त्र सबमे निपुण नहि कोउ इनहि समान ॥४॥
निशिचर वध मे ये स्वय हैं समर्थ रघुराय।
पै तव सुत कल्याण हित कीन्ह कृपा इत आय ॥५॥
और मर्म की बात इक तुमसन कहहुँ बुझाय।
याको प्रकट न कीजिये देव गुह्य रघुराय ॥६॥
नायक हैं चर अचर के राम-लखन हैं शेष।
चक्रसुदर्शन सत्रुहन, शख भरत के भेष ॥७॥
तुम कश्यप, अरु कौसिला अदिति, कियो हरिहेत।
भूरि तपस्या पुत्र करि मांग्यो कृपानिकेत ॥८॥
प्रकट्यो तव गृह आइ सो, शक्ति जनकगृह जाइ।
करत जतन सम्बन्ध हित दोउन के ऋषि राइ ॥९॥

तव राजा का सन्देह जाता रहा और देने को प्रस्तुत हो गये।

अति आदर दोउ तनय बोलाए। हृदय लाइ बहु भाँति सिखाए ॥
मेरे प्राननाथ सुत दोऊ। तुम्ह मुनि पिता आन नहिं कोऊ ॥५॥

दो सौपे भूप रिषिहि सुत, बहु विधि देइ असीस।
जननी भवन गये प्रभु, चले नाइ पदसीस ॥२०८॥ क

अर्थ अत्यन्त आदर से दोनो बेटो को बुलाया। हृदय से लगाकर बहुत प्रकार की शिक्षा दी। मुनि जी बोले हे मुने। ये दोनो बेटे मेरे प्राण के स्वामी हैं। आप इनके पिता हैं, और कोई नही है।

राजा ने बहुत प्रकार से आशीर्वाद देकर ऋषिजी को सौंप दिये। प्रभु माँ के घर गये और उन्हे सिर नवाकर चले।

व्याख्या सन्देह नाश होने पर भी पुत्रबुद्धि बनी हुई है। यह वरदान का प्रभाव है। अत्यन्त प्रेम है। अत्यन्त आदर से दोनो बेटो राम लक्ष्मण को बुलाया। कलेजे से लगा लिया। अति प्रिय के लिए वही स्थान है। शिक्षा दी कि मुनिजी की आज्ञा मानना। इनकी आज्ञा की कदापि अवहेलना न करना तथा शत्रु से सग्राम करने की सावधानी के विषय की अनेक शिक्षाएँ दी। तत्पश्चात् मुनिजी से कहा मेरे प्राण के ये ही दोनो स्वामी है। इन्ही को देखकर मैं जीता हूँ। अब आप इनके पिता हैं। पातीति पिता रक्षा करने से पिता सज्ञा है। आन नहि कोऊ कहने का भाव यह है कि मैं नही हूँ आपही इनके सब कुछ हैं।

पिता होने के कारण पुत्रो के कल्याण के लिए बहुत प्रकार से आशीर्वाद दिया। ऋषिजी ने याचना की थी अनुज समेत देहु रघुराया। सो चक्रवर्तीजी ने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सौंप दिया। विदा होने के लिए प्रभु माँ के घर गये। कुछ कहा नही केवल प्रणाम करके चल दिये। यह सोचकर कि असुर से युद्ध करना कहेंगे तो नही जाने देगी। पीछे से माँ ने कहा भी :

रिपि नृपसीस ठगौरी सी डारी।
कुलगुरु सचिव निपुन नेवनि अवरेव न समुझि सुधारी ॥१॥
सिरिस सुमन सुकुमार कुँवर दोउ सूर सरोप सुरारी।
पठए विनहि सहाय पयादेहि केलि वान धनुधारी ॥२॥
अति सनेह कातरि माता कहै, सुनु सखि वचन दुखारी।
वादि वीर जननी जीवन जग छत्रिजाति गतिभारी ॥३॥

सो पुरुप सिह दोउ वीर, हरपि चले[1] मुनि भय हरन।
कृपासिधु मतिधीर, अखिल विस्व कारन करन ॥२०८॥

अर्थ दोनो वीर पुरुषो मे सिंह थे। हर्षित होकर मुनि के भयहरण के लिए चले। क्योकि कृपा के समुद्र हैं। मतिधीर हैं और सम्पूर्ण विश्व के कारण के भी असाधारण कारण है।

व्याख्या पराक्रम तथा निर्भीकता सूचित करने के लिए पुरुषसिंह कहते है। रणप्रियता सूचित करने के लिए दोउवीर कहते है। असुरो से युद्ध करने का बडा उत्साह है। क्योकि उनके वध से ही मुनि भय से विनिर्मुक्त हो सकेंगे। कृपासिन्धु है। जिसका वध करेंगे उसे भी परम पद देंगे। मतिधीर हैं सेना सेवक कोई साथ नही है फिर भी धर्मरथ पर सवार है। यथा सखा धर्ममय असरथ जाके। जीत न कहँ न कतहुँ रिपु ताके। प्रभु के निज स्वरूप को स्मरण कराने के लिए ग्रन्थकार कहते हैं कि अखिल विश्व का कारण प्रकृति है। उसके भी ये अधिकरण हैं। आश्रय हैं। परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। इनका अवतार ही है।

अरुन नयन उर बाहु बिसाला। नील जलद तनु स्याम तमाला ॥
कटि पट पीत कसे वर भाथा। रुचिर चाप सायक दुहुँ हाथा ॥१॥

अर्थ लाल नेत्र और विशाल वक्षस्थल लम्बी भुजाएँ, नील, मेघ तथा तमाल तरु की भाँति श्याम शरीर कमर मे पीताम्बर तथा अच्छा तरकस कसे हुए। और दोनो हाथो मे धनुष और बाण लिए हुए।

व्याख्या मुनियो पर संकट है। यह सुनकर क्रोध से नेत्रो मे लालिमा आ

---

१. रामजी आश्विन कृष्ण द्वादशी को मुनिजी के साथ अयोध्या से चले। यद्यपि गोस्वामीजी सिवा दो एक स्थलो के तिथि नही देते पर स्थान स्थान पर ऐसा इङ्गित कर देते हैं। जिसकी खोज न करने से प्राय सभी घटनाओं का तिथि का पता चल जाता है यथा : बालकाण्ड म शरच्चन्द्र से सीताजी के मुख के मिलान पर ध्यान देने से बालकाण्ड की प्राय. सभी घटनाओ की तिथि का पता चल जाता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



गई है। यथा : अरुन नयन भृकुटी कुटिल चितवत नृपन्ह सकोप तथा अरुन नयन सर चाप चढ़ाए। वक्षःस्थल और बाहु का विशाल होना वीरो का लक्षण है। नील मेघ तथा तमाल के वृक्ष सी सुन्दर श्यामलता कही साथ ही कोमलता शीतलता और दृढ़ता भी द्योतित की। श्याम शरीर में पीतपट की बड़ी शोभा होती है। कमर में तरकस और हाथ मे धनुष बाण से युद्ध के लिए पूरी तैयारी सूचित होती है। इस भाँति सुन्दरता और वीरता का अद्भुत योग दृष्टिगोचर हो रहा है।

**स्याम गौर सुंदर दोउ भाई। बिस्वामित्र महानिधि पाई ॥**
**प्रभु ब्रह्मण्य देव मै जाना। मोहि निति पिता तजेउ भगवाना ॥२॥**

अर्थ : श्याम और गौर दोनों भाई सुन्दर हैं। विश्वामित्र ने बड़ी भारी निधि प्राप्त कर ली। मुनि जी सोचते हैं : मै जान गया। प्रभु ब्रह्मण्यदेव हैं। मेरे निमित्त भगवान् ने पिता को छोड़ा।

व्याख्या : दोनों सुन्दर हैं। देखने से ही भाई भाई मालूम होते हैं। केवल वर्णभेद है। बड़े श्याम है छोटे गौर है। महाराज का सौंपना कह चुके हैं। यथा : सौंपे भूपति रिषिहि सुत। अब मुनिजी का पाना कहते हैं। महानिधि पाने से जैसा हर्ष लोगो को होता है वैसा विश्वामित्रजी को दोनों भाइयों के पाने से हुआ। क्योंकि ये ही मुनि धन जन सर्वस सिव प्रान हैं। वे सोचने लगे कि पिता को इनके पृथक् करने में इतना कष्ट हुआ। पर इन्हें हर्ष है। यथा : हरखि चले मुनि भय हरन। जो ब्राह्मण के लिए पिता के बिरह को कुछ नहीं गिनता है वह ब्रह्मण्य है। इसमें सन्देह नहीं। ये देव हैं इन्होने जब पिता को छोड़ना चाहा तब उन्हे देने की मति उत्पन्न हुई। नहीं तो महाराज दशरथ तो नहीं कर ही चुके थे। इनमें समस्त ऐश्वर्य है। धर्म है। श्री है। ज्ञान और वैराग्य है। ये भगवान् हैं।

**चले जात मुनि दीन्हि देखाई। सुनि ताड़का क्रोध करि धाई ॥**
**एकहि बान प्रान हरि लीन्हा। दीन जानि तेहि निज पद दीन्हा ॥३॥**

अर्थ : राह में जाते हुए मुनि ने ताड़का को दिखा दिया। सुनकर ताड़का क्रुद्ध हो दौड़ी। एक ही बाण से प्राण हरण कर लिया और दीन जानकर उसे अपना पद दिया।

व्याख्या : मुनि संग दोनो भाई चले। पथकथा लिखते हुए ग्रन्थकार गीतावली में लिखते हैं : पैठत सरनि सिलनि चढ़ि चितवत खग मृग बन रुचिराई। सादर सभय सप्रेम पुलकि मुनि पुनि पुनि लेत बुलाई। इस भाँति किशोरलीला करते चले जाते थे कि ताड़का आ पड़ी। मुनिजी ने दिखला दिया। इङ्गित से नहीं। स्पष्ट कहा कि यह ताड़का है इसे मारो। सो जो बाण पहिले से ही हाथ मे था उसीसे ताड़का का वध हुआ। प्राण हरण तो किया पर उसके बदले में अपना पद दिया। बाण लगते ही नहीं मरी चोट खाकर दीन हो गई। तब दीनदयाल ने उसे मुक्त कर दिया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तब रिषि निज नाथहिं जिय चीन्हा । विद्यानिधि कहुँ विद्या दीन्हा ॥
जातें लाग न छुधा पिपासा । आतुलित बल तन तेज प्रकासा ॥४॥

अर्थ : तब ऋषि ने अपने स्वामी को हृदय से चीन्हा। विद्यानिधि को विद्या दी। जिससे न भूख लगे न प्यास लगे। बेतौल : बेपरिमाण : बल और तेज का प्रकाश शरीर में हो।

व्याख्या : सहस्र नागो के बल को धारण करनेवाली शापसस्पृष्टा दारुणा ताड़का का एक बाण से वध तथा दिव्यदृष्टि से उसकी गति देखने से मुनिजी को अभ्रान्त ज्ञान हो गया कि ये ही मेरे स्वामी हैं। मार्ग के चरित्रो के देखने से कुछ भ्रान्ति हो गई थी। सो अब हृदय से पहिचान गये अर्थात् दृढ धारणा हो गई। तब विद्यानिधि को विद्या दी। शिष्यभाव से उपासना के लिए गुरुशिष्यसम्बन्ध के स्थापन के लिए अपनी विद्या को सफल करने के लिए मार्ग चलते हुए श्रमित न हों। क्षुधा पिपासा की बाधा न हो। इसलिए यह जानते हुए कि ये विद्या के समुद्र है। बला और अतिबला विद्या दी। बला अतिबला विद्या के जाननेवाले को क्षुधा पिपासा की बाधा नहीं होती। असीम बल होता है। शरीर मे तेज प्रकाश होता है।

दो. आयुध सर्व समर्पि कै, प्रभु निज आश्रम[1] आनि।
कंदमूल फल भोजन, दीन्ह भगति हित जानि ॥२०९॥

अर्थ : सब अस्त्र-शस्त्र समर्पण करके प्रभु को अपने आश्रम में लाकर भक्त-हितकारी जानकर कन्दमूल फल भोजन दिया।

व्याख्या : परितुष्ट होकर विश्वामित्रजी ने सम्पूर्ण अस्त्र दिये : दण्डचक्र, धर्मचक्र, कालचक्र, विष्णुचक्र, ऐन्द्रचक्र, वज्र, शैव, शूलवत, ब्रह्मशिरस्, ऐषीक, ब्राह्म, मोदकी, शिखरी, धर्मपाश, कालपाश, वारुणपाश, वारुणास्त्र, शुष्काशनि, आर्द्राशनि, पैनाक, नारायण, आग्नेय, शिखर : वायव्य, हयशिरस क्रौञ्च, शक्तिद्वय, कङ्काल, कापाल, किङ्कणी, वैद्याधर, नन्दन : गान्धर्व, प्रस्वापन, प्रशमन, अमिरत्न, वर्षण, शोषण, सन्तापन, विलापन, मादन, मानव, मोहन, तामस, सौमन, संवर्त, मौसल, सत्य, मायामय, तेजप्रभ, शिशिर, त्वाष्ट्र, शीतेषु और मानद : ये सब नाम वाल्मीकीय रामायण मे गिनाये हैं। फिर सिद्धाश्रम मे ले आये और कन्दमूल फल भोजन दिया। जान लिया कि ये भक्तहित हैं जो कुछ दूँगा सो स्वीकार करेंगे।

---

[1] अयोध्या से चलकर डेढ़ योजन पर विश्राम किया। दूसरे दिन सरयूगङ्गासङ्गम कामाश्रम पर निवास किया। चतुर्दशी को ताड़का वध किया अमावास्या को मुनिजी के आश्रम पर पहुँचे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रात कहा मुनीसन रघुराई । निर्भय जग्य करहु तुम जाई ॥
होम करन[1] लागे मुनि झारी । आपु रहे मख की रखवारी ॥१॥

अर्थ · सबेरे रामजी ने मुनि से कहा आपलोग जाकर निर्भय हो यज्ञ कीजिये। सब मुनिलोग होम करने लगे और स्वय आप यज्ञ की रखवारी करने लगे।

व्याख्या : उस रात्रि को विश्राम करके प्रात काल दूसरे दिन रघुराई ने कहा : आपलोग निर्भय होकर यज्ञ करें। विश्वामित्रजी ने चक्रवर्तीजी से कहा था असुर समूह सतावहिं मोही। मैं जाचन आयउँ नृप तोही। अनुज समेत देहु रघुनाथा। निसिचर वध मैं होव सनाथा। अतः कहते हैं कि अब निशिचर आप लोगो को न सता सकेंगे। मै आप लोगो की रक्षा करूँगा। आपलोग जाकर यज्ञ करें। तदनुसार मुनिलोगो ने हवन करना आरम्भ कर दिया। सब छोटे बडे मुनियो ने स्वाहा की ध्वनि की। स्वय प्रभु पहरा देने लगे। कोई विघ्न न हुआ। ताडका का वध करने-वाले की रक्षा मे यज्ञ हो रहा है। इस भय से कोई राक्षस नही आये।

सुनि मारीच निसाचर कोही। लै सहाय धावा मुनिद्रोही ॥
बिनु फर बान राम तेहि मारा। सत जोजन गा सागर पारा ॥२॥

अर्थ · समाचार पाकर क्रोधी राक्षस मुनियो का द्रोही मारीच सेना लेकर दौडा। बिना फर का वाण : तुक्का रामजी ने उसे मारा। सौ योजन समुद्र के पार चला गया।

व्याख्या मारीच . ताडका का बेटा बडा क्रोधी था माँ का मारा जाना सह न सका। सेना इकट्ठी करके धावा किया। इधर यज्ञ हो रहा था। उधर मारीच सेना इकट्ठी कर रहा था। मुनिद्रोही है। सुना कि इस समय मुनि ससहाय है। ताडकाहन्ता स्वय पहरा दे रहे है। अत जब यथेष्ट सेना सङ्कलित कर चुका तब उसने एक क्षण का विलम्ब नही किया। दौड पडा। मध्याह्न के समय पहुँच गया। रामजी गाँसा सहित बाण से मारते तो मर जाता। उससे काम लेना था इसलिए तुक्के से मारा। मारीच सौ योजन समुद्र पार लङ्का मे जाकर गिरा। यह सौ योजन समुद्र का नाप है पृथ्वी मे जितनी दूर गया उसका परिमाण यहाँ नही लिखा।

पावक सर सुबाहु पुनि मारा। अनुज निसाचर कटकु सँघारा ॥
मारि असुर द्विज निर्भयकारी। अस्तुति करहिं देवमुनि झारी ॥३॥

अर्थ आग्नेयास्त्र से सुबाहु को मारा। छोटे भाई · लक्ष्मण ने आसुरी

---

१ आश्विन सुदि १ प्रथम स्थापना . के दिन यज्ञारम्भ हुआ। छ अहोरात्र दोनो भाइयो ने रखवारी की। छठे दिन मध्यान्ह को निशिचर दल आया। सुबाहु मारा गया मारीच समुद्र पार फेका गया। शेष सेना सब मारी गई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सेना का संहार किया। ब्राह्मणो को निर्भय करनेवाले ने असुरो को मारा। सब देवताओ और मुनि स्तुति करने लगे।

व्याख्या असुरो को यज्ञ से परम वैर है। वे प्राण रहते यज्ञ होने न देंगे और ब्राह्मणो को यज्ञ पर बडी भारी प्रीति है। विश्वामित्र महा मुनि ज्ञानी होने पर भी उनकी यज्ञ पर इतनी प्रीति है कि चक्रवर्तीजी के यहाँ जाकर रामजी को यज्ञरक्षा के लिए माँग लाये। ब्राह्मण तभी निर्भय रह सकते है जब उनके यज्ञ मे बाधा न हो। सो असुरो के मारे जाने से सनाथ हो गये। आग्नेयास्त्र से रामजी ने सुबाहु को मारा। तब तक लक्ष्मणजी ने असुर सेना को विध्वस कर दिया। देवता और मुनि लोग स्तुति करने लगे। उनका व्यापार फिर चलता हो गया। देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु व। परस्पर भावयन्त श्रेय परमवाप्स्यथ। यज्ञ से मनुष्य देवताओ की भावना करें और देवता मनुष्यो की भावना करें। इस भाँति परस्पर भावना करते हुए तुम लोग परम कल्याण को प्राप्त होओ। यह ब्रह्मदेव का बतलाया हुआ मार्ग निरर्गल हुआ। मारीच को लङ्का मे फेककर प्रभु ने रावण के पास मानो समाचार भेज दिया कि अब यज्ञ नही रुक सकता। रोकनेवाले आवे।

तहँ पुनि कछुक दिवस रघुराया। रहे कीन्हि विप्रन्ह पर दाया॥
भगति हेतु बहु कथा पुराना। कहे विप्र यद्यपि प्रभु जाना॥४॥

अर्थ वहाँ कुछ दिनो तक रामजी रहे। ब्राह्मणो पर दया की। भक्ति के लिए ब्राह्मणो ने बहुत सी पुराणो की कथाएँ रामजी को सुनाईं। यद्यपि प्रभु सब जानते ही थे।

व्याख्या ब्राह्मणो को पूर्णरूपेण निर्भय करने के लिए उन पर दया करके प्रभु कई दिन वहाँ ठहर गये कि जो राक्षसो की सेना और आनी हो सो आ ले। पुरुष सिंह दोउ वीर, हरखि चले मुनि भय हरन। सो पूर्णरूपेण भय हरण किया। ब्राह्मण लोग कौन सी सेवा करें? अत प्रभु को पुराण की कथाएँ सुनाईं, अज्ञानहरण के लिए नही, अपनी भक्ति के उद्रेक की शान्ति के लिए। भगवान् सब जानते हुए भी उनकी भक्ति से प्रेरित होकर सादर सुनते रहे। तीन दिनो तक सिद्धाश्रम मे ही विश्राम किया। विजया दशमी को मुनिजी के साथ धनुषयज्ञ देखने चले। उस दिन पहिला विश्राम शोणतट पर हुआ।

तब मुनि सादर कहा बुझाई। चरित एक प्रभु देखिअ जाई॥
धनुषजग्य सुनि रघुकुलनाथा। हरखि चले मुनिवर के साथा॥५॥

अर्थ तब मुनि ने आदर सहित समझाकर[१] कहा कि हे प्रभो! चलकर

---

१ उत्तर इहाँ ते देश मिथिला अनूप भूप विदित विदेह तासु तनया गुणो की खानि।
नृप मुनि कान धाये शलभ समान रण मान्यौ घमासान पै पराने हारहिय मानि॥
रारि नित बढत विलोकि नृप कीन्ह्यौ पन, तोरै जो पिनाक ताहि जानकी वरैगी जानि।
सुनि सुनि आय हैं महीप दीप दीपन ते रावरे पधारिवे ते भूप की बढैगी कानि॥

ankurnagpal108@gmail.com



एक चरित्र देखना चाहिए। धनुपयज्ञ की बात सुनकर रघुकुल के नाथ हर्षित होकर मुनिवर के साथ चले।

व्याख्या जब राक्षसो के आने की प्रतीक्षा हो चुकी, अयोध्या लौटने का अवसर आया। तब मुनिजी ने रामजी को समझाकर कहा हमलोग राजा जनक का यज्ञ देखने जायेंगे। वहाँ शिव का धनुष रक्खा हुआ है आप भी उसे देखेंगे। राजा जनक आपका सत्कार करेंगे। इत्यादि बातें बतलाकर धनुपयज्ञ देखने पर जोर दिया। प्रभु धनुपयज्ञ की बात सुनकर हर्षित हुए कि वहाँ वीरों के पराक्रम की परीक्षा होगी। अत अयोध्या न चलकर मुनिवर के साथ मिथिला चले। पहिले हरखि चले मुनिभय हरन। अब धनुपयज्ञ सुनि हरखि चल मुनिवर के साथा। पहिले प्रभु के साथ मुनिजी थे। अब मुनिजी के साथ प्रभु हैं।

आश्रम एक दीख मग माँही। खग मृग जीव जतु तह नाही ॥
पूछा मुनिहि सिला प्रभु देखी। सकल कथा मुनि कही बिसेखी ॥६॥

अर्थ मार्ग मे एक आश्रम देखा। जहाँ पशु पक्षी जीव जन्तु कोई भी नही था। एक शिला पडी थी उसे देखकर प्रभु ने पूछा। मुनि ने विशेष रूप से सब कथा कही।

व्याख्या फल फूल हीन वन मे जन्तु नही रहते। परन्तु यह तो आश्रम है। फल फूलवाले वृक्ष लगे हैं। फिर भी जीव जन्तु क्यों नही हैं? और यह शिला कैसी पडी हुई है? उस शिला के देखने से ही उसमे कुछ विशेषता प्रतीत हुई। रामजी ने मुनिजी से पूछा कि यह किसका आश्रम है?

मुनिजी ने कहा कि पहिले यहाँ महर्षि गौतमजी तप करते थे। उन पर प्रसन्न होकर ब्रह्मदेव ने अपनी अहल्या नाम्नी लोकसुन्दरी कन्या उन्हे दी। उसके साथ वे यही रहा करते थे। इन्द्र उस पर मुग्ध थे। उसे पाने के लिए नित्य अवसर देखा करते थे। किसी समय गौतमजी घर से बाहर गये। इन्द्र ने उनका वेष धारण करके अहल्या का सतीत्व नष्ट किया। बाहर निकलते ही उधर से गौतमजी आगये। उन्होंने क्रोध करके पूछा कि मेरा रूप धारण करनेवाला अधम तू कौन है? सत्य कह। नही तो तुझे अभी भस्म करता हूँ। वह बोला मैं कामकिङ्कर इन्द्र हूँ। मैंने कुकर्म किया है। मुनि ने क्रोध करके शाप दिया कि तुझे सहस्र भग हो जावें। अहल्या को शाप दिया कि हे दुर्वृत्ते! तू मेरे आश्रम की इस शिला मे रह। दिन रात निराहार रहकर परम तप मे स्थित हो। लू वर्षा आदि को सहन करती हुई परमेश्वर राम का ध्यान कर। यह मेरा आश्रम नाना जन्तुओ से विहीन हो जायगा। इस भाँति अनेक सहस्र वर्ष बीतने पर रामजी भाई के साथ इधर आयेंगे। जब वे इस शिला पर पैर रक्खेंगे तब तू निष्पापा होकर रामकी पूजा परिक्रमा स्तुति करके शाप से छूट जायगी। और पहिले की भाँति यथेच्छरूप से मेरी शुश्रूपा करेगी।

दो गौतम नारी श्राप बस, उपल देह धरि धीर।
चरन कमल रज चाहति, कृपा करहु रघुबीर ॥२१०॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : गौतम की स्त्री शाप के वश होकर पत्थर का शरीर धारण किये हुए धैर्य धारण करके आपके चरण की धूलि चाहती है। सो हे मतिधीर ! कृपा कीजिये।

व्याख्या : शिला के ही आश्रित अहल्या थी इसलिए उपलदेह कहा। उसकी यथार्थ देह प्राणिमात्र के लिए अलक्षित थी। शाप से विनिर्मुक्त होने के लिए चरणरज चाहती है। सो आप रघुवीर हैं : समर लरहि न जिनके नाहीं, उस कुल में वीर हैं। इस पर कृपा करिये, इस शिला पर पैर रखिये। यह सहस्रों वर्ष से धैर्य धारण किये हुए चरणरज की आशा लगाये परम तप में स्थित है। मुनिजी की आज्ञा से प्रभु ने उस शिला का स्पर्श चरणों से किया।

छं. [1]परसत पद पावन सोकनसावन प्रगट भई तपपुंज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोरि रही॥
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहिं आवै बचन कही।
अतिसय बड़भागी चरनन्हि लागी जुग नयनन्हि जलधार बही॥१॥

अर्थ : पवित्र करनेवाले और शोकनाश करनेवाले चरणों के छूते ही, सच्ची तपस्या की पुञ्ज प्रकट हुई। भक्तों के सुख देनेवाले रघुनायक को देखते हुए सामने हाथ जोड़कर खड़ी हो गई। अत्यन्त प्रेम से अधीर हो गई। रोंगटे खड़े हो गये। मुख से शब्द नहीं निकलता। अत्यन्त ही भाग्यवती है, चरणों में लग गई। दोनों आँखों से अश्रु की धारा बह निकली।

व्याख्या : अति दारुण विप्रशाप से पवित्र करनेवाला चरण है। इसलिए पावन कहा। ईप्सित फलदाता होने से शोकनसावन कहा। सद्य: कल्याणप्रद है। अत: उसके स्पर्श करते ही सब कल्मष दग्ध हो गये। शुद्ध तपोमूर्ति दृष्टिगोचर हो गई। सच्चा सुवर्ण उसी को कहते हैं जिसमें किसी अन्य धातु का सम्मिश्रण न हो। प्रभु के चरणस्पर्श से यावत् कल्मष उसके रहे सो दग्ध हो गये। निखरे हुए सोने की भाँति शुद्ध तपोमय मूर्ति शाप से विनिर्मुक्त होकर प्रकट हो गई।

उपल : पत्थर के अवयवों से ढके रहने के कारण पहिले न देख सकी थी। उससे जब छूटी तब भक्तों के सुखदायक रघुनायक को देखा। उसका हृदय साधु है। इससे सन्मुख हुई। दुष्ट हृदय परमेश्वर के सन्मुख नहीं हो सकता। यथा : जौं पै दुष्ट हृदय सोइ होई। मोरे सनमुख आव कि सोई। और कुछ कहते या करते न बना। अत: हाथ जोड़े खड़ी रह गई। परन्तु खड़ा भी रहा नहीं जाता। क्योंकि अति प्रेम से अधीर हो उठी। शरीर पुलकित हो उठा। स्तुति करना चाहती है। पर कण्ठ रुँधा हुआ है : मनसा वाचा कर्मणा प्रेम कहा। बड़ा भारी भाग्य उदय हुआ। चरणों में जा गिरी। हृदय विगलित हो उठा। आँसू की धारा बह चली। चरणों का सम्बन्ध होना ही अहोभाग्य है।

---

१. यह त्रिभङ्गी छन्द है। इसमें ३२ मात्राओं का एक पाद होता है। १०,८,८,६ मात्राओं पर विराम होता है। अन्त में एक गुरु आता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



छं धीरजु मन कीन्हा प्रभु कहुँ चीन्हा रघुपति कृपा भगति पाई ।
अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी ग्यानगम्य जय रघुराई ॥
मै नारि अपावन प्रभु जगपावन रावनरिपु जनसुखदाई ।
राजीव विलोचन भव भय मोचन पाहि पाहि सरनहि आई ॥

अर्थ · मन मे धैर्य किया । प्रभु को पहिचाना । रघुपति की कृपा से उसे भक्ति मिली । अत्यन्त निर्मल वाणी से स्तुति आरम्भ कर दी कि हे ज्ञानगम्य रघुराई तुम्हारी जय हो । मै अपावन स्त्री हूँ और प्रभु लोगो को पवित्र करनेवाले हैं । रावण के रिपु है और भक्तो के सुख देनेवाले हैं । हे राजीवविलोचन ! हे ससार के भय को दूर करनेवाले ! मै शरण मे आयी हूँ । मुझे बचाइये, मेरी रक्षा कीजिये ।

व्याख्या जब अश्रुधारा कुछ बह गई तब धैर्य ला सकी । देखने से ही प्रेम हुआ । पर यह न जान सकी थी कि ये कौन हैं । पर अब धैर्य आ जाने से स्मृति लौटी । मुनि का वचन स्मरण हो उठा । तब प्रभु को चीन्हा । जानाति इच्छति यतते । जब मनुष्य जानता है, तब इच्छा करता है तत्पश्चात् प्रयत्न करता है । जब प्रभु को पहिचाना तो वह प्रेम भक्ति रूप म परिणत हुआ । अथवा गुरुजी ने कहा था कृपा करहु रघुवीर सो रघुनाथ ने कृपा की । उसने भक्ति पायी । भक्ति के पाते ही बात दूसरी हो गई । वाणी निर्मल हो गई । स्तुति करने लगी । कहा हे रघुराई ! आप ज्ञानगम्य हैं । ततो मा तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् । जैसा हूँ, जितना हूँ सो भक्ति से ही मुझे तत्त्वत जानकर मुझमे प्रवेश कर जाता है । आपकी जय हो । ज्ञानगम्य से ब्रह्म कहा और रघुराई से अवतार कहा ।

अपने पूर्ववृत्त का स्मरण करके कहती है कि मैं नारियो मे अपावन हूँ और प्रभु जग को पावन करनेवाले है । मुझे पवित्र कीजिये । आप रावणरिपु जनसुखदायी हैं । परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम् आपका अवतार हुआ है । हे राजीवविलोचन ! आप दृष्टिमात्र से भवभय के हरण करनेवाले है । पतित के लिए एकमात्र उपाय आपका शरण है । सो मैं शरण आई हूँ । मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये । यहाँ वीप्सा अत्यन्त आरत होने के कारण से है । अथवा प्रथम पाहि कहकर पातित्य से त्राण पाने के लिए और दूसरा पाहि शरण मे लेने के लिए कहा । यथा मैं पतित तुम पतितपावन दोऊ बानक बने । दास तुलसी सरन आयो राखिये आपने ।

छं. मुनि श्राप[1] जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मै माना ।
देखेउँ भरि लोचन हरि भवमोचन इहइ लाभु सकर जाना ॥
विनती प्रभु मोरी मै मति भोरी नाथ न मागौं वर आना ।
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना ॥३॥

१ यहाँ अनुज्ञा अलङ्कार है ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ · गौतम की स्त्री शाप के वश होकर पत्थर का शरीर धारण किये हुए धैर्य धारण करके आपके चरण की धूलि चाहती है। सो हे मतिधीर ! कृपा कीजिये।

व्याख्या शिला के ही आश्रित अहल्या थी इसलिए उपलदेह कहा। उसकी यथार्थ देह प्राणिमात्र के लिए अलक्षित थी। शाप से विनिर्मुक्त होने के लिए चरणरज चाहती है। सो आप रघुवीर है मगन लहहि न जिनके नाही, उस कुल मे वीर हैं। इस पर कृपा करिये, इस शिला पर पैर रखिये। यह सहस्रो वर्ष से धैर्य धारण किये हुए चरणरज की आशा लगाये परम तप मे स्थित है। मुनिजी की आज्ञा से प्रभु ने उस शिला का स्पर्श चरणो से किया।

छ [1]परसत पद पावन सोकनसावन प्रगट भई तपपुज सही।
देखत रघुनायक जन सुखदायक सनमुख होइ कर जोर रही॥
अति प्रेम अधीरा पुलक सरीरा मुख नहि आवै वचन कही।
अतिसय बडभागी चरनन्हि लागी जुग नयनन्हि जलधार वही॥१॥

अर्थ पवित्र करनेवाले और शोकनाश करनेवाले चरणो के छूते ही, सच्ची तपस्या की पुञ्ज प्रकट हुई। भक्तो के सुख देनेवाले रघुनायक को देखते हुए सामने हाथ जोडकर खडी हो गई। अत्यन्त प्रेम से अधीर हो गई। रोगटे खडे हो गये। मुख से शब्द नही निकलता। अत्यन्त ही भाग्यवती है, चरणो मे लग गई। दोनो आँखो से अश्रु की धारा बह निकली।

व्याख्या अति दारुण विप्रशाप से पवित्र करनेवाला चरण है। इसलिए पावन कहा। ईप्सित फलदाता होने से शोकनसावन कहा। सद्य कल्याणप्रद है। अत उसके स्पर्श करते ही सब कल्मष दग्ध हो गये। शुद्ध तपोमूर्ति दृष्टिगोचर हो गई। सच्चा सुवर्ण उसी को कहते है जिसमे किसी अन्य धातु का समिश्रण न हो। प्रभु के चरणस्पर्श से यावत् कल्मष उसके रहे सो दग्ध हो गये। निखरे हुए सोने की भाँति शुद्ध तपोमय मूर्ति शाप से विनिर्मुक्त होकर प्रकट हो गई।

उपल पत्थर के अवयवो से ढके रहने के कारण पहिले न देख सकी थी। उससे जब छूटी तब भक्तो के सुखदायक रघुनायक को देखा। उसका हृदय साधु है। इससे सन्मुख हुई। दुष्ट हृदय परमेश्वर के सन्मुख नही हो सकता। यथा जौ पै दुष्ट हृदय सोइ होई। मोरे सनमुख आव कि सोई। और कुछ कहते या करते न बना। अत हाथ जोडे खडी रह गई। परन्तु खडा भी रहा नही जाता। क्योकि अति प्रेम से अधीर हो उठी। शरीर पुलकित हो उठा। स्तुति करना चाहती है। पर कण्ठ रुँधा हुआ है मनसा वाचा कर्मणा प्रेम कहा। बडा भारी भाग्य उदय हुआ। चरणो मे जा गिरी। हृदय विगलित हो उठा। आँसू की धारा बह चली। चरणो का सम्बन्ध होना ही अहोभाग्य है।

---

१ यह त्रिभङ्गी छन्द है। इसमे ३२ मात्राओ का एक पाद होता है। १०,८,८,६ मात्राओ पर विराम होता है। अ त मे एक गुरु आता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



छं. धीरजु मन कीन्हा प्रभु कहुँ चीन्हा रघुपति कृपा भगति पाई ।
अति निर्मल बानी अस्तुति ठानी ग्यानगम्य जय रघुराई ॥
मै नारि अपावन प्रभु जगपावन रावनरिपु जनसुखदाई ।
राजीव बिलोचन भव भय मोचन पाहि पाहि सरनहि आई ॥

अर्थ : मन मे धैर्य किया । प्रभु को पहिचाना । रघुपति की कृपा से उसे भक्ति मिली । अत्यन्त निर्मल वाणी से स्तुति आरम्भ कर दी कि हे ज्ञानगम्य रघुराई तुम्हारी जय हो । मैं अपावन स्त्री हूँ और प्रभु लोगो को पवित्र करनेवाले हैं । रावण के रिपु हैं और भक्तो के सुख देनेवाले हैं । हे राजीवविलोचन ! हे संसार के भय को दूर करनेवाले ! मैं शरण मे आयी हूँ । मुझे बचाइये, मेरी रक्षा कीजिये ।

व्याख्या : जब अश्रुधारा कुछ बह गई तब धैर्य ला सकी । देखने से ही प्रेम हुआ । पर यह न जान सकी थी कि ये कौन हैं । पर अब धैर्य आ जाने से स्मृति लौटी । मुनि का वचन स्मरण हो उठा । तब प्रभु को चीन्हा । जानाति इच्छति यतते । जब मनुष्य जानता है, तब इच्छा करता है तत्पश्चात् प्रयत्न करता है । जब प्रभु को पहिचाना तो वह प्रेम भक्ति रूप मे परिणत हुआ । अथवा गुरुजी ने कहा था : कृपा करहु रघुवीर : सो रघुनाथ ने कृपा की । उसने भक्ति पायी । भक्ति के पाते ही बात दूसरी हो गई । वाणी निर्मल हो गई । स्तुति करने लगी । कहा : हे रघुराई ! आप ज्ञानगम्य हैं । ततो मां तत्त्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम् । जैसा हूँ, जितना हूँ सो भक्ति से ही मुझे तत्त्वतः जानकर मुझमे प्रवेश कर जाता है । आपकी जय हो । ज्ञानगम्य से ब्रह्म कहा और रघुराई से अवतार कहा ।

अपने पूर्ववृत्त का स्मरण करके कहती है कि मैं नारियो मे अपावन हूँ और प्रभु जग को पावन करनेवाले है । मुझे पवित्र कीजिये । आप रावणरिपु जनसुखदायी हैं । परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम् : आपका अवतार हुआ है । हे राजीवविलोचन ! आप दृष्टिमात्र से भवभय के हरण करनेवाले है । पतित के लिए एकमात्र उपाय आपका शरण है । सो मैं शरण आई हूँ । मेरी रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये । यहाँ वीप्सा अत्यन्त आरत होने के कारण से है । अथवा प्रथम पाहि कहकर पातित्य से त्राण पाने के लिए और दूसरा पाहि शरण मे लेने के लिए कहा । यथा : मैं पतित तुम पतितपावन दोऊ बानक बने । दास तुलसी सरन आयो राखिये आपने ।

छं. मुनि श्राप[1] जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मै माना ।
देखेउँ भरि लोचन हरि भवमोचन इहइ लाभु संकर जाना ॥
बिनती प्रभु मोरी मै मति भोरी नाथ न माँगौं बर आना ।
पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना ॥३॥

१. यहाँ अनुज्ञा अलङ्कार है ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : मुनिजी ने जो मुझे शाप दिया वह बहुत अच्छा किया। मैं उसे परम अनुग्रह रूप मानती हूँ। आँख भर के भवमोचन हरि का दर्शन किया। शिवजी ने भी इसे ही लाभ माना है। हे प्रभो ! मेरी बुद्धि मन्द है। मै यही विनती करती हूँ। दूसरा वर नही चाहती : कि आपके चरण कमल के पराग के रस को मेरा मनरूपी भौंरा पान किया करे।

व्याख्या : भक्ति के आते ही ज्ञान हुआ। क्योकि श्रीहरि जो है और जैसे हैं उसका तत्त्वज्ञान तो भक्ति के होने से ही होता है। यथा : भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वत:। अब कहती है कि मुनिजी ने मुझे जो शाप दिया वह भला ही नही, अत्यन्त भला किया। जो भला करता है वह अनुग्रह करता है और जो अत्यन्त भला करता है वह परम अनुग्रह करता है। अत: कहती हैं उस शाप से मेरा बडा भला हुआ अत मैं उसे शाप नही मानती। परम अनुग्रह मानती हूँ। क्योकि हरि भवमोचन को आँख भर के देखा। जन्म का फल पा लिया। यथा : नयनवत रघुपतिहि बिलोकी। पाइ जनम फल होहि बिसोकी। प्रभु को आँख भर देखने को ही शिवजी लाभ मानते हैं। और किसी लाभ को लाभ नही मानते। अत: इसके अत्यन्त उत्कृष्ट होने मे सन्देह नही है।

हे प्रभो ! मेरी बुद्धि मन्द है। मैं फिर ससार मे भूल जाऊँगी। इसलिए और कोई वर न माँगकर इस वर के लिए विनती करती हूँ कि आप के चरणकमल के पराग के रस का पान मेरा मन सदा भौंरारूप होकर करता रहे।

छं. जेहिं पद सुरसरिता परम पुनीता प्रगट भई सिव सीस धरी।
सोई पदपंकज जेहि पूजत अज मम सिर धरेउ कृपाल हरी॥
एहि भाँति सिधारी गौतम नारी बार बार हरि चरन परी।
जो अति मन भावा सो बरु पावा गै पतिलोक अनंद भरी॥४॥

अर्थ : जिन चरणो से परम पुनीत गङ्गाजी प्रकट हुई और उन्हे शिवजी ने सिर पर रक्खा और वही चरणकमल जिसका ब्रह्मा पूजन करते हैं हरि ने मेरे सिर पर रक्खा। इस भाँति बार बार हरि के चरण पर गिरकर गौतम जी की स्त्री चली गई। जो अत्यन्त मन को भाया था वही वर पाया और पति के लोक को आनन्द से भरी हुई गई।

व्याख्या . अपने भाग्य की सराहना करती है कि ये चरण शिवजी के सिर पर न पडे। तव चरण से निकली हुई गङ्गाजी को सिर पर धारण करके सन्तोष किया। न ब्रह्मा के सिर पर पडे। वे नित्य उन चरणो की पूजा करके सन्तोष धारण किये हुए हैं। वाह रे मेरा भाग्य ! कि वे चरण मेरे सिर पर पडे यह विचारकर चरणो पर बार बार गिरती है कि ये चरण शिव ब्रह्मादि को भी दुर्लभ हैं। आज मुझे सुलभ हुए हैं। यद्यपि प्रभु ने मुख से नही कहा। गौतम की स्त्री होने से बडी मानते हैं। तथापि जो वर उसे अत्यन्त पसन्द था वह दे दिया और वह आनन्द

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भरी पतिलोक को गई। भाव यह कि दोनो भाँति से प्रभु ने रक्षा की। भक्ति वर देकर शरण म रख लिया और उसे परम पवित्र करके पतिलोक भेज दिया। यथा गौतम गये गृह गौनो सो लवायके। आनन्द भरी गई अर्थात् महर्षि गौतम से सत्कार पाकर भक्ति वर पाकर आनन्द भरी हुई गई।

दो० अस प्रभु दीनबंधु हरि, कारन रहित दयाल।
तुलसीदास सठ तेहि भजु छाडि कपट जजाल ॥२११॥

अर्थ हरि ऐसे दीनबन्धु प्रभु है और बिना कारण के कृपा करनेवाले हैं। तुलसीदास जो अपने मन से कहते हैं कि रे शठ! तू कपट जजाल को छोडकर उसे भज।

व्याख्या ऐसे समर्थ हैं, दीनदयाल हैं कि गये हुए सतीत्व को लौटा दिया। पत्थर से फिर नारी बना दी।

यथा रामपद पदुम पराग परी।
रिपितिय तुरत त्यागि पाहनतनु छविमय देहधरी ॥१॥
प्रबल पाप पतिशाप दुसह दव दारुन जरनि जरी।
कृपासिधु सिचि विवुधवेलि ज्यौ फिर सुख फरनि फरी ॥२॥
निगम अगम मूरति महेस मति जुवति वराय वरी।
सोइ मूरति भई जानि नयनपथ, इकटक ते न टरी ॥३॥
वरनति हृदय सरूप सील गुन प्रेम प्रमोद भरी।
तुलसिदास अस केहि आरत की आरति प्रभु न हरी ॥४॥

तुलसीदासजी अपने मन को समझाते हैं कि तू शठ है हठी है। सो हठ मत कर एस समथ और ऐसे दयालु को भज। जोग वियोग भोग भल मदा। हित अनहित मध्य भ्रम फदा। इन फदो का एक बडा भारी जाल बना हुआ है जिसम पड जाने से निकलना बहुत कठिन होता है। यह जाल जन्म से लकर मरण तक फैला हुआ है। यथा जनम मरन जहँ लगि जगजालू। इसी को यहाँ जजाल कहा है। इसे छोडकर भजन कर। यह छोडने से ही छूटता है। यथा होइ न विषय विराग भवन वसत भा चौथपन। हृदय बहुत दुख लाग जनम गयउ हरिभगति बिनु। बरवस राज सुतहि तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा।

यह अहल्याकृत स्तुति कृतिका नक्षत्र है। इसम छ क्रियाएँ हैं १ प्रभु का दर्शन किया। २ शरण आई। ३ शाप को अनुग्रह माना। ४ वरदान माँगा। ५ कृतकृत्य हुई। ६ पतिलोक गई। ये ही छ चमकदार तारे हैं। पाप को छुरे की भाँति काटा। इसलिए छुर का आकार माना। इसका फल है सद्गुरु ज्ञानविराग योग के। ज्ञानगम्य जै रघुराई कहने से ज्ञान का। नाथ न वर मागौ आना से विराग का। पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना से योग। यथा योगिनामपि सर्वेषा मद्गतेनान्तरात्मना। श्रद्धावान् भजते यो मा स मे युक्ततमो मत। का गुरु कहा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चले राम लछिमन मुनि संगा। गए जहाँ जग पावनि गंगा॥
गाधिसूनु सब कथा सुनाई। जेहि प्रकार सुरसरि महि आई॥

अर्थ राम और लक्ष्मण मुनिजी के साथ चले। जहाँ जगत् को पवित्र क वाली गङ्गा थी वहाँ गये जिस प्रकार से गङ्गा पृथ्वी पर आई। वह सब कथा गा राज के पुत्र विश्वामित्र ने सुनाई।

व्याख्या : इसबार हरख कर न चले। क्योंकि मनमे पछतावा था कि ब्राह्म की स्त्री को मुझे चरण से छूना पडा। यथा . दई सुगति सो न हेरि हरख हिय च छुए को पछिताव। गी। पहिले जो चले थे तो हरख कर चले थे। यथा : पुरुष ि दोउ वीर हरखि चले मुनि भय हरण। तथा : धनुषयज्ञ सुनि रघुकुल नाथा। हर चले मुनिवर के साथा। सिद्धाश्रम से जनकपुर जाने मे गङ्गापार उतरना पडता है

गङ्गास्नान से पहिले गङ्गामाहात्म्यश्रवण की विधि है। सो विश्वामित्रजी गङ्गा जी की कथा सुनाई कि पहिले गङ्गा जी पृथ्वी पर नही थी। राजा सगर पुत्र पिता के अश्वमेधघोडे का पता लगाते कपिलजी के आश्रम मे पहुँचे। वहाँ घ को देखा। कपिलजी को ही घोडे का हरण करनेवाला समझकर मारने दौडे। कपि जी ने शाप दिया। वे वही भस्म हो गये। बात यह हुई थी कि राजा सगर ९ अश्वमेध यज्ञ कर चुके थे। सौ अश्वमेध करने पर इन्द्रपद मिलता है। जब अन्ति अश्वमेध के लिए घोडा छोडा तो इन्द्र ने उस घोडे को हरण करके कपिलदेवजी आश्रम मे छोड दिया था। उन सगर के पुत्रो की जो कि ब्रह्मशाप से भस्म हुए सद्गति बिना गङ्गाजी के आये हो नही सकती थी। अत राजा भगीरथ अपने पूर्व पुरुषो की सद्गति के लिए बडी भारी तपस्या करके ब्रह्मलोक से गङ्गाजी को ला और उनका उद्धार किया। इस भाँति गङ्गा पृथ्वीतल निवासियो के लिए सुलभ हो गई। विश्वामित्र का यहाँ पर गाधिसूनु कहने का यह भाव है कि यह राजा गाधि के पुत्र है। स्वय राजा रह चुके है। सब राजाओ का हाल जानते है। यह कथा वाल्मीकीय रामायण मे बिस्तार से कही गई है।

तब प्रभु रिषिन्ह समेत नहाये। बिबिध दान महिदेवन्हि पाये॥
हरखि चले मुनिवृन्द सहाया। बेगि बिदेहनगर निअराया॥२॥

अर्थ तब प्रभु ने ऋषियो के साथ स्नान किया। ब्राह्मणो ने अनेक प्रकार के दान पाये। मुनि वृन्द सहाय हर्षित होकर चले और शीघ्र ही विदेह राजा का नगर निकट आगया।

व्याख्या : माहात्म्य सुनने के बाद प्रभु ने ऋषियो के साथ गङ्गास्नान किया। पुण्यक्षेत्र मे आने पर दान करना चाहिए। सो अनेक प्रकार का दान दिया। पात्र

१ एकादशी को गङ्गा तट पर पहुँचे। रात्रि जागरण गङ्गावतरण की कथा सुनने मे हुआ। तीसरे दिन द्वादशी को विशाल नगरी मे सुदिवस विश्राम किया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दानम्। पात्र को दान देना चाहिए। अत पृथ्वी के देवताओ ब्राह्मणो को दान दिया। ब्राह्मणब्रुव जो केवल ब्राह्मण कहलानेवाल है का ग्रहण न हो इसलिए महिदेव कहा। दानसामग्री की उपस्थिति के विषय मे शङ्का न हो इसलिए प्रभु कहा कर्तुमकर्तुमन्यथाकर्तु समर्थ प्रभु। उन्हे सब सामर्थ्य है। कोई महात्मा यह भी कहते हैं कि मारीच सुबाहु वध के बाद उनकी बहुत सम्पत्ति हाथ लगी। उसी को दान के लिए साथ लाये थे।

ये दोनो भाई मुनिवृन्द की सेना हैं। जिस भाँति राजाओ की जीत सैन्यबल से होती है। उसी भाँति मुनियो की जीत इन्ही दोनो भाइयो द्वारा होती है। अत 'मुनिवृन्द सहाया' कहा। सहाय शब्द सेना के अर्थ म बराबर प्रयुक्त होता है। यथा. लै सहाय धावा मुनि द्राही। निदरे राम जानि असहाई। इत्यादि। मुनिपत्नी को पाद से स्पर्श करने क कारण अपने म पापस्पर्श माना। अत गङ्गास्नान से उसकी शुद्धि मानकर हर्षित है। अत फिर हर्षित होकर चलना लिखते है। वहाँ से जनकपुर सन्निकट था। इसलिए शीघ्र ही नगर का निकट आना कहते है। मन मे कौतुक है कि विदेह देहाध्याम रहित राजा कैसा राज करता है। उसके राज की व्यवस्था देखने लायक है। इसलिए वहाँ पहुँचने की जल्दी है।

## सीय-स्वयवर

पुररम्यता राम जब देखी। हरखे अनुज समेत विसेखी॥
बापी कूप सरित सर नाना। सलिल सुधासम मनि सोपाना॥३॥

अर्थ पुरकी रमणीयता जब रामजी ने देखी तो छाटे भाई के साथ बहुत प्रसन्न हुए। बावली, कुएँ, नदियाँ और तालावो की बहुतायत थी। जिनका जल अमृत सा था और मणियो की सीढियाँ थी।

व्याख्या जनकपुर बडा रमणीय था। सभी को उसे देखने से हर्ष हुआ। परन्तु सबके देखने और रामलखन के देखने मे अन्तर था। और लोग तो केवल रमणीयता ही देखते हैं। पर वे तो राजकुमार हैं। नगरनिर्माणविज्ञान के पण्डित है। रत्न को सभी लाग देखते हैं और उसकी रमणीयता पर मुग्ध भी होते हैं। परन्तु उसके वास्तविक गुण तो जौहरी ही देखते हैं। रामलक्ष्मण नगरव्यवस्थापन कला के जौहरी थे। अत इन्हे विशेष हर्ष हुआ।

पहिली बात यह है कि नगर म जलाशयो की कमी न हो। सो वहाँ चारो प्रकार के जलाशयो की बहुतायत थी। जलाशयो मे अमृत सा स्वादु जल था और राजा की ओर से बडी सुरक्षा थी। सीढियाँ स्फटिकादि मणियो की बनी थी।

गुजत मजु मत्त रस भृगा। कूजत कल बहुबरन विहगा॥
बरन बरन विकसे बनजाता। त्रिविध समीर सदा सुखदाता॥४॥

अर्थ रस से मतवाल सुन्दर भौरे गूँज रहे थे। अनेक प्रकार के सुन्दर पक्षी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कूज रहे थे। रंग रंग के कमल खिले हुए थे और शीतल मन्द सुगन्ध पवन चल रहा था।

व्याख्या : इन जलाशयों के चारो ओर फलफूलवाले वृक्ष थे जो कि स्वयं बडे सरस थे। जहाँ फूलवाले वृक्ष होते हैं वही चिड़ियाँ भी रहती हैं। फलफूल के रस के लोभी भौंरे भी वही पहुँचते हैं। रसका आधिक्य दिखलाते हैं कि रस से मत्त होकर भौरे गूँजते हैं और तृप्त होकर चिडियाँ कलरव कर रही हैं। उन जलाशयो में रग रग के श्वेत, श्याम, अरुण और पीतवर्ण के कमल खिले हुए हैं। शरद ऋतु है। अतः वायु मे शीतलता है। कमलो और फूलो के गन्ध के भार से पवन की गति भी मन्थर है। अथवा जनकपुर मे सदा त्रिविध समीर चला करती है। वहाँ कड़ी धूप पडती ही नही।

दो. सुमन वाटिका बाग वन, बिपुल बिहंग निवास।
फूलत फलत सुपल्लवत, सोहत पुर चहुँ पास ॥२१२॥

अर्थ : फुलवारी, बाग, और वन जहाँ बहुत सी चिडियाँ बसती है, पुर के चारो ओर फूलते फलते और पल्लवित होते शोभित हैं।

व्याख्या अभी पुर के बाहर का वर्णन हो रहा है। पुर के चारो ओर वन है। जिनमे स्वभाव से पेड जमे है। उसके बाद बाग हैं। जिनमे फलवाले वृक्ष हैं। यथा : चलेउ नाइ सिर पैठेउ बागा। फल खाएसि तरु तोरन लागा। फुलवारी मे फूल लगे हैं। अथवा सरित के तट पर वन है। सर के चारो ओर बाग है और वापी कूप फुलवारी मे है। फुलवारी फूल रही है, बाग फल रहे है। वन पल्लवित हो रहे है। उनमे अबाधरूप से बहुत से पक्षी बसते है। इस फुलवारी, बाग और वन से पुर को बडी शोभा हो रही है।

वापी तडाग अनूप कूप मनोहरायता सोहहीं।
सोपान सुदर नीर निर्मल देखि सुर मुनि मोहही ॥
बहु रग कज अनेक खग कूजहि मधुप गुजारही।
आराम रम्य पिकादि खगरव जनु पथिक हकारही ॥

बनइ न बरनत नगर निकाई। जहाँ जाइ मन तहँ लोभाई ॥
चारु बजार बिचित्र अवारी। मनिमय बिधि जनु स्वकर सँवारीं ॥१॥

अर्थ : नगर की सुन्दरता कहते नही बनती। जहाँ जायँ वही मन लुभा जाता है। सुन्दर बाजार था। विचित्र कोठे थे। जिनमे मणियो का काम था। मानों ब्रह्मदेव ने उन्हे अपने हाथ से सँवारा है।

व्याख्या नगर इतना मनोहर है कि जिधर मन जाता है वही लुब्ध होकर ठहर जाता है और बिना सब ओर गये मन वर्णन कर नहीं सकता। अत. कहते हैं कि वर्णन नही किया जा सकता। पूरा नगर सर्वाङ्ग सुन्दर है। नीचे के मंजिल की दूकानो की पंक्ति को बाजार कहते हैं और ऊपर के मंजिल के कमरो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



को अँबारी कहा है। जिनमें कोठियाँ चलती हैं। सर्वोपरि मंजिल की अटारी सज्ञा है। वे अँबारी मणिमय हैं। स्थापत्यकला की पराकाष्ठा उनमें दिखलाई गई है। सन्धि : जोड़ का पता नहीं चलता मानो स्वयं ब्रह्मदेव की बनाई हुई है।

धनिक बनिकवर धनद समाना। बैठे सकल वस्तु लै नाना॥
चौहट सुंदर गली सुहाई। संतत रहहिं सुगंध सिंचाई॥२॥

अर्थ : धनवान् श्रेष्ठ सौदागर कुबेर के समान सब वस्तुओं को लिये बैठे हैं। चौराहा सुन्दर गलियाँ सोहावनी सदा सुगन्ध से सींची जाती थीं।

व्याख्या : बाजार और अँबारी दोनों में धनिक बनिक का बैठना कहते हैं। धनद समाना कहने से प्रभूत धनधान्य का संग्रह कहते हैं। नाना प्रकार की वस्तुएँ लिये बैठे हैं। कोई वस्तु ऐसी नहीं है जो उस बाजार और उन कोठियों में न मिलती हो।

राज्यव्यवस्था तथा ऐश्वर्य इतना बढा चढ़ा है कि गलियों में पानी नहीं छिड़का जाता है। सुगन्ध सींची जाती है। जो स्थान सुगन्ध से सींचा जाता हो वहाँ की सफाई के लिए क्या कहना है। कितना ही नगर सुन्दर हो पर यदि वहाँ सफाई न हो तो वह सुन्दरता किसी काम की नहीं होती। जनकपुर की सुन्दरता अनूठी है और सफाई भी बहुत बढ़ी चढ़ी है।

मंगलमय मंदिर सब केरे। चित्रित जनु रतिनाथ चितेरे॥
पुर नर नारि सुभग सुचि संता। धरमसील ग्यानी गुनवंता॥३॥

अर्थ : सबके घर मङ्गलमय थे और उन पर इस भाँति चित्रकारी बनी थी मानो कामदेव ने स्वयं चित्रकार बनकर उन चित्रों को चित्रित किया है। पुर के नरनारी सुन्दर और शुद्ध सन्त धर्मशील ज्ञानी और गुणवान् थे।

व्याख्या : वन्दरवार केतु पताका चौक से युक्त होम के धूप से सुगन्धित मङ्गलमय सभी के घर थे। उन घरों में ऐसी सरस चित्रकारियाँ थीं कि वे मनुष्य की की हुई मालूम नहीं होती थीं। उन्हें देखने से मन में यह होता था कि इन्हें कामदेव ने स्वयं बनाया होगा। जब मकान ब्रह्मदेव के बनाये मालूम होते थे तो उसकी चित्रकारियाँ कामदेव की बनाई हुई मालूम होनी ही चाहिए।

नगर चाहे कैसा ही सुन्दर हो, उसकी व्यवस्था चाहे कितनी ही अच्छी हो पर यदि उसके निवासी अच्छे न हुए तो वह लङ्कापुरी हो जाती है। सो यहाँ के निवासी सुन्दर थे और पवित्र सन्त थे। अर्थात् भगवत्स्नेह से उनका हृदय सरस था। यथा : राम सनेह सरस मन जासू। साधुसभा बड आदर तासू। धर्मात्मा थे, ज्ञानी थे और सर्वगुणसम्पन्न थे। भाव यह कि कर्मकाण्ड उपासनाकाण्ड और ज्ञानकाण्ड का जनकपुर में घर घर प्रचार था। जनकपुर में निर्गुणी कोई नहीं था।

अति अनूप जहँ जनक निवासू। बिथकहिं बिबुध बिलोकि बिलासू॥
होत चकित चित कोट बिलोकी। सकल भुवन सोभा जनु रोकी॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ जहाँ जनक का निवास था वह तो अत्यन्त अनूप था। वहाँ का विलास देखकर तो देवता स्तब्ध हो जाते थे। कोट देखकर चित्त चकित हो जाता था। मानो इसने सम्पूर्ण भुवन की शोभा को रोक रक्खा है।

व्याख्या लोगो का निवास अनूप महाराज जनक का निवास अति अनूप। जो विलास वहाँ था वह स्वर्ग म भी नही था। न स्वर्ग उतना सुन्दर था और न वहाँ के विलास का सामना स्वर्ग का विलास कर सकता था और निवास की शोभा देखकर तो चित्त चकित हो जाता था। मानो सम्पूर्ण भुवना की शोभा उसने रोक रक्खी है कि उससे कोई बढने न पावे।

दो धवल धाम मनि पुरट पट, सुघटित नाना भाँति।
सिय निवास सुदर सदन, सोभा किमि कहि जाति ॥२१३॥

अर्थ सुनहले मणि जटिल कपडो से अनेक प्रकार से मढा हुआ उज्ज्वल धाम सीताजी का सुन्दर निवास स्थान था। उसकी शोभा कैसे कही जा सकती है?

व्याख्या सर्व साधारण इस विलास से अपरिचित है। बहुत बडे ऐश्वर्य शालियो के घर की दीवारें छत इत्यादि कपडो से मढी रहती ह। उसी भाँति सीताजी का उज्ज्वल निवासगृह जरी के काम पर जवाहिरात टँके हुए कपडो से मढा हुआ था। अथवा उसम जवाहिरात से टँके हुए जरी के काम के पर्दे पडे हुए थे। रनिवास मे भी सीताजी के निवासस्थान की शोभा अलौकिक थी। ग्रन्थकार कहते हैं कि जिस निवासस्थान म सीताजी रहती है उसकी शोभा कैसे कही जा सकती है। अर्थात् सर्वथा अवर्णनीय है।

सुभग द्वार सब कुलिस कपाटा। भूप भीर नट मागध भाटा ॥
बनी, बिसाल बाजि गज साला। हय गज रथ सकुल सब काला ॥१॥

अर्थ सुन्दर द्वार थे जिनम वज्रकपाट लगे थे। राजाओ की भीड और नट मागध भाटो की भीड जहाँ लगी रहती थी। बडी बडी अश्वशालाएँ और गज-शालाएँ बनी रहती थी जो सदा हाथी, घोडे और रथो से भरी रहती थी।

व्याख्या पुरद्वार तथा राजद्वार सब सुन्दर बने थे। साथ ही साथ बडे दृढ थे। उनम वज्र स किवाड लगे थे। उन द्वारो पर सदा राजाओ, नट, मागध और भाटो की भीड लगी रहती थी। एक प्रविसहि एक निर्गमहि भीर भूप दरबार। कोई जा रहा है। कोई आ रहा है। इसी से भीड होती है। इसस जनकजी का वैभव विलास कहते है। यथा पितु वैभव विलास मै दीठा। नृपमनिमुकुट मिलत पद पीठा। अब पुर के भीतर का वर्णन करते है कि हथिसार और घोडसार बहुत बडे बडे बने थे। व्यवस्था ऐसी थी कि कभी वे हाथी घोडे और रथ स खाली नही रहते थे। यदि हाथी घोडे रथ किसी काम पर भी गय तो भी यथेष्ट सख्या म रथ, गज, बाजि बचे रहते थे। जिसम व शालाएँ भरी मालूम पड सकें।

इतना बडा सग्रह जनकपुर म था कि तुरग लाख रथ सहस पचीसा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सकल सँवारे नख अरु सीसा। मत्त सहस दस सिंधुर साजे। जिनहि देखि दिसि कुंजर लाजे। सब समाज एहि भाँति बनाई। जनक अवधपुर दीन्ह पठाई। इतने गजरथ तुरग तो दायज मे दिये गये।

सूर सचिव सेनप बहुतेरे। नृपगृह सरिस सदन सब केरे ॥
पुर बाहिर सर सरित समीपा। उतरे जहँ तहँ विपुल महीपा ॥२॥

अर्थ योद्धा मन्त्री और बहुत से सेनापति थे। इनके मकान भी महाराज के महल से थे। पुर के बाहर तालाब और नदी के सन्निकट जहाँ तहाँ बहुत से राजा लोग उतरे थे।

व्याख्या महाराज के यहाँ मन्त्रियो और वीरो का बडा मान था। उनके घर क्या थे राजमहल थे। यद्यपि रामजी मुनियो के सहित नगर के बाहर ही हैं। वही का वर्णन उपयुक्त है। पर बाहर के वर्णन के साथ भीतर का वर्णन भी किये देते है। आगे चलकर घटनाचक्र के वर्णन मे पड जाने पर नगर के भीतरी दृश्य का वर्णन न कर सकेंगे। लङ्का आदि के वर्णन मे भी ग्रन्थकार ने इसी रीति का अवलम्बन किया है।

राजा लोग आये हैं सीयस्वयवर म पर वे नगर के भीतर ठहरने नही पाये हैं। वे लोग पुर के बाहर जलाशय देख देखकर अपने दलबल सहित उतरे हुए हैं।

देखि अनूप एक अँवराई। सब सुपास सब भाँति सुहाई ॥
कौसिक कहेउ मोर मनु माना। इहा रहिअ रघुबीर सुजाना ॥३॥

अर्थ एक आम की बारी बेजोड थी। सब प्रकार से सुन्दर थी और वहाँ सभी सुभीता था। उसे देखकर कौशिक विश्वामित्र जी ने कहा कि मुझे यह पसन्द है। हे रघुबीर सुजाना! यही रहना चाहिए।

व्याख्या ठहरने के लिए स्थान देखते है। सर्वत्र राजा लोग टिके है। पर एक आम की बारी बेजोड है। वह खाली ही पडी है। जलाशय के सन्निकट है। ऊँचे स्थान पर है, घनी है, पवित्र है, सभी सुभीता है। राजा के यहाँ न जाकर रघुनाथजी से कहते हैं आप सुजान है, यहाँ ही रहिये। आप रघुबीर हैं। सेना-रहित होने पर भी उन राजाओ से कम शङ्कनीय नही हैं जो बाहर उतरे हुए हैं। अतः बाहर उतरना ही ठीक है।

भलेहि नाथ कहि कृपा निकेता। उतरे तहँ मुनिबृंद समेता ॥
बिस्वामित्र महामुनि आए। समाचार मिथिलापति पाए ॥४॥

अर्थ बहुत अच्छा नाथ! कहकर कृपा के धाम रामजी वहाँ मुनिलोगो के साथ उतरे। मिथिला के राजा ने समाचार पाया कि महामुनि विश्वामित्रजी आये हैं।

---

१ त्रयोदशी को जनकपुर पहुँचे। उसी दिन नगर देखने गये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अति सौन्दर्य की है। या यों कहिये कि मृदु वयस की सीमा किशोरावस्था है। वर्ण और वय कहकर रूप कहते है। लोचन को ऐसे सुखद जैसे भूखे को सुन्दर पदार्थ सुखद होता है। यथा पियत नयन पुट रूप पियूखा। मुदित सुअसन पाइ जिमि भूखा। विश्वामित्र का और विश्वचितचोर का साथ है। ऐसा चित्त चुराते हैं कि जिसका चित्त चोरी गया उसे स्वय पता नही कि कब चोरी गया। भाव यह कि प्रभु के देखते ही सबकी आँखे उनमे बँध गई और मन उधर ही खिंच गया। सबके प्राणो की ऊर्ध्व गति हो गई। अत सबके सब उनके आने से उठकर खड़े हो गये। सुन्दरता का कथन करके ग्रन्थकार वर्णन करते है और तेजका उत्कर्ष लोगो के खड़े हो जाने से द्योतित करते है। प्रभु प्रश्रय अदब से दूर बैठना चाहते हैं पर विश्वामित्रजी ने प्यार से पास बिठा लिया।

भये सब सुखी देखी दोउ भ्राता। वारि विलोचन पुलकित गाता॥
मूरति मधुर मनोहर देखी। भएउ विदेहु विदेहु विसेखी॥४॥

अर्थ दोनो भाइयो को देखकर सब सुखी हुए। नेत्रो मे जल और शरीर मे पुलक हुआ। मनोहर मधुर मूर्ति देखकर राजा विदेह तो विशेष रूप से विदेह हो गये।

व्याख्या लोचन सुखद का साफल्य दिखाते हैं भए सब सुखी कहकर और विश्व चित चोरा का साफल्य दिखाते है सबकी आँखो मे आँसू और रोगटे खडे होने का वर्णन करके। मृदु किशोर वयस है। सोलह वर्ष भी पूरे नहीं हुए है। अत मधुर मूर्ति कहते हैं। यथा मधुरमूर्तिरसौ रघुनन्दन। विश्व चितचोर है। अत मनोहर कहते हैं। राजा विदेह देहाध्यास रहित थे। तथापि निर्लेप रहकर लौकिक कार्य बडी सुन्दरता से करते थे। इस मधुर मनोहर मूर्ति के दर्शन से उस योग्य भी नही रह गये। इसलिए विदेह विसेखी कहा।

दो प्रेम मगन मनु जानि नृपु, करि विवेकु धरि धीर।
बोलेउ मुनि पद नाइ सिरु, गदगद गिरा गभीर॥२१५॥

अर्थ · राजा ने मन को प्रेम मे मग्न जाना। तो विवेक से धैर्य धारण किया। और मुनि के चरणो मे सिर झुकाकर गद्गद और गम्भीर वाणी बोले।

व्याख्या सदा साक्षी रूप होकर व्यवहार देखने का स्वभाव है। अत बडा सावधान राजा है। चोरी जान गया। अत उसके लिए ग्रन्थकार रामजी को विश्व चित चोर न कहकर मनोहर कहते है। सब लोग वारिविलोचन पुलकितगात हैं। प्रेम मे मग्न है। अपनी दशा नही जानत। पर राजा सावधान हो गया। विवेक से धैर्य धारण किया। इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्त्तन्त इति धारयन्। यह धारणा की कि इन्द्रियाँ अपने अर्थों म वर्त्त रही है। अभी प्रेम का रङ्ग हटा नही। गला भरा हुआ है। अत गद्गद वाणी बोले फिर भी वाणी गम्भीर थी। बडो के सामने प्रणामपूर्वक बोलना चाहिए। अत मुनि के चरणो मे सिर नवाकर बोले।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कहहु नाथ सुदर दोउ बालक । मुनिकुल तिलक कि नृपकुल पालक ॥
ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा । उभय वेष धरि की सोइ आवा ॥१॥

अर्थ हे नाथ ! बतलाइये । ये दोनो सुन्दर बालक मुनिकुलतिलक हैं कि नृपकुलपालक हैं । जिस ब्रह्म को वेदो ने नेति करके गान किया है क्या वही दो वेष धारण करके आये हैं ।

व्याख्या जनकजी विश्वामित्रजी से पूछते है ये दोनो बालक कौन हैं ? साक्षात् अश्विनीकुमार तो नही है ? कामदेव और वसन्त तो नही है ? या वेष बदल हरिहर तो नही हैं ? मुनिजी को चुप देखकर पूछते हैं कि ये मुनिकुलतिलक हैं कि नृपकुलपालक हैं । मुनि समाज मे हैं । अत ब्राह्मणकुमार का होना ही स्वभावसिद्ध है । परन्तु धनुर्धारी हैं । इससे नृपकुलपालक होने का सन्देह होता है । यदि ब्राह्मण हैं तो ब्रह्मकुल के तिलक हैं । यदि क्षत्रिय है तो नृपकुलपालक हैं । अथवा ब्राह्म तथा क्षात्र तेज से युक्त देखकर यह सन्देह हुआ कि सम्भव है विश्वामित्रजी के ही पुत्र हो । यथा किधौ आपने सुकृत सुरतरु के सुफल रावरेहि पाये । गी ।

फिर भी विश्वामित्रजी चुप हैं । अत पूछते हैं कि जिस ब्रह्म को जाति गुण क्रिया से व्यावर्तन के लिए श्रुति नेति कहकर गान करती है अर्थात् निर्गुण ब्रह्म वही रूप धारण करके तो नही आया है ?

सहज विराग रूप मन मोरा । थकित होत जिमि चद चकोरा ॥
ताते प्रभु पूछौ सति भाऊ । कहहु नाथ जनि करहु दुराऊ ॥२॥

अर्थ मेरा मन स्वभाव से ही वैराग्य रूप है । सो चन्द्रमा को देखकर जैसे चकोर स्थगित हो जाता है उसी भाँति इन्हे देखकर स्थगित होता है । इसलिए मैं सच्चे भाव से पूछता हूँ । आप बतलायें छिपाव न करे ।

व्याख्या प्रश्न का कारण कहते हैं । कहिअ तात सो परम विरागी । तृन सम सिद्धि तीन गुण त्यागी । सो तीनो गुणो का त्याग मेरे मनके लिए स्वाभाविक है । मेरा मन निस्त्रैगुण्य पथ मे विचरण करनेवाला है । वह गुणो मे लुब्ध होने वाला नही । सो चन्द्र चकोर की भाँति स्थगित होता है । अत अवश्य निर्गुण ब्रह्म हैं । मैं सत्य भाव से पूछता हूँ । इस भाँति पूछकर मैं इनकी स्तुति नही कर रहा हूँ । ये तो दुराव किये हैं । नरवेष धारण किये हैं । पर आप दुराव न करिये । गूढौ तत्त्व न साधु दुरावहि । आरत अधिकारी जहँ पावहि । मेरा प्रश्न सशयनिरसन के लिए है ।

इन्हहि विलोकत अति अनुरागा । बरबस ब्रह्मसुखहि मन त्यागा ॥
कह मुनि बिहसि कहेहु नृप नीका । बचन तुम्हार न होइ अलीका ॥३॥

अर्थ इन्हे देखते हुए अति अनुरक्त होकर मन ने ब्रह्म सुख को आपसे आप छोड दिया । मुनिजी ने हँसकर कहा कि राजा ! तुमने अच्छा कहा । तुम्हारी बात अप्रमाण नही हो सकती ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : विदेह राजा के मन मे सदा ब्रह्मानन्द बना रहता था। सो राम लक्ष्मण को देखकर वह आपसे आप ब्रह्मानन्द को त्याग करके रूपदर्शन का आनन्द लेने लगा। मन ही देखनेवाला है। इन्द्रिय नही देखती। सो उसने जब इन दोनो भाइयो को देखा तो ब्रह्मानन्द सीठा मालूम होने लगा। वह आपसे आप ब्रह्मानन्द का परित्याग करके दर्शनानन्द मे मग्न हो गया। यथा : ब्रह्मानन्द हृदय दरस सुख लोयननि अनुभए उभय सरस राम जाने है। तुलसी विदेह की सनेह की दसा सुमिरि मेरे मनमाने राउ निपट सयाने है। गी । यही बात राजा जनक कह रहे है। सुनकर मुनिजी हँस पडे कि इनकी चोरी तो पकड गई। जौहरी ने तो पहिचान लिया। पर ये सबको जनाना नही चाहते। अत ऐसे शब्दो मे उत्तर देते हैं जिसमे राजा ही समझें। पर सत्यभाव से उत्तर देते है कि तुम्हारी वाणी जिसके प्रकाश से मुनियो का हृत्कमल खिल उठता है अप्रमाण कैसे हो सकती है ?

ये प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी। मन मुसुकाहि रामु सुनि बानी ॥
रघुकुलमनि दसरथ के जाए। मम हित लागि नरेस पठाए ॥४॥

अर्थ ये प्राणिमात्र को प्रिय हैं। वाणी सुनकर रामजी मनही मन मुसकरा रहे हैं। रघुकुल के मणि दशरथजी के पुत्र है। मेरे हित के लिए राजा ने इन्हे भेजा है।

व्याख्या मुनिजी श्रुतिवाक्य से इङ्गित करते है। स उ प्राणस्य प्राण । ब्रह्म प्राण का भी प्राण है। अत जितने प्राणी है ये सबको प्रिय हैं। वचन तुम्हार न होइ अलीका कहकर जो बात कही थी उसीकी पुष्टि कर रहे है। रामजी पहचाने गये। इसलिए मुसकरा रहे है। परन्तु सब कोई न जान ले इसलिए मनमे मुसकरा रहे हैं।

संशयनिरसन के लिए मुनिजी ने दूसरे प्रश्न ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा का उत्तर पहिले दिया। अब पहिले प्रश्न का मुनिकुलतिलक कि नृपकुलपालक का उत्तर देते हैं कि रघुकुल मे मणिरूप जो राजा दशरथ हैं उनके लडके है। महाराज दशरथ की संग्रामशूरता की बडी ख्याति है। यथा जीति को सक संग्राम दसरथ के रण बाँकुरे। अत नृपकुलपालक है। ऐसा कहने पर जो सन्देह उठना चाहिए उसका निराकरण मुनिजी स्वय करते है। मेरे हित के लिए महाराज ने भेजा है। ऐसे धर्मात्मा हैं। इसीलिए सेना सेवक आदि साथ नही है। राजा ने इन्हे धनुषयज्ञ के लिए नही भेजा है।

दो राम लखनु दोउ बंधुबर, रूप सील गुन धाम।
मख राखेउ सबु साखि जगु, जिते असुर संग्राम ॥२१६॥

अर्थ राम लक्ष्मण ये दोनो भाई रूप शील और गुण के धाम है। इन्होने असुरो को संग्राम म जीतकर यज्ञ की रक्षा की है। इसका ससार साक्षी है।

व्याख्या राम को बडा भाई और लक्ष्मण को छोटा नाम लने के क्रम से सूचित किया। बन्धुवर कहकर परस्पर प्रीति कही। ये रूप के ही धाम नही शील और बल

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



के भी धाम हैं। रूप तो प्रत्यक्ष ही है और मख राखेउ सब साखि जग से शीलधाम और जिते असुर सग्राम से बलधाम होना व्यक्त किया। विश्वामित्रजी राम लक्ष्मण को विवाह के लिए लाये है। अत इस वर्णन से सब प्रकार की योग्यता दिखला रहे है। कन्या रूप का वरण करती है, माता वित्त चाहती है, पिता विद्या देखते हैं, बान्धव लोग अच्छा कुल पसन्द करते है और शेष लोग मिष्टान्न चाहते हैं। यथा कन्या वरयते रूप माता वित्त पिता श्रुतम्। बान्धवा कुलमिच्छन्ति मिष्टान्नमितरे जना। कन्या रूप का वरण करती है इसलिए रूपधाम कहा। माता वित्त चाहती है इसलिए मम हित लागि नरेस पठाये कहकर राजा का बेटा कहते है। पिता विद्या चाहता है इसलिए जिते असुर सग्राम कहकर धनुर्वेद की पारदर्शिता कहते हैं। बान्धव लोग कुल चाहते है इसलिए रघुकुल मनि कहा और शेष लोग मिष्टान्न चाहते है इसलिए दसरथ के जाये कहते है। यथा राजन राउर नाम जस सब अभिमत दातार।

मुनि तव चरन देखि कह राऊ। कहि न सकौ निज पुन्य प्रभाऊ ॥
सुदर स्याम गौर दोउ भ्राता। आँनदहू के आनद दाता ॥१॥

अर्थ राजा ने कहा कि हे मुनिजी! आपका चरण देखकर मै अपने पुण्य का प्रभाव नही कह सकता सुन्दर श्याम और गौर दोनो भाई आनन्द के भी आनन्द देने वाले है।

व्याख्या पुन्य पुज बिनु मिलहिं न सता। सत सगति ससृति कर अता। पुण्य ही सब कल्याण का मूल है। अधिक पुण्य होने से ही सन्त की प्राप्ति होती है और सन्त की प्राप्ति होने से भगवत्प्राप्ति होती है। ससार का अन्त हो जाता है। अत रामजी की प्राप्ति से विदेहराज कहते है कि इसका मूल आपके चरणो का दर्शन है। न जाने कितना बडा पुण्य मेरा था जिससे आपके दर्शन हुए। मुनिजी ने कहा था ए प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी। उसी के उत्तर मे महाराज अपने भाग्य की प्रशसा करते हैं। राम लखन दोउ बधुवर का उत्तर देते हुए कहते है कि भाइयो की श्याम और गौर जोडी बडी सुन्दर है। मुनिजी ने कहा था कि ए प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी। जनकजी उसी बात का अनुवाद करके लक्षित कराते है कि बात उन्होने समझ ली। जनकजी कहते हैं आनदहू के आनद दाता है। आनन्द को भी आनन्द देनेवाला ता सिवा ब्रह्म के और कुछ हो नही सकता। क्योकि उसी आनन्दसिन्धु के सीकर से ही सब आनन्दित होता है। यथा सीकर ते त्रैलोक्य सुपासी अथवा लौकिक आनन्द जिस आनन्द की झलक है वह निम्बरूप आनन्द ये दोनो भाई हैं।

इन्हकै प्रीति परस्पर पावनि। कहि न जाय मन भाव सुहावनि ॥
सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहू। ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू ॥२॥

अर्थ इनकी आपस की सुहावनी प्रीति ऐसी पवित्र और मनभावनी है कि कही नहीं जा सकती। विदेहराज ने प्रसन्न होकर कहा कि हे नाथ! सुनिये। इनका स्नेह ब्रह्मजीव की भाँति स्वाभाविक है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या विदेहराज बडे लखनेवाले हैं। दोनो भाइयो के आने और बैठने के ढङ्ग से उनकी आन्तरिक प्रीति की पहिचान कर रहे हैं कि इनकी प्रीति परस्पर म पवित्र है। अर्थात् स्वार्थ के लश का स्पर्श नही है और सुहावनी देखनेवाल को अच्छी लगती है। अत मनभावनी है। इसका उत्कर्ष अकथनीय है। ग्रन्थकार गीतावली म कहते हैं उपमा राम लखन के प्रीति की क्यो दीजै खीरै नीरै। महाराज विदेह को उपमा मिल गई। अत विश्वामित्रजी से मुदित होकर कहते है कि इनकी प्रीति ब्रह्म जीव की प्रीति की भाँति है। ब्रह्म जीव का किसी भी अवस्था म परित्याग नही करता और न जीव का अवस्थान विना ब्रह्म म क्षणभर भी सम्भव है। स्वार्थ का लश नही इसलिए पवित्र भी है और सुहावनी भी है।

पुनि पुनि प्रभुहि चितव नरनाहू। पुलक गात उर अधिक उछाहू ॥
मुनिहि प्रसंसि नाइ पद सीसू। चलेउ लवाइ नगर अवनीसू ॥३॥

अर्थ बार बार प्रभु को राजा देखते है। उनके शरीर म पुलक और मनम अधिक उत्साह है। मुनिजी की प्रशसा करके और चरण पर सिर नवा करके राजा उन्हे अपने नगर म लिवा चल।

व्याख्या दर्शन से अघाते नही इसीलिए पुनि पुनि चितव कहा। दर्शन को शङ्कर का प्रसाद मानते है जैसा कि आगे कहेगे। नयन विषय मो कहँ भयउ सो समस्त सुख मूल। सबइ सुलभ जगजीव कहँ भए ईस अनुकूल। राजा क हृदय म बडा उछाह है इसलिए सात्त्विक भाव हो रहा है। फिर मुनिजी की राजा ने स्तुति की और चरणो म सिर नवाकर नगर म लिवा चल। यथा नाइ सीस पगनि असीस पाइ प्रमुदित पाँवडे अरघदेत आदर सो आने है। गीतावली।

सुदर सदनु सुखद सब काला। तहा बासु लै दीन्ह भुआला ॥
करि पूजा सब विधि सेवकाई। गयउ राउ गृह बिदा कराई ॥४॥

अर्थ सुदर घर सब काल म सुख देनेवाला था। वही राजा ने निवासस्थान दिया। पूजा तथा सब विधि से सेवकाई करके राजा विदा माँगकर घर गये।

व्याख्या सब सुपास सब भाति सोहाई अमराई म डरा किया था। इसलिए महाराज ने सुन्दर घर जो सब काल म सुखद हो वहाँ ल जाकर ठहराया। असन बसन बास कै सुपास सब विधि पूजि प्रिय पाहुने सुभाय सनमाने है। गी। इस भाँति पूजा की और पाद सवाहनादि द्वारा सब विधि सेवकाई की। ऋषिजी भी राजा को छोडना नही चाहते थे अत विदा कराई लिखते है।

दो रिषय सग रघुबस मनि, करि भोजन विश्राम।
बैठे प्रभु भ्राता सहित, दिवसु रहा भरि जाम ॥२१७॥

अर्थ ऋषियो के सहित रघुवशमणि ने भोजन किया और उनके साथ ही विश्राम किया। तत्पश्चात् भाई क साथ बैठ। पहर दिन शेष रह गया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या यहाँ ऋषय शब्द ऋषि का बहुवचन है। औत्व लुक्च विसर्गस्य इस सूत्र से विसर्गका लोप हुआ। ऋषि के सग चले थे। यथा हरखि चले मुनि वृद सहाया। ऋषि के सग स्नान किया। यथा तव प्रभु ऋषिन्ह समेत नहाए। ऋषियो के सग ही उतरे। यथा उतरे तहँ मुनिवृद समेता। अत भोजन विश्राम भी उन्ही के साथ हुआ। मार्ग चलकर आये हैं अत विश्राम करना लिखते हैं। इस भाँति दिन के तीन पहर बीत गये। चौथे पहर मे भाई के साथ अवकाश मिलने पर बैठे।

लखन हृदय लालसा बिसेखी। जाइ जनकपुर आइअ देखी ॥
प्रभु भय बहुरि मुनिहि सकुचाही। प्रगट न कहहिं मनहि मुसुकाही ॥१॥

अर्थ लक्ष्मण के हृदय मे विशेष लालसा थी कि चलकर जनकपुर देख आना चाहिए। प्रभु का भय था मुनिजी का सकोच करते थे। इससे प्रकट कुछ नही करते थे। मन ही मन मुसकरा रहे थे।

व्याख्या श्रीराम और लक्ष्मणजी जनकजी के साथ जब रथपर जा रहे थे पुर की शोभा देखते जाते थे। उसी समय पुररम्यता देखकर भाई सहित हरखे थे। अब पैदल घूमकर देखना चाहते हैं। लालसा तो रामजी को भी है पर लक्ष्मण को विशेष है। ये उत्सुक हैं। प्रभु का भय है। मालिक से अधिक उत्सुकता सेवक को नही होनी चाहिए। सबते सेवक धर्म कठोरा। मुनिजी का सङ्कोच भी है, समझेंगे कि लडका बडा बहिर्मुख है। प्रकट न कहहि। भाव यह कि मन से तो चाहते ही हैं परन्तु कहने मे सङ्कोच और भय बाधक है। परन्तु बार बार मनोविकास हो रहा है। मनोविकास ही वस्तुत हास है। दन्तविकास हास नहीं है। अत मनहि मुसुकाही लिखा।

राम अनुज मन की गति जानी। भगत बछलता हिय हुलसानी ॥
परम बिनीत[1] सकुचि मुसुकाई। बोले गुर अनुसासन पाई ॥२॥

अर्थ रामजी ने छोटे भाई की मन की गति जान ली। भक्तवत्सलता हृदय मे उल्लसित हुई। परम विनय के साथ सकुचाते हुए मुसकराकर गुरुजी की आज्ञा पाकर बोले।

व्याख्या परम विनीत हैं हठात् कोई बात नही कहते। कहने मे भी सङ्कोच है। यथा कौसल्या वचन सखी के प्रति कौसिक परम कृपालु परमहित समरथ सुखद सुचाली। बालक सुठि सुकुमार सकोची समुझि सोच मोहि आली। गीतावली। स्मित पूर्वाभिभाषी हैं। मुसुकराहट का अर्थ ही यही है कि कुछ कहना चाहते हैं। यहाँ भावसन्धि है विनय सङ्कोच और वात्सल्य की। गुरुजी ने जान लिया कि कुछ कहना चाहते हैं, सङ्कोच से नहीं कहते। अत आज्ञा दी क्या कहना चाहते हो कहो।

---

१. यहाँ समुच्चय अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


नाथ लखनु पुरु देखन चहही। प्रभु सकोच डर प्रगट न कहही॥
जौ राउर आयसु मै पाउँ। नगरु देखाइ तुरत लै आउँ॥३॥

अर्थ नाथ! लक्ष्मण जनकपुर देखना चाहते है परन्तु प्रभु के सङ्कोच और डर से प्रकट नही कहते। यदि मै आपकी आज्ञा पाउँ तो नगर दिखलाकर शीघ्र ही ले आउँ।

व्याख्या लक्ष्मण के मनमे अधिक लालसा होने से उन्ही का नाम लेते है। परन्तु प्रभु का सङ्कोच और डर है। अपने डर का भी आरोप मुनिजी पर ही कर रहे हैं। अपनी प्रभुता का प्रकाश ऐसे समय अनुचित है। इसलिए कहते नही है। जो मै आयसु पावौ से अपनी भी लालसा कह दी। दूसरे को आज्ञा हो तो वह चाहे देर करे पर मै अनुचित विलम्ब न करूगा। देखाइ लै आवो का भाव यह कि उतनी देर तक की जिम्मेदारी हमारी। यहाँ पर ठीक पिता पुत्र का सा बरताव हो रहा है। क्योकि सौपने के समय महाराज दशरथ ने कहा है तुम मुनि पिता आन नहि कोऊ। अत रामजी वैसा ही बरताव कर रहे हैं।

सुनि मुनीस कह बचन सप्रीती। कस न राम तुम्ह राखहु नीती॥
धरम सेतु पालक तुम्ह ताता। प्रेम बिबस सेवक सुखदाता॥४॥

अर्थ सुनकर मुनिराज ने प्रेमपूर्वक कहा कि रामजी! तुम क्यो न नीति की रक्षा करो। तुम धर्म के पुल के रक्षक हो। प्रेम के विशेप वश होकर सेवको को सुख देते हो।

व्याख्या विनय और सङ्कोच देखकर प्रीतियुक्त वाणी मुनिजी बोले कि तुम नीति की रक्षा न करोगे तो कौन करेगा? धर्मार्थ काम म सामञ्जस्य स्थापन करने वाली प्रणाली ही नीति है। रामजी म बहुत बडा नीति का पक्षपात है। आगे चलकर स्वय प्रजा से कहेंगे। जौ अनीति कछु भाखौ भाई। तौ मोहि बरजेहु भय बिसराई। तुम धर्मसेतु के रक्षक हो अर्थात् जगदीश हो। यथा श्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीस माया जानकी। प्रेम बिबस सेवक सुखदाता से अवतार का प्रयोजन कहा। तुम मारिखे सत प्रिय मारे। धरौ देह नहि आन निहोरे। भावार्थ यह कि यह आज्ञा माँगना मुझे मान देना है।

दो जाइ देखि आवहु नगरु, सुख निधान दोउ भाइ।
करहु सुफल सब के नयन, सुदर बदन देखाइ॥२१८॥

अर्थ सुख निधान दोनो भाई जाकर नगर देख आओ और सुन्दर वदन दिखलाकर सबकी आँखो को सुफल करो।

व्याख्या तुम दोनो भाई सुख के निधान हो। सुख वितरण करना चाहते हो। नगर देखना दिखाना तो व्याजमात्र है। जनकपुरवासियो का पुण्योदय हुआ है। उनकी आँखें सुफल हुआ चाहती हैं। क्योकि विषयदर्शन तो सब शरीरा की आँखो से

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



होता है। मनुष्य शरीर पाकर भी यदि विषयदर्शन मात्र करते रहे तो मानुषी आँखो का साफल्य क्या हुआ। इनका साफल्य तो भगवान् या भागवत दर्शन है। इनपर तुम्हारी इतनी कृपा है कि स्वय उनके नेत्रवान् होने का फल देने के लिए जाना चाहते हो अत जाओ।

मुनि पद कमल बंदि दोउ भ्राता। चले लोक लोचन सुख दाता॥
बालक वृंद देखि अति सोभा। लगे सग लोचन मनु लोभा॥१॥

अर्थ मुनिजी के चरणकमलो की वन्दना करके ससार के नेत्रो को सुख देने वाले दोनो भाई चले। बालक लोग अत्यन्त शोभा देखकर साथ लग गये। उनके नेत्र और मन लुब्ध हो गये।

व्याख्या आज्ञा मिलने पर चलने के पहिले वन्दना की। दोनो भाइयो की शोभा ऐसी थी कि देखनेवाले के नेत्रो को सुख मिलता था। पहिले ही बालक मिले। सर्वत्र ही खेलते हुए पाये जाते है। बालको का स्वभाव है कि तमाशा देखने के लिए साथ हो जाते है। उनका मन लगना चाहिए और फिर तो वे साथ छोडते नही। लोचन मन लोभा कहने का भाव कि ऐसा मन लगा कि आँखे हटाये नही हटती।

पीत बसन परिकर कटि भाथा। चारु चाप सर सोहत हाथा॥
तन अनुहरत सुचदन खोरी। स्यामल गौर मनोहर जोरी॥२॥

अर्थ कमर मे पीताम्बर के साथ तरकस बँधा हुआ था और हाथो मे सुन्दर धनुप और बाण शोभायमान था। शरीर के अनुकूल सुन्दर चन्दन की खौर लगाये साँवले और गोरे की जोडी थी।

व्याख्या : जब शोभा देखकर लडको के लोचन मन लोभाने की बात कही तो शोभा वर्णन प्राप्त हो गया। बालको से घिरे हुए हैं, चरण नही दिखाई पड रहा है। इसलिए चरण का वर्णन नही किया। पीताम्बर का वर्णन करते है। कमर मे तरकस शोभित हो रहा है। हाथ मे धनुप बाण की शोभा है। यहाँ शोभा का भी वर्णन वैसा ही है जैसा कि बालक ग्रहण कर सकते है। रामजी साँवले हैं तो उनके शरीर मे केसरचन्दन की खौर लगी है और लक्ष्मणजी गोरे हैं तो उनके शरीर मे अगर चन्दन की खौर है। प्राचीनकाल मे खौर लगाने की चाल थी। हम लोगो ने भी बचपन मे खौर लगाया है। अब देखते देखते चाल उठ गई। शरीर मे चन्दन लगाकर उसपर एक प्रकार का छापा फेरते थे जिससे शरीर मे चन्दन की महीन महीन रेखाएँ बन जाती थी। चन्दन लगाने का सुख भी मिलता था और शोभा भी बढती थी। केसर मिलाने से चन्दन का रग पीला और अगर मिलाने से उसका रग श्याम हो जाता है। इसलिए श्यामशरीर से केसरयुक्त चन्दन का और गौर शरीर मे अगरयुक्त चन्दन का खौर खिलता है। यहाँ तनु अनुहरत से यही अभिप्राय है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



केहरि कंधर बाहु बिसाला। उर अति रुचिर नागमनि माला ॥
सुभग सोन सरसीरुह लोचन। बदन[1] मयंक तापत्रय मोचन ॥३॥

अर्थ सिंह का सा कन्धा था। भुजाएँ विशाल थी। वक्ष स्थलपर अत्यन्त सुन्दर गजमुक्ता की मालाएँ शोभायमान थी। सुन्दर लालकमल से नेत्र थे। मुख तो चन्द्रमा सा तीनो तापो को मिटानेवाला था।

व्याख्या वीरो के ऊँचे कन्धे, चौडी छाती और लम्बी भुजाएँ होती है। इसलिए कन्धे की उपमा वृषभ या सिंह के कन्धे से देते है। यहाँ सिंह का सा कन्धा कहते है क्योकि पहिले पुरुषसिंह कह आये है। यथा पुरुष सिंह दोउ बीर। आजानुबाहु कहते है। भुजाएँ जानु का स्पर्श करती हैं। चौडी छाती पर ही गजमुक्ता की माला की शोभा है। लालकमल जैसी मनोरम आँखो की शोभा है और मुख चाँद सा है। चाँद तो केवल आतप धूप के ताप को हरण करता है पर मुखचन्द तो आध्यात्मिक और आधिभौतिक ताप को भी हरण करता है।

काननि्ह कनक फूल छबि देही। चितवत चितहि चोरि जनु लेही ॥
चितवनि चारु भृकुटि बर बाँकी। तिलक रेख सोभा जनु चाँकी ॥४॥

अर्थ कानो मे सोने के फूल शोभा दे रहे है। देखते ही मानो चित्त को चुरा लेते है। चितवन सुन्दर है। सुन्दर भौहे टेढी है। तिलक की रेखाएँ बिजली की भाँति चमक रही है।

व्याख्या कानो मे पड जाने से सोने के फूलो की शोभा है। सोने के फूलो से कानो की शोभा नही है यहाँ पर यह दिखलाया कि प्रभु के अङ्ग मे पड जाने से आभूषणो की शोभा है। आभूषणो मे इतना सामर्थ्य नही कि प्रभु की शोभा को बढा सके। देखते क्या है, मानो चित्त को चुराते है। आँखें ही सुन्दर नही हैं चितवन भी सुन्दर है। यथा अनियारे दीरघ नयन, किती न तरुनि समान। वे चितवन कुछ और ही, जेहि बस होत सुजान। भृकुटी के टेढो होने को ही शोभा है। सो कमान की भाँति भौहे हैं। तिलक की रेखा तो भाल मे जाकर बिजली की भाँति चमक दे रही है। कोई कोई चाँकी का अर्थ बिजली न करके चकित अर्थ करते है। *भाव यह कि तिलक नही है शोभा की मुहर है। सत्य के प्रमाण मे मुहर लगाई जाती है। अर्थात् तिलक ने मुहर दे दी कि यही सच्ची शोभा है।*

दो रुचिर चौतनी सुभग सिर, मेचक कुंचित केस।
नख सिख सुदर बधु दोउ, सोभा सकल सुदेस ॥२१९॥

अर्थ सुन्दर सिरो मे चौगोसिया टोपी, काले और घुँघराले बाल शोभित है। नख से शिखा तक दोनो भाई सुन्दर है और जिस अङ्ग की जैसी शोभा होनी चाहिए वैसी थी।

---

१. यहाँ वाचक लुप्तोपमा है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या · चार कोनेवाली टोपी को चौगोसिया टोपी कहते हैं। अ
चाल नही है। पहिले लडके वैसी ही टोपी लगाते थे। नगर देखने चल
इसलिए टोपी लगाये हैं। बालो के काले और घुँघुराले होने की शोभा है
चौगोसिया टोपी बडो खिलती है। ग्रन्थकार स्वय नखशिख शब्द का प्रयोग
हैं। नख से लेकर शिख तक शोभा है। क्योंकि शरीर के जिस देश जिस
की जैसी शोभा होनी चाहिए वैसी शोभा है। जैसे नाक शुक तुण्ड सी दाँत
से वक्ष स्थल कपाट सा भुजाएँ हाथी के सूँड सी जँघा कदली खभ सी अ
कमल से इत्यादि।

देखन नगरु भूपसुत आए। समाचार पुरबासिन्ह पाए
धाए धाम काम सब त्यागी। मनहुँ रंक निधि लूटन लागी

अर्थ नगर देखने के लिए राजकुमार आये हैं। यह समाचार पुरव
पाया। घर और काम छोडकर दौडे। जैसे दरिद्र खजाना लूटने के लिए दौडे

व्याख्या · राजा लोग तो बहुत आये हैं। पर शोभा का शोर तो रा
के विपय मे है। आने के पहिले ही समाचार फैल गया। भाव यह कि
भाई के साथ विश्वामित्रजी के पास से चले हैं। इधर सम्पूर्ण नगर मे यह
जनक समाचार फैल गया कि राजकुमार आगये। सब लोग धाम काम
दौडे कि कही चले न जायँ और हमे दर्शन न हो सके। धाम को अरक्षित
मानो उससे अब काम ही नही लेना है। काम भी आधे मे छोडा बिगड ज
इसलिए त्यागी कहा। सोचते है धाम काम मे क्या रक्खा है। सच्चा लाभ
मे है। इसकी उपमा दरिद्र के खजाना लूटने के लिए दौडने से दे रहे हैं।
धाम काम का मूल्य ही क्या है। खजाना लुट रहा है। यह समाचार सुन
भाँति रक धाम काम को विस्मरण करके अर्थ लोभ से दौडते है उसी भ
के दर्शन की लालसा इतनी बलवती है कि उसके सामने पुरवासियो मे ध
की सुधि न रह गई।

निरखि सहज सुदर दोउ भाई। होहिं सुखी लोचन फल पाई
जुवती भवन झरोखन्हि लागी। निरखहि राम रूप अनुरागी

अर्थ सहज सुन्दर दोनो भाइयो को देखकर वे लोग लोचन का फ
सुखी हो रहे है। युवतियाँ घर के झरोखो से लगी हुई रामजी के रूप मे
होकर देख रही है।

व्याख्या शृङ्गार से रामजी की शोभा मे आधिक्य नही होता बल्कि
ढक जाती है। इसलिए दोनो भाइयो को सहज सुन्दर कहा। ससार मे
शोभा बढाने के लिए किया जाता है। क्योंकि वहाँ सहज सुन्दरता नही।
सहज सुन्दरता नगरवासियो के लिए निधि थी। इसी शोभा की लूट मे भ
के लिए दौडे थे। ऐसी ही शोभा की लूट से आँख होने का फल मिलता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ः कि प्रभु की शोभा देखकर कृतकृत्य हो रहे हैं। युवतियाँ परदानशीन हैं। झरोखे से खुले नही देख सकती। पल्ले की आड से देख रही है। वे लोचनफल पाकर तृप्त नही हुई। बल्कि अनुराग मे पगी हुई देख रही हैं। परदा का नियम नया ी है। वाल्मीकी रामायण, महाभारत तथा स्वयं वेद मे भी परदा करने का ल्लेख पाया जाता है। विषयान्तर के भय से यहाँ पर अधिक नही लिखा सकता।

हि परसपर बचन सप्रीती। सखि इन्ह कोटि काम छवि जीती ॥
नर असुर नाग मुनि माही। सोभा असि कहुँ सुनिअति नाही ॥३॥

अर्थ वे आपस मे प्रीति सहित वचन कहती हैं हे सखि! इन्होने करोडो की छवि जीत ली है। सुर, नर, असुर, नाग और मुनियो मे ऐसी शोभा कही नही जाती।

व्याख्या यहाँ पर अष्टसखी सम्वाद कहेगे। अपरा प्रकृति का मोहित होना ष्टसखी का सम्वाद है। राम ब्रह्म पर आठो प्रकृतियाँ मोहित है। भूमिरापोऽनलो ख मनो बुद्धिरेव च। अहंकार इतीय मे भिन्ना प्रकृतिरष्टधा। भूमि, जल, , वायु, आकाश, मन, बुद्धि और अहङ्कार ये आठ अपरा प्रकृतियाँ है। ये ठ प्रकृतियाँ आठ सखी है। सखी सखी से हृदय की बात खोलकर आपस मे है। सप्रीति कहने का भाव यह कि एक ही भाव से भावित हैं। यह सखी मोहित होना कहती है और अलौकिक सुन्दरता कहकर मोहित न होने को व बतला रही है। घर के बाहर नही निकलती इसलिए कहती है कि ऐसी सुर, नर, असुर, नाग और मुनियो मे सुनी नही जाती। सूर्पनखा सम्पूर्ण मे विचरण करती थी अत उसने सुनियत नही कहा। उसने कहा मम पुरुष जग माही। देखेउ खोजि लोक तिहुँ नाही। इससे यह भी प्रमाणित ः कि मनुष्य लोग केवल पाँच जातिया म ही शोभा का अनुभव कर सकते र, नर, असुर, नाग और मुनि को छोडकर उनके मुग्ध होने योग्य शोभा ही है।

चारि भुज बिधि मुख चारी। बिकट भेष मुख पच पुरारी ॥
देउ अस कोउ न आही। यह छवि सखी पटतरिअ जाही ॥४॥

अर्थ विष्णु को चार हाथ है। ब्रह्मदेव को चार मुख हैं। शिवजी को पाँच और वेष भी विकट है। दूसरा देवता कोई ऐसा है नही जिससे इस छवि का दिया जाय।

व्याख्या अस्वाभाविक अङ्गवृद्धि से विष्णु और विधि की शोभा की हानि वजी की अङ्ग वृद्धि भी अधिक है और वेष भी विकट है। काम का जीतना ी कह चुकी हैं। भुसुण्डिजी भी कहते हैं राम काम सत कोटि सुभग तन

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रह गये इन्द्रादि, सो कोई पटतर योग्य नही है। जब ये लोग ही कुछ न ठहरे तब नर, नाग, असुर की गिनती ही क्या ? अत केवल देवो का उदाहरण दिया।

दो. वय किसोर सुषमा सदन, स्याम गौर सुख धाम।
अंग अंग पर वारिअहि, कोटि कोटि सत काम ॥२२०॥

अर्थ : अवस्था किशोर परम शोभा के घर श्याम गौर शरीर सुख के धाम है। इनके अङ्ग अङ्ग पर करोड़ो काम निछावर हैं।

व्याख्या : इस किशोरावस्था मे कुरूप भी सुन्दर मालूम पड़ते है। ये तो परमा शोभा के धाम हैं। इनकी शोभा के लिए क्या कहा जाय। एक एक अङ्ग पर करोड़ो काम निछावर है। अतः इनमे शोभा की परमिति बतला रही है।

कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह अस रूप निहारी ॥
कोउ सप्रेम बोली मृदु बानी। जो मै सुना सो सुनहु सयानी ॥१॥

अर्थ : हे सखि ! कहो ऐसा कौन शरीरधारी है जो यह रूप देखकर मोहित न हो। तब कोई सखी मृदु वाणी प्रेम से बोली। जो मैंने सुना है उसे हे सयानी ! सुनो।

व्याख्या : यदि मै मोहित हो गई तो इस रूप के देखने पर सभी शरीरधारी मोहित हो जावेंगे। अत. आक्षेपार्थक प्रश्न करती है। यह रूप से अङ्गुल्या निर्देश करके रूप की परमोत्कर्षता सूचित करती है। यह सखी अहङ्कार तत्त्व है।

अब दूसरी सखी कहती है। यह प्रेम से मृदुवाणी बोलती है। पहिली सखी भी प्रेम से बोली थी पर उसके बोलने मे मृदुता की मात्रा कम थी, अहङ्कार का पुट था। इसके बोलने मे प्रेम और मृदुता दोनो है। यह कहती है कि तुम सयानी हो। जिसके ऊपर इतनी आसक्ति है उसका परिचय भी जानना चाहिए। जो शब्द सुना है वही सुनाना चाहती है। यह आकाश तत्त्व है। सम्भवतः पति से सुना है। इसीलिए सुनानेवाले का नाम नही लेती।

ए दोऊ दशरथ के ढोटा। बाल मरालन्हि के कल जोटा ॥
मुनि कौसिक मख के रखवारे। जिन्ह रन अजिर निसाचर मारे ॥२॥

अर्थ : ये दोनो दशरथ के बेटे है। हंस के बच्चो की सुन्दर जोडी है। विश्वामित्र मुनि के यज्ञ की रक्षा करने वाले है। जिन्होंने रणाङ्गण मे राक्षसो को मारा है।

व्याख्या : महाराज दशरथ का नाम जगत् मे प्रख्यात है। इसलिए अयोध्याधिपति आदि विशेषण नही दे रही है। राजा दशरथ हंस हैं। उनके ये दोनो बेटे हंसकुमार हैं। इनकी जोड़ी बडी सुन्दर है। बाल मराल कहकर सौन्दर्य, विवेक और उत्तम गति द्योतित की। अब धर्म-कर्म कहती है। कौशिक मुनि का तपबल जगत् प्रसिद्ध है। राजर्षि से ब्रह्मर्षि पद लाभ किया है। उनमे अस्त्रबल द्योतित करने के

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लिए विश्वामित्र न कहकर कौशिक राजा कुश के वश मे उत्पन्न मुनि कहा। उनसे जिस यज्ञ की रक्षा न हो सकी उस यज्ञ की इन्होने रक्षा की है। ऐसे पराक्रमी और धर्मात्मा हैं। यज्ञ के विघ्नकारी बलवान् राक्षस थे। उन्हें इन लोगो ने रणाङ्गण मे मारा। इससे बल और शौर्य कहा।

स्याम गात कल कज विलोचन। जो मारीच सुभुज मद मोचन ॥
कौसल्या सुत सो सुख खानी। नामु रामु धनु सायक पानी ॥३॥

अर्थ श्याम शरीर सुन्दर कमल सी आँखे जिन्होने मारीच और सुबाहु के मद को तोड डाला है वे आनन्द की खानि कौसल्या के बेटे हैं। नाम इनका राम है। धनुष बाण हाथ मे लिए हुए हैं।

व्याख्या दोनो भाई भीड के बीच मे है। उन्हे लखाने के लिए रूप कहकर हाल कहती हैं। सुन्दर साँवली मूर्त्ति और कमल सी आँखें जिनकी हैं। उन्होने मारीच और सुबाहु के मद को चूर्ण किया है। भाव यह कि रण अजिर मे निशाचरो का सहार करनेवाले तो दोनो भाई हैं पर उनमे से जो दोनो प्रधान थे वे इन्ही के हाथ से पराभव को प्राप्त हुए हे। मारीच मारा नही गया। इसलिए मदमोचन कहती हैं।

पिता एक कहकर माता मे भेद बतलाती है कि ये तो कौसल्या के बेटे है। इनका नाम राम है। धनुसायक पानी कहकर खलवध मे निरत रहना द्योतित करती है। राम सुखरूप हैं। यथा सीकर ते त्रैलोक्य सुपासी। कौसल्या सुखखानि हैं। यथा प्रगट्यो जहँ रघुपति ससि चारू। विस्व सुखद खल कमल तुसारू।

गौर किसोर वेषु वर काछे। कर सर चाप राम के पाछे ॥
लछिमनु नामु राम लघु भ्राता। सुनु सखि तासु सुमित्रा माता ॥४॥

अर्थ गौर शरीर, सुन्दर वेष, कसे कसाये धनुषबाण हाथ म रामजी के जो पीछे है उनका नाम लक्ष्मण है। ये रामजी के छोटे भाई है। हे सखि! सुन, इनकी माँ सुमित्रा है।

व्याख्या वेषवर काछे का भाव यह कि रामजी की रक्षा के लिए कसे कसाये तैयार है। पीछे पीछे चले आ रहे है क्योकि छोटे भाई है। इनका नाम लक्ष्मण है। ये भी दशरथ के पुत्र है। पर इनकी माता सुमित्रा है। जो मै सुना सो सुनहु से उप क्रम करके सुनु सखि से उपसहार कर रही है। क्योकि परिचय दे चुकी।

दो० विप्रकाज करि बधु दोउ, मग मुनिबधू उधारि ॥
आए देखन चापमख, सुनि हरषी सब नारि ॥२२१॥

अर्थ ब्राह्मण का कार्य करके दोनो भाई रास्ते मे मुनिवधू का उद्धार करते धनुषयज्ञ देखने आये है। यह सुनकर सब स्त्रियाँ प्रसन्न हो उठी।

व्याख्या परिचय देने के बाद जनकपुर आगमन का प्रयोजन कहती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


पहिले दोनों भाइयों ने यज्ञ की रक्षा करके विश्वामित्रजी का कार्य किया। रास्ते चलते मुनि वधू का उद्धार किया। सतानन्दजी राजपुरोहित हैं। उन्ही के माता पिता अहल्या और गौतम मुनि थे। अत मुनिवधू के शापित होने की कथा जनकपुर वासियों मे विशेष रूप से प्रख्यात थी। इसलिए नाम से परिचय न देकर मुनिवधू उधारि एतावन्मात्र कहने से अहिल्योद्धार सबने जान लिया। इससे परमप्रभुता और पावनता कही। धनुषयज्ञ देखने आये हैं। भाव यह कि ये भी धनुष की परीक्षा करेंगे। यह सुनकर सब स्त्रियों को हर्ष हुआ। सबके हृदय मे श्रीजानकी जी के इनसे विवाह की सम्भावना जागरूक हुई। अत सब हर्षित हुईं।

देखि राम छवि कोउ एक कहई। जोगु जानकिहि यह बरु अहई ॥
जो सखि इन्हहि देख नरनाहू। पन परिहरि हठि करै बिवाहू ॥१॥

अर्थ रामजी की छवि देखकर कोई एक सखी कह उठी कि यह वर जानकी जी के योग्य है। यदि सखि! इन्हे राजा देखले तो अपना प्रण छोडकर हठ पूर्वक इनसे व्याह कर देगे।

व्याख्या तीसरी सखी बोलना ही चाहती है कि प्रभु सामने आ गये। अत कहती है कि जानकी के योग्य वह वर है। राजा लोग तो बहुत आये पर जानकी के योग्य वर कोई नही। स्त्रियाँ वर की योग्यता अयोग्यता की समालोचना किया करती हैं। स्वय रूप देखकर रूप दखने का फल कहती है। यह तेजस्तत्त्व है।

मालूम होता है कि राजा ने इन्हे देखा नही। योग्यता को दृढ करती है। यदि देख लें तो ऐसे योग्य वर के लिए प्रण छोड दें। प्रण और हठ मे भेद दिख लाती है प्रण छोडना अनुचित है और अनुचित के पक्षपात को ही हठ कहते हैं।

कोउ कह ए भूपति पहिचाने। मुनि समेत सादर सनमाने ॥
सखि परतु पनु राउ न तजई। बिधि बस हठि अबिबेकहि भजई ॥२॥

अर्थ किसी ने कहा इन्हे राजा पहिचानते हैं। मुनिजी के साथ इनका आदर पूर्वक सम्मान किया है। परन्तु सखि! राजा प्रण नही छोडता। होनहार के वश मे पडा हुआ हठ करके अविवेक का अपनाये हुए है।

व्याख्या चौथी बोली देखने की बात नही जान पहिचान है। मुनि का तो आदर सम्मान प्राप्त ही था। इनका भी आदर सम्मान किया। नगर मे लाकर दिखाया। यह सखी प्रेमवश प्रणरक्षा को अविवेक बतला रही है। इसका तर्क यह है कि जो कुछ प्रण हुआ है वह जानकी के योग्य वर मिलने के लिए ही हुआ है। जब योग्य वर मिल गया तब प्रण पर अडे रहना अनुचित है। होनहार बलवान् है। ऐसा विवेकी राजा अविवेक से काम ले रहा है। अपने प्रण पर अडा हुआ है। यह उचित अनुचित का विचार अपने पसन्द के अनुसार करती है। तमोबहुल है। विवेक को अविवेक और अविवेक को विवेक समझती है। यह पृथ्वी तत्त्व है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कोउ कह जौं भल अहइ बिधाता । सब कहँ सुनिअ उचित फल दाता ॥
तौ जानकिहि मिलिहि बरु एहू । नाहिन आलि इहाँ सदेहू ॥३॥

अर्थ किसी ने कहा कि यदि विधाता भले हैं और सुना जाता है कि सबको उचित फल देनेवाले है तो जानकी को यही वर मिलेगा। हे आली ! इसमे सन्देह नही है।

व्याख्या पाँचवी सखी बोली राजा भले ही विधिवश अविवेक को भजें पर यदि ब्रह्मा भले है न्यायकारी है तब तो जानकी को यही वर मिलेगा। यदि यह वर न मिला तो ब्रह्मा बुरे। ब्रह्मदेव के भले बुरे की परख जानकी के योग्य वर मिलने न मिलने मे कर रही है।

राजा का तो भरोसा नही वह प्रण न छोडेगा। विधि का भरोसा है। वे विधि बैठा देगे तो सबका मनोरथ पूर्ण होगा। इसे शुद्ध प्रेम कहते है। स्वय मोहित हैं पर विवाह उनका जानकीजी से चाहती हैं।

जौं बिधि बस अस बनै सँजोगू । तौ कृतकृत्य होइ सब लोगू ॥
सखि हमरे आरति अति ताते । कबहुक ए आवहिं एहि नाते ॥४॥

अर्थ यदि विधिवश ऐसा सयोग बैठ जाय तो सबलोग कृतकृत्य हो जायँ। हे सखि ! मुझे इसलिए अत्यन्त आर्ति है कि कभी ये इस नाते से आवेगे।

व्याख्या मनोरथ पूर्ति न होने से ब्रह्मदेव को बुरा कहना विवाह हो जाने से सबको कृतकृत्य मानना अति आरत होने का लक्षण है। अत कहती है कि विवाह के नाते से आना होगा तो हम लोगाको भी दर्शन मिल जायगा। यह सखी दर्शन के लिए आर्त है लोचन चातक जिन करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाखे। निदरहिं सरित सिंधुबर बारी। रूप बिंदुजल होहिं सुखारी। यह सखी जल तत्त्व है।

दो नाहिं त हम कहुँ सुनहु सखि, इन्ह कर दरसन दूरि ।
यह सघटु तब होइ जब, पुन्य पुराकृत भूरि ॥२२२॥

अर्थ नही तो हे सखि ! हमको इनका दर्शन दुर्लभ है। यह सयोग तो तब बन सकता है जब पूर्व जन्म का बडा पुण्य हो।

व्याख्या इस बार तो ये धनुपयज्ञ देखने यहाँ आगये हैं। राजा के लडके ठहरे। घर जाकर राज मे फँस जावेगे। यहाँ आने के लिए कोई कारण नही रह जायगा। यही लोग यहाँ आवें तो दर्शन मिल सकता है। हमारा जाना तो हो नही सकता। अत यदि हम लोगो का पूर्वजन्म का अत्यन्त पुण्य होगा तो यह सयोग बन जायगा। ब्याह हो जाने पर आना जाना लगा रहेगा। हम लोगो को दर्शन मिला करेगा।

बोली अपर कहेहु सखि नीका । येहि बिबाह अति हित सबहीं का ॥
कोउ कह सकर चाप कठोरा । ये स्यामल मृदु गात किसोरा ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ दूसरी ने कहा कि सखि ! तुमने अच्छा कहा। इस विवाह मे सभी का अत्यन्त हित है। किसी ने कहा कि शङ्कर का धनुप कठोर है और ये साँवले कोमल शरीरवाले अभी बच्चे हैं।

व्याख्या छठी सखी बोली। यह अपने से पहिले बोलनेवाली सखी का समर्थन करती है कि इस विवाह मे सभी का अर्थात् राजा का, रानी का, पुरजन का, हमारा और स्वय रामजी का अतिहित है। सबमे अतिहित का सञ्चार करती है। यह वायु तत्त्व है। अतिहित कहने का भाव यह है कि इसम लाभ ही लाभ है। हानि का लेश भी नही है।

सातवी कहती है कि किसी भाँति सामञ्जस्य ही नही वैठता। कमठ पीठ की भाँति यह धनुष कठोर है और ये रघुनन्दन मधुरमूर्ति हैं। ये कैसे इसे चढा सकेंगे। जनकजी का प्रण अत्यन्त दारुण है। यह सशय करती हैं। मनस्तत्त्व है।

सबु असमजस अहइ सयानी। येहि सुनि अपर कहइ मृदु बानी ॥
सखि इन्ह कह कोउ कोउ अस कहही। बड प्रभाउ देखत लघु अहही ॥२॥

अर्थ हे सयानी ! सभी प्रकार तो असमञ्जस है। यह सुनकर दूसरी ने कोमल वचन कहे। सखी ! इनको तो कोई कोई ऐसा बतलाते हैं कि इनका प्रभाव बडा है। देखने मे ही छोटे हैं।

व्याख्या अपने कहने का निष्कर्ष कह रही है कि किसी प्रकार से भी बात बैठती नही मालूम होती। इस बात का खण्डन करती हुई आठवी सखी बोली कि मृदुगात और किशोरावस्था होने से इन्हे थोडा न समझना। मैं स्वय नही जानती परन्तु जानकारो का यह कहना है कि ये देखने मे ही छोटे हैं। प्रभाव इनका बडा है। जानकार लोग विरले ही होते हैं। इसलिए कोउ कोउ कहती है।

परसि जासु पद पकज धूरी। तरी अहल्या कृत अघ भूरी ॥
सो कि रहिहिं बिनु सिवधनु तोरे। यह प्रतीति परिहरिअ न भोरे ॥३॥

अर्थ जिनके चरण कमलो के रज के स्पर्श से पत्थर बनी हुई अहल्या जिसने बडाभारी पाप किया था तर गई। यह क्या बिना शिवधनु तोडे रहेगे। ऐसा विश्वास भूलकर भी न छोडना।

व्याख्या अहल्या का इतना बडा पाप था कि सद्य पत्थर हो गई थी। वह जिसके चरणकमल की धूलि पडने से तर गई। यथा रामपद पदुम परागपरी। रिषि तिय तुरत त्यागि पाहन तनु छबिमय देह धरी। प्रबलपाप पतिसाप दुसह दव दारुन जरनि जरी। कृपासुधा सिंचि बिबुध बेलि ज्यौं फिरि सुख फरनि फरी। पत्थर के बन्धन से छूट गई। जडता नष्ट हो गई। वह स्वय धनुप की जडता अवश्य नष्ट करेंगे। धनुप की जडता ही गुरता है। यथा निज जडता लोगन पर डारी। होउ हरुअ रघुपतिहि निहारी। हमलोगो के हित की सिद्धि धनुप टूटने म है। सो विश्वास बिना कोई सिद्धि नही होती। यथा कौनिउ सिद्धि न बिनु

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विस्वासा। विश्वासत्याग से सिद्धि नही होती। युक्तियुक्त बात पर क्यो विश्वास नही करती ? इसलिए विश्वास को भूलकर भी नही छोडना।

जेहिं बिरंचि रचि सीय सँवारी। तेहिं स्यामल बरु रचेउ बिचारी ॥
तासु बचन सुनि सब हरषानी। ऐसेइ होउ कहहिं मृदु बानी ॥४॥

अर्थ जिस ब्रह्मा ने सीता को रचकर सुन्दर बनाया है। उसी ने विचार कर साँवरे वर को भी रचा है। इसका वचन सुनकर सब प्रसन्न हो गईं। और सुखी होकर कहने लगी कि ऐसा ही हो।

व्याख्या सीताजी के जन्म के पहिले ही ब्रह्मा ने विचार किया कि लोक-सुन्दरी सीता को रचना है। तो उसके लिए वर पहिले ही रचना चाहिए। अत इन्हे विचारकर पहिल से ही रच रक्खा है। तब सीताजी को ऐसी सुन्दरी बनाया है। यह निश्चय करती है। बुद्धि तत्त्व है। ऐसी आशा भरी बात आठवी सखी की सुनकर सब सखियाँ आनन्दित हो उठी। सबको सुख मिला अत आशीर्वाद देती हैं कि ऐसा ही हो।

दो हिय हरषहि बरषहि सुमन, सुमुखि सुलोचनि बृंद।
जाहि जहाँ जह बधु दोउ, तहँ तहँ परमानद ॥२२३॥

अर्थ सुन्दर मुखवाली और सुन्दर आँखोवाली युवतिया हृदय से हर्षित होती हैं। और फूलो की वर्षा करती हैं। जहाँ जहाँ दोनो भाई जाते हैं वही वही परम आनन्द होता है।

व्याख्या सर्वत्र ही यही दशा है। जहाँ जहाँ दोनो भाई जाते हैं परमानन्द मच जाता है। सुमुखि सुलोचनि फूल बरसाती है। अपरा प्रकृति सर्वत्र ही एक सी है। अत सर्वत्र ही एक सी क्रिया हो रही है। यह सरकार के ऊपर पहिली पुष्पवर्षा है। जो जनकपुर की सुमुखि सुलोचनिवृन्द द्वारा हो रही है। एकबार पहिले जन्म के उपलक्ष म देवताओ द्वारा हुई थी। पर वह अयोध्या म हुई थी। सरकार के ऊपर नही। यह पुष्पवर्षा स्वय प्रभु के ऊपर हो रही है। यह सत्कार पुरवासियो द्वारा हो रहा है।

पुर पूरब दिसि गे दोउ भाई। जहँ धनुमख हित भूमि बनाई ॥
अति बिस्तार चारु गच ढारी। बिमल बेदिका रुचिर सँवारी ॥१॥

अर्थ दोनो भाई पुर के पूरब की ओर गये। जहाँ धनुषयज्ञ के लिए भूमिका तैयार की गई थी। अत्यन्त विस्तृत सुन्दर गच ढाली गई थी। निर्मल सुन्दर वेदी सँवारी गई थी।

व्याख्या धनुषयज्ञ म भगवान् भूतभावन की पूजा होती है। मेध्य पशुओ की बलि होती है। यथा आरभ्यता धनुर्यागश्चतुर्दश्या यथाविधि। विशसन्तु पशून् मेध्यान् भूतराजाय मीढुषे। भा। और शस्त्रकौशल तथा बल की परीक्षा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



होती है। धनुपयज्ञ के एक दिन पहिले ही भूमिका देखने गये। प्रभु पश्चिम दिशा से आये हैं। पुर बाहिर सरसरित समीपा। उतरे जहँ तहँ विपुल महीपा। यह हाल पुर के पश्चिम दिशा का है। धनुपयज्ञ की भूमिका देखने की उत्कण्ठा है। वह पुर के पूर्व की ओर है। वही दोनो भाई गये।

गच के ढालने की विद्या पहिले थी। अब नही है। दक्षिण के मन्दिरो मे ढाले हुए पत्थर लगे पाये जाते हैं। ग्रन्थकार ने कांच के गच का उल्लेख अन्यत्र किया है। अत गच का ढाला जाना सिद्ध है। उसपर सुन्दर विशुद्ध वेदिका बनायी गई थी। जिसपर धनुपयज्ञ होनेवाला था।

चहु दिसि कचन मच बिसाला। रचे जहाँ बैठहि महिपाला ॥
तेहि पाछे समीप चहु पासा। अपर मच मडली बिलासा ॥२॥

अर्थ चारो ओर सोने के बडे बडे मञ्च कोच बने थे। जिसपर राजा लोग बैठते हैं। उसके पीछे पास ही चारो ओर दूसरे मञ्चो की मण्डली लगी थी। जो मञ्च आदि का विधान धनुपयज्ञ म शास्त्रोक्त है। यथा मञ्चा क्रियन्ता विविधा मल्लरङ्गपरिश्रिता । भा ।

व्याख्या राजा लोग स्वर्णसिहासन पर बैठनेवाले हैं। अत उनके बैठने के लिए सोने के ही मञ्च बनाये गये थे। और वे सब बडे बडे बनाये गये थे। जिनमे राजा लोग समाज सहित बैठ सकें। उस मञ्चमण्डली के पीछे दूसरी मञ्चमण्डली थी। जो सोने की नही थी।

कछुक ऊँचि सब भाँति सुहाई। बैठहि नगर लोग जहँ जाई ॥
तिन्हके निकट बिसाल सुहाए। धवल धाम बहु बरन बनाए ॥३॥

अर्थ कुछ ऊँची और सब भाँति सुन्दर थी जिसपर नगर के लोग जाकर बैठते थे। उसके निकट विशाल और सुन्दर अनेक रग के उज्ज्वल गृह बनाय गये थे।

व्याख्या यह दूसरी मञ्चमण्डली भी सब भाँति सुन्दर है और कुछ ऊँचे पर है। जिसमे आगे राजाओ के बैठने पर भी सामना न रुके। उस मञ्चमण्डली के निकट अर्थात् पीछे की ओर उज्ज्वल धाम बनाये गये थे जहाँ पुरुषो की पहुँच न हो सके। प्रत्येक वर्ण के लिए पृथक् रङ्ग से वे धाम रँगे थे। इसलिए बहुवरन कहते हैं।

जहँ बैठे देखहि सब नारी। जथा जोगु निज कुल अनुहारी ॥
पुर बालक कहि कहि मृदु बचना। सादर प्रभुहि देखावहि रचना ॥४॥

अर्थ जहाँ सब नारियाँ यथायोग्य अपने अपने कुल के अनुरूप स्थानो पर बैठी हुई धनुपयज्ञ देख सकें। पुर के बालक मृदु वचन कह कहकर आदर के साथ रचना दिखला रहे हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या यहाँ पर बैठकर देखने की व्यवस्था है खडे होकर नही। यथा जहाँ बैठे महिपाला। बैठहिं नगर लोग जहँ जाई। जहँ बैठे देखहिं सब नारी। कुल की प्रतिष्ठानुसार स्त्रियाँ परदे मे या परदे से बाहर बैठकर देख सकें। बालकवृद देखि अति सोभा। लगे सग लोचन मन लोभा। सो वही से सग लगे हुए हैं। यहाँ ले आये। अब रचना दिखला रहे है। जब से भूमिका मे हाथ लगा तब से ये बालक लोग रचना देख रहे हैं। अत रचना इनकी भलीभाँति देखी हुई है। अब उसे प्रभु को दिखाते हैं। देखने योग्य स्थानों मे लिवा ले जाते हैं। बात करने मे सुख का अनुभव करते है।

दो सब सिसु एहि मिस प्रेमबस, परसि मनोहर गात।
तन पुलकहिं अति हरषु हियँ, देखि देखि दोउ भ्रात ॥२२४॥

अर्थ सब बच्चे इस बहाने से प्रेम के वश होकर शरीर का स्पर्श करके पुलकित होते हैं और दोनो भाइयो को देखकर मन मे हर्षित होते है।

व्याख्या सब बालक प्रेम के वश है। प्रभु का स्पर्श करना चाहते हैं। दिखाने का बहाना उन्हे मिल गया है। उसी बहाने से प्रभु के मङ्गलमय मनोहर शरीर का स्पर्श करते हैं। स्पर्श से इतना बडा आनन्द होता है कि उन्हे रोमाञ्च हो जाता है। यथा ब्रह्मसस्पर्शमत्यन्त सुखमश्नुते। गी। ब्रह्मसस्पर्श मे अत्यन्त सुख होता है। नेत्रो से दोनो भाइयो को देखने से मनमे हर्ष होता है। अब शब्द के अनुभव के लिए सादर रचना दिखलाते हैं।

सिसु सब राम प्रेमबस जाने। प्रीति समेत निकेत बखाने ॥
निज निज रुचि सब लेहिं बोलाई। सहित सनेह जाहिं दोउ भाई ॥१॥

अर्थ रामजी ने सब बालको को प्रेम वश जाना। अत प्रीति के सहित घरो की प्रशसा करने लगे। अपनी अपनी रुचि के अनुसार सब बुलाते है और स्नेह के सहित दोनो भाई चले जाते है।

व्याख्या शिशुओ के स्पर्श से चिढते नही। समझते हैं कि ये प्रेम के वश मे हैं। वे मेरी वाणी भी सुनना चाहते है। अत आप जिन जिन घरो को उन लोगो ने दिखाया उनकी प्रशसा करने लगे। इन्द्रियो के तर्पण से बालको को बडा आनन्द हो रहा है। अब वे अपनी अपनी रुचि के अनुसार वस्तु दिखलाने के लिए सहित सनेह बुलाते है और ये सहित सनेह चले जाते हैं। इससे सरकार का स्वभाव कहा कि इतने बडे प्रभु होने पर भी भक्त के स्नेह सहित बुलाने पर स्नेह सहित चले आते हैं।

राम देखावहिं अनुजहि रचना। कहि मृदु मधुर मनोहर बचना ॥
लव[1] निमेष महुँ भुअन निकाया। रचै जासु अनुसासन माया ॥२॥

---

१ पलक के गिरने के समय को निमेष कहते है। उसका छठा भाग लव है अर्थात् छ लव का एक निमेष होता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : कोमल मधुर और मनोहर वचन कहकर रामजी छोटे भाई को रचना दिखलाते हैं। जिसकी आज्ञा से माया निमेष : पलक पड़ने का समय के भी अंश मे ब्रह्माण्ड समूहो को रच डालती है।

व्याख्या : सादर होने से मृदु सरस होने से मधुर और सुस्वर होने से मनोहर कहा। बालको की प्रसन्नता के लिए स्वयं देखते हैं और छोटे भाई को दिखाते हैं। जानते है कि इन रचनाओ की प्रशसा से और हमारे चकित होने से ये बालक प्रसन्न होगे। यहाँ पर अति माधुर्य का वर्णन किया। अत ऐश्वर्य भी साथ ही साथ ग्रन्थकार कहते हैं। क्योंकि ऐश्वर्य का ध्यान विना रहे भक्ति जार लोगो की आसक्ति की भाँति हो जाती है। यथा . तद्विहीन जाराणामिव। ना सू। विकासवाद का सिद्धान्त अत्यन्त सङ्कीर्ण है। सृष्टि क्रम से नही होती युगपत् होती है। स्वप्न की सृष्टि को भाँति रचना के लिए काल चाहिए। सो पलक मारने के पहिले ही माया अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड की रचना कर डालती है और माया मे यह शक्ति प्रभु के द्वारा आती है। यथा · सुनु रावन ब्रह्माण्ड निकाया। पाइ जासु बल विरचित माया।

भगति हेतु सोइ दीनदयाला। चितवत चकित धनुप मखसाला ॥
कौतुक देखि चले गुरु पाही। जानि बिलंबु त्रास मन माही ॥३॥

अर्थ : भक्ति के लिए वही दीनदयाल चकित होकर धनुप यज्ञशाला देख रहे है। कौतुक देखकर गुरुजी के पास चले। विलम्ब जान करके मनमे त्रास है।

व्याख्या : ऐसे प्रभु का चकित होकर धनुपमखशाला निरीक्षण करना केवल नाट्य है। भक्त और दीनो की प्रसन्नता के लिए यह नाट्य हो रहा है। यथा : अनेक वेप धरि नृत्य करै नट कोय। धनुपयज्ञशाला देखने का कौतुक था सो देख चुके। *अब लौटते है। धनुपयज्ञशाला पहिले नही देखी थी।* इसलिए उसके देखने के लिए कौतुक था। एक याम दिवस रहा तब डेरे से चले थे और सन्ध्या के पहिले लौट रहे है। फिर भी मनमे गुरुजी का त्रास है। नगर देखाइ तुरत लै आवो कहा था। सो कुछ देर तो अवश्य हो गई।

जासु त्रास डर कहुँ डर होई। भजन प्रभाउ देखावत सोई ॥
कहि बातें मृदु मधुर सुहाई। किए बिदा बालक बरिआई ॥४॥

अर्थ : जिसके त्रास से डर को डर होता है वही भजन प्रभाव दिखा रहा है। मृदु मधुर और सोहाई बातें कहकर बालको को जबरदस्ती विदा किया।

व्याख्या : प्रभु डर के भी डर हैं। यथा : भयांना भय भीपण भीपणानाम्। जिसके द्वारा लोगों को अभयपद प्राप्त होता है उसे डर कहाँ ? यह डर भी नाट्य है। भजन का प्रभाव इससे दिखाते हैं कि भगवान् भक्त से भयभीत भी रहते हैं।

बालको ने प्रेमवश हो प्रभु को बहुत दिक किया पर प्रभु प्रसन्न है। अब इनका साथ छोड़ना है। बिना छोड़े तीव्र गति नहीं हो सकती और ये सब साथ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



छोडना नही चाहते। अत जबरदस्ती उन्हे विदा करना पडा। फिर भी प्रभु ने मृदु मधुर और मनोहर बातें कहकर ही हटाया।

दो सभय सप्रेम विनीत अति, सकुच सहित दोउ भाइ।
गुरुपद पकज नाइ सिर, बैठे आयसु पाइ ॥२२५॥

अर्थ दोनो भाई अत्यन्त विनीत है। भय प्रेम और सङ्कोच के साथ गुरु के चरणकमल मे सिर नवाकर आज्ञा पाकर बैठे।

व्याख्या विलम्ब से भय गुरु चरणो मे प्रेम स्वाभाविक जो कहा था सो ठीक न कर सकने का सङ्कोच। इन भावो से भावित हो दोनो भाइयो ने गुरुजी के चरण कमलो की वन्दना की। वन्दना करके हाथ जोडे खडे है। जब गुरुजी ने आज्ञा दी तब बैठे। इसे विनय कहते है।

निसि प्रवेस मुनि आयसु दीन्हा। सबही सन्ध्या वदनु कीन्हा ॥
कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी ॥१॥

अर्थ रात्रि के प्रवेश होने पर मुनिजी ने आज्ञा दी। सभी लोगो ने सन्ध्या-वन्दन किया। पुरानी कथा और इतिहास कहते हुए सुन्दर रात्रि के दो पहर बीत गये।

व्याख्या मुहूर्तोन दिन नक्त प्रवदन्ति मनीषिण। पण्डितो ने एक मुहूर्त दिन रहते ही रात बतलायी है। इससे यह सिद्ध हुआ कि एक मुहूर्त दिन रहते ही मुनिजी ने सबको सन्ध्यावन्दन की आज्ञा दी। क्योकि वाराह पुराण मे साय सन्ध्यावन्दन का काल बताया है। सूर्यास्त से पहिले और ताराओ के प्रकट होने के पहिले तक। सूर्य के तेज की हानि न हो तब तक और प्रात काल सूर्य के आधे उदय के पहिले तक सन्ध्या होती है। यथा अर्वागस्तमयात्सन्ध्या व्यक्तीभूता न तारका यावत्। तेज परिहानिवशाद्भानोरर्धोदय यावत्। प्रभुहि मिलन आई जनु राती। देखि भानु जनु मन सकुचानी। तदपि बनी सन्ध्या अनुमानी। ब्रह्म जीव की सन्धि सन्ध्या है। गुरु की सेवा प्रधान है। उसी मे सब लोग लगे है। अत समय आते ही गुरुजी ने आज्ञा दी।

ऋषियो के साथ प्रभु भी एकभुक्त व्रत कर रहे है। सन्ध्यावन्दन के बाद पुण्यकथा होने लगी। अनधिकार चरचा नही की जाती। अर्द्धरात्रि के पहिले नही सोना चाहिए। अत कथा वार्ता मे आधी रात हो गई।

मुनिवर सयन कीन्ह तब जाई। लगे चरन चाँपन दोउ भाई ॥
जिन्ह के चरन सरोरुह लागी। करत बिबिध जप जोग बिरागी ॥२॥

अर्थ तब मुनीश्वर ने जाकर शयन किया। दोनो भाई प्रेम से गुरुजी का पाँव दबाने लगे जिनके चरणकमल के लिए विरक्त लोग अनेक प्रकार के जप और योग किया करते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या कथा से उठकर गुरुजी ने शयन किया। रास्ता चलकर आये हैं। अत थकावट निवारण के लिए प्रभु गुरुजी के पाँव दबाने लगे। गुरुजी की सेवा बिना आज्ञा पाये भी करनी चाहिए।

प्रभु के चरणकमलो को तो शङ्करजी ने अपने हृदय मे छिपाकर रक्खा है। जे हर हृदय कमल महँ गोए। अत उनकी प्राप्ति के लिए विरक्त पुरुष जप और योग करते हैं। जो विरक्त नही है उसे प्रभु के चरणो की प्राप्ति की इच्छा ही नही होती। अत उसका अधिकारी विरागी ही है। यथा जेहि लागि विरागी अति अनुरागी। जप और योग ही उसका साधन है। नाम निरूपण नाम जतन ते। सो प्रगटत जनु मोल रतन ते। इसलिए जप करते है। उससे थकते है तब ध्यान करते हैं। ध्यान से थककर फिर जप करते हैं। इस प्रकार साधन करते है।

तेइ दोउ बधु प्रेम जनु जीते। गुर पद कमल पलोटत प्रीते॥
बार बार मुनि अग्या दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही॥३॥

अर्थ वे ही दोनो भाई मानो प्रेम से जीते गये। प्रेम स गुरुजी का पाँव दबा रहे हैं। बार बार मुनिजी ने आज्ञा दी तब रघुवर ने जाकर शयन किया।

व्याख्या ये अजित हैं। किसी से जीते नही जाते। पर प्रेम इन्हे मानो जीत लेता है। यथा भगति अवसहि बस करी। गुरुजी के प्रेम के इतने वश्य हो गये हैं कि प्रीति से पाँव दबा रहे हैं।

एकबार के कहने पर सेवा से उपरत नही होना चाहिए। जिसे सेवा म प्रेम है वह उसे शीघ्र छोडना नही चाहता और बडे लोग अधिक सेवा लेना नही चाहते। अत मुनिजी के बार बार आज्ञा देने पर राम जी ने जाकर शयन किया। लक्ष्मण जी ने शयन नही किया। इसलिए रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही कहते हैं।

चापत चरन लखनु उर लाए। सभय सप्रेम परम सचु पाए॥
पुनि पुनि प्रभु कह सोवहु ताता। पौढे धरि उर पद जलजाता॥४॥

अर्थ · लक्ष्मणजी हृदय मे लगाये हुए भय प्रेम और परम सुख से पैर दाब रहे है। बार बार प्रभु ने कहा कि भैया! सोओ। तब चरणकमल को हृदय म धारण करके लेट गये।

व्याख्या लक्ष्मणजी को अत्यन्त प्रेम है। इसलिए चरण को हृदय म लगाये हुए दाब रहे हैं। दबाने मे बेमोके दब न जाय इसलिए भय भी है। दबाने से प्रभु को सुख भी मिलेगा इसलिए प्रेम है। रात बहुत बीती। फिर भी शीघ्रता नही। निद्रा का आनन्द भी इस सेवा के आनन्द के सामने कुछ भी नही है। अत परम सचु पाए लिखा।

सोने म अतिकाल हो रहा है। इसलिए प्रभु की आज्ञा बार बार सोने के लिए हुई। तब जिस चरणकमल को हृदय मे लगाकर दाब रहे थे उसी को हृदय म रखकर पौढ गये। अर्थात् लेटे, सोये नही। प्रभु के घर व बाहर निकलने पर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लक्ष्मणजी नही सोते। रक्षा के लिए सदा जागरूक है। यथा कछुक दूरि सजि बान सरासन। जागन लगे बैठि बीरासन। तेहि पाछे लछिमन बीरासन। कटि निषग कर बान सरासन। अत प्रभु की आज्ञा मानकर लेट गये। पर निद्रा के वशीभूत नही हुए।

दो उठे लखनु निसि बिगत सुनि, अरुनसिखा धुनि कान।
गुरु ते पहिलेहि जगतपति, जागे रामु सुजान ॥२२६॥

अर्थ रात बीतने पर मुर्गे का शब्द कान से सुनकर लक्ष्मणजी उठे और गुरुजी से पहिले जगत्पति रामसुजान जागे।

व्याख्या मुर्गा के पहली बार बोलते ही लक्ष्मणजी उठ पडे। पहर रात रहते ही मुर्गा बोलता है। तभी से दिन माना जाता है। इसीलिए रात्रि का नाम त्रियामा तीन पहरवाली है। पहर भर रात रहते ही जागने का विधान है। यथा पहिले पहर भूप नित जागा। उसी समय रामजी जागे। लक्ष्मणजी पौढे थे अत उनके लिए उठे लिखा। रामजी सोये थे अत उनके लिए जागे लिखा। शास्त्र का विधान है कि शिष्य गुरु से पीछे सोये और पहिल उठे। तदनुसार प्रभु भी गुरुजी के पीछे सोये और पीछे उठे।

सकल सौच करि जाइ नहाए। नित्य निबाहि मुनिहि सिर नाए ॥
समय जानि गुर आयसु पाई। लेन प्रसून चले दोउ भाई ॥१॥

अर्थ सब शौच करके जाकर स्नान किया। नित्य कर्म का निर्वाह करके मुनिजी को प्रणाम किया। समय जानकर और मुनिजी की आज्ञा पाकर दोनो भाई फूल लेने चले।

व्याख्या शौच दो प्रकार का होता है। एक वाह्य और दूसरा आभ्यन्तर। वाह्य शौच मिट्टी और जलादि से किया जाता है और आभ्यन्तर शौच ध्यान धारणादि से होता है। सो दोनो प्रकार के शौच के बाद बाहर जाकर अवगाह स्नान किया। गुरु सेवा प्रधान है। अत नित्य कर्म का निर्वाह सक्षेप से किया। नित्यकर्म का परित्याग नही होना चाहिए और गुरुजी की सेवा मे उपस्थित हो गये। गुरुजी को प्रणाम किया। यथा प्रातकाल उठि के रघुनाथा। मातुपिता गुरु नावहिं माथा।

समय जानकर कि इस समय यदि फूल लेने जावेगे तो गुरुजी के पूजा समय तक फूल ला सकेगे। गुरुजी से आज्ञा मांगी। मिलने पर फूल लेने दोना भाई चले। गुरुजी की पूजा मे फूल अधिक लगता है। अत दोनो भाई चल। रामजी को अकेले नही छोडते। अत दोनो भाई चले।

भूप बाग वर देखेउ जाई। जहँ बसत रितु रही लोभाई ॥
लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन वर बेलि बिताना ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ राजा के श्रेष्ठ बाग को जाकर देखा जहाँ वसन्त ऋतु लुभाकर रह गई थी। मन के हरण करनेवाले अनेक प्रकार के पेड लगे थे। उनपर रग बिरगी बेलियाँ चढी थी। जिनका चदोआ बन गया है।

व्याख्या महाराज जनक के अनेक बाग हैं। उनम से सर्वश्रेष्ठ बाग को जाकर देखा। बाग की श्रेष्ठता कहते हैं कि उसे देखकर मनुष्य का लुभा जाना तो कोई बडी बात नही है। वहाँ आकर वसन्त ऋतु लुब्ध होकर ठहर गया। वसन्त ऋतु ससार से चला गया। ग्रीष्म और पावस बीत गया। अब शरद का अधिकार है। पर उस बाग मे आज भी वसन्त है। बसतरितु रही लोभाई कहने से द्योतित होता है कि वसन्तु ऋतु का समय नही है।

नाना प्रकार के विटपो की पक्ति खडी है। उनपर नाना रग की लताएँ चढी हुई है। जिस रग के विटप पर जिस रग की लता खिलती है वैसी ही लताएँ चढी हुई है और एक विटप की लता ऊपर ही ऊपर दूसरे विटप की लता स उलझ गई है। इस भाँति लताओ के चँदोये बन गये है।

नव पल्लव फल सुमन सुहाए। निज सपति सुररूख लजाए॥
चातक कोकिल कीर चकोरा। कूजत विहग नटत कल मोरा॥३॥

अर्थ ये नये पत्ते फलफूल से शोभायमान थे। अपनी सम्पत्ति से कल्पवृक्ष को लज्जित कर रहे थे। चातक, कोकिल, शुक और चकोर पक्षी कूज रहे थे और मोर नाच रहा था।

व्याख्या नव पल्लव फल और फूल साथ नही होते पर यहाँ है। भाव यह कि एक ओर नय कोपल लग रहे है। दूसरी ओर फूल लग रहे हैं। तीसरी ओर फल लग रहे हैं। बारहमासी वृक्ष हैं। वृक्ष की सम्पत्ति है। पल्लव, फूल और फल। सो वे ऐसे सरस है कि कल्पवृक्ष लज्जित हो जाय। अथवा कल्पवृक्ष रूखे मालूम पडते है। इसलिए कवि ने सुररूख पद रक्खा। यह वेद वाद का बाग है। यामिमा पुष्पिता वाच प्रवदन्त्यविपश्चित। वेदवादरता पार्थ नान्यदस्तीतिवादिन। पराप्रकृति और पुरुष का साक्षात्कार यही हुआ।

वलिवितान स चातक को मेघमण्डल का भ्रम हुआ। अत वह कूजने लगा। नवपल्लव स कोकिल को वसन्त का भ्रम हो रहा है। अत वह भी कूज रही है। नवफल स शुक को ग्रीष्म का भ्रम हुआ। अत वह भी बोलता है और नवसुमन से मालूम होता है कि चाँदनी छिटकी हुई है। अत चकोर भी चहकता है। ये चारो तालधारी की भाति कूज रहे हैं। मोर लतावितान को मेघमण्डल मानकर नृत्य कर रहा है। बाग मे चारा ओर मङ्गल मचा हुआ है। यथा अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मगल चहुँ ओरा।

मध्य बाग सरु सोह सुहावा। मनि सोपान विचित्र बनावा॥
विमल सलिलु सरसिज बहुरगा। जलखग कूजत गुजत भृगा॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ बाग के बीचोबीच सुन्दर सरोवर था। जिसमे विचित्र मणियो की सीढियाँ बनी थी। उसका जल निर्मल था। अनेक रग के कमल खिले थे। जलपक्षी कूज रहे थे और भौंरे गुञ्जार कर रहे थे।

व्याख्या यदि बाग के मध्य मे सरोवर न हुआ तो बाग की शोभा नही। सो इसके बीचोबीच सरोवर था। सलिल सुधासम मनि सोपाना कहकर जनकपुर के सभी सरोवरो का वर्णन कर चुके है। इस सरोवर की विशेषता यह है कि यहाँ मणिसोपान की कारीगरी विचित्र है। जल निर्मल है। यहाँ अनेक रग के कमल इस एक ही सरोवर मे खिले हुए है। जलपक्षी कूजते है और भौंरे गूँज रहे हैं। भाव यह कि उद्दीपन विभाव की पराकाष्ठा है।

दो बागु तडागु बिलोकि प्रभु, हरखे बधु समेत।
परम रम्य आरामु येहु, जो रामहि सुख देत ॥२२७॥

अर्थ बाग और तालाब देखकर प्रभु भाई के सहित हर्षित हुए। यह बाग परम रम्य है जो रामजी को सुख दे रहा है।

व्याख्या पुररम्यता राम जब देखी। हरखे बधु समेत बिसेखी। रम्य नगर को देखकर ही विशेष हर्षित हुए थे। अब उससे भी अधिक हर्ष है। क्योकि यह परम रम्य है। पर्वतो मे कैलास परम रम्य है। यथा परम रम्य गिरिबर कैलासू। धरणी मे सेतुबध की भूमि। यथा परम रम्य उत्तम यह धरनी। और बागो मे राजा जनक का बाग परम रम्य है। रम्यता से हर्ष और परम रम्यता से सुख होता है।

चहु दिसि चितइ पूछि मालीगन। लगे लेन दल फूल मुदित मन ॥
तेहि अवसर सीता तहँ आई। गिरिजा पूजन जननि पठाई ॥१॥

अर्थ चारो ओर देखकर मालियो से पूछकर पत्ते और फूल प्रसन्न चित्त होकर लेने लगे। उसी अवसर सीताजी भी वहाँ आईं। गिरिजा पूजन के लिए माँ ने भेजा था।

व्याख्या रामहि सुख देत अत चहुँ दिसि चितय कहते है। तथा फुलवारी किस और है? इसे देखने के लिए चारो ओर देखा तथा बडे बाग मे मालियो का पता शीघ्र नही लगता अत चारो ओर देखा। सिह है चारो ओर देखकर ही कार्यारम्भ करते है। सिह ध्वनि इत उत चितव धीर बीर बल पुंज तथा अचरो पर भी दया है। अत चारो ओर देखा। बिना पूछे फुलवारी से फूल नही लेना चाहिए। इससे मालियो से पहिले पूछ लिया।

दल पहिले लिया और फूल पीछे। दलो का दोना बनाया। यथा सुमन समेत बाम कर दोना तथा दोना म पहिले बिल्वदल तुलसीदलादि रख लिया। तब पुष्प रक्खा। दल फूल बडे सुन्दर और सरस है। इसलिए लेने मे प्रसन्नता है।

जब रामजी फूल चुनने मे लगे थे उसी अवसर मे सीताजी उस बाग मे आई। दूसरे ही दिन विवाह था। क्योकि धनुपयज्ञ ही वस्तुत विवाहोत्सव था।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यथा : टूटत ही धनु भयउ विवाहू । विवाह के पहिले सौभाग्य के लिए गिरिजापूजन करना है । इसलिए माँ ने भेजा था । नित्य नहीं आतीं । पूर्वेद्युरस्ति महती कुलदेवियात्रा यस्यां वहिर्नववधूर्गिरिजामुपेयात् । भा० १०. ५२. ४२ ।

व्याह के एकदिन पहिले कुलदेवी की यात्रा होती है । जिसमें वधू वाहर गिरिजा पूजन के लिए जाती हैं ।

संग सखी सब सुभग सयानीं । गावहिं गीत मनोहर बानीं ॥
सर समीप गिरिजा गृह सोहा । वरनि न जाइ देखि मनु मोहा ॥२॥

अर्थ : संग में सब सुन्दर सयानी सखियाँ थी । मनोहर वाणी से गीत गा रही थी । सरोवर के सन्निकट गिरिजाजी का मन्दिर शोभायमान था । जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता । देखने में मन मोहित हो जाता था ।

व्याख्या : आज सब सखियाँ संग में थी । सभी सुन्दर और सयानी हैं । विवाहोपलक्ष्य में देवीपूजन के समय जो गीत गाया जाता था वह गा रही थी । बाग में प्रविष्ट होते ही गीत आरम्भ हुआ । अभी तक तो भौंरे ही गीत गाते थे अव तो मनोहर वाणी से सखियों का गीत प्रारम्भ हुआ । सरोवर के समीप ही गिरिजा का मन्दिर था । महात्माओं से पता चलता है उसका नाम चिन्तामणि मन्दिर था । जहाँ सरोवर की सीढियों में विचित्र मणियों का काम था । वहाँ के गिरिजाजी के मन्दिर का वर्णनातीत होना ही प्राप्त है ।

मज्जनु करि सर सखिन्ह समेता । गई मुदित मन गौरिनिकेता ॥
पूजा कीन्हि अधिक अनुरागा । निज अनुरूप सुभग वरु माँगा ॥३॥

अर्थ : सखियो के सहित सरोवर में स्नान करके प्रसन्न मन से गौरी के मन्दिर में गई । अधिक अनुराग से पूजा की और अपने अनुरूप सुन्दर वर माँगा ।

व्याख्या : सखियों के समेत पूजन करना है । अतः सखियों के समेत स्नान भी लिखते हैं । अथवा जिस देवता का पूजन करना है तत्सम्बन्धी तीर्थ-कूप, कुण्ड, सरोवरादि में स्नान का विधान है । गौरी का पूजन करना है इस उत्साह से मन प्रसन्न है । पूजन में अनुराग सब कुछ है । कि पुनः स्त्रियों के पूजन में तो मन्त्रादिक का प्रयोग न होने से अनुराग ही सब कमी को पूरा करता है । वर लेना है इसलिए अधिक अनुराग से पूजन किया । यह पूजन ही सौभाग्य के लिए था । अतः अपने अनुरूप सुन्दर वर के लिए प्रार्थना की । अति अनुराग का प्रत्यक्ष फल होता है । यथा : भगतिसहित मुनि आहुति दीन्हे । प्रगटे अगिनि चरू कर लीन्हे ।

एक सखी सिय संगु विहाई । गई रही देखन फुलवाई ॥
तेहि दोउ बंधु विलोके जाई । प्रेम विवस सीता पहिं आई ॥४॥

अर्थ : एक सखी सीता का संग छोडकर फुलवाई देखने गई थी । उसने जाकर दोनो भाइयो को देखा और प्रेम के विवश होकर सीताजी के पास आई ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



*व्याख्या* सीताजी पूजन मे लगी। एक सखी के मनमे यह बात आई कि तब तक फुलवारी देख आऊँ सो वह फुलवारी देखने चली गई। उस स्थान से फुलवारी कुछ हटकर थी। फुलवारी मे ही दोनो भाई फूल चुन रहे थे। बाग इतना बडा था कि सीताजी के आने और मगल गान का कुछ भी पता दोनो भाइयो को न लगा। इस सखी ने वहाँ जाकर दोनो भाइयो को देखा। दोनो भाइयो ने इसे नही देखा फूल चुनने मे लगे थे। रूप देखते ही प्रेम के विवश हो गई। इस छवि को सीताजी को भी दिखलाना चाहिए। इसलिए उस प्रेममग्नावस्था मे ही सीताजी के पास आई। नारदजी का वचन सत्य होना था। इसलिए यह घटना हुई।

दो तासु दसा देखी सखिन्ह, पुलक गात जलु नयन।
कहु कारनु निज हरष कर, पूछहि सब मृदु बयन ॥२२८॥

अर्थ उसकी दशा सखियो ने देखी कि शरीर मे पुलक है और आँखो मे आँसू है। सब मृदुवचन से पूछने लगी कि अपने हर्ष का कारण बतला।

*व्याख्या* सीताजी ने उसकी अवस्था नही देखी। वर माँगने मे दत्तचित्त थी। सखियो ने देखा। प्रेमविवश की दशा कहते है। पुलक गात जल नयन। यह सञ्चारी भाव है। यह दशा भयादि मे भी होती हैं। पर सखियाँ सयानी है। लख लिया कि यह सञ्चारी भाव हर्ष का है। अत हर्ष का कारण पूछती हैं। सबके पूछने का प्रयोजन सीताजी का ध्यान आकर्षण करने के लिए है। तथा अति उत्कण्ठा होने से है। प्रेम से प्रेरित हैं। अत मृदुवाणी से पूछती है।

देखन बागु कुँअर दोउ आए। बय किसोर सब भाँति सुहाए॥
स्याम गौर किमि कहउ बखानी। गिरा अनयन नयन बिनु बानी ॥१॥

अर्थ बाग देखने दो राजकुमार आये हैं। अभी किशोरावस्था है। सब भाँति सुन्दर है। साँवरे गोरे को कैसे बखान कर कहूँ। वाणी को आँख नही है और आँख को वाणी नही है।

व्याख्या फूल के लिए आना नही कहती। राजकुमार है उन्हे फूल का क्या घाटा है। वे बाग देखने आये है। मनमे आया फूल भी तोडने लगे। अवस्था थोडी है। जवानी आया चाहती है। इसलिए बय किशोर कहती हैं। यथा *आषोडशाच्च कैशोर, यौवन स्यात्तत परम्।* केवल अवस्था ही नही सभी भाँति से मनोहर हैं। एक श्याम है और दूसरे गोरे हैं। मुझसे तो उनका बखान नही हो सकता। आँखो ने उन्हे देखा है। वे ही जानती है। पर उन्हे वाणी नही अत नही कह सकती। क्योकि कहनेवाली वाणी है। उसे आँख नही, उसने देखा नही वह कैसे कहे। भाव यह कि सखी प्रेम से शिथिल है। उसकी ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रिय का सम्बन्ध भी शिथिल हो गया है। उसे स्पष्ट अनुभव हो रहा है कि आँखा ने देखा है। उनमे यदि प्रकाश करने की शक्ति होती तो सम्भव है कि उस शोभा को व्यक्त कर सकती। वाणी को साक्षात्कार की शक्ति नही। वह कुछ भी उस शोभा को नही कह सकती।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इस भाँति दोनो राजकुमारो की अलौकिक छवि को अवर्णनीय बतलाती है। यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार है। यथा · काव्यलिङ्ग जब युक्ति सौ अर्थ समर्थ न होय।

सुनि हरषीं सब सखीं सयानी। सिय हिय अति उतकंठा जानी ॥
एक कहइ नृपसुत तेइ आली। सुने जे मुनि सग आए काली ॥२॥

अर्थ . यह सुनकर सब सयानी सखी प्रसन्न हो उठी। जाना कि सीताजी के हृदय मे अत्यन्त उत्कण्ठा है। एक ने कहा कि हे आली! ये वे ही राजकुमार है जिनके विषय मे सुना है कि मुनि के सग कल आये है।

व्याख्या : सयानी सखी है। तुरन्त समझ गई कि कौन हैं। और यह भी लख लिया कि सीताजी के हृदय मे अत्यन्त उत्कण्ठा हो गई है। अत सब हर्षित हुई। यदि सीताजी के हृदय मे उत्कण्ठा उत्पन्न न होती तो देखने का योग न मिलता। प्रशसा राजकुमारो के रूप की सुन चुकी हैं। पर राजमहल की रहनेवाली है अत देख न सकी। हृदय मे उत्कण्ठा कल से ही देखने की है। अब सीताजी मे अत्यन्त उत्कण्ठा लखकर कार्यसिद्धि की आशा से प्रसन्न हो उठी। सीताजी के हृदय मे अत्यन्त उत्कण्ठा होने का भी कारण है। इधर निज अनुरूप सुभग वर गिरिजाजी से माँग रही है। उधर अलौकिक सौन्दर्य वाले राजकुमार के आगमन का समाचार मिल रहा है। अत यह घटनासयोग निष्कारण नही है।

उस उत्कण्ठा को जानकर एक सखी बोल उठी कि ऐसे सुन्दर तो वे ही सुने जाते है जिनका कल आगमन मुनि के सङ्ग हुआ है। कल से ही नगर मे उनके रूप का शोर है। उनके नगर देखने का समाचार सुनकर सारा नगर उलट पडा। यथा देखन नगर भूपसुत आए। समाचार पुर बासिन्ह पाए। धाए धाम काम सब त्यागी। मनहु रक निधि लूटन लागी।

जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्वबस नगर नर नारी ॥
बरनत छबि जहँ तहँ सब लोगू। अवसि देखिअहिं देखन जोगू ॥३॥

अर्थ जिन्होने अपने रूप की मोहनी डालकर सब नर नारियो को अपने वश मे कर लिया है। सब लोग जहाँ तहाँ छवि का वर्णन कर रहे है। देखने योग्य को अवश्य देखना चाहिए।

व्याख्या वह सखी कहती है कि मेरी सखी विचारी का कोई दोष नही। उनके रूप मे ही कुछ ऐसी मोहनी शक्ति है कि सब नरनारी उनके वश मे हो गये है। यह विचारी मोहित हो गई तो क्या आश्चर्य है? सासारिक पुरुषो को विषय से खीचकर अपनी ओर लाने के लिए ही प्रभु ऐसा सुन्दर स्वरूप धारण करते हैं। सब लोग ऐसे उनके वश हो गये है कि जनकपुर मे उनकी छवि के वर्णन के अतिरिक्त कोई चरचा हो नही है। लोकोत्तर पदार्थ दर्शनीय होता है। अत उनकी लोकोत्तर छवि दर्शनीय है। जिसके दर्शन का माहात्म्य है। जिसे सब देखना चाहते हैं। उसके दर्शन मे दोष की सम्भावना को स्थान नही है। अत कहती हैं अवसि देखिये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तासु वचन अति सियहि सोहाने । दरस लागि लोचन अकुलाने ॥
चली अग्र करि प्रिय सखि सोई । प्रीति पुरातन लखै न कोई ॥४॥

अर्थ उसका वचन सीताजी को बहुत अच्छा लगा । दर्शन के लिए आँखें आकुल हो उठी । उसी प्रिय सखी को आगे करके चली । पुरातन प्रीति को कोई नही लख रहा है ।

व्याख्या उस सखी के वचन सभी को अच्छे लगे । परन्तु सीताजी को अत्यन्त भले मालूम हुए । क्योंकि सीताजी को अत्यन्त उत्कण्ठा थी । सखी का निर्णयात्मक वचन सुनकर दर्शन के लिए आकुलता बढी । इसलिए तुरन्त चल पडी । उस प्रिय सखी को जो प्रिय समाचार लायी थी आगे कर लिया क्योंकि उसी का जाना हुआ है कि वे राजकुमार कहाँ है । इतनी आकुलता का कारण पुरातन प्रीति है ।

दो सुमिरि सीय नारद वचन, उपजी प्रीति पुनीत ।
चकित विलोकति सकल दिसि, जनु सिसु मृगी सभीत ॥२२९॥

अर्थ नारदजी के वचन का स्मरण करके पवित्र प्रीति उत्पन्न हुई । चकित होकर इस भाँति चारो ओर देखने लगी । जैसे डरी हुई मृगी की बच्ची चारो ओर देखे ।

व्याख्या नारदजी ने पहिले ही कह रक्खा था कि जो तुम्हारा पति होगा । उसका प्रथम दर्शन तुम्हे गिरजा बाग मे होगा । फलाभिसन्धिवर्जित प्रीति उपजी इसलिए पुनीत कहते हैं । फुल्वारी तक पहुँच गईं । परन्तु कोई दिखाई नही पडा । अत चकित होकर चारो ओर देखती है । चकित होकर चारो ओर देखने मे जो नेत्र चञ्चल हुए उस चितवन की उपमा सभीत शिशुमृगी के चितवन से देते हैं । जो खटका पाकर सभीत दृष्टि से देखती है कि किधर से शब्द सुनाई पडा । इस राम जानकी मिलनप्रसङ्ग म आरम्भ से ही जो प्रक्रिया दोनो ओर से हो रही है । उसका कुछ मिलान भी पाठको के विनोदार्थ देना अनुचित न होगा ।

| रामजी | | सीताजी |
|---|---|---|
| सकल सौचकरि जाइ नहाए | १ | मज्जनकरि सर |
| नित्य निबाहि मुनिहि सिरनाए | २ | गई मुदित मन गौरिनिकेता |
| समय जानि | ३ | तेहि अवसर |
| गुरु आयसु पाई | ४ | जननि पठाई |
| लेन प्रसून चले | ५ | गिरिजा पूजन आई |
| सग भाई | ६ | संग सखी |
| लगे लेन दलफूल मुदित मन | ७ | गई मुदित मन गौरि निकेता |
| चहुँदिसि चितय | ८ | चकित विलोकति सकलदिसि |

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि । कहत लखन सन रामु हृदय गुनि ॥
मानहुँ मदन दुदुंभी दीन्ही । मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही ॥१॥

अर्थ : कङ्कण, करधनी[1] और नूपुर की झनकार सुनकर लक्ष्मणजी से रामजी ने हृदय मे विचार कर कहा। मानो कामदेव ने नगाडा बजाया है। विश्वविजय की इच्छा की है।

व्याख्या : लगे लेन दलफूल मुदितमन से प्रसङ्ग छूटा है। सो ऐसे दत्तचित्त हैं कि सखी आकर उन्हे देखकर लौट गई। परन्तु उन्हे पता नही है। एकाएक किंकिणि, कंकण और नूपुर की झनकार ऐसी कान मे पडी कि अभूतपूर्व भाव का उदय हुआ। यद्यपि कंकण किंकिणि नूपुर ध्वनि के बीच मे अवतार ही हुआ है। पर इस ध्वनि मे विशेषता है। विचार करते हैं कि गति की रमणीयता से भूषणो की ध्वनि ऐसी सुहावनी है : नूपुर मधुर मुखर कवि बरनि। भूषण की ध्वनि मधुर होती है। पर इसका उद्दीपक प्रभाव ऐसा बलवान् है कि दुन्दुभि के घोर शब्द से उपमित करने योग्य है। मानो विश्वविजय की इच्छा करके कामदेव ने दुन्दुभिघोष किया है। नगर देखने के समय काम का पराजय हुआ है। यथा . सखि इन कोटिकाम छवि जीती। उस समय धनुर्धर भी थे। अतः पुष्पधन्वाने फुलवारी मे फूल चुनते देखकर उपयुक्त समय जानकर विश्वविजय के लिए डंका दिया क्योकि इनके विजय से ही विश्वविजय है। यथा : मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहिं सपनेहुँ परनारि न हेरी। सखा रूप मे लक्ष्मणजी साथ है। उन्ही से रामजी अपना मनोभाव व्यक्त कर रहे हैं। लक्ष्मणजी चुप हैं।

अस कहि फिरि [2]चितए तेहि ओरा । सिय मुख ससि भए नयन चकोरा ॥
भए बिलोचन चारु अचंचल । मनहुँ सकुचि निमि तजे दिगंचल ॥२॥

अर्थ : ऐसा कहकर घूमकर उस ओर देखा तो सीताजी का मुख चन्द्र हुआ और रामजी के नेत्र चकोर हो गये। सुन्दर नेत्र स्थिर हो गये। मानो निमिने सङ्कोच से पलकें छोड़ दी।

व्याख्या : जिधर से ध्वनि आती थी उधर घूमकर देखा। रामजी को काम से वैर है। यथा : नील तामरस स्याम काम अरि। सो शत्रु से सावधान होने के लिए उधर लक्ष्य किया। पर वहाँ बात ही दूसरी हो गई। सीताजी जो दिखाई पडी तो उनके मुखचन्द्र के लिए रामजी के नेत्र चकोर हो गये। यहाँ चन्द्रचकोर कहकर यह भी दिखलाया कि चकोर चन्द्र को देखते हैं। चन्द्र चकोर को नही देखता। भाव यह कि ये सीताजी को देख रहे हैं। सीताजी इन्हे नही देख रही हैं।

---

१ पूर्व मे अब भी ऐसी करधनी बनती है जिसमे शब्द हो।
२. निदर्शन . द्वितीय।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जिस भाँति सीताजी चकित विलोकति सकलदिसि थी अत उनके नेत्र चञ्चल थे, उसी भाँति इनके भी नेत्र घूमकर देखने मे चञ्चल हो उठे थे। सो सिय मुखशशि के देखने मे ऐसे स्थिर हो गये कि पलक पडती ही नही। निमि महाराज जनक के पूर्वज थे। वे ही पलक के अधिष्ठात्री देवता है। अब यहाँ पलक न पडने का कारण कहते हुए ग्रन्थकार उत्प्रेक्षा करते हैं कि मानो पलक के अनुग्राहक देवता निमि ने सङ्कोच से पलक का परित्याग ही कर दिया। फिर पलक पडे कैसे ? जानकीजी के पूर्वज होने से उन्हे ऐसे अवसर मे सङ्कोच होना प्राप्त है।

देखि सीय सोभा सुखु पावा। हृदय [1]सराहत बचनु न आवा ॥
जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रगटि देखाई ॥३॥

अर्थ सीताजी की शोभा को देखकर सुख मिला, हृदय मे प्रशसा करते हैं। पर मुख से वचन न निकला मानो ब्रह्मदेव ने अपनी सारी पडिताई को ससार मे रचकर प्रकट करके दिखला दिया है।

व्याख्या पहिले कह आये हैं परमरम्य आराम यह जो रामहि सुख देत। बाग ने सुख तो दिया पर इन्हाने लिया नही क्योकि बिना आलम्बन के उद्दीपन सुखदायक नही होता। अब सीताजी के रूप म आलम्बन की प्राप्ति हुई अत कहते हैं देखि सीय शोभा सुख पावा। अब अनुभाव कहते हैं कि मन से प्रशसा करते हैं। लक्ष्मणजी से कहना चाहते हैं, पर कह नही सकते। चतुष्पाद विभूति मे से एक पाद ही प्रकट है और तीन पाद अप्रकट है। सो मानो ब्रह्मदेव ने सीताजी को रचकर उनमे चतुष्पाद विभूति को प्रकट करके दिखला दिया। यथा त्रिपादूर्ध्वमुदैत्पुरुष पादोस्येहा भवत्पुन ।

सुदरता कहुँ सुदर करई। छबि गृह दीप सिखा जनु बरई ॥
सब उपमा कबि रहे जुठारी। केहि पटतरौं बिदेहकुमारी ॥४॥

अथ मुन्दरता को भी सुन्दर कर रही है। मानो छवि गृह मे दीप की शिखा जल रही है। सारी उपमाओ को कवियो ने जूठी कर दिया है और यह शोभा अनूठी है। विदहकुमारी की उपमा किससे दूँ।

व्याख्या जितनी सुन्दरताएँ है वे इस सुन्दरता की उपजीवी है। यथा जासु अस उपजहि गुनखानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी। अर्थात् इस सुन्दरता से ही सब सुन्दरियो ने सुन्दरता पाई है। यह कोई दिव्य तेज है। इसलिए दिव्य-शिखा कहते है। जिसम न तेल है न बत्ती, न धूआँ है और यह सुन्दरता को और भी सुन्दर कर रहा है। जैसे छविगृह की उसी समय सच्ची शोभा होती है जब उसमे दीपशिखा जल। सखिया के मध्य म इनकी शोभा इस प्रकार है जैमे छविगृह

---

१ 'सराहत' शब्द श्लिष्ट है इसका अर्थ यह भी है कि कामशर से ऐसे घायल हो गये हैं कि चाहने पर भी बोल नही सकते।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मे दीपशिखा जले। दीपशिखा स्वय प्रकाशमान है और घर को भी प्रकाशित करता है। इसी भाँति सीताजी की दिव्य शोभा से सखीजन भी शोभायमान है। यथा छविगन मध्य महा छवि जैसी।

वर्णन न हो सके तो उपमा द्वारा वर्णन करना चाहिए। इसपर कहते है कि कवियो ने सब उपमाएँ तो प्राकृत नारियो के अङ्गो पर दे डाली है। अत सब उपमाएँ जूठी है और यह शोभा अनूठी है। अत श्रीरामजी कहते है कि विदेहकुमारी की उपमा किससे दूँ।

दो सिय सोभा हियँ बरनि प्रभु, आपनि दसा बिचारि।
बोले सुचि मन अनुज सन, बचन समय अनुहारि ॥२३०॥

अर्थ मनमे सीताजी की शोभा वर्णन करके और अपनी दशा का विचार करके, पवित्र मनसे समयानुसार वचन लक्ष्मणजी से बोल।

व्याख्या हृदय सराहत वचन न आवा से स्वगत का उपक्रम करके और सिय सोभा हिय बरनि प्रभु से उपसहार किया। प्रभु है अपनी दशा का विचार करते है कि ऐसी स्तब्धता हो गई कि मै बोल न सका। विचार स ही स्तब्धता गई। शुचिमन देहलीदीपन्याय से दोनो ओर लगेगा। शुचि मन है इसलिए अनुज से कहा। अनुज भी शुचिमन हैं उधर देखते ही नही। रामजी शुचि मन हैं इसलिए इन्हे भी प्रीति पुनीत उपजी। काम से सग्राम उपस्थित है। भाई की सहायता चाहते है अत बोले।

तात जनकतनया यह सोई। धनुषयज्ञ जेहि कारन होई ॥
पूजन गौरि सखी लै आई। करत प्रकासु फिरहि फुलवाई ॥१॥

अर्थ हे भैया! यह वही जनक की बेटी है जिसके लिए धनुषयज्ञ हो रहा है। इसे सखियाँ गौरीजी के पूजन क लिए लाई है। फुलवारी म प्रकाश करती फिरती है।

व्याख्या उधर सखी सखी से कहती हैं। एक कहै नृपसुत तेइ आली। सुने जो मुनि सग आए काली। यहाँ सब सयाने इकट्ठे हैं। अनुमान से ही पहिचान हो गयी। इधर प्रभु कहते हैं। तात जनकतनया यह सोई। धनुषयज्ञ जहि कारन होई।' जनकजी की एकाधिक कन्याएँ है। पर यह तो वही है जिसके लिए धनुषयज्ञ हो रहा है। ऐसे अनुमान का आधार कहते हैं पूजन गौरि सखी लै आई। कल धनुषयज्ञ है आज गौरी पूजन के लिए सखी ले आई है। गौरी का मन्दिर देख चुके है इससे अनुमान करते है। ब्याह के पहिले गौरीपूजन सौभाग्य के लिए करने की विधि है। अत यह सिद्ध हुआ कि इसी के लिए धनुषयज्ञ हो रहा है। यहाँ बाग मे बरन बरन बर बेलि बितान के कारण अन्धेरा हो रहा है। सो वह प्रकाश करती हुई फुलवारी म घूम रही है। सियमुखशशि है तो प्रकाश भी चाहिए छविगृह दीपसिखा जनु बरई। तमाम फुलवारी प्रकाशित हो उठी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जासु बिलोकि अलौकिक सोभा । सहज पुनीत मोर मनु छोभा ॥
सो सब कारनु जानि बिधाता । फरकहि सुभद अग सुनु भ्राता ॥२॥

अर्थ जिसकी अलौकिक शोभा को देखकर मेरा मन जो स्वभाव से ही पवित्र है क्षुब्ध हो उठा है। वह सब कारण ब्रह्मदेव जानें पर भैया सुनो ! मगलप्रद अग मेरे फडक रहे है।

व्याख्या मेरा मन स्वभाव से ही पवित्र है क्षोभ जानता ही नही। लौकिक शोभा से इसमे क्षोभ हो नही सकता। यह अपूर्व बात हुई। इस अलौकिक शोभा से मेरे मन मे क्षोभ हुआ। परन्तु अलौकिक शोभा से भी मेरे मन मे क्षोभ नही होना चाहिए था। कोई विशेष कारण होना चाहिए राम पुनीत विषय रसरूखे। उस कारण को ब्रह्मदेव ही जानें। यथा कठिन कर्म गति जान विधाता। उसी की प्रेरणा से मेरे शुभ देनेवाले अङ्ग फडक रहे हैं और सगुन प्रतीति भेट प्रियकेरी शुभद अङ्ग फडकने का फल है कि इष्टवस्तु का लाभ हो। लक्ष्मणजी कुछ नही बोल रहे हैं। अत कहते है सुनु भ्राता। क्या जाने यह सुन रहा है कि किसी दूसरी ओर मन लगाया है।

रघुबसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपथ पगु धरै न काऊ॥
मोहि अतिसय प्रतीति मन केरी। जेहि सपनेहु परनारि न हेरी॥३॥

अर्थ रघुवशियो का यह अकृत्रिम स्वभाव है कि वे कुपथ पर मन और पैर नही रखते और मुझे तो अपने मन पर अत्यन्त विश्वास है कि वह स्वप्न मे भी पराई स्त्री को नहीं देखता।

व्याख्या यदि इससे विवाह न होना होता तो मेरे मन मे क्षोभ न होता। पर-स्त्री पर मन क्षोभ वश स्वभाव के विरुद्ध है। रघुवश मात्र का सहज स्वभाव है, सिखाने पढाने से नही। वे न कुपथ मे मन दे, न पैर रक्खे। वशस्वभावानुसार भी मेरे मन म क्षोभ नही होना चाहिए था। मैंने तो अपने मन की परीक्षा कर ली है। विश्वामित्रजी के आगमन के पूर्व विवाहबन्धन म डालने के लिए बहुत सी कन्याएँ मेरे पास[२] भेजी गईं। पर मेरे मन ने उन्हे देखा भी नही। वासना न होने से स्वप्न भी नही होता। अत यह बात भी नही कि सूक्ष्म वासना रही हो। जिसका मुझे पता न हो।

जिन्ह के लहहि न रिपु रन पीठी। नहि पावहि परतिय मनु डीठी॥
मगल लहहि न जिन्ह कै नाहीं। ते नरवर थोरे जग माहीं॥४॥

---

१ सता हि सन्देहपदेषु वस्तुषु प्रमाणमन्त करणप्रवृत्तय ।
सन्देहवाली बाता म भले लोगो के अन्त करण का झुकाव ही प्रमाण है।

२ योगवासिष्ठ देखिये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ रण मे शत्रु जिनकी पीठ नही पाते और पर स्त्री जिनके मन और दृष्टि को नही पाती मगन जिनसे 'नहीं' नही पाते। ऐसे नरश्रेष्ठ ससार म थोडे है।

व्याख्या जिनकी पीठ शत्रु नही पाते। मर जावेगे पर पीठ न दिखावेंगे वे युद्धवीर हैं। उन्ही की गति परिव्राट् योगयुक्त की सी होती है। वे सूर्यमण्डल का भेद करते हैं। द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ। परिव्राट् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखे हत। जिनके मन और दृष्टि को पराई स्त्री नही पाती। पराई स्त्री चाहे तो भी असमर्थ हैं वे धर्मवीर हैं जिनसे मगन निषेधात्मक उत्तर नही पाते। वे माँगने पर अपने को भी दे सकते हैं वे दानवीर हैं। ऐसे वीरतात्रय से युक्त पुरुष नरश्रेष्ठ ससार मे थोडे है। भाव यह कि मैं उन थोडे लोगो मे से हूँ जिन्हाने भय, काम और लोभ पर विजय प्राप्त की है।

दो करत बतकही अनुज सन, मन सिय रूप लोभान।
मुख सरोज मकरद छवि, करै मधुप इव पान ॥२३१॥

अर्थ बात तो छोटे भाई से कर रहे थे। पर मन सीताजी के रूप पर लुब्ध था। मुखकमल की छवि मकरन्द है। उस मकरन्द को मन भौंरे की भाँति पान कर रहा था।

व्याख्या बोले सुचिमन अनुजसन से उपक्रम और करत बतकही अनुजसन से उपसहार। इतना विचार करने पर भी क्षोभ न हटा। मनमधुप छविमकरन्द पान कर रहा है और गुनगुनाता जाता है। मुखसरोज के छवि मकरन्द को भौंरे की भाँति मन पान करने लगा। मुखशशि के लिए नयन[1] चकोर हुए और मुखसरोज छवि के लिए मन मधुकर हुआ। भाव यह कि आँख और मन दोनो बँध गये। जिससे गहनो की शोभा हो उसे रूप कहते हैं और अङ्गो के यथोचित सन्निवेश को सुन्दरता कहते हैं। यहाँ उक्त विषया उत्प्रेक्षा है।

चितवति चकित चहूँ दिसि सीता। कहँ गये नृप किसोर मन चिता ॥
जहँ बिलोकि मृग सावक नैनी। जनु तहँ बरिस कमल सित श्रेनी ॥१॥

अर्थ सीता चारो ओर चकित होकर देखती हैं। मन म चिन्ता है कि नृपकिशोर कहाँ गये? वह मृग के बच्चे की सी आँखवाली जिस ओर देखती है उस ओर मानो श्वेतकमल की पक्ति बरस पडती है।

व्याख्या दोनो रामजी और सीताजी की ओर घटनाएँ साथ साथ होती हैं। परन्तु कवि तो एक साथ नहीं लिख सकते। अत एक ओर का वृत्तान्त थोडा कहकर फिर दूसरी ओर का वृत्तान्त कहने लगते हैं। चकित बिलोकति सकलदिसि मे प्रसङ्ग छोडा था। अब वहीं से प्रसङ्ग उठाते हैं। सीताजी चकित होकर देख रही हैं। कवि को अवसर मिला कि इस बीच म रामजी की ओर का वृत्तान्त कह।

---

१. जस घकारी चारु बैठी निज निज डार घद की किरन पीवैं निमिरैं न लावनी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तब रामजी की ओर का वृत्तान्त आरम्भ किया। जब यहाँ तक कथा पहुँची कि सीताजी के मुखसरोज के छविमकरन्द को रामजी का मनभ्रमर पान करने लगा तब कवि को सीताजी ओर के वृत्तान्त कहने का अवसर मिला। अब जहाँ से छोड़ा था वहीं से कथा प्रारम्भ करते हैं सीता चकित होकर देख रही हैं। कारण कहते हैं कि नृपकिशोर कहाँ गये। यही मन में चिन्ता है। इतनी देर में बाग के बाहर जा नहीं सकते तब गये कहाँ ?

जनु सिसुमृगी सभीत का अनुवाद करते हैं मृग सावक नयनी। अब उस चितवन की शोभा कहते हैं कि जिधर देखती हैं उधर श्वेतकमलों की वर्षा हो जाती है। पुष्पधन्वा ने पहिले डंका दिया था। अब बाणवर्षा कर रहा है। क्योंकि काम का परम बल नारी है एहि के एक परम बल नारी। यथा धनु पौष्प मौर्वी मधुकरमयी चञ्चलदृशा दृशा कोणो बाण सकलभुवन व्याकुलयति। काम का धनुष फूल का है। प्रत्यञ्चा भ्रमरमयी है और चञ्चल नेत्रवालियों का कटाक्ष ही बाण है। जिनसे तमाम संसार को व्याकुल करता है। जानकीमङ्गल में ग्रन्थकार कहते हैं रूपरासि जेहि ओर सुभाय निहारइ। नील कमल सरश्रेनि मयन जनु डारइ। सो यहाँ श्वेतकमल कहते हैं। क्योंकि स्नान करने के समय कज्जल धुल गया है। इन्हीं शरों से रामजी आहत हैं। हृदय सराहत वचन न आवा से यह भाव भी निकलता है।

लता ओट तब सखिन्ह लखाए। स्यामल गौर किसोर सुहाए ॥
देखि रूप लोचन ललचाने। हरषे जनु निज निधि पहिचाने ॥२॥

अर्थ: तब सखियों ने लता की ओट से सुन्दर श्यामल गौर किशोरों को लखाया। रूप देखकर आँखें ललचा उठीं और ऐसी प्रसन्न हुई जैसी अपने खजाने को पहिचान लेने से प्रसन्नता होती है।

व्याख्या: सखियों ने देख लिया। अति उत्कण्ठा होने से श्री सीताजी ने न देखा। सखियों ने लख लिया कि उन्हीं को ढूँढ़ती हैं। अतः लता ओट में लखाया। खाली हाथ वीर बाण चलते देखकर ओट पकड़ते हैं। अतः काम के बाण चलते देखकर मानो लता ओट पकड़ लिया है स्याम गौर किमि कहौं बखानी। बय किसोर सब भाँति सुहाए सुना था सो आँखों देखा।

सुनकर दरस हेतु लोचन अकुलाने और देखकर देखि रूप लोचन ललचाने। ललचाने का भाव यह कि और भी मनोयोग से देखने के लिए ललचाये। श्रीरामजी दूसरे लोगों को भी निधि रूप ही दिखाई पड़ते थे। पर वे उनकी निधि नहीं। अतः वे लूटने चले थे। यथा धाए धाम काम सब त्यागी। मनहु रंक निधि लूटन लागी। पर निज निधि को सीताजी ने पहिचाना। इसीलिए कहा था प्रीति पुरातन लखै न कोई। आँख प्रसन्न हो उठीं कि यही तो हमारी निधि है।

थके नयन रघुपति छबि देखे। पलकन्हिहू परिहरीं निमेषें ॥
अधिक सनेह देह भै भोरी। सरद ससिहि जनु चितव चकोरी ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ रघुपति की छवि देखकर आँखें थक गईं और पलक ने भी निमेष को छोड दिया। अधिक स्नेह से देह भोरी हो गई। मानो शरद ऋतु के चन्द्रमा को चकोरी देखती हो।

व्याख्या छवि का भार देर तक नैन न सँभाल सके। इसलिए थक गये। रघुपति से रामजी का ग्रहण है। वहा मनहु सकुचि निमि तजेउ दृगचल और यहाँ पलकन्हहू परिहरी निमेषें थका हुआ हिलता डालता नही। अत पलको ने भी हिलना डोलना छोड दिया।

वहाँ हृदय सराहत वचन न आवा। यहा अधिक सनेह देह भई भोरी। वहाँ सिय मुखससि भे नयन चकोरा। यहाँ सरद ससिहि जिमि चितव चकोरी। इधर विकलता अधिक है। प्रमाण देते है। शरद शशि के दर्शन मे चकोरी की देह भोरी हो जाती है। देह की सुधि नही रहती। परन्तु रामजी जब सीताजी को देखते है तब शरद ऋतु का शशि न कहकर केवल शशि शब्द का प्रयोग करते है। यथा सियमुख ससि भये नयन चकोरा। अत वहाँ देह का भोरा होना भी नही कहते।

लोचन[1] मग रामहि उर आनी। दीन्हे पलक कपाट सयानी॥
जब सिय सखिन प्रेमबस जानी। कहि न सकहि कछु मन सकुचानी॥४॥

अर्थ आँखो के रास्ते से रामजी का हृदय म लाकर सयानी ने पलक रूपी कपाट बन्द कर लिये। जब सीताजी को सखियो ने प्रेमवश जाना तो कुछ कह नही सकी। मन ही मन सकुचित हुईं।

व्याख्या उधर लाचनमग से छविमकरन्द का पान हो रहा था। इधर लोचनमग से स्वय रामजी को ही हृदय मे लाकर पलककपाट बन्द कर लिया। प्रभु प्रेम के बन्दी हो गये। काम का विश्वविजय पूरा हो गया। यहा विहृत हाव है। सयोग समय लज्जादिक से अभिलाप की असन्तुष्टि का विहृतहाव कहते है।

जब भक्त प्रेमवश होता है तभी भगवान् उसके बन्दी होते हैं। अवसि देखिये देखन जोगू दूसरी बात है और प्रेमवश हो जाना दूसरी बात है। सखी है उन्ह प्रमविवश देखकर बोलने का अधिकार है। पर आँख मूँदे हैं, क्या कहे, कहने मे सङ्कोच है।

दो लताभवन तें प्रगट भे, तेहि अवसर दोउ भाइ।
निकसे जनु जुग बिमल बिधु, जलद पटल बिलगाइ॥२३२॥

अर्थ उसी समय दोनो भाई लता भवन से प्रकट हुए। मानो दो चन्द्रमा बादलो के परदे को अलग करके निकल पडे हो।

व्याख्या यह रामजी का स्वभाव है। पहिले ओट मे रहते है। अतिशय प्रेम देखकर हृदय म प्रकट होते हैं। तत्पश्चात् नयन विषय होते है। यथा अतिसय प्रेम

१. यहाँ समासोक्ति है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदय हरन भवभीरा। मुनि मग माझ अचलहूँ वैसा। तब रघुबीर निकट चलि आये। लता भवन की ही उपमा जलद पटल से दी है। दोनो भाइयो की उपमा विमल विधु से दी। इनके प्रकट होने से भी फुलवारी मे प्रकाश हो गया। तीन तीन चन्द्रोदय फुलवारी मे हुए हैं। फुलवारी तेजोमय हो गई।

सोभा सीव सुभग *दोउ बीरा। नील पीत जलजाभ सरीरा ॥
मोरपख सिर सोहत नीके। गुच्छ बीच बिच कुसुम कली के ॥१॥

अर्थ दोनो सुन्दर वीर शोभा की सीमा है। नीले और पीले कमल के रङ्ग का शरीर है। शिर पर मोर पख भी खूब खिल रहा है। बीच बीच मे फूलो की कलियो के गुच्छे है।

व्याख्या सखी छविवर्णन करने लगी जनकनन्दिनी की सावधानी के लिए। दोनो सुन्दर वीरा के अवयव सन्निवेश के औचित्य की पराकाष्ठा है। इससे अधिक यथोचित अवयव सन्निवेश सम्भव नही है। वीरता और सौन्दर्य का अद्भुत सङ्गम है। श्याम कुँअर के शरीर का वर्ण नीलकमल सा और गौर के शरीर का वर्ण पीले कमल सा है।

आज मोरमुकुट भी है। कुसुमकली के गुच्छे भी बीच बीच मे शोभित है। कृष्ण कन्हैया की झाँकी है। नगर देखने चले थे तब चारु चौतनी सुगम शिरो पर थी। इस समय फूल लने आये हैं अत स्वाभाविक वेष म है। चौतनी से भी अधिक शोभा है। यह विच्छित्तिहाव है। किञ्चित् शृङ्गार से मोहित करने को विच्छित्तिहाव कहते हैं। इसी झाकी को कृष्णावतार म दिखलाकर व्रजवनिताओ को मोहित करेगे।

भाल तिलक श्रमबिंदु सुहाए। श्रवन सुभग भूषन छवि छाए ॥२॥
बिकट भृकुटि कच घूंघरवारे। नव सरोज लोचन रतनारे ॥२॥

अर्थ माथे पर तिलक और पसीने की बूँदे शोभित है। सुन्दर कानो मे भूषण की छवि छाई हुई है। टेढी भौहे है और घूँघरवाले बाल है। आँखे नये कमल की भाँति गुलाबी है।

व्याख्या तिलक के साथ श्रमबिन्दु की बडी शोभा हुई। मोती की नाई झलक रहे हैं। यथा श्रमकन सहित स्याम तन जोही। लागिहि ताति बयारिन मोही। कोमलता का अन्त है फूल लेने म श्रम हुआ है। इससे पसीना आ गया है। अथवा सात्त्विक भाव हुआ है। कान ऐसे सुन्दर है कि भूषण की उनसे शोभा हो गई है। भृकुटी की टेढी होने और बाल के घुघुँराल होने की ही प्रशसा है। यथा भृकुटि मनोज चाप छबि हारी। कुटिल केस जनु मधुप समाजा। आँख को गुलाबी नये कमल की भाँति कहने का भाव यह कि प्रथम कैशोर है। किशोरावस्था

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



का प्रारम्भ है। इस अवस्था मे नेत्र के कोण मे लालिमा आजाती है। यथा : वर्णस्योज्ज्वलता कापि नेत्रान्ते चारुणच्छवि । रोमावलिप्रकटता कैशोरे प्रथमे सति ।

चारु चिबुक नासिका कपोला। हास बिलास लेत मनु मोला॥
मुखछबि कहि न जाय मोहि पाही। जो बिलोकि बहु काम लजाही॥३॥

अर्थ : ठुड्डी नाक और गाल सुन्दर है। हास विलास हँसने की माधुरी तो मानो मन को मोल ले रहा हो। मुख की छवि तो मुझसे कहते नही बनती जिसे देखकर बहुत से काम लज्जित होते है।

व्याख्या : ठुड्डी सुन्दर नासिका शुकतुण्ड सी। कपोल दर्पण सा जिसमे चलकुण्डल की झलक पड रही हो। दोनो भाइयो मे हास विलास भी हो रहा है। यथा : अवलोकनि बोलनि प्रीति परसपर हास। प्रेमवश अनुग्रह हुआ। हसते हुए लताभवन से निकले। यथा : हृदय अनुग्रह इंदु प्रकासा। सूचित किरन मनोहर हासा। इस हँसने ने तो मनकी चोरी नही की बल्कि मनको खरीद लिया। उनकी हँसी मनकी पूरी कीमत है। यह विलास नामक हाव है। सयोग समय कटाक्षादि अनेक क्रियाओ से मोहित करने को बिलास हाव कहते हैं।

उर मनिमाल कबुकल ग्रीवाँ। [1]काम कलभ कर भुजबल सीवाँ॥
सुमन समेत बाम कर दोना। साँवर कुँअर सखी सुठि लोना॥४॥

अर्थ : छाती पर मणियो की माला है। शख की भाति सुन्दर ग्रीवा है। कामरूपी हाथी के बच्चे की शुण्ड जैसी सुन्दर भुजाएँ बल की सीमा हैं। फूल के सहित बाएँ हाथो मे दोना है। सखी! साँवला कुँवर अत्यन्त ही सलोना है।

व्याख्या . स्रग्वी माला पहने हुए रहने का विधान है। इसलिए मणि की माला पहने हुए है। जिसकी शोभा वक्ष स्थल पर जाकर अधिक हो गई है। ग्रीवा की शोभा शख की भाँति होने मे है। भुजाएँ उतार चढाववाली हाथी की शुण्ड सी हैं पर अभी किशोरावस्था है। अत हाथी के बच्चे के शुण्ड सी कहा। शोभा-विक्रय के कारण कहते हैं कि यदि काम ने हाथी के बच्चे का रूप धारण किया हो तब उसके शुण्ड की जैसी शोभा होगी वैसी ही भुजाओ की शोभा है। ऐसी उतार चढाववाली भुजाओ मे ही बल होता है। जिनमे पेशियाँ पृथक् पृथक् दिखाई पडती हो वे भुजाएँ बलसीमा नही होती।

फूल उतार चुके है। बायें हाथो मे दोना लिये हुए अधिक सोहावने दृष्टि-गोचर होते है। गौर कुमार भी सलोना है पर साँवला कुमार अधिक सलोना है। बालक लोगो ने भी शोभा देखी और लगे सग लोचन मन लोभा। उनके मन भी लुब्ध हुए पर सुन्दरता की इस बारीकी तक वे नही पहुँच सके कि दोनो कुँअरो मे एक को भी सुठिलोना कह सकें।

---

१. यहाँ प्रौढोक्ति है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


सखि ! सम्बोधन का भाव यह कि एक सखी दूसरी से कह रही है। पर जनकनन्दिनी का ध्यान भङ्ग नहीं हुआ।

दो० केहरि कटि पट पीत धर, सुषमा सील निधान।
देखि भानुकुलभूषनहि, बिसरा सखिन्ह अपान ॥२३३॥

अर्थ : सिंह की सी कमर पीताम्बर धारण किये परमा शोभा और शील के निधान भानुकुल भूषण को देखकर सखियाँ अपनपौ अपने को ही भूल गईं।

व्याख्या : कटि के क्षीण होने की ही शोभा है। श्याम शरीर पर पीताम्बर अधिक खिलता है। अतः परमा शोभा है और स्वभाव में शील के निधान हैं। यह कहते कहते रुक गई चरणों की शोभा न कह सकी। अपने को ही भूल गई यही दशा सुननेवालियों की भी हुई।

अपान बिसरा से जडता सञ्चारीभाव कहा। जब इष्ट या अनिष्ट सुनने देखने से कोई बोध नहीं होता तो उसे जाड्य सञ्चारी कहते हैं। यथा : जाड्यम-प्रतिपत्ति स्यादिष्टानिष्टश्रुतीक्षणे। अथवा फूल की कियारी में हैं। कटि के नीचे के भाग का दर्शन नहीं हुआ। इसलिए वर्णन भी नहीं किया।

धरि धीरजु एक आलि सयानी। सीता सन बोली गहि पानी॥
बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूपकिसोर देखि किन लेहू॥१॥

अर्थ : एक सयानी सखी ने धैर्य धारण करके सीताजी का हाथ पकडकर कहा कि गौरीजी का ध्यान फिर कर लेना। राजकुमार को देख क्यों नहीं लेती।

व्याख्या : यह सखी सयानी है। इसलिए सबके पहिले धैर्य धारण में समर्थ हुई। सयानी कहने का दूसरा भाव यह कि सीताजी को प्रेमवश तो सबने जाना। ध्यान से हटाने के लिए राजकुमार का शोभा वर्णन भी करने लगी पर ध्यान भङ्ग नहीं हुआ। क्या कहकर इनको जगावें यह किसी को न सूझा। इसे सूझ गया। इसने समझ लिया कि हाथ पकडकर जगाने से हो जागेंगी और इनके ध्यान को गौरी का ध्यान बतलाकर जगाना चाहिए। राजकुमारी को यह गर्व न हो कि इनकी सखी मेरी सुन्दरता में मग्न हो गई है और इन्हे भी सङ्कोच न हो।

सकुचि सीय तब नैन उघारे। सनमुख दोउ रघुसिंह निहारे॥
नख सिख देखि राम कै सोभा। सुमिरि पिता पनु जनु अति छोभा॥२॥

अर्थ : सङ्कुचित होकर सीताजी ने तब आखें खोली। सामने दोनों रघुकुल के सिंहों को देखा। नख से शिख तक रामजी की शोभा देखकर और पिता के प्रण को समझकर मनमें बडा क्षोभ हुआ।

व्याख्या : उपाय काम कर गया। सखी का उपालम्भ और उपहास भी कर्तव्य है। उपालम्भ करती है कि उपास्यदेव की भाँति राजकुमार का ध्यान करती हो। सुनकर सङ्कुचित होकर सीताजी ने नेत्र खोला। स्वच्छन्द क्रिया से

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सङ्कोच हुआ। व्रीडा सञ्चारी भाव हुआ। नयन उघारा तो दो रघुसिंहों को देखा मृगपति सरिस अमक। पूरब दिसि गिरि गुहा निवासी। परम प्रताप तेज बल रासी। मत्त नाग तम कुंभ विदारी। भाव यह कि सीताजी फुलवारी में प्रकाश करती फिरती थी। पर तम मरा नहीं था। इनके हाथ से मारा पड़ा था।

सखियों ने शिख नख वर्णन किया। इन्होंने पूज्य बुद्धि में नख शिख देखा। बड़ी मधुर मूर्ति है। इनसे कमठ पृष्ठ कठोर धनुष कैसे टूटेगा और पिता का प्रण यही है कि जो धनुष चढ़ावेगा उसे जानकी की प्राप्ति होगी। अतः मनमें अत्यन्त क्षोभ हुआ। यथा कमठपृष्ठकठोरमिदं धनुर्मधुरमूर्त्तिरसौ रघुनन्दनः। कथमधिज्य मनेन विधीयतामहह तात प्रणस्तव दारुणः। ह० ना०।

परबस सखिन लखी जब सीता। भये गहरु सब कहहिं सभीता ॥
पुनि आउब एहि बेरिआँ काली। अस कहि मन बिहसी एक आली ॥३॥

अर्थ: जब सखियों ने देखा कि सीताजी परवश हैं। तब सब भयभीत होकर कहने लगीं कि देर हो रही है। कल इस समय फिर आऊँगी। ऐसा कहकर एक सखी मनही मन हँसी।

व्याख्या: प्रेमवश जानने से सङ्कोच हुआ था। परन्तु परवश जानने से भय हुआ। सयानी सखी है। हृदय पढ़ रही है। इन्हें पिता का प्रण स्मरण करके क्षोभ हो रहा है। यह तो परवश हुई जा रही हैं। अपने अपराध से सभीत हैं। हम लोग इन्हें यहाँ क्यों लायीं। जब एक सखी की दशा हमलोगों ने आँख से देख ली थी तब इन्हें लाना सर्वथा अनुचित हुआ। यह शोभा ही उन्मादकारिणी है। भाव पलटने के लिए माता का स्मरण 'अब देर हो रही है' कहकर दिला रही है।

फिर इसी समय कल आवेंगी कहकर उपहास करती है। व्यञ्जित करती है कि इस समय चलो। मनही मन हँसने का कारण यह कि प्रकट हँसने में सीताजी का अपमान होगा। अपनी उक्ति पर स्वयं ही हँस रही है। क्योंकि कल इस समय यहाँ आना असम्भव होगा। इस समय तो धनुषयज्ञ होता रहेगा। अतः ध्वनि यही है कि इस समय चलो। धैर्य धरो।

गूढ़ गिरा सुनि सिय सकुचानी। भएउ बिलंब मातु भय मानी ॥
धरि बड़ि धीर राम उर आने। फिरी अपनपौ पितुबस जाने ॥४॥

अर्थ: गूढार्थक वचन सुनकर सीताजी को सङ्कोच हुआ। माता का डरी कि देर हो गई। बड़ा धैर्य धारण करके रामजी को हृदय में रक्खा और अपने को पिता के वश जानकर लौटी।

व्याख्या: गूढ़ गिरा अर्थात् इसी समय धनुषयज्ञ में कल फिर इनका साक्षात्कार होगा। उस समय का देखना भी समुचित होगा। इस समय का इस भाँति देखते रहना समुचित नहीं। अति क्षोभ रहा। अतः बड़ा धैर्य धारण करना पड़ा। लोचन उधर थे। अतः उधर से फिरने में बड़े धैर्य की आवश्यकता थी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

मनको समझाया कि मै पिता के वश मे हूँ। फिर भी रामजी को हृदय मे रखकर लौटी।

दो देखन मिस मृग विहँग तरु, फिरइ वहोरि वहोरि।
निरखि निरखि रघुवीर छवि, वाढ़ै प्रीति न थोरि ॥२३४॥

अर्थ मृग, पक्षी और पेडो के देखने के वहाने वार वार लौटकर देखती हैं। रघुवीर की छवि वार वार देखकर प्रीति थोडी नही वढती थी।

व्याख्या रामजी को देखने की इच्छा है। पर मृग कैसा सुन्दर है। चिडियाँ कैसा मधुर वोल रही है। वृक्ष कैसा फूला हुआ है। ऐसा कहकर चतुरता से वात छिपाती है। फिर फिरकर देखने से तृषा शान्त नही होती। उत्तरोत्तर वढती ही जाती है। ऊपर जो मृग पक्षी और तरु के व्याज से लौट लौटकर रामजी को देखना कहा वह अवहित्था सञ्चारी है। यथा : अवहित्थाऽऽकारगुप्तिर्भवेद्व्रावेन केनचित्।

जानि कठिन सिवचाप विसूरति। चली राखि उर स्यामल मूरति ॥
प्रभु जब जात जानकी जानी। सुख सनेह सोभा गुन खानी ॥१॥

अर्थ शिवजी के धनुप को कठिन जानकर चिन्ता करती हुई हृदय मे साँवली मूर्ति को रखकर चली। प्रभु ने जब सुख स्नेह शोभा और गुणो की खानि जानकी को जाते हुए जाना।

व्याख्या शिव चाप मेरुमन्दर का जोड कठिनाई और गुरुता मे था। तभी शिवजी की भुजाओ के तान के सहने मे समर्थ था। शिवजी के मेरुको धनुप बनाने की कथा पुराणो मे सुनी जाती है। यथा रथक्षोणी यन्ता शतधृतिरगेन्द्रो धनुरिति। धनुप की ऐसी कठोरता को समझकर सीताजी चिन्तित हुई। खिदविसूर.। विसूरयि खिद्यते। खेद करने के अर्थ मे विसूर का प्रयोग होता है। यहाँ चिन्ता सञ्चारी है। चिन्ता सहित आना कहा। यथा कहँ गये नृपकिसोर मन चिता। अव चिन्ता सहित जाना कहते है। यथा · विसूरत चली। पर साँवली मूर्ति को हृदय मे रख लिया।

जब फिरी अपनपौ पितु वस जानी तब प्रभु ने जान लिया कि जनकनन्दिनी जा रही है। वह शोभा सुख की खानि हैं। यथा : देखि सीय सोभा सुख पावा। सनेह और गुण की खानि है। यथा देखन मिस मृग विहँग तरु फिरै वहोरि वहोरि। निरखि निरखि रघुवीर छवि वाढी प्रीति न थोरि।

परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्त भीती लिखि लीन्ही ॥
गई भवानी भवन वहोरी। वंदि चरन वोली कर जोरी ॥२॥

अर्थ परम प्रेम को मृदु स्याही वनाया और चित्तरूपी भीत पर सुन्दर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चित्र लिख लिया। फिर गिरिजा के मन्दिर मे गई और चरणवन्दना करके हाथ जोडकर बोली।

व्याख्या जनकनन्दिनी जब जाने लगी तो वियोग काल मे चित्त के आश्वासन के लिए रामजी की मूर्ति को हृदय मे रख लिया और प्रभु ने जब देखा कि ये जा रही है तो चित्तरूपी भीत पर परम प्रेम का रग बनाकर जनकनन्दिनी का चित्र लिख लिया। यथा चित्त भीति सुप्रीति रग सरूपता अवरेखु। दोनो ओर स्थायी भाव का उदय दिखलाया। उन्हे सीताजी को पूजन करना था इसलिए उन्होने मूर्ति हृदय मे रक्खी। इन्हे रामजी को ध्यान करना था इसलिए चित्र लिख लिया।

पहिले भी गौरी के मन्दिर मे गई थी। इसलिए बहोरि गई कहा। पूजा कर चुकी थी। निज अनुरूप सुन्दर वर के लिए प्रार्थना कर चुकी थी। अब निज अनुरूप सुभग वर देख आई है। उनकी मूर्ति हृदय मे लेकर आई है कि यही वर चाहिए। अत चरण वन्दना करके हाथ जोडकर बोली

जय जय गिरिबरराज किसोरी। जय महेस मुख चद चकोरी ॥
जय गजबदन षडानन माता। जगत जननि दामिनि दुतिगाता ॥३॥

अर्थ पर्वतराज की पुत्रि! तुम्हारी जय हो। जय हो। महेशमुखचन्द चकोरी की जय हो। गणेशजी और स्वामी कार्त्तिकेय की माँ! तुम्हारी जय हो। तुम जगत् की माँ हो। तुम्हारे शरीर में बिजली सी चमक है।

व्याख्या अभी गिरिराज के घर अवतीर्ण नही हुई है। अभी तो सतीरूप से दाक्षायणी होकर विराजमान हैं। फिर भी गिरिराजकुमारी कहकर स्तुति हो रही है। इससे स्पष्ट है कि सती के समय भी उनकी गिरिराजकिशोरी रूप से पूजा होती थी। जिस भाँति गणेशजी सुर अनादि है उसी भाँति गिरिजा भी अनादि शक्ति हैं। लीला से दाक्षायणी पार्वती आदि रूप से अवतीर्ण हुआ करती है। दिव्य जन्म और दिव्य कर्म होने से दो बार जय कहती है। गिरिबरराज किसोरी से जन्म कहा। और महेस मुखचन्द चकोरी से अभूतपूर्व तपस्या कही।

प्रथम पूज्य गणेश तथा देवसेनानी स्वामिकार्त्तिकेय ऐसे पुत्रो की आप माता है। तथा सम्पूर्ण जगत् की माता है। इसलिए फिर उत्कर्षसूचक जय शब्द का प्रयोग करती है। दामिनिद्युतिगाता से तेज की प्रखरता कही। जिस भाँति दामिनी के दमकने से आँख बन्द हो जाती है उसी भाँति तुम्हारी मूर्ति के सामने आँख नही ठहरती।

नहि तव आदि मध्य अवसाना। अमित प्रभाऊ बेदु नहि जाना ॥
भव भव बिभव पराभव कारिनि। बिस्व बिमोहनि स्वबस बिहारिनि ॥४॥

अर्थ तुम्हारे आदि और अन्त की समाप्ति नही। असीम प्रभाव को वेद भी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


नही जानता। तुम ससार की उत्पत्ति पालन और प्रलय करनेवाली हो। विश्व को मोहन करनेवाली और स्वतन्त्र विहार करनेवाली हो।

व्याख्या : आदि और अन्त अर्थात् आविर्भाव और तिरोभाव का अन्त नही है। अर्थात् आप के अनन्त अवतार है। वह जगन्मूर्ति नित्य है। उसी से यह ससार व्याप्त है। फिर भी उसकी उत्पत्ति अनेक प्रकार से सुनी जाती है। यथा : नित्यैव सा जगन्मूर्तिस्तया सर्वमिद ततम्। तथापि तत्समुत्पत्तिर्बहुधा श्रूयता मम। तुम्हारे असीम प्रभाव को वेद नही जानते। क्योकि आप उनकी भी आधारभूता है। यथा : शब्दात्मिका सुविमलर्य्यजुषा निधानमुद्गीतरम्यपदपाठवता च साम्नाम्। ब्रह्मदेव जो जगत् की रचना करते है विष्णु पालन करते है और रुद्र संहार करते है वह आप के प्रताप से करते है। यथा रचत विरचि हरि पालत हरत हर तेरे ही प्रसाद मातु अग जग पालिके। तोहि विकास विश्व तोहि मे विलास सब तोहि मे समात मातु भूमिधर बालिके। आप अविद्यारूप होकर विश्व को मोहन करनेवाली है और स्वतन्त्र शक्तिरूपा होने से स्ववशविहारिणी है।

दो पतिदेवता सुतीय महुँ, मातु प्रथम तव रेख।
महिमा अमित न सकहिं कहि, सहस सारदा सेख ॥२३५॥

अर्थ पतिव्रता उत्तम स्त्रियो मे माँ! आप की पहिली गिनती है। आप की अपार महिमा को सहस्रो शारदा और शेष वर्णन नही कर सकते।

व्याख्या परम अपावनि नारि, पति सेवत सुभ गति लहहि। जस गावहिं श्रुतिचार, अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय। परम अपावन स्त्री भी यदि पति की सेवा करती है तो उसका यश चारो वेद गाते है। आप तो माता उत्तम पतिव्रताओं मे भी प्रथम गणनीया हो। आप की महिमा का गान वेद क्यो न करेगे? परन्तु उसकी सीमा नही है। इसलिए अकथनीय है। वह शेष और शारदा द्वारा भी नही कही जा सकती। किसी को यह सन्देह न हो कि मर्त्यलोक के वक्ता वेद नही कह सकते तो कदाचित् स्वर्ग के वक्ता शारदा और पाताल के वक्ता शेष कह सकते हो। इसलिए कहती है कि वे भी नही कह सकते। वेद के लिए तो कह ही दिया है कि अमित प्रभाव वेद नहि जाना।

सेवत तोहि सुलभ फल चारी। बरदायनी पुरारि पिआरी॥
देवि पूजि पद कमल तुम्हारे। सुर नर मुनि सब होहिं सुखारे॥१॥

अर्थ हे वरदायिनि! हे पुरारि प्रिये तुम्हारी सेवा करने से धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष सुलभ हो जाते है। हे देवि! तुम्हारे चरणकमल की पूजा करके सुर नर मुनि सब सुखी होते है।

व्याख्या जय जय जग जननि देवि सुरनर मुनि असुर सेवि भुक्ति-मुक्ति दायिनि भय हरनि कालिका। देवी मुक्ति और भुक्ति दोनो देती है। धर्मार्थ काम मोक्ष का मुक्ति-भुक्ति म अन्तर्भाव होने से चारो फलो का दिया जाना कहा। जगदम्बा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



के पूजन के बिना चारों फलों की प्राप्ति दुर्लभ है। यथा यो न पूजयते नित्य चण्डिका भक्तवत्सलाम्। भस्मीकृत्यास्य पुण्यानि निर्दहेत् परमेश्वरी[१]। अत वीर वैष्णव भी चण्डिका की पूजा करते हैं। निज अनुरूप सुभग वर माँगा है। इसलिए वरदायिनी कह रही है। देवि त्वमेव शशिमौलिकृतप्रतिष्ठा। हे देवि! शशिमौलि ने भी तुम्हारी प्रतिष्ठा की है। इसलिए पुरारि पियारी कहती हैं।

उपास्य के गुण उपासक मे जब आवें तभी समझना चाहिए कि ठीक उपासना हुई। यथा

| उपास्य के गुण | | उपासक के गुण |
|---|---|---|
| गिरिराज किसोरी | १ | विदेह कुमारी |
| महेसमुखचद चकोरी | २ | सरद ससिहि जिमि चितव चकोरी |
| गज वदन षडानन माता | ३ | दुइ सुत सुन्दर सीता जाए |
| जगत जननि | ४ | जगदम्बा जानहु जिय सीता |
| दामिनि दुति गाता | ५ | दुलहिन तडितवरन तन गोरी |
| भव भव विभव पराभव कारिनि | ६ | उद्भव स्थिति सहार कारिणी आदि सक्ति जेहि जग उपजाया |
| अमित प्रभाव वेद नहिं जाना | ७ | तव प्रभाव जग विदित न केही |
| पतिदेवता सुतीय मह मातु प्रथम तवरेख | ८ | सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करहि |
| सेवत सुलभ फल चारी | ९ | सर्वश्रेयस्करी सीताम् |
| वर दायिनि | १० | आसिष तव अमोघ विख्याता |
| पुरारि पियारी | ११ | राम वल्लभा |

मोर मनोरथ जानहु नीके। बसहु सदा उर पुर सबही के॥
कीन्हेउ प्रगट न कारन तेही। अस कहि चरन गहे बैदेही॥२॥

अर्थ मेरा मनोरथ भली भांति जानती हो। क्योंकि सभी के हृदय रूपी पुर म तुम्हारा निवास है। इसी कारण से प्रगट नही कहा। ऐसा कहकर जानकीजी ने पैर पकड लिया।

व्याख्या अनाहत चक्र हृदय म शिव दुर्गा का निवास है और वही मन का निवास है। इसलिए तुम मेरे मनोरथ को भलीभाँति जानती हो। ध्यान करने वाले और न करनेवाले सभी के हृदय म सदा बसती हो। नीके जानहु कहने का भाव यह कि मैंने मुखत भी कह दिया है। यथा निज अनुरूप सुभग वर माँगा अथवा साँवली मूर्ति को हृदय म धारण करके चली है। अत कहता हैं जहाँ तुम हो वही साँवली मूर्ति भी है। अब परिचय देने की आवश्यकता नही। वही मनोरथ है।

१ जो भक्त वत्सला चण्डिका की पूजा नित्य नही करते उनके पुण्यकर्मो को परमेश्वरी जलाकर भस्म कर देती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रगट करके कहना निष्प्रयोजन है। नही तो अवश्य प्रगट करती। ऐसा कहकर चरण पकड लिया कि आज लूँगी। वैदेही है। देह छोडने मे कुछ आगा-पीछा नही है।

विनय[1] प्रेम वस भई भवानी। खसी माल मूरति मुसुकानी ॥
सादर सिय प्रसादु सिर धरेऊ। बोली गौरि हरसु उर भरेऊ ॥३॥

अर्थ भवानी विनय प्रेम के वश हो गई। माला गिरी और मूर्ति मुसकराई। आदर के साथ सीताजी ने प्रसाद शिरपर चढाया। गौरी बोली उनके हृदय म हर्ष भर उठा।

व्याख्या मोर मनोरथ जानहु नीके से असकहि तक विनय है। और चरण का पकड लेना प्रेम है। सो भवानी विनय और प्रेम के वश हो गई। सबके लिए रास्ता बतलाया जा रहा है। यदि भवानी को वश करना है तो श्मशान मे जागने से नही विनय और प्रेम से वे वश होती है। मूर्ति मे आवेश हो गया। मूर्ति हिली। पूजन मे जो माला पहिनायी थी वह प्रसाद रूप मे मिली। माला यो भी वायु आदि द्वारा गिर जाती है। पर यह गिरना और भाँति का था। क्योकि साथ ही साथ मूर्ति मे मुसकराहट लक्षित हुई। आज भी मूर्ति मुसकराती है उदास होती है अप्रसन्न होती है उपासको को स्पष्ट प्रतीत होता है। बात का उडा देना दूसरी बात है। परन्तु प्रत्यक्ष का अपलाप नही किया जा सकता। यह शङ्का न उठानी चाहिए कि देवता की मूर्ति का हँसना उत्पात है। मूर्ति का हँस पडना एक बात है और मुसकराहट मालूम पडना दूसरी बात है। कितनी मूर्तियाँ बनी ही ऐसी है कि उनमे सदा मुसकराहट मालूम पडती है। तिस पर यहाँ तो आवेश का वर्णन है। पहिले मूर्ति हिली तब मुसकराई अब बोल भी उठी।

सीताजी ने उस प्रसादरूप माला को सिरपर धारण किया। स्तुति करते समय यदि इष्टदेव के ऊपर से फूल गिर पडे तो उपासक उसे उठाकर सिरपर चढाते है और कार्यसिद्धि का सूचक मानते है। भगवती जनकनन्दनी के विनय और प्रेम से गौरी भगवती का हृदय हर्ष से भर उठा। बिना बोले नही रहा जाता। मूर्ति मे और भी अधिक आवेश हुआ। अब मूर्ति द्वारा गौरी बोली। जनकनन्दिनी का विनय और प्रेम ही ऐसा है। आगे चलकर आप गङ्गाजी को भी बोलते पायेंगे। भई तब बिमल बारि बर बानी।

सुनु सिअ सत्य असीस हमारी। पूजिहि मन कामना तुम्हारी ॥
नारद बचन सदा सुचि साचा। सो बर मिलिहि जाहि मन राचा ॥४॥

अर्थ सीते! मेरा सत्य अशीर्वाद सुनो। तुम्हारी मन कामना पूरी होगी। नारद का वचन सदा पवित्र और सत्य है। वही वर मिलेगा जिससे मन लगा है।

---

१ यहाँ सूक्ष्मालङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या वडी होने के नाते आशीर्वाद देती हैं, वर नही देती। वैदेही ने चरण पकड लिया था। अत आशीर्वाद देना ही चाहिए। सो कहती हैं पूजिहि मन कामना तुम्हारी। आशीर्वाद मिथ्या भी पड जाता है। इसलिए कहती हैं मेरी असीस है यह सत्य है। मिथ्या नही हो सकती। मैं अपनी अनुभूत बात कहती हूँ कि वरु पावक प्रकटै ससि माही। नारद वचन अन्यथा नाही। सो नारदजी स्वय तुमसे कह चुके हैं और तुम्हे स्मरण है। यथा सुमिरि सीय नारद वचन उपजी प्रीति पुनीत। अब बात स्पष्ट हो गई कि नारदजी ने कहा था जिसे तुम्हारा चित्त चाहेगा वही वर मिलेगा। उसका तुम्हारा प्रथम साक्षात्कार गिरिजा बाग म होगा। जो नारदजी ने कहा है वही होगा। मैं वरदान क्या दूँ ? हाँ उसी की पुष्टि करती हुई मैं आशीर्वाद दे रही हूँ।

छ मनु जाहि राचेउ मिलिहि सो वर सहज सुदर साँवरो।
करुना निधानु सुजानु सीलु सनेहु जानत रावरो॥
यहि भाँति गौरि असीस सुनि सिअ सहित हिअ हरषी अली।
तुलसी भवानिहि पूजि पुनि पुनि मुदित मन मदिर चली॥

अर्थ जिसमे मन चाहता है वही सहज सुन्दर साँवला वर मिलेगा। वह करुणानिधान है, सुजान है और आपके शील और स्नेह को जानता है। इस प्रकार की गौरी की असीस सुनकर सीताजी के सहित सब सखियाँ हर्षित हुई। तुलसीदासजी कहते हैं कि वार वार भवानी को पूजा करके प्रसन्न मन घर को चली।

व्याख्या अपना उरपुर म बसना और मनोरथ को भलीभाँति जानना व्यक्त करती हैं। मिलिहि सो वर सहज सुन्दर साँवरो। दोनो कुमारो मे से साँवरे म तुम्हारा मन लगा है। वही वर तुम्हे मिलेगा। वह स्वभाव स ही सुन्दर है। उसके मण्डन की आवश्यकता नही। वह करुणानिधान है। अवश्य करुणा करेगा। यथा सियहि विलोकि तकेउ धनु कैसे। चितव गरुड लघु ब्यालहि जैसे। तुम्हारा शील स्नेह भी वह जानता है क्योकि सुजान है। यथा प्रभु जब जात जानकी जानी। सुख सनेह सोभा गुन खानी। अर्थात् वर म जो गुण चाहिए वे अत्यन्त उत्कर्ष रूप म उसम वर्तमान हैं। गौरी के आशीर्वाद स सीताजी और सखियाँ सब हर्षित हो गई। क्योकि गौरी की वाणी अमोघ है। कृतकृत्य होकर कृतज्ञता प्रकाशन के लिए वार वार पूजा की और मुदितमन गौरी के मन्दिर मे प्रार्थी होकर आई थी। यथा गई मुदितमन गौरि निकेता। सो कृतकार्य होकर मुदितमन मन्दिर चली।

दो जानि गौरि अनुकूल, सिअ हिअ हर्षु न जाइ कहि।
मजुल मगल मूल, वाम अग फरकन लगे॥२३६॥

१ यह हरिगीतिका छन्द है। इसके बाद जितने छन्द बालकाण्ड म पडेंगे सब हरिगीतिका ही हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ गौरी को अनुकूल जानकर सीताजी के हर्ष का वर्णन नहीं हो सकता। सुन्दर कल्याण के मूल वाम अंग फड़कने लगे।

व्याख्या गौरी को अनुकूल जानकर सीताजी के हर्ष का पारावार नहीं है। सखी सीताजी के मनोरथपूर्ति की दृढ आशा से तथा भय के दूर हो जाने से हर्षित हैं। पर सीताजी को अपनी निधि की प्राप्ति के निश्चित आश्वासन से हर्ष है। अत वह अवर्णनीय है। उसी भाव को पुष्ट करने के लिए मानो मंगलमूल वाम अङ्ग फड़कने का सगुन हुआ। सगुन प्रतीत भेंट प्रिय केरी।

हृदय सराहत सीय लोनाई। गुर समीप गवने दोउ भाई॥
राम कहा सबु कौसिक पाहीं। सरल सुभाउ छुआ छल नाहीं॥१॥

अर्थ मन में सीताजी के लावण्य की प्रशंसा करते हुए दोनो भाई गुरुजी के समीप गये। रामजी ने सब कुछ विश्वामित्रजी से कह सुनाया। क्योंकि उनका स्वभाव सरल था। जिनमे छल का स्पर्श भी नहीं था।

व्याख्या परम प्रेममय मृदु मसि कीन्ही। चारु चित्त भीती लिख लीन्ही। से प्रसङ्ग छोड़ा था। अब वहीं से आरम्भ करते है। मानसिक चित्र मे सीताजी का लावण्य देख देखकर प्रशंसा करते हैं। अत यह वाक्यांश केवल रामजी के प्रति है। भगवती सखियों के साथ मन्दिर चली और प्रभु भाई के साथ गुरुजी के पास गये। यहा दोनो भाई के साथ जिस भांति गवने क्रिया का अन्वय है उसी भाँति सराहत के साथ नहीं है। सराहना केवल रामजी कर रहे हैं। यथा छत्रिणो गच्छन्ति। छाता किसी एक के ही हाथ मे है पर कहा जाता है कि छातावाले जाते हैं। इसी भांति सराहना केवल रामजी करते हैं पर गवने क्रिया के कर्त्ता होने से सराहत पूर्वकाल की क्रिया का सम्बन्ध दोनों भाई के साथ कर दिया गया है। गुरुजी से सीतामिलन अपने मनका क्षोभ चित्त में चित्र का अङ्कन कहा। किसी बात को छिपाया नहीं क्योंकि स्वभाव प्रभु का ऐसा सरल है कि छल का स्पर्श भी कहीं नहीं है। ऐसे सरल पुरुष ही सच्चे धर्मात्मा हो सकते हैं। यथा सुत सुतवधूं देवसरि वारी। छिपाना ही पाप का मूल है।

सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्ही। पुनि असीस दुहु भाइन्ह दीन्ही॥
सुफल मनोरथ होहु तुम्हारे। राम लखन सुनि भये सुखारे॥२॥

अर्थ फूल पाकर मुनिजी ने पूजन किया और फिर दोनो भाइयो को असीस दी कि तुम्हारे मनोरथ सफल हो। सुनकर राम लक्ष्मण सुखी हुए।

व्याख्या सीताजी ने गौरी की पूजा स्वय की। यथा पूजा कीन्ह अधिक अनुरागा। यहाँ गुरुजी ने फूल पाकर महादेवजी की पूजा की। वहाँ पूजा के बाद गौरी *भगवती की असीस मिली।* यहाँ पूजा के बाद गुरुजी ने आशीर्वाद दिया। गुरुजी ने जब वृत्तान्त सुना तब कुछ न बोले पूजा कर ली तब आशीर्वाद दिया। क्योंकि शास्त्र कहता है कि सन्ध्या करने के बाद पूजन के पश्चात् अथवा भोजन के पश्चात् जो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ब्राह्मण के मुख से निकलता है वह सत्य होता है। इसलिए गुरुजी ने पूजन के बाद आशीर्वाद दिया है। दोनों भाइयों को आशीर्वाद दिया कि तुम लोगों के मनोरथ सुफल हों। इससे स्पष्ट है कि लक्ष्मणजी का भी कुछ मनोरथ था। जिस भाँति पत्नी रूप में सीताजी के मिलने का मनोरथ रामजी को था उसी भाँति भावज रूप में सीता की प्राप्ति का मनोरथ लक्ष्मणजी को था। अत गुरुजी दोनों भाइयों के मनोरथ की पूर्ति का आशीर्वाद देते हैं। वृत्तान्त सुनने पर भी गुरुजी के कुछ न कहने से दोनों भाई चिन्तित हो गये थे। सो अब आशीर्वाद पाकर सुखी हुए। यहाँ पर थोड़ी सी दोनों ओर की घटनाओं का मिलान विनोदार्थ किया जाता है।

| रामजी की ओर की घटना | | सीताजी की ओर की घटना |
|---|---|---|
| तात जनक तनया यह सोई<br>धनुषयज्ञ जेहि कारन होई | १ | एक कहै नृप सुत सोइ आली<br>सुने जे मुनि संग आए काली |
| देखन बाग कुँअर दोउ आये | २ | पूजन गौरि सखीं लै आईं |
| अस कहि फिर चितये तेहि ओरा | ३ | लता ओट तब सखिन्ह लखाए |
| सिय मुख ससि भये नयन चकोरा | ४ | सरद ससिहि जिमि चितव चकोरी |
| भए विलोचन चारु अचचल | ५ | थके नयन रघुपति छवि देखी |
| मनहु सकुचि निमि तजेउ दृगचल | ६ | पलकन हू परिहरे निमेषैं |
| देखि सीय सोभा सुख पावा | ७ | देखि रूप लोचन ललचाने |
| हृदय सराहत वचन न आवा | ८ | अधिक सनेह देह भई भोरी |
| सिय सोभा हिय वरनि प्रभु | ९ | लोचन मग रामहि उर आनी |
| आपन दसा विचारि | १० | दीन्हे पलक कपाट सयानी |
| सहज पुनीत मोर मन छोभा | ११ | सुमिरि पिता पन मन अति छोभा |
| फरकहि सुभद अग सुनु भ्राता | १२ | वाम अग फरकन लगे |
| चारु चित्त भीती लिख लीन्ही | १३ | चली राखि उर स्यामल मूरति |
| गुरु समीप गवने दोउ भाई | १४ | गई भवानी भवन बहोरी |
| राम कहा सब कौसिक पाही | १५ | मोर मनोरथ जानहु नीके |
| सुमन पाइ मुनि पूजा कीन्ही | १६ | विनय प्रेम वस भई भवानी |
| पुनि असीस दोउ भाइन्ह दीन्ही | १७ | सुनु सिय सत्य असीस हमारी |
| सुफल मनोरथ होउ तुम्हारे | १८ | सो बर मिलिहि जाहि मन राचा |
| हृदय सराहत सीय लोनाई | १९ | साँवर कुँवर सखी सुठि लोना |
| राम लखन सुनि भए सुखारे | २० | सिय हिय हरख न जाइ कहि |

और भी मिलान किया जा सकता है पर प्रधान इतने ही हैं।

करि भोजनु मुनिवर विग्यानी। लगे कहन कछु कथा पुरानी॥
विगत दिवस गुर आयसु पाई। संध्या करन चले दोउ भाई॥३॥

अर्थ श्रेष्ठ विज्ञानी मुनि भोजन करके कुछ पुरानी कथाएँ कहने लगे। दिन बीतने पर मुनिजी की आज्ञा पा करके सन्ध्या करने दोनों भाई चले।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : पूजन के बाद मुनियो में श्रेष्ठ विज्ञानी मुनि विश्वामित्रजी ने भोजन किया। भोजन के बाद कुछ विश्राम चाहिए। परन्तु विज्ञानी मुनि है प्रमाद नही होने देते। विश्राम के समय मे पुरानी कथाएँ कहते हैं। पुरानी कथाओं के मिस से धर्मोपदेश का विधान है। जितने पुराण है उनमे किसी न किसी कल्प की कथा का आश्रयण करके धर्म कहा गया है। कथा सुनने में मन लगता है। आयास नही मालूम होता है और उपदेश हृदय मे अङ्कित होता जाता है। अत: विश्वामित्रजी की कथा दिनमे भी विश्राम के समय होती है और रात को भी होती है। यथा : कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी।

बिगत दिवस और निसि प्रबेस एकही बात है। सन्ध्या आते ही गुरुजी की आज्ञा सन्ध्या के लिए हो जाती है। अत दोनो भाई सन्ध्या करने चले। परमात्मा के अवतार होने पर भी नित्यकर्म का त्याग नही करते। क्योंकि कृतकृत्य महापुरुष भी लोकसग्रहार्थ नित्य नैमित्तिक कर्म का परित्याग नही करते। चले कहने का भाव यह कि डेरे पर ही सन्ध्या नही कर ली जलाशय पर गये।

प्राची दिसि ससि उगेउ[1] सुहावा। सिय मुख सरिस देखि सुख पावा॥
बहुरि बिचारु कीन्ह मन माही। सीय [2]बदन सम हिमकर नाही॥४॥

अर्थ पूर्व दिशा मे सुन्दर चन्द्रोदय हुआ। सीताजी के मुख के सदृश देखकर सुख पाया। फिर मन मे विचार किया कि सीताजी के मुख के समान चन्द्र नही है।

व्याख्या आज चतुर्दशी या पूर्णमासी है। साय सन्ध्या समाप्त होते होते चन्द्रोदय हो गया। देखा तो सीताजी के मुख के समान प्रकाशकत्व और आह्लादकत्व है। इससे सुख मिला। यथा : देखि सीय सोभा सुख पावा। एकाएक तो चन्द्र सीताजी के मुख के समान ही प्रतीत हुआ पर विचार करने पर राय पलट गई। यही निश्चय किया कि चन्द्रमा सीताजी के मुख के पटतर योग्य नही है।

दो. जन्म सिंधु पुनि बंधु बिषु, दिन मलीन सकलंकु।
सिअ मुख समता पाव किमि, चंद्र बापुरो रंकु॥२३७॥

अर्थ यह समुद्र से जन्मा है। भाई इसका विष है। दिनमे निष्प्रभ है और कलङ्कयुक्त है। यह गरीब विचारा सीता के मुख की बराबरी कैसे कर सकता है?

व्याख्या · रहिमन जाके बाप को जल पीवै नहिं कोय। ताके सुत के हृदय मे क्यो न कालिमा होय। चन्द्रमा की उत्पत्ति समुद्र से है जिसका जल कोई नही

---

१ यहाँ प्रतीप तृतीय है।

२ चन्द्र की शोभा शरत् मे ही अधिक होती है। सायकाल मे प्राचीदिशि मे उदय तो चतुर्दशी या पूर्णिमा को होता है। उसी के दूसरे दिन धनुषयज्ञ था। जिसका प्रतिपद मे होना सम्भव नही था। अत कहना पड़ेगा कि आश्विन शुक्ल चतुर्दशी को फुलवारी की लीला हुई और पूर्णिमा को धनुषभङ्ग हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पीता। इसका प्रिय भाई विष है। यथा प्रभु वह गरल बधु ससि केरा। अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा। विष सजुत कर निकर पसारी। जारत विरहवत नर नारी। इसमे प्रकाश भी रात को ही रहता है। दिन को तो एकदम फीका पड जाता है और इसमे कलङ्क है। बापुरो रक अर्थात् बेचारा गरीब है। प्रकाश ही इसकी सम्पत्ति है। वह इसकी अपनी नही है। इसे सूर्य से प्रकाश मिलता है। अत स्वयं सम्पत्तिहीन होने से रङ्क गरीब कहा और क्षयरोगयुक्त है इसलिए विचारा कहा। इधर सीताजी विदेहराज जनक की बेटी हैं। यथा

रिषिराज आज राजा जनक समान को।
आपु येहि भाँति प्रीति सहित सराहिअत रागी औ विरागी बडभागी ऐसो आनको।
गुरु हरपद नेहु गेह बसि भो विदेह अगुन सगुन प्रभु भजन सयान को।
कहनि रहनि एक विरति विवेक नीति वेद बुध समत पथीन निरवान को।
गाठि बिनु गुन की कठिन जड चेतन की छोरी अनायास साधु सोधक अपान को।

सीताजी के भाई सर्वकामफलप्रद साक्षात् मङ्गल हैं अथवा लक्ष्मीनिधि है। सीता दिन को भी प्रकाश करती है। यथा करत प्रकास फिरत फुलवाई। यह निष्कलङ्क है। यथा जिमि विरचि सब निज निपुनाई। विरचि विस्व कहँ प्रकट दिखाई। सीता के प्रकाश से दूसरे प्रकाशित होते है। यथा सुन्दरता कहँ सुदर करई। छविगृह दीप सिखा जनु बरई। अत सीता के मुख की समता को चन्द्र कैसे पा सकता है?

घटै बढै विरहिन दुखदाई। ग्रसै राहु निज सधिहि पाई॥
कोक सोकप्रद पकज द्रोही। अवगुन बहुत चद्रमा तोही॥१॥

अर्थ घटता बढता है। विरहियो को दुख देता है। अवसर मिल जाने पर इसे राहु ग्रसता है। कोक को शोक देता है। कमल से द्रोह करता है। चन्द्रमा! तुझ मे बहुत अवगुण हैं।

व्याख्या घटता है। बढ़ता है। सदा विषमावस्था इसकी बनी ही रहती है। विरहियो को दुख देता है। यथा

सतत दुखद सखी रजनीकर।
अब बिनु मन तन दहत दया तजि राखत रवि ह्वै नयन वारिधर।
जद्यपि है दारुन बडवानल राख्यो है जलधिगभीर धीर तर।
ताहू ते परम कठिन जान्यो ससि तज्यौ पिता तव भयउ व्योमचर।
सकल विकार कोष विरहिनि-रिपु काहे ते याहि सराहत सुरनर।

यह महामलीन मरे को मारता है। पूर्णिमा प्रतिपद की सन्धि मे ही चन्द्रग्रहण होता है अर्थात् राहु चन्द्र को ग्रस लेता है। यह राहु का उच्छिष्ट है। पक्षी ने किसका क्या बिगाडा है। सो यह कोक को शोक देता है। कमल ससार को प्रिय है। पर यह उससे भी द्रोह करता है। अत रामजी चन्द्रमा को सम्बोधन करके कहते हैं कि तुझमे बहुत अवगुण है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या पूजन के बाद मुनियों मे श्रेष्ठ विज्ञानी मुनि विश्वामित्रजी ने भोजन किया। भोजन के बाद कुछ विश्राम चाहिए। परन्तु विज्ञानी मुनि है प्रमाद नही होने देते। विश्राम के समय मे पुरानी कथाएँ कहते हैं। पुरानी कथाओं के मिस से धर्मोपदेश का विधान है। जितने पुराण है उनम किसी न किसी कल्प की कथा का आश्रयण करके धर्म कहा गया है। कथा सुनने मे मन लगता है। आयास नही मालूम होता है और उपदेश हृदय मे अङ्कित होता जाता है। अत विश्वामित्रजी की कथा दिनमे भी विश्राम के समय होती है और रात को भी होती है। यथा कहत कथा इतिहास पुरानी। रुचिर रजनि जुग जाम सिरानी।

विगत दिवस और निसि प्रवेस एकही बात है। सन्ध्या आते ही गुरुजी की आज्ञा सन्ध्या के लिए हो जाती है। अत दोनो भाई सन्ध्या करने चले। परमात्मा के अवतार होने पर भी नित्यकर्म का त्याग नही करते। क्योकि कृतकृत्य महापुरुष भी लोकसग्रहार्थ नित्य नैमित्तिक कर्म का परित्याग नही करते। चले कहने का भाव यह कि डेरे पर ही सन्ध्या नही कर ली जलाशय पर गये।

प्राची दिसि ससि उगेउ[1] सुहावा। सिय मुख सरिस देखि सुख पावा॥
बहुरि बिचारु कीन्ह मन माही। सीय [2]बदन सम हिमकर नाही॥४॥

अर्थ पूर्व दिशा मे सुन्दर चन्द्रोदय हुआ। सीताजी के मुख के सदृश देखकर सुख पाया। फिर मन मे विचार किया कि सीताजी के मुख के समान चन्द्र नही है।

व्याख्या आज चतुर्दशी या पूर्णमासी है। साय सन्ध्या समाप्त होते होते चन्द्रोदय हो गया। देखा तो सीताजी के मुख के समान प्रकाशकत्व और आह्लादकत्व है। इससे सुख मिला। यथा देखि सीय सोभा सुख पावा। एकाएक तो चन्द्र सीताजी के मुख के समान ही प्रतीत हुआ पर विचार करने पर राय पलट गई। यही निश्चय किया कि चन्द्रमा सीताजी के मुख के पटतर योग्य नही है।

दो जन्म सिंधु पुनि बंधु बिषु, दिन मलीन सकलङ्कु।
सिअ मुख समता पाव किमि, चंद्र बापुरो रङ्कु॥२३७॥

अर्थ यह समुद्र से जन्मा है। भाई इसका विष है। दिनम निष्प्रभ है और कलङ्कयुक्त है। यह गरीब विचारा सीता के मुख की बराबरी कैसे कर सकता है?

व्याख्या रहिमन जाके बाप को जल पीवै नहिं कोय। ताके सुत के हृदय मे क्यो न कालिमा होय। चन्द्रमा की उत्पत्ति समुद्र से है जिसका जल कोई नही

---

१ यहाँ प्रतीप तृतीय है।

२ चन्द्र की शोभा शरत् म ही अधिक होती है। सायकाल म प्राचीदिशि म उदय तो चतुर्दशी या पूर्णिमा को होता है। उसी के दूसरे दिन धनुषयज्ञ था। जिसका प्रतिपद म होना सम्भव नहीं था। अत कहना पडेगा कि आश्विन शुक्ल चतुर्दशी को फुलवारी की लीला हुई और पूर्णिमा को धनुषभङ्ग हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पीता। इसका प्रिय भाई विष है। यथा प्रभु कह गरल बधु ससि केरा। अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा। विष सजुत कर निकर पसारी। जारत विरहवत नर नारी। इसम प्रकाश भी रात को ही रहता है। दिन को तो एकदम फीका पड जाता है और इसम कलङ्क है। बापुरो रक अर्थात् बेचारा गरीब है। प्रकाश ही इसकी सम्पत्ति है। वह इसकी अपनी नहीं है। इसे सूर्य से प्रकाश मिलता है। अत स्वय सम्पत्तिहीन होने से रङ्क गरीब कहा और क्षयरोगयुक्त है इसलिए बिचारा कहा। इधर सीताजी विदेहराज जनक की बेटी हैं। यथा

रिषिराज आज राजा जनक समान को।
आपु येहि भाँति प्रीति सहित सराहिअत रागी औ बिरागी बडभागी ऐसो आनको।
गुरु हरपद नेहु गेह बसि भो बिदेह अगुन सगुन प्रभु भजन सयान को।
कहनि रहनि एक बिरति बिवेक नीति बेद बुध समत पथीन निरवान को।
गाठि बिनु गुन की कठिन जड चेतन की छोरी अनायास साधु सोधक अपान को।

सीताजी के भाई सर्वकामफलप्रद साक्षात् मङ्गल है अथवा लक्ष्मीनिधि हैं। सीता दिन को भी प्रकाश करती है। यथा करत प्रकास फिरत फुलवाई। यह निष्कलङ्क है। यथा जिमि बिरचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रकट दिखाई। सीता के प्रकाश से दूसरे प्रकाशित होते है। यथा सुन्दरता कहँ सुदर करई। छबिगृह दीप सिखा जनु बरई। अत सीता के मुख की समता को चन्द्र कैसे पा सकता है ?

घटै बढै बिरहिन दुखदाई। ग्रसै राहु निज सधिहि पाई॥
कोक सोकप्रद पकज द्रोही। अवगुन बहुत चद्रमा तोही॥१॥

अर्थ घटता बढता है। विरहियो को दु ख देता है। अवसर मिल जाने पर इसे राहु ग्रसता है। कोक को शोक देता है। कमल से द्रोह करता है। चन्द्रमा ! तुझ म बहुत अवगुण है।

व्याख्या घटता है। बढ़ता है। सदा विषमावस्था इसकी बनी ही रहती है। विरहियो को दु ख देता है। यथा

सतत दु खद सखी रजनीकर।
अज बिनु मन तन दहत दया तजि राखत रबि ह्वै नयन बारिधर।
जद्यपि है दारुन बडवानल राख्यौ है जलधिगभीर धीर तर।
ताहू ते परम कठिन जान्यो ससि तज्यौ पिता तज भयउ ब्योमचर।
मदन विकार कोप बिरहिनि रिपु काहे ते याहि सराहत सुरनर।

यह महामलीन मरे को मारता है। पूर्णिमा प्रतिपद की सन्धि म ही चन्द्रग्रहण होता है अर्थात् राहु चन्द्र को ग्रस लेता है। यह राहु का उच्छिष्ट है। पक्षी ने किसका क्या बिगाडा है। सो यह कोक को शोक देता है। कमल समार का प्रिय है। पर यह उससे भी द्रोह करता है। अत रामजी चन्द्रमा को सम्बोधन करके कहते हैं कि तुझम बहुत अवगुण हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वैदेही मुख पटतर दीन्हे। होइ दोष बड़ अनुचित कीन्हे ॥
सिअ मुख छबि बिधु ब्याज बखानी। गुर पहिं चले निसा बड़ि जानी ॥२॥

अर्थ सीता के मुख की तुलना करने से बड़ा अनुचित करने का भारी दोष होगा। चन्द्रमा के ब्याज से सीताजी की मुखछवि का वर्णन किया। अधिक रात गई जानकर गुरुजी के पास चले।

व्याख्या सीताजी के मुख की तुलना चन्द्रमा से हो नहीं सकती। उसकी कलाओं का कृष्णपक्ष में देवता पान किया करते हैं। इसलिए घटता है और यहाँ तो सीताजी के कृपाकटाक्ष को देवता चाहा करते हैं। यथा जाकी कृपा कटाक्ष सुर चाहत चितव न सोइ। चन्द्रमा तो विरही को दु ख देता है। मरे को मारता है। किंतु सीता को तो खिन्न परम प्रिय हैं। यथा जिनहि परम प्रिय खिन्न। चन्द्रमा राहु का जूठा है। पर सीता की उपमा जूठे से नहीं दी जा सकती। यथा सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहि पटतरौं बिदेह कुमारी। चन्द्रमा कोकसोकप्रद पंकजद्रोही है और सीता सर्वश्रेयस्करी हैं। अत चन्द्र से सीता के मुख की समता करना बड़ा अनुचित है। जितना बड़ा अनुचित किया जाता है उतना ही बड़ा दोष होता है। इसलिए सियमुख की चन्द्र से समता करने में बड़ा दोष है। सीय बदन सम हिमकर नाहीं से उपक्रम करके पटतर दीन्हे होइ दोष कहके उपसंहार करते हैं। इसी उधेड़बुन में रात अधिक निकल गई। इसलिए गुरुजी के पास चले। सन्ध्या करन चले से उपक्रम गुरु पहँ चले से उपसंहार।

करि मुनि चरन सरोज प्रनामा। आयसु पाइ कीन्ह बिश्रामा ॥
बिगत निसा रघुनायक जागे। बंधु बिलोकि कहन अस लागे ॥३॥

अर्थ मुनिजी के चरण कमल में प्रणाम करके आज्ञा पाकर विश्राम किया। रात बीतने पर रघुनायक जगे। छोटे भाई को देखकर ऐसा कहने लगे।

व्याख्या आज मुनि के चरणकमलों का पलोटना नहीं कहा और न लक्ष्मणजी रामजी के ही चरण दबाते हैं। क्योंकि आज उसकी आवश्यकता नहीं है। आज किसी को कहीं दूर जाना नहीं पड़ा। कल तो रास्ता चलकर आये थे। अत पैर दबाने की आवश्यकता थी।

जाकर मुनिजी के चरणकमलों में प्रणाम किया। मुनिजी ने रात अधिक जानकर तुरन्त विश्राम करने की आज्ञा दी। रामजी सोये इसलिए उनका पिछले पहर जागना कहते हैं। लक्ष्मणजी नहीं सोये अत उनका जागना भी नहीं कहते। रामजी जागे तो लक्ष्मण को प्रस्तुत देखकर कहने लगे। लक्ष्मणजी ही इस समय सखा हैं। अत अपने मनोगत भावों से उन्हें परिचित कराते हैं। साथी को अन्धकार में रखने से अनिष्ट का भय रहता है।

उयउ अरुन अवलोकहु ताता। पंकज कोक लोक सुखदाता ॥
बोले लखन जोरि जुग पानी। प्रभु प्रभाव सूचक मृदु बानी ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

अर्थ : हे भाई ! देखो अरुण उदय हुआ। यह कमल और कोक लोगो को सुख देनेवाला है। लक्ष्मणजी दोनो हाथ जोड़कर प्रभु के प्रभाव की सूचना देने वाली वाणी बोले।

व्याख्या अरुण का उदय होना भाई को दिखला रहे हैं दु ख दाता को नही दिखलाया सुखदाता को दिखला रहे है। कोक सोकप्रद पकज द्रोही अस्त हुआ। अब पकज कोक लोक सुखदाता का उदय हुआ। भाव यह कि कल रात को सुखदाता के उदय को कितनी रात तक हम देखते रहे। यह सूर्य का अग्रगामी सारथी अरुण है। इसका उदय होना सूर्य के आगमन का सूचक है।

लक्ष्मणजी चन्द्र के व्याज से सियमुखछवि के बखान मे नही बोले थे। पर अरुणोदय की चरचा चलते ही बोले। प्रभु को शृङ्गाररस मे मग्न देखकर विना पूछे कहते हैं। अत हाथ जोडकर वीररस के उदय के लिए प्रभुप्रभावसूचक मृदुवाणी बोले। बात को समझ जाने के लिए चन्द्रोदय का वर्णन रामजी ने किया। अब समझ जाना सूचन के लिए अरुणोदय का वर्णन लक्ष्मणजी करेगे।

दो अरुनोदय सकुचे कुमुद, उडगन जोति मलीन।
जिमि तुम्हार आगमन सुनि, भये नृपति वलहीन ॥२३८॥

अर्थ अरुण के उदय होने से कुमुद : कोई सङ्कुचित हुए और ताराओ की ज्योति मलीन हो गई। जैसे तुम्हारा आगमन सुनकर राजा लोग वलहीन हो गये।

व्याख्या : पकज कोकलोक को सुख तो हुआ पर कुमुद सङ्कुचित हो गये और ताराओ की ज्योति धीमी पड गई। यथा : मानी महिप कुमुद सकुचाने। नृपन्ह केर नासा निसि नासी। वचन किरन अवली न प्रकासी। इसी भाँति आपका आगमन सुनकर राजा लोग वलहीन हो गये। आपका आना सूर्योदय होना है और आपके आगमन का समाचार अरुणोदय है। मानी महीप लोग तो कुमुद की भाँति सङ्कुचित हो गये और तारो की भाँति सभी राजाओ का तेज दब गया। तेज का दबना ही वलहीन होना है।

नृप सब नखत करहिं उजियारी। टारि न सकहि चाप तम भारी॥
कमल कोक मधुकर खग नाना। हरषे सकल निसा अवसाना॥१॥

अर्थ : सब राजा लोग ताराओ की भाँति चमक तो रहे है परन्तु चापरूपी अन्धकार का नाश नही कर सकते। कमल, कोक, भौंरे और नाना प्रकार की चिड़ियाँ रात के बीतने पर हर्षित हो उठी।

व्याख्या : राजा लोग ताराओ की भाँति अपने को प्रकाशित कर पाते हैं। पर भारी अन्धकार जो जगत् को आवृत किये हुए है उसे हिला भी नही सकते। यहाँ धनुष ही अन्धकार है। वह इनका हिलाया नहीं हिल सकता। अन्धकार अभाव रूप होने से हलका है और चाप द्रव्यमय होने से भारी है।

ankurnagpal108@gmail.com



अरुणोदय से निशा का अवसान होता है। निशा : रात से कमल कोक मधुकर और खग सभी दुःखी थे। सब निशाभङ्ग चाहते थे। अतः अरुणोदय से प्रसन्न हुए। इतने तारों ने अन्धकार नाश के लिए रात भर जोर लगाया पर ये तनिक भी आह्लादित नहीं हुए। जानते थे कि इनकी हटाई रात न हटेगी। इसी भाँति राजा लोग बात बनाते हैं। धनुष नहीं हटा सकते। यथा : वचन नखत अवली न प्रकासी।

ऐसहि प्रभु सब भगत तुम्हारे। होइहहि टूटे धनुष सुखारे॥
उयेउ [1]भानु बिनु श्रम तम नासा। दुरे नखत जग तेजु प्रकासा॥२॥

अर्थ : हे प्रभो ! इसी भाँति तुम्हारे सब भक्त धनुष के टूटने से सुखी होंगे। सूर्य उदय हुए कि अनायास ही अन्धकार का नाश हुआ। तारे छिपे और संसार में तेज का प्रकाश हो गया।

व्याख्या : लक्ष्मणजी कमल कोक मधुकर और खग से भक्तो को उपमित करते हैं। क्योंकि कमल कोकादि चार हैं और भक्त भी चार प्रकार के होते हैं १ ज्ञानी २ जिज्ञासु ३ अर्थार्थी और ४ आर्त। इनमे ज्ञानी की उपमा कमल से है। क्योंकि वह साक्षात् सूर्य से प्रेम करता है। जिज्ञासु की उपमा कोक से है। क्योंकि उसे अपनी कोकी की खोज है। सूर्य के बिना उसकी प्राप्ति सम्भव नहीं। इसलिए सूर्य से प्रेम करता है। अर्थार्थी की उपमा मधुकर भौंरे से है। उसे मधु चाहिए। सूर्य उदय हो कमल खिले तब उसे मधु मिले। इसलिए सूर्य से प्रेम करते हैं। आर्त की उपमा खग नाना से है। क्योंकि अपने पेट का भोजन बच्चे को खिलाकर भूखे पेट अपने घोसले में बैठे आर्त हो रहे हैं। रात को सूझता नहीं कहाँ जाँय। जब सूर्य निकले तब वे चारे की खोज में चलें। इसलिए उन्हें सूर्य प्रिय है।

अवध में दो ही प्रकार के भक्त हैं। १ ज्ञानी और २ जिज्ञासु। यथा : मनहु कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि। पर लक्ष्मणजी शीतल सुभग भगत सुखदाता हैं। चारों की याद दिलाते हैं। ये चारों चापतमभारी के भग्न होने से सुखी होंगे।

सूर्य के उदय होते ही बिना श्रम के ही तम का नाश होगा। यथा : छुअत टूट पिनाक पुराना। नक्षत्र छिप जाँयगे। यथा : रावन बान महाभट भारे। देखि सरासन गँवहि सिधारे। जहँ तहँ कायर गँवहि पराने। संसार में तेज भर उठेगा। यथा : कोदंड भजेउ राम तुलसी जयति वचन उचारहीं। महि पाताल नाक जस व्यापा। राम बरी सिय भजेउ चापा।

रवि निज उदय ब्याज रघुराया। प्रभु प्रतापु सब नृपन्ह दिखाया॥
तव भुजबल महिमा उदघाटी। प्रकटी धनु बिघटन परिपाटी॥३॥

अर्थ : हे रघुराया ! सूर्य ने अपने उदय के बहाने से प्रभु का प्रताप सब

---

१ यहाँ हेतु अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



राजाओ को दिखा दिया। आप के भुजबल की महिमा को उघाडने के लिए धनुप तोड़ने की प्रथा प्रकट हुई है।

व्याख्या : रामजी ने चन्द्रमा के व्याज से सियमुखछवि का वर्णन करके अपनी आसक्ति लक्ष्मणजी से प्रकट की। लक्ष्मणजी अरुणोदय के वर्णन के व्याज से कह रहे हैं कि आपके भुजबल की महिमा छिपी है। शिवजी का धनुप आप ही से टूटेगा। दूसरे से टूट सकता नही। यह धनुपभंग की प्रथा उसके उघाडने के लिए प्रचलित हुई है। भावार्थ यह कि आप ही धनुप तोडेंगे और विश्वव्यापिनी कीर्ति का लाभ करेंगे।

बंधु बचन सुनि प्रभु मुसुकाने। ह्वै सुचि सहज पुनीत नहाने॥
नित्यक्रिया करि गुरुपहि आए। चरन सरोज सुभग सिर नाए॥४॥

अर्थ : भाई की बात सुनकर प्रभु मुसकराये। और स्वभाव से पवित्र होने पर भी शुचि होकर स्नान किया। नित्यकर्म करके गुरुजी के पास आये और चरण-कमलो मे सुन्दर सिर झुकाया।

व्याख्या · रामजी भाई की बात सुनकर मुसकराये कि मेरे अभिप्राय को लक्ष्मणजी समझ गये। अब स्पष्ट कहे देते हैं कि धनुप आप तोडेंगे और आप का सुयश होगा। बाह्याभ्यन्तर शुचि होकर तब स्नान किया अर्थात् दन्तधावनादि से शुचि होकर स्नान किया। जो सहज शुचि है वह भी लोकसग्रह के लिए यथाशास्त्र नित्य शुद्धि करते है। इसी भाँति लोगो को आचरण करना चाहिए।

सबसे पहिला काम शुचि होकर नित्यकर्म का लोप नही होने देना है। तत्पश्चात् गुरुदेव की वन्दना करने का विधान है। अत: गुरुजी के चरणकमलो में सिर नवाया कि अब मैं सावकाश हूँ। जो आज्ञा हो सो करूँ।

सतानंद तब जनक बोलाए। कौसिक मुनि पहिं तुरत पठाए॥
जनक विनय तिन्ह आइ सुनाई। हरषे बोलि लिये दोउ भाई॥५॥

अर्थ : तब जनक ने सतानन्द को बुलाया और तुरन्त विश्वामित्रजी के पास भेजा। उन्होने आकर राजा जनक की विनती कह सुनाई। मुनिजी प्रसन्न हुए और दोनो भाइयो को बुला लिया।

व्याख्या : यह समाचार पाने के बाद कि दोनो भाई और गुरुजी नित्यकृत्य से खाली हो गये। राजा ने सतानन्दजी को भेजा। इस प्रतीक्षा मे रहे कि ये लोग खाली हो जायँ तब धनुपयज्ञ आरम्भ हो। राजा लोग पहिले से ही आकर डँटे हुए हैं। जनकजी धनुपयज्ञ की प्रक्रिया रोके हुए हैं। अत सतानन्दजी को तुरन्त भेजा। विश्वामित्रजी के आदर के लिए स्वयं पुरोहितजी बुलाने गये।

जनकजी का विनय सुनाया कि दोनो राजकुमारो के साथ मुनिराज पधारें। महाराज जनकजी की चतुरता पर प्रसन्न हुए कि दोनो भाइयो को निमन्त्रण भेजा है। अब पास बुलाया। इस समय वहाँ नही थे। सुन्दर सदन के उस खण्ड में थे जो इन दोनो भाइयो के रहने के लिए नियत हुआ था।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


दो. सतानंद पद बंदि प्रभु, बैठे गुरु पहिं जाइ।
चलहु तात मुनि कहेउ तब, पठए जनक बोलाइ ॥२३९॥

अर्थ सतानन्द के चरणो की वन्दना करके गुरुजी के पास बैठ गये। तब मुनिजी बोले . हे तात ! चलो राजा जनक ने बुला भेजा है।

व्याख्या ' गुरुजी की वन्दना हो चुकी है। अत सतानन्दपदवन्दना कहते है। पर उनके पास न बैठे। गुरुजी के पास जाकर बैठ गये। क्योकि उन्होने बुलाया था। ऋषि का रूप देखकर वन्दना की। मुनिजी कहते है कि राजा जनक का बुलावा आया है। भाव यह कि वस्त्र भूषण शस्त्रास्त्र धारण कर लो। राज समाज मे चलना है और अब तुम्हारा चलना अनाहूत नहीं है।

सीय स्वयंबरु देखिअ जाई। ईसु काहि धौ देइ बड़ाई ॥
लषन कहा जस भाजन सोई। नाथ कृपा तव जापर होई ॥१॥

अर्थ चलकर सीता का स्वयंवर देखना चाहिए। देखे महादेव किसे बडाई देते है। लक्ष्मण ने कहा नाथ ! यश तो उसी को मिलेगा जिस पर आपकी कृपा होगी।

व्याख्या : बुलाने का कारण कहते हैं : सीता का स्वयवर देखने के लिए। अब चलकर यह देखना है कि महादेव किसे बडाई देते है। धनुषभङ्ग बिना महादेव की कृपा के कोई कर नही सकता। किसका सामर्थ्य है जो बिना उनकी कृपा धनुषभङ्ग कर सके।

लक्ष्मणजी तुरन्त बोल उठे कि यशभाजन तो निश्चय हो चुका है। जिस पर आपकी कृपा है उसे आप आशीर्वाद दे चुके है : सुफल मनोरथ होउ तुम्हारे। अत यशभाजन कौन होगा यह तो पहिले से ही निश्चित है।

हरषे मुनि सब सुनि बर बानी। दीन्हि असीस सबहि सुखमानी ॥
पुनि मुनिवृन्द समेत कृपाला। देखन चले धनुषमखसाला ॥२॥

अर्थ लक्ष्मणजी की बरवाणी सुनकर मुनिलोग प्रसन्न हो गये। सब ने सुख मानकर आशीर्वाद दिया। तब मुनिलोगो के सहित कृपाल धनुषयज्ञशाला देखने चले।

व्याख्या लक्ष्मणजी की वाणी को बरबाणी कहा। क्योकि गुरुभक्ति तथा रामभक्ति से ओत-प्रोत थी। सब मुनि विश्वामित्रजी के भक्त थे। रामजी पर सबकी कृपा थी। सब चाहते थे कि रामजी धनुष तोडें। लक्ष्मणजी के मुख से गुरुजी की प्रशंसा सुनकर सब प्रसन्न हो उठे। आशीर्वाद देने लगे।

कृपाल धनुषयज्ञशाला देखने चले। स्वयंवर देखने नही चले। स्वयवर तो इनका होगा देखनेवाले दूसरे होगे। मुनिवृद साथ मे है। जनकपुर आते ही प्रधानता इनकी हो गई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रगभूमि आए दोउ भाई । असि सुधि सब पुरवासिन्ह पाई ॥
चले सकल गृह काज बिसारी । बालु जुवान जरठ नर नारी ॥३॥

अर्थ सब पुरवासियो को समाचार मिला कि दोनो भाई रङ्गभूमि म आये। सब बाल, युवा, वृद्ध नरनारी घर का काम भुलाकर चले।

व्याख्या नगर के नरनारी, बाल, युवा, वृद्ध सबको दोनो भाइयो के दर्शन का बडा चाव था। रामजी यहाँ से चले। इतने मे ही नगर मे समाचार फैल गया कि रगभूमि मे आये। इसी भाँति जब नगर देखने चले थे तब ऐसा ही समाचार फैला कि देखन नगर भूप सुत आये।

पहिले धाये धाम काम सब त्यागी। मनहु रक निधि लूटन लागी। सो लूट चुके है अब रङ्क नही हैं। इसलिए धाये नही चले। दूसरी यह बात है कि जानते है कि रगभूमि मे देर तक ठहरना होगा। अत त्वरा का कोई कारण नही था। समाचार सबने पाया था इसलिए सब चले। पहिले गृहकार्य त्यागकर चले थे। इस बार उसकी सुधि भी बिसरा दी। तीसरा भाव यह कि बाल और जरठ भी साथ मे हैं। अत दौडने का सुअवसर नही है। नारियाँ भी चली जा रही है।

देखी जनक भीर भै भारी । सुचि सेवक सब लिये हकारी ॥
तुरत सकल लोगन्ह पहि जाहू । आसन उचित देहु सब काहू ॥४॥

अर्थ जनक ने देखा भीड ता भारी हुई तब शुचि सेवको को बुलाया। कहा कि तुरन्त सब लोगो के पास जाकर सबको उचित आसन दो।

व्याख्या · भीड पहिले ही पहुँच गई। प्रभु तो मत्त मजु कुजरवर गामी हैं। अत पीछे पहुँचेंगे भारी भीड देखकर जनकजो ने सोचा कि बिना व्यवस्था काम न चलेगा। अत शुचि सेवको को जे सपनेहुँ निज धर्म न डोले बुलाया। कहा कि जल्दी करो सबको उचित आसन दो। देर करने से अनुचित आसन पर बैठ जायँगे। फिर उठाने मे अपमान होगा। अत व्यवस्था करके पहिले ही से योग्य आसन सबको दो। सत्कार से बिठाओ। यह महाराज जनक की शासनपटुता तथा प्रजापालकता है।

दो कहि मृदु वचन विनीत तिन्ह, बैठारे नर नारि ।
उत्तम मध्यम नीच लघु, निज निज थल अनुहारि ॥२४०॥

अर्थ . उन्होंने मृदु और विनीत वचन कहकर उत्तम, मध्य, नीच और लघु नर-नारियो को उनके स्थल के अनुरूप बिठलाया।

व्याख्या शुचि सेवक हैं। राजपुरुष होने का अभिमान नही है। अपने सेवक धर्म का जानते हैं। अत सत्कार के साथ सबको मृदु तथा विनीत वचन कहकर यथायोग्य स्थानो पर बिठलाया। नगर के सब ओर के लाग चले आये। अत सब सबको वो भेजा। जो उत्तम, मध्यम नीच लघु से परिचित हो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



राजकुँअर तेहि औसर आए। मनहुँ मनोहरता तन छाए॥
गुन सागर नागर वर वीरा। सुन्दर स्यामल गौर सरीरा॥१॥

अर्थ : उसी अवसर पर राजकुमार आगये। मानो मनोहरता शरीर पर छाई हुई है। सुन्दर सांवले और गोरे शरीरवाले, गुण के समुद्र, नागर और श्रेष्ठ वीर हैं।

व्याख्या : जब भीड बैठ चुकी। उसी अवसर दोनो राजकुमार आये। मानो मनोहरता ने सम्पूर्ण शरीर मे डेरा डाल दिया है। यथा : चित्रकूट रघुनन्दन छाए। छाए शब्द का प्रयोग डेरा डालने के अर्थ मे अनेक स्थलो मे प्रयुक्त है। सखी कह चुकी है : कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह यह रूप निहारी। दोनो राजकुमारो का वर्णन एक साथ करते हैं। इसलिए सुन्दर स्यामल गौर सरीरा कहा। बाहर की शोभा कहकर भीतरी शोभा भी कहते हैं। उनके गुणो का वारापार नही। इसलिए गुणसागर कहा। बहुत बडे गुणी मे भी भद्दापन देखा गया है। अत उसके निवारण के लिए नागर कहा। सुन्दरता, गुणबाहुल्य और शौर्य ये तीनो एकत्र नही देखे जाते। यहाँ तीनो का योग है। इसलिए वरबीरा कहा।

राज समाज विराजत रूरे। उड़गन महु जिनु जुग विधु पूरे॥
जिन्हकें रही भावना जैसी। प्रभु मूरति तिन्ह देखी तैसी॥२॥

अर्थ राजसमाज मे अच्छे विराजमान हो रहे हैं। जैसे तारागणो म दो पूर्ण चन्द्र हो। जिसकी जैसी भावना रही प्रभु की मूर्ति उसने वैसी ही देखी।

व्याख्या : राजसमाज मे ऐसे शोभित हुए जैसे तारागणो मे दो पूर्णचन्द्र उदय हो। भाव यह कि प्रकाश से रङ्गभूमि भर उठी। राजा लोग इनके सामने ताराओ की भाँति हतप्रभ हो गये। उनके आश्रित से जान पडने लगे। क्योकि चन्द्र ही तारापति हैं।

भक्त अभक्त के हृदयानुसार इनका विषम विहार होता है। अत सबको इन्होने उनके पृथक् भावनानुसार पृथक् रूप से दर्शन दिया। यथा : यद्यपि सम नहि राग न रोषू। गहहि न पाप पूंनु गुन दोषू। तदपि करहिं सम विषम विहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा। तथा अपने अखिल रसामृत मूर्ति होने का वैभव दिखलाया।

देखहिं[1] रूप महारनधीरा। मनहुँ बीर रस धरे सरीरा॥
डरे कुटिल नृप प्रभुहि निहारी। मनहुँ भयानक मूरति भारी॥३॥

अर्थ महारणधीरो ने रूप देखा। मानो वीररस ने ही शरीर धारण कर रक्खा है। प्रभु को देखकर कुटिल राजा डर गये मानो भारी भयानक मूर्ति है।

---

१ यहाँ प्रथम उल्लेख है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या उस समाज मे बडे-बडे रणधीर नरशरीर धारण करके आये थे। था देव दनुज धरि मनुज सरीरा। विपुल वीर आये रनधीरा वे नरशरीर धारण कये बैठे थे। उन्हे मालूम हुआ कि मानो स्वय वीररस ही नरशरीर मे आगया। ाकृत म द्विवचन नही होता। उसके लिए बहुवचन ही आता है। यथा द्वचनस्य बहुवचनम् प्रा प्र। यहाँ दोनो राजकुमारो के लिए शरीरा बहु वचन ा प्रयोग हुआ है। जश्शसोर्लोप इस सूत्र से विसर्ग का लोप हुआ शरीर ाब्द का पुल्लिङ्गवत् व्यवहार हुआ है। लिङ्गमतन्त्रम्। प्राकृत मे लिङ्ग का नर्णय नही है। प्रभु मूरति देखी तिन तैसी ऊपर कह आये है। इससे कोई यह I समझ ले कि प्रभु शब्द से रामजी का ही बोध होता है। लक्ष्मणजी भी प्रभु है। था जय अनत जय जगदाधारा। तुम प्रभु सब देवन्हि निस्तारा। इससे वीर रस कहा।

कुटिल राजा तो प्रभु को देखकर काँप उठे। उन्हे मालूम हुआ कि मानो भारी भयानक मूर्ति है। भयानकरस के अधिष्ठाता यम है। भावार्थ यह कि कुटिल राजाओ को तो साक्षात् यमस्वरूप ही दिखाई पडे। इसलिए दुष्टहृदय पुरुष उनके सम्मुख नही होते। वे भयाना भय भीषण भीषणानाम् है। दुष्टहृदय को उनकी सत्ता स्वीकार करने मे महाभय होता है। यथा जौ पै दुष्ट हृदय सो होई। मोरे समुख भाव कि सोई। इससे भयानक रस कहा।

रहे असुर छल छोनिप वेखा। तिन्ह प्रभु प्रगट काल सम देखा ॥
पुरवासिन्ह देखे दोउ भाई। नरभूपन लोचन सुखदाई ॥४॥

अर्थ वहाँ असुर छल से राजा के वेष म थे। उन्होने प्रभु को साक्षात् काल के समान दखा। पुरवासियो ने दोनो भाइयो को देखा कि मनुष्य जाति के भूपण नेत्रो को सुख देने वाल है।

व्याख्या छली असुर राजा के वेष म थे। जिसम उन्हे कोई पहिचान न सके। पर काल सबको पहिचानता है। वेष बदलने से कोई बच नही सकता। उन्होने देखा कि प्रत्यक्ष काल आ गया। अब हम नही बच सकते। क्योकि काल का दर्शन मुमूर्षु को ही होता है और कोई काल को नही देख सकता। यथा मोहि बिलोकु तोर मैं काला। यहाँ कालरूप कहकर वीभत्स रस कहा।

पुरनरनारि सुभग सुठि सता। धर्मशील ज्ञानी गुनवता। ये पुरवासी सत है। इन्हे नरभूषण दिखाई पडे। नरभूषण कहने का कारण कहते है कि लोचनसुखदाई है। लोचनसुखद होने के लिए ही भूषण पहिना जाता है। धाए धाम काम सब त्यागी। मनहु रक निधि लूटन लागी। बडा बहुमूल्य भूषण है। इसलिए दौडे।

दो नारि विलोकहि हरपि हिय, निज निज रुचि अनुरूप।
जनु सोहत सिगारु धरि, मूरति परम अनूप ॥२४१॥

अर्थ स्त्रिया हर्षित होकर अपनी अपनी रुचि के अनुरूप देख रही है। मानो परम अनूपमूर्ति धारण करके शृङ्गार शोभायमान हो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या रङ्गभूमि की प्रथम पंक्ति में राजा लोग है। दूसरी पंक्ति मे पुरवासी है। तीसरी पंक्ति मे स्त्रियाँ हैं। उसी क्रम से यहाँ वर्णन है। भिन्नरुचिहि लोक। ससार मे सबकी भिन्न रुचि होती है। इसी भाँति स्त्रियो की भी रुचि भिन्न है। परन्तु यह मूर्ति ऐसी अनूप है कि जिसकी जैसी रुचि है तदनुरूप रूप उसको दिखाई पड रहा है। अत निरीक्षण में हर्ष कहते हैं। मानो शृङ्गाररस ही परम अनूप मूर्ति से विराजमान है।

विदुषन्ह प्रभु बिराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा॥
जनक-जाति अवलोकहिं कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे॥१॥

अर्थ विद्वानो ने प्रभु को विराट् रूप म देखा कि बहुत से मुख, हाथ, पैर, आँखे और सिर हैं। जनकजी के भाई बिरादरी कैसे देखते हैं जैसे अपने सगे सम्बन्धी प्रिय लगते है।

व्याख्या विद्वान् देवता रूप हैं। उन्हे सदा विराट् रूप के दर्शन की इच्छा रहती है। यथा देवा अप्यस्य रूपस्य नित्य दर्शनकाक्षिण। उन्हे भगवान् का अनेक बाहु उदर मुख आँख सहित अनन्तरूप दिखाई पडा। उस विश्वेश्वर विश्वरूप का आदि मध्य और अन्त कुछ भी मालूम न हुआ। यथा अनेकबाहूदरवक्त्रनेत्र पश्यामि त्वा सर्वतोऽनन्तरूपम्। नान्त न मध्य न पुनस्तवादि पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप। इससे अद्भुतरस कहा।

स्वजन का सर्वत्र लवराम् इस प्राकृत व्याकरण के सूत्र से वकार का लोप होकर सजन रूप हो गया। *सजन सगे का अर्थ* हुआ सगे सम्बन्धी दामाद बहनोई आदि। अर्थात् जैसा नाता पडनेवाला था वैसे प्रिय जनक के जाति लोगो को जान पडे। इससे हास्यरस कहा।

सहित बिदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाति बखानी॥
जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा। सात सुद्ध सम सहज प्रकासा॥२॥

अर्थ विदेह के साथ रानियाँ देखती हैं। उन्हे वैसी प्रीति हुई जैसी छोटे बच्चो पर होती है। उसका वर्णन नही हो सकता। योगियो को शान्त शुद्ध सम सहज प्रकाशरूप परम तत्त्वमय दिखलाई पडे।

व्याख्या बिलोकहिं रानी पद से रानियो का अनेक होना सिद्ध हुआ। चार रानियो का पता चलता है। यथा चतसृभिस्तु भार्याभिर्यज्ञार्थं दीक्षितोऽभवत्। का पु। और जिस समय सीताजी पृथ्वी से उत्पन्न हुई थी उन्ही के साथ दो पुत्र भी उत्पन्न हुए थे। यथा द्वौ पुत्रौ तस्य सञ्जातौ यज्ञभूमौ मनोहरौ। एका च दुहिता साध्वी भूम्यन्तरगता शुभा। अत रानियाँ शिशुप्रीति से अपरिचित नही थी। सो रानियो के सहित राजा विदेह को राजकुमारो पर शिशु के समान प्रीति हुई। परन्तु उस प्रीति म ऐसा उत्कर्ष था कि जिसका वर्णन नही हो सकता। अर्थात् वात्सल्यरस की पराकाष्ठा की प्रतीति हुई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



योगियो का परम तत्त्व पचीसवाँ है। चौबीस तत्त्व सांख्यशास्त्र ने माने है। परन्तु योगशास्त्र पचीसवाँ तत्त्व ईश्वर तत्त्व को स्वीकार करता है। इसलिये उसे परम तत्त्व कहा। यह परम तत्त्व क्लेश अविद्या अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश, कर्म · विहित, प्रतिविद्ध तथा मिश्रित, विपाक कर्मफल, जाति, आयु और भोग और आशय वासना से छुवाई नही रखता। यथा क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्ट पुरुषविशेष ईश्वर। पा १-२४। अत शान्त, शुद्ध, सम और सहज प्रकाशरूप कहा। सो योगियो ने परम तत्त्वमय देखा। इससे शान्तरस कहा।

हरिभगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सव सुखदाता ॥
रामहि चितव भायँ जेहि सीया। सो सनेहु सुखु नहि कथनीया ॥३॥

अर्थ हरिभक्तो ने दोनो भाइयो को सब सुख देनेवाले इष्टदेव की भाँति देखा और रामजी को जिस भाव से सीताजी देखती थी वह स्नेह और सुख कथन योग्य नही था।

व्याख्या सब सुखदाता इष्टदेव है। वही पति है। पुरुष है और सब जीव परा प्रकृति हैं। प्रकृतिं विद्धि मे पराम्। जीवभूता महावाहो ययेद धार्यते जगत्। सो हरिभक्तो ने दोनो भाइयो को इष्टदेव रूप देखा। महात्माओ का मत है कि यहाँ इव शब्द एव के अर्थ मे आया है।

अब सीताजी के देखने मे ग्रन्थकार प्रभु न कहकर रामहि कहते है। क्योकि प्रभु मे लक्ष्मणजी का भी ग्रहण होता है। ऊपर का वर्णन दोनो भाइयो के विषय मे है। केवल सीताजी के देखने मे रामजी का अकेले उल्लेख है। क्योकि सीताजी उन्ही को देखती है। उनके देखने मे जो स्नेह और सुख का भाव है वह कथन योग्य नही है। क्योकि उनकी प्रीति अलौकिक है। यथा मन विहँसे रघुवसमनि प्रीति अलौकिक जान।

उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहै कवि कोऊ ॥
येहि विधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहि तस देखेउ कौसलराऊ ॥४॥

अर्थ वह भी हृदय में अनुभव करती है कह नही सकती तो कोई कवि किस प्रकार से कहे। इस भाँति जिसका जैसा भाव था उसने कोसलराउ को वैसा देखा।

व्याख्या लौकिक भावो के लिए शब्द है। क्योकि वे व्यवहार मे आते हैं। अलौकिक के लिए शब्द नही मिलते क्योकि व्यवहार मे उनका चलन नही। ससार दाम्पत्य प्रेम से परिचित है। अत उसके लिए शब्द है। परन्तु राम-सीय म ऐकात्म्य भाव है। यथा गिरा अर्थ जल वीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न। अत इस प्रकार की प्रीति लोक मे नही है। लोक मे कोई इस प्रीति का अनुभव नही करता। अत उसके लिए शब्द भी नही है। सीताजी उसका अनुभव करती हैं। वे भी नही कह सकती। क्योकि शब्द की वहाँ तक गति नही।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या रङ्गभूमि की प्रथम पक्ति मे राजा लोग हैं। दूसरी पक्ति मे पुरवासी है। तीसरी पक्ति मे स्त्रियाँ हैं। उसी क्रम से यहाँ वर्णन है। भिन्नरुचिहि लोक। ससार मे सबकी भिन्न रुचि होती है। इसी भाँति स्त्रियो की भी रुचि भिन्न है। परन्तु यह मूर्ति ऐसी अनूप है कि जिसकी जैसी रुचि है तदनुरूप रूप उसको दिखाई पड रहा है। अत निरीक्षण मे हर्ष कहते हैं। मानो शृङ्गाररस ही परम अनूप मूर्ति से विराजमान है।

विदुषन प्रभु विराटमय दीसा। बहु मुख कर पग लोचन सीसा ॥
जनक-जाति अवलोकहिं कैसे। सजन सगे प्रिय लागहिं जैसे ॥१॥

अर्थ विद्वानो ने प्रभु को विराट् रूप मे देखा कि बहुत से मुख, हाथ, पैर, आँखे और सिर है। जनकजी के भाई बिरादरी कैसे देखते हैं जैसे अपने सगे सम्बन्धी प्रिय लगते है।

व्याख्या विद्वान् देवता रूप है। उन्हे सदा विराट् रूप के दर्शन की इच्छा रहती है। यथा देवा अप्यस्य रूपस्य नित्य दर्शनकाक्षिण। उन्हे भगवान् का अनेक बाहु उदर मुख आँख सहित अनन्तरूप दिखाई पडा। उस विश्वेश्वर विश्वरूप का आदि मध्य और अन्त कुछ भी मालूम न हुआ। यथा अनेक बाहूदरवक्त्रनेत्र पश्यामि त्वा सर्वतोऽनन्तरूपम्। नान्त न मध्य न पुनस्तवादि पश्यामि विश्वेश्वर विश्वरूप। इससे अद्भुतरस कहा।

स्वजन का सर्वत्र लवराम् इस प्राकृत व्याकरण के सूत्र से वकार का लोप होकर सजन रूप हो गया। सजन सगे का अर्थ हुआ सगे सम्बन्धी दामाद बहनोई आदि। अर्थात् जैसा नाता पडनेवाला या वैसे प्रिय जनक के जाति लोगो को जान पडे। इससे हास्यरस कहा।

सहित विदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाति बखानी ॥
जोगिन्ह परम तत्त्वमय भासा। सात सुद्ध सम सहज प्रकासा ॥२॥

अर्थ विदेह के साथ रानियाँ देखती है। उन्हे वैसी प्रीति हुई जैसी छोटे बच्चो पर होती है। उसका वर्णन नही हो सकता। योगियो को शान्त शुद्ध सम सहज प्रकाशरूप परम तत्त्वमय दिखलाई पडे।

व्याख्या . बिलोकहिं रानी पद से रानियो का अनेक होना सिद्ध हुआ। चार रानियो का पता चलता है। यथा चतसृभिस्तु भार्याभिर्यशार्थं दीक्षितोऽभवत्। का पु। और जिस समय सीताजी पृथ्वी से उत्पन्न हुई थी उन्ही के साथ दो पुत्र भी उत्पन्न हुए थे। यथा द्वौ पुत्रौ तस्य सञ्जातौ यज्ञभूमौ मनोहरौ। एका च दुहिता साध्वी भूम्यन्तरगता शुभा। अत रानियाँ शिशुप्रीति से अपरिचित नही थी। सो रानियो के सहित राजा विदेह को राजकुमारो पर शिशु के समान प्रीति हुई। परन्तु उस प्रीति मे ऐसा उत्कर्ष था कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। अर्थात् वात्सल्यरस की पराकाष्ठा की प्रतीति हुई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



योगियो का परम तत्त्व पचीसवाँ है। चौबीस तत्त्व साग्यशास्त्र ने माने हैं। परन्तु योगशास्त्र पचीसवाँ तत्त्व ईश्वर तत्त्व को स्वीकार करता है। इसलिये उसे परम तत्त्व कहा। यह परम तत्त्व क्लेश अविद्या अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश, कर्म विहित, प्रतिविद्ध तथा मिश्रित, विपाक कर्मफल, जाति, आयु और भोग और आशय वासना से छुवाई नही रखता। यथा क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्ट पुरुषविशेष ईश्वर। पा १-२४। अत शान्त, शुद्ध, सम और सहज प्रकाशरूप कहा। सो योगियो ने परम तत्त्वमय देखा। इससे शान्तरस कहा।

हरिभगतन्ह देखे दोउ भ्राता। इष्टदेव इव सब सुखदाता॥
रामहि चितव भायँ जेहि सीया। सो सनेहु सुखु नहिं कथनीया॥३॥

अर्थ हरिभक्तो ने दोनो भाइयो को सब सुख देनेवाले इष्टदेव की भाँति देखा और रामजी को जिम भाव से सीताजी देखती थी वह स्नेह और सुख कथन योग्य नही था।

व्याख्या सब सुखदाता इष्टदेव हैं। वही पति हैं। पुरुष हैं और सब जीव परा प्रकृति हैं। प्रकृतिं विद्धि मे पराम्। जीवभूता महाबाहो ययेद धार्यते जगत्। सो हरिभक्तो ने दोनो भाइयो को इष्टदेव रूप देखा। महात्माओ का मत है कि यहाँ इव शब्द एव के अर्थ मे आया है।

अब सीताजी के देखने मे ग्रन्थकार प्रभु न कहकर रामहि कहते हैं। क्योकि प्रभु मे लक्ष्मणजी का भी ग्रहण होता है। ऊपर का वर्णन दोनो भाइयो के विषय मे है। केवल सीताजी के देखने मे रामजी का अकेले उल्लेख है। क्योकि सीताजी उन्ही को देखती हैं। उनके देखने मे जो स्नेह और सुख का भाव है वह कथन योग्य नही है। क्योकि उनकी प्रीति अलौकिक है। यथा मन विहँसे रघुबसमनि प्रीति अलौकिक जान।

उर अनुभवति न कहि सक सोऊ। कवन प्रकार कहै कवि कोऊ॥
येहि बिधि रहा जाहि जस भाऊ। तेहिं तस देखेउ कौसलराऊ॥४॥

अर्थ वह भी हृदय मे अनुभव करती है कह नही सकती तो कोई कवि किस प्रकार से कहे। इस भाँति जिसका जैसा भाव था उसने कोसलराउ को वैसा देखा।

व्याख्या लौकिक भावो के लिए शब्द हैं। क्योकि वे व्यवहार मे आते हैं। अलौकिक के लिए शब्द नही मिलते क्योकि व्यवहार मे उनका चलन नही। ससार दाम्पत्य प्रेम से परिचित है। अत उसके लिए शब्द हैं। परन्तु राम-सीय म ऐकात्म्य भाव है। यथा गिरा अर्थ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न। अत इस प्रकार की प्रीति लोक मे नही है। लोक मे कोई इस प्रीति का अनुभव नही करता। अत उसके लिए शब्द भी नहीं है। सीताजी उसका अनुभव करती हैं। वे भी नही कह सकती। क्योकि शब्द की वहाँ तक गति नही।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

सबने अपने अपने हृदयगत भावो का प्रतिबिम्ब प्रभु मे देखा।

दो राजत राज समाज महुँ, कोसलराज किसोर।
सुन्दर स्यामल गौर तनु, बिस्व बिलोचन चोर ॥२४२॥

अर्थ विश्व विलोचन के चोर सुन्दर श्यामल और गौर शरीरवाले। कोसलराज के बेटे राजसभा मे विराजित हो रहे है।

व्याख्या राज समाज विराजत रूरे से प्रसङ्ग छोडा था। अब फिर वही से उठा रहे है। राजत राज समाज महुँ कोसलराजकिसोर। दोनो कुमारो की शोभा है। अत सुन्दर स्यामल गौर तन कहते हैं। कोसल राजकिसोर कहने का भाव यह कि राजसमाज को इनके कोसलराजकिसोर होने का ही परिचय मिला है। ये अद्भुत चोर हैं। विना चोरी किये चुराते हैं। नगर देखने मे सबका मन चुराया। यथा चितवत चितहि चोर जिमि लेही और यहाँ राजसमाज मे सबकी आँखे चुरा ली। इसलिए श्रुति तस्कराणा पतये नम कहती है। अर्थात् सबकी आँखें इनके रूप मे बँध गई। कोई दूसरी ओर देखता ही नही है।

सहज मनोहर मूरति दोऊ। कोटि [1]काम उपमा लघु सोऊ॥
सरद चद निदक मुख नीके। नीरज नयन भावते जी के॥१॥

अर्थ दोनो मूर्तियाँ स्वभाव से ही सुन्दर थी। कोटि काम की उपमा भी छोटी पडती है। सुन्दर मुख शरद के चन्द्रमा को लजानेवाले हैं। कमल ऐसी आँखें मन को अच्छी लगती हैं।

व्याख्या आँखो के ही चोर नही मन के भी चोर है। कोटि काम की उपमा दी जा सकती है। फिर भी वह बहुत छोटी पडती है। भुसुण्डिजी कहते है जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहै। जैसे करोडो खद्योतो की सूर्य से उपमा बहुत छोटी पडती है। रामजी सौन्दर्य के सूर्य है। उनके सामने काम खद्योत है। मुख शरत् काल के चन्द्र से भी सुन्दर है। अपेक्षाकृत सुन्दर न कहकर निन्दक कहा। यहाँ ललितालङ्कार हुआ। कमल सी आँखें है। अधिकता यह है कि वे मनभावनी है। क्योकि उनमे चितवन है कमल मे नही है।

चितवन चारु मार मन हरनी। भावत हृदय जात नहिं बरनी॥
कल कपोल श्रुति कुडल लोला। चिबुक अधर सुदर मृदु बोला॥२॥

अर्थ सुन्दर चितवन काम के मन को हरण करनेवाली है। वह मन को अच्छी लगती है। वर्णन नही की जा सकती। सुन्दर कपोल हैं और कान के कुण्डल चञ्चल हैं। सुन्दर ठुड्डी और होठ है। कोमल वाणी है।

व्याख्या अब चितवन का वर्णन करते हैं। यह स्वय काम के मन को हरण

---

१ यह पञ्चम प्रतीपालङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



करती है दूसरों की गणना ही क्या है? उसका वर्णन नहीं हो सकता। केवल इतना ही कह सकते हैं कि मन को अच्छी लगती है। महाकवि विहारी अपने को प्राकृत जीव के चितवन वर्णन में असमर्थ पाते हैं। औरै कछू कहकर वर्णन करते हैं। यथा : अनियारे दीरघ नयन किते न तरुणि समान। वै चितवन औरै कछू जेहि बस होत सुजान। यहाँ तो अखिलरसामृतसार की चितवन है। इसे कौन वर्णन कर सकता है? दर्पण सा कपोल है। उसे लोल कुण्डल बार बार चूमता है। उस कुण्डल की झलक कपोलों में प्रतिबिम्बित हो रही है। चिबुक और अधर सुन्दर हैं। उनकी उपमा नहीं है इससे नहीं दी। उन्हीं होठों द्वारा मृदुवाणी उच्चरित होती है तो शोभा और बढ़ जाती है।

कुमुद बंधु कर निंदक हासा। भृकुटी विकट मनोहर नासा॥
भाल बिसाल तिलक झलकाहीं। कच बिलोकि अलि अवलि लजाहीं॥३॥

अर्थ : चाँदनी की निन्दा करनेवाली हँसी, टेढी भौंहें, मनोहर नासिका, विशाल भाल पर झलक रहे हैं और बालों को देखकर भौंरों की श्रेणी लज्जित होती है।

व्याख्या : शरच्चन्द्रनिंदक मुख है। मुख पर प्रकाश हँसी से ही आता है। इसलिए हँसी को चाँदनी का निन्दक कहना प्राप्त है। काम के धनुष के समान टेढ़ी भौंहें हैं। भौंहे की शोभा टेढ़ी होने में है। भाल विसाल उच्च विचार का स्थान है। उस पर तिलक झलक रहा है। प्रभु के शरीर की द्युति से तिलक में चमक आ गई है। पहिले कह आये हैं तिलक रेख सोभा जनु चाकी। मेचक कुंचित केश हैं। इसलिए अलिअवलि का लजाना कहते हैं।

पीत चौतनी सिरन्हि सुहाई। कुसुम कली बिच बीच बनाई॥
रेखा रुचिर कंबु कल ग्रीवाँ। जनु त्रिभुवन सोभा की सीवाँ॥४॥

अर्थ : पीली चौगोसिया चार कोनेवाली : टोपियाँ सिर पर शोभित हैं। बीच बीच में फूलों की कलियाँ बनी हुई हैं। शङ्ख ऐसे सुन्दर गले में सुन्दर रेखाएँ हैं। मानो ये तीनों भुवनों की शोभा की सीमा है।

व्याख्या : बाजार में गये थे तब रुचिर चौतनी पहन रक्खी थी। आज राजसमाज में जाना था इसलिए कामदार टोपियाँ पहने हुए हैं। शङ्ख से सुन्दर कण्ठ में तीन रेखाएँ हैं। मानो उन्होंने त्रिभुवन की शोभा को मर्यादित कर रक्खा है। अर्थात् जितनी शोभा हैं वे इसके नीचे तक ही हैं। पद पाताल सीस अजधामा। पैर पाताल और सिर ब्रह्मलोक है। अतः त्रैलोक्य की शोभा गले के नीचे ही नीचे है। सातों पाताल, भूलोक, भुवर्लोक और स्वर्लोक उनके उरःस्थल तक हैं। इसके ऊपर महः जनः तपः और सत्यलोक ये चारों ब्रह्मलोक के भेद हैं। ग्रीवा महर्लोक है। मुख जनलोक है। ललाट तपलोक है और शीर्ष सत्यलोक है। यथा : उरःस्थलं ज्योतिरनीकमस्य ग्रीवा महर्वदनं वै जनोऽस्य। तपोरराटी विदुरादिपुंसः सत्यं तु

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्णं । भा २ १ २८ । अत उन उन लोको की शोभा उन उन अङ्गो मे है । महर्लोक के नीचे त्रिलोक है । अत ग्रीवा की तीन रेखा को त्रिभुवन की शोभा की सीमा होना पूर्णत उपयुक्त है ।

दो कुजर मनि कठा कलित, उरन तुलसिका माल ।
वृषभ कध केहरि ठवनि, वल निधि वाहु विसाल ॥२४३॥

अर्थ गजमुक्ता का सुन्दर कण्ठा, छातियो पर तुलसी की माला, साँड सा कन्धा, सिंह सा ठाट, विशाल भुजाएँ वल के भण्डार हैं ।

व्याख्या आज नाग मणिमाला नहीं है । तुलसीका माल गले है । गजमुक्ता का कण्ठा है । वृषभकन्ध होना वीर का लक्षण है । केहरि ठवनि मे वीर की शोभा है और बाहु विसाल वीर के पराक्रम का बोधक है । उरन तुलसिका माल से शृङ्गार की पूर्णता कही ।

कटि तूनीर पीत पट बाँधे । कर सर धनुष वाम वर काँधे ॥
पीत जग्य उपवीत सुहाए । नख सिख मजु महाछवि छाए ॥१॥

अर्थ कमर मे पीताम्बर और तरकस बाँधे हुए थे । हाथ मे तीर और बायें कन्धे पर धनुष था । पीला यज्ञोपवीत शोभित था । नख से शिख तक महाछवि छाई हुई थी ।

व्याख्या प्रभु की मूर्ति इस समय अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित है । तरकस पीताम्बर से बँधा हुआ है जिसमे सग्राम उपस्थित होने पर गिरे नहीं । तुरन्त चोट करने के लिए एक तीर तरकस से बाहर हाथ मे है । बायें कन्धे पर धनुष है जिसमे लते देर न लगे । अभी यज्ञ की रक्षा करके चले आ रहे हैं । भेंट म ब्राह्मणा से पीतयज्ञोपवीत मिला है । उसे पहने हैं । आज का पीतयज्ञोपवीत भी जीत का ही चिह्न है । सिखनख वर्णन करके अब नखशिख आलोचना करते है । मनहु मनोहरता छवि छाए से उपक्रम करके महा छवि छाए मे उपसहार करते है । सीताजी स्वय महाछवि हैं । यथा छविगन मध्य महा छवि जैसी और प्रभु महा छवि छाए हैं अर्थात् रमानिवास हैं ।

देखि लोग सब भये सुखारे । एकटक लोचन चलत न तारे ॥
हरषे जनक देखि दोउ भाई । मुनि पद कमल गहे तब जाई ॥२॥

अर्थ देखकर सब लोग सुखी हुए । आँखे एकटक रह गई । पुतली भी नहीं हिलती थी । दोनो भाइयो को देखकर जनक जी हर्षित हुए । तब मुनिजी के चरण कमल की वन्दना की ।

व्याख्या सब लोग अपने घरो का काम छोड छोडकर दर्शन के लिए आये हैं । यथा चले सकल गृह काज बिसारी । सो देखकर सब सुखी हुए । सुख न रहे हैं । एकटक देख रहे हैं । स्तब्ध से हो रहे हैं । इसलिए विस्व विलोचन चार कहा था ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वुलाने पर तुरत चले आये। जनकजी का भाव इनके प्रति जैसा है सो कह चुके हैं। यथा : ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय वेप धरि सोइ कि आवा। अत इन्हे देखकर हर्पित हुए। मुनिजी का चरण जाकर पकडा कि आप के अनुग्रह से इनका आना हुआ।

करि विनती निज कथा सुनाई। रंग अवनि सब मुनिहि देखाई॥
जहँ जहँ जाहिं कुँअर वर दोऊ। तहँ तहँ चकित चितवत सब कोऊ॥३॥

अर्थ : विनती करके सब कथा सुनाई। रगभूमि सब मुनिजी को दिखाई। जहाँ-जहाँ दोनों कुमार जाते हैं वहाँ वहाँ सब लोग चकित होकर देखते है।

व्याख्या : दक्षयज्ञविध्वस के बाद महादेवजी ने निमि के जेठे भाई देवरात को यह धनुप दिया था। तब से इसी कुल मे यह धनुप चला आता है। सीताजी के अत्यन्त सुन्दरी होने से राजाओ मे बडा क्षोभ हुआ। सीताजी के व्याह तथा रक्षा मे बडे जनसहार का भय हुआ। अत. राजा ने सर्वोच्च वीर बलवान् को कन्या देना निश्चय किया। परीक्षा के लिए धनुपभग का प्रण किया। ये सब बाते मुनिजी को कह सुनाई। तब जिस रगभूमि का वर्णन हो चुका है उसे घुमाकर मुनिजी को दिखलाया। मुनिजी के साथ ही साथ दोनो भाई जा रहे हैं। अति शोभा देखकर लोग चकित हो रहे हैं। निकट से स्थिर होकर देखने का सौभाग्य अब हुआ है।

निज निज रुख रामहिं सबु देखा। कोउ न जान कछु मरमु विसेखा॥
भलि रचना मुनि नृप सन कहेऊ। राजा मुदित महासुख लहेऊ॥४॥

अर्थ : अपने-अपने रुख के अनुसार सब ने रामजी को देखा। विशेप मर्म को किसी ने नही जाना। मुनिजी ने राजा से कहा कि रचना अच्छी है। राजा प्रसन्न हो उठे और उन्हे बडा सुख हुआ।

व्याख्या : रुख का अर्थ भावना है। यथा : जिन्हकै रही भावना जैसी। हरि मूरति देखी तिन तैसी। इसी बात से उपक्रम करके देखने के प्रसङ्ग का निज निज रुख रामहिं सब देखा से उपसहार करते हैं। आने के साथ ही सबका देखना लिख दिया। पर भली भांति सबको दर्शन मुनिजी के साथ घूमकर सारी रंगभूमि देखने के समय हुआ। इसीलिए चकित होकर देखना भी कहते है। रणधीर लोग वीररस का रूप देखते हैं। कुटिल यम रूप देखते है। साधु इष्टदेव रूप देखते हैं। सबका देखना पृथक् पृथक् प्रकार का है। पर यह कोई नही जानता कि दूसरे, दूसरे प्रकार से देख रहे है। सब जानते हैं कि जैसा मैं देखता हूँ वैसा ही सब देखते है।

विश्वामित्र मुनि दूसरी सृष्टि रचनेवाले हैं। इनका भली रचना कहना सामान्य बात नही है। भूमिका मे दोप होने से विघ्न होता है। भूमिका की रचना मे बडी पण्डिताई है। मण्डपकुण्डशुद्धि आदि ग्रन्थ इसके लिए बने हैं। मुनिजी ने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भली रचना कहा तो यज्ञ के निर्विघ्न समाप्ति मे सन्देह नहीं है। इसलिए राजा को इतनी प्रसन्नता और सुख हुआ।

दो सब मचन्ह ते मंच एक, सुन्दर विसद बिसाल।
मुनि समेत दोउ बंधु तहँ, बैठारे महिपाल ॥२४४॥

अर्थ मब मञ्चो मे एक मञ्च अधिक सुन्दर निर्मल और विशाल था। उसी पर राजा ने मुनि के साथ दोनो भाइयो को बिठाया।

व्याख्या सुन्दर मञ्च की बनावट कही। विशद से चमक कही। विशाल से बडाई कही। राजा ने उस मञ्च को पहिले से ही खाली रक्खा था। सब राजाओ के लिए पहिले से ही मञ्च नियत है। विश्वामित्रजी के सर्वोत्तम मञ्च पर आसीन होने मे किसी राजा को आपत्ति नही हो सकती थी।

प्रभुहि देखि सब नृप हियँ हारे। जनु राकेस उदय भए तारे॥
असि प्रतीति सब के मन माहीं। राम चाप तोरब सक नाहीं॥१॥

अर्थ प्रभु को देखकर सब राजाओ ने हृदय से हार मानी जैसे पूर्ण चन्द्र के उदय से तारे हार मान जाते है। सबके मन मे ऐसा ही विश्वास है कि रामजी धनुष को तोडेगे। इसमे सन्देह नही है।

व्याख्या पूर्ण चन्द्र और तारो की उपमा पहिले दे आये है। अकेला चन्द्रमा अन्धकार का नाश करता है। तारों का समूह नही कर सकता। यथा एकश्चन्द्रस्तमो हन्ति न च तारागणैरपि। अत राजाओ का हिम्मत हारना स्वाभाविक था। मनमे तो तेजोविशेष के देखते ही विश्वास हो गया कि नि सन्देह रामजी धनुष तोडेंगे। पर सब तो सरल नहीं है। कितने कपटी आसुरी प्रकृति के है। वे बाहर से इस बात को स्वीकार नहीं करते।

बिनु भंजेहु भव धनुषु बिसाला। मेलिहि सीय राम उर माला॥
अस बिचारि गवनहु घर भाई। जसु प्रतापु बलु तेजु गँवाई॥२॥

अर्थ शिवजी का धनुष बिना तोडे रामजी के गल मे सीता माला डालेगी। हे भाई! ऐसा विचार करके, यश, प्रताप, बल और तेज को खोकर के घर जाते जाओ।

व्याख्या रणधीर प्रायेण सरल होते हैं। उन्होने जब मनहु वीररस धरे सरीर देखा तो बोल उठे राम चाप तोरब सक नाहीं। मान लिया कि यदि धनुष न टूटे भव धनुष कहकर दिव्य और विशाल कहकर कठिन और गुरु कहा तो सीता तो जयमाल राम के ही गले मे डालेगी। क्योकि कन्या रूप को वरती है। और ये महारूपवान् हैं।

इसलिए चलो घर चलें। यहाँ कार्यसिद्धि होने की नही। यन्चो से पराभव हुआ। इसलिए यश, प्रताप, बल और तेज सब गया। सद्गुण की निर्मल ख्याति

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यश है। यथा साद्गुण्यैर्निर्मलै स्यात कीर्तिमानिति कथ्यते। शत्रु का पौरुषोद्भूत तापक प्रताप है। यथा प्रतापी पौरुषोद्भूतशत्रुतापि प्रसिद्धिभाक्। महत् प्राण से पूर्ण होना ही बल है। यथा प्राणेन महता पूर्णो बलीयान् इति कथ्यते। अवज्ञा का सहन न करना ही तेज है। यथा तेजो बुधैरवज्ञादेरसहिष्णुत्वमुच्यते। यह सब गया। आगे चलकर पुर नर-नारि कहेंगी। यथा देखे नर नारि कहै साग खाइ जाये माइ। बाहु पीनपावर न पीना खाइ पोखे हैं।

बिहँसे अपर भूप सुनि बानी। जे अविवेक अध अभिमानी॥
तोरेहुँ धनुष ब्याह अवगाहा। बिनु तोरे को कुँअरि बिआहा॥३॥

अर्थ यह वाणी सुनकर दूसरे राजा जो अविवेक से अन्ध और अभिमानी थे हँस पडे कहने लगे धनुष तोडने पर भी व्याह तो अथाह मे ही है। फिर बिना तोडे कुमारी को कौन व्याह सकता है ?

व्याख्या धनुष तोडने पर कहा जायगा कि इन्होने जल्दी कर दी नही तो हम तोड डालते। सब लोग बिगड खडे हो जायँगे। युद्ध होने लगेगा। उस गोलमाल मे सीता किसके हाथ लगेगी कौन कह सकता है। इसलिए कहता हूँ कि धनुष टूटने पर भी व्याह अथाह मे ही है। बिना तोडे इतने राजाओ के रहते कौन व्याह कर सकता है। जनक अपना प्रण भङ्ग करके किसी के साथ व्याह नही कर सकते।

एक बार कालउ किन होऊ। सिय हित समर जितब हम सोऊ॥
यह सुनि अवर महिप मुसुकाने। धरमसील हरिभगत सयाने॥४॥

अर्थ काल भी क्यो न हो। एक बार सीता के लिए हम उसे भी लडाई मे जीतेंगे। यह सुनकर दूसरे राजा जो धर्मशील और सयाने हरिभक्त थे मुसकराये।

व्याख्या असुर छल छोनिपवेष बोले। यह तो काल सम है। काल नही है। एकबार हम काल को भी समर मे माया के द्वारा जीत लेंगे। एक ही बार जीतने से तो सीता की प्राप्ति हो जावेगी। माया हटने पर दोबारा जीतने की आवश्यकता न रह जायगी। छल माया एक वस्तु है। यथा सोइ छल हनूमान सन कीन्हा।

उनके गाल बजाने पर मुसकराये। अविवेकी अन्ध अभिमानियो की भाँति हँसे नही। विवेक ही सच्ची आँख है। यथा तेहि करि विमल विवेक बिलोचन। जिसे एकदम विवेक नही है वही अन्ध अविवेकी है और उनमे भी जो अभिमानी हैं वे हसे थे। उनकी बातो पर मुसकरानेवाले ठीक उनसे विपरीत है। वे अन्ध अविवेकी थे। ये धर्मशील है। यथा धर्मसील कोटिक महँ कोई। विषय विमुख विरागरत होई। वे अन्ध अभिमानी हैं। ये सयाने हरिभक्त है। अत उनके अवि-वेकमय अभिमानयुक्त डीग मारने पर मुसकराये।

दो सीय बिआहब राम, गरब दूरि करि नृपन्ह के।
जीति को सक संग्राम, दसरथ के रन बाँकुरे॥२४५॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ सब राजाओ के अभिमान को दूर करके सीता को राम ब्याहेगे। दशरथ के रण बाँकुरे को रण मे कौन जीत सकता है ?

व्याख्या अविवेक अन्ध अभिमानी के प्रति कहते है नृपो का गर्व दूर करके सीता को राम ब्याहेगे। तुम नही ब्याहोगे। क्योकि राम सत्यसकल्प प्रभु है। छल छोनिपो से कहते हैं कि जीति को सक सग्राम। उनसे माया नही चलेगी। वे दशरथ के रणबाँकुरे हैं। रणबाँकुरे माया का मर्दन करते है। यथा ' हनुमत अगद नील नल अतिबल लरत रनबाँकुरे। मर्दहि दसानन कोटि कोटिन्ह कपट भूभट आँकुरे। दशरथ के कहने का भाव यह कि पिता का गुण पुत्र मे है। ससार दशरथ के विषय मे जानता है सुरपति बसहि बाहुबल जाके। नरपति सकल रहहि रुख ताके।

व्यर्थ मरहु जनि गालु बजाई। मन मोदकन्हि कि भूख बुताई ॥
सिख हमार सुनि परम पुनीता। जगदबा जानहु जिय सीता ॥१॥

अर्थ गाल बजाकर व्यर्थ प्राण मत दो। मन के लड्डुओ से भूख नही जाती। हमारी परम पवित्र शिक्षा सुनकर सीता को जगदम्बाजी जानो।

व्याख्या बड हित हानि जानि बिनु जूझे। यदि कार्य म विपत्ति आती है तो बकवादी मारे जाते हैं। यदि कार्ये विपत्ति स्यात् मुखरस्तत्र हन्यते। इस भाँति गाल बजाने से सीटने से क्या लाभ है ? इससे सीता की प्राप्ति नही होगी और दोषी गिने जाकर मारे जाओगे। मन के लड्डू खाने से भूख नही जाती। कालहु सिय हित समर जितब। ऐसा कहना मन का लड्डू खाना है। तुम्हारा सामर्थ्य काल को रण मे जीतने का है ? समझो क्या कह रहे हो ? हमारी शिक्षा परम पवित्र है उसे सुनो। राम की योग्या होने से सीता को जगदम्बा जानो। रहिमन नारि गरीब की अपनी कहै न कोय। हरिपतनी अपनी कहै कौन फजीहत होय।

जगत पिता रघुपतिहि बिचारी। भरि लोचन छबि लेहु निहारी ॥
सुदर सुखद सकल गुन रासी। ए दोउ बधु सभु उर बासी ॥२॥

अर्थ रामजी को जगत् पिता विचार करके आँख भर छवि देख लो। सुन्दर सुख देनेवाले सब गुणो के राशि ये दोनो भाई महादेव के हृदय मे बसनेवाले है।

व्याख्या ये उपदेश देनेवाले सयाने भक्त है। ये भगवान् को सब सुखदाता इष्टदेव के रूप मे देख रहे हैं। अत कहते है कि विचार करो। ऐसी मूर्ति जगत्-पिता को छोडकर और किसकी हो सकती है। बडा भारी सुयोग उपस्थित है। ये शम्भु के हृदय मे रहनेवाले दोनो भाई नयन के विषय हो रहे हैं। कैसी सुन्दर सुखद और सर्वगुणसम्पन्न मूर्तियाँ हैं। इन्हे आँख भर देखो। फिर इनके दर्शन का कब सुयाग होगा इसे कौन कह सकता है ? राम जानकी का दर्शन जगत्पिता और जगदम्बा रूप से करके आनन्द लो।

सुधा समुद्र समीप बिहाई। मृगजल निरखि मरहु कत धाई ॥
करहु जाय जा कहु जोइ भावा। हम तौ आजु जनम फलु पावा ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : अमृत के समुद्र को पास मे छोडकर मृगजल देखकर दौडकर क्यो प्राण देते हो ? जिसे जो अच्छा लगे वह जाकर वैसा करे। हमे तो आज जन्म होने का फल मिल गया।

व्याख्या ब्रह्म पियूष मधुर सीतल जो पै मन वह रस पावै। सो वही अमृत करतल हो रहा है। माया मृगजल है। उसकी प्राप्ति नही हो सकती। उसके पीछे दौडने मे व्यर्थ का श्रम और परिणाम मृत्यु ही है। भाव यह है कि जगदम्बा की ओर मत दौडो। उन्हे दूर से प्रणाम करो। वह महामाया है। यथा सो अवतरिहि मोरि यह माया। उनकी प्राप्ति के पीछे दौडते दौडते मर जाओगे। रामजी की प्राप्ति इस समय सोलह आना सुलभ है और सीताजी सर्वथा अप्राप्य है। उन लोगो के मन मे शिक्षा जमती न देखकर कहते है कि मुझे जो कहना था कह चुका। अब यथेच्छसि तथा कुरु जैसा जी मे आवे वैसा करो। अन्धे को कूएँ मे गिरते देखकर निषेध कर देना धर्म है। सो मै पुकारकर किये देता हूँ। मैं तो कृतकृत्य हो गया। भगवत्प्राप्ति ही जन्म का फल है सो मुझे मिल गया। यथा मम दर्शन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा।

अस कहि भले भूप अनुरागे। रूप अनूप बिलोकन लागे॥
देखहिं सुर नभ चढे बिमाना। बरपहि सुमन करहि कल गाना॥४॥

अर्थ . ऐसा कहकर भले राजा प्रेम मे पग गये। अनूप रूप की झाँकी लेने लगे। देवता लोग आसमान मे विमान पर चढे हुए देख रहे है। पुष्पवृष्टि करते हैं और सुन्दर गान करते है।

व्याख्या : कन्हु जाइ जा कहँ जोइ भावा। कहकर बातचीत बन्द कर दी। एकाग्र होकर सगुण निर्गुणरूप रूपअनूप देखने लगे। यथा : चितवहिं सादर रूप अनूपा। तृप्ति न मानहि। उनकी तृप्ति नही हो रही है। इधर स्वयवर देखने के लिए देवता लोग विमानो पर चढकर आकाश मे आगये। शोभा देखकर हर्षित होकर प्रभु पर पुष्पवृष्टि की। पुष्पो से पूजा और कलगान द्वारा स्तुति करने लगे।

दो जानि सुऔसर सीय तव, पठई जनक बोलाइ।
चतुर सखी सुदर सकल, सादर चली लवाइ॥२४६॥

अर्थ सुअवसर जानकर जनकजी ने तब सीताजी को बुला भेजा और चतुर तथा सुन्दर सखियाँ उन्हे लिवा ले चली।

व्याख्या : राजा लोग तो सबेरे से ही डँटे हुए है राजकुँअर भी आगये। उत्सुकता बढी हुई है। अत राजा ने देखा कि यही सुअवसर है धनुष टूटते ही जयमाल पडनी चाहिए। अत सीताजी को बुला भेजा। चतुरसखी जिनका स्वरूप भी सुन्दर है जो चित्तवृत्ति को समझे यथा अवसर कार्य करें। उचित शिक्षा कुँअरि को दे सकें। आदर के साथ जानकीजी को लिवा ले चली : ये वही थी जो गिरिजापूजन के साथ थी। यथा ' सग सखी सब सुभग सयानी। अर्थात् पालकी पर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चढाकर ले चली। यथा राजा की रजाइ पाइ सचिव सहेली धाइ। सतानद ल्याये सिय सिविका चढाइके। गी ।

सिय सोभा नहि जाइ बखानी। जगदंबिका रूप गुन खानी ॥
उपमा सकल मोहि लघु लागी। प्राकृत नारि अग अनुरागी ॥१॥

अर्थ सीताजी की शोभा की प्रशसा नही की जा सकती। क्योकि वे जगदम्बिका है और रूप गुण की खानि है। मुझे सभी उपमाएँ हलकी जची। क्योकि वे लौकिक स्त्रियो से मेल खाती है।

व्याख्या न वर्णन किये जाने का दो कारण देते है। एक तो वे जगदम्बा है उनकी शोभा का बखान उन्ही के बच्चा द्वारा अनुचित है। दूसरी बात यह कि वर्णन करना अशक्य है। जिन रूप गुणा से तुलना करनी है उन्ही की ये खानि है। जिसका वर्णन सीधे सीधे नही हो सकता उसके लिए उपमाएं दी जाती हैं। उपमाएँ प्रत्येक अग की अलग अलग हैं। जैसे मुख की कमल या चन्द्र, नासिका शुकतुण्ड, ओष्ठ की बिम्बाफल इत्यादि। परन्तु ये सब उपमाएँ तो लौकिक स्त्रियो के अङ्गो से मेल खाती है। अत उन्ही स अङ्गो की समता की जाती है। इसलिए वे उपमाएँ यहाँ पर मुझे जँची नही।

सिय बरनिय तेइ उपमा देई। कुकवि कहाइ अजस को लेई ॥
जौ पटतरिअ तीय सम सीया। जग अस जुवति कहाँ कमनीया ॥२॥

अर्थ सीताजी का वर्णन करके उपमा देकर कौन कुकवि कहलाकर अपयश ले। यदि सीता का स्त्री के साथ पटतर दिया जाय तो ऐसी सुन्दरी स्त्री ससार म है कहाँ ?

व्याख्या जिसकी लौकिक शाभाएँ सब देखी हुई हं वे स्वयं कहते है। जासु बिलोकि अलौकिक सोभा। परम पुनीत मोर मन छोभा। उसकी शोभा का पटतर देने से लौकिक स्त्रियो के अङ्गो की उपमा दने से वर्णन करनेवाला कुकवि कहलायेगा और उसका दुर्यश होगा। यथा वैदेही मुख पटतर दीन्हे। हाइ दोष बड अनुचित कीन्हे। शम्भु के प्रसाद से तुलसी कवि हुआ है। कुकवि बनने क्यो जाय ? यदि प्रत्यङ्ग वर्णन न करक किसी सुन्दरी स्त्री से ही उपमा दी जाय तो ऐसी सुन्दरी स्त्री संसार मे कहाँ है ?

गिरा मुखर तन अर्ध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी ॥
बिप बारुनी बधु प्रिय जेही। कहिअ रमासम किमि बैदेही ॥३॥

अर्थ सरस्वती बहुत बोलती हैं। भवानी का शरीर ही आधा है। पति को शरीर रहित जानकर रति अति दु खित ही रहती है। जिसे विष और वारुणी से भाई प्रिय है। उस रमा को वैदेही के समान कैसे कहा जाय ?

व्याख्या यदि ससार म ऐसी सुन्दरी कोई नही है तो दिव्य स्त्रिया म

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सरस्वती, भवानी, रति और रमा की बड़ी ख्याति है। उन्हीं में से किसी को उपमा दी जाय तो यह भी नहीं बनता। सरस्वती बोलती बहुत हैं। सम्पूर्ण शास्त्र उन्हीं के कहे हुए हैं और कहती ही जाती हैं। यथा : पति वरन्यौ चार मुख पत वरन्यौ पांच मुख नाती बरन्यौ षट मुख तदपि नई नई। और बकवादिनी स्त्री की शोभा नहीं। भवानी का शरीर ही आधा है। आधा शरीर उनके महादेव हैं। अर्धनारीश्वर मूर्ति प्रख्यात है। फिर आधी स्त्री की शोभा ही क्या ? हाँ रति में ये दोष नहीं हैं। वे अल्पभाषिणी भी हैं और उन्हें अंग भी पूरे हैं। पर उन्हें मानसिक खेद है। उनके पति अनङ्ग हैं। उन्हें अङ्ग ही नहीं। अत उसके मुख पर प्रसन्नता नहीं और जो प्रसन्न नहीं उसकी शोभा भी नहीं। अब रह गईं लक्ष्मी। वे सर्वगुणसम्पन्ना हैं। पर उनमें एक बड़ा दोष है। वे विष और मद्य की बहन हैं। भाई तो उन्हें और भी हैं। पर वे प्रिय नहीं। प्रिय हैं विष और मद्य। ये सदा उनके साथ रहते हैं। अत. मालूम होता है कि उनमें भाई का गुण मादकता है। कहा भी है कि कनक कनक ते सौगुनी मादकता अधिकात। वे खाये बौरात हैं ये पाये बौरात। तब रमा के ऐसी वैदेही को कैसे कहें ?

जौ छवि सुधा पयोनिधि होई। परम रूपमय कच्छप सोई॥
सोभा रजु मंदरु सिंगारू। मथै पानि पंकज निज मारू॥४॥

अर्थ : यदि छविरूपी अमृत का समुद्र हो और परम रूपमय कच्छप वही हो और शोभा को रज्जु तथा शृङ्गार को मन्दर बनाकर अपने करकमलों से कामदेव मन्थन करें।

व्याख्या : लक्ष्मी की उत्पत्ति के जो साधन थे वे सदोष थे इससे लक्ष्मी में दोष आगया। अतः साधनों में उलटफेर करके दूसरी लक्ष्मी उत्पन्न करनी चाहिए। अब सामग्री कहते हैं। यह समुद्र न हो छविसुधा का समुद्र हो। कच्छपावतार विभवरूप न होकर परम रूप हो। परम रूप वासुदेव[1] व्यूह है। वासुकी नाग की रज्जु न होकर शोभा रज्जु हो। डोरी के स्थान पर मन्दर न होकर शृङ्गार हो, मन्थन करनेवाले देवासुर न होकर कामदेव हो।

दो. एहि बिधि उपजै लच्छि जब, सुंदरता सुख मूल।
तदपि सकोच समेत कबि, कहहिं सीय सम तूल॥२४७॥

अर्थ : इस विधि से यदि सुन्दरता और सुख की मूलभूता मूर्ति लक्ष्मी उत्पन्न हों तब भी सङ्कोच के साथ कवि लोग सीताजी के लगभग कहेंगे।

व्याख्या : लक्ष्मी को उत्पन्न करना और अपनी चाही हुई विधि से उत्पन्न करना किसी का साध्य नहीं है। फिर भी यदि मान लिया जाय कि इस भाँति जो

---

१. ब्रह्म चतुर्व्यूह रूप है. १. वासुदेव २. सङ्कर्षण ३. प्रद्युम्न और ४. अनिरुद्ध। इनमें वासुदेव व्यूह स्वयं अवतारी हैं। अन्य अवतार हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


लक्ष्मी उत्पन्न हो तो उनकी उपमा दी जा सकती है। उसपर कवि कहते है कि फिर भी कविसमाज सङ्कोच के साथ सीताजी के लगभग स्वीकार कर लेगा। सङ्कोच का कारण यह कि शोभा और शृङ्गाररस का मन्थन न हुआ। उनकी उपस्थिति मात्र थी। जहाँ इनका भी मन्थन हुआ है वहाँ कहने मे सङ्कोच नही है। यथा ' सुषमा सुरभि सिंगार छीर दुहि मदन अमियमय कियउ दहीरी। मथि माखन सिय राम सँवारेउ सकल भुवन छवि छाछ महीरी। गी । समतूल का भाव यह कि रूप और गुण दोनो मे समता हो।

चली सग लै सखी सयानी। गावत गीत मनोहर बानी ॥
सोह नवल तनु सुदर सारी। जगत जननि अतुलित छबिभारी ॥१॥

अर्थ सयानी सखी सीताजी को लेकर चली। मनोहर वाणी से गीत गा रही थी। नये शरीर पर सुन्दर सारी की शोभा हो रही थी। जगत्-जननी की ऐसी भारी छवि थी कि किसकी तुलना नही हो सकती।

व्याख्या चतुर सखी सुदर सकल सादर चली लवाइ से प्रसङ्ग छोडा था। बीच मे शोभा का वर्णन करने लगे। अब फिर वही से प्रसङ्ग प्रारम्भ करते हैं। फुलवारी मे भगवती स्वय जा रही थी। इसलिए लिखा सग सखी सब सुभग सयानी। गावहि गीत मनोहर बानी। यहाँ सखियो के लिवा जाने से जाती हैं। अत कहते हैं चली सग लै सखी सयानी। मनोहर वाणी से उनका गीत गाना दोनो स्थलो मे समान है। भेद इतना ही है कि फुलवारी मे भवानी के गीत होते थे यहाँ स्वयवर के गीत हो रहे है।

भूषन सकल सुदेस सुहाए। अग अग रचि सखिन्ह बनाए ॥
रगभूमि जब सिय पगु धारी। देखि रूप मोहे नर नारी ॥२॥

अर्थ सखियो ने प्रत्येक अङ्ग मे सब अच्छे गहने अपने अपने स्थान पर रचकर सँवारा था। रङ्गभूमि मे जब सीताजी ने पदार्पण किया तो रूप देखकर नर और नारियाँ मोहित हो गईं।

व्याख्या . आभरण बत्तीस कहे गये है। सो प्रत्येक क लिए नियत स्थान है। जिस अङ्ग के लिए जिस स्थान पर जो गहना पहनाया जाता है वही पर होना चाहिए। इनके पहिनाने मे बडी पण्डिताई है। सब लोग गहना नही पहना सकते। इसलिए रचकर सँवारना कहते है। सखियो का कर्त्तव्य १ मण्डन २ शिक्षा ३ उपालम्भ और ४ परिहास है। उपालम्भ और परिहास फुलवारी प्रसङ्ग मे वह आये है। मण्डन इस समय कह रहे हैं। शिक्षा समय पाकर आगे कहगे।

इस प्रकार शृङ्गारित होकर जब रगभूमि मे पदार्पण किया तो रूप देख कर नरनारी मोह गये। नारी नारी के रूप पर मोहित नही होती। ऐसा साधारण नियम है। पर अलौकिक शोभा ऐसी है कि सहज पुनीत श्रीरामजी का मन क्षुब्ध हो गया तो नारियो का मोहना कौन आश्चर्य है। सभी नियमो मे अपवाद होता

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है। विश्वमोहिनी का रूप देखकर लक्ष्मी मोहती थी। यथा श्री बिमोह जेहि रूप निहारी। प्राकृत नारियों की गिनती ही क्या है? वही विश्वमोहिनी तो सीताजी हैं। यथा सो अवतरिहि मोर यह माया। रामजी के रंगभूमि में पधारने पर सब चकित हुए थे। सीताजी के पधारने पर मोहित हो गये।

हरषि सुरन्ह दुंदुभी बजाई। बरषि प्रसून अपछरा गाई॥
पानि सरोज सोह जयमाला। अवचट चितए सकल भुआला॥३॥

अर्थ : देवताओं ने हर्षित होकर डंका दिया। अप्सराओं ने पुष्पवृष्टि करके गान किया। हाथों में कमल की जयमाला है। सब राजाओं ने एकाएक उस ओर देखा।

व्याख्या : प्रभु के आने पर देवताओं ने फूल बरसाये थे। यथा बरषहिं सुमन करहिं कल गाना। पर भगवती पर पुष्पवर्षा का साहस नहीं होता। अतः दुंदुभी बजाने लगे। पुष्पवर्षा अप्सराओं ने की। स्त्री पर पुष्पवर्षा का अधिकार स्त्रियों को ही है और उन्होंने ही गान किया। उन्हें शोभा के गान का स्त्री होने से अधिकार था। विजय का कारण प्रस्तुत हो जाने से डंका बजाया।

जयमाल पर राजा लोग दृष्टि लगाये हुए थे। जयमाल ही सीताजी के निश्चित रूप से पहिचानने का चिह्न था। यहाँ सरोज देहलीदीपकन्याय से दोनों ओर अर्थ देगा। अर्थात् करकमलों में कमल की जयमाला थी। राजाओं ने एकाएक देखा। पर सीताजी ने उन्हें नहीं देखा।

सीय चकित चित रामहि चाहा। भए मोहबस सब नरनाहा॥
मुनि समीप देखे दोउ भाई। लगे ललकि लोचन निधि पाई॥४॥

अर्थ : सीता ने चकित चित्त से राम को देखा कि वे कहाँ हैं? और सब राजा मोह के वश हो गये। मुनिजी के पास दोनों भाइयों को देखा। उनके नेत्र निधि पाकर उसी ओर ललककर लग गये।

व्याख्या : सीताजी की आँखें उस समाज में रामजी को ढूँढ़ने लगीं। सब राजा मोहित हो गये। प्रत्येक ने समझा कि मुझको ही देख रही हैं। जो ग्यानिन्ह-कर चित अपहरई। बरिआईं बिमोह बस करई उसकी दृष्टि है। जिसपर पड़ती है वही मोहित हो जाता है। चारों ओर घूमकर निगाह मुनि के पास बैठे हुए दोनों भाइयों पर पड़ी। पर ठहरी अपनी निधि पर। यथा हरखे जनु निजनिधि पहिचानी। पहिचाना पहिले ही था। अब प्रेम के साथ जाकर वहाँ लग गये।

दो. गुरजन लाज समाजु बड़, देखि सीय सकुचानि।
लागि बिलोकन सखिन्ह तन, रघुबीरहि उर आनि॥२४८॥

अर्थ : गुरुजनों की लज्जा से तथा बड़ा जमावड़ा देखने से सीताजी सङ्कुचित हुईं और रामजी को हृदय में लाकर सखियों की ओर देखने लगीं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या आँखें जाकर रामजी मे तो लगी। पर उसमे दो प्रकार की बाधाएँ उपस्थित हुई। वही पर महाराजा जनक सतानन्द आदि गुरुजन थे। राजाओ और प्रजाओ की भीड उमडी हुई थी। इनके बीच मे रामजी की ओर देखते रहने म सङ्कोच हुआ। अत प्रभु को ही हृदय मे रख लिया। यथा चली राखि उर स्यामल मूरति। ये चित्र नही खेंचती सीध सीधे मूर्ति ही हृदय मे रख लेती है। मूर्ति को हृदय मे रखने के बाद नयनकपाट सङ्कोच से बन्द नही किया। सखिया की ओर देखने लगी।

राम रूपु अरु सिय छवि देखे। नर नारिन्ह परिहरी निमेखे॥
सोचहि सकल कहत सकुचाही। बिधि सन बिनय करहि मन माही॥१॥

अर्थ रामजी का रूप और सीताजी की छवि देखकर स्त्री पुरुषो का पलक गिरना बन्द हो गया। सोचते सब है। पर कहते हुए सभी सकुचित होते है। मन ही मन ब्रह्मदव से विनय करते है।

व्याख्या जिससे गहने की भी शोभा हो जाय रूप उसका नाम है और जिससे अन्धकार दूर हो उसे छवि कहते है। यथा छ्यति छिनत्ति तम इति छवि। एक बार तो सब मोह गये। अब सावधान होकर रामजी के रूप और सीताजी की छवि का मिलान करते है। परोक्ष मे भी मिलान किया था। यथा जोग जानकी यह बरु अहई। अब दोना मूर्तियाँ सामने पाकर मिलान करते है। इसलिए एक टक लोचन चलत न तारे की दशा उपस्थित है।

सब के मन मे एक ही भाव उठता है। पर कहता कोई किसी से नही। क्योकि बात बडी ढिठाई की है। सब विधि से मन ही मन विनय करते है। क्योकि उनका नाम ही विधि है। वे ही विधि बैठा सकते है। अथवा जौ भल अहइ विधाता। सब कहँ सुनिअ उचित फल दाता। तो यही विनय है कि यहाँ भी उचित फल दें। जनक की बुद्धि के पलटने मे विधि ही समर्थ है। ये शारदा को प्रेरणा करके बुद्धि पलटते हैं। यथा सारद प्रेरि तासु मति फेरी।

हरु बिधि बेगि जनक जडताई। मति हमारि असि देहि सुहाई॥
बिनु बिचार पनु तजि नरनाहू। सीय राम कर करहि बिबाहू॥२॥

अर्थ हे विधि! जल्दी से जनक की जडता को हरण करो और हमारी ऐसी सुहावनी बुद्धि दो। राजा बिना सोचे समझे प्रण छोडकर सीता और रामजी का व्याह कर दें।

व्याख्या जनक की जडता को जल्दी हरो। देर न करो। देर करने म काम बिगडेगा। राजा जनक को सभी ज्ञानी मानते हैं। अत उन्हे जड कहने मे सङ्कोच है। पर रामजी को देखने पर भी अपने प्रण पर अडे रहना स्पष्ट जडता है। अत चाहे दुनिया न माने पर बात तो यह है कि इस विषय म जनक की बुद्धि म जडता है और हमारी बुद्धि सुहावनी है। अत किसी से न कहकर ब्रह्मदेव से मन ही मन

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विनय करते हैं कि जनक को सुहाई बुद्धि दे। जडता हरण कर लें। यहाँ विचार की कोई बात ही नही है। सीता और रामजी का व्याह होना ही चाहिए।

यहाँ विचार करना ही जडता है। प्रण निवाहना ही बुरा है। राजा विचारशील है। सत्य प्रतिज्ञ है। यह स्वभाव विधि के पलटने से पलट सकता है। नर नाथ है। उसे प्रजा की रुचि रखनी चाहिए।

जग भल कहिहि भाव सब काहू। हठ कीन्हे अतहुँ उर दाहू॥
एहि लालसा मगन सब लोगू। बरु साँवरो जानकी जोगू॥३॥

अर्थ ससार अच्छा कहेगा। क्योंकि सबको पसन्द है। हठ करने से अन्त मे कलजा जलेगा। इस लालसा मे सब लोग मगन थे कि साँवला वर जानकीजी के योग्य है।

व्याख्या . अपयश तो ऐसे कार्य के करने से होता है जो लोगो को अप्रिय हो। राम जानकी का व्याह तो सबको प्रिय है। अत अपयश की तो चरचा चलाना ही व्यर्थ है। बुद्धि का फल आग्रह रहित होना है। यथा • बुद्धे फलमनाग्रह । सो हठ करने से सीताजी का बेजोड व्याह हो जायगा। सीता को दु ख होगा। तब कोई उपाय न रहने से यावज्जीवन कलेजा जलेगा लोग इस विवाह के लिए ऐसे लालायित हो गये है कि प्रतिज्ञापालन को हठ बतला रहे है। राम जानकी के विवाह की अभिलाषा मे इतना आनन्द लोग अनुभव कर रहे है कि अभिलाषा ही मे मग्न हैं। अब सखी के सवाद म जो बात निश्चित हुई थी कि जोग जानकी यह बरु अहई। वही निर्णय यहाँ भी हुआ कि • बर साँवरो जानकी जोगू।

तब बदीजन जनक बोलाए। बिरदावली कहत चलि आए॥
कह नृपु जाइ कहहु पन मोरा। चले भाट हिय हर्ष न थोरा॥४॥

अर्थ तब भाटो को राजा जनक ने बुलाया। वे विरुदावली कहते हुए आये। राजा ने कहा कि जाकर मेरा प्रण सुना दो। भाट चले उन्हे थोडा हर्ष नही हुआ।

व्याख्या वन्दिनस्त्वमलप्रज्ञा प्रस्तावसदृशोक्तय । निर्मल बुद्धिवाले और प्रस्ताव के अनुकूल बोलनेवाले वन्दी कहलाते थे। राजा ने उन्हे बुलाया। वे प्रस्ताव सदृश बोलनेवाले थे। बिरद बोलते चल वज्ररेख गजदसन जनकपन वेद विदित जग जान। राजा ने कहा कि सभा बहुत बडी है। चारो ओर जाकर तुम लोग हमारा प्रण सुना दो। वन्दी सुनाने चले। हृदय मे बडा हर्ष हुआ कि हम राजा के प्रतिनिधि होकर बोलने जा रहे हैं।

दो बोले बदी बचन बर, सुनहु सकल महिपाल।
पन बिदेह कर कहहिं हम, भुजा उठाइ बिसाल॥२४९॥

अर्थ वन्दी श्रेष्ठ वचन बाले कि राजा तुम लोग सुनते जाओ। विदेहराज का प्रण हमलोग विशाल भुजा उठाकर कहत हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या महाराज विदेह के वचन का अनुवाद होने से वचन वर कहा। महिपाल सम्बोधन का भाव यह है कि आप लोग वचन के गौरव को समझते हैं। प्रण विदेह का है हमारा नही। हम केवल अनुवादक हैं। प्रण के अटल होने से अपनी भुजा को विशाल कह रहे हैं। अथवा हरी भुजाएँ इस समय राजा जनक की भुजाओ का प्रातिनिध्य करती है। इसलिए विशाल हैं। भुजा उठाकर प्रण किया जाता है ससार को साक्षी करने के लिए। यथा : भुज उठाइ प्रन कीन्ह। हानि लाभ अनख उछाह बाँहुबल कहि। वन्दी बोले विरद अकस उपजाइ के। यही उनकी प्रस्ताव सदृश उक्ति है।

नृप भुजवल विधु सिवधनु राहू। गरुअ कठोर विदित सब काहू॥
रावन वानु महाभट भारे। देखि सरासनु गवहि सिधारे॥१॥

अर्थ राजाओ की भुजाओ का वल चन्द्रमा है। शिव का धनुप राहु है, भारी है, कठोर है। यह बात सभी जानते हैं। रावण और वाणासुर भारी महाभट है। सो धनुप को देखकर चुपके से चल दिये।

व्याख्या वन्दी लोग पहिले ही अकसवाली बात बोले। पहिले भी राजा लोग आये थे पर उनका तोडा धनुप नही टूटा। क्रोध करके उन लोगों ने जनकपुर घेर लिया। पर महाराज जनक से पराजित हुए। उसी बात को लक्ष्य करते हुए वन्दीजन कह रहे है कि राजाओं के भुजवल रूपी चन्द्र को निस्तेज कर देने के लिए शिवधनुप राहु है। राहु छायामात्र होने के कारण मृदु और हल्का है। पर यह भारी है, कठोर है। हम कोई नई वात नही कह रहे हैं। आप लोग सभी यह वात जानते है। अब अनखवाली वात वोलते हैं। महा भटो मे भी भारी दो है रावण और वाणासुर। वे लोग भी आये थे। पर धनुप को देखकर साहस छूट गया। धीरे से चल दिये। अत समझबूझकर उठियेगा।

सोइ पुरारि कोदडु कठोरा। राज समाज आजु जेइ तोरा॥
त्रिभुवन जय समेत वैदेही। विनहि विचार वरै हठि तेही॥२॥

अर्थ · यह पुरारि का वही कठोर धनुप है। जिसने आज राजसमाज मे इसको तोडा। त्रिभुवनजयलक्ष्मी के सहित वैदेही उसे विना विचारे वरेगी।

व्याख्या शङ्कर भगवान् ने त्रिपुरदाह के समय मेरु पर्वत को धनुप वनाया था। यहाँ पुरारि धनुप का भाव यह कि यह मेरु का जोडदार है अब वल कहते है। शिव का यह वही धनुप है। इसे राजसमाज मे आज तोडना है। यहाँ कल की वात नही। ऐसे राजसमाज मे वह अपना वल प्रकट करे। अव हानि लाभ कहते है। उसे वैदेही तो वरण करेगी राउ या रङ्क का विचार न करेगी। त्रिभुवन जयलक्ष्मी भी उसको साथ ही साथ वरण करेगी। दिग्विजय ही वडे परिश्रम से साध्य है। सो त्रिभुवनविजय विना रक्तपात के मिलेगा और जानकी भी मिलगी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुनि पन सकल भूप अभिलाषें। भटमानी अतिसय मन माषे ॥
परिकर बाँधि उठे अकुलाई। चले इष्टदेवन्ह सिर नाई ॥३॥

अर्थ : प्रण सुनकर सब राजाओं को अभिलाषा हुई और वीरमानी राजाओं के मन में तो बड़ा क्रोध हुआ। कमर कस कसकर आकुल हो उठ खड़े हुए और अपने अपने इष्टदेवों को सिर नवाकर चले।

व्याख्या : वन्दीजन ने कहा था : सुनहु सकल महिपाल। सो सबने सुना। अब कहते हैं : सुनि पन सकल भूप अभिलाखे। ठीक है जानकी के लिए आये थे। सो त्रिभुवनजयलक्ष्मी भी प्राप्त होगी। भटमानी तो बड़े क्रुद्ध हो गये। नृप भुजबल बिधु सिवधनु राहू। कैसे कहा ? अभी धनुष तोड़ता हूँ। व्याकुल होकर उठे कि कहीं कोई पहिले ही जाकर धनुष तोड न दे। नहीं तो जानकी और त्रिभुवनजय-लक्ष्मी उसी के हाथ लग जायगी। इष्टदेव को प्रणाम करके चलते हैं जिसमें कार्य-सिद्धि हो। क्योंकि सभी सुखों की आशा तो इष्टदेव से ही की जाती है। यथा : इष्टदेव इव सब सुखदाता।

तमकि ताकि तक सिव धनु धरहीं। उठै न कोटि भाँति बलु करहीं ॥
जिन्ह के कछु बिचार मन माहीं। चाप समीप महीप न जाहीं ॥३॥

अर्थ : तमककर देखते हैं। लक्ष्य बाँधकर शिवधनु को पकड़ते हैं। कोटि भाँति से बल लगाते हैं। पर उठता नहीं। जिन राजाओं के मन में कुछ भी विचार है वे धनुप के सन्निकट नहीं जाते।

व्याख्या : अतिशय मन माखे हैं। अतः क्रोध से देखते हैं। पलक मारने में उठा लेने के लिए लक्ष्य बाँधकर झपटते हैं जिसमें हाथ खाली न जाँय और राजसमाज में चमत्कार दिखला दें। जब नहीं उठा तब करोड़ों उपाय से बल लगाते हैं। एक हाथ से, दोनों हाथ से, घुटना टेककर, छाती के बल से, सिर के बल से जैसे-जैसे बन पड़ता है उठा लेने में कोई बात नहीं रखते।

बड़े विचारवान् धर्मशील हरिभक्त सयाने तो अभिलाषा करनेवालों में हैं नहीं। जो अभिलाषा करते है उनमें भी जिनको कुछ विचार है वे पहिले ही परिकर बाँधकर अकुलाकर नहीं उठे समझने लगे थे कि यह काम सुकर नहीं है। और जब देख लिया कि किसी का हिलाया नहीं हिलता तो विचार करते हैं कि मुझमें ही कौन अलौकिक बल है जो उठा लूँगा। अत दूर से देखते हैं। निकट जाते नहीं जिसमें धनुष उठानेवालों में न गिने जाँय। निर्बलता तो सिद्ध हो गई। मूर्खता सिद्ध न हो।

दो. तमकि धरहिं धनु मूढ़ नृप, उठै न चलहिं लजाइ।
मनहुँ पाइ भट बाहुबल, अधिक अधिक गरुआइ ॥२५०॥

अर्थ : तमतमाकर मूढ़ राजा धनुष को पकड़ते हैं। जब नहीं उठना तो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


लज्जित होकर चले जाते हैं। मानो वीरों के भुजबल को प्राप्त करके अधिक से अधिक भारी होता चला जाता है।

व्याख्या : जो सरल बात न समझ सके उसे मूढ कहते हैं। यथा : माया विवस भये मुनि मूढा। समझी नहिं हरिगिरा निगूढा। उन्हे सीधी सी बात नही समझ मे आई कि जिसे रावण बाणासुर छोड़कर चले गये उसे हम उठाने क्या जा रहे है ? इसलिए उन्हे मूढ कहा। यहाँ धनुष की क्या करामात है। मानो जो उसे उठाने जाता है उसके बल को वह हरण कर रहा है। इससे और भी भारी होता जाता है। अर्थात् किसी के हिलाये हिलता ही नही।

भूप सहस दस एकहि बारा। लगे उठावन टरै न टारा॥
डगै न संभु सरासन कैसें। कामी बचन सती मन जैसें॥१॥

अर्थ : दस हजार राजा एकही साथ उठाने लगे। पर वह ,टारे न टरा। शिवजी का धनुष उसी भाँति नही डिगता है जिस भाँति कामियों के वचन से सती का मन नहीं डिगता।

व्याख्या : अब उसी मूढता का उदाहरण देते है। पहिले अन्ध अभिमानी कह आये हैं। इनका ज्ञान तामस है। जो तत्त्वार्थवाला नही है तथा अल्प है। ऐसे एकही कार्य को सब कुछ मानकर निष्कारण उसमें लग जाता है। उसे तामस ज्ञान कहते है। यथा : यत्तु कृत्स्नवदेकस्मिन् कार्ये सक्तमहेतुकम्। अतत्त्वार्थवदल्पञ्च तत्ताम-समुदाहृतम्। धनुष के उठने को ही सब कुछ समझ लिया। यह नही समझ रहे हैं कि इस भाँति उठ भी जायगा तो क्या फल होगा ? ऐसे उठाने में तत्त्वार्थ कुछ नही व्यर्थ है। फिर भी दसहजार एक साथ हो उठाने में लग गये। जो आते जाते है वे धनुष मे ही चिपटते चले जाते है। इससे धनुष की विशालता भी कही।

परन्तु शम्भुशरासन हिला भी नही। कामी ऐसा वचन बोलना जानते है जिससे सामान्य स्त्री का मन विचलित हो उठे। पर ऐसे वचन से सती के मनमे कोई अन्तर नही पड़ता। दश सहस्र कामियों के वचन से नाममात्र के लिए भी चलायमान नही होता। कामी अन्धे होते हैं : दिवा पश्यति नोलूकः कामान्धो नैव पश्यति। कामान्धों को ज्ञान नही कि इतने आदमियो के साथ बोलने से तो अभीष्ट सिद्धि और भी दूर चली जा रही है। इसी प्रकार इतने राजाओ के लग जाने से इसी बात की सिद्धि होती चली जा रही है कि धनुष का उठाना इन राजाओं की शक्ति के बाहर की बात है।

सब नृप भए जोगु उपहासी। जैसे बिनु बिराग संन्यासी॥
कीरति बिजय बीरता भारी। चले चाप कर बरबस हारी॥२॥

अर्थ : सब राजा हँसी के योग्य हो गये। जैसे बिना वैराग्य का सन्यासी हो जाता है। भारी कीर्ति विजय और वीरता को व्यर्थ ही धनुष के हाथ हारकर चले।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या वैराग्य सन्यासी का लक्षण है। जिस सन्यासी मे वैराग्य नही है उसम और सन्यासी बने हुए भाँड मे कोई भेद नही है। यथा मूड मुडायो वादि ही भाँड भयो तजि गेह। जिस भाँति भाँड उपहासी का पात्र है उसी भाँति वैराग्य रहित सन्यासी भी है। क्षत्रिय की श्रेष्टता बल से है। तिसपर राजा के लिए कहा गया है कि आठो लोकपालो का उनमे अश रहता है। यथा अष्टाना लोक पालाना वपुर्धारयते नृप। सो दस सहस्र राजा लगे और शिव धनु न उठा। तो इससे यही सिद्ध हुआ कि इनमे ईशान का अश है ही नही। ये भी राजा बने हुए भाँड की भाँति उपहास के ही पात्र हैं।

कीर्ति से यश कहा। विजय से बल और प्रताप कहा। वीरता से तेज कहा। अत जिन्होने यह कहा था अस विचारि गवनहु घर भाई। जस प्रताप बल तेज गँवाई। वही बात आ गई। पहिल चले गये होते तो यश, प्रताप, बल, तेज खोकर न जाते। अब हारकर जा रहे हैं और हारे भी किसी वीर से नही धनुप से हारकर जा रहे हैं। धनुप स्वय इनसे लडने नही गया था। ये ही हठात् उससे लडने गये। सा अब हारकर लौटे जा रहे है।

श्रीहत भए हारि हिय राजा। बैठे निज निज जाइ समाजा॥
नृपन्ह विलोकि जनक अकुलाने। बोले वचन रोप जनु साने॥३॥

अर्थ हृदय से हार मानकर राजा लोग श्रीहीन हो गये। जा जाकर अपने समाज म बैठे। राजाओ को देखकर जनक आकुल हो उठे और ऐसा वचन बोले जिसम क्रोध भरा हुआ सा मालूम पडता था।

व्याख्या मन से तो पहिले ही हार माने हुए थे। यथा प्रभुहि देखि सब नृप हिय हारे। पर इस हार से श्रीहत हो गये। फिर भी घर नही गये। अपने समाज म जाकर बैठे। सोचते हैं कि धनुप तो टूटा नही और न किसी से टूटेगा। अब कन्या जिसे चाहेगी जयमाल पहनायेगी। चित्त की वृत्तिया विचित्र रूप की होती हैं। यथा विचित्ररूपा खलु चित्तवृत्तय। कौन जाने मैं ही पसन्द मे आजाऊँ। इस भाँति आशा लगाये बैठे हैं। राजा जनक ने देखा कि सभी राजा हृदय से हार गये। अपने आसन पर जाकर बैठे हुए हैं। घर भी नही गये। इनके हृदय म कल्मप है। कहेंगे कि ऐसा प्रण करके जनक ने राजसमाज का अपमान किया और बहुत सम्भव है कि उपद्रव भी करें। कन्या का व्याह भी नही हुआ चाहता और भारी उपद्रव हुआ चाहता है। अत जनकजी आकुल हुए। ज्ञानी को क्रोध नही होता क्रोधाभास होता है। अत रोप जनु माने वचन बोल।

द्वीप द्वीप के भूपति नाना। आए मुनि हम जो पन ठाना॥
देव दनुज धरि मनुज सरीरा। विपुल वीर आए रनधीरा॥४॥

अर्थ द्वीप द्वीप के राजा लोग जा प्रण मैंने ठाना था उसे सुनकर आये। देवता और दानव मनुष्य शरीर धारण करके वहुत स रणधीर वीर आये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

व्याख्या : देव से स्वर्ग के वीर दनुज से पाताल के वीर और रणधीर से मर्त्यलोक के वीर अभिप्रेत हैं। सभी वीर मेरा प्रण सुनकर आये। भाव यह कि सबको मालूम था कि शङ्कर के धनुष तोड़ने का प्रण है और मैंने किसी को बुलाया भी नही। सुन सुनकर स्वय आने की कृपा की है। अर्थात् जो आया है वह शङ्कर के धनुष तोड़ने की हिम्मत करके ही घर से आया है। मेरे सङ्कोच से किसी का आना नही हुआ है।

दो. कुँवरि मनोहर विजय बड़ि, कीरति अति कमनीय।
पावनिहार विरंचि जनु, रचेउ न धनु दमनीय ॥२५१॥

अर्थ : मनको हरण करनेवाली कुँअरि बडी जीत और सुन्दर कीर्ति के पाने वाले को मानो ब्रह्मा ने रचा ही नही। अत. टूटनेवाला धनुष मानो बनाया ही नही।

व्याख्या : विरंचि जनु रचेउ न। इस वाक्य का अन्वय पावनिहार के साथ होगा और देहलीदीपक न्याय से धनु दमनीय के साथ होगा। कोई यह न कहे कि कन्या मुझे पसन्द नही इसलिए धनुष नही तोडा। सो कुँअरि मनोहर है। इस धनुष को तोडना और रावण बाणासुर पर विजय पाना एक बात है। अत ऐसी विजय कौन नही चाहता। बिना रक्तपात के विजय प्राप्त करने से कमनीय कीर्ति है। कौन यशोधन इसे न चाहेगा? मालूम होता है कि ब्रह्मदेव ने ऐसा भाग्यवान् किसी को बनाया नही इसीलिए धनु को दमनीय नही बनाया। नही तो कार्य द्रव्य सभी क्षणभङ्गुर होते है।

कहहु काहि यह लाभु न भावा। काहुँ न संकर चाप चढावा॥
रहौ चढाउब तोरब भाई। तिल भरि भूमि न सकेउ छडाई ॥१॥

अर्थ : कहो किसे यह लाभ अच्छा नही लगता? किसी ने तो शिवजी का धनुष नही चढ़ाया। चढाना और तोड़ना तो जाने दो। कोई तिल भी जमीन न छुडा सका।

व्याख्या : महाराज जनक समझ रहे है कि ये अभिमानी पीछे से कहेगे कि मुझे कन्या पसन्द नही थी। अतः जिसे यह लाभ अच्छा न लगता हो वह इस समाज मे बोल दे। सब लोग उसका भी रूप देख लें कि किस मुँह से कह रहा है कि कन्या पसन्द नही। यदि पसन्द है तो शिवजी का धनुष चढाना चाहिए। सो तो किसी का किया न हुआ। धनुष चढाना और उसे तोडना तो दूर की बात है। कोई तिल भर भी जमीन नही छुडा सका। दस सहस्र राजाओं का उसे उठाने के लिए लगना उन्मत्त चेष्टा थी। अतः उसकी चर्चा भी महाराज नही करते। धनुष तोडनेवाले को बिना विचार वरण की प्रतिज्ञा थी। यदि कोई उठा भी लेता तो विचार किया जाता कि विवाह किया जाय या नही। इस अवस्था मे तो विचार को भी स्थान नही है। चढाना या तोडना तो उठाने के बाद बनता है। यहाँ तो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कोई हिला भी न सका। भाव यह कि इसका तोडना राजसभा के लिए असम्भव व्यापार है तब किस आशा से राजसमाज बैठा है।

अब जनि कोउ माखै भटमानी। वीर विहीन मही मै जानी ॥
तजहु आस निज निज गृह जाहू। लिखा न विधि वैदेहि विवाहू ॥२॥

अर्थ अब कोई वीरमानी क्रोध न दिखावे। मैंने जान लिया पृथ्वी वीरो से रिक्त खाली हो गई। अब आशा छोडिये और अपने अपने घर पधारिये। ब्रह्मदेव ने सीता का विवाह लिखा ही नही।

व्याख्या पहिले वीरमानियो ने भाटो के कहने पर क्रोध किया था कि नृप भुज बल विधु सिव धनु राहू। इन सबो ने कैसे कहा ? अब कोई क्रोध करने का कष्ट न उठावें। मै कहता हूँ मैंने जान लिया कि पृथ्वी विना वीर की हो गई। ठीक यही बात हनुमन्नाटक मे कही गई है। आद्वीपात् परतोप्यमी नृपतय सर्वे समभ्यागता। कन्यायां कलधौतकोमलरुचे कीर्तेश्च लाभ पर। नाकृष्ट न च टङ्कित न नमित नोत्थापित स्थानत। केनापीदमहो महद्धनुरिद निर्वीरमुर्वीतलम्।

यह आशा छोडिये कि जब धनुष किसी से न टूटा तो क्या कन्या क्वारी ही रह जायगी। किसी न किसी को उसे वरना ही पडेगा। इस पर कहते है कि यह नही होना है। आप लोग पधारें व्यर्थ क्या बैठे है। विधि ने धनु दमनीय नहीं रचा। इसका अर्थ यही है कि ब्रह्मदेव ने कन्या का व्याह ही नही लिखा है होगा कैसे ? मेरी प्रतिज्ञा विधि की रेख से कम नही है।

सुकृत जाइ जौ पनु परिहरऊँ। कुअरि कुआरि रहउ का करऊँ ॥
जौ जनत्यौ विनु भट भुवि भाई। तौ पन करि होत्यौ न हँसाई ॥३॥

अर्थ यदि प्रण त्याग करूँ तो धर्म जाता है। रह जाय कन्या क्वारी मेरा कोई वश नही है। यदि मै जाने होता कि पृथ्वी विना वीर की हो गई है तो प्रण करके मैं अपने को उपहास का पात्र न बनाता।

व्याख्या सत्य मूल सब सुकृत सोहाये। प्रण त्याग से सत्य का त्याग होगा। अत निर्मूल होकर सब पुण्य नष्ट हो जायँगे। मैं सुकृत नही छोड सकता। चाहे कन्या क्वारी रह जाय। सुकृत छोडना मेरे वश के बाहर की बात है राजा जनकजी ही चक्रवर्ती जी के समकक्ष सत्यसन्ध हैं। मुझे धारणा थी कि पृथ्वी शून्य नही है कोई वीर होगा ही। धनुषभङ्ग प्रण वीर के लिए ही किया जाता है। पृथ्वी वीर विहीन है। इसलिए मैं उपहास का पात्र हो गया। नही तो सभी ने धनुष-भङ्ग सम्भव समझा था। इसीलिए आये भी थे। इसी भाँति मैंने भी सम्भव समझ कर प्रतिज्ञा की थी।

जनक वचन सुनि सब नर नारी। देखि जानकिहि भये दुखारी ॥
माखे लखनु कुटिल भै भौहे। रदपट फरकत नयन रिसौहे ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ राजा जनक की बात सुनकर सब नर नारी जानकी को देखकर दुखित हुए। पर लक्ष्मणजी को क्रोध हुआ। उनकी भौहे टेढी हुईं। होठ फडकने लगे। आँखो से क्रोध झलकने लगा।

व्याख्या सब नर नारी धनुष न टूटने से दुखी नही हुए थे। जनकजी की बात सुनकर दुखी हो गये। वे सब समझते थे कि धनुष न टूटने से व्याह न रुकेगा केवल राजाओ का झझट दूर हो जायगा। फिर जनकजी जिसे चाहेगे उससे व्याह कर देगे। पर अब उनकी बातें सुनकर जनकजी की ओर देखा और दुखी हुए कि ऐसी कन्या बिना व्याहे रह जायगी। भारतवर्ष म अन्धी कानी लँगडी लूली सभी कन्याओ का व्याह हो ही जाता है। लडके भले ही क्वारे रह जाँय पर कन्या क्वारी नही रहने पाती। समाजसगठन ही यहाँ का इस प्रकार का है।

अपमान जनित क्रोध को ही माख कहते है। जनकजी के कहने पर किसी को माँख न हुआ। जनक वचन छुए बिरवा लजारू केसे। बीर रहे सकल सकुचि सिर नाइके। वे वीरमानी जो भाटो के कहने पर बिगड उठे थे सकुचकर चुप रह गये। पर लक्ष्मण ने जिन पर भाटो के कहने का कोई प्रभाव नही पडा था जनकजी के बीर बिहीन मही मैं जानी कहने पर अपमान माना। उनकी भौहे टेढी हुई। होठ फडकने लगे। आँखें लाल हो उठी। रौद्ररस का आविर्भाव हुआ। अनुभाव प्रकट हुए। यथा भृकुटि कुटिल अरु अरुन द्दग अधर फरक अनुभाव। गव विकलता चपलता ये सचारी भाव। रदपट फरकने का भाव यह है कि कुछ कहा चाहते हैं।

दो कहि न सकत रघुबीर डर, लगे बचन जनु बान।
नाइ राम पद कमल सिरु, बोले गिरा प्रमान ॥२५२॥

अर्थ रामजी के डर से कह नही सकते। पर वचन बाण की भाँति लगे। रामजी के चरण कमलो मे सिर झुकाकर प्रमाण बात बोले।

व्याख्या जनकजी पर रामजी की बडी श्रद्धा है। अत उनके विरुद्ध बोलने म रामजी का डर है। जनकजी का डर कुछ भी नही कि उनके राज्य मे आकर उनके विरुद्ध कैसे बोले। पहिले विकलता सञ्चारी कहते है। जनक के वचन बाण की भाँति लगे। रामजी का अपमान लक्ष्मणजी सहन नही कर सकते। अब चपलता सञ्चारी कहते हैं। रामजी के चरणकमलो में सिर नवाकर बोले। लक्ष्मणजी क्रोध म भी अप्रमाण बात नही बोलते। इसलिए गिरा प्रमाण कहा।

रघुबसिन्ह महु जहँ कोउ होई। तेहि समाज अस कहै न कोई॥
कही जनक जसि अनुचित बानी। बिद्यमान रघुकुल मनि जानी॥१॥

अर्थ रघुवशियो म से जहाँ कोई होता है उस समाज मे ऐसा अनुचित कोई नही कह सकता जैसा जनक ने कहा और वे जानते है कि यहाँ रघुकुल मणि विराजमान है फिर भी ऐसी बात बोल गये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : रघुवंशी मात्र वीर है। उनकी पीठ शत्रु नही देख सकता। अत उनके सामने वीर विहीन मही कहने का किसी को अधिकार नही। कहने पर रघुवशी अपनी वीरता प्रकट करता है। इस अनुचित को नही सहता। जनकजी जानबूझकर कि इस समाज मे रघुकुलमणि विद्यमान है ऐसी बात बोल गये। मुनिजी ने मेरे सामने परिचय दिया। रघुकुल मनि दसरथ के जाये। मख राखेउ सब साखि जग जिते असुर सग्राम। बिना जाने कोई साधारण व्यक्ति कुछ कह बैठे यह और बात है। राजा जनक ऐसे प्रमाणिक पुरुष रघुकुलमणि की उपस्थिति जानते हुए ऐसी बात इतने बडे राजसमाज मे कही। यह कदापि सहन योग्य नही है।

सुनहु भानु कुल पंकज भानू। कहौं सुभाउ न कछु अभिमानू ॥
जौं तुम्हारि अनुसासनि पावौं। कंदुक इव ब्रह्मांड उठावौं ॥२॥

अर्थ : सूर्यकुलरूपी कमल के सूर्य! सुनो यह मेरी सत्योक्ति है गर्वोक्ति नही है। यदि आपकी आज्ञा पाऊँ तो गेंद की भाँति ब्रह्माण्ड उठा लूँ।

व्याख्या : भानुकुल पंकज भानू! सबोधन का यह भाव है कि भानु के पराक्रम को कौन कह सकता है। कमल के पराक्रम के सामने ही यह धनुष कुछ नही है। जिस कमलकुल के आप भानु हैं उसी का मैं कमल हूँ। सब लोग कमल का पराक्रम देखें। भानु को पराक्रम दिखाने की आवश्यक्ता नही। यदि आपकी आज्ञा हो तो यह धनुष क्या है। इस ब्रह्माण्ड को गेंद की भाँति उठा लूँ। आज्ञा पाऊँ कहने का भाव यह कि आज्ञाकारी का किया हुआ आज्ञादाता का किया हुआ माना जाता है। इसलिए इस अवसर पर जब धनुष उठाने पर जानकी के वरण की समस्या है आपकी आज्ञा परमावश्यक है। यथा : मेरो अनुचित न कहत लरिकाई बस पन परिमित और भाँति सुनि गई है। नतरु प्रभु प्रताप उतरु चढाय चाप देतो पै देखाइ बल फल पाप मई है। चढाने का अर्थ उठाकर सिर पर रखना जैसे फूल चढाना।

काँचे घट जिमि डारौं फोरी। सकउँ मेरु मूलक जिमि तोरी ॥
तव प्रताप महिमा भगवाना। का बापुरो पिनाकु पुराना ॥३॥

अर्थ : और उसे : कच्चे घडे की भाँति फोड डालूँ। हे भगवन्! आपके प्रताप की महिमा से मेरु को मूली की भाँति तोड सकता हूँ। यह बिचारा पुराना पिनाक है क्या?

व्याख्या : ब्रह्माण्ड के उठाने मे परिश्रम नही है। इसलिए गेंद की उपमा देते है। ब्रह्माण्ड भुवन बिराज जाके एक सिर जिमि रज कनी। गेंद फोडने की वस्तु नही है। अत फोडने के लिए कच्ची मिट्टी के घट से उपमित करते हैं। कच्ची मिट्टी का घडा हाथ से दबाने से फूट जाता है। ब्रह्माण्ड भी कच्ची मिट्टी का बना है। दबाते ही फूटेगा। जनकजी ने दो बातें कही। रहेउ चढाउब तोरब भाई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उठाने के विषय में कहकर अब तोड़ने के विषय में कहते हैं कि मेरु पर्वत को मूली की भाँति तोड़ दूँ। अपने बल से नहीं। वह बल भी आपका दिया हुआ है। यथा 'जेहि बल सीस धरत सहसानन। अंडकोस समेत गिरि कानन। इसलिए कहते हैं आपके प्रताप की महिमा से यह बिचारा सड़ा गला पुराना युगान्तर का धनुष क्या वस्तु है। भगवन् सम्बोधन से तात्पर्य है कि समग्र ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री और ज्ञान वैराग्य तो आप में है। अन्य जीव तो उसके लेशमात्र से अपना उपजीवन करते हैं।

नाथ जानि अस आयसु होऊ। कौतुक करौं बिलोकिअ सोऊ॥
कमल नाल जिमि चाप चढ़ावौं। जोजन सत प्रमान लै धावौं॥४॥

अर्थ हे नाथ! ऐसा जानकर आज्ञा हो। मैं कौतुक करता हूँ उसे भी देख लीजिये। कमल की नाल की भाँति धनुष को चढ़ाऊँ और सौ योजन लेकर दौड़ जाऊँ।

व्याख्या यह मनमें समझ लीजिये कि लक्ष्मण मेरे प्रताप की महिमा द्वारा कार्य करता है। उठावेगा फोड़ेगा और तोड़ेगा आपका प्रताप। लक्ष्मण तो निमित्त-मात्र होगा। अब आज्ञा हो कि तीनों में कौन काम करूँ? ब्रह्माण्ड को उठाऊँ कि फोड़ दूँ कि मेरु को तोड़ूँ? मेरे लिए कौतुक है। उसे देख लीजिये। अब चढ़ाने के विषय में कहते हैं इस सड़े गले पुराने धनुष में क्या रक्खा है। इसे तो कमलनाल की भाँति चढ़ा दूँ। भाव यह कि कमलनाल आप ही झुका पड़ता है। उसके चढ़ाने में कौन परिश्रम है। तिल भर धनुष हिलाने के लिए जनक लालायित हैं तो इसे लेकर सौ योजन दौड़ आऊँ। अब रह गया तोड़ना सो

दो. तोरौं छत्रक दंड जिमि, तव प्रताप बल नाथ।
जौं न करौं प्रभु पद सपथ, कर न धरौं धनु भाथ॥२५३॥

अर्थ हे नाथ! आपके प्रताप के बल से गोबरछत्ते के डंठल की भाँति तोड़ डालूँ। यदि न करूँ तो प्रभु के चरण की शपथ करके कहता हूँ फिर हाथ से धनुष और तरकस न उठाऊँगा।

व्याख्या गोबरछत्ता छूते ही टूटता है। सो यह धनुष छूते ही टूटेगा। यदि न कर सकूँ तो धनुष और तरकस फिर न धारण करूँगा। अतः वीरता का बाना छोड़ दूँगा। विश्वास दिलाने के लिए प्रभु चरण की शपथ लेते हैं। क्योंकि इसे तोड़ना नहीं है। ब्रह्माण्ड उठाने, फोड़ने, मेरु तोड़ने के विषय में शपथ नहीं लेते उसे कर दिखाने के लिए प्रस्तुत हैं। केवल आज्ञा की देर है। पर धनुष को छूना नहीं है। अतः अपने में ऐसा सामर्थ्य होने की शपथ लेते हैं। आपके लिए इसको तोड़ना क्या है। आप भानुकुलभानु हैं। अनायासेन चापरूपी अन्धकार दूर कीजिये। यथा नृप सब नखत करहिं उजियारी। टारि न सकहिं चाप तम भारी। उदय भानु बिनु श्रम तम नासा। दुरे नखत जग तेज प्रकासा। जो पहिले कहा था वही समय उपस्थित है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


लषन सकोप वचन जे बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले॥
सकल लोक सब भूप डेराने। सिय हिय हरखु जनक सकुचाने॥१॥

अर्थ : ज्यों ही लक्ष्मणजी क्रोधयुक्त वचन बोले कि पृथ्वी डोल उठी। दिग्गज हिल गये। सभी लोक सब राजा डर गये। सीताजी के मनमे हर्ष हुआ और जनकजी सकुचित हो गये।

व्याख्या : सकोप वचन तो राजा जनक भी बोले। यथा : बोले वचन रोष जनु साने। पर उसका प्रभाव इतना ही हुआ कि नरनारि दुखी हो गये। लक्ष्मणजी को क्रोध आगया। परन्तु लक्ष्मणजी का क्रोध आना दूसरी बात है। इनके सकोप वचन का प्रभाव सृष्टि के अधिकारियों पर पड़ता है। यथा : सभय लोक सब लोक-पति चाहत भभरि भगान। जो कहा कि कदुक इव ब्रह्माण्ड उठावों। काचे घट जिमि डारौं फोरी तो पृथ्वी डगमग करने लगी। क्योंकि क्रोध मे भी ये अप्रमाण नही बोलते। यथा : अति सरोप बोले लषन लखि मुनि सपथ प्रमान। यहाँ भी नाइ रामपद कमल सिर बोले गिरा प्रमान। दिग्गज हिल उठे कि इनके क्रोध करने पर हम पृथ्वी को न सँभाल सकेंगे। सब लोक लोकप डर उठे। क्योंकि केवल पृथ्वी को फोड़ने को नही ब्रह्माण्ड फोडने को कह रहे हैं। तब तो किसी की रक्षा नही है। अथवा पृथ्वी ही ऐसी डगमगाई कि दिग्गज स्थिर न रह सके। पृथ्वी ही सबकी आधार है। अतः सकल लोक और सब भूप भी डर गये। श्रीरामजी के प्रताप की महिमा का प्रत्यक्ष अनुभव करके सीताजी को हर्ष हुआ। अपने वचन के अनुचित प्रमाणित हो जाने से जनकजी सङ्कुचित हुए। लक्ष्मणजी के बोलते ही भूमि के डगमगाने से प्रमाण मिल गया।

गुर रघुपति सब मुनि मनमांही। मुदित भये पुनि पुनि पुलकाही॥
सयनहिं रघुपति लषन निवारे। प्रेम समेत निकट बैठारे॥२॥

अर्थ : गुरुजी, रामजी तथा सब मुनिलोग प्रसन्न हुए। बार बार पुलक हो रहा है। इङ्गित मात्र से रामजी ने लक्ष्मणजी को रोका और प्रेम के सहित निकट बैठाया।

व्याख्या : लक्ष्मणजी की अप्रतिम तेजस्विता, अमोघ वीर्य, अलौकिक विवेक तथा अवसरप्राप्त क्रोध देखकर गुरुजी : विश्वामित्र रामजी तथा मुनिगण मन ही मन आनन्दित हो उठे और लक्ष्मणजी की प्रगाढ भक्ति का विचार करके सबको बार बार पुलकावली उठ रही है। जनकजी के सङ्कोच को देखकर सबने अपना हर्ष छिपाया। अतः मनमाहि मुदित भये लिखते हैं। लक्ष्मणजी के इस बढ़े हुए क्रोध को रोकने के लिए रामजी का इङ्गित ही यथेष्ट है। अतः इङ्गित किया कि बैठ जाओ। यहाँ धनुप तोड़ना विवाह करना एक बात है। बिना बड़े की आज्ञा विवाह के लिए स्वय अग्रसर होना ठीक नही। पिता के स्थान मे मुनिजी हैं। वे कुछ नही कह रहे हैं। अतः बैठ जाओ। यह रोकना अप्रसन्नता का परिणाम नही

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


है। इसलिए प्रेम के सहित निकट बैठाया। भाव यह कि तुम्हारी इच्छा को मैं पूरी करूँगा।

विश्वामित्रु समय सुभ जानी। बोले अति सनेहमय बानी ॥
उठहु राम भजहु भवचापा। मेटहु तात जनक परितापा ॥३॥

अर्थ विश्वामित्र ने देखा कि शुभ समय आगया है। तब अति स्नेहमय वाणी बोले : रामजी उठो ! और शिव के धनुष को तोड़ो और राजा जनक का परिताप मिटाओ।

व्याख्या : गुरुजी विवाह का मुहूर्त देख रहे थे तब तक शुभमुहूर्त भी आ गया। तब अत्यन्त वात्सल्यसूचक वचन बोले। राम उठो ! इस समय रघुवीर सुजान नही कहा। उसमे इतना रस नही जितना केवल राम सम्बोधन मे है। भवभय भजन नाम प्रतापू। तुम्हारे नाम के प्रताप से भवभय भङ्ग होता है। अत. भवचाप को तुम भङ्ग करो। महात्मा है। सब लाभो से बडा लाभ जनक राजा ऐसे सन्त का परिताप मेटना देख रहे है एव जनकजी की भी निर्दोषता द्योतित करते हैं कि अति परिताप से विकल होकर उन्होने वीरविहीन मही कहा। किसी को अपमानित करने का उनका लक्ष्य नही था। मेरी आज्ञा के प्रतीक्षा मे लक्ष्मणजी के इतना कहने पर भी नही उठते हो सो मैं आज्ञा देता हूँ। जनकजी के परिताप के मिटाने को लक्ष्य मे रखकर धनुष तोडो। शिवजी का धनुष तोड़ने की आज्ञा देकर सारा प्रातिभाव्य . जिम्मेदारी मैं अपने ऊपर लेता हूँ।

सुनि गुर वचन चरन सिरु नावा। हरषु विषादु न कछु उर आवा ॥
ठाढे भए उठि सहज सुभाएँ। ठवनि जुवा मृगराजु लजाएँ ॥४॥

अर्थ गुरुजी का वचन सुनकर उनके चरणो मे सिर नवाया। हर्ष विषाद कुछ मनमे न आया। सहज स्वभाव से उठकर खडे हुए पर उस उठने के ढङ्ग को देखकर युवा सिंह लज्जित हो जाय।

व्याख्या गुरुजी के वचन सुनकर चरणो मे प्रणाम का भाव यह कि मुझे आज्ञा शिरोधार्य है। और लोगो के अन्य इष्टदेवता थे वे उन्हे प्रणाम करके चले। परन्तु रामजी के इष्ट गुरु थे अत चलने के समय उन्होने उनको प्रणाम किया। धीर है इसलिए हर्ष विषाद कुछ भी मनमे न आया। यथा सुख हरखहि जड दु ख विलखाही। दोउ सम धीर धरहि मनमाही। कृतकार्यता की आशा से हर्ष और कृतकार्य न होने के भय से विषाद के भाव उठते है सो कोई न उठे। स्वभाव से खडे हो जाने मे सिंह का सा ठाट दिखाई पड़ता है।

दो. उदित उदयगिरि मच पर, रघुवर बालपतंग।
विकसे सत सरोज सब, हरषे लोचन भृंग ॥२५४॥

अर्थ · मञ्चरूपी उदयाचल पर रामचन्द्र रूपी बालसूर्य उदय हुए। सन्तरूपी कमल खिल उठे और सब आँखें भौरे सी हर्षित हो उठी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या : रामजी मञ्च पर थे ही गुरुजी की आज्ञा पाकर खड़े हो गये। ऐसी शोभा जैसे उदयाचल पर बालसूर्य की होती है। सूर्य उदय होते ही जिस पर्वत पर दिखाई पड़ते हैं उसे उदयाचल कहते हैं। उस समय सूर्यनारायण अपने तेज को समेटे रहते हैं। क्रमश उसका प्रचार तीव्र होता जाता है। श्रीरामजी के तेज का साक्षात्कार लोक मे यही से हुआ और तब से तीव्र तीव्रतर हो गया। राज्य-सिंहासनारूढ होने पर पूर्ण प्रकाश हुआ। यथा जबते रामप्रताप खगेसा। उदित भएउ अति प्रबल दिनेसा। भाव यह कि बालसूर्य होकर मञ्च पर आये और क्रमश अपने तेज का प्रसार करते करते तरुणसूर्य होकर राजसिंहासन पर बैठे। सूर्य के उदय होने से कमल खिल उठते हैं। इसी भाँति सन्त अर्थात् प्रथम श्रेणीके ज्ञानीभक्त खिल उठे। भौंरे हर्षित होते हैं इसी भाँति पुरवासी तृतीय श्रेणी के अर्थार्थी भक्तो के लोचनभृङ्ग हर्षित हो उठे। सब शब्द का अन्वय देहलीदीपक न्याय से सन्त और लोचन भृग दोनो के साथ होगा। पुरवासी जनकजी का वचन सुनके जानकीजी को देखकर दु खी हुए थे। वे जानकीजी का ब्याह चाहते हैं। अत. अर्थार्थी हैं।

नृपन्ह केरि आसा निसि नासी। बचन नखत अवली न प्रकासी॥
मानी महिप कुमुद सकुचाने। कपटी भूप उलूक लुकाने॥१॥

अर्थ . राजाओ की आशारूपी रात जाती रही। उनके वचन रूपी तारो की पंक्ति मे भी चमक न रही। अभिमानी राजारूपी कुमुद सिकुड़ गये और कपटी राजारूपी उल्लू छिप गये।

व्याख्या · राजाओ की आशारूपी रात ने ही अँधेरा फैला रक्खा था। वह रात बालसूर्य के उदय होते ही नष्ट हो गई। प्रतीति तो सबके मनमे थी कि रामजी धनुष तोड़ेंगे। यथा · असि प्रतीति सबके मन माही। राम चाप तोरब सक नाही। फिर भी आशा लगाये बैठे थे। आशा बडी बलवती होती है। भीष्म के मारे जाने पर, द्रोण के मारे जाने पर और महाबली कर्ण के मारे जाने पर महाभारत की लडाई मे कौरव लोगो की आशा गई नही। शल्य को सेनापति बनाकर हर्ष मनाया कि ये पाण्डवो को जीतेंगे। यथा . हते भीष्मे हते द्रोणे हते कर्णे महाबले। आशा बलवती राजन् शल्यो जेत्स्यति पाण्डवान्। अरुणोदय हो गया। रामजी के आगमन का समाचार पाया। इससे आशारात्रि क्षीण हो गई थी। पर मञ्च पर सूर्योदय होते ही आशा रात्रि जाती रही। सब राजा निराश हो गये। अरुणोदय होने पर भी कुछ तारे टिमटिमाते रहते हैं। इसी भाँति कुछ राजा शेखी बघारते थे। पर प्रभु के उठ खडे होने पर उनकी जिह्वा भी स्तम्भित हो गई जिस भाँति सूर्योदय होते ही तारे प्रकाशहीन हो जाते हैं।

सकुइ सुमन विकसत रवि निकसत कुमुद बिपिन बिलखाइ। इसी भाँति कुमुदरूपी अभिमानी राजा जो बंदियो की वाणी सुनकर बिगड उठे थे। यथा : भटमानी अतिसय मन माखे। सङ्कुचित हो गये कि हमारा उठाया जो न उठा उसे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

एक लड़का उठाने को तैयार है। सूर्योदय होने पर उल्लुओ को सूझता नही इसलिए वे छिप जाते हैं। इसी भाँति कपटी राजाओं को भी कुछ सूझता ही नही कि अब हम क्या कहे। सबके निरस्त होने पर ये खडे हुए हैं। कहने की जगह भी नहीं रह गई कि इन्होने जल्दी कर दी नही तो मैं तोड़ता अत. वे छिप गये।

भये बिसोक कोक मुनि देवा। बरषहिं सुमन जनावहिं सेवा॥
गुरु पद बंदि सहित अनुरागा। राम मुनिन्ह सन आयसु माँगा॥२॥

अर्थ : मुनि और देवता रूपी चकवा शोकरहित हो गये। फूल बरसाते हैं और सेवा जनाते है। गुरुजी की चरण वन्दना करके अनुराग के सहित रामजी ने मुनियो से आज्ञा माँगी।

व्याख्या · सूर्य के उदय होने पर चकवा का शोक जाता रहता है। उसकी प्रिया का पता उसे लग जाता है। उसे इष्ट की जिज्ञासा रहती है। अतः जिज्ञासु भक्त को चकवा मानकर द्वितीय श्रेणी में माना है। इसी भाँति इष्टदेव के साक्षात्कार से मुनि और देवता शोकरहित हुए अथवा रावणहन्ता की पहिचान से शोकरहित हुए। इन्हे प्रभु के हाथ से अपनी विपत्ति दूर करानी है। इसलिए अपनी सेवा फूल की वर्षा करके जनाते हैं। यह दूसरी पुष्पवर्षा प्रभु पर देवता तथा मुनियो द्वारा हुई। सुनि गुरु बचन चरन सिरनावा से प्रसङ्ग छूटा था। उसी को मुनिपद बंदि कहकर उठाते हैं। अनुरागा से भाव यह कि किसी प्रकार की त्वरा या क्षोभ नही है। प्रेम के साथ गुरुजी के चरण की वन्दना की। अन्य राजाओ की भाँति अनुराग रहित वन्दना नही हुई। यथा · चले इष्टदेवन्ह सिर नाई। तत्पश्चात् रामजी ने मुनियो से आज्ञा माँगी। क्योंकि ब्रह्मकुल शङ्कररूप है और शङ्कर का ही धनुष है। अत मालमालिक से भी एकबार पूछ लेना चाहिए। यथा : मूल धर्मतरो-र्विवेकजलधे पूर्णेन्दुमानन्ददं। वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघनध्वान्तापहं तापहं। मोहाम्भोधरपूगपाटनविधौ स्व सम्भव शंकरं। वंदे ब्रह्मकुलं कलंकशमनं श्रीराम-भूपप्रियम्। गुरुजी तो इस समय पितास्थानीय है। यथा . तुम मुनि पिता आन नहि कोऊ। विवाह की आज्ञा दे दी। धनुष तोडना और जानकी ब्याहना एक बात थी पर वह विवाह विना धनुष तोडे सम्भव नही था। इसलिए तोडने की आज्ञा दी। पर तोडने के पहिले जिसका धनुष है उसकी भी अनुमति लेनी परमावश्यक है। इसलिए ब्रह्मकुलरूपी शङ्कर से अनुमति चाही। गुरुजी ने फूल लाने की आज्ञा दे दी। फिर भी इस बात की आवश्यकता पडी कि माली से पहिले पूछ लिया जाय तब फूल तोड़ें। यथा : चहुँदिसि चितय पूछि मालीगन। लगे लेन दल फूल मुदित मन।

सहजहिं चले सकल जग स्वामी। मत्त मंजु बर कुंजर गामी॥
चलत राम सब पुर नरनारी। पुलक पूरि तन भये सुखारी॥३॥

अर्थ सम्पूर्ण जगत् के स्वामी स्वभाव से ही चले। सुन्दर मत्तहाथी की सी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


उनकी चाल थी। राम के चलते ही सब पुर के नर नारी सुखी हो गये। उन्हे सम्पूर्ण शरीर मे पुलक हो गया।

व्याख्या . छोटे छोटे खण्डो के राजा थे इसलिए आकुल होकर चले थे। रामजी सकल जग के स्वामी हैं। अत इन्हे आकुलता नही है। स्वभाव से चल रहे हैं। जैसे सुन्दर मतवाला हाथी चले वैसी चाल इनकी स्वाभाविक है। जनकजी के वचन से विचारे पुर नरनारी दु खी हो गये थे। यथा जनक वचन सुनि सब नरनारी। देखि जानकिहि भये दुखारी। सो अब रामजी के चलते ही सुखी हो गये। इच्छा प्रबल है कि रामजी धनुष तोडें। ऐसे सुखी हुए कि उनका शरीर पुलक से भर उठा।

बंदि पितर सुर सुकृत सँभारे। जो कछु पुन्य प्रभाउ हमारे॥
तौ सिवधनु मृनाल की नाईं। तोरहुँ रामु गनेस गुसाईं॥४॥

अर्थ · उन्होने देवता पितरो की वन्दना की और अपने पुण्य को सँभाला कि हमारे पुण्य का जो कुछ भी प्रभाव हो तो हे गणेश गोसाईं। शिवजी के धनुष को कमल की नाल की भाँति रामजी तोड डालें।

व्याख्या . दिव्य सहायता देवता और पितर की ही होती है। पितर शीघ्र प्रसन्न होते हैं इसलिए पहिले पितरो की वन्दना की और अपने सब पुण्यो को सँभाला। सँभालना स्मरण करने के अर्थ मे अनेकश प्रयुक्त है। यथा : बार बार रघुवीर सँभारी। सँभारि श्री रघुवीर धीर। अपने सब पुण्यो का फल 'गणेशजी से चाहते हैं। क्योकि ये वरदायक देव हैं स्मरण मात्र से सिद्धि देते है। अभिलाषा यही कि शिवधनुष को रामजी पकज नाल की भाँति तोडे। ये आर्त भक्त हैं: इनकी चौथी श्रेणी है। इनकी उपमा खग नाना से दी हुई है। यथा : कमल कोक मधुकर खग नाना। हरखे सकल निसा अवसाना।

दो. रामहि प्रेम समेत लखि, सखिन्ह समीप बोलाइ।
सीतामातु सनेह बस, बचन कहै बिलखाइ॥२५५॥

अर्थ : रामजी को प्रेम के साथ देखकर सखियो को समीप बुलाकर सीताजी की माता ने प्रेमवश बिलखकर वचन कहा।

व्याख्या : रामजी पर रानियो के सहित जनकजी का प्रेम अवर्णनीय वात्सल्य से भरा हुआ है। यथा ' सहित विदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रेम न जाइ बखानी। महाराज की चार रानियाँ थी। उनमे सीताजी की माता का और भी अधिक प्रेम था। रामजी को धनुषभङ्ग के लिए चलते देखकर वह प्रेम उमड पडा। हृदय की बात कहनी थी इसलिए सखियो को निकट बुलाया। इस समय महारानी प्रेमवश हैं। इसलिए बिलखकर वचन कहती हैं।

सखि सब कौतुक देखनिहारे। जेउ कहावत हितू हमारे॥
कोउ न बुझाइ कहै गुर पाहीं। ए बालक अस हठि भल नाहीं॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ : हे सखी ! जो हमारे हितकारी कहलाते हैं वे भी तमाशा देखनेवाले हैं। कोई गुरुजी को समझाकर नहीं कहता कि ये बालक हैं। ऐसा हठ ठीक नहीं।

व्याख्या : सखियों से कोई बात छिपाई नहीं जाती। इसलिए उनसे मनकी बात कहती है कि जो हमारे हितचिन्तक कहलाते हैं आज देखती हूँ कि वे भी तमाशा देख रहे हैं। हितकी भावना उनमें है ही नहीं। गुरुजी ने आज्ञा दे दी। उठउ राम भजउ भव चापा। और राम उठ खड़े हुए। वे बालक हैं। उन्हें इतना विचार कहाँ कि यह धनुष मुझसे टूटेगा कि नहीं। गुरुजी को विचार करना चाहिए था। यदि गुरुजी ने न विचार किया और आज्ञा दे दी तो हमारे हितचिन्तकों को तो समझाना चाहिए था कि ऐसा हठ ठीक नहीं। बच्चे का उठाया धनुष क्या उठेगा ? लाभ कुछ होना नहीं है केवल मुनिजी का हठ है। यह हँसता हुआ आनन्दमय मुख कृतकार्य न होने से व्यर्थ म्लान हो जायगा और जिनसे धनुष न उठा उन लोगों में इनकी गिनती हो जायगी। इनको धनुष तोड़ने के लिए भेजना और यह घोषणा एकही बात है कि ये भी जानकी से विवाह करने के अयोग्य हैं।

सबसे प्राचीन श्रावणकुञ्ज अयोध्यावाली प्रति में गुरु पाठ है अन्य सभी प्रतियों में नृप पाठ है। विचार करने से गुरु पाठ सुसङ्गत प्रतीत होता है। नृप ने जब प्रण कर दिया तब उन्हें धनुपभङ्ग रोकने का क्या अधिकार है। विशेषत लक्ष्मणजी द्वारा इस प्रकार फटकारे जाने पर वे किस मुँह से रोकते ? जनक राजा के लिए हठ का उपालम्भ करना ही हठ है। वे तो इतना होने पर भी विश्वामित्रजी से कहते हैं

जोरिकर कमल निहोरि कहैं कौसिक सों
आयसु भयो रामको सो मेरे दुचितई है।
बान जातुधानपति भूप दीप सातहू के
लोकप विलोकत पिनाकभूमि लई है ॥१॥
जोतिलिंग कथा सुनि, जाके अंत पाए बिनु
आए विधि हरि हारि सोई हाल भई है।
आपहु विचारिए निहारिए सभा की गति
वेद मरजाद मानो हेतुवाद हुई है ॥२॥
इन्हके जितौंह मन, सोभा अधिकानी तन
मुखन की सुखमा सुखद सरसई है।
रावरो भरोसो बल, कै है केऊ कियोछल
कैं धौं कुल को प्रभाव कै धौं लरिकई है ॥३॥

राजा स्वयं गुरुजी की आज्ञा को उचित नहीं समझ रहे हैं। अत न राजा का हठ है और न उन्हें उपालम्भ देना बन सकता है। फलत नृप पाठ असगत है।

रावन बान छुआ नहिं चापा। हारे सकल भूप करि दापा ॥
सो धनु राजकुअर कर देही। बाल मराल कि मंदर लेही ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ रावण और बाणासुर ने धनुष को छूआ तक नही। सब राजा दर्प करके हार गये। उस धनुष को राजकुँवर के हाथ मे देते हैं। हस का बच्चा क्या पहाड उठावेगा।

व्याख्या · इस समय सुभट शिरोमणि दो है · रावण और बाणासुर। ये कैलास और मेरु उठानेवाले धनुष के जौहरी है। इन्होने धनुष को छूआ तक नही। जान गये कि इसके छूने मे अप्रतिष्ठा है और सभी राजा घमण्ड करके हार गये। अत सिद्ध हो गया कि यह धनुष टूटने योग्य नही। ये तो प्रौढ भी नही अभी बच्चे है। बाल मरालन के कल जोटा। दर्शनीय है। भारी पराक्रम की आशा भी इनसे नही की जा सकती। जिस भाँति हस के बच्चे से मन्दर जो देवासुर से वहन न किया जा सका के उठाने की आशा नही की जाती।

भूप सयानप सकल सिरानी। सखि विधि गति कहि जाति न जानी॥
बोली चतुर सखी मृदु बानी। तेजवत लघु गनिअ न रानी॥३॥

अर्थ राजा का सयानापन सब समाप्त हो गया। सखि! ब्रह्मा की गतिविधि न कही जाती है न जानी जाती है। चतुर सखी मृदु बानी बोली। हे रानी! तेजस्वी को छोटा नही गिनना चाहिए। जहाँ कछु पाठ है वहाँ अर्थ करना होगा कि कुछ जानी नही जाती।

व्याख्या : महाराज परम चतुर है। जहाँ मन्त्रिया की बुद्धि काम नही करती वहाँ महाराज अपनी बुद्धि से काम लेते है। परन्तु यहाँ तो उनका सयानापन सब धूल मे मिल गया। ऐसी प्रतिज्ञा कर बैठे कि लडकी कुँआरी ही रहा चाहती है। ऐसी बात बोल बैठे कि बच्चे से सही नही गई और उसके बडे भाई को धनुप तोडने जाना पड रहा है। ब्रह्मदेव की गतिविधि न कही जा सकती है और न जानी जाती है कि इतने बडे विवेकी होकर इस समय इनका विवेक क्या हो गया है? इनको स्वय गुरुजी से समझाकर कहना चाहिए था। पर यदि वे नही कहते है तो हितचिन्तको को तो कहना चाहिए। जिस समय रानी के मन मे यह भाव आया उसी समय महाराज के मनमे भी वही भाव उठा। उन्होने गुरुजी से निवेदन किया। पूरा प्रसङ्ग गीतावली मे देखने योग्य है कि महाराज के निवेदन पर गुरुजी ने क्या कहा। स्वय रामजी ने क्या कहा सक्षेप मे यहाँ दिये देता हूँ :

इस पर कहि साधु साधु गाधिसुवन सराहे राउ
महाराज जानि जिय ठीक भली दई है।
कहैं गाधिनदन मुदित रघुनदन सो
नृपगति अगह गिरा न जाति गही है॥
देखे सुने भूपति अनेक झूठे झूठे नाम
साँचे तिरहुतनाथ साखी देत मही है।
रागऊ विराग भोग जोग जोगवत्त मन
जोगी जागवलिक प्रसाद सिद्धि लही है॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

ताते न तरनि ते, न सीरे सुधाकरहू ते
सहज समाधि निरुपाधि निरवही है।
ऐसेऊ अगाध वोध रावरे सनेह वस
विकल विलोकत दुचितई सही है॥

इसपर रामजी ने कहा :

रिषिराज राजा आजु जनक समान को।
आपु एहि भाँति प्रीति सहित सराहिअत
रागी औ विरागी वड भागी ऐसो आन को॥
भूमि भोग करत अनुभवत जोग सुख
मुनिमन अगम अलख गति जान को।
गुरु हर पद नेह गेह वसि भो विदेह
अगुन सगुन प्रभु भजन सयान को॥
कहनि रहनि एक विरत विवेक नीति
वेद वुध समत पथीन निर्वान को।
गाँठि विनु गुनकी कठिन जड चेतन की
छोरी अनायास साधु सोधक अपान को॥
सुनि रघुवीर की वचन रचना की रीति
भयो मिथिलेश मानो दीपक विहान को।
मिटयौ महा मोह जी को छूटयौ पोच सोच सी को
जान्यो अवतार भयो पुरुष पुरान को॥

इतना सवाद होने पर तव रामजी गये।

कहँ कुभज कहँ सिंधु अपारा। सोखेउ सुजसु सकल संसारा॥
रवि मडल देखत लघु लागा। उदयँ तासु तिभुवन तम भागा॥४॥

अर्थ कहाँ कुम्भ से उत्पन्न अगस्त्यजी और कहाँ अपार समुद्र। पर उन्होंने सोख लिया। सम्पूर्ण ससार मे सुयश व्याप्त हुआ। सूर्य का मण्डल देखने मे छोटा है पर उसके उदय से तीनो लोक का अन्धकार जाता रहता है।

व्याख्या सखी का कार्य शिक्षा देना है। सो वह शोकापनोदन करती हुई बोलती है। वडी चतुर है। युक्ति युक्त बात उदाहरण देकर समझाती है कि आकार देखकर पराक्रम का निर्णय नही हो सकता। छोटे आकारवाला तेजस्वी हो तो वही वडा है। ये वालक तो है पर है तेजस्वी। उदाहरण देती है। अगस्त्य नाम न देकर कुम्भज कहती है। कुम्भ दिनरात कूप से जल निकाला करता है। पर पार नही पाता। उस कुम्भ से उत्पन्न छोटे आकार के मुनि समुद्र सोख गये। ससार मे उनका यश व्याप्त है। कहँ कुभज कहँ सिन्धु : भाव यह कि दोनो मे कोई समता नही। एक अति अल्प और दूसरे का पारावार नही। कार्य सदा कारण से अल्प ही होता है। वात यह थी कि कुम्भज तेजस्वी थे। इसलिए अपार समुद्र को

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सोख लिया। इतना बडा पराक्रम किया। ये भी नृपकुलोत्पन्न होकर तेजस्वी होने के कारण अदमनीय धनुष का दमन करेंगे।

दूसरा उदाहरण देती है। सूर्य हैं बहुत बडे परन्तु देखने मे छोटे लगते है। प्रताप इतना बडा है कि वे उदय हो जाते हैं। स्वय कुछ भी नही करते। केवल उनके तेज से तीनो लोक का तम दूर होता है। इसी भाँति ये राजकुमार वस्तुत बहुत बडे हैं पर देखने मे छोटे मालूम होते हैं। इनके तेज से चापतम का भङ्ग होगा। इन्हे कोई आयास न करना होगा।

दो. मंत्र परम लघु जासु बस, बिधि हरिहर सुर सर्ब।
महामत्त गजराज कहुँ, बस कर अंकुस खर्ब ॥२५६॥

अर्थ तीसरा उदाहरण देती हैं। मन्त्र बहुत छोटा है पर उसके वश मे ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि सभी देवता हैं। महामत्त गजराज को छोटा सा अङ्कुश वश कर लेता है।

व्याख्या बहुत छोटा सा मन्त्र एकाक्षर प्रणव है। कहा गया है यही अक्षर ब्रह्म है। यही अक्षर परब्रह्म है। इसी अक्षर को जानकर जो जो जैसी इच्छा करता है उसे उसी की प्राप्ति होती है। यथा एतदेवाक्षर ब्रह्म एतदेवाक्षर परम्। एतदेवाक्षर ज्ञात्वा यो यदिच्छति तस्य तत्। श्रुति कहती है कि यह सब प्रणवरूप है। भूत भविष्यत् वर्तमान सब उसी के उपव्याख्यान है जो तीनो कालो से अतीत है। वह भी प्रणवरूपी है। उस प्रणव की पहिली मात्रा के वाच्य विष्णु दूसरी के ब्रह्मा और तीसरी के शिव हैं। अर्धमात्रा मे वाच्य साक्षात् ब्रह्म है। अत सभी प्रणव के वश मे हैं और ये साक्षात् प्रणवरूप है ॐ यो ह वै श्री रामचन्द्र स भगवान् अद्वैतपरमानन्द आत्मा यश्चोङ्कार भूर्भुव स्व तस्मै वै नमो नम। इनके वश म विधिहरिहर हैं। ये शिवचाप का भङ्ग करेंगे।

चौथा उदाहरण देती है महामत्त गजराज कितना दीर्घाकार और कितना शक्तिशाली है। उसके सामने छोटा सा जड अकुश क्या है पर वह तेजस्वी है। महामत्त गजराज को जिस भाँति चाहता है उठाता बिठाता है इसी भाँति ये बहुत छोटे होने पर भी इस दमनीय चाप को वश करेंगे। जैसे चाहेंगे, उठावेंगे, चढावेंगे, और तोडेंगे।

काम कुसुम धनु सायक[१] लीन्हे। सकल भुवन अपने बस कीन्हे॥
देबि तजिअ ससउ अस जानी। भजब धनुषु राम सुनु रानी॥१॥

अर्थ काम ने फूल का धनुष हाथ मे लिये हुए सारे ससार को अपने वश म कर रक्खा है। हे रानी! ऐसा समझकर आप सशय का परित्याग कीजिये। रानी! सुनो रामजी धनुष तोडेंगे।

---

१ यहाँ विभावना द्वितीय है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या · पट्टाभिषिक्ता महिषी को देवी कहते है। सीताजी को जनकजी ने इन्ही को दिया था। अत· सीताजी की माँ यही कहलाती है। सखी इन्ही की बातों का जवाब देती हैं। इसलिए देवि ! सम्बोधन देती हैं। पाँचवा उदाहरण देती हैं · फूल के धनुष मे क्या रक्खा है पर उसी को लेकर काम ने ससार को मोहित कर रक्खा है। यथा : हे वरोरु ! है यद्यपि मेरा बाण सरासन फूलो का। सकल सुरासुर को कहता हूँ क्या बूता मझहूलो का। कोई नही जगत् मे ऐसा है समर्थ जो रह जावे मेरे आदेशो के बाहर फिर भी कुछ धीरज पावै। धन्वी तेजस्वी हैं। सबको वश किये हुए हैं। ये भी कुसुम की भाँति मृदु हैं पर तेजस्वी हैं। सबको वश किये हुए हैं। यथा : निज निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्ववस सकल नर नारी। पाँच उदाहरणो का भाव यह कि पञ्च महाभूतो मे तेजस्वी की ही प्रधानता है। धनुष पञ्चमहाभूत के बाहर की वस्तु नही है। अत. इसे निश्चय ही तेजस्वी के वशीभूत होना पडेगा। कहँ कुंभज कहँ सिंधु अपारा से रस कहा। रवि मण्डल से रूप कहा। मन्त्र से शब्द कहा। अकुस से स्पर्श कहा। कुसुम धनु से गन्ध कहा।

पाँच उदाहरणो के साथ युक्तियुक्त तर्क उपस्थित करके शिक्षा देती है कि ऐसा जानकर कि तेजस्वी को लघु न समझना चाहिए। सशय को छोड दो। क्योकि सशय महा दु खद है। सशय सर्प है। इसके दशन से भयानक लहर दु ख देनेवाली आती है। निश्चय से सशय दूर होता है। अत निश्चय यह है कि भजब धनुष राम।

सखी वचन सुनि भै परतीती। मिटा विषादु बढी अति प्रीती ॥
तब रामहि बिलोकि बैदेही। सभय हृदय बिनवति जेहि तेही ॥२॥

अर्थ सखी का वचन सुनकर विश्वास हुआ। विषाद मिटा। प्रीति अत्यन्त बढी। तब रामजी को देखकर वैदेही सभय हृदय से जिसी किसी से विनय कर रही है।

व्याख्या ' सुत की प्रीति प्रतीति मीतकी। बेटे पर प्रीति होती है पर विश्वास तो मित्र का होता है। सखी के वचन से सशय जाता रहा। विश्वास हो गया। विषाद मिटा। अति प्रीति हुई। बिना सम्बन्ध के ही प्रीति थी। अब सम्बन्ध की आशा दृढ होने से अति प्रीति बढी।

रामजी के चलते ही पुर नर नारि का हाल कहकर रानी का हाल कहा। अब वैदेही का हाल कहते हैं। घटना एक साथ ही हुई। पर युगपत् वर्णन नहीं हो सकता। अत क्रम से वर्णन करते है। रामहि बिलोकि अत्यन्त मधुरमूर्ति देखकर पहिले कह आये है रामहि चितव भाव जेहि सीया। सो सनेह सुख नहि कथनीया। अतिप्रिय के विषय मे चित्त सदा पापशङ्की होता है। विघ्न का भय करता ही रहता है। अत सभय हृदय कहते है। लक्ष्मणजी के वचन सुन चुकी है सुनने से हर्ष भी हुआ प्रभाव भी देख लिया कि पृथ्वी काँप उठी। उनके स्वामीरूप बडे भाई धनुषभङ्ग के लिए उठे हैं। भय का कोई कारण नही है पर रामजी अति प्रिय है। अत उनके

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विषय म शङ्का हो रही है। आर्त हो गई हैं। अत सभय हृदय से जिसी किसी से विनय कर रही हैं। भाव यह कि आर्त विचारकर काम नही करता। योग्य से भी विनय करता है अयोग्य से भी विनय करता है। इसी भाँति जानकीजी समर्थ देवताओ से भी विनय करती है और जड धनुष जो स्वय टूटने को रक्खा है से भी विनय करती हैं।

मनही मन मनाव अकुलानी। होहु प्रसन्न महेस भवानी ॥
करहु सुफल आपनि सेवकाई। करि हित हरहु चाप गरुआई ॥३॥

अर्थ व्याकुल हुई मन मे ही मना रही है कि हे महेश भवानी! प्रसन्न होओ। अपनी सेवा को सुफल करो और कृपा करके धनुष का भारीपन हरण कर लो।

व्याख्या भगवती जानकीजी सदा गौरी गणपति और गिरीश की सेवा पूजा किया करती थी। सो महेश भवानी से विनय करती है कि अपनी सेवकाई को सफल करो। रामचरणप्राप्ति के लिए सेवा की सफलता चाहती है। रामचरण प्राप्ति म चाप का भारीपन बाधक हो रहा है। सो उसके हरण के लिए प्रार्थना कर रही हैं। क्योकि यह बात दैवीशक्ति से ही सम्भव है। भाव यह है कि मेरी सेवकाई उतनी नही है कि जिसके बदले मे मै यह वरदान माँग सकूँ। आप कृपा करके मनोरथ पूर्ण कीजिये।

गननायक वरदायक देवा। आजु लगे कीन्हिउ तुव सेवा ॥
वार बार विनती सुनि मोरी। करहु चाप गुरुता अति थोरी ॥४॥

अर्थ हे गणनायक! आप वरदायक देव है। मैंने आज तक तुम्हारी सेवा की है। वार बार विनती सुनकर धनुष के भारीपन को बहुत कम कर दीजिये।

व्याख्या गणेशजी ऐसे वरदायक देवता है कि इनके स्मरण से सिद्धि होती है। यथा जेहि सुमिरत सिधि होइ। इसी से इनकी प्रथम पूजा होती है। जानकीजी का कहना है कि आप तो स्मरण मात्र से सिद्धि देते है और मैने आज तक पूजा की है। भाव यह कि नित्य की भाँति आज भी गणपति गौरी गिरीश की पूजा करके तब रङ्गभूमि मे आई है। सेवक का मनोरथ सुस्वामी विना कहे पूर्ण करते हैं और मै तो बार बार विनती कर रही हूँ। नगरवासी तो मनाते है तौ सिवधनु मृनाल की नाईं। तोरहु राम गनेस गोसाईं। पर भगवती जानकीजी चाप की गुरुता को ही थोडी कर देने की प्रार्थना करती है। कम से कम जितने मे अपना मनोरथ सिद्ध हो जाय उतना ही माँगती हैं। जानती है कि उठा लेने से भी रामजी की प्राप्ति सम्भव है। जनकजी ने कहा था रह्यौ चढाउब तोरब भाई। तिल भर भूमि न सकेउ छडाई। भाव यह कि यदि उठा भी लेते तो भी विचार के लिए अवसर था। अत गुरुता अति थोरी कर देने के लिए गणेशजी से प्रार्थना है अथवा भारीपन हरण के लिए शिव पार्वतीजी से प्रार्थना। फिर भी जो कुछ शेष रह जाय उसे हरण के लिए गणेशजी से प्रार्थना करती हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ahkumarnagpal108@gmail.com

दो देखि देखि रघुबीर तन, सुर मनाव धरि धीर।
भरे बिलोचन प्रेम जल, पुलकावली सरीर ॥२५७॥

अर्थ रामजी की ओर बार-बार देखकर धैर्य धारण करके देवता मनाती
न का जल आँखो मे भरा है और शरीर मे पुलकावली छायी हुई है।

व्याख्या बार-बार रामजी की ओर देखती है। शोभा देखने से नेत्र तृप्त
ोते। धैर्य छूटा जा रहा है। इस समय देवता मनाने के लिए भी धैर्य धारण
पड रहा है। विश्वास है कि बिना देवबल के ऐसे कार्यो मे सिद्धि नही होती।
ह बल से शिवजी का धनुष नही टूट सकता। अत देवताओ से प्रार्थना कर
। प्रेम का ही अनुभाव है। अत नेत्रो मे प्रेमजल है और शरीर मे पुलक
ा है।

निरखि नयन भरि सोभा। पितु पनु सुमिरि बहुरि मन छोभा॥
तात दारुन हठ ठानी। समुझत नहि कछु लाभ न हानी॥१॥

अर्थ अच्छी भाँति से आँख भरकर शोभा देखकर और पिता का प्रण
करके फिर मन मे क्षोभ हुआ। अहो! पिताजी ने दारुण हठ ठान लिया।
ानि लाभ का विचार नही कर रहे है।

व्याख्या जब से श्रीरामजी रङ्गभूमि मे पधारे है तब से देख रही है
समीप देखे दोउ भाई। रहे ललकि लोचन निधि पाई। जब वहाँ से चले है
ट चले आ रहे है। शोभा अधिक सुस्पष्ट होती जा रही है। अत कहते है
ामहि बिलोकि बैदेही। सभय हृदय बिनवत जेहि तेही। और भी निकट आ
तब देखि देखि रघुबीर तन सुर मनाव धरि धीर। अब बहुत सन्निकट
तो नीके निरखि नयन भरि सोभा। अब तक दूर दूर से ही साक्षात्कार
। निकट आने पर भली भाँति शोभा देखने का अवसर मिला। अत नयन
देखना कहा। यह मूर्ति आँख से ओझल न हो। यह भावना उठी। तब
बाधा का स्मरण आया और वह पिता का दारुण प्रण था। इससे चित्त म
क्षोभ हुआ। भाव यह कि पुष्प वाटिका मे रामजी को नख शिख शोभा
से पहिले भी क्षोभ हुआ था। यथा नख सिख निरखि राम की सोभा।
र पिता पन मन अति छोभा। अब नयनभर देखने से फिर क्षोभ हुआ। पिता
रुण हठ पर खिन्न हो रही है। दारुण हठ यही है कि जो ब्याहना चाहे उसे
तोडना ही होगा। इन्हे समझना चाहिए था कि रामजी को धनुष तोडने के
जाने देने मे लाभ कुछ नही। हानि यह होगी कि मधुर मूर्ति मलिन हो
ी। इस अद्भुत शोभा मे हानि पहुँचाना कितनी बडी हानि है। कुछ लाभ
न समझकर हठ पर ही अडे रह जाना ही हठ की दारुणता है।

न सचव सिख देइ न कोई। बुध समाज बड अनुचित होई॥
धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ सभी मन्त्री हैं। पर समझाता कोई नही। पण्डितो के समाज मे बडा अनुचित हो रहा है। कहाँ वज्र से भी कठोर धनुप और कहाँ ये सुकुमार शरीरवाले श्यामल किशोर।

व्याख्या उचित यह है कि जो जिस कार्य के योग्य हो उसी को उस कार्य मे नियुक्त करे। नितान्त कोमल को शिवधनुप ऐसे कठोर वस्तु के भङ्ग करने के लिए नियुक्त करना घोर अनुचित है। केवल उसकी प्रतिष्ठा भङ्ग करना है। यहाँ पण्डितो के समाज मे ऐसा अनुचित न होना चाहिए। सो यहाँ सभी मन्त्री उपस्थित हैं। कोई शिक्षा नही देता। चाहि का अर्थ से है। मलिक मुहम्मद जायसी ने भी अपने प्रसिद्ध पद्मावत मे चाहि शब्द का से के अर्थ मे प्रयोग किया है। उसी अनुचित को स्पष्ट करती हुई कहती हैं कि क्या यह वज्र से भी कठोर धनुप इस श्यामल मृदुगात किशोर से टूटने योग्य है जो इन्हे इस कार्य मे नियुक्त किया जाता है? इसका अर्थ उनकी अप्रतिष्ठा छोडकर और क्या हो सकता है?

विधि केहि भाँति धरौं उर धीरा। सिरिस सुमन कन वेधिय हीरा॥
सकल सभा कै मति भई भोरी। अब मोहि संभु चाप गति तोरी॥३॥

अर्थ हे विधि! मैं किस भाँति हृदय मे धैर्य धारण करूँ? क्या सिरिस के फूल के कण से हीरा वेधा जाता है। सम्पूर्ण सभा की वुद्धि भोरी हो गई। हे शिवजी के धनुप! मुझे तो अव तुम्हारी शरण है।

व्याख्या अविधि से कार्य होते देखकर विधि का स्मरण करती हैं कि आप विधि वतलाइये कि मैं कैसे धैर्य धरूँ। मुझसे यह अनुचित सह्य नही है। लोग कहते है कि हीरा वही जो घन चोट ना टूटे। इसी से हीरे की वज्र सज्ञा है। सो यह धनुप हीरा है। जितने वडे घोर कठोर रावण वाणादि सुभट हैं वे ही घन है। इनकी चोट से यह नही टूटा। उसके वेधने के लिए सिरिस के फूल के कण का जो रूई के भी वेधने म असमर्थ है। प्रयोग करना कौन सी वुद्धिमानी है। इन रावण वाणादि के सामने तो ये श्यामल मृदुगात किशोर वस्तुत सिरिस के फूल के कण ही हैं। सो आज इस सभा मे सिरिससुमनकण से हीरा वेधने का प्रयत्न हो रहा है। अत यही कहना पडता है कि सबकी वुद्धि भोरी हो गई। अव तो जो कुछ आशा है सो शम्भुचाप से है। मैं अव उसी के शरण जाती हूँ।

निज जडता लोगन पर डारी। होहु हरुअ रघुपतिहि निहारी॥
अति परिताप सीय मन माँही। लव निमेप जुग सय सम जाँही॥४॥

अर्थ तुमने अपनी जडता लोगो पर डाल दी। अव रघुपति को देखकर हल्के हो जाओ। सीताजी के मन मे वडा परिताप है। निमेप का भी लव अत्यन्त छोटा भाग सौ युग के समान वीत रहा है।

व्याख्या सीताजी अव धनुप से प्रार्थना करती हैं। जडता म ही गुरुता

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

mkmagpal108@gmail.com

। जडपरमाणु जितने ही घनीभूत होते जाते हैं उतनी ही जडता की वृद्धि होती ाती है। सो अपनी जडता लोगो पर डाल दी है तभी तुम्हारे विषय मे सबकी ति भोरी हो गई है। अत तुम अब हलके हो जाओ। रघुपति को देख लो कि ह कितना बोझ उठा सकते हैं। उतने हलके हो जाओ। अथवा जब तुमने अपनी डता लोगो पर डाल दी है तब चेतन होकर रघुपति को देखो और इतने हलके ो जाओ जिसमे ये तुम्हे उठा लें। मैं तुमसे टूटने के लिए प्रार्थना नही करती।

दो प्रभुहि चितइ पुनि चितव महि, राजत लोचन लोल।
खेलत मनसिज मीन जुग, जनु विधु मडल डोल ॥२५८॥

अर्थ प्रभु को देखकर तब पृथ्वी को देखती हैं। चञ्चलनेत्र ऐसे शोभायमान ा रहे हैं जैसे चन्द्रमण्डल के डोल मे दो कामदेव रूपी मछलियाँ तैर रही हो।

व्याख्या डोल एक प्रकार का जलपात्र होता है। इसका गोल आकार ता है। मेरे लडकपन तक डोल से पानी कूएँ से खैंचा जाता था। पर अब डोल ही दिखाई पडता। पर धनियो के यहाँ शीशे के डोल अब भी देखे जाते हैं। नमे सुनहली रूपहली छोटी छोटी मछलियाँ छोड दी जाती है। वे नीचे ऊपर ा करती हैं और उनकी बडी शोभा होती है।

भगवती जनकनन्दिनी प्रेम के कारण प्रभु को देखती है और फिर सङ्कोच पृथ्वी की ओर अर्थात् नीचे देखने लगती हैं। इस भाँति जो नेत्र चञ्चल हो रहे । उनकी शोभा कवि कहते है कि मानो चन्द्रमण्डल रूपी डोल मे दो कामदेव मछलियाँ तैर रही हो। कामदेव मीनकेतन हैं। आँखो की उपमा मीन से दी ती है। सुन्दरता के उत्कर्ष के लिए जनकनन्दिनी की आँखो की उपमा मीन-ान के मीन से दी गई और मुख की उपमा चन्द्ररूपी डोल से दी गई। कभी मजी की ओर देखती हैं। कभी नीचे देखती हैं। तो नेत्र की गति वैसी ही हो ो है जो उन मछलियो की होती है। डोल स्थिर रहता है। मछलियाँ ही चलती । इसी भाँति मुख स्थिर है केवल नेत्र चञ्चल है। हम लोगो का भाषाज्ञान बहुत ङ्कुचित है। अत अर्थ करने मे चूक हो जाती है। जहाँ के लोग डोल से अपर-त है। डोल का अर्थ हिंडोला करते हैं। पर पानी के डोल मे ही मछली का रुना बन सकता है हिंडोले पर तो उनका छटपटाना ही सम्भव है।

रा अलिनि मुख पकज रोकी। प्रकट न लाज निसा अवलोकी ॥
चन जलु रह लोचन कोना। जैसे परम कृपिन कर सोना ॥१॥

अर्थ वाणीरूपी भौंरी को मुखकमल ने रोक रखा। लाज की रात्रि देखकर प्रकट नही होती। नेत्रो का जल नेत्रो के कोने मे उसी भाँति रह गया जैसे म कृपण का सोना हो।

व्याख्या गुरुजन लाज समाज वड। सो लज्जा की रात्रि मे कमलपुट बन्द जाते हैं। उनके बन्द हो जाने से भौंरे भी उनमे बन्द हो जाते हैं। जब रात्रि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जाय, सबेरा हो, कमल खिलें तो वे उनमें से निकल सकें। लज्जा के कारण जनकनन्दिनी बोल नहीं सकती। वाणी भौरी के रूप मुखकमल में बन्द है और मुखकमल लज्जारूपी रात्रि के कारण बन्द है। भाव यह कि वाणी मध्यमा अवस्था तक तो आती है पर लज्जावश वैखरी रूप मे परिणित नही हो सकती। प्रेमाश्रु आंख के कोने मे आगये हैं। पर उन्हे इतने प्रयत्न से रोक रक्खा है कि गिरने नही देती। जिस प्रबल प्रयत्न से परमकृपण अपने सोने को रोके रखता है कदाचित् त्याग नही करता। भाव यह कि परमकृपण को भी देने की इच्छा हो जाती है। सोना हाथ मे ले भी लेता है। पर कृपणता उसकी यही है कि दे नही सकता। बड़े प्रयत्न से मनको रोक लेता है। इसी भाँति श्री जनकनन्दिनी की आँखो मे प्रेम के आँसू डबडबा आये। यथा भरे विलोचन प्रेम जल पुलकावली सरीर। यहाँ तक कि आँखो के कोने तक आगये पर उन्हे जहाँ का तहाँ बड़े प्रयत्न से रोक रक्खा।

सकुची व्याकुलता बडि जानी। धरि धीरज प्रतीति उर आनी ॥
तन मन वचन मोर पनु साचा। रघुपति पद सरोज चितु राचा ॥२॥

अर्थ बडी व्याकुलता समझकर सङ्कुचित हुई। धैर्य धारण करके मनमे विश्वास को स्थान दिया कि तन मन वचन से यदि मेरा प्रण सच्चा है और मेरा मन यदि रघुपति के चरण कमल मे रच गया है।

व्याख्या क्षोभ व्याकुलता म परिणत हुआ और व्याकुलता भी खूब बढी। परन्तु जनकनन्दिनी ने अपने को उस व्याकुलता का द्रष्टा माना। इससे व्याकुलता रूकी सङ्कोच का उदय हुआ। धैर्यधारण की ओर चित्त की वृत्ति गई परन्तु किस विश्वास पर धैर्य धारण किया जाय। विश्वास के लिए मूलभित्ति चाहिए। सो श्रुति ही मूलभित्ति हुई। यद्यत्कामयते तत्तल्लभते जिसकी कामना करे उसकी प्राप्ति होती है। पर कामना सच्ची होनी चाहिए। सो यह विश्वास हुआ कि मनसा वाचा कर्मणा मेरा प्रण सच्चा है। यहाँ रघुपतिपदसरोज म चित्त का रच जाना, लग जाना प्रेम प्रण है। वह चित्त अब दूसरे का नही हो सकता। यथा स्याम सरोज दाम सम सुदर। प्रभु भुज करि कर सम दसकधर। सो भुजकठ कि तव अति घोरा। सुनु सठ अस प्रमान पन मोरा।

तौ भगवान सकल उर वासी। करिहि मोहि रघुपति कै दासी ॥
जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलै न कछु सदेहू ॥३॥

अर्थ तो भगवान् सबके हृदय म रहते हैं मुझे रघुपति की दासी बनायगे। जिसका जिसपर सच्चा प्रेम होता है वह उस मिलता है। इसमें कुछ भी सन्देह नही।

व्याख्या ईश्वर सर्वभूताना हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। ईश्वर सब प्राणियो के हृदय मे रहता है और भाव कुभाव सब जानता है। यथा सबके उर अन्तर वसहु जानहु भाव कुभाव। अत भगवान् मुझ रघुपति की दासी बनावेंगे। क्योंकि वे ही

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जान सकते हैं कि मेरे हृदय का भाव सच्चा है कि नही। भाव यह कि अपनी पुत्री के देने का मुख्य अधिकार पिता को है। वे तो अपनी प्रतिज्ञा से बद्ध हो रहे हैं। कहते हैं कुँवरि कुँआरि रहौ का करहूँ। अत जगत् पिता का भरोसा है कि वे मेरे मनोरथ को पूर्ण करेंगे। जिस भाँति मेरे पिता अपनी प्रतिज्ञा से बँधे हैं उसी भाँति जगत्पिता अपने वचन वेद वाक्य से बँधे है। यहाँ अनुवाद रूप से श्रुति का ही उल्लेख है। जेहि के जेहि पर सत्य सनेहू। सो तेहि मिलै न कछु सदेहू।

प्रभु तन चितै प्रेम पनु ठाना। कृपानिधान राम सब जाना॥
सियहि बिलोकि तकेउ धनु कैसे। चितव गरुरु लघु ब्यालहि जैसे॥४॥

अर्थ प्रभु की ओर देखकर प्रेम पन ठान दिया। कृपानिधान रामजी ने जान लिया। सीताजी की ओर देखकर धनुष को इस भाँति देखा जैसे गरुड छोटे सर्प को देखते हैं।

व्याख्या जिसके विषय म प्रेमप्रण ठानना है वह सम्मुख है। अत उसकी ओर देखकर ठानना स्वाभाविक है। करुणानिधान सुजान ने सब जान लिया। गिरिजा भगवती कह चुकी हैं कि करुना निधान सुजान सील सनेह जानत रावरो। सीताजी ने रामजी की ओर देखकर प्रेम प्रण ठाना और रामजी ने उनकी ओर देख उस प्रेमप्रण को पूर्ण करना मनम ठाना। अत सीताजी की ओर देखकर धनुष की ओर देखा। भाव यह कि सीता की प्राप्ति मे यह बाधक है। और नरेन्द्रो की भाँति तमकि ताकि तकि नही। यह तो इस भाँति देखते है जैसे गरुड छोटे सँपेल को देखे। गरुड के सामने बडे बडे भुजगेन्द्र कुछ नही हैं सँपेल की क्या गिनती है। वह सँपेल को अति तुच्छ गरुड के सामने दृष्टि से देखते हैं का बापुरो पिनाक पुराना।

दो लषन लखेउ रघुबसमनि, ताकेउ हर कोदड।
पुलकि गात बोले बचन, चरन चाँपि ब्रह्मड॥२५९॥

अर्थ लक्ष्मणजी ने लखा कि रघुवशमणि ने शिवजी के धनुष की ओर देखा। उनके शरीर म पुलक हो गया। ब्रह्माण्ड को पैर से दबाकर बोले।

व्याख्या जबसे रामजी चले लक्ष्मणजी की दृष्टि उन्ही पर है। अत उन्होने ही लखा कि रामजी ने धनुष की ओर देखा। अब लिया ही चाहते हैं। लक्ष्मणजी का आनन्दातिशय से पुलक हो गया। शिवधनुष तोडने म जिस शक्ति का प्रयोग होगा उससे ब्रह्माण्ड म हल्चल न हो। अत पैर से ब्रह्माण्ड को दबा कर वचन बोले। भाव यह कि ऊपर से म दबाये हुए हूँ नीचे से तुमलोग सँभालना। दूसरी बात यह कि इस समय यदि सीधे अयोध्या से राजसमाज के साथ स्वयवर के लिए रामजी पधारे होते तो बन्दी बलवर्धन के लिए विरद बोलते। लक्ष्मणजी विरद बोल नही सकते। अत शष कमठादि के सावधान करने के व्याज से बलवर्धक वाक्य बोले। यथा अहि महिधर न लखन कह बलहि बढावन। राम चहत सिव चापहि चपरि चढावन।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दिसिकुंजरहु कमठ अहि कोला । धरहु धरनि धरि धीर न डोला ॥
राम चहहिं संकर धनु तोरा । होहु सजग सुनि आयसु मोरा ॥१॥

अर्थ : हे दिग्गजगण ! कच्छप शेष और कूर्म धैर्य धारण करो जिसमे यह हिले नही। रामजी शङ्कर का धनुष तोडा चाहते हैं। मेरी आज्ञा को सुनकर सबलोग सावधान हो जाओ।

व्याख्या : पृथ्वी के चार सँभालनेवाले हैं चारो दिशाओ से तो चारो दिग्गज सँभालते है। नीचे से वराह शेष और कच्छप सँभालते है। इनको लक्ष्मणजी सावधान करते हैं और आज्ञा देते हैं। लक्ष्मणजी जाग्रत के विभु होने से सकल जगत् के आधार हैं। अर्थात् ब्रह्माण्डमात्र के आधार है। शेषो की समष्टि हैं। अत सभी व्यष्टियो पर इनकी आज्ञा चलती है। पृथ्वी को अपने स्थान से च्युति की सम्भावना है। भारी धक्का पहुँचेगा। दिग्गजादि के भी धैर्यच्युति की सम्भावना है। अत धैर्य धारण करके पृथ्वो को सभालने के लिए सावधान करते हैं।

कारण कहते हैं कि रामजी प्रलयकारी देव साक्षात् रुद्र का धनुष तोडना चाहते है। सभी वस्तुओ मे ऐसी शक्ति निहित रहती है जिससे उसका स्वरूप बना रहता है। उस वस्तु के विनाश मे उससे अधिक शक्ति का प्रयोग होता है। शिवजी के धनुष मे बडी बलवती शक्ति निहित है। धनुष के टूटने से जब वह छूटेगी तो ब्रह्माण्ड मे उलट पलट कर देगी। राम चहहिं का भाव यह है कि ये उसे तोडही डालगे। यथा : राम कीन्ह चाहैं सो होई। करै अन्यथा अस नहिं कोई। अकस्मात् उसके आघात से *जगत् का अकल्याण सम्भावित है। पहिले से ही सावधान रहने* से उसे सँभाल सकेंगे। इसलिए लक्ष्मणजी सावधान करते हुए आदेश देते हैं। अतिशक्तिशाली पदार्थ का प्रभाव अति क्षुद्र जन्तुओ पर नही पड सकता। उसका प्रभाव उन्ही पर पडता है जो उसके स्पन्दन के अनुभूति के पात्र हो। जैसे हजारो बन्दूको के एक साथ छूटने से जो शब्द होता है उसके स्पन्दन को हमारी श्रवणेन्द्रियाँ सम्यक् रूप से ग्रहण नही कर सकती। अत. हम लोगो को हलकी आवाज सुनाई पडती है। इसी भाँति शिवधनुष भङ्ग का प्रभाव पृथ्वी या ब्रह्माण्ड पर विशेष रूप से पड सकता था मनुष्यो पर उतना नही।

चाप समीप राम जब आए। नर नारिन्ह सुर सुकृत मनाए ॥
सब कर संसउ अरु अग्यानू। मंद महीपन्ह कर अभिमानू ॥२॥

अर्थ : रामजी जब धनुष के पास गये तब स्त्री पुरुषो ने देवता और पुण्यो को मनाया। सबका सशय अज्ञान और मूढ राजाओ का अभिमान।

व्याख्या : ज्यो ही रामजी चले त्योही नर नारियो ने अपने अपने सुकृत : पुण्य को प्रयोग करने के लिए सभाला। यथा . वदि पितर सुर सुकृत सभारे। अब जब रघुवरजी धनुष के निकट पहुँच गये तो उसका प्रयोग करते है। अपने देवता और पुण्य को मनाते हैं कि समय आगया सहाय होइये। क्योकि उनके मन मे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


संशय है कि रामजी से सम्भवत धनुष न टूटे और उत्कट इच्छा है कि रामजी तोड़ें। इसलिए अत्यन्त कष्ट से उपार्जित पुण्य और तीव्र उपासना से आराधित देवों से काम लेते हैं।

इस प्रकार १ सबको संशय है और २ रामजी के बलविषयक अज्ञान है। ३ मूढ राजाओं को अभिमान है कि जब हमसे धनुष न टूटा तो कोई इसे तोड नहीं सकता। देखें कौन तोडता है? इसलिए अपने अपने समाज में आसन लगाये बैठे हैं।

भृगुपति केरि गरब गरुआई। सुरमुनिवरन्ह केरि कदराई॥
सिय कर सोचु जनक पछितावा। रानिन्ह कर दारुन दुख दावा॥३॥

अर्थ . ४ परशुरामजी के गर्व का गौरव। ५ सुर और मुनिश्रेष्ठों का कादरपन। ६ सीताजी का सोच ७ जनकजी का पछतावा और ८ रानियों का दारुण दु ख दावानल बभडाढा।

व्याख्या परशुरामजी को बडा भारी गर्व था कि जगत् में मैं ही एक अप्रतिम वीर हूँ। यह धनुष मेरे गुरुजी का है। इसमें यदि कुछ पराक्रम काम कर सकता है तो मेरा ही काम कर सकता है। दूसरो का किया कुछ नहीं हो सकता। सुर मुनि भयभीत हैं कि यदि रामजी से धनुष न टूटा तो सीताजी से ब्याह ही न होगा। फिर रावणवध की कथा ही क्या है? सीताजी को सोच है कहँ धनु कुलिसहु चाहि कठोरा। कहँ स्यामल मृदुगात किसोरा। बिधि केहि भाँति धरौं उर धीरा। सिरिस सुमन कन बेधिहि हीरा। जनकजी को पछतावा है कि जौं जनतेउ बिनु भट भुवि भाई। तौ पन करि करत्यौं न हँसाई। रानियों को दारुन दु ख है कि सो धनु राजकुअँर कर देहीं। बाल मराल कि मंदर लेहीं। भूप सयानप सकल सिरानी। सखि बिधि गति कछु जात न जानी।

संभुचाप बड बोहित पाई। चढे जाइ सब संगु बनाई॥
राम बाहुबल सिंधुअपारू। चहत पार नहिं कोउ कडहारू॥४॥

अर्थ शिवजी के धनुष को बडे भारी जहाज रूप से पाकर सब सार्थ कम्पनी बनाकर चढे। राम बाहुबलरूपी अपार समुद्र का पार चाहते हैं। पर कोई कर्णधार नहीं है।

व्याख्या उपर्युक्त आठो भाव संशय, अज्ञान, अभिमान, गर्व, गरुआई, कदराई, शोक, पछितावा और दारुण दु खदावानल धनुष में ही केन्द्रित हैं। इसी बात को रूपकालङ्कार में कहा जाता है। मानो ये आठों भाव ही वणिक् समाज कम्पनी है। सात से कम की कम्पनी नहीं होती। इन आठों का लक्ष्य एक है। ये सब अपार रामबाहुबल सिन्धु के पार जाना चाहते हैं। सिन्धु का तो कहीं न कहीं वारपार है ही। पर रामबाहुबल सिन्धु का पार नहीं है। जिसका पार ही नहीं है उसका पार कोई कैसे पा सकता है। पर ये असाध्य साधन में लगे हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सिन्धुपार जाने के लिए जहाज चाहिए सो शिवधनुष को बडा जहाज समझकर चढ गये। समझा कि यह पार पहुँचा देगा। अर्थात् यह रामजी का तोड़ा न टूटेगा तो हमलोग पार पहुँच जायेंगे अर्थात् मशय अज्ञानादिक की स्थिति दृढतर हो जायगी। परन्तु सामान्य पारवाले समुद्र के पार भी जहाज विना कर्णधार के जा नही सकता। कर्णधार ही रक्षक है। यथा कर्णधार तुम अवध जहाजू। सो यहाँ कर्णधार ही नही। इसके स्वामी तो शिवजी थे उनसे यह परित्यक्त ही है। महाराज जनक के यहाँ रखा था। वे भी इसका टूटना ही चाहते हैं। अत यह चापरूपी जहाज विना कर्णधार का है। यह राम बाहुबल रूपी सिन्धु मे डूबेगा। पर इस समय तो सशय अज्ञानादि वणिक् समाज का यही आधार है। भाव यह है। कि अलग-अलग लोगो मे इन्ही आठ भावो मे से कोई न कोई काम कर रहा है। पर सबके भावो का आधार एकमात्र धनुष हो रहा है और उसका सघर्ष रामबाहुबल रूपी अपारसमुद्र से हुआ ही चाहता है। अत जनता स्तब्ध होकर बडी उत्कण्ठा के साथ इस सघप के परिणाम पर दृष्टि लगाये हैं।

दो राम विलोके लोग सब, चित्र लिखे से देखि।
चितई सीय कृपायतन, जानी विकल विसेखि ॥२६०॥

अर्थ रामजी ने लोगो को देखा मानो चित्र मे लिखे हुए है। कृपा क भवन ने सीताजी को देखकर जाना कि विशेष विकल है।

व्याख्या सबकी भावना एक ही विषय मे केन्द्रित है। इसलिए सब चित्र मे लिखे हुए की भाँति हिलते डोलते नही हैं। चित्र मे लिखे हुए नर-नारि उसी अवस्था म सदा रहते हैं पलक नही मार सकते। यही दशा यहाँ सबकी हो रही है। कृपायतन हैं। अत फिर सीताजी को देखा। यह दूसरी बार का देखना है। निकट आ गये हैं। जान लिया कि इन्हे विशेष विकलता है।

देखी विपुल विकल बैदेही। निमिष बिहात कलप सम तेही ॥
तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुएँ करै का सुधा तडागा ॥१॥

अर्थ वैदेही को बहुत ही विकल देखा। उन्हे एक निमिष कल्प के समान बीत रहा है। प्यासा विना पानी के जो शरीर छोड दे तब मरने पर जल का तालाब क्या करेगा यहाँ प्रकरणबल से अमृत का अर्थ जल ही करना होगा।

व्याख्या जब रामजी चले तभी सीताजी विकल थी। यथा अति परिताप सीय मन माही। लव निमेष युग सय सम जाही और धनुष के समीप पहुँचने-पहुँचते परिताप ऐसा बढा कि एक निमेष कल्प मालूम होने लगा। छ लव का एक निमेष होता है। अत एक निमेष ६०० युग के बराबर मालूम होता था। चार युगो का एक महायुग होता है। अत १५० महायुगो के तुल्य प्रतीत होता था। अब एक निमेष एक कल्प अर्थात् एक सहस्र महायुगो के समान मालूम होने लगा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थात् इतनी ही देर मे परिताप की मात्रा पाँच गुना से अधिक बढ गई। दुःख की घडी बडी कठिनता से बीतती है।

लोचन चातक जिन करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाखे। निदरहिं सरित सिंधु वरवारी। रूप बिंदुजल होहिं सुखारी। रूप विन्दु की प्यासी चातकी यदि प्यास से मर ही गई तो पीछे से अमृत का तालाव क्या करेगा? अमृत का अर्थ जल है। यथा पय कीलालममृत जीवन भुवन वनम्। आगे चलकर धनुप-भङ्ग होने पर कहेगे भी सीय सुखहि वरनिय केहि भाँती। जिमि चातकी पाइ जल स्वाती।

**का वरपा सब कृपी सुखाने। समय चुके पुनि का पछिताने॥**
**अस जिय जानि जानकी देखी। प्रभु पुलके लखि प्रीति विसेखी॥२॥**

अर्थ जब खेती सूख गई तब वर्षा होने ही से क्या? समय चूक जाने पर फिर पछताने से क्या लाभ। ऐसा मन मे जानकर प्रभु ने जानकीजी को देखा और प्रीति विशेप देखकर रामजी को पुलक हो गया।

व्याख्या भाव यह कि दशम दशा उपस्थित है। अब खेती सूखा ही चाहती है। यदि कुछ प्राण रहते भी वर्षा हो जाय तो फिर खेती के लहलहा उठने मे देर नही। अत अब देर न होनी चाहिए। इस समय चूकने से अर्थात् कुछ भी देर करने से सीताजी से हाथ धोना ही पडेगा। ऐसा विचार करके तीसरी बार भगवती जनकनन्दिनी की ओर देखा और इस प्रकार की अलौकिक प्रीति देखकर प्रभु को पुलक हो गया। प्रभु करुनानिधान सुजान शील सनेह के जाननेवाले है। तीन बार जानकीजी ने देखा था। यथा १ नीके निरखि नयन भरि सोभा २ देखि देखि रघुवीर छवि सुर मनाव धरि धीर और ३ प्रभु तन चितय प्रेम पन ठाना। उधर भरे विलोचन प्रेमजल पुलकावली सरीर। इधर प्रभु पुलके लखि प्रीति विसेखी।

**गुरहि प्रनाम मनहि मन कीन्हा। अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा॥**
**दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। पुनि नभ धनु मडल सम भयऊ॥३॥**

अर्थ गुरुजी को मन ही मन प्रणाम किया और अत्यन्त फुरती से धनुप को उठा लिया। जिस समय उठाया तो बिजली सी चमक गई। फिर आकाश मे धनुप मण्डलाकार हो गया।

व्याख्या कौशल दिखाने के पूर्व उस गुरु को प्रणाम करना चाहिए जिससे कौशल की प्राप्ति हुई है और ऐसे समय मन से ही प्रणाम सम्भव है। प्रभु ने ऐसी फुरती धनुप के उठाने मे की कि जो लोग चित्र लिखे से हो रहे थे वे भी नही देख पाये। अत्यन्त फुरती की प्रक्रिया मे एक रेखा सी बन जाती है जैसे बनेठी के आग की रेखा बन जाती है उसी भाँति बिजली की रेखा सी बन गई। उठाते

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



किसी ने न देखा। यह देखा कि बिजली सा कुछ चमका। फिर सब किसी ने आकाश में धनुष को मण्डलाकार देखा।

लेत चढावत खैंचत[1] गाढे। काहु न लखा देख सबु ठाढे॥
तेहि छन राम मध्य धनु तोरा। भरे भुवन धुनि घोर कठोरा॥४॥

अर्थ लेते चढाते और पटुता से खैंचते हुए किसी ने नहीं देखा। सब देखते हैं कि रामजी खडे हैं। उसी समय उन्होंने बीच से धनुष को तोड दिया। सम्पूर्ण भुवन में घोर कठोर ध्वनि भर उठी।

व्याख्या धनुष के उठाने का लाघव कहकर अब चढाने और खैंचने का लाघव कहते हैं। किसी ने कुछ न देखा। सबको मालूम पडा कि रामजी खडे ही हैं। रामजी का झुकना धनुष को उठाना उसपर प्रत्यञ्चा चढाना और उसे पण्डिताई के साथ कसकर खैंचना जिसमें टूट जाय किसी को लखाई ही नहीं पडा। गाढ का अर्थ पण्डिताई से है। यथा कबहु न मिले सुभट रनगाढे। बाँधे बिरद बीर रन गाढे। उसी समय रामजी ने बीच से धनुष को तोड दिया। बीच से तोडने का भाव यह कि कोई यह न कह सके कि धनुष के पतल भाग को तोडा बीच से न तोड सके। जितनी कठोर वस्तु होती है उसके टूटने म वैसी कठिन ध्वनि होती है। धनुष वज्र से भी कठिन था। इसलिए वज्रपात से भी घोर शब्द हुआ। सम्पूर्ण भुवन मे भर गया। घोर से गम्भीर कहा और कठोर से असह्य कहा।

छ भरे भुवन घोर कठोर रव रबि बाजि तजि मारगु चले।
चिक्करहिं दिग्गज डोल महि अहि कोल कूरुम कलमले॥
सुर असुर मुनि कर कान दीन्हे सकल बिकल बिचारहीं।
कोदंड खंडेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं॥

अर्थ घोर कठोर ध्वनि भुवन मे भर गयी। सूर्य के घोडे मार्ग छोडकर चले। दिग्गज चिग्घाडने लगे। पृथ्वी डोल उठी। शेष बराह और कच्छप भी हिल गये। देवता असुर और मुनियों ने कान मूँदा। सब विकल होकर विचरते हैं कि रामजी ने धनुष तोडा। तुलसीदास जयजयकार कर रहे हैं।

व्याख्या घोर कठोर ध्वनि से सारा भुवन व्याप्त हो गया। सूर्य के घोडे भडककर दूसरी ओर चले। बल न चलने पर दिग्गज चिक्कार करने लगे। लक्ष्मणजी के सावधान करने पर भी पृथ्वी को स्थिर न रख सके। वह डोलने लगी। यही नहीं उसके आधारभूत वाराह शेष और कच्छप हिलने लगे। जो जो उस शब्द के स्पन्दन ग्रहण करने मे समर्थ थे अर्थात् देवता असुर और मुनि उन्होंने अपने कानों को मूँद लिया। शब्द की कठोरता न सह सके विकल हो गये। विचारने

---

१. यहाँ कारक दीपक अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लगे कि निश्चय रामजी ने धनुष तोडा। गोस्वामीजी भी उस समय अपनी मानसिक उपस्थिति मानकर कहते है कि तुलसीदास जयजयकार करने लगा। इसी बात को श्री गोस्वामीजी ने बडी सुन्दरता से प्रकट किया है।

छप्पय डिगति उर्वि अति गुर्वि सब्ब पब्बय समुद्र सर।
व्याल वधिर तेहि काल विकल दिगपाल चराचर॥
दिग्गयद लरखरत परत दसकठ मुक्ख भर।
सुरविमान हिम भानु यान सघटित परस्पर॥
चौके विरचि सकर सहित कोल कमठ अहि कल्मल्यो।
ब्रह्माड खड कियो चड ध्वनि जबहि राम सिवधनु दल्यो॥

दो सकर चापु जहाजु, सागरु रघुवर बाहुबल।
बूड सो सकल समाजु, चढा जो प्रथमहि मोहवस ॥२६१॥

अर्थ शकर चाप रूपी जहाज रघुवरबाहुबल सागर मे सब समाज के सहित जो पहिले मोहवश उसपर चढा था डूब गया।

व्याख्या राम बाहुबल सिंधु अपारू। चहत पार नहि कोउ कडहारू से प्रसङ्ग छोडा था। अब उसी प्रसङ्ग का उपसहार करते है सकर चापु जहाजु सागरु रघुवर बाहुबल। रामचन्द्र का बाहुबल अपार समुद्र है इसका पारावार ही नहीं। कर्णधार से सनाथ जहाज भी यहाँ कृतकार्य नही हो सकता था। यह चाप तो कर्णधार रहित था। रामबाहुबलरूपी समुद्र के पहिले थपेडे म ही टूट गया। जो समाज इसपर कर्णधार रहित जहाज पर मोहवश चढा था डूब मरा। सारी कम्पनी समुद्र तल मे लीन हो गई। इस दोहा पर बडे तर्क वितर्क उठते है। अत जो पहिले मोहवश चढे थे और जहाज के टूटने पर डूब मरे उनकी तालिका जैसी ग्रन्थकार ने दी है उपस्थित करता हूँ यथा १ सबकर ससय अरु २ अज्ञानू ३ मद महीपन्ह कर अभिमानू ४ भृगुपति केरि गर्व गरुआई ५ सुर मुनिवरन्ह केरि कदराई ६ सियकर सोच ७ जनक पछितावा और ८ रानिन कर दारुन दु खदावा। सभु चाप बड बोहित पाई। चढे जाई सब सग बनाई। धनुष के टूटने से सब डूब गये। सबका सशय और अज्ञान भी जाता रहा। मद राजाओ का अभिमान जाता रहा। परशुरामजी का अभिमान मारा पडा। सुर मुनिवरो की कदराई गई। सीताजी का सोच गया। जनक का पछितावा जाता रहा और रानियो का दु ख दावानल मिटा। इसी बात को जिसे मैने रूखे सूखे शब्दो मे कहा है। कितनी सुन्दरता और सरलता से कवि ने जहाज टूटने के रूपक मे वह डाला।

प्रभु दोउ चापखड महि डारे। देखि लोग सब भए सुखारे॥
कौसिकरूप पयोनिधि पावन। प्रेम वारि अवगाहु सुहावन ॥१॥

अर्थ प्रभु ने दोनो टुकडे धनुष के पृथ्वी पर डाल दिये। देखकर सब सुखी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हो गये। विश्वामित्रजी का स्वरूप पवित्र समुद्र था। जिसमे सुन्दर प्रेम रूपी जल अथाह भरा था।

व्याख्या तोडते तो किसी ने लखा नही। रामजी ने दोनो टुकडे भूमि पर डाल दिये कि सबलोग देख ले। दोनो टुकडो मे कोई लगाव नही है। जनकजी का वचन सुनकर सब दुखारी हुए थे। यथा जनक वचन सुनि सब नरनारी। देखि जानकिहि भये दुखारी। अब वे ही लोग सुखारे हुए।

कौशिक का रूप क्या है मानो स्वय पावन समुद्र है। लौकिक समुद्र दिन-विशेष देशविशेष तथा कालविशेष छोडकर सब देशकाल मे अस्पृश्य है। यथा अश्वत्थसागरौ सेव्यौ न स्पृष्टव्यौ कदाचन। भारते। विना मन्त्र विना पर्व क्षुरकर्म विना नरै। कुशाग्रेणापि देवेशि न स्पृष्टव्यो महोदधि। स्कान्दे। अश्वत्थ और समुद्र का पूजन करे पर उन्हे छूए नही। मन्त्र पर्व क्षौरकर्म विना हे देवि कुश के अग्र से भी समुद्र का स्पर्श न करे, परन्तु कुशिकनन्दन का रूप पवित्र समुद्र है। प्रेमरूपी जल से भरा हुआ पावन है।

रामरूप[1] राकेसु निहारी। बढत वीचि पुलकावलि भारी ॥
बाजे नभ गहगहे निसाना। देववधू नाचहि करि गाना ॥२॥

अर्थ रामरूप पूर्ण चन्द्र को देखकर उसम तरङ्गरूपी भारी पुलकावली बढ रही है। आकाश से गहगह शब्द से डङ्के बजे। देववधू गान करके नाचने लगी।

व्याख्या विश्वामित्रजी प्रेम के समुद्र है। रामचन्द्र का दर्शन भी आजकल बराबर कर रहे है। परन्तु आज रामरूपी चन्द्र पूर्णकला से उदित है। मानो धनुपरूपी राहु को जिसने राजाओ के बलरूपी चन्द्र का ग्रास किया था समरभूमि म वध करके विजयलक्ष्मी से शोभा को प्राप्त किये है। यथा लहुरी लोचननि को लाहु। कुँवर सुदर सावरो सखि सुमुखि सादर चाहु। खडि हर कोदड ठाढे जानुलबित बाहु। मुदितमन बरवदन शोभा उदित अधिक उछाहु। मनहु दूरि कलक करि ससि समर सूद्यौ राहु। समुद्र का पूर्णचन्द्र को देखकर तरङ्गो द्वारा बढना विख्यात है। इसी भाँति रामचन्द्र रूपी अपूर्व पूर्ण चन्द्र को देखकर प्रेमामृतपूर्ण समुद्ररूप विश्वामित्रजी के शरीर मे बारबार पुलकरूपी तरङ्गे उठने लगी।

भगवती जनकनन्दिनीजी के रङ्गभूमि प्रवेश के अवसर पर कहा है कि हरखि सुरन्ह दुदुभी बजाई। बरखि प्रसून अपछरा गाई। पर इस समय तो आनन्द उछाह और अधिक बढ गया है। अत कहते है कि आकाश मे गहगहे निशान बजे। फूलो की वर्षा हुई। देववधुओ ने गाना नाचना प्रारम्भ किया।

ब्रह्मादिक सुर सिद्ध मुनीसा। प्रभुहि प्रससहि देहि असीसा ॥
बरषहि सुमन रग बहु माला। गावहि किनर गीत रसाला ॥३॥

---

१ इसम यह भी द्योतित किया कि धनुप भङ्ग शरद् पूर्णिमा के दिन हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

वाले की सी थी। डूब ही रहे थे। सब पुरुषार्थ थक गया। कहने लगे कुँवरि कुँवारि रहे का करहूँ। सो धनुपभङ्ग से वह शोक मिटा और परम सुखी हुए।

श्रीहत भए भूप धनु टूटे। जैसे दिवस दीप छवि छूटे ॥
सीय सुखहि वरनिअ केहि भाँती। जनु चातकी पाइ जलु स्वाती ॥३॥

अर्थ धनुष टूटने से राजा श्रीहत हो गये। जैसे दिन मे दीप की शोभा जाती रहती है। सीताजी के सुख को किस भाँति वर्णन किया जाय। जैसे चातकी को स्वाति का जल मिल गया हो।

व्याख्या पहिले अरुणोदय कहा। यथा अरुणोदय सकुचे कुमुद उडगन जोति मलीन। तब सूर्योदय कहा। यथा उदित उदयगिरि मच पर रघुवर बाल पतग। सूर्योदय होने पर दिन कह रहे हैं कि राजा ऐसे निस्तेज पड गये जैसे दिन म दीपक। भाव यह कि मन्द महीपन कर अभिमानू भी उस समाज म था। जो धनुप रूपी जहाज पर चढे थे। सो इस समय धनुप टूटते ही यह डूब गया। उसी के साफल्य रूप से राजाओ की श्रीहीनता वर्णन करके कहते हैं।

सीताजी की अवस्था रामजी ने देखी तो ऐसी हो रही थी जैसे प्यासा बिना पानी के मर रहा हो। यथा तृषित वारि बिनु जो तनु त्यागा। अब जैसे चातकी को स्वाती की बूँद मिल जाय और प्यास मिटकर सुख हो। वैसा सुख श्रीजनक नन्दिनी को हुआ। वर्षा के सब नक्षत्र बीत गये चातकी को जल न मिला। उसकी प्यास बढती ही गई। वह मरणोन्मुख हो रही थी। तब से स्वाती की वर्षा हो गई। जिसकी वस्तुत उसे प्यास थी। अत सीताजी के सोच के डूबने का प्रसग कहते है कि वह भी पूर्वोक्त सायान्तिको पात वणिको म से था। यथा सियकर सोच जनक पछितावा।

रामहि लपनु विलोकत कैसे। ससिहि चकोर किसोरकु जैसे ॥
सतानद तब आयसु दीन्हा। सीता गमनु राम पहिं कीन्हा ॥४॥

अर्थ रामजी को लक्ष्मणजी इस भाँति देख रहे हैं जैसे चन्द्रमा को चकोर का बच्चा देख रहा हो। सतानन्दजी ने तब आज्ञा दी। सीताजी रामजी के पास चली।

व्याख्या इस समय प्रभु धनुपभङ्ग करके खडे हैं। अपार शोभा है। लक्ष्मण जी यद्यपि विश्वामित्रजी के पास बैठे हैं परन्तु दृष्टि रामजी पर ही है। सो इस समय प्रभु की ओर इस चाव से देख रहे है जैसे चन्द्र को चकोरकिशोर देखे।

वन्दी लोग महाराज जनक का प्रण कहते हुए बोल चुके है सोइ पुरारि कोदण्ड कठोरा। राज समाज आज जेहि तोरा। त्रिभुवन जय समेत वैदेही। बिनहिं विचारि वरै हठ तेही। सो वह समय उपस्थित है। सरकार ने धनुप तोडा। अब वदेही जाकर उनका वरण करे। विवाहकार्य म पुरोहित की आज्ञा ही प्रधान है। अत सतानन्दजी की आज्ञा हुई कि सीताजी को रामजी के समीप ले जाओ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


दो. संग सखी सुंदर चतुर, गावहिं मंगलचार।
गवनी बाल मराल गति, सुखमा अंग अपार ॥२६३॥

अर्थ : सग मे सब सखियाँ चतुर और सुन्दर थी। वे मङ्गलाचार गान कर रही थी। सीताजी : बालहस की गति से चली। अङ्ग की अपार परमा शोभा थी।

व्याख्या : रङ्गभूमि मे प्रवेश के समय कहा : सग सखी सब सुभग सयानी। गावहि गीत मनोहर बानी। इस समय वे ही सुन्दरी सखियाँ सीताजी को घेरे हुए मङ्गलाचार के गीत जो उस काल मे ऐसे अवसर पर गाये जाते थे गाती हुई चली। श्रीजनकनन्दिनी की शोभा ही परमा शोभा है और वह भी अपार है। वे बालमराल की गति से चली। श्रीजनकनन्दिनी की हसगति स्वाभाविकी है। यथा हसगवनि तुम नहि बन जोगू। इस समय तो बहुत छोटी उम्र है। इसलिए गति की उपमा बालमराल से देते हैं। उधर सहजहि चले सकल जग स्वामी। मत्त मजु कुजर बरगामी। इधर गवनी बाल मराल। उधर राम बाहुबल सिधु अपारू। इधर सुषमा अंग अपार। सखियो की मराल गति रही। भगवती की बालमराल सी गति है।

सखिन मध्य सिय सोहति कैसे। छबिगन मध्य महाछबि जैसे ॥
कर सरोज जयमाल सोहाई। बिस्व बिजय सोभा जेहि छाई ॥१॥

अर्थ : सखियो के बीच मे सीताजी कैसी शोभायमान है जैसे छविगण के बीच मे महाछवि की शोभा हो। करकमल मे कमल का जयमाल शोभा दे रहा है। जिसके ऊपर विश्वविजय की शोभा छाई हुई है।

व्याख्या · सखियो ने सब ओर से सीताजो को घेर रखा है। इसलिए सखिन मध्य कहते हैं। सग सखी सुन्दर सकल कह आये है। वे सखियाँ ऐसी सुन्दर हैं मानो स्वय छवि ने ही अनेकानेक रूप धारण कर रखे है। उनके बीच मे श्रीजनकनन्दिनी साक्षात् रूपधारी महाशोभा की भाँति सुशोभित हैं। जो पटतरिय तीय सम सीया। जग अस जुवति कहाँ कमनीया। अत· महाछवि कहते हैं। महाछवि कहकर उनका आदिशक्ति छविनिधि जगमूला होना द्योतित किया। यहाँ सरोज शब्द देहलीदीपकन्याय से कर और जयमाल दोनो शब्दो से समन्वित होगा अर्थात् करसरोज और सरोज जयमाल। वसन्त ऋतु होता तो मधूक महुआ के फूलो की माला होती। शरद् ऋतु है। अत कमल का जयमाल बना था। जिनके गले मे माला पडनेवाली है उनके विषय मे कवि ने कहा है कि मनहु मनोहरता तन छाये। इसलिए माला के विषय मे भी कह रहे हैं कि · बिस्व बिजय सोभा जेहि छाई। इससे जयमाल की शोभा कही और जयमालाओ मे उपस्थित नृपगणो के विजय की शोभा रहती है। पर इस जयमाल मे विश्वविजय की शोभा है। प्रतिज्ञा मे घोषणा भी ऐसी ही की गई थी। यथा : त्रिभुवन जय समेत बैदेही। बिनहि बिचार बरै हठि तेही।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


तन सकोच मन परम उछाहू। गूढ प्रेम लखि परै न काहू॥
जाइ समीप राम छवि देखी। रहि जनु कुँवरि चित्र अवरेखी॥२॥

अर्थ शरीर मे सङ्कोच है। मन मे परम उत्साह है। छिपा हुआ प्रेम किसी को लखाई नही पडता। निकट जाकर जो रामजी की छवि देखी तो कुँवरि चित्र मे लिखी सी हो गई।

व्याख्या तन से तो सङ्कोच है। यथा गुरुजन लाज समाज वड और अति प्रेम के कारण मन मे परम उछाह है। इसीलिए उस प्रेम को गूढ कहते है। वह सङ्कोच मे छिपा हुआ है और ऐसा छिपा है कि कोई लख नही सकता। बाहर देखने से केवल सङ्कोच ही सङ्कोच दिखाई पडता है। गूढ प्रेम का पता नही चलता। राजा विदेह को भी गूढप्रेम था। यथा वदौं परिजन सहित विदेहू। जाहि रामपद गूढ सनेहू। जोग भोग महँ राखेउ गोई। उन्ही की बेटी है। अत इन्हे भी गूढ प्रेम है। सङ्कोच मे छिपाए हुए है। अभी तक रामजी की छवि को श्रीजनकनन्दिनी ने इतने निकट से नही देखा था। इस समय इतने निकट चली गई है कि माला पहिना सके। अत जो रामजी की छवि देखी तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म सुन्दरता पर दृष्टि पडी। जनकनन्दिनी स्तब्ध रह गई। इष्ट या अनिष्ट को देखकर क्रियाहीन हो जाने को ही स्तब्ध होना कहते है। उसी क्रियाहीनता को ही कवि कुँवरि को चित्र लिखित पुतली से उपमा देकर द्योतित करते है।

चतुर सखी लखि कहा बुझाई। पहिरावहु जयमाल सुहाई॥
सुनत जुगल कर माल उठाई। प्रेम विवस पहिराइ न जाई॥३॥

अर्थ चतुर सखी ने लखा। उसने समझाकर कहा कि सुन्दर जयमाल पहनाओ। सुनते ही सीताजी ने दोनो हाथा से माला उठायी। परन्तु ऐसी प्रेमवश हो गई है कि पहिराते नही बनता।

व्याख्या वह सयानी सखी भी तो साथ थी जिसने पुष्पवाटिका मे कहा था कि बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूप किसोर देख किन लेहू। किसी ने सीताजी के गूढ प्रेम को नही लखा। केवल उसी ने लखा कि इन्हे प्रथम सात्त्विक भाव स्तम्भ हो गया। इसलिए सीताजी को समझाया एहि अवसर के देर ते फेर समुझ म होय। वरन चहत नाहिन कुँअरि अस समुझिहि सब कोय। और कहती है जयमाला सुन्दर है। इसे पहना दो।

सुनते ही दोनो हाथो से माला को उठाया। मानो माला बडी भारी मालूम हो रही है। बडी कठिनता से उठाया तो परन्तु प्रेमाधिक्य से अङ्ग शिथिल हैं। पहनाना चाहती हैं। पहनाते नही बनता। उधर लेत चढावत खैंचत गाढे। काहु न लखा देख सब ठाढे। इस लाघव मे ही शोभा थी। इधर जयमाल पहनाने की मन्थरता म ही शोभा है। सब लोग देख लें पहनाने की शोभा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहि सभीत देत जयमाला॥
गावहिं छवि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल राम उर मेली॥४॥

अर्थ : मानो मृणाल के सहित दो कमल चन्द्रमा को जयमाल देते हुए शोभित हैं। छवि देखकर सखी सहेलियाँ गान करने लगी। सीताजी ने रामजी के गले में जयमाल डाल दी।

व्याख्या : ग्रन्थकार श्री रामजी के गले में सीताजी द्वारा जयमाल पहनाने की शोभा वर्णन करते हैं। श्रीसीताजी के दोनों हाथों की उपमा मृणालयुक्त कमलों से दी और रामचन्द्र की उपमा चन्द्र से दी। मानो मृणालयुक्त दो कमल चन्द्र को जयमाल पहिनाते हैं। चन्द्र के सामने कमल सङ्कुचित हो जाते हैं। शीतांशु के निकट जाने में कम्पित होते हैं। सो कमल संकुचित हो गये है। चाहने पर भी जयमाला छूटती नही और कम्प भी हो रहा है। इसीलिए सभीत देत जयमाला कहा।

यहाँ सीताजी को सात्त्विक भाव हो जाने से अङ्गों में जड़ता है। सखी की शिक्षा से जयमाल पहनाना चाहती हैं तो हाथ काँपता है और जयमाल पहनाते नही बनता। इसलिए पहनाने में देर हो रही है।

इस अकृत्रिम भावविकार से जयमाल पहनाने की शोभा अत्यन्त बढ गई। उस छवि को सखियों ने देखकर जयमाल पहनाने का गीत आरम्भ कर दिया। सीताजी ने रामजी के गले में जयमाला डाल दी। इस पुरइन से कली निकली जयमाल राम उर अब यह कमलरूप से आगे के दोहा में विकसित होगी।

दो. रघुबर उर जयमाल, देखि देव बरिसहिं सुमन।
सकुचे सकल भुआल, जनु बिलोकि रबि कुमुद गन॥२६४॥

अर्थ : रामजी के उर में जयमाल देखकर देवता फूल बरसाने लगे। और सब राजा ऐसे संकुचित हुए जैसे सूर्य के देखने से कुमुद : कोइ संकुचित हो जाते है।

व्याख्या : कमल खिला : रघुबर उर जयमाल इत्यादि। देवता ऊपर से पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। परन्तु करकमल नही खिले। पहनाने पर भी जयमाल हाथ से छूटा नही। चन्द्र के सामने खिले भी कैसे ? अतः अब कवि रामजी को रवि रूप से वर्णन करते हैं। जिसमे कमल का खिलना अर्थात् 'माला का हाथ से छूटना द्योतित हो। अरुणोदय से ही संकुचित कुमुदरूपी मानी राजा अब सूर्य को प्रभायुक्त देखकर अत्यन्त संकुचित हुए।

पुर अरु ब्योम बाजने बाजे। खल भये मलिन साधु सब राजे॥
सुर किंनर नर नाग मुनीसा। जय जय जय कहि देहिं असीसा॥१॥

अर्थ : पुर और आकाश मे बाजे बजने लगे। खलगन मलिन हुए। साधु प्रसन्न हुए। देवता, किंनर, नर, नाग और मुनीश्वर लोग जय जय जय कहकर आशीर्वाद देने लगे।

ankurnagpal108@gmail.com



तन सकोच मन परम उछाहू। गूढ प्रेम लखि परै न काहू॥
जाइ समीप राम छबि देखी। रहि जनु कुँवरि चित्र अवरेखी॥२॥

अर्थ : शरीर मे सङ्कोच है। मन मे परम उत्साह है। छिपा हुआ प्रेम किसी को लखाई नही पडता। निकट जाकर जो रामजी की छवि देखी तो कुँवरि चित्र मे लिखी सी हो गई।

व्याख्या : तन से तो सङ्कोच है। यथा : गुरुजन लाज समाज बड और अति प्रेम के कारण मन मे परम उछाह है। इसीलिए उस प्रेम को गूढ कहते हैं। वह सङ्कोच मे छिपा हुआ है और ऐसा छिपा है कि कोई लख नही सकता। बाहर देखने से केवल सङ्कोच ही सङ्कोच दिखाई पडता है। गूढ प्रेम का पता नही चलता। राजा विदेह को भी गूढप्रेम था। यथा वंदौं परिजन सहित विदेहू। जाहि रामपद गूढ सनेहू। जोग भोग महँ राखेउ गोई। उन्हीं की बेटी है। अत इन्हे भी गूढ प्रेम है। सङ्कोच मे छिपाए हुए हैं। अभी तक रामजी की छवि को श्रीजनकनन्दिनी ने इतने निकट से नही देखा था। इस समय इतने निकट चली गई हैं कि माला पहिना सकें। अब जो रामजी की छवि देखी तो सूक्ष्मातिसूक्ष्म सुन्दरता पर दृष्टि पड़ी। जनकनन्दिनी स्तब्ध रह गई। इष्ट या अनिष्ट को देखकर क्रियाहीन हो जाने को ही स्तब्ध होना कहते हैं। उसी क्रियाहीनता को ही कवि कुँवरि को चित्र लिखित पुतली से उपमा देकर द्योतित करते है।

चतुर सखी लखि कहा बुझाई। पहिरावहु जयमाल सुहाई॥
सुनत जुगल कर माल उठाई। प्रेम बिबस पहिराइ न जाई॥३॥

अर्थ : चतुर सखी ने लखा। उसने समझाकर कहा कि सुन्दर जयमाल पहनाओ। सुनते ही सीताजी ने दोनों हाथों से माला उठायी। परन्तु ऐसी प्रेमवश हो गई हैं कि पहिराते नही बनता।

व्याख्या वह सयानी सखी भी तो साथ थी जिसने पुष्पवाटिका मे कहा था कि बहुरि गौरि कर ध्यान करेहू। भूप किसोर देख किन लेहू। किसी ने सीताजी के गूढ प्रेम को नही लखा। केवल उसी ने लखा कि इन्हे प्रथम सात्त्विक भाव स्तम्भ हो गया। इसलिए सीताजी को समझाया एहि अवसर के देर ते फेर समुझ मे होय। बरन चहत नाहिन कुँअरि अस समुझिहि सब कोय। और कहती है जयमाला सुन्दर है। इसे पहना दो।

सुनते ही दोनो हाथो से माला को उठाया। मानो माला बडी भारी मालूम हो रही है। बडी कठिनता से उठाया तो : परन्तु प्रेमाधिक्य से अङ्ग शिथिल है। पहनाना चाहती है। पहनाते नही बनता। उधर लेत चढावत खैंचत गाढे। काहु न लखा देख सब ठाढे। इस लाघव मे ही शोभा थी। इधर जयमाल पहनाने की मन्थरता मे ही शोभा है। सब लोग देख लें पहनाने की शोभा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सोहत जनु जुग जलज सनाला। ससिहिं सभीत देत जयमाला॥
गावहिं छबि अवलोकि सहेली। सिय जयमाल राम उर मेली॥४॥

अर्थ : मानो मृणाल के सहित दो कमल चन्द्रमा को जयमाल देते हुए शोभित है। छवि देखकर सखी सहेलियाँ गान करने लगी। सीताजी ने रामजी के गले मे जयमाल डाल दी।

व्याख्या : ग्रन्थकार श्री रामजी के गले में सीताजी द्वारा जयमाल पहनाने की शोभा वर्णन करते हैं। श्रीसीताजी के दोनों हाथों की उपमा मृणालयुक्त कमलों से दी और रामचन्द्र की उपमा चन्द्र से दी। मानो मृणालयुक्त दो कमल चन्द्र को जयमाल पहिनाते है। चन्द्र के सामने कमल सङ्कुचित हो जाते है। शीतांशु के निकट जाने में कम्पित होते हैं। सो कमल संकुचित हो गये हैं। चाहने पर भी जयमाला छूटती नही और कम्प भी हो रहा है। इसीलिए सभीत देत जयमाला कहा।

यहाँ सीताजी को सात्त्विक भाव हो जाने से अङ्गो में जड़ता है। सखी की शिक्षा से जयमाल पहनाना चाहती है तो हाथ काँपता है और जयमाल पहनाते नही बनता। इसलिए पहनाने में देर हो रही है।

इस अकृत्रिम भावविकार से जयमाल पहनाने की शोभा अत्यन्त बढ़ गई। उस छवि को सखियों ने देखकर जयमाल पहनाने का गीत आरम्भ कर दिया। सीताजी ने रामजी के गले में जयमाला डाल दी। इस पुरइन से कली निकली जयमाल राम उर अब यह कमलरूप से आगे के दोहा में विकसित होगी।

दो. रघुबर उर जयमाल, देखि देव बरिसहिं सुमन।
सकुचे सकल भुआल, जनु बिलोकि रबि कुमुद गन॥२६४॥

अर्थ : रामजी के उर में जयमाल देखकर देवता फूल बरसाने लगे। और सब राजा ऐसे संकुचित हुए जैसे सूर्य के देखने से कुमुद : कोइ संकुचित हो जाते हैं।

व्याख्या : कमल खिला : रघुबर उर जयमाल इत्यादि। देवता ऊपर से पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। परन्तु करकमल नही खिले। पहनाने पर भी जयमाल हाथ से छूटा नही। चन्द्र के सामने खिले भी कैसे? अत. अब कवि रामजी को रवि रूप से वर्णन करते है। जिसमे कमल का खिलना अर्थात् 'माला का हाथ से छूटना द्योतित हो। अरुणोदय से ही सकुचित कुमुदरूपी मानी राजा अब सूर्य को प्रभायुक्त देखकर अत्यन्त संकुचित हुए।

पुर अरु ब्योम बाजने बाजे। खल भये मलिन साधु सब राजे॥
सुर किंनर नर नाग मुनीसा। जय जय जय कहि देहिं असीसा॥१॥

अर्थ : पुर और आकाश मे बाजे बजने लगे। खलगन मलिन हुए। साधु प्रसन्न हुए। देवता, किन्नर, नर, नाग और मुनीश्वर लोग जय जय जय कहकर आशीर्वाद देने लगे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या पहिले धनुषभङ्ग पर बाजे बजे। अब जयमाल पडने पर बज रहे है। पृथ्वी पर मनुष्यो द्वारा और आकाश मे देवताओ द्वारा बाजे बजाये जाते हैं। धनुषभङ्ग के समय व्योम आकाश म पहले बाजा बजा। यथा बाजे नभ गहगहे निसाना। जयमाल के समय पहिले पुर मे बाजा बजा। पुर के लोग इस बार सावधान हैं। उस बार देवताओ ने बाजी मार ली थी। उदासीन अरि मीत हित सुनत जरहि खल रीति। अत वे मलिन हुए और सज्जन सकृत सिन्धु सम कोई होते हैं अत वे शोभित हुए।

सुर किन्नर से स्वर्गवासी। नर से मृत्युलोकवासी। नाग से पातालवासी। तीनो लोकनिवासी जयजयकार कर रहे हैं। अत जय जय जय तीन बार लिखा और मुनीश परमार्थी हैं वे आशीर्वाद देते हैं। अथवा सभी जय जय कहकर आशीर्वाद देते हैं।

नाचहि गावहि विबुध बधूटी। बार बार कुसुमाजलि छूटी॥
जहँ तहँ विप्र वेद धुनि करही। बदी बिरदावलि उच्चरही॥२॥

अर्थ देववधू नाच-गा रही हैं। बारबार पुष्पाञ्जलि छूट रही है। जहाँ तहाँ ब्राह्मण लोग वेदध्वनि कर रहे है। वन्दी लोग विरुदावली बोल रहे हैं।

व्याख्या देववधूटी कहकर फिर भी देववधुओ का ही गाना नाचना कहा। अप्सराओ का गान नृत्य नही कहा। मङ्गल-गान कुलवधू ही द्वारा होता है। वेश्या द्वारा आज भी नही होता और अप्सरा स्वर्वेश्या है। अत मङ्गलगान उनके द्वारा नही लिखते। गान के ताल पर पुष्पाञ्जलि दी जा रही है। इसलिए कुसुमाञ्जलि छूटी लिखते है।

अभीतक वेदध्वनि नही हुई थी। यथार्थ गान्धर्व व्याह जयमाल पडना ही है। अत ब्राह्मण लोग जो जहाँ थे वही से स्वस्तिवाचन के मन्त्र बोल। मन्त्रो के साथ स्वर लगता है। अत वेदध्वनि कहा। राजाओ का व्याह है। इसलिए वन्दियो ने विरद कहा। उच्चस्वर से बोल रहे हैं। इसलिए उच्चरही कहा।

महि पातालु नाक जसु व्यापा। राम बरी सिय भजेउ चापा॥
करहि आरती पुर नर नारी। देहि निछावरि बित्त बिसारी॥३॥

अर्थ पृथ्वी पाताल और आकाश मे यश व्याप्त हो गया कि रामजी ने धनुप तोडा और सीता का वरण किया। पुर के नर नारी आरती करते हैं और अपने वित्त को भूलकर निछावर करते हैं।

व्याख्या इस धनुपयज्ञ मे देवदनुज धरि मनुज सरीरा तथा द्वीप द्वीप के भूपति आये थे। अत महि पाताल और आकाश मे यश व्याप गया कि ये लोग गये तो थे पर सीता को व्याह न सके। क्योकि इनका तोडा धनुप नही टूटा। फिर तोडा किसने? तो राम बरी सिय भजेउ चापा। यह यश तीनो लोक म फैल गया। तब भुजबल महिमा उदघाटी। प्रगटी धनु विघटन परिपाटी। जो लक्ष्मणजी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ने कहा था उसी का साफल्य दिखलाते हैं। धनुष के विघटने से रामजी के भुजबल की महिमा तीनो लोक मे प्रकट हो गई।

पहिले निछावर हुआ तब जयमाल पडा। अब आरती हो रही है। इस बार जयमाल पडने का निछावर है। अत वित्त विसारी कह रहे हैं। पहिली निछावर मे भी वित्तशाठ्य नही किया था। हय, गय, मनि, धन और चीर का निछावर हुआ था। पर इस निछावर मे तो लोग यह भी भूल गये कि इतना निछावर करना हमारे वित्त के वाहर है या भीतर।

सोहत सीय राम कै जोरी। छबि शृङ्गार मनहु इक ठोरी॥
सखी कहहि प्रभुपद गहु सीता। करति न चरन परस अति भीता॥४॥

अर्थ सीताराम की जोडी ऐसी शोभायमान है मानो छवि और शृङ्गार दोनो एकत्र हो गये हैं। सखी कहती है कि सीते ! प्रभु के चरण पकडो। वह अत्यन्त डरी हुई है। चरणस्पर्श नही करती।

व्याख्या इसके पहिले तक जोडी नही कह सकते थे। रामरूप अरु सिय छवि देखी कहा था। यहाँ जनकपुर है। इसलिए सीय राम की जोडी कहा। सीताजी की प्रधानता है। छवि से शृङ्गार की शोभा और शृङ्गार से छवि की शोभा होती है। दोनो के एकत्र होने से महाशोभा हुई। रामजी जनु सोहत सृगार धरि मूरति परम अनूप। सीताजी छविगन मध्य महाछवि जैसी।

जयमाल डालने के बाद चरणग्रहण की प्रथा है। शिक्षा देना सखी का कार्य है। अत सखी चरणग्रहण के लिए शिक्षा देती हैं। परन्तु सीताजी चरणस्पर्श मे अति भयभीत हो रही है। विरह का बडा भारी भय है। यथा चालत न भुजवल्ली विलोकन विरह भय वस जानकी। भय का कारण कहते हैं

दो गौतम तिय गति सुरति करि, नहि परसत पग पानि।
मन विहँसे रघुवसमनि, प्रीति अलौकिक जानि॥२६५॥

अर्थ अहल्या का स्मरण करके चरण को हाथ से नही छूती। रघुवशमणि अलौकिक प्रीति देखकर मनही मन हँसे।

व्याख्या परसि जासु पद पकज धूरी। तरी अहल्या कृत अघ भूरी। सुन चुकी हैं। अत भारी डर है कि चरणस्पर्श मे कही धूलि छू गई तो मुझे भी तुरन्त दिव्यलोक की प्राप्ति हो जायगी। फिर इन चरणो से विछोह हो जायगा। क्रिया अटपट हो रही है। अप्रसन्न होने का अवसर था। परन्तु राम सुजान जान जन जीकी। अत अलौकिक प्रीति देखकर हँसे। मन ही मे हँसे क्योकि यहाँ व्यक्त रूप हँसने के लिए उपयुक्त समय नही था। लोग समझते कि सीताप्राप्ति से कृतकृत्य होकर हँस रहे हैं। ऐसी ही प्रीति की तीव्रता मे अटपट क्रिया केवट की देखकर आगे भी हँसेंगे। यथा सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे। विहँसे करना अयन चितै जानकी लखन तन।

ankurnagpal108@gmail.com



तब सिय देखि भूप अभिलाषे । कूर कपूत मूढ मन माषे ॥
उठि उठि पहिरि सनाह अभागे । जहँ तहँ गाल बजावन लागे ॥१॥

अर्थ तब सीताजी को देखकर राजाओ को अभिलाषा हुई । क्रूर, कुपुत्र और मूढ के मन मे अमर्ष हुआ । अभागो ने उठ उठकर कवच पहिने और जो जहाँ रहे वही से गाल बजाने सीटने लगे ।

*व्याख्या* जब सीताजी रामजी के वाम भाग मे विराजमान हो गईं आरती होने लगी । सीताजी ने चरणस्पर्श किया । अर्थात् स्वयवर की प्रक्रिया जब समाप्त हो गई तब सीताजी को देखकर राजाओ को अभिलाषा हुई कि ऐसी मनोहर मूर्ति की प्राप्ति मुझे नही हुई । जनकजी के यह कहने से कुँवरि कुँआरि रहौ का करऊँ । अभिलाषा दब गई थी सो जाग उठी । सीताजी की प्राप्ति किसी को न होगी इस बात पर जिन्हे सन्तोष था उन्हे दूसरे की प्राप्ति सह्य न हुई । उनमे से जो कूर क्रूर कपूत कुपुत्र तथा मूढ थे जिन्हे मन ही मन आमर्ष हुआ वे जयमाल पहने सीताजी को वाम भाग मे लिये जयजयकार के बीच म रामजी को देख न सके । इसीसे आमर्ष हुआ । औरे को अभिमानु लखि उर उपजै अभिमान । अभिमान को आमर्ष कहते हैं । बलवान् के सामने आमर्ष चल नही सकता । अत क्रुद्ध होकर सामना करने का तो साहस नही है । अत मन ही मन मसोस रहे हैं ।

युद्ध तो करना नही । गडबड पैदा करने के लिए युद्ध का दिखावा करते हैं । उठ उठकर जिरह बख्तर वर्म धारण करने लगे । मानो लडाई करेंगे । अथवा उन्हे गाल बजाना सीटना है । पर उसमे भी खतरा है । इसलिए जिरह बख्तर पहनकर तब गाल बजाने लगे । भवभञ्जन पद विमुख हैं । इसलिए ग्रन्थकार उन्हे अभागे कहते हैं । आगे कोई नही बढता । जो जहाँ है वही से शान बघार रहा है । पहिल क्रूर बोले

लेहु छँडाइ सीय कह कोऊ । धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ ॥
तोरे धनुष चाँड नहि सरई । जीवत हमहि कुँवरि को बरई ॥२॥

अर्थ कोई बोले छीन लो सीता को । दोनो राजपुत्रो को पकडकर बाँध लो । केवल धनुष तोडने से चाह नही मिटेगी । हमारे जीते जी राजकुमारी को कौन वर सकता है ?

व्याख्या आप पैर आगे नही रखते औरो को ललकारते हैं कि छीन लो राजकुमारी को । यदि कहो कि अब तो सम्बन्ध हो गया । दोनो भाई छीनने कैसे देंगे । इसपर कहते हैं कि राजा के दोनो बालको को बाँध लो । भाव यह कि ये अभी बालक हैं । इनसे लडने की भी आवश्यकता नही है । पकडकर बाँध लो । इस भाँति प्रोत्साहित कर रहे हैं । इन्हे बालक बालिका किसी पर दया नही है । इसी स इन्हे क्रूर कहा है । अब कपूत कुपुत्र बोलते हैं ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



धनुष टूट गया तो क्या हुआ। अभी बडके धनुष हम तो जीते ही है। पहिले हमे मार ले तब कोई जनकनन्दिनी का वरण कर सकता है। सीता की चाट है इसलिए जाकर धनुष तोड दिया। इससे चाट नही पूरी होने पावेगी। ये कपूत हैं। इनका किया तो कुछ हो सकता नहीं। केवल बड़े भारी वीरो की सी बाते बोलकर वैर ले रहे है। अब मूढ बोले :

जौ बिदेह कछु करैं सहाई। जीतहु समर सहित दोउ भाई ॥
साधु भूप बोले सुनि बानी। राजसमाजहिं लाज लजानी ॥३॥

अर्थ . यदि विदेह कुछ सहायता करें तो उन्हे भी दोनो भाइयों के सहित रण मे जीत लो। इन बातो को सुनकर साधु राजा बोले कि राजसमाज को देखकर लज्जा को भी लज्जा आगई।

व्याख्या : कुमारी का पिता विदेह है। वह झगड़े मे पडनेवाला नही। पहिले ही कहता था : कुँवरि कुँआरि रहौ का करऊँ। वह किसी की सहायता न करेगा। पर यदि राजकुमारी को छीनी जाते और अपने जामाता दोनो भाइयो को बँधते देखकर कुछ चो चपड करे तो उसे भी समरागण मे इन्ही दोनो भाइयो के साथ जीत लो। ये मूढ है। इन्हे परिज्ञान नही कि विदेह किसे कहते है। जिसे देहाध्यास नही उससे बढकर योद्धा कौन हो सकता है ? ऐसा स्वयम्बर रचने के लिए देहाध्यास था। सहायता के लिए नही है। शिवधनु भङ्ग करनेवालो को भाई और विदेहराज : जिसके राज्य मे इस समय एकत्रित है के साथ जीतने का स्वप्न देखते है। ऐसो के मूढ होने मे सन्देह क्या ?

तब साधु राजा बोले। पहिले भी इन लोगो ने रोका था। यथा . सिख हमार सुनि परम पुनीता। जगदबा जानहु जिय सीता। जगत पिता रघुपतिहि बिचारी। भरि लोचन छबि लेहु निहारी। जब लोगो ने नही माना तब कहा था : करहु जाइ जाकहँ जो भावा। हम तौ आज जन्म फल पावा। साधु हैं अतः फिर रोकते है। अनीति उन्हे सह्य नही है। इससे बोले कि यह रूप दिखाना निर्लज्जता की पराकाष्ठा है। आज ऐसा वर्ताव देखकर लज्जा भी राजसमाज को छोड लज्जित हो चली गई। भाव यह कि तुम लोगो ने हया छोड़ दी। तुम लोगो के ऐसे आचरण से राजसमाज कलङ्कित हो रहा है।

बलु प्रतापु बीरता [1]बड़ाई। नाक पिनाकहि सग सिधाई ॥
सोइ सूरता कि अब कहुँ पाई। असि बुधि तौ बिधि मुँह मसि लाई ॥४॥

अर्थ : बल प्रताप वीरता बडाई तो पिनाक . शिवधनुष के साथ ही आकाश मे चली गई। वही वीरता है कि अब कही से मिली है। ऐसी ही बुद्धि है तभी ब्रह्मा ने मुख मे कालिख पोत दी।

---

१. यहाँ सहोक्ति अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या . यदि तुम्हे विचार होता तो धनुष के निकट न जाते। यथा जिनके कछु विचार मन माही। चाप समीप महीप न जाही। अब तो कीर्ति विजय और भारी वीरता सब कुछ धनुष के हाथ जबरदस्ती हार चुके। धनुष टूटते ही उन लोगो का प्रताप वीरता बडाई समाप्त हो गई। जो धनुष तोडने उठे थे। वही शूरता न है जिससे तिल भर धनुष को हटा न सके कि कोई नई शूरता इस बीच और मिल गई है ? जिसके भरोसे बडी बडी बातें करते हो। तुम लोगो की बुद्धि मारी गई है। इसी से तुम्हारे मुँह मे कालिख ब्रह्मा ने पोत दिया। यदि बुद्धि से काम लेते तो सबकी इज्जत बनी रह जाती। हमने पहिले ही कहा था जगदवा जानकी जगत पितु रामभद्र जानि जिय जिय जोहो। ज्यो न लागे मुह कारिखो कवित्त। पर विधिवश वह बात तुमलोगो के मन मे न भाई।

दो देखहु रामहि नयन भरि, तजि इरिषा मदु कोहु।
लखन रोषु पावकु प्रवल, जानि सलभ जनि होहु ॥२६६॥

अर्थ ईर्ष्या, मद और क्रोध को छोडकर रामजी को आँख भर देखो। लक्ष्मणजी के क्रोधरूपी प्रबल अग्नि मे जानबूझकर पतङ्ग न बनो।

व्याख्या हित शतशोऽपि वक्तव्यम्। कल्याण की बात को सौ बार भी कहे। अत कहते हैं कि सीता महामाया है। उनकी ओर न देखो रामजी की ओर देखो। इस शोभा को आँख भर देखकर जन्म सफल करो। क्रूर से कहते हैं कि तुम ईर्ष्या छोडकर देखो। कपूत से कहते हैं कि तुम मद छोडकर देखो। मूढ से कहते हैं कि क्रोध छोडकर देखो तब प्रेम से देख सकोगे। तुम्हारे आँख भर देखने मे ईर्ष्या मद और क्रोध बाधक हो रहे हैं। तुम्हारी बातो से लक्ष्मणजी को क्रोध आ रहा है। यदि यह क्रोधाग्नि तुमलोगो के प्रलाप से बढती गई तो तुमलोगो के शलभ होने म देर न लगेगी। शलभ तो दीप का मर्म बिना जाने जलता है। तुम तो मनुष्य हो देख चुके हो कि लक्ष्मण के क्रोधयुक्त बोलने पर पृथ्वी डगमगाती है। दिग्गज डोलते हैं। तुम जानबूझकर शलभ होने क्यो जाते हो ?

बैनतेय बलि जिमि चह कागू। जिमि सस चहहि नाग अरि भागू॥
जिमि चह कुसल अकारन कोही। सब सपदा चहै सिवद्रोही ॥१॥

अर्थ जैसे कौआ गरुड की बलि चाहता हो। खरहा सिंह का अश चाहता हो। अकारण क्रोधी कुशल चाहता हो। शिवद्रोही सम्पदा चाहता हो।

व्याख्या यद्यपि गरुड और काग दोनो पक्षी हैं। पर गरुड की बलि काग को नही मिल सकती। बलि देनेवाला ही न चाहेगा कि काग को मिले। चाहे गरुड को भले ही उस बलि की परवाह न हो। इसी भाँति खरहा खरगोश और सिंह दोनो चतुष्पाद हैं। पर खरहा का साहस नही कि मत्त नाग तम पुज बिदारी सिंह का भाग छू भी सके। सिंह के मारे शिकार को कोई पशु पक्षी स्पर्श नही कर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


सकता। अत: न तो जनक छीनने देंगे और न राम के सामने तुम्हारा दिन है कि सीता को स्पर्श कर सको। यह लेहु छड़ाइ सीय कह कोऊ का उत्तर है।

क्रोधी भी लड़ पड़ता है और वीर भी लड़ता है। वीर के दोनों लोक बनते हैं। क्रोधी के बिगड़ जाते हैं। इसलिए कहते हैं कि क्रोधी का कुशल नहीं होता। किं पुन: निष्कारण क्रोध करनेवाले का कुशल तो हो नहीं सकता। जो बात तुम्हारी की हुई न हो सकी उसे उन्होंने कर दिखाया। इसमें उनका अपराध क्या है? निष्कारण क्रोध करते हो। इसमें तुम्हारी कुशल नहीं है। उन्होंने ब्रह्मकुल रूपी शङ्कर की आज्ञा लेकर तब धनुष तोड़ा है। जिसपर शिवजी की कृपा होगी वही धनुष तोड़ सकता है। उनपर शिवजी की कृपा है। इससे उन्हें सीता तथा त्रैलोक्य जयलक्ष्मी : सब सम्पदा प्राप्त हुई। तुमलोग शिवद्रोही हो। बिना शिव की आज्ञा धनुष तोडने चले। तुम्हें त्रैलोक्य जयलक्ष्मी जनकनन्दिनी नहीं प्राप्त हो सकती। यह धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ का उत्तर है।

लोभी लोलुप कीरति चहई। अकलंकता कि कामी लहई॥
हरि पद बिमुख परम गति चाहा। तस तुम्हार लालचु नरनाहा॥२॥

अर्थ : लोभी लालची कीर्ति चाहता हो। निष्कलङ्कता क्या कामी को प्राप्त होती है। हरिपद विमुख परमगति चाहे। हे राजाओ! वैसा ही तुम्हारा लोभ है।

व्याख्या : गुनसागर नर जोऊ। अल्पलोभ भल कहै न कोऊ। थोड़े से लोभ होने से भी कीर्ति नष्ट हो जाती है। सो तुम्हे इतना बड़ा लोभ है कि जिस धनुष को तुम दसहजार मिलकर न हिला सके। उसके तोड़नेवाले के पुरस्कार की इच्छा रखते हो। तुम लोभ से लोलुप हो गये। तुम्हे सीतारूपी निर्मल कीर्ति कैसे मिलेगी? तुम कामवश हो। प्राण देकर कलङ्क धोना चाहते हो सो भी होना नहीं है। कामी को अवश्य कलङ्क लगेगा। तोड़े धनुष चाँड नहि सरई। जीवत हमहि कुँवरि को वरई का उत्तर है।

भगवती ही परम गतिरूपा है। ये दोनों भाई भक्ति से जीते जाते हैं। यथा : ते दोउ बधु प्रेम जनु जीते। गुरपद कमल पलोटत प्रीते। भक्ति से इन्हे जीतना ही परम गति की प्राप्ति है। सो इन्हे तुम विमुख होकर जीतना चाहते हो। यह होना नहीं है। यथा : राम विरोध कुसल जस होई। सो सब तुमहि सुनाइहि सोई। यह जौ बिदेह कछु करइ सहाई। जीतौं समर सहित दोउ भाई का उत्तर है।

कोलाहलु सुनि सीय सकानी। सखी लवाइ गईं जहँ रानी॥
राम [1]सुभाय चले गुरु पाहीं। सिय सनेहु बरनत मन माहीं॥३॥

अर्थ : कोलाहल सुनकर सीताजी डर गईं। सखियाँ उन्हे जहाँ रानी थी वहाँ ले गईं। रामजी सीताजी के स्नेह का मन ही मन वर्णन करते हुए स्वाभाविक गति से चले।

---

१. यहाँ स्वभावोक्ति है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या राजाओ के वादविवाद से वहाँ बडा कोलाहल मचा। लेहु छडाई सीय कह कोऊ। इत्यादि सुनकर सीताजी डरी। सखियाँ बडी चतुर हैं। देखा कि सब चोट सीताजी पर है तुरन्त उन्हे लकर जहाँ रानियाँ थी वहाँ चली गईं। स्वयवर का सब कृत्य समाप्त हो गया। गुरुजी ने कहा था उठहु राम भजहु भव चापा। मेटहु तात जनक परितापा। उनकी आज्ञानुसार धनुष भी तोडा। जयमाल स्वीकार करके जनकजी के परिताप को भी मिटाया। दोनो आज्ञापालन के बाद फिर गुरुजी के यहाँ जैसे आये थे वैसे ही मत्तमञ्जुकुजर की गति से चल। इस कोलाहल की ओर उनका ध्यान भी नही है। यथा के निंदो के आदरौ सिंहहि स्वान सियार। हर्ष विषाद न केहरिहि कुजर गजनिहार। वे मन ही मन सीताजी के स्नेह का वर्णन करते चल। गौरीजी कह चुकी है करुणानिधान सुजान सील सनेह जानत रावरो उसी का साफल्य है।

रानिन्ह सहित सोचवस सीया। अब धौ विधिहि काह करनीया ॥
भूप वचन सुनि इत उत तकही। लखनु राम डर बोलि न सकही ॥४॥

अर्थ रानियो के साथ सीताजी सोच के वश हो गईं। अब ब्रह्मा न जाने क्या करना चाहते हैं। लक्ष्मणजी राजाओ के वचनो को सुनकर इधर उधर देखते हैं पर रामजी के डर से बोल नही सकते।

व्याख्या यह जानकर कि राजा लोग बिगड गये है। भारी युद्ध हुआ ही चाहता है परिणाम क्या होगा। रानियाँ चिन्ता मे पड गईं और सीताजी भी चिन्तित हो गईं। क्योकि सब रामजी पर ही क्रुद्ध हैं और युद्धसिद्धिहि चञ्चला। युद्ध का परिणाम कुछ नही कहा जा सकता। किसी भाँति भगवान् भगवान् करके धनुष भी टूटा तो यह उपद्रव खडा हो गया। भविष्य विधि के हाथ है कर्म शुभाशुभ दइ विधाता। इधर लक्ष्मणजी का क्या हाल है कि एक ओर से आवाज आई लहु छुडाइ सीय तो उधर देखा। तबतक दूसरी ओर से शब्द हुआ धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ तो उधर घूमे। तबतक तीसरी ओर से आवाज आई जी विदेह कछु करै सहाई। जीतहु समर सहित दोउ भाई। इस भाँति विरोधियो के शब्द इधर उधर से आ रहे है। लक्ष्मणजी के देखने ही चुप हो जाते है। पर दूसरी ओर से आवाज उठती है। ऐसे बोलनेवालो का वध दण्ड है। पर बोल नही सकते क्योंकि प्रभु का डर है। उनका रुख देखते है तो उन्हे परवाह ही नही।

दो अरुन नयन भृकुटि कुटिल, चितवत नृपन्ह सकोप।
मनहु मत्त गजगन निरखि, सिंहकिसोरहि चोप ॥२६७॥

अर्थ लाल नेत्र और टेढी भृकुटी से राजाओ को क्रोध से देखते हैं। जैसे मत्त हाथियो के झुण्ड को देखकर सिंह के बच्चे को चोप हो।

व्याख्या रौद्ररस का अनुभाव कहते हैं। अरुण नयन और भृकुटी कुटिल है। राजाओ को क्रोध से देखते है। विभाव पहिले कह चुके है भूप वचन सुनि इतउत

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सकही। मत्तगजयूथ सिंह के चोप की वस्तु है। परन्तु सिंह गम्भीर है। उसे अपने बल पर इतना विश्वास है कि मत्तगजयूथ को कुछ गिनता नहीं ठवनि युवा मृगराज लजाये। सिंहकिशोर को भी चोप होता है। पर वह उतना गम्भीर नही है। तुरन्त पैतरा बदल कर खडा हो जाता है और अरुण नयन भृकुटि कुटिल करके मत्तगजयूथ की ओर देखता है। वैसी ही शोभा आज लक्ष्मणजी की राजाओ के सकोप दृष्टि से देखने मे हो रही है। राजाओ को मत्तगज कहा। आकार मे विशाल है। सिंहकिशोर आकार मे स्वल्प है। पर मत्तगजयूथ को कुछ गिनता नही। उनपर चोट करने की बडी अभिलाषा है।

## परशुराम आगमन प्रसङ्ग

**खरभरु देखि बिकल पुर नारी। सब मिलि देहिं महीपन्ह गारी॥**
**तेहि[1] अवसर सुनि सिवधनु भंगा। आए भृगुपति कमल पतंगा॥१॥**

अर्थ गडबड देखकर पुर की नारियाँ विकल हो गईं। सब मिलकर राजाओ को गालियाँ देती है। उसी अवसर पर शिवजी के धनुष का टूटना सुनकर भृगुकुल कमल के सूर्य परशुरामजी आये।

व्याख्या उठि-उठि पहिरि सनाह अभागे। जहँ तहँ गाल बजावन लागे एक ओर। अस बुधि तो बिधि मुह मसिलाई कहनेवाले दूसरी ओर। लक्ष्मणजी अरुन नयन भृकुटी कुटिल। चितवत नृपन्ह सकोप तीसरी ओर। रगभूमि मे तमाम गडबड मच गयी। सखियाँ जल्दी से सीताजी को रानियो के पास ले गईं। पुरवासी विकल हो उठे कि भारी अनिष्ट हुआ चाहता है। इस अनिष्ट के करनेवाले राजा लोग ठहरे। अत सब नारियाँ मिलकर उन्ही को गाली देने लगी। राजाओ के पीछे पुरवासियो के बैठने के ऊँचे ऊँचे मञ्च है और उनके पीछे धवलधाम मे नारियो के बैठने की व्यवस्था है। अत वे एक एक बात देख रही है। राजाओ का अन्याय देखकर विकल है। अत उन्हे बुरा भला कह रही है कि इन अभागो का किया कुछ न हुआ। अब वे निर्लज्ज धनुष टूटने पर किस मुँह से लडने को कह रहे है। गडबडी मे जो कुछ त्रुटि रही सो इस गालीप्रदान से पूरी हो गई।

इसी गोलमाल के बीच मे धनुषभङ्ग के शब्द से क्रुद्ध हुए भृगुकुलकमल के सूर्य परशुरामजी आये। यथा यद्वभञ्ज जनकात्मजाकृते राघव पशुपतेर्महद्धनु। तद्धनुर्गुणरवेण रोषितस्त्वाजगाम जमदग्निजो मुनि। ह ना। जो समाज वि

१ यहाँ से २८५ दोहे तक अर्थात् १८ दोहा म परशुरामप्रसङ्ग है। यह भगवद्गीता का सार है। अठारह अध्याय गीता मे भगवान् ने अर्जुन को स्वधर्म युद्ध से विचलित होकर परधर्म भिक्षावृत्ति ग्रहण करने से रोककर स्वधर्म पर आरूढ किया। उसी भाति इन अठारह दोहो म परशुरामजी को परधर्म युद्ध से विरत करके स्वधर्म तपस्या पर आरूढ किया। यथा । कहि जय जय जय रघुकुल केतू। भृगुपति गये बनहिं तप हेतू।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



शकर चाप जहाज पर चढा था वह उसके टूटने से डूब गया। केवल भृगुपति केर गर्व गरुआई के डूबने का वर्णन शेष था। यहाँ उसीका वर्णन कर रहे है। परशुरामजी को गर्व था कि शिवजी के अस्त्रशस्त्र के धारण करने का सामर्थ्य एक मात्र मुझ मे ही है। गणेशपुराण मे परशुरामजी द्वारा शिवजी के सम्पूर्ण अस्त्रशस्त्र के धारण की कथा भी है। सो शङ्करजी के धनुष को तोडनेवाला कौन पैदा हुआ ? मानभग का वडा दु ख होता है। अत युद्ध करने आये। यथा काल कराल नृपालन के धनु भग सुने फरसा लिये धाये। भृगु ने स्वय विष्णु भगवान् की छाती मे लात मारा था। ये उस कुल के सूर्य है। अपमान करने मे तनिक भी आगापीछा न करेगे। पतग कहकर उनका आकाशमार्ग से आना तथा तेजोऽतिशयता द्योतित की। दो पतग एकत्रित हुए एक उदित उदय गिरि मच पर रघुवर बाल पतग और दूसरे भृगुकुल कमल पतगा। भाव यह कि इस रगभूमि मे दो दो अवतारो का समागम हुआ। यथा क्षत्रक्षय कुर्वते। पौलस्त्य जयते परशुरामका और श्रीराम का।

देखि महीप सकल सकुचाने। बाज झपट जनु लवा लुकाने ॥
गौर सरीर भूति भल भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुड बिराजा ॥२॥

अर्थ देखकर सब राजा सङ्कुचित हो गये। जैसे बाज पक्षी के झपटने पर लवा छिप जाते है। गोरी देह म विभूति की भली शोभा थी। चौडे ललाट पर त्रिपुण्ड शोभायमान था।

व्याख्या जो जिरह बखतार पहन-पहन कर गाल बजा रहे थे। वे परशुरामजी के देखते ही पानी हो गये। जबान बन्द हो गई। ऐसे सिकुड गये जैसे बाज के झपटने पर लवा छिप जाता है। जा जहाँ थे वही छिपने लगे। लवा ढेले के आड म ऐसा छिप जाता है कि मालूम नही पडता। इसी भाँति शान्त राजाओ मे जा छिपे। कही पूछें न कि यहा कौन कौन उपद्रव मचाता था ? बाज झपट से आकाश मार्ग द्वारा सवेग उतरना कहा। लवा मन से भी बाज से युद्ध की बात नही सोच सकता। बाज की ओर देख भी नही सकता। राजा डरे कि हम सब लोगो को एकत्रित पाकर बाईसवी बार नि क्षत्र करने आये है।

अब परशुरामजी का ध्यान कहते हैं गौर वर्ण का शरीर है। गोरे शरीर पर विभूति खूब खिलती है। परम शैव हैं। सर्वाङ्ग मे विभूति धारण कर रक्खी है। दूसरे रुद्र ही मालूम पड रहे है। इसी भाँति उच्च ललाट की शोभा त्रिपुण्ड से है। शिवजी परम वैष्णव हैं। अत वे कालरूप विष्णु के प्रतीक को मस्तक पर धारण करते हैं। भूत भविष्य वर्तमान का द्योतक त्रिपुण्ड है। इसी भाँति विष्णु भी परम शैव हैं। वे शिवजी के प्रतीक त्रिशूल को ऊर्ध्वपुण्ड के रूप से धारण करते हैं। परशुरामजी साक्षात् शङ्कर भगवान् के शिष्य हैं। अत त्रिपुण्ड धारण किये हैं।

सीस जटा ससिबदन सोहावा। रिसि बस कछुक अरुन होइ आवा ॥
भृकुटी कुटिल नयन रिसि राते। सहजहु चितवत मनहुँ रिसाते ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ सिर पर जटा थी। चन्द्रमा का सा मुख शोभित था। क्रोध के वश कुछ लालिमा आगई थी। भौंहे टेढी और आँख क्रोध से लाल हो रही थी। स्वभाव से देखते थे फिर भी यही मालूम होता था कि क्रोध कर रहे हैं।

व्याख्या : शीश जटा से तपस्वी ब्रह्मचारी मालूम होते थे। मुख की शोभा चन्द्रमा की सी थी। विशेपता यह थी कि क्रोध के कारण कुछ लालिमा आगई थी। भौंहे टेढी हो रही थी। क्रोध से आँखें चढी हुई थी। साधारण रीति से देखते थे तो भी जान पडता था कि क्रोध कर रहे हैं। भाव यह कि शोभा वडी ब्राह्म तेज वड़ा। फिर भी क्रोध के लक्षण प्रकट थे।

वृपभ कंध उर वाहु विसाला। चारु जनेउ माल मृगछाला ॥
कटि मुनिवसन तून दुइ बाँधे। धनु सर कर कुठार कल काँधे ॥४॥

अर्थ : वैल का सा कन्धा, छाती और भुजाएँ विशाल थी। सुन्दर यज्ञोपवीत रुद्राक्ष की माला मृगछाला धारण किये कटि मे वल्कलवसन पहने दो तरकस बाधे हाथ मे धनुप लिये और कन्धे पर परशु धारण किये थे।

व्याख्या : अङ्ग प्रत्यङ्ग का सघठन वीरो का सा था। वैल का सा पुष्ट कन्धा था। वक्ष स्थल और भुजाएँ विशाल थी। गले मे सुन्दर यज्ञोपवीत और रुद्राक्ष की माला शोभायमान थी। मृगछाला लिये हुए थे। वल्कलवसन पहने हुए थे। यह सभी चिह्न तपस्वी ब्रह्मचारी के थे फिर भी युद्ध के लिए सुसज्जित होकर आये थे। दूर से प्रहार करने के लिए धनुप वाण और तरकस था। शत्रु के निकट आने पर प्रहार करने के लिए परशु भी धारण किये हुए थे।

दो. सात वेप करनी कठिन, वरनि न जाइ सरूप।
धरि मुनितन जनु वीर रसु, आयउ जहँ सव भूप ॥२६८॥

अर्थ वेप शान्त परन्तु करणी कठिन थी। स्वरूप का वर्णन नही किया जा सकता। मानो वीर रस मुनि का शरीर धारण करके जहाँ राजा लोग थे वहाँ चला आया।

व्याख्या : वेप . पहिरावा तो शान्त था जैसा मुनियो का होना चाहिए वैसा था। परन्तु करणी कठिन थी। अचिन्त्य कार्य करनेवाली थी। यथा

जिसने बार इकीस लहू की नदी बहाकर।
नृपति मासमस्तिष्कपङ्कमय कूल वनाकर ॥
किया तहाँ असनान दिया पितरो को पानी।
जिसके कठिन कुठार धार की विदित कहानी ॥
बाल वृद्ध वनिता निधन मे भी जो निर्दय महा।
कन्ध कूट नृप यूथ के कारन मे अति पटु रहा ॥ प्र च।

इसलिए कहते हैं कि स्वरूप का वर्णन नही हो सकता। क्योकि उनमे मुनि के चिह्न भी है। वीर के चिह्न भी है। अत अभूत उपमा देते है। धरि मुनि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तन जनु वीर रस आएउ जहँ सब भूप : कि इन्ही मे से किसी ने धनुप तोड़ा होगा। रामजी शृंगार मे वीर रस की भाँति आये थे। यथा : देखहिं रूप महा रनधीरा। मनहु वीर रस धरे सरीरा। परशुरामजी मुनि वेप में वीर रस की भाँति आये।

| रामजी : | परशुरामजी : |
|---|---|
| सरदचन्द निंदक मुख नीके। | सीस जटा ससि बदन सुहावा। |
| चितवन चारु मारमद हरनी। | सहजहु चितवत मनहु रिसाते। |
| वृषभ कंध केहरि ठवनि। | वृषभ कंध उर बाहु विसाला। |
| भाल बिसाल तिलक झलकाही। | भाल विसाल त्रिपुंड विराजा। |
| कटि तूनीर पीत पट बाँधे। | कटि मुनि वसन तून दुइ बाँधे। |
| करसर धनुप बाम वर काँधे। | धनु सरकर कुठार कल काँधे। |
| प्रभुहिं देखि सब नृप हिय हारे। | देखि महीप सकल सकुचाने। |

प्रादेश मात्र दिखलाया गया। दोनो स्वरूपों का यहाँ पूरा मिलान करना चाहिए।

देखत भृगुपति बेपु कराला। उठे सकल भय विकल भुआला ॥
पितु समेत कहि कहि निज नामा। लगे करन सब दंड प्रनामा ॥१॥

अर्थ : भृगुपति का कराल वेप देखकर डर से विकल होकर राजा लोग उठे। पिता के समेत अपना नाम कह कहकर सब दण्डवत् प्रणाम करने लगे।

व्याख्या : पहिले खरभर देखकर पुर नर नारी विकल हुए थे। गोलमाल मचानेवाले ये राजा ही थे। सो बाज झपट जिमि लवा लुकाने। लवा की भाँति छिप गये। इसलिए परशुरामजी को दूर से देखते ही सब गोलमाल शान्त हो गया। दूर से तो शान्त वेप मे देखा था पर निकट आने पर कराल वेप प्रकट हुआ। भृकुटी कुटिल नयन रिसिराते। सहजहुँ चितवत मनहु रिसाते। कटि मुनि वसन तून दुइ बाँधे। कर सर धनु कुठार कल काँधे। तब राजा लोग डर से विकल हुए। जहाँ छिपे थे वहाँ से उठे। क्योंकि परशुरामजी से सभी राजा परिचित थे।

शास्त्रोक्त विधि से दण्डवत् प्रणाम प्रारम्भ हुआ। विधि यह है कि पिता के सहित अपना नाम लेकर बड़ो को प्रणाम करे। सो : अमुकस्य पुत्रोऽमुकवर्माहम् भो महर्पे त्वामभिवादये। ऐसा कहकर साष्टाग प्रणाम करने लगे। स्वय विश्वामित्रजी के आने पर न ये सब उठे थे और न प्रणाम किया था। अतः यह प्रणाम श्रद्धातिरेक से नही हो रहा है मारे भय के हो रहा है। कही बे कायदे प्रणाम करने पर अप्रसन्न न हो जाँय इसलिए शास्त्र की विधि का पालन किया जा रहा है।

जेहि सुभाय चितवहिं हितु जानी। सो जानै जनु आइ खोटानी ॥
जनक बहोरि आइ सिर नावा। सीय बोलाइ प्रनाम करावा ॥२॥

अर्थ : जिसे अच्छे भाव से हित जानकर देखते हैं वह समझता है कि मेरी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



आयु क्षीण हुई। फिर जनक ने आकर सिर नवाया और सीताजी को बुलाकर प्रणाम करवाया।

व्याख्या : इतनी श्रद्धा से दण्डवत् प्रणाम हो रहा है पर परशुरामजी किसी की ओर आँख उठाकर देखते भी नही। आशीर्वाद न देने का एक कारण भी है कि अभी यह पता नही है कि धनुष किसने तोड़ा है। यदि धोखे से आशीर्वाद दे देंगे तो धनुषभंग के अपराध पर उसका वध कैसे करेंगे ? यथा : सुनहु राम जेहि सिव धनु तोरा। सहस बाहु सम सो रिपु मोरा। राजा इतने भयभीत हैं कि प्रणाम करते चले जाते हैं। यदि किसी के पिता के नाम सुनने से या स्वय उसके नाम सुनने से स्मरण आगया कि यह कुल तो ब्रह्मण्य है तो उसपर इतनी कृपा हुई कि उसकी ओर स्वाभाविक दृष्टि से देखा पर उसने समझा कि मैं मरा।

जनकजी उस जगह नहीं रहे। जहाँ थे वहाँ से आकर सब राजाओ के दण्डवत् के बाद सिर नवाया। न दण्डवत् किया न पिता का नाम लेकर अपने नाम का उच्चारण किया। जनकजी से परिचय विशेष है। इनका आदर भी मुनिसमाज मे बहुत अधिक है। इनपर सामान्य नियम लागू नही है। पर इन्हे भी आशीर्वाद नही दिया। जनकजी बुद्धिमान् हैं। सीताजी को बुलाकर प्रणाम कराया। जगदम्बा के व्यक्तित्व का इतना प्रभाव पड़ा कि उन्हें आशीर्वाद दिया सौभाग्यवती भव।

आसिष दीन्हि सखी हरषानी। निज समाज लै गई सयानी॥
विस्वामित्रु मिले पुनि आई। पद सरोज मेले दोउ भाई॥३॥

अर्थ : आशीर्वाद दिया। सखियाँ हर्षित हुईं। बड़ी चतुर थीं अपने समाज मे लिवा ले गईं। तब विश्वामित्रजी आकर मिले और चरणकमलों में दोनो भाइयो को डाल दिया।

व्याख्या : सखी चतुर हैं। जानती हैं कि यहाँ आशीर्वाद बहुत सस्ता नही है। जो आशीर्वाद दिया उसे कार्य मे परिणत करना चाहेंगे। कम से कम स्वय तो ऐसा आचरण नही करेंगे। जिसमे उनका आशीर्वाद मिथ्या पड़ जाय। जब समराङ्गण मे आने पर रथ से उतरकर कार्त्तवीर्यार्जुन ने साष्टाङ्ग प्रणाम किया तो इन महात्मा ने यही आशीर्वाद दिया कि तुम्हे उत्तम लोक की प्राप्ति हो। अतः इनके आशीर्वाद का मूल्य है। अब इनसे रामजी को भय नही है क्योंकि सीताजी को सौभाग्यवती भव का आशीर्वाद दे चुके हैं। अत सखियाँ हर्षित हुईं। अपने समाज मे अर्थात् रानियो के पास ले गईं। राजसमाज अपना समाज नही है।

तत्पश्चात् विश्वामित्र जी आकर मिले। सम्बन्धी हैं इसलिए मिले। सबसे ऊँचे मञ्च पर बैठे थे उसपर से उतर कर आये। दोनो भाइयो को साथ लिवाते आये और उनको उसी भाँति मुनिचरणो में डाल दिया जिस भाँति महाराज दशरथ ने उनके चरणो मे डाल दिया था। यथा : मुनि चरनन मेले सुत चारी। जनकजी ने अपनी पुत्री के लिए आशीर्वाद ले लिया तो विश्वामित्रजी ने अपने शिष्यो को आशीर्वादार्थ उन्हे उनके चरणो मे डाला।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तन जनु वीर रस आएउ जहँ सब भूप कि इन्ही मे से किसी ने धनुष तोडा होगा। रामजी श्रृगार मे वीर रस की भाँति आये थे। यथा देखहिं रूप महा रनधीरा। मनहु वीर रस धरे सरीरा। परशुरामजी मुनि वेष मे वीर रस की भाँति आये।

| रामजी | परशुरामजी |
|---|---|
| सरदचन्द निंदक मुख नीके। | सीस जटा ससि वदन सुहावा। |
| चितवन चारु मारमद हरनी। | सहजहु चितवत मनहु रिसाते। |
| वृषभ कध केहरि ठवनि। | वृषभ कध उर बाहु बिसाला। |
| *भाल विसाल तिलक झलकाही।* | *भाल विसाल त्रिपुड विराजा।* |
| कटि तूनीर पीत पट बाँधे। | कटि मुनि वसन तून दुइ बाँधे। |
| करसर धनुप बाम वर काँधे। | धनु सरकर कुठार कल काँधे। |
| प्रभुहि देखि सब नृप हिय हारे। | देखि महीप सकल सकुचाने। |

प्रादेश मात्र दिखलाया गया। दोनो स्वरूपो का यहाँ पूरा मिलान करना चाहिए।

देखत भृगुपति वेषु कराला। उठे सकल भय विकल भुआला॥
पितु समेत कहि कहि निज नामा। लगे करन सब दड प्रनामा॥१॥

अर्थ भृगुपति का कराल वेप देखकर डर से विकल होकर राजा लोग उठे। पिता के समेत अपना नाम कह कहकर सब दण्डवत् प्रणाम करने लगे।

व्याख्या पहिले खरभर देखकर पुर नर नारी विकल हुए थे। गालमाल मचानेवाले ये राजा ही थे। सो बाज झपट जिमि लवा लुकाने। लवा की भाँति छिप गये। इसलिए परशुरामजी को दूर से देखते ही सब गोलमाल शान्त हो गया। दूर से तो शान्त वेप म देखा था पर निकट आने पर कराल वेप प्रकट हुआ। भृकुटी कुटिल नयन रिसिराते। सहजहुँ चितवत मनहु रिसाते। कटि मुनि वसन तून दुइ बाँधे। कर सर धनु कुठार कल काँधे। तब राजा लोग डर से विकल हुए। जहाँ छिपे थे वहाँ से उठे। क्योकि परशुरामजी से सभी राजा परिचित थे।

शास्त्रोक्त विधि से दण्डवत् प्रणाम प्रारम्भ हुआ। विधि यह है कि पिता के सहित अपना नाम लेकर बडो को प्रणाम करे। सो अमुकस्य पुत्रोऽमुकवर्माहम् भो महर्षे त्वामभिवादये। ऐसा कहकर साष्टाग प्रणाम करने लगे। स्वय विश्वामित्रजी के आने पर न ये सब उठे थे और न प्रणाम किया था। अत यह प्रणाम श्रद्धा-तिरेक से नही हो रहा है मारे भय के हो रहा है। कही वे कायदे प्रणाम करने पर अप्रसन्न न हो जाँय इसलिए शास्त्र की विधि का पालन किया जा रहा है।

जेहि सुभाय चितवहि हितु जानी। सो जानै जनु आइ खोटानी॥
जनक बहोरि आइ सिर नावा। सीय बोलाइ प्रनाम करावा॥२॥

अर्थ जिसे अच्छे भाव से हित जानकर देखते है वह समझता है कि मेरी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



आयु क्षीण हुई। फिर जनक ने आकर सिर नवाया और सीताजी को बुलाकर प्रणाम करवाया।

*व्याख्या* इतनी श्रद्धा से दण्डवत् प्रणाम हो रहा है पर परशुरामजी किसी की ओर आँख उठाकर देखते भी नही। आशीर्वाद न देने का एक कारण भी है कि अभी यह पता नही है कि धनुष किसने तोडा है। यदि धोखे से आशीर्वाद दे देंगे तो धनुषभग के अपराध पर उसका वध कैसे करेंगे? यथा सुनहु राम जेहि सिव धनु तोरा। सहस बाहु सम सो रिपु मोरा। राजा इतने भयभीत हैं कि प्रणाम करते चले जाते हैं। यदि किसी के पिता के नाम सुनने से या स्वय उसके नाम सुनने से स्मरण आगया कि यह कुल तो ब्रह्मण्य है तो उसपर इतनी कृपा हुई कि उसकी ओर स्वाभाविक दृष्टि से देखा पर उसने समझा कि मैं मरा।

जनकजी उस जगह नही रहे। जहाँ थे वहाँ से आकर सब राजाओ के दण्डवत् के बाद सिर नवाया। न दण्डवत् किया न पिता का नाम लेकर अपने नाम का उच्चारण किया। जनकजी से परिचय विशेष है। इनका आदर भी मुनिसमाज में बहुत अधिक है। इनपर सामान्य नियम लागू नही है। पर इन्हे भी आशीर्वाद नही दिया। जनकजी बुद्धिमान् हैं। सीताजी को बुलाकर प्रणाम कराया। जगदम्बा के व्यक्तित्व का इतना प्रभाव पडा कि उन्हे आशीर्वाद दिया सौभाग्यवती भव।

आसिष दीन्हि सखी हरषानी। निज समाज लै गईं सयानी॥
बिस्वामित्रु मिले पुनि आई। पद सरोज मेले दोउ भाई॥३॥

अर्थ · आशीर्वाद दिया। सखियाँ हर्षित हुईं। बडी चतुर थी अपने समाज मे लिवा ले गईं। तब विश्वामित्रजी आकर मिले और चरणकमलो मे दोनो भाइयो को डाल दिया।

व्याख्या · सखी चतुर हैं। जानती हैं कि यहाँ आशीर्वाद बहुत सस्ता नही है। जो आशीर्वाद दिया उसे कार्य मे परिणत करना चाहेंगे। कम से कम स्वय तो ऐसा आचरण नही करेंगे। जिसम उनका आशीर्वाद मिथ्या पड जाय। जब समराङ्गण मे आने पर रथ से उतरकर कार्त्तवीर्यार्जुन ने साष्टाङ्ग प्रणाम किया तो इन महात्मा ने यही आशीर्वाद दिया कि तुम्हे उत्तम लोक की प्राप्ति हो। अत इनके आशीर्वाद का मूल्य है। अब इनसे रामजी को भय नही है क्योकि सीताजी को सौभाग्यवती भव का आशीर्वाद दे चुके हैं। अत सखियाँ हर्षित हुईं। अपने समाज मे अर्थात् रानियो के पास ले गईं। राजसमाज अपना समाज नही है।

तत्पश्चात् विश्वामित्र जी आकर मिले। सम्बन्धी हैं इसलिए मिले। सबसे ऊँचे मञ्च पर बैठे थे उसपर से उतर कर आये। दोनो भाइयो को साथ लिवाते आये और उनको उसी भाँति मुनिचरणो मे डाल दिया जिस भाँति महाराज दशरथ ने उनके चरणो मे डाल दिया था। यथा मुनि चरनन मेले सुत चारी। जनकजी ने अपनी पुत्री के लिए आशीर्वाद ले लिया तो विश्वामित्रजी ने अपने शिष्यो को आशीर्वादार्थ उन्हे उनके चरणो मे डाला।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



राम लषन दशरथ के ढोटा। दीन्हि असीस देखि भल जोटा ॥
रामहि चितइ रहे थकि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन ॥४॥

अर्थ · राम लक्ष्मण दशरथ के बेटे हैं। अच्छी जोडी देखकर आशीर्वाद दिया। रामजी को देखते ही रह गये। आँखें थक गईं। रूप का पारावार नही था। कामदेव के अभिमान को दूर करनेवाला रूप था।

व्याख्या जब मुनि ने कहा कि ये राम लक्ष्मण दशरथ के बेटे हैं तब आँख उठाकर देखा कि बडी अच्छी जोडी है। आशीर्वाद दिया चिरञ्जीव। इतने समाज मे तीनो को आशीर्वाद मिला। सीताजी को, रामजी को और लक्ष्मणजी को। इनपर धनुपभग की आशङ्का भी नहीं हो सक्ती थी। इन सुकुमार मधुर मूर्तियो की शक्ति के बाहर की बात समझी। दोनो भाइयो मे भी दृष्टि पीछे से रामजी पर स्थिर हो गई। ऐसा उदाहरण सभी जगह मिलेगा। रूप के भार के सहन मे असमर्थ होकर आँखें थक गईं। रूप का पारावार ही नही मिलता था। ऐसा रूप था कि देखकर काम को अपनी सुन्दरता का अभिमान छूट जाय। थोडी देर के लिए परशुरामजी क्रोध भूल गये।

दो बहुरि बिलोकि बिदेह सन, कहहु काह अति भीर।
पूँछत जानि अजान जिमि, ब्यापेउ कोपु सरीर ॥२६९॥

अर्थ फिर देखकर विदेह से कहा कि कहो इतनी भीड क्यो है? जानकर भी अनजान की भाँति पूछते हैं। उनके शरीर मे क्रोध व्याप्त हो गया।

व्याख्या फिर राजा जनक को देखा। उन्ही के मुख से धनुपभङ्ग कहलाना चाहते है और उन्ही से धनुपभङ्ग करनेवाले का नाम जानना चाहते हैं। अत पूछते हैं इतनी भीड क्यो है? भीड के लिए प्रश्न राजा के यहाँ नही बनता। क्योकि वहाँ सदा ही भीड बनी रहती है। परन्तु अति अधिक भीड जिसमे द्वीप द्वीप के राजा इकट्ठे हो के लिए कारण विशेष होना चाहिए। जान बूझकर अनजान की भाँति पूछने का यही कारण है। रामजी के दर्शन से क्रोध दब गया या वह प्रश्न करने मे उमडकर तमाम शरीर मे व्याप्त हो गया।

समाचार कहि जनक सुनाए। जेहि कारन महीप सब आए ॥
सुनत बचन फिरि अनत निहारे। देखे चापखण्ड महि डारे ॥१॥

अर्थ जिस कारण सब राजा लोग आये थे वह सब समाचार जनकजी ने कह सुनाया। वचन सुनते ही घूमकर दूसरी ओर देखा तो धनुष के दोनो खण्डो को पृथ्वी पर पडा हुआ पाया।

व्याख्या - नृप लखि कुँअरि सयानि बोलि गुरुपरिजन। करि मत रचेउ स्वयवर सिवधनु धरि पन जा म। यही समाचार था। सो जनकजी ने सुना दिया कि पुत्री की विवाह की चिन्ता से धनुपयज्ञ रचा गया है। यहाँ विदेहन

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कहकर जनक कहने का यह आशय है कि जनक का अर्थ पिता है। पिता अपनी पुत्री के विवाह के लिए उद्योग करता ही है। इस भाँति कहहु कहा अति भीर का उत्तर दिया कि राजाओ के एकत्र होने का यह कारण है। कुछ आपके विरोध मे परामर्श के लिए नही एकत्रित हुए है।

परशुरामजी कञ्चनमञ्च के सामने आ खडे हुए थे। यथा आये जहँ सब भूप। इसलिए वेदी पीछे पड गई थी। जनकजी का वचन सुनकर जब घूमकर वेदी की ओर देखा। यथा अति विस्तार चारु गच ढारी। बिमल वेदिका रुचिर सँवारी। तो धनुप के दोनो खण्डो को पृथ्वी पर पडा हुआ देखा। पहिले धनुप लोहे की पेटिका मे रक्खा था। यथा तामादाय समञ्जूपामायसी यत्र तद्धनु । बा०। गुरुका धनुप सब प्रकार पूजनीय था। उसे टूटा हुआ और उसके टुकडो को पृथ्वी पर पडा हुआ देखना, रौद्ररस के उद्दीपन के लिए यथेष्ट कारण हुआ।

अति रिस बोले वचन कठोरा। कहु जड जनक धनुप कै तोरा ॥
वेगि देखाउ मूढ न त[1] आजू। उलटौ महि जहँ लहि तव राजू ॥२॥

अर्थ अत्यन्त क्रोध से कठोर वचन बोले रे जड जनक! बतला धनुप किसने तोडा? जिसने तोडा हो उसे जल्दी दिखला नही तो जहाँ तक तेरा राज्य पाऊँगा उतनी पृथ्वी उलट दूँगा।

व्याख्या धनुप के तोडने पर 'रिस' और टुकडो को पृथ्वी पर फेंकने पर अतिरिस है। अतिरिस मे कठोर वचन बोलना स्वाभाविक है। मुनियो के ज्ञानदाता जनक को मूढ कहना कठोर वचन है। पुरवासी स्नेहवश दोप लगाते थे। यथा हरु विधि वेगि जनक जडताई। ये क्रोधवश दोप लगाते है। जनक जी को जड कह रहे हैं। शिवधनु को प्रण मे रखना जडता है। अब अपराधी को जानना चाहते हैं। अत पूछते हैं धनुप कै तोरा?

उत्तर देने मे देर होते देखकर मूढ कहते हैं। माया मे फँसकर जामाता को नही बतलाना चाहता। अत कहते हैं जल्दी बतला। प्रजापालक राजा है प्रजापालन से ही इसका नाम जनक पडा है। प्रजाओ के नाश के भय से बतला देगा। नही बतलाने से वह भी नही बच सकता जिसको नही बतलाना चाहता है। वह धनुप तोडनेवाला तेरे राज्य के भीतर ही होगा। अत जहाँ तक तेरा राज्य मिलेगा वहाँ तक को पृथ्वी उलट दूँगा। यह घोरधार भृगुनाथ रिसानी है। राज्य उलटने को तैयार हैं।

अति डर उतरु देत नृपु नाही। कुटिल भूप हरषे मन माही ॥
सुर मुनि नाग नगर नर नारी। सोचहि सकल त्रास उर भारी ॥३॥

अर्थ अत्यन्त डर से राजा उत्तर नही देते। कुटिल राजा मनही मन प्रसन्न

---

१ व्याज निंदा अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हुए। देवता, मुनि, नाग, नगर के स्त्री पुरुष, सबके सब अत्यन्त त्रस्त होकर सोच कर रहे है।

व्याख्या परशुरामजी अत्यन्त क्रोध से बोले। अत अत्यन्त डर से राजा उत्तर नही देते। उत्तर देने मे अनर्थ है। न देने से क्रोध उनके सिर बीते सो स्वीकार है। जामाता की किसी भाँति रक्षा हो। उधर कुटिल भूप मनही मन प्रसन्न हुए कि बडा काम हुआ जो हमसे धनुप नही टूटा। अब हुआ जनक का सत्यानाश। ये छोकडे वडे वीर बने फिरते थे। ये भारी भयानक है। ससार से उठ जायँ तभी ठीक हो। हर्ष व्यक्त करने से कही हमारे ही सिर न बीत जाय। अत मनही मन प्रसन्न होते हैं। बाहर नही जनाते। भयभीत बने खडे है।

सुर किन्नर नर नाग मुनीसा। जय जय जय कहि देहि असीसा। ये लोग कल्याण चाहनेवाले थे। सबके सब रावण से दुखी थे। यथा किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहि लागा। रामजी के ही हाथ से रावणवध होनेवाला था। सो रामजी पर ही भारी विपत्ति आते देखकर सब त्रस्त होकर चिन्ता करते हैं। परशुरामजी पर किसी का बल नही चल सकता था। इनके क्रोध से उन लोगो को रामजी के प्रति भी शङ्का हो गई। राजा जनक को भी काल के गाल मे देख रहे है।

मन पछिताति सीय महतारी। विधि अब सँवरी बात बिगारी॥
भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता। अर्ध निमेष कलप सम बीता॥४॥

अर्थ सीता की माता मनमे पछता रही हैं कि ब्रह्मा ने तो अब सँवारी हुई बात ही बिगाड दी। भृगुपति का स्वभाव सुनकर सीताजी को तो आधा पलक कल्प के समान बीतने लगा।

व्याख्या जनकजी पर सकट देखकर सीताजी की माता पछताती हैं कि धनुप टूटने से मेरी बात बन गई थी। सो सब बनी बनाई बात बिगडना चाहती है। महाराज परशुरामजी के प्रश्न का उत्तर न देकर उनके क्रोध के वेग को अपने ऊपर ले रहे हैं। इनके क्रोध से न महाराज की रक्षा है और न रामजी की। पहिले तो कन्या पर सकट था। धनुप नही टूटता था। धनुप टूटने से वह सकट टला। तब पुत्री और पति दोना पर सकट आगया। सब बात ही बिगड गई। यदि महाराज धनुप तोडनेवाल का नाम नही बतलाना चाहते तो इतने आदमियो म कोई न कोई बतला ही देगा और उसीको खोजते हुए ये क्रुद्ध होकर आये हैं। इनका स्वभाव बडा निर्दय है। जिसपर क्रोध करते हैं उनके वश मे किसी को नही छोडते। सब बात ब्रह्मा ने बिगाडी। नही तो इस समय इनके आने की कौन सी बात थी। कोई अनर्थ हुआ चाहता है।

सीताजी ने जब परशुरामजी का स्वभाव सुना तो इतने कष्ट मे पडी कि उनको आधा निमेप कल्प के समान बीतने लगा। पहिले लवनिमेप युग सय सम जाही।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


फिर रामजी के धनुप के पास आने पर ऐसी विकलता हुई कि निमिष विहात कल्प सम तेही। इस समय उससे भी दूनी विकलता है। इसलिए कहते हैं कि अर्ध निमेष कल्प सम बीता।

दो. सभय विलोके लोग सब, जानि जानकी भीर।
हृदय न हरपु विषादु कछु, बोले श्रीरघुवीर ॥२७०॥

अर्थ : सब लोगों को भयभीत देखकर और जानकी पर कष्ट जानकर श्रीरघुवीर बोले। न उनके मनमे कोई हर्ष था न विषाद था।

व्याख्या : रामजी ने देखा कि सब जनकपुरवासी तथा सुर मुनि नाग सब भयभीत है। जानकीजी को जब एक निमिष कल्प सम हुआ तब धनुप को तोड डाला। अब देखते हैं तो आधा निमिष कल्प के समान बीत रहा है तो बोले। भाव यह कि महाराज यदि नही बतलाते तो मैं स्वय अपने को उपस्थित करता हूँ। मनमें हर्ष विषाद नही कहने का यह भाव है कि रामजी का मन सदा निर्विकार है। धनुप भङ्ग का हर्ष नही है और न परशुराम के क्रोध पर विषाद है। प्रसन्नता या न गताभिषेकतः तथा न मम्ले वनवासदु खत । मुखाम्बुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मञ्जुलमङ्गलप्रदा। इसीलिए श्री ग्रन्थकार ने रघुवीर पद दिया। उत्तर देने मे न हिचकने का स्वभाव रघुवश मात्र का है। यथा : वंस स्वभाव उत्तर तेहि दीन्हा। घाट सुबद्ध राम वर बानी।

नाथ संभुधनु भंजनिहारा। होइहि केउ एक दासु तुम्हारा ॥
आयसु काह कहिअ किन मोही। सुनि रिसाइ बोले मुनि कोही ॥१॥

अर्थ : हे नाथ! शिवजी का धनुप तोडनेवाला तुम्हारा कोई एक दास होगा। क्या आज्ञा है? मुझसे क्यो नहीं कहा जाता? सुनकर क्रोधी मुनि चिढकर बोले।

व्याख्या : वर्णाना ब्राह्मणो गुरु । अत नाथ सम्बोधन करते हैं। प्रश्न है धनुप कै तोरा? उत्तर देते हैं : कोउ एक दास तुम्हारा। गर्व गरुआई सँभालते हैं। आपके दासो को छोड़कर और किसका सामर्थ्य है जो धनुप तोड सके। आप किसी प्रतिस्पर्धी की शङ्का न करें। विनीत भाव से स्पष्ट कह रहे हैं कि मैंने तोडा है। पर मैं आपका दास हूँ प्रतिस्पर्धी नही हूँ। धनुप तोडनेवाले को पूछने से अभिप्राय यही है कि उसके लिए कोई आज्ञा होनेवाली है। सो वह आज्ञा मुझे दीजिये। अब बात और भी स्पष्ट कर दी कि मैंने तोड़ा और तोड़नेवाले के लिए जो कुछ कहना हो सो मुझसे कहिये। क्रोधी मनुष्य शीघ्र बात नही समझता। इन्होने भी नही समझी। इतना ही समझा कि यह तोडनेवाले की सिपारिश करता है। उसे दास बतला रहा है। यहाँ ध्वनि यह थी कि अब आपको कुछ करना नही है। आप आनन्द से तपस्या करिये। जिन कामो के लिए आपका अवतार है वह मर मैं अपने ऊपर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लिए लेता हूँ। आप अब केवल आज्ञा देते जाइये। मैं सब करूँगा। परम बुद्धिमान् होने पर भी क्रोध के कारण ध्वनि नही समझ सके। उलटे चिढ उठे और बोले।

सेवकु सो जो करै सेवकाई। अरि करनी करि करिअ लराई॥
सुनहु राम जेहि सिव धनु तोरा। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा॥२॥

अर्थ सेवक वही है जो सेवक का काम करे। शत्रु का काम करके तो लडाई करनी चाहिए। सुनो राम जिसने शिवधनु तोडा है वह सहस्रबाहु की भाँति मेरा शत्रु है।

व्याख्या · आयसु काह कहहु किन मोही का उत्तर परशुरामजी देते हैं कि जो सेवा करता है उसे आज्ञा दी जाती है। और जो इष्ट का नाश करे वही तो शत्रु है। उसने लडाई ठानकर इष्ट नाश किया है। उससे लडाई ही करनी चाहिए। शिवधनुभङ्ग हमारे लिए बडा भारी अनिष्ट है। जिसने उसे तोडा वह पितृहन्ता के समान शत्रु है। उससे बडा हमारा शत्रु कोई हो नही सकता। उसे हम आज्ञा नही दे सकते। उसका हम वध करेंगे।

सो बिलगाउ बिहाइ समाजा। न त मारे जैहै सब राजा॥
सुनि मुनि बचन लखन मुसुकाने। बोले परसुधरहि अपमाने॥३॥

अर्थ उसे समाज से अलग करके खडा करो। नही तो सब राजे मारे जायँगे। मुनि का वचन सुनकर लक्ष्मणजी मुसकराये और परशुराम का अपमान करते हुए बोले।

व्याख्या यदि आज्ञा ही चाहते हो तो यही आज्ञा है कि मेरे उस शत्रु को राजसमाज से अलग कर दो। मै उससे युद्ध करूँ और यदि वह अलग न होना चाहता हो तो कुशल चाहनेवाले राजा उसे छोडकर हट जायँ। यदि ऐसा नही होता तो मै सब राजाओं को उसका साथी समझूँगा। सबको मार डालूँगा। उसी मे वह भी मारा जायगा।

जनकजी के वीर विहीन मही कहने से जिस लक्ष्मण ने रामजी का अपमान माना था उसी लक्ष्मण ने न त मारे जैहै सब राजा इस वचन से भी रामजी का अपमान माना। उनके इस वचन पर मुसुकराये कि मुनि के ऐसे वचन! ये तो केवल मुनि का स्वाँग बनाये हैं। अत परशुरामजी का अपमान करते हुए बोले।

बहु धनुहीं तोरी लरिकाईं। कबहुँ न असि रिस कीन्हि गोसाईं॥
एहि धनु पर ममता केहि हेतू। सुनि रिसाइ कह भृगुकुल केतू॥४॥

अर्थ लडकपन मे तो बहुत सी धनुहियाँ तोडी है। परन्तु गोसाईं! आपने ऐसा क्रोध तो कभी नही किया। इस धनुष पर इतनी ममता होने का कारण क्या है? सुनकर भृगुकुल केतु पताका चिढकर बोले।

व्याख्या लडकपन से ही हमलोगो को धनुष का व्यसन है। खेलवाड मे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भी धनुहिया से काम लते थ। कितनी धनुहियाँ उस खेलवाड म टूटी। इसका क्या ठिकाना। उनके टूटने पर आप मनही मन अप्रसन्न हुए हो तो वात दूसरी है। पर ऐसा क्रोध तो कभी नही किया कि उनके टूटने पर लडने को तैयार हुए हो। श्रीरामजी ने नाथ कहा है। इसलिए ये भी गोसाइँ सम्वोधन करते हैं और वडा मानकर ही प्रश्न करे हैं कि वडा का कत्तव्य है कि अनिष्टाचरण से छोटा को आरम्भ से ही निवृत्त करें। सो आपने कभी नही किया। अत मालूम होता है कि इस धनुप म कुछ विशेपता थी। जिसके कारण आपकी इसपर ममता थी उस विशेपता को जानने के लिए प्रश्न करते हैं। भाव यह कि जैसे लडकपन की धनुहियाँ आपकी नही थी उसी भाति यह धनुप भी आपका नही था। यथा रावरी पिनाक मे सरीकता कहाँ रही। और इस धनुप म कुछ तत्त्व भी नही था। ऐसा उत्तर पाकर भृगुकुल केतु हैं भृगु ने विष्णु भगवान् को लात मारी थी। उस कुल की पताका हैं। बिगड गये कि शिवधनु का धनुही से समता दे रहा है।

दो रे नृप वालक कालवस, वोलत तोहि न सभार।
धनुही सम तिपुरारि धनु विदित सकल ससार ॥२७१॥

अर्थ रे राजा के लडके! तू कालवश हो रहा है। सँभालकर नही वोलता। विश्वविख्यात त्रिपुरारि का धनुप धनुही के समान है?

व्याख्या नृप वालक कहने का भाव यह कि लडकपन की वातें करता है। मुझसे लडकपन की वात करना काल के गाल मे जाना है। जिनके सिरपर काल सवार होता है वे ही ऐसी वेसँभाल वात मुझसे करते हैं। त्रिपुरारि का धनुप मेरुमन्दर का जोडीदार है। उसे तू धनुही के समान वतला रहा है। इस धनुप को तो सारा ससार जानता था। तेरी धनुहियो को कौन पूछता है। ऐसा ही उत्तर पाने के लिए ही लक्ष्मण जी ने वहु धनुही तोरी लरिकाई आदि कहा था। अव ऐसा उत्तर पा जाने पर उन्हे अवाक् करने म सुभीता होगा। यथा वचन चय चातुरी परसुधर गर्वहर वि प।

लखन कहा हँसि हमरे जाना। सुनहु देव सब धनुप समाना॥
का छति लाभु जून धनु तोरे। देखा राम नएन के भोरे॥१॥

अथ लक्ष्मणजी ने हँस के कहा कि हमारी समझ म तो सब धनुप समान ही थे। पुराने धनुप के तोडने म न कोई लाभ था न हानि थी। रामजी ने तो उसे नये के धाखे से परखा था।

व्याख्या पहिले न त मारे जैह सब राजा सुजत्र मुसकराय थे। अव रे नृप वालक कालवस वालत ताहि न सँभार। धनुही सम त्रिपुरारि धनु विदित सकल समार। इतना कहने पर तो हँस पडे। वोले कि यह तो आप अपनी समझ की वात कहते हैं। हमारी समझ म तो जैसी व धनुहियाँ थी वैसा ही यह धनुप था। देव सम्बोधन का भाव यह कि आप महिदेव हैं। ब्राह्मण देवता हैं। आपकी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यह काम नही है। अत आपको कठिन जान पडा। हम क्षत्रिय हैं। हमारा काम है। हमे सहज सरल जान पडता है। अत हमारे लिए दोनो समान ही हैं।

अनादि देव महादेव का धनुष न जाने किस युग का था। बहुत पुराना हो गया था। उसके तोडने मे कोई हानि नही थी। टूटे ही के बराबर था। उसे तोडने मे लाभ भी कुछ नही था। क्योकि उस पुराने धनुष के तोडने मे कोई वाहवाही नही थी। जिसके टूटने से हानि लाभ कुछ नही उसके लिए अप्रसन्न होने का कोई कारण नही है। रामजी ने नये के धोखे से उसे परखा था कि देखे इसमे कुछ दम है कि नही। लक्ष्मण जी ने इस भाँति स्पष्ट नाम भी बतला दिया।

छुवत टूट रघुपतिहि न दोपू। मुनि बिनु काज करिअ कत रोपू॥
बोले चितइ परसु की ओरा। रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा॥२॥

अर्थ : छूते ही तो टूट गया। रघुपति का कोई दोष नही है। मुनिजी! व्यर्थ क्रोध क्यो करते हो। परशु की ओर देखकर बोले क्यो रे सठ! तूने मेरा स्वभाव नही सुना है?

व्याख्या यदि कहो कि लाभ हानि हो चाहे न हो तुमने क्यो तोडा? इस पर कहते है कि इतना पुराना था कि छूते ही टूट गया। रामजी का कुछ दोष नही। आप ही व्यर्थ क्रोध कर रहे हैं। रामजी का नाम बतलाने पर भी ऐसी बात बोले कि क्रोध की धारा रामजी की ओर न जाकर लक्ष्मण की ओर घूम गई। सब पुर नर नारी साक्षी हैं किसने रामजी को लेते चढाते देखा है? रामजी ने उठाया और वह पुराना धनुष आपसे आप टूट गया।

लक्ष्मणजी बोले और परशुधर का अपमान किया। अत वे भी परशु की ओर देखकर बोलते हैं। परशु की ओर देखने का भाव लक्ष्मण को दिखाने से है कि इसे देखता है या नही? केवल मेरी बात काटने के लिए ऐसे महद् धनुष को ऐसा तुच्छ बतलाता है और अपना अलौकिक बल स्थापन कर रहा है। इसका उत्तर सग्राम ही है। तू शठ है। सहस्रो कपट की सूइयो को चतुराई से छिपाता है। यथा कपट सार सूची सहस बाँधि वचन पर बास। करि दुराव चह चातुरी सो सठ तुलसीदास। मेरा स्वभाव प्रसिद्ध है। कपटी को तो मार ही डालता हूँ। कदाचित् तूने मेरा स्वभाव नही सुना है वस्तुतस्तु बडे दयालु है। डराने के लिए अपने को निष्ठुर बतला रहे हैं।

बालक बोलि बधौं नहिं तोही। केवल मुनि जड जानहि मोही॥
बाल ब्रह्मचारी अति कोही। बिस्व बिदित छत्रीकुल द्रोही॥३॥

अर्थ बालक समझकर तुझे नही मारता हूँ। अरे जड! तूने मुझे निरा मुनि ही समझ रक्खा है। मै बाल ब्रह्मचारी हूँ। अत्यन्त क्रोधी हूँ और ससार जानता है मै क्षत्रियवश का वैरी हूँ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या : तू आरम्भ से ही कपट की बात बोलता है। मैं पहिले ही उत्तर मे मार देता। पर बालक समझकर छोड दिया। मुनि बिनु काज करिअ कत रोसू कहा। तो तूने मुझे केवल मुनि ही जान लिया। तू जड है। वेसमझ है। मेरा परशु नही देखता। मुनि तो ऐसा हूँ कि दारपरिग्रह ही नही किया। अत अक्षत वीर्य हूँ। मैं निर्बल मुनियो की भाँति क्षमाशील नही हूँ। क्षत्रिय लोग शान्त दान्त मुनियो को तुच्छ समझते है। उनका अपमान करते हैं। वे बिचारे सह जाते हैं। परन्तु मैं अतिक्रोधी हूँ। असहनशील हूँ। इसलिए क्षत्रिय कुल से मेरा वैर जगद्विख्यात है। सब योग वध का ही है। केवल तेरे बचपन पर दया आती है। इस भाँति अपना प्रताप कहा। परशुरामजी सदा शिव शिव शिव शिव इस मन्त्र का जप शत्रु के नाश के लिए किया करते थे। यथा शिव शिव शिव शिव मन्त्रममु जपमानमरिक्षयहेतुम्। रा गी गो।

भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही। बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही ॥
सहसबाहु भुज छेदनिहारा। परसु बिलोकु महीपकुमारा ॥४॥

अर्थ भुजा के बल से मैंने पृथ्वी को राजाओ से रहित कर दिया और अनेक बार ब्राह्मणो को दिया। सहस्रबाहु की भुजाओ को काटनेवाले इस परशु को हे राजकुमार ! तू देख।

व्याख्या : क्रोध भी मेरा अमोघ है। बिना सेना के केवल भुजबल से इक्कीस बार पृथ्वी बिना क्षत्रिय की कर दी और ब्राह्मणो को दे दी परशुरामजी केवल युद्धवीर ही नही वडे भारी दानवीर भी थे। दानी भी इनसा कोई हुआ नही। नि क्षत्र करके सप्तसमुद्र मुद्रित मही के दान करनेवाले ये ही थे। दान पाकर अपने षट्कर्म मे बाधा पडते देखकर ब्राह्मणो ने क्षत्रियो को पृथ्वी लौटा दी। दोबारा फिर नि क्षत्र करके पृथ्वी ब्राह्मणो को दी। इस भाँति बीस बार हुआ। इक्कीसवी बार महर्षि कश्यप ने इनसे दान मे पृथ्वी लेकर आज्ञा दी कि तुम पृथ्वी छोड दो। परशुरामजी ने छोड दिया। समुद्र से अपने रहने के लिए स्थान माँगा। समुद्र ने हटकर महेन्द्राचल पर्वत को इनके रहने के लिए दिया। तब से इनका वही निवास है। चिरञ्जीवी हैं। उसी पर रहते हैं। अर्थात् दिन को कही रहे, रात को विश्राम उसी पर्वत पर करते हैं।

परशु की ओर देखकर बोलना प्रारम्भ किया था। अब स्पष्ट कहते हैं : इस परशु को देख ! है ऐसा परशु किसी के पास। इसी ने सहस्रार्जुन के हजारो बाहुओं का छेदन किया है। एक भुजा शेष न छोडी। तेरी इन भुजाओं मे क्या है ? इस भाँति अपना रोष कहा।

दो मातु पितहि जनि सोच बस, करसि महीसकिसोर।
गरभन के अर्भक दलन, परसु मोर अति घोर ॥२७२॥

अर्थ : अरे राजा के लडके ! तू अपने माता पिता को शोक के वश न कर। गर्भ के बच्चो को भी मारनेवाला मेरा परशु वडा घोर है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यह काम नही है। अत आपको कठिन जान पडा। हम क्षत्रिय हैं। हमारा काम है। हमे सहज सरल जान पडता है। अतः हमारे लिए दोनो समान ही हैं।

अनादि देव महादेव का धनुष न जाने किस युग का था। बहुत पुराना हो गया था। उसके तोडने मे कोई हानि नही थी। टूटे ही के बराबर था। उसे तोडने मे लाभ भी कुछ नही था। क्योकि उस पुराने धनुष के तोडने मे कोई वाहवाही नही थी। जिसके टूटने से हानि लाभ कुछ नही उसके लिए अप्रसन्न होने का कोई कारण नही है। रामजी ने नये के धोखे से उसे परखा था कि देखें इसमे कुछ दम है कि नही। लक्ष्मण जी ने इस भाँति स्पष्ट नाम भी बतला दिया।

छुवत टूट रघुपतिहि न दोषू। मुनि बिनु काज करिअ कत रोषू ॥
बोले चितइ परसु की ओरा। रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा ॥२॥

अर्थ : छूते ही तो टूट गया। रघुपति का कोई दोष नही है। मुनिजी! व्यर्थ क्रोध क्यो करते हो। परशु की ओर देखकर बोले क्यो रे सठ! तूने मेरा स्वभाव नहीं सुना है ?

व्याख्या : यदि कहो कि लाभ हानि हो चाहे न हो तुमने क्यो तोडा ? इस पर कहते हैं कि इतना पुराना था कि छूते ही टूट गया। रामजी का कुछ दोष नही। आप ही व्यर्थ क्रोध कर रहे हैं। रामजी का नाम बतलाने पर भी ऐसी बात बोले कि क्रोध की धारा रामजी की ओर न जाकर लक्ष्मण की ओर घूम गई। सब पुर नर नारी साक्षी हैं किसने रामजी को लेते चढाते देखा है ? रामजी ने उठाया और वह पुराना धनुष आपसे आप टूट गया।

लक्ष्मणजी बोले और परशुधर का अपमान किया। अत. वे भी परशु की ओर देखकर बोलते हैं। परशु की ओर देखने का भाव लक्ष्मण को दिखाने से है कि इसे देखता है या नही ? केवल मेरी बात काटने के लिए ऐसे महद् धनुष को ऐसा तुच्छ बतलाता है और अपना अलौकिक बल स्थापन कर रहा है। इसका उत्तर सग्राम ही है। तू शठ है। सहस्रो कपट की सूइयो को चतुराई से छिपाता है। यथा : कपट सार सूची सहस बाँधि बचन पर वास। करि दुराव चह चातुरी सो सठ तुलसीदास। मेरा स्वभाव प्रसिद्ध है। कपटी को तो मार ही डालता हूँ। कदाचित् तूने मेरा स्वभाव नही सुना है : वस्तुतस्तु बडे दयालु हैं। डराने के लिए अपने को निष्ठुर बतला रहे है।

बालक बोलि बधौं नहिं तोही। केवल मुनि जड जानहि मोही ॥
बाल ब्रह्मचारी अति कोही। बिस्व बिदित छत्रीकुल द्रोही ॥३॥

अर्थ बालक समझकर तुझे नही मारता हूँ। अरे जड! तूने मुझे निरा मुनि ही समझ रक्खा है। मैं बाल ब्रह्मचारी हूँ। अत्यन्त क्रोधी हूँ और ससार जानता है मैं क्षत्रियवश का वैरी हूँ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : तू आरम्भ से ही कपट की बात बोलता है। मैं पहिले ही उत्तर मे मार देता। पर बालक समझकर छोड दिया। मुनि बिनु काज करिअ कत रोसू कहा। तो तूने मुझे केवल मुनि ही जान लिया। तू जड है। बेसमझ है। मेरा परशु नहीं देखता। मुनि तो ऐसा हूँ कि दारपरिग्रह ही नही किया। अत अक्षत वीर्य हूँ। मैं निर्बल मुनियो की भाँति क्षमाशील नही हूँ। क्षत्रिय लोग शान्त दान्त मुनियो को तुच्छ समझते हैं। उनका अपमान करते हैं। वे विचारे सह जाते हैं। परन्तु मैं अतिक्रोधी हूँ। असहनशील हूँ। इसलिए क्षत्रिय कुल से मेरा वैर जगद्विख्यात है। सब योग वध का ही है। केवल तेरे बचपन पर दया आती है। इस भाँति अपना प्रताप कहा। परशुरामजी सदा शिव शिव शिव शिव इस मन्त्र का जप शत्रु के नाश के लिए किया करते थे। यथा शिव शिव शिव शिव मन्त्रमम् जपमानमरिक्षयहेतुम्। रा गी गो।

भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही। बिपुल बार महिदेवन्ह दीन्ही ॥
सहसबाहु भुज छेदनिहारा। परसु बिलोकु महीपकुमारा ॥४॥

अर्थ भुजा के बल से मैंने पृथ्वी को राजाओ से रहित कर दिया और अनेक बार ब्राह्मणो को दिया। सहस्रबाहु की भुजाओ को काटनेवाले इस परशु को हे राजकुमार! तू देख।

व्याख्या . क्रोध भी मेरा अमोघ है। बिना सेना के केवल भुजबल से इक्कीस बार पृथ्वी बिना क्षत्रिय की कर दी और ब्राह्मणो को दे दी परशुरामजी केवल युद्धवीर ही नही बडे भारी दानवीर भी थे। दानी भी इनसा कोई हुआ नही। नि क्षत्र करके सप्तसमुद्र मुद्रित मही के दान करनेवाले ये ही थे। दान पाकर अपने षट्कर्म मे बाधा पडते देखकर ब्राह्मणो ने क्षत्रियो को पृथ्वी लौटा दी। दोबारा फिर नि क्षत्र करके पृथ्वी ब्राह्मणो को दी। इस भाँति बीस बार हुआ। इक्कीसवी बार महर्षि कश्यप ने इनसे दान मे पृथ्वी लेकर आज्ञा दी कि तुम पृथ्वी छोड दो। परशुरामजी ने छोड दिया। समुद्र से अपने रहने के लिए स्थान माँगा। समुद्र ने हटकर महेन्द्राचल पर्वत को इनके रहने के लिए दिया। तब से इनका वही निवास है। चिरञ्जीवी हैं। उसी पर रहते हैं। अर्थात् दिन को कही रहे, रात को विश्राम उसी पर्वत पर करते हैं।

परशु की ओर देखकर बोलना प्रारम्भ किया था। अब स्पष्ट कहते हैं · इस परशु को देख! है ऐसा परशु किसी के पास। इसी ने सहस्रार्जुन के हजारो बाहुओ का छेदन किया है। एक भुजा शेष न छोडी। तेरी इन भुजाओ मे क्या है? इस भाँति अपना रोष कहा।

दो. मातु पितहि जनि सोच बस, करसि महीसकिसोर।
गरभन्ह के अर्भक दलन, परसु मोर अति घोर ॥२७२॥

अर्थ : अरे राजा के लडके! तू अपने माता पिता को शोक के वश न कर। गर्भ के बच्चो को भी मारनेवाला मेरा परशु बडा घोर है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

व्याख्या तू अपने माता पिता पर दया कर। राजा दशरथ बडा ब्रह्मण्य है। उसे वृद्धावस्था मे पुत्रशोक न हो। अपनी घोरता का आरोप परशु पर करते हैं। मै क्रोध करने पर गर्भ के बच्चो तक को नही छोडता। उसके कुल का ही पूर्णत सहार कर देता हूँ। यदि तू न मानेगा तो मै बालक होने का ख्याल न करूँगा।

विहँसि लखनु बोले मृदु बानी। अहो मुनीसु महा भटमानी[1]॥
पुनि पुनि मोहि देखाव कुठारू। चहत उडावन फूंकि पहारू॥१॥

अर्थ लक्ष्मण जी विहँसकर मृदुवाणी बोले। अहो मुनीश्वर! अपने को बडा योद्धा मानते हो। बार बार परशु दिखलाते हो। फूँककर पहाड उडा देना चाहते हो।

व्याख्या भगवान् रामचन्द्र या विश्वामित्र कोई लक्ष्मणजी को रोकता नही है। लक्ष्मणजी का उत्तर सबको प्रिय है। क्रम पर ध्यान दीजिये। परशुरामजी के न त मारे जैहे सब राजा कहने पर लक्ष्मणजी मुसुकराये। रे नृप बालक काल बस कहने पर हँसे। अब मातु पितहि जनि सोच बस करसि महीस किसोर कहने पर तो विहँस पडे। वाणी मृदु है। पर भाव तीक्ष्ण है। कहते है कि आप मुनियो के ईश क्षात्र धर्म से एकबारगी अनभिज्ञ हैं। गर्भ के बालक को मारकर अपने को भट मानते हैं। गर्भन के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर का उत्तर।

एक बार बोले चितै परसु की ओरा। दूसरी बार परसु विलोकु महीप कुमारा कहा। सो बार बार मुझे परशु दिखाते हो मानो मैंने परशु देखा ही नही। मुझे भी गर्भ का अर्भक समझ रक्खा है। मै पहाड हूँ। आँधी चलने पर भी मेरा कुछ नही होता। परशु दिखाना तो फूँक है। आँधी से सेना का तात्पर्य। यथा जनु कज्जल की आँधी चली। सहस बाहु भुज छेदन हारा। परसु विलोकु महीप कुमारा का यह उत्तर दिया कि मुझे परसु देखने से क्रोध होता है। इसे उन्हे दिखाओ जो दण्डवत् करते हैं।

इहाँ कुम्हड बतिया कोउ नाही। जे तरजनी देखि मर जाही॥
देखि कुठारु सरासन बाना। मै कछु कहा सहित अभिमाना॥२॥

अर्थ यहाँ कोई कोहडे की बतिया नही है जो तर्जनी उँगली देखकर मर जाती है। यह परशु धनुष और बाण देखकर मैने कुछ अभिमान के साथ कहा है।

व्याख्या भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही का उत्तर देते है। आपको भुजबल है तो यहाँ भी कोई कोहडे की बतिया नही है। कोहडे मे बतिया लगते ही जो कोई उसे उँगली दिखा दे तो वह निश्चय सूख जाती है। यह देखी हुई बात है। भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही। यह कहना तर्जनी दिखलाना है। इतना सुनकर हम लोग सूखनेवाले नही है। यहाँ भी त्रिभुवन जय करके बैठे है। पराक्रम विशेष

---

१ व्याजस्तुति अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


सुनने से उत्साह बढ़ता है। यथा : त्रिभुवन जय समेत बैदेही। बिनहि बिचार बरै हठि तेही।

तुम्हारा क्षत्रियकुलद्रोही होना विश्वविदित है तो मैने भी अनजान से कुछ नही कहा। मैंने आते ही आपका कुल्हाडा धनुष वाण देख लिया। तब अभिमान की बात बोले कपट की नही। यदि यह सब उत्तेजक चिह्न न देखते तो अभिमान की बात न बोलते।

भृगुसुत समुझि [1]जनेउ बिलोकी। जो कछु कहहु सहउँ रिसि रोकी॥
सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इन्ह पर न सुराई॥३॥

अर्थ : भृगुवंशी समझकर और यज्ञोपवीत देखकर जो कुछ आप कहते हैं क्रोध रोककर सह जाता हूँ। देवता, ब्राह्मण भगवद्भक्त और गाय पर मेरे कुल में बहादुरी नही है।

व्याख्या : बालक बोलि बधौं नहि तोही। केवल मुनि जड जानेहि मोही का उत्तर : भृगु के बाल बच्चे समझकर आपकी बातें सहता जाता हूँ। भृगुजी की लात विष्णु भगवान् ने सही। ये भी उसी कुल के हैं। इनकी बात सह लेनी चाहिए। कपास का यज्ञोपवीत देखकर : कुल्हाड़ा देखकर नही : क्रोध को रोक लेता हूँ। यथा : सापत ताडत परुष कहंता। विप्र पूज्य अस गावहिं संता। अर्थात् केवल मुनि के नाते सहता हूँ। तुम गर्भ के बच्चे मारनेवाले मुझे बालक समझकर क्या छोडोगे। हाँ मै तुम्हे ब्राह्मण समझकर छोडे देता हूँ।

रे सठ सुनहि सुभाव न मोरा का उत्तर देते हैं कि तुम्हारा स्वभाव जो हो पर मेरे कुल का स्वभाव है कि सुर महिसुर हरिजन अरु गाई पर वीरता नही दिखाते। क्योंकि ये रक्ष्य हैं। यथा : सुरपति बसहि बाहुबल जाके।

बधे पापु अपकीरति हारे। मारतहू पा परिअ तुम्हारे॥
कोटि कुलिस सम बचन तुम्हारा। व्यर्थ धरहु धनु बान कुठारा॥४॥

अर्थ : मारने से पाप और हारने से दुर्यश है। अतः मारते हुए भी आप के पैर ही पड़ना चाहिए। कठोर वज्र के समान आप के वचन हैं। धनुष वाण और कुठार तो व्यर्थ ही लिये फिरते हो।

व्याख्या : आप मारिये भी तो हम तो पाँवही पड़ेंगे। आप को मारें तो ब्रह्महत्या लगे। हारें तो दुर्यश हो कि तपस्वी से हार गये। भाव यह कि तुम्हे मारकर ब्रह्महत्या कौन ले। हमें तुम्हारे ब्राह्मणत्व का बड़ा आदर है तुम्हारे परधर्माश्रयत्व का नही। इन्द्र कुलिस मम सूल बिसाला। कालदंड हरिचक्र कराला। जो इनकर मारा नहि मरई। बिप्र रोष पावक सो जरई। प्रभु महिदेव स्राप अति

---

१. कपास का यज्ञोपवीत ब्राह्मण के लिए है। यथा : कार्पासमुपवीतं स्यात् विप्रस्यो-र्ध्ववृतं त्रिवृत्। मनु।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

घोरा। अत तुम्हारा वचन ही संहार करने में समर्थ है। अस्त्रों की तो प्रतिक्रिया है। तुम्हारा वचन अप्रतिक्रिय है। अर्थात् तुम्हारी धर्मनिष्ठा म ही संहारशक्ति भरी पडी है। तुम्हारे लिए परधर्माश्रय करना लोहा लादे फिरना व्यर्थ है।

दो जो बिलोकि अनुचित कहेउँ, छमहु महामुनि धीर।
सुनि सरोष भृगुबसमनि, बोले गिरा गभीर ॥२७३॥

अर्थ जिसे देखकर मैने अनुचित कहा हे महामुनि! आप धीर हैं क्षमा करिये। सुनकर भृगुवशमणि क्रुद्ध होकर गम्भीर वाणी बोले।

व्याख्या इसी लोहे को देखकर मैने अनुचित कहा। मैं मानता हूँ कि शिव-धनु को धनुही सम कहना धनुभङ्ग को नये के धोखे से देखना बताना अनुचित है। पर आपके अनुचित वेष के उत्तर मे अनुचित कहा। मुझ महामुनि धीर से क्षमा माँगने म लज्जा नही। पर योद्धा मानी से तो अनुचित कहकर भी लोहा लेता हूँ। आप स्वधर्माभिमान करिये। परधर्माभिमान क्यो करते हैं?

परशुरामजी भृगुवश म मणि है। सुजाति, शुचि, अमोल और सुन्दर हैं। भृगुवश होने से सुजाति है। निष्कपट होने से शुचि है। पितृभक्ति से अमोल हैं। निर्लोभ होने से सब भाँति सुन्दर हैं। लक्ष्मणजी को धमकाकर काबू मे न ला सके। सब बातो का उत्तर मिल गया। युद्ध ही शेष है। अत क्रोध के साथ गम्भीर वाणी बोल। शब्द भी गम्भीर अर्थ भी गम्भीर।

कौसिक सुनहु मंद यहु बालकु। कुटिल कालबस निज कुल घालकु ॥
भानु बंस राकेस कलंकू। निपट निरंकुस अबुध असंकू ॥१॥

अर्थ कौशिक विश्वामित्र! सुनो यह बालक १ मन्द २ कुटिल ३ कालवश और ४ निजकुलघालक है। ५ सूर्यवशरूपी पूर्णचन्द्र मे यह कलङ्क है। ६ अत्यन्त निरङ्कुश ७ मूर्ख और ८ नि शङ्क है।

व्याख्या परशुरामजी श्रीरामचन्द्र के अभिभावक विश्वामित्रजी से कहते हैं कि यह बालक लक्ष्मण दोषयुक्त वाणी बोलता है। आठ बातें इसने कही हैं। जिनसे आठ दोष इसके स्पष्ट दिखाई पडते है। १ मैंने गर्भन के अर्भक दलन परसु मोर अतिघोर। अपने स्वभाव की घोरता स्थापन के लिए कहा था। यह ऐसा मन्द है कि तात्पर्य नही समझा। कहता है कि अहा मुनीस महा भटमानी। २ मैं तो दया करके इसे छोडता हूँ। इसलिए यह अपने को पहाड और मेरे पराक्रम को फूँक समझता है। ऐसा तो यह कुटिल है। ३ कालवश हो गया है मेरे कुठाराघात की उपमा कोहडे को तर्जनी दिखाने से देता है। ४ निजकुलघालक है। कहता है देखि कुठारु सरासन बाना। मै कछु कहा सहित अभिमाना। नही जानता कि ऐसे अभिमानी के वश का मैं नाश कर देता हूँ। ५ यह कुलकलङ्क है। इसकी कटु वाणी से इसके प्रियजनो का संहार होगा। अत यह अपयशभाजन भी होगा। यथा कुल कलंक जेहि जनमेउ मोही। अपजस भाजन प्रियजन द्रोही। ६ ऐसा

ankurnagpal108@gmail.com



निरङ्कुश है कि सुर, महिसुर, हरिजन और गाय। जो प्रात स्मरणीय है उन्हे दोन समझता है। ७ ऐसा अवुध है कि मुझसे हारने मे अपनी अपकीर्ति समझता है। कहता है वधे पाप अपकीरति हारे। और ८ ऐसा अशङ्क है कि मेरे धनुष बाण और कुठार को व्यर्थ बतलाता है।

काल कवलु होइहि छन माही। कहौ पुकारि खोरि मोहि नाही॥
तुम हटकहु जौ चहहु उबारा। कहि प्रतापु बलु रोप हमारा॥२॥

अर्थ · क्षणभर मे यह काल का ग्रास हो जायगा। मै पुकारकर कहता हूँ अब मुझे दोप नही है। यदि इसका उबार . बचाना चाहते हो तो तुम मेरा प्रताप, रोप और बल कहकर इसे रोको।

व्याख्या प्रताप यथा विश्वविदित छत्रीकुलद्रोही। वल यथा : भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही। रोप यथा · बालब्रह्मचारी अति कोही। परशुरामजी कहते हैं कि इतना बडा वीर बना है कि मेरे अस्त्रशस्त्र धारण करने पर क्रोध दिखलाता है। मेरे परशु के चलने की देर है। इसे कालकवल होते देर न लगेगी। पुकारकर कह देता हूँ कि कोई मुझे दोप न दे। क्षत्रियो के वध करने पर लोग मुझे दोप देते हैं। ऐसी ही करनी पर मै उनका वध करता हूँ। तुम अभिभावक हो। यदि तुम भी चाहते हो कि कटुबादी का वध ही ठीक है तब बात दूसरी है। नही तो इसे रोको। जाने दो बेटा ! कहकर नही। हमारा प्रताप बल और रोप कहकर रोको। जिसमे यह मुझसे भयभीत होकर उत्तर देने से विरत हो।

लषन कहेउ मुनि सुजसु तुम्हारा। तुम्हहि अछत को बरनै पारा॥
अपने मुँह तुम्ह आपनि करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी॥३॥

अर्थ : लक्ष्मणजी ने कहा हे मुने ! तुम्हारा सुयश तुम्हारे रहते दूसरा कौन कह सकता है। अपने मुख से तुमने अपनी करणी अनेक बार और अनेक प्रकार से वर्णन को।

व्याख्या : लक्ष्मणजी ने विश्वामित्रजी को रोकने का अवसर ही नही दिया। बीच ही मे बोले कि जब से यहाँ आये हो तब से अपने सुयश का ही तो वर्णन कर रहे हो। दूसरे से ऐसा कैसे बनेगा ? और उसे लज्जा भी लगेगी क्योकि ये सब बातें ब्राह्मण के लिए दुर्यश हैं। तुम्हे भले ही सुयश मालूम पडे। सुयश दूसरे के वर्णन से होता है अपने वर्णन से नही। अपने मुख से अपना सुयश कहना आत्म-वध है। सहसबाहु सम सो रिपु मोरा। सहसबाहु भुज छेदन हारा। इस भाँति अपनी करणी अनेक बार कथन की। विश्वविदित छत्री कुल द्रोही। भुजबल भूमि भूप बिनु कीन्ही। इसी रीति से अनेक भाँति से कहा। आप अपनी अब्राह्मणोचित करणी का साभिमान वर्णन कर रहे हैं।

नहि सतोषु त पुनि कछु कहहू। जनि रिस रोकि दुसह दुख सहहू॥
वीर वृत्ति तुम धीर अछोभा। गारी देत न पावहु सोभा॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ यदि इतने पर भी तृप्ति न हुई हो तो और कुछ कह डालिये। क्रोध रोककर असह्य वेदना मत सहिये। आप वीरवृत्ति वाले हैं। अविचल धीर हैं। गाली देने मे आपकी शोभा नही है।

व्याख्या इतने पर भी असन्तुष्ट हो तो और कुछ कह डालो। दूसरे से क्यो कहलाते हो। दूसरे से कहते न बनेगा। उसे आपकी भाँति प्रशसादृष्टि न होगी। उसे दोष दिखाई पडेगा। यहाँ तक कहि प्रताप बल रोष हमारा का उत्तर हुआ। अब वहीं पुकारि खोरि मोहि नाही का उत्तर देते हैं। जनि रिसि रोकि दुसह दुख सहहू। अर्थात् चलाओ हाथ। तुम हटकउ जौ चहहु उवारा का उत्तर. मुझे तुम्हारी अप्रसन्नता का भय है। अस्त्रप्रहार का नही। खुशी से प्रहार करो।

कौसिक सुनहु मद यह बालक। कुटिल कालवस निजकुलघालक। भानुवस राकेस कलकू का उत्तर वीरव्रत अक्षुब्ध वीर की शोभा पराक्रम दिखलाने मे है गाली देने मे नही। जो आठ दोष आपने मुझमे कहे है वे मुझम नही है। वे मेरे लिए गाली है।

दो सूर समर करनी करहिं, कहि न जनावहि आपु।
विद्यमान रन पाइ रिपु, कायर कथहि प्रतापु ॥२७४॥

अर्थ शूर रण मे करणी करते है। वे कहकर जनाया नही करते। युद्ध मे शत्रु को सामने पाकर कायर लगते है अपना प्रताप कथन करके।

व्याख्या जब हम लोगों को सहस्रबाहु सम शत्रु मानते हो अर्थात् ऐसा शत्रु जिसने पिता का वध किया हो। तो हम तुम्हारे सामने खडे है। वीर की करणी करो। कहकर अपने को न जनाओ। ऐसे समय प्रताप का कथन तो कादर का लक्षण है। यह काल कवल होइहि छनमाही का उत्तर है।

तुम तौ काल हाँक जनु लावा। बार बार मोहि लागि बोलावा॥
सुनत लषन के बचन कठोरा। परसु सुधारि धरेउ कर घोरा ॥१॥

अर्थ तुम तो मानो काल को हाँककर लाये हो। बार बार मेरे लिए बुला रहे हो। लक्ष्मणजी के कठोर वचन सुनकर परशुरामजी ने घोर परशु को सुधार कर हाथ मे लिया।

व्याख्या वही उत्तर चल रहा है। ससार जानता है कि युद्ध की सिद्धि चञ्चल होती है। सदा एक पुरुष के हाथ मे नही रहती। युद्ध मे कौन मरेगा कौन मारेगा। यह कहा नहीं जा सकता। पर तुम्हारी तो धारणा ही विचित्र है। मानो काल तुम्हारा जिलाया हुआ पशु है। जिसे हाँककर लाये हो और मुझे निगल जाने के लिए बार बार बुला रहे हो। निश्चय किये बैठे हो कि युद्ध मे तुम्ही विजयी होओगे।

लक्ष्मणजी ने सीधे सीधे कादर कह दिया। किसकी सामर्थ्य जो परशुरामजी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


को उनके मुखपर कादर कहे। अब कहने सुनने का अवसर नही रह गया। अत: कन्धे पर के उस घोर कुठार को सुधारकर हाथ मे लिया वार करने के लिए। फिर भी चलाने की इच्छा नही हो रही है। चिरञ्जीव ऐसा आशीर्वाद दे चुके हैं। आशा है कि अब भी मान जाय।

अब जनि देइ दोसु मोहि लोगू। कटुबादी बालकु वध जोगू ॥
बाल बिलोकि बहुत मै बाँचा। अब यहु मरनिहार भा साँचा ॥२॥

अर्थ : अब मुझे लोग दोष न दें। यह कटुवादी बालक वध के ही योग्य है। बालक देखकर मैंने बहुत बचाया। पर यह अब सचमुच मरने पर आगया है।

व्याख्या : मैं लोकापवाद से बचना चाहता हूँ। लोग दोष देगे कि बच्चे को मार दिया। वीरव्रती को १६ वर्ष के नीचे और ७५ वर्ष से ऊपर मनुष्य पर शस्त्र चलाना निषिद्ध है। अत: इसके मारने मे दोनो प्रकार के दोष मुझे लगेंगे। अपकीर्ति होगी। परन्तु कटुवादी हो तो बालक भी वध के योग्य है। कहा भी है खीरा सिर से काटिये दीजे नमक भराय। रहिमन कडुए मुखन्ह को चहिअत इहै सजाय। पहिले नि क्षत्र करने पर लोगो ने दोष दिया था। क्षत्रियो के इसी स्वभाव पर मैने नि क्षत्र किया था। सो अब कोई दोष न दे।

मैं तो उत्तर देते ही इसे मारता। सो इसने उत्तर दिया। बेसँभार बात बोला। अभिमान की बातें कही। अपमान किया। यहाँ तक मैं हत्या से बचाता रहा। अब कादर कहता है। यह बात सही नही जा सकती। अब यह सचमुच मरना ही चाहता है। पहिले जो इसे 'कालकवल होइहि' 'कालवश' इत्यादि कहा था सो इसे डराने के लिए। पर अब मुझे मारना ही पड़ा।

कौसिक कहा छमिअ अपराधू। बाल दोष गुन गर्नाह न साधू ॥
खर कुठार मै अकरुन कोही। आगे अपराधी गुरुद्रोही ॥३॥

अर्थ : विश्वामित्रजी ने कहा अपराध क्षमा कीजिये। बालक के दोष गुण को साधु नही गिनते। परशुरामजी बोले : मेरा कुठार तीखा है और मैं निष्करुण क्रोध करनेवाला हूँ और गुरुद्रोही अपराधी सामने है।

व्याख्या : फिर लक्ष्मणजी कुछ कह न बैठे, अत. विश्वामित्रजी ने कहा अपराध क्षमा कीजिये। बालक अव्यवस्थित चित्त के होते है। उनका गुण भी कुछ नही दोष भी कुछ नही। आप साधु है। खल के वचन सहने मे समर्थ है। यथा : खल के वचन सत सह जैसे। यह तो बालक का वचन है। परशुरामजी ने इनसे कहा था कि : तुम हटकी जो चहहु उबारा सो लक्ष्मण को नही रोकते। इन्हे ही समझाते हैं। लक्ष्मण धर्म पर है उन्हे कैसे रोकें ?

जब साधन और साधक दोनो ठीक हैं तब सिद्धि मे देर क्या ? सो इसके वध का साधन कुठार खर धारवाला प्रस्तुत है और साधक मैं, जिसे क्रोध मे करुणा होती ही नही : गर्भक के अर्भक दलन परसु मोर अति घोर। और सबसे बड़ा अपराधी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मेरे गुरु शिव का द्रोह करनेवाला सामने खडा है। फिर दण्डपात न होने का कोई कारण नही है। विद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहि प्रताप का उत्तर देकर जनि रिसि रोक दुसह दुख सहहू का उत्तर देते हैं कि—

उतर देत छाडौ बिनु मारे। केवल कौसिक सील तुम्हारे ॥
न त एहि काटि कुठार कठोरे। गुरहि उरनि होतेउँ श्रम थोरे ॥४॥

अर्थ यह उत्तर देता है और इसको बिना मारे छोडता हूँ सो है विश्वामित्रजी ! केवल तुम्हारे शील के कारण। नही तो इसे इस कठोर परशु से काटकर थोडे ही परिश्रम से गुरुजी से उऋण हो जाता।

व्याख्या मुझे उत्तर सुनना सह्य नही है। मैं इसे उत्तर देते ही मार डालता परन्तु मैंने नही मारा सो केवल तुम्हारे सङ्कोच से। आपका सङ्कोच इतना बडा है कि वध्य को छोड दिया।

मुनि सुयश तुम्हारा। तुमहि अछत को बरनै पारा। अपने मुख तुम आपन करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी। नहि सतोष तो पुनि कछु कहहू का उत्तर ' जिस कठोर कुठार ने सहस्रबाहु की भुजाओं को छेदन किया उसको इसे काट देने मे कौन सा श्रम था ? मैने शिवजी से अस्त्रविद्या पायी है। वे ही मेरे गुरु हैं। उस विद्या का उनके शत्रु पर उपयोग करके उनसे उऋण भी हो जाते। श्रम भी अधिक न पडता और कुल विद्या का उपयोग भी नही करना पडता। भाव यह कि इसके मारने से केवल शान्ति ही नही बडा भारी लाभ भी था। तुम्हारे सङ्कोच से गुरु का ऋण रह गया। गुरु आप्तकाम और दुराधर्ष हैं। ऋण चुकाने का उपायान्तर नही है।

दो गाधिसूनु कह हृदय हँसि, मुनिहि हरियरे सूझ।
अयमय खाँड न ऊखमय, अजहुँ न बूझ अबूझ ॥२७५॥

अर्थ विश्वामित्र ने हृदय मे हँसकर कहा मुनि को हरा ही हरा कोमल सूझ रहा है। यह लोहे का खाँड है ईख का नही है। पर ये नासमझ अब भी नही समझ रहे हैं।

व्याख्या बाहर हँसने से परशुरामजी को बुरा लगता। इसलिए मनमे ही हँसे कि ये तो बडे नासमझ है सावन के अन्धे को सब हरा ही सूझता है।

सीधे सीधे जो इन्हे कादर कहकर ललकार रहा है वह कुछ है। इतना तो इन्हे समझना चाहिए था। राजकुमार हैं। इतने से ही इन्हे तुच्छ समझना अज्ञान है। लोहे का भी खाँड खाँडा होता है इक्षुरस का भी खाँड होता है। सो ये लोहे के खाँड हैं। आँत फाडकर निकल आवेंगे। इक्षुरसोद्भूत खाँड की भाँति मधुर भोज्य नही हैं। ये समझ रहे हैं कि मैं इनको विश्वामित्र के सङ्कोच से छोडे देता हूँ। यह नही समझते कि य उनको ब्राह्मण समझकर छोड रहे हैं। राजा जनक ने इनका रूप देखकर समझ लिया और वे इतनी बातचीत करने पर भी नही समझ रहे हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कहेउ लषन मुनि सीलु तुम्हारा। को नहि जान विदित ससारा॥
माता पितहि उरिन भए नीके। गुर रिनु रहा सोच बड जीके॥१॥

अर्थ लक्ष्मणजी ने कहा कि हे मुने! तुम्हारा शील ससार मे विदित है उसे कौन नही जानता। माता पिता से भली भाँति उऋण हो गये। गुरुजी का ऋण रहा। उसकी मनमे बडी चिन्ता है।

व्याख्या लक्ष्मणजी ने सोचा कि अबूझ इस भाँति नही समझते। इन्हे मैं समझाऊँगा। अत बोल उठे उतर देत छाडउँ विनु मारे। केवल कौसिक सील तुम्हारे का उत्तर देते हुए कहते हैं कि तुम्हारा शील तो ससार मे विदित है। शील से नही छोड रहे हो। तुम्हारे सामर्थ्य की बात नही है। इसलिए छोड रहे हो। नही तो गर्भ के बच्चे को मारनेवाले को शील कहाँ? नतु एहि काटि कुठार कठोरे। गुरहि उरिन होतेउँ श्रम थोरे। का उत्तर देते हैं कि माता पिता से भलीभाँति उऋण हुए भाव यह कि परशुराम पितु आज्ञा राखी। मारी मातु लोक सब साखी। इस भाँति से तो माता से उऋण हुए और नररक्त से तर्पण करके पिता से उऋण हुए। इसलिए कहते हैं कि उऋण भये नीके। अब गुरु से उऋण होने के लिए भी किसी को काटना मारना चाहिए। अत बडा सोच है कि कैसे मारें।

सो जनु हमरेहि माथे काढा। दिन चलि गये व्याज बड वाढा॥
अब आनिअ व्यवहरिआ बोली। तुरत देउँ मै थैली खोली॥२॥

अर्थ उसे मानो मेरे ही मत्थे काढा था। बहुत दिन हो गये। इससे व्याज भी बहुत बढा होगा। अब महाजन को बुलाओ तुरन्त मैं थैली खोले देता हूँ।

व्याख्या मानो आपने यही सोचकर ऋण काढा था कि इसे लक्ष्मण भरेगा। सो माता पिता से तो आप शीघ्र ही उऋण हो गये। पर गुरुजी का ऋण लिये तो बहुत दिन हो गये और आजतक आपका पटाया न पटा। किसी शुभ कर्म से तो पटाओगे नही। मुझे मारकर थोडे श्रम से ही उऋण होना चाहते हो। तो मैं बडा सुगम मार्ग बतलाये देता हूँ।

श्रम थोरे का उत्तर देते हैं। अब व्योहरिया अर्थात् महाजन गुरुजी को बुला लाओ। मैं थैली खोले देता हूँ। सूद मूल सब भर लें। भाव यह तुम क्या लहोगे। गुरुजी को बुलाओ। मैं उनका पेट भर दूँगा। गुरुजी को ओलाहना देने पर लक्ष्मणजी को क्रोध है। तुमने मुझे काट डालना बडा सरल व्यापार समझ रक्खा है?

सुनि कटु वचन कुठार सुधारा। हाय हाय सब सभा पुकारा॥
भृगुवर परसु देखावहु मोही। विप्र विचारि बचौ नृप द्रोही॥३॥

अर्थ कटु वचन सुनकर परशु को सुधारा। सभा की सभा हाय हाय

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मेरे गुरु शिव का द्रोह करनेवाला सामने खड़ा है। फिर दण्डपात न होने का कोई कारण नहीं है। विद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहि प्रताप का उत्तर देकर जनि रिसि रोक दुसह दुख सहहू का उत्तर देते हैं कि—

उतर देत छाडौ बिनु मारें। केवल कौसिक सील तुम्हारे॥
न त एहि काटि कुठार कठोरे। गुरहि उरनि होतेउँ श्रम थोरे॥४॥

अर्थ यह उत्तर देता है और इसको बिना मारे छोडता हूँ सो हे विश्वामित्रजी! केवल तुम्हारे शील के कारण। नहीं तो इसे इस कठोर परशु से काटकर थोडे ही परिश्रम से गुरुजी से उऋण हो जाता।

व्याख्या मुझे उत्तर सुनना सह्य नहीं है। मैं इसे उत्तर देते ही मार डालता परन्तु मैंने नहीं मारा सो केवल तुम्हारे सङ्कोच से। आपका सङ्कोच इतना बडा है कि वध्य को छोड दिया।

मुनि सुयश तुम्हारा। तुमहि अछत को बरनै पारा। अपने मुख तुम आपन करनी। बार अनेक भाँति बहु बरनी। नहि सतोष तो पुनि कछु कहहू का उत्तर: जिस कठोर कुठार ने सहस्रबाहु की भुजाओ को छेदन किया उसको इसे काट देने मे कौन सा श्रम था? मैने शिवजी से अस्त्रविद्या पायी है। वे ही मेरे गुरु हैं। उस विद्या का उनके शत्रु पर उपयोग करके उनसे उऋण भी हो जाते। श्रम भी अधिक न पडता और कुल विद्या का उपयोग भी नहीं करना पडता। भाव यह कि इसके मारने से केवल शान्ति ही नहीं वडा भारी लाभ भी था। तुम्हारे सङ्कोच से गुरु का ऋण रह गया। गुरु आप्तकाम और दुराधर्ष हैं। ऋण चुकाने का उपायान्तर नहीं है।

दो० गाधिसूनु कह हृदय हँसि, मुनिहि हरियरै सूझ।
अयमय खाँड न ऊखमय, अजहुँ न बूझ अबूझ॥२७५॥

अर्थ विश्वामित्र ने हृदय मे हँसकर कहा मुनि को हरा ही हरा कोमल सूझ रहा है। यह लोहे का खाँड है ईख का नहीं है। पर ये नासमझ अब भी नहीं समझ रहे है।

व्याख्या बाहर हँसने से परशुरामजी को बुरा लगता। इसलिए मनमे ही हँसे कि ये तो बडे नासमझ है सावन के अन्धे को सब हरा ही सूझता है।

सीधे सीधे जो इन्हे कादर कहकर ललकार रहा है वह कुछ है। इतना तो इन्हे समझना चाहिए था। राजकुमार हैं। इतने से ही इन्हे तुच्छ समझना अज्ञान है। लोहे का भी खाँड खाँडा होता है इक्षुरस का भी खाँड होता है। सो ये लोहे के खाँड है। आँत फाडकर निकल आवेंगे। इक्षुरसोद्भूत खाँड की भाँति मधुर भोज्य नहीं हैं। ये समझ रहे हैं कि मैं इनको विश्वामित्र के सङ्कोच से छोडे देता हूँ। यह नहीं समझते कि ये उनको ब्राह्मण समझकर छोड रहे हैं। राजा जनक ने इनका रूप देखकर समझ लिया और वे इतनी बातचीत करने पर भी नहीं समझ रहे हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कहेउ लषन मुनि सीलु तुम्हारा । को नहि जान विदित ससारा ॥
माता पितहि उरिन भए नीके । गुर रिनु रहा सोच बड जीके ॥१॥

अर्थ लक्ष्मणजी ने कहा कि हे मुने ! तुम्हारा शील ससार मे विदित है उसे कौन नही जानता । माता पिता से भली भाँति उऋण हो गये । गुरुजी का ऋण रहा । उसकी मनमे बडी चिन्ता है ।

व्याख्या लक्ष्मणजी ने सोचा कि अवूझ इस भाँति नही समझते । इन्हे मै समझाऊँगा । अत बोल उठे उतर देत छाडउँ बिनु मारे । केवल कौसिक सील तुम्हारे का उत्तर देते हुए कहते हैं कि तुम्हारा शील तो ससार मे विदित है । शील से नही छोड रहे हो । तुम्हारे सामर्थ्य की वात नही है । इसलिए छोड रहे हो । नही तो गर्भ के वच्चे को मारनेवाले को शील कहाँ ? नतु एहि काटि कुठार कठोरे । गुरुहि उरिन होतेउँ श्रम थोरे । का उत्तर देते हैं कि माता पिता से भलीभाँति उऋण हुए भाव यह कि परशुराम पितु आज्ञा राखी । मारी मातु लोक सब साखी । इस भाँति से तो माता से उऋण हुए और नररक्त से तर्पण करके पिता से उऋण हुए । इसलिए कहते है कि उऋण भये नीके । अब गुरु से उऋण होने के लिए भी किसी को काटना मारना चाहिए । अत बडा सोच है कि कैसे मारें ।

सो जनु हमरेहि माथे काढा । दिन चलि गये व्याज वड वाढा ॥
अब आनिअ व्यवहरिआ बोली । तुरत देउँ मै थैली खोली ॥२॥

अर्थ उसे मानो मेरे ही मत्थे काढा था । बहुत दिन हो गये । इससे व्याज भी बहुत वढा होगा । अब महाजन को बुलाओ तुरन्त मै थैली खोले देता हूँ ।

व्याख्या मानो आपने यही सोचकर ऋण काढा था कि इसे लक्ष्मण भरेगा । सो माता पिता से तो आप शीघ्र ही उऋण हो गये । पर गुरुजी का ऋण लिये तो बहुत दिन हो गये और आजतक आपका पटाया न पटा । किसी शुभ कर्म से तो पटाओगे नही । मुझे मारकर थोडे श्रम से ही उऋण होना चाहते हो । तो मैं वडा सुगम मार्ग वतलाये देता हूँ ।

श्रम थोरे का उत्तर देते हैं । अब व्योहरिया अर्थात् महाजन गुरुजी को वुला लाओ । मैं थैली खोले देता हूँ । सूद मूल सब भर लें । भाव यह तुम क्या लडोगे । गुरुजी को वुलाओ । मैं उनका पेट भर दूँगा । गुरुजी को ओलाहना देने पर लक्ष्मणजी को क्रोध है । तुमने मुझे काट डालना वडा सरल व्यापार समझ रक्खा है ?

सुनि कटु वचन कुठार सुधारा । हाय हाय सब सभा पुकारा ॥
भृगुवर परसु देखावहु मोही । विप्र विचारि बचौं नृप द्रोही ॥३॥

अर्थ कटु वचन सुनकर परशु को सुधारा । सभा की सभा हाय हाय

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चिल्ला उठी। भृगुपति मुझे परशु दिखलाते हो। हे नृपद्रोही ! ब्राह्मण विचारकर हत्या से बच रहा हूँ।

व्याख्या : शस्त्र चलाने के पहिले उसे सुधारने का नियम है। यथा : दोउ कर कमल सुधारत बाना। उत्तर न देकर परशु सुधारते देखकर सारी सभा समझ गई कि अब चोट किया चाहते हैं। सबको निश्चय है कि इनकी चोट से तो लक्ष्मण नहीं बच सकते और सब लक्ष्मणजी का कल्याण चाहते थे। अतः हाय हाय चिल्लाये। इसपर लक्ष्मणजी का क्रोध बढा। बोले : भृगुपति ! मुझे परशु दिखलाते हो। परशु का दिखलाना मुझे सह्य नही है। मैं तो ब्रह्महत्या के डर से बच रहा हूँ। नही तो नृपद्रोही का तो मैं शत्रु ही हूँ। निश्चय बिना मारे न छोडता।

मिले न कबहुँ सुभट रन गाढे। द्विज देवता घरहि के बाढे ॥
अनुचित कहि सब लोग पुकारे। रघुपति सैनहि लखन निवारे ॥४॥

अर्थ . कभी अच्छे योद्धा से रण मे काम नही पडा। ब्राह्मण देवता ! घर ही के बडे हुए हो। सब लोग बोल उठे अनुचित है अनुचित है। रामजी ने इङ्गित से ही लक्ष्मण को रोक दिया।

व्याख्या खर कुठार मैं अकरुन कोही का उत्तर देते हुए लक्ष्मणजी ने कहा। किसी गाढ़े सुभट से तुम्हे काम न पडा पडा होता तो ऐसा न बोलते। माँ का वध करके ही मिजाज चढा हुआ है।

इतने बडे वीर को घरहि के बाढे कहना अनुचित है। सभा मे यथार्थ कहना चाहिए। चुप रहने या अनुचित बोलनेवाले को दोष लगता है। यथा सभाया न प्रवेष्टव्य वक्तव्य वा समञ्जसम्। अब्रुवन् विब्रुवन् वापि नरो भवति किल्विषी। अत जिस भाँति परशुरामजी के परशु सुधारने पर सभा ने हाहाकार किया था उसी भाँति इस वचन को भी सभा ने पुकारकर अनुचित कहा। सब लोगो की पुकार सुननेवाल भगवान् ने इशारा किया। जिसमे परशुरामजी का ध्यान आकर्षित न हो। लक्ष्मणजी का इतना बढा हुआ क्रोध रामजी के इङ्गितमात्र से रुक गया।

दो लषन उतरि आहुति सरिस, भृगुबर कोप कृसानु।
बढत देखि जल सम बचन, बोले रघुकुलभानु ॥२७६॥

अर्थ लक्ष्मणजी का उत्तर आहुति के समान था। भृगुवर परशुरामजी का क्रोध अग्नि के समान था। बढता देखकर रघुकुलसूर्य जल के समान वचन बोले :

व्याख्या भृगुवर की क्रोधाग्नि के लिए लक्ष्मणजी की एक एक बात आहुति का काम करती थी। आहुति पाकर अग्नि को बढते हुए देखकर रघुकुलभानु हैं : जलवर्षा से दावानल शान्त करेंगे। दोनो भाइयो के उत्तर का आशय एक ही है पर एक क्रोध को बढाता है दूसरा शान्त करता है। रामजी ने देखा आग बढ रही है। इन्हे शान्त करना है इनसे युद्ध नही करना है। अत क्रोध शान्त करनेवाली बात बोले।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नाथ करहु बालक पर छोहू। सूध दूध मुख करिअ न कोहू ॥
जौ पै प्रभु प्रभाव कछु जाना। तो कि बराबरि करै अयाना ॥१॥

अर्थ : हे नाथ ! बालक पर छोह कीजिये। यह दुधमुहा बच्चा सा सीधा है। इस पर क्रोध न कीजिये। यदि यह आपका प्रभाव कुछ भी जानता तो क्या यह अनजान आपकी बराबरी करता ?

व्याख्या : रामजी बोले : पहिले भी नाथ कहा है फिर भी वही कहते हैं कि आपने उसे बालक तो माना पर उसपर छोह नही किया। अत: कहते हैं कि छोह करहु : कटुवादी बालक बध जोगू। इस भावना को मन मे स्थान न दीजिये। लक्ष्मण दुधमुहा बच्चा सा सीधा है। जो आप कहते हैं उसी को दोहरा देता है : यह अनुचित का उत्तर है। आप करने न करने अन्यथा करने मे समर्थ हैं। प्रभु हैं। आपके प्रभाव को उसने नही जाना मैं जानता हूँ। परशुरामजी ने विश्वामित्रजी से कहा था तुम हटकहु जौ चहहु उबारा। कहि प्रताप बल रोष हमारा। इसलिए रामजी इनका प्रभाव कह रहे हैं जिसमे उन्हे सन्तोष हो। कहते हैं कि यदि वह आपका प्रभाव जानता होता तो जो आप कहते हैं वही पलटकर आपको न कहता। आपने उसे गुरुद्रोही कहा। उसने आपको नृपद्रोही कहा।

जौं लरिका कछु अचगरि करहीं। गुरु पितु मातु मोद मन भरहीं ॥
करिअ कृपा सिसु सेवक जानी। तुम सम सील धीर मुनि ग्यानी ॥२॥

अर्थ : यदि लड़के कुछ ढिठाई करते हैं तो गुरु पिता और माता का मन आनन्द से भर उठता है। इसे शिशु बच्चा सेवक जानकर कृपा कीजिये। आप क्षमाशील, धीर, मुनि और ज्ञानी हैं।

व्याख्या : आप गुरु माता और पिता की भाँति पूज्य हैं। वर्णाना ब्राह्मणो गुरुः। सभी वर्णो के ब्राह्मण गुरु होते हैं। दस वर्ष का भी ब्राह्मणबालक क्षत्रियो द्वारा पिता की भाँति पूज्य माना जाता है। आपके गुरु पिता होने मे क्या सन्देह है। गुरु और माता पिता को लडको की ढिठाई सहनी पडती है। वे अबोध बालक की ढिठाई देखकर आनन्द का अनुभव करते हैं कि भला इस लायक तो हुआ। अत आपको भी प्रसन्न होना चाहिए कि बालक तेजस्वी है। क्षत्रियबालक है। इसलिए असहनशील है। ये सब बातें क्षत्रिय के लिए गुण हैं।

आप नाथ हैं। यह बालक सेवक है। बडा होने पर सेवा करेगा। अभी ढिठाई किया तो क्या हर्ज है ? जिन गुणो की ब्राह्मण मे होने की आशा की जाती है उन्ही का आरोप करके कहते हैं कि आप समशील हैं, धीर हैं और ज्ञानी मुनि हैं। आप एक बच्चे की ढिठाई पर रोष न करें। भिरे न कबहुँ सुभट रन गाढे। द्विज देवता घरहि के बाढे। लक्ष्मणजी की इस उक्ति का सम्मार्जन करते हैं।

राम बचन सुनि कछुक जुडाने। कहि कछु लषन बहुरि मुसुकाने ॥
हँसत देखि नख सिख रिस ब्यापी। राम तोर भ्राता बड पापी ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ रामजी का वचन सुनकर कुछ ठढे हुए। तब लक्ष्मणजी ने कुछ कहकर मुसकरा दिया। हँसते देखकर नख से लकर शिख तक क्रोध भर उठा। बोले कि राम! तेरा भाई बडा पापी है।

व्याख्या लक्ष्मणजी ने ऐसी पण्डिताई से प्रश्नोत्तर प्रारम्भ किया कि परशुरामजी के लिए धनुष भङ्ग तो गौण हो गया और लक्ष्मण के उत्तर प्रत्युत्तर से अपने मान की रक्षा करना मुख्य विषय हो गया। रामजी के वचनो का प्रभाव परशुरामजी पर पडा। कुछ ठण्डे हुए। वीर नही कहा इसलिए पूरा सन्तोष नही हुआ। तब से लक्ष्मणजी ने फिर कुछ कहकर मुसकरा दिया। क्या कहा ? इस बात को कवि नही लिखते क्योंकि उसे परशुरामजी ने सुना नही। केवल इतना देखा कि कुछ कहकर मुसकरा रहा है। समझ लिया कि इसका कटाक्ष समसील घोर मुनि ज्ञानी पर है। इसलिए क्रोध नखशिख व्याप्त हो गया। बोले कि राम तुम्हारा भाई बडा पापी है। जिसका अन्तरात्मा दुष्ट हो वही बडा पापी होता है। जिसका अन्तरात्मा दुष्ट नही होता उससे यदि पाप भी होजाय तो उसे पश्चात्ताप होता है। बडा पापी अपराध करके प्रसन्न होता है।

गौर सरीर स्याम मन माही। कालकूटमुख पयमुख नाही ॥
सहज टेढ अनुहरै न तोही। नीचु मीच सम देख न मोही ॥४॥

अर्थ इसका शरीर गोरा है पर इसके मन मे श्यामता है। यह कालकूट मुख सर्प है पयमुख नही है। स्वभाव से ही टेढ़ा है तुम्हारे ऐसा नही है। यह नीच मुझे मृत्यु के समान नही देखता।

व्याख्या बडे पापी का लक्षण भीतर से काला होना है। सरस्वती कहती हैं कालकूट मुख है शेप है पयमुख नही है। सो इसके मन का कालापन मुख से निकलता है। अत कालकूट मुख है। इसी पर कहते हैं कि दूधमुग नही है। सूधा होता तो तुम्हारी बात कम से कम मान जाता। तुम अच्छी बात कहते हो। वह उस पर हँसता है। अयाना नही है कुटिल है। तुझे नही पडा। तू बडा अच्छा है। रामजी ने कहा था जौं लरिका कछु अचगरि करही। गुर पितु मातु मोद मन भरही। इस पर कहते हैं कि यह ढीठ नही है नीच है। क्योंकि मुझ मृत्यु के समान नही देखता। जो परशुरामजी को मृत्यु के समान देखे उसी पर प्रसन्न रहते थे। जो ऐसा न देखे उसे नीच मानते थे। ऐसी ऊँच नीच की विलक्षण परिभाषा पर लक्ष्मणजी फिर हँस पडे।

दो लखन कहेउ हँसि सुनहु मुनि, क्रोधु पाप कर मूल।
जेहि बस जन अनुचित करहि, चरहि बिस्व प्रतिकूल ॥२७७॥

अर्थ लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा कि हे मुने! सुनो क्रोध पाप का मूल है। जिसके वश होकर लोग अनुचित करते हैं और विश्व के प्रतिकूल आचरण करते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या . राम तोर भ्राता वड पापी का उत्तर देते हैं पाप का मूल क्रोध है। सो हम तो हँसते हैं। क्रोध तो तुम करते हो। अत. तुम पाप के मूल हो। क्रुद्ध' पाप न कुर्यात् क' क्रुद्धो हन्यात् गुरूनपि। क्रोधी कौन सा पाप नही करता। क्रोधी अपने गुरु को भी मारता है। इसी क्रोधवश तुम क्षत्रियकुल द्रोही हुए। गौर सरीर स्याम मनमाही। उन्हीं पर घटाते हैं कि इनका गौर शरीर है और मन मे इतने काले हैं। विश्व के प्रतिकूल आचरण करते हैं। क्षत्रिय जाति से विश्व की रक्षा है। क्षतात् त्रायतीति क्षत्र। जो आपत्ति से रक्षा करता है उसे क्षत्र कहते हैं। उस जाति का द्रोह करना विश्व के प्रतिकूल आचरण है।

मैं तुम्हार अनुचर मुनि राया। परिहरि कोपु करिअ अब दाया ॥
टूट चाप नहि जुरिहि रिसाने। वैठिअ होइहि पाय पिराने ॥१॥

अर्थ : हे मुनिराज ! मैं तुम्हारा सेवक हूँ। क्रोध छोडकर अब दया कीजिये। टूटा हुआ धनुष क्रोध करने से नही जुटेगा। वैठ जाइये पाँव दुखता होगा।

व्याख्या : मै आपका सेवक हूँ। प्रभु ने करिअ कृपा सिसु सेवक जानी कह दिया और मैंने मान लिया। अब आप और मैं दोनो उन्ही की वात पर रहे। मैं सेवक वना रहूँ और आप क्रोध छोडकर कृपा करें। मैं निश्चय प्रभुका अनुसरण करता हूँ। सहज टेढ अनुहरै न तोही का उत्तर। उन्होंने आप से दया के लिए प्रार्थना की। मै भी कर रहा हूँ। अब मेल की वात हो रही है। सेवक सेव्य भाव मुझमे और आप मे स्थापित हो गया। अव आपकी सेवा की चिन्ता करूँगा। नीच मीच सम देख न मोही वाली वात गई।

अव मैं आपके मानसिक और शारीरिक दोनो प्रकार के सुख की व्यवस्था करूँगा। पहिली वात यह है कि आपको मानसिक सुख हो। अत आप से प्रार्थना करता हूँ कि मन को शान्त कीजिये। जो होना था सो हो गया। अव टूटा हुआ धनुष क्रोध करने से नही जुटेगा। दूसरी वात यह है कि आपको शारीरिक सुख हो। अतः प्रार्थना है कि आप वैठ जाइये। वडी दूर से मार्ग चलकर आये हैं और जव से आये हैं तव से खडे ही हैं। इतने भक्त आपके हैं पर किसी ने वैठने को नही कहा। मैं इन सबो से अधिक सेवा कर सकूँगा।

जौं अति प्रिय तौ करिअ उपाई। जोरिअ कोउ वड़ गुनी वोलाई ॥
वोलत लषनहि जनकु डेराही। मष्ट करहु अनुचित भल नाही ॥२॥

अर्थ : यदि अति प्रिय है तो उपाय कीजिये। किसी वडे गुणी को वुलवाकर जोडवाइये। लक्ष्मण के वोलने पर जनक डरते थे। कहा कि चुप रहो अनुचित कर रहे हो : अच्छी वात नही है।

व्याख्या : धनुष के प्रिय होने का कोई कारण तो नही है। क्योंकि वह यदि किसी काम का होता तो महादेवजी ही उसे क्यो छोड जाते ? फिर भी यदि वह आपको अत्यन्त प्रिय हो उसके विना रहा न जाता हो तो भी क्रोध से काम न

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


चलेगा। उसके लिए उपाय करना चाहिए। किसी बडे भारी गुणी को खोजकर उससे जोडवाना चाहिए। धनुष का जोडना कठिन कार्य है। सामान्य गुणी से काम नही चलेगा।

अति डर उतर देत नृप नाही। से जनकजी का प्रसङ्ग छूटा हुआ है। अब फिर उनका प्रसङ्ग आया। वे जानते हैं कि परशुरामजी उत्तर देने से चिढते है। यथा उत्तर देत छाडौ बिनु मारे। अत लक्ष्मणजी को रोक रहे हैं। सम्बन्धी हो गये। बडे हैं। कहते है कि चुप रहो। इनका उत्तर देना उचित नही है। न इनके सामने निर्भय वाणी बोलना अच्छी बात है। जनकजी को यही अब भी निश्चय है कि परशुराम के प्रहार को लक्ष्मणजी न सह सकेंगे और परशुरामजी क्रोधी हैं वे निर्भय उत्तर नही सह सकेंगे। अत कुछ अनर्थ न हो पडे इस भय से लक्ष्मण के उत्तर देने पर जनकजी को भय हुआ। लक्ष्मणजी के जोरहु कोउ बड गुनी बोलाई। कहते ही मष्ट करहु कहा।

**थरथर कार्पाह पुर नर नारी। छोट कुमार खोट अति भारी॥**
**भृगुपति सुनि सुनि निर्भय वानी। रिस तन जरै होय बल हानी॥३॥**

अर्थ पुर के नर नारी तो थर थर काँप रहे थे कि छोटा कुमार बडा भारी खोटा है और भृगुपति का शरीर निर्भय वाणी सुन सुनकर जला जाता था। बल की हानि होती थी।

व्याख्या राजा को अति डर है। प्रजा थरथर काँपती है। सब लक्ष्मणजी के कल्याणेच्छु हैं। उनकी कल्याण कामना से ही उन्हे अत्यन्त खोटा कह रहे हैं कि यह छोटा कुमार इनका क्रोध शान्त ही नही होने देता। नही तो बडे कुमार तो इन्हें बडी युक्ति से रास्ते पर लाये थे।

परशुरामजी को यह पसन्द है कि क्षत्रिय लोग सदा उनसे भयभीत रहे। अत निर्भय वाणी सुनकर क्रोध से उनका शरीर जलता था। क्रोध अग्निकी भाँति पहिले अपने आश्रय को ही जलाता है। दूसरे पर तो पीछे काम करता है। यहाँ लक्ष्मण पर उस क्रोध का कोई प्रभाव नही पड रहा है। अत वह उन्ही परशुरामजी के शरीर को दग्ध कर रहा है। फलत बल की हानि हो रही है।

**बोले रामहि देइ निहोरा। बचौ विचारि बधु लघु तोरा॥**
**मन मलीन तन सुन्दर कैसे। विष रस भरा कनक घटु जैसें॥४॥**

अर्थ रामजी को निहोरा देकर बोले कि मै तेरा छोटा भाई जानकर बरकाये जाता हूँ। इसका मन मलिन और तन कैसा सुन्दर है। जैसे विषरस से सोने का घडा भरा हुआ हो।

व्याख्या रामजी का वचन सुनकर कुछ ठण्ढे हुए थे। अत उन्ही का निहोरा देकर कहते है। उनकी समझ म नही आ रहा है कि क्यो लक्ष्मण पर उनका हाथ नही छूटता है। अपने मन को स्वय समझ नही रहे हैं। कभी मन म यह आता

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है कि इसके बालकपन का प्रभाव मेरे मन पर पड रहा है। कभी समझते हैं कि कौशिक का शील मेरे मन पर प्रभाव डाल रहा है। अब यह बात चित्त पर चढी है कि रामजी के बर्ताव ने हमारे हृदय को द्रवीभूत कर रक्खा है। अत कहते है निहोरा देते है कि तेरे कारण इसे छोड देता हूँ।

दो. सुनि लछिमन बिहँसे बहुरि, नयन तरेरे राम।
गुर समीप गवने सकुचि, परिहरि बानी बाम ॥२७८॥

अर्थ : सुनकर लक्ष्मण फिर बिहँसे। रामजी ने कडी निगाह से देखा तो टेढा बोलना छोड़कर सङ्कुचित होकर गुरु के पास चले गये।

व्याख्या · पहिले मुसकराये थे फिर हँसे तब बिहँसे। अब परशुरामजी की विष रस.भरा कनक घट जैसे इस युक्ति पर फिर जोरो से हँस पडे कि यह युक्ति तो इन्ही पर घटती है। यथा · गौर सरीर भूति भल भ्राजा। भाल बिसाल त्रिपुंड बिराजा · सीस जटा ससि बदन सोहावा। रिसि बस कछुक अरुन होइ आवा · सहजहु चितवत मनहु रिसाते इत्यादि। पहिले सैनहिं रघुपति लखन निवारे पर इस समय कुछ अप्रसन्नता है इसलिए नयन तरेरे। लक्ष्मणजी निवृत्त ही नही हुए। सकुचित हो गये कि मुझसे इस बार कुछ चूक हुई। अत यहाँ से हटकर गुरुजी के पास चले गये। भाव यह कि यहाँ रहने से सम्भव है कि फिर मुझे हँसी आजाय।

अति बिनीत मृदु सीतलि बानी। बोले राम जोरि जुग पानी ॥
सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना। बालक बचनु करिअ नहि काना ॥१॥

अर्थ · रामजी दोनो हाथ जोडकर १ अत्यन्त विनीत २ शीतल और ३. मृदु वाणी बोले : हे नाथ! सुनो तुम सहज सुजान हो। बालक के वचन पर ध्यान मत दो।

व्याख्या : रामजी पहिले जल सम वचन बोले थे। अब हाथ जोडकर अत्यन्त विनय युक्त कोमल और शीतल वाणी बोलते हैं। यथा · ऐसी वाणी बोलिये मनका आपा खोय। औरन को शीतल करे आपहु शीतल होय।

नाथ सम्बोधन करते हैं और कहते हैं कि आप सहज सुजान है और यह अयान है। सहज सुजान गुणग्राहक होते हैं। दोष पर दृष्टि नही देते। यथा · मैं गुन ग्राहक परम सुजाना। तब कटु रटनि करौं नहिं काना। यह लक्ष्मण अजान : अज्ञान है। इसके दोषो पर दृष्टि न दीजिये।

बररे बालकु एक सुभाऊ। इन्हहि न संत बिदूषहि काऊ ॥
तेहि नाही कछु काज बिगारा। अपराधी मै नाथ तुम्हारा ॥२॥

अर्थ : भिड और बालको का स्वभाव एकसा होता है। सन्त इन्हे कभी नही छेडते। इसने कुछ काम भी नही बिगाडा है। हे नाथ! आपका अपराधी तो मैं हूँ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : दोष दृष्टि न देने का उदाहरण देते है। बर्रे · भिड़ भनभनाया करते हैं। परन्तु परहितैकव्रत सन्त उस ओर दृष्टि ही नही देते। जहाँ तनिक भी उसके भनभनाने पर दृष्टि दी तहाँ उसने काटा। यह बर्रे का स्वभाव है। स्वभावो दुरतिक्रम·। उसे मार डालिये मर जायगा। पर स्वभाव नही छोड सकता। क्षमाशील सन्त इस बात को समझते हैं और बर्रे को भनभनाने देते हैं। इसी भाँति इसे बकने दीजिये। आपकी महामहिमा पर इससे क्या प्रभाव पड सकता है। यह विनय है।

छुअत टूट रघुपतिहि न दोषू इत्यादि बातें जो लक्ष्मण ने कही हैं वे सब गलत हैं। मैं अपराधी हूँ। वह तो केवल बोलता है। काम नही बिगाडता। बोल गया : कमल नाल जिमि चाप चढाऊँ। जोजन सत प्रमान लै धाऊँ। तोरउ छत्रक दड जिमि पर किया कुछ नही। काम बिगाडनेवाला तो मैं हूँ। यह कोमलता है।

कृपा कोपु बधु बँधव गोसाईं। मो पर करिअ दास की नाईं॥
कहिअ बेगि जेहि बिधि रिस जाई। मुनि नायक सोइ करौं उपाई॥३॥

अर्थ : कृपा, कोप, वध और बन्धन जो कुछ करना हो मुझ पर दास की भाँति कीजिये। जिस विधि से आपका क्रोध जाय उसे शीघ्र ही बताइये। मैं तुरन्त वही उपाय करूँ।

व्याख्या : घोरधार भृगुनाथ रिसानी है। सो उस धारा को लक्ष्मणजी ने अपने ऊपर लिया। रामजी उसे अपने ऊपर ले रहे हैं। अपराधी की चार गति हैं · १ या तो वह क्षमा किया जाय। या २ उसको धिग् दण्ड। या ३ प्राण दण्ड या ४. स्वातन्त्र्यहरण दण्ड दिया जाय। इन दण्डो मे से जो आप उचित समझें मुझे दास समझकर दें। शत्रु समझकर नही अथवा यदि कोई दूसरी विधि हो जिससे आपका क्रोध शान्त हो सके तो बतला दीजिये मैं वही उपाय करूँ। जितना विलम्ब होता है उतना ही अधिक आपको कष्ट हो रहा है। अत शीघ्र ही आज्ञा होनी चाहिए। ३ यह शीतलता है।

कह मुनि राम जाय रिस कैसे। अजहुँ अनुज तव चितव अनैसे॥
एहि के कंठ कुठार न दीन्हा। तौ मैं काह कोपु करि कीन्हा॥४॥

अर्थ · मुनि ने कहा : हे रामजी। क्रोध जाय तो कैसे जाय ? अब भी तेरा भाई मेरी ओर टेढी नजर करके देखता है। इसके कण्ठ मे मैंने कुठार न दिया तो क्रोध करके ही क्या किया ?

व्याख्या जेहि बिधि रिसि जाई का उत्तर दे रहे हैं। अपराध स्वीकार कर लेने से रामजी पर क्रोध नही है। गुरुजी के पास से भी लक्ष्मणजी टेढी दृष्टि से देख रहे हैं। उसी को लक्ष्य कराके कहते हैं कि तुम तो क्रोध को हटाना चाहते हो। पर तुम्हारा भाई उसे बढाना चाहता है। तुम्हारी आज्ञा से चुप है। गुरुजी के पास चला गया है फिर भी वहाँ से टेढी निगाह से देख रहा है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

मेरा क्रोध अमोघ है सो व्यर्थ जाना चाहता है। क्रोध का फल है क्रोध दिलानेवाले के कण्ठ पर कुठाराघात। बररे बालक एक सुभाऊ। इन्हहि न सत विदूषहि काऊ का उत्तर देते हैं। तुम इसे विदूषित न करने को कहते हो पर इसे बिना मारे न छोड़ूँगा। तुम अपने ऊपर क्रोध की धार लेना चाहते हो सो नहीं होगा।

दो० गर्भ स्रवहिं अवनिप रवनि, सुनि कुठार गति घोर।
परसु अछत देखौ जिअत, बैरी भूप किसोर ॥२७९॥

अर्थ : मेरे फरसे का भयानक कृत्य सुनकर राजाओं की स्त्रियों का गर्भ गिर जाता है। उस फरसे के रहते हुए भी मैं इस बैरी राजपुत्र को जीता देख रहा हूँ।

व्याख्या : तेहि नाहीं कछु काज बिगारा का उत्तर देते हैं। बिगाड़ा हो चाहे न बिगाड़ा हो पर बैरी वही है। वही मुझे कुछ नहीं गिनता। कुठार के व्याज से अपनी प्रभुता कहते हैं। मेरे कुठार की करतूत सुनने से रानियों का गर्भ गिरता है। इतना बड़ा मेरा आतङ्क है और यह मुझे तुच्छ समझता है। अतः यही मेरा बैरी है। इसे जीता मैं नहीं देख सकता यह बालक बचन करिअ नहिं काना का उत्तर है।

बहइ न हाथु दहइ रिस छाती। भा कुठारु कुंठित नृपघाती ॥
भयउ बाम बिधि फिरेउ सुभाऊ। मोरे हृदयँ कृपा कसि काऊ ॥१॥

अर्थ : हाथ चलता नहीं है। क्रोध से छाती जल रही है। राजाओं का वध करनेवाला परशु कुण्ठित हो गया। ब्रह्मा बायें हो गये। इससे मेरे स्वभाव में परिवर्तन हो गया नहीं तो मेरे हृदय में कभी भी कृपा कैसी ?

व्याख्या : ऋजवो हि ब्राह्मणाः। ब्राह्मण स्वभाव से सरल होते हैं। रामजी ने कहा था : सुनहु नाथ तुम सहज सुजाना। इस पर कहते हैं कि मैं सहज सुजानता से नहीं छोड़ रहा हूँ। क्योंकि छाती तो जल रही है। बात यह है कि मेरा हाथ ही नहीं चल रहा है। हाथ चलने का आरोप कुठार पर करके कहते हैं कि यह कुठार नृपघात में सदा तीखा रहा सो आज कुण्ठित हो रहा है।

बररे बालक एक स्वभाऊ। इन्हहि न सत विदूषहि काऊ का उत्तर देते हुए कहते हैं कि मैं सन्त होने के कारण विदूषण नहीं करता। यह बात नहीं है। इसका तो बररे का सा स्वभाव बना ही है। मेरा स्वभाव पलट गया। वाम विधाता की करणी कठिन है। स्वभाव के पलटने में वे ही समर्थ हैं। मैं तो शत्रु पर दया करने को कादरता मानता हूँ। मुझे दया कहाँ से आगई ? यथा : रिपु पर दया परम कदराई। लक्ष्मणजी ने देखा कि प्रभु की प्रार्थना का निरादर फिर किया।

आजु दया दुख दुसह सहावा। सुनि सौमित्रि बिहँसि सिर नावा ॥
बाउ कृपा मूरति अनुकूला। बोलत बचन झरत जनु फूला ॥२॥

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ · आज दया ने दु सह दु ख सहाया। सुनते ही लक्ष्मणजी ने विहँस प्रणाम किया और कहा कृपामूर्ति अनुकूल वायु है। वचन बोल रहे हैं तो मा फूल झर रहा है।

व्याख्या · परशुरामजी कहते हैं कि इस समय जो पीडा मुझे हो रही इसका कारण दया है। दया के कारण दु ख तो सहना ही होता है। जिसने द के लिए दु.ख न उठाया वह दयालु ही कैसा ? परन्तु दया के कारण जैसा दु द दु ख आज मुझे हुआ वैसा कभी नहीं हुआ था। लक्ष्मणजी तेज के खानि सुमि के बेटे है। वे इस विचित्र दया पर हँस पडे और जाकर प्रणाम किया। बोले आप अनुकूल मूर्ति पुष्पित वृक्ष की भाँति है। कृपा की हवा बह रही है। जो वचन मु से निकलते है तो मालूम होता है कि फूल झर रहा है। भाव यह कि जिस हृदय मे दया का उद्रेक है वह क्या ऐसी बात बोलेगा कि · परसु अछत दे जिअत बैरी भूप किसोर।

जौ पै कृपा जरहि मुनि गाता। क्रोधु भए तनु राख बिधाता ॥
देखु जनकु हठि बालकु एहू। कीन्ह चहत जड़ जमपुर गेहू ॥३॥

अर्थ हे मुने ! यदि कृपा होने पर आपका शरीर जला जाता है तो क्रो होने पर आपकी रक्षा विधाता ही करेगे। परशुरामजी बोले देख जनक ! यह ज बालक हठ करके यमपुर मे डेरा किया चाहता है। अर्थात् मरा चाहता है।

व्याख्या परशुरामजी ने कहा है · आजु दया दु ख दुसह सहावा। बहइ हाथ दहै रिसि छाती। उसी के उत्तर मे लक्ष्मणजी कहते है कि ससार मे यह नियम है कि क्रोध से शरीर जलता है और दया से द्रवीभूत होकर शीतल होता है। दया के समय जिस शरीर मे दाह हो उसमे क्रोधावेश होने पर सचमुच आग लग जायेगी और शरीर ही भस्म हो जायगा। भाव यह है कि यह दया नहीं है कादरता है। अपनी बात बनाये रखने के लिए दया की ओट पकड रहे हो।

समाज भर मे केवल जनकजी ही ऐसे थे जिन्होने मष्ट करहु अनुचित भल नाही कहके लक्ष्मणजी को रोका था। अत अब जनकजी से कहते है कि हम इसे यमपुर नही भेजना चाहते। पर यह जाने पर तुला हुआ है। मानता ही नही। तुम्हारा सम्बन्धी हो गया है। तुम इसे बचाओ। अब मैं इसे नही बचा सकता।

बेगि करहु किन आँखिन ओटा। देखत छोट खोट नृप ढोटा ॥
बिहँसे लखनु कहा मन माही। मूँदे आँख कतहुँ कोउ नाही ॥४॥

अर्थ . इसे तुरन्त आँख से ओझल क्यो नही करते। देखने मे छोटा परन्तु यह राजा का बेटा बड़ा खोटा है। लक्ष्मण बिहँसे और मन मे कहा आँख मूँदने पर तो कही कोई नहीं है।

व्याख्या : परशुरामजी अब कहते है कि क्या तुम भी इसकी मृत्यु चाहते हो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नही तो इसे खीच खाँचकर हमारे सामने से हटाओ। हमे दया आगई है। हम इसे खोजकर नही मारेंगे।

लक्ष्मणजी जोर से हँस पड़े कि क्या अब बात इतने पर आगई कि हम आँख से ओझल हो जायँ। तब तो इनके अमोघ कहे जानेवाले क्रोध का इतना ही परिणाम रह गया कि ये अब आँख मीच लें और समझ लें कि कही कोई नही है।

दो. परसुराम तब राम प्रति, बोले उर अति क्रोधु।
संभु सरासनु तोरि सठ, करसि हमार प्रबोधु ॥२८०॥

अर्थ : परशुरामजी तब रामजी से बोले। उनके हृदय मे बड़ा क्रोध था। शिवजी का धनुष तोड़कर, शठ! तू मुझे समझा बुझा रहा है।

व्याख्या : रामचन्द्र को चुप देखकर कि लक्ष्मण को तनिक भी नही रोक रहे हैं। बड़ा क्रोध हुआ। अब रामजी से कहते हैं कि तू शठ है। महा बिगाड करके मीठा मीठी बातें बनाता है। यथा : मीठी बाते सठ करै करिके महा बिगार। हमारी इतनी हानि करके समझाने चला है। यथा 'तुम समसील धीर मुनि ज्ञानी। इन्हहिं न सत विदूषहिं काऊ। करहु कृपा सिसु सेवक जानी। और उसे नही समझाता।

यहाँ 'परशुराम' और 'राम' शब्द दोनो साथ देकर यह दिखलाया कि दोनो ही राम हैं। सदा परशु धारण किये रहने से एक का नाम परशुराम पडा और दूसरे ऐश्वर्यातिरेक से श्रीराम कहलाये। यथा : श्रीरामाय नम. उदरं पूजयामि। श्रीरामाय नमः हृदयं पूजयामि। श्रीरामावतार मे ही उनके द्वारा दूसरे अवतार का पराभव हुआ है। ऐसी बात दूसरे अवतारों में नही देखी जाती। यह श्रीरामावतार को विशेषता है।

बंधु कहै कटु संमत तोरे। तूं छल विनय करसि कर जोरे॥
करु परितोषु मोर संग्रामा। नाहि त छाडु कहाउब रामा॥१॥

अर्थ : तेरी सम्मति से तेरा भाई कडुआ बोलता है और तू हाथ जोड़कर छल से विनय करता है। युद्ध मे मेरा परितोष कर या राम कहलाना छोड़।

व्याख्या : अब जाना यह सब तेरी राय से होता है। तू मुझे समझाता है भाई को नही रोकता। उसे कटु कहने के लिए छोड़ दिया है और स्वयं हाथ जोड़कर विनय करता है। ऐसा कहकर : अति विनीत मृदु सीतल बानी। बोले राम जोरि जुग पानी। पर परशुरामजी आक्षेप करते हैं।

कहहु वेगि जेहि बिधि रिसि जाई का उत्तर देते हुए कहते हैं कि दास मानकर कृपा, कोप, वध, वन्धन करनेवाली बात ठीक नही। शत्रु की भाँति संग्राम में मेरा पेट भर दे। तू मेरा प्रतिस्पर्धी बना है। तूने शङ्कर का धनुप तोड़ा है और

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

नाम भी अपना मेरे सा रक्खे है। अब दो राम नही रह सकते। युद्ध कर या अपना नाम बदल।

छल तजि करहि समरु सिवद्रोही। बंधु सहित न त मारौ तोही॥
भृगुपति बकहि कुठार उठायें। मन मुसुकाहि रामु सिर नाये॥२॥

अर्थ रे शिवद्रोही या तो छल छोडकर युद्ध कर नही तो भाई के सहित तुझे मारूँगा। परशुरामजी कुठार उठाये बकते चले जाते है और रामजी सिर नवाये हुए मन ही मन मुसकरा रहे हैं।

व्याख्या : तेरा दास बनना छल है। वस्तुत तू मेरा प्रतिस्पर्धी है। शिवद्रोही मेरा दास नही हो सकता। तू दास बनकर थोडे ही दण्ड मे बचना चाहता है। तूने धनुष तोडा है। यदि प्रतिस्पर्धी नही है तो अपना नाम बदल नही तो तुझे भी मारूँगा और तेरे भाई को भी। तुम दोनो भाइयो मे बडी प्रीति है। छोटा तो कटु बोलकर मेरे क्रोध के परिणाम को अपने ऊपर लना चाहता है और तू तेहि नाही कछु काज बिगारा। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा। कहकर उसे बचाना चाहता है। सो न होगा। मै दोनो भाइयो को मारूँगा।

गुनह लषन कर हम पर रोषू। कतहु सुधाइहुँ ते बड दोषू॥
टेढ जानि सब बंदै काहू। बक्र चन्द्रमहि ग्रसै न राहू॥३॥

अर्थ अपराध तो लक्ष्मण का और क्रोध मेरे ऊपर कर रहे है। कही सीधेपन मे भी बडा दोष होता है। टेढा जानकर सब लोग वन्दना करते हैं और टेढे चन्द्रमा को राहु भी नही ग्रसता।

व्याख्या . रामजी स्वगत कहते हैं। यह कौतूहल देखो। अपराध लक्ष्मण का है। वह बिना उत्तर दिये नही मानता। तो आज विश्वविदित क्षत्रियकुल द्रोही भी उससे बगल झांक रहे है और मैं सुधाई से काम लेता हूँ तो इन्हे छल का भ्रम हो रहा है। सचमुच यहाँ सुधाई दोषप्रद ही है। 'गुनह' शब्द का अर्थ अपराध है। यह पारसी शब्द है 'साहिब' 'गरीब' आदि शब्दो की भाँति हिन्दी मे परिगृहीत है।

कोई हो चाहे वन्दनीय चाहे अवन्दनीय यदि वह टेढा है तो सभी उसकी वन्दना करते है। दुइज के चन्द्रमा टेढे होते है तो उनकी सभी वन्दना करते है। यथा . दुइज न चन्दा देखिये उदित कहा भरि पाख। राहु भी उसे नही ग्रसता। पूर्णमासी के चन्द्रमा सीधे होते है। उनकी इतनी पूजा भी नही होती और उन्हे राहु भी ग्रसता है।

राम कहेउ रिस तजिअ मुनीसा। कर कुठारु आगे यह सीसा॥
जेहि रिस जाइ करिअ सोइ स्वामी। मोहि जानिअ आपन अनुगामी॥४॥

अर्थ रामजी ने कहा : हे मुनीश ! क्रोध छोडिये। आपके हाथ मे परशु है और यह सिर आगे है। जिस प्रकार से आपका क्रोध जाय सो करिये। मुझे अपना अनुचर समझिये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या . बधु कहै कटु समत तोरे। तू छल विनय करसि कर जोरे का उत्तर देते हुए रामजी कहते हैं कि यदि इसी बात पर क्रोध है तो भी क्रोध छोडिये। मेरी ओर से छल नही है सिर हाजिर है और आप कुठार उठाये ही हुए है चला दीजिये।

आप स्वामी हैं, सेवक का सिर स्वामी के लिए है। यदि काटने से क्रोध जाता हो तो काट दीजिये। पर मुझे अपना सेवक जानिये वैरी नही। मुझे सिर देना स्वीकार है। ब्राह्मण का वैरी होना स्वीकार नही है।

दो. प्रभु सेवकहि समरु कस, तजहु विप्रवर रोसु।
वेषु विलोके कहेसि कछु, बालकहू नहि दोसु ॥२८१॥

अर्थ : स्वामी और सेवक मे युद्ध कैसा ? हे ब्राह्मणो म श्रेष्ठ ! क्रोध छोडिये। बालक का भी दोष नही है। उसने भी वेष देखकर ही कुछ कहा।

व्याख्या ब्राह्मण से जो मैं सेवक सेव्य भाव रखता हूँ उसे उस सम्बन्ध को न तोडवाइये। करु परितोष मोर सग्रामा। छल करि समर करहि का उत्तर देते हुए रामजी कहते हैं। ब्राह्मणो ने क्षत्रियो को द्वारपाल नियुक्त कर रक्खा है। मैं सेवक होकर प्रभु से न लडूँगा। बधु सहित न त मारो तोही का उत्तर देते हुए कहते हैं। आपका वेष अननुरूप है। ब्राह्मण का वेष ऐसा न होना चाहिए। न्यायाधीश को सैनिक का वेष नही धारण करना चाहिए। इसी भाँति सैनिक को न्यायाधीश का वेष अनुचित है। प्रभुवाला वेष आपने नही रक्खा। सेवक का वेष आपको पसन्द है। लक्ष्मण बालक है। सेवक के वेष मे स्वामी को नही पहचानकर अनादर किया। अत वह भी निर्दोष है। मैने तो पहिचान लिया। मै जानबूझकर दोषी नही हो सकता।

देखि कुठार बान धनुधारी। भै लरिकहि रिस बीरु बिचारी ॥
नाम जान पै तुम्हहि न चीन्हा। बस सुभाय उतरु तेहि दीन्हा ॥१॥

अर्थ कुठार, बाण और धनुष धारण किये हुए देखकर लडके ने विचार किया कि ये वीर हैं। इसलिए उसने क्रोध किया। नाम जाना पर आपको नही पहिचाना। वश के स्वभाव से उसने उत्तर दिया।

व्याख्या क्षत्रिय जाति भेंडिये की भाँति एक दूसरे को खानेवाली होती है। कुठार, बाण, धनुष धारण क्षात्रधर्म का चिह्न है। अत वीर विचार करके लडके को क्रोध हुआ। आप मुनि है। इस बात को वह वीर वेष मे नही पहिचान सका। उसने उत्तर दिया। उसपर उत्तर देने का ही दोष है। नाम जानना ही चीन्हना है। यथा रूप बिसेष नाम बिनु जाने। करतलगत न परत पहिचाने। यहाँ तुम्हहि न चीन्हा। कहने का भाव यह है कि वह यह न पहिचान सका कि क्षात्रवेष मे आप साक्षात् ब्रह्ममूर्ति है। जिनके लहहिं न रिपु रन पीठी। यह वशस्वभाव है। तदनुसार उसने प्रतिस्पर्धी जानकर उत्तर दिया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

जौं तुम्ह औतेहु मुनि की नाईं । पद रज सिर सिसु [1]धरत गोसाईं ॥
छमहु चूक अनजानत केरी । चहिअ विप्र उर कृपा घनेरी ॥२॥

अर्थ यदि तुम मुनि की भाँति आते तो यह लडका चरणरज को सिरपर धारण करता। अनजान की चूक क्षमा कीजिये। ब्राह्मण के हृदय मे बडी कृपा होनी चाहिए।

व्याख्या आप मुनि की भाँति नही आये। यदि आते तो 'उत्तर देना तो दूर गया। वह आपके चरणरज को सिरपर धारण करता क्योकि वह जानता है कि इसी मे मेरा कल्याण और उसका कल्याण है। यथा : सब पायेउँ रज पावन पूजे।

बालक से बिना जाने चूक हुई। कुर्यादन्य न वाकुर्यात् मैत्रो ब्राह्मण उच्यते। ब्राह्मण के हृदय मे बडी कृपा चाहिए। जानबूझकर किये गये अपराध को भी क्षमा करना चाहिए। इसने तो विना जाने चूक की है। यह बधु सहित न त मारौ तोही का उत्तर है।

हमहि तुमहिं सरबर कस नाथा । कहहु न कहाँ चरन कह माथा ॥
राम मात्र लघु नाम हमारा । परसु सहित बड नाम तुम्हारा ॥३॥

अर्थ हे नाथ! हमारी तुम्हारी कौन सी बराबरी है। कहो तो कहाँ चरण और कहाँ माथा। मेरा छोटा सा नाम केवल राम है और आपका नाम परशु के सहित होने से बडा है।

व्याख्या युद्ध बराबरी से होता है। चरण कितना भी ऊँचे चढे सिरतक नही चढ सकता। जब वहाँ तक पहुँच ही नही तो युद्ध क्या करेगा ? पूज्य होने से परशु-रामजी को मस्तक और सेवक होने से अपने को चरण कहा। करु परिताप मोर सग्रामा का यह उत्तर है।

नाही त छाड कहावउ रामा का उत्तर देते हुए कहते है कि मै ही आपसे छोटा नही हूँ। मेरा नाम भी आपके नाम से बहुत छोटा है। राम कहने से आपका बाध नही होता। परशुराम कहने से होता है और मेरा बाध 'राम' मात्र से होता है। यदि आपका मेरा एक नाम होता तब नाम रखने या छोडने का प्रश्न उठ सकता था।

देव एक गुन धनुष हमारे । नवगुन परम पुनीत तुम्हारे ॥
सब प्रकार हम तुम सन हारे । छमहु विप्र अपराध हमारे ॥४॥

अर्थ हे देवता! मेरे पास तो एक गुण धनुष है पर तुम्हारे पास तो परम

---

१ यहाँ सम्भावना अलङ्कार है।

ankurnagpal108@gmail.com



पुनीत [1]नव गुण है। सब प्रकार हम तुमसे हारे हुए हैं। हे विप्र ! हमारे अपराध को क्षमा करो।

व्याख्या नाम मे ही वडे नही, आप गुण मे भी वडे हैं। मुझमे केवल एक गुण है। धनुर्वेद जानता हूँ। यथा : सर्वशास्त्रार्थतत्वज्ञो धनुर्वेदेऽतिनिष्ठित । पर आपमे नव गुण हैं और वे परम पुनीत हैं। यथा : शमो दमस्तप शौच क्षान्तिरार्जवमेव च। ज्ञानं विज्ञानमास्तिक्य ब्रह्मकर्म स्वभावजम् गी । शम, दम, तप, शौच, क्षमा, ऋजुता . सिधाई, ज्ञान, विज्ञान और आस्तिक्य ये ब्राह्मण के स्वाभाविक कर्म हैं। स्वाभाविक कर्म कहकर गुण कहा। परन्तु धनुपवाला गुण, वीरता का युद्धे चाप्यपलायनम् तो हमारा ही है।

दो. वार वार मुनि विप्रवर, कहा राम सन राम।
वोले भृगुपति सरुप हँसि, तहूँ वधु सम वाम ॥२८२॥

अर्थ : जब वार वार मुनि और विप्रवर श्री राम ने परशुराम से कहा तो भृगुपति ने क्रोध की हँसी के साथ कहा कि तू भी भाई सा ही खोटा है।

व्याख्या . मुनि दो वार कहा। यथा १ राम कहा रिसि तजिअ मुनीसा २ जौ तुम औतेउ मुनि की नाई। तीनवार विप्रवर कहा। यथा १ तजहु विप्रवर रोप। २ चहिअ विप्र उर कृपा घनेरी। ३ छमहु विप्र अपराध हमारे। तब तो परशुरामजी क्रोध से हँसे। क्रोध की हँसी वडी भयानक होती है। यथा अट्टहासमशिवं शिवदूती चकार ह। परशुरामजी की इच्छा थी कि उन्हे सब कोई वीर मानकर डरें। 'मुनि' 'विप्र' सम्बोधन से वे अपना अपमान मानते थे। क्योकि राजाओ ने वीर न होने से ब्राह्मणो का अपमान किया था। अत रामजी से कहा कि तू भी छोटे भाई सा ही खोटा है। मुझे वीर नही मानता। एक गुण धनुप अपना मानता है। मेरे शस्त्र वाँधने को अनुचित वतलाता है। तेरे और तेरे भाई के कहने मे वास्तविक भेद कुछ भी नही है। अत तू भी वैसा ही खोटा है।

निपटहि द्विज करि जानेहि मोही। मै जस विप्र सुनावौ तोही ॥
चाप स्रुवा सर आहुति जानू। कोप मोर अति घोर कृसानू ॥१॥

अर्थ . तूने मुझे निरा ब्राह्मण ही समझ रक्खा है ? मै जैसा ब्राह्मण हूँ, तुझे सुनाता हूँ। धनुप को स्रुवा वाण को आहुति और मेरे क्रोध को धधकती हुई अग्नि जान।

व्याख्या : परशुरामजी छमहु विप्र अपराध हमारे का उत्तर देते हैं कि तुम्हारे समझने मे वड़ी भूल हो रही है। तुमने समझ रखा है कि यह अध्ययना-

१. नवगुणो का सूचक निम्नश्लोक वहुत जगह कहते सुना गया है। पर यह पता मुझे नहीं लग सका कि यह श्लोक कहाँ का है। यथा . ऋजुस्तपस्वी सन्तुष्ट क्षमाशीलो जितेन्द्रिय । क्षान्तो दान्तो दयालुश्च ब्राह्मणो नवभिर्गुणै ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ध्यापन, यजन याजन, दान प्रतिग्रह छोडकर और क्या जाने ? ब्राह्मण के ये ही छ कर्म हैं। ब्राह्मण का युद्ध से क्या सम्बन्ध ? सो मै वैसा ब्राह्मण नही हूँ। मैं तो युद्ध यज्ञ करनेवाला ब्राह्मण हूँ। श्रौत याग मे पाँच सात प्रकार की सामग्री की आवश्यकता पडती है। १ स्रुवा जिससे आहुति दी जाती है। २ आहुति द्रव्य जिससे होम किया जाय। प्रधान आहुति घी या दुग्ध की है। इसके बिना काम नही चलता। ३ घोर अग्नि म होम किया जाता है। प्रज्वलित अग्नि मे ही होम का विधान है। ४ समिधा लकडी जिससे अग्नि जलाई जाती है। ५ पशु जिसकी श्रौत याग म बलि देनी पडती है और ६ मन्त्र जिसके उच्चारण के साथ आहुति दी जाती है और ७ शस्त्र बलि देने के लिए। सो युद्धयज्ञ मे धनुष ही मेरा स्रुवा होता है। बाण की आहुतियाँ पडती हैं और मेरा क्रोध ही धधकती हुई आग है।

समिध सेन चतुरग सुहाई। महा महीप भए पसु आई॥
मै यहि परसु काटि बलि दीन्हे। समर जग्य जप कोटिन्ह कीन्हे॥२॥

अर्थ चतुरङ्गिणी सना ही समिधा है। बडे बडे राजा ही आकर पशु होते हैं। इसी परशु से काटकर मैं बलि देता हूँ। ऐसे युद्धयज्ञ तथा जप मैंने करोडो किये है।

व्याख्या चतुरङ्गिणी सेना रूपी रथ, हाथी, घोडा और पैदल समिधा मेरी क्रोधाग्नि का आधार है। इसे जलाकर ही मेरा क्रोध शान्त होता है। बडे बडे राजा इस युद्धयज्ञ म आकर पशु हो जाते हैं। श्रौतयाग बिना पशु के होता नही। इसी भाँति मेरा युद्धयज्ञ बिना महाराजाओ की बलि दिये पूरा होता नही। मैं इसी परशु से काटकर उनकी बलि यज्ञपुरुष की प्रीति के लिए देता हूँ। म ऐसा यज्ञ करनेवाला ब्राह्मण हूँ। जितना ही अधिक सख्या म यज्ञ करे उतना ही ब्राह्मणत्व का उत्कर्ष होता है। सौ यज्ञ करने से यजमान शतक्रतु इन्द्र का पद प्राप्त करता है। मैने तो करोडो ऐसे यज्ञ मन्त्र जप क साथ किये हैं। दिव्यास्त्रा के प्रयोग म मन्त्र जप किया जाता है।

मोर प्रभाव बिदित नहि तोरे। बोलसि निदरि बिप्र के भोरे॥
भजेउ चापु दापु बड बाढा। अहमिति मनहुँ जीति जग ठाढा॥३॥

अर्थ मेरा प्रभाव तुझ मालूम नही इसलिए ब्राह्मण के धोखे से तू मेरा अपमान करके बोलता है। धनुष तोड दिया है। इससे दर्प बहुत बढ गया है ऐसा अभिमान हो गया है मानो तुम जगत् जीतकर खडे हो।

व्याख्या ये जितने राजा यहाँ इकट्ठे हैं वे मेरे प्रभाव को जानते है। इसलिए ये आदर के साथ परम भयभीत होकर मुझसे बोलते हैं। तू मेरे इस प्रभाव को जानता ही नही। समझता है कि ये ब्राह्मण है। यज्ञ जप करनेवाल ये क्या कर सकते है। इसलिए मेरा निरादर करके निर्भय होकर मुझसे बोलता है। यह नही समझता कि जिसने करोडो युद्ध यज्ञ करके इक्कीस बार पृथ्वी को नि क्षत्र किया उसे एक यज्ञ करके मुझे बलि दे देने मे कौन सा बडा परिश्रम है ?

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



देव एक गुन धनुष हमारे का उत्तर परशुरामजी देते हैं कि धनुष जो तोड दिया तो बड़ा भारी अभिमान हो गया कि धनुष का गुण तो हमारा ही है। उसमे कोई साझीदार नही है। मै ही जगत् मे एकमात्र धनुर्द्धर हूँ ऐसी भावना तुम्हे हो गई है। तुम्हे ऐसा अभिमान बढ़ा हुआ है मानो संसार जीतकर खडे हो।

राम कहा मुनि कहहु विचारी। रिसि अति बड़ि लघु चूक हमारी ॥
[1]छुवतहि टूट पिनाक पुराना। मै केहि हेतु करौ अभिमाना ॥४॥

अर्थ : रामजी ने कहा हे मुने ! विचारकर बोलो। आपका क्रोध बहुत बडा है और मेरी चूक बहुत छोटी है। पुराना धनुष छूते ही टूट गया मैं किसलिए अभिमान करूँ।

व्याख्या : मुनि हो मनन करनेवाले हो। आपको विचारकर बोलना चाहिए। आप विचार से काम नही ले रहे है। धनुष आपका गुण नही हो सकता क्योंकि वह आपका स्वधर्म नहीं है। वह मेरा स्वधर्म है इसलिए मेरा है। युद्ध मे न भागना क्षात्रधर्म है। ब्राह्मण के लिए अनिवार्य नही है। यथा : युद्धे चाप्यपलायनम्। क्षात्रकर्म स्वभावजम्। हम स्वधर्म पर स्थित है उसे आप अभिमान बतला रहे हैं। धनुपभङ्ग लघु चूक है। क्योंकि बल के दिखलाने मे ही क्षत्रिय की बडाई है। यह भंजेउ चाप दाप बड़ बाढा का उत्तर है।

दो. जौ हम निदरहिं विप्र वदि, सत्य सुनहु भृगुनाथ।
तौ अस को जग सुभट जेहि, भयवस नावहि माथ ॥२८३॥

अर्थ : हे भृगुवंशियों के स्वामी ! सत्य मानिये यदि हम ब्राह्मण जानकर निरादर करें तो ससार मे ऐसा सुभट कौन है जिसे भयवश सिर झुकावे।

व्याख्या : ब्राह्मण जानकर ही मैं सिर झुकाता हूँ। यदि ब्राह्मण जानकर हम निरादर करें तो क्या सुभट जानकर डरेंगे ? हम सुभट से नही डरते ब्राह्मण से डरते हैं। यथा : इन्द्र कुलिस मम सूल विसाला। कालदड हरि चक्र कराला। जो इनकर मारा नहि मरई। विप्र रोष पावक सो जरई। तथा : मुनि तापस जिनते दुख लहही। ते नरेस बिनु पावक दहही। भाव यह है कि मुझे ब्रह्मबल से भय है। क्षत्रबल तो अपनी वस्तु है उससे क्यो डरें ?

देव दनुज भूपति भट नाना। समबल अधिक होहु बलवाना ॥
जौ रन हमहि प्रचारै कोऊ। लरहि सुखेन काल किन होऊ ॥१॥

अर्थ : देवता, दनुज और नाना प्रकार के योद्धा चाहे बराबरीवाले हो चाहे अधिक बलवान् हो। यदि कोई हमें युद्ध मे ललकारे तो हम सुख से लड़ेंगे। चाहे वह काल ही क्यो न हो।

---

१. यह सम तृतीय है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : चाप स्रुवा सर आहुति जानू इत्यादि तीन अर्धालियों से युद्धयज्ञ का रूपक दिखलाया है। उसीका उत्तर श्रीरामजी तीन अर्धालियों में देते हैं। देव स्वर्गलोक के योद्धा, दनुज पाताललोक के योद्धा भट नाना मर्त्यलोक के योद्धा। इनमें से चाहे मेरे समान बलवाले हों चाहे अधिक बलवाले हों। यदि युद्ध में इनमें से कोई मुझे ललकारे तो वह काल ही क्यों न हो निश्चय उससे युद्ध करेंगे। निर्बल की बात नहीं कहता हूँ क्योंकि उसका तो मैं बल ही हूँ। यथा : निर्बल के बल राम। भाव यह कि मुझे ललकारिये मत। धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते। यदृच्छया चोपपन्नं स्वर्गद्वारमपावृतम्। सुखिनः क्षत्रियाः पार्थ लभन्ते युद्धमीदृशम्। अथचेत्त्वमिमं धर्म्यं संग्रामं न करिष्यसि। ततः स्वधर्मं कीर्तिञ्च हित्वा पापमवाप्स्यसि। अर्थ : युद्ध से बढ़कर दूसरा धर्म क्षत्रिय के लिए नहीं है। बिना प्रार्थना किये यह खुला दरवाजा स्वर्ग का हे अर्जुन! भाग्यवान् क्षत्रिय को मिलता है। यदि तू इस धर्मयुद्ध को न करेगा तो स्वधर्म और कीर्ति से पतित होकर पापी हो जायगा। ललकारने से यदृच्छया चोपपन्नम् बिना प्रयत्न के ही युद्ध का अवसर प्राप्त हो जाता है। मैं सीध बाँधकर लड़ने नहीं जाता परन्तु ललकारने पर न लड़ने से लोक परलोक दोनों बिगड़ता है और लड़ने से दोनों बनता है। यथा : हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्। अतः दोनों हाथ में लड्डू है। युद्ध में मरने मारने को हिंसा समझनेवाले क्षत्रिय मूर्ख हैं।

छत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलंकु तेहि पाँवर जाना॥
कहौं सुभाउ न कुलहिं प्रसंसी। कालहु डरहिं न रन रघुबंसी॥२॥

अर्थ : क्षत्रियशरीर धारण करके जो युद्ध में डरा उसे कुल का कलंक और पामर समझना चाहिए। मैं स्वभाव कहता हूँ। प्रशंसा नहीं करता। रघुवंशी युद्ध में काल से भी नहीं डरते।

व्याख्या : क्षत्रियशरीर के लिए युद्ध से बढ़कर कोई धर्म नहीं है। ऐसे धर्म को त्याग करनेवाला नीच है। कुल का कलङ्क है। संग्राम न करनेवाले को स्वधर्म का त्याग करना पड़ता है। कीर्ति नष्ट होती है। पाप होता है। इसलिए वह अपयशभाजन है। उसके प्रियजनों को उसके कारण लज्जित होना पड़ता है। इसलिए वह प्रियजनद्रोही है और अपयशभाजन प्रियजनद्रोही को ही कुलकलङ्क कहते हैं। यथा : कुलकलङ्क जेहि जनमेउ मोही। अपजस भाजन प्रियजन द्रोही। मैं जस विप्र सुनावौं तोही का उत्तर देते हैं : सुनाइयेगा क्या? आप अपने वश में केवल अपना हाल सुनावेंगे। यहाँ पूरे रघुवंश का स्वभाव सुन लीजिये। रघुवंश रण में काल से भी नहीं डरता। यह प्रशंसा नहीं है स्वभाव है। अर्थात् रक्त का गुण है। संकरता न आने से रक्त का गुण रहता ही है। आप उसे नीच समझते हैं जो आपको कालरूप नहीं देखता। पर जो काल से नहीं डरता वह आप से रण में क्यों डरेगा?

बिप्रबंस कै असि प्रभुताई। अभय होइ जो तुम्हहि डेराई॥
सुनि मृदु बचन गूढ़ रघुपति के। उघरे पटल परसुधर मति के॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : ब्राह्मणवंश की ऐसी प्रभुता है कि जो तुम्हे ब्राह्मणवश को डरेगा वह निर्भय हो जायगा। रघुपति के कोमल पर गूढ वचन सुनकर भृगुपति की बुद्धि का पर्दा खुल गया।

व्याख्या : तहूँ बंधु सम वाम का उत्तर रामजी देते हैं कि निर्भय होने से आप वाम कह रहे हैं। सो यह : निर्भयता विप्रवश की प्रभुता है मेरी नही। मै ब्राह्मणवंश को डरता हूँ इसलिए अभय हूँ। अभय वही हो सकता है जो विप्रवश को डरे। अर्थात् मैं तुम्हारे अस्त्रबल से नही डरता। तुम्हारे ब्राह्मणत्व को डरता हूँ।

वचन तो मृदु है स्वीकार करते हैं कि मैं आप से डरता हूँ। पर गूढ है अर्थ छिपा है। परशुरामजी जान गये कि ये ब्रह्मण्यदेव हैं। इनकी भक्ति ब्राह्मणत्व पर सच्ची है। क्षात्रधर्म पर इतनी निष्ठा होने पर भी ब्राह्मणत्व पर इतनी आस्था देखकर पता चल गया कि अवतार हो गया। स्वय सरकार आगये। आँख खुल गई। पूरे सवाद का अर्थ लग गया।

राम रमापति कर धनु लेहू। खैंचहु मिटै मोर सदेहू ॥
देत चापु आपुहि चलि गयेऊ। परसुराम मन विसमय भयेऊ ॥४॥

अर्थ : हे राम! विष्णु का धनुष लो इसे चढाओ जिसमे मेरा सन्देह मिट जाय। धनुष देते समय स्वयं ही चले गये। अर्थात् जो थे सो नही रह गये। परशुरामजी के मन में बडा आश्चर्य हुआ।

व्याख्या : परशुरामजी ने कहा : वैष्णव धनुष को विष्णु ही चढा सकते हैं। वैष्णवतेजयुक्त होने से ही इस धनुष को मै धारण करता था। आप इसे खीचिये। यदि प्रत्यञ्चा चढ गयी तो मेरा सन्देह मिट जायगा। अब मुझे आपके पहिचानने मे इतना ही सन्देह है।

धनुष देते समय जो वैष्णवतेज[1] उनमे था वह चला गया। परशुरामजी निस्तेज से हो गये तब उन्हे बडा आश्चर्य हुआ। देवता के अस्त्रशस्त्र उनके स्वरूप से पृथक् नहीं होते। धनुष की चेतन सी क्रिया देखकर आश्चर्य हुआ।

दो० जाना राम प्रभाउ तब, पुलक प्रफुल्लित गात।
जोरि पानि बोले बचन, हृदय न प्रेमु अमात ॥२८४॥

---

१. त्रेतामुखे दाशरथिर्भूत्वा रामोऽहमव्यय।
उत्पत्स्ये परया शक्त्या तदा द्रक्ष्यसि मा तत।
मत्तेज. पुनरादास्ये त्वयि दत्तं मया पुरा। अध्यात्मे

भगवान् विष्णु ने परशुराम से कहा कि त्रेता मे मैं दाशरथि होकर पराशक्ति के सहित अवतीर्ण हूँगा। तब जब मुझसे तुम्हारी भेंट होगी तो मैंने जो अपना तेज तुम्हे दिया है उसे लौटा लूँगा। वही उस समय हुआ। रामजी ने अपना तेज परशुरामजी से ले लिया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ  तब उन्होने रामप्रताप जाना। उनका शरीर पुलकित और प्रफुल्लित हो गया। हाथ जोडकर वचन बोले। प्रेम हृदय मे अँटता नही था।

व्याख्या  पहिले कहते थे मोर प्रभाउ बिदित नहिं तोरे। उस समय रामजी के प्रभाव से अनभिज्ञ थे। अब जाना महात्मा हैं। इन्हे असूया नही। स्वरूपज्ञान होते ही प्रेम उमडा सो शरीर मे भर गया और समाता नही है अङ्ग अङ्ग से पुलक और प्रफुल्लता के मिस से बाहर निकला पडता है। मनसा  प्रेम न हृदय अमात। कर्मणा · जोरि पानि। वाचा  बोले वचन।

जय रघुबंस बनज बन भानू। गहन दनुज कुल दहन कृसानू॥
जय सुर बिप्र धेनु हितकारी। जय मद मोह कोह भ्रमहारी॥१॥

अर्थ · हे रघुवंशकमलवन के सूर्य! राक्षसकुलरूपी वन के जलानेवाले अग्नि! आप की जय हो। हे सुर विप्र धेनु के हितकारी! आपकी जय हो। हे मद, मोह, क्रोध और भय को हरण करनेवाले! आपकी जय हो।

व्याख्या  जिस भाँति कमलवन सूर्योदय से विकसित हो उठता है। इसी भाँति आपके अवतीर्ण होने से रघुवंश प्रफुल्लित हो रहा है। अर्थात् आप अपने वंश के समुन्नतिकारी है। यथा  स जातो येन जातेन याति वंश समुन्नतिम्। दनुजकुल इस समय वन की भाँति सघन और विस्तृत हो रहा है। उसके लिए आप अग्नि हैं। वन का नाश जिस भाँति अग्नि से होता है उस भाँति और किसी उपाय से नही होता। अग्नि मे ही यह सामर्थ्य है कि वन के विस्तारानुसार अपनी शक्ति का आकार प्रकट कर सकता है। सुर विप्र धेनु का अहित इन राक्षसो से हो रहा है। यथा  करहिं अनीति जाइ नहि बरनी। सोदहिं विप्र धेनु सुर धरनी। इनके हित के लिए ही आप दनुजवनकृसानु बन रहे हैं। मद मोह क्रोध और भ्रम आदि दोषो के बढने से अधर्म का अभ्युत्थान हो रहा है। उनका आप हरण करने वाले हैं। रघुवंशवनज वन भानु से रघुकुल मे अवतार कहा। दनुज वन गहनकृसानु से अवतार का प्रयोजन विनाशाय च दुष्कृताम् कहा। रघुवंश की ही प्रशंसा दोनो प्रभुओ के मुख से सुनी। यथा  कालहु डरैं न रन रघुवंसी। बस प्रभाउ उतर तेहि दीन्हा। सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इन पर न सुराई। अत भानू द्विवचन का प्रयोग किया। इसी भाँति दनुजवनदहन मे लक्ष्मणजी के सहायक होने से। यथा  जयति संग्राम सागर भयंकर तरन बरबाहु सेतू। कृसानू द्विवचन का प्रयोग किया।

सुर महिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इन पर न सुराई। सब प्रकार हम तुमसन हारे इत्यादि वाक्यो से अर्थ लग गया कि सुर विप्र धेनु हितकारी का आविर्भाव हो गया। तुम समसील धीर मुनि ग्यानी कहकर प्रशंसा करते हुए परशुरामजी को पुरुषार्थ का अभिमान न करने की शिक्षा दी। इसलिए मदहारी कहते हैं। छमा कोप बध बँधब गोसाईं। मोपर करिय दास की नाईं कहकर विनय करते हुए परशुरामजी को परधर्म के बहुमानरूपी अज्ञान त्यागने की शिक्षा दी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

इसलिए मोहहारी कहते हैं। तजिअ बिप्र वर रोष ' रिस तजिअ मुनीसा। इत्यादि प्रार्थनाओ से क्रोध न करने की शिक्षा दी। इसलिए कोहहारी कहते हैं। सुनि मृदु गूढ वचन रघुपति के। उघरे पटल परसुधर मति के। इसलिए भ्रमहारी कहते हैं। चारो उत्तरो से क्रमशः चारो दोषों का हरण किया। १ इससे चरित कहा।

विनय सील करुना गुन सागर। जयति वचन रचना अति नागर ॥
सेवक सुखद सुभग सब अंगा। जय सरीर छवि कोटि अनगा ॥२॥

अर्थ : विनयशील करुणा और गुणो के सागर वचनरचना मे अति नागर आपकी जय हो। सेवक के सुख देनेवाले सब अङ्गो से सुन्दर और शरीर मे करोडो कामदेव की शोभावाले आपकी जय हो।

व्याख्या : रामजी ने परशुरामजी के जनकजी से पूछने पर यथा ' वेगि बताव मूढ न त आजू : कहा। नाथ संभु धनु भंजनि हारा। होइहि कोउ एक दास तुम्हारा। ऐसे विनयपूर्वक उत्तर से जाना कि ये विनय के सागर है। इसी भाँति नाथ करिअ बालक पर छोहू कहने से जाना कि शीलसागर हैं। इतनी करुणा है कि ब्राह्मण के कोप करने पर अपराध स्वीकार किये लेते है। अपराधी मैं नाथ तुम्हारा। क्रोध से जल रहे हैं परशुरामजी। उनकी शान्ति के लिए अपराधी बनने को जो प्रस्तुत हो उसके करुणासागर होने मे कौन सन्देह है ? प्रभु सेवकहि समर कस। बेप विलोके कहेसि कछु। छमहु चूक। परसु अछत बड नाम तुम्हारा। नवगुण परम पुनीत तुम्हारे। ये वाक्यखण्ड कहनेवाले मे अपरिमित गुण के होने की सूचना देते है। इसलिए जाना कि गुणसागर हैं। सुनि मृदु गूढ वचन रघुपति के। उघरे पटल परसुधर मति के। इस भाँति धनुपविषयक वादविवाद मे मोहपटल को हटा देने से वचनरचना का पाण्डित्य स्पष्ट है। अत वचनरचना मे अति नागर हैं। परशुरामजी को संवाद के बीच मे ही जिन जिन गुणो का परिचय मिला उन्ही के आधार पर स्तुति कर रहे हैं। २ इससे गुण कहा।

सभय विलोके लोग सब जानि जानकी भीरु। तब बिना पूछे ही बोले। अत' ज्ञात हुआ कि सेवक सुखद है और : सुभग सब अगा। जय सरीर छवि कोटि अनगा : का तो सब गुणो से पहिले ही परशुरामजी साक्षात्कार कर चुके है। यथा : रामहि चितइ रहे भरि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन। ३ इससे रूप कहा।

करौ काह मुख एक प्रसंसा। जै महेस मन मानस हंसा ॥
अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता। छमहु छमामंदिर दोउ भ्राता ॥३॥

अर्थ ' एक मुख से मैं आपकी प्रशसा क्या करूँ। हे महेश के मनमानस के हस ! आपकी जय हो। बिना जाने मैने बहुत अनुचित : शब्द कहे। आप दोनो भाई क्षमा के मन्दिर हैं। क्षमा करें।

व्याख्या : परशुरामजी परम शैव है। यथा : भाल बिसाल त्रिपुड बिराजा। सो दोनो भाई राम लक्ष्मण को अपने इष्टदेव शिवजी के मनमानस के हस बतला

ankurnagpal108@gmail.com



रहे हैं। इतने से ही उनका हार्दिक भाव समझ लेना चाहिए। उनका कहना है कि मैं एक मुख से क्या प्रशंसा करूँ। यह द्योतित करता है कि अनेक मुखवाले शेष महेश भी प्रशंसा नहीं कर सकते। ४ इससे पराकाष्ठा का उत्कर्ष कहा।

मैंने अपने समझ मे सब उचित कहा था। परन्तु अब मोह का परदा हट जाने से मालूम हुआ कि वे वचन अनुचित थे। आप लोगों के स्वरूप का ज्ञान मुझे नहीं था। अतः बहुत सी अपमानसूचक बातें मैंने मनुष्य जानकर आपको कही। आप दोनो भाई क्षमा के मन्दिर हो। बराबर मेरे अपराध को क्षमा करते ही गये। पर अब मैं क्षमाप्रार्थना करता हूँ। आपने मुझसे छमहु चूक अनजानत केरी कहा था। अब मैं वही प्रार्थना आप से करता हूँ। मेरे अनुचित कथन को क्षमा करो। दूसरा कोई वरदान नहीं चाहता। ५ इससे प्रार्थना की।

ये ही पाँच बातें इस चौथे गुणग्राम मे हैं। चौथा गुणग्राम रोहिणी नक्षत्र मे ये ही पाँच तारे चमकते हैं। आकार शकट सा है। इसमे धर्मरथ की सम्पूर्ण बातें संक्षेप मे दिखलायी गई हैं। इसलिए शकटाकार कहा। इस चौथे गुणग्राम के विषय मे कहा गया है विबुध वैद भव भीम रोग के। सो भव भीम रोग भगवत् और भागवत अपराध है। सो दोनो का क्षमापन इस स्तुति से हुआ। इस गुणग्राम मे दोनो भाइयो की एक साथ स्तुति हुई। इसलिए विबुध वैद्य : अश्विनी कुमार कहा। विबुध वैद्य भी दो भाई हैं और दोनो एक साथ रहते हैं।

कहि जय जय जय रघुकुलकेतू। भृगुपति गए बनहि तप हेतू॥
अपभयँ कुटिल महीप डेराने। जहँ तहँ कायर गवँहि पराने॥४॥

अर्थ रघुकुल की पताका की जय हो। जय हो। ऐसा कहकर भृगुपति तप ही के लिए वन गये। निर्मूल डर से राजा लोग डर गये और कादर चुपके से इधर उधर भाग गये।

व्याख्या नव बार जय जय कहा। क्योंकि सात बार लक्ष्मण भागवत का और दो बार रामजी भगवत् का अपमान किया था। लक्ष्मण का अपमान। यथा : १ रे नृप बालक कालवस बोलत तोहि न सँभार। २ रे सठ सुनेहि सुभाउ न मोरा। ३ परसु सुधारि धरेउ कर घोरा कटुवादी बालक बध जोगू। ४ न त एहि काटि कुठार कठोरे। ५ राम तोर भ्राता बड पापी। ६ बिषरस भरा कनक घट जैसे। ७ एहि के कंठ कुठार न दीन्हा। तौ मैं कहा कोप करि कीन्हा। रामजी का अपमान यथा १ संभु सरासन तोरि सठ करेसि हमार प्रबोध। २ बोले भृगुपति सरुख हँसि तहूँ बंधु सम बाम। इस भाँति नव बार के अपमान के परिमार्जन के लिए नव बार उत्कर्ष सूचक जयकार किया। रघुकुल केतु कहने का भाव यह है कि श्रुति सेतु रक्षक हैं। यथा रघुकुल केतु सेतु श्रुति रक्षक। ऐसा कहकर परशुरामजी तप के लिए वन गये। अर्थात् समाज की चिन्ता छोड दी। जिसका समाज है वह स्वयं आगया। अब वह ब्राह्मणत्व की रक्षा कर लेगा। रघुवंस से उपक्रम करके इस प्रसङ्ग का रघुकुल केतु से उपसंहार करते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



निर्मूल डर से राजा लोग डर गये कि परशुरामजी अपने काम का भार इन्हे देकर गये। यह पहिले से ही कह रहे थे : आयसु काह कहिअ किन मोही। मो कही ये भी नि.क्षत्र करना ठान न लें। इनसे परशुराम जी दब गये तो हम लोगो की गिनती ही क्या है इसलिए कादर तो इस भाँति धीरे से निकल भागे कि उनका पता भी न लगा कि किधर गये।

## ८ : विवाह प्रसङ्ग

दो. देवन्ह दीन्ही दुंदुभी, प्रभु पर बरषहि फूल।
हरषे पुर नर नारि सब, मिटी मोहमय सूल ॥२८५॥

अर्थ : देवताओ ने नगाडे बजाये और प्रभु के ऊपर फूल बरसाये। पुर के नर नारि हर्षित हुए। मोहमय शूल मिट गया।

व्याख्या : देवताओ ने डका दिया। भारी विजय हुई। सहस्रबाहु ने रावण को जीता और वह परशुरामजी द्वारा मारा गया। परशुरामजी पर रामजी ने विजय पाई। अतः सिद्ध हो गया कि रावणवध इनके लिए दुष्कर नही है। पराक्रम की पूजा हो रही है। देवता लोग पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। थर थर काँपहि पुर नर नारी। क्योंकि उन्हे मोह से शूल उठा हुआ था। यथा : मोह सकल व्याधिन कर मूला। तेहि ते पुनि उपजै बहु सूला। सो परशुरामजी के पराजय से रामजी के स्वरूप का बोध हुआ। मोहमय शूल मिटा और वे हर्षित हुए।

अति गहगहे बाजने बाजे। सबहि मनोहर मंगल साजे॥
जूथ जूथ मिलि सुमुखि सुनयनी। करहि गान कल कोकिल बयनी ॥१॥

अर्थ : बडे आनन्द से बाजे बजे। सबने सुमगल साज सजे। झुण्ड के झुण्ड इकट्ठी होकर सुमुखी सुनयनी और कोकिलबयनी सुन्दर सुन्दर गान करने लगी।

व्याख्या : पहिले ही पुर अरु व्योम मे बाजने बजे थे। राजाओ के गोलमाल से बन्द हो गये थे। तबतक परशुरामजी आगये। दूसरा काण्ड ही उपस्थित हो गया। इनके हटते ही और भी अधिक उत्साह से बाजे बजने लगे। सबलोग अपने घर गये और मनोहर मगल साज जिसका वर्णन आगे होगा साजने लगे। जायसी ने भी गहगहे शब्द का प्रयोग आनन्द के अर्थ मे किया है।

पहिले जहँ तहँ जुवतिन मगल गाये। अब घर लौटकर आई तो झुण्ड की झुण्ड इक्ट्ठा होकर गान करने लगी। रूप और स्वर दोनो की बहार है। यहाँ सुनयनी शब्द से स्वय महतारी का भी गान मे सम्मिलित होना द्योतित किया। कहाँ : मन पछितात सीय महतारी। बिधि अब सँवरी बात बिगारी। कहाँ गाने लग गई।

सुख बिदेह कर बरनि न जाई। जन्मदरिद्र मनहुँ निधि पाई॥
बिगत त्रास भय सीय सुखारी। जनु बिधु उदयँ चकोर कुमारी ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ विदेह के सुख का वर्णन नही किया जा सकता। मानो जन्मदरिद्र को निधि मिल गई। भय से रहित होकर सीताजी सुखी हो गईं। जैसे चन्द्रोदय से चकोरकुमारी सुखी होती हैं।

व्याख्या विदेह राजा ब्रह्मज्ञान मे रत हैं। ब्रह्मानन्द की प्राप्ति उन्हे सदा है। परन्तु वह अविच्छिनावस्था है। उस अवस्था मे अपनी स्थिति छोडकर और कुछ रहता ही नही। यह सिद्धि इन्हे जन्म से है। यथा सहज विराग रूप मन मोरा। इसलिए जन्म दरिद्र से उपमा दी। इन्हे सगुण ब्रह्म की प्राप्ति जामाता रूप से हुई। सो सुखकर लवलेस जिन वारक सपनेहु लहेहु। ते नहिं गनहि खगेस ब्रह्म सुखहि सज्जन सुमति। इसलिए कहते हैं कि मानो जन्मदरिद्र को अपक्षयशून्य निधि मिल गई। सीताजी को परशुराम के आने से चन्द्रास्त का भान होने लगा था। यथा ' भृगुपति कर सुभाउ सुनि सीता। अर्ध निमेष कल्प सम बीता। सो ऐसी सुखी हो गई जैसे चन्द्रादय से चकोर कुमारी सुखी होती हैं। चकोरी का प्रेम चन्द्र म स्वाभाविक है। यहाँ रामजी के अभ्युदय की उपमा चन्द्रोदय से दी गई। चकोरकुमारी को चन्द्र के प्रति बडा चाव रहता है। क्योकि वह उसके लिए अपूर्ववस्तु है। चकोरी को भी प्रीति है। पर उतना चाव नही। बहुत दिनो से चन्द्र को देखती आती है।

जनक कीन्ह कौसिकहि प्रनामा। प्रभु प्रसाद धनु भजेउ रामा॥
मोहि कृतकृत्य कीन्ह दुहुँ भाई। अब जो उचित सो कहिअ गोसाई॥३॥

अर्थ जनक ने विश्वामित्रजी को प्रणाम किया और कहा कि आपके प्रसाद से रामजी ने धनुष को तोड दिया। दोनो भाइयो ने हमे कृतार्थ किया। अब जो करना उचित हो सो मुझे बतलाइये।

व्याख्या धनुर्भङ्ग के बाद प्रणाम करने का समय ही नही मिला। भारी उपद्रव खडा हो गया। सो अब प्रणाम करने का अवकाश मिला। गुरुहि प्रनाम मनहि मन कीन्हा। अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा। अत कहते हैं प्रभु प्रसाद धनु भजेउ रामा। जनकजी कहते है कि आपही रामजी को लाये। आपने ही आशीर्वाद दिया सुफल मनोरथ होहिं तुम्हारे। आपही ने आज्ञा दी उठउ राम भजउ भव चापा। मेटहु तात जनक परितापा। अत आपके ही प्रसाद से सब हुआ। रघुपति कीरति विमल पताका। दड समान भयउ जस जाका। सो धनुर्भङ्ग मे परशुराम पराजय म सभी म लक्ष्मण का हाथ रहा। इससे कहते है मोहि कृतकृत्य कीन्ह दोउ भाई। मै तो हार गया था। हताश हो गया था कुँवरि कुँआरि रहौं का करऊँ। पर इन्होने हम कृतकृत्य किया। अब जो उचित हो सो बतलाइये। भाव यह कि विवाह विधि होगी या कन्या को साथ कर देना पडेगा। ऐसे अवसर पर दाना विधान देखे जाते हैं। यथा दुलहिनि लैगे लच्छि निवासा। नृप समाज सब भयउ निरासा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कह मुनि सुनु नरनाथ प्रवीना। रहा विवाहु चाप आधीना ॥
टूटतही धनु भयेउ विवाहू। सुर नर नाग विदित सब काहू ॥४॥

अर्थ : मुनिजी ने कहा : हे प्रवीण राजा ! सुनो। विवाह तो धनुष के अधीन था। धनुष टूटते ही विवाह हो गया। देवता नर नाग सभी जानते हैं।

व्याख्या : राजा को प्रवीण विशेषण इसलिए दिया कि राजा लोक और वेद दोनो के व्यवहार मे कुशल हैं और कहा कि विवाह तुम्हारे अधीन तो था नही। तुमने प्रण करके उसे धनुष के अधीन कर दिया था। तुम्हारे अधीन होता तो कुछ कहने सुनने का अवसर था। धनुष टूटना विवाह का होना एक बात है। विवाह मे देवता साक्षी रक्खे जाते है। यहाँ तीनो लोक साक्षी है। देवता नर नाग सभी जानते हैं। अतः व्याह हो गया।

दो० तदपि जाइ तुम्ह करहु अब, जथा बंस ब्यवहारु।
बूझि बिप्र कुलवृद्ध गुर, बेद बिदित आचारु ॥२८६॥

अर्थ : फिर भी जाकर अपनी कुल रीति के अनुसार ब्राह्मण लोग कुल वृद्ध और गुरु से पूछकर वंशव्यवहार और वेदाचार करो।

व्याख्या : फिर भी लोकाचार और वेदाचार दोनो होने चाहिए। अतः वंशव्यवहार जातिधर्म तो कुलवृद्धो से पूछकर करिये और वेदव्यवहार के लिए ब्राह्मणो और कुलगुरु की अनुमति लीजिये। यथा : लोकवेद विधि मजुल कूला। भाव यह कि आप प्रवीण हैं। लोक वेद दोनो मे कुशल है। वरपक्ष की सम्मति जानने के लिए मुझसे पूछ रहे हैं तो मेरी सम्मति यह है कि परिस्थितिविशेष के कारण यद्यपि अब कोई व्यवहार अनिवार्य नही है तथापि लोकवेदमर्यादा के पालन की दृष्टि से सब कुछ जानते हुए भी बडो से पूछ पूछकर करिये।

दूत अवधपुर पठवहु जाई। आनहि नृप दसरथहि बोलाई ॥
मुदित राउ कहि भलेहि कृपाला। पठए दूत बोलि तेहि काला ॥१॥

अर्थ : जाकर अयोध्या दूत भेजो। राजा दशरथ को बुला लावे। राजा ने आनन्दित होकर कहा हे कृपाल ! वहुत अच्छा। उसी समय दूत को बुला करके भेज दिया।

व्याख्या : यहाँ से जाकर अयोध्यापुरी दूतो को भेजो। भाव यह कि एक राजा को दूसरे राजा के यहाँ दूत भेजना है सो प्रचलित नियमानुसार पत्रादि मुद्राङ्कित करके भेजना होगा। रङ्गभूमि का कार्य समाप्त हो गया। अब यहाँ से सभी को अपने अपने निवासस्थान पर चलना है। तुम जाकरके पहिला काम यही करो। वे दूत जाकर महाराज दशरथ को बुला लावे। विश्वामित्रजी अपनी विशेष सम्मति दे रहे हैं। क्योकि अवतक पिता स्थानीय होकर वे ही आज्ञादि देते थे। यथा : उठहु राम भजउ भव चापा इत्यादि। पर अब तो समधी बनना है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


यह काम महाराज दशरथ ही कर सकते है। विश्वामित्रजी के स्वरूप के प्रतिकूल है। वे नही कर सकते।

राजा जनक प्रसन्न हो गये। क्योकि वे भी यही चाहते थे। सो जाकर नही उसी स्थान पर दूतो को बुलाकर भेजा। जिसमे दूत जाकर कहे कि विश्वामित्रजी की सम्मति के अनुसार महाराज ने मुझे भेजा है। वे वहाँ उस समय थे जब हम चले। भाव यह कि महाराज दशरथ के बुला भेजने म विदेहराज सङ्कुचित हो रहे है कि यह बडी ढिठाई है। आगे चलकर कहेगे भी अपराध छमिओ बोलि पठये बहुत हौं ढीठ्यौ कई। महर्षि विश्वामित्र की सम्मति जान लेने पर बुलाया जाना ढिठाई न समझी जायगी। इसलिए उनके सामने ही दूत भेजे गये।

बहुरि महाजन सकल बोलाए। आए सबन्हि सादर सिर नाए॥
हाट बाट मंदिर सुरवासा। नगर सवारहु चारिहु पासा॥२॥

अर्थ फिर जनकजी ने सब महाजनो को बुलाया। सबने आकर राजा को आदर सहित सिर नवाया। राजा ने आज्ञा दी कि बाजार, मार्ग, मन्दिरो को तथा नगर को चारो ओर से सजाओ।

व्याख्या तत्पश्चात् महाराज जनक ने नगर के सब रईसो को बुलवाया। महाराज दशरथ के स्वागत के लिए तैयारी होनी चाहिए। सब रईस उपस्थित हुए। श्रद्धा से सबने महाराज को प्रणाम किया। यह कथा रङ्गभूमि से चलकर घर पहुँचने के बाद की है। राजाओ के स्वागत म अथवा महोत्सव उपस्थित होने पर हाट बाट मन्दिर चारो ओर सजाये जाते हैं और यह काम नगर के रईसो का है। महाराज दशरथ चक्रवर्ती है। उनके स्वरूप के अनुकूल स्वागत होना चाहिए। अत चारो ओर से नगर सजाने की आज्ञा दी गई। यहाँ मन्दिर स देवस्थान अभिप्रेत है। क्योकि घरो का सजाना ही नगर का सजाना है।

हरषि चले निज निज गृह आये। पुनि परिचारक बोलि पठाए॥
रचहु बिचित्र बितान बनाई। सिर धरि बचन चले सचुपाई॥३॥

अर्थ रईस महाजन लोग हर्षित होकर चले और अपने अपने घर आये। फिर राजा ने परिचारको कारपरदाजो को बुलावा भेजा और आज्ञा दी। विचित्र मण्डप बनाकर सजाओ, राजाज्ञा शिरोधार्य करके वे भी सुखी होकर चले।

व्याख्या राजाज्ञा मिलने पर उन रईसो को हर्ष हुआ कि हम लोगो को आज महाराज की सेवा का सौभाग्य प्राप्त हुआ। समधी के स्वागत की तैयारी करनी है। सो तदनुसार कार्य करने के लिए अपने अपने घर गये। नगर के सजने की व्यवस्था पहिले करके तब राजा ने अपने परिचारको कारपरदाजो को बुलवा भेजा। उनके आने पर आज्ञा हुई कि ऐसा मण्डप बनाकर साजो कि जो विचित्र हो। वे लोग राजाज्ञा पाकर सुखी हुए। वे लोग ऐसे सिद्धहस्त है कि इतनी ही आज्ञा उनके लिए यथेष्ट है। आज्ञा शिरोधार्य करके तुरन्त चल पडे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पठये बोलि गुनी तिन्ह नाना। जे वितान विधि कुसल सुजाना ॥
बिधिहि वंदि तिन्ह कीन्ह अरंभा। बिरचे कनक कदलि के खभा ॥४॥

अर्थ : उन्होंने अनेक प्रकार के गुणियो को बुला भेजा। जो मण्डप बनाने की विधि के जानकार थे और दक्ष थे। ब्रह्मदेव की वन्दना करके उन्होने कार्यारम्भ किया। स्वर्ण के केले के खम्भे बनाये।

व्याख्या उन परिचारकों ने अनेक प्रकार के शिल्पियों को बुलाया। वे जानते थे कि मण्डप की रचना मे कितने प्रकार के शिल्पियो की आवश्यकता पड़ती है। उतने प्रकार के शिल्पी बुलाये गये। उन लोगो ने तुरन्त कार्यारम्भ कर दिया। पहिला काम यह किया कि विधि की वन्दना की क्योंकि रचना के मूलस्रोत वही है। दूसरे यह कि उन्ही की रचना का उन्हे अनुकरण करना है। मण्डप के सोलहो स्तम्भो मे केले के स्तम्भो के बाँधने का विधान है। कब तक व्याह होगा अभी इसका निश्चय नही है। केले के खम्भे तब तक सूख जायँगे। इसलिए सोने के खम्भे ही कदली स्तम्भों के आकार के बनाये गये। कारीगरी दो प्रकार की होती है। एक मे अल्पमूल्य वस्तुओं को ऐसा सजाते है कि वह अत्यन्त भड़कीला दूर से ही मालूम पड़े। दूसरा प्रकार यह है कि बाहर से बिल्कुल सादा मालूम पड़े। निकट से विचार पूर्वक देखने पर अत्यन्त सूक्ष्म शिल्पकला का तथा उसके बहुमूल्यतर का परिचय मिल सके। इन शिल्पियो ने दूसरे प्रकार का अवलम्बन किया। ऐसे खम्भे बनाये जो देखने मे केले के हो पर वस्तुत सोने के हो।

दो हरित मनिन्ह के पत्र फल, पद्मराग के फूल।
रचना देखि बिचित्र अति, मनु बिरंचि कर भूल ॥२८७॥

अर्थ हरे मणियो के पत्ते और फल बनाये और पद्मराग मणियो के फूल बनाये। अति विचित्र रचना देखकर ब्रह्मदेव का मन भूल जाय।

व्याख्या · केले के खम्भे का रग पीला फल और पत्ते का रग हरा और फूल का रग लाल होता है। अत स्वर्ण के स्तम्भ पन्ने के पत्र फल और मणिक्य के फूल बनाये। विचित्र रचना के लिए राजा ने आज्ञा दी थी। इन लोगो ने अति-विचित्र बनाया। जिसे देखकर लोग भूल जायँ वह विचित्र है और जिसे देखकर स्वय ब्रह्मदेव भूल जायँ वह अतिविचित्र है। मिथिला मे आज भी मण्डप बड़ा सुन्दर बनता है। सोलह केले के स्तम्भो के स्थान मे कृत्रिम खम्भे बनाये। गये केले मे ही विरञ्चि का भूलना लिखा। क्योकि उसके भीतर की भी रचना केले सी ही थी। सर्वात्मना केला ही मालूम होता था।

बेनु हरित मनिमय सब कीन्हे। सरल सपरब परहि नहिं चीन्हे ॥
कनक[1] कलित अहिबेलि बनाई। लखि नहिं परइ सपरन सोहाई ॥१॥

---

१ यहाँ 'निरुक्ति' अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ हरे मणियो के बाँस बनाये जो सीधे और गाँठ से युक्त थे। पहिचाने नही जाते थे। पान की लता सोने की बनाई। जो खम्भो पत्तो से युक्त थी। पर पहिचानी नही जा सकती थी कि स्वाभाविक है या कृत्रिम।

व्याख्या हरे मणि के बाँस बनाये गये और उन बाँसो से मण्डप बनाया गया। वे सीधे बनाये गये थे जिसमे मण्डप कही से टेढा न बन जाय। अब उन्हे बाँधने की आवश्यकता पडी तो वे पान की बेलि से बाँधे गये। वे वल्लियाँ भी सोने की बनाया गई जिनमे पत्ते भी लगे थे। सच्ची पान की लताओ से उनका भेद नही जाना जाता था।

तेहि के रचि पचि बध बनाए। बिच बिच मुकुतादाम सुहाए॥
मानिक मरकत कुलिस पिरोजा। चीरि कोरि पचि रचे सरोजा॥२॥

अर्थ रचकर और पच्चीकारी करके उसी के बन्धन बनाये। बीच बीच मे मोती की मालाएँ शोभायमान थी। माणिक्य, नीलम, हीरा और फिरोजा को चीर करके छील करके और पच्चीकारी करके कमल बनाये।

व्याख्या उसी पान की लता से रच करके और पच्चीकारी करके बन्धन बनाया। इस भाँति मण्डप तैयार हुआ। बीच बीच मे फूल की मालाओ के स्थान मे मोतियो की मालाएँ लटकायी गईं। अर्थात् मण्डप ठीक उसी भाँति मालूम होता था जैसा कि बाँस, लता आदि से सामान्यत बनाया जाता है। पर वस्तुत वह मणिमण्डप था।

लाल, नीले, श्वेत और पीत कमल उस उस वर्ण के मणियो से बनाये गये। परन्तु कमलो मे हलका रग फोका रग तथा पीली ढोढी भी होती है। अत रत्नो को चीरना छोलना और पच्ची करना पडा।

किए भृ ग बहुरंग बिहगा। गुजहि कूजहि पवन प्रसगा॥
सुर प्रतिमा खभन गढि काढी। मगल द्रव्य लिये सब ठाढी॥३॥

अर्थ भौंरे और बहुत रगो के पक्षी बनाये। जो हवा लगने पर गूँजते और कूजते थे। देवताओ की मूर्तियाँ खम्भो मे गढकर निकाली गईं जो मगलद्रव्य लिये खडी थी।

व्याख्या अब दूसरी प्रकार की कारीगरी की गई। कमलो पर गूँजने के लिए भौंरे बनाये गये। केलो के वृक्ष पर बैठकर कूजने के लिए कृत्रिम चिडिया बनायी गईं और वे ऐसी बनी कि जब हवा चले तो भौंरे गूँजने लगे और चिडियाँ कूजने लगी।

खम्भे जिनके आधार पर मण्डप खडा था उनमे देवताओ की मूर्तियो की निकासी की गई थी। मानो वे मङ्गलद्रव्य लिये खडी है। मृगराजो वृषो नाग कलशो व्यजनन्तथा। वैजयन्ती तथा भेरी दीप इत्यष्टमङ्गलम्। सिंह, बैल, हाथी, घट, पखा, झण्डी, भेरी और दीप ये आठ मङ्गल है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चौके भाँति अनेक पुराई। सिंधुर मनिमय सहज सोहाई ॥४॥

अर्थ : अनेक प्रकार के चौक पूरे गये। वे गजमुक्ताओ से बने थे और स्वभाव से ही सुन्दर थे।

व्याख्या : इस समय अनेक प्रकार के चौक पूरने की चाल दक्षिण मे रह गई है। वे एक यन्त्र से जिसे रँगोली कहते है अनेक रग भरकर अनेक प्रकार के बेलबूटेवाले चौक पूरते है। चौक पूरने मे आटा या सगमरमर के चूर्ण से काम लिया जाता है पर यहाँ तो गजमुक्ता से काम लिया गया। चौक अनेक प्रकार से पूरे गये जो स्वभाव से ही सुन्दर थे। पर वह सुन्दरता और भी बढ गई जब उसमे गजमुक्ताओ से काम लिया गया।

दो. सौरभ पल्लव सुभग सुठि, किए नीलमनि कोरि।
हेम बौर मरकत घवरि, लसत पाटमय डोरि ॥२८८॥

अर्थ : नीलममणि को कोर: छीलकर उन्होने आम के सुन्दर पल्लव बनाये। सोने का बौर बनाया। मरकत के घौद बनाये। जो रेशम की डोरी में शोभायमान हुए।

व्याख्या : बौर और घौद : टिकोरे के गुच्छो के सहित आम के सुन्दर पत्तो को रेशम की डोरी मे गूँथा। वे पत्ते और घौद नीलम और मरकत मणि को छील-कर बनाये गये थे और बौर सोने का बनाया गया क्योकि वह पीला होता है। पत्ते और घौद अति हरित होने से नील प्रतीत होते हैं। अत नीलमणि के बनाये गये। साधारण डोरी मे वे भारी होने से लटकाये नही जा सकते। अत: रेशम की डोरी मे गूँथे गये।

रचे रुचिर बर बंदनिवारे। मनहु मनोभव फंद सँवारे ॥
मंगल कलस अनेक बनाए। ध्वज[1]पताक पट चँवर सोहाए ॥१॥

अर्थ : इस भाँति सुन्दर वन्दनवार बनाये। मानो कामदेव ने फन्दे सजा रक्खे है। अनेक मङ्गल कलश बनाये गये। ध्वजा पताका कपडे और चँवर से शोभाय-मान हुए।

व्याख्या : पूर्वोक्त रीति से वन्दनवार बनाकर उस मण्डप मे बाँधे गये। इन वन्दनवारो की उपमा कामदेव के फन्दे से दी गई। भावार्थ यह कि वन्दनवार ऐसे सुन्दर थे कि मन मोहित हो जाता था। मण्डप मे यथास्थान स्थापन के लिए मङ्गलघट सँवारे गये। ध्वजा लम्बी और पताका तिरकोनी होती है। इसीलिए ध्वजा को कदली और पताका को ताल के पत्ते से उपमित किया है। यथा : कदलि

---

१. किसी का मत यह है कि ध्वजा सात हाथ की और पताका पाँच हाथ की होती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तालवर ध्वजा पताका और चँवर यथास्थल लगाये गये। चँवर शोभा के लिए मण्डप मे लगाने का विधान है। मण्डप के ऊपर कपडा मढा गया।

दीप मनोहर मनि मय नाना। जाइ न बरनि विचित्र विताना॥
जेहि मंडप दुलहिनि वैदेही। सो बरनै असि मति कवि केही॥२॥

अर्थ मनोहर मणिमय दीप थे। उस विचित्र मण्डप का वर्णन नही हो सकता। जिस मण्डप मे वैदेही दुलहिन हो उसके वर्णन करने को बुद्धि किस कवि को हो सकती है।

व्याख्या मनोहर मणियो के अनेक दीप रक्खे गये। ठण्डी रोशनी के लिए : किसी समय भारतवर्ष मे मणियो से दीपक का काम लिया जाता था। बंगाल के नवाब सिराजुद्दौला के समय तक ठण्डी रोशनी के जवाहिरात का पता चलता है। मणिदीपक की आवश्यकता इसलिए रहती है कि विवाह प्रायेण रात्रि के समय होता है। सक्षेपत ऐसा मण्डप बना कि जिसका वर्णन नही किया जा सकता। यही मण्डप की विचित्रता है कि मणिमय मण्डप तैयार किया गया। पर देखने मे लताद्रुममय मालूम पडता था।

यह वर्णन अधिक नही है न अतिशयोक्ति है। इतना कहने पर भी कोई यह न समझे कि कवि पूरा वर्णन कर पाया। अत कवि जवाब देते है कि बुद्धि के अनुसार मैं वर्णन करता हूँ। जिस मण्डप मे साक्षात् महालक्ष्मी वैदेही दुलहिन हो उसे वर्णन करनेवाला कौन कवि है अर्थात् कोई नही। जो मैंने वर्णन किया है वह अत्यन्त अल्प है।

दूलहु रामु रूप गुन सागर। सो बितानु तिहुँ लोक उजागर॥
जनक भवन कै सोभा जैसी। गृह गृह प्रति पुर देखिअ तैसी॥३॥

अर्थ और जिसमे रूपगुणसागर रामजी दुल्हा हो वह मण्डप तीनो लोक मे प्रकाशित है। जनक के घर की जैसी शोभा थी वैसी शोभा नगर मे घर घर दिखाई पडती थी।

व्याख्या जिस मण्डप मे रूपगुणसागर रामजी दुल्हा बनें वह मण्डप क्या साधारण हो सकता है? इसलिए आगे चलकर इस मण्डप की उपमा जीवउर से देगे। भाव यह कि जिस भाँति जीव का उर त्रैलोक्य का प्रकाशक है। जीव को उर हृदय न हो तो त्रैलोक्य अन्धकारमय हो जाय। इसी भाँति यह मण्डप त्रैलोक्य का प्रकाशक है। राजा के घर की शोभा कहकर अब पुरजन के घरो की शोभा कहते हैं।

अब महाजनो की करतूत कहते है कि उन्होने सभी घरो को ऐसा सजाया कि राजा का घर जान पडे। जब बारात आवे तो उसे सभी मकान राजगृह मालूम हो। अथवा मिथिला नगरवासी ही ऐसे समृद्ध थे और उनकी राजा पर इतनी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भक्ति थी कि उन्होने ऐसे उत्सव के समय स्वय उत्साह से पूर्ण होकर अपने घरो की राजगृह सी सजावट की ।

जेहि तेरहुति तेहि[1] समय निहारी । तेहि लघु लगति भुवन दस चारी ॥
जो संपदा नीच गृह सोहा[2] । सो विलोकि सुरनायक मोहा ॥४॥

अर्थ · जिसने तिरहुत को उस समय देखा उसे चौदह भुवन तुच्छ जान पडे । जो सम्पदा नीच के गृह में शोभायमान थी उसे देखकर देवराज मोहित हो गये ।

व्याख्या : तीरभुक्ति का तद्भवरूप तेरहुति है । इस समय के तिरहुत से उस समय के तिरहुत की कोई कल्पना नही हो सकती । उस समय तिरहुत के सामने चौदह भुवन की शोभा तुच्छ मालूम होती थी । भाव यह कि जहाँ वैदेही है वही वैकुण्ठ की शोभा उतर आवेगी । वैकुण्ठ का विभव ही ऐसा है कि वहाँ के निकृष्टतम निवासी के ऐश्वर्य पर भी देवराज इन्द्र मोहित होते हैं । इसी बात को निम्नलिखित दोहे मे स्पष्ट करते है ।

दो. बसै नगर जेहि लच्छि करि, कपट नारि वर वेपु ।
तेहि पुर कै सोभा कहत, सकुचहि सारद सेपु ॥२८९॥

अर्थ : जिस नगर मे साक्षात् लक्ष्मी माया से स्त्री का सुन्दर रूप धारण करके बसती हैं उस पुर की शोभा कहने मे सरस्वती और शेष को सङ्कोच ही होगा । क्योकि वैसी शोभा न तो ब्रह्मलोक मे है और न भोगावती मे है ।

व्याख्या : जिस नगर मे साक्षात् लक्ष्मी माया से स्त्री रूप होकर रहती हैं वहाँ वैकुण्ठ भी माया से नगररूप मे अवतीर्ण होगा ही । वैकुण्ठ के निवासी भी माया से मनुष्यरूप मे उस नगर के निवासी होगे । यथा पुर नर नारि सुभग सुचि संता । धर्मसील ग्यानी गुनवंता । अत उसकी शोभा वर्णन मे ब्रह्मलोक और पाताललोक के वक्ताओ मे सङ्कोच होना प्राप्त ही है । यथा सुनु मतिमंद लोक वैकुंठ । रत्नादिको ने भी कदली वृक्षादि का कपट रूप धारण किया । साधारण वस्तुओ मे किसी दुर्लभ वस्तु के आजाने से शोभा आजाती है । यहाँ दुर्लभ वस्तुओ को ही साधारण रूप दिया जा रहा है ।

पहुँचे दूत राम पुर पावन । हरषे नगर विलोकि सोहावन ॥
भूप द्वार तिन खबरि जनाई । दसरथ नृप सुनि लिए बोलाई ॥१॥

अर्थ : दूत रामजी की पवित्रपुरी मे पहुँच गये[3] । शोभायमान नगर को

---

१. यहाँ उदात्तालङ्कार है ।

२. यहाँ सम्बन्धातिशयोक्ति है ।

३. आश्विन शुक्ल १५ का दूत मिथिला से अयोध्या को चले । चार रात्रि रास्ते मे बीती । कार्तिक कृष्ण पञ्चमी को अयोध्या पहुँचे ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



देखकर हर्षित हुए। राजद्वार पर उन्होने समाचार दिया। महाराज दशरथ ने सुनकर उनको बुला लिया।

व्याख्या पठए दूत अवध तेहि काला से प्रसङ्ग छोडा था। दूत लोग अवध जा रहे थे। इसी बीच मे ग्रन्थकार ने बारात के स्वागत के लिए जनकपुर की तैयारी का वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया। उधर तैयारी हो रही थी और इधर दूत लोग पवित्र रामपुर मे पहुँच गये। यही से फिर उसी कथा को उठा लिया। पहुँचे दूत रामपुर पावन। ससुराल मे जामाता की ही प्रधानता होती है। अत दूत लोग अपने मन मे यह बात लेकर चले थे कि हमे रामपुर जाना है। अत· पहुँचने पर कवि भी दशरथपुर न कहकर रामपुर पावन कहते हैं। अयोध्या मोक्षपुरी है इसलिए पावन कहा। तीन रात रास्ते मे बसकर चौथे दिन अयोध्या पहुँचे। जनकपुर · तिरहुत का वर्णन ऊपर हो चुका है। ऐसे रमणीय नगर के रहनेवाले दूतो को भी अयोध्या पुरी ऐसी सोहावनी मालूम पडी कि वे आनन्दित हो उठे। इतने से ही अयोध्या की शोभा के उत्कर्ष को ग्रन्थकार ने दिखला दिया। वाराहक्षेत्र के निकट धामपुर ग्राम है। महात्माओ का मत है कि वही पहुँचकर दूतो ने अवध देखा।

दूत की गति राजद्वार तक है। इसके आगे बिना राजाज्ञा के प्रवेश नही हो सकता। अत दूतो ने वहाँ से राजा के पास समाचार भेजा। महाराज उस समय राजसभा मे थे। अत तुरन्त बुला लिया।

करि प्रनाम तिन पाती दीन्ही। मुदित महीप आप उठि लीन्ही ॥
बारि बिलोचन बाँचत पाती। पुलक गात आई भरि छाती ॥२॥

अर्थ उन्होने प्रणाम करके चिट्ठी दी। राजा ने प्रसन्न होकर स्वय उठकर ली। चिट्ठी बाँचते समय आँखो मे आँसू आगये। रोमाञ्च हो गया। छाती भर आई।

व्याख्या दूत का प्रणाम करना कर्तव्य है। शत्रु राजा को भी दूत प्रणाम करता है। यथा . बैठ सभा सिर नाय। अङ्गदजी ने भी रावण की सभा में जाकर प्रणाम किया। यहाँ तो मित्र राजा के यहाँ दूत गये है। जनकजी का इतना आदर महाराज दशरथ की दृष्टि मे है कि उनकी पत्री का आदर अभ्युत्थान देकर करते हैं। पत्र का मिलना आधो भेंट माना गया है। इसलिए राजा का मुदित होना कहा। स्वय चिट्ठी को लिया और मन्त्री से न बँचवाकर स्वय बाँचने लगे।

अश्रु, स्वरभङ्ग और पुलक ये तीनो अनुभाव हर्ष और शोक दोनो के होते हैं। यथा . सजल सखो गिरिजा गिरि मयना। पुलक सरीर भरे जल नयना। नारदहू यह भेद न जाना। दसा एक समुझव बिलगाना। सो चिट्ठी पढते समय महाराज मे अश्रुपुलक और छाती का भर आना तीनो बातें दिखाई पडी।

रामु लषनु उर कर बर चीठी। रहि गये कहत न खाटी मीठी ॥
पुनि धरि धीर पत्रिका बाँची। हरषी सभा बात सुनि साँची ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ : राम लक्ष्मण हृदय मे और वह चिट्ठी हाथ में खट्टी या मीठी कुछ कह न सके। फिर धैर्य धारण करके पत्रिका बाँची। सच्ची बात सुनकर सभा हर्षित हो उठी।

व्याख्या : अब तीसरा अनुभव कहते हैं। चिट्ठी बाँचने मे महाराज स्तब्ध हो गये। राम लक्ष्मण के ध्यान से किसी दूसरी बात के लिए हृदय मे स्थान नही रह गया। अत चिट्ठी हाथ में लिये रह गये। सभा उत्सुक है कि चिट्ठी मे भला समाचार है कि नही। महाराज कहना चाहते हैं। पर प्रेम से गला रुँधा जाता है। कुछ कह न सके। यहाँ मीठा खट्टा से अच्छे बुरे समाचार का अभिप्राय है। यथा ' मीठ कहा कवि कहै जाहि जो भावै।

सभा असमञ्जस मे पड गई। राजकुमार बाहर गये हैं। कोई समाचार उनका न मिला। इस चिट्ठी मे कोई बात उनके सम्बन्ध की है क्या ? महाराज की दशा चिट्ठी पढते पढते कैसी हुई जाती है। इत्यादि चिन्ताओ से ग्रस्त हो गई। महाराज का पत्र पढते समय धैर्य छूट गया था। अत बाँच नही सकते थे। सभा की उत्सुकता तथा चिन्ता दूर करने के लिए धैर्य धारण करके स्वय बाँचा। अत विश्वस्त बात सुनकर सभा हर्षित हुई। यथा ' तब ते आज साँच सुधि पाई। यह दैवी सम्पत्ति की कथा है। आसुरी सम्पत्ति यथा बिहँसि बामकर लीन्ही रावन। सचिव बोलि सठ लाग बचावन।

खेलत रहे तहाँ सुधि पाई। आए भरतु सहित हित भाई॥
पूछत अति सनेह सकुचाई। तात कहाँ ते[1] पाती आई॥४॥

अर्थ : जहाँ खेलते रहे वहाँ समाचार पाकर सखा और भाई के सहित भरतजी आये। अत्यन्त स्नेह से सकुचाते हुए पूछने लगे कि तात ! चिट्ठी कहाँ से आई है ?

व्याख्या भरत सत्रुहन दूनौ भाई। प्रभु सेवक जिमि प्रीति दृढाई। अतः यहाँ हित भाई से खेल के साथी तथा शत्रुहनजी अभिप्रेत है। ये लोग सरयू के तीर घोडो पर सवार होकर गद खेलते थे। यथा ' सरयुतीर सम सुखद भूमिथल गनि गनि गोइयाँ बाँटि लये। कदुककेलि कुसल हय चढि चढि मन कसि कसि ठोकि ठोकि खये। इत्यादि। पत्री आने की खबर बडे जोरो से फैली। खेलते समय भरत शत्रुघ्न को समाचार मिला। खेल छोडकर राजसभा मे पहुँचे।

अत्यन्त स्नेह के कारण बिना पूछे रहा नही जाता और पूछने मे सङ्कोच है। क्योकि इससे कौतूहल प्रकट होता है। चारो भाई सङ्कोची हैं। अत सकुचाते हुए प्रश्न किया। पहिला प्रश्न चिट्ठी कहाँ से आई है ?

दो० कुसल प्रानप्रिय बंधु दोउ, अहहिं कहहु केहि देस।
सुनि सनेह साने बचन, बाँची बहुरि नरेस॥२९०॥

---

१. यहाँ चित्रालङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

अर्थ दोनो प्राणप्रिय भाई कुशल तो है ? और किस देश मे हैं ? स्नेह से सने हुए वचन को सुनकर फिर राजा ने पत्र पढ सुनाया ।

व्याख्या दूसरा प्रश्न कुशलविषयक हुआ । तीसरा प्रश्न देशविषयक हुआ । समाचार की सचाई को दृढ करना चाहते हैं । कहाँ ते पाती आई इस प्रश्न से पत्र प्रेषक को जानना चाहते हैं । कुशल पूछने से स्वयवरविषयक समाचार जानना चाहते है । अहै केहि देस इस प्रश्न से जानना चाहते हैं कि जनकपुर मे ही हैं या वहाँ से चल पडे है ? क्योकि स्वयंवर के साथ ही विदाई होने की चाल है । स्नेह से सने भरतजी के वचन सुनकर महाराज ने पूरे वृत्तान्त से परिचित करने के लिए फिर से पत्र को पढ सुनाया । पत्र मे तीनो प्रश्नो के पूरे उत्तर आगये थे ।

सुनि पाती पुलके दोउ भ्राता । अधिक सनेहु समात न गाता ॥
प्रीति पुनीत भरत कै देखी । सकल सभा सुख लहेउ बिसेखी ॥१॥

अर्थ चिट्ठी सुनकर दोनो भाई पुलकित हो गये । अधिक स्नेह शरीर मे समाता नही था । भरतजी का पवित्र प्रेम देखकर सारी सभा को विशेष सुख हुआ ।

व्याख्या प्रेम इतना अधिक है कि समाता नही है । इसलिए पुलक के मिस से बाहर प्रकट हुआ । चिट्ठी के बाँचने मे महाराज को पुलक हुआ और उसके सुनने से भरतजी तथा शत्रुघ्नजी को पुलक आनन्दातिशय के कारण हुआ । मानो उस बढे हुए आनन्द के लिए शरीर मे यथेष्ट स्थान नही है । अत रोम रोम से बाहर निकला पडता है ।

राम लक्ष्मण का प्रेम तथा भरत शत्रुघ्न का प्रेम तो सभी को मालूम था । रामजी के साथ लक्ष्मणजी तथा भरतजी के साथ शत्रुघ्नजी छाया की भाँति रहते थे । अत अभिन्नहृदय समझे जाते थे । परन्तु भरतजी की भी रामजी मे इतनी प्रीति है इससे सभा अनभिज्ञ थी । आज भरतजी की रामजी मे पवित्र नि स्वार्थ प्रीति देखकर सारी सभा को विशेष सुख हुआ । रामजी का समाचार सुनकर सुख हुआ और भरतजी की प्रीति देखकर विशेष सुख हुआ । प्रीति के अनुभाव पुलक के देखने को प्रीति का देखना कहते हैं । भाई भाई की प्रीति ऐसी पवित्र वस्तु है कि उसके देखनेवाले को सुख मिलता है ।

तब नृप दूत निकट बैठारे । मधुर मनोहर बचन उचारे ॥
भैआ कहहु कुसल दोउ बारे । तुम्ह नीके निज नयन निहारे ॥२॥

अर्थ तब राजा ने दूतो को पास बिठाया और मीठे मनके हरण करनेवाले वचन बोले भैया दोनो बच्चो की कुशल कहो । तुमने भलीभाँति अपनी आँखो से देखा है ।

व्याख्या निकट बैठाना आदर प्रदान है । दूत चिट्ठी देकर दूर खडे थे । बातचीत करने के लिए पास बुलाकर बैठा लिया और ऐसे वचन बोले जो सुनने मे मधुर और समझने मे मनोहर थे । महाराज ने चिट्ठी बाँचना समाप्त किया और

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


सभा सुनकर सुखी हुई। आनन्द का पहिला तरङ्ग समाप्त होते न होते दोनो भाई भरतजी आये। महाराज ने फिर से चिट्ठी बाँची। भरतजी की प्रीति देखकर दूसरा तरङ्ग आनन्द का उठा। इसके बाद राजा को दूतो से बात करने का अवसर मिला। प्रेम को प्रबोध नही होता। यथा : बैर अध प्रेमहिं न प्रबोधू। अतः चिट्ठी द्वारा कुशल समाचार जानने पर भी दूतों से पूछते हैं।

'भैया' सम्बोधन कितना मधुर है। चिट्ठी में तो कुशल पढ लिया। पर जिसने भलीभाँति आँखों देखा है उसके मुख से महाराज कुशल सुनना चाहते है। अथवा प्रेमपात्र का समाचार सौ बार पूछने पर भी सन्तोप नही होता। महाराज के वचन मधुर और मनोहर थे। परन्तु मृदु नही थे। सभा बड़ी थी। मृदुस्वर मे वार्तालाप होने से सब सभासद् न सुन सकते। अतः मृदु विशेषण नही दिया।

स्यामल गौर धरे धनु भाथा। वय किसोर कौसिक मुनि साथा॥
पहिचानहु तुम्ह कहहु सुभाऊ। प्रेम विवश पुनि पुनि कह राऊ॥३॥

अर्थ : साँवले और गोरे धनुष और तरकस धारण किये हैं। किशोरावस्था है। विश्वामित्र के साथ हैं। तुम पहिचानते हो तो उनका स्वभाव बतलाओ। इस बात को महाराज ने प्रेम विवश होने के कारण बार बार पूछा।

व्याख्या : श्यामल गौर से रूप कहा। धरे धनु भाथा से वेप कहा। वय किसोर से अवस्था कही और कौसिक मुनि साथा से अचूक पता बतलाया। विश्वामित्र मुनि को कौन नही जानता ? उनका दर्शन तुम लोगों ने अवश्य किया होगा। मेरे बच्चे उन्ही के साथ है। भाव यह कि संग सुसेवक नांही : राजोचित ठाट बाट के साथ नही है।

तुम स्वभाव कहो तो हम ठीक जान ले कि तुमने देखा है। प्रेम के विवश है। उत्तर देने का समय ही नही देते। इसी प्रश्न को बार बार दोहराते हैं। राऊ कहने का भाव यह कि राजा का एकबार कहना बहुत है।

जा दिन ते मुनि गए लवाई। तब ते आजु साच सुधि पाई॥
कहहु विदेह कवन विधि जाने। सुनि प्रिय वचन दूत मुसुकाने॥४॥

अर्थ : जिस दिन से मुनिजी लिवा गये तब से आज ही सच्ची सुधि मिली है। यह बतलाओ कि महाराज ने उन्हे कैसे जाना ? प्रिय वचन सुनकर दूत मुसकराये।

व्याख्या : मुनि गये लवाई का भाव यह कि दूसरा लिवा गया होता तो सेना साथ जाती। सेवक साथ जाते। डाक बैठा दी जाती। क्षण क्षण का समाचार मिला करता। पर मुनिजी के रुष्ट होने के भय से कुछ नही किया गया। अतः जब से साथ गये विश्वस्त सूत्र से कोई समाचार नही मिला। इससे महाराज अपनी अत्यन्त उत्सुकता का कारण भी कह देते हैं। आज जो समाचार मिल रहा है वही विश्वस्त सूत्र से मिल रहा है। अतः कहते हैं साँच सुधि पाई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अब फिर एक प्रश्न महाराज ने उठाया कि राजा विदह ने मेरे बच्चो को कैसे जाना ? इतने राजा इकट्ठे थे उनमे इन बच्चो को जान लेने की तो कोई सम्भावना ही नही थी। ये वचन महाराज के मनोहर थे। अत दूतो को प्रिय लगे। महाराज को प्रेम म विभोर देखकर दूत मुसकराये।

दो सुनहु महीपति मुकुट मनि, तुम्ह सम धन्य न कोउ।
राम लपन जिनके तनय, विस्व विभूपन दोउ ॥२९१॥

अर्थ हे राजाओ के मुकुटमणि ! सुनो। तुम्हारे समान धन्य कोई नही है। जिसके राम लक्ष्मण ऐसे विश्वविभूषण पुत्र हैं।

व्याख्या महीपति मुकुटमणि से ऐश्वर्याधिक्य कहा। तुम सम धन्य न कोउ से पुण्याधिक्य कहा। उत्तम सन्तान होने से पिता के पुण्य का अनुमान करते हैं। कहते हैं कि ऐसे विश्वविभूषण पुत्रो की प्राप्ति से आप धन्य हैं। विश्वविभूषण को कौन नही जानेगा ? जो उन्हे देख लगा वही परिचय प्राप्त करना चाहेगा। यथा सुनहु नाथ सुदर दोउ बालक। मुनि कुल तिलक कि नृप कुल पालक। प्रश्न है भैया कहहु कुसल दोउ बारे। उत्तर है सुनहु महीपति मुकुट मनि तुम सम धन्य न कोउ। पिता के धन्य कहने से ही पुत्र के कुशल का कथन हो गया। यह दूत का पाण्डित्य है कि स्तुति करने म कुशल कह गया। अब धन्य का कारण कहने म दूसरे प्रश्न का उत्तर देता है। राम लपन नाम कहकर पहिचान कहा। महाराज ने स्वभाव पूछा था। वह रूप और गुण दोनो कहता है विस्वविभूपण दोउ। विश्वविभूषण तो वही है जिसम सम्पूर्ण सद्गुण हो।

पूछन जोगु न तनय तुम्हारे। पुरुषसिंह तिहुँ पुर उजिआरे॥
जिन्ह के जस प्रताप क आगे। ससि मलीन रवि सीतल लागे॥१॥

अर्थ आपके पुत्र पूछने के योग्य नही है। वे पुरुषो म सिंह हैं। तीनो लोक के प्रकाश हैं। जिनके यश के सामने चन्द्रमा मलिन मालूम होते हैं और प्रताप के सामने सूय ठण्ढे मालूम पडते हैं।

व्याख्या अब दूत पहिचानहु तौ कहहु सुभाऊ का उत्तर देता है। यद्यपि स्वभाव के विषय म विश्वविभूपण कहकर बहुत कुछ लक्षित करा दिया है। पर इसी बात को राजा ने पूछा है। अत विस्तार रूप से कह रहे हैं उनकी ख्याति उनके आने के पहल ही पहुँच जाती है। फिर उनके देखने पर पहिचान पूछने की आवश्यकता नही रह जाती। लोग आप ही पहिचान जाते हैं। यथा एक कहइ नृपसुत तेइ आली। सुने जे मुनिसँग आये काली। जिन्ह निज रूप मोहनी डारी। कीन्हे स्ववस नगर नर नारी। पुरुषसिंह के परिचय देने की आवश्यकता नही है। उनका प्रताप उन्हे पहिचनवा देता है। आपके पुत्र पुरुषसिंह हैं। यथा पुरुष सिंह दोउ बीर हरषि चल मुनि भय हरन। उनके प्रकाश से सूय के प्रकाश की भाति तीनो लोक प्रकाशित ह। गुण पहिल कहा था। अब पुरुषसिंह तथा तिहुँपुर उजियारे कहकर प्रताप शौर्य बल और तेज का वर्णन करते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


कहहु बिदेह कवन बिधि जाने का उत्तर देते हैं। काल के ध्वजभूत परम प्रकाशमान रवि शशि का परिचय नही देना पडता। प्रताप मे उष्णता और यश मे उज्ज्वलता मानी जाती है। सो इनके यश के सामने शशि की उज्ज्वलता कुछ भी नही है और न इनके प्रताप के आगे सूर्य की उष्णता ही कोई वस्तु है।

तिन्ह कहिं कहिअ नाथ किमि चीन्हे। देखिअ रवि कि दीप कर लीन्हे ॥
सीय स्वयंवर भूप अनेका। सिमिटे सुभट एक ते एका ॥२॥

अर्थ : हे नाथ! उनके लिए आप कहते हैं कि राजा ने कैसे चीन्हा? क्या हाथ मे दीपक लेकर सूर्य भी देखे जाते हैं? सीता के स्वयवर मे अनेक राजा और एक से एक योद्धा जुटे थे।

व्याख्या : अन्धकार मे पड़ी हुई वस्तु के चीन्हने : पहिचानने मे दीप की आवश्यकता होती है। स्वयंप्रकाश सूर्य के चीन्हने में नही। निस्तेज लोगो के लिए पूछना पड़ता है। तेजस्वी तो स्वय अपने तेज से पहिचाने जाते है।

सीय स्वयंवर कहकर दुलहिन का नाम बतलाते हैं। तेज कहने के व्याज से दूत सारी कथा कह रहे है। भाव यह कि स्वयंवर रूप का नही था। बलपरीक्षा का था। देव दनुज धरि मनुज सरीरा। बिपुल बीर आये रन धीरा। मनुज शरीर धारण करने से दूतों ने स्वयंवर मे आये हुए लोगो का दो ही विभाग किया : १. अनेक भूप और २. एक से एक सुभट।

संभु सरासन काहु न टारा। हारे सकल बीर बरिआरा ॥
तीनि लोक महँ जे भट मानी। सब कै सकति संभु धनु भानी ॥३॥

अर्थ : शिवजी का धनुष किसी का हटाया न हटा। सब बलवान् हार गये। तीनो लोक में जितने भटमानी थे सबकी शक्ति को शिवजी के धनुष ने कुण्ठित कर दिया।

व्याख्या : अनेक भूपो के लिए कहते है कि : संभु सरासन काहु न टारा। और एक से एक सुभट के लिए कहते हैं कि : हारे सकल बीर बरिआरा। राजा तो दस हजार चिपट गये थे। इसलिए उन्हें अनेक कहते हैं। पर सुभट एक दूसरे को गिनने वाले नही। अत: उनके लिए एक ते एका कहते हैं। भावार्थ यह कि न राजाओं का किया कुछ हुआ और न सुभटो का किया कुछ हुआ। शिवजी के धनुष के आगे त्रैलोक्य के वीरो की शक्ति कुण्ठित हो गई।

सकै उठाइ [1]सरासुर मेरू। सोउ हिय हारि गयउ करि फेरू ॥
जेइ कौतुक सिवसैल उठावा। सो तेहि सभा पराभव पावा ॥४॥

अर्थ : बाणासुर सुमेरु पर्वत को भी उठा सकता है। वह भी हिम्मत हारकर

---

१ यहाँ विशेषोक्ति अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



परिक्रमा करके चला गया और जिसने खेल मे कैलास उठाया था उसकी भी उस सभा मे हार हुई।

व्याख्या बाणासुर सुमेरु पर्वत के उठाने का सामर्थ्य रखता है। पर शिवधनु को देखकर उसका साहस छूट गया। उसने पूज्य बुद्धि से धनुष की परिक्रमा की और चला गया। रावण ने तो खेल मे कैलास पर्वत उठा लिया था। ग्रन्थकार ने कैलास न कहकर सिवसैल कहा। भाव यह कि कैलास पर स्वय शिवजी भी सशक्ति, साङ्ग, सायुध विराजमान थे। फिर भी रावण ने खेल मे उठा लिया। यथा पुनि नभ सर मम कर निकर। कर कमलन्हि पर वास। सोभित भयउ मराल इव सभु सहित कैलास। तथा कौतुकही कैलास पुनि, लीन्हेसि जाइ उठाइ। उसकी भी हार हुई।

दो तहाँ राम रघुवस मनि, सुनिअ महा महिपाल।
भजेउ चाप प्रयास बिनु, जिमि गज पकज नाल ॥२९२॥

अर्थ हे महाराज! सुनिये, वहाँ रघुवशमणि राम ने बिना प्रयास के धनुष को तोड डाला। जैसे हाथी कमल के नाल को तोड डाले।

व्याख्या उस सभा मे सबके सामने रघुवश की प्रतिष्ठा को स्थापित करते हुए रामजी ने अप्रयासेन धनुष को तोडा। अप्रयास को स्पष्ट करते हुए कहते है कि जिस भाँति गज को कमलनाल के तोडने मे कोई परिश्रम नही उसी भाँति रामजी को भी कोई आयास नही हुआ। यथा लेत चढावत खैंचत गाढे। काहु न लखा देख सब ठाढे। महा महिपाल की भी शोभा मणि से होती है। इसलिए रामजी का विशेषण रघुवसमनि दिया।

सुनि सरोष भृगुनायकु आए। बहुत भाँति तिन्ह आँखि देखाए॥
देखि राम बलु निज धनु दीन्हा। करि बहु बिनय गवन बन कीन्हा ॥१॥

अर्थ सुनकर रुष्ट होते हुए परशुरामजी आये और बहुत प्रकार से आँख दिखाया। रामजी के बल को देखकर अपना धनुष दे दिया और बहुत प्रकार से विनय करके वन चल गये।

व्याख्या परशुरामजी को धनुषभङ्ग का समाचार पाकर बडा क्रोध हुआ। क्रोध से भरे हुए वहाँ आये और बहुत प्रकार से आँख दिखाया अर्थात् डराया धमकाया। १ शब्द से यथा कहु जड जनक धनुष केइ तोरा। २ चितवन से यथा सहजहु चितवत मनहुँ रिसाते। ३ वेष से यथा कटि मुनि वसन तून दुइ बाँधे। करमर धनु कुठार कल काँधे। ४ इङ्गित से यथा बोले चितइ परसु की ओरा। ५ शस्त्र सुधारकर यथा सुनि कटु वचन कुठार सुधारा। तथा ६ शस्त्र उठाकर यथा भृगुपति बकहि कुठार उठाये। जब रामजी का दिव्य बल देखा। यथा देत चाप आपुहि चलि गयऊ। तो अपना धनुष दे दिया। अर्थात् अपना कार्य रामजी को सौंप दिया। समझ लिया कि अब मेरी आवश्यकता ससार को नही है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बहुत सी विनती करके अपराध क्षमा कराया परशुरामजी का विनय करना असाधारण बात थी। और तपस्या के लिए वन चले गये। सदा के लिए क्षात्र स्वभाव का परित्याग कर दिया।

राजन रामु अतुल बल जैसे। तेज निधान लषनु पुनि तैसे ॥
कर्पहि भूप विलोकत जाकें। जिमि गज हरि किसोर के ताके ॥२॥

अर्थ राजन्! जिस भाँति रामजी अतुलबल हैं वैसे ही लक्ष्मणजी तेज निधान हैं। जिनके ताकने से राजा लोग ऐसे काँप उठते हैं जैसे हाथी सिंह के बच्चे के ताकने से काँप उठें।

व्याख्या परशुरामजी के पराजय से यह बात सिद्ध हो गई कि रामजी के जोड का कोई बली नहीं है जिससे उनके बल की तुलना की जाय। वैसे ही लक्ष्मण के तेज की तुलना नहीं है। यहाँ राजा जनक के वीर विहीन मही मैं जानी। कहने पर बिगड खडे हुए। प्रलय करने को तैयार हो गये। यथा कदुक इव ब्रह्माड उठावौ। कांचे घट जिमि डारौ फोरी। सकौं मेरु मूलक इव तोरी। परशुरामजी का तेज इन्हीं के तेज के सामने दबा। यथा बहइ न हाथ दहै रिसि छाती। भा कुठार कुठित नृप घाती। इनकी भौंह चढने पर राजमण्डल में कँपकँपी पड जाती है। जैसे सिंह के बच्चे के ताकने से हाथियो का यूथ कम्पायमान हो उठता है। यथा कुँअर चढाई भौंहे अब को विलोकै सौहे। गीतावली। तथा. अरुन नयन भृकुटि कुटिल चितवत नृपन्ह सकोप। मनहु मत्त गजगन निरखि, सिंह किसोरहिं चोप।

देव देखि तव बालक दोऊ। अब न आँखि तर आवत कोऊ ॥
दूत बचन रचना प्रिय लागी। प्रेम प्रताप वीर रस पागी ॥३॥

अर्थ हे देव! आपके दोनो बालको को देखकर अब कोई आँख मे जँचता नही। दूत के वचन की रचना प्रिय लगी। क्योकि वह प्रेम, प्रताप और वीर रस से पगी थी।

व्याख्या देव सम्बोधन से नरदेव अभिप्रेत हैं। दूत कहते हैं कि आपके दोनो बालको के देखने के पहिले अपेक्षाकृत गुणरूप का उत्कर्ष दृष्टिगोचर होता था। पर जब से उनको देखा है तब से ससार म कोई दृष्टि मे जँचता ही नही। सबके रूप और गुण तुच्छ मालूम पडते हैं। इनके देखने पर यह बात मन मे ही नहीं आती कि इनसे बढकर के भी कोई हो सकता है।

महाराज दशरथ के प्रश्नो के उत्तर देने मे जो वचन दूतों ने कहे उसकी रचना ऐसी सुन्दर थी कि सबको प्रिय लगी। प्रिय लगने का कारण कहते हैं कि वह रचना, प्रेम प्रताप और वीर रस से ओतप्रोत थी। प्रेम यथा देव देखि तव बालक दोऊ। अब न आँखि तर आवै कोऊ। प्रताप जिन्हके जग प्रताप के आगे। ससि मलीन रवि सीतल लागे। वीर रस. राजन राम अतुल बल जैसे। तेज निधान लषन पुनि तैसे। कर्पहि भूप विलोकत जाके। जिमि गज हरि किसोर के ताके।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सभा समेत राउ अनुरागे। दूतन्ह देन निछावरि लागे॥
कहि अनीति ते मूदहि काना। धरमु बिचारि सबहि सुखु माना॥४॥

अर्थ सभा के समेत महाराज प्रेम मे पग गये। दूतो को निछावर देने लगे। अनीति है ऐसा कहकर उन्होंने कान ढक लिये। धर्म विचारकर सबने सुख माना।

व्याख्या रचना ऐसी प्रिय लगी कि सभा समेत स्वय महाराज अनुराग मे आगये। शुभ सन्देश सुनानेवाले को निछावर मिलने का नियम है। यथा प्रथम जाइ जिन वचन सुनाये। भूषन बसन भूरि तिन पाये। सो सब निछावर देने लगे। जिस दूत को निछावर देने लगते हैं वही कान पर हाथ रखता है। अर्थात् निछावर लेना स्वीकार नही करता और कहता है कि यह अनीति है। भाव यह कि हम कन्यापक्ष के हैं। हम लेने के अनुकूल कोई युक्ति सुन नही सकते। बात अप्रसन्न होने की थी। क्योकि ऐसे अवसर के निछावर अस्वीकार करने का अर्थ यह होता है कि यह उत्सव उसे प्रिय नही है। इसलिए जिन्हे अर्थ की आवश्यकता नही है वे भी लेने को आगे आजाते हैं। यथा राम निछावर लेन को हठि होत भिखारी। निछावर के अस्वीकार करने का सामर्थ्य किसे है ? परन्तु इस अस्वीकार से सबको सुख हुआ। सब लोग दूतो की धार्मिकता तथा स्वामिभक्ति पर प्रसन्न हो गये।

दो तब उठि भूप बसिष्ठ कहुँ, दीन्हि पत्रिका जाइ।
कथा सुनाई गुरहि सब, सादर दूत बोलाइ॥२९३॥

अर्थ तब राजा ने उठकर वसिष्ठजी को जाकर पत्रिका दी और आदर के साथ दूतो को बुलाकर सब कथा सुनाई।

व्याख्या बारात ले चलनी है। गुरुजी से मुहूर्त पूछना है। अत वसिष्ठजी को पत्रिका देने के लिए महाराज स्वय उठकर उनके पास गये। गुरुजी के प्रसाद से ही यह मङ्गल सुलभ हुआ है। रामजी के जन्म के लिए भी इसी भाँति गये थे। यथा गुरु गृह गयउ तुरत महिपाला। दूतो को भी सादर बुलवा लिया। क्योकि दूतो के आदर से महाराज जनक का आदर है। गुरुजी से सब निवेदन करना है। कोई बात छूटने न पावे। यदि कोई बात गुरुजी ऐसी पूछें जो महाराज को न मालूम हो। इसलिए दूतो का वहाँ रहना आवश्यक था। सब कथा यथा दलि ताडका मारि निसिचर मखराखि विप्रतिय तारी। दै विद्या लै गये जनकपुर है गुरु सग सुखारी। करि पिनाकपन सुता स्वयवर सजि नृप कटक बटोरयो। राज सभा रघुवर मृनाल ज्यों सभु सरासन तोरयो।

सुनि बोले गुर अति सुखु पाई। पुन्य पुरुष कहुँ महि सुख छाई॥
जिमि सरिता सागर महु जाही। जद्यपि ताहि कामना नाही॥१॥

अर्थ सुनकर मुनिजी बहुत सुख पाकर बोले कि पुण्यात्मा के लिए

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पृथ्वी सुख से छाई हुई है। जैसे नदियाँ समुद्र मे जाती है। यद्यपि समुद्र को चाह नहीं है।

व्याख्या : सब कथा सुनकर वसिष्ठजी को अत्यन्त सुख हुआ। जब वर्णनातीत सुख होता है तो उसे अति सुख कहते हैं। यथा अति सुख लह्यो न जाय बखानी। शिष्य के परम कल्याण से गुरु को अति सुख होता है। मुनिजी ने कहा कि पुण्य ही सुख का कारण है। जिसका जितना पुण्य होता है वह उतना सुख पाता है। तुम पुण्यात्मा हो। तुम्हारे लिए पृथ्वी सुख से छाई हुई है। पृथ्वी यही है। पर यही पुण्यात्मा को सुखमय और पापात्मा को दुखमय मालूम होती है। यथा सुख चाहहिं मूढ न धर्मरता। समुद्र जल का निधान है। उसे अधिक जल की आवश्यकता नही है। पर नदियो के लिए दूसरा स्थान नहीं है। वे जा जाकर अपना जल दिनरात समुद्र मे ही गिराया करती हैं। सैकडो कोस के मरुस्थल पडे है। जहाँ जल की बडी ही कमी है। पर नदियाँ उधर उन्मुख हो नही होती।

तिमि सुख सपति बिनहि बोलाये। धरमसील पहिं जाहि सुभाये॥
तुम्ह गुरु बिप्र धेनु सुर सेवी। तसि पुनीत कौसल्या देवी॥२॥

अर्थ उसी भाँति सुखसम्पत्ति बिना बुलाये ही धर्मशील के पास स्वभाव से ही जाती है। तुम गुरु, विप्र, गाय और देवताओ के सेवक हो और कौसल्या देवी भी वैसी ही पवित्र है।

व्याख्या वैसे ही पुण्यात्मा सुख से पूर्ण रहते है। उन्हे सुख का घाटा नही रहता। फिर भी सुख सम्पत्ति को तो दूसरा स्थान ही नही है। उन्हे तो पुण्यात्मा के यहा जाना ठहरा। यही इनका स्वभाव है चाहे उसे कामना हो चाहे न हो। तुम तो लडके कुशल से घर लौट आवे इतने मे ही सन्तुष्ट थे। इससे अधिक चाहते भी नही थे। परन्तु बालको ने इतना बडा यश प्राप्त किया। महाराज जनक से सम्बन्ध हुआ। यह सब सुख तो बिना बुलाये ही तुम्हारे पास आये। गुरु, विप्र, गाय और देवता का सेवक होना ही पुण्यात्मा का लक्षण है। सो सभी तुममें है। तुम्हारी पट्टाभिषिक्ता महिषी कौसल्या देवी भी वैसी ही पुण्यात्मा हैं। फिर तुमलोगो को ऐसा सुख क्यो न हो।

सुकृती तुम्ह समान जग माहीं। भयउ न है कोउ होनेउ नाहीं॥
तुम्ह ते अधिक पुन्य बड़ काके। राजन राम सरिस सुत जाके॥३॥

अर्थ : राजन्! तुम्हारे ऐसा पुण्यात्मा जगत् मे न तो कोई हुआ न है और न होनेवाला है। तुमसे अधिक पुण्य किसका है जिसको रामजी के सदृश पुत्र हैं।

व्याख्या : पुण्य पाप दोनो होने से ही मनुष्यजन्म मिलता है परन्तु तुममें तो पाप का लेश भी नही है। यथा : प्रभु आयसु बहु बिधि प्रतिपाला। दपति धरम आचरन नीका। अजहुँ गाव श्रुति जिन्हकै लीका। पथ जात सोहहिं मति धीरा। ज्ञान भगति जनु धरे सरीरा। तुम्हारा जन्म तो वरदान से हुआ है नही तो तुम्हारे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ऐसा पुण्यात्मा इस जगत् मे जन्म कैसे ग्रहण कर सकता है ? जिसको राम सा बेटा है उसके पुण्य का क्या ठिकाना ? यथा जासु सनेह सकोच बस राम प्रकट भये आइ। जे हर हिय नयनन्हि कबहुँ निरखे नही अघाय। सुकर्म से ही सुकृती अपने को पावन परमपद पर चढा ले जाता है।

वीर विनीत धरम व्रत धारी। गुन सागर वर बालक चारी॥
तुम्ह कहँ सर्व काल कल्याना। सजहु बरात बजाइ निसाना॥४॥

अर्थ तुम्हारे चारो बालक वीर विनीत और धमव्रत के धारण करनेवाले है। तुम्हारा सब काल म कल्याण है। डका देकर बरात साजो।

व्याख्या तुम चार के सेवक हो १ गुरु के २ विप्र के ३ गाय के और ४ देवता के। इसलिए चार गुणा से युक्त तुम्हे चार पुत्र है। वे १ वीर है २ विनीत है ३ धमव्रतधारी है और ४ गुणसागर है। यथा चारिउ रूप सील गुन धामा। तदपि अधिक सुख सागर रामा। जो वीर होते है वे उद्दण्ड होते है। विनयी नही होते। धमव्रतधारी नही होते। नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धम व्रतधारी। धर्मव्रतधारी होने पर भी गुणसागर होना महा दुर्लभ है। तुम्हारे बालको म चारो गुण है।

तुम्हारी बात असाधारण है। तुम्हारे लिए शुभाशुभ मुहूर्त का विचार नही है। गुरुजी समझ गये कि राजा स्वय यह सम्वाद देने आया है बारात ले चलने का मुहूर्त पूछने के लिए। अत कहते है कि तुम्हे सर्वकाल म कल्याण है और आज्ञा देते हैं कि निर्भय होकर बारात साजो।

दो चलहु बेगि सुनि गुर वचन, भलेहि नाथ सिरु नाइ।
भूपति गवने भवन तब, दूतन्ह बासु देवाइ॥२९४॥

अर्थ जल्दी करो। ऐसा गुरु का वचन सुनकर राजा ने कहा नाथ! बहुत अच्छा और नमस्कार करके राजा घर गये। दूतो के ठहरने की व्यवस्था कर दी।

व्याख्या गुरजी ने शीघ्रता करने की आज्ञा दी। इधर से दूत भेजने म देर न हुई। यथा पठए दूत बोलि तेहि काला। अत तुम्ह भी बारात क चलने म देर न करनी चाहिए। अथवा शुभ मुहूर्त भी सन्निकट है। इसलिए शीघ्रता करो। महाराज गुरजी की आज्ञा को ही सब कुछ मानते है। अत तुरन्त प्रणाम किया और घर चल बारात की तैयारी के लिए। दूतो के लिए ठहरने की व्यवस्था कराके तब घर गये। यह महाराज की सावधानी है।

राजा सबु रनिवास बोलाई। जनक पत्रिका बाँचि सुनाई॥
सुनि सदसु सकल हरषानी। अपर कथा सब भूप बखानी॥१॥

अर्थ राजा ने सब रानियो को बुलाया। जनकराज की चिट्ठी पढ सुनाई। सन्देश सुनकर सब हर्षित हुई और सब कथा महाराज ने वर्णन की।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या स्त्रीद्विजावमान्य गच्छतो मरणम् । स्त्री और ब्राह्मण का अपमान करके जानेवाले का मरण होता है। अत यात्रा के पहिले स्त्री और ब्राह्मण का सत्कार होना चाहिए। अत स्त्रियो के सत्कार के लिए रनिवास म गये। वहाँ जाने पर सब रानियो को बुलवाया। पृथक् पृथक् सबके यहाँ जाने का समय नही है। सबके आजाने पर राजा जनक की चिट्ठी पढ सुनाई। बारात लकर आने की प्रार्थना राजा जनक ने की है। रामजी ही शिवधनुभङ्ग म समर्थ हुए। अत राजा जनक की ज्येष्ठ कन्या सीताजी ने उनका वरण किया है। चिट्ठी की वचनरचना बडी सुन्दर है, बडी प्रिय है। दूत वचन रचना प्रिय लागी। चिट्ठी के लिए क्या कहना है। रानी कौसल्या के महल मे चिट्ठी की चौथी आवृत्ति हुई। रामजी कौसल्या रानी की भाँति ही सब माताओ से प्रेम करते हैं। यथा कौसल्या सम सब महतारी। रामहिं सहज सुभाव पियारी। अत सबका वात्सल्य समान रूप से रामजी पर है। उनके विवाहोत्सव का समाचार सुनकर सब प्रसन्न हुईं। अपर कथा जो दूत के मुख से सुनी थी सब राजाओ का पराभव, बाणासुर और रावण की हार और परशुरामजी के पराजय आदि की कथा महाराज ने स्वय वर्णन की।

प्रेम प्रफुल्लित राजहि रानी। मनहु सिखिनि सुनि बारिद बानी ॥
मुदित असीस देहि गुर नारी। अति आनद मगन महतारी ॥२॥

अर्थ प्रेम से फूली हुई रानियाँ ऐसी शोभित हैं जैसे बादल के शब्द सुनकर मोरनियाँ फूल उठती हैं। बडो की स्त्रियाँ प्रसन्न होकर आशीर्वाद दे रही हैं और माताएँ अत्यन्त आनन्द मे मग्न हैं।

व्याख्या प्रेम से पुलकित हो उठी है। इसलिए प्रफुल्लित कहा। रानियाँ स्वभाव से ही शोभायमान हैं। प्रफुल्लित होने से शोभा और भी बढ गई है। यह सात सौ रानियो का हाल ग्रन्थकार कहते है। गुरुनारी अर्थात् कुलमान्य जठेरी प्रसन्न होकर आशीर्वाद देती हैं। राम लक्ष्मण की कीर्ति और करणी का प्रकरण है। इसलिए महतारी से कौसल्या और सुमित्रा का ग्रहण है। कैकेयी भरतजी से अधिक रामजी को मानती हैं। यथा भरत न मोहि प्रिय राम समाना। सदा कहहु यह सब जग जाना। इसलिए कैकेयी का भी ग्रहण है। ये तीनो तो आनन्द मे डूबाडूब हैं। बोलने मे असमर्थ हैं। अत

लेहिं परसपर अति प्रिय पाती। हृदय लगाइ जुडावहि छाती ॥
राम लषन कै कीरति करनी। बारहि बार भूपबर बरनी ॥३॥

अर्थ वे दूसरे से अत्यन्त प्यारी चिट्ठी को ले लेती हैं और उसे हृदय मे लगाकर छाती शीतल करती हैं। राम लक्ष्मण की कीर्ति और करणी को बार बार राजाओ म श्रेष्ठ दशरथजी ने वर्णन किया।

व्याख्या उस पत्री म अतिप्रिय का शुभ सवाद है। अत वह पत्री अतिप्रिय है। चिट्ठी को आधा मिलन कहा गया है। अत चिट्ठी को रामविरह सन्तप्त हृदय

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मे लगाकर उसे शीतल करती हैं। महाराज वह कथा जो चिट्ठी मे नही है सो कह चुके हैं। फिर भी वह कीर्ति और उसका कारण करणी ऐसी अलौकिक है कि न वह एकबार मे ठीक तरह से कही जा सके और न सुननेवाले के मन मे बैठ सके। अथवा उसी कीर्ति और करणी के कहने मे महाराज को आनन्द और सुनने मे रानियो को आनन्द है। इसलिए वारम्बार कही।

मुनि प्रसाद कहि द्वार सिधाए। रानिन्ह तब महिदेव बोलाए॥
दिए दान आनद समेता। चले विप्रवर आसिष देता॥४॥

अर्थ यह सब मुनिजी की कृपा है ऐसा कहकर राजा महल से बाहर चले गये। तब रानियो ने ब्राह्मणो को बुलाया। आनन्दसहित अनेक दान दिये। वे श्रेष्ठ ब्राह्मण आशीर्वाद देते चले।

व्याख्या महल मे अधिक देर तक नही ठहरे। गुरुजी की आज्ञा हो चुकी है। यथा चलहु वेगि सुनि गुर बचन भलेहि नाथ सिर नाय। मुनि के प्रसाद से ही यह सब हो रहा है। उन्होने पहिले ही कहा था धरहु धीर होइहैं सुत चारी। त्रिभुवन विदित भगत भय हारी। अत यह कीर्ति और करणी उनकी है। सुत को नही है। मुनिजी का प्रसाद है। यही बात महाराज ने रानियो से अपने सवाद के उपसहार मे कही और बारात की व्यवस्था करने बाहर के खण्ड मे चल आये।

आनन्द के समाचार की प्राप्ति पर दान देना चाहिए। इसलिए रानियो ने दान पात्र ब्राह्मणो को बुलाया और सात्त्विक दान दिया। अयोध्या ऐसा पुनीत देश है। पुत्रोद्वाह की उपस्थिति का काल है। विप्रवर से श्रोत्रिय ब्राह्मण अभिप्रेत हैं। यथा वेदपाठी भवेद्विप्र। आनन्द के सहित दान दे रही है। अत यह दान सब प्रकार से सात्त्विक है। यथा दातव्यमिति यद्दान दीयतेऽनुपकारिणे। देशे काले च पात्रे च तद्दान सात्त्विक स्मृतम्। भगवद्गीता। दान से सन्तुष्ट होकर ब्राह्मण आशीर्वाद देते चले। परोक्ष मे भी आशीर्वाद देते है। इसलिए आशिष देते चलना कहा।

दो जाचक लिए हँकारि, दीन्ह निछावर कोटि विधि।
चिर जीवहु सुत चारि, चक्रवर्ति दसरत्थ के॥२९५॥

अर्थ मँगतो को बुलवा लिया और करोडो प्रकार की निछावरें की। वे भी आशीर्वाद देते चले। चक्रवर्ती दशरथ के चारो पुत्र चिरञ्जीव हो।

व्याख्या दान के अधिकारियो को दान दिया गया। दूसरी श्रेणी के पात्र दीन और अनाथ याचक लोग है। इन्हे निछावर दिया जाता है। महाराज दशरथ के यहाँ दीन का आदर है। उन्हे बुलावा जाता है। अत वे बुलाये गये। सात सौ रानियाँ है। अत कोटि विधि से निछावर का होना कहते हैं। अथवा निछावर की कोटि प्रकार विधि से हुई। यथा पहिले ताटकावध की निछावर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हुई। तब मखसरक्षण की निछावर। तब धनुषभङ्ग की निछावर। तब जयमाल ग्रहण की निछावर। तब परशुरामविजय की निछावर हुई।

कहत चले पहिरे पट नाना। हरषि हने गहगहे निसाना॥
समाचार सब लोगन्ह पाए। लागे घर घर होन बधाए॥१॥

अर्थ ऐसा कहते हुए अनेक प्रकार के कपडे पहने हुए चल और हर्षित होकर गहगहे डङ्के बजाये। सब लोगो को समाचार मिला तो घर घर बधाइयाँ बजने लगी।

व्याख्या याचक लोग अनेक प्रकार के कपडे पहने हुए है जो उन्हे निछावर मे मिले हैं। चिरजीवहु सुतचारि चक्रवर्ति दशरत्थ के ऐसा कहते हुए चल। दाता की प्रीति के लिए उन्होने निछावर म मिले हुए वस्त्रालङ्कारो को तुरन्त धारण कर लिया। केवल कपडे ही नही पाये। नाना भाँति से निछावर हुई है। राजोपचार तक की निछावर हुई। घोडे, हाथी, डका, निशान सभी कुछ निछावर म मिला है। अत डङ्का देकर चले। हने गहगहे निसाना। यहाँ हने शब्द का सिवा जाचक शब्द के दूसरा कोई शब्द कर्त्तारूप म उपलब्ध नही होता और अर्थ भी बैठ जाता है। अत याचको ने डङ्के बजाये यही अर्थ करना होगा। जन्मकाल मे याचक स्वय आये। यथा तेहि अवसर जो जेहि विधि आवा। दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा। इस बार उन्हे बुलाया गया।

याचको के इस भाँति डङ्का बजाकर चलने पर सब लोगो को समाचार लग गया। अथवा रानिया का समाचार लिखकर तब पुर लोगो का समाचार लिखते है। राजा और प्रजा की सम्पत्ति एक है। अति घनिष्ठ प्रीति है। धर्मनियन्त्रित राजतन्त्र म ही ऐसी प्रीति सम्भव है। प्रजा इतनी आनन्दित हुई मानो उन्ही के घर विवाहोत्सव है। घर घर बधाय बजने लग।

भुवन चारि दस भरा[१] उछाहू। जनकसुता रघुबीर बिआहू॥
सुनि सुभ कथा लोग अनुरागे। मग गृह गली सवारन लागे॥२॥

अर्थ चौदहा भुवनो म उछाह भर गया कि जनक की बेटी और रघुवीर का व्याह है। यह शुभ कथा सुनकर लोगो म अनुराग बढा। रास्ता, घर और गली सँवारने लगे

व्याख्या चौदह भुवन का अयोध्या से सम्बन्ध है। यथा भुवन चारि दस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरखहि सुखवारी। रिधि सिधि सपति नदी सुहाई। उमगि अवध अबुधि कहँ धाई। अत सभी जगह समाचार फैल गया और सभी महाराज दशरथ से प्रेम करते है। यथा नृप सब रहहि कृपा अभिलाषे। लोकप करहि प्रीति रुचि राखे। अत सबके हृदय म आनन्द उमगा। इस भाँति चौदह भुवन म उछाह भर गया। जनकजी की भी कीर्ति की ख्याति सारे ससार म है। अत इस

१ यहाँ अधिक द्वितीय अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मे लगाकर उसे शीतल करती हैं। महाराज वह कथा जो चिट्ठी मे नही है सो कह चुके हैं। फिर भी वह कीर्ति और उसका कारण करणी ऐसी अलौकिक है कि न वह एकबार मे ठीक तरह से कही जा सके और न सुननेवाले के मन मे बैठ सके। अथवा उसी कीर्ति और करणी के कहने मे महाराज को आनन्द और सुनने मे रानियो को आनन्द है। इसलिए बारम्बार कही।

मुनि प्रसाद कहि द्वार सिधाए। रानिन्ह तब महिदेव बोलाए ॥
दिए दान आनद समेता। चले बिप्रबर आसिष देता ॥४॥

अर्थ यह सब मुनिजी की कृपा है ऐसा कहकर राजा महल से बाहर चले गये। तब रानियो ने ब्राह्मणो को बुलाया। आनन्दसहित अनेक दान दिये। वे श्रेष्ठ ब्राह्मण आशीर्वाद देते चले।

व्याख्या महल मे अधिक देर तक नही ठहरे। गुरुजी की आज्ञा हो चुकी है। यथा चलहु बेगि सुनि गुरु बचन भलेहि नाथ सिर नाय। मुनि के प्रसाद से ही यह सब हो रहा है। उन्होने पहिले ही कहा था धरहु धीर होइहैं सुत चारी। त्रिभुवन बिदित भगत भय हारी। अत यह कीर्ति और करणी उनकी है। सुत की नही है। मुनिजी का प्रसाद है। यही बात महाराज ने रानियो से अपने सवाद के उपसहार मे कही और बारात की व्यवस्था करने बाहर के खण्ड मे चले आये।

आनन्द के समाचार की प्राप्ति पर दान देना चाहिए। इसलिए रानियो ने दान पात्र ब्राह्मणो को बुलाया और सात्त्विक दान दिया। अयोध्या ऐसा पुनीत देश है। पुत्राद्वाह की उपस्थिति का काल है। विप्रबर से श्रोत्रिय ब्राह्मण अभिप्रेत है। यथा वेदपाठी भवेद्विप्र। आनन्द के सहित दान दे रही हैं। अत यह दान सब प्रकार से सात्त्विक है। यथा दातव्यमिति यद्दान दीयतेऽनुपकारिणे। देशे काले च पात्रे च तद्दान सात्त्विक स्मृतम्। भगवद्गीता। दान से सन्तुष्ट हाकर ब्राह्मण आशीर्वाद देते चले। परोक्ष मे भी आशीर्वाद देते है। इसलिए आशिष देते चलना कहा।

दो जाचक लिए हकारि, दीन्ह निछावर कोटि बिधि।
चिर जीवहु सुत चारि, चक्रबर्ति दसरत्थ के ॥२९५॥

अर्थ मँगतो को बुलवा लिया और करोडो प्रकार की निछावरे की। वे भी आशीर्वाद देते चले। चक्रवर्ती दशरथ के चारो पुत्र चिरञ्जीव हो।

व्याख्या दान के अधिकारियो को दान दिया गया। दूसरी श्रेणी के पात्र दीन और अनाथ याचक लोग है। इन्हे निछावर दिया जाता है। महाराज दशरथ के यहाँ दीन का आदर है। उन्हे बुलावा जाता है। अत वे बुलाये गये। सात सौ रानियाँ है। अत कोटि विधि से निछावर का होना कहते है। अथवा निछावर की कोटि प्रकार विधि से हुई। यथा पहिले ताटकावध की निछावर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हुई। तब मखसरक्षण की निछावर। तब धनुपभङ्ग की निछावर। तब जयमाल ग्रहण की निछावर। तब परशुरामविजय की निछावर हुई।

कहत चले पहिरे पट्ट नाना। हरषि हने गहगहे निसाना ॥
समाचार सब लोगन्ह पाए। लागे घर घर होन बधाए ॥१॥

अर्थ : ऐसा कहते हुए अनेक प्रकार के कपडे पहने हुए चले और हर्षित होकर गहगहे डङ्के बजाये। सब लोगो को समाचार मिला तो घर घर बधाइयाँ बजने लगी।

व्याख्या . याचक लोग अनेक प्रकार के कपडे पहने हुए है जो उन्हे निछावर मे मिले है। चिरजीवहु सुतचारि चक्रवर्ति दशरत्थ के ऐसा कहते हुए चले। दाता की प्रीति के लिए उन्होने निछावर मे मिले हुए वस्त्रालङ्कारो को तुरन्त धारण कर लिया। केवल कपडे ही नही पाये। नाना भाँति से निछावर हुई है। राजोपचार तक की निछावर हुई। घोडे, हाथी, डका, निशान सभी कुछ निछावर मे मिला है। अत डङ्का देकर चले। हने गहगहे निसाना। यहाँ हने शब्द का सिवा जाचक शब्द के दूसरा कोई शब्द वर्त्तारूप मे उपलब्ध नही होता और अर्थ भी बैठ जाता है। अत: याचको ने डङ्के बजाये यही अर्थ करना होगा। जन्मकाल मे याचक स्वय आये। यथा : तेहि अवसर जो जेहि विधि आवा। दीन्ह भूप जो जेहि मन भावा। इस बार उन्हे बुलाया गया।

याचको के इस भाँति डङ्का बजाकर चलने पर सब लोगो को समाचार लग गया। अथवा रानियो का समाचार लिखकर तब पुर लोगो का समाचार लिखते है। राजा और प्रजा की सम्पत्ति एक है। अति घनिष्ठ प्रीति है। धर्मनियन्त्रित राज्तन्त्र मे ही ऐसी प्रीति सम्भव है। प्रजा इतनी आनन्दित हुई मानो उन्ही के घर विवाहोत्सव है। घर घर बधाये बजने लगे।

भुवन चारि दस भरा[१] उछाहू। जनकसुता रघुबीर बिआहू ॥
सुनि सुभ कथा लोग अनुरागे। मग गृह गली सँवारन लागे ॥२॥

अर्थ . चौदहो भुवनो म उछाह भर गया कि जनक की बेटी और रघुवीर का ब्याह है। यह शुभ कथा सुनकर लोगो मे अनुराग बढा। रास्ता, घर और गली सँवारने लगे :

व्याख्या : चौदह भुवन का अयोध्या से सम्बन्ध है। यथा : भुवन चारि दस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरखहि सुखबारी। रिधि सिधि सपति नदी सुहाई। उमगि अवध अबुधि कहँ धाई। अत सभी जगह समाचार फैल गया और सभी महाराज दशरथ से प्रेम करते है। यथा नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषे। लोकप करहिं प्रीति रुचि राखे। अत सबके हृदय मे आनन्द उमगा। इस भाँति चौदह भुवन मे उछाह भर गया। जनकजी की भी कीर्ति की ख्याति सारे ससार मे है। अत इस

---

१ यहाँ अधिक . द्वितीय अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विवाह से सबको हर्ष हुआ। श्रीरामजी की ख्याति वीररूप से त्रैलोक्य मे हो चुकी है। अत रघुवीर कहने है। पिता का नाम नही लेते। जगदम्बा जानकीजी के रूप की ख्याति भी त्रैलोक्य मे है। पर जनक की पुत्री करके ही ख्याति है। अत कहते है जनक सुता रघुवीर विवाहू।

विवाह की कथा है। इसलिए शुभ कथा कहते है। लोग तो अनुरक्त हुए हैं। पर इस सम्बन्ध के समाचार से अनुराग और बढा। सबका घर सडक और गली के बीच मे है। अत मग गृह गली का सँवारना उसी क्रम से लिखते है।

जद्यपि अवध सदैव सुहावनि। रामपुरी मगलमय पावनि॥
तदपि प्रीति कै रीति सुहाई। मगल रचना रची बनाई॥३॥

अर्थ यद्यपि अयोध्यापुरी नित्य ही सोहावनी है। रामजी की पुरी मङ्गलमयी और पवित्र करनेवाली है। फिर भी प्रीति की रीति सुन्दर होती है। मङ्गल रचना सँवारकर रची गई है।

व्याख्या यह सशय न हो कि अवध और समयो म असस्कृत ही रहता था। अत ग्रन्थकार कहते है कि अवध तो सदा देखने म सोहावन और सेवन करने म पावन है। यथा पहुँचे दूत रामपुर पावन। हरखे नगर बिलोकि सोहावन। अवध का सम्बन्ध रामजी से वैसा ही है जैसा दिन का सम्बन्ध सूर्य से होता है। यथा अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइ दिवस जहँ भानु प्रकासू। अत अवध को रामपुरी कहा। अथवा राजा जनक के दूत रामपुरी की भावना से अवध मे आये है। उसके वर्णन म भी अवध का रामपुरी कहकर वर्णन करते है। स्वय रामजी मङ्गलभवन अमङ्गलहारी है। अत उनकी पुरी मगलमय पावनि है। रामजी के नाम रूप लीला धाम सब मङ्गलमय पावन और सोहावन है। नाम मङ्गलमय यथा मगल भवन अमगल हारी। उमा सहित जेहि जपत पुरारी। रूप मगलममय यथा मगलभवन अमगलहारी। द्रवहु सो दशरथ अजिर बिहारी। लीला मगलमय यथा जासु सकल मगलमय कीरति। धाम मगलमय यथा रामपुरी मगलमय पावनि। नाम पावन यथा सुमिरि पवनसुत पावन नामू। रूप पावन यथा मगलमय अति पावन पावन। लीला पावन यथा रघुवीर चरित पुनीत निसिदिन दास तुलसी गावइ। धाम पावन यथा रामपूरी मगलमय पावनि। नाम और लीला सोहावन यथा राम नाम गुन चरित सोहाए। रूप सोहावन यथा स्याम सरीर सुभाव सुहावन। धाम सोहावन यथा हरखे नगर बिलोकि सोहावन। अत रामपुरी म मङ्गलरचना की आवश्यकता नही है। गङ्गाजी के मार्जन की कौन आवश्यकता है। फिर भी प्रीति का यह आनन्द है कि प्रेमपात्र के मङ्गल उपस्थित होने पर मङ्गल रचना बनाई जाती है। जहाँ प्रीति की प्रीति पाठ है वहाँ पहिले प्रीति शब्द का अर्थ प्रेम और दूसरे प्रीति शब्द का अर्थ आनन्द है। वैर म भी पलटा लने का आनन्द है। पर वह आनन्द सोहावना

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नहीं है। प्रीति का आनन्द सोहावना है। उसमें मङ्गलरचना सँवारकर रची जाती है। उसी को स्पष्ट करते हुए कहते हैं

ध्वज पताक पट चामर चारु। छावा परम बिचित्र बजारू॥
कनक कलस तोरन मनि जाला। हरद दूब दधि अच्छत माला॥४॥

अर्थ ध्वजा पताका, सुन्दर वस्त्र और चँवर से छाया हुआ बाजार परम विचित्र हो रहा था। सोने के कलश, मणिजाल का तोरण, हलदी, दूब, अक्षत और माला द्वारा।

व्याख्या जन्मोत्सव के समय में कहा है ध्वज पताक तोरन पुर छावा। कहि न जाइ जेहि भाँति बनावा। वैसा ही इस उत्सव के समय भी मनाया जा रहा है। पर जन्मोत्सव से विवाहोत्सव की रचना में विशेषता होती है। अतः कनक कलस तोरन मनि जाला। लिखकर विशेषता भी दिखलाते हैं। बाजार का साज कहकर घर का साज कहते हैं। बाजार की मङ्गलरचना दूसरे प्रकार की और घरकी दूसरे प्रकार की होती है। हलदी, दही, अक्षत, माला आदि प्रयोग घर की मङ्गलरचना में होता है।

दो मंगलमय निज निज भवन, लोगन्ह रचे बनाइ।
बीथीं सींचीं चतुरसम, चौके चारु पुराइ॥२९६॥

अर्थ लोगों ने अपने घरों को सँवारकर मङ्गलमय बनाया। सुन्दर चौके पुराकर चतुरसम से गलियों को सींचा।

व्याख्या यहाँ महाजनों को आज्ञा देनी नहीं पड़ी। आपसे आप लोगों ने अपना अपना घर मङ्गलमय बनाया। खूब सँवारकर रचना की। घर सँवारकर लोगों ने बाहर चौके पुराये। गलियाँ चतुरसम चार प्रकार के सुगन्धित द्रव्य को एकत्रित करके चतुरसम बनाते हैं से सींची गईं।

जहँ तहँ जूथ जूथ मिलि भामिनि। सजि नव सप्त सकल दुति दामिनि॥
बिधुबदनीं मृगसावक लोचनि। निज सरूप रति मान बिमोचनि॥१॥

अर्थ जहाँ तहाँ झुण्ड की झुण्ड स्त्रियाँ मिलकर सोलह शृङ्गार करके गान करने लगीं। सबके अङ्ग की प्रभा बिजली सी, मुख चन्द्रमा सा, आँखें मृग के बच्चों सी थी। अपने रूप से रति के अभिमान को मिटानेवाली थीं।

व्याख्या घरों का वर्णन करके अब घरवालियों का वर्णन करते हैं। कुरूपता भी पाप का फल है। अवध के नर नारी कृतार्थरूप हैं। यथा उमा अवधवासी नर, नारि कृतारथरूप। अथवा मनिगन पुर नर नारि सुजाती। सुचि अमोल सुन्दर सब भाँती। अतः स्त्रियों की सुन्दरता देखकर रति का अभिमान टूटता था। क्योंकि सभी चन्द्रबदनी और मृगनयनी थीं। मुख की शोभा कहकर सर्वाङ्ग की शोभा कहते हैं कि उसमें बिजली सी चमक है। तिस पर सोलहो शृङ्गार कर रक्खे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हैं। यथा प्रथम अंग सुचि एक विधि मज्जन दुतिय बखानि। अमल वसन पहिरन तृतिय जावक चारि सुजानि। १। पंचम केस सँवारियो पष्ठहि माँग सिंदूर। भाल खौरि सप्तम कहत अष्टचिबुक तिलपूर। २। मेहदी कर पद रचन नव दसम अरगजा अंग। ग्यारह भूषन नग जटित बारह पुष्प प्रसंग। ३। बासराग मुख तेरहो चौदह रँगिवो दाँत। अधर राग गनि पंचदस कज्जल षोडस भाँत। ४।

गावहि मंगल मंजुल बानी। सुनि कलरव कलकंठि लजानी॥
भूप भवन किमि जाइ बखाना। बिस्व बिमोहन रचेउ बिताना॥२॥

अर्थ : मनोहर वाणी से मङ्गलगान करने लगी। सुन्दर स्वर को सुनकर कोयल लज्जित हो उठी। राजा के घर का कैसे वर्णन किया जाय जहाँ संसार को मोहन करनेवाला मण्डप छाया गया था।

व्याख्या : मङ्गलगान करने लगी। उनका स्वर इतना मनोहर है कि कोयल लज्जित हो जाँय। जनकपुर के वर्णन में कहते हैं जूथ जूथ मिलि सुमुखि सुनयनी। करहि गान कल कोकिल बयनी और यहाँ कहते है सुनि कलरव कलकंठ लजाही। यहाँ मामला बढा हुआ है। सोलहो शृंगार कर रक्खे है। शरीर की द्युति भी दामिनी सी है। वहाँ एक अर्धाली में वर्णन है। यहाँ तीन अर्धाली में वर्णन करके तिगुना उत्सव कहा।

जब प्रजाओं के घर मे इतनी सजावट और आमोद प्रमोद है तब राजा के घर का क्या वर्णन किया जा सकता है? वहाँ विश्वविमोहन मण्डप साजा गया है। जनकपुर के मण्डप का तो वर्णन किया। पर यहाँ के मण्डप का वर्णन हो नहीं सकता। वहाँ का मण्डप देखकर ब्रह्मदेव भूल गये कि कदली के खम्भे आदि असली हैं कि बनावटी है। पर यहाँ तो विश्व विमोहन वितान रचा गया है। जिसे देखकर अपने शरीर का एकदम सँभाल नहीं रह जाता। मोह की परिभाषा ही यही है कि जहँ आपने शरीर की नेकु न रहै सँभार। यहाँ तो वितान के देखने से विमोह होता है।

मङ्गल द्रव्य मनोहर नाना। राजत बाजत बिपुल निसाना॥
कतहुँ बिरद बंदी उच्चरही। कतहुँ बेदधुनि भूसुर करही॥३॥

अर्थ : अनेक प्रकार के मनोहर मङ्गल द्रव्य शोभित थे। मङ्गल द्रव्याणि यथा : पूर्णकुम्भ द्विजं वेश्या शुक्लधान्यञ्च दर्पणम्। दध्याज्य मधुलाजञ्च पुष्पं दूर्वाक्षत सितम्। वृषं गजेन्द्र तुरग ज्वलदग्नि सुवर्णकम्। पर्णञ्च परिपक्वानि फलानि विविधानि च। मुक्ता प्रसून मालाश्च सद्योमांसं च चन्दनम्। ददर्शैतानि वस्तूनि मङ्गलानि तुरो मुने! ब्रह्मवैवर्ते। अर्थ : पूर्णकुम्भ, ब्राह्मण, वेश्या, श्वेत धान्य, दर्पण, दही, घी, मधु, लावा, फूल, दूर्वा, श्वेत अक्षत, बैल, हाथी, घोड़ा, जलती हुई आग, सोना, पत्ते, पके फल, मोती, फूल की माला, ताजा मांस, चन्दन ये मङ्गल

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


द्रव्य हैं। बहुत से डङ्के बज रहे हैं। कहीं वन्दी विरदावली उच्चारण करते और कहीं ब्राह्मण वेदध्वनि कर रहे हैं।

व्याख्या : जब मण्डप का वर्णन हुआ तो मङ्गल द्रव्यों का भी वर्णन होना चाहिए। इसलिए कहते हैं कि अनेक प्रकार के मनोहर मङ्गल द्रव्य वहाँ थे। भाव यह कि ताजा मांस इत्यादि मंगल द्रव्य होने पर भी मनोहर नहीं हैं। अतः उनकी अनुपस्थिति वहाँ पर कह रहे हैं। राजद्वार है। अतः उत्सव के समय में अनेक डंकाओं का बजना वन्दियों का विरद कहना और ब्राह्मणों का वेदध्वनि करना सर्वथा प्राप्त है। ये सब विशेषताएँ भूपभवन में थीं। लौकिक वैदिक दोनों रीतियाँ हो रही हैं। वन्दी का विरद कहना लौकिक रीति है और ब्राह्मणों की वेदध्वनि वैदिक रीति है।

गावहिं सुन्दरि मंगल गीता। लै लै नामु रामु अरु सीता॥
बहुत उछाह भवनु अति[1] थोरा। मानहु उमगि चला चहुँओरा॥४॥

अर्थ : सुन्दरियाँ राम और सीता का नाम लेकर मङ्गलगीत गाने लगीं। उत्साह बहुत था। घर छोटा पड़ गया। मानो उमगकर चारों ओर वह चला।

व्याख्या : राजभवन में जो गीत हो रहा है उसमें राम और सीता का नाम जोड़कर गा रही हैं। वरपक्षवाले के घर वर की ही प्रधानता रहती है। अतः उनके यहाँ पहिले वर का नाम लेकर तब वधू का नाम गीत में जोड़ते हैं। भाव यह कि ब्याह का गीत आरम्भ हो गया। दूत के मुख से सुन पाया है कि वधू का नाम सीता है। यथा : सीय स्वयंवर भूप अनेका। सिमिटे सुभट एक ते एका। यद्यपि दूत ने पुकारने का नाम सीता शब्द का तद्भव रूप सीय कहा। परन्तु उस समय प्राकृत का संस्कृत रूप जानने में कठिनता न थी। यद्यपि संसार सीताराम कहता है। पर अयोध्या के मङ्गलगान में तो 'राम सीता' ही गाया गया।

उछाह तो चारों ओर है। पर विशेष राजगृह में है। वहीं से आनन्द का सोता फूटा है। उसी की उपमा देते हैं कि जब किसी पात्र में बहुत सा जल भर दिया जाता है तो चारों ओर से वह चलता है। उसी भाँति राजमहल में उछाह इतना बढ़ा कि उसमें समा न सका तो चारों ओर से उमगकर वह चला। यथा भुवन चारि दस भरा उछाहू। जनक सुता रघुबीर बिबाहू।

दो. सोभा दसरथ भवन कै, को कबि बरनै पार।
जहाँ सकल सुर सीस मनि, राम लीन्ह अवतार॥२९७॥

अर्थ : महाराज दशरथ के महल की शोभा कौन कवि वर्णन कर सकता है। जहाँ सब देवताओं के शिरोमणि रामजी ने अवतार धारण किया था।

व्याख्या : जनकपुर की शोभा वर्णन करते हुए कहा है : बसइ नगर जेहि लच्छि करि कपट नारि बर बेष। तेहि पुर कै सोभा कहत सकुचहिं सारद सेष।

---

१. यहाँ अधिक अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हैं। यथा प्रथम अग सुचि एक विधि मज्जन दुतिय बखानि। अमल वसन पहिरन तृतिय जावक चारि सुजानि। १। पचम केस सँवारियो पष्ठहि माँग सिंदूर। भाल खौरि सप्तम कहत अष्टचिबुक तिलपूर। २। मेहदी कर पद रचन नव दसम अरगजा अग। ग्यारह भूषन नग जटित बारह पुष्प प्रसग। ३। वासराग मुख तेरहो चौदह रँगिवो दाँत। अधर राग गनि पचदस कज्जल पोडस भाँत। ४।

गावहि मगल मजुल बानी। सुनि कलरव कलकठि लजानी॥
भूप भवन किमि जाइ बखाना। विस्व विमोहन रचेउ विताना॥२॥

अर्थ मनोहर वाणी से मङ्गलगान करने लगी। सुन्दर स्वर को सुनकर कोयल लज्जित हो उठी। राजा के घर का कैसे वर्णन किया जाय जहाँ ससार को मोहन करनेवाला मण्डप छाया गया था।

व्याख्या मङ्गलगान करने लगी। उनका स्वर इतना मनोहर है कि कोयल लज्जित हो जाँय। जनकपुर के वर्णन मे कहते है जूथ जूथ मिलि सुमुखि सुनयनी। करहि गान कल कोकिल वयनी और यहा कहते हैं सुनि कलरव कलकठ लजाही। यहाँ मामला बढा हुआ है। सोलहो शृगार कर रक्खे हैं। शरीर की द्युति भी दामिनी सी है। वहाँ एक अर्धाली मे वर्णन है। यहाँ तीन अर्धाली मे वर्णन करके तिगुना उत्सव कहा।

जब प्रजाओ के घर म इतनी सजावट और आमोद प्रमोद है तब राजा के घर का क्या वर्णन किया जा सकता है? वहा विश्वविमाहन मण्डप साजा गया है। जनकपुर के मण्डप का तो वर्णन किया। पर यहाँ के मण्डप का वर्णन हो नही सकता। वहाँ का मण्डप देखकर ब्रह्मदेव भूल गये कि कदली के खम्भे आदि असली है कि बनावटी है। पर यहाँ तो विश्व विमाहन वितान रचा गया है। जिसे दखकर अपने शरीर का एकदम सँभाल नही रह जाता। माह की परिभाषा ही यही है कि जहँ आपने शरीर का नेकु न रहै सँभार। यहाँ तो वितान के देखने से विमोह होता है।

मङ्गल द्रव्य मनोहर नाना। राजत बाजत विपुल निसाना॥
कतहुँ विरद वदी उच्चरही। कतहु वेदधुनि भूसुर करही॥३॥

अर्थ अनेक प्रकार के मनोहर मङ्गल द्रव्य शोभित थे। मङ्गल द्रव्याणि यथा पूर्णकुम्भ द्विज वेश्या शुल्कधान्यञ्च दर्पणम्। दध्याज्य मधुलाजञ्च पुष्प दूर्वाक्षत सितम्। वृप गजेन्द्र तुरग ज्वलदग्नि सुवर्णकम्। पर्णञ्च परिपक्वानि फलानि विविधानि च। मुक्ता प्रसून मालाञ्च सद्योमास च चन्दनम्। ददर्शैतानि वस्तूनि मङ्गलानि तुरा मुने। ब्रह्मवैवर्ते। अर्थ पूर्णकुम्भ, ब्राह्मण वेश्या, श्वेत धान्य, दर्पण, दही, घी, मधु, लावा, फूल, दूर्वा, श्वेत अक्षत, बैल, हाथी, घोडा, जलती हुई आग, सोना, पत्ते, पके फल, मोती, फूल की माला, ताजा मास, चन्दन ये मङ्गल

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


द्रव्य हैं। बहुत से डङ्के बज रहे हैं। कहीं वन्दी विरदावली उच्चारण करते और कहीं ब्राह्मण वेदध्वनि कर रहे हैं।

व्याख्या : जब मण्डप का वर्णन हुआ तो मङ्गल द्रव्यों का भी वर्णन होना चाहिए। इसलिए कहते हैं कि अनेक प्रकार के मनोहर मङ्गल द्रव्य वहाँ थे। भाव यह कि ताजा मास इत्यादि मगल द्रव्य होने पर भी मनोहर नहीं हैं। अत उनकी अनुपस्थिति वहाँ पर कह रहे है। राजद्वार है। अत उत्सव के समय मे अनेक डकाओ का बजना वन्दियो का विरद कहना और ब्राह्मणो का वेदध्वनि करना सर्वथा प्राप्त है। ये सब विशेषताएँ भूपभवन मे थी। लौकिक वैदिक दोनो रीतियाँ हो रही है। वन्दी का विरद कहना लौकिक रीति है और ब्राह्मणो की वेदध्वनि वैदिक रीति है।

गावहि सुन्दरि मंगल गीता। लै लै नामु रामु अरु सीता ॥
बहुत उछाह भवनु अति[1] थोरा। मानहु उमगि चला चहुँओरा ॥४॥

अर्थ सुन्दरियाँ राम और सीता का नाम लेकर मङ्गलगीत गाने लगी। उत्साह बहुत था। घर छोटा पड गया। मानो उमगकर चारो ओर बह चला।

व्याख्या . राजभवन मे जो गीत हो रहा है उसमे राम और सीता का नाम जोडकर गा रही है। वरपक्षवाले के घर वर की ही प्रधानता रहती है। अत उनके यहाँ पहिले वर का नाम लेकर तब वधू का नाम गीत मे जोडते है। भाव यह कि व्याह का गीत आरम्भ हो गया। दूत के मुख से सुन पाया है कि वधू का नाम सीता है। यथा सीय स्वयवर भूप अनेका। सिमिटे सुभट एक ते एका। यद्यपि दूत ने पुकारने का नाम सीता शब्द का तद्भव रूप सीय कहा। परन्तु उस समय प्राकृत का सस्कृत रूप जानने मे कठिनता न थी। यद्यपि ससार सीताराम कहता है। पर अयोध्या के मङ्गलगान मे तो 'राम सीता' ही गाया गया।

उछाह तो चारो ओर है। पर विशेष राजगृह मे है। वहीं से आनन्द का सोता फूटा है। उसी की उपमा देते है कि जब किसी पात्र मे बहुत सा जल भर दिया जाता है तो चारो ओर से बह चलता है। उसी भाँति राजमहल मे उछाह इतना बढा कि उसमे समा न सका तो चारो ओर से उमगकर बह चला। यथा भुवन चारि दस भरा उछाहू। जनक सुता रघुवीर विवाहू।

दो सोभा दसरथ भवन कै, को कवि करनै पार।
जहाँ सकल सुर सीस मनि, राम लीन्ह अवतार ॥२९७॥

अर्थ महाराज दशरथ के महल की शोभा कौन कवि वर्णन कर सकता है। जहाँ सब देवताओ के शिरोमणि रामजी ने अवतार धारण किया था।

व्याख्या जनकपुर की शोभा वर्णन करते हुए कहा है बसइ नगर जेहि लच्छि करि कपट नारि वर वेष। तेहि पुर की शोभा कहत सकुचहि सारद सेष।

---

१. यहाँ अधिक अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


वहाँ जनकभवन की शोभा की विशेषता नही कही। कहते हैं जनक भवन की सोभा जैसी। गृह गृह प्रति पुर देखिय तैसी। क्योकि जनकभवन मे जगदम्बा का अवतार नही हुआ था। वह तो यज्ञ के लिए जोते जानेवाली भूमि मे हुआ था। जनकपुर की विशेषता यह थी कि वहाँ जगदम्बा कपट नारि वर वेष मे बसती थी। अत वहाँ पूरे जनकपुर की शोभा कही। यहाँ अयोध्या मे तो महाराज के महल मे श्रीरामावतार हुआ था। अत महाराज के महल की विशेषता थी। दशरथभवन की शोभा का वर्णन करते हुए कहते हैं कि कोई कवि वर्णन नही कर सकता। क्योकि यहाँ सकलदेवशिरोमणि रामजी ने अवतार ग्रहण किया था। सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड मे वही स्थल इस योग्य था जहाँ पूर्ण ब्रह्म का आविर्भाव हो सके। जनकपुर की शोभा मे शारदा और शेष को सङ्कोच है। पर यहाँ की शोभा के वर्णन मे वे असमर्थ है। निर्गलितार्थ यह कि जनकपुर का उत्कर्ष जानकीजी के निवास से है और दशरथभवन की बडाई श्रीरामजी के वहाँ अवतार धारण करने से है।

भूप भरत पुनि लिये बोलाई। हय गय स्यदन साजहु जाई॥
चलहु बेगि रघुबीर बराता। सुनत पुलक पूरे दोउ भ्राता॥१॥

अर्थ फिर राजा ने भरतजी को बुला भेजा और कहा कि जाकर घोडे हाथी और रथ सजाओ। शीघ्र ही रघुवर की बारात मे चलो। सुनते ही दोनो भाई पुलक से पूर्ण हो गये।

व्याख्या मुनि प्रसाद कहि द्वार सिधाए से प्रसङ्ग छोडा था। भूप भरत पुनि लिये बोलाई से उसी प्रसङ्ग को उठाते हैं। दोनो भाइयो मे इस समय भरतजी ही बडे हैं। अत बुलाहट उन्ही की हुई। पर उनके साथ शत्रुघ्नजी भी आये। क्योकि ये सदा भरतजी के साथ रहते हैं। यथा भरत शत्रुहन दूनौ भाई। प्रभु सेवक जसि प्रीति बडाई। राजसभा म भरतजी की पुनीत प्रीति देखी जा चुकी है। यथा प्रीति पुनीत भरत कै देखी। सकल सभा सुख लहहु बिसेखी। अत उन्ही को बारात ब्रात सजाने की आज्ञा हुई। चतुरङ्गिणी सेना मे से हय गज स्यदन के ही साजने की आज्ञा हुई पदचर के लिए नही हुई। आज चक्रवर्तीजी राम न कहकर रघुबीर कहते हैं। क्योकि धनुषभङ्ग से वीरता प्रमाणित हो चुकी। वीरा की बारात ऐसी ही होती है। जय पहिले ही जाकर किया। अब बारात पीछे से चल रही है। बिना दूल्हे की बारात साजी जा रही है। भरत शत्रुघ्न को नगररक्षा के लिए आज्ञा न होकर बारात मे चलने के लिए आज्ञा हुई। अत अति हर्ष से पुलकायमान हो गये। भरतजी के लिए जो आज्ञा हुई वही शत्रुघ्नजी के लिए समझ लेनी चाहिए।

भरत सकल साहनी बोलाए। आयसु दीन्ह सकल उठि धाए॥
रचि रुचि जीन तुरग तिन साजे। बरन बरन बर बाजि बिराजे॥२॥

अर्थ . भरतजी ने सब दारोगो को बुलाया और आज्ञा दी। वे प्रसन्न होकर दौड पडे। उन्होने रुचि से रचकर घोडो पर जीन सजाये। रङ्ग रङ्ग के सुन्दर घोडे शोभित थे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या भरतजी ने विभागो के अध्यक्षो को बुलवाया। चक्रवर्तीजी ने भरतजी को आज्ञा दी। उन्होने बलाध्यक्षो को वही आज्ञा दोहराई। अत पुनरुक्ति के भय से उसे नही लिखते। भरतजी के दरबार मे बलाध्यक्ष लोग उपस्थित हुए। भरतजी ने चक्रवर्तीजी की आज्ञा केवल दोहरायी ही नही उसे विस्तार के साथ समझाया। आगे की प्रक्रिया से सब बातें स्पष्ट हो जावेंगी। यहाँ विस्तार से लिखने की आवश्यकता नही है। आज्ञा पाते ही वे आनन्द के साथ उठकर दौड पडे। मुनिजी ने आज्ञा दी : चलहु वेगि सुनि मुनि बचन भलेहि नाथ सिर नाय। तदनुसार चक्रवर्तीजी आज्ञा देते है चलहु वेगि रघुवेर बराता। आयसु पाइ मुदित उठि धाये। इससे अनुमित है कि भरतजी ने भी चलहु वेगि यही आज्ञा दी।

जिस रङ्ग के घोडे पर जैसी जीन खिलेगी जैसा साज फवेगा। यही विचार कर अपनी अपनी रुचि के अनुसार रचकर साजा। सवारी के घोडे रङ्ग विरङ्गे थे।

सुभग सकल सुठि चचल करनी। अय इव जरत धरत पग धरनी ॥
नाना जाति न जाहि बखाने। निदरि पवनु जनु चहत उडाने ॥३॥

अर्थ सब घोडे सुन्दर और अति चञ्चल करणीवाले थे। वे जलते हुए लोहे पर पैर रखने की भाँति पृथ्वी पर पैर रखते थे। वे अनेक जातियो के थे जिनका वर्णन नही हो सकता। मानो हवा का निरादर करके उडा चाहते हैं। जहाँ हुअ जिमि जरत पाठ है वहाँ अर्थ करना होगा कि मानो जलती हुई धरती पर पाँव रख रहे हैं। ऐसे चञ्चलकरणी हुए।

व्याख्या सुभग कहकर रूप कहा चञ्चल कहने से गुण कहा। कहावत है कि लडके और घोडे चञ्चल ही अच्छे होते है। सो ऐसे चञ्चल हैं कि उनसे स्थिर रहा ही नही जाता। उनके लिए मानो पृथ्वी गरम लोहे की हो रही है। पृथ्वी पर पैर रखा कि तुरन्त उठाया। बराबर थिरकते ही रहते हैं। घोडो की जाति होती है। मानी हुई बात है कि जातिवाले घोडे अच्छे होते हैं। बडे यत्न से घोडो की जाति की रक्षा की जाती है। हीन जाति मे जोडा नही खाने देते। नही तो नसल बिगड जाती है। आजकल लोग अपने नसल से अधिक घोडो और कुत्तो की नसल पर ध्यान देते हैं। घोडो मे अनेक जातियाँ हैं। तदनुसार उनके रूप आकार और गुणो मे भेद होता है। यथा ताजी, तुरकी, अरबी, कच्छी, पयगू, बुटवल, रगपुर दीनाजपुर के टाँघन आदि।

अब पराक्रम कहते है कि वे दूसरे घोडे को अपने से आगे बढने देना तो सहन कर सकते ही नही। हवा का भी आगे बढना उन्हे सह्य नही है। उसका भी निरादर करके उडना चाहते हैं।

तिन सब छयल भये असवारा। भरत सरिस वय राजकुमारा ॥
सब सुदर सब भूपनधारी। कर सर चाप तून कटि भारी ॥४॥

अर्थ उन सब पर भरतजी के समान आयुवाले छैल छबीले राजकुमार

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


सवार हुए। सब सुन्दर थे। आभूषण धारण किये हुए थे। उनके हाथों मे धनुष बाण था और कमर मे भारी तरकस बँधा था।

व्याख्या भरतजी को जो आज्ञा हुई चलहु बेगि रघुवीर बराता। सो भरत के समवयस्क राजकुमार भरत शत्रुघ्न के साथ घोडो पर सवार हुए। घोडे की सवारी नवयुवको के ही योग्य है। क्षत्रिय महाराज की बारात है। दूल्हा भी घोडे पर ही रहेगा। यह उम्र शौकीनी की है। इसलिए राजकुमारो को छैल छबीले कहते हैं। जिस भाँति कुछ दिन पहले बारातो मे बाँके निकलते थे उसी भाँति यह छैल छबीला समाज था। जिस भाँति राजाओ की उपस्थिति श्रीचक्रवर्तीजी की सभा मे थी उसी भाँति राजकुमार लोगो की उपस्थिति इस समय भरतजी की सभा मे थी।

सभी राजकुमार सुन्दर थे। सुन्दर घोडो पर चढने के लिए सुन्दर सवार चाहिए। घोडे अलङ्कृत है। अत सवार भी भूषणधारी होने चाहिए। घोडे गुणवान् और पराक्रमी है। अत सवार भी धनुर्धर और वीर होने चाहिए। घोडे अल्पवयस्क है। अत सवार भी छैल छबीले चाहिए। सो सब समाज यहाँ ठीक जुट गया है।

दो. छरे छबीले छयल सब, सूर सुजान नवीन।
जुग पदचर असवार प्रति, जे असिकला प्रवीन ॥२९८॥

अर्थ . छरहरे बदनवाले सब छैल छबीले अपूर्व शूर सुजान और प्रत्येक सवार के साथ दो दो तलवार बहादुर पार्श्वरक्षक पैदल थे।

व्याख्या भारी शरीरवाले रथ या गज की सवारी के योग्य होते है। यहाँ नवीन शब्द का अर्थ अपूर्व है। क्योकि छैल शब्द से ही अल्पवयस्कता का भाव आगया। अपूर्व शूर बिना हुए भूषणवसन और शस्त्रास्त्र की शोभा नही और सुजान बिना हुए राजकुमारो की सभी शोभा व्यर्थ है। अत सूर सुजान नवीन कहते है। सभी सवारो के साथ दो दो पार्श्वरक्षक हैं। जो संग्राम मे सवार के पैरो की और घोडो की रक्षा कर सकें और वे तलवार चलाने मे निपुण थे। निकट मे आये हुए शत्रु पर तलवार की ही चोट हो सकती है। आज कल जो बारात की प्रथा है वह सेना का ही अनुकरण है।

बाँधे बिरद बीर रन गाढे। निकसि भये पुर बाहेर ठाढे ॥
फेरहि चतुर तुरग गति नाना। हरषहि सुनि सुनि पनव निसाना ॥१॥

अर्थ विरुदवाले वीर रण मे दक्ष निकलकर पुर के बाहर खडे हुए। वे चतुर घोडो को अनेक प्रकार की गतियो से फेर रहे हैं और मृदंग तथा बाजे नगाडे का शब्द सुन सुनकर प्रसन्न हो रहे हैं।

व्याख्या गद्यपद्यमयीराजस्तुतिर्विरुदमुच्यते। गद्य और पद्यमयी वाणी मे राजा की स्तुति को बिरद कहते हैं। जो गुण जिसमे विशेष होता है या जो प्रण

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जिसका होता है वही उसके विरुद म कहा जाता है। जो जिस विरुद को अपना लेता है प्राण जाने पर भी उसका परित्याग नही करता। यथा विरद बाँधि बरबीर कहाई। चले समर जनु सुभट पराई। प्रख्यात पौरुष वीरो का भी विरुद होता है। रनगाढे का अर्थ है रणदक्ष। यथा मिले न कबहुँ सुभट रन गाढे। लेत चढावत खैंचत गाढे। ऐसे गुणवाले वीर राजकुमार बारात के लिए पुर के बाहर आकर खडे हुए और बारात का इन्तजार करने लगे। यह पहिला कार्य हुआ।

खडे होने की अवस्था मे भी घोडे अनेक चाल से फेरे जा रहे हैं। फेरनेवाले भी चतुर हैं। बाजे का शब्द सुनकर दोनो को हर्ष होता है। बाजे का शब्द सुनकर घुड्दौड के घोडे काबू के बाहर हो जाते हैं। उनसे स्थिर रहा नही जाता।

**रथ सारथिन्ह विचित्र बनाए। ध्वज पताक मनि भूषन लाए ॥**
**चँवरु चारु किंकिन धुनि करही। भानु जानु सोभा अपहरही ॥२॥**

अर्थ ध्वजा, पताका, मणि और भूषण लगाकर सारथियो ने रथा की विचित्र सजावट की है। रथ पर चँवर चल रहे हैं और घण्टियाँ बज रही हैं। सूर्य के रथ की शोभा का अपहरण कर रहे हैं।

व्याख्या सारथियो ने पहिले रथ का शृगार किया। ध्वजा पताका तथा मणि और भूषणो से ऐसा अलकृत किया कि रथो की अद्भुत शोभा हुई। रथो को युद्ध सामग्री से सुसज्जित करने की विधि है। परन्तु बारात मे रथ जा रहे है। अत मणिभूषणो से सजाये गये। यही रथ की विचित्रता है कि जब रथ चालू होता है तो चँवर चलने लगता है। क्षुद्र घण्टियाँ बजने लगती है। रथ ऐसा जगमगा रहा है कि सूर्य के रथ की शोभा को मात कर रहा है।

**सांवकरन[१] अगनित हय होते। ते तिन्ह रथन्ह सारथिन्ह जोते ॥**
**सुन्दर सकल अलकृत सोहे। जिन्हहि बिलोकत मुनि मन मोहैं ॥३॥**

अर्थ · श्यामकर्ण घोडो की गिनती न थी। उन्हे सारथियो ने रथ मे जोता। वे सुन्दर और अलङ्कार से युक्त होकर ऐसे शोभित हैं कि उन्हे देखकर मुनियो का मन मोहित हो जाय।

व्याख्या श्यामकर्ण घोडे श्वेत वर्ण के होते है। केवल उनका कान काला होता है। इसी से श्यामकर्ण कहलाते है। प्राचीन काल म भी ये कम थे। अब तो सम्भवत पृथ्वी मण्डल मे कदाचित् ही कही हो। महाराज दशरथ के यहाँ ऐसे असख्य घोडे थे। उनमे रथ का काम लिया जाता था। पीठ सवारी के लिए जैसा पहिले

---

१ मो नुनासिको वो वा इस सूत्र से म का सानुनासिक व आदेश हुआ। अधोमनयाम् इस सूत्र से श्या के यकार का लोप होकर श्याम शब्द का रूप साव हुआ। और विप्रकर्ष करके कर्ण का करन रूप हो जाता है। इस भाँति श्यामकर्ण का तद्भव रूप सांवकरन सिद्ध हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कहा जा चुका है अनेक जाति के घोडे थे। उन श्यामवर्ण घोडो को उन रथो मे सारथिया ने जोता। वे सब स्वभाव से ही सुन्दर थे। तिस पर उन्हे अलङ्कार से शृङ्गारित किया गया। अत वे ऐसे मनोहर दिखाई पडने लगे कि उनके देखने से विषयविमुग्न स्थितप्रज्ञ का भी मन मोहित हो जाय।

जे जल चलहि थलहि की नाई। टापन बूड बेग अधिकाई॥
अस्त्र सस्त्र सब साजु बनाई। रथी सारथिन्ह लिए बोलाई॥४॥

अर्थ जो थल की ही भाँति जल पर चलते थे। वेग की अधिकता से टाप नही डूबता था। सारथिया ने अस्त्र शस्त्र सब साज को सजाने के बाद रथियो को बुला लिया।

व्याख्या अब श्यामवर्ण घोडा की विशेषता कहते है। उनकी गति जल पर भी है। उनमे इतना वेग हाता है कि अपने टाप को जल मे डूबने का अवसर नही देते। जिस हथियार को फेंककर प्रहार करते हैं उसे अस्त्र और जिसे हाथ मे लिये हुए प्रहार करत है उस शस्त्र कहते है। ढाल, तलवार, परशु, शक्ति, तरकस, धनुप आदि यथास्थान रथ म सजाये जाते है और भी युद्ध की सामग्री अग्नि आदि रथ पर रक्खी रहती हैं। इस भाँति पहिले रथ को साजा। फिर चार घोडो को अलकृत करके उनम जोडे। तत्पश्चात् अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित किया। रथ के ठीक हो जाने पर सारथियो ने अपने अपने रथियो को बुला लिया। बारात मे युद्धरथ ही साजे गये। विहार रथ की आवश्यकता नही समझी गई।

दो० चढि चढि रथ बाहेर नगर, लागी जुरन बरात।
होत सगुन सुदर सबहि, जो जेहि कारज जात॥२९९॥

अर्थ रथ पर चढ चढकर नगर के बाहर बारात जुटने लगी और जो जिस कार्य के लिए जाता था उन सबको सुन्दर सगुन होते थे।

व्याख्या दूसरा कार्य। रथी घुडसवारो की भाँति इकट्ठे नही आये। आगे पीछ करके एक एक रथी आ रहे है। इस भाँति बारात जुटने लगी। राजकुमारो के आने पर बारात नही कहा। उनकी लडको म गिनती है। रथिया के आने पर बारात कहते हैं। क्योकि ये महाराज के समवयस्क है। महाराज रथ पर चलेंगे। इसलिए सरदार लोग सब रथ पर सवार हो रहे हैं। पहिले घुडसवार निकसि भये पुर बाहेर ठाढे। तब रथा की पक्ति साजी गई। यथा चढि रथ बाहेर नगर लागी जुरन बरात। बाहर नगर जुटने का भाव यह है कि नगर के भीतर इतना विस्तृत स्थान नही है। जब से घुडसवार चले तब से शकुन प्रारम्भ है। रथ के पीछे हाथियो की पक्ति रहेगी।

कलित करिबरन्हि परी अँबारी। कहि न जाइ जेहि भाँति सँवारी॥
चले मत्त गज घट बिराजी। मनहु सुभग सावन घन राजी॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ अलकृत हाथिया पर अम्बारियाँ पडी थी। जिस भाँति सँवारी गई थी उसका वर्णन नही हो सकता। घण्टाओ से सुशोभित मतवाले हाथी चले। जान पडता था कि सावन के सुन्दर बादलो की पक्ति चल रही है।

व्याख्या अम्बारियाँ अत्यन्त ऊचे पर हैं। ऐसे क्रम से बारात जुट रही है जिसमे सबको दिखाई पड सके। सबसे आगे अश्वारोही है। उनके पीछे रथ है जो घोडो से ऊँचे है। अश्वारोहियो के पीछे होने पर भी अपने अपने रथो पर दिखाई पड रहे हैं। उनके भी पीछे हाथियो की पक्ति है। जो रथ से भी ऊँचे हैं। उनकी पीठ पर अम्बारियाँ अत्यन्त ऊँचे पर होने से बराबर दृष्टिगोचर हो रही है। वे ऐसी साजी गई हैं कि उनका वर्णन नही हो सकता। गजारोहियो का कोई उल्लेख नही है। क्योकि महाराज की सवारी रथ पर होनेवाली है। इसलिए सब सरदार रथो पर आगये हैं। हाथियो पर कोई नही है। उनपर केवल अम्बारियो की शोभा है। जब महाराज हाथी पर सवार होगे तब सरदार लोग भी हाथी पर सवार हो सकेंगे।

कलित करिबरन्ह का ही वर्णन हो रहा है। मत्त गज स्वभाव से ही सुन्दर मालूम पडते है। तिस पर अलकृत होने से और भी शोभा बढ गई। चलने के समय यदि घण्टा का शब्द न हुआ तो हाथी के चलने की शोभा नही होती। इसीलिए घटविराजी कहते है। घण्टा शब्द स्त्रीलिंग है। उसका तद्भवरूप 'घट' भी स्त्रीलिङ्ग है। इसलिए बिराजी कहा। जिसको सैकडो हाथियो के एक साथ चलने के देखने का अवसर मिला है वे जानते हैं कि वस्तुत दूर से ऐसा ही मालूम होता है कि सावन की काली घटा उमडी चली आ रही है। सावन की घटा सुन्दर होती है। अकाल की घटा सी भयानक नही होती। घण्टा के झलने से जो चमक पैदा हो रही है वह मानो बिजली चमक रही है। रास्ते भर महाराज की सवारी रथ पर रहेगी। द्वाराचार के समय हाथिया से काम लिया जायगा। इसलिए साथ है। यह तीसरा कार्य हुआ अँबारी मण्डपदार हौद को कहते हैं।

**बाहन अपर अनेक बिधाना। सिबिका सुभग सुखासन जाना॥**
**तिन्ह चढि चले बिप्रबर बृदा। जनु तनु धरे सकल श्रुति छदा॥२॥**

अर्थ और भी अनेक प्रकार की सवारियाँ थी। पालकी सुखासन झम्पान गाडी आदि। इन पर चढकर श्रेष्ठ ब्राह्मणो का समूह चला। मानो शरीर धारण किये हुए वेदो के छन्द हैं।

व्याख्या भरतजी को महाराज का इतनी ही आज्ञा हुई थी कि हयगय स्यदन साजहु जाई। परन्तु चलहु बेगि रघुबीर बराता। इस कथन की ध्वनि को समझकर भरतजी ने सब व्यवस्था की। पालकी सुखासन[1] झम्पान और यान आदि के वहन करने मे मनुष्य लगते है। ये ही ब्राह्मणो के स्वरूपानुकूल सवारियाँ

---

१ झम्पान मे दो बाँस और यान मे चार बास लगते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कहा जा चुका है अनेक जाति के घोडे थे। उन श्यामकर्ण घोड़ों को उन रथों में सारथियो ने जोता। वे सब स्वभाव से ही सुन्दर थे। तिस पर उन्हे अलङ्कार से शृङ्गारित किया गया। अत वे ऐसे मनोहर दिखाई पड़ने लगे कि उनके देखने से विपयविमुख स्थितप्रज्ञ का भी मन मोहित हो जाय।

जे जल चलहिं थलहिं की नाईं। टापन बूड़ वेग अधिकाईं॥
अस्त्र सस्त्र सब साजु बनाई। रथी सारथिन्ह लिए बोलाई॥४॥

अर्थ · जो थल की ही भाँति जल पर चलते थे। वेग की अधिकता से टाप नही डूबता था। सारथियो ने अस्त्र शस्त्र सब साज को सजाने के बाद रथियों को बुला लिया।

व्याख्या . अब श्यामकर्ण घोडो की विशेपता कहते है। उनकी गति जल पर भी है। उनमे इतना वेग होता है कि अपने टाप को जल मे डूबने का अवसर नही देते। जिस हथियार को फेककर प्रहार करते है उसे अस्त्र और जिसे हाथ मे लिये हुए प्रहार करते है उसे शस्त्र कहते है। ढाल, तलवार, परशु, शक्ति, तरकस, धनुप आदि यथास्थान रथ मे सजाये जाते है और भी युद्ध की सामग्री अग्नि आदि रथ पर रक्खी रहती है। इस भाँति पहिले रथ को साजा। फिर चार घोड़ो को अलकृत करके उनमे जोडे। तत्पश्चात् अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित किया। रथ के ठीक हो जाने पर सारथियो ने अपने अपने रथियो को बुला लिया। बारात मे युद्धरथ ही साजे गये। विहार रथ की आवश्यकता नही समझी गई।

दो. चढि चढ़ि रथ बाहेर नगर, लागी जुरन बरात।
होत सगुन सुदर सबहिं, जो जेहि कारज जात॥२९९॥

अर्थ रथ पर चढ चढकर नगर के बाहर बारात जुटने लगी और जो जिस कार्य के लिए जाता था उन सबको सुन्दर सगुन होते थे।

व्याख्या . दूसरा कार्य। रथी घुडसवारो की भाँति इकट्ठे नही आये। आगे पीछे करके एक एक रथी आ रहे है। इस भाँति बारात जुटने लगी। राजकुमारो के आने पर बारात नही कहा। उनकी लड़को मे गिनती है। रथियो के आने पर बारात कहते हैं। क्योकि ये महाराज के समवयस्क है। महाराज रथ पर चलेंगे। इसलिए सरदार लोग सब रथ पर सवार हो रहे हैं। पहिले घुड़सवार : निकसि भये पुर बाहेर ठाढे। तब रथो की पंक्ति साजी गई। यथा : चढि रथ बाहेर नगर लागी जुरन बरात। बाहेर नगर जुटने का भाव यह है कि नगर के भीतर इतना विस्तृत स्थान नही है। जब से घुड़सवार चले तब से शकुन प्रारम्भ है। रथ के पीछे हाथियों की पंक्ति रहेगी।

कलित करिबरन्हि परी अँबारी। कहि न जाइ जेहि भाँति सँवारी॥
चले मत्त गज घंट बिराजी। मनहुँ सुभग सावन घन राजी॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ अलकृत हाथियो पर अम्बारियाँ पडी थी। जिस भाँति सँवारी गई थी उसका वर्णन नही हो सकता। घण्टाओ से सुशोभित मतवाले हाथी चले। जान पडता था कि सावन के सुन्दर बादलो की पक्ति चल रही है।

व्याख्या अम्बारियाँ अत्यन्त ऊँचे पर है। ऐसे क्रम से बारात जुट रही है जिसमे सबको दिखाई पड सके। सबसे आगे अश्वारोही हैं। उनके पीछे रथ है जो घोडो से ऊँचे है। अश्वारोहियो के पीछे होने पर भी अपने अपने रथो पर दिखाई पड रहे हैं। उनके भी पीछे हाथियो की पक्ति है। जो रथ से भी ऊँचे हैं। उनकी पीठ पर अम्बारियाँ अत्यन्त ऊँचे पर होने से बराबर दृष्टिगोचर हो रही हैं। वे ऐसी साजी गई हैं कि उनका वर्णन नही हो सकता। गजारोहियो का कोई उल्लेख नही है। क्योकि महाराज की सवारी रथ पर होनेवाली है। इसलिए सब सरदार रथो पर आगये हैं। हाथियो पर कोई नही है। उनपर केवल अम्बारियो की शोभा है। जब महाराज हाथी पर सवार होगे तब सरदार लोग भी हाथी पर सवार हो सकेंगे।

कलित करिवरन्हि का ही वर्णन हो रहा है। मत्त गज स्वभाव से ही सुन्दर मालूम पडते हैं। तिस पर अलकृत होने से और भी शोभा बढ गई। चलने के समय यदि घण्टा का शब्द न हुआ तो हाथी के चलने की शोभा नही होती। इसीलिए घटविराजी कहते हैं। घण्टा शब्द स्त्रीलिंग है। उसका तद्भवरूप 'घट' भी स्त्रीलिङ्ग है। इसलिए बिराजी कहा। जिसको सैकडो हाथियो के एक साथ चलने के देखने का अवसर मिला है वे जानते हैं कि वस्तुत दूर से ऐसा ही मालूम होता है कि सावन की काली घटा उमडी चली आ रही है। सावन की घटा सुन्दर होती है। अकाल की घटा सी भयानक नही होती। घण्टा के झलने से जो चमक पैदा हो रही है वह मानो बिजली चमक रही है। रास्ते भर महाराज की सवारी रथ पर रहेगी। द्वाराचार के समय हाथियो से काम लिया जायगा। इसलिए साथ है। यह तीसरा कार्य हुआ अँबारी मण्डपदार हौदे को कहते हैं।

बाहन अपर अनेक बिधाना। सिबिका सुभग सुखासन जाना॥
तिन्ह चढि चले बिप्रबर बृदा। जनु तनु धरे सकल श्रुति छदा॥२॥

अर्थ और भी अनेक प्रकार की सवारियाँ थी। पालकी सुखासन झम्पान गाडी आदि। इन पर चढकर श्रेष्ठ ब्राह्मणो का समूह चला। मानो शरीर धारण किये हुए वेदो के छन्द हैं।

व्याख्या भरतजी को महाराज की इतनी ही आज्ञा हुई थी कि हयगय स्यदन साजहु जाई। परन्तु चलहु बेगि रघुबीर बराता। इस कथन की ध्वनि को समझकर भरतजी ने सब व्यवस्था की। पालकी सुखासन[1] झम्पान और यान आदि के वहन करने मे मनुष्य लगते हैं। य ही ब्राह्मणो के स्वरूपानुकूल सवारियाँ

1 झम्पान म दो बाँस और यान म चार बाँस लगते है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हैं। घोड़ा रथ हाथी की सवारी ब्राह्मणों के अनुकूल नहीं पड़ती। वेद के छन्द यथा गायत्री, उष्णिक, अनुष्टुप्, वृहती, पंक्ति आदि। इनकी भाँति ब्राह्मण लोग श्रुतिछन्द हैं। स्वच्छन्द नहीं हैं। इनके चलने की शोभा कहते हैं। मानो ये मूर्तिमान् वेद के छन्द हैं। विवाह वैदिक संस्कार है। अतः वैदिकों की आवश्यकता है। यह चौथा कार्य हुआ।

मागध सूत बंदि गुनगायक। चले यान चढ़ि जो जेहि लायक॥
बेसर ऊँट बृषभ बहु जाती। चले बस्तु भरि अगनित भाँती॥३॥

अर्थ : मागध, सूत और वन्दी ये तीनों गुणगायक हैं। ये जो जिसके योग्य थे वैसे यानों पर चढ़ चढ़कर चले। ऊँट और अनेक जाति के बैल असंख्य प्रकार की वस्तुओं को लाद लादकर चले।

व्याख्या : वंशप्रशंसक, पौराणिक और भाट अपनी अपनी योग्यतानुसार सवारियों पर चले। स्तुति पाठ के लिए इनकी आवश्यकता है। राजाओं की तेजोवृद्धि के लिए तथा शिक्षा के लिए ये लोग बड़े उपकारक होते हैं। यह पाँचवाँ कार्य हुआ। बेसर, ऊँट, वृषभ आदि भारवाही पशु हैं। इन पर चढ़ना निषिद्ध है। इन पर नाना भाँति की वस्तुएँ लादकर रवाना की गयीं। रसद, विस्तरा, विवाह की सामग्री आदि ले जाने के लिए इनकी आवश्यकता पड़ी। यह छठा कार्य हुआ।

कोटिन्ह काँवरि चले कहारा। बिबिध बस्तु को बरनै पारा॥
चले सकल सेवक समुदाई। निज निज साजु समाजु बनाई॥४॥

अर्थ : करोड़ों काँवर लेकर कहार चले। उनमें नाना प्रकार की वस्तुएँ थीं। उनका कौन वर्णन कर सकता है। सब सेवकों का समूह अपना अपना साज समाज बनाकर चला।

व्याख्या : करोड़ों कहार बहँगी काँवर लेकर चले। इनमें विशेष विशेष व्यक्तियों के नित्यकर्मोपयोगी समान लदे थे। बरात के सामान भी बहँगियों काँवर में चले। अनेक प्रकार की छोटी मोटी वस्तुएँ लदी हैं। उनका क्या वर्णन किया जाय। यह सातवाँ कार्य हुआ।

मालिक लोग सवारी पर चले। असबाब काँवर पर चला। अब सेवक लोग पैदल चले। पानदान आदि साज तथा अपनी अपनी मण्डली नियत करके चले। यह आठवाँ कार्य हुआ।

दो. सबके उर निर्भर हरषु, पूरित पुलक सरीर।
कबहिं देखिबे नयन भरि, रामु लखनु दोउ बीर॥३००॥

अर्थ : सबके हृदय में हर्ष उमड़ रहा है और शरीर में पुलक हो रहा है। कब आँख भरकर राम लक्ष्मण दोनों वीरों को देखेंगे। यह लालसा हो रही है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या रामजी और लक्ष्मणजी ऐसे लोकप्रिय है कि मालिक से लेकर नौकर तक सबके हृदय मे बडा भारी हर्ष हो रहा है और शरीर मे पुलक है। इस आशा पर कि अब राम लक्ष्मण का दर्शन शीघ्र ही होगा और इतनी उत्कण्ठा है कि थोडा सा भी समय भारी हो रहा है और लालसा लगी है कि दोनो वीरो को कब आँख भरकर देखे। क्योकि आँखे दर्शनो की प्यासी हो रही है।

गरजहिं गजघटा धुनि घोरा। रथ रव बाजि हिंस चहुँ ओरा॥
निदरि घनहि घुम्मरहिं निसाना। निज पराइ कछु सुनियँ न काना॥१॥

अर्थ हाथी चिग्घाड रहे हैं। घण्टाओ की घोर ध्वनि हो रही है। चारो ओर रथो का शब्द हो रहा है। घोडे हिनहिना रहे है। बादलो का निरादर करते हुए डङ्के गम्भीर ध्वनि से बज रहे हैं। अपना पराया कुछ सुनाई नही पड रहा है।

व्याख्या हाथी के चिग्घाड को गर्जन कहते है। ये निषाद स्वर मे बोलते हैं। घण्टाओ के शब्द से नाद बढता है। यथा घण्टास्वनेन तन्नादानम्विका चोपवृहयत्। रथ के चलने से जो शब्द होता है उसे रव और घोडो के शब्द को हीसना कहते हैं। डङ्के घन के शब्द का अनुकरण करते हैं। अत घुम्मरहिं कहा। ये शब्द एक साथ चारो ओर से हो रहे हैं। क्योकि हाथी घोडे रथ निशान आदि चारो ओर से चले आरहे है। नगर के बाहर क्रमवद्ध करके साजे जा रहे है। सब प्रकार के शब्द के मिलने से ऐसा तुमुलनाद हो रहा है कि अपने बोले शब्द अपने को ही सुनाई नही पड रहे हैं। दूसरे की कौन सुनता है कवि अब यही से राजद्वार का दृश्य देखने लगे। अत कहते हैं।

महा भीर भूपति के द्वारे। रज होइ जाइ पपान पवारे॥
चढी अटारिन्ह देखहि नारी। लिए आरती मगल थारी॥२॥

अर्थ राजा के द्वार पर बडी भारी भीड है। पत्थर फेंका जाय तो पिसकर धूल हो जाय। स्त्रियाँ अटारियो पर चढी हुई देख रही हैं। वे मङ्गल थालियो मे आरती लिये है।

व्याख्या भीड तो इस समय बाजार और गलियो मे सभी स्थानो मे है। पर राजद्वार मे बडी भारी भीड है। पहिले के पडे हुए रोडे तो पिसकर धूल हो ही गये। यदि कोई अब पत्थर फेक दे तो पैरो के तले रौंदे जाने से धूल हो जाय। नर लोग नीचे है। बारात जा रहे है। काम से जा रहे हैं। दृश्य देखने के लिए चले जा रहे हैं। पर नारियाँ अटारियो पर चढकर देख रही है। जब महाराज की सवारी निकलगी उस समय आरती करने के लिए मङ्गलद्रव्य से सजायी हुई थालियाँ हाथो मे ले रक्खी है इससे महाराज की लोकप्रियता कही।

गावहिं गीत मनोहर नाना। अति आनदु न जाइ बखाना॥
तब सुमत्र दुइ स्यदन साजी। जोते रवि हय निंदक बाजी॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ नाना प्रकार के मनोहर गीत गा रही हैं। अत्यन्त आनन्द हो रहा है। जिसका बखान नही किया जा सकता। तब सुमन्त्र ने दो रथ सजाये। जिनमे सूर्य के रथ के घोडो के तिरस्कार करनेवाले घोडा को जोता।

व्याख्या प्रत्येक अटारियो पर से पृथक् पृथक् गीत हो रहे है। नीचे शोर हो रहा है और ऊपर गीत हो रह है। अत्यन्त आनन्द मचा हुआ है। अथवा बाहरी आनन्द का तो वर्णन किया परन्तु लोगो के हृदय मे जो आनन्द है उसका वर्णन नही हो सकता। जब सब तैयारी हो चुकी तब सुमन्त्र ने दो रथ सजाये। महाराज और गुरुजी के लिए रथ सजाया जा रहा है। मन्त्री स्वय उसे साज रहे हैं। दूसरे यह कि सुमन्त्रजी केवल मन्त्री ही नही थे। महाराज के सारथि भी थे। उन्होने उन रथो म ऐसे घोडे जाते जो सूर्य के रथ के घोडा को मात करनेवाले थे। और लोगो के सवारी के घोडो के वर्णन म कह आये है कि निदरि पवन जिमि चहत उडाने। टाप न बूड वेग अधिकाई। अत महाराज के रथ के घोडो को रवि हय निदक वाजी कहा। देवताओ के घोडो को हय कहते है। यथा हयो भूत्वा देवान-वहत। इति श्रुति। यह नवाँ कार्य हुआ।

दोउ रथ रुचिर भूप पहि आने। नहि सारद पहि जाहि बखाने॥
राज समाज एक रथ साजा। दूसर तेज पुज अति भ्राजा॥४॥

अर्थ दोनो सुन्दर रथो को राजा के पास ले गये। जिनकी प्रशसा सरस्वती से भी नही हो सकती। एक रथ राजसी ठाट से सजाया गया था और दूसरा तेज के पुञ्ज सा देदीप्यमान हो रहा था।

व्याख्या अन्यत्र तो सारथियो ने रथियो को बुला लिया। यथा रथी सारथिन्ह लीन्ह बोलाई पर इन रथो को लेकर सुमन्त्रजी महाराज के पास गये। उन रथो मे रवि हय निन्दक वाजी जुते है। अत उन रथो के वर्णन के विषय मे कहते है कि स्वर्ग की वक्ता सरस्वती भी नही कर सकती। पहिला रथ छत्र चामर, अस्त्र शस्त्र, ध्वजा पताका से सुशोभित था। उससे राज्यश्री झलक रही थी। दूसरा अग्निहोत्र के सामान, पुस्तके, यज्ञपात्रादि से सयुक्त था। उससे ब्राह्मीश्री चमक रही थी।

दो तेहि रथ रुचिर वसिष्ठ कहुँ, हरषि चढाइ नरेसु।
आपु चढेउ स्यदन सुमिरि, हर गुरु गौरि गनेसु॥३०१॥

अर्थ उस सुन्दर रथ पर हर्षित होकर महाराज ने वसिष्ठजी को चढाया। तब आप शिव, गुरु, गौरी और गणेशजी का स्मरण करके रथ पर चढे।

व्याख्या महाराज की गुरुभक्ति कहते है कि उस ब्राह्मीश्रीवाले रथ पर महाराज ने पहले वसिष्ठ जी को स्वय सवार कराया। तब हर गुरु गौरी गणेश का स्मरण करके अपने रथ पर सवार हुए। श्रीग्रन्थकार का मत है कि मङ्गल के दिन कार्यारम्भ करने म गिरा गौरी गुरु गणेश और शिव का स्मरण मगल के लिए

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


करे। यथा गिरा गौरि गुरु गनप हर मंगल मंगल मूल। सुमिरत करतल सिद्ध सब होइ ईस अनुकूल। शकुनावली। अतः यह भी पता चलता है कि उस दिन मंगलवार था। स्मरण करने में गिरा छूट गई। श्रीरामजी के अभिषेक में गिरा ही विघ्नकारक हुई। यह बात भी ध्यान देने योग्य है। यह दसवाँ कार्य हुआ।

सहित वसिष्ठ सोह नृप कैसे। सुर गुर संग पुरंदर जैसे॥
करि कुलरीति वेद विधि राऊ। देखि सबहि सब भाँति बनाऊ॥१॥

अर्थ : वसिष्ठ के साथ राजा कैसे शोभायमान हुए, जैसे वृहस्पति के साथ इन्द्र शोभायमान हो। राजा वेदविधि और कुलरीति करके सबको और सब भाँति की सजावट को देखकर

व्याख्या : ब्राह्मीश्री के साथ राज्यश्री की शोभा कहते हैं। वसिष्ठजी की उपमा सुरगुरु से और महाराज दशरथ की उपमा इन्द्र से दी गई है। उपमेय उपमा से कम नहीं है। न तो महाराज दशरथ इन्द्र से कम हैं। यथा : सुरपति बसहि बाहुबल जाके। आगे होइ जेहि सुरपति लेई। अर्ध सिंहासन आसन दई। और न सुरगुरु से वसिष्ठजी कम हैं। यथा : सो गोसाइँ जेहि विधि गति छेंकी। सकै को टारि टेक जो टेकी। दलि दुख सजै सकल कल्याना। अस असीस राउर जग जाना। विवाह और श्मशान में ग्रामवचन का प्रमाण माना गया है। अतः महाराज ने कुलरीति के अनुसार तथा वेदविधि के अनुसार सब कार्य रसम किया। यहाँ कुलप्रथा का रीति और वेद की आज्ञा को विधि कहा गया है। पुर के बाहर जाने पर रीति और विधि है। उन्हें करके रथ को चारों ओर घुमाकर एक बार सब साज सामान को अपनी आँख से देख लिया : यह चक्रवर्तीजी की सावधानता है।

सुमिरि राम गुर आयसु पाई। चले महीपति संख बजाई॥
हरषे बिबुध बिलोकि बराता। बरषहि सुमन सुमंगल दाता॥२॥

अर्थ : रामजी का स्मरण करके और गुरुजी की आज्ञा पाकर पृथ्वीपति शंख बजाकर चले। देवता बारात देखकर हर्षित हुए। वे मङ्गलदायक फूलों की वर्षा करने लगे।

व्याख्या : रामजी का साथ चलना ऐसे अवसर पर अनिवार्य था। परन्तु वे पहिले ही जनकपुर पहुँच चुके थे। फिर भी उनका स्मरण तो ऐसे अवसर पर स्वाभाविक है। महाराज सब कार्य गुरुजी की आज्ञा लेकर ही करते हैं। अतः इस यात्रा में भी गुरुजी की आज्ञा पाकर विजय यात्रा के लिए शंखध्वनि की। शंखध्वनि मङ्गलसूचक है। शङ्खध्वनि वीर लोग स्वयं करते हैं। यथा : पाञ्चजन्यं हृषीकेशो देवदत्तं धनञ्जयः। पौण्ड्रं दध्मौ महाशंखं भीमकर्मा वृकोदरः। अनन्तविजयं राजा कुन्तीपुत्रो युधिष्ठिरः। इत्यादि। बारात ऐसी बनी कि देवता लोग प्रसन्न हो गये। विबुध हैं। विशेष रूप से पण्डित हैं। पुष्पवृष्टि के अवसर को समझते हैं। परशुराम विजय के समय प्रभु पर पुष्पों की वर्षा जनकपुर में की थी। अब बारात चलने के

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


समय सम्पूर्ण बारात पर पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। पुष्पों में भी सुमङ्गलदायक पुष्प पारिजात आदि की वर्षा हो रही है। सभी पुष्प मङ्गलदायक समझे जाते हैं। परन्तु पारिजात आदि सुमङ्गलदायक हैं। महाराज का चलना बारहवाँ कार्य हुआ।

भयेउ कुलाहलु हय गय गाजे। व्योम बरात बाजने बाजे ॥
सुर नर नारि सुमगल गाई। सरस राग बाजहि सहनाई ॥३॥

अर्थ हाथी घोडे गरजने लगे। कोलाहल मच गया। आकाश मे और बारात मे बाजे बजे। देवियो और नारियो ने मङ्गलगान किया और सरस राग से शहनाई बजी।

व्याख्या महाराज के शङ्ख बजाकर चलते ही बारात चल पडी। अत कोलाहल शोर हुआ। हाथी घोडे गरजने लगे। नीचे बारात मे और ऊपर आकाश म बाजे बजे। भाव यह कि आकाश मे देवताओ ने भी डङ्का दिया। दो बारात चली। नीचे मनुष्यो की और आकाश म देवताओ की बारात चली। अत देवताओ की स्त्रिया ने तथा मनुष्यो की स्त्रियो ने सुमङ्गलगान प्रारम्भ किया। बारात मे बाजे तो अनेक प्रकार के बजते हैं। परन्तु सरस राग तो शहनाई म ही बजते हैं।

घट घटि धुनि बरनि न जाही। सरो करहिं [1]पाइक फहराही ॥
करहि बिदूषक कौतुक नाना। हास कुसल कल गान सुजाना ॥४॥

अर्थ घण्टे और घण्टियो की ध्वनि कुछ कही नही जाती। कसरत करते है। पाइक लोग दौड धूप करते हैं। विदूपक भाँड या मसखरे नाना प्रकार के कौतुक तमाशा कर रहे हैं। वे हँसी करने मे निपुण और सुन्दर गान के अच्छे जानकार हैं।

व्याख्या हाथियो के बडे घण्टे और घण्टी झेला आदि की ऐसी ध्वनि हो रही है कि उसका वर्णन नही किया जा सकता। बारात म पाइक होते हैं। उनके कमर मे घण्टियाँ बँधी रहती है और हाथ मे मुरछल रहता है। वे सन्देशहर का काम करते है। विवाह मे कसरत करने और कूदने फाँदने का काम नट करते हैं गोरखपुर की ओर आज भी सरो करना कसरत करने को कहते है। नट लोग कूद फाँदकर कसरत दिखलाते है। इस प्रकार से बारात म मनोरञ्जन भी होता चलता है।

विदूपक हैं। वे रास्ते चलते नकल कर रहे हैं। लोगो को हँसाना उनका काम है। इस विद्या म वे बडे निपुण होते हैं। परन्तु वे गान म भी बडे कुशल है।

---

१ पाइक पाठ मानने से ऐसा ही अर्थ करना पडता है जो सतोषजनक नही है। मेरी समझ म यहाँ पावक पाठ होना चाहिए। जो पावक का अपभ्रंश है और स्रव का अपभ्रंश सरो है। अर्थात् फहराकर पावक स्रव करता है। यथा पावकमय ससि स्रवत न आगी। भाव यह कि आतिशबाजी छूट रही है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



समय सम्पूर्ण बारात पर पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। पुष्पो मे भी सुमङ्गलदायक पुष्प पारिजात आदि की वर्षा हो रही है। सभी पुष्प मङ्गलदायक समझे जाते हैं। परन्तु पारिजात आदि सुमङ्गलदायक है। महाराज का चलना बारहवाँ कार्य हुआ।

भयेउ कुलाहलु हय गय गाजे। व्योम बरात बाजने बाजे॥
सुर नर नारि सुमंगल गाईं। सरस राग बाजहि सहनाई॥३॥

अर्थ हाथी घोडे गरजने लगे। कोलाहल मच गया। आकाश मे और बारात मे बाजे बजे। देवियो और नारियो ने मङ्गलगान किया और सरस राग से शहनाई बजी।

व्याख्या महाराज के शङ्ख बजाकर चलते ही बारात चल पडी। अत कोलाहल शोर हुआ। हाथी घोडे गरजने लगे। नीचे बारात मे और ऊपर आकाश मे बाजे बजे। भाव यह कि आकाश मे देवताओं ने भी डङ्का दिया। दो बारात चली। नीचे मनुष्यो की और आकाश मे देवताओ की बारात चली। अत देवताओ की स्त्रियों ने तथा मनुष्यो की स्त्रियो ने सुमङ्गलगान प्रारम्भ किया। बारात मे बाजे तो अनेक प्रकार के बजते हैं। परन्तु सरस राग तो शहनाई म ही बजते हैं।

घट घंटि धुनि बरनि न जाही। सरो करहिं [1]पाइक फहराही॥
करहि बिदूषक कौतुक नाना। हास कुसल कल गान सुजाना॥४॥

अर्थ घण्टे और घण्टियो की ध्वनि कुछ कही नही जाती। कसरत करते हैं। पाइक लोग दौड धूप करते हैं। विदूषक भाँड या मसखरे नाना प्रकार के कौतुक तमाशा कर रहे है। वे हँसी करने मे निपुण और सुन्दर गान के अच्छे जानकार हैं।

व्याख्या हाथियो के बडे घण्टे और घण्टी झेला आदि की ऐसी ध्वनि हो रही है कि उसका वर्णन नही किया जा सकता। बारात मे पाइक होते है। उनके कमर मे घण्टियाँ बँधी रहती हैं और हाथ मे मुरछल रहता है। वे सन्देशहर का काम करते हैं। विवाह मे कसरत करने और कूदने फादने का काम नट करते हैं गोरखपुर की ओर आज भी सरौ करना कसरत करने को कहते है। नट लोग कूद फाँदकर कसरत दिखलाते है। इस प्रकार से बारात म मनोरञ्जन भी होता चलता है।

विदूषक हैं। वे रास्ते चलते नकल कर रहे है। लोगो को हँसाना उनका काम है। इस विद्या मे वे बडे निपुण होते है। परन्तु वे गान म भी बडे कुशल हैं।

---

१ पाइक पाठ मानने से ऐसा ही अर्थ करना पडता है जो सन्तोषजनक नही है। मेरी समझ म यहाँ पाउक पाठ होना चाहिए। जो पावक का अपभ्रंश है और स्रव का अपभ्रंश सरो है। अर्थात् फहराकर पावक स्रव करता है। यथा पावकमय ससि स्रवत न आगी। भाव यह कि आतिशबाजी छूट रही है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


ध्यान देने योग्य बात है कि ग्रन्थकार बारात के प्रसङ्ग मे भॉंड तक का वर्णन करते हैं। परन्तु वेश्या का उल्लेख कही नही है। कामशास्त्र वेश्या मे रस की उत्पत्ति ही नही मानता। अत नीरस होने से तथा सुधार की दृष्टि से ग्रन्थकार ने उनका उल्लेख नही किया।

दो. तुरग नचावहि कुँअर वर, अकनि मृदग निसान।
नागर नट चितवहि चकित, डगहि न ताल बँधान ॥३०२॥

अर्थ : श्रेष्ठ राजकुमार डङ्के और मृदङ्ग के शब्द सुनकर घोडो को ऐसा नचा रहे हैं कि नगर के नर्तक चकित होकर देखते हैं। कही से ताल के बन्धान मे चूक नही होती है।

व्याख्या : आकर्ण्य शब्द का तद्भवरूप अकनि है। सर्वत्र लवराम् इस सूत्र से रेफ का लोप होकर इ स्वप्नादौ इस सूत्र से यकार को इ आदेश हुआ। आकर्ण्य का अकनि रूप सिद्ध हुआ। इधर कुँवर लोग मृदङ्गादि के ताल के अनुसार घोडो को नचा रहे है। काल की क्रिया के नाप को ताल कहते हैं। यथा ताल कालक्रियामानम्। घोडे नाचने मे पैरो से ठीक ताल देते हैं। अच्छे अच्छे नाचनेवाले इस दृश्य को आश्चर्य से देख रहे है कि इन घोडो से ताल बन्धान मे चूक कही से नही हो रही है। वैसी बात तो अब नही है। फिर भी देहात की बारात म घोडे नचाये जाते हैं। नाचनेवाले घोडे बाजे का शब्द सुनते ही अस्थिर हो उठते हैं और अवश्य ही ताल का कुछ अनुसरण करते हैं।

बनै न बरनत बनी बराता। होहिं सगुन सुदर सुभदाता ॥
चारा चापु बाम दिसि लेई। मनहुँ सकल मगल कहि देई ॥१॥

अर्थ : उस : सजी हुई बारात का वर्णन नही हो सकता। सुन्दर शुभ देनेवाले शकुन होते है। १ नीलकण्ठ बाईं ओर चारा ले रहा है। मानो सब मङ्गल कह देता है।

व्याख्या : सजी हुई बारात वर्णनातीत थी। सुन्दर शकुन होते थे। भाव यह कि ऐसे शकुन भी हैं जो सुन्दर नही है। यथा : यात्रा के समय मुर्दा का मिलना अच्छा शकुन है। पर सुन्दर नही है। चोर और ठगो के भी शकुन हैं। जैसे गधे का रेंकना आदि पर वे और मङ्गलदाता नही हैं। यहाँ बारह शकुन हुए और बारह कार्य बारात म हुए। कह आये हैं होत सगुन सुन्दर सबहि जो जेहि कारज जात। इससे सिद्ध है कि क्रम से एक एक कार्य होने के समय एक एक शकुन हुए। कथा के वर्णनक्रम मे विक्षेप न हो इस कारण से यहाँ सब शकुनो को इकट्ठा कह दिया।

बाँधे बिरद बीर रन गाढे। निकस भये पुर बाहर ठाढे। तो देखते है कि बाईं ओर नीलकण्ठ चारा चुग रहा है इस तरह चारा चुगना मानो यह कहता है कि सब मङ्गल ही मङ्गल ही है। इन्ही राजकुमारो के बीच म स्वय रामजी घोडे पर सवार होगे। इसलिए सब मङ्गल कहा। यह पहला शकुन हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दाहिन काग सुखेत सुहावा। नकुल दरसु सब काहूँ पावा ॥
सानुकूल वह त्रिविध बयारी। सघट सवाल आव बर नारी ॥२॥

अर्थ : २ दाहिनी ओर सुन्दर खेत मे काग शोभायमान था। ३. नेवले का दर्शन सब किसी ने पाया। ४ शीतल मन्द सुगन्ध पवन सामने से आ रहा था। ५ घडा और बालक लिये हुए सौभाग्यवती स्त्री आई।

व्याख्या : चढि चढि रथ बाहेर नगर लागी जुरन बरात। तो देखा कि दाहिनी ओर काग सुन्दर क्षेत्र मे शोभित है। यह दूसरा शकुन हुआ। सुन्दर क्षेत्र मे काग का दाहिने होना शुभ है और चले मत्त गज घंट बिराजी। तब कहते हैं : नकुल : नेवले का दर्शन सबने पाया। यह तीसरा सगुन हुआ। भाव यह है कि मत्त गज पर इस समय कोई सवार नही है जो नकुल का दर्शन करे। रथी आदि ही समय पाकर उनपर सवार होगे। इसलिए कहते है कि सब लोगो ने दर्शन पाया। कोई दर्शन न पावे तो शकुन ही व्यर्थ चला जाय।

सिविका सुभग सुखासन जाना। तेहि चढि चले बिप्रबर बृन्दा। तो सानुकूल वह त्रिविध बयारी। यह चौथा सगुन हुआ और मागध सूत बंदि गुनगायक चले जान चढि जो जेहि लायक। तो सघट सवाल आव बर नारी। यह पाँचवाँ सगुन हुआ।

लोवा फिरि फिरि दरसु देखावा। सुरभी सनमुख सिसुहि पियावा ॥
मृगमाला फिरि दाहिनि आई। मंगल गन जनु दीन्हि देखाई ॥३॥

अर्थ : ६ लोमडी ने घूम घूमकर दर्शन दिया। ७ गाय ने सामने ही बछडे को पिलाया। ८ हिरनो की टोली दाहिने आई। मानो मगलगण को दिखला दिया।

व्याख्या : बेसर ऊँट बृषभ बहु जाती। चले बस्तु भरि अगनित भाँती। तो लोमडी ने घूम घूमकर दर्शन दिया। यह छठा सगुन हुआ। और कोटिन काँवर चले कँहारा तो देखते है कि गाय सामने बछडे को पिला रही है। यह सातवाँ सगुन हुआ। चले सकल सेवक समुदाई। तो क्या देखते हैं कि मृगमाला घूमकर दाहिने ओर आगई। इसी जगह लिखा है : सबके उर निर्भर हरख पूरित पुलक सरीर। कबहिं देखि बे नैन भरि राम लखन दोउ बीर। सो कहते है : मगल गन जनु दीन्ह देखाई। यह आठवाँ सगुन हुआ।

छेमकरी कह छेम बिसेषी। स्यामा बाम सुतरु पर देखी ॥
सनमुख आयउ दधि अरु मीना। कर पुस्तक दुइ बिप्र प्रबीना ॥४॥

अर्थ : ९ क्षेमकरी विशेष रूप से क्षेम कह रही है। १० श्यामा को बाँई ओर अच्छे पेड पर देखा। ११ सामने दही और मछली आई। १२ हाथ मे पुस्तक लिये दो प्रवीण ब्राह्मण आये।

व्याख्या : क्षेमकरी श्वेतमुख की चील्ह को कहते है। यात्रा के समय इसका दिखाई पड़ना शुभ है। यथा : कुकुम रग सुअग जित्यौ मुखचद सो चद सो होड़ परी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है। बोलत बोल समृद्ध चुवै अवलोकत सोक विषाद हरी है। गौरी कि गग विहगिनी वेष कि मजुलमूरति मोदभरी है। पेखि सप्रेम पयानसमय सब साच विमोचन छेमकरी है। तब सुमत दुइ स्यदन साजी। जोते रवि हय निदक बाजी। उस समय क्षेमकरी ने क्षेम कहा। यह नवाँ सगुन हुआ। दोउ रथ रुचिर भूपपहँ आने तो स्यामावाम सुत्लपर देखी। श्यामा भुजगा को कहते हैं। यह दसवाँ सगुन हुआ। गुरु वसिष्टजी को रथपर चढाकर स्वय चक्रवर्तीजी चढे तो सनमुख आयेउ दधि अरु मीना। यह ग्यारहवाँ सगुन हुआ। और चले महीपति सख बजाई तो हाथ म पुस्तक लिये दो प्रवीण ब्राह्मण आ पडे। इस भाँति बारह कार्य बारात मे हुए और हरएक म अलग-अलग सगुन हुए।

दो. मगलमय कल्यानमय, [1]अभिमत फल दातार।
जनु सब साँचे होन हित, भए सगुन एक बार ॥३०३॥

अर्थ मगलमय कल्याणमय और ईप्सित फल के दनेवाले सब सगुन मानो सच्चे होने के लिए एक साथ ही हुए।

व्याख्या चारा चाखु बाम दिसि लेई। मनहु सकल मगल कह देई से मगलगन जनु दीन्हि देखाई तक ये आठ सगुन मगलमय है। मङ्गल शब्द गत्यात्मक मग धातु से बना है। मगल का अर्थ ही गतिशाल है और कल्ये प्रात अण्यत शब्दयते इति कल्याणम् इस व्युत्पत्ति से क्षेमकरी का कल्याण कहना प्राप्त है। शेष तीन १ स्यामावामसुतरु पर देखी। २ सनमुख आयउ दधिअरुमीना। ३ कर पुस्तक दुइ विप्र प्रवीना। ये तीन अभिमत फलदातार शकुन स्वय महाराज का हुए। सब शकुन इकट्ठे नही होते कभी कभी किसी को एकाध हो जाते है। यहाँ सब इकट्ठे हुए। मनुष्यो का कल्याण ही कितना होगा ? अत अन्त म ये रूठे पड जात हैं। यहाँ जो शकुन होगा वह सच्चा निकलेगा। अत. सत्य होने के लिए उनम होड सी मच गई। यहाँ शकुन से शुभ नही है। शुभ तो निश्चित है। शकुन शुभ के ज्ञापक है। इसी से शकुन की सत्यता है।

मगल सगुन सुगम सब ताके। सगुन ब्रह्म सुदर सुत जाकें॥
राम सरिस बर दुलहिनि सीता। समधी दसरथु जनक पुनीता ॥१॥

अर्थ सगुन ब्रह्म जिसके सुन्दर पुत्र है। सब मङ्गल सगुन उसे सुगम है। राम ऐसा वर सीता सी दुलहिन दशरथ और जनक से पवित्र समधी।

व्याख्या प्रश्न यह होता है कि मङ्गल सगुन इस भाँति सुगम कैसे हो गये ? कभी किसी को कार्यारम्भ म कोई एक सगुन हो जाता है। तो वह अपने को कृतकृत्य मानता है। यहाँ जो ही जिस कार्य को चलता है सगुन को सामने पाता है। इसलिए यह शङ्का उठती है। उत्तर म ग्रन्थकार कहते हैं कि जिसके सगुन ब्रह्म

---

१ यहाँ अभिमतदाता . उ ऐसा है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुन्दर सुत है। उसी को मंगल सगुन होना प्राप्त भी है। असगुन तो वहाँ होता है जहाँ सगुन से विरोध हो। यथा 'श्रुति सौ सगुनै कहै, दिवाने तू असगुन क्यो गहै। देव स्वामी। सुन्दर कहने का भाव यह कि वहु मुख कर पद लोचन सीसा वाले सगुन ब्रह्म तो हैं पर सुन्दर नही है।

यहाँ सब बाते बेजोड हैं। राम सा वर। सीता सी दुलहिन। दशरथ जनक से पुनीत सम समधी। जब से ब्रह्मदेव ने सृष्टि रची तब से आज तक हुए ही नही। यथा भले भूप कहत भले भदेस भूपन सो। लोक लखि बोलिये पुनीत नीति मारखी। जगदवा जानकी जगत पितु राम भद्र जानि जिय जोवी जो न लागै मुख कारिखी। देखे हैं अनेक व्याह सुने है पुराणवेद बूझे है सुजान साधु नर नारि पारखी। ऐसे सम समधी समाज न विराजमान राम सो न वर दुलहि न सिय सारखो।

सुनि असि व्याहु सगुन सब नाँचे। अब कीन्हे बिरंचि हम साँचे॥
येहि विधि कीन्ह बरात पयाना। हय गय गार्जहि हने निसाना॥२॥

अर्थ ऐसा व्याह सुनकर सगुन सब नाच उठे कि अब ब्रह्मदेव ने हमे सच्चा बनाया। इस भाँति बारात ने प्रयाण किया। हय और गज गरजने लगे और निशान बजने लगा।

व्याख्या व्याह ऐसा और नाच नही। अत सगुन सब नाचे। यह नाच आनन्द का है कि अब ब्रह्मदेव ने हमे सच्चा किया। नही तो हम झूठे ही सगुन बने रहे। बारात जुटने मे बारह सगुन केवल दिखला दिये गये। इस भाँति ये सगुन सभी कामो मे होते थे। नाचे कहने का अर्थ ही यह है कि बार बार हुए।

भयेउ कुलाहलु हय गय गाजे से प्रसङ्ग छोडा था। अब वही से फिर उठाते है। यथा हय गय गाजहें हने निसाना। तीन चौपाई और एक दोहे मे 'सुमिरि राम गुर आयसु पाई से लेकर डगहि न ताल विधान तक बारात के प्रयाण की विधि कही।

आवत जानि भानुकुल केतू। सरितन्हि जनक बँधाए सेतू॥
बीच बीच वर बास बनाए। सुरपुर सरिस सपदा छाए॥३॥

अर्थ . सूर्यकुल के पताका को आते हुए जानकर जनक ने नदियो पर पुल वँधाये। बीच बीच मे बारात के ठहरने के लिए श्रेष्ठ निवास स्थान बनवाये। जिनमे देवलोक की भाँति सम्पदा छाई हुई थी।

व्याख्या सूर्यकुल के केतु चक्रवर्ती दशरथजी के चलने का अर्थ ही यही है कि बडा जनसमूह साथ है। राजा गच्छति : राजा जाते है का अर्थ यह नही है अकेले राजा छडी टेकते चले जा रहे है। उसका अर्थ ही यह है कि घोडे सेना सामन्त सब साथ है। समाचार पाकर महाराज जनक ने नदियो मे जो रास्ते मे पडती है पुल बँधवा दिये जिनमे सेना के उतरने का झझट न रहे। बारात चल पडने पर आगे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जाकर दूतो ने समाचार दिया। यद्यपि महाराज ने दूतो को वास दिलवा दिया था। पर वे बारात के साथ बाराती बनकर तो जायँगे नही। अत बारात रवाना होते ही दूतो ने समाचार देने में बडी शीघ्रता की।

महाराज जनक ने अपनी सीमा से जनकपुर पहुँचने मे बारात के पडाव के लिए डेरे खेमो की व्यवस्था की। उन पडाव के मुकामो पर देवलोक की सी सम्पदाएँ भरी हुई थी। दूतो को पूरा पता लग गया कि कितनी बारात है और कौन कौन लोग कितने हैं। अत. तदनुसार डेरे खेमे और सामान आदि की ऐसी व्यवस्था की गई कि देवलोक जान पडे।

असनु सयन वर वसन सुहाए। पावहिं सब निज निज मन भाए ॥
नित नूतन सुख लखि अनुकूले। सकल बरातिन्ह मंदिर भूले ॥४॥

अर्थ : सुन्दर भोजन, शयन, श्रेष्ठ कपडे अपनी अपनी रुचि के अनुसार सभी को मिल रहा है। सभी बराती नित्य नये सुख देखकर प्रसन्न हुए। उन्हे अपना घर भूल गया।

व्याख्या : डेरो मे सम्पदा के अतिरिक्त अशन, शयन, और वसन की भी व्यवस्था है। जिसमे बारातियो के बिस्तर और सामान के गट्ठर खुलने न पावें। वहाँ प्रतिष्ठा के अनुसार सत्कार नही है। रुचि के अनुसार सत्कार है। जिसे जो वस्तु चाहिए सो सब प्रस्तुत था।

जितना जनकपुर सन्निकट आता जाता है डेरो मे सुख की सामग्री उतनी ही बढती चली जा रही है। उतना ही सुख बढता जा रहा है। अत. बाराती सन्तुष्ट हो गये। दूसरी जगह कितना भी सुख हो फिर भी यथार्थ आराम तो अपनी टूटी झोपडी मे ही मिलता है। परन्तु यहाँ बात ही दूसरी है। बाराती इतने सुखी हुए कि अपना अपना घर भूल गये। इस भाँति चार दिन मे बारात जनकपुर आई।

दो. आवत जानि बरात वर, सुनि गहगहे निसान।
सजि गज रथ पदचर तुरग, लेन चले अगवान ॥३०४॥

अर्थ : उस श्रेष्ठ बारात को आते जानकर और डंके के घनघोर शब्द को सुनकर लोग हाथी घोडे और रथ सजाकर अगवानी के लिए चले।

व्याख्या : डके के घोर शब्द से दूर से ही बारात के आने की आहट लग गयी। चतुरङ्गिनी सेना साथ लेकर अगवानी की। राजाओ मे अगवानी के लिए भी वैसी ही तैयारी होती है जैसी बारात की होती है। बल्कि यह देखा जाता है कि तैयारी किस ओर की अच्छी है। अगवानी की तैयारी स्वागत के उत्साह का द्योतक है।

कनक कलस भरि कोपर थारा। भाजनु ललित अनेक प्रकारा ॥
भरे सुधासम सब पकवाने। नाना भाँति न जाहि बखाने ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुन्दर सुत है। उसी को मगल सगुन होना प्राप्त भी है। असगुन तो वहाँ होता है जहाँ सगुन से विरोध हो। यथा · श्रुति तौ सगुनै कहै, दिवाने तू असगुन क्यों गहै। देव स्वामी। सुन्दर कहने का भाव यह कि चहु मुख कर पद्म लोचन सीसा वाले सगुन ब्रह्म तो है पर सुन्दर नही है।

यहाँ सब बाते बेजोड हैं। राम सा वर। सीता सी दुलहिन। दशरथ जनक से पुनीत सम समधी। जब से ब्रह्मदेव ने सृष्टि रची तब से आज तक हुए ही नही। यथा : भले भूप कहत भले भदेस भूपन सो। लोक लखि बोलिये पुनीत नीति मारखी। जगदबा जानकी जगत पितु राम भद्र जानि जिय जोवी जो न लागै मुग कारिखी। देखे है अनेक व्याह सुने है पुराणवेद बूझे है मुजान साधु नर नारि पारखी। ऐसे सम समधी समाज न विराजमान राम सो न वर दुलहि न सिय सारखी।

सुनि असि व्याहु सगुन सब नाँचे। अब कीन्हे बिरंचि हम साँचे॥
येहि विधि कीन्ह बरात पयाना। हय गय गाजहि हने निसाना॥२॥

अर्थ ऐसा व्याह सुनकर सगुन सब नाच उठे कि अब ब्रह्मदेव ने हमे सच्चा बनाया। इस भाँति बारात ने प्रयाण किया। हय और गज गरजने लगे और निशान बजने लगा।

व्याख्या · व्याह ऐसा और नाच नही। अत सगुन सब नाचे। यह नाच आनन्द का है कि अब ब्रह्मदेव ने हमे सच्चा किया। नही तो हम झूठे ही सगुन बने रहे। बारात जुटने मे बारह सगुन केवल दिखला दिये गये। इस भाँति ये सगुन सभी कामो मे होते थे। नाचे कहने का अर्थ ही यह है कि बार बार हुए।

भयेउ कुलाहलु हय गय गाजे से प्रसङ्ग छोडा था। अब वही से फिर उठाते है। यथा हय गय गाजहि हने निसाना। तीन चौपाई और एक दोहे मे : सुमिरि राम गुर आयसु पाई से लेकर डगहि न ताल विधान तक बारात के प्रयाण की विधि कही।

आवत जानि भानुकुल केतू। सरितन्हि जनक बँधाए सेतू॥
बीच बीच वर बास बनाए। सुरपुर सरिस सपदा छाए॥३॥

अर्थ : सूर्यकुल के पताका को आते हुए जानकर जनक ने नदियो पर पुल बँधाये। बीच बीच मे बारात के ठहरने के लिए श्रेष्ठ निवास स्थान बनवाये। जिनमे देवलोक की भाँति सम्पदा छाई हुई थी।

व्याख्या . सूर्यकुल के केतु चक्रवर्ती दशरथजी के चलने का अर्थ ही यही है कि बडा जनसमूह साथ है। राजा गच्छति : राजा जाते हैं का अर्थ यह नही है अकेले राजा छडी टेकते चले जा रहे है। उसका अर्थ ही यह है कि घोडे सेना सामन्त सब साथ है। समाचार पाकर महाराज जनक ने नदियो मे जो रास्ते मे पडती हैं पुल बँधवा दिये जिनमे सेना के उतरने का झझट न रहे। बारात चल पडने पर आगे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जाकर दूतो ने समाचार दिया। यद्यपि महाराज ने दूतो को वास दिलवा दिया था। पर वे बारात के साथ बाराती बनकर तो जायँगे नही। अत बारात रवाना होते ही दूतो ने समाचार देने मे बडी शीघ्रता की।

महाराज जनक ने अपनी सीमा से जनकपुर पहुँचने मे बारात के पडाव के लिए डेरे खेमो की व्यवस्था की। उन पड़ाव के मुकामो पर देवलोक की सी सम्पदाएँ भरी हुई थी। दूतो को पूरा पता लग गया कि कितनी बारात है और कौन कौन लोग कितने हैं। अत: तदनुसार डेरे खेमे और सामान आदि की ऐसी व्यवस्था की गई कि देवलोक जान पड़े।

असनु सयन बर बसन सुहाए। पावहिं सब निज निज मन भाए॥
नित नूतन सुख लखि अनुकूले। सकल बरातिन्ह मंदिर भूले॥४॥

अर्थ : सुन्दर भोजन, शयन, श्रेष्ठ कपडे अपनी अपनी रुचि के अनुसार सभी को मिल रहा है। सभी बराती नित्य नये सुख देखकर प्रसन्न हुए। उन्हे अपना घर भूल गया।

व्याख्या : डेरो मे सम्पदा के अतिरिक्त अशन, शयन, और वसन की भी व्यवस्था है। जिसमे बारातियो के बिस्तर और सामान के गट्ठर खुलने न पावें। वहाँ प्रतिष्ठा के अनुसार सत्कार नही है। रुचि के अनुसार सत्कार है। जिसे जो रुचे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ सोने के पूर्णघट, कोपर और थार तथा अनेक प्रकार के सुन्दर बरतनो मे भरे हुए नाना भाँति के अमृत से पकवान थे जिनका वर्णन नही हो सकता।

व्याख्या सोने के पूर्ण कलश मङ्गल के लिए कोपर पूजन के लिए तथा थार और अनेक सुन्दर बरतन पक्वान्न से भरे हुए भोजन के लिए अर्थात् सबसे पहिले भोजन सामग्री, अर्घ पाद्य, गन्धमाल्यनैवेद्यादि सामने आया।

उपर्युक्त बर्तनो मे अमृत से स्वादु पक्वान्न भरे हुए थे। छप्पन प्रकार प्रसिद्ध हैं। इसलिए नाना भाँति न जाइ बखाना कहा।

फल अनेक बर बस्तु सुहाई। हरषि भेट हित भूप पठाई॥
भूषन बसन महामनि नाना। खग मृग हय गय बहुबिधि जाना॥२॥

अर्थ अनेक फल तथा श्रेष्ठ सुन्दर वस्तुओ को राजा ने हर्षित होकर भेंट के लिए भेजा। गहना, कपडा, नाना प्रकार के महामणि, चिडिया, पशु, हाथी, घोडे तथा अनेक भाँति के यान।

व्याख्या भोजनोपरान्त फल की व्यवस्था है। इसलिए फल भेजे। चामरादि राजोपचार की सामग्री भेजी। भानुकुलकेतु के लिए भेंट भेजने मे महाराज जनक को बडा हर्ष है। अगवानी मे स्वय समधी के जाने की चाल नही है। इसलिए महाराज जनक ने पदाधिकारियो द्वारा भेजवा दिया। बारात मे पहिले ही खाने की चीजें चाहिए। अत पहिले वे ही भेजी गईं। तत्पश्चात् सुन्दर श्रेष्ठ वस्तुएँ भेजी गईं। राजोपचार मे चामरादि वस्तुएँ, अलङ्कार, कपडे, नाना प्रकार के महामणि भेजे गये। खग, मृग, हाथी, घोडे तथा अनेक यान भेट के लिए सहर्ष महाराज जनक ने भेजे। मिथिला की चाल है कि आज भी बारात के द्वार लगने के पहिले कपडा जाता है।

मगल सगुन सुगध सुहाए। बहुत भाति महिपाल पठाए॥
दधि चिउरा उपहार अपारा। भरि भरि काँवरि चले कहारा॥३॥

अर्थ मगल सगुन की वस्तुएँ सुहावने और अनेक प्रकार के सुगन्धित पदार्थ राजा ने भेजे। दधि चिउरा का अपार उपहार काँवर मे भर भरकर कहार ले लेकर चले।

व्याख्या दधि, दूर्वा, रोचन, फूल, फल, नव तुलसीदल आदि मगल द्रव्य जो सगुन माने गये है और गन्ध माल्यादि सुगन्धित द्रव्य अनेक प्रकार के महाराज जनक ने भेजे। अयोध्या से चक्रवर्तीजी के साथ अगणित वस्तुएँ आई हैं। यथा बेसर ऊँट वृषभ बहु भाँती। चले बस्तु भरि अगनित भाँती। उन वस्तुओ का उपयोग बारात की ओर से न होने पावे। सब वस्तुएँ ज्यौं की त्यौं अयोध्या लौट जाँय। इसलिए महाराज जनक ने बहुत भाँति की वस्तुएँ भेट भेजी।

उधर से कोटिन काँवरि चल कँहारा। तो इधर से भी दधि चिउरा उपहार अपारा। भरि भरि काँवरि चले कँहारा। दधि चिउरा [illegible] है और तिरहुत म

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जैसा होता है वैसा कही होता भी नही। अवध के लोगों का प्रधान खाद्य दधि चिउरा है। इसके बिना उनकी तृप्ति नही होती। परन्तु अवध मे वैसा दधि चिउरा होता नही जैसा मिथिला मे होता है। अन्य उपहार तो राजा के लिए है। पर दधि चिउरा तो सबके लिए है। अत अन्य उपहारो का तो पार था। परन्तु दधि चिउरा के परिमाण का पार न था · बोरे मे भर भरकर दही का टाल तो मिथिला मे ही देखने मे आता है और वह दही यहाँ के मक्खन से किसी अश मे कम नही होता।

अगवानन्ह जब दीखि बराता। उर आनदु पुलक भरे गाता॥
देखि बनाव सहित अगवाना। मुदित बरातिन्ह हने निसाना॥४॥

अर्थ : अगवानी करनेवालो ने जब बारात देखी तो उनके हृदय आनन्द से और शरीर पुलक से भर उठे और अगवानियो को साज के साथ देखकर बरातियो ने प्रसन्न होकर डके पर चोटें दी।

व्याख्या : अगवानियो ने सुन तो पहिले से ही रक्खा था कि अयोध्या से बडी अपूर्व बारात आ रही है। पर बारात के दर्शन से उनके हृदय मे ऐसा आनन्द हुआ कि सम्पूर्ण शरीर मे पुलकावली हो उठी। ऐसी देवसेना सी बारात कभी दृष्टिगोचर नही हुई थी और अगवानियो का दर्शन बारातियो के लिए इष्टलाभ था। सबके उर निर्भर हरख। पूरित पुलक सरीर। कबहि देखिबे नयन भर राम लखन दोउ बीर। सो अवसर अत्यन्त सन्निकट समझकर और अगवानियो का साज समाज देखकर बाराती खिल उठे और उत्साह मे भरकर डके बजाये।

दो. हरषि परसपर मिलन हित, कछुक चले बगमेल।
जनु आनद समुद्र दुइ, मिलत बिहाइ सुबेल॥३०५॥

अर्थ - कुछ बगमेल आपस म मिलने के लिए दोनो ओर से हर्षित होकर चले। जैसे दो आनन्द के समुद्र अपनी अपनी मर्यादा को छोडकर मिल रहे हो।

व्याख्या : बारात और अगवान दोनो समुद्र की भाँति उमडे हुए हैं। समुद्र मर्यादा का उल्लघन नही करते। पर जब लहरें सीमापर आकर टक्कर खाती हैं तो कुछ दूर तक थोडा पानी दौडता चला जाता है। अब दोनो समुद्र अत्यन्त सन्निकट आगये और दोनो का जल सीमा के बाहर दौडता हुआ एक दूसरे की ओर मिलने के लिए चला। इसी भाँति बारात और अगवान मे से कुछ लोग मिलने के लिए आगे बढे और मिलने लगे। दोनो ओर आगे आगे अश्वारोही राजकुमार लोग थे। वे बाग मिलाये हुए मिलने के लिए आगे बढे। इसी को बगमेल कहा है वस्तुस्थिति यह है कि बडी सेना के आगे आगे जा छोटी टोली वीरो की चलती है वही पहले चोट करती है और आक्रमण को रोकती है। उतने काल मे ही प्रधान सेना को सँभलने का अवसर मिल जाता है। इसी वीरो की टोली को बगमेल कहते हैं। यही टोली श्रेणीबद्ध होकर घोडे की बाग मिलाये सेना के आगे रहती है। यहाँ तो युद्ध नही है मेल है। इसलिए मिलने के लिए बगमेल होकर कुछ लोग आगे बढे और मिले।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यह रसम अब भी किसी न किसी रूप मे प्रचलित है। आज भी बारात और अगवान का सामना होते ही दोनो ओर से घोड़े छूटते हैं और थोडी सी घुडदौड बारात और अगवान के बीच मे हो जाती है और तब हाथियो के साथ पूरी बारात तेजी से द्वार लगने के लिए बढती है।

बरषि सुमन सुर सुदरि गावहि। मुदित देव दुदुभी बजावहि॥
वस्तु सकल राखी नृप आगे। विनय कीन्ह तिन्ह अति अनुरागे॥१॥

अर्थ देवताओं की सुन्दरियाँ फूल वर्षा कर गान करने लगी और देवता लोगो ने प्रसन्न होकर नगाडे बजाये। उन लोगो ने सब वस्तुएँ चक्रवर्तीजी के सामने रक्खी और अत्यन्त प्रेम से विनती की।

व्याख्या बारात चलने के समय तो नरसुन्दरियो और सुरसुन्दरियो दोनो ने गान किया था। यथा सुर नरनारि सुमगल गाई। पर इस समय वहाँ नर-सुन्दरियो की गति नही है। इस फूल की वर्षा करके सुरसुन्दरियो के ही गान का उल्लेख है। देवताओ ने बारात के चलने के समय फूल बरसाये थे। इस समय डका बजा रहे हैं। इससे सिद्ध है कि देवगण भी बारात के साथ ही साथ चले आरहे हैं। दोनो मनुष्य और देवता की बारातें मिथिला पहुँच गईं। अगवान को देखकर जब मुदित बरातिन्ह हने निसाना। तो देवताओ की बारात मे भी इसी का अनुकरण हुआ। यथा मुदित देव दुदुभी बजावहि।

दहेज को समधी के आगे रखने का विधान है। अत अगवानियो ने राजा जनक की भेजी हुई सब वस्तुएँ महाराज दशरथ के आगे रक्खी और स्वीकृति के लिए अति अनुराग से विनती की। बडे लोग विनय प्रेम से ही वश होते हैं। यथा विनय प्रेम वस भई भवानी।

प्रेम समेत राय सबु लीन्हा। भै बकसीस जाचकन्हि दीन्हा॥
करि पूजा मान्यता बडाई। जनवासे कहुँ चले लेवाई॥२॥

अर्थ राजा ने प्रेम के सहित सब स्वीकार कर लिया। मगतो को देने के लिए आज्ञा हुई और दे दी गई। पूजा सम्मान और बडाई करके सबको जनवासे की ओर लिवा ले चले।

व्याख्या अगवानियो ने अति अनुराग से विनती की। अत महाराज दशरथ ने भी प्रेम से स्वीकार कर लिया। पर महाराज चक्रवर्तीजी के यहाँ याचको का आदर है। आज्ञा हुई कि याचको मे वितरण कर दो। सो वितरण कर दिया गया। यथा जाचक लिए हँकारि दीन्ह निछावरि कोटि विधि पूजा की। यथा वस्तु सकल राखी नृप आगे मान्यता की। यथा विनय कीन्ह तिन अति अनुरागे। बडाई की अर्थात् स्तुति की है। अथवा बारात भर की यथा योग्य पूजा, सम्मान और स्तुति करके जनवासे की ओर टिकाने के लिए ले चले।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वसन विचित्र पाँवड़े परही । देखी धनदु धन मद परिहरही ॥
अति सुंदर दीन्हेउ जनवासा । जहँ सब कहुँ सब भाँति सुपासा ॥३॥

अर्थ : अद्भुत वस्तुओ के पाँवडे पडते थे । जिन्हे देखकर कुवेरजी का धनमद छूट जाय । अत्यन्त सुन्दर जनवासा दिया गया । जहाँ सबको सब प्रकार सुभीता था ।

व्याख्या : जिन वस्त्रो का दिखाई पड़ना दुर्लभ था वे पाँवडे मे डाले जा रहे हैं । इससे जनकराज का ऐश्वर्यातिशय कहा । महाराज दशरथ के विपय मे कहा जाता है : दसरथ धनसुनि धनद लजाही और यहाँ महाराज जनक के विपय मे कह रहे है : देखि धनद धनमद परिहरही । बीच बीच वर वास बनाए । सुरपुर सरसि सम्पदा छाए । वह वर्णन तो रास्ते के पडाव का है । यह जनवासा है । इसलिए कहते हैं : अतीव सुन्दर है और साथ ही साथ ऐसा बनाया गया है जिसमे सब किसी को : राजा से लेकर सेवक तक को सब प्रकार का सुभीता हो । क्योकि यहाँ तो बारात को महीनो ठहरना है ।

जानी सिय बरात पुर आई । कछु निज महिमा प्रगटि जनाई ॥
हृदय सुमिरि सब सिद्धि बुलाई । भूप पहुनई करन पठाई ॥४॥

अर्थ : सीताजी ने जब जाना कि बारात नगर मे आगई तो अपनी कुछ महिमा प्रकट करके दिखलायी । हृदय मे स्मरण करके सब सिद्धियो को बुलाया और सीताजी ने राजा का आतिथ्य सत्कार करने के लिए भेज दिया ।

व्याख्या : जब तक बारात पुर मे नही आई तब तक चुप रही । जब बारात आगई तब अपनी महिमा को सीताजी ने प्रकट किया । भगवती गगाजी कहती है : लोकप होत विलोकत तोरे । तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरे । सो लोकप होहिं विलोकत तोरे । इस अश को नही दिखलाया । तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरे । इस अश को दिखलाया । उन्होने अपनी महिमा को गुप्त कर रक्खा था । यथा : बसहिं नगर जेहि लच्छि करि कपट नारिवर वेप । प्रकट जनाने का कारण यह हुआ कि महाराज दशरथ इन्द्र के अतिथि रह चुके है । यथा : आगे ह्वै जेहि सुरपति लेई । अर्ध सिंहासन आसन देई । इन्हे मानुपी भोग जँचेगा नही । यहाँ भूपन वसन मणि आदि भेजे गये । सो सब याचको को बाँट दिये । इसलिए सिद्धियो को बुलाया । किसी को बुलाने के लिए न भेजना पडा । केवल स्मरण करने से ही उपस्थित हो गई । अणिमा महिमा चैव लघिमा गरिमा तथा । प्राप्ति प्राकाम्य ईशत्व वशित्व चाष्टसिद्धय । ये ही आठो सिद्धियो के नाम है । इन्हे सीताजी की आज्ञा हुई कि जाकर आतिथ्य सत्कार करो ।

दो. सिधि सब सिय आयसु अकनि, गई जहाँ जनवास ।
लिये संपदा सकल सुख, सुरपुर भोग बिलास ॥३०६॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ सब सिद्धियाँ सीताजी की आज्ञा सुनकर जहाँ जनवास था वहाँ गईं। सुरपुर का भोग विलास सुख और सम्पत् लिये हुए थीं।

व्याख्या आठो सिद्धियाँ आज्ञा पाकर जनवास मे पहुँची। पहिले सुरपुर सरिस सम्पदा छाये। ऐसे वासस्थान म बारात को टिकाया था। परन्तु मानुषी सम्पदा का उत्कर्ष इतना हो है कि सुरपुर सम्पदा के सदृश हो जाय। फिर भी वह सुरपुर की सम्पदा नही हो सकती। बन्दर मनुष्य सा होता है फिर भी बन्दर और मनुष्य म महान् अन्तर है। एव मानव भोग और स्वर्गीय भोग मे महान् अन्तर है। सिद्धिया की करणी ऐसी है कि उनके उत्पन्न किये सुख सम्पदा के आगे स्वर्गीय सुख सम्पदा भी नही ठहरती। यथा अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना। जेहि विलोकि विलखाहि विमाना। भोग विभूति भूरि भरि राखे। देखत जिन्हहि अमर अभिलाखे। दासी दास साजु सब लीन्ह। जोगवत रहहि मनहि मनु दीन्हे।

निज निज वास विलोकि बराती। सुर सुख सकल सुलभ सब भाँती॥
विभव भेद कछु कोउ न जाना। सकल जनक कर करहिं बखाना॥१॥

अर्थ बरातियो ने अपना अपना डरा देखा कि सब प्रकार से देवताओ का सब सुख सुलभ है। विभव भेद किसी ने कुछ समझ न पाया। सब जनक राजा की प्रशसा कर रहे हैं।

व्याख्या जनवासे म प्रत्येक बाराती के लिए पृथक् पृथक् स्थान निर्दिष्ट थे। सिद्धियो के आते ही बात दूसरी हो गई। अब बाराती अपना डेरा देखते है कि विमाना की भाँति सुन्दर सजे हुए हैं और देवताओ का भोग और विभूति सबको सब प्रकार से सुलभ है। भाव यह कि बारातियो को वैसा ही दिखाई पड रहा है जैसा कि उन्होने बना रक्खा है।

विभव म भेद पडते किसी ने न लखा। मानुषी भोग दैवी भोग मे परिवर्तित हो गया। सबने उस भोग और विभूति को राजा जनक की ही करतूत समझा और उनकी प्रशसा करने लगे। वस्तुत जिसकी करतूत थी उसे कौन समझता है। जब विभव भेद ही समझ म नही आया तो उसके कर्त्ता की ओर दृष्टि ही क्यों जाने लगी। इस भाति सीताजी के द्वारा पिता को यश मिल रहा है।

सिय महिमा रघुनायक जानी। हरषे हृदय हेतु पहिचानी॥
पितु आगमन सुनत दोउ भाई। हृदय न अति आनदु अमाई॥२॥

अर्थ सीताजी की महिमा को रामजी ने जाना। प्रेम की पहिचान करके हृदय म हर्षित हुए। दोनो भाइयो ने पिता का आगमन सुना। अब अत्यन्त आनन्द हृदय म समा नही रहा है।

व्याख्या महामाया के पति को छोडकर महामाया की महिमा को कौन जाने। सब लोग भोग मे पडे हुए भी विभव भेद नही जान सके। रघुनायक अभी वहाँ गये भी नही हैं। विश्वामित्रजी के ... समझ गये कि सीताजी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ने करामात कर दी। सब मानिये राम के नाते। मेरे पिता होने से सत्कार हो रहा है। ऐसा जानकीजी का प्रेम जानकर मन ही मन प्रसन्न हुए। सीताजी की महिमा ही विभवभेद मे कारण हुई।

बारात आने पर शोर मच गया कि महाराज अवधनरेश आगये। सुनकर दोनो भाइयों को अत्यन्त आनन्द हुआ। हृदय म यथेष्ट स्थान नही रह गया। अत मुख से नेत्र से तथा रोम रोम से पुलकद्वारा प्रकट होने लगा। पहिले पुर मे बारात आने की जानकारी सीताजी को कही। यथा जानी सिय बरात पुर आई। अब श्रीरामजी की जानकारी कहते हैं पितु आगमन सुनत दोउ भाई।

सकुचन्ह कहि न सकत गुर पाही। पितु दरसन लालच मन माही ॥
बिस्वामित्र विनय बडि देखी। उपजा उर संतोष बिसेखी ॥३॥

अर्थ सङ्कोच के कारण गुरु से नही कह सकते। पिता के दर्शन का लालच मन म है। विश्वामित्र को इतना बडा विनय अदब देखकर हृदय म विशेष सन्तोष उत्पन्न हुआ।

व्याख्या दोनो भाई स्वभाव से सङ्कोची है। इनके सङ्कोची स्वभाव के कारण माताओ को सोच है कि ये कष्ट सहन कर लेंगे परन्तु मुनिजी से न कहेगे। यथा बालक सुठि सुकुमार सकोची समुझि सोच मोहि आली। इन्ही के लिए बारात लेकर पिता अयोध्या से आये हैं। इतने दिनो से पिता का विछोह है। पितृप्रेम हृदय मे उमड रहा है। पिता के दर्शन का लालच है। नही तो राम लक्ष्मण को लालच कहा ? फिर भी मुनिजी से पितृ दर्शन के लिए कहने मे सङ्कोच है। सङ्कोच तो नगर दर्शन के लिए कहने म भी था फिर भी मुनिजी से निवेदन किया। पर इस बार मारे सङ्कोच के निवेदन भी नही कर रहे हैं। क्योकि पिताजी ने कह रक्खा है कि तुम मुनि पिता आन नहि कोऊ। सो जब तक गुरुजी स्वय पिताजी तक ले जाकर पहुँचा नही देते तब तक पिता और गुरु दोनो का नाता मुनिजी से ही है। पिता के दर्शन की उत्सुकता प्रकट करने मे इसलिए सङ्कोच विशेष है।

विश्वामित्रजी सर्वज्ञ हैं। उन्होने लालच और सङ्कोच दोनो जान लिया। इतना बडा मेरा सङ्कोच है कि पिता के दर्शन की लालच ये बच्चे दबाये बैठे हैं। प्रभु ब्रह्मण्य देव मैं जाना। मोहि निति पिता तजेउ भगवाना। इस त्याग से सन्तुष्ट तो पहिल हो से थे। अब प्रश्रय अदब के कारण दर्शन को भी नही कह रहे हैं। इससे विशेष सन्तोष हुआ। यहाँ विश्वामित्रजी दोनो भाइयो की तथा स्वयं महाराज की भी परीक्षा ल रहे हैं। सो परीक्षा मे तीनो व्यक्ति खरे उतरे। न तो राम लक्ष्मण ने उनसे पिता के पास जाने के लिए कुछ कहा और न महाराज दशरथ के यहाँ स राम लक्ष्मण के बुलाने के लिए कोई सन्देश आया।

हरषि बधु दोउ हृदय लगाए। पुलक अग अबक जल छाए ॥
चले जहाँ दशरथु जनवासे। मनहु सरोवर तकेउ पिआसे ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

अर्थ सब सिद्धियाँ सीताजी की आज्ञा सुनकर जहाँ जनवास था वहाँ गईं। सुरपुर का भोग विलास सुख और सम्पत् लिये हुए थी।

व्याख्या आठो सिद्धियाँ आज्ञा पाकर जनवास मे पहुँची। पहिले सुरपुर सरिस सम्पदा छाये। ऐसे वासस्थान मे बारात को टिकाया था। परन्तु मानुषी सम्पदा का उत्कर्ष इतना हो है कि सुरपुर सम्पदा के सदृश हो जाय। फिर भी वह सुरपुर की सम्पदा नही हो सकती। बन्दर मनुष्य सा होता है फिर भी बन्दर और मनुष्य मे महान् अन्तर है। एव मानव भोग और स्वर्गीय भोग मे महान् अन्तर है। सिद्धियो की करणी ऐसी है कि उनके उत्पन्न किये सुख सम्पदा के आगे स्वर्गीय सुख सम्पदा भी नही ठहरती। यथा अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना। जेहि विलोकि विलखाहिं विमाना। भोग विभूति भूरि भरि राखे। देखत जिन्हहि अमर अभिलाखे। दासी दास साजु सब लीन्हे। जोगवत रहहिं मनहि मनु दीन्हे।

निज निज वास बिलोकि बराती। सुर सुख सकल सुलभ सब भाँती ॥
बिभव भेद कछु कोउ न जाना। सकल जनक कर करहिं बखाना ॥१॥

अर्थ बरातियो ने अपना अपना डेरा देखा कि सब प्रकार से देवताओं का सब सुख सुलभ है। विभव भेद किसी ने कुछ समझ न पाया। सब जनक राजा की प्रशसा कर रहे हैं।

व्याख्या जनवासे मे प्रत्येक बाराती के लिए पृथक् पृथक् स्थान निर्दिष्ट थे। सिद्धियो के आते ही बात दूसरी हो गई। अब बाराती अपना डेरा देखते है कि विमानो की भाँति सुन्दर सजे हुए हैं और देवताओ का भोग और विभूति सबको सब प्रकार से सुलभ है। भाव यह कि बारातियो को वैसा ही दिखाई पड रहा है जैसा कि उन्होने बना रक्खा है।

विभव मे भेद पडते किसी ने न लखा। मानुषी भोग दैवी भोग मे परिवर्तित हो गया। सबने उस भोग और विभूति को राजा जनक की ही करतूत समझा और उनकी प्रशसा करने लगे। वस्तुत जिसकी करतूत थी उसे कौन समझता है। जब विभव भेद ही समझ मे नही आया तो उसके कर्त्ता की ओर दृष्टि ही क्यो जाने लगी। इस भाँति सीताजी के द्वारा पिता को यश मिल रहा है।

सिय महिमा रघुनायक जानी। हरषे हृदय हेतु पहिचानी ॥
पितु आगमन सुनत दोउ भाई। हृदय न अति आनदु अमाई ॥२॥

अर्थ सीताजी की महिमा को रामजी ने जाना। प्रेम की पहिचान करके हृदय मे हर्षित हुए। दोनो भाइयो ने पिता का आगमन सुना। अब अत्यन्त आनन्द हृदय मे समा नही रहा है।

व्याख्या महामाया के पति को छोडकर महामाया की महिमा को कौन जाने। सब लोग भोग म पडे हुए भी विभव भेद नही जान सके। रघुनायक अभी वहाँ गये भी नही हैं। विश्वामित्रजी के डेरे पर रहते हुए भी समझ गये कि सीताजी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ने करामात कर दी। सब मानिये राम के नाते। मेरे पिता होने से सत्कार हो रहा है। ऐसा जानकीजी का प्रेम जानकर मन ही मन प्रसन्न हुए। सीताजी की महिमा ही विभवभेद मे कारण हुई।

बारात आने पर शोर मच गया कि महाराज अवधनरेश आगये। सुनकर दोनो भाइयो को अत्यन्त आनन्द हुआ। हृदय मे यथेष्ट स्थान नही रह गया। अत. मुख से नेत्र से तथा रोम रोम से : पुलकद्वारा प्रकट होने लगा। पहिले पुर मे बारात आने की जानकारी सीताजी को कही। यथा · जानी सिय बरात पुर आई। अब श्रीरामजी की जानकारी कहते हैं : पितु आगमन सुनत दोउ भाई।

सकुचन्ह कहि न सकत गुर पाही। पितु दरसन लालच मन माही॥
बिस्वामित्र बिनय बड़ि देखी। उपजा उर संतोष बिसेखी॥३॥

अर्थ · सङ्कोच के कारण गुरु से नही कह सकते। पिता के दर्शन का लालच मन मे है। विश्वामित्र को इतना बडा विनय : अदब देखकर हृदय मे विशेष सन्तोष उत्पन्न हुआ।

व्याख्या · दोनो भाई स्वभाव से सङ्कोची हैं। इनके सङ्कोची स्वभाव के कारण माताओ को सोच है कि ये कष्ट सहन कर लेंगे परन्तु मुनिजी से न कहेगे। यथा : बालक सुठि सुकुमार सकोची समुझि सोच मोहि आली। इन्ही के लिए बारात लेकर पिता अयोध्या से आये है। इतने दिनो से पिता का विछोह है। पितृप्रेम हृदय मे उमड रहा है। पिता के दर्शन का लालच है। नही तो राम लक्ष्मण को लालच कहाँ ? फिर भी मुनिजी से पितृ दर्शन के लिए कहने मे सङ्कोच है। सङ्कोच तो नगर दर्शन के लिए कहने मे भी था फिर भी मुनिजी से निवेदन किया। पर इस बार मारे सङ्कोच के निवेदन भी नही कर रहे है। क्योकि पिताजी ने कह रक्खा है कि तुम मुनि पिता आन नहि कोऊ। सो जब तक गुरुजी स्वय पिताजी तक ले जाकर पहुँचा नही देते तब तक पिता और गुरु दोनो का नाता मुनिजी से ही है। पिता के दर्शन की उत्सुकता प्रकट करने मे इसलिए सङ्कोच विशेष है।

विश्वामित्रजी सर्वज्ञ हैं। उन्होने लालच और सङ्कोच दोनो जान लिया। इतना बडा मेरा सङ्कोच है कि पिता के दर्शन की लालच ये बच्चे दबाये बैठे है। प्रभु ब्रह्मण्य देव मैं जाना। मोहि निति पिता तजेउ भगवाना। इस त्याग से सन्तुष्ट तो पहिले हो से थे। अब प्रश्रय अदब के कारण दर्शन को भी नही कह रहे हैं। इससे विशेष सन्तोष हुआ। यहाँ विश्वामित्रजी दोनो भाइयो की तथा स्वय महाराज की भी परीक्षा ले रहे हैं। सो परीक्षा मे तीनो व्यक्ति खरे उतरे। न तो राम लक्ष्मण ने उनसे पिता के पास जाने के लिए कुछ कहा और न महाराज दशरथ के यहाँ से राम लक्ष्मण के बुलाने के लिए कोई सन्देश आया।

हरषि बधु दोउ हृदय लगाए। पुलक अंग अंबक जल छाए॥
चले जहाँ दशरथु जनवासे। मनहु सरोवर तकेउ पिआसे॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ प्रसन्न होकर दोनो भाइयो को कलेजे से लगा लिया। शरीर मे पुलकावली हो गई। आँखो मे आँसू छलछला उठे। जहाँ जनवासे मे महाराज दशरथ थे वहाँ के लिए चल पडे। मानो प्यासा तालाव को लक्ष्य करके जा रहा हो।

व्याख्या दोनो भाइयो के विनय से विश्वामित्रजी का हृदय उमग उठा। उन्हे कलेजे से लगा लिया। सात्त्विक भाव होने से पुलक भी हुआ। आँखो मे आँसू भी आगये। न दोनो भाइयो ने कुछ कहा न गुरुजी ने ही कुछ कहा। सब सबके भावको समझ गये।

विश्वामित्रजी को भी महाराज के दर्शन की बडी लालसा है। जिसने अपने प्राण निकालकर दे दिये। यथा : मेरे प्राणनाथ सुत दोऊ। और आने पर यह भी न पूछा कि मेरे प्यारे बच्चे कहाँ है? ऐसे आज्ञापालक के दर्शन की प्यासी प्रेमपयोनिधि विश्वामित्रजी को होना प्राप्त ही है। अत तीनो व्यक्तियो को चक्रवर्तीजी के दर्शन की प्यास है। यहाँ चक्रवर्तीजी सरोवर है और उनका रूप ही जल है। अत प्यासे के सरावर लक्ष्य करके जाने की भाँति गुरुजी तथा दोनो भाई चले। इतनी चहल पहल नगर मे मची हुई है। पर इन तीनो व्यक्तियो ने कुछ न देखा। प्यासा कुछ नही देखता। उसका ध्यान केवल पानी पर रहता है।

दो भूप बिलोके जबहि मुनि, आवत सुतन्ह समेत।
उठेउ हरषि सुखसिंधु महुँ, चले थाह सी लेत ॥२०७॥

अर्थ जब महाराज दशरथ ने मुनिजी को देखा कि बेटो के साथ चले आरहे हैं तो आनन्दित होकर उठे और सुख के समुद्र मे थाह लेते हुए से चले।

व्याख्या महाराज की दृष्टि पडी कि विश्वामित्रजी रामजी तथा लक्ष्मण के साथ चले आरहे है। महाराज अगवानी के लिए उठ खडे हुए। दरबार लगा हुआ था। महाराज के उठते ही सारी सभा उठ खडी हुई। महाराज के साथ चल पडी। सुख का समुद्र उमड चला। उस बीच मे महाराज दशरथ चल रहे है। उसी चलने की दशा का वर्णन करते है। अगाध जल के तल मे चलना महा कठिन है। पैर धरती पर पडते ही नही। समुद्र के तल मे चलनेवाले अपने पैरो मे भारी बोझ बाँधते है। जिसमे धरती पर पैर पडे। यहाँ भी उसी भाँति मारे आनन्द के महाराज के पैर धरती पर नही पड रहे हैं। आनन्द सिन्धु मे मग्न एक एक पैर सँभाल सँभालकर रख रहे है।

मुनिहि दडवत कीन्ह महीसा। बार बार पद रज धरि सीसा॥
कौसिक राउ लिए उर लाई। कहि असीस पूछी कुसलाई ॥१॥

अर्थ महाराज ने मुनिजी को दण्डवत् प्रणाम किया। चरणरज को बार बार सिरपर धारण किया। विश्वामित्रजी ने राजा को हृदय से लगा लिया और आशीर्वाद देकर कुशल पूछा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या : महीश है। संसार उन्हे प्रणाम करता है। पर उन्होने मुनिजी को दण्डवत् प्रणाम किया। क्योकि मुनिपद राजपद से कही बडा है। जब मुनि जी अयोध्या गये थे तब भी दण्डवत् किया था। परन्तु इसबार पुन पुन पदरज को सिरपर धारण कर रहे हैं। क्योकि महात्माओ के चरणरज का सिरपर रखने से ही सब अभीष्टो की सिद्धि होती है। यथा सब पायेउँ रस पायन पूजे। मुनिजी ने कहा था धर्म सुयस प्रभु तुम कहँ इन कहँ अति कल्यान। सो अक्षरश पूरा हुआ। महाराज को धर्म और सुयश की प्राप्ति हुई। धर्म यथा निसिचर बध मैं होब सनाथा। सुयश यथा : ममहित लागि नरेस पठाये। और रामजी तथा लक्ष्मणजी का अत्यन्त कल्याण हुआ। यथा . गुरुप्रसाद सब बिद्या पाई। विस्वविजय जस जानकि पाई।

जब विश्वामित्रजी अयोध्या गये थे उस समय के व्यवहार और इस समय के व्यवहार का अन्तर विचारणीय है। उस समय महाराज दशरथ के दण्डवत् प्रणाम पर न आशीर्वाद देते है, न कुशल पूछते है। हृदय लगाने की कथा ही क्या है ? आज प्रेम मे विभोर होकर महाराज के दर्शन के प्यासे होकर आये है। दण्डवत् करते देखकर हृदय से लगा लेते है। आशीर्वाद देकर कुशल पूछते हैं। महाराज दशरथ के गुण ही ऐसे है जिनके कारण विश्वामित्र ऐसे मुनि भी उनके वश मे हो गये।

पुनि दंडवत करत दोउ भाई। देखि नृपति उर सुखु न समाई ॥
सुत हिय लाइ दुसह दुखु मेटे। मृतक सरीर प्रान जनु भेटे ॥२॥

अर्थ फिर दोनो भाइयो को दण्डवत् करते देखकर महाराज के हृदय मे सुख नही समाता है। बेटो को हृदय मे लगाकर दु सह दु ख को मिटाया। जैसे मरे हुए शरीर मे फिर से प्राण का सञ्चार हुआ हो।

व्याख्या वहाँ पितु आगमन सुनत दोउ भाई। हृदय न अति आनन्द अमाई। यहाँ देखि नृपति उर सुख न समाई। जिस राम और लक्ष्मण की कीर्ति और करणी को बार बार रनिवास मे महाराज ने वर्णन किया था वे ही राम और लक्ष्मण ऐसी कीर्ति और करणी करके दण्डवत् कर रहे है। पर पूर्व जन्म मे माँगा था मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन मिति तुमहि अधीना। सो पहिली दशा उपस्थित थी। बिना मणि के फणि सर्प की भाति महाराज रामजी की अनुपस्थिति मे व्याकुल रहते थे। अवलम्ब इतना ही था कि उनके प्रतिनिधि रूप मे मुनिजी साथ थे। महाराज ने लक्ष्मण को सुपुर्द करते समय कह दिया ही था तुम मुनि पिता आन नहि कोऊ। सा पुत्र को हृदय मे लगाने के सुख से दु ख को मिटा रहे हैं। जैसे मृतक शरीर मे पुन प्राण का सञ्चार हो रहा हो।

पुनि बसिष्ठ पद सिर तिन्ह नाये। प्रेम मुदित मुनिवर उर लाये ॥
बिप्र बृंद बंदे दोउ भाई। मन भावती असीसें पाई ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

अर्थ फिर उन्होंने वसिष्ठजी के चरणों मे सिर झुकाया। प्रेम से प्रसन्न होकर मुनिश्रेष्ठ ने उन्हे हृदय से लगा लिया। दोनो भाइयो ने ब्राह्मणवृन्द की वन्दना की और वाञ्छित आशीर्वाद पाया।

व्याख्या वसिष्ठजी को सिर नवाना दूसरी वार का प्रणाम है। पहिले दण्डवत् मे पिता के हृदय लगाने से वह केवल उन्ही के लिए प्रणाम समझा गया। इसलिए गुरुजी को पुन प्रणाम किया। इष्टलाभ से वसिष्ठजी मुदित हैं। हृदय लगाना ही इष्टलाभ है। प्रेमातिशय से न चक्रवर्तीजी आशीर्वाद दे सके न वसिष्ठजी दे सके।

गुरुजी के प्रणाम के बाद श्रुतिछन्दरूप विप्रवृन्द को प्रणाम किया। एक आशीर्वाद नही पृथक् पृथक् आशीर्वाद विप्रवृन्द ने दिया। इसलिए कवि ने बहुवचन का प्रयोग किया है। किसी ने कहा पूर्णा सन्तु मनोरथा। किसी ने धर्मसमृद्धिरस्तु। किसी ने शास्त्रसमृद्धिरस्तु। इत्यादि असीसें दी। दोनो भाइयो का साथ ही प्रणाम है।

भरत सहानुज कीन्ह प्रनामा। लिए उठाइ लाइ उर रामा॥
हरषे लखन देखि दोउ भ्राता। मिले प्रेम परिपूरित गाता॥४॥

अर्थ भरतजी ने छोटे भाई के साथ प्रणाम किया। रामजी ने उठाकर छाती से लगा लिया। दोनो भाइयो को देखकर लक्ष्मणजी हर्षित हुए और प्रेम से भरे हुए शरीर द्वारा उनसे मिले।

व्याख्या · उठा लिया कहने से भरतजी का दण्डवत् प्रणाम करना सूचित होता है। भरतजी ने शत्रुघ्न के साथ प्रणाम किया था। यहाँ चारो भाइयो का मिलना है। यह रामचरित सरयू की जल माधुरी है। यथा · अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास। भायप भलि चहु बधु की जलमाधुरी सुवास। अति उत्कण्ठा मे नियमभङ्ग स्वाभाविक है। भरतजी ने शत्रुघ्न के साथ प्रणाम किया और रामजी ने हृदय से लगा लिया। यहाँ तक नियम ठीक रहा।

भरत शत्रुघ्न जब रामजी को दण्वडत् करते थे तभी उनको देखकर लक्ष्मणजी हर्षित हुए। रामजी से मिलकर भरतजी के अलग होते ही उनसे लिपट गये। प्रणाम न कर सके। इसी भाँति शत्रुघ्नजी को तुरन्त गल से लगा लिया। प्रणाम करने का अवसर भी लक्ष्मणजी ने न दिया।

दो० पुरजन परिजन जाति जन, जाचक मत्री मीत।
मिले जथाविधि सबहि प्रभु, परम कृपाल बिनीत॥३०८॥

अर्थ पुर के लोग, मुसाहिब लोग, जाति के लोग, मन्त्री लोग और मित्र, इन सबसे परम कृपालु और विनीत रामजी मिले।

व्याख्या : श्रीरामजी की यही विशेषता है। सबसे तो मिले ही। याचको से भी मिले। यह भानुकुल केतु की बानगी है। इनसे यहाँ मगन को 'नही' नही

ankurnagpal108@gmail.com


मिलता। पहिला दायज भी इन्ही के हाथ लगा। अब इससे बढकर क्या होगा कि परम कृपालु विनीत रामजी इनसे मिल रहे है। एहि दरबार दीन को आदर रीति सदा चलि आई। अब सबसे मिलने की विधि कहते है। जो जिस योग्य था उससे वैसे मिले। किसी का चरण ग्रहण किया। किसी को प्रणाम किया। किसी का आलिङ्गन किया। किसी को करकमल से स्पर्श किया। किसी को स्मितावलोकन से अनुगृहीत किया। किसीसे कुशल प्रश्न किया।

रामहि देखि बरात जुडानी। प्रीति कि रीति न जाति बखानी॥
नृप समीप सोहहिं सुत चारी। जनु धन धरमादिक तनुधारी॥१॥

अर्थ: रामजी को देखकर बारात शीतल हुई। प्रीति की रीति बखानते नही बनती। महाराज के पास चारो बेटे ऐसे शोभित हैं। मानो धन अर्थ धर्मादि चारो पुरुषार्थ शरीर धारण किये हुए हैं।

व्याख्या: बारात मे सबको बडी उत्सुकता है कि राम और लक्ष्मण दोनो वीरो को कब देखेंगे? यथा कबहि देखिबे नयन भरि राम लखन दोउ बीर। सो आँख भर के देखा। इससे हृदय शीतल हुआ। जो हृदय सुरपुर भोग विलास से शीतल होनेवाला नही था वह रामजी के दर्शन से शीतल हुआ। शीतल वस्तु के स्पर्श से जुडाने: शीतल होने की विधि है। देखने से नही। पर प्रीति ही दूसरी है। उसमे देखने से शीतलता आती है। लोकरीति से विलक्षण होने से अवर्णनीय है। यथा: सब विधि सब पुरलोग सुखारी। रामचद मुखचद निहारी।

बारात की महफिल लगी हुई है। महाराज की गद्दी के दक्षिण पार्श्व मे चारो राजकुमार शोभायमान है। रामजी के दाहिने भरतजी। उनके दाहिने लक्ष्मणजी और लक्ष्मण के दाहिने शत्रुघ्नजी शोभित हैं। छोटे भाई दक्षिण भुजा स्थानीय है। अत उनका स्थान दक्षिण भुजा के सन्निकट है। यथा: राम बाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर। ऐसी शोभा हो रही है मानो अर्थ धर्म काम और मोक्ष शरीर धारण करके बैठे हुए है। धन और धर्म साधन कोटि मे और काम तथा मोक्ष सिद्धिकोटि मे है। इसी से ऐसा क्रम रक्खा गया। कवि उस सभा मे दूर सामने खडे है। अत. अर्थ पर ही पहिले दृष्टि जाती है। उसी क्रम से उल्लेख है। यथा: शत्रुघ्न, लक्ष्मण, भरत और रामजी। राजाओ की पूरी शोभा चारो फलों से युक्त होने मे है। यहाँ मोक्ष से अभिप्राय जीवन्मुक्ति से है।

सुतन्ह समेत दसरथहि देखी। मुदित नगर नर नारि विसेखी॥
सुमन बरहिं सुर हनहि निसाना। नाकनटी नाचहिं करि गाना॥२॥

अर्थ: बेटो के सहित चक्रवर्तीजी को देखकर बाराती मुदित है। पर जनकपुर के नर नारी विशेष मुदित है। फूलो की वर्षा करके देवता दुन्दुभी बजा रहे हैं और अप्सराएँ गान कर रही है।

व्याख्या: जनकपुर के नर नारी बेटो के साथ महाराज दशरथ को देखकर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


विशेष आनन्दित है। क्योकि बारातियो ने तो पहिले भी ऐसी झाँकी देखी है। परन्तु जनकपुर के लोगो के लिए यह पहिला अवसर है। अथवा महापुण्यवान महाराज दशरथ को देखकर मुदित थे। अब वे बेटो के सहित उन्हे देखकर विशेष मुदित हुए। ऐसे गुणवान चार कुमारो के होने से महाराज के महापुण्य का अनुमान करते है यह जनकपुर निवासियो की मुदितता है।

मिलने के समय से ही देवताओ का डका बज रहा है। पर कवि को लिखने का अवसर अब मिला है। महाराज दशरथ की सभा मे वेश्या का नृत्य और गान नही है। विवाह चाहे सात सौ हो पर एक वेश्या का नृत्य न होने पावे · यह गोस्वामीजी का सुधार है। देवताओ के डङ्का बजाने के उल्लेख से यह पता चलता है कि अप्सराओ का गान और नृत्य आकाश मण्डल मे हो रहा है। भूमण्डल मे नही।

सतानदु अरु बिप्र सचिव गन। मागध सूत बिदुप बदीजन ॥
सहित बरात राउ सनमाना। आयसु माँगि फिरे अगवाना ॥३॥

अर्थ शतानन्द, ब्राह्मण, मन्त्रीगण, मागध, सूत, पण्डित और वन्दीजनो ने बारात के सहित महाराज का सम्मान किया और आज्ञा माँगकर अगवानी करने-वाले लोग लौटे।

व्याख्या बारात की अगवानी मे तथा सत्कार मे स्वय समधी के न जाने की चाल है। अत महाराज जनक स्वय उपस्थित न थे। अगवानी मे जो लोग गये थे और जो लोग बारात को जनवासे मे लाये थे उनमे से पुरोहित शतानन्दजी, ब्राह्मण, मन्त्रीगण, मागध, सूत, पण्डित और वन्दीजनो ने बारात के सत्कार की व्यवस्था की। जब सब व्यवस्था हो चुकी तब अगवानियो ने वापस जाने की आज्ञा चाही और पाने पर लौट आये।

प्रथम बरात लगन ते आई। ताते पुर प्रमोद अधिकाई ॥
ब्रह्मानद लोगु सब लहही। बढउ दिवस निसि बिधि सन कहही ॥४॥

अर्थ पहिले बारात लग्न से आई। इससे नगर मे आनन्द बढ गया। लोग ब्रह्मसुख प्राप्त कर रहे हैं। ब्रह्मदेव से कह रहे हैं कि दिन और रात बढे।

व्याख्या गुरुजी की आज्ञा का यह प्रभाव है कि बिना लग्न देखे बारात चली परन्तु लग्न से पहुँची। अर्थात् अच्छे लग्न म जनकपुर मे[१] प्रवेश किया। प्रथम बारात कहने का भाव यह कि विवाह के लिए राजद्वार पर लगने के लिए दूसरी बारात निकलेगी। पहिली बारात जो बिना दूल्हा के अयोध्या से आई है। उसने जनकपुर मे शुभलग्न से प्रवेश किया। जनकपुर मे ज्योतिष का बडा आदर है। लग्न पर बडा विश्वास है। लग्न से बारात के आने से भावी मंगल की सूचना मिली। प्रजा

१ धन तेरस को बारात जनकपुर पहुँची।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



राजा मे अनुरक्त है। उनके मगल से अपना मगल मानती है। अत बारात के लग्न से आने मे सबको अधिक आनन्द हुआ।

जन्मोत्सव के समय अयोध्यावासियो ने ब्रह्मानन्द का सुख लिया। यथा · ब्रह्मानन्द मगन सब लोगू। इस समय जनकपुरवासी भी वही सुख ले रहे है। जन्मोत्सव मे · मास दिवस कर दिवस भा। एक दिन महीने भर का हो गया था। इसलिए अवधवासियो ने दिवस निसि के बढने की प्रार्थना विधि से नही की थी। इस समय ऐसा नही हुआ। लोग इस आनन्द से अभी तृप्त नही हुए है। अत विधि से दिन रात के बढने के लिए प्रार्थना कर रहे है।

दो. राम सीय सोभा अवधि, सुकृत अवधि दोउ राज।
जहँ तहँ पुरजन कहहिं अस, मिलि नर नारि समाज ॥३०९॥

अर्थ · राम और सीता शोभा की सीमा हैं और पुण्य की सीमा दोनो राजा हैं। यही बात जहाँ तहाँ नगर निवासी नरनारि समाज मे मिलकर कह रहे हैं।

व्याख्या · न तो राम और सीता सी सुन्दरता ही ससार मे कही है और न महाराज दशरथ और जनक सा पुण्यात्मा कोई है। यही भाव जो नगरवासी बारात तथा जनवास देखकर लौटते हैं उनके हृदय मे उठ रहा है। और यही चरचा वे परस्पर कर रहे हैं। पुरवासी घर लौटकर जो कुछ नरसमाज मे कहते हैं और नारियाँ घर लौटकर नारीसमाज मे जो कहती हैं उसका साराश इतना ही है . राम सीय सोभा अवधि सुकृत अवधि दोउ राज।

जनक सुकृत मूरति बैदेही। दसरथ सुकृत रामु धरे देही ॥
इन सम काहु न सिव अवराधे। काहु न इन समान फल लाधे ॥१॥

अर्थ · राजा जनक के पुण्य की मूर्ति सीताजी है और राजा दशरथ के पुण्य ने रामजी का देह धारण कर रक्खा है। इनके समान तो किसी ने न शिवजी की आराधना की और न किसी ने इनके समान फल प्राप्त किया।

व्याख्या : पहिले केवल रामजी की छवि की चरचा नगर म थी। यथा · बरनत छवि जहँ तहँ सब लोगू। अब रामजी की छवि और दोनो राजाओ के पुण्य का वर्णन हो रहा है। मिथिला कर्मठ देश है। स्वय जनकजी ज्ञानी होते हुए भी बडे याज्ञिक थे। अत सबका ध्यान उन कर्मों पर गया जिनका यह फल है। कोई कहता है कि राजा के किये हुए पुण्य की मूर्ति वैदेही है और राजा दशरथ के पुण्य की मूर्ति रामजी है। क्योकि अति उग्र पुण्य पाप का यही फल मिल जाता है। यथा अत्युग्रपुण्यपापानामिहैव फलमश्नुते।

कोई पुण्य का विवरण कर रहा है इच्छित फल बिनु सिव अवराधे। लहिअ न कोटि जोग जप साधे। सो इन दोनो राजाओ ने शङ्कर की अतीव आराधना की है। तभी सब प्रकार से सम्पन्न है। यथा स्यदन गयद बाजि राजि भले भले भट धन धाम निकर करनिहू न पूजे सर्व। बनिता विनीत पूत पावन

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

arunaggarwal108@gmail.com

विशेष आनन्दित है। क्योकि बारातियो ने तो पहिले भी ऐसी झाँकी देखी है। परन्तु जनकपुर के लोगो के लिए यह पहिला अवसर है। अथवा महापुण्यवान महाराज दशरथ को देखकर मुदित थे। अब वे बेटो के सहित उन्हे देखकर विशेष मुदित हुए। ऐसे गुणवान चार कुमारो के होने से महाराज के महापुण्य का अनुमान करते है यह जनकपुर निवासियो की मुदितता है।

मिलने के समय से ही देवताओ का डका बज रहा है। पर कवि को लिखने का अवसर अब मिला है। महाराज दशरथ की सभा मे वेश्या का नृत्य और गान नही है। विवाह चाहे सात सौ हो पर एक वेश्या का नृत्य न होने पावे यह गोस्वामीजी का सुधार है। देवताओ के डङ्का बजाने के उल्लेख से यह पता चलता है कि अप्सराओ का गान और नृत्य आकाश मण्डल मे हो रहा है। भूमण्डल मे नही।

सतानदु अरु विप्र सचिव गन। मागध सूत विदुष वदीजन॥
सहित बरात राउ सनमाना। आयसु माँगि फिरे अगवाना॥३॥

अर्थ शतानन्द, ब्राह्मण, मन्त्रीगण, मागध, सूत, पण्डित और वन्दीजनो ने बारात के सहित महाराज का सम्मान किया और आज्ञा माँगकर अगवानी करने-वाले लोग लौटे।

व्याख्या बारात की अगवानी मे तथा सत्कार मे स्वय समधी के न जाने की चाल है। अत महाराज जनक स्वय उपस्थित न थे। अगवानी म जो लोग गये थे और जो लोग बारात को जनवासे मे लाये थे उनमे से पुरोहित शतानन्दजी, ब्राह्मण, मन्त्रीगण, मागध, सूत, पण्डित और बन्दीजनो ने बारात के सत्कार की व्यवस्था की। जब सब व्यवस्था हो चुकी तब अगवानियो ने वापस जाने की आज्ञा चाही और पाने पर लौट आये।

प्रथम बरात लगन ते आई। ताते पुर प्रमोद अधिकाई॥
ब्रह्मानद लोगु सब लहही। बढउ दिवस निसि विधि सन कहही॥४॥

अर्थ पहिले बारात लग्न से आई। इससे नगर मे आनन्द बढ गया। लोग ब्रह्मसुख प्राप्त कर रहे हैं। ब्रह्मदेव से कह रहे है कि दिन और रात बढे।

व्याख्या गुरुजी की आज्ञा का यह प्रभाव है कि बिना लग्न देखे बारात चली परन्तु लग्न से पहुँची। अर्थात् अच्छे लग्न म जनकपुर म[१] प्रवेश किया। प्रथम बारात कहने का भाव यह कि विवाह के लिए राजद्वार पर लगने के लिए दूसरी बारात निकलेगी। पहिली बारात जो बिना दूल्हा के अयोध्या से आई है। उसने जनकपुर मे शुभलग्न से प्रवेश किया। जनकपुर मे ज्योतिष का बडा आदर है। लग्न पर बडा विश्वास है। लग्न मे बारात के आने से भावी मगल की सूचना मिली। प्रजा

१ धन तरस को बारात जनकपुर पहुँची।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



राजा मे अनुरक्त है। उनके मगल से अपना मगल मानती है। अत बारात के लग्न से आने मे सबको अधिक आनन्द हुआ।

जन्मोत्सव के समय अयोध्यावासिया ने ब्रह्मानन्द का सुख लिया। यथा ब्रह्मानन्द मगन सब लोगू। इस समय जनकपुरवासी भी वही सुख ले रहे है। जन्मोत्सव मे मास दिवस कर दिवस भा। एक दिन महीने भर का हो गया था। इसलिए अवधवासियो ने दिवस निसि के बढने की प्रार्थना विधि से नही की थी। इस समय ऐसा नही हुआ। लोग इस आनन्द से अभी तृप्त नही हुए है। अत विधि से दिन रात के बढने के लिए प्रार्थना कर रहे है।

दो. राम सीय सोभा अवधि, सुकृत अवधि दोउ राज।
जहँ तहँ पुरजन कहहिं अस, मिलि नर नारि समाज ॥३०९॥

अर्थ राम और सीता शोभा की सीमा है और पुण्य की सीमा दोनो राजा है। यही बात जहाँ तहाँ नगर निवासी नरनारि समाज मे मिलकर कह रहे है।

व्याख्या न तो राम और सीता सी सुन्दरता ही ससार मे कही है और न महाराज दशरथ और जनक सा पुण्यात्मा कोई है। यही भाव जो नगरवासी बारात तथा जनवास देखकर लौटते है उनके हृदय मे उठ रहा है। और यही चरचा वे परस्पर कर रहे हैं। पुरवासी घर लौटकर जो कुछ नरसमाज मे कहते हैं और नारियाँ घर लौटकर नारीसमाज मे जो कहती हैं उसका साराश इतना ही है राम सीय सोभा अवधि सुकृत अवधि दोउ राज।

जनक सुकृत मूरति बैदेही। दसरथ सुकृत रामु धरे देही ॥
इन सम काहु न सिव अवराधे। काहु न इन समान फल लाधे ॥१॥

अर्थ राजा जनक के पुण्य की मूर्ति सीताजी है और राजा दशरथ के पुण्य ने रामजी का देह धारण कर रक्खा है। इनके समान तो किसी ने न शिवजी की आराधना की और न किसी ने इनके समान फल प्राप्त किया।

व्याख्या पहिले केवल रामजी की छवि की चरचा नगर म थी। यथा· बरनत छवि जहँ तहँ सब लोगू। अब रामजी की छवि और दोनो राजाओ के पुण्य का वर्णन हो रहा है। मिथिला कर्मठ देश है। स्वय जनकजी ज्ञानी होते हुए भी बडे याज्ञिक थे। अत सबका ध्यान उन कर्मो पर गया जिनका यह फल है। कोई कहता है कि राजा के किये हुए पुण्य की मूर्ति वैदेही है और राजा दशरथ के पुण्य की मूर्ति रामजी है। क्योकि अति उग्र पुण्य पाप का यही फल मिल जाता है। यथा अत्युग्रपुण्यपापानामिहैव फलमश्नुते।

कोई पुण्य का विवरण कर रहा है इच्छित फल बिनु सिव अवराधे। लहिअ न कोटि जोग जप साधे। सो इन दाना राजाओ ने शङ्कर की अनीव आराधना की है। तभी सब प्रकार से सम्पन्न है। यथा स्यदन गयद बाजि गजि भल भले भट धन धाम निकर करनिहू न पूजे वने। वनिता विनीत पूत पान्न

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


सोहावन औ विनय विवेक विद्या सुभग सरीर ज्वै। इहाँ ऐसो सुख परलोक सिवलोक ओक ताको फल तुलसी सो सुनो सावधान ह्वै। जाने विनु जाने के रिसाने केलि कबहुँक सिवहि चढाये ह्वै हैं बेल के पतौवा द्वै।

इन्ह सम कोउ न भयउ जगमाही। है नहि कतहूँ होनेउ नाही॥
हम सब सकल सुकृत कै रासी। भए जग जनमि जनकपुर बासी॥२॥

अर्थ इनके समान ससार मे न कोई हुआ, न है, न होगा। हम सब भी सकल पुण्य के राशि ससार मे जन्म लेकर जनकपुरवासी होने से हुए।

व्याख्या कोई कहता है कि तीन काल म इनके समान कोई नही हुआ। वसिष्ठजी का भी यही मत है। यथा सुकृती तुम समान जगमाही। भयउ न है कोउ होनेउ नाही। महाराज जनक इन्ही क समकक्ष है। यथा सम समधी देखा हम आजू। अत इनके समान भी न कोई था, न है, न होगा। कोई कहते है कि जनकजी की प्रजा होने से हम भी पुण्य की राशि हो गये। यथा राजा तथा प्रजा। राजा पुण्य की सीमा है हमलोग राशि है। पुण्य की सीमा होने का फल राजा को मिल रहा है और राशि होने का फल प्रजा को मिल रहा है। अथवा जनकपुर महा पुण्यतीर्थ है। इसके सेवन से हमलाग पुण्य की राशि हो गये। पुण्यराशि होने का फल कहते है

जिन्ह जानकी राम छबि देखी। को सुकृती हम सरिस बिसेखी॥
पुनि देखब रघुबीर बिबाहू। लेब भली बिधि लोचन लाहू॥३॥

अर्थ जिन्हाने जानकी और राम की छवि देखी है। हमारे सदृश विशेष पुण्यात्मा कौन है। फिर रघुवीर का विवाह देखेंगे और भली प्रकार स लोचन का लाभ लगे।

व्याख्या राम जानकी की छवि देखना सकल पुण्य की राशि हुए विना सम्भव नही। यह विशेष सुकृत का फल है। क्योंकि पुण्य का फल ता स्वर्ग है। परन्तु यह दर्शन तो इतना दुर्लभ है कि सरभङ्ग मुनि ब्रह्मलाक जा रहे थे सो इस दर्शन के लिए रुक गये। यथा जात रह्यो विरचि के धामा। सुनेउ श्रवन वन अइहै रामा। चितवत्त पथ रहेउँ दिन राती। अब प्रभु देखि जुडानी छाती।

इतना ही नही और देखना है। रघुवीर विवाह देखना है। जो ब्रह्मलोक का रानी शारदा को भी सुलभ नही। यथा राजत राम जानकी जोरी। स्याम सरोज जलद सुदर वर दुलहिन तडित वरन तन गोरी। ब्याह समय सोहति वितानतर उपमा कहुँ न लहत मति मोरी। मनहु मदन मजुल मडप महँ छवि सिगार शोभा इक ठौरी। मगलमय दोउ अग मनाहर ग्रथित चूदरी पीत पिछोरी। कनक कलस कहँ देत भावरी देखि प्रीति सारद भइ भोरी। इस प्रकार जहाँ चार आदमी इकट्ठे है वही ऐसी बाते हो रही है। अत चार पुरुषा का सवाद कहा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


कहहिं परसपर कोकिलवयनी । येहि विवाह बड लाभु सुनयनी ॥
बडे भाग विधि बात बनाई । नयन अतिथि होइहहि दोउ भाई ॥४॥

अर्थ कोकिलवयनी आपस मे कहती हैं कि हे सुनयनी ! इस विवाह म बडा लाभ है । बडे भाग से ब्रह्मदेव ने बात बनाई है । दोनो भाई आकर आँखो के मेहमान अतिथि होगे ।

व्याख्या कहने और सुननेवाली दोनो कोकिलवयनी और सुनयनी है । नरसमाज का हाल कहकर अब नारीसमाज का हाल कहते है । यद्यपि रामजी क नगरदर्शन के समय सभी घरो की स्त्रिया ने रामजी के रूप की प्रशसा की । यथा हिय हरखहि बरखहि सुमन सुमुखि सुलोचनि वृद । जाहि जहाँ जहँ बधु दोउ तहँ तहँ परमानद । तथापि सवाद अष्ट सखियो का ही लिखा गया । इसी भाँति यहाँ भी अष्ट सखियो का सवाद कहते हैं । इसी सवाद म सब नारिया के कथन का अन्तर्भाव है । १ जिस सखी ने कहा था कि जेहि बिरचि रचि सीय सँवारी । सोइ स्यामल बर रचेउ बिचारी । वही कहती है एहि बिवाहु बड लाभ सुनयनी । दूसरे विवाह म अनुरूप जोडी हो जाती । सबसे बडा लाभ है कि अनुरूप जोडी मिली । इससे दम्पति का लाभ, दोना पक्ष का लाभ, सब लाभ ही लाभ है ।

२ जिसने कहा था सकर चाप कठोरा । ये स्यामल मृदु गात किसोरा । सब असमजस अहै सयानी । वह कह रही है बडे भाग बिधि बात बनाई । नयन अतिथि होइहै दोउ भाई । अब ये दोनो भाई कभी कभी दर्शन देते रहेगे । राजा के अतिथि होगे और हमलोगो के नयना के अतिथि होगे ।

दो बारहि बार सनेह बस, जनक बोलाउब सीय ।
लेन आइहहि बधु दोउ कोटि काम कमनीय ॥३१०॥

अर्थ जनकजी बार बार स्नेहवश होकर सीताजी को बुलायेंगे । करोडो कामो से भी सुन्दर दोना भाई लने आवेगे ।

व्याख्या ३ जिसने कहा था नाहि त हम कहँ सुनहु सखि इनकर दरसन दूरि । यह सघट तब होइ जब पुन्य पुराकृत भूरि । वही कह रही है कि पुण्य पुराकृत उदय हुआ । इनका दर्शन अब दुलभ न होगा । जनकजी बडे दुहितृ वत्सल है । बेटी के लिए इतना बडा स्वयवर रचा । बारात के सत्कार के लिए इतना कर रहे हैं । ये स्नेह के वश बारबार सीताजी को बुलावेंगे । तब विदा कराने के लिए बारम्बार दोनो भाइया को आना पडेगा । बिना पति के विदा कराने आये स्त्रियो का सम्मान नही होता । अत विदा कराने पति का जाना पडता है । अत ये लोग बारबार आवेंगे और हमलोग दर्शन पावेंगे ।

बिबिध भाँति होइहि पहुनाई । प्रिय न काहि अस सासुर माई ॥
तब तब राम लखनहि निहारी । होइहहि सब पुर लोग सुखारी ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : अनेक प्रकार से आतिथ्य सत्कार होगा। हे माई! ऐसी ससुराल किसे प्रिय न होगी। तब तब राम लखन को देखकर सब पुर के लोग सुखी होंगे।

व्याख्या : ४ जिसने कहा था : कोउ कह ये भूपति पहिचाने। मुनि समेत सादर सनमाने। वही कहती है कि बिना सम्बन्ध ही इतना सत्कार हुआ था। अब तो घनिष्ठ सम्बन्ध हो गया। विविध प्रकार से सत्कार तो दामाद का सामान्य लोग करते है। महाराज जनक के सत्कार का कहना ही क्या है? ऐसी ससुराल स्वभाव से रामजी को प्रिय होगी। अत अवश्य आना जाना लगा रहेगा।

सखि जस राम लषन कर जोटा। तैसेइ भूप संग दुइ ढोटा॥
स्याम गौर सब अंग सुहाए। ते सब कहहिं देखि जे आए॥२॥

अर्थ : हे सखि! जैसा राम लक्ष्मण का जोडा है वैसे ही राजा के संग दो लडके हैं। श्याम गौर सब अङ्ग सुन्दर है। वे सब कहते है जो देख आये हैं।

व्याख्या : ५ जिसने कहा था : ए दोऊ दशरथ के ढोटा। बाल मरालन्ह के कल जोटा। वही कह रही है : सखि जस राम लखन कर जोटा। तैसेइ भूप संग दुइ ढोटा। पहिले भी इसने अपने पति से सुनकर कहा था। यथा : जो मैं सुना सो सुनहु सयानी। इस बार भी उन्ही से सुनकर कहती है कि वे लोग बतलाते है जो देखकर आये है। पति की कही हुई बातो को सङ्कोच से स्त्रियाँ इसी प्रकार से कहती है। पति से उसने सुन रक्खा है। महाराज दशरथ के दो लडके है जो ठीक राम लक्ष्मण से है। राम लक्ष्मण की भाँति वे दोनो भी श्याम गौर और सुन्दर हैं।

कहा एक मै आजु निहारे। जनु बिरंचि निज हाथ सँवारे॥
भरतु रामही की अनुहारी। सहसा लखि न सकहि नर नारी॥३॥

अर्थ : एक ने कहा मैने तो आज ही देखा है। मानो ब्रह्मदेव ने अपने हाथ से सँवारा है। भरत तो रामजी जैसे है। एकाएक कोई पहचान नही सकता।

व्याख्या : ६ जिसने कहा था : कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह येह रूप निहारी। वह कहती है कि मै तो आज अपनी आँखो से देखती चली आरही हूँ। पहली सखी की बात की पुष्टि करती है। भाव यह कि बनानेवाले सबके ब्रह्मा है। पर अपने हाथ से किसी को नही बनाते। स्वय ऐसा यन्त्र बना दिया है कि आप से आप सृष्टि होती रहती है। उन्हे अपने हाथो कुछ नही करना पडता। पर इनके बनाने मे तो मानो उन्होने स्वय परिश्रम किया है। यथा : जनु बिरंचि सब निज निपुनाई। बिरचि बिस्व कहँ प्रकटि देखाई। ७ नाम का भी पता लगा लाई है। कहती है कि भरत और राम मे ऐसा सादृश्य है कि एकाएक यह पहिचानना कठिन हो जाता है कि कौन राम हैं और कौन भरत है। नर के लखने मे धोखा हो। पर नारियो के लखने मे धोखा नही होता। पर राम और भरत का सादृश्य ऐसा है कि नारी को भी धोखा हो सकता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लखनु सत्रुसूदनु एकरूपा । नख सिख ते सब अंग अनूपा ॥
मन भावहिं मुख बरनि न जाहीं । उपमा कहुँ त्रिभुवन कोउ नाहीं ॥३॥

अर्थ : लक्ष्मण और शत्रुघ्न एक रूप के हैं। नख से शिख तक सब अङ्ग अनूप हैं। मनमें अच्छे लगते हैं। मुख से कहे नहीं जा सकते। उपमा के लिए त्रिभुवन में कोई नहीं है।

व्याख्या : दो भाई एक रंग के और दो भाई दूसरे रंग के हैं। रामजी और भरतजी को कह चुकी। अब लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी को कहती है। ये दोनों भी एक रूप के हैं। इनका भी भेद लखना कठिन है। सुन्दरता का वर्णन करती है कि मन को तो प्यारे लगते हैं। परन्तु मुख से कोई वर्णन करना चाहे तो कर नहीं सकता। क्योंकि नख से शिख तक सब अङ्ग अनूप हैं। एक वस्तु को दूसरे से मिलान करके ही वर्णन हो सकता है। वैसी दूसरी वस्तु संसार में नहीं जिसका पटतर दिया जा सके। ८ यह कहती है कि मनमें अच्छे लगते हैं मुख से वर्णन नहीं हो सकता। यहाँ पर इसी सखी के पूर्वकथन का अनुवर्तन करना पड़ेगा। यथा : विष्णु चारि भुज बिधि मुख चारी। इत्यादि। इस भाँति उन्हीं आठों सखियों का संवाद है। जिन्हें अपरा प्रकृति रूप से वर्णन किया जा चुका है। भेद क्रम का है। यहाँ सबसे पिछली सखी पहिले बोली। उनकी पहिले के कही हुई बातें ऐसी सम्बद्ध हैं कि लाचार होकर मानना पड़ता है कि वे ही सखियाँ हैं।

छं० उपमा न कोउ कह दास तुलसी कतहुँ कबि कोबिद कहैं ।
बल बिनय बिद्या सील सोभा सिंधु इन्ह से एइ अहैं ॥
पुर नारि सकल पसारि अंचल बिधिहि बचन सुनावहीं ।
ब्याहिअहु चारिउ भाइ इहिं पुर हम सुमंगल गावहीं ॥

अर्थ : तुलसीदासजी कहते हैं कि कविकोविदों का यह कथन है कि इनकी उपमा कहीं भी नहीं है। बल, विद्या, विनय, शील और शोभा के समुद्र में अपने ऐसे आप ही हैं। सब पुरनारियाँ आँचल पसारकर ब्रह्मदेव से माँगती हैं कि चारों भाइयों का ब्याह इसी नगर में हो और हम मंगल गावें।

व्याख्या : सन्देह उठता है कि कुलवधू होकर इसने ऐसा कैसे कह दिया कि तीनों लोक में कोई नहीं है ? क्या इसने सूर्पणखा की भाँति तीनों लोक में विचरण किया है। यथा : मम अनुरूप पुरुष जग नाहीं। देख्यौं खोजि लोक तिहुँ माहीं। अतः इसके कहने का क्या प्रमाण ? इसलिए श्री गोस्वामीजी कहते हैं कि पण्डित कवि लोग कहते हैं कि इनकी उपमा कहीं नहीं है। अतः पण्डित कवियों के कहने से उसका दुर्बल कथन भी पुष्ट हो गया। जिसे बल होता है। उसे विद्या नहीं। जिसे दोनों होता है उसे अभिमान हो जाता है। अतः उसमें विनय का अभाव होता है। जिसमें तीनों हों उसमें सदाचार का भी होना दुर्लभ है। चारों हुए तो अच्छा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रूप नहीं होता। यहाँ एक एक पाँचा गुणो के समुद्र है। समुद्र चार है और वे भी चार है। अत इनके समान ये ही है। यथा सागर सागरोपम। इस भाँति स्त्रिया विधि से प्रार्थना करती है। पुरुष करसम्पुट करके प्रार्थना करते हैं। पर स्त्रियाँ आँचल पसारकर माँगती है। आँचल पसारकर ब्रह्मदेव से चारा भाइयो का जनकपुर म ही व्याह होना माँगती हैं। इनके लिए कह आये हैं कहहि परसपर कोकिल बयनी। एहि बिवाह बड लाभ सुनयनी। इन्ही कोकिलवयनी और सुनयनियो ने धनुषभङ्ग होने पर जयमाल पडने के समय गान किया था। यथा जूथजूथ मिलि सुमुखि सुनयनी। करहि गान कल कोकिल बयनी। सो इन्हे चारो भाइयो के व्याह म मङ्गलगान करने की अभिलाषा है। इस पुर म व्याह हो तो हम मङ्गल गावे।

सो कहहि परस्पर नारि, बारि बिलोचन पुलक तन।
सखि सब करब पुरारि, पुन्य पयोनिधि भूप दोउ ॥३११॥

अर्थ स्त्रियाँ आँखो म आँसू भरकर और पुलकित शरीर होकर आपस म कहती हैं कि सखि! सब पुरारि पूरा करेगे। क्योकि दोना राजा पुण्य के समुद्र है।

व्याख्या अति उत्कण्ठा के कारण इन स्त्रियो को सात्त्विक भाव हुआ। आखा म आँसू आगया। शरीर पुलकित हो उठा। कहने लगी कि सखी यह सब वही महादेव करेंगे जिनके ये दोना राजा आराधना करनेवाले हैं। यथा इन सम कोउ नहि सिव अवराधे। कोउ नहि इन समान फल लाधे। और दूसरी बात यह भी है कि ये दानो राजा केवल भक्त हो नही वडे पुण्यात्मा हैं। इन्हे पुण्यपयोनिधि कहिये। सो इनके पुण्य का फल भी महादेव देंगे। यथा वद कम प्रध्वस्त फलश्रुति पुरुषाराधनमृते। सुकृति अवध दोउ राज यह कहना नरनारिसमाज का सिद्ध हुआ।

येहि बिधि सकल मनोरथ करही। आनद उमगि उमगि उर भरही ॥
जे नृप सीय स्वयवर आए। देखि बधु सब तिन्ह सुख पाए ॥१॥

अर्थ इस विधि से सब मनोरथ कर रहे हैं। आनन्द की उमग उमगकर हृदय म भर रहे है। जो राजा सीताजी के स्वयवर म आये थे। सब भाइयो को देखकर उन लोगा ने सुख पाया।

व्याख्या ब्रह्मानद लोग सब लहही। बढउ दिवस निसि बिधि सन कहही से उपक्रम करके व्याहिअहुँ चारिउ भाई इहि पुर हम सुमगल गावहि से उपसहार किया। यह तो एक समाज का मनोरथ था। मनोरथ सभी पुरवासी कर रहे थे। सबके मनोरथ कहा तक लिखे जाय। एक समाज का वृत्तान्त लिखकर दिखलाया कि मनोरथ की विधि सवत्र यही थी। मनोरथ से ही आनन्द उमग रहा है। उसे हृदय म भर रहे हैं। दूसरे विचार के लिए स्थान नही है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जनकपुर वासियो की गतिविधि कहकर अब बाहरी लोग जो जनकपुर मे आये हैं उनका हाल कहते हैं। पुर बाहिर सर सरित समीपा। उतरे जहँ तहँ विपुल महीपा। जो राजा बाहर से सीताजी के स्वयवर मे आये थे उनमे से कुटिल राजा तो पहिले ही चलते बने थे। यथा ' अपभय कुटिल महीप डेराने। जहँ तहँ कायर गर्वाह पराने। साधु राजा बारात देखने के लिए ठहर गये थे। उन्हे रामजी के दर्शन से सुख मिलता था। यथा : जगत पिता रघुपतिहि विचारी। भरि लोचन छवि लेहु निहारी। अब चारो भाइयो के दर्शन से तृप्त हो गये।

कहत राम जसु बिसद बिसाला। निज निज भवन गये महिपाला ॥
गये बीति कछु दिन येहि भाँती। प्रमुदित पुरजन सकल बराती ॥२॥

अर्थ . निर्मल और विशाल रामयश कहते हुए राजा लोग अपने अपने घर गये। कुछ दिन इस भाँति बीत गये। पुरजन और बाराती आनन्दित थे।

व्याख्या : बारात आजाने पर ठहरना ठीक नही। क्योकि किसी ओर से निमन्त्रित नही हैं। इसलिए अपने अपने घर गये। साधु है : इसलिए रामजी के जगद्-व्यापी यश का वर्णन करते घर गये। रामयश के वर्णन का सामर्थ्य साधु को ही होता है। कुटिल के मुख से रामयश नही निकलता। यथा : वर्षहि राम सुयस वरबारी। मधुर मनोहर मगलकारी। ये साधु राजा धनुष के पास भी नही गये थे। यथा . जिनके कछु विचार मन माही। चाप समीप महीप न जाही। अत इनकी हार भी नही हुई थी। इन्हे रामयश वर्णन मे उत्साह था और जो ' कीरति विजय वीरता भारी। चले चापकर बरबस हारी। उनके मुख से रामयश नही निकल सका। वे चुपके से पहिले ही चले गये थे।

राजाओ का जाना कहकर अब फिर जनकपुर का हाल कहने लगे कि पुरवासी तो व्याह देखने के मनोरथ से आनन्दित है। सभी बाराती लोग आतिथ्य सत्कार तथा रामजी के दर्शन से आनन्दित है। इस भाँति कुछ दिन बीत गये। भाव यह कि बारात पहुँचने के कुछ दिनो बाद हो लग्न दिन की सम्भावना थी। शरद् ऋतु मे व्याह का लग्न नही होता। कार्तिक शुक्ल एकादशी हरिप्रबोधिनी है। हरि के शयनकाल मे मगलकार्य स्थगित रहते है। इस बीच मे साकाश्यापुरी से महाराज जनक के भाई राजा कुशकेतु भी आगये।

मंगल मूल लगन दिनु आवा। हिम रितु अगहन मासु सुहावा ॥
ग्रह तिथि नखतु जोगु वर वारू। लगन सोधि विधि कीन्ह विचारू ॥३॥

अर्थ : मगल का मूल लग्न का दिन आगया। हिमऋतु और सुन्दर अगहन का महीना। ग्रह, तिथि, नक्षत्र, योग, श्रेष्ठ दिन और लग्न को शोध करके ब्रह्मदेव ने विचार किया।

व्याख्या मगल का मूल हिमऋतु . हेमन्त है। उसी मे विवाह के लग्न देखे जाते हैं। उसमे भी अगहन का महीना शोभन है। पूस मे तो खरवाँस ' खरमास

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लग जाता है। उसमें कोई मंगलकार्य नही होता। इसलिए सोहावा मास अगहन ही है। भगवान् भी कहते है मासाना मार्गशीर्षोऽहम्। अत इसी महीने मे विवाह के लग्न देखे जाते है।

अत अगहन के महीने के आजाने पर स्वय ब्रह्मदेव ने विवाह का लग्न निश्चय किया। क्योकि आचार्यो ने लग्न की ही प्रशसा की है। यथा लग्नमेव प्रशसन्ति भृगुनारदकश्यपा। ब्रह्मदेव ने लग्न के साथ ही साथ ग्रह, तिथि, नक्षत्र योग और वार का भी विचार किया।

पठै दीन्ह नारद सन सोई। गनी जनक के गनकन्ह जोई॥
सुनी सकल लोगन्ह यह बाता। कहहि जोतिषी आहि बिधाता॥४॥

अर्थ उसे नारद के हाथ भेज दिया। वही राजा जनक के ज्योतिषियो ने भी निश्चय किया था। लोगो ने भी यह बात सुनी। कहने लगे कि ज्योतिषी क्या हैं ब्रह्मा है।

व्याख्या अगहन सुदी पञ्चमी को उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र मे व्याह का लग्न ठीक करके लग्नपत्री नारदजी के हाथ भेज दी। यहाँ जनकजी के ज्योतिषियो ने भी विचार करके वही लग्न स्थिर कर रक्खा था। जब लग्नपत्री बाँची गई तो उसम भी वही लग्न निकला। बात फैल गई। लोग कहने लगे कि हमारे यहाँ के ज्योतिषी विधाता है। क्योकि उनका विचार ब्रह्मदेव के विचार से कम नही प्रमाणित हुआ इस भाँति मिथिला के ज्योतिषिया की प्रशसा हुई। नारदजी के लग्नपत्री लाने और ब्रह्मदेव के लग्न विचारने की बात ऐसे महत्त्व की थी कि इसकी चर्चा नगर भर मे फैल गई। ब्रह्मदेव जानते थे कि वसिष्ठजी लग्न न देखगे। उनका मत है तुम कहँ सर्वकाल कल्याना। अत स्वय उन्होने देखा क्योकि जगत् का मगल इस विवाह पर निर्भर था। यथा तेहि अवसर रावन नगर असगुन असुभ अपार। होहि हानि भय मरन दुख सूचक बारहि बार।

दो धेनुधूरि बेला बिमल, सकल सुमगल मूल।
बिप्रन कहेउ बिदेह सन, जानि सगुन अनुकूल॥३१२॥

अर्थ निर्मल गोधूलि वेला को निर्मल कहते है। यह सब सुमङ्गल का मूल है। अनुकूल शकुन देखकर ब्राह्मणो ने राजा से कहा।

व्याख्या गोधूलि वेला को निर्मल कहते हैं। यह सब सुमङ्गल का मूल है। इस समय भगवान् भूतनाथ अपने गणा के साथ जगत् मे विचरण करते है। इसके सामने लग्न की भी कोई गिनती नही है। यथा नास्यामृक्ष न तिथिकरण नैव लग्नस्य चिन्ता। नो वा वारो न च लवविधिर्नो मुहूर्तस्य चर्चा। नो वायोगो न मृतिभवन नैव जामित्रदोष। गोधूलि सा मुनिभिरुदिता सर्वकार्येषु शस्ता। मु चि। तिसपर ब्राह्मणो ने स्वरशास्त्र से शकुन भी देख लिया। स्वरशास्त्र से मल खाने से ही ज्योतिष का फल मिलता है। यथा स्वरहीनस्तु दैवज्ञो नाथहीनो यथा गृह।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



शकुन कार्यारम्भकाल का ही लिया जाता है। अत. यहाँ शकुन से स्वरशास्त्र का शकुन अभिप्रेत है। तब ब्राह्मणो ने राजा विदेह से कहा। भाव यह कि विलम्ब करने से गोधूलि न सधेगी।

उपरोहितहि कहेउ नरनाहा। अब बिलंब कर कारनु काहा ॥
सतानंद तब सचिव बोलाए। मंगल सकल साजि सब लाए ॥१॥

अर्थ : उपरोहित सतानन्दजी से तब राजा ने कहा कि अब देर का कारण क्या है। तब सतानन्दजी ने मन्त्रियो को बुलाया। वे सब मङ्गल साजकर ले आये।

व्याख्या : ब्रह्मा जी का दिया हुआ लग्न है। ब्राह्मण लोग भी अनुकूल समय कहते हैं। विलम्ब करने से गोधूलि भी नही सधेगी। अत विलम्ब करने का कोई कारण नही दिखाई पड़ता। पुरोहित पर पूरा राज्य का भार रहता है और विशेषत धर्म का भार तो सभी उसी पर रहता है। इसलिए राजा ने उपरोहित से कहा। राजाज्ञा सर्वोपरि है। समय आने पर वह सब पर चली है। स्वय वसिष्ठजी पर राजाज्ञा चलती देखी जायगी। यथा : तब नरनाइ वसिष्ठ बोलाए। रामधाम सिख देन पठाए। अब देर का क्या कारण है? यह कहकर राजा कारण नही पूछते जल्दी करने को कहते है। पुरोहित की आज्ञा मन्त्री पर भी चलती है। अत पुरोहितजी ने मन्त्रियो को बुलवाया। जो आज्ञा पुरोहितजी देनेवाले थे उसे मन्त्रियो ने पहिले से ही ठीक कर रक्खा था। उनके बुलाने पर सब मङ्गल साज जिसे लेकर बारात बुलाने के लिए जाना है साजकर ले आये। मङ्गल साज का विवरण करते हैं :

संख निसान पनव बहु बाजे। मंगल कलस सगुन सुभ साजे ॥
सुभग सुआसिनि गावहिं गीता। करहिं वेद धुनि बिप्र पुनीता ॥२॥

अर्थ : शख, नगाडे और मृदङ्ग बहुत से बजने लगे। मङ्गलघट शुभ शकुन सब साजे गये। सुन्दर सुहागिनियाँ गीत गाने लगी और ब्राह्मण लोग वेदो की पवित्र ध्वनि करने लगे।

व्याख्या : सबके आगे शख, नगाडा आदि बाजे बजते चले। उनके पीछे पल्लवादि से सयुक्त मङ्गल घट आदि लेकर गीत गाती हुई सुन्दर सुहागिनियाँ चली। उनके पीछे वेदध्वनि करते हुए ब्राह्मण लाग चले। उनके पीछे स्वागत करके बारात को बुलानेवाले सरदार लोग चले।

लेन चले सादर येहि भाँति। गये जहाँ जनवास बराती ॥
कोसलपति कर देखि समाजू। अति लघु लाग तिन्हहि सुरराजू ॥३॥

अर्थ : आदर के साथ इस भाँति लेने चले और जनवासे मे बारातियो के पास गये। कोसलाधीश का साज समाज देखकर उन्हे इन्द्र भी अत्यन्त छोटे जान पडे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या इस भाँति पुरोहित मन्त्री आदि जनवासे मे बारातियो के पास गये। भाव यह कि बारातियो का सत्कार पहिले और महाराज का पीछे। वहाँ कोसलाधीश का समाज देखा। स्वय महाराज दशरथ को देखा। जबतक रामजी उनके पास नही थे तबतक तो महाराज समाजसहित इन्द्र से जान पडते थे। पर आज रामजी के आजाने से महाराज दशरथ के सामने इन्द्र और उनका समाज भी बहुत फीका जँचता है।

भयेउ समउ अब धारिअ पाऊ। यह सुनि परा निसानहि घाऊ ॥
गुरहि पूछि करि कुल विधि राजा। चले सग मुनि साधु समाजा ॥४॥

अर्थ उन्होने निवेदन किया कि समय हो गया अब पधारा जाय। यह सुनते ही डङ्को पर चोट पडी। गुरुजी से पूछा। कुलधर्मानुसार कुलविधि करके मुनि साधुसमाज के साथ महाराज चल पडे।

व्याख्या यहाँ भी शङ्ख निशान और पणव के शब्द सुनकर बारात की सब तैयारी ठीक है। उधर महाराज से प्रार्थना हुई कि समय हो गया। पधारना चाहिए। इधर डके पर चोट पडी इससे व्यवस्था की सुन्दरता कही। महाराज गुरुआज्ञा पुरसरही सब कार्य करते हैं। अत गुरुजी से पूछा। वरयात्रा के समय रामजी मिथिला म थे। अत पूरी कुलविधि न हो सकी। कुछ छूट गई। अत उसे इस समय गुरुजी से पूछकर पूरा कर रहे हैं। गुरुजी कुलविधि सब जानते हैं रघुवश मात्र के पुरोहित हैं। कितने राजा रघुवश मे हो गये पर गुरुजी वही है। उन्होने विधि बतलायी। महाराज उस कृत्य को पूरा करके मुनि साधु समाज के साथ चले। गुरु विप्र धेनु सुर सेवी हैं। अत समधी बनकर चलने के समय मे भी मुनि और साधु समाज साथ है।

दो भाग्य विभव अवधेस कर, देखि देव ब्रह्मादि।
लगे सराहन सहस मुख, जानि जनम निज बादि ॥३१३॥

अर्थ अवधेश का भाग्य और ऐश्वर्य देखकर ब्रह्मा आदि देवगण अपना जन्म व्यर्थ समझते हुए हजारा मुख से प्रशसा करने लगे।

व्याख्या न ऐसा विभव ब्रह्मलोक मे है और न ऐसा भाग्य ब्रह्मदेव का है। श्रीरामजी की बारात है। अत इसके ऐश्वर्य के सामने दूसरा ऐश्वर्य जँच नही सकता। अवधेश का यह भाग्य है कि जासु सनेह सकोच वस राम प्रगट भये आय। यह भाग्य किसी देवता का नही है। यथा जिनहि विरचि बड भयउ विधाता। महिमा अवधि राम पितु माता। अत सहस्रमुख से प्रशसा करने लगे। अर्थात् प्रशसा करने म थक नही रहे हैं। अपने जन्म को व्यर्थ मानते हैं। चक्रवर्तीजी के जन्म को सफल मानते है।

सुरन्ह सुमगल अवसरु जाना। बरषहि सुमन बजाइ निसाना ॥
सिव ब्रह्मादिक विबुध बरूथा। चढे विमानन्हि नाना जूथा ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ देवताओ ने सुमङ्गल का अवसर जाना। डङ्का बजाकर फूल बरस रहे हैं। शिव ब्रह्मादि देवगण झुण्ड के झुण्ड विमान पर चढे हुए है।

व्याख्या देवताओ ने सुमङ्गल का अवसर अर्थात् बारात के चलने का समय जाना। इधर बारात मे पहिले से ही डङ्का बज रहा था। सो महाराज के चलते ही उधर आकाश से देवताओ ने पुष्पवृष्टि की और डङ्का बजाया। जिनके भाग्य मे आवश्यकता पडने पर जलवर्षा भी सुलभ नही है। उन्हे पुष्पवर्षा का असम्भव मालूम पडना ठीक ही है।

इधर महाराज गजारूढ हुए। उधर आकाश मे शिव ब्रह्मादि त्रिदेव तथा लोकपालो का समाज तथा गण देवता वसुगण रुद्रगण आदित्यगण विमानो पर चढे।

प्रेम पुलक तन हृदय उछाहू। चले विलोकन राम बिआहू॥
देखि जनकपुरु सुर अनुरागे। निज निज लोक सबहिं लघु लागे॥२॥

अर्थ प्रेम से शरीर मे पुलक है और हृदय मे उछाह है। रामजी का विवाह देखने चले। जनकपुर को देखकर देवताओ को अनुराग हुआ। अपने अपने लोक सबको छोटे जँचने लगे।

व्याख्या हृदय मे उछाह होने से सात्विक भाव हुआ। रोमाञ्च हो आया। रामजी का विवाह देखने आकाशमार्ग मे चले। इस भाँति दो बारात चली। नीचे धरती पर मनुष्यो की। ऊपर आकाश म देवताओ की। बाराती रामजी का विवाह करने चले और देवता देखने चले।

राजा विदेह की महाजनो को आज्ञा हुई थी नगर सँवारहु चारिहु पासा। सो उन लोगो ने नगर को ऐसा सजाया कि देवताओ को अपना अपना लोक हलका जँचने लगा। यथा जेहि तेरहुत तेहि समय निहारी। तेहि लघु लगहि भुवन दसचारी।

चितवहिं चकित विचित्र विताना। रचना सकल अलौकिक नाना॥
नगर नारि नर रूप निधाना। सुघर सुधरम सुसील सुजाना॥३॥

अर्थ चकित होकर विचित्र मण्डप देखने लगे। नाना प्रकार की सब रचनाएँ अलौकिक थी। नगर के स्त्री पुरुप रूप के निधान, सुघर, सुधर्म, सुशील और सुजान थे।

व्याख्या देवता लोग आकाश मे हैं। अत इन्हे वितान भी दिखाई पड रहा है। ऐसा विचित्र वितान है कि उसे देखकर वे लोग भी चकित हैं। महाराज जनक की आज्ञा थी रचहु विचित्र वितान बनाई। सो ऐसा विचित्र बनाया कि उसे देखकर ब्रह्मदेव का मन भूल जाय। अत देवता लोग चकित होकर उस विचित्र वितान को देख रहे हैं। नाना प्रकार की अलौकिक रचनाएँ हैं। कहना कठिन है कि ये सब नकली हैं या असली। नगरवासी सभी स्वरूपवान्, मनोहर, धर्मशील, सुशील और सुजान हैं। यह भी अपूर्वता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तिन्हहि देखि सब सुर सुरनारी। भये नखत जनु विधि उँजियारी ॥
विधिहि भयउ आचरजु विसेखी। निज करनी कछु कतहुँ न देखी ॥४॥

अर्थ उन्हे देखकर सब देव और देवियाँ चन्द्रमा के उँजेले मे नक्षत्र की भाँति हो गई। ब्रह्मदेव को विशेष आश्चर्य हुआ। उन्हे अपनी करणी कही कुछ नही दिखाई पडी।

व्याख्या देवता लोग ऊपर से देखते हैं तो जनकपुर उन तेजस्वियो के कारण चन्द्रबिम्ब सा दिखाई पडा और ये लोग तारा की भाँति हतप्रभ मालूम होने लगे। चन्द्र के उँजेले के सामने तारागण दब जाते हैं। रूप मे, सुघरता मे, धर्म मे, सुजनता मे, किसी मे उनके जोड के नही हैं।

विधि प्रपञ्च गुन अवगुन साना है। शुद्ध गुण या शुद्ध दोष विधि प्रपञ्च मे है नही और यहाँ कोई दोष कही से लखाई नही पडता है। इसलिए ब्रह्मदेव को बडा आश्चर्य हो रहा है कि मेरी करणी तो यहाँ कुछ दिखाई ही नही पडती है।

दो सिव समुझाये देव सब, जनि आचरज भुलाहु।
हृदय बिचारहु धीर धरि, सिय रघुवीर बिआहु ॥३१४॥

अर्थ शिवजी ने सब देवताओ को समझाया कि आश्चर्य मे न भूल जाओ। हृदय मे धीर धरके विचारो तो कि यह सीताजी और रघुवीर का विवाह है।

व्याख्या ब्रह्मदेव ही गडबड मे पड गये। तब कौन समझावे। तब शिवजी ने समझाया कि आश्चर्य मे ऐसे मग्न न हो कि मुख्य बात ही भूल जाय। धैर्य धारण करके विचार करो कि यह विवाह किसका है? परम पुरुष और आदिशक्ति का सम्मिलन है। वह सर्वाश्चर्यमय हैं तो यह अघटित घटना पटीयसी हैं। इनके विवाह मे आश्चर्यमय बातो का न होना ही आश्चर्य है।

जिन्हकर नाम लेत जगमाही। सकल अमंगल मूल नसाही ॥
करतल होंहि पदारथ चारी। तेइ सिय रामु कहेउ कामारी ॥१॥

अर्थ शिवजी ने कहा कि जिनका नाम लेते ही ससार मे सब अमङ्गल का मूल नष्ट हो जाता है। चार पदार्थ हाथ मे आजाते है। वही सीताराम है।

व्याख्या नामी की महत्ता से ही नाम की महिमा है। अत नाम की महत्ता कहकर नामी की महिमा सूचित करते है। अन्य स्थानो पर राम नाम की महिमा कहा है। यहाँ सीताराम नाम की महिमा कहते हैं कि सीताराम ऐसा उच्चारण करने से अमङ्गल मूल ही नष्ट हो जाता है। फिर अमङ्गल हो तो कैसे हो? सीताराम नाम केवल दोषापनयन ही नही करता गुणाधान भी करता है। इसके उच्चारण से धर्मार्थ काम मोक्ष हाथ तले आजाता है। इन्ही नामो के नामी सीताराम है। उनके विवाह मे दोष की उपस्थिति कैसे सम्भव है? तुम लोगो को यही सन्देह है कि दोषरहित पदार्थ ब्रह्मा की सृष्टि मे कहाँ से आये? सो आये कही से नही। पदार्थ वे ही है। पर उनमे दोषापनयन और गुणाधान हो गया है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


एहि विधि संभु सुरन्ह समुझावा। पुनि आगे बरबसहु चलावा ॥
देवन्ह देखे दसरथु जाता। महामोद मन पुलकित गाता ॥२॥

अर्थ : इस भाँति शिवजी ने देवताओ को समझाया और फिर श्रेष्ठ बैल · नन्दी को आगे बढाया। देवताओं ने दशरथ को जाते देखा। उनके मन मे बडा आनन्द था और रोमाञ्च हो रहा था।

व्याख्या : शिवजी के समझाने की विधि कही। उनके समझाने से सबका सन्देह दूर हुआ। यथा . सुनु गिरिराज कुमारि भ्रम तम रविकर वचन सम। देव समाज मे प्रथम महादेव सबके आगे है। समझाने के समय बैल को रोक दिया था। सबकी शका का समाधान करके उसे आगे बढाया।

समाधान हो जाने पर फिर बारात की ओर ध्यान गया। सब मुदित हैं पर चक्रवर्तीजी को महामोद और शरीर मे पुलक है। सात्त्विक भाव मे डूबाडूब है। रोमाञ्च हो रहा है।

साधु समाज संग महिदेवा। जनु तनु धरे करहि सुख सेवा ॥
सोहत साथ सुभग सुत चारी। जनु अपबरग सकल तनुधारी ॥३॥

अर्थ . साधु मण्डली और ब्राह्मण साथ मे हैं। मानो शरीर धारण करके सुख सेवा कर रहे है। चारो सुन्दर लडके साथ मे हैं। मानो मोक्ष के चारो प्रकार शरीर धारण किये हुए हैं।

व्याख्या · मुनि साधु समाज के साथ महाराज चले है। अतः मुनि साधु समाज से घिरे हुए चले जा रहे हैं। ग्रन्थकार कहते है कि मुनि साधु के ब्याज से मानो सब सुख शरीरधारी होकर महाराज की सेवा कर रहे हैं। मुनि साधु का सग ही सत्सग है। कहेगे : तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला इक अग। तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग। अतः विप्र साधु समाज से घिरे हुए पुरुष के लिए यह कहना अत्युक्ति नही है कि सम्पूर्ण सुख उसकी सेवा कर रहे हैं।

इतना ही नही चारो सुन्दर बेटे भी साथ मे शोभायमान हैं। ग्रन्थकार कहते हैं कि मानो सालोक्य, सामीप्य, सारूप तथा सार्ष्टि ये चारो मोक्ष शरीरधारी होकर साथ हैं। जब चाहे जिससे काम लें।

मरकत कनक बरन बर जोरी। देखि सुरन्ह भै प्रीति न थोरी ॥
पुनि रामहि बिलोकि हिय हरखे। नृपहि सराहि सुमन तिन्ह बरखे ॥४॥

अर्थ : नीलमणि और सोने की श्रेष्ठ जोडी देखकर देवताओ को थोडी प्रीति नही हुई। फिर रामजी को देखकर हृदय से हर्षित हुए। राजा की प्रशसा करके फूलो की वर्षा की।

व्याख्या : रामजी और भरतजी नीलमणि के समान श्याम लक्ष्मण और शत्रुघ्नजी स्वर्ण के समान गौर हैं। इन्ही चारो भाइयो को 'मरकत कनक बरन

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वर जोरी' कहते हैं। राम और भरतजी आगे है और लक्ष्मण शत्रुघ्न पीछे हैं। इन जोडियो को देखकर देवताओ को बडी प्रीति हुई।

फिर चित्त आकर रामजी पर ठहर गया। क्योकि चारिउ रूप सील गुन धामा। तदपि अधिक सुख सागर रामा। यही बात सर्वत्र पाई जाती है। परशुराम जी ने भी दीन्ह असीस देखि भल जोटा। पर पीछे से रामहि चितइ रहे भरि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन। इसी भाँति यहाँ भी देवता लोग रामजी को देखकर हर्षित हुए। राजा के पुण्य की प्रशसा करके पुष्पवृष्टि करने लगे। बारात चलते समय वर्षा की थी। अब रामजी को देखकर पुन पुष्पवृष्टि की।

दो राम रूप नख सिख सुभग, बारहि बार निहारि।
पुलक गात लोचन सजल, उमा समेत पुरारि ॥३१५॥

अर्थ नख से शिख तक रामजी के सुन्दर रूप को बार बार देखकर उमा और पुरारि को पुलक हो उठा और आँखो म आँसू आगये।

व्याख्या उमा के सहित शङ्करजी बार बार रामजी के सुन्दर रूप को देख रहे है। नख से शिख तक सुन्दरता की छटा है। ये रामजी के दर्शन से अघाते नही। इस समय तो ब्याह विभूषण वसन बनाये दूल्हा के वेप में है। अत इस समय की अनोखी शोभा है। जिसे देखकर उमा सहित शिवजी को पुलक हो उठा। और नेत्रो में आनन्दाश्रु आगये।

केकि कठ दुति स्यामल अगा। तडित विनिंदक वसन सुरगा ॥
ब्याह विभूषन विविध बनाए। मगल सब सब भाँति सुहाए ॥१॥

अर्थ मोर के कण्ठ की भाँति श्याम अङ्ग है। बिजली की निन्दा करनेवाले रगीन कपडे है। नाना भाँति के ब्याह के गहने सजे हुए है जो मङ्गलमय सब भाँति से सुन्दर है।

व्याख्या निकट से देखने पर रामजी की श्यामता की उपमा ग्रन्थकार नील सरोरुह नील मनि नील नीरधर आदि की श्यामता से देते है। परन्तु जब दूर से दर्शन मिलता है तो मोर के कण्ठ की श्यामता से देते है। बारात के मध्य मे रामजी हैं। बडी भारी बारात है। कवि दूर से देखते है। इसलिए मोरकण्ठ की श्यामता से उपमा दे रहे है। रामजी लङ्का जीतकर विमान से अयोध्या जब जायेंगे तब भी यही उपमा देवेंगे। यथा केकीकठाभनील उरवरविलसद्विप्रपादा-ब्जचिह्न। रामजी विमान पर आकाश मे हैं। ग्रन्थकार नीचे से देख रहे है। अत रामजी की श्यामता उन्हे मोर के कण्ठ की श्यामता सी ही दिखाई पड रही है। रग विरगे कपडे बिजली की भाँति चमक रहे हैं। पहिले कुण्डल और कण्ठा का वर्णन मिलता है। क्योकि वीरो का अधिक शृङ्गार नही होता। ब्याह की बात दूसरी है। उसमे गरीब मँगनी लेकर गहने पहनते हैं। ये तो चक्रवर्ती के राजकुमार हैं। अत इन्हे ब्याह मे पहने जानेवाले सभी गहने पहनाये गये। सब मङ्गलमय हैं। सुन्दर होने से इन्हे सोहाये कहा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


सरद बिमल बिधु बदन सुहावन । नयन नवल राजीव लजावन ॥
सकल अलौकिक सुन्दरताई । कहि न जाइ मन ही मन भाई ॥२॥

अर्थ शरत्काल के निर्मल चन्द्र के ऐसा सुन्दर मुख है । नेत्र नये कमल को लजानेवाले हैं । सब सुन्दरता लोकोत्तर है । वर्णन करते नही बनता । मन ही मन अच्छी लगती है ।

व्याख्या शरत् पूर्णिमा के निष्कलङ्क चन्द्र के समान सुन्दर मुख है । नेत्रों के देखने से नये खिले हुए कमल लज्जित हो जाँय । दूर से जितना देखा जाना सम्भव है उतना ही वर्णन करते नही बनता । क्योकि लोकोत्तर सुन्दरता है । उसकी उपमा इस लोक म है ही नही । क्या कहकर वर्णन किया जाय ? अत यही कहते हैं कि छवि मन को अच्छी लगती है और वह मन मे ही रह गई । प्रकाश नही कर सके । अन्य स्थानो पर कुछ वर्णन भी किया । पर दूल्हे के वेप म जो सुन्दरता है वह तो सर्वथा वर्णनातीत है । केकि कठ द्युति । तडित विनिन्दक वसन । सरद विमल विधु वदन । राजीव लजावन नयन । ये सब अलौकिक है ।

बधु मनोहर सोहहिं संगा । जात नचावत चपल तुरगा ॥
राज कुँअर बर बाजि देखावहिं । बस प्रससक बिरद सुनावहि ॥३॥

अर्थ मन के हरण करनेवाले भाई साथ मे शोभायमान हैं । चञ्चल घोडो को नचाते चले जाते हैं । राजकुमार श्रेष्ठ घोडा को दिखला रहे हैं । मागध लोग विरद बोल रहे हैं ।

व्याख्या आप तो मनोहर मूर्ति हैं ही और साथ मे भाई हैं । वे भी मनोहर हैं । इस समय महाराज की सवारी हाथी पर है । हाथी के आगे चारो भाई घोडो पर हैं । घोडो को नचाते हुए चले जाते हैं । नही तो वे घोडे वडे चञ्चल हैं । हाथी का और उनका साथ निभ नही सकता । उनके लिए कह चुके हैं अय इव जरत धरत पग धरनी । घोडो को नचाना ही उनका दिखलाना है । अद्भुत शोभा है । महाराज हाथीपर हैं । चवँर चल रहा है । सामने राजकुमार घोडे नचाते चल रहे हैं । वश प्रशसक विरुद बोलते जा रहे हैं । यथा मागधा वशशसिन ।

जेहि तुरग पर रामु बिराजे । गति बिलोकि खगनायकु लाजे ॥
कहि न जाइ सब भाँति सुहावा । बाजि बेपु जनु काम बनावा ॥४॥

अर्थ जिस घोडे पर रामजी विराजमान थे उसकी गति देखकर गरुड को लज्जा होती थी । यह सब भाँति से सुन्दर था । उसकी सुन्दरता कहते नही बनती । मानो कामदेव ने ही घोडे का वेप बना रक्खा है ।

व्याख्या यहाँ सभी घोडो को यह गतिविधि है कि हवा से बाजी लगाने वाले हैं । यथा निदरि पवन जिमि चहत उडाने । परन्तु जिस घोडे पर रामजी सवार हैं । उसकी गति देखकर पक्षिराज गरुडजी सकुचित होते हैं । और वह ऐसा सुन्दर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है कि कहते नही बनता। मालूम होता है कि स्वय कामदेव ने ही घोडे का वेप वना रक्खा है। खगनायक की गति स्तोभ सामध्वनि के अनुसार होती है। यथा . सामध्वनिशरीरस्त्व वाहन परमेष्ठिन । उसी भाँति इस घोडे की गति भी स्तोभानुसार ही है। अन्य घोडो की गति के विषय मे कह चुके है नागर नट चितवहिं चकित डगइ न ताल वँधान। परन्तु रामजी का घोडा लौकिक गीत के ताल का अनुसरण नही करता। वह वैदिक गान के स्तोभ का अनुसरण करनेवाला है। नही तो महाराज के हाथी के साथ जव चल रहा है तव खगनायक की उपमा देने का कोई कारण नही है। खगनायक कहकर वल और गति दानो कहा। सब भाँति सुहावा कहकर वय और गुण कहा। काम के सदृश कहकर रूप कहा।

छ जनु वाजि वेपु वनाइ मनसिजु रामहित अति मोहई।
आपने वयवल रूप गुन गति सकल भुवन विमोहई॥
जगमगत जीन जराव जोति सुमोति मनि मानिक लगे।
किंकिनि ललाम लगामु ललित विलोकि सुर नर मुनि ठगे॥

अर्थ मानो साक्षात् कामदेव रामजी के लिए घोडे का वेप वनाकर अत्यन्त शोभायमान हो रहा है। अपने १ वय २ बल ३ रूप ४ गुण और ५ गति से सम्पूर्ण भुवन को मोहित कर रहा है। जडाऊ जीन जगमगा रही थी। जिसमे सुन्दर मोतियाँ मणि और माणिक्य टँके हुए थे। सुन्दर घुँघुरू और सुन्दर लगाम देखकर देवता मनुष्य और मुनि मोहित होते थे।

व्याख्या घोडे की सुन्दरता वणन करते हुए कहते है कि रामजी के लिए मानो कामदेव ने ही घोडे का वेप धारण कर रक्खा है। कामदव तो अपने पाँच वाणो सम्मोहनान्मादनौ च शोपणस्तापनस्तथा। स्तम्भनश्चेति कामस्य पञ्चबाणा प्रकीर्तिता से सम्पूर्ण भुवन को मोहित करता है और यह घोडा भी अपने पाँच गुणो वय, वल, रूप, गुण और गति से सारे जगत् को मोहित कर रहा है। उसके ऊपर ऐसी सुन्दर जडाऊ जीन कसी हुई है जिसमे मणि माणिक्य मुक्ता लगे हुए है। घुँघुरु टँके है। लगाम ऐसी सुन्दर थी कि सुर नर मुनि आये थे तो वारात देखने इधर मन ही चोरी चला गया।

दो प्रभु मनसहि लयलीन मनु, चलत वाजि छवि पाव।
भूपित उडगन तडित धनु, जनु वर वरहि नचाव॥३१६॥

अर्थ प्रभु के मन से मन मिलाये हुए वह घोडा चलते हुए शोभा पाता था। यथा तारागण तथा बिजली से भूपित मेघ सुन्दर मोर को नचा रहा हो।

व्याख्या . यह घोडे का अनूठापन है कि वह प्रभु के मनम अपना मन मिला-कर चल रहा है। इसीलिए उसके चलने की छवि अनोखी है। प्रभु के मनमे मन मिलाने का ऐसा महत्त्व है कि एक पशु की इतनी वडी शोभा हो रही है। मेघ तो सदा मोर को नचाया करते हैं। पर जव मेघ आते हैं तो तारागण लापता हो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


जाते हैं। बिजली भी निमेष मात्र से अधिक नही ठहरती। परन्तु रामघनश्याम तो आभूषणरूपी ताराओ से और वस्त्ररूपी बिजली से भूषित होकर आज मोररूपी घोडे को नचा रहे है। अत. अभूत शोभा हो रही है।

जेहि वर वाजि रामु असवारा। तेहि सारदउ न वरनै पारा॥
संकरु राम रूप अनुरागे। नयन पंचदस अति प्रिय लागे॥१॥

अर्थ : जिस श्रेष्ठ घोडे पर रामजी सवार हुए उसका वर्णन तो सरस्वतीजी भी नही कर सकती। शङ्कर भगवान् रामरूप के प्रेम मे आगये उन्हे पन्द्रहो आँखे बडी प्यारी लगी।

व्याख्या · देवता के वाहन भी उनके रूप से पृथक् नही होते। इसलिए कहते हैं कि उसे शारदा भी नही वर्णन कर सकती। जितने वर्णन करनेवाले है उनके हृदय मे अवस्थान करके वस्तुतः शारदा ही वर्णन करती है। यथा कवि उर अजिर नचावहि वानी। जब वही नही वर्णन कर सकती तब दूसरा कौन वर्णन कर सकता है। रामजी के सवार होने से घोडे मे इतना उत्कर्ष हो गया।

पुलक गात लोचन सजल उमा समेत पुरारि · से प्रसङ्ग छोडा था। सो फिर वही से उठाते हैं। शङ्कर भगवान् रामरूप के बडे अनुरागी है। कभी दर्शन से अघाते नही। आज वरवेष मे रामजी को देखकर उन्हे अपनी पन्द्रह आँखें बडी प्रिय लगी। पाँचो सिरो की तीसरी आँखे खुली हुई हैं। जिनमे से एक के खुलने से प्रलय उपस्थित हो जाता है। यथा · तव सिव तीसर नयन उघारा। चितवत काम भयउ जरि छारा। परन्तु आज उन आँखो के खुलने से ससार मे कोई विकार नही हो रहा है क्योकि वे रामजी मे लगी हुई हैं। दूसरी बात यह है कि राममुखचन्द्र की अमृतस्रावी चन्द्रिका से ससार प्लावित हो रहा है। अत पाँच पाँच सहारकारिणी दृष्टियो के पडने पर भी उसका कोई अनिष्ट नही हो रहा है। आँखे तो सबको प्रिय होती हैं परन्तु आज उनके कारण पन्द्रह द्वार से रामजी का दर्शन हो रहा है। अतः अति प्रिय लग रही है।

हरि हित सहित रामु जब जोहे। रमा समेत रमापति मोहे॥
निरखि राम छवि विधि हरखाने। आठै नयन जानि पछिताने॥२॥

अर्थ : विष्णु ने जब प्रेमसहित रामजी को देखा तो रमापति रमा के सहित मोहित हो गये। रामजी की छवि देखकर ब्रह्मदेव प्रसन्न हो उठे। पर सिर मे आठ ही आँख होने से पछताने लगे।

व्याख्या : हित के सहित देखना विष्णु का ही कहा और उन्ही का मोहित होना भी कहते हैं। अपनी आत्मा सबको प्रिय है और सबको उसमे मोह होता है। नवा अरे पत्यु कामाय पति. प्रियो भवति आत्मनस्तु कामाय पति. प्रियो भवति। पति के लिए पति प्रिय नही होता। आत्मा के लिए पति प्रिय होता है। रामजी को बार बार हरि कहकर विष्णु से अभेद सम्पूर्ण ग्रन्थ मे निरूपण किया है। अतः अपना रूप देखकर आप ही मोहित हो रहे हैं। अत दो ही आँख के लिए पछताना नही कहेंगे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



छवि देखकर हर्षित होने की विधि है। इसलिए विरंचि न कहकर विधि कहा। सो विधि रामजी की छवि देखकर हर्षित तो हुए पर आँखो की सख्या कम होने स पछताये। यदि मुझे भी शिवजी की भाँति तीन तीन आँखें होती तो भी बारह आँखो से देखता। अथवा यदि आज मेरा पाँचवाँ सिर होता तो भी दस आँखो से देखता। अत उन्हे पछताने का यथेष्ट कारण था।

सुर सेनप उर बहुत उछाहू। विधि ते डेवढ लोचन लाहू॥
रामहि चितव सुरेस सुजाना। गौतम श्रापु परम हित माना॥३॥

अर्थ देवताओ के सेनापति के हृदय म बडा उछाह था। क्योकि उन्हे ब्रह्मदेव के नेत्रो से डेवढे नेत्रो का लाभ था। सुजान देवराज रामजी को देखते थे। उन्होने गौतम ऋषि के शाप को परम हित माना।

व्याख्या भगवान् स्वामी कार्त्तिकेयजी को अधिक उछाह था। क्योकि इस समय उन्होने ब्रह्मदेव से भी बाजी मार ली। उनका नम्बर ब्रह्मदेव के बाद है। आगे शिवजी की सवारी है। उसके बाद विष्णु की। उसके बाद ब्रह्मदेव की और उनके भी बाद षडानन भगवान् कार्तिकेय की। परन्तु दर्शन लाभ मे वे ब्रह्मा से डेवढे निकले। ब्रह्मदेव को चार मुख हैं अत आठ आँखें हुईं। षडाननजी को छ मुख होने से बारह आँखें हुईं। आठ का डेवढा बारह होता है। अत प्रधानतम लाभ मे अर्थात् रामजी के दर्शन म सुरसेनप ब्रह्मदेव से डेवढे बढ गये।

स्वामी कार्तिकेय के बाद देवराज थे। इन्द्र सहस्र नेत्र थे। अत सहस्र नेत्र से रामजी की शोभा देख रहे थे। जिसे सहस्र नेत्र हो वह रामजी के दर्शन के साथ ही साथ बहुत सी बातें देख सकता है परन्तु भगवान् इन्द्र केवल रामजी को अशेष नेत्रो से देख रहे थे। अत ग्रन्थकार इन्हे सुजान कहते हैं। क्योकि नेत्रो का साफल्य भगवद्दर्शन से है। यथा होइहै सुफल आजु मम लोचन। निरखि बदन पकज भवमोचन। दूसरा भाव यह कि उन्होने गौतम महर्षि के शाप को अपने लिए परम हित माना। इस गुणग्राहकता के लिए सुजान कहा।

देव सकल सुरपतिहि सिहाही। आजु पुरदर सम कोउ नाही॥
मुदित देवगन रामहि देखी। नृपसमाज दुहु हरषु बिसेषी॥४॥

अर्थ सब देवता देवराज से ईर्ष्या कर रहे है कि आज इन्द्र के समान कोई नही है। देवगण रामजी को देखकर आनन्दित हैं। दोनो राजसमाज मे विशेष हर्ष है।

व्याख्या इन्द्र देवराज हैं। सभी देवताओ से ऐश्वर्य मे अधिक है। फिर भी देवता उनसे ईर्ष्या नही करत। उन्हे राजा मानते है। आज रामजी के दर्शन म ईर्ष्या करने लगे कि इस सुख मे तो ये सबसे पाँच सौ गुना अधिक बढ गये। अत कहते है कि आज इन्द्र के समान हमलोगो मे कोई नही है। आज तो ये त्रिदेव से भी बढ गये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


पुनि रामहि बिलोकि हिय हरखे : से उपक्रम करके मुदित देवगन रामहि देखी से इस प्रसङ्ग का उपसंहार करते हैं। रामजी को व्याहने चल रहे हैं। इस कारण से अवध समाज में विशेष हर्ष है। इसी भाँति जामाता रूप से रामजी की प्राप्ति से मिथिला समाज में भी बड़ा हर्ष है।

छं. अति हरषु राजसमाजु दुहु दिसि, दुंदुभी बाजहि घनी।
वरषहि सुमन सुर हरषि कहि, जय जयति जय रघुकुलमनी ॥
एहि भाँति जानि बरात आवत, बाजने बहु बाजही।
रानी सुआसिनि बोलि परिछन, हेतु मंगल साजही ॥

अर्थ : रामसमाज में अत्यन्त हर्ष है। दोनो ओर से दुन्दुभियाँ बडे जोरो से बज रही हैं और देवता लोग हर्षित होकर रघुकुलमणि की जय हो, जय हो, जय हो कहकर फूल बरसा रहे हैं। इस भाँति बारात को आते हुए जानकर कन्या पक्ष से बहुत से बाजे बजने लगे और रानियाँ सुहागिनी स्त्रियो को बुलाकर परिछन के लिए मङ्गल साज रही है।

व्याख्या : उत्साह के तारतम्यानुसार बाजाओ की तुमुलध्वनि मे भी तारतम्य होता है। बड़ा उत्साह है। इसलिए दुन्दुभी बडी जोर से बजाई जा रही है। कन्या पक्ष के लोग जो बारात लेने गये थे वे भी बाजे गाजे के साथ बारात के सङ्ग चल रहे हैं। यथा : संख निसान पनव बहु बाजे। उन लोगो ने भी जोरो से दुन्दुभी बजाई। इस उत्साह को देखकर देवता लोग भी खिल उठे। लगे जय जयकार करके फूल बरसाने। रघुकुलमणि कहने से महाराज दशरथ तथा रामजी दोनो व्यक्तियो का बोध होता है। यथा : रघुकुलमणि दसरथ के जाये। तथा : विद्यमान रघुकुल-मनि जानी। अतः नाम निर्देश न करके देवता लोग रघुकुलमणि की जय कह रहे हैं। जब बाजे के शब्द को सन्निकट आते सुना तो महाराज जनक के यहाँ भी अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे। मङ्गल कार्य मे सम्मिलित होने के लिए सोहागिनी स्त्रियाँ बुलाई जाती हैं। बाजे के शब्द से रानियो ने जाना कि बारात आया चाहती है। अतः सोहागिनियो को बुलाकर रानियाँ मङ्गल साज परिछन के लिए सजाने लगी।

दो. सजि आरती अनेक बिधि, मगल सकल सँवारि।
चली मुदित परिछनि करन, गज गामिनि वर नारि ॥३१७॥

अर्थ : अनेक प्रकार की आरती साजकर और सब मङ्गल सँवारकर प्रसन्न होती हुई गजगामिनि श्रेष्ठ स्त्रियाँ चली।

व्याख्या : वर के आते ही परिछन की चाल मिथिला मे है। सब स्त्रियाँ आरती सजा रक्खी हैं। किसी ने चौमुख दीप सजा रक्खा है। किसी ने हजार बत्ती की आरती साज रक्खी है। कोई आरती साजे हुए है। इसलिए विविध विधि कहा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मङ्गल सकल से धान पान दधि आदि अभिप्रेत हैं। परिछन करने की बडी लालसा है। अत प्रसन्न होकर चली। चाल की सुन्दरता द्योतित करने के लिए 'गजगामिनी' विशेषण दे रहे हैं।

विधुवदनी सब सब मृगलोचनि। सब निज तन छबि रति मद मोचनि ॥
पहिरे बरन बरन बर चीरा। सकल बिभूषन सजे सरीरा ॥१॥

अर्थ सभी चन्द्रवदनी थी। सभी मृगनयनी थी। सभी अपने शरीर की छवि से रति का मानमर्दन करनेवाली थी। सबा ने रङ्ग बिरङ्गी साडियाँ पहन रक्खी थी। और शरीर पर सब प्रकार के भूषणो को साज रक्खा था।

व्याख्या अब परिछन के कार्य मे सम्मिलित होनेवाली स्त्रियो की शोभा कहते है। जूथजूथ मिलि सुमुखि सुनयनी। करहिं गान कल कोकिल बयनी। यह वर्णन तो सामान्य स्त्रियो का था। यहाँ तो परिछन के लिए प्रधान प्रधान चली। अत विधुवदनी सब सब मृगलोचनि। सब निज तन छबि रति मदमोचनि। कहकर नखशिख वर्णन करते हैं। रति अति दुखित अतन पति जानी। ये तो अति हर्षित है। अत रति मदमोचनी है। स्त्रियो की शोभा रङ्ग बिरङ्गी साडियो मे ही है। पलटन की वर्दी की भाँति एक रङ्ग की पोशाक मे शोभा नही है। बत्तीसो आभरणो से सुशोभित है। घर से ही यह अभिलाषा मन मे रखकर चली हैं कि रामजी का परिछन करना है।

सकल सुमगल अग बनाए। करहिं गान कलकठ लजाए ॥
ककन किंकिनि नूपुर बाजहिं। चाल बिलोकि काम गज लाजहिं ॥२॥

अर्थ सभी सुमङ्गल अङ्गो म बनाये हुए है। ऐसा गान कर रही है कि कोकिल लज्जित हो जायँ, कंकण, किंकिणि और नूपुर बज रहे है। उनकी गति देखकर हस्ती रूपधारी काम लज्जित हो जाय।

व्याख्या पहिले आभरण कहा था। अब शृङ्गार कह रहे है। सिर मे सिन्दूर, पैर म जावक ( महावर ) हाथो मे मेहदी आदि सोलहो शृङ्गार किये हुए हैं। इस भाँति शरीर की शोभा, गहने की शोभा तथा शृङ्गार की शोभा कहकर अब सुस्वरता का वर्णन करते है। सामान्य स्त्रियो के लिए कल कोकिल बयनो कहा था। पर ये तो ऐसी प्रवीण थी कि इनके गान के सामने कोयल को लजाना पडा। ये सब गज गामिनी है। अत भूषणो की झनकार कहते है। फुलवारी मे ऐसी झनकार हुई थी। यथा ककन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि। यहाँ कंकण, करधनी और नूपुर का बजना कहते है। भाव यह कि दूर से ध्वनि सुनी जाती है। निकट से बजना कहते है। सामान्य स्त्रियो को गजगामिनी बर नारि कहा था। इन्हे कामगज लाजहिं कह रहे हैं।

बाजहि बाजन बिबिध प्रकारा। नभ अरु नगर सुमगल चारा ॥
सची सारदा रमा भवानी। जे सुरतिय सुचि सहज सयानी ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ : अनेक प्रकार के बाजे बज रहे थे। आकाश और नगर मे मङ्गलाचार हो रहा था। इन्द्राणी, सरस्वती, लक्ष्मी और भवानी जो देवाङ्गनाएँ शुचि और स्वभावतः सयानी थी।

व्याख्या : विवाह की शोभा विविध प्रकार के बाजे से बढती है। नही तो शखध्वनि और शहनाई का कौन साथ है ? इस उत्सव पर सब वाद्यो को मिलकर एक तुमुल ध्वनि होनी चाहिए। ऐसा मङ्गलाचार मे ही नही ऊपर आकाश मे देवो द्वारा भी हो रहा था।

सुरेश्वरी इन्द्राणी आदि देवियो, त्रिदेवो की शक्तियाँ, शुचि कहकर अप्सराओ का व्यावर्तन कहा। ये सहज सयानी हैं। परिछन करने का अवसर इन्होने हाथ से नही जाने दिया। बारात के समय पतियो के साथ थी। बारात पहुँचते ही उनका साथ छोडा। अधिक आनन्द के लिए राजमहल मे प्रवेश कर गईं।

कपट नारिबर बेष बनाई। मिली सकल रनवासहि जाई॥
करहि गान कल मंगल बानी। हरष बिबस सब काहु न जानी॥४॥

अर्थ : कपट से स्त्री का वेप बनाकर सब रनिवास मे जाकर मिल गईं। सुन्दर मङ्गल वाणी से गान कर रही हैं। सब हर्ष के वश थी। अत किसी ने उन्हे जाना नही।

व्याख्या · माया से देवियाँ नारी रूप हो गईं। सहज सयानी है अत रनिवास मे जाकर मिल गईं। मालूम होता था कि ये भी रानियाँ है। रामजी के परिछन का सौभाग्य लूटने के लिए चली आईं। उधर रानियाँ हर्ष मे विभोर थी। कोई यह पूछनेवाला नही कि ये रानियाँ कहाँ से नेवते मे आई हैं। उनकी वाणी मङ्गलमय है, उससे गान कर रही हैं। रामजी का ब्याह है इसमे इन्द्राणी, ब्रह्माणी, रुद्राणी आदि का गान होना ही चाहिए। अत· रानियो से मिलकर गान मे सम्मिलित हो गईं।

छ को जान केहि आनद बस सब ब्रह्म बरु परिछन चली।
कलगान मधुर निसान बरषहि सुमन सुर सोभा भली॥
आनंद कंद बिलोकि दूलहु सकल हिय हरषित भईं।
अंभोज अबक अंबु उमगि सुअंग पुलकावलि छईं॥

अर्थ : कौन किसे जानता है। सब आनन्द मे विभोर होकर ब्रह्मवर को परिछन करने चली। सुन्दर गान हो रहा है। मधुर निशान बज रहा है। देवता फूल बरसा रहे है। बडी अच्छी शोभा थी। आनन्दकन्द दूलह को देखकर सब हृदय से आनन्दित हो उठी। कमल से नेत्रो मे आँसू उमड आये और सुन्दर अगो मे रोमाञ्च हो गया।

व्याख्या : ब्रह्मवर के परिछन मे ब्रह्मानन्द है। अत अन्य विषयो का ज्ञान किसी को नही। सबका चित्त आनन्द से निमग्न है। अतः किसी ने नहीं जाना। बारात द्वार पर लग गई। मधुर गान सुनकर डका का शब्द धीमा हो गया। अब वह भी मधुर बजने लगा। गान मे विक्षेप न होकर सहायक हो इसलिए डका बजानेवालो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ने पण्डिताई दिखाई । उधर देवताओं ने फूल बरसाये । कवि कहते हैं कि भली शोभा हुई । आनन्दित वारिवाह दूलह को देखकर सब हर्षित हो गईं । उमगा आनन्दाश्रु और छागई पुलकावली ।

दो जो सुख भा सिय मातु मन, देखि राम वर भेषु ।
सो न सकहिं कहि कलप सत, सहस सारदा सेषु ॥३१८॥

अर्थ रामजी को दूल्हा के वेष मे देखकर सीताजी की माता के मन मे जो सुख हुआ उसे सहस्र सरस्वती और शेष नही कह सकते ।

व्याख्या पहिले कहा था सहित विदेह बिलोकहिं रानी । सिसु सम प्रीति न जाइ बखानी । वहाँ तो शिशु सम प्रीति की उपमा मिली । यहाँ नही मिलती । इसलिए कहते हैं कि रामजी को दूलह वेष मे देखने का सुख जो सास को हुआ उसे शारदा शेष नही कह सकते । क्योंकि उन्हे इस सुख का अनुभव नही । मृत्युलोक का उदाहरण नही दिया । यहाँ तो सुनयना जी अनुभव कर ही रही है । भाव यह कि मर्त्यलोक मे भी सुकृती को ब्रह्मलोक दुर्लभ सुख का अनुभव होता है ।

नयन नीर हठि मगल जानी । परिछन करहिं मुदित मन रानी ॥
वेद विहित अरु कुल व्यवहारू । कीन्ह भली विधि सब व्यवहारू ॥१॥

अर्थ मङ्गल का अवसर जानकर रानियाँ आँसू रोककर प्रसन्न मन से परिछन कर रही हैं । वेदोक्त व्यवहार तथा कुल व्यवहार एव सभी व्यवहार को भली प्रकार से किया ।

व्याख्या पहिले कह आये हैं कि कमल ऐसी आँखा मे आँसू उमग आये । यथा अभोज अबक अबु उमगि सुअग पुलकावलि छई । आँसू गिरा चाहते हैं । मङ्गल का अवसर जानकर उन्हे रोका । मङ्गल के समय आँसू गिराना अशुभ है । यद्यपि परिछन के लिए बहुत सी स्त्रियाँ चली । पर वे परिछन के गान मे ही सम्मिलित रही । नियमानुसार परिछन सीताजी की माता कर रही हैं । इसलिए कहते हैं परछन करहिं मुदित मनरानी । वेद विहित व्यवहार देवपूजन, वरपूजन आदि कुल व्यवहार आदि तथा सब व्यवहार अर्थात् देश व्यवहार जो और कही नही केवल मिथिला मे ही प्रचलित हैं । ऐसे अवसर पर कन्या की माता का अञ्चल से पान द्वारा वर की नासिका को पकडे हुए लिवा ले जाना आदि सभी व्यवहारो को भली भाँति किया ।

पच सवद धुनि मगल गाना । पट पाँवडे परहिं विधि नाना ॥
करि आरती अरघ तिन्ह दीन्हा । राम गवनु मडप तव कीन्हा ॥२॥

अर्थ पाँच प्रकार के बाजो के शब्दो की ध्वनि और मङ्गल गान हो रहे है । नाना प्रकार के कपडा के पाँवडे पड रहे हैं । उन्होने आरती करके अर्घ्य दिया । तब रामजी मण्डप म गये ।

व्याख्या तन्त्री तार सुझाझ पुनि जानु नगारा चार । पचम फूँके ते बजै सब्द सुपाँच प्रकार । सा पाँचा प्रकार के बाजे बजे । इसलिए ध्वनि कहा । बाजे के

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



शब्द ध्वन्यात्मक होते हैं। ये मङ्गलगान के साथ साथ वज रहे हैं। क्योंकि सीताजी की माता रामजी को लिवाये हुए मण्डप की ओर जा रही हैं। मण्डप के पास पहुँचने पर आरती हुई। अर्घ्य दिया गया। तब रामजी ने मण्डप में प्रवेश किया। महाराज चक्रवर्तीजी बाहर ही रुके हैं।

**दसरथ सहित समाज विराजे। विभव विलोकि लोकपति लाजे ॥**
**समय समय सुर बरषहिं फूला। सांति पढहिं महिसुर अनुकूला ॥३॥**

अर्थ : महाराज दशरथ समाज के सहित विराजमान हुए। विभव देखकर लोकपाल लज्जित हो गये। समय समय पर देवता फूल बरसाते हैं और ब्राह्मण अनुकूल होकर शान्तिपाठ कर रहे हैं।

व्याख्या श्रीरामजी मण्डप में चले गये। पर महाराज दशरथ बाहर ठहर गये। वहीं दरबार लग गया। पहिले कह आये है : कोसलपति कर देखि समाजू। अति लघु लोग तिनहि सुर राजू। उसी समाज के साथ आज महाराज जनक के द्वारपर दरबार लगा है। उस विभव को देखकर लोकपाल सङ्कुचित हो गये। क्योंकि यह वैभव उन्हें प्राप्त नहीं है। महाराज का ठहरना कहकर फिर कवि जल्दी से मण्डप में पहुँच गये और वहाँ की गतिविधि का वर्णन करने लगे। रामजी के मण्डप तक पहुँचने में ऐसे अनेक अवसर आये जब कि देवताओं ने पुष्पवृष्टि की और ब्राह्मणों ने प्रसन्न होकर शान्तिपाठ किया।

**नभ अरु नगर कोलाहल होई। आपन पर कछु सुनै न कोई ॥**
**एहि विधि राम मंडपहि आये। अरघु देइ आसन बैठाये ॥४॥**

अर्थ : आकाश में और नगर में कोलाहल हो रहा है। अपना पराया कोई सुन नहीं पाता है। इस विधि से रामजी मण्डप में आये। अर्घ्य देकर आसन पर बिठाया।

व्याख्या : जहाँ जनसमुदाय उत्साह से भरा एकत्रित होता है वहाँ कोलाहल होता ही है। आकाश में तैंतीस कोटि देवता जय जयकार कर रहे हैं। नीचे घराती और बाराती दोनों समाज आनन्द से उमगे हुए एकत्रित हैं। अतः पृथ्वी से आकाश तक तुमुलध्वनि भर गई। अपना कहा हुआ अपने को ही नहीं सुनाई देता दूसरे की कौन सुनता है। इस विधि से अर्थात् बाहर तो महाकोलाहल हो रहा है और भीतर शब्द धुनि मगल गान और शान्ति पाठ हो रहा है। रामजी के मण्डल में आने पर फिर अर्घ्य दिया गया और तब आसन पर बिठलाया।

**छं. बैठारि आसन आरती करि, निरखि वरु सुख पावहीं।**
**मनि बसन भूषन भूरि वारहिं, नारि मंगल गावहीं ॥**
**ब्रह्मादि सुरवर विप्र भेष, बनाइ कौतुक देखहीं।**
**अवलोकि रघुकुल कमल रवि छवि, सुफल जीवन लेखहीं ॥**

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ आसन पर बिठाकर आरती करके दूल्हे को देखकर सुख पा रही है। मणि, वसन, भूपण का खूब निछावर हो रहा है। स्त्रियाँ मङ्गल गा रही है। ब्रह्मा आदि श्रेष्ठ देव ब्राह्मणो का वेप धारण किये हुए कौतुक देख रहे है। रघुकुलकमल के सूर्य की छवि को देखकर जीवन को सुफल कर रहे।

व्याख्या पहिले अर्घ्य पीछे आसन तत्पश्चात् आरती हो रही है। अवकाश पाकर वर का आनन्द से दर्शन कर रही हैं। अब न्योछावर होने लगी। मणि, वसन, भूपण, निछावर करके दिया जाने लगा। मङ्गल गान होता चला जाता है। स्त्रियाँ रामजी को दूल्हे के वेप मे देखकर सुख पा रही है। अभी तक वहाँ ब्राह्मणेतर का प्रवेश नही है। बाराती भी महाराज के साथ ही आवेंगे। देवता ब्राह्मण का वेप धारण करके ही पृथ्वी पर विचरते हैं। सो ब्रह्मादिक देवताओ ने कौतुक देखने के लिए ब्राह्मण का रूप धारण किया। शची, उमा, रमा और ब्रह्माणी तो चतुराई करके रानियो सा वेप बनाये हुए रानियो मे मिलकर आनन्द ले रही है। अत कौतुक देखने के लिए पीछे पीछे से देवो ने ब्राह्मणो का वेप धारण किया। अपने वेप म आते तो यह आनन्द न मिलता। स्वाभाविकता न रह जाती। देवताओ के जन्म का साफल्य भी श्रीरामजी के दर्शन मे है। किंपुन दूल्हे के वेप में दर्शन तो अतीव दुर्लभ है।

दो नाऊ बारी भाट नट, राम निछावरि पाइ।
मुदित असीसहिं नाइ सिर, हरपु न हृदय समाइ ॥३१९॥

अर्थ नाऊ बारी भाट और नट रामजी का निछावर पाकर मुदित होकर सिर नवाकर आशीर्वाद देते है। उनके हृदय मे हर्ष नही समाता।

व्याख्या इस निछावर के अधिकारी नाऊ बारी भाट और नट है। अत निछावर पाकर प्रणाम भी करते हैं और आशीर्वाद भी देते हैं। केवल आशीर्वाद के ये अधिकारी नही हैं। अब भी यही प्रथा है। यहाँ तक कृत्य स्त्रियो द्वारा सम्पन्न हुआ। मिथिला मे विधिकरी ही बहुत कुछ विवाहविधि करा लेती है।

मिले जनकु दसरथु अति प्रीती। करि वैदिक लौकिक सब रीती ॥
मिलत महा दोउ राज बिराजे। उपमा खोजि खोजि कवि लाजे ॥१॥

अर्थ वैदिक और लौकिक सब रीतियो का सम्पादन करके महाराज जनक और दशरथ अत्यन्त प्रीति से मिले। उपमा खोज खोजकर कवियो को लज्जित होना पडा।

व्याख्या मधुमाधव दशरथ जनक मिलब राज रितुराज। अति प्रीति मे भेद नही रह जाता। चैत्र और वैशाख मिलकर एक हुए तो वसन्तऋतु हुआ। यथा वरनब राम विवाह समाजू। सो मुद मगलमय रितु राजू। मेल की दृढता के लिए लौकिक और वैदिक रीति का सम्पादन किया। इसके पहिले मिलने की रीति नही है। इसी से महाराज जनक अगवानी आदि मे सम्मिलित नही हुए थे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


वर्णन करने मे कवि उपमा देते है। यहाँ मिलने के समय दोनो महाराजाओ की उपमा देने के लिए कवि प्रयत्न करने लगे तो उन्हे कही उपमा ही न मिली। अत सङ्कुचित हो गये। मधुमाधव की उपमा तो मिलने मात्र के लिए दी गई। दोनो महाराजाओ की उपमा नही है। कवि लोग उपमा देने के लिए पूर्व के हुए विवाहो पर निगाह दौडाये तो सबसे अच्छा विवाह महादेवजी का हुआ था। यथा : सकल सुरन्ह के हृदय अस सकर परम उछाहु। जिन नयनन्हि देखा चहै नाथ तुम्हार विवाहु। सो उसमे : पहिलेहि पँवरि सुसामध भा सुखदायक। इत विधि उत हिमवान सरिस सब लायक। पर हिमवान तो विधि के सृष्ट पदार्थ है। अत ब्रह्मदेव के जोड के नही थे। दूसरा कोई विवाह ऐसा नही हुआ था। इसलिए उपमा नही मिली।

लही न कतहुँ हारि हियँ मानी। इन सम एइ उपमा उर आनी॥
सामध देखि देव अनुरागे। सुमन बरषि जसु गावन लागे॥२॥

अर्थ : जब कही उपमा न मिली तो हृदय से हार गये। तब इनके समान ये ही है। यह उपमा निश्चय की। समधियो का मिलना देखकर देवता प्रेम के वश हुए। वे फूलो की वर्षा करके यशगान करने लगे।

व्याख्या : कही ऐसे समान समधी ही नही मिले तो कवि लोग हृदय से तो तो हार गये। पर कवि ही ठहरे। बात बना ली। उनकी उनसे ही उपमा दे डाली और उसका नाम अनन्वयालङ्कार रख दिया। समधियो के मिलने की जो रसम है उसे सामध कहते है। कवि तो उपमा के फेर मे पड गये। पर देववृन्द प्रेम मे आगये। पुष्पो की वर्षा की : जो समधियो तक पहुँची और यशोगान करने लगे जो सब ने सुना।

जगु बिरंचि उपजावा जब तें। देखे सुने ब्याह बहु तब ते॥
सकल भाँति सम साज समाजू। सम समधी देखे हम आजू॥३॥

अर्थ : जब से ब्रह्मदेव ने ससार रचा तब से बहुत से ब्याह देखे और सुने। पर सब भाँति सब समाज और समान समधी तो आज ही देख पडे।

व्याख्या : ब्रह्मदेव कल्प के आरम्भ मे सृष्टि रचते हैं और कल्पान्त मे उसका संहार हो जाता है। एक कल्प मे चौदह मन्वन्तर होते हैं। सो इन्द्रादि देवताओ की आयु कल्पस्थायिनी नही होती। इस भाँति एक कल्प मे चौदह इन्द्र क्रम से होते हैं। रामावतार वैवस्वत मन्वन्तर मे होता है। यह विवाह भी इसी मन्वन्तर मे सम्पन्न हुआ। सो इस मन्वन्तर के देवता कहते है कि इस मन्वन्तर के सब विवाह हमने देखे हैं। क्योंकि सभी विवाहो मे इनका आवाहन होता है और पहले के छः मन्वन्तरो के प्रधान विवाहो की कथा सुन रक्खी है। पर सब समाज और समधी समान तो आज ही देखे। महादेवजी का विवाह सर्वोत्तम हुआ पर सब समाज समान नही था। यथा : सुरसमाज सब भाँति अनूपा। नहि बरात दूलह अनुरूपा। देखि सिवहि सुरतिय मुसुकाही। बर लायक दुलहिन जग नाही। तथा : जो जियत

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रहिहि वरात देवत पुण्य वड तेहिकर मही। देखिहि जो उमा विवाह घर घर बात अस लरिकन कही। पर इस विवाह की वात ही और है। सब समाज समान है। यथा इधर देखि जनकपुर सुर अनुरागे। निज निज लोक सबहि लघु लागे। उधर दसरथ सहित समाज विराजे। विभव विलोकि लोकपति लाजे। वर दुलहिन भी समान मथि माखन सिय राम सवारेउ सकल भुवन छवि छाछ महीरी। समधी भी समान सगि सत्र करव पुरारि पुन्य पयोनिधि भूप दोउ।

देव गिरा मुनि सुदर साँची। प्रीति अलौकिक दुहुँ दिसि माँची ॥
देत पाँवडे अरघु सुहाये। सादर जनकु मडपहि ल्याये ॥४॥

अर्थ देवताओ की सुन्दर और सच्ची वात सुनकर दोनो ओर अलौकिक आनन्द मच गया। सुन्दर पाँवडे और अर्घ्य देते हुए आदर के सहित जनकजी मण्डप मे ले आये।

व्याख्या सदा साँची गिरा सुन्दर नही होती और सुन्दर गिरा साँची नही होती। पर यह वाणी सुन्दर और साँची दोनो थी। यहाँ साँची से अभिप्राय प्रामाणिक गिरा से है। जव देवताओ ने कह दिया तो साँची होने मे सन्देह क्या ? एक पक्ष दूसरे पक्ष की प्रशसा सुनकर प्रसन्न है। अव जनकजी चक्रवर्तीजी को मण्डप मे लिवा ले चल। सो पाँवडे पडने लगे। एक एक पाँवडे के वाद अर्घ्य दिया जाता है। इस आदर के साथ मण्डप म ले गये।

छ मडपु विलोकि विचित्र रचना रुचिरता मुनि मन हरे।
निज पानि जनक सुजान सव कहुँ आनि सिघासन धरे ॥
कुल इष्ट सरिस वसिष्ठ पूजे विनय करि आसिष लही।
कौसिकहि पूजत परम प्रीति कि रीति तौ न परै कही ॥

अर्थ मण्डप की विचित्र रचना देखा कि इसकी सुन्दरता मुनियो के मनको हरण करनेवाली है। अपने हाथो सुजान जनकजी ने सव के लिए ला लाकर सिहासन रक्खा। कुल इष्टदेव की भाँति वसिष्ठजी की पूजा की और विनय करके आशीर्वाद लिया। विश्वामित्रजी के पूजने मे प्रीति की रीति कुछ कही नही जाती।

व्याख्या मण्डप की विचित्र रचना देखी कि इसकी सुन्दरता तो मुनियो के मन को हरण करनेवाली है। यथा रचना देखि विचित्र अति मन विरचिकर भूल। इससे महाराज जनक का ऐश्वर्य कहा और सिहासनयोग्य अति पूज्यो के लिए अपने हाथ से लाकर सिहासन रख रहे हैं। इससे जनकजी का सत्कार कहा। जैसे कुल के इष्टदेव की। पूजा वडी श्रद्धा और सावधानी से की जाती है। वैसे ही वसिष्ठजी की पूजा की। क्योकि महाराज दशरथ के कुलगुरु है। यथा तुम सुरतरु रघुवस के देत अभिमत माँगे। पूजन के वाद ऐसी स्तुति की कि गुरुजी ने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया। इससे राजा जनक का विनय कहा। तत्पश्चात् विश्वामित्र

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


जी की पूजा की जिनकी कृपा से यह दिन देखने म आया। वडा भारी उपकार विश्वामित्रजी का था। अत परम प्रीति से पूजा की। प्रीति की रीति अलौकिक होती है। अत कही नही जा सकती। भाव यह कि न तो इधर स्तुति के लिए शब्द मिलते हैं और न उधर आशीर्वाद के लिए कण्ठ खुलता है। इससे जनकजी की प्रीति कही। राजगुरु होने से वसिष्ठ तथा विश्वामित्रजी को भी सिंहासन दिया गया।

दो वामदेव आदिक रिषय, पूजे मुदित महीस।
दिए दिव्य आसन सवहि, सव सन लही असीस ॥३२०॥

अर्थ वामदेवादि ऋषियो को आनन्दित होकर राजा ने पूजा। सवको दिव्य आसन दिया और सवसे आशीर्वाद पाया।

व्याख्या आसन का विधान कहते हैं। राजा तथा राजगुरुओ को सिंहासन, ऋषियो को दिव्यासन, वारातियो को उचित आसन, देवताओ को सुआसन दिया। ऋषियो की पूजा राजा ने प्रसन्न होकर की। ऋषियो के आगमन से राजा को हर्ष है। अत वामदेवादि ऋषियो को दिव्यासन पर विठाकर पूजा की। सवने आशीर्वाद दिया।

वहुरि कीन्ह कोसलपति पूजा। जानि ईस सम भाउ न दूजा॥
कीन्ह जोरि कर विनय वडाई। कहि निज भाग्य विभव वहुताई॥१॥

अर्थ फिर कोसलपति की पूजा उन्हे शिवजी के समान जानकर की। कोई दूसरा भाव उनके मनम नही था। हाथ जोडकर विनती और स्तुति की। अपने भाग्य के विभव की वहुतायत कही।

व्याख्या कुल के इष्टदेव की भाँति वसिष्ठजी की पूजा की और अभीष्टदाता शङ्कर की भाँति दशरथजी की पूजा की। दूसरा भाव अर्थात् समधी का भाव मनम आने नही दिया। राजा जनक ने महाराज दशरथ को साक्षात् शङ्कर रूप माना। क्योकि शङ्करजी के लिए कहा गया है कि इप्सित फल विनु सिव अवराधे। लहिय न कोटि जोगजप साधे। और दशरथजी के लिए स्वय वसिष्ठजी कहते हैं राजन राउर नाम जस सव अभिमत दातार। अत गुणग्राहक राजा जनक ने उन्हे शङ्कर के समान ही माना और आराधना भी उनकी शङ्कर के समान ही की। दूसरा भाव आने से फिर वैसी पूजा नही हो सकती थी। पूजन के वाद विनय और स्तुति का विधान है। सो वह भी उसी भाँति किया जैसा शिवजी का किया जाता है। उनके पधारने से अपने भाग्य के विभव की महिमा का वर्णन किया। ऐसे अवसरो पर अपने भाग्य की सराहना की जाती है।

पूजे भूपति सकल वराती। समधी सम सादर सव भाँती॥
आसन उचित दिये सव काहू। कहहुँ कहा मुख एक उछाहू॥२॥

अर्थ समधी के समान सव भाँति से आदर के साथ राजा ने सव वारातियो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



की पूजा की और सबको उचित आसन दिया। एक मुख से उस उत्साह का क्या वर्णन करूँ।

व्याख्या समधी की पूजा शिवजी के समान की और सब बारातियो की पूजा समधी के समान की। यथा दान मान विनती वर बानी। जिस आदर से जिस प्रकार से समधी की पूजा होती है उसी आदर भाव से सभी बारातियो की पूजा स्वय की। क्योकि समधी की पूजा प्रतिनिधि द्वारा नही होती। उत्तम मध्यम नीच और लघु को उचित आसन दिया। ऋषियो को दिव्यासन दिया था। अब बारातियो का उचित आसन दे रहे है। यह महाराज की श्रद्धा और सावधानी है। ग्रन्थकर्त्ता कहते है कि इस उत्साह का वर्णन करने के लिए चतुर्मुख पञ्चमुख अथवा सहस्रमुख की आवश्यकता है। मै एक मुखवाला उस उत्साह का क्या वर्णन करूँ। मेरे लिए सर्वथा वर्णनातीत है।

सकल बरात जनक सनमानी। दान मान विनती वर बानी॥
विधि हरि हरु दिसिपति दिनराऊ। जे जानहि रघुबीर प्रभाऊ॥३॥

अर्थ सब बारात का जनकजी ने सम्मान, दान, मान, विनती औ श्रेष्ठ वाणी द्वारा किया। ब्रह्मा, विष्णु, शिव, दिक्पाल और सूर्य जो रघुवीर के प्रभाव को जाननेवाल थे।

व्याख्या उपर्युक्त सादर सब भाँती की व्याख्या करते है। समधी की भाँति उनको द्रव्य दिया। सम्मान किया। उनकी विनती की और श्रेष्ठ वाणी सत्कार सूचक बोल। अथवा ब्राह्मण को दान दिया। क्षत्रिय का सम्मान किया। वैश्य की विनती की और शूद्र से आदरसूचक वचन बोले।

अन्य देवता तो अपने अपने विमानो पर आकाश मे ही रहे। परन्तु त्रिदेव दिक्पाल तथा सूर्य ने जो रामजी के प्रभाव के जाननेवाले गिने गिनाये देवता थे उन्होने ऐसे अवसर पर अपनी उपस्थिति सर्वथा उचित समझी।

कपट बिप्र वर बेष बनाए। कौतुक देखहि अति सचु पाए॥
पूजे जनक देव सम जाने। दिए सुआसन बिनु पहिचाने॥४॥

अर्थ माया से श्रेष्ठ ब्राह्मण का वेष बनाये हुए अत्यन्त सुख पाते हुए कौतुक देख रहे थे। उनको देवता के समान जानकर जनकजी ने पूजन किया और बिना पहिचाने ही उन्हे सुन्दर आसन दिया।

व्याख्या ये ब्रह्मादिक देवता जब रामजी मण्डप मे आये तभी से विप्र वेष बनाए कौतुक देख रहे है। यथा ब्रह्मादि सुरबर विप्र वेष बनाइ कौतुक देखही। ये पहिले से ही आये हुए है। अत बाराती नही है। फिर कौन है ? इस पहिचान की आवश्यकता थी। परन्तु राजा जनक ने बिना पहिचाने ही उन्हे देवता के समान जाना दर्जा समझ लिया। यह राजा की सुजानता है। रामजी को भी इन्होने बिना पहिचाने अन्दाज कर लिया। कहने लगे ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उभय वेष धरि सोइ कि आवा। इसी भाँति यहाँ भी कपट वेष मे रहने पर भी देवताओ को देवता समान जानकर पूजन किया और सुआसन दिया।

छं. पहिचान को केहि जान सबहि अपान सुधि भोरी भई।
आनंद कंदु बिलोकि दूलहु उभय दिसि आनँदमई॥
सुर लखे राम सुजान पूजे मानसिक आसन दए।
अवलोकि सीलु सुभाउ प्रभु को बिबुध मन प्रमुदित भए॥

अर्थ · कौन किसे जाने पहिचाने। सबको अपनी ही सुधि भूली हुई थी। आनन्दकन्द दूल्हे को देखकर दोनो पक्ष आनन्दमय हो रहे थे। रामसुजान ने देवताओ को लखा। तो पूजा की और मानसिक आसन दिया। प्रभु के शील और स्वभाव को देखकर देवता हृदय से आनन्दित हो उठे।

व्याख्या : जनकजी ने विना पहिचाने दर्जा का अन्दाज कर लिया और विप्रवेषधारी देवगणो को सुआसन दिया। इस पर ग्रन्थकार कहते है कि इतनी बड़ी बारात मे पहिचान पहिचान कर कौन जान सकता है? अन्दाज से ही काम चलाया जाता है। तिस पर यहाँ तो किसी को अपनी ही सुधि नही है। आनन्दकन्द दूल्हे को देखकर दोनो पक्षो मे आनन्द मचा हुआ है। आनन्द का मेघ दोनो ओर आनन्द की वर्षा कर रहा है। सुजान रामजी ने देवताओ को लख लिया कि उधर से तो इनकी पूजा हुई। पर मेरी ओर से पूजा नही हुई और मै ऐसी स्थिति मे हूँ कि स्वय कुछ कर नही सकता। अत सबकी मानसिक पूजा की और मानसिक आसन दिया। देवताओ ने प्रभु की दी हुई पूजा और आसन को ग्रहण किया और प्रभु के ऐसे शील स्वभाव को देखकर कि स्वय दूल्हा बने है सङ्कोचवश सत्कार नही कर सकते तो मानसिक सत्कार कर रहे है। देवता लोग मुदित हो गये।

दो. रामचंद्र मुख चंद्र छवि, लोचन चारु चकोर।
करत पान सादर सकल, प्रेम प्रमोदु न थोर॥३२१॥

अर्थ रामचन्द्र के मुखचन्द्र की छवि को सुन्दर चकोररूपी लोचनो से आदर के साथ सब पान कर रहे है। किसी मे प्रेम और प्रमोद थोडा नही है।

व्याख्या : सबको इष्ट भोग हो रहा है। अत कहते है कि प्रेम प्रमोद थोडा नही है। मुख की उपमा चन्द्र से छवि की उपमा किरण से और सबके लोचनो की चकोर से दी गई। सब लोग स्वस्थ होकर बैठ गये। सब रामजी के मुख की शोभा देखकर मुग्ध है। चन्द्र का पृष्ठ भाग कोई देख नही सकता। इस भाँति रामजी सबको सम्मुख दिखाई पड रहे है। यथा मुनि समाज महु बैठे सनमुख सबकी ओर। सरद चद तन चितवत मानहु निकर चकोर।

समउ बिलोकि बसिष्ठ बुलाए। सादर सतानंद मुनि आए॥
बेगि कुँअरि अब आनहु जाई। चले मुदित मुनि आयसु पाई॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ समय देखकर वसिष्ठजी ने आदरपूर्वक बुलाया। सुनकर सतानन्दजी आये। कहा कि अब राजकुमारी को जल्द ले आइये। मुनिजी की आज्ञा पाकर प्रसन्न होकर चले।

व्याख्या व्याह की लग्न गोधूलि निश्चित हुई है। गोधूलि सधना कठिन कार्य है। बारात लाने मे बडी जल्दी करने से गोधूलि सधती है। इसी से ब्राह्मणो ने शीघ्रता की। यथा धेनु धूरि बेला बिमल सकल सुमगल मूल। बिप्रन्ह कहेउ बिदेह सन जानि सगुन अनूकूल। राजा ने भी शीघ्रता की। सतानन्दजी से कहा अब बिलब कर कारण काहा। यहाँ भी गोधूलि सन्निकट देखकर वसिष्ठजी शीघ्रता कर रहे है। सतानन्दजी को आदर के साथ बुलाकर कहते है कि राजकुमारी को जल्दी लाइये। सतानन्दजी चिरकारी मालूम होते है। गौतमजी के चिरकारी पुत्र की कथा महाभारत मे है। वे भी कामो मे देर लगाते थे। विचार करने लग जाते थे। उनके स्वभाव की जानकारी होने से ही बार बार उन्हे शीघ्रता के लिए कहा जाता है। यहाँ शीघ्रता करने के लिए वसिष्ठजी के कहने से यही ध्वनित होता है कि विचार करने मे देर न लगाइये जल्दी कीजिए। इसीलिए कहा जाता है कि आज्ञा पाकर सतानन्दजी प्रसन्न होकर चले। भाव यह कि वसिष्ठजी ने आज्ञा द दी। विचार करने की अब आवश्यकता न रह गई। अत मुदित मन चल। नही तो स्वभावानुकूल इसपर भी कुछ विचार करके तब बुलाते। अथवा इस व्याह उछाह मे जिस किसी कार्य को जिससे कहा जाता है वह उसे आनन्दित होकर करता है।

रानी सुनि उपरोहित बानी। प्रमुदित सखिन समेत सयानी ॥
बिप्र बधू कुलवृद्ध बोलाई। करि कुल रीति सुमगल गाई ॥२॥

अर्थ सयानी रानी पुरोहितजी की वाणी सुनकर सखियो सहित प्रसन्न हुई। ब्राह्मणो की स्त्रियो तथा कुल की वृद्धाओ को बडी बूढियो का बुलाकर मङ्गलगान किया।

व्याख्या शतानन्दजी ने अन्त पुर म जाकर आवाज दी। मङ्गल समय अत्यन्त निकट जानकर रानी सखियो के सहित हर्षित हुई। रानी सयानी है। सब कार्यो म ब्राह्मणियो तथा कुल की बडी बूढियो को सम्मिलित कर लती है। उन्हे बुलवाया। उनके आदेशानुसार कुल की रीति लौकिक व्यवहार सम्पादन करके मङ्गलगान किया। स्त्रियो म लौकिक व्यवहार का वैदिक व्यवहार से कम आदर नही है और न मङ्गलगान का वेदमन्त्र से कम आदर है। जो गीत जिस अवसर पर गान करना चाहिए उसम से कोई छूट नही सकता। अत अधिक शीघ्रता होने पर भी कुलरीति या मङ्गलगान म सक्षेप नही हुआ।

नारि बेष जे सुर बर बामा। सकल सुभाय सुंदरी स्यामा ॥
तिन्हहि देखि सुखु पावहि नारी। बिनु पहिचानि प्रानहु ते प्यारी ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ : नारी के वेप मे जो श्रेष्ठ देवो की शक्तियाँ थी वे सब स्वभाव से ही सुन्दरी और श्यामा थी। उन्हे देखकर नारियो को सुख होता था। बिना पहिचाने ही प्राणो से प्यारी लगती थी।

व्याख्या पहिले कह आये हैं : सची सारदा रमा भवानी। जे सुरतिय सुचि सहज सयानी। कपट नारिवर वेप बनाई। मिली सकल रनिवासहि जाई। वे स्वभाव से ही सुन्दरी थी। उन्हे बहुत शृङ्गार की आवश्यकता न थी और सदा षोडशवार्षिकी बनी रहती थी और मधुरभाषिणी थी। यथा श्यामा भवति श्यामाङ्गी श्यामा षोडशवार्षिकी। अप्रसूता भवेच्छ्यामा श्यामा मधुरभाषिणी। उनके दर्शन से स्त्रियो को सुख मिलता था और सबको प्राणो से प्यारी मालूम पडती थी। क्योकि वे सबकी आत्मस्वरूपा थी। यथा : स्त्रियः समस्ता सकला जगत्सु। और अपनी आत्मा सबको प्रिय है।

बार बार सनमानहि रानी। उमा रमा सारद सम जानी॥
सीय सँवारि समाज बनाई। मुदित मडपहि चली लेवाई॥४॥

अर्थ उमा रमा और शारदा के समान जानकर उनका सम्मान बारम्बार रानी करती हैं। सीताजी को सँवारकर और समाज बनाकर आनन्दित हो मण्डप मे लिवा चली।

व्याख्या : रानी सुनयना महाराज जनकजी की प्रिया हैं। वैसी ही पहिचान इन्हे भी है। उधर पूजे जनक देव सब जाने। इधर : बार बार सनमानहि रानी। उमा रमा सारदा सब जानी। जो जैसी थी उन्हे उन्ही के समान समझा। पहिचानने मे इतना ही भेद रह गया। अलकृत कन्या का दान लिखा है। अत भूपण बसन से सजाकर तथा सीताजी की सखियो को साथ लेकर अपना समाज बनाकर : घेरकर मण्डल मे लिवा ले चली।

छ. चलि ल्याइ सीतहि सखी सादर सजि सुमंगल भामिनी।
नवसप्त साजे सुदरी, सब मत्त कुजर गामिनी॥
कल गान सुनि मुनि ध्यान त्यागहि काम कोकिल लाजही।
मजीर नूपुर कलित कंकन, ताल गति वर बाजही॥

अर्थ सुमङ्गल साजकर सुन्दर सखियाँ आदर के साथ सीताजी को ले चली। वे सुन्दरियाँ सोलहो शृङ्गार किये हुए थी और मतवाले हाथी की सी चाल वाली थीं। उनका सुन्दर गान सुनकर मुनि लोगो का ध्यान छूटता था और कामरूपी कोकिल भी लज्जित होता था। करधनी नूपुर और सुन्दर कङ्कण गति के तालपर बज रहे थे।

व्याख्या : ऊपर की अर्धाली मे : मुदित मडपहि चली लेवाई : कहा कर्त्ता न कहा। अत. सखी ने सादर कहकर कर्त्ता बतला दिया। आगे करके ले चलने को

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सादर ले चलना कहते है। सखियो का सोलह श्रृङ्गार हुआ है। सोलह श्रृङ्गार का वर्णन पहिल हो चुका है। केवल सखियाँ ही नही भामिनी कहकर देवियो का भी साथ होना लक्षित किया। वहाँ चली मुदित परिछन करन गजगामिनी वर नारि कहा था। यहाँ मत्त कुजर गामिनी कहते हैं। यहाँ देवियाँ गान कर रही हैं। अत कलकठ लजाही न कहकर काम कोकिल लाजही कहा। वहाँ केवल ककन किंकिनि नूपुर बाजहि कहा था। यहाँ तालगति वर बाजही कहते है। गान हो रहा है। अत ताल की आवश्यकता है।

दो० सोहति वनिता वृंद महु, सहज सुहावनि सीय।
छवि ललना गन मध्य जनु, सुषमा तिय कमनीय ॥३२२॥

अर्थ स्वभाव से ही शोभायमान सीताजी स्त्रीसमूह म ऐसी सुशोभित हैं जैसी छविरूपी स्त्रियो के बीच परमा शोभारूप स्त्री सुशोभित हो।

व्याख्या वनितावृन्द ने सोलहो श्रृङ्गार कर रक्खा है। पर सीताजी तो स्वभाव से ही सुन्दरी है सखिन्ह मध्य सिय सोहति कैसी। छविगन मध्य महा छवि जैसी। कन्यादान के समय सोलहो श्रृङ्गार का विधान नही है। केवल अलकृता कन्या होनी चाहिए। अत वस्त्रालङ्कार से सुसज्जित किया। सोलहो श्रृङ्गार नही किया। इसलिए सहज सुहावनि कहते है।

सिय सुदरता बरनि न जाई। लघु मति बहुत मनोहरताई ॥
आवत दीखि बरातिन्ह सीता। रूप रासि सब भाँति पुनीता ॥१॥

अर्थ सीताजी की सुन्दरता वर्णन करते नही बनती। मेरी बुद्धि छोटी है और सौन्दर्य बहुत है। बारातियो ने रूप की राशि और सब भाँति से पवित्र सीताजी को आते हुए देखा।

व्याख्या श्री ग्रन्थकार कहते हैं कि सीताजी का सौन्दर्य वर्णनातीत है। वह सौन्दर्य लघुमति मे सामनेवाली वस्तु ही नही है। यथा सीय बरनिय तेइ उपमा देई। कुकवि कहाई अजस को लेई। अवर्णनीय को अवर्णनीय कह देने मे ही कुशल है। वर्णन करते तो बनेगा ही नही। केवल अपयश होगा कि वर्णन करने तो चले सो तो बना नही उलटा बिगाड दिया। सीताजी अन्त पुर से मण्डप मे आरही हैं। अत पहिले बारातियो की निगाह पडी। देखा कि सब भाति पवित्र रूप की राशि चली आ रही है। रूप रासि सब भाँति पुनीता। कहकर रामजी के योग्या कहा। यथा रूप रासि नृप अजिर बिहारी। राम पुनीत विषय रस रूखे। क्योंकि इधर रामजी भी रूपराशि सब भाँति पुनीत है।

सबहि मनहि मन किए प्रनामा। देखि राम भये पूरनकामा ॥
हरषे दसरथ सुतन्ह समेता। कहि न जाइ उर आनँदु जेता ॥२॥

अर्थ सबने मन ही मन प्रणाम किया। रामजी देखकर सफल मनोरथ हुए।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


पुत्रो के सहित दशरथ जी प्रसन्न हो गये। उनके हृदय मे जैसा आनन्द हुआ सो कहा नही जा सकता।

व्याख्या : सब बारातियो को पवित्र रूपराशि के देखने से जगदम्बिका की भावना हुई। अतः सबने मन ही मन प्रणाम किया। ऐसे अवसर पर प्रत्यक्ष प्रणाम करना रीति के विरुद्ध है। पार्वतीजी के व्याह मे ऐसा ही हुआ। यथा : जगदम्बिका जानि भव बामा। सुरन्ह मनहि मन कीन्ह प्रनामा। विश्वामित्रजी ने जो आशीर्वाद दिया था : सुफल मनोरथ होहिं तुम्हारे। उसी का साफल्य दिखलाते हैं कि सीताजी को देखकर रामजी पूर्णकाम हुए। नही तो राम तो सदा पूर्णकाम हैं और सीताजी उन्हे सदा ही प्राप्त हैं। दिखलाया जा चुका है कि जब लौकिक दृष्टि मे सीताहरण हुआ था उस समय भी रामजी से वास्तविक वियोग नही था। यथा : सती दीख कौतुक मग जाता। आगे राम सहित श्री भ्राता। पुनि चितवा पाछे प्रभु देखा। सहित बन्धु सिय सुदर वेषा। अतः लौकिक व्यवहार दिखलाते हुए पूर्णकाम कहते हैं। पुत्र के योग्य पुत्रवधू देखकर चक्रवर्तीजी को हर्ष है और भाई के योग्य भ्रातृवधू देखकर भरतादि भाइयो को हर्ष है और इतना हर्ष है कि वे स्वय उसके प्रकाश करने मे असमर्थ हैं।

**सुर प्रनामु करि बरिसहिं फूला। मुनि असीस धुनि मंगल मूला॥**
**गान निसान कोलाहलु भारी। प्रेम प्रमोद मगन नर नारी॥३॥**

अर्थ : देवता लोग प्रणाम करके फूल बरसा रहे हैं। मुनियो के आशीर्वाद की मङ्गलमूल ध्वनि हो रही है। गान हो रहा है। डङ्के बज रहे हैं। भारी कोलाहल हो रहा है। नर नारी सब प्रेम और प्रमोद : इष्ट भोग मे मग्न हो रहे हैं।

व्याख्या : समय समय सुर बर्षहिं फूला। अतः इस समय तो पुष्पवर्षा की बडी ही आश्यकता है और माँ के चरणो मे पुष्पाञ्जलि दी जा सकती है। सो मातृभाव से प्रणाम करके देवता फूल बरसा रहे है। मुनि की असीसधुनि को मङ्गलमूल कहते हैं। यथा : मंगलमूल विप्र परितोषू। इस समय आनन्द प्राप्ति से आशीर्वाद है। प्रणाम के उत्तर मे नही। इधर गान हो रहा है। उधर निशान बज रहा है। सब मिलकर भारी कोलाहल हो रहा है। नरनारी सब प्रेम और प्रमोद मे मग्न हैं। क्योकि उनकी लालसा पूर्ण हो रही है। यथा : येहि लालसा मगन सब लोगू। बर साँवरो जानकी जोगू।

**येहि विधि सीय मंडपहि आई। प्रमुदित सांति पढहि मुनिराई॥**
**तेहि अवसर कर विधि व्यवहारू। दुहु कुलगुरु सब कीन्ह अचारू॥४॥**

अर्थ : इस विधि से सीताजी मण्डप मे आईं। मुनिराज प्रमुदित होकर शान्ति पाठ करने लगे। उस समय की वैदिक विधि और लौकिक व्यवहार और आचार दोनो ओर के कुल गुरुओ ने सम्पादन किये।

व्याख्या : दो अर्धालियो मे ग्रन्थकार ने रामजी के मण्डप मे आने का वर्णन

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



किया है। यथा समय समय सुर वरषहिं फूला। सांति पढहिं महि सुर अनुकूला। नभ अरु नगर कोलाहल होई। आपन पर कछु सुनै न कोई। येहि विधि राम मण्डपहिं आये। अब दो ही अर्धालिया म सीताजी के मण्डप मे आने का वर्णन करते हैं। कन्या के मण्डप मे आते ही शान्ति पाठ का विधान है। अत मुनीश्वर लोगो ने शान्तिपाठ प्रारम्भ किया और बडे आनन्द से पाठ कर रहे हैं। उस अवसर पर जो वैदिक विधि और लोक व्यवहार आचार प्राप्त था सो दोनो ओर के कुलगुरुओ ने अर्थात् वसिष्ठजी तथा सतानन्दजी ने सम्पादन किया। शान्ति पाठ मे मुनीश्वर लाग सम्मिलित थे। पर कर्मकाण्ड म पुरोहित ही अग्रगण्य हैं।

छ आचारु करि गुर गौरि गनपति मुदित विप्र पुजावहीं।
सुर प्रगटि पूजा लेहिं देहिं असीस अति सुख पावहीं॥
मधुपर्क मगल द्रव्य जो जेहि समय मुनि मन महुँ चहैं।
भरे कनक कोपर कलस सो तब लिये परिचारक रहैं॥१॥
कुल रीति प्रीति समेत रवि कहि देत सबु सादर किये।
येहि भाँति देव पुजाई सीतहिं सुभग सिंहासनु दिये॥
सिय राम अवलोकनि परसपर प्रेमु काहु न लखि परै।
मन बुद्धि वर बानी अगोचर प्रगट कवि कैसे करै॥

अथ आचार करके ब्राह्मण लोग प्रसन्न होकर गुरु गौरी और गणपति की पूजा करा रहे है। देवता लोग प्रकट होकर पूजा ले रहे ह। आशीर्वाद दे रहे है। उन्हे अत्यन्त सुख की प्राप्ति हो रही है। मधुपक आदि मङ्गल द्रव्य जो कुछ मुनिजी जिस समय मन से चाहते हैं उन्हे उन वस्तुओ को सोने के कोपर पूजन पात्र या कलश म भरे हुए कार्यकर्ता लोग प्रस्तुत कर देते हैं। स्वय सूर्यनारायण कुल की रीति बतला रहे है और उसे आदर के साथ किया जा रहा है। इस भाँति देवताओ की पूजा कराके सीताजी को सुन्दर सिंहासन दिया। सीताजी और रामजी का देखना और परस्पर का प्रेम किसी को लखाई नही पडता। जो बात मन बुद्धि और श्रेष्ठवाणी के अगोचर है उसे कवि कैसे प्रकट करे।

व्याख्या सबसे पहिले पूजा गुरु की तब गौरी गणपति की यह रघुकुल का नियम है। शिवजी के व्याह मे कोई कुलगुरु नही रहा। अत मुनि अनुसासन गनपतिहि पूजे सभु भवानि। यहाँ वसिष्ठ का पूजन होने के बाद विवाह कार्य आरम्भ हुआ। तब राम जानकी ने गौरी गणपति का पूजन किया। जिस बात को सक्षेप मे दुहु कुल गुरु सब कीन्ह अचारु कहा था। उसी का विस्तार कर रहे हैं। वरुणादि देवताओ का पूजन हुआ। पूजन करनेवाले राम जानकी और पूजा करानेवाले वसिष्ठादि महर्षि हैं। फिर उनके आवाहन पर देवता क्यो न प्रत्यक्ष हो? महाराज दशरथजी के पुत्रेष्टीयाग म अग्निदेव सवजन प्रत्यक्ष हुए थे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


यथा प्रगटे अगिन चरु कर लीन्हे। तब अदृस्य पावक भए सकल सभहि समुझाइ। यहाँ भी पूजा लने के लिए प्रकट हुए। देवता लोगो को राम जानकी के हाथो की पूजा ग्रहण करने म बडा आनन्द है। अत आशीर्वाद देते हैं। परिचारको की ऐसी पण्डिताई है कि वे जानते हैं कि इस कर्म के बाद यह कर्म होगा और उसम अमुक द्रव्यो की आवश्यकता पडेगी। अत उन द्रव्या को यदि वे कठिन द्रव्य हैं तो कनक के कोपर मे यदि द्रव है तो कनक कलश म भरे हुए प्रस्तुत हैं। अत मुनिजी को कहने की आवश्यकता नही पडती। कहने के पहिले ही मन म चाहते ही उक्त द्रव्य को उपस्थित कर देते थे।

वहाँ माया से विप्ररूप बनाये सूर्यदेव भी थे। यथा विधि हरि हर दिसि पति दिन राऊ। जे जानहि रघुवीर प्रभाऊ। कपट विप्र वर वेप बनाये। कौतुक दखहि अति सचु पाये। कपट विप्र के वेप मे न होते तो रात का दिन हो जाता। वे अपने कुल की रीति बतलाते चलते थे। वे ही रघुकुल के मूलपुरुष थे और उनके कहे अनुसार सब बातें की गईं। यह सब हो चुकने के बाद सीताजी को सुन्दर सिहासन पर बिठलाया। सीताजी का और रामजी का परस्पर देखना ऐसी पण्डिताई के साथ होता है कि उसे कोई देख नही सकता और न प्रेम लखाई पडता है। वह प्रेम मन, बुद्धि और वाणी से अगोचर है। यथा तत्त्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा। सो मन सदा रहत तोहि पाही। दूसरा कोई जानता नही। कहे तो क्या कहे ?

दो० होम समय तनु धरि अनलु, अति सुख आहुति लेहिं।
विप्र वेप धरि वेद सब, कहि विवाह विधि देहिं ॥३२३॥

अर्थ होम के समय शरीर धारण करके अग्नि अत्यन्त प्रेम से आहुति ग्रहण करते है। ब्राह्मण के वेप म वेद लोग विवाह की विधि कह देते ह।

व्याख्या नाम ही अनल है। न+अलम्=अनलम्। अर्थात् जहाँ बस नही होता। जो डालिये भस्म होता चला जाय। यही अग्नि यावद् गृहस्थाश्रम बराबर बनी रहेगी। इसी म अग्निहोत्र होगा। अत शरीरधारी अग्नि भगवान् प्रकट हुए। उन्हे रामजानकी की दी हुई आहुति के ग्रहण म बडा सुख है। वेद लोग भी ब्राह्मण के वेप मे उपस्थित हैं। वे विवाह की विधि बोलते जाते है। सर्वज्ञ वसिष्ठ मुनि यद्यपि सब कुछ जानते हैं फिर भी वेद लोग अपनी सेवा निवेदन कर रहे हैं। दूसरी बात यह है कि वसिष्ठजी भी तो विधि के जानकार वेद द्वारा ही हुए। अत कर्म को अभ्रान्त करने के लिए स्वय वेद विधि बतला रहे है।

जनक पाटमहिपी जग जानी। सीय मातु किमि जाइ बखानी ॥
सुजसु सुकृत सुख सुदरताई। सब समेटि विधि रची बनाई ॥१॥

अर्थ सीताजी की माता महाराज जनक की पटरानी को ससार जानता है। उनकी प्रशसा कैसे की जा सकती है। सुयश, पुण्य और सब सुन्दरता को समेटकर ब्रह्मदेव ने उन्हे सँवारकर रचा है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या जनकजी की चार रानियो मे जो पट्टाभिषिक्ता महिषी थी अर्थात् जिनके साथ महाराज जनक का राज्याभिषेक हुआ था वही सीताजी की माता थी। उनका बखान कोई कैसे करे ? उन्हे ससार जानता है। जगजानी से सुयश कहा। जनक पाटमहिषी कहकर सुख कहा। सीय मातु कहकर उनका पुण्य कहा। किमि जाइ बखानी कहकर वर्णनातीत कहा। सब समेटि कहकर उनके शरीर का अलौकिक होना कहा। और विधि रची बनाई कहकर सौन्दर्यातिशय कहा।

समय जानि मुनिबरन्ह बुलाई। सुनत सुआसिनि सादर ल्याई ॥
जनक बाम दिसि सोह सुनयना। हिमगिरि सग बनी जनु मयना ॥२॥

अर्थ समय जानकर मुनियो ने बुलाया। सुनते ही सुहागिनी स्त्रियाँ उन्हे आदर के साथ लिवा लाईं। जनकजी के बाम भाग मे रानी सुनयना ऐसी शोभित हुईं जैसे हिमालय के साथ मयना की शोभा हुई थी।

व्याख्या दोनो ओर के मुनियो ने सुहागिनियों से कहा कि अब महारानी के आने की आवश्यकता है। वे सब तुरन्त मण्डप मे ले आईं। महोत्सव के समय परदा का विधान नही है। नही तो राजा की स्त्रियो को सूर्य नही देखते। असूर्यपश्या हि राजदारा। सुहागिनी लोग पहिले से ही खडी थी कि जब मुनि लोग कहे तब महारानी को ले आवें।

यहाँ पर ग्रन्थकार ने महारानी का नाम दे देना उचित समझा। इसलिए कहते है कि रानी सुनयना आकर महाराज जनक के वाम भाग मे सुशोभित हुईं। दानचन्द्रिका का वचन है कन्या पुत्र के विवाह मे, गोदान मे, व्रतबन्ध मे, आशीर्वाद के समय तथा अभिषेक मे पत्नी वाम भाग मे रहे। पर कन्यादान मे वृषोत्सर्ग मे, यज्ञ म और सोम दर्शन मे पत्नी को दक्षिण भाग म रक्खे और स्थानो मे वाम भाग ही शुभ है। यथा कन्यापुत्रविवाहे च गोदाने व्रतबन्धने। आशीर्वादे-ऽभिषेके च पत्नी उत्तरतो भवेत्। कन्यादाने वृषोत्सर्गे अध्वरे सोमदर्शने। पत्नी दक्षिणत कुर्यादन्यथा वामत शुभा। कन्या का विवाह उपस्थित है। इसलिए महारानी वामभाग मे सुशोभित है। क्योकि केवल कन्यादान के समय दक्षिण भाग मे रहने का विधान है। उस समय की उपमा कवि कहते हैं कि जैसे पार्वतीजी के विवाह के समय हिमालय के साथ मयना की शोभा हुई थी।

कनक कलस मनि कोपर रूरे। सुचि सुगध मगल जल पूरे ॥
निजकर मुदित राय अरु रानी। धरे राम के आगे आनी ॥३॥

अर्थ सोने के कलश मणि के सुन्दर कोपर, पवित्र और सुगन्धित मङ्गल जल से भरे हुए प्रसन्न होकर राजा और रानी ने लाकर रामजी के आगे रक्खा।

व्याख्या : सोने का कलश पहिले से ही पवित्र और तीर्थ के जल से भरा हुआ रक्खा था। उसे राजा ने और मणि के कोपर जिनम पैर धोये जायँगे उन्हे महारानी ने लाकर रामजी के आगे पादप्रक्षालन के लिए रक्खा। यहाँ कोपर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


बहुवचन है। क्योकि जिसमे एक पैर धोया गया उसी में दूसरा पैर नही धोया जायगा :

पढहि वेद मुनि मंगल वानी। गगन सुमन झरि अवसर जानी ॥
वर विलोकि दंपति अनुरागे। पाय पुनीत पखारन लागे ॥४॥

अर्थ : मुनि लोग मङ्गल वाणी से वेद पढ़ने लगे। आकाश से अवसर जानकर फूलो की झड़ी लग गई। वर को देखकर राजा और रानी को प्रेम उमग आया। पवित्र चरणो का प्रक्षालन करने लगे।

व्याख्या : राजा और रानी में बड़ी श्रद्धा है। अपने हाथ से कनक कलश और मणि कोपर ले आये। उसी समय मुनियों ने स्वस्त्ययन किया। मङ्गलवाणी से वेदमन्त्रो का उच्चारण किया। यही पुष्पवर्षा का ठीक अवसर है। यह समझकर देवो ने पुष्पवर्षा की झड़ी लगा दी। इस समय दोनो प्राणी दूल्हे के वेष मे रामजी का दर्शन करके प्रेम से उमड पड़े। चरण कमल स्वयं पवित्र हैं प्रक्षालन की आवश्यकता नही। फिर भी विधि के पालन के लिए अपने को कृतार्थ करने के लिए पादप्रक्षालन करने लगे।

छं. लागे पखारन पाय पंकज प्रेम तनु पुलकावली।
नभ नगर गान निसान जय धुनि उमगि जनु चहुँ दिसि चली ॥
जे पदसरोज मनोज अरि उर सर सदैव विराजही।
जे सकृत सुमिरत विमलता मन सकल कलि मल भाजही ॥
जे परसि मुनिवनिता लही गति रही जो पातकमई।
मकरंदु जिनको संभु सिर सुचिता अवधि सुर वरनई ॥
करि मधुप मन मुनि जोगिजन जे सेइ अभिमत गति लहै।
ते पद पखारत भाग्यभाजनु जनकु जय जय सब कहै ॥
वर कुँअरि करतल जोरि साखोचारु दोउ कुलगुरु करै।
भयो पानि गहनु विलोकि विधि सुर मनुज मुनि आनँद भरै ॥
सुख मूल दूलहु देखि दंपति पुलक तनु हुलसेउ हियो।
करि लोक वेद विधान कन्या दान नृप भूषन कियो ॥
हिमवंत जिमि गिरिजा महेसहि हरिहि श्री सागर दई।
तिमि जनक रामहि सिय समरपी विस्व कल कीरति नई ॥
क्यों करै विनय विदेह कियो विदेह मूरति साँवरी।
करि होमु विधिवत गाँठि जोरी होन लागी भाँवरी ॥

अर्थ : चरण कमल धोने लगे। प्रेम से शरीर मे पुलकावली हुई। आकाश मे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



और नगर मे गान और नगाडा तथा जयकारे की ध्वनि उमगकर मानो चारो दिशाओ मे चली। जो पद कमल काम के शत्रु शिवजी के मानससर में सदा विराजते हैं। जिनके एक बार के स्मरण से मन विमल हो जाता है और सब कलियुग के मल दूर होते हैं। जिन्हे स्पर्श करके मुनि की स्त्री अहल्या ने गति प्राप्त की जो पापमयी थी। शिवजी के सिरपर धारण करने के कारण जिसके रस के लिए देवता वर्णन करते हैं कि पवित्रता की सीमा है और मुनिलोग मन को भौरा बनाकर और योगी लोग जिन ' चरणो की सेवा करके चाही हुई गति को प्राप्त होते हैं। उन चरणो को भाग्यवान् जनकजी धोते हैं और सब लोग जय जय करते हैं।

वर और दुलहिन की हथेलियो को मिलाकर दोनो कुलगुरु शाखोच्चार करते हैं। पाणिग्रहण हुआ देखकर ब्रह्मा देवता मनुष्य और मुनि आनन्द से भर उठते हैं। सुखमूल दूल्हे को देखकर राजा और रानी के शरीर मे रोमाञ्च हुआ और हृदय मे उल्लास हुआ। लोक वेद विधि करके राजाओ के भूषण जनकजी ने कन्यादान कर दिया।

हिमवान् ने जैसे पार्वती शङ्करजी को दी और समुद्र ने लक्ष्मी हरि को दी उसी भाँति जनकजी ने रामजी को सीता समर्पण कर दी। ससार मे उनकी अपूर्व सुन्दर कीर्ति हुई। राजा विदेह कैसे विनय करें। साँवली मूर्ति ने तो उन्हे विदेह कर दिया। होम करके विधि के साथ ग्रन्थि बन्धन हुआ और भाँवरी होने लगी।

व्याख्या : महाराज जनक बडे भाव से चरण धो रहे हैं। जैसे कोई हलके हाथ से फूले हुए कमल का प्रक्षालन करे और इस भाँति प्रक्षालन मे ब्रह्मसस्पर्शसुख का अनुभव कर रहे है। ब्रह्मसस्पर्शमत्यन्त सुखमश्नुते। राजा और रानी को सात्त्विक भाव हो गया। सम्पूर्ण शरीर मे पुलकावली हो गई। उसी समय स्त्रियाँ गान करने लगी। आकाश मे देवियो ने गान किया। ऊपर देवताओ ने और नीचे मनुष्यो ने नगाडे बजाये। सब लोगो ने जय जयकार किया। सब मिलकर ऐसी ध्वनि हुई कि अन्तराल मे मानो यथेष्ट स्थान न रह गया। इसलिए उमगकर चारो ओर इस भाँति फैल रही है जिस भाँति किसी छोटे पात्र मे बहुत सा जल डाल दिया जाय और वह चारो ओर से बह चले। जो चरणकमल कामारि शङ्करजी के मन रूपी सरोवर मे सदा विराजमान रहता है। किसकी सामर्थ्य जो वहाँ तक पहुँच सके। वहाँ तक पहुँचने का सामर्थ्य मन से उत्पन्न मनोज काम को भी नही है। क्योकि शिवजी कामारि है और जिस चरणकमल को एक बार स्मरण करने से मन निर्मल हो जाता है। सम्पूर्ण कलि का कल्मप नष्ट हो जाता है। जो चरण ब्रह्मशाप से विनिर्मुक्ति देनेवाले हैं। जिनके स्पर्श से पातकमयी अहल्या का उद्धार हुआ। जिन चरणकमलो का मकरन्द गगा शिवजी के सिर पर विराजमान है। जिसे देवता लोग पवित्रता को परमावधि रूप से वर्णन करते हैं। भाव यह कि ब्रह्मशाप से दग्ध सगर के पुत्रो का उद्धार गौतमशाप से जडीभूत अहल्या का उद्धार जिन चरणकमलो से ही सम्भव हुआ और किसी उपाय से उनका उद्धार असम्भव था।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जिन चरणकमलो के लिए मुनि लोग अपने मन को भ्रमर बना देते है। सदा उसी का रस लिया करते है। योगी लोग जिनके सेवन से जैसी गति चाहते हैं उसीको प्राप्त होते हैं। उन्ही चरणो को आज भाग्यवान् राजा जनक धो रहे हैं। इसीलिए सबने जयजयकार किया।

चरणप्रक्षालन के बाद कन्यादान का विधान हुआ। कन्यादान के समय कन्या की हथेली को वर की हथेली पर रखकर दाता दोनो को सँभाले रहता है। इसी भाँति श्रीरामजी की हथेली पर सीताजी की हथेली रखकर राजा जनक अपनी हथेली से दोनो को जोडे हुए हैं। यही समय शाखोच्चार का है सो वसिष्ठ वर पक्ष की ओर से और सतानन्दजी कन्या पक्ष की ओर से वंशवर्णन कर रहे हैं। यथा इत वसिष्ठ मुनि उतै सतानद वंस बखान करत दुहु ओरी। इत अवधेस उतहि मिथिलापति भरत अंक सुख सिंधु हिलोरी। इस रीति से पाणिग्रहण हुआ। देखकर ब्रह्मदेव, देवता, मनुष्य और मुनि अपने मन को आनन्द से भर रहे हैं। अथवा विधि शब्द को विलोकि क्रिया का कर्म माना जाय तो यह अर्थ होगा कि कन्यादान की विधि देखकर देवता मनुष्य और मुनि मनमे आनन्द भर रहे हैं और महाराज जनक की गोद मे जानकीजी हैं। अत दम्पति केवल रामजी का ही दर्शन कर रहे हैं। उनके विषय मे कवि कहते है कि सुखमूल दूल्हे को देखकर उन्हे पुलक हो रहा है। हृदय मे उल्लास हो रहा। यह दूल्हा ही ऐसा है। जिसके जन्म से चराचर हर्षित हो उठे थे। क्योंकि वह सुखमूल है। यथा चर अरु अचर हरख युत रामजनम सुखमूल। लोकविधान भी वेदविधान के साथ ही साथ चलता है। यथा कन्या का भाई संकल्प के समय जल देता है। सो साक्षात् मङ्गल देव भाई का कृत्य करने के लिए आगये। यथा सिय भ्राता के समय भौम तहँ आयउ। इस भाँति लोकविधान और वेदविधान दोनो करके नृपभूषण ने कन्यादान किया। अथवा सीताजी के साथ ही पृथ्वी से पुत्र की भी प्राप्ति जनकजी को हुई थी। भूमि से उत्पन्न होने के कारण उनकी भी भौम संज्ञा थी। यहाँ पर कवि उपमा देते है कि जैसे हिमालय ने पार्वती शिवजी को, क्षीरसागर ने लक्ष्मी विष्णु को दी थी उसी भाँति जनकजी ने भी जानकी रामजी को दी। भाव यह कि जानकीजी सदा से ही रामजी की शक्ति हैं। जनकजी ने अपने को इनके संयोग का निमित्त मात्र जाना।

राजा विदेह देहाध्यासन रहित होने पर भी उत्तम ज्ञानी होने के कारण सभी व्यवहार म बडे पटु हैं। पर साँवली मूर्ति ने इस पटुता को भी समाप्त कर दिया। महाराज को व्यवहार ज्ञान भी नही रह गया। पूरे विदेह हो गये। क्योकि कन्यादान के बाद वर से विनय करना चाहिए। पर जनकजी विनय करने मे असमर्थ रहे। गला भर आया। विनय न कर सके। अथवा प्रेम मे ऐसे मग्न थे कि विनय का ध्यान भी न रहा। लाजाहवन होने लगा। विधि के साथ गाँठ जोडी गई और अग्नि की परिक्रमा वर वधू करने लगे। यथा : राजत राम जानकी जोरी। स्याम सराज जलद सुदर वर दुलहिन तडित वरन तन गोरी। ब्याह समय सोहत वितान नर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उपमा कहुँ न लहत मति भोरी। मनहुँ मदन मंजुल मण्डप महँ छवि सिंगार सोभा इक ठौरी। मगलमय दोउ अग मनोहर ग्रथित चूनरी पीत पिछौरी। कनक कलस कहँ देत भाँवरी निरखि रूप सारद भइ भोरी। मुदित जनक रनिवास रहस बस चतुर नारि चितवहिं तृन तोरी।

दो जय धुनि बंदी बेद धुनि, मगल गान निसान।
सुनि हरषहिं बरषहिं बिबुध, सुरतरु सुमन सुजान ॥३२४॥

अर्थ जय की ध्वनि वन्दीजन और वेद की ध्वनि मङ्गलगान और नगाडे की ध्वनि हो रही है। देवगण हर्षित होकर कल्पवृक्ष के फूल बरसाते हैं।

व्याख्या भाँवरी प्रारम्भ होते ही जयजयकार हुआ। बन्दियो ने विरद कहा। स्त्रियो ने मङ्गलगान किया। नगाडे बज उठे। इस तुमुल ध्वनि को सुनकर देवतालोग हर्षित हुए। सुजान हैं समय जानकर कल्पवृक्ष के फूलों की वर्षा की। यथा गान निसान वेद धुनि सुनि सुर बरषत सुमन हरष कहै कोरी। नयनन को फल पाइ प्रेमवस सकल असीसत ईसनिहोरी। तुलसी जेहि आनद मगन मन क्यो रसना बरनै मुख सोरी।

कुँअरु कुँअरि कल भाँवरि देही। नयन लाभु सब सादर लेही ॥
'जाइ न बरनि मनोहर जोरी। जो उपमा कछु कहउँ सो थोरी ॥१॥

अर्थ कुँवर और कुँवरि सुन्दर भाँवर फिर रहे हैं और सब लोग आदर के साथ नेत्रो का लाभ ले रहे हैं। मन हरण करनेवाली जोडी का वर्णन नही किया जा सकता। जो ही उपमा दी जाय वही थोडी पडती है।

व्याख्या सुन्दर कुँअर और सुन्दरी कुँवरि की भाँवरी की भी बडी शोभा है। नेत्र होने का लाभ इस भाँवरी के दर्शन म ही है। सा सब लोग आदर के साथ ल रहे है। सब कहने का भाव यह है कि विवाह बैठकर हो रहा था। मण्डप प्रधान प्रधान व्यक्तियो से घिरा था। अत सब लोग नयन लाभ नही ले सकते थे। अब खडे होकर परिक्रमा करने मे पुरवासी नर नारी तथा रनिवास भी लने लगी। अत सब शब्द से स्त्री और पुरुष दोनो परिगृहीत हैं। कोष्ठान्तर्गत अर्धालियाँ काशिराज की प्रति मे नहीं हैं और न श्रावणकुञ्ज की प्रति मे हैं। श्रावणकुञ्ज की प्रति के हाशिये पर लिखी हुई हैं। रचना सुन्दर होने पर भी सुसगत नही है। मेरी समझ मे ये क्षेपक है। पर साधारणत परिगृहीत है। इसलिए इनका अर्थ कर दिया गया। इन अर्धालियो को मूल मानने से ऐसा अर्थ करना पडेगा। मानो कवि राम सीता की जोडी का वर्णन करने लगे और कहते है कि मुझसे वर्णन करते नही बनता। क्योंकि जो उपमाएँ है वे इन जोडियो से न्यून है।

राम सीय सुदर परिछाहीं। जगमगाति मनि खभन्ह माही ॥'
मनहु मदन रति धरि बहु रूपा। देखत राम बिआहु अनूपा ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अथ : रामजी और सीताजी का सुन्दर प्रतिबिम्ब मणि के खम्भो मे जगमगा रहा है। मानो कामदेव और रति अनेक रूप धारण करके रामजी के अनूप विवाह को देख रहे हैं।

व्याख्या : राम सीता के प्रतिबिम्ब के जगमगाने के लिए मणि के खम्भे मानने पडे। पर गोस्वामीजी कनक के खम्भों की रचना का वर्णन पहिले कर आये हैं। यथा : विरचे कनक कदलि के खम्भा। ऐसी त्रुटि गोस्वामीजी से होती कही देखी नही गई है। पर इस अर्धाली को मूल मे मानने से ऐसा अर्थ करना पडेगा कि कवि मनोहर जोड़ी के वर्णन में अपने को असमर्थ पाकर उसके प्रतिबिम्ब का वर्णन करने लगे और उस प्रतिबिम्ब की उपमा देते है कि मानो अनेक रूप धारण करके काम और रति रामजी का अनूप विवाह देखते हैं। परन्तु वस्तुत: इसका सम्बन्ध : नयन लाभ सब सादर लेही से है। नगर नारि नर रूप निधाना। सुघर सुधरम सुसील सुजाना। तिन्हहि देखि सब सुर नर नारी। भये नखत जनु विधु उजियारी। ऐसे नगर नरनारियो की उपमा काम और रति से है। राम कामसतकोटि सुभग तन। रामजी तो शतकोटि काम से भी अधिक सुन्दर है और सीताजी पर शतकोटि रति वलिहारी जाती है। यथा : रति सतकोटि तासु वलिहारी। प्रतिबिम्ब भी बिम्ब के समान होते हैं। अत: विवाह के समय काम रति से उपमा देना उनकी शोभा को घटाना है। मैं इस अर्धाली को कवि कृत मानने को तैयार नही हूँ। यहाँ यही अर्थ करने मे शोभा है कि सब नर नारी इस समय सरकार की शोभा देख रहे हैं। मानो इस अनूप शोभा को देखने के लिए काम और रति ने अनेक रूप धारण किये हैं।

दरस लालसा सकुच न थोरी। प्रगटत दुरत वहोरि वहोरी ॥
भये मगन सब देखनिहारे। जनक समान अपान विसारे ॥३॥

अर्थ : उन्हे दर्शन की लालसा भी है और सङ्कोच भी थोडा नही है। इससे प्रकट होना और छिपना बार बार हो रहा है। सब देखनेवाले मग्न और जनक की भाँति अपनी सुधवुध भूल गये।

व्याख्या : यह अर्धाली प्रधानरूपेण नारी समाज के लिए ही कही गई है। क्योंकि दर्शन की लालसा और सङ्कोच से उन्ही का प्रकट होना और छिपना बनता है। यथा . प्रकटहि दुरहि अटन्ह पर भामिनि। चारु चपल जनु दमकहि दामिनि। और पिछली अर्धालो पुरुषो के लिए कही गई है। देखनहारियो का हाल कहकर देखनहारो का हाल कहते हैं। इन्हे कोई सङ्कोच नही था। इसलिए देखने मे ऐसे मग्न हुए कि अपनी ही सुधि नही रह गई। प्रतिबिम्ब के पक्ष मे यह अर्थ करना होगा कि जिस खम्भे के सामने होकर यह जोडी निकल जाती है उसमे प्रतिबिम्ब पडकर लुप्त हो जाता है और फिर प्रतिबिम्ब दूसरे खम्भे पर पड जाता है। इस भाँति प्रकट होना और छिपना प्रतिबिम्ब पक्ष मे भी वन जाता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रमुदित मुनिन्ह भाँवरी फेरी। नेगसहित सब रीति निवेरी॥
राम सीय सिर सेंदुर देही। सोभा कहि न जात विधि केही॥४॥

अर्थ अतिप्रसन्न होकर मुनियो ने भाँवरी घुमाई और नेग सहित सब रीतियाँ पूरी की। रामजी सीताजी के सिर मे सिन्दूर दे रहे हैं। वह शोभा किसी प्रकार से कही नही जा सकती।

व्याख्या चार अर्धालियाँ कहकर चार बार भाँवर फिरना कहा। पाँचवी अर्धाली म भाँवरी की समाप्ति कहते हैं। यहाँ पर नेग होता है। मङ्गलकार्य मे पदे पदे नेग होता है। उस दिन पारिश्रमिक मेहनताना देने से काम नही चलता। नेगी को प्रसन्न करना पडता है। दर्जी कपडा लाया है। बढई पादुका लाया है। भगिनी हवन के लिए अग्नि लाई है। पुरोहितजी ने कर्मकाण्ड कराया है। तो उनके परिश्रम के अनुसार द्रव्य देने से काम न चलेगा। उस दिन तो कपडा हाथ मे है। पर विना दर्जी की आज्ञा से पहना नही जा सकता। पादुका पास रक्खी है। पर विना बढई को राजी किये आप आरोहण नही कर सकते। भगिनी ने अग्नि दे दी पर उसे द्रव्यदान से प्रसन्न कर लीजिये तब हवन मे हाथ लगाइये। पुरोहितजी कर्मकाण्ड करा चुके पर दक्षिणा से प्रसन्न कर लीजिये तब भाँवर फिरेगी। मङ्गलोत्सव मे नीच ऊँच सभी का सत्कार करना पडता है। यह भारत की सभ्यता है। अत कहते हैं कि रसम रीति नेग के सहित पूरी की गई। मुनिलोगो का भी यथेष्ट सत्कार किया गया। अत कहते हैं कि प्रमुदित मुनिन्ह भाँवरी फेरी।

और शोभा तो किसी भाँति कही भी जा सकती है। पर श्रीरामजी सीताजी के सिर म सिन्दूर दे रहे है। इस सिन्दूरदान की शोभा तो सर्वथा वर्णनातीत है।

अरुन[1] पराग जलजु भरि नीके। ससिहि भूप अहि लोभ अमी के॥
बहुरि वसिष्ठ दीन्ह अनुसासन। वर दुलहिन बैठे एक आसन॥५॥

अर्थ मानो कमल मे लाल पराग अच्छी तरह से भरकर अमृत के लोभ से सर्प चन्द्रमा को भूपित करता है। फिर वसिष्ठजी ने आज्ञा दी वर और दुलहिन एक आसन पर बैठें।

व्याख्या यहाँ उपमेय के न कहने से अतिशयोक्ति अलङ्कार हुआ और तद्रूप वर्णन करने से रूपक अलङ्कार हुआ। अरुण पराग सिन्दूर हुआ। सीताजी का मुख चन्द्रमा हुआ। अहि रामजी की भुजा हुई। भावार्थ यह कि हाथ मे भली भाँति से सिन्दूर लेकर रामजी सीताजी के सिर मे दे रहे है। जैसे सर्प कमल मे अरुण पराग भरकर चन्द्रमा को भूपित करता हो। चन्द्रमा से सर्प को अमृतप्राप्ति का लोभ है। आशा करता है कि भूपित चन्द्र प्रसन्न होकर अमृत देगा। आगे चलकर चन्द्र द्वारा सर्प को अमृतदान भी दिखलावेंगे। यथा लहकौरि गौरि

१ यहाँ अतिशयोक्ति रूपक है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सिखाव रामहिं सीय सन सारद कहै। लहकौरि के रसम मे भुज रूपी सर्प को अधरामृत के स्पर्श का अवसर मिलेगा।

छ. बैठे बरासन रामु जानकि मुदित मन दसरथु भये।
तनु पुलक पुनि पुनि देखि अपने सुकृत सुरतरु फल नये॥
भरि भुवन रहा उछाहु राम बिआहु भा सबही कहा।
केहि भाँति बरनि सिरात रसना एकु यहु मंगल महा॥
तब जनक पाइ बसिष्ठ आयसु ब्याह साज सँवारि कै।
मांडवी श्रुतिकीरति उरमिला कुँअरि लईं हँकारि कै॥
कुसकेतु कन्या प्रथम जो गुन सील सुख सोभामई।
सब रीति प्रीति समेत करि सो ब्याहि नृप भरतहिं दई॥
जानकी लघु भगिनी सकल सुंदरि सिरोमनि जानि कै।
सो तनय दीन्ही ब्याहि लषनहि सकल बिधि सनमानि कै॥
जेहि नाम श्रुतिकीरति सुलोचनि सुमुखि सब गुन आगरी।
सो दई रिपुसूदनहि भूपति रूप सील उजागरी॥
अनुरूप बर दुलहिनि परसपर लखि सकुचि हिय हरषहीं।
सब मुदित सुन्दरता सराहहिं सुमन सुर गन बरषहीं॥
सुंदरी सुंदर बरन्ह सह सब एक मंडप राजहीं।
जनु जीव उर चारिउ अवस्था बिभुन सहित बिराजहीं॥

अर्थ : राम जानकी श्रेष्ठ आसन पर बैठे। राजा दशरथ के मन मे मोद हुआ। अपने पुण्यरूप कल्पवृक्ष में नया फल देखकर बार बार रोमाञ्च होने लगा। भुवन मे उछाह भर गया। सब कोई कहने लगे कि रामजी का ब्याह हो गया। कैसे वर्णन करते बने। जिह्वा तो एक ही है और यह मङ्गल बड़ा भारी है। तब जनकजी ने वसिष्ठ मुनि की आज्ञा पाकर ब्याह का साज सँवारकर माण्डवी श्रुतिकीर्ति और उर्मिला कुँअरि को बुला लिया। कुशकेतु राजा की बड़ी लड़की जो गुणशीलशोभामयी थी उसका ब्याह सब रीतियो की प्रीति के समेत करके राजा ने भरतजी से कर दिया। जानकीजी की छोटी बहन को सब सुन्दरियो की शिरोमणि जानकर उस कन्या का ब्याह लक्ष्मणजी के साथ सब प्रकार से सम्मान करके कर दिया। जिसका नाम श्रुतिकीर्ति था जो सुलोचनी, सुमुखी और सब गुणो मे निपुण थी उस रूप शील उजागरी को राजा ने शत्रुघ्नजी को दिया। सब दूल्हे और दुलहिन एक दूसरे के अनुरूप थे। वे एक दूसरे को देखकर सङ्कुचित होते थे और हृदय मे हर्षित होते थे। सबलोग मुदित होकर सुन्दरता की प्रशंसा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



करते थे और देवता पुष्पो की वर्षा करते थे। सुन्दरियाँ सुन्दर वरो के साथ एक मण्डप म शोभा देती है। मानो जीव के उर म चारो अवस्थाएँ अपने अपने विभुओ के साथ विराजमान है।

व्याख्या वरासन पर बैठने से विवाह की समाप्ति द्योतित होती है। सो वरासन पर राम जानकी को बैठे देखकर महाराज दशरथ को बडा मोद हुआ। इष्टदर्शन से जो आनन्द होता है उसे मोद कहते है। इस मोद से महाराज को बारबार रोमाञ्च हो रहा है। जनक सुकृत मूरति बैदेही। दसरथ सुकृत राम धरे देही। इन सम कोउ नहि सिव अवराधे। कोउ नहि इन समान फल लाधे। सो वैदेही दशरथजी को पुत्रवधू के रूप से प्राप्त हुई। इसलिए अपने पुण्यरूपी कल्पवृक्ष म यह नया फल देखकर मुदित हो रहे हैं। दुष्ट राजाओ ने कहा था तोरेउ धनुष ब्याहु अवगाहा। सो रामजी का ब्याह हो गया। उन सबो का किया कुछ न हो सका। अथवा लोगो को बडी उत्सुकता थी। यथा जौ विधिवस अस बनै सजोगू। तौ कृतकृत्य होहि सब लोगू। कि रामजी का ब्याह हो जाय सो हो गया। अत सबलोग कहने लगे कि रामजी का ब्याह हो गया। अथवा इस विवाह मे साधारण विघ्न नही उपस्थित हुए। पहिल धनुषभङ्ग ही असाधारण व्यापार था। किसी भाति वह टूटा तो सब राजा बिगड गये। यथा लेहु छुडाइ सीय कह कोऊ। धरि बाँधहु नृप बालक दोऊ। सबसे महा विघ्न यह उपस्थित हुआ कि परशुरामजी आपडे और धनुषभङ्ग करनेवाल को वध करने के लिए खोजने लगे। यथा कहु जड जनक धनुष कै तोरा। बेगि देखाउ मूढ नत आजू। उलटौं महि जहँ लहि तव राजू। सो रामजी का ब्याह निर्विघ्न समाप्त हो जाय इस बात की बडी लालसा थी। ब्याह हो जाने पर उछाह बढ गया। सब कहने लगे कि रामजी का ब्याह हो गया। यह महामङ्गल है जिसमे असख्य नरनारी आनन्द मना रहे हैं। एक मङ्गलक्रिया के बाद ही दूसरा मङ्गल आरम्भ हो जाता है। एक मङ्गलाचार का वर्णन समाप्त होने ही नही पाता तब से दूसरा मङ्गल प्रारम्भ हो जाता है। अत एक रसना नही कह सकती। एक रसना से एक रसास्वादन करते ही करते कितने रस छूट जाते हैं। इसलिए कवि कहते हैं कि यह महामङ्गल एक रसना से कहा नही जा सकता।

अब शेष तीनो भाइयो का ब्याह वसिष्ठजी की आज्ञा से हो रहा है और वसिष्ठजी को महाराज जनक कुलदेव की दृष्टि से देखते हैं। यथा कुल इष्ट सरिस वसिष्ठ पूजे। अत वसिष्ठजी की सम्मति को महाराज जनक कुलदेव की आज्ञा म महाराज दशरथ की स्वीकृति की आवश्यकता नही है। सो वसिष्ठजी की आज्ञा हुई और राजा जनक ने तुरन्त ब्याह साज को सँवारकर क्योकि पहिल से बात तय नही हुई थी तीनो कुमारियो को बुलवा लिया।

राजा जनक दो भाई थे। सीरध्वज और कुशध्वज। सीरध्वज ही बडे थे। ये ही मिथिला के राजा थे और जनक कहलाते थे। छोटे भाई कुशध्वज को जनकजी ने सकाश्यापुरी को जीतकर वहाँ का राजा बना दिया था। सीरध्वज को

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो कन्यायें थी। सीता और उर्मिला एवं कुशध्वज को भी दो कन्यायें थी माण्डवी और श्रुतिकीर्ति। धर्मशास्त्र की आज्ञा है कि सहोदर भाइयो का सहोदर बहिनो से व्याह नही हो सकता। यहाँ लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी सहोदर भाई थे और माण्डवी और श्रुतिकीर्ति सहोदर बहनें थी। इसी कारण से माण्डवी का व्याह भरतजी के साथ और श्रुतिकीर्ति का शत्रुघ्नजी के साथ हुआ।

भरतजी के चार गुण : बल, शील, गुण और भक्ति। यथा भरत बाहु बल सीलगुन प्रभु पद प्रीति अपार। मन महुँ जात सराहत पुनि पुनि पवन कुमार। और भगवती माण्डवी मे भी चार गुण दिखलाये गये है : गुण, शील, सुख और शोभा। अत वर दुलहिन अनुरूप भी हैं। सब वैदिक और लौकिक रीति करके इसी प्रीति के साथ जिस भाँति जानकीजी का व्याह किया था उसी भाँति माण्डवी का व्याह भरतलाल के साथ हुआ।

लक्ष्मणजी तेज निधान है। यथा : राजन राम अतुल बल जैसे। तेज निधान लखन पुनि तैसे। भगवती उर्मिला सकल सुन्दरी शिरोमणि हैं। अत यह वर दुलहिन भी अनुरूप है। कुशकेतु कन्या प्रथम कहने से श्रुतिकीर्ति का द्वितीय कन्या होना कहा। शेष रही उर्मिला वही जानकीजी की दूसरी बहन है।

भगवती श्रुतिकीर्ति के तीन गुण कहे गये : रूप, शील और निपुणता। यथा : सब गुन आगरी रूप शील उजागरी। इसी भाँति शत्रुघ्नजी के भी तीन गुण कहे गये हैं : शूर, सुशील, भरत अनुगामी। अतः यह वर दुलहिन भी अनुरूप हैं। व्याह हो जाने पर माण्डवी और भरतजी एक आसन पर विराजमान हुए। उर्मिला और लक्ष्मणजी एक ही आसन पर विराजमान हैं तथा भगवती श्रुतिकीर्ति और शत्रुघ्नजी एक आसन पर विराजमान है। इस भाँति बैठने मे इनको गुरुजनो का सङ्कोच है और मनोवाञ्छित जोडी की प्राप्ति से मन मे हर्ष है। इन जोडियो की ऐसी शोभा हुई कि सब लोग सुन्दरता की सराहना करने लगे। देवताओ की सराहना भी पुष्पवर्षा से अनुमित हुई।

इस समय चारो सुन्दरियाँ अपने अपने सुन्दर वरो के साथ एक ही मण्डप मे शोभायमान है। इस शोभा की उपमा देते हुए कवि कहते है कि जैसे जीव के हृदय मे चारो अवस्थाएँ अपने अपने विभु के साथ विराजमान हो। यहाँ जनकपुर है। अत प्रधानता सुन्दरियो की है। उन्ही की अपने अपने वरो के साथ सुशोभित होने की उपमा दी जा रही है।

अवस्थाएँ चार हैं : जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरीय। इनके विभु क्रम से विराट्, हिरण्यगर्भ, ईश्वर और ब्रह्म हैं। यहाँ तुरीयावस्था सीताजी हैं और उनके विभु ब्रह्म राम हैं। यथा : तमेकमद्भुत प्रभु तुरीयमेव केवलम्। रामजी के सदृश भरतजी हैं। यथा : भरत राम ही की अनुहारी। सहसा लखि न सकहिं नर नारी। और तुरीय के सदृश ही सुषुप्ति हैं। अत सुषुप्ति के विभु माण्डवीपति भरतजी हैं। तुरीय और सुषुप्ति अवस्था भी ऐसी मिलती जुलती हैं कि सहसा साधक को लखाई नही पडती कि उसे सुषुप्ति हो गई या समाधि लग गई तथा सहसा ब्रह्म और ईश्वर मे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भेद लखाई नही पडता। सुषुप्ति और स्वप्न का साथ है। इसी भाँति उनके विभुओ का भी साथ है। वहाँ स्वप्न के विभु की उपमा शत्रुघ्नजी के साथ ठीक बैठती है। क्योकि उनका साथ भरतजी से है। यथा भरत शत्रुहन दूनो भाई। प्रभु सेवक जिमि प्रीति बढाई। और स्वप्न तथा जाग्रत् मे अत्यन्त सादृश्य है। स्वप्न देखता हुआ पुरुष अपने को जागता हुआ ही उस समय मानता है। एव उनके विभुओ मे भी सादृश्य है। हिरण्यगर्भ और विराट् एक रूप हैं। इस भाँति शत्रुघ्न और लक्ष्मण मे सादृश्य है। यथा लखन सत्रुसूदन एक रूपा। नख सिख ते सब अग अनूपा। अत परिशेष न्याय से लक्ष्मणजी की उपमा जाग्रत के विभु से ठीक बैठती है। दूसरी बात यह है कि जाग्रत् और तुरीय का साथ है। तुरीय की प्राप्ति जाग्रत् से ही सम्भव है। सुषुप्ति या स्वप्न से कोई तुरीयावस्था को नही प्राप्त कर सकता। इसी भाँति इनके विभुओ का भी साथ हुआ। यथा भरत शत्रुहन दूनौ भाई। प्रभु सेवक जिमि प्रीति बडाई। अत जाग्रत् के विभु की उपमा लक्ष्मणजी के साथ है। तुरीय और सुषुप्ति अव्यक्ता-वस्था है। अत इनके विभुओ राम और भरत का रङ्ग श्याम है और जाग्रत् तथा स्वप्न व्यक्तावस्था है। अत इनके विभुओ लक्ष्मण और शत्रुघ्न का रग गौर है। जाग्रत् का सस्कार ही स्वप्न है। अत जाग्रत् अवस्था ही ज्येष्ठ है सो उसके विभु लक्ष्मणजी शत्रुघ्नजी से ज्येष्ठ है।

जीव का हृदय ही एक ऐसा स्थल है जहाँ सब कुछ सम्भव है। वही चारो अवस्थाएँ एकत्र रह सकती हैं। अत जनकजी के मण्डप की उपमा जीव के हृदय से दी।

दो मुदित अवधपति सकल सुत, बधुन्ह समेत निहारि।
जनु पाये महिपाल मनि, क्रियन्ह सहित फलचारि ॥३२५॥

अर्थ सब बेटा को बहुआ के साथ देखकर अयाध्याधिपति मुदित हैं। मानो भूपालमणि ने क्रियाओ के सहित चारो फल प्राप्त कर लिये।

व्याख्या एक बेटे को बहू के साथ देखना दुलभ था। क्योकि रामजी विषयरस से रूखे थे। यथा राम पुनीत विषय रस रूखे। लोलुप भूप भोग के भूखे। सो आज चारो बेटा को बहुओ के साथ देख रहे हैं। अत मुदित हैं। पहिले ही कह आये है नृप समीप सोहहि सुत चारी। जनु धन धर्मादिक तनु धारी अब वे ही वधुओ के सहित हैं। इसीलिए क्रियाओ के सहित चारो फलो की प्राप्ति कहते है। धर्म की क्रिया सुकृति है। अर्थ की क्रिया व्यापृति उद्योग है। काम की क्रिया रति और मोक्ष की क्रिया भक्ति है। फलरूप होने से मोक्ष और काम क्रम से रामजी और भरतजी की उपमाएँ हैं तथा साधनरूप होने से धर्म और अर्थ लक्ष्मण और शत्रुघ्न की उपमाएँ हैं।

जसि रघुबीर ब्याह बिधि बरनी। सकल कुँअर ब्याहे तेहि करनी ॥
कहि न जाइ कछु दाइज भूरी। रहा कनक मनि मडप पूरी ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ जैसी रामजी के व्याह की विधि वर्णन की गई है उसी विधि से सब राजकुमारो को व्याहा। दायज इतना दिया गया कि कहा नही जा सकता। सोने और मणियो से मण्डप भर उठा।

व्याख्या महाराज ने भरतजी को आज्ञा दी चलहु वेगि रघुवीर बराता। सो बारात रामजी के व्याह के लिए चली। स्त्रिया ने गीत भी सीताजी और रामजी का नाम लेकर गाया था। भरत शत्रुघ्न तो बारात म आये थे। किसी को पता भी नही कि इन लोगो का भी व्याह होगा। सो रामजी का व्याह हो गया। वसिष्ठजी की आज्ञा शेष तीनो कुँअरियो के व्याह देने के लिए हुई। जनकजी ने उसी करणी से तीना का व्याह किया। श्रद्धा या दायज म कोई त्रुटि नही हुई। सुवर्ण और मणि से मण्डप भर उठा। यह महाराज जनक की अलौकिक श्रद्धा और ऐश्वर्य का परिचायक है।

कवल वसन विचित्र पटोरे। भाँति भाँति वहु मोल न थोरे॥
गज रथ तुरग दास अरु दासी। धेनु अलकृत कामदुहा सी॥२॥

अर्थ अनेक प्रकार के वडे मूल्यवान् और ढेर के ढेर ऊनी सूती और रेशमी कपडे हाथी, रथ दास, दासी अलकृत गायें कामधेनु-सी।

व्याख्या यह सब दायज वर पूजन और कन्यादान म मिला है। महाराज जनक ने जिस भाँति यज्ञ म चादी निन्दित है क्याकि वह रुद्र के रोने से उत्पन्न हुई कही जाती है। सोरोदीत् उसी भाँति उसे समझकर चाँदी से काम न लिया। सब प्रकार के वस्त्र दिये। हाथी घोडे, रथ, दास, दासी और गाय दी।

वस्तु अनेक करिअ किमि लेखा। कहि न जाइ जानहि जिन्ह देखा॥
लोकपाल अवलोकि सिहाने। लीन्ह अवधपति सबु सुखु माने॥३॥

अर्थ अनेक वस्तुएँ जिनका क्या लखा किया जाय ? वे ही जान सकते हैं जिन्होने देखा है। परन्तु कही नही जा सकती। जिन्हे देखकर लोकपाल सिहाते हैं। अयोध्यानाथ ने सबको सुखपूर्वक स्वीकार किया।

व्याख्या राजोपचार से वरपूजन हुआ। ऊनी, सूती, और रेशमी वस्त्र वस्त्रोपवस्त्र के लिए दिये। चतुरगिणी सेना के लिए गजरथ तुरग दिये गय। पैदल नही दिय जा सक्त। अत दास दासी दिये गये। हवि के लिए गायें दी गईं शास्त्रदृष्टि स गौ का कोई मूल्य नही है। छत्रचामरादि समस्त राजोपचार दिये गये। जिन्हे देखकर लोकपाल सिहाते है। अत कवि कहते हैं कि मैंने वैसी वस्तुएँ देखी ही नही हैं। वर्णन क्या करूँ। मै तो जानता ही नही। जिन्हाने देखा है वे ही जानते हैं। जो दायज वर को दिया जाता है वह सब उसके पिता की सम्पत्ति मानी जाता है। सो महाराज दशरथ ने जनकजी के प्रीत्यर्थ उन्हे आदर क साथ ग्रहण किया। परन्तु क्षत्रिय की प्रीति प्रतिग्रह म नही होती। अत

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दीन्ह जाचकन्हि जो जेहि भावा। उबरा सो जनवासेहिं आवा॥
तब कर जोरि जनकु मृदु बानी। बोले सब बरात सनमानी॥४॥

अर्थ जो जिसे अच्छा लगा उसे वही दिया। इस भाँति याचको को दे दिया। जो देने से बचा वह जनवास मे आया। तब जनकजी हाथ जोडकर सब बारात का सम्मान करते हुए बोले।

व्याख्या फिर दायज मिलते ही महाराज दशरथ की आज्ञा से याचकगण विवाहमण्डप मे बुलाये गये। आज्ञा हुई कि जिसे जो पसन्द हो चुन ले। दसरथ सहित समाजु बिराजे। विभव बिलोकि लोकपति लाजे। ऐसे महाराज को लौकिक दायज क्या जँचेगा। इसलिए राजा जनक ने ऐसा दायज दिया जिसे देखकर लोकपाल सिहरने लगे स्वर्ग के दु खो मे डाह भी एक प्रधान दु ख है कि ऐसी वस्तुएँ मेरे पास नही हैं। सो ऐसी वस्तुएँ याचको मे बाँटी जा रही है। पहिले ही याचक बहुत पा चुके हैं। यथा भइ बकसीस याचकन्हि दीन्हा। इसलिए सन्तुष्ट है। उनके लेने पर भी बहुत कुछ सामान बच गया। वही जनवास मे आया। इससे महाराज दशरथकी नि स्पृहता दानशीलता और दीनबन्धुता कही।

चारो कुँअरो के व्याह के बाद याचको के सन्तोष के बाद महाराज जनक ने पहिले बारात का सम्मान करना उचित समझा। अत हाथ जोडकर मृदुवाणी सब बारात का सम्मान करते हुए बोले। करजोरि कर्मणा सनमानी मनसा तथा मृदुवाणी बोले वाचा सत्कार किया।

छ सनमानि सकल बरात आदर दान बिनय बड़ाइकै।
प्रमुदित महामुनि बृंद बंदे पूजि प्रेम लड़ाइ कै॥
सिरनाइ देव मनाइ सब सन कहत कर संपुट किए।
सुर साधु चाहत भाव सिंधुकि तोष जल अंजलि दिए॥
करजोरि जनकु बहोरि बंधु समेत कोसल राय सों।
बोले मनोहर बयन सानि सनेह सील सुभाय सों॥
संनबंध राजन रावरे हम बड़े अब सब बिधि भये।
एहि राज साज समेत सेवकु जानबीबिनु गथ लये॥
ए दारिका परिचारिका करि पालबी करुना नई।
अपराधु छमिओ बोलि पठए बहुत हौ ढीठ्यौ कई॥
पुनि भानुकुल भूषन सकल सनमान निधि समधी किये।
कहि जात नहि बिनती परसपर प्रेम परिपूरन हिये॥
बृंदारकागन सुमन बरषहि राउ जनवासहि चले।
दुन्दुभी जयधुनि बेद धुनि नभ नगर कौतूहल भले॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तब सखी मगल गान करत मुनीस आयसु पाइ कै।
दूलह दुलहिनिन्ह सहित सुदरि चली कोहवर ल्याइ कै ॥

अर्थ · आदरदान विनय और बडाई करके पूरी बारात का सम्मान किया। प्रमुदित होकर महामुनियो के समूह की पूजा प्रेम को उडेल करके की और वन्दना की। सिर नवाकर देवो को मनाया। हाथ जोडे हुए सबसे कहने लगे कि देवता और साधु तो भाव चाहते है। नही तो क्या समुद्र का तोष जलाञ्जलि देने से होता है।

फिर जनकजी भाई सहित हाथ जोडकर कोसलपति से स्नेह शील और सुन्दर भाव से सनी हुई मनोहर वाणी बोले। हे राजन्! आपके सम्बन्ध से हम अब सब प्रकार से बडे हुए। इस राजपाट के समेत हमे बिना राम का सेवक जानना। इन कन्याओ को टहलनी जानकर अपनी अपूर्व करुणा से पालन कीजियेगा। मेरे अपराध को क्षमा कीजियेगा। मैने बडी ढिठाई की है जो आपको बुलवा भेजा है। फिर सूर्यकुल के भूषण महाराज दशरथ ने समधी को सभी सम्मान का भाजन बनाया। परस्पर की विनती कही नही जा सकती। प्रेम से हृदय परिपूर्ण था।

देवताओ ने पुष्पवृष्टि की। महाराज जनवासे चले। नगाडे बजे। जय जयकार हुआ। वेदध्वनि हुई। आकाश मे और नगर मे बडा कौतूहल मचा। तब मुनिजी की आज्ञा पाकर सुन्दरी सखियाँ मङ्गलगान करती हुई दुलहिनो के सहित दुल्हो को कोहवर कौतुकागार मे लिवा ले चली।

व्याख्या इस समय सभी बारात दान की पात्र है। महाराज जनक का दिया हुआ सत्र लेवेंगे। दानो मे सबसे बडा दान सम्मान है। यथा तुलसी कहत पुकारि के सुनो सकल दै कान। हेम दान गज दान ते बडो दान सनमान। अत महाराज जनक ने दान और सनमान दानो से काम लिया। आदर के सहित दान भी किया। विनय और स्तुति भी की। आदर पहिले दान पीछे। दान के स्वीकार के लिए विनय किया। यहाँ रघुवंशियो का समाज जुटा हुआ है। जो सभी स्वय दानी है यथा दातु मतुँ मद्विधा राजपुत्री। मगन लहै न जिनके नही। अत प्रतिग्रह की रुचि नही है। उसे स्वीकार करने के लिए विनय किया। स्वीकार कर लेने पर स्तुति की। सब बारात के सम्मान के बाद महामुनिवृन्द की वन्दना की और पूजा म तो प्रेम बह चला। महाराज बडे प्रेमी है। प्रेम को योग भोग मे छिपाये रहते है। इस समय छिपा न सके। सो प्रेम मानो प्रकट होकर बह चला। उत्तरोत्तर अन्तरङ्ग की पूजा कर रहे है। देवताओ की पूजा पहिले बिना जाने ही की थी। यथा पूजे जनक देव सम जाने। दियो सुआसन बिनु पहिचाने। अत देवताओ को मनाया। अथवा पूजन मे आवाहित देवताओ का विसर्जन किया और फिर आने के लिए प्रार्थना की पुनरागमनाय च। सो मनुष्य मुनि और देवता सबसे विनय हो रही है। उत्तम लोग मान चाहते हैं। मध्यम लोग धन और मान दोनो की इच्छा रखते है। केवल धन की इच्छा रखनेवाले तो निकृष्ट कोटि मे है। यथा उत्तमा मानमिच्छन्ति

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



धन मानश्च मध्यमा । अधमा धनमिच्छन्ति । लोगो को यह भावना न हो कि जनक राजा ने हम लोगो को मध्यम कोटि मे गिन लिया । इसलिए कहते हैं कि मेरा दान समुद्र को जलाञ्जलि दान के तुल्य है । समुद्र से ही जल लेकर उन्ही को जलाञ्जलि दी जाती है । इससे दान कुछ भी न हुआ केवल भक्ति का प्रदर्शन सत्कार मात्र है । स्वल्प दान भी मान अग है । उसकी दान मे गिनती नही है ।

सबसे पीछे खास समधी से विनय करते हैं । महाराज दशरथ दोनो भाइयो के समधी हैं । राजा कुशध्वज सर्वात्मना अपने बडे भाई महाराज सीरध्वज जनक की आज्ञा मे हैं । जो करते हैं जनकजी करते हैं । माण्डवी श्रुतिकीर्ति का विवाह कर दिया । राजा कुशध्वज की सम्मति की भी आवश्यकता न समझी । कुशध्वज राजा कुछ नही बोलते । केवल समधी से विनय करने के समय हाथ जोडने मे सम्मिलित हो गये । मनसा वाचा कर्मणा विनती की । सानि सनेह सील सुभाय सो । मनसा बोल मनोहर वयन । वाचा करजोरि । कर्मणा कहने लगे प्रभु प्रसाद जस जाति सकल सुख पायेउँ । आपके प्रसाद से अब हम सब भाँति बडे हुए । थे नही । बडे के सम्बन्ध से साधारण पुरुष की सब भाँति प्रतिष्ठा बढ जाती है । फिर सब प्रजावर्ग की ओर से बोले कि सम्बन्ध से हम आपके बराबर नही हुए । क्योकि समधी शब्द की व्युत्पत्ति है समाना धीर्यस्य स समधी । केवल सेवकसेव्यभाव स्थापित हुआ । हमलोग प्रजावर्ग के साथ अक्रीतदास हो गये । यहाँ दशरथजी को कोसलराज कहा । जनकजी को मिथिलाधिपति नही कहा । क्योकि राजा जनक इस समय ऐसा बोल रहे है जैसे कोई साधारण पुरुष महाराज से बोले । अत ये कुमारियाँ परिचारिका हुई । अभी अत्यन्त छोटी हैं । बडे लाड प्यार से पाली गई है । इन्हे अपनी अपूर्व करुणा से पालियेगा । जो पुत्री न हो उसपर पुत्रीवत् करणा अपूर्व करुणा है ।

ब्राह्मविवाह मे बुलाकर कन्यादान की विधि है । फिर भी महाराज जनक बुला भेजने की ढिठाई मान रहे है । समझते हैं टूटत ही धनु भयउ विवाहू । बिना बुलाय भी काम चल सकता था । सो हमने बुलवा भेजा । यह बडी ढिठाई हुई । इसलिए क्षमा प्रार्थना करते हैं ।

महाराज दशरथ भानुकुलभूषण हैं । चिट्ठी का सम्मान करनेवाले हैं । जब कोई सम्बन्ध नही था उस समय राजा जनक की चिट्ठी को अभ्युत्थान पूर्वक लिया था । अब तो समधी का सम्बन्ध हो गया है । अत उन्हे सम्मान की निधि बनाया । अर्थात् यह माना कि जिसे आप सम्मान दें वह सम्मान पावे । परस्पर विनय मे यदि प्रेमपूर्णहृदय हो तो वचनअगोचर सुख होता है । यथा मुनि रघुवीर परसपर नवही । वचन अगोचर सुख अनुभवही ।

आज तक यह रसम चली आती है कि पण्डित लोग ब्याह के बाद अपने यजमान की ओर से परस्पर विनती और बडाई के श्लोक पढते हैं । अब विवाह हो गया । समधी की विनती हो गई । महाराज जनवासे को चले । राजा चले कहने का भाव यही है कि अपने साज समाज के साथ चले । राजाय गच्छति का ऐसा ही अर्थ किया जाता है । सो महाराज के चलते समय नगाडे बजे । चारो ओर से जय

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जयकार हुआ। मङ्गल के लिए ब्राह्मणो ने वेदध्वनि की। आकाश और नगर मे महाराज की सवारी देखने की बडी उत्सुकता है।

महाराज के चले जाने के बाद वसिष्ठजी से सखियो ने कुँवरो को कौतुकागार मे ले जाने की आज्ञा माँगी। महाराज के बाद वसिष्ठजी ठहर गये थे। क्योकि चारो कुमार वही थे। वसिष्ठजी ने आज्ञा दे दी। चारो कुमारियो की सखियाँ अलग अलग हैं। वे कुमार कुमारियो को लेकर चली।

मण्डप मे सुदरी सुदर वरन्ह सग कहकर सुन्दरियो की प्रधानता कही थी। शोभित कुमारियाँ हैं। वर उनके साथ है। क्योकि बारातिया के लिए वधुओ का दर्शन नई बात थी। यहाँ वरो की प्रधानता है क्योकि वे मेहमान पहुना हैं।

दो पुनि पुनि रामहि चितव सिय, सकुचति मनु सकुचै न।
हरत मनोहर मीन छवि, प्रेम पियासे नैन ॥३२६॥

अर्थ बार बार रामजी को सीताजी देखती हैं और सकुचित होती हैं। पर मन नही सकुचता। प्रेम के प्यासे नेत्र मनोहर मीन की छवि को हरण करते हैं।

व्याख्या धनुपयज्ञ के समय प्रभुहि चितय पुनि चितव महि राजत लोचन लोल। खेलत मनसिज मीन जुग जनु विधुमडल डोल। प्रभु को स्पष्ट देख रही थी। अत मनसिज मीन जुग का खेलना कहा। यहाँ तो स्पष्ट देख भी नही सकती और मन सकुचित नही होता। इसलिए मन छटपटा रहा है। आँखो को प्रेम की प्यास है। क्योकि खेलने के लिए यथेष्ट स्थान चाहिए। यहाँ स्थान अत्यन्त सकुचित है।

स्याम सरीर सुभाय सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन॥
जावक जुत पद कमल सुहाए। मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाए॥१॥

अर्थ श्याम शरीर स्वभाव से ही सोहावना है। उसकी शोभा कोटिन कामदेव को लज्जित करनेवाली है। चरण कमल मे महावर की शोभा है। जिन पर मुनियो के कमलरूपी भौंरे मँडराया करते हैं।

व्याख्या प्रभु की श्याम शरीर की शोभा बिना शृङ्गार ही अपूर्व है। श्यामता भयावनी होती है। यथा सहित प्रान कज्जल गिरि जैसे। परन्तु यह श्यामता ही विचित्र है। नील सरोरुह नीलमणि नील नीरधर की शोभा है। कामदेव का भी श्यामवर्ण कहा गया है। पर इस श्यामता की शोभा के सामने वह कुछ भी नही है। राम स्याम सतकोटि सुभग तन। निरुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहै। जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुताल है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



च"ण कमल तो आप हो सुन्दर है ' करि मधुप मुनि मन जोगि जन जेहि सेइ अभिमत गति लहै। सो जावकयुत पदकमल को छोडकर तो गति भी नही चाहते। उसी का आनन्द लिया करते हैं। नख शिख वर्णन हो रहा है। इससे पहिले चरणो का ही वर्णन किया। माधुर्य की पराकाष्ठा है। व्याह है। इसलिए ऐसे चरणों मे भी महावर लगा है।

पीत पुनीत मनोहर धोती। हरत बाल रवि दामिनि जोती ॥
कल किंकिनि कटि सूत्रु मनोहर। बाहु विसाल विभूषन सुदर ॥२॥

अर्थ पीली पवित्र सुन्दर धोती थी जो कि प्रभातकाल के सूर्य और विजली की प्रभा को हरण करती थी। कमर मे सुन्दर करधनी और मनोहर करधन था। विशाल भुजाओ पर सुन्दर गहने थे।

व्याख्या पीत रङ्ग हलदी का है। इससे उसे पुनीत कहा। अथवा पीत पुनीत धोती से पीताम्बर लक्षित किया जो पहनने मे पवित्र और देखने मे मनोहर है। बालरवि लाल होते हैं। पर उनकी ज्योति पीली होती है।

धोती के ऊपर किंकिणी है। कटिसूत्र धोती के भीतर है। पर यह कटिसूत्र व्याह मे पहिनाया गया है इसलिए ऊपर है। विभूषण की शोभा विशाल बाहु पर ही है। अथवा विशाल बाहु वीरतासूचक और विभूषण मङ्गल मूचक है।

पीत जनेउ महाछवि देई। करमुद्रिका चोर चितु लेई ॥
सोहत व्याह साज सब साजे। उर आयत उरभूषन राजे ॥३॥

अर्थ पीला जनेव बडी शोभा दे रहा है। हाथ की अँगूठो तो चित्त को चुराए लेती है। व्याह का सब साज सजे हुए शोभा पा रहे है। चौडी छाती पर उर के सुन्दर आभूषण शाभायमान है।

व्याख्या . जनेव भी विवाह मे मिला है। इसलिए कपडो के ऊपर पहने हुए हैं। हाथ मे अगूठी ऐसी है कि जिसने उसे देख लिया वह उसे भूल ही नही सकता। यथा चकित चितव मुँदरी पहिचानी। माया से अस रची न जाई। व्याह के वस्त्रादि सब पहने है। मौर भी अभी नही उतरा है। आयत उर न हो तो मालाएँ एक मे मिल जाती हैं। शोभा नही होती। आयत उर होने से सब मालाएँ पृथक् पृथक् शोभा देती हैं।

पिअर उपरना काँखासोती। दुहुँ आँचरन्हि लगे मनि मोती ॥
नयन कमल कल कुडल काना। वदनु सकल सौदर्ज निधाना ॥४॥

अर्थ : पीले रग के दुपट्टे की काँखासोती पहिने है। जिसके दोनो अञ्चलो मे मणि और मोतियाँ टँकी है। कमल ऐसे नेत्र है। कानो म सुन्दर कुण्डल है और सुन्दर मुख तो मुन्दरता का निधान ही है।

व्याख्या युगपत् सव्यापसव्य ढग से दुपट्टा धारण करने को काँखासोती

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


कहते हैं। दुपट्टे मे जरी का काम है। अत अञ्चलो मे मणि टँके हैं और मोतियो की झालर है। अथवा यथास्थान मणि और मोतियाँ दोनो टँकी हुई है। नेत्र कमलो की भाँति विकसित हैं। कानो मे सुन्दर कुण्डल झलक रहे है। केवल हाथ पैर और मुख ये तीन खुले है। शेष सब अग भूषण वसन से ढके है। मुख की शोभा से ही सब शोभा है। अत सकल सौन्दर्य निधान कहा।

सुदर भृकुटि मनोहर नासा। भाल तिलकु रुचिरता निवासा ॥
सोहत मौरु मनोहर माथे। मगलमय मुकुता मनि गाँथे ॥५॥

अर्थ : भौंहें सुन्दर और नाक मनोहर थी। माथे पर तिलक तो रुचिरता का निवास था। मस्तक पर मोती और रत्नो से गुथा हुआ मनोहर मौर शोभायमान था।

व्याख्या : विवाह का मङ्गलमय समय है। इसलिए कवि ने विकट भृकुटि या भृकुटि मनोज चाप छवि हारी नही कहा और न नासिका की उपमा शुकतुण्ड ही से दी। केवल सुन्दर कह दिया। ऊर्ध्वपुण्ड्र का आकार घर का सा होता है। अत उसे रुचिरता का निवासस्थान बतलाया।

विवाह का प्रधान चिन्ह मौर है। अत उसे मङ्गलमय बतलाया। काम परे कछु और है काम सरे कछु और। तुलसी भाँवर के फिरे नदी सिरावत मौर। इसी समय तक मौर की शोभा है। क्योकि कोहबर मे जाकर मौर उतर जायगा।

छ गाथे महामनि मौर मजुल अग सब चित चोरही।
पुर नारि सुर सुदरी बरहि बिलोकि सब तिन तोरही ॥
मनि बसन भूषन वारि आरति करहिं मगल गावही।
सुर सुमन बरिसहि सूत मागध बदि सुजस सुनावही ॥
कोहबरहि आने कुँअर कुअरि सुआसिनिन्ह सुख पाइ कै।
अति प्रीति लौकिक रीति लागी करन मगल गाइ कै ॥
लहकौरि गौरि सिखाव रामहि सीय सन सारद कहै।
रनिवासु हास बिलास रस बस जनम को फल सब लहै ॥
निज पानि मनि महुँ देखि पति मूरति सुरूप निधान की।
चालति न भुजवल्ली बिलोकनि बिरह भय बस जानकी ॥
कौतुक बिनोद प्रमोदु प्रेम न जाइ कहि जानहि अली।
बर कुँवरि सुदरि सकल सखी लेवाइ जनवासेहि चली ॥
तेहि समय सुनिय असीस जहँ तहँ नगर नभ आनदु महा।
चिर जिअहु जोरी चारु चारयौ मुदित मन सबही कहा ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जोगींद्र सिद्ध मुनीस देव बिलोकि प्रभु दुंदुभि हनी ।
चले हरषि बरषि प्रसून निज निज लोक जय जय जय भनी ॥

अर्थ · सुन्दर मौर मे महामणि लगे हुए थे। सब अङ्ग चित्त को चुराते थे। पुर की स्त्रियाँ और सुरसुन्दरियाँ वर को देखकर तृण तोड़ रही थी। मणि वस्त्र अलङ्कार निछावर करके मङ्गलगान करती थी। आरती करती थी। देवता लोग फूल बरसाते थे। सूत, मागध और वन्दी सुयश सुनाते थे।

सुहागिनें सुख पाकर कुँअर और कुँअरियो को कौतुकागार मे ले गईं और अति प्रीति के साथ मङ्गल गान करके लौकिक रीति करने लगी। लहकौरि मे गौरी रामजी को सिखाती है और सीताजी से शारदा कहती हैं। रनिवास हास विलास के आनन्द वश मे होकर सब जन्म के फल को ले रही हैं।

अपने हाथ की मणि मे स्वरूपनिधान · रामजी की मूर्ति देखकर विरह के भय से जानकी बाहुलता से दृष्टि नही हटाती। कौतूहल हँसी दिल्लगी आनन्द और प्रेम कहा नही जा सकता। उसे सखियाँ जानती है। वर और दुलहिन को सखियाँ लिवाकर जनवासे चली। उस समय नगर मे और आकाश में जहाँ देखिये तहाँ आशीर्वाद सुना जा रहा है। महा आनन्द है। सबने प्रसन्न होकर कहा कि यह सुन्दर चारो जोडियाँ चिरञ्जीवी हो। योगीन्द्र सिद्ध मुनीन्द्र और देवताओं ने प्रभु को देखकर दुन्दुभी बजाई और अपने अपने लोक को जय जय जय कहकर और फूल की वर्षा करके हर्षित हो चले।

व्याख्या अन्य भूषणो मे मणि लगे हैं। पर मौर मे तो महामणि गूँथे गये है। अवयव सस्थान ऐसा रमणीय है मानो चित्त को चुराये लेता है। पुर नरनारि और सुरसुन्दरियाँ प्रभु का दर्शन कर रही हैं। इसीलिए नखशिख वर्णन किया। दर्शन करते समय तृण तोडती है। जिसमे अपनी कुदृष्टि न लग जाय। शची शारदा रमा भवानी आदि सुरसुन्दरी वहाँ उपस्थित है। पहिले निछावर हुई। तब आरती हुई। आरती मे मङ्गलगान हुआ। बाहर देवता लोग पुष्पवृष्टि कर रहे है और वन्दी मागध सूत सुयश सुना रहे है।

कोहवर मे लानेवाली सुहागिनी स्त्रियाँ प्रभु का दर्शन पाकर सुखी हो रही हैं। विवाह का सब कार्य सुहागिनो द्वारा सम्पन्न होता है। कोहवर मे लौकिक रीति होती है। वैदिक रीति तो मण्डप मे हो चुकी। लौकिक रीतियाँ मङ्गलगान के साथ सम्पन्न की जाती है। लहकौरि का रसम कोहवर मे होता है। उसमे वर दुलहिन दोनो को सिखानेवाली स्त्रियाँ होती है। वे वर के हाथ से दुलहिन के मुख मे और दुलहिन के हाथ से वर के मुख मे दही और मिष्टान्न का प्राशन कराती हैं। इसमे खासी हँसी होती है। गौरी की उपासना सीताजी की है। यथा बोली गौरि हरख उर भरेऊ। वे रामजी को सिखला रही है कि वधू के मुख मे दही और मिष्टान्न दे। इधर सरस्वती की उपासना रामजी की है। यथा गुरु प्रसाद सब

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


विद्या पाई। सो सरस्वतीजी ऐसी ही बात सीताजी को सिखला रही है। इस रसम[1] को दहीगुड का रसम भी कहते हैं।

यहाँ भगवती को प्रभु के दर्शन का सुअवसर प्राप्त हुआ। प्रेमपियासे नयन हाथ की मणि मे प्रभु का प्रतिबिम्ब देखने लगे। अत. वे थिर हो गये। विरह के भय से जानकी ने उस मणि से दृष्टि नही हटाई। दहीगुड का कौतुक, देवपूजन सील का बट्टा रखकर उसे इष्टदेव बता बताकर स्त्रियाँ वर से पूजन कराना चाहती हैं। विनोद बत्ती मिलाने : वर से दीप की दो बत्तियो को स्त्रियाँ मिलवाती हैं का प्रमोद। और मौर उतरवाने : यह रसम' सास को करनी पडती है का प्रेम कहने मे नीरस हो जाता है। उन्हें सखियाँ ही जानती हैं। इस भाँति कोहवर का कार्य समाप्त हुआ। अत वरो और दुलहिनो को लिवाकर जनवासे की ओर चली।

मार्ग मे चारो ओर से आशीर्वाद सुनाई पड रहा है। नगर और नभ के निवासी दर्शन प्राप्ति से महा आनन्द का अनुभव कर रहे हैं। योगीन्द्र सिद्ध मुनीश और देवता आकाश मे हैं। इसके लिए दुन्दुभी बजाने का प्रयोग आया है। यद्यपि दुन्दुभी देवताओ ने ही बजायी। परन्तु छत्रिणो गच्छन्ति की भाँति बजाना क्रिया के कर्त्ता सब कहे गये। यथा : हृदय सराहत सीय लोनाई। गुर समीप गवने दोउ भाई। इस अर्धाली मे सीय लोनाई। का हृदय मे वर्णन रामचन्द्र के प्रति ही बनता है। फिर भी साथ होने से दोउ भाई को कर्त्ता कहा गया। देवता लोग जय जयकार करके और फूल बरसा के अपने अपने लोक गये। क्योंकि बारात अभी अधिक दिनो तक ठहरेगी। व्याह कृत्य समाप्त हुआ।

दो. सहित बधूटिन्ह कुँअर सब, तब आए पितु पास।
सोभा मंगल मोद भरि, उमगेउ जनु जनवास ॥३२७॥

अर्थ . श्रेष्ठ कुँअर लोग बहुओ के साथ पिता के पास आये। जनवास मे शोभा, मङ्गल, मोद भरकर उमड चला।

व्याख्या · पिता के पास राजकुमार आये इसलिए दुलहिनो को बधूटी कहा। इस समय जनवास छोटा पड गया। शोभा मङ्गल मोद के समाने के लिए यथेष्ट स्थान नही है। अत मानो बाहर उमड चला। तब से भाव यह कि देवताओ के जाने के बाद। अर्थात् जनवासे तक देवताओ ने पहुँचाया।

---

१. बरन लग राम सिया गुर बानी।
हँसि हँसि गौरि सिखावत गार्वहि सियहि सिखावति हैं ब्रह्मानी।
गुर सो रम दधि से नहि उबिटै प्रेम अटूट निसानी।
मुदित होहि गुन धर्मि देवता यह रहस्य पहिचानी। देवस्वामी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पुनि जेवनार भई बहु भाँती। पठए जनक बोलाइ बराती ॥
परत पाँवडे बसन अनूपा। सुतन समेत गवन कियो भूपा ॥१॥

अर्थ फिर बहुत प्रकार से जेवनार हुई। राजा जनक ने बारातियो को बुला भेजा। बेटो के सहित महाराज दशरथ भी गये। अनूप वस्त्रो के पाँवडे पडते थे।

व्याख्या दूसरे दिन का कृत्य कहते हैं। पहिले दिन भी जेवनार बनी थी। गोधूलि की लग्न थी। इससे विवाह के पीछे जेवनार का विचार था। परन्तु वसिष्ठजी की आज्ञा से क्रमश तीन ब्याह और हुए। तत्पश्चात् कोहबर की रसम। फिर जनवासे भेजना। अर्धरात्रि के बाद भोजन निषिद्ध है। अत उस दिन जेवनार न हो सकी। उमा के ब्याह मे लग्न पिछले पहर थी। इसलिए जेवनार पहिले हुई थी। यहाँ दूसरे दिन फिर से बहुत भाँति जेवनार बनी। कह चुके है अपराध छमिबो बोलि पठयो बहुत हौ ढीठ्यौ कई। अत बारातियो को बुला भेजा।

चक्रवर्तीजी जनकजी की विनय समझ गये। स्वय पुत्रो के साथ चल पडे। पहिले साह्राये बसन पाँवडे पडे थे चलने के समय वस्त्र बिछाने को पाँवडा पडना कहते है। जिससे धरती पर पैर न पडे। वस्त्र पर ही पैर पडते जायँ। आज अनुपम वस्त्र पाँवडे पड रहे है। आतिथ्य सत्कार बढता जा रहा है। जनवासे से ही पावडे पडने लगे।

सादर सबके पाय पखारे। जथाजोगु पीठन बैठारे ॥
धोये जनक अवधपति चरना। सीलु सनेहु जाइ नहिं बरना ॥२॥

अर्थ आदर के सहित सबके पाँव धोये गये और यथा योग्य पीढो पर बिठलाया। जनकजी ने अयोध्याधिपति के पैर धोये। शील और स्नेह का वर्णन नही किया जा सकता।

व्याख्या बारातियो मे से किसी को अपने पाँव अपने हाथ से न धाने पडे। घरातियो ने यथायोग्य सब बारातियो के पैर धोये। भोजन मे पीढो के व्यतिरिक्त अन्य आसन विहित नही है। अत सबको पीढा दिया गया और जो जिस योग्य था उसे वहाँ बिठाया। चक्रवर्तीजी के पैर स्वय राजा जनक ने धोये। जनक का शील स्नेह और सुन्दर भाव केवल वचन मे ही नही है। यथा बोले मनोहर बैन सानि सनेह सील सुभाव सो। क्रिया मे ता इतना शील स्नेह है जिसका वर्णन नही हो सकता।

बहुरि राम पद पकज धोए। जे हर हृदय कमल महु गोए ॥
तीनिउ भाइ राम सम जानी। धोये चरन जनक निज पानी ॥३॥

---

१ पाँवडा सस्कृत म पादपतनम् शब्द है। उसी का तद्भवरूप पाअवडण जिसे पाँवडा कहा गया है। व कपड जो पैर रखने के लिए बिछाये जाते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : फिर श्रीरामजी के चरणकमल धोये। जिन्हें शिवजी अपने हृदय कमल में छिपाये रहते हैं। तीनों भाइयों के पैर जनकजी ने रामजी के समान जानकर अपने हाथ से धोये।

व्याख्या श्री रामजी के चरणकमल सदा शिवजी के हृदय मे विराजमान रहते हैं। यथा · जे पद सरोज मनोज अरि उर सर सदैव विराजहीं। उनमे महावर लगने से तो मुनियो के मन भौंरों के झुण्ड की भाँति उन पर गिरे पडते थे। जावक जुत पद कमल सुहाये मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाये। इसलिए शङ्करजी ने अपने हृत्कमल मे छिपा रक्खा था उन्हे जनकजी ने अपने हाथ से धोया।

जनकजी के ज्ञान मे बाध नही है। तीनो भाई रामजी के समान थे। यथा राम लखन तुम्ह सत्रुहन सरिस सुअन सुचि जासु। अतः जनकजी का वर्ताव भी समान है। समान करणी से चारो भाइयो का व्याह किया। आज समान श्रद्धा से चारो भाइयो के पैर धो रहे हैं।

आसन उचित सबहि नृप दीन्हे। बोलि सूपकारी सब लीन्हे ॥
सादर लगे परन पनवारे। कनक कील मनि पान सँवारे ॥४॥

अर्थ : राजा जनक ने सबको उचित आसन दिया। सब रसोईदारो को बुलवाया। आदर के साथ पत्तल पडने लगे। मणि के पत्तो की पत्तलें बनी थी और वे पत्तें सोने की कील से जोडे गये थे।

व्याख्या आसन भी राजा जनक ने स्वय दिया। पहिले भी · निज पानि जनक सुजान सब कहि आनि सिंहासन धरे कहा था। बारात बडी है और एक साथ मिलाना है। अत सब रसोईदार बुलाये गये और परोसने के काम मे लगा दिये गये। ऐश्वर्य की पराकाष्ठा है। बडी बहुमूल्य कारीगरी है। अचिन्त्य ऐश्वर्य को साधारण रूप दिया जा रहा है। देखने में पत्तल हैं। परन्तु वस्तुतस्तु वे मणि के पात्र हैं। जिनमें बारातियो को परोसा जायगा।

दो. सूपोदन सुरभी सरपि, सुदर स्वादु पुनीत।
छन महुँ सबके परुसिगे, चतुर सुआर विनीत ॥३२८॥

अर्थ सुन्दर स्वादिष्ट और पवित्र दाल भात और गाय का घी क्षण भर मे चतुर और विनीत रसोईदार सबको परोस गये।

व्याख्या . रसोईदार बडे सिद्धहस्त हैं। रसोई परोसने मे बडी चतुराई से काम लेना पडता है। जिसमें स्पर्दास्पर्द के नियम मे कोई बाधा न पडे। सो रसोईदार क्षणभर मे सबको परोस गये। परोसने मे बडी त्वरा से काम लिया और किसी का अनादर न हो पाया। दाल भात और गाय का घी ही ऐसा भोजन है। जिससे कभी मन नही ऊबता। इसलिए सुन्दर स्वाद कहा और सात्त्विक भोजन है। इसलिए पुनीत कहा। पञ्चाग्निहोत्र में पहिले आये हुए पदार्थ से ही पाँच ग्रास ग्रहण किया जाता है और उसमे भी गोघृत और ओदन ही प्रशस्त है। गो दुग्ध

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



परोसा गया। जिसमे जब से पञ्च ग्रास ग्रहण करें तब से शेष सामान परोस दिया जाय।

पंच कवलि करि जेवन लागे। गारि गान सुनि अति अनुरागे ॥
भाँति अनेक परे पकवाने। सुधा सरिस नहि जाहि बखाने ॥१॥

अर्थ पञ्च प्राण के लिए पाँच आहुति देकर भोजन करने लगे। गाली का गाना सुनकर अत्यन्त अनुराग युक्त हुए। अनेक प्रकार के पक्वान्न परोसे जाने लगे। वे अमृत के सदृश थे। उनका बखान नही हो सकता।

व्याख्या पद पाताल सीस अजधामा का ध्यान करके पाँच आहुति प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान इन पाँचो प्राणो को देना और तत्पश्चात् मौन होकर भोजन करने का विधान है। भोजन के प्रारम्भ मे और अन्त मे मन्त्रपूर्वक आचमन करना होता है। यह वैश्वानर विद्या है। तदनुसार भोजन प्रारम्भ हुआ। फीकी पै नीकी लगै कहिये समय विचारि। सबको मन हर्षित करै ज्यौं विवाह मे गारि। वस्तु कोई भी बुरी नही है। उसका उचित रीति से उचित समय से उचित मात्रा मे प्रयोग होना चाहिए। महात्माओ ने आनन्द मे विभोर होकर उस समय के गालीगान की कल्पना की है। यथा दसरथ गोर कौसिला गोरी तुम साँवर केहि घर से। इत्यादि। जिस गाली से प्रेम उत्पन्न हो वह गाली नही है। वह सर्वथा स्तुत्य है और जो बुरी लगे वह सर्वथा तिरस्करणीय है। भोजन आरम्भ होने के बाद पक्वान्न परोसे गये। वे प्रकार मे अनेक थे। गुण मे सुधा सदृश थे। स्वाद मे अवर्णनीय थे।

परुसन लगे सुआर सुजाना। बिंजन बिबिध नाम को जाना ॥
चारि भाँति भोजन बिधि गाई। एक एक बिधि बरनि न जाई ॥२॥

अर्थ सुजान रसोईदार परोसने लगे। अनेक प्रकार के व्यञ्जन बने थे। उनका नाम कौन जानता है। चार भाँति की भोजन विधि कही गई है। एक एक विधि का वर्णन नही हो सकता।

व्याख्या रसोईदार बडे सुजान है। अनेक प्रकार के व्यञ्जन जिनका नाम जानना कठिन है परोस रहे हैं और ऐसी व्यवस्था से कि किसी का किसी से मिश्रण नही होता और न कोई व्यञ्जन परोसने मे छूटता है।

लेह्य, पेय, चव्य, चोष्य ये चार प्रकार पाक शास्त्र मे कहे गये है। इसलिए विधि गाई कहा है। उनमे से एक एक की अनेक विधि है। जो वर्णनातीत है।

छ रस रुचिर बिंजन बहु जाती। एक एक रस अगनित भाँती ॥
जेवत देहि मधुर धुनि गारी। लै लै नाम पुरुष अरु नारी ॥३॥

अर्थ · छवो रसो के सुन्दर व्यञ्जन बहुत भाँति के बने थे और एक एक रस के असख्य प्रकार थे। खाते समय मधुर ध्वनि से पुरुष और नारियो का नाम ले लेकर गाली देती थी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या · रस छ सख्या मे रुचिर देखने मे बहुत भाँति गुणो के तारतम्य से। फिर रसो के समिश्रण से असख्य प्रकार के पक्वान्न बने थे। प्रेम की गाली की ध्वनि भी मधुर होती है। क्रोध मे प्रशसा के शब्दो की भी ध्वनि कठोर होती है। अवध की स्त्रियो का नाम नही मालूम है। इसलिए पुरुषो का नाम साथ मे जोडकर गाली देती हैं। अथवा पुरुष और स्त्रियो का नाम ले लेकर गाली देती हैं। क्योकि जिसका नाम गाली मे छूट जायगा वही समझेगा कि मेरा सम्मान नही हुआ।

समय सुहावनि गारि विराजा। हँसत राउ सुनि सहित समाजा ॥
येहि विधि सबही भोजनु कीन्हा। आदर सहित आचमनु दीन्हा ॥४॥

अर्थ : सुहावन समय पर गाली शोभित हुई। महाराज समाज सहित सुनसुनकर हँस रहे हैं। इस विधि से सबने भोजन किया और आदर के सहित आचमन लिया।

व्याख्या · अति आनन्द के समय सभ्यता का बन्धन कुछ ढीला पड जाता है। उस समय सभी समाज मे सभ्यता की मर्यादा का उल्लघन स्वभाव से ही हो जाता है। उस समय का व्यङ्ग्य अतिप्रिय होता है। यथा : गारी मधुर सुर देहि सुन्दरि व्यग वचन सुनावही। भोजन करहि सुर अति विलंब विनोद सुनिसुख पावही। इसीलिए कहते हैं कि इस मङ्गल समय मे गाली की भी शोभा हुई। क्योंकि इससे आनन्द की मात्रा बढ गई। प्रेम की गाली सुनकर अवध नरेश समाज के सहित हँस रहे है। इस विधि से सबने भोजन किया। परन्तु भोजन समाप्त होने पर सावधान हो गये। आदर के सहित आचमन लिया। आचमन का मन्त्र है। उसे मनमे उच्चारण करके आचमन लिया जाता है। गाली इत्यादि हँसी होती रही। परन्तु यथाशास्त्र भोजन विधि मे अन्तर नही हुआ। यह पञ्चाग्निहोत्र है। इस भोजन का अग्निहोत्र के समान फल है।

दो. देइ पान पूजे जनक, दसरथ सहित समाज।
जनवासेहि गवने मुदित, सकल भूप सिरताज ॥३२९॥

अर्थ · पान देकर राजा जनक ने महाराज दशरथ का समाज के सहित पूजन किया। सब राजाओ के शिरोमणि प्रसन्न होकर जनवासे गये।

व्याख्या पान स्वय जनकजी ने दिया। तत्पश्चात् गन्धाक्षतादि से पूजन किया। अभी भोजन के समय के विनोद का रस बना है। अत. भूपशिरोमणि मुदित जनवासे गये। आये थे बेटो के सहित। यथा : सुनत समेत गवन कियो भूपा। परन्तु जाने के समय बेटे साथ नही है। कुँवर लोग ससुराल मे ही रोक लिये गये।

नित नूतन मगल पुर माही। निमिष सरिस दिन जामिनि जाही ॥
बडे भोर भूपतिमनि जागे। जाचक गुन गन गावन लागे ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ नित्य नया मङ्गल पुर मे होने लगा। रात और दिन पल के समान बीतने लगे। बडे सवेरे महाराज जागे। याचक लोग गुणगण का गान करने लगे।

व्याख्या किसी दिन गोदान है। किसी दिन चतुर्थीकर्म है। किसी दिन पुजाई है। किसी दिन मनौती है। किसी दिन कथा है। मिथिला में नित्य मङ्गल है। जबतक चक्रवर्तीजी मिथिला मे ठहरे तबतक नित्य मङ्गल होता रहा। जहाँ स्वयं रघुनाथजी दूल्हा होकर आये हैं। वहाँ नित्य नया मङ्गल होना आश्चर्य नही। यथा सोह मैना गिरिजा गृह आये। जिमि जन राम भगति के पाये। निति नूतन मगल गृह तासू। ब्रह्मादिक गावहि जस जासू। किसी महात्मा का यह मत भी है भरत सरिस वय राजकुमारा। जो बारात मे आये थे उनके भी विवाह मिथिला मे हुए। अत नित नूतन मङ्गल लिखना सार्थक है। सुख के दिन रात बीतते मालूम नही पडते। इसलिए कहते हैं कि रात और दिन पलक के समान बीतते हैं।

विवाह कृत्य समाप्त होते ही कवि ने यह कह देना उचित समझा कि जब तक बारात टिकी रही नित्य नये मङ्गल जनकपुर मे होते रहे। इसके बाद फिर वही से कथा उठायी जहाँ से छोडी थी। अर्थात् महाराज के जनवासे आने के बाद से कथा प्रारम्भ की।

यद्यपि बहुत रात जाने पर सोये थे। फिर भी बडे भोर जग गये। यथा ' पहिले पहर भूप निज जागा। नीतिशास्त्र भी यह कहता है चिर केशेषु दन्तेषु चिर मूत्रपुरीषयो। अचिर कुरु राजेन्द्र भोजने शयने रणे। दांत और बालो की शुद्धि मे तथा शौचादि मे देर लगानी चाहिए। परन्तु हे राजेन्द्र! भोजन शयन और रण मे त्वरा से काम लेना चाहिए। उदार के घर पर याचकों की भीड रहती है। महाराज दशरथ के आगमन तथा उनकी उदारता की कीर्ति सुनकर याचक लोग जुट गये थे। उन्होने गुणगान करना आरम्भ कर दिया।

देखि कुँअर वर वधुन समेता। किमि कहि जात मोदु मन जेता ॥
प्रातक्रिया करि गे गुरु पाही। महाप्रमोदु प्रेमु मन माहीं ॥२॥

अर्थ श्रेष्ठ कुँअरो को बहुओ के समेत देखकर कितना आनन्द हुआ। वह कैसे कहा जा सकता है। प्रात काल का नित्य कृत्य करके महाराज गुरुजी के पास गये। उनके मनमे महा प्रमोद और प्रेम था।

व्याख्या अहोरा बहोरा के लिए फिर बहुएँ वरो के साथ थोडी देर के लिए जनवासे भेज दी गईं। पहिली बार सहित वधूटिन्ह कुँवर वर पुनि आये पितु पास। इसी भाँति आज भी बडे प्रात काल आये। वहाँ रातभर रतजगा होता रहा। सवेरा होते ही अहोरा बहोरा का रसम किया गया। माता लोग वहाँ न थी। अत महाराज के ही पास आईं। इष्ट दर्शन से महाराज को प्रात काल ही महामोद हुआ।

प्रात क्रिया के विषय म पहिले कह आये हैं, सकल सौच करि जाइ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

नहाए। नित्य निवाहि मुनिहिं सिरनाए। महाराज के नित्यकृत्य मे काल व्यतिक्रम नही होने पाता था। जहाँ कोई नया काम करना हुआ महाराज गुरुजी को आज्ञा ले लेते थे। अतः गुरुजी के पास गये। पुत्रो और पुत्रवधुओ के देखने से महाप्रमोद और गुरुजी के चरणों मे प्रेम था। इसलिए महा प्रमोद प्रेम मन-माही कहा।

करि प्रनामु पूजा कर जोरी। बोले गिरा अमिअ जनु बोरी ॥
तुम्हरी कृपा सुनहु मुनिराजा। भयउँ आज मै पूरनकाजा ॥३॥

अर्थ : प्रणाम करके पूजा की और हाथ जोडकर ऐसी वाणी बोले मानो अमृत मे डुबाई हुई है। हे मुनिराज! सुनिये। आपकी कृपा से आज मेरा मनोरथ सफल हुआ।

व्याख्या : प्रणाम करके पुत्र विवाह के उपलक्ष्य मे गुरुजी की पूजा की। मण्डप मे जनकजी की ओर से गुरुजी की पूजा हुई थी। यहाँ महाराज की ओर से पूजा हो रही है। पूजनोपरान्त मधुर और तोषकारिणी वाणी गुरुजी से हाथ जोड कर बोले। आज मैं पूर्णकाम हुआ : कहने का यह भाव है कि जब मैं पूर्ण काम नही था तभी आज्ञा हुई थी। जिमि सरिता सागर महु जाही। यद्यपि ताहि कामना नाही। तिमि सुख सपति विनहि बोलाए। धर्म सील पहि जाहि सुभाए। आपके वचन अमोघ हैं। उन्होने आज मुझे पूर्णकाम बना दिया : इस वाक्य मे कितना माधुर्य और विनय है। इसलिए अमिअ जनु बोरी : कहा।

अब सब विप्र बुलाइ गोसाईं। देहु धेनु सब भाँति बनाई ॥
सुनि गुर करि महिपाल बडाई। पुनि पठए मुनि बृंद बोलाई ॥४॥

अर्थ : हे गोस्वामिन्! अब सब ब्राह्मणो को बुलाकर सब प्रकार से अलङ्कृत करके गायें दीजिये। सुनकर मुनिजी ने राजा की बडाई की और तब मुनिवृन्द को बुला भेजा।

व्याख्या : महाराज मै दान दूंगा : ऐसा नही कहते। आप दीजिये : ऐसा कहते हैं। आप गोसाईं हैं : मालिक हैं। आपकी आज्ञा से ही दान हो सकता है। सब भाँति बनाई : से ताम्रपृष्ठ, रौप्यखुर, स्वर्णशृङ्ग, मुक्तापुच्छ, कास्यदोहिनी आदि से युक्त करके दीजिये।

सुनकर मुनिजी ने महाराज की प्रशंसा की। धेनु ऋषियो को बडी प्रिय हैं। ऋषि लोग व्याह मे आये हैं। उन्हे धेनु के सिवा और क्या दिया जा सकता है? अतः महाराज की बुद्धिमत्ता और धर्मबुद्धि की प्रशंसा करते हैं। सौभरि[1] ऋषि ने महाराज रघु से कहा कि मेरा मूल्य इन धीवरो को चुका दो। महाराज रघु आधा राज्य देने को तैयार हुए। ऋषिजी बिगड गये कि क्या मेरा मूल्य तेरा आधा राज्य ही है। तब पूरा राज्य देने को तैयार हुए। पर ऋषिजी ने उसे

१. कही कही ऋषि का नाम दूसरा प्राप्त होता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भी कम समझा। तब गुरु वसिष्ठजी के पास जाकर सब समाचार कहा। गुरुजी ने कहा कि दूसरे वियान की सुन्दर गाय सुसज्जित करके दो। इसपर ऋषिजी प्रसन्न होकर नृत्य करने लगे कि वसिष्ठजी ने मेरा मूल्य इतना अधिक आँका इससे मैं धन्य हुआ। सक्षेपत ऋषियो को गोधन बडा प्रिय है। अत वसिष्ठजी ने राजा की बुद्धिमत्ता की और धर्मबुद्धि की प्रशसा की।

दो वामदेउ अरु देवरिषि, वालमीकि जाबालि।
आए मुनिवर निकर तब, कौसिकादि तपसालि ॥३३०॥

अर्थ वामदेव, नारद, वाल्मीकि, जावालि आदि मुनि समूह तथा विश्वामित्र आदि महातपस्वी आये।

व्याख्या वामदेव, नारद, वाल्मीकि, जाबाल आदि को मुनि कहा। क्योकि ये लोग स्थितप्रज्ञ हैं। जिन्हे दु ख मे उद्विग्नता और सुख की स्पृहा नही। जो राग भय और क्रोध से रहित है। ऐसे स्थितप्रज्ञ को मुनि कहते है। इन्हे किसी वस्तु की स्पृहा नही फिर भी गोदान लेने आये। विश्वामित्र आदि को तपसालि कहा। इनको कुछ भी दुर्लभ नही है। यथा तप ते अगम न कछु ससारा। ये लोग भी आये। इनका आना वसिष्ठजी के बुलावे पर दाता को अनुगृहीत करने के लिए हुआ गोदान के देने और लेने दोनो मे पुण्य है।

दड प्रनाम सबहि नृप कीन्हे। पूजि सप्रेम बरासन दीन्हे॥
चारि लच्छ बर धेनु मगाई। कामसुरभि सम सील सोहाई॥१॥

अर्थ राजा ने सबको दण्डवत् प्रणाम किया। प्रेम के साथ पूजन करके श्रेष्ठ आसन दिया। चार लाख श्रेष्ठ गौ जो कामधेनु सी सीधी और सुन्दर थी मँगाई।

व्याख्या राजा की श्रद्धा कहते है। जो जो ऋषि आते जाते है उनमे से प्रत्येक को दण्डवत् प्रणाम करते है। सबकी प्रेम सहित पूजा करते है। तब श्रेष्ठ आसन पर गोदान के लिए बिठाते है। हिन्दुओ मे परिगृहीता की पूजा होती है। क्योकि उसने कृपा करके दान लेना स्वीकार किया है। प्रतिग्रह का बडा दोष हिन्दू शास्त्र मे कहा गया है और साथ ही साथ दान का बडा माहात्म्य भी वर्णित है। इसी मे शोभा भी है कि दाता देना चाहे और प्रतिगृहीता लेना न चाहे। क्योकि दाता को तो पुण्य होता है और प्रतिगृहीता का पुण्यक्षय प्रतिग्रह से होता है। एक पुत्र के विवाह के उपलक्ष्य मे एक लक्ष गोदान के विचार से चार लक्ष गौ मँगायी। अधिक सख्या मे दान करने मे गायो के लक्षणादि पर विचार नही किया जा सकता। पर महाराज के यहाँ सब बातो का विचार किया गया। कामसुरभि से उपमा देकर उन गायो को दुधार कहा गया। शील से सीधी होना और सुहाई से सुन्दर कहा।

सब विधि सकल अलकृत कीन्ही। मुदित महिप महिदेवन दीन्ही॥
करत विनय बहु विधि नरनाहू। लहेउँ आजु जग जीवन लाहू॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ : सब प्रकार से सबको अलकृत करके प्रसन्न होकर महाराज ने पृथ्वी के देवताओ को दिया। राजा ने बहुत प्रकार से विनय की कि आज मुझे संसार मे शरीर धारण का लाभ हुआ।

व्याख्या : गाय को दान के पहिले अलंकृत करने की शास्त्रो मे आज्ञा है। सो जैसा अलकृत करने का विधान है उस विधान से चारों लाख गाये अलकृत की गई। दान देनेवालो को दान देने के समय अत्यन्त आनन्द होना चाहिए कि मेरा बडा भाग्य है जो दान कर रहा हूँ। यथा : रामहिं सुमिरत रनभिरत देत परत गुरु पाय। तुलसी जिन्हहि न पुलक तन ते जग जीवत जाय। दोहावली ४२। अत: लिखते हैं कि महाराज को दान देने मे बडी प्रसन्नता है। ब्राह्मणो की मनुष्यो मे गणना नही है। ये पृथ्वी के देवता है। तप, श्रुति और योनि ब्राह्मणत्व मे कारण है। ब्राह्मण वही है जो ब्राह्मणी से उत्पन्न हो। वेद का ज्ञाता और तपस्वी हो। जिनमे तपश्रुत नही है वे जाति ब्राह्मण है। ये मुनिगण ब्राह्मण के सब लक्षणो से सम्पन्न हैं। ये दान के सर्वोत्तम पात्र है। क्योकि दान मे पात्रनिर्णय बडा कठिन है। कही दान से नरक प्राप्ति भी सुनी गई है। अपात्र को दान देने से पुण्य के स्थान मे पाप होता है। अत बडे भाग्य से सुपात्र दान के लिए मिलते है। क्योकि सुपात्र अपने पुण्य के क्षय के भय से प्रतिग्रह से बचते है। महाराज दशरथ को ऐसे सुपात्र दान के लिए मिले जिनमे थोडा सा भी दान अक्षय हो जाता है। गोदान को पृथ्वीदान के समान कहा गया है। अत: दान और प्रतिगृहीता दोनो उत्तम कोटि के होने से महाराज कह रहे हैं कि आज मुझे शरीर धारण का फल मिला है। प्रतिग्रह स्वीकार किया। इसलिए विनय करते है।

पाइ असीस महीसु अनंदा। लिये बोलि पुनि जाचक बृंदा ॥
कनक बसन मनि हय गय स्यंदन। दिये बूझि रुचि रबिकुलनंदन ॥३॥

अर्थ : आशीर्वाद पाकर राजा आनन्दित हुए। तब जाचक वृन्द को बुलवाया। सोना, वस्त्र, मणि, घोडा, हाथी, रथ उनकी पसन्द पूछकर उनको : सूर्यकुल को आनन्द देनेवाले : राजा दशरथ ने दिये।

व्याख्या : प्रतिग्रह करने पर स्वस्ति कहने का विधान है। सो इतने बडे बडे महर्षियो ने जिनका वचन अमोघ है स्वस्ति कहकर आशीर्वाद दिया। इससे राजा को बडा आनन्द हुआ। राजा दान करने से अघाते नही है। तब निम्न कोटि के पात्र दीन और अनाथो को बुलाया। इन्हे भी दान दिया जाने लगा। योग्यतानुसार नही, रुचि के अनुसार। उनसे पूछ लिया जाता था कि तुम्हे क्या चाहिए? देय का विवरण करते हैं : सोना, कपडा, मणि, घोडा, हाथी और रथ। इनमे जो जिसे पसन्द हो दिया जाय। रविकुलनदन कहने का भाव यह कि : मगन लहैं न जिन के नाहीं। अथवा क्षत्रिय का जन्म दान के लिए है। यथा : दातु मर्तु मद्विधा राजपुत्रि। सो महाराज तो क्षत्रियो मे श्रेष्ठ कुलनन्दन हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चले पढत गावत गुन गाथा । जय जय जय दिनकर कुल नाथा ॥
एहि विधि राम विआह उछाहू । सकै न वरनि सहस मुख जाहू ॥४॥

अर्थ महाराज का विरुद पढते और गुणगाथा को गाते रघुकुलनाथ का जय जयकार मनाते चले। इस विधि से रामजी के व्याह मे उछाह हुआ। इसका वर्णन तो वह भी नही कर सकते जिन्हे सहस्रमुख हैं।

व्याख्या यह राम विवाह के उछाह का वर्णन नही है। केवल विधि का दिग्दर्शन है। इसका वर्णन सहस्रमुख से नही हो सकता। नित्य नया मङ्गल है। लाखो बातें एक साथ होती है और होती चली जा रही है। वैखरी वाणी से एक का भी वर्णन कठिन है। इसलिए कहते है कि सहस्र मुखवाले भी नही कह सकते।

दो वार वार कौसिक चरन, सीसु नाइ कह राउ।
यह सबु सुख मुनिराज तव, कृपा कटाच्छ पसाउ ॥३३१॥

अर्थ बार बार विश्वामित्रजी के चरणो मे महाराज सिर नवाकर कहते है कि हे मुनिराज! यह सब सुख आपके कृपाकटाक्ष के प्रसाद का फल है।

व्याख्या महाराज तो पुत्र के देने से मुकर गये थे। विश्वामित्रजी ने कहा था धर्म सुजस प्रभु तुम कहँ इन्ह कहँ अति कल्याण। सो बलपूर्वक कल्याण कराया। आज उस कठोरता को राजा परम हित मान रहे हैं। उस समय तो कह बठे थे विप्र वचन नहिं कहेउ विचारी। सब सुत मोहि प्रिय प्रान की नाईं। राम देत नहिं बनै गोसाईं। पर विश्वामित्रजी अड गये। अन्त मे राजा को देना पडा। इस प्रकार हठ करके राजा का परम कल्याण किया। अत कौशिक के चरण मे बार बार सिर नवाते है कि ऐसा बलपूर्वक कल्याण करनेवाला कौन है ?

जनक सनेहु सीलु करतूती । नृप सब भाँति सराह बिभूती ॥
दिन उठि विदा अवधपति माँगा । राखहि जनकु सहित अनुरागा ॥१॥

अर्थ जनकजी के स्नेह शील करणी तथा विभूति की राजा सब भाँति से सराहना करते थे। अयोध्यानाथ नित्य उठकर विदा माँगते थे। परन्तु जनकजी उन्हे प्रेम से रख लेते थे।

व्याख्या सब लोग तो जनकजी की प्रशसा करते ही थे। स्वय महाराज दशरथ जनकजी के १ स्नेह २ शील ३ करतूत और ४ विभव की सराहना सब भाँति से करने लगे।

१ जनकजी का स्नेह। यथा राखहि जनक सहित अनुरागा। इत्यादि।
२ जनकजी का शील। यथा धोए जनक अवधपति चरना।
निज पानि जनक सुजान सब कह आनि सिंहासन धरे।
३ जनकजी की करतूत। यथा कहि न जाय कछु दायज भूरी।
रहा कनक मनि मडप पूरी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


४ जनकजी का विभव। यथा : जो सपदा नीच गृह सोहा।
सो बिलोकि सुर नायक मोहा।
बिधिहि भयेउ आचरज बिसेखी।
निज करनी कछु कतहुँ न देखी।
सब समाज सजि सिधि पल माही।
जो सुख सुरपुर सपनेहु नाही।
लिए सपदा सकल सुख सुरपुर भोग बिलास। इत्यादि।
अत. कहते है। नृप सब भाँति सराह बिभूती।

बुलाने से आये हैं। विदा माँगकर जायँगे। सबेरे उठते ही विदा माँगना यह चक्रवर्तीजी का शील है। व्यर्थ का बोझा नही देना चाहते। अवधपति हैं। अत अवध की चिन्ता है। परन्तु प्रेम का बन्धन बडा प्रबल होता है। यथा : बन्धनानि खलु सन्ति बहूनि प्रेमरज्जुकृतबन्धनमन्यत्। दारुभेदनिपुणोपि षडघ्रि निष्क्रियो भवति पङ्कजकोषे। जनकजी के प्रेम से बँधे हुए है और वे जाने देने को राजी नही होते।

नित नूतन आदरु अधिकाई। दिन प्रति सहस भाँति पहुनाई ॥
नित नव नगर अनद उछाहू। दसरथ गवनु सोहाइ न काहू ॥२॥

अर्थ : नित्य नया आदर बढता जाता है। नित्य सहस्रो प्रकार से आतिथ्य सत्कार होता है। नगर मे नित्य नया आनन्द और उछाह है। दशरथजी का जाना किसी को सोहाता नही।

व्याख्या अतिपरिचयादवज्ञा। सो यहाँ नही है। नित्य नया आदर है और मात्रा भी अधिक होती जाती है। जनकजी की तो बडाई हुई है। पर महाराज दशरथ भी ऐसे गुणी हैं कि जितना परिचय होता जाता है उतनी ही उनके प्रति श्रद्धा भी बढती जाती है। अत सत्कार सहस्रो भाँति अधिक होता जाता है : आजकल भी बारात के सत्कार मे इतना तो कर ही देते है कि भोजन के पदार्थों की भाँति के कुछ न कुछ नित्य बढा देते है और अन्तिम दिन की जेवनार जिसे बडहार कहते है उसमे पूरी शक्ति लगा देते हैं।

नित नूतन मगल पुर माही से उपक्रम करके : नित नव नगर आनद उछाहू से उपसहार करते है। महाराज दशरथ का जाना राजा जनक को क्या किसी को भी नही सोहाता। चक्रवर्तीजी का स्वभाव ऐसा प्रजारञ्जक है कि सब प्रजा चक्रवर्तीजी से प्रेम करने लगी। अथवा रामजी के विरह के भय से दशरथजी का जाना नही अच्छा लगता।

बहुत दिवस बीते एहि भाँति। जनु सनेह रजु गये बराती ॥
कौसिक सतानद तब जाई। कहा बिदेह नृपहिं समुझाई ॥३॥

अर्थ : इस प्रकार से बहुत दिन बीत गये। मानो बाराती स्नेह की रस्सी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

मे बँध गये है। विश्वामित्रजी तथा सतानन्दजी ने जाकर विदेहराज को समझा-कर कहा।

व्याख्या तीन महीने से ऊपर इस भाँति बीत गये। चक्रवर्तीजी के विदा माँगते और जनकजी को रोक रखते इतने दिन बीते। बाराती भी नही ऊबते। वे भी प्रेम बन्धन मे बँध गये है। तब विश्वामित्रजी तथा सतानन्दजी दोनो मुनि राजा जनक को समझाने गये। जिससे राजा को यह मालूम हो कि दोनो ओर के हितचिन्तको की सम्मति विदाई के पक्ष मे है। मालूम होता है कि पहिले सतानन्दजी को बुलाकर विदाई की आवश्यकता दिखलाकर राजी कर लिया गया। तब उन्हे साथ लेकर स्वय विश्वामित्रजी गये और विदेहराज को समझाया। यथा

दो रहति बरात जितेक दिन, बीते मास तितेक।
दिन बीतेहू घटिहि नहिं, प्रीति विचारहु नेक॥
सहिबो ही है एक दिन, सुता विरह की पीर।
क्यो न सहै सो आजही, तुम सो पडित धीर॥
प्रजा पालिबे ते अधिक, नृपहिं धर्म नहिं आन।
बिदा करहु दशरथ नृपहि, अस मन समुझि सुजान॥

**अब दसरथ कहँ आयसु देहु। जद्यपि छाडि न सकहु सनेहू॥**
**भलेहि नाथ कहि सचिव बोलाए। कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए॥४॥**

अर्थ यद्यपि प्रेम छोडे नही छूटता। फिर भी अब दशरथजी को आज्ञा दीजिये। राजा ने कहा अच्छी बात है। नाथ और मन्त्रियो को बुलवाया। उन्होने जयजीव कहकर सिर झुकाया।

व्याख्या विश्वामित्रजी ने कहा कि अब दशरथ को आज्ञा दो। सिवा उनके महाराज का नाम लेकर इस भाँति कौन कहे। भाव यह कि आप को अप्रसन्न करके चक्रवर्तीजी नही जायँगे। अब बहुत हो गया। उन्हे आज्ञा दीजिये और प्रेम बनाये रखिये। आग्रह किसी बात का न करना यही बुद्धि का फल है। विदेहराज ने बात मान ली। भारी व्यवस्था करनी है। इसलिए मन्त्रियो को बुलवाया। प्राचीन परिपाटी थी कि मन्त्री राजा का अभिनन्दन जयजीव कहकर करते थे। अर्थ यह है कि आप चिरञ्जीव हो और आप की जय हो। ऐसा कहकर उनलोगो ने प्रणाम किया।

**दो अवधनाथु चाहत चलन, भीतर करहु जनाउ।**
**भए प्रेमबस सचिव सुनि, बिप्र सभासद राउ॥३३२॥**

अर्थ अयोध्यानाथ जाना चाहते हैं। सो भीतर समाचार पहुँचा दो। यह सुनकर मन्त्री, ब्राह्मण सभासद और राजा प्रेम के वश हो गये।

व्याख्या महाराज जनक ने मन्त्रियो को आज्ञा दी कि भीतर रनिवास मे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



समाचार जाकर दो कि अयोध्यानाथ जाना चाहते हैं। मैं तो अब भी नही चाहता। पर वे अब अधिक नही रुक सकते। भाव यह कि विदाई की तैयारी के लिए अन्त पुर मे जाकर कहो। दसरथ गवन सोहाइ न काहू का साफल्य दिखलाते है कि इतना सुनते ही मन्त्री, ब्राह्मण और सभासद प्रेमवश हो गये और कहते कहते राजा जनक प्रेम के वश हो गये। अथवा यहाँ राउ से राजा कुशध्वज का अभिप्राय है। वे भी राजा जनक की आज्ञा सुनकर प्रेमवश हो गये।

पुरवासी सुनि चलिहि बराता। बूझत बिकल परसपर बाता ॥
सत्य गवनु सुनि सब बिलखाने। मनहु साँझ सरसिज सकुचाने ॥१॥

अर्थ बारात जायगी यह बात पुरवासियो ने सुनी। एक दूसरे से विकल हो पूछने लगे। जाने की बात ठीक है सुनकर सब बिलखने लगे। जैसे सायकाल के समय कमल सकुचित हो जाते है।

व्याख्या बारात आने पर सबको बडा हर्ष हुआ था। यथा प्रथम बरात लगन ते आई। ताते पुर प्रमोद अधिकाई। ब्रह्मानद लोग सब लहही। बढहु दिवस निसि बिधिसन कहही। इसलिए बारात की विदाई मे विषाद हुआ। बात फैल गई। अप्रिय समाचार को शीघ्र हृदय ग्रहण नही करता और उनकी समझ म अभी बारात का और ठहरना उचित था। अत समाचार की सत्यता निश्चय करने के लिए एक दूसरे से पूछते हैं। विकल हैं। अत परस्पर पूछते है। नही तो पूछनेवाले से पूछना नही बनता।

जिसे समाचार ज्ञात था उसने कहा बात सच्ची है। सुनते ही सबको शोक हुआ। पहिले कमल की भाँति विकसित थे। अब सङ्कुचित हो गये। दिनकर कुलभूषण का वियोग है। इसलिए सायकाल के समय कमलवन के सकुचने से उपमा दिया।

जहँ जहँ आवत बसे बराती। तहँ तहँ सिद्ध चला बहु भाँती ॥
बिबिध भाँति मेवा पकवाना। भोजन साजु न जाइ बखाना ॥२॥

अर्थ जहाँ जहाँ आते समय बाराती टिके थे तहाँ तहाँ बहुत प्रकार की रसद सामग्री चली। अनेक प्रकार के मेवा पक्वान्न और भोजन की सामग्री जिनका बखान नही हो सकता।

*व्याख्या* बीच बीच बरबास बनाये। सुरपुर सरिस सम्पदा छाये। वही आते हुए बाराती टिके थे। उन्ही निवास स्थानो पर कच्चा सामान भेजा जाने लगा। जिस क्रम से आये थे उसी क्रम से जावेंगे। मेवा जल्पान के लिए पक्वान्न भोजन के लिए और भी भोजन का साज पीढा, पत्तल, चटनी, अँचार आदि भेजे गये।

भरि भरि बसह अपार कँहारा। पठई जनक अनेक सुसारा ॥
तुरग लाख रथ सहस पचीसा। सकल सवारे नख अरु सीसा ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ बैलो पर लाद करके और असख्य कहारो को महाराज जनक ने सुन्दर मलाई, दही, छेना आदि लेकर भेजा। एक लाख घोडे और पचीस सहस्र रथ सबको सिर से पैर तक सँवार कर भेजा।

व्याख्या बेसर ऊँट पर नही भेजे गये। निन्दित वाहनो पर पक्वान्न नही भेजा। कँहारो पर बहँगी कांवर द्वारा दधि चिउरा उपहार चला। सार का अर्थ है मलाई, दही, छेना आदि। कही सुआरा के स्थान पर सुआरा पाठ है। वहाँ यह अर्थ करना होगा कि सूपकारो को भी महाराज जनक ने भेजा कच्ची रसोई बनाने के लिए। रुचिरुचि जीन तुरग तिन साजे। बरन बरन वर बाजि बिराजे। ऐसे एक लाख घोडे। रथ सारथिन्ह विचित्र बनाये। ऐसे पचीस सहस्र रथ। सिर से पैर तक सबका शृङ्गार हुआ। एक लाख घोडे, रथ के घोडो को छोडकर।

मत्त सहस दस सिंधुर साजे। जिन्हहि देखि दिसि कुजर लाजे॥
कनक बसन मनि भरि भरि जाना। महिषी धेनु बस्तु बिधि नाना॥४॥

अर्थ सजे हुए दसहजार मतवाले हाथी। जिन्हे देखकर दिग्गज लज्जित हो जायँ तथा सोना वस्त्र और मणि गाडियो मे भर भरकर तथा भैंसे, गाय तथा अन्य नाना प्रकार की वस्तु।

व्याख्या कलित करिबरन्ह परी अँबारी। कहि न जात जेहि भाँति सवारी। ऐसे दस सहस्र हाथी। जिन्हे देखकर दिग्गज लोग लज्जित हो। जनकपुर के निकट ही जङ्गल है। जिसमे हाथी होते है। अत बडे डाल डौल के मतवाले हाथी चुन चुनकर भेजे गये। दिसि कुजर लाजे कहने का भाव ही यही है कि यहाँ के हाथी अयोध्या के हाथियो से भारी है।

सोना बसन और मणि तो गाडियो पर लादे गये। दायज म भैंस गाय भी दी जाती है। इनकी गिनती नही लिखी। क्योकि ये गिनकर भेजी ही नही गई और भी अनेक प्रकार की वस्तुएँ जिनका नाम कवि नही गिना सके।

दो दाइज अमित न सकिय कहि, दीन्हि बिदेह बहोरि।
जो अवलोकत लोकपति, लोक सपदा थोरि॥३३३॥

अर्थ फिर महाराज जनक ने अपरिमित दायज दिया। जो कहा नही जा सकता। जिसे देखकर लोकपति के लोको की सम्पदा थोडी मालूम पडी।

व्याख्या पहिले दायज दिया था। उसका परिमाण रहा यथा रहा कनक मनि मडप पूरी। पर इस समय जो दे रहे हैं उसका परिमाण नही है। पहिले जो दिया था उसे लोकपाल अवलोकि सिहाने कहा था। इस समय इतना दिया कि उनके लोको की सम्पदा थोडी जच रही है। पहिल दायज म उत्कर्ष का आधिक्य कहा। इस दायज म उत्कर्षाधिक्य तथा परिमाणाधिक्य कह रहे है।

सबु समाजु यहि भाति बनाई। जनक अवधपुर दीन्ह पठाई॥
चलिहि बरात सुनत सब रानी। बिकल मीन गन जनु लघु पानी॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : सब समाज इस भाँति से सजाकर जनकजी ने अवधपुर भेजवा दिया। बारात चलेगी। यह सुनकर सब रानियाँ ऐसी विकल हुई जैसे मछली थोड़े पानी में विकल हो।

व्याख्या : पहिले घोड़े तब हाथी और तब रथ। बीच में कनक बसन और मणि के यान। पीछे महिषी धेनु तथा बरतन सामान। इस भाँति से रक्षित करके महाराज जनक ने अवधपुर बारात चलने के पहिले ही भिजवा दिये। महाराज दशरथ के साथ भेजने से अवधपुर पहुँचना कठिन हो जायगा। रास्ते में ही महाराज दशरथ दे डालेंगे और दायज का अवधपुर पहुँचना परम आवश्यक है। यदि वहाँ तक न पहुँचा तो लोग क्या कहेंगे। इसलिए सीधे अवध भेज दिया। दूसरी बात यह है कि इन वस्तुओं के लिवा जाने की व्यवस्था का भार महाराज दशरथ पर न पड़े। अत. अपनी व्यवस्था से सब वस्तुएं समधियाने भेजवा दी।

महाराज जनक ने कहा था : अवधनाथ चाहत चलन भीतर करहु जनाउ। सो मन्त्रियों ने अन्त.पुर में खबर दी। समाचार सुनते ही रानियाँ विकल हो उठी। केवल सीताजी की ही माता नहीं। चारो रानियाँ ऐसी विकल हुई जैसे मछलियाँ थोड़े पानी में विकल हो। नीच कीच विच विकल जिमि मीनहि सलिल सकोच। जब समाचार सुनकर पुरवासी विकल हो गये तब माताओं का ऐसा विकल होना आश्चर्य की बात नहीं है।

पुनि पुनि सीय गोद करि लेहीं। देइ असीस सिखावनु देहीं ॥<br>
होयेहु संतत पिअहि पिआरी। चिर अहिवातु असीस हमारी ॥२॥

अर्थ : बारबार सीताजी को गोद में ले लेती हैं और आशीर्वाद देकर शिक्षा दे रही हैं कि सदा पति की प्यारी हो। तुम्हारा सौभाग्य सदा बना रहे यह हमलोगों का आशीर्वाद है।

व्याख्या . पहिले आशीर्वाद देती हैं। दोनों आशीर्वाद सोहाग सम्बन्धी हैं। पति का बना रहना सोहाग है और पति का प्यार बना रहना भी सोहाग है। यथा · मानहु मुख्य देवरानी दुलहिन करि अनुराग। सास सदन मन ललनहू सौतिन्ह दियो सोहाग। राजा लोग कई ब्याह करते हैं। अतः यह असीस परमावश्यक है। तत्पश्चात् पति के बने रहने का आशीर्वाद देती हैं। भारतवर्ष में स्त्रियों के लिए इससे बढ़कर आशीर्वाद नहीं है। यथा : जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते।

सासु ससुर गुर सेवा करेहू। पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू ॥<br>
अति सनेह बस सखी सयानी। नारि धरमु सिखवहिं मृदुबानी ॥३॥

अर्थ : सास ससुर और गुरु की सेवा करना। पति का रुख देखकर आज्ञानुसार कार्य करना। अत्यन्त स्नेहवश सयानी सखियाँ मृदुवाणी से नारीधर्म की शिक्षा दे रही हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या पहिला काम सास से पडेगा। सो उनकी सेवा करना। उसके बाद ससुर गुरुजन से काम तो कभी कदाचित् पडेगा। सो सबकी सेवा करना। आज्ञा मानना ही सच्ची सेवा है। यथा 'आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। सो पति के लिए आज्ञा का बाट न जोहना। बडा परिवार है। वे सङ्कोच से आज्ञा न दे सकेंगे। उनका रुख देखकर काम करना। इसका साफल्य भी उत्तरकाण्ड मे दिखलाया है। यथा कौसल्यादि सास गृह माही। सेवइ सबनहि मान मद नाही। निजकर गृह परिचर्या करई। रामचन्द्र आयसु अनुसरई। इत्यादि 'जेहि विधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवा विधि जानइ।

माताओ ने जो शिक्षा सूत्ररूप मे दी सखियाँ उसीकी व्याख्या करके समझाती है। सयानी है। व्याही हुई है। गार्हस्थ्य धर्म मे चतुर है। व्याह होते ही स्त्रियो के कर्तव्य मे बडा परिवर्तन हो जाता है। पिता माता की प्रधानता हटकर सास ससुर मे आजाती है धर्म भी दूसरा हो जाता है। यथा 'एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पति पद प्रेमा। अत ससुराल जाकर कैसा वर्ताव करना चाहिए सो सयानी सखियाँ सिखाती हैं।

सादर सकल कुँअरि समुझाई। रानिन्ह बार बार उर लाई ॥
बहुरि बहुरि भेटहि महतारी। कहहि विरचि रची कत नारी ॥४॥

अर्थ जिस भाति सीताजी को समझाया। उसी भाँति आदर के साथ राजकुमारी माण्डवी, उर्मिला और श्रुतिकीर्ति को भी समझाया और रानियो ने उन्हे बार बार हृदय से लगाया। माँ बार बार उनसे मिल रही है। कहती है कि ब्रह्मदेव ने स्त्रियो को क्यो बनाया ?

व्याख्या सब कुँअरियो को पृथक् पृथक् समझाने का कारण था। क्योकि सबके लिए पृथक् पृथक् उपदेश थे। बहिन होने के अतिरिक्त जेठानी देवरानी होने का भी नाता आपडा। जेठ देवर के बर्ताव का भी उपदेश दिया। अपनी सास और सौतेली सासो के साथ वर्ताव की भी शिक्षा दी। अति प्रेम से हृदय लगाकर शिक्षा देने का प्रभाव बडा भारी होता है। यथा

अवध रानि की लालसा पूर करहु तुम जाय।
उनकी आज्ञा ते पृथक् भूलि धरेउ जनि पाय ॥१॥
बहिन बहिन की प्रीति जस तैसइ रहै उदार।
पै जेठानि देवरानि को सधै सकल व्यवहार ॥२॥
जेठमान पितु के सरिस सुत सम देवर मानि।
मातु सुता के सरिस ही त्यौ जेठानि देवरानि ॥३॥
अपने सासुन ते अधिक आन सास को मान।
जे प्रिय भूपति को अधिक अधिक तासु मनमान ॥४॥
विनय गहनि सबकी सहनि रहनि विगत अभिमान।
दासी हू को आदरेहु यह कुलवधू विधान ॥५॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



माता मे अधिक प्रेम है। अत बार बार भेटती हैं। बत विधि सृजी नारि जगमाही। पराधीन सपनेहु सुख नाही। ऐसा कहकर कन्या के विरह मे ब्रह्मदेव को उपालम्भ देती हैं पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। पुत्रास्तु स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति। स्त्रियो मे स्वातन्त्र्य की योग्यता ही नही है कि ब्रह्मदेव ने उनको ऐसी क्यो बनाया ?

दो तेहि अवसर भाइन्ह सहित, रामु भानुकुल केतु।
चले जनक मंदिर मुदित, बिदा करावन हेतु ॥३३४॥

अर्थ उसी अवसर पर सूर्यकुल के पताका श्रीरामजी भाइयो सहित जनकजी के महल अन्त पुर मे प्रसन्न होकर विदा कराने चले।

व्याख्या जिस समय माताएँ कन्याओ को समझा बुझा रही थी उसी समय रामजी विदा कराने के लिए भाइयो के महित चले। लौकिक लीला का अनुसरण दिखलाते हैं कि सब भाई मुदित हैं क्योकि विदा कराने जा रहे हैं। मुनि कौशिक तथा सतानन्दजी ने जाकर कहा कि महाराज दशरथ ने मान लिया। तब चारो भाइयो के लिए आज्ञा हुई कि विदा कराने जाओ। अत प्रसन्न होकर चले।

चारिउ भाइ सुभाय सुहाए। नगर नारि नर देखन धाए ॥
कोउ कह चलन चहतहहिं आजू। कीन्ह बिदेह बिदा कर साजू ॥१॥

अर्थ चारो भाई स्वभाव से ही सुन्दर हैं। नगर के नर और नारी उन्हे देखने के लिए दौडे। कोई कहता है कि आज ही जाना चाहते है। विदेह ने विदा की तैयारी कर दी है।

व्याख्या चारो भाई स्वभाव से ही सुन्दर हैं। कहने का भाव यह है कि उनकी सुन्दरता को अधिक करने के लिए किसी बनावट की अपेक्षा नही है। उनके दर्शन के लिए नगर का नारियाँ और नर विदाई का समाचार पाकर दौड पडे। प्रभु के चलते ही खबर तुरन्त फैल जाता है। यथा देखन नगर भूप सुत आये। समाचार पुरबासिन्ह पाये। तथा रगभूमि आये दोउ भाई। अस सुधि सब पुरबासिन्ह पाई। विदा होने का समाचार फैल गया। लोग दौडे कि उनके पहुँचने के पहिले कही अन्त पुर मे न चले जाँय।

एकाएक जाने की बात ठहर गई। आज ही जानेवाले हैं। प्रमाण यह है कि राजा विदेह ने विदाई की व्यवस्था कर दी है। हाथी घोडे आदि रवना हो गये। राजा विदेह ही तो ठहरा। उसने विदा का साज सज दिया। जिसने कहा था यह विवाह बड लाभ सुनयनी। वह कहती है चलन चहत है आजू। बडी हानि हुआ चाहती है।

लेहु नयन भरि रूप निहारी। प्रिय पाहुने भूप सुत चारी ॥
को जानै केहि सुकृत सयानी। नयन अतिथि कीन्हे विधि आनी ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : पहिला काम सास से पडेगा। सो उनकी सेवा करना। उसके बाद ससुर गुरुजन से काम तो कभी कदाचित् पडेगा। सो सबकी सेवा करना। आज्ञा मानना ही सच्ची सेवा है। यथा आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। सो पति के लिए आज्ञा का बाट न जोहना। बड़ा परिवार है। वे सङ्कोच से आज्ञा न दे सकेंगे। उनका रुख देखकर काम करना। इसका साफल्य भी उत्तरकाण्ड मे दिखलाया है। यथा कौसल्यादि सास गृह माही। सेवइ सबन्हि मान मद नाही। निजकर गृह परिचर्या करई। रामचन्द्र आयसु अनुसरई। इत्यादि : जेहि विधि कृपासिंधु सुख मानइ। सोइ कर श्री सेवा विधि जानइ।

माताओ ने जो शिक्षा सूत्ररूप मे दी सखियाँ उसीकी व्याख्या करके समझाती हैं। सयानी हैं। ब्याही हुई है। गार्हस्थ्य धर्म मे चतुर है। ब्याह होते ही स्त्रियो के कर्तव्य में बडा परिवर्तन हो जाता है। पिता माता की प्रधानता हटकर सास ससुर मे आजाती है धर्म भी दूसरा हो जाता है। यथा एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पति पद प्रेमा। अत ससुराल जाकर कैसा वर्ताव करना चाहिए सो सयानी सखियाँ सिखाती हैं।

सादर सकल कुँअरि समुझाई। रानिन्ह बार बार उर लाई ॥
बहुरि बहुरि भेटहि महतारी। कहहि बिरंचि रची कत नारी ॥४॥

अर्थ जिस भाँति सीताजी को समझाया। उसी भाँति आदर के साथ राज कुमारी माण्डवी, उर्मिला और श्रुतिकीर्ति को भी समझाया और रानियो ने उन्हे बार बार हृदय से लगाया। माँ बार बार उनसे मिल रही है। कहती हैं कि ब्रह्मदेव ने स्त्रियो को क्यो बनाया ?

व्याख्या सब कुँअरियो को पृथक् पृथक् समझाने का कारण था। क्योंकि सबके लिए पृथक् पृथक् उपदेश थे। बहिन होने के अतिरिक्त जेठानी देवरानी होने का भी नाता आपडा। जेठ देवर के वर्ताव का भी उपदेश दिया। अपनी सास और सौतेली सासो के साथ बर्ताव की भी शिक्षा दी। अति प्रेम से हृदय लगाकर शिक्षा देने का प्रभाव बडा भारी होता है। यथा

अवध रानि की लालसा पूर करहु तुम जाय।
उनकी आज्ञा ते पृथक् भूलि धरेउ जनि पाय ॥१॥
बहिन बहिन की प्रीति जस तैसइ रहै उदार।
पै जेठानि देवरानि को सधै सकल व्यवहार ॥२॥
जेठमान पितु के सरिस सुत सम देवर मानि।
मातु सुता के सरिस ही त्यौ जेठानि देवरानि ॥३॥
अपने सासुन ते अधिक आन सास को मान।
जे प्रिय भूपति को अधिक अधिक तासु सनमान ॥४॥
विनय गहनि सबकी सहनि रहनि विगत अभिमान।
दासी हू को आदरेहु यह कुलवधू विधान ॥५॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



माता म अधिक प्रेम है। अत वार वार भेटती हैं। कत विधि सृजी नारि जगमाही। पराधीन सपनेहु सुख नाही। ऐसा कहकर कन्या के विरह म ब्रह्मदेव को उपालम्भ देती हैं पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। पुत्रास्तु स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति। स्त्रिया मे स्वातन्त्र्य की योग्यता ही नही है कि ब्रह्मदेव ने उनको ऐसी क्यो बनाया ?

दो तेहि अवसर भाइन्ह सहित, रामु भानुकुल केतु।
चले जनक मंदिर मुदित, विदा करावन हेतु ॥३३४॥

अर्थ उसी अवसर पर सूर्यकुल के पताका श्रीरामजी भाइयो सहित जनक जी के महल अन्त पुर म प्रसन्न होकर विदा कराने चले।

व्याख्या जिस समय माताएँ कन्याओ को समझा बुझा रही थी उसी समय रामजी विदा कराने के लिए भाइयो के सहित चले। लौकिक लीला का अनुमरण दिखलाते हैं कि सब भाई मुदित हैं क्योकि विदा कराने जा रहे है। मुनि कौशिक तथा सतानन्दजी ने जाकर कहा कि महाराज दशरथ ने मान लिया। तब चारो भाइयो के लिए आज्ञा हुई कि विदा कराने जाओ। अत प्रसन्न होकर चले।

चारिउ भाइ सुभाय सुहाए। नगर नारि नर देखन धाए ॥
कोउ कह चलन चहतहहि आजू। कीन्ह विदेह विदा कर साजू ॥१॥

अर्थ चारो भाई स्वभाव से ही सुन्दर है। नगर के नर और नारी उन्हे देखने के लिए दौडे। कोई कहता है कि आज ही जाना चाहते है। विदेह ने विदा की तैयारी कर दो है।

व्याख्या चारो भाई स्वभाव से ही सुन्दर हैं। कहने का भाव यह है कि उनकी सुन्दरता को अधिक करने के लिए किसी बनावट की अपेक्षा नही है। उनके दर्शन के लिए नगर की नारियाँ और नर विदाई का समाचार पाकर दौड पडे। प्रभु के चलते ही खबर तुरन्त फैल जाता है। यथा देखन नगर भूप सुत आये। समाचार पुरवासिन्ह पाये। तथा रंगभूमि आये दोउ भाई। अस सुधि सब पुरवासिन्ह पाई। विदा होने का समाचार फैल गया। लोग दौडे कि उनके पहुँचने के पहिले कही अन्त पुर म न चले जाँय।

एकाएक जाने की बात ठहर गई। आज ही जानेवाले हैं। प्रमाण यह है कि राजा विदेह ने विदाई की व्यवस्था कर दी है। हाथी घोडे आदि रवना हो गये। राजा विदेह ही तो ठहरा। उसने विदा का साज सज दिया। जिसने कहा था यह विवाह बड लाभ सुनयनी। वह कहती है चलन चहत हैं आजू। बडी हानि हुआ चाहती है।

लेहु नयन भरि रूप निहारी। प्रिय पाहुने भूप सुत चारी ॥
को जानै केहि सुकृत सयानी। नयन अतिथि कीन्हे विधि आनी ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ आँख भर के रूप देख लो। राजा के चारो कुमार प्रिय पाहुने हैं। हे सयानी! किस पुण्य से ब्रह्मदेव ने लाकर इन्हे आँखो का मेहमान बनाया है।

व्याख्या उन्ही आठो सखियो का सम्वाद जो दो बार हो चुका है अब तीसरी बार हो रहा है। बोलने का क्रम वही नही है। परन्तु वाक्य सन्दर्भ से जान पडता है कि कौन सखी क्या कह रही है। यथा एक सखी जिसने कहा था यहि विवाह बड लाभ सुनयनी। वही कहती है कोउ कह चलन चहत हैं आजू इसमे हानि कही।

दूसरी बडे भाग विधि बात बनाई कीन्ह विदेह बिदा कर साजू अभाग्य।
तीसरी नयन अतिथि होइहैं दोउ भाई लहु नयन भरि रूप निहारी सौभाग्य।
चौथी रून आइहैं बधु दोउ कोटि काम कमनीय प्रिय पाहुने भूप सुत चारी मनोरथ पूर्ति।

पाँचवी जिसने कहा था बिबिध भाँति होइहि पहुनाई। प्रिय न काहि अस सासुर माई। वही कहती है कि याद तो नही पडता कि मैने कोई ऐसा पुण्य किया हो कि इनके दर्शन मिलें। विधि है सञ्चित मे से कोई पुण्य खोज निकाला हो। को जानै केहि सुकृत सयानी। नयन अतिथि कीन्हे बिधि आनी। इससे पुण्योदय कहा।

छठीसखी जिसने कहा था तब तब राम लखनहि निहारी। होइहि सब पुरलोग सुखारी। वही कहती है यथा

मरनसीलु जिमि पाव पिऊखा। सुरतरु लहै जनम कर भूखा ॥
पाय नारकी हरिपदु जैसे। इन्हकर दरसनु हम कहुँ तैसे ॥३॥

अर्थ मरनेवाला प्राणी जिस भाँति अमृत पावे और जन्म के भुक्खड को जैसे कल्पवृक्ष मिले। नारकी को जैसे विष्णुपद की प्राप्ति हो जाय। हमको तो इनका दर्शन उसी भाँति दुर्लभ है।

व्याख्या वह कहती है कि दर्शन मे महासुख है। इनका दर्शन प्राणद है। तुष्टि देनेवाला है और परम गति विधायक है। हमे तो ऐसा सुखद जान पडता है जैसे मरणशील को अमृत मिल जाय। जन्म के भूखे को कल्पवृक्ष मिल जाय। जो जो वह चाहे वह सब पदार्थ उसे सुलभ हो जाय। नरक वेदना भोगनेवाले को जैसे विष्णुपद परमानन्द की प्राप्ति हो। भाव यह कि हमे तो इनके दर्शन मे ही लोक और परलोक के सब सुख केन्द्रीभूत मालूम पडते हैं।

निरखि राम सोभा उर धरहू। निज मन फनि मूरति मनि करहू ॥
येहि विधि सबहि नयन फलु देता। गये कुँअर सब राज निकेता ॥४॥

अर्थ रामजी की शोभा को देखकर हृदय म धारण करो। अपने मनरूपी सर्प क लिए मूर्ति को मणिरूप बनाओ। इस भाँति सबको नेत्रो का फल देते हुए सब कुँअर राजभवन म पहुँचे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : सातवीं सखी जिसने कहा था : स्याम गौर सब अंग सुहाए। वह कहती है : निरख राम सोभा उर धरहू। इससे शोभा कही।
आठवीं : उपमा कहुँ त्रिभुवन कोउ नाही। निजमन फनि मूरति मनि करहू। इससे प्रीति कही।

वहाँ कहा था : एहि विधि सकल मनोरथ करही। सो मनोरथ की पूर्ति हो गई। अतः कहते हैं : एहि विधि सबहिं नयन फल देता। चले जनक मन्दिर मुदित विदा करावन हेतु से उपक्रम करके मार्ग की कथा का : भये कुँवर वर राजनिकेता से उपसंहार करते हैं।

दो. रूप सिंधु सब बंधु लखि, हरखि उठी रनिवासु।
करहिं निछावरि आरती, महा मुदित मन सासु ॥३३५॥

अर्थ : शोभा के सिन्धु चारो भाइयो को देखकर रनिवास हर्षित हो उठा और सास लोग परम प्रसन्न होकर निछावर और आरती करने लगी।

व्याख्या : चारो भाई रूप के समुद्र हैं। चार कहने का भाव यह कि पृथ्वी मे चार ही समुद्र हैं और सब जलाशय उन्ही के उपजीवी हैं। इसी भाँति पृथ्वी तल मे ये ही चार भाई सुन्दरता की सीमा हैं। और सबकी सुन्दरता सर, सरि, कूप, तड़ाग के समान है। सास हैं। परम सुन्दर जामाताओ को देखकर सब दुःख भूल गईं। हर्षित हो उठी। ये लोग मुदित थे। पर सास तो महामुदित हो गईं। हर्षित तो सम्पूर्ण अन्तःपुर हो उठा। पर सास महा मुदित मन होकर निछावर और आरती करने लगी। करि आरती निछावरि करही : क्रम तो यह है। परन्तु परम आनन्द मे क्रम का निर्वाह न हुआ। पहिले निछावर ही करने लगी। आरती पीछे से की।

देखि राम छवि अति अनुरागी। प्रेम बिबस पुनि पुनि पद लागी ॥
रही न लाज प्रीति उर छाई। सहज सनेहु बरनि किमि जाई ॥१॥

अर्थ : रामजी की छवि देखकर अत्यन्त अनुरक्त हुईं। प्रेम के विवश होकर बार बार चरणो मे गिरी। प्रीति हृदय मे छा गई। इसलिए सङ्कोच छूट गया। स्वाभाविक स्नेह का कैसे वर्णन किया जाय।

व्याख्या : चारो भाइयो को देखकर अनुराग हुआ। पर रामजी को देखकर अत्यन्त अनुराग हुआ। क्योकि प्रभु अधिक सुख सागर हैं। यथा : चारिउ रूप सील गुन धामा। तदपि अधिक सुख सागर रामा। अतः प्रेम के विवश हो गईं। बार बार चरणो मे गिर रही हैं। दामाद से भी सास आरम्भ मे कुछ सङ्कोच करती हैं। कोहबर मे भी नही बोलीं। परन्तु आज प्रीति के बाहुल्य से सङ्कोच जाता रहा। एक भाव के उदारावस्था मे आजाने से अन्य भाव प्रसुप्त अथवा विच्छिन्नावस्था को प्राप्त होते हैं। इस समय प्रीति का परम उत्कर्ष है। अतः सङ्कोचादि भाव तिरोहित हो गये। रामजी पर स्वाभाविक प्रेम है। जैसा माता

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



का अपने शिशु बालक पर होता है। यथा : सहित विदेह बिलोकहिं रानी। सिसु सम प्रीति न जाइ बखानी।

भाइन्ह सहित उबटि अन्हवाए। छरस असन अति हेतु जेवाए॥
बोले राम सुअवसर जानी। सील सनेह सकुचमय बानी॥२॥

अर्थ : भाइयो के सहित उबटन लगाकर नहलाया और अत्यन्त प्रेम से षट्रस भोजन कराया। रामजी अवसर पाकर शील स्नेह तथा सङ्कोचमय वाणी बोले।

व्याख्या : शिशु के समान प्रीति होने से अपने हाथो उबटन लगाया और उसके बाद स्नान कराया। नित्य क्रिया करके आये हैं। उबटन के बाद स्नान काम्य स्नान है। अत इसके बाद अत्यन्त प्रेम से षट्रस भोजन का जिमाना कहते है। जब तक उबटन स्नान और भोजन होता रहा तब तक कुछ कहने का अवसर नहीं समझा। जब सब हो चुकने के बाद सास स्वस्थ होकर बैठी खातिरी हो चुकी तब बडे होने के कारण रामजी बोले। चक्रवर्तीजी ने विदा कराने के लिए भेजा था। सो विदा करने के लिए कहने मे शील, स्नेह और सङ्कोच तीनो बाधक थे। अतः ऐसी वाणी बोले जिसमे तीनो बना रहे।

राउ अवधपुर चहत सिधाए। बिदा होन हम इहाँ पठाए॥
मातु मुदित मन आयसु देहू। बालक जानि करब नित नेहू॥३॥

अर्थ : महाराज अयोध्यापुरी जाना चाहते है। विदा होने के लिए हमे यहाँ भेजा है। मात ! प्रसन्न मन से आज्ञा दीजिये और बालक जानकर सदा प्रेम बनाये रहियेगा।

व्याख्या : शिशु सम प्रेम अपने ऊपर देखकर माँ ऐसा सम्बोधन करते है। जब आये थे तब विषाद मे देखा था और जानते थे कि कन्या की विदाई मे दु ख होता है। अत कहते हैं प्रसन्न मन से आज्ञा दीजिए। विदा करने को नही कहते अपने विदा होने को कहते हैं। महाराज अयोध्या जाना चाहते हैं। हमारा भी साथ जाना आवश्यक है। आप माता है। ऐसा ही प्रेम बनाये रखियेगा। यथा : को रघुबीर सरिस ससारा। सील सनेह निबाहनि हारा। स्वय अयोध्या जाने की इच्छा है। उसे नही कहते हैं। यह प्रभु का शील है। माता सम्बोधन करते हैं। यह प्रभु का स्नेह है। विदा करने को न कहकर अपने विदाई की आज्ञा माँगते हैं। यह प्रभु का सङ्कोच है।

मुदित मन आयसु देहू : इसमे मुदित मन कहने से कन्या की विदाई ध्वनित है। अतः

सुनत बचन बिलखेउ रनिवासू। बोलि न सकहिं प्रेमबस सासू॥
हृदय लगाइ कुअँरि सब लीन्ही। पतिन्ह सौंपि बिनती अति कीन्ही॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : वचन सुनते ही रनिवास विलखने लगा। सास प्रेम के वश कुछ बोल न सकी। सब कुँअरियो को हृदय से लगा लिया और उनके पतियो को सौंपकर अति विनती की।

व्याख्या : अत्यन्त प्यारी होने से हृदय से लगाया। अथवा अपनी प्रीति को व्यक्त किया कि यह मुझे प्राण सी प्यारी है। जिस कुँवरि के जो पति रहे उन्हे उसे सौंपा। महाराज ने कन्यादान मात्र किया। परन्तु देय वस्तु सौंपी नही गयी। अब महारानी उन्हे सौंप रही है। एक दूसरे को पहिचाने रहे इसलिए भी सौंपना आवश्यक था। सदा रक्षा के लिए अति विनय किया। कन्यादान ही ऐसा दान है जिसमे दाता का देय से सम्बन्धविच्छेद नही होता। पुत्रित्व बना रहता है। इसीलिए कन्यादान मे न मम : मेरी नही है ऐसा नही कहते।

छं.[1] करि विनय सिय रामहि समरपी जोरि कर पुनि पुनि कहै।
बलि जाउँ तात सुजान तुम्ह कहुँ विदित गति सबकी अहै॥
परिवारु पुरजन मोहि राजहि प्रानप्रिय सिय जानबी।
तुलसी सुसील सनेह लखि निज किंकरी करि मानबी॥

अर्थ : विनती करके रामजी को सीता समर्पण की और हाथ जोडकर बार बार कहा कि हे तात! मै बलि जाती हूँ। आप सुजान है। आपको सबकी गति विदित है। परिवार पुरजन मुझे और राजा को सीता प्राण के समान प्यारी है। यह जानकर और इसके शील और स्नेह को लखकर : तुलसीदासजी कहते है : इसे अपनी दासी की भाँति मानना।

व्याख्या : राम से ही कृत्य का प्रारम्भ और राम से ही समाप्ति चाहती हैं। कन्यादान का आरम्भ रामजी से ही हुआ। अत सौंपने की समाप्ति भी उन्ही मे जाकर की। सौंपने मे उलटा क्रम होने का यही कारण है। सीताजी मे सबसे अधिक प्रीति है। इसलिए सौंपने के पहिले भी विनय किया और सौंपने के बाद भी विनती करती हैं। रामजी ने माता कहा था इसलिए तात कहती है। तुम ते कछु न छिपी करुनानिधि तुम हो अन्तरजामी। अत: अन्तर्यामी कहती हैं। सुजान कहती हैं। सबकी गति को स्पष्ट करते हुए बतलाती हैं कि परिवार को पुरजन को मुझको राजा को सब बेटियाँ प्रिय हैं पर सीता प्राणप्रिय है। सब इसके सुख से सुखी और दुःख से दुःखी है। सम्पूर्ण राज्य का सुख इसी के सुखी रहने पर अवलम्बित है। माता है : पुत्री के स्नेह को पहिचानती है। अत कहती है कि आप भी इस बात का ध्यान रखना कि इसका कितना प्रेम आप पर है और यह कैसी सुशील है। इसे निज दासी अर्थात् अनन्य गति समझकर मानना। यथा : तेहि ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा।

---

१. यह हरिगीतिका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

 ankurnagpal108@gmail.com

दो. तुम्ह परिपूरन काम, जान सिरोमनि भावप्रिय।
जन गुन गाहक राम, दोष दलन करुनायतन ॥३३६॥

अर्थ : आप परिपूर्णकाम हैं। सुजानों के शिरोमणि हैं और भाव आपको प्यारा है। हे रामजी ! आप भक्तों के गुणग्राहक हैं। दोष के नाश करनेवाले तथा करुणा के घर हैं।

व्याख्या : यदि कहिये कि ऐसी सुन्दरी का कौन आदर नहीं करेगा। इस पर कहती हैं कि आप परिपूर्णकाम हैं। यथा : सब प्रकार प्रभु पूरन कामा। सुजान शिरोमणि हैं। यथा : जानि सिरोमनि कोसल राऊ। आप भावप्रिय हैं। यथा : रीझत राम सनेह निसोते। आप जनगुनग्राहक हैं। यथा : देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने। दोषदलन हैं। यथा : कृपा भलाई आपनी नाथ कीन्ह भल मोर। दूषन भे भूषन सरिस सुजस चारु चहुँओर। और करुणायतन हैं। यथा : करुनामय रघुनाथ गुसाँई। यह गुणग्राम पाँचवाँ मृगशिरा नक्षत्र है। इसमें तीन तारे चमकते हैं। आकार मृगमुख सा है। यह सुनयना-कृत स्तुति है। इसमें १. जानकीजी का समर्पण २. हाथ जोड़कर विनय और ३. चरण ग्रहण : ये ही तीन तारे चमकते हैं। प्रेम पंक जनु गिरा समानी : कहकर मृगमुखाकार कहा। क्योंकि बोल नहीं सकती। सनेहसानी होने से सियराम प्रेम की जननी कहा।

अस कहि रही चरन गहि रानी। प्रेम पंक जनु गिरा समानी ॥
सुनि सनेहसानी बर बानी। बहुबिधि राम सासु सनमानी ॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर रानी चरण पकड़े रह गई। मानो प्रेम के दलदल में वाणी समा गई। स्नेह से सनी हुई श्रेष्ठ वाणी सुनकर बहुत विधि से रामजी ने सास का सम्मान किया।

व्याख्या : चरण पकड़े रह जाने का भाव यह कि यही वर लूँगी। यथा : अस बर माँगि चरन गहि रहेऊ। आगे कुछ न कह सकी। दलदल में जो डूब जाता है वह फिर नहीं निकल पाता। पानी में डूबे हुए को तो जल कई बार ऊपर फेंकता है। अतः रानी की वाणी को दलदल में डूबने की उपमा दी। फिर रानी के मुख से वाणी नहीं निकली।

रामहि केवल प्रेम पियारा। जान लेहु जो जाननिहारा। सो स्नेह से सानी हुई वाणी सुनकर रामजी द्रवीभूत हो गये। सास से एवमस्तु नहीं कह सकते। अतः उनका सम्मान करना ही एवमस्तु कहना है। आप माता हैं। हम लोग आज्ञा-कारी हैं। आपकी आज्ञा हम लोग नहीं हटा सकते। आप व्यर्थ की चिन्ता क्यों करती हैं इत्यादि वाक्यों से समझाना ही बहुत विधि से सम्मान करना है। चरण पकड़े रह गईं। अतः बहुत विधि से सम्मान करके उन्हें तुष्ट किया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



राम विदा मांगत कर जोरी। कीन्ह प्रनाम बहोरि बहोरी॥
पाइ असीस बहुरि सिरु नाई। भाइन्ह सहित चले रघुराई॥२॥

अर्थ : रामजी ने हाथ जोड़कर विदा मांगा और बारबार प्रणाम किया। आशीर्वाद पाने पर फिर प्रणाम करके भाइयों के सहित रामजी चले।

व्याख्या : सब भाइयों की ओर से रामजी ही विदा मांगते हैं। बड़े विनय से हाथ जोड़कर विदा मांगा। सास ने हाथ जोड़कर बातें कही थी। यथा : जोरि कर पुनि पुनि कहै। सो रामजी भी हाथ जोड़कर ही विदा मांगते हैं। सास प्रेम के वश होकर बार बार चरणों में गिरी थी। यथा : प्रेम बिबस पुनि पुनि पद लागी। अतः सरकार भी बारबार प्रणाम करते हैं। अच्छा जाओ : इस भांति कहकर तो सास विदा करेंगी ही नहीं। अतः आशीर्वाद देना ही विदा करना है। जबतक आशीर्वाद नहीं मिलता तबतक विदाई की स्वीकृति नहीं हुई। जब आशीर्वाद मिला तो उसे विदाई की स्वीकृति मानकर पुनः प्रणाम किया और भाइयों के साथ चले। तेहि अवसर भाइन्ह सहित राम भानुकुल केतु। चले जनक मन्दिर मुदित विदा करावन हेतु। भाइयो के साथ आना कहा था। अब भाइयों के साथ जाना कह रहे हैं।

मंजु मधुर मूरति उर आनी। भईं सनेह सिथिल सब रानी॥
पुनि धीरजु धरि कुंअरि हंकारी। बार बार भेटहिं महतारी॥३॥

अर्थ : सुन्दर मधुर मूर्ति हृदय में लाकर सब रानी स्नेह से शिथिल हो गईं। फिर धैर्य धारण करके कुंअरियो को बुलाया और मां बार बार मिलने लगी।

व्याख्या : रघुनन्दन की मूर्ति ही ऐसी सुन्दर और मधुर है कि दर्शन करने वाले को कभी तृप्ति ही नहीं होती और उस मूर्ति के बिना कल नहीं पड़ता। अतः रघुनन्दन की मनोमयी मूर्ति को अपने हृत्कमल में स्थापन करके स्नेह से सब रानियां शिथिल हो गईं।

चारों भाइयों को जाते देखकर और विदाई का यही अवसर जानकर धैर्य धारण किया। कुंअरियों को बुलाया और बार बार माताएँ भेंटने मिलने लगी। विदाई की भेंट और माता का स्नेह ही ऐसा होता है कि एक बार के मिलने से सन्तोष नहीं होता।

पहुंचावहि फिरि मिलहिं बहोरी। बढ़ी परसपर प्रीति न थोरी॥
पुनि पुनि मिलत सखिन्ह बिलगाई। बाल बच्छ जिमि धेनु लवाई॥४॥

अर्थ : पहुंचाती हैं और फिर लौटकर मिलती हैं। दोनों ओर परस्पर बड़ी प्रीति बढ़ी। बार बार मिलते हुए सखियो ने अलग किया। जिस भांति नयी ब्यायी हुई गाय के छोटे बच्चे को कोई अलग कर दे।

व्याख्या : मां मिलकर बेटियो को पहुंचाने चली। कर्त्तव्य से प्रेरित होकर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पहुँचाने चलती हैं और स्नेह से लौटकर फिर मिलती हैं। इस भांति माँ बेटी का प्रेम वियोग के समय और बढने लगा। सखिया ने देखा कि इससे कोई लाभ नही है। केवल वियोग की व्यथा ही बढ रही है। अत उन लोगो ने माँ बेटियो को अलग कर दिया। यहाँ पर कवि ब्यायी गाय की छोटे बच्चे से अलग होने की उपमा देते हैं। अर्थात् दोनो बाँ बाँ करती परवश एक दूसरे से दूर चली जाती हैं। इससे दोनो ओर का रुदन कहा।

दो प्रेमविवस नर नारि सब, सखिन्ह सहित रनिवासु।
मानहुँ कीन्ह विदेहपुर, करुना विरहँ निवासु ॥३३७॥

अर्थ सब स्त्री पुरुष और सखिया वे सहित सब रनिवास प्रेम के विवश हो गये। मानो विदेह राजा के नगर मे करुणा और विरह ने डेरा डाल दिया है।

व्याख्या भावाथ यह कि बडा रोना गाना मचा। मङ्गल के समय कवि रोने का शब्द नही कहना चाहते। इतना ही कहते हैं कि स्त्री पुरुष सखियाँ रानियाँ कोई अपने वश म नही हैं। सब प्रेम के वश हैं। यहाँ स्त्री पुरुष से प्रजा वर्ग से भी अभिप्राय है। इसलिए सम्पूर्ण नगर मे करुणा विरह का डेरा डालना कह रहे हैं।

सुक सारिका जानकी ज्याए। कनक पिंजरन्हि राखि पढाए ॥
व्याकुल कहहिं कहाँ वैदेही। सुनि धीरजु परिहरै न केही ॥१॥

अर्थ जानकीजी ने तोता मैना पाले थे। सोने के पिंजडो मे रखकर उन्हे पढाया था। वे व्याकुल होकर कह रहे है कि वैदेही कहाँ है। यह सुनकर किसका धैर्य नही छूटता ?

व्याख्या सुनकर मनुष्य की बोली का अनुकरण करनेवाल पक्षी भारतवर्ष मे दो हैं एक तोता दूसरे मैना। यथा साधु असाधु सदन सुकसारी। सुमिरहिं राम देहिं गनि गारी। ये पालकर पढाये जाते हैं। कहने का भाव यह कि किसी समय भारत मे तोता मैना के पढाने मे कुछ उठा नही रक्खा जाता था। जानकीजो ने भी तोता मैना पाल रक्खे थे। उनका आदर इतना था कि वे सोने के पिंजडो मे रक्खे गये थे। स्वय भगवती जनकनन्दिनी उन्हे खिलाती पिलाती और पढाती थी। इसका प्रभाव इतना पडा कि वे मानुषी भाषा मे हृद्गत भावो के व्यक्त करने मे समर्थ हो गये थे। वे जब जानकीजी की विदाई के समय व्याकुल होकर बोलने लगे कि वैदेही कहाँ है ? तो सुननेवालो का धैर्य और भी छूट गया।

भये विकल खग मृग एहि भाँती। मनुज दसा कैसे कहि जाती ॥
बधु समेत जनकु तब आए। प्रेम उमगि लोचन जल छाए ॥२॥

अर्थ जब पशु पक्षी इस प्रकार विकल हुए तो मनुष्य की दशा कैसे कही जाय। भाई के सहित तब जनकजी आये। प्रेम के उमडने से उनकी आँखें अश्रु से परिप्लुत थी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : जिस भाँति तोता मैना विकल थे उसी भाँति वहाँ के सब पशु पक्षी विकल थे। वे बोल नहीं सकते थे। परन्तु उनकी दशा देखने से विकलता स्पष्ट व्यक्त थी। कवि कहते हैं कि इस भाँति जानकी सबको प्यारी थीं। मनुष्य में तो चेतना का विकास अधिक है। अतः उनकी दशा अकथनीय हो गयी। इससे सम्पूर्ण जनकपुर के शोकाकुल हो उठने का वर्णन किया।

भाई कुशध्वज के साथ जनकजी : सीरध्वज आये। यहाँ पर कवि ने विदेह न कहकर जनक कहा। जनक शब्द का अर्थ ही पिता है। भाव यह कि पितृभाव से परिपूर्ण होकर आये। भीतर से प्रेम उमगा हुआ है। बाहर आँखों में आँसू भरा हुआ है। भीतर बाहर प्रेममय हो रहे हैं। परन्तु धैर्य धारण किये हुए थे। अपने धैर्य से सबको धैर्य प्रदान करते थे। बड़े भाई का कितना प्रश्रय : अदब था। कुशध्वज भी स्वयं सकाश्यापुरी के राजा हैं। परन्तु जनकजी के सामने मानो उनका अस्तित्व ही नहीं है। जो जनकजी कहे करें वही ठीक। ये किसी बात में कुछ बोलते ही नहीं। एक बार समधी से विनती करने में साथ थे। इस समय विदाई में बड़े भाई के साथ आये हैं। फिर भी कहना सुनना कुछ नहीं। ज्येष्ठाभ्राता पितु समः जेठा भाई बाप के तुल्य है। उसके रहते छोटा अपने को सब प्रातिभाव्यों से विनिर्मुक्त मानता था।

सीय बिलोकि धीरता भागी। रहे कहावत परम बिरागी॥
लीन्हि राय उर लाइ जानकी। मिटी महा मरजाद ग्यान की॥३॥

अर्थ : सीताजी को देखकर धैर्य भाग गया। जनकजी को सब लोग परम विरागी कहते थे। राजा ने जानकी को हृदय से लगा लिया। आज ज्ञान की महा-मर्यादा मिट गयी।

व्याख्या : महाराज विदेह धैर्य को छोड़ना नहीं चाहते थे। परन्तु सीताजी के देखते ही धैर्य उन्हें छोड़कर भाग गया। अर्थात् स्वयं महाराज विदेह रो पड़े। वे अपने को भी विरागी मानते थे। यथा : सहज विराग रूप मन मोरा। और लोग भी उनको परम विरागी कहते थे। यथा : मुनि गन गुरु धुर धरी जनक से। ज्ञान अनल मन कसे कनक से। जे विरचि निरलेप उपाये। पद्म पत्र जिमि जग जल जाये। इसलिए कवि कहते हैं कि लोग कहते थे और ये स्वयं परम विरागी कहलाते थे। सो प्रेम ने ज्ञान पर विजय पायी। ज्ञान मान जहँ एकौ नाहीं। देख ब्रह्म समान सब माहीं। यह ज्ञान की महामर्यादा है और जनक सा कोई ज्ञानी भी नहीं। यथा : जासु ज्ञान रवि भव निसि नासा। वचन किरिन मुनि कमल विकासा। उन्हें न कोई द्वेष्य है न प्रिय है। उन्होंने बेटी को कलेजे से लगा लिया। अब ज्ञान की महामर्यादा कहाँ रही? भाव यह कि यह प्रेम की ज्ञान पर विजय है मोह की नहीं। यथा : तेहि कि मोहममता नियराई। यह सिय राम सनेह बड़ाई।

समुझावत सब सचिव सयाने। कीन्ह बिचारु अनवसरु जाने॥
बारहिं बार सुता उर लाई। सजि सुंदर पालकी मँगाई॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : सयाने मन्त्री समझा रहे हैं। तब विचार किया कि यह प्रेमप्रकाश का अवसर नही है। सो बार बार बेटी को हृदय से लगाकर सजी हुई सुन्दर पालकी मँगायी।

व्याख्या : अब महाराज जनक को कौन समझावे ? तो सयाने मन्त्री समझाने लगे। यथा : कवित्त

महाराज ! मनहि सँभारिये समय को देखि पेखि परिवार सबै धीरज धराइये।
वारी सुकुमारी ये कुमारी करुना की भीर धीर धरि भूपति सुतान समुझाइये।
ज्ञान को विधान मुनि करत बखान जस जाहिर जहान मान मन में न लाइये।
जोग करि थपति विचार के पहारन ते पाटि महिपाल प्रेम वारिधि बँधाइये।

दो. प्रेम विवस परिवार सबु, जानि सुलगन नरेस।
कुअँरि चढाई पालकिन्ह, सुमिरे सिद्धि गनेस ॥३३८॥

अर्थ : सब परिवार प्रेम के विवश था। अच्छी लग्न जानकर राजा ने कुँअरियो को पालकियो पर चढाया और सिद्धिदायक गणेश का स्मरण किया।

व्याख्या : पुरजन रानी और राजा का हाल कहकर अब परिवार का हाल कहते हैं कि सब परिवार प्रेम के वश मे है। कोई अपने काबू में नही। यह काम परिवार का था कि राजकुमारियो को पालकी पर चढ़ावें। पर किसी का इस ओर ध्यान नही है। इस बात को राजा ने जानकर और यह समझकर कि अच्छी लग्न आगयी है। नरेश हैं : इस बात का ख्याल किया कि जितनी देर होगी उतनी ही पीडा सबकी बढेगी राजकुमारियो को पालकियो पर चढाया। सिद्धिदायक गणेश का स्मरण किया। यथा : जेहि सुमिरत सिधि होइ, गननायक करिवर वदन। करहु अनुग्रह सोइ बुद्धिरासि सुभ गुन सदन।

बहुबिधि भूप सुता समुझाई। नारिधरमु कुलरीति सिखाई ॥
दासी दास दिये बहुतेरे। सुचि सेवक जे प्रिय सिय केरे ॥१॥

अर्थ : बहुत प्रकार से राजा ने बेटियो को समझाया। स्त्रीधर्म और कुलरीति सिखायी और दास दासी बहुत से शुचि सेवक जो सीताजी को प्रिय थे उन्हे दिये।

व्याख्या : राजा विदेह ने स्वय पालकी पर चढने के बाद बेटियो को समझाया। यथा :

दो. सखी जायँगी संग सब, तव प्रिय दासी दास।
सब सुपास सब भाँति जनि मनको करो उदास ॥१॥
मिथिला से पश्चिम अवध मिले जुले दोउ देश।
समाचार सब दिन सुलभ, प्रेम अवधि अवधेश ॥२॥
गुरु गृहवास पुनीत जस, तियहि ससुर गृहवास।
गृह कारज निज कर करन, अगिन उपासन खास ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इष्टदेव पतिदेव इक, सोई मन धन प्रान।
ताके नाते सकल प्रिय, सबही को सनमान ।।४।।

अवध जाइ तस आचरेउ, जस लखाइ तहँ रीति।
पालन पति कुल रीति को, यही सनातन नीति ।।५।।

इस भाँति नारिधर्म कुलरीति सिखाकर समझा बुझाकर विदा किया। जानकी जी प्रधान हैं। अतः उन्ही का नाम लेते हैं। यहाँ जानकी शब्द उपलक्षण है उससे सब बेटियो का ग्रहण है। तुरग रथ गज बाजि आदि पहिले भेज चुके हैं। अब बेटियो के साथ दासी दास और शुचि सेवक : जिन सपनेहु निज धर्म न डोले। जो उन लोगो को प्रिय थे उनके साथ भेज दिये। जे प्रिय सिय केरे मे शुकसारिका भी आगई।

सीय चलत ब्याकुल पुरवासी। होहिं सगुन सुभ मंगल रासी ।।
भूसुर सचिव समेत समाजा। संग चले पहुँचावन राजा ।।२।।

अर्थ : सीताजी के चलते पुरवासी व्याकुल हो उठे। शुभमङ्गल की राशि शकुन हो रहे हैं। ब्राह्मण मन्त्री और समाज समेत महाराज पहुँचाने चले।

व्याख्या : जब पालकियाँ चली साथ मे शुचिसेवक दास दासियाँ चले तो देखकर पुरवासी विकल हो उठे। इतना प्रेम पुरवासियो का सीताजी पर है। वे जानते हैं कि जब से जानकी का जन्म हुआ तब से राजा का अभ्युदय होता ही चला जाता है। यथा : तब ते दिन दिन उदय जनक को जब ते जानकि जाई। इस विचार से भी अधिक प्रेम है।

बेटियो के आदर के लिए स्वयं महाराज जनक ब्राह्मण मन्त्रिमण्डल तथा समाज समेत पहुँचाने चले। जिस बनाव के साथ विश्वामित्रजी की अगवानी की थी। यथा : संग सचिव सुचि भूरि भट भूसुर वरगुरु ग्याति। उसी बनाव के साथ पहुँचाने भी जा रहे हैं। वधुओ का अयोध्या को प्रस्थान है। अतः मङ्गलमय कल्याणमय अभिमतफलदातार सगुन हो रहे हैं।

समय बिलोकि बाजने बाजे। रथ गज बाजि बरातिन्ह साजे ।।
दसरथ विप्र बोलि सब लीन्हे। दान मान परिपूरन कीन्हे ।।३।।

अर्थ : समय देखकर बाजे बजने लगे। बारातियो ने रथ हाथी घोडे सजाये। महाराज दशरथ ने सब ब्राह्मणो को बुलाया और दान मान से उन्हे परिपूर्ण कर दिया।

व्याख्या : पालकी के साथ राजा जनक को पहुँचाने जाते देखकर बारात की ओर से बाजा बजा। बारातियो ने साथ जाने के लिए हाथी घोडे और रथ सजाये। यही समय है डोला के साथ बारात के हो जाने का। इधर महाराज दशरथ ने सारे मैथिल ब्राह्मणो को बुलाया और दान तथा सम्मान से उन्हे परिपूर्ण किया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दान के साथ सम्मान परम आवश्यक है। क्योंकि असत्कृत और अवज्ञात दान तामस हो जाता है। यथा : असत्कृतमवज्ञातं तत्तामसमुदाहृतम्। गी.।

चरन सरोज धूरि धरि सीसा। मुदित महीपति पाइ असीसा॥
सुमिरि गजाननु कीन्ह पयाना। मंगलमूल सगुन भये नाना॥४॥

अर्थ : ब्राह्मणो के चरणकमलो की धूलि सिर पर रक्खी और आशीर्वाद पाकर प्रसन्न हो गये। तब गजानन का स्मरण करके प्रयाण किया : रवाना हुए। नाना प्रकार के मङ्गलमूल सगुन हुए।

व्याख्या : ब्राह्मणो के चरणो की धूलि विपत्तिरूपी घने अन्धकार के लिए सहस्र सूर्यो के समान है। चाहे हुए पदार्थ के देने के लिए तो साक्षात् कामधेनु हैं। अपार ससार समुद्र का तो मानो सेतु ही है। ऐसी ब्राह्मण चरणो की धूलि मुझे पवित्र करे : विपद्घनध्वान्तसहस्रभानव समीहितार्थार्पणकामधेनवः। अपारसंसार-समुद्रसेतवः पुनन्तु मा ब्राह्मणपादरेणव.। इस मन्त्र से ब्राह्मण पाद धूरि धारण की जाती है। महाराज ने विधान के साथ ब्राह्मणो की चरण धूलि सिर पर चढायी और आशीर्वाद पाकर प्रसन्न हुए। तब भगवान् गजानन का स्मरण करके प्रयाण किया। क्योकि गजानन विघ्नहर्त्ता मङ्गलकर्त्ता तथा प्रथम पूज्य हैं। प्रयाण करते ही नाना मङ्गल मूल शकुन हुए। यथा . जासु सकल मगलमय कीती। तासु पयान सगुन यह नीती।

दो. सुर प्रसून वरषहिं हरखि, करहिं अपछरा गान।
चले अवध पति अवधपुर, मुदित बजाइ निसान॥३३९॥

अर्थ देवता हर्षित होकर पुष्पवृष्टि करने लगे। अप्सराएँ गान करने लगी। अयोध्याधिपति अयोध्या को डङ्का देकर चले।

व्याख्या : बारात आने पर : सुमन बरखि सुर हनहिं निसाना। नाक नटी नाचहिं करि गाना : कहा था। अब बारात चलते समय हर्षित होकर देवताओ का फूल बरसाना और अप्सराओ का गान कहते हैं। महाराज अयोध्याधिपति जनकपुर चलते समय शख बजाकर चले थे। यथा : चले महीपति सख बजाई। अपने पुर चलते समय डङ्का देकर जाते हैं।

नृप करि विनय महाजन फेरे। सादर सकल मॉंगने टेरे॥
भूपन वसन बाजि गज दीन्हे। प्रेम पोपि ठाढे सब कीन्हे॥१॥

अर्थ : महाराज ने विनय करके महाजनो को लौटाया और आदर के साथ सब मगनो को बुलवाया। उन्हे अलङ्कार, वस्त्र, घोड़े और हाथी दिये और प्रेम से परिपुष्ट करके : अपने पैरो पर खड़ा कर दिया।

व्याख्या : महाजन का अर्थ जनसमुदाय भी है और प्रतिष्ठित पुरुष भी है। यहॉं पर जनसमुदाय के अर्थ मे ही महाजन शब्द प्रयुक्त हुआ मालूम पड़ता है।

ankurnagpal108@gmail.com



क्योंकि पहले कह आये हैं कि : दसरथ गवन सोहाय न काहू। महाराज दशरथ से सब प्रीति करने लग गये थे। उनका प्रस्थान सुनकर जनसमुदाय इकट्ठा हो गया। प्रतिष्ठित जन का महाराज जनक के समाज के साथ रहना ही अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। सो महाराज दशरथ ने सबसे विनय करके उनको लौटाया। परम उदार के यहाँ ही याचक का सत्कार सम्भव है। नही तो याचक का सत्कार कौन करता है ? यथा : दीनदयाल दिवोइअ भावै जाचक सदा सोहाही। सो महाराज दशरथ ने सत्कार के साथ याचकों को बुलवाया। महाराज पहिले ब्राह्मणों को दान देते हैं तत्पश्चात् याचको का सत्कार करते हैं। अतः उन्हे कपडे, गहने, घोडे, हाथी दिये और प्रेम से उन्हे पुष्ट किया। जिस वस्तु का उन्हे अभाव था उसकी पूर्ति की। उन्हे इस योग्य बना दिया कि वे अपने पैरो पर खड़े हो सकें। स्वयं अपना काम चला लें। याचकवृत्ति छोड़ दें।

बार बार बिरदावलि भाखी। फिरे सकल रामहि उर राखी॥
बहुरि बहुरि कोसलपति कहही। जनक प्रेमबस फिरैं न चहहीं॥२॥

अर्थ : बार बार स्तुतियाँ करते हुए रामजी को हृदय में रखकर सब फिरे। बार बार कोसलपति कह रहे हैं। पर प्रेमवश महाराज जनक लौटना नहीं चाहते।

व्याख्या : गद्यपद्यमयीराजस्तुतिर्विरुदमुच्यते। गद्यपद्यमयी वाणी में राजा की स्तुति को विरुद कहते हैं। सो याचकों ने कृतज्ञता प्रकाश के लिए की। बार बार गद्यपद्यमयी वाणी मे राजा की स्तुति करके और रामजी को हृदय में रखकर सब लौटे। याचक लोग दीन हैं। रामजी दीनबन्धु हैं। यथा : जेहि दीन पियारे बेद पुकारे द्रवौ सो श्री भगवाना। वे उन्हें प्यारे हैं। अथवा उनको वे प्यारे हैं। अतः उनके हृदय मे रह गये। मंगनो के दोनो लोकों का अभाव पूरा हुआ। वसन भूषन वाजि गज से इस लोक का अभाव और रामजी के हृदय में रखने से परलोक का अभाव पूरा हुआ।

महाराज दशरथ का एक बार कहना यथेष्ट है। पर यहाँ एक बार कहने ही मान लेने से श्रद्धा मे न्यूनता सूचित होती है। एक बार कहने से वही मान सकता है जो अनिच्छापूर्वक सेवा करता हो। यथा : बार बार मुनि आज्ञा दीन्ही। रघुबर जाइ सयन तब कीन्ही। जनकजी प्रेम के वश में हैं। आज्ञा नहीं मानते चले ही जा रहे हैं। नियम का निर्वाह नही है। उनका जी फिरने का नहीं चाहता।

पुनि कह भूपति बचन सुहाए। फिरिअ महीस दूरि बड़ि आये॥
राउ बहोरि उतरि भये ठाढ़े। प्रेम प्रबाह बिलोचन बाढ़े॥३॥

अर्थ : फिर राजा दशरथ ने सुहावने वचन कहे : राजन् ! आप बहुत दूर आगये अब लौट जाइये। फिर महाराज दशरथ रथ से उतरकर खड़े हो गये। प्रेम का स्रोत नेत्रों मे बढ़ आया।

व्याख्या : राजा जनक का लौटने न देखकर महाराज दशरथ ने पुनः वचन कहे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्यापक है। सन्देह उठता है कि व्यापक की इयत्ता भी कम से कम व्याप्त के परिमाण इतनी होगी। इसलिए ब्रह्म कहा। अत्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम्। वह जगत् से भी बडा है। ब्रह्म का अर्थ ही बडा है। वह विज्ञाता है। ज्ञेय नही है। इसलिए अलख है। क्योकि विज्ञाता को कोई कैसे जाने विज्ञातार वा अरे केन विजानीयात्। इसी बात को गोस्वामीजी ने दोहावली मे कहा है अलख अलख सब कोउ कहै अलखहि लखा न कोइ। अलख लखा तिन सब लखा लखा अलख नहि होइ। अब उनका स्वरूप कहते है। अविनाशी कहकर सत् कहा। तत्पश्चात् चिदानन्द कहते हैं। यथा . राम सच्चिदानदु दिनेसा। निर्गुण कहकर निर्विशेष कहा और गुणराशि कहकर जगन्मय कहा। यथा निर्गुंण सगुण विषम समरूप। तथा बिस्वरूप रघुबसमनि करहु बचन बिस्वासु। लोक कल्पना बेद कर अग अग प्रति जासु।

मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सकहि सकल अनुमानी ॥
महिमा निगमु नेति कहि कहही। जो तिहुँ काल एकरस रहही ॥४॥

अर्थ मन के साथ जिसे वाणी नही जानती और सभी अनुमान करनेवाले जिसपर तर्क नही कर सकते। जिसकी महिमा को निगम नेति कहकर निरूपण करता है और जो तीनो काल मे एकरस रहता है।

व्याख्या गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई। जहाँ तक मन की दौड है वहाँ तक तो माया है। अत मन उसे नही जान सकता। जिस बात को मन चिन्तन करता है उसी को वाणी भी कहती है। अत जहाँ मन की पहुँच नही है वहाँ वाणी की पहुँच भी नही हो सकती। इसीलिए मन समेत जेहि जान न बानी कहा। अनुमान करनेवाल तर्क नही कर सक्ते कहने का भाव यह कि वह बुद्धि का विषय भी नही है। क्योकि परिच्छिन्न पदार्थ ही बुद्धिगम्य हो सकता है। अनादि अनन्त मे बुद्धि काम नही करती। यथा न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीम। जिसे वेद भी नेति कहकर कहता है इदमित्थम् रूप से कुछ नही कहता। यथा अदृष्टमव्यवहार्यम-ग्राह्यमलक्षणमचिन्त्यमव्यपदेश्यमेकात्मप्रत्ययसार प्रपञ्चोपशम शान्त शिवमद्वैत मन्यन्ते स आत्मा स विज्ञेय। अथवा नेति नेति न स्थूल न सूक्ष्म कहकर बतलाता है। एक रस से वस्तुत परिच्छेदशून्य कहा। तिहुकाल एक रस से कालत परिच्छेदशून्य कहा और अहई से देशत परिच्छेदशून्य कहा।

दो नयन बिषय मोकहुँ भयेउ, सो समस्त सुख मूल।
सबइ लाभु जग जीव कहँ, भये ईसु अनुकूल ॥३४१॥

अर्थ वही सब सुखो का मूल मेरे नयन का विषय हुआ है। शिवजी की अनुकूलता से जीव को सब कुछ सुलभ हो जाता है।

व्याख्या वह विषयी नयन का विषय हुआ। यह अघटित घटना उस अघटित घटना पटीयसी माया की करामात है। यथा सो अवतरिहि मोरि यह

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



माया। तथा : मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ। वह सुखमूल है। विषयानन्द का भी मूलभूत वही ब्रह्मानन्द है। माया प्रेरक शिव की कृपा से जीव को सब कुछ सुलभ हो जाता है। यथा : इन सम काहु न सिव अवराधे। काहु न इन समान फल लाधे। भावार्थ यह कि शिवजी की कृपा से मुझे तुम्हारा दर्शन मिला। नही तो ब्रह्मदर्शन और किसी प्रकार से सम्भव नही। यथा : कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरे। असि परतीति तजहु जनि भोरे।

**सबहिं भाँति मोहिं दीन्हि बड़ाई। निज जन जानि लीन्ह अपनाई॥**
**होइ सहस दस सारद सेखा। करहिं कलप कोटिक भरि लेखा॥१॥**

अर्थ : सब प्रकार से मुझे बड़ाई दी। अपना भक्त जानकर अपना कर लिया। यदि दस सहस्र सारद शेष हों और करोड़ कल्प तक लेखा करें।

व्याख्या : जनकजी ने चक्रवर्तीजी से कहा : महाराज मोहिं दीन्ह बड़ाई। क्योंकि चक्रवर्तीजी से बराबर का सम्बन्ध हुआ। परन्तु रामजी के साथ तो बड़े का सम्बन्ध स्थापित हुआ। इसलिए उनसे कहते हैं : सबहि भाँति मोहिं दीन्ह बड़ाई। मुझे अपना बड़ा बना लिया। तुम सदा दासों को बड़ाई देते हो। यथा : संतत दासन्ह देहु बड़ाई। सो मुझे भी भक्त जानकर इस सम्बन्ध से अपना कर लिया। श्वसुर दामाद का सम्बन्ध दृढ़ स्थापित हो गया।

सारदा ऊर्ध्वस्थित लोक की वक्ता और शेष अधःस्थित लोक के वक्ता हैं। स्वर्ग में महासुख है। पाताल बिलस्वर्ग है। इसमें वहाँ से भी अधिक भोग है। मर्त्यलोक में ऐसा सुख कहाँ? अतः सुख की दृष्टि से स्वर्ग और पाताल में भाग्यवानो का निवास है। अतः वही के वक्ताओं को कहा। सो सारद और शेष एक ही एक हैं। यदि उनकी संख्या दस सहस्र हो अथवा ऊर्जित सुख के जानकार अत्युत्तम कोटि के वक्ताओं की संख्या भी अत्यधिक हो और वे कोटि कल्प लेखा करें। सारदा और शेष की आयु तीन लाख साठ हजार कल्प है। सो इनकी इतनी आयु बढ़े कि कोटि कल्प की हो जाय और वे यावज्जीवन लेखा करते ही रहे अर्थात् अत्यधिक समय तक लेखा करते रहें।

**मोर भाग्य राउर गुन गाथा। कहि न सिराहिं सुनहु रघुनाथा॥**
**मैं कछु कहहुँ एक बल मोरे। तुम्ह रीझहु सनेह सुठि थोरे॥२॥**

अर्थ : मेरे भाग्य की और आप के गुणों की गाथा कहने से समाप्त नही हो सकती। मैं कुछ कहता हूँ मुझे एक बल है कि तुम अत्यन्त थोड़े से प्रेम पर रीझ जाते हो।

व्याख्या : फिर भी मेरे भाग्य की लेखा नहीं कर सकते और न आपकी गुणगाथा की लेखा हो सके। क्योंकि आपकी कृपा से ही मेरा भाग्य ऐसा हुआ। भाव यह कि सरकार की स्वरूपज्ञान होने से अपने भाग्य की बड़ाई की कल्पना कर रहे हैं। जलसीकर महिरज गनि जाहीं। रघुपति गुन नहिं बरनि सिराहीं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जिसने सगुण मूर्तिरूपी दूरवीक्षण यन्त्र से सरकार के स्वरूप का दर्शन किया है वही उनके गुणगण के आनन्त्य को समझ सकता है। राजा जनक कहते हैं कि योगादि यत्न का भरोसा नहीं। यथा : मुनि त्यागत योग भरोस सदा। बहुत थोड़े से स्नेह पर तुम्हारे रीझनेवाले स्वभाव का भरोसा है। इसीलिए मैं कुछ कहता हूं। नहीं तो तुम्हारी महिमा को कहना ही उसे परिच्छिन्न करना है।

बार बार मांगउं कर जोरे। मनु परिहरइ चरन जनि भोरे॥
सुनि वर वचन प्रेम जनु पोपे। पूरनकाम राम परितोपे॥३॥

अर्थ : बार बार हाथ जोड़कर वर मांगता हूं कि मेरा मन चरणों को भूलकर भी न छोडे। प्रेम से पोपे हुए वर वचनो को सुनकर पूर्णकाम राम सन्तुष्ट हुए।

व्याख्या : मन परिहरै चरन जनि भोरे। यह बात क्रियासाध्य नहीं है। यह तो कृपासाध्य है। क्योकि प्रेरयिता मन के तो तुम्हीं हो। यथा : केनेपितं पतति प्रेपित मनः। श्रोत्रस्य श्रोत्र मनसो मनो यत् वाचो ह वाच स ꣳ उ प्राणस्य प्राणः। तुम्ही प्राण के प्राण हो। यथा : प्राण प्राण के जीवन जीके। तुम्हारी ही प्रेरणा से मन मनन करता है। अत. यही वर हाथ जोड़कर बार बार मांगता हूं कि मन को ऐसी प्रेरणा कीजिये कि वह आपके चरणो को न छोड़े। पहिले प्रेम जनु जाये वचन कहा था। अब प्रेम जनु पोपे कहते हैं। पूर्णकाम का परितोप केवल प्रेम से होता है। सो सरकार परितुष्ट हुए। इससे वरदान देना कहा।

यह छठा गुणग्राम आर्द्रा नक्षत्र है। इसमे एक तारा चमकता है। आकार मणि सा है। यह जनककृत स्तुति है। फल है : जनक सिय राम प्रेम के। इसमें एक तारा ईश की अनुकूलता चमक रही है। यही चिन्तामणि है। इसी से सब सुलभ हुआ। बोले वचन प्रेम जनु जाये कहकर इस स्तुति का सियराम प्रेम का जनक होना सूचित कर दिया।

करि वरविनय ससुर सनमाने। पितु कौसिक वसिष्ठ सम जाने॥
विनती बहुरि भरत सन कीन्ही। मिलि सप्रेम मुनि आसिप दीन्ही॥४॥

अर्थ : श्रेष्ठ विनय करके श्वसुर का सम्मान किया। उन्हें पिता दशरथ तथा गुरु कौशिक और वसिष्ठ के समान जाना। फिर भरतजी से राजा ने बहुत विनती की और प्रेम से मिलकर आशीर्वाद दिया।

व्याख्या : एवमस्तु नहीं कहा। बड़े के वरदान मांगने पर सरकार एवमस्तु नहीं कहते। विनय और सम्मान से अपना परितोप व्यक्त कर देते हैं। यहां ससुर सनमाने कहने का भाव यह कि जैसे दामाद श्वसुर का सम्मान करता है उसी भांति सम्मान और विनय किया। सीताजी के पिता होने से पितासम महाविद्या सीताजी के दान देने से कौसिकसम। जिसका सहज विराग रूप मन हो उसके राज्य ग्रहण अथवा दारा ग्रहण का कोई कारण नहीं है। जामाता रूप मे रामजी की प्राप्ति की आशा से राज्य ग्रहण किया। जिस भांति वसिष्ठजी ने यजमान रूप

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



से रामजी की प्राप्ति की आशा से पौरोहित्य स्वीकार किया था इसलिए वसिष्ठ सम जाना। अथवा उनकी कन्या को ग्रहण किया है इस सम्बन्ध से वे गुरु है। इसलिए : कौसिक वसिष्ठ सम जाना।

फिर कुशध्वज के बडे जामाता होने से भरतजी की बडी विनती की। भगवती माण्डवी सीताजी से छोटी तथा उर्मिला से बडी थी। इधर भरतजी रामजी से छोटे तथा लक्ष्मणजी से बडे थे। इसलिए रामजी के बाद भरतजी से मिले और आशीर्वाद दिया। सुषुप्ति से जगत् का आरम्भ है और भरतजी सुषुप्ति के विभु हैं। अतः व्यवहार से काम लिया। रामजी मे ब्रह्मभाव होने से उन्हे आशीर्वाद नही दिया था : इन्हे दिया।

दो. मिले लखन रिपुसूदनहि, दीन्हि असीस महीस।
भए परसपर प्रेम बस, फिरि फिरि नावहि सीस ॥३४२॥

अर्थ : लक्ष्मण और शत्रुघ्नजी से मिले और राजा ने आशीर्वाद दिया। परस्पर प्रेमवश हो गये। घूम घूमकर सिर नवा रहे है।

व्याख्या . लक्ष्मणजी और शत्रुघ्नजी से प्रेम से मिलकर राजा ने आशीर्वाद दिये। जाग्रत् और स्वप्न मे स्पष्ट जगत् का भान होने से उनके विभुओ के साथ केवल व्यवहार से काम लिया। जनकजी प्रेमवश उन्हे देखते हैं और वे प्रेमवश घूम घूमकर उन्हे प्रणाम करते है। अथवा फिरि फिरि का अर्थ बार बार है। प्रेमवश उन्हे बार बार प्रणाम करते हैं।

बार बार करि बिनय बडाई। रघुपति चले संग सब भाई ॥
जनक गहे कौसिक पद जाई। चरन रेनु सिर नयनन्हि लाई ॥१॥

अर्थ · बार बार विनय और बडाई करके रामजी सब भाइयो के साथ चले। जनकजी ने जाकर विश्वामित्र का चरण पकडा और चरण की धूलि को सिर और आँखो मे लगाया।

व्याख्या : बार बार जनकजी ने हाथ जोडे थे। यथा : बार बार माँगउ करजोरे। अत बारबार विनय और स्तुति करके रामजी सब भाइयो के साथ चले। भाव यह कि चक्रवर्तीजी के सवारी से उतरने पर रामजी भाइयो के सहित सवारी पर से उतरकर वहाँ आगये थे। अब भाइयो सहित सवारी पर सवार होने के लिए चले। सास से विदा होने पर भाइन्ह सहित चले रघुराई लिखा था। अब श्वसुर से विदा होने पर भी वही लिखते हैं . रघुपति चले संग सब भाई।

महाराज के ठहर जाने पर मुनिमण्डली वहाँ आगई। चारो भाई रामजी आदि आगये। पर विश्वामित्रजी नही आये। जानते थे कि जनक कृतज्ञता प्रकाश करेंगे। पर यह वे नही चाहते थे। कोप प्रकाश करते हुए कृपा करने का उनका स्वभाव है। जिसमे कोई यह न कहे कि विश्वामित्रजी की कृपा से कल्याण हुआ। देखने मे विश्व के अमित्र पर वास्तव मे विश्व के मित्र थे। पर कृतज्ञ हृदय अपने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कल्याण करनेवाले को खोज लेता है। जनकजी ने जाकर उनके चरण पकड लिये। जामाताओ की प्राप्ति इन्ही चरणा के कारण हुई। अत चरणरेणु को माथे पर रक्खा और समस्त सुख मूल रामजी उनके नयन विषय भी उसी चरणरेणु के प्रसाद से हुए थे। इसलिए उसे आंखो मे लगाया।

सुनु मुनीस वर दरसन तोरे। अगमु न कछु प्रतीति मन मोरे ॥
जो सुख सुजस लोकपति चहहीं। करत मनोरथ सकुचत अहहीं ॥२॥

अर्थ हे मुनीश्वर! सुनिये। आपके दर्शन से कुछ भी दुर्लभ नहीं है। यह मेरा विश्वास है। जिस सुख और सुयश को लोकपाल चाहते हैं और मनोरथ करते समय उन्हे सङ्कोच होता है।

व्याख्या जब से विश्वामित्रजी का आगमन हुआ है। तभी से सब कार्य सिद्धि हो रही है। जनकराज को इसका अनुभव है। पहले भी कहा था यह सब सुत मुनिराज तव कृपा कटाक्ष प्रभाउ। आज भी कह रहे हैं नयन विषय मोकहँ भयउ सो समस्त सुखमूल। इसलिए कहते हैं कि आपके दर्शन देने पर कुछ भी दुर्लभ नही रह जाता। ब्रह्मदर्शन भी सुलभ हुआ और दुर्लभ सुख सुयश भी सुलभ हुआ। सुख यथा इनहि विलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहि मन त्यागा। सुयश यथा सा पद पखारत भाग्य भाजन जनक जय जय सब कहै। यह सुख और यश लोकपति को प्राप्त नही। उन्हे इस सुख और सुयश का मनोरथ करने मे सङ्कोच होता है कि मेरा इतना भाग्य कहा कि यह सुख और सुयश मुझे प्राप्त हो। प्रकाश भी नही करते कि लोग हँसेगे कि किस करणी पर यह ऐसा मनोरथ करते हैं।

सो सुख सुजस सुलभ मोहि स्वामी। सब सिधि तव दरसन अनुगामी ॥
कीन्हि बिनय पुनि पुनि सिरु नाई। फिरे महीसु आसिषा पाई ॥३॥

अर्थ हे स्वामी! जो सुख और सुयश मुझे सुलभ हुआ। ये सब सिद्धि आपके दर्शन की अनुगामिनी हैं। बार बार सिर नवाकर विनय किया और आशीर्वाद पाकर राजा लौटे।

व्याख्या इस सुख सुयश और ब्रह्मदर्शन रूपी सिद्धियो के लिए जिनके प्राप्त्यर्थ लोकपाल तरसते हैं मुझ कुछ करना न पड़ा। आपके दर्शन के पीछे पीछे चली आई। इस प्रकार से बार बार चरणो मे सिर नवाकर विनय किया। तब मुनिजी ने अनेक आशीर्वाद दिये। यहाँ आशिषा बहुवचन है। उन्हे पाकर राजा जनक लौट गये।

चली बरात निसान बजाई। मुदित छोट बड सब समुदाई ॥
रामहि निरखि ग्राम नर नारी। पाइ नयन फलु होहिं सुखारी ॥४॥

अर्थ डङ्का बजाकर बारात चली। छोटे बडे सब समाज का समाज मुदित था। रामजी को देखकर नर नारी नेत्रो का फल पाकर सुखी होते थे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : चक्रवर्तीजी के रुक जाने से सारी बारात रुक गई। डङ्का बजना बन्द हो गया। महाराज जनक के लौटने पर ही चक्रवर्तीजी सवार हुए। बारात चल पडी। डङ्का बजने लगा। जनकजी के विनय पर सारी बारात प्रसन्न है। अथवा सबको घर चलने की खुशी है। बारात आगे बढी। नगर छूट गया। ग्राम मिले। विश्वामित्रजी ने कहा था : करहु सफल सबके नयन सुदर वदन देखाय। सो नगरवासियो के तो नयन सुफल हो चुके। अब ग्रामवासियो के हो रहे हैं।

दो. बीच बीच बर बास करि, मग लोगन्ह सुख देत।
अवध समीप पुनीत दिन, पहुँची आइ जनेत ॥३४३॥

अर्थ : बीच बीच मे सुन्दर पडाव करती हुई और रास्ते के लोगो को सुख देती हुई बारात अयोध्या के समीप पुनीत दिन मे जा पहुँची।

व्याख्या · बीच बीच बरबास बनाए। सुरपुर सरिस सपदा छाए। उन सुन्दर पडावो पर टिकती हुई मार्ग के निवासियो को नयनफल रूपी सुख देती हुई अवध के समीप पहुँची। अयोध्या से चलकर बारात शुभ लग्न में जनकपुर पहुँची थी। यथा : प्रथम बरात लगन ते आई। ताते पुर प्रमोद अधिकाई। और अब जनकपुर लौटकर अयोध्या के समीप भी शुभ दिन को पहुँची।

हने निसान पनव बर बाजे। भेरि संख धुनि हय गय गाजे ॥
झाँझि बिरव डिंडिमी सुहाई। सरस राग बाजहिं सहनाई ॥१॥

अर्थ · डङ्के पर चोट पडी। श्रेष्ठ ढोल बजने लगे। भेरी और शख की ध्वनि हुई। घोडे हाथी गरजने लगे। झाँझ, बीरव, सुन्दर डिंडिमी और शहनाई सरस राग से बजने लगे।

व्याख्या : नगर के सन्निकट आते ही बारात का उत्साह बढा। अत: सब बाजे बज उठे। इस समय बाजा बजना नगरवासियो को सचेत करना है कि बारात आगई। हने निसान : निसान के लिए चोट पडना लिखते हैं। यथा : परा निसानन्हि घाऊ। डङ्के पर बलपूर्वक प्रहार किया जाता है। तभी वह बजता है और ध्वनि भी उसकी बडी गम्भीर और दूर तक पहुँचानेवाली होती है। सो निशान पणव भेरी और शख बजे। ये चार बाजे बारात के आगे बज रहे थे। बारात के नगर निकट आने से सब बाजो का बजना कहते है। नही तो रास्ते भर केवल डङ्का बज रहा था। यथा चले बजाइ निसान। शङ्ख के शब्द से बजानेवाले की पहिचान होती है। यथा · शखान् दध्मु पृथक् पृथक्। शख तो स्वयं राजा तथा प्रधान बीरलोग समय विशेष पर बजाते है। किन्तु और बाजे बजनिये बजाते हैं। महाराज तथा सरदार लोग हाथो पर है। अत शङ्ख का बजना हाथी घोडो के आगे ही लिखते है। बाजे के शब्द सुनकर हाथी गरजे, घोडे हिनहिनाने लगे। घोडे, हाथी और रथ के बाद झाँझ, बिरव और डिंडिमी का शब्द कहते हैं। डिंडिमी और बिरव कौन सा बाजा है इसे अब लोग नही जानते। सम्भवत डिंडिमी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

डमरू और विरव नर्रासहा को कहते हैं। क्योकि नर्रासहा मे विशेष रव होता है। ये तीन बाजे ब्राह्मणो और वन्दीजन के आगे बज रहे हैं। शहनाई नववधुओ के डोला के आगे बज रही है। चलते समय बाजो के नाम और क्रम नही कहे। क्योकि पुर और व्योम दोनो जगह बज रहे थे। व्योम के बाजाओ का नाम नही मालूम। अत पुर के बाजाओ के भी नाम नही दिये।

पुर जन आवत अकनि बराता। मुदित सकल पुलकावलि गाता ॥
निज निज सुदर सदन सँवारे। हाट बाट चौहट पुर द्वारे ॥२॥

अर्थ पुरजन बारात का आना सुनकर ऐसे प्रसन्न हुए कि उन लोगो को पुलक होने लगा। उन्होने अपने अपने सुन्दर घरो को सजा डाला। तत्पश्चात् बाजार, मार्ग, चौराहो और पुरद्वार को सजाया।

व्याख्या बाजा सुनकर तथा शखध्वनियो को पहिचान कर बारात का आना जान लिया। सब प्रसन्न हो उठे। इससे प्रजा का राजा पर अनुराग कहा। सात्त्विक भाव से पुलकावली हो उठी। अथवा भीतर मोद है। बाहर पुलकावली है। यथा ' देखन हेतु राम वैदेही। कहहु लालसा होइ न केही। पहिले सबो ने अपना अपना घर साजा। तब बाजार साजा गया। तब सडक। तब चौमुहानियाँ सजायी गई और तब पुरद्वार सजाया जाने लगा। यह स्वाभाविक क्रम है। दिखौवा उत्साह के पहिले फाटक ही सजाया जाता है और सजावट बाजार तक ही रह जाती है। घर तक पहुँचती ही नही।

गली सकल अरगजा सिंचाई। जहँ तहँ चौके चारु पुराई ॥
बना बजारु न जाइ बखाना। तोरन केतु पताक बिताना ॥३॥

अर्थ सब गलियो मे अरगजा का छिडकाव हुआ। सब घरो मे चौके पूरे गये। बाजार ऐसा सजाया गया कि उसका बखान नही हो सकता। तोरण बाँधे गये। ध्वजा, पताका लगाये गये। मण्डप सजाया गया।

व्याख्या अयोध्या मे गलियाँ सदा सुगन्ध से सीची जाती थी। यथा *सतत रहहि सुगध सिचाई। सो आज अरगजा से सीची गई।* इस भाँति रास्ते सँवारे गये। मकान के दरवाजो पर चौक पूरे गये। अत जहँ तहँ लिखते है। इस भाँति घर सजाये गये। बाजार मे ध्वजा पताकाएँ लगायी गई। वह सब सजावट कही नही जाती। क्योकि ऐसे वितान बनाये कि बारात उसके नीचे से जाय। जाडा बिताकर बारात आ रही है। धूप से बचाव के लिए तथा बहुओ की अगवानी के लिए बाजार और चौराहो मे वितान तने हुए हैं।

सफल पूगफल कदलि रसाला। रोपे बकुल कदब तमाला ॥
लगे सुभग तरु परसत धरनी। मनिमय आलबाल कल करनी ॥४॥

अर्थ फल सहित सुपारी, केला, आम, मौलसरी, कदम्ब और तमाल के

ankurnagpal108@gmail.com


पेड लगाये गये। वे लगे हुए सुन्दर वृक्ष धरती को छू रहे थे। उनके थाले मणिमय सुन्दर कारीगरी से बनाये गये थे।

व्याख्या : पूगफल, रसाल, बकुल, तमाल ये रोपे नही जा सकते। अत: सिद्ध है कि ये सब भी जनकपुर मे कदली खम्भ की भाँति बनावटी थे। फल भारन नमि विटप सब रहे भूमि नियराइ। कारीगरी की महीनकारी कहते है कि वृक्षो मे फल लगाये गये और पेड़ो को ऐसा बनाया मानो वे फल के बोझ से झुके पड़ते है। जब आलवाल की बनावट मणिमय थी तब वृक्षो के मणिमय होने मे सन्देह ही क्या है ? देहलीदीपकन्याय से मणिमय शब्द का प्रयोग है। उसका अन्वय सुभगतरु के साथ तथा आलवाल के साथ भी होगा।

दो. विविध भाँति मंगल कलस, गृह गृह रचे सँवारि।
सुर ब्रह्मादि सिहाहि सब, रघुवर पुरी निहारि ॥३४४॥

अर्थ : अनेक प्रकार के मङ्गल कलश घर घर सँवारकर रचे थे रामजी की पुरी देखकर ब्रह्मादि देवता सिहाने लगे।

व्याख्या : घर घर मङ्गल कलश भी रचे गये। जनकपुर मे तो मन विरचि कर भूल। पर यहाँ तो सिहाने लगे। सुरराज तो सदा से सिहाते थे। यथा 'अवधराज सुरराज सिहाही। दसरथ धन सुनि धनद लजाही। आज ब्रह्मदेव भी सिहाने लगे कि ऐसी रचना मेरे लोक मे भी नही है। जनकपुर मे देवताओ को शिवजी ने समझाया था 'जनि आचरज भुलाहु। हृदय विचारहु धीर धरि सिय रघुवीर विआहु। यह अयोध्या तो रामजी की पुरी है। यथा : पहुँचे दूत रामपुर पावन। हरखे नगर विलोकि सुहावन। यहाँ का क्या कहना है ?

इसी से भरद्वाज मुनि ने भरतजी के सत्कार मे : विधि विस्मयदायक विभव मुनिवर तपबल कीन्ह। वे समझते थे कि इतना सुख तो भरत के घर ही था। उतना विना हुए भरत की मेहमानदारी कैसे होगी। अस कहि रचे रुचिर गृह नाना। जो विलोकि विलखाहि विमाना। भोग विभूति भूति भरि राखे। देखत जिन्हहि अमर अभिलाषे। परन्तु इससे भरत को अभिलाषा नही हो सकती।

भूप भवन तेहि अवसर सोहा। रचना देखि मदन मन मोहा ॥
मगल सगुन मनोहरताई। रिधि सिधि सुख संपदा सुहाई ॥१॥

अर्थ : राजगृह भी उस समय ऐसा शोभित हुआ कि उसकी रचना देखकर कामदेव का मन मोहित होता था। मङ्गल, सगुन, सुन्दरता, ऋद्धि सिद्धि, सुख और सुहाई सम्पदा :

व्याख्या : नृप भवन मे सबसे बडी तैयारी है। कामदेव मोह गये कि यही रह जाऊँ। जनकपुर मे . वसत ऋतु रह्यो लोभाई। यहाँ स्वय काम मोहित होकर ठहरे हुए हैं। काम को देखकर सब मोहित होते हैं। काम किसी को देखकर मोहित नही होता। परन्तु : भूप भवन किमि जाइ बखाना। विस्व विमोहन रचेउ विताना।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सो यहाँ विश्व तो मोहित होना ही था। राम भी मोहित हुए। १ मङ्गल। यथा : हने निसान पनव वर बाज। मङ्गल राग बाजहिं सहनाई। २ सगुन। यथा : मुदित सकल पुलकावलि गाता। मन का प्रसन्न होना सगुन है। यथा : होहिं सगुन सुंदर सकल मन प्रसन्न सब केर। ३ मनोहरताई। यथा : निज निज सुदर सदन सँवारे। हाट बाट चौहट पुरद्वारे। ४ ऋद्धि। यथा : गली सकल अरगजा सिंचाई। ५ सिद्धि। यथा : सुर ब्रह्मादि सिहाहिं सब रघुबरपुरी निहारि। ६ सुग। ७ सपदा आगे कहेंगे।

जनु उछाह सब सहज सुहाए। तनु धरि धरि दसरथ गृह आए ॥
देखन हेतु राम बैदेही। कहहु लालसा होहि न केही ॥२॥

अर्थ : मानो सहज सुन्दर उत्साह शरीर धारण करके दशरथजी के घर आये हैं। रामजी और वैदेहीजी को देखने के लिए कहा किसे लालसा नहीं होती।

व्याख्या : उछाहों को शरीर नहीं है। यदि वे शरीर धारण करें तो ये ही सात शरीर धारण कर सकते है। बरनब राम बिबाह उछाहू। सो सुभ उमग सुखद सब काहू। लोगों को तो उमग उठा ही था। उछाहों को भी उठा। मानो सब शरीर धारण करके दशरथ के घर आगये। आने का कारण कहते हैं कि उछाहों को भी राम वैदेही के दर्शन की लालसा हुई। रामजी की शोभा देखी थी। सीताजी की सुनी था। सो युगलमूर्ति की शोभा देखने आये। जब सभी को दर्शन की लालसा है तो उछाहों को भी क्यों न हो।

जूथ जूथ मिलि चलीं सुआसिनि। निज छबि निदरहिं मदन बिलासिनि ॥
सकल सुमगल सजे आरती। गावहिं जनु बहु बेष भारती ॥३॥

अर्थ : झुण्ड की झुण्ड सुहागिनी स्त्रियाँ मिलकर चलीं। अपनी छवि से काम की स्त्री रति का निरादर करती थीं। सब सुमङ्गल आरती सजे हुए थीं और मङ्गलगान करती थीं। जैसे अनेक रूप में सरस्वती हो।

व्याख्या : जनकपुर की स्त्रियाँ निज सरूप रति मान बिमोचनि थीं। उनसे रति का मान टूटता था। इनकी शोभा से रति का निरादर हो रहा है। वे करहिं गान कलकठ लजाही और ये तो ऐसा गान करती हैं मानो भगवती सरस्वती साक्षात् अनेक वेषों को धारण करके गान करती हो। इसमे रूप और सङ्गीत नैपुण्य का अत्यन्त उत्कर्ष कहा। श्रीरामजानकी के लिए आरती सजे हुए हैं।

भूपति भवन कोलाहलु होई। जाइ न बरनि समउ सुख सोई ॥
कौसल्यादि राम महतारी। प्रेम बिबस तनु दसा बिसारी ॥४॥

अर्थ : राजगृह मे कोलाहल हो रहा है। उस समय का सुख वर्णन नहीं हो सकता। कौसल्या आदि रामजी की माताएँ प्रेम के वश मे होकर शरीर की सुध बुध भूली हुई हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या : नदी के उमग के समय बडा शब्द होता है। यहाँ उछाह की नदी बढाव पर है। इसलिए कोलाहल हो रहा है। इस समय का सुख वर्णन नही किया जा सकता। इसलिए : सोइ सुभ उमग सुखद सब काहू कहा।

कौसल्यादि राम महतारी : कहने का भाव है कि सब माताएँ रामजी के लिए कौसल्याजी के समान ही हैं। किसी को विमाता होने की भावना भी नही है। यथा . कौसल्या सम सब महतारी। रामहि सहज सुभाव पिआरी। उन लोगों को ऐसा प्रेम उमगा है कि हर्ष के वश शरीर की दशा भूली हुई हैं।

दो. दिए दान विप्रन्ह विपुल, पूजि गनेस पुरारि।
प्रमुदित परम दरिद्र जनु, पाइ पदारथ चारि ॥३४५॥

अर्थ . गणेशजी और महादेवजी की पूजा करके उन्होंने ब्राह्मणो को बहुत दान दिया और ऐसी प्रसन्न हैं जैसे परम दरिद्र चारो पदार्थो को पाकर प्रसन्न हों।

व्याख्या : इस कुल मे दान देने से कोई अघाता नहीं। वहाँ विवाह के समय गौरी गणपति की पूजा हुई। यथा · आचार करि गुरु गौरि गनपति मुदित विप्र पुजावही। यहाँ बारात के आने का समाचार पाकर गणेश पुरारि की पूजा हो रही है। व्याह निश्चय का समाचार पाकर : रानिन्ह सब महिदेव बोलाये। दिये दान आनद समेता। व्याह हो जाने और बारात लौटने के समाचार पर · दिये दान विप्रन विपुल। लोग मुदित है। माताएँ प्रमुदित हैं। चारो भाइयो के व्याह का समाचार लग चुका है। परम दरिद्र कहने का भाव यह कि इस बात की आशा ही नही थी कि रामजी के अनुरूप वहू मिल सकेगी। सो सुना है कि चारो बेटो के अनुरूप बहुएँ मिली हैं। यथा : अनुरूप वर दुलहिन परसपर लखि मुदित हिय हरखही। अत· मोद प्रमोद की सीमा नही है। इसीलिए कवि ने परम दरिद्र के चार पदार्थ की प्राप्ति के प्रमोद से उपमा दी है।

मोद प्रमोद विवस सब माता। चलहि न चरन सिथिल भये गाता ॥
राम दरस हित अति अनुरागी। परिछन साजु सजन सब लागी ॥१॥

अर्थ : सब माताएँ मोद प्रमोद के विवश हैं। शरीर शिथिल हो गया है। पैर चलते नही। रामजी के दर्शन के लिए अति अनुराग है। सब परिछन का सामान साजने लगी।

व्याख्या : इष्टदर्शन को मोद और इष्टभोग को प्रमोद कहते हैं। पहिले कहा था : प्रेम विवस तनु दसा विसारी। स्मरण आने पर बहुत दान दिया। फिर भी मोद प्रमोद विवश हैं। अतः शरीर शिथिल हो गया। चलना चाहती है। पैर काम नही देते। पहिले ज्ञानेन्द्रियों का अपाटव कहा था। अब कर्मेन्द्रियों का अपाटव कह रहे हैं। फिर भी रामजी के दर्शन के लिए अत्यन्त अनुराग है। शरीर और मन की ऐसी अवस्था मे भी स्वय परिछन का साज सजने लगी। सास का परिछन हो चुका है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



माता का परिछन बाकी है। बारात विदा करते समय भी परिछन नहीं कर सकी थी। रामजी थे ही नहीं। शेष तीनों बेटा के ब्याह का कोई पता ही नहीं था।

विविध विधान बाजने बाजे। मगल मुदित सुमित्रा साजे ॥
हरद दूब दधि पल्लव फूला। पान पूगफल मगल मूला ॥२॥

अर्थ अनेक प्रकार के बाजे बजे। सुमित्राजी ने प्रसन्न होकर मङ्गल साजा। हल्दी, दूर्वा, दधि, पल्लव, फूल, पान, सुपारी मङ्गलमूल द्रव्य।

व्याख्या इधर घरपर भी बाजे बजने लगे। किसी की आज्ञा की आवश्यकता नहीं। बजनिया आपही समय देखकर बाजे बजाने लगे। प्रसन्न होकर महारानी सुमित्रा मङ्गल साज सजने लगी। यहा चौदह मङ्गल द्रव्य गिनाये गये है। इसमे से पहिले सप्तक का मङ्गलमूल कहा। महारानी सुमित्रा मङ्गल साज मे बडी सावधान है। पहिले भी चौके चारु सुमित्रा पूरी।

अक्षत अकुर रोचन लाजा। मजुल मजरि तुलसि बिराजा ॥
छुहे पुरट घट सहज सुहाए। मदन सकुचि जनु नीड बनाए ॥३॥

अर्थ अक्षत, अँखुए, गोरोचन, लावा, सुन्दर मञ्जरी और तुलसी शोभित हुई। सोने के घडे रँगे हुए ऐसी शोभा दे रहे थे मानो कामरूपी पक्षी ने सकुचित होकर घोसले बनाये हो।

व्याख्या दूसरे द्रव्य सप्तक को शोभायमान कहते है। सोने के घडे स्वभाव से ही सुन्दर है। तिसपर वे रग दिये गये है उनकी शोभा ऐसी हो रही है मानो कामदेव रूपी पक्षी का घोसला है। रचना देखकर कामदेव के मन का मोहना कहा है। परन्तु उसके रहने के लिए स्थान नहीं है। वह अपमान सहकर भी रहना चाहता है। बारात मे मानो वह रामजी के घोडे के वेष मे था। यथा जनु बाजि वेष बनाइ मनसिज राम हित अति सोहई। फिर परिछन म गति रूप से था। यथा चाल बिलोकि कामगज लाजहिं। विवाह के समय मानो नर रूप हो गया। यथा मनहु मदन रति धरि बहुरूपा। देखहिं राम विवाह अनूपा। अब यहाँ स्थिर उत्सव होगा। अत बसना चाहता है। सो मानो छुहे पुरट घट ही उसके घोसले हैं। वह सङ्कोच से अपने रूप से नहीं रहना चाहता और अन्त पुर मे रहना ठहरा। इसलिए मानो उसने पक्षी का रूप धारण कर लिया। इसलिए घोसले की आवश्यकता पड गई। घोसला नीड कहने से ही काम का पक्षी रूप धारण करना लक्षित होता है।

सगुन सुगध न जाहि बखानी। मगल सकल सजहिं सब रानी ॥
रची आरती बहुत विधाना। मुदित करहि कल मगल गाना ॥४॥

अर्थ और सगुन सुगन्धित द्रव्य जिनका वर्णन नहीं हो सकता। सब रानियाँ मङ्गल सजने लगी। बहुत विधान से आरती की रचना करती थी और प्रसन्न होकर मङ्गल गान करती थी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या अब चौदहवां मङ्गल द्रव्य कहते हैं। सगुन सुगन्ध अर्थात् कस्तूरी चन्दन आदि। सुगन्धित तैल भी होते हैं। पर वे शुभ नही है। इस प्रकार महारानी सुमित्रा ने मङ्गल साज सजा। इन्हे मङ्गल साज करते देखकर महारानी कौसल्या तथा महारानी कैकेयी भी मङ्गल साज साजने लगी। आरती के साजने के बहुत विधान हैं। सो सब विधान कर रही हैं और प्रसन्नता से सुन्दर गान भी करती जाती हैं।

दो कनक थार भरि मगलन्हि, कमल करन्हि लिएँ मात।
चली मुदित परिछनि करन, पुलक पल्लवित गात ॥३४६॥

अर्थ मङ्गल द्रव्यो से सोने के थाला को भरकर माताओ ने करकमलो म लिया और प्रसन्न होकर परिछन करने चली। उनके शरीर मे पुलकावली छा गई थी।

व्याख्या कमल ऐसे सुन्दर कोमल हाथो म सोने के भारी थार स्वर्णकलश सहित मङ्गल द्रव्य से भरे लिये हुए माताएँ चली। उन्हे आनन्द के वेग म वे थार भारी नही मालूम पडते। थकती नही हैं। मुदित हैं। इस भाँति परिछन करने चली। पुत्रो का पुत्रवधुओ के सहित परिछन करना है। इस आनन्द के कारण पुलकावली से शरीर पल्लवित हो रहा है।

धूप धूम नभु मेचक भयऊ। सावन घन घमडु जनु ठयऊ ॥
सुरतरु सुमन माल सुर बरषहिं। मनहुँ बलाक अवलि मनु करषहिं ॥१॥

अर्थ धूप के धूएँ से आकाश काला पड गया। मानो सावन के मेघो की घटा घिर आई। कल्पवृक्ष के फूलो की माला की वर्षा देवताओ ने की। मानो बकपक्ति मन को खैंचे लती है।

व्याख्या मानस उमगा तो कविता नदी चली। राम विवाह म वही नदी उमगी। परन्तु जबतक ऊपर से आमद न हो तबतक उस उमग की शोभा पूरी नही। रामचरित्र मान म जहाँ जहाँ उमग है वह इसी उमग का अश है। अब ऊपर की आमद कहते हैं। जन्मकाल म धूप धूम स अघियारी छा गई थी। इस समय घूपधूम के वादल छा गये। सो भी सावन क। सावन के बादल बडे सोहावने होते हैं प्रवेश क समय वादल घिर आये थे। उसम जाकर जो धूप धूम मिला तो घनघमण्ड सा प्रतीत होने लगा।

इस समय देवता सुरतरु सुमन नही बरसात। सुरतरु सुमन की मालाओ की वर्षा कर रहे हैं। व मालाएँ जब आकाश से छूटी तो बकपक्ति सी मालूम हाने लगी। बादल की श्यामता में श्वेत बकपक्तियो की बडी शोभा होती है। वैसी ही शाभा सुरतरु सुमन के मालाओ की हुई।

मजुल मनिमय बदनिवारे। मनहु पाकरिपु चाप सँवारे ॥
प्रगटहि दुरहि अटन्ह पग भामिनि। चारु चपल जनु दमकहि दामिनि ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ सुन्दर मणिया के वन्दनवार मानो इन्द्रधनुप सँवारे गये हैं। अटारियो पर सुन्दर और चपल स्त्रियाँ प्रकट होती है और छिप जाती हैं। मानो बिजली चमक रही है।

व्याख्या इस समय की उपमा कवि पावस स दे रहे हैं। बादल कहा। बकपत्ति कहा। अब इन्द्रधनुप कह रहे है कि मणिमय वन्दनवार जो नगर मे बाँधे गये हैं वे इन्द्रधनुप की शोभा दे रहे हैं। द्वार के ऊपर छोटे छोटे वन्दनवार नही हैं। सतमहल के ऊपर बडे भारी भारी मणि के वन्दनवार बाँधे गये हैं।

अटारियो के ऊपर भामिनीगण बारात की शोभा देखने के लिए चढ गई हैं। सो प्रकट हो जाती है। परिचित को देखकर शीघ्रता से छिप जाती है। भामिनी हैं। उनका वर्ण ही चमकीला है। उनकी चपलता की दामिनी के दमकने से उपमा दी। सावन का मघ है। बिजली चारो आर चमक रही है।

दुदुभि धुनि घन गरजनि घोरा। जाचक चातक दादुर मोरा॥
सुर सुगध सुचि वरपहि वारी। सुखी सकल ससि पुर नर नारी॥३॥

अथ दुन्दुभी की ध्वनि मेघ का घोर गर्जन है। याचक पपीहा मेढक और मोर हैं। देवता शुद्ध सुगन्धित जल बरसा रहे है। पुर के नर नारी धान की भाँति सुखी हैं।

व्याख्या डङ्का का घोर शब्द हो रहा है। वही मानो मेघ का घोर गर्जन है। याचक लोग चातक दादुर और मोर हैं। उत्तम मध्यम निकृष्ट तीन प्रकार क याचक है। उत्तम तो चातक से हैं। जो रामजी की निछावर लते हैं। सो भी जो महाराज या महारानियो के हाथ से मिल। धरती पर जो गिरा उसे नही लते। यथा राम निछावर लन को हठि होत भिखारी। बहुरि देत तेहि देखिये मानहु धनधारी। दूसर मध्य कोटि क दादुर हैं। इनकी जीविका ही याचना है। ये धरती पर गिरा भी लते हैं। यथा वगरे नगर निछावर मनिगन ज्यौ जुवार जवधान। तीसरे निकृष्ट मनमलिन याचक है। यथा मुख मीठ मानसमलिन कोकिल मोर चकोर। सुजस धवल चातक नवल रह्यौ भुवनभरि तोर। इस समय तीनो प्रसन्न होकर वोल रह है। पावस म इन तीनो का बोलना वर्णन किया जाता है। सचमुच जल भी बरस रहा है। इसे पुरजन रूपो धान सुख मान रहे हैं।

समय जानि गुर आयसु दीन्हा। पुर प्रवेसु रघुकुलमनि कीन्हा॥
सुमिरि सभु गिरिजा गनराजा। मुदित महीपति सहित समाजा॥४॥

अर्थ समय जानकर मुनिजी ने आज्ञा दी। तब रघुकुलमणि ने शिव पार्वती और गणश का स्मरण करके समाज सहित प्रसन्न होकर पुर म प्रवेश किया।

व्याख्या भाव यह कि बारात ठहर गई थी। तैयारी के साथ पुर मे प्रवेश करना ह। अत उसके लिए समय चाहिए। तब स शुभ लग्न भी आगइ। वसिष्ठजा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


ने शुभ समय जानकर प्रवेश की आज्ञा दी। ब्याह के बाद दस दिन के भीतर वधूप्रवेश के लिए मुहूर्त नहीं देखा जाता। यहाँ तो कितने दिन बारात जनकपुर में ही ठहरी रही। अत वधूप्रवेश के लिए मुहूर्त की आवश्यकता पड़ी। समयानुकूल महाराज दशरथ ने पुत्र कलत्र सहित शिवजी का स्मरण किया और गुरुजी की आज्ञा पाकर हर्षित हो पुर में प्रवेश किया।

दो. होंहि सगुन बरषहि सुमन, सुर दुदुभी बजाइ।
विबुध वधू नाचहि मुदित, मंजुल मंगल गाइ ॥३४७॥

अर्थ : सगुन हो रहा है। देवता दुन्दुभी बजाकर पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। देवताओं की बहुएँ प्रसन्न होकर सुमङ्गल गान करके नृत्य कर रही है।

व्याख्या : फिर सगुन सब नाचे। यथा : सुनि असि ब्याह सगुन सब नाचे। अब कीन्हे बिरचि हम साँचे। महाराज के चाहते ही आकाश से सुमनवृष्टि और देववधुओं का नाचना गाना कहते हैं। देवता लोग दुन्दुभी बजाकर सुमनवृष्टि करते हैं। पुर मे वधू प्रवेश है। वहाँ सुरतरुसुमनमाल की वर्षा हो रही है। जयमाल के समय : नाचहि गावहि बिबुध वधूटी। अब वधूप्रवेश का समय है तो विबुध वधू कहते हैं। वे वधूटियों से बड़ी हैं।

मागध सूत बंदि नट नागर। गावहि जसु तिहुँ लोक उजागर ॥
जय धुनि बिमल बेद बर बानी। दस दिसि सुनिय सुमंगल सानी ॥१॥

अर्थ : तीनों लोक में प्रकाशित यश का गान मागध सूत बन्दी और नागर नट कर रहे हैं। जयध्वनि और वेद की निर्मल वाणी मङ्गल से सनी हुई दशों दिशाओं मे सुनाई देती है।

व्याख्या : क्षत्रिय यशोधन होते हैं। महाराज दशरथ का यश तीनों लोक में प्रकाशित है। अतः वे क्षत्रियों में बड़े धनी है। उनका यशोगान मागध सूत बन्दी और नागरनट कर रहे है। पर इन लोगों के गान मे बड़ा भेद है। मागध वंशप्रशंसक हैं। वंश की प्रशंसा करना ही इनका गान है। सूत पौराणिक है। वे पुराण की गाथा से राजाओं के पूर्व पुरुषों के चरित कहते हैं। उनका पुराण के वचनों का पठन ही गान है। वन्दीजन प्रस्ताव के सदृश उक्ति करनेवाले प्रशस्ति का पाठ करते हैं। उनका प्रशस्ति पाठन ही गान है। पर नागरनट का गान ही सङ्गीत शास्त्र के अनुसार होता है। सङ्गीत में गान, वाद्य और नृत्य तीनों का अन्तर्भाव है। इसलिए उनका नृत्यसमाज रहता है। वे जो कुछ गान करते हैं वह सुर, लय, ताल, मूर्छना से युक्त होता है। अतः इन सबका गान एक साथ नहीं हो सकता। ये सब लोग अलग अलग गान कर रहे हैं। कौन कहाँ गान कर रहा है यह आगे कहा जायगा। यहाँ बारात का कोलाहल वर्णन के लिए जितने प्रकार के शब्द होते थे सबको एक साथ मिला दिया।

प्रजावर्ग की ओर से महाराज के प्रवेश के समय जय जयकार हुआ। जिस

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



क्रम से बारात चली थी उस क्रम से नगर मे प्रवेश नही हो रहा है। प्रवेश मे ब्राह्मणसमाज के आगे आगे वेदध्वनि करता जा रहा है। जो ब्राह्मण बारात मे नही गये थे। उन्होने घर पर जहाँ थे वही से स्वस्त्ययन आरम्भ कर दिया। ऊपर से देवताओ ने जय जयकार तथा देवर्षियो ने आशीर्वादात्मक मन्त्र पढे। इसलिए कहते है कि सुमङ्गल सानी वेद वाणी और जय ध्वनि दशो दिशाओ से सुनाई पड रही है।

विपुल बाजने बाजन लागे। नभ सुर नगर लोग अनुरागे ॥
बने बराती बरनि न जाही। महा मुदित मन सुख न समाही ॥२॥

अर्थ बहुत से बाजे बजने लगे। आकाश मे देवता और नगर मे लोग प्रेम मे मग्न हो गये। बाराती ऐसे बने ठने हैं कि वर्णन नही हो सकता। वे ऐसे प्रसन्न है कि सुख समा नही रहा है।

व्याख्या अन्त पुर के द्वार पर अलग बाजे बज रहे हैं। बारात मे अलग बाजे बज रहे हैं। प्रजाओ की ओर से भी बाजो की व्यवस्था है। ऊपर से देवताओ ने बाजे बजाये। क्योकि आकाश मे देवताओ को अनुराग है और नगर मे लोगो को अनुराग है।

नियम यह है कि बाराती बारात मे तो बन ठनकर जाते हैं। पर घर लौटते समय सामान्य वेप मे ही रहते है। परन्तु यहाँ तो महाराज के साथ नगर प्रवेश करना है। अत सब लोग बने ठने है। छरे छबीले छैल लोग हैं। उनका वर्णन नही हो सकता। श्रीरामजी की बारात करके लौट रहे है। अत बडे प्रसन्न हैं। सुख समा नही रहा है। रघुवशियो की बारात है। अत इनके आगे मागध वशप्रशसक वश की प्रशसा करते चल रहे है।

पुरबासिन तब राय जोहारे। देखत रामहि भये सुखारे ॥
करहिं निछावरि मनिगन चीरा। बारि बिलोचन पुलक सरीरा ॥३॥

अर्थ पुरवासियो ने तब महाराज का जोहार किया। रामजी को देखकर सुखी हुए। मणिगण और कपडे निछावर कर रहे है। उनके आँखो मे आँसू और शरीर मे पुलक है।

व्याख्या राजाओ को जो दोनो हाथ उठाकर प्रणाम किया जाता है उसे जोहार कहते हैं। बारात के पीछे महाराज की सवारी है। दोनो ओर से पुरवासी जोहार कर रह है। इनके आगे सूत लोग सूर्यवश की कीर्ति जो पुराणो मे है उसका गान करते चलते हैं। सब लोग सुखी तो रामजी को देखकर हुए। यथा ' सब विधि सब पुर लोग सुखारी। रामचद मुखचद निहारी। अर्थात् महाराज की सवारी के पीछ चारो भाइया की सवारी है। इनके आगे वन्दी प्रस्ताव सदृश उक्ति करनेवाले समयानुकूल बिरद बोलते चल रहे है। रामजी ब्याह करके घर लौट रहे हैं। इसलिए लोग मणि और वस्त्र निछावर कर रहे है और निछावर करते समय प्रेम के कारण उनकी आखो म जल और शरीर मे पुलक हो रहा है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



आरति करहिं मुदित पुर नारी। हरषहिं निरखि कुँअर वर चारी॥
सिविका सुभग ओहार उघारी। देखि दुलहिनिन्ह होहिं सुखारी॥४॥

अर्थ : पुरनारियाँ हर्षित होकर आरती करती हैं और चारो श्रेष्ठ कुँअरो को देखकर हर्षित होती हैं। सुन्दर पालकियो के ओहार अवधार को हटाकर दुलहिनो को देख देख सुखी होती हैं।

व्याख्या : पहिले से ही पुरनारियाँ आरती सजे खडी हैं। सो चारो दूल्हो को देखते ही आरती करती हैं और दर्शन करके प्रसन्न होती हैं। दूल्हे के रूप मे चारो सरकारो की विचित्र झाँकी है। नर निछावर करते हैं। स्त्रियाँ आरती करती हैं। चारो भाइयो को इस वेष मे देखकर हर्षित होती हैं। बहुत दिनो पर आज दर्शन हुआ है।

चारो भाइयो की सवारी के पीछे बहुओ के डोले हैं। इनके आगे सरस राग से शहनाई बज रही है। साथ ही साथ नागर नटो का गान हो रहा है। स्त्रियाँ अपने विशेष अधिकार से काम ले रही हैं। ओहार हटाकर नववधुओ को देखती हैं। डोला के क्रम से निर्णय करके वधुओ का मिलान उनके वरो से करती है और उनके अनुरूप पाकर सुखी होती हैं।

दो. येहि विधि सबही देत सुख, आए राजदुआर।
मुदित मातु परिछन करहिं, वधुन्ह समेत कुमार॥३४८॥

अर्थ : इस भाँति सबको सुख देते राजद्वार आये। माताएँ मुदित होकर बहुओ के साथ कुमारो का परिछन करती हैं।

व्याख्या : धीरे धीरे बारात अवध मे घूमती हुई राजद्वार आई। परिछन के पहिले ही वर दुलहिन एक पालकी मे कर दिये गये। सखियो का डोला तथा दासियाँ साथ हैं। उन सबो ने तुरन्त व्यवस्था कर दी। अब माताएँ वधुओ के साथ कुमारो का परिछन कर रही हैं।

करहिं आरती वारहिं बारा। प्रेमु प्रमोदु कहै को पारा॥
भूषन मनि पट नाना जाती। करहिं निछावरि अगनित भाँती॥१॥

अर्थ : बार बार आरती करती हैं। प्रेम और प्रमोद को कौन कह सकता है? नाना जाति के और अगणित भाँति के गहने कपडे और मणियो की निछावरि करती हैं।

व्याख्या : बहुत विधान की आरती माताओ ने पहिले से ही रच रक्खी है। उन सब विधानो की आरती क्रम से हो रही है। यथा रची आरती बहुत विधाना। इष्टदर्शन से प्रेम इष्टप्राप्ति से मोद और इष्टभोग से प्रमोद होता है। यहाँ प्रेम और प्रमोद के कहने से मोद का आपही आप अन्तर्भाव हो गया। इस प्रेम मोद और प्रमोद को कौन कह सकता है? कवि की ललकार है : जो कहने मे समर्थ हो वह सामने आवे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नगरवासियों ने मणिगण और चीर निछावर किया था। यहाँ तो माता लोग निछावर के लिए खड़ी हुई है। अतः नाना जाति के भूषण, वसन और मणिगन निछावर करती है। जाति के अन्तर्गत अगणित भाँति होती है। सो निछावर के समय यह भी ध्यान दिया जा रहा है कि कोई भाँति छूटती तो नही है।

वधुन समेत देखि सुत चारी। परमानंद मगन महतारी॥
पुनि पुनि सीय राम छवि देखी। मुदित सफल जग जीवन लेखी॥२॥

अर्थ बहुओं के सहित चारो बेटो को देखकर माता लोग परम आनन्द मे मग्न है। बार बार सीताजी और रामजी की छवि देखकर ससार में अपने जीवन को सफल माना।

व्याख्या: नगर नरनारी तो देखि दुलहिनिन्हि होहिं सुखारी। वर के अनुरूप अनुमान करके: यहाँ तो माता लोग प्रत्यक्ष चारो जोड़ियो का दर्शन कर रही है और चारो को अपना पुत्र पुत्रवधू मान रही है। अतः माताएँ परमानन्द मे मग्न हैं। छवि अधिक होने से श्रीसीतारामजी का बार बार निरीक्षण करती है। जग जीवन का साफल्य रामजी और सीताजी का दर्शन है। अथवा जो विधि जनम देइ करि छोहू। होहु राम सिय पूत पतोहू। अत: रामसिय को पूत पतोहू देखकर जन्म को सफल माना।

सखी सीय मुख पुनि पुनि चाही। गान करहिं निज सुकृत सराही॥
बरषहि सुमन छनहि छन देवा। नाचहि गावहि लावहि सेवा॥३॥

अर्थ: सखियाँ सीताजी का मुख बार बार देखकर गान करती है और अपने पुण्य की प्रशसा करती है। देवता लोग क्षण क्षण पर पुष्पवृष्टि करते है। नाचते है गाते है और अपनी अपनी सेवा का प्रयोग करते है।

व्याख्या: सासो का प्रेम देखकर सखी बार बार सीताजी का मुख देखती है। अथवा प्रत्येक आरती और निछावर के समय सीताजी का मुख देखती है: वे सीताजी की सखी हैं। उनके मनमे सीताजी की प्रधानता है। उन्ही के नाते से सब है: कि इनके हृदय मे कैसा प्रभाव पड रहा है। तो मुखमण्डल की शोभा अपूर्व देखी। अतः फिर फिर देखती है और अपने पुण्य को प्रशसा करती है कि किसी जनकपुरवासी ने सीयराम के साथ परिछन की शोभा नही देखी। मिथिला भाषा मे उन्होने गाना प्रारम्भ कर दिया। देखा कि इधर गीत बन्द हो गये। सब प्रेम प्रमोद मे विभोर है। आरती साजने के समय मङ्गलगान किया। आरती के समय कुछ नही। अतः इस समय आरती और निछावर के अवसर पर अवध मे मिथिला भाषा के गीत हो रहे हैं।

आनन्द की पराकाष्ठा हो गई। देवताओ मे लास्य तो पहिले से ही हो रहा था। अब ताण्डव भी हो रहा है। सिवा सेवा के पूर्णकाम का हित कोई कैसे कर सकता है। अथवा यों कहिए कि बिना सेवा के अपने जन्म के साफल्य का उपाय क्या है? सो आकाश मे देववाणी मे गान हो रहा है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



देखि मनोहर चारिउ जोरी। सारद उपमा सकल ढँढोरी ॥
देत न वनहि निपट लघु लागी। एकटक रही रूप अनुरागी ॥४॥

अर्थ चारो मनोहर जोडियो को देखकर शारदा ने सव उपमाएँ ढँढ डाली। परन्तु देते नही वनता। क्योकि अत्यन्त तुच्छ जची। सो वह भी रूप म अनुरक्त होकर एकटक सी देखती हो रह गईं।

व्याख्या महाराज दशरथ के पास सव चारो भाई बैठे थे तो कवियो ने उपमा खोज निकाली थी। यथा नृप समीप सोहहिं सुत चारी। जनु धन धर्मादिक तनु धारी। पर यहाँ अन्त पुर म तो कवियो की पहुँच नही है। उन्होने चारो जोडियो का दर्शन ही नही पाया उपमा कहाँ से दें। पर कोई चिन्ता की वात नही थी। कविकुल की आराध्य देवता शारदा वहाँ थी। उन्होने वडा प्रयत्न किया। सव उपमाओ को ढूँढ डाला। उनसे कोई उपमा छिपी नही है। हीनोपमा भी दी ही जाती है। पर उन्हे सभी उपमाएँ ऐसी तुच्छ जँची कि देने योग्य काई न ठहरी। वे भी रूप देखते मुग्ध हो गईं। एकटक दर्शन करती ही रह गईं।

दो निगम नीति कुल रीति करि, अरघ पाँवडे देत।
वधुन्ह सहित सुत परिछि सब, चली लिवाइ निकेत ॥३४९॥

अर्थ वेद की नीति और कुल की रीति करके अर्घ और पाँवडे देते हुए वहुआ को वेटे के सहित घर ले चली।

व्याख्या यह प्रभु के चरित की कविता नदी लौकिक और वैदिक कूलो के वीच से वहती है। यथा लोक वेद विधि मजुल कूला। अत सव कार्यो म वैदिक और लौकिक रीति करके ही कोई कार्य होता है। सो लोक वेद का निर्वाह करके तव वधुओ को वेटो के साथ घर मे लिवा ले चली। वधूप्रवेश के समय वधू को आगे करके और वर को पीछे करके लिवा जाने की रीति है। इसलिये कवि वधुओं का लिवा जाना कहते है। वर तो उनके साथ हैं।

चारि सिंघासन सहज सुहाए। जनु मनोज निज हाथ वनाए ॥
तिन्ह पर कुँअरि कुँअर वैठारे। सादर पाय पुनीत पखारे ॥१॥

अर्थ चार सिंहासन जो वडे सुन्दर वने हुए थे। मानो कामदेव ने उन्हे अपने हाथ से रचा है। उनपर कुँअर और कुँअरियो को विठाया और आदर से पाँव धोये।

व्याख्या सिंहासनो को सहज सोहाए कहा। क्योंकि उनकी वनावट ही इतनी सुन्दर थी कि उन्हे यदि साजा भी न जाय तो भी सुन्दर मालूम हो। उनका शिल्प मानुषी और दैवी शिल्प से भी उत्कृष्ट है। अत उस कहते हैं कि मानो कामदेव ने अपने हाथो वनाया है।

अव वरवधू का षश्चोपचार पूजन कहते हैं। पहिले आसन के लिए चार

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सिंहासन रक्खे गये थे। एक पर रामजानकी को बिठाया। दूसरे पर भरत माण्डवी को। तीसरे पर लक्ष्मण उर्मिला को और चौथे पर शत्रुघ्न श्रुतिकीर्ति को। आसन के बाद पाद्य का विधान है। इसलिए आदर के साथ पुनीत चरणों को धोया।

धूप दीप नैवेद वेद विधि। पूजे वर दुलहिनि मंगलनिधि ॥
बारहि बार आरती करही। ब्यजन चारु चामर सिर ढरही ॥२॥

अर्थ धूप दीप नैवेद्य द्वारा मङ्गलनिधि वर दुलहिन का पूजन किया गया। बारबार आरती करती हैं। पखा चल रहा है और सुन्दर चँवर ढुर रहे हैं।

व्याख्या तीसरा धूप, चौथा दीप, पाँचवाँ नैवेद्य इस भाँति पञ्चोपचार हुआ। मङ्गल के निधि भण्डार ये वरदुलहिन हैं। इनकी पूजा पञ्चोपचार से वैदिक मन्त्रो द्वारा की गयी। ये मङ्गलनिधि हैं। अत इनके विवाह मे मङ्गलमय, कल्याणमय, अभिमतफलदातार सगुन हुए। यथा मङ्गलमय कल्याणमय अभिमतफलदातार। जनु सब सांचे होन हित भये सगुन एक बार। अति उत्साह के कारण बार बार आरती करती है। पखा झला जा रहा है। यह कहकर ग्रन्थकार ने दिखला दिया कि बारात तीन चार महीने जनकपुर मे रह गई। शरद्पूर्णिमा के लगभग धनुषभग हुआ। कार्तिक मे बारात गई और लौटने के दिन पखा का काम पडा। राजोपचार से पूजा हो रही है। इसलिए चमर ढुर रहा है।

बस्तु अनेक निछावरि होही। भरी प्रमोद मातु सब सोही ॥
पावा परम तत्व जनु जोगी। अमृत लहेउ जनु संतत रोगी ॥३॥

अर्थ अनेक वस्तुएँ निछावर हो रही है। आनन्द से भरी माताएँ शोभित हो रही हैं। जैसे १ योगी को परम तत्त्व की प्राप्ति हो गई हो। २ और जन्म के रोगी को जैसे अमृत मिल गया हो।

व्याख्या यह पूजाङ्ग निछावर है। प्रमोद से भरी माताएँ शोभित है। सात सौ रानियाँ घेरे खडी है। प्रत्येक की निछावर अलग हो रही है। अनेक वस्तुएँ निछावर हो रही है। रानियो के प्रमोद की उपमाएँ ग्रन्थकार ने दी है। क्योकि उन्हे छ बात की खुशी हुई है। १ पहिली बडी भारी खुशी तो यह है कि रामजी की प्राप्ति हुई। महाराज दशरथ ने ऋषिजी को यज्ञ की रखवारी के लिए दे दिया था। जिस पर माता कहती हैं रिषि नृप सीस ठगौरी सी डारी। सिरस सुमन सुकुमार कुँअर दोउ सूर सरोष सुरारी। पठए बिनहि सहाय पयादेहि केलि बान धनुधारी। ऐसे दुष्कर कार्य के लिए महाराज ने ऋषिजी के साथ भेज दिया था। इनकी प्राप्ति महा कठिन थी। इनकी प्राप्ति परम तत्त्व की प्राप्ति के समान दुर्लभ थी और थे भी ये साक्षात् परम तत्त्व ही। यथा योगिन परम तत्त्वमय भासा। सा दोनो भाइयो ने मख रखवारी की। छवो बातो को आगे चलकर गिनाया है। यहाँ केवल खुशियो का वर्णन है। पर बिना उन छवो बातो के जाने यह न मालूम होगा कि किस बात पर कैसी खुशी हुई। अत उनका उल्लेख किये देता हूँ। १ मख

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रखवारी करि दोउ भाई। २ गुरु प्रसाद सब विद्या पाई। ३ मुनि तिय तरी लगत पग धूरी। कीरति रही भुवन भरिपूरी। ४ कमठ पीठि पवि कूट कठोरा। नृप समाज महँ सिवधनु तोरा। ५ विस्व विजय जसु जानकि पाई। ६ आए भवन व्याहि सब भाई। सो पहिली बात की खुशी का वर्णन तो ऊपर किया जा चुका है। २ दूसरी बात है · गुरु प्रसाद सब विद्या पाई। यथा जाते लाग न छुधा पियासा। अतुलित बल तन तेज प्रकासा। बेटो के सिरिस सुमन की भाँति सुकुमार होने से माता सदा डरा करती थी। सो उनके इस विद्या की प्राप्ति से वह भय जाता रहा। इसलिए ऐसी प्रसन्नता हुई अमृत लहेउ जनु सतत रोगी।

जनम रकु जनु पारस पावा। अधेहि लोचन लाभु सुहावा॥
मूक बदन जनु सारद छाई। मानहु समर सूर जय पाई॥४॥

अथ · ३ जन्म के दरिद्र को जैसे पारस मिला हो। ४ अन्धे को सुन्दर नेत्रो का लाभ हुआ हो। ५ गूँगे के मुख मे जैसे सरस्वती बस गई हो। ६ जैसे समर मे शूर को जयलाभ हुआ हो।

व्याख्या . ३ मुनि तिय तरी लगत पग धूरी। कीरति रही भुवन भरि पूरी। पुत्र के चरणरेणु की ऐसी कीर्ति फैली कि भुवन भर उठा। इस बात से ऐसी प्रसन्नता हुई जैसे जन्मरङ्क को पारस मिलने से होती है। यशोधन हैं। कीर्ति की बडी कामना है। सो पुत्र के चरणरज से मिलती रहेगी। इसीलिए ऐसी प्रसन्नता हुई। ४ कमठपीठ पवि कूट कठोरा। नृप समाज महँ सिवधनु तोरा। इस बात से ऐसी प्रसन्नता हुई जैसे अन्धे को आँख मिले। रानी सोचती है कि मैं तो जन्म की अन्धी थी मुझे नही मालूम कि इतना सामर्थ्य है। मै तो सिरिस सुमन सा सुकुमार ही समझती थी। अत धनु तोडना सुनने से ऐसी प्रसन्नता हुई। ५ विस्व विजय जस जानकी पाई। माताएँ मूक सी थीं। घर सकुशल लौटना कठिन समझती थी। यथा जे कहिहैं आये राम लखन घर करि मुनि मख रखवारी। ते तुलसी प्रिय मोहि लागिहैं ज्यों सुभाय सुत चारी। बादि बीर जननी जीवन जग छत्रि जाति गति भारी। सो विस्व विजय पाया। जानकी पाई। अत ऐसी खुशी हुई कि जैसे मूक के मुख मे सरस्वती के डेरा लेने से होती है जानकीजी महाविद्या हैं। ६ मानहु समर सूर जय पाई। शूर जय के लिए सुखेन प्राण समर्पण करता है। सब भाई व्याह के घर आये। यह बात प्राण से भी अधिक प्यारी है। इसलिए शूर के समर मे जय पाने के समान प्रसन्नता हुई।

दो इहि सुख ते सत कोटि गुन, पावहि मातु अनदु।
भाइन सहित बिआहि घर, आये रघुकुलचदु॥३५०॥ क

अर्थ इस प्रकार के सुखो से सौगुना आनन्द माताएँ पा रही हैं। भाइयो के सहित व्याह करके रघुकुलचन्द घर आये हैं।

व्याख्या इ सुख गिनाकर केवल सुख का प्रकार कहा। उत्कर्ष न कहा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अत कहते है कि रामजी के व्याह के घर आने से इन सुखो से कोटि गुन अधिक सुख हुआ। व्याहकर भाइयो सहित घर आने के सुख मे शेष पाँचो प्रकार के सुखो का अन्तर्भाव है।

दो० लोक रीति जननी करहिं, वर दुलहिन सकुचाहिं।
मोद विनोद विलोकि वड़, राम मनहि मुसुकाहिं ॥३५०॥ ख

अर्थ माताएँ लोकरीति कर रही है। वर दुलहिन सकुचते हैं। इस पर मोद विनोद बहुत बढ रहा है। रामजी मन मे मुसकराते हैं।

व्याख्या दधि मिष्टान्न प्राशनादि लोकरीति माताएँ कर रही है। यह पहिले भी कोहवर मे हो चुका है। पर यहाँ माँ द्वारा हो रहा है। अत वर दुलहिन को सङ्कोच हो रहा है। इनके सङ्कोच पर मोद है तथा ऐसे अवसर पर स्त्रियाँ विनोद भी करती है। इस मोद विनोद पर रामजी मन ही मन मुसकरा रहे है। यथा : मन मुसुकाहिं भानुकुल भानू। राम सहज आनद निधानू। रामजी पर इस मोद प्रमोद विनोदादि का कोई प्रभाव नही है। वे अपने सहज आनन्द मे ही निमग्न हैं। उसी आनन्द मे मनही मन मुसकरा रहे हैं। यह सब कौतुक भी देख रहे हैं।

देव पितर पूजे विधि नीकी। पूजी सकल वासना जी की ॥
सबहि वंदि माँगहि वरदाना। भाइन्ह सहित राम कल्याना ॥१॥

अर्थ देवता और पितरो की पूजा भलीभाँति से की। जी की सब वासनाएँ पूरी हुईं। सबकी वन्दना करके वरदान माँगते है कि भाइयो के सहित रामजी का कल्याण हो।

व्याख्या देवलोक और पितृलोक का इस लोक से वडा घना सम्वन्ध है। देवता और पितर पूजित होकर इष्टभोग दिया करते है। यथा · इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविता। तैर्दत्ता न प्रदायैभ्यो यो भुक्ते स्तेन एव स। उनके दिये हुए भोगो को तो भोगे और उन्हे न दे। ऐसे पुरुष को शास्त्रो मे चोर वतलाया है। अत मङ्गल का समय उपस्थित होने पर देवता और पितरो की विशेष रूप से पूजा की जाती है। इस समय सवके जी की सव वासनाएँ पूर्ण हुई है। इसलिए भलीभाँति से देवताओ और पितरो की पूजा की। पूजनोपरान्त यही वरदान माँगती है कि भाइयो के सहित रामजी का कल्याण हो। यही एक मात्र सबका ध्येय है। भक्तो का समाज है। सब ओर से ममता खिचकर श्रीरामजी के चरणो म बँधी हुई है। अशो के महित उन्ही का कल्याण मनाते है।

अतरहित सुर आसिष देही। मुदित मातु अंचल भरि लेही ॥
भूपति वोलि वराती लीन्हे। जान वसन मनि भूषन दीन्हे ॥२॥

अर्थ अन्तर्धान रहकर देवता लोग आशीर्वाद देते हैं। प्रसन्न होकर माताएँ अञ्चल भरकर लेती हैं। महाराज ने वारातियो को वुलाया। उन्हे सवारी, कपडे, मणि और आभूषण दिये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या आवाहन करने से देवता लोग आते है। पर स्थूलदृष्टि से उनका दर्शन नही होता। वे पूजा पाकर आशीर्वाद देते है। पर स्थूल श्रोत्र उन्हे सुन नही सकते। यही साधारण नियम है। उनका प्रत्यक्ष हो जाना और उनके आशीर्वाद का सुनाई पडना उनके बडे भारी अनुग्रह का द्योतक है। विवाह के समय दोनों बातें हुई थी। यथा सुर प्रगटि पूजा लेहिं देहिं असीस अति सुख पावही। अब तो ब्याह हो गया है। समाप्ति का पूजन हो रहा है। अत दृष्टिगोचर तो नही हो रहे हैं। पर आशीर्वाद श्रवणगोचर हो रहा है। अथवा स्वय राम जानकी के हाथ का पूजन ग्रहण करने के लिए प्रत्यक्ष होकर आशीर्वाद दिया। माताओ के पूजन मे अन्तर्हित रहते हुए आशीर्वाद देते हैं। स्त्रियाँ अञ्चल पसारकर माँगती है और पुरुष अञ्जलि बाँधकर माँगते है। सो माताएँ भाइयो सहित रामजी का कल्याण माँगती हैं। देवता लोग तथास्तु कहते हैं जो सुनाई पडता है। माता लोग उसे मिला हुआ मानकर अञ्चल मे इस भाँति प्रेम से ले रही हैं जिस भाँति उन्हे कोई भौतिक वस्तु मिली हो।

पहिला कार्य महाराज ने यह उचित समझा कि बारातियो की विदाई की जाय। अत उन्हे बुलवाया। जिस भाँति बारात मे सबसे पहिल सजधजकर छरे छबील छैल लोग आये थे उसी भाँति यहाँ भी वे ही पहिले आये। उन्हे महाराज की ओर से रथ बखसा गया। अर्थात् उन्हे रथी का पद मिला। बारात के क्रम के अनुसार ही उनके बाद रथी लोग आये। उन्हे वस्त्र अर्थात् सिरोपाव देकर आदर किया गया। उसके बाद वैदिक ब्राह्मण तथा वन्दीजन आये। उन्हे मणि भूषण दिये गये। अथवा सबको सब दिया गया।

आयसु पाइ राखि उर रामहि। मुदित गए सब निज निज धामहि॥
पुर नर नारि सकल पहिराए। घर घर बाजन लगे बधाए॥३॥

अर्थ आज्ञा पाकर और रामजी को हृदय मे रखकर प्रसन्न हो सब अपने अपने घर गये। पुर नर नारि सभी को पहिरावन मिला। घर घर बधाये बजने लगे।

व्याख्या आज्ञा पाकर आये थे। आज्ञा पाकर जा रहे हैं। महीनो बाद घर जा रहे हैं। इसलिए मुदित हैं। अथवा विदाई पाकर मुदित हैं। फिर भी रामजी सबको इतने प्रिय हैं कि इन्हे छोडते नही बनता। अत उन्हे हृदय मे रखकर जा रहे है। बाहरी बारातियो के विदा करने के बाद महाराज की आज्ञा हुई कि सभी प्रजा को पहिरावा मिलना चाहिए। अत पुर नरनारियो के यहाँ पहिरावा भेजा गया। महाराज के यहाँ से पहिरावा आया है। इस उत्सव मे घर घर बधाये बजने लगे।

जाचक जन जाचहि जोइ जोई। प्रमुदित राउ देहिं सोइ सोई॥
सेवक सकल बजनिआ नाना। पूरन किये दान सनमाना॥४॥

अर्थ याचक लोग जो जो माँगते हैं। प्रसन्न होकर राजा वही वही वस्तु

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दे रहे है। सब सेवकों और नाना प्रकार के बाजे बजानेवालो को दान और सम्मान से सन्तुष्ट कर दिया।

व्याख्या इस घर से याचको की भी विदाई होती है। और लोगो की विदाई तो महाराज ने अपनी रुचि से की। पर याचको से उनकी चाही हुई वस्तु उनसे पूछ पूछ कर दी जा रही है। राजा शङ्कररूप है। इसे याचक सदा अच्छे लगते हैं। उन्हे ईप्सित पदार्थ देते हैं। अब सेवक और बाजा बजानेवालो की पारी आयी। उन्हे इनाम दिया गया। उनका सत्कार किया गया। नाना शब्द मे विदूषक का नागर नट आदि का भी ग्रहण है। सबको सन्तुष्ट किया गया। व्याह ही एक ऐसा अवसर है जिसम सभी गृहस्थ यथाशक्ति सबको सन्तुष्ट करने की चेष्टा करता है और सभी लोग उससे सत्कार पाने की आशा करते हैं।

दो देहि असीस जोहारि सब, गावहि गुन गन गाथ।
तब गुरु भूसुर सहित गृह, गवनु कीन्ह नरनाथ ॥३५१॥

अर्थ सब जोहार करके आशीर्वाद देने और गुणगाथा गाने लगे। तब गुरु और ब्राह्मणो के साथ नरनाथ दशरथजी घर गये।

व्याख्या सेवक और बजनियाँ आदि जोहार करके आशीर्वाद देते हैं। महाराज की गाथा का सभी गान कर रहे हैं। क्योकि सबको सन्तुष्ट किया है। जितने लाग बारात मे आये थे उन सबको सत्कार करके घर भेजकर तब आप घर चले। घर जाने म भी गुरुजी तथा ब्राह्मणो को साथ लेकर अन्त पुर मे प्रवेश करते है। इनसे परदा नही है। नरनाथ है मनुष्य मात्र के कल्याण पर दृष्टि है।

जो वसिष्ठ अनुसासन दीन्ही। लोक वेद विधि सादर कीन्ही ॥
भूसुर भीर देखि सब रानी। सादर उठी भाग्य बड जानी ॥१॥

अर्थ जो वसिष्ठजी ने लोकविधि और वेदविधि के लिए आज्ञा दी उसे आदर के साथ किया। ब्राह्मणो की भीड देखकर रानियाँ बडा भाग्य जानकर आदर के साथ उठी।

व्याख्या मुनि का अनुशासन सर्वथा ग्राह्य है। मुनि के अनुशासन से ही शिवजी ने गणपति का पुत्रका पूजन किया। वह अनुशासन अविचारणीय है। तदनुसार लोकविधि मण्डपग्रन्थिनिर्मोकादि तथा वेदविधि देवपितृविसर्जनादि श्रद्धा के साथ किया। क्योकि विना श्रद्धा से जो कुछ किया जाता है वह सब असत् हो जाता है। यथा अश्रद्धया हुत दत्त तपस्तप्त कृतश्च यत्। असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह।

विप्रसङ्कीर्ण मन्दिर बडे भाग्य से होता है। सो रानियो ने आँगन मे ब्राह्मणो की भीड देखी। सो आदर के साथ उठी। अपना बडा भाग्य माना। महाराज वैदिक लौकिक कृत्य कर रहे हैं तबसे ब्राह्मणो का सत्कार होना चाहिए।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankumagpal108@gmail.com

पाय पखारि सकल अन्हवाये । पूजि भली विधि भूप जेवाये ॥
आदर दान प्रेम परिपोषे । देत असीस चले मन तोषे ॥२॥

अर्थ : सबको पाँव धोकर नहलाया। राजा ने भलीभाँति पूजन करके भोजन करवाया। आदर दान और प्रेम से परिपुष्ट होनेपर मन से सन्तुष्ट होकर आशीर्वाद देते चले।

व्याख्या : महारानियों ने पाद प्रक्षालन पूर्वक सबको स्नान कराया। तब तक महाराज कृत्य से खाली हो गये। पूजन उन्होंने विधान से किया। तत्पश्चात् सबको भोजन कराया। आदर पूर्वक दक्षिणा दी। ताम्बूल दिया। प्रेम से परिक्रमा की। चरणस्पर्श किये। ब्राह्मण सब प्रकार से पूजित होकर सन्तुष्ट हुए और आशीर्वाद देते चले। परोक्ष में रास्ते चलते आशीर्वाद देते जा रहे हैं।

बहु विधि कीन्ह गाधिसुत पूजा । नाथ मोहि सम धन्य न दूजा ॥
कीन्ह प्रसंसा भूपति भूरी । रानिन्ह सहित लीन्हि पग धूरी ॥३॥

अर्थ : बहुत प्रकार से विश्वामित्रजी की पूजा की। कहा कि नाथ ! मेरे समान कोई धन्य नहीं है। राजा ने बड़ी प्रशंसा की और रानियों के सहित चरणों की धूलि ली।

व्याख्या : जब सब ब्राह्मणों की पूजा की उस समय गाधि के पुत्र विश्वामित्र की पूजा नहीं की। क्योंकि इनकी पूजा बहुत विधान से करनी थी। उस समय पूजा करने से पंक्तिभेद हो जाता। गाधिसुत करने से विश्वामित्रजी का अलौकिक पुरुषार्थ द्योतन किया जो अपनी तपस्या के बल द्वारा क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गये। पूजनोपरान्त स्तुति की और कहा कि मेरे समान धन्य कोई नहीं। किसके बेटे के ब्याह में आप बारात गये थे ? मुझपर आपकी इतनी कृपा है। अतः मेरा बड़ा पुण्य है। पुण्यात्मा को ही धन्य कहते हैं। यथा : सुकृती पुण्यवान् धन्य । इसी रीति से महाराज ने उनकी बड़ी प्रशंसा की। सुनकर महारानियों को भी बड़ी श्रद्धा हुई और उन लोगों ने भी महाराज के साथ ही उनकी चरणधूलि को सिर पर रक्खा।

भीतर भवन दीन्ह बर बासू । मनु जोगवत रह नृपु रनिवासू ॥
पूजे गुरु पद कमल बहोरी । कीन्हि बिनय उर प्रीति न थोरी ॥४॥

अर्थ : उनको अन्तःपुर के भीतर ही श्रेष्ठ निवास स्थान दिया। राजा स्वयं रनिवास के साथ उनका मन देखा करते थे। फिर राजा ने गुरु : वसिष्ठजी के चरणकमलों की पूजा की। उनके हृदय में बड़ी प्रीति थी। तदनुसार विनती की।

व्याख्या : विश्वामित्रजी को अन्तःपुर में ही निवास देने का यह भाव कि जिसमें महाराज को महारानियों के साथ स्वयं सेवा करने का सुयोग मिल सके। जो सेवा कराना है वही सेवा करना जानता है। संसार राजा की सेवा के लिए

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उत्सुक रहता है। अत राजा जानता है कि सेवा कैसे की जाती है। अत्यन्त आदर के लिए स्वय भी सेवा करना चाहते है। रानियो की भी सेवा करने की अतिश्रद्धा है। विश्वामित्रजी को आज्ञा देने की आवश्यकता नही पडती। उनका रुख देखकर ही महाराज तथा महारानियाँ सब काम कर देती है। अयोध्या की सभ्यता इतनी बढी चढी है कि वहाँ अधिकाश कार्य रुख देखकर ही हुआ करता है। अङ्गो की पूजा पहिले और प्रधान की पूजा अन्त मे होती है। इसी क्रम से गुरु वसिष्ठजी की पूजा सबके पीछे हुई। महाराज की गुरुचरणो मे बडी प्रीति है। अत पूजनोपरान्त विनय किया।

दो वधुन समेत कुमार सब, रानिन्ह सहित महीस।
पुनि पुनि बदत गुरु चरन, देत असीस मुनीस ॥३५२॥

अर्थ बहुओ के साथ सब कुमार और रानियों के सहित राजा बार बार गुरुचरणो की वन्दना करते है और मुनीश्वर आशीर्वाद देते हैं।

व्याख्या वधुओ को मैके से शिक्षा मिली है सास ससुर गुर सेवा करेहू पति रुख लखि आयसु अनुसरेहू। सो वे सास ससुर पति सबको गुरुजी के पादाक्रान्त देखती हैं। अत वधुओ की भी बडी श्रद्धा है। सब लोग बार बार श्रद्धातिरेक से गुरुचरणो की वन्दना कर रहे हैं और गुरुजी सबको आशीर्वाद देते हैं। गुरु और पुरोहित घर के प्राणी हो जाते हैं। उनसे न कोई सङ्कोच रहता है न परदा रहता है और न कोई बात छिपी रहती है। यहाँ गुरुजी बीच मे आसीन है। महाराज दशरथ, रानियो, बेटो और पतोहुओ को लिये हुए सपरिवार पूजन कर रहे है। सब प्रेम से बारबार प्रणाम कर रहे है और वृद्ध वसिष्ठ सबके बीच मे बैठे आशीर्वाद दे रहे हैं।

विनय कीन्हि उर अति अनुरागे। सुत सपदा राखि नृप आगे॥
नेग माँगि मुनि नायक लीन्हा। आसिरबादु बहुत बिधि दीन्हा॥१॥

अर्थ अत्यन्त प्रेम से पुत्र और सम्पदा सामने रखकर विनय किया। मुनि-नायक ने नेग माँगकर लिया और बहुत विधि से आशीर्वाद दिया।

व्याख्या महादानी राजा है गुरु की बिदाई क्या करें। सो सारी सम्पदा सामने रक्खी और बेटो को भी रख दिया। जिनके लिए कहा था कि सब सुत मोहि प्रिय प्रान की नाई। राम देत नहि बनै गोसाई। उन्हे भी सामने रखकर विनय करते है कि आप स्वीकार कर लीजिये। मुनिजी लेना भी नही चाहते और प्रेम का अनादर करना भी नही चाहते। अत अपना नेग माँगा कि हमारा नेग इतना होता है। सो मुहमाँगा नेग पाने पर जिस भाँति तुष्ट होकर पुरोहित आशीर्वाद दिया करते है उसी भाँति बहुत प्रकार से आशीर्वाद दिया।

उर धरि रामहि सीय समेता। हरषि कीन्ह गुर गवनु निकेता॥
विप्रबधू सब भूप बोलाई। चैल चारु भूषन पहिराई॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ हृदय मे सीताजी के सहित रामजी को रखकर हर्षित हो गुरुजी घर गये। राजा ने विप्रवधुओं को बुलाया। सुन्दर कपडे और गहने पहिनाये।

व्याख्या: सर्वोत्तम वस्तु गुरुजी ने चुन ली। रामजी को सीता सहित देखकर युगलमानसी मूर्ति को हृदय मे रख लिया और हर्षित होकर घर गये। अव विवाहपद्धति के अनुसार विप्रवधू और सुआसिनो का सत्कार शेष है। सो राजा ने उन्हे भी बुलवाया। पुर नर नारियो को पहिले ही पहिरावा मिल चुका है। विप्रवधुओ को नही मिला है। इनका विशेष सत्कार होगा। इसलिए सवके साथ इनका सत्कार नही हुआ था। अत उन्हे कपडे और गहने पहिनाये।

बहुरि बुलाइ सुआसनि लीन्ही। रुचि विचारि पहिरावनि दीन्ही ॥
नेगी नेग जोग सब लेही। रुचि अनुरूप भूपमनि देही ॥३॥

अर्थ फिर सुहागिनो को बुला लिया। रुचि का विचारकर पहिरावा दिया। नेगी लोग नेग जोग ले रहे है। जिसको जो रुचि है उसे वही भूपमणि दे रहे हैं।

व्याख्या: विप्रवधुओ के सम्मान के बाद सुहागिनी स्त्रियो का सम्मान आरम्भ हुआ। वे सौभाग्यवती है। लज्जा से अपनी अभिरुचि व्यक्त न करेंगी। अत स्वय उनकी रुचि का विचार उनके वेषभूषा से करके उनको पहिरावा दिया। नेगियो को नेग जोग देना शेष है। वे तो झगड कर लेते हैं। उन्हे माँगने मे सङ्कोच नही है। अत स्पष्ट रुचि जानकर देते है। भूपमणि हैं देने से अघाते नही।

प्रिय पाहुने पूज्य जे जाने। भूपति भली भाँति सनमाने ॥
देव देखि रघुबीर बिवाहू। बरषि प्रसून प्रसंसि उछाहू ॥४॥

अर्थ जिन प्रिय पाहुनो को पूज्य समझा राजा ने उनका भलीभाँति से सम्मान किया। देवताओ ने रघुवीर का विवाह देखकर पुष्पो की वृष्टि करके और उछाह का वर्णन करके

व्याख्या प्रिय पाहुने दो प्रकार के होते हैं। एक पूज्य यथा बहनोई, दामाद इत्यादि और दूसरे पूजक : जैसे साले इत्यादि। इनमे से पूजको का तो केवल सम्मान किया जाता है। क्योकि वे दिया हुआ कुछ ग्रहण न करेगे। परन्तु पूज्यो का वस्त्रालङ्कारादि से भलीभाँति सम्मान किया जाता है। तदनुसार उनका वैसा ही सम्मान किया गया।

देवविसर्जन हो गया था। यथा . जो वसिष्ठ अनुसासन दीन्ही। लोक वेद विधि सादर कीन्ही। अत अब ठहरने की आवश्यकता न रह गई। व्याहकार्य भी समाप्त हो गया। अत चलने के समय फिर पुष्पवृष्टि की और उछाह की प्रशसा की। जिसे देखकर वे क्षण क्षण पर पुष्पवर्षा करते थे और स्वय उस रस मे लीन होकर नाचने गाने लगे थे। यथा बरखहिं सुमन छनहि छन देवा। नाचहिं गावहिं लावहिं सेवा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो चले निसान बजाइ सुर, निज निज पुर सुख पाइ।
कहत परसपर राम जसु, प्रेमु न हृदय समाइ ॥३५३॥

अर्थ देवता लोग डङ्का बजाकर और सुख पाकर अपने अपने लोकों को चले। आपस म रामजी का यश कहते जाते थे। प्रेम हृदय मे नही समाता था।

व्याख्या विवाह हो जाने से निर्भय है। जानते हैं कि जानकीहरण से रावणवध होगा। विवाह होने से विधि बैठ जायगी। अत सुख पाकर अथवा इस विवाह के देखने से लोचन का फल पाकर सुखी हुए और डङ्का बजाकर चले। सबके लोक दूर दूर और पृथक् दिशाओ में हैं। अत उन उन दिशाओ मे चले। ईशानकोण की ओर शिव चले। इन्द्र पूर्व की ओर चले। अग्नि अग्निकोण की ओर, धर्म दक्षिण की ओर, निऋति नैऋत्य कोण की ओर, वरुण पश्चिम की ओर, वायु वायव्यकोण की ओर और कुबेरजी उत्तर की ओर चले। इस भाँति देवता लोग अपने अपने निवासस्थान को चले। अपने अपने समाज मे रामजी के सुबाहुवध, धनुषभङ्ग, परशुरामपराजय आदि यश का वर्णन करते जाते थे। क्योंकि हर्ष उनके हृदय म समाता न था। जिसम इतना पराक्रम है उसी के हाथ से रावणवध सम्भव है।

सब विधि सबहि समदि नर नाहू। रहा हृदय भरिपूरि उछाहू ॥
जहँ रनिवास तहाँ पगु धारे। सहित बधूटिन्ह कुअँर निहारे ॥१॥

अर्थ सब भाँति सबका सत्कार करके महाराज के हृदय में उछाह उमडा हुआ था। जहाँ रनिवास था वहाँ पधारे तो बहुओ के साथ कुँअरो को देखा।

व्याख्या नरनाथ है। उन्हे सत्कार करने मे भी बडा हर्ष का अनुभव होता था। सबका यथोचित सत्कार किया। अत सबके सत्कार की पृथक् विधि कवि ने लिखी। देवता लोग प्रिय पाहुने पूज्य के सत्कार के समय गये। क्योंकि उन्ही की अन्तिम विदाई थी।

सब बारातियो को घर भेजकर तब अन्त पुर मे गये अभी तक धर्मकृत्य मे साथ देने के लिए रानियाँ मण्डप मे आई थी। वहाँ पर जाकर चार सिंहासनो पर बहुओ के साथ बैठे हुए कुँअरो को देखा। चमर चल रहा है। पखे झले जा रहे है। रानियाँ घेरे हुए है। आमोद प्रमोद हो रहा है इत्यादि।

लिय गोद करि मोद समेता। को कहि सकै भयेउ सुखु जेता ॥
बधू सप्रेम गोद बैठारी। बार बार हिय हरखि दुलारी ॥२॥

अर्थ आनन्द से गाद मे ल लिया। जैसा सुख हुआ सो कहा नही जा सकता। बहुआ को प्रेम से गोद मे बिठलाया। बार बार हृदय मे हर्षित होकर उनका दुलार किया।

व्याख्या कई बार बधुओ के साथ कुँअरो को देख चुके हैं। पर अवसर न होने से गोद मे नही लिया था। सो पहिले कुँअरो को गोद मे बिठाकर अवर्णनीय

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुख का अनुभव किया। फिर बहुओं को गोद में लिया। अभी सबकी सब अल्पवयस्का हैं। पिता के गोद में बैठने का समय बीता नहीं है। अतः गोद में बैठाकर दुलार करते हैं। मानो पितृवियोगजनित पीड़ा का मार्जन कर रहे हैं। जनकजी की विनती का पूरा ध्यान है। यथा : ये दारिका परिचारिका करि पालबी करुना नई।

देखि समाज मुदित रनिवासू। सबके उर अनंदु कियो बासू ॥
कहेउ भूप जिमि भयेउ बिबाहू। सुनि सुनि हरषु होत सब काहू ॥३॥

अर्थ : वह दृश्य देखकर रनिवास प्रसन्न था। सबके हृदय में आनन्द ने निवास किया। महाराज ने कह सुनाया कि किस भाँति विवाह हुआ। सुन सुनकर सबके हृदय में हर्ष होता था।

व्याख्या : कौटुम्बिक सुख की पराकाष्ठा है। आनन्द से पूर्ण पति बैठे हुए हैं। चारों बेटों और बहुओं का लाड प्यार हो रहा है। वे व्याहकर अभी आये हैं। पतिसुख पुत्रसुख, पुत्रवधूसुख, राज्यसुख, कीर्तिसुख, सभी सुख प्राप्त हैं। हृदय में सब रानियों को स्थायी सुख हुआ। इसलिए कवि कहते हैं सबकें उर अनद कियो बासू।

रानियों ने विवाह नहीं देखा। प्रिय समाचार महाराज के मुख से सुनने के लिए उत्सुक हैं। जिस विवाहसम्बन्धी पत्र को छाती से लगाकर छाती ठण्डी करती थी उस विवाह के वर्णन के सुनने में भी उन्हें बड़ा सुख था। महाराज ने सब वर्णन किया। समधियाने का समाचार सुनकर सब हर्षित हो रही हैं।

जनक राज गुन सीलु बड़ाई। प्रीति रीति संपदा सुहाई ॥
बहुबिधि भूप भाट जिमि बरनी। रानीं सब प्रमुदित सुनि करनी ॥४॥

अर्थ : राजा जनक का गुण, शील, बड़ाई, प्रीति की रीति और सुन्दर सम्पदा का वर्णन राजा ने अनेक प्रकार से बंदीजनों की भाँति किया। करणी सुनकर सब रानियाँ प्रमुदित हुईं।

व्याख्या : राजा लोग मितभाषी होते हैं। उनके एक एक शब्दों का मूल्य होता है। जिसकी प्रशंसा का एक शब्द उनके मुख से निकल गया उसका महाभाग्य माना जाता था। सो महाराज दशरथ जनकराज के १ गुण २ शील ३ बड़ाई ४ प्रीति की रीति और ५ सुन्दर सम्पदा से ऐसे प्रभावित हैं कि उनके वर्णन में अघाते नहीं हैं।

१ गुण। यथा : सनमानि सकल बरात आदर दान बिनय बड़ाइ कै।
प्रमुदित महामुनिबृन्द बंदे पूजि प्रेम लड़ाइ कै।
कुल इष्ट सरिस बसिष्ठ पूजे बिनय करि आसिस लही।
कौसिकहिं पूजत परम प्रीति कि रीति पै न परै कही।
बहुरि कीन्ह कोसलपति पूजा। जानि ईस सम भाव न दूजा ॥
पूजे भूपति सकल बराती। समधी सम सादर सब भाँती ॥

इत्यादि।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो चले निसान बजाइ सुर, निज निज पुर सुख पाइ।
कहत परसपर राम जसु, प्रेमु न हृदय समाइ ॥३५३॥

अर्थ देवता लोग डङ्का बजाकर और सुख पाकर अपने अपने लोकों को चले। आपस मे रामजी का यश कहते जाते थे। प्रेम हृदय मे नही समाता था।

व्याख्या विवाह हो जाने से निर्भय हैं। जानते है कि जानकीहरण से रावणवध होगा। विवाह होने से विधि बैठ जायगी। अत सुख पाकर अथवा इस विवाह के देखने से लोचन का फल पाकर सुखी हुए और डङ्का बजाकर चले। सबके लोक दूर दूर और पृथक् दिशाओ मे है। अत उन उन दिशाओ मे चले। ईशानकोण की ओर शिव चले। इन्द्र पूर्व की ओर चले। अग्नि अग्निकोण की ओर, धर्म दक्षिण की ओर, निऋति नैर्ऋत्य कोण की ओर, वरुण पश्चिम की ओर, वायु वायव्यकोण की ओर और कुबेरजी उत्तर की ओर चले। इस भाँति देवता लोग अपने अपने निवासस्थान को चले। अपने अपने समाज मे रामजी के सुबाहुवध, धनुषभङ्ग, परशुरामपराजय आदि यश का वर्णन करते जाते थे। क्योकि हर्ष उनके हृदय मे समाता न था। जिसमे इतना पराक्रम है उसी के हाथ से रावणवध सम्भव है।

सब विधि सबहि समदि नर नाहू। रहा हृदय भरिपूरि उछाहू ॥
जहँ रनिवास तहाँ पगु धारे। सहित बधूटिन्ह कुअर निहारे ॥१॥

अर्थ सब भाँति सबका सत्कार करके महाराज के हृदय मे उछाह उमडा हुआ था। जहाँ रनिवास था वहा पधारे तो बहुओ के साथ कुँअरो को देखा।

व्याख्या नरनाथ हैं। उन्हे सत्कार करने मे भी बडा हर्ष का अनुभव होता था। सबका यथोचित सत्कार किया। अत सबके सत्कार को पृथक् विधि कवि ने लिखी। देवता लोग प्रिय पाहुने पूज्य के सत्कार के समय गये। क्योकि उन्ही की अन्तिम विदाई थी।

सब बारातियो को घर भेजकर तब अन्त पुर मे गये अभी तक धर्मकृत्य मे साथ देने के लिए रानियाँ मण्डप मे आई थी। वहाँ पर जाकर चार सिंहासनो पर बहुओ के साथ बैठे हुए कुँअरो को देखा। चमर चल रहा है। पखे झले जा रहे हैं। रानियाँ घेरे हुए है। आमोद प्रमोद हो रहा है इत्यादि।

लिय गोद करि मोद समेता। को कहि सकै भयेउ सुखु जेता ॥
वधू सप्रेम गोद बैठारी। बार बार हिय हरखि दुलारी ॥२॥

अर्थ - आनन्द से गोद मे ले लिया। जैसा सुख हुआ सो कहा नही जा सकता। बहुओं को प्रेम से गोद मे बिठलाया। बार बार हृदय मे हर्षित होकर उनका दुलार किया।

व्याख्या कई बार वधुओ के साथ कुँअरो को देख चुके है। पर अवसर न होने से गोद मे नही लिया था। सो पहिले कुँअरो को गोद मे बिठाकर अवर्णनीय

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुख का अनुभव किया। फिर बहुओं को गोद में लिया। अभी सबकी सब अल्प-वयस्का हैं। पिता के गोद में बैठने का समय बीता नही है। अत: गोद में बैठाकर दुलार करते हैं। मानो पितृवियोगजनित पीडा का मार्जन कर रहे हैं। जनकजी की विनती का पूरा ध्यान है। यथा : ये दारिका परिचारिका करि पालवी करुना नई।

देखि समाज मुदित रनिवासू। सबके उर अनंदु कियो बासू॥
कहेउ भूप जिमि भयेउ बिवाहू। सुनि सुनि हरषु होत सब काहू॥३॥

अर्थ : वह दृश्य देखकर रनिवास प्रसन्न था। सबके हृदय में आनन्द ने निवास किया। महाराज ने कह सुनाया कि किस भाँति विवाह हुआ। सुन सुनकर सबके हृदय मे हर्ष होता था।

व्याख्या : कौटुम्बिक सुख की पराकाष्ठा है। आनन्द से पूर्ण पति बैठे हुए हैं। चारो बेटो और बहुओं का लाड प्यार हो रहा है। वे व्याहकर अभी आये है। पतिसुख पुत्रसुख, पुत्रवधूसुख, राज्यसुख, कीर्तिसुख, सभी सुख प्राप्त हैं। हृदय मे सब रानियो को स्थायी सुख हुआ। इसलिए कवि कहते हैं सबके उर अनद कियो बासू।

रानियो ने विवाह नही देखा। प्रिय समाचार महाराज के मुख से सुनने के लिए उत्सुक हैं। जिस विवाहसम्बन्धी पत्र को छाती से लगाकर छाती ठण्डी करती थी उस विवाह के वर्णन के सुनने मे भी उन्हे बडा सुख था। महाराज ने सब वर्णन किया। समधियाने का समाचार सुनकर सब हर्षित हो रही है।

जनक राज गुन सीलु बड़ाई। प्रीति रीति संपदा सुहाई॥
बहुबिधि भूप भाट जिमि बरनी। रानी सब प्रमुदित सुनि करनी॥४॥

अर्थ : राजा जनक का गुण, शील, बडाई, प्रीति की रीति और सुन्दर सम्पदा का वर्णन राजा ने अनेक प्रकार से वदीजनो की भाँति किया। करणी सुनकर सब रानियाँ प्रमुदित हुईं।

व्याख्या : राजा लोग मितभाषी होते हैं। उनके एक एक शब्दो का मूल्य होता है। जिसकी प्रशसा का एक शब्द उनके मुख से निकल गया उसका महाभाग्य माना जाता था। सो महाराज दशरथ जनकराज के १ गुण २ शील ३ बडाई ४ प्रीति की रीति और ५ सुन्दर सम्पदा से ऐसे प्रभावित है कि उनके वर्णन मे अघाते नही है।

१ गुण। यथा : सनमानि सकल बरात आदर दान विनय बडाइ कै।
प्रमुदित महामुनिवृन्द बदे पूजि प्रेम लडाइ कै।
कुल इष्ट सरिस वसिष्ठ पूजे विनय करि आसिस लही।
कौसिकहि पूजत परम प्रीति कि रीति पै न परै कही।
बहुरि कीन्ह कोसलपति पूजा। जानि ईस सम भाव न दूजा॥
पूजे भूपति सकल बराती। समधी सम सादर सब भाँती॥
इत्यादि।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



२ शील। यथा सिर नाइ देव मनाइ सब सन कहत कर सपुट किये।
सुर साधु चाहत भाव सिंधु कि तोष जल अजलि दिये।
३ बडाई। यथा ये दारिका परिचारिका करि पालवी करुना नई।
अपराध छमिबो बोलि पठयो बहुत हौं ढीट्यो कई। इत्यादि।

जनक जी की बडाई है। नही तो लडकेवाल बारात लेकर आते ही हैं। इसमें विशेषता क्या है। पर यह जनकराज की बडाई है कि बुला भेजने को भी वे अपनी ढिठाई समझ रहे हैं।

४ प्रीति की रीति। यथा बार बार कोसलपति कहही।
जनक प्रेमबस फिरन न चहही॥
दिन प्रति बिदा अवधपति मॉगा।
राखहि जनक सहित अनुरागा॥
दिन प्रति सहस भॉति पहुनाई। इत्यादि।

५ सुहाई सम्पदा। यथा जेहि अवलोक लाकपति लोक सपदा थोरि।
जो सपदा नीचगृह सोहा।
सो बिलोकि सुरनायक मोहा। इत्यादि।

अथवा बहुओ की प्रसन्नता के लिए सविस्तार वर्णन करना महाराज ने उचित समझा। स्त्रियाँ करणी से प्रसन्न होती हैं। व्याह मे करणी प्रभूत दायज देने को कहा जाता है। अत राजा के दायज दने का हाल सुनकर रानियाँ बडी प्रसन्न हैं। मिले हुए दायज मे कुछ अश बाँटा जाता है। उसके बहुतायत से उन्हे बाँटने म बडा आनन्द होता है।

दो सुतन समेत नहाइ नृप, बोलि विप्र गुरु ज्ञाति।
भोजन कीन्ह अनेक विधि, घरी पच गइ राति॥३५४॥

अर्थ पुत्रो के सहित स्नान करके राजा ने ब्राह्मण बडे बूढ़े जातिवालो को बुलाकर अनेक विधि से भोजन किया। रात की पाँच घडियाँ बीत गईं।

व्याख्या यह महाराज का काम्यस्नान श्रमापनोदन के लिए है। इष्टजनै सह भुक्त भुक्तम्। भोजन तो वही है जो इष्ट मित्र के साथ किया जाय। ब्राह्मण भोजन तो पहिले ही हो चुका है। इस समय तो अन्तरङ्ग मण्डली जुटी हुई है। ब्राह्मण भी जो अन्तरङ्ग है तथा भाई बिरादरियो म प्रतिष्ठित बडे बूढे हैं उन्हे बुला करके महाराज ने भोजन किया। छ रस, चार विधि, छप्पन प्रकार का भोजन बना था। भोजन करते कराते दो घण्टा रात बीत गई।

मगलगान करहि वर भामिनि। भै सुखमूल मनोहर जामिनि॥
अचै पान सब काहू पाए। स्रक् सुगध भूषित छवि छाए॥१॥

अर्थ सुन्दर स्त्रियाँ मङ्गलगान कर रही हैं। सुन्दर रात्रि सुख की मूल हुई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


हाथ मुँह धोकर सबने पान पाये। माला और सुगन्ध से भूपित होकर सुशोभित हुए।

व्याख्या भोजन म स्पर्श, रूप, रस और गन्ध का अनुभव होता है। केवल शब्द का नही होता। अत सुन्दर स्त्रियाँ मङ्गलगान करने लगी। पञ्चेन्द्रिय तर्पण के सुख का अनुभव सबने किया। समधियाना नही है। इसलिए गालीगान नही हो रहा है। चैत्र की चाँदनी बडी मनोहर होती है। अत वह रात्रि स्वभाव से सुन्दर होते हुए भी सुख की मूल हुई। यथा जब ते राम व्याहि घर आये। नित नव मगल मोद बधाये।

स्रक् सुगन्ध का विधान केवल गृहस्थ को है। इससे मालूम हुआ कि इस जेवनार म केवल गृहस्थ ही सम्मिलित हुए। विरक्त को रात्रिभोजन का विधान नही है।

रामहि देखि रजायसु पाई। निज निज भवन चले सिर नाई॥
प्रेम प्रमोद विनोद बडाई। समउ समाज मनोहरताई॥२॥

अर्थ रामजी को देखकर और राजा की आज्ञा पाकर सब अपने अपने घर प्रणाम करके चल। प्रेम, प्रमोद, विनोद, बडाई, समय, समाज की मनोहरता

व्याख्या चलते समय सबने रामजी का दर्शन किया ध्यान बने रहने के लिए। फिर महाराज से आज्ञा माँग माँगकर घर गये। १ प्रेम २ प्रमोद ३ विनोद ४ बडाई ५ समय ६ समाज मनोहरताई। यथा

प्रेम सुतन्ह समेत नहाइ नृप बोलि विप्र गुरु ज्ञाति।
प्रमोद भोजन कीन्ह अनेक विधि।
विनोद मगलगान करहिं सब भामिनि।
बडाई अँचइ पान सब काहू पाये। राजा के यहाँ से पान मिलना बडाई है।
समय भइ सुखमूल मनोहर जामिनि।
समाज मनोहरता स्रग सुगध भूपित छवि छाये।
इन छ बातो का वर्णन

कहि न सकहि सब सारद सेसू। वेद विरचि महेस गनेसू॥
सो मै कहौ कवन विधि वरनी। भूमिनागु सिर धरइ कि धरनी॥३॥

अर्थ सौ शारदा, शेप, वेद, ब्रह्मदेव, महेश और गणश नही वह सकते। उसे मै किस विधि से वर्णन करूँ, कचुआ क्या सिर पर पृथ्वी उठा सक्ता है।

व्याख्या ये ही छ वडे वर्णन करनेवाल हैं। वे भी इन छ विपया का वर्णन नही कर सक्ते

१ शारदा यह वडी प्रेमी है। यथा भगत हेतु विधि भवन विहाई। सुमिरत सारद आवत धाई। सो भी इस प्रेम का वर्णन नही कर सक्ती।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



२ शेष ये पाताललोक के वक्ता हैं। वहाँ भोग अत्यधिक है। सो इस इष्टभोग प्रमोद का वर्णन नही कर सकते।

३ वेद ये रघुपतियशवर्णन मे नही थक्ते। यथा जिनहि न सपनेहु खेद बरनत रघुबर विसद जस। सो विनोद का वर्णन नही कर सकते।

४ विरचि सबसे बडे हैं। नाम ही पितामह है। सो बडाई का वर्णन नही कर सकते।

५ महेश ये काल के भी काल है। सो इस काल का वर्णन नही कर सकते।

६ गणेश ये मङ्गलमूर्ति है। सो इस समाज की मनोहरता का वर्णन नही कर सकते।

मैं असमर्थ और अकेला इनका वर्णन कैसे कर सकता हूँ। पृथ्वी को शेष ही धारण कर सकते है। दिव्य नाग तक्षक वासुकी आदि की भी धारण करने की सामर्थ्य नही। लौकिक नाग तो धरणी मे ही बिलो मे पडे रहते है। वे क्या धारण कर सकेंगे। केचुए का तो नाम मात्र ही भूमिनाग है। उसकी सामर्थ्य लौकिक नागो के सामने भी कुछ नही है। उसके धरणी के उठाने की कथा ही क्या है। सो यह षड्गुणवती पृथ्वी ऐसी है कि उसे शेष भी नही धारण कर सकते। भावार्थ यह कि जिसे शारदादि वर्णन नही कर सकते उसे मैं जिसकी गणना प्राकृत कवियो के सामने कुछ नही है क्या वर्णन कर सकता हूँ।

नृप सब भाँति सबहि सनमानी। कहि मृदु बचन बोलाई रानी॥
बधू लरिकिनि पर घर आईं। राखेहु नयन पलक की नाईं॥४॥

अर्थ राजा ने इस भाँति का सम्मान करके कोमल वचनो से रानियो को बुलाया। बहू अभी बच्ची हैं। पराये घर आई हैं। इन्हे इस भाँति रखना जिस भाँति पलक नयन की रक्षा करता है।

व्याख्या राजा से विधि का पालन होता है। भाव का पालन तो प्रेमपूर्वक कहने से ही होता है। इसलिए मृदु वचन से रानियो को बुलाया और समझाया कि बहुएँ अभी बच्ची हैं। अपना घर नही पहचान सकती। अभी इसे पराया घर समझ रही है। सो इनकी रखवारी इस भाँति करना जैसे पलकें आँखो की करती हैं। कोई कष्ट किसी प्रकार का न होने पावे। पलक को नेत्र के कहने की प्रतीक्षा नही करनी पडती। उसे स्वय सावधान होकर सर्वदा आँखो का पालन करना पडता है। थोडे दिन की बात है। बडी होने पर घर पहिचान लेंगी। तब इतनी सावधानता की आवश्यकता न होगी। इनके साथ ऐसा व्यवहार हो जैसा माता का बेटी के साथ होता है। जनकजी की विनती स्मरण है। अत महाराज सहेजते हैं। मैं इनकी देखरेख नही कर सकता। रानिया ने भी वैसा ही व्यवहार किया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वनगमन के समय कौसल्याजी कहेगी नयन पुतरि करि प्रीति बढाई। राखेउँ प्रान जानकिहि लाई।

दो लरिका श्रमित उनीद बस, सयन करावहु जाइ।
अस कहि गे विश्रामगृह, रामचरन चितु लाइ ॥३५५॥

अर्थ लडके थके है। उनीदे हो रहे है। इन्हे ले जाकर सुलाओ। ऐसा कहकर और रामजी के चरणो मे चित्त लगाकर शयनगृह मे गये।

व्याख्या लडके हैं इसलिए थक गये हैं। उनीदवश हो रहे हैं। यथा उठी सखी हँसि मिसकरि कहि मृदु बैन। सिय रघुवर के भये उनीदे नैन। लरिका शब्द मे वधू लरिकनी का भी अन्तर्भाव है। यद्यपि आज रतजगा है पर तुम लोग जाकर सुला दो। महाराज के यहाँ सब कार्यों के लिए पृथक् पृथक् गृह है। महारानियो को सहेजकर चक्रवर्तीजी रामजी के चरण म चित्त लगाकर शयनगृह गये। जितने लोग गये सबने रामजी को हृदय मे रक्खा। यथा

जनकपुर के याचक बार बार बिरदावलि भाखी।
फिरे सकल रामहि उर राखी ॥
बाराती आयसु पाइ राखि उर रामहि।
मुदित गये सब निज निज धामहि ॥
गुरुजी उर धरि रामहि सीय समेता।
हरषि कीन्ह गुरु गवन निकेता ॥
देवता कहत परसपर राम जस हरख न हृदय समाइ।
विप्र गुरु ज्ञाति रामहि देखि रजायसु पाई।
निज निज भवन गये सुख पाइ ॥
स्वय महाराज गे विश्राम गृह राम चरन चित लाइ।

भूप बचन सुनि सहज सुहाए। जरित कनक मनि पलँग डसाए ॥
सुभग सुरभि पय फेन समाना। कोमल कलित सुपेती नाना ॥१॥

अर्थ राजा के स्वभाव से ही सुन्दर वचन सुनकर स्वर्ण और मणि जडे हुए पलङ्ग बिछाये। सुन्दर दूध के फेन के समान कोमल अनेक प्रकार के तोशक बिछाये गये।

व्याख्या उनीदे बालको को शयन कराने की आज्ञा स्वभाव से ही सुन्दर है। महाराजा की पलङ्ग भी ठोस सोने की नही होती पलङ्ग के लिए हलका सोना अत्यन्त आवश्यक है। अत वे ठोस सोने की नही थी। स्वर्ण और मणि उनम जडे हुए थे। ऐसी पलङ्गे बिछायी गईं। उन पर तोशक बिछाई गईं जो कि गोदुग्ध के फेन सी श्वेत और कोमल थी भैंस के दुग्ध का फेन उतना कोमल नही होता। इसलिए निमिरा भैंस के दूध के फेन का ही बनता है। अति कोमल होने से गाय के दूध के

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ज्न का नही बन सकता। अत्यन्त कोमल होने से एक एक पलङ्ग पर कई तोशकें बछायी गईं महारानियाँ स्वय काम मे लग गइ।

उपवरहन वर बरनि न जाही। स्रग सुगंध मनिमंदिर माही॥
रतनदीप सुठि चारु चँदोवा। कहत न बनइ जान जेहि जोवा॥२॥

अर्थ अच्छे अच्छे तकिये जिनका वर्णन नही हो सकता। मणि के मन्दिर म फूल की मालाओ की सुगन्ध थी। रत्न के दीप और सुन्दर चँदोए कहते नही बनते। वे ही जानते है जिन्होने देखा है।

व्याख्या बरनि न जाही कहकर तकियो का बहुत्व सूचित किया। प्राचीन रीति थी कि पतले पतले पचासो तकिये रक्खे जाते थे। जिसमे सोनेवाला अपने सुभीते के अनुसार उनकी ऊँचाई निचाई घटा बढा सके। मणि जटित मन्दिर स्वभाव से शीतल थे। उनमे रत्न के दीप रक्खे गये। जिनमे ऐसी ठण्डी रोशनी निकलती थी जिसमे सोने मे आँख न चमके। फूल की मालाओ से काम लिया गया। जिसम भीनी भीनी सुगन्धि कमरे मे भरी रहे।

जीवजन्तु का प्रवेश न हो सके इसलिए पलङ्गो के ऊपर चँदोए थे। जिनमे परदे लटक रहे थे। आजकल उसे मसहरी कहते हैं। वे सबके सब ऐसे सुन्दर थे जिनका वर्णन नही हो सकता था देखते ही बनता था।

सेज रुचिर रचि राम उठाए। प्रेम समेत पलँग पौढाए॥
आज्ञा पुनि पुनि भाइन्ह दीन्ही। निज निज सेज सयन तिन्ह कीन्ही॥३॥

अर्थ सुन्दर सेज रचकर रामजी को उठाया और प्रेम समेत पलङ्गपर पौढाया। रामजी ने बार बार आज्ञा भाइयो को दी। तब वे लोग भी अपने पलगो पर जाकर सोये।

व्याख्या रामजी के सामने महाराज ने आज्ञा नही दी थी। माँ के बिठाये जानकीजी के साथ सिंहासन पर बैठे थे। माँकी आज्ञा हो तो उठें। इसलिए माँ ने वहाँ से उठाया और प्रेम के साथ लिवा लाईं और पलग पर लिटा दिया। रामजी के साथ सब भाई चले आये परन्तु विनय के कारण सो नही रहे हैं। जब रामजी ने बार बार आज्ञा दी तब वे लोग भी अपने पलङ्गो पर गये और सोये।

देखि स्याम मृदु मजुल गाता। कहहि सप्रेम बचन सब माता॥
मारग जात भयावनि भारी। केहि बिधि तात ताडिका मारी॥४॥

अर्थ सुन्दर श्याम कोमलगात देखकर सब माताएँ प्रेम से कहती हैं कि रास्ते मे जाते हुए भारी भयावनी ताडका को बेटा तुमने कैसे मारा?

व्याख्या रामजी के रूप मे अलौकिक सुन्दरता है। अद्भुत श्यामता है और अतीव कोमलता है। इसे देखकर माताओ को ताडका का भयानक रूप अत्यन्त उग्रता और अलौकिक पराक्रम जो सुन रक्खा था उसी की याद आई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मनमे कोई विधि ही नही बैठती जिससे इस कोमल शरीर द्वारा उसका वध हो सके। अत स्वय रामजी से ही विधि पूछती है। माता का वात्सल्य इनके अद्भुत पुरुषार्थ की महिमा को हृदय म स्थान नही देने देता।

दो घोर निसाचर विकट भट, समर गनहि नहि काहु।
मारे सहित सहाय किमि, खल मारीच सुबाहु ॥३५६॥

अर्थ भयानक राक्षस, बडे विकट योद्धा, युद्ध मे किसी को गिननेवाले नहीं ऐसे मारीच और सुबाहु खल को सेना सहित कैसे मारा ?

व्याख्या घोर निशाचर कहकर सुबाहु मारीच को अत्युत्कट मायावी कहा। विकट भट कहकर उनका महाबल और युद्धकौशल कहा। समर गनै नहि काहु कहकर उनका महापराक्रम कहा। खल कहकर उनका युद्ध मे समरधर्मोल्लघन कहा। सहित सहाय कहकर उनका सेना सहित होना ख्यापन किया। स्वय असहाय रहते हुए ऐसो को सेना सहित कैसे मारा ? क्रम से घटनाओ के विषय मे माताएँ प्रश्न करती है। इस व्याज से स्तुति भी कर रही है।

मुनि प्रसाद बलि तात तुम्हारी। ईस अनेक करवरैं टारी ॥
मख रखवारी करि दुहु भाई। गुरु प्रसाद सब विद्या पाई ॥१॥

अर्थ मै बलिहारी जाती हूँ। मुनि के प्रसाद से हे तात ! महादेव ने तुम्हारे अनेक अनिष्टयोग दूर किये। दोनो भाइयो ने यज्ञ की रक्षा की। गुरु के प्रसाद से सब विद्या पाई।

व्याख्या रामजी के मुख से कोई उत्तर न पाकर स्वय ही शङ्काओ का समाधान करती हैं। मुनि जी की कृपा से महादेवजी ने ये अरिष्ट योग हटाये। कोई भारी अरिष्ट योग था जो इन राक्षसा का सामना पड गया। महादेवजी सहारकर्त्ता हैं। उन्ही के प्रभाव से ये मारे गये। समाचार सविस्तार पा चुकी हैं। उन्ही का सामञ्जस्य मिलाती है। इस भाँति दोनो भाइयो ने मिलकर मुनि के यज्ञ की रखवारी कर ली। भावार्थ यह कि तुमने मारीच सुबाहु को मारा और लक्ष्मण ने सारी निसाचरी सेना मारी। गुरु प्रसाद से बला अतिबला तथा सम्पूर्ण अस्त्र-विद्या की भी प्राप्ति हुई।

मुनितिय तरी लगत पग धूरी। कीरति रही भुवन भरि पूरी ॥
कमठ पीठि पवि कूट कठोरा। नृप समाज महु सिव धनु तोरा ॥२॥

अर्थ चरण की धूलि लगने से मुनि की स्त्री तर गई। इसकी कीर्ति सारे भुवन म व्याप्त हो गई। कच्छप की पीठ, वज्र और निहाई से भी कठिन शिवजी के धनुष को राजसमाज म तोड डाला।

व्याख्या तप ते अगम न कछु ससारा। सो तप से अहल्या न तर सकी। चरणधूलि से घोर ब्रह्मशाप मिट गया। अहल्या तर गई। जितनी ही अद्भुत बात

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



न का नही बन सकता। अत्यन्त कोमल होने से एक एक पलङ्ग पर कई तोशकें बिछायी गईं महारानिया स्वय काम मे लग गइ।

उपवरहन वर वरनि न जाही। स्रग सुगंध मनिमंदिर माही॥
रतनदीप सुठि चारु चँदोवा। कहत न बनइ जान जेहिं जोवा॥२॥

अर्थ अच्छे अच्छे तकिये जिनका वर्णन नही हो सकता। मणि के मन्दिर मे फूल की मालाओ की सुगन्ध थी। रत्न के दीप और सुन्दर चँदोए कहते नही बनते। वे ही जानते हैं जिन्होने देखा है।

व्याख्या वरनि न जाही कहकर तकियो का बहुत्व सूचित किया। प्राचीन रीति थी कि पतले पतले पचासो तकिये रक्खे जाते थे। जिसमे सोनेवाला अपने सुभीते के अनुसार उनकी ऊँचाई निचाई घटा बढा सके। मणि जटित मन्दिर स्वभाव से शीतल थे। उनमे रत्न के दीप रक्खे गये। जिनमे ऐसी ठण्ढी रोशनी निकलती थी जिसमे सोने मे आँख न चमके। फूल की मालाओ से काम लिया गया। जिसमे भीनी भीनी सुगन्धि कमरे मे भरी रहे।

जीवजन्तु का प्रवेश न हो सके इसलिए पलङ्गो के ऊपर चँदोए थे। जिनमे परदे लटक रहे थे। आजकल उसे मसहरी कहते हैं। वे सबके सब ऐसे सुन्दर थे जिनका वर्णन नही हो सकता था देखते ही बनता था।

सेज रुचिर रचि राम उठाए। प्रेम समेत पलँग पौढाए॥
आज्ञा पुनि पुनि भाइन्ह दीन्ही। निज निज सेज सयन तिन्ह कीन्ही॥३॥

अर्थ सुन्दर सेज रचकर रामजी को उठाया और प्रेम समेत पलङ्ग पर पौढाया। रामजी ने बार बार आज्ञा भाइयो को दी। तब वे लोग भी अपने पलगो पर जाकर सोये।

व्याख्या रामजी के सामने महाराज ने आज्ञा नही दी थी। माँ के बिठाये जानकीजी के साथ सिंहासन पर बैठे थे। माँकी आज्ञा हो तो उठे। इसलिए माँ ने वहाँ से उठाया और प्रेम के साथ लिवा लाईं और पलग पर लिटा दिया। रामजी के साथ सब भाई चले आये परन्तु विनय के कारण सो नही रहे है। जब रामजी ने बार बार आज्ञा दी तब वे लोग भी अपने पलङ्गो पर गये और सोये।

देखि स्याम मृदु मजुल गाता। कहहिं सप्रेम बचन सब माता॥
मारग जात भयावनि भारी। केहि बिधि तात ताड़िका मारी॥४॥

अर्थ सुन्दर श्याम कोमलगात देखकर सब माताएँ प्रेम से कहती हैं कि रास्ते मे जाते हुए भारी भयावनी ताडका को बेटा तुमने कैसे मारा ?

व्याख्या रामजी के रूप मे अलौकिक सुन्दरता है। अद्भुत श्यामता है और अतीव कोमलता है। इसे देखकर माताओ को ताडका का भयानक रूप अत्यन्त उग्रता और अलौकिक पराक्रम जो सुन रक्खा था उसी की याद आई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मनमे कोई विधि ही नही बैठती जिससे इस कोमल शरीर द्वारा उसका वध हो सके। अत स्वय रामजी से ही विधि पूछती हैं। माता का वात्सल्य इनके अद्भुत पुरुषार्थ की महिमा को हृदय मे स्थान नही देने देता।

दो घोर निसाचर विकट भट, समर गनहि नहि काहु।
मारे सहित सहाय किमि, खल मारीच सुबाहु ॥३५६॥

अर्थ भयानक राक्षस, बडे विकट योद्धा, युद्ध मे किसी को गिननेवाले नहीं ऐसे मारीच और सुबाहु खल को सेना सहित कैसे मारा ?

व्याख्या घोर निशाचर कहकर सुबाहु मारीच को अत्युत्कट मायावी कहा। विकट भट कहकर उनका महाबल और युद्धकौशल कहा। समर गनै नहि काहु कहकर उनका महापराक्रम कहा। खल कहकर उनका युद्ध मे समरधर्मोल्लघन कहा। सहित सहाय कहकर उनका सेना सहित होना स्थापन किया। स्वय असहाय रहते हुए ऐसो को सेना सहित कैसे मारा ? क्रम से घटनाओ के विषय मे माताएँ प्रश्न करती हैं। इस व्याज से स्तुति भी कर रही हैं।

मुनि प्रसाद बलि तात तुम्हारी। ईस अनेक करवरें टारी ॥
मख रखवारी करि दुहु भाई। गुरु प्रसाद सब विद्या पाई ॥१॥

अर्थ मैं बलिहारी जाती हूँ। मुनि के प्रसाद से हे तात ! महादेव ने तुम्हारे अनेक अनिष्टयोग दूर किये। दोनो भाइयो ने यज्ञ की रक्षा की। गुरु के प्रसाद से सब विद्या पाई।

व्याख्या रामजी के मुख से कोई उत्तर न पाकर स्वय ही शङ्काओ का समाधान करती हैं। मुनि जी की कृपा से महादेवजी ने ये अरिष्ट योग हटाये। कोई भारी अरिष्ट योग था जो इन राक्षसा का सामना पड गया। महादेवजी सहारकर्त्ता हैं। उन्ही के प्रभाव से ये मारे गये। समाचार सविस्तार पा चुकी हैं। उन्ही का सामञ्जस्य मिलाती है। इस भाँति दोनो भाइयो ने मिलकर मुनि के यज्ञ की रखवारी कर ली। भावार्थ यह कि तुमने मारीच सुबाहु को मारा और लक्ष्मण ने सारी निसाचरी सेना मारी। गुरु प्रसाद से बला अतिबला तथा सम्पूर्ण अस्त्र-विद्या की भी प्राप्ति हुई।

मुनितिय तरी लगत पग धूरी। कीरति रही भुवन भरि पूरी ॥
कमठ पीठि पवि कूट कठोरा। नृप समाज महु सिव धनु तोरा ॥२॥

अर्थ चरण की धूलि लगने से मुनि की स्त्री तर गई। इसकी कीर्ति सारे भुवन मे व्याप्त हो गई। कछुए की पीठ, वज्र और निहाई से भी कठिन शिवजी के धनुष को राजसमाज मे तोड डाला।

व्याख्या तप ते अगम न कछु ससारा। सो तप से अहल्या न तर सकी। चरणधूलि से घोर ब्रह्मशाप मिट गया। अहल्या तर गई। जितनी ही अद्भुत बात

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



होती है उतनी ही शीघ्र और दूर तक वह फैल जाती है। अत यश भुवन मे छा गया। दूसरी कीर्ति भी बडी भारी हुई। शिवजी की भुजा का तान सहनेवाले धनुष के सामने कमठपीठ, वज्र और निहाई की कठोरता क्या है ? जिसे देखकर रावण बाणासुर धीरे से खिसक गये। उसे राजसमाज के बीच तोड डाला। नृप समाज कहने का भाव यह कि द्वीप द्वीप के राजा आये थे। अत यह कीर्ति द्वीप द्वीप मे अनायास फैल गई।

विस्व बिजय जसु जानकि पाई। आए भवन ब्याहि सब भाई ॥
सकल अमानुस करमु तुम्हारे। केवल कौसिक कृपा सुधारे ॥३॥

अर्थ विश्वविजय का यश और जानकी प्राप्त की और सब भाई ब्याह कर घर आये। ये सब तुम्हारे अमानुष कर्म केवल विश्वामित्रजी की कृपा से बन गये।

व्याख्या जनकजी ने कहा था कुँअरि मनोहरि बिजय बडि। सो दोनो की प्राप्ति हुई। चिट्ठी एक ब्याह के लिए आई सो चारो भाई ब्याह करके आये। ये छवो कर्म तुम्हारे अमानुष है। ये छवो भग ऐश्वर्य है भगवान् मे रहते हैं। १ शरीर की परवाह न करके यज्ञरक्षा की यह वैराग्य है २ विद्या प्राप्ति की यह ज्ञान है ३ अहल्यासन्तरण यह धर्म है। ४ ईश्वर के धनुष का तोडना यह ऐश्वर्य है ५ जानकी की प्राप्ति यह यश है ६ ब्याह कर श्री को घर म लाये यह श्री है। सो यह सब बात जो तुमसे हुई वह केवल विश्वामित्रजी की कृपा से ही सम्भव हुईं। उन्होने पहिले ही कहा था इन कर अति कल्यान सोई हुआ।

आजु सुफल जग जनम हमारे। देखि तात बिधुबदन तुम्हारे ॥
जे दिन गए तुम्हहि बिनु देखें। ते बिरंचि जनि पारहि लेखें ॥४॥

अर्थ हे तात ! आज तुम्हारा मुखचन्द्र देखने से हमारा जन्म सुफल हुआ। जितने दिन तुम्हारे बिना देखे बीते है ब्रह्मदेव उन्हे लखे म न डालें।

व्याख्या इन विपत्तियो को पार करके सब भाँति से तुम्हे कृतकार्य हुए देखकर हमारा जन्म सफल हुआ। लखे म डालने से फिर उससे काम पडता है। अत जो दिन तुम्हे बिना देखे बीते है उन दिनो के कष्ट को ब्रह्मदेव फिर न दिखावे। यथा

रिषि नृप सीस ठगौरी सी डारी।
कुलगुर सचिव निपुन नेवनि अवरेब न समुझि सुधारी ॥
सिरिस सुमन सुकुमार कुँअर दोउ सूर सरोष सुरारी।
पठए बिनहि सहाय पयादेहि केलि बान धनुधारी ॥
अतिसनेह कातरि माता कहैं सुनि सखि बचन दुखारी।
बादि बीर जननी जीवन जग छत्रि जाति गति भारी ॥
जो कहिहैं फिरे राम लषन घर करि मुनि मख रखवारी।
सो तुलसी प्रिय मोहि लागि हैं ज्यों सुभाय सुत चारी ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जबते लै मुनि सग सिधाये।
रामलपन के समाचार सखि तवते कछुअ न पाये॥
बिनु पानही गमन फल भोजन भूमि सयन तरु छाही।
सरसरिता जलपान, सिसुन के सग सुसेवक नाही॥

दो. राम प्रतोपी मातु सब, कहि विनीत वर वैन।
सुमिरि संभु गुर विप्रपद, किए नीदवस नैन॥३५७॥

अर्थ रामजी ने विनीत मृदु वचन कहकर सब माताओ को परितुष्ट किया और शम्भु गुरु और ब्राह्मण के चरणो का स्मरण करके आंखो को नीद के वश कर दिया।

व्याख्या : ऐसे समय मे लोग अपने पराक्रम का वर्णन करते हैं। रामजी ने विनीत मृदु वचन कहकर माता का परितोप किया। विनीत और मृदु वचन से ही परितोप होता है। यथा : माता, पिता, गुरु तीन ही देवता हैं। इन्ही की कृपा से सब कल्याण है। आपके चरणो के तथा गुरुचरणो के प्रभाव से सब हुआ इत्यादि। शिवजी ही गुरु और ब्राह्मण रूप हैं। शिवजी ही सुपुप्ति के प्रभु हैं। अत· सुपुप्ति के प्रारम्भ मे इन्ही का स्मरण किया।

नीदउ वदन सोह सुठि लोना। मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना॥
घर घर करहि जागरन नारी। देहि परसपर मंगल गारी॥१॥

अर्थ अत्यन्त लावण्यमय मुख नीद मे भी शोभा देता था जैसे लाल कमल सन्ध्या को भी शोभा देता है। घर घर स्त्रियाँ जागरण करती थी और एक दूसरे को मङ्गल गालियाँ देती थी।

व्याख्या . अद्भुत लावण्य है जो सोने मे भी वैसा ही बना रहता है जैसा जागने मे। यथा . साँवर कुँवर सखी सुठिलोना। जिस भाँति लाल कमल की शोभा सन्ध्या के समय भी बनी रहती है। सन्ध्या के समय कमल सकुच जाते हैं। अस्त होते हुए सूर्य की लाल किरणो से उनका रग फीका पड जाता है। पर लाल कमल का रग फीका नही पड़ता।

महाराज के अन्त पुर मे रतजगा है। अत नगर भर मे स्त्रियाँ जागरण करती हैं। रतजगा के दिन स्त्रियाँ ही रात को गाना बजाना करके जागती हैं। मर्द लोग नही जागते। इसीलिए स्त्रियो का ही जागरण लिखते हैं। वे उस समय एक दूसरे को मङ्गल गाली भी देती हैं। वैर की गाली अमङ्गल रूप है। उत्साह मे प्रेम की गाली मङ्गलरूप मानी जाती है। यथा : सुधा सनेही गारि। अर्थात् घर घर उत्सव इस भाँति मनाया जाता है मानो स्वय उन घरो मे व्याह पडा हो। इससे प्रजावर्ग की अद्भुत सहानुभूति कही।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


पुरी [1]विराजति राजति रजनी। रानी कहहिं बिलोकहु सजनी॥
सुदरि वधुन सासु लइ सोई। फनिकन्ह जनु सिरमनि उर गोई॥२॥

अर्थ रानी कहती है कि सखी! देखो पुरी विराजमान है। रात शोभा पा रही है। सुन्दर बहुओं को सास गोद में लेकर सोईं। जैसे सर्प सिर की मणि हृदय में छिपाये हो।

व्याख्या रानियाँ रात को अटारी पर से पुर की शोभा देखती है और सखी को दिखाती है। महाराज कुमारों का व्याह करके लौटे हैं। इस आनन्द म रोशनी हुई है। अत कहती हैं कि पुरी विराजमान है गान और दीपमाला से तथा चाँदनी रात से शोभित है। राम बिना सब सूना था।

इधर सुन्दर बहुओं को लेकर सास लोग सोईं। वे रतजगा मे सम्मिलित नही हुईं। महाराज की आज्ञा से वधुओं को छोड़ना नही चाहती। कवि उपमा देते हैं कि जैसे सर्प अपने सिर की मणि अपने कलेजे के तल दावकर सोया हो। किसकी सामर्थ्य कि निकट जा सके। इसी भाँति रानियाँ बेटी की भाँति वधुओं को कलजे से लगाकर सोई हैं। जिनम उन्हें माँ का स्मरण न हो। सर्प की मणि उसके सिर म रहती हैं। वह उसीसे उत्पन्न होती है और उसे बहुत प्यारी है। इसीलिए सिरमनि उर गोई से उपमा देते हैं।

प्रात पुनीत काल प्रभु जागे। अरुनचूड वर बोलन लागे॥
वदि मागधिन्ह गुन गन गाए। पुरजन द्वार जोहारन आए॥३॥

अर्थ प्रभात के पुण्यकाल के समय मे प्रभु जग गये। मुर्गे बोलने लगे। वन्दी मागधो ने गुणगण का गान किया। पुर के लोग जोहार करने आये।

व्याख्या प्रभात म भी उषाकाल अति पवित्र है उसी समय प्रभु जाग गये। चारो भाइया का जागने म सोने म भोजन म, खेलने म कभी साथ नही छूटता। यथा सिसुपन ते परिहरेउ न सगू। प्रभु के जागने के बाद मुर्गे बोलने लगे। राजाओ के जागने के लिए वन्दा मागध गुणगान करते हैं। वे मुर्गा बोलने के बाद गुणगान करने लगे और भली भाँति सवेरा होने पर पुरजन राजद्वार पर जोहार करने के लिए आये।

वदि विप्र सुर गुरु पितु माता। पाइ असीस मुदित सब भ्राता॥
जननिन्ह सादर वदन निहारे। भूपति सग द्वार पगु धारे॥४॥

अर्थ ब्राह्मण, देवता, गुरु, पिता और माता की वन्दना कर और आशीर्वाद पाकर सब भाई प्रसन्न हुए। माँ ने आदर के साथ मुख देखा और राजा के साथ दरवाजे पर पधारे।

---

१ दीपकावृत्ति तृतीय है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या प्रात काल उठकर ब्राह्मण, देवता, गुरु, पिता और माता पाँचो की वन्दना करनी चाहिए। इनमें से कौन पहिले मिलेगा कौन पीछे मिलेगा इसका ठीक नही हैं। इसीलिए यहाँ क्रम नही दिया। परन्तु चारो भाई इन पाँचो को वन्दना प्रात काल करते थे। इतने दिन माता की वन्दना नही हो सकी थी। आशीर्वाद माता से नही मिला था। आज पाँचो से आशीर्वाद मिला है। इससे सब भाई वडे प्रसन्न है। माताओ ने भी आदर के साथ पुत्रमुखावलोकन प्रात काल ही किया। ऐसा सयोग महीनो से इधर नही हुआ था। महाराज जब द्वारा पर जाने लगे तो चारो भाई साथ गये। रात्रि तीन प्रहर की मानी जाती है। इसलिए सोने के समय तीन का स्मरण किया। यथा : वंदि सभु गुरु विप्र पद किये नीद वस नैन। दिन पाँच प्रहर का माना जाता है। इसलिए जागकर पॉचवी वन्दना की।

दो. कीन्ह सौच सव सहज सुचि, सरित पुनीत नहाइ।
प्रात क्रिया करि तात पहि, आये चारिउ भाइ ॥३५८॥

अर्थ : स्वभाव से ही पवित्र चारो भाइयो ने शौच से निवृत्त होकर पवित्र नदी मे स्नान किया और प्रात.काल का नित्य कृत्य करके पिता के पास चारो भाई गये।

व्याख्या : चारो भाई स्वभाव से ही शुचि अर्थात् पवित्र हैं। क्योकि उनका सकल्पमय शरीर है भौतिक नही है। यथा . इच्छामय नर देह सँवारे। होइहो प्रगट निकेत तुम्हारे। फिर भी मर्यादा पालन के लिए जल मृत्तिकादि से शौच करते है। तत्पश्चात् पुण्य नदी सरयू मे अवगाह : स्नान किया। सन्ध्या वन्दनादि नित्य कृत्य किया। तब चारो भाई पिता के पास गये। यह ससार को उपदेश है कि देवतादि का स्मरण करके सोना और जागकर माता, पिता, गुरु, देवता ब्राह्मणादि की वन्दना करना फिर शौचादि क्रिया से निवृत्त होकर घर के बाहर जाकर अवगाह स्नान तथा सन्ध्यावन्दनादि करके तव व्यवहार मे प्रवृत्त होना चाहिए। श्रीरामजी के आचरण का अनुकरण ही सब कल्याणो का मूल है।

भूप विलोकि लिये उर लाई। वैठे हरषि रजायसु पाई ॥
देखि राम सब सभा जुडानी। लोचन लाभ अवधि अनुमानी ॥१॥

अर्थ : राजा ने देखकर हृदय से लगा लिया। राजाज्ञा पाकर प्रसन्न होकर बैठे। श्रीरामजी को देखकर सम्पूर्ण सभा का हृदय शीतल हो उठा। सबने यही अनुमान किया कि यही आँखो के लाभ की परा सीमा है।

व्याख्या महाराज ने आँखो से प्रियदर्शन पुत्रो की शोभा देखी। देखकर हर्षित हुए। प्रेम उमगा तो हृदय से लगाया। पर ये लोग प्रश्रय : अदब से खडे रहे। जब महाराज की आज्ञा हुई तब अपने अपने आसनो पर विराजमान हुए। राज सभा मे सबके आसन नियत रहते हैं। वही उसे बैठाना पड़ता है। प्रात काल

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जब उठे थे तब प्रणाम करने पर आशीर्वाद पाकर हर्ष हुआ। इस समय महाराज के हृदय लगाकर सत्कार करने से हर्षित हैं। जब चारो भाई गये उस समय महाराज सभा मे आगये थे। सभा लगी हुई थी। राज्यभार महाराज पर है। अत वे शीघ्रता से सब कृत्यो से निवृत्त होकर सभा मे आगये थे। कई महीनो पर आज राजसभा लगी है।

महाराज को तो रामजी को देखकर हर्ष हुआ ही सम्पूर्ण सभा का हृदय शीतल हो गया। भाव यह कि रामजी की अनुपस्थिति मे सभासद भी विरहव्यथा का अनुभव करते थे। आज वह व्यथा दूर हुई। पहिले भी रामजी का समाचार सुनकर सभा हर्षित हुई थी। यथा हरषी सभा बात मुनि साँची। आज दर्शन से तो अत्यन्त तृप्ति हुई। अनुमान किया कि इतना ही नेत्रो के मिलने का परम फल है। य लब्ध्वा नापर लाभ मन्यते नाधिक तत ।

पुनि वसिष्ठ मुनि कौसिक आए। सुभग आसनन्हि मुनि बैठाए॥
सुतन्ह समेत पूजि पद लागे। निरखि राम दोउ गुर अनुरागे॥२॥

अर्थ तब वसिष्ठ और विश्वामित्रजी आये। सुन्दर आसनो पर मुनियो को बिठाया। बेटो के सहित पूजन किया। पैर पर गिरे। रामजी को देखकर दोनो गुरु अनुराग मे आगये।

व्याख्या तब वसिष्ठजी और विश्वामित्रजी आये। दोनो महात्मा साथ ही आये। बडा प्रेम है। आने के समय वसिष्ठजी उन्हें साथ लेते आये। महाराज ने दोनो महात्माओ को सिंहासन दिया। उस समय सभाभवन म तीन सिंहासन लगे थे। तीनो पर चँवर हो रहा था। महाराज ने पुत्रो के सहित पूजा की। रानियाँ ऊपर बैठी है। भरी सभा होने से नही आईं। रामजी को देखकर दोनो गुरु अनुराग म आगये। जनकपुर मे सखी ने ठीक कहा था कि कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह यह रूप निहारी। कवि तो कहते है कि ठगि सी रही जो न ठगे धिक से।

कहहिं वसिष्ठ धरम इतिहासा। सुनहि महीस सहित रनिवासा॥
मुनि मन अगम गाधिसुत करनी। मुदितवसिष्ठ विपुल विधि बरनी॥३॥

अर्थ वसिष्ठजी धर्म के इतिहास कहते है और राजा रनिवास के साथ सुनत हैं। गाधि के पुत्र की करणी मुनियो को भी मन से अगम थी। उसे आनन्दित होकर अनेक विधि से वर्णन किया।

व्याख्या इतने दिनो पर राजसभा लगी है फिर भी कोई व्यवहार मुकदमा नही है। यहाँ व्यवस्था ऐसी थी कि सभा नित्य लगती थी पर व्यवहार मुकदमा एक भी नही। कारागार बने हैं पर कैदी एक भी नही। जब तक ऐसी व्यवस्था न हो तब तक राज्य की व्यवस्था ठीक नही। कारण यह था कि राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठा पापे पापा समे समा। राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा। राजा के धर्मात्मा होने से प्रजा आप से आप धर्मिष्ठ हो जाती है। राजा के सम होने से सम

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रहती है। राजा के पापी होने से पापी होती है। प्रजा राजा को ही आदर्श मानकर चलती है। जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा होती है। प्रजा का आदर्श राजा है। सो यहाँ कोई व्यवहार देखना न रहा। वसिष्ठजी धर्मेतिहास सुनाते थे। रनिवास के सहित महाराज सुनते थे। सारी प्रजा ने वही रास्ता पकड रक्खा था। सब धर्मेतिहास सुनते हैं। उसी का सस्कार दृढ रहता है। पापाचरण होता ही नही। मुकदमा क्यो होगा। राज्य व्यवस्था चलाने का प्रधान कार्य धर्मेतिहास श्रवण है। वही हो रहा है। स्वय ब्रह्मर्षि वसिष्ठजी वक्ता हैं। पुत्र दारा सभासद के सहित राजर्षि दशरथ श्रोता हैं। सभा मे धर्मेतिहास हो रहा है। आज विश्वामित्रजी का इतिहास वसिष्ठ जी वर्णन करने लगे। 'गाधिसुत' कहने का भाव यह कि विश्वामित्रजी राजा गाधि के पुत्र थे। सो ऐसी तपस्या की कि उसके बल से क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गये। जैसी तपस्या उन्होने की उसे मुनि लोग मन से भी नही सोच सकते। महात्मा दूसरे के पुण्य मे बडे आनन्दित होते हैं। अत इनकी करणी वर्णन करने मे मुनिजी को मोद है। जिसके सौ पुत्रो को विश्वामित्रजी ने शाप देकर मारा था और तप बल के सामने सौ ब्रह्महत्या उनकी कुछ न कर सकी उस विश्वामित्र की अद्भुत तपस्या के वर्णन मे · अपने शिष्यसमाज के सामने वसिष्ठजी को बडा हर्ष हो रहा है। यह मुदित का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। वसिष्ठजी की कितनी महत्ता विश्वामित्रजी के महत्ता-वर्णन से बढ गई। इसका सहृदय व्यक्ति ही अनुमान कर सकता है।

बोले बामदेव सब साँची। कीरति कलित लोक तिहुँ माँची॥
सुनि आनदु भयउ सब काहू। राम लखन उर अधिक उछाहू॥४॥

अर्थ · वामदेवजी ने कहा कि यह सब सच्ची बात है। इनकी सुन्दर कीर्ति तीनो लोक मे व्याप्त है। सुनकर सबको आनन्द हुआ। पर राम लक्ष्मण के हृदय मे बडा उछाह हुआ।

व्याख्या वसिष्ठजी के वर्णन के उपरान्त महर्षि वामदेव ने उसका अनुमोदन किया। कहा कि यह सब सत्य घटना है। इसमे अर्थवाद नही है। बात को मन मे बिठाने के लिए उसे बडे आरोप से कहा जाता है। ऐसे आरोप को असत्य नही माना जाता। क्योकि उससे सत्य सस्कार ही मन म बैठता है। सो इनकी अद्भुत तपस्या के वर्णन मे अर्थवाद का किसी को भ्रम न हो इसलिए वामदेवजी ने अनुमोदन करते हुए कहा कि इसमे कुछ भी अत्युक्ति नही है। यथार्थ घटना का वर्णन वसिष्ठजी ने किया है। सभा मे सब सज्जन लोग हैं। सभी सुनकर मुदित हुए। राम लक्ष्मण के तो ये गुरु ही ठहरे। अत· गुरुजी की पुण्य कीर्ति सुनकर उनके हृदय मे अत्यन्त उछाह हुआ।

दो. मगल मोद उछाहु नित, जाहि दिवस एहि भाँति।
उमगी अवध अनद भरि, अधिक अधिक अधिकाति॥३५९॥

अर्थ नित्य मङ्गलमोद और उछाह है। इस भाँति दिन बीत रहा है। आनन्द भरकर अयोध्या उमग पडी। सो दिन दिन अधिक होती जा रही है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


जब उठे थे तब प्रणाम करने पर आशीर्वाद पाकर हर्ष हुआ। इस समय महाराज के हृदय लगाकर सत्कार करने से हर्षित है। जब चारो भाई गये उस समय महाराज सभा मे आगये थे। सभा लगी हुई थी। राज्यभार महाराज पर है। अत वे शीघ्रता से सब कृत्यो से निवृत्त होकर सभा मे आगये थे। कई महीनो पर आज राजसभा लगी है।

महाराज को तो रामजी को देखकर हर्ष हुआ ही सम्पूर्ण सभा का हृदय शीतल हो गया। भाव यह कि रामजी की अनुपस्थिति मे सभासद भी विरहव्यथा का अनुभव करते थे। आज वह व्यथा दूर हुई। पहिले भी रामजी का समाचार सुनकर सभा हर्षित हुई थी। यथा हरषी सभा बात मुनि साँची। आज दर्शन से तो अत्यन्त तृप्ति हुई। अनुमान किया कि इतना ही नेत्रो के मिलने का परम फल है। य लब्ध्वा नापर लाभ मन्यते नाधिक तत ।

पुनि वसिष्ठ मुनि कौसिक आए। सुभग आसनन्हि मुनि बैठाए॥
सुतन्ह समेत पूजि पद लागे। निरखि राम दोउ गुर अनुरागे॥२॥

अर्थ तब वसिष्ठ और विश्वामित्रजी आये। सुन्दर आसनो पर मुनियो को बिठाया। बेटो के सहित पूजन किया। पैर पर गिरे। रामजी को देखकर दोनो गुरु अनुराग मे आगये।

व्याख्या तब वसिष्ठजी और विश्वामित्रजी आये। दोनो महात्मा साथ ही आये। बडा प्रेम है। आने के समय वसिष्ठजी उन्हे साथ लेते आये। महाराज ने दोनो महात्माओ को सिंहासन दिया। उस समय सभाभवन मे तीन सिंहासन लगे थे। तीनो पर चँवर हो रहा था। महाराज ने पुत्रो के सहित पूजा की। रानियाँ ऊपर बैठी है। भरी सभा होने से नही आईं। रामजी को देखकर दोनो गुरु अनुराग मे आगये। जनकपुर मे सखी ने ठीक कहा था कि कहहु सखी अस को तनुधारी। जो न मोह यह रूप निहारी। कवि तो कहते हैं कि ठगि सी रही जो न ठगे धिक से।

कहहिं वसिष्ठ धरम इतिहासा। सुनहि महीस सहित रनिवासा॥
मुनि मन अगम गाधिसुत करनी। मुदितवसिष्ठ विपुल विधि बरनी॥३॥

अर्थ वसिष्ठजी धर्म के इतिहास कहते है और राजा रनिवास के साथ सुनते है। गाधि के पुत्र की करणी मुनियो को भी मन से अगम थी। उसे आनन्दित होकर अनेक विधि से वर्णन किया।

व्याख्या इतने दिनो पर राजसभा लगी है फिर भी कोई व्यवहार मुकदमा नही है। यहाँ व्यवस्था ऐसी थी कि सभा नित्य लगती थी पर व्यवहार मुकदमा एक भी नही। कारागार बने है पर कैदी एक भी नही। जब तक ऐसी व्यवस्था न हो तब तक राज्य की व्यवस्था ठीक नही। कारण यह था कि राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठा पापे पापा समे समा । राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा । राजा के धर्मात्मा होने स प्रजा आप से आप धर्मिष्ठ हो जाती है। राजा के सम होने से सम

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रहती है। राजा के पापी होने से पापी होती है। प्रजा राजा को ही आदर्श मानकर चलती है। जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा होती है। प्रजा का आदर्श राजा है। सो यहाँ कोई व्यवहार देखना न रहा। वसिष्ठजी धर्मेतिहास सुनाते थे। रनिवास के सहित महाराज सुनते थे। सारी प्रजा ने वही रास्ता पकड रक्खा था। सब धर्मेतिहास सुनते हैं। उसी का संस्कार दृढ रहता है। पापाचरण होता ही नहीं। मुकदमा क्यों होगा। राज्य व्यवस्था चलाने का प्रधान कार्य धर्मेतिहास श्रवण है। वही हो रहा है। स्वयं ब्रह्मर्षि वसिष्ठजी वक्ता हैं। पुत्र दारा सभासद के सहित राजर्षि दशरथ श्रोता हैं। सभा मे धर्मेतिहास हो रहा है। आज विश्वामित्रजी का इतिहास वसिष्ठ जी वर्णन करने लगे। 'गाधिसुत' कहने का भाव यह कि विश्वामित्रजी राजा गाधि के पुत्र थे। सो ऐसी तपस्या की कि उसके बल से क्षत्रिय से ब्राह्मण हो गये। जैसी तपस्या उन्होंने की उसे मुनि लोग मन से भी नही सोच सकते। महात्मा दूसरे के पुण्य मे वडे आनन्दित होते हैं। अत इनकी करणी वर्णन करने मे मुनिजी को मोद है। जिसके सौ पुत्रों को विश्वामित्रजी ने शाप देकर मारा था और तप बल के सामने सौ ब्रह्महत्या उनको कुछ न कर सकी उस विश्वामित्र की अद्भुत तपस्या के वर्णन मे : अपने शिष्यसमाज के सामने वसिष्ठजी को वडा हर्ष हो रहा है। यह मुदित का सर्वोत्कृष्ट उदाहरण है। वसिष्ठजी की कितनी महत्ता विश्वामित्रजी के महत्ता-वर्णन से वढ गई। इसका सहृदय व्यक्ति ही अनुमान कर सकता है।

बोले वामदेव सब साँची। कीरति कलित लोक तिहुँ माँची॥
सुनि आनंदु भयउ सब काहू। राम लखन उर अधिक उछाहू॥४॥

अर्थ : वामदेवजी ने कहा कि यह सब सच्ची वात है। इनकी सुन्दर कीर्ति तीनों लोक मे व्याप्त है। सुनकर सबको आनन्द हुआ। पर राम लक्ष्मण के हृदय मे वडा उछाह हुआ।

व्याख्या : वसिष्ठजी के वर्णन के उपरान्त महर्षि वामदेव ने उसका अनुमोदन किया। कहा कि यह सब सत्य घटना है। इसमे अर्थवाद नहीं है। वात को मन मे विठाने के लिए उसे वडे आरोप से कहा जाता है। ऐसे आरोप को असत्य नही माना जाता। क्योंकि उससे सत्य संस्कार ही मन में बैठता है। सो इनकी अद्भुत तपस्या के वर्णन मे अर्थवाद का किसी को भ्रम न हो इसलिए वामदेवजी ने अनुमोदन करते हुए कहा कि इसमे कुछ भी अत्युक्ति नही है। यथार्थ घटना का वर्णन वसिष्ठजी ने किया है। सभा मे सब सज्जन लोग हैं। सभी सुनकर मुदित हुए। राम लक्ष्मण के तो ये गुरु ही ठहरे। अतः गुरुजी की पुण्य कीर्ति सुनकर उनके हृदय मे अत्यन्त उछाह हुआ।

दो. मंगल मोद उछाहु नित, जाहिं दिवस एहि भाँति।
उमगी अवध अनंद भरि, अधिक अधिक अधिकाति॥३५९॥

अर्थ : नित्य मङ्गलमोद और उछाह है। इस भाँति दिन बीत रहा है। आनन्द भरी अयोध्या उमग पड़ी। वह दिन दिन अधिक होती जा रही है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या नित नव मंगल कोसलपुरी। हरषित रहहिं लोग सब कूरी। मङ्गल होने से मोद है और मोद से नित्य नया उत्साह है। इस भाँति दिन बीत रहे हैं। यथा यथा धर्मसीलन्ह के दिन सुख संजुत जाहिं। अवध में आनन्द भरा हुआ है। सभी अवधवास चाहते हैं। अवध में चले आरहे हैं एवं अवध का विस्तार दिन दिन बढ रहा है।

सुदिन सोधि कल ककन छोरे। मगल मोद विनोद न थोरे॥
नित नव सुख सुर देखि सिहाहीं। अवध जनम जाचहिं बिधि पाहीं॥१॥

अर्थ अच्छा दिन देखकर सुन्दर कगन छोरे गये। मङ्गल मोद और विनोद थोडा नहीं हुआ। नित्य नया सुख देखकर देवगण सिहाते हैं और अवध में जन्म पाने के लिए ब्रह्मा से प्रार्थना करते हैं।

व्याख्या अभी तक कगन नहीं छूटा है। उसके लिए सुदिन देखा गया। मङ्गलगान से मोद और कगन के जूआ म हार जीत होती है। उसमें बडा विनोद होता है। यथा जुआ खेलावन कौतुक कीन्ह सयानिन्ह। जीत हार मिस देहिं गारि दोउ रानिन्ह। मनुष्य लोग तो अवध में जाकर बस भी जाते हैं। देवता तो इस तरह बस नहीं सकते। उनके सुरलोक में वही प्राचीन सुख है। वहाँ सुख में नवीनता नहीं। सुरस्त्रीगण पार्वतीजी के शाप से वन्ध्या हैं। अत गृहस्थी के सुख में नवीनता नहीं है। इसलिए अवध का सुख देखकर सिहाते हैं। ब्रह्मदेव से माँगते हैं कि आपने जन्म बन्दर भालू में दे दिया। अभी दश सहस्र वर्ष राज्य करेंगे। इस बीच में यदि अवध में जन्म मिल जाता तो यह नित्य नवीन सुख हम भी भोग लेते।

विस्वामित्र चलन नित चहहीं। राम सप्रेम विनय बस रहहीं॥
दिन दिन सय गुन भूपति भाऊ। देखि सराह महामुनिराऊ॥२॥

अर्थ विश्वामित्रजी नित्य ही जाना चाहते हैं। पर रामजी के स्नेह और विनय के वश होकर रह जाते हैं। दिन पर दिन राजा का सौगुना भाव देखकर महा-मुनियो के राजा विश्वामित्रजी प्रशंसा करने लगे।

व्याख्या जिस तप के प्रभाव से ये दिन देखने को आये उसे छोडना नहीं चाहते। रामजी का दर्शन उसी तप का फल है। अत तप साधन के लिए जाना चाहते हैं। नित्य छुट्टी माँगते हैं। पर रामजी का स्नेह और विनय ऐसा है कि रह जाते हैं। राजा का भाव वृद्धिक्रम पर है जिस भाँति जनकजी का था। यथा नित नव सहस भाँति पहुनाई। विश्वामित्रजी समझते हैं कि यह क्रम कितना कठिन है। ससार में तो ठीक इसके विपरीत दिखाई पडता है। यथा चार दिना को पाहुनो काढ खियावै सोन। तुलसी नित को कठिन है दैवो लौटी नोन। अत महाराज दशरथ के भावभक्ति की विश्वामित्रजी प्रशसा करते हैं।

माँगत विदा राउ अनुरागे। सुतन्ह समेत ठाढ भे आगे॥
नाथ सकल सपदा तुम्हारी। मैं सेवक समेत सुत नारी॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ विदा माँगते समय चक्रवर्तीजी अनुराग मे आगये। बेटो के सहित आगे खडे हो गये और कहा कि नाथ यह सब सम्पदा तुम्हारी है। मैं तो स्त्री पुत्र समेत आपका सेवक हूँ।

व्याख्या देख लिया कि रामजी नही छुट्टी देंगे। अत महाराज से विदा माँगते है। महाराज विदाई देते समय बेटो को लेकर आगे खडे हो गये। भाव यह कि अभी कुछ कृत्य शेष है।

बारात मे विश्वामित्रजी ने राजा को हृदय से लगाकर अपना छोह दिखलाया था। यथा कौसिक राउ लिये उर लाई। कहि असीस पूछी कुसलाई। अत राजा को उनके प्रति अनुराग हो गया था। सो विदाई के समय उमड पडा। परम कृतज्ञ राजा हैं। पहिले ही कहा था माँगहु भूमि धेनु धन कोसा। सर्बस देहुँ आज सहरोसा। देह प्रानते प्रिय कछु नाही। सो मुनि दउँ निमिष एक माही। रास्ता रोककर खडे हो गये कि सब सम्पदा तुम्हारी है। मै पुत्रदारादि के सहित सेवक हूँ। सो इसका जैसा जब आवश्यक हो उपयोग कीजियेगा।

करब सदा लरिकन्ह पर छोहू। दरसनु देत रहब मुनि मोहू॥
अस कहि राउ सहित सुत रानी। परेउ चरन मुख आव न बानी॥४॥

अर्थ सदा बच्चो पर छोह रखियेगा। मुझे भी दर्शन देते रहियेगा। ऐसा कहकर कुमारो और रानियो के सहित चरणो मे गिरे। उनके मुख से वाणी नही निकलती थी।

व्याख्या लडको पर सदा छोह बनाये रखने की प्रार्थना करते है। आपके छोह से ही इनका कल्याण हुआ और होता रहेगा। मेरा सब कल्याण इन्ही मे केन्द्रीभूत है। मुझे कभी कभी दर्शन दे दीजियेगा। मै आप तक न पहुँच सकूँगा। राजकार्य से अवकाश कम रहता है। सपरिवार चरणो मे पडे। सभी प्रेम से मुग्ध हैं। सबका कण्ठ गद्गद हो रहा है।

दीन्हि असीस बिप्र बहु भाँती। चले न प्रीति रीति कहि जाती॥
राम सप्रेम संग सब भाई। आयसु पाइ फिरे पहुँचाई॥५॥

अर्थ ब्राह्मण देवता ने बहुत भाँति से आशीर्वाद दिया और चले। प्रीति की रीति कही नही जाती। रामजी प्रेम के साथ सब भाइयो को सग लिये हुए पहुँचाने चले और आज्ञा पाकर लौट आये।

व्याख्या : जब पहिले पहल आये थे राजा के दण्डवत् पर आशीर्वाद नही दिया था। अब उस घाटे को पूरा कर रहे हैं। अनेक भाँति से आशीर्वाद दे रहे हैं। अनेक भाँति आशीर्वाद तो ब्राह्मण ही देते हैं।

स्वामीजी को ॐनमो नारायणाय कहिये तो नारायण कह देते हैं। बाबाजी को दण्डवत् कीजिये तो जय रामजी की कहेंगे प्रीति की रीति अनुभव की वस्तु है कहने की नही। सो बिछुरने म बडा ही कष्ट होता है। यथा : बिछुरत एक प्रान हरि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लेही। यहाँ मङ्गल के समय कवि ने इतना ही कहा। मुनिजी को पहुँचाने भाइयो के साथ स्वय सरकार चले। मुनिजी से सब उपकार चारो भाइयो का हुआ है। अत प्रेम के साथ पहुँचाने जाते हैं। फिरने के लिए मुनिजी की आज्ञा हुई तब लौटे।

दो रामरूप भूपति भगति, ब्याहु उछाहु अनंद।
जात सराहत मनहि मन, मुदित गाधिकुल चंद ॥३६०॥

अर्थ रामजी के रूप महाराज की भक्ति और ब्याह के उछाह और आनन्द की प्रशसा गाधिकुलचन्द विश्वामित्रजी प्रसन्न होकर मन ही मन करते जाते थे।

व्याख्या अकेले ही मुनिजी चले। गाधिकुलचन्द हैं। राजा रह चुके हैं। अनेक ब्याह उछाह और आनन्द देखा है। पर ऐसा योग तो नही देखा राम सरिस वर दुलहिन सीता। समधी दसरथ जनक पुनीता। न ऐसी भक्ति किसी राजा मे देखी। यथा दिन दिन सौगुन भूपति भाऊ और न ऐसा उछाह और आनन्द देखा। यथा उमगी अवध अनद भरि अधिक अधिक अधिकाति। अत मन ही मन सराहते जाते है। दूसरा भाव मन मे उदय नही हो रहा है। ब्राह्मण हैं। इसलिए चन्द्र से उपमा दी। चन्द्र ब्राह्मणो के राजा है। यथा सोमोऽस्माक ब्राह्मणाना राजा।

वामदेव रघुकुल गुर ज्ञानी। बहुरि गाधि सुत कथा बखानी॥
सुनि मुनि सुजसु मनहि मन राऊ। बरनत आपन पुन्य प्रभाऊ॥१॥

अर्थ ज्ञानी वामदेव रघुकुल के गुरु ने बार बार गाधिसुत की कथा बखान कर कही। मुनिजी का सुयश सुनकर मन ही मन राजा अपने पुण्य का वर्णन करने लगे।

व्याख्या विश्वामित्रजी के चरित्र का वर्णन जो उनके सामने कहा गया था उसी का वर्णन फिर वामदेव और वसिष्ठजी ने किया। इस बार वामदेवजी ने वर्णन किया और वसिष्ठजी ने अनुमोदन किया। मुहदेखी न समझा जाय। इसलिए उनके सामने प्रशसा पूरी तरह से नही कर पाये थे। अत अब उनके परोक्ष मे सब कथा बखान कर कही। इस समय सभा की सभा चारो भाइयो के साथ विश्वामित्रजी को पहुँचाने गई है। इसलिए मुनि का सुयश सुनकर राजा मन ही मन अपने पुण्य के प्रभाव का वर्णन करने लगे। किसी के आगमन मे अपने पुण्य के प्रभाव वर्णन से आनेवाले की ही महत्ता द्योतित होती है।

बहुरे लोग रजायसु भयऊ। सुतन्ह समेत नृपति गृह गएऊ॥
जहँ तहँ राम ब्याह सबु गावा। सुजस पुनीत लोक तिहुँ छावा॥२॥

अर्थ राजाज्ञा हुई लोग लौट गये। बेटो के साथ महाराज घर गये। जहाँ तहाँ रामजी के ब्याह का सब गान कर रहे थे। पवित्र सुयश तीनो लोको मे छा गया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या : सब लोग विश्वामित्र को पहुँचाकर सभा में आ रहे थे। पर
ञा लौट जाने के लिए हुई और स्वय महाराज बेटो के साथ अन्त पुर में चले
। भाव यह कि सभा समाप्त हो गई।
रामजी का विवाह ऐसे धूम धाम से और ऐसे आनन्द से हुआ कि तीनो-
को में इसकी चरचा फैल गई। इस सुयश के गान से तीनो लोक पवित्र हुए और
समय भी उसके गान से लोग पवित्र होते हैं। अत उस सुयश को पुनीत
हा गया।

ाये ब्याहि राम घर जबतें। बसे अनंद अवध सब तबतें ॥
भु बिवाह जस भयउ उछाहू। सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू ॥३॥

अर्थ : जब से राम व्याह करके घर आये तब से सब आनन्द अवध में बस
गये। प्रभु के विवाह में जैसा उछाह हुआ उसे सरस्वती और शेष नहीं कह सकते।

व्याख्या : पहिले आनन्द सबके हृदय में बसे थे। यथा · सबके उर अनद
कियो बासू। अब तो अवध में बस गये। अथवा सब आनन्द एक जगह नहीं ठहर
सकते थे। कभी जनकपुर में जगदम्बा के पास चले जाते थे। कभी अवध में लौट
आते थे। अब तो जगदम्बा यहीं आकर रहने लगी। अतः सब आनन्द यहीं . अवध
में बस गये।

प्रभु के विवाह मे जैसा उछाह हुआ वैसा न कभी स्वर्ग में हुआ न पाताल
में हुआ। उस समय मर्त्यलोक ही सबसे ऊपर हो गया था। इसीलिए कहते हैं कि
सरस्वती शेष नहीं कह सकते। अथवा वाणी की अधिष्ठात्री देवता सरस्वती हैं
और दो सहस्र जिह्वावाले शेष हैं। उनके सामर्थ्य के बाहर की बात है कि उसका
वर्णन कर सकें।

कबिकुल जीवनु पावन जानी। राम सीय जसु मंगल खानी ॥
तेहि ते मैं कछु कहा बखानी। करन पुनीत हेतु निज बानी ॥४॥

अर्थ : राम सीता के यश को कविकुल का जीवन और पवित्र तथा मङ्गल-
खानि जानकर अपनी वाणी को पवित्र करने के लिए मैंने थोड़ा सा बखान
कर कहा।

व्याख्या : रामयश का वर्णन करने के लिए ही ब्रह्मदेव की प्रेरणा से पद्य
का प्रादुर्भाव वाल्मीकिजी के हृदय से हुआ। वे आदिकवि हुए। शेष सभी कवि
उन्हीं का अनुसरण करते हैं। अत राम सीय यश ही सब कवियो का जीवन है।
जेहि सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई। अत पावन है। यथा :
एकैकमक्षरं पुसां महापातकनाशनम्। एक अच्छर उद्धरे ब्रह्महत्यादि परायन। भक्त
माला और मगल करनि कलिमल हरनि तुलसी कथा रघुनाथ की। अत मगलखानी
कहा। इसे पूरा तो कोई भी नहीं कह सकता। अत सभी कुछ ही कह पाते हैं।
इसलिए मैंने भी कुछ बखानकर कहा है। हमारी वाणी परापवादादि दोषों से
दूषित है। अत उसके पवित्र करने के लिए थोड़ा सा कहा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



छं. निज गिरा पावनि करन कारन राम जसु तुलसी कह्यो ।
रघुवीर चरित अपार वारिधि पार कवि कवन लह्यो ॥
उपवीत ब्याह उछाह मगल सुनि जे सादर गावही ।
वैदेहि राम प्रसाद ते जन सर्वदा सुखु पावही ॥

अर्थ अपनी वाणी को पवित्र करने के लिए तुलसीदास ने रामयश कहा है। रामचरित्र अपार समुद्र है। इसका पार किस कवि ने पाया। जनेउ और व्याह का उछाह मङ्गल है। इसे सुनकर जो आदर के साथ गावेंगे वे वैदेही और रामजी की कृपा से सदा सुख पावेंगे।

व्याख्या : वाणी ही व्यवहार का मूल है। इसकी पवित्रता पर सबकी पवित्रता निर्भर है। सो परापवाद और विवाद आदि से दूषित हो गई है। यथा : पर अपवाद विवाद विदूषित बानिहि। उसे पवित्र करने के लिए तुलसीदास श्रीग्रन्थकार ने रामयश कहा है। उसे कह डालने के विचार से नही कहा है नही तो रामचरित तो अपार समुद्र है। इसका पार किसी कवि ने नही पाया। समुद्रावगाहन अपनी पवित्रता के लिए किया जाता है पार पाने के लिए नही। इसलिए सभी वक्ताओ ने इसे अपनी मति के अनुसार ही वर्णन किया है। सबने यथार्थ वर्णन मे अपनी असमर्थता प्रकट की है।

शिवजी ने कहा गिरिजा सुनहु विसद यह कथा। मै सब कही मोरमति जथा। रामचरित सतकोटि अपारा। श्रुति सारदा न बरनै पारा। राम अनत अनत गुनानी। जन्म कर्म अनत नामानी। इत्यादि। भुसुण्डिजी कहते हैं : नाथ जथामति भाषेउँ राखेउँ नहिं कछु गोइ। चरित सिधु रघुनायक थाह कि पावै कोइ। याज्ञवल्क्यजी कहते है रघुपतिकृपा यथामति गावा। मै यह पावन चरित सोहावा।

अत यह ठीक है कि किसी कवि ने पार न पाया। तब ग्रन्थकर्त्ता कहते हैं कि मै किस गिनती मे हूँ मुझे भी पार नही मिला।

जन्म मङ्गलगान का फल कह चुके है। यथा यह चरित जे गावहिं हरिपद पावहिं ते न परहिं भव कूपा। अब अवशिष्ट यज्ञोपवीत और विवाह के उछाहवाला मङ्गल गुरुमुख से सुनकर जो लोग आदर के साथ गावेंगे उन पर वैदेही और रामजी की कृपा होगी। वे सदा सुख पावेंगे। जन्म मङ्गल मे केवल रामयश रहा। अत उसका पार लौकिक फल है। विवाह मङ्गल मे दोनो सरकार : रामजानकी का यश है। अत इसके गान करनेवाले सदा सुख पावेंगे।

सो सिय रघुवीर विवाहु, जे सप्रेम गावहिं सुनहिं ।
तिनकहु सदा उछाह, मगलायतन राम जसु ॥३६१॥

अर्थ सीता रामजी का व्याह जो लोग प्रेम से गाते और सुनते है उनको सदा ही उछाह बना रहता है। क्योकि रामयश मङ्गल का घर है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या अब केवल विवाह प्रकरण की फलश्रुति कहते हैं। आदर से प्रेम बड़ा है। अत जो प्रेम से सुनेगा उसके फल मे भी उत्कर्ष है। उसको सदा उछाह रहेगा। सुख से आधिक्य मे उछाह होता है। कारण कहते हैं कि रामजी का यश मङ्गल का घर है। यही मङ्गल निवास करता है। रामजी के नाम मे कल्याण का निवास है। नाम राम को कल्पतरु कलि कल्यान निवास और। उनके चरित मे मङ्गल का निवास है यथा मगलायतन रामजसु।

यह काण्ड सोरठा से प्रारम्भ करके सोरठा से समाप्त होता है। सोरठा मे वृद्धिक्रम है। इस काण्ड की फलश्रुति भी वृद्धिपरक है।

हरि ॐ तत्सत्

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वसने प्रथम. सोपानः समाप्त.

अर्थ यह सकल कलि कलुष के नाश करनेवाले श्रीरामचरितमानस की पहिली सीढी समाप्त हुई।

व्याख्या श्रीरामचरितमानस कलियुग के दोषो को दूर करनेवाला है। कलियुग सब मलों का मूल है। यथा जुग कलिजुग मल मूल। इसे नाश करने मे मुनि भावन पावन रामचरित्र ही समर्थ है। यथा कलि कुचालि कुलि कलुष नसावन। इस सर मे यह चमत्कार है कि सब सीढियो से जल मिलता है।

साम्बसदाशिव साम्बसदाशिव साम्बसदाशिव साम्बशिव

रामचरित तुलसी कथित प्रथित प्रथम सोपान।
औरन को आधार यह जानत सकल सुजान ॥१॥
गुण रत्नाङ्क शशाङ्क शिवरात्रि सदाशिव ध्याइ।
विजयाख्या टीका रची विजयानद सुख पाइ ॥२॥
जननि जनक गुरु की कृपा टीका लिखी सुछद।
पढत सुनत कल्याण मुद पावै विजयानन्द ॥३॥
शर नभ नभचख रामसिय व्याह दिवस अनुकूल।
करि सुधार फिर से लिखी टीका मगलमूल ॥४॥
जय हनुमान ज्ञान गुनसागर। जय कपीस त्रयलोक उजागर ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

# श्रीरामचरितमानस

## विजया टीका

### द्वितीय भाग

टीकाकार
मानसराजहंस पं० श्री विजयानन्दजी त्रिपाठी

सम्पादक
डा० श्रीनाथ मिश्र रामायणी
डा० सहजानन्द त्रिपाठी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

प्रकाशक :
इण्डियन डवलपमेण्ट ट्रस्ट
३१, नेताजी सुभाष रोड
कलकत्ता, ७०००१

प्रकाशन तिथि .
विजयादशमी १९८० ई०

मूल्य : प्रथम भाग से संबद्ध

मुद्रक :
विश्वम्भरनाथ द्विवेदी
आनन्दकानन प्रेस
सीके ३६/२०, ढुण्ढिराज
वाराणसी, २२१००१

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

# विषयानुक्रमणिका

मङ्गलाचरण : शङ्करवन्दना, रघुनन्दन की मुखश्री की कल्याणप्रदता। रामवन्दना : संस्कृत : गुरुपद रज से मनमुकुर को, विमल करके रघुवर : यशवर्णन। पृष्ठ १ से।

रामाभिषेक प्रसङ्ग : उमा के पाँचवें प्रश्न का उत्तर : ब्याह[1] के बाद से अयोध्या मे सुख-सम्पत्ति की वृद्धि। सबको रामाभिषेक का अभिलाष। राजसभा। मुकुर मे बाल की सफेदी देखकर राजा को रामाभिषेक का अभिलाष। गुरु के पास जाना। सम्मति पाकर सेवक सचिव से सलाह। तैयारी। राम सीय को सगुन, भरत आगमन सूचक। महल मे खबर। उछाह। रामजी को गुरु की शिक्षा। अकेले अपने अभिषेक पर राम का सप्रेम पछतावा। लक्ष्मण का सम्मान। प्रजा का उछाह। देवताओं का विघ्नाचरण। मन्थरा का कपट। महारानी कैकेयी की कुमति। कोप भवन। बालसखाओं का राम के पास जाना। नगर मे रामाभिषेक का अभिलाष। कैकेयी को दाह। कुसङ्ग से नाश : दो. २३ तक। पृ० ५ से।

नृपवचन राजरस भङ्ग प्रसङ्ग : महाराज का कैकेयी के महल मे जाना। वरदान। राजा को शोक। कैकेयी का हठ। कैकेयी त्याग। प्रात.काल। सुमन्त का आगमन। सुमन्त का जाकर राम को लिवा लाना। राम कैकेयी सवाद। राजा का मूर्च्छा त्याग। रामचन्द्र का राजा को समझाने का प्रयत्न। माता के पास गमन : दो. ४५.५ तक। पृ० ६२ से।

प्रजा विरह विषाद प्रसंग : नगर मे समाचार का फैलना। सबकी विकलता। कैकेयी को गाली। अनेक प्रकार का अनुमान। प्रजा को दुःसह संताप। सखियों का कैकेयी को समझाने का प्रयत्न। कौसल्या रामचन्द्र सवाद। सीता का आना। सीता राम संवाद। माता का आशीर्वाद। प्रस्थान : दो. ६९ तक। पृ० ११२ से।

राम लक्ष्मण संवाद प्रसङ्ग : लक्ष्मण का आगमन। विनती। लक्ष्मण की माता से विदाई। राम का साथ : दो. ७६. १ तक। पृ० १६१ से।

वनगमन केवट अनुराग प्रसङ्ग : तीनो मूर्तियों की महाराज से विदाई। वसिष्ठ के द्वार पर ठहरना। सबको समझाना। प्रस्थान। राजा का सुमन्त को भेजना। सुमन्त का विनती करके रामजी को रथ पर चढाना। प्रजा का साथ चलना। तमसा तीर निवास। प्रजा को सोये हुए छोड़कर रामजी का चला जाना। शृङ्गवेरपुर पहुँचना। गङ्गा स्नान। गुह का आगमन। सिसुपा वृक्ष तले निवास। गुह का विषाद। पृ० १७५।

श्रीलक्ष्मण गीता : सुख दु ख के कारण अपने कर्म। अन्य कोई नही। भ्रम फन्द जग जाल व्यवहार सब मोहमूलक। मोह निशा में सोना जागना स्वप्न परम परमार्थ का वर्णन। रामजी परमार्थ

---

1. राज तजा सो दूपन कहा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



का शपथ लेना । कौसल्या की सान्त्वना : दो १६८.८ तक । पृ० ३५२ से ।

भरत चरित १५७ दोहो मे ।

**नृप क्रिया प्रसग :** वसिष्ठ वामदेव का उपदेश । रानियो को सती होने से रोकना । दाह-क्रिया । दशरात्र विधान । विशुद्ध होने पर दान । वर्णनातीत क्रिया । दो. १७०.१ तक । पृ० ३६३ से ।

**राज्यभिषेक प्रस्ताव** सुदिन देखकर वसिष्ठजी का सभा एकत्र करना । शोच्यो का वर्णन । कोसलराज अशोच्य । राज्याभिषेक का गुरु द्वारा प्रस्ताव । सचिव और माता का अनुमोदन । भरत का उत्तर । रामजी के पास चलने की अनुमति मांगना । सर्वसम्मति · दो. १८४ तक । पृ० ३६६ से ।

**पुरवासी सहित चित्रकूट प्रस्थान प्रसग :** चलने की तैयारी । सईतीर निवास । निषादराज की युद्ध की तैयारी । भेद लेने के लिए भरत के पास जाना । भरत से भेंट । गङ्गा-स्नान । डेरा करना । सिंसुपा वृक्ष का दर्शन । भरत का शोक । निषादराज का समझना । पुरवासियो का प्रेम । गङ्गा पार करना । भरत का पैदल प्रयाण । प्रयाग स्नान । भक्ति मांगना । भरद्वाज भेंट । भरत की प्रशसा । भरत का उत्तर, सत्कार ग्रहण । विदाई । रास्ता चलने मे भरत का प्रेम । इन्द्र को मोह । वृहस्पति का उपदेश । दूसरे दिन यमुनातीर निवास । ग्रामवासी नर-नारियो की बातचीत । भरत का प्रेम । बीच मे निवास । शैल दर्शन । प्रेम मे शिथिलता । दिन भर मे दो कोस चलना । मार्ग मे निवास दो २२५.२ तक । पृ० ४०४ से ।

**लक्ष्मण क्रोधप्रसग ·** सीताजी का स्वप्न । शान्ति विधान । भरतागमन समाचार । राम को सङ्कोच । राम को सोच मे देखकर लक्ष्मण का भरत पर क्रोध । आकाशवाणी । रामसीता द्वारा सम्मान दो २३२.३ तक । पृ० ५०० से ।

**रामजी से भेंट :** मन्दाकिनीस्नान । सबका वही ठहरना । दोनो भाइयो का गुह के साथ आगे बढना । भरत का साथ । आरण्य-राज-समाज वर्णन । वटवृक्ष दर्शन । प्रणाम करते हुए चलना । भरत का प्रेम । आश्रम दर्शन । प्रभु दर्शन । दण्डवत् प्रणाम । भाइयो की भेंट । शत्रुघ्न को सीता के पास छोडकर गुरुजी के पास जाना । सबसे भेंट । गिने गिनाये लोगो के साथ आश्रम लौटना । सीताजी की सबसे भेंट । नृप सुरपुर गमन समाचार । विलाप । निरम्बु व्रत । नृप क्रिया । शुद्ध होने पर दो दिन बाद गुरुजी से विनय घर लौटने के लिए । गुरुजी का अनुरोध । लोगो का राम वन भ्रमण । कोल किरातो का सत्कार । सीता की सास-सेवा । कैकेयी का पश्चात्ताप । भरत का सोच : दो २५२.४ तक । पृ० ५१९ से ।

**प्रथम सभा : पुनि रघुपति बहु विधि समुझाये :** प्रकरण · गुरुजी के यहाँ भरत की बुलाहट । मुनि भरत सवाद । समाज-सहित रामनिकट आगमन । रामचन्द्र से उपाय पूछना । रामचन्द्र का गुरु आज्ञा-पालन ही उपाय बतलाना । गुरु द्वारा भरत के स्नेह का विचार न रखने का उपालम्भ । रामचन्द्र का सब बात्ता भरत पर छोड देना । भरत द्वारा निज दुःख निवेदन । गुरुजी का समझाना । रामचन्द्र द्वारा सान्त्वना । भरत की बात मानने की प्रतिज्ञा । देवताओ मे खलबली । भरत का रामाज्ञापालन का

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



निश्चय। रामजी का सङ्कोच से चुप रह जाना। जनकदूत आगमन। मुनि दूत सवाद। दूत की विदाई दो २७१ ८ तक। पृ० ५६५ से।

जनकागमन प्रसङ्ग रामजी को सङ्कोच। इन्द्र को सोच। कैकेयी की ग्लानि। प्रजा को मोद। दूसरे दिन पञ्चदेवो पासन। प्रार्थना। जनकागमन सुनकर रामजी का समाजसहित लेने जाना। शैल दर्शन होते ही जनक द्वारा रथ त्याग। सबका मिलन। रामजी का लिवा चलना। दोनो राज समाज की विकलता। मुनियो का समझाना। रामघाट स्नान। सबका निर्जल रह जाना। दूसरे दिन वसिष्ठ शतानन्द और विश्वामित्र का समझाना। जनकजी का दूसरी जगह ठहरना। सत्कार। जनकराज रनिवास का कोसलराज रनिवास से भेट। चलते समय सीता को साथ लाना। जनक से भेंट। सीता की विदाई। जनक सुनैना सवाद दो २८९ २ तक। पृ० ६०८ से।

दूसरी सभा रघुपति प्रबोध प्रसङ्ग गुरुजी से रामजी की प्रार्थना। गुरुजी का जनक के पास जाना। जनक का समाज के सहित भरत के पास जाना। जनक भरत सवाद। सबका रामजी के पास आना। देवताओ की भरत के मत को फेरने के लिए सरस्वती से विनय। सरस्वती का अस्वीकार। देवताओ की माया से भय भ्रम आर्त्ति और उपचार का प्रादुर्भाव। जनक का राम स आज्ञा माँगना। रामचन्द्रका जनकजी की आज्ञा मानने का शपथ लेना। जनकजी का समासहित सङ्कोच। भरतजी द्वारा सरस्वती का स्मरण। भरत का खडा होकर आज्ञा माँगना। रामजी का हाथ पकडकर निकट बैठाना। भरत की प्रशसा। प्रजा की द्विविध मनोगति। रामचन्द्र का कथन। भरत को सन्तोष। मुनिथल तीरथ वन दर्शन की आज्ञा। भरत कूप। वन अटन दो ३१२ तक। पृ० ६४७ से।

तीसरी सभा भरत की विदाई के लिए प्रार्थना। रामचन्द्र का उपदेश। भरत का प्रबोध। पादुका प्रदान। भाइयो का मिलन। विदाई। प्रस्थान। राम सीता लक्ष्मण को प्रिय परिजन का वियोग। देवताओ का दुःख निवेदन। राम का भरोसा देना। राम लक्ष्मण सीता का पर्णकुटी मे निवास दो ३२१ तक। पृ० ६९६ से।

पादुका सहित अवध प्रत्यागमन प्रसग सब समाज राम विरह से दुःखी। यमुना पार होना। उस दिन उपवास। गङ्गा पार करके निवास। निषादराज का सत्कार। सई उतरि गोमतीस्नान। चौथे दिन अवध प्रवेश। जनकजी का चार दिन अवध मे रहकर सब व्यवस्था करना। लोगो का राम-दर्शन के लिए नेम उपवास दो ३२२ तक। पृ० ७१५ से।

भरत रहनि प्रसग सचिव सेवक का अपने अपने कार्य म लग जाना। ब्राह्मणो से आज्ञा देते रहने के लिए भरतजी की प्रार्थना। पुरजन, परिजन प्रजा का समाधान करके स्ववश बसाना। गुरुजी से सनियम रहने के लिए आज्ञा चाहना। राजसिंहासन पर पादुका स्थापन। आज्ञा माँगकर कार्य करना। नन्दिग्राम निवास। भरत की तपस्या। भरतचरित की फल-श्रुति। दो ३२६ तक। पृ० ७८७ से।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com




### ३. अरण्यकाण्ड

मङ्गलाचरण : अष्टमूर्ति शङ्कररूप ब्रह्मकुल की वन्दना । सीता लक्ष्मण संयुक्त बटोही राम की वन्दना : संस्कृत : पृ० ७३० से ।

सुरपतिसुत करनी प्रसंग : रामजी के गुणों की गूढ़ता । सीता का पुष्प शृङ्गार । बल परीक्षा के लिए जयन्त का वायस वेष धारण । सीता पर चोंच चलाना । ब्रह्मास्त्र प्रयोग । जयन्त का पलायन । नारद का उपदेश । जयन्त की शरणागति । प्रभु का छोह । अति-सुधासरिस चरित : दो. २.१ तक । पृ० ७३२ से ।

प्रभु अत्रि भेंट प्रसंग : मुनियों से विदा । अत्रि के आश्रम में आगमन सत्कार । पूजा स्तुति । स्तुति की फल-श्रुति । अनसूया सीता मिलन । दिव्य वसन भूषण उपहार । नारि धर्म उपदेश । दूसरे वन में जाने के लिए अत्रि की अनुमति । अयोध्याकाण्ड के रामचरित की फलश्रुति । विदाई : सो. ६.१ तक । पृ० ७४१ से ।

विराध वध प्रसंग : राम लक्ष्मण के बीच में सीता की शोभा । प्रकृति की अनुकूलता । विराध वध में प्रभु की पण्डिताई । विराध की गति : सो १ ७ तक । पृ० ७५९ से ।

शरभंग देहत्याग प्रसंग : शरभङ्ग के यहाँ आगमन । शरभङ्ग का कथन । शर रचना करके मुनि का बैठना । हृदय में वास के लिए वरदान । योगाग्नि से शरीर त्याग । शरभङ्ग की गति । मही को निशिचर हीन करने की प्रतिज्ञा । सब मुनियों के आश्रमों में जाकर सुख देना : दो ९ तक । पृ० ७६१ से ।

सुतीक्ष्ण प्रीति प्रसंग : प्रभु का आगमन सुनकर मुनि का अतिशय प्रेम । समाधि । प्रभु का जगाना । मुनि से भेंट । आश्रम में लाकर पूजा । स्तुति । प्रभु की रुचि अनुसार वरदान । मुनि की रुचि अनुसार वरदान । मुनि के साथ प्रभु का अगस्त्याश्रम के लिए प्रस्थान : दो. ५.४ तक । पृ० ७६६ से ।

प्रभुअगस्त्य सत्संग · पंथ में भक्ति-कथन । सुतीक्ष्ण का जाकर गुरु को संवाद देना । अगस्त्य जी का दौड़ना । अगस्त्य जी से भेंट । कुशल प्रश्न पूजा । मुनिसमूह में शोभा । मुनिद्रोही वध का मन्त्र पूछना । मुनि की स्तुति । वरदान माँगना : दो. १२ : १३ तक । पृ० ७८१ से ।

दण्डक वन की पावनता : पञ्चवटी की मनोहरता का वर्णन । मुनि के लिए शापहरणपूर्वक दण्डक वन को पवित्र करने की प्रार्थना । वहीं वास करने की अनुमति । मुनि की आज्ञा पाकर रामजी का दण्डक वन प्रवेश : दो. १२ : १८ । पृ० ७८८ से ।

गीध मैत्री प्रसंग : गीधराज से भेंट । प्रीति की वृद्धि : दो. १३ । पृ० ७८९ से ।

पञ्चवटी निवास मुनि त्रास भञ्जन प्रसंग : गोदावरी के निकट पर्ण गृह बनाकर वास । मुनियों का वीतत्रास होना । वन वर्णन । प्रकृति के सौन्दर्य की अभिवृद्धि . दो. ७.४ । पृ० ७८९ से ।

लक्ष्मणोपदेश प्रसंग : रामगीता : लक्ष्मण जी के तीन प्रश्न : राम के द्वारा मायानिरूपण ज्ञाननिरूपण परमवैराग्य निरूपण ईश्वरजीव भेद-निरूपण । ज्ञान-दीप का बीज । भक्ति से भगवान् का शीघ्र द्रवीभूत होना । भक्ति की सुकरता । स्वतन्त्रता । ज्ञान विज्ञान


(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उसके अधीन सत्सङ्ग से अनुपम सुखमूल भक्ति की प्राप्ति · भक्तिचिन्तामणि बीज पृ० ७९१ से।

भक्तियोग : साधना · विप्र चरण प्रीति तथा स्वधर्माचरण। उससे विषय विराग। तब भगवद्धर्म मे अनुराग। श्रवणादिक भक्ति की दृढता। भगवत् लीला मे रति। सन्त चरण मे प्रेम। मन क्रम वचन से भजन। लक्ष्मण को सुख प्राप्ति। प्रणाम। विराग, ज्ञान, गुण और नीति विषयक उपदेशों में समय बिताना दो १० २ तक। पृ० ८१५ से।

सूर्पणखा विरूपकरण प्रसग · सूर्पणखा का पञ्चवटी मे आगमन। दोनो भाइयो पर मोहित होना। प्रेम प्रस्ताव। प्रभु का उसे लक्ष्मण के पास भेजना। लक्ष्मण का उसे समझाकर फिर प्रभु के पास लौटाना। रामजी का फिर उसे लक्ष्मण के पास भेजना। लक्ष्मण द्वारा तिरस्कार। सूर्पनखा का प्रभु के पास आकर भयङ्कर रूप प्रकट करना। रामजी के इङ्गित पर लक्ष्मण द्वारा श्रवण नासिका छेदन ११.१। पृ० ८२९ से।

खरदूषणवध प्रसग : सूर्पणखा द्वारा खरदूषण को धिक्कार। खरदूषण का ससैन्य प्रस्थान। लक्ष्मण का सीता को राम की आज्ञा से गिरि कन्दरा मे ले जाना। राम की युद्ध के लिए तैयारी। बगमेल आगमन। खरदूषण का दूत भेजना। रामजी का उत्तर। धावा। धनुपटङ्कार। युद्ध मे तीन धावा। प्रभु की पण्डिताई। सबका वध। देवो द्वारा पुष्पवर्षा। स्तुति। लक्ष्मण का सीता को लाना। प्रभु का सुर मुनि सुखदायक चरित दो १४ ४। पृ० ८३५ से।

दसानन समाचार प्रसंग · खरदूषण का शव देखकर सूर्पणखा का रावण के यहाँ जाना। विलाप करते हुए सभा मे गिर पडना। दशानन के पूछने पर निज दोष गोपन पूर्वक सब वृत्तान्त कहना। रावण का सान्त्वना देना। रावण का रात्रि मे विचार। दृढ मन्त्र। एकाकी रथ पर चढ़कर मारीच के पास जाना दो. १६.७। पृ० ८५० से।

रामजी की युक्ति : लक्ष्मण का कन्द मूल फल लेने वन जाना। रामजी का सीताजी से अपना विचार प्रकट करना। अपना प्रतिबिम्ब वहाँ रखकर सीताजी का अग्नि प्रवेश . दो. १७.५। पृ० ८५७ से।

दशकन्धर मारीच बतकही प्रसग : दशकन्धर का मारीच के यहाँ जाना। प्रणाम करना। पूजा करके मारीच का वृत्तान्त पूछना। रावण का कहना तथा कपटमृग बनकर सीताहरण मे सहायक होने के लिए अनुरोध। मारीच का समझाना। रावण का क्रोध। मारीच निश्चय। रावण के साथ चलना। मारीच का मनोरथ। राम वन के निकट मारीच का हेममृग रूप धारण : दो २०.१। पृ० ८५९ से।

मायासीता हरण प्रसग : सीता का मृग देखना। रामचन्द्र से मृगछाला के सीता की प्रार्थना। लक्ष्मण का पहरा। रामचन्द्र का मृग वध के लिए प्रस्थान। पीछा करना। मृग का कपट। मृग वध। रामचन्द्र के स्वर से मृग का लक्ष्मण को पुकारना। मारीच की गति। प्रभु का लौटना। आर्त्तगिरा सुनकर लक्ष्मण को जाने के लिए सीता का आदेश। लक्ष्मण का समझाना। सीता का क्रोध। लक्ष्मणजी का प्रस्थान। दशानन का यति के वेष मे आगमन।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



राजनीति भय प्रीति दिखलाना। सीता का सन्देह। रावण का निजरूप प्रकाश-पूर्वक अपना नाम स्थापन। सीताहरण। सीता विलाप। जटायु रावण युद्ध। जटायु का पक्षच्छेदन। रावण का पुन सीता को ले चलना। सीता का हरिना-मोच्चारण पूर्वक बन्दरों मे पट गिराना। रावण का सीता को अशोकवन मे रखना। सीता का रामछवि हृदय धारण पूर्वक नाम रटना: दो २३ तक। पृ० ८६६ से।

रघुवीरविरहवर्णन प्रसग : लक्ष्मण को आते देखकर राम की बाह्य चिन्ता। आश्रम पर जाना। विलाप। लक्ष्मण का समझाना। सीता की खोज मे लतातरु पाती से पूछते चलना। सीताजी का नखशिख वर्णन दो. २३ १७। पृ० ८८० से।

गीधक्रिया प्रसङ्ग : गीध को पड़ा हुआ देखकर उसके सिर पर हाथ रखना। गीध का सब वृत्तान्त सुनना। राम जटायु सवाद। गीध की गति। गीध कृत राम की हरिरूप से स्तुति। अविरल भक्ति माँगकर हरिधाम प्रस्थान। रामचन्द्र द्वारा गीध क्रिया : दो. २६.३ तक। पृ० ८८४ से।

कवन्ध वध तथा शबरी गति प्रसङ्ग : सीता को खोजते हुए चलना। वन-वर्णन। कवन्ध वध। गन्धर्व रूप कवन्ध द्वारा स्वात्मकथा निवेदन। रामचन्द्र द्वारा ब्राह्मणमहिमा कथन। भागवद्धर्म-उपदेश। स्वकीय गतिप्राप्ति। शबरी के यहाँ रामजी का जाना। शबरी का सत्कार पूजा स्तुति नवधा भक्ति जिसमे सबका अधिकार है का उपदेश। जनकसुता की सुधि पूछना। शबरी की भविष्यद् वाणी। शबरी का योगाग्नि से देह त्याग। मुक्ति दो. ३० तक। पृ० ८९२ से।

सरोवर तीर गमन प्रसग : विरही की भाँति विषाद करते चलना। कामसेना के व्याज से वसन्त वर्णन। सरोवर वर्णन। मज्जन। तरु छाया मे परम प्रसन्न होकर बैठना दो. ४०.२ तक। पृ० ९०५ से।

प्रभुनारद सवाद : देव मुनियो का आगमन और स्तुति। नारदजी का आना। नारद का स्वागत। नारद की विनती। राम नाम का सब नामों से अधिक श्रेष्ठ होने का वरदान। विवाह न होने देने का कारण पूछना। रामजी का उत्तर। भक्त शिशु बालक। ज्ञानी प्रौढ तनय। अतः भक्त की विशेष रखवारी। मोह की सेना मे नारी का अति दारुण दु खद होना। नारि मे छवो ऋतु। नारी निविडान्धकारमयी रात्रि। बुद्धि बल शील सत्य मछलियो के लिए नारी वशी। अवगुनमूल शूल प्रद सब दु ख खानि प्रमदा। अत निवारण करना। नारदजी का सन्त लक्षण पूछना। प्रभु का उत्तर। नारद का ब्रह्मलोक प्रस्थान। फलश्रुति। ग्रन्थकर्ता का मन को उपदेश : दो ४० तक। पृ० ९१६ से।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

तुम्हरोहि भरोस महेश हमे तुमही मम जीवन के रखवारे।
तजि देह सकौ न सकौं तज तोहिं तुही विजयानंद प्रान पियारे॥
मन मे न धरौ कछु हानि गलानि करे हम सोइ जोइ निरधारे।
यह प्रेम को नेम न टारे टरे हम भक्तन के अरु भक्त हमारे॥

—विजयानन्द त्रिपाठी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

मानसराजहंस प० श्रीविजयानन्द जी त्रिपाठी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

मानसराजहंस श्रीविजयानन्द त्रिपाठी के प्रमुख शिष्य
डॉ. श्रीनाथ मिश्र रामायणी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

# श्रीरामचरितमानस

## विजया टीका

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

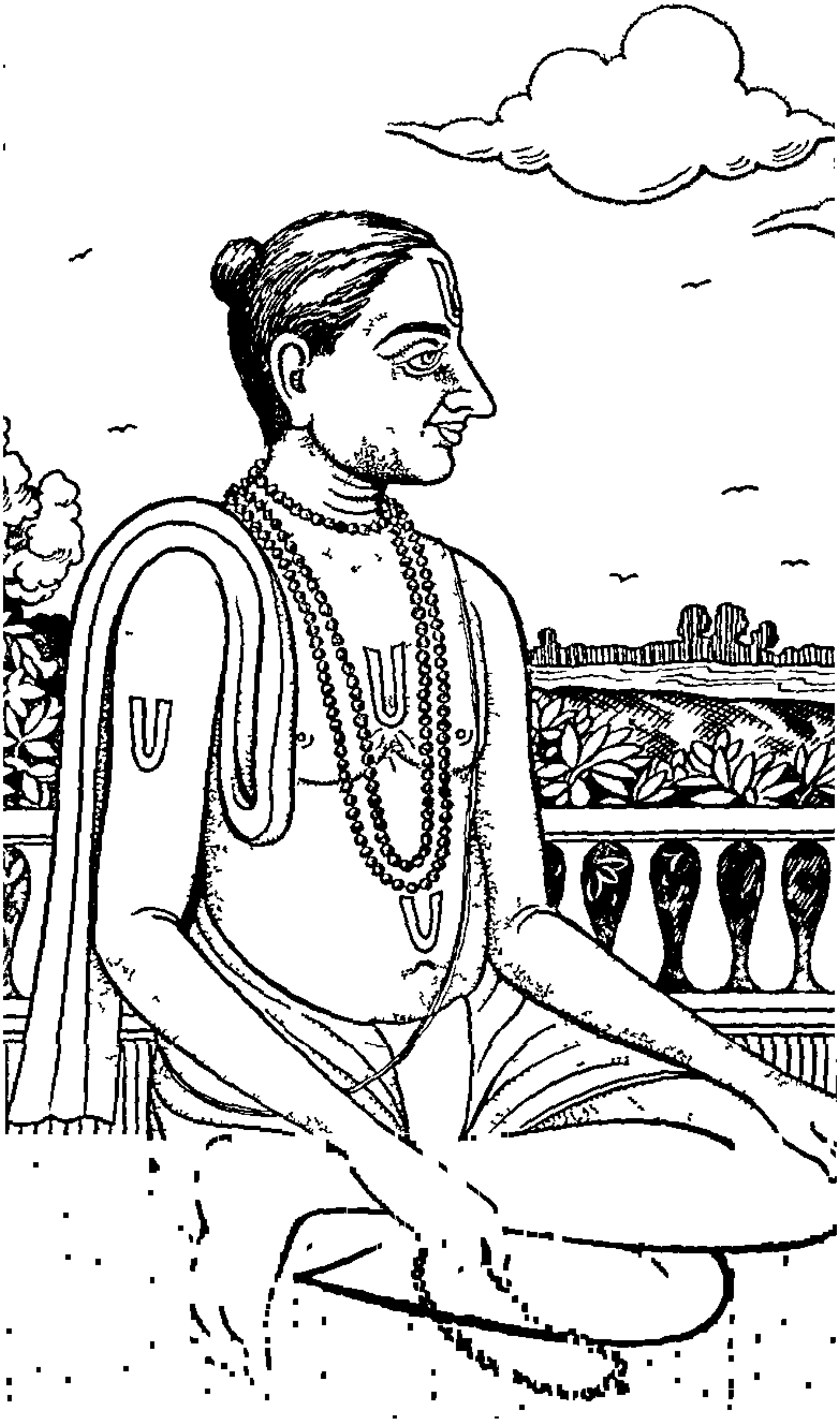

ankurnagpal108@gmail.com

श्रीराम

श्रीगणेशाय नमः। श्रीगुरवे नमः

# श्रीरामचरितमानस

## अयोध्याकाण्ड : द्वितीय सोपान

## सटीक

### मङ्गलाचरण

श्लो. यस्यांके[1] च विभाति भूधरसुता देवापगा मस्तके
भाले बालविधुर्गले च गरलं यस्योरसि व्यालराट्।
सोऽयं भूतिविभूषणः सुरवरः सर्वाधिपः सर्वदा
शर्वः सर्वगतः शिवः शशिनिभः श्रीशंकरः पातु मां ॥१॥

अर्थ : जिनकी गोद में पार्वतीजी, मस्तक पर गङ्गाजी, ललाट पर बालचन्द्र, गले में विष और जिनके वक्षस्थल पर सर्पराज विराजमान हैं। वे यही भूतिविभूषण, देवताओं में श्रेष्ठ, सदा सबके स्वामी, संहारकर्ता, सबमें व्याप्त, चन्द्रमा के समान प्रकाशित श्रीशङ्कर शिवजी मेरी रक्षा करें।

व्याख्या : पार्वतीजी स्वयं प्रकाशमान हैं। पर शङ्करजी के अङ्क में विशेष रूप से प्रकाशमान हुईं। अतः विभाति कहा। यही क्रिया अन्य कर्ताओं के साथ लगेगी। गङ्गाजी भी प्रकाशमान हैं। पर शङ्कर भगवान् के सिर पर विशेष रूप से प्रकाशित होती हैं। उमा गङ्गा दोनों शिवजी की शक्तियाँ हैं। महेश मुखचंद चकोरी होकर उत्कर्ष को प्राप्त हैं। यही बात बालविधु की भी है : यमाश्रितो हि वक्रोऽपि चन्द्रः सर्वत्र वन्द्यते। विष भी सुन्दर प्रकाशवाला हो जाता है। अमृत का फल देने लगता है : कालकूट फल दीन्ह अमीके। व्यालराट् भी अधिक उत्कर्ष को प्राप्त होते हैं। गरुड़ से भी निर्भय हो जाते हैं। आभूषण की भाँति सुशोभित होते हैं। यथा :

---

1. यह शार्दूलविक्रीडित छन्द है। इसमें १९ अक्षरों का एक पाद होता है। बारह अक्षरों पर यति होती है। इसमें एक मगण, १ सगण, १ जगण, १ सगण, दो तगण और अन्त में एक गुरु होता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भुजगभूति भूषन त्रिपुरारी। सोयम् से प्रसिद्धि कही। विभूति का भी महान् उत्कर्ष हो जाता है। वह श्मशान की अमङ्गल अपावन विभूति महामङ्गलमय और पवित्र हो जाती है। यथा भव अग भूति मसान की सुमिरत सुहावनि पावनी। शिवजी देवाधिदेव महादेव है। इसलिए सुरवर कहा। ईश्वर हैं। इसलिए सदा सर्वाधिप कहा। अखण्ड ऐश्वर्य द्योतित किया। सहारकर्ता भी ये ही हैं। इसलिए शर्व कहा। ब्रह्मरूप होने से सर्वगत कहा। प्रलयकाल मे भूतमात्र इन्ही मे शयन करते हैं। इसीलिए शिव कहा। परम आह्लादकारिणी मूर्ति है। इसलिए शशिनिभ कहा अथवा ज्योतिर्मय होने से शशिनिभ कहा। ऐसे श्रीयुक्त शङ्कर से कवि अपनी रक्षा चाहते है। यहाँ श्री का अर्थ उमा है। क्योकि वही शङ्कर की लक्ष्मी हैं। ओर्मा उमा। उ शङ्कर को कहते है। उनकी लक्ष्मी का नाम उमा है।

इसी वर्णन द्वारा शिवजी के अखिल रसामृतमूर्ति होने का वर्णन किया। विभाति भूधरसुता से शृङ्गार कहा। देवापगा मस्तके से हास्य कहा। कैसी ही प्रिय स्त्री हो पर उसे कोई सिर पर चढाये नही फिरता। भाल बालविधु से अद्भुत रस कहा। चन्द्रमा आकाश मे रहते है किसी के सिरपर नही रहते। गल च गरल से करुण रस कहा। यथा जरत सकल सुरवृद विषम गरल जेहि पान किय। उरसि व्यालराट् से भयानक रस कहा। भूतिविभूषण से बीभत्स रस कहा श्मशान की विभूति बीभत्स है। सर्वाधिप से वीर रस कहा क्योकि वीरभोग्या वसुन्धरा है। शर्व से रौद्र रस और सर्वगत से शान्त रस कहा।

इसी वर्णन से शिवजी मे विरुद्धधर्माश्रयत्व भी दिखलाया। स्थावर विष गल म जगम विष सर्पराट् छाती पर और अमृताशु चन्द्रमा मस्तक पर। इस भांति विष और अमृत दोनो का आश्रय कहा। एक स्त्री गोद म एक सिर पर है और आप भूतिविभूषण है। यह भी सर्वथा विरुद्ध है। जो शर्व सहारक है। वही सर्वाधिप सबका पालक है। ये दोनो धर्म भी अत्यन्त विरुद्ध हैं। इनके आश्रय शङ्कर भगवान् हैं।

*श्रो प्रसन्नता[१] या न गताभिषेकतस्तथा न मम्ले[२] वनवासदु खत ।*

मुखाबुजश्री रघुनन्दनस्य मे सदास्तु सा मजुलमङ्गलप्रदा ॥२॥

*अर्थ* जो राज्याभिषेक से प्रसन्नता को न प्राप्त हुई और वनवास के दु ख से मलिन न हुई वह श्रीरघुनन्दन के मुखकमल की श्री शोभा सदा मेरे लिए सुन्दर मङ्गल की देनेवाली हो।

---

१ यह वशस्थ छन्द है। इसमे १२ अक्षरों का एक पाद होता है। इसमे क्रम से जगण तगण जगण और रगण होते है।

२ सुप लुक सुपा तिडा वा विपर्ययश्चात्र बहुल स्यु। प्राकृत मे तिड् का विपर्यय हो जाता है। अत मम्लौ न लिखकर मम्ले लिखा यह ग्रन्थ ही प्राकृत मे लिखा गया है। यथा प्राकृत कवि परम सयाने। भाषा जिन हरि चरित बखाने।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या मानुष-आनन्द की पराकाष्ठा राज्यप्राप्ति मानी जाती है। लोक मे प्रसिद्ध है : हरखे सकल पाइ जनु राजू और दुःख की पराकाष्ठा वन मे भेजा जाना है। वन के स्मरण से धीरो की धैर्यच्युति होती है। यथा डरपहिं घीर गहन सुधि आएँ। सो जिसे राज्याभिषेक के समाचार से कोई हर्ष नही हुआ। यथा जनमे एक सग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई। करन वेध उपवीत विवाहू। सग सग सब भयउ उछाहू। विमल वस यह अनुचित एकू। बन्धु बिहाइ बडेहि अभिपेकू। प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरउ भगत मन कै कुटिलाई। इसी भाँति वनवास के समाचार से विषाद नही हुआ। यथा मुनु प्रसन्न चित चौगुन चाऊ। मिटा सोचु जनि राखइ राऊ। हृद्गत भावो को प्रकाशक मुखश्री है। यह सुख समाचार से खिल उठती है। और दुःख के समाचार से म्लान हो जाती है। पर रघुनन्दन के मुखकमल की श्री इतने बडे सुख दुःख के समाचार पर न तो प्रसन्नता को प्राप्त हुई और न मलिन हुई। उसका दोनो अवस्थाओ मे एकरस रहना आभ्यन्तर आनन्द का सूचक है। यथा मन मुसुकाइ भानुकुल भानू। राम सहज आनन्द निधानू। उस श्री का ध्यान विघ्न विध्वसक है। इसलिए कवि कहते हैं कि वह श्री मुझे सदा सुन्दर मङ्गल की देनेवाली हो। क्योकि सरकार की मुखाम्बुजश्री से ही सब सश्रीक हैं।

श्लो [1]नीलाम्बुजश्यामलकोमलाग सीतासमारोपितवामभागम्।
पाणौ महासायकचारुचाप नमामि राम रघुवशनाथम् ॥३॥

अर्थ नील कमल की भाँति जिसके अङ्ग श्यामल और कोमल हैं। सीताजी जिसके वाम भाग मे सुशोभित हैं। दोनो हाथो मे जिसके बडे प्रभावशाली बाण और सुन्दर धनुष है। उन रघुवशनाथ रामजी को मै नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या शृङ्गाररस का वर्ण ही श्याम है। श्याम और कोमल होने से ही श्रीअङ्गो की उपमा नील कमल से दी गई। सीतासमारोपितवामभाग से श्रीसीताजी को अङ्कारूढ कहा। इससे शृङ्गार वर्णन किया। यथा राज भवन सुख विलसत सिय सँग राम। बिपिन चरयौ तजि राज सुविधि बड बाम। महासायकचारुचाप से वीररस कहा। यहाँ महासायक से अभिप्राय चण्डशर से है। यथा लव निमेप परमान जुग बर्ष कल्प सर चड। भजसि न मन तेहि राम कहँ काल जासु कोदड। सीतासमारोपितवामभाग से आधेय की आधार से अल्पता कही। माया ब्रह्म के एक देश मे रहती है। श्याम वर्ण से प्रभु का इन्द्रियातीत होना द्योतित किया। यथा स्याम वर्ण सुचि प्रकट लखावत दृग त पार रहैया। सीता समारोपितवामभाग स माया का अधिष्ठान होना भी द्योतित किया। महासायकचारुचाप से महाकाल-

---

१ यह इन्द्रवज्रा छन्द है। इसमे ग्यारह अक्षरो का एक पाद होता है। इसमे क्रम से दो तगण, एक जगण और अन्त मे दो गुरु होते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



काल होना भी रहा। रघ धातु से रघु शब्द बना है। रघु का अर्थ है जीव। अत रघुवंशनाथ कहकर साक्षात् ब्रह्म रूप कहा।

## अयोध्याकाण्ड

सप्त मोक्षपुरी रूपी सातो काण्डो मे अयोध्याकाण्ड मथुरापुरी है। श्रीकृष्ण चन्द्र आनन्दकन्द जिस भाँति मथुरा गये और समस्त गोपीग्वाल को विरहावस्था का अनुभव करना पडा। इसी भाँति सरकार भी इस काण्ड म श्रीअयोध्याजी से चित्रकूट पधारे और समस्त अयोध्यावासियो को विरहज्वाल से सन्तप्त होना पडा। यथा सहि न सके रघुवर विरहागी। चल लोग सब व्याकुल भागी। इसलिए इस काण्ड को मथुरापुरी कहा गया। यथा

बालकाण्ड है[1] अवध, अवध मथुरा मन भावन।
हरद्वार आरण्य काशिका किष्किन्धा मन॥
काची सुन्दर लसत लक उज्जैन सुहावन।
उत्तर द्वारावती पुरी सातो अति पावन॥
लसत जहाँ सोपान प्रति ऐसो राम चरित्र सर।
विजयानद सेवत सुलभ सब सुखकर सब पापहर॥

अन्त के श्लोकानुसार यह काण्ड पापहर है। सातो काण्डो की सक्षेप मे फलश्रुति ग्रन्थ के अन्त म दी गई है। यथा १ पुण्य २ पापहर ३ सदा शिवकर ४ वैराग्यभक्तिप्रद। ५ मायामोहमलापह ६ सुविमल ७ प्रमाम्बुपूर शुभम्। अयोध्या के अन्त म भी कहा है पापपुज कुजर मृगराजू। समन सोक सताप समाजू।

दो श्रीगुरु चरन सरोज रज, निज मनु मुकुरु सुधारि।
बरनउँ रघुबर बिमल जसु, जो दायकु फल चारि॥

अर्थ श्रीगुरुजी के चरणकमलो की धूलि से अपने मनरूपी दर्पणको सुधारकर श्रीरघुवर के विमल यश का वर्णन करता हूँ जो चारो फलो को देनेवाला है। रघुवर शब्द से यहाँ रामजी और भरतजी का ग्रहण है। दोनो के चरित्र पृथक् पृथक् १५६ दोहो म वर्णित है।

व्याख्या गुरु पद मजुल रज अजन। नयन अमिय दृग दोष विभजन। तेहि करि बिमल बिबेक बिलोचन। बरनौ रामचरित भव मोचन। लिखने से मालूम होता है कि बालकाण्ड लिखने के आरम्भ म विवेकरूपी नेत्र को सुधारा। अब मनमुकुर को सुधारते हैं। बालकाण्ड म रामचरित कहना था। इसमे भरत चरित कहना है और भरत महामहिमा सुनु रानी। जानहि राम न सकहि बखानी। उस महामहिमा के वर्णन म जहाँ रुख देखकर काम किया जाता है समझने के

---

१ बालकाण्ड को अवध कहने का यथेष्ट कारण स्पष्ट है। क्योकि श्री रामावतार तथा बाललीला अवध म ही हुई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


लिए मनमुकुर के अत्यन्त शुद्ध करने की आवश्यकता है। बिना शुद्ध हुए उसमें ठीक-ठीक सूक्ष्मभाव प्रतिफलित न होगा। अत: यहाँ मनमुकुर सुधारा जा रहा है। जिस भाँति दर्पण धूलि से सुधारा जाता है, उसी भाँति मनरूपी दर्पण गुरुपदधूलि से सुधारा जाता है। पूर्वकाल में लोहे के दर्पण बनते थे और उसमें मुख का प्रतिबिम्ब उसी भाँति पड़ता था जिस भाँति तलवार में पड़ता है। इसलिए उसे धूलि से बराबर, रगडना पड़ता था। दर्पण का उपयोग प्रतिबिम्ब दर्शन में ही होता है। जितना ही मनमुकुर शुद्ध होगा, उतना ही दूसरों के मनोगत भाव ठीक-ठीक उसमें प्रतिफलित होंगे। इस कमल की पुरइन है : जन मन मंजु मुकुरमल हरनी। मुकुर के वर्णन से ही यह काण्ड प्रारम्भ होता है। यथा : राँय सुभाँय मुकुरु कर लीन्हा। अत: कवि ने भी मनमुकुर को सुधारना आवश्यक समझा।

धर्म, ज्ञान, योग और जप चारों फलों की सिद्धि के लिए किये जाते हैं। सो इनका साधन कलिकाल में अत्यन्त कठिन है। अत: रघुवर यश ही इस काल में चारों फल (धर्मार्थकाम और मोक्ष) दे सकता है। यथा : कठिन कालमल कोस धर्म न ज्ञान न जोग जप। परिहरि सकल भरोस रामहि भजहि ते चतुर नर।

## ९. रामाभिषेक प्रसङ्ग

जब तें राम ब्याहि घर आए। नित नव मंगल मोद बधाए॥
भुवन चारिदस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरषहिं सुख बारी॥१॥

अर्थ : जब से रामजी विवाह करके घर आये, तब से नित्य नये मङ्गल और मोद के बधावे होने लगे। चौदह भुवनरूपी भारी पर्वतों पर पुण्य मेघ सुख के जल को बरसाने लगे।

व्याख्या : यह अर्धाली बालकाण्ड के दाब की है। आए ब्याहि रामु घर जब तें। बसे अनद अवध सब तब तें से लेकर जब तें राम ब्याहि घर आए। नित नव मगल मोद बधाए तक पहिली सीढी सोपान का दाब[1] है। सुरपुर को आनन्द मङ्गल ने छोड दिया है। वहाँ की व्यवस्था यह है : सुरपुर नितहिं परावन होई। मङ्गल उपस्थित होने से मोद होता है और मोद होने से बधावा बजता है। प्रभु बिआह जस भयउ उछाहू। सकहिं न बरनि गिरा अहिनाहू। सो वह उछाह वही समाप्त नही हो गया। नित्य अवध मे हो रहा है।

जा दिन ते हरि गर्भहि आए। सकल लोक सुख सपति छाए। भगवान् के गर्भ में आने से ही सुख सम्पत्ति बरसानेवाले मेघ सब लोकों मे छा गये थे। पर वर्षा अब हो रही है। मेघ जल बरसाते है। पर सुकृतमेघ सुखरूपी जल को बरसाते है।

---

१ इस दाब के अन्तर्गत बारह पंक्तियाँ है। इसमें दिखलाया कि ब्याह करके घर आने पर बारह वर्ष बड आनन्द से बीते। यथा : राज भवन सुख बिलसत, सिय सग राम।
—बरवै रा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुकृत मेघ से अवधवासियो का धर्म-मेघ समाधि कहा। सञ्चित समुद्र से जल लेकर बरसाने आये है। अत मेघ से उपमा दी। पर्वत पर सदा पानी बरसा करता है इसलिए चौदहो भुवन की पर्वतो से उपमा दी। जल बहुत गिरा। इससे नदी मे बाढ आगयी। गङ्गाजी ने समुद्र को भरा। पर उनकी साथी दो और बडी नदियाँ हैं यमुना और सरस्वती। यहाँ भी तीन नदी कहेगे : ऋद्धि, सिद्धि और सम्पत्ति।

रिधि सिधि संपति नदी सुहाई। उमगि अवध अबुधि कहुँ आई ॥
मनिगन पुर नर नारि सुजाती। सुचि अमोल सुदर सब भाँती ॥

अर्थ ऋद्धि, सिद्धि और सम्पत्ति रूपी नदियाँ उमगकर अवधरूपी समुद्र की ओर दौडी। नगर के स्त्री-पुरुष ही मणिगण हैं। जो सुजाति, पवित्र, अमूल्य और सब भाँति से सुन्दर है।

व्याख्या ऋद्धि, सिद्धि और सम्पत्तिरूपी नदी पहिले से ही अवध समुद्र मे गिरती थी। पर अब चौदह भुवनरूपी पर्वतो पर पुण्यमेघ की अधिक वर्षा होने पर उनमे बाढ आगयी और वे बडे वेग से अवधसमुद्र की ओर दौडी। अवध मे घाटा कोई नही था। समुद्र मे स्वय अगाध जल भरा है। उसे जल की कमी नही है। पर नदी को दूसरी गति नही है। यथा जिमि सरिता सागर महँ जाही। जद्यपि ताहि कामना नाही।

समुद्र मे तो मणिगण रहते है। उसका नाम ही रत्नाकर है। सो अवधसमुद्र मे पुरनरनारि ही मणिगण है। मणि मे जाति होती है। पवित्रता होती है। बहुमूल्यता तथा सुन्दरता होती है। सो अवध नर-नारी भी सुजाति, शुचि, अमोल और सब भाँति से सुन्दर है। वे देवताओ से भी भल हैं। क्योकि देवता लोग सदा स्वार्थी होते है। यथा आए देव सदा स्वारथी। मणि यद्यपि जल मे है। पर जल का उसमे प्रवेश नही। इस भाति पुरजन सुख सम्पत्ति म डूबे हुए है। फिर भी निर्लेप है।

कहि न जाइ कछु नगर बिभूती। जनु यतनिअ बिरचि करतूती ॥
सब बिधि सब पुरलोग[1] सुखारी। रामचद मुख चदु निहारी ॥३॥

अर्थ नगर का वैभव कुछ कहत नही बनता। मानो ब्रह्मदेव की करतूति ही इतनी है। श्रीरामजी के मुखचन्द्र को देखकर सब विधि स सब पुर लोग सुखी है।

व्याख्या नगर का वैभव कवि से कहत नही बनता और देवताओ से देखते नही बनता। यथा देखि न सकहि पराइ बिभूती। दो ही स्थान ऐसे है जहाँ की विभूति नही कही जा सकती। एक अयोध्या की और दूसरी लङ्का की। यथा : गिरि पर चढि लका तेहि देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेखी। अति उतग जल-निधि चहुँ पासा। कनककोट कर परम प्रकासा। लङ्का विधि निर्मित दुर्गम अति भारी है और अयोध्या जनु एतनिअ विरचि करतूती है।

---

१ यह गसर्गजा रति है। यथा सम्बन्ध कुलरूपादि सामग्रीगौरव भवेद्।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अयोध्या मे अर्थ काम इतना है पर उससे लोग सब विधि सुखारी नही। रामचन्द्र के मुखचन्द्र को देखकर सब विधि से सुखारी हैं। दूर से दर्शन करते हैं। इस भाँति चन्द्र दर्शन भी दूर से ही होता है। सीताजी अन्त पुर मे हैं। अत उनके लिए नही कहते। लङ्का के लोग भी सुखी हैं। यथा सुखी सकल रजनीचर कीन्हे। पर सब विधि सुखी नही। क्योकि वहाँ देखने के लिए रामचन्द्र मुखचन्द्र नही है।

मुदित मातु सब सखी सहेली। फलित विलोकि मनोरथ वेली ॥
राम रूपु गुन सीलु सुभाऊ। प्रमुदित होइ देखि सुनि राऊ ॥४॥

अर्थ माताएँ और सब सखी सहली अपनी मनोरथ की वेलि को फलती देखकर प्रसन्न हैं। रामजी के रूप, गुण, शील और स्वभाव को देखकर और सुनकर राजा आनन्दित होते हैं।

व्याख्या पहिले पुरजन का हाल कहकर अब अन्त पुर की चर्चा करते हैं। वहाँ माताएँ और सखी सहेलियाँ अपना मनोरथ की वेलि को फलती देखकर प्रसन्न हैं। यहाँ मनोरथ वेलि से सीताजी अभिप्रेत हैं। यथा पुरजन सचिव राउ रानी सब सवक सखा सहेली। लैहैं लोचन लाहु सुफल लखि ललित मनोरथ वेली। माता सखी सहेली आदि सीताजी को निकट से देखती हैं। अत मनोरथ वेली से उपमित किया। अब अन्त मे महाराज का हाल कहते हैं।

राजा चारचक्षु होते हैं। उन्हे अपनी आँखो का भरोसा नही होता। क्योकि उनके सामने ता सब भल हो रहते हैं। अत उन्हे चारा से सच्ची वाता का पता चलता है। यथा चारै पश्यन्ति राजान। अत रामजी का रूप, गुण, शील और स्वभाव स्वय देखकर और चारो स सुनकर परम प्रसन्न होते है। स्वय देखकर यथा आयसु मागि करहि पुर काजा। देखि चरित हरखै मन राजा। और सुनकर गुरुजी से कहते है कि सेवक सचिव सकल पुरवासी। जे हमरे अरि मित्र उदासी। सबहि राम प्रिय जेहि विधि मोही। प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही। रामजी का रूप, गुण, शील, और स्वभाव सभी लोकोत्तर हैं।

१ रूप रूप सकहि नहि कहि श्रुति सेखा। सा जानहि सपनेहु जिन देखा ॥
२ शील को रघुवीर सरिस ससारा। सील सनेह निवाहन हारा ॥
३ गुण जल सीकर महि रज गनि जाही। रघुपति गुन नहि वरनि सिराही ॥
४ स्वभाव अस सुभाउ कहुँ सुनउँ न दखउँ। केहि खगेस रघुपति सम लेखउँ ॥

दो सबके उर अभिलाषु अस, कहहि मनाइ महेसु।
आपु अछत जुवराज पदु, रामहि देउ नरेसु ॥१॥

अर्थ सबके हृदय म ऐसा अभिलाष है। महेश को मनाकर कहते हैं कि अपने रहते ही युवराजपद रामजी को राजा दें।

व्याख्या सबके हृदय मे कहने का भाव यह कि पुरजन परिजन के हृदय मे मन्त्रियो के हृदय म तथा महारानियो के हृदय मे अभिलाषा है। पुरजन के हृदय

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मे अभिलाप यथा कनक सिहासन सीय समेता। बैठहि रामु होइ चित चेता। मन्त्रियो के हृदय मे यथा मन्त्री मुदित सुनत प्रिय बानी। अभिमत बिरव परेउ जनु पानी। महारानियो के हृदय मे यथा राम तिलकु जौ साँचेहु काली। देउँ भागु मन भावत आली। रामजी को युवराज पद मिले यही अभिलाषा है। पर वृद्ध महाराज के गुणो पर भी जनता ऐसी मुग्ध है कि उनका वियोग सह्य नही है। नियमानुसार राजगद्दी देकर स्वय वन न जाँय। स्वय राजा बने रहे। रामजी को युवराज पद देकर राज्यभार उन्हे दे दें। और आप द्रष्टा रहे।

एक समय सब सहित समाजा। राजसभा रघुराजु बिराजा॥
नृप सब रहहि कृपा अभिलाषे। लोकप करहि प्रीति रुख राखे॥१॥

अर्थ एक समय समाज के सहित राजसभा मे रघुराज दशरथजी विराजमान हुए। राजा लोग उनकी कृपा की अभिलाषा करते हैं और लोकपाल रुख रखते हुए प्रीति करते है।

व्याख्या सात्त्विक को अपना भरा पूरा समाज देखकर मृत्यु का स्मरण होता है और तामसिक को परपीडा का उत्साह होता है। दो ही सभा का वर्णन इस ग्रन्थ मे आता है। *अयोध्या की सभा तथा लङ्का की सभा का। लङ्का की सभा* यथा

दसमुख बैठ सभा एक बारा। देखि अमित आपन परिवारा॥
सुत समूह जन परिजन नाती। गनै को पार निसाचर जाती॥
सेन बिलोकि सहज अभिमानी। बोला बचन क्रोध मद सानी॥
सुनहु सकल रजनीचर जूथा। हमरे बैरी बिबुध बरूथा॥
ते सनमुख नहि करहि लराई। देखि सबल रिपु जाहि पराई॥
तिन्हकर मरन एक बिधि होई। कहहुँ बुझाई सुनहु अब सोई॥
द्विज भोजन मख होम सराधा। सबकर जाइ करहु तुम बाधा॥
छुधाछीन बलहीन सुर सहजेहि मिलिहहि आइ।
तब मारिहौ कि छाडिहौ भलीभाँति अपनाइ॥ इत्यादि।

यह तो आसुरी सम्पत्तिवाले की सभा है। यहाँ कर जोरे सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता।

अयोध्या की सभा दैवीसम्पत्तिवाले महाराज दशरथ की सभा है। सभा तो नित्य होती है। पर एकबार सभा मे सब समाज सहित महाराज दशरथ विराजमान हुए। रामजी के विवाह के बारह वर्ष बाद की बात है। उनके वर्षगाँठ की सभा है। इस सभा मे सब राजा कृपा की अभिलाषा करते हुए उपस्थित हैं। लोकपाल लोग महाराज पर प्रीति करते हैं। फिर भी रुख उन्ही का रखते है। क्योकि राजा दशरथ इन्द्र के मित्र हैं। यथा ससुर सुरेस सखा रघुराऊ। आगे होइ जेहि सुरपति लेई। अरध सिहासन आसन देई। यहाँ निम्नकोटि म सब राजाओ की उपस्थिति

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कही। और उच्चकोटि मे देवों की प्रीति कही। फिर भी चक्रवर्तीजी का ही देवता लोग रुख रखते हैं। यह कहकर महाराज दशरथ की साहिबी प्रताप दिखलाया।

तिभुवन तीनि काल जग माही। भूरि भाग दसरथ सम नाही ॥
मंगल मूल रामु सुत जासू। जो कछु कहिअ थोर सबु तासू ॥२॥

अर्थ तीनो भुवन मे और तीनो काल मे दशरथजी के समान भाग्यवान् कोई,नही। मङ्गल के मूल रामजी जिसके पुत्र है। उसके लिए जो कुछ कहा जाय सब थोडा है।

व्याख्या : तिभुवन तीनि काल से सम्पूर्ण देश और काल कहा। त्रिभुवन मे मर्त्यलोक पाताललोक और स्वर्गलोक तीनो आजाते है और तीन काल मे भूत भविष्यत् और वर्तमान आजाते है। इसीलिए जगमाही कहते हैं : गच्छतीति जगत्। जो परिवर्तनशील है उसे जगत् कहते हैं। अर्थात् जहाँतक परिवर्तन का साम्राज्य है। दशरथजी सा भाग्यशाली कोई नही। क्योकि भाग अभाग तो रामजी के सम्मुख विमुख होने पर निर्भर है।

पिता के पुण्य की परख तो पुत्र से होती है। पु नाम नरक का है। उससे जो पिता को तारे वही पुत्र है। इसीलिए वसिष्ठजी ने कहा 'भयउ न है नहि अब होनि-हारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा। कहहु तात केहि भाँति कोउ करै बडाई तासु। राम लखन तुम सत्रुहन सरिस सुअन सुचि जासु। जनकपुर के दूत ने कहा : तुम्ह तें अधिक पुन्य बड काके। राजन राम सरिस सुत जाकें। रामजी मगलभवन अमगल हारी है। अत. महाराज दशरथ की प्रशसा करने मे सभी असमर्थ हैं।

रांय सुभायँ मुकुर कर लीन्हा। बदनु बिलोकि मुकुटु सम कीन्हा ॥
स्रवन समीप भये सित केसा। मनहुँ जरठपनु अस उपदेसा ॥३॥

अर्थ : राजा ने स्वभाव से ही दर्पण हाथ मे लिया और मुख देखकर मुकुट को ठीक किया। कान के पास के केश श्वेत हो चले। मानो बुढाई यह उपदेश दे रही है।

व्याख्या : सबकें उर अभिलाष अस कहहि मनाइ महेसु का साफल्य दिखलाते हैं। मुकुरावलोकन मङ्गल है। महेश की प्रेरणा इस प्रकार होती है। दरबार ठाट-बाट से लगा हुआ है। महाराज को इच्छा हुई कि दर्पण मे देखकर मुकुट को ठीक कर लें। बिना मुख देखे मुकुट ठीक नही किया जा सकता और मुकुट का सँभाल राजा के जिम्मे है। इसलिए हाथ मे दर्पण लिया और मुकुट को ठीक किया। पगडी देनेवाले भी इस बात को समझते हैं कि कुछ देर के बाद पगडी ठीक करने की आवश्यकता पड ही जाती है। खुले सिर रहनेवालों को दूसरा अनुभव नही है। इसलिए शङ्का उठाते हैं। ससार मे सब कुछ क्षण परिणामी है और व्यवहार स्थिरप्राय है। शरीर मे परिवर्तन हो रहा है। राजा को पता नही। कान के समीप के श्वेत केश के देखने से जाना कि जरा आयी। इसी बात को कवि दिखलाते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दर्पण हाथ मे लिया मुकुट ठीक करने के लिए और ठीक कर भी लिया। पर निगाह पड़ गयी कि कान के समीप के बाल श्वेत हो चले। ध्यान आया कि बुढाई आगयी। और बुढाई मृत्यु की दूतिका है। बालो का श्वेत होना अथवा मृत्यु द्वारा केश का पकडा जाना एक बात है। अत उचित जान पडा कि अपने बाद की व्यवस्था पहिले ही करनी चाहिए। इसी बात को आलङ्कारिक भाषा मे कवि कहते हैं कि मानो कान मे लगकर बुढाई ने उपदेश दिया कि .

नृप जुबराजु राम कहुँ देहू। जीवन जनम लाहु किन लेहू ॥४॥

दो. यह बिचारु उर आनि नृप, सुदिनु सुअवसरु पाइ।
प्रेम पुलकि तन मुदित मन, गुरहि सुनायेउ जाइ ॥२॥

अर्थ . राजा! युवराज पद रामजी को देकर जीवन और जन्म का लाभ क्यो नही ले लेते? ऐसा विचार मनमे लाकर और सुदिन तथा सुअवसर पाकर प्रेम से पुलकित तन और प्रसन्नमन होकर गुरुजी को जाकर सुनाया।

व्याख्या मानो वृद्धावस्था उपदश दे रही है कि प्रजा का भार धुरन्धर पुत्र को सौपो। अब तुम सिंहासन पर बैठकर दर्पण क्या देख रहे हो। मृत्यु सन्निकट ह। श्रीरामजी की अवस्था अब सिंहासनारूढ होकर मुकुट धारण करने की है। राजा के जीवन और जन्म का लाभ प्रजा की रक्षा मे है। सो धुरन्धर पुत्र को सौंपकर ही प्राप्त हो सकता है। अथवा जन्म का लाभ सिंहासनारूढ पुत्रमुखदर्शन से है। यथा : राम बाम दिसि सोहति रमा रूप गुन खानि। देखि मातु सब हरखी जनम सफल निज जानि। और जीवन का लाभ रामप्रीत्यर्थ त्याग से है। यथा जीवन लाहु लखन भल पावा। सब तजि राम चरन मन लावा।

सुदिन अर्थात् शुभ मुहूर्त। गुरुजी से कहने के लिए सुदिन चाहिए सो वह दिन भी शुभ था और सुअवसर वही है जब गुरुजी एकाग्र आसीन हो। पुलकि से तन मुदित से मन और गुरहि सुनायो जाय से वचन द्वारा प्रेम प्रकाश कहा। महाराज सब काम गुरुजी स पूछकर करते है। रघुवश मे गुरु ही शरण है। महाराज को जब पुत्र की इच्छा हुई गुरुजी के ही पास गये। यथा . एकबार भूपति मन माँही। भै गलानि मोरे सुत नाही। गुरु गृह गये तुरत महिपाला। पुत्र का ब्याह करना है तो : तब उठि भूप वसिष्ठ कहुँ दीन्हि पत्रिका जाइ। अब पुत्र को राज्य देना है तो प्रेम पुलकि तन मुदित मन गुरहि सुनायेउ जाइ।

कहइ भुआलु सुनिअ मुनिनायक। भये रामु सब बिधि सब लायक ॥
सेवक सचिव सकल पुरबासी। जे[1] हमरे अरि मित्र उदासी ॥१॥

अर्थ राजा ने कहा हे मुनिराज! सुनिये। रामजी सब विधि से सब लायक योग्य हो गये। सेवक, मन्त्री, सब प्रजा और जो हमारे शत्रु, मित्र और उदासीन हैं।

---

१. यहाँ तुल्ययोगिता प्रथम अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : भूपाल शब्द के पकार का लोप होकर उसका तद्भव रूप भुआल बना। भाव यह कि महाराज पृथ्वी के पालन करनेवाले हैं। उन्हें पृथ्वीपालन की चिन्ता है। अतः मुनिनायक के सामने अपना विचारा हुआ प्रस्ताव रखते हैं कि बेटे तो चारों लायक हैं। पर रामजी सब विधि से सब लायक हैं। धुरन्धर हैं। सब राज कार्य सँभाल लेंगे। सब लायक शब्द से सर्वशक्तिमत्ता द्योतित होती है। यथा : पुनि मन बचन कर्म रघुनायक। चरन कमल बंदौं सब लायक।

रामजी की सर्वप्रियता कहते हैं। क्योंकि यही राजा के सब लायक होने का अव्यभिचरित लक्षण है। सेवक सचिव सकल पुरवासी से अपने राज्य भर के लोगों का ग्रहण करते हैं और अरि मित्र उदासी कहकर जीवमात्र का ग्रहण करते है। यथा : जीव जन्तु अस को जग मांही। जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नांही।

सबहि रामु प्रिय जेहि विधि मोही। प्रभु असीस जनु तनु धरि सोही॥
विप्र सहित परिवार गोसाईं। करहिं छोहु सब रौरिहि नाई॥२॥

अर्थ : सबको रामजी वैसे ही प्यारे हैं जैसे मुझे प्यारे है। मानो प्रभु का आशीर्वाद शरीरधारी होकर शोभायमान है। सपरिवार ब्राह्मण लोग हे गोस्वामिन् उनपर वैसा ही छोह करते हैं जैसा कि आप करते हैं।

व्याख्या : राजा को रामजी वैसे ही प्रिय हैं जैसे मछली को जल प्रिय होता है। यथा : मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन मिति तुमहि अधीना। इसी भाँति सबको प्रिय हैं। यथा : अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना। तुम करुनाकर धरम धुरीना। अस बिचारि सोइ करहु उपाई। सबहि जिअत जेहि भेंटहु आई। वसिष्ठजी ने आशीर्वाद दिया था : धरहु धीर होइ हहिं सुत चारी। त्रिभुवन विदित भगत भय हारी। सो महाराज कहते हैं कि मानो आपका वही आशीर्वाद शरीर धारण करके रामरूप से प्रकट हुआ है।

अब रामजी की ब्रह्मण्यता कहते हैं। उनकी भक्ति से ब्राह्मण ऐसे प्रसन्न हैं कि आपकी भाँति छोह करते हैं। सहित परिवार कहने का भाव यह कि दस वर्ष का ब्राह्मण बालक भी ६० वर्ष के बूढ़े क्षत्रिय से पितृवत् पूज्य है। सो रामजी ब्राह्मणपरिवार पर भक्ति रखते हैं। अतः वे सपरिवार छोह करते हैं। यथा : जौं हम निदरहिं बिप्र बदि सत्य सुनहु भृगुनाथ। तौ अस को जग सुभट जेहि भय बस नावहिं माथ।

जे गुर चरन रेनु सिर धरहीं। ते जनु सकल बिभव बस करहीं॥
मोहि सम यहु अनुभयेउ न दूजें। सबु पायेउँ रज पावनि पूजे॥३॥

अर्थ : जो लोग गुरु चरणों की धूलि को सिर पर धारण करते हैं वे मानो सम्पूर्ण ऐश्वर्य को वश कर लेते हैं। इस बात का अनुभव मेरे समान किसी दूसरे ने नहीं किया। मुझे तो सब कुछ पवित्र धूलि के पूजन से ही प्राप्त हुआ।

व्याख्या : गुणों के होने से ही पात्रता आती है और पात्रता आने से

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ऐश्वर्य की प्राप्ति होती है। यथा : पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनाद्धर्मस्तत' सुखम्। गुरुचरणरेणु को सिर पर धारण करने से सम्पूर्ण गुणगण वशीभूत हो जाते है। यथा : कियें तिलक गुनगन बस करनी। और सम्पूर्ण गुणगण के वशीभूत होने से सम्पूर्ण ऐश्वर्य की पात्रता हो जाती है और पात्रता होने से ही धनप्राप्ति होती है। यहाँ : जन मन मंजु मुकुर मल हरनी इस पद का साफल्य : श्रीगुरु चरन सरोज रज निज मन मुकुर सुधारि से दिखलाकर : कियें तिलकगुनगन बस करनी : इस पद का साफल्य महाराज दशरथ के उदाहरण से कवि दिखला रहे हैं।

महाराज कहते हैं कि इस बात का अनुभव जैसा मुझे हुआ वैसा किसी दूसरे को हुआ ही नही। क्योकि मैंने सिवा गुरु चरण रेणु के सिर पर धारण करने के और किया ही क्या? बहुत दिनो तक जो तीर्थ मे जाकर तपस्या करता है उसे आज्ञाकारी धर्मात्मा और बुद्धिमान् पुत्र होता है। मैंने तो केवल श्रीचरणो मे अपने अपुत्री होने के कष्ट का निवेदन मात्र कर दिया। तुरन्त आशीर्वाद मिला कि धैर्य धरो। त्रिभुवन विदित भगत भयहारी पुत्र होवेंगे। सो अक्षरश सत्य हुआ। मुझे तो सब कुछ गुरुचरणो से ही मिला।

अब अभिलाषु एकु मन मोरे। पूजिहि नाथ अनुग्रह तोरे॥
मुनि प्रसन्न लखि सहज सनेहू। कहेउ नरेस रजायसु देहू॥४॥

अर्थ : अब एक अभिलाषा मेरे मनमें है। वह भी हे नाथ! आपके अनुग्रह से ही पूरी होगी। स्वाभाविक प्रेम देखकर मुनिजी प्रसन्न हो गये। बोले राजन्! आज्ञा दीजिये।

व्याख्या जितनी अभिलाषाएँ थी सभी श्रीचरणो के अनुग्रह से पूरी हुई। सब कुछ था। केवल पुत्र का घाटा था। सो श्रीचरणो के अनुग्रह से सब लायक पुत्र हुआ। अब एक अभिलाषा शेष है। जिन चरणो से सबकी पूर्ति हुई उन्ही के अनुग्रह से इसकी भी पूर्ति होगी। उसी को निवेदन करने के लिए आया हूँ।

स्वाभाविकी गुरुभक्ति देखकर मुनिजी प्रसन्न हो गये। भक्ति से स्थितप्रज्ञ महात्मा प्रसन्न हो जाते है। अत. अत्यन्त आदर से बोले। क्या चाहते हो न कहकर कहते हैं कि राजाज्ञा क्या है? अथवा मुनिजी त्रिकालज्ञ हैं जानते हैं कि इस अभिलाषा की पूर्ति इस समय होनी नही है। अत. अनुग्रहवाली बात छोडकर कहते हैं कि राजन्! आज्ञा दीजिये।

दो. राजन राउर नामु जसु, सब अभिमत दातार।
फल अनुगामी महिपमनि, मन अभिलाषु तुम्हार॥३॥

अर्थ राजन्! तुम्हारा नाम और यश सब मनोरथो को देनेवाला है। हे राजाओ मे मणि! तुम्हारे मनकी अभिलाषा तो फल की अनुगामिनी है।

व्याख्या यहाँ अभिलाषु पाठ है। प्रथमा और द्वितीया के एकवचन म ही उकार आता है। अत: यहाँ षष्ठी मानकर अभिलाष का सम्बन्ध फल के साथ नही

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हो सकता। अर्थात् यह अर्थ नहीं हो सकता कि मनोभिलाष का फल तुम्हार अनुगामी है। यह अर्थ होगा कि तुम्हारे मनकी अभिलाषा फल की अनुगामिनी है फल पहिले होता है। अभिलाषा तो उसके पीछे होती है। भाव यह कि सबके प्रिय होने से सबके हृदय पर तो रामजी का राज्य हो ही गया। तदनन्तर आपक अभिलाषा हुई। जिसकी पूर्ति न होनी हो वह अभिलाषा आपको हो ही नहीं सकती।

राजन्! तुम्हारे नाम और यश के कीर्तन से लोगों के मनोरथ की पूर्ति होती है। तुम्हारा मनोरथ तो पूरा हो ही गया है। यथा दशरथ नाम सुकामतरु फलइ सकल कल्यान। धरनि धाम धन धरम सुत सदगुन रूप निधान। जिसका मन ईश्वर मे लगा है। उसके मनोरथ होने के पहिले ही फल हुआ रहता है। यथा ईश्वरार्पितवुद्धीना स्फुरन्त्यग्रे मनोरथा। काशी खण्ड।

सब विधि गुरु प्रसन्न जिय जानी। बोलेउ राउ रहँसि मृदुबानी॥
नाथ रामु करिअहि जुबराजू। कहिअ कृपा करि करिअ समाजू॥१॥

अर्थ: अपने मनमे सब भाँति गुरुजी को प्रसन्न जानकर राजा आनन्दित होकर मृदुवाणी बोले कि हे नाथ! रामजी को युवराज कीजिये। कृपा करके कहिये कि तैयारी की जाय।

व्याख्या: गुरुजी की अमोघ कृपा देखकर राजा प्रसन्न हो उठे। इतनी कृपा है कि आज मेरे नाम और यश को सब अभिमत दातार बना दिया। वसिष्ठजी की वाणी कभी व्यर्थ हो नहीं सकती। अत यही अवसर निवेदन करने का है। गुरुजी ने कहा है. रजायसु देहू। अत विधि रूप से ही निवेदन करते हैं कि आप रामजी को युवराज बनाइये। यदि कहा जाय कि युवराज पद देना तो राजा के अधिकार मे है। यदि इच्छा है तो दे दो। इस पर कहते हैं कि आप कृपा करके तैयारी करने की आज्ञा दे दीजिये। राजा के मुख से सरस्वती बोल गयी। रामजी को राजतिलक वसिष्ठजी ही करेंगे। इस समय केवल तैयारी ही होगी।

मोहि अछत यहु होइ उछाहू। लहहिं लोग सब लोचन लाहू॥
प्रभु प्रसाद सिव सबइ निबाहीं। एह लालसा एक मन माहीं॥२॥

अर्थ मेरे रहते ही यह उछाह हो और सब लोग नेत्रो का फल पावें। प्रभु की कृपा से शिवजी ने सब निवाह दिया। अब मन मे केवल एक लालसा रह गयी है।

व्याख्या राम राज्याभिषेक तो एक दिन होना ही है। पर मेरे रहते यह उछाह हो। यह उछाह भी मैं देख लूँ। लोगो को भी इसकी उत्कट इच्छा है। सबकें उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु। आपु अछत जुबराजपदु रामहि देउ नरेसु। सो ये लोग भी नेत्रवान् होने के मुख का अनुभव करें। जनकपुरवासी तो राम जानकी का विवाह देखकर लोचन लाभ पा चुके। अब अवधवासी राम जानकी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



का अभिषेक देखकर लोचन लाभ लें। यथा : कनक सिंघासन सीय समेता। बैठहिं रामु होइ चित चेता।

प्रसाद आपका और निर्वाहक शङ्कर हैं। आपका प्रसाद अमोघ है। शिवजी तदनुसार कार्य कर रहे हैं। इस भाँति मेरी सब कुछ निबह गयी। अब यही एक लालसा मन में रह गयी। अर्थात् इसकी पूर्ति हो जाने पर मैं आप्तकाम हो जाऊँगा। कामना शेष रहने से ही मनुष्य मरना नहीं चाहता और यदि मर भी जाता है तो वही कामना उसे फिर संसार में खींच लाती है। उसके पुनर्जन्म का कारण होती है।

पुनि न सोच तनु रहउ कि जाऊ। जेहि न होइ पाछें पछिताऊ॥
सुनि मुनि दसरथ बचन सुहाए। मंगल मोद मूल मन भाए॥३॥

अर्थ : फिर परवाह नहीं, चाहे शरीर रहे चाहे जाय। जिसमें पीछे से पछतावा न हो। दशरथजी के मङ्गल मोद मूल और सुहाये वचन सुनकर मुनिजी को अच्छे लगे।

व्याख्या : फिर मैं कृतकृत्य हो जाऊँ। फिर चाहे शरीर रहे चाहे जाय। इसकी चिन्ता न रह जायगी। नहीं तो शरीरावसान के समय पछितावा रहेगा कि अपने सामने मैंने प्रजारक्षा का भार रामजी को नहीं सौंपा। शरीर अनित्य है। इसका कुछ ठिकाना नहीं। तिसपर मृत्यु की दूतिका जरा ने केश पकड़ रखा है। अतः यह कर्त्तव्य भी पूरा होना ही चाहिए।

दशरथजी के वचन सोहाये रहे। इसलिए मुनिजी के मन भाये। मङ्गल यथा : नाथ रामु करिअहि जुबराजू। मोद। यथा : मोहिं अछत यहु होइ उछाहू। दोनों का मूल है श्रीरामजी का अभिषेक। वसिष्ठजी स्वयं मानते हैं : सब कहँ सुखद राम अभिषेकू। मंगल मोद मूल मग एकू। अतः मनोनुकूल होने से वसिष्ठजी को अच्छे लगे।

सुनु नृप जासु बिमुख पछिताहीं। जासु भजन बिनु जरनि न जाहीं॥
भयउ तुम्हार तनय सोइ स्वामी। रामु पुनीत प्रेम अनुगामी॥४॥

अर्थ : मुनिजी बोले : सुनो राजा! पछताते तो वे हैं जो उनके विमुख होते हैं। जिसके भजन बिना जी की जलन नहीं जाती, वही स्वामी पुनीत राम तुम्हारे पुत्र हुए हैं। क्योंकि वे पुनीत प्रेम के अनुगामी हैं।

व्याख्या : जेहि न होइ पाछें पछिताऊ का उत्तर देते हुए वसिष्ठजी कहते हैं कि तुम्हें पछितावा कैसे होगा। पछतावा तो उनको होता है जो रामविमुख हैं। यथा : सो परत्र दुख पावै सिर धुनि धुनि पछिताइ। कालहिं कर्महिं ईस्वरहिं मिथ्या दोष लगाइ। पछितावा होने से जलन होती है। वह जलन तो बिना रामभजन के जाती नहीं। यथा : देखे बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ। अथवा : सब दुख मिटहिं राम पग पेखी। सो राम, पुनीत राम, प्रेमानुगामी राम

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तुम्हारे प्रेम से तुम्हारे पुत्ररूप से अवतीर्ण हुए हैं। तुम्हारे लिए पछितावा की कौन सी बात है? वह राम स्वामी हैं। उनपर किसी का अधिकार नहीं है। तुम अपना कर्त्तव्य करो। चराचर नायक के लिए यौवराज्यपद क्या है? सोच पछितावा को अपने मन से निकालो।

दो. वेगि[1] विलंबु न करिअ नृप, साजिअ सवुइ समाजु।
सुदिनु सुमगलु तवहि जव, रामु होहि जुवराजु ॥४॥

अर्थ : राजा। जल्दी करो, देर न लगाओ, सब समाज सजाओ। जब रामजी युवराज हो जांय तभी सुदिन और सुमङ्गल है।

व्याख्या : समाज का अर्थ समान है। यथा : अरुधती अरु अगिनि समाऊ। रथ चढि चले प्रथम मुनिराऊ। राजा ने कहा था : कहिय कृपा करि करिय समाजू। सो मुनिजी कह रहे हैं : साजिअ सवुइ समाजु। परन्तु जल्दी करो। देर न होने पावे। कर्त्तव्य कर्म मे बडी जल्दी होनी चाहिए। नही तो काल उसका रस पी जाता है। यथा : आदानस्य प्रदानस्य कर्त्तव्यस्य च कर्मण:। क्षिप्रमेव प्रकर्त्तव्यं काल: पिवति तद्रस.। इसमे सुदिन मत देखो : तदेव लग्न सुदिन तदेव, तारावलं चन्द्रवलं तदेव। विद्यावल दैववल तदेव लक्ष्मीपतेरंध्रियुग स्मरामि। राम जिस दिन राज्य पर बैठेंगे वही सुदिन हो जायगा। वही सुमङ्गल होगा। वसिष्ठजी मुहूर्त नही देते। जानते हैं कि अभी अभिषेकवाला सुदिन दूर है। रामजी के वन से लौटने पर कहेगे : आज सुघरी सुदिन समुदाई। सब द्विज देहु हरषि अनुसासन। रामचद्र वैठहि सिंघासन।

मुदित महीपति मंदिर आए। सेवक सचिव सुमंत्रु वोलाए॥
कहि जय जीव सीस तिन्ह नाए। भूप सुमगल वचन सुनाए॥१॥

अर्थ : राजा प्रसन्न होकर घर आये। सेवक · कामदार सचिव और सुमन्त्र को बुलवाया। उन लोगो ने जयजीव कहकर अभिवादन किया। राजा ने उन्हे सुमङ्गल वचन सुनाया।

व्याख्या : गुरुजी के पास जिस कार्य के लिए गये थे उसकी सिद्धि हो गयी। गुरुजी ने कह दिया कि जल्दी करो। देर न होने पावे। इसलिए महाराज तुरन्त उठ पडे और आनन्दित होकर घर आये। गुरुजी को भी साथ लेते आये। सेवको को और मन्त्रियो को बुलवाया। विभाग विशेष के मन्त्री को सुमन्त्र कहते हैं। रेफ के गिर जाने से उसका तद्भवरूप सुमन्त हुआ। महाराज के यहाँ जो सुमन्त्र पद पर थे वे उनके सखा भी थे और सारथि भी थे। इन पर महाराज की बडी आस्था थी। इनको अन्त·पुर मे भी रोक नही थी। इसलिए इनके नाम का पृथक् निर्देश है। ये भी बुलाये गये। मन्त्रणा के लिए सभा बैठी। सेवक · कारबारी और

---

१. यहाँ विवृतोक्ति अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मन्त्रियो ने जयजीव कहकर राजा का अभिवादन किया। जयजीव का अर्थ है कि आप की जय हो और आप चिरजीवी हो। महाराज ने ऐसा वचन सुनाया कि जिससे ससार का कल्याण हो। इसलिए उस वचन को सुमङ्गल कहा।

जौ पाँचहि मत लागइ नीका। करहु हरखि हिय रामहि टीका ॥
मंत्री मुदित सुनत प्रिय बानी। अभिमत बिरव परेउ जनु पानी ॥२॥

अर्थ यदि पञ्चो को यह राय पसन्द हो तो प्रसन्न मन होकर रामजी का राजतिलक करो। प्रिय वाणी सुनकर मन्त्री ऐसे प्रसन्न हुए जैसे मनोरथ के पौधे मे पानी पडा हो।

व्याख्या महाराज के भीतर रामजी के अभिषेक की उत्कट इच्छा है। फिर भी राजनीति के अनुसार सब निर्णय पञ्चो पर छोडते हैं और कहते है कि मेरा किया हुआ प्रस्ताव समझकर सङ्कोच से स्वीकार न करना। यदि तुम लोग को यह राय पसन्द हो और हर्षित हृदय से करना चाहते हो तो रामजी को राजतिलक करो। यह महाराज दशरथ की नीतिपटुता है कि पहिले चारो द्वारा यह निश्चय करके कि रामजी प्रजामात्र को प्रिय है और सब इनका यौवराज्यपद पर अभिषेक चाहते हैं तब जाकर गुरुजी से सम्मति ली। फिर मन्त्रियो से सम्मति ले रहे हैं।

मन्त्री लोग स्वय यही चाहते थे। परन्तु महाराज दशरथ का शासन निर्दोष था। अत स्वय प्रस्ताव करना उचित नही समझा था। अत उन्हे महाराज की यह वाणी अति प्रिय मालूम हुई और उनका मनोरथरूपी पौधा लहलहा उठा। जैसे उसमे पानी पडा हो। पानी पडने से बडे-बडे पेड भी प्रसन्न दिखाई पडते हैं। पर पौधो की प्रसन्नता अधिक व्यक्त होती है। इसीलिए महाराज की वाणी की उपमा पानी पडने से और मन्त्रिया के अभिमत की उपमा पौधो बिरवा से दी।

बिनती सचिव करहि कर जोरी। जिअहु जगतपति बरिस करोरी ॥
जग मगल भल काजु बिचारा। बेगिअ नाथ न लाइअ बारा ॥३॥

अर्थ मन्त्री हाथ जोडकर विनय करते है कि हे जगत्पति! आपकी आयु करोडो वर्ष की हो। आपने जगत् का मङ्गल करनेवाला अच्छा कार्य विचारा। सो हे नाथ! शीघ्रता कीजिये। इसमे देर न हो।

व्याख्या राजा के युवराज विषयक प्रस्ताव करने से यह प्रकट होता है कि उन्हे अब अपने जीवन से निराशा है। अथवा नीति के अनुसार चौथेपन मे भगवत् भजन के लिए वन जाना चाहते हैं। अत मन्त्री हाथ जोडकर विनती करते हैं कि आप जगत्पति रहकर करोडो वर्ष जीवें। आपका जीवन और शासन दोनो हम लोगो को प्रिय है। आप राजा बने रहे और राज्य भार रामजी को युवराज बनाकर सौप दें। यह कार्य जगत् के मङ्गल के लिए है। आपने बहुत अच्छा विचार किया है। पर शीघ्र ही इसे कार्य मे परिणत कीजिये। क्योकि श्रेयासि बहु विघ्नानि। ऐसे श्रेष्ठ कार्य म बहुत-से विघ्न खडे हो जाते है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नृपहि मोदु सुनि सचिव सुभाषा । बढ़त बौंड़ जनु लही सुसाखा ॥४॥

दो. कहेउ भूप मुनिराज कर, जोइ जोइ आयसु होइ ।
राम राज अभिषेक हित, बेगि करहु सोइ सोइ ॥५॥

अर्थ : मन्त्री के सुन्दर वचन सुनकर राजा को आनन्द हुआ । जैसे बढ़ती हुई लता को सुन्दर शाखा मिल जाय । राजा ने कहा कि मुनिराज की जो-जो आज्ञा हो रामजी के राज्याभिषेक के लिए जल्दी-जल्दी वैसा ही करो ।

व्याख्या : लता जब बढती है तब निराधार ऊपर की ओर चलती है । जब उसे आधार नही मिलता तो लौट आती है । यदि उसे सुन्दर शाखा मिल जाय तो वह आनन्द से उसमे लिपट जाती है और उसके अधिक ऊपर जाने का मार्ग निरर्गल हो जाता है । उसी भाँति मन्त्रियो की सुभाषा रूपी शाखा पाकर राजा की आनन्द रूपी लता स्वच्छन्द होकर और बढ़ी ।

महाराज ने मन्त्रियो से कहा कि मुझे शीघ्रता के लिए कहते हो तो मेरी आज्ञा हो गयी । अब तुम लोग शीघ्रता करो । यह कर्मकाण्ड का विषय है । इसमे कौन-कौन सी सामग्री अपेक्षित है ? कौन-कौन सी क्रिया अपेक्षित है ? यह सब मुनिराज से जानकर तदनुकूल कार्य सम्पादन करो ।

हरषि मुनीस कहेउ मृदु बानी । आनहु सकल सुतीरथ पानी ॥
औषध मूल फूल फल पाना । कहे नाम गनि मंगल नाना ॥१॥

अर्थ : हर्षित होकर मुनिजी ने मृदु वाणी से कहा कि सभी सुन्दर तीर्थों का जल मँगाओ । फिर उन्होंने, औषध, मूल, फूल, फल, पान, और अनेक मङ्गल वस्तुओ के नाम गिनाये ।

व्याख्या : मुनिजी को रामजी के अभिषेक के लिए आज्ञा देने में हर्ष है । अथवा राजा की गुरुभक्ति पर हर्ष है । महाराज की आज्ञा पाते ही मन्त्री लोग मुनिराज वसिष्ठजी के पास गये । गुरुजी ने मृदु वाणी से आज्ञा देना आरम्भ किया । तीर्थ अनेक प्रकार के होते हैं । कोई तीर्थ देव सम्बन्धी हैं यथा : प्रयागादि । कोई ऋषि सम्बन्धी हैं यथा : नैमिषादि । कोई आसुर तीर्थ है यथा : गया आदि । अत: मुनिजी सुतीर्थ का जल लाने को कहते हैं । आसुर तीर्थ के जल का निषेध करते हैं । तीर्थ का जल बहुत दूर से मँगाना है । इसलिए पहिली आज्ञा उसी के लिए हुई ।

मङ्गल कार्य मे द्रव्य की तालिका लिखने के समय हल्दी के पहिले लिखने की चाल है । अत: मुनिजी ने औषधि को ही पहिले गिनाया । राज्याभिषेक के लिए १०८ औषधियो और मूलो की आवश्यकता पडती है । अत: उनके नाम मुनिराज ने गिनाये । जिसमे कोई छूट न जाय और जिन-जिन फूल, फल और पत्तो की आवश्यकता पड़ती है उन्हें भी गिनाया । जिसमे अभिषेक सर्वाङ्ग सम्पन्न हो ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चामर चरम बसन बहु भाँती । रोम पाट पट अगनित जाती ॥
मनिगन मंगल वस्तु अनेका । जो जग जोगु भूप अभिषेका ॥२॥

अर्थ : चँवर, चर्म, बहुत प्रकार के रोम, रेशम और सूत के असख्य जाति के कपडे, मणि : जवाहिरात और अनेक मङ्गल वस्तु जो संसार मे राज्याभिषेक के योग्य हैं वतलाये ।

व्याख्या : मङ्गल वस्तु कहते है । चँवर जो राजाओ के ऊपर चलता है । चम से यहाँ व्याघ्रचर्म मृगचर्म ढाल आदि अभिप्रेत हैं । कपडो की असख्य जातियाँ है । फिर भी उनके तीन विभाग हैं । १ रूई के कपडे को ही साधारणत. कपडा कहते कहते हैं । २ दुशाला कम्बल आदि रोमपट है और ३ रेशम के कपडे को पाट पट कहते है । इनके भेद को मुनिजी नही गिनाते । इन्हे मन्त्री लोग भलीभाँति जानते है । अत केवल अगनित जाती कह दिया । मणिगणो से तो भण्डार भरा है । उन्हे कही वाहर से नही लाना है । अत उन्हे पीछे गिना रहे हैं । परिशिष्ट मे कहते है । और भी जो-जो वस्तुएँ ससार मे राज्याभिषेक के योग्य समझी जाती है उन्हे ले आओ ।

वेद बिहित कहि सकल बिधाना । कहेउ रचहु पुर बिबिध बिताना ॥
सफल रसाल पूगफल केरा । रोपहु बीथिन्ह पुर चहुँ फेरा ॥३॥

अर्थ : वेद मे कहे हुए सब विधानो को बताकर कहा कि नगर मे बहुत से मण्डप बनाओ । फलो समेत आम सुपारी और केले के पेड नगर की गलियो म चारो ओर लगाओ ।

व्याख्या सातो द्वीप सातो समुद्र पहाडो के चित्र से वह स्थान चित्रित किया जाता है । जहाँ पर सिंहासन रक्खा जाता है । उसपर व्याघ्रचर्म बिछाया जाता है । स्वर्णकलश तीर्थ के जलों से भरे जाते हैं । ये सब विधान जैसे ब्राह्मणोक्त इन्द्राभिषेक मे है किये जाँय । दीये जलाये जायँ । बाजे वजें । दर्पणादि मङ्गल वस्तु साजे जाँय । वेदपाठ के लिए ब्राह्मण बुलाये जाँय । इत्यादि वेदविधान है । इस भाँति मुनिजी की पहिली आज्ञा वेदविधान के विषय मे हुई । दूसरी आज्ञा पुर के साजने के लिए हुई कि पुर मे अनेक मण्डप साजे जायँ । तीसरी आज्ञा गलियो मे रास्ता में वैसे ही सफल आम सुपारी और केले के पेडो के रोपने की हुई । जो देखने मे स्वाभाविक हो । पर मणिगण के वने हुए हो । यथा : हरित मनिन्ह के पत्र फल पदुमराग के फूल । नही तो सफल आम तथा सुपारी के पेड रोपे नही जा सकते ।

रचहु मंजु मनि चौकइ चारू । कहहु बनावन वेगि वजारू ॥
पूजहु गनपति गुर कुलदेवा । सब बिधि करहु भूमिसुर सेवा ॥४॥

अर्थ मनोहर मणियो के सुन्दर चौके पुरवाओ और वाजार को जल्दी सजाने के लिए कहो । गणेशजी गुरु और कुलदेव की पूजा करो और सब विधि मे ब्राह्मणो की सेवा करो ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : चौथी आज्ञा हुई कि गजमुक्ताओं के चौके पुरवाओ। पाँचवी आज्ञा हुई कि शीघ्रता से बाजार साजो। समय बहुत कम है और कार्य सब विधानपूर्वक होना चाहिए। अतः मुनिराज की पृथक् आज्ञा हो रही है। छठी आज्ञा हुई कि गणेश जी, गुरु और कुलदेव की पूजा करो। गणेशजी सभी मङ्गल कार्य में प्रथम पूजे जाते हैं। स्वयं आप ही गुरु हैं। पर विधान में होने से गुरु की पूजा कहने में सङ्कोच नहीं करते। इष्टसिद्धि के लिए कुलदेव की पूजा के लिए आज्ञा देते हैं। भूमिसुर प्रत्यक्ष देवता हैं। अतः उनकी सेवा सब विधि से करने को कहते हैं। इनकी पूजा के लिए सातवीं आज्ञा हुई।

दो. ध्वज पताक तोरन कलस, सजहु तुरग रथ नाग।
सिर धरि मुनिवर बचन सबु, निज निज काजहि लाग ॥६॥

अर्थ : ध्वजा, पताका, वन्दनवार, कलश, घोड़े, रथ और हाथी सजाओ। मुनिराज की आज्ञा को सिर पर रखकर सब कोई अपने-अपने काम में लग गये।

व्याख्या : ध्वजा पताका और तोरण से सदा पुरी सुशोभित रहती है। पर अब ऐसा साजो कि धूप रुक जाय। घोड़े हाथी रथ सवारी निकलने के लिए साजे जाँय। यह मुनिजी की आठवी आज्ञा है। महाराज के आठ मन्त्री हैं। धृष्टिर्जयन्तो विजयः सुराष्ट्रो राष्ट्रवर्धनः। अकोपो धर्मपालश्च सुमन्त्रश्चाष्टमोऽर्थवित्। आठों के लिए आठ आज्ञा हुई।

१. धृष्टि को वेदविधान तथा सामग्री इकट्ठा करने के लिए पहिली आज्ञा हुई।
२. जयन्त को वितान रचने की दूसरी आज्ञा हुई।
३. विजय को सफल रसाल पूगफल केरा को चारो ओर पुर से रोपने की तीसरी आज्ञा हुई।
४. सुराष्ट्र को गजमणि के चौकों की व्यवस्था के लिए चौथी आज्ञा हुई।
५. राष्ट्रवर्धन को बाजार सजाने की पाँचवी आज्ञा हुई।
६. अकोप को देवगुरु पूजन की छठी आज्ञा हुई।
७. धर्मपाल को सब विधि से भूमिसुर की सेवा करने की सातवी आज्ञा हुई। और :
८. सुमन्त्र को घोड़े हाथी के साजने की आठवी आज्ञा हुई।

सब मन्त्रियों ने मुनिराज की आज्ञा सिर पर धारण की और अपने अपने कार्य में लग गये।

जो मुनीस जेहि आयेसु दीन्हा। सो तेहि काजु प्रथम जनु कीन्हा ॥
बिप्र साधु सुर पूजत राजा। करत राम हित मंगल काजा ॥१॥

अर्थ : मुनिराज ने जिसको जिस काम के लिए आज्ञा दी थी वह काम मानो वह पहिले ही कर चुका था। राजा ब्राह्मण साधु और देवता का पूजन करते हैं और रामजी के लिए मङ्गलकार्य करते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या कहेउ भूप मुनिराज कर जोइ जोइ आयसु होइ। रामराज अभिषेक हित बेगि करहु सोइ साइ। सो मन्त्रियो की शीघ्रता दिखलाते है। उन्होंने ऐसे लाघव से कार्य किया कि मानो वे कार्य पहिले से ही बने बनाये थे। अर्थात् बडी ही शीघ्रता से कार्य का सम्पादन किया।

पूजा का कार्य महाराज ने स्वय किया और मङ्गलकाय सम्पादन म भी हाथ बँटाया। पूजन म पहिले नाम विप्र का दिया गया। अर्थात् ब्राह्मण के पूजन पर अधिक ध्यान दिया गया। क्योकि गुरुजी का आदेश था सब बिधि करहु भूमिसुर सेवा। इस पूजन म एक लक्ष ब्राह्मणो को अशन दान देना था। अत सब व्यवस्था मन्त्रिया न की। साधुपूजा और देवपूजा भी हुई। राजा स्वभाव से ही गुरु विप्रधेनु सुरसेवी थे। इस समय तो महामङ्गल उपस्थित था। अत बडी पूजा हुई।

सुनत राम अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा॥
राम सीय तन सगुन जनाए। फरकहिं मगल अग सुहाए॥२॥

अर्थ रामजी के अभिषेक की सुहावनी खबर सुनते ही अवध म बधाव के बाजा की धूम मच गयी। रामजी के और सीताजी के शरीर म शकुन प्रकट हुए। उनके सुन्दर अङ्ग फडकने लगे।

व्याख्या जब सब लोग अपने अपने कार्य सम्पादन म लगे और दौड धूप आरम्भ हुई तब नगरवासियो को पता चला कि रामजी का अभिषेक होने जा रहा है। सुनते ही अयोध्या म तमाम बधाइयाँ बजन लगी गहागह शब्द का प्रयाग जायसी ने भी आनन्द के अर्थ म किया है। पुरवासियो को बडा हर्ष हुआ। इस दिन के लिए महेश का मानत थे। यह बधाई महाराज के प्रसन्न करने के लिए नही बजी। बल्कि अपने अभिलाष की पूर्ति की खुशी म बजाई जान लगी।

शुभाशुभ सूचक शकुन भविष्यत् सूचक यन्त्रा की भाति अकस्मात् अनागत घटना की सूचना देत हैं। जिस भाति भूकम्प आने से पहिले ही चुम्बकाकर्षण शिथिल हो जाता है। चुम्बक सूई का आकर्षण नही करता। इस भाति शुभाशुभ घटना के होने क पहिले ही कुछ शास्त्रकथित लक्षण है जो अवश्य प्रकट होते हैं। उन्ही का शकुन कहते है। सो सीताजी और रामजी के शरीर म शकुन प्रकट हुए। अर्थात् मङ्गल अङ्ग फडकने लगे। दक्षिण वाम नही लिखते। क्योकि रामजी के दक्षिण अङ्ग का फडकना शुभ था और जानकीजी के वाम अङ्ग का फडकना मङ्गलसूचक था। सुहाए अङ्ग कहने का भाव यह कि नेत्र और बाहु फडके।

पुलकि सप्रेम परसपर कहही। भरत आगमनु सूचक अहही॥
भए बहुत दिन अतिअवसेरी। सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी॥३॥

अर्थ एक दूसर से पुलकायमान होकर कहते हैं कि ये शकुन भरत के

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



आगमन की सूचना दे रहे हैं। बहुत दिन हुए अत्यन्त चिन्ता है। शकुन से प्रिय के मिलन का विश्वास होता है।

व्याख्या : रामजानकी का स्वभाव एक है। रुचि एक है। दोनों को भरत प्रिय हैं। उनके स्मरण आने से पुलक होता है। अतः दम्पति ने यही निश्चय किया कि ये शकुन भरतजी के आने की सूचना दे रहे हैं।

कारण देते हैं कि भरतजी को ननिहाल गये बहुत दिन हुए। इसलिए अधिक चिन्ता है। इस शकुन से यह विश्वास होता है कि प्रिय की प्राप्ति . भेंट होगी। शुभ शकुन प्रिय के भेंट का सूचक है। यथा : सगुन बिचारि धरी उर धीरा। अब मिलिहहिं कृपालु रघुबीरा। तथा सो सबु कारन जान बिधाता। फरकहिं सुभग अंग सुनु भ्राता। भरत के मिलन की उत्कण्ठा हृदय में हुई और उसी समय शकुन हुए। शकुन का प्रयोजन ही प्रियमिलन है। पुलकि से तन, सप्रेम से मन और परसपर कहहीं से वचन से भरतजी पर प्रेम कहा। अवसेर शब्द का प्रयोग चिन्ता करने याद आने के अर्थ में मारवाडी आज भी करते हैं।

भरत सरिस प्रिय को जग माहीं। इहइ सगुन फलु दूसर नाहीं॥
रामहि बंधु सोचु दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती॥४॥

अर्थ : जगत् में भरत के समान कौन प्यारा है। अतः यही शकुन का फल है। दूसरा नहीं। रामजी को दिन रात भाई की चिन्ता है। जैसे दिन रात कछुए को अपने अण्डे की चिन्ता होती है।

व्याख्या : दम्पति की विचारधारा एक है। उन्हें भरत जी के समान संसार में दूसरा कोई प्यारा नहीं है। यथा : जग जप राम राम जप जेही। अतः यह निश्चय किया कि इस शकुन का फल भरत से भेंट होना है। दूसरा नहीं कहने से दूसरे फल की व्यावृत्ति करते हैं। यद्यपि इस समय इस शकुन का होना अभिषेक सम्वाद सूचक कहा जा सकता है। परन्तु जिन्हें शकुन हो रहा है उन्हें तो भरत प्रिय हैं। अभिषेक प्रिय नहीं। अभिषेक का प्रस्ताव तो भरतजी के शीघ्र मिलन का कारण हुआ। अतः जो फल निश्चय किया गया वही ठीक है।

कछुए अण्डे बालू में देते हैं पर रहते हैं जल में। रात में सूनसान होते ही उन्हें सेने के लिए रेती में चले जाते हैं। अतः कछुए जल में विचरते रहते हैं। पर उनकी चित्तवृत्ति अण्डे में ही लगी रहती है। यह गति रामजी की है। ये अवध में हैं और इस समय भरतजी कैकय देश में हैं। पर मनोवृत्ति दिन रात भरतजी में लगी है।

दो. एहि अवसर मंगलु परम, सुनि रहसेउ रनिवासु।
सोभत लखि बिधु बढत जनु, बारिधि बीचि बिलासु॥७॥

अर्थ : इस अवसर पर परम मङ्गल सुनकर रनिवास आनन्दित हो उठा। जिस भाँति चन्द्रमा की बढोतरी से समुद्र में उत्तालतरङ्गों की शोभा होती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या : रनिवास की उपमा समुद्र से दी गयी। क्योंकि महाराज का रनिवास बहुत बड़ा था। सात सौ रानियाँ थी। यथा : पालागन दुलहिनिन्ह सिखावत मुदित सासु सत साता। यहाँ चन्द्र की बढोतरी रामजी का अभिषेक है। समुद्र से ही चन्द्र की उत्पत्ति है। अतः रामजी की उपमा चन्द्र से दी गयी। इनके अभिषेक से रनिवास में आनन्द का उद्रेक हुआ। उसकी उपमा वीचि विलास से दी गयी। यथा : राकाससि रघुपतिपुरी सिंधु देखि हरखान। बढत कोलाहल करत जनु नारि तरंग समान। यहाँ हरषेउ शब्द मे रकार और सकार उलट गये हैं। अतः हरषेउ का रहसेउ हो गया।

प्रथम जाइ जिन्ह बचन सुनाए। भूषन बसन भूरि तिन्ह पाए॥
प्रेम पुलकि तन मन अनुरागी। मंगल कलस सजन सब लागी॥१॥

अर्थ : जिन्होने पहिले जाकर यह शुभ सम्वाद सुनाया उन्होने बहुत से गहने कपडे पाये। प्रेम से शरीर मे पुलक हो गया। मन मे प्रेम छा गया। सब मङ्गल कलश साजने लगी।

व्याख्या : नगर मे समाचार फैलने के बाद रनिवास को समाचार मिला। शुभ समाचार देनेवाले को पुरस्कार मिलने की परिपाटी है। क्योंकि शुभ समाचार देनेवाला प्रिय होता है। यथा : जो कहिहैं आये राम लखन घर करि मुनि मख रखवारी। सो तुलसी प्रिय मोहि लागिहैं ज्यों सुभाय सुत चारो। समाचार देनेवाले को रानियो ने भूषण उतार कर दे दिये। कपडे पीछे से मँगाये गये। इसलिए भूषण पहिले कहा। उसके बाद बसन कहा। पीछे से समाचार देनेवाले को भी पुरस्कार मिला। पर थोड़ा अधिक तो पहिले समाचार देनेवाले ने ही पाया।

शुभ समाचार सुनने से ऐसा आनन्द हुआ कि शरीर पुलक से और मन प्रेम से भर उठा। अत: अन्त पुर के द्वारपर मङ्गलसूचक कलश स्थापन के लिए सब रानियाँ मङ्गलघट साजने लगी। यथा : छुहे पुरट घट सहज सुहाए। मदन सकुचि जनु नीड़ बनाये।

चौकइँ चारु सुमित्रा पूरी। मनिमय बिबिध भाँति अतिरूरी॥
आनँद मगन राम महतारी। दिये दान बहु बिप्र हँकारी॥२॥

अर्थ : सुमित्राजी ने सुन्दर चौक पूर डाले। जो मणिमय अनेक प्रकार के और सुन्दर थे। रामजी की माता तो आनन्द मे मग्न हो गयी। बहुत से ब्राह्मणो को बुलाकर बहुत दान दे डाला।

व्याख्या : सात सौ रानियो का हाल कहकर अब सुमित्राजी का वर्णन करते है। इन्हे अधिक आनन्द था और चौका पूरने मे भी बड़ी पटु थी। सबने मङ्गल घट साजे। इन्होने चौका भी पूरा। महारानी है : मणिगणो का चौक पूर रही है। अनेक प्रकार का चौका पूरना जानती है। वे चौके एक से एक सुन्दर है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रामजी की माता कौसल्या देवी के आनन्द का कुछ ठिकाना नहीं। वे तो मग्न हैं। न कलश साजा। न चौका पूरा। सब भूल गयी। बहुत से ब्राह्मणों को बुलाया और उन्होंने बहुत सा दान दिया। ये ब्राह्मणों के सन्तोष को ही परम मङ्गल मानती हैं। यथा : तुम्ह गुरु विप्र साधु सुर सेवी। तस पुनीत कौसल्या देवी।

पूजी ग्रामदेवि सुर नागा। कहेउ बहोरि देन बलि भागा ॥
जेहि विधि होइ रामु कल्यानू। देहु दया करि सो बरदानू ॥३॥
गावहिं मंगल कोकिल बयनी। बिधुबदनी मृगसावकनयनी ॥४॥

अर्थ . फिर ग्राम के देवी देवता और नागों डिहवारों की पूजा की और बलि भाग देने के लिए मनौती मानी। जिस विधि से रामजी का कल्याण हो कृपा करके वह वरदान दो। चन्द्रवदनी मृग के बच्चों सी आँखवाली कोकिलवयनी मङ्गल गाने लगी।

व्याख्या : यहाँ गुरुदेव को आज्ञा नहीं भेजनी पड़ी। स्वयं अन्तःकरण की प्रेरणा से पूजन में प्रवृत्त हुईं। पहिले पूजन करके ब्राह्मणों को दान दिया। तत्पश्चात् देवी देवताओं का पूजन प्रारम्भ हुआ। ग्रामदेवी और ग्रामदेव का पूजन किया। फिर से पूजन बलिदान के लिए मनौती मानी। यहाँ पर नाग से उन हाथियों का ग्रहण है। जो मिट्टी के बने होते हैं। ग्राम के बाहर रक्खे जाते हैं और मनोरथ सिद्धि होने पर मङ्गल उपस्थित होने पर उनकी पूजा होती है। वे डिहवार कहलाते हैं। राजा कुलदेव की पूजा कर रहे हैं। महारानी ग्रामदेव और देवियों के पूजन में लगी हैं।

पूजनोपरान्त रामजी के कल्याण के लिए वरदान माँगती हैं। अभिषेक पर आग्रह नहीं है। जिस भाँति रामजी का कल्याण हो सो करो। चाहे अभिषेक से हो अथवा अन्य विधान से हो। जीव अल्पज्ञ नहीं जान सकता कि वास्तविक कल्याण किस बात में है। यह महारानी कौसल्या का अलौकिक विवेक है। यथा . मातु विवेक अलौकिक तोरे। कबहुँ न मिटिहि अनुग्रह मोरे। प्रार्थना करती है कि दया करके वरदान दो। पूजा के बदले में नहीं।

इधर महारानी पूजन में लगी हैं। उधर अन्तःपुर में मङ्गलगान होने लगा। गान करनेवाली सुस्वर हो तभी श्रवणेन्द्रिय की तृप्ति होती है। अतः कोकिलवयनी कहते हैं और यदि वे सुन्दरी हों तो चक्षुरिन्द्रिय के तर्पण से आनन्द और भी बढ़ जाता है इसलिए विधुबदनी मृगसावकनयनी कहा।

दो. राम राज अभिषेकु सुनि, हिय हरषे नर नारि।
लगे सुमंगल सजन सब, बिधि अनुकूल बिचारि ॥८॥

अर्थ : रामजी का राज्याभिषेक सुनकर सब नर नारी हर्षित हुए और विधि को अनुकूल समझकर सब सुमङ्गल सजने लगे। सबके हृदय में रामजी के

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

अभिषेक की अभिलाषा थी। अतः अभिलाषा पूर्ति के समय हृदय मे हर्ष होना स्वाभाविक है।

व्याख्या : हर्ष होने पर सुमङ्गल साज सजना भी स्वाभाविक है। आनन्द के उद्रेक मे कुछ क्रियाएँ भी तद्रूप होनी ही चाहिए। अतः घरो मे तोरण पताका लगाना बाजार के साजने मे हाथ बँटाना ये काम नर करने लगे ; मङ्गलघट सजाना चौक पूरना और मङ्गलगान करना इन कामो मे नारियाँ लग गयी। सबने यही समझा कि विधि अनुकूल है। पर बात ऐसी नही थी विधि की वामगति थी।

तब नरनाहु वसिष्ठु बोलाए। राम धाम सिख देन पठाए ॥
गुर आगमनु सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायेउ माथा ॥१॥

अर्थ तब राजा ने वसिष्ठजी को बुलाया। रामजी के महल मे शिक्षा देने के लिए भेजा। गुरुजी का आगमन सुनते ही रामजी ने द्वार पर आकर चरणो मे सिर नवाया।

व्याख्या रामजी का राज्याभिषेक सर्वसम्मति से स्वीकृत हो गया। तदनुसार तैयारी भी आरम्भ हो गयी। पर यह समाचार रामजी को भी देना है। अतः यही निश्चय हुआ कि स्वय गुरुजी जाकर यह समाचार दे और ऐसे अवसर पर जो जो बाते रामजी के लिए करणीय हो उन बातो की शिक्षा दे। गुरुजी पुरोहित भी है। अतः पौरोहित्य का काम आ पडने पर बुलाये जाते है। यथा गुरु वसिष्ठ कहँ गयउ हँकारा। भूप बोलि पठए मुनि ग्यानी। सो गुरुजी को बुलाकर राजा ने शिक्षा के लिए रामजी के महल मे भेजा।

गुरुजी के आने का समाचार पाते ही रघुनाथजी बाहर निकल आये। तब से वसिष्ठजी द्वार तक आगये। रामजी ने चरणो पर सिर रखकर प्रणाम किया। गुरुजी का पधारना एक असाधारण घटना थी। अतः उन्हे आते देखकर सेवको ने दौडकर रामजी को समाचार दिया। जिसमे उन्हे अगवानी का सुअवसर मिल सके।

सादर अरघ देइ घर आने। सोरह भाँति पूजि सनमाने ॥
गहे चरन सिय सहित बहोरी। बोले रामु कमल कर जोरी ॥२॥

अर्थ . आदर के साथ अर्घ्य देकर घर लाये। षोडशोपचार से पूजन करके सम्मान किया। तत्पश्चात् सीताजी के सहित पाँव छूये और करकमल जोडकर बोले।

व्याख्या पहिली पूजा अर्घ्यदान है। सो द्वार पर ही अर्घ्य दिया। तत्पश्चात् महल मे ले आये। श्रद्धातिशय स षोडशोपचार से पूजन किया। नही तो ऐसे अवसर पर पञ्चोपचार से ही पूजन किया जाता है। तुलसी कहत पुकार के सुनो सकल दै कान। हेमदान गजदान ते बडो दान सनमान।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



घर मे पूजन हो रहा है। इसलिए पूजन की समाप्ति के समय सीताजी के सहित वन्दना की। क्योकि स्त्री के सहित पूजन का विधान है। तत्पश्चात् रामजी दोनो हाथ जोडकर बोले। भाव यह कि गुरुजी के आगमन पर पहिला कार्य यह है कि उनकी पूजा की जाय। तब दूसरी बात हो।

सेवक सदन स्वामि आगमनू। मगल मूल अमगल दमनू ॥
तदपि उचित जनु बोलि सप्रीती। पठइअ काज नाथ असि नीती ॥३॥

अर्थ सेवक के घर स्वामी का आगमन तो सब मङ्गलो का मूल है और अमङ्गल का नाश करनेवाला है। तथापि उचित नीति यह है कि काम के लिए सेवक को बुला भेजना चाहिए।

व्याख्या रामजी ने कहा कि मैं सेवक हूँ। आप स्वामी है। सेवक का तो धर्म ही है कि स्वामी के घर उपस्थित रहे। यदि स्वामी सेवक के घर जाय तो उसका बडा भाग्य समझना चाहिए। स्वामी के चरण पडने से ही सेवक का मङ्गल होता है। और उसके अमङ्गल का नाश होता है। अत आपका पधारना मेरे लिए तो बडे सौभाग्य की बात है। परन्तु निष्कारण तो कोई कार्य होता ही नही। अत जिस कार्य के लिए आप ने आने का कष्ट उठाया उसके लिए मुझे ही बुला भेजना उचित था। नीति भी यही है कि काम पडने पर स्वामी सेवक को बुला भेजे। यदि सेवक को सम्मान देना ही हो तो प्रीति के साथ बुलवा ले। भावार्थ यह कि आपने आने का कष्ट क्यो उठाया। मुझे ही बुलवा भेजते। आपका आना मेरे लिए तो सौभाग्य का विषय है। पर आपको कष्ट हुआ।

प्रभुता तजि प्रभु कीन्ह सनेहू। भयउ पुनीत आजु यहु गेहू ॥
आयसु होइ सो करउ गोसाई। सेवकु लहइ स्वामि सेवकाई ॥४॥

अर्थ प्रभु ने प्रभुता छोडकर मुझ पर स्नेह किया। आज यह घर पवित्र हुआ। जो आज्ञा हो सो मै करूँ। सेवक को स्वामी की सेवा का लाभ हो।

व्याख्या इस सामान्य नियम के अतिक्रमण मे अनीति की गन्ध नही है। केवल अपनी प्रभुता पर ध्यान न देकर सेवक पर स्नेह करना है। ब्याह हुए बारह वर्ष हुआ। इस बीच मे गुरुजी का घर पर आगमन नही हुआ। इसलिए कहते है कि आज यह घर पवित्र हुआ।

आज्ञा होने से पहिले ही पूछना सेवकाई के लिए उत्सुकता है। आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। सेवक के लिए स्वामी की सेवा का अवसर मिलना बडे भाग्य का विषय है। तपस्वी लोग जल्दी किसी से सेवा नही लेते। उनके यहाँ स्वय दासास्तपस्विन प्रचलित है तपस्वी स्वय दास है। अपना काम स्वय कर लते है। दूसरे से काम नही लेते। यदि काम लें तो उसका सौभाग्य है। अत सेवकाई के लाभ के लिए रामजी की प्रार्थना गुरुचरणो मे है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो सुनि सनेह साने वचन, मुनि रघुवरहिं प्रसस ।
राम कस न तुम्ह कहहु अस, हस वस अवतस ॥९॥

अर्थ स्नेह से सने हुए वचनो को सुनकर मुनिजी ने रामजी की प्रशसा की कि राम तुम ऐसा क्यो न कहो । तुम सूर्यवंश के शिरोभूषण हो ।

व्याख्या श्रीरामजी के स्नेह सने हुए वचन सुनकर मुनिजी प्रसन्न हो गये और उनकी प्रशसा करते हुए कहने लगे कि तुम सूर्यकुल के शिरोभूषण हो । अत जो वचन तुमने कहे । वह तुम्हारे स्वरूप के अनुकूल हैं । सूर्यवश मे स्वभाव से ही गुरुभक्ति देखी जाती है । महाराज दशरथ कहते हैं मोहि सम यहु अनुभयउ न दूजें । सबु पायउँ रज पावनि पूजें । भरतजी कहेगे दलि दुख सजइ सकल कल्याना । अस असीस राउरि जग जाना ।

बरनि राम गुन सीलु सुभाऊ । बोले प्रेम पुलकि मुनिराऊ ॥
भूप सजेउ अभिषेक समाजू । चाहत देन तुम्हहि जुवराजू ॥१॥

अर्थ रामजी के गुण शील और स्वभाव का वर्णन करके प्रेम से पुलकित होकर मुनिराज ने कहा कि महाराज ने अभिषेक की तैयारी कर ली है और तुम्हे युवराज पद देना चाहते हैं ।

व्याख्या रामजी के गुणो का वर्णन किया कि तुम सब विधि से सब लायक हो । शील स्वभाव का वर्णन किया कि तुम सबको प्राणप्रिय हो । सब विप्रमण्डलो तुम्हारे ऊपर छोह करती है । इस कुल में ऐसे ही युवराज की आवश्यकता है । इस भाँति प्रशसा करके मुख्य समाचार कहने के समय मुनिराज प्रेम से पुलकित हो उठे । कहने लगे राजा अब राज्यभार को वहन करना नही चाहते । अत राज्याभिषेक की सब तैयारी कर ली है और तुम्हे युवराज बनाना चाहते हैं । तुम्ही चारा भाइयो मे ज्येष्ठ हो । ज्येष्ठ गुणो से युक्त हो । अत राजा का तुम्हारे विषय म ऐसा ही निर्णय उपयुक्त है ।

राम करहु सब सजम आजू । जौ बिधि कुसल निबाहइ काजू ॥
गुरु सिख देइ राय पहिं गयेऊ । राम हृदयँ अस बिसमउ भयेऊ ॥२॥

अर्थ रामजी आज तुम सब सयम करो । यदि विधाता कुशल पूर्वक सब काम निबाह दे । गुरुजी तो रामजी का शिक्षा देकर चल गये । पर रामजी के हृदय म इस प्रकार से आश्चर्य हुआ ।

व्याख्या राज्याभिषेक के एक दिन पूर्व जिसका अभिषेक होता है । उसे सयम से रहने का विधान है । वह ब्रह्मचर्य से रहे शय्या का त्याग करे इत्यादि । गुरुजी ने उन सब सयमो के अनुष्ठान का रामजी को उपदेश दिया । आज सयम से रहो कहने का तात्पर्य ही यह है कि कल तुम्हारा अभिषेक होनेवाला है । परन्तु विधि की ओर से सकुशल कार्य के सम्पन्न होने मे सन्देह है । यह बात भी गुरुजी ने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



स्पष्ट कह दी। देवताओ का रहस्य है। अत महाराज को केवल इङ्गित से जनाया। यथा सुदिनु सुमगलु तबहि जब राम होहि युवराज। पर रामजी से क्या परदा है। अत स्पष्ट कहते हैं। और भी जो बाते रक्षा सम्बन्धी ऐसे अवसर पर उपयुक्त होती हैं। उनकी भी शिक्षा देकर गुरुजी चले गये। पर रामजी को यह समाचार सुनकर आश्चर्य हुआ। उन्होने कभी इस बात की ओर ध्यान भी नही दिया था कि जेठे होने के कारण राज्य के वे ही अधिकारी हैं। लोकसीमा के उल्लघन करनेवाली वस्तु से जो चित्त म विकार उत्पन्न होता है उसे विस्मय कहते हैं। यथा विविधेषु पदार्थेषु लोकसीमातिवर्तिषु। विस्फारश्चेतसो यस्तु स विस्मय उदाहृत ।

जनमे एक सग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई॥
करनवेध उपवीत बिआहा। सग सग सब भये उछाहा॥३॥

अर्थ सब भाई एक साथ ही पैदा हुए। एक साथ ही लडकपन से खाते सोते खेलते आये। कर्णवेध जनेव और व्याह का उत्सव सब एक ही साथ हुआ।

व्याख्या विस्मय का कारण कहते हैं कि सब भाइयो का जन्म भी साथ ही साथ हुआ। एक के जन्म से दूसरे के जन्म मे कुछ घण्टो का ही भेद पडा। भोजन भी सबका साथ होता रहा। यथा अनुज सखा सँग भोजन करही। सोते भी साथ ही साथ रहे। यथा आज्ञा पुनि पुनि भाइन्ह दीन्ही। निज निज सेज सयन तिन्ह कीन्ही। लडकपन मे खेल भी साथ ही साथ होता रहा। यथा जिन्ह बीथिन्ह बिहरैं सब भाई। थकित होहि सब लोग लुगाई। तत्पश्चात् जितने सस्कार और उत्सव हुए। यथा कर्णवेध उपवीत और विवाह सो सब साथ ही साथ हुए। सब कामो मे तो भाइयो का साथ रहा। अब क्या अभिषेक मे उनका साथ न होगा? अभिषेक केवल मेरा ही होगा? यही विस्मय है।

बिमल बस यहु अनुचित एकू। बधु बिहाइ बडेहि अभिषेकू॥
प्रभु सप्रेम पछितानि सुहाई। हरउ भगत मन कै कुटिलाई॥४॥

अर्थ इस निर्मल वश मे यही एक अनुचित बात है कि भाइयो को छोडकर बडे का ही अभिषेक होता है। प्रभु का प्रेम के सहित सुन्दर पछतावा भक्त के मन की कुटिलता का हरण करे।

व्याख्या पिताजी की इच्छा है। गुरुजी आकर कह गये और रघुकुल की रीति भी यही है। अत स्वीकार करने के सिवा उपायान्तर नही है। अत प्रभु प्रेम के साथ पछता रहे हैं। इस ध्यान को श्रीआचार्यपाद फलश्रुति कहते है कि इस पछताने से भक्तो के मन की कुटिलता नष्ट हो। स्वार्थान्धता ही सर्व कुटिलताओ का कारण है। अपने इष्टदेव के स्वार्थ निरपेक्ष विचार मे स्थित होने के ध्यान से भक्त के हृदय म भी स्वार्थ निरपेक्ष विचार करने का सामर्थ्य उत्पन्न हो। इसलिए कवि प्रार्थना करते हैं कि हरउ भगत मन कै कुटिलाई। इस पछतावे से रामोपासको को शिक्षा ग्रहण करनी चाहिए। प्रभु की सरलता का अनुगमन सेवक का धर्म है। प्रभु

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



के सभी उपासकों मे भाई भाई का नाता है। अपना उत्कर्ष होने पर औरो के लिए दु खो न होना भी भक्तो के लिए कुटिलता है। अत कवि प्रार्थना करते हैं कि प्रभु के इस प्रकार का पछतावा भक्त के मन की कुटिलता हरण करे।

दो तेहि अवसर आए लखन, मगन प्रेम आनद।
सनमाने प्रिय बचन कहि, रघुकुल कैरव चद ॥१०॥

अर्थ उसी अवसर पर लक्ष्मणजी प्रेमानन्द मे मग्न हुए आये और रघुकुल-रूपी कुमुद के चन्द्रमा रामजी ने उनका सम्मान प्रिय वचन कहकर किया।

व्याख्या उसी पछताने के अवसर पर प्रेमानन्द म मग्न लक्ष्मणजी आये। आचार्यपाद दो के लिए मग्न शब्द का प्रयोग करते है एक लक्ष्मणजी के लिए और दूसरा कौसल्याजी के लिए। यथा आनद मगन राम महतारी। भाइयो के साथ अभिषेक न होने का रामजी को पछितावा है और उनका अभिषेक सुनकर भाई लक्ष्मण को आनन्द है। लक्ष्मणजी की ऐसी दशा देखकर रघुकुलकैरवचन्द ने उनका सम्मान प्रिय वचन द्वारा किया। यथा कर्त्ता भोक्ता त्वमेव हि। कि कर्त्ता भोक्ता ता लक्ष्मण। तुम हो होगे। अभिषेक भले हो मेरा हो ले। जिस राज्य के कर्तृत्व भोक्तृत्व की मेरी प्राप्ति पर तुम्हे इतनी प्रसन्नता है। वह कर्तृत्व भोक्तृत्व तुम्हारा ही हो।

बाजहि बाजन बिबिध बिधाना। पुर प्रमोदु नहि जाइ बखाना॥
भरत आगमनु सकल मनावहि। आवहु बेगि नयन फलु पावहिं॥१॥

अर्थ अनेक प्रकार के बाजे बज रहे हैं। पुर का आनन्द बखाना नही जाता। सब भरतजी का आना मना रहे है कि जल्द आवें और नेत्रो का फल पावें।

व्याख्या राम राज अभिषेकु सुनि, हिम हरषे नर नारि। लगे सुमगल सजन सब बिधि अनुकूल बिचारि। यहाँ से प्रसग छूटा है। उसी का फिर से उठाते है कि अनेक प्रकार के बाजे बजने लगे। पहिले यमघण्टवाद्य राज्याभिषेकवाद्य आदि अनेक प्रकार के बाजे थे। जिनका नाम शास्त्रो मे सुना जाता है। अब उनका चलन नहीं है। इष्टभोगजन्य हर्ष को प्रमोद कहते है। सा इस समय पुर म ऐसा प्रमोद है कि वर्णन नही किया जा सकता। भरतजी पर सभी प्रजा का प्रेम है। सबकी इच्छा है कि भरतजी इस उत्सव मे अवश्य सम्मिलित हो। परन्तु वे कैकय देश म हैं। इतनी जल्दी बुलाये नही जा सकते। अत उनके आने के लिए देवताओ से प्रार्थना करते है कि यदि वे आजाँय ता उन्हे भी नेत्रो के सफल करने का अवसर मिल जाय।

हाट बाट घर गली अथाई। कहहि परसपर लोग लोगाई॥
कालि लगन भलि केतिक बारा। पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा॥२॥

अर्थ बाजार म, घरो मे, गलियो मे और बैठको म नर और नारियाँ आपस

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुखारी। रामचंद मुखचदु निहारी। अत· पुर के लोग उस चन्द्र की बढोत्तरी चाहते हैं। राजतिलक उस बढोत्तरी की सीमा है। अत बधावा उसी बढोत्तरी की द्योतक चाँदनी है। वह सबको सुखद हो रही है। पर कुचाली देवताओ को नही सोहाती जिम भाँति चाँदनी सबको सोहाती है। पर चोर को नही सोहाती। यहाँ देवताओ की उपमा चोर से दी गयी है। चोर स्वय निर्धन है। लोगो के धन को हरण करके स्वय धनी होना चाहते हैं। इसी भाँति देवता राजतिलक मे विघ्न उपस्थित करके सबके आनन्द का अपहरण कर स्वय आनन्दित होना चाहते है। उनके यहाँ आनन्द का अभाव है। उन्हे रावण के भय से न भूख लगती न नीद आती है। यथा · जाके डर सुर असुर डराही। निसि न नीद दिन अन्न न खाही। दुखियो को स्वभाव से ही दूसरो का बधावा नही सोहाता। सो अवध के बधावा से देवताओ के नाको दम है। वहाँ नित्य नवमंगल मोद बधावा होता रहता है और इस समय तो · बाज गहागह अवध बधावा। भारी बधावा बज रहा है। यदि चन्द्र हटें तो चाँदनी जाय। यदि रामजी अयोध्या मे न रहे तो बधावा बन्द हो।

अत विघ्न की रचना की चिन्ता मे है। पर बुद्धि काम नही देती। अवध मे कोई ऐसा नही जिसे रामजी का तिलक न सोहाता हो। फिर विघ्न हो तो कैसे हो? अत विघ्न के लिए सरस्वती का आवाहन करके अपने कार्य के लिए उनके चरणो पर गिर रहे है। पर वे राजी नही होती। अतः बार-बार चरणो पर गिरते हैं।

दो. बिपति हमारि बिलोकि बडि, मातु करिअ सोइ आजु।
राम जाहिं बन राजु तजि, होइ सकल सुर काजु ॥११॥

अर्थ हमारी बडी भारी विपत्ति को देखकर माता! आप वही करिये। जिसमे रामजी राज्य छोडकर वन मे जाँय और सब देवताओ का कार्य सिद्ध हो।

व्याख्या देवता लोग सरस्वतीजी से कहते है कि आप हमारी माता हैं। आप अपने बच्चो की भारी विपत्ति को देखिये। १ हम लोग उजड गये। यथा वेद विरुद्ध महीसुर साधु ससोक कियो सुरलोक उजारयो। २ हम लोगो को भोजन का ठिकाना नही। यथा · द्विज भोजन मख होम सराधा। सबकै जाइ करहु तुम बाधा। छुधा छीन बलहीन सुर, सहजेहि मिलिहहि आइ। ३ दिन रात हम लोग सभीत रहते हैं। यथा सुरपुर नितहि परावन होई। ४ इज्जत लूटी जाती है। यथा : देव जच्छ गधर्व नर किन्नर नाग कुमारि। जीति बरी निज बाहुबल बहु सुन्दर बर नारि। ५ तिस पर हम लोगो को नित्य हाजिरी बजानी पडती है। यथा : कर जोरे सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता। ६ हम लोग बन्दर भालू बनकर वनो मे रामजी के आने की बाट जोह रहे हैं। यथा · गिरि तरु नख आयुध धर धीरा। हरि मारग चितवहि मति धीरा। अब इससे बडी विपत्ति और क्या होगी। आप माता हैं। अपने बच्चो के लिए माता क्या नही करती? सो आज ऐसा उपाय कीजिये कि रामजी राज्य छोडकर वन

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चले जाँय। आज कहने का भाव यह कि कल तो काम ही बिगड जायगा। जहाँ राज्य पर बैठे तहाँ राजकाज मे लग जावेंगे तो हमारा काम पिछड जायगा। आपके सब बच्चो का कल्याण रामजी के वन जाने मे है।

सुनि सुर विनय ठाढि पछिताती। भइउँ सरोज विपिन हिम राती ॥
देखि देव पुनि कहहिं निहोरी। मातु तोहि नहि थोरिउ खोरी ॥१॥

अर्थ देवताओ का विनय सुनकर खडी होकर पछताती हैं कि मैं कमल के वन के लिए पाल की रात्रि बन रही हूँ। देखकर देवता लोग फिर निहोरा करके कहते हैं कि माता! तुझे थोडा सा भी दोष नही है।

व्याख्या देवताओ का विनय सुना। वात गले उतर गयी। पर पछतावा है कि कमल वन की भाँति फूले हुए इस अवध नगर के सहार के लिए मैं पाले की रात कैसे बनूं। भाव यह कि रामजी के विरुद्ध सुनते ही चली नही गयी। खडे होकर पछताने लगी कि मुझ बडा अपयश होगा। दोष लगेगा कि हरा भरा बाग सरस्वती ने उजाड दिया।

सरस्वती ब्रह्मलोक से देवताओ के आवाहन से देवलोक म आयी हैं। अभो बैठी भी नही। खडे ही खडे देवताओ का विनय सुनकर पछता रही हैं। इस प्रसङ्ग म दो का पछतावा कहा रामजी का और सरस्वतीजी का। रामजी के पछतावे से ही सरस्वतीजी तथा बृहस्पतिजी ने उनका रुख लख लिया। यथा तव कछु कीन्ह राम रुख जानी। फिर भी विघ्नाचरण मे पछतावा है। आज और कल के बीच मे रात्रि है। सरस्वती पछताती हैं कि मुझे हिमरात्रि बनना पडेगा। जिसमे कमलकुल का सहार हो जाय। अत कहती हैं भइउँ सरोज विपिन हिम राती।

सरस्वतीजी को असामञ्जस्य मे देखकर बृहस्पतिजी ने निहोरा करके कहा कि आप इस कार्य मे दोष देख रहा है। सो इसम आपका थोडा भी दोष नही है। कारण देते हैं

विसमय हरष रहित रघुराऊ। तुम्ह जानहु सब रामु प्रभाऊ ॥
जीव करम बस सुख दुख भागी। जाइअ अवध देव हित लागी ॥२॥

अर्थ रामजी तो विस्मय हर्ष से रहित हैं। आप तो उनके प्रभाव को जानती हैं। जीव कर्म के वश सुख दुख भोगा करते हैं। अत देवताओ के भले के लिए आप अवध जाँय।

व्याख्या और लोग रामजी के प्रभाव को नही जानते। पर आप तो जानती हैं कि रामजी क्या हैं। परवस जीव स्ववस भगवता। रामजी स्वतन्त्र हैं। उन्हे कर्म शुभाशुभ की बाधा नही। सुख दुख रूपी द्वन्द्व की उन तक पहुँच नही। दुख सुख तो अभिमानी को होता है। अत रामजी के लिए चिन्ता का कोई कारण नही है। आप जो कुछ करेंगी वह देवताओ के हित के लिए करेंगी। यदि देवहित करने मे कुछ जीवो को दुख हो तो वह नगण्य है। क्योकि उनके

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रारब्ध मे जो सुख दु ख है उसकी मात्रा के घटाने बढाने मे कोई समर्थ नही है। उतना उन्हे मिलकर ही रहेगा। अत आपके दोष का तो यहाँ प्रसङ्ग ही नही है। आप देवताओ के कल्याण के लिए अवध पधारें यहाँ हर्ष के विरोध मे आने से विस्मय का अर्थ शोक करना पडेगा।

बार बार गहि चरन सँकोची। चली बिचारि बिबिध [1]मति पोची॥
ऊँच निवासु नीचि करतूती। देखि न सकहि पराइ बिभूती॥३॥

अर्थ · देवताओ ने बार बार चरण पकडकर सङ्कोच मे डाला। तब वह देवताओ की बुद्धि भली नही ऐसा विचार करके चली। इनका निवास तो ऊँचा है। पर करतूति इनकी नीच है। ये दूसरे का ऐश्वर्य नही देख सकते।

व्याख्या जो जो बातें देवताओ ने कही उनकी असमीचीनता को जानते हुए भी सरस्वती पुत्रो के सङ्कोच म आगयी। और भी स्वार्थ के विचार उसके मन मे आये। जिनका वर्णन आगे किया जायगा। अत देवताओ के कार्य के लिए चल पडी।

देवताओ का निवास ऊँचा है। स्वर्ग मे रहते हैं। यह लोक तो भूलोक है। इसके ऊपर अन्तरिक्षलोक है। उसके भी ऊपर स्वर्गलोक है। देवता लोग वहाँ रहते हैं। इसलिए ऊँच निवास कहती हैं। पर इनकी करणी नीच है। स्वार्थ से भरी होती है। यथा . आये देव सदा स्वारथी। जब रामावतार हो गया तो ईश्वर सत्य सङ्कल्प है। आज नही तो कल रावणवध करेंगे ही। कितने चतुर्युगियो से उसके अत्याचार को सह रह हे। थोडा और सह लेते। थोडा धैर्य रखते। जो अवतीर्ण जिस कार्य के लिए हुआ है उसको भी तो उस कार्य की चिन्ता है। वह देवताओ को उचित से अधिक कष्ट पाते कभी न देख सकेगा। अवधवासियो के रग मे भग डालने का कोई कारण नही है। कवि कहते है कि बात यह है कि अवधराज सुरराज सिहाही। दसरथ धन सुनि धनद लजाही। सो देवता लोग इस विभूति को न देख सके। उनके हृदय मे अवध का आनन्द देखकर डाह पैदा हुआ कि हम तो स्वर्ग मे रहकर इतना दु ख पावें और ये मर्त्यलोक मे रहकर इतना आनन्द लें।

आगिल काजु बिचारि बहोरी। करिहहि चाह कुसल कबि मोरी॥
हरषि हृदय दसरथ पुर आई। जनु ग्रहदसा दुसह दुखदाई॥४॥

अर्थ फिर भविष्य के कार्य को विचारा कि कुशल कवि मेरी चाह करेंगे। हर्षित हृदय से दशरथपुर मे दुसह दुखदायी ग्रहदशा की भाँति आयी।

---

१ राजापुर की प्रति मे विविध पाठ है। ऐसा मानने से पोची विविध मत विचार चली। इस प्रकार अन्वय करना होगा। अर्थात् अपने स्वार्थ का भी विचार किया करिहहिं चाह कुसल कवि मोरी अत पोची कहते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या इस सरस्वती ने अपने भविष्य के स्वार्थ को विचारा कि रामचरित वर्णन करनेवाले कुशल कवि मेरी चाह करगे। रामचरित वर्णन के लिए मेरा स्मरण वन्दन करेंगे। यथा कपिसेन सग सहारि निसिचर राम सीतहि आनि हैं। त्रैलोक पावन सुजस सुर मुनि नारदादि बखानि हैं। अत हर्षित हृदय से अवध मे आयी। उसका पछतावा नाम मात्र के लिए था। सरस्वती का आना मङ्गलकारक है। सो अवधवासियो के लिए तो इस समय दुखदायी ग्रहदशा साढे साती से भी बढी हुई बनकर आयी।

सब बिधि सब पुरलोग सुखारी। रामचद मुखचदु निहारी। अत प्रभु की ग्रहदशा ही सबकी ग्रहदशा है। सो बुध की महादशा म केतु के साथ शुक्र की अन्तर्दशा रूप से आयी। श्रीरामजी का जन्म बृहस्पति की महादशा मे हुआ। चारवर्ष तक वही दशा रही। तत्पश्चात् शनैश्चर की महादशा उनीस वर्ष के लिए आयी। चौबीसवें वर्ष मे बुध की महादशा लगी। सत्ताईसवें म शुक्र की अन्तर्दशा आगयी। शुक्र केतु के साथ थे। इसलिए यह दु खदायिनी दशा थी। इसने पदच्युत करके ही माना।

दो नामु मथरा मदमति, चेरी कैकै केरि।
अजस पेटारी ताहि करि, गई गिरा मति फेरि ॥१२॥

अर्थ राजा कैकय की एक मन्दमति दासी मन्थरा नामी थी। उसी को अयश की पटारी बनाकर सरस्वती उसकी बुद्धि को उलटकर चली गई।

व्याख्या यह अवध की नही थी। कैकय देश से आयी थी। अयोध्यावासियो पर सरस्वती की कला नही चली। यह स्वभाव से मन्दमति था। अत इसपर कला चल गयी। इसकी बुद्धि पलटा खा गयी। सरस्वती को कोई दोष न दे। इसलिए उसे अयश की पेटारी बनाया। वह बेचारी भी यह नही चाहती थी। अत उसकी बुद्धि का पलटना कह रहे हैं। वह मन्दमति से तीव्र बुद्धि हो गयी। पर साधु बुद्धि के स्थान पर दुष्ट बुद्धि हो गयी। उसकी बुद्धि पलटकर सरस्वती चली गयी। समझ लिया कि अब यह राजतिलक न होने देगी। सरस्वती बुद्धि की अधिष्ठात्री देवी हैं। बुद्धि को फिरा देना इनका काम है। यथा सारद प्रेरि तासु मति फेरी। माँगेउ नीद मास षट केरी।

दीख मंथरा नगरु बनावा। मजुल मगल बाज बधावा॥
पूछेसि लोगन्ह काह उछाहू। राम तिलकु सुनि भा उर दाहू ॥१॥

अर्थ मन्थरा ने देखा कि नगर सजा हुआ है और सुन्दर मङ्गल के बधावे बज रहे हैं। लोगो से पूछा कि क्या उत्सव है। रामजी का तिलक सुनकर जी जल उठा।

व्याख्या सुनत राम अभिषेक सुहावा। बाज गहागह अवध बधावा॥

ankurnagpal108@gmail.com



एहि अवसर मगलु परम सुनि रहसउ रनिवास।
सोभत लखि बिधु बढत जनु बारिधि बीचि बिलासु॥
प्रथम जाइ जिन बचन सुनाए। भूषन बसन भूरि तिन्ह पाए॥

उसी अवसर का यह प्रसङ्ग है। परन्तु वहाँ उल्लेख करने से दूसरी कथा प्रारम्भ हो जाती। वसिष्ठजी का रामजी को शिक्षा देने तथा देवताओं का सरस्वतीजी से विनय करने और सरस्वती के मन्थरा की बुद्धि पलटने का प्रसङ्ग छूट जाता। अत वहाँ उल्लेख नही किया। कैकेयीजी के महल मे पहिले पहल खबर सुनानेवाली का हाल लिखते है। बात यह हुई कि अति शीघ्रता के कारण महाराज को जाकर रनिवास मे इस शुभ समाचार के प्रकाश करने का अवसर ही नही मिला। रनिवास मे समाचार पहुँचने के पहिल ही नगर मे समाचार फैल गया। सभी महल की दासियो ने इस भाँति लोगो से पूछकर रामजी के तिलक का समाचार पाया था। पर उनको सुनकर हर्ष हुआ। दौडी हुई महारानियो के यहाँ शुभ समाचार देने गयी। इसी भाँति मन्थरा ने भी लोगो से नगर का साज समाज और बधावा बजते देखकर पूछा। पर रामजी का अभिषेक सुनकर इसे हर्ष न हुआ। इसका जी जल उठा। क्योकि इसकी बुद्धि को सरस्वतीजी ने फेर दिया था। इसे वह घटना याद आयी जब कि रामजी ने लडकपन मे इसकी टाँग पकडकर खैची थी। इस बात का उल्लेख अग्निपुराण म मिलता है। उसी वैर से इसने कैकेयी को उलटा समझाया।

करै बिचारु कुबुद्धि कुजाती। होइ अकाजु कवन बिधि राती॥
देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गँव तकै लेउँ केहि भाँती॥२॥

अर्थ वह कुबुद्धि और नीच जाति विचार करने लगी कि किस उपाय स आज रात को ही यह काम बिगड जाय। जैसे मधुकोष शहद का छत्ता देखकर कुटिल किराती यह मौका देखने लगता है कि इसी रात को यह शहद कैसे ले ले।

व्याख्या सरस्वती ने बुद्धि फेर दी है। इसलिए कुबुद्धि कहा। राजा कैकय की चेरी है कैकेयी के डाला के साथ आयी है। इसलिए कुजाति कहा। इस नीच बुद्धि और नीच जाति को अयोध्या का यह आनन्द देखकर जलन पैदा हुई। यह तरकीब सोचने लगी कि इस आनन्द का अपहरण मै आज ही रात को कैसे कर लूँ। क्योकि कल तो यह आनन्द रामजी के हाथ लग ही जायगा। रात बीत जाने पर फिर मेरा किया कुछ नही हो सकता।

जिस भाँति मधु का छत्ता देखकर कुटिल किराती के मन मे यह बात उठती है कि आज रात को ही इस मधु के छत्ते को किस उपाय से अपहरण कर लूँ। क्योकि रात के समय मधुमक्षिकाओ को दिखाई नही पडता। व विश्राम करती हैं। यही समय मधु लेने का है। सवेरा होते ही मक्षिकाओ को सूझने लगेगा। वे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जाग उठेगी मधुकोष का अपहरण करनेवाले के शरीर मे मक्षिकाएँ चिपट जाती हैं और उसका प्राण बचना कठिन व्यापार हो उठता है। अत वह रात को ही मधुकोष का अपहरण करती है। इस रूपक मे अवधवासियो की उपमा मधु मक्षिकाओ से है। उनके आनन्द की उपमा मधुकोष से और मन्थरा की उपमा कुटिल किराती से दी गयी है। कठिनता यह आपडी है कि उजेली रात है। यथा 'सोहत जन बिधु बढत लखि वारिधि बीचि विलासु। मक्षिकाएँ एकदम निद्रित नही हैं। यथा सकल कहहिं कब होइहि काली। अत मौका तजबीज रही है। मन मे विधि बैठा रही है कि मैं तो चेरी छोडकर रानी होने की नही हूँ। मेरा सम्पर्क कैयेयी से है। यह यदि मेरे कहने से भरत को राज्य और राम को वनवास माँगे तो राज्य मिलने पर भरत और कैकेयी दोनो कृतज्ञ होगे। मै उनकी आँख की पुतली बनकर रहूँगी। इस भाँति राज्य पर मेरी ही आज्ञा चलेगी। अब कैकेयी मेरा कहना कैसे माने ? इत्यादिक विचार मे लगना ही यहाँ गँव ताकना है।

सवेरा होते ही अभिषेकोत्सव प्रारम्भ हो जायगा। फिर कौन किसकी सुनता है। अत विधि कोई ऐसी होनी चाहिए जिससे रात मे ही काम बिगड जाय।

भरत मातु पहिं गइ बिलखानी। का अनमनि हसि कह हँसि रानी॥
ऊतरु देइ न लेइ उसासू। नारि चरित करि ढारइ आँसू॥३॥

अर्थ रोना चेहरा बनाकर भरतजी की माता के पास गयी। रानी ने हँसकर पूछा कि तू अनमनी क्यो हो रही है। उत्तर नही देती। लम्बी लम्बी साँस लेती है और स्त्रीचरित्र करके आँसू गिराती है।

व्याख्या विचार करके मनमे तरकीब बैठा ली। रोना चेहरा बना लिया। जिसमे रानी कारण पूछें और उसे कहने का अवसर मिले। बिना पूछे कहने से बात न बैठेगी। तब भरत की माता के पास गयी। कहने का भाव यह है कि भरतजी की माता हैं। कम से कम उनकी अनुपस्थिति मे पुत्र के हितकी रक्षा के लिए अवश्य तैयार हो जायगी। रानी उसका रोना चेहरा देखकर हँस पडी। मन्द बुद्धि से सभी हँसी करते हैं। अत उपाय ओछा पडा। अब बातको गहरो बनाने के लिए रानी के पूछने पर उत्तर नही देती। हृदय मे शोक न रहने पर भी पूरा शोक का रूपक खडा कर देना नारिचरित्र है। सो उसने स्त्रीचरित्र का आश्रयण किया। लम्बी लम्बी श्वास लने लगी। आँसू गिराने लगी। जिसमे रानी समझ कि कोई गम्भीर समस्या है।

हँसि कह रानि गालु बड तोरे। दीन्हि लखन सिख अस मन मोरे॥
तबहुं न बोल चेरि बडि पापिनि। छाडइ स्वास कारि जनु सापिनि॥४॥

अर्थ रानी ने हँसकर कहा कि तू बडी मुहजोर है। मेरे मन मे तो यह बात

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



आती है कि लक्ष्मण ने तुझे डाँटा है। फिर भी नही बोलती। बड़ी पापिनी चेरी है। काली सर्पिणी की भाँति श्वास लेने लगी।

व्याख्या : फिर भी बात न जमी। रानी ने यही समझा कि कोई अदनी सी बात है। यह मन्दमति तो है ही। मुँहजोर भी है। लक्ष्मण ने डाँटा फटकारा होगा। रामजी डाँटेंगे ही नही। दूसरे की किसकी ताकत है कि मेरी दासी को डाँट सके। पर मन्थरा साधारण पापिनी नही है। कपट को हृदय मे बिठाना जानती है। अतः महारानी की उत्सुकता बढाने के लिए फिर न बोली। उच्छ्वास और आँसू बहाने से काम चलते न देखकर काली सर्पिणी की फूत्कार की भाँति श्वास लेने लगी। इस मुद्रा ने काम कर दिया। रानी की बुद्धि मे क्षोभ हुआ। वह डर गयी कि कोई भारी विपत्ति आयी है इससे यह ऐसा श्वास ले रही है और वह विपत्ति मेरे पर आयी है। इसलिए यह कहने का साहस नही कर रही है।

दो. सभय रानि कह कहसि किन, कुसल रामु महिपालु।
लखनु भरतु रिपुदवनु सुनि, भा कुबरी उर सालु ॥१३॥

अर्थ भयभीत होकर रानी ने कहा कि कहती क्यो नही ? रामजी, महाराज, भरत, लक्ष्मण और शत्रुघ्न कुशल तो हैं। यह सुनकर कुबरी के कलेजे मे साल पड गयी।

व्याख्या : पति पुत्र से बढकर स्त्री के लिए कोई नही है। अत उन पर आँच आना ही स्त्री के लिए सच्ची विपत्ति है। दो बार पूछने पर नही बोली। अत रानी कहती है कि तू बतलाती क्यो नही ? कुशल पूछने मे जो सबसे प्रिय होता है। उसी का कुशल स्वभाव से ही मनुष्य पहिले पूछता है। सो रानी ने सबसे पहिले रामजी की कुशल पूछी। महाराज की कुशल उसके बाद पूछती हैं। लक्ष्मण भरत और शत्रुघ्न की कुशल तो उसके भी बाद पूछती हैं। यह सुनकर कुबरी के कलेजे मे मानो साल पड गया। जिसके कलेजे मे साल पड जाता है उससे साँस लेते नही बनता है और वह टेढा हो जाता है। उससे सीधे खडे होते नही बनता। कुबरी तो भरत की माँ जानकर आयी थी। पर रानी तो रामजी की माँ की भाँति बोली। उसने पहिले रामजी की कुशल पूछी। भरत की कुशल तो लक्ष्मण के भी बाद पूछती हैं। यह लक्षण तो काम बनने का नही है। मन्थरा कुबरी तो थी ही। यह कलेजे मे साल पडनेवाली वाणी सुनकर और भी टेढी हो गयी।

कत सिख देइ हमहि कोउ माई। गालु करबकेहि कर बलु पाई ॥
रामहि छाडि कुसल केहि आजू। जिन्हहि जनेसु देइ जुबराजू ॥१॥

अर्थ : माई ! मुझे कोई क्या सीख देगा ? मैं किसके बल पर मुहजोरी कर सकती हूँ ? राम को छोडकर आज किसकी कुशल है। जिसे राजा युवराज पद दे रहे हैं।

व्याख्या : मैंने किसी का क्या बिगाडा है और मे किस गिनती मे हूँ कि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मुझे कोई सीख देगा। सीख का भय तो उसे रहता है। जो किसी गिनती में हो। भाव यह कि सीख का भय तुम्हें है। मुझे नहीं है। यह 'दीन्ह लखन सिख अस मन मोरें का उत्तर है। अब गाल बड़ तोरें का उत्तर देती है कि जिस बल से मैं मुहजोरी करती रही वही बल आज जाता रहा। मुझे तो तुम्हारा बल था। सो तुम्हारा ही बल नहीं रह गया।

रामजी की कुशल पहिले पूछी थी। उसपर कहती हैं कि उन्हें छोड़कर आज कुशल किसकी है। भाव यह कि भरत की कुशल नहीं है। क्योंकि राजा तो युवराजपद रामजी को दे रहे हैं स्पष्ट कहने में भय है। इसलिए लक्षणा व्यञ्जना से काम लेती है। जो युवराज हो उसी की कुशल है। महाराज जनेश हैं। जिसे चाहे उसे युवराज बनावें। उन्हें रोकनेवाला कौन है। सो रामको चाहते हैं भरत को नहीं।

भयेउ कौसिलहि बिधि अति दाहिन। देखत गरब रहत उर नाहिन॥
देखहु कस न जाइ सब सोभा। जो अवलोकि मोर मनु छोभा॥२॥

अर्थ : विधाता कौसल्या के अत्यन्त अनुकूल हो गये हैं। जिनको देखकर हृदय से अभिमान दूर हो जाता है। आप जाकर सब शोभा देखिये। जिसे देखकर मेरा मन चञ्चल हो उठा है।

व्याख्या : विधाता तो पहिले से ही कौसल्या के दाहिने हैं। सब सौत : सपत्नियाँ उनकी सेवा करती हैं। अब तो अत्यन्त दाहिने हुए हैं। तुम्हें भी सेवा करनी पड़ेगी। राजमाता कौसल्या होंगी। तुम्हारे भाग्य से राजमाता होने का सुख उठा चाहता है। आज कौसल्या के देखने से सपत्नियों को हृदय में सोहाग का गर्व न रह जायगा।

मेरे मन में क्षोभ नहीं होता। इससे उछल्ले लोग समझते हैं कि यह मतिमन्द है। सो आज की शोभा देखकर मेरे मन में क्षोभ हो गया। तुम्हारी चेरी होने से मुझे क्षोभ हुआ कि स्वामिनी का अभिमान टूटा तो मेरा भी टूट गया। यह का अनमनी हँसि का उत्तर है।

पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारे। जानति हहु बस नाहु हमारे॥
नीद बहुत प्रिय सेज तुराई। लखहु न भूप कपट चतुराई॥३॥

अर्थ : बेटा विदेश में है। तुम्हें उसकी चिन्ता नहीं है। समझती हो कि पति मेरे वश में हैं। तुम्हें तो नींद और तोशक तकिया बड़ा प्रिय है। राजा की कपटचतुरता तो तुम्हें सूझती नहीं।

व्याख्या : आज तुम्हारा बेटा घर होता तो अपने लिए कुछ करता। जिसका बेटा घर में है उसे तो अपने बेटे की चिन्ता है। तुम जानती हो कि महाराज तुम्हारे वश में हैं। पर वे तुम्हारे वश में नहीं हैं। तुम्हें अपने बेटे की चिन्ता होनी चाहिए थी जो परदेश में है। पर हमें चिन्ता है। तुम्हें नहीं है। तुम तो निश्चिन्त

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



होकर सोना जानती हो। तुम्हें नींद प्रिय है और तोशक तकिया प्रिय है। तुम राजा की प्यारी हो। तुम्हारे बेटे के लिए यह सामान होना चाहता था। पर राजा को प्यारी तो कौसल्या है। तुम पर प्यार तो केवल दिखाने के लिए है। तुम उस कपटचतुराई को लख नहीं सकती।

सुनि प्रिय बचन मलिन मनु जानी। झुकी[1] रानि अब रहु अरगानी ॥
पुनि अस कबहुँ कहसि घरफोरी। तब धरि जीभ कढावौं तोरी ॥४॥

अर्थ · प्रिय वचन सुनकर और उसे मलिन मन जानकर रानी बिगड उठी कि बस अब चुप रह। रे घरफोरी! अब यदि फिर तूने ऐसी बात कही तो पकडकर तेरी जिह्वा खिचवा लूँगी।

व्याख्या सारग्राहिणी बुद्धि भगवती कैकेयी की थी। तुरन्त समझ गयी कि यह रामजी के राजतिलक का प्रिय समाचार दे रही है। पर इसका मन मलिन है। अत ऐसी प्रिय घटना को इस दृष्टि से देख रही है। ईर्ष्या द्वेषयुक्त नीचबुद्धि तथा मनोमालिन्य पर क्रोध किया। ऐसे दुष्ट वचन को सुनना भी नहीं चाहती। अत आज्ञा देती हैं कि चुप रह। भविष्य के लिए सचेत किये देती हैं कि मेरे वचन कौसल्या के प्रति ईर्ष्या द्वेष उत्पन्न करनेवाले है। पति के प्रति दुर्भाव उत्पन्न करनेवाले हैं। इसलिए तू घरफोरी है। घर फाडनेवाली बाते बोलती है। इस बार मैं क्षमा करती हूँ। फिर यदि तूने ऐसे वचन मुख से निकाले तो घर फोडनेवाले के लिए यही दण्ड है कि उसकी जीभ खिचवा ली जाय ऐसे अधम मनुज खल कृत जुग त्रेता माँहि।

दो काने खोरे कूबरे, कुटिल कुचाली जानि।
तिय बिसेषि पुनि चेरि कहि, भरत मातु मुसुकानि ॥१४॥

अर्थ : यह जानकर कि काने लँगडे और कुबडे कुटिल और कुचाली होते हैं। तिस पर स्त्री और फिर दासी ऐसा कहकर भरत की माँ ने मुसकरा दिया।

व्याख्या घर फोडनेवाला वचन कहने का कारण यही है कि कुलक्षण तुझमे मौजूद है। काने लँगडे और कुबडे कुटिल और कुचाली होते है। यहाँ प्रसङ्ग कुबडे का है। स्त्री यदि कुबडी हुई तो अधिक अवगुण उसमे चमक उठते है। तिस पर चेरी मे दुष्कुलप्रसूता होने से उनका अत्यन्त उत्कर्ष हो जाता है। चेरी दुष्कुल प्रसूता के अर्थ मे आया है। यथा कुलवति निकारहिं नारि सती। गृह आनहिं चेरि निबेरि गती। तुझमे ये कुलक्षण मौजूद है। अत तू ऐसी बात बोली। रामजी का अभिषेक सुनकर प्रसन्न थी। केवल मन्थरा की अनुचित उक्ति पर क्रोध दिखलाया। बात समाप्त होते ही प्रसन्नता झलक उठी।

---

१ झुकी अर्थात् क्रोध किया। यथा लखन सुजान झुकि झारं कीरबान।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रियबादिनि सिख दीन्हिउँ तोही । सपनेहु तो पर कोपु न मोही ॥
सुदिनु सुमंगल दायकु सोई । तोर कहा फुर जेहि दिन होई ॥१॥

अर्थ : हे प्रिय · बात कहनेवाली मैने तुझे सीख दी है। तुझ पर मुझे स्वप्न मे भी क्रोध नही है। सुमङ्गलदायक सुदिन वही है जिस दिन तेरा कहना सच होगा।

व्याख्या तूने प्रिय वचन रामजी के तिलक का समाचार सुनाया। तुझे पुरस्कार देना था। सो मैने तुझे डाँट बतलायो। तुझे शिक्षा देने के लिए इतना ही बहुत है। मै तुझपर अप्रसन्न नही हूँ · वह नैहर से साथ आयी है। इसलिए उसपर बडा प्रेम है उसे समझा रही हैं : तूने जो कहा कि : रामहि छाडि कुसल केहि आजू सा ठीक नही। राम के अभिषेक से ही सबका कुशल है। अत. उनके अभिषेक का दिन सबके लिए सुमङ्गलदायक सुदिन है। तूने जो समाचार सुनाया वह जिस दिन सच्चा होगा उसे मै मङ्गलमय मानूँगी। रामहि छाडि कुसल केहि आजू का उत्तर।

जेठ स्वामि सेवक लघु भाई । येह दिनकर कुल रीति सुहाई ॥
राम तिलकु जौ साचेहुँ काली । देउँ मागु मन भावत आली ॥२॥

अर्थ · जेठा भाई स्वामी और छोटा भाई सेवक होता है। यह सूर्यकुल की सुन्दर रीति है। यदि सचमुच कल ही रामजी को राजतिलक होना है तो हे आली। तू मनचाही बात माँग ले। मै देती हूँ।

व्याख्या . जो तूने महाराज पर आक्षेप किया है जेहि जनेस देइ जुवराजू। सो उनका दोष कुछ भी नही है। इस कुल की यही रीति है। राम जेठे है। इसलिए उनका राजतिलक हो रहा है। यदि भरत जेठे होते तो उन्ही का होता। राज्य मे विभाग नही होता। वह जेठे भाई को मिलता है। छोटे सेवक हैं। गुजारा के हक़दार है। यही सुन्दर रीति है। यदि राज्य मे भाई भाग पावें तो राज्य छिन्न भिन्न हो जाय। श्रीरामजी के तिलक के लिए मैं कई बार महाराज से कह चुकी हूँ। यथा : भामिनि भयउ तोर मन भावा। घर घर नगर अनद बधावा। पर कल ही तिलक है। यह मै नही जानती। मुझे तो विश्वास कम पड़ता है। क्योकि मुझे इसका कुछ भी पता नही है। यदि सचमुच कल ही अभिषेक है तो तूने पहिले पहल शुभ समाचार सुनाया है। तू मनचाही हुई बात माँग ले मै दूँगी। अन्य रानियो ने पहिले पहल इस शुभ समाचार सुनानेवाले को भूषण वसन दिये। पर कैकेयी का स्वभाव महाराज के स्वभाव से मेल खाता है। यह उसी भाँति मनचाहा हुआ पदार्थ देने को प्रस्तुत हैं जिस भाँति चक्रवर्तीजी देते हैं। यथा : दिये बूझि रुचि रघुकुलनदन।

कौसल्या सम सब महतारी । रामहि सहज सुभाय पिआरी ॥
मो पर करहि सनेहु विसेपी । मै कर प्रीति परीछा देखी ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ : रामजी को सब माताएँ कौसल्या के समान सहज स्वभाव से ही पियारी हैं। मुझ पर तो विशेष प्रीति करते हैं। मैने प्रीति की परीक्षा करके देख ली।

व्याख्या : भगवती कैकेयी कहती हैं कि जो तूने कहा भयउ कौसिलहिं बिधि अति दाहिन सो तेरी भूल है। रामजी मे विशेषता है। उन्हे सब माताएँ कौसल्या की भाँति प्यारी है। अत सब माताओ को विधि समान रूप से दाहिने हैं। कौसल्या को अति दाहिन नही मुझे अति दाहिन है। क्योकि रामजी की मुझ पर अधिक प्रीति है। मैने उनकी प्रीति की परीक्षा करके देख ली है माता वेटो की प्रीति की परीक्षा बडी छोटी छोटी बातो मे कर लेती है। इस परीक्षा के लिए किसी बडी भारी घटना की आवश्यकता नही होती।

जौं बिधि जनमु देइ करि छोहू। होहुँ राम सिय पूत पुतोहू॥
प्रान ते अधिक रामु प्रिय मोरे। तिन्हके तिलक छोभु कस तोरे॥४॥

अर्थ यदि ब्रह्मदेव छोह करके जन्म दे तो राम जानकी बेटा पतोहू हो। रामजी मुझे प्राणो से अधिक प्रिय हैं। उनके तिलक मे तुझे क्षोभ क्यो हैं?

व्याख्या कुवरी ने जो यह कहा था पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारें। इसपर कहती है कि क्या राम पर मुझे भरत से कम प्रीति है? राम का वर्ताव ऐसा है कि मैं विधि से मनाती हूँ कि यदि आप छोह करके जन्म दें तो राम जानकी वेटे पतोहू हो। अर्थात् मैं भरत माण्डवी से अधिक राम जानकी से सन्तुष्ट हूँ। मुझे रामजी प्राण से अधिक प्रिय है। जिस भाँति दशरथजी ने कहा था सब सुत प्रीय प्रान की नाईं। राम देत नहि बनै गोसाईं। उसी भाँति भगवती कैकेयी भी कहती हैं कि रामजी मुझे प्राण से भी अधिक प्यारे है। उनके राजतिलक का समय तो उत्साह का है। तुझे क्षोभ क्यो है? जो अवलोकि मोर मन छोभा का उत्तर है।

दो भरत सपथ तोहि सत्य कहु, परिहरि कपट दुराउ।
हरष समय बिसमउ करसि, कारन मोहि सुनाउ॥१५॥

अर्थ तुझे भरत की शपथ कपट के छिपाव को छोडकर सच कह। हर्ष के समय तू विषाद करती है। इसका कारण मुझे बतला।

व्याख्या भरत पर अत्यन्त प्रेम देखकर मन्थरा को भरत का ही शपथ देती है कि तू सच सच बतला दे। तेरी बातो से मुझे मालूम हो रहा है कि तू कपट से कुछ बातें छिपा रही है। इस हर्ष के समय मे तुझे विषाद कहाँ से हो आया? इसका कारण होना चाहिए। जो कारण तूने दिया उसम कोई तत्त्व नही है। इसलिए सच्ची बात मुझे बतला दे।

एकहि बार आस सब पूजी। अब कछु कहब जीभ करि दूजी॥
फोरै जोगु कपारु अभागा। भलेउ कहत दुख रौरेहि लागा॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : एक ही बार मे सब आशा पूरी हो गयी। अब क्या दूसरी जीभ लेकर कुछ कहूँगी। मेरा अभागा कपाल फोड़ने लायक है। जो भला कहते हुए आपको बुरा लग गया।

व्याख्या : मन्थरा कहती है कि बात तो मुझे वही कहनी है। जो पहले कह चुकी हूँ और फिर वैसी बात कहने से आप जीभ खिचवा लेंगी। अब तो मै उसी दशा मे वैसी बात कह सकती हूँ जब कि मुझे दूसरी जीभ कही से मिल जाय। जिसमें आप के खिचवा लेने पर भी एक जीभ बची रहे। मै तो यह आशा करके चली थी कि भरत नही हैं तो उनकी माँ तो हैं। उन्हे चलकर सब बातें समझाऊँ। सो आप उलटे मुझपर अप्रसन्न हो गयी। अत. सारी आशा पर पानी फिर गया। आप जीभ खिचवाने लगी।

मेरा कपाल फोड़ने लायक है। जीभ खिचवाने लायक नही है। क्योकि जीभ तो ठीक बात कहती है। उसका अपराध नही है। फोड़ने लायक मेरा कपाल है, जिसमे लिखा है कि मै भले को बात कहूँ तो सुननेवाले को बुरा लगे। मै भला कहती हूँ और आपको बुरा लग रहा है। तो मेरी किसमत का ही दोष है : इस भाँति अपनी नेकनीयती दिखलाती है।

कहहिं झूठि फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहिं करुइ मैं माई ॥
हमहुँ कहबि अब ठकुरसोहाती। नाहि त मौन रहब दिनु राती ॥२॥

अर्थ : माता ! जो झूठी बातों को सच्ची बनाकर कहे वे ही तुम्हारे प्यारे हैं और मै कड़वी हूँ। अब मै भी ठकुरसोहाती कहा करूँगी। नही तो दिन रात मौन रहूँगी।

व्याख्या : मै सच्ची कहती हूँ तो घरफोरी समझी जाती हूँ। जो झूठी झूठी बातो को सच्ची बना बनाकर कहती है तुम्हारी हाँ में हाँ मिलाती हैं : राम बहुत अच्छे हैं। सीता बड़ी अच्छी है। महाराज तुम्हे ही मानते हैं। इत्यादि बाते कहे वे ही तुम्हे प्रिय हैं। मै सच्ची बातें कहती हूँ इसलिए मै अप्रिय हूँ।

अभी तक तो मै ठकुरसोहाती नही कहती थी। पर अब कहनी पड़ी। यदि खरा कहने का स्वभाव छोड़ते न बनेगा तो दिन रात मौन रहूँगी। अब समझ लिया कि इस दरबार मे सच्चे का गुजर नही है और ठिकाना मुझे दूसरा है नही। अत: सिवा इस भाँति आचरण किये अन्य उपाय नही है : कैकेयी के प्रिय : विप्र वधू कुल मान्य जठेरी : पर ठकुरसोहाती कहने का दोष लगाती है। जिससे उन लोगो की कही सुनी बातो से रानी का चित्त हटकर उसी की बातो पर विश्वास करें।

करि कुरूप बिधि परबस कीन्हा। बवा सो लुनिअ लहिअ जो दीन्हा ॥
कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाड़ि अब होब कि रानी ॥३॥

अर्थ : कुरूप बनाकर ब्रह्मा ने मुझे परतन्त्र कर दिया। जो बोया है वही

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



काटना है। जो दिया है वही मिलना है। कोई भी राजा हो मेरी क्या हानि है। मैं तो चेरी छोड़कर अब क्या रानी होऊँगी।

व्याख्या काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि का उत्तर देती है कि ब्रह्मा ने कुरूप बना दिया। तभी न गुलामी करती हूँ। भाव यह कि यदि ब्रह्मा रूपवती बनाये होते तो मैं भी रानी हुई होती। दासी क्यों होती ? करै जो कर्म पाव फल सोई। मैंने खोटे कर्म किये है। उन्ही का परिणाम भोग रही हूँ। जो जैसा बोता है उसे वैसा ही फल मिलता है। जो देता है वही पाता है। न जाने कौन पाप किया जो दासी हुई। अब ठकुरसोहती झूठी बातें कहकर अपना परलोक नही बिगाड़ूँगी। तिस पर मेरा कोई हानि लाभ नही है। चाहे कोई राजा हो। इस समय भी चेरी हूँ। दूसरा राजा होगा तब भी चेरी ही रहूँगी। मेरा कोई स्वार्थ नही है। अब कहने का भाव यह कि इस अवस्था मे मुझे तो रानी होना नही है. भाव यह कि हानि तो उसे है जो रानी से चेरी हुआ चाहती है। यह प्रान ते अधिक राम प्रिय मोरे का उत्तर है।

जारइ जोगु सुभाउ हमारा। अनभल देखि न जाइ तुम्हारा ॥
ता तें कछुक बात अनुसारी। छमिअ देबि बड़ चूक हमारी ॥४॥

अर्थ · मेरा स्वभाव जलाने लायक है। मुझसे तुम्हारा बुरा देखा नही जाता। इसी से थोडी सी बात चलायी थी। सो मेरी बडी भारी चूक को देवी। क्षमा करो।

व्याख्या जिसका भला चाहा उसे अपना भला पसन्द नही है। लोग बुद्धि से काम लेते है। मेरा स्वभाव पड गया है कि मै ऐसे अवसर पर बुद्धि से काम नही ले सकती। अत· मेरा स्वभाव जलाने लायक है। मुझसे तुम्हारा अनभल देखते नही बनता। इसीलिए रोती हूँ, बिलखती हूँ। नही तो मेरा क्या बिगडता है। जन्म से तुम्हारा भला देखती आयी हूँ। सो स्वभाव पड गया भाव यह कि तुम्हारी सखियाँ तुम्हारा अनभल देख सकती हैं। इसलिए तुम्हारी सी बातें बोलती है।

जो थोडा कहा सो कहा। अब विशेष कहने मे भय है। मैं कहने कहाँ पायी। थोडी सी बात कहने मे तो जीभ निकाली जाने लगी। जो कहा वही चूक हुई। अब क्षमा कर दो। ऐसी चूक फिर न होगी।

दो. गूढ़ कपट प्रिय बचन सुनि, तीय अधरबुधि रानि।
सुर माया बस बैरिनिहि, सुहृद जानि पतिआनि ॥१६॥

अर्थ : गूढ कपट भरे हुए मीठे वचन सुनकर स्त्रियो की बुद्धि तो होठों पर ही होती है। रानी देवमाया के वश हो रही थी। अत बैरिन को मित्र मानकर विश्वास कर गयी।

व्याख्या : गूढ़ वाणी यथा : कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाड़ि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अब होब कि रानी। कपट युक्त वाणी यथा : कछुक बात अनुसारी। छमिअ देवि बड चूक हमारी। प्रिय वाणी यथा . अनभल देखि न जाइ तुम्हारा। ऐसी वाणी सुनकर रानी अपने निश्चय से हट गयी। स्त्रियो की बातें तो बुद्धिमानी की होती है। परन्तु धोखा जल्दी खा जाती है। महाराज भी कपट चतुर है। मीठी बाते करके तुम्हे ठगा करते हैं। इत्यादि बातें विश्वास के योग्य नही थी। पर कैकेयी ने धोखा खाया। तिसपर रानी देवमाया से मोहित हो रही थी। राम विमुख करनेवाली वैरिन मन्थरा को हितेच्छु समझकर विश्वास कर गयी। मन्थरा की बुद्धि शारदा ने फेरी और कैकेयी की बुद्धि को ब्रह्मा ने फेरा। यथा विधि वाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्ही बावरी। इसलिए रानी को सुरमाया बस बतला रहे हैं।

सादर पुनि पुनि पूँछति ओही। सबरी गान मृगी जनु मोही॥
तसि मति फिरी अहई जसि भाबी। रहसी चेरि घात जनु फाबी॥१॥

अर्थ · आदर के साथ बार बार उससे पूछती है। मानो शबरी के गाने पर मृगी मोहित हो गयी हो। जैसा होनहार है वैसी ही बुद्धि फिरी हुई है। चेरी · मन्थरा हर्षित हुई। मानो दाँव ठीक बैठ गया।

व्याख्या · पहिले भी पूछा था परन्तु अनादर से। यथा . का अनमनि हसि कह हँसि रानी। अब आदर के साथ पूछती है। बार बार पूछने का भाव यह कि मन्थरा उत्तर नही देती है : छमिअ देवि बड चूक हमारी कहकर चुप हो गयी। रानी ने पूछा : कारन मोहि सुनाउ। पर इस बात का उसने कुछ उत्तर नही दिया। अब रानी आदर के सहित बार बार पूछती है। वह फिर भी चुप है। कारण यह कि उसे तो घरफोड़नेवाली बात कहनी है। अति आग्रह से बिना पूछे ही वह देने से फिर बात उखड़ जायगी। इसलिए चुप है। रानी की समझ मे यह नही आरहा है कि रामजी के अभिषेक मे मेरा अनभल क्या है ? इसलिए बार बार पूछती है। मन्थरा ने कह दिया : रामहि छाड़ि कुसल केहि आजू। पूतु बिदेस न सोचु तुम्हारें। फिर भी यह बात मन मे ठीक बैठती नही। अथवा वचन तो मृदु हैं। पर उसमे कपट छिपा हुआ है।

शबर एक जङ्गली जाति है। उस जाति की स्त्री ऐसा गाना जानती है कि सुनकर मृगी मोहित हो जाती है और उसके निकट चली आती है। यहाँ शबरी मन्थरा है। वह : जिमि गवँ तकै लेउँ केहि भाँती। इस भावना को . कोउ नृप होउ हमहि का हानी कहकर छिपाती है। और अनभल देखि न जाइ तुम्हारा कहकर हितैषिता प्रकट करती है। यही उसका गाना है। इस पर रानी मृगी की भाँति मोहित है। उसके कपट को नही समझ रही है। मृगी की भाँति उसके सन्निकट चली आरही है। उसकी माया मे फँसा चाहती है।

देवता बुद्धि बिगाड़ देते हैं। सो ब्रह्मदेव बुद्धि के अधिष्ठात्री देवता हैं। भवितव्यता के अनुसार उन्होंने रानी की बुद्धि को पलट दिया है। वैरिन को सुहृद समझकर विश्वास कर रही है और उसके चुप रहने पर बार बार पूछती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



समझती है कि मेरे भय से नही बोल रही है। रानी की यह दशा देखकर मन्थरा प्रसन्न हो गयी कि मेरा घात तो बैठ गया। ऐसी ही परिस्थिति को वह उत्पन्न कर देना चाहती थी।

तुम्ह पूँछहु मै कहत डेराऊँ। धरेहु मोर घरफोरी नाउँ ॥
सजि प्रतीति बहुबिधि गढि छोली। अवध साढसाती तब बोली ॥२॥

अर्थ - तुम तो पूछती हो। पर मुझे कहते डर लगता है। मेरा नाम तुमने घरफोरी रख छोडा है। विश्वास जमाकर और बहुत कुछ गढकर और छोलकर तब अयोध्या की साढेसाती दशा मानो बोली।

व्याख्या - भाव यह कि मै बात वही कहूँगी। उसी का स्पष्टीकरण करूँगी। जो पहिले कहा था। और तुम उस बात को घर का फोडना मानती हो। इसी से मै कहने मे डरती हूँ। चरचा छेडते ही तो मेरा नाम घरफोरी रख दिया। मैं किस हिम्मत से मनोगत भाव को स्पष्ट करूँ।

पहिले उसने कैकेयी के मन मे अपना विश्वास जमाया और तब बहुत प्रकार से गढा और छोला। अपनी चित्तवृत्ति के अनुकूल रानी की मनोवृत्ति को बनाना गढना है और उदार भावनाओ को उनके मन से दूर करना ही छोलना है। इन कार्यों को भली भाँति समाप्त करके तब वह मुख्य विषय पर आयी। कवि उसको उपमा अयोध्या की साढेसाती शनैश्चरी दशा से देते है। यह दशा दु सह दु खदायिनी होती है। यथा समय साढसाती सरिस, नृपहि प्रजहि प्रतिकूल। रा प्र। पहिले सरस्वती को 'हरखि हृदय कोसल पुर आई। जनु ग्रहदसा दुसह दुखदाई' कहा था। अब मन्दमति मन्थरा के बोलने की उपमा अवध की साढेसाती दशा के बोलने से दे रहे हैं। मन्थरा को त्रिभङ्गी मूर्ति है और साढेसाती भी तीन अढैया की होती है।

प्रिय सिय रामु कहा तुम्ह रानी। रामहि तुम्ह प्रिय सो फुरि बानी ॥
रहा प्रथम अब ते दिन बीते। समउ फिरे रिपु होहि पिरीते ॥३॥

अर्थ रानी! तुमने पहिले कहा था कि सीता और राम तुम्हे प्रिय है और तुम राम को प्रिय हो। यह बात सच्ची है। परन्तु पहिले यह बात थी। अब वे दिन बदल गये। समय के पलटा खाने से अपने प्यारे भी शत्रु हो जाते हैं।

व्याख्या रानी की बडी आस्था है कि सीता और राम मुझे प्यारे है और मै उन्हे प्रिय हूँ। मैने परीक्षा करके देख लिया है। दूसरे के कहने से मै इसके विपरीत नही मान सकती। इसलिए मन्थरा उस बात को अङ्गीकार करती है कि यह बात ठीक है। परन्तु यह तो भूतकाल की बात है। तब तुम्हारा समय जमाना था। अब तो तुम्हारे वे दिन नही रह गये। तुम्हारी तो जड उखडा चाहती है। शासनाधिकार महाराज के हाथ से निकलकर राम के हाथ मे जाना चाहती है। जिस राम को प्राणो से प्रिय मान रही हो वे ही तुम्हारे शत्रु हो जायेंगे। जब तुम्हारा समय

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


था तब तुम्हारे प्रेमपात्र बनने म ही कुशल था। अत वे प्रिय बने हुए थे। पर अब तो उनकी आज्ञा चलेगी। महाराज की न चलेगी। तब वे तुम्हारी परवाह क्या करने लगे। तुम्हे अपनी आज्ञा म हस्तक्षेप करते देखकर तुम्हारे शत्रु हो जावगे। राम पर ही यह बात नही है। समय के पलटने पर अपने प्रिय ही शत्रु हो जाते हैं। यही ससार का नियम है। जबतक महाराज के हाथ मे शासन है तबतक तुम्हारा समय है। महाराज के हाथ से शासनाधिकार के निकलते ही तुम्हारा समय पलटा खा जायगा।

भानु कमल कुल पोषनि हारा। बिनु जर जारि करइ सोइ छारा ॥
जरि तुम्हारि चह सवति उखारी। रुँधहु करि उपाय बर बारी ॥४॥

अर्थ सूय कमलकुल को पोषण करनेवाला है। पर बिना जड का हो जाने से उसी को जलाकर छार कर देता है। तुम्हारी जड को तुम्हारी सौत उखाडना चाहती है। उसे उपाय के श्रेष्ठ बाड लगाकर रूँधो।

व्याख्या जड बनी रहन से ही सूर्य कमलकुल के पोषक है। जड उखडने पर वही शोषक हो जाते हैं। इसी भाति जबतक तुम्हारी जड बनी हुई है महाराज का शासन चल रहा है तबतक बराबर रामजी तुम्हारा प्रिय आचरण करते रहेगे। जिस दिन महाराज का शासनकाल समाप्त हुआ तुम्हारी जड उखड जायगी। उसी दिन स वही रामजी शोषक हो जावेंगे। रामजी भी सूर्यकुल के हैं। क्या अपने कुल की परम्परा छोड देगें ?

रामजी का युवराज होना और तुम्हारा जड उखडना एक बात है। अपने बेटे के हाथ शासनाधिकार दिलाकर तुम्हारी सौत कौसल्या तुम्हारी जड उखाडा चाहती है। अत अपनी जड की रक्षा करो। उसे उपाय की बाड लगाकर रूँधो। ऐसा उपाय करो कि तुम्हारी जड तक सौत की पहुँच न हो। अब विचारणीय यह है कि कैसा उपाय किया जाय कि तुम्हारा अधिकार अक्षुण्ण बना रहे और तुम्हारी सौत का प्रयत्न निष्फल हो।

दो तुम्हहि न सोचु सोहाग बल, निज बस जानहु राउ।
मन मलीन मुहु मीठ नृपु, राउर सरल सुभाउ ॥१७॥

अर्थ तुम्हे सोहाग के बल से सोच नही है। तुम जानती हो कि राजा मेरे वश म हैं। पर राजा मुँह के मीठे और मन के मलिन हैं और आपका स्वभाव सरल है।

व्याख्या तुम धोखे मे हो। तुम्हारे मन म सोहाग का बल है। इसीसे तुम्हे चिन्ता नही है सोहाग पति के प्रिय होने को कहते ह। तुम जानती हो कि महाराज मेरे वश म हैं। पर राजा किसी के मित्र नही होते राजा मित्र केन दृष्ट श्रुत वा। व तुम्हारे वश म नही हैं। पर जिसे सोहागबल नही है उसे चिन्ता है। यदि कहा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कि महाराज का व्यवहार इतना मधुर है। उसपर कहती हैं कि महाराज मिठबोल्ले है। मीठीमीठी बातें करते हैं। पर मन उनका मलिन है। आप नही लख सकती। क्योकि आपका स्वभाव सरल है। आपमे गम्भीरता नही है पहिला काम मन्थरा ने यह किया कि राजा पर से कैकेयी की आस्था के हटाने का प्रयत्न किया। क्योकि यदि ऐसा न हुआ तो उसके सारे प्रयत्न ही विफल हो जावेंगे। सरल स्वभाव कह कर रानी की प्रशसा करती है जिसमे विश्वास कर जाय। नही तो राजा का मलिन मन नही मानेगी।

चतुर गँभीर राम महतारी। बीचु पाइ निज बात सँवारी ॥
पठये भरतु भूप ननिऔरें। राम मातु मत जानव रौरें ॥१॥

अर्थ रामजी की माता चतुर और गम्भीर है। मौका पाकर अपनी बात सँवार ली। राजा ने जो भरत का ननिहाल भेज दिया है उसे आप जान रखिये कि रामजी की माता की सलाह से भेजा है।

व्याख्या रामजी की माता चतुर और गम्भीर हैं। उनकी बातो का मर्म मिलना कठिन है। वे राम की महतारी है। जब उन्होने देखा कि महाराज की इच्छा है कि राज्यभार किसी पुत्र को सौप दे तो उन्होने अपना काम सँवार लिया। रामजी के राजतिलक की तैयारी होने लगी। तुम तो सरल हो। न तुम्हारे मे चतुराई है न गम्भीरता है। तुम्हे अपने बेटे की चिन्ता नही है। आज भरत होते तो यह कुछ भी क्या होने पाता। इस बात को महाराज समझते है। इसलिए भरत को ननिहाल भेज दिया। यह रामजी की माता का मन्त्र है कि भरत को ननिहाल भेज दो। तब रामजी के तिलक मे कोई कण्टक न रह जायेगा।

सेवहि सकल सवति मोहि नीके। गरबित भरत मातु बल पी के ॥
सालु तुम्हार कौसिलहि माई। कपट चतुर नहि होइ जनाई ॥२॥

अर्थ सब सौत तो मेरी भलीभाँति सेवा करती है। पर भरत की माता पति के बल से अभिमान करती है। इस बात का तुम्हारी ओर से कौसल्या को बड़ा दुख है। पर कपट मे चतुर हैं। इसलिए प्रकट नही होने देती।

व्याख्या पट्टाभिषिक्ता महिषी होने के कारण सब सौते कौसल्याजी की सेवा टहल करती हैं। एक तुम हाजिरी नही बजाती। तुम्हे पति की प्यारी होने का बल है। इसलिए तुम उन्हे नही गिनती। इस बात का कौसल्या को साल है जिसे साल पड जाती है उसे ऐसा कष्ट होता है कि श्वास नही लिया जाता। यदि कहो कि उनका व्यवहार तो बडे प्रेम का है। इसपर कहती है कि कौसल्या कपट मे चतुर है। तुम्हारे समान सीधी बेवकूफ नही हैं। अपने साल को प्रकट नही होने देती। अत उनको तुमसे बुरा मानने के लिए यथेष्ट कारण है। उनका बेटा राजा हो तब यह साल मिटे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


राजहिं तुम्ह पर प्रेमु बिसेषी। सवति सुभाउ सकइ नहिं देखी ॥
रचि प्रपंचु भूपहि अपनाई। राम तिलक हित लगन धराई ॥३॥

अर्थ : राजा का तुम पर अधिक प्रेम है। सौत का स्वभाव है। इसे वे देख नही सकती। अतः प्रपञ्च रचकर राजा को अपने हाथ में कर लिया और रामजी के तिलक के लिए लग्न निश्चय करा लिया।

व्याख्या : राजा का प्रेम तो सब पर है। केवल तुम्हारे पर ही नहीं है। हाँ तुम्हारे ऊपर अधिक प्रेम है। वह प्रेमाधिक्य सौत से देखा नही जाता। यह स्त्रीजाति का स्वभाव है। कौसल्या को मै दोष नही देती। कौसल्या स्त्री चरित्र मे पण्डित है। राजा उनके हाथ मे नही थे। पर माया रचकर राजा को हाथ मे कर लिया। अत. रामजी के राजतिलक के लिए लग्न निश्चय करा लिया। तुम्हे पता भी नही।

यहु कुल उचित राम कहुँ टीका। सबहि सुहाइ मोहि सुठि नीका ॥
आगिल बात समुझि डरु मोही। देउ दैउ फिरि सो फलु ओही ॥४॥

अर्थ · इस कुल मे रामजी को टीका होना उचित है। सबको अच्छा लग रहा है और मेरे लिए तो बहुत अच्छा है। अगली बात समझकर मुझे डर हो रहा है। पर दैव वह फल लौटकर उन्ही को दे।

व्याख्या : यदि कहो कि यह सब बात सही। पर जो हो रहा है वह तो उचित ही हो रहा है। जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। यह दिनकर कुल रीति सोहाई। और सबको प्रिय हैं। इसपर कहती है कि मुझे तो बहुत ही अच्छा है : जिसमे यह न समझें कि रामतिलक से इसे दुःख है। तुम्हारा जिसपर प्रेम है। उसी को राजतिलक मिल रहा है। इसलिए मेरे सर्वथा अनुकूल है। पर भविष्य देखकर मुझे डर हो रहा है। टीका होने के बाद तुम्हारी क्या दशा होगी। उसे मैं सोचती हूँ। भगवान् करे कि यह दशा उसी की हो जिसने यह माया रची है : ऐसा कहकर कैकेयी को उसके ऊपर बडी भारी विपत्ति आने का डर दिखा रही है।

दो. रचि पचि कोटिक कुटिलपन, कीन्हेसि कपट प्रबोधु।
कहिसि कथा सतु सवति कै, जेहि बिधि बाढ बिरोधु ॥१८॥

अर्थ : करोडो कुटिलताओ को रचकर और पच्चीकारी करके कपट का ज्ञान कराया और सौ सौतो की कथा कही। जिस भाँति विरोध बढे।

व्याख्या : बहुत सी नयी झूठी झूठी कुटिलता की बातें गढी। कुछ सच्ची बातो मे झूठ की पच्चीकारी की। उस कपट से अपरिचित रानी को कपट कराया। यथा ·

कहा उचित लै कीजिये जौ अपनो संहार।
बढत नहाए गंगहू ज्वर को वेग अपार ॥१॥

ankurnagpal108@gmail.com



परमारथ मुखन कहत हिय स्वारथ भरिपूर।
ऐसे के मुह दीजिये भरिभरि मूठी धूर ।।२।।
चहत राज निजपूत हित कहत ताहि कुल धर्म।
किमि समुझै तुमसे सुहृद कुटिल सौत को मर्म ।।३।।
पति करते निज सौत को जो होवै अपकार।
तौ याते बढि आन नहिं आनँद एहि ससार ।।४।।
कौशल्या सोई चहत करन आज खिलवार।
नृपके करते ही तुम्हे बोरन को मझधार ।।५।।
कपट चाल कोटिन चलत लखिन सकहु तुम एक।
निज आँखिन्ह तिनको लखो अजहूँ सकहु तुम छेक ।।६।।
मुख मीठी केतिक कहैं, करैं वहिन सी प्रीति।
कठिन वैर हिय म धरै, सदा सौत की रीति ।।७।।
स्वार्थमुत्सृज्य यो दम्भी सत्य ब्रूते सुमन्दधी।
स स्वार्थाद् भ्रश्यते नून युधिष्ठिर इवापर ।।

जो दम्भी मतिमन्द स्वार्थ छोडकर सच बोलता है वह निश्चय स्वार्थ से हाथ धोता है। प त । तत्र सौ[1] सौता की कथा ऐसी विधि से कही जिसमे विरोध बढे। कोटि शब्द का अर्थ प्रकार भी होता है। अत यह अर्थ भी किया जा सकता है कि अनेक प्रकार के कुटिलपन की बातें गढी। ऐसा अर्थ करने से कोटिक शब्द मे अर्थवाद न मानना पडेगा।

भावी बस प्रतीति उर आई। पूँछ रानि पुनि सपथ देवाई ।।
का पूँछहु तुम्ह अबहु न जाना। निज हित अनहित पसु पहिचाना ।।१।।

अर्थ होनहार के वश होने से मन म विश्वास हो गया। रानी शपथ दिलाकर फिर पूछने लगी। मन्थरा ने कहा क्या पूछती हो। तुमने अब भी नही समझा। अपना हित अनहित तो पशु भी पहचानते है।

व्याख्या बात मन म बैठने लायक नही थी। महाराज दशरथ को मलिन मन और रानी कौसल्या को कपट चतुर कौन मानेगा ? पर होनहार बुरा था। रानी के मन मे विश्वास हो गया। वह फिर शपथ देकर पूछने लगी कि वह आगिल काज कौन है। जिसे समझकर तुझे डर लग रहा है। मन्थरा बोली कि ऐसी बात पूछी जाती है जो समझ म न आती हो। यह बात तो अत्यन्त स्पष्ट है। अपना हित कौन है और अनहित कौन है। इतनी बात तो पशु भी प्रमाण द्वारा जान लेता

---

१ राजा चित्रकेतु को एक रानी से एक लडका हुआ। सौ रानियो म से और किसी को नही हुआ। सो शष रानियो ने सौतिया डाह के कारण उस लडके को विष देकर मार डाला। क्योकि समय पाकर वही राजा होता और उसी की माँ राजमाता होती। मन्थरा सौतिया डाह का पुराण स सिद्ध कर रही है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है। हाथ में हरी घास लिये हुए पुचकारते हुए सज्जन की ओर पशु दौड़े आते है और दण्ड हाथ मे लिये डाँटते हुए क्रोधी को देखकर भाग खड़े होते है। प्रमाण से ही बात जानी जाती है। यहाँ स्पष्ट बात है कि यदि उन लोगों को हृदय में कपट नहीं है और रामजी के तिलक से आपके अनिष्ट की भावना नहीं है। तो आप से अभिषेक की बात छिपायी क्यों गयी। छोटी छोटी बात महाराज आप से कह दिया करते है और इतनी बड़ी बात जिसमें राज्य शासन मे उलट फेर हो उसे आपसे नही कहा।

भयेउ पाख दिन सजत समाजू। तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू॥
खाइअ पहिरिअ राज तुम्हारें। सत्य कहे नहिं दोषु हमारें॥२॥

अर्थ : पन्द्रह दिन समाज सजते हो गया और तुमने आज समाचार मुझसे पाया। तुम्हारे राज्य में खाती हूँ और पहनती हूँ। सत्य कहने से मुझे दोष नहीं है।

व्याख्या · समाज सजने मे इतनी तत्परता से काम लिया गया है कि देखने से यही मालूम होता है कि इतनी तैयारी के करने मे पन्द्रह दिन लगे होंगे। अत मन्थरा को कहने का मौका मिल गया कि पन्द्रह दिन से तैयारी हो रही है और तुम्हे पता नही है। महाराज ने तुमसे चरचा तक नहीं की। उचित तो यह था कि मै तुमसे सुनती कि रामजी को तिलक होनेवाला है। सो तुम चौदह दिन की तैयारी के बाद मुझसे रामजी के तिलक का समाचार आज सुन रही हो मन्थरा वस्तु स्थिति पर पर्दा डाल रही है। आज ही प्रस्ताव हुआ है। आज ही तैयारी हुई है। इस बात का परिज्ञान होने से महाराज दशरथ और रानी कौसल्या निर्दोष सिद्ध हो जावेगी। इसलिए उसने पन्द्रह दिन से तैयारी होने की बात गढ ली।

अब कहती है कि तुमसे जो किसी ने चरचा नहीं की इसका कारण है। राज्य की गुप्त बात के प्रकाश करने मे दोष है। किसी को क्या पड़ी है कि इस बात की तुम से चरचा करके महाराज तथा रानी कौसल्या का कोपभाजन बने। पर मै तो तुम्हारे राज मे खाती पहनती हूँ। मैं दूसरे को क्या जानूँ। अतः मुझे सच्ची बात कह देने मे दोष नहीं है।

जौं असत्य कछु कहब बनाई। तौ बिधि देइहि हमहि सजाई॥
रामहि तिलकु कालि जौ भयेऊ। तुम्ह कहुँ बिपति बीजु बिधि बयऊ॥३॥

अर्थ . जो मै कुछ झूठ बनाकर कहूँगी तो मुझे विधाता दण्ड देंगे। यदि कल रामजी को तिलक हुआ तो तुम्हारे लिए ब्रह्मा ने विपत्ति का बीज बो दिया।

व्याख्या : पन्द्रह दिन से समाज सजने की बात बिल्कुल झूठ है और उसी पर इसके : मन्थरा का सब मायाजाल की रचना खडी है। अतः उसे शपथ लेकर दृढ कर रही है। कहती है कि मुझे परलोक का भय है। यदि मै आपसे कुछ झूठ बनाकर कहूँगी तो मुझे परमात्मा के यहाँ से दण्ड मिलेगा। अतः मै सत्य कहती हूँ और लोग राजा का खाते पीते हैं वे कभी सच : सत्य न कहेंगे।

मन्दिर श्री ... प्रतिष्ठान 4365
(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मन्थरा ने पहले से ही मन मे वह विधि ठीक कर रक्खी है। जिससे रात में ही बात बिगड जायँ। अतः कहती है कि कल जो किसी भाँति रामजी को राजतिलक हो गया तो यह समझो कि ब्रह्मा ने तुम्हारे लिए विपत्ति का बीज बो दिया। ब्रह्मा का बोया बीज कभी निष्फल नही जा सकता। बीज जिस समय बोया जाता है उस समय तो वह मिट्टी से ढक जाता है पर काल पाकर वह फल देता है। इसी भाँति राजतिलक के समय तुम्हे विपत्ति का पता न लगेगा। फल तो उसके बाद होगा।

रेख खँचाइ कहउँ बलु भाखी। भामिनि भइहु दूध कइ माखी॥
जौ सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई॥४॥

अर्थ : मैं रेखा खीचकर बलपूर्वक कहती हूँ कि सुन्दरि! तुम दूध की मक्खी हो गयी। यदि बेटे के साथ सेवकाई करोगी तो घर मे रहने पाओगी। नही तो दूसरा उपाय घर रहने का न रह जायगा।

व्याख्या : अपने कथन की सचाई के प्रभाव के लिए रेखा खीची जाती है। यथा : पूँछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। भरत भुआल होहिं यहु साँची। और फल के निश्चय के लिए बल का कथन किया जाता है। यथा : चला प्रभजन सुत बल भाखी। सो मन्थरा रेखा खीचकर और बल कथन पूर्वक कहती है कि तुम दूध की मक्खी हुआ चाहती हो। राजकाज मे हस्तक्षेप करने का तुम्हारा स्वभाव है। महाराज के शासनकाल मे तो तुम्हारा हस्तक्षेप चल जाता है। पर राम के राज सुखरूपी दूध मे जहाँ तुमने छेडछाड की तहाँ मक्खी की भाँति निकालकर बाहर फेंक दी जाओगी। तुम्हारी बात नही मानी जायगी। रानी होकर दासी की भाँति बेटे के सहित सेवा करनी होगी। न करोगी तो घर मे रहने न पाओगी।

दो० कद्रूँ बिनतहि दीन्ह दुखु, तुम्हहि कौसिलाँ देब।
भरतु बंदि गृह सेइहहि, लखनु रामु के नेव[1]॥१९॥

अर्थ : कद्रू ने विनता को दु:ख दिया। तुम्हे कौसल्या देंगी। भरत वन्दीगृह मे रक्खे जावेंगे और लक्ष्मण तो रामजी के हिस्से हैं।

व्याख्या : कद्रू : नाग की माता और विनता गरुड की माता ये दानो सौत थी। विनता ने कहा कि सूर्य के घोडे की पूँछ श्वेत होती है। कद्रू ने कहा कि बाजी लगाओ। निश्चय पूँछ काली होती है। बाजी लगी कि जो हारे वह दासी होकर रहे। कद्रू ने अपने पुत्रो को आज्ञा दी कि जाकर सूर्य के घोडे की पूँछ मे लिपट जायँ। वही हुआ। पूँछ काली दिखाई पडी। विनता को कद्रू की दासी बनकर बहुत दिन रहना पडा। जब गरुड को देखकर सर्प भागे तब वे दासत्व मे विनिर्मुक्त हुई।

---

१. नेम का तद्भव रूप नेव है। प्राकृत के नियमानुसार 'म' का 'व' हो जाता है। नेम का अर्थ भाग : हिस्सा है। मोनुनासिको वोवा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इतना बड़ा दुःख विनता को कद्रू ने केवल सौत होने के कारण से दिया। तुम्हें भी कौसल्या दासी बनाकर रक्खेगी। भरत बन्दीगृह में बन्द होंगे। राजविद्रोह का सन्देह उनपर किया जायगा। लक्ष्मण तो राम के अंग हिस्से में ही ठहरे। यही होना है। इसी बात को मैं डरती हूँ। मोनुनामिको वोवा।

केकय सुता सुनत कटु बानी। कहि न सकइ कछु सहमि सुखानी ॥
तन पसेउ कदली जिमि काँपी। कुबरी दसन जीभ तब चाँपी ॥१॥

अर्थ : राजा केकय की बेटी कड़ुई बाणी सुनकर कुछ कह न सकी। डरकर सूख गयी। शरीर में पसीना आगया। केले की भाँति काँपने लगी। तब कूबरी ने दाँतो तले जीभ दबायी।

व्याख्या : रानी कैकेयी राजा की बेटी है। भरतजी का कारागार में बन्द होना सुनकर सहम गयी। हार्दिक आतङ्क का सद्य फल होता है। भय से सूख सी गयी। कहि न सकइ कछु से वचन की दशा कही। सहमि सुखानी से मन की दशा कही। तन पसेउ कदली जिमि काँपी से तन की दशा कही। कैकेयी को काँपते देखकर समझी कि मूर्च्छित हुआ चाहती है। तब उसने दाँत तले जीभ दबायी। इस मुद्रा से निषेध करती है कि क्या कर रही हो? इससे तो सब बात बिगड़ जायगी। मन्थरा डरी कि यदि कही यह मूर्च्छित हुई तो सब भेद खुल जायगा और फिर तो मैं नहीं बच सकती।

कहि कहि कोटिक कपट कहानी। धीरजु¹ धरेहु प्रबोधिसि रानी ॥
फिरा करमु प्रिय लागि कुचाली। बकिहि सराहइ मानि मराली ॥२॥

अर्थ : भाँति भाँति की कपट कहानियाँ कहकर उसने रानी को समझाया कि धीरज धरो। भाग्य ने पलटा खाया। कुचाल अच्छा लगा। बगली को हंसिनी मानकर सराहने लगी।

व्याख्या : मन्थरा जानती है कि रानी कैकेयी कपट करने पर शीघ्र राजी न होगी। काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि कहकर पहिले ही इसने मुझ पर कुटिल कुचाली होने की आशङ्का की थी। कुटिल कुचाल को यह बुरा समझती है। पर इसे इसी रास्ते पर उतारना है। अतः समझाती है कि उपाय¹ से सब सधेगा। अभी उपाय नहीं कहा। एक एक भूमिका ठीक करके एक एक बात कहती है। कपट करने पर राजी हो तो उपाय यह है। नहीं तो मैं फाँसी पड़ जाऊँगी। जब यही जीभ खिंचवाती थी तो दूसरे कौन सी दुर्दशा करेंगे क्या ठिकाना? अतः धीरज

---

१ यथा विपति माँझ धीरज धरै, दृढ ह्वै करै उपाय।
पुन्यारथ ताको निरखि, दैवहु जाय डराय ॥१॥
उलटि परै परपञ्च सब, बिगरी हू बनि जाय।
धीरज धरि उर सजग ह्वै, जो कोउ करै उपाय ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



देती है। यहाँ पुराण का उदाहरण नही मिला तो कहानियाँ कहने लगी जिनमे कपट से काम सधा हो। ये कहानियाँ यदि इसके गले उतर जायँ तो पता चल जायगा कि अब यह कपट करने पर राजी हो गयी। अत कपट की अनेकानेक कहानियाँ सुनायी।

कैकेयी भी कहानी सुनकर बकी को मराली मान गयी। ऐसी निष्कपट को कपट अच्छा लगा। भाग्य फिर गया। कपट से चिढनेवाली कपट पर रीझने लगी। बडे ध्यान से कहानी सुनने लगी। जब कपट अच्छा लगने लगे तो समझना चाहिए कि भाग्य फिरा है। कूबरी अति खल थी। सो उसे क्षीर नीर को विवेक करनेवाली हसी मान लिया। लगी कुबरी की प्रशसा करने।

सुनु मथरा बात फुरि तोरी। दहिन आँखि नित फरकइ मोरी ॥
दिन प्रति देखहुँ राति कुसपने। कहउँ न तोहि मोह बस अपने ॥३॥

अर्थ मन्थरा सुन ! तेरी बात सच है। मेरी दाहिनी आँख नित्य फडक रही है। प्रतिदिन रात को मैं बुरे बुरे सपने देखती हूँ और अपनी बेवकूफी से तुझे नही बतलाती।

व्याख्या स्त्री का दाहिना अङ्ग फडकना अपशकुन है। सो उसके फल को कुबरी की मन्त्रणा के अनुकूल समझने लगी। राम जानकी ने अपने सगुन का ठीक अर्थ लगाया। यह अपने अपशकुन को ठीक नही पढ सकी। कहने लगी कि मन्थरा ! तेरी बात ठीक है मेरी नही। सचमुच राम के तिलक से मुझ पर विपत्ति का पहाड टूट पडेगा।

होनहार खराब होने ही से मैं बुरे सपने देखती थी। तुझसे कहे होती तो तू तभी से कोई न कोई उपाय सोचती। मेरी मूर्खता कि मैने तुझसे नही कहा। तू मेरी ऐसा हित चाहनेवाली बुद्धिमती है मुझे तुझसे कहना चाहिए था। सो दूसरो से कहा तुझसे नही। बुरे सपने का फल अनिष्ट समाचार श्रवण है। *यथा लखन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई।*

काह करौं सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानउँ काऊ ॥४॥

दो अपने चलत न आजु लगि, अनभल काहु क कीन्ह।
केहि अघ एकहि बार मोहि, दैअँ दुसह दुखु दीन्ह ॥२०॥

---

जरौ शील शुभ गति सुजस, जौ बिगरै निज काज।
राज सँभारेहि पै बनै, कीरति सुकृत समाज ॥३॥
कियो घोर सग्राम मधु कैटभ जीति न जाय।
रिपुबध मार्‍यौ धर्म हरि, शील सकोच बिहाय ॥४॥
अगणित लागन की बनी, बिगरी किये उपाय।
यातें करहु उपाय तुम, सब विधि हृदय दृढाय ॥५॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ क्या कहूँ सखी ! मेरा स्वभाव सीधा है। हित अनहित कुछ समझ में नही आता। अपने चलते तो आजतक मैंने किसी का बुरा नही किया। नही जानती कि किस पाप से दैव ने एक वारगी मुझे दु सह दु ख दिया।

व्याख्या जो जो बात मन्थरा ने कही हैं। वे सब गले उतर गयीं। उसे अब सखी का पद मिला। उसने कहा था राउर सरल सुभाउ। हित अनहित पशु पसु जाना। उसे ठीक समझते हुए अपने को सूधी मान लिया। यह भी मान गयी कि मै हित अनहित नही पहिचानती। चेरी के कहने से संसार दूसरा दिखाई पडने लगा। जो मित्र थे वे शत्रु दिखाई देने लगे और परम शत्रु चेरी हितचिन्तक मालूम होने लगी।

रानी कहती है कि मुझे शत्रु मित्र की पहिचान नही थी। यह बात ठीक है। पर जहाँ तक मेरा वस चला मैंने किसी का बुरा नही किया। और अपकार करना ही बडा भारी पाप है। तब किस पाप से मै दासी हो रही हूँ और बेटा बन्दी हो रहा है। मैने सौत भाव नही रक्खा। निर्दोष को दण्ड मिल रहा है। पहिले से कभी कुछ दण्ड मिला होता तो सहने की शक्ति भी होती। एक वारगी इतना बडा दण्ड तो सर्वथा असह्य है।

नैहर जनमु भरव वरु जाई। जिअत न करवि सवति सेवकाई॥
अरि वस दैउ जिआवत जाही। मरनु नीक तेहि जीवन चाही॥१॥

अर्थ . नैहर मैके मे जाकर बल्कि जिन्दगी बिता दूँगी। परन्तु जीते जी सौत की गुलामी न करूँगी। जिसे दैव शत्रु के वश में रखकर जिलाता है उसके जीने से मरना अच्छा।

व्याख्या नैहर मे अपना कोई हक नही होता। इसलिए नैहर मे जीवन यापन करने को स्त्रियाँ वडे हेय दृष्टि से देखती है। रानी कहती है कि मुझे मैके जाकर जीवन यापन करना स्वीकार है। पर सौत की दासी बनकर यहाँ मै नही रह सकती। मन्थरा ने समझा दिया है कि जौ सुत सहित करहु सेवकाई। तौ घर रहहु न आन उपाई। इसी पर रानी कह रही है कि मै घर न रहूँगी। नैहर चली जाऊँगी और वही जीवन का शेष काल व्यतीत कर दूँगी।

सौत शत्रु होती है। तुम्हारा कहना ठीक है। शत्रु के वश मे रहकर कौन जीना चाहेगा। पर दैव पर किसी का चारा नही है। यदि दैववश किसी को जीना पडे तो उससे मरना अच्छा। परवश होकर जीना अच्छा नही। पदे पदे अपमान सहना पडता है। फिर शत्रु के वश मे रहकर जीना कौन चाहेगा ?

दीन वचन कह बहुविधि रानी। सुनि कुवरी तिय माया ठानी॥
अस कस कहहु मानि मन ऊना। सुखु सोहागु तुम्ह कहुँ दिन दूना॥२॥

अर्थ : बहुत प्रकार से रानी दीन वचन कहने लगी। सुनकर कुवरी ने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



त्रियाचरित्र फैलाया। बोली जी को छोटा करके ऐसा क्या कह रही हो। तुम्हे सुख सोहाग नित्य दूना है।

व्याख्या : रानी होकर दीन वचन कह रही है। पति का भरोसा टूट गया। पुत्र का कुशल नही दिखायी पड रहा है। रानी अपार चिन्ता मे पडी है कि क्या करूँ। कहाँ जाऊँ। मेरा कोई नही है। सब लोग कौशल्या की ओर मिले हुए हैं। एक मन्थरा ही मेरी शुभचिन्तक है। उस बिचारी का किया क्या होगा ? मन्थरा ने समझ लिया कि अब यह दीन हो गयी। अब यह सब कुछ करेगी। पहिले उसने रानी को अथाह मे डाल दिया। अब सहारा देने के लिए त्रियाचरित्र फैलाया। कहने लगी कि ऐसी बातें न करो। अपने जी को छोटा क्यो करती हो ? तुम्हारा सुख और सोहाग नित्य दूना होता जायगा। अभी तो तुम्हारे पति राजा हैं। जब पुत्र युवराज होगा तब सुख सोहाग दूना हो जायगा।

अथाह मे पडा हुआ जीव तिनके का सहारा पकडता है और उसे छोडना नही चाहता। इसलिए अब वह रानी को सहारा पकडा रही है। नैहर जनम भरब बरु जाई का उत्तर देती है अस कस कहहु मानि मन ऊना। और जिअत न करबि सवति सेवकाई का उत्तर सुखु सोहाग तुम कहुँ दिन दूना कहकर देती है।

जेहिं राउर अति अनभल ताका। सोइ पाइहि येहु फलु परिपाका ॥
जबते कुमत सुना मै स्वामिनि। भूख न बासर नीद न जामिनि ॥३॥

अर्थ जिसने आपका बुरा ताका है। उसी को यह पका हुआ फल मिलेगा। जब से मैंने हे स्वामिनि ! यह कुबुद्धि सुनी तब से मुझे न दिन को भूख लगती है और न रात को नीद लगती है।

व्याख्या अब अरि बस दैउ जिआवहिं जाही का उत्तर देती है कि तुम्हारे अनभल ताकनेवाले की ही उसके कर्मफल रूप मे यह दशा होगी। उसकी पेंच उलटी पड जायगी। मैं उस उद्योग म लगी हूँ। मुझे बडी चिन्ता है। जब से मैंने ये सब बातें सुनी तब से मारे चिन्ता के न दिन को भूख लगती है और न रात को नीद लगती है। ऐसा कहकर फिर उसी भावना को दृढ कर रही है पन्द्रह दिन तो समाज सजते हुआ। अयोध्या भर मे यह बात प्रख्यात है। कई दिन तो मुझे सुने हुआ। तुमसे बात छिपायी गयी। पर मेरे कान मे भनक पड गयी तभी से म सचेष्ट हूँ। लाचार होकर आज कहना ही पडा।

पूछेउँ गुनिन्ह रेख तिन्ह खाँची। भरत भुआल होहि यहु साँची ॥
भामिनि करहु त कहउँ उपाऊ। हइ तुम्हरी सेवा बस राऊ ॥४॥

अर्थ मैंने गुनी सज्ञानियो से पूछा तो उन्होने रेखा खीच दी कि भरत राजा होंगे। यह बात निश्चय है। हे भामिनि ! यदि तुम करो तो मैं उपाय बतलाऊँ। राजा तुम्हारी सेवा के वश मे है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या मैंने सुनकर यद्यपि उसी समय तुमसे नही कहा । पर हाथ पर हाथ रखकर बैठी नही रही । गुनी सज्ञानियो के यहाँ गयी । उन्होने विचार किया । तुम्हारा होनहार भला है । उन्होने रेखा खीचकर कहा कि भरत राजा होगे । यह बात सत्य है । अब उद्योग मात्र की देरी है । भरत के युवराज होने की ओर कैकेयी का ध्यान भी नही था । जब मन्थरा ने देख लिया कि अब कैकेयी को भरत का युवराज होना इष्ट है । तब कहती है तुम मेरी बात सुन लोगी पर करोगी नही । मुझसे व्यर्थ क्या पूछती हो ? यदि मैंने कह भी दिया और तुमने न किया तो मेरी कुशल नही है । अत वचन दो तो कहूँ । कारण यह कि मेरा वचन तुम्हारे सेवाधर्म के प्रतिकूल पडेगा । तुम सेवाधर्म म स्थित हो । पर राजा तुम्हारी सेवा के वश म हैं । तुम्हारे ही किये सब होगा ।

दो० परउँ कूप तुअ बचन पर, सकौं पूत पति त्यागि ।
कहसि मोर दुखु देखि बड, कस न करब हित लागि ॥२१॥

अर्थ मैं तेरे कहने पर कूएँ म कूद सकती हूँ । पति पुत्र का त्याग कर सकती हूँ । तू मेरा बडा भारी दुख देखकर कह रही है । मैं कल्याण के लिए क्यो न करूँगी ?

व्याख्या भाव यह कि तुम्हारे कहने पर मैं लोक परलोक किसी का विचार न करूँगी । कूप म कूदने स परलोक का नाश कहा । पूत पति त्याग से इस लोक का नाश कहा । जो विपत्ति मेरे पर आया चाहती है उसके सामने लोक परलोक कुछ नही है । प्राण भी कुछ नही है । तू मेरी परमहित है । तेरा कहा अवश्य करूँगी । रानी कैकयी ने मन्थरा को वचन दे दिया । महाराज दशरथ की योग्या है । कभी वचन न छोडेगी ।

कुबरी करि कबुली कैकेई । कपट छुरी उर पाहन टेई ॥
लखइ न रानि निकट दुखु कैसे । चरइ हरित तिन बलिपसु जैसे ॥१॥

अर्थ कुबरी ने कैकेयी से कबूल कराके कपटरूपी छूरी को हृदयरूपी पत्थर पर घिसकर शान दिया । रानी अपने पास आये हुए दुख को इस भाँति नही लख रही है । जैसे बलिदान का पशु हरी घास चरता है ।

व्याख्या कुबरी को बडा भारी डर था कि मेरे कहने पर यदि यह नट गयी तो मेरी दुर्दशा का अन्त नही है । अत उसने पहिले ही कैकेयी स कबूल करा लिया कि तेरे कहने पर कूएँ मे कूद पडूँगी । पति पुत्र को भी छोड दूँगी । तब कपट की छूरी को अपने पत्थर जसे कलेजे पर रगडकर शान दिया । अर्थात् उसकी धार तीखी बनायी । जिसम खूब वार कर सके । क्योकि अब वार किया ही चाहती है । यदि पत्थर सा कलेजा न हो तो कपट की छूरी ठीक काट नही करती अपने ऊपर विश्वास करनेवाले पर नही चल सकती ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उसने रानी को बलिदान का पशु बनाया। बलिदान के पशु के आगे हरी हरी घास रख देते हैं। वह प्रसन्न होकर चरता है। उसे पता नही कि उस पर प्राणघातक चोट होनेवाली है। वह घास रखनेवाले को हितैषी समझता है। उसके चोट करने की तैयारी छूरी के पत्थर पर रगडकर शान देने को नही देखता। इसी भाँति रानी कुबरी की दी हुई आशा पर भूली हुई है कि मेरा सुख सोहाग अब दूना हुआ चाहता है। यह नही समझती है कि कुबरी अपने स्वार्थ के लिए उसका सर्वनाश किया चाहती है। रानी के न लखने के लिए उसने आड खडा कर दिया है कोउ नृप होउ हमहि का हानी। चेरि छाडि अब होब कि रानी। रानी समझती है कि वस्तुत इसे लाभ हानि नही है। यह मेरे हित के लिए सब कर रही है। उसके सूक्ष्म स्वार्थ पर रानी की दृष्टि नही जा रही है।

सुनत बात मृदु अत कठोरी। देति मनहुँ मधु माहुर घोरी॥
कहइ चेरि सुधि अहइ कि नाही। स्वामिनि कहिहु कथा मोहि पाही॥२॥

अर्थ बात तो मुलायम कहती है पर परिणाम उसका कठोर है। जैसे शहद मे विष घोलकर दे रही हो। चेरी बोली कि तुम्हे याद हो या न हो तुमने मुझसे एक कथा कही थी।

व्याख्या अब दूसरी उपमा देते हैं। पहिली से काम नही चलता। छूरी के आघात से तो उसी समय घोर वेदना होती है। परन्तु कुबरी का आघात तो वैसा नही है। वह तो अच्छा मालूम होता है। अत कहते है वह शहद मे विष मिलाकर दे रही है। जो तत्काल तो मीठा मालूम होता है पर परिणाम मे प्राण घातक है। देखने मे तो यह मालूम हो रहा है कि इससे सुख सोहाग दूना होगा। पर वस्तुत इसी से दोनो जायगा। पति और पुत्र दोनो का त्याग होगा और आप भी कुएँ मे गिरेगी। यथा अवनि जमहि जाचति कैकेई। महि न बीच बिधि मीच न देई। कपट की छूरी खून नही बहाती। वह मधुमिश्रित माहुर की भाँति परिणाम म प्राणघातक होती है।

चेरी कहती है कि तुम्हारा भूलना स्वभाव है। तुम्ह भले ही स्मरण न हो। पर मुझे याद है। तुमने मुझे एक बात सुनायी थी। दण्डकारण्य मे वैजयन्त नगर के राजा तिमिध्वज जहाँ रहते थे वहाँ शम्बरासुर और इन्द्र का युद्ध हुआ था। उस युद्ध मे महाराज के साथ तुम भी गयी थी। वहाँ तुमने महाराज के मूच्छित होने पर रथ की रक्षा करके महाराज के प्राण बचाये थे।

दुइ बरदान भूप सन थाती। मागहु आजु जुडावहु छाती॥
सुतहि राजु रामहि बनबासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू॥३॥

अर्थ तुम्हारे दो वरदान राजा के पास धरोहर रखे हुए हैं। आज उन्ही को माँगकर छाती ठण्डी करो। बेटे का राज्य और राम का वनवास दो और सौत के सब आनन्द को तुम ले लो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या उस समय रथ की रक्षा और अपनी रक्षा के पलटे म राजा ने तुमसे दो वरदान माँगने के लिए कहा। पर तुमने उस समय नही माँगा। उसे थाती के रूप म राजा के पास ही छोड दिया। कहा कि जिस समय मुझे आवश्यकता होगी माँग लूँगी। वह थाती तुम्हारी राजा के पास रक्खी हुई है। तुम्हे कुछ करना नही है। अपनी थाती माँगनी है। आज उसी को माँगकर अपनी छाती ठण्ढी करो। एक वरदान मे बेटे के लिए राज्य मागो। दूसरे म राम के लिए वनवास माँगो। बस जिस आनन्द को तुम्हारी सौत चाहती है वह तुम्हारा हो जाय और तुम्हारी सौत सदा के लिए निरानन्द हो जाय। राम को वन्दी करने म सम्पूण प्रजा विगड जायगी और उनके यहाँ रहने से भरत का राज्य सुस्थिर न होगा। राम धर्मात्मा होने पर भी राज्य के लिए लड सकते है। यथा—क्षत्रियाणामय धर्मो यत्प्रजापरिपालनम्। वधश्च धमयुद्धन स्वराज्यपरिपन्थिनाम्। वि पु। क्षत्रियो का धम है कि प्रजा का पालन करें और धमयुद्ध से अपना राज्य छीनना चाहनेवालो का वध करे। इसलिए उनका वनवास माँगा। जो करना हो आज कर लो। कल कुछ न कर सकोगी।

भूपति राम सपथ जब करई। तब मागेहु जेहि बचन न टरई ॥
होइ अकाजु आजु निसि बीते। बचनु मोर प्रिय मानहु जी तें ॥४॥

अर्थ राजा जब राम की शपथ कर ले तब वरदान माँगना। जिससे वचन टल न सके। आज की रात बीत जाने से काम बिगड जायगा। मेरी बातो को हृदय से प्रिय समझना।

व्याख्या पहिले यह उपाय होना चाहिए कि देने का निश्चय कराने के लिए राजा रामजी की शपथ लें। तब माँगना। फिर राजा बात स न हटेंगे और न मन्त्री हटा सकेंगे। नही तो तुम्हारे माँगने और राजा के दने को गिनती गुरुजी और मन्त्री नम म कर लेंगे। आज रात का काम बना तो बना। सवेरा होते ही फिर कौन किसकी सुनता है। मेरी बातो को भीतर से प्रिय मानना। वडे वडे प्रलोभन और वडा वडा भय दिखाया जावेगा। पर मेरी बातो को ही प्रिय समझना। उन प्रलोभनो म न आना होइ अकाज कौन बिधि रातो की जो उस चिन्ता थी सो विधि उसन बैठा दी।

दो वड कुघातु करि पातकिनि, कहसि कोपगृह जाहु।
काजु सँवारेहु सजग सबु, सहसा जनि पतिआहु ॥२२॥

अर्थ उस पापिनी ने बडा कुघात विश्वासघात करके कहा कि अब कोपभवन म चली जाओ। सब काम को सावधान होकर सँवारना। एकाएक किसी बात पर विश्वास न करना।

व्याख्या जो कपट की छूरी उसने पत्थर से हृदय पर तीखी की थी उससे वार कर दिया। कपट की छूरी का वार है इसलिए मधुमाहुर सा मीठा लगा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जिस ताक मे वह थी सो पूरा हुआ। अब रानी को कोपगृह[1] जाने की सलाह दे रही है। जिसमे राजा को शीघ्र ही पता लग जाय और तुरन्त मनाने के लिए आवें और बात फूटे नही। नहीं तो राजा किस महल मे जायँगे इसका क्या ठीक है। फिर सावधान किये देती है कि बडी होशियारी से काम लेना। विश्वास मे ही पडकर बडे बडे मारे गये हैं। महाराज का भी विश्वास न करना। डरती है कि राजा का इसका जहाँ सामना पडा कि इसने विश्वास किया। अत न विश्वास करने के लिए सहेजती है। रानी का इसके ऊपर इतना बडा विश्वास है और यह उन्ही के साथ घात करती है। अत विश्वासघातिनी है। इसलिए कवि ने पापिनी कहा।

कुबरिहि रानि प्रान प्रिय जानी। बार बार बडि बुद्धि बखानी॥
तोहि सम हितु न मोर ससारा। बहे जात कइ भइसि अधारा॥१॥

अर्थ कुबरी का रानी ने प्राणप्रिय जानकर बार बार उसकी बुद्धि की बडी प्रशसा की। कहा कि ससार म तुझसा मेरा कोई हित नही है। बहे जाते हुए के लिए तू आधार हो गयी।

व्याख्या अब कुबरी रानी को प्राणप्रिय हो गयी। रानी उसकी बुद्धि पर लट्टू है। बार बार उसकी अतीव बुद्धिमत्ता की प्रशसा करती है। सब लोग नाहक इसे मतिमन्द कहते है। ऐसी पैनी बुद्धि तो किसी की नही है। उससे कहती हैं कि पति पूत कोई तेरे सा मेरा हित नहीं है। मैं तो प्रवाह म बही जाती थी। जैसा लोग कहते और समझाते थे वैसा ही मैं भी समझती थी। राम का तिलक सुनकर मै तो तुझे मनभावती वस्तु देने को प्रस्तुत थी। पर तूने उसका लालच नही की। मुझ बहती हुई को तू ही आधार मिली। अब तुझे पाकर प्रवाह का विरोध करके बच सकती हूँ।

जौं बिधि पुरब मनोरथु काली। करौं तोहि चष पूतरि आली॥
बहु बिधि चेरिहि आदरु देई। कोपभवन[1] गवनी कैकेई॥२॥

अर्थ यदि ब्रह्मा मेरा मनोरथ पूरा कर द तो कल तुझ आँख की पुतली बनाऊँगी। बहुत प्रकार से चेरी को आदर देकर कैकयी कोपभवन मे गयी।

व्याख्या जो कुछ होना है आज रात को होगा। यदि मेरा मनोरथ पूर्ण हुआ महाराज ने धरोहर की भाँति रखे हुए वरदानो को मुझे दिया। भरत युवराज हुए

---

१ राजाओ के यहाँ कोपगृह होता था। क्रोध आने पर उस गृह मे चले जाने का विधान था। जिसके हाथो म बडा अधिकार होता है उसके क्रुद्ध होने से बड अनर्थ की सम्भावना होती है। उसके एकान्त म रहने म ही कुशल है। वहाँ उसे अपने चित्त के समाधान करने का अवसर मिलता है और वे ही लोग उसके पास जाने का साहस करते हैं जो उस क्रोध का परिमार्जन कर सकें।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



और राम वन गये तो तुझे आँख की पुतली बनाऊँगी। तेरे ही द्वारा देखूँगी। वस्तुतस्तु राज की बागडोर तेरे हाथ मे रहेगी : जैसा मन्थरा ने सोचा था वैसा ही हुआ। अब मधु मिलने की आशा दृढ हुई। देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गवँ तकै लेउँ केहि भाँती। चेरी को बहुत प्रकार से आदर दिया। अर्थात् आज से तू मेरी सखी है। मन्त्री है। ऐसा कहकर जिन वस्त्र आभरण के धारण करने का दासियो को अधिकार नही है। जिन वस्त्र भूषणो को सरदार या मन्त्री की स्त्रियाँ धारण कर सकती हैं। वे वस्त्र आभूषण मन्थरा को देकर उसे मन्त्री पद देकर तब कैकेयी कोपभवन गयी।

विपति बीजु बरषा रितु चेरी। भुँइ भइ कुमति कैकई केरी॥
पाइ कपट जलु अंकुर जामा। बर दोउ दल दुख फल परिनामा॥३॥

अर्थ : विपत्ति बीज हुई। चेरी वर्षाऋतु हुई। कैकेयी की कुमति पृथ्वी हुई। कपट का जल पाकर अँखुआ निकला। दोनो वर पत्ते हुए और परिणाम मे दु:ख यही फल हुआ।

व्याख्या : तसि मति फिरी अहइ जसि भावी। वही भावी विपत्ति बीज हुई। जिस भाँति बीज पृथ्वी के भीतर पड़ा रहता है। उसे कोई नही जानता। जब वर्षाऋतु में पानी बरसता है तब बीजों के अँखुये निकलते है। उसी भाँति इस भावी विपत्ति का किसी को पता नही था। यथा : मिलेहि माँझ बिधि बात बिगारी। जहँ तँह देहिं कैकइहि गारी। जब चेरी ने वर्षाऋतु होकर कपट जल बरसाया तो वह बीज कैकयी की कुमति रूपी भूमि मे अङ्कुरित हुआ। अङ्कुरित होने पर दो पत्ते पहिले व्यक्त होते हैं। यहाँ दोनो वरदान ही दोनो पत्ते हैं। यही विपत्ति का वृक्ष दु:ख रूपी फल का देनेवाला है।

कोप समाजु साजि सबु सोई। राजु करत निज कुमति बिगोई॥
राउर नगर कोलाहलु होई। यहु कुचालि कछु जान न कोई॥४॥

अर्थ : कोप का सब समाज सजकर सोई। राज्य करते हुए अपनी कुबुद्धि से मारी पड़ी। राजमहल और नगर में धूम मची हुई है। इस कुचाल का किसी को पता नही।

व्याख्या : जिस भाँति हर्ष का साज समाज होता है। उसी भाँति कोप का भी साज समाज होता है। राजाओं मे दोनो के व्यक्त करने का अधिक साधन होता है। उनके व्यक्त करने मे ही बहुत कुछ वेग कम हो जाता है। कोप और हर्ष दोनो मनोविकार हैं। अतः मन के स्वास्थ्यलाभ के लिए उनके पृथक् पृथक् साज-समाज होने ही चाहिए। कोप के साज समाज का वर्णन महाराज के आने पर कवि करेंगे। इसलिए यहाँ नही करते। इस समय कोप का साज समाज करके कोपभवन मे जाने का स्पष्ट अर्थ यह है कि मैं इस अभिषेकोत्सव से अप्रसन्न हूँ और इससे कोई सम्बन्ध नही रखना चाहती। कवि कहते हैं कि कुबुद्धि का प्रभाव देखो। कैकेयी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



राज्य करती थी। दु ख का कोई कारण न था। सो उसकी कुबुद्धि हो उसे कष्ट मे डाल रही है।

राजकुल का तद्भवरूप राउर है। अन्त पुर के लिए इसका प्रयोग होता है। भाव यह कि अन्त पुर मे और उसके बाहर सम्पूर्ण नगर मे इस समय राजतिलक की धूम मची हुई है। इस समय इतना बडा कुचक्र चल रहा है · इस बात का किसी को पता नही है · कैकेयी महारानी का कोपभवन में प्रवेश साधारण बात नही थी। इस समय कोपभवन मे प्रवेश करना इस बात की घोषणा करना है कि मै इस राजतिलक से अत्यन्त रुष्ट हूँ।

· दो प्रमुदित पुर नर नारि सब, सजहि सुमंगलचार।
एक प्रविसहिं एक निर्गमहि, भीर भूप दरबार ॥२३॥

अर्थ · आनन्द मे विभोर होकर नगर के नर नारी सुन्दर मङ्गलाचार सज रहे है और राजद्वार पर बडी भीडभाड है। कोई बाहर निकल रहा है और कोई भीतर जा रहा है।

व्याख्या · राम राज अभिपेकु सुनि हिय हरषे नर नारि। लगे सुमगल सजन सब बिधि अनुकूल बिचारि। इस दोहा से जिस प्रकरण का उपक्रम किया था उसी का उपसहार दिखला रहे है। यहाँ यह भी दिखला दिया कि विधि की अनुकूलता नही है। विपत्ति के बीज मे अङ्कुर निकल पडा। दरबार शब्द का प्रयोग ग्रन्थकार ने द्वार के अर्थ मे किया है। यथा गयउ सभा दरबार तब सुमिरि रामपद कज। सिंघ ठवनि इत उत चितव धीर बीर बल पुज। तुरित निसाचर एक पठावा। समाचार रावनहि जनावा। सो राजद्वार पर भीड है। कैकेयी के कुचाल का पता नगरवासियो को तो है ही नही। स्वय महाराज भी कुछ नही जानते।

बाल सखा सुनि हिय हरषाही। मिलि दस पाँच राम पहिं जाही॥
प्रभु आदरहि प्रेमु पहिचानी। पूँछहि कुसल खेम मृदु बानी॥१॥

अर्थ · बचपन के साथी यह समाचार पाकर हृदय मे हर्षित होते हैं। दस पाँच मिलकर रामजी के यहाँ जाते है। प्रेम को पहिचान करके प्रभु आदर करते हैं और मृदुबानी से उनका कुशलक्षेम पूछते है।

व्याख्या : बचपन की मैत्री बडी दृढ होती है। भोजन करत बोल जब राजा। नहिं आवत तजि बाल समाजा। वही बालसमाज अब बडा हुआ है। मृगया आदि खेल के समय अब भी उनकी बराबर बुलाहट होती है। यथा : बधु सखा सँग लेहिं बोलाई। बन मृगया नित खेलहि जाई। वे सब भी आपस मे सखा है। अत· समाचार पाकर बडे प्रसन्न होते हैं। हमारा सखा राजा होगा। सो दस पाँच इकट्ठे होकर बधाई देने के लिए रामजी के पास जाते हैं। सखा का सम्बन्ध तो था ही अब राजा प्रजा का सम्बन्ध भी हुआ चाहता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रीति पहिचान यह रीति दरबार की। इसलिए कहते हैं कि प्रीति पहिचान कर प्रभु आदर दे रहे हैं। अर्थात् जिसकी जितनी प्रीति है उतना ही उसको आदर दिया जा रहा है। सखा की भाँति ही आदर है। प्रभुता पर कुछ ध्यान नहीं है। वक्ता, वाणी और वाच्य तीनों ही अच्छे हैं। वक्ता स्वयं प्रभु, वाणी मृदु और वाच्य कुशलक्षेम। खेल का समय बीते बहुत दिन हुए। अब भेंट कुछ दिनों पर होती है। इसलिए कुशलक्षेम पूछा।

फिरहिं भवन प्रिय आयसु पाई। करत परसपर राम बड़ाई॥
को रघुबीर सरिस संसारा। सीलु सनेहु निबाहनिहारा॥२॥

अर्थ : प्रिय की आज्ञा पाकर घर लौटते हैं। आपस में बड़ाई करते जाते हैं कि रघुवीर के समान शील और स्नेह का निबाहनेवाला संसार में कौन है?

व्याख्या : बहुत देर तक नहीं ठहरते। क्योंकि इन्हें बहुतों से मिलना है। कार्यभार अधिक है। फिर भी आज्ञा माँगकर और मिलने पर लौटते हैं। रामजी प्रिय हैं। उनके आज्ञा देने में प्रेम झलकता है। सम्मान की प्राप्ति से प्रसन्न हैं। रास्ते में प्रशंसा करते हुए लौटते हैं। यही सच्ची प्रशंसा है। सखा हैं : मुख पर प्रशंसा नहीं करते। शील के निर्वाह का पता सम्मान से लगा और स्नेह का कुशलक्षेम पूछने से। राजा मित्रं केन दृष्टं श्रुतं वा। परिस्थिति के परिवर्तन में शील स्नेह का निर्वाह कठिन है। राजा द्रुपद ने अपने बालसखा द्रोणाचार्य का अनादर किया। अतः कहते हैं : शील स्नेह के निर्वाह करनेवाले रघुवीर ही हैं।

जेहि जेहि जोनि करम बस भ्रमहीं। तहँ तहँ ईसु देउ यह हमहीं॥
सेवक हम स्वामी सियनाहू। होउ नात यहु ओर निबाहू॥३॥

अर्थ : कर्म के वश जिस जिस योनि में हम भ्रमते फिरें वहाँ वहाँ ईश्वर हमें यह दे कि हम सेवक हों और सीतानाथ स्वामी हों। इस ओर नाता का निर्वाह हो।

व्याख्या : रामजी के सखा हैं। बड़े उच्चकोटि के उपासक हैं। मोक्ष नहीं चाहते। अशुभ कर्म के फल से छुटकारा नहीं चाहते। वालि की भाँति इतना ही चाहते हैं जेहि जोनि जन्मौं कर्मबस, तहँ राम पद अनुरागऊँ। सेवक स्वामी के नाता का निर्वाह होता चला जाय। प्रत्येक जन्म में सखा हों। इस नाते पर आग्रह नहीं है। आग्रह सेवकसेव्यभाव के बने रहने पर है।

अस अभिलाषु नगर सब काहू। कैकयसुता हृदय अति दाहू॥
को न कुसंगति पाइ नसाई। रहइ न नीच मतें चतुराई॥४॥

अर्थ : नगर में सभी को ऐसा ही अभिलाष है। पर राजा कैकय की बेटी के हृदय में बड़ी भारी जलन है। बुरी संगत पाकर कौन नहीं बिगड़ता। नीच की राय होने से चतुराई नहीं रह जाती।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या सम्पूर्ण अयोध्यावासियो को श्रीरामजी के प्रति ऐसा अनुराग है कि भावी जन्म म भी सेवकसेव्यभाव बने रहने की ईश्वर से प्रार्थना करते है। परन्तु कैकय देश मे उत्पन्न यहाँ दो है। एक कैकय की चेरी और दूसरी कैकय की बेटी। सो चेरी का दाह वह आय है। यथा राम तिलकु सुनि भा उर दाहू। अब कैकय की बेटी के हृदय का अति दाह कहते है। इन दोनो व्यक्तियो की भावना अयोध्यावासियो स मेल नही खाती। अत कवि इनका परिचय कैकय दश से सम्बन्ध दिखलाकर दत है।

जिसके अभिषेक से सम्पूर्ण राष्ट्र को आनन्द हो उसके राजतिलक से दाह होना तो अत्यन्त पतन का चिह्न है। फिर जिसका जन्म राजघर म हो और व्याह राजघर मे हुआ हो उसका ऐसा सङ्कीर्ण हृदय कैसे हुआ ? इस पर कवि कहते है कि कुसङ्गति से बचना चाहिए। कुसङ्गति के कारण कैकेयी का ऐसा पतन हुआ। वह कपट पेटारी की सगति म पड गयी। अत उसकी उदार बुद्धि का नाश हुआ। या लोकद्वयसाधनी चतुरता सा चातुरी चातुरी जिससे दोनो लोक सुधरे वही चतुरता चतुराई है। नीच का साथ हो जाने से निश्चय चतुराई का नाश होता है। परलोक से ध्यान हटे बिना नही रहता।

## १० नृपवचन राजरसभङ्ग

दो साँझ समय सानद नृपु, गयेउ कैकई गेहु।
गवनु निठुरता निकट किय, जनु धरि देह सनेहु ॥२४॥

अथ सन्ध्या के समय आनन्द से राजा कैकेयी के महल मे गये। मानो स्नेह शरीर धारण करके निष्ठुरता के पास गया।

व्याख्या महाराज को रानी कैकेयी अत्यन्त प्रिय है। अत्यन्त प्रसन्न रहते हैं तो उस आनन्द की अभिवृद्धि के लिए कैकेयी के महल मे जाते है। आज महाराज बडे आनन्दित हैं। स्वय शुभ समाचार सुनाने के लिए कैकेयी के महल मे जा रहे हैं। इस आशा से कि इसको भरत से अधिक रामजी प्रिय है। वह अत्यन्त ही प्रसन्न होगी। पर बात उल्टी पडी। जिसे स्नेहमय समझते थे वह शरीरधारी निष्ठुरता मालूम पडी। किसी प्रकार से द्रवीभूत होनेवाली नही।

कोपभवन सुनि सकुचेउ राऊ। भय बस अगहुड परइ न पाऊ॥
सुरपति बसइ बाहुँबल जाकें। नरपति सकल रहहि रुख ताकें॥१॥

अर्थ कोपभवन सुनकर राजा सङ्कुचित हो गये। डर के कारण उनका पैर आगे की ओर नही पडता है। इन्द्र जिसके बाहुबल से बसते हैं और सब राजा लोग रुख देखते रहते है।

व्याख्या महाराज के आने पर रानी स्वागत के लिए आगे आती थी। सो न आयी। महाराज ने जब पूछा कि तुम्हारी स्वामिनी कहाँ हैं ? दासियो ने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कहा कोपभवन मे हैं। सुनते ही महाराज सङ्कुचित हो गये कि इस समय कोपभवन जाने का अर्थ बड़ा बेढङ्गा लगेगा। लोग समझेंगे कि राजा के घर मे फूट है। कैकेयी रामजी का अभिषेक नही चाहती। स्त्रीजित् की दशा कहते हैं कि महाराज कोपभवन मे मनाने जाना चाहते हैं। पर डर से आगे पैर नही उठ रहा है। ससार मे महाराज के बल और शौर्य की प्रशंसा है। इन्द्र के ऊपर आपत्ति आने पर महाराज दशरथ सहाय होते है। इसलिए कहते हैं कि देवताओं के राजा उनके भुजबल के आश्रित होकर बसते हैं और मनुष्यो के राजा तो रुख देखा करते है कि आज्ञा होने के पहिले ही महाराज के चाहे हुए कार्य का सम्पादन कर दें। यथा : नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषे। लोकप करहिं प्रीति रुख राखे।

**सो सुनि तिय रिस गयेउ सुखाई। देखहु काम प्रताप बड़ाई॥**
**सूल कुलिस असि अँगवनिहारे। ते रतिनाथ सुमन सर मारे॥२॥**

अर्थ : वह स्त्री का क्रोध सुनकर सूख गये। देखो काम के प्रताप की महिमा। शूल, वज्र और खड्ग के जो सहनेवाले है उन्हे कामदेव ने फूल के बाणो से मारा।

व्याख्या : ऐसे शूरवीर स्त्री का क्रोध सुनकर सूख गये। इसमे स्त्री की कोई करामात नही है। यह तो काम के प्रताप की महिमा है। काम को स्त्री का बल रहता है। यथा : काम के केवल नारि। सो स्त्री का सामना भी न पड़ा। स्त्री के क्रोध का समाचार सुनकर सूख गये। प्रतापी स्वयं सब कार्य अपने हाथ से सम्पादन नही करता। उसके नाम से कार्य होता है। यहाँ न स्त्री की उपस्थिति है न काम की उपस्थिति है। केवल स्त्री के क्रोध के नाम से इतने बडे वीर सूखे जा रहे है। यह काम के प्रताप की महिमा है।

शूल छेदन करता है। असि भेदन करता है। वज्र चूर चूर कर देता है या झुलस देता है। सो इन अस्त्रो को महाराज दशरथ ढाल पर नही रोकते थे। छाती पर रते थे। वे ही आज कामदेव के फूल का बाण सहने मे असमर्थ हो रहे हैं। अथवा घोर सग्राम मे अनेक शस्त्रो के प्रहार से तो महाराज बचे पर काम के सुमन शर से नही बचेंगे। इसलिए सुमन सर मारे कहा।

**सभय नरेसु प्रिया पहिं गयेऊ। देखि दसा दुखु दारुन भयऊ॥**
**भूमि सयन पटु मोट पुराना। दिये डारि तन भूषन नाना॥३॥**

अर्थ : डरते हुए राजा प्रिया के पास गये। उसकी दशा देखकर दारुण दुःख हुआ। जमीन पर सोयी हुई है। मोटा कपडा पहन रखा है और शरीर के नाना प्रकार के गहनो को फेंक दिया है।

व्याख्या : यद्यपि नरेश है और प्रिया के पास जा रहे हैं। फिर भी डर रहे हैं। पहिले कह आये है कि डर से आगे पैर नही पड़ता। परन्तु बिना मनाये भी तो काम नही चलता। इस समय साहस खिसका है कि महारानी तक जाय। स्वय महाराज भयभीत हो रहे हैं। फिर भी डरते डरते गये। प्रिया की दशा देखकर तो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दारुण दुःख हुआ। भाव यह कि कोपभवन सुनने से ही दुःख हुआ था। अब जो कोप के साज मे जब प्रिया को देखा तो महाराज को असह्य दुःख हुआ।

अब कोप का समाज साज कहते हैं कि रानी पृथ्वी पर पड़ी हैं। मोटे पुराने कपड़े पहने हुए है। शरीर पर के आभूषणों को उतारकर फेंक दिया है। भाव यह कि मै अनाथा हूँ। दासी हूँ। मुझे अब सुख के साज से क्या मतलब? जो तुम काल पाकर हमे बनाना चाहते हो वह मुझे आज ही स्वीकार है।

कुमतिहि कसि कुबेषता फाबी। अनअहिवातु सूच जनु भावी ॥
जाइ निकट नृपु कह मृदु बानी। प्रानप्रिया केहि हेतु रिसानी ॥४॥

अर्थ : इस कुबुद्धि को कुवेष धारण करना कैसे फब रहा है। मानो भावी विधवापन को सूचित कर रही है। निकट जाकर राजा कोमल बात बोले कि हे प्राणप्रिये! तुम क्यों रूठ गयी हो?

व्याख्या : कवि कहते है कि भवितव्य के अनुसार रुचि हो जाती है। कुबुद्धि कैकेयी को आज यह कुरूपता अच्छी लग रही है। सब सुख साज समाज सुलभ है। उसे छोड़कर इसने विधवा का सा स्वरूप बना रखखा है। मानो भवितव्य वैधव्य की सूचना दे रहा है।

राजा निकट चले गये। प्रसन्न करने के लिए मृदुवाणी से प्रिये! कहकर सम्बोधन किया और रूठने का कारण पूछा। भाव यह कि मुझे नही मालूम कि तू किसलिए रूठी हुई है। यदि मालूम होता तो तुम्हारा अभीष्ट पूरा करके तब आते। इसलिए अपने रूठने का कारण बतलाओ। मेरे जान मे कोई ऐसी बात नही हुई है जो तुम्हे अप्रिय हो। यदि अनजान मे कुछ हुआ हो तो मालूम होने पर तुरन्त दुरुस्त किया जा सकता है। किसी को भी तुम्हारे रूठने का कारण नही मालूम। अत: तुम्हारे बतलाने से ही काम चल सकता है।

छं. [1]केहि हेतु रानि रिसानि परसत पानि पतिहि नेवारई।
मानहुँ सरोष भुअंग भामिनि बिषम भाँति निहारई ॥
दोउ बासना रसना दसन बर मरम ठाहरु देखई।
तुलसी नृपति भवतब्यता बस काम कौतुक लेखई ॥

अर्थ : रानी किसलिए रूठी हो? हाथ छूने से पति को रोक रही है। मानो क्रोध से भरी सर्प की स्त्री भयानक रीति से देख रही है। दोनों वासनाएँ दो जीभ हैं और वर दांत है: दंशन के लिए मर्म स्थान देख रही है। तुलसीदासजी कहते है कि राजा होनहार के वश इसे काम कौतुक मान रहे है।

महाराज कह रहे हैं कि रानी तुम्हारे रूठने का कारण क्या है? उत्तर न पाकर पाणिस्पर्श करना चाहते हैं। परन्तु वह हाथ छूने नही देती और क्रोधभरी

१. इस काण्ड के सभी छन्द हरिगीतिका हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



क्रूर दृष्टि से राजा की ओर ऐसी देख रही है। मानो वह उनकी स्त्री ही नहीं है। साँप की स्त्री है। भाव यह कि मुझे न छूओ। तुम्हारा मन मलिन है। झूठा प्रेम दिखाकर ठगने आये हो। मुझ सरलहृदया के साथ तुम्हारा ऐसा कपट व्यवहार कि तुम मुझे कौसिल्या की दासी और मेरे बेटे को राम का बन्दी बनाना चाहते हो मन्थरा की दी हुई दृष्टि से देख रही है। यथा : मन मलीन मुहु मीठ नृपु राउर सरल सुभाउ। सर्पिणी को दो जीभ होती हैं। इसकी दो वासनाएँ दोनो जीभ हैं। १. भरत को राज्य २ रामजी को वनवास। और दशन करनेवाले दो दाँत होते हैं। यहाँ जो दो वरदान माँगनेवाली है वे ही दोनो दाँत हैं। सर्पिणी यदि मर्मस्थान में दंशन कर ले तो काटा हुआ जी नहीं सकता। अत: रानी रूपी सर्पिणी मर्मस्थान देख रही है कि मर्मस्थान हाथ लगे तो दशन करूँ। यहाँ मर्मस्थान राजा द्वारा रामजी का शपथ ग्रहण है। यथा : भूपति राम सपथ जब करई। तब मागेउ जेहि बचन न टरई।

श्रीगोस्वामीजी कहते हैं कि राजा भवितव्यता के वश में हैं। अत्यन्त स्पष्ट बात को नहीं लख रहे हैं। यह मान नहीं है। मान मे ऐसी क्रूरदृष्टि नहीं होती। रामजी के अभिषेक के समय कोपभवन प्रवेश का सिवा इसके दूसरा अर्थ ही नहीं होता कि रानी को रामजी के राजतिलक से अप्रसन्नता है। पर राजा भवितव्यता के वश होने से यह सब कुछ लख नहीं रहे हैं। इसे रानी की मानप्रियता समझ रहे हैं। यथा : तुम्हहि कोहाब परम प्रिय अहई। इतना बड़ा उलट फेर काम का खेल है जिसने इतने बडे चतुर राजा को अन्धा बना दिया : कामान्धो नैव पश्यति। यह नहीं देख रहे है कि सर्पिणी का लक्ष्य उन्ही पर है। उन्ही को सरोष विषम दृष्टि से देख रही है। यहाँ प्रेम का गन्ध भी नहीं है।

सो. बार बार कह राउ, सुमुखि सुलोचनि पिकबचनि।
कारन मोहि सुनाउ, गजगामिनि निज कोप कर ॥२५॥

अर्थ : बार बार महाराज कहते हैं कि हे सुमुखि! हे सुलोचनि! हे पिक-बचनि! हे गजगामिनि! अपने क्रोध का कारण तो कहो।

व्याख्या : राजा मितभाषी होते हैं। उनके वचन का बड़ा मूल्य होता है। उनकी एकबार की दी हुई आज्ञा हटायी नहीं जा सकती। सो राजा एकबार के निवारण करने पर फिर स्पर्श का साहस नहीं कर रहे हैं। अपने प्रश्न का उत्तर न पाने पर भी बार बार वही पूछते जा रहे हैं : प्रान प्रिया केहि हेतु रिसानी? केहि हेतु रानि रिसानि? कारन मोहि सुनाउ गजगामिनि निज कोप कर, रानी को प्रसन्न करने के लिए कभी सुमुखि कहते हैं। कभी सुलोचनि कहते हैं। कभी पिकबचनि और कभी गजगामिनि सम्बोधन करके उसकी स्तुति करते हैं। सर्पिणी की भाँति फटाटोप करनेवाली को सुमुखि कहते हैं। विषम दृष्टि से क्रुद्ध होकर देखनेवाली को सुलोचनि कहते हैं। फूत्कार की भाँति हुंकार करके करस्पर्श को रोकनेवाली को पिकबचनि कहते हैं और सर्पिणी की भाँति पलटा खायी हुई को गजगामिनि कह रहे हैं : बात

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यही ठीक है कि सौन्दर्य कोई वस्तु नही है। मनकी कल्पना मात्र है। रानी की ये सब कुचेष्टाएँ महाराज को प्रणय कोप मालूम हो रही हैं।

अनहित तोर प्रिया केइँ कीन्हा। केहि दुइ सिर केहि जमु चह लीन्हा ॥
कहु केहि रंकहि करउँ नरेसू। कहु केहि नृपहि निकासउँ देसू ॥१॥

अर्थ प्रिये! किसने तेरा अहित किया? किसे दो सिर है? किसे यम लेना चाहते हैं? बतलाओ किस दरिद्र को राजा कर दूँ या किस राजा को उसके देश से निकाल बाहर करूँ।

व्याख्या जब बार बार पूछने पर भी क्रोध का कारण नही बतलाया तब राजा ने समझा कि मेरे ऊपर क्रुद्ध नही है। मालूम होता है किसी दूसरे ने इसका कुछ बिगाडा है। अत पूछते हैं कि तेरा अनहित किसने किया? राजा के *अहित करने का किसी को साहस नही होता।* तू तो मेरी प्रिया है। तेरा अहित करने का किसे साहस हुआ? उसे दण्ड देनेवाला मै हूँ। दण्ड दो प्रकार का होता है, १ शारीरिक और २ आर्थिक। सो यदि तुझे अपराधी को शारीरिक दण्ड दिलाना हो तो बतला मै उसका शिरच्छेदन कर दूँ। एक सिरवाला तो तेरा अपराध करके नही जी सकता। यदि किसी का दो सिर हो तो भले ही बच जाय। एक सिर उसका तो मैं काट ही लूँगा। यदि किसी को आर्थिक दण्ड दिलाना हो तो वह यदि राजा भी हो तो मै उसका देश निकाला कर सकता हूँ। यदि किसी को कुछ देना चाहती हो तो मैं उसे राजा बना सकता हूँ।

सकौ तोर अरि अमरउ मारी। काह कीट बपुरे नर नारी ॥
जानसि मोर सुभाउ बरोरू। मनु तव आनन चद चकोरू ॥२॥

अर्थ तेरा शत्रु यदि देवता भी हो तो उसे मार सकता हूँ। बेचारे नर नारी क्या है? वे तो कीडे मकोडे हैं। हे सुन्दर ऊरुवाली! तू तो मेरा स्वभाव जानती है कि मेरा मन तेरे मुखचन्द का चकोर है।

व्याख्या मै अमरो देवताओ का सहायक हूँ। पर यदि वे तुझसे शत्रुता करें तो उन्हे भी मैं मार सकता हूँ। तेरा अनहित तो किसी मनुष्य ने ही किया होगा। वे क्या हैं? कीडे मकोडे हैं। उनके मारने मे क्या रक्खा है? भाव यह है कि जो मनोरथ हो उसे पूर्ण करने के लिए महाराज तैयार है। इतना बडा यशस्वी न्यायकारी राजा आज स्त्री का क्रीडामृग हो रहा है। स्त्री की प्रसन्नता के लिए सब कुछ करने को प्रस्तुत है।

कहते है कि इतने क्रोध की क्या आवश्यकता है? मैं तो तेरे वश म हूँ। जो तू कहे वह मैं करने को तैयार हूँ। तू मेरे स्वभाव से परिचित है कि मेरा मन तेरा मुख देखा करता है जैसे चकोर चन्द्र को देखता है। यहाँ मुखचन्द्र का घाटा नही है। पर मेरा मन तो तेरे ही मुखचन्द्र का चकोर है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रिया प्रान सुत सरबसु मोरें। परिजन प्रजा सकल बस तोरे॥
जौ कछु कहउँ कपटु करि तोही। भामिनि राम सपथ सत मोही॥३॥

अर्थ : प्रिये! मेरे प्राण मेरे बेटे मेरा सर्वस्व मेरे कुटुम्बी मेरी प्रजा सब तेरे ही वश मे हैं। यदि मैं कुछ कपट करके तुझसे कहता होऊँ तो हे भामिनि! मुझे रामजी की सौ शपथ है।

व्याख्या : मैं और मेरा जो कुछ है वह सब तेरे अधीन है। इसी भाव को दृष्टि मे रखकर कहा गया है : अमित दानि भर्ता बैदेही। मित ददाति च पिता मितं भ्राता मित सुत। अमितस्य च दातारं भर्तारं का नु सेवयेत्। मनु। अधम सो नारि जो सेव न तेही। महाराज के इतना कहने पर भी जब न पसीजी तब उन्होने समझ लिया कि यह मेरे कहने पर विश्वास नही कर रही है और मेरी बातो मे इसे कपट का सन्देह हो रहा है। तब उसके विश्वास दिलाने के लिए महाराज ने रामजी की शपथ ली।

बिहसि मागु मनभावति बाता। भूषन सजहि मनोहर गाता॥
घरी कुघरी समुझि जियँ देखू। बेगि प्रिया परिहरहि कुबेषू॥४॥

अर्थ : मनचाही हुई बात हँसकर माँग लो और मनोहर शरीर पर आभूषण धारण कर लो। समय कुसमय को मनमे ख्याल करके देखो और हे प्रिये! इस कुवेष का शीघ्र ही त्याग करो।

व्याख्या : महाराज कहते है कि लो! अब हँस दो और जो जी चाहता हो उसे माँग लो। तुम्हारे अङ्ग मनोहर हैं। ये आभूषण के योग्य है। इनमे आभूषण साज लो। क्रोध का साज समाज एक न रहे। जहाँ कैसा मङ्गल का समय उपस्थित है वहाँ तुमने यह अमङ्गल वेष धारण कर रखा है। जो सुनेगा वह क्या कहेगा? यह समय मङ्गलाचार का है। अत कुवेष के परित्याग मे देर न करो। जो तुम चाहोगी उसका मिलना ध्रुव है। पर माँगना पीछे और कुवेष परित्याग करो पहिले।

दो० यह सुनि मन गुनि सपथ बडि, बिहँसि उठी मतिमंद।
भूषन सजति बिलोकि मृगु, मनहु किरातिनि फंद॥२६॥

अर्थ : यह सुनकर और बडी शपथ मन मे गुनकर मतिमन्द हँस पडी और आभूषण सजने लगी। जैसे कि मृग को देखकर किरातिनी अपने फन्दे को सँवारने लगती है।

व्याख्या : रामजी के सौ शपथों को गुनकर और मन्थरा की बात : भूपति राम सपथ जब करई। तब मागेहु जेहि बचनु न टरई। मनमे गुनकर वह मतिमन्द कैकेयी हँस पडी। महाराज कहते हैं : बिहँसि मागु कैकेयी हँस पडी। महाराज कहते है : भूषन सजहि मनोहर गाता। कैकेयी भूषन सजने लगी। परन्तु वस्तुत

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


महाराज के कहने पर नही हँसती है। उनके शपथ लेने पर प्रसन्न होकर हँस रही है और महाराज को अपने फन्दे मे फँसाने के लिए आभूषण सज रही है। अत ग्रन्थकार उसकी उपमा किरातिनी के फन्दा सजने से दे रहे है। जिससे वह सम्मुखस्थ मृग को फँसाती है।

**पुनि कह राउ सुहृद जिअ जानी। प्रेम पुलकि मृदु मंजुल बानी ॥**
**भामिनि भयउ तोर मनभावा। घर घर नगर अनद बधावा ॥१॥**

अर्थ फिर राजाजी उसे हितचिन्तक जानकर प्रेम से प्रफुल्लित होकर कोमल और सुन्दर वाणी बोले हे भामिनि! तेरी ही जी चाही बात हुई। नगर मे घर घर आनन्द का बधावा बज रहा है।

व्याख्या महाराज कैकेयी के भूषण सजने के अवसर पर उसे अधिक प्रसन्न करने के लिए शुभ समाचार सुना रहे हैं। उसे अब भी सुहृद समझते है। विचारते है कि मैने हँसने को कहा तो हँस पडी। गहना साजने को कहा तो साजने लगी। अत इसे अधिक प्रसन्न करने के लिए यह प्रिय समाचार इसी समय सुनाना चाहिए। सो सुनाने की इच्छामात्र से महाराज को आनन्द हो रहा है। मनम प्रेम है। तन मे पुलक है। वाणी मे मृदुता और मञ्जुलता है।

महाराज कहने लगे कि हे भामिनी! तू जो चाहती थी वही हो रहा है। बात यह है कि पहिले कैकेयी चाहती थी कि रामजी को राजतिलक हो। समाचार पाते ही मन्थरा को ईप्सित पुरस्कार देने को तैयार हो गयी थी। यथा रामतिलक जौ सो चेहुँ काली। देउँ मागु मन भावत आली। बात तो बिगडी है मन्थरा के बहकाने पर। पूर्वधारणा के अनुसार महाराज कह रहे है कि नगर मे घर घर बधावा बज रहा है और जिसका मनभावा हो रहा है उसका यह हाल!

**रामहि देउँ कालि जुवराजू। सजहि सुलोचनि मगल साजू ॥**
**दलकि उठेउ सुनि हृदय कठोरू। जनु छुइ गयउ पाक बरतोरू ॥२॥**

अर्थ: कल रामजी को युवराजपद दूँगा। हे सुलोचनि! तुम मङ्गलसाज साजो। सुनते ही तो उसका कठोर हृदय दलक उठा। जैसे बालतोड फोडा छू गया है।

व्याख्या: अब शुभ समाचार सुनाते है कि कल रामजी को युवराजपद दूँगा। अतः गहना सजने के बाद मङ्गल भी साजो। नगर मे तमाम मङ्गलसाज सजा जा रहा है और तुम्हारे यहाँ कुछ भी नही है। उलटे कोपभवन मे कोप का साज समाज बनाये पडी हो।

यद्यपि कैकेयी का हृदय कठोर हो गया था। फिर भी महाराज के मुख से इस वचन के सुनने पर उसके हृदय पर ऐसा आघात बैठा कि वह दलक उठा। बाल के टूटने से जो फोडा हो जाता है। उसके छूने से ऐसी पीडा होती है कि मनुष्य कांप उठता है। उसी भाँति कैकेयी का कलेजा कांप उठा। जहाँ व्यथा थी वही स्थान अकस्मात् स्पष्ट हो गया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ऐसिउ पीर विहँसि तेहिं गोई । चोर नारि जिमि प्रगटि न रोई ॥
लखी न भूप कपट चतुराई । कोटि कुटिल मनि गुरू पढ़ाई ॥३॥

अर्थ : ऐसी पीडा को भी वह हँसकर छिपा ले गयी । जैसे व्यभिचारिणी स्त्री प्रकट होकर नही रोती । राजा कपट चतुराई को नही लख रहे हैं । क्योकि वह करोडों कुटिलों की मणिगुर कूबरी की पढाई हुई है ।

व्याख्या : हुई तो उसे वडी भारी पीडा और सुख तथा दु ख दोनो चेहरे पर दर्पण के प्रतिविम्व की भाँति झलक उठने है । उस दु ख की झलक को कही महाराज न लख लें । इसलिए वह हँसकर उसे छिपा ले गयी । जैसे चोर नारी प्रत्यक्ष नही रोती । चोर नारी व्यभिचारिणी स्त्री को कहते है । आज भी राजा की रखेली को चोर महल कहा जाता है । जैसे व्यभिचारिणी स्त्री पति की चोरी से पर पुरुष के साथ प्रेम करती है । उसका अनिष्ट सुनकर मनसे तो रो देती है । वाहर से प्रीति छिपाने के लिए हँसती है । इसी भाँति रानी भी हँसकर अपनी पीडा को छिपा ले गयी । यही महाराज के साथ विश्वासघात का उपक्रम है ।

इस कपट चतुराई को महाराज नही लख रहे हैं । समझते हैं कि रामराज का समाचार सुनकर रानी आनन्द से हँस रही है । इतनी पण्डिताई कपट विद्या मे रानी को कहाँ से आगयी ? इसके उत्तर मे ग्रन्थकार कहते हैं कि करोडो कुटिलो की शिरोमणि कूबरी ने पढाकर पक्का कर रखसा है । यथा . कहि कहि कोटिक कपट कहानी । धीरजु धरहु प्रबोधेसि रानी । तथा : काज सँवारेउँ सजगसवु सहसा जनि पतिआहु ।

जद्यपि नीति निपुन नरनाहू । नारि चरित जलनिधि अवगाहू ॥
कपट सनेह वढाइ बहोरी । वोली विहँसि नयन मुहु मोरी ॥४॥

अर्थ : यद्यपि राजा नीति मे निपुण हैं । पर स्त्री चरित्र भी अथाह समुद्र है । फिर वह कपट का प्रेम वढाकर आँख और मुख को मोड़कर हँसती हुई वोली ।

व्याख्या : नीतिनिपुण सव चरित्रो का थाह लगा तो लेते हैं । पर त्रियाचरित्र उनके लिए भी अथाह समुद्र है । गुरु का पक्का चेला चोट नही खाता । मन्थरा कोटि कुटिलमनि गुरु है । उसकी कपट चतुराई को रानी नही लख सकी और रानी की कपट चतुराई को महाराज लखने में असमर्थ हैं । रानी का हृदय ऐसा दारुण हो गया है कि भीतर से पुत्र पति को त्यागने के लिए प्रस्तुत है । यथा : परउँ कूप तुअ वचन पर सकौं पूत पति त्यागि । और वाहर से नयन मुख मोड़कर स्नेह दिखाती हुई हँसकर वोली · यह विलयिध्वित हाव है ।

दो. माँगु माँगु पै कहहु पिय, कवहुँ न देहु न लेहु ।
देन कहेहु वरदान दुइ, तेउ पावत संदेहु ॥२७॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ हे प्रिय ! माँग माँग तो कहते हो पर कभी देना लेना कही कुछ भी नही। दो वरदान देने को कहा था। उनके मिलने मे भी सन्देह है।

व्याख्या . महाराज ने बार बार प्रिये कहकर सम्बोधन किया था। अत. रानी भी प्रिय कहकर सम्बोधन करती है और उपालम्भ करती हुई कहती है कि आप माँग माँग तो कह देते हैं पर उस वचन को कार्य मे परिणत नही करते। प्रमाण देती है कि पहिले भी इसी भाँति माँगु माँगु कहा था। परन्तु दिया क्या ? अब नया वरदान क्या दोगे ? जो दो वरदान देने के लिए कहा था वही दे दो तो मैंने बहुत पाया। मुझे तो सन्देह है कि उन्ही दो को न दे सकोगे। सन्देह प्रकाश करने म तात्पर्य यह कि महाराज उस सन्देह को दूर करने के लिए सत्य की सराहना करें। देहु न लेहु कहने का भाव यह कि ईप्सित देते भी नही और नही कहकर अपयश लेते भी नही। यथा देहु कि लेहु अयशकरि नाही।

जानेउ मरमु राउ हँसि कहई। तुमहि कोहाव परम प्रिय अहई ॥
थाती राखि न माँगिहु काऊ। बिसरि गयउ मोहि भोर सुभाऊ ॥१॥

अर्थ . राजा ने हँसकर कहा कि मैं मर्म जान गया। तुम्हे रूठना परम प्रिय है। तुमने धरोहर रखकर कभी नही माँगा। मेरा विस्मरणशील स्वभाव है। मै भूल गया।

व्याख्या महाराज ने तुरन्त समझ लिया कि असुर संग्राम मे दिये हुए दोनो वरदानो के विषय म कह रही है। सो तो इनका रक्खा ही है। इनके माँगने की देर है। इन्होने ही उस समय नही माँगा। कहा कि जब आवश्यकता होगी माँग लूँगी। सो वरदान मे देर होना अप्रसन्नता का कारण नही हो सकता। इनका मान करने का स्वभाव है। सो वरदान न देने का बहाना ढूँढकर मान किये हुए है। अत कहते है कि मुझे मर्म मालूम हो गया। तुम्हे रूठना बडा प्रिय है। उसी के लिए बहाना ढूँढ रक्खा है। तुम्हारी थाती रक्खी हुई है। नही माँगा इसमें दोष तुम्हारा है। यदि कहो कि धरोहर रखनेवाला यदि भूल भी जाय तो सच्चे महाजन को उचित है कि उसे याद दिलावे कि अपना धरोहर ले जाओ। इस पर महाराज कहते है कि मेरा विस्मरणशील स्वभाव है। मुझे भूल गया था कि तुम्हारा धरोहर रखा हुआ है। उसे बिना माँगे भी दे देना चाहिए।

झूठेहुँ हमहि दोषु जनि देहू। दुइ कै चारि माँगि मकु लेहू ॥
रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहु बरु बचनु न जाई ॥२॥

अर्थ मुझे झूठमूठ दोष न दो। दो के बदले चार क्यो नही माँग लेती। सदा से रघुकुल की यह रीति चली आयी है कि प्राण चाहे चले जायँ। पर वचन न जाने पावे।

व्याख्या कुछ भी ससर्ग रहने से झूठा दोष लग जाता है। परन्तु यहाँ तो मेरा दोष से कोई ससर्ग ही नही है। धरोहर मे ब्याज नही लगता। सो मैं ब्याज

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सहित देने को प्रस्तुत हूँ। ब्याज की पराकाष्ठा मूल को द्विगुणित कर देना है। सो तुम मुझसे दो के स्थान में चार वरदान माँग लो। कैकेयी ने कहा था देन कहेहु बरदान दुइ तेउ पावत सदेहु। उसी का उत्तर देते हुए महाराज कहते हैं कि मेरे कुल की रीति है कि प्राण छोड देते हैं वचन नही छोडते। मैं उस कुल का अग्रणी होकर वचन कैसे छोडूँगा ? मैं अपना वचन छोड नही सकता।

नहि असत्य सम पातक पुंजा। गिरि सम होहि कि कोटिक गुंजा ॥
सत्य मूल सब सुकृत सुहाए। बेद पुरान बिदित मनु गाए ॥३॥

अर्थ पातकों के समूह इकट्ठे होकर भी झूठ के बराबर नहीं हो सकते। क्या करोडों घुँघुची पर्वत के समान हो सकती हैं ? जितने सुन्दर सुकृत हैं वे सब सत्यमूलक हैं। ऐसा ही वेद पुराण कहते हैं और मनु जी भी गान करते हैं।

व्याख्या और जितने पाप हैं वे सत्य के सामने वैसे ही हैं जैसे पहाड के सामने घुँघुची। अर्थात् सब पापों में अति विशाल असत्य है। इसीलिए सबसे नीचे का नरक अवीची है। जिसमें झूठे डाले जाते हैं। भाव यह कि ऐसी कुलरीति होने का यथेष्ट कारण है। प्राण देना मेरे पूर्व पुरुषों को स्वीकार था पर इतना बडा पाप करना स्वीकार न था।

और भी एक बात है। जितने पुण्य हैं वे सत्य के आधार पर ही खडे हैं। सत्य के नष्ट होते ही पूर्व के सब पुण्य धराशायी हो जाते हैं। क्योंकि क्रिया के फल को आश्रय सत्य से ही मिलता है। यथा सत्यप्रतिष्ठायाम् क्रियाफलाश्रयत्वम् तथा समूल एव परिशुष्यति योऽनृत वदति। अज्ञातार्थज्ञापक होने से पाप पुण्य के निर्णायक वेद पुराण ही हैं। उनमें भी मनुस्मृति का पद बहुत ऊँचा है यन्मनुरवदत्तद्भेषजम्। मन्वर्थविपरीता या सा स्मृतिर्न प्रशस्यते। वेद कहता है कि जो मनु कहते हैं वही औषध है। जो मनु के कहने के विपरीत है वह स्मृति मान्य नहीं है। अतः वचन को असत्य करके अपने पूर्वकृत पुण्यों का नाश और अवीची नरक को कौन स्वीकार करेगा ?

तेहि पर राम सपथ करि आई। सुकृत सनेह अवधि रघुराई ॥
बात दृढाइ कुमति हँसि बोली। कुमत कुबिहग कुलह जनु खोली ॥४॥

अर्थ इस पर श्री रामजी की शपथ मुझसे हो पडी। रघुराई रामजी पुण्य और स्नेह की सीमा हैं। बात को पक्की करके कुमति हँसकर बोली। मानो दुष्ट आशय रूपी बाज का टोप खोल दिया।

व्याख्या रामजी सुकृत की अवधि हैं। यथा सब कोउ कहै राम सुठि साधू। रामजी स्नेह की अवधि हैं। यथा राम सरिस नहि बने गोसाईं। भाव यह कि दोही का शपथ लिया जाता है। पुण्यात्मा का या अपने स्नेही का। सो रामजी दोनों की सीमा हैं। सो मैंने रामजी की शपथ ले ली। अब तो नहीं कहने के लिए अवसर ही नहीं रह गया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


महाराज के इतना कहने पर यह बात इतनी दृढ हो गयी कि नर्म कहकर किसी भाँति उडायी नही जा सकती। महाराज ने कहा था विहसि माँगु मन भावति बाता। सो हँसकर बोली। बाज के आँख पर पट्टी बाँधकर रक्खा जाता है जिसे टोप कहते है कि कहीं बेमौके झपट न पडे। कैकेयी के दुष्ट आशय की उपमा बाज से दी है। उसे वह कपट चतुराई रूपी टोप से छिपाये रही। अवसर पाकर टोप खोल दिया। अर्थात् हँसकर बोली। भाव यह कि आशय ही व्यक्त होकर वचन मे परिणत हो जाता है।

दो० भूप मनोरथ सुभग बनु, सुख सुबिहग समाजु।
भिल्लिनि जिमि छाडन चहति, वचन भयकर बाजु ॥२८॥

अर्थ राजा का मनोरथ सुन्दर वन है और सुख ही सुन्दर चिडियो का समाज है। भीलनी मानो वचन रूपी भयङ्कर बाझ को छोडना चाहती है।

व्याख्या साँझ समय सानद नृपु गयउ कैकयी गेह्। उसी आनन्द को यहाँ सुख कहा गया है। अथात् रामजी को राज्य देने का आनन्द। इस आनन्द के अन्तर्गत बहुत प्रकार के सुख है इसीलिए सुख सुबिहग समाज कहा। एक ही वचन के दो वरदान दो विभाग मात्र है। मानो वचनरूपी बाज के दोनो वरदान दो पङ्ख है। भयङ्कर बाज है एक एक पङ्ख मे एक एक पक्षी के पकडने की ताकत रखता है। यहाँ कैकेयी को उपमा भिल्लिनी से दी। क्योकि भिल्लिनी चिडियो के शिकारके लिए बाज जिलाती है और चिडिया का समाज देखकर उसे छोड देती है। उस बाज द्वारा विहङ्ग समाज का सहार हो जाता है। यहाँ राजा के मनोरथ रूपी वन मे सुखरूपी चिडिया का समाज विहार करता था। सो कैकेयीरूपी भिल्लिनी के वचनरूपी बाज के चपेट से महाराज का मनोरथ वन सुख से शून्य हो जायगा।

सुनहुँ प्रानप्रिय भावत जी का। देहु एक बर भरतहि टीका ॥
मागौ दूसर बर कर जोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी ॥१॥

अर्थ हे प्राणप्रिय ! मनोवाञ्छित सुनो। एक वर यह कि भरत को राजतिलक दो। दूसरा वरदान हाथ जोडकर माँगती हूँ। हे नाथ मेरे मनोरथ को पूरा करो।

व्याख्या प्राणप्रिय को छोडकर जी का चाहा हुआ कौन पूरा कर सकता है। अत कैकेयी प्राणप्रिय सम्बोधन दे रही है। बाज के पहिल पञ्जे की चोट है देहु एक बर भरतहि टीका। राजा चुप है। आकार से कुछ लक्षित नही होता। अत उसे स्वीकृत मान लिया।

पहिल वर के मिलने मे कैकेयी को भी विशेष शङ्का नही थी। समझती थी कि यह वरदान मिल जायगा। दूसरे वर के मिलने मे बडा सन्देह है। दूसरे वर को पहिल की भाति नही कह सकी। कहने मे सिटपिटाती है। क्योकि स्वय

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रामजी के तिलक की इच्छा प्रकट कर चुकी है। यथा भामिनि भयउ तोर मन भावा। हाथ जोड रही है बोलने मे चूक हो रही है। मनोरथ शब्द का स्त्रीलिङ्ग मे प्रयोग कर रही है। कहती है कि आप नाथ हैं। आपके बिना मनोरथ कौन पूरा करेगा : अब बाज पहिले पञ्जे के शिकार को सँभालकर दूसरे पञ्जे से चोट किया चाहता है।

तापस बेष बिसेषि उदासी। चौदह बरिस रामु बनवासी ॥
सुनि मृदु बचन भूप हियसोकू। ससिकर छुअत बिकल जिमि कोकू ॥२॥

अर्थ : तपस्वी का वेष धारण करके और विशेष रूप से उदासीन होकर चौदह वर्ष के लिए रामजी वनवासी हो। कोमल वचन को सुनकर राजा के हृदय मे शोक हुआ। जैसे चन्द्र के किरण के स्पर्श से चकवा विकल हो जाता है।

व्याख्या : पहिले चोट : वर का प्रभाव यह हुआ कि हृदय म शोक हुआ। बाहर कुछ नही। मनोरथभङ्ग से दाह हुआ। यथा सीतल सिख दाहक भइ कैसे। चकइहि सरद चदनिसि जैसे। दूसरे पञ्जे की चोट। यह वरदान ऐसा माँगा जिससे अपनी निगाह से और दूसरो की निगाह से राजभाव जाता रहे। अत तापस वेष मे रामजी का रहना माँगती है। राज के मामलो से सम्बन्ध न रक्खें। मुनिव्रत वेष अहार से मनोवृत्ति बदल जाय। इसलिए उदासीन रहना माँगती है। कैकेयी के समझ मे उससे चौदह दिन बात छिपायी गयी। पन्द्रहवें दिन मन्थरा से पता चला। यथा : भयउ पाख दिनु सजत समाजू। तुम्ह पाई सुधि मोहि सन आजू। अत एक एक दिन बात छिपाने के बदले मे एक एक वर्ष का वनवास माँगती है। फिर भी कैकेयी के हृदय मे छिपा प्रेम है। नही तो मन्थरा ने सदा के लिए वनवास कहा था। यथा : सुतहि राजु रामहि बनवासू। अथवा १४ वर्ष का समय भरत को अपने शासन को दृढ मूलक बना लेने के लिए यथेष्ट समझकर १४ वर्ष का वनवास माँगा। अथवा बुध की महादशा मे तीन वर्ष व्यतीत हो चुके थे। चौदह बाकी थे। इसलिए रानी के मन मे चौदह वर्ष के लिए वनवास माँगने का सङ्कल्प उठा। मृदु वचन यथा : सुनहु प्रानप्रिय भावत जी का।

गयउ सहमि नहि कछु कहि आवा। जनु सचान बन झपटेउ लावा ॥
बिबरन भयउ निपट नरपालू। दामिनि हनउ मनसु तरु तालू ॥३॥

अर्थ : सहम गये। कुछ कहते न बना। मानो वन मे लवा के ऊपर बाज झपट पड़ा। राजा एक बारगी बेरंग हो गये : रंग फक हो गया। मानो ताड के पेट पर बिजली गिरी हो।

व्याख्या : दूसरी चोट से तो ऐसे सहमे कि कुछ कहते न बना। बोलना चाहा पर बोल न सके। पहिले मे केवल मन की दशा दिखलायी। जब मन की दशा अधिक बिगड़ती है तब वाणी और शरीर पर प्रभाव पड़ता है। यहाँ वाणी की दशा कही। अब बाज झपट का पता लगा। पहिले तब तो मातृप्रेम ही समझते

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



थे। परन्तु इस दूसरे वरदान के समय तो ऐसी गति हुई जैसे बाज वन मे लवा पर झपटता है। बाज के झपटने पर लवा ची भी नही कर सकता। इस भाँति वाणी की दशा कहते हैं।

तालतरु तृणराज है। दूसरे पेड पर बिजली गिरने से कोई शाखा विशेष टूट जाती है। पर तृणराज तो एकदम झुलस जाते है। उनके डाल पत्ते सिरपर होत है वे एकदम नीचे आ पडते हैं।

माथे हाथ मूदि दोउ लोचन। तनु धरि सोचु लाग जनु सोचन ॥
मोर मनोरथु सुरतरु फूला। फरत करिनि जिमि हतेउ समूला ॥४॥
अवध उजारि कीन्हि कैकेई। दीन्हिसि अचल बिपति कै नेई ॥५॥

अर्थ माथे पर हाथ रखकर और दोनो आँखें बन्द करके इस भाँति सोचने लगे जैसे स्वय सोच शरीर धारण किये हो। मेरा मनोरथ रूपी कल्पवृक्ष फूल उठा था। फल लगते ही हथिनी ने उसे जड से उखाड फका। कैकेयी ने अयोध्या को उजाड दिया और विपत्ति की अटल नीव डाल दी।

व्याख्या ऊपर की तीन अर्धालियो म क्रमश मन वचन और तन की दशा कही। आघात पडते ही जो विकलता होती है उसे कहकर उसके बाद की दशा कहते हैं। दोना हाथो पर इस भाँति माथा रखना जिसम आँखें मुद जायँ शोक की मुद्रा है। जिसे अपने सोच का आरपार नही दिखाई पडता वह स्वभाव से इसी मुद्रा मे हो जाता है। कवि उपमा देते हैं मानो सोच ही शरीर धारण करके सोच रहा है। भाव यह कि चक्रवर्तीजी को इस समय वाह्यज्ञान कुछ भी नही है। वे शोकमय हो रहे हैं।

कल्पवृक्ष के पृथ्वी पर आने से सभी अपना भाग्य मानते है और सब उसकी वढोत्तरी चाहते है। क्योंकि सब जानते हैं कि यह सबकी कामना को पूर्ण करने वाला है। अत बडे यत्न से कल्पतरु की सेवा होती है। हथिनी म बल बडा है। पर वह मूखा है। कल्पवृक्ष के गुणो से अपरिचित है। उसने आकर अपने बल मद से कल्पवृक्ष को ही उखाड फका। उखाडा हुआ वृक्ष फिर नही लगता।

यहाँ चक्रवर्तीजी के मनोरथरूप रामजी स्वय कल्पवृक्ष हैं। उनका सब लायक होना फूलना है। यथा बहइ भुआलु सुनिअ मुनिनायक। भये रामु सब बिधि सब लायक। और उनका अभिषेक होना फलना है। यथा नाथ रामु करिअहि जुबराजू। कहिअ कृपा करि करिअ समाजू। सो सब समाज हो रहा था। वरदान के बल से दर्पित कैकेयी हथिनी हुई। और किसी म कल्पवृक्ष के उखाडने की सामर्थ्य नही। इस मूर्खा ने रामजी के दिव्य गुणो को न जाना। उन्हे अयोध्या के बाहर उखाड फका। सबके हाथ स कल्पवृक्ष जाता रहा।

इतने दिन चक्रवर्तीजी को राज्य करते हुए किसी शत्रु का उजाडा अवध न उजड सका। कैकेयी ने उजाड दिया। भाव यह कि प्रजा रामजी मे इतनी अनुरक्त

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


है कि रामजी के छोडते ही कोई अयोध्या मे रहना न चाहेगा। यथा : जहाँ रामु तहँ सबुइ समाजू। बिनु रघुवीर अवध नहि काजू। चले साथ अस मनु दृढाई। सुर दुर्लभ सुख सदन विहाई। तथा मोहि लगि यहु कुठाटु तेहि ठाटा। घालेसि सब जग बारहँ बाटा। मिटइ कुजोगु राम फिरि आएँ। बसै अवध नहि आन उपाएँ। सो इसने अचल विपत्ति की नीव दे दी। रामजी को राज्य कहकर वन दिया जायगा। सो चौदह वर्ष के लिए। इतने दिनो मे तो अवध का पता भी न रह जायगा और चौदह वर्ष बीतने पर भी रामजी क्यो लौटेंगे। अत: इसने विपत्ति की अचल नीव डाल दी। अब मकान का बनना किसी के रोके नही रुकेगा। भाव यह कि चक्रवर्तीजी ने मन से वन दे दिया।

दो. कवनें अवसर का भयउ, गयउँ नारि बिस्वास।
जोग सिद्धि फल समय जिमि, जतिहि अविद्या नास ॥२९॥

अर्थ : अब किस मौके पर क्या होगा? मैं तो स्त्री के विश्वास मे मारा गया। जैसे योगसिद्धि के फल के समय अविद्या सन्यासी का नाश कर देती है।

व्याख्या : कह्यो राज बन दियो नारि बस गरि गलानि गये राउ। अत: कहते हैं कि कहाँ तो मैं राज देने चला और कहाँ वन दे रहा हूँ। ऐसा होने का कारण कहते है कि राजनीति मे मैं चूक गया। विश्वासो नैव कर्त्तव्य स्त्रीषु राजकुलेषु च। मैंने क्यो स्त्री का विश्वास किया? इसी चूक से मेरा सर्वनाश उपस्थित है। साँझ समय सानद नृपु गयउ कैकयी गेह। महाराज कैकेयी को आनन्द का समाचार सुनाने गये। उन्हें विश्वास था कि कैकेयी सुनकर परम प्रसन्न होगी। क्योंकि सदा कहा करती है कि भरत से भी मुझे रामजी प्यारे हैं। यथा : भरत न मोहि प्रिय राम समाना। सदा कहहु यह सब जग जाना। जब कैकेयी को रूठी हुई पाया तब उसे प्रसन्न करने के लिए रामजी के तिलक का निश्चय सुनाते हैं : रामहि देउँ कालि जुबराजू। सजहि सुलोचनि मगल साजू। इसपर कैकेयी भी बाहर से हँस पडी। इस भाँति चक्रवर्ती जी के विश्वास को और भी दृढ कर दिया कि कैकेयी को रामजी का अभिषेक पहिले की भाँति परम इष्ट है।

उदाहरण देते हैं कि जैसे योगसिद्धि के फल के समय, अर्थात् जड चेतन की ग्रन्थि विमोक के समय अविद्या बल छल करके ज्ञान दीप को बुझा देती है। यथा : छोरत ग्रथि जानि खग राया। विघ्न अनेक करै तब माया। बल बल छल करि जाइ समीपा। अचल बात बुझावहि दीपा। ग्रन्थि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ विषय बतासा। विषय समीर बुद्धि कृत भोरी। एहि विधि दीप को बार बहोरी। तब फिर जीव विविध विधि पावै ससृति क्लेस। हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ विहँगेस।

सो जिस भाँति उक्त सन्यासी का नाश अविद्या ने किया उसी भाँति मेरा सर्वनाश स्त्री द्वारा हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



एहि बिधि राउ मनहि मन झाँखा । देखि कुभाँति कुमति मनु माखा ॥
भरतु कि राउर पूत न होहीं । आनहु मोल बेसाहि कि मोही ॥१॥

अर्थ इस भाँति राजा मन ही मन झीख रहे थे। देखकर कुबुद्धि कैकेयी के मन मे बुरी तरह से क्रोध हुआ। बोली क्या भरत आपके पुत्र नही है। मुझे क्या मोल खरीद लाये हो?

व्याख्या—इस विधि से अर्थात् आँख मूँदे माथे पर हाथ रक्खे राजा अपने मनोरथ के नाश और अयोध्या के उजडने का सोच कर रहे थे। कवि कहते है कि कैकेयी की सुमति चली गयी। अब वह कुमति के अधीन है। उसने देखा कि राजा का ढङ्ग तो अच्छा नही है। राजा की यह अवस्था देखकर सुमति को दया आती। पर कुमति के मनमे क्रोध उमडा।

उसने कहा कि क्या भरत आपके बेटे नही है? भाव यह कि जैसे राम बेटे हैं वैसे ही भरत हैं। भरत को राज्य माँगने से आपको दु ख क्यो है? मै भी तो रानी हूँ। दासी की भाँति मुझे मोल खरीद करके नही लाये हो। भाव यह कि राजा का बेटा राजा नही होता रानी का बेटा राजा होता है। दासी से भी राजाओ की सन्तति होती हैं पर वे पुत्र नही माने जाते। क्योकि उनको जल पिण्ड का अधिकार नही होता। भरत के पिता आप राजा हैं और मैं भी पाणिगृहीता भार्या रानी हूँ। हम दोनो का बेटा भरत कैसे राज्य का अधिकारी नही है? उसके लिए यदि मैने राज्य माँगा तो आप को इतना दु ख क्या है?

जो सुनि सरु अस लागु तुम्हारे। काहे न बोलहु बचनु सँभारे ॥
देहु उतरु अनुकरहु[१] कि नाही। सत्यसंध तुम्ह रघुकुल माही ॥२॥

अर्थ जो सुनने से तुम्हे बाण सा लगा तो तुम पहिले ही सोच समझकर क्यो नही बोले? जवाब दो। इनकार कर जाओ कि 'नही'। तुम रघुकुल मे सत्यप्रतिज्ञ हो।

व्याख्या कैकेयी कहती है कि मेरे वरदान के वचन तुम्हे बाण से लगे। यथा बिबरन भयउ निपट महिपालू। दामिनि हनेउ मनहुँ तरुतालू। परन्तु इस भाँति दु ख होने का कारण तो कोई है नही। तुमने कहा था—कहु केहि रंकहि करउँ नरेसू। कहु केहि नृपहि निकासउँ देसू। सो मैंने तो किसी रङ्क को नरेश करने के लिए भी नही कहा। मै तो एक राजकुमार को नरेश बनाने को कहती हूँ और न मैने किसी नरेश को देश निकालने के लिए कहा। मै तो केवल दूसरे राजकुमार के लिए १४ वर्ष का बनवास माँगती हूँ। तुम्हारे कहने से बहुत कम मैने माँगा है। मैने माँगने मे सँभाल रक्खा। तुमने सँभालकर वचन क्यो न कहा। इस भाँति कैकेयी महाराज की नीतिज्ञता पर आक्षेप करती है।

---

१ इनकार को ही ग्राम्यजन अनुकार कहते है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


राजा को चुप देखकर फिर कहती है कि चुप न रहो। एक बात कह दो। इनकार ही कर जाओ कि नही दूँगा। रघुकुल की रीति है कि प्राण जाय तो जाय वचन न जाय और तुम तो उस कुल मे सत्यसन्ध हो। ससार देख ले कि कितने बडे सत्यसन्ध हो स्त्रियाँ पति के स्वभाव को खूब जानती हैं। कैकेयी भी जानती है कि महाराज अपयश को डरते हैं। 'नही कभी न कहेगे।

देन कहेहु अब जनि बरु देहू। तजहु सत्य जग अपजसु लेहू॥
सत्य सराहि[1] कहेहु बरु देना। जानेहु लेइहि माँगि चबेना॥३॥

अर्थ वर देने को कहा था। अब मत दो। सत्य को त्याग दो और ससार मे अपयश लो। सत्य की सराहना करके वर देने को कहा तो क्या समझा था कि यह चबेना माँग लेगी।

व्याख्या भाव यह कि पहिले तो कहा झूठेहुँ हमहि दोसु जनि देहू। दुइ कै चारि माँगि मकु लेहू। रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहुँ बरु बचन न जाई। इस दृढता से वर देने को कहा। अब अपनी बात से हट जाओ मत दो। देना तो तुम्हारे हाथ मे है। पर समझ लो कि सत्य को त्याग रहे हो और अपनी अपकीर्ति को अपना रहे हो।

यदि कहो कि मै नही समझता था कि यह भरत को राज्य और रामजी को वनवास मागेगी। मुझे धोखा हुआ। इसपर कहती है कि धोखे की बात नही। तुम कठिन से कठिन वर देने को जान बूझकर तैयार थे। प्रान जाहुँ बरु बचन न जाइ। नहिं असत्य सम पातक पुंजा। सत्यमूल सब सुकृत सुहाए। इत्यादि वचनो को वर देते समय तुमने उच्चारण किया है। वरदान के समय सत्य की प्रशसा का तात्पर्य ही यही है कि जो चाहो सो माँगो, मैं घोर से घोर संकट सहूँगा पर बात से न हटूँगा। तुम राजा हो। समझ सकते हो कि वरदान मे चबैना ऐसी सुलभ वस्तु नही माँगी जाती।

सिवि दधीचि बलि जो कछु भाषा। तनु धनु तजेउ बचन पनु राखा॥
अतिकटु बचन कहति कैकेई। मानहुँ[2] लोन जरे पर देई॥४॥

अर्थ शिवि दधीचि और राजा बलि ने जो कुछ कहा था शरीर और धन का त्याग करके भी वचन और प्रण को रक्खा। कैकेयी अत्यन्त कडुए वचन कह रही है मानो जले पर नमक छिड़क रही है।

व्याख्या शिवि दधीचि और बलि सत्यसन्ध थे। शिवि ने अपने शरीर का मांस काटकर कबूतर के बराबर तौल दिया। कबूतर भारी हो गया। राजा शिवि मांस काट काटकर तुला पर चढाते गये। अन्त मे जब सिर चढाने लगे तब इन्द्र

---

१ यह छेकोक्ति अलङ्कार है।
२ फलसिद्धास्पदा उत्प्रेक्षा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



और अग्नि ने प्रकट होकर उनकी सत्यप्रतिज्ञा की प्रशसा की और उनके शरीर को ठीक कर दिया। राजा की शरणागतवत्सलता की परीक्षा के लिए इन्द्र बाज और अग्नि कबूतर बने थे। कबूतर भागता हुआ राजा शिवि की गोद मे जा छिपा। बाज ने आकर कहा कि यह मेरा भक्ष्य है। इसे दे दीजिये। राजा ने कहा इसके बदले मे जो माँगो दूँगा। बाज ने कहा अपने शरीर का मास इसके बराबर तौल दो। शिवि कह सकते थे कि मुझे धोखा हुआ मै नही समझता था कि तुम मेरे शरीर का मास माँगोगे। परन्तु उन्होने ऐसा न कहा। काटकर अपना मास तौलने लगे। वे चबैना देनेवाले सत्यसन्ध नही थे।

दधीचि ऋषि देवताओ का धरोहर अस्त्र शस्त्र रक्खे हुए थे। राक्षसो से हैरान होकर वे उनको पान कर गये। जब देवता माँगने आये तो उन्होने कहा कि वे तो जठरानल म पककर मेरी अस्थि मे लीन हो गये है। मेरी हड्डी ले जाकर अपने अस्त्र शस्त्र बना लो। सो दधीचि जी इस भाँति रक्खी हुई थाती को लौटानेवाल सत्यसन्ध थे। चबैनावाले नही थे।

राजा बलि से वामन ने तीन हाथ पृथ्वी माँगी। दान पाने पर वामन ने अपना विराट् रूप कर लिया और उसके त्रैलोक्य का राज्य तथा उसकी शरीर भी नाप ली। राजा बलि ने यह न कहा कि मुझे धोखा हुआ मैं नही जानता था कि तुम इतनी बडी शरीर बना लोगे। क्योकि वे सत्यसन्ध थे। चबैना देनेवाले नही थे।

इस भाँति शिवि दधीचि ने तन दिया। बलि ने तन धन दानो दिया। पर न शिवि अपने प्राण से हटे और न दधीचि और न बलि अपने वचन से हटे। तीनो के साथ कपट हुआ। पर वे धर्म से न हटे। वे सत्यसन्ध थे। चबैना देनेवाले नही थे। तुम्हे न तन देना है न धन देना है। मुफ्त म सत्यसन्ध कहलाना है। इन कटु वचनो से महाराज को अति पीडा हो रही है। जैसे जले पर कोई नमक छिडके और वह मनुष्य छटपटा उठे।

दो धरम धुरधर धीर धरि, नयन उघारे राय।
सिर धुनि लीन्ह उसास असि, मारेसि मोहि कुठाय ॥३०॥

अर्थ धर्म की धूरि धारण करनेवाले महाराज ने धीरज धरकर नेत्र खोले और सिर धुनकर लम्बी श्वास ली कि इसने बुरी जगह मुझे तलवार मारी।

*व्याख्या* महाराज के हृदय मे शोक था। सो धैर्य धारण किया। माथे हाथ रखकर आँख मीचे हुए थे। सो आँख खोली। जल पर नमक छिडकने के कारण सिर पीटा, अतिपीडा से लम्बी श्वास लकर मन मे कहा कि इसने मेरे मर्म पर तलवार मारी। इस चोट से मै बच नही सकता। कहने के लिए इसकी चोट राम पर है। वस्तुतस्तु यह मेरे प्राण पर आघात हुआ।

कैकेयी ने कहा कि अपने को सँभालकर कुछ बोलो तो। हाँ या ना कुछ उत्तर तो दो और राजा की विकलता पर अनेक आक्षेप किया। तब राजा ने अपने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



को सँभाला। धैर्य धारण करके आँख खोली। पर सामने का दृश्य देखकर सिर पीटने
लगे। कैकेयी को ऐसा क्रोध में भरा पाया कि उमसे दया या स्नेह की कोई आशा
ही नही रह गयी। जब मनुष्य से कुछ करते नही बनता तभी वह सिर पीटता है।
लम्बी साँस लेता है। राजा सत्य के अनुरोध से ना कर नही सकते और रामजी
प्राणों से अधिक प्रिय हैं। उन्हे आँख से ओट करना और प्राण छोड़ना एक बात है।
अतः हाँ करना भी असम्भव है। अब यदि कैकेयी ही दया करे तो कोई रास्ता
निकल सकता है। सो कैकेयी : आगे दीख जरत रिसि भारी। मनहु रोप तरवारि
उघारी हो रही है। अतः सिर पीटते हैं और लम्बी साँस लेते है। सोचते हैं कि इसके
क्रोध रूपी खड्ग का आघात रामजी पर नही है मुझपर है। राम पुनीत विषय रस
रूखे हैं : देवताओं ने भी कहा था कि विस्मय हर्ष रहित रघुराऊ। अतः रामजी को
भी कोई विशेष हानि नही है। इसमे मरण हमारा है जो रामजी के विना जी नही
सकते। सबसे बड़ी बात तो यह है कि मैंने ही रामजी से कहलाया था कि कल
तुम्हारा अभिषेक होगा और जब कल का दिन आवे तब मैं ही कहूँ कि मैं तुम्हे
वनवास देता हूँ। यह तो प्राण रहते नही हो सकता। यथा : कह्यो राज वन दियो
नारि वस गरि गलानि गयो राउ। अतः यह तलवार की चोट ऐसे मर्म पर की गयी
है कि इसका परिणाम मृत्यु ही है। इसका कोई उपचार नही हो सकता। इसलिए
कहते हैं कि यह तलवार मुझ पर चली है और इमने सद्य.प्राणहर मर्म को काट
दिया।

आगे दीखि जरत रिस भारी। मनहु रोप तरवारि उघारी ॥
मूठि कुबुद्धि धार निठुराई। धरी कूबरी सान बनाई ॥१॥

अर्थ : सामने क्रोध से जलती हुई : कैकेयी को देखा मानों खिची हुई क्रोध
की तलवार है। कुबुद्धि मूठ है। निष्ठुरता धार है। जिसपर : कुबरी ने शान दे
रक्खा है।

व्याख्या : आँख खोलते ही महाराज की दृष्टि कैकेयी पर पड़ी। देखते हैं कि
वह अपने वश मे नही है। क्रोध के हाथ की शस्त्र हो गयी है। पहिले कोप मे तलवार
थी। यथा : ऐसिउ पीर बिहँसि तेहि गोई। चोरनारि जिमि प्रगटि न रोई। अब
कोप के बाहर निकल आयी है। चोट कर रही है।

उस तलवार की मूठ कुबुद्धि है। उसे मजबूती से पकडे हुए है और निष्ठुरता
ही धार है। उसे शान रखकर कूबरी ने खूब तीखी कर रक्खी है। यथा : काजु
सँवारेउ सजग सबु सहसा जनि पतिआहु।

लखी महीप कराल कठोरा। सत्य कि जीवनु लेइहि मोरा ॥
बोले राउ कठिन करि छाती। बानी सविनय तासु सोहाती ॥२॥

अर्थ : चक्रवर्तीजी ने लखा कि कराल कठोर है। क्या सचमुच मेरा प्राण
लेगी। राजा छाती कड़ी करके विनययुक्त वाणी जो उसे अच्छी लगे बोले।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या राजा हैं। स्वरूप देखते ही लख लिया कि यह तलवार . कैकेयी तो भयानक कठोर है। कुठांव तलवार लगाने पर भी राजा समझते थे कि यह मेरा प्राण न लेगी। इतनी कठोर नही हो सकती कि पति के प्राण की परवाह न करे। पर अब उसकी कराल कठोरता देखकर यह भी सम्भव मालूम होने लगा।

राजा ऐसे सहमे हुए थे कि उनके मुख से शब्द नही निकलते थे। यथा · गयेउ सहमि नहि कछु कहि आवा। मो आवश्यकता देखकर उन्होने छाती कडी की और बोले। क्रोधी से विनय करने और उसे अच्छी लगनेवाली वाणी बोलने से ही काम निकलता है। क्रोधी के ऊपर क्रोध करने से बात और बिगडती है। अत राजा विनययुक्त प्रिय लगनेवाली वाणी बोले।

प्रिया वचन कस कहसि कुभाँती। भीर प्रतीति प्रीति करि हांती ॥
मोरें भरतु रामु दुइ आँखी। सत्य कहउँ करि सकरु साखी ॥३॥

अर्थ हे प्रिये ! हे भीरु ! विश्वास और प्रीति का हनन करके ऐसी बुरी तरह से वचन क्या बोलती हो। मेरे तो भरत और राम दोनो आँखें हैं। शङ्कर को साक्षी देकर सत्य कहता हूँ।

व्याख्या तू मेरी प्रिया है। तेरे मुख से प्रीति और प्रतीतियुक्त वचन ही शोभा देते हैं। सो तू ऐसे वचन क्या बोल रही है जिससे प्रीति और प्रतीति का हनन हो। प्रीति का हनन यथा सत्य सराहि कहहु बर देना। जानहु लइहि मांगि चबेना। प्रतीति का हनन यथा देहु उतरु अनुकरहु कि नाही। सत्यसध तुम्ह रघुकुल माही। यह विनययुक्त वचन है।

कैकेयी ने कहा था भरतु कि राउर पूत न होही। आनेउ मोल बिसाहि कि मोही। उसी का उत्तर देते हुए कहते हैं कि भरत और राम ये ही दोनो मेरी आँखें हैं। भरत पहिले राम पीछे। जो मनकी बात जाने उसी को साक्षी दिया जाता है। चक्रवर्तीजी शङ्कर को साक्षी देकर कह रहे है। जिसमे इस वचन के सत्य होने म कैकेयी को सन्देह न हो।

अवसि दूतु मै पठइब प्राता। ऐहहि बेगि सुनत दोउ भ्राता ॥
सुदिनु सोधि सबु साज सजाई। देउँ भरत कहुँ राजु बजाई ॥४॥

अर्थ मै सबेरा होते ही दूत भेजूँगा। समाचार सुनते ही दोनो भाई शीघ्र आवेंगे। तब सुदिन दिखाकर और सब साज सजकर भरत को डका देकर राज दूँगा।

व्याख्या सबेरा होते ही पहिला काम यह होगा कि भरत को बुलाने दूत भेजे जायँगे। दूत के पहुँचने की देर है भरत शत्रुघ्न के आने में देर न लगेगी। भाव यह कि टालमटोल की बात नही है। जितनी शीघ्रता सम्भव है की जायगी। रामजी के अभिषेक की तो अब कोई बात नही है।

मुझे भरत को राज्य देने मे उतना ही उत्साह है जितना रामजी को

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



देने मे था। अत अच्छा मुहूर्त दिखवाकर धूमधाम के साथ डंका की चोट देकर भरत को राज्य दूँगा। यह देहु उतरु अनुबरहु कि नाही था उत्तर है। यह तामु सोहाती वाणी है।

दो लोभु न रामहि राजु कर, बहुत भरत पर प्रीति।
मै बड छोट बिचारि जिय, करत रहेउ नृपनीति ॥३१॥

अर्थ रामजी को राज्य का लोभ नही है और भरत से बहुत प्रेम करते है। मैं ही छोटे बडे के विचार से राजनीति का बर्ताव करता था।

व्याख्या रामजी को चौदह वर्ष वनवास देने का कारण यही हो सकता है कि वे भरत के अभिषेक म बाधक होगे अथवा शासन मे विघ्न उपस्थित करेंगे। परन्तु ऐसा तो वही कर सकता है जिसे राज्य का लोभ हो या जिसे तिलक दिया जाता हो उससे विरोध हो। रामजी को राज्य का लोभ नही है और भरत पर उनकी बडी प्रीति है। अत उनसे कोई भय नही है। उन्हे तो मै राजनीति का ख्याल करके राज देता था। राज्य का विभाजन नीति सम्मत नही है। नीतिशास्त्र की आज्ञा बडे को ही राज्य देने की है अत मैंने रामजी को राज्य देना चाहा था। कोई दूसरा कारण इसमे नही है।

राम सपथ सत कहउँ सुभाऊ। राममातु कछु कहेउ न काऊ॥
मै सबु कीन्ह तोहि बिनु पूछे। तेहि तें परेउ मनोरथ छूछे ॥१॥

अर्थ मै राम की सौ शपथ खाकर वस्तुस्थिति कहता हूँ कि रामजी की माता ने कभी कुछ नही कहा। मैंने सब विना तुझसे पूछे किया। इससे मनोरथ खाली गया।

व्याख्या. मान लिया जाय कि रामजी को राज्य का लोभ नही है। तो कौसल्या की प्रेरणा से तो सब हो रहा है। इसपर चक्रवर्तीजी कहते हैं कि राम की माता ने कभी कुछ इस विषय मे नही कहा और विश्वास दिलाने के लिए रामजी की शपथ ले रहे हैं।

चक्रवर्तीजी कहते हैं कि इसमे यदि कोई अपराध है तो मेरा है। मुझे उचित था कि इतना बडा कार्य करने के पहिले तुमसे सम्मति ले लेता। सो मैंने नही किया। उसका फल मिल गया। आजतक मेरा कोई मनोरथ विफल नही गया था। सो आज हुआ। अब रामजी का अभिषेक नही होगा।

रिस परिहरु अब मगल साजू। कछु दिन गए भरत जुबराजू॥
एकहि बात मोहि दुख लागा। बर दूसर असमंजस माँगा ॥२॥

अर्थ अब क्रोध छोडकर मङ्गल साज सजाओ। कुछ दिन के बाद भरत युवराज होंगे। एक ही बात मे मुझे दुःख हुआ। यह दूसरा वर तुमने बेतुका माँगा है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : कैकेयी क्रोध से भरी हुई है। इसलिए कहते हैं कि क्रोध को छोड दो। क्रोध करने से विवेक नही रह जाता। तुम्हारा मनोरथ पूर्ण हुआ। भूषण तो सज लिया है। अब मङ्गल भी साजो। कल तो नही हो सकता। भरत के आने पर उन्हे युवराज पद दूँगा। अत: पहिला वरदान मैं खुशी से देता हूँ।

दु:ख तो मुझे दूसरे वरदान के देने मे है। क्योकि उसका तुक : सामञ्जस्य किसी भाँति नही बैठता। पहिले का तुक तो बैठ जाता है। भरत तुम्हारे और सुपुत्र हैं। उनके लिए तुम राज्य माँगती हो ठीक है। मुझे भी प्रिय है। परन्तु दूसरे वरदान से तुम्हे कोई लाभ नही और मेरी पीड़ा का कोई अन्त नही। अत: यह वरदान बेतुका है।

अजहूँ हृदउ जरत तेहि आँचा। रिसि परिहास कि साँचेहु साँचा॥
कहु तजि रोषु राम अपराधू। सबु कोउ कहइ रामु सुठि साधू॥३॥

अर्थ : उस आँच से अब भी हृदय जल रहा है। यह क्रोध है। हँसी है कि सचमुच सच्चा है। क्रोध छोड़कर राम का अपराध बताओ। सारी जनता कहती है कि रामजी अत्यन्त भले हैं।

व्याख्या : कैकेयी ने कहा था जो सुनि सरु अस लाग तुम्हारे। इस पर चक्रवर्तीजी कहते है कि शर की भाँति नही वज्र की भाँति लगा। यथा : दामिनि हनउ मनहु तरु तालू। बिजली से तलवार सी चोट नही होती। उससे आग लग जाती है। सो इस दूसरे वर से मेरे शरीर मे आग लग गयी। अब भी उसकी आँच से हृदय जल रहा है। मुझे विश्वास नही हो रहा है कि जो तुम कह रही हो वही तुम्हारा अभिप्रेत है। ऐसी बात तो क्रोध के वेग मे कही जाती है। उसकी सचाई क्रोध के वेग मात्र मे ही रहती है या परिहास मे कही जाती है। जिसकी सचाई परिहास मात्र मे सीमित रहती है।

यदि यह बात सचमुच सच्ची है तो अवश्य रामजी से कोई ऐसा अपराध बन पड़ा है जिसका दण्ड तुम उन्हे इस भाँति दिया चाहती हो। तो उसे मै भी सुन लूँ। जिसमे वरदान देने मे मुझे सन्तोष हो कि जो मैं कर रहा हूँ सो ठीक कर रहा हूँ। सम्भव है कि बात समझने मे कुछ चूक हो रही हो। क्योकि सारी जनता राम की साधुता की प्रशसा करती है। ऐसे साधु से इतना बडा अपराध नही हो सकता। जिसके लिए यह दण्ड दिया जाय और बडे अपराध पर ही ऐसा क्रोध होता है कि अपराध बिना प्रकट किये दण्ड देना ही उचित मालूम पडता है। अत क्रोध का परित्याग करके पहिले अपराध बतलाओ।

तुहूँ सराहसि करसि सनेहू। अब सुनि मोहि भयउ सदेहू॥
जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला। सो किमि करिहि मातु प्रतिकूला॥४॥

अर्थ . तू भी सराहना करती थी। प्रेम करती थी। अब सुनकर मुझे सन्देह

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हुआ है। जिसका स्वभाव शत्रु के भी अनुकूल पडता है। वह माता के प्रतिकूल आचरण कैसे करेगा ?

व्याख्या : रामजी की सराहना जैसा ससार करता है जैसा प्रेम करता है वैसा ही तू करती थी और आज तू उन्हे वन दे रही है। अतः वन देना सुनकर मुझे सन्देह हुआ कि बात क्या है कि एकाएक तेरे भाव मे इतना बडा परिवर्तन हुआ। अवश्य रामजी से कोई बडा अपराध बन पडा।

पर यह भी नही हो सकता। रामजी का स्वभाव शत्रु के भी अनुकूल पडता है। यथा : वैरिहु राम बडाई करही। ऐसे राम माँ के प्रतिकूल आचरण करें यह हो नही सकता। कही समझने मे भूल हो रही है।

दो. प्रिया हास रिस परिहरहि, माँगु बिचारि बिबेकु।
जेहि देखौं अब नयन भरि, भरत राज अभिषेकु ॥३२॥

अर्थ : प्रिये ! हँसी या रिस : इनमे से जो हो . छोड दो और विवेक विचार कर मांगो। जिसमे अब मैं भरत का राज्याभिषेक तो देख लूँ।

व्याख्या : हास्य या क्रोध मे अतथ्य भी कहा जाता है। पर उसे कार्य मे परिणत नही किया जाता। वर माँग लेने पर तो उसे कार्य में परिणत किया जायगा। अत. वर मांगने के समय स्वस्थ चित्त होकर मांगना चाहिए। अत· तुम भी विवेक पूर्वक विचार करके वर मांगे। पहिला वर मैंने दे दिया। अतः राम का अभिषेक नही देख सकूँगा। यदि दूसरा वर भी तूने वहो रहने दिया तो भरत का अभिषेक तो होगा पर मै न देख सकूँगा। जब से भरत आवें और शुभ मुहूर्त आवे उसके पहिले ही मेरा शरीर छूट जायगा। अतः ऐसा वर मांगो कि भरत के अभिषेकोत्सव को आंख भर देख लूँ।

जिअइ मीन बरु बारि बिहीना। मनि बिनु फनिकु जिअइ दुख दीना ॥
कहउँ सुभाउ न छलु मन माही। जीवन मोर राम बिनु नाही ॥१॥

अर्थ : चाहे मछली बिना जल के जीती रहे। बिना मणि के सर्प चाहे दुःख से दीन होकर जीये। मैं स्वभाव कहता हूँ मेरे मन मे छल नही है कि मै बिना राम के जी नही सकता।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी समझ रहे हैं कि इसे रामजी से द्वेष हो गया है। पर मेरे ऊपर तो ममता होगी ही। अत. कहते हैं कि मैं राम के बिना जी नही सकता। इस बात का ख्याल करके रामजी का वनवास मत मांगो। यह मत समझो कि अपने मरने का डर दिखाकर मैं तुम्हे दूसरे वरदान से विरत कर रहा हूँ। अत. मेरे मन मे छल है। मैं वस्तुस्थिति कहता हूँ। जिस भाँति मछली बिना जल के जी नही सकती। मणि के बिना सर्प छटपटाकर प्राण दे देता है। उसी भाँति बिना राम के मैं जी नही सकता : पूर्वजन्म मे जो वरदान मांगा था : मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुमहि अधीना। वही स्थिति इस जन्म मे हो गयी है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विश्वामित्र के साथ जब रामजी गये थे तब महाराज की स्थिति मणि बिनु फणि की सी हो गयी थी। यथा मुत हिय लाइ दुसह दुख मेटे। मृतक शरीर प्रान जनु भेंटे। अब जल बिनु मीनवाली स्थिति हो रही है। सच्चा स्नेह जल के साथ मीन का ही है। यथा मकर उरग दादुर कमठ जल जीवन जल गेह। तुलसी केवल मीन को है साचिलो सनेह। जो जिसके बिना प्राण धारण न कर सके वही स्नेह सच्चा है।

समुझि देखु जिय प्रिया प्रबीना। जीवनु राम दरस आधीना ॥
सुनि मृदु बचन कुमति अति जरई। मनहु अनल आहुति घृत परई ॥२॥

अर्थ हे प्रवीण प्रिये! तू समझ कर देख कि मेरा जीवन रामजी के दर्शन के अधीन है। कामल वचनो को सुनकर कुबुद्धि कैकेयी और भी जल उठी। मानो आग मे घी की आहुति पड रही हो।

व्याख्या तू मेरी प्रियाओ मे प्रवीण है। तू विचार कर देख कि क्या मेरा प्रेम राम के प्रति इस प्रकार का है कि मैं उन्हे बिना देखे जी सकूँगा सभी जानते हैं कि महाराज बिना राम के नही जी सकते। यथा नृप कि जिअब बिनु राम। महाराज ने पूर्व जन्म मे जैसा वरदान माँगा था वैसी ही दशा का अनुभव कर रहे हैं।

ये अत्यन्त कोमल वचन थे। सुमति के द्रवीभूत करने के लिए यथेष्ट थे। पर कैकेयी भी तो कुमति का स्वरूप हो गयी थी। वह एक एक बात पर इस भाँति भभक उठती थी जैसे घी की आहुति से आग भभकतो है। कोमल वचन क्रोधाग्नि मे घी की आहुति का काम कर रहे है। वह सोचती है कि

१ स्वय जो प्रीति प्रतीत की हानि की उसे नही विचारते और मुझे विचारने को कहते हैं।

२ अपनी इस करणी को नृपनीति बतलाते है।

३ कौसल्या को निर्दोष सिद्ध करने के लिए सब दोष अपने ऊपर ले रहे है।

४ राम पर इतना प्रम है और भरत विदेश मे है। इसकी चिन्ता ही नही है। यह जो कुछ कह रहे हैं वह सब राम को घर रखने का उपाय है। मै अपने सरल स्वभाव से बहुत ठगी गयी। कुबरी ने ठीक कहा था मन मलीन मुह मीठ नृपु।

कहइ करहु किन कोटि उपाया। इहाँ न लागिहि राउरि माया ॥
देहु कि लेहु अजसु करि नाही। मोहि न बहुत प्रपच सोहाही ॥३॥

अर्थ चाहे करोडो उपाय करो पर यहाँ आप की माया नही चलगी। या तो दो या नही कहकर अपयश लो। मुझे बहुत प्रपञ्च अच्छा नही लगता।

व्याख्या रानी कुबरी की एक एक बात को गाँठ बाँधे। है उसने कहा था काजु सँवारेहु सजग सबु सहसा जनि पतिआहु। सो सब वह अपने समझ म राजा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

पर विश्वास न करके सजग होकर अपना काम सँवार रही है। कहती है कि अभी तो तुमने दो ही उपाय किया। एक तो राम के वनवास को वरदान से हटाकर जाँच पड़ताल का विषय बनाकर राजा की भाँति निर्णय करना चाहते हो। दूसरे वैधव्य का डर दिखाकर मुझे अपने निश्चय से हटाना चाहते हो। सो होने का नहीं। करोड उपाय से भी मैं अपने निश्चय से नही हट सकती। तुम अपनी माया के बोल से सत्यवादी बने हो। सब जगह तुम्हारी माया चल गयी पर यहाँ वह माया काम नही करेगी।

महाराज वाणी सविनय तासु सोहाती बोले थे। उसे वह प्रपञ्च बतला रही है। कहती है कि यह सब प्रपञ्च है। तुम्हें प्रपञ्च अच्छा लगता है। मुझे नही अच्छा लगता : भाव यह कि महराज ने कहा था कि कहौं सुभाउ न छल मनमाही। रानी ठीक उसके विपरीत समझ रही है कि यह सब छल है। मैंने पहिले ही कहा था कि माँगु माँगु पै कहहु पिय कबहुँ न देहु न लेहु। सो इस बार तो देना पडेगा। या दो या स्पष्ट नही कहकर अपयश लो।

रामु साधु तुम्ह साधु सयाने। राम मातु भलि सब पहिचाने॥
जस कौसिलाँ मोर भल ताका। तस फलु उन्हहि देउँ करि साका॥४॥

अर्थ : राम साधु हैं और तुम सयाने साधु हो और सबने पहचान लिया है कि राम की माता भली हैं। कौसल्या ने जैसा मेरा भला चाहा है वैसा ही फल उन्हे ऐसा दूँगी कि शाका चल जाय।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी का रामजी के विषय मे यह कहना : लोभ न रामहि राजकर और अपने प्रति यह कहना : कहउँ सुभाउ न छल मनमाही तथा कौसल्याजी के लिए यह कहना कि राम मातु कछु कहेउ न काऊ कैकेयी को बहुत ही बुरा लगा। वह व्यङ्ग लिये हुए कहती है कि राम को राज का लोभ नही है। राम साधु हैं और तुम उनके पिता हो। इसलिए सयाने साधु हो। अपना काम साधना खूब जानते हो और राम की माता भली हैं। वे कुछ कहती सुनती नही। यह सब बाते किसी से छिपी नही हैं। इस षड्यन्त्र का पता सबको है। डर से भले ही कोई कुछ न कहे। मेरी सिधाई का फायदा उठाकर सब मेरा नाश चाहते हैं। इस षड्यन्त्र की मूल कौसल्या हैं। अत उन्हे ऐसा फल दूँगी कि उसका शाका चल जाय। लोगों को यह घटना ऐसी चित्त पर खिच जाय कि उस समय से दूसरी घटनाओं का समय लोग निश्चय करने लगें। यथा : अमुक घटना राम वनवास के दो वर्ष बाद हुई या इतने दिन पहिले हुई इत्यादि।

दो. होत प्रातु मुनिबेष धरि, जौं न रामु बन जाहिं।
मोर मरनु राउर अजसु, नृप समुझिअ मन माहीं॥३३॥

अर्थ : सवेरा होते ही मुनिवेष धारण करके यदि राम वन न जायँगे तो राजन्! मैं प्राण दे दूँगी और आप का अयश होगा। इस बात को मन मे विचारिये।

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या सवेरे आप दूत भेजेगे। भरत आवेगे। सुदिन देखा जायगा। तब भरत को गद्दी होगी। यह तो दूर की बात है। सबेरा होते ही पहिले राम को वन भेजिये। दूत को पीछे भेजियेगा। वे मुनि का वेष धारण करके जायँ। ससार देख ले कि कपट से राज्य चाहनेवालो की ऐसी गति होती है। कौसल्या देख लें कि जिस पुत्र को उन्होने राज वेष में देखना चाहा था वह तपस्वी वेष म वनवास के लिए जा रहा है। आप कहते है कि राम वन जायँगे तो मै मर जाऊँगा। मै कह रही हूँ कि राम वन न जायँगे तो मैं प्राण दे दूँगी और आपकी मरने से कही अधिक दुर्गति होगी। यथा सभावित कहुँ अपजसु लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू। राजा हो मन मे विचार करो। मुझ कहते हो समुझि देखु जिय प्रिया प्रवीना। आप स्वय विचार क्यो नही करत। महाराज प्रिया प्रवीणा कहत हैं। कैकेयी प्राणपति अब नही कहती नृप कहती हैं।

अस कहि कुटिल भई उठि ठाढी। मानहु रोष तरगिनि बाढी ॥
पाप पहार प्रगट भइ सोई। भरी क्रोध जल जाइ न जोई ॥१॥

अर्थ ऐसा कहकर कुटिल उठकर खडी हो गयी। मानो क्रोध की नदी मे बाढ आगयी हो। वह पाप के पहाड से निकली है। क्रोध जल से भरी हुई है। देखते नही बनता।

व्याख्या कुटिल है। समझती है कि बातचीत बढाने से अपनी जगह से हटना पडेगा। अत बात खतम करती है। क्रोध के वेग से खडी हो गयी। मानो नदी म बाढ आगयी। पहिले कहा था मनहु रोष तरवारि उघारी। अब क्रोध का वेग उमड चला। इससे कहते है तरगिनि बाढी। क्रोध मे मुख की आकृति विकृत हो जाती है। अत ऐसी भयानक मालूम होती है कि देखते नही बनता।

चित्तनदी उभयतोवाहिनी कल्याणवहा पापवहा च। चित्त नदी दोनो ओर बहती है कल्याणवहा और पापवहा। यथा त्रिविध ताप त्रासक त्रिमुहानी। राम सरूप सिधु समुहानी। पापवहा यथा मानहु रोष तरगिनि बाढ़ी।

नदी पहाड से प्रकट होती है। सो पुण्यपहाड से कल्याणवहा उद्गम स्थान है और पाप [1]पहाड पापवहा का उद्गम स्थान है। नदी म जल भरा रहता है। इस पापवहा नदी म क्रोधरूपी जल भरा है।

दोउ वर कूल कठिन हठ धारा। भँवर कूबरी बचन प्रचारा ॥
ढाहत भूपरूप तरु मूला। चली बिपति बारिधि अनूकूला ॥२॥

अर्थ दोनो वर किनारे हैं। कठिन हठ धारा है। कूबरी के वचन का प्रचार भँवर है। राजारूपी वृक्ष के मूल को ढहाती हुई विपत्ति के समुद्र की ओर चली।

---

१ ऋषिकुमार का वध तथा उनके माता पिता का अग्निप्रवेश यही पाप पहाड है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या नदी सदा दो किनारो के बीच से बहती है। सो इस पापवहा नदी के दोनो वर भरत को राज्य और राम को वनवास दोनो किनारे है और हठधार दोनो कूलो का अवगाहन करता चलता है। उस हठधार मे जहाँ तहाँ कूबरी के वचन का चमत्कार दिखाई पडता है। वही मानो इस नदी का भँवर है। कूबरी कुटिल उसकी उक्ति कुटिल। अत उसके वचन का प्रभाव जो हठ की धारा म दृष्टिगोचर होता है उसकी उपमा भँवर से दी गयी।

जब नदी बढती है तो किनारे पर के पेड की जड को धो देती है और पेड जा पडता है। यह पापवहा नदी राजा रूपी पेड के जड को गिराती हुई विपत्ति के समुद्र की ओर को उन्मुख हुई। नदी को समुद्र छोडकर दूसरी गति नही। इसी भाँति पापवहा नदी को भी विपत्ति के समुद्र को छोडकर अन्यगति नही है। अर्थात् अब यह क्रोधतरंगिणी विपत्ति के समुद्र मे बिना पहुँचे कही रुक नही सकती।

लखी नरेस बात फुरि साँची। तिय मिस मीचु सीस पर नाँची ॥
गहि पद विनय कीन्ह बैठारी। जनि दिनकर कुल होसि कुठारी ॥३॥

अर्थ राजा ने लखा कि बात तो सचमुच सच्ची है। स्त्री के व्याज से मौत सिरपर नाच रही है। तब राजा ने कैकेयी के चरण पकड लिये और बिठलाया कहा कि सूर्यकुल के लिए तू कुल्हाडो मत बन।

व्याख्या चक्रवर्तीजी ने लखा कि मृत्यु तो आगयी। रानी निमित्त मात्र है। क्योकि राम को वन माँगना रिमि परिहास मे सत्य नही है। सचमुच सत्य है। अब जो यह यहाँ से चली जाती है तो बात खतम हो जाती है। यदि ठहरे तो और भी प्रयत्न किया जाय और यह अब आज्ञा देने से नही रुकेगी। अत चरण पकड लिया। विनय किया कि बैठ जाओ। रानी इतने क्रोध मे भी पति के इस भाँति विनय की अवहेलना न कर सकी। बैठ गयी। तब कहा कि सूर्यकुलरूपी वन के विध्वस के लिए तू कुल्हाडी बनने का अपयश अपने ऊपर मत ले। रामचन्द्र के वन जाने से सूर्यकुल नष्ट हो जायगा। इस भाँति दूसरे वन मे सङ्कोच करने के लिए प्रार्थना करते हैं।

माँगु माथ अबही देउँ तोही। राम विरह जनि मारसि मोही ॥
राखु राम कहुँ जेहि तेहि भाँति। नाहि त जरिहि जनम भरि छाती ॥४॥

अर्थ : सिर माँग मै अभी उतारकर देता हूँ। पर रामजी के विरह मे मुझे मत मार। रामजी को जिस किसी भाँति रख ले। नहीं तो जन्म भर छाती जलेगी।

व्याख्या चक्रवर्तीजी कहते हैं कि मुझे मरने का भय नही है। जो तू कहती है - सिवि दधीचि बलि जो कुछ भाखा। तन धन तजेउ वचन पन राखा। सो मै भी कहता हूँ कि तू सिर माँग। दख मैं उतारकर देता हूँ कि नही। पर राम के विरह म घुल घुलकर मैं मरना नही चाहता। यहाँ राम के वन का प्रश्न नही है। मेरे मरने जीने का प्रश्न है। अत राम को वन न जाने दे। मेरे सामने तापस वेष

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विशेष उदासी रूप मे ही सही रहने दे। मुझसे अलग न होने दे। यदि न मानेगी तो तुझे भी जन्म भर पछताना पड़ेगा।

दो देखी ब्याधि असाधि नृपु, परेउ धरनि धुनि माथ।
कहत परम आरत बचन, राम राम रघुनाथ ॥३४॥

अर्थ राजा ने देख लिया कि रोग असाध्य है। तब परम आरत वचन राम राम रघुनाथ कहते हुए सिर पीट पीटकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

व्याख्या : पहिले लखा था कि स्त्री के बहाने मौत आगयी और लोगो को रोग के बहाने मौत आती है। सम्भव है कि स्त्री रूपी रोग कष्टसाध्य हो। अत उसके उपशम का उपाय किया। चरण पकडकर बैठाया। ऊँचा नीचा समझाया। पर वह टस से मस नही हुई। सिर देने पर तैयार हुए। राजा शिवि के सिर देने पर तैयार होने पर बाज मान गया। पर यह नही मानती। तब राजा ने देख लिया कि रोग असाध्य है। यह घुला घुलाकर ही प्राण लेगा। अत अपने परम प्रिय को स्मरण करते हुए सिर पीटकर पृथ्वी पर गिर गये। अब चिकित्सा का प्रयत्न करेगे। परेउ धरनि से शरीर की गति कही। धुनि माथ से मन की गति कही। कहत परम आरत बचन से वाणी की गति कही।

ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता। करिनि कलपतरु मनहु निपाता ॥
कठु सूख मुख आव न बानी। जनु पाठीनु दीनु बिनु पानी ॥१॥

अर्थ राजा व्याकुल है। अङ्ग सब ढीले पड गये। मानो हथिनी ने कल्पवृक्ष को जड से उखाड डाला। कण्ठ सूखने लगा। मुख से शब्द नही निकलते। जैसे पहिना मछली बिना जल के दीन हो जाय।

व्याख्या हथिनी क्या जाने कि कल्पवृक्ष मे क्या गुण है। उसने उसे उखाड कर फेक दिया। उसे यह भी ख्याल नही है कि इसके उखाडने से ससार की कितनी बडी हानि हुई। उखडने पर कल्पवृक्ष की क्या दशा है। इस पर उसे पश्चात्ताप भी नही। राजा का मनोरथ कल्पवृक्ष था। यथा मोर मनोरथु सुरतरु फूला। राजा उसकी जड थे। यथा ढाहत भूप रूप तरु मूला। सो कैकेयी रूपी हथिनी ने मनोरथ के सहित राजा को समूल वृक्ष की भाँति उखाड फेंका। अब चक्रवर्तीजी की दशा उखडे हुए वृक्ष की सी हो गयी।

अब राम राम रघुनाथ नही कहते हैं। क्योकि गला सूख गया। शब्द ही नही निकलता। जल बिनु मीन की दशा हो गयी। मणि बिनु फणि की दशा तो पहिले थी। अब तो चक्रवर्तीजी बिना जल के पहिना मछली की भाँति छटपटा रहे हैं।

पुनि कह कटु कठोर कैकेई। मनहुँ घाय महुँ माहुर देई ॥
जौ अतहु अस करतबु रहेऊ। मांगु मांगु तुम्ह केहि बल कहेऊ ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : फिर कैकेयी ने कठोर कटु कहा मानो घाव में विष दे रही है। यदि अन्त मे तुम्हे यही करना रहा तो माँग माँग किस बूते पर तुमने कहा ?

व्याख्या : पहिले कह आये हैं : असि मारेसि मोहि कुठाँव । अब उसी तलवार के घाव मे विष दे रही है। रक्त से विष का सम्बन्ध हो जाने से विष तुरन्त प्राण लेता है। खाने से तो पाक होने पर मारक होता है। अत: कैकेयी की कठोर कटु उक्ति की उपमा घाव मे विष देने से दे रहे हैं। उसे राजा की इस दीन दशा पर दया नही आयी। वल्कि उसका क्रोध और बढा कि सौत के लड़के पर इतना प्रेम है। मेरे लड़के की चिन्ता इन्हे नहीं है। अतः कहने लगी कि यदि अन्त मे तुम्हे पैर पकड़कर विनती ही करनी रही तो माँग माँग किस बूते पर कहा। तब तो ऐसा बोलते रहे जैसे आकाशवाणी हो : माँगु माँगु तव भै नभ वाणी। अब पैर पकडते विनती करते हो।

दुइ कि होहिं एक समय भुआला। हँसब ठठाइ फुलाउब गाला ॥
दानि कहाउब अरु कृपनाई। होइ कि खेम कुसल रौताई ॥३॥

अर्थ : राजन् ! क्या ठहाका मारकर हँसना और गाल फुलाना दोनो बातें एक ही समय मे हो सकती है ? दानी कहलाना चाहते हो और कृपणता भी करते हो। राजापन मे कही कुशल क्षेम हो सकता है।

व्याख्या : शोक और हर्ष प्रसन्नता और अप्रसन्नता यह दोनो भाव एक दूसरे के अत्यन्त विरुद्ध है। हर्ष मे आदमी हँसता है और शोक मे रोता है। प्रसन्नता से अट्टहास करता है और अप्रसन्न होकर गाल फुलाता है। यह दानो बातें युगपत् हो नही सकती। कहाँ यह कहना : कहु केहि रंकहि करउँ नरेसू। कहु केहि नृपहि निकासउँ देसू। कहाँ यह कहना कि राखु राम कहँ जेहि तेहि भाँति। यही ठठाकर हँसने के साथ गाल फुलाना है।

सकुच विहाइ माँगु नृप मोही। मोरे नहिं अदेय कछु तोही। ऐसी वाणी दानी के मुख से शोभा देती है और माँग कहकर माँगने पर सङ्कोच करने को कहना कृपिण का काम है। कृपणता करनेवाले को दानी कहलाने का इच्छा नही होनी चाहिए। राजापन मे क्षेम कुशल कहाँ ? कुशल क्षेम तो वनियापन मे होता है।

छाड़हु वचनु कि धीरजु धरहू। जनि अबला जिमि करना करहू ॥
तनु तिय तनय धामु धनु धरनी। सत्यसंध कहुँ तृन सम बरनी ॥४॥

अर्थ : या वचन छोड़ो या धीरज धरो। औरतो की तरह रोओ मत। शरीर, स्त्री, वेटे, धन, घर, जमीन ये सब सत्यसन्ध के लिए तिनके के वरावर कहे जाते है।

व्याख्या : रानी कैकेयी उपर्युक्त कठोर वचन कहकर अब कटुकठोर कहती है कि वचन छोड दो। इसमे कौन बात है। यदि बात का पास है तो धैर्य धरो। मर्द की तरह काम करो। रो गाकर काम निकालना तो स्त्रियो का काम है। सत्यसन्ध होना दिल्लगी नही है। सत्यसन्ध के लिए शरीर क्या है ? स्त्री क्या है ?

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बेटे क्या हैं ? घर क्या चीज है ? और धन धरणी क्या है ? तुम्हें तो सबका सोच है। तन का सोच यथा : समुझि देखु जिय प्रिया प्रबीना। जीवनु राम दरस आधीना।

तिय का सोच यथा : राम मातु कछु कहेउ न काऊ।

तनय का सोच यथा : राखु राम कहुँ जेहि तेहि भाँती।

धाम, धन, धरनी का सोच यथा : अवध उजार कीन्हि कैकेयी।

दो. मरम बचन सुनि राउ कह, कहु कछु दोषु न तोर।
लागेउ तोहि पिसाच जिमि, कालु कहावत मोर ॥३५॥

अर्थ : मर्म वचन सुनकर राजा ने कहा कि तेरा दोष कही कुछ भी नही है। मेरी मृत्यु तुझे पिशाच की भाँति लगी हुई है। वही यह सब कहला रही है।

व्याख्या : महाराज कैकेयी के स्वभाव से भली भाँति परिचित हैं। यह ऐसी थी नही। यह ऐसा कह सकती नही। ये सब बाते यह अपने होश मे नही कह रही है। मेरी मृत्यु इसे पिशाच की भाँति लग गयी है। वही इससे ये बाते कहला रही है। पिशाच लगने पर वह मनुष्य होश मे नही रहता। उसके मुख से पिशाच बोलता है। कैकेयी ने सदा महाराज को सेवा वश कर रक्खा था। ये अरुन्तुद बातें उसके स्वरूप के सर्वथा प्रतिकूल थी।

चहत न भरत भूप[1] तहि भोरे। विधि बस कुमति बसी जिय तोरे ॥
सो सबु मोर पाप परिनामू। भयउ कुठाहर जेहि विधि बामू ॥१॥

अर्थ : भरत भूलकर भी राजा होना नही चाहते। विधिवश तेरे हृदय मे कुमति बस गयी है सो सब मेरे पाप का फल है जो बेमौके ब्रह्मा बाये हो गये।

व्याख्या : ऊपर कह आये है 'कछुक दोष नहि तोर। उसी को स्पष्ट करते है कि जिस भरत के लिए तू सब कर रही है वे भूलकर भी राज्य नही चाहते। होनहार बुरा है इसलिए तेरे हृदय मे कुबुद्धि आ बसी है। क्योकि पहिले तेरी बुद्धि ऐसी नही थी। तेरी ऐसी बुद्धि के एकाएक ऐसा हो जाने का कारण मेरा पाप है। ब्रह्मदेव तो शुभाशुभ कर्म के फल देनेवाले है। उसी पाप का फल देने के लिए कुअवसर मे बायें हो गये। यही बात रामजी को राज देने के लिए कहलाने के पहिल हुई होती तो दूसरी बात थी : कहेउ राज बन दियो नारि बस गरि गलानि गये राउ। इतना समय नही है कि भरत को बुलवा सकूँ। अतः यह मेरे पाप के कारण हो रहा है। तेरा दोष नही है। ब्रह्मदेव के बाये होने से मृत्यु होती है। सो यदि रणाङ्गन मे वीरगति हो तो वह ब्रह्मदेव का सुठाहर मे बाये होना कहा जायगा। प्रियतम के विरह मे प्राण त्याग और संसार मे स्त्रैण होने की अपकीर्ति का होना ब्रह्मदेव का कुठाहर मे बायें होना है।

---

१. भूपतितव शब्द मे प्रकृतिप्रत्ययसन्धिर्लोपविकारागमाश्च वर्णानाम् से ति का लोप हुआ और सर्वत्र लवराम् इस सूत्र मे 'वकार' का लोप होकर 'भूपत' रूप हो गया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


सुबस बसिहि फिरि अवध सुहाई । सब गुन धाम राम प्रभुताई ॥
करिहहिं भाइ सकल सेवकाई । होइहि तिहुँ पुर रामु बड़ाई ॥२॥

अर्थ : सुन्दर अयोध्या फिर स्वच्छन्द होकर बसेगी । सब गुणों के धाम रामजी की प्रभुता होगी । सब भाई सेवकाई करेंगे । तीनों लोक में रामजी की प्रशंसा होगी ।

व्याख्या : अब चक्रवर्तीजी भविष्य कहते हैं । जो तू चाहती है वह तो होना नहीं है । होगा यह कि मैं तो रहूँगा नहीं । अयोध्या रामके वन जाने से एक बार अवश्य उजड़ जायगी । परन्तु फिर स्वच्छन्द होकर बसेगी । राम सबगुणधाम हैं । वे ही राजा होंगे और भाई लोग उनकी सेवा करेंगे । रामजी का यश इतना बढ़ेगा कि तीनों लोक में फैल जायगा । क्योंकि सब विधि सब लायक हैं ।

तोर कलंकु मोर पछिताऊ । मुयहु न मिटिहि न जाइहि काऊ ॥
अब तोहि नीक लाग करु सोई । लोचन ओट बैठु मुहु गोई ॥३॥

अर्थ : तेरा कलङ्क और मेरा पश्चात्ताप मरने पर भी नहीं मिटेगा और सदा बना रहेगा । अब जो तुझे अच्छा लगे सो कर । मेरी आँख के ओट होकर मुँह छिपाकर बैठ ।

व्याख्या : तेरे कलङ्क और मेरे पश्चात्ताप का शाका अलबत्ता चलेगा । संसार कहेगा कि कैकेयी ने इतना बड़ा अनर्थ कर डाला और राजा उसी पश्चात्ताप में मर गये । हम लोगों के मरने पर भी लोग स्मरण रक्खेंगे । यह इतिहास हो जायगा और यावच्चन्द्रदिवाकरौ लोग इसे न भूलेंगे । यही होना है अब जो तेरे जी में आवे सो कर । मैं नहीं रोकता । जाना हो तो जा । रहना हो तो रह । पर मेरे सामने से हट जा । तू किसी के सामने मुँह दिखाने लायक नहीं रह गयी । अतः मुँह छिपाकर कहीं बैठ । जो महाराज कहते थे : मन तव आनन चंद चकोरू । वही आज उसका मुँह देखना नहीं चाहते हैं ।

जब लगि जिअउँ कहउँ कर जोरी । तब लगि जनि कछु कहसि बहोरी ॥
फिरि पछितैहसि अंत अभागी । मारसि गाइ नहारु लागी ॥४॥

अर्थ : हाथ जोड़कर कहता हूँ कि जब तक मैं जीता हूँ तब तक फिर कुछ न बोलना । अरे अभागी ! अन्त में फिर तू पछतायेगी । तू ताँत के लिए गोवध कर रही है ।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी कहते हैं कि मेरा अन्तकाल सन्निकट है । अतः जब तक जीता हूँ तब तक फिर कुछ न कहना । दण्ड देने का अवसर नहीं है । अतः हाथ जोड़ते हैं । तेरी वाणी अब मेरे कर्णगोचर न हो । तेरे शब्द भी सुनना नहीं चाहता ।

नहारु कहते हैं ताँत को । पुंसे नहारु च सिरा धमन्यथ रसायसा : अभिधान-प्पदीपिकायाम् श्लोक २७९ । ताँत राग बजाने के काम आता है । यथा : बाज

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुराग कि गांडर ताती। वृढो गाय या भैंस के तांत से ही अच्छा राग वजता है। अत अच्छा राग वजाने के लिए जिसने परमपूज्य गोमाता का वध किया वह अभागा गोहत्या लगने पर पीछे पछताता है। कैकेयी की भी यही दशा है। भरत राजा होना नही चाहते। पर यह राजमाता कहलाने का आभिमानिक सुख चाहती है। इस मनोविनोद के लिए परमपूज्य पति का वध कर रही है। इसीलिए चक्रवर्तीजी उसे अभागिनी कहते हैं। जो अल्प के लिए बडा भारी दुख और अपयश मोल ले रही है।

दो परेउ राउ कहि कोटि विधि, काहे करसि निदानु।
कपट सयानि न कहति कछु, जागति मनहुँ मसानु ॥३६॥

अर्थ राजा करोडो भाँति से कहकर कि बात क्यो समाप्त करती हैं। गिर पडे। पर कपट करने मे चतुर कैकेयी कुछ बोलती ही नही। मानो मसान जगा रही है।

व्याख्या राजा घर का मामला निपटाना चाहते है। इसलिए कारण पूछते हैं। कैकेयी विचार करने कराने के लिए तैयार नही हैं। वह राजा से हाँ या नही कराना चाहती है। कपट सयानी है। समझती है कि यहाँ पर कुछ भी कहने से मुझे अन्त मे अपने निश्चय से हटना ही पडेगा। अत ऐसी चुप्पी साधे हुए है। जैसे मसान जगाने वाले मौन साधकर बैठते है। उनके सामने चाहे जैसा दृश्य उपस्थित हो उसके ओर ध्यान न देकर धैर्य धारण किये हुए मौन होकर अपने साध्यपर ही दृष्टि लगाये रहते है।

यद्यपि निदान आदि कारण के अर्थ मे आता है। पर इस ग्रन्थ मे समाप्ति के अर्थ मे भी आता है। यथा देहि अगिन तन करहुँ निदानू। कार्य का कारण दशा को प्राप्त होना ही उसकी समाप्ति है।

राम राम रट विकल भुआलू। जनु विनु पख विहग वहालू ॥
हृदयँ मनाव भोरु जनि होई। रामहि जाइ कहइ जनि कोई ॥१॥

अर्थ राम राम रटते हुए राजा विकल हैं। जैसे विना पख के पक्षी विकल हो। मन मे मनाते हैं कि सवेरा न हो। रामजी से जाकर कोई कह न दे।

व्याख्या चक्रवर्तीजी को राम राम की रट लगी है। उन्हे अत्यन्त व्याकुलता मे सिवा रामजी के कुछ सूझता नही है। उन्ह बडी बेचैनी है जैसी पक्षहीन पक्षी को होती है। पक्षी का तो सर्वस्व पक्ष ही है। उसके न होने से वह नितान्त असमर्थ दीन हीन हो जाता है। उसे चारो ओर मृत्यु ही दिखाई पडती है। कुछ करते नही वनता। अत्यन्त विकल होकर चे चे किया करता है। यही गति राजा की हो रही है। अत्यन्त विकल है। राम राम की रट लगाये हैं।

अति अनिष्ट भावी को सन्निकट देखकर उपायहीन आर्तपुरुष असम्भव के लिए प्रार्थना करता है। मन ही मन मनाते हैं कि सवेरा न हो। क्योकि सवेरा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



होते ही यह बात छिपी नही रह सकती। अयोध्या भर मे फैल जायगी। कोई जाकर रामजी से भी कह देगा। वे उत्तम पुत्र हैं। मेरे बिना कहे ही वन चले जायेंगे।

उदउ करहु जनि रवि रघुकुल गुर। अवध बिलोकि सूल होइहि उर ॥
भूप प्रीति कैकइ कठिनाई। उभय अवधि बिधि रची बनाई ॥२॥

अर्थ : हे रघुकुल गुरु ! सूर्य को उदय न करो। अयोध्या को देखकर कलेजे मे शूल होगा। राजा की प्रीति और कैकेयी की कठिनता दोनो ब्रह्मा ने ऐसी रचकर बनायी कि हद हो गया।

व्याख्या : ईश्वर की नियति तो रुक नही सकती। वह तो होकर ही रहेगी। सवेरा तो होगा ही। सूर्य का उदय होना कौन रोक सकता है। इस पर गुरुभक्त राजा को कुलगुरु याद आये। यही विधि गति सदा से छेंकते आये हैं। यथा : सो गोसाइँ जेहि बिधि गति छेकी। अत उनसे प्रार्थना करते हैं : गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णु· गुरुर्देवो महेश्वरः। गुरुः साक्षात्पर ब्रह्मतस्मै श्रीगुरवे नम·। आप सूर्य उदय न करें। क्योंकि सजी हुई अयोध्या देखकर हृदय मे शूल उठेगा। कोई रघुकुलगुरु को रवि का विशेषण मानते है। पर यदि ऐसी बात होती तो उदित होउ जनि पाठ होता उदय करहु जनि न होता।

कवि कहते हैं कि राजा की सी प्रीति भी कही नही देखी गयी और न कैकेयी की सी कठिनाई कही देखी गयी। मालूम होता है कि इन्हे स्वयं ब्रह्मदेव ने रचकर बनाया कि ये दोनो ससार मे बेजोड़ हो। नही तो ऐसी प्रीति के सामने कठिनाई ठहर नही सकती। हृदय द्रवीभूत हुए बिना रह नही सकता। पर कैकेयी का हृदय न पसीजा।

बिलपत नृपहिं भयउ भिनुसारा। बीना बेनु संख धुनि द्वारा ॥
पढहिं भाट गुन गावहिं गायक। सुनत नृपहि जनु लागहि सायक ॥३॥

अर्थ : राजा को विलाप करते करते सवेरा हो गया। द्वार पर वीणा, वंशी और शङ्ख की ध्वनि हुई। भाट विरद बोलने लगे। गवैया गुणगान करने लगे। सुन सुनकर राजा के हृदय मे मानो बाण लग रहे हैं।

व्याख्या : इसी भाँति विलाप करते रात बीत चली। समय की गति रुकती नही। सवेरा हो ही गया। राजाओ के जगाने के लिए पहिले वीणा बजायी जाती है। तब उससे अधिक स्वरवाली वशी बजायी जाती है। अन्त मे शङ्खध्वनि होती है। जिससे निश्चय नीद टूट जाती है। उसके बाद स्फूर्ति उत्पन्न करने के लिए बन्दी विरद बोलते हैं। राजोचित गुणो की याद दिलाने के लिए गायक गुणगान करते हैं। यह सब राजाओ के यहाँ के प्रात काल के कृत्य हैं। ये सब इसलिए किये जाते है जिसमे महाराज सुखपूर्वक जागें और नित्यकृत्य मे लग जायें।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


परन्तु आज तो इनसे उलटा काम हो रहा है। जे हित रहे करैं सोइ पीरा वाला हाल हो रहा है। ये एक एक सुख के साधन शराघात की भाँति पीडा दे रहे हैं। वीणा वेणु शङ्ख ने पुकारकर कह दिया कि सवेरा हो गया। बन्दी बोले कि सत्यसन्ध महाराज की जय हो! गवैयो ने गुण गाये कि महाराज के यश से दिगन्त व्याप्त हो रहा है। आज ये सब बाते परिस्थिति के प्रतिकूल पड रही हैं। इसीलिए शराघात का काम कर रही है।

मगल सकल सोहाहिं न कैसे। सहगामिनिहि विभूषन जैसे ॥
तेहि निसि नीद परी नहि काहू। राम दरस लालसा उछाहू ॥४॥

अर्थ ये सब मङ्गल कैसे अच्छ नही लग रहे है जैसे सती होनेवाली स्त्री के गहने। उस रात को किसी को नीद नही पडी। सबको रामजी के दर्शन की लालसा और उत्साह था।

व्याख्या जिसे पति की वियोगाग्नि ऐसो बढी हुई है कि लौकिकाग्नि शीतल मालूम होती है उसे भूषण का आभिमानिक सुख कैसे हो सकता है ? इसी भाँति महाराज को ये मङ्गल अच्छे नही लग रहे हैं। अथवा जैसे सती के आभूषण से शृङ्गाररस की भावना नही होती प्रत्युत सती अपने शरीर को अग्नि के अर्पण करेगी ऐसी भावना जाग्रत् होती है। वह अपने पति का अनुगमन करेगी यह सोचकर निर्वेद उत्पन्न होता है। इसी भाँति सब मङ्गल सती का गहना हो गया। क्योकि अयोध्या अपने पति का अनुगमन करेगी। यथा अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइ दिवसु जहँ भानु प्रकासू।

सोया तो उस रात को कोई नही। महाराज विषाद के कारण नही सोये। कैकेयी क्रोध के मारे नही सोयी और लोग रामजी के दर्शन की लालसा तथा उत्साह के कारण नही सोये।

दो द्वार भीर सेवक सचिव, कहहि उदित रबि देखि।
जागेउ अजहुँ न अवधपति, कारनु कवनु बिसेखि ॥३७॥

अर्थ द्वार पर सेवक और मन्त्रियो की भीड इकट्ठी हो गयी। सूर्य को उदय हुआ देखकर कहते हैं कि जगत्पति अब भी नही जागे। ऐसा कौन विशेष कारण पड गया।

व्याख्या आज अभिषेक का दिन है। राज्यभर के कामदार तथा मन्त्री कैकेयी के महल द्वार पर एकत्रित हो गये। क्योकि महाराज उसी महल मे है। सूर्योदय के बहुत पहिले से लाग जुट गये। आज महाराज भी जल्द उठेंगे। क्या जाने किसको कब कौन सी आज्ञा हो। अत सभी उपस्थित हैं। पर सूर्य निकल आये। महाराज नही उठे। शङ्खध्वनि ने भी काम नही किया। अत सबको न उठने का विशेष कारण जानने की उत्कण्ठा हुई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


पछिलें पहर भूपु नित जागा। आजु हमहि वड अचरजु लागा॥
जाहु सुमन्त्र जगावहु जाई। कीजिअ काजु रजायसु पाई॥१॥

अर्थ पिछले पहर महाराज सदा जग जाते हैं। हमलोगो को वडा आश्चर्य हो रहा है। सुमन्त्रजी आप जाकर जगाइये और राजाज्ञा प्राप्त करके काम कीजिये।

व्याख्या दिन कार्य करने के लिए और रात्रि विश्राम के लिए है। पर रात्रि का नाम ही त्रियामा है। तीन पहर तक की रात मे गिनती है। बाद उसके दिन माना जाता है। सो एक पहर रात रहते ही महाराज नित्य जाग जाते थे। आज अभिषेक का दिन है। आज तो और भी सवेरे जगना चाहता था। महाराज नियम के वडे पक्के हैं। उनके नियम मे भङ्ग होना आश्चर्य है और विशेषत आज के दिन ऐसा होना तो और भी आश्चर्य की बात है।

क्या माजरा है। बात समझ मे नही आती। कोई दासी वाहर नही आ रही है। जिससे कुछ कहलाया जाय और कोई भीतर जा नही सकता। केवल सुमन्त्रजी को कही रोक नही है। ये मन्त्री होने के साथ ही साथ सारथि और सखा भी हैं। अत सब लोग सुमन्त्रजी से कहते हैं कि अब बिना राजा के जगाये काम नही चलता। जगाने के अन्य उपाय सब हो चुके। वीणा बजी। वशी बजी। शङ्ख वजा। वन्दियो ने विरुदावली कही। गायको ने गान किया। सूर्यनारायण भी उदय हो गये। अब तो यही शेष है कि आप राजमहल मे जाकर स्वय महाराज को जगावें। यदि भगवान् न करें महाराज अस्वस्थ हो तो काम तो नही रुकना चाहिए। आप राजाज्ञा पाकर काम करिये।

गये सुमन्त्रु तव [1]राउर माही। देखि भयावन जात डेराही॥
धाइ खाइ जनु जाइ न हेरा। मानहु बिपति विषाद बसेरा॥२॥

अर्थ तव सुमन्त्र जी महल मे गये। सो ऐसा भयानक दिखाई पडा कि जाने म डर लगने लगा। मानो वह स्थान खाने दौडता है। देखते नही वनता। जैसे विपत्ति और विषाद का डेरा पडा हुआ है।

व्याख्या सबकी आज्ञा शिरोधार्य करके सुमन्त्रजी राजमहल मे गये। कहाँ तमाम नगर म उछाह और चहल पहल और कहाँ यहाँ का सन्नाटा उदासी देखकर सुमन्त्रजी को आगे बढने मे भय का सञ्चार होने लगा। परिस्थिति की विषमता का ऐसा प्रभाव पडा कि सुमन्त्रजी को मालूम होने लगा कि वह स्थान खाने दौड रहा है। देखते नही वनता। मानो राजलक्ष्मी ने इसे त्याग दिया और विपत्ति विषाद ने डेरा जमा लिया।

पूछे कोउ न ऊतरु देई। गये जेहि भवन भूप कैकेई॥
कहि जयजीव वैठ सिर नाई। देखि भूप गति गयउ सुखाई॥३॥

---

१ राजकुल शब्द से ज और क के लोप से राउर शब्द सिद्ध होता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ पूछने पर कोई उत्तर नही देता। तब उम घर म गये जहाँ महागज और कैकेयी थी। जय जीव कहकर माथा नवाया और बैठे। राजा की दशा देखकर सूख गये।

व्याख्या सीधे शयनगृह मे गये तो वहाँ कोई नही। दासियो से पूछते हैं क्या बात है? महाराज कहाँ है? कोई कुछ बोलता ही नही। मानो सब गूँगे बहरे है। सब अत्यन्त भयभीत है कुछ भी बतलाने की जिम्मेदारी अपने ऊपर लने का साहम नही कर रहे है। तब राजा को खोजते खोजते कोपभवन मे गये। जयजीव कहकर अभिवादन किया। सुमन्त्र महाराज के अभिन्नहृदय सखा हैं। अत्यन्त प्रम करते है। महाराज की दशा देखकर सूख गये। अब दशा कहते हैं।

सोच बिकल बिबरन महि परेऊ। मानहुँ कमल मूलु परिहरेऊ॥
सचिउ सभीत सकै नहि पूछी। बोली असुभ भरी सुभ छूछी ॥४॥

अथ शोक से विकल है। रग बेरग है। पृथ्वी पर पडे हुए है। जैसे कमल की जड उखड गयी हो। मन्त्री डर के मारे कुछ पूछ नही सकते। तब अशुभ से भरी हुई शुभ से रोती कैकेयी बोली।

व्याख्या महाराज शोक से विकल हैं। यथा सुनि मृदु वचन भूप हिय सोकू। ससिकर छुअत बिकल जिमि कोकू। विवर्ण हो रहे है। यथा बिबरन भयउ निपट नरपालू। दामिनि हनेउ मनहुँ तरु तालू। जैसे कमल की जड उखड गयी हो और वह सूर्योदय पर भी अल्पप्राण और विवर्ण हो गया हो। उसके जीवित रहने की आशा न हो।

राजा की दशा देखकर मन्त्री सूख गये। यह पहिल ही कहा जा चुका है। अब पूछते भी डर लग रहा है। क्योंकि मन्त्री के आने पर भी महाराज कुछ कह नही रहे हैं। न जाने कैसे असामञ्जस्य म पडे हुए ह। फिर पूछें कैसे? सुमन्त्र का आशय समझकर कैकेयी बोली। उसी का विशेषण देते हैं असुभ भरी सुभ छूछी। भाव यह कि पहिल यह मङ्गलघट की भाँति शुभ से भरी थी। सो शुभ सब निकल गया है। उसके स्थान पर अशुभ भर गया है। उसे अब रामजी से आशा है कि वे जब यह बात सुनेंगे तो अवश्य वन चल जायँगे और किसी की न सुनेंगे। अत चाहती हैं कि रामजी किसी भाँति शीघ्र आजायँ तो उन्ही के सामने बात खुल। पहिले खुल जाने से अनेक प्रकार की बाधाओ का भय है। अत ऐसी बात बनावेंगी जिसम अपना कार्य सिद्ध हो।

दो परी न राजहि नीद निसि, हेतु जान जगदीसु।
रामु रामु रटि भोरु किय, कहइ न मरमु महीसु ॥३८॥

अर्थ रात राजा का नीद नही आयी। भगवान् जाने क्या कारण है। राम राम रटते रटते इन्होने सवेरा किया है। अपना मर्म राजा बतलाते नही।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या . कैकेयी बोली कि आज राजा को रात मे नीद नही आयी। मै तो इतना ही जानती हूँ। नीद न आने का कारण होना चाहिए। कोई रोग तो है नही। कोई चिन्ता होगी। पूछने पर कारण नही बतलाते। मै इतना और कह सकती हूँ कि रातभर राम राम की रट लगाये रहे। इससे अनुमित होता है कि ये उस मर्म को राम से ही कहेगे। जब तुमसे भी नही कहते और मुझसे भी नही कहते तो निश्चय यह अपनी पीडा राम से ही कहेगे।

आनहु रामहि वेगि वोलाई। समाचार तब पूँछहु आई ॥
चलेउ सुमत्रु राय रुख जानी। लखी कुचालि कीन्हि कछु रानी ॥१॥

अर्थ . शीघ्र रामजी को बुला लाओ तब आकर समाचार पूछना। महाराज का रुख पाकर सुमन्त्र चले। लखा कि रानी ने कुछ कुचाल किया।

व्याख्या अत रामजी को बुलाने मे शीघ्रता करो। जितनी देर होगी उतनी ही पीडा अधिक होगी। रामजी का साथ लेकर लौटने पर समाचार पूछना। उसी समय राजा को जो कुछ कहना है कहेगे।

रानी की वातें सुनी पर केवल उनकी आज्ञा पर मन्त्री काम नही करना चाहता। राजा का रुख देख रहा है। मालूम हुआ कि महाराज की भी यही रुचि है। जो पहिले यह मानते थे कि सवेरा न हो। कोई रामजी से ये बातें न कह दे। वे ही राजा अब रामजी का आना उचित समझ रहे हैं। जिसमे रामजी उनकी दशा देख लें और समझें कि जो आज्ञा हो रही है उसे देने मे चक्रवर्तीजी को कितनी पीडा है। नितान्त बेवसी की हालत मे उन्हे ऐसा कहना पड रहा है। सम्भव है कि इस भाँति कहलाई हुई वात के मानने मे रामजी अपने को वाध्य न समझेंगे। अत सुमन्त्रजी चले। पर इतना तो लख ही लिया कि रानी ने कोई कुचाल किया है जिसका प्रभाव रामजी पर वहुत बुरा पडनेवाला है। नही तो कोपभवन मे आज क्यो है? रानी कोपभवन मे गयी और महाराज उसे मनाने गये। यही वात मालूम होती है।

सोच विकल मग परइ न पाऊ। रामहि वोलि कहिहि का राऊ ॥
उर धरि धीरजु गयउ दुआरे। पूँछहि सकल देखि मनु मारें ॥२॥

अर्थ मन्त्री शोक से विकल हो गये। उनका कदम आगे नही वढ रहा है। विचारते हैं रामजी को बुलाकर राजा क्या कहना चाहते है।

व्याख्या सुमन्त्रजी का भी प्रेम रामजी पर राजा सा ही है। उधर राजा सोच विकल विवरन महि परेऊ और इधर मन्त्री सोच विकल महि परइ न पाऊ कदम आगे वढता ही नही। राजाज्ञा के कारण चलना ही पडा। मन मे सोचते हैं कि वह कौन सी अनिष्ट वात है जिसे रामजी के आने पर राजा कहेगे। वात अत्यन्त अनिष्ट न होती तो महाराज इतने विकल न होते। महल के बाहर आने के पहिले

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुमन्त्रजी ने प्रयत्नपूर्वक धैर्य धारण किया। फिर भी उदासी नहीं गयी। लोग पूछने लगे कि क्या बात है ?

समाधानु करि सो सब ही का। गयउ जहाँ दिनकर कुल टीका ॥
राम सुमन्त्रहि आवत देखा। आदरु कीन्ह पिता सम लेखा ॥३॥

अर्थ उन्होंने सबका समाधान किया और जहाँ सूर्यकुल के टीका थे वहाँ गये। रामजी ने सुमन्त्र को आते देखा तो उनका आदर किया और पिता के समान माना।

व्याख्या सुमन्त्रजी ने सबका समाधान किया कि महाराज को रात मे नीद नहीं आयी। इससे देर हुई। अब रामजी का बुलाया है। लोगो का समाधान हो गया। क्योंकि तेहि निसि नीद परी नहि काहू। किसी को भी रात नीद नहीं लगी। राजा को तो न लगना ही प्राप्त था। रामजी को बुलाना भी ठीक ही है। तत्पश्चात् रामजी के पास गये।

निरखि बदनु कहि भूप रजाई। रघुकुल दीपहि चलेउ लेवाई ॥
रामु कुभाँति सचिव सँग जाहीं। देखि लोग जहँ तहँ बिलखाहीं ॥४॥

अर्थ मुख देखकर राजा की आज्ञा कह सुनायी और रघुकुलदीप को साथ लिवा चल। रामजी जिस रीति से मन्त्रीजी के साथ जा रहे हैं वह समयोचित नहीं है। यह देखकर लोग जहाँ के तहाँ विषाद करने लगे।

व्याख्या रामजी पर मन्त्री का बडा प्रम है। अत पहिले प्रियदर्शन रामजी का मुख देखा तब कहा कि महाराज आपको शीघ्र ही देखा चाहते हैं सुमन्त्रजी को रामजी के दर्शन की इच्छा थी। इसलिए रामजी को दिनकरकुलटीका कहा। अब साथ लकर चलते हैं। इसलिए रघुकुलदीपक कह रहे है। जहाँ दीप जाता है वहीं प्रकाश करता चलता है और जहाँ से हट जाता है वहाँ अन्धेरा हो जाता है। रामजी तुरन्त चल पडे।

आज राज्याभिषक का दिन है। बडे ठाटबाट से सवारी निकलनी चाहती थी। सो रामजी इस भाँति मन्त्री के साथ क्यो जा रहे हैं। अत अभिषक म निश्चय बाधा पडी। यह समझकर जो देखता है हताश हो जाता है। अत जहँ तहँ बिलखाही कहते हैं।

दो० जाइ दीख रघुबसमनि, नरपति निपट कुसाजु।
सहमि परेउ लखि सिघिनिहि, मनहुँ बृद्ध गजराजु ॥३९॥

अर्थ जाकर रघुवशमणि ने राजा की अत्यन्त गिरी हुई स्थिति देखी। जैसे बूढा गजराज सिंहिनी को देखकर सहम कर भयभीत होकर गिर गया हो।

व्याख्या वहाँ जाकर रामजी ने देखा कि दृश्य म बडा भारी परिवर्तन हो गया। अति सौम्य सुशीला रानी कैकेयी आज सिंहिनी की भाँति घात लगाये बैठी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है और शूलकुलिश असि अगवनिहारे चक्रवर्तीजी बूढ़े गजराज की भाँति भयभीत से पृथ्वी पर पडे हुए है। यहाँ पर चक्रवर्तीजी की उपमा वृद्ध गजराज से और कैकेयी की उपमा सिंहिनी से देकर कवि ने सारा दृश्य ही आँख के सामने खीच दिया। वृद्ध गजराज सब प्रकार से असमर्थ सिंहिनी से बचने का कोई उपाय नही देख रहा है और सिंहिनी क्रोध मे भरी हुई उसका प्राण लेने पर तुली हुई है। उसम तनिक भी दया का लेश नही है।

सूखहि अधर जरइ सब अगू। मनहु दीन मनि हीन भुअगू ॥
सरुष समीप दीख कैकेई। मानहु मीचु घरी गनि लेई ॥१॥

अर्थ होठ सूख रहा है। सब अग जल रहे हैं। मानो बिना मणि के सर्प दीन हो रहा है। क्रोध से भरी हुई कैकेयी पास मे ही दिखाई पडी। मानो साक्षात् मृत्यु बैठी हुई घडी गिन रही है।

व्याख्या चक्रवर्तीजी की मानसिक दशा कहकर अब शारीरिक दशा कहते हैं कि शोकाग्नि से सारा शरीर जल रहा है। होठ सूख रहे हैं। जैसे मणिधर सर्प की मणि छिन गयी हो। रामजी ही यहाँ मणि स्थानीय है। इसीलिए पूर्व के दोहे मे कवि भी उन्हे मणि कहते हैं। यथा जाइ दीख रघुबसमनि। सिंहिनी कहकर कैकेयी को मृत्यु रूप पहिले ही कह आये हैं। पर अब सीधे सीधे मृत्यु से उपमित कर रहे हैं। क्योकि वह पास बैठी है मारती नही है। मृत्यु मरण शील को तबतक नही मारती जबतक कि उसका समय नही आ जाता। सा यहाँ समय सन्निकट है। अत मृत्यु आ पहुँची है। अन वह केवल उस समय की प्रतीक्षा कर रही है। अत उसके लिए घडी का गिनना कहा।

करुनामय मृदु राम सुभाऊ। प्रथम दीख दुख सुना न काऊ ॥
तदपि धीर धरि समउ बिचारी। पूँछी मधुर बचन महतारी ॥२॥

अर्थ • रामजी का स्वभाव करुणामय और मृदु है। पहिले पहल दु ख देख रहे हैं। उन्होने दु ख • कान से भी नही सुना था। फिर समय का विचार करके धैर्य धारण किया और माँ से पूछा।

व्याख्या • रामजी ने पिता की दशा देखी कि बुलवाया तो पर कुछ कह नही सकते। ऐसे दु खी हैं। रामजी का स्वभाव करुणामय है। बडा कोमल है। इनका स्वभाव देखकर ही चक्रवर्तीजी ने ऐसी व्यवस्था कर रक्खी थी कि रामजी के कान तक किसी का दु ख पहुँचने न पावे। अत सबके दु ख का प्रतीकार पहिले ही कर दिया जाता था। उनके कान तक पहुँचने नही पाता था। अत दु ख उन्होने कभी सुना न था। देखने की कौन चलावे। सो आज पहिले पहल दु ख को देखा। अत धैर्य छूटना स्वाभाविक था। परन्तु रामजी ने विचार से काम लिया। धैर्य धारण करके मीठी वाणी म माँ से पूछा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मोहि कहु मातु तात दुख कारनु। करिअ जतनु जेहि होइ निवारनु ॥
सुनहु राम सबु कारनु एहू। राजहि तुम्ह पर बहुतु सनेहू ॥३॥

अर्थ . रामजी बोले माँ ! मुझसे पिता के दुःख का कारण बतला। उसके निवारण का यत्न किया जाय। कैकेयी बोली रामजी सुनो सब कारण तो यह है कि राजा का तुम्हारे ऊपर बडा प्रेम है।

व्याख्या पिताजी से ऐसी अवस्था मे कुछ पूछना व्यर्थ समझकर माँ से पूछा कि माँ ! पिताजी को बडा दुःख है। कोई शारीरिक व्याधि तो है नही। मानसिक व्यथा है। उसका कारण तू जानती है और किसी से नही कहती तो मुझसे कह। जिसमे उसके हटाने का यत्न किया जाय।

रामजी की बात सुनकर रानी बोली कि इस दुःख का मूल कारण राजा का तुम्हारे ऊपर अत्यधिक स्नेह है। स्नेह सभी पुत्रो पर है। पर तुम्हारे ऊपर अति अधिक है। भाव यह कि वैसा स्नेह मुझे नही है। राजा का यह स्नेह ही इनके दुःख का कारण हुआ है नही तो यह दुःख आता ही नही। सब पुत्रो पर यदि समान स्नेह होता और तदनुकूल कार्य करते तो मै असन्तुष्ट न होती यहाँ पर सूक्ष्मरूप से अपने वरदान माँगने का कारण कहा।

देन कहेन्हि मोहि दुइ बरदाना। माँगेउँ जो कछु मोहि सोहाना ॥
सो सुनि भयउ भूप उर सोचू। छाडि न सकहिं तुम्हार सँकोचू ॥४॥

अर्थ · मुझे दो वरदान देने को कहा था। सो मुझे जो अच्छा लगा माँगा। उसे सुनकर महाराज के मनमे सोच हुआ है। तुम्हारा सङ्कोच इनसे छोडा नही जाता।

व्याख्या इनका इस प्रकार का पुत्रो के साथ विषम व्यवहार मुझे अच्छा नही लगा। मुझसे पूर्वकाल मे इन्होने दो वरदान देने को कहा था। उन्ही को मैंने अवसर उपस्थित होने पर माँगा। वरदान का अर्थ यह है कि जो मनोवाञ्छित हो वह माँगे। मुझे जो अच्छा लगा वह मैंने माँगा। पर राजा को उससे बडा शोक हुआ। क्योकि उसके देने मे तुम्हारा सङ्कोच छोडना पडेगा और इनका किया यह होता नही है।

दो० सुत सनेहु इत बचनु उत, संकट परेउ नरेसु।
सकहु त आयसु धरहु सिर, मेटहु कठिन कलेसु ॥४०॥

अर्थ इधर बेटे का स्नेह उधर वचन का पाश। इसी सकट मे राजा पडे हैं। यदि तुमसे हो सके तो आज्ञा शिरोधार्य करके कठिन क्लेश को काटो।

व्याख्या—जो वरदान मैंने माँगा है वह तुम्हारे प्रतिकूल है। उसके देने मे तुमसे प्रेम तोडना पडेगा। न देने से प्रतिज्ञाभङ्ग होती है। तुमसे प्रेम किसी हालत मे राजा तोडना नही चाहते। पर प्रतिज्ञाभङ्ग को भी डरते है। इसी सङ्कट मे ये

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पड़े हुए हैं। अब तुम्हारा काम है। यदि तुम स्वय प्रसन्नता पूर्वक उस आदेश को शिरोधार्य कर लो तो सब सकट कटा ही कटाया है।

निधरक बैठि कहै कटु बानी। सुनत कठिनता अति अकुलानी ॥
जीभ कमान वचन सर नाना। मनहु महिपु मृदु लच्छ समाना ॥१॥

अर्थ : बेधडक बैठी हुई बातें कह रही है। सुनकर कठोरता अत्यन्त आकुल हो उठी। उसकी जिह्वा ही धनुष है और अनेक प्रकार के वचन ही बाण हैं और चक्रवर्तीजी कोमल निशाना हो रहे हैं।

व्याख्या : रानी होकर पति के लिए कठोर वचन कहने मे मन्त्री और पुत्र के सामने सङ्कुचित होना चाहिए। सो यह बेधडक बोलती चली जा रही है। चक्रवर्तीजी प्रार्थना कर चुके हैं। हाथ जोड चुके हैं कि जब तक मैं जीता हूँ तब तक फिर कुछ न बोलना। तू मेरे सामने से हट जा। पर इसका उसे कुछ ख्याल नही है। समझती है कि मेरे चुप रहने से या हट जाने से सम्भव है कि ये लोग आपस मे बात करके कोई रास्ता ढूँढ निकालें। सो मैं न होने दूँगी। उसकी कठिनता देखकर स्वय कठिनता अत्यन्त व्याकुल हो उठी। राजा के लिए कहना ही क्या है।

इस समय उसके मुख से वचन निकलते हैं वे मानो धनुष से छूटे हुए बाण हैं और सबका लक्ष्य एक मात्र चक्रवर्तीजी हैं। एक एक बाण उन्हे छेदे डालते हैं। उनमे इन आघातो के निष्फल करने योग्य कठिनता नही है। इसी से उनकी उपमा मृदु लक्ष्य से दी गयी।

जनु कठोरपनु धरे सरीरू। सिखइ धनुषविद्या बर बीरू ॥
सबु प्रसंगु रघुपतिहि सुनाई। बैठि मनहु तनु धरि निठुराई ॥२॥

अर्थ . मानो वीरवर कठोरपन शरीर धारण करके धनुषविद्या सीख रहा है। सब प्रसङ्ग रामजी को सुनाकर इस भाँति बैठी मानो निष्ठुरता ही शरीर धारण किये हुए है।

व्याख्या : बडे वीरो का काम ही युद्ध करना है। अत धनुषविद्या उनके बडे काम की चीज है। वे हाथ बैठाने लिए बार बार लक्ष्य वेध करते हैं। उनका प्रयोजन ही वेध करना है। लक्ष्य के छिन्न भिन्न होने की उन्हे परवाह नही। अत चक्रवर्तीजी को उन आघातो से कितनी पीडा पहुँच रही है इसका उसे कुछ ख्याल नहीं है। उसका काम चोट पहुँचाना हो गया है। कोई वार खाली न जाना चाहिए। इधर चक्रवर्ती जी का चित्त इतना कोमल है कि प्रत्येक वाक्यबाण गहरी चोट कर रहे है।

ऐसी निष्ठुर है कि अपने वरदान मिलने का प्रसङ्ग उसे धाती की भाँति महाराज के पास ही रहने देना तथा राज्याभिषेक का प्रसङ्ग आने पर भरत को राज्य तथा राम का वनवास माँगना राजा की भरत के राज्यविषयक स्वीकृति

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रामजी के वनवास मे ही असामञ्जस्य और अपना उसी पर हठ फलतः चक्रवर्तीजी की विकलता यह सब रामजी को सुना गयी। और तब चुपकी बैठी। भाव यह कि कहो अब क्या कहते हो। पिता के दुख का कारण तो सुन लिया। अब निवारण करो। अत कवि कहते है कि मानो निष्ठुरता ही शरीर धारण किये बैठी है।

मन मुसुकाइ भानुकुल भानू। रामु सहज आनंद निधानू ॥
बोले वचन बिगत सब दूषन। मृदु मंजुल जनु बाग बिभूषन ॥३॥

अर्थ : सूर्यकुल के सूर्य रामजी सहज आनन्द के निधान है। वे मन ही मन मुसकरा रहे है। सब दोषो से रहित कोमल और सुन्दर ऐसा वचन बोले मानो वह वाणी का भूषण है।

व्याख्या : सरकार सूर्यकुल के सूर्य हैं। इनके सामने अन्धकार आ नही सकता तथा स्वभाव से ही आनन्द के निधान है। दुख की छाया भी इन पर नही पड सकती। महाराज इनके ऊपर दुख आया चाहता है इस भावना से दुखी हैं। यहाँ दुख का सम्पर्क ही नही। वन जाने मे अधिक प्रसन्नता है। अत मन ही मन मुसकराते है। प्रकट मुसकराने से माता को कष्ट होगा।

ऐसे दोषयुक्त कठोर अनुचित वचन के उत्तर मे पवित्र कोमल और वाणी के भूषणरूप वचन बोले : सुनत सीतापति सील सुभाउ। मोद न मन तन पुलक नयन जल सो नर खेहर खाउ।

सुनु जननी सोइ सुत बडभागी। जो पितु मातु वचन अनुरागी ॥
तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल ससारा ॥४॥

अर्थ : हे माता! वही बेटा बडा भाग्यवान् है जिसे पिता माता के वचन में प्रेम हो। माँ! पिता माता को तुष्ट करनेवाला पुत्र सारे ससार मे दुर्लभ है।

व्याख्या : ऐसी कटुवादिनी विमाता को जननी कहकर सम्बोधन करते है। उसने कहा था : सकहु त आयसु धरहु सिर मेटहु कठिन कलेसु। इसपर कहते है कि आज्ञा के शिरोधार्य करने या न करने का तो यहाँ प्रश्न ही नही है। यह तो मेरे लिए बडभागी होने का अवसर है। पुत्र का बडभागी होना तो पुत्रत्व के साफल्य मे है। धन विद्यादि साधनो मे नही। अतः जिस पुत्र को पिता के वचन मे अनुराग हो वही बड़भागी है।

माता पिता तो दिन रात पुत्र की तुष्टि के प्रयत्न मे ही रहते है। पर पुत्र ऐसा हो जो पिता माता को सन्तुष्ट रक्खे। यह बात संसार मे दुर्लभ है। भाव यह कि मैं उन दुर्लभ पुत्रो में हूँ। मुझे पिता माता के वचन मे अनुराग है। मै उसके पालन मे अति दुष्कर कर्म भी कर सकता हूँ। यहाँ तो ऐसा आदेश हो रहा है जिसमे सुख ही सुख है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो [1]मुनिगन मिलनु बिसेषि बन, सबहिं भाँति हित मोर।
तेहि महँ पितु आयसु बहुरि, संमत जननी तोर ॥४१॥

अर्थ : वनमे विशेष करके मुनियो से समागम होगा। जिससे सब भाँति मेरा हित है। उसपर पिता की आज्ञा और माँ! तेरी सम्मति।

व्याख्या : सब कल्याण का मूल सत्सङ्ग है। सो जैसा वन मे होगा वैसा यहाँ नही होता। क्योकि मुनि लोग अधिकतर वही रहते हैं। पिता को आज्ञा और माँ की सम्मति से उसका महत्त्व और अधिक हो गया।

सुनु जननी सोइ सुत बडभागी इत्यादि वचन की कोमलता है। मुनिगन मिलनु बिसेखि बन सबहिं भाँति हित मोर। इत्यादि मे मञ्जुलता अधिक है। वाग्विभूषणता आगे की अर्धाली मे झलकेगी। अथवा सर्वत्र तीनो गुण हैं।

भरतु प्रानप्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू ॥
जौ न जाउँ बन ऐसेहु काजा। प्रथम गनिअ मोहि मूढ समाजा ॥१॥

अर्थ : भरत मेरे प्राणप्रिय है। वे राज्य पावे। मुझे तो आज विधाता सब प्रकार से अनुकूल हैं। यदि ऐसे काम के लिए भी मै वन न जाऊँ तो मूढो के समाज मे प्रथम गणना मेरी ही है।

व्याख्या इतना ही नही प्राणप्रिय भरत को राज्य मिल रहा है। अपने प्रिय के लिए ही लोग राज्य भोग और सुख की कामना करते हैं। यथा : येषामर्थे काक्षितं नो राज्य भोगा सुखानि च। अतः मेरी कामना भी पूरी हो रही है। आज विधाता मुझपर सर्वथा अनुकूल हैं। सत्सङ्ग की प्राप्ति धर्म की प्राप्ति सुख की प्राप्ति अनायासेन हो रही है।

कोई भी बुद्धिमान् अपने हित पर दृष्टि रखता हुआ इससे मुँह नही मोड सकता। विधि के सम्मुख होने पर उससे लाभ न उठाना मूढ का काम है और सब विधि सम्मुख होने पर लाभ न उठानेवाला मूढों का सरदार है। मै ऐसा अवसर चूक नही सकता।

सेवहिं अरँडु कलपतरु त्यागी। परिहरि अमृत लेहिं बिषु माँगी ॥
तेउ न पाइ अस समउ चुकाही। देखु बिचारि मातु मन माही ॥२॥

अर्थ जो कल्पवृक्ष का त्याग करके रेड • एरण्ड की सेवा करते है। अमृत का परित्याग करके याचना पूर्वक विष ग्रहण करते है वे भी ऐसा अवसर न चूकेंगे। माँ तू मनमे विचार करके देख ले।

व्याख्या : अब मूढ की परिभाषा कहते हैं। जिसे सेव्यासेव्य ग्राह्याग्राह्य का विचार न हो वही मूढ है। कल्पवृक्ष सेवन करने योग्य है जो सब कामनाओ को

१ यहाँ समुच्चय : द्वितीय अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पूरा करता है। निरस्तपादपे देशे एरण्डोऽपि द्रुमायते। जहाँ कोई पेड नही होता। वहाँ एरण्ड की पूछ होती है। अत कल्पतरु का त्याग करके एरण्ड की सेवा करनेवाला महामूर्ख है। प्राणदा अमृत का त्याग करके प्राणहर विष की याचना करनेवाला महाअज्ञानी है। पिता का आज्ञापालन कल्पवृक्ष है और राज्यपालन एरण्ड है एव सत्सङ्ग अमृत है। विषयोपभोग विष है। अत मूढ भी कल्पवृक्ष और अमृत ग्रहण के अवसर को नही चूकेगा। मै कैसे चूक सकता हूँ। राज्यपालन का एरण्ड होना तथा विषयोपभोग का विष होना मनमे विचार करने से सिद्ध होता है। अत माता को मनमे विचार करने के लिए कह रहे है।

अब एकु दुखु मोहि बिसेखी। निपट बिकल नरनायकु देखी॥
थोरिहि बात पितहि दुखु भारी। होति प्रतीति न मोहि महतारी॥३॥

अर्थ माँ! मुझे एक विशेष दु ख है कि मैं महाराज को अत्यन्त विकल देख रहा हूँ। बात थोडी और पिताजी का दु ख बडा। इससे माँ मुझे विश्वास नही हो रहा है।

व्याख्या सरकार माता से कहते हैं कि जो जो तुम कह गयी वे सब तो सुख की बातें हैं। दु खी होने के लिए वहाँ स्थान ही नही है। विशेष दु ख तो यह देखकर हो रहा है कि महाराज इतने विकल क्यो है। इतने बडे लाभ के लिए मैं वन जा रहा हूँ। यह कोई वडे दु ख की बात नही है। इसके लिए इतनी वडी विकलता इतनी छटपटाहट इतना शोक तो समझ मे नही आता। मुझे तो विश्वास नही होता कि जो तुम कह रही हो वही कारण है।

राउ धीरु गुन उदधि अगाधू। भा मोहि ते कछु बड अपराधू॥
जाते मोहि न कहत कछु राऊ। मोरि सपथ तोहि कहु सतिभाऊ॥४॥

अर्थ महाराज धीर है। गुणो के अथाह समुद्र हैं। मुझसे कोई बडा अपराध बन पडा है। जिससे महाराज मुझसे नही बोल रहे है। तुम्हे मेरी शपथ मुझसे साफ साफ बतला दो।

व्याख्या महाराज धीर है। थोडी सी बात मे विचलित हो नही सकते। गुणो के अथाह समुद्र है। जो बाते तुमने कही उनके गुणो को भली भाँति जानते है। समुद्र मे क्षोभ होने का कोई बडा कारण होना चाहिए। मैने जान बूझकर कोई अपराध नही किया है। पर अनजान मे भी बडा अपराध हो जाना सम्भव है। मालूम होता है कि मुझसे ऐसा ही कोई अपराध बन पडा है। जिससे महाराज मुझसे बोल नही रहे है। पर तुमसे तो कहा होगा। तुम क्यो छिपा रही हो। तुम्हे मेरी शपथ सच सच बतला दो। मै सदा से तुम्हे प्यारा हूँ। अत अपनी शपथ दे रहा हूँ।

दो सहज सरल रघुवर वचन, कुमति कुटिल करि जान।
चलइ जोक जल वक्रगति, जद्यपि सलिलु समान॥४२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : रघुवर के स्वभाव से ही सरल वचन को उस दुर्बुद्धि ने टेढा ही समझा जैसे पानी के समान होने पर भी जोंक उसमे टेढी चाल से ही चलती है।

व्याख्या : रामजी ने तो स्वभाव से ही सीधी सीधी बातें कही पर कैकेयी की बुद्धि उल्टी हुई है। उसे उसमे कुटिलता की गन्ध मालूम हुई। उसने समझा कि यह भी वही बात कह रहे हैं जो महाराज कहते थे। यह भी अपने को निर्दोष सिद्ध करने के लिए मुझसे कारण पूछते हैं। अपराध की चरचा चलाकर अपना निरपराध होना हमारी निष्ठुरता और अपना प्रेम द्योतित करते हैं। बिधि सब बिधि मोहि सम्मुख आजू कहकर यह दिखला रहे हैं कि तुमने तो अपने समझ मे दण्ड दिया। पर उससे मुझे कष्ट नही है।

रहसी रानि राम रुख पाई। बोली कपट सनेहु जनाई॥
सपथ तुम्हार भरत कै आना। हेतु न दूसर मै कछु जाना॥१॥

अर्थ : रामजी का रुख पाकर रानी प्रसन्न हो गयी और कपट प्रेम जनाती हुई बोली। तुम्हारी शपथ तथा भरत की शपथ मै दूसरा कारण नही जानती।

व्याख्या : वचन को कुटिल मानती हुई भी यह जानकर प्रसन्न हो गयी कि रामजी का रुख वन जाने का है। रामजी की ओर से सब कथा सुनने पर भी कोई बात ऐसी नही कही गयी जिससे प्रेम की कमी अनुमित हो। अत कैकेयी कपट पूर्वक अपना प्रेम जनाती है। रामजी ने मोर शपथ कहकर यह जनाया कि मै तुझे प्यारा हूँ। तो कैकेयी भी शपथ लेते समय भरत के पहिले रामजी के नाम का उल्लेख करके भरत न मोहि प्रिय राम समाना इस भाव का परिचय दे रही है। कहती है कि मै तो यही जानती हूँ जो तुमसे कहा है। इसके अतिरिक्त यदि कोई बात हो तो मुझे पता नही है।

तुम्ह अपराध जोगु नहि ताता। जननी जनक बधु सुखदाता॥
राम सत्य सबु जो कछु कहहू। तुम्ह पितु मातु बचन रत अहहू॥२॥

अर्थ : बेटा! तुम अपराध के योग्य नही हो। तुम तो मां बाप और भाई को सुख देनेवाले हो। रामजी! जो तुम कहते हो सो सत्य है। तुम माता पिता के वचन मे अनुरक्त हो।

व्याख्या : पर इससे अतिरिक्त दूसरी बात मा मोहि ते कछु बड अपराधू सम्भव नही है। क्योंकि तुम मे अपराध करने का माद्दा योग्यता नही है। अपराध तो उससे होता है जिसमे दु ख देने की प्रवृत्ति होती है और तुम तो मां बाप और भाई को सुख देनेवाले हो। अत तुम्हारे अपराध का कोई प्रश्न ही नही उठता।

तुमने जो कहा कि वन जाने मे लाभ ही लाभ है। सो भी सत्य है और तुम माता पिता के तुष्ट करनेवाले हो यह भी सत्य है और तुम पितु मातु वचन अनुरागी भी हो। इस भांति वन जाने के लिए प्रोत्साहन देते हुए कहती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पितहि बुझाइ कहहु बलि सोई । चौथेपन जेहि अजसु न होई ॥
तुम्ह सम सुअन सुकृत जेहि दीन्हे । उचित न तासु निरादरु कीन्हे ॥३॥

अर्थ मै बलि जाउँ यही बात अपने पिता को समझाकर कहो । जिसमे चौथेपन मे अपयश न हो । जिस पुण्य ने उन्हें तुम्हारे ऐसा पुत्र दिया उसका अनादर करना उचित नही ।

व्याख्या अब यह सब बाते अपने पिता को समझाओ कि वन मे जाने से लाभ ही लाभ है । मै तो इसे बड भाग्य की बात मानता हूँ । जिसमे इनका शोक दूर हो । ये नही मानते । मरती समय बुढाई मे अपयश लेने को तैयार है । वन तुम्हे जाना है । इसलिए तुम्हारे ही समझाये समझेगे ।

बडे पुण्य से भगवान् ने तुम्हारे ऐसा बेटा दिया है । उसी पुण्य का शरण ग्रहण करना चाहिए । पुण्य का सञ्चय करना चाहिए । सो अपनी बात छोडकर इस अवस्था मे उस पुण्य का निरादर कर रहे है ।

लागहि कुमुख बचन सुभ कैसे । मगह गयादिक तीरथ जैसे ॥
रामहि मातु बचन सब भाए । जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाए ॥४॥

अर्थ बुरे मुँह से भले वचन ऐसे लगते है जैसे मगध देश मे गयादिक तीर्थ है । रामजी को माता के वचन सब अच्छे लगे । जैसे गङ्गा म जाने से पानी अच्छा हो जाता है ।

व्याख्या रामजी के विमुख होने से कैकेयी का मुख कुमुख है । उसने चार वचन बहुत उत्तम कहे १ तुम्ह अपराध जोगु नहि ताता । २ राम सत्य सबु जो कछु कहहू । ३ पितहि बुझाइ कहसु बलि सोई और ४ तुम सम सुअन सुकृत जेहि दीन्हे । पर इतने से उसका कुमुखत्व गया नही । जैसे मगध मे चार तीर्थो के रहते हुए भी उसकी अशुद्धि नही गयी । जैसे ऊपर की चार बातें कैकेयीजी की पवित्र है । वैसे ही चार स्थल मगध मे भी पवित्र है । यथा मगधेपु गया पुण्या पुण्य राजगृह वनम् । च्यवनस्याश्रम पुण्यो नदी पुण्या पुन पुन । पाद्म । श्रीगोस्वामीजी कहते हैं बसि कुसग चह सुजनता ताकी आस निरास । तीरथहू को नाम भो गया मगध के पास । गया तीर्थ होने पर भी आसुर तीर्थ है । इसलिए उसको शोभा नही ।

सरकार समझते है माता प्रेम करती है । प्रशसा करती है । माता के भावोपहत वचन सरकार का पाकर भावपूर्ण हो गय । जैसे गन्दा पानी भी गङ्गा मे मिलकर पवित्र हो जाता है करमनास जल सुरसरि परई । तेहि को कहो सीस नहि धरई ।

दो गइ मुरुछा रामहि सुमिरि, नृप फिरि करवट लीन्ह ।
सचिव राम आगमन कहि, बिनय समय सम कीन्ह ॥४३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ मूर्च्छा जाती रही। तब रामजी को स्मरण करके राजा ने करवट बदला। मन्त्री ने रामजी का आगमन कहकर समयानुकूल विनती की।

व्याख्या अभी आँख बन्द है। महाराज मूर्च्छित थे। उन्हे रामजी का आना मालूम नही। जब कैकेयी को हट जाने को कहा था और वह नही हटी तो स्वय महाराज ने मुँह फेर लिया। सुमन्त्रजी रामजी को बुलाने गये। उसी समय मूर्च्छा हुई। अब चेत हुआ है तब करवट बदली। जब मन्त्री ने देखा कि महाराज होश म आये तब विनय किया। बडा नाजुक समय है। महामन्त्री भी उतना ही बोलता है जितने बिना काम न चले। अर्थात् महाराज! धैर्य धरें आँख खोलें। देखिये रामजी आगये इत्यादि

अवनिप अकनि रामु पगु धारे। धरि धीरजु तब नयन उघारे॥
सचिव सँभारि राउ बैठारे। चरन परत नृप रामु निहारे॥१॥

अर्थ चक्रवर्तीजी ने यह सुनकर कि रामजी पधारे हैं धैर्य धरकर आँख खोला। मन्त्री ने सँभाल कर महाराज को बिठाया। उन्होने रामजी को चरणो पर गिरते देखा।

व्याख्या आकर्ण्य शब्द का प्राकृत रूप अकनि है। महाराज की हालत बडी नाजुक है। शरीर व्याकुलता से इतना शिथिल हो गया है कि आँख नही खुलती। जब मन्त्री की वाणी सुनी कि रामजी पधारे हैं तब आँख खोली। आँख खोलने म धैर्य धारण करना पडा।

आँख तो खुली पर उठकर बैठ न सके। मन्त्री ने देखा कि अब यह बैठना चाहते है। पर उठ नही सकते। तब उसने सँभालकर बैठाया कि कही गिर न जायँ। उसी समय रामजी चरणो म गिरे। राजा ने देखा।

लिये सनेह बिकल उर लाई। गइ मनि मनहु फनिक फिरि पाई॥
रामहि चितइ रहेउ नरनाहू। चला बिलोचन बारि प्रबाहू॥२॥

अर्थ स्नेह से विकल होकर हृदय से लगा लिया। जैसे खोई हुई मणि को सर्प ने फिर से पा लिया हो। नरेश रामजी को देखते रह गये। आँखो से अश्रुधारा बह चली।

व्याख्या चक्रवर्तीजी को सन्देह था कि पता लगते ही रामजी कही उधर के उधर ही वन न चल जायँ। अत उस सर्प की उपमा देते हैं जिसकी गयी हुई मणि फिर से मिली हो। अर्थात् मणि के लिए बडी उत्सुकता थी। मिलने पर बडा सन्तोष हुआ।

मन स वन दे चुके हैं। अत रामहीन अवध का दृश्य सामने है। रामजी के देखने से मानो शरीर मे प्राण का सञ्चार हो रहा है। पर साथ ही साथ यह भी ध्यान है कि थोडे ही काल म रामजी का दर्शन दुर्लभ हो जायगा। सो प्रेम

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उमड आया। आँखो से आँसू की धारा वह चली। प्रवाह रुकता नही। न जाने इतना जल कहाँ से आगया।

सोक बिबस कछु कहइ न पारा। हृदय लगावत बारहिं बारा॥
बिधिहि मनाव राउ मन माही। जेहि रघुनाथु न कानन जाही॥३॥

अर्थ शोक के विवश हैं। कुछ कह नही सके। बार बार हृदय म लगा रहे है। मन ही मन विधाता से मना रह है कि रामजी वन न जायँ।

व्याख्या रामहि चितै रहे से कर्मणा शोक बिबस से मनसा तथा कछु कहै न पारा से वाचा शोक कहा। गयी हुई मणि मिली। कही फिर न चली जाय। अत वियोग के भय से बार बार हृदय मे लगाते हैं। पर तृप्ति नही होती।

मन ही मन विधाता से मनाते हैं कि रामजी वन न जायँ। भाव यह कि मैं तो कहूँ कि तुम वन जाओ। पर रामजी मेरे कहने पर भी न जायँ। बिधिहि मनाव कहने का कारण यह कि कोई ऐसी विधि बैठा दे कि मरी बात भी न जा सके और रामजी भी वन न जायँ।

सुमिरि महेसहि कहइ निहोरी। बिनती सुनहु सदासिव मोरी॥
आसुतोष तुम्ह अवढर दानी। आरति हरहु दीन जनु जानी॥४॥

अर्थ फिर महादेवजी का निहोरा करके कहते है कि हे सदाशिव मरी विनती सुनो। तुम शीघ्र प्रसन्न होनेवाल हो और बेहिसाब देनेवाल हो। मै दीन हूँ। ऐसा जानकर मेरी आर्त्तिहरण करो।

व्याख्या चक्रवर्तीजी फिर विचारते है कि ब्रह्मदेव तो शुभाशुभ कम के फल देनेवाल हैं। साधन निरपेक्ष ईप्सित फल देनेवाल तो महादेव ही है और शीघ्र ही प्रसन्न भी होते है। यथा औढरदानि द्रवत पुनि थारे। सकत न देखि दीन करजोरे। अत आराधन के फल पर जोर न देकर निहोरा करते है कि मुझ दीन जानकर मेरी विनती सुनो और मेरी आर्ति हरण करो।

दो तुम्ह प्रेरक सबके हृदयँ, सो मति रामहि देहु।
वचनु मोर तजि रहहि घर, परिहरि सीलु सनेहु॥४४॥

अर्थ तुम सबक हृदय के प्रेरक हो। ऐसी बुद्धि रामजी को दो कि मेरे वचन को हटाकर शील सनेह को छोडकर घर रह जायँ।

व्याख्या ईश्वर सवभूताना हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सवभूतानि यन्त्रारूढानि मायया। ईश्वर सब प्राणियो क हृदय म बठा हुआ सबको कठपुतली की तरह नचाया करता है। अत उस महादेव से चक्रवर्तीजी प्रार्थना करते ह कि तुम सबके हृदय के प्रेरक हो। तुम्हारी प्ररणा से ही रामजी ऐसे आज्ञाकारी हैं। शील सनेह के समुद्र है। यह तुम्हारी बडी कृपा है। पर आज ये गुण तो मर प्राणग्राहक हो रहे हैं। मेरा सवनाश उपस्थित है। सा रामजी की बुद्धि फेरने म

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तुम्ही समर्थ हो। उनकी बुद्धि फेर दो कि मैं सो कहूँ कि तुम वन जाओ। पर रामजी शील सनेह तोडकर कहे कि पहिले अपराध तो बतलाओ तो पीछे वन जाने को कहो। गुरोरप्यवलिप्तस्य कार्याकार्यमजानत। उत्पथप्रतिपन्नस्य परित्यागो विधीयते। रामजी धर्मशास्त्र लेकर उठे कि विषयलिप्त गुरु जिसे कार्याकार्य का ज्ञान न हो, सन्मार्गगामी न हो, उसका परित्याग करना चाहिए। अब यदि कहे कि तुम्हारा अशुभ कर्म उदय हुआ है, उसकी क्या गति होगी। तो कहते हैं

अजसु होउ जग सुजसु नसाऊ। नरक परौ बरु सुरपुर जाऊ॥
सब दुख दुसह सहावउ मोही। लोचन ओट रामु जनि होही॥१॥

अर्थ ससार मे अपकीर्ति हो, कीर्ति का नाश हो, बल्कि स्वर्ग जाय मुझे नरक ही हो। मुझे सब दु सह दु ख सहाओ पर राम आँख के ओट न हो।

व्याख्या यदि मैं रामजी को वन नही देता तो कैकेयी प्राण दे देगी। उसने कह दिया है होत प्रात मुनिवेषधरि जौ न राम वन जाहिं। मोर मरन राउर अजस नृप समुझिअ मनमाहिं। तो भले ही कैकेयी प्राण दे दें, मेरी अपकीर्ति हो जाय। बडे परिश्रम और सावधानी से कमाये हुए सुयश का नाश हो जाय। लोग कहे कि राजा भ्रष्टप्रतिज्ञ हैं। इसकी करणी से ऊबकर रानी ने प्राण दिया और अपकीर्ति से स्वर्ग म प्रवेश नही होता केवल दूर्वा पीसकर पीनेवाले मुनि पर लोगो को भ्रम हो गया कि यह ताडी पीते हैं। इस अपकीर्ति से उनका स्वर्ग मे प्रवेश न हुआ। सो मुझे भी न हो। भ्रष्टप्रतिज्ञ होने के पाप से भले ही नरक भोगना पडे। इसके अतिरिक्त और जो दु सह दु ख हैं। उन्हे भी उस अशुभ कर्म के फल रूप से मुझे सहना पडे। मुझे स्वीकार है। पर रामजी मेरी आँखो के ओट न हो। इस सुख से मैं वञ्चित न होऊँ।

अस मन गुनइ राउ नहि बोला। पीपर पात सरिस मनु डोला॥
रघुपति पितहि प्रेमबस जानी। पुनि कछु कहिहि मातु अनुमानी॥२॥

अर्थ मनमे ऐसा विचारते हुए चक्रवर्तीजी कुछ बोले नही। परन्तु पीपर के पत्ते की भाँति मन डोल उठा। रामजी ने समझ लिया कि पिताजी प्रेम के वश मे पड गये हैं और माँ फिर कुछ बोलना चाहती है। ऐसा अनुमान किया।

व्याख्या रामजी को बुलवाया है। वे आये हुए हैं। उनसे कुछ कहना चाहिए। पर चक्रवर्तीजी कुछ बोल नही। क्योकि उपर्युक्त बातें सोच रहे थे। उनका मन ऐसा अस्थिर हो गया जैसे पीपर का पत्ता होता है। पीपर का नाम ही चलदल है। उसके पत्ते सदा चलायमान रहते हैं। कभी ठहरते ही नही। यही दशा राजा के मन की हो रही है। उन्हे उस बात पर भी स्थिरता नही जो अभी गुन रहे थे उसपर भी स्थिर हो जाते तो कुछ बिगडा नही था। पर हैं धर्मधुरन्धर उनसे धर्म भी छोडते नही बनता।

रामजी ने देखा कि पिताजी प्रेम के वश हो गये हैं। इसलिए बोलने मे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



असमर्थ हैं और इधर कैकेयी समझे बैठी है कि ये वन न देंगे। इसलिए मुझे समझाने को कह रही है। इनके चुप रहने को वह सह न सकेगी। फिर कुछ बोला ही चाहती है। अनुमान किया कि इसने कह कहकर कष्ट बढाया है। पिताजी का मुझपर इतना प्रेम इसे असह्य हो रहा है।

देस काल अवसर अनुसारी। बोले बचन बिनीत बिचारी ॥
तात कहौं कछु करौं ढिठाई। अनुचितु छमब जानि लरिकाई ॥३॥

अर्थ : देशकाल और अवसर के अनुसार विनीत वचन विचार कर बोले। हे तात ! मैं कुछ कहता हूँ ढिठाई करता हूँ। मेरे इस अनौचित्य को लडकपन समझकर क्षमा कीजिये।

व्याख्या : यद्यपि पुत्र का धर्म पिता की आज्ञा मानना है उसे शिक्षा देना नही है। इसलिए विचारकर विनीत वचन देशकाल और अवसर के अनुकूल बोले। वहाँ पिता पुत्र का सम्मिलन हो रहा है। दूसरा कौन बोले। अत रामजी का ही बोलना देश के अनुकूल था। वन जाने का समय भी माता ने सबेरे ही निश्चय किया है। अत जो कुछ कहना सुनना हो उसका यही समय है। अत: रामजी का कहना काल के भी अनुकूल था। यही अवसर माता के आज्ञापालन का है। यथा : पितहि बुझाइ कहसु बलि सोई। चौथेपन जेंहि अजसु न होई। अत: रामजी का कहना अवसर अनुकूल था।

बिना पूछे कहता हूँ यह मेरी ढिठाई है। बिना कहे रहा नही जाता यह लडकपन है। ढिठाई और लडकपन दोनो अनुचित हैं। पर आप पिता है। आप बच्चो का अनौचित्य क्षमा करते आये हैं सो इस बार भी क्षमा करेंगे।

अति लघु बात लागि दुखु पावा। काहु न मोहि कहि प्रथम जनावा ॥
देखि गोसाइँहि पूँछिउँ माता। सुनि प्रसगु भए सीतल गाता ॥४॥

अर्थ : अत्यन्त छोटी सी बात के लिए आपको बडा दु ख हुआ। मुझे इस बात का समाचार पहिले किसी ने नही दिया। आपको देखकर मैंने माँ से पूछा। सब प्रसङ्ग सुनकर शरीर शीतल हो गया।

व्याख्या : माता ने कहा छाडि न सकहि तुम्हार सकोचू। सो दु ख सङ्कोच का था कि मैं रामजी से कैसे कहूँ कि तुम वन जाओ। यथा कह्यो राज बन दियो नारिबस गरि गलानि गये राउ। सो यदि मुझे पहले समाचार मिल गया होता तो सङ्कोच की बात ही न थी मैं उधर से उधर ही वन चला जाता। यहाँ आने पर आपकी विकलता देखकर माता से पूछा। उसने सब प्रसङ्ग मुझसे कह सुनाया सुनकर मुझे बडी प्रसन्नता हुई। आपकी दशा देखकर शरीर सन्तप्त हो उठा था। सो शीतल हो गया। क्योंकि यह दोनो बात मुझे मुहमाँगी मिल गयी। मेरा मन नवगजेन्द्र की भाँति वन मे ही आनन्द मानता है। राज्य उसे बन्धन मालूम होता है। भरत प्राणप्रिय हैं उन्हे राज्य मिलना ही मुझे इष्ट है। अपने प्रिय के लिए

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ही लोग राज्य भोग और सुख चाहते है। सो प्राणप्रिय को मिला। इससे अधिक मङ्गल क्या होगा ?

दो. मंगल समय सनेह वस, सोचु परिहरिअ तात।
आयसु देइअ हरषि हिय, कहि पुलके प्रभु गात ॥४५॥

अर्थ : मङ्गल के समय स्नेहवश जो सोच करते है उसे छोड़ दीजिये। प्रसन्न मन से आज्ञा दीजिये। ऐसा कहते हुए प्रभु का शरीर पुलकित हो गया।

व्याख्या : वन के लिए प्रस्थान मेरे लिए मङ्गल है। सोच के लिए इसमें कोई स्थान ही नही है। बन्धन से छूटना और सब कल्याणों का मूल मुनिजन समागम से बढकर मङ्गल क्या हो सकता हैं। सो उपस्थित है। क्या सन्तसमागम से किसी का आज तक अकल्याण हुआ है। तब सोच किस बात का ? मेरे स्नेह के कारण आप सोच रहे है : लोचन ओट रामु जनि होही। इस सोच को छोड़िये और मेरे कल्याण की ओर दृष्टि देकर प्रसन्न होकर आज्ञा दीजिये। यह कहते हुए पुलक होने का कारण आनन्दातिरेक है। पिता के आज्ञा पालन से जन्म का साफल्य समझकर सरकार को अति हर्ष है।

धन्य जनमु जगतीतल तासू। पितहि प्रमोदु चरित सुनि जासू ॥
चारि पदारथ करतल ताकें। प्रिय पितु मातु प्रान सम जाकें ॥१॥

अर्थ : संसार में उसी का जन्म धन्य है। जिसके चरित्र सुनने से पिता को आनन्द हो। उसके चारों पदार्थ हस्तगत हैं। जिसे माता पिता प्राण के समान प्यारे हों।

व्याख्या : पिता धर्मः पिता कर्म पितैव परमा गतिः। पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवताः। पिता ही धर्म है पिता ही कर्म है। पिता ही परमगति है। पिता के प्रसन्न होने से सभी देवता प्रसन्न हो जाते हैं। अतः गोस्वामीजी कहते हैं कि सबसे बड़ी सेवा पुत्र की यह है कि उसके चरित्र सुनने से पिता को आनन्द हो। कौसल्याजी कहती हैं : तात पितहि तुम्ह प्रान पियारे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे।

जिसका चरित ऐसा हो और जिसे माता पिता प्राण से प्यारे हो। उसे धर्म अर्थ काम और मोक्ष के लिए किसी साधन की अपेक्षा नही है। ये सब उसे आप से आप प्राप्त हो जाते हैं : रामजी के चरित्र से यह शिक्षा संसार को मिलती है।

आयसु पालि जनम फलु पाई। ऐहउँ बेगहिं होउ रजाई ॥
बिदा मातु सन आवौं माँगी। चलिहौं बनहि बहुरि पग लागी ॥२॥

अर्थ : आज्ञा पालन करके जन्म का फल पाकर के शीघ्र ही लौटूँगा। अब आज्ञा हो। माता से विदा माँग आऊँ। तब फिर चरणों मे प्रणाम करके वन जाऊँगा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या आयसु देइय हरषि हिय कहि पुलके प्रभुगात से प्रसंग छोडा था। अब फिर वहीं से उठाते हैं। रामजी कहते हैं कि आप की आज्ञा के पालन मे ही मेरे जन्म का साफल्य है। मैं अपना जन्म सफल करने जाता हूँ। चौदह वर्ष के बाद लौटने म एक मिनट की देर न लगाऊँगा। यह कोई न समझे कि नाराज होकर न लौटेंगे। या मनाने के लिए किसी को जाना पडेगा। मैं स्वयं लौट आऊँगा। बात तय हो गयी। अब आज्ञा हो। मौन स्वीकारलक्षणम् मानकर कहते हैं कि जाने के पहिले माताजी से विदा माँगना भी परमावश्यक है। उनसे आज्ञा न माँगूगा। विदा माँगूगा और चलने से पहिले फिर चरणो की वन्दना के लिए आऊँगा।

सरकार समझ रहे हैं कि मा से छुट्टी पाना सहज बात नही है और जब तक उनसे छुट्टी न मिल जाय तब तक विदाई का प्रणाम पिताजी से कैसे करें।

## ११ प्रजा विरह विषाद प्रसङ्ग

अस कहि रामु गवनु तब कीन्हा। भूप सोक बस उतरु न दीन्हा॥
नगर व्यापि गइ बात सुतीछी। छुअत चढी जनु सब तन बीछी॥३॥

अर्थ ऐसा कहकर रामजी तब चल गये। राजा ने शोक के वश होकर उत्तर न दिया। नगर मे यही तीखी बात व्याप्त हो गयी। जैसे छू जाने से सम्पूर्ण शरीर मे बीछी व्याप्त हो जाती है।

व्याख्या रामजी इस बात पर नही अडे कि पिताजी मुख से कह दें कि तुम वन जाओ। तब मै जाऊँगा। उन्होने पिता की विकलता देखकर समझ लिया कि ये वन दे चुके। मुख से कहने म इन्हें कष्ट होगा। अत वहाँ से माता के पास चल पडे।

अभी तक यह बात नगर म फैली ही नही थी। पर अब रुक न सकी। तीखी बात होने के कारण सारे नगर मे फैलते देर न लगी। जैसे बीछी छू जाने से सारे शरीर म व्याप्त हो जाती है। बीछी नाम का वृक्ष उत्तराखण्ड मे होता है। उसके छू जाते ही सारे शरीर म तीव्र वेदना के व्याप्त होते देर नही लगती। बीछू यदि डङ्क मारे तो भी ऐसा ही होता है। पर उसके छू जाने से कुछ नही होता।

सुनि भये बिकल सकल नरनारी। बेलि बिटप जिमि देखि दवारी॥
जो जहँ सुनइ धुनइ सिरु सोई। बड बिषादु नहि धीरजु होई॥४॥

अर्थ सुनकर सब नरनारी विकल हो गये। जैसे दावाग्नि देखकर वृक्ष और लता विकल हो जाते हैं। जो जहा सुनता है सिर पीटने लगता है। विषाद बडा भारी है। धैर्य होता ही नही।

व्याख्या भगवान् मनु कहते है कि पेड अन्त सज्ञ होते है। उनके भीतर ज्ञान होता है। महाभारत म युक्तिप्रदर्शनपूर्वक कहा गया है तस्मात् पश्यन्ति

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पादपा । तस्मात् शृण्वन्ति पादपा । पेड देखते हैं। पेड सुनते है। वन मे आग लगी हुई देखकर लता और वृक्ष विकल हो जाते हैं। उसी भाँति रामजी का वनवास सुनकर नरनारी विकल हो उठे। समाचार के फैलने की शीघ्रता मे बीछी की उपमा दी। पर बीछो मे शारीरिक वेदना प्रधान है। यहाँ तो सबको रामजी को वनवास होगा यह सुनकर मानसिक वेदना हुई। दावानल देखकर हम भी जलेंगे · इस भय से वेलि विटप को मानसिक वेदना होती है। अत यह दूसरी उपमा देनी पडी।

अब उस मानसिक वेदना का शरीर पर प्रभाव दिखलाते हैं कि जब बडा विषाद होता है . धैर्य नही बँधता तो आदमी अपना सिर पीटने लगता है। यहाँ अयोध्या मे सबकी यही दशा है। जो सुनता है सो रामविरहाग्नि से व्याकुल होकर सिर पीटने लगता है।

दो० मुख सुखाहि लोचन स्रवहि, सोकु न हृदय समाइ।
मनहुँ करुन रस कटकई, उतरी अवध बजाइ ॥४६॥

अर्थ मुख सूखता है। आँख से आँसू बहता है। शोक हृदय मे समाता नही। मानो करुणा रस की फौज डङ्का बजाकर अयोध्या मे उतर पडी है।

व्याख्या · जब शोकाग्नि हृदय मे जलती है तब मुख सूखता है। आँख से आँसुओ की धारा बह निकलती है। असह्य शोक मे ऐसा होता है। अयोध्या मे नरनारियो की यही दशा है। मालूम होता है कि ये करुणा रस की सेना के योद्धा लोग हैं। सम्पूर्ण अयोध्या मे फैले हुए अपना पराक्रम दिखलाकर कब्जा कर रहे हैं।

मिलेहि माँझ विधि बात बिगारी। जहँ तहँ देहि कैकइहि गारी ॥
एहि पापिनिहि बूझि का परेऊ। छाइ भवन पर पावकु धरेऊ ॥१॥

अर्थ मेल के बीच मे ही ब्रह्मा ने बात बिगाड दी। जहाँ तहाँ कैकेयी को गालियाँ दे रहे हैं। इस पापिनी को समझ क्या पडा। जो घर को छाकर उसके ऊपर आग रख दिया।

व्याख्या इस राजकुल मे ऐसा मेल था कि बात बिगडनेवाली थी ही नही। यह ब्रह्मा की ही करामात है कि जहाँ कभी फूट न हुई वहाँ एकाएक बात बिगड गयी। फिर भी निमित्त कैकेयी हुई है। अत. जहाँ तहाँ लोग नि शङ्क होकर कैकेयी को गालियाँ देते हैं।

कहते हैं कि यह पापिनी है। इसे इस काम मे कौन सा लाभ दिखाई पडा। यह तो घर की छानेवाली थी। पुनि अस कबहुँ कहसि घरफारी। तब धरि जीभ कढावौं तारी। कबहुँ न कियउ सवति आरेसू। आदि से लेकर आजतक इसने घर को छाया। कुटुम्ब मे विरोध नही होने दिया। जब सब ठीक हो गया तो छाये हुए घर पर रामविरह रूपी अग्नि रख दी। यथा सहि न सके रघुवर बिरहागी। चले लोग सब व्याकुल भागी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वारिधि अनुकूला। काल की भाँति यथा : लागेउ तोहि पिसाच जिमि काल कहावत मोर। इसीलिए साध्वी स्त्री स्वातन्त्र्य को अपना अभाग्य मानती हैं। स्थूलदर्शी इस बात को नहीं देख सकते। कवि सूक्ष्मदर्शी होते हैं। इसलिए लोग कवियों का प्रमाण देकर बोल रहे हैं।

का सुनाइ बिधि काह सुनावा। का देखाइ चह काह देखावा॥
एक कहहिं भल भूप न कीन्हा। बरु बिचारि नहिं कुमतिहि दीन्हा॥१॥

अर्थ : क्या सुनाकर ब्रह्मा ने क्या सुनाया। क्या दिखलाकर अब क्या दिखलाना चाहते हैं। एक कहते है कि राजा ने अच्छा नहीं किया जो इस कुबुद्धि को विचार करके वर नहीं दिया।

व्याख्या : यह ब्रह्माण्ड ब्रह्मदेव के सकल्प से ही उत्पन्न हुआ है और चल रहा है। अत: जो कुछ इसमे होता है सबके मूल मे ब्रह्मदेव का सङ्कल्प है। अतः वे ही मुख्य कर्ता हैं। जो कल्याण सुना गया अर्थात् रामजी का अभिषेक : वह भी विधाता के ही कारण से सुना गया और अब जो रामजी का वनवास सुन रहे हैं वह भी उन्ही की करतूत है। दिखलाया तो यह कि बाज गहागह्‌ अवध बधावा और अब उसी अवध में आर्तनाद देखने की वारी आ रही है।

छ. प्रकार के विचार के लोग अवध में दृष्टिगोचर हो रहे हैं। वे लोग आपस मे अपना अपना विचार प्रकट कर रहे हैं। १ अर्थशास्त्री बोले कि राजा ने अच्छा नहीं किया। सुबुद्धि कुबुद्धि का विचार करके वर देना चाहिए। देखो कुबुद्धि ने कैसा बुरा वर माँगा।

जो हठि भयउ सकल दुख भाजनु। अबला बिबस ग्यानु गुनु गाजनु॥
एक धरम परमिति पहिचाने। नृपहि दोषु नहिं देहिं सयाने॥२॥

अर्थ : जो हठ पूर्वक सम्पूर्ण दुःख के पात्र हो गये। स्त्री के वश मे हो जाने से मानो राजा के सब ज्ञान और गुण ही चले गये। एक सयाने धर्म की मर्यादा के जाननेवाले राजा को दोष नहीं देते थे।

व्याख्या : राजा को दुःखी होने की कोई बात नहीं थी। अब इस कारण से व्यर्थ दुःख के भाजन बन रहे हैं। उन्हे अपने वचन पर हठ न करना चाहिए। ऐसा विवेकी और गुणी राजा : धर्म धुरधर नृपरिषि ज्ञानी। हृदय भगति मति सारँग पानी : सो स्त्री के वश मे पड़ा हुआ मानो अपने सब ज्ञान और गुणों को खो बैठा है। यह इससे कहते नहीं बन रहा है कि मैं राजा हूँ। अन्याय नहीं कर सकता। किस अपराध से राम को वन दें।

२. धर्म की मर्यादा के जाननेवाले धर्मशास्त्री सयाने लोग कहते हैं कि इसमें राजा का कोई दोष नहीं है। सग्राम मे सहायता के समय उन्होने दो वर माँगने को कहा था। वे ही वर थाती की भाँति राजा के पास पड़े थे। आज इस दुष्टा ने उन्हीं

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वरो से काम लिया। ये नर्म मे माँगे हुए वर नही हैं जिससे राजा को दोषी कहा जा सके।

सिवि दधीचि हरिचंद कहानी। एक एक सन कहहिं बखानी॥
एक भरत कर समत कहही। एक उदास भाय सुनि रहही॥३॥

अर्थ : शिवि दधीचि और हरिश्चन्द्र की कहानी एक एक से बखान कर कहते हैं। कोई भरत की सम्मति कहते हैं और कोई उदासीन होकर रह जाते हैं।

व्याख्या : उन धर्मशास्त्रियो का कहना है कि धर्म के निर्वाह मे तो दुःख होता ही है। यहाँ तो दुःख की जितनी ही तीव्रातितीव्र मात्रा हो उतना ही धर्म का उत्कर्ष है। राजा शिवि शरणागत कपोत के लिए अपना मास काटकर तौलते गये और वह कपोत भारी होता ही गया पर राजा अपना मास काटने से विरत नही हुए। दधीचि ने अपनी हड्डियाँ दे डाली। हरिश्चन्द्र ने अपना राज्य दिया। स्त्री बच्चे को बेंच दिया। स्वय डोम के हाथ बिक गये। पर अपने धर्म से न हटे। यही महाराज के धर्म की परीक्षा का समय है। इसमे उनका दोष क्या है?

३ तीसरे प्रकार के कुछ लोग कूटनीतिज्ञ ऐसे हैं कि इसमे भरत की चाल देखते हैं कि माँ को सिखा पढाकर आप ननिहाल बैठे हुए है। चौथे ज्ञानी महात्मा हैं जो उदासीन हैं कुछ भी नही कहते।

कान मूँदि कर रद गहि जीहा। एक कहहिं यह बात अलीहा॥
सुकृत जाहि अस कहत तुम्हारे। रामु भरत कहुँ प्रानपियारे॥४॥

अर्थ : कान मूँदकर और जीभ को दाँत से दाबकर कोई कहते है कि यह बात झूठ है। तुम्हारे ऐसा कहने से पुण्य का क्षय होगा। राम तो भरत को प्राण से प्यारे हैं।

व्याख्या : पाँचवे प्रकार के लोग भगवद् भक्त हैं। ये ऐसी बात सुनना नही चाहते। इसलिए कान मूँद लेते है और दूसरे को भी ऐसी बात कहने से निषेध करते हैं। इसलिए दाँत तले जीभ दबाते हैं और कहते हैं कि यह बात निर्मूल है। निर्दोष पर दोषारोपण करने से पुण्य का क्षय होता है। सो क्यो व्यर्थ अपने पुण्य का क्षय करते हो। ससार राज्य सुख तो अपने प्यारो के लिए ही चाहता है और भरत को राम प्राण से प्यारे हैं। उनके अभिषेक मे भरत बाधक क्यो होंगे?

दो. चंदु चवइ बरु अनल कन, सुधा होइ विष तूल।
सपनेहुँ कबहुँ न करहिं किछु, भरतु राम प्रतिकूल॥४८॥

अर्थ : चाहे चाँद मे से आग के कण गिरें चाहे अमृत विष हो जाय पर सपने मे भी भरत राम के प्रतिकूल कुछ भी नही कर सकते।

व्याख्या : चन्द्रमा हिमकर हैं : हिमकण का स्राव करते हैं। वे चाहे अग्निकण का स्राव करने लगें। उनके स्वरूप मे इतना बडा वैषम्य उपस्थित हो जाय और

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अमृत विष तुल्य हो उसका स्वभाव ही पलट जाय, पर भरत के स्वरूप और स्वभाव मे अन्तर नही पड सकता। यथा भरत सुभाउ सुसीतलताई। सदा एकरस बरनि न जाई। सो भरतजी रामजी के प्रतिकूल सपने म भी नही हो सकते जाग्रत् की कौन चलावे।

एक विधातहि दूषनु देही। सुधा देखाइ दीन्ह बिषु जेही॥
खरभरु नगर सोचु सब काहू। दुसह दाहु उर मिटा उछाहू॥१॥

अर्थ कोई ब्रह्मा को दोष देते है जिसने अमृत दिखलाकर विष दिया। नगर मे खलबली मच गयी। सबको सोच हो गया। हृदय म नही सहने योग्य दाह पैदा हो गया। उछाह जाता रहा।

व्याख्या यह छठा प्रकार कर्मकाण्डियो का है। यह सीधे सीधे विधाता को दोष देते हैं। दिखाकर न देना दोष है और अमृत दिखाकर विष देना तो बडा ही कराल कर्म है। यथा सुनिअ सुधा देखिअ गरल सब करतूति कराल। रामराज्याभिषेकोत्सवरूपी अमृत विधाता ने दिखलाया। दिखलाकर न देते। रामजी का अभिषेक न होता यही बहुत था। उनको वनवास रूपी विष दिया जा रहा है।

विष दिये जाने पर जो खलबली मचती है वह मची। सबको सोच है कि इस विष से रक्षा कठिन है। विष काम भी करने लगा। हृदय म जलन उत्पन्न हो गयी। सबके हृदय म उत्साह था। यथा सुनत राम अभिषेक सोहावा। बाज गहागह अवध बधावा। सो उछाह मिट गया।

बिप्रबधू कुलमान्य जठेरी। जे प्रिय परम कैकेयी केरी॥
लगीं देन सिख सीलु सराही। बचन बानसम लागहि ताही॥२॥

अर्थ ब्राह्मणो की स्त्रियाँ कुल की मान्य बडी बूढी जो कैकेयी को परमप्रिय थी उसके शील की प्रशसा करती हुई समझाने लगी। पर वे वचन उसे बाण जैसे लगते थे।

व्याख्या ब्राह्मणो की स्त्रियाँ जिन्हे अति पूज्य दृष्टि से रानी कैकयी सदा देखती थी कुल को मान्य ननद फूफी आदि जठेरी जेठानी चचियासास आदि जो कैकेयी को परमप्रिय थी जब उन लोगो ने यह समाचार सुना तो अपना जोर समझकर कैकयी के पास पहुँची और उसके शील की स्तुति करके समझाने लगी। पर समझना तो दूर रहा उनके वचन उसे बाण के समान लगने लगे। उसने समझा कि ये ठकुरसोहाती करनेवाली आगयी। य सब शत्रु की ओर मिली हुई है। मेरे शील की सराहना इसलिए हो रही है कि मै इनकी बातो म आकर अपने ध्येय स हट जाऊँ। ये एक बात भी मेरे हित की नही कह रही हैं। जिसमे कौसल्या का भला हो वही कह रही हैं। अत व वचन उसे बाण से लगते थे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भरतु न मोहि प्रिय राम समाना। सदा कहहु येहु सबु जगु जाना ॥
करहु राम पर सहज सनेहू। केहि अपराध आजु बनु देहू ॥३॥

अर्थ : राम के समान मुझे भरत भी प्यारे नहीं सदा यह कहती आयी हो और ससार इस बात को जानता है। रामजी पर तुम स्वाभाविक स्नेह करती हो तो आज किस अपराध पर वन दे रही हो।

व्याख्या : अब समझाने का प्रकार कहते हैं। वे सब कहने लगी कि तुम तो सदा कहती रही कि राम के समान मुझे भरत भी प्यारे नहीं। तुम्हारा बर्ताव भी राम के साथ वैसा ही था। इसलिए संसार में यह बात प्रसिद्ध हो गयी कि महारानी कैकेयी बेटे से अधिक रामजी को मानती हैं। सो क्या वह कहना और वह बर्ताव मिथ्या था? तुम्हारा स्नेह रामजी पर बनावटी था। यह तो हम लोग मान नहीं सकती। सो स्वाभाविक स्नेह में हठात् इतना बड़ा परिवर्तन क्यों? बिना कारण कार्य नहीं होता। अपराध में ही स्नेह में कमी आती है। इतने दिनों तक तो सब ठीक चला। आज जो वन दे रही हो सो किस अपराध पर? हम लोग भी सुनें कि राम ने यह अपराध किया है। जगत् भी जाने ' नहीं तो निरपराध को दण्ड देने का दोषी ससार तुम्हें समझेगा।

कबहुँ न कियहु सवतिआ रेसू। प्रीति प्रतीति जान सबु देसू ॥
कौसल्याँ अब काह बिगारा। तुम्ह जेहि लागि बज्र पुर पारा ॥४॥

अर्थ ' तुमने कभी सौतियाडाह नहीं की। तुम्हारी प्रीति और विश्वास को सारा देश जानता है। कौसल्या ने अब क्या बिगाड़ा जिसके लिए तुम सारे नगर पर वज्र ढहा रही हो।

व्याख्या : कुछ उत्तर न मिलने पर उन लोगों ने सोचा कि रामजी से कोई अपराध नहीं हुआ। सौत का स्वभाव है दूसरी के पुत्र की बढ़ोतरी नहीं देख सकती। पर यहाँ तो यह बात कभी नहीं थी। अत कहती है कि तुमने तो आज तक सौतियाडाह नहीं किया। तुम्हारे में और कौसल्या में जैसी प्रीति प्रतीति है वैसी सौतों में कहीं देखी नहीं जाती। यह बात ससार जानता है। रामजी को युवराजपद महाराज देते थे। उसमें कौसल्या का क्या दोष है? सो तो अब होगा नहीं। अब तो भरत युवराज होंगे। बात समाप्त हो गयी। अब जो राम को वन भेज रही हो यह तो कौसल्या को दण्ड देना है। तुम्हारे विवाह में कौसल्या बाधक नहीं हुई। हवि विभाग में बाधक नहीं हुई। तुम्हारे बढ़ते हुए अधिकार में बाधक नहीं हुई। जब बिगाड़ करने का समय था तब बिगाड़ नहीं किया। अब कौसल्या ने क्या बिगाड़ा जो कहती हो : जस कौसिलाँ मोर भल ताका। तस फलु तिन्हहि देउँ करि साका। तुम तो चली हो कौसल्या को दण्ड देने सो वह दण्ड कौसल्या पर ही सीमित न रहकर सम्पूर्ण प्रजामण्डल पर गिरेगा। सम्पूर्ण प्रजा पर वज्र क्यों गिरा रही हो?

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो॰ सीय कि पिय सँगु परिहरिहि, लखनु कि रहिहहिं धाम।
राजु कि भूँजब भरत पुर, नृपु कि जिअहि बिनु राम ॥४९॥

अर्थ सीता क्या पति का सग परित्याग करेगी ? लक्ष्मण क्या घर रहेगे ? भरत क्या पुर का राज्य भोगेंगे ? राजा क्या बिना राम के जीवेंगे ?

व्याख्या सीता कुलवधू है वह निश्चय रामजी के साथ वन चली जायगी। क्या यह भी तुम्हे स्वीकार है ? लक्ष्मण का भी इतना प्रेम है कि वे भी घर नही रहेगे। क्या यह भी तुम्हे इष्ट है ? वह सकती हो कि भरत तो राजा होगे। भरत के राज्य के लिए मै सब करती हूँ। पर प्रश्न तो यह है कि क्या ऐसी अवस्था मे भरत राज्य स्वीकार करेंगे ? हम कहती है कि कभी नही करेंगे। रामजी रहते ता कदाचित् भरत स्वीकार भी करते। अत राम को वन भेजकर तुम अपने मुख्य इष्ट का नाश कर रही हो और सबसे बडा अनिष्ट तुम्हारे लिए यह होगा कि महाराज बिना राम के न जीवेगे। इतना बडा अनर्थ तुम्हारे हाथ से हुआ चाहता है।

अस बिचारि उर छाडहु कोहू। सोक कलक कोठि जनि होहू ॥
भरतहिं अवसि देहु जुबराजू। कानन काह राम कर काजू ॥१॥

अर्थ ऐसा विचारकर क्रोध छोड दो। शोक और कलक की कोठी न बनो। भरत को अवश्य युवराज पद दो। पर राम का वन मे क्या काम है ?

व्याख्या तुम्हारे क्रोध के भयानक दुष्परिणाम होगे। भरत के राज देने मे अर्थ कारण है। पर राम के वन देने म तो क्रोध कारण है। उसके वश होकर शोक और कलङ्क की निधान अपने को क्यो बनाती हो। राम के वन देने से तुम्हे असाधारण कलङ्क लगेगा और जब इस भाँति मिल हुए राज्य को भरत अस्वीकार कर देंगे महाराज बिना राम क प्राण त्याग करगे तब तुम शोक की कोठी होओगी। राम को वन भेजकर अव्यापारेषु व्यापार क्यो करती हो ?

नाहिन रामु राज के भूखे। धरम धुरीन बिषय रस रूखे ॥
गुरु गृह बसहु रामु तजि गेहू। नृप सन अस बरु दूसर लेहू ॥२॥

अर्थ रामजी राज के भूखे नही है। वे धर्म के धुरा के वहन करनेवाल है। विषय रस से रूखे है। रामजी घर छोडकर गुरुजी के घर रहे। तुम राजा से यह दूसरा वर लो।

व्याख्या यदि कहो कि भरत के राज्य मे रामजी बाधक होगे तो रामजी को सब जानते है। उन्हे राज की भूख नही है। राज्य की चाह उसे होती है जिसे विषय लिप्सा होती है जो राज धर्म के गौरव को नही जानता। रामजी तो सदा विषय रस से रूखे हैं वे धर्मधुरीण है। जानते हैं कि राजधर्म का निर्वाह कठिन है। उन्हे राज्य की भूख हो नही सक्ती।

पर तुम्हे भूख है। तुम्हारे मन मे शका हो सकती है। तो राजा से दूसरा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वर माँग लो कि राम घर मे न रहे। वे जाकर गुरुजी के घर रहे। गुरुजी की दृष्टि दिन रात उन पर रहेगी। फिर उनसे कोई भय का कारण न रह जायगा। लोग भी समझेंगे कि केवल भय से रानी ने रामजी को इस दृश्य से पृथक् कर रक्खा है। भरत के राज्य स्वीकार मे भी अधिक कठिनता न होगी। महाराज के प्राण भी बच जायँगे।

जौं नहि लगिहहु कहे हमारे। नहि लागिहि कछु हाथ तुम्हारे ॥
जौं परिहास कीन्हि कछु होई। तौ कहि प्रगट जनावहु सोई ॥३॥

अर्थ यदि तुम हम लोगो का कहना न मानोगी तो तुम्हारे हाथ कुछ न लगेगा। यदि तुमने हँसी की हो तो उसे प्रकट करके कह दो।

व्याख्या रुख देखकर सखी कहती है कि यदि तुमने हमारा कहना न माना अपनी बात पर ही अडी रह गयी कि रामजी वन जायँ तो तुम्हारे हाथ सिवा शोक कलङ्क के और कुछ न लगेगा। कभी भरत राज्य स्वीकार नही करेंगे। राजमाता का स्वप्न झूठा हो जायगा। सखी है बात सुधारने के लिए अवसर देती है कि यदि तुमने सचमुच हँसी की हो क्योकि हँसी मे ही ऐसी निष्कारण बात कही जाती है तो बात अब हँसी की सीमा को उल्लघन कर रही है। स्पष्ट कह दो कि यह तो हमने हँसी की थी।

राम सरिस सुत कानन जोगू। काह कहिहि सुनि तुम्हे कहुँ लोगू ॥
उठहु बेगि सोइ करहु उपाई। जेहि बिधि सोकु कलकु नसाई ॥४॥

अर्थ क्या राम ऐसा बेटा वन के योग्य है। लोग सुनकर तुम्हे क्या कहेगे। उठो जल्दी से वही उपाय करो जिस विधि से शोक कलङ्क नष्ट हो।

व्याख्या बेटा वन मे भेजने की वस्तु नही है। खोटे बेटे को भी कोई वनवास नही देता। फिर रामजी ऐसा बेटा वनवास के योग्य कैसे है ? भला, जो सुनेगा वह तुम्हे क्या कहेगा ?

जब सखियो ने देखा कि यह टस से मस नही होती तब कहती है बैठी क्या हो। उठो, बैठने से काम नही चलेगा। अब तुम्हे बिगडी बात के बनाने मे परिश्रम करना पडेगा। शोक और कलक तुम पर आ पडा। तुम बडे दुख मे पड गयी। तुम्हे सूझता नही है।

छ जेहि भाँति सोकु कलकु जाइ, उपाय करि कुल पालही।
हठि फेरु रामहि जात बन, जनि बात दूसरि चालही ॥
जिमि भानु बिनु दिनु प्रान बिनु तनु चदु बिनु जिमि जामिनी।
तिमि अवध तुलसीदास प्रभु बिनु समुझि धौ जिय भामिनी ॥

अर्थ जिस भाँति शोक और कलङ्क मिटे वैसा उपाय करके कुल की रक्षा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कर लो। राम को वन जाने से हठ करके लौटाओ। दूसरी बात मुख से न निकालो। जैसे विना सूर्य का दिन बिना चाँद की रात विना प्राण का देह तुलसीदास के प्रभु के बिना अवघ भी वैसा ही है। हे भामिनि मन म विचारो।

व्याख्या सखी कहती है कि हम जो कहती है उतना ही नही। जिस उपाय से शोक कलङ्क मिटे सोई उपाय करो। कुल का नाश होना चाहता है उसे वचा लो। कदाचित् राम न फिरें तो उन्हे हठ करके लौटाओ। रामजी चल पडे। उनका लौटना सरल नही है। चली जाओ कौसल्या के महल में दोनो माताएँ मिलकर रामजी को जाने से रोको।

*अवधपुरी सोहावनी मङ्गलमय और पावनी है। सो भयावनी अमङ्गलमय* और अपावनी हो जायगी। जैसे चाँद बिना रात भयावनी, सूर्य विना दिन अपावन, प्राण विना तन अमङ्गलमय, वही दशा अवध की बिना राम के हो जायगी। भली भाँति मन मे समझ लो।

सो सखिन्ह सिखावनु दीन्ह, सुनत मधुर परिनाम हित।
तेहि कछु कान न कीन्ह, कुटिल प्रबोधी कूबरी ॥५०॥

अर्थ सखियो ने ऐसी सीख दी जो सुनने मे मधुर और परिणाम मे हित हो। पर उसने एक न सुना। उसे कुटिल कूबरी ने सिखा पढाकर पक्का कर रक्खा था।

व्याख्या : कठोर शब्दो मे कहे गये हित शब्द का भी आदर किया जाता है। सखियो ने तो बहुत मधुर शब्दो मे कहा। नही सुनने का कोई कारण नही था। पर कैकेयी ने एक न सुना। क्योकि उसे कुटिल कूबरी ने समझा रक्खा था कहहिं झूठ फुरि बात बनाई। ते प्रिय तुम्हहि। कैकेयी ने समझ लिया कि आगयी प्रिय बनाकर झूठी बातें कहनेवाली। उसने कहा था काज सँवारेउ सजग सबु सहसा जनि पतिआहु। सो कैकेयी अपने समझ मे सजग होकर काम सँवार रही थी। उन्हे अब सखियो पर विश्वास नही रह गया।

उतरु न देइ दुसह रिसि रूखी। मृगिन्ह चितव जनु बाघिनि भूखी ॥
ब्याधि असाधि जानि तिन्ह त्यागी। चली कहत मतिमद अभागी ॥१॥

अर्थ : दुसह क्रोध से रूखी हो गयी है। जवाब नही देती और इस भाँति देख रही है मानो भूखी बाघिन मृगी को देखती हो। असाध्य रोग जानकर उन्होने उसे छोड दिया और मतिमन्द अभागी कहती हुई चली गयी।

व्याख्या : है तो सदा की शीलवती। पर इस समय उसे इतना क्रोध है कि बेकाबू हो रही है। शील का वही नाम नही है। अति रूक्ष व्यवहार करती है। यह भी नही कि उनकी ओर देखती न हो। निर्निमेष नेत्र से देख रही है। पर चितवन मे क्रोध भरा हुआ है। ऐसा मालूम पड रहा है कि किस समय टूट

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याधिग्रस्त पुरुष लम्बी सासें लेता है। यही गति प्रजा की हो रही है। वह कहती है कि राम के बिना जीवन की क्या आशा है। भाव यह कि इस विषमज्वर की दवा केवल राम है।

सब विधि सब पुरलोग सुखारी। रामचद मुखचद निहारी। अत रामजी का वियोग सब वियोगो से अधिक है। जैसे जलचर के लिए जल का वियोग तो सीधे सीधे प्राण का ही वियोग है। पानी सूखने लगा तब सम्पूर्ण जलचरो का व्याकुल हो उठना स्वभावसिद्ध है। जिस भाँति जलचर के लिए पानी है उसी भाँति प्रजा के लिए रामजी हैं। उनका वियोग जितना निकट आता जाता है। उतनी ही प्रजा की व्याकुलता बढ रही है।

अति बिषाद बस लोग लोगाई। गये मातु पहि रामु गोसाई॥
मुख प्रसन्नु चित चौगुन चाऊ। मिटा सोचु जनि राखइ राऊ॥४॥

अर्थ · स्त्री पुरुष तो सब विषादवश हैं और रामजी माँ के पास गये। मुख प्रसन्न है। चित्त मे चौगुना आनन्द है। राजा रोक न लें यह सोच भी मिट गया।

व्याख्या · जिसके वनगमन के समाचार से स्त्री पुरुष इस भाँति विषाद वश हो रहे हैं। उन्हे वनगमन मे लाभ ही लाभ दिखाई दे रहा है। चार लाभ गिनाये हैं १ मुनिगन मिलनु विसेषबन सबहि भाँति हित मोर २ तेहिमहँ पितु आयसु ३ बहुरि समत जननी तोर और ४ भरत प्रान प्रिय पावहि राजू। इसलिए चित्त मे चौगुना आनन्द है। आनन्द मन मे होने से मुखपर प्रसन्नता के चिह्न आ ही जाते हैं। माता के कहने पर यह सोच रहा कि कही महाराज रख न ले। पर अस कहि रामु गवनु तब कीन्हा। भूप सोक बस उतरु न दीन्हा। राजा के शोकवश होकर उत्तर न देने का अर्थ ही यही है कि राजा ने मन से बन दे दिया। अत महाराज के रोक लेने का जो सोच रहा वह भी जाता रहा।

दो नव गयंदु रघुबीर मनु, राजु अलान समान।
छूट जानि बन गवनु सुनि, उर अनदु अधिकान॥५१॥

अर्थ रामजी का मन नये गजराज के समान है। राज्य बन्धन के समान है। छूटा हुआ जानकर वनगमन सुनने से हृदय मे आनन्द अधिक हो उठा।

व्याख्या · बूढा गजेन्द्र छूटने पर भी वन नही जाता। घूम फिरकर हाथीखाने मे ही आ जाता है। वह स्वातन्त्र्य के सुख को भूले हुए है। पर नये गजेन्द्र को स्वातन्त्र्य का सुख याद है। उसे मलीदा अच्छा नहीं लगता। वह बन्धन से लाचार होकर स्वातन्त्र्य सुख से वञ्चित है। इसी भाँति रामजी का मन है। वह नवगजेन्द्र की भाँति स्वच्छन्द विचरना चाहता है। राज्य उसे बन्धन मालूम हो रहा है। उससे वह सुखी नही है। यद्यपि नवगजेन्द्र बँधने पर भी मस्त ही रहता है। पर यदि बन्धन छूट जाय तो और भी आनन्दित हो उठता है। उसी भाँति आत्माराम पूर्ण

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



काम राम सहज आनन्द निधान हैं। पर गमन सुनने से उनका आनन्द बढ गया कि चलो इस राज बन्धन से छुट्टी मिली।

रघुकुल तिलक जोरि दोउ हाथा। मुदित मातु पद नायउ माथा॥
दीन्हि असीस लाइ उर लीन्हे। भूपन बसन निछावरि कीन्हे॥१॥

अर्थ : रघुकुलतिलक रामजी ने दोनो हाथ जोडे हुए प्रसन्न होकर माँ के चरणो मे सिर नवाया। माँ ने आशीर्वाद दिया। हृदय से लगा लिया और गहना कपडा निछावर किया।

व्याख्या : सरकार स्वयं ही रघुकुल के तिलक रूप है। इन्हे तिलक की आवश्यकता नही। वनगमन के निश्चय से वडे प्रसन्न हैं। उसी प्रसन्नता मे दोनो हाथ जोडकर माँ के चरणो मे प्रणाम किया माँ ने समझा कि तिलक होने जा रहा है। अत प्रसन्न हैं। आशीर्वाद ग्रहण करने के लिए प्रणाम करने आये हैं। माता परम प्रसन्न हो उठी। प्रेम उमड आया। आशीर्वाद देती है। रामजी अतिप्रिय हैं इससे हृदय से लगाती हैं। अभिषिक्त होने जा रहे हैं इसलिए गहना कपडा निछावर करती हैं।

वार वार मुख चुंवति माता। नयन नेह जलु पुलकित गाता॥
गोद राखि पुनि हृदयँ लगाए। स्रवत प्रेमरस पयद सुहाए॥२॥

अर्थ मां वार वार मुख चूम रही है। आँखो मे प्रेमाश्रु भरा हुआ है और शरीर मे पुलक हो रहा है। गोद मे बिठाकर हृदय से लगाया। सुन्दर स्तनो से प्रेमरस बहने लगा।

व्याख्या नृप रानी परिजन सुकृत मधुकर बारि विहग। राजा और रानी का पुण्य भ्रमर है उसे रामजी के मुख कमल के रसास्वादन का अधिकार है। यद्यपि रामजी की उम्र इस समय सत्ताइस वर्ष की है। फिर भी माता का प्रेम वैसा ही है जैसे छोटे वच्चो पर होता है। वह बार वार मुख चूमती है। सात्त्विक भाव का उदय हुआ है। आँखो मे आँसू भरे हुए हैं और देह मे पुलकावली छायी हुई है। गोद मे रामजी को बिठाती हैं और फिर से हृदय लगा रही हैं। सुन्दर स्तनो से प्रेम के मारे दूध वह चला। वात्सल्य भाव के अधिक वढ जाने से असमय मे भी माता के स्तनो मे दूध आ जाता है। इसीलिए गोस्वामीजी ने उसे प्रेमरस कहा।

प्रेमु प्रमोदु न कछु कहि जाई। रंकु धनद पदवी जनु पाई॥
सादर सुंदर बदनु निहारी। बोली मधुर वचन महतारी॥३॥

अर्थ : प्रेम और आनन्द का कुछ वर्णन नही हो सकता। मानो किसी दरिद्र को कुवेर की पदवी प्राप्त हो गयी हो। आदर के साथ सुन्दर मुख का अवलोकन करके माँ ने मीठे वचन कहे।

व्याख्या इष्टजन्य भोग को प्रमोद कहते हैं। उस समय जैसा प्रेम और प्रमोद

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



माँ को हुआ उसका क्या वर्णन किया जाय। मानो दरिद्र को कुबेर का पद मिल गया। धनविहीन को ही दरिद्र कहते है। उसे धन मिलना दुर्लभ है। ऐसे को कुबेर का पद यदि मिल जाय अर्थात् नवो निधियाँ उसे प्राप्त हो जायँ जिसे वह जितना चाहे उसे उतना धन दे सके तो उस समय उसे जो आनन्द होता है वह वर्णनातीत है। यही दशा कौसल्या माता की हुई। इन्हे सब कुछ रहते हुए भी पुत्र नही था। पुत्र मुख दर्शन दुर्लभ था। सो इन्हे राम सा पुत्र मिला। अब रामजी का राज्याभिषेक होने जा रहा है। यह प्रसन्नता रक के धनदपद प्राप्ति के समान है।

कहहु तात जननी बलिहारी। कबहि लगन मुद मगलकारी॥
सुकृत सील सुख सींव सुहाई। जनम लाभ कइ अवधि अघाई॥४॥

अर्थ बेटा! माता बलैया लती है। कहो कब वह आनन्द और मगल करने वाला लग्न है जो कि पुण्यशील के सुख की सीमा है और जन्म के लाभ की पूर्ण अवधि है।

व्याख्या शुभकार्य शुभ लग्न म ही होते ह। यहा लग्न का किसी को पता ही नही। लोग एक दूसरे से पूछते है कबहि लगन मुद मगलकारी। यहाँ तक कि माता कौसल्या को भी पता नही। वे राम जी से पूछती है कि वह मुद मगलकारी लग्न कब है? बात यह हुई कि गुरुजी ने लग्न बताया नही कह दिया कि जब राम युवराज हो तभी शुभ लग्न है। वह लग्न इतनी प्रिय है कि माता उसे सुकृत सील के सुख की सीमा कहती है। जिस लग्न म रामजी का तिलक हो माता के लिए वही लग्न सुकृत शील के पुण्य की सीमा है और वही जन्मलाभ की पूरी अवधि है। यथा राम बाम दिसि सोहति रमारूप गुन खानि। देखि मातु सब हरखी जन्म सुफल निज जानि।

दो जेहि चाहत नर नारि सब, अति आरत एहि भाँति।
जिमि चातक चातकि तृषित, वृष्टि सरद रितु स्वाति॥५२॥

अर्थ जिसे सभी स्त्री पुरुष अतिआर्त होकर इस तरह चाहते है जैसे प्यासे चातक और चातकी शरद ऋतु के स्वाती की वर्षा को चाहते हैं।

व्याख्या जैसे महाराज को सब नगर का वृत्तान्त दूतो द्वारा मालूम रहता है उसी भाँति महारानी कौसल्या को भी दूतियो द्वारा सब नगर का वृत्तान्त मालूम है। वे जानती हैं कि प्रजावर्ग भी रामजी के तिलक के लिए आर्त है। अत कहती है कि तुम्हारा तिलक मेरे लिए तो जन्मलाभ की अवधि है ही पर सारा प्रजा नरनारी सब पपीहा की तरह शरद ऋतु के स्वाती की वर्षा का बाट जोह रहे है। स्वाती के बूँद के लिए ही पपीहा तरसता है। बारह महीने से उसी के लिए रट लगाये रहता है। यहाँ तो बारह वर्ष से प्रजा उसी लग्न की प्रतीक्षा कर रही है जिसमे तिलक होनेवाला है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तात जाउँ बलि बेगि नहाहू । जो मन भाव मधुर कछु खाहू ॥
पितु समीप तब जायेहु भैया । भइ बड़ि बार जाइ बलि मैया ॥१॥

अर्थ : बेटा ! मैं बलैया लेती हूँ। जल्दी से नहा डालो। जो मनमे भावे सो मिठाई थोडी सी खालो तब पिता के पास जाना। बहुत देर हो गयी है। माँ बलैया लेती है।

व्याख्या : तुम्हे अभिषेक के लिए जाना है। कल से सयम मे हो इसलिए जल्दी से नहाकर कुछ मीठा खालो। अभिषेक मे बहुत देर लगेगी कब तक भूखे रहोगे। यदि सयम मे हो तो अन्न न खाओ। मीठा खाने मे तो कोई दोष नही है। अत कलेवा करने के बाद पिता के पास जाना। दिन चढ आया। अभीतक तुमने कुछ खाया नही। इतना कहने पर भी अभिरुचि न देखकर कहती है कि मैं बलैया जाती हूँ। कुछ खा लो।

मातु बचन सुनि अति अनुकूला । जनु सनेह सुरतरु के फूला ॥
सुख मकरद भरे श्रियमूला । निरखि राम मनु भँवरु न भूला ॥२॥

अर्थ : माता के अति अनुकूल वचन सुन करके जो कि स्नेहरूपी कल्पवृक्ष के फूल की भाँति सुख रूपी मकरन्द से भरे हुए और शोभा के मूल थे, रामजी का मन जो कि भ्रमर सा है देखते हुए भी नही भूला।

व्याख्या . भौरा पुष्परस . मकरन्द का रसिक है। वह उसके सुगन्ध से आकृष्ट होकर उसके पास पहुँच जाता है और रस लेने मे मुग्ध हो जाता है। ऐसा ही रामजी का मन है। यह प्रेम का बडा रसिक है। जहाँ प्रेम देखता है वहाँ रस के आस्वादन के लिए पहुँच जाता है। यथा ' मुनि मानस पकज भृग भजे और उस रसास्वादन मे अपने को भूल जाता है। पर यहाँ तो माता के वचन ऐसे अनुकूल थे मानो वे स्नेहरूपी कल्पवृक्ष के फूल हैं। सुखरूपी मकरन्द से भरे हुए हैं और शोभा के मूल हैं। उसे देखते हुए भी वही मकरन्द रसिक रामजी का मन आज अपने को भूलता नही है। उसे कर्तव्य विस्मृति नही हो रही है।

भावार्थ यह प्रभु भाव ग्राहक अति कृपाल सुप्रेम ते सुख मानही और माता का वचन दिव्य प्रेम से भरा हुआ है। उस प्रेम को देखते हुए भी आज उस ओर आकृष्ट नही हो रहे हैं। किसी भाँति कर्त्तव्य पथ से विचलित नहीं होना चाहते।

धरम धुरीन धरम गति जानी । कहुउ मातु सन अति मृदु बानी ॥
पिता दीन्ह मोहि कानन राजू । जहँ सब भाँति मोर बड़ काजू ॥३॥

अर्थ : धर्मधुरन्धर रामजीने धर्म की गति को जानकर माता से अति कोमल वाणी मे कहा कि पिताजी ने मुझे वन का राज्य दिया है और वहाँ सभी तरह से मेरी बडी आवश्यकता है।

व्याख्या : सरकार धर्मधुरन्धर हैं। धर्म का चक्र इन्ही के आधार पर फिरता

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है। जानते है कि धर्मस्य सूक्ष्मा गति । पिता की आज्ञा मानना सब धर्मो मे श्रेष्ठ है। परन्तु माँ इस प्रकार के प्रेम के शब्द बोल रही है। इसके उत्तर मे वज्राघात जैसी बात कैसे कहूँ। अत उसी बात को जितने कोमल शब्दो मे कहा जा सकता था उतने कोमल शब्दो मे कहा।

पिताजी ने मुझे वन का राज्य दे दिया। वन की व्यवस्था बहुत बिगडी हुई है। वहाँ बिना मेरे गये काम बन नही सकता। इस भाँति पिता के सत्य की तथा सद्भावना की रक्षा की। यही कथन का पाण्डित्य है कि जो कुछ सरकार ने कहा वह सत्य, प्रिय और हित था।

आयसु देहि मुदित मन माता। जेहि मुद मगल कानन जाता ॥
जनि सनेह बस डरपसि भोरे। आनँदु अब अनुग्रह तोरे ॥४॥

अर्थ माँ तू प्रसन्न मन से आज्ञा दे जिससे वन जाते हुए मुझे आनन्द मङ्गल हो। प्रेमवश होकर भूलकर भी मत भयभीत हो। क्योकि तेरे अनुग्रह से ही सब आनन्द होगा।

व्याख्या सरकार कहते हैं कि पिताजी की आज्ञा हो चुकी पर प्रसन्न मन से नही हुई। अत तू प्रसन्न होकर आज्ञा दे। यदि पिताजी की भाँति तू भी दु खी होकर आज्ञा देगी तो मुझे वन यात्रा मे आनन्दमङ्गल कैसे होगा ?

वन के दु ख को दृष्टि मे रखकर भय से तू आज्ञा देने मे विपण्ण मत हो। क्योकि आनन्द का निवास तो माता के अनुग्रह मे हैं। तेरा अनुग्रह यदि बना रहा तो रन मे वन मे मेरे लिए सर्वत्र ही आनन्द है।

दो बरष चारि दस बिपिन बसि, करि पितु बचन प्रमान।
आइ पाय पुनि देखिहौ, मन जनि करसि मलान ॥५३॥

अर्थ चौदह वर्ष वन मे रहकर और पिता के वचन को प्रमाण करके लौटकर फिर चरणो का दर्शन करूँगा। तू मन को मलिन मत कर।

व्याख्या अब बनवास की अवधि कहते है। चौदह वर्ष सुनने मे बडा कठोर प्रतीत होगा। अत उसे खण्ड करके कहते है। उसमे चार पहिले कहकर पीछे दश कहते हैं। पिता का वचन अप्रमाण न हो इसलिए वन मे बसेगे। कुछ राज्य न मिलने से नाराज होकर नही। बस अवधि पूरी होते ही लौटकर चरणो का दर्शन करूँगा। माता के मुखपर म्लानता की रेखा देखकर कहते है तू मन को म्लान मत कर।

बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सर सम लगे मातु उर करके ॥
सहमि सूखि सुनि सीतलि बानी। जिमि जवास परे पावस पानी ॥१॥

अर्थ रघुबर के विनययुक्त और मीठे वचन माँ को बाण जैसे लगे। कलेजा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वेध दिया। शीतल वाणी सुनकर सहमकर सूख गयी। जैसे जवासे पर बरसात का पानी पड़ा हो।

व्याख्या : इतने मधुर शब्दों में और विनीत भाव से कही हुई बात : पिता दीन्ह मोहि कानन राजू ''बरष चारिदस बिपिन बसि। माँ है : उसे बाण से लगे। कलेजा बिंध गया। जिसे बाण लगता है वह पृथ्वी पर गिर जाता है। माँ गिरी तो नही पर सहमकर सूख गयी। इसलिए कवि ने दूसरी उपमा दी। पावस का पानी बडा शीतल होता है। संसार का हरा भरा कर देता है। पर उसी शीतल जल से जवासा झुलस जाता है। उसके पत्ते गिर जाते है। वह बिल्कुल सूख जाता है। इसी भाँति कौसल्याम्बा भी रामजी की शीतल वाणी से सूख गयी : यहाँ विषमालङ्कार है।

कहि न जाइ कछु हृदय बिषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू ॥
नयन सजल तन थर थर काँपी। माँजहि खाइ मीन जनु माँपी ॥२॥

अर्थ : हृदय मे ऐसा विषाद हुआ जो कहा नही जा सकता। जैसे मृगी को सिंहनाद सुनने पर होता है। आँखो में जल भर आया। शरीर थर थर काँपने लगा। जैसे माँजा खाकर मछली विकल हो।

व्याख्या : माता का धैर्य एकदम छूट गया। जैसे सिंह का गर्जन सुनकर मृगी का धैर्य छूट जाता है। वह चौकड़ी भूल जाती है। हृदय में जो विषाद हुआ उसे कहा नही जा सकता। आँखो मे जल आगया और थर थर काँपने लगी और ऐसी विकल हुई जैसे मछली ने माँजा खा लिया हो। पहिले पानी बरसने से जो गाज नदी मे उत्पन्न होता है उसे खाकर मछली बड़ी विकल हो जाती हैं। इन तीन अर्धालियों से मनसा वाचा कर्मणा विषाद कहा।

धरि धीरजु सुत बदनु निहारी। गदगद बचन कहति महतारी ॥
तात पितहि तुम्ह प्रानपिआरे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे ॥३॥

अर्थ : धैर्य धरके बेटे का मुख देखकर गद्गद वाणी से माता कहने लगी : बेटा ! तुम तो पिता को प्राण के समान प्यारे थे। वे नित्य तुम्हारे चरित्रों को देखकर प्रसन्न होते थे।

व्याख्या : थोड़ी देरतक यह विकलता रही। फिर माता ने धैर्य धारण किया और पुत्र का मुख देखा। माता ऐसी स्नेहमयी है कि पुत्र का मुख देखकर तब कुछ कहती है। आते ही ; सादर सुंदरवदनु निहारी। बोली मधुर वचन महतारी। अब फिर बोलना है तो फिर पुत्र मुखावलोकन करती है। पर इस बार मुख की सुन्दरता देखने का भाव नही है। इस बार देखती है कि इन पर पिता की आज्ञा का क्या प्रभाव पड़ा ? इसलिए सादर नही कहते। गला रुँधा हुआ है फिर भी बोली।

बात क्या है ? घर से वह बेटा निकाला जाता है जो अप्रिय हो। महादुश्चरित्र

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है। जानते है कि धर्मस्य सूक्ष्मा गति । पिता की आज्ञा मानना सब धर्मों मे श्रेष्ठ है। परन्तु माँ इस प्रकार के प्रेम के शब्द बोल रही है। इसके उत्तर म वज्राघात जैसी बात कैसे कहूँ। अत उसी बात को जितने कोमल शब्दो मे कहा जा सकता था उतने कोमल शब्दो मे कहा।

पिताजी ने मुझे वन का राज्य दे दिया। वन की व्यवस्था बहुत बिगडी हुई है। वहाँ बिना मेरे गये काम बन नही सकता। इस भाँति पिता के सत्य की तथा सद्भावना की रक्षा की। यही कथन का पाण्डित्य है कि जो कुछ सरकार ने कहा वह सत्य, प्रिय और हित था।

आयसु देहि मुदित मन माता। जेहि मुद मगल कानन जाता॥
जनि सनेह बस डरपसि भोरे। आनदु अब अनुग्रह तोरे॥४॥

अर्थ माँ तू प्रसन्न मन से आज्ञा दे जिससे वन जाते हुए मुझे आनन्द मङ्गल हो। प्रेमवश होकर भूलकर भी मत भयभीत हो। क्योकि तेरे अनुग्रह से ही सब आनन्द होगा।

व्याख्या सरकार कहते है कि पिताजी की आज्ञा हो चुकी पर प्रसन्न मन से नही हुई। अत तू प्रसन्न होकर आज्ञा दे। यदि पिताजी की भाँति तू भी दु खी होकर आज्ञा देगी तो मुझे वन यात्रा मे आनन्दमङ्गल कैसे होगा ?

वन के दु ख को दृष्टि मे रखकर भय से तू आज्ञा देने मे विषण्ण मत हो। क्योकि आनन्द का निवास तो माता के अनुग्रह मे हैं। तेरा अनुग्रह यदि बना रहा तो रन मे वन मे मेरे लिए सर्वत्र ही आनन्द है।

दो बरष चारि दस बिपिन बसि, करि पितु बचन प्रमान।
आइ पाय पुनि देखिहौ, मन जनि करसि मलान॥५३॥

अर्थ चौदह वर्ष वन मे रहकर और पिता के वचन को प्रमाण करके लौटकर फिर चरणो का दर्शन करूँगा। तू मन को मलिन मत कर।

व्याख्या अब वनवास की अवधि कहते है। चौदह वर्ष सुनने मे बडा कठोर प्रतीत होगा। अत उसे खण्ड करके कहते हैं। उसम चार पहिले कहकर पीछे दश कहते हैं। पिता का वचन अप्रमाण न हो इसलिए वन म बसेंगे। कुछ राज्य न मिलने से नाराज होकर नही। बस अवधि पूरी होते ही लौटकर चरणो का दर्शन करूँगा। माता के मुखपर म्लानता की रेखा देखकर कहते हैं तू मन को म्लान मत कर।

बचन बिनीत मधुर रघुबर के। सर सम लगे मातु उर करके॥
सहमि सूखि सुनि सीतलि बानी। जिमि जवास परे पावस पानी॥१॥

अर्थ रघुवर के विनययुक्त और मीठे वचन माँ को बाण जैसे लगे। कलेजा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वेध दिया। शीतल वाणी सुनकर सहमकर सूख गयी। जैसे जवासे पर बरसात का पानी पड़ा हो।

व्याख्या · इतने मधुर शब्दो मे और विनीत भाव से कही हुई बात : पिता दीन्ह मोहि कानन राजू ··बरष चारिदस बिपिन बसि। माँ है : उसे वाण से लगे। कलेजा बिंध गया। जिसे बाण लगता है वह पृथ्वी पर गिर जाता है। माँ गिरी तो नही पर सहमकर सूख गयी। इसलिए कवि ने दूसरी उपमा दी। पावस का पानी बड़ा शीतल होता है। ससार का हरा भरा कर देता है। पर उसी शीतल जल से जवासा झुलस जाता है। उसके पत्ते गिर जाते है। वह बिल्कुल सूख जाता है। इसी भाँति कौसल्याम्बा भी रामजी की शीतल वाणी से सूख गयी : यहाँ विषमालङ्कार है।

कहि न जाइ कछु हृदय बिषादू। मनहुँ मृगी सुनि केहरि नादू॥
नयन सजल तन थर थर काँपी। माँजहि खाइ मीन जनु माँपी॥२॥

अर्थ : हृदय मे ऐसा विषाद हुआ जो कहा नही जा सकता। जैसे मृगी को सिंहनाद सुनने पर होता है। आँखो मे जल भर आया। शरीर थर थर काँपने लगा। जैसे माँजा खाकर मछली विकल हो।

व्याख्या : माता का धैर्य एकदम छूट गया। जैसे सिंह का गर्जन सुनकर मृगी का धैर्य छूट जाता है। वह चौकड़ी भूल जाती है। हृदय मे जो विषाद हुआ उसे कहा नही जा सकता। आँखो मे जल आगया और थर थर काँपने लगी और ऐसी विकल हुई जैसे मछली ने माँजा खा लिया हो। पहिले पानी बरसने से जो गाज नदी मे उत्पन्न होता है उसे खाकर मछली बड़ी विकल हो जाती हैं। इन तीन अर्धालियो से मनसा वाचा कर्मणा विषाद कहा।

धरि धीरजु सुत बदनु निहारी। गदगद बचन कहति महतारी॥
तात पितहि तुम्ह प्रानपिआरे। देखि मुदित नित चरित तुम्हारे॥३॥

अर्थ : धैर्य धरके बेटे का मुख देखकर गद्‌गद वाणी से माता कहने लगी : बेटा! तुम तो पिता को प्राण के समान प्यारे थे। वे नित्य तुम्हारे चरित्रो को देखकर प्रसन्न होते थे।

व्याख्या : थोड़ी देरतक यह विकलता रही। फिर माता ने धैर्य धारण किया और पुत्र का मुख देखा। माता ऐसी स्नेहमयी है कि पुत्र का मुख देखकर तब कुछ कहती है। आते ही, सादर सुदरबदनु निहारी। बाली मधुर बचन महतारी। अब फिर बोलना है तो फिर पुत्र मुखावलोकन करता है। पर इस बार मुख की सुन्दरता देखने का भाव नही है। इस बार देखती है कि इन पर पिता की आज्ञा का क्या प्रभाव पड़ा? इसलिए सादर नही कहते। गला रुँधा हुआ है फिर भी बोली।

बात क्या है? घर से वह बेटा निकाला जाता है जो अप्रिय हो। महादुश्चरित्र

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हो। तुम तो पिता को प्राण समान प्यारे हो। यथा : सब सुत प्रिय मोहि प्रान कि नाईं। राम देत नहि बनै गोसाईं। और तुम्हारे चरित्र देख देखकर वे सदा प्रसन्न होते थे। यथा : आयसु माँगि करहिं पुर काजा। देखि चरित हरखै मन राजा। अत महान् आश्चर्य है। हुआ क्या ?

राजु देन कहुँ सुभ दिन साधा। कहेउ जान बन केहि अपराधा ॥
तात सुनावहु मोहि निदानू। को दिनकर कुल भयउ कृसानू ॥४॥

अर्थ : राज्य देने के लिए शुभ दिन निश्चय किया। वन जाने को किस अपराध पर कहा ? बेटा ! मुझे इसका आदि कारण बतलाओ। सूर्यकुल के लिए आग कौन हुआ ?

व्याख्या : तुम्हारे ऊपर कल तक इतने प्रसन्न थे कि तुम्हे राज्य देने के लिए शुभ दिन ठीक किया था। रातभर मे ही क्या हो गया कि आज वन जाने को कह रहे है। यह तो तभी सम्भव है जब तुमसे कोई भारी अपराध हुआ हो। छोटे अपराध मे भी इतना बडा दण्ड नही दिया जाता। अत बतलाओ कि वह कौन सा अपराध तुमसे हुआ ? पूछने को तो पूछा पर वह जानती है। पक्का विश्वास है कि रामजी से अपराध हो नही सकता। अत यह प्रश्न करती है कि सूर्यकुल के लिए आग कौन हुआ ? भाव यह कि महाराज अपना बस चलते तुम्हे वन दे नही सकते। कोई ऐसा ही असामञ्जस्य आ पडा है जिसमे उन्हे ऐसा करना पडा। जिसके कारण ऐसा करना पडा वह सूर्यवश के लिए आग हो गया। इस आघात से वश का वश नष्ट हो जायगा। माँ कौसल्या उसका नाम जानना चाहती हैं।

दो० निरखि राम रुख सचिव सुत, कारनु कहेउ बुझाइ।
सुनि प्रसंगु रहि मूक जिमि, दसा बरनि नहि जाइ ॥५४॥

अर्थ : रामजी का रुख देखकर मन्त्रीपुत्र ने सब कारण समझाकर कह दिया। प्रसग सुनकर कौसल्याजी गूँगे की भाँति चुप रह गयी। उनकी दशा वर्णन नही की जा सकती।

व्याख्या : माँ की करतूत रामजी अपने मुख से नही कहना चाहते। मन्त्री के पुत्र साथ थे। उन्होने रामजी का रुख पाकर आद्योपान्त सब कारण समझाकर कह दिया :

देवासुर सग्राम म महाराज के सग।
गई कैकेयी रानिहू जहाँ मच्यो रन रग ॥१॥
रिपु के प्रबल प्रहार ते मूछि परयो जब राय।
तब रथ हाक्यो कैकेयी नृप को लिये बँचाय ॥२॥
ह्वै प्रसन्न माँगन कह्यौ महाराज वर दोय।
कह्यौ कैकेयी माँगिहौ जब मोहि अवसर होय ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



आज राति को कैकेयी माँग्यो सो वरदान।
भरत राज अरु राम वन चौदह वरिस प्रमान ॥४॥
धर्मपाश से बँध्यो नृप नाहि कह सकत नाहि।
कहा कहौ भूपति विपति समुझहि इतनहि माँहि ॥५॥

यह सब सुनकर माँ कौसल्याजी ठक रह गयी। बोलने के लिए शब्द न मिले। जैसा गूँगा कहना चाहता हो पर कह नही सकता। आश्चर्य, असामञ्जस्य, शोक, धर्म सङ्कटादि अनेक भावो का जमघट हृदय मे उदय हो गया। अत कवि कहते हैं दसा बरनि नहि जाय।

राखि न सकइ न कहि सक जाहू। दुहूँ भाँति उर दारुन दाहू॥
लिखत सुधाकर गा लिखि राहू। बिधि गति बाम सदा सब काहू॥१॥

अर्थ · न रख सकती है न जाने को कह सकती है। क्योकि दोनो तरह से हृदय मे दारुण दाह है। चन्द्रमा लिखने चले और राहु लिख बैठे। ब्रह्मा की गति सदा सब के लिए टेढ़ी है।

व्याख्या महारानी कौसल्या माता होने के कारण रख सकती है। पितुर्दशगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते। पिता से माता दसगुना बडी है। वह यदि आज्ञा दे कि तुम घर रहो वन न जाओ तो धर्मधुरन्धर रामचन्द्र को मानना ही पडेगा। पर महारानी कौसल्या ऐसा नही कर सकती। पति के धर्म की रक्षा करना ही पत्नी का कर्त्तव्य है। अत सामर्थ्य रहते भी रामजी को रख नही सकती और जाने को भी नही कह सकती। पुत्र के वियोग से जो दाह होगा वह सर्वथा असह्य है। धर्म त्याग में भी वैसा ही दाह है और दो ही रास्ते है। या जाने को कहे या घर रक्खें। कुछ सूझता नही कि क्या करें। अत मूक · गूँगे की भाँति चुप रह गयी।

नवग्रह पूजा मे राहु की मूर्ति सूर्पाकार बनाते हैं और चन्द्रमा की मूर्ति द्वितीया के चन्द्र के आकार की बनाते हैं। कोई चन्द्रमा बनाने चला स्याही अधिक टपक पडी तो द्वितीया के चन्द्र का पेटा भर गया। सूर्पाकार हो गया एवम् राहु लिख गया। वही दशा यहाँ हुई। देने चले राज्य सो बीच मे कैकेयी का वरदान टपक पडा राज्य का वन बन गया। ठीक उलटा हो गया। राहु चन्द्र का ग्रास करता है। सो वनगमनरूपी राहु ने अभिषेकरूपी चन्द्र का ग्रास कर लिया।

धरम सनेह उभय मति घेरी। भइ गति साँप छुछुंदरि केरी॥
राखौ सुतहि करौ अनुरोधू। धरमु जाइ अरु बंधु बिरोधू॥२॥

अर्थ : धर्म और स्नेह दोनो ने बुद्धि को घेर लिया। साँप छछूँदर की सी गति हो गयी। यदि अनुरोध करके बेटे का रोक लूँ तो धर्म भी जाता है और बन्धु विरोध भी खडा होता है।

व्याख्या · न तो धर्म छोडते बनता है और न स्नेह ही छोडते बनता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सो यहाँ कौसल्याजी की साँप छछूँदर की गति हो गयी। भूखे साँप ने छछूँदर पकड़ा और उसे निगलने लगा। तब उसे छछूँदर की उत्कट दुर्गन्ध का बोध हुआ। केवड़े के वन में रहनेवाले सर्प को छछूँदर की दुर्गन्धि असह्य हो गयी। वह उसे उगलना चाहता है। पर इधर भूख भी जोरों से लगी हुई है। इसलिए उगला भी नहीं जाता। इसी भाँति महारानी से न तो धर्म छोड़ते बनता है और न ग्रहण करने में ही समर्थ हो रही है।

कहौ जान बन तौ बड़ि हानी। संकट सोच बिबस भइ रानी॥
बहुरि समुझि तिय धरमु सयानी। रामु भरतु दोउ सुत सम जानी॥३॥

अर्थ यदि वन जाने को कहती हूँ तो भी बड़ी हानि है। इस भाँति संकट और सोच के विवश महारानीजी हो गयी। फिर सयानी स्त्री धर्म को समझकर तथा राम और भरत दोनो पुत्रो को समान जानकर।

व्याख्या वन जाने की आज्ञा देने में भी बड़ी हानि दिखाई पड़ रही है। महाराज का अगाध प्रेम रामजी पर है। उनके वन जाने मे स्वयं महाराज के प्राण संकट में पड़ जायँगे। एक ओर धर्म संकट दूसरी ओर पुत्र का सोच और सौभाग्य का सोच।

परन्तु महारानी कौसल्या सयानी है। पलड़ा धर्म की ही ओर झुका है। उन्होने स्त्री धर्म का स्मरण किया। मेरे लिए राम और भरत बराबर हैं। क्योकि एक स्त्री के पुत्रवती होने से शेष सब सपत्नियाँ पुत्रवती हो जाती हैं।

सरल सुभाउ राम महतारी। बोली बचन धीर धरि भारी॥
तात जाउँ बलि कीन्हेहु नीका। पितु आयसु सब धरम क टीका॥४॥

अर्थ रामजी की माँ हैं। स्वभाव सरल है। भारी धीर धारण करके बोली। बेटा! मैं तुम्हारी बलैया लेती हूँ। तुमने अच्छा किया। पिता की आज्ञा सब धर्मो की टीका है।

व्याख्या रामजी सरल स्वभाव के है। यथा सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ। उनकी माँ का भी स्वभाव वैसा ही सरल है। पहिले धरि धीरजु सुत बदनु निहारी। गदगद बचन कहति महतारी। इस बार वन जाने की आज्ञा देनी है। अतः भारी धैर्य धारण किया। न तो बेटे का मुख देखा और न कण्ठ ही गद्गद हुआ और बोली।

यह पिता की आज्ञा मानने लायक नहीं थी। तुम कह सकते थे कि आपने मुझको भी राज्य देने का वचन दिया है। सो न करके आज्ञा मान ली। यह अच्छा किया। पिता की आज्ञा धर्मो की टीका है। तुमने राज्य का टीका छोड़कर धर्म का टीका स्वीकार किया। जीवितेर्वाक्यकरणात् क्षयाहे भूरिभोजनात्। गयायां पिण्डदानैश्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. राजु देन कहि[1] दीन्ह बनु, मोहि न सो दुख लेसु ।
तुम्ह बिनु भरतहि भूपतहि, प्रजहि प्रचंड कलेसु ॥५५॥

अर्थ : राज्य देने को कहकर वन दे दिया इसका तो मुझे दुःख का लेश नही है। तुम्हारे विना भरत को महाराज को और प्रजा को प्रचण्ड क्लेश होगा।

व्याख्या : राज्य देने को कहकर वन जाने को कहना वन जाने के दुःख को तीव्रतम करना है। सो कैकेयी के कारण से कर रहे हैं। इस बात का दुःख होना चाहिए। पर मुझे इस दुःख का लेश भी नही है। क्योंकि मुझे सौतियाडाह नही है। मुझे दुःख इस बात का है कि तुम्हारा वियोग भरत का महाराज को तथा प्रजावर्ग को असह्य होगा। मुझे इनका दुःख स्मरण करके अपना दुःख कुछ जंचता नही।

क्या हृदय है! कैसा प्रचण्ड त्याग है! माता का सन्देह भरत पर जाता ही नही। वे भरत को ठीक जानती हैं। इसीलिए पहिले उन्ही का नाम लेता है।

जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बडि माता॥
जौं पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना॥१॥

अर्थ : बेटा! यदि केवल पिता की ही आज्ञा हो तो माता को बडी जानकर मत जाओ। यदि माता पिता दोनो ने वन जाने को कहा हो तो वन सौ अयोध्या के समान है।

व्याख्या : यहाँ तो धर्मशास्त्र से निर्णय हो रहा है। पितुर्दशगुणा माता गौरवेणातिरिच्यते। मातुर्दशगुणा मान्या विमाता धर्मभीरुणा॥ धर्मशास्त्र माता का गौरव पिता से दशगुण अधिक बतलाता है। पर विमाता तो माता से भी दशगुण अधिक मान्य है। अतः कौसल्याम्बा कहती हैं कि यदि केवल पिता ने ही वन जाने की आज्ञा दी है तो मैं रोकती हूँ: वन मत जाओ और यदि माता पिता दोनो ने कह दिया हो तो धर्म का पलरा भारी वन जाने की ओर हो जाता है। धर्मो रक्षति रक्षितः। धर्म तुम्हारी रक्षा करेगा। वन सौ अयोध्या के समान सुखदायी हो जायगा। यथा : राम लखन सीता सहित सोहत परन निकेत। जिमि बासव बस अमर पुर सची जयत समेत।

पितु बनदेव मातु बनदेवी। खग मृग चरन सरोरुह सेवी॥
अंतहुं उचित नृपहि बनबासू। वय बिलोकि हिय होइ हरासू॥२॥

अर्थ : वन देव पिता हैं और वनदेवी माता हैं और पशु पक्षी चरण कमल के सेवक हैं। अन्त में भी तो राजा को वनवास ही उचित है। अवस्था देखकर जी दहलता है।

---

१. आक्षेप : तृतीय अलङ्कार।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या धर्म पालन के प्रभाव से वन की अधिष्ठात्री देवी और देव माता पिता के समान तुम्हारी रक्षा करेंगे। कोई भय तुम्हारे ऊपर न आने पावेगा। वन के पशु पक्षी भी तुम्हारे चरणो की सेवा करंगे।

राजाओ के लिए वनवास कोई दुष्कर बात नही है। अन्त मे तो राजाओ के लिए वनवास विहित ही है। यथा चौथेपन जाइहि नृप कानन। परन्तु तुम्हारी अवस्था वन जाने की नही है। शैशवेऽभ्यस्तविद्यानाम् यौवने विषयैषिणाम्। वार्धक्ये मुनिवृत्तीना योगेनान्ते तनुत्यजाम्। इस कुल का नियम है कि बचपन मे विद्या पढते हैं। यौवन मे विषय का सेवन करते है। वृद्धावस्था मे मुनिवृत्ति ग्रहण करते हैं और अन्त मे योग से शरीर छोड़ते हैं। सो तुम्हारी उम्र देखकर कि यही खेलने खाने का समय है जी दहलता है। यथा केकयनदनि मदमति कठिन कुटिलपन कीन्ह। जेहि रघुनदन जानकिहि सुख अवसर दुख दीन्ह।

बडभागी बनु अवध अभागी। जो रघुवस तिलकु तुम्ह त्यागी ॥
जौ सुत कहौ सग मोहि लेहू। तुम्हरे हृदय होइ सदेहू ॥३॥

अर्थ : बडभागी वन है। अवध अभागी है। हे रघुवशतिलक ! जिसे तुम त्याग रहे हो यदि मै कहूँ कि मुझे साथ ले लो तो बेटा ! तुम्हारे मन मे सन्देह होगा।

व्याख्या जब से तुम्हारा जन्म हुआ तब से अवध बडभागी हुआ। जा दिन तें हरि गर्भहि आए। सकल लोक सुख सपति छाए। अवधराजु सुरराज सिहाई इत्यादि अब तुम इसका परित्याग कर रहे हो। यदि तुम न त्यागना चाहो तो तुम्हे कौन हटा सकता है। तुम्हारे त्यागने से यह अभागी हो जायगा। यथा लागति अवध भयावनि भारी। मानहु कालराति अँधियारी। बडभाग और अभाग तो तुम्हारे ग्रहण और त्यागने म है।

इस दु सह दाह मिटने का एक रास्ता और भी है और वह यह है कि मै तुम्हारे साथ चलें। पर यह मै कह भी नही सकती। मैं तुम्हारे स्वभाव को जानती हूँ। तुम्हे तुरन्त सन्देह होगा कि इनके मन म सवति आरेसु है तभी न इनको भरत का राज्य नही रुचा सग चलने को कहती है।

पूत परम प्रिय तुम्ह सबही के। प्रान प्रान के जीवन जी के ॥
ते तुम्ह कहहु मातु बन जाऊँ। मै सुनि बचन बैठि पछताऊँ ॥४॥

अर्थ हे पुत्र ! तुम सभी को परम प्रिय हो। प्राण के प्राण हो। जीवन क जीवन हो। सो तुम कहते हो कि माँ ! मैं वन जाऊँ और मैं तुम्हारा वचन सुनकर बैठकर पछताऊँ।

व्याख्या तुम मेरे पुत्र हो। तुम पर मेरा प्यार होना स्वाभाविक है। पर तुम तो प्राणी मात्र को परम प्रिय हो। यथा अस को जीव जतु जग माही। जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नाही। तथा प्रान प्रान के जीव के जीव सुख के सुख राम। श्रोत्रस्य

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



श्रोत्र मनसो मनो यद् वाचो ह वाच स हि प्राणस्य प्राण । यह कौसल्याजी का अलौकिक विवेक है ।

सो तुमने कहा कि माँ मै वन जाऊँ और सुनकर माँ जीती रह गयी । इससे सिद्ध है कि मेरा स्नेह झूठा है । मेरा पछताना व्यर्थ है । तुम्हारे विरह मे मै नही मरूँगी ।

दो. एह विचारि नहिं करउँ हठ, झूठ सनेहु वढ़ाइ ।
मानि मातु कर नात वलि, सुरति विसरि जनि जाइ ॥५६॥

अर्थ : यह सोचकर और झूठे स्नेह को वढाकर मै हठ नही करती । मै वलैया लेती हूँ । तुम माता का नाता मानकर मुझे भूल न जाना ।

व्याख्या : मैने विचार लिया कि जब वनगमन सुनकर मै नही मरी तो मै नही मरूँगी । मेरा स्नेह झूठा है । उस झूठे स्नेह को वढाकर साथ जाने का हठ मैं क्यों करूँ । स्नेह झूठा सही पर माता का नाता सच्चा है । उस पर तुम ख्याल रखना । मैं माता होने योग्य नही फिर भी नाता समझकर मुझे भूल न जाना ।

देव पितर सब तुमहि गोसाईं । राखहुँ पलक नयन की नाईं ॥
अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना । तुम्ह करुनाकर धरमधुरीना ॥१

अर्थ : सव देवता पितृगण तथा ईश्वर तुम्हारी रक्षा पलक नयन की भांति करे । वनवास की अवधि जल है । प्रिय कुटुम्बी लोग मछली हैं । और तुम करुणाकर धर्मधुरन्धर हो ।

व्याख्या : गोसाईं शब्द ईश्वर . विष्णु भगवान् का वाचक है । यथा : समरथ के नहिं दोप गोसाईं । रवि पावक सुरसरि की नाईं । आज भी बोलते है कि गोसइयाँ की जैसी मर्जी । माँ आशीर्वाद देती है । देवगण पितृगण अदृश्य रूप से सवकी रक्षा करते हैं । अत: उनकी पूजा ससार मे प्रचलित है । यथा : इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविता: । और विष्णु भगवान् जगत् के पालक हैं । अत: सवसे माँ प्रार्थना करती है कि जैसे पलक नयनो की रक्षा करती है उसी भाँति आप लोग रामचन्द्र की रक्षा करना ।

ऐसा आशीर्वाद देकर तब रामजी से कहती है कि तुम्हारे वनवास की अवधि ही इस समय जल का काम करेगी । उसी के भरोसे मछली की भाँति प्रिय परिजन यथाकथञ्चित् प्राण धारण करेंगे । ज्यों ज्यों अवधि वीतती जायगी त्यों त्यों तुमसे मिलने के लिए इनकी आकुलता वढेगी । जल के समाप्त होते ही सव मछलियाँ प्राण त्याग करेंगी । अत: विपम समस्या उपस्थित है । अवधि के भीतर तुम आ नही सकते । यद्यपि तुम धर्मधुरीण हो । अवधि के भीतर आने के लिए तुमसे आशा रखना व्यर्थ है तथापि करुणाकर हो । अत:

अस विचारि सोइ करहु उपाई । सवहि जियत जेहि भेटहु आई ॥
जाहु सुखेन वनहिं वलि जाऊं । करि अनाथ जन परिजन गाऊं ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : ऐसा विचार करके वही उपाय करना जिसमे जीते जी तुम आकर मिल सको। मै बलैया लेती हूँ। तुम प्रिय कुटुम्बियो और गाँव को अनाथ करके सुख से वन जाओ।

व्याख्या : ऐसा उपाय करना जिसमें तुम्हारे आने तक सब जीते रहे : अतः सरकार ने वैसा ही उपाय किया। अवधि बीतने के एकदिन पहले ही अपने आगमन का समाचार हनुमानजी द्वारा अवध भेज दिया।

यहाँ तक माँ अपने को रोके रही। अब हृदय का उद्‌गार नही रुक सका। अतः आक्षेप के साथ आज्ञा दे रही हैं। तुम प्रसन्न मन से मेरे पास आये और मुझसे मुदित मन होकर आज्ञा देने को कहा सो मैं आज्ञा दे रही हूँ। प्रिय परिजन और गाँव को अनाथ करके तुम सुख से वन जाओ। भाव यह कि तुम्हारे जाने से प्रिय परिजन और राज्य सब अनाथ हो जायगा। कौन तुम्हारा विरह उतने दिनो तक सह सकेगा कौन नही सह सकेगा। ऐसे विषम सकटावस्था मे मैं मुदित मन से आज्ञा कैसे दे सकती हूँ। पर तुम कहते हो उसे टाल भी नही सकती। अत. कहे देती हूँ कि सुख पूर्वक वन जाओ।

सब कर आजु सुकृत फल बीता। भयउ करालु काल बिपरीता ॥
बहु बिधि बिलपि चरन लपटानी। परम अभागिनि आपुहि जानी ॥३॥

अर्थ : आज सबके पुण्यो का फल बीत गया। कराल काल विपरीत हो गया। बहुत भाँति विलाप करके चरणो मे लिपट गयी। अपने को परम अभागिन माना।

व्याख्या : सरकार का दर्शन सब सुकृतो का फल है। यथा · सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसन पावा। सो दर्शन सबको दुर्लभ हुआ चाहता है। अतः कहती है कि *सबके पुण्यो का फल आज समाप्त हो गया। सब विधि सब* पुर लोग सुखारी। रामचद मुख चदु निहारी। सो सभी का सुख छिन गया। जो काल सबके अनुकूल था आज वह कराल होकर विपरीत हो गया। किसी का सामर्थ्य नही है कि उसका *अतिक्रमण कर सके। यथा अडकटाह अमित लयकारी।* काल सदा दुरतिक्रम भारी।

बहुत प्रकार से विलाप किया और अति आर्त होकर अपने को परम अभागिन मानकर चरणो मे लिपट गयी। स्त्रियो को दो ही परम प्रिय हैं पति और पुत्र। सो पुत्र का वियोग तो हो ही रहा है और फलस्वरूप पति का भी प्राण संकट है। अतः परम भाग्यवती होने पर भी ससार का चक्र ऐसा है कि उन्होने अपने को परम अभागिन माना और पुत्र के चरणो मे लिपट गयी। मानो क्रिया से दिखला रही है कि मैं तुम्हे छोड़ना नही चाहती।

दारुन दुसहु दाहु उर ब्यापा। बरनि न जाहिं बिलाप कलापा ॥
राम उठाइ मातु उर लाई। कहि मृदु बचन बहुरि समझाई ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ कठिन दु सह दाह हृदय मे व्याप गया। विलाप के विस्तार का वर्णन नही किया जा सकता। रामजी ने उठाकर माँ को हृदय से लगा लिया और कोमल वचनो से फिर समझाया।

व्याख्या पहिले कहा था दुहु भाँति उर दारुन दाहू। सो एक रास्ते पर आ जाना पडा। जाने के लिए कह दिया। अब वियोग तथा उसके परिणाम पर ध्यान गया तो दारुण दु सह दाह हृदय मे व्याप गया। ऐसे समय मे माँ जा विलाप कर रही हैं उसे विस्तार से कौन कह सकता है।

माँ व्याकुलता से पृथ्वी पर गिर गयी थी। सो रामजी ने उठाकर सान्त्वना देते हुए मृदुवचन कहकर फिर समझाने लगे। यथा

अँब राउ अति ही दुखित तिनको करिय सँभार।
सब सनाथ नर नाथ ते तिनही पर सब भार॥
धरि धीरज सकट सहहु सत्य न नृप को जाय।
अवसि प्रथम दिन आइहौ चौदह वर्ष विताय॥
मेरो तो जीवन सफल बनहि गये ते होय।
मेरे हित तो भूलि कर सोच करै जनि कोय॥
तेरे मन काँचा किये मेरो धम नसाय।
धर्म सार ससार यह समुझि दरु जिय माय॥
पिता धर्म मम धर्म अरु अपनो धर्म विचारि।
आयसु दीजै हरखि हिय एहि कुलके अनुहारि॥

दो समाचार तेहि समय सुनि, सीय उठी अकुलाइ।
जाइ सासु पद कमल जुग, बदि बैठि सिरु नाइ॥५७॥

अर्थ उस समय यह समाचार पाकर सीताजी व्याकुल हो उठी। जाकर सास के दोना चरणो की वन्दना करके सिर नीचा किये हुए बैठ गयी।

व्याख्या सीताजी को पता लगा कि पिता ने सरकार को चौदह वर्ष के लिए वन दिया है। सो माता से विदा लने आये है। सुनते ही आकुल होकर उठ खडी हुई कि कही उधर से उधर ही वन न चल जायँ और वहा चली गयी जहाँ कौसल्याजी को रामजी समझा रहे थे। वहाँ चल जाने का अर्थ ही यही है कि मै भी साथ जाऊँगी। साथ ही मै भी विदा ल लँ। अत सास की वन्दना करके सिर झुकाकर वैठी। सिर झुकाकर वैठना यहा चिन्ता सूचक है।

दीन्हि असीस सासु मृदु बानी। अति सुकुमारि देखि अकुलानी॥
बैठि नमित मुख सोचति सीता। रूप रासि पति प्रेमु पुनीता॥१॥

अर्थ सास ने कोमल वाणी म आशीर्वाद दिया। अत्यन्त सुकुमारी देखकर आकुल हो उठी। रूप की राशि और पति के प्रेम से पवित्र सीताजी वैठी हुई सिर झुकाये सोच रही है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या सासु पद कमल जुग बदि बैठ गिर नाइ। अत मृदुबानी से सास ने आशीर्वाद दिया। स्त्रियो म चिरजीवनी होने के आशीर्वाद की प्रथा ही नही है। सौभाग्य का ही आशीर्वाद दिया जाता है। सास ने तुरन्त समझ लिया कि इस समय यहाँ चल आने का अर्थ ही यही है कि साथ जाने का तैयार है। सुकुमार तो रामजो भी हैं। पर यह तो अत्यन्त सुकुमारी है। इसका निबाह वन म कैसे होगा ? अपने धर्म पर खडी है। अत क्या कहकर रोकें ? ऐसा सोचकर सास व्याकुल हो उठी।

इधर सीताजी रूपराशि हैं परम विराधिनी सूपणखा कहेगी रूप रासि विधि नारि सवारी। रति सतकोटि तासु बलिहारी। कदापि वन के योग्य नही। परन्तु पतिप्रेम से पुनीत है। स्त्रियो को पवित्र करनेवाला पतिप्रेम ही है। यथा एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पति पद प्रेमा। यह पति का साथ छोडेगी नही। सोच से सिर झुकाये सोच रही है। चित्त सशय म पडा हुआ है।

चलनु चहत वन जीवननाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू॥
की तनु प्रान कि केवल प्राना। विधि करतबु कछु जाइ न जाना॥२॥

अर्थ प्राणनाथ वन को जाना चाहते हैं। देखें किस पुण्यात्मा से इनका साथ होगा। शरीर और प्राण दोना से साथ होगा कि केवल प्राण से ही होगा। विधाता को क्या करना है यह समझ म नही आता।

व्याख्या जीवननाथ शब्द के प्रयोग से वियोग का असह्य होना द्योतित किया। सो प्राणनाथ वन जाना चाहते हैं। इनका साथ होना सुकृत का फल है। यथा नाहि त हम कह सुनहु सखि इन्हकर दरसन दूरि। यह सघट तब होइ जब पुन्य पुराकृत भूरि। सो प्राण म पाप का वेध नही होता। अत इसके सुकृती होने म तो सन्देह नही है। पर शरीर साथ म जायगा कि नही इसी मे सशय है। विधाता ही कर्म शुभाशुभ के फल देनेवाल हैं। अत भोगायतन शरीर उनके अधीन है और वे क्या करेंगे यह कौन कह सकता है।

चारु चरन[1] नख लेखत धरनी। नूपुर मुखर मधुर कबि बरनी।
मनहुँ प्रेम बस बिनती करही। हमहि सीयपद जनि परिहरही॥३॥

अर्थ सुन्दर चरण के नख स पृथ्वी पर लिख रही हैं। नूपुर को कवियो ने मधुर मुखर मीठा बकवादी कहकर वर्णन किया है। मानो प्रेमवश विनती कर रहे हैं कि हम सीताजी के चरण त्याग न करें।

व्याख्या सीताजी के सोचने के समय की शोभा कहते हैं। स्त्रियो का स्वभाव है कि सोचने के समय पादाङ्गुष्ठ नख से पृथ्वी पर रेखा बनाने लगती है। यथा महि नख लिखन लगी सब सोचन उसी के अनुसार सीताजी भी सुन्दर

---

१ हेतुसिद्धास्पदा उत्प्रेक्षा अलङ्कार।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चरण नख से पृथ्वी पर लिख रही हैं। नववधू हैं। नूपुर धारण किये हुए हैं। चरण के हिलाने से नूपुर से कुछ शब्द भी हो रहा है। इसलिए कवि उसे मधुर मुखर कह रहे हैं। नही तो चलने के समय तो उसमे से ध्वनि होती ही है। यथा : कंकन किंकिनि नूपुर धुनि सुनि।

उसकी उत्प्रेक्षा करते हुए कवि कहते हैं कि मानो वे नूपुर पैर मे लग लगकर विनती कर रहे हैं कि हम लोगो का इन चरणो से बिछोह न हो। भगवती वन जाने को प्रस्तुत हैं। उस समय नूपुर परित्याग की भी सम्भावना है। अतः पहिले से ही विनती करते हैं कि हमे भी अपने साथ ले चलना। भाव यह कि सीताजी को कौन कहे उनके नूपुर भी वन जाने को प्रस्तुत हैं।

मंजु बिलोचन मोचति बारी। बोली देखि राम महतारी॥
तात सुनहु सिय अति सुकुमारी। सास ससुर परिजनहि पियारी॥४॥

अर्थ : सुन्दर नेत्रो से आँसू बहाते हुए देखकर रामजी की माता बोली : बेटा! सुनो सीता अत्यन्त सुकुमारी हैं और सास ससुर तथा परिजनो की प्यारी हैं।

व्याख्या : उस समय आँसू बहाने का अर्थ यही है कि मुझसे साथ जाने की आज्ञा माँग रही हैं। मे नारीधर्म को जानती हुई इसे जाने से रोक नही सकती : ये पति है, ये अपने अधिकार से इसे रोक सकते हैं। अतः सीताजी से कुछ न कहकर रामजी से कहती है कि सीता अत्यन्त सुकुमारी है। कथमपि वन जाने योग्य नही है। सास ससुर परिजन की प्यारी है। तुम्हारा वियोग तो सबको ही होगा। इसके चले जाने से सबका दुःख अत्यन्त बढ़ जायगा।

दो. पिता जनक भूपाल मनि, ससुर भानुकुल भानु।
पति रबिकुल कैरव बिपिन, बिधु गुन रूप निधानु॥५८॥

अर्थ : इसके पिता जनक राजाओ मे मणि है। ससुर सूर्यकुल के सूर्य है और पति सूर्यकुलरूपी कुमुद वन के लिए रूप निधान चन्द्र है।

व्याख्या : ऐसे घर की बेटी ऐसे घर आयी और ऐसा गुणवान् पति पाया। यह क्या जाने कि कष्ट सहन किसे कहते हैं। यह तो कथमपि वन जाने योग्य नही है। दूसरी बात यह कि इसके वन जाने से लोग क्या कहेगे? महाराज जनक की बेटी पैदल वन चली जा रही है। महाराज दशरथ की पुत्रवधू की यह दुर्दशा। रामचन्द्र की धर्मपत्नी होकर इस भाँति कष्ट उठा रही है एव इसके वनगमन मे तीनो का दुर्यश है।

मैं पुनि पुत्रबधू प्रिय पाई। रूप रासि गुन सील सुहाई॥
नयन पुतरि करि प्रीति बढाई। राखेउ प्रान जानकिहि लाई॥१॥

अर्थ : मैंने प्रिय पुत्रवधू पायी जो कि रूप की राशि है और सुन्दर गुण

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



शीलवाली है। आँखों की पुतली वनाकर प्रेम बढ़ाया और अपने प्राणों को जानकी में लगाकर रखा।

व्याख्या : सदा चिन्ता रही कि मेरा पुत्र ऐसा है इसके समानशीला वधू कहाँ मिलेगी। सो मिल गयी। पुत्रवधूचित सभी बातें इसमे है। रूप की तो राशि ही है और इसमे सुन्दर गुण और शील है। अतः मुझे प्रिय है। आँख की पुतली की भाँति इससे प्रीति बढायी। महाराज की भी ऐसी ही आज्ञा थी। यथा : बधू लरिकिनी पर घर आई। राखेहु पलक नयन की नाईं। सो मैने इसमे प्रान लगाकर रखा है।

कलपबेलि जिमि बहुबिधि लाली। सींचि सनेह सलिल प्रतिपाली ॥
फूलत फलत भयउ बिधि बामा। जानि न जाइ काह परिनामा ॥२॥

अर्थ : कल्पलता की भाँति इसका बहुत भाँति से दुलार किया है और स्नेह के जल से सीचकर इसका पालन किया है। फूलते फलते समय विधाता बायें हो गये। क्या परिणाम होगा जाना नही जाता।

व्याख्या : माँ कौसिल्याजी कहती हैं कि मैंने इसे : सीताजी को कल्पवेलि माना कि इससे मेरे सब मनोरथ सिद्ध होंगे। वंशवृद्धि होगी। पुत्र पौत्र होंगे। दूसरे स्थान से लाकर यहाँ लगायी गयी है। अतः सब भाँति से रक्षा करके स्नेह रूपी जल से बराबर सीचती रही कि कही सूख न जाय। इस भाँति मैंने इसका पालन किया। जब अयोध्या मे आयी बिल्कुल बाल्यावस्था थी। बच्चे प्रेम से ही पालन करने से जीते हैं। सो मैने उसमे त्रुटि नही आने दी। अब बड़ी हुई। फूलने फलने का समय आया। बाल बच्चे की आशा हुई तो विधाता बायें हो गये। वनवास का प्रकरण आपड़ा। क्या परिणाम होगा नहीं जाना जाता। यह यह मरेगी कि जीयेगी कौन कह सकता है।

पलँग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पगु अवनि कठोरा ॥
जिअन मूरि जिमि जोगवत रहऊँ। दीप बाति नहि टारन कहऊँ ॥३॥

अर्थ : पलङ्ग पीढ़ा गोद और हिंडोला छोड़कर सीता ने कठिन पृथ्वी पर कभी पांव रखा नही। इसे सञ्जीवनी बूटी की भाँति सावधानी से रक्षा करती चली आयी। दीये की बत्ती को उसकाने : बढाने के लिए कभी नही कहा।

व्याख्या : सोते समय पलङ्ग पर भोजन के समय पीढ़े पर चलने के समय गोद मे मन बहलाने के लिए पालना पर रहती थी। इसने कठोर भूमि पर आज तक पाँव न रखा। सञ्जीवनी बूटी की भाँति अत्यन्त दुर्लभ समझकर बड़ी सावधानी से इसका लालन पालन किया। अथवा बूटी की भाँति जिसमे प्राण बसता हो दिन रात चौकसी के साथ रक्षा की. रामजी की रक्षा महाराज जीवनतरु की भाँति करते थे और सीताजी की रक्षा कौसल्याजी जीवन मूलिका की भाँति करती थी। हलके से हलका काम इससे कभी नहीं लिया। दिये की बत्ती को आगे खिसकाने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



के लिए भी कभी आज्ञा नहीं दी। अर्थात् दासी आदि की अनुपस्थिति म हलके से हलका काम मैं कर लेती थी। पर सीताजी को किसी काम के लिए कभी नहीं कहा।

सोइ सिय चलन चहति वन साथा। आयसु काह होइ रघुनाथा ॥
चद किरिन रस रसिक चकोरी। रवि रुख नयन सकै किमि जोरी ॥४॥

अर्थ वही सीता अब साथ मे वन जाना चाहती है। हे रघुनाथ! इसके लिए क्या हुकुम देते हो। चन्द्रमा के किरणो के रस की रसिक चकोरी क्या कभी सूर्य की ओर आँख उठाकर देखने में समर्थ हो सकती है।

व्याख्या ऐसी लाड प्यार से पाली हुई सीता तुम्हारे साथ वन जाने को प्रस्तुत है। अपने धर्म पर खडी है। सम्भव असम्भव कुछ नही देख रही है। एक तो वन जाने मे जो कष्ट होता है उसके सहने मे यह सर्वदा अनुपयुक्त है। तिसपर तुम्हारे साथ जाने मे तुम्हारी सेवा भी इसे करनी पडेगी। दास दासी होते तो फिर भी दूसरी बात थी। तुम रघुकुल के नाथ हो। बात समझ लो। अवसर ऐसा है कि मैं कुछ नही कह सकती। तुम्हारी आज्ञा मानना इसका परम धर्म है। अत तुम इसे उचित आज्ञा प्रदान करो। परन्तु यह ध्यान मे रखकर आज्ञा देना कि चकोरी सदा चन्द्रकिरण रसामृत का नेत्रो द्वारा पान किया करती है। उसमे इतना सामर्थ्य ही कहाँ कि सूर्य की ओर निर्निमेष नेत्र से देख भी सके भाव यह कि सीता आँख से वन को देख न सकेगी।

दो करि केहरि निसिचर चरहिं, दुष्ट जतु वन भूरि।
विष बाटिका कि सोह सुत, सुभग सजीवन मूरि ॥५९॥

अर्थ वन मे बहुत से हाथी सिंह राक्षस आदि दुष्ट जन्तु घूमा करते हैं। बेटा! सुन्दर सञ्जीवनी बूटी की शोभा क्या विषवाटिका मे हो सकती है?

व्याख्या करि केहरि निसिचर ये सब हिंसक और दुष्ट जन्तु निष्कारण हिंसक अर्थात् छोटे से बडे जीव तक सबके सब दुखदायी हैं। इसलिए वन को विषवाटिका कहा। सीता सदा सुख म पली हुई सुन्दर सञ्जीवनी बूटी है। इसे विषवाटिका म आरोपण करने से ही यह सूख जायगी। अत इसे वन ले जाने मे किसी भाँति शोभा नही है।

वन हित कोल किरात किसोरी। रची विरचि विषय सुख भोरी ॥
पाहन कृमि जिमि कठिन सुभाऊ। तिन्हहि कलेसु न कानन काऊ ॥१॥

अर्थ ब्रह्मदेव ने वन के लिए कोल किरात की लडकियो को बनाया है। वे विषय सुख जानती ही नही। पत्थर के कीडे के समान उनका स्वभाव होता है। उन्हे वन मे कोई कष्ट नही।

व्याख्या यदि कहिये कि वन म काल किरात की बेटियाँ तथा तपस्वी की

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



स्त्रियाँ रहती हैं वैसे ही यह भी रहेगी सो यह बात भी ठीक नही। कोल और किरात की बेटियो को ब्रह्मा ने वन मे रहने के लिए ही पैदा किया है। वे वन मे पैदा हुई हैं। वन की कठिनाइयाँ उन्हे सात्म्य हो गयी है। उत्तम शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध से उनका परिचय ही नही है। वे पत्थर के कीडे की भाँति हो गयी हैं। पत्थर का कीट पत्थर मे रहता है। पत्थर मे ही उन्हे जीवनोपयोगी सामग्री मिल जाती है। उस सामग्री से वे ही काम चला सकते है। दूसरा कोई चाहने पर भी नही चला सकता। इसी भाँति कोल किरात की बेटियो का वन मे कोई कष्ट ही नही है।

कै तापस तिय कानन जोगू। जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू॥
सिय वन बसिहि तात केहि भाँती। चित्र लिखित कपि देखि डेराती॥२॥

अर्थ या तपस्वी की स्त्रियाँ वन के योग्य हैं। जिन्होने तप के लिए सब भोग छोड दिया है। हे बेटा ! सीता वन मे कैसे रहेगी ? यह तो चित्र मे लिखे हुए बन्दर का देखकर डर जाती है।

व्याख्या यदि कहिये कि वन मे तपस्वी की स्त्रियाँ तो रहती हैं उनके लिए यह बात नही कही जा सकती। वे पूर्व आश्रम मे सब सुखो से परिचित हैं। तपस्वी लोग प्राय स्त्री के सहित वन मे बसते हैं। पुत्रेषु भार्यां निक्षिप्य वने गच्छेत् सहैव वा। शास्त्र की आज्ञा है कि भार्या का पुत्रो मे छोड दे या साथ वन ले जाय।

बात ठीक है। पर उन्होने तो स्वेच्छापूर्वक पुत्रोत्पादन के बाद दूसरा आश्रम ग्रहण किया है। वे तप के लिए सब भोगो का त्याग किये हुए है। यथा बिसरी देह तपहि मन लागा। यहाँ तो पिता का वचन पालन के लिए वनगमन हो रहा है। दूसरे आश्रम ग्रहण का कोई प्रश्न ही नही है। सीता का उन तपस्विनियो से कोई समता नही है। यह तो चित्र मे विकटरूप देखकर डर जाती है। करि केहरि निशिचर को प्रत्यक्ष देखने से तो यह प्राण छोड देगी। यह वन मे कैसे रहेगी ?

सुरसर सुभग वनज बन चारी। डाबर जोगु कि हसकुमारी॥
अस बिचारि जस आयसु होई। मै सिख देउँ जानकिहि सोई॥३॥

अर्थ मानससरोवर के सुन्दर कमल वन मे विचरनेवाली हस की बेटी क्या गडही के योग्य है ? ऐसा विचार करके जो आदेश दो मैं तदनुसार जानकीजो को शिक्षा दूँ।

व्याख्या जहँ तहँ काक उलूक बक मानस सकृत मराल। जिस भाँति ब्रह्मदेव के कोल किरात किशोरी को वन के लिए बनाया है उसी भाँति हस कुमारी को मानस सर के लिए बनाया। उसके कमल वन म विहार करने का जन्मसिद्ध अधिकार है। वह डाबर गडही के योग्य नही। उसके योग्य तो काक उलूक बक है। सीता राजा जनक की बेटी हसकुमारी राजभोग पर उसका जन्मसिद्ध अधिकार

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है। वह वन के योग्य नहीं है। ऐसा विचार करके तुम जो आदेश दो क्योंकि धर्मपत्नी पर पूरा अधिकार पति का ही होता है। तदनुसार मैं जानकी को शिक्षा दूँ।

जौं सिय भवन रहइ कह अंबा। मोहि कहँ होइ बहुत अवलंबा ॥
सुनि रघुवीर मातु प्रिय बानी। सील सनेह सुधा जनु सानी ॥४॥

अर्थ : माँ ने कहा कि यदि सीता घर रह जाय तो मुझे बहुत अवलंब रहेगा। रामजी ने माता की शील और प्रेमामृत से सनी प्रिय वाणी सुनकर।

व्याख्या : सीताजी के वनवास मे जो दोष थे उन्हे दिखलाकर अब उनके घर रहने के गुणो को दिखलाती हैं। कहती हैं कि यदि सीता घर रह जाय : भाव यह कि इसके रहने का रास्ता तो नही मालूम हो रहा है पर यदि रह जाय तो तुम्हारे जाने पर मैं निरावलम्ब न हो जाऊँगी। पति घर हैं ही पुत्रवधू भी है केवल पुत्र बाहर है। यही अवलम्बन की बहुतायत है।

रामजी ने माँ की प्रिय वाणी सुनी। शील और स्नेहयुक्त वाणी ही प्रिय होती है। सो माँ की वाणी मे शील और स्नेह दोनो का बहुत उत्कर्ष है। अत अमृत से उपमा दी। शील यथा—आयसु काह होइ रधुनाथा ''''अस विचारि जस आयसु होई। स्नेह यथा : मो कहँ होइ बहुत अवलंबा।

दो. कहि प्रिय बचन बिबेकमय, कीन्ह मातु परितोषु।
लगे प्रबोधन जानकिहि, प्रगटि बिपिन गुन दोषु ॥६०॥

अर्थ. विवेकमय और प्रिय वचन कहकर माता का परितोष किया और जानकीजी को वन के गुण और दोषो को प्रकट करके समझाने लगे।

व्याख्या : सरकार ने कहा कि इनके जाने की कोई आवश्यकता नही है। आपका कहना ठीक है। मेरे न रहने की अवस्था मे आपकी सेवा का भार फिर किसपर रहेगा ? मुझे मुनिव्रत वेष आहार की आज्ञा है। इसमे स्त्री का साथ ठीक भी नही। माँ से इतना कहकर सरकार जानकीजी को वन मे जाने के दोषो और न जाने के गुणो को समझाकर कहने लगे। माँ के कहने के समय ही सरकार का रुख साथ न ले जाने का था। पर अब तो स्पष्ट शब्दो मे कहना प्रारम्भ किया।

मातु समीप कहत सकुचाही। बोले समउ समुझि मन माही ॥
राजकुमारि सिखावनु सुनहू। आनि भाँति जिय जनि कछु गुनहू ॥१॥

अर्थ : माँ के सामने बोलने मे सङ्कोच करते है। पर मनमे समय को समझकर बोले। हे राजकुमारी ! शिक्षा सुनो और अपने मनमे कुछ और बात न समझो।

व्याख्या : बारह वर्ष ब्याह हुए हुआ। पर सरकार ऐसे सङ्कोची हैं कि माँ के सामने अभी तक कभी सीताजी से नही बोले। आज ऐसा समय आगया कि बिना बोले काम नही चलता। माँ चाहती है कि रामजी स्वय सीताजी को समझावें।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अतः राजकुमारी कहकर सम्बोधन करके कहते हैं। भाव यह कि तुम राजकुमारी हो। सुशिक्षिता हो। हठ न करोगी। मैं जो बातें तुमसे कहूँगा उसका यह अर्थ न लगाना कि मेरा तुम्हारे प्रति प्रेम में कोई कमी है : प्रिया शब्द से सम्बोधन न करके रूखे शब्द राजकुमारी से सम्बोधन करता हूँ। इसे प्रेम में त्रुटि आने का लक्षण न समझना। मैं सिखावन देता हूँ तुम्हारी भलाई के लिए।

आपन मोर नीक जौं चहहू। बचनु हमार मानि गृह रहहू ॥
आयसु मोर सासु सेवकाई। सब बिधि भामिनि भवन भलाई ॥२॥

अर्थ : अपना और मेरा यदि भला चाहती हो तो मेरा वचन मानकर घर रहो। मेरा आदेश सास के सेवकाई के लिए है। हे भामिनी! घर में रहने से ही सब प्रकार की भलाई है।

व्याख्या : तुम्हारा धर्म विपत्ति मे साथ न छोड़ने का है। सो तुम उसके लिए प्रस्तुत हो। तुम्हारी ओर से कोई त्रुटि नहीं है। परन्तु साथ चलने में न तुम्हारा कल्याण है और न मेरा। अतः हम दोनों की भलाई के लिए मेरा वचन मानकर घर रहो। जिस भाँति मै पिता का वचन मानकर वन जाता हूँ उसी भाँति तुम मेरा वचन मानकर घर रहो। यदि कहो कि घर रहने से आपकी सेवा से वञ्चित हो जाऊँगी तो : आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। मेरी आज्ञा मानो यही बड़ी भारी सेवा है। सो मै सास की सेवा के लिए तुम्हे आज्ञा देता हूँ। हे भामिनी! घर रहकर ही तुम हमारी सेवा करती रहोगी। मैं तुम्हारी ओर से निश्चिन्त रहूँगा। अतः घर रहने मे ही सब प्रकार की भलाई है। वन मे जाने से सब विधि से भलाई नहीं है।

एहि ते अधिकु धरमु नहि दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा ॥
जब जब मातु करिहि सुधि मोरी। होइहि प्रेम बिकल मति भोरी ॥३॥

अर्थ : आदर के साथ सास ससुर के चरणों की पूजा से बढ़कर दूसरा धर्म नहीं है। जब जब माता मेरी याद करेगी तब तब प्रेम के विवश होकर सुध बुध खो बैठेगी।

व्याख्या : नारिधर्म पतिदेव न दूजा यह ठीक है। पर सास ससुर तो पति के मान्य है। धर्म की दृष्टि से भी। श्रद्धा के साथ सास ससुर के चरणों की पूजा ही परम धर्म है। तुम्हें शिक्षा भी मिली है : सास ससुर गुर पूजा करेहू। पति रुख लखि आयसु अनुसरहू। अतः मेरा आदेश मानो।

और दूसरी भी बात है कि जब जब माँ को मेरी सुध आवेगी और वह प्रेम के विवश होकर सुध बुध खो बैठेगी तब इसे सँभालनेवाला कौन है? दास दासी हैं। मान लिया कि वे सेवा करेंगी और विकलता के समय समझावेंगी भी पर उनके समझाने का प्रभाव क्या पड़ेगा?

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तव तव तुम्ह कहि कथा पुरानी । सुंदरि समझायेहु मृदु बानी ॥
कहउँ सुभाय सपथ सत मोही । सुमुखि मातु हित राखउँ तोही ॥४॥

अर्थ : हे सुन्दरी ! तव तव तुम पुराणो की कथा कहकर मृदु वाणी से समझाना। मैं सौ शपथ लेकर कहता हूँ : हे सुमुखि ! मै माता के लिए तुम्हे घर रखता हूँ।

व्याख्या : तुमने इतिहास पुराण सुना है। तुम उन सब आख्यानों को जानती हो जिनमे सङ्कट के समय वडे लोगो ने धैर्य धारण करके उससे विमुक्ति पायी है। उन कथाओ के सुनने से शोक का वेग रुक जाता है। ढाढस बँधता है। माता की विकलता के समय तुम उन कथाओ को कोमल वाणी से कहकर माँ को समझाना। हे सुन्दरी ! तुम्हारे धैर्य का : तुम्हारे व्यक्तित्व का माँ पर प्रभाव पडेगा।

मैं स्वभाव कहता हूँ तुम्हारे आश्वासन के लिए ही नही कहता हूँ। मै तुम्हे स्वय साथ चलने के लिए कहता अथवा साथ ले जाता। पर मै सौ शपथ खाकर कहता हूँ कि तुम्हे घर पर छोड़ने का कारण एकमात्र माँ है। इन्हे मै किसके भरोसे छोड़ूँ ?

दो. गुर श्रुति संमत धरम फलु, पाइअ बिनहिं कलेस ।
हठ बस सब संकट सहे, गालव नहुष नरेस ॥६१॥

अर्थ : गुरु सम्मत और वेद सम्मत धर्म का फल विना आयास के तुम्हे मिलेगा। हठ के वश होकर गालव और राजा नहुष ने सब सङ्कट सहा।

व्याख्या वेद सम्मत होने पर भी शिष्टानुगृहीत होने की आवश्यकता है। अत सरकार कहते है कि गुरुश्रुति सम्मत जो धर्म है उसका फल तुम्हे अनायास प्राप्त हो रहा है। सास ससुर की सेवा करना कुलवधू का धर्म है और पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम्। सो मैं भी आदेश दे रहा हूँ। अब इससे वढकर धर्म क्या होगा। सो वह फल तुम्हे घर बैठे मिल रहा है। उसे ग्रहण न करके यदि तुम हठ करोगी तो हठ का फल तो सङ्कट है। विश्वामित्रजी का शिष्य गालव था। गुरुजी उससे गुरुदक्षिणा नही लेना चाहते थे पर उसने हठ किया। तब गुरुजी ने ८०० श्यामवर्ण घोडे माँगे। उनके लिए उसे राजाओ के यहाँ दौड़ना पड़ा और अनेक प्रकार का सङ्कट उठाना पड़ा। गुरुजी ने तो वैसे ही गुरुदक्षिणा के ऋण से विनिर्मुक्त कर दिया था। पर गालव ने हठ करके सङ्कट मोल लिया।

इसी भाँति नहुष राजा अपने तेज से इन्द्र हो गये। सम्पूर्ण इन्द्रलोक पर उनका अधिकार हो गया। उन्होने उस अधिकार का दुरुपयोग इन्द्राणी पर भी करना चाहा। हठ पकड़ लिया। यहाँ तक कि चढेउ भूमिसुर यान। फल यह हुआ कि अगस्त्यजी के शाप से पृथ्वी पर आकर अजगर हो गये। फलत: हठ का फल सङ्कट झेलना है। अतः तुम हठ न करो। धर्मफल तुम्हे अनायास प्राप्त है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मै पुनि करि प्रवान पितु बानी । बेगि फिरब सुनु सुमुखि सयानी ॥
दिवस जात नहि लागिहि बारा । सुदरि सिखवनु सुनहु हमारा ॥१॥

अर्थ और मै पिता के वचन को प्रमाण करके हे सुमुखि सयानी ! शीघ्र ही लौट आऊँगा । दिन जाते देर न लगेगी । हे सुन्दरी ! मेरी शिक्षा सुनो ।

व्याख्या यह नही कहते कि मैं तुम्हे साथ नही ले जाऊँगा या ले जा नही सकता । जो अपने धर्म पर खडा है उसे बलपूर्वक कैसे रोकें । समझाने बुझाने से वही मान जाय तो ठीक है । अत सरकार कहते है कि मै अपनी इच्छा से वन विहार करने नही जा रहा हूँ । जिसमे यह शङ्का हो कि सम्भव है मन लग जाने से लौटने मे देर हो । तो मैं केवल पिता की वाणी को प्रमाण करने जा रहा हूँ । न जाऊँ तो पिता का वचन अप्रमाण हुआ जाता है । जहाँ चौदह वर्ष बीते कि मैं घर आया । सुमुखि सुन्दरी सम्बोधन देकर अपनी आसक्ति प्रकट करते हैं । सयानी सम्बोधन से अपना हृद्गत भाव प्रकट करते हैं कि तुम मेरे प्रेम को जानती हो । मुझे स्वय तुमसे मिलने की उत्कण्ठा रहेगी । मै देर क्या लगाऊंगा ?

जौ हठ करहु प्रेमबस बामा । तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा ॥
काननु कठिन भयकरु भारी । घोर घामु हिम बारि बयारी ॥२॥

अर्थ हे शाभने ! यदि तुम प्रेमवश हठ करोगी तो परिणाम मे तुम्हे दु ख होगा । वन भारी कठिन और भयङ्कर है । घोर घाम, पाला, जल और हवा है ।

व्याख्या तुम्हारा वन म निर्वाह होना दुस्तर है । तुम सुन्दर स्वभाववाली हो । हठीली नही हो । पर यदि प्रेमवश हठ करोगी तो परिणाम मे दु ख पाओगी सरकार के इस कथन मे सीताहरण और सीता परित्याग का सकेत है । अब वन के दु खो का वर्णन करते है । पहिले यह कि वन मे कही मृदुता का नाम नहीं । उसके देखने स बडा भय उत्पन्न होता है । उसम रहना तो दूर की बात है । जाडा गरमी बरसात तीनो काल म महा दु ख है । गरमी के दिनो मे असह्य घाम । जाडा के दिनो म असह्य पाला । बरसात म पानी और हवा असह्य होती है । अथवा वन की हवा और पानी भी अनुकूल नही पडता है । वन म शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध सभी भयानक है । कानन कठिन भयकर भारी से रूप की भयानकता कहा । घोर घामु हिम बारि बयारी से स्पर्श की भयानकता कहते हैं ।

कुस कटक मग काँकर नाना । चलब पयादेहि बिनु पद त्राना ॥
चरन कमल मृदु मजु तुम्हारे । मारग अगम भूमिधर भारे ॥३॥

अर्थ रास्ते म कुशा काँटे और अनेक प्रकार के ककड भरे पडे हैं । पैदल चलना जूता भी नही । तुम्हारे चरण कमल कोमल और सुन्दर हैं । रास्ता दुर्गम और भारी भारी पहाड ।

व्याख्या दूसरे यह कि रास्ते मे कुश उगे रहते हैं । जो बडे तीखे होते हैं ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



काँटे और कङ्कड ऐसे होते हैं कि जूते की दुर्गति हो जाती है। हमलोगो को मुनिव्रत पालन करना है। अत पैदल चलना होगा। जूता भी नही पहन सकते। तुम्हारे चरण कमल से कोमल और सुन्दर हैं। ये दुर्गम मार्ग और बडे बडे पहाडो का सामना नही कर सकते।

कदर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहि निहारे ॥
भालु बाघ वृक केहरि नागा। करहि नाद सुनि धीरजु भागा ॥४॥

अर्थ कन्दरा, खोह, नदी, नद और नाले सभी दुर्गम और अथाह होते हैं। जिन्हे देखते नही बनता। बाघ, भालू, भेडिया और हाथी ऐसा चिग्घाड करते हैं कि सुनकर धैर्य छूट जाता है।

व्याख्या : उन बडे बडे पहाडो मे ऐसी ऐसी कन्दरा और ऐसे ऐसे खोह हैं। कितने भयानक नाले रास्ते मे पडते हैं। बहुत से नाले मिलकर एकनद हो जाता है और बहुत से नद मिलकर नदियाँ बन जाती है। ये सबके सब दुर्गम हैं। अथाह है। ऐसे भयानक हैं कि देखते नही बनता। तीसरे यह कि उन वनो मे हिंस्र जन्तु बाघ, भालू, भेडिया, सिह और हाथी रहते है जिनका चिग्घाड सुनकर धैर्य छूट जाता है। इससे शब्द की भयानकता कहा।

दो. भूमि सयन बलकल बसन, असनु कद फल मूल।
ते कि सदा सब दिन मिलहि, सबुइ समय अनुकूल ॥६२॥

अर्थ · पृथ्वी पर सोना, पेड की छाल पहनना, कन्द फल मूल खाना वह भी सदा नही मिलता। सभी अपने अपने समय पर मिलते हैं।

व्याख्या · तुमने कठोर पृथ्वी पर पैर नही रक्खा। सदा पलग पीठ, गोद और पालने पर रही। वन मे पृथ्वी पर सोना पडेगा। पेडो की छाल को कपडा की भाँति पहनना होगा। खाने के लिए केवल कन्द, फल और मूल मिलेंगे। वे भी सदा प्राप्य नही। सबके लिए ऋतु नियत है। स्थान नियत है। कोई किसी ऋतु मे होता है और कोई किसी ऋतु मे होता है। कोई कही पाया जाता है और कोई कही पाया जाता है। जीवनोपयोगी वस्तु भी दुर्लभ हैं। यहाँ रस और गन्ध के विषय मे कहा।

नर अहार रजनीचर चरही। कपट वेष बिधि कोटिक करही ॥
लागइ अति पहार कर पानी। बिपिन बिपति नहि जाइ बखानी ॥१॥

अर्थ : मनुष्यो को खानेवाले राक्षस वहाँ घूमा करते हैं। करोडो प्रकार के कपट वेष धारण किया करते हैं। पहाडी पानी बडा विकार करता है। वन की विपत्ति का वर्णन नही हो सकता।

व्याख्या : चौथे यह कि राक्षसो के मनुष्य ही आहार है। मनुष्य ही खाकर वे जाते है : खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। वे आहार के खोज म घूमा करते है। कपट से अनेक वेष बनाया करते हैं। जिससे कोई उन्हे जान न ले। कही मग

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बन जाते हैं। कही यति बन जाते है। इत्यादि। पहाड का पानी बडा विकार करता है। उसे पीकर लोग घर आने पर भी बीमार पडते हैं। मरणासन्न हो जाते है। वन मे एक विपत्ति नही है। वन की विपत्तियो का पारावार नही।

काल कराल बिहंग बन घोरा। निसिचर निकर नारि नर चोरा ॥
डरपहिं धीर गहन सुधि आए। मृग लोचनि तुम्ह भीरु सुभाए ॥२॥

अर्थ : वन मे कराल सर्प होते है। भयावने पक्षी होते है। राक्षस लोग स्त्री और पुरुष को चुरा ले जाते है। धीर पुरुष भी वन की याद आने से डर उठते हैं। हे मृगलोचनि ! तुम तो स्वभाव से ही डरपोक हो।

व्याख्या : सुरक्षित स्थान मे भी खतरा रहता है। वहाँ कराल सर्प होते हैं। जिनके काटने से कोई बच नही सकता। वहाँ के पक्षी भी घोर है। मनुष्य को तो अपना आहार समझते है। यथा : मोहि अहार दीन्ह जगदीसा। सुन्दर पुरुष पर राक्षसी आसक्त हो जाती हैं। सुन्दरी स्त्री पर राक्षस आसक्त हो जाते है। तब उन्हे खाते नही चुरा ले जाते हैं। जो खा जाने से बुरा है।

जिनकी धीरो मे गिनती है और कभी वन मे रहने का अवसर मिल चुका है वे वन की याद आ जाने से सिहर उठते हैं। हे मृगलोचनि ! तुम तो स्वभाव से भीरु हो। माँ कहती है चित्र लिखित कपि देखि डराती। तुम वन मे कैसे बसोगी ? वन मे मृग बसते हैं। मृगलोचनी नही बसती।

हंस गवनि तुम नहि बन जोगू। सुनि अपजसु मोहि देइहि लोगू ॥
मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली ॥३॥

अर्थ हे हंसगामिनि तुम वन योग्य नही हो। सुन करके लोग मुझे अपयश देंगे। मानससरोवर के अमृत सदृश जल मे पली हुई हंसिनी क्या क्षार समुद्र मे जी सकती है ?

व्याख्या . पाँचवें यह कि तुममे वन की योग्यता नही है। जिसमे जिस बात की योग्यता न हो उसमे उस वस्तु का विनियोग नीति विरुद्ध है। तुम्हारी हंस की भाँति मन्द गति है। वन मे तीव्र गतिवाली कोल किरात किशोरियो का निर्वाह होता है। जो दौडधूप कर सकें। तुम तो जाना चाहती हो पर साथ ले जाने मे मेरा कितना भारी अपयश है। लोग कहेंगे कि भले ही सीता साथ जाने के लिए हठ करती रही हो पर रामचन्द्र कैसे थे जो ऐसी सुकुमारी को साथ वन ले गये। तुम वन मे जी नही सकती। जैसे मानसरोवर के अमृत सदृश जल से पली हुई हंसिनी लवण समुद्र मे नही जी सकती।

नव रसाल बन बिहरन सीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला ॥
रहहु भवन अस हृदय बिचारी। चंद बदनि दुखु काननु भारी ॥४॥

अर्थ . नयी अमराई मे विहार करनेवाली कोकिल की शोभा क्या करील के

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वन मे हो सकती है। ऐसा मनमे विचार करके घर रहो। हे चन्द्रवदनि! वन मे बड़ा दुख है।

व्याख्या : तुम्हारा वन जाना एक अशोभन कार्य है। कोकिल की शोभा नये आम के वन मे विहार करने मे है। आम्रवन मे स्पर्श रूप रस गन्ध की बहुतायत तो स्वभाव से ही है। नवतरु किसलय मे मृदु स्पर्श और सुन्दर रूप बौर में सुन्दर गन्ध फल मे सुन्दर रस रहता है। केवल मनोहर शब्द का घाटा रहता है। उसे पूरा करके कोकिल आम्रवन को सर्वेन्द्रिय तर्पण बना देती है। अत वहाँ उसकी शोभा है। करील मे न तो पत्ते हैं, न सरस फल है, न सुगन्ध है। उसमे कोकिल जाती ही नही। करील के वन मे यदि कोकिल जाय तो उसकी शोभा नहीं।

आपन मोर नीक जौं चहहू। बचनु हमार मानि गृह रहहू से उपक्रम करके रहहु भवन अस हृदय बिचारी से उपसंहार कर रहे हैं। साराश इतना ही है कि वन मे भारी दुख है जो तुम झेल नही सकती।

दो. सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख, जो न करइ सिर मानि।
सो पछिताइ अघाइ उर, अवसि होइ हित हानि ॥६३॥

अर्थ . स्वाभाविक हितचिन्तक गुरु और स्वामी की शिक्षा जो शिरोधार्य नही करता। वह मन मे पेट भर पछताता है। उसके हित की अवश्य हानि होती है।

व्याख्या स्वाभाविक हित चिन्तक माता पिता आदि गुरुजन ससुर सास आदि और स्वामी इनके वचन को अवश्य शिरोधार्य करना चाहिए। इसी मे कल्याण है। नही तो निश्चय ऐसा अकल्याण होता है कि नही माननेवाला मन मे पेट भर पछताता है चाहे मुख से न कहे। स्त्री का तो पति सहज सुहृद भी है। यथा : मित ददाति च पिता मित भ्राता मित सुतः। अमितस्य च दातार भर्तार कानुसेवयेत्। अमितदानि भर्ता वैदेहीगुरु भी हैं। यथा : पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम् और स्वामी तो हैं ही। अत उनके वचन को तो अवश्य ही शिरोधार्य करना चाहिए। नही मानने से अवश्य हित की हानि होती है और मुख से चाहे न कहे पर मन में उसे पेट भर पछताना पडता है। भाव यह कि यदि मेरा वचन न मानोगी तो निश्चय हित हानि होगा और तुम पेट भर पछताओगी।

सुनि मृदु बचन मनोहर पिय के। लोचन ललित भरे जल सिय के॥
सीतल[1] सिख दाहक भइ कैसे। चकइहि सरद चंद निसि जैसे॥१॥

अर्थ : प्रिय के मनहरण करनेवाले कोमल वचन सुनकर सीताजी के सुन्दर नेत्र जल से भर आये। शीतल शिक्षा ऐसी दाहक हुई जैसे चकई को शरद् चन्द्रमा-वाली रात दाहक होती है।

व्याख्या : एक तो प्रिय के वचन [illegible]

१. विषम अलङ्कार तृतीय।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ऐसे कोमल और मनोहर थे कि मन उसी के ग्रहण मे तन्मय हो गया था। आँसू गिरना बन्द हो गया था। सो कथन समाप्त होते ही सीताजी के सुन्दर नेत्रो मे फिर जल भर गया।

बडी शीतल शिक्षा थी पर सीताजी को वह दाहक हो गयी। जैसे शरद् चन्द्रमावाली रात स्वभाव से ही शीतल और सुखद है। पर चकई को तो वह अधिक दाह उत्पन्न करती है। पति वियोग के कारण चकई के लिए सभी रात्रि दाहक है। पर शरद् चन्द्र से युक्त रात्रि अधिक दाहक होती है। भाव यह कि कौसल्याजी के वचन भी दाहक थे। पर रामचन्द्र के मुख से उसी आशयवाले वचन अधिक दाहक हो उठे। रामजी ने वही भाव शब्दान्तर मे कहे जो भाव कौसल्याजी ने व्यक्त किया था। पर प्रियतम के मुख से सुनने से वे अधिक वियोग-जन्यदाह के उत्पन्न करनेवाले हुए।

उतरु न आव विकल वैदेही। तजन चहत सुचि स्वामि सनेही॥
बरबस रोकि बिलोचन बारी। धरि धीरजु उर अवनि कुमारी॥२॥

अर्थ . वैदेही विकल है उत्तर देते नही बनता। पवित्र और स्नेही स्वामी मुझे छोडना चाहते है। पृथ्वी की बेटी सीताजी ने धैर्य धारण किया और बलपूर्वक नेत्र के जल को रोका।

व्याख्या जो रामजी कह गये उसका उत्तर है। पर मन मे जो यह भावना उठी कि ऐसे पवित्र और स्नेही स्वामी मुझे छोडना चाहते है तो वैदेही विकल हो गयी। उत्तर मुख से निकलता ही नही। शुचि कहने का भाव यह कि सरकार विषय रस रूखे हैं। यथा राम पुनीत विषय रस रूखे फिर भी स्नेही हैं। यथा तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एक मन मोरा। सो मन सदा रहत तोहि पाही। जानु प्रीति रस एतनहि माही भाव यह कि अलौकिक प्रेमी होने पर भी मुझे छोडना चाहते है ।

इस दाह से धैर्य छूट चला था। पर ये तो सर्वसहा पृथ्वी की बेटी हैं। माँ के सब गुण विद्यमान है। धैर्य धारण किया और नेत्र के जल का बल पूर्वक रोका।

लागि सासु पग कह कर जोरी। छमबि देवि बडि अबिनय मोरी॥
दीन्हि प्रानपति मोहि सिख सोई। जेहि बिधि मोर परम हित होई॥३॥
मै पुनि समुझि दीखि मन माही। पिय बियोग सम दुखु जग नाही॥४॥

अर्थ सास के पाँव पकडकर और हाथ जोडकर बोली कि हे देवि! मेरी बडी भारी ढिठाई को क्षमा करना। मुझे प्राणपति ने वही शिक्षा दी जिससे मेरा परम कल्याण हो। मैंने भी उसे समझकर मन मे देख लिया कि पति के वियोग से बढकर कोई दु ख ससार मे नही है।

व्याख्या पहिले सास से ही प्रार्थना करना है। क्योकि सरकार ने कह दिया सुमुखि मातु हित राखहुँ तोही और माता का बहुत बल [illegible] पर है

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कि सीता वन के दुःखो को न सह सकेगी और उन्ही के प्रेरणा से सरकार ने वैसी ही शिक्षा दी। जब सीताजी आयी थी तब वन्दना करके बैठी। अब कुछ कहना है अतः फिर वन्दना करती है। भगवती ने आज तक सास की बातों का कभी उत्तर नही दिया। आज बिना दिये स्वीकृति समझी जायगी। अतः उत्तर देना पड़ा। इसे सीताजी बड़ी भारी ढिठाई मानती है। अतः उसके लिए पहिले ही क्षमा प्रार्थी होती हैं।

आरम्भ से ही आर्यपुत्र न कहकर सङ्कोच छोड़कर प्राणपति कहा। इसका अर्थ ही यही है कि इनके बिना मैं जी नही सकती। प्राणपति को शिक्षा मे कोई दोष नही है और वह शिक्षा मेरे बहुत भले के लिए है। मैंने उसे दत्तचित्त होकर सुना। समुझि कहकर उसका मनन करना कहती है और दीख मन माही से निदि-ध्यासन कहती है। अर्थात् ऊँचा नीचा अच्छी भाँति विचार लिया। सो यह निश्चय हुआ कि प्रिय वियोग के समान दुःख दूसरा जगत मे है नही अधिक कहाँ से होगा। सास से सीताजी ने इतना ही कहना यथेष्ट समझा। क्योंकि स्त्री है। स्त्रीहृदय को जानती हैं। स्त्रीधर्म को जानती है। इनके लिए इतना ही अलं है। अतः यह सहज सुहृद गुरस्वामि सिख जो न करैं हित मानि आदि का उत्तर है।

दो० प्राननाथ करुनायतन, सुदर सुखद सुजान।
तुम्ह बिनु रघुकुल कुमुद बिधु, सुरपुर नरक समान ॥६४॥

अर्थ : हे प्राणनाथ, करुणायतन, सुन्दर, सुखद, सुजान, हे रघुकुल कुमुद चन्द्र! तुम्हारे बिना स्वर्ग भी नरक के तुल्य है।

व्याख्या : अब सरकार से कहती हैं। प्राणनाथ सम्बोधन से वियोग मे प्राण त्याग कहा। करुणायतन कहकर करुणा की प्रार्थी है। सुन्दर कहकर द्योतित किया कि मैं नित्य दर्शन चाहती हूँ। सुखद कहकर वियोग दुःख न देने की प्रार्थना करती है। सुजान कहकर मनोगत का जानकार होना कहती है। रघुकुल कुमुद विधु कहकर अपना सहज प्रेम कह रही है। इतनी बात केवल सम्बोधन मे ही कह गयी। अब कहती हैं कि तुम्हारे बिना मेरे लिए स्वर्ग भी नरक है। स्वर्ग मे लोकोत्तर सुख मिलता है और नरक मे लोकोत्तर दुःख मिलता है। भाव यह कि प्रियतम के बिना सुख सब दुःख रूप है। यथा : जे हित रहे करइँ ते पीरा। यह : रहहु भवन अस हृदय बिचारी। चद बदनि दुःख कानन भारी का उत्तर है।

मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। प्रिय परिवारु सुहृद समुदाई ॥
सासु ससुर गुर सजन सहाई। सुत सुदर सुसील सुखदाई ॥१॥

अर्थ : माता, पिता, बहन, प्रिय भाई, प्रिय परिवार, सुहृद समूह, सास, ससुर, गुरु स्वजन, सहायक और सुन्दर सुशील सुखदायक पुत्र।

व्याख्या : १ पहिला परिचय माता से २ फिर पिता से फिर ३ बहन और ४ प्रिय भाई से। ये तो परम आत्मीय ठहरे। तत्पश्चात् ५ प्रिय परिवार

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चाचा बाबा इत्यादि और ६ सुहृद्वर्ग। ये छ मैके के आत्मीय हैं। इस भाँति १ सास २ श्वसुर ३ गुरु ४ स्वजन ५ सहायक और ६ सुन्दर सुशील सुखदायक पुत्र ये छ आत्मीय सुसराल के। सब मिलाकर बारह हुए। इन्ही पर स्त्रियो की प्रीति होती है।

जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहुँ ते ताते ॥
तनु धनु धामु धरनि पुर राजू। पति बिहीन सबु सोक समाजू ॥२॥

अर्थ हे नाथ जहाँ तक स्नेह और नाता है पति के बिना स्त्री को सब सूर्य की भाँति तापप्रद हैं।

व्याख्या इन बारहो के भीतर ही सब स्नेह और सम्बन्ध का अन्तर्भाव है। इसीलिए स्नेही और सम्बन्धो न कहकर स्नेह और सम्बन्ध कहा। ये सब सुखदायी हैं। पर तभी तक जब तक कि स्त्री को पति का साथ है। पति का बिछोह होने पर ये बारहो द्वादशादित्य की भाँति तापक हो जाते हैं। एक आदित्य का ताप सहन नही होता बारह आदित्य का ताप कौन सह सकता है। यह। नव रसाल बन बिरहन सीला। सोह कि कोकिल बिपिन करीला का उत्तर है।

चेतन की व्यवस्था कहकर अब जड वस्तुओ म जिनपर प्रेम होता है उन्हे गिनाती हैं। १ शरीर २ धन ३ धाम ४ धरणी ५ पुर और ६ राज्य यह सुख का समाज है। पर तभी तक जब तक पति का साथ है। पति के बिछोह म ये शोक के समाज है। इस बात को पतिव्रता स्त्रियाँ ही समझ सकती हैं। सामान्य स्त्री भी इसे नही समझ सकती। तब पुरुषो से समझने की कौन आशा है। अत इन बातो को कौसल्या जी से कहकर सरकार से कहती हैं यह मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली का उत्तर है।

भोग रोग सम भूषन भारू। जम जातना सरिस ससारू ॥
प्राननाथ तुम्ह बिनु जग माही। मो कहुँ सुखद कतहु कछु नाही ॥३॥

*अर्थ भोग रोग के समान हो जाता है। गहने बोझ मालूम होते है और* ससार तो यमयातनामय हो जाता है। हे प्राणनाथ! तुम्हारे बिना इस ससार म मुझे तो सुखद कही कुछ भी नही है।

व्याख्या भोग की सामग्री रोग की भाँति दु खद हो जाती है। भूषण धारण करने योग्य प्रिय वस्तु है। वह बोझा हो जाता है। ससार मे जो व्यवहार चलता है यमयातना की भाँति महाकष्टप्रद प्रतीत होता है। यह हस गवनि तुम नहिं बन जोगू का उत्तर है। इस भाँति भगवतीजी ने पतिव्रता स्वभाव का वर्णन किया ऐसी स्त्री जो पति के साथ सती होती हैं उन्हे सती हो जाने मे ही सुख है। व सती हो जाने से इन महादु खो स त्राण पा जाती हैं। जो इन गुणो से अपरिचित हैं उन्हे सती होना घोर नृशंस क्रिया प्रतीत होती है। अन्त मे भगवती कहती हैं कि जो आपने कहा रहहु भवन अस हृदय बिचारी। चद बदनि दुख कानन भारी। सो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पुरुष होने के नाते स्त्री स्वभाव से अपरिचित होने के कारण कहा। हे प्राणनाथ! तुम्हारे विना संसार में कहीं कुछ भी सुखद नहीं है।

जिअ विनु देह नदी विनु वारी। तैसिअ नाथ पुरुप विनु नारी॥
नाथ सकल सुख साथ तुम्हारें। सरद विमल विधु वदनु निहारें॥४॥

अर्थ : जैसे जीव के विना देह विना जल की नदी वैसे ही हे नाथ! पुरुप के विना स्त्री हो जाती हैं। हे नाथ! तुम्हारे साथ मुझे सब सुख निर्मल शरत् चन्द्र के समान आपके मुख दर्शन में है।

व्याख्या : जैसे जीव के विना देह अमङ्गल रूप अपवित्र और व्यर्थ हो जाता है: जिस भाँति जल के विना नदी भयानक और कष्टप्रद हो जाती है वही दशा स्त्री की हो जाती है। तो क्या मैं इस संसार में अमङ्गल रूप अपवित्र व्यर्थ भयानक और कष्टप्रद होकर रहूँ? जो सरकार ने कहा : मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराली। सो मेरे लिए घर ही लवण पयोधि है। मैं यहाँ नहीं जीऊँगी। सरकार के मुखचन्द्र के दर्शन में ही मुझे सब सुख है।

दो. खग मृग परिजन नगर बनु, वलकल बिमल दुकूल।
नाथ साथ सुर सदन सम, परनसाल सुख मूल॥६५॥

अर्थ : नाथ के साथ पशु पक्षी कुटुम्बी वन नगर और पेड़ों की छाल निर्मल वस्त्र तथा पत्ते की कुटिया स्वर्ग की भाँति सुखमूल हो जायगी।

व्याख्या : नाथ का साथ रहने से वन्यजन्तु मेरे कुटुम्बी हो जायँगे। वन ही नगर की भाँति सुखद होगा। पेड़ों की छाल ही निर्मल वस्त्र का काम देंगे और पत्ते की कुटी में स्वर्ग का सुख होगा। प्रिय का साथ होने से सब दुःखद पदार्थ सुखद हो जाते हैं। जङ्गल में ही मङ्गल होगा। कोई दुःखद न होंगे यह विपिन विपत्ति नहिं जाइ बखानी का उत्तर है।

बनदेवी वनदेव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा॥
कुस किसलय साथरी सुहाई। प्रभु सँग मंजु मनोज तुराई॥१॥

अर्थ : उदार वनदेव और वनदेवी सास ससुर की भाँति रक्षा करेंगे। सरकार के साथ कुशा और कोमल पत्तों का बिछौना सुन्दर कामदेव का तोशक हो जायगा।

व्याख्या : माता ने आशीर्वाद दिया है : पितु वनदेव मातु बनदेवी। अतः कहती है कि वनदेव और वनदेवी उदार हैं। बिना पूजा पाये वन्य जीवों की रक्षा करते है। सो वनदेवी मेरी सास की भाँति रक्षा करेंगी और वनदेव ससुर की भाँति रक्षा करेंगे। यह : नर अहार रजनीचर करहीं। कपट वेप बिधि कोटिक चरहीं : का उत्तर है।

सरकार ने कहा था कि भूमि पर सोना होगा। इस पर कहती हैं कि भूमि

ankurnagpal108@gmail.com



पर क्यो सोऊँगी कुश किशलय का बिछौना बनाया जायगा और प्रभु के साथ सुन्दर कामदेव के तोशक की भाँति सुखद होगा।

कंद मूल फल अमिअ अहारू। अवध सौध सत सरिस पहारू॥
छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहौ मुदित दिवस जिमि कोकी॥२॥

अर्थ कन्दमूल फल का आहार अमृत के आहार सा होगा। पहाड अवध के सौ महलो की भाँति हो जावेंगे। क्षण क्षण सरकार के चरण कमल का दर्शन करके ऐसी प्रसन्न रहूँगी जैसे दिन मे चकई प्रसन्न रहती है।

व्याख्या सरकार ने कहा असन कन्द फल मूल। सो कन्द फल और मूल का भोजन सरकार के साथ होने से अमृत के भोजन की भाँति स्वादिष्ट होगे और जिन पहाडो के लिए सरकार ने कहा है मारग अगम भूमिधर भारे। कदर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे इत्यादि सो वे भूमिधर पहाड अयोध्या के सौ महल के समान सुखदायक होगे।

सरकार ने कहा कदर खोह नदी नद नारे। अगम अगाध न जाहिं निहारे। सो कन्दर खोह नदी नद नारे म सरकार आगे आगे रहेग। मै तो सरकार के चरणो को बराबर दर्शन करती हुई प्रसन्न रहूँगी जैसे दिन को चकई रहती है।

बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे॥
प्रभु बियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना॥३॥

अर्थ सरकार ने वन के बहुत से दुख भय विषाद और परितापो का वर्णन किया। पर वे सब मिलकर प्रभु के वियोग के लवलेश के समान नही हैं।

व्याख्या सरकार ने वन के बहुत दुखो का वर्णन किया। उसम भय का वर्णन किया। यथा कानन कठिन भयकर भारी। विषाद का वर्णन किया। यथा घोरघाम हिम बारि बयारी। परिताप का वर्णन किया। यथा कुस कटक मग काँकर नाना। चलब पयादेहि बिनु पद त्राना। चरन कमल मृदु मजु तुम्हारे। मारग अगम भूमिधर भारे। सो इन सब भय विषाद और परितापो को इकट्ठा किया जाय तो भी सरकार के वियोग के लवलेश के समान सब मिलकर भी नही होगे।

अस जिय जानि सुजान सिरोमनि। लेइअ सग मोहि छाँडिअ जनि॥
बिनती बहुत करौ का स्वामी। करुनामय उर अतरजामी॥४॥

अर्थ . हे सुजान शिरोमणि! ऐसा जानकर मुझे साथ ले लीजिये। छोड न दीजिये। हे स्वामिन्! मैं बहुत विनती क्या करूँ। आप करुणामय है और अन्तर्यामी हैं।

व्याख्या सरकार ने कहा जौ हठ करहु प्रम बस बामा। तौ तुम्ह दुखु पाउब परिनामा। इसपर कहती हैं कि मैं हठ नही करती हूँ। वस्तुस्थिति कहती हूँ। आप सुजान शिरोमणि हैं। यथा यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ। जान सिरोमनि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


कोमल राऊ। जो निष्करुण हो हृदय की बात न जानता हो उससे अधिक विनती की जाती है। सरकार तो करुणामय है। अन्तर्यामी है। आप से अधिक विनती क्या करें।

दो. राखिअ अवध जो अवधि लगि, रहत जानिअहि प्रान।
दीनबंधु सुंदर सुखद, सील सनेह निधान ॥६६॥

अर्थ : यदि आप समझें कि अवधि चौदह वर्ष तक मेरे प्राण रह सकेंगे तो अवध में मुझे रखिये। आप दीनबन्धु हैं। सुन्दर है और शील तथा स्नेह के निधान हैं।

व्याख्या : सरकार ने कहा : दिवस जात नहिं लागिहि बारा। सुन्दरि सिखवन सुनहु हमारा। सो मैं शिक्षा शिरोधार्य करने को प्रस्तुत हूँ। पर प्राण मेरे वश में नहीं हैं। ये नहीं रहेंगे। यदि आप समझते हो कि ये चौदह वर्ष बिना आपके रह सकेंगे तो मुझे अवध में ही रहने दीजिये। दीनबन्धु सम्बोधन से अपनी दीनता कहा। सुन्दर कहकर अपनी आसक्ति कही और सील सनेह निधान कहकर साथ ले जाने के लिए प्रार्थना की। रहत न जानि अहि : पाठ मानने से अर्थ होगा कि मैं नहीं जी सकूँगी।

मोहि मग चलत न होइहि हारी। छिनु छिनु चरन सरोज निहारी॥
सबहि भाँति पिय सेवा करिहौं। मारग जनित सकल श्रम हरिहौं॥१॥

अर्थ : मुझे रास्ता चलने में थकावट नहीं मालूम होगी। क्योंकि क्षण क्षण चरण कमलों का दर्शन होता रहेगा : सभी तरह से मैं प्रिय की सेवा करूँगी और रास्ते की थकावट दूर करूँगी।

व्याख्या : ऊपर के दोहों में पाँच सम्बोधन दिया है १ दीनबन्धु २ सुन्दर ३ सुखद ४. शील निधान और ५ स्नेह निधान। अत: दीनबन्धु से अपनी दीनता कहती हैं। सरकार ने कहा था : चलब पयादेहि बिनु पद त्राना। इसका उत्तर भी साथ ही साथ है। कहती है कि मुझे तो रास्ते चलते थकावट होगी नहीं। क्योंकि सरकार के प्रत्येक पादप्रक्षेप को मुझे ध्यान से देखना पड़ेगा। यथा : प्रभु पद रेख बीचबिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता। इस भाँति क्षण क्षण चरण कमल का दर्शन करती चलूँगी। उसी आनन्द में मुझे पथश्रम का भान ही न होगा।

इतना ही नहीं सरकार के साथ कोई सेवक न होगा तो सेवा कौन करेगा। यहाँ तो सेवा का पूरा सौभाग्य प्राप्त नहीं था। अवसर ही नहीं मिलता था। प्रिय की सेवा करने में सुख मिलता है सो सब सेवा मैं करूँगी। एहि ते अधिक धरम नहिं दूजा। सादर सासु ससुर पद पूजा : का उत्तर दे रही है कि आपकी सेवा का अधिक सुअवसर प्राप्त होगा। एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पतिपद प्रेमा। भाव यह कि मैं बोझ होकर साथ नहीं रहूँगी। मैं तो थकूँगी ही नहीं और सरकार के थकावट को दूर करूँगी। यह सीताजी आर्त्त होकर कह रही हैं। नहीं तो : घर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ते निकरी रघुवीर वधू, धरि धीर धरी मग मे पग द्वै। झलकी भली भाल कनी जल की, रद सूख गये अधराधर द्वै। इत्यादि।

पाय पखारि बैठि तरु छाहीं। करिहउँ बाउ मुदित मन माहीं॥
श्रम कन सहित स्याम तनु देखें। कहँ दुख समउ प्रानपति पेखे॥२॥

अर्थ : पैर धोकर पेड़ की छाया मे बैठकर प्रसन्न मन से हवा करूँगी। पसीने की बूदो के सहित स्याम शरीर के दर्शन से : प्राणनाथ के अवलोकन मे दुःख के लिए समय कहाँ है।

व्याख्या : मै जानती हूँ कि थकावट कैसे दूर की जाती है। जब आप थककर विश्राम के लिए पेड तले बैठेंगे तो मै आपका पांव धोकर प्रसन्न मन से हवा करूँगी। आपकी थकावट दूर होगी।

श्यामसुन्दर राम से अपनी आसक्ति कहती है कि जब थकावट मे आपके शरीर की शोभा पसीने के बूँदो से और भी बढ जाती है सो उसके देखने मे ही मन लग जायगा। दुःख के लिए अवसर कहाँ है? भाव यह कि अनवरत मन के आप मे लगे रहने से दुःख का भान हो नही सकता। सो दिन तो इस भाँति आनन्द से कटेगा।

सम महि तृन तरु पल्लव डासी। पाय पलोटिहि सब निसि दासी॥
बार बार मृदु मूरति जोही। लागिहि ताति बयारि न मोही॥३॥

अर्थ : समतल भूमि पर तृण और तरुपल्लव बिछाकर यह दासी रात भर पैर दाबेगी। बार बार इस कोमल मूर्ति को देखकर मुझे गरम हवा न लगेगी।

व्याख्या : अब रात की व्यवस्था कहती हैं कि भूमि शयन क्यो होगा? मै समतल भूमि देखकर उस पर तृण और पेड के कोमल पल्लव की शय्या बिछाऊँगी। मै तो दासी हूँ। चरण सेवा मेरा धर्म है। सरकार थके रहेगे। मैं रात भर चरण सेवा करूँगी। सरकार सुखद है। सेवा मे भी सुख मिलता है। सरकार के नवनील नीरद सुन्दर मूर्ति का दर्शन करती रहूँगी। मुझे गरम हवा क्यो लगेगी। घोर घाम हिम बारि बयारी : का उत्तर।

को प्रभु सँग मोहि चितवनिहारा। सिंघ बधुहि जिमि ससक सिआरा॥
मै सुकुमारि नाथ बन जोगू। तुम्हहि उचित तप मो कहुँ भोगू॥४॥

अर्थ : सरकार के साथ मुझे आँख उठाकर देखनेवाला कौन है? सिंह की वधू को खरहा : खरगोश और सियार के देखने की सामर्थ्य कहाँ? मै सुकुमारी हूँ और सरकार वन के योग्य है। आपको तप उचित है और मुझे भोग उचित है।

व्याख्या : निसिचर निकर नारि नर चोरा : का उत्तर : सिंहवधू मे ही ऐसी सामर्थ्य है कि शशक सिआर उसकी ओर आँख नही उठा सकते कि पुन. जब

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वह सिंह के साथ हो। सरकार सिंह हैं। राक्षसादि आपके सामने शशक सिआर हैं। उनसे मुझे कौन डर है?

सरकार शील सनेह निधान है। ऐसी बातें कैसे कहते हैं कि मैं वन मे तप करूँगा और तुम घर मे राजभोग भोगो। व्याह मे प्रतिज्ञा कराया गया है कि धर्म अर्थ और काम मे इसके साथ वरतना। तो क्या तप मे मेरा साथ न होगा। यदि मैं सुकुमारी हूँ तो आप तो और भी अधिक सुकुमार हैं। यथा · व्यचरदनुवन पद्मपद्भ्या प्रियाया। पाणिस्पर्शाक्षमाभ्याम्। यदि मैं वन के योग्य नही हूँ तो आप और भी अधिक नही हैं। वनवास की कौन कहे केवल पति के प्रवास मे स्त्री को तप विहित है। सो मुझ सरकार कन्दमूल अशन को डरा रहे हैं।

दो ऐसेउ[1] वचन कठोर सुनि, जौ न हृदउ बिलगान।
तौ प्रभु विषय बियोग दुखु, सहिहहिं पाँवर प्रान ॥६७॥

अर्थ ऐसा कठोर वचन सुनकर भी यदि कलेजा न फटा तो यह नीच प्राण सरकार के विरह के दु ख को भी सह लेगा।

व्याख्या हौं रहौ भवन भाग लोलुप ह्वै पति कानन कियो मुनि को साजु। तुलसीदास ऐसे विरह वचन सुनि कठिन हियो विहरयो न आजु। पिय निठुर वचन कहे कारन कवन। जगदम्बा कहती हैं हसगवनि तुम नहिं बन जोगू। यह वचन निष्ठुर है। हृदय विदारक है। आत्मा हि दारा सर्वेषा दारसग्रहवर्तिनाम्। सो मुझ आप अपने से अलग समझ रहे हैं। अत यह वचन निष्ठुर है। मुझे सुख भोगने के लिए घर छोड रहे हैं। अत हृदयविदारक हैं। इस वचन से हृदय फट जाना चाहता था। सो नही फटा। ऐसा कठिन है। इससे तो यही अनुमान होता है कि यह नीच प्राण सरकार के वियोग का विषम दु ख भी सह लेगा यहाँ अत्यन्त तिरस्कृत ध्वनि है।

अस कहि सीय बिकल भइ भारी। वचन बियोग न सकी सँभारी॥
देखि दसा रघुपति जिय जाना। हठि राखे नहिं राखिहि प्राना ॥१॥

अर्थ ऐसा कहकर सीताजी अत्यन्त विकल हो गयी। वियोग के वचन को सँभाल न सकी। दशा देखकर रामजी ने मन मे समझ लिया कि हठ पूर्वक छोड जाने मे यह प्राण छोड देगी।

व्याख्या समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ से उपक्रम करके अस कहि सीय बिकल भइ भारी से उपसहार करते हैं। वियोग तो दूर की बात है वियोग वचन के ही सुनने मे असमर्थ हो गयी। भारी विकल हो गयी। अर्थात् मूर्च्छित हुई। यथा तुलसीदास प्रभु विरह वचन सुनि सहि न सकी मुछित भइ भामिनि। गी।

---

१ यहाँ व्याघात द्वितीय अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उनकी यह दशा देखकर रामजी ने मन मे समझ लिया कि ऐसी अवस्था मे इन्हे घर रहने के लिए जोर देना हठ करना है। हठ इनका नही है। हठ मेरी ओर से हो रहा है। क्योकि घर रखने से तो यह प्राण छोड़ देगी।

कहेउ कृपालु भानुकुल नाथा। परिहरि सोचु चलहु बन साथा॥
नहि बिषाद कर अवसरु आजू। बेगि करहु बन गवन समाजू॥३॥

अर्थ : कृपाल सूर्यकुल के नाथ ने कहा कि सोच न करो। साथ मे वन चलो। आज विषाद का अवसर नही है। जल्दी वन चलने की तैयारी करो।

व्याख्या : सरकार सूर्यकुल के नाथ है। सूर्यकुल की रक्षा अपना कर्तव्य समझते हैं। सीताजी की दशा देखकर भगवती भास्वती अनुकम्पादेवी का उदय हुआ। क्योकि सरकार स्वभाव से ही कृपाल है। कहने लगे कि अब सोच न करो। साथ मे तुम भी वन चलो। आज ब्रह्मदेव सब प्रकार से मुझ पर अनुकूल हैं। अत. आज आनन्द के अवसर पर विषाद न करो। उठो! अब वन चलने की तैयारी करो।

कहि प्रिय बचन प्रिया समुझाई। लगे मातु पद आसिष पाई॥
बेगि प्रजा दुख मेटब आई। जननी निठुर बिसरि जनि जाई॥४॥

अर्थ : प्रिय वचन कहकर प्रिया को समझाकर माता को प्रणाम किया और आशीर्वाद पाया। माता बोली : जल्द आकर प्रजा का दु ख मिटाना और अपनी निष्ठुर माता को भूल न जाना।

व्याख्या सरकार ने प्रिय वचन कहकर प्रिया को समझाया। यथा :

सहि न सकिहि बन दुख समुझि रह्यौ प्रीति उर गोय।
नतरु तिहारे संगते बन नंदनबन होय॥
दोऊ कुल अनुरूप यह शुभ संकल्प तुम्हार।
दम्पति सम्पति मे यथा तथा धर्म सहचार॥
बेगि चलहु बनि धन रतन बिप्रन्ह देहु बुलाय।
आभूषन गुरु तिय चरन अरपित करहु सुभाय॥

कठोर वचन से जो हृदय पर चोट हुआ था उसी के मिटाने के लिए प्रिय वचन कहकर सीताजी को समझाया। तत्पश्चात् विदा होने के लिए माता के चरणो मे प्रणाम किया और माता ने आशीर्वाद दिया। यह आशीर्वाद विदाई का है।

ऐसी दशा मे भी माता को प्रजा की चिन्ता है। अतः कहती है कि तुम्हारे बिना प्रजावर्ग बडा दु खी होगा। यथा : राम दरस लगि लोग सब करत नेम उपवास। परिहरिभूषन भोग सुख जिअत अवधि की आस। सो लौटने मे जल्दी करना। चौदह वर्ष वियोग का दु.ख झेलना कठिन काम है। मैं निष्ठुर हूँ। भूल जाने लायक हूँ। पर माता का नाता स्मरण करके तुम भूल न जाना।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



फिरिहि दसा विधि बहुरि कि मोरी । देखिहौ नयन मनोहर जोरी ॥
सुदिन सुघरी तात कब होइहि । जननी जिअत बदन बिधु जोइहि ॥४॥

अर्थ हे विधाता ! क्या मेरी दशा भी फिर फिरेगी । मैं इस मनोहर जोरी को आंख से देखूंगी वह शुभ दिन और शुभ घरी बेटा ! कब आयेगी जब कि माता तुम्हारा चांद सा मुखड़ा जीते जी फिर देखेगी ।

व्याख्या : कैसी ग्रहदशा मेरे ऊपर आयी हुई है । क्या मेरे दिन फिर लौटेंगे । यह मनोहर जोडी आंख के ओझल चौदह वर्ष के लिए हुआ चाहती है । क्या मैं उस शुभ दिन और उस शुभ घडी तक जीती रहूँगी जब कि यह जोडी वन से लौटेगी और फिर मैं तुम्हारे मुखचन्द्र का दर्शन पाऊँगी । उस दिन के सुख को याद करके माता कहती है ·

दो बहुरि बच्छ कहि लालु कहि, रघुपति रघुबर तात ।
कबहि बोलाइ लगाइ हियँ, हरखि निरखिहउँ गात ॥६८॥

अर्थ . फिर कब वत्स कहकर, लाल कहकर, रघुपति, रघुवर और तात कहकर बुलाऊँगी और हृदय से लगाकर हर्षित होकर तुम्हे देखूँगी ।

व्याख्या · कौसल्याम्बा इन्ही पाँच प्यार के शब्दो से रामजी को पुकारती थी । कभी वत्स, कभी लाल, कभी रघुपति, कभी रघुवर और कभी तात करके सम्बोधन करती थी । वह कहती हैं कि चौदह वर्ष ऐसा सम्बोधन के लिए अवसर न मिलेगा । किसे ऐसा सम्बोधन करके मैं बुलाऊँगी और हृदय मे लगाकर हर्षित होकर शरीर की सुन्दरता देखूँगी । अत मेरे सुख के दिन गये । अब देखें कब वे सुख के दिन लौटते हैं । मैं आशा लगाये उसी दिन की बाट जोहती रहूँगी ।

लखि सनेह कातरि महतारी । बचनु न आव बिकल भइ भारी ॥
राम प्रबोधु कीन्ह बिधि नाना । समउ सनेहु न जाइ बखाना ॥१॥

अर्थ . रामजी ने माता को स्नेह से ऐसा विह्वल देखकर कि मुख से वचन नही निकल रहा है और अत्यन्त विकल है नाना प्रकार से समझाया । उस समय का स्नेह वर्णन करते नही बनता ।

व्याख्या · कौसल्याजी बडी धैर्यवाली हैं । परन्तु माँ हैं । पुत्रवधू के विरह से अवलम्बनहीन सी होकर अत्यन्त विकल हो गयी हैं । सनेह कातरि : से मन की दशा कहा । बचनु न आव : से वाणी की दशा कहा । बिकल भई भारी : से तन की दशा कहा । रामजी ने देखा कि माँ अत्यन्त विकल है । साथ ले जाना धर्म नही हैं । महाराज का त्याग अनुचित है । अत. अनेक प्रकार से समझाया । यथा .

कवित्त

देखिबे मे दुख जो अपार दिनरात मात, किये ते विचार तामे कछुहू न सार है ।
जाते होत मिलन बिछोह पुनि ताते होत, योग औ वियोग को ही रूप ससार है ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



याते सुख दुख को समान मानि धीर धरो, वर्ष दस चार बीतने मे नहि वार है।
तेरे ही असीस लौटि वन ते नवैहौं सीस, ईश की कृपा से पामे ढरत सुढार हैं॥

कवि कहते हैं कि उस समय जैसा प्रेम उमडा उसका बखान नही किया जा सकता।

तब जानकी सासु पग लागी। सुनिअ माय मै परम अभागी॥
सेवा समय दैअँ बनु दीन्हा। मोर मनोरथु सफल न कीन्हा॥२॥

अर्थ तब जानकी सास के पाँव पडी और कहने लगी कि माँ सुनो। परम अभागिन तो मैं हूँ। मेरा सेवा करने का समय था। सो दैव ने वन दे दिया। मेरा मनोरथ पूरा नही किया।

व्याख्या विदा होने के लिए पहिले रामजी पाँव पडे। यथा लगे मातुपद आसिस पाई। इसके बाद जानकीजी के प्रणाम करने की वारी थी। पर माता ऐसी विकल हो गयी कि रामजी को बहुत भाँति समझाना पडा। जब कुछ शान्ति हुई तब जानकी पाँव पडी और बोली कि माँ परम अभागिनी तो मैं हूँ। आप अपने को अभागिनी क्यो मानती हैं। आपने तो अपना कर्तव्य भलीभाँति निबाहा। मुझे पालपोसकर बडी किया। अब मैं इतनी बडी हुई कि आपकी सेवा कर सकूँ। सो दैव दुर्विपाक से मै सेवा से वञ्चित हो रहा हूँ। मेरा इतना पुण्य नही कि आपकी सेवा कर सकूँ। मेरा मनोरथ मेरे मन मे ही रह गया। अत अभाग मेरा है। सेवा का छीना जाना बडा भारी अभाग्य है। सो मुझसे आपकी सेवा छिन गयी। आपको छोडकर वन जाना पडा।

तजब छोभु जनि छाँडिअ छोहू। करमु कठिन कछु दोसु न मोहू॥
सुनि सिय बचन सासु अकुलानी। दसा कवनि बिधि कहौ बखानी॥३॥

अर्थ आप दुख को छोड देना पर छोह न छोडना। कर्म बलवान् है। मेरा भी कोई दोष नही है। सीताजी का वचन सुनकर सास व्याकुल हो गयी। उस दशा का वर्णन कैसे करें।

व्याख्या मन की अस्थिरता को क्षोभ कहते हैं। सीताजी कहती हैं कि मेरे जाने से जो आपको क्षोभ हो रहा है सिय बन बसब तात केहि भाँती। सो क्षोभ को आप छोड दीजियेगा। यह क्षोभ आपको कष्ट देगा। पर छोह बनाये रखियेगा। क्योकि आपके छोह से ही हमारा कल्याण है। मै जो इस समय आपको छोड रही हूँ सो दैववश होकर छोड रही हूँ। इच्छा पूर्वक नही छोड रही हूँ। ऐसा ही कर्म फलोन्मुख हुआ है जिससे आपको छोडना पड रहा है।

सीताजी के प्रेम और विवेकमय वचन सुनकर इनके गुणो को स्मरण करके फिर चित्त अशान्त हो उठा। व्याकुल हो गयी। उनकी दशा कहने की कोई विधि ही नही बैठती। तजब छोभ जनि छाडअ छोहू। इस वाक्य मे जो भाव भरे हुए है

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उन्होने कौसल्याजी के हृदय मे सीताजी की कीमत और वढा दी। अत रामजी के समझाने से जो विकलता कुछ कम हुई थी वह और वढ गयी।

वारहिं वार लाइ उर लीन्ही। धरि धीरजु सिख आसिष दीन्ही ॥
अचल होउ अहिवातु तुम्हारा। जब लगि गंग जमुन जल धारा ॥४॥

अर्थ : वार वार कौसल्याजी ने सीताजी को हृदय से लगाया। धैर्य धारण करके शिक्षा दी और आशीर्वाद दिया कि जब तक गङ्गा और यमुना मे जल धारा है तब तक तुम्हारा सोहाग वना रहे।

व्याख्या : सीता जी को हृदय से लगा लिया। एक वार के लगाने से सन्तोष नही होता। अत: वार वार हृदय से लगाती है। फिर धैर्य धारण करके वन मे किस प्रकार से रहना चाहिए इस वात की शिक्षा दी और आशीर्वाद दिया।

स्त्रियो के लिए सोहाग से वढकर और कुछ नही है। उसके अचल होने का आशीर्वाद सास दे रही है। पर संसार मे अचल कुछ भी नही सभी ओर से चलाचली है। यहाँ नित्यता प्रवाह रूपेण ही सम्भव है। अत. गङ्गा और यमुना की उपमा दी। अन्तिम कलियुग मे गङ्गा का लोप कहा जाता है। अत यमुना को भी साथ मे कहा। अथवा सोहाग के वने रहने मे दोनो का वना रहना आवश्यक है। गङ्गा यमुना दोनो मिलकर वहनेवाली नदियो की उपमा दी।

दो० सीतहि सासु असीस सिख, दीन्हि अनेक प्रकार।
चली नाइ पद पदुम सिरु, अति हित वारहिं वार ॥६९॥

अर्थ : सीताजी को सास ने अनेक प्रकार से आशीर्वाद दिया और शिक्षा दी। सीताजी अत्यन्त प्रेम से वार वार चरणो मे सिर झुकाकर चली।

व्याख्या : पहिले कहा था : मैं सिख देउँ जानकिहि सोई। सो इस समय वनवास के विषय मे शिक्षा दी और सौभाग्यवती भव, पुत्रवती भव आदि अनेक प्रकार से आशीर्वाद दिया। अव सीताजी विदा होती हैं। अत्यन्त प्रेम से वार वार चरण कमलो मे प्रणाम करती हैं। सास ने अत्यन्त प्रेम से बार बार हृदय से लगाया। वधू फिर भी अत्यन्त प्रेम से बार वार चरण कमलो मे नत होती है।

## १२. राम लक्ष्मण संवाद

समाचार जव लछिमन पाये। व्याकुल विलख वदन उठि धाये ॥
कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अति प्रेम अधीरा ॥१॥

अर्थ : जव लक्ष्मणजी ने समाचार पाया व्याकुल होकर म्लान मुख किये हुए उठकर दौड पडे। उनके शरीर मे कम्प था। आँखो मे आँसू भरा था। प्रेमाधिक्य से अधीर होकर चरण पकड लिया।

व्याख्या : समाचार ही ऐसा था कि जो सुनता था विकल हो जाता था।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यथा : जो जहँ सुनै धुनै सिर सोई। बड विषाद नहिं धीरज होई। कौसल्याजी के लिए कहा गया : सहमि सूखि सुनि सीतल बानी। जिमि जवास परे पावस पानी। कहि न जाइ कछु हृदय विषादू। मनहु मृगी सुनि केहरि नादू। नयन सजल तन थर थर काँपी। माजहि खाइ मीन जनु मापी। सीताजी ' समाचार तेहि समय सुनि सीय उठी अकुलाइ। यहाँ तो ' बारहिं ते निजहित पति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी। अतः लक्ष्मणजी को समाचार सुनते ही ऐसी व्याकुलता बढी कि विषाद की रेखा मुख पर स्पष्ट दिखलायी पड़ी और दौड पडे। घर मे न किसी से कुछ कहा न सुना। मानो किसी से कोई सम्बन्ध ही नही है। अति उत्सुकता साथ जाने की है। कौसल्याजी के महल के बाहर आते ही आते रामजी के चरणो को व्याकुल होकर जा पकडा। प्रेमाधिक्य के कारण धैर्य छूटा जा रहा है। शरीर मे काँप है। पुलक है। आँखो मे आँसू भरा है।

कहि न सकत कछु चितवत ठाढे। मीनु दीनु जनु जल तें काढे ॥
सोचु हृदय बिधि का होनिहारा। सबु सुखु सुकृतु सिरान हमारा ॥२॥

अर्थ : कुछ भी बोल न सके। खडे खडे देखने लगे। जैसे जल से निकाली हुई मछली दीन हो जाय। मनमे सोच रहे है कि हे विधाता ! क्या होनेवाला है। मेरा तो सब सुख और पुण्य समाप्त हो गया।

व्याख्या . कौसल्याजी की भाँति इनके मुख से भी बोली नही निकल रही है। इनके जाकर चरण पकड़ लेने से सरकार खडे हो गये। अब लक्ष्मणजी को जो कुछ कहना है उसके लिए निवेदन करने का अवसर है। पर इनकी दशा जल से बाहर निकाली हुई मछली की सी हो रही है। अनिमेष नयन से खडे खडे देख रहे हैं। मछली को पलक होती नही। बोल सकती नही। जल के बिना दीन हो जाती है और उस दीनता के व्यक्त करने का भी कोई साधन नही। होनहार क्या है। कुछ सूझ नही पडता। बस इतनी बात समझ मे आ रही है कि मेरा सब पुण्य समाप्त हो गया। सुख समाप्त होने पर भी यदि पुण्य शेष रहे तो काल पाकर फिर सुख हो सकता है और यदि पुण्य भी समाप्त हो जाय तो फिर सुख की आशा ही नहीं। यथा : नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद बिमल बिधु बदन निहारे।

मो कहुँ काह कहब रघुनाथा। रखिहहिं भवन कि लेहहिं साथा ॥
राम बिलोकि बंधु कर जोरे। देह गेह सब सन तृनु तोरें ॥३॥

अर्थ मुझे रघुनाथजी क्या कहेगे ? घर मे रखेंगे कि साथ लेंगे। रामजी ने भाई को हाथ जोडे हुए देह घर सबकी उपेक्षा तृण के समान किये हुए देखा।

व्याख्या : रघुकुल के नाथ है। जो इनकी आज्ञा होगी सो हटाया नहीं जा सकता। करना ही पडेगा। सीताजी को साथ ले लिया। देखे मेरे लिए क्या आज्ञा होती है। यद्यपि वे अर्धाङ्गिनी हैं। पर मैने भी बचपन से साथ नही छोडा है। परिस्थिति ऐसी है कि मुझे घर रहने के लिए छोड़ भी सकते हैं और सेवा के लिए

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



साथ भी ले सकते हैं। सीताजी के साथ होने से मेरी बडी आवश्यकता है। अत लक्ष्मणजी संशय मे पडे हुए हैं।

इधर रामजी ने लक्ष्मण को देखा कि हाथ जोडे खडे हैं। कुछ कहते नही। इतना कहने से सब कुछ कह दिया। लक्ष्मण के देखने से मालूम होता है कि घर की उपेक्षा तृण की भाँति किये हुए तो ये आ ही रहे हैं देह की भी इन्हे अपेक्षा नही है। स्वय चक्रवर्तीजी की भाँति विना जल के मछली की सी दशा हो रही है।

बोले बचनु राम नयनागर। सील सनेह सरल सुख सागर॥
तात प्रेम बस जनि कदराहू। समुझि हृदय परिनाम उछाहू॥४॥

अर्थ : नीति मे निपुण शील स्नेह सरलता और सुख के सागर कहने लगे कि हे तात ! प्रेम के वश होकर धैर्य न छोड़ो। हृदय मे समझो कि इसका परिणाम उत्साहमय है।

व्याख्या : सरकार नीति मे निपुण हैं। ऐसे समय मे लक्ष्मणजी को अयोध्या से हटाना नही चाहते। शील और स्नेह के कारण घर रहने की आज्ञा देते भी नही बनता। सरल हैं। जो वात मनमे है वही कहेंगे और सुख के सागर है। उनके मनमे कोई विकार नही है। इस समय भी सुखी हैं। सागर चार हैं। इसलिए शील स्नेह सरलता और सुख चारो का समुद्र कहा।

सरकार ने कहा कि मनुष्य को सात्त्विक सुख के लिए यत्नशील होना चाहिए। जो आरम्भ मे विष की भाँति प्रतीत होता है और परिणाम मे अमृत सा मधुर है वही सात्त्विक सुख है। मेरे वन जाने का परिणाम वडा उत्साहमय होगा। बहुत बडे यश की प्राप्ति होगी। अत प्रेम के वश धैर्य त्याग न करो। धैर्य छोडने की कोई बात नही है।

दो. मातु पिता गुरु स्वामि सिख, सिर धरि करहिं सुभायँ।
लहेउ लाभु तिन्ह जनमकर, नतरु जनमु जग जायँ॥७०॥

अर्थ : जो स्वभाव से ही माता पिता गुरु और स्वामी की शिक्षा शिरोधार्य करते हैं उनका ही जन्म सुफल है। नही तो जगत् मे जन्म ही व्यर्थ है।

व्याख्या : जो शिक्षा भगवती को दी थी वही लक्ष्मणजी को दे रहे हैं। यथा : सहज सुहृद गुरु स्वामि सिख जो न करै हित मानि। सो पछिताइ अघाइ उर अवस होइ हित हानि। भेद इतना ही है कि सीताजी का साथ चलना धर्मत प्राप्त है लक्ष्मणजी का वैसा नही है। सरकार अपने लिए कहते हैं कि मैं तो अपना जन्म सफल करने जाता हूँ। अत यहाँ दु ख की कोई चर्चा नही है। तुम भी माता पिता की सेवा करके जन्म सफल करो। तुम्हारा धर्म माता पिता की सेवा है। मेरे साथ चलना तुम्हारा धर्म नही है। यदि माता पिता की आज्ञा न माने तो मेरा जन्म होना ही निष्फल हो जायगा। तुम्हे आज्ञा है नही। तुम माता पिता की सेवा छोडकर जन्म को व्यर्थ क्यो करते हो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अस जिय जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु पितु पद सेवकाई ॥
भवन भरतु रिपुसूदनु नाही। राउ वृद्ध मम दुख मन माही ॥१॥

अर्थ हे भाई। ऐसा मन मे समझकर मेरी शिक्षा सुनो। माता पिता के चरणो की सेवा करो। भरत शत्रुघ्न नही हैं। महाराज वृद्ध हुए। तिस पर उनके मन मे मेरा दुख है।

व्याख्या तुम भाई हो। स्त्री की दूसरी बात है। उसका धर्म मेरी सेवा है। उसने मेरी शिक्षा यदि नही सुनी चलने के लिए हठ किया तो उसके धर्मानुकूल था। तुम्हारा धर्म तो माता पिता की सेवा है। उनके सामने भाई की क्या गिनती है। तुम उनकी सेवा करो। यदि भरत शत्रुघ्न घर होते तो भी एक बात थी कि वे माता पिता की सेवा कर लेंगे और राज्य भी सँभाल लेंगे। सो वे भी घर नही है। यदि कहो कि महाराज तो हुई हैं उन्हे सेवको का क्या घाटा है ? तो यह बात भी नही। महाराज वृद्ध हुए। अब उनका किया कुछ हो नही सकता। तिस पर मेरे लिए वे दुखी है। उनसे कुछ करने धरने की आशा नही की जा सकती। इस दुख की अवस्था मे सेवको से उनको सान्त्वना नही हो सकती। तुम्हारे पास रहने से ही उन्हे ढाँढस बँध सकता है।

मै वन जाउँ तुम्हहि लेइ साथा। होइ सबहि विधि अवध अनाथा ॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहुँ परइ दुसह दुख भारू ॥२॥

अर्थ यदि मैं तुम्हे साथ लेकर वन चला जाऊँ तो सब प्रकार से अवध अनाथ हो जायगा। गुरु पिता माता और कुटुम्ब सभी पर न सहने योग्य दुख का बोझा आ पडेगा।

व्याख्या सीताजी के साथ ल जाने से अवध अनाथ न होगा। इस समय मेरे ही जाने से अवध के लोग अपने को अनाथ समझेंगे। यदि तुम साथ चले तब तो अवधनाथ के रहते भी प्रजा अपने का सब विधि से अनाथ समझेगी। तुम्हारे रहने से सबको ढाढस बँधा रहेगा कि कम से कम लक्ष्मण तो हैं। सब सँभालेंगे। गुरु पिता और माता राज्यरक्षक और प्रजा तथा परिवार रक्ष्य हैं। सो सब पर नही सहने योग्य दुख का बोझा आ पडेगा। मै तुम्हे दुख का बोझा सँभालने के लिए यहाँ छोडता हूँ। जिसम इन लोगो को जिनके ऊपर दुख का आना किसी प्रकार इष्ट नही है असह्य दुख न आ पडे।

रहहु करहु सब कर परितोषू। नतरु तात होइहि बड दोषू ॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृपु अवसि नरक अधिकारी ॥३॥

अर्थ तुम घर रहो। सबका परितोष करो। नही तो भाई तुम्ह बडा दोष लगेगा। जिसके राज्य मे प्रिय प्रजा दुखी होती है वह राजा निश्चय नरक का पात्र हो जाता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : इसलिए तुम्हारा साथ चलना किसी प्रकार से उचित नहीं है। तुम घर रहो और सबका परितोष करो। यदि तुमने ऐसा न किया तो बड़ा भारी दोष होगा। सबके दुःख के कम करने का सामर्थ्य रहते हुए भी जो दूर नहीं करता केवल मोह के वश यथेच्छाचरण करता है वह निश्चय दोषी है। हे भाई! तुम व्यर्थ दोषी क्यों बनते हो? दूसरी सबसे बड़ी बात यह है कि जो नरक से पिता की रक्षा करे वही पुत्र है। जो ऐसा नहीं करता वह पुत्र कैसा? अरक्षित होकर प्रजा के दुःखी होने का पाप महाराज पर पड़ेगा। क्योंकि राजा वे ही है। उनका परलोक यदि हम लोगों के रहते बिगड़ा तो हम लोगों का पुत्र होना ही व्यर्थ हो जायगा। रञ्जनात् राजा। राजा शब्द का अर्थ ही यह है कि प्रजा को सुख देनेवाला। सो हम लोगों के रहते महाराज की गणना शोचनीयों मे नहीं होने पावे। यथा : सोचिय नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना।

रहहु तात असि नीति बिचारी। सुनत लखनु भये ब्याकुल भारी॥
सिअरे बचन सूखि गये कैसें। परसतु तुहिन तामरसु जैसें॥४॥

अर्थ : ऐसी नीति विचार करके तुम घर पर रह जाओ। सुनते ही लक्ष्मणजी भारी व्याकुल हुए। शीतल वाणी से ऐसे सूख गये जैसे पाला के छू जाने से कमल सूख जाता है।

व्याख्या : हे भाई! नीति का विरोध नहीं करना चाहिए। नीति विरोध सोहाय न मोही। अतः न चाहते हुए भी नीति का विचार करके घर रह जाओ। सुनते ही लक्ष्मणजी अत्यन्त व्याकुल हो उठे। पहिले ही : व्याकुल बिलखि बदन उठि धाये। अब तो भारी व्याकुल हुए। सरकार के शीतल वचन सुनकर वे तो सूख गये कि वही बात तो हुई जिसे मैं डरता था। श्रीगोस्वामीजी उपमा देते हैं कि जैसे शीतल पाला के स्पर्श से कमल सूख जाता है। भाव यह कि लक्ष्मणजी भी चक्रवर्तीजी की भाँति विवर्ण हो गये।

दो. उतरु न आवत प्रेम बस, गहे चरन अकुलाइ।
नाथ दासु मइँ स्वामि तुम्ह, तजहु त काह बसाइ॥७१॥

अर्थ : उत्तर रहते हुए भी प्रेम के वश हो जाने से देते नहीं बनता। आकुल होकर चरण पकड़ लिया : कहने लगे कि : नाथ! मै दास हूँ। आप स्वामी हैं। यदि त्याग दें तो मेरा वश क्या है।

व्याख्या : जितनी बातें सरकार ने कही लक्ष्मणजी के पास सबके उत्तर हैं। पर लक्ष्मणजी प्रेम के पराधीन हो गये हैं। देना चाहने पर भी देने में असमर्थ हैं। पहिले : गहे चरन अति प्रेम अधीरा। अब : गहे चरन अकुलाइ। विरह निश्चित मालूम होता है। अतः व्याकुल हैं। चुप रह जाने से स्वीकृति द्योतित होती है। अतः दो शब्दों में जो कुछ कहना था सब कह दिया। आप स्वामी है। मै दास हूँ। यदि त्याग करें तो क्या वस है। भाव यह कि आप बारबार भाई कहते हैं और

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भाई को जैसी शिक्षा देनी चाहिए वैसी शिक्षा देते हैं। पर मै तो दास हूँ। बारहिं ते निज हित पति जानी। लछिमन रामचरन रति मानी। आप स्वामी है। स्वामी को दास के परित्याग का अधिकार है। यदि आप त्याग करते है तो मेरा कौन जोर है। ये सब कही हुई बातें मेरे चलने मे बाधक नही हैं। आपकी आज्ञा बाधक है।

जिस भाँति ज्ञान और उपासना : भक्ति की समस्या पर उत्तरकाण्ड मे विचार है उसी भाँति कर्म और भक्ति की समस्या पर यहाँ प्रकाश डाला गया है।

दीन्हि मोहि सिख नीकि गोसाईं। लागि अगम अपनी कदराईं ॥
नर बर धीर धरम धुरधारी। निगम नीति कहुँ ते अधिकारी ॥१॥

अर्थ : गोसाईं ने तो मुझे अच्छी शिक्षा दी। पर अपनी कायरता से मुझे अगम जान पड़ती है। जो धीर धर्म की धुरा के धारण करनेवाले श्रेष्ठ पुरुष हैं वे ही वैदिक नीति के अधिकारी हैं।

व्याख्या : अब लक्ष्मणजी प्रत्येक बातो के विषय मे कुछ कहेगे। क्योकि वे सब उन्हे स्वीकार नही हैं। लक्ष्मणजी कहते हैं कि सरकार की शिक्षा बड़ी पवित्र बडे उदार भाव की तथा सुगम है। पर मैं उसका अधिकारी नही। मुझसे ऐसा हो नही सकता। परिणाम मे उछाह होगा। इस भरोसे मुझसे यह दुःख नही सहा जायगा। मुझमे साहस की बडी कमी है। मै कायर हूँ। यह विनय : तात प्रेम बस जनि कदराहू के उत्तर में है।

इसके बाद : मातु गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहि सुभाय इत्यादि के उत्तर में कहते हैं कि सरकार ने वैदिकी नीति का वर्णन किया जिससे जन्म सफल होता है। मै उसका भी अधिकारी नही। धीर पुरुष जो धर्म की धुरा के धारण मे समर्थ हैं वे ही वैदिकी नीति के अधिकारी हैं।

मैं सिसु प्रभु सनेह प्रतिपाला। मदरु मेरु कि लेहिं मराला ॥
गुरु पितु मातु न जानउं काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू ॥२॥

अर्थ : मै तो बच्चा हूँ। सरकार के प्रेम से पला हूँ। क्या हंस मन्दर मेरु उठा सकता है। मैं गुरु पिता माता किसी को नही जानता। मै स्वभाव कहता हूँ नाथ विश्वास करें।

व्याख्या : सरकार जानते है कि मै भी शिशु ही हूँ। ससार के प्रपञ्च से अपरिचित हूँ। सरकार ने कहा भी है : सूध दूध मुख करिय न कोहू। कमल के पत्ते पर बैठनेवाले हंस मे इतना सामर्थ्य कहाँ कि मन्दर मेरु को उठा सके। मुझे तो सरकार ने स्नेह से पाला है। कभी कोई बोझा मेरे ऊपर आने ही नही दिया। मै मेरु मन्दर सदृश गुरु भारवाले निगम धर्म को कैसे उठा सकता हूँ? यह मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है। मै अवध को सनाथ नही कर सकता।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अब गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू। सब कहुँ परइ दुसह दुख भारू आदि का उत्तर देते हुए लक्ष्मणजी कहते हैं कि मैं गुरु पिता माता किसी को नही जानता। मैं अपने हृदय का भाव कहता हूँ। सरकार विश्वास करें। भाव यह कि सबकी ममता का तागा इकट्ठा करके लक्ष्मणजी डोरी बरकर सरकार के चरणो मे दृढता के साथ बाँध चुके है। अत कहते हैं

जहँ लगि जगत सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई ॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबधु उर अतरजामी ॥३॥

अर्थ जगत् मे जितने नेह और नाते है और स्वय वेद ने जिस प्रीति और प्रतीति का गान किया है। हे स्वामी दीनबन्धु, उर प्रेरक ! मेरे तो सब कुछ आप ही है।

व्याख्या त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव। त्वमेव विद्या द्रविण त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव। यह भाव मुझे स्वभावसिद्ध है। अत मेरे सर्वस्व आप ही हैं। मै बिना आपके दीन हूँ। आप दीनबन्धु हैं। अपना साथ न छोडाइये। आप स्वामी हैं। नाथ हैं। मुझे अनाथ न कीजिये। आप अन्तर्यामी है। बिना आपकी प्रेरणा मेरी बुद्धि ऐसी हुई कैसे ?

धरम नीति उपदेसिअ ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही ॥
मन क्रम बचन चरन रत होई। कृपासिधु परिहरिअ कि सोई ॥४॥

अर्थ धर्म नीति उसे उपदेश करना चाहिए। जिसे कीर्ति ऐश्वर्य और सद्गति प्रिय हो। मनसा वाचा कर्मणा जो चरण मे रत हो हे कृपासिन्धु ! क्या उसे छोडा जाता है ?

व्याख्या रहहु करहु सबकर परितोषू। नतरु तात होइहि बड दोषू इत्यादि का उत्तर देते हुए कहते हैं कि मुझे न कीर्ति चाहिए न ऐश्वर्य चाहिए और न शुभगति चाहिए। जिन्हे इन सब वस्तुओ की अपेक्षा हो उन्हे धर्म नीति का उपदेश उचित है। यहाँ तो सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न रामपद पकज भाऊ। जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहि राम प्रेम परधानू सिद्धान्त है। मै तो मनसा वाचा कर्मणा सरकार का दास हूँ। मेरे छोडने का तो प्रश्न ही नही उठाना चाहिए।

दो० करुनासिधु सुबधु के, सुनि मृदु बचन विनीत।
समुझाए उर लाइ प्रभु, जानि सनेह सभीत ॥७२॥

अर्थ . करुणासिन्धु रामजी ने सुबन्धु के कोमल और विनीत वचन सुनकर स्नेह से डरा हुआ जानकर हृदय मे लगाकर समझाया।

व्याख्या रहहु तात असि नीति बिचारी। सुनत लखनु भये व्याकुल भारी। लक्ष्मणजी की व्याकुलता देखकर करुणासिन्धु प्रभु ने जाना कि यह सुबन्धु है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



स्नेह से सभीत हो गया। अतः व्याकुलता मिटाने के लिए कलेजे से लगा लिया और समझाया। यथा :

सवैया : तुम्हरोइ भरोस हमेस हमें तुमही मम जीवन को रखवारे।
तजि देह सकौं न सको तजि तोहि तुही विजयानंद प्रान पियारे॥
मन मे न धरो कछु हानि गलानि करें हम सोइ जोई निरधारे।
यह प्रेम को नेम न टारे टरै हम भक्तन के अरु भक्त हमारे॥
पाँस पसेरुन को प्रिय ज्यौं फनि को मनिज्यौ करिको कर जैसे।
तू प्रिय मोहि तथा विजयानंद आनत क्यों उर ख्याल अनैसे॥
देखि दुखी परिवार कह्यौ सो यथा रुचि तात करौ तुम तैसे।
वाम तजौ धन धाम तजौ वरु प्रान तजौ मैं तजौ तोहि कैसे॥

**माँगहु विदा मातु सन जाई। आवहु वेगि चलहु वन भाई॥**
**मुदित भये सुनि रघुवर वानी। भयउ लाभ वड़ गइ वड़ि हानी॥१॥**

अर्थ : हे भाई ! माताजी से विदा माँगो। जल्दी आओ और वन चलो। रामजी की वाणी सुनकर प्रसन्न हो गये। बड़ा भारी लाभ हुआ और बड़ी भारी हानि दूर हुई।

व्याख्या : रामजी के पास : मन क्रम वचन चरन रति होई। कृपा सिंधु परिहरिअ कि सोई का उत्तर नहीं था। अतः कहा कि मेरी ओर से अब रोक नहीं है। यदि माता आज्ञा दे दे। माता की आज्ञा सर्वोपरि है। वेद ने पहिले 'मातृदेवो भव कहा। पितृदेवो भव पीछे कहा। यति पिता से भी वन्द्य है पर उसे भी माता की वन्दना का विधान है। पर सुमित्रा माता आज्ञा दे देगी। तुम जाओ उनसे आज्ञा माँगो और वन चलने के लिए जल्दी करो। सरकार को वन जाने की बड़ी जल्दी है। माता ने कहा है होत प्रातु मुनि वेष धरि जौ न राम बन जाहिं इत्यादि। अतः सीताजी से भी कहा . वेगि करहु बन गवन समाजू।

वन गमन का समाचार सुनकर व्याकुल हो गये थे। सो सरकार की वाणी सुनकर प्रसन्न हो गये। क्योंकि बड़ा भारी लाभ हुआ और बड़ी भारी हानि गयी। सरकार की सेवा : भक्ति ही लाभ की पराकाष्ठा है और सेवा न करना ही बड़ी भारी हानि है। यथा : लाभ कि कछु हरि भगति समाना। जेहि गावहिं श्रुति संत पुराना। हानि कि कछु एहि सम जग भाई। भजिअ न रामहिं नर तनु पाई। अतः लक्ष्मण जी प्रसन्न हो उठे।

**हरषित हृदय मातु पहिं आए। मनहुँ अन्ध फिरि लोचन पाए॥**
**जाइ जननि पग नायेउ माथा। मनु रघुनंदनु जानकि साथा॥२॥**

अर्थ : प्रसन्न मन से माता के पास आये। मानो अन्धे को फिर से आँख मिल गयी। जाकर माता के चरणों मे सिर नवाया। परन्तु मन तो रामजानकी के साथ था।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या जन्मान्ध को अन्धेपन का दुःख नहीं होता जन्मान्ध को यदि आँख मिल जाय तो वह बड़ी विपत्ति मे पड़ता है। इतना बड़ा ससार उसके सामने आ जाता है। उसके समझ मे नही आता कि यह क्या है ? कई महीने की शिक्षा के बाद उसे बन्द दरवाजा और खुले दरवाजा का भेद मालूम होता है। रग पहिचानने मे महीनो लग जाते हैं। उसे आँख मिलने से आनन्द नही होता। आनन्द तो उसको होता है जो बीच मे अन्धा हो जाता है और फिर आँख हो जाती है। लक्ष्मणजी को राम जानकी दोनो आँखो की भाँति थे। उनके विरह मे अन्धे से हो गये थे। सूझ नही पडता था कि क्या होनेवाला है। जब सरकार ने साथ वन चलने को कहा तो मानो गयी हुई आँखें फिर मिल गयी। ऐसी प्रसन्नता हुई। उसी खुशी से माँ के पास आये।

जाकर माँ को प्रणाम किया। पर मन उड़ा हुआ था। वह तो राम जानकी के साथ था। मन दूसरी जगह है। प्रणाम दूसरी जगह हो रहा है। रसम की तामीली मात्र हो रही है।

पूछे मातु मलिन मनु देखी। लषन कही सब कथा बिसेखी ॥
गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहु ओरा ॥३॥

अर्थ मलिन मन देखकर माता ने पूछा। तब लक्ष्मणजी ने सब विशेष कथा कह सुनायी। कठोर वचन सुनकर। माँ सहम गयी। जैसे चारो ओर वन मे आग लगी हुई देखकर मृगी घबडा जाय।

व्याख्या चित्त के मल से ही मन मलिन होता है ऐसी बात नही है। चित्त के विक्षेप से भी मन मलिन होता है। जैसे चञ्चल जल प्रतिबिम्ब के स्पष्ट ग्रहण मे असमर्थ होता है। यद्यपि लक्ष्मणजी प्रसन्न थे। पर माँ है उसने आभ्यन्तर चञ्चलता को देखा। जिसका कारण सरकार का वन जाना था। तब माता ने पूछा कि क्या बात है ? रामजी के अभिषेक की बात तो माँ जानती ही थी। रात म कैकेयी के वरदान माँगनेवाली ही कथा विशेष थी। उसे लक्ष्मण ने कह सुनाया।

उस कठोर वचन को सुनकर एक बार तो माता सुमित्रा की वही दशा हो गयी जो महाराज की हुई थी। यथा गयउ सहमि नहिं कछु कहि आवा। जिमि सचान बन झपटेउ लावा। माता सहम गयी। कुछ कहते सुनते न बना। उसे चारो ओर आग ही आग दिखायी पड़ी। १ पति वियोग २ पुत्र वियोग ३ राम सीता वियोग और ४ राज्य नाश। उसकी वही दशा हुई जो चारो ओर वन मे आग देखकर मृगी की हो जाती है। बिधि कैकयी किराततिनि कीन्ही। जिन दव दुसह दसहु दिसि दीन्ही।

लखन लखेउ भा अनरथ आजू। एहि सनेह बस करब अकाजू ॥
मागत बिदा सभय सकुचाही। जाइ सग बिधि कहिहि कि नाही ॥४॥

अर्थ लक्ष्मणजी ने लखा कि आज अनर्थ हुआ। यह प्रेम के वश होकर काम

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बिगाडेगी। विदा माँगने मे भय के साथ सङ्कोच होता था कि हे विधाता! साथ जाने को कहेगी या नही।

व्याख्या : लक्ष्मणजी को साथ जाना है। इसलिए विदा माँगने आये हैं। पर माता की अवस्था देखकर विदा माँगने मे सङ्कोच हो रहा है। कैसे विदा माँगें? इसकी दशा तो बहुत खराब हो गयी। विदा माँगने मे डर भी लगता है कि कही नही न कह बैठें। फिर रामजी साथ न ले जायँगे। विश्वामित्र यज्ञ रक्षा मे जब मै सरकार के साथ गया तब इसने नही रोका था। आज की बात कुछ दूसरी दिखायी पडती है। यह प्रेम के वश मुझे रोकना चाहती है और इसने यदि रोका तो अनर्थ हो गया। मेरा तो सब सुख सुकृत ही समाप्त हो जायगा।

दो. समुझि सुमित्रा राम सिय, रूपु सुसीलु सुभाउ।
नृप सनेह लखि धुनेउ सिरु, पापिनि दीन्हि कुदाउ ॥७३॥

अर्थ सुमित्राजी ने राम जानकी के रूप शील और स्वभाव को स्मरण करके और चक्रवर्तीजी के प्रेम को लख करके सिर पीटने लगी कि पापिनी ने भारी दगा दिया।

व्याख्या : सुमित्राजी ने राम जानकी के वनवास को सुनकर उनके रूप शील और स्वभाव का स्मरण किया कि ऐसे बेटे का वन भेजना क्या सामान्य बात है। फिर चक्रवर्तीजी के प्रेम पर दृष्टि डाला तो यही मालूम हुआ कि महाराज तो प्राण ही छोड देंगे। अत: अति व्याकुलता मे सिर पीटने लगी। बोल उठी कि कैकेयी पापिनी है। इसके हृदय मे बडा कपट था और सदा उसे छिपाये रही। मुँह से . भरत न मोहि प्रिय राम समाना कहती थी। सदा सबसे प्रेम से मिलती थी। यथा : कबहुँ न कियेउ सवति आरेसू। प्रीति प्रतीति जान सब देसू। इसीसे महाराज ने धोखा खाया। यथा : सिर धुनि लीन्ह उसास असि मारेसि मोहि कुठायँ।

धीरजु धरेउ कुअवसरु जानी। सहज सुहृद बोली मृदुबानी ॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही ॥१॥

अर्थ : कुअवसर जानकर धैर्य धारण किया। सुमित्राजी स्वभाव से ही सुहृद थी। अत मीठे वचन कहे। हे तात! तुम्हारी तो माता जानकी है और सब भाँति स्नेह करनेवाले रामजी पिता हैं।

व्याख्या : आपत काल परिखिये चारी। धीरज धर्म मित्र अरु नारी। सो सुमित्राजी ने धैर्य धारण किया। सच्ची भलाई लक्ष्मणजी की देखी। लडका रामजी की सेवा से वञ्चित हो जायगा ऐसा समझकर मीठे शब्दो मे बोली। स्वभाव से सुहृद् थी। अत रामजी के सम्मुख होते देखकर सहायक हुईं जरउ सो सपत्ति सदन सुख सुहृद् मातु पितु भाइ। सनमुख होत जो राम पद करइ न सहस सहाइ।

लक्ष्मणजी विदा माँगने से सभीत और सङ्कुचित हो रहे हैं। इस बात को लख लिया। अत उनके बिना कुछ कहे ही कहती हैं कि तुम्हारी माता तो जानकी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



और पिता रामजी हैं। तुमने सदा हो ऐसी भावना की है और वे भी तुम्हे प्राण समान प्यारा मानते हैं। यथा · पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहिं प्रान पियारे। तुम मुझसे आज्ञा माँगने क्यो आये ? उन्ही से आज्ञा माँग लेना था।

अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइ दिवसु जहँ भानु प्रकासू ॥
जौ पै सीय राम वन जाही। अवध तुम्हार काजु कछु नाही ॥२॥

अर्थ : जहाँ राम रहे वही अयोध्या है। जहाँ सूर्य का प्रकाश हो वहीं दिन है। यदि राम जानकी वन जाते हैं तो अयोध्या में तुम्हारा कोई काम नही है।

व्याख्या : कहती है कि जिस भाँति राम जानकी पिता माता हैं उसी प्रकार जहाँ वे रहे वही अयोध्या है। यदि वे वन मे रहे तो वन ही अयोध्या है। बिना राम के अयोध्या कैसी। यथा : लागति अवध भयावनि भारी। मानहु कालराति अँधियारी। उपमा देती हैं कि जहाँ सूर्य का प्रकाश हो वही दिन है। प्रकाश तो चन्द्र से भी होता है। अग्नि से भी होता है। पर दिन नही हो जाता। यथा : राका ससि षोड़श उवहिं तारागन समुदाइ। सकल गिरिन्ह दव लाइये बिनु रवि रात न जाइ। दिन तो सूर्य के प्रकाश से ही होता है। भाव यह कि रामजी के चले जाने से अवध का आनन्द चला जायगा और उनके बसने से जङ्गल मे मङ्गल होगा। यथा : राम बास बन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा इत्यादि।

यदि सीता राम वन जाते हैं तो तुम यहाँ रहकर क्या करोगे। अवध उजाड़ हो जायगा। तुम्हारे बसाये नही बसेगा। माँ जानती हैं कि बिना राम जानकी के यह जी नही सकता। *लक्ष्मणजी के रख लेने पर कटुता बढ़ जाने की आशङ्का थी।* अतः कहते हैं कि अवध तुम्हार काज कछु नाही। तुम्हारे रामजी के साथ रहने मे ही कुशल है।

गुरु पितु मातु बंधु सुर साइँ। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं ॥
रामु प्रान प्रिय जीवन जी के। स्वारथरहित सखा सबही के ॥३॥

अर्थ : गुरु पिता माता वन्धु देवता और स्वामी इन सबकी सेवा प्राण के समान करनी चाहिए। राम तो प्राण से भी प्यारे हैं। प्राण के प्राण हैं और सबके स्वार्थ रहित सखा हैं।

व्याख्या : शरीर मे पाँच प्राण हैं। प्राण अपान व्यान समान और उदान उसी भाँति पाँच वहिश्चर प्राण हैं : गुरु पिता माता भाई और स्वामी। अतः इनकी सेवा भी प्राण की भाँति ही करनी चाहिए। परन्तु रामजी तो प्राण के भी प्राण हैं। अतः प्राण से भी प्यारे हैं और सभी के स्वार्थ रहित सखा हैं। ईश्वर का जीव से स्वार्थ रहित सख्य है। द्वासुपर्णा सयुजा सखाया इत्यादि श्रुति प्रमाण है। यथा : ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू। अतः इन बहिश्चर प्राणो की उपेक्षा करके भी राम जानकी की सेवा करनी चाहिए।

माता लक्ष्मणजी के सब प्रकार के भय और सङ्कोच का निराकरण करती

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है। राम जानकी को माता पिता बतलाकर उनके निवास को अयोध्या बतलाकर भय दूर करती है और गुरु पिता माता भाई और देवता यद्यपि ये पाँचो वहिश्चर प्राण की भाँति हैं। पर इन्हे भी प्राण के प्राण स्वामी राम के लिए छोडा जा सकता है। यह कहकर सङ्कोच को दूर करती हैं।

पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहि राम के नाते ॥
अस जिय जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू ॥४॥

अर्थ जहाँ तक पूज्य और परम प्रिय है सबको राम के नाते से मानना चाहिए। ऐसा मनमें समझकर उनके संग वन जाओ और बेटा! संसार मे जीने का लाभ उठाओ।

व्याख्या यदि राम से नाता है तभी पूज्य पूज्य हैं और प्रिय प्रिय हैं। यदि राम से नाता नही तो वे पूज्य भी नही प्रिय भी नही। उनका त्याग ही हितकर है। यथा जाके प्रिय न राम बैदेही। तजिये ताहि कोटि वैरी सम यद्यपि परम सनेही। ऐसा मनमे निश्चय करके निश्चिन्त होकर वन मे जाओ और अपने जीवन को सफल बनाओ। यथा जीवन लाहु लखन भल पावा। सब तजि राम चरन मनु लावा।

दो भूरि भाग भाजनु भयेउ, मोहि समेत बलि जाउँ।
जौ तुम्हरे मनु छाँडि छलु, कीन्ह राम पद ठाउँ ॥७४॥

अर्थ यदि तुम्हारे मन ने छल छोडकर रामजी के चरणो का आश्रय किया तो मै तुम्हारी बलैया लेती हूँ। तुम तो हुए ही तुम्हारे साथ मे भी बडी भाग्यवती हो गयी।

व्याख्या जब तक राज्य की आशा थी तब तक रामजी के सेवन म स्वार्थ की भी सम्भावना थी। अब तो राज्य की कोई आशा नही। उलटा वन जाना पडा। इसी समय की सेवा सच्ची सेवा है। जिसमे स्वार्थ की गन्ध नही है ऐसे समय मे रामचरणा का आश्रय करना अहोभाग्य है। सो तुम महाभाग्यवान् हुए और मुझे भी महाभाग्यवती बनाया। आज तुम्हारे होने से मैं भी परम भाग्यवती हुई।

पुत्रवती जुबती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई ॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत तें हित जानी ॥१॥

अर्थ वही युवती पुत्रवाली होती है जिसका बेटा रघुपति का भक्त हो। नही तो वन्ध्या भली। राम विरोधी बेटे से भलाई समझकर उसने व्यर्थ पुत्र उत्पन्न किया।

व्याख्या पुत्रवती कहने का भाव यह कि अल्पवयस्का या वृद्धा मे प्रसव की योग्यता नही। युवती ही पुत्र उत्पन्न करती हैं और उनसे भलाई की आशा रखती हैं। ऐसी युवतियो से संसार भरा पडा है। फिर भी वे सब पुत्रवती नही है। पुनाम नरक का है। उससे जो माँ बाप की रक्षा करे वही पुत्र है। अत पुत्रवाली युवतियाँ वे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ही हैं जिनके बेटे रामभक्त है। जो रामभक्त नही हैं तिनते खर सूकर स्वान भले जडता बसते न कहूँ कछु कै। तुलसी जेहि राम ते नेह नही सो सही पसु पूछ विषान न द्वै। जननी भरिभार मुई दस मास भई किन बाँझ गई किन च्वै। जरि जाउ सो जीवन जानकी नाथ जिये जग मे तुम्हरो बिनु ह्वै।

यद्यपि माता नही जानती कि पुत्र कैसा होगा और न उसके जानने का पुत्र जनन मे कोई उपयोग है। तथापि माता को बेटे से बहुत कुछ आशा होती है। सो अपने जनने को वह व्यर्थ नही मानती। पर वस्तुत उसने पशु उत्पन्न किया। इसलिए कवि वियानी शब्द का प्रयोग करते हैं। वह उसका मनुष्य सा रूप देखकर भूली हुई है। पर सब मनुष्याकारवालो मे मनुष्यता नही होती। आहार निद्रा भय मैथुन म मनुष्यता नही है। क्योकि यह तो पशु मे भी होता है। मनुष्यता तो धर्म मे है और धर्म का साफल्य भगवद् भजन मे है, अत धर्महीन मनुष्य पशु के समान है। इस भांति माता सुमित्रा लक्ष्मणजी को भगवद्भक्त देखकर अपने को पुत्रवती मान रही है। इसीलिए कहा भूरिभाग भाजन भयेउ मोहि समेत बलिजाउँ इत्यादि।

तुम्हरेहि भाग रामु बन जाही। दूसर हेतु तात कछु नाही॥
सकल सुकृत कर बड फलु एहू। राम सीय पद सहज सनेहू॥२॥

अर्थ . बेटा! तुम्हारे ही भाग्य से रामजी वन जा रहे हैं। दूसरा कोई कारण नही है। राम जानकी के चरणो मे स्नेह होना सब पुण्यो का बडा फल यही है।

व्याख्या यशोधन के कुटुम्ब मे यश से ही भाग्य का निर्णय होता है। रामजी का साथ देने से यश तुम्हारे हाथ लगेगा और सेवा का ऐसा सुअवसर भी तुम्हे कभी न मिलता। अत रामजी के वन जाने मे प्रधान कारण तुम्हारा है। दूसरे कारण गौण है। नही तो कैकेयी के मनोरथ की पूर्ति तो भरत के राज्य मिलने से ही हो जाती। जो रामजी को भी इष्ट ही था। भरत के राज्य से राम वनवास का कौन सम्बन्ध? अत तुम्हारा भाग्य ही कारण है।

लौकिक सुख स्वर्ग और मोक्ष सुकृत के ही फल है जिसमे पूर्व पूर्व से उत्तरोत्तर बडे है। पर सब सुकृतो का बडा फल तो रामजानकी के चरणो मे स्वाभाविक स्नेह है। यथा जहँ लगि साधन वेद बखानी। सबकर फल हरि भगति भवानी। आगे भरत जी भी कहेगे अहह धन्य लछिमन बडभागी। राम पदारविंद अनुरागी। माता को रामजी के स्वरूप का यथार्थ बोध है। अत सेवा धर्म की दृढता के लिए उपदेश दे रही है।

रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्हके बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥३॥

अर्थ राग द्वेष ईर्ष्या मद और मोह के वश मे सपने मे भी न होना। सब प्रकार के विकारो का त्याग करके मनसा वाचा कर्मणा सेवा करना।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : रागद्वेष दि छवो रिपु हैं। इनके वश मे पड़ने से उसी भाँति कल्याण की हानि होती है जिस भाँति शत्रु के वश मे पड जानेवाले की होती है। अथवा ये पाँच भक्ति के बाधक है इनसे बहुत बचना। गृह के प्रति राग, कैकेयी के प्रति रोष, भरत के प्रति ईर्ष्या, अपने गुणो के प्रति मद और रामजी के प्रति मोह को हृदय मे स्थान न देना अर्थात् स्वप्न मे भी इनके वश न होना।

मन मे विकारो को स्थान देने से रामभक्ति के लिए स्थान नही रह जाता। ये ही सब सेवा धर्म मे छल है और · भानु पीठ सेइअ उर आगी। स्वामिहि सर्व भाव छल त्यागी। अत· मनसा वाचा कर्मणा सेवा करना।

तुम्ह कहुँ वन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु रामु सिय जासू ॥
जेहि न रामु वन लहहि कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू ॥४॥

अर्थ · तुमको तो वन मे सब प्रकार का सुभीता है। जिसके साथ सीता और राम माँ बाप हैं। जैसे रामजी को वन मे क्लेश न हो वैसा ही करना। बेटा! मेरा यही उपदेश है।

व्याख्या · तुम्हारे सुभीते के लिए कुछ कहना नही है। तुम्हारे माता पिता राम जानकी तुम्हारे साथ जा रहे है। वे स्वय तुम्हारे सुभीते के लिए कुछ उठा न रक्खेंगे। यथा · जोगवहिं प्रभु सिय लखनहि कैसे। पलक बिलोचन गोलक जैसे। अत· तुम अपनी चिन्ता न करना और न अपने कष्ट को कष्ट गिनना। तुम यह ध्यान रखना कि रामजी को वन मे कष्ट न हो। मेरा इतना ही उपदेश है।

छं. उपदेसु येहु जेहि तात तुम्हरें रामु सिय सुखु पावही।
पितु मातु प्रिय परिवारु पुर सुख सुरति वन बिसरावही ॥
तुलसी प्रभुहि सिख देइ आयसु दीन्ह पुनि आसिष दई।
रति होउ अबिरल अमल सिय रघुबीर पद नित नित नई ॥

अर्थ : बेटा! यही उपदेश है कि तुम्हारे रामजानकी ऐसा सुख पावें कि उन्हे पिता माता प्रिय परिवार और नगर का सुख भूल जाय। तुलसीदासजी कहते है कि बेटे को शिक्षा दी। पश्चात् आज्ञा दी और आशीर्वाद दिया कि तुम्हे रामजी के चरणो मे दिनदिन अविरल और निर्मल प्रीति हो।

व्याख्या भक्ति के तीन दर्जे हैं: १ तस्यैवाहम् २ ममैवासौ और ३ स एवाहन् इति त्रिधा। प्रारम्भ मे भक्त तदीय होते हैं। उनकी भावना होती है कि मैं सरकार का हूँ। दृढता अधिक होने से वही भावना ममैवासौ के रूप मे बदल जाती है तब भक्त की भावना हो जाती है कि सरकार हमारे है। स एवाहम् के सन्निकट मे भक्तिवाल नही जाते। माता जानती है कि लक्ष्मणजी की ममैवासौ भावना है। इसलिए कहती है · तुम्हारे रामसिय। माता उपदेश देती है कि ऐसी सेवा करना कि जिसमे रामजानकी को पिता माता प्रिय परिवार और नगर का

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुख याद न पडे। ऐसा उपदेश देकर आज्ञा दी कि तुम भी साथ मे वन जाओ। तत्पश्चात् प्रेमाभक्ति प्राप्ति के लिए आशीर्वाद दिया।

दो. मातु चरन सिरु नाइ, चले तुरत संकित हृदय।
बागुर विषम तोराइ, मनहु भाग मृगु भाग बस ॥७५॥

अर्थ : माता के चरण मे सिर नवाकर डरते हुए निकल भागे। जैसे कठिन जाल को तोड़कर भाग्यवश मृगा भाग जाय।

व्याख्या : जब माता ने प्रसन्नता से वन मे बरताव करने का उपदेश, जाने की आज्ञा, भक्ति का आशीर्वाद दिया तब शङ्कित हृदय से निकल भागने का अर्थ क्या? उत्तर यही है कि समाचार पाकर कही भगवती उर्मिला न आजायँ और सीताजी की भाँति वन जाने के लिए मचल न पड़ें। अतः भगवती उर्मिला के आ जाने की शङ्का से शङ्कित है। इसीलिए कठिन जाल मे फँसे हुए मृग का दैवात् जाल तोडकर निकल भागने से उपमा दिया। कठिन जाल माँ नही होती स्त्री होती है और इसीलिए सरकार ने अकेले लक्ष्मणजी को भेजा। आप विदा होने के साथ नही गये। पर भगवती उर्मिला चुप रह गयी। उनके चुप रह जाने में जितने भाव निकलते है कुछ भी कह देने से वह बात नही आती। यदि लक्ष्मणजी को वनवास मिला होता तो भगवती उर्मिला किसी के रोके न रुकती। पर वन तो मिला रामजी को। लक्ष्मणजी तो अपनी इच्छा से सेवा के लिए साथ जा रहे हैं। अतः उनके सेवा धर्म मे विघ्नाचरण नही किया।

## १३. वनगमन : केवट अनुराग प्रसङ्ग

गये लखनु जहँ जानकिनाथू। भे मन मुदित पाइ प्रिय साथू॥
बंदि राम सिय चरन सुहाए। चले संग नृप मंदिर आए॥१॥

अर्थ : लक्ष्मणजी वहाँ गये जहाँ जानकीनाथ थे। प्रिय साथ पाकर प्रसन्न मन हुए। रामजानकी के सुन्दर चरणो की वन्दना करके साथ चल पडे और महाराज के महल मे आये।

व्याख्या : सरकार जानकीजी के साथ धीरे धीरे चले जा रहे हैं। जहाँ से लक्ष्मणजी को माता के पास भेजा था वहाँ से आगे बढ गये हैं। अतः कवि लिखते है कि जहाँ जानकीनाथ थे वहाँ गये। साथ मिल गया। प्रिय का साथ ही सब आनन्दो मे अधिक है। माता के और स्त्री के छोडने मे दुःख का लेश भी नही है। प्रिय के साथ हो जाने की प्रसन्नता है।

जाकर रामजानकी के सुन्दर चरणो की वन्दना की और साथ हो लिये। इतना ही इस सूचना के लिए पर्याप्त था कि आज्ञा मिल गयी। यहाँ नृपमन्दिर से अभिप्राय उस महल से है जिसमे महाराज उस समय विद्यमान थे। अर्थात् महारानी कैकेयी के महल मे, नही तो सभी रानियो के महल नृपमन्दिर है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कहहि परसपर पुर नर नारी । भलि बनाइ बिधि बात बिगारी ॥
तन कृस मन दुखु बदन मलीने । बिकल मनहुँ माखी मधु छीने ॥२॥

अर्थ : पुर नरनारी आपस मे कहते है कि विधाता ने बात अच्छी बनाकर बिगाड दी। उनके शरीर कृश हो गये। मन म दु ख है। चेहरा उदास है। ऐसे विकल हैं जैसे शहद के छिन जाने से मक्खियाँ विकल हो जाती है।

व्याख्या जिस प्रसङ्ग को अति बिषाद बस लोग लोगाई कहकर छोडा था उसी को उठाते हैं। जब महाराज के महल से कौसल्याजी के महल की ओर चले थे उस समय प्रजावर्ग का विपाद कहा था। अब कौसल्याजी के महल से जानकी और लक्ष्मणजी के साथ कैकेयी के महल मे जा रहे हैं। उस समय के प्रजावर्ग के विपाद का वर्णन करते है। तीनो मूर्तियो को साथ देखकर नर नारी आपस मे कहते हैं कि विधाता ने जैसी अच्छी बात बना रक्खी थी कि वैसी बात कही देखने म नही आती। सो जैसी अच्छी बात बनी थी वैसी ही बिगड गयी। यह भी विधाता ने ही बिगाडा। एक को वन दिया गया। सो तीन चले।

विपाद अतिमात्रा मे है। उसका प्रभाव शरीर पर ऐसा पडा कि घण्टो और मिनटो मे शरीर दुबले पड गये। कारण कहते हैं कि सबके मन म दु ख है। सबका चेहरा उदास है। सब ऐसे विकल है जैसे किराती ने मधु के छत्ते मे से मधु निकाल लिया हो और मधु की मक्खियो ने देख न पाया हो कि किसने मधु छीन लिया। पहिले ही कह आये है देखि लागि मधु कुटिल किराती। जिमि गँव तकइ लेउँ केहि भाँती। सो उसने ले ही लिया। रामराज्याभिषेक रूपी मधु छिन गया। अब प्रजावर्ग मधुमक्खियो की भाँति विकल होकर इधर उधर भनभना रहा है।

कर मीजहिं सिरु धुनि पछिताही । जनु बिनु पख बिहग अकुलाही ॥
भइ बडि भीर भूप दरबारा । बरनि न जाइ बिषादु अपारा ॥३॥

अर्थ हाथ मीजते है। सिर पीटकर पछताते है। जैसे बिना पख का पक्षी व्याकुल होता है। राजा के द्वार पर बडी भीड हुई। अपार विपाद का वर्णन नही किया जा सकता।

व्याख्या सामान्य लोगो का हाल कहकर अब बडे बडो का हाल कहते है। छोटो की उपमा मक्खी से दी। अब बडो की उपमा पक्षियो से देते है। ये हाथ मीजते हैं। सामर्थ्य रहते हुए कुछ कर नही सकते। शोकावेग मे सिर पीटते है। बडा भारी अनिष्ट हुआ इसलिए पछताते हैं। बिना पख के पक्षी की भाँति अगतिक होकर आकुल हो रहे हैं कि अब जीवन यापन कैसे होगा?

दरबार शब्द का प्रयोग मानस म राजद्वार के अर्थ मे देखा जाता है। यथा करि मज्जन सरयू जल गये भूप दरबार। तथा गयउ सभा दरबार तब सुमिरि रामपद कज इत्यादि। सब लोगो का महल के भीतर प्रवेश नही है। अत राजद्वार

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पर सब लोग इकट्ठे हो गये। बडी भीड हुई। विषाद का पारावार नही है। विषाद के उत्कटता का वर्णन नही हो सकता। सब हाय हाय कर रहे हैं।

सचिव उठाइ राउ बैठारे। कहि प्रिय बचन रामु पगु धारे॥
सिय समेत दोउ तनय निहारी। ब्याकुल भयउ भूमिपति भारी॥४॥

अर्थ मन्त्री ने रामजी आये हुए हैं ऐसा प्रिय वचन कहकर उठाकर राजा को बिठाया। सीताजी के सहित दोनो बेटो को देखकर महाराज को भारी व्याकुलता हुई।

व्याख्या · महाराज को अचेत देखकर मन्त्री क्षणभर के लिए हटता नही। शोक से अशौच लग जाता है नित्यकृत्य का अधिकार नही रह जाता। राजा का यह हाल है ब्याकुल राउ सिथिल सब गाता। करिनि कल्पतरु मनहु निपाता। आप से उठने मे भी असमर्थ हैं। कहाँ क्या हो रहा है इसका ज्ञान नही। मन्त्री सोचता है कि ये लोग विदा होने आये हैं। इन्हे बिठाना चाहिए। जो कहना हो कहे। इसलिए महाराज को उठाकर बिठलाता है। होश मे लाने के लिए रामजी पधारे हैं ऐसा प्रिय वचन सुनाता है। क्योकि यदि इस समय भी महाराज न बोलें तो ये लोग प्रणाम करके चले जायँगे।

इस प्रिय वचन को सुनकर महाराज ने आँख खोल दिया तो देखा बेटे वन जाने को प्रस्तुत हैं और सीताजी भी साथ मे हैं। यह देखकर तो महाराज की व्याकुलता बहुत बढ गयी। दोनो बेटे प्राण के समान हैं। यथा मेरे प्रान नाथ सुत दोउ। सो दोनो चले और महाराज जनक ने यह कहकर जानकी को सुपुर्द किया है ये दारिका परिचारिका करि पालबी करुना नई। सो मैंने यही करुणा किया कि वन भेज रहा हूँ।

दो सीय सहित सुत सुभग दोउ, देखि देखि अकुलाइ।
बारहिं बार सनेह बस, राउ लेइ उर लाइ॥७६॥

अर्थ सीताजी के सहित दोनो बेटो को देखकर महाराज आकुल हो रहे हैं। और प्रेम के वश होकर बार बार छाती से लगा लेते हैं।

व्याख्या सीताजी पर महाराज का पुत्रो से कम प्रेम नही है। मन्त्री से महाराज कहेगे एहि बिधि करेउ उपाय कदबा। फिरइ त होइ प्रान अवलबा। सीताजी पर बेटा से भी अधिक प्रेम कहने मे अत्युक्ति नही है। दोनो भाइयो के वन चले जाने पर भी सीताजी के रह जाने से महाराज जी सकते थे। सो ये भी चली। अत बार बार इन तीनो मूर्तियो को महाराज देखते है और प्रेमवश होकर बार बार कलेजे से लगाते हैं।

सकइ न बोलि बिकल नरनाहू। सोक जनित उर दारुन दाहू॥
नाइ सीसु पद अति अनुरागा। उठि रघुबीर बिदा तब माँगा॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : महाराज शोक से विकल थे। कुछ बोल नही सकते थे। शोक से उत्पन्न भयानक दाह हृदय मे हो रहा था। अत्यन्त प्रेम से चरणो मे सिर नवाकर रामजी ने उठकर विदा माँगी।

व्याख्या राम जानकी और लक्ष्मण को बार बार हृदय से लगा रहे है। कहना भी चाहते है पर मुख से शब्द नही निकलते। क्योकि शोक से कलेजा जल रहा था। दाह होने पर मनुष्य कराहता है पर दारुण दाह मे कराहते भी नही बनता। पहिले जब रामजी ने कहा था : बिदा मातु सन आवहुँ माँगी। चलिहौं बनहि बहुरि पग लागी। तब भी शोक वश होने से महाराज बोल न सके। अब माता से विदा लेकर चलते समय केवल प्रणाम करने आये हैं। फिर भी महाराज बोलने मे असमर्थ हैं।

रामजी रघुकुल मे वीर है। उत्साहवर्धनो वीर'। पिता का अत्यन्त प्रेम देखकर समझ लिया कि यहाँ ठहरना वियोग के समय की यातना को और बढाना ही है। अत अत्यन्त प्रेम से चरणो को प्रणाम किया और उठ खडे हुए और तब विदा माँगी।

पितु असीस आयसु मोहि दीजै। हरप समय बिसमउ कत कीजै ॥
तात किये प्रिय प्रेम प्रमादू। जसु जग जाई होइ अपवादू ॥२॥

अर्थ पिताजी! मुझे आशीर्वाद दीजिये और आज्ञा दीजिये। यह तो हर्ष का समय है। इसमे शोक क्यो करते हैं। हे तात! प्रिय के प्रेमवश प्रमाद करने से ससार मे यश नष्ट हो जायगा और दुर्यश होगा।

व्याख्या भाव यह कि अब मै चल रहा हूँ। मुझे आशीर्वाद दीजिये। आप पिता हैं। मेरे देवता है। आपके आशीर्वाद से सब मङ्गल होगा और कह दीजिये कि जाओ इतना आपके कह देने से मुझे कोई विघ्नबाधा न करेगा। यथा गुरु पितु मातु स्वामि सिखपालें। चलेहुँ कुमग पग परहि न खालें। मै अपना जन्म सफल करने जा रहा हूँ। अत हर्ष का समय है। इसमे विषाद को स्थान नही देना चाहिए। *मुझे कष्ट होगा यह सोचकर ही आप शोक करते है। सो मुझे हर्ष है। क्योकि मेरा* जन्म सफल होने जा रहा है।

श्रीरामजी ने देखा कि वचन देने पर उसे कार्य मे परिणत होते देखकर इस भाँति शोक करना प्रमाद है। अत पिता से कहा कि जो शोक मनाया जा रहा है इसमे कोई तत्त्व नही है। यह केवल प्रिय प्रेम प्रमाद है। इससे लाभ कुछ नही और हानि बडी भारी। क्योंकि ससार मे जो आपका यश फैला हुआ है वह नष्ट हो जायगा और अयश होगा। सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते।

सुनि सनेह बस उठि नरनाहाँ। बैठारे रघुपति गहि बाहाँ ॥
सुनहु तात तुम्ह कहुँ मुनि कहही। रामु चराचर नायकु अहही ॥३॥

अर्थ : सुनकर प्रेमवश चक्रवर्तीजी उठ खडे हुए और रामजी को बाँह

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पकड़कर बैठाया और कहा कि हे तात ! तुमको मुनि कहते हैं कि राम चर अचर सबके मालिक हैं।

व्याख्या : यह तो जाया ही चाहते हैं यह समझकर चक्रवर्तीजी आवेश में आकर उठ खड़े हुए। रामजी की बाँह पकड़ ली कि मैं जाने न दूँगा और बिठलाया कि अभी कुछ बातें करना है। मेरा प्रश्न है उसका उत्तर दे लो तो जाओ। तुम मेरे शोक को प्रिय प्रेम प्रमाद कहते हो। मैं पूछता हूँ कि प्रमाद किसका है। हमारा या तुम्हारा ? यद्यपि मेरे मन मे बात नही बैठती पर मुनि की गिरा असत्य नही हो सकती। वे कहते हैं कि राम चराचर के नायक हैं।

सुभ अरु असुभ करम अनुहारी। ईसु देइ फलु हृदयँ बिचारी ॥
करै जो करमु पाव फलु सोई। निगम नीति असि कह सबु कोई ॥४॥

अर्थ : शुभ और अशुभ कर्म के अनुसार ईश्वर हृदय मे विचारकर फल देते हैं और जो कर्म करता है वही फल पता है। यही निगम की नीति है और सब लोग भी ऐसी ही कहते है।

व्याख्या : दण्ड और अनुग्रह का नियम अनादि काल से प्रवर्तित है। शुभकर्म का शुभफल और अशुभकर्म का अशुभफल होता है। यथा : तुलसी यह तनु खेत है मन वच करम किसान। पाप पुन्य द्वै बीज है बवै सो लवै निदान। ईश्वर फल दाता है। वह शुभाशुभ कर्म का फल मात्रा प्रकार तथा काल का विचार करके देता है।

जो कर्म करता है उसका फल उसी को मिलता है। यही निगम की नीति है और सब लोग भी यही कहते है। इसमे मतभेद नही। अतः यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है।

दो. औरु करै अपराधु कोउ, और पाव फल भोगु।
अति बिचित्र भगवंत गति, को जग जानइ जोगु ॥७७॥

अर्थ : अपराध कोई और ही करे और फल भोग किसी दूसरे को मिले। यह अति विचित्र गति भगवान् की है। इसे ससार मे कौन जान सकता है ?

व्याख्या : अपराध और फल भोग मे वैषम्य होना विचित्रता है। दूसरे का दण्ड दूसरे को मिलना अति विचित्रता है। अवश्य सामञ्जस्य होगा। पर संसारी के समझ मे नही आता। उसे ईश्वर का ही प्रमाद मालूम होता है।

अपराधिनी कैकेयी तुम से निरपराध को बन भेज रही है। कहु तजि रोष राम अपराधू पूछने पर उसके पास देने के लिए कोई उत्तर नहीं है। अन्त मे उसे भी यही कहना पड़ा : तुम अपराध जोग नहिं ताता। माँग्यौ जो कछु मोहि सोहाना और मुझसे विश्वासघात किया : तुहूँ सराहसि करसि सनेहू। पहिले स्नेह करती थी सराहना करती थी। जब मैंने कहा : भामिनि भयउ तोर मन भावा तो कैकेयी ने हँसकर और गहने पहनकर मुझे धोखा दिया। मेरे साथ विश्वासघात हुआ। मेरा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



क्या दोष है ? मुझे दण्ड क्यों मिल रहा है ? यदि ईश्वर हो तो मुझे तुम्हारा प्रमाद मालूम हो रहा है। उत्तर न पाने पर कहते हैं कि भगवान् की गति जानी नहीं जाती। अत्यन्त विचित्र है अभी तक चक्रवर्तीजी को तापस अन्ध शाप का स्मरण नहीं आ रहा है।

राय राम राखन हित लागी। बहुत उपाय किये छलु त्यागी ॥
लखी राम रुख रहत न जाने। धरम धुरंधर धीर सयाने ॥१॥

अर्थ राजा ने रामजी के रखने के लिए छल छोडकर बहुत उपाय किये। रामजी का रुख लख लिया। समझ लिया कि ये नहीं रहेंगे।

व्याख्या महाराज ने जो उपाय रामजी के रखने के लिए सोचा या किया उनमे छल था। वे चाहते थ कि मैं रामजी को रहने के लिए न कहूँ रामजी स्वय जाने के लिए तैयार न हो। यथा तुम प्रेरक सबके हृदय सो मति रामहि देहु। वचन मोर तजि रहहिं गृह परिहरि सील सनेहु। अथवा उदय करहु जनि रबि रविकुलगुरु इत्यादि। परन्तु जब देख लिया कि ऐसे उपायो से काम न चलगा तब छल रहित उपाय करने लगे कि मैंने चाहे कैकेयी से जो कहा हो पर तुम्हे तो मैंने वन जाने की आज्ञा नही दी। आज्ञा वही मान्य है जो इच्छापूर्वक दी जाय। मेरी इच्छा नहीं है कि तुम वन जाओ इत्यादि।

रामजी चुप हैं। उत्तर नही देते। पहिले ही एक बात ऐसी कह दी कि उसके सामने कोई बात अडती नही। उन्होने कहा था कि यह सब प्रिय प्रेम प्रमाद है इनमे वास्तविकता नही। यदि वास्तविकता होती तो महाराज इतने विकल न होते। विकलता कह रही है कि राजा ने वन दे दिया। अयोध्या मे रुख देखकर काम होता है। ससार का नियम है कि प्रधान का रुख सभी देखते हैं। रामजी की प्रधानता इसी से सिद्ध है कि स्वय चक्रवर्तीजी रुख देखते हैं और को कौन कहे स्वय गुरुजी सबको रामजी के रुख रखने का उपदेश देते हैं। यथा राखे राम रजाइ रुख हम सबकर हित होइ इत्यादि। महाराज यह भी जानते है कि रामजी धर्मधुरन्धर हैं। ये धर्म से न हटेंगे। सयाने धीर हैं। धर्म के मर्म को समझते हैं।

तब नृप सीय लाइ उर लीन्ही। अति हित बहुत भाँति सिख दीन्ही ॥
कहि बन के दुख दुसह सुनाये। सासु ससुर पितु सुख समुझाये ॥२॥

अर्थ तब महाराज ने सीताजी को हृदय से लगा लिया और अत्यन्त प्रेम से बहुत प्रकार से शिक्षा दी। वन के न सहने योग्य दु खो को कह सुनाया। सास ससुर और पिता के सुखो को समझाया।

व्याख्या चक्रवर्तीजी का प्रेम सीताजी पर ठीक बेटी की भाँति है। गोद मे लेकर समझा रहे है। यथा

दो सासु ससुर जोगवत रहत तथा यथा पितु मात।
बेटी तू नहिं सहि सकिहि बिकट बिपिन उतपात ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सोई कारज कीजिये जामे होइ निवाह।
नहिं पिपीलिका को उचित लेन सिंधु की थाह ॥२॥
कानन कानन ते सुन्यौ कानन बडी बलाय।
जहँ वसिबे को को कहै आँखि देखि नहिं जाय ॥३॥
हिंसक जीवन ते भरो कुशकण्टक भरिपूरि।
ठाम नही विश्राम को विपिन विपत्ति अति भूरि ॥४॥
कटुकपाय फल असन वन, वमन छाल अरु पात।
विना त्रान अति, विषम हिमि आतप वर्षा बात ॥५॥
सब सुपास गृहवास सुख लखत रहत रनिवास।
सखी करत मनुहारि मुख जोहँत दासी दास ॥६॥
सब सुख अवध विदेहपुर रहहु जहाँ मनमान।
सीख मानि मम पुत्रि जनि कानन करहु पयान ॥७॥

सिय मनु राम चरन अनुरागा। घरु न सुगमु बनु बिषमु न लागा ॥
औरउ सबहि सीय समुझाई। कहि कहि बिपिन बिपति अधिकाई ॥३॥

अर्थ : सीताजी का मन रामजी के चरणो मे अनुरक्त था। उनको घर रहने मे सुभीता और वन मे असुभीता नही मालूम पडा और सबों ने भी वन की विपत्तियो का बढा बढाकर वर्णन करते हुए समझाया।

व्याख्या : रामचरन पकज रति जिनही। विषय भोग वस करहि कि तिनही। रमा विलास राम अनुरागी। तजत वमन जिमि नर बड़भागी। फिर जगदम्बा को घर सुगम और वन विषम कैसे मालूम हो? सभी लोग एक मुख से वन के दु:ख को बढा बढ़ाकर समझाने लगे। ऐसी नीति है कि कार्यसिद्धि के लिए रोचक भयानक बातें कही जाती है। यथा :

छप्पय : वन निर्जन झन झनत चलत सन सन समीर खर।
भूमि तपत ज्यौं भाड अगिनि वरसत दिनकर कर ॥
जहँ तहँ बीछी व्याल फिरत गज भालु वाघ हरि।
दिनहि भूत वेताल नचत विकराल रूप धरि ॥
जीवजतु जरि जरि मरें जब दावानल लगि परें।
याते तू बन जान को ध्यान वधू जनि उर धरें ॥

लक्ष्मणजी को कोई नही समझाता क्योकि वे तो रामजी के बाटे : हिस्से पडे हुए हैं। यथा : लखन राम के नेव। दूसरी बात यह भी है कि यदि रामजी वन जायँ तो लक्ष्मणजी का साथ जाना सबको प्रिय है। ये वीर हैं। रामजी के साथ सब कष्ट सह लेंगे और रामजी भी अकेले न रहेंगे भाई का साथ रहेगा।

सचिव नारि गुरु नारि सयानी। सहित सनेह कहहिं मृदु बानी ॥
तुम्ह कहुँ तौ न दीन्ह बनबासू। करहु जो कहहिं ससुर गुर सासू ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : मन्त्री और गुरु की सयानी स्त्रियाँ स्नेह के साथ कोमल वाणी में कहने लगी कि तुमको तो वनवास नही दिया। इसलिए जैसा ससुर गुरु और सास कहे वैसा करो।

व्याख्या : भारी उत्पात सुनकर इस समय जो स्त्रियाँ महलो मे आती जाती हैं वे सभी आगयी हैं। मर्दों के समझाने का प्रभाव सीताजी पर पड़ते न देखकर मन्त्री की स्त्रियाँ और गुरुजनो की स्त्रियाँ सीताजी को समझाने लगी। स्नेह के साथ मृदु वाणी से समझाने का बडा प्रभाव पडता है। फिर पुन ये तो बड़ी बूढ़ी है। स्त्री धर्म और स्त्री हृदय की जाननेवाली है। रामजी जो इस समय सुख दुख को न गिनकर वन जाने को प्रस्तुत हैं तो उनके लिए कारण है। उन्हे वनवास मिला है। तुमको तो वनवास नही दिया है। तो जिसका वचन मानकर रामजी वन जाते हैं उसका वचन तुम भी शिरोधार्य करके घर रहो। पतिरेको गुरुः स्त्रीणाम् यह ठीक है। पर ससुर गुरु और सास तो गुरणा गुरु. हैं। वे जो कहे सो तुम्हे कर्त्तव्य है।

दो. सिख सीतलि हित मधुर मृदु, सुनि सीतहि न सोहानि।
सरद चद चदिनि लगत, जनु चकई अकुलानि ॥७८॥

अर्थ : शीतल हित मधुर और कोमल शिक्षा सीताजी ने सुनी। पर उन्हे अच्छी न लगी। जैसे शरच्चन्द्र की चाँदनी के लगने से चकई व्याकुल हो जाता है।

*व्याख्या :* चाँदनी रात सबको प्रिय होती है पर चकई को नही। क्योकि उसमे पति का विछोह होता है। शरद की चाँदनी रात और भी दाहक होती है। सो सरकार ने जो शिक्षा दी वह शरद्चन्द निशि की भाँति दाहक हुई। यथा : सीतल सिख दाहक भइ कैसे। चकइहि सरदचन्द निसि जैसे। पर सचिव नारि गुरु नारि सयानी की शिक्षा तो शरद्चन्द चाँदनी की भाँति अति अधिक दाहक हुई। भगवती व्याकुल हो उठी। शिक्षा का गुणाधिक्य दाहाधिक्य का कारण हो गया है। सरकार की शिक्षा शीतल थी। इसलिए उसे शरद्चन्द निशि कहा। सचिव नारि गुरु नारि सयानी की शिक्षा सीतल हित मृदु मधुर थी। इसलिए शरद्चन्द की चाँदनी से उपमित कर रहे हैं। स्नेह के सहित शिक्षा दे रही हैं। अतः शोतल है। तुम कहँ तौ न दीन्ह वनबासू। यह हित की बात है। करउ जो कहहिं ससुर गुरु सासू। यह मधुर शिक्षा है और मृदुवाणी मे कहती हैं। यह मृदुता है। शरद्चन्द चाँदनी मे शीतलता लाभ मधुरता और मृदुता होती है। अत इससे शिक्षा का उपमित किया।

सीय सकुच वस उतरु न देई। सो सुनि तमकि उठी कैकेई ॥
मुनि पट भूषन भाजन आनी। आगे धरि बोली मृदु बानी ॥१॥

अर्थ : सीताजी सङ्कोचवश उत्तर नही देती हैं। यह सुनकर कैकेयी तमक उठी। मुनियो का वसन भूषण और बरतन लाकर आगे रक्खा और मीठी वाणी बोली।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : जिस इन्द्रिय से जिस विषय का ग्रहण होता है उसी से उसके अभाव का भी ग्रहण होता है। इसी से उत्तर न देने का सुनना कहते हैं। उत्तर प्रत्येक बातों का है। पर कुलवधू सीताजी इतने बड़े जनसमाज में सङ्कोच से उत्तर नहीं देती। कैकेयी से यह सहन न हुआ। वह समझती है कि सीता भी यदि साथ चली जावे तो सम्भव है कि ये वन से न लौटें। ये सब इतना प्रयत्न इसलिए कर रहे हैं जिसमें रामजी अवश्य वन से लौटें। ये सब हमारी शत्रु हैं। अतः क्रोध के वेग में आकर उठ खड़ी हुईं।

राजदरबार है। मुनियों की विदाई के लिए मुनि पट भूषण भाजन आदि सभी वस्तुएँ प्रस्तुत रहती हैं। अतः मुनि पट भूषण और भाजन उठा लायी। जिसमें वहाँ से ही वेष बदलकर वन में जायँ। जो लोग आज छत्रचामर के साथ चलते देखने के लिए उत्सुक थे वे अपने प्रिय को मुनि वेष में जाते देख लें और बात भी थी कि मुनि पट भूषण सामने रखते ही रामजी धारण कर लेंगे। तब समझाना बुझाना भी बन्द हो जायगा और व्यर्थ जो देर हो रही है वह न होगी। उन पट भूषण भाजनों को रामजी के सामने ला रक्खा और बोली :

नृपहि प्रान प्रिय तुम रघुबीरा। सील सनेह न छाँडिहि भीरा ॥
सुकृतु सुजसु परलोकु नसाऊ। तुम्हहि जान बन कहिहि न काऊ ॥२॥

अर्थ : रघुवीर ! तुम महाराज को प्राणप्रिय हो। सो यह भीड़ शील सनेह न छोड़ेगी। चाहे पुण्य सुयश और परलोक भले ही नष्ट हो जाय पर तुम्हें वन जाने को कोई न कहेगा।

व्याख्या : रानी कैकेयी कहती है कि तुम रघुकुल के वीर हो। साहस का कार्य करने में समर्थ हो। यहाँ इतना साहस किसी का नहीं है कि तुम्हें वन जाने को कहे। महाराज को तुम प्राणप्रिय हो। वे अपने मुँह से कहेंगे नहीं और यह जो लोगों की भीड़ लगी हुई है यथा : भइ बड़ि भीर भूप दरबारा उनमें किसका साहस है कि राजा के प्राणप्रिय को वन जाने की सम्मति दे। इन लोगों को इस बात से क्या मतलब कि महाराज का सुकृत सुयश और परलोक नष्ट हो रहा है। ये राजा की प्रसन्नता के लिए शील और स्नेह जनाते ही रहेंगे।

अस बिचारि सोइ करहु जो भावा। राम जननि सिख सुनि सुख पावा ॥
भूपहि बचन बान सम लागे। करहिं न प्रान पयान अभागे ॥३॥

अर्थ : ऐसा विचार करके जो तुम्हें अच्छा लगे सो करो। रामजी ने माता की शिक्षा सुनकर सुख पाया। राजा को ये वचन बाण के समान लगे। कहने लगे कि अभागे प्राण निकलते भी नहीं।

व्याख्या : कैकेयी कहती है कि अब बात तुम्हारे ऊपर है। चाहे इन वसन भूषण भाजनों को धारण करो और वन जाओ चाहे न जाओ। इस व्यर्थ के प्रपञ्च में कुछ रक्खा नहीं है। माँ की शिक्षा सुनकर रामजी को तो सुख हुआ। बड़े शील

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सङ्कोच में पडे हुए थे। उसको तोड़ना न पड़ा। माँ ने रास्ता साफ कर दिया। परन्तु ये वचन जिसमे महाराज पर भी आक्षेप था, हितचिन्तकों पर भी आक्षेप था, सीताजी के रोकने के प्रयत्न का मूलच्छेदन करनेवाला था महाराज को बाण की भाँति लगे। वे कह चुके थे : जब लगि जिअउँ कहउँ कर जोरी। तब लगि जनि कछु कहेसि बहोरी। जानते थे कि जो बात इसके मुख से निकलेगी वह मर्म को काटनेवाली ही होगी। पर कैकेयी ने न माना। बाण की भाँति चोट करनेवाली वाणी फिर बोली : जीभ कमान बचन सर नाना। मनहुँ महिप मृदु लच्छ समाना। जनु कठोरपन धरे सरीरू। सिखइ धनुष बिद्या बड बीरू। महाराज इस चोट को न सह सके। अभागे प्राण जाते भी नही ऐसा कहकर मूर्च्छित हो गये।

लोग बिकल मुरिछित नरनाहू। काह करिअ कछु सूझ न काहू॥
रामु तुरत मुनि बेषु बनाई। चले जनक जननी सिरु नाई॥४॥

अर्थ : लोग विकल हो उठे। राजा मूर्च्छित हो गये। किसी को नही सूझता कि क्या करें। इधर रामजी ने तुरन्त मुनि वेष बनाया और पिता माता को सिर नवाकर चले।

व्याख्या : मुनि पट भूषण भाजन को रामजी के सामने ला रखने से कुछ कहने सुनने का मार्ग ही अवरुद्ध हो गया। अब तो यही शेष है कि रामजी उसे धारण करें और वन चले जायँ। अत. सब लोग विकल हो उठे। महाराज को मूर्च्छा हो गयी। रामजी ने इस अवसर से लाभ उठाया। जानते थे कि मुनिवेष में देखकर महाराज तत्काल प्राणत्याग करेंगे। अत इन्होने मुनिवेष धारण मे जल्दी की जिसमे महाराज की मूर्च्छितावस्था मे ही बाहर निकल जायँ और महाराज दशरथ तथा रानी कैकेयी को सिर नवाकर चल पडे।

दो. सजि बन साजु समाजु सब, बनिता बंधु समेत।
बंदि बिप्र गुरु चरन प्रभु, चले करि सबहि अचेत॥७९॥

अर्थ : वन का साज समाज सजकर स्त्री और भाई के सहित ब्राह्मण और गुरु की वन्दना करके तथा सबको अचेत करके चले।

व्याख्या : मुनि पट भूषण का धारण करना साज सजना है। भाई और स्त्री को साथ लेना और उन्हे भी मुनि पट भूषणयुक्त करना समाज सजना है। सो साज समाज ठीक करके सीता जी और लक्ष्मण जी के साथ चले। मुनि पट भूषण भाजन के सामने रख देने से महाराज मूर्च्छित हो गये और उनके धारण करने पर सब अचेत हो गये। चलने के पहिले सरकार ने अभेद्य कवच धारण कर लिया अर्थात् ब्राह्मण और गुरु को प्रणाम कर लिया। यथा : कवच अभेद्य बिप्र गुरु पूजा।

निकसि बसिष्ठ द्वार भये ठाढे। देखे लोग बिरह दव दाढे॥
कहि प्रिय बचन सकल समुझाए। बिप्र बृंद रघुबीर बुलाए॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : निकलकर वसिष्ठजी के दरवाजे पर खड़े हुए। देखा कि सब लोग विरह के दावानल से झुलसे हुए हैं। प्रिय वचन कहकर सबको समझाया। फिर रघुवीर ने ब्राह्मणों को बुलाया।

व्याख्या : अवसि फिरब गुरु आयसु मानी। अब सरकार को लौटानेवाला केवल गुरु का आदेश ही है। ऐसा न हो कि कुछ दूर जाने के बाद गुरु की आज्ञा लेकर कोई पहुँचे कि लौट चलो। अतः गुरुजी के घर से ही प्रस्थान उचित है। दूसरे गुरु या ब्राह्मण के घर से ही प्रस्थान शास्त्र सम्मत है। अतः गुरुजी के द्वार पर खड़े हो गये। सब लोग साथ साथ चल रहे हैं। उनकी दशा देखा कि विरह के दावानल से मानो झुलसे हुए हैं। बिधि कैकेयी किराततिनि कीन्ही। जेहि दव दुसह दसहुँ दिसि दीन्ही। सरकार ने प्रिय वचन कहकर सबको समझाया यथा :

दोहा : हितकारी भारी सबै सब विधिते तुम मोर।
समय देखि धीरज धरहु करहु न निज मन थोर॥
वेगि लौटिहैं अवध हम केवल अवधि बिताय।
जाते नृप धीरज धरै सब मिलि करहु उपाय॥
भरत सुजान सुशील शुचि मोहि प्रिय प्रान समान।
धर्म शील पालिहि प्रजहि सब गुन भवन अमान॥

इस भाँति सबको समझाने के बाद रघुवीर ने ब्राह्मण समाज को बुलाया। सरकार धर्मवीर हैं, दानवीर हैं, दयावीर हैं : यहाँ उन्ही गुणों से अधिक काम लिया गया है। अतः श्री गोस्वामीजी उनके लिए बार बार रघुवीर शब्द का प्रयोग करते हैं।

गुरु सन कहि बरषासन दीन्हे। आदर दान विनय बस कीन्हे॥
जाचक दान मान संतोषे। मीत पुनीत प्रेम परितोषे॥२॥

अर्थ : गुरुजी से कहकर वर्ष भर के लिए भोजन दिया और उन्हे आदर दान और विनय से वश कर लिया। तत्पश्चात् मंगनो को दान और सम्मान से सन्तुष्ट किया और मित्रों को पवित्र प्रेम से परितोष किया।

व्याख्या : एक वर्ष से अधिक अन्न रखने की आज्ञा ब्राह्मणों को शास्त्रतः नही है। अतः विप्रवृन्द को वर्षासन दिया। सरकार नित्य अन्न दान करते है। वन में दान के लिए अन्न नही मिलेगा। अतः प्रभूतान्न दान आज किया जा रहा है। अब अपने महल मे न जायँगे। अतः गुरुजी से कहा कि इन लोगो को अन्न दे दिया जाय। ब्राह्मणो के वश करने की विधि कहते हैं कि ये आदर दान और विनय से वश होते हैं। इन्हे वश करने की दूसरी विधि नही है। ब्राह्मणो के वश करने मे इनसे अतिरिक्त दूसरी विधि के प्रयोग से राजा भानुप्रताप मारे पड़े।

याचक को दान देनेवाले तो अनेक है। पर उनका सम्मान करनेवाला कौन है? और सम्मान ही सबसे बड़ा दान है। यथा : तुलसी कहत पुकारि के सुनहु सकल

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दै कान। भूमिदान गजदान ते बडो दान सम्मान। सो सरकार याचको को भी सम्मान पूर्वक दान दे रहे है। जो सरकार के मित्र हैं उन्हे किस बात की कमी है। ये तो केवल प्रेम के भूखे है। उन्हे पवित्र प्रेम से परितुष्ट किया अर्थात् अत्यन्तप्रेम से मिले।

दासी दास बोलाइ बहोरी। गुर्रहि सौंपि बोले कर जोरी ॥
सब कै सार सभार गोसाईं। करबि जनक जननी की नाईं ॥३॥

अर्थ : फिर दासी दासो को बुलाया। उन्हे गुरुजी को सुपुर्द करके हाथ जोडकर बोले कि हे गोसाईं! इनकी देखभाल माँ बाप को भाँति कीजियेगा।

व्याख्या . सरकार को दास बडे प्रिय है। यथा . तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निजदासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा। अत उन्हे गुरुजी को सौंपते हैं और हाथ जोडकर विनय करते हैं कि इनकी देखभाल माँ बाप की भाँति कीजियेगा। भाव यह कि बाप माँ बच्चो के सब अपराध सहन करते हैं। मैने भी इनके अपराधो को बाप माँ की भाँति सहन किया है और प्रतिपालन किया है। उसी भाँति आप भी इनके अपराधो को क्षमा करके इनका पालन करियेगा इससे यह पता चलता है कि सरकार ने अपनी निजी सम्पत्ति को गुरुजी के सुपुर्द किया।

बारहिं बार जोरि जुग पानी। कहत रामु सब सन मृदु बानी ॥
सोइ सब भाँति मोरि हितकारी। जेहि ते रहइ भुआल सुखारी ॥४॥

अर्थ : बार बार हाथ जोडकर रामजी सबसे कोमल वाणी से कहते है कि वही मेरा सब प्रकार से हितकारी हैं जिससे महाराज सुखी रहे।

व्याख्या : रामजी कहते हैं कि आपलोग सभी मेरे हितकारी है। पर सब प्रकार से मेरा हितकारी वही है जो महाराज को सुख सम्पादन मे कृतकार्य हो। भाव यह कि रामजी महाराज को प्रजावर्ग के सुपुद कर रहे हैं। अत सबसे यही विनय हाथ जोड़कर बार बार कह रहे है।

दो. मातु सकल मोरे बिरह, जेहि न होंहि दुख दीन।
सोइ उपाय तुम्ह करेहु सब, पुरजन परम प्रबीन ॥८०॥

अर्थ : मेरी सब माताएँ मेरे विरह से जिसमे दु ख से दीन न हो हे परम प्रवोण पुरजन! वही उपाय आप लोग करियेगा।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि हे पुरजन! आप लोग परम प्रवीण है। मेरे विरह मे माताएँ सब दु:खी हैं। वे लोग जब सुनेंगी कि प्रजा रामजो के विरह से अत्यन्त दु खी हैं तो उनके दुःख का पारावार न रहेगा। वे दु ख से दीन हो जायेंगी। अत. आप लोग मेरे चले जाने पर शोक न मनाइयेगा। यथा : कौसल्यादि सकल महतारी। तेउ प्रजा सुख होंहि सुखारी। आप लाग आपस मे मिलकर सुख से रहने की चेष्टा कीजियेगा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रामजी पिता माता को प्रजावर्ग के सुपुर्द कर रहे है। उन्हे भय है कि उनके चले जाने पर प्रजा महाराज की निन्दा करेगी। विरोध करेगी। भरत के राज्य का स्वागत नही करेगी। इससे माता पिता का कष्ट अधिक बढ जायगा। अत. उनको सुख पहुँचाने का भार रामजी प्रजा पर ही छोड रहे है।

एहि विधि राम सबहि समुझावा। गुरु पद पदुम हरषि सिरु नावा ॥
गनपति गौरि गिरीसु मनाई। चले असीस पाइ रघुराई ॥१॥

अर्थ. इस प्रकार रामजी ने सबको समझाया। गुरुजी के चरणकमल मे हर्षित होकर सिर नवाया और गणेश गौरी और महेश को मनाकर आशीर्वाद पाकर रघुराज चल पडे।

व्याख्या: कहि प्रिय वचन सकल समुझाये से उपक्रम करके विप्रमण्डली याचकगण, दासी, दास, प्रजावर्ग से यथोचित मिलना कहा। अब एहि बिधि राम सबहि समुझाये कहकर इस प्रसङ्ग का उपसहार करते है। अब गुरुजी को प्रणाम करके प्रस्थान करना कहते है। प्रस्थान के समय हर्ष का होना मङ्गल सूचक है। छूट जानि बन गमन सुनि उर अनद अधिकान कहा था। सुनने से हर्ष हुआ था। अब तो वस्तुत छुट्टी हो गयी। अत सरकार हर्षित है। गणपति गौरी गिरीश प्रत्यक्ष नही हैं। अत उनकी मानसवन्दना कहते है। स्वय स्त्री और अनुज के साथ यात्रा कर रहे हैं। अत अपने इष्टदेव की वन्दना भी स्त्री पुत्र के साथ ही करते हैं। गणपति गौरी गिरीश का ध्यान परिपूर्ण ब्रह्म का ध्यान है। शिवजी निर्गुण ब्रह्म है। उनकी गोद मे मूलशक्ति गौरी है और उनके गोद मे सगुण ब्रह्म गजानन है। गुरुजी ने प्रत्यक्ष आशीर्वाद दिया और गणपति गौरी गिरीश ने अन्तर्हित होकर आशीर्वाद दिया।

रामु चलत अति भयेउ विषादू। सुनि न जाइ पुर आरत नादू ॥
कुसगुन लक अवध अति सोकू। हरष विषाद विवस सुरलोकू ॥२॥

अर्थ. रामजी के चलने के समय बडा विषाद हुआ। नगर का आर्त्तनाद सुना नही जाता था। लङ्का म अपशकुन होने लगे। अयोध्या मे अति शोक छा गया। देवता लोग हर्ष और विषाद के वश हो गये।

व्याख्या लोगो को अति विषाद तो उसी समय हुआ जब रामजी माता से विदा माँगने चले। यथा अति बिषाद बस लोग लोगाई। गये मातु पहँ राम गोसाँई। पर रामजी को वन जाते देखकर वह विषाद असह्य हो गया। लोग फूटकर रोने लगे। नगर भर मे ऐसा आर्तनाद होने लगा कि सुनते नही बनता था। सुननेवाले का कलेजा फटने लगता था।

सरकार की यह यात्रा वस्तुत लङ्काविजय यात्रा का पूर्व रूप था। अत लङ्का मे अपशकुन हुए। अयोध्या मे अति शोक छा गया। कवि ने यहाँ यात्रा की दोनो सीमाओ की व्यवस्था कही। अभिषेक मे विघ्नाचरण करनेवाले देवताओ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



को तो प्रसन्नता होनी चाहती थी। पर इस आर्तनाद से उनके हर्ष मे भी शोक का अनुवेध हो गया।

गई मुरुछा तब भूपति जागे। बोलि सुमंत्रु कहन अस लागे ॥
रामु चले वन प्रान न जाहीं। केहि सुख लागि रहत तन माहीं ॥३॥

अर्थ : तब मूर्च्छा गयी। राजा जगे। सुमन्त्र को बुलाकर कहने लगे कि राम तो वन को चले पर प्राण नही जा रहे है। किस सुख के लिए अब शरीर मे टिके हुए हैं।

व्याख्या · पुर मे आर्तनाद जब होने लगा तब महाराज की मूर्च्छा गयी। जागकर सुमन्त को बुलाया। महाराज की बडी आस्था सुमन्त्र पर है। भूपति कहने का भाव यह कि प्रजा का आर्तनाद सुनकर जाग उठे। सुमन्त्र भी कही अचेत पड़े थे। बुलाने पर आये। राजा जब मूर्छा से जगे तो रामजो को नही पाया। नगर के आर्तनाद से जान लिया कि रामजी जा रहे हैं। सुमन्त्र से कहने लगे कि प्राणप्यारे राम तो जा रहे हैं। पर प्राण उनका साथ नही दे रहा है। एक ही तो अभिलाषा मेरे मन मे थी वह बुरी तरह से भङ्ग हो गयी। अब किस सुख की आशा से प्राण शरीर मे टिके हुए हैं।

एहि तें कवन ब्यथा बलवाना। जो दुखु पाइ तजहिं तनु प्राना ॥
पुनि धरि धीर कहइ नरनाहू। लै रथु संग सखा तुम्ह जाहू ॥४॥

अर्थ . इससे कौन सी पीड़ा बलवती है। जिस दु ख के पाने से प्राण शरीर को छोड़ता है। फिर धैर्य धरकर राजा कहते हैं कि हे सखे! तुम रथ लेकर साथ जाओ।

व्याख्या · महाराज को शिरोच्छेदन से अधिक पीडा राम विरह मे है। यथा : माँगु माथ अबही देउँ तोही। रामबिरह जनि मारेसि मोही। अत मन्त्री से पूछते हैं कि क्या इस पीडा से भी अधिक कोई दु ख है जिसे पाकर प्राण शरीर छोडता है ? मन्त्री से कोई उत्तर न पाकर धैर्य धारण करके राजा ने कहा कि मित्र! तुम रथ लेकर साथ जाओ। भाव यह कि तुम्हारा जाना मेरे जाने के बराबर है। रामजी के हृदय मे तुम्हारा बड़ा आदर है। यथा राम सुमन्त्रहिं आवत देखा। आदरु कीन्ह पिता सम लेखा। अत. तुम स्वयं रथ लेकर रामजी के साथ जाओ।

दो. सुठि सुकुमार कुमार दोउ, जनकसुता सुकुमारि।
रथ चढाइ देखराइ बनु, फिरेउ गयें दिन चारि ॥८१॥

अर्थ : दोनो कुमार अति सुकुमार हैं और जनकसुता सुकुमारी हैं। सो रथ चढाकर वन दिखलाकर चार दिनो म लौट आना।

व्याख्या · श्रीमद्भागवत मे जनकनन्दिनी से अधिक सुकुमार सरकार को माना है। यथा . प्रियायाः पाणिस्पर्शाक्षमाभ्याम् मृदितपथरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम्।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इसलिए दोनों राजकुमारों को सुठि सुकुमार और जनकसुता को केवल सुकुमारी कहते हैं। भाव यह कि ये लोग पैदल चलने में समर्थ नहीं। इन्हे रथ पर चढ़ाकर वन के साथ इनका चक्षुःसंयोग मात्र करा दो और चार दिन मे लौटा लाओ। कह देना कि वनवास की अवधि में महाराज ने सङ्कोच करके केवल चार दिन का कर दिया। अतः अब घर लौट चलो।

जौं नहि फिरहिं धीर दोउ भाई। सत्यसंध दृढ़ ब्रत रघुराई॥
तौ तुम्ह बिनय करेहु करजोरी। फेरिअ प्रभु मिथिलेसकिसोरी॥१॥

अर्थ : यदि दोनो भाई न फिरें क्योकि धीर हैं, सत्यसन्ध है, दृढ़व्रत हैं, रघुराई हैं तो तुम हाथ जोड़कर विनय करना कहना कि प्रभो! मिथिलेश की बेटी को लौटा दीजिये।

*व्याख्या* : चार कारण न फिरने के है। रघुराई है : रघुकुल की प्रतिष्ठा बिगड़ने न देंगे। धीर है : सङ्कट से मुँह न मोड़ेंगे। सत्यसन्ध हैं : कैकेयी से वचनवद्ध भी हो चुके है। मुनिव्रत ग्रहण कर लिया है। दृढव्रत होने के कारण उसे न छोड़ेंगे।

महाराज मिथिलेशकिशोरी के लिए अतिआर्त है। सुमन्त्र से कहते हैं कि पहिला प्रयत्न तो सबके लौटाने के लिए करना। असफल होने पर तुम हाथ जोड़कर विनय करना। तुम्हारी विनय रामचन्द्र न टालेंगे। कहना कि प्रभो आप समर्थ हैं। आप जानकी को लौटा सकते हैं। आपकी आज्ञा पतिदेवता सुतीयमणि कभी नही टालेंगी। मैने जानकी को तो समझाया। पर रामचन्द्र को जानकी के लिए आज्ञा देने की बात कहने का अवसर न मिला।

जब सिय कानन देखि डेराई। कहेउ मोर सिख अवसरु पाई॥
सासु ससुर अस कहेउ सँदेसू। पुत्रि फिरिअ बन बहुत कलेसू॥२॥

अर्थ : जब सीता वन देखकर डरे तो अवसर पाकर मेरी शिक्षा कहना कि सास ससुर ने ऐसा कहा है कि बेटी! लौट चलो वन मे बड़ा क्लेश है।

व्याख्या : अब रह गयी यह बात कि यदि वह किसी का कहना पातिव्रतधर्म को अग्रसर करके न माने तब तुम अवसर देखना। अवसर पर की कही हुई बात प्रभाव डाले बिना नही रहती। सीता नही जानती कि वन कैसा है। वह उसे एक बड़े बगीचे के रूप मे समझती है। वह स्वभाव से बड़ी भीरु है। चित्र मे लिखे हुए बन्दर को देखकर डरती है। वन देखकर अवश्य डरेगी। वही अवसर मेरी शिक्षा के कहने का है। साथ ही साथ कौसल्या की ओर से भी कहना। क्योकि ससुर से अधिक सास का प्रभाव वधू पर होता है। उससे दोनों की ओर से कहना कि बेटी! फिर चलो अभी तो तुमने वन में प्रवेश किया है। वन में बड़ा कष्ट मिलता है। उत्तरोत्तर कष्ट बढता हो जायगा। तुम सहन के योग्य नहीं हो।

पितुगृह कबहुँ कबहुँ ससुरारी। रहेहु जहाँ रुचि होइ तुम्हारी॥
एहि बिधि करेहु उपाय कदंबा। फिरइ त होइ प्रान अवलंबा॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ चाहे बाप के घर चाहे ससुराल जहाँ तुम्हारी रुचि हो वहाँ रहना। इस भाँति बहुत से उपाय करना। यदि लौट आवे तो प्राण को [1]सहारा मिल जाय।

व्याख्या कुलवधू माता पिता और श्वसुर सास की सम्मति से कभी पितृगृह मे रहती है और कभी पतिगृह मे रहती है। महाराज ने कहलाया कि तुम्हारी जबतक रुचि हो तबतक अयोध्या मे रहना। जबतक रुचि हो तबतक जनकपुर रहना। मेरा यह आग्रह नही है कि तुम वन से लौटकर अयोध्या मे ही रहो। जहाँ रहने से जितने दिनो तक जी बहले तबतक अपनी रुचि के अनुसार रहना।

इस प्रकार से प्रलोभन देना और जो जो उपाय तुम्हे उपयुक्त प्रतीत हो सो सब करना। यदि सीता किसी प्रकार से लौट आवे तो मेरे प्राण को अवलम्ब मिल जाय। भाव यह कि महाराज को सीताजी भी उतनी ही प्रिय हैं जितने कि रामजी हैं। श्रुति कहती है कि स्त्री पुरुष का आधा शरीर है। अत सीताजी के रहने से मानो आधे शरीर से वे ही विद्यमान हैं। अत प्राणवियोग न होगा। कष्ट चाहे जितना हो।

नाहिं त मोर मरनु परिनामा। कछु न बसाइ भये बिधि बामा॥
अस कहि मुरुछि परा महि राऊ। राम लखनु सिय आनि देखाऊ॥४॥

अर्थ नही तो इसका परिणाम मेरी मृत्यु ही है। विधाता के बायें होने से कोई वश नही चलता। ऐसा कहके राजा मूर्च्छा खाकर गिर गये कि राम लक्ष्मण और सीता को लाकर दिखला दो।

व्याख्या सीता के लौट आने की आशा से ही मैं जी रहा हूँ। राम लक्ष्मण के लौटने की आशा तो बहुत कम है। यदि सीता भी नही लौटी तो इसका परिणाम यह होगा कि मै मर जाऊँगा। विधाता बायें होने पर कोई वश नही चलता। कहते कहते महाराज अधीर हो गये। बोले कि राम लक्ष्मण और सीता को लाकर दिखा दो और मूर्च्छित होकर गिर गये। पहिले भी मूर्च्छित थे और इतनी बात कहके फिर मूर्च्छित हो गये। महाराज की हालत ऐसी नाजुक हो रही है।

दो पाइ रजायसु नाइ सिरु, रथु अति बेग बनाइ।
गयउ जहाँ बाहेर नगर, सीय सहित दोउ भाइ॥८२॥

अर्थ राजाज्ञा पाकर सिर नवाया और अत्यन्त त्वरा के साथ रथ जोतकर नगर के बाहर जहाँ सीता के सहित दोनो भाई थे वही गये।

व्याख्या सुमन्त्र ने महाराज की मूर्च्छा की ओर ध्यान नही दिया। ध्यान देनेवाले बहुत लोग थे। रामजी के पास जल्दी पहुँचने की आवश्यकता थी। महाराज को सिर नवाया और फुरती से रथ जोतकर चले। तबतक रामजी नगर के बाहर

---

१ पूर्व जन्म में युगल मूर्ति वरद होकर प्रकट हुई थी। अत एक के रह जाने से प्राण को सहारा मिलने की बात कह रहे हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पहुँच चुके थे। रामजी का एक पग पैदल चलना सुमन्त्रजी को असह्य था। राजाज्ञा मात्र की देर थी।

तब सुमंत्र नृप वचन सुनाए। करि बिनती रथ रामु चढाए ॥
चढि रथ सीय सहित दोउ भाई। चले हृदयँ अवधहि सिरु नाई ॥१॥

अर्थ : तब सुमन्त्र ने राजा का वचन सुनाया और प्रार्थना करके रामजी को रथपर चढाया। सीताजी के सहित दोनो भाई रथ पर चढ़कर अवध को प्रणाम करके चले।

व्याख्या : सुमन्त्र ने रथपर से ही कहा कि महाराज ने आपके लिए रथ भेजा है और कहा है कि आप लोग रथ पर चढकर जायँ पैदल न जायँ और अपनी ओर से भी प्रार्थना की। सरकार रथ पर चलना उचित नही समझते थे। सुमन्त्रजी ने विनती की कि आवश्यकता पड़ने पर मुनिजी रथ पर चढते ही है। मुनिव्रत मे रथ पर चढना निषिद्ध नही है। यथा : तेहि रथ रुचिर वसिष्ठ कहँ हरषि चढ़ाइ नरेस।

तब दोनो भाई सीताजी के सहित रथ पर सवार हुए और चले। अवध को प्रणाम किया। यहाँ अवध से अयोध्या नगर अभिप्रेत है अयोध्या प्रान्त नही। कर्मणा और वाचा प्रणाम करने से कही लोगो की यह धारणा न हो कि अब ये अयोध्या न लौटेंगे। अतः मनसे ही प्रणाम किया। नगर के बाहर पहुँचने पर रथ आया। अत. नगर को प्रणाम करते हैं। अयोध्या मोक्षपुरी है। जन्मभूमि है। महाप्रभावा है। अत प्रणाम किया।

चलत रामु लखि अवध अनाथा। विकल लोग सब लागे साथा ॥
कृपासिधु वहुबिधि समुझावहिं। फिरहिं प्रेम बस पुनि फिरि आवहि ॥२॥

अर्थ : राम को चलते अवध को अनाथ देखकर लोग विकल होकर साथ लग गये। कृपासिन्धु रामजी वहुत समझाते है। लोग फिर भी जाते हैं पर प्रेमवश फिर लौट आते हैं।

*व्याख्या* : रामजी को इस प्रकार जाते देखकर लोगो ने विचारा कि अवध तो अनाथ हो गया। यथा : मैं बन जाउँ तुमहि लै साथा। होइ सबहि बिधि अवध अनाथा। अतः लोग विकल होकर अनाथ नाथ के साथ लगे : अयोध्या खाली पड़ जाती है। लोग सरकार के साथ वनवास के लिए चले।

सरकार कृपासिन्धु हैं। लोगो के कष्ट का ध्यान करके उन्हे लौटने के लिए अनेक प्रकार से समझाते है। यथा :

सवैया : जिन पाल्यो सदा प्रिय प्रान समान प्रजातिनको तजिबो नहि नीको।
यदि सग चलौ हमरे नृपको तो परै अति उज्ज्वलहू जस फीको ॥
नहि धर्म न अर्थ न काम सधै सबही विधिते असमंजस जी को।
विनती मन मानि फिरो घर को सबही प्रतिपालहु धर्म गृही को ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लागति अवध भयावनि भारी। मानहु कालराति अँधियारी ॥
घोर जंतु सम पुर नर नारी। डरपहि एकहि एक निहारी ॥३॥

अर्थ अयोध्या भारी भयावनी सी मालूम पडती है। मानो अँधेरी कालरात्रि है। पुर के नर नारी मानो हिंसक जन्तु हैं। एक दूसरे को देखकर डर रहे है।

व्याख्या : सरकार के समझाने से लोग समझ तो जाते है और नगर मे लौट भी आते हैं। पर अयोध्या जो सदैव सोहावनी तथा मङ्गलमय थी यथा यद्यपि अवध सदैव सोहावनि। रामपुरी मगलमय पावनि। सो आज भारी भयावनी मालूम पडती है। मानो वह कालरात्रि है। कालरात्रि स्वभाव से ही भयवानी है। तिसपर अँधेरी यदि हो तो भारी भयावनी हो जाती है। इसी भाँति अयोध्या कालरात्रि सी हो गयी और मानो घोर जन्तुओ से व्याप्त होने से और भारी भयावनी हो गयी।

जो वहाँ के वासी थे वे नररत्न थे। यथा मनिगन पुर नरनारि सु जाती। सुचि अमोल सुन्दर सब भाँती। सो आज व्याघ्र सिंहादि हिंसक जन्तुओ के समान हो गये। जो एक दूसरे को देखकर डरा करते हैं। व्याघ्र सिंहादि हिंसक जन्तुओ मे कभी मेल होता नही। ये गोल बाँधकर रहते नही देखे जाते। अत एक दूसरे से डरा करते है। यही गति अवध निवासियो की हो रही है एक दूसरे को देखकर डर रहे हैं।

घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता ॥
बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाही। सरित सरोवर देखि न जाही ॥४॥

अर्थ घर मानो श्मशान है। कुटुम्बी लोग मानो भूत हैं और बेटे हित तथा मित्र मानो यमदूत हैं। बगीचों मे पेड और लता कुँभिला रही हैं। नदी और तालाब देखते नही बनते।

व्याख्या प्राणो के प्राण जीवो के जीव सुख के सुख राम के न होने से आज अयोध्या की यह दशा है कि लोगो को अपने अपने घर श्मशान की भाँति भयानक और अपवित्र मालूम हो रहे हैं। कुटुम्बी लोगो पर भूत की भावना हो रही है। बेटे सम्बन्धी और मित्र तो मानो साक्षात् प्राणहारक यमदूत से दिखायी पडते हैं। यह दशा चेतन प्राणियो की हो रही है। घर की यह दशा देखकर जी बहलाने के लिए बाग मे जाते है तो वहाँ नित्य सीचे जानेवाले वृक्ष और लताओ को कुम्हिलाया हुआ देखते है। पहिले नदी और तालाब देखते ही बनते थे। सो आज देखते नही बनते। भाव यह कि सरकार के चले जाने से नगर की प्रकृति मे भयानक परिवर्तन हो गया।

दो हय गय कोटिन्ह केलिमृग, पुरपसु चातक मोर।
पिक रथाग सुक सारिका, सारस हस चकोर ॥८३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ · हाथी घोडे जिनकी सख्या करोडो की है और खेल के लिए जिलाये हुए पशु तथा ग्राम्य पशु, चातक, मोर, कोयल, चक्वे, तोता, मैना, सारस, हस और चकोर।

व्याख्या : महाराज की सेना मे करोडो हाथी घोडे है तथा नागरिको के यहाँ भी हाथी घोडे हैं। केलिमृग अजायबखाने तथा धनियो के बाग मे जिलाये हुए हैं। ग्राम्य पशु गाय, भैंस, कुत्ता आदि चातक, मोर, कुहू कुहू ध्वनि करनेवाली कोकिलाएँ जल के सन्निकट रहनेवाले चकवा चकई तथा मनुष्य की बोली के अनुकरण करनेवाले तोता मैना मकान के ऊपर शोभा देनेवाले सारस और हस तथा चन्द्र के प्रेमी चकोर इन सबो मे कोई भी स्थिर रहनेवाले नही हैं।

राम वियोग विकल सब ठाढे। जहँ तहँ मनहु चित्र लिखि काढे॥
नगरु सफल बनु गहबर भारी। खग मृग विपुल सकल नरनारी॥१॥

अर्थ रामजी के वियोग से विकल सब जहाँ के तहाँ खडे हैं। मानो चित्र मे लिखे हुए हैं। नगर मानो फलवाला घना वन है और सब नर नारी मानो बहुत से पशु पक्षी हैं।

व्याख्या · ये पशुपक्षी भी रामजी के वियोग से विकल होकर जो जहाँ थे वही खडे हैं। कोई हिलते डोलते या बोलते नही। मालूम होता है कि ये सजीव नही हैं चित्र मे खीचे हुए हैं। ऐसा भयानक सन्नाटा छाया हुआ है। नगर मे चहल पहल सब कुछ रामजी के कारण था। जहाँ राम नही वहाँ आराम कहाँ ?

नगर को सफल वन कहा। क्योकि फल रहित वन मे पशु पक्षी नही रहते। सफल वन पशु पक्षी से भरा रहता है। पशु वृक्ष के नीचे रहते है और पक्षी ऊपर रहते हैं। नगर मे भी अनेक भूमिका मरातिब के मकान हैं। सब मे लोग रहते हैं। इसलिए पशुपक्षी से उपमित किया।

विधि कैकेई किरातिनि कीन्ही। जेहि दव दुसह दसहुँ दिसि दीन्ही॥
सहि न सके रघुबर बिरहागी। चले लोग सब व्याकुल भागी॥२॥

अर्थ · विधाता ने कैकेयी को किराती बना दी। जिसने दु सह दावानल : वन की आग दसो दिशा मे लगा दी। लोग रामजी की विरहाग्नि न सह सके। सो व्याकुल होकर भाग खडे हुए।

व्याख्या · आज भी किराती अपने बच्चो को रोग विनिर्मुक्त करने के लिए वन मे आग लगा देती है। उनकी ऐसी धारणा है कि ऐसा करने से लडके का लाभ होगा। कैकेयी ऐसी भली और समझदार रानी को किराती सा बना देना विधाता की ही करामात थी। ये ही चलते फिरते हस को काग बना सकते हैं। यथा विचरत हस काग किय जेही। पहिले कैकेयी की लगायी हुई आग चारो ओर थी। यथा · मृगी देखि दव जनु चहुँओरा। अब वही आग दसो दिशा मे फैल गयी। वन मे दशो दिशा मे आग देखकर जैसे पशु पक्षी अपना अपना बसेरा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

छोडकर भाग चलते हैं इसी भाँति विरहाग्नि से सारे नगर को भस्मीभूत होते देखकर सब निवासी भाग खडे हुए। प्रयत्न किया कि इस विरहाग्नि को सह ले जायँ। पर सहने मे असमर्थ हो गये।

सबहिं बिचारु कीन्ह मन माही। राम लखनु सिय बिनु सुख नाही॥
जहाँ राम तहँ सबुइ समाजू। बिनु रघुबीर अवध नहिं काजू॥३॥

अर्थ सबने मन मे विचार किया कि राम लक्ष्मण और सीता के बिना सुख नही। जहाँ राम होगे वही सब समाज रहेगा। बिना रघुवीर के अयोध्या मे कोई काम नही है।

व्याख्या . मेल किसी से नही है। यथा : डरपहिं एकहिं एक निहारी। अत इकट्ठे होकर सम्मति नही कर सकते। पर सबके मन मे एक ही विचार उदय हुआ कि राम लक्ष्मण और सीता के बिना सुख हो नही सकता। सब लोगो ने नगर का घर का और अपना हाल देख लिया। अत' इसी निर्णय पर पहुँचे कि सब सुख तो सीता राम लक्ष्मण के रहने ही मे था। सब सामग्री तो ज्यो की त्यो मौजूद है। पर दु ख ने डेरा जमा लिया और बिना सुख के कोई जी नही सकता।

अत जहाँ रामजी रहेगे वही सब समाज भी रहेगा। बिना रामजी के अयोध्या मे रहने का कोई प्रयोजन नही है। यहाँ रहकर भी हम किसी को सुख नही दे सकेंगे। क्योकि स्वय दु ख से विकल रहेगे।

चले साथ अस मत्रु दृढाई। सुर दुर्लभ सुखु सदन बिहाई॥
राम चरन पकज प्रिय जिन्हही। विषय भोग बस करहिं कि तिन्हही॥४॥

अर्थ : ऐसा मन्त्र दृढ करके सुर दुर्लभ सुखवाले घरो को छोडकर : रामजी के साथ चले। रामजी के चरण कमल जिन्हे प्रिय है उन्हे क्या विषयभोग वश कर सकता है ?

व्याख्या . घर जल्दी किसी से नही छूटता। अत्यन्त दु ख मिलने से ही आदमी घर को छोडता है। अयोध्या मे तो सबको सुरदुर्लभ सुख प्राप्त है। पर उन्हे वे सुख ही बिना रामजी के महादु खमय प्रतीत होते हैं। अत. सबने अपने मन मे यही ठान ली कि रामजी के साथ ही वन चलना चाहिए। बात यह है कि जिन्हे रामजी के चरण मे रति है उन्हे विषयभोग वश कर नही सकते। उन्हे स्वत वशीकार सज्ञा वैराग्य की प्राप्ति हो जाती है। सारे ससार पर विषय भोग का अधिकार है केवल रामभक्त पर नही है।

दो. बालक वृद्ध विहाइ गृह, लगे लोग सब साथ।
तमसा तीर निवासु किय, प्रथम दिवसु रघुनाथ॥८४॥

अर्थ : बाल वृद्ध को घर छोडकर सब लोग साथ हो गये। पहिले दिन रामजी का निवास तमसा के किनारे हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : बालक वृद्ध को कोई साथ नही लेता है। क्योंकि उनके साथ लेने से रामजी का साथ ही न हो सकेगा। कितना भो धीरे रथ चले पर बालक वृद्ध तो उस तक नही पहुँच सकते। अयोध्या से चलकर पहिले दिन सरकार तमसा के किनारे ठहरे। अर्थात् चैत्र सुदो १० दसमी पुष्य नक्षत्र मे सरकार ने वनयात्रा की। इसी दिन राज्याभिषेक होनेवाला था।

रघुपति प्रजा प्रेमबस देखी। सदय हृदय दुखु भयउ बिसेखी ॥
करुनामय रघुनाथ गोसाई। बेगि पाइअहिं पीर पराई ॥१॥

अर्थ : रामजी ने प्रजा को प्रेमवश देखा। हृदय में दया है इसलिए विशेष दु ख हुआ। रघुनाथ गोसाईं करुणामय है। पराये दु:ख को शीघ्र ही प्राप्त करते हैं।

व्याख्या : रामजी ने देखा कि प्रजा प्रेम के वश है। मुझे छोड़ना नही चाहती। बड़े बूढ़े छोटे बच्चे सुख सम्पत्ति को छोड़कर मेरे साथ रहना चाहते हैं। ऐसी अवस्था मे दु:ख होना स्वाभाविक है। पर सरकार के दयार्द्र हृदय में विशेष दु:ख हुआ। सरकार पानी पीकर रह गये। प्रजावर्ग ने भी उन्हीं का अनुसरण किया। रघुकुल के नाथ हैं। हृषीकेश हैं। पराये दु:ख से शीघ्र ही द्रवीभूत हो जाते हैं। रघुनाथ हैं। अत: प्रजा को दु:खी नही देख सकते। इन्द्रियों के स्वामी हैं। अत: पराये दु ख की अनुभूति में इन्हे देर नही लगती।

कहि सप्रेम मृदु बचन सुहाए। बहुबिधि राम लोग समुझाए ॥
किए धरम उपदेश घनेरे। लोग प्रेम बस फिरहिं न फेरें ॥२॥

अर्थ : प्रेम के साथ सुन्दर कोमल वचन कहकर बहुत विधान से रामजी ने लोगो को समझाया। बहुत सा धर्मोपदेश किया। परन्तु लोग प्रेम के वश थे। फेरने से फिरते नही थे।

व्याख्या : प्रेममय सुन्दर कोमल वचन द्वारा रामजी ने समझाया। धर्मोपदेश किया। यथा :

तुम सुजान जनि धर्म को मेटौ मिलि मर्याद।
बाल वृद्ध ह्वै हैं करत घर में अधिक विषाद ॥
धर्म पिता माता धरम धर्म साईं सुत भाय।
जाते निबहै धर्म सोइ सब मिलि करहु उपाय ॥
होइ अवमि बन गवन ते गृही धर्म को लोप।
जो तजि मै बन जात पुनि होइ तासु आरोप ॥
राउ निरादर उचित नहिं धरहु प्रीति उर गोय।
हमहु प्रजा तुमहू प्रजा करहु जो आयसु होय ॥
कष्टित तुम सबको निरखि मोहि कष्ट अति होय।
तजि विचार बन गवन को भवन जाहु सब कोय ॥

परन्तु लोग प्रेम के वश थे। प्रभु के फेरने पर भी नहीं फिरे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सील सनेहु छाँडि नहिं जाई। असमजस बस भे रघुराई ॥
लोग सोग श्रम बस गए सोई। कछुक देवमाया मति मोई[1] ॥३॥

अर्थ : शील सनेह छोडते नही बनता। रामजी बड़े असमञ्जस दुविधा मे पड गये। लोग शोक और परिश्रम के वश होकर सो गये। देवताओ की माया से भी कुछ मोहित हुए।

व्याख्या को रघुवीर सरिस ससारा। सील सनेह निबाहनि हारा। रामजी का स्वभाव है कि शील और स्नेह का निर्वाह करते हैं। इन लोगो के साथ चलने का अर्थ ही यही है कि घर लौटो। नही तो जहाँ तुम बसोगे वही हम लोग भी बसेंगे। इन सबका साथ ले जाना सम्भव नही और साथ ये छोडते नही। बिना शील स्नेह तोडे साथ ये छोड नही सकते। अत रामजी असमञ्जस मे पड गये।

इधर लोग सवेरे से ही शोक कर रहे हैं। यथा ' जो जहँ सुनै धुनै सिर सोई। बड बिषाद नहिं धीरज होई। तिस पर रथ के साथ साथ आये है। इसलिए थके हुए थे। सब के सब सो गये। उनकी नीद की बेखबरी को देवताओ की माया ने बढा दिया। क्योकि इन लोगो का साथ रहना रामजी के वन जाने मे विघ्नरूप था।

जबहिं जाम जुग जामिनि बीती। राम सचिव सन कहेउ सप्रीती ॥
खोजु मारि रथु हाँकहु ताता। आन उपाय बनिहि नहिं बाता ॥४॥

अर्थ जब दो पहर रात्रि बीत गयी तब रामजी ने मन्त्री से प्रेमपूर्वक कहा कि हे तात! इस भांति रथ चलाओ कि पता न चले। दूसरे उपाय से बात नही बनेगी।

व्याख्या रामजी असमञ्जस मे थे। सोये नही। जब आधी रात बीती देखा कि तमाम सोता पडा हुआ है। कोई सगबगाता तक नही। तब प्रीति के साथ सुमन्त्र से कहा। सुमन्त्रजी पिता के सखा हैं। अत उन्हे आज्ञा नही देते। प्रीति के साथ कहते हैं कि इस समय यदि इस भाँति रथ आप हाकें कि लीक देखने पर किसी को पता न चल कि रथ किधर गया। तभी हमारा साथ इन लोगो से छूट सकता है। दूसरा उपाय कोई है नही। यह सारथि का पाण्डित्य है कि रथ को घुमाकर मार्ग मे पहिले की पडी हुई लीका से रथ की लीक को ऐसा मिला द कि ढूँढ़नेवाला यह निश्चय न कर सके कि रथ ने किस लीक का अनुसरण किया है।

दो राम लखनु सिय जान चढि, सभु चरन सिरु नाइ।
सचिव चलायेउ तुरत रथ, इत उत खोज दुराइ ॥८५॥

---

१. यहाँ हकार का लोप होकर मोही का मोई रूप हो गया। यथा प्रकृतिप्रत्यय-सन्धिर्लोपविकारागमाश्च वर्णानाम्।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : राम लक्ष्मण और सीता ने रथ पर चढकर शिवजी के चरणो में सिर नवाया और मन्त्री ने इधर उधर के पता को छिपाकर तुरन्त रथ चला दिया।

व्याख्या : यह पता किसी को न था कि रामजी किस वन में और किस रास्ते से जावेंगे। सब लोग साथ हो गये थे कि चाहे जहाँ जायँ हम लोग साथ न छोड़ेंगे। जहाँ जाना था सो सुमन्त्रजी से कह दिया। वे उधर रथ ले गये। पर पहिले रथ को इधर उधर ऐसा घुमाया कि पता न चल सके कि रथ किधर गया। चोरी से जा रहे हैं। इसलिए तस्कराणां पति को नमस्कार करके चले।

जागे सकल लोग भये भोरू। गे रघुनाथ भयेउ अतिसोरू ॥
रथ कर खोज कतहुँ नहिं पावहिं। राम राम कहि चहुँ दिसि धावहिं ॥१॥

अर्थ : सबेरा होने पर लोग जागे। बड़ा शोर मचा कि रामजी तो चले गये। रथ का पता कही से नही चलता है। लोग राम राम कहकर चारों ओर दौड़ते हैं।

व्याख्या : थके माँदे देव माया से मोहित लोग ऐसे सोये कि सबेरा होने पर ही जागे। देखा न तो रामजी हैं और न रथ है। जैसे रात को किसी का सर्वस्व चोरी हो जाय और जागने पर वह हाय हाय करे। वही गति अवधवासियों की हुई। बड़ा शोर मचा कि रामजी चले गये। किधर गये! कहाँ गये! किसी को मालूम नहीं। रथ का पता चले कि किधर से गया तो लीक का अनुसरण करके गन्तव्यस्थान तक पहुँचने का प्रयत्न किया जा सकता है। पर रथ का कुछ पता नही लगता कि किधर से गया। अत: लोग विकल हैं। उनके मुँह से कोई बात नही निकल रही है। केवल राम राम कहते हुए चारों ओर रथ के खोज में दौड़ रहे है।

मनहुँ बारिनिधि बूड़ जहाजू। भयउ बिकल बड़ बनिक समाजू ॥
एकहि एक देहिं उपदेसू। तजे राम हम जानि कलेसू ॥२॥

अर्थ : मानों समुद्र में जहाज डूबता हो और व्यापारी का समाज अति विकल हो उठे। एक दूसरे को उपदेश दे रहे हैं कि रामजी ने क्लेश जानकर हमें छोड़ दिया।

व्याख्या : लोगों की विकलता जहाज के डूबने के समय वणिक् समाज की विकलता के समान हुई। यहाँ राम वियोग को अपार समुद्र से उपमित किया है। यथा : राम बियोग पयोधि अपारू। करन धार तुम अवध जहाजू इत्यादि। अवध जहाज पर तो सभी सवार हैं पर विकलता साथ जानेवाले वणिक् समाज को अधिक है। क्योंकि उन्हे प्राणों से अधिक प्रिय उनके सर्वस्व राम हैं। उन्हे वे गले बाँधे हुए हे साथ नही छोड़ते। प्राण जाने की उतनी चिन्ता नही जितनी चिन्ता प्राणधन के वियोग से है। रामजी ने हमारा परित्याग किया इस बात की बड़ी विकलता है।

अत: एक दूसरे को समझाते हैं कि रामजी ने हम लोगों को अप्रिय जानकर परित्याग नही किया है। हम लोग उनको प्रिय हैं। हमें क्लेश न हो इसलिए हम लोगों को छोड़कर चले गये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



निदहि आपु सराहहिं मीना। धिग जीवनु रघुबीर विहीना ॥
जौ पै प्रिय बियोगु बिधि कीन्हा। तौ कस मरनु न मागे दीन्हा ॥३॥

अर्थ : अपनी निन्दा करते है और मछली की सराहना करते है। कहते हैं रघुबीर के बिना जीने को धिक्कार है। विधाता ने यदि प्रिय का वियोग किया तो माँगो मौत क्यो नही दिया।

व्याख्या : अपने प्रेम को कच्चा पाकर अपनी निन्दा करते है। प्रशंसा मछली की करते हैं। क्योकि उसका प्रेम सच्चा है। प्रिय पानी के वियोग से प्राण दे देती है यथा : तुलसी केवल मीन को है साँचिलो सनेह। रघुबीर बिहीन जीवन अधम या जीवन है। अतः हमारे जीवन को धिक्कार है।

विधाता का नाम विधि है। उन्हे अविधि कार्य न करना चाहिए। उचित तो यह था कि वे प्रिय का वियोग ही न देते। यदि दिया तो माँगने पर मौत भी देना था। पहिले तो अपनी निन्दा की। अब विधि की निन्दा करते हैं।

एहि बिधि करत प्रलाप कलापा। आए अवध भरे परितापा ॥
बिषम बियोगु न जाइ बखाना। अवधि आस सब राखहिं प्राना ॥४॥

अर्थ : इस प्रकार रोते कलपते परिताप से भरे हुए अयोध्या आये। विषम-वियोग का वर्णन नही किया जा सकता। अवधि की आशा से सब प्राण धारण कर रहे हैं।

व्याख्या : जब रथ का खोज न मिला तो लाचार होकर रोते कलपते घर लौटे। पर लौटने मे महा दुःख उसी भूत यमदूत से व्याप्त श्मशान मे ही रहना पडा। राम वियोग की अग्नि के ताप से सब परितप्त हैं। ऐसा दारुण वियोग व्यथा है कि उसका वर्णन नही हो सकता जो वर्णन किया गया। वह बहुत ही अल्प है। अब चौदह वर्ष के बाद तो भेट होगी। इसी आशा पर सब जी रहे हैं। यदि यह आशा न होती तो निश्चय सब मर जाते। कौसल्याम्बा ने ठीक कहा था : अवधि अम्बु प्रिय परिजन मीना। तुम करुनाकर धर्म धुरीना। अस बिचारि सोइ करहु उपाई। सबहि जियत जेहि भेटहु आई।

दो. राम दरस हित नेम ब्रत, लगे करन नर नारि।
मनहुँ कोक कोकी कमल, दीन बिहीन तमारि ॥८६॥

अर्थ : रामजी के दर्शन के लिए सब नर नारी नियम व्रत करने लगे। मानो ये कोक कोकी और कमल हैं बिना सूर्य के दीन हो रहे हैं।

व्याख्या : ये सब पूर्वजन्म के तपस्वी हैं। अपने स्वरूप पर आगये। नियम व्रत रामजी के दर्शन के लिए करने लगे। यथा : पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग। भरत रामहित नेमव्रत परिहरि भूषन भोग। जिस भाँति सूर्यनारायण के चार भक्त हैं १ कमल २ कोक ३ मधुकर और ४ खगनाना उसी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भाँति : राम भगत जग चारि प्रकारा। १. ज्ञानी २ जिज्ञासु ३. अर्थार्थी और ४. आर्त। सो अयोध्या में अर्थार्थी और आर्त नही है। केवल ज्ञानी और जिज्ञासु हैं। ज्ञानी की उपमा कमल से और जिज्ञासु की उपमा कोक कोकी से दी गयी। ये रामजी के बिना वैसे ही दीन हो रहे हैं जैसे सूर्य के बिना कमल और कोक कोकी दीन रहते हैं।

सीता सचिव सहित दोउ भाई। सृंगबेरपुर पहुँचे जाई॥
उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दंडवत हरषु बिसेखी॥१॥

अर्थ : सीता और मन्त्री के सहित दोनों भाई जाकर शृङ्गवेरपुर पहुँच गये। देवनदी गङ्गाजी को देखकर रामजी ने रथ त्याग किया और विशेष हर्ष के साथ दण्डवत् किया।

व्याख्या : राम लखन सिय जान चढि संभु चरन सिर नाइ। सचिव चलाएउ तुरत रथ इत उत खोज दुराइ : से प्रसङ्ग छोड़ा था। बीच में पुरवासियों की कथा कहने लगे। अब फिर वही से कथा उठाते हैं कि चारों मूर्ति शृङ्गवेरपुर जाकर पहुँच गये। शृङ्ग है शरीर में जिसके उसे शृङ्गवेर कहते हैं अर्थात् शृङ्गीऋषि। उनका पुर शृङ्गवेरपुर। अथवा शृङ्गवेर अदरक को कहते हैं। सम्भव है कि वहाँ अदरक अधिक होता रहा हो इससे शृङ्गवेरपुर कहलाया हो। आजकल उसे सिंगरौर कहते हैं। यथा : सो जामिनि सिंगारौर गँवाई।

अब तीर्थ स्नान की विधि कहते है। गङ्गाजी के दर्शन से रामजी को विशेष हर्ष हुआ। क्योकि गङ्गा जी के दर्शन मात्र से मुक्ति सुनी गयी है। यथा : गङ्गे ते दर्शनान्मुक्तिर्न जाने स्नानज फलम्। गङ्गाजी के दर्शन होते ही रथ से उतर पड़े। यह तीर्थ का आदर है और दण्डवत् प्रणाम किया। क्योंकि गङ्गाजी सर्वतीर्थ-मयी हैं।

लखन सचिव सिय किये प्रनामा। सबहि सहित सुख पाएउ रामा॥
गंग सकल मुद मंगल मूला। सब सुख करनि हरनि सब सूला॥२॥

अर्थ : लक्ष्मण मन्त्री और सीताजी ने प्रणाम किया और सबके साथ रामजी ने सुख पाया। गङ्गा जी सभी मुद मङ्गल की मूल हैं। सब सुख करनेवाली और सब शूलो को हरनेवाली है।

व्याख्या : जिस समय रामजी ने दण्डवत् किया लक्ष्मण मन्त्री और सीताजी ने उसी समय प्रणाम किया। बड़े के दण्डवत् करने के समय सब लोग दण्डवत् न करे। केवल भक्तियुक्त प्रणाम कर दें यही विधि है। तीर्थ की प्राप्ति होने पर आनन्द होना चाहिए कि मुझे तीर्थ प्राप्ति हुई मेरा बड़ा भाग्य है। अतः कहते है सबके साथ रामजी को सुख हुआ।

सब अमङ्गलों का मूल सब दुःखों का करनेवाला सब शूलो की उत्पत्ति का कारण पाप है और गङ्गा के समान पापनाशक कोई तीर्थ नही है। शास्त्र कहता है : प्रायश्चित्त तु तत्रैव यत्र गङ्गा न विद्यते। अतः गङ्गा जी को मुदमङ्गलमूल

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



निराकार ब्रह्म अथवा ब्रह्मद्रवा कहा। यथा ब्रह्मद्रवेति विख्याता पापानि हर जाह्नवि।

कहि कहि कोटिक कथा प्रसगा। राम बिलोकहिं गग तरगा॥
सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई। विबुध नदी महिमा अधिकाई॥३॥

अर्थ करोडो कथा प्रसङ्ग कहकर रामजी गङ्गा का तरङ्ग देखते है। मन्त्री अनुज और प्रिया को देवनदी की महामहिमा कह सुनाया।

व्याख्या शत सहस्र लक्ष कोटि आदि शब्द बहुवचन वाची है। इनका अथ बहुत है। दर्शन प्रणाम विश्राम क बाद माहात्म्य कथन श्रवण भी होना चाहिए। इसलिए रामजी अनेक कथा प्रसङ्ग कहते जाते हैं और गङ्गाजी क तरङ्गो के दर्शन का आनन्द भी ले रहे हैं। इस भांति दवनदी का महामहिमा कथन रामजी ने किया। भाव यह कि गङ्गा माहात्म्य के वक्ता स्वय रामजी हुए और श्रोता सीताजी लक्ष्मण जी और सुमन्त्रजी हुए।

मज्जनु कीन्ह पथ श्रम गयऊ। सुचि जलु पिअत मुदित मन भयऊ॥
सुमिरत जाहि मिटइ श्रम भारू। तेहि श्रमु यह लौकिक ब्यवहारू॥४॥

अर्थ स्नान किया। रास्ते की थकावट दूर हुई। पवित्र जल पीते ही मन प्रसन्न हो गया। जिसके स्मरण करने से श्रम का बोझ दूर हो जाता है उसे श्रम होना लौकिक व्यवहार है।

व्याख्या अदृष्टसुख कहकर अब दृष्टसुख कहते हैं। मज्जन पान से पाप हरण तो होता है यथा मज्जन पान पाप हर एका। लौकिक सुख भी होता है। मज्जन से रास्ते की थकावट दूर हो जाता है और जल पीने से मन प्रसन्न हो जाता है। ऐसा जल जगतीतल म दूसरा है नही। अत रामजी के मज्जन पान पर भी वही फल कहा गया।

प्रश्न उठता है कि क्या रामजी मे ससारियो की भाँति श्रम का ससर्ग माना जायगा। इस पर कहते हैं कि सबसे भारी श्रम तो भवश्रम है। सो तो सरकार के स्मरण से मिट जाता है। जैसे भवश्रम सोषक तोषक तोषा। उस प्रभु का श्रम के साथ ससर्ग कहना लौकिक व्यवहार है।

दो० सुद्ध सच्चिदानदमय, कद भानुकुल केतु।
चरित करत नर अनुहरत, ससृति सागर सेतु॥८७॥

अर्थ सूर्यकुल के पताका रामचन्द्र शुद्ध सच्चिदानन्द मय हैं। मनुष्य के अनुरूप चरित्र करते हैं जो ससार सागर के लिए पुल हैं।

व्याख्या सुद्ध सच्चिदानन्दमय कन्द से स्वरूप कहा। भानुकुल केतु से अवतार कहा चरित करत नर अनुहरत से लीला कहा। ससृति सागर सेतु से लोकोपकार कहा। अथवा सुद्ध सच्चिदानन्दमय कन्द से चिन्मय महाविष्णु कहा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भानुकुल केतु कहकर रघुकुल में दशरथ के यहाँ जन्म होना जनाया। चरित करत नर अनुहरत कहने से राजते यो महीस्थितः का भाव दर्शाया और संसृति सागर सेतु से स्वस्वरूप प्रदातृत्व गुण का वर्णन किया। यथा : चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दशरथे हरौ। रघोः कुलेऽखिलं राति राजते यो महीस्थितः। रामतापनीये।

यह सुधि गुह निषाद जब पाई। मुदित लिये प्रिय बंधु बोलाई॥
लिये फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हियँ हरषु अपारा॥१॥

अर्थ : यह खबर जब गुहनामी निषाद को लगी वड़ा प्रसन्न होकर प्रिय बन्धुओं को बुलवाया। बहँगी भर कर फल मूल भेंट के लिए और अपार आनन्द के साथ मिलने चला।

व्याख्या : गुहनाम भगवान् स्वामि कार्तिकेय का है। यथा : सेनानीरग्निभूर्गुहः। उस निषाद का भी यही नाम था। यह निषादों का अधिपति था। शृङ्गवेर पुर में रहता था। इसे जब खबर लगी कि सस्त्रीक सानुज रामजी मन्त्री के साथ पधारे हैं तो बड़ा प्रसन्न हुआ। भेंट के लिए फल मूल से बँहगी भर ली। अपने प्रिय भाई बन्धुओं को साथ ले लिया और मिलने चला। रामजी के आने का तो अर्थ ही यह है कि लक्ष्मण जी साथ हैं। पर भगवती सीताजी साथ हैं। यह सुनकर उसे अपार आनन्द हुआ कि युगलमूर्ति का दर्शन करूँगा। मालूम होता है कि गङ्गा स्नान के लिए आये हैं।

करि दंडवत भेंट धरि आगे। प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागे॥
सहज सनेह बिबस रघुराई। पूँछी कुसल निकट बैठाई॥२॥

अर्थ : भेंट सामने रखकर दण्डवत् प्रणाम किया और अत्यन्त प्रेम से सरकार का दर्शन करने लगा। रामजी ने स्वाभाविक स्नेह के वश उसे निकट बिठलाया और कुशल पूछी।

व्याख्या : राजा दण्डधर गुरु हैं। इसलिए दण्डवत् प्रणाम किया। रिक्तपाणि होकर : खाली हाथ राजदर्शन का निषेध है। इसलिए भेंट सामने रखा। जगदम्बा के दर्शन का अधिकार नहीं है। इसलिए प्रेम से टकटकी बाँधे सरकार का दर्शन कर रहा है।

हाथ बाँधे दूर खड़ा है। उसे सरकार के प्रति स्वाभाविक प्रेम है। किसी कारण से नहीं और सरकार सहज प्रेम के वश में रहनेवाले हैं। अतः उसे बुलाकर अपने निकट बिठलाया और कुशल पूछा। कुशल पूछने का अर्थ ही यह है कि पूछनेवाला कुशल चाहता है। जो अप्रसन्न होता है वह कुशल नहीं पूछता। यथा : दच्छ न कछु पूछी कुसलाता। सतिहि बिलोकि जरे सब गाता। निकट बैठना और कुशल पूछना आदर देना है : सम्मान करना है। हेमदान गजदान ते बड़ो दान सम्मान।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



निराकार ब्रह्म अथवा ब्रह्मद्रवा कहा। यथा : ब्रह्मद्रवेति विख्याता पापानि हर जाह्नवि।

कहि कहि कोटिक कथा प्रसगा। राम बिलोकहिं गंग तरंगा ॥
सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई। विबुध नदी महिमा अधिकाई ॥३॥

अर्थ · करोडो कथा प्रसङ्ग कहकर रामजी गङ्गा का तरङ्ग देखते है। मन्त्री अनुज और प्रिया को देवनदी की महामहिमा कह सुनाया।

व्याख्या · शत सहस्र लक्ष कोटि आदि शब्द बहुवचन वाची है। इनका अर्थ बहुत है। दर्शन प्रणाम विश्राम के बाद माहात्म्य कथन श्रवण भी होना चाहिए। इसलिए रामजी अनेक कथा प्रसङ्ग कहते जाते है और गङ्गाजी के तरङ्गो के दर्शन का आनन्द भी ले रहे है। इस भाति देवनदी का महामहिमा कथन रामजी ने किया। भाव यह कि गङ्गा माहात्म्य के वक्ता स्वय रामजी हुए और श्रोता सीताजी लक्ष्मण जी और सुमन्त्रजी हुए।

मज्जनु कीन्ह पंथ श्रम गयऊ। सुचि जलु पिअत मुदित मन भयऊ ॥
सुमिरत जाहि मिटइ श्रम भारू। तेहि श्रमु यह लौकिक ब्यवहारू ॥४॥

अर्थ स्नान किया। रास्ते की थकावट दूर हुई। पवित्र जल पीते ही मन प्रसन्न हो गया। जिसके स्मरण करने से श्रम का बोझ दूर हो जाता है उसे श्रम होना लौकिक व्यवहार है।

व्याख्या . अदृष्टसुख कहकर अब दृष्टसुख कहते हैं। मज्जन पान से पाप हरण तो होता है यथा · मज्जन पान पाप हर एका। लौकिक सुख भी होता है। मज्जन से रास्ते की थकावट दूर हो जाती है और जल पीने से मन प्रसन्न हो जाता है। ऐसा जल जगतीतल मे दूसरा है नही। अत रामजी के मज्जन पान पर भी वही फल कहा गया।

प्रश्न उठता है कि क्या रामजी मे ससारियो की भाँति श्रम का ससर्ग माना जायगा। इस पर कहते हैं कि सबसे भारी श्रम तो भवश्रम है। सो तो सरकार के स्मरण से मिट जाता है। जैसे भवश्रम सोपक तोपक तोपा। उस प्रभु का श्रम के साथ ससर्ग कहना लौकिक व्यवहार है।

दो. सुद्ध सच्चिदानदमय, कद भानुकुल केतु।
चरित करत नर अनुहरत, ससृति सागर सेतु ॥८७॥

अर्थ · सूर्यकुल के पताका रामचन्द्र शुद्ध सच्चिदानन्द मेघ हैं। मनुष्य के अनुरूप चरित्र करते है जो ससार सागर के लिए पुल हैं।

व्याख्या सुद्ध सच्चिदानन्दमय कन्द से स्वरूप कहा। भानुकुल केतु से अवतार कहा चरित करत नर अनुहरत से लीला कहा। ससृति सागर सेतु से लोकोपकार कहा। अथवा सुद्ध सच्चिदानन्दमय कन्द से चिन्मय महाविष्णु कहा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भानुकुल केतु कहकर रघुकुल मे दशरथ के यहाँ जन्म होना जनाया। चरित करत नर अनुहरत कहने से राजते यो महीस्थित: का भाव दर्शाया और संसृति सागर सेतु से स्वस्वरूप प्रदातृत्व गुण का वर्णन किया। यथा : चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दशरथे हरौ। रघोः कुलेऽखिलं राति राजते यो महीस्थितः। रामतापनीये।

यह सुधि गुह निषाद जब पाई। मुदित लिये प्रिय बंधु बोलाई ॥
लिये फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हियँ हरषु अपारा ॥१॥

अर्थ : यह खबर जब गुहनामी निषाद को लगी बड़ा प्रसन्न होकर प्रिय बन्धुओं को बुलवाया। वहँगी भर कर फल मूल भेट के लिए और अपार आनन्द के साथ मिलने चला।

व्याख्या : गुहनाम भगवान् स्वामि कार्तिकेय का है। यथा . सेनानीरग्निभूर्गुहः। उस निषाद का भी यही नाम था। यह निषादों का अधिपति था। शृङ्गवेर पुर मे रहता था। इसे जब खबर लगी कि सस्त्रीक सानुज रामजी मन्त्री के साथ पधारे है तो बड़ा प्रसन्न हुआ। भेंट के लिए फल मूल से वँहगी भर ली। अपने प्रिय भाई बन्धुओं को साथ ले लिया और मिलने चला। रामजी के आने का तो अर्थ ही यह है कि लक्ष्मण जी साथ हैं। पर भगवती सीताजी साथ है। यह सुनकर उसे अपार आनन्द हुआ कि युगलमूर्ति का दर्शन करूँगा। मालूम होता है कि गङ्गा स्नान के लिए आये हैं।

करि दंडवत भेंट धरि आगे। प्रभुहि बिलोकत अति अनुरागे ॥
सहज सनेह बिबस रघुराई। पूंछी कुसल निकट बैठाई ॥२॥

अर्थ : भेंट सामने रखकर दण्डवत् प्रणाम किया और अत्यन्त प्रेम से सरकार का दर्शन करने लगा। रामजी ने स्वाभाविक स्नेह के वश उसे निकट बिठलाया और कुशल पूछी।

व्याख्या : राजा दण्डधर गुरु है। इसलिए दण्डवत् प्रणाम किया। रिक्तपाणि होकर : खाली हाथ राजदर्शन का निषेध है। इसलिए भेंट सामने रखखा। जगदम्बा के दर्शन का अधिकार नही है। इसलिए प्रेम से टकटकी बांधे सरकार का दर्शन कर रहा है।

हाथ बाँधे दूर खड़ा है। उसे सरकार के प्रति स्वाभाविक प्रेम है। किसी कारण से नही और सरकार सहज प्रेम के वश में रहनेवाले हैं। अतः उसे बुलाकर अपने निकट बिठलाया और कुशल पूछा। कुशल पूछने का अर्थ ही यह है कि पूछनेवाला कुशल चाहता है। जो अप्रसन्न होता है वह कुशल नही पूछता। यथा : दच्छ न कछु पूछी कुसलाता। सतिहि बिलोकि जरे सब गाता। निकट बैठना और कुशल पूछना आदर देना है : सम्मान करना है। हेमदान गजदान ते बड़ो दान सम्मान।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नाथ कुसल पद पकज देखें । भयेउँ भागभाजनु जन लेखे ॥
देव धरनि धनु धामु तुम्हारा । मै जनु नीच सहित परिवारा ॥३॥

अर्थ : हे नाथ ! आपके चरणो के दर्शन से सब कुशल है। मेरी तो गिनती भाग्यवानो मे हो गयी। हे देव ! धरणी धन धाम सब आपका है। मै तो परिवार के सहित नीच सेवक हूँ।

व्याख्या . सेवक सदन स्वामि आगमनू। मगल मूल अमगल दमनू। सरकार के चरण आने से सब कुशल है। जगदम्बा भी साथ है। अत कहता है कि आज मेरी गणना भाग्यावानो मे हो गयी। यहाँ इस तरह रहना ठीक नही है। मेरा तो सब कुछ सरकार का ही है। धरणी आपकी, धन आपका, घर आपका, मै तो नीच सेवक परिवार के सहित हूँ। अतएव उनका परिवार सहित उपभोग करता हूँ। जब घर मौजूद है तब जगदम्बा सहित यहाँ ठहरना ठीक नही। यद्यपि वह जगदम्बा का नाम नही लेता है। पर उसके बरताव से यह झलक आती है।

कृपा करिअ पुर धारिअ पाऊ। थापिय जनु सब लोग सिहाऊ ॥
कहेहु सत्य सबु सखा सुजाना। मोहि दीन्ह पितु आयेसु आना ॥४॥

अर्थ कृपा करिये। पुर मे पधारिये। मेरी प्रतिष्ठा बढाइये। सब लोग मेरे भाग्य की प्रशसा करें। रामजी बोले सुजान सखा ! तुमने ठीक कहा। पर पिताजी ने मुझे दूसरे प्रकार की आज्ञा दी है।

व्याख्या पुर मे न उतर कर गङ्गातीर मे उतरे सो ठीक ही किया। पर अब तो स्नानादिक सब धर्मकृत्य हो चुके। अब मुझ पर कृपा कीजिये। पुर मे पधारिये। पुर मे पधारने से मेरी प्रतिष्ठा है। मै प्रतिष्ठा की हुई मूर्ति की भाँति पूज्य हो जाऊँगा। लोग मेरे भाग्य की सराहना करेंगे।

श्रीरामजी ने उसे सखा सुजान कहकर सम्बोधन किया और कहा कि तुम्हारा कहना ठीक है। सस्त्रीक होने से मेरा पुर मे उतरना उचित है। पर जैसा तुमने सुना होगा कि मेरा अभिषेक होनेवाला था सो नही हुआ। पिताजी की दूसरे प्रकार की आज्ञा हुई।

दो बरष चारि दस बासु बन, मुनि ब्रत वेषु अहारु।
ग्राम बासु नहि उचित सुनि, गुहहि भयउ दुख भारु ॥८८॥

अर्थ चौदह वर्ष वनवास करने की और मुनिव्रत वेष और आहार की आज्ञा हुई है। अत. ग्रामवास मुझे उचित नही है। यह सुनकर गुह को बडा भारी दु ख हुआ।

व्याख्या अभी वनवास का प्रारम्भ ही है। इसलिए चारिदस कहते है। रामजी ने कहा कि चौदह वर्ष के लिए मुझे वनवास की आज्ञा है और तबतक के लिए मुनियो का व्रत पालन करने मुनियो का सा वेष धारण करने और मुनियो का

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सा आहार करने की आज्ञा है। इसलिए अयोध्या छोड़कर वन जा रहा हूँ। ग्रामवास मुझे उचित नहीं है। नहीं तो मैं अवश्य तुम्हारे पुर मे जाकर तुम्हारा आतिथ्य स्वीकार करता। मैं जबतक यहाँ ठहरूँगा पुर के बाहर ही रहूँगा।

राम लखन सिय रूप निहारी। कहहिं सप्रेम ग्राम नर नारी ॥
ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठये वन बालक ऐसे ॥१॥

अर्थ . राम लक्ष्मण और सीताजी का रूप देखकर गाँव के नर और नारियाँ कहती हैं कि सखि! वे[1] पिता कैसे हैं जिन्होंने ऐसे बालकों को वन में भेज दिया।

व्याख्या : गाँव में समाचार फैलते क्या देर लगती है। बन्धुओं के सहित निषादराज को चलते देखकर गाँव के लोग जुट गये : देव देखि तब बालक दोऊ। अब न आँखि तर आवै कोऊ। तथा जग अस जुवति कहाँ कमनीया। ऐसा उन्मादकारक रूप देखकर ग्राम नर नारियों के हृदय में बड़ा प्रेम उमगा। आपस में कहने लगे कि जिसके रूप को देखकर हम लोगों को इतना प्रेम हो रहा है उनके माता पिता का कैसा हृदय है कि उन्होंने ऐसे बालकों को वन भेज दिया। वानप्रस्थ आश्रम ग्रहण करने का समय नहीं आया है इसलिए बालक कहते हैं।

एक कहहिं भल भूपति कीन्हा। लोचन लाहु हमहि बिधि दीन्हा ॥
तब निषादपति उर अनुमाना। तरु सिसुपा मनोहर जाना ॥२॥

अर्थ : कोई कहता है कि राजा ने अच्छा ही किया। विधाता ने हमको भी लोचन लाभ दे दिया। तब निषादपति ने मन में अनुमान किया तो अशोक का पेड़ मनोहर जँचा।

व्याख्या आँख होने का यथार्थ लाभ तो यही है कि सरकार के सुन्दर मुखकमल का दर्शन हो। यथा . करहु सुफल सबके नयन सुंदर बदन देखाये। अत. किसी एक ने कहा कि भाई! राजा ने अच्छा किया जो इनको वन भेजा। विधाता ने ऐसा अवसर प्रदान कर दिया कि हमारे नयन भी इनके दर्शन से सफल हो गये।

इधर निषादपति ने मन में अनुमान किया कि ये मनोहर स्थान के रहनेवाले हैं। अत इन्हें ठहरने के लिए भी मनोहर स्थान चाहिए। अमुक स्थान में अमुक त्रुटि है। ध्यान में अशोक का वृक्ष आया। मन में ठीक ठहराया कि यही मनोहर है। यहाँ सभी सुभीता है।

लै रघुनाथहि ठाउँ देखावा। कहेउ राम सब भाँति सुहावा ॥
पुरजन करि जोहारु घर आये। रघुवर सन्ध्या करन सिधाये ॥३॥

अर्थ : रामजी को ले जाकर उस स्थान को दिखलाया। रामजी ने कहा कि

---

१ यहाँ असङ्गति द्वितीय अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यह सब भाँति सुन्दर है। पुर के लोग जोहार करके घर आये और रामजी सन्ध्या करने गये।

व्याख्या : स्वय तो पसन्द कर लिया पर सरकार को पसन्द हो तब ठीक। इसलिए सरकार को ले जाकर वह स्थान दिखलाया। सरकार को भी पसन्द आगया। कहने लगे कि यह तो सब प्रकार से सुन्दर है। अर्थात् सभी प्रकार का सुभीता भी है।

जिस भाँति आजकल एक हाथ से वन्दना करते हैं अर्थात् सलाम करते है। उसी भाँति दोनो हाथ से वन्दना को जोहार कहते हैं। एक हाथ से वन्दना करने का बहुत बडा निषेध धर्मशास्त्र मे है। सरकार के साथ पुरजन भी उस स्थान पर गये। पसन्द आने पर सरकार के वही ठहरने का निश्चय हुआ। तब पुरजन जोहार करके अपने अपने घर आये। तब तक सन्ध्या का समय हो गया। सरकार सन्ध्या के लिए गङ्गातट गये। अहरह सन्ध्यामुपासीत। वेद की आज्ञा है कि प्रति दिन सन्ध्या करनी चाहिए। प्रात सन्ध्या और साय सन्ध्या दोनो ही के लिए विधि है। सरकार साय सन्ध्या करने गये रामोपासक को सन्ध्या का परित्याग नही करना चाहिए।

गुह सवारि साँथरी डसाई। कुस किसलयमय मृदुल सुहाई॥
सुचि फल मूल मधुर मृदु जानी। दोना भरि भरि राखेसि पानी॥४॥

अर्थ . गुह ने कुश और कोमल पत्तो की मुलायम और सुन्दर साथरी सँवार कर बिछाया और पवित्र फल और मूल जो उसके जाने हुए थे कि मीठे और कोमल होते हैं उन्हे लाकर तथा पानी को भी दोनो मे भरकर रक्खा।

व्याख्या : गुहराज दरबार से सम्बन्ध रखता है। उसे मालूम है कि कौन कौन से फल पवित्र है। उनमे जो मधुर और मृदु होते है उन्हे दोने मे भरकर रक्खा और पानी भी दोने मे भर भरकर रक्खा। जङ्गली लोग आज भी ऐसा दोना बनाते हैं जिसमे पानी रक्खा जा सकता है : जनश्रुति है कि उसी दिन से मल्लाहो का छुआ हुआ जल ग्राह्य हो गया। क्योकि रामजी ने उसे ग्रहण कर लिया।

दो सिय सुमन्त्र भ्राता सहित, कद मूल फल खाइ।
सयन कीन्ह रघुबंसमनि, पाय पलोटत भाइ॥८९॥

अर्थ . सीताजी सुमन्त्र और भाई सहित कन्द मूल फल खाकर रघुवशमणि रामजी ने शयन किया और भाई पैर दबाने लगे।

व्याख्या आज दूसरे दिन रात के समय सरकार ने सीताजी सुमन्त्र और लक्ष्मणजी के साथ गुह के लाये हुए फल और मूल का भोजन किया। तत्पश्चात् उसी साथरी पर सोये जिसे गुह ने बिछाकर रक्खा था। लक्ष्मणजी चरणसेवा मे लग गये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उठे लखन प्रभु सोवत जानी । कहि सचिवहि सोवन मृदु बानी ॥
कछुक दूरि सजि बान सरासन । जागन लगे बैठि बीरासन ॥१॥

अर्थ : सरकार को सोते हुए जानकर लक्ष्मणजी उठे। मृदु वाणी से मन्त्री को सोने के लिए कहा। कुछ दूर पर धनुष वाण साजकर वीरासन से जागने लगे।

व्याख्या : सरकार को थकावट से नीद जल्द आगयी। निद्रित जानकर उठ गये। उस समय भी पैर दाबने से निद्राभङ्ग का भय था। तब लक्ष्मणजी ने मृदु वाणी से मन्त्री से कहा कि अब आप भी सोइये मैं जागूँगा। आपके जगने की आवश्यकता नही है। विना मन्त्री के सोये और लक्ष्मणजी के हटे जगदम्बा न सोयेंगी।

तब लक्ष्मणजी वहाँ से कुछ दूर जाकर जहाँ से सरकार को देखते भी रहे और विस्पष्ट दिखायी भी न पड़ें वाण को ठीक किया। उसमे लगे हुए पर को ठीक किया। धनुष पर प्रत्यञ्चा चढाया और वीरासन लगाकर जागने लगे। वीरासन लगाने पर निद्रा नही आती : आज से जागना प्रारम्भ हुआ और जबतक सरकार वन मे है रात्रि को जागकर सरकार की रखवारी करते रहेगे। यथा : तेहि पाछे लछिमन बीरासन कटि निषंग कर बान सरासन।

गुह बोलाइ पाहरू प्रतीती । ठाँव ठाँव राखे अति प्रीती ॥
आपु लखन पहिं बैठेउ जाई । कटि भाथी सर चाप चढ़ाई ॥२॥

अर्थ : गुह ने विश्वासपात्र पहरेदारो को बुलाकर स्थान स्थान पर अतिप्रीति के कारण नियुक्त कर दिया और स्वयं कमर मे तरकस और हाथो मे वाण और चढा हुआ धनुष लेकर लक्ष्मणजी के पास जा बैठा।

व्याख्या : प्रेमी का हृदय पापशङ्की होता है। इसलिए निषादराज ने विश्वासपात्र पहरेदारो को जो शत्रु से मिल न जायँ। मौके मौके पर नियुक्त कर दिया। जिसके कारण वनवास हुआ है उसी के कारण वन मे भी चोट हो सकती है। अथवा राजाओ के अनेक गुप्त शत्रु मित्र होते है जिनसे सदा सावधान रहना चाहिए।

लक्ष्मणजी को सोने के लिए नही कहता स्वय सुसज्जित होकर उनके पास जा बैठता है। इतनी बड़ी जिम्मेदारी अपने ऊपर नही लेना चाहता। केवल लक्ष्मणजी का सहायक बनता है। लक्ष्मणजी अकेले जागेंगे साथ रहने से बातचीत होती रहेगी। रात कट जायगी।

## श्री लक्ष्मण गीता

सोवत प्रभुहि निहारि निषादू । भएउ प्रेम बस हृदय बिषादू ॥
तनु पुलकित जलु लोचन बहई । बचन सप्रेम लखन सन कहई ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : प्रभु को सोते हुए देखकर प्रेम के वश निषाद के हृदय मे विषाद हुआ। शरीर पुलकित हो उठा। नेत्रो से जल बहाने लगा। और प्रेम के साथ लक्ष्मणजी से कहने लगा।

व्याख्या : जब निषादराज लक्ष्मणजी के पास बैठे तो सरकार को निहारने का अवसर मिला। यह शयन की झाँकी है : नीदहु बदन सोह सुठि लोना। मनहुँ साँझ सरसीरुह सोना। सरकार के शयनागर की शोभा देखे हुए है। अत: शिंशिपा वृक्ष के नीचे सोये हुए देखकर प्रेमवश उसके हृदय मे विषाद हुआ।

विषाद से सात्त्विक भाव हुआ। शरीर के रोगटे खडे हो गये। आँसू बहने लगे प्रेम के साथ लक्ष्मणजी से कहने लगा। विषाद से मन की दशा कही। तन पुलकित लोचन जल बहई से तन की दशा कही और बचन सप्रेम लखन सन कहई से बचन की दशा कही।

भूपति भवनु सुभाय सुहावा। सुरपति सदनु न पटतर पावा ॥
मनिमय रचित चारु चौबारे। जनु रतिपति निज हाथ सँवारे ॥४॥

अर्थ : राजमहल स्वभाव से ही ऐसा सुन्दर है कि इन्द्रासन से उसकी उपमा नही हो सकती। मणियो से रचे हुए चौबारे ऐसे मनोहर हैं मानो कामदेव ने उन्हे अपने हाथों सँवारा हो।

व्याख्या : महाराज के महल मे सजावट की आवश्यकता नही। वे स्वभाव से ही परमसुन्दर बने हुए है। उनमे चार द्वारवाले घर : ऊपर के बँगले मणिगण से रचे हुए ऐसे मनोहर हैं कि मालूम होता है कि स्वय कामदेव ने ही इनकी रचना की है। लका और अयोध्या का जोड है। उधर : तेहि मय दानव बहुरि सँवारा। कनक रचित मनि भवन अपारा और इधर मनिमय रचित चारु चौबारे। जनु रति पति निज हाथ सँवारे।

दो. सुचि सुबिचित्र सुभोगमय, सुमन सुगंध सुबास।
पलँग मंजु मनि दीप जहँ, सब बिधि सकल सुपास ॥९०॥

अर्थ : वे पवित्र बडे विचित्र सुन्दर भोगो से पूर्ण फूलो के सुगन्ध से सुवासित रहते हैं। वहाँ सुन्दर पलङ्ग हैं। मणि के दीप है। सब प्रकार से सभी सुभीते हैं।

व्याख्या : सोने से ही मनुष्य अपवित्र हो जाता है। उठने पर स्नानादि का विधान है। सो वहाँ का शयनागार पवित्र है। पवित्रता होने पर भी सुन्दरता की कमी नही। अति विचित्र है। सब भोग की सामग्रियो से पूर्ण रहता है। सब प्रकार के पदार्थ स्रक् चन्दन वीणा आदि से सुसज्जित रहता है। फूलो के सुगन्ध से सुवासित रहता है। तीव्र गन्धवाले सुगन्ध की भी वहाँ गति नही है। सोने के लिए सुन्दर पलङ्ग ठण्डी रोशनी के लिए मणिदीप कामशास्त्रानुमोदित सभी सामग्री और सभी प्रकार की जहाँ सुविधाएँ हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विविध वसन उपधान तुराईं। छीर फेन मृदु बसन सुहाईं॥
तहँ सिय रामु सयन निसि करहीं। निज छबि रति मनोज मद हरहीं॥१॥

अर्थ : दूध के फेन की भाँति मुलायम सुन्दर अनेक प्रकार के कपड़े तकिये और गद्दियाँ थी। वहाँ राम जानकी सदा सोते थे और अपनी शोभा से रति और कामदेव के गर्व को हरण करते थे।

व्याख्या : प्रत्येक ऋतु के उपयोगी वस्त्र तथा तकिये और तोशकें वे भी अनेक प्रकार की। मृदुता की पराकाष्ठा है। वे दूध के फेन के समान उज्ज्वल और कोमल हैं। ये सिय राम जिनके लिए चक्रवर्तीजी ने सारे उपभोग एकत्रित कर रक्खे थे। ऐसे भोगमय महल के सोनेवाले हैं। भोग्य की सुन्दरता कहकर भोक्ता की सुन्दरता कहते हैं कि उनकी छवि देखकर रति और कामदेव का गर्व छूट जाता था।

ते सिय रामु साँथरी सोये। श्रमित वसन बिनु जाहिं न जोये॥
मातु पिता परिजन पुरवासी। सखा सुसील दास अरु दासी॥२॥

अर्थ : वे सियराम साथरी पर सोये हुए हैं। थके हुए हैं। बिना कपड़े के देखते नही बनता। माता पिता कुटुम्बी पुरवासी सखा सुशील दासी और दास।

व्याख्या : ऐसे परम सुन्दर तथा सुरदुर्लभोपभोग में पले हुए सियराम साथरी पर सोये हुए हैं। प्रश्न उठता है कि ऐसे सुखों में पले हुए को ऐसी साथरी पर नीद कैसे आयी ? इस पर कहना हैं कि थके हुए हैं। यथा : श्रमित भूप निद्रा अति आई। एक चादर शरीर ढकने के लिए नही है। कहाँ : रति मनोज छबि हरही और कहाँ : जाहि न जोये।

माता पिता सब प्रकार का सार सँभार करनेवाले यथा : सब कर सार संभार गोसाइँ। करब जनक जननी की नाइँ। परिजन पुरवासी सब प्रेम करनेवाले यथा : पुरजन परिजन प्रजा गोसाइँ। सब सुचि सरस सनेह सगाइँ। सेवक सेव्यभाव रखनेवाले सखा यथा : सेवक हम स्वामी सिय नाहू। होउ नात एहिओर निबाहू और अनन्य गतिक दास और दासी।

जोगवहि जिन्हहि प्रान की नाईं। महि सोवत तेइ रामु गोसाईं॥
पिता जनक जग विदित प्रभाऊ। ससुर सुरेस सखा रघुराऊ॥३॥

अर्थ : जिसकी प्राण की भाँति रक्षा करते थे। वे राम गोसाईं पृथ्वी पर सो रहे हैं। जिसके जनक जैसे पिता हैं जिनका प्रभाव जगत मे विदित है। जिसके ससुर इन्द्र के मित्र रघुराज दशरथ हैं।

व्याख्या : ऐसे माता पिता ऐसे परिजन पुरवासी ऐसे सखा ऐसे दास दासी जिनकी रात दिन चारो ओर से प्राण की भांति रक्षा करते थे वे भगवान् रामचन्द्र पृथ्वी पर सो रहे हैं। इससे अधिक अनर्थ क्या होगा ?

स्त्री के भाग्य का निर्णय पिता ससुर और पति के योग्य मिलने पर। निर्भर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है। सो जिनके पिता महाराज जनक : कौन है जो उनके प्रभाव को न जानता हो। जिनके ससुर महाराज दशरथ : आगे होइ जेहि सुरपति लेई। अरध सिंहासन आसन देई। स्वयं देवराज इन्द्र के मित्र।

रामचंदु पति सो बैदेही। सोवति महि बिधि बाम न केही ॥
सिय रघुबीर कि कानन जोगू। करमु प्रधान सत्य कह लोगू ॥४॥

अर्थ : जिसके रामचन्द्र से पति हों वह वैदेही पृथ्वी पर सो रही है। विधाता किसके विपरीत नहीं हो जाते। राम जानकी क्या वन के योग्य हैं। लोग ठीक कहते हैं कि कर्म ही प्रधान है।

व्याख्या : जो बड़ होत सो राम बड़ाई। वे रामचन्द्र जिसके पति हों। भाव यह कि जिसको पिता ससुर और पति लोकोत्तर मिले वह भगवती सीता पृथ्वी पर सोवे। इनके भूमि पर सोने का कोई कारण ही नहीं। सिवा विधाता की करनी के और क्या कहा जा सकता है ? बिधि करतब पर कछु न बसाई।

बनहित कोल किरात किसोरी। रची बिरंचि बिषय सुख भोरी। कै तापस तिय कानन जोगू। जिन्ह तप हेतु तजा सब भोगू। कोल किरात विषय सुख जानते ही नही वे कानन योग्य है। तपस्वी लोग विषय सुख से अपरिचित नही है। पर तपस्या के लिए उसे छोड रक्खा है। वे भी कानन योग्य है। पर ऐसे सुख मे पले हुए नवीन अवस्थावाले राम जानकी क्या वन के योग्य है। वे आँखों में रखने योग्य है। यथा : ये रखिअहिं सखि आँखिन्ह माही। सो इन्हे वनवास मिल गया। अतः कर्म ही प्रधान है। निषाद शास्त्र नही पढे हैं। अत. कहता है : सत्य कह लोगू। यहाँ निषादराज को मोह हुआ। उसने नही समझा कि प्रभु के जन्म कर्म दिव्य है। वे ईश्वर हैं। अपनी इच्छा से शरीर धारण करते है और ऐसी लीला करते हैं जिसे सुनने समझनेवाले को परमपद की प्राप्ति होती है। जिस भाँति जीव कर्मवश दुःख सुख के भागी रहते हैं। उसी भांति रघुनाथजी को समझकर उसे मोह हुआ। विषाद होने पर ही अर्जुन को गीता का उपदेश हुआ। उसी भाँति निषादराज को मोह होने पर साक्षात् भगवान् रामानुज गीता का उपदेश करते हैं।

दो. कैकय नंदिनि मंदमति, कठिन कुटिलपनु कीन्ह।
जेहि रघुनंदन जानकिहि, सुख अवसर दुखु दीन्ह ॥९१॥

अर्थ : मन्दमति कैकय की बेटी ने घोर कुटिलपन किया। जिसने राम जानकी को सुख के अवसर में दुःख दिया।

व्याख्या : कैकयनन्दिनी तो रघुकुल कमल चन्दनी हैं। राजा कैकय भले ही नाती का राज्य सुनकर प्रसन्न हो पर रघुकुल का तो इसने नाश कर दिया। मन्दमति है। अवसर चूक गयी। सदा राम को प्राण के समान मानती रही। जब राम के अभिषेक का समय आया तब इसे उसी भाँति अनुमोदन करने मे आगे होना था। सो इसने वनवास माँगा। राम जानकी को जो जगत् के हित है

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दुःख दिया। यह उसका कुटिलपन है और सुख के अवसर पर दुःख दिया। यह कठिन कुटिलपन है।

भइ दिनकर कुल बिटप कुठारी। कुमति कीन्ह सबु बिस्व दुखारी ॥
भयउ बिषाद निषादहिं भारी। राम सीय महि सयन निहारी ॥१॥

अर्थ : यह सूर्यकुलरूपी वृक्ष के लिए कुल्हाड़ी रूप बन गयी। इस कुबुद्धि ने सारे विश्व को दुःखी कर दिया। राम सीय का पृथ्वी पर सोना देखकर निषाद को भारी विषाद हुआ।

व्याख्या : महाराज ने कहा था : जनि दिनकर कुल होसि कुठारी। आज वही बात निषादराज कह रहे हैं। कुल्हाड़ी लोहे की होती है। पर उसका बेंट काठ का ही होता है। बेंट से सम्बद्ध होकर ही वह वृक्ष काटने में समर्थ होती है। इसी भाँति कैकेयी कैकय देश की है। पर रघुवंश से सम्बद्ध होने के कारण आज वह दिनकर कुलरूपी बिटप के काटने में समर्थ हो रही है। कुमति है : जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना। सो इस कुमति ने तो सारे विश्व को दु.खी कर दिया। यथा : राम गवन बन अनरथ मूला। जो सुनि सकल विश्व भइ सूला। इस भाँति निषादराज भगवती कैकेयी का दो अपराध बतलाते हैं। १. राम जानकी को सुख अवसर में दुःख देना और २. सम्पूर्ण विश्व को दुःखी करना।

राम जानकी का महीशयन देखकर सभी देखनेवाले को विषाद हुआ। पर निषाद को भारी विषाद हुआ : संसार से विषण्णा होने पर ही ज्ञानोपदेश की पात्रता होती है। अतः इसे लक्ष्मणजी उपदेश करेंगे। इस उपदेश को महात्माओं ने लक्ष्मणगीता के नाम से अभिहित किया।

बोले लखनु मधुर मृदुबानी। ग्यान बिराग भगति रस सानी ॥
काहु न कोउ सुखदुख कर दाता। निज कृत करम भोग सबु भ्राता ॥२॥

*अर्थ—ज्ञान विराग भक्ति रससानी मधुर मृदुवाणी लक्ष्मणजी बोले।* कोई भी किसी को सुख दुःख का देनेवाला नहीं है। हे भाई! यह सब अपने किये हुए कर्म के भोग का फल है।

व्याख्या : भगवती कैकेयी पर निषादराज ने जो दोषारोपण किया है उसका निराकरण करना है तथा निषादराज ऐसे हितचिन्तक का मोहापनयन करना है अतः शिक्षा ग्रहण के लिए प्रार्थना न करने पर भी लक्ष्मणजी की प्रवृत्ति उसको उपदेश देने की ओर हुई। निषादराज की उक्ति: कैकयनंदिनि मंद मति कठिन कुटिलपन कीन्ह। जेहि रघुनंदन जानकिहि सुख अवसर दुख दीन्ह। तथा : कुमति कीन्ह सब बिश्व दुखारी का खण्डन करना है। अतः मधुर मृदुवाणी बोले जिससे उसे अरुन्तुद प्रतीत न हो और उसके मोह को दूर करना है। इसलिए ज्ञान विराग भक्ति रससानी वाणी बोले।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कुमति कीन्ह सब विश्व दुखारी का उत्तर देते हैं। निषादराज ने पहिले कहा था कर्म प्रधान सत्य कह लोगू और फिर कैकेयीजी को दोष देने लग गया कि उन्होंने रघुनन्दन जानकी को सुख के अवसर पर दुःख दिया। ये दोनो बातें एक दूसरे के विरुद्ध हैं। मोह होने पर लोग इसी प्रकार से सोचा करते है। स्थिर नही कर सकते कि वस्तुस्थिति क्या है? इस पर लक्ष्मणजी कहते है कि जो तुम भगवती कैकेयी को दुःखदाता समझ रहे हो यह तुम्हारी भूल है। जीव तो कर्मवश दुःख सुख का भागी होता है। जैसा कर्म करता है वही उसका फल भोगता है। यही वेद की नीति है और सभी इसे मानते है। कर्म जड है स्वय फल नही दे सकता। ईश्वर फलदाता है। वह शुभकर्म का शुभफल और अशुभ कर्म का अशुभ फल हृदय मे विचार कर देता है। अत कहा है सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा। कोई सुख दुःख का देनेवाला नही। दूसरा कोई देता है यह कुबुद्धि है। कर्म किया कैकेयी ने और दुःख पाया विश्व ने यह मानना अपसिद्धान्त है। विश्व के अशुभ कर्म के बिना उदय हुए विश्व को दुःख नही मिल सकता।

जोग बियोग भोग भल मदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फदा॥
जनमु मरनु जहँ लगि जग जालू। सपति बिपति करम अरु कालू॥३॥

अर्थ मिलना और बिछुडना बुरे और भले भोग शत्रु मित्र और मध्यस्थ ये भ्रम के फन्दे हैं। जन्म मरण जहाँ तक ससार का जाल है सम्पत्ति विपत्ति कर्म और काल।

व्याख्या श्रीलक्ष्मणजी कहते है कि दुःख सुख का होना भी व्यावहारिक सत्य है पारमार्थिक सत्य नही है। क्योंकि विषय और इन्द्रिय का संयोग ही शीत उष्ण सुख दुःख के देनेवाले है। ये उत्पत्ति विनाशशील एव अनित्य है। यथा मात्रा स्पर्शास्तु कौन्तेय शीतोष्णसुखदुःखदाः। आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत गीतायाम्। असङ्ग आत्मा को योग वियोग कहाँ? और जब योग वियोग नही तब दुःख का सयोग कैसा और उसके देनेवाले हित अनहित मध्यस्थ कहाँ से आगये। इसीलिए कहा है शत्रु मित्र मध्यस्थ तीन ये मन कीन्हे बरिआई। त्यागब गहब उपेक्षणीय अहि हाटक तृन की नाई। अत योग वियोग भल मन्द भोग और शत्रु मित्र मध्यस्थ भाव ही भ्रम है। इसी से लोग बँधे हैं। आगे चलकर उस जाल का भी निरूपण करेंगे। जिसमे ये सात प्रकार के फन्दे लगे हुए है।

वह जाल जिसके फन्दे मे सभी ससारी जीव फँसे हैं यही जगत् है। वह जन्म से लेकर मरण तक फैला हुआ है। पुनरपि जनन पुनरपि मरण पुनरपि जननीजठरे शयनम्। इसी जाल मे फँसा हुआ जीव जन्म मरण का अनुभव सदा किया करता है। इसमे परमार्थ कुछ भी नही। सब व्यावहारिक है। सम्पत्ति विपत्ति भी वास्तविक नही। सबके सब क्षणिक हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



धरनि धामु धनु पुर परिवारू । सरगु नरकु जँह लगि व्यवहारू ॥
देखिय सुनिय गुनिय मनमाही । मोह मूल परमारथ नाही ॥४॥

अर्थ धरती, गृह, धन, पुर, परिवार, स्वर्ग, नरक आदि जहाँ तक व्यवहार है देखिये सुनिये मनमे विचार कीजिये तो सबका कारण मोह है। ये कोई परमार्थ नही है।

व्याख्या उनके कारण कर्म और काल की भी व्यावहारिक सत्ता है। निष्क्रिय आत्मा से कोई सम्बन्ध नही। अत ममता के आस्पद धरणी धाम पुर परिवार यहाँ तक कि स्वर्ग और नरक सब क्षयिष्णु हैं। इनमे भी कोई टिकाऊ नही। अत सब असत्य है। सत्य तो वही है जिसमे देशत कालत वस्तुत व्यभिचार न हो।

आँखो देखते हैं कि इस जगत् में कही किसी पदार्थ मे क्षणमात्र के लिए स्थिरता नही है। परिवर्तन ही जगत् का स्वरूप है। कहाँ गये पिता पितामह जिनके गोद मे स्वर्गीय आनन्द के भोग का अनुभव होता था। कहाँ गये वे मित्र जिनके साथ मे दु ख भूल जाते थे। कहाँ गये वे महाप्रतापी सम्राट् जिनके विषय में सुना जाता है कि अपने धनुष की कोटि से पर्वतो को हटा हटाकर पृथ्वी के जोतने बोने योग्य बनाया। नगर ग्राम बसाकर मनुष्य को समाज बाँधकर रहना सिखाया। मन मे विचारते है तो कही कोई सत्य हाथ नही आता। किसी वस्तु मे सुख दु ख स्थायी नही है। जो वस्तु गरमी में दु खद है वही जाडे मे सुखद हो जाती है। जो वस्तु एक देश मे जैसा प्रभाव दिखाती है दूसरे देश मे उसका दूसरा प्रभाव हो जाता है। स्वत न कोई वस्तु सुखद है न दु खद है न किसी मे स्थिरता है। अत कुछ भी पारमार्थिक सत्य नही है। अपना अज्ञान ही इन सबका मूल है। आत्म-स्वरूप के ज्ञान से इनका अभाव प्रत्यक्ष भासता है।

दो सपने होइ भिखारि नृपु, रक नाकपति होइ।
जागे लाभु न हानि कछु, तिमि प्रपच जिय जोइ ॥९२॥

अर्थ सपने मे राजा भिखारी हो जाता है और दरिद्र इन्द्र हो जाता है। जागने पर न कुछ हानि है न लाभ है। इसी प्रकार से इस ससार को भी जी से जानो।

व्याख्या सपना प्रातिभासित सत्य है। उस काल म वह सत्य ही प्रतीत हाता है। किसी को यह प्रतीति नही होती कि मैं स्वप्न देख रहा हूँ। जो देख रहा हूँ वह मिथ्या है। सभी उस समय उसको सत्य मानते है। सिहासन पर सोया हुआ राजा सपने मे अपने को अति दीन दरिद्रावस्था म पाता है। उसे उस समय अपना राजा हाना नही भासता। सिहासन मे ही लेटा हुआ उसे अपनी दीनता दरिद्रता ही सच्ची मालूम पडती है। इसी भाँति महादरिद्र सपने म देखता है कि इन्द्र हो गया। सब देवता ऋद्धि सिद्धि हाथ बाँधे खडो हैं। उस समय भी वह दरिद्र ही है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पर निद्रादोष के हटते ही वह भ्रम जाता रहता है। उससे न राजा की कोई हानि हुई और न उस दरिद्र का कोई लाभ हुआ।

लक्ष्मणजी कहते हैं कि यह प्रपञ्च व्यावहारिक सत्य भी सपना ही है। भेद इतना ही है कि यह सपना अधिक स्थायी है। वह सपना निद्रादोष से था। यह सपना मायादोष से है। जिस भाँति निद्रादोष की निवृत्ति से वह सपना नहीं रह जाता।

अस विचारि नहिं कीजिअ रोसू। काहुहि बादि न देइअ दोसू॥
मोह निसा सबु सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥१॥

अर्थ ऐसा विचारकर न क्रोध करना चाहिए और न किसी को दोष देना चाहिए। सब मोह रात्रि मे सोनेवाले हैं। अनेक प्रकार के सपने देख रहे हैं।

व्याख्या जगत् को भी सपना रूप जानो। यथा उमा कहौं मै अनुभव अपना। सत हरि भजन जगत सब सपना। विचार तो करो सपने मे का शत्रु मित्र सपने मे का हानि लाभ तो अपने स्वरूप के अतिरिक्त कुछ भी नही है। सपने म तो कोई दूसरा रहता नही। आप ही अपना शत्रु बन जाता है और आप ही अपना मित्र बन जाता है फिर दोष किसे दें? सपने मे जिसे शत्रु रूप देखा था क्योंकि उसने हानि की थी। जागने पर तो कोई उसे न शत्रु मानता है और न उस हानि को हानि समझता है। जानता है कि वह मिथ्या प्रपञ्च था। अत न तो रोष करना चाहिए और न किसी को दोष देना चाहिए। भगवती कैकेयी को दोष देना सर्वथा असङ्गत है।

जिस भाँति सूर्य के न होने से रात होती है उसी भाँति ज्ञानसूर्य के अभाव स मोहरात्रि होती है। जिस भाँति रात को सब सोते हैं और अनेक प्रकार के स्वप्न देखते हैं उसी भाँति मोहरात्रि मे सब सो रहे हैं और जागृतरूप अनेक प्रकार के स्वप्न देख रहे हैं। रात्रि के स्वप्न म जिस भाँति जाग्रत् का भान होता है। सभी स्वप्न देखनेवाले अपने को जागता हुआ ही मानते है। उसी भाँति मोहरात्रि मे सोनेवालो का यह जागना भी स्वप्न ही है। यह जागना सच्चा जागना नहीं है। क्योंकि मोहनिशा के दूर होने पर इसका बाध देखा जाता है।

एहि जग जामिनि जागहिं जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी॥
जानिअ तबहिं जीव जग जागा। जब सब विषय बिलास बिरागा॥२॥

अर्थ इस जगत्रूपी रात्रि म जोगी जागते हैं जो परमार्थी हैं और ससार से जिसका विछोह है। इसम जीव को जागा हुआ तभी जानना चाहिए जब सभी विषय विलास स उसे वैराग्य हो।

व्याख्या यही ससाररूपी रात्रि है। इसमे सपना देखनेवाले अपने को मिथ्या ही जागता हुआ मानते हैं। इसमे सच्चे जागनेवाले जोगी है। क्योंकि वे ही पारमार्थिक सत्य का साक्षात्कार करते हैं। इस स्वप्नरूपी प्रपञ्च का उनके लिए

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सर्वथा बाध हो जाता है। वे व्यावहारिक सत्य को उसी भाँति मिथ्या अनुभव करते है जिस भाँति प्रातिभासिक सत्य उन्हे मिथ्या मालूम होता है। यथा जेहि निसि सकल जीव सूतँ तव कृपापात्र जन जागँ। भाव यह कि जिस ओर योगी लोग जाग रहे है उस ओर ससारी लोग सोये हुए है और जिस ओर ससारी लोग जाग रहे है उस ओर योगी लोग सो रहे है। जैसे जिस समय उल्लू को दिखायी पडता है उस समय कौवा को नही सूझता और जिस समय कौवा को सूझता है उस समय उल्लू को नही सूझता। यही मति ससारी लोगो और योगियो की है।

अब सच्चे जागे हुए का लक्षण कहते है। जब तक चित्त मे विषय विलास का राग है तबतक मोह निद्रा बनी हुई है। जब सब विषय विलास से विराग हो तब जानिये कि जीव जाग गया। अत रामानुरागी ही सच्चे जागनेवाले हैं। यथा रमा बिलास राम अनुरागी। तजत वमन जिमि जन बड भागी। भगवान् भी यही कहते हैं कि सभी योगियो मे वे ही उत्तम है। जो मेरा भजन करते हैं। यथा योगिनामपि सर्वेषा मद्गतेनान्तरात्मना। श्रद्धावान् भजते यो मा स मे युक्तमो मत। गीतायाम्।

होइ बिबेकु मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा॥
सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम बचन राम पद नेहू॥३॥

अर्थ विवेक होता है मोह भ्रम भाग जाता है। तब रघुनाथ के चरणो मे अनुराग होता है। हे सखा! परम परमार्थ यही है कि मनसा वाचा कर्मणा रामपद मे अनुराग हो।

व्याख्या जब तक विषय विलास मे विराग नही होता तब तक विवेक नही होता। केवल शास्त्रीय ज्ञान से पूरा काम नही चलता। विवेकज ज्ञान से ही मोह का नाश होता है। पहिले अज्ञान होता है तब विपरीत ज्ञान होता है। विपरीत ज्ञान ही भ्रम है। विवेकज ज्ञान से भ्रम और उसके मूल मोह का नाश होता है। भ्रम और मोह के रहते रघुनाथजी के चरण म अनुराग नही होता। भगवान् गीता मे कहते हैं कि पापी मोह मे फँसे हुए जिनका ज्ञान माया से अपहरण हो गया है ऐसे अधम पुरुष मेरे शरण नही आते। अत मनसा वाचा कर्मणा रामजी के चरणो मे प्रेम होना ही परम पुरुषार्थ है। क्योकि मोक्ष सुख भी बिना हरिभक्ति के ठहर नही सकता और सगुणोपासक तो मोक्ष चाहते ही नही। यथा साधन सिद्धि रामपग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू।

राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अविगत अलख अनादि अनूपा॥
सकल बिकार रहित गतभेदा। कहि नित नेति निरूपहि बेदा॥४॥

अर्थ राम ब्रह्म परमार्थ रूप है। अव्यक्त, अलक्ष्य, अनादि और अनूप है। सब विकारो से रहित और भेद रहित है। उन्हे न इति न इति कहकर वेद निरूपण करते है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : कुमति कीन्ह सब बिश्व दुखारी का उत्तर देकर. जेहि रघुनंदन जानकिहि सुख अवसर दुख दीन्ह का उत्तर रामजी के स्वरूप का निरूपण करके देते हैं। रामजी जीव नहीं है। वे ब्रह्म हैं। देशत: कालत: और वस्तुत अपरिच्छिन्न हैं। इसलिए वे ही परमार्थ सत्य हैं। अरूप होने से अव्यक्त है। मन और वाणी से परे होने से अलख है। अथवा स्थूल दृष्टि से नहीं देखे जा सकने से अलख कहा। सबके आदि होने से अनादि कहा। अद्वितीय होने से अनूप कहा। यथा जग सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप शिरोमने। चिदानन्द मय होने से विकार रहित कहा। यथा ' चिदानन्दमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी। सर्वगत होने से भेदरहित कहा। इदमित्थ रूप से नहीं कहे जा सकने के कारण वेद नेति नेति कहकर निरूपण करते है अथवा वेद नेति नेति कहकर अर्थात् यह भी नहीं यह भी नहीं अथवा स्थूल भी नहीं सूक्ष्म भी नहीं कहकर सब प्रकार के विशेषों का निषेध करते हैं। ऐसे प्रभु जिस भक्ति के अनुरोध से देह धारण करते है वह भक्ति महा प्रभावा है।

दो. भगत भूमि भूसुर सुरभि, सुर हित लागि कृपाल।
करत चरित धरि मनुज तनु, सुनत मिटहि जग जाल ॥९३॥

अर्थ : वे कृपालु हैं। भक्त, भूमि, ब्राह्मण, गौ, देवता के लिए मनुष्य शरीर धारण करके लीला करते हैं। उसके सुनने से जग जाल मिट जाता है।

व्याख्या : अगुन अखंड अनंत अनादी। जेहि चिंतहि परमारथवादी। नेति नेति जेहि वेद निरूपा। निजानन्द निरुपाधि अनूपा। संभु बिरंचि बिस्नु भगवाना। उपजहि जासु अंस ते नाना। ऐसउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीला तनु गहई। यद्यपि प्रभु जगत् से विलक्षण हैं। पर जगत पर कृपा करके भक्त, भूमि ब्राह्मण, गौ और देवताओं के लिए अर्थात् साधु के दु ख निवारण के लिए वही रामजी मनुष्यरूप धारण करके लीला कर रहे है। जेहि कहत गावत सुनत समुझत परमपद नर पावई। उस चरित के सुनने से जग जाल मिट जाता है। अर्थात् जन्म-मरण के बन्धन से रहित हो जाता है। यह चरित की अद्भुत महिमा है।

सखा समुझि अस परिहरि मोहू। सिय रघुबीर चरन रत होहू ॥
कहत राम गुन भा भिनुसारा। जागे जग मंगल सुखदारा ॥१॥

अर्थ हे सखा! ऐसा समझकर मोह को छोडो और सिय रघुवीर के चरणो मे प्रेम करो। इस भाँति रामजी के गुणो को कहते कहते सबेरा हो गया और सुखरूप स्त्रीवाले जगमङ्गल रामजी जागे।

व्याख्या · उपसहार करते हुए लक्ष्मणजी ने कहा कि हे सखा! रामजी ब्रह्म हैं। जगत् के मङ्गल के लिए अवतीर्ण होकर नर चरित कर रहे हैं। ऐसा समझकर मोह को छोड दो। जाग जाओ। इनको प्राकृत नर समझकर विषाद न करो। इनके स्वरूप को न पहचानकर इन्हें मनुष्य मानना ही मोह है। परमार्थ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रूप ब्रह्म ही सिय रघुवीर रूप से दो मूर्ति धारण किये हुए हैं। अत. इनके चरणों मे भक्ति करो। तुम्हे विषयो मे राग है इससे इन्हें दु खी समझ रहे हो।

इस प्रकार से रामगुण कहते कहते रात बीत गयी। समय का कुछ भान ही न रहा। एहि बिधि कहत रामगुन ग्रामा। पावा अनिर्बाच्य बिश्रामा। सोने से जगत् को विश्राम मिलता है। यहाँ जागने से अनिर्वाच्य विश्राम मिला है। सवेरा होते ही सुखरूप दारा हैं जिसकी अर्थात् साक्षात् आह्लादिनी शक्तिरूपा जिनकी स्त्री सीताजी हैं वे जगत् के मङ्गल करनेवाले रामजी जागे।

सकल सौच करि राम नहावा। सुचि सुजान बट छीर मँगावा॥
अनुज सहित सिर जटा बनाये। देखि सुमंत्र नयन जल छाये॥२॥

अर्थ : पवित्र और सुजान रामजी ने पहिले सब शौचविधि की फिर स्नान किया। तत्पश्चात् वटवृक्ष का दूध मँगाया। भाई के सहित जटा बनाया। जिसे देखकर सुमन्त्रजी की आँखो मे आँसू आगये।

व्याख्या : शौच दो प्रकार का होता है। ध्यानादि मानसिक शौच है और शरीर की शुद्धि शारीरिक शौच है। रामजी स्वभाव से ही पवित्र हैं। फिर भी शास्त्रानुमोदित रीति से दोनों प्रकार का शौच करके स्नान किया। जब से घर से चले हैं तभी से मुनिव्रत और आहार चल रहा है। वल्कल धारण कर ही लिया है। अब मुनिवेष की पूर्ति के लिए जटा बनाना शेष है। सुमन्त्रजी किसलिए साथ आये हैं इस बात को समझ रहे हैं। अतः अपना अभिप्राय उनको सुस्पष्ट कर देने के लिए तुरन्त वटक्षीर मँगाया और दोनो भाइयों ने जटा बना ली। देखते ही सुमन्त्र समझ गये कि ये दोनों भाई लौटनेवाले नही हैं। बड़े सुजान हैं। जटा बनाकर ही जो कहना था कह दिया। अतः इस भाँति निराश होने से सुमन्त्रजी के नेत्रो मे जल आगया। दूसरी बात यह कि सुमन्त्रजी पुत्र की भाँति स्नेह करते हैं। इनको जटा धारण किये हुए देखकर प्रेम उमड़ पड़ा। अतः आँखो मे आँसू आगये।

हृदयँ दाहु अति बदन मलीना। कह कर जोरि बचन अति दीना॥
नाथ कहेउ अस कोसलनाथा। लै रथु जाहु राम के साथा॥३॥

अर्थ : कलेजे मे अत्यन्त दाह उत्पन्न हो गया। मुख मलिन हो गया। हाथ जोड़कर दीन वचन बोले कि हे नाथ! कोसलनाथ ने कहा कि तुम रथ लेकर रामजी के साथ जाओ।

व्याख्या : सुमन्त्रजी के हृदय में दाह तो पहिले ही से था जटा धारण किये हुए देखकर वह दाह बहुत बढ गया। अतः उसका प्रभाव मुख पर पड़ा। मुख मलिन हो गया। समझा कि यही समय निवेदन का है। अतः हाथ जोड़कर अति दीन वचन बोले। हृदय दाह अति से मन की दशा कहा। बदन मलीना से तन की दशा कहा। बचन अति दीना ... कह रहे हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुमन्त्रजी ने कहा कि आप भी मेरे नाथ है। पर कोसलनाथ सबसे बडे हैं। उनकी आज्ञा आप को भी शिरोधार्य है। वे नही चाहते कि आप पैदल चलें। इसीलिए रथ लेकर मुझे भेजा। आपके लिए मुनि व्रत बेष आहार की जो आज्ञा थी वह जटा बना लेने से पूरी हो गयी। अब आगे क्या करना चाहिए उसके लिए भा आज्ञा हुई है।

वन देखाइ सुरसरि अन्हवाई। आनेहु फेरि वेगि दोउ भाई ॥
लखनु राम सिय आनेहु फेरी। संसय सकल सँकोच निवेरी ॥४॥

अर्थ : वन दिखाकर गङ्गा स्नान कराकर दोनो भाइयो को जल्दी लौटा लाना। सब संशय और सङ्कोच को दूर करके लक्ष्मण राम और सीता को लौटा लाना।

व्याख्या : सो आपने वन भी देख लिया। गङ्गा के उस पार वन है और गङ्गा स्नान भी कर लिया। रथ साथ है। लौट चलिये यही आज्ञा है। वन से आपका चक्षुः सयोग हो गया। यह सशय न कीजिये कि पिता की आज्ञा तो चौदह वर्ष के लिए थी। अब दूसरी आज्ञा चार दिन के लिए हुई तो इनमे से मैं किसे मानूं। सो चौदह वर्ष की अवधि को ही सङ्कुचित करके चार दिन किया गया है। मै मन्त्री हूँ। महाराज के प्रतिनिधि के नाते कह रहा हूँ। यह भी सशय न कीजिये कि आज तो लौट चलें। कल फिर कैकेयी की सम्मति से न जाने कैसी आज्ञा हो। सो कुछ न होगा। अब कैकेयी का कुछ सुना न जायगा। यह सङ्कोच भी न कीजिये कि जब वन के लिए चल पडे तो लौटें क्या ? मै स्वय महाराज की आज्ञा से रथ लेकर लौटाने के लिए आया हूँ। इसमें आपके लिए सङ्कोच की कोई बात नही है।

दो. नृप अस कहेउ गोसाइँ जस, कहइ करौ बलि सोइ।
करि बिनती पायन्ह परेउ, दीन्ह बाल जिमि रोइ ॥९४॥

अर्थ : महाराज ने ऐसा कहा है। हे नाथ ! मैं बलैया लेता हूँ। अब जैसी आपकी मर्जी हो वैसा करूँ। इस प्रकार से प्रार्थना करके पैर पर गिर पडे और बालक की भाँति रो दिया।

व्याख्या : सुमन्त्रजी कहते है कि महाराज की तो ऐसी आज्ञा हुई है। पर: राम रजाइ भेट मन माही। देखा सुना कतहुँ क उ नाही। अत मै बलि जाऊँ। अब आप जो कहें सो मै करूँ। ऐसा कहकर सुमन्त्रजी पैर पर गिर पडे वे समझते थे कि दूसरी आज्ञा को प्रियप्रेमप्रमाद समझकर स्वीकार नही करेंगे। अत. उसके स्वीकार करने के लिए अनेक प्रकार से विनती की और बच्चो की भाँति फूट फूट कर रोने लगे।

तात कृपा करि कीजिअ सोई। जाते अवध अनाथ न होई ॥
मन्त्रिहि राम उठाइ प्रबोधा। तात धरम मतु तुम सब सोधा ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : हे तात ! कृपा करके वही कीजिये जिससे अयोध्या अनाथ न हो। मन्त्री को रामजी ने उठाकर समझाया कि आप तो धर्म के सब सिद्धान्त समझे बूझे है।

व्याख्या : मन्त्री के विनय का सार इतना ही था कि यद्यपि कोई नियम ऐसा नही है जिससे कि आप लौट चलने को विवश हो। पर कृपाभिक्षा दीजिये जिससे अयोध्या अनाथ न हो। आपके विना अयोध्यानाथ के रहते हुए भी अयोध्या अनाथ हो जायगी। ऐसी विनती पैर पर पडे हुए सुमन्त्रजी कर रहे हैं।

सुमन्त्रजी पैर पर गिरे थे इसलिए रामजी ने उठाया। बच्चो की भाँति रो रहे थे इसलिए समझाया कि धर्मशास्त्र आपका भली भाँति जाना हुआ है। आप पिताजी को भी उपदेश देनेवाले हैं। आप ऐसा कैसे कहते हैं। धर्म के लिए कष्ट सहना ही तो धर्म पालन है। जो कष्ट को डरेगा वह धर्माचरण क्या करेगा? अतः कष्ट के लिए धर्म नही छोडा जा सकता।

सिबि दधीचि हरिचंद नरेसा। सहे धरम हित कोटि कलेसा ॥
रंतिदेव बलि भूप सुजाना। धरमु धरेउ सहि संकट नाना ॥२॥

अर्थ : शिवि दधीचि और राजा हरिश्चन्द्र ने धर्म के लिए करोडो कष्ट सहे। रन्तिदेव और सुजान बलि राजा ने नाना संकट सहकर भी धर्म को नही छोड़ा।

व्याख्या : श्रीरामचन्द्र महाजनो का उदाहरण देते हैं कि राजा शिवि अपने शरीर का मांस अपने हाथ से काट काटकर कपोत के साथ तौलते गये। शरणागत होने पर भी कपोत ने कपट किया। वह भारी होता गया। राजा अपने बात से न हटा। सारा शरीर काट डाला। दधीच ऋषिने देवताओ की याचना करने पर अपनी शरीर की हड्डी दे दी। राजा हरिश्चन्द्रने राज्य दिया। स्वयं चाण्डाल के हाथ बिके। इन महाजनो ने धर्म के लिए नाना प्रकार के कष्ट सहे और महाजन जिस रास्ते से गये हो वही रास्ता है। रन्तिदेव ने अपना सर्वस्व दान कर दिया। बाल बच्चो के साथ अडतालीस दिन बिना अन्न के रह गये। अन्न मिलते ही अतिथि लोग पहुँच गये। महाराज रन्तिदेव ने प्रसन्नतापूर्वक सब अन्न उनको खिला दिया। अपने लिए पानी भी न रक्खा। राजा बलि दान देने मे ठगे गये। तीन पग के व्याज से तीनो लोक उनसे ले लिया गया। उस महात्मा ने यह भी नही कहा कि जिस रूप से दान लिया था उसी रूप से पृथ्वी नापो। अन्त मे उन्हे नागपाश से बाँधा गया। पाताल भेज दिये गये पर धर्म नही छोड़ा। इन महाजनो ने रास्ता दिखला दिया कि कष्ट के समय मे धर्मपालन ही सच्चा धर्मपालन है। कष्ट ही धर्मपरीक्षा का समय है। बड़े धर्मात्माओ को बड़ा कष्ट उनकी धर्मपरीक्षा के लिए आता है। अतः परीक्षा काल मे दृढता की आवश्यकता है।

धरमु न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना ॥
मैं सोइ धरमु सुलभ करि पावा। तजें तिहूँ पुर अपजसु छावा ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुमन्त्रजी ने कहा कि आप भी मेरे नाथ है। पर कोसलनाथ सबसे बडे उनकी आज्ञा आप को भी शिरोधार्य है। वे नही चाहते कि आप पैदल चल इसीलिए रथ लेकर मुझे भेजा। आपके लिए मुनि व्रत वेष आहार की जो आ थी वह जटा बना लेने से पूरी हो गयी। अब आगे क्या करना चाहिए उस लिए भी आज्ञा हुई है।

वन देखाइ सुरसरि अन्हवाई। आनेहु फेरि बेगि दोउ भाई ॥
लखनु राम सिय आनेहु फेरी। ससय सकल सँकोच निवेरी ॥४

अर्थ : वन दिखाकर गङ्गा स्नान कराकर दोनो भाइयो को जल्दी लौ लाना। सब सशय और सङ्कोच को दूर करके लक्ष्मण राम और सीता लौटा लाना।

व्याख्या : सो आपने वन भी देख लिया। गङ्गा के उस पार वन है औ गङ्गा स्नान भी कर लिया। रथ साथ है। लौट चलिये यही आज्ञा है। वन आपका चक्षु सयोग हो गया। यह सशय न कीजिये कि पिता की आज्ञा तो चौद वर्ष के लिए थी। अब दूसरी आज्ञा चार दिन के लिए हुई तो इनमे से मै कि मानूँ। सो चौदह वर्ष की अवधि को ही सङ्कुचित करके चार दिन किया गया है मैं मन्त्री हूँ। महाराज के प्रतिनिधि के नाते कह रहा हूँ। यह भी सशय न कीजि कि आज तो लौट चलें। कल फिर कैकेयी की सम्मति से न जाने कैसी आज्ञा हो। स कुछ न होगा। अब कैकेयी का कुछ सुना न जायगा। यह सङ्कोच भी न कीजि कि जब वन के लिए चल पडे तो लौटे क्या? मैं स्वय महाराज की आज्ञा से र लेकर लौटाने के लिए आया हूँ। इसमे आपके लिए सङ्कोच की कोई बात नही है।

दो. नृप अस कहेउ गोसाइँ जस, कहइ करौ बलि सोइ।
करि विनती पायन्ह परेउ, दीन्ह बाल जिमि रोइ ॥९४॥

अर्थ महाराज ने ऐसा कहा है। हे नाथ! मैं बलैया लेता हूँ। अब जैस आपकी मर्जी हो वैसा करूँ। इस प्रकार से प्रार्थना करके पैर पर गिर पडे औ बालक की भाँति रो दिया।

व्याख्या सुमन्त्रजी कहते है कि महाराज की तो ऐसी आज्ञा हुई है। पर राम रजाइ भट मन माही। देखा सुना कतहुँ क उ नाही। अत मै बलि जाऊँ अब आप जो कहै सो मै करूँ। ऐसा कहकर सुमन्त्रजी पैर पर गिर पडे वे समझते थे कि दूसरी आज्ञा को प्रियप्रमप्रमाद समझकर स्वीकार नही करेगे। अत उसके स्वीकार करने के लिए अनेक प्रकार से विनती की और बच्चो की भाँति फूट फूट कर रोने लगे।

तात कृपा करि कीजिअ सोई। जाते अवध अनाथ न होई ॥
मन्त्रिहि राम उठाइ प्रबोधा। तात धरम मतु तुम सब सोधा ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : हे तात ! कृपा करके वही कीजिये जिससे अयोध्या अनाथ न हो। मन्त्री को रामजी ने उठाकर समझाया कि आप तो धर्म के सब सिद्धान्त समझे बूझे हैं।

व्याख्या : मन्त्री के विनय का सार इतना ही था कि यद्यपि कोई नियम ऐसा नही है जिससे कि आप लौट चलने को विवश हो। पर कृपाभिक्षा दीजिये जिससे अयोध्या अनाथ न हो। आपके विना अयोध्यानाथ के रहते हुए भी अयोध्या अनाथ हो जायगी। ऐसी विनती पैर पर पडे हुए सुमन्त्रजी कर रहे हैं।

सुमन्त्रजी पैर पर गिरे थे इसलिए रामजी ने उठाया। बच्चो की भाँति रो रहे थे इसलिए समझाया कि धर्मशास्त्र आपका भली भाँति जाना हुआ है। आप पिताजी को भी उपदेश देनेवाले हैं। आप ऐसा कैसे कहते हैं। धर्म के लिए कष्ट सहना ही तो धर्म पालन है। जो कष्ट को डरेगा वह धर्माचरण क्या करेगा ? अत. कष्ट के लिए धर्म नही छोडा जा सकता।

सिबि दधीचि हरिचंद नरेसा। सहे धरम हित कोटि कलेसा ॥
रंतिदेव बलि भूप सुजाना। धरमु धरेउ सहि सकट नाना ॥२॥

अर्थ : शिवि दधीचि और राजा हरिश्चन्द्र ने धर्म के लिए करोड़ो कष्ट सहे। रन्तिदेव और सुजान बलि राजा ने नाना सकट सहकर भी धर्म को नही छोड़ा।

व्याख्या : श्रीरामचन्द्र महाजनो का उदाहरण देते हैं कि राजा शिवि अपने शरीर का माँस अपने हाथ से काट काटकर कपोत के साथ तौलते गये। शरणागत होने पर भी कपोत ने कपट किया। वह भारी होता गया। राजा अपने बात से न हटा। सारा शरीर काट डाला। दधीच ऋषिने देवताओ की याचना करने पर अपनी शरीर की हड्डी दे दी। राजा हरिश्चन्दने राज्य दिया। स्वय चाण्डाल के हाथ विके। इन महाजनो ने धर्म के लिए नाना प्रकार के कष्ट सहे और महाजन जिस रास्ते से गये हो वही रास्ता है। रन्तिदेव ने अपना सर्वस्व दान कर दिया। बाल बच्चो के साथ अडतालास दिन बिना अन्न के रह गये। अन्न मिलते ही अतिथि लोग पहुँच गये। महाराज रन्तिदेव ने प्रसन्नतापूर्वक सब अन्न उनको खिला दिया। अपने लिए पानी भी न रक्खा। राजा बलि दान देने मे ठगे गये। तीन पग के व्याज से तीनो लोक उनसे ले लिया गया। उस महात्मा ने यह भी नही कहा कि जिस रूप से दान लिया था उसी रूप से पृथ्वी नापो। अन्त मे उन्हे नागपाश से बाँधा गया। पाताल भेज दिये गये पर धर्म नही छोड़ा। इन महाजनो ने रास्ता दिखला दिया कि कष्ट के समय मे धर्मपालन ही सच्चा धर्मपालन है। कष्ट ही धर्मपरीक्षा का समय है। बडे धर्मात्माओ को बडा कष्ट उनकी धर्मपरीक्षा के लिए आता है। अतः परीक्षा काल मे दृढता की आवश्यकता है।

धरमु न दूसर सत्य समाना। आगम निगम पुरान बखाना ॥
मै सोइ धरमु सुलभ करि पावा। तजे तिहूँ पुर अपजसु छावा ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ शास्त्रो वेदो और पुराणो मे कहा गया है कि सत्य के समान दूसरा धर्म नही है। मैने उसी धर्म को सुलभ करके पाया है। छोडने से तीनो लोक मे अपकीर्ति होगी।'

व्याख्या वेद कहता है। सत्य वद धर्मशास्त्र कहता है सत्यान्नास्ति परो धर्म। इतिहास पुराण कहते हैं धर्मो जयति नाधर्म सत्य जयति नानृतम्। न स धर्मो यत्र न सत्यमस्ति। अत सत्य सब धर्मों से बडा होने मे सब शास्त्रो का ऐकमत्य है। वही सत्य मुझे सुलभ रीति से प्राप्त हुआ है। मुझे धर्मपरीक्षा म उत्तीण होने म बडी कठिनाई का सामना नही करना पड रहा है। केवल चौदह वर्ष वनवास करने से ही मै धर्मपरीक्षा म उत्तीर्ण हो जाऊँगा। यदि इस समय मैने कच्चाई की तो बडा भारी अपयश होगा कि रामचन्द्र धर्म के लिए चौदह वर्ष वन जाने को भी तैयार न हुए।

सभावित कहु अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू॥
तुम्ह सन तात बहुत का कहऊँ। दिये उतरु फिर पातकु लहऊँ॥४॥

अर्थ प्रतिष्ठित पुरुष को अपयश होने से करोडो मरण के समान घोर दाह होता है। हे तात! आपसे बहुत क्या कहे उलटकर जवाब दने से पाप होगा।

व्यारया वन जाने से धर्म का लाभ है और न जाने से प्रत्यवाय है। सम्भावितस्य चाकीर्तिर्मरणादतिरिच्यते। प्रतिष्ठित पुरुष की अकीर्ति मरणदाह से कही अधिक दाहक हाती है। भाव यह कि आप लोग मुझे दु खी मानकर इतने दु खी हैं। पर मेरा भला इस समय वन जाने मे ही है। वन न जाने मे मरणान्त वेदना हागी। अत मेरे ऊपर दया करके मेरे लिए दु खी न होइये।

आप स्वय बडे जानकार है। स्वय इन बातो को खूब समझते है। आप पूज्य हैं। आपकी बात काटकर उत्तर देने से पाप होता है। अत अधिक कहना सुनना व्यर्थ है।

दो पितु पद गहि कहि कोटि नति, विनय करब कर जोरि।
चिता कवनिहुँ बात कै, तात करिअ जनि मोरि॥९५॥

अर्थ पिताजी का चरण पकडकर करोडो नमस्कार करके मेरी ओर से हाथ जोडकर विनय कीजियेगा कि आप मेरे लिए किसी बात की चिन्ता न करे।

व्याख्या सुमन्त्रजी ने कहा था नृप अस कहेउ गोसाइँ जस कहउँ करउँ बलि सोइ। इसी के उत्तर म कहते है कि आप जाकर मेरी ओर से चरण पकडकर पिताजी से करोडा प्रणाम कहियगा और हाथ जाडकर विनती कीजियेगा कि मेरे लिए किसी बात की चिन्ता न करे। धर्म के लिए इस थोडे से कष्ट को मै सुख के साथ सहन करूँगा और धर्मो रक्षति रक्षित रक्षा किया हुआ धम आचरण करनेवाले की रक्षा करता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तुम्ह पुनि पितु सम अति हित मोरे। बिनती करौं तात करजोरे॥
सब बिधि सोइ करतब्य तुम्हारे। दुखु न पाव पितु सोच हमारें॥१॥

अर्थ आप पिता के समान मेरे अत्यन्त हित हैं। हे तात! हाथ जोडकर विनती करता हूँ। सब विधि से आपका वही कर्तव्य है जिसमे हमारे सोच से पिताजी को दुःख न हो।

व्याख्या रामजी सुमन्त्रजी से कहते हैं कि आप पिताजी के सखा हैं। पिता के समान ही मेरा कल्याण चाहनेवाले हैं। अब आपसे मैं हाथ जोडकर विनती करता हूँ। मुझे इस बात की बडी चिन्ता है कि पिताजी को मेरे लिए बडा शोक होगा। मेरी विनती पर भी सम्भव है कि न मिटे। अब यहाँ आपका सब प्रकार से यह कर्तव्य होना चाहिए कि पिताजी मेरे शोक से दुःखी न हो। क्योकि आप मन्त्री हैं। सखा हैं। परम विश्वासपात्र है। आपकी सम्मति का पिताजी आदर करते हैं। आपके समझाने बुझाने का प्रभाव पडेगा।

सुनि रघुनाथ सचिव सवादू। भयेउ सपरिजन विकल निषादू॥
पुनि कछु लखन कही कटु बानी। प्रभु बरजे बड अनुचित जानी॥२॥

अर्थ रामजी और मन्त्री का सम्वाद सुनकर कुटुम्बियो के सहित निषाद विकल हो गया। फिर लक्ष्मणजी ने कुछ कडवी बात कही। प्रभु ने बडा अनुचित जानकर मना कर दिया।

व्याख्या निषादराज कुटुम्ब के सहित रामजी के चरणो के प्रेमी हैं। रामजी और मन्त्री का सवाद ऐसा करुणापूर्ण हुआ कि सबके सब विषाद से विकल हो गये। उनके मन मे निश्चय हो गया कि रामजी नही लौटेंगे। लक्ष्मणजी ने जो कहा उसे कवि ने दोहराना पसन्द नही किया। जिस बात के लिखने से कोई लाभ नही कोई उपदेश नही उसे न लिखना ही उचित है। इतना ही कहना यथेष्ट है कि प्रभु ने उसे बडा अनुचित समझा और लक्ष्मणजी को अधिक कहने से रोक दिया। निःसन्देह वह पिताजी के प्रति अनादर सूचक बात थी। जैसा कि लोग ऐसे अवसर पर क्रोध से बोल देते हैं। सरकार ने रोक दिया कि क्या कहते हो।

सकुचि राम निज सपथ देवाई। लखन संदेसु कहिअ जनि जाई॥
कह सुमन्त्रु पुनि भूप संदेसू। सहि न सकिहि सिय बिपिन कलेसू॥३॥

अर्थ रामजी सङ्कुचित हो गये। अपनी शपथ दिलायी कि लक्ष्मण का सन्देश जाकर मत कहियेगा। तब सुमन्त्र ने महाराज का सन्देशा कहा कि सीताजी वन का कष्ट सह न सकेगी।

व्याख्या लक्ष्मणजी के कटु कहने पर रामजी सङ्कुचित हो गये। क्योकि दोनो भाइयो का हृदय इतना अभिन्न समझा जाता है कि लक्ष्मणजी की उक्ति को रामजी के आन्तरिक भाव के रूप मे ग्रहण किया जा सकता है। यहाँ पर यह बात

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भी खुल गयी कि लक्ष्मणजी ने जो कटु कहा था वह सन्देश रूप में था। अतः रामजी ने सुमन्त्रजी को अपना शपथ दिलाया कि पिताजी से लक्ष्मण का सन्देश न कहें। केवल मेरा सन्देश कहें।

सबके लौट जानेवाली आज्ञा के अस्वीकार करने पर सुमन्त्रजी ने राजा का सन्देश सुनाया कि तुम लोग पुरुष हो, वीर हो वन के क्लेश को सह जाओगे। पर सीताजी तो न सह सकेंगी। महाराज ने सुमन्त्र से कहा था ' जौ नहिं फिरैं धीर दोउ भाई। सत्यसंध दृढव्रत रघुराई। तौ तुम्ह बिनय करेहु कर जोरी। फेरिअ प्रभु मिथिलेस किसोरी। उसी आज्ञा का पालन सुमन्त्रजी कर रहे हैं।

जेहि बिधि अवध आव फिरि सीया। सोइ रघुबरहि तुम्हहि करनीया॥
नतरु निपट अवलंब बिहीना। मै न जिअब जिमि जल बिनु मीना॥४॥

अर्थ : जिस भाँति सीताजी अवध में फिर आवैं वही तुम्हें और रामजी को कहना चाहिए। नही तो एकदम निराधार हो जाने से मैं बिना जल की मछली की भाँति नही जीऊँगा।

व्याख्या : महाराज का सन्देश कहते हुए सुमन्त्रजी कहते हैं कि सीता किस विधि से अवध लौट चलेंगी इसका निश्चय महाराज ने मेरे और आपके ऊपर छोड़ दिया है और स्वयं कह दिया है कि सीता वन के क्लेश को न सह सकेगी केवल इतनी ही बात नही है। वह यदि नही लौटी तो मैं जी नही सकता। मैं बिना पानी की मछली की भाँति निरालम्ब हो जाऊँगा। गिरा अर्थ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न। रामजी जल हैं। सीताजी लहर है। सो मछली यदि जल में न भी हो पर जल के लहर से सम्पर्क बना रहे तो भी मछली जी सकती है। यदि वह भी न रहे तो मरण ही परिणाम है।

दो. मइके ससुरें सकल सुख, जबहि जहाँ मनु मान।
तहँ तब रहिहि सुखेन सिय, जब लगि बिपति बिहान॥९६॥

अर्थ . पितृगृह में और ससुराल में सभी सुख है। जहाँ जी चाहे वहाँ सीता जब तक विपत्ति की रात न बीते सुख से रहे।

व्याख्या : रामजी का वन गमन सूर्यास्त है। उनका विरह रात्रि है। सो जब तक यह रात्रि न बीते रामजी लौट न आवें तब तक सीता का जहाँ जी चाहे रहें। मैके और ससुराल में सभी सुख है। कोई घाटा नही। जब तक जी चाहे अवध में रहे जी बहलाने के लिए जनकपुर में भी रहे, मेरा कोई अनुरोध नही है। पर वन में न रहे।

बिनती भूप कीन्ह जेहि भाँती। आरति प्रीति न सो कहि जाती॥
पितु संदेसु सुनि कृपानिधाना। सियहि दीन्ह सिख कोटि बिधाना॥१॥

अर्थ महाराज ने जिस भाँति विनती की है वह आर्ति और विनय कहते

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नहीं वनता। पिता का सन्देशा सुनकर कृपानिधान रामजी ने सीताजी को करोडों तरह से सीख दी।

व्याख्या : महाराज ने सीताजी के लौटाने के लिए विनती की। क्योंकि विपत्ति के समय पति से स्त्री को हटाने का कोई हक किसी को नही। विपत्ति के समय स्त्री की परीक्षा है। आपत काल परिखअहि चारी। धीरज धरमु मित्र अरु नारी। महाराज अपने को सापराध मान रहे हैं और स्नेहाधिक्य से आर्त हो रहे हैं। इसलिए विनती करते है कि तुम्हारा अनुरोध सीता को मानना ही पडेगा।

सरकार एक तो कृपानिधान हैं। आर्त पर कृपा करने का स्वभाव है। तिस पर पिता का सन्देश आर्ति और प्रीति से युक्त सुनकर सीताजी को कोटि प्रकार की शिक्षा दी। माता के कहने पर अनेक विधान से शिक्षा दी थी। अब कोटि विधान से देते हैं। ध्यान देने की वात है कि इतना होने पर भी शिक्षा ही देते हैं। आज्ञा नहीं देते कि तुम चली जाओ। क्योंकि जो अपने धर्म पर अग्रसर है उसे क्रिया की दुष्करता दिखलाकर सावधान किया जा सकता है। हठात् रोका नही जा सकता। दूसरे यह कि बोल चुके है : परिहरि सोच चलहु बन साथा और राम दो बार नही बोलते : रामो द्विर्नाभिभाषते।

सासु ससुर गुरु प्रिय परिवारू। फिरहु त सब कर मिटै खँभारू ॥
सुनि पति वचन कहति वैदेही। सुनहु प्रानपति परम सनेही ॥२॥

अर्थ : तुम लौट जाओ तो सास, ससुर, गुरु, प्रिय और परिवार सबका दु.ख मिट जाय। पति का वचन सुनकर वैदेही बोली कि हे प्राणपति! हे परम सनेही सुनो।

व्याख्या : रामजी के कोटि भाँति समझाने का निर्गलितार्थ यह कि जब तुम्हारे लौट जाने से सास, ससुर, गुरु, प्रिय, परिवार का दु.ख मिटता है तब तुम अपने ऊपर दु.ख को अङ्गीकार करके लौट जाओ। इन गुरुजनो का जिस कार्य से सन्तोष होता हो उससे बड़ा धर्म कौन है? रह गयी मेरी बात तो मेरी इस विषय मे पूरी सम्मति है। मैं कह रहा हूँ और मेरे भी गुरुजन सास ससुर गुरु भी कह रहे हैं। वही करना पथ्य है। जिस धर्म की प्राप्ति में वन जाकर करना चाहता हूँ उसी धर्म की प्राप्ति अनायासेन घर लौटने से तुम्हे होगी इत्यादि।

पति का वचन पतिव्रता के लिए परम श्रद्धेय है। उसे सुनकर वैदेही ने कहा कि आप प्राणपति हैं। परम सनेही हैं। आप न सुनेंगे तो मेरी कौन सुनेगा।

प्रभु करुनामय परम विवेकी। तनु तजि रहति छाँह किमि छेंकी ॥
प्रभा जाइ कहँ भानु विहाई। कहँ चंद्रिका चदु तजि जाई ॥३॥

अर्थ : प्रभु तो करुणामय हैं। परम विवेकी हैं। कहिये तो शरीर को छोड़कर क्या छाँह रोके रुक सक्ती है? सूर्य को छोड़कर प्रभा कहाँ जाय और चाँद को छोड़कर चाँदनी को कहाँ ठिकाना है?

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या सरकार प्रभु है। समर्थ है। सब कुछ कर सकते हैं। परन्तु करुणामय हैं। यथा करुणामय रघुनाथ गोसाईं। वेगि पाइहैं पीर पराई। मेरी पीडा का भी ध्यान करिये और आप परम विवेकी हैं। विचार करके देखिये। सरकार शरीर है तो मै छाया स्थानीया हूँ। सरकार सूर्य है तो मैं प्रभा हूँ। सरकार चन्द्र हैं तो मैं चन्द्रिका हूँ। क्या छाया को सामर्थ्य है कि वह शरीर को छोडकर पृथक् स्थिति अपनी रख सके। क्या प्रभा सूर्य को और चन्द्रिका चन्द्र को छोडकर कही जा सकती है। यहाँ समझाने का कोई उपयोग नही है। मैं समझती सब हूँ पर पृथक् रहना मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है। यदि समझाने से छाया शरीर को छोडकर पृथक् रह सके। प्रभा सूर्य को छोडकर अलग हो सके। चन्द्रिका को चन्द्र के सिवा कोई दूसरा ठिकाना हो तो मुझपर भी समझाने का प्रभाव पड सकता है। जिसे छाया को प्रभा को या चन्द्रिका को रोकना हो। वह शरीर को रोके। सूर्य को रोके। चन्द्र का रोकें। छाया प्रभा और चन्द्रिका रुकी ही रुकायी है। शरीर का बन भेजे और छाया को घर लौटाने के लिए कहे यह कौन सा विवेक है।

पतिहि प्रेममय बिनय सुनाई। कहत सचिव सन गिरा सुहाई ॥
तुम्ह पितु ससुर सरिस हितकारी। उतरु देउँ फिर अनुचित भारी ॥४॥

अर्थ पति को प्रेममय विनती सुनाकर मन्त्री से सुन्दर वाणी बोली। आप पिता तथा ससुर के सदृश हित करनेवाले हो। मै उलटकर उत्तर देती हूँ। यह भारी अनुचित है।

व्याख्या पति से जो विनय किया वह प्रेममय था। प्रेम विकल्प को नही सहन कर सकता। यद्यपि सुमन्त्र ने सीताजी से कुछ नही कहा था। जो कुछ उन्होने कहा सो रामजी से कहा और रामजी ने सीताजी को समझाया। पर सीताजी उत्तर के रूप मे प्रेममय विनय करके सुमन्त्रजी को उत्तर देने लगी। जिसमे रामजी को यह कहना न पडे कि देखिये यह नही मानती।

सुमन्त्र से सीताजी ने कहा कि मैं आपको पिता के समान मानती हूँ। पतिदेव भी आपको पिता के समान मानते हैं। अत मै आपको पिता और ससुर दोनो के समान हितकारी मानती हूँ। जिसके लिए पतिदेव ने कहा दिये उतरु फिर पातकु लहऊं। उस मेरा उत्तर देना तो भारी अनुचित है।

दो आरति बस सनमुख भइउँ, बिलग न मानब तात।
आरजसुत पद कमल बिनु, बादि जहाँ लगि नात ॥९७॥

अर्थ मै आर्ति के वश होकर सम्मुख हुई हूँ। इससे आप अप्रसन्न न हूजियेगा। आयपुत्र के चरण कमलो के बिना जहाँ तक नाते है सब व्यर्थ हैं।

व्याख्या मैं आर्त हो रही हूँ। अत आपके सम्मुख हूँ। अर्थात् उत्तर दे रही हूँ। आपके अप्रसन्न होने के लिए यथेष्ट कारण है। उत्तर भी भेद उत्पन्न

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



करनेवाला होगा। फिर भी आपसे प्रार्थना है कि आप अप्रसन्न न हो आरत कहहिं बिचारि न काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊँ। तथा : अति आरत अतिस्वारथी अति दीन दुखारी। इनको बिलगु न मानिये बोलहिं न बिचारी। मेरा उत्तर यही है : सब मानिये राम के नाते। आर्यपुत्र के चरण कमल बिना सब नाते व्यर्थ हैं। आगे की चौपाइयो मे इसी बात को स्पष्ट किया है।

पितु बैभव बिलासु मैं डीठा। नृप मनि मुकुट मिलित पद पीठा ॥
सुख निधान अस पितु गृह मोरे। पिय बिहीन मन भाव न भोरें ॥१॥

अर्थ : पिताजी के ऐश्वर्य का विलास मेरा देखा हुआ है। जिनके चरण पीठ को राजाओ के मणिमुकुट स्पर्श करते हैं। मेरा पितृगृह : मायका ऐसा सुखनिधान है। पर पति के बिना मुझे भूलकर भी अच्छा नही लगता।

व्याख्या : जहँ लगि नात को स्पष्ट करते हुए पहिले पिता के ही विषय मे कहती है कि पिताजी के चरणो पर राजा लोग मस्तक नही रख सकते। दूर से ही प्रणाम करते हैं। केवल उनके मणि मुकुट का ही स्पर्श उनके चरणपीठो से होता है। ऐसा सुखद मेरा पितृगृह है। पर वह भी तभी सुखद है जब तक कि सरकार साथ रहे। उनके बिना वह पितृगृह भी मुझे पसन्द नही। कहा गया था : मइके ससुर सकल सुख जबहिं जहाँ मन मान। तब तहँ रहिहि सुखेन सिय जब लगि बिपति बिहान। सो मइके के विषय मे तो कह चुकी। अब ससुराल के विषय मे सुनिये।

ससुरु चक्कवइ कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ ॥
आगें होइ जेहि सुरपति लेई। अरध सिंघासन आसन देई ॥२॥

अर्थ : ससुर तो कोसलपति चक्रवर्ती हैं। चौदहो भुवन मे उनका प्रभाव प्रकट है। जिसे स्वय देवराज आगे आकर स्वागत करते हैं और आधे सिंहासन पर बैठने के लिए स्थान देते हैं।

व्याख्या : अब कहती हैं कि ससुर का प्रभाव उनसे भी बढकर है। कोसल के राजा होते हुए भी चक्रवर्ती हैं। यथा : नृप सब रहहिं कृपा अभिलाखे। उनका प्रभाव चौदह भुवन मे प्रकट है। भुवन चारि दस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरखहिं सुख बारी। रिधि सिधि संपति नदी सोहाई। उमगि अवध अंबुधि कहँ धाई।

जब कभी अपने सखा इन्द्र से मिलने जाते हैं तो देवराज स्वय स्वागत के लिए आगे से आकर लिवा जाते हैं और अपने साथ सिंहासन पर बिठाते हैं यथा : लोकप करहिं प्रीति रुचि राखे।

ससुरु एतादृस अवध निवासू। प्रिय परिवारु मातु सम सासू ॥
बिनु रघुपति पद पदुम परागा। मोहि केउ सपनेहुँ सुखद न लागा ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या सरकार प्रभु हैं। समर्थ हैं। सब कुछ कर सकते हैं। परन्तु करुणामय हैं। यथा करुणामय रघुनाथ गोसाईं। वेगि पाइहैं पीर पराई। मेरी पीडा का भी ध्यान करिये और आप परम विवेकी हैं। विचार करके देखिये। सरकार शरीर हैं तो मैं छाया स्थानीया हूँ। सरकार सूर्य है तो मैं प्रभा हूँ। सरकार चन्द्र हैं तो मैं चन्द्रिका हूँ। क्या छाया को सामर्थ्य है कि वह शरीर को छोडकर पृथक् स्थिति अपनी रख सके। क्या प्रभा सूर्य का और चन्द्रिका चन्द्र को छोडकर कहीं जा सकती है। यहाँ समझाने का कोई उपयोग नही है। मैं समझती सब हूँ पर पृथक् रहना मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है। यदि समझाने से छाया शरीर को छोडकर पृथक् रह सके। प्रभा सूर्य को छोडकर अलग हो सके। चन्द्रिका को चन्द्र के सिवा कोई दूसरा ठिकाना हो तो मुझपर भी समझाने का प्रभाव पड सकता है। जिसे छाया को प्रभा को या चन्द्रिका को रोकना हो। वह शरीर को रोके। सूर्य को रोके। चन्द्र को रोकें। छाया प्रभा और चन्द्रिका रुकी ही रुकायी है। शरीर को वन भेजे और छाया को घर लौटाने के लिए कहे यह कौन सा विवेक है।

पतिहि प्रेममय बिनय सुनाई। कहत सचिव सन गिरा सुहाई ॥
तुम्ह पितु ससुर सरिस हितकारी। उतरु देउँ फिर अनुचित भारी ॥४॥

अर्थ पति को प्रेममय विनती सुनाकर मन्त्री से सुन्दर वाणी बोली। आप पिता तथा ससुर के सदृश हित करनेवाले हो। मैं उलटकर उत्तर देती हूँ। यह भारी अनुचित है।

व्याख्या पति से जो विनय किया वह प्रेममय था। प्रेम विकल्प को नही सहन कर सकता। यद्यपि सुमन्त्र ने सीताजी से कुछ नही कहा था। जो कुछ उन्होने कहा सो रामजी से कहा और रामजी ने सीताजी को समझाया। पर सीताजी उत्तर के रूप मे प्रेममय विनय करके सुमन्त्रजी को उत्तर देने लगी। जिसमे रामजी को यह कहना न पडे कि देखिये यह नही मानती।

सुमन्त्र से सीताजी ने कहा कि मैं आपको पिता के समान मानती हूँ। पतिदेव भी आपको पिता के समान मानते हैं। अत मैं आपको पिता और ससुर दोनो के समान हितकारी मानती हूँ। जिसके लिए पतिदेव ने कहा दिये उतरु फिर पातकु लहऊँ। उस मेरा उत्तर देना तो भारी अनुचित है।

दो आरति बस सनमुख भइउँ, बिलगु न मानब तात।
आरजसुत पद कमल बिनु, बादि जहाँ लगि नात ॥९७॥

अर्थ मैं आर्ति के वश होकर सम्मुख हुई हूँ। इससे आप अप्रसन्न न हूजियेगा। आर्यपुत्र के चरण कमलो के बिना जहाँ तक नाते है सब व्यर्थ है।

व्याख्या मै आर्त हो रही हूँ। अत आपके सम्मुख हूँ। अर्थात् उत्तर दे रही हूँ। आपके अप्रसन्न होने के लिए यथेष्ट कारण है। उत्तर भी भेद उत्पन्न

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



करनेवाला होगा। फिर भी आपसे प्रार्थना है कि आप अप्रसन्न न हो आरत कहहिं बिचारि न काऊ। सूझ गुआरिहि आपन दाऊँ। तथा · अति आरत अतिस्वारथी अति दीन दुखारी। इनको बिलगु न मानिये बोलहिं न विचारी। मेरा उत्तर यही है : मव मानिये राम के नाते। आर्यपुत्र के चरण कमल विना सब नाते व्यर्थ हैं। आगे की चौपाइयो मे इसी बात को स्पष्ट किया है।

पितु बैभव बिलासु मैं डीठा। नृप मनि मुकुट मिलिति पद पीठा ॥
सुख निधान अस पितु गृह मोरे। पिय बिहीन मन भाव न भोरें ॥१॥

अर्थ : पिताजी के ऐश्वर्य का विलास मेरा देखा हुआ है। जिनके चरण पीठ को राजाओ के मणिमुकुट स्पर्श करते हैं। मेरा पितृगृह · मायका ऐसा सुखनिधान है। पर पति के बिना मुझे भूलकर भी अच्छा नही लगता।

व्याख्या · जहँ लगि नात को स्पष्ट करते हुए पहिले पिता के ही विपय मे कहती हैं कि पिताजी के चरणो पर राजा लोग मस्तक नही रख सकते। दूर से ही प्रणाम करते हैं। केवल उनके मणि मुकुट का ही स्पर्श उनके चरणपीठो से होता है। ऐसा सुखद मेरा पितृगृह है। पर वह भी तभी सुखद है जब तक कि सरकार साथ रहें। उनके बिना वह पितृगृह भी मुझे पसन्द नही। कहा गया था : मइके ससुर सकल सुख जबहिं जहाँ मन मान। तब तहँ रहिहि सुखेन सिय जब लगि बिपति बिहान। सो मइके के विषय मे तो कह चुकी। अब ससुराल के विपय मे सुनिये।

ससुरु चक्कवइ कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ ॥
आगें होइ जेहि सुरपति लेई। अरध सिंघासन आसन देई ॥२॥

अर्थ . ससुर तो कोसलपति चक्रवर्ती हैं। चौदहो भुवन मे उनका प्रभाव प्रकट है। जिसे स्वय देवराज आगे आकर स्वागत करते हैं और आधे सिंहासन पर बैठने के लिए स्थान देते हैं।

व्याख्या · अब कहती हैं कि ससुर का प्रभाव उनसे भी बढकर है। कोसल के राजा होते हुए भी चक्रवर्ती हैं। यथा : नृप सब रहहिं कृपा अभिलाखे। उनका प्रभाव चौदह भुवन मे प्रगट है। भुवन चारि दस भूधर भारी। सुकृत मेघ बरखहि सुख बारी। रिधि सिधि सपति नदी सोहाई। उमगि अवध अबुधि कहँ धाई।

जब कभी अपने सखा इन्द्र से मिलने जाते हैं तो देवराज स्वय स्वागत के लिए आगे से आकर लिवा जाते हैं और अपने साथ सिंहासन पर बिठाते हैं यथा : लोकप करहिं प्रीति रुचि राखे।

ससुरु एतादृस अवध निवासू। प्रिय परिवारु मातु सम सासू ॥
बिनु रघुपति पद पदुम परागा। मोहि केउ सपनेहुँ सुखद न लागा ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : ऐसे ससुर और अयोध्या का निवास प्रेम करनेवाले कुटुम्बी और माता के समान सास। पर रघुपति के चरण कमल की धूलि के बिना मुझे सपने में भी कोई सुखद नहीं मालूम हुआ।

व्याख्या : ससुर इन्द्र के तुल्य। अवधराज सुरराज से अधिक यथा : अवधराजु सुरराजु सिहाई। दसरथ धन सुनि धनद लजाई। परिवार के लोग सब प्रेम करनेवाले। सास तो माता के ऐसी यथा : कलप बेलि जिसि बहुबिधि लाली। सीचि सनेह सुधा प्रतिपाली। अतः मन न लगने का कोई कारण नही। पर मुझे बिना रघुपति पद पंकज पराग के कोई सुखद सपने में भी नही मालूम हुआ। यथा : राम चरन पंकज प्रिय जिनही। विषय भोग बस करहिं कि तिनही।

अगम पंथ बनभूमि पहारा। करि केहरि सर सरित अपारा॥
कोल किरात कुरंग विहंगा। मोहि सब सुखद प्रानपति संगा॥४॥

अर्थ : दुर्गम रास्ते, वन, भूमि, पहाड़, हाथी, सिंह, ताल और अपार नदियाँ, कोल, किरात, हिरने और चिड़ियाएँ मुझे सभी प्राणपति के साथ होने से सुखद हैं।

व्याख्या : मइके ससुरे सकल सुख का उत्तर देकर अब . सहि न सकिहि सिय बिपिन कलेसू का उत्तर दे रही हैं। वन मे जो दु.खद वस्तुएँ हैं जिनका वर्णन करके लोगो ने सीताजी को वन जाने के लिए समझाया था और जिसका उत्तर सङ्कोचवश सीताजी उस जन समुदाय मे न दे सकी। यथा : सीय सकुच वस उतरु न देई। इस समय उन सबो का नाम गिनाकर उत्तर दे रही हैं। वन का रास्ता दु.खद है। वन की भूमि वन के पहाड़ दु.खद है। वन में हाथी सिंहादि हिंस्र जन्तु भरे हैं। वन के ताल वन की नदियां वन के रहनेवाले कोल किरात अन्य पशु पक्षी दु.खद है। पर प्राणपति के साथ होने से मेरे लिए वे सब सुखद है।

दो. सास ससुर सन मोर हुँति, बिनय करबि परि पायँ।
मोर सोचु जनि करिअ कछु, मै बन सुखी सुभायँ॥९८॥

अर्थ : सास ससुर के पाँव पड़कर मेरी ओर से विनय कीजियेगा कि मेरा कुछ भी सोच न करे। मै स्वभाव से ही वन मे सुखी हूँ।

व्याख्या : सास ससुर अस कहेउ सँदेसू। पुत्रि फिरिअ वन बहुत कलेसू। इस बात का उत्तर देते हुए कहती हैं कि मै वन छोड़कर घर जा नही सकती। अतः आप मेरी ओर से उनके पाँव पड़कर विनय कर दीजियेगा कि मेरे लिए वो कुछ भी सोच न करें। मै स्वभाव से ही वन मे सुखी हूँ। अर्थात् मुझे स्वभाव से ही वन प्रिय है। महल प्रिय नही है। रमा बिलासु राम अनुरागी। तजत वमन जिमि जन बड़ भागी।

प्राननाथ प्रिय देवर साथा। बीर धुरीन धरे धनु भाथा॥
नहिं मग श्रमु भ्रमु दुख मन मोरे। मोहि लगि सोच करिअ जनि भोरे॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

अर्थ मेरे साथ मे प्राणनाथ है। प्रिय देवर है। जो कि वीरा मे धुरीण हैं और धनु तरकस धारण किये हुए हैं। मुझे रास्ते चलने क थकावट का भ्रम भी मेरे मन मे नही है। मेरे लिए तो भूल करके भी सोच न कीजियेगा।

व्याख्या सोच तो अनाथ का किया जाता है। मैं तो सनाथा हूँ। मेरे प्राणनाथ मेरे साथ हैं। मेरे प्रिय देवर भी साथ हैं। दोनो महापुरुष वीरो म धुरन्धर हैं। तिस पर उनके पास धनुष और तरकस है। कोई विघ्न बाधा मेरे सन्निकट आ नही सकती। मेरे मन म वन चलने का उत्साह है। मुझ पैदल चलने म थकावट नही होगी। मुझे थकावट के दु ख का भ्रम भी नही है। अत मेरे लिए तो भूल करके सोच न कीजियेगा। लोगो को भ्रम है कि मुझे दु ख होगा। कहते थे वन देखकर डर जाओगी। सो मुझे वन देखकर बडा आनन्द हुआ। कन्द मूल फल भी मैंने खाया। पतिदेव को जटा धारण किये भी देखा। पर मुझे दु ख न हुआ। अब तो मुझे दु ख का भ्रम भी नही है।

सुनि सुमनु सिय सीतल बानी। भयेउ विकल जनु फनि मनि हानी ॥
नयन सूझ नहि सुनइ न काना। कहि न सकै कछु अति अकुलाना ॥२॥

अर्थ सुमन्त्र सीताजी की शीतल वाणी सुनकर ऐसे विकल हो गये जैसे मणि के चल जाने से सर्प विकल होता है। आँख से न सूझता है। न कान से सुनायी पडता है। अत्यन्त आकुल हो गये। कुछ कह नही सकते।

व्याख्या सीताजी की वाणी तो शीतल थी पर उसम बडी दृढता थी। सुमन्त्रजी ने समझ लिया कि ये नही लौटेगी। जो मैके और ससुराल के इतने बडे ऐश्वर्य सुख को दु खरूप देख रही है। जिस पतिदेवता शिरोमणि पति के साथ होने पर सम्पूर्ण दु खो को सुख स्वरूप देख रही है। वह पति को वन मे छोडकर घर लौट सकती नही। अत यह अन्तिम आशा भी निराशा मे परिणत हो गयी। अत उनकी दशा उस सर्प सी हो गयी जिसकी मणि छिन गयी हो। वधुओ की रक्षा बडे प्यार के साथ महाराज के महल मे की जाती थी। यथा सुदरि बधुन्ह सासु लइसोई। फनिकन्ह जनु सिर मनि उर गोई।

इन्द्रियाँ भारी विकल हो गयी। अपने अपने विषयो के ग्रहण मे असमर्थ हो गयी। न आँख से दिखायी पडता है। न कान से सुनायी पडता है। न मुख से शब्द निकलते हैं।

राम प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। तदपि होत नहिं सीतलि छाती ॥
जतन अनेक साथ हित कीन्हे। उचित उतरु रघुनदन दीन्हे ॥३॥

अर्थ रामजी ने बहुत प्रकार से समझाया। फिर भी छाती ठण्ढी नही होती। साथ चलने के लिए अनेक यत्न किया पर रामजी ने उचित उत्तर दिया।

व्याख्या सुमन्त्रजी की व्याकुलता देखकर रामजी समझाने लगे। यथा

ankurnagpal108@gmail.com



कवित्त तात के प्रधान गुण ज्ञान के निधान
धर्मनीति मे प्रमान आप सरिस जनैया कौन।
काको मुख ताको एहि सकट विकट माहि
धरि उर धीर लाजपति को सँभारो जौन॥
पितहि बुझाइ समुझाइ सब मातुन को
कीजिये रजाय वेगि भरत बुलावो भौन।
सुकृत न जाय जग जस सरसाय ताप
तिमिर नसाय आप करिय उपाय तौन॥

इस भाँति बहुत समझाया पर सुमन्त्र के हृदय का दाह नही जाता। वह साथ चलने को उद्यत हो गये कि यदि आप लोग कोई नही लौटते, तो मुझे भी साथ ले चलिये। मै अकेला लौटकर अयोध्या मे क्या मुख दिखलाऊँगा। पर रामजी ने उचित उत्तर दिया। हम चारो भाइयो मे से कोई भी इस समय अयोध्या मे नही है। महाराज की यह दशा है। आप मत्री है। ऐसे समय मे महाराज को छोडकर वन जाना आपका धर्म नही है।

मेटि जाइ नहिं राम रजाई। कठिन करम गति कछु न बसाई॥
राम लखन सिय पद सिरु नाई। फिरेउ बनिकु जिमि मूरु गँवाई॥४॥

अर्थ रामजी की आज्ञा मिटायी नही जा सकती। कर्म की गति कठिन है। उस पर कोई वश नही चलता। राम लक्ष्मण तथा सीताजी के चरणो मे सिर नवाकर लौटे। जैसे मूल पूँजी खोकर व्यापारी लौटता है।

व्याख्या राम रजाइ सीस सबही के। उतपति थिति लय बिषहु अमीके। राम रजाइ मेटि मन माँही। देखा सुना कतहुँ कोउ नाँही। अत रामजी की आज्ञा मेटी नही जा सकती। नही तो सुमन्त्र किसी भाँति न लौटते। उनके लिए बिना राम के लौटना मरण से बढकर कष्टप्रद था। लौटकर महाराज से सन्देशा कहने के बाद फिर सुमन्त्रजी ने मुँह न दिखाया। महाराज का स्वर्गवास हुआ। क्रिया हुई। भरत सभा हुई। भरतजी चित्रकूट गये, लौटे पर सुमन्त्रजी का पता नही। रामजी के वन से लौटने पर ही सुमन्त्रजी घर के बाहर निकले। ऐसी चिरस्थायिनी पीडा सुमन्त्रजी को लौटने मे थी। परन्तु कर्मगति कठिन है। उस पीडा को सहना ही पडा। कोई वश न चला।

राम लक्ष्मण और सीताजी के चरणो मे सिर नवाकर इस भाँति चल जैसे कोई व्यापारी व्यापार के लिए गया हो। उसके मन मे बडी आशा थी कि बहुत लाभ होगा। घरवाले आशा लगाये बैठे थे कि खूब मुनाफा करके घर आवेंगे। पर दैव दुर्विपाक से कोई ऐसी घटना हुई कि मुनाफा को कौन कहे मूलधन भी नष्ट हो गया। जिस तरह से दु खी होकर वह व्यापारी घर लौटता है उसी भाँति सुमन्त्रजी भी लौट चले।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुमन्त्रजी रथ लेकर चले थे कि मैं राम लक्ष्मण जानकी को लौटा लाऊँगा और बडा भारी यश भी हाथ लगेगा कि राम लक्ष्मण जानकी किसी के भी समझाने पर भी घर न रहे उन्हे सुमन्त्रजी लौटा लाये। यहाँ मूलधन राम लक्ष्मण जानकी और मुनाफा लौटा लाने का यश था। सो रामजी के न लौटने पर बात ही दूसरी हो गयी। अब तो सुमन्त्रजी सीधे सीधे रामजी को वन पहुँचाने-वाले हो गये। अतः मूल भी हाथ से गया और दुर्यश के भागी हुए। सारी अयोध्या कहेगी कि इसी ने हम लोगो के सो जाने पर चोरी से रामजी को वन पहुँचाया।

दो. रथु हाँकेउ हय राम तन, हेरि हेरि हिहिनाहि।
देखि निषाद विषादबस, धुनहि सीस पछिताहि॥९९॥

अर्थ : रथ हाँका तो घोडे रामजी की ओर देखकर हिहिनाते हैं। यह देखकर निषाद लोग सिर धुन धुनकर पछताने लगे।

व्याख्या : सुमन्त्रजी ने रथ हाँका अयोध्या जाने के लिए। पर घोडो को रामजी का वियोग सह्य नही। राम रहित होकर वे जाना नही चाहते। रामजी को देखकर हिनहिनाते हैं। यही इनका करुण क्रन्दन हैं। इनको रामजी का बडा विरह हुआ। गीतावली मे कौसल्याजी के मुख से इसका विस्तार से वर्णन है। सचिव और रामजी का सवाद सुनकर निषाद परिजन के सहित विषाद से विकल हो गये थे। घोडों का हाल देखकर तो वे सिर पीट पीटकर पछताने लगे।

जासु बियोग बिकल पसु ऐसे। प्रजा मातु पितु जिइहहि कैसे॥
बरबस राम सुमंत्रु पठाये। सुरसरि तीर आपु तब आये॥१॥

अर्थ : जिसके वियोग से पशु इतने विकल हैं उसके प्रजा माता पिता कैसे जीयेंगे? रामजी ने सुमन्त्र को जबरदस्ती लौटाया और तब स्वय गगाजी के किनारे गये।

व्याख्या : पशु आसन्नचेतन होते हैं। उन्हे कल: अनागत का ज्ञान नहीं होता। वे भी जब रामजी के वियोग से इतने विकल हैं तो जो बुद्धिजीवी अति निकट सम्बन्धवाले हैं यथा: प्रजा माता और पिता वे कैसे जीयेंगे? यही सोचकर निषादगण सिर धुनकर पछता रहे हैं।

प्रश्न यह उठता है कि फिर सुमन्त्र कैसे गये? इस पर कहते हैं कि राजी खुशी से नही गये रामजी ने जबरदस्ती उन्हे भेजा। वे रामजी की आज्ञा टार न सके। सुमन्त्र के रवाना होने के बाद रामजी गंगा के किनारे गये। स्नान के समय देख लिया था कि नाव घाट पर रहती है। इसलिए निषादराज को उसकी व्यवस्था के लिए नही कहा। सुमन्त्र के रहते गङ्गा तीर नही गये। जिसमे उन्हें साथ चलने का अवसर न मिले।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



माँगी नाव न केवट आना । कहइ तुम्हार मरमु मै जाना ॥
चरन कमल रज कहुँ सबु कहई । मानुष करनि मूरि कछु अहई ॥२॥

अर्थ नाव माँगी तो केवट नही लाया । कहने लगा कि तुम्हारा मर्म मेरा जाना हुआ है । सभी लोग कहते हैं कि चरण कमल की धूलि मनुष्य बना देनेवाली कोई जडी है ।

व्याख्या वहाँ जाकर देखा कि नाव किनारे पर नही । केवट उसे कुछ दूर छलका ले गया है । तब सरकार ने कहा कि नाव ले आवो । केवट कहता है कि यदि मैं आपका मर्म न जानता होता तो नाव को घाट पर ही रहने देता । मैं तो मर्म जानता हूँ । मैं नाव को कैसे ले आऊँ । यह बात तो किसी से छिपी नही है कि आपके चरणो की रज मनुष्य बनानेवाली जडी है केवट ने देखा कि सुमन्त्र की विदाई से सरकार कुछ खिन्न से हो गये है । अत उनके हँसाने का उपाय कर रहा है । शृङ्गवेरपुर शृङ्गीऋषि का आश्रम है । उन्ही से भगवती शान्ता व्याही हैं । उसी नाते से वहाँ के मुनिपुत्रो ने सरकार से हँसी की थी । यथा

बिंधि के वासी उदासी तपोव्रतधारी महा बिनु नारि दुखारे ।
गौतम तीय तरी तुलसी सो कथा मैं सुनि मुनिवृन्द सुखारे ।
ह्वै है शिला सब चद्रमुखी परसे पद मजुल कजु तुम्हारे ।
कीन्ही कृपा रघुनायक जू करुना करके इतको पग धारे ।

यहाँ के बच्चे बच्चे इस बात को जानते हैं । केवट उसी नाते को काम मे लाना चाहता है ।

छुअत सिला भइ नारि सुहाई । पाहन ते न काठ कठिनाई ॥
तरनिउ[1] मुनि घरनी होई जाई । बाट परै मोरि नाव उडाई ॥३॥

अर्थ छूते ही शिला मुनि की स्त्री हो गयी । पत्थर से काठ कठिन नही होता । नाव भी मुनि की स्त्री हो जायगी । रास्ते मे पडने से मेरी नाव ही उड जायगी ।

व्याख्या परसि जासु पदपकज धूरो । तरी अहल्या कृत अघ भूरी । जब शिला रज के स्पर्श मात्र से सुन्दर स्त्री हो गयी यथा गौतम गये गृह गौनो सो लवाइके । तो इस काठ की नाव को मुनि की स्त्री हो जाने मे क्या देर लगेगी । पत्थर से तो काठ कोमल होता है । यथा पाहन ते वन वाहन काठ को कोमल है जल खाइ रहा है यह प्रसङ्ग कवित्त रामायण म देखने लायक है । यह नाव भी किसी मुनि की स्त्री हो जायगी । यह भी नही कि मेरी हो कर रहे । रास्ते म पडने से मेरी नाव उड जायगी । इसी भय से तो मै किनारे से दूर हटा लाया हूँ ।

एहि प्रतिपालउँ सबु परिवारू । नहि जानउँ कछु और कबारू ॥
जौ प्रभु पार अवसि गा चहहू । मोहि पद पदुम पखारन कहहू ॥४॥

---

१ व्याज स्तुति अलकार है ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : इसी से मैं सब परिवार का प्रतिपालन करता हूँ। दूसरा कोई काम धन्धा मैं जानता नही। अवश्य ही यदि पार जाना चाहते हैं तो मुझे चरण कमल के धोने की आज्ञा दीजिये।

व्याख्या : पात भरी सहरी सकल सुत वारे वारे
केवट की जाति कछु वेद ना पढाइहौं।
सब परिवार मेरो यहि लागि राजा जू
दीन वित्त हीन कैसे दूसरी गढाइहौं।
गौतम की घरनी ज्यौं तरनी तरैगी मेरी
प्रभु सो निषाद ह्वै के बाद ना बढाइहौं।
तुलसी के ईश राम रावरे सो सांची कहौं
बिना पग धोए नाथ नाव ना चढाइहौं।

मैं तो यही जानता हूँ कि सरकार को पार जाना नही हैं। किसी मुनि को सुन्दर स्त्री भेंट करना है। इस मर्म को मैं समझ रहा हूँ। यदि कहिये कि नही मुझे पार जाना आवश्यक है तो आज्ञा दीजिये मैं पैर धो लूँ जिसमे कोई रज का लेश न रह जाय।

छ. पद कमल धोइ चढाइ नाव न नाथ उतराई चहो।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब सांची कहो॥
बरु तीर मारहु लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहो।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपालु पारु उतारिहो॥

अर्थ : चरण कमल धोकर नाव पर चढाकर हे नाथ ! मैं उतराई नही चाहता। मुझे आपकी शपथ दशरथ की सौगन्ध मैं सच्ची कहता हूँ। चाहे लक्ष्मणजी तीर मार दें। पर जब तक पैर न धो लूँगा तब तक हे कृपाल तुलसीदास के नाथ ! मैं पार न उतारूँगा।

व्याख्या . सरकारी आज्ञा पालन मे मुझे रत्ती भर आगा पीछा नही है। चरणो को धोकर नाव की रक्षा चाहता हूँ। फिर आपको नाव पर चढाऊँगा। नही तो फिर चरणो मे रज लग जायगा। सरकार के चढ जाने पर पार उतारने का तो कोई प्रश्न ही नही। मैं उतराई भी नही लूँगा। उतराई ली जाती है बटोहियो से। सरकार तो नाथ हैं। नाथ से उतराई कैसी ? यदि कहिये कि नही तू बातें बनाता है तो इस पर कहता है कि मैं सच्ची बात कहता हूँ। सरकार नाथ हैं। सो आपकी शपथ लेता हूँ। महाराज दशरथ जगतीपति हैं उनकी शपथ लेता हूँ। पार उतारने में मुझे कोई उज्र नही है।

लखन बान धनु धरे बनाई। लक्ष्मणजी पार जाने की तैयारी करते हैं। धनुष बाण को सुधार रहे हैं। तो उन्हे भी हँसाने के लिए उन पर मारने की धमकी का

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



आरोप करता है। कहता है कि चाहे लक्ष्मणजी तीर मार दें पर बिना पैर धोये तो मैं पार उतारता नही।

दो॰ सुनि केवट के बयन, प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहँसे करुना अयन, चितइ जानकी लखन तन ॥१००॥

अर्थ . केवट के प्रेम लपेटे अटपटे वचन सुनकर करुणाअयन रामजी जानकी और लक्ष्मण की ओर देखकर जोर से हँस पडे।

व्याख्या अटपटी बात अटपटी चेष्टा हास्यरस का उद्बोधक है। किं पुन यदि प्रेम से पगी हुई हो। सो इसका मुख्य तात्पर्य तो पैर धोने मे है। उसके लिए इतने बखेडेबाजी की बात पर सरकार हँस पडे। हास्यरस का आनन्द प्रेमिया क साथ ही लिया जा सकता है अकेले नही। अत उस रसोपभोग मे सम्मिलित करने के लिए लक्ष्मण और सीताजो की ओर देखा। प्रसङ्ग प्राप्त अर्थ तो यही है हास्य रस के विभाव की पुष्टि के लिए सखा और सखी की ओर देखना आवश्यक था। नही तो अकेले तो पागल हँसा करते हैं। जानकी लक्ष्मण की ओर देखने का और भी अर्थ लगाया जा सकता है। जानकीजी के हृदय मे यही भाव उठा था। यथा गौतम तिय गति सुमिरि करि नहि परसत पद पानि। मन बिहसे रघुवसमनि प्रीति अलौकिक जानि। वहाँ मन मे बिहँसे थे। यहाँ प्रत्यक्ष विहँस रहे है। सखियो के कहने पर भी सीताजी के चरण स्पर्श न करने के साक्षी इस समय लक्ष्मणजी है। अत उस समय का स्मरण करके प्रभु लक्ष्मण और जानकी की ओर देखकर हँस रहे है। कुछ लोग यहाँ पर हँसने के आशय को स्पष्ट करने के लिए किसी पूर्वजन्म की कथा की कल्पना करते हैं। पर ऐसी कल्पनाएँ यहाँ अप्रासङ्गिक हैं।

कृपासिंधु बोले मुसुकाई। सोइ करु जेहि तव नाव न जाई॥
वेगि आनु जलु पाय पखारू। होत बिलंबु उतारहि पारू॥१॥

अर्थ कृपासिन्धु मुसकुरा कर बोले कि अच्छा वही करो जिसमे तुम्हारी नाव बची रहे। शीघ्रता से जल लाकर पैर धो लो। देर हो रही है। पार उतार दो।

व्याख्या कृपासिन्धु है। उसकी सब बखेडेबाजी को माने लेते है। कहते है कि जैसे तुम्हारी नाव बची रहे वही करो। मुझ इसे स्त्री बनाकर किसी मुनि को नही देनी है। मुझे पार जाने की जल्दी है। सो जल लाकर पैर धोने मे जल्दी करो। इन सब बातो के कहने मे सरकार के चेहरे पर मुसकुराहट है हृदय अनुग्रह इन्दु प्रकासा। सूचत किरिन मनोहर हाँसा।

जासु नामु सुमिरत एक बारा। उतरहि नर भवसिंधु अपारा॥
सोइ कृपालु केवटहि निहोरा। जेहि जगु किये तिहुँ पगहुँ ते थोरा॥२॥

अर्थ जिसके नाम के एक बार स्मरण कर लेने से मनुष्य अपार भवसागर के

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पार उतर जाता है। वही नामी कृपाल प्रभु केवट का निहोरा कर रहे हैं। जिन्होंने संसार को तीन पग से भी छोटा कर दिया था।

व्याख्या : आभीर जवन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे। कहि नाम वारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते। जिसके नाम में ऐसी तारिणी शक्ति है कि एक बार उच्चारण करने से महापापी भी पावन होकर भवसागर पार होता है वही कृपाल गङ्गा पार जाने के लिए केवट से नाव माँगते हैं। वह नहीं लाता बखेड़ेबाजी करता है। तब आप उसका निहोरा करते हैं : सोई करु जेहि तव नाव न जाई''होत बिलबु उतारिहि पारू। यहाँ पर कवि प्रभु के वामनावतार का स्मरण दिलाते हैं कि राजा बलि से सङ्कल्प लेकर जो नापने चले तो तीनों लोक नाप डाले। तीन पग पूरा न हुआ। उसे आज गङ्गा पार करना असम्भव हो रहा है। यह उनकी लीला है।

पद नख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभु बचन मोह मति करषी॥
केवट राम रजायसु पावा। पानि कठवता भरि लै आवा॥३॥

अर्थ : चरण के नख को देखकर गङ्गाजी प्रसन्न हुईं। पर उनके वचन सुनकर मोह की ओर बुद्धि खिंच गयी। केवट ने रामजी की आज्ञा पा ली सो कठौता भर के पानी लाया।

व्याख्या : गङ्गाजी को अपनी जन्मभूमि देखकर हर्ष हुआ। यथा : नख निर्गता मुनि वंदिता त्रैलोक्य पावन सुरसरी। क्योंकि सरकार के पद नख से उनकी उत्पत्ति है। पर निहोरावाला वचन सुनकर मोह की ओर बुद्धि खिंचने लगी कि क्या ये वही सरकार नहीं हैं। भाव यह कि सरकार का मनुष्यभाव का अभिनय ऐसा मार्मिक होता है कि ऐसे जानकार को भी भ्रम हो जाय' और भ्रम नहीं है तो केवट को। यह सरकार की लीला है। उसे आज्ञा की देर थी। जल से भरकर कठौता ले आया कि इसमें पदरज धोयेंगे। उड़ जायगा तो कोई भारी हानि नहीं है।

अति आनंद उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं॥४॥

अर्थ : अत्यन्त आनन्द से प्रेम के उमङ्ग में आकर चरण कमल धोने लगा। फूलों की वर्षा करके देवता लोग ईर्ष्यापूर्वक कहने लगे कि इसके समान पुण्यात्मा कोई नहीं है।

व्याख्या : प्रभु रुख पाइके बोलाइ बाल घरनी को बंदि के चरन चहुँदिसि बैठे घेरि घेरि। छोटो सो कठौता भरि आनि पानी गङ्गाजी को धोइ पाय पियत पुनीत बारि फेरि फेरि। इसीलिए कवि कहते हैं पखारन लागा। क्या शोभा हुई। बीच में सरकार है। केवट बाल बच्चों के सहित घेरे हुए बैठा है। सरकार के चरण कमल को धोकर उस जल को फेर फेर कर पी रहा है। जिसमें रज नीचे न बैठ जाने पावे। ऊपर से देवता लोग पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। ईर्ष्या कर रहे हैं कि हमारा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भाग्य ऐसा नही। इन चरणो को जनकजी ने धोया था। यथा बहुरि रामपद पकज धोये। जे हर हृदय कमल मँह गोये। उन चरणो को यह केवट होकर धो रहा है। अत इस सा पुण्यवान् कोई नही।

दो पद[1] पखारि जलु पान करि, आपु सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि, मुदित गयेउ लइ पार ॥१०१॥

अर्थ पैर धोकर स्वय परिवार सहित जलपान किया और पितरो को पार करके प्रभु को हर्षित होकर पार ले गया।

व्याख्या कोशलेन्द्रपदकञ्जमञ्जुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ जानकीकरसरोज-लालितौ। प्रभु के चरण शिव अज से वन्दित है। जानकीजी के कर कमलो से लालित है। जेहि पद परसि तरी रिपि नारी। दडक कानन पावन कारी। हर उर सर सरोज पद जोई। उस पद को अपने हाथो से प्रक्षालन करके उस चरणामृत को परिवार के साथ केवट ने पान किया। इससे उसके पितृकुल श्वशुरकुल तथा बन्धुओ के सभी कुल तर गये। इस भाँति उसने पहिल पितरो को भवसागर पार कर लिया तब प्रसन्न होकर प्रभु को गङ्गापार ले गया।

## १४ सुरसरि उतरि प्रयाग निवास

उतरि ठाढ भए सुरसरि रेता। सीय रामु गुह लखन समेता ॥
केवट उतरि दडवत कीन्हा। प्रभुहि सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा ॥१॥

अर्थ सीता और रामजी गुह और लक्ष्मण के सहित उतरकर गङ्गाजी के रेत मे खडे हो गये। केवट ने उतरकर दण्डवत् किया। प्रभु को सङ्कोच हुआ कि इसे कुछ दिया नही गया।

व्याख्या गङ्गापार पहुँचकर सीता और रामजी निषादराज और लक्ष्मण के साथ नाव पर से उतरकर रेत म खडे हो गये। क्योकि यहाँ नित्यकृत्य करना है। तब केवट ने उतरकर दण्डवत् किया। यहाँ पर यह बात अभ्रान्त रूप से स्पष्ट हो जाती है कि केवट और निषादराज गुह दो व्यक्ति थे। राजाओ के यहाँ नट आदि जब अपनी करामात दिखा चुकते है तो पीछे इनाम के लिए दण्डवत् करते है। सो केवल को दण्डवत् करते देखकर प्रभु को सङ्कोच हुआ कि इसे कुछ दिया नही गया। यद्यपि इसने कहा कि मुझ उतराई नही चाहिए। पर इससे परिवार का प्रतिपालन उतराई से ही होता है। अत इसे कुछ देना चाहिए था। पैर धोने की गिनती उतराई मे नही हो सकती।

पिय हिय की सिय जाननिहारी। मनि मुँदरी मन मुदित उतारी ॥
कहेउ कृपाल लेहि उतराई। केवट चरन गहे अकुलाई ॥२॥

---

१ यहाँ अत्यन्तातिशयोक्ति अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ पिय के हिय की जाननेवाली सीताजी थी। उन्होंने प्रसन्न मन से मणि की अगूँठी उतार दी। कृपालु ने कहा कि उतराई लो। केवट ने आकुल होकर चरण पकड लिया।

व्याख्या प्रभु के सङ्कोच का सीताजी ने लखा। वे इनके मन को जाननेवाली हैं। क्योंकि इनका मन सदा उनके पास रहता है। यथा सो मन सदा रहत तोहि पाँही। उतराई बडी छोटी चीज है। मणिमुदरी बडी अमूल्य वस्तु है। उतराई देने के लिए ऐसे अमूल्य आभूषण को उतारना स्त्रियों के लिए बडे कष्ट की बात है। पर सीताजी को सरकार के सङ्कोच के सामने मणिमुदरी क्या है। अत प्रसन्न मन से उतार दिया। सरकार देखते रहे। दोनो पर बडी कृपा है। उस मुदरी को उतराई के रूप में देने लगे।

उतराई का नाम सुनते ही केवट विकल हो गया। उतराई कैसी ? क्या मैंने इन्हे उतराई के लिए पार उतारा है। इतना ही तो मुझसे सेवा यावज्जीवन मे बन पडी। उसका भी विनिमय दे रहे हैं। मेरी सेवा स्वीकार नहीं। लोग मुझे क्या कहेंगे कि उतराई के लिए स्त्री का गहना उतरवा लिया।

नाथ आजु मै काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा ॥
बहुत काल मै कीन्हि मजूरी। आज दीन्हि बिधि बनि भलि भूरी ॥३॥

अर्थ हे नाथ! आज मैंने क्या नही पाया। दोष दुख और दरिद्र की दावाग्नि शान्त हो गयी। मैंने बहुत दिनो से मजदूरी की है। पर विधाता ने आज मुझे अच्छी और पूरी मजदूरी दी है।

व्याख्या भाव यह कि मैं पूर्णकाम हो गया। हृदय मे दोष दुख और दरिद्रता का दावानल जला करता था सो आज शान्त हो गया। मिटे दोष दुख भव रजनीके। सो दोष दुख से परलोक के दुख का नाश कहा और दारिद कहने से ऐहिक दुख का नाश कहा।

केवट कहता है कि कभी ऐसी मजदूरी मिली हो नहीं थी। यदि कहिये कि मैंने तो दी ही नही मिल कैसे गयी। इस पर कहता है कि विधाता ने दी। मनुष्य ऐसी मजदूरी दे नही सकता। मैंने आप से मजदूरी न लेने का प्रण किया था इसलिए विधि ने दी।

अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें। दीनदयाल अनुग्रह तोरें ॥
फिरती बार मोहि जो देबा। सो प्रसादु मइँ सिर धरि लेबा ॥४॥

अर्थ हे नाथ! हे दीनदयाल! तुम्हारे अनुग्रह से अब मुझे कुछ न चाहिए। लौटती बार जो देंगे वह प्रसाद मैं सिर धर कर लूँगा।

व्याख्या मैं कृतकृत्य हो गया। आपके अनुग्रह से मुझे कोई घाटा नहीं रह गया। प्रभु दीनदयाल हैं। दया ने ही सब घाटा पूरा कर दिया। यदि कहिये घाटा नहीं सही। पर जो मिलता है उसके स्वीकार करने मे क्या आपत्ति। इस पर कहता

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है कि लौटती बार जो मिलेगा उसे शिरोधार्य करूँगा। क्योंकि उस समय मैं अयोध्या लौटने मे सहायक होऊँगा। इस समय तो मैं प्रभु के वन जाने का मार्ग निरर्गल कर रहा हूँ। प्रभु की आज्ञा न टाल सका। इसलिए पार उतार दिया नही तो मै कदापि पार न ले आता।

दो. बहुत कीन्ह प्रभु लखन सिय, नहि कछु केवटु[1] लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन, भगति बिमल बरु देइ ॥१०२॥

अर्थ : सीता लक्ष्मण और रामजी ने बहुत प्रयत्न किया। पर केवट कुछ नहीं लेता। तब करुनायतन ने निर्मल भक्ति देकर विदा किया।

व्याख्या : जब जानकीजी के हाथ से लेना केवट ने किसी भाँति नही चाहा तो लक्ष्मणजी देने लगे। उनसे भी जब नही लिया तो स्वयं सरकार देने लगे। पर उसने किसी तरह से लेना स्वीकार नही किया। महात्माओ का कथन है कि उस अँगूठी का मूल्य तीनो लोक था। जब उसने नही लिया तो सरकार ने सब प्रकार से उसे निःस्पृह समझकर निर्मल भक्ति का वर दिया। देय को चौदह वर्ष तक नही रोका जा सकता। दूसरी बात यह है कि प्रभु का सङ्कल्प अमोघ है। अतः उसे बिना माँगे *अनुपमसुखमूल* भक्ति दी। *बिना माँगे अविरल भक्ति केवट ने ही पायी।*

तब मज्जनु करि रघुकुल नाथा। पूजि पारथिव नायेउ माथा॥
सिय सुरसरिहि कहेउ कर जोरी। मातु मनोरथ पुरउबि मोरी ॥१॥

अर्थ : तब रघुकुलनाथ रामजी ने पार्थिव पूजन करके प्रणाम किया। सीताजी ने हाथ जोड़कर गङ्गाजी से प्रार्थना की कि माँ। मेरे मनोरथ को पूरा करना।

व्याख्या : गृहस्थ के लिए मध्याह्नकृत्य मे ही विस्तार का विधान है। प्रातःकृत्य तो सन्ध्या मात्र है। पूजनादि का विधान मध्याह्न मे ही है। श्रीरामजी रघुकुलनाथ हैं। नित्य पार्थिवपूजन करते है। शिवजी के सावयव मूर्ति पूजने से लिङ्गपूजन अधिक विजयप्रद है। अश्वत्थामा ने व्यासजी से पूछा कि क्यो कृष्णार्जुन की ही विजय होती है मेरी क्यो नही होती। व्यासजी ने कहा कि तुम तीनो जन्म जन्मान्तर के शिवभक्त हो। कृष्णार्जुन ने महालिङ्ग पूजन किया और तुमने सावयव मूर्ति का पूजन किया है। अतः कृष्णार्जुन के सामने तुम विजयी नही हो सकते और लिङ्गपूजन मे भी पार्थिव पूजन का बड़ा माहात्म्य है। अतः मध्याह्न स्नान करके रामजी ने पार्थिव : मिट्टी का शिवलिङ्ग बनाकर पूजन किया और अन्त मे प्रणाम करके विसर्जन किया।

---

१. केवट मे गुणमाहात्म्यासक्ति थी। यह ग्यारह प्रकार की भक्तियो मे प्रथम है। यथा : गुणमाहात्म्यासक्तिरूपासक्तिपूजासक्तिस्मरणासक्तिदास्यासक्तिसख्यासक्तिकान्तासक्तिवात्सल्यासक्त्यात्मनिवेदनासक्तितन्मयासक्तिपरमविरहासक्तिरूपा एकधाप्येकादशधा भवति। ना. भ. सू. ८२।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रामजी ने शिवजी की आराधना की और जानकीजी ने गङ्गाजी से मनौती मानी। उमा और गङ्गा दोनो शिवजी की शक्तियाँ है। सीताजी ने उमा : गौरी के पूजन के समय माँ सम्बोधन किया। यथा : पति देवता सुतीय महुँमातु प्रथम तव रेख और यहाँ गङ्गा के पूजन मे भी मातु सम्बोधन दे रही हैं। आज भी स्त्रियाँ सौभाग्य के लिए गौरीपूजन और मनोरथ पूर्ति के लिए गङ्गापूजन करती हैं।

पति देवर सँग कुसल बहोरी। आइ करउँ जेहि पूजा तोरी ॥
सुनि सिय विनय प्रेमरस सानी। भइ तब विमल बारि बर बानी ॥२॥

अर्थ : जिससे पति और देवर के साथ कुशलपूर्वक लौटकर फिर तुम्हारी पूजा करें। प्रेमरस से ओत प्रोत सीताजी विनती सुनकर निर्मल जल से श्रेष्ठ शब्द निकले।

व्याख्या : यहाँ बहोरी पद से पता चलता है कि जिस समय रामजी पार्थिव पूजन कर रहे थे उस समय सीताजी गङ्गापूजन कर रही थी। पूजनोपरान्त हाथ जोडकर मनौती मानती है। गङ्गाजी तक कोसलराज की सीमा है। वन मे प्रवेश तो इसी के बाद होगा। अत प्रार्थना करती है कि पति देवर के साथ में चौदह वर्ष के लिए वन जा रही हूँ। अब यदि आपकी कृपा से सब कुशल रहे तो चौदह वर्ष के बाद ही फिर दर्शन का सयोग हो सकता है। अत आप ऐसी कृपा करें कि पति और देवर के साथ लौटकर फिर मैं आपकी पूजा कर सकूँ।

व्याख्या : सीताजी का विनय और प्रेम ऐसा सच्चा है कि उसने उमा को वश कर लिया था। यथा : विनय प्रेमवश भई भवानी। यहाँ उन्होने गङ्गाजी को विनय और प्रेम के वश मे कर लिया। वहाँ मूर्ति बोल उठी। यथा बोली गौरि हरष उर भरेऊ। यहाँ विमल जल से श्रेष्ठ वाणी निकल रही है। मूर्ति पूजन का यही रहस्य है कि विनय और प्रेम से जड मूर्तियो मे देवत्व का आविर्भाव हो उठे।

सुनु रघुवीर प्रिया वैदेही। तव प्रभाव जग विदित न केही ॥
लोकप होहिं विलोकत तोरे। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरे ॥३॥

अर्थ : हे रघुवीर की प्रिया वैदेही! सुनो तुम्हारी प्रभुता ससार मे कौन नही जानता। जिसे तुम देख दो वह लोकपाल हो जाय। तुम्हारी सेवा सब सिद्धियाँ हाथ जोडे किया करती हैं।

व्याख्या : वहाँ भगवती गौरी ने कहा : सुनु सिय सत्य असीस हमारी। यहाँ गङ्गा कह रही हैं : सुनु रघुवीर प्रिया बैदेही। विवाह के बाद पति के नाम के साथ सम्बोधन करने की चाल है। पति के नाम के साथ स्त्री के नाम के लय हो जाने से सर्वथा ऐक्य हो जाता है। अथवा रघुवीर प्रिया और वैदेही दोनो सम्बोधन देने से पतिकुल और पितृकुल दोनो की उत्तमता कहा। तुम उद्भवस्थितिसंहारकारिणी क्लेशहारिणी तथा सर्वश्रेयस्करी हो। तुम्हारा प्रभाव कौन नही जानता। जिसकी ओर दृष्टि फिर जाय वह लोकपाल हो जाता है। यथा : जाकी कृपा कटाक्ष सुर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चाहत चितव न सोइ। सिद्धियाँ सब हाथ जोडे तुम्हारी सेवा किया करती हैं। यथा सिधि सब सिय आयेसु अकनि गई जहाँ जनवास। लिये मपदा सकल सुख सुरपुर भोग बिलास।

तुम्ह जो हमहि बडि बिनय सुनाई। कृपा कीन्हि मोहि दीन्हि बडाई ॥
तदपि देवि मै देवि असीसा। सफल होन हित निज बागीसा ॥४॥

अर्थ तुमने जो हम बडी विनय सुनायी सो तुमने वडी कृपा की। मुझे वडाई दी। फिर भी हे देवि! मैं अपनी वाणी को सफल करने के लिए तुम्ह आशीर्वाद दूँगी।

व्याख्या तुम्हारा इतना कहना हो वडा भारी विनय है। तुम जो चाहोगी वह होकर ही रहेगा। फिर भी जो तुम विनय करती हो यह तुम्हारी कृपा है। मुझ वडाई दे रही हो। प्रभु वडाई दे चुके। यथा सचिवहि अनुजहि प्रियहि सुनाई। बिवुध नदी महिमा अधिकाई। सो तुम उसी को पुष्ट कर रहो हो।

यद्यपि तुम सर्व समर्थ हो। फिर भी तुम्हारा विनय मोघ न हो इसलिए मै आशीर्वाद दूंगी। अथवा भागीरथी हाने से मै नाते मे तुमसे बडी हूँ। अत आशीवाद देने का मेरा हक भी है और आशोर्वाद देने मे मेरी वाणी का साफल्य है। क्योकि ऐसा होने ही वाला है। अब आशीर्वाद देती हैं।

दो प्राननाथ देवर सहित, कुसल कोसला आइ।
पूजिहि सब मन कामना, सुजसु रहहि जग छाइ ॥१०३॥

अर्थ तुम प्राणनाथ और देवर के सहित कुशलपूर्वक अयोध्या लौटोगी। तुम्हारी सब मन की कामनाएँ पूरी होगी और तुम्हारी कीर्ति ससार मे छा जायेगी।

व्याख्या प्राणनाथ और प्रिय दवर के साथ जिस भाँति वन जा रही हो उसी भाति कुशल पूर्वक अयोध्या म चौदह वर्ष बाद लौटोगी। तुम्हारे मन म सासो की सेवा करने की कामना है। यथा सेवा समय देव बन दीन्हा। मोर मनोरथ सफल न कीन्हा। सो मनोरथ सफल होगा और भी जितने मनोरथ है सभी पूर्ण होगे और तुम्हारी कीर्ति ससार भर मे व्याप्त हो जायगी। यथा जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवन कीन्ह बिधि अड करोरी। वहाँ भगवती गौरी ने भी ऐसा ही आशीर्वाद दिया था। यथा सुनु सिय सत्य असीस हमारी। पूजिहि मन कामना तुम्हारी।

गग बचन सुनि मगल मूला। मुदित सीय सुरसरि अनुकूला ॥
तब प्रभु गुहहि कहेउ घर जाहू। सुनत सूख मुखु भा उर दाहू ॥१॥

अथ गङ्गाजी के मङ्गल मूल वचन का सुनकर सीताजी प्रसन्न हुई कि गङ्गाजी मेरे अनुकूल हैं। तब प्रभु ने गुह से कहा कि घर जाओ सुनते ही उसका मुख सूख गया और हृदय म दाह उत्पन्न हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : गङ्ग सकल मुद मङ्गल मूला। अत: उनके वचन भी मङ्गलमूल है। वहाँ : जानि गौरि अनुकूल सिय हिय हरख न जाइ कहि। यहाँ : मुदित सीय सुरसरि अनुकूला। जितना माँगा था उससे अधिक के लिए आशीर्वाद पाकर जाना कि गङ्गाजी अनुकूल हैं। अत. सीताजी मुदित हैं।

गङ्गाजी के आशीर्वाद के बाद सरकार आगे चलने को तैयार हुए। इसलिए निषादराज को आज्ञा दी कि घर जाओ। हमें तो वन जाना है। निषादराज घर से तैयार होकर चले थे कि सरकार जहाँ रहेंगे उसे देखकर लौटेंगे। मैं तो जङ्गली हूँ। मेरे साथ रहने मे क्या रोक है। पहिले भी आखेट मे मैं साथ रहता ही था। पर सरकार की आज्ञा सुनते ही उसके हृदय मे दाह उत्पन्न हुआ। अतः मुख सूख गया।

दीन बचन गुह कह कर जोरी। बिनय सुनहु रघुकुलमनि मोरी ॥
नाथ साथ रहि पंथु देखाई। करि दिन चारि चरन सेवकाई ॥२॥

अर्थ : गुह हाथ जोड़कर दीन वचन बोला कि हे रघुकुलमणि! मेरी विनती सुनिये। मैं सरकार के साथ रहकर रास्ता दिखाऊँगा। चार दिन चरणो की सेवा करूँगा।

व्याख्या : आर्त होकर निषादराज दीन वचन बोले। भा उर दाहू से मन की दीन वचन कहकर वाणी की और करजोरी कहकर तन की दीनता दिखायी। रघुकुलमणि सम्बोधन से भाव यह कि इस कुल से अर्थी के मनोरथ की सदा से पूर्ति होती आयी है। सरकार तो उसमे मणि हैं। मेरी प्रार्थना स्वीकार हो।

सरकार हमारे नाथ हैं। मैं इस भाँति वन मे कैसे जाने दूँ। वन का रास्ता मेरा देखा है। मै साथ रहकर रास्ता बतलाऊँगा। वन्य फल मूल का पता हम लोगो को ही रहता है। शयन के लिए साथरी आदि बनाने का काम मै करूँगा। इस भाँति चार दिन के लिए सेवा का सौभाग्य मुझको प्राप्त होगा।

जेहि बन जाइ रहब रघुराई। परन कुटी मै करबि सुहाई ॥
तब मोहि कहँ जसि देब रजाई। सोइ करिहौं रघुबीर दोहाई ॥३॥

अर्थ : हे रघुराई! जिस वन मे जाकर आप रहेंगे उसमे सुन्दर पत्ते की कुटी मैं बना दूँगा। तब मुझे जो आज्ञा होगी सरकार की दोहाई मैं वह करूँगा।

व्याख्या : निषादराज रहने का पूरा पता जान लेना चाहता है। कहता है कि जिस वन मे आप रहेंगे वहाँ पर्णकुटी कौन बनावेगा? यदि कहिये कि हम लोग बना लेंगे। तो इस पर कहता है कि वह ठीक न बनेगी। पत्ते की कुटी सुन्दर बनाना तो हम लोग जानते हैं। जब मैं कुटी बना लूँगा तब मेरे जाने या रहने पर विचार कीजियेगा। यदि आज्ञा होगी कि तुम चले जाओ तो सरकार की दोहाई मैं चला जाऊँगा। रहने के लिए हठ न करूँगा।

सहज सनेह राम लखि तासू। संग लीन्ह गुह हृदय हुलासू ॥
पुनि गुह ग्याति बोलि सब लीन्हे। करि परितोषु बिदा तब कीन्हे ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : उसका सनेह देखकर रामजी ने गुह को साथ ले लिया। उसके हृद मे उल्लास हुआ। तत्पश्चात् गुह ने जातिवालो को बुला लिया और उनक सन्तोष करके विदा किया।

व्याख्या : सरकार सहज स्नेह के वश हैं। यथा : सहज सनेह बिबस रघुराई अतः गुह को विनती स्वीकृत हुई। उसे साथ ले लिया। उसके हृदय में हर्ष है। सा जाने को खुशी है।

गुह निषादराज है। अतः जातिवाले उसके साथ आये हैं। उनको बुलाक गुह ने समझा दिया कि तुम लोग लौट जाओ। मेरा ही साथ जाना कठिन हो रह है। तुम लोग साथ रहोगे तो मैं भी न जाने पाऊँगा। इनके रहने की व्यवस्था कर लौट आऊँगा। आगे भयङ्कर वन है। सम्भव है कि जानकीजी डरें। तो मुः उन्हे लौटा ले जाने की आज्ञा मिलनी भी सम्भव है। ऐसी बातें कहकर उनक परितोष करके उन्हे विदा दिया।

दो. तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु, नाइ सुरसरिहि माथ।
सखा अनुज सिय सहित बन, गवनु कीन्ह रघुनाथ ॥१०४॥

अर्थ : तब गणपति और शिवजी का स्मरण करके और गङ्गाजी को सिर नवाकर सखा अनुज और सीताजी के साथ सरकार वन को चले।

व्याख्या : अपना नाम अपने रखने से रहता है। अतः जिनकी प्रथम पूज नाम के प्रभाव से होती है उन्हे पहिले स्मरण किया। तत्पश्चात् अपने सर्वार्थकारी शिवजी का स्मरण किया। यथा : सेवक स्वामि सखा सिय पीके। प्रत्यक्ष नहीं हैं। इसलिए स्मरण मात्र किया और गङ्गाजी घर की बड़ी बूढ़ी हैं और सामने हैं। अतः उन्हे सिर नवाया। आरम्भ मे चले थे तब गणपति तथा शिवजी के साथ गौरीजी को मनाया था। यहाँ गङ्गाजी को प्रमाण किया। दोनो शक्तियाँ शिवजी की हैं। सो दोनो का मान रक्खा। तब सखा निषादराज, लक्ष्मण और सीता के साथ रघुनाथजी ने वनगमन किया।

तेहि दिन भयउ बिटप तर बासू। लखन सखा सब कीन्ह सुपासू॥
प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराजु दीख प्रभु जाई॥१॥

अर्थ : उस दिन पेड़ के नीचे निवास किया। लक्ष्मणजी और सखा निषादराज ने सब प्रबन्ध किया। सवेरे नित्यकृत्य करके प्रभु ने जाकर तीर्थराज का दर्शन किया।

व्याख्या : गङ्गा पार होने के बाद वहाँ से सीधा रास्ता चित्रकूट का है। पर सरकार प्रयागराज को बायाँ देना नहीं चाहते। अतः पूर्व की ओर मुड़े। रास्ते मे ही सन्ध्या हो गयी। अतः वृक्ष के नीचे ठहर गये। भोजन शयनादि का प्रबन्ध लक्ष्मण और निषादराज ने किया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सरकार जहाँ सोते हैं उठने पर प्रात काल का कृत्य वही करते हैं। जिसमे काल का लोप न हो। प्रयागराज निकट हैं। अत मध्यान्ह कृत्य वही होगा। तीर्थों के राजा हैं। इसलिए प्रयागराज कहलाते हैं। सरकार चल। तीर्थराज का दर्शन हुआ।

सचिव सत्य श्रद्धा प्रिय नारी। माधव सरिस मीतु हितकारी॥
चारि पदारथ भरा भडारू। पुन्य प्रदेस देस अति चारू॥२॥

अर्थ सत्य मन्त्री हैं। श्रद्धा प्रिय स्त्री है। माधव जैसे हितकारी मित्र हैं। चारो पदार्थ से भण्डार भरा हुआ है। पुण्य प्रदेश ही अति सुन्दर राज्य है।

व्याख्या तीर्थराज हैं। सब राजसी ठाट बाट है। राजा के छ अङ्ग होते हैं मन्त्री, मित्र, राज्य, कोष दुर्ग और सेना। राजा का मुख्य अङ्ग मन्त्री है राज्य से भ्रष्ट राजा भी मन्त्री क होने से फिर राज्य प्राप्त कर सकता है। सो यहाँ सत्य ही मन्त्री हैं। बिना इनकी कृपा राजा से भेंट नही हो सकती। बिना सत्य के आश्रयण क तीर्थ फल की प्राप्ति नही हो सकती। पट्टाभिषिक्ता महिषी श्रद्धा तीर्थराज को बडी प्रिय है। इनके बिना धम की उत्पत्ति ही नही होती। दूसरे अङ्ग मित्र रूप से माधव है। सब प्रकार से तीर्थराज के सहायक हैं। तीसरा अङ्ग कोष है। उसमे चारो पदार्थ धम अर्थ काम और मोक्ष भरा हुआ है और अन्तर्वेदा गङ्गा यमुना के बीच का पुण्य प्रदेश ही राज्य है।

छेत्रु अगमु गढु गाढ सुहावा। सपनेहुँ नहिं प्रतिपच्छिन्ह पावा॥
सेन सकल तीरथ बर बीरा। कलुष अनीक दलन रन धीरा॥३॥

अर्थ प्रयाग क्षेत्र ही दुर्गम दृढ दुर्ग किला शोभायमान हैं। जिसे पाने का स्वप्न भी शत्रु नही देख सकते। सब तीर्थ ही वीरो की सेना हैं। जो पाप की सेना के नाश म बडे रणधीर है।

व्याख्या प्रयागराज का जो क्षेत्र है वही किला स्थानीय है। जिसमे न तो शत्रु का प्रवेश हो सकता है न उनका तोडा टूट सकता है। शत्रुओ ने कितने तीर्थ नष्ट कर डाल। पर प्रयागराज पर उनका वल न कभी चला और न चल सकने का वे स्वप्न ही देख सकते हैं। बौद्धो क काल म जब अयोध्यादि तीर्थ लुप्त हो गये थे केवल तीथराज बने रहे उन पर बौद्धो का जोर न चला। महाराज विक्रमादित्य ने प्रयाग की दूरी पुराणो से देख देखकर तीर्थों की स्थिति का पता लगाया और फिर स स्थापन किया। जितने बडे बडे तीर्थ ससार म हैं जो दिन रात पापो का नाश किया करते हैं वे सब तीथराज के ही सैनिक हैं।

सगमु सिघासनु सुठि सोहा। छत्रु अछयवटु मुनि मनु मोहा॥
चंवर जमुन अरु गग तरगा। देखि होहिं दुख दारिद भगा॥४॥

अर्थ गङ्गा यमुना का सङ्गम ही श्रेष्ठ सुन्दर सिंहासन है। मुनियो के मन

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : उसका सनेह देखकर रामजी ने गुह को साथ ले लिया। उसके हृदय मे उल्लास हुआ। तत्पश्चात् गुह ने जातिवालो को बुला लिया और उनका सन्तोष करके विदा किया।

व्याख्या : सरकार सहज स्नेह के वश हैं। यथा : सहज सनेह बिबस रघुराई। अतः गुह को विनती स्वीकृत हुई। उसे साथ ले लिया। उसके हृदय में हर्ष है। साथ जाने को खुशी है।

गुह निषादराज है। अतः जातिवाले उसके साथ आये हैं। उनको बुलाकर गुह ने समझा दिया कि तुम लोग लौट जाओ। मेरा ही साथ जाना कठिन हो रहा है। तुम लोग साथ रहोगे तो मै भी न जाने पाऊँगा। इनके रहने की व्यवस्था करके लौट आऊँगा। आगे भयङ्कर वन है। सम्भव है कि जानकीजी डरें। तो मुझे उन्हे लौटा ले जाने की आज्ञा मिलनी भी सम्भव है। ऐसी बातें कहकर उनका परितोष करके उन्हे विदा दिया।

दो. तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु, नाइ सुरसरिहि माथ।
सखा अनुज सिय सहित बन, गवनु कीन्ह रघुनाथ ॥१०४॥

अर्थ : तब गणपति और शिवजी का स्मरण करके और गङ्गाजी को सिर नवाकर सखा अनुज और सीताजी के साथ सरकार वन को चले।

व्याख्या : अपना नाम अपने रखने से रहता है। अतः जिनकी प्रथम पूजा नाम के प्रभाव से होती है उन्हे पहिले स्मरण किया। तत्पश्चात् अपने सर्वार्थकारी शिवजी का स्मरण किया। यथा : सेवक स्वामि सखा सिय पीके। प्रत्यक्ष नही है। इसलिए स्मरण मात्र किया और गङ्गाजी घर की बडी बूढी है और सामने हैं। अतः उन्हे सिर नवाया। आरम्भ मे चले थे तब गणपति तथा शिवजी के साथ गौरीजी को मनाया था। यहाँ गङ्गाजी को प्रमाण किया। दोनो शक्तियाँ शिवजी की है। सो दोनो का मान रक्खा। तब सखा निषादराज, लक्ष्मण और सीता के साथ रघुनाथजी ने वनगमन किया।

तेहि दिन भयउ बिटप तर बासू। लखन सखा सब कीन्ह सुपासू ॥
प्रात प्रातकृत करि रघुराई। तीरथराजु दीख प्रभु जाई ॥१॥

अर्थ : उस दिन पेड़ के नीचे निवास किया। लक्ष्मणजी और सखा निषादराज ने सब प्रबन्ध किया। सवेरे नित्यकृत्य करके प्रभु ने जाकर तीर्थराज का दर्शन किया।

व्याख्या . गङ्गा पार होने के बाद वहाँ से सीधा रास्ता चित्रकूट का है। पर सरकार प्रयागराज को बायाँ देना नही चाहते। अतः पूर्व की ओर मुडे। रास्ते मे ही सन्ध्या हो गयी। अतः वृक्ष के नीचे ठहर गये। भोजन शयनादि का प्रबन्ध लक्ष्मण और निषादराज ने किया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रयागराज मित्र हैं। यथा माधव सरिस मीत हितकारी। अत मित्र के समागम का सुख हुआ।

कहि सिय लखनहि सखहि सुनाई। श्रीमुख तीरथराज बड़ाई॥
करि प्रनामु देखत बन बागा। कहत महातम अति अनुरागा॥२॥

अर्थ श्रीमुख से सीता, लक्ष्मण और सखा को सुनाकर तीर्थराज की महिमा कह सुनायी। प्रणाम करके वन और बागो को देख रहे है और अति अनुराग से माहात्म्य कह रहे है।

व्याख्या वेद पुराण द्वारा प्रयागराज की महिमा वर्णित है। फिर भी आज श्रीमुख से महिमा कह रहे हैं। अत उसके प्रामाणिक होने मे क्या सन्देह है। तीर्थ मे जाने पर तीर्थ की महिमा का वर्णन होना चाहिए। माहात्म्यश्रवण बिना पूरा फल नही होता। इसलिए सीताजी लक्ष्मणजी को सुना रहे हैं। क्षेत्र की सीमा पर बाग वन है। उनके दर्शन का भी पुण्य है। अत प्रमाण करके अति अनुरागो से माहात्म्य वर्णन किया।

एहि विधि आइ बिलोकी बेनी। सुमिरत सकल सुमगल देनी॥
मुदित नहाइ कीन्हि सिव सेवा। पूजि जथाबिधि तीरथ देवा॥३॥

अर्थ इस विधि से आकर त्रिवेणी का दर्शन किया। जो स्मरण करने से सब सुमङ्गल को देनेवाली हैं। प्रसन्न होकर स्नान किया और तीर्थ देवताओ की यथाविधि पूजा करके शिवजी की सेवा की।

व्याख्या तीर्थयात्रा की यही विधि है। तदनुसार चलकर त्रिवेणी का दर्शन किया। जिसका स्मरण सभी सुमङ्गल का देनेवाला है। फिर दर्शन का क्या माहात्म्य कहा जाय। तीर्थराज मे आज स्नान कर रहे है। इस बात की बडी खुशी है। तत्पश्चात् तीर्थ देवताओ की पूजा भी यथाविधि से की।

त्रिवेणी माधवं सोम भारद्वाजञ्च वासुकिम्। वन्देऽक्षयवट शेष प्रयाग तीर्थनायकम्। त्रिवेणी माधव सोमनाथ वासुकी अक्षयवट और शेषनागादि वहाँ के देवता हैं। तत्पश्चात् शिवजी की सेवा की। पूजन कार्य समाप्त हुआ।

तब प्रभु भरद्वाज पहिं आये। करत दडवत मुनि उर लाये॥
मुनि मन मोद न कछु कहि जाई। ब्रह्मानद रासि जनु पाई॥४॥

अर्थ तब सरकार भरद्वाजजी के यहाँ गये। दण्डवत् करते हुए उनको मुनिजी ने हृदय से लगा लिया। मुनिजी को ऐसा आनन्द है कि उनसे कुछ कहते नहीं बनता। मानो ब्रह्मानन्द की राशि की ही प्राप्ति हो गयी।

व्याख्या भरद्वाज मुनि बसहिं प्रयागा। तिनहि रामपद अति अनुरागा। तापस सम दम दया निधाना। परमारथ पथ परम सुजाना। ये महात्मा जङ्गम तीर्थराज हैं। अत सरकार ने दण्डवत् प्रणाम किया। भरद्वाजजी इनको दण्डवत्

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



करते देख न सके। बीच मे ही उठाकर हृदय से लगा लिया। मुनिजी को बड़ा आनन्द हुआ। कहना चाहते हैं पर कुछ भी कहते नहीं बनता। उन्हे मानो ब्रह्मानन्द की राशि हाथ लग गयी। सरकार का शरीर पाञ्चभौतिक नहीं है। घनीभूत ब्रह्मानन्द ही है। यथा चिदानंदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी।

दो दीन्हि असीस मुनीस उर, अति अनदु अस जानि।
लोचन गोचर सुकृत फल, मनहुँ किए बिधि आनि ॥१०६॥

अर्थ मुनिजी ने हृदय से ही आशीर्वाद दिया। उनके मन मे ऐसा जानकर अत्यन्त आनन्द है कि विधाता ने लाकर मेरे पुण्य के फल को मेरे दृष्टिगोचर कर दिया।

व्याख्या आशीर्वाद देना चाहते थे। पर बोल न सके। अत मन से ही आशीर्वाद दिया। उन्हे ऐसा आनन्द है मानो सब साधनो के फल को ब्रह्मदेव ने लाकर दिखला दिया। सोचते हैं कि मैं खोजने भी न गया। ब्रह्मदेव ने लाकर दिखला दिया। तीन ही श्रेय के उपाय है। कर्मयोग भक्तियोग और ज्ञानयोग मैंने तीनो का अनुष्ठान किया। सो तीनो के फल मानो राम जानकी और लक्ष्मण के रूप म मुझे प्राप्त हो गये। यथा सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसन पावा।

कुसल प्रश्न करि आसन दीन्हे। पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे॥
कद मूल फल अकुर नीके। दिये आनि मुनि मनहु अमी के ॥१॥

अर्थ कुशल पूछकर आसन दिया। पूजा करके प्रेम से परिपूर्ण किया। कन्द मूल फल और अच्छे अङ्कुर अमृत से सुस्वादु लाकर मुनिजी ने दिये।

व्याख्या कुशल प्रश्न शिष्टाचार है। जो अपने यहाँ आवे उससे कुशल पूछना आसन देना जलपान कराना धर्मशास्त्र की विधि है। यथा तृणानि भूमिरुदक वाक् चतुर्थी तु सूनृता। एतान्यपि सता गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन। पूजन का प्राण श्रद्धा और भक्ति है। उसी से पूजा पूर्ण होती है। त्रुटियो का मार्जन होता है। अत मुनिजी ने पूजा को प्रेम से परिपूर्ण कर दिया।

नैवेद्य मे कन्द मूल और अङ्कुर का भोग लगाया। मुनियो का यही आहार है। भरद्वाजजी कुलपति हैं। एक आवाज पर पचासो शिष्य दौड आते हैं। प्रयागराज मे मुनियो का आना जाना लगा ही रहता है। अत कन्द मूलादि संग्रह अधिक रहता है। उसमे से देखने मे सुन्दर और खाने मे अमृत स स्वादिष्ट फल मूलादि का नैवेद्य सामने रक्खा।

सीय लखन जन सहित सुहाये। अति रुचि राम मूल फल खाये॥
भये बिगत श्रम रामु सुखारे। भरद्वाज मृदु बचन उचारे ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : सीता लक्ष्मण और निषादराज के साथ रामजी ने सुन्दर मूल फल को बड़े चाव से खाया। थकावट दूर हुई। रामजी सुखी हुए। तब भरद्वाजजी कोमल वचन बोले।

व्याख्या : चारों मूर्तियों को एक साथ परोसा। कन्द मूल फल अङ्कुर बड़े स्वादु थे और बड़े प्रेम से दिये गये थे। अतएव बड़े चाव से रामजी ने भोजन किया। पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति। तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः। पत्र पुष्प फल जो कोई मुझे प्रेम से देता है सो मैं उस प्रेम से दिये हुए पदार्थ को बड़े चाव से खाता हूँ : भगवद्गीतायाम्।

आज की यात्रा बड़ी लम्बी थी। अतः लौकिक व्यवहारानुसार सरकार थक गये थे। प्रेम परिपूर्ण पूजन से थकावट दूर हुई। पूजनोपरान्त स्तुति होनी चाहिए। अतः भरद्वाजजी मृदु वचन बोले।

आजु सुफल तपु तीरथ त्यागू। आजु सुफल जप जोग बिरागू॥
सुफल सकल सुभ साधन साजू। राम तुम्हहि अवलोकत आजू॥३॥

अर्थ : हे रामजी! आपके दर्शन से आज तप तीर्थ त्याग सफल हुआ। जप योग विराग सफल हुआ। शुभ साधनों के सब साज सुफल हुए।

व्याख्या : भरद्वाज तपस्वी थे। तीर्थराज में निवास करते थे। उदासीन थे। जप योग किया करते थे। वैराग्यवान् थे। अर्थात् परलोक के जो साधन हैं उनमें तत्पर थे। बहुत दिनों से यह क्रम चल रहा था। सो सबके सब आज अकस्मात् सफल हो गये। क्योंकि सब साधनों का फल रामजी का दर्शन है। यथा : मम दर्शन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा। सरकार के दर्शन से मुनिजी को सहज स्वरूप की प्राप्ति हुई। इसलिए कहते है कि आज सब सफल हो गये।

लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी। तुम्हरें दरस आस सब पूजी॥
अब करि कृपा देहु बरु एहू। निज पद सरसिज सहज सनेहू॥४॥

अर्थ : न तो लाभ की दूसरी अवधि है न सुख की दूसरी अवधि है। तुम्हारे दर्शन से सब आशा पूर्ण हो गयी। अब कृपा करके यह वर दो कि आपके चरण कमलों में मेरी स्वाभाविक भक्ति हो।

व्याख्या : यं लब्ध्वा चापरं लाभं मन्यते नाधिकं ततः। सो मुनिजी अनुभव कर रहे हैं कि इससे बढकर दूसरा लाभ हो नहीं सकता और ब्रह्मानन्द राशि की प्राप्ति के सुख से बढ़कर दूसरा सुख हो नहीं सकता। यही सुख की पराकाष्ठा है। क्योंकि सभी आनन्द ब्रह्मानन्द के उपजीवी हैं। यथा : एषोऽस्य परमानन्दो योऽखण्डैकरसात्मकः। अन्यानि भूतान्येतस्य मात्रामेवोपभुञ्जते। सो मुनिजी ने ब्रह्मानन्द की राशि ही मानो पा ली। परम अनूप फल सहज स्वरूप की प्राप्ति से पूर्णकाम हो गये। इसलिए कहते हैं कि आस सब पूजी।

महात्माओं में साध्य से अधिक आदर साधन का होता है। भगवान् से भी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अधिक आदर भक्ति का है। अतः चरण कमलों में सहज स्नेह प्राप्ति का वर माँगते हैं। बिना प्रयत्न के ही प्रेम बना रहे। यह अविरल भक्ति कृपासाध्य है। अतः पूजोपरान्त यही प्रार्थना है।

दो. करम बचन मन छाड़ि छलु, जब लगि जनु न तुम्हार।
तब लगि सुख सपनेहुँ नहिं, कियें कोटि उपचार ॥१०७॥

अर्थ : मनसा वाचा कर्मणा छल छोड़कर जब तक कोई तुम्हारा भक्त न होगा तब तक चाहे करोड़ों उपाय करे उसे सपने में सुख नहीं मिल सकता।

व्याख्या : कर्म वचन मन छल छोड़कर भक्त हो जाना यही सहज स्नेह है। बिना सहज स्नेह सुख नही। क्योंकि भक्ति ही सब सुखखानि है। यथा : सब सुखखानि भक्ति तैं माँगी। अन्य उपचार की निःसारता कहा। यथा : नाहि न आवत आन भरोसो। एहि कलिकाल सकल साधन तरु है श्रम फलनि फरो सो। सुख सपनेहु न जोग साधन फल रोग वियोग धरोसो।

यह सातवी स्तुति पुनर्वसु नक्षत्र है। इसमे चार तारे चमकते हैं : फल आशा स्नेह और सुख। फल की प्राप्ति आशा की पूर्ति स्नेह का वरदान सुख प्राप्ति का उपाय ये ही चार बातें इस स्तुति में हैं। यहाँ तप तीर्थ त्याग सब सकाम दिखायी पड़ रहे हैं। लाभ सुख आशा सभी गृहधर्म दिखायी दे रहे हैं। अतः स्तुति की आकृति गृह सी है। पुनर्वसु की आकृति गृह सी ज्योतिपशास्त्र बतलाता है। फल-श्रुति है। बीज सकल व्रत धरम नेम के। यहाँ सब व्रत धर्म नियम का सफल होना कहा है और फल में ही बीज रहता है।

सुनि मुनि बचन रामु सकुचाने। भाव भगति आनद अघाने॥
तब रघुबर मुनि सुजसु सुहावा। कोटि भाँति कहि सबहि सुनावा॥१॥

अर्थ : मुनिजी का वचन सुनकर रामजी सङ्कुचित हो गये और भावभक्ति के आनन्द से तृप्त हुए। तब रामजी ने मुनि के सुन्दर सुयश को करोड़ो भांति कहकर लोगों को सुनाया।

व्याख्या : सहज सरूप कथा मुनि बरनत रहत सकुचि सिर नाई। केवट मीत कहे सुख मानत बानर बंधु बड़ाई। सो मुनिजी सहज स्वरूप को लक्ष्य करके वरदान माँग रहे हैं। अत रामजी सङ्कुचित हो गये। एवमस्तु भी नही कहा। परन्तु मुनिजी के कृतकृत्यता के भाव तथा भक्ति के आनन्द से तृप्त हो गये। भक्ति के आनन्द कहने का भाव यह कि भक्ति : राजसी और तामसी तो असुरो मे पायी जाती है। ईर्ष्या पूर्वक द्वेष होना राजसी भक्ति : और भय पूर्वक द्वेष होना तामसी भक्ति है। पर इन भक्तियो मे आनन्द नही। यथा : बैर भाव सुमिरत मोहि निसिचर। पर परलोक उनका अवश्य बन जाता है। आनन्द तो सात्त्विकी भक्ति में है। मुनिजी की सात्त्विकी भक्ति है। अतः भक्ति का आनन्द कहा। जहाँ बड़े का नाता मान लेते हैं वहाँ वर माँगने पर एवमस्तु नही कहते मनोरथ पूर्ण कर देते हैं। यहाँ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मुनिजी की बडाई के व्याज से उनकी प्रार्थना की स्वीकृति द्योतित की। लोगो से मुनिजी के सुयश का वर्णन करने लगे कि ये साक्षात् जङ्गम प्रयागराज हैं। इतना बडा श्रोत्रिय कौन है। प्रणव की प्राप्ति इन्होंने इन्द्र से की है। ससार को रोग से आर्त देखकर इन्ही महात्मा ने वैद्यशास्त्र का प्रचार सुश्रुत सहिता रचकर किया है करोड लक्ष सहस्र शत शब्द बहुवचन वाची हैं इत्यादि।

सो बड सो सब गुन गन गेहू। जेहि मुनीस तुम आदर देहू॥
मुनि रघुबीर[1] परसपर नवही। बचन अगोचर सुखु अनुभवही॥२॥

अर्थ हे मुनीश्वर! जिसे तुम आदर दो वही बडा है और वही गुणगण का घर है। मुनिजी तथा रामजी परस्पर विनीत हो रहे हैं और ऐसे सुख का अनुभव कर रहे हैं जो वाणी का विषय नही।

व्याख्या अपने सहज स्वरूप को छिपाना है और मुनिजी के वचन को अप्रमाण कैसे कहे? अत कहते हैं कि आप सत्यसङ्कल्प हैं। सत्यकाम है! आप जिस किसी को जैसा कह दें वही वैसा हो सकता है। आपने जो मेरी स्तुति की है वह कृपा करके मुझे बडाई दी है। आपके आदर प्रदान से मैं बडा भी हुआ। गुण गेह भी हुआ।

भक्त और भगवान् का परस्पर विनय दिखलाते हुए अनिर्वचनीय आनन्द का आविर्भाव दिखलाया। विनय से ही प्रीति की वृद्धि होती है और जहाँ आनन्द है वही प्रीति है।

यह सुधि पाइ प्रयाग निवासी। बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी॥
भरद्वाज आश्रम सब आये। देखन दसरथ सुअन सुहाये॥३॥

अर्थ यह समाचार पाकर प्रयाग के रहनेवाले ब्रह्मचारी तपस्वी मुनि और उदासीन दशरथ के सुन्दर बेटो को देखने आये।

व्याख्या जहाँ सरकार जाते हैं सब लोग उनके सौन्दर्य पर मुग्ध हो जाते हैं। चारो ओर सौन्दर्य की ख्याति फैल जाती है। अत यह समाचार सब लोगो मे फैल गया कि राजा दशरथ के बेटे प्रयाग स्नान के लिए आये है। उनके रूप की सम्पत्ति अलौकिक है। इस समय वे भरद्वाज के आश्रम मे हैं। अत ब्रह्मचारी वानप्रस्थ सन्यासी सिद्ध और विरतिरत गृही सभी देखने आये।

राम प्रनाम कीन्ह सब काहू। मुदित भये लहि लोयन लाहू॥
देहि असीस परम सुखु पाई। फिरे सराहत सुदरताई॥४॥

अर्थ रामजी ने सभी को प्रणाम किया। सब नेत्रो का लाभ पाकर प्रसन्न हुए। परम सुख पाकर सब आशीर्वाद देते हैं और सुन्दरता की प्रशसा करते हुए घर लौटते हैं।

---

१ यहाँ अन्योयालङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : बटु तापस मुनि सिद्ध उदासी। सभी प्रणम्य ठहरे। अतः मर्यादा-पुरुषोत्तम भगवान् ने सबको प्रणाम किया। नयनवन्त रघुपतिहि बिलोकी। पाइ जनम फल होहिं बिसोकी। सो ये लोग भी नयनफल पाकर विशोक हुए। सरकार के दर्शन से परम सुख हुआ। यथा : मम दर्शन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा। परम सुख पाकर सबने आशीर्वाद दिया और सौन्दर्य की प्रशंसा करते हुए लौट आये।

दो. राम कीन्ह विश्राम निसि, प्रात प्रयाग नहाइ।
चले सहित सिय लखन जन, मुदित मुनिहि सिरु नाइ ॥१०८॥

अर्थ : रामजी ने रात्रि को विश्राम किया। प्रातःकाल प्रयाग स्नान करके सीता लक्ष्मण और भक्त निषाद के साथ मुनिजी को सिर नवाकर प्रसन्न मन चले।

व्याख्या : रामजी ने रात को भरद्वाजजी के आश्रम मे ही विश्राम किया। एक रात्रि तीर्थ में बिताया। प्रातः स्नान प्रयागराज अर्थात् त्रिवेणी मे हुआ। अब और आगे चले। वाल्मीकि मुनिजी के दर्शन के लिए उत्साह है। अतः प्रसन्न मन से चलना कहा। रामजी सीता लक्ष्मण और गुह निषाद के साथ मुनि : भरद्वाजजी को प्रणाम किया और चल पडे।

राम सप्रेम कहेउ मुनि पाही। नाथ कहिअ हम केहि मग जाही ॥
मुनि मन बिहँसि राम सन कहही। सुगम सकल मग तुम्ह कहुँ अहही ॥१॥

अर्थ : रामजी ने प्रेम के साथ मुनिजी से कहा कि हे नाथ! बतलाइये कि हम लोग किस रास्ते से जायँ। मुनिजी मन ही मन हँसकर रामजी से कहते हैं कि सभी रास्ते तुम्हारे लिए सुगम है।

व्याख्या : भरद्वाजजी वाल्मीकिजी के शिष्य हैं। यद्यपि रामजी रास्ता पूछते है। पर किसी स्थान का नाम नही लेते, जहाँ जाना है। भाव यह कि मुनिजी रास्ता भी बतलायें और गन्तव्य स्थान का भी निश्चय कर दें। मुनिजी से स्वामी सेवक भाव रखते हुए नाथ सम्बोधन देते है और प्रेम से पूछते है।

ऐश्वर्य छिपाते देखकर मुनिजी मन ही मन हँसे कि ये हमसे रास्ता पूछते है। अतः उत्तर देते हैं कि सभी रास्ते तुम्हारे लिए सुगम है। जिसने जग को तीन पग से भी थोड़ा कर डाला उसके लिए दुर्गम क्या है। मुनिजी ने गुरुजी के पास पहुँचाने का रास्ता ठीक कर दिया और गन्तव्य स्थान का निर्णय उन्ही पर छोडा।

साथ लागि मुनि सिष्य बोलाये। सुनि मन मुदित पचासक आये ॥
सबहि राम पर प्रेम अपारा। सकल कहहिं मगु दीख हमारा ॥२॥

अर्थ : साथ के लिए मुनिजी ने शिष्यो को बुलाया। सुनते ही प्रसन्न मन से लगभग पचास के आगये। सभी का रामजी पर अपार प्रेम है। सभी कहते है कि रास्ता हमारा देखा है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : रास्ता ऐसा नही था कि केवल बतला देने से काम चले। अर्थात् कोई पगडण्डी ऐसी नही थी जिसे पकड़ा देने से काम चल जाय। रास्ता दिखाने के लिए साथ जाने की आवश्यकता थी। अतः साथ भेजने के लिए मुनिजी ने शिष्यों को आवाज दिया। सुनते ही लगभग पचास के आगये। मुनिजी ने पूछा कि गुरुजी के यहाँ जाने का रास्ता किसका देखा है। सभी कहने लगे कि हमारा देखा है। हमारा देखा है। सभी का रामजी पर अपार प्रेम था। सभी की इच्छा थी कि रामजी के साथ जायँ।

मुनि बटु चारि संग तब दीन्हे। जिन्ह बहु जनम सुकृत सब कीन्हे ॥
करि प्रनामु रिषि आयसु पाई। प्रमुदित हृदय चले रघुराई ॥३॥

अर्थ : मुनिजी ने चार ब्रह्मचारियो को साथ कर दिया। जिन्होने बहुत जन्मो तक सब पुण्य किया था। प्रणाम करके ऋषिजी की आज्ञा पाकर रामजी प्रसन्न होकर चल पडे।

व्याख्या : एक के भी साथ देने से रास्ता दिखाने का काम चल सकता था। फिर भी मुनिजी ने चार शिष्य साथ कर दिये। क्योकि जङ्गल की बात थी। उन्हे रामजी को पहुँचाकर लौटना भी था और मार्ग चलने मे चार का विधान भी हैं। मुनिजी शिष्य सभी रामजी के प्रेमी थे। सभी पुण्यात्मा थे। अतः मुनिजी को उनके पूर्व जन्म के सुकृत के अनुसार निर्णय करना पडा।

रामजी विदाई के लिए प्रणाम करते हैं। अथवा आज्ञा प्राप्त करने के लिए प्रणाम करते हैं। आज्ञा पाकर प्रमुदित होकर चले। मुदित होकर सिर नवाया था। अब प्रमुदित होकर चले।

## पंथ कथा प्रसङ्ग

ग्राम निकट जब निकसहिं जाई। देखहिं दरसु नारि नर धाई ॥
होंहि सनाथ जनम फलु पाई। फिरहिं दुखित मनु संग पठाई ॥४॥

अर्थ : जब किसी गाँव के निकट होकर निकलते थे तो स्त्री पुरुष दौड़कर दर्शन करते थे। जन्म फल पाकर सनाथ होते थे और मन को साथ भेजकर दु:खी लौटते थे।

व्याख्या : वन के छोर पर कही कही ग्राम है। उनके निकट जब वन मे से निकलते हैं तो दर्शन के लिए ग्रामवासी नर नारी दौड पडते हैं। सरकार की शोभा देखते है। अपने को सनाथ मानते हैं। ससार मे जन्म लेने का फल उन्हे प्राप्त हो गया। उनका मन सरकार के साथ हो गया और फिर न लौटा। लौटने मे उन्हे बड़ा कष्ट हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. विदा किये बटु विनय करि, फिरे पाइ मन काम।
उतरि नहाये जमुन जल, जो[1] सरीर सम स्याम ॥१०९॥

अर्थ : विनय करके ब्रह्मचारियों को विदा किया और वे मन चाहा फल पाकर लौटे। यमुना पार होकर स्नान यमुना जल मे किया। जो उनके शरीर की भाँति श्याम था।

व्याख्या : ब्रह्मचारी अधिक दूर तक साथ जाने को उत्सुक थे। लौटना नही चाहते थे। सो उन्हे विनय करके लौटाया। वे भी खाली हाथ नही लौटे। उनकी कामनाएँ पूर्ण हुई। यमुना पार होकर मध्याह्न कृत्य किया। पार होने की व्यवस्था निषादपति ने की। यमुना जल की शोभा कहते है कि वह सरकार के शरीर सा श्याम था : सम्भवतः जो अब गुलौरीघाट कहलाता है वहाँ पहुँच गये।

सुनत तीर बासी नर नारी। धाए निज निज काज बिसारी॥
लखन राम सिय सुंदरताई। देखि करहिं निज भाग्य बड़ाई ॥१॥

अर्थ : सुनते ही तीर के रहनेवाले नर नारी अपना अपना काम भूलकर दौडे। लक्ष्मण राम और सीता की सुन्दरता देखकर अपने भाग्य की बड़ाई करते हैं।

व्याख्या : इस समाचार को सुनकर अति उत्कण्ठावश यमुना तीर के रहनेवाले अपना अपना काम अधूरा छोडकर दौड़े कि उनके पहुँचने के पहिले ही कही चले न जायँ। जैसे मुरली की ध्वनि सुनकर व्रजगोपिकाएँ दौड़ी थीं। किसी ने एक ही आँख मे अञ्जन लगा पाया था। किसी ने दूध को उफनता हुआ आग पर ही छोड़ा। वे श्रीकृष्ण के दर्शन की उत्सुकता मे सब काम भूल गयी। वही दशा आज यमुनातीरवासी नर नारियों की हुई।

आकर जब लक्ष्मण राम और सीता की सुन्दरता को देखा तो उन्हे ऐसा अलौकिक सुख हुआ कि अपने भाग्य की बड़ाई करने लगी। अचिन्तित सुख या दुःख की प्राप्ति मे भाग्य ही कारण माना जाता है।

अति लालसा बसहिं मन माहीं। नाउँ गाउँ बूझत सकुचाहीं॥
जे तिन्ह महुँ बय बिरिध सयाने। तिन्ह करि जुगुति रामु पहिचाने ॥२॥

अर्थ : उन लोगों के मन में बड़ी लालसा हो रही थी। फिर भी नाम ग्राम पूछने मे सङ्कोच होता था। उनमे जो सयाने चतुर रहे उन्होने युक्ति लगाकर रामजी को पहिचान लिया।

व्याख्या : जिसके देखने से मन को इतना सुख मिल रहा है उनके नाम और पता जानने की इच्छा होना स्वाभाविक है। पर पूछने मे सङ्कोच होता है।

---

१. यहाँ प्रतीपालङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

महामहिम पुरुष से सामान्य पुरुष को ऐसा प्रश्न करने में सङ्कोच होता ही है। पर जानने की अभिलाषा प्रबल है। उनमें जो ज्ञानवृद्ध थे उन्होने युक्ति से पहिचाना।

चतुर हैं। उनका संसार देखा हुआ है। पर ऐसे बटोही तो नहीं देखे। निश्चय राजकुमार है। पर मुनिवेष बनाये हुए हैं। राजा दशरथ ने अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को वन दिया है। वही राम ये हैं। ऐसा युक्ति से निश्चय किया।

सकल कथा तिन्ह सबहि सुनाई। बनहि चले पितु आयसु पाई॥
सुनि सविषाद सकल पछिताही। रानी राय कीन्ह भल नाही॥३॥

अर्थ : उन्होने सब कथा सब लोगों को सुनायी कि पिता की आज्ञा से ये वन को जा रहे हैं। सुनकर सब लोग विषाद के साथ पछताने लगे कि राजा रानी ने अच्छा नही किया।

व्याख्या : उन सयाने लोगो को रामजी के अभिषेक की तैयारी कैकेयी का वरदान मांगने तथा रामजी का पिता की आज्ञा शिरोधार्य करने की कथा मालूम थी। अतः रामजी के पहिचानने में कठिनाई न हुई और अब उन्होने सबको वह कथा कह सुनायी कि वे ही रामजी पिता की आज्ञा से वन जा रहे हैं। तब यह सुनकर सबको विषाद हुआ। सब पछताने लगे और राजा रानी को दोष लगाने लगे कि उन लोगों ने अच्छा नही किया। यहाँ तक नर का पछताना कहा।

तेहि अवसरु एक तापसु आवा। तेज पुंज लघु बयस सुहावा॥
कवि अलखित गति वेषु बिरागी। मन क्रम वचन राम अनुरागी॥४॥

अर्थ : उसी समय में एक तपस्वी आया। जो तेजस्वी सुन्दर और अल्प-वयस्क था। वह गूढ़गति कवि था। उसका विरागी सा वेष था और मनसा वाचा कर्मणा रामानुरागी था।

व्याख्या : जिस समय लोग सविषाद पछता रहे थे उसी समय एक तपस्वी भी आगया। यमुना तीर के आनेवाले नर नारियों में उसकी विशेषता थी। अतः उसकी कथा अलग लिखते हैं।

सरकार अभी यमुना पार उतरे है। यही गुरौली घाट है। जहाँ पर सरकार का उतरना कहा जाता है। राजापुर श्रीगोस्वामीजी का जन्म स्थान यहाँ से बहुत निकट है। यहाँ इष्टदेव का आगमन वर्णन करने मे भावावेश से कवि के लिए भूतकाल वर्तमान में परिणत हो गया और आप स्वयं आगये। तेज पुञ्ज से भौतिकता का अभाव कहा। दिव्य मानसिक शरीर से आये : बालपने सूधोमन राम सनमुख भयो। इसी से लघुबयस सुहावा कहा। कवि अलखित गति कहकर गोस्वामी जी स्पष्ट ही अलक्ष्यगति से अपना आना कहते है। श्रीगोस्वामीजी का विरागी वेष था ही। यथा : वेष विराग को रांग भरो तनु। मन क्रम वचन श्रीरामजी में अनुराग होना प्रसिद्ध ही है।

ankurnagpal108@gmail.com



दो. सजल नयन तन पुलकि निज, इष्ट देउ पहिचानि।
परेउ दंड जिमि धरनि तल, दसा न जाइ बखानि ॥११०॥

अर्थ : अपने इष्टदेव को पहिचाकर उसकी आँखो मे जल भर आया। रोगटे खडे हो गये। दण्ड के समान पृथ्वी तल पर गिर पडा। उसकी दशा वर्णन नही की जा सकती।

व्याख्या : इन महात्मा को सरकार के पहिचान करने मे युक्ति का सहारा नही लेना पडा। इन्होने सीधे सीधे पहिचाना कि जिन तीन मूर्तियो का नित्य ध्यान करता हूँ वे यही तो है। यथा : राम बाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर। ध्यान सकल कल्यान मय सुरतरु तुलसी तोर। अत कहते हैं : निज इष्टदेव पहिचानि सात्त्विक भाव हुआ। प्रेम मे विभोर होकर दण्ड की भाँति पृथ्वी पर गिरे। शरीर का अध्यास नही रह गया। इसलिए कहते है दसा न जाइ बखानि।

राम सप्रेम पुलकि उर लावा। परम रकु जनु पारसु पावा॥
मनहुँ प्रेम परमारथु दोऊ। मिलत धरे तनु कह सबु कोऊ ॥१॥

अर्थ : रामजी ने प्रेम के साथ पुलकित होकर इस भाँति हृदय से लगाया जैसे परम दरिद्र को पारस मिल गया हो। सब लोग कहने लगे कि मानो प्रेम और परमार्थ शरीर धारण करके मिल रहे हो।

व्याख्या . भक्त सजल नयन पुलकित तन होकर दण्ड के समान पृथ्वी पर गिरा। भगवान् ने सप्रेम पुलकित तन होकर हृदय से लगा लिया। भक्त की दशा बखानी नही जाती। भगवान् की भी ऐसी ही दशा है। महादरिद्र को पारस मिलने से जैसा आनन्द होता है वैसा आनन्द हो रहा है। ये यथा मा प्रपद्यन्ते तास्तथैव भजाम्यहम्।

परमार्थ को प्राप्त करानेवाला प्रेम है और प्रेम का चाहनेवाला परमार्थ है। अत देखनेवालो ने इस मिलन को देखकर कह दिया कि मानों प्रेम और परमार्थ शरीरधारी होकर मिल रहे हैं। राम ब्रह्म तो परमार्थ रूप हैं ही। इधर भक्त भी प्रेममय हो रहा है। अत ऐसी उपमा दी गयी।

बहुरि लखन पायन्ह सोइ लागा। लीन्ह उठाइ उमँगि अनुरागा॥
पुनि सिय चरन धूरि धरि सीसा। जननि जानि सिसु दीन्ह असीसा ॥२॥

अर्थ · तत्पश्चात् वह लक्ष्मणजी के पाँव पडा। उन्होने प्रेम से उमँगकर उठा लिया। तत्पश्चात् सीताजी के चरणो की धूलि सिर पर रखा। माँ ने बच्चा जानकर आशीर्वाद दिया।

व्याख्या लक्ष्मणजी के चरण शीतल सुभग भक्त सुखदायी है। अतः उन चरणो को प्रणाम किया। उन्होने भी अनुराग से उठा लिया। उठा लेने का अर्थ ही मिलना है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



फिर उसने अधिकारानुसार सीताजी के चरणो की धूलि को सिर पर धारण किया। जगदम्बा ने उसका शिशु भाव देखकर आशीर्वाद दिया। इस भांति वह कृतकृत्य हो गया। यथा : अब कृतकृत्य भयउँ मैं माता। आसिष तौ अमोघ विख्याता।

कीन्ह निषाद दंडवत तेही। मेलेउ मुदित लखि राम सनेही॥
पिअत नयन पुट रूप पियूखा। मुदित सुअसन पाइ जिमि भूखा॥३॥

अर्थ : निषाद ने उसे दण्डवत् किया। उसने रामजी का स्नेही जानकर गले लगाया। वह नेत्ररूपी चषक से सौन्दर्यामृत का पान करने लगा और ऐसा प्रसन्न था जैसे सुन्दर भोजन पाकर भूखा प्रसन्न होता है।

व्याख्या : निषादराज ने उसे दण्डवत् किया। उन्होने गले लगा लिया। निषादराज से पहिले पहल ये ही मिले। इन्होने राम प्रेम के सामने जाति के अपकर्ष को कुछ न गिना। यथा तुलसी भगत स्वपच भलो भजै रैन दिन राम। ऊँचो कुल केहि काम को जहाँ न हरि को नाम। अति ऊँचे भूधरन पै भुजगन्ह के अस्थान। तुलसी नीचे होत हैं ईख अन्न अरु पान।

अब वह तपस्वी आँखो को पान पात्र बनाकर सौन्दर्यरूपी अमृत का पान करने लगा और ऐसा प्रसन्न था जैसे भूखा स्वादिष्ट अन्न पाकर प्रसन्न होता है। सरकार के रूप सुधा के पान करने से भक्तिरूपी सुस्वादु अन्न भी करतलगत होता है। यहाँ पर पीने और खाने की द्विविध तृप्ति का वर्णन किया। ये महात्मा तो इस प्रकार आनन्द लूटते रहे। अब नारी समाज का हाल सुनिये।

ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन्ह पठये बन बालक ऐसे॥
राम लखन सिय रूपु निहारी। होहिं सनेह बिकल नर नारी॥४॥

अर्थ : हे सखि! वे माता पिता कैसे हैं जिन्होने ऐसे बालको को वन भेजा है। राम लक्ष्मण और जानकी के रूप को देखकर नर और नारी स्नेह से विकल हो रहे थे।

व्याख्या : आँखिन मे सखि राखिबे जोग इन्हे किमि कै वनवास दयो है। जैसे निषादपति के यहाँ की नर नारियो ने कहा था वैसे ही ये भी कह रही हैं। यह अर्धाली मानस मे दो बार आयी है। इन्हे माता पिता के निर्दयता पर आश्चर्य है।

पहिले तो राम लक्ष्मण और सीताजी के रूप को देखकर सब अपने भाग्य को बड़ाई करते थे। परन्तु जब सब कथा जान लिया तब उनके रूप को देखकर स्नेह से विकल होने लगे।

दो. तब रघुबीर अनेक विधि, सखहि सिखावनु दीन्ह।
राम रजायसु सीस धरि, भवन गवनु तेइँ कीन्ह॥१११॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : तब रामजी ने अनेक विधि से सखा को शिक्षा दी। रामजी की आज्ञा शिरोधार्य करके वह घर गया।

व्याख्या : जब तक सरकार वहाँ थे यमुनातीरवासियों की ऐसी ही दशा थी। सरकार को सङ्ग मे किसी का रखना पसन्द नही। अतः सखा निषादराज को अनेक प्रकार से शिक्षा दी। मेरा भजन जैसा वियोग मे होता है वैसा संयोगावस्था मे नही होता। अथवा वाल्मीकिजी के आश्रम जाने में कोई बाधक नदी भी नही है। हम लोग चले जायँगे। तुम्हारे साथ रहने मे राज सम्बन्ध लगा रहेगा। मेरे उदासीन व्रत मे बाधा रहेगी इत्यादि। फिर भी निषाराज को लौटने की इच्छा नही। पर रामजी की आज्ञा माननी ही पडी और वह घर लौट चला।

पुनि सिय राम लखन कर जोरी। जमुनहि कीन्ह प्रनामु बहोरी ॥
चले ससीय मुदित दोउ भाई। रवितनुजा कइ करत बड़ाई ॥१॥

अर्थ : फिर सीता राम और लक्ष्मण ने फिर यमुनाजी को प्रणाम किया। सीताजी के सहित प्रसन्न होकर दोनो भाई सूर्य की बेटी यमुनाजी की महिमा कहते चले।

व्याख्या : आने के समय प्रणाम नही कहा था। इसलिए जाते समय बहोरी पद देकर जनाया कि आने के समय भी प्रणाम किया था। बड़ी श्रद्धा से तीनो प्राणियो ने प्रणाम किया। मुख्य तो नदी की अधिष्ठात्री देवता हैं। जिनके जलमय शरीर को नदी कहा जाता है। आगे कहे हुए रवितनुजा शब्द से यही अर्थ स्पष्ट है।

यमुना स्नान करके सीता राम और लक्ष्मण सभी प्रसन्न हैं। रास्ते चलते यमुनाजी की महिमा कहते चले। दर्शन करने के समय महिमा कहने का अवसर नही मिला था। वहु : गी प्रे। यमुना की महिमा यथा : यमुना ज्यौं ज्यौं लागी बाढन। त्यौ त्यौ सुकृत सुभट कलि भूपहि निदरि लगे वहु काढन। ज्यौं ज्यौ जलमलीन त्यौं त्यौ जमगन मुख मलीन लहै आढन। तुलसीदास जगदघ जवास ज्यों अनघ मेघ लागे डाढन : वि प.।

पथिक अनेक मिलहिं मग जाता। कहहि सप्रेम देखि दोउ भ्राता ॥
राज लखन सब अंग तुम्हारें। देखि सोचु अति हृदय हमारें ॥२॥

अर्थ : रास्ते मे जाते हुए अनेक बटोही : राहचलतू मिलते है। दोनो भाइयो को प्रेम के सहित देखकर कहते हैं। तुम्हे तो सब राजलक्षण पड़े है। देखकर हमारे हृदय मे बडा सोच है।

व्याख्या : रास्ते से जा रहे हैं। अत वन की ओर से आनेवाले पथिको से भेंट होती है। दोनो भाइयो के दर्शन मात्र से उनके हृदय मे प्रेम उमड आता है। उनमे सामुद्रिक के पण्डित भी हैं। देखते है तो दोनो भाइयो को राजलक्षण पडे हुए हैं। कोई लक्षण ऐसे नही है जिससे इस दशा मे पैदल चलें। उनसे बिना कहे नही

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रहा जाता। वे कहते हैं कि तुम्हें देखकर हमें बड़ा सोच हो रहा है कि लक्षण तुम्हें तो सव राजा के से पड़े हैं।

मारग चलहु पयादेहि पाएं। ज्योतिषु झूठ हमारेहि भाएं॥
अगमु पंथु गिरि कानन भारी। तेहि महं साथ नारी सुकुमारी॥३॥

अर्थ : पैदल रास्ता चल रहे हो। हमारी समझ में तो ज्योतिष शास्त्र झूठ मालूम पड़ता है। रास्ता दुर्गम है। भारी पर्वत और वन है। तिस पर साथ मे सुकुमारी स्त्री है।

व्याख्या : ऐसे लक्षण युक्त पुरुष टहलने भले ही पैदल चले। तीर्थ में पैदल चलें। पर रास्ता पैदल नही चलते। हम ज्योतिषी ठहरे। हमारे फलकथन से ज्योतिष शास्त्र सच्चा समझा जाता है। सो जहां कुछ लक्षण अच्छे हैं कुछ बुरे हैं वहां फल न घटने पर मानना पड़ता है कि दोषगुण के तारतम्य के न समझने से चूक हुई। पर यहां तो जितने राजलक्षण हैं सब तुम्हारे में मौजूद है और तुम पैदल मञ्जिल तय कर रहे हो। अतः मेरा हृदय तो अब ज्योतिष को सच्चा मानने के लिए तैयार नही है।

मार्ग भी दुर्गम है। बड़े बड़े पहाड़ हैं। भारी जङ्गल हैं। बीच में कोई विश्राम स्थान नही। साथ में कोई सहायक नही। उलटे सुकुमारी स्त्री साथ में है। तुमलोग इसकी रक्षा करोगे कि अपना प्राण बचाओगे।

करि केहरि बन जाइ न जोई। हम संग चलहि जो आयसु होई॥
जाब जहां लगि तहं पहुँचाई। फिरब बहोरि तुमहि सिरु नाई॥४॥

अर्थ : हाथी और सिंहों का वन देखते नही बनता। यदि आज्ञा हो तो हम साथ चलें। आप लोग जहां तक जायेंगे वहां तक पहुंचाकर फिर हम तुम्हे प्रणाम करके लौट आवेंगे।

व्याख्या : फिर वन भी कैसा है कि इसमें हाथी भी हैं। सिंह भी है। अतः बड़ा भयानक है। देखते नही बनता। हम उसी में से होते आ रहे हैं। रक्षा के लिए आपके सङ्ग चलने को तैयार हैं। परन्तु बिना आज्ञा सङ्ग चलना भी अनुचित है।

यदि कहिये कि कहां तक साथ चलोगे। इसपर कहते हैं कि जहां तक आप जायें वहां तक साथ चलेंगे। आपको गन्तव्य स्थान तक पहुँचाकर तब लौटेंगे। तुमहि सिरु नाई भाव यह कि इसका एहसान : निहोरा आप पर न होगा। हम अपने को कृतकृत्य मानेंगे।

दो. एहि बिधि पूछहि प्रेम बस, पुलक गात जलु नैन।
कृपासिंधु फेरहि तिन्हहि, कहि बिनीत मृदु बैन॥११२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ इस भाँति प्रमवश पूछते है। उनको पुलक हो जाता है। आँखो मे जल आ जाता है। पर कृपासिन्धु सबको विनीत कोमल वचन कहकर लौटा देते है।

व्याख्या जो ज्योतिषी है। लक्षण देखकर पहिचानते हैं और जो नही लक्षण जानते वे भी रूप देखकर मुग्ध हो जाते हैं। प्रेम मे उन्हे पुलकावली हो जाती है। आंखो मे जल आ जाता है। सभी साथ जाने को तैयार हो जाते है। पर सरकार किसी को साथ नही लेते। विनीत और कोमल वचन कहकर लौटा देते है। क्योकि कृपा के समुद्र हैं। समुद्र मे जो कुछ डालिये उसे वह स्वीकार नही करता। गर्जन पूर्वक बाहर फेंक देता है पर सरकार कृपासिन्धु हैं। अत विनीत मृदु वचन कहकर प्रार्थना अस्वीकार कर देते हैं।

जे पुर गाँव बसहिं मग माही। तिन्हहि नाग सुर नगर सिहाही॥
केहि सुकृती केहि घरी बसाये। धन्य पुन्यमय परम सुहाये॥१॥

अर्थ रास्ते मे जो पुर और ग्राम पडते थे उनसे ईर्ष्या नागलोक और देवलोक करते थे कि किस पुण्यवान ने किस शुभ घडी मे ये धन्य और पुण्यमय तथा वडे सोहावने गाँव बसाये हैं।

व्याख्या यहाँ नागसुरनगर से उनके अधिष्ठात्री देवता अभिप्रत है। जहाँ सरकार जाते हैं वहाँ परमानन्द की बाढ आ जाती है। नागसुरनगर मे तो केवल विषयानन्द का प्रचार है। अत वे ईर्ष्या करते है कि ऐसा आनन्द हमारे यहाँ कभी नही हुआ।

पुर और ग्राम की विभूति उसके बसानेवाल के पुण्य और बसाने के मुहूर्त पर निर्भर है। क्योकि वे ग्राम और पुर बसानेवाल के पुत्र स्थानीय है। उनके यश को बनाये रहते है। उनने पुण्यानुसार ही उन पुर और ग्रामा की उन्नति होती है। बसाने का मुहूर्त ही उन पुर और ग्रामो का जन्म मुहूर्त है। सो ये ऐसे पुण्यमय हैं कि सरकार का चरण इनकी प्रान्तभूमि मे आगया। अत उन बसानेवाल सुकृतियो और उन पुण्यमुहूर्तों की प्रशसा करते हैं।

जहँ जहँ राम चरन चलि जाही। तिन्ह समान अमरावति नाही॥
पुन्यपुज मग निकट निवासी। तिन्हहिं सराहहि सुरपुरवासी॥२॥

अर्थ जहाँ जहाँ रामजी के चरण चल जाते हैं उनके समान अमरावती भी नही है। रास्ते के निकट के रहनेवाल तो पुण्य के समूह ही है। उनकी प्रशसा सुरपुरवासी करते हैं।

व्याख्या गाँव जा रास्ते मे पडत हैं उनकी महिमा कहकर जिस स्थल मे प्रभु के चरण पडे उसकी महिमा कहते हैं। जिस भरत ने विधिविस्मयदायक विभव को आँख उठाकर नही देखा। वे ही रज सिर धरि हिय नयनन्हि लावहिं। तब उसकी महिमा क्या कही जाय। इतना भाग्य इन्द्रपुर का कहाँ ?

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



स्वर्गवासियो का तो कमाया हुआ पुण्य क्षण क्षण क्षीण होता जाता है। जब सब पुण्य क्षीण हो जाता है तो स्वर्ग से गिरा दिये जाते हैं। मग निकट निवासियो ने तो अपना मन ही सरकार को अर्पण कर दिया। यथा : फिर्राहि दुखित मन संग पठाई। उनका पुण्य नित्य बढ़ता जा रहा है। वे पुण्यपुञ्ज हैं। अतः उनकी प्रशसा स्वर्ग-निवासी कर रहे हैं।

जे भरि नयन बिलोकहिं रामहि। सीता लखन सहित घनस्यामहिं ॥
जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिन्हहिं देव सर सरित सराहहिं ॥३॥

अर्थ : जो घनश्याम राम को सीता लक्ष्मण सहित आँख भरकर देख रहे हैं। जिस सरोवर और नदी मे रामजी स्नान करते हैं उन्हें देवता के सर और सरित प्रशंसा करते हैं।

व्याख्या : सुरपुरवासियो के प्रशसा करने का कारण कहते हैं कि इतना भाग्य उनका नही है कि आँख भर सीता लक्ष्मण सहित रामजी का दर्शन पा सकें। नित्य-स्नान मे सदा नदी नही मिलती है। तब सरोवर मे स्नान होता है। सरकार सदा अवगाहस्नान करते है। कूप स्नान नही करते। देवसरि और देवसर मानसरोवर आदि हैं। इनका इतना भाग्य इस समय नही है कि सरकार के सर्वाङ्ग प्रक्षालन का सौभाग्य प्राप्त हो। अतः ये सब उन सरित सरोवर की प्रशंसा करते हैं जिनमे सरकार स्नान कर लेते हैं।

जेहि तरु तर प्रभु बैठहिं जाई। करहिं कलपतरु तासु बड़ाई ॥
परसि राम पद पदुम परागा। मानति भूमि भूरि निज भागा ॥४॥

अर्थ : जिस पेड़ के तले सरकार जाकर बैठते हैं। उसकी बडाई कल्पवृक्ष करता है। रामजी के चरण की धूलि का स्पर्श करके पृथ्वी अपना बडा भाग्य मानती है।

व्याख्या : सूर्यमण्डल के मध्य में चन्द्रमण्डल और उसके मध्य मे अग्निमण्डल है और उसके भी मध्य मे कल्पवृक्ष के नीचे दिव्य सिंहासन पर सरकार के ध्यान की विधि है। सो आज वही सरकार उस कल्पवृक्ष का अनादर करके साधारण वृक्ष के नीचे श्रमापनोदन के लिए जा बैठे है। अतः उस वृक्ष की बडाई कल्पवृक्ष करता है। जिसे कभी सरकार के श्रमापनोदन का सौभाग्य नही प्राप्त हुआ।

सौभाग्य की हजारों मुहर तो पृथ्वी पर ही लग रही है। ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे। इन चिह्नो से पृथ्वी अङ्कित हो रही है। जो चरण अज शंकर से वन्दित है उनके स्पर्श का सौभाग्य दिन रात हो रहा है। अतः भूमि का अपना भूरि भाग्य मानना प्राप्त ही है।

दो. छाँह करहि घन बिबुधगन, बरषहिं सुमन सिहाहि।
देखत गिरि बन बिहँग मृग, रामु चले मगु जाहि ॥११३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : मेघ छाया करते और देवता फूल बरसाते और बड़ाई करते हैं। पर्वत वन पक्षी और मृगो को देखते हुए रामजी रास्ते मे चले जा रहे हैं।

व्याख्या : अद्भुत शोभा है। पृथ्वी मङ्गलमयी हो रही है। आकाश से मेघ छाया करते चले जाते हैं। देवता लोग पुष्पवृष्टि कर रहे हैं। सरकार पर्वत वन पक्षी मृगो को देखते हुए चल रहे हैं। वन यात्रा वन विहार हो रहा है। देवता लोग इस आनन्द को देखकर स्वर्ग सुख को तुच्छ मान रहे हैं। देवलोक मे दो बड़े दोष हैं। एक ईर्ष्या और दूसरा गर्व। ये लोग दूसरे के सुखोत्कर्ष देखकर ईर्ष्या करते हैं और अल्पसुख देखकर गर्व करते हैं। उसी स्वभावानुसार इन्हे पृथ्वी पर के आनन्द को देखकर ईर्ष्या हो रही है।

सीता लखन सहित रघुराई। गाँव निकट जब निकसहिं जाई॥
सुनि सब बाल वृद्ध नर नारी। चलहिं तुरत गृहकाज बिसारी॥१॥

अर्थ : जब सीता और लक्ष्मण सहित रामजी किसी गाँव के निकट निकलते थे तो सुनते ही सब बालक वृद्ध नर और नारी घर का कार्य भूलकर तुरन्त चल पड़ते थे।

व्याख्या : ग्राम के मध्य से नही जाते। वन मे से जब मैदान मे निकल आते थे तो खेतिहरो की दृष्टि पड़ी। यह अलौकिक शोभा देखकर उन्होने दौड़कर गाँव मे खबर दिया : अवस देखिये देखन जोगू।

बालक वृद्ध गृह कार्य से विनिर्मुक्त हैं। अतः पहिले बालक चले। पीछे से बूढ़े चले। नरनारी अर्थात् युवक युवती गृहकार्य मे लगे हैं। उन्होने भी कार्य छोड़ा। समाचार देनेवाले के शब्द मे ऐसी शक्ति आगयी है कि सुननेवाला घर का काम छोड़ देता है।

राम लखन सिय रूप निहारी। पाइ नयनफलु होहिं सुखारी॥
सजल बिलोचन पुलक सरीरा। सब भये मगन देखि दोउ बीरा॥२॥

अर्थ : राम लक्ष्मण और सीताजी को देखकर नेत्र होने के फल को पाकर सुखी होते थे। उनके नेत्रो मे जल आगया। शरीर पुलकित हो उठा। सब दोनो वीरो को देखकर मग्न हो गये।

व्याख्या : राम लक्ष्मण पर दूर से ही दृष्टि पड़ी और सीताजी पर निकट आने पर। स्त्री पर विशेष रूप से दृष्टि न देना भारत की प्राचीन सभ्यता है। राम लक्ष्मण को दूर से ही देखते चले आते है। निकट आने पर सीताजी पर दृष्टि पड़ी। इसलिए राम लषन को पहिले कहा। दर्शन पाते ही शोकरहित हो गये। आँख होने का फल मिल गया। विशोक होना ही जन्म का फल है। अत वे सुखी हो गये।

दोनो भाइयो का दर्शन चित्त देकर कर रहे हैं। अत उसी आनन्द मे मग्न हो गये। सात्त्विक भाव हो गया। आँखो मे आँसू डबडबा आया और शरीर पुलकित हो उठा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बरनि न जाइ दसा तिन्ह केरी । लहि जनु रंकन्हि सुरमनि ढेरी ॥
एकन्ह एक बोलि सिख देही । लोचन लाहु लेहु छन एही ॥३॥

अर्थ : उनकी दशा वर्णन करते नही बनता । जैसे कङ्गालो को चिन्तामणि का ढेर हाथ लग जाय । एक दूसरे को पुकारकर शिक्षा देते है कि इस क्षण नेत्रो का लाभ ले लो ।

व्याख्या : उनकी दशा कहने योग्य नही सब होश के बाहर हो रहे है । कङ्गाल को रोटी दुर्लभ उन्हे मानो चिन्तामणि का ढेर हाथ लग जाय ऐसी दशा सबकी हो रही है । एक दूसरे को पुकारकर शिक्षा देते हैं । अवलोकहु भरि नयन विकल जनि होहु करहु सुबिचार । धैर्य धारण करके इस क्षण दर्शन करके नेत्र होने के फल को प्राप्त करो । ये बहुत शीघ्र आँख के ओट हो जायँगे तब पछतावा रह जायगा कि आँख भर देख न पाये ।

रामहि देखि एक अनुरागे । चितवत चले जाहि संग लागे ॥
एक नयन मग छबि उर आनी । होहि सिथिल तन मन बरबानी ॥४॥

अर्थ : रामजी को देखकर किसी को ऐसा प्रेम हुआ कि देखते हुए साथ लगा चला जा रहा है । कोई नेत्र के मार्ग से छवि को हृदय मे लाकर मनसा वाचा कर्मणा शिथिल हो गया ।

व्याख्या : पहिले ही कह आये है : सुनि सब बाल वृद्ध नरनारी । चलहिं तुरत गृह काज बिसारी । अत: पहिले बालको की दशा कहते हैं कि उन्हे रामजी को देखकर बडा प्रेम हुआ । अत: उन्हे देखते रहने के लिए बाल्यावस्थानुसार उन्हे देखते हुए साथ चले जा रहे हैं । तत्पश्चात् वृद्धा की दशा कहते है कि वे सरकार की मनोमयी मूर्ति हृदय मे लाकर शिथिल हो गये । उनका तन मन वाणी कोई काम नही करती है ।

दो. एक देखि बट छाँह भलि, डासि मृदुल तृन पात ।
कहहि गँवाइअ छिनुकु श्रमु, गवनब अबहि कि प्रात ॥११४॥

अर्थ : कोई वट की अच्छी छाया देखकर कोमल तृण और पत्ते बिछाकर कहता है कि क्षण भर यहाँ आराम कर लीजिये अभी जाइयेगा या कल प्रात काल ।

व्याख्या : अब नर युवा का हाल कहते हैं कि उसने देख लिया कि वन मे से आ रहे है । उसमे विश्राम का स्थान नही है । अत: दौडकर पहिले ही रास्ते मे के बरगद के पेड को देखा कि यहाँ शीतल छाया है । उनके विश्राम योग्य है । सो थोडे से कोमल तृण और पत्ते आसन के लिए बिछा दिये । जब रामजी वट के सन्निकट गये तब कहा कि यहाँ क्षण भर आराम कर लीजिये । आपको जल्दी जाना है कि प्रात काल तक ठहरियेगा ? उसकी हार्दिक इच्छा है कि रात भर ठहर जायँ ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



एक कलस भरि आनहिं पानी । अँचइअ नाथ कहहिं मृदु बानी ॥
सुनि प्रिय बचन प्रीति अति देखी । राम कृपालु सुसील बिसेखी ॥१

अर्थ कोई घडा भरकर पानी लाता है और मीठी वाणी से कहता है । नाथ ! जल पी लीजिये । प्रिय वचन सुनकर और अत्यन्त प्रीति देखकर कृपा रामजी जो विशेष सुशील है ।

व्याख्या अब नारी की व्यवस्था कहते है कि घडे मे जल लेकर पहुँच ग और मीठी वाणी से कहने लगी कि नाथ ! थोडा जल पी लिया जाय । सरकार प्रिय वचन सुना और उनका प्रेम देखा कि विश्राम के लिए स्थान भी ठीक क रक्खा है । आसन के लिए कोमल तृण और पत्ते भी बिछे है । जल भी प्रस्तुत है मीठी वाणी से स्वीकार करने के लिए प्रार्थना भी करते है । निदान आतिथ्य क देशकालानुसार पूरी तैयारी है । रामजी स्वभाव से ही कृपालु है और विशेष सुशी है । इनसे शील छोडते नही बनता ।

जानी श्रमित सीय मन माही । घरिक बिलबु कीन्ह बट छाही ॥
मुदित नारि नर देखहि सोभा । रूप अनूप नयन मनु लोभा ॥२॥

अर्थ मन मे सीताजी को थकी हुई जानकर वट की छाया मे लगभग एक घडी के विश्राम किया । प्रसन्न होकर नर नारी शोभा देखने लगे । अनूपरूप ने उनके मन को लुभा लिया ।

व्याख्या चौथी बात यह कि यद्यपि सीताजी ने कुछ न कहा । पर सरकार ने मन मे जान लिया कि ये थकी हुई है । इसलिए बरगद की छाया मे ठहर गये ग्रीष्मकाल मे बट की छाया शीतल होती है । लगभग एक घडी के वहाँ विश्राम किया

लोगो को स्थिर होकर शोभा देखने का अवसर मिल गया । अत बडे प्रसन्न होकर देखने लगे । ऐसा अनुपम रूप कभी देखा नही था । इसलिए नेत्र और मन लुब्ध हो गये । वहाँ से हटाये नहीं हटते । किसी भाँति तृप्ति नही होती ।

एकटक सब सोहहि चहुँ ओरा । रामचन्द्र मुख चंद चकोरा ॥
तरुन तमाल बरन तनु सोहा । देखत कोटि मदन मनु मोहा ॥३॥

अर्थ सब एकटक चारो ओर शोभित हुए । रामचन्द्र के मुखचन्द के लिए उनकी आँखें चकोर हो गयी । नये तमाल के रग की सी शरीर की शोभा थी । जिसके देखते हुए करोडो कामदेवो का मन मोहित हो जाता था ।

व्याख्या नयन और मन का लोभ दिखलाते हैं कि सबो ने चारो ओर से घेर लिया और पलक पडना बन्द करके देख रहे हैं । रामजी की शोभा से वे भी शोभित हो रहे हैं । चारो ओर से चन्द्रमा को घेरकर देखने मे चकोरो की भी शोभा हो जाती है । यथा मुनि समूह महं बैठे सनमुख सबकी ओर । सरद इंदु तन चितवत मानहु निकर चकोर ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नये तमाल वृक्ष से श्यामता की उपमा दी गयी है। रामजी का वर्ण श्याम है इससे तरुण तमाल से उपमित किया। परन्तु लावण्य इतना है कि कोटि काम का मन मोह जाय। बिचारे ग्रामवासियों का मोहित होना कौन सी बडी बात है।

दामिनि बरन लखन सुठि नीके। नख सिख सुभग भावते जीके ॥
मुनि पट कटिन्ह कसे तूनीरा। सोहहि कर कमलनि धनु तीरा ॥३॥

अर्थ : बिजली ऐसे वर्णवाले लक्ष्मणजी अत्यन्त भले लगते थे। नख से लेकर शिख तक उनकी सुन्दरता मन को बडी प्यारी लगती थी। वल्कल वसन से कमर मे तरकस कसा हुआ था और हाथो मे धनुष बाण शोभायमान थे।

व्याख्या : गौरवर्ण और दीप्तिमान होने से लक्ष्मणजी की उपमा बिजली से देते हैं। नख से शिख तक अवयव सगठन ऐसा है कि मन को बडा प्यारा लगता है। दोनो मूर्तियो का रूप पृथक् पृथक् वर्णन करके अब वेष का एक साथ ही वर्णन करते हैं कि यद्यपि वल्कल वसन पहने हैं। पर कमर मे तरकस कसा हुआ है। हाथो मे धनुष और बाण है। वन म से आ रहे हैं। अत एक बाण तरकस से निकालकर हाथ मे लिये हुए है खतरा का सामना करने के लिए।

दो जटा मुकुट सीसन्हि सुभग, उर भुज नयन बिसाल।
सरद परब बिधु बदन बर, लसत स्वेद कन जाल ॥११५॥

अर्थ मस्तको पर सुन्दर जटा के मुकुट विशाल वक्ष स्थल भुजा और नेत्र शरदपुनो के चन्द्रमा से श्रेष्ठ मुखो पर पसीने के बूंदो का जाल शोभायमान था।

व्याख्या जटा के जूट उनके सिरो पर मुकुट की भाँति शोभा दे रहे हैं एव वेष तो मुनियो सा है। पर उर भुज नयन का विशाल होना वीरता द्योतित कर रहा है। और शरदपूनो के चाँद से मुखडो पर पसीने की बूदो का जाल शृङ्गार को स्थान दे रहा है। यथा श्रमकन सहित स्याम तनु देखें। कहँ दुख समउ प्रानपति पेखें। इस भाँति शान्त वीर और शृङ्गार रस तीनो का मेल इस झाँकी मे दृष्टिगोचर हो रहा है।

बरनि न जाय मनोहर जोरी। सोभा बहुत थोरि मति मोरी ॥
राम लखन सिय सुदरताई। सब चितवहि चित मन मति लाई ॥१॥

अर्थ मनोहर जोडो का वर्णन नही किया जा सकता। शोभा बहुत है। मेरी बुद्धि थोडी है। राम लक्ष्मण और सीता की सुन्दरता को सब चित्त मन और बुद्धि लगाकर देख रहे हैं।

व्याख्या यहाँ सीताजी की शोभा का वर्णन कवि ने अनधिकार के कारण नही किया। कहते हैं कि राम लक्ष्मण की जोडी का वर्णन करने मे मैं असमर्थ हूँ। क्योकि मेरी बुद्धि थोडी है। उसमे यह अपार शोभा समाती नही। जो वस्तु बुद्धि मे नही समाती उसका वर्णन कैसे किया जा सकता है ?

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जो लोग उस शोभा को देख रहे हैं। उनकी अवस्था वर्णन से शोभा की महत्ता को समझिये। वे लोग राम लक्ष्मण और सीता की सुन्दरता को मन बुद्धि चित्त लगाकर देख रहे हैं। यहाँ चार अन्त करणो मे केवल तीन का उल्लेख है। अहङ्कार का उल्लेख नही है। क्योंकि उसका पता ही नही। सब अपनपौ को भूले हुए है।

थके नारि नर प्रेम पियासे। मनहुँ मृगी मृग देखि दिआ से ॥
सीय समीप ग्रामतिय जाही। पूछत अति सनेह सकुचाही ॥२॥

अर्थ : प्रेम की प्यास से स्त्री पुरुष ऐसे थके जैसे मृगी मृग दीपक को देखकर थकित हो जाते है। सीताजी के पास गाँव की स्त्रियाँ जाती है और अति स्नेह से पूछने मे सकुचाती हैं।

व्याख्या : प्रेम की प्यास मिटती ही नही बढती ही जाती है। सरकार को देख रहे हैं। पर ऐसी इच्छा है कि यों ही देखते ही रहे। मृग और मृगी को दीपक देखने का अवसर नही मिलता। यदि मिल जाय तो वे निश्चल होकर देखा ही करें। उनके दीपक प्रेम की प्यास नही बुझती।

ग्राम की स्त्रियाँ प्रेम से सीताजी के पास पहुँच गयी। प्रेमवश सबका परिचय पूछना चाहती हैं। प्रयोजन कुछ बतला नही सकती। पर जानने की अभिलाषा है। अत पूछने मे सङ्कोच है।

बार बार सब लागहि पाए। कहहि बचन मृदु सरल सुभाए ॥
राजकुमारि बिनय हम करही। तिय सुभाय कछु पूछत डरही ॥३॥

अर्थ बार बार सब पाँव पडती है और कोमल वचन सुन्दर भाव से पूछती हैं। हे राजकुमारी! मैं विनती करती हूँ। पर स्त्री स्वभाव के कारण पूछते डरती हूँ।

व्याख्या अविनय के क्षमापन के लिए बार बार पाँव पडती हैं। पूछत अति सनेह सकुचाही से मनसा प्रेम कहते हैं। बार बार सब लागहि पाएँ से कर्मणा प्रेम कहते है। कहहि बचन मृदु सरल सुभाए से वचसा प्रेम कहते हैं। सुन्दर भाव से मृदु सरल वचन कहती है। स्वरूप देखकर ही समझ गयी कि ये राजघराने की हैं। अत राजकुमारी कहकर सम्बोधन करती है। कहती हैं कि मेरी विनती यही है कि मैं कुछ पूछना चाहती हूँ। स्त्री स्वभाव से पूछने मे डर लगता है। कही आप अप्रसन्न न हो जायँ कि तुम्हे इन बातो से क्या प्रयोजन ?

स्वामिनि अबिनय छमबि हमारी। बिलगु न मानबि जानि गँवारी ॥
राजकुअँर दोउ सहज सलोने। इन्ह ते लहि[1] दुति मरकत सोने ॥४॥

१ यहाँ निदर्शना द्वितीय अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : हे स्वामिनि ! मेरी ढिठाई क्षमा करना। गँवारी जानकर नाराज न होना। ये दोनो राजकुमार स्वभाव से लावण्यधाम हैं। नीलम और सोने ने इन्ही से चमक पायी है।

व्याख्या : राजकुमारी होने से स्वामिनि सम्बोधन करती हैं। यह मेरा अविनय है जो मैं नाता सम्बन्ध पूछती हूँ। मेरा क्या अधिकार है जो पूछूँ। पर मैं गँवारी हूँ। मैं नही जानती कि क्या और कैसे पूछा जाता है। मेरे गँवारपन के पूछने से अप्रसन्न न होना।

भगवती दोनो भाइयो से कुछ हटकर बैठी हैं। अत उनसे पूछती हैं कि राजकुँवर दोउ बडे ही सुन्दर हैं। नीलम की और सोने की द्युति इनके तेज के आगे फीकी है। इनके विषय मे मुझे बडो उत्सुकता है।

दो. स्यामल गौर किसोर वर, सुदर सुखमा अयन।
सरद सर्वरीनाथ मुखु, सरद सरोरुह नयन ॥११६॥

अर्थ : ये श्यामल गौर किशोर अत्यन्त सुन्दर और परम शोभा के निवास-स्थान है। शरद्चन्द्र ऐसा इनका मुख है और शरत् कमल ऐसी आँखें हैं।

व्याख्या : श्यामल गौर से वर्ण कहा। किशोर वर से अवस्था कही। सुन्दर सुखमा अयन से शोभा कही। शोभा की मर्यादा मुख और नेत्र ही हैं। सो शरद्चन्द्र से तो मुख हैं और शरत् के कमलो सी आँखे हैं। यद्यपि श्यामल गौर कहने से ही काम चल जाता। परन्तु वह शोभा पर इतनो लुब्ध है कि जैसा उससे हो सकता है पूरा वर्णन कर रही है।

कोटि मनोज लजावनिहारे। सुमुखि कहहु को आहिं तुम्हारे ॥
सुनि सनेहमय मंजुल बानी। सकुची सिय मन महुँ मुसुकानी ॥१॥

अर्थ : हे सुमुखि ! ये करोडो कामदेव के लजानेवाले तुम्हारे कौन हैं। प्रेम से पूर्ण सुन्दर वाणी सुनकर सीताजी सङ्कुचित हुईं और मन मे मुसकुरायी।

व्याख्या : सुमुखि सम्बोधन का भाव यह कि श्यामल गौर किशोर ही सुन्दर नही है। तुम भी सुन्दरी हो। अत. कहती हैं कि मुझे सम्बन्ध जानने की उत्कण्ठा हुई है। काम मे ही सौन्दर्य की पराकाष्ठा मानी गयी है। सो ये तो करोडो कामदेव के लजानेवाले हैं। ये तुम्हारे कौन हैं ? यही मैं जानना चाहती हूँ। भाव यह है कि बिना सम्बन्ध के तो स्त्री अकेली साथ जा नही सकती। अत ग्राम-वधूटियाँ कुछ सम्बन्ध का अन्दाज कर रही हैं। वह अन्दाज ठीक है कि नही इसीलिए पूछती हैं। राम जानकी की शोभा ही ऐसी है कि इसमे दाम्पत्य भाव का होना देखनेवाले को इष्ट हो जाता है। यथा - जेहिं बिरचि रचि सीय सँवारी। तेहिं स्यामल बर रचेउ बिचारी। जौं बिधिबस अस बनै सँजोगू। तौ कृतकृत्य होहिं सब लोगू।

स्पष्ट शब्दो मे यह कहने मे कि ये मेरे पति हैं स्त्रियो को सङ्कोच होता

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ही है। फिर जानकीजी से आज तक ऐसा प्रश्न किसी ने किया ही नही था। अतः सङ्कुचित हुई और मनमे मुसकुरायी कि इस स्नेहमय सुन्दर वाणी की उपेक्षा नही की जा सकती। अतः कहना ही पडा।

तिन्हहि बिलोकि बिलोकति धरनी। दुहुँ सकोच सकुचति वरवरनी ॥
सकुचि सप्रेम बाल मृग नयनी। बोली मधुर वचन पिक बयनी ॥२॥

अर्थ उन्हे देखकर पृथ्वी को ओर देखने लगी। सुन्दर वर्णवाली सीताजी दोनो सङ्कोचो से सङ्कुचित हुई। मृग के बच्चे सी आँखें है जिसकी और कोयल सी जिसकी वाणी है। ऐसी जानकीजी मधुर वचन बोली।

व्याख्या : सङ्कोच के समय वर्ण मे दीप्ति अधिक हो जाती है। अत वरवरनी विशेषण दिया। उनकी ओर देखकर फिर पृथ्वी की ओर देखने लगना सङ्कोच की मुद्रा है। पति के सामने उनके साथ सम्बन्ध का परिचय देने मे भी सङ्कोच है और ऐसे प्रेम से पूछी हुई बात का उत्तर न देने मे भी सङ्कोच है। अत सीताजी दोनो सङ्कोचो से सङ्कुचित हो रही हैं।

नेत्र चञ्चल हो रहे है। इसलिए बालमृगनयनी विशेषण दिया। स्वभाव से ही बडा मधुर स्वर है। अत पिकबयनी विशेषण दिया। ऐसी जानकीजी सङ्कोच और प्रेम से मधुर वचन बोली।

सहज सुभाय सुभग तन गोरे। नामु लखनु लघु देवर मोरे ॥
बहुरि वदनु विधु अचल ढाँकी। पिय तन चितइ भौह करि बाँकी ॥३॥

अर्थ . स्वभाव से ही सुन्दर भाव वाले और गौर शरीरवाले का नाम लक्ष्मण है। ये मेरे छोटे देवर हैं। फिर मुखचन्द्र को अञ्चल से ढककर और भौहे को टेढी करके प्रिय की ओर देखकर।

व्याख्या भगवती सीताजी कहती हैं कि स्वभाव से भी सुन्दर शरीर से भी सुन्दर गौरवर्णवाले मेरे छोटे देवर है। अर्थात् इनसे बडे भी एक देवर हैं। इनका नाम तो लक्ष्मण है। अप्रसक्त होने से भरतजी का नाम नही लिया। अब रामजी को अपना पति कहना है और कहने मे सङ्कोच है। स्त्रियाँ पति का नाम नही लेती। सो पहिले देवर का परिचय नाम लेकर देने से और बाद उनके नाम न लेने से ही बहुत कुछ कह दिया। नाम लेने के स्थान पर पति की ओर देखा। परिचय देने मे सङ्कोच द्योतित करने के लिए मुखचन्द्र को अञ्चल से ढँककर देखा।

खंजन मजु तिरीछे नयननि। निज पति कहेउ तिन्हहि सिय सयननि ॥
भई मुदित सब ग्रामवधूटी। रकन्ह राय रासि जिमि लूटी ॥४॥

अर्थ खञ्जन सी आँखो को तिरछा करके सीताजी ने उन्हे इशारे से बतला

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दिया कि ये हमारे पति हैं। गाँव की सब स्त्रियाँ ऐसी प्रसन्न हुईं मानो उन्होने सर्वोत्तम राशि लूट ली।

व्याख्या एक तो भगवती की आँखे स्वभाव से ही खञ्जन सी सुन्दर हैं। तिस पर भौंह टेढी करके तिरछी निगाह से रामजी की ओर देखा। भाव यह है कि कुलवधू के टेढी भौह और तिरछी निगाह के पात्र उनके पति ही होते हैं। अत इस इङ्गित से उन्हे अपना पति बतला दिया। मनचाही बात मालूम पडने से सब ग्राम की स्त्रियाँ बडी प्रसन्न हुईं। मानो लूट मे सर्वोत्तम राशि ढेर उन्ही के हाथ लग गयी।

दो अति सप्रेम सिय पाय परि, बहुविधि देहिं असीस।
सदा सोहागिनि होहु तुम्ह, जब लगि महि अहि सीस ॥११७॥

अर्थ अत्यन्त प्रेम से सीताजी के पाँव पकडकर बहुत भाँति से आशीर्वाद देती हैं कि जब तक पृथ्वी शेष के सिर पर हैं तब तक तुम सदा सुहागिनी बनी रहो।

व्याख्या ग्राम की स्त्रियो को बडा आनन्द हुआ। अत अति प्रेम से सीताजी के पाँव पडती हैं। नीच जाति की हैं। अत पाँव भी पडती हैं और आशीर्वाद भी देती हैं। स्त्रियो के लिए भारत मे सौभाग्य का ही आशीर्वाद सबसे बडा माना जाता है। अहि महि सीस कहकर युगलजोडी के चिरञ्जीवी रहने की कामना द्योतित की।

पारबती मम पति प्रिय होहू। देबि न हम पर छाडब छोहू ॥
पुनि पुनि बिनय करिअ कर जोरी। जौं एहि मारग फिरिअ बहोरी ॥१॥

अर्थ पार्वती के समान पति को प्रिय होओ। हे देवि! हम पर से छोह न हटाना। बार बार हाथ जोडकर विनती करती हूँ कि यदि आपका इसी रास्ते से लौटना हो।

व्याख्या पति का प्रेम होना भी सोहाग है। यथा मानौ मुख देखरावनी दुलहिन करि अनुराग। सास सदन मन ललन हू सौतिन्ह दीन्ह सोहाग। अत दूसरे प्रकार के सोहाग का भी आशीर्वाद देती हैं कि पार्वती के समान पति को प्यारी हो शिवजी ने पार्वतीजी को अपने आधे शरीर में मिला लिया। इसीलिए सती से उपमा नही दिया। वे अन्त म प्रिय न रह सकी। आशीर्वाद दकर विनती भी करती हैं। जान गयी थी, कि सीताजी का हम पर छोह हैं। अत उस छोह का बनाये रखने के लिए विनय है।

बार बार विनय करती हैं। हाथ जोडकर कहती हैं कि यदि आपका लौटना इसी मार्ग से हो जिस मार्ग से आप जा रही हैं।

दरसनु देब जानि निज दासी। लखी सीय सब प्रेम पियासी ॥
मधुर बचन कहि कहि परितोषी। जनु कुमुदिनी कौमुदी पोषी ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ तो अपनी दासी जानकर दर्शन देना। सीताजी ने लखा कि इन सबो को प्रेम की प्यास है। सो उन्हे मधुर वचन कहकर ऐसा सन्तुष्ट किया जैसे चाँदनी कुमुदिनी को पुष्ट करती है।

व्याख्या पहिले ही स्वामिनि सम्बोधन करके उन सबो ने सेव्य सेवक भाव का नाता जोड रखखा है। अत कहती हैं कि जैसे हम लोग आपको स्वामिनी जानती है वैसे ही आप हम लोगो को दासी जानकर लौटते समय दर्शन दीजियगा। हम लोगो के लिए अपनी सुविधा छोडकर आप इधर स ही लौटें यह हम नही चाहती क्योकि ऐसी प्रार्थना सेवक धर्म के विरुद्ध है।

भगवती चन्द हैं। उनकी मधुर वाणी चाँदनी है। सो जैसे चाँदनी कुमुदिनी का परितोप करती है कुमुदिनी खिल उठती है उसी प्रकार से सीताजी के मधुर वचन से उनकी प्रेम की प्यास शान्त हुई। वे सन्तुष्ट हो गयी।

तवहि लखन रघुवर रुख जानी। पूछेउ मगु लोगन्हि मृदु बानी॥
सुनत नारि नर भये दु खारी। पुलकित गात बिलोचन बारी॥३॥

अर्थ तव लक्ष्मणजी ने रामजी का रुख जानकर लोगो से कोमल वाणी द्वारा रास्ता पूछा। सुनते ही स्त्री पुरुष सब दु खी हो गये। उनको रोमाञ्च हो गया। नेत्रो मे जल भर आया।

व्याख्या लक्ष्मणजी ने रामजी के रुख से लख लिया कि सरकार की अब चलने की इच्छा है। सीताजी और ग्रामवधूटियो का सम्वाद भी समाप्त हो चुका था। अत मृदु वाणी से वाल्मीकिजी के आश्रम का रास्ता लोगो से पूछा। सुनते ही स्त्री पुरुषो ने समझ लिया कि अब जाना चाहते हैं। पुलकित होना और सजलनयन होना सात्त्विक भाव है। यह दु ख मे भी होता है। सुख मे भी होता है। यहाँ पर दु ख से पुलक हुआ। इसलिए दु खारी शब्द भी लिख दिया।

मिटा मोदु मन भये मलीने। बिधि निधि दीन्हि लेत जनु छीने॥
समुझि करम गति धीरजु कीन्हा। सोधि सुगम मगु तिन्ह कहि दीन्हा॥४॥

अर्थ हर्ष मिट गया। मन मिलन हो गया। मानो विधाता निधि देकर अब छीने लेते है। कर्मगति समझकर धैर्य धारण किया और उन लोगो न विचार करके सुगम रास्ता बतला दिया।

व्याख्या सरकार के दर्शन से वे लोग लहि जनु रकन्हि सुरमनि ढरी। ऐसे प्रसन्न थे जैसे दरिद्रो को चिन्तामणि का ढेर मिल जाय। सो रामजी का चला जाना सोचकर ऐसे दु खी हुए मानो विधाता ने जो निधि दी थी उसे छीने लते हैं।

अत धैर्य छूट गया था। पर समझा कि कमगति दुर्लंघ्य है। इतना ही सुख भाग्य मे था। धैर्य धारण करके विचार किया और सुगम रास्ता वतला दिया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. लखन जानकी सहित तब, गवनु कीन्ह रघुनाथ।
फेरे सब प्रिय बचन कहि, लिये लाइ मन साथ ॥११८॥

अर्थ तब लक्ष्मण और जानकी के सहित रामजी चले। सबको प्रिय वचन कहकर लौटाया। पर उनका मन साथ ले लिया।

व्याख्या · रघुनाथ हैं। अपनी प्रतिज्ञा पर दृढ हैं। एक वन से दूसरे मे घुसते हो चले जाते हैं। ग्रामवासी भी साथ चल। प्रिय वचन कह के उनको लौटा दिया। पर उनके मन को साथ ले लिया। इस बार चित्त की चोरी नही की। पहिले की थी। यथा लिये चोरि चित राम बटोही। वे सब साथ चलने को तैयार नही थे। इसलिए चोरी करनी पडी। ये तो साथ चलने को तैयार थे। अत केवल उनके मन को साथ लिया। उन्हे लौटा दिया।

फिरत नारि नर अति पछताही। दैअहि दोषु देहिं मन माही॥
सहित बिषाद परसपर कहही। बिधि करतब उलटे सब अहही ॥१॥

अर्थ · लौटते हुए स्त्री पुरुष अत्यन्त पछताते थे। मन ही मन दैव को दोष देते थे। विषाद के साथ एक दूसरे से कहने लगे कि विधाता के करतब सब उलटे ही हैं।

व्याख्या · रामजी के कहने पर सब लौट पडे। पर उन्हे पश्चात्ताप हो रहा है कि हम क्यो लौट रहे हैं। यह निधि दर्शन हम लोगो को विधाता ने दी थी। उसे छोडकर हम घर लौट रहे हैं। यह भी विधि की प्रेरणा ही है। अत मन ही मन कह रहे हैं कि इसमे भी विधाता का दोष है। लौटना न लौटना उनकी इच्छा की बात थी। इसमे भी विधाता को दोष देने पर लोग क्या कहेंगे। अत इस मानसिक भाव को प्रकट नही करते पर मन मे विधाता से अप्रसन्न हैं।

अत उस अप्रसन्नता को विधाता के सभी कार्य उलटे होते हैं ऐसा कहकर प्रकट कर रहे हैं। रामजी के वन जाने से दु खी हैं। अत एक दूसरे से कह रहे हैं।

निपट निरंकुस निठुर निसंकू। जेहि ससि कीन्ह सरुज सकलंकू॥
रूखु कलप तरु सागरु खारा। तेहि पठए बन राजकुमारा ॥२॥

अर्थ · वह बिल्कुल निरकुश निर्दय और निडर है। जिसने चन्द्रमा को रोगी और कलङ्की कर दिया। कल्पवृक्ष को पेड और समुद्र को खारा कर दिया। उसी ने राजकुमारो को वन भेजा।

व्याख्या : सब दु खी होकर ब्रह्मदेव को ही बुरा भला कह रहे हैं। कहते हैं : १ निपट निरकुश २ निठुर और ३ नि शङ्क हैं। यदि किसी का अङ्कुश उस पर होता तो जगत के आह्लाददायक तथा तापहारक चन्द्रमा को क्षयी : रोगयुक्त तथा कलङ्कयुक्त न करता। यदि कुछ भी दया उसे होती तो कल्पवृक्ष ऐसे उदार को जड न बनाता। यदि कुछ भी डर उसे होता तो समुद्र को खारा न बनाता। जब कि छोटी छोटी तलैया कूप आदि मीठे हैं। छोटे जलाशय के जल को बिगाडनेवाला

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अपराधी माना जाता है। जल के इतने बडे भण्डार को खारा कर देनेवाला कैसे दण्डनीय नही है। पर उसे किसी का डर नही है। उसी विधाता ने राजकुमारो को वन भेजा है। रामजी को वन देने से निरकुशता सीताजी को वन भेजने से निष्ठुरता और लक्ष्मणजी को वन भेजने से नि शङ्कता द्योतित होती है।

जौं पैं इन्हहि दीन्ह बनबासू। कीन्ह बादि बिधि भोग बिलासू ॥
ए बिचरहिं मग बिनु पदत्राना। रचे बादि बिधि बाहन नाना ॥३॥

अर्थ यदि विधाता ने इन्हे वनवास दिया तो भोग विलास का निर्माण व्यर्थ ही किया। यदि ये रास्ते मे नगे पाँव चल रहे है तो विधाता ने अनेक प्रकार के वाहन व्यर्थ ही बनाये।

व्याख्या सब वस्तुओ के लिए अधिकार अपेक्षित है। भोग विलास का इनसे बढकर अधिकारी कौन है। इन्हे भोग विलास करते हुए देखकर ससार को सुख होगा। क्योकि ये प्रिय सबहि जहाँ लगि प्रानी और इनको वन जाते देखकर लोग दु खी होगे। यथा जो सुनि सकल बिस्व भइ सूला। अत एसे अधिकारी को वन दिया तो विधाता का भोग विलास निर्माण ही व्यर्थ है।

ये वाहन पर निकलते तो देखकर ससार सुखी होता। इन्हे नङ्गे पाँव चलते देखकर किसका कलेजा नही फटेगा। यथा राम लखन सिय बिनु पग पनही। करि मुनि बेपु फिरहिं बन बनही। एहि दु खदाह दहइ दिन छाती। भूख न बासर नीद न राती। अत विधाता का नाना प्रकार के वाहन की रचना ही व्यर्थ है।

ए महि परहिं डासि कुस पाता। सुभग सेज कत सृजत बिधाता ॥
तरुतर बास इन्हहिं बिधि दीन्हा। धवल धामु रचि रचि श्रमु कीन्हा ॥४॥

अर्थ जब ये कुश और पत्ते बिछाकर पृथ्वी पर ही पड जाते हैं तो सुन्दर सेज विधाता ने क्यो बनाये है। जब विधाता ने इनके लिए पेड तले रहना नियत किया तो उज्ज्वल प्रासाद महल रच रचकर केवल परिश्रम के भागी हुए।

व्याख्या इन्हे कुश पत्ते बिछाकर जमीन पर सोते देखकर किसे दु ख न होगा। यथा भयउ बिषाद निषादहि भारी। राम सीय महि सयन निहारी। सुन्दर सेज की शोभा तो इन्ही के सोने से हो सकती है। यथा जहँ सिय राम सयन नित करही। निज छबि रति मनोज मन हरही। अत ब्रह्मा द्वारा सुन्दर सेजो का बनाया जाना ही व्यर्थ हो गया।

उज्ज्वल प्रासादो मे ही इनका निवास उचित था। जब विधाता ने इन्हे तरुतर वास दिया तब धवल धाम की आवश्यकता न रह गयी। उनके बनाने म विधाता को श्रम ही हाथ लगा। फल कुछ न हुआ।

दो जौ ये मुनि पट धर जटिल, सुन्दर सुठि सुकुमार।
बिबिध भाँति भूषन बसन, बादि किये करतार ॥११९॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ . यदि ये अत्यन्त सुन्दर सुकुमार वल्कल पहिने और जटा रखाये हैं तो अनेक प्रकार के भूषण वसन विधाता ने व्यर्थ ही बनाये।

व्याख्या : सुन्दर सुकुमारो के लिए मुनिपट और जटा नही है। मुनिपट और जटा तो उनके लिए है जो तप के लिए सब भोग त्यागे हुए हैं। इनके लिए अनेक प्रकार के भूषण वसन चाहिए जिससे उन भूषन वसनो की शोभा हो। इनके जटा वल्कल धारण करने पर विधाता का भूषण वसन की रचना ही निष्प्रयोजन है।

जो ए कद मूल फल खाही। बादि सुधादि असन जग माही॥
एक कहहि ए सहज सुहाये। आपु प्रगट भए बिधि न बनाये॥१॥

अर्थ : यदि ये कन्द मूल खा रहे हैं तो ससार मे अमृत आदि भोजन व्यर्थ ही है। एक ने कहा कि ये स्वभाव से ही सुन्दर है। ये आप ही प्रकट हुए हैं। इन्हे ब्रह्मा ने नही बनाया है।

व्याख्या . ये अमृत आदि भोजन करने योग्य है। इन्हे यदि कन्दमूल फल खिलाना रहा तो अमृतादि भोजन किसके लिए बनाये ? भावार्थ यह कि जितने छ प्रकार के दु ख ऊपर गिना आये हैं वे सब वनवास के ही दु ख के अन्तगत हैं। ऐसे पुरुष को वनवास देने से विधाता को कौन सी फलसिद्धि हुई ?

इस पर एक ने कहा कि ये स्वभाव से ही सुन्दर हैं। स्वयम्भू हैं। स्वय प्रकट हो गये। ये ब्रह्मदेव के बनाये नही हैं।

जहँ लगि वेद कही बिधि करनी। श्रवन नयन मन गोचर बरनी॥
देखहु खोजि भुवन दस चारी। कहँ अस पुरुष कहाँ असि नारी॥२॥

अर्थ जहाँ तक वेदो ने ब्रह्मदेव की करणी बतलायी है जो श्रवण नयन और मन का विषय है उसे खोजो। चौदहो भुवन खोज डालो। कहाँ ऐसे पुरुष है और कहाँ ऐसी नारी है।

व्याख्या : यह पण्डितो का गाँव मालूम होता है। यहाँ वेद के जानकार मौजूद हैं। कहते हैं कि श्रवण नयन मनगोचर जो कुछ विधि की करणी है सब मे दोष का अनुवेध है। यथा : विधि प्रपच गुण अवगुण साना। ये निर्दोष उसमे कहाँ से आगये ? चौदहो भुवन खोजकर देखो। न कही ऐसे पुरुष हैं न ऐसी नारियाँ ही कही हैं। ऐसे लोगो को वन क्यो दिया ?

इन्हहि देखि बिधि मनु अनुरागा। पटतर जोगु बनावइ लागा॥
कीन्ह बहुत श्रम ऐक न आए। तेहि इरिषा बस आनि[1] दुराए॥३॥

अर्थ : इन्हे देखकर विधाता के मन मे बडा प्रेम हुआ तो इनके ऐसा दूसरा

१. यहाँ हेतु असिद्धास्पदा उत्प्रेक्षा है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बनाने लगे। परिश्रम बहुत किया। पर कोई अन्दाज ही नही लगा। उसी ईर्ष्या से इन्हे वन मे लेकर छिपा दिया।

व्याख्या · कलाकार जब कोई अच्छी चीज देखता है और उसे पसन्द आ जाती है तब वह वैसी ही दूसरी बनाने का प्रयत्न करता है। मालूम होता है कि उसी भांति ब्रह्मदेव ने भी चाहा कि इनके ही ऐसा दूसरा बनावें। सो ब्रह्मदेव ने बहुत उद्योग किया। पर कुछ करते धरते नही बन पडा। तब उन्हे ईर्ष्या हुई कि लोग कहेगे कि इन्हें बनाने नही आता। बनाने आता तो दूसरा भी ऐसा बनाते। इसलिए इन्हे लाकर वन मे छिपा दिया। जिससे लोग इन्हे देख ही न पावे और उनकी रचना शक्ति का आदर बना रहे।

एक कहहि हम बहुत न जानहि। आपुहि परम धन्य करि मानहि॥
ते पुनि पुन्य पुज हम लेखे। जे देखहिं देखिहहिं जिन्ह देखे॥४॥

अर्थ एक ने कहा कि हम बहुत नही जानते। हम तो अपने को परम धन्य मान रहे है। हमारे लेखे तो वे भी पुण्यपुञ्ज है जो इन्हे देखते हैं देखेंगे और जिन्होने देखा है।

व्याख्या तीसरे ने कहा कि भाई! तुम्हारी कल्पनाशक्ति बडी बलवती है। तुम बहुत जानते हो। अच्छा कारण ढूँढ निकाला। पर मै कार्य कारण के पीछे नही पडता। मैंने इसका दर्शन पाया। इसी से अपने को धन्य मानता हूँ।

मै ही नही पहिले जिन्होंने इनका दर्शन किया आज जो कर रहे हैं और भविष्य मे जो करेंगे वे भी पुण्यपुञ्ज है। मेरा तो यही मत है।

दो एहि बिधि कहि कहि बचन प्रिय, लेहि नयन भरि नीर।
किमि चलिहहि मारग अगम, सुठि सुकुमार सरीर॥१२०॥

अर्थ इस भांति प्रिय वचन कह कहकर आंखो म आंसू भर लाते हैं कि अत्यन्त ही सुकुमार शरीरवाले ये दुर्गम रास्ते को कैसे पार करेगे।

व्याख्या फिरत नारि नर अति पछिताही से उपक्रम करके लेहि नयन भरि नीर से उपसहार करते है। यहां पर तीन प्रकार से लोग बोले है। पहिले के कहने मे तमोगुण की झलक आती है। दूसरे मे रजोगुण स्पष्ट है। तीसरे मे सत्त्वगुण का प्रकाश है। इस भांति यह सोचकर कि ऐसे सुकुमार शरीर इस दुर्गम रास्ते म कैसे निबहेगे। उन लोगो की आंखा मे आंसू आ जाता है।

नारि सनेह बिमल बस होही। चकई सांझ समय जनु सोही॥
मृदु पद कमल कठिन मगु जानी। गहबरि हृदय कहहि बर बानी॥१॥

अर्थ · स्त्रियां स्नेह से विकलता के वश हो जाती है। जैस सायकाल के समय चकई की शोभा हो जाती है। चरण कमल को कोमल और रास्त को कठिन जानकर भर हृदय से अच्छी वाणी बोलती हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या विछोह के समय प्रेमपात्र पर अधिक प्रीति बढ जाती है। इसलिए विकलता के वश होना कहा। पुरुषो की दशा ऊपर कह आये कि उन्हे भी विषाद है। अब स्त्रियो की दशा कहते है कि वे तो विकलता के वश हो गयी हैं। उनकी अवस्था की उपमा सन्ध्या के समय चकई की अवस्था से दी गयी जब कि वह प्रिय के विरह से विकल होती है। प्रेमी की शोभा प्रेमपात्र के विछोह मे विकल होने मे है। इसलिए सोही शब्द का प्रयोग किया। स्त्रियाँ सरकार के रूप पर मोहित हैं। अत चकई से उपमित किया। यथा कहहु सखी अस को तनु धारी। जो न मोह यह रूप निहारी।

स्त्रियो के हृदय मे भी वही विचार उठा जो पुरुषो के हृदय मे उठा था कि कोमल सुन्दर चरण कठिन रास्ते मे अत्यन्त पीडित होगे। उस पीडा को सोचकर हृदय भर आया। अत वर वाणी कहती हैं। प्रेमयुक्त वाणी ही वर वाणी है।

परसत मृदुल चरन अरुनारे। सकुचति महि जिमि हृदय हमारे ॥
जौ जगदीस इन्हहि वनु दीन्हा। कस न सुमनमय मारगु कीन्हा ॥२॥

अर्थ कोमल और लाल चरणो को छूने मे पृथ्वी उसी भाँति सङ्कुचित होती है जिस तरह हमारा हृदय सङ्कुचित होता है। यदि जगदीश ने इन्हे वन दिया तो रास्ते को पुष्पमय क्या नहीं बनाया ?

व्याख्या इस अरुण मृदुल चरण को हृदय मे लाने से मेरा हृदय सकुचता है कि इन चरणो के स्पर्श योग्य हमारे दूषित हृदय नही हैं। इसी भाँति पृथ्वी को सङ्कोच हो रहा है कि इन कोमल चरणो के धारण योग्य मेरा वक्षस्थल नही है।

कमल का पुष्पो के ऊपर रहना ही उचित है। अत इनके चरण कमल के लिए पुष्पमय मार्ग ही उपयुक्त है। जब विधि ने इतना उलटा पलटा किया कि इन्हे वन दे दिया तो मार्ग मे भी उलटा पलटा करना चाहता था। उसे कठोर से पुष्पमय बना देते।

जौ माँगा पाइअ बिधि पाही। ए रखिअहि सखि आँखिन्ह माही ॥
जे नर नारि न अवसर आए। तिन्ह सिय रामु न देखन पाए ॥३॥

अर्थ यदि ब्रह्मदेव से मुँह माँगा मिले तो हे सखि ! इन्हे आँखो मे रखना चाहिए। जो नरनारि उस समय नही आये वे रामजी को नही देख पाये।

व्याख्या विधि है। अपनो विधि बैठाया करते है। मुह माँगा नही देते। यदि देते तो इन्हे आँखो मे रखती। कही जाने ही न देती। आँख बडी कोमल होती हैं। पुष्प का भी स्पर्श सहन नही कर सकती। आँखिन मे सखि राखिबे जोग इन्हें किमि कै बनवास दयो है। आँख निर्लेप है। उनके रहने योग्य है। हृदय तो कलुषित है। वहाँ उन्हे रहने को कैसे कहे।

कुछ लोग गाँव मे नही थे। पीछे से आये। सबने देखा। वे देख ही नही पाये। पता लगा कि ऐसी अलौकिक सुन्दर तीन मूर्तियाँ इधर से ही वन गयी है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वटतर कुछ देर तक विश्राम भी किया था। लोगो ने चाहा भी था कि रात को यही ठहरें पर वे ठहरे नही।

सुनि सरूप बूझहि अकुलाई। अब लगि गये कहाँ लगि भाई ॥
समरथ धाइ बिलोकहिं जाई। प्रमुदित फिरहि जनम फलु पाई ॥४॥

अर्थ स्वरूप की प्रशसा सुनकर आकुल होकर पूछते हैं कि भाई ! ये लोग वहाँ तक गये होगे। समर्थ लोग दौडकर जाते थे और दर्शन करके जन्मफल पा जाते थे और प्रसन्न होकर लौटते थे।

व्याख्या अलौकिक स्वरूप का वर्णन सुनकर दर्शन के लिए आकुल होकर पूछते थे कि अब तक वे कितनी दूर आगे बढ गये होगे। उनके मन मे बडी उत्कण्ठा दर्शन की है। सभी ने दर्शन पाया। हम ही रह गये। अत पहुँच के भीतर हो तो जाकर दर्शन करना चाहिए।

लोगो ने दूरी बतला दी। तब जो दौडने मे समर्थ थे दौडे पडे। जाकर दर्शन किया। मनुष्य जन्म का फल ही सरकार का दर्शन है। यथा राम चरन बारिज जब देखौ। तब निज जन्म सफल करि लेखौ। सो दर्शन प्राप्ति से कृतकृत्य हुए। जन्मफल पाकर आनन्द से लौटे।

दो अबला बालक वृद्ध जन, कर मीजहि पछिताहि।
होहिं प्रेम बस लोग इमि, रामु जहाँ जहँ जाहि ॥१२१॥

अर्थ स्त्री बच्चे और बूढे हाथ मल मलकर पछताते हैं। इस भाँति जहाँ जहाँ रामजी गये वहाँ के लोग सब प्रेम के वश हो गये।

व्याख्या अब असमर्थो की बात कहते हैं कि स्त्री बालक और वृद्ध हाथ मलते हैं। पछताते हैं कि हमारे भाग्य मे दर्शन बदा नही था। स्त्रियाँ दौड नही सकती थी। वृद्ध महाअसमर्थ थे। बच्चे भी दूरतक नही दौड सकते थे। अत इन्हे पछताना ही हाथ लगा। समर्थ को दौडकर जाते देखकर ये जी ममोसकर रह जाते हैं। इस भाँति जहाँ रामजी जाते हैं वहाँ प्रेम का समुद्र उमड पडता है। ऐसी मूर्ति है कि जिन्होने देखा वे भी पछताते हैं कि मै सग क्यो नही गया और जिन्होने दर्शन नही पाया वे भी पछताते हैं कि मेरे भाग्य मे दर्शन नही रहा।

गाँव गाँव अस होई अनदू। देखि भानुकुल कैरव चदू ॥
जे कछु समाचार सुनि पावहि। ते नृप रानिहि दोसु लगावहि ॥१॥

अर्थ सूर्यकुल के कुमुद के चन्द्रमा रूप रामजी को देखकर गाँव गाँव मे ऐसा आनन्द हो रहा है। जो कोई समाचार पाते हैं वे राजा रानी को दोष लगाते हैं।

व्याख्या सरकार का सौन्दर्य ही ऐसा है कि उसे देखकर स्त्रियाँ चन्द्रोदय पर कुमुदिनी की भाँति खिल उठती हैं। यथा नारि कुमुदिनी अवध सर रघुपति बिरह दिनेस। अस्त भय बिगसित भई निरखि राम राकेस। वैसी ही गति पुरुषो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



की भी है। अत कहते है कि इसी गाँव की यह दशा नही जितने गाँव रास्ते मे पडते हैं वही आनन्द की लहर आ जाती है।

उन देखनेवालो मे से किसी किसी को कुछ टूटा फूटा पता चल जाता है। वे राजा रानी को दोप देने लगते हैं। यथा ते पितु मातु कहहु सखि कैसे। जिन पठए बन बालक ऐसे।

कहहि एक अति भल नरनाहू। दीन्ह हमहि जेइ लोचन लाहू॥
कहहि परसपर लोग लोगाई। बाते सरल सनेह सुहाई॥२॥

अर्थ किसी ने कहा कि राजा बहुत अच्छा है। जिसने हमको नेत्र होने का फल दिया। स्त्री पुरुष आपस म स्नेह से सरल और सोहाई बाते कहते हैं।

व्याख्या अधिक लोग तो दोष लगानेवाले हो हैं। पर कोई ऐसे भी हैं जो कहते हैं कि राजा बहुत ही अच्छा है। उसने हम लोगो के कल्याण के लिए इतने वडे स्वार्थ का त्याग किया। यदि इन्हे वन न भेजता तो हम लोगो के नेत्र सफल कैसे होते। यथा करहु सफल सबके नयन सुन्दर बदन देखाइ।

घर के भीतर बात हो रही है। अत लोग लोगाई का परस्पर कहना कहते हैं। स्नेह भरा चित्त होने से सरल बाते ही मुख से निकलती है और वे सोहाई भी होती है।

ते पितु मातु धन्य जिन्ह जाये। धन्य सो नगरु जहाँ ते आये॥
धन्य सो देसु सैलु बनु गाऊँ। जहँ जह जाहि धन्य सो ठाऊँ॥३॥

अर्थ वे माता पिता धन्य हैं जिन्होने इन्हे जन्म दिया। वह नगर धन्य है जहाँ से आये हैं। वह देश पर्वत गाँव धन्य है। वह स्थान धन्य है जहाँ जहाँ ये जा रहे हैं।

व्याख्या कहहु तात केहि भाँति कोउ करै बडाई तासु। राम लखन तुम सत्रुहन सरिस तनय सुचि जासु। अत माता पिता धन्य है धन्य अवध जो राम बखानी। अत जहाँ से आये वह नगर धन्य है और परसि राम पद पदुम परागा। मानत भूमि भूरि निज भागा। अत वह देश वह पर्वत वह वन वह गाँव धन्य है जहाँ जहाँ ये जावेंगे। यथा बड भागी बनु अवध अभागी। जो रघुबस तिलकु तुम त्यागी।

सुखु पायेउ बिरचि रचि तेही। ए जेहि के सब भाँति सनेही॥
राम लखन पथि कथा सुहाई। रही सकल मग कानन छाई॥४॥

अर्थ ब्रह्मदेव ने उसी को रचकर सुख पाया। जिसके ये सब भाँति से स्नेही हैं। राम लक्ष्मण के रास्ते की सोहाई कथा तमाम रास्ते और वन मे छा गयी।

व्याख्या माता पिता धन्य हैं। जन्मस्थान धन्य है। जहाँ जाते हैं वह स्थान धन्य है। पर इनके स्नेही भक्त ऐसे धन्य हैं कि उनको रचकर ब्रह्मदेव अपने को सुखी मानकर धन्य हुए। यथा सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



श्रीरघुनाथ परायन जहँ नर उपज विनीत। भक्त के उत्पन्न होने से कुल धन्य होता है। सभी कुल ब्रह्मदव निर्मित है। अत वे भी धन्य हुए। अथवा ब्रह्मदेव के निर्माण कला की पराकाष्ठा मनुष्य की रचना म है। पर मनुष्यता की पूर्णता तो हरिभक्ति से होती है। नही तो तुलसी जेहि राम ते नेह नही सो सही पशु पूँछ विषाण न द्वै। अत हरिभक्त के निर्माण से अपनी कला की पूर्णता देखकर ब्रह्मदेव सुखी होते है।

जिधर से सरकार जाते हैं उधर आनन्द की लहर आ जाती है। उसकी कथा चल पडती है और वह कथा सोहाई होती है। मनभावनी होती है। उसे कहते सुनते लोग सुख पाते हैं। यथा भव मग अगम अनदु बिनु श्रम रहेउ सिराइ।

दो एहि बिधि रघुकुल कमल रबि, मग लोगन्ह सुख देत।
जाँहि चले देखत बिपिन, सिय सौमित्रि समेत ॥१२२॥

अर्थ इस भाँति रघुकुल कमल के सूर्य रास्ते के लोगो को सुख देते हुए सीता और लक्ष्मण सहित वन को देखते हुए चल जाते हैं।

व्याख्या छाँह करहिं घन विबुध गन बरखहिं सुमन सिहाहिं। देखत गिरिबन बिहँग मृग रामचल बन जाहिं से उपक्रम करके एहि बिधि रघुकुल कमल रबि मग लोगन सुख देत इत्यादि से उपसहार करते ह। नौ दोहो मे कैसे रास्ते के लोगो को सुख दते हुए रामजी वन देखते चल जा रहे हैं। इस बात का वर्णन किया।

आगे राम लखन बन पाछ। तापस बेष बिराजत काछे ॥
उभय बीच सिय सोहति कैस। ब्रह्म जीव बिच माया जैसे ॥१॥

अर्थ आगे आगे रामजी पीछ पीछ लक्ष्मणजी तपस्वियो का वेष बनाये हुए शोभायमान हैं। दोनो के बीच सीताजी कैसी सोहती हैं। जैसे ब्रह्म और जीव के बीच मे माया हो।

व्याख्या अब वन मे जाते हुए तीनो मूर्तियो की कैसी शोभा है। इसे वर्णन करते हुए कहते है कि सम्बन्धानुसार तथा रक्षा के विचार से भी रामजी आगे आगे चलते हैं और लक्ष्मणजी पीछ पीछ चलते हैं। तपस्वियो के वेष मे कसे कसाये शोभायामान है। यथा अनुज सहित सिर जटा बनाये। दोना के बीच म सीताजी हैं। इनका वेष अभी तपस्विनिया सा नही है। अत कवि राम लक्ष्मण की उपमा तो ब्रह्मजीव से देते हैं और सीताजी की माया से। ब्रह्म माया को नही देखता। सवथा स्वतन्त्र है। परन्तु माया उसी के आश्रित है। उसी के पीछ चलती है। जीव यद्यपि ब्रह्म का ही अश है। पर माया का अनुसरण करता है। ब्रह्म और जीव सजातीय पुरुष हैं। माया विजातीय स्त्री है। अत वेष म भेद है। ब्रह्मजीव म भेद मायाकृत है। अत माया को ब्रह्म जीव के बीच मे कहा। इन्ही सब बाता पर विचार करके कवि ने राम जानकी और लक्ष्मण की उपमा ब्रह्म माया और जीव

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



से दिया। देखनेवाला जहाँ खडा है वहाँ से आते हुए तीनो मूर्तियो मे पहिले रामजी को देखता है। पीछे सीताजी को तत्पश्चात् लक्ष्मणजी को। यहाँ देखनेवाला कवि है। इस बात पर ध्यान देना आवश्यक है कि वर्णन करने के समय कवि अपने को किस स्थान पर मान रहा है। अभी तीनो मूर्तियाँ दूर हैं। बहुत स्पष्ट दिखलायी नही पड रही है। अत ब्रह्म माया और जीव से उपमित किया।

बहुरि कहहुँ छबि जसि मन बसई। जनु मधु मदन मध्य रति लसई॥
उपमा बहुरि कहौ जिय जोही। जनु बुध बिधु बिच रोहिनि सोही॥२॥

अर्थ : फिर जैसी छवि मन मे बसी है वैसी कहता हूँ। मानो मधु और कामदेव के बीच मे रति शोभित हो। फिर अपने जी मे सोचकर उपमा कहता हूँ। जैसे बुध और चन्द्रमा के बीच रोहिणी शोभायमान हो।

व्याख्या : यहाँ मधु चैत्र मास वसन्त का उपलक्षण है। मदन और रति दम्पती हैं। वसन्त मदन का सखा है। चलते चलते ठीक सामने आजाने पर कवि शोभा को स्पष्ट देख रहा है। अत' मधु मदन और रति की उपमा देता है। आगे बढने के बाद उपमा देने के समय सबसे पीछे होने के कारण लक्ष्मणजी को कवि पहिले देखता है तत्पश्चात् सीताजी को और उसके बाद रामजी को। अत मधु को पहिले कहकर तब मदन रति का उल्लेख करता है। कवि शोभा देखने मे मग्न है।

जब मूर्तियाँ बहुत दूर निकल गयी, अब दृष्टि के ओझल हुआ चाहती हैं तब फिर उपमा देते है कि बुध और चन्द्रमा के बीच मे जैसे रोहिणी हो। चन्द्रमा और रोहिणी दम्पती है। बुद्ध चन्द्रमा का पुत्र है। तीनो बहुत दूर है। दूर चले जाने पर उसी भाँति कवि पहले लक्ष्मणजी तत्पश्चात् सीता और रामजी को देखता है और उसी क्रम से वर्णन करता है। दूर की उपमा ब्रह्म, माया और जीव से दे आये हैं। और फिर दूर की ही उपमा देनी है। अतः कवि को सोचना पडा कि अब कौन सी उपमा दें। तो तीन तेजोमय वस्तु चन्द्र, रोहिणी और बुध से जो दूर स्थित है दे डाला। पर हृदय मे बीचवाली छवि बसती है। अत. मधु, मदन, रति की उपमा दी। क्योकि सबके मन मे काम का निवास है और गोस्वामीजी के मन मे उसके स्थान पर राम बसते हैं।

प्रभु पद रेख बीच बिच सीता। धरति चरन मग चलति सभीता॥
सीय राम पद अक बराएँ। लखनु चलहि मग दाहिन लाएँ॥३॥

अर्थ : प्रभु के चरणो की रेखाओ के बीच बीच मे सीताजी अपना पाँव धरती और डरती हुई रास्ता चलती हैं। सीता और रामचन्द्र के चरणो के चिह्नो को बचा बचाकर लक्ष्मणजी दाहिनी ओर से रास्ता चलते थे।

व्याख्या · सीताजी ठीक रामजी का अनुसरण करती हैं और अनुसरण करने-वाले का पैर अग्रगामी के चरण चिह्नो पर पडेगा ही। अत सीताजी रामचन्द्र के चरण चिह्नो के बीच बीच मे पैर रखती हैं और डरती हुई रास्ता चलती हैं कि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कही सरकार के चरण चिह्नो पर मेरा पैर न पड जाय। सीताजी की ऐसी पूज्य बुद्धि सरकार पर है।

वैसी ही पूज्य बुद्धि लक्ष्मणजी की दोनो सरकारो पर है। उन्हे दोनो मूर्तियो के चरण चिह्नो को बँचाना ठहरा। अतः वे दाहिनी ओर हटकर चल रहे हैं।

राम लखन सिय प्रीति सुहाई। बचन अगोचर किमि कहि जाई ॥
खग मृग मगन देखि छवि होही। लिये चोरि चित राम बटोही ॥४॥

अर्थ · लक्ष्मण राम और सीताजी की प्रीति वचन का विषय ही नही है। अत कैसे कही जा सकती है। उनकी छवि देखकर पशु पक्षी मगन हो जाते थे। क्योकि पथिक राम ने उनके चित्त चुरा लिये।

व्याख्या : राम लक्ष्मण और सीताजी की प्रीति ऐसी पवित्र और सुन्दर है कि मन मे तो बडी अच्छी लगती है पर कहते नही बनती। यथा : इनकै प्रीति परसपर पावनि। कहि न जाइ मन भाव सुहावनि। सुनहु नाथ कह मुदित बिदेहू। ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू।

शोभा कैसी अद्भुत है कि पशु पक्षी देखकर मोहित हो जाते हैं। अपनी जाति की ही शोभा पर जीव रीझते है। खग की शोभा खग ही समझते हैं। मृग की शोभा मृग ही समझते हैं। ये मनुष्य की शोभा नही समझ सकते। पर यहाँ महाशोभा की ऐसी अतिशयता है कि वे भी मगन हो जाते हैं। कवि कहते है कि इसमे खग मृग की कोई बात नही है। राम बटोही ही मन के चोर हैं।

दो. जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय, सिय समेत दोउ भाइ।
भव मगु अगमु अनदु तेइ, बिनु श्रमु रहे सिराइ ॥१२३॥

अर्थ : जिसने जिसने सीता सहित दोनो भाई प्रिय पथिको को देखा उनको ससार के अगम मार्ग मे सुख हुआ और वह बिना परिश्रम के ही कट गया। समाप्त हो गया।

व्याख्या . अब प्रिय पथिको के दर्शन का माहात्म्य सुनिये। ससार का रास्ता अगम है। दु खमय है। पता नही कहाँ जा रहा है। पर जिसने इन तीनो मूर्तियो को रास्ता चलते देखा उसे भवमग आनन्दमय हो गया और बिना परिश्रम ही उसका अन्त मिल गया। अर्थात् वे अनायास ही भवसागर के पार हो गये।

[1]अजहुँ जासु उर सपनेहुँ काऊ। बसहुँ लखन सिय राम बटाऊ ॥
रामधाम पथ पाइहि सोई। जो पथु पाव कबहुँ मुनि कोई ॥१॥

अर्थ · अब भी जिसके हृदय मे कभी सपने मे भी लक्ष्मण सीता और राम

१. यहाँ भाविक अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तीनो पथिक बसते हैं। वह राम धाम के मार्ग को पायेगा। जिसको कोई मुनि कभी कभी पाते हैं।

व्याख्या ऊपर कह आये हैं कि जिन्होने रास्ते जाते हुए तीनो मूर्तियो को देखा उनका कैसा कल्याण हुआ। अब उक्त घटना से आजकल के लोगो का कैसे कल्याण होगा। सो बतलाते हैं। जैसा मनुष्य दिन को सोचता है वैसा ही रात को स्वप्न देखता है। अत स्वप्न मे देखना तभी सम्भव है जब जाग्रत मे मनोयोग पूर्वक ध्यान करे। इस भाँति यदि सपने मे भी पथिक रूप से राम लक्ष्मण सीता मन मे आजयँ तो उसे रामधाम का पथ मिल जाता है। रामधाम का पथ मिलना अतीव दुर्लभ है। किसी मुनि को किसी समय मिल जाता है।

तब रघुबीर श्रमित सिय जानी। देखि निकट बटु सीतल पानी ॥
तहँ बसि कद मूल फल खाई। प्रात नहाइ चले रघुराई ॥२॥

अर्थ तब रामजी सीताजी को थकी हुई जानकर और पास ही बरगद का पेड और ठण्ढा पानी देखकर वहाँ बसे। कन्द मूल फल खाया और सवेरा होते ही स्नान करके चल पडे।

व्याख्या दोपहर को भी सीताजी को थकी देखकर बरगद के पेड तले ठहरे थे। यथा जानी श्रमित सीय मन माँही। घरिक बिलव कीन्ह बट छाँही। अब फिर सीताजी थक गयी तो फिर बरगद के तले ही ठहरे। वहाँ शीतल जलाशय भी था। रात्रि उसी पेड के तले बितायी। कन्द मूल फल भोजन किया। इससे यह भी पता चलता है कि केवल एक बार भोजन का नियम ल रक्खा है।

## १५ वाल्मीकि मिलन प्रसङ्ग

देखत बन सर सैल सुहाये। बाल्मीकि आश्रम प्रभु आये ॥
रामु दीख मुनि बास सुहावन। सुन्दर गिरि काननु जलु पावन ॥३॥

अर्थ . सुन्दर वन तालाब पर्वत को देखते हुए प्रभु वाल्मीकिजी के आश्रम मे आये। रामजी ने मुनि के सुहावने निवास स्थान को देखा कि सुन्दर वन है। पर्वत भी सुन्दर है और पवित्र जल है।

व्याख्या ग्रामवासियो ने विचार करके सुगम रास्ता बतलाया था। सो उसकी सुगमता कहते हैं कि सुन्दर वन जलाशय और पर्वत देखते देखते प्रभु वाल्मीकिजी के आश्रम पर पहुँच गये। रामजी ने मुनिजी के सुन्दर आश्रम को देखा। आदि कवि हैं। रम्य स्थान पर अपना आश्रम बनाया था। जहाँ सुन्दर पर्वत हैं, सुन्दर वन हैं और पवित्र जल है।

सरनि सरोज बिटप बन फूले। गुजत मजु मधुप रस भूले ॥
खग मृग बिपुल कोलाहल करही। बिरहित बैर मुदित मन चरही ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थं तालाबो मे कमल और वनो मे वृक्ष फल रहे थे और सुन्दर भौरे रस मे मस्त हुए गुञ्जार कर रहे थे। बहुत से पशु पक्षी कोलाहल कर रहे थे और वैर छोडे हुए आनन्द से विचर रहे थे।

व्याख्या आदि कवि के निवास योग्य रमणीय स्थल था। जलाशयो की शोभा कमलो के फूलने से हो रही थी और वन की शोभा वृक्षो के फूलने से हो रही थी और वे फूल ऐसे सरस थे कि चारो ओर वन मे भौरे गुञ्जार कर रहे थे। चिडियाँ चहचहा रही थी। वन्य पशु भी अनेक प्रकार के शब्द कर रहे थे। किसी मे स्वाभाविक वैर का नाम नही। सब प्रसन्न मन से विचर रहे थे।

सरनि सरोज बिटप बन फूले से गन्ध कहा। गुजत मजु मधुप रस भूले से रस कहा। खग मृग विपुल कोलाहल करही से शब्द कहा। सुन्दर गिरि कानन जल पावन से रूप कहा। इस भाँति उस वन को सर्वेन्द्रिय तर्पण बतलाया। मुनिजी मे ऐसी अहिंसा की प्रतिष्ठा थी कि उनके सन्निधान से पशुपक्षी स्वाभाविक वैर छोडकर उस वन मे निर्भय आनन्द से विचर रहे थे।

दो सुचि सुदर आश्रमु निरखि, हरखे राजिव नेन।
सुनि रघुवर आगमनु मुनि, आगे आयेउ लेन ॥१२४॥

अर्थं राजीव लोचन राम पवित्र और सुन्दर आश्रम देखकर प्रसन्न हुए और मुनिजी रामजी के आगमन का समाचार सुनकर उनके लेने के लिए आगे आये।

व्याख्या : जैसा कवि के लिए आश्रम चाहिए वैसा आश्रम है। पवित्र भी है। सुन्दर भी है। उसे देखकर राजीवलोचन रामजी भी प्रसन्न हो गये। चितइ कृपा करि राजिव नयना। रामजी के रास्ते की कथा सम्पूर्ण वन मे फैल गयी थी। शिष्यो ने समाचार दिया। पहाड पर आश्रम है। अत उन लोगो ने दूर से ही सरकार को आते देखा। समाचार सुनकर मुनिजी ने आगे से आकर स्वागत किया।

मुनि कहुँ राम दडवत कीन्हा। आसिरबादु विप्रबर दीन्हा ॥
देखि राम छबि नयन जुडाने। करि सनमानु आश्रमहि आने ॥१॥

अर्थ मुनिजी का रामजी ने दण्डवत् किया। विप्रवर ने आशीर्वाद दिया। रामजी की छवि देखकर आँखे शीतल हो गयी। सम्मान करके आश्रम मे ले आये।

व्याख्या वाल्मीकिजी वडे तपस्वी और मुनियो मे श्रेष्ठ हैं। अत आते हुए देखकर रामजी ने दण्डवत् प्रणाम किया। जिस भाव से रामजी ने दण्डवत् किया। उसी भाव के अनुकूल ब्राह्मणो मे श्रेष्ठ वाल्मीकिजी ने आशीर्वाद दिया।

मुनिजी की आँखें दर्शन की प्यासी थी। अत सन्तप्त हो रही थी। जिसके नाम को इतने दिन से जप रहे थे, जिसके नाम के प्रताप स शुद्ध होकर ऋषिराज हुए आज वही नामी मिलने क लिए आश्रम मे पधार रहे हैं। अत आँखें उनकी छवि देखकर शीतल हुई। स्वागत के लिए बहुत आगे चल आये थे। अत बडे सम्मान के साथ आश्रम मे लिवा ले गये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



य पाये । कद मूल फल मधुर मँगाये ॥
ऽ खाये । तब मुनि आसन दिये सुहाये ॥२॥

गप्रिय अतिथि पाया । मीठे मीठे कद मूल और फल
तथा रामजी ने फल खाया । तब मुनिजी ने सुन्दर

म मुनिजी ने यह किया कि भोजन की व्यवस्था पहिले
ऽ सरकार चले है । रास्ता चलकर आये है । भूख
ऽ मीठे कन्द मूल फल मँगाये । मुनिजी महाराज जनक
उपासक हैं । रामजी इन्हे प्राण से प्यारे हैं । सो इस
। अत तुरन्त भोजन की व्यवस्था की सीताजी लक्ष्मणजी
चुके तब मुनिजी ने सुन्दर आसन दिये । भाव यह कि
र वे सोहाये न थे । भोजन के समय पीढा का ही विधान
र्थात् कोमल आसन दिये ।

ऽ भारी । मगल मूरति नयन निहारी ॥
रघुराई । बोले बचन श्रवन सुखदाई ॥३॥

ो आँखो से देखकर वाल्मीकिजी को बडा आनन्द हुआ
ानो को सुख देनेवाले वचन बोले ।
ङ्गल विदु । ब्रह्म ही मङ्गलमूर्ति है । वह नयन का विषय
आश्रम मे पधारा है । अत उन्हे आँखो से देखकर
न्द हुआ । यथा नयन विषय मो कहुँ भयेउ सो समस्त
जीव कहँ भये ईस अनुकूल ।
ना सा भाव देखकर सरकार करकमल जोडकर श्रवण
ऽया कि वाल्मीकिजी ने भरद्वाज की भाँति कुशल नही
जान गये । कष्टकर बात की चर्चा चलाना नही चाहते ।
लेकर निवास करना ठहरा । अत मै स्वय सब कथा
ऽ स्थल पूछूँ । अत श्रवण सुखद बचन बोले ।

मुनिनाथा । बिस्व बदरि जिमि तुम्हरे हाथा ॥
था बखानी । जेहि जेहि भाँति दीन्ह बनु रानी ॥४॥

। आप त्रिकालदर्शी है । ससार आपके हाथ मे बेर के
कहकर सरकार ने जिस जिस भाँति रानी ने वन दिया
।
ने कहा कि आप मुनियो के नाथ है । परम ज्ञानी है तथा
कुछ छिपा नही है । यह ससार आपके करगत बेर के

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



फल के समान है। अर्थात् संसार मे जो कुछ हो रहा है वह सब आपको प्रत्यक्ष है। बदरी फल कहने का भाव यह कि आप संसार को कुपथ्य जानते हैं। यथा : धात्रीफल सदा पथ्यमपथ्य बदरीफलम्। आप ममझ सकते हैं कि राज्य महान् बन्धन है। इसके छूटने से मुझे हर्ष है।

ऐसा कहकर सरकार ने वाल्मीकिजी से सब कथा कही। जिस भाँति रानी ने वन दिया। भाव यह कि महाराज ने वन नहीं दिया। रानी ने दिया। सब कथा कहने का भाव यह कि जिससे सम्मति लेना हो उसे अपनी परिस्थिति से परिचित कर देना परम आवश्यक है। वाल्मीकि से निवासस्थल के लिए सम्मति लेनी थी। इसलिए सब कथा कह सुनायी। मुनिजी पूछते ही कि तुम राजकुमार होकर वन मे क्यो बसना चाहते हो। अत उनसे सब कहना प्राप्त था।

दो तात बचन पुनि मातु हित, भाइ भरत अस राउ।
मो कहुँ दरस तुम्हार प्रभु, सबु मम पुन्य प्रभाउ ॥१२५॥

अर्थ पिता का वचन तिस पर माता का हित और भरत जैसे भाई का राजा होना और हे प्रभु ! मुझे आपका दर्शन मिलना यह सब मेरे पुण्य का प्रभाव है।

व्याख्या : जो बात सरकार ने महारानी कैकेयी से कहा था वही यहाँ भी कहते हैं। यथा मुनिगन मिलन विशेष बन सबहि भाँति हित मोर। तेहि महँ पितु आयसु बहुरि समति जननी तोर। भरत प्रानप्रिय पावहि राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू। भाव यह कि पहिले भी विधि सम्मुख थे। पर आज तो सब विधि से सम्मुख हो गये हैं कि एक कार्य करने म चार चार कार्य सब रहे हैं। वन मे आने से पिता का भला माता का भला भाई का भला और स्वय अपना भला।

देखि पाय मुनिराय तुम्हारे। भए सुकृत सब सुफल हमारे ॥
अब जहँ राउर आयसु होई। मुनि उदवेगु न पावै कोई ॥१॥

अर्थ हे मुनिराज ! आपके चरणो को देखकर मेरे सब पुण्य सुफल हो गय। अब जहाँ आपकी आज्ञा हो और जहाँ रहने से कोई मुनि उद्वेग न पावे।

व्याख्या सुकृत का फल सुयश है। यथा पावन जस कि पुन्य बिनु होई। सो सरकार के सुयश का प्रचार वाल्मीकिजी द्वारा ही होनेवाला है। अत कहते हैं कि मेरे सब सुकृत तो आपके दर्शन से सुफल हुए। निश्चित आसन्न भविष्य को भूतकाल म वर्णन किया जाता है। यथा रगभूमि आये दोउ भाई।

भरद्वाजजी वाल्मीकिजी के शिष्य हैं। सो शिष्य से रास्ता पूछा था। अब गुरुजी से निवास स्थान पूछते हैं कि हम क्षत्रिय हैं। आखेट आदि करेंगे। इसमे मुनिलोगो के उद्वेग का भय है। अत मुझे ऐसा स्थान चाहिए जहाँ रहने से किसी मुनि को उद्वेग न हो। क्योंकि उद्वेग उत्पन्न करना भी हिंसा है। यथा उद्वेगजनन हिंसा सन्तापकरण तथा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मुनि तापस जिन्ह तें दुखु लहहीं । ते नरेस बिनु पावक दहहीं ॥
मंगल मूल बिप्र परितोषू । दहइ कोटि कुल भूसुर रोषू ॥२॥

अर्थ : मुनि तपस्वी जिनसे दुःख पाते हैं वे राजा बिना आग के जल जाते हैं। ब्राह्मण का परितोष सब मङ्गलों का मूल है और ब्राह्मण का क्रोध करोड़ों कुल को भस्म करता है।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि मैं अपने कल्याण के लिए पूछता हूँ। क्योंकि सब मङ्गलों का मूल ब्राह्मणों का परितोष है। क्योंकि इससे भगवान् प्रसन्न होते हैं। यथा : हरितोषणव्रत द्विज सेवकाई और ब्राह्मण के रोष से कोटि कुल भस्म हो जाता है। यथा : इंद्र कुलिस मम सूल बिसाला। कालदंड हरि चक्र कराला। जो इनकर मारा नहिं मरई। बिप्र रोष पावक सो जरई। इसलिए कहते हैं कि वह राजा बिना आग के जल जाता है।

अस जिअ जानि कहिअ सोइ ठाऊँ । सिय सौमित्रि सहित जहँ जाऊँ ॥
तहँ रचि रुचिर परन तृन साला । बासु करौं कछु कालु कृपाला ॥३॥

अर्थ : ऐसा मन मे समझकर वह स्थान बतलाइये जहाँ सीता और लक्ष्मण के साथ मैं जाऊँ। वहाँ सुन्दर पत्ते और तृणों की कुटी बनाकर हे कृपालु ! मैं कुछ दिनो तक वहाँ निवास करूँ।

व्याख्या : स्थान पूछने के साथ ही साथ छुट्टी भी माँगते हैं कि हमलोग वहीं जाकर रहें। गृहस्थी के साथ रहना है। अतः वहाँ जलाशय आदि सभी बातों का सुपास चाहिए।

रास्ते में तो वृक्ष तले भी रह जाते थे। परन्तु वहाँ तो कुछ काल तक रहना होगा। अतः पर्णतृणशाला बनानी पडेगी। वनवास चौदह वर्ष के लिए है। अतः साल छः महीने तो कम से कम रहना है।

सहज सरल सुनि रघुबर बानी । साधु साधु बोले मुनि ग्यानी ॥
कस न[1] कहहु अस रघुकुल केतू । तुम्ह पालक संतत श्रुति सेतू ॥४॥

अर्थ : रामजी की स्वभाव से ही सरल वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि ने साधु साधु : वाह वाह कहा। हे रघुकुल के ध्वज ! आप ऐसा क्यों न कहे। आप सदा वेद के पुल के रक्षक हो।

व्याख्या : मुनिजी कहते हैं कि वेदमार्ग का पालन तो रघुवंशियों का सहज स्वभाव है। यथा : रघुबंसिन्ह कर सहज सुभाऊ। मनु कुपंथु पगु धरहिं न काऊ। और आप तो रघुवंश के ध्वज रूप हो। आप ऐसी बात क्यों न कहें। आप श्रुति सेतु का पालन सदा सर्वदा करते हैं। ब्राह्मणत्व की ही रक्षा से वैदिक धर्म रक्षित

१ यहाँ सम : द्वितीय अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



होता है। अतः ब्राह्मणत्व का रक्षा विधायक वाक्य जिस सरलता से आप ने कहा है वह आपके लिए स्वाभाविक है। सिवा आपके ऐसा वाक्य कौन कहे!

छं. श्रुति सेतु पालक राम तुम्ह, जगदीस माया जानकी।
जो सृजति जग पालति हरति, रुख पाइ कृपानिधान की॥
जो सहस सीसु अहीसु महिधरु, लखनु सचराचर धनी।
सुर काज धरि नरराज तनु, चले दलन खल निसिचर अनी॥

अर्थ : हे रामजी! आप वेद के पुल के रक्षा करनेवाले जगदीश हैं। जानकी माया हैं। जो कृपानिधान का रुख पाकर ससार को रचना पालन तथा सहार किया करती है। जो सहस्र सिरवाले सर्पराज पृथ्वी के धारण करनेवाले है वे ही चराचर के स्वामी लक्ष्मण जी हैं। देवताओ के कार्य के लिए नृप शरीर धारण करके खल निशाचरों की सेना के सहार के लिए चले है।

व्याख्या : यही आधिदैविक रामायण की कुञ्जी है। वाल्मीकिजी कहते है कि आप श्रुतिसेतु पालक हो। सो आवश्यकता पडते ही आगये। सन्तत पालक कहा था उसी को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि आप जगदीश है और यह जानकी आपकी माया हैं। यथा : आदि सक्ति जेहि जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया। सो आपलोग वेष बदले हुए ऐसा सुन्दर नाट्य कर रहे हैं। ये लक्ष्मणजी सहस्रशीर्षापुरुषः जाग्रत के विभु है। जाग्रत के आधार हैं। अत चराचर के स्वामी है। ये भी मनुष्य बने हुए आपके साथ है। इस समय देवलोक और मनुष्यलोक से जो व्यापार चलता रहा. देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु वः। परस्पर भावयन्त' श्रेयः परमवाप्स्यथ। ब्रह्मदेव ने यज्ञ के साथ प्रजा की सृष्टि की और कहा कि इसी से तुम लोग देवताओ को बढाओ और वे पूजित होकर तुम्हे बढावे। इसी भाँति परस्पर भावना करते हुए परम कल्याण को प्राप्त हो। सो बन्द सा हो गया है। सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव बिप्र गुरु मान न कोई। द्विज भोजन मख होम सराधा। सबकै जाइ करहु तुम बाधा। इत्यादि। सो इस समय सुरकाज नरराज तन से ही हो सकता है। अतः आप लोग नरराज तन धारण करके खल निशाचरो का नाश करने चले हैं: गोस्वामीजी इस काण्ड के छन्दो में से केवल इसी में अपना नाम नही देते।

सो. राम सरूप तुम्हार, बचन अगोचर बुद्धि पर।
अबिगत अकथ अपार, नेति नेति नित निगम कह॥१२६[1]॥

अर्थ : हे रामजी! आपका स्वरूप वाणी का अविषय और बुद्धि के बाहर की

---

१. गोस्वामीजी का यह भी नियम है कि कोई क्रम नही निबहने देते। अयोध्याकाण्ड भर में पचीस के सोरठा के साथ छन्द देते हैं। पर यहाँ छब्बीसवें सोरठा के साथ दिया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



धात है। अव्यक्त है। अकथ है। अपार है। इसे नेति नेति कहकर वेद वर्णन करते है।

व्याख्या : लीला विग्रह कहकर परम स्वरूप कहते है। न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदिता-दथो अविदितदधि।

वेद कहता है कि न तो वहाँ दृष्टि जाती है न वाणी जाती है न मन जाता है। उसे न सामान्य रूप से जानते हैं न विशेपरूप से जानते हैं। कैसे कहे। वह जानने और न जानने दोनो से परे ही अतद्व्यावृत्ति से ही उसके विषय मे कुछ कहा जा सकता है। अत यह भी नही यह भी नही। स्थूल भी नही सूक्ष्म भी नही। इस प्रकार से वेद तुम्हारा निरूपण करता है।

जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि संभु नचावनिहारे॥
तेउ न जानहिं मरमु तुम्हारा। औरु तुम्हहि को जाननिहारा॥१॥

अर्थ : ससार तमाशा है और तुम देखनेवाले हो और ब्रह्मा विष्णु और शिव नचानेवाले है। वे भी तुम्हारा मर्म नही जानते और तुम्हे जाननेवाला कौन है।

व्याख्या : ससार दृश्य होने से जड है। तुम द्रष्टा होने से चिद्रूप हो। विधि हरि शम्भु संसार की सृष्टि पालन और संहार करनेवाले तुम से ही बल पाकर अपने अपने कार्य मे समर्थ हैं। यथा : जाके बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा। वे भी तुम्हारे मर्म को नही जानते। यथा : पालन सुर धरनी अद्भुत करनी मर्म न जानइ कोई। मया ततमिद सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना। मत्स्थानि सर्व-भूतानि न चाह तेष्ववस्थित। न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्। भूतभृन्न च भूतस्थो ममात्मा भूतभावनः। भगवद्गीता मे भगवान् कहते है कि मुझसे यह जगत् परिपूर्ण है। सब भूत मेरे मे स्थित है। मैं उनमे स्थित नही हूँ और वे सब भूत मेरे मे स्थित नहीं हैं। मेरे ऐश्वर योग को देख। भूतो को उत्पन्न करनेवाली मेरी आत्मा भूतो मे स्थित नही है। मर्म का जानना ही वस्तुतः जानना है। अतः कहना होगा कि कोई तुम्हे नही जानता। यथा : न मे विदु सुरगणा। प्रभव न महर्षयः। गीतायाम्।

सोइ जानइ जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुम्हइ होइ जाई॥
तुम्हरिहि कृपा तुम्हहि रघुनदन। जानहिं भगत भगत उर चदन॥२॥

अर्थ : जिसे तुम जना देते हो वही तुम्हे जानता है और तुमको जानते ही तुम्ही हो जाता है। हे रघुनन्दन! तुम्हारी कृपा से हे भक्त उर चन्दन! तुम्हे भक्त जानते है।

व्याख्या : भगवद्गीता मे भगवान् कहते हैं। भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्त्वत.। भक्ति से मुझे जानता है कि तत्त्वत. मै क्या हूँ और कितना हूँ और. ब्रह्मवेद ब्रह्मैव भवति। ब्रह्म को जाननेवाला ब्रह्म ही हो जाता है। यमेष वृणुते

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तेन लभ्य । जिसे वह वरण करता है। उसी से वह प्राप्य है। अर्थात् तुम्हे जानना कृपा साध्य है। क्रिया साध्य नही है। भजन करनेवाले पर भगवान् कृपा करते हैं। निर्गलितार्थ यह है कि भजन करने से भगवान् प्रसन्न होते हैं और भक्त को अपना ज्ञान करा देते हैं और ज्ञान हो जाने पर भक्त भगवन्त में भेद नही रह जाता। यथा भक्ति भक्त भगवत गुरु चतुर नाम वपु एक।

चिदानदमय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी॥
नर तनु धरेहु सत सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा॥३॥

अर्थ तुम्हारी देह चित् आनन्दमय है। विकार से रहित है। इसे अधिकारी लोग जानते हैं। सन्त और देवताओ के लिए मनुष्य शरीर धारण कर रक्खा है। सासारिक राजाओ की भाँति कहते हो और करते हो।

व्याख्या सबके देह मे और तुम्हारे देह मे बडा अन्तर है। तुम मे देह देही भेद नही है। चिदान्दमय लीलाविग्रह है। यथा आनन्दमात्रकरपादमुखोदरादि। मायागुणाननुगतो हि तथा विभाति। माया के गुणा का अनुसरण करता हुआ वैसा ही मालूम होता है। वस्तुतस्तु अविकारी है। इसीलिए गोता म कहा है कि जन्म कर्म च मे दिव्यम्। मेरा जन्म कर्म दिव्य है।

कर्मवश होकर तुमने देह धारण नही किया है। भक्त भूमि भूसुर सुरभि सुरहित लागि कृपाल। करत चरित धरि मनुज तन सुनत मिटहिं जग जाल।

राम देखि सुनि चरित तुम्हारे। जड मोहहिं बुध होहिं सुखारे॥
तुम्ह जो कहहु करहु सबु साचा। जस काछिअ तस चाहिअ नाचा॥४॥

अर्थ हे रामजी! तुम्हारे चरित्र को देख सुनकर मूर्खों को मोह होता है और पडित सुखी होते हैं। तुम जो कहते हो और करते हो सो सब सत्य है। क्योकि जैसा काछ काछे वैसा ही नाच नाचना चाहिए।

व्याख्या अवजानन्ति मा मूढा मानुषीतनुमाश्रितम्। पर भावमजानन्तो मम लोकमहेश्वरम्। भगद्गीता मे भगवान् ने कहा है कि मूढ लोग मुझ मनुष्य शरीर धारण करनेवाले की अवज्ञा करते हैं। मेरे परम भाव को नही जानते कि मै लोक का महेश्वर हूँ। मनुष्य की भाँति चरित देखकर और सुनकर मूढो को विपरीत ज्ञान होता है कि ये भी मनुष्य हैं। प्रभु के परम भाव को तो पण्डित जानते हैं कि लोक महेश्वर होकर कैसी मनुष्य लीला करते हैं। अत वे सुखी होत है। यथा उमा राम गुन गूढ पडति मुनि पार्वाहि विरति। पार्वाहि मोह विमूढ जे हरि विमुख न धर्म रति।

यथा अनेक बेष धरि नृत्य करै नट कोइ। सोइ सोइ भाव देखावै आपुन होइ न सोइ। नाटच मे जो कुछ कहा या किया जाता है वह वस्तु स्थित न होने पर भी रगमञ्च के लिए सच्चा है। क्योकि जैसा वेष धारण करे वैसा ही अभिनय करने का नियम है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. पुछेहु मोहि कि रहौं कहँ, मै पूछत सकुचाउँ।
जहँ न होहु तहँ देहु कहि, तुम्हहिं देखावउँ ठाँउ ॥१२७॥

अर्थ : मुझसे पूछते हो कि कहाँ रहूँ और मैं पूछते हुए सङ्कोच करता हूँ कि जहाँ तुम न हो वह स्थान मुझे वतला दो तो वही स्थान मै तुम्हें दिखा दूँ।

व्याख्या : अब जहँ राउर आयसु होई का उत्तर देते है कि तुमने तो सङ्कोच नही किया। वेषानुसार ठीक ठीक अभिनय कर दिया। पर मुझे सङ्कोच लगता है। मैं भी वैसा ही तुम्हें कैसे मान लूँ मैं तो जानता हूँ कि तुम सर्वव्यापक हो। अतः तुम्हारे प्रश्न का ठीक उत्तर तो यही है कि पहले यह बतलाओ कि तुम कहाँ नही हो। तब मैं कह दूँ कि वही रहो।

यह स्तुति पुष्य नक्षत्र है। तीन तारे यहाँ राम लक्ष्मण जानकीजी हैं। इन्ही की चमक दिखायी पड़ती है। यहाँ ब्रह्म : राम लक्ष्य का वेध हुआ। अतः शर की आकृति माना। इसकी फलश्रुति है : समन पाप संताप सोक के। सो : जानत तुमहि तुमहि होइ जाई से सन्ताप शोक का शमन कहा।

सुनि मुनि वचन प्रेम रस साने। सकुचि राम मन महुँ मुसुकाने॥
बालमीकि हँसि कहहिं बहोरी। बानी मधुर अमिअ रस बोरी॥१॥

अर्थ : मुनिजी के वचन सुनकर रामजी सकुचे और मन ही मन मुसकुराये। वाल्मीकिजी फिर हँसकर मीठी वाणी अमृत रस से भिगोयी हुई बोले।

व्याख्या : सरकार मे शील की पराकाष्ठा है। जब मुनि लोग सहज स्वरूप कथा का वर्णन करने लगते हैं तो सरकार को सङ्कोच होता है। मुनिजी की इस उक्ति पर : जहँ न होउ तहँ देउ कहि तुमहि देखावउँ ठाँउ : सरकार मुसकुराये। मुनिजी के गौरव से प्रकट नही मुसकराये। अतः कहते हैं : मन मह मुसुकाने।

सरकार ने माधुर्य में प्रश्न किया। वाल्मीकिजी ऐश्वर्य में उत्तर देते हैं। उसी बात को और भी बढ़ाते हुए बहुत कुछ कहेंगे। इसलिए हँस रहे हैं। भक्ति से पूर्ण वाणी है। इसलिए मधुर और अमिअ रस बोरी कहा। मिठास तो भक्ति मे ही है।

सुनहु राम अब कहउँ निकेता। जहाँ बसहु सिय लखन समेता॥
जिन्ह के श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना॥२॥

अर्थ : रामजी सुनो ! अब मैं घर बतलाता हूँ। जहाँ तुम सीता और लक्ष्मण के साथ बसो। जिनके कान समुद्र के समान हैं और तुम्हारी कथाएँ सुन्दर नदियाँ हैं।

व्याख्या : आपने कहा : अस जिय जानि कहिअ सोइ ठाऊँ। सिय सौमित्र सहित जहँ जाऊँ। तहँ रचि रुचिर परन तृन साला। बास करौं कछु काल कृपाला। सो पर्णशाला में क्यों रहोगे। मैं तुम्हें घर बतलाता हूँ और ऐसा विस्तृत घर जहाँ तीन मूर्ति रह सको। यहाँ भगवान् वाल्मीकि ने घर के व्याज से पूरी रामायण कही।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रामायण का अर्थ ही यह है : रामस्य अयनम् रामायणम् । रामजी का घर ही रामायण है । ग्रन्थ का नाम रामायण इसलिए है कि इसमे रामजी ही प्रतिपाद्य हैं । यथा जेहि मह आदि मध्य अवसाना । प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना ।

वस्तुतस्तु भगवान् की कथा और भागवत की कथा मे भेद नही है । भागवत की कथा मे सिवा भगवत् कथा के और कुछ होता ही नही । इसी भाँति भगवान् की कथा मे भक्त की कथा रहती है । भगवान् वाल्मीकि ने यहाँ भक्त की कथा कहते हुए भगवान् की कथा अर्थात् पूरी रामायण कही है । अब बालकाण्ड के पूर्वार्ध के भक्तो के लिए कहते हैं । इसमे उमा और भरद्वाज मुख्य श्रोता हैं । इनकी कथा पूर्वार्ध मे है । ऐसे ही भक्तो को लक्ष्य करके कहा गया है कि जिनके कान समुद्र के समान हैं । समुद्र मे स्वय अपार जल भरा है । फिर भी १८०० नदियाँ इसमे अनवरत जल उडेला करती हैं और समुद्र सब को ग्रहण करता है । इसी भाँति श्रोता का हृदय राम कथा से पूर्ण है । फिर भी उसे कथा श्रवण से तृप्ति नही ।

भरहि निरतर होहि न पूरे । तिन्हके हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे ॥
लोचन चातक जिन्ह करि राखे । रहहि दरस जलधर अभिलाखे ॥३॥

अर्थ · दिन रात उन्हे भरती है किन्तु पूरे नही होते । उनके हृदय मे तुम्हारे लिए सुन्दर घर है । जिन्होने अपनी आँखो को पपीहा बनाकर रक्खा है और मेघरूपी आपके दर्शन के लिए लालायित रहते हैं ।

व्याख्या इतने जल के ग्रहण से भी समुद्र भर नही उठता । इसी भाँति जो श्रोता कथा श्रवण से ऊबता नही सुनता ही जाता है उसके हृदय मे तुम्हारे लिए सुन्दर घर है । उमा ने कहा नाथ तवानन ससि स्रवत कथा सुधा रघुबीर । श्रवन पुटन्ह मन पान करि नहि अघात मतिधीर । इसी भाँति भरद्वाज भी नही अघाते । यथा सभु चरित सुनि सरस सुहावा । भरद्वाज मुनि अति सुख पावा । बहु लालसा कथा पर बाढी । नयनन्हि नीर रोमावलि ठाढी ।

बालकाण्ड के उत्तरार्ध के भक्त रूप के प्रेमी हैं । अत उन्हे चातक कहा । चातक का नेम अटल है । वह मेघ से ही माँगता है । मेघ का दर्शन चाहता है । बूँद पान करता है । ससार मे समुद्र भरा है । नदी तालाब जल से भरे हैं । पर चातक के लिए कुछ नही । इस प्रकार के भक्त मनु सतरूपा हैं । यथा उर अभिलाष निरतर होई । देखिय नयन परम प्रभु सोई । जो भुसुडि मनमानस हसा । सगुन अगुन जेहि निगम प्रससा । इत्यादि ।

निदरहि सरित सिधु सर भारी । रूप बिंदु जल होहि सुखारी ॥
तिन्ह के हृदय सदन सुखदायक । बसहु बधु सिय सह रघुनायक ॥४॥

अर्थ · नदी समुद्र और तालाब के जल का निरादर करते हैं । रूप बिन्दु जल से ही सुखी होते हैं । उनका हृदय सुखदायक घर है । उसमे भाई और सीताजी के सहित हे रघुनायक ! तुम रहो ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : ऊपर मनु सतरूपा का चातक की भाँति राम श्यामघन के दर्शन की लालसा कहा। यहाँ · निदरहिं सरित सिन्धु सर बारी का मिलान कहते हैं। पानी का खजाना तो सरित सिन्धु और सर ही हैं। इसी भाँति सबके ध्येय ज्ञेय और आराध्य विधि हरिहर है। सो : विधि हरिहर तप देखि अपारा। मनु समीप आये बहु बारा। माँगहु बर बहु भाँति लोभाये। परम धीर नहिं चलहिं चलाये। अन्त मे प्रभु के रूप बिन्दु को पाकर ही कृतकृत्य हुए। ये ही दशरथ कौसल्या हुए। जनकजी की भी वही गति है। कहते हैं : इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा। जानकीजी भी रूप बिन्दु से ही आनन्दित हैं। यथा : जनु चातकी पाइ जल स्वाती। जनक दूत : देव देखि तव बालक दोऊ। अब न आँखि तर आवत कोऊ। माता लोग : जे दिन गये तुमहिं बिनु देखे। ते बिरचि नहिं पारहिं लेखे। चक्रवर्तीजी यथा : सुत हिअ लाइ दुसह दु ख मेटे। मृतक सरीर प्रान जनु भेटे। इस भाँति उत्तरार्ध ऐसे भक्तो से ही भरा पड़ा है।

ऐसे भक्तो का हृदय आपके लिए सुखदायक घर है। यहाँ आवभगत बराबर होती रहेगी। यहाँ भाई और सीताजी के साथ रहो। राम बाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर। ध्यान सकल कल्यानमय सुरतरु तुलसी तोर।

दो. जस तुम्हार मानस बिमल, हंसिनि जीहा जासु।
मुकुताहल गुन गन चुनइ, राम बसहु हिय तासु ॥१२८॥

अर्थ : तुम्हारे यश रूपी निर्मल मानससरोवर मे जिसकी जीभ हंसिनी रूपा है तुम्हारे गुणगण रूपी मुक्ताफल को चुना करती है। हे रामजी! उसके हृदय मे बसो।

व्याख्या : अयोध्याकाण्ड के पूर्वार्ध के भक्त हैं अवध निवासी। ये दिन रात रामजी का गुणगान करते हैं। महाराज दशरथ को सब समाचार दूतो द्वारा लगा करता है। यथा : रामरूप गुन सीलु सुभाऊ। प्रमुदित होइ देखि सुनि राऊ। सबकें उर अभिलाषु अस कहहिं मनाइ महेसु। आपु अछत युवराज पदु रामहि देउ नरेसु। को रघुबीर सरिस ससारा। सील सनेह निबाह निहारा। इन्ही लोगो की जिह्वा हँसी है जो रामयश मानस में विचरती हुई गुणगण रूपी मुक्ताफल चुना करती है। यथा : जहँ तहँ नर रघुपति गुन गावहिं। बैठि परसपर इहै सिखावहिं। भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहि इत्यादि। वाल्मीकिजी कहते हैं कि ये आपका ही गुणगान करते हैं। अत इनके हृदय मे बसने मे आपकी ही प्रधानता है।

प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा॥
तुम्हहि निवेदित भोजनु करहीं। प्रभु प्रसाद पटु भूषन धरहीं ॥१॥

अर्थ : जिसकी नाक प्रभु के सुन्दर पवित्र प्रसाद के सुगन्ध को आदर के साथ लेती है और जो तुमको अर्पण करके भोजन करते हैं और प्रभु का प्रसाद वस्त्र और भूषण धारण करते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : जिनके हृदय मे १ न काम है २ न क्रोध है ३ न भेद है ४ न मान है ५ न मोह है ६ न लोभ है ७ न क्षोभ है ८ न राग है ९ न द्वेष है १०. न कपट है ११ न दम्भ है १२ न माया है हे रघुराज ! तुम उनके हृदय में बसो।

व्याख्या : काम क्रोधादि सभी मानस रोग हैं। जिनका वर्णन उत्तरकाण्ड के अन्त मे किया गया है। ये सदा जीव को पीडा पहुँचाया करते है। अत. उसे समाधि की प्राप्ति नही होती। जब मन इनसे रहित हो तब नैर्मल्य को प्राप्त होकर स्वस्थ होता है। उसी के लिए कहा गया है निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा।

इस प्रकार के भक्त आरण्यकाण्ड के उत्तरार्ध मे नारदजी है।

- १ कामाभाव यथा : कामकला कछु मुनिहि न व्यापी।
२ क्रोधाभाव यथा भयउ न नारद मन कछु रोषा।
३४ मद मानाभाव यथा : मोर सापकरि अगीकारा।
सहत राम नाना दुख भारा।
ऐसे प्रभुहि विलोकउँ जाई।
५ मोह मायाभाव यथा : साँचहुँ इनके मोह न माया।
६ लोभाभाव यथा रामसकल नामन ते अधिका।
होहु नाथ अघ खग गन वधिका।
७ क्षोभाभाव यथा मुनिगति देखि सुरेस डेराना।
८९ रागद्वेषाभाव यथा · उदासीन धन धाम न जाया।
१० कपटाभाव यथा तव बिबाह मै चाहौ कीन्हा।
प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा।
११ दम्भाभाव यथा · निरखि सैल सरि विपिन बिभागा।
भयउ रमापति पद अनुरागा।
१२ मायाराहित्य यथा · सहज बिकल मन लागि समाधी।

सब के प्रिय सब के हितकारी। दुख सुख सरिस प्रससा गारी ॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥२॥

अर्थ जो सबको प्रिय है। सबके हित करनेवाले हैं। दुख सुख प्रशसा और गाली जिन्हे समान है। सत्य और प्रिय वचन विचार पूर्वक बोलते हैं। जो जागते और सोते तुम्हारे शरण हैं।

व्याख्या . सबके प्रिय होने का कारण सबका हितकारी होना है। हितकारी ही प्रिय होता है। दुख और सुख को समान मानना धीर का लक्षण है। यथा : सुख हरषहि जड दुख बिलखाही। दोउ सम धीर धरहि मन माही। जिनको सरकार के चरणो मे ममता होती है वे ही प्रशसा गाली के समान मानने मे समथ होते हैं। यथा : स्तुति निंदा उभय सम ममता मम पदकज। विचार पूर्वक सत्य

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रिय वचन बोलने की शास्त्राज्ञा है। यथा सत्य ब्रूयात् प्रिय ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्। प्रियञ्च नानृत ब्रूयादेषधर्मं सनातन। जीव का भगवत् शरण जाना ही सबसे बड़ा पुरुषार्थ है। गीता में स्वय भगवान् ने कहा है सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेक शरण व्रज। जाग्रत मे ऐसी भावना दृढ़ हो गयी है कि स्वप्न मे भी शरणागत ही रहते हैं।

ऐसे भक्त किष्किन्धाकाण्ड के पूर्वार्ध मे सुग्रीवजी हैं। इनका सर्वप्रिय होना इसी से सिद्ध है कि इनको लोगो ने इनके न चाहने पर भी राजा बनाया। यथा दीन्हेउ मोहि राज बरिआई। ये सबके हितकारी थे। वालि का भी इन्होने हित ही चाहा। यथा : वालि परम हित जासु प्रसादा। मिलेहु राम तुम समन बिपादा। इन्हे दु ख सुख प्रशसा गाली भी समान ही थी। यथा . सत्रु मित्र सुख दु ख जग माँही। मायाकृत परमारथ नाँही। ये सत्य और प्रिय वचन विचार पूर्वक बोलते थे। यथा : विषयवस्य सुर नर मुनि स्वामी। मैं पावँर पसु कपि अतिकामी। शरणागत तो ये सदा से ही थे। हनुमानजी कहते हैं . सो सुग्रीव दास तव अहई।

तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाही। राम बसहु तिन्ह के मन माही॥
जननी सम जानहि पर नारी। धनु पराव विष तें विष भारी॥३॥

अर्थ . जिन्हे तुम्हें छोडकर दूसरी गति नही है। हे रामजी ! तुम उनके मन मे बसो जो परायी स्त्री को माँ के समान जानते हैं। पराये धन को विष से भी भारी विष मानते हैं।

व्याख्या . सरकार को छोडकर सुग्रीवजी को दूसरी गति नही थी। यथा सुनि सुग्रीव परम भय माना। ऐसे भक्तो के हृदय मे रामजी तुम बसो। भाव यह कि जो एकाकी तुम्हे भजता है उसके हृदय में एकाकी बसो और जिसकी भावना सस्त्रीक सानुज मे हो उसके हृदय मे सस्त्रीक सानुज बसो।

मातृवत् परदारेषु परद्रव्येषु लोष्टवत्। आत्मवत्सर्वभूतेषु य पश्यति स पश्यति। अनुवाद मे उत्कर्ष और भी बढ गया। पर द्रव्य को लोष्ट · ढेला नही विष से भी अधिक विष बतलाया गया। यह पच नही सकता। प्राण हरण करेगा। पुत्र पौत्र को भी अनिष्टकर होगा।

जे [1]हरषहि पर संपति देखी। दुखित होहिं पर बिपत बिसेखी॥
जिन्हहि राम तुम्ह प्रान पिआरे। जिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे॥४॥

अर्थ : जो दूसरे की सम्पत्ति देखकर प्रसन्न होते हैं और दूसरे की विपत्ति देखकर दु खी होते हैं। जिनको रामजी तुम प्राण के समान प्यारे हो। उनके मन तुम्हारे लिए मङ्गलमय घर हैं।

व्याख्या . पर सम्पत्ति से हर्ष, पर विपत्ति से विशेष दु ख, अपने सुख दु ख मे

१ यहाँ उल्लास अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उतना हर्ष विषाद नही। यहाँ अनुवाद मूल से अधिक जोरदार उत्कर्षयुक्त हो गया। इनका हर्ष और दु ख भी अलौकिक हो गया। अपना सुख दु ख वैसा कार्य नही करता।

पुत्र कलत्र प्राण प्यारे नही। तुम जिसे प्राण प्यारे हो अथवा अन्य देव भी मान्य हैं पर प्राण प्यारे तो तुम्ही हो। अत उनका मन तुम्हारे शुभ सदन है।

ये किष्किन्धाकाण्ड के उत्तरार्ध के भक्त वानरवीर हैं जो सीताजी की खोज के लिए दक्षिण दक्षिण भेजे गये थे। *जननी सम जानहि पर नारी।* *यथा मदिर एक रुचिर तहँ बैठि नारि तप पुज। दूरि ते ताहि सबन्हि सिर नावा। धन पराव विष ते बिष भारी।* भूख प्यास से मर रहे थे। पर बिना मालिक की आज्ञा के पानी तक न ग्रहण किया। यथा तेहि तब कहा करहु जलपाना। खाहु सुरस सुदर फल नाना। पर सम्पत्ति से हर्ष यथा धन्य जटायू सम कोउ नाँही। पर दु ख से दु खी यथा अस कहि लवन सिधु तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई। राम तुम प्रानपियारे यथा राम काज लयलीन मन बिसरा तन कर छोह।

दो स्वामि सखा पितु मातु गुरु, जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मन मदिर तिन्ह के बसहु, सीय सहित दोउ भ्रात ॥१३०॥

अर्थ हे तात! जिनके तुम स्वामी सखा माता और गुरु सब कुछ तुम ही हो उसके मन मन्दिर मे सीता सहित दोनो भाई बसो।

व्याख्या जननी जनक बधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा। सबकै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बर डोरी। सब भाव से जो सरकार की ही उपासना करता है। सब नाता उन्ही से जोडे हुए हैं। अत वर्तमान सभी सम्बन्धी स्त्री और भाई सहित उसके मन मन्दिर म वास करो।

ऐसे भक्त सुन्दरकाण्ड के प्रारम्भ म हनुमानजी हैं। सरकार को ही स्वामी और पितु मातु मानते हैं। यथा *सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहइ असोच बनै प्रभु पोसे।* सरकार इन्हे सखा मानते है। यथा ये सब सखा सुनहु मुनि मोरे। भये समर सागर कहँ बेरे। शिष्य होकर स्वय हनुमानजी ने सरकार से प्रश्न किया था। यथा तापर मैं रघुबीर दोहाई। जानहुँ नहि कछु भजन उपाई।

अवगुन तजि सबके गुन गहही। बिप्र धेनु हित सकट सहही ॥
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका। घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका ॥१॥

अर्थ १ जो अवगुणो को छोडकर सबके गुणो को ग्रहण करते है। २ ब्राह्मण और गायो के लिए सकट सहते हैं। ३ नीति निपुण हाने की ससार मे जिनकी थाप है। उनका सुन्दर मन तुम्हारा घर है।

व्याख्या जिनका स्वभाव हस सा है। अवगुणरूपी जल का त्याग करके गुणरूपी दुग्ध का ग्रहण करते हैं। यथा सत हस गुण गहहि पय परिहरि बारि बिकार। विप्र धेनु यज्ञ के साधक हैं। विप्र म मन्त्र और गाय मे हवि प्रतिष्ठित है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इनकी रक्षा होनी ही चाहिए। अतः इनके लिए जो संकट सहते हैं। जो नीति में निपुण है। जिन्हे अनीति अच्छी नही लगती। ऐसे उत्तम हृदयवाले मनुष्य का हृदय तुम्हारा घर है। सरकार को नीति विरोध अच्छा नही लगता। यथा : नीति बिरोध सोहाइ न मोही। अतः मुनिजी नीति निपुण के हृदय में उन्हें बसने के लिए कहते हैं।

ऐसे भक्त सुन्दरकाण्ड के उत्तरार्ध मे विभीषणजी है। १. अवगुन तजि सबके गुन गहही। यथा : सुनहु पवन सुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महँ जीभ बिचारी २. विप्र धेनु हित यथा : बिप्र रूप धरि बचन सुनाये। सुनत बिभीषनु उठि तहँ आये इत्यादि। ३. नीति निपुन यथा : मै जानौ तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती।

गुन तुम्हार समुझाइ निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा॥
राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही॥२॥

अर्थ : १. जो गुण तो तुम्हारा और दोष अपना समझता है। २. जिसे सब भाँति से तुम्हारा भरोसा है। जिसको रामजी के भक्त प्यारे लगते है। उसके हृदय में वैदेही सहित वास करो।

व्याख्या : संसार मे उलटी बात है। जो बन जाय सो तो मैंने बनाया। बिगड़ जाय तो राम ने बिगाड़ा। यहाँ : गुन तुम्हार समुझै निज दोसा। संसार में धन जन परिजन गुण चतुराई का भरोसा रहता है। पर यहाँ तो सब भाँति राम का भरोसा है। राम का प्रिय लगना नही कहते पर भक्त प्रिय लगें। अर्थात् भक्ति पर विशेष श्रद्धा है। यथा : पुनि रघुबीरहिं भगति पियारी। अतः वैदेही सहित बसने को वाल्मीकिजी ने कहा।

इस प्रकार के भक्त लङ्काकाण्ड के पूर्वार्ध में समुद्रजी हैं। १. गुन तुम्हार समुझें निज दोषा। यथा : छमहु देव सब अवगुन मोरे। प्रभु भल कीन्हि मोहि सिख दीन्ही। २. जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा। यथा : प्रभु प्रताप मैं जाब सुखाई। उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई। ३. रामभक्त प्रिय। यथा : जल निधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहि श्रम हारी।

जाति पाँति धनु धरमु बड़ाई। प्रिय परिवार सदनु सुखदाई॥
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई। तेहि के हृदय रहहु रघुराई॥३॥

अर्थ : जाति, पाँति, धन, धर्म, बड़ाई प्रिय परिवार सुखदाई घर सब छोड़कर जो तुम्हारे मे लौ लगाये रहता है हे रघुराई! तुम उसके हृदय मे रहो।

व्याख्या : जाति पांति धन धर्म बड़ाई ये पाँच स्थान प्रतिष्ठा के हैं और परिवार तथा घर दो सुख के हैं। सो सबों को छोड़कर मन की वृत्तियो को तुम्हारे मे लगावे उसके हृदय में रहो। वह अकेला है और अकेले तुम्ही मे लौ भी लगाये है। अतः अकेले आप भी रहो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ऐसे भक्त लङ्काकाण्ड के उत्तरार्ध में वानर सैनिक हैं। यथा : जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा। हरखे देव बिलंब न कीन्हा। बनचर देह धरी छिति माँही। अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाही। गिरि तरु नख आयुध सब बीरा। हरि मारग चितवहिं मति धीरा। तथा : सुनु सुरपति कपि भालु हमारे। परे भूमि निसिचरन्ह जे मारे। मम हित लागि तजे इन्ह प्राना। सकल जियाउ सुरेस सुजाना।

सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना॥
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि के उर डेरा॥४॥

अर्थ : जिसे स्वर्ग नरक और मोक्ष समान है। सर्वत्र ही धनुर्बाणधारी को देखता है। मनसा वाचा कर्मणा आप का दास है। उसके हृदय में डेरा लगाओ।

व्याख्या : १. जो सर्वत्र धनुर्बाणधारी सरकार को देखता है। उसके लिए स्वर्ग नरक दोनों समान है।

२ मनसा वाचा कर्मणा सेवा में रत है। जिसे दूसरे का भरोसा नही। ऐसे भक्त उत्तरकाण्ड के पूर्वार्ध मे सनकादिक हैं। ये सभी जगह सरकार को देखते हैं। अभेददर्शी हैं। यथा : रूप धरें जनु चारिउ बेदा। समदरसी मुनि बिगत बिभेदा। ३ सरकार मे रति। यथा : आसा बसन ब्यसन यह तिनही। रघुपति चरित होहिं तहँ सुनही। ये असङ्ग विचरनेवाले हैं। गृही नही हैं। अतः इनके हृदय मे आप भी संग रहित होकर डेरा कीजिये।

दो. जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु, तुम्ह सन सहज सनेहु।
बसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निज गेहु॥१३१॥

अर्थ : जिसे कभी कुछ भी नही चाहिए और तुमसे जिसका स्वाभाविक प्रेम है उसके हृदय में निरन्तर वास करो। यही आपका अपना घर है।

व्याख्या : किसी काल मे किसी वस्तु की इच्छा नही। ऐसे भक्त भुसुण्डिजी हैं। यथा : मन से सकल बासना भागी। केवल रामचरन लय लागी। ऐसे का हृदय खास घर है। अतः इसमे निरन्तर रहो। ये ही चौदह भक्तिसूत्र वाल्मीकिजी से गोस्वामीजी को मिले हैं और इन्ही के भाष्यरूप मे सम्पूर्ण ग्रन्थ लिखा गया है।

एहि बिधि मुनिवर भवन देखाये। बचन सप्रेम राम मन भाये॥
कह मुनि सुनहु भानु कुल नायक। आश्रमु कहउँ समय सुखदायक॥१॥

अर्थ : इस प्रकार मुनिजी ने घर दिखाये। उनके प्रेमयुक्त वचन रामजी को अच्छे लगे। मुनिजी ने कहा कि हे सूर्यकुल के नायक! सुनिये। अब इस समय सुख देनेवाला आश्रम बतलाता हूँ।

व्याख्या : मुनिजी विधि के साथ बालकाण्ड से लेकर उत्तरकाण्ड तक के भक्तो के मन को रहने के लिए दिखलाते गये। समझा कि अवध के महल मे रहनेवाले हैं। जहाँ क्रोध के लिए भी पृथक् भवन बना हुआ है। कही सीताजी के

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ाथ रहते हैं। कही एकान्त में एकाकी रहते हैं। कही लक्ष्मणजी भी आजाते है। इनका एक भवन से काम नही चल सकता। इसलिए चौदह भवन दिखलाया और अनेक प्रकार से रहना कहा। बानी मधुर अमिअ रस बोरी से उपक्रम और वचन सप्रेम से उपसंहार किया। अतः राम मन भाये कहकर प्रभु की स्वीकृति दिखलाया। मुनिजी के गौरव से स्पष्ट एवमस्तु न कहा।

भानुकुलनायक से लीलाविग्रह सूचित करते हैं। समय सुखदायक से भाव यह कि अन्तर्यामी रूप योग्य गृह। इस समय के लीला विग्रह के अनुकूल नही है। अतः इस समय के लिए सुखदायक स्थान बतलाते हैं।

चित्रकूट गिरि करहु निवासू। तहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू॥
सैलु सुहावन कानन चारू। करि केहरि मृग बिहग बिहारू॥२॥

अर्थ : चित्रकूट पर्वत पर निवास करो। वहां तुम्हारे लिए सब प्रकार की सुविधा है। सुहावना पर्वत है। सुन्दर वन है। हाथी सिंह मृग और पक्षी विहार किया करते हैं।

व्याख्या : रामजी ने पूछा था : अब जहँ राउर आयसु होई : बास करहु कछु काल कृपाला। उसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि चित्रकूट पर्वत पर निवास करो। यहां आपके लिए सब प्रकार की सुविधा है। बड़ा सुहावना पर्वत है। राजधानी बनाने लायक है। वन भी बड़ा सुन्दर है। वन की सम्पत्ति से सम्पन्न है। उसीको इस समय राज्य बनाइये : इसका विस्तार भरतजी के आगमन के प्रसङ्ग मे कहा गया है।

नदी पुनीत पुरान बखानी। अत्रि प्रिया निज तपबल आनी॥
सुरसरि धार नाउँ मंदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि॥३॥

अर्थ : पवित्र नदी है। जिसकी प्रशंसा पुराणो में है। इसे अत्रिजी की स्त्री अपने तपबल से लायी है। यह गङ्गाजी की धारा है। इसका नाम मन्दाकिनी है। पापरूपी बच्चों के लिए डाकिनीरूप है।

व्याख्या : जलाशय का सान्निध्य कहते हैं। मन्दाकिनी नदी वहां बहती है। बड़ी पवित्र है। गङ्गा की धारा है। भगीरथ तपबल से भागीरथी को लाये हैं और इसे अत्रिप्रिया अपने तपबल से लायी हैं। बड़े बडे महापातक इसके आहार हैं। जैसे डाइन बच्चों को खा जाती है उसी भाँति यह महापातकों को खा जाती है।

अत्रि आदि मुनिवर बहु बसही। करहिं जोग जप तप तन कसही॥
चलहु सफल श्रम सब कर करहू। राम देहु गौरव गिरिबरहू॥४॥

अर्थ : अत्रि आदि बहुत से श्रेष्ठ मुनि वहां निवास करते हैं। योग और जप करते हैं तथा तप से शरीर को कसते हैं। रामजी! चलो सबके परिश्रम को सफल करो और पर्वत श्रेष्ठ को बड़ाई दो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या मुनियो के सत्सङ्ग की तुम्हे बडी चाह रहती है। यथा मुनिगन मिलन विसेष बन सर्वहि भाँति हित मोर। सो अत्रि आदि बडे बडे मुनीश्वर वहाँ बसते है। जो मनसा वाचा कर्मणा परलोक जय मे लगे हुए हैं। योग से मनोनिग्रह जप से वाणी का सदुपयोग तथा तप से शरीर का कसना कहा। यथा भरत भवन बसि तप तन कसही। दह दिनहुँ दिन दूबरि होई। घटइ तेजुबलु मुख छवि सोई।

तुम्हारे वहाँ चलने से सबका श्रम सफल होगा। क्योकि योग जप तप सब तुम्हारी प्राप्ति के लिए ही लोग करते है और तुम्हारे निवास से चित्रकूट की महिमा बढेगी। अत पर्वत श्रेष्ठ को बडाई दो। वह मेरुसे विमुक्त होकर विन्ध्य का शृङ्ग हो रहा है।

## १६ चित्रकूट निवास प्रसङ्ग

दो चित्रकूट महिमा अमित, कही महामुनि गाइ।
आइ नहाये सरित वर, सिय समेत दोउ भाइ ॥१३२॥

अर्थ महामुनि ने चित्रकूट की अपार महिमा का वर्णन किया। तब सीता सहित दोनो भाइयो ने आकर उस श्रेष्ठ नदी म स्नान किया।

व्याख्या वाल्मीकिजी महामुनि हैं। इनका वर्णन अमोघ है। इन्होने चित्रकूट की अपार महिमा कही। चित्रकूट वस्तुत पर्वता म जा परमेश्वर की विभूति मेरु पर्वत है उसका शिखर है। एकबार मेरु के गर्व से क्रुद्ध होकर वायुदेव ने उसे उडा देने की ठान ली। भगवान् ने उसकी सहायता के लिए गरुडजी को भेजा। उन्होने मेरु को अपने डैनो से आच्छादित कर लिया। अत वायु के प्रचण्ड वेग से भी मेरु की कोई हानि न हुई। मेरु ने कहा कि गरुडजी! मुझ तो कुछ पता नही चल रहा है। वायु कुछ बल दिखा रहे हैं कि नही। गरुडजी ने कहा कि बोलो मत। दबके पडे रहो। बडी आपत्ति है। मरु ने कहा कि तनिक सा मुझ भी सामना करने का अवसर दो। गरुडजी ने थोडा सा डैना खिसका दिया तो दो शृङ्ग उड गये। एक वृन्दावन मे गिरा जिसका गोवर्धन नाम है। दूसरा विन्ध्य शृङ्खला म जा गिरा जिसे चित्रकूट कहते हैं। ये दोनो महामहिम शृङ्ग दवताओ के विहार स्थल मेरु के हो है। अत पर्वतो मे इनकी महिमा है।

मालूम होता है कि मुनिजी भी सरकार के साथ चित्रकूट आये। अत विदाई नही लिखी। आकर दोनो भाइयो ने सीताजी के सहित वियद्गङ्गा मन्दाकिनी म स्नान किया। यहाँ आकर कहने का भाव है कि कवि अपने को चित्रकूट म मान रहे हैं।

रघुबर कहेउ लखन भल घाटू। करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू ॥
लखन दीख पय उतर करारा। चहुँ दिसि फिरेउ धनुष जिमि नारा ॥१॥

अर्थ रामजी ने कहा कि हे लक्ष्मण! घाट अच्छा है। अब कहो ठहरने का

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ठिकाना करो। लक्ष्मणजी ने पयस्विनी नदी के उत्तर का करार देखा। जिसके चारो ओर धनुष की भाँति नाला फिरा हुआ था।

व्याख्या नहाने के बाद घाट की प्रशसा की और लक्ष्मणजी से कहा कि यही कही ठहरने की व्यवस्था करनी चाहिए। लक्ष्मणजी ने पयस्विना नदी के उत्तर के किनारे को पसन्द किया। क्योकि उसके चारो ओर स्वभाव से ही रक्षा की व्यवस्था है। तीन तरफ तो एक नाला धनुष की भाँति घूमा हुआ है और दोनो ओर से पयस्विनी नदी मे जा मिला। इस भाँति चारो ओर स्वभाव से खाईं बनी हुई है।

नदी पनच सर सम दम दाना। सकल कलुष कलि साउज नाना॥
चित्रकूट जनु अचलु अहेरी। चुकइ न घात मार मुठभेरी॥२॥

अर्थ नदी मानो प्रत्यञ्चा है। शम दम दान बाण है। कलियुग के सब पाप शिकार हैं। चित्रकूट पर्वत ही मानो शिकारी है। मुठभेड के युद्ध मे उसकी चोट खाली नही जाती।

व्याख्या नदी मानो प्रत्यञ्चा है। बराबर धनुष पर मानो प्रत्यञ्चा चढा ही रहता है। शम दम और दान ये तीन प्रकार के बाण हैं। नदी का आश्रयण करके इनका अनुष्ठान करने से कलियुग के सम्पूर्ण पाप मारे पडते हैं। वे ही मानो शिकार हैं।

अहेरी बडे चञ्चल होते हैं। लेट बैठकर दौडकर चोट करते है। पर चित्रकूट रूपी अहेरी अचल है। पर घात कभी नही चूकता। सामने जाते ही मारता है। शिकारी को शिकार पर बडा चोप होता है। इसी भाँति चित्रकूट को कलिकलुप विध्वसन का बडा चोप है। पाप को मन्दाकिनी खा जाती है और कलिकलुप को चित्रकूट नष्ट करता है।

अस कहि लखन ठाउँ देखरावा। थलु बिलोकि रघुबर सुखु पावा॥
रमेउ राम मनु देवन्ह जाना। चले सहित सुर थपति प्रधाना॥३॥

''अर्थ : ऐसा कहकर लक्ष्मणजी ने स्थान दिखाया। स्थल के देखने से रामजी को सुख हुआ। देवताओ ने जाना कि रामजी का मन रम गया। सो देवताओ के थवइयो मे : स्थपति प्रधान विश्वकर्मा के साथ चले।

व्याख्या · रामजी ने कहा : करहु कतहुँ अब ठाहर ठाटू। सो लक्ष्मणजी ने जगह तजवीज करके रामजी को दिखलाया। भाव यह कि मुझे तो पसन्द है। यदि सरकार को भी पसन्द हो। सरकार को बहुत पसन्द आया। इसलिए दर्शन मात्र से सुख पाना लिखते हैं . चित्रकूट भी अहेरी है। सरकार भी अहेरी हैं।

इधर देवताओ ने जान लिया कि यह स्थल सरकार को पसन्द है। यही ठहरेगे। अत विश्वकर्मा को साथ लेकर कुटी बनाने चले। सरकार को सुन्दर पर्णशाला की रुचि है। मुनिजी से कहा है · तहँ रचि रुचिर परन तृन साला। बास करहुँ कछु काल कृपाला। इसलिए देवताओ ने विश्वकर्मा को साथ लिया सोचा कि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हम लोगों के कारण अयोध्या का राजप्रसाद छोड़ा है। कुटी बनाकर रहना चाहते हैं। अतः पर्णशाला इनके रहने योग्य बननी चाहिए।

कोल किरात बेष सब आये। रचे परन तृन सदन सुहाये ॥
बरनि न जाहिं मंजु दुइ साला। एक ललित लघु एक बिसाला ॥४॥

अर्थ : सब कोल किरात के वेष मे आये और पत्ते तथा तृणो के घर बनाये। दो घर ऐसे सुन्दर बनाये कि जिनका वर्णन नही हो सकता। उसमे एक सुन्दर छोटा सा है और एक बड़ा।

व्याख्या : यदि देवता लोग अपने वेष से आते तो सरकार सेवा न लेते। इसलिए कोलकिरात का वेष धारण करके आये और पत्ते तथा तृणशाला बनाने लगे। विश्वकर्मा बनाने मे लगे है। अत: पर्ण तृणशालाएँ ऐसी बनी कि उनका वर्णन नही हो सकता। लक्ष्मणजी के रहने के लिए एक छोटी सुन्दर सी शाला बनायी और सरकार के लिए बड़ी शाला बनायी। क्योकि जगदम्बा साथ मे थी।

दो. लखन जानकी सहित प्रभु, राजत रुचिर निकेत।
सोह मदनु मुनि बेष जनु, रति रितु राज समेत ॥१३३॥

अर्थ : लक्ष्मण और जानकी सहित प्रभु उस पर्णशाला मे ऐसे विराजमान हुए मानो कामदेव रति और वसन्त के साथ मुनि का वेष धारण किये हुए हैं।

व्याख्या : जो सुन्दर है वह सभी अवस्था मे सुन्दर है। सरकार लक्ष्मण और जानकीजी के साथ मुनिवेष से पत्तें की कुटिया मे ठहरे है। पर वहाँ भी उनकी शोभा है। मानो स्वय काम ने अपनी प्रिया रति तथा सखा वसन्त ऋतु के साथ मुनिवेष धारण कर रक्खा है।

अमर नाग किन्नर दिसिपाला। चित्रकूट आए तेहि काला ॥
रामु प्रनामु कीन्ह सब काहू। मुदित देव लहि लोचन लाहू ॥१॥

अर्थ : देवता, नाग, किन्नर और दिक्पाल उस समय चित्रकूट आये। रामजी ने सबको प्रणाम किया। देवता लोग नेत्र का फल पाकर प्रसन्न हुए।

व्याख्या : अमर नाग किन्नर दिक्पाल कहने का भाव कि सभी श्रेणी के देवता उस समय चित्रकूट आये। जिस भाँति नारदजी को सोच हुआ था : बिरहवत भगवतहि देखी। नारद मन भा सोच बिसेखी। मोर श्राप करि अंगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा। उसी प्रकार का भाव देवताओ के भी हृदय मे उदय हुआ कि हम लोगो के कारण रामजी आज अयोध्या का राजप्रासाद छोडकर पर्णकुटी मे निवास कर रहे हैं। अत इस समय दर्शन के लिए उपस्थित होना चाहिए। इस प्रकार से प्रत्यक्ष रूप से देवता लोग कभी नही आये थे।

मर्यादापुरुषोत्तम रामजी ने सबको प्रणाम किया। देवता लोग सरकार का

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दर्शन पाकर प्रसन्न हो गये। इन लोगों ने भी रामजी के दर्शन से अपने नेत्रों का साफल्य माना।

बरषि सुमन कह देव समाजू। नाथ सनाथ भये हम आजू॥
करि बिनती दुख दुसह सुनाये। हरषित निज निज सदन सिधाये॥२॥

अर्थ : देव समाज ने पुष्पवर्षा कर दी और कहने लगे कि हे नाथ! आज हम लोग सनाथ हो गये। विनती करके अपना दु.सह दु.ख सुनाया और प्रसन्न होकर अपने अपने घर गये।

व्याख्या : इन्ही लोगो ने कुमन्त्रणा करके सरस्वती द्वारा मन्थरा तथा कैकेयी की बुद्धि को पलटवाया। फलतः रामजी को वनवास मिला। अत. अपने को सापराध मान रहे हैं। सबने पुष्पाञ्जलि दी। अतः फूलो की वर्षा हो गयी। बोले कि हम लाग अनाथ हो रहे थे। जब सरकार ने इतना कष्ट उठाया कि हम लोगो के लिए आज पर्णशाला मे निवास स्वीकार किया तो हम लोग सनाथ हो गये। इस भाँति अनेक विनती करके अपना अपना दुसह दु.ख सुनाया कि रावण के मारे हम लोगो के लोक उजाड़ हो गये। रावण के दरबार मे हाथ जोड़कर खडा रहना पड़ता है। तिस पर भी इज्जत नही बचती। देव जच्छ गधर्व मुनि किन्नर नाग कुमारि। जीति बरी निज बाहु बल बहु सुन्दर बर नारि। इत्यादि। अपनी रक्षा के लिए सन्नद्ध मालिक से अपना सब दु.ख सुना देने से सन्तुष्ट है। उन्हे अनुकूल देखकर प्रसन्न हो घर लौट गये।

चित्रकूट रघुनंदनु छाये। समाचार सुनि सुनि मुनि आये॥
आवत देखि मुदित मुनि बृंदा। कीन्ह दंडवत रघुकुल चंदा॥३॥

अर्थ : श्रीरामजी चित्रकूट मे आ बसे हैं। यह समाचार सुन सुनकर मुनि लोग आये। मुनिवृन्द को आनन्दित हुए आते देखकर रघुकुल के चन्द्रमा रामचन्द्र ने दण्डवत् प्रणाम किया।

व्याख्या : देवताओ को सब पता था। इसलिए कोल किरात वेष से आकर पर्णशाला बना गये। फिर अपने रूप से आकर अपना दुःख निवेदन कर गये। पर मुनि लोगो को सरकार के निवास करने के बाद पता चला। अत. पीछे से मुनि लोग आये। सरकार ने देखा कि मुनि लोग बडे प्रसन्न चले आ रहे हैं। देवताओ से भी अधिक आदर सरकार के हृदय मे मुनियो का है। अत साष्टाङ्ग दण्डवत् किया। रघुकुल के चन्द हैं। सभी चकोरो को एक साथ प्रणाम करने मे समर्थ हैं। अथवा रघुकुल मे मुनियो का बड़ा आदर है और ये तो उस कुल के चन्द्रमा हैं। ये क्यो न इतना आदर करें।

मुनि रघुबरहि लाइ उर लेही। सुफल होन हित आसिष देही॥
सिय सौमित्रि राम छबि देखहि। साधन सकल सफल करि लेखहि॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ मुनि लोग रामजी को कलेजे से लगा लेते हैं और वाणी की सफलता के लिए उन्हे आशीर्वाद देते है। सीता लक्ष्मण और रामजी की छवि देखते हैं और अपने सब साधनो को सफल मान रहे हैं।

व्याख्या सरकार के उन्मादकारी सौन्दर्य पर मुनिगण मोहित हैं। कलजे से लगाते हैं। सरकार की महिमा जानते है। फिर भी आशीर्वाद अपनी वाणी की सफलता के लिए देते है। भाव यह कि इनके कल्याण मे सन्देह क्या ? अत जो आशीर्वाद इन्हे देंगे सभी सफल होगे। ये ही मुनि लोग कृष्णावतार म गोपिका हुए। तीनो मूर्तियो की छवि के दर्शन से अपने साधन की सफलता मानते हैं। यथा आज सफल तप तीरथ त्यागू। आज सफल जप जोग विरागू। सफल सकल सब साधन साजू। राम तुम्हहि अवलोकत आजू। वाल्मीकिजी ने जो कहा था चलहु सफल श्रम सबकर करहू सो सब का श्रम सफल हुआ।

दो जथाजोग सनमानि प्रभु, बिदा किये मुनि बृंद।
करहिं जोग जप जाग तप, निज आश्रमन्हि सुछंद ॥१३४॥

अर्थ प्रभु ने जो जिस योग्य था उसका वैसा सम्मान करके विदा किया। व लोग अपने अपने आश्रमो म स्वतन्त्र होकर याग यज्ञ जप तप करने लगे।

व्याख्या साष्टाङ्ग दण्डवत् तो प्रभु ने सबको समान रूप से ही किया। पर सम्मान मे योग्यता के तारतम्य पर ध्यान रक्खा। मिलने के बाद सबको विदा किया। अब ये लोग अपने अपने आश्रमो म योग यज्ञ जप स्वच्छन्द होकर करते हैं। पहिले राक्षसो को डरते थे। अत स्वच्छन्दता नही रही। वाल्मीकिजी ने यज्ञ का नाम नही लिया। इतना ही कहा करहि योग जप तप तन कसही। योग जप तप तो छिपकर भी हो सकता है। पर यज्ञ तो छिपकर नही हो सकता और देखत जग्य निसाचर धावहिं। करहिं उपद्रव मुनि दुख पावहिं। सो मुनि लोग यज्ञ नही कर सकते थे। अब किसी का डर नही। स्वच्छन्द होकर यज्ञ भी करते हैं।

यह सुधि कोल किरातन्ह पाई। हरषे जनु नव निधि घर आई॥
कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रंक जनु लूटन सोना ॥१॥

अर्थ यह समाचार कोल किरातो को मिला। व ऐसे प्रसन्न हुए मानो नवोनिधि घर म आगयो। वे कन्द मूल फल दोना भर भर क ऐसे चल जैसे दरिद्र सोना लूटने चले हो।

व्याख्या मुनिवृन्द का जाते और लौटते देखकर जिज्ञासा हुई कि क्या बात है। तब पता लगा। केवल पता लगने का यह माहात्म्य है कि उन्हे ऐसा आनन्द हुआ कि नवोनिधियाँ घर म आगयी। महापद्मश्च पद्मश्च शंखो मकरकच्छपौ। मुकुन्दकुन्दनीलाश्च खर्वश्च निधयो नव। निधि का अर्थ खजाना भी है पर खजाने का आना नही बनता। इसलिए नवनिधि की अधिष्ठात्री देवो अर्थ किया गया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



देवता और ऋषियो को भेंट मिला करती है। इसलिए वे लोग भेंट लेकर नही आये। ये भेंट लेकर भी चले। जो जिसके पास होता है वही भेंट भी देता है। इनके पास कन्द मूल फल छोडकर और क्या है। इसलिए कन्द मूल फल को दोनो मे भर भरकर ऐसे आह्लाद से चले जैसे दरिद्र जिसे अन्न भी मिलना कठिन हो सुने कि सोने की लूट हो रही है और दौड पडे। उसी भाँति ये भी चले।

तिन्ह महँ जिन्ह देखे दोउ भ्राता। अपर तिन्हहि पूछहि मगु जाता॥
कहत सुनत रघुबीर निकाई। आइ सबन्हि देखे रघुराई॥२॥

अर्थ उनमे से जिन्होंने दोनो भाइयो को देखा था दूसरे रास्ते म जाते हुए उनसे पूछते हैं। इस भाँति रामजी की सुन्दरता कहते सुनते आकर सबो ने रघुराई को देखा।

व्याख्या कुछ देखकर लौट रहे थे। उनसे सरकार के विषय मे प्रश्न करते हैं कि तुम देख आये। बतलाओ तो कैसे सुन्दर है? कैसा स्वभाव है? वे भी वर्णन करते हुए साथ हो लिये। इस भाँति सौन्दर्य और स्वभाव का वर्णन करते हुए और सुनते हुए सबो ने आकर सरकार को देखा।

करहि जोहारु भेंट धरि आगे। प्रभुहि बिलोकहिं अति अनुरागे॥
चित्र लिखे जनु जहँ तहँ ठाढे। पुलक सरीर नयन जल बाढे॥३॥

अर्थ भेंट सामने रखकर जोहार करते हैं और बडे प्रेम से प्रभु का दर्शन करते है। जैसे चित्र मे लिखे हो वैसे ही जो जहाँ था वह वही खडा रह गया। उनके शरीर पुलकित हो गये और नेत्रो मे जल भर आया।

व्याख्या कन्द मूल फल जो दोना म भरकर लाये थे उन्हे पहिले भेंट के रूप म सामने रक्खा तब जोहार किया। आजकल जैस हाथ म लोग सलाम करते हैं उसी भाँति दोना हाथो से जोहार किया जाता है। तत्पश्चात् सरकार के रूप माधुर्य का दर्शन करते हुए प्रेम मे मग्न होकर एकदम स्तब्ध हो जाते है। उनका कोई अङ्ग हिलता नही। मानो चित्र मे लिखे है। सात्त्विक भाव हो जाने से शरीर मे पुलक हो गया है और नेत्रो म जल है।

राम सनेह मगन सब जाने। कहि प्रिय बचन सकल सनमाने॥
प्रभुहि जोहारि बहोरि बहोरी। बचन बिनीत कहहि कर जोरी॥४॥

अर्थ रामजी ने जान लिया कि सब स्नेह म मग्न है। अत प्रिय वचन बोलकर सबका सम्मान किया। बार बार जोहार करते हैं और विनययुक्त वचन हाथ जोडकर कहते हैं।

व्याख्या देखा कि सब प्रेम मे डूबाडूब हैं। कोई कुछ बोलता नही तो स्वय सरकार ही प्रिय वचन बोले। तुम लोग राजी तो हो। बाल बच्चे तो राजी हैं। वन

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मे फल मूल तो यथेष्ट रूप से प्राप्त होता है। तुम लोगो को कोई कष्ट तो नही है इत्यादि।

सरकार की वाणी सुनकर और भी प्रेम बढा। अत बार बार जोहार करते है और विनीत वचन हाथ जोडकर बोलते है।

दो. अब हम नाथ सनाथ सब, भये देखि प्रभु पाय।
भाग हमारे आगमन, राउर कोसलराय ॥१३५॥

अर्थ : अब हम प्रभु के चरणो के दर्शन से सनाथ हो गये। हे कोशलराय! हमारे भाग्य से आपका यहाँ आगमन हुआ है।

व्याख्या : मालिक के चरण दर्शन से दास सनाथ हो जाते हैं। नाथ के चरण दर्शन न होने से जीव अनाथ रहते हैं। कोसलराय के वन मे आकर बसने का प्रयोजन क्या? यह मेरा भाग्य ही है जो आप यहाँ आ बसे हैं। देवताओ से प्रेमाधिक्य मुनियो ने दिखाया। अब उनसे भी अधिक प्रेम कोल किरातो मे दिखलाते है। पिता दीन्ह मोहि कानन राजू का साफल्य स्पष्ट दिखायी पड रहा है।

धन्य भूमि बन पंथ पहारा। जहँ जहँ नाथ पाउ तुम्ह धारा॥
धन्य बिहँग मृग कानन चारी। सफल जनम भए तुम्हहि निहारी ॥१॥

अर्थ : हे नाथ! जहाँ जहाँ तुमने पाँव रक्खे वह भूमि वन रास्ता और पहाड धन्य हैं। ये वनचारी पशु पक्षी धन्य हैं जिनके जन्म तुम्हारे दर्शन से सफल हो गये।

व्याख्या घर से चलने मे भूमिखण्ड वन मार्ग और पहाड अवश्य ही मिले होगे। क्योंकि इस घोर वन मे बिना वन पहाड आदि उल्लघन किये कोई आ नही सकता। वे सब आपके चरण स्पर्श से धन्य हो गये प्रेम के आवेश मे कोल किरातो के मुख से ऐसी बातें निकल रही है जो शास्त्र सम्मत है।

नगर के विहँग मृग तो तुम्हारा दर्शन पाते ही थे। पर अब तो जङ्गल के विहँग मृग धन्य हो रहे हैं। दर्शन पा रहे हैं। उनका जन्म सफल हो गया। यथा : राम चरन वारिज जब देखौ। तब निज जन्म सफल करि लेखौ।

हम सब धन्य सहित परिवारा। दीख दरसु भरि नयन तुम्हारा॥
कीन्ह बासु भल ठाउ बिचारी। इहाँ सकल रितु रहब सुखारी ॥२॥

अर्थ : हम सब तो सकुटुम्ब धन्य हो गये। क्योकि तुमको आँख भरकर देख रहे हैं। तुमने बहुत अच्छी जगह तजबीज करके निवास किया है यहाँ पर सभी ऋतुओ मे सुखी रहोगे।

व्याख्या भूमि वन पथ पहाड जड है वे देख नही सकते। अत चरण स्पर्श से धन्य हुए। वनचारी विहँग मृग उनकी अपेक्षा चेतन है। देख सकते है। वे चलते फिरते दृष्टि पड जाने से धन्य हुए। पर हम लोग तो बालबच्चो के साथ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



धन्य हुए। क्योंकि आँख भरकर देख रहे है ' जे हर हिय नयनन्हि कबहुँ निरखे नही अघाय।

उन कोल किरातो ने इस बात पर भी विचार किया कि यहाँ पर सरकार ठहरे है तो किसी प्रकार का कष्ट तो नही होगा। तो इसी निश्चय पर पहुँचे कि यह स्थल सभी ऋतुओ मे सुखदायक है। अत सरकार के पसन्द का अनुमोदन करते हैं कि निवास स्थान सरकार ने ठीक तजबीज किया।

हम सब भाँति करब सेवकाई। करि केहरि अहि बाघ बराई ॥
बन बेहड़ गिरि कंदर खोहा। सब हमार प्रभु पग पग जोहा ॥३॥

अर्थ : हम लोग हाथी सिंह सर्प और व्याघ्र को इधर आने ही न देगे। सब प्रकार से सेवा करेगे। वन अगम्य पर्वतो को अगम्य कन्दराएँ और खोह सबके सब हमारे रत्ती रत्ती देखे हुए हैं।

व्याख्या हम लोग सरकार की सब भाँति से सेवा करेंगे। ईंधन पत्ता कन्द मूल फल आदि से तो सेवा करेहीगे। खतरे मे भी बँचावेंगे। करि केहरि को इधर न आने देना कौन सी बडी बात है। हम साँप को भा इधर से न आने देंगे।

बोहड वन मे करि केहरि कन्दर मे सर्प, और खोह मे व्याघ्र रहते हैं। सो सब हमारे रत्ती रत्ती देखे हुए हैं। करि केहरि अहि व्याघ्र के निवास स्थान जानते हैं। उनकी सख्या जानते है। उन्हे बहकाकर दूसरे रास्ते मे कर देना जानते हैं।

तहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलाउब। सर निरझर जल ठाँउ देखाउब ॥
हम सेवक परिवार समेता। नाथ न सकुचब आयसु देता ॥४॥

अर्थ : हम आपको जहाँ तहाँ शिकार खेलावेंगे। तालाब झरने और रमणीय स्थल दिखलावेंगे। हम परिवार सहित सरकार के सेवक हैं। नाथ ! आज्ञा देने मे सङ्कोच न करियेगा।

व्याख्या ' आज भी जङ्गली ही शिकार खेलाते हैं। इसलिए कहते हैं कि तालाब झरना जहाँ जहाँ जानवर पानी पीने जाते हैं और रम्यस्थल जहाँ वे रहते हैं सब तुमको दिखायेंगे। हँकवा करके आपके सामने ला देंगे। वे सब समझ रहे हैं कि बडे शिकारी हैं। शिकार के लिए यहाँ ठहरे हुए हैं।

दो बेद बचन मुनि मन अगम, ते प्रभु करुना अयन।
बचन किरातन्ह के सुनत, जिमि पितु बालक बयन ॥१३६॥

अर्थ जो वेद के लिए वचन से अगम्य हैं। मुनि के लिए मन से अगम्य हैं। वे करुणायतन किरातो की बातें इस भाँति सुन रहे हैं जैसे बाप बच्चो की बातो को सुनता है।

व्याख्या नेति नेति जेहि वेद निरूपा। अत वेद वचन से अगम और जितिपवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुक पावही। अत मुनि मन अगम है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रभु ऐसे करुणायतन हैं कि किरातो की बातें मन लगाकर बडे चाव से सुन रहे हैं। जैसे पिता बालक की बातें सुनता है। यथा जौ बालक कह तोतरि बाता। सुनहि मुदित मन पितु अरु माता।

रामहि केवल प्रेमु पिआरा। जानि लेउ जो जाननिहारा॥
राम सकल बनचर तव तोषे। कहि मृदु वचन प्रेम परिपोष॥१॥

अर्थ रामजी को केवल प्रेम ही प्यारा है। जो जाननेवाला हो जान ले। रामजी ने सब जङ्गलियो को प्रेम से परिपुष्ट कोमल वचन कहकर तुष्ट किया।

व्याख्या जप योग नियमव्रत रहित प्रेम केवल प्रेम है। सो रामजी को केवल प्रेम प्यारा है। यथा जो जप जाग जोग व्रत वर्जित केवल प्रेम न चहते। तौ कत सुर मुनिवर विहाय व्रज गोपगेह बसि रहते। केवल प्रम पर सरकार रीझ जाते हैं। यथा रीझत राम सनेह निसोते। ग्रन्थकार कहत हैं कि इस प्रसङ्ग से जो जिज्ञासु है वे जान लें।

प्रेम की प्यास को सरकार ने प्रिय वचन से शान्त किया। मृदु वचन से ही प्रेम परिपुष्ट होता है। यह सरकार की बडाई है कि वनचर को भी तुष्ट करते हैं।

बिदा किए सिरु नाइ सिधाए। प्रभु गुन कहत सुनत घर आए॥
एहि बिधि सिय समेत दोउ भाई। बसहिं बिपिन सुर मुनि सुखदाई॥२॥

अर्थ विदा किया तो प्रणाम करके चल। सरकार के गुणा को कहते सुनते घर आये। इस भाँति सुरमुनिसुखदायी दानो भाई सीता सहित वन म वसने लगे।

व्याख्या आश्वासन देकर देवताओ को विदा किया। सम्मान करके मुनियो को विदा किया। अब प्रम से परितुष्ट करके कोल किरातो को विदा किया। सरकार की निकाई कहते सुनत आये थे। अब प्रभु का गुण कहत सुनते घर लौटते हैं।

दरबार लगा रहता है। कभी देवता लोग आये। कभी मुनिगण पधारे। कभी कोल किरात हाजिर हुए। इस भाँति प्रभु वन मे सुखी होकर बसते है। सुर मुनि के सुख के लिए ही वनवास अङ्गीकार किया है।

जव तें आइ रहे रघुनायकु। तब तें भयउ बनु मगल दायकु॥
फूलहि फलहि बिटप बिधि नाना। मजु बलित बर बेलि बिताना॥३॥

अर्थ जव से रघुनायक आकर वसे तब स वन मङ्गलदायक हो गया। नाना प्रकार के पेड फूल और फल से भरे हुए है। सुन्दर लताओ ने लिपटकर मण्डप बना रक्खा है।

व्याख्या जब से प्रभु आकर ठहरे तव से प्रकृति मे परिवर्तन हो गया। वन मे अनेक प्रकार के पेड हैं। उनके फूलने और फलने का समय अलग अलग है। पर प्रभु के पदार्पण का यह प्रभाव है कि सब वे सब फूल फल रहे है। इस भाँति भयानक

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वन भी मङ्गलदायक हो गया। इस प्रकार का प्रकृति में परिवर्तन प्रभु के पूर्णावतार का द्योतक है। इनके सयोग से चराचर सुखी तथा वियोग में दुःखी हो जाते हैं।

सुरतरु सरिस सुभाय सुहाये। मनहुँ बिबुध बन परिहरि आये ॥
गुंज मंजुतर मधुकर श्रेनी। त्रिविध बयारि बहइ सुख देनी ॥४॥

अर्थ : कल्पवृक्ष के समान वे स्वभाव से ही सुन्दर हैं। मानो अनेकों उपवनों को छोड़कर आये हैं। भँवरों की श्रेणियाँ अधिक सुन्दर गुञ्जार कर रही हैं और सुख देनेवाली शीतल मन्द सुगन्ध हवा बह रही है।

व्याख्या : जिन पेड़ों का ऊपर उल्लेख हुआ है अब उनकी शोभा कहते हैं कि ऐसे सुन्दर पेड़ कहीं दिखायी नहीं देते। मालूम होता है कि ये इस लोक के वृक्ष ही नहीं हैं। ये देवलोक के वृक्ष हैं। सरकार का आना सुनकर ये भी नन्दनादि वनों का परित्याग करके यहाँ चले आये हैं। उनके फल फूल के देखने से मालूम होता था कि ऐसे ही कल्पवृक्ष होते होंगे।

भौंरों का गुञ्जार मञ्जु होता ही है। पर यहाँ के भौरों का गुञ्जार भी अधिक मञ्जु है। वन में घोर घाम हिम वात चलता है। सो यहाँ शीतल मन्द सुगन्धयुक्त वायु चल रही है।

दो. नीलकंठ कलकंठ सुक, चातक चक्क चकोर।
भाँति भाँति बोलहिं बिहँग, श्रवन सुखद चित चोर ॥१३७॥

अर्थ : नीलकण्ठ कोयल तोता पपीहा चकवा और चकोर अनेक प्रकार की बोलियाँ बोल रहे हैं। जो कानों को सुख देनेवाली तथा चित को चुरानेवाली हैं।

व्याख्या : जिस भाँति सब ऋतु के फूल और फल लग रहे हैं। उसी भाँति सब ऋतुओं की चिड़िया बोल रही है और ऐसा मधुर बोल रही हैं कि सुनने से कान को ऐसा सुख होता है कि मन उधर ही लग जाय। नीलकण्ठ ग्रीष्म में : बोलते हैं। कलकण्ठ वसन्त में शुक शिशिर में चातक वर्षा मे चकवा हिमऋतु में रात के बड़ी होने से। चकोर शरद में : चन्द्रमा के निर्मल होने से। सो यहाँ सभी ऋतुओं में बोल रहे हैं। इस भाँति वन को सर्वेन्द्रिय तर्पण कहा।

करि केहरि कपि कोल कुरंगा। बिगत बैर बिचरहिं सब संगा ॥
फिरत अहेर राम छबि देखी। होहिं मुदित मृगबृंद बिसेखी ॥१॥

अर्थ : हाथी सिंह बन्दर वाराह और मृग वैर छोड़कर एक सङ्ग विचर रहे हैं। शिकार के लिए घूमते हुए रामजी की छवि देखकर मृग लोग अधिक आनन्दित होते थे।

व्याख्या : पक्षियों का वर्णन करने के बाद वन्य पशुओं का वर्णन करते हैं। करि केहरि कपि कोल कुरंगा में वर्ण मैत्री दिखाकर इनमें मैत्री द्योतित करते हैं। इनमें भक्ष्यभक्षक सम्बन्ध है प्रीति हो नहीं सकती। पर सरकार के पादार्पण से यह

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



असम्भव् भी सम्भव हो गया। सब जीवो ने सहज वैर परित्याग किया। उस स्थल म आकर परस्पर मे अनुराग करने लगते थे।

राघव भावत मोहि विपिन को वीथिन्ह धावनि।
सुन्दर स्यामल अग वसन पीत सुरग कटि निपग परिकर मेरवनि।
तैसइ श्रमसीकर रुचिर राजत मुख तैसिये ललित भ्रुकुटिन्ह की नवनि।
देखत खग निकर मृगरवनिन्ह जुत थकित विसारि जहाँ तहाँ की भवनि।
हरिदरसन फल पायो है ग्यान विमल जाचत भगति मुनि चाहत जवनि।
श्रवन सुख करनि भवसरिता तरनि गावत तुलसीदास कीरत पवनि।

विबुध विपिन जहँ लगि जग माही। देखि रामवनु सकल सिहाही ॥
सुरसरि सरसइ दिनकर कन्या। मेकलसुता गोदावरि धन्या ॥२॥
सब सर सिंधु नदी नद नाना। मदाकिनि कर करहि बखाना ॥

अर्थ ससार म जितने देवताओ के वन हैं वे सब रामवन को देखकर सिहाते हैं। गङ्गा सरस्वती यमुना नर्मदा और गोदावरी आदि पुण्य नदियाँ सभी सरोवर नाना नदी और नद सब मन्दाकिनी की सराहना करते है।

व्याख्या जिस भाँति सब देवताओ के पृथक् लोक हैं वैसे ही उनके पृथक् पृथक् उपवन हैं जहाँ वे विहार करते हैं। वे वन आज रामवन की सम्पत्ति और भाग्य देखकर ईर्ष्या करते हैं कि हमारा भाग्य ऐसा नही हुआ कि सिय रघुवीर विहार स्थल हो सकें।

ससार मे गङ्गादिक जितनी पुण्य नदियाँ हैं वे मन्दाकिनो की प्रशसा करती है कि मन्दाकिनी धन्य है। जिसमे तीनो काल सरकार लक्ष्मण और जानकीजी के सहित अवगाहन करते हैं।

उदय अगस्त गिरि अरु कैलासू। मदर मेरु सकल सुरबासू ॥३॥
सैल हिमाचल आदिक जेते। चित्रकूट जसु गावहि तेते ॥
बिंधि मुदित मन सुखु न समाई। श्रम बिनु बिपुल बडाई पाई ॥४॥

अर्थ उदयाचल अस्ताचल कैलास और मन्दर मेरु आदि जितने देवताओ के निवास स्थान हैं और हिमालय आदिक जितने पर्वत है सब चित्रकूट का यशोगान करते है। विन्ध्याचल तो ऐसे प्रसन्न है कि उनके मन मे आनन्द समा नही रहा है। उन्हे बिना परिश्रम ही बडी भारी बडाई मिल गयी।

व्याख्या उदयाचल और अस्ताचल सूर्य नारायण से सम्बद्ध है। कैलास जहाँ सदाशिव उमा का निवास रहता है। मन्दर और मेरु पर तो सब देवताओ का निवास है। हिमालय पर्वतो के राजा ही ठहरे और अन्य जो महेन्द्राचलादि पुण्य पर्वत बडे बडे विशाल हे वे सब छोटे से चित्रकूट पर्वत का यशोगान कर रहे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



। क्योकि वह आज सरकार का निवासस्थान हो रहा है। उसकी महिमा बहुत बढी हुई है।

विन्ध्याचल के आनन्द का तो कुछ ठिकाना ही नही। क्योकि उन्हे बिना परिश्रम ही इतनी बडी बडाई मिली। चित्रकूट विन्ध्यश्रेणी मे ही है। विन्ध्य को बडाई पाने की बडी इच्छा थी। इसलिए वे बढे भी थे। पर अगस्त्यजी ने उनका बढना रोक दिया। उनका सब श्रम ही व्यर्थ हो गया था। सो इस समय बिना परिश्रम ही इतनी बडी बडाई पा गये।

दो० चित्रकूट के बिहँग मृग, बेलि बिटप तृन जाति।
पुन्य पुंज सब धन्य अस, कहहिं देव दिन राति ॥१३८॥

अर्थ : चित्रकूट के पक्षी पशु लता वृक्ष और तृण की जातियाँ पुण्यपुञ्ज है और धन्य हैं ऐसा देवता दिन रात कहते हैं।

व्याख्या इन सबो को सरकार का सानिध्य प्राप्त है। अत. सामीप्यसुख का अनुभव कर रहे हैं। देवताओ को तो केवल वैषयिक सुख प्राप्त है। अत देवता लोग चित्रकूट के पशु पक्षी लता वृक्ष और घास फूस के पुण्य की प्रशसा करते हैं। देवलोक मे रात दिन इनके पुण्य का कथनोपकथन चल रहा है।

नयनवत रघुबरहि बिलोकी। पाइ जनम फल होहिं बिसोकी॥
परसि चरन रज अचर सुखारी। भये परम पद के अधिकारी ॥१॥

अर्थ • आँखवाले रामजी को देखकर जन्म होने का फल पाकर शोक रहित पद को प्राप्त होते हैं और अचर चरणरज को स्पर्श करके सुखी होते हैं। उन्हे मोक्ष का अधिकार प्राप्त हो जाता है।

व्याख्या देवताओ द्वारा दिन रात चित्रकूट के चर अचर के गुणगान का कारण कहते हैं कि जिन्हे आँखें हैं वे तो रामजी को देखकर आँख होने का फल पा जाते हैं। आँख होने का फल तो यह है कि रामजी के चरणकमलो का दर्शन करके जन्म सफल हो। यथा : राम चरन बारिज जब देखौं। तब निज जनम सफल करि लेखौं। सो यहाँ चित्रकूट के विहँग मृग दर्शन करके शोक रहित पद को प्राप्त हो रहे है। जिन्हे आँखें नहीं हैं ऐसे अचर स्थावर योनिवाले चरण की धूलि के स्पर्श से सुखी हो रहे है। उन्हे परमपद का अधिकार प्राप्त हो रहा है जो देवताओ को प्राप्त नही है। यावदधिकार देवताओ को मुक्ति नही मिलती।

सो बनु सैलु सुभाय सुहावन। मगलमय अतिपावन पावन॥
महिमा कहिअ कवन बिधि तासू। सुखसागर जहँ कीन्ह निवासू ॥२॥

अर्थ . वह वन और पर्वत तो स्वभाव से ही सुहावना है। मङ्गलमय है। अति पवित्र को भी पवित्र करनेवाला है। उसकी महिमा किस भाँति कही जाय। सुख के समुद्र ने स्वयं जहाँ निवास किया हो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या अब रामवन और रामशैल का वृत्तान्त कहते हैं कि वह स्वभाव से ही सोहावना है। सरकार का निवास होगा इसलिए वे सुन्दर पैदा ही हुए। मङ्गलमय है। वहाँ निवास करने से यात्रा करने से मङ्गल होता है। जो अति पावन हैं उन्हे भी पावनता वहाँ से मिलती है। क्योंकि सुखसागर रामजी ने वहाँ निवास किया है। उसकी महिमा अकथनीय है कही नही जा सकती।

पय पयोधि तजि अवध बिहाई। जहँ सिय लखनु रामु रहे आई ॥
कहि न सकहि सुखमा जसि कानन। जौ सत सहस होंहि सहसानन ॥३॥

अर्थ क्षीर सागर और अवध छोडकर जहाँ आकर राम जानकी ने निवास किया है। यदि एक लाख शेष भी हो तो भी वन की शोभा वे नही कह सकते।

व्याख्या सरकार का विशेष रूप से प्राकट्य क्षीरसागर और वैकुण्ठ म माना जाता है। यथा पुर बैकुण्ठ जान कह कोई। कोउ कह पयनिधि बस प्रभु सोई। वैकुण्ठ से भी अधिक अवध माना गया है। यथा अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। यहाँ अवध का उल्लेख है इसलिए वैकुण्ठ का नाम नही दिया। भावार्थ यह कि दोनो प्रिय निवास स्थान छोडकर राम जानकी और लक्ष्मण यहाँ आ बसे हैं। उस वन की शोभा को लाखो शेष भी नही कह सकते। यथा जो सुख सुधा सिंधु सीकरते सिव बिरंचि प्रभुताई। सो सुख सिंधु उमगि चरयौ दस दिसि कवन जतन कहौं गाई।

सो मैं बरनि कहौं बिधि केही। डाबर कमठ कि मदर लेही ॥
सेवहि लखनु करम मन बानी। जाइ न सीलु सनेहु बखानी ॥४॥

अर्थ उसे मै किस भाँति वर्णन कर सकता हूँ। कछुवा का बच्चा क्या मन्दर धारण कर सकता है। लक्ष्मणजी कर्म मन वाणी से सेवा करते है। उनके स्नेह शील की प्रशसा नही की जा सकती।

व्याख्या उस परम शोभा का वर्णन गोस्वामीजी कहते हैं कि मैं कैसे करूँ। मन्दर पर्वत को सब सुरासुर मिलकर धारण न कर सके तब कच्छपरूप से भगवान् ने पीठ पर धारण किया। उसे क्या कच्छप का बच्चा धारण कर सकता है ? वह शोभा मन्दर की भाँति महान् है और मैं कच्छप के बच्चे की भाँति तुच्छ जीव हूँ। उसका वर्णन मुझसे सर्वथा अशक्य है। डाबर शब्द का प्रयोग पुत्र के अर्थ मे गोस्वामीजी ने कवित्त रामायण म भी किया है। यथा सोई बाँह गही जो गह्यो समीर डाबरो।

बिना शील और स्नेह के सेवा मे सरसता नही आती। मनसा वाचा कर्मणा सेवा लक्ष्मणजी वर्णनातीत स्नेह के साथ कर रहे हैं। जेहि न राम बन लहहि कलसू। सुत सोइ करेहु इहै उपदेसू का साफल्य दिखाया।

दो० छिनु छिनु लखि सिय राम पद, जानि आपु पर नेहु।
करत न सपनेहुँ लखन चितु, बधु मातु पितु गेहु ॥१३९॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अथ क्षण क्षण सीता रामजी के चरणो का दर्शन करके और अपने ऊपर उनका प्रेम देखकर सपने मे भी लक्ष्मणजी भाई माँ बाप तथा घर का ध्यान नही करते।

व्याख्या लक्ष्मणजी का प्रेम इतना बढा चढा है कि प्रत्येक क्षण राम जानकी के चरणो के दर्शन का आनन्द लूट रहे है तथा उनका प्रेम अपने ऊपर देख रहे है। जिस पर अपना प्रेम हो वह भी अपने से प्रेम करे तभी प्रेम का आनन्द पूरा होता है। सो लक्ष्मणजी को पूर्णानन्द प्राप्त है। अत उसी मे मग्न होकर लक्ष्मणजी भाई माँ बाप और घर को याद भी नही करते। यहाँ घर शब्द से गेहिनी अभिप्रेत है।

राम सग सिय रहति सुखारी। पुर परिजन गृह सुरति बिसारी॥
छिनु छिनु पिय बिधु बदनु निहारी। प्रमुदित मनहुँ चकोर कुमारी॥१॥

अर्थ पुर परिजन और घर की सुधि भूलकर रामजी के साथ सीताजी सुखी रहती हैं। प्रतिक्षण प्रिय के चन्द्रवदन को देखकर चकोर कुमारी की भाँति प्रसन्न रहती हैं।

व्याख्या बिनु रघुपति पद पदुम परागा। मोहि केउ सपनेहुँ सुखद न लागा। का साफल्य दिखलाते हैं। स्वभाव से ही स्त्रियो को पुर परिजन और घर पर अधिक ध्यान रहता है। सो सीताजी ऐसी सुखी हैं कि उनको पुर परिजनादि स्मरण भी नही आते। नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद बिमल बिधु बदन निहारे तथा छिनु छिनु प्रभु पद कमल बिलोकी। रहिहौ मुदित दिवस जिमि कोकी। का साफल्य दिखाते हुए कहते हैं कि सीताजी प्रतिक्षण प्रिय रामजी का मुखचन्द्र देखा करती है और चकोर कुमारी की भाँति प्रसन्न रहती है। चकोर कुमारी का चन्द्र से नवीन प्रेम है। बूढी चकोरी में उतना प्रेम नही रह जाता। इसलिए चकोर कुमारी से उपमित किया।

नाह नेह नित बढत बिलोकी। हरषित रहति दिवस जिमि कोकी॥
सिय मनु राम चरन अनुरागा। अवध सहस सम बनु प्रिय लागा॥२॥

अर्थ अपने नाथ के प्रेम को नित्य बढता हुआ देखकर ऐसा हर्षित रहती हैं जैसे दिन म कोकी चकई प्रसन्न रहती है। सीताजी का रामजी के चरणो मे ऐसा अनुराग है कि सहस्र अयोध्या की भाँति वन प्रिय लग रहा है।

व्याख्या रामजी का अपने ऊपर प्रेम नित्य बढता हुआ देखकर चकई की भाँति सीताजी हर्षित रहने लगी। रात्रि की प्रसन्नता द्योतित करने के लिए चकोरी से उपमा दी। अब दिन की प्रसन्नता कोकी से उपमा देकर दिखलाते हैं। भाव यह कि रात दिन प्रसन्न हैं। दुख का लेश नही। अब औध सौध सत सरिस पहार का साफल्य दिखाते हैं कि जब वन का पहाड अवध के सौ महलो के बराबर है

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



परनकुटी प्रिय प्रियतम संगा। प्रिय परिवारु कुरंग विहंगा॥
सासु ससुर सम मुनितिय मुनिवर। असनु अमिअ सम कंद मूल फर॥३॥

अर्थ : अत्यन्त प्यारे के साथ पत्ते की कुटी भी प्यारी है। पशु पक्षी प्रिय परिवार हो रहे हैं। मुनि की स्त्रियाँ और मुनि लोग सास ससुर हैं। कन्द मूल फल का भोजन अमृत के समान जान पडता है।

व्याख्या : नाथ साथ सुर सदन सम पर्नसाल सुख मूल का साफल्य दिखलाते हैं कि पत्ते की कुटी प्रियतम के सङ्ग मे प्रिय हो रही है। अर्थात् जो जो बातें सीताजी ने अयोध्या मे कही थी वे सब सफल हो रही हैं। वहाँ कहा था : खग मृग परिजन। उसका साफल्य यह कहकर दिखलाते हैं कि कुरङ्ग विहङ्ग प्रिय परिवार हो रहे हैं। वहाँ कहा था बनदेवी बनदेव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा। सो सास के कथन के बल पर कहा था। यथा पितु बन देव मातु वनदेवी। सो वनदेव और वनदेवी तो अदृश्य हैं। प्रत्यक्ष तो मुनियो की स्त्रियाँ और मुनि लोगो का व्यवहार सास ससुर सा है। कन्द मूल फल अमिअ अहारू का साफल्य : असनु अमिअ सम कन्द मूल फर कहकर दिखलाया।

नाथ साथ साँथरी सुहाई। मयन सयन सय सम सुखदाई॥
लोकप होहिं बिलोकत जासू। तेहि कि मोहि सक बिषय बिलासू॥४॥

अर्थ नाथ के साथ सुन्दर साँथरी : पत्तो की चटाई कामदेव के सैकडो बिछौने के समान सुखदायक हो रहा है। जिसके देखने से लोकपाल पद प्राप्त होता है, उसे क्या विषयविलास मोहित कर सकता है?

व्याख्या : नाथ साथ साथरी सुहाई। प्रिय संग मजु मनोज तुराई का साफल्य दिखा रहे हैं। अयोध्या मे जो कुछ सीताजी ने कहा था उससे कुछ भी बढाकर नही कहा था। हृदय का केवल शुद्ध भाव व्यक्त किया था। अत ठीक वैसा ही अनुभव हो रहा है। जो बात गङ्गाजी ने कहा था। यथा : लोकप होहिं बिलोकत तोरे। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरे।' उसी का उद्धरण करते हुए कवि का कथन है कि उसे क्या विषय विलास मोहित कर सकता है : राम चरन पकज मन जिनही। बिषय भोग बस करहिं कि तिनही।

दो० सुमिरत रामहि तजहिं जन, तृन सम बिषय बिलासु।
राम प्रिया जग जननि सिय, कछु न आचरजु तासु॥१४०॥

अर्थ : रामजी को सुमिरते हुए भक्त लोग विषय विलास का तृण के समान परित्याग करते है। सीताजी तो रामजी की प्रिया हैं। जगदम्बा हैं। उनके लिए यह कौन सी आश्चर्य की बात है।

व्याख्या रमा बिलास राम अनुरागी। तजहिं बमन जिमि नर बडभागी। रामजी के अनुरागी मनुष्य लक्ष्मी के विलास को तो वमन की भाँति त्याग करते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पर विषय विलास को भी वे तृण के समान त्याग देते है। उनकी दृष्टि मे विषय विलास उपेक्षा का विषय है और लक्ष्मी के विलास को तो वे सहन नही कर सकते। वमन की भाँति त्याग करके सुखी होते हैं। उत्तम पदार्थों का सेवन विषय विलास है और लक्ष्मी विलास यथा झूमत द्वार मतग अनेक जजीर जडे मद अबु चुचाते। तीखे तुरग मनो गति चचल पौन के गौनहु ते बढि जाते। भीतर चदमुखी अवलोकति बाहर भूप खडे न समाते। एते भए तो कहा तुलसी जो पै जानकी नाथ के रग न राते।

सीय लखन जेहि बिधि सुखु लहही। सोइ रघुनाथ करहि सोइ कहही॥
कहहि पुरातन कथा कहानी। सुनहि लखन सिय अति सुखु मानी॥१॥

अर्थ सीताजी और लक्ष्मण को जिस भाँति सुख मिले वही रामजी करते थे और कहते थे। पुरानी कथा और कहानियाँ कहते थे। लक्ष्मण और सीताजी अत्यन्त सुख मानकर सुनते थे।

व्याख्या सरकार ने अपनी इच्छा को सीता और लक्ष्मण की इच्छा म तन्मय कर दिया। यहाँ तक कि सीताजी और लक्ष्मणजी को जैसे सुख मिल वही काम करत है। यद्यपि रघुनाथ हैं। फिर भी अपने को भक्त पराधीन कर रक्खा है।

सीताजी और लक्ष्मणजी प्रभु के मुख की वाणी सुनना चाहते है। यथा सुनी चहैं प्रभु मुख कै बानी। जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी। अत सरकार पुरानी कथा कहानी कहते है। कहानी के द्वारा भी प्राचीन काल मे शास्त्रोपदेश की प्रथा थी। पञ्चतन्त्र तथा हितोपदेश से सभी परिचित है। बालपन से ही सरकार को वेद पुराण के कहने सुनने का व्यसन भी है। यथा वेद पुरान सुनहि मन लाई। आपु कहहि अनुजन्ह समुझाई।

जब जब राम अवध सुधि करही। तब तब बारि बिलोचन भरही॥
सुमिरि मातु पितु पुरजन भाई। भरत सनेहु सीलु सेवकाई॥२॥

अर्थ जब जब रामजी अवध को याद करते है तब तब माता पिता पुरजन भाई और भरतजी के स्नेह और सेवकाई को स्मरण करके आँखों म आँसू भर लाते हैं।

व्याख्या सीताजी और लक्ष्मणजी अवध की सुधि नही करते। क्योकि जिस प्रेमी के लिए अवध छोडा है वह साथ है। रामजी अवध की सुधि करते है। क्योकि उन्होने किसी के लिए अवध नही छोडा है। दूसरी बात यह कि अवध सरकार को वैकुण्ठ से भी अधिक प्रिय है। अत आँख म आँसू आ जाता है। कहते कुछ नही हैं। स्नेहमयी जननी, प्रेमनिधि पिता, शीलनिधि भाई शत्रुघ्न और भरतजी का स्नेह, शील और सेवा का स्मरण करके आँख म आँसू आ जाना स्वाभाविक है।

कृपासिधु प्रभु होहि दुखारी। धीरजु धरहि कुसमउ बिचारी॥
लखि सिय लखन बिकल होइ जाही। जिमि पुरुषहि अनुसर परिछाही॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ कृपासिन्धु प्रभु दु खी हो जाते हैं। पर कुसमय जानकर धैर्य धारण करते हैं। इस बात को लखकर सीताजी और लक्ष्मणजी विकल हो जाते हैं। जैसे परछाही पुरुष का अनुसरण करती है।

व्याख्या : यद्यपि विस्मय हर्षरहित है। पर भगवान् कृपासिन्धु है। भक्त के दु ख से दु खी हो जाते हैं। जानते है कि उनके विना वे लोग कैसे दु खी होगे। कुसमय मे शोक का परित्याग करके धैर्य धारण करने का विधान है। इसलिए धैर्य धारण करते है। कुछ कहते नही। फिर भी प्रतिक्षण सरकार के मुख देखनेवाली सीताजी और लक्ष्मणजी लखकर विकल हो जाते हैं। इन्हे सरकार का दु ख सह्य नही है। इन्हे प्रतिविम्ब की भाँति अपना सुख दु ख कुछ नही है। रामजी के दु ख से दु खी और रामजी के सुख से सुखी होते हैं। जैसे प्रतिविम्ब विम्ब के सुख दु ख से सुखी दु खी हुआ करता है।

प्रिया बधु गति लखि रघुनदनु। धीर कृपाल भगत उर चन्दनु ॥
लगे कहन कछु कथा पुनीता। सुनि सुखु लहहि लखनु अरु सीता ॥४॥

अर्थ रघुनन्दन धीर कृपाल और भक्त के हृदय के लिए चन्दन हैं। प्रिया और भाई की दशा देखकर कुछ पवित्र कथा कहने लगे। सुनकर लक्ष्मणजी और सीताजी ने सुख पाया।

व्याख्या कृपाल रघुनन्दन है। दु खी नही रहने देंगे। धैर्य से अपने को भी सँभाला और अब सीता और लक्ष्मणजी को सँभालने के लिए कुछ पवित्र कथा कहने लगे। भक्त के हृदय को शीतलता पहुँचाने के लिए चन्दन रूप हैं। अत कथा कहकर शोकापहरण किया। सीता और लक्ष्मणजी ने सुनकर सुख पाया।

दो. रामु लखन सीता सहित, सोहत परन निकेत।
जिमि बासव बस अमरपुर, सची जयत समेत ॥१४१॥

अर्थ लक्ष्मण और सीताजी के सहित रामजी पर्णकुटी मे ऐसे शोभित है जैसे इन्द इन्द्रपुर मे इन्द्राणी और जयन्त के साथ बसते है।

व्याख्या पर्णकुटी मे निवास है। पर तीनो मूर्तियो मे परस्पर ऐसा प्रेम है कि पर्णकुटी इन्द्रासन हो गयी और उसमे सरकार इन्द्र की भाँति, शची रूप सीताजी और जयन्त रूप लक्ष्मण के साथ निवास करते है। दरबार लगा है। कभी देवता लोग और कभी मुनि लोग हाजिरी बजाते है।

जोगवहि प्रभु सिय लखनहि कैसे। पलक बिलोचन गोलक जैसे ॥
सेवहि लखनु सीय रघुबीरहि। जिमि अविवेकी पुरुप सरीरहि ॥१॥

अर्थ प्रभु और सीताजी लक्ष्मणजी की कैसा सँभाल रखते हैं जैसे पलक नेत्र के गोलक का सँभाल रखता है और लक्ष्मणजी सीता और रामजी की कैसी सेवा करते हैं जैसी अविवेकी पुरुप शरीर की सेवा करता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या रामजी का सीता और लक्ष्मण के साथ कैसा बर्ताव था और सीता तथा लक्ष्मण का रामजी के साथ कैसा बर्ताव था। इस बात को कहकर अब राम जानकी का लक्ष्मण के साथ कैसा बर्ताव था तथा लक्ष्मणजी का राम जानकी के साथ कैसा बर्ताव था सो कहते हैं।

पलक दोनो नेत्र के गोलक की जिस भाँति रात दिन रक्षा करती है। कोई सदमा यदि गोलक पर आवे तो उसे अपने ऊपर लेती है। उसी भाँति रामजानकी दोनो लक्ष्मणजी की ऐसी रक्षा करते हैं कि कोई सदमा लक्ष्मणजी पर न आने पावे। आता हो तो उसे अपने ऊपर ले लेते हैं और लक्ष्मणजी श्री सीतारामजी की ऐसी सेवा करते हैं जैसे देह को ही आत्मा माननेवाला अविवेकी पुरुष शरीर की सेवा करता है। वह धर्माधर्म कुछ नहीं जानता। जिसमे शरीर को सुख मिले वही करता है। इसी भाँति लक्ष्मणजी सेवाधर्म के आगे किसी धर्म को नही गिनतें। जिससे श्री सीतारामको सुख हो वही करते है। यथा सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न राम पद पकज भाऊ।

एहि बिधि प्रभु बन बसहिं सुखारी। खग मृग सुर तापस हितकारी॥
कहेउँ राम बन गवन सुहावा। सुनहुँ सुमंत्र अवध जिमि आवा॥२॥

## १७ सचिवागमन प्रसङ्ग

अर्थ : इस विधि से खग मृग सुर और तपस्वी के हितकारी प्रभु वन मे सुखी बसते हैं। रामजी का सुन्दर वन गमन तो कहा। अब सुमन्त्र अवध जिस भाँति आये उसे सुनिये।

व्याख्या प्रभु का वन गमन भी सुन्दर है। अवध के लोगो का दु खी होना और खग मृग सुर तापस का सुखी होना भी वनगमन की सुन्दरता का पोषक है। प्रभु तो सुख रूप हो ठहरे। वन मे भी सुखी हैं। वन मे भी सुखी रहने की विधि भी गोस्वामीजी ने यहाँ बतला दिया कि कुटुम्ब के लोगो मे यदि परस्पर प्रेम हो और कुटुम्बियो के सुख के आगे अपने सुख को न गिने। परस्पर एक दूसरे के सदमा को अपने ऊपर लेने को तैयार हो तो वन मे भी सुखी रह सकते हैं। इसके विपरीत होने से घर भी नरक हो जाता है। यहाँ तक रामचरित है। अब सुमन्त्र के अवध लौटने का प्रसङ्ग आरम्भ होता है।

फिरेउ निषाद प्रभुहि पहुँचाई। सचिव सहित रथ देखेसि आई॥
मंत्री बिकल बिलोकि निषादू। कहि न जाइ जस भयउ बिषादू॥३॥

अर्थ : निषाद प्रभु को पहुँचाकर लौटा तो मन्त्री सहित रथ को देखा। मन्त्री निषाद को देखकर विकल हो गये। ऐसा विषाद हुआ जो कहा नही जा सकता।

व्याख्या चैत्र शुक्ल दशमी को वनवास हुआ। एकादशी को शृङ्गवेरपुर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ठहरे। द्वादशी को सुमन्त्र को विदा किया। त्रयोदशी को भरद्वाज के आश्रम मे ठहरे। चतुर्दशी को निषादराज लौटे। देखा तो सुमन्त्रजी रथ के साथ अभी वही है।

मन्त्रीजी निषादराज को देखकर विकल हो गये। रही सही आशा भी टूट गयी। सम्भावना थी कि घोर वन देखकर सीताजी डरेंगी तब रामजी उन्हे लौटा देंगे। वह भी नही हुआ। निषादराज भी दु खी होकर लौटे थे। एक दूसरे को देखकर दोनो रो पडे। विषाद का वर्णन नही हो सकता।

राम राम सिय लखनु पुकारी। परेउ धरनि तल ब्याकुल भारी॥
देखि दखिन दिसि हय हिहिनाही। जनु बिनु पख बिहँग अकुलाही॥४॥

अर्थ राम राम लक्ष्मण और सीता ऐसा पुकारते हुए पृथ्वी पर भारी व्याकुल होकर गिरे। दक्षिण की ओर देखकर घोडे हिनहिना रहे हैं जैसे बिना डैना का पक्षी व्याकुल हो।

व्याख्या मन्त्री रथ से नीचे गिर पडे। हाय मारकर रोने लगे। मानो राम लक्ष्मण और सीताजी उतने ही दूर है जहाँतक उनकी आवाज पहुँच सकती है। इस भाति तीनो मूर्तियो को नाम लेकर पुकारा। इधर घोडे अनाथ होकर दक्षिण की ओर देखकर अलग रो रहे हैं। उनका हिनहिनाना ही रोना है। ऐसे दीन हो रहे हैं जैसे बिना पंख के पक्षी हो।

दो नहि तृन चरहिं न पियहिं जल, मोचहिं लोचन बारि।
ब्याकुल भयेउ निषाद सब, रघुबर बाजि निहारि॥१४२॥

अर्थ न तृण चरते है न जल पीते हैं। आँखो से आँसू बहाते है। निषाद लोग रामजी के घोडो को देखकर व्याकुल हो गये।

व्याख्या सरकार से बिछोह हुए तीसरा दिन है। तब से घोडो ने न घास खाया है न पानी पीया है। उनके आँख से आँसू बह रहा है। जिस ओर रामजी गये है उधर देख देखकर हिनहिनाना ऊपर कह आये हैं। घोडो की यह दशा देख कर निषादगण व्याकुल हो गये कि रामजी के विरह मे जो न हो जाय सो थोडा है। जब पशुओ की यह दशा है तो सगे सम्बन्धियो की क्या दशा होगी। एक घोडे की यह दशा होती तो समझा जाता कि बीमार है।

धरि धीरज तब कहइ निषादू। अब सुमत्र परिहरउ बिषादू॥
तुम पडित परमारथ ग्याता। धरहु धीर लखि बिमुख बिधाता॥१॥

अर्थ धैर्य धारण करके निषादराज कहने लगा कि सुमन्त्रजी! अब विषाद को छोडो। तुम पण्डित हो। परमार्थ के जाननेवाले हो। विधाता को प्रतिकूल जानकर धैर्य धारण करो।

व्याख्या विषाद मे धैय छूट जाता है। सो सुमन्त्रजी तो धैर्य नही धारण कर सके। पर निषाद ने धैर्य धारण करके कहा कि मन्त्रीजी! जो होना था सो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हो चुका। विषाद छोड़ने से ही छूटता है। अशोच्य को सोचना पण्डित का काम नहीं। सत्रु मित्र सुख दुःख जग माँही। मोह मूल परमारथ नाही। आप परमार्थ के जाननेवाले हैं। आपको दुःखी नहीं होना चाहिए। जब ब्रह्मा प्रतिकूल हो जाते हैं तब कोई उपाय काम नहीं करता। धैर्य की परीक्षा का यही समय है। अतः आप धैर्य धारण कीजिये।

बिबिध कथा कहि कहि मृदु बानी। रथ बैठारेउ बरबस आनी ॥
सोक सिथिल रथु सकै न हाँकी। रघुबर बिरह पीर उर बाँकी ॥२॥

अर्थ: कोमल वाणी से अनेक प्रकार की कथाएँ कहकर जबरदस्ती लाकर सुमन्त्र को रथ पर बिठाया। वह शोक से ऐसे शिथिल थे कि रथ हाँक नहीं सकते थे। उनके हृदय में रामजी के विरह की तीखी पीड़ा थी।

व्याख्या: सुमन्त्र किसी तरह बिना रामजी के अयोध्या लौटना नहीं चाहते। निषादराज ने कोमल वाणी से अनेक प्रकार की कथाएँ कही। जिनसे धैर्य बँध सके और जबरदस्ती रथ पर ला बिठाया। रामजी के विरह की पीड़ा ऐसी तीव्र थी कि समझाने बुझाने का कोई फल नहीं हुआ। हार्दिक व्यथा से अङ्ग शिथिल थे। रथ हाँकने की शक्ति नहीं।

चरफराहिं मग चलहिं न घोरे। बन मृग मनहु आनि रथ जोरे ॥
अढुकि परहि फिरि हेरहिं पीछे। राम बियोग बिकल दुख तीछे ॥३॥

अर्थ: घोड़े तड़फड़ाते थे। रास्ता नहीं चलते थे मानो जङ्गली जानवरों को लाकर रथ में जोड़ दिया है। ठोकर खाते हैं। घूम घूमकर पीछे देखते हैं। रामजी के तीखे दुःख से विकल हैं।

व्याख्या: सारथि की यह दशा है कि रथ हाँक नहीं सकता। घोड़ों की यह दशा है कि वे आगे बढ़ना नहीं चाहते। रामजी के वियोग की पीड़ा उन्हें भी ऐसी कड़ी है कि वे रथ में जुते हुए तड़फड़ा रहे हैं। अन्य पशुओं की भाँति अशिक्षित से मालूम हो रहे हैं। बार बार ठोकर खाते हैं। आगे बढ़ाइये तो घूमकर पीछे देखते हैं।

जो कहु रामु लखनु बैदेही। हिकरि हिंकरि हित हेरहि तेही ॥
बाजि बिरह गति कहि किमि जाती। बिनु मनि फनिक बिकल जेहि भाँती॥४॥

अर्थ: जो कोई राम लक्ष्मण और सीताजी का नाम ले लेता है हिनहिनाकर उसकी ओर प्यार की दृष्टि से देखते हैं। घोड़ों की दशा कैसे कही जाय। वे मणि विहीन सर्प की भाँति विकल हैं।

व्याख्या: सरकार सबकी आत्मा हैं। आत्मा किसे प्यारी नहीं है। घोड़ों की विकलता तो सारथि से कम नहीं। वे कुछ कह नहीं सकते। पर समझते सब

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

कुछ है। अत व्याकुल है। मणि विहीन सर्पों की सी उनकी दशा हो रही है। माँ कौसल्या ने कहा है

राघव एकबार फिरि आवा।
ये बरबाजि विलोकि आपने बहुरो बनहि सिधावो।
जे पय प्याइ पोखि करपकज बार बार चुचुकारे।
क्यो जीवै मेरे राम लाडिल ते अब निपट बिसारे।
भरत सौगुनीसार करत हैं अतिप्रिय जानि तुम्हारे।
तदपि दिनहि दिन होत झँवरे मनहु कमल हिम मारे।
सुनहु पथिक जो राम मिलहिं वन कहियो मातु सदेसो।
तुलसी मोहि और सबहिन ते इनको अधिक अदेसो।

दो भयउ निषादु विषादुवस, देखत सचिव तुरग।
बोलि सुसेवक चारि तब, दिये सारथी सग ॥१४३॥

अर्थ मन्त्री और घोडो को देखकर निषाद विषादवश हो गया। चार सुसेवको को बुलाकर सारथि के साथ कर दिया।

व्याख्या निषादराज धैर्य धारण किये था। पर मन्त्री और घोडा की दशा देखकर उसका धैर्य जाता रहा। चारो घोडो के सँभालने के लिए चार सेवक साथ कर दिये। जो घोडो को भी सँभाल तथा सारथि पर भी ध्यान रक्खे। इसीलिए सुसेवक कहा। अथवा देख चुका है कि मुनिजी भरद्वाजजी ने पहुँचाने के लिए चार बटु साथ कर दिये थे। यथा मुनि बटु चार सग तब दीन्ह। इसलिए इसने भी चार सुसेवक साथ दिये। रास्ता चलने म चार का साथ चाहिए।

गुह सारथिहि फिरेउ पहुचाई। बिरह बिषादु बरनि नहि जाई॥
चले अवध लेइ रथहि निषादा। होहिं छनहि छन मगन बिषादा॥१॥

अथ गुह निपादराज सारथि को पहुँचाकर लौट आये। विरह से जो विषाद उन्हे है उसका वर्णन नही हो सकता। निषाद लोग रथ लेकर अयोध्या चले। वे भी क्षण क्षण विषाद म मग्न होते जाते हैं।

व्याख्या कुछ दूर तक निषादराज पहुँचान गये। अपनी आंखो देख लिया कि सुसेवक घोडो को सँभाल लिये जाते हैं। तब लौटे। जब मन्त्री का सामना हुआ तब भी कहा कहि न जाइ जस भयउ बिषादू। अब घर लौटने पर कहते हैं बिरह बिषाद बरनि नहिं जाई। बाल बच्चे सब रो रहे है।

अब मन्त्री की अवध यात्रा कहते हैं। घोडे एकदम बेकार है। निषाद लोग रथ लिये चल जा रहे है। पर व भी क्षण क्षण विषाद मे मग्न हो जाते हैं। बार बार अपने को सँभालते है। पर सरकार का विरह ही ऐसा है कि उसे हटा नही सकते। बार बार मग्न हो जाते हैं।

ankurnagpal108@gmail.com



सोच सुमंत्र विकल दुख दीना। धिग जीवन रघुबीर विहीना ॥
रहिहि न अंतहुँ अधम-सरीरू। जसु न लहेउ बिछुरत रघुबीरू ॥२॥

अर्थ : सुमन्त्रजी व्याकुल और दुःख से दीन होकर सोचते थे कि रघुवीर के बिना जीवन को धिक्कार है। अन्त में यह अधम शरीर रहने का नहीं। फिर रघुवीर के बिछुरते समय इसने यश क्यों न लिया।

व्याख्या : विकल पुरुष कैसा सोचता है सो कवि दिखलाते है। रघुबर बिरह पीर उर बाँकी है। उसे न सहकर मन्त्री दीन हो गया है। ऐसी पीड़ा के सहित जीवन को धिक्कारता है। रघुवीर विहीन होने की पीड़ा है। रामजी ने पिता सम माना। यथा : आदर कीन्ह पिता सम लेखा। सो मन्त्री ने भी पुत्र सम माना। जौ पै प्रिय बियोग बिधि कीन्हा। तौ कस मरन न माँगे दीन्हा। छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित यह अधम सरीरा। सो भी अन्त में जाने ही वाला है। अद्य वाब्दशतान्ते वा मृत्युर्वै प्राणिनां ध्रुवः। चाहे आज मरें चाहे सौ वर्ष बाद मरें। मरना तो ध्रुव ही है। इस समय मौका था। बड़ा यश मिलता। यथा : जिअन मरन फल दसरथ पावा। अंड कटाह अमित जस छावा। जिअत राम बिधु बदन निहारा। राम बिरह करि मरन सँवारा। सो यही मौका शरीर छोड़ने का था। सो नहीं छूटा।

भए अजस अघ भाजन प्राना। कवन हेतु नहि करत पयाना ॥
अहह मंद मनु अवसर चूका। अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका ॥३॥

अर्थ : मेरे प्राण अपयश और पाप के पात्र हो गये। किस कारण से ये नहीं निकलते। अहो! यह मन्दमन मौका चूक गया। अब भी हृदय दो टुकड़ा नहीं हो जाता।

व्याख्या : परम पावन प्राण आज अयश तथा अघ के भाजन हुए। जगत् में दुर्यश हुआ कि मन्त्री होकर कुँअर को वन पहुँचा आया। यह मन्त्री होने योग्य न था। बिना पाप के पीड़ा होती नहीं और तीखी पीड़ा हृदय में हो रही है। अतः अघभाजन भी हुए। प्राण प्रयाण के दोनों हेतु यहाँ उपस्थित हैं। अत्यन्त पीड़ा और दुर्यश। फिर भी प्राण नहीं निकल रहा है। मन्त्री मन को धिक्कारता है कि यह अवसर चूक गया। रामजी के वियोग होते ही हृदय को फट जाना चाहता था। सो अब भी नहीं फटता।

मीजि हाथ सिरु धुनि पछिताई। मनहुँ कृपन धन रासि गवाँई ॥
बिरिद बाँधि बर बीरु कहाई। चलेउ समर जनु सुभट पराइ ॥४॥

अर्थ : हाथ मलकर सिर पीटकर पछता रहा है। मानो कृपण ने धन की राशि गवाँ दी। वीरता का बाना बांधकर और श्रेष्ठ वीर कहलाकर रणाङ्गन से जैसे सुभट भाग चला हो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : धनराशि के गँवा देने पर हाथ मलना सिर पीटना ये सब लक्षण कृपणों में प्रकट होते हैं। उनके पश्चात्ताप की कोई सीमा नही रहती। सुमन्त्र ने राम लक्ष्मण और जानकी तीनों धनराशि खोया। अब लोभी कृपण की भाँति पछता रहे हैं कि मैं रामजी के वन पहुँचाने का साधन बन गया। मेरे करतव से रामजी वन गये। मैंने ही पता न लगे इस भाँति रथ पर चढ़ाकर वन पहुँचा दिया। यथा : सचिव चलायेउ तुरत रथ इत उत खोज दुराइ।

सुमन्त्रजी इस हौसले से चले थे कि मैं लौटा लाऊँगा। लोग भी कहते थे कि मन्त्री है। महाराज का सखा है। निष्फल नही लौट सकता। कम से कम सीताजी को लौटा ही लावेगा। पर सरकार के सामने कोई युक्ति चली नहीं। लौटाने के लिए थे सो पहुँचाकर लौट रहे हैं। वीर लब्धप्रतिष्ठ जिस भाँति संग्राम से भागकर मुख दिखाना नही चाहता। उसी भाँति सुमन्त्रजी भी मुँह दिखाना नही चाहते। यश प्यारा नही हुआ। प्राण प्यारा हुआ।

दो. बिप्र बिबेकी बेदबिद, संमत साधु सुजाति।
जिमि धोखे मद पान कर, सचिव सोंच तेहि भाँति ॥१४४॥

अर्थ : जैसे विवेकी वेद का जाननेवाला, साधु सम्मत, कुलीन ब्राह्मण धोखे से मद्य पी ले। उसी भाँति मन्त्री को सोच हुआ।

व्याख्या : विद्या विनय सम्पन्न ब्राह्मण यदि धोखे से मद्य पी ले तो उसका ब्राह्मणत्व ही चला जाता है। ब्राह्मण के लिए मद्य पीने पर जितने प्रायश्चित्त हैं सब मरणान्त हैं। अत: उसके शोक का ठिकाना नही। यही हाल सुमन्त्र का हुआ। यह धोखा खा गये। समझा था कि मैं अवश्य कम से कम सीताजी को लौटा लाऊँगा। पर नही लौटा सके। परम्परया महाराज के मृत्यु के कारण हो गये। यदि धोखा न होता तो उसी रथ पर महाराज को बिठला ले जाते।

जिमि कुलीन तिय साधु सयानी। पतिदेवता करम बन बानी ॥
रहै करम बस परिहरि नाहू। सचिव हृदय तिमि दारुन दाहू ॥१॥

अर्थ : जिस भाँति किसी कुलीन, साध्वी, सयानी, मनसा वाचा कर्मणा पतिव्रता स्त्री को कर्मवश पति को छोड़कर रहना पड़े। वैसा ही दारुण दाह मन्त्री के हृदय में था।

व्याख्या : कुलीन से जाति कहा। साधु से स्वभाव कहा। पतिदेवता कर्म मन वाणी से धर्म निष्ठा कहा। सभी साधन सौभाग्य के हैं। परन्तु कर्मवश विधि के प्रतिकूल होने से उसे पति का वियोग हो गया। ऐसी स्त्री को दारुण दाह होता है। यथा : बन दुख नाथ कहे बहुतेरे। भय बिषाद परिताप घनेरे। प्रभु बियोग लवलेस समाना। सब मिलि होहिं न कृपानिधाना।

लोचन सजल डीठि भइ थोरी। सुनइ न श्रवन बिकल मति भोरी ॥
सूखहिं अधर लागि मुह लाटी। जिव न जाइ उर अवधि कपाटी ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ नत्रो म जल आ जाने स दृष्टि थोडी हो गयी। कानो स सुनायी नही पडता था। विकलता के कारण वुद्धि भोरी हो गयी। होठ सूख गये। तालू सूख गया। परन्तु अवधिरूपी किवाड के कारण प्राण नही निकल सकते थे।

व्याख्या ज्ञानेन्द्रियाँ शिथिल हो गयी। वुद्धि भारी हो गयी। कुछ समझ म नही आ रहा है। मुख मे शोष हो रहा है। मरण की दशा उत्पन्न हो गयी। फिर भी मौत नही आती। आशा लगी हुई है कि चौदह वर्ष वाद सरकार फिर लौटेंगे। मानो अवधिरूपी किवाड लगे हुए हैं। प्राण को निकलने नही देते।

बिबरन भयउ न जाइ निहारी। मारेसि मनहुँ पिता महतारी ॥
हानि गलानि बिपुल मन ब्यापी। जमपुर पथ सोच जिमि पापी ॥३॥

अर्थ शरीर का रङ्ग ऐसा विकृत हो गया कि देखते नही बनता। मानो मातृ-हत्या पितृहत्या लगी हुई है। बडी हानि और ग्लानि मन मे व्याप रही है। जैसे पापी यमपुर पथ म सोच करता हो।

व्याख्या शोक का वेग वढता ही जा रहा है। पहिले कृपण वैश्य का पछतावा कहा। उससे अधिक दु ख वीर क्षत्रिय का दु ख कहा। उससे भी अधिक विवेकी ब्राह्मण का सोच कहा। तीनो से तीव्र दाह पतिव्रता का कहा। इस भाँति उदाहरण देकर मन्त्री के शोक की बढ़ोत्तरी दिखायी। परन्तु ये सब उदाहरण दैव वश दु ख प्राप्ति के थे। अब शोक का वेग और वढा तो सोचने लगा कि मैं महाराज के मृत्यु का कारण हो रहा हूँ। अत उनके चेहरे का रङ्ग बिगड गया। अब जितना अवध निकट आ रहा है उतनी ही विकलता बढती जा रही है। जो हानि होनेवाली है उसका घ्यान बँधा और उससे मन मे ग्लानि उत्पन्न हुई। अयोध्या यमपुर मालूम होने लगा। जैसे पापी यमपुर के रास्ते मे महा दु ख पाता हुआ सोचता है कि जब रास्ते मे यह दशा हो रही है तो यमपुर पहुँचने पर क्या दशा होगी। इसी भाँति मन्त्री भी, अयोध्या पहुँचने पर जिस दु ख का सामना करना पडेगा उसे सोच रहा है।

यहाँ सुमन्त्रजी सोच रहे हैं कि अवध जाने पर उन्हे सात प्रकार की परिस्थितियो का सामना करना पडेगा और इस भाँति सात प्रकार की तीव्रतम मानसिक व्यथाओ को झलना पडेगा। उन्ह स्मरण करके सुमन्त्रजी का हृदय ऐसा कातर हो रहा है मानो उन्ह उन व्यथाओ का इसी समय अनुभव करना पड रहा हो।

| परिस्थिति | व्यथा |
|---|---|
| १ बचन न आव हृदय पछिताई। अवध काह मैं देखब जाई। | १ अहह मंद मन अवसर चूका। अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका। |
| २ राम रहित रथु देखिहि जोई। सकुचिहि मोहि बिलोकत सोई। | २ मीजि हाथ सिर धुनि पछिताई। मनहु कृपन धन रासि गँवाई। |

ankurnagpal108@gmail.com



| परिस्थिति | व्यथा |
|---|---|
| ३ धाइ पूछिहहिं मोहि जब विकल नगर नर नारि। उतरु देब मैं सबहि तब हृदय बज्रु बैठारि। | ३ बिरुद बाँधि बर बीर कहाई। चलेउ समर जिमि सुभट बराई। |
| ४ पूछिहहिं दीन दुखित सब माता। कहब काह मैं तिन्हहि बिधाता। | ४ बिप्र बिबेकी बेदबिद समत साधु सुजाति। जिमि धोखे मद पान कर सचिव सोच तेहि भाँति। |
| ५ पूछिहहिं जबहिं लखन महतारी। कहिहौं कवन सँदेस सुखारी। | ५ जिमि कुलीन तिय साधु सयानी। पति देवता करम मन बानी। रहै करम बस परिहरि नाहू। सचिव हृदय तिमि दारुन दाहू। |
| ६ राम जननि जब आइहि धाई। सुमिरि बच्छ जनु धेनु लवाई। पूँछत उतरु देब मैं तेही। गे बन रामु लखनु बैदेही। | ६ लोचन सजल डीठि भइ थोरी। सुनइ न श्रवन बिकल मति भोरी। सूखहि अधर लागि मुँह लाटी। जिउ न जाइ उर अवधि कपाटी। बिबरन भयउ न जाइ निहारी। मारेसि मनहुँ पिता महतारी। |
| ७ पूछिहि जबहिं राउ दुख दीना। जिवनु जासु रघुनाथ अधीना। देहौं उतरु कवनु मुँह लाई। आयेउ कुसल कुअँर पहुँचाई। सुनत लखन सिय राम सँदेसू। तृन जिमि तनु परिहरिहि नरेसू। | ७ हानि गलानि बिपुल मन ब्यापी। जमपुर पथ सोच जनु पापी। |

बचन न आव हृदय पछिताई। अवध काह मैं देखब जाई॥
राम रहित रथ देखिहि जोई। सकुचिहि मोहि बिलोकत सोई॥४॥

अर्थ उसके मुख से बात नही निकलती। मन मे पछतावा हो रहा है कि अयोध्या जाकर मैं क्या देखूँगा। राम से रहित जो रथ देखेगा वह मुझे देखने मे सङ्कोच करेगा।

व्याख्या बिबरन भयउ से तन की दशा कहा। गलानि बिपुल मन ब्यापी से मन की दशा कहा। अब वचन न आव स वचन की दशा कहते हैं। मन मे पछता रहे हैं कि अभी अवध म जाकर न जाने क्या देखना है। यहाँ सीता राम लक्ष्मण वन गमन देखा। अवध म मरण देखना शेष है।

गर्हित कर्म करनेवाले को चाहे मुँह दिखाने मे सङ्कोच न हो पर शिष्ट पुरुष को उसका सामना करने म सङ्कोच होता है। मन्त्रीजी सोच रहे हैं कि उसी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भाँति अयोध्या मे लोग मुझे देखने मे सङ्कोच करेंगे कि यह रामजी को वन पहुँचाकर जीता लौट रहा हूँ।

दो. धाइ पूछिहहि मोहि जब, बिकल नगर नर नारि।
उतरु देब मै सबहि तब, हृदय बज्रु बैठारि ॥१४५॥

अर्थ : जब नगर के नर नारी व्याकुलता से दौड़कर मुझसे पूछेंगे तब कलेजे पर वज्र रखकर मुझे जवाब देना होगा।

व्याख्या : नगर के नर नारी विकल है। मेरे लौटने की प्रतीक्षा कर रहे हैं। मेरा आना सुनकर सब दौडे हुए मेरे पास आवेंगे। तब उनको उत्तर देने के लिए मुझे वज्र सा कलेजा करना पडेगा। सुमन्त्रजी राष्ट्र के महामन्त्री हैं। अवध मे बडी प्रतिष्ठा है। सबको भरोसा है कि रामजी वन गये। फिर भी महामन्त्री साथ हैं। बिना कुछ किये न लौटेगा। अतः मैं कुछ न कर सका। रामजी वन चले ही गये यह कहने मे उसे मृत्युतुल्य कष्ट है।

पुछिहहि दीन दुखित सब माता। कहब काह मै तिन्हहि बिधाता ॥
पुछिहहि जबहि लखन महतारी। कहिहौ कवन सँदेस सुखारी ॥१॥

अर्थ : जब दीन दुःखी माताएँ पूछेंगी हे विधाता! तब मैं उनसे क्या कहूँगा। जब लक्ष्मण की माँ पूछेगी तब मैं सुखी होकर कौन सा सन्देश कहूँगा।

व्याख्या : यम पुर पथ सोच जनु पापी : पहिले कह आये हैं। उसी को स्पष्ट करके दिखला रहे हैं कि पुरजन को उत्तर देने मे महाकष्ट। फिर माताओं के उत्तर देने मे जो स्वयं दुःखी दीन हो रही हैं और भी अधिक कष्ट होगा। फिर लक्ष्मण की माँ पूछेंगी जिनके बेटे को मैं वन पहुँचाकर आ रहा हूँ। उनको उत्तर देने मे कितने बड़े कष्ट का सामना है। यहाँ दुःखी होकर सुमन्त्रजी अपने को सुखारी कह रहे हैं।

राम जननि जब आइहि धाई। सुमिरि बच्छु जिमि धेनु लवाई ॥
पूंछत उतरु देब मै तेही। गे बनु राम लखनु बैदेही ॥२॥

अर्थ : जैसे नयी व्याई हुई गाय बछडे का याद करके दौडती है। उसी भाँति जब दौडी हुई रामजी की माँ आवेंगी तब मैं उन्हे उत्तर दूँगा कि राम लक्ष्मण जानकी वन चले गये।

व्याख्या : नयी व्याई हुई गाय को बछडे का प्यार होता है। उसके स्मरण से उसके थन से दूध टपक पडता है। इस भाँति कौसल्याजी को रामजी पर बडी प्रीति है। मेरे आने का समाचार सुनकर वे स्वयं दौड़ी हुई आकर समाचार पूछेंगी। उनसे यह उत्तर देना कि राम लक्ष्मण जानकी वन चले गये कष्ट की पराकाष्ठा है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जोइ पूछिहि तेहि ऊतरु देवा। आइ अवध अब यहु सुखु लेबा॥
पूँछिहिं जबहि राउ दुख दीना। जिवनु जासु रघुनाथ अधीना॥३॥

अर्थ : जो पूछेगा उसे जवाब देना। यही सुख मुझे अब अवध में जाकर लेना है। जब दुःख से दीन महाराज पूछेंगे जिनका जीवन ही रामजी के आधीन है।

व्याख्या : अब पूछने के प्रसङ्ग का उपसंहार करते हुए कहते हैं कि अयोध्या जाकर मुझे जिस बडे भारी दुःख का सामना करना है वह यही है कि जो पूछेगा उसे उत्तर देना पड़ेगा। यदि सरकार को मैं लौटाने में समर्थ होता तो किसी को मुझसे पूछने की आवश्यकता ही क्या थी? महा दुःखद सन्देश सबसे कहना मेरे लिए यही कार्य अयोध्या मे है। यहाँ सुख से दुःख ध्वनित है। जैसे : कहिहौ कवन सँदेश सुखारी।

यद्यपि महाराज है। पर इस समय दु.ख से दीन हो रहे हैं। क्योकि उनका जीवन ही राम दर्शन के आधीन है। यथा : समुझि देखु जिय प्रिया प्रबीना। जीवन राम दरस आधीना।

देहौ उतरु कौन मुहु लाई। आएउँ कुसल कुँअर पहुँचाई॥
सुनत लखन सिय राम सँदेसू। तृन जिमि तनु परिहरिहि नरेसू॥४॥

अर्थ : कौन मुँह लगाकर जवाब दूँगा कि कुँअर को पहुँचाकर मैं कुशल से लौट आया। लक्ष्मण सीता और रामजी का सन्देश सुनकर राजा तृण के समान शरीर छोड देंगे।

व्याख्या : सुमन्त्रजी विचार करते है कि मै मन्त्री होकर उनसे कौन मुँह लेकर उत्तर दूँगा। उन्होने कह दिया था : नाहि त मोर मरनु परिनामा। कछु न बसाइ भयेउ बिधि बामा। ऐसे अवसर पर रामजी के न लौटने पर मुझे जीते जी लौटना किसी तरह से शोभा नही देता और लक्ष्मण सीता और रामजी का सन्देश सुनने की देर है। राजा के शरीर छोड़ने में देर न लगेगी। वे तृण के समान शरीर छोड देंगे।

दो. हृदउ न बिदरेउ पंक जिमि, बिछुरत प्रीतमु नीरु।
जानत हौं मोहि दीन्ह बिधि, यहु जातना सरीरु॥१४६॥

अर्थ : प्रियतम जल के बिछुडते ही हृदय कीचड की भाँति फट नही गया। मालूम होता है कि ब्रह्मदेव ने मुझे यह यातना शरीर दे दिया है।

व्याख्या : कीचड़ का प्रियतम जल है। क्योकि वही उसके अस्तित्व का कारण है। उससे बिछोह होते ही कीचड सूखकर फट जाता है। उसी भाँति प्रियतम रामजी के बिछुड़ते ही मेरे हृदय को फट जाना चाहता था परन्तु नही फटा। इससे अनुमान होता है कि ब्रह्मदेव ने मुझे यातना शरीर दे रक्खा है। यातना शरीर नारकी लोगो को मिलता है। जो पीड़ा का तो ठीक ठीक अनुभव करता है

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



र फटने छेदने पीटने आदि दण्ड पाने से छूटता नही। अजहुँ न हृदय होत दुइ टूका से उपक्रम करके हृदय न बिदरेउ से उपसंहार करते हैं।

एहि विधि करत पथ पछितावा। तमसा तीर तुरत रथु आवा ॥
बिदा किए करि बिनय निषादा। फिरे पाय परि बिकल बिषादा ॥१॥

अर्थ इस विधि से रास्ते मे पछतावा करते करते रथ तुरन्त तमसा के तटपर पहुँच गया। विनय करके निषादो को विदा किया। वे भी चरणो पर गिरकर विषाद से विकल लौट गये।

व्याख्या पछतावा तो बहुत हुआ। कहाँ तक लिखें। वचन न आव हृदय पछिताई से लेकर यहाँ तक पछताने की विधि दिखाने के लिए प्रादेश मात्र कथन किया। सुमन्त्रजी अयोध्या पहुँचने के भय से इतने डरे हुए हैं कि वहाँ पहुँचने मे जितनी देर हो उतना ही अच्छा समझते हैं। सई और गोमती नदी पार किया तब तमसा तीर पहुँचे। पर उन्हे मालूम हो रहा है कि तुरन्त पहुँच गये।

तमसा नदी अयोध्या नगर से बहुत निकट है। नगर की सीमा उसके बाद पडती है। यथा गयउ जहाँ बाहेर नगर सीय सहित दोउ भाइ। सुमन्त्रजी ने वही रथ रोका और निषादो को लौटाने लगे। वे सुसेवक थे। राजभवन तक बिना पहुँचाये लौटना नही चाहते थे। पर सुमन्त्र ने विनय करके उन्हे लौटा दिया। वे भी नमस्कार करके विषाद से विकल होकर ही लौटे।

पैठत नगर सचिव सकुचाई। जिमि मारेसि गुरु बाँभन गाई ॥
बैठि बिटप तर दिवस गँवावा। साँझ समय तब अवसरु पावा ॥२॥

अर्थ नगर म प्रवेश करते हुए मन्त्री को ऐसा सङ्कोच होता था मानो उन्होने गुरु ब्राह्मण और गाय की हत्या की है। पेड के तले बैठकर दिन विताया जब सन्ध्या हुई तब मौका मिला।

व्याख्या गुरुहत्या ब्रह्महत्या और गोहत्या ऐसे निन्दित कर्म हैं कि इनमे से एक का भी करनेवाला समाज से बहिष्कृत हो जाता है। उससे कोई सम्पर्क रखना नही चाहता। उसे समाज मे मुख दिखाते नही बनता और जिसने तीनो किया हो उसके लिए कहना ही क्या है। मन्त्रीजी राम लक्ष्मण और जानकीजी को वन क्या पहुँचा आये मानो इन्हे तीनो हत्याएँ लग गयी। अत इन्हे नगर प्रवेश करने मे परम सङ्कोच है। तमसा तीर निकट होने पर भी नगर से इतनी दूर है कि नागरिको का जाना वहाँ तक कम होता है। अत पेड के तले बैठकर दिन का शेष भाग व्यतीत किया जब सन्ध्या हुई तब प्रवेश का अवसर मिला।

अवध प्रबेसु कीन्ह अँधियारे। पैठ भवन रथु राखि दुआरे ॥
जिन्ह जिन्ह समाचार सुनि पाए। भूप द्वार रथु देखन आए ॥३॥

अर्थ अँधेरे मे नगर म प्रवेश किया। रथ को दरवाजे पर छोडकर राजभवन

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मे घुस गये। जिन जिन लोगो ने समाचार सुना वे राजद्वार पर रथ देखने आये।

व्याख्या यहाँ नगर का क्या हाल है कि तमाम अँधेरा पडा है। नगर मे दीया नही जल रहा है। सन्ध्या समय सुमन्त्रजी तमसा तीर से चले। अँधेरा होते होते नगर मे प्रविष्ट हो गये। रथ को द्वार पर छोडकर तुरन्त राजभवन मे घुस गये। जिसमे किसी से सामना न हो। फिर भी कुछ लोगो को समाचार लग गया कि सुमन्त्रजी लौट आये। रथ द्वार पर खडा है। सो लोग बात को पक्की करने के लिए रथ देखने आये। इतनी अधिक उत्सुकता लोगा को है।

रथु पहिचानि बिकल लखि घोरे। गरहिं गात जिमि आतप ओरे ॥
नगर नारि नर ब्याकुल कैसें। निघटत नीर मीनगन जैसें ॥४॥

अर्थ रथ को पहिचान करके और घोडो को विकल देख करके उनके शरीर की दशा धूप म गलते हुए ओले की सी हो गयी। नगर के नर नारी ऐसे व्याकुल हुए जैसे पानी के घटने से मछलियाँ व्याकुल होती है।

व्याख्या • रथ को पहिचाना कि वही रथ है जिस पर सरकार सवार होकर गये थे। घोडो को देखा कि विकल है। समझ गये कि सरकार नही लौटे तो पसीना छूटने लगा। जैसे धूप मे ओल की दशा हो रही है। नगर के लोग ऐसे व्याकुल हुए जैसे जल के घटने के समय मछलियाँ व्याकुल होती हैं। यथा अवध अबु प्रिय परिजन मीना।

दो सचिव आगमनु सुनत सबु, बिकल भयउ रनिवासु।
भवनु भयकरु लाग तेहिं, मानहुँ प्रेत निवासु ॥१४७॥

अर्थ मन्त्री का आगमन सुनकर मारा रनिवास विकल हो गया। उसे घर ऐसा भयकर लगा मानो वह प्रेत का निवास है।

व्याख्या • मन्त्री आगये यह सुनकर रनिवास विकल हो उठा। क्योकि इस समाचार का तो अर्थ ही यही है कि रामजी नही आये। रामजी आये होते तो समाचार मिलता कि रामजी आये। इधर सुमन्त्रजी को राजमहल ऐसा भयंकर प्रतीत हुआ कि मानो यहाँ प्रेत का निवास है। यहाँ मनुष्य नही रहते। जिस घर मे प्रेत का निवास होता है वह स्थान देखने से भयकर दिखायी पडता है। भले ही उसमे मनुष्य भी रहते हा। अथवा प्रेतनिवास का अर्थ यमपुर किया जा सकता है. क्योकि यमराज परेतराट् कहलाते हैं। उनका निवास प्रेतनिवास है। पहिले कह आये हैं जमपुर पथ सोच जिमि पापी। सो मानो पापी यमपुर पहुँच गया। अब उसकी भयकरता देखता है। यथा यमद्वारे महाघोरे घोरा वैतरणी नदी।

अति आरति सब पूँछहिं रानी। उतरु न आव बिकल भई बानी ॥
सुनइ न श्रवन नयन नहिं सूझा। कहहु कहाँ नृप जेहि तेहि बूझा ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : अत्यन्त आर्त होकर सब रानियाँ पूछ रही हैं। उत्तर नही दे सकते। वाणी विकल हो गयी। न तो आँख से सूझता है न कान से सुनायी पड़ता है। जिस तिस से पूछ रहे हैं कि राजा कहाँ हैं ?

व्याख्या : मन्त्रीजी किसी तरकीब से नर नारियो के पूछने से तो बचे। पर रनिवास मे हैं और रानियाँ अत्यन्त आर्त हैं। अत. सबकी सब पूछ रही हैं। पहिले यही उनके समझ मे नही आता था कि उनको क्या उत्तर देंगे। यथा 'पुछिहहिं दीन दुखित सब माता। कहब काह मैं तिन्हहि बिधाता।' सो वही हुआ वाणी विकल हो गयी। कुछ कहते नही बनता। विकलता और बढी। ज्ञानेन्द्रियाँ ठीक काम नही कर रही हैं। न तो आँख से सूझ पडता है कि कौन मुझसे पूछ रहा है न कान से सुनायी पडता है कि क्या पूछ रहा है। यही सबसे पूछ रहे हैं कि महाराज कहाँ हैं ? एक धुन सवार है कि महाराज ने भेजा था। उन्ही से सब कहना है।

दासिन्ह दीख सचिव बिकलाई। कौसल्या गृह गईं लेवाई ॥
जाइ सुमंत्र दीख कस राजा। अमिअ रहित जनु चंदु बिराजा ॥२॥

अर्थ : दासियो ने मन्त्री की विकलता देखी तो कौसल्याजी के महल मे लिवा ले गयी। जाकर सुमन्त्र ने राजा को देखा। जैसे अमृत विहीन चन्द्रमा विराजमान हो।

व्याख्या : रानियो ने भी मन्त्री की विकलता देखी कि वे तो सुन ही नही रहे हैं उत्तर किसे दें। दासियो ने मन्त्री की विकलता देखी कि यहाँ मुख से कहने से काम न चलेगा। इन्हे महाराज तक पहुँचाना होगा। तब उन्हे कौसल्याजी के महल मे लिवा ले गयी। सुमन्त्रजी को महाराज ने कैकेयी के महल से भेजा था और वही मूर्च्छित हो गये थे। मूर्च्छा से जागने पर कौसल्याजी के महल में चले गये। कैकेयी का परित्याग किया। वहाँ जाने पर मन्त्री ने महाराज को देखा। स्वरूप मे बड़ा भारी अन्तर पाया। एक बारगी हतप्रभ हो गये हैं जैसे अमृतहीन चन्द्रमा पर राम विरह मे हतप्रभ होने की ही शोभा है। अत. विराजमान होना कहते हैं।

आसन सयन बिभूषन हीना। परेउ भूमितल निपट मलीना ॥
लेइ उसासु सोच एहि भाँती। सुरपुर ते जनु खसेउ जजाती ॥३॥

अर्थ : न तो आसन है। न शय्या है। न गहने हैं। अत्यन्त मलिन होकर पृथ्वी तल पर पडे हैं। लम्बी लम्बी श्वास ले रहे हैं और इस भाँति सोच रहे हैं जैसे स्वर्ग से ययाति राजा गिरे हो।

व्याख्या : राजा रत्नभुक् होता है। ससार मे जितनी उत्तम वस्तु हैं उसका पात्र राजा है। उसे अपने गौरव की रक्षा के लिए सर्वोत्तम आसन, सर्वोत्तम शय्या, सर्वोत्तम वस्त्राभूषण रखना पड़ना है। पर दु खी को सुख की सामग्री और भी दाहक होती है। अतः महाराज आसन शयन विभूषण हीन होकर भूमि पर पडे हुए हैं। उनकी उपमा ययाति राजा से दी जा सकती है। जो इन्द्र से ठगे गये। अपने मुख से अपने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पुण्य का वखान करके क्षीणपुण्य होने से स्वर्ग से गिरा दिये गये। इस अश मे तो यह उपमा ठीक है कि दूसरे से ठगे गये निरपराध राजा स्वर्ग से गिराये गये। पर वे पृथ्वी पर नही आने पाये। उनके नातियो ने अपनी अपनी तपस्या का कुछ भाग देकर उन्हे फिर स्वर्ग भेज दिया। इतने अश मे उपमा मेल नही खाती। अतः सम्पाती की उपमा देते है।

लेत सोच भरि छिनु छिनु छाती। जनु जरि पंख परेउ संपाती ॥
राम राम कह राम सनेही। पुनि कह राम लखन बैदेही ॥४॥

अर्थ : क्षण क्षण मे सोच से छाती भर लेते हैं। जैसे दग्धपक्ष सम्पाती गिरा हुआ है। राम राम प्यारे राम कहते है। फिर राम लक्ष्मण विदेहपुत्री ऐसा कहते हैं।

व्याख्या . चक्रवर्तीजी पृथ्वी पर पडे हुए है। अतः दग्धपक्ष सम्पाती से उपमा दी गयी। यथा : जरेउ पख अति तेज अपारा। परेउ धरनि करि घोरचिकारा। बिना पङ्ख का विहँग दीन हो जाता है। उसके सोच का पारावार नही रहता। वही गति महाराज की हो रही है। प्रेमपात्र राम का स्मरण करते है। फिर राम लक्ष्मण वैदेही का स्मरण करते है। कोई दूसरी भावना ही मन मे नही है।

दो. देखि सचिव जय जीव कहि, कीन्हेउ दंड प्रनामु।
सुनत उठेउ व्याकुल नृपति, कहु सुमन्त्र कहँ रामु ॥१४८॥

अर्थ : देखकर मन्त्री ने जयजीव कहकर साष्टाङ्ग प्रणाम किया। सुनते ही व्याकुल होकर राजा उठ बैठे और कहा कि सुमन्त्र कहो राम कहाँ है ?

व्याख्या : राजा को ऐसी दशा मे देखकर मन्त्री ने जयजीव कहकर दण्डवत् की। महाराज का सामना होते ही मन्त्री सावधान हो गये। सुनने भी लगे और देखने भी लगे। जिसका हृदय मे अधिक गौरव होता है उसका सामना होते ही एक बार पागल को भी सावधान होते देखा गया है। जयजीव : का शब्द सुनते ही महाराज ने जान लिया कि सुमन्त्र आगये। उत्सुकता से उठ बैठे और पूछा कि राम कहाँ है ?

भूप सुमंत्रु लीन्ह उर लाइ। बूड़त कछु अधार जनु पाई ॥
सहित सनेह निकट बैठारी। पूछत राउ नयन भरि बारी ॥१॥

अर्थ : चक्रवर्तीजी ने सुमन्त्र को हृदय से लगा लिया। डूबते हुए को जैसे कुछ सहारा मिल जाय। प्रेम के सहित निकट बैठाकर आँखो मे आँसू भरे हुए राजा ने पूछा।

व्याख्या : राजा का परम बल मन्त्री होता है। तिस पर सुमन्त्रजी सखा भी हैं। अति सङ्कट के समय ऐसे व्यक्ति के मिलने से कुछ आधार सा मिल जाता है। डूबते हुए को तिनका का सहारा भी सहारा मालूम होता है। राजा ने मन्त्री को

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हृदय से लगा लिया और प्रेम से निकट बिठा लिया और आँख में आँसू भरकर महाराज ने पूछा। आते ही प्रश्न किया था कि राम कहाँ हैं ? कुछ उत्तर न पाकर परिस्थिति का आभास मिल गया। अत नेत्रो मे आँसू भरकर पूछते है।

राम कुसल कहु सखा सनेही। कहँ रघुनाथ लखनु बैदेही ॥
आने फेरि कि बनहिं सिधाए। सुनत सचिव लोचन जल छाए ॥२॥

अर्थ हे सनेही सखा! रामजी का कुशल कहो। राम लक्ष्मण और वैदेही कहाँ हैं ? लौटा लाये कि वन को ही चले गये। सुनत ही मन्त्री की आँखे डबडबा आयीं।

व्याख्या चक्रवर्ती जी मन्त्री से कहते है कि तुम मेरे सखा हो। प्रेम के पात्र हो। तभी तुम्हे रामजी के साथ लौटाने को भेजा था। सो सबसे पहिल तो रामजी का कुशल कहो। वे स्वस्थ तो हैं। तुम अकेले मेरे पास आये। राम लक्ष्मण सीता को कहाँ छोडा। वे लौट आये और तुम शुभ समाचार देने आये हो कि वन को ही चले गये ? सुनते ही मन्त्री की भी आँखें आँसू से भर गयी।

सोक बिकल पुनि पूंछ नरेसू। कह सिय राम लखन सँदेसू ॥
राम रूप गुन सील सुभाऊ। सुमिरि सुमिरि उर सोचत राऊ ॥३॥

अर्थ शोक से विकल है। इसलिए फिर महाराज पूछते हैं कि सीता राम और लक्ष्मण का सन्देश कहो। रामजी के रूप गुण शील और स्वभाव को स्मरण करके मन मे राजा सोच रहे हैं।

व्याख्या शोक से विकल हैं इसलिए दोबारा पूछते हैं। नही तो राजा हैं पहिले ही उत्तर न पाकर उन्हे समझ लेना चाहिए। फिर भी उत्तर न मिला। तब कहते हैं कि यदि नही लौटे तो कुछ कहा तो होगा। वह सन्देश ही सुना दो। ऐसा पूछते हैं और मन मे रामजी का रूप गुण शील और स्वभाव नाच रहा है। मन ही मन सोचते हैं कि

राउ सुनाइ दीन्ह बनबासू। सुनि मन भयउ न हरषु हराँसू ॥
सो सुत बिछुरत गए न प्राना। को पापी बड मोहि समाना ॥४॥

अर्थ राज सुनाकर मैंने वनवास दे दिया। सुनकर जिसके मन मे न हर्ष हुआ न शोक हुआ ऐसे बेटे से, विछोह होते प्राण न गया। ससार मे मेरे सा पापी कौन है ?

व्याख्या मैंने वसिष्ठजी द्वारा राज देने का सन्देशा भेजा। सो देना तो दूर रहा मैंने वनवास दे दिया। ऐसा आज्ञाकारी बेटा कि उसने सुख दु ख को न गिना। मेरी आज्ञा के शिराधार्य करने मे ही अपनी मनस्तुष्टि मानी। ऐसे पुत्र के बिछुडते ही मुझे मर जाना चाहता था। सो मैं नही मरा। न जाने कैसा पाप मैंने किया है कि मुझे यह दु ख भोगना पड रहा है। इससे तो मर जाना कितना अच्छा था। ससार

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मे कोई भी ऐसा दु ख पडने पर मर जाता। पर मै नही मरा क्योंकि मुझे अपने किये हुए पाप का दु ख भोगना है। अत मेरे समान पापी ससार मे कोई नही है।

दो सखा रामु सिय लखनु जहँ, तहाँ मोहि पहुँचाउ।
नाहिं त चाहत चलन अब, प्रान कहउँ सतिभाउ ॥१४९॥

अर्थ हे सखे! जहाँ राम जानकी लक्ष्मण है वहाँ मुझे पहुँचा दो नही तो मैं सत्य भाव से कहता हूँ कि प्राण मेरे चला चाहते है।

व्याख्या मन्त्री स्वय नही जानते कि राम जानकी सीता कहाँ है? इसीलिए रामजी ने मन्त्री को शृङ्गवेरपुर से ही विदा किया। निषादराज साथ चला उसे भी यमुना पार से लौटा दिया। मन्त्री कहना नही चाहता कि मे नही जानता कि राम लक्ष्मण सीता कहाँ हैं? इधर महाराज कह रहे हैं कि मुझे जल्दी से राम जानकी लक्ष्मण के पास पहुँचाओ। नही तो मै मरा चाहता हूँ।

पुनि पुनि पूछत मन्त्रिहि राऊ। प्रियतम सुअन सँदेस सुनाऊ॥
करहि सखा सोइ वेगि उपाऊ। रामु लखनु सिय नयन देखाऊ॥१॥

अर्थ बार बार मन्त्री से महाराज पूछते हैं कि मुझे परम प्रिय बेटे का सन्देश सुनाओ। हे सखे! तुरन्त ऐसा उपाय करो कि मैं राम सीता और लक्ष्मण को आँख से देखूँ।

व्याख्या मन्त्री का धैर्य छूटा हुआ है। वह बोलने मे असमर्थ हो रहा है। इधर महाराज बार बार पूछ रहे हैं कि मुझे परम प्रिय वेटे राम का सन्देश सुनाओ। साथ ही साथ यह भी कहते हैं कि जल्दी उन्हे लाकर मुझे दिखा देने का उपाय करो। विकलता म चित्त स्थिर न होने पर लोग ऐसा ही बोलते हैं। कैसे कोई राम जानकी लक्ष्मण को जल्दी से लाकर दिखा दे।

सचिउ धीर धरि कह मृदु बानी। महाराज तुम्ह पडित ज्ञानी॥
बीर सुधीर धुरधर देवा। साधु समाजु सदा तुम्ह सेवा॥२॥

अर्थ मन्त्री ने धैर्य धारण करके कोमल वाणी कहा कि महाराज! आप पण्डित ज्ञानी हैं। आप वीर है। सुन्दर धीरा मे धुरन्धर है। आपने सदा साधु समाज का सेवन किया है।

व्याख्या मन्त्री ने देखा कि महाराज का ज्ञान शोक से अपहृत हो गया है। अत इन्हे अपने स्वरूप का स्मरण दिलाना चाहिए। अत कहता है कि महाराज आप तो पण्डित हैं। पण्डित सोच नही करते। गतासूनगतासूश्च नानुशोचन्ति पण्डिता। आप ज्ञानी है। सर्वज्ञ समदर्शी है। आप के लिए पुत्र क्या और कलत्र क्या? यथा ज्ञान मान जहँ एकौ नाँही। देखइ ब्रह्म समाज सब माँही। आप वीर है। शूराणा मरण तृणम् आपको मृत्यु से भय कैसा? आप वीर धुरन्धर हैं। दु ख से विचलित क्यो होते हैं? साधु समाज की सदा सेवा की है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



समधी बनकर बारात ले चलने के समय भी आपने साधुओं का साथ नहीं छोड़ा। यथा : साधु समाज संग महिदेवा। जनु तनु धरे करहिं सुख सेवा। आपको यह मोह कहाँ से आया ?

जनम मरन सब दुख सुख भोगा। हानि लाभु प्रिय मिलन बियोगा ॥
काल करम बस होहिं गोसाईं। बरबस राति दिवस की नाईं ॥३॥

अर्थ : जन्म, मरण, सब दु ख सुख के भोग, हानि, लाभ, प्रिय मिलन तथा उनका वियोग कालकर्म के वश है। जबरदस्ती रात और दिन की नाईं हुआ करते हैं।

व्याख्या : जन्म के वाद मरण फिर उसके बाद जन्म। दुःख के बाद सुख फिर उसके बाद दुःख, हानि के वाद लाभ उसके वाद फिर हानि प्रिय मिलन के वाद वियोग उसके बाद फिर मिलन। ये सब कर्म के फल के विपाक से होते हैं। नहीं चाहने से ये हटते नहीं। रात दिन की भाँति बलपूर्वक होते हैं। किसी के रोके नहीं रुकते। सुखस्यानन्तरे दु.ख दु खस्यानन्तरे सुखम्। इस ईश्वर की नियति को कोई अन्यथा नहीं कर सकता।

सुख हरषहिं जड़ दुख बिलखाहीं। दोउ सम धीर धरहिं मनमाहीं ॥
धीरजु धरहु बिबेकु बिचारी। छाड़िअ सोचु सकलु हितकारी ॥४॥

अर्थ : सुख से हर्षित होना और दु ख आजाने पर विलखने लगना तो अज्ञानी का काम है। पण्डित तो दोनों को समान ही देखते हैं। आप विवेक से विचार करके धैर्य धारण कीजिये। हे सकल हितकारी ! सोच को छोड़िये।

व्याख्या : सुख दु ख आगमापायी हैं। अनित्य है। इनके लिए सहन करने का विधान है। यं हि न व्यथयन्त्येते पुरुष पुरुषर्षभ। समदु खसुखं धीरं सोऽमृतत्वाय कल्पते। जिसे दु ख सुख पीडा नहीं देते ऐसा धीर पुरुष अमृतत्व के योग्य होता है। आप सबके हित करनेवाले हैं। आप सोच को छोड़िये। आपके सोच करने से सबके हित मे बाधा पडेगी।

दो. प्रथम बासु तमसा भयउ, दूसर सुरसरि तीर।
न्हाइ रहे जलपानु करि, सिय समेत दोउ बीर ॥१५०॥

अर्थ : पहिला निवास तमसा तट पर हुआ। दूसरा गङ्गा के तट पर दोनो वीर सीताजी के सहित नहाने के बाद पानी पीकर रह गये।

व्याख्या : शोक शान्ति की भूमिका बाँधकर पूरी कथा कहनी प्रारम्भ कर दी। जिसमे महाराज को पूरी परिस्थिति से परिचय हो जाय। कहा कि पहिले दिन तो तमसा तीर पर निवास हुआ। दूसरे दिन गङ्गातट पर निवास हुआ। दोनो भाई वीर हैं। सीता राम की योग्या हैं। तीनो मूर्तियो ने स्नान करके केवल पानी पी लिया। भाव यह कि वनवास मे तीनो समर्थ हैं। यह व्यवस्था तब तक की है

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जब तक निषादराज से भेंट नही हुई। वीर कहने का तात्पर्य ही यह है कि भोजन न करने से कोई म्लानता न हुई।

केवट कीन्ह बहुत सेवकाई। सो जामिनि सिंगरौर गँवाई ॥
होत प्रात वट छीर मँगावा। जटामुकुट निज सीस बनावा ॥१॥

अर्थ केवट ने बडी सेवा की। वह रात सिंगरौर श्रृङ्गवेरपुर मे बीती। तब सबेरा होते ही बरगद का दूध मँगाया और अपने सिर पर जटा मुकुट बनाया।

व्याख्या दिन भर पानी पीकर ही रह गये। केवट ने बडी सेवा की। उसने सोने की भी व्यवस्था की। भोजन की भी व्यवस्था की। रात को वही रहे। प्रात काल होते ही बरगद का दूध मँगाया और उससे जटा बनायी और सिर पर जूट जूडा बाँधने से उसकी मुकुट सी शोभा हुई। भाव यह कि एकदम वन जाने पर तुल हुए देखकर कुछ कहने का साहस नही हुआ।

राम सखा तब नाव मगाई। प्रिया चढाइ चढे रघुराई ॥
लखनु बान धनु धरे बनाई। आपु चढे प्रभु आयसु पाई ॥२॥

अर्थ राम सखा ने तब नाव मँगायी। प्रिया सीताजी को सवार कराकर तब सरकार सवार हुए। लक्ष्मणजी ने धनुष वाण सँवारकर रख दिया। फिर प्रभु की आज्ञा पाकर स्वयं भी सवार हो गये।

व्याख्या पहिल कह आये है बरबस राम सुमन्त्र पठाये। सुरसरि तीर आपु तब आये और सुमन्त्र रथ पर जाने के लिए सवार हो गये और यहाँ रामजी के नाव पर सवार होने के समय सुमन्त्रजी की उपस्थिति कह रहे हैं। सो यह दोनो बातें कैसे बनती हैं ? बात यह हुई कि सुमन्त्रजी से रहा न गया। रथ से उतरकर सरकार के सवार होने के समय फिर वहाँ पहुँचे। रामजी और केवट के सवाद से जो रस पाठको के हृदय म उत्पन्न होता है उसे कुछ समय तक बने रहने देने के लिए उस समय कवि ने सुमन्त्र के लौटने का उल्लेख नही किया। अत सुमन्त्र के विदाई के पहले और उनके लौटने के बाद जो जो बातें हुईं उनका सार सुमन्त्र के मुख से कहला रहे है।

बिकल बिलोकि मोहि रघुबीरा। बोले मधुर बचन धरि धीरा ॥
तात प्रनामु तात सन कहेहू। बार बार पद पकज गहेहू ॥३॥

अर्थ रघुवीर रामजी मुझे विकल देखकर धैर्य धारण करके मीठी बात बोले कि हे तात! पिताजी से प्रणाम कहना और बार बार चरण कमल मेरी ओर से पकडना।

व्याख्या भाव यह कि सुमन्त्र की विकलता देखकर रामजी का जी भर आया। अत बोलने मे धैर्य धारण करना पडा और बोले कि पिताजी से मेरा प्रणाम कहना और अनेक बार मेरी ओर से चरण पकडकर तब मेरा सन्देशा कहना।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यथा : पितु पद गहि करि कोटि नति विनय करब कर जोरि। चिन्ता कवनि बात की तात करब जनि मोरि।

करबि पाय परि विनय बहोरी। तात करिअ जनि चिंता मोरी॥
बन मग मंगल कुसल हमारे। कृपा अनुग्रह पुन्य तुम्हारे॥४॥

अर्थ : फिर चरणों पर गिरकर विनय कीजियेगा कि मेरे लिए चिन्ता न करें। वन के रास्ते में हम लोगों का कुशल मङ्गल आपकी कृपा अनुग्रह और पुण्य से होगा।

व्याख्या : भाव यह कि मन्त्री को रथ सहित भेजना जिसमें मुझे रास्ता चलने का कष्ट न हो अथवा चार दिन में वन का दर्शन करके चले आना आदि सन्देश का तात्पर्य यही है कि आपको मेरी चिन्ता है। सो चिन्ता न कीजियेगा। आपका पुण्य ऐसा है जिसके प्रभाव से वन के मार्ग में भी हम लोगो का कुशल मङ्गल रहेगा।

छं. तुम्हरे अनुग्रह तात कानन जात सब सुखु पाइहौं।
प्रतिपालि आयसु कुसल देखन पाय पुनि फिरि आइहौं॥
जननी सकल परितोषि परि परि पाय करि बिनती घनी।
तुलसी करेहु सोइ जतनु जेहि कुसली रहहिं कोसल धनी॥

अर्थ : हे पिता! आपके अनुग्रह से वन जाते हुए सब सुख पाऊँगा। आज्ञा पालन करके कुशल के साथ चरणो के दर्शन के लिए फिर लौट आऊँगा। सब माताओं का सन्तोष करके, उनके चरणों पर पड़कर विनय कीजियेगा। तुलसीदास कहते हैं कि ऐसा यत्न कीजियेगा जिसमे अवधपति कुशली रहे।

व्याख्या : यद्यपि वन में दुःख ही दुःख होता है। पर आपके अनुग्रह से मुझे सब सुख होगा। कानन नन्दन वन हो जायगा। यथा : जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत। यह न समझियेगा कि सब सुख मिलने से कहीं वहीं न रह जायँ। इसलिए कहते हैं कि इतने दिनों तक आपके चरणों के दर्शन की उत्कण्ठा रहने से, अवधि पूरी होते न होते मैं सेवा मे उपस्थित हो जाऊँगा। श्रीरामजी ने यह सन्देश पिता को देकर अब माताओं के लिए कहते हैं कि उनके पैरो पर गिरकर मेरी ओर से बड़ी विनती कीजियेगा। विनती वही है जो पिता से की गयी। इसलिए दोहराते नहीं हैं और मुझसे भी विनय किया कि आप ऐसा यत्न कीजियेगा जिससे महाराज कुशल रहें। रामजी पिता के प्रेम को जानते हैं। अतः उनकी ओर से इन्हें चिन्ता है। बार बार उनके कुशल के लिए कह रहे हैं।

दो. गुर सन कहब संदेसु, बार बार पद पदुम गहि।
करब सोइ उपदेसु, जेहि न सोच मोहि अवधपति॥१५१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : बार बार गुरुजी के चरण कमलो को पकड़कर सन्देश कहना कि वही उपदेश करें जिससे मुझको कोसलपति न सोचें।

व्याख्या : विश्वामित्रजी के साथ भी महाराज मुझे नही जाने देते थे। गुरुजी के उपदेश से ही जाने दिया था। यथा : तब वसिष्ठ बहुविधि समझावा। नृप सन्देह नास कहँ पावा। रामजी कहते हैं कि आज भी उसी उपदेश की आवश्यकता है। जिसमे अवधपति मेरा सोच न करें। मेरे सोच करने से उन्हे खतरा है और सम्पूर्ण अवध की रक्षा का भार उन्ही पर है। उन्ही के कुशल से सब का कुशल है।

पुरजन परिजन सकल निहोरी। तात सुनाएउ बिनती मोरी॥
सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जा ते रह नरनाहु सुखारी॥१॥

अर्थ पुरवासी कुटुम्बी आदि सबका निहारा करके हे तात! मेरी विनती सुना देना कि वही मेरा सब प्रकार से हितकारी है जिससे महाराज सुखी रहे।

व्याख्या सरकार पुरजन का प्रेम देखते आये हैं कि उनके लिए सब लोग घर द्वार पुत्र कलत्र सबको छोडकर वनवास के लिए साथ चल पडे। अत. उनसे निहोरा करके विनती करते है कि आप लोग नि.सन्देह मेरा हित चाहते हैं। पर मेरे साथ वन मे आकर बसने मे मेरा सब प्रकार से हित नही है। सब प्रकार से हित तो महाराज के सुखी रखने मे है।

कहब संदेसु भरत के आए। नीति न तजिअ राजपदु पाएँ॥
पालेहु प्रजहि करम मन बानी। सेयेहु मातु सकल सम जानी॥२॥

अर्थ भरतजी के आने पर सन्देश कहना कि राजपद पाने पर नीति न छोडना। मनसा वाचा कर्मणा प्रजा का पालन करना। सब माताओ को समान जानकर सेवा करना।

व्याख्या यद्यपि रामजी भलीभाँति जानते है कि भरतजी मे वे सब बातें है जिनका कि वे उपदेश देना चाहते है। फिर भी छोटो को शिक्षा देना बडो का धर्म है। दूसरी बात यह है कि भरत को भी सन्देश देना है। न देने से नाराजगी मालूम होगी। अत उपदेश के ब्याज से उन्हे राज्य करने की आज्ञा देते है। कहते है कि राज्याभिषेक होने पर नीति नही छोडना। भाव यह कि तुम सदा नीति पर चलनेवाले हो। उसी रास्ते पर बने रहना। प्रजा के पालन मे प्रमाद न करना। माताओ मे भेद न रखकर सबकी सेवा करना अर्थात् कैकेयी पर रुष्ट न होना।

ओर निबाहेहु भायप भाई। करि पितु मातु सुजन सेवकाई॥
तात भाँति तेहि राखब राऊ। सोच मोर जेहि करइ न काऊ॥३॥

अर्थ : पिता माता और स्वजन की सेवा करके भाईपन की सीमा तक निर्वाह करना। महाराज को इस भाँति रखना जिससे वे कभी मेरा सोच न करें।

व्याख्या · मेरे मत से यहाँ · और पाठ होना चाहिए। ओर निबाहने का तो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थं ही यह है राज्य स्वीकार न करना। ऐसा रामजी नही कह सकते। मैं तो यही अर्थं करूँगा कि माताओ को समान जानकर सेवा करना और माता पिता और स्वजन की सेवा करके भाईपन निबाहना। अर्थात् तुम्हारा भाईपन निबाहना मैं इसी बात मे मानूंगा कि माता और स्वजन की सेवा करो। यथा सोइ सब भाँति मोर हितकारी। जाते रह नरनाह सुखारी। और पिताजी को तो इस भाँति रक्खो कि उन्हे मुझे स्मरण करने का अवसर न मिले कि रामजी यदि यहाँ होते तो मुझ यह कष्ट न होता या अमुक प्रकार से सुख देते। मेरे वन देने के कारण किसी भाँति अपमान न करना।

लखन कहे कछु वचन कठोरा। बरजि राम पुनि मोहि निहोरा ॥
बार बार निज सपथ देवाई। कहबि न तात लखन लरिकाई ॥४॥

अर्थ • लक्ष्मणजी ने कुछ कठोर वचन कहे। उन्हे रोककर रामजी ने मेरा निहोरा किया और वार वार शपथ दिलायी कि लक्ष्मण के लडकपन को पिताजी से न कहना।

व्याख्या रामजी के सन्देश के बाद लक्ष्मणजी के सन्देश की बारी आई। इस पर कहते है कि लक्ष्मणजी ने कुछ कठोर वचन कहे। रामजी ने उन्हे ऐसा कहने से रोका। वे वचन रामजी को बडे अनुचित मालूम पडे। मै आप से उसे नही कह रहा हूँ। क्योकि रामजी ने बार वार मुझे शपथ दिलाया है कि लक्ष्मण का सन्देशा पिताजी से नही कहना और मेरा निहोरा किया है।

दो कहि प्रनाम कछु कहन लिय, सिय भइ सिथिल सनेह।
थकित बचन लोचन सजल, पुलक पल्लवित देह ॥१५२॥

अर्थ प्रणाम कहके कुछ कहना चाहा पर सीताजी स्नेह से शिथिल हो गयी। वाणी रुक गयी। नेत्र मे जल आगये और देह मे पुलकावली हो आयी।

व्याख्या महाराज ने तीनो मूर्तियो का सन्देश पूछा था। अत सुमन्त्रजी अन्त मे सीताजी का हाल कहते हैं कि उन्होने प्रणाम कहकर कुछ सन्देश भी कहना चाहा पर कह न सकी। स्नेह से शिथिल हो गयी। यहाँ यह शङ्का उचित नही है कि सीताजी ने जा जवाब सुमन्त्रजी को दिया। उसे सुमन्त्रजी नही क्यो कह रहे हैं? महाराज ने राम लक्ष्मण और सीताजी का सन्देश पूछा था। सुमन्त्रजी तीनो का सन्देश कह रहे है। उनसे जो जो बातें रामजी से या सीताजी से हुई। उसके कहने की कोई आवश्यकता वन जाने के पश्चात् नही रह गयी।

तेहि अवसर रघुबर रुख पाई। केवट पारहि नाव चलाई ॥
रघुकुल तिलक चले एहि भाँती। देखेउँ ठाढ कुलिस धरि छाती ॥१॥

अर्थं उसी अवसर रामजी का रुख पाकर केवट ने पार के लिए नाव चला

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दी। रघुकुलतिलक इस प्रकार चले गये और मैं खडा हुआ छाती पर वज्र रखे देखता रहा।

व्याख्या जिस समय सीताजी सन्देश कहने को थी और स्नेहवश कह न सकी। उसी अवसर पर सरकार का रुख हुआ कि नाव आगे बढाओ रुकने मे कष्ट ही बढेगा। अत केवट ने पार की ओर नाव चला दिया। मैं कलेजे को वज्र किये हुए देखता रह गया और रघुकुल के तिलक रामजी चले गये।

मैं आपन किमि कहहुँ कलेसू। जिअत फिरेउ लेइ राम सँदेसू॥
अस कहि सचिव बचन रहि गयऊ। हानि गलानि सोचवस भयऊ॥२॥

अर्थ मैं अपना क्लेश कैसे कहूँ। जो मैं राम का सन्देश लेकर जीता लौटा। ऐसा कहकर मन्त्री की वाणी रुक गयी और वह हानि ग्लानि और सोच के वश हो गये।

व्याख्या मन्त्री जी कहते हैं कि मुझे इसी बात का बडा भारी क्लेश है कि मै रामजी को न लौटाकर उनका सन्देश लेकर लौटा। मैं मर क्यो नही गया? इससे आगे मन्त्रीजी कुछ न कह सके। हानि ग्लानि और शोक के वश हो गये। रामजी का वन चला जाना यह मूलधन की हानि है। मैं मर क्यो नही गया। इस बात की ग्लानि है अब क्या होनहार है। इस बात का सोच है।

सूत बचन सुनतहिं नरनाहू। परेउ धरनि उर दारुन दाहू॥
तलफत बिषम मोह मन मापा। माँजा मनहु मीन कहुँ ब्यापा॥३॥

अर्थ सारथि का वचन सुनते ही महाराज पृथ्वी पर गिर पडे। उनके हृदय मे दारुण दाह हुआ। तडपने लगे। विषम मोह से विकल हो गये। मानो मछली को माजा व्याप्त हो गया।

व्याख्या सारथि के वचन से पूर्ण निराशा हुई और महाराज जो थोडी बहुत आशा के सञ्चार से उठकर बैठ गये थे पृथ्वी पर गिर पडे। विरह की ज्वाला हृदय मे भभक उठी। तडपने लगे। विषम मोह मे ऐसे विकल हो गये जैसे माजा खाकर मछली विकल होती है। बरसात का पहला पानी पडने से जो फेन नदियो मे उत्पन्न होता है उसे माजा मञ्जा कहते है। उसे मछलिया खाकर अत्यन्त विकल होकर पानी के ऊपर आ जाती हैं।

करि बिलाप सब रोवहि रानी। महा बिपति किमि जाइ बखानी॥
सुनि बिलाप दुखहू दुखु लागा। धीरजहू कर धीरजु भागा॥४॥

अर्थ विलाप करके सब रानियाँ रोने लगी। महाविपत्ति का वर्णन कैसे किया जाय। उस विलाप को सुनकर दुख भी दुखी हो गया। धैर्य का भी धैर्य जाता रहा।

व्याख्या पुत्र और पुत्रवधू के लौटाने की आशा नही रही और पति को

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यह दशा देखकर रानियाँ विलाप करके रोने लगी। अर्थात् हार्दिक दु:ख को व्यक्त करती हुई रोने लगी। महाविपत्ति आ पड़ी। उसका बखान किया नही जा सकता।

उस विलाप को जिसने सुना वही दु:खी हो गया। उसका धैर्य छूट गया। अर्थात् वह भी रोने लगा। इसी बात को आलङ्कारिक भाषा मे कवि कहते हैं कि दु:ख भी दु:खी हो गया। धैर्य का भी धैर्य जाता रहा।

## १८. नृपमरणप्रसङ्ग

दो. भयउ कोलाहलु अवध अति, सुनि नृप राउर सोरु।
विपुल विहग वन परेउ निसि, मानहु कुलिस कठोरु ॥१५३॥

अर्थ : महाराज के खास महल में शोर सुनकर अवध में बड़ा भारी हाहाकार मचा। जैसे बहुत से पक्षीवाले वन मे कठोर वज्रपात हुआ हो।

व्याख्या : महाराज का खास महल महारानी कौसल्या का महल है। प्रजा भी जान रही है कि महाराज उसी महल मे हैं और उनकी अवस्था चिन्ताजनक है। सुमन्त्र असफल होकर लौटे हैं। ऐसे अवसर पर उस महल मे भारी रुदन शब्द का होना अत्यन्त अनिष्ट का सूचक है। अत: सम्पूर्ण अयोध्या मे हाहाकार मच गया। उपमा देते हुए कवि कहते हैं कि जैसे पक्षियों से भरे वन मे रात को वज्रपात हो और सम्पूर्ण वन के पक्षी चीं चीं करने लगे। महाराज के महल का शोर वज्रपात से उपमित है और नगर का कोलाहल पक्षियो के शब्द से उपमित है। तुम जेहि लागि बज्र पुर पारा का साफल्य दिखाया।

प्रान कंठगत भयउ भुआलू। मनि विहीन जनु ब्याकुल ब्यालू ॥
इन्द्री सकल विकल भइँ भारी। जनु सर सरसिज बनु बिनु बारी ॥१॥

अर्थ : राजा का प्राण कण्ठ में आगया। ऐसे व्याकुल हुए जैसे मणिविहीन सर्प। सब इन्द्रियाँ अत्यन्त विकल हो गयी। जैसे तालाब का कमलवन बिना जल के हो जाता है।

व्याख्या : समाचार सुनते ही राजा की मरणासन्न दशा हो गयी। प्राण कण्ठ में आगये। निकलने में देर नही है। जैसे मणि के बिना सर्प व्याकुल हो जाता है। प्राणो के उखडने से इन्द्रियाँ भारी विकल हुईं। जैसे कमलवन के तालाब का पानी सूख गया हो। कमल सब मौजूद हैं पर नीरस होकर सूख चले हैं। इसी भाँति इन्द्रियाँ हैं। पर नीरस होकर विकल हो रही हैं। यहाँ शरीर की उपमा तालाब से है। इन्द्रियों की कमलवन से और रामजी की जल से।

कौसल्या नृपु दीख मलाना। रबिकुल रबि अँथयउ जिय जाना ॥
उर धरि धीर राम महतारी। बोली बचन समय अनुसारी ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

अर्थ : कौसल्या ने राजा को कुँभलाया हुआ देखा। समझ लिया कि सूर्यकुल के सूर्य अस्त हुआ चाहते हैं। हृदय में धीरज धारण करके रामजी माता समयानुकूल वचन बोली।

व्याख्या : राजा की दशा देखकर कौसल्या ने समझा कि इनका शरीर अब नही रहा चाहता। मानसिक पीड़ा ही इस दशा का कारण है। अतः उस पीड़ा को कम करना चाहिए। मैं रामकी माता हूँ। मैं यदि आश्वासन दूँ तो सम्भव है कि ये सँभल जायँ। अतः स्वय अधीर होती हुई भी उन्होंने धैर्य धारण किया और ऐसे अवसर पर जैसा उचित है वैसा बोली।

नाथ समुझि मन करिअ बिचारू। राम बियोग पयोधि अपारू॥
करनधार तुम्ह अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू॥३॥

अर्थ : नाथ! मन मे समझ कर विचार कीजिये। राम का वियोग अपार समुद्र है। इस अवध जहाज के आप ही कर्णधार : मांझी है। सब प्रिय लोगों का समाज ही इस पर सवार है।

व्याख्या : भाव यह कि शोक छोड़कर आप विचार में स्थित हो जाइये। बड़े असमञ्जस का समय उपस्थित है। राम वियोग रूपी समुद्र का सामना पड़ गया। जिसका पार करना सबके सामर्थ के बाहर की बात है। अयोध्या रूपी जहाज इस समुद्र में आ फँसा है। इस पर सभी स्वजन बान्धव सवार हैं। आप ही इसके कर्णधार हो। कर्णधार से ही आशा की जाती है कि वह जहाज पार लगा देगा और पार लगना ही चाहिए। क्योंकि सब बन्धु बान्धव इस पर हैं।

धीरजु धरिअ त पाइअ पारू। नाहि त बूड़िहि सबु परिवारू॥
जौं जियँ धरिअ बिनय पिय मोरी। रामु लखनु सिय मिलहि बहोरी॥४॥

अर्थ : धैर्य धारण कीजिये तो पार पाया जा सकता है। नही तो सब परिवार ही डूब मरेगा। यदि हे प्रिय! आप मेरे विनय को हृदय मे स्थान दें तो फिर राम लक्ष्मण सी॰॰ा से भेंट होगी।

व्याख्या · यदि कर्णधार धैर्य धारण किये रहे तो बेड़ापार हो नही तो सारा परिवार डूब मरेगा। अतः इस सङ्कट के समय में भले ही सबका धैर्य छूट जाय पर आपका धैर्य बना रहना चाहिए। आप यदि मेरे विनय को हृदय मे स्थान दें तो राम लक्ष्मण सीता से फिर भेंट होगी।

दो. प्रिया बचन मृदु सुनत नृपु, चितयउ आँखि उघारि।
तलफत मीन मलीन जनु, सीचत सीतल बारि॥१५४॥

अर्थ : प्रिया का कोमल वचन सुनकर राजा ने आँख खोलकर देखा। जैसे तड़पती हुई मलिन मछली शीतल जल से सीची गयी।

व्याख्या : महाराज प्राणकण्ठगत थे। इन्द्रियाँ विकल थी। आखें बन्द थी।

ankurnagpal108@gmail.com



तडपते थे। पर अपनी प्रिया कौसल्याजी का वचन सुनकर आँख खोल दिया। कुछ आश्वासन मिला। जैसे बिना जल के तडपती हुई मछली को कोई ठण्डे पानी से सिञ्चन करे और उसकी वेदना म तात्कालिक कमी हो जाय।

धरि धीरजु उठि बैठ भुआलू। कहु सुमन्त्र कहँ राम कृपालू॥
कहाँ लखनु कहँ रामु सनेही। कहँ प्रिय पुत्रबधू बैदेही॥१॥

अर्थ धैर्य धरकर महाराज उठ बैठे और बोले। सुमन्त्र! बतलाओ कि कृपाल राम कहाँ हैं? लक्ष्मण कहाँ है? स्नेही राम कहाँ हैं? प्रिय पुत्रवधू वैदेही कहाँ है?

व्याख्या महाराज राम लखन और सीता के फिर मिलने की बात सुनकर धैर्य धारण करके उठ बैठे। पर उन्हे शोक से उन्माद सा हो गया। वे सुमन्त्र से पूछने लगे कि राम लक्ष्मण जानकी हैं कहाँ? सुन चुके हैं कि शृङ्गवेरपुर म गङ्गा पार जाते हुए सुमन्त्र ने देखा। उसके बाद का हाल उस कुछ मालूम नही। फिर भी पूछते हैं कि वे लोग कहाँ हैं।

बिलपत राउ बिकल बहु भाँती। भइ जुग सरिस सिराति न राती॥
तापस अध साप सुधि आई। कौसल्यहि सब कथा सुनाई॥२॥

अर्थ राजा विकल होकर अनेक प्रकार से विलाप करने लगे। रात युग के समान हो गयी। समाप्त ही नही होती। अन्धे तपस्वी के शाप की बात याद आगयी। सब कथा कौसल्याजी को सुनाया।

व्याख्या राजा अनेक प्रकार से विलाप करने लगे। रात बीतना कठिन हो गया। दु ख की रात है। इसलिए युग के बराबर मालूम होने लगी। रात बीते तो राम लक्ष्मण जानकी कहाँ गय इसका पता लगाया जाय। उनसे भेंट करने का उपाय किया जाय। महाराज ने वन जाते समय रामजी से प्रश्न किया था और करै अपराध कोउ और पाव फल भोग। उसका उत्तर उस समय रामजी ने नही दिया। राजा को भी याद न रहा कि युवावस्था मे मैंने हाथी के धोखे मे रात के समय अन्धतापस के पुत्र को शब्दवेधी बाण मारा था। पुत्रशोक से दु खी होकर तपस्वी ने शाप दिया था कि मेरी भाँति पुत्रशोक म मरोगे। यही उस प्रश्न का उत्तर था। रामजी की प्ररणा स इस समय वह घटना याद आगयी तो सब कथा कौसल्याजी को सुनाया।

भयउ बिकल बरनत इतिहासा। राम रहित धिग जीवन आसा॥
सो तनु राखि करबि मै काहा। जेहि न प्रेम पनु मोर निबाहा॥३॥

अर्थ उस इतिहास को वर्णन करते हुए विकल हो गये कहने लगे कि राम रहित जीवन की आशा को धिक्कार है। उस शरीर को रखकर मै क्या करूँगा जिसने कि मेरे प्रेमप्रण का निर्वाह न किया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : अन्ध तपस्वी का इतिहास वर्णन करने में उसका पुत्रशोक स्मरण करके भारी ताप हुआ। अतः और भी विकल हुए। कहने लगे कि राम के न होने पर जीने की आशा को धिक्कार है ! रामजी जहाँ हों वहाँ जाकर भेंट कर आवें तो जी जायँगे। ऐसा जीवन मैं नही चाहता। यदि राम के बिना शरीर रह गया तो मेरा प्रेम झूठा हो जायगा। अतः जो मेरे प्रेमप्रण का निर्वाह न करे ऐसे शरीर को रखकर मैं क्या करूँगा और प्रेमप्रण का निर्वाह शरीर छूटने से ही होगा। अतः हर हालत में शरीर छूटना ही ठीक है।

हा रघुनंदन प्रान पिरीते । तुम बिनु जिअत बहुत दिन बीते ॥
हा जानकी लखन हा रघुवर । हा पितु हित चित चातक जलधर ॥४॥

अर्थ : हा प्राणप्यारे रघुनन्दन ! तुम्हारे बिना जीते बहुत दिन बीत गये। हा जानकी ! हा लक्ष्मण ! हा रघुवर ! हा पिता के चित्तचातक के हित करनेवाले जलधर !

व्याख्या . महाराज विलाप करते हुए कहते है कि हा प्यारे रघुनन्दन ! तुम्हारे बिछोह होते ही मुझे मर जाना चाहता था। सो तुम्हारे बिना जीते हुए मुझे बहुत दिन बीत गये। दशमी को रामजी वन गये। छठे दिन सुमन्त्र लौटे। सो छ दिन महाराज को बहुत दिन मालूम हो रहा है। रामजी को स्मरण करके लक्ष्मणजी को स्मरण करके तथा वैदेहीजी को स्मरण करके हाय हाय कर रहे हैं और अन्त मे फिर रामजी के लिए हाय करते हैं और कहते हैं कि पिता के चित्तचातक के लिए बादलरूप तो तुम्ही हो।

दो. राम राम कहि राम कहि, राम राम कहि राम।
तनु परिहरि रघुबर बिरह, राउ गयउ सुरधाम ॥१५५॥

अर्थ : राम राम कहकर, राम कहकर और फिर राम राम कहकर राम कहा और शरीर छोडकर रामजी के विरह मे राजा सुरलोक को पधारे।

व्याख्या : असाध्य व्याधि को देखकर तीन बार नाम लिया। यथा : देखी ब्याधि असाधि नृप परेउ धरनि धुनि माथ। कहत परम आरत बचन राम राम रघुनाथ। और मृत्यु को सामने देखकर छः बार स्मरण किया। यथा : राम राम राम राम राम राम जपत। मगल मुद उदित होत कलिमल छल छपत। सो मङ्गल मुद के उदय तथा घरेलू झगडे की शान्ति के लिए यही छः नामवाला मन्त्रोच्चारण ठीक समझा। इसी भाँति अनेक प्रकार से नाम लेने की अलग अलग फलश्रुतियाँ हैं। विनय-पत्रिका द्रष्टव्य है। अथवा[१] षटचक्र बेधे जौन। हरि रूप देखे तौन। अत. एक

---

१. १ मूलाधार २. स्वाधिष्ठान ३. मणिपुर ४ अनाहत ५. विशुद्ध ६. आज्ञाचक्र। ये छः चक्र शरीर मे हैं। इनके बेधन मे सहस्रार मे गति होती है जहाँ ब्रह्म साक्षात्कार होता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



एक नाम स्मरण से एक एक चक्र का वेध किया। अथवा छ दिन तक सरकार का वियोग रहा। इसलिए छ बार लिया।

जिअन मरनु फलु दसरथ पावा। अड अनेक अमल जसु छावा ॥
जिअत राम बिधु बदनु निहारा। राम बिरह करि मरन सँवारा ॥१॥

अर्थ : जीने मरने का फल राजा दशरथ ने पाया। अनेक ब्रह्माण्डो मे उनका निर्मल यश छा गया। जीते जी रामजी का चन्द्र वदन देखते रहे और राम के विरह मे प्राण त्याग करके अपने मरणको सँवार लिया।

व्याख्या : एक बार जो रामजी का दर्शन पाता है उसका जीवन सफल हो जाता है और ये महाराज तो रामजी का दर्शन बराबर सत्ताईस वर्ष तक करते रहे। इनके ऐसा जीवन का फल पानेवाला कौन है जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमै मुकुत होइ श्रुति गावा। और इनका मरण तो रामजी के विरह मे राम राम स्मरण करते हुए ही हुआ। अत. मरण का फल भी इनके समान किसी को नही मिला। यथा · वदौं अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद। बिछुरत दीनदयाल प्रिय तनु तृण इव परिहरेउ।

जीना मरना उसी का फल है जिसका संसार मे यश हो। महाराज दसरथ का निर्मल यश तो अनेक ब्रह्माण्डो मे व्याप्त हो गया। यथा तुलसी जान्यौ दसरथहि धरमु न सत्य समान। राम तजेउ जेहि लागि बिनु राम परिहरे प्रान।

सोक बिकल सब रोवहि रानी। रूपु सीलु बलु तेज बखानी ॥
करहि बिलाप अनेक प्रकारा। परहि भूमितल बारहि बारा ॥२॥

अर्थ · शोक से विकल होकर सब रानियाँ रो रही हैं। रूप शील बल और तेज का बखान करके अनेक प्रकार से विलाप करती हैं और पृथ्वीतल पर बार बार गिर रही हैं।

व्याख्या : महाराज चक्रवर्ती थे। इन्द्र के सखा थे। चौदहो भुवन मे इनका प्रभाव था। इनके रूप शील बल और तेज के लिए कहना ही क्या है। ऐसे महाराज की रानियाँ आज रो रही हैं। उनके गुणो का बखान करके विलाप करती हैं। पृथ्वी पर पछाड खाकर गिर रही है। ऐसी ही जगत् की गति है। यह जगत् का नाटक ही दु खान्त है।

बिलपहि बिकल दास अरु दासी। घर घर रुदन करहि पुरबासी ॥
अथएउ आजु भानुकुल भानू। धरम अवधि गुन रूप निधानू ॥३॥

अर्थ दास और दासी विकल होकर विलाप कर रही है। घर घर पुरवासी रो रहे हैं। आज सूयकुल के सूर्य अस्त हो गये। जो धर्म के अवधि और गुण रूप के निधान थे।

व्याख्या ऐसे स्वामी के वियोग मे दास दासी भी विकल होकर रो रहे हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



घर घर रोना गाना मचा हुआ है। महाराज ऐसे प्रजावत्सल थे कि इनके आनन्द मे प्रजा आनन्दित होती थी और इनके वियोग मे रो रही है। गोस्वामीजी ने शोक मे भी तारतम्य दिखलाया है। पुरवासी उनकी धर्मनिष्ठा और गुण रूप की प्रशसा कर रहे हैं। कहते है कि आज सूर्यकुल का सूर्य अस्त हो गया।

गारी सकल कैकइहि देही। नयन बिहीन कीन्ह जग जेही ॥
एहि बिधि बिलपत रैनि बिहानी। आए सकल महामुनि ग्यानी ॥४॥

अर्थ · सब कैकेयी को गालियाँ देती हैं। जिसने ससार भर को नेत्ररहित कर दिया। इस प्रकार से विलपते हुए रात बीती और सब महामुनि ज्ञानी लोग आये।

व्याख्या : क्या रानियाँ, क्या दास दासी, क्या पुरवासी सब कैकेयी को गालियाँ देते है। सूर्य ही जगत् के चक्षु हैं। उनके अस्त होने से ससार नेत्रहीन हो जाता है। सो यह सूर्यास्त तो कैकेयी के कारण से हुआ। ससार मे जो आया है सो जायगा। पर उस आने जाने का प्राकृत नियम है। तदनुसार कार्य होने से दु ख कम होता है। यथा : जौ बिनु अवसर अथव दिनेसू। जग केहि कहहु न होइ कलेसू।

इस भाँति विलाप कलाप मे रात बीती। सवेरा होते ही महामुनि ज्ञानी आये। जिन पर शोक का प्रभाव नही पडता और दूसरो के शोकनिवारण मे भी जो समर्थ हैं।

दो तब बसिष्ठ मुनि समय सम, कहि अनेक इतिहास।
सोक निवारेउ सबहि कर, निज बिग्यान प्रकास ॥१५६॥[1]

अर्थ · तब वसिष्ठ मुनि ने समयानुकूल अनेक इतिहास कहकर सबके शोक की निवृत्ति अपने विज्ञान के प्रकाश से किया।

व्याख्या : वसिष्ठजी बडे ज्ञानी हैं। कुलगुरु हैं। जानते है कि शोकनिवारण कैसे किया जाता है। उन्होने ऐसे ऐसे इतिहास सुनाये जिनसे शोकनिवारण हो। ऐसे समयानुकूल इतिहास वर्णन तथा अपने विज्ञान के प्रकाश से ससार की असारता का प्रतिपादन करके सबके शोक का निवारण किया।

तेल नाव भरि नृप तनु राखा। दूत बोलाइ बहुरि अस भाखा ॥
धावहु बेगि भरत पहिं जाहू। नृप सुधि कतहुँ कहहु जनि काहू ॥१॥

अर्थ नाव मे तेल भरकर राजा के शव को उनमे रख दिया। फिर दूतो को बुलाकर कहा कि जल्दी दौडो। भरतजी के पास जाओ। राजा का हाल कही भी किसी से न कहना।

व्याख्या पहिला काम गुरुजी ने यह किया कि राजा के शव को तेल भरी

---

१ १५६ दोहो में रामचरित कहकर अब १४ दोहो में दशरथ का और्ध्वदैहिक क्रिया-प्रसङ्ग कहेंगे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नाव मे रखा। जिसम सस्कार के समय तक बिगड न जाय। तत्पश्चात् दूत को बुलाकर भरतजी के पास भेजा जो कि दूर कैकय देश मे थे। निकट ही चित्रकूट मे राम लक्ष्मण थे उनके पास दूत नही भेजा। रामजी के स्वभाव को जानते थे कि पिता ने मेरे वियोग म प्राण त्याग किया। यह सुनकर रामजी की क्या दशा होगी। इसलिए यह समाचार रामजी को मेरी अनुपस्थिति मे न लगे और उन्हे समाचार देना भी व्यर्थ है। वे नगर मे आ नही सकते। भरतजी को ही महाराज अभिषेक करने के लिए वचनबद्ध हो चुके हैं। अत भरतजी को ही बुलाना उचित समझा। इसलिए वही दूत भेजा और राजा का समाचार कही किसी से कहने के लिए मना कर दिया। समय ऐसा था कि उस समय महाराज के चारो बेटो म से कोई भी न था। ऐसे ही अवसर पर शत्रु चढ दबाते हैं। इसलिए राजा के मृत्यु का समाचार छिपाया गया।

एतनइ कहेउ भरत सन जाई। गुर बोलाइ पठयेउ दोउ भाई ॥
सुनि मुनि आयसु धावन धाए। चले बेग बर बाजि लजाए ॥२॥

अर्थ भरत से इतना ही कहना कि गुरुजी ने दोनो भाइयो को बुला भेजा है। मुनिजी की आज्ञा सुनकर दूत दौड चले। अपने वेग से उत्तम घोडो को लज्जित करते थे।

व्याख्या यह समाचार भरतजी से भी न कहना। उनसे इतना ही कहना कि गुरुजी ने दोनो भाइयो को बुलाया है। मेरा नाम सुनते ही दोनो भाई तुरन्त चल पडेंगे। वसिष्ठजी की यह बात सुनकर दूत दौड चले। अश्वारोही भी नही भेजा। जिसमे किसी का ध्यान आकर्षित न हो। परन्तु वे दूत ऐसे थे कि उनके वेग को देखकर उत्तम घोडे लज्जित हो जायँ। अत अश्वारोहियो को भेजना उचित नही था।

अनरथु अवध अरभेउ जब तें। कुसगुन होहिं भरत कहुँ तब तें ॥
देखहिं राति भयानक सपना। जागि करहिं कटु कोटि कलपना ॥३॥

अर्थ जब से अयोध्या मे अनर्थ आरम्भ हुआ तब से भरतजी को अपशकुन होने लगे। रात को भयानक स्वप्न देखते हैं और जागने पर करोडो बुरी कल्पनाएँ करते हैं।

व्याख्या बाह्य जगत् और आन्तर जगत् म घना सम्बन्ध है। ईश्वर के घर से खतरे की घण्टी बजती है। उसी को अपशकुन कहते हैं। अवध मे जब से अनर्थ आरम्भ हुआ अर्थात् जब से देवताओ की प्रार्थना से सरस्वती का आगमन विघ्नाचरण के लिए अवध मे हुआ। यथा हरषि हृदय कोसलपुर आई। जिमि ग्रहदसा दुसह दुखदाई। तभी से भरतजी को अपशकुन होने लगा। उसी का विवरण देते हैं। रात को भयानक सपना देखते हैं। जागने पर अनेक बुरी बुरी कल्पनाएँ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



करते हैं। भयानक स्वप्न का फल बुरा होता है। भरतजी कैकेयदेश ननिहाल मे हैं। घर पर क्या होता है इसका पता नही।

विप्र जेंवाइ देहि दिन दाना। सिव अभिषेक करहिं बिधि नाना ॥
माँगहि हृदय महेस मनाई। कुसल मातु पितु परिजन भाई ॥४॥

अर्थ : नित्य ब्राह्मणो को भोजन कराके दान देते थे। अनेक विधि से रुद्राभिषेक करते थे। महादेव को मनाकर मन मे माता पिता कुटुम्बी और भाइयो की कुशल चाहते थे।

व्याख्या : स्वप्नदोष की शान्ति के लिए ब्राह्मण-भोजन दान तथा रुद्राभिषेक का विधान है। अभिषेक भी जल दुग्धादि से अनेक प्रकार से किया जाता है। शिवलिङ्ग पर गोदोहन सद्य प्रत्यय कारक है। भरतजी ब्राह्मण भोजन कराते हैं। दक्षिणा देते है। तत्पश्चात् स्वय अनेक विधि से रुद्राभिषेक करते हैं।

अभिषेक के बाद माता पिता परिजन और भाई के कुशल की प्रार्थना करते है। क्योकि : भाविउ मेटि सकहिं त्रिपुरारी। अपने प्रेमियो के प्रति मन सदा पापाशङ्की होता है। सोचते है। सबेरे सपना देखा और वह ऐसा भयानक था कि मैं जाग उठा। इसका फल निश्चय अशुभ है।

## १९. भरतागमन प्रसङ्ग

दो. एहि बिधि सोचत भरत मन, धावन पहुचे आइ।
गुरु अनुसासन श्रवन सुनि, चले गनेसु मनाइ ॥१५७॥

अर्थ : इस भाँति भरतजी सोच ही रहे थे कि दूत आ पहुँचे। गुरुजी की आज्ञा सुनकर गणेशजी को मना कर चले।

व्याख्या : भरतजी इस भाँति अशुभ की आशङ्का करके सोच रहे थे। तब से अयोध्या से दूत आगये। उन्होंने गुरुजी का अनुशासन सुनते ही गणेश को मनाकर प्रस्थान कर दिया। यहाँ गुरु अनुशासन शब्द ही कह रहा है कि इसमे विचार को स्थान नही है। अनिष्ट के अनुमान से भयभीत हो गये। गुरुजी की इच्छा मालूम होती है कि पहुँचने के पहिले मुझे कोई समाचार न मिले। ऐसा सोचकर भरतजी ने दूतो से अधिक पूछताछ न की और न यात्रा मुहूर्त दिखलाया। गुरु की आज्ञा को ही सब कुछ मानकर जय गणेश कहकर चल पडे।

चले समीर बेग हय हाँके। नाघत सरित सैल बन बाँके ॥
हृदय सोचु बड कछु न सोहाई। अस जानहिं जिअँ जाउँ उड़ाई ॥१॥

अर्थ : उन्होने हवा के वेगवाले घोड़ो को हाँका। नदी पहाड़ तथा बाँके जङ्गलो को पार करते हुए चले। हृदय मे बडा भारी सोच था। इसलिए कुछ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अच्छा मालूम नही होता था। जी मे ऐसा मालूम होता था कि उडकर जल्दी से पहुँच जायँ।

व्याख्या : बडी शीघ्रता है। अत वायुगतिवाले घोडो को रथ मे जोडा। उन्हे भी जल्दी के लिए हाँक रहे हैं। बाँके शैल वन और नदियो को लाँघते चले जा रहे हैं। किसी की ओर दृष्टिपात नही करते। यद्यपि कैकय देश कश्मीर प्रान्त मे है। वहाँ का प्राकृतिक दृश्य बडा सुहावना है। पर भरतजी के हृदय मे बडा भारी सोच है। उन्हे कुछ अच्छा नही लग रहा है। रथ के इतने वेग से भी वे सन्तुष्ट नही हैं। चाहते हैं कि मै उडकर पहुँच जाऊँ। वे सोच रहे है गुरुजी ने बुलाया है। इतना ही कहकर दूत चुप है और कुछ नही कहता। बात रोकी गयी है। जो हमारे पहुँचने पर खोली जायगी। पिताजी ने क्यो नही बुलाया ? जिस बात का कहना उसे मना किया गया है। उसे जानने के लिए दूत पर दबाव डालना भी उचित नही। इधर भयानक सपना भी देखा। बात क्या हुई ?

एक निमेष बरष सम जाई। एहि बिधि भरत नगरु निअराई ॥
असगुन होहिं नगर पैठारा। रटहिं कुभाँति कुखेत करारा ॥२॥

अर्थ . एक निमेष वर्ष के समान बीतता था। इस भाँति नगर के सन्निकट भरतजी पहुँचे। नगर मे अब प्रवेश के समय अपशकुन होने लगे। कराल काग : कुखेत मे बुरी तरह से शब्द करने लगे।

व्याख्या · सोच की मात्रा इतनी बढी हुई है कि निमेष वर्ष के समान बीतने लगा। ऐसे समय मे सरित शैल वन की शोभा देखने का अवकाश या रुचि किसे हो सकती है। नगर पहुँचने की विधि कहकर प्रवेश कहते हैं।

प्रवेश के समय दाहिने सुखेत मे काग का होना शुभ है। सो वहाँ बायें कुखेत मे काग कठोर शब्द कर रहे हैं। काग की बोली अनेक प्रकार की होती है। कोई बडी ही भयङ्कर होती है।

खर सियार बोलहिं प्रतिकूला। सुनि सुनि होइ भरत मन सूला ॥
श्रीहत सर सरिता बन बागा। नगरु बिसेषि भयावनु लागा ॥३॥

अर्थ गधे और सियार प्रतिकूल बोलने लगे। सुन सुनकर भरत के हृदय मे शूल उठता था। तालाब नदी वन बाग सब शोभारहित हो रहे थे और नगर तो विशेषरूप से भयावन मालूम हुआ।

व्याख्या : गधे रेंकते हैं। सियारिन फेकरती है। ये सब महा असगुन हैं। सुन सुनकर भरतजी के हृदय मे शूल होता था कि कोई भारी अनर्थ हुआ है। जिसे वहाँ सुनाना मुझे अच्छा नही समझा गया।

बागन्ह बिटप बेलि कुम्हिलाही। सरित सरोवर देखि न जाही। लागति अवध भयावनि भारी। मानहु कालराति अँधियारी। यह अवस्था रामजी के वन गमन

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



के समय हुई थी। अब तो महाराज भी नहीं हैं। स्थानो मे मनुष्य के चेहरे की भाँति उदासी छा जाती है।

खग मृग हय गय जाँहि न जोए। राम विरोग कुरोग बिगोए ॥
नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहु सबन्हि सब संपति हारी ॥४॥

अर्थ . रामजी के वियोगरूपी कुरोग से सताये हुऐ पक्षी मृग घोडे और हाथियो को देखते नही बनता था। नगर के स्त्री पुरुष एकदम दु खी हो गये थे। मानो सबने अपनी सम्पति हार दी हो।

व्याख्या : हय गय कोटिन्ह केलि मृग पुरपसु चातक मोर। सुक रथाग पिक सारिका सारस हस चकोर। राम वियोग बिकल सब ठाढे। जहँ तहँ मनहु चित्र लिखि काढे। ये इतने दु खी हैं कि इनको देखते नही बनता। रोगी होने से कैसा भी सुन्दर पुरुष दर्शनीय नही रह जाता। सो ये सब राम वियोगरूपी रोग से ग्रस्त है। अत. हतप्रभ हैं।

नगर के भीतर जाने पर नर नारियो को देखा। उनकी दशा सुनिये। सब सम्पति हार जाने पर जैसे कोई दु खी होता है। उसे कुछ सूझता नही। वैसी दशा सबकी हो रही है। रामजी ही सबके सर्वस्व थे। उन्ही से सब बिधि सब पुर लोग सुखारी थे। उन्ही का मुखचन्द्र अयोध्या के लिए चन्द्र था। सो वन गये। इधर सूर्यास्त भी हो गया। यथा अथएउ आज भानुकुल भानू। अत अवध वासियो के दु ख का पारावार नही।

दो. पुरजन मिलहिं न कहहिं कछु, गँवहिं जोहारहिं जाँहिं।
भरत कुसल पूछि न सकहिं, भय बिषाद मन माँही ॥१५८॥

अर्थ · पुरजन मिलते हैं तो कुछ बोलते नही। चुपचाप जोहार करके अपना रास्ता पकडते हैं और भरतजी के मन मे भय भी था विषाद भी था। इसलिए कुशल नही पूछ सकते थे।

व्याख्या : रास्ते मे जो मिले उनका हाल सुनिये। उन्हे भरतजी के देखने पर किसी प्रकार का हर्ष नही है। उदासीनता इतनी बढी हुई है कि कुशल तक नही पूछते। राजा के नाते जोहार कर देते हैं और चुपके से अपना रास्ता पकडते हैं। जिसमे बातचीत का अवसर न आने पाये। उन्होने कुशल न पूछा तो भला भरतजी ही पूछते। सो ये पूछ नही सकते थे। उनके मन मे भय था कि पूछने पर कोई बडी ही अनिष्टकारी घटना का समाचार मिलेगा। जिससे परिचित करना मुझे उचित नही समझा गया। अत अत्यन्त विषण्ण थे।

हाट बाट नहिं जाइ निहारी। जनु पुर दहँ दिसि लागि दवारी ॥
आवत सुत सुनि कैकयनदिनी। हरषी रबिकुल जलरुह चदिनी ॥१॥

अर्थ बाजार और रास्ता देखते नही बनता था। मानो नगर के दसो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

दिशाओ म आग लगी हो। बेटे का आगमन सुनकर सूर्यकुल कमल के लिए चाँदनी रूपी कैकयनन्दिनी कैकेयी बडी प्रसन्न हुई।

व्याख्या जिस नगर के दशो दिशाओ मे आग लगी हो वहाँ के हाट बाट की दुर्दशा के लिए क्या कहना है। यह आग कैकेयी रूपी किरातिनी ने अपने बेटे के कल्याण के लिए लगाया है गोडवाने मे आज भी बीमार वच्चो के कल्याणार्थ वन मे आग लगाने की मनौती मानी जाती है। इसीलिए उसे रविकुल जलरुह चन्दिनि कहा। भल ही वह कैकयानन्द वर्धनी क्यो न हो।

सजि आरती मुदित उठि धाई। द्वारेहिं भेटि भवन लेइ आई ॥
भरत दुखित परिवारु निहारा। मानहु तुहिन बनज बनु मारा ॥२॥

अर्थ आरती सजाकर बडे हर्ष से उठकर दौडी। द्वार पर ही मिलकर घर लिवा ले गयी। भरत ने परिवार को दु खी देखा। जैसे कमलवन पर पाला पडा हो।

व्याख्या बेटा राजा होने आ रहा है। अत आरती साजी जा रही है। वडी प्रसन्न है। आप ही आरती करने दौडी। दूसरा कोई साथ नही है। द्वार पर पहुँच कर वही आरती की और मिल भेंटकर अपने घर लिवा ल गयी कि कही दूसरे किसी महल म प्रणाम करने न चल जायँ। कोई ऐसी पट्टी न पढा दे कि सब करा धरा व्यर्थ पड जाय।

भरतजी गुरुजी के यहाँ न जाकर सीधे घर आये। जानत है कि पूर्णकाम गुरुजी को कोई निज का काम हो नही सकता। कोई बात घर म विगडी है। माता पिता पुरजन और भाई के विषय मे आशङ्का है। स्वप्न म भी भारी अशुभ माता के विषय मे ही देखा है। दरवाजे पर लोग जुट गये है। पर दु खी हैं। कुछ पूछते पर माँ आगयी। आरती करके मिल भेटकर अपने महल मे लिवा ल गयी। सब भेद कहना है। क्योकि भरतजी कुछ जानते नही। शत्रुओ से सावधान करना है। मित्र रूप मे शत्रु वहुत हैं। क्योकि इसी ने रघुकुल कमल विपिन पर चाँदनी रात बनकर पाला गिराया है।

कैकेई हरषित एहि भाँती। मनहुँ मुदित दव लाइ किराती ॥
सुतहि ससोच देखि मनु मारे। पूँछति नैहर कुसल हमारे ॥३॥

अर्थ कैकेयी इस प्रकार प्रसन्न है जैसे किराती वन मे आग लगाकर प्रसन्न होती है। बेटे को शोकयुक्त तथा मन मारे देखकर पूछती है कि हमारे मायके म सब कुशल तो है।

व्याख्या किराती जङ्गल म आग लगाकर प्रसन्न हो जाती है कि अब मेरा बेटा चङ्गा हो जायगा। इसी भाँति इतना बडा अनर्थ करके कैकेयी प्रसन्न है कि अब मेरा बेटा राजा हो जायगा। जैसे किराती जङ्गल म आग लगाकर हर्षित होती है कि अब मेरा बेटा चङ्गा हो जायगा। किराती म अब भी ऐसा विश्वास है कि

ankurnagpal108@gmail.com



जङ्गल मे आग लगा देने से बीमार अच्छा हो जाता है। अत आज भी वे बीमार बच्चो के स्वास्थ्य लाभ के लिए वन मे आग लगा देती है।

लोगो को दुखी देखकर भरत उदास हैं। इस बात का ख्याल ही नही है। रहै न नीच मते चतुराई। भय उत्पन्न हुआ कि मेरे मायके मे तो सब कुशल है न। मायके का बडा भरोसा है। यथा नैहर जन्म भरब बरु जाई इत्यादि। भरतजी को सशोक मन मारे देखकर नैहर के कुशल के प्रति आशङ्का हुई।

सकल कुसल कहि भरत सुनाई। पूंछी निज कुल कुसल भलाई ॥
कहु कहँ तात कहाँ सब माता। कहँ सिय राम लखन प्रिय भ्राता ॥४॥

अर्थ भरतजी ने सब कुशल कह सुनाया। तब अपने कुल का कुशल मङ्गल पूछा। बतला कि पिताजी कहाँ हैं, सब मातायें कहाँ है? सीताजी रामजी और प्रिय भाई लक्ष्मण कहाँ है?

व्याख्या परिजनो को देख ही लिया। अब जिन्हे नही देखा उन्हे पूछते हैं। महाराज कैकेयी को अधिक मानते थे। प्रायेण उसी के महल मे रहते थे। इसी से सब का आना जाना लगा रहता था। सो कोई नही दिखायी पड रहा है। भरत का आना सुनकर भी कोई नही आया। इसलिए एक एक को पूछ रहे हैं।

दो सुनि सुत बचन सनेहमय, कपट नीर भरि नयन।
भरत श्रवन मन सूल सम, पापिनि बोली बयन ॥१५९॥

अर्थ पुत्र के स्नेहमय वचन को सुनकर वह पापिनी आँखो मे कपट के आँसू भरकर भरत के मन और कानो के लिए शूल के समान वचन बोली।

व्याख्या पति विषयक स्नेहमय जिज्ञासा के वचन सुनकर विधवा माता की पीडा का पारावार नही रहता। सो कैकेयी को कोई पीडा नही हुई। उसे सात्त्विक भाव नाट्य करने के लिए आँखो मे कपट के आँसू भरने पडे। मन मे दुख नही है। दिखाना चाहती है कि मैं दुखी हूँ। पति म प्रेम न देखकर पुत्र को माता के प्रति अश्रद्धा होती है। अत यह नाट्य हो रहा है। इसी से कवि पापिनी कह रहे है। इसी के करतब से पति मरे। रामजी को वनवास हुआ। यह सब भरत के लिए किया। सो भरत को भी उसके वचन शूल की भाँति चोट पहुँचावगे।

तात बात मै सकल संवारी। भइ मथरा सहाय बिचारी ॥
कछुक काज बिधि बीच बिगारेउ। भूपति सुरपति पुर पगु धारेउ ॥१॥

अर्थ बेटा! मैंने सारी बातें बना ली थी। बिचारी मन्थरा सहायक हुई। बीच म विधाता ने कुछ काम बिगाड दिया। महाराज इन्द्रपुर को पधार गये।

व्याख्या कहती है कि आदमी का बिगाडा हुआ तो सब मैंने सँवार लिया। अर्थात् राम को राज्य सब मिलकर दिलवा ही चुके थे। इतना बडा रघुवश है। किसी ने मेरी सहायता न की। बिचारी मन्थरा ने वचन सहाय किया। वही एक

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मायके की है। जो करणी किया है उसी के प्रकट करने की भूमिका बाँध रही हैं। पहिले ही वार्ता विशेष न कहकर ऐसी बातें करना जिसमें पीछे विवक्षित बात जम जाय यही भूमिका है। जो बात ब्रह्मा बिगाडते हैं वह मनुष्य का सुधारा नही सुधारता। राजा का देहान्त हो गया। सँवारा सो हमने, बिगाड़ा सो ब्रह्मा ने : यही तामसी बुद्धि है। बात को सँभालकर कहती है। जिसमे भरतजी को कम पीड़ा हो। मरना न कहकर इन्द्रपुर पधारना कह रही है।

सुनत भरतु भए बिबस बिषादा। जनु सहमेउ करि केहरि नादा ॥
तात तात हा तात पुकारी। परे भूमि तल ब्याकुल भारी ॥२॥

अर्थ : सुनते ही भरतजी विषाद के वश हो गये। जैसे सिंह का नाद सुनकर हाथी सहम उठा हो। तात ! तात ! हा तात ! ऐसा पुकार करके अत्यन्त व्याकुल होकर पृथ्वी पर गिर पड़े।

व्याख्या : हाथी के लिए सिंह का नाद श्रवण मन के लिए शूल के समान है। केहरि का गन्ध हाथी नही सह सकते। कोसों दूर भागते हैं। नाद सुनने पर तो कुछ करते धरते नही बनता। महाराज का अस्वस्थ होना भरतजी नही सह सकते थे। अतः मरण सुनने पर भारी विकलता हुई। अपने को सँभाल न सके। धैर्य छूट गया। चिल्लाकर रो उठे और पृथ्वी पर गिर गये।

चलत न देखन पायउँ तोही। तात न रामहि सौंपेहु मोही ॥
बहुरि धीर धरि उठे सँभारी। कहु पितु मरन हेतु महतारी ॥३॥

अर्थ : अन्त समय मे मैं आपको देख न सका। हे तात ! आपने मुझे रामजी को सौपा भी नही। फिर धैर्य धारण करके सँभलकर उठे। बोले माँ ! पिता के मरण का कारण बताओ।

व्याख्या : सुरपुर गवन सुनावा। अत. कहते हैं : चलत न देखन पायउँ तोही। भरतजी ने समझा कि सरकार ने दाह क्रिया किया होगा। सो मरती समय मैं मुख भी न देख सका। अन्तिम दर्शन मेरे भाग्य मे नही था। एक आवश्यक बात मेरे लिए नही कर सके। रामजी को मुझे नही सौंपा कि मेरे बाद तुम्ही इसके पिता हो।

कैकेयी कुछ नही कहती कि शोक का वेग निकल जाने दो। तब खुशी की बात सुनावेंगे। बेटे को ख्याल है कि राजा तो रामजी हो गये अब मेरा भरण पोषण रामजी के हाथ है। यदि सौंप देते तो बड़ी जागीर मिलने की आशा थी। नही तो थोड़ी ही मिलेगी और कौन कह सकता है कि न भी मिले। यह इसे नही मालूम है कि अब मैं ही राजा हूँ। अब इसे खुशखबरी सुनानी चाहिए। तब से भरतजी अपने को सँभालकर उठ बैठे। उठने मे अपने को सँभालते हैं। हाथ पैर ठीक काम नही करते। अब पूछते हैं कि महाराज को कौन सा रोग हो गया था ?

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुनि सुत वचन कहति कैकेई । मरमु पाछि जनु माहुर देई ॥
आदिहु तें सब आपनि करनी । कुटिल कठोर मुदित मन बरनी ॥४॥

अर्थ बेटे का वचन सुनकर कैकेयी कहती है। मानो मर्म पर घाव करके विष दे रही है। वह कुटिल कठोर कैकेयी। आरम्भ से अपनी करणी बड़े प्रसन्न मन से सुना गयी वर्णन कर गयी।

व्याख्या भरतजी का वचन सुनकर जो कैकेयी ने कहा उसे आगे कहा जायगा। पहले प्रभाव कहते है। मानो मर्म पर घाव करके उस पर विष की पट्टी दी जा रही है। पहला वरदान भरत को राज्य माँगना मर्म पर घाव करना है और दूसरा वरदान रामजी को वनवास देना उस पर जहर की पट्टी बाँधना है। विष खिलाने से भी अधिक सद्य परिणाम घाव पर विष देने से होता है। क्योंकि खाने के बाद पाक होने मे कुछ समय लगता है और घाव पर विष रखने से उसका ससर्ग रक्त से सद्य हो जाता है। अत उसका तुरन्त प्रभाव होता है। शूल से वचन ने मर्म पर घाव किया। यथा भरत श्रवन मन सूल सम पापिनि बोली वयन। दूसरे वचन ने उस पर विष प्रयोग सा प्रभाव डाला।

कैकेयी ऐसी कठोर है कि अपनी कुटिलता भरी करणी लगी प्रसन्न होकर वर्णन करने। कहने लगी कि मन्थरा द्वारा पता लगने पर कि राम का राज्याभिषेक होनेवाला है। मुझे बडी चिन्ता हुई कि उनके अभिषेक होने पर तुम्हे उनका गुलाम होकर रहना पडेगा। उधर अभिषेक की सब तैयारी हो चुकी थी। फिर मन्थरा ने जैसे जैसे समझाया जैसे जैसे वरदान माँगा गया, जैसे रामजी वन गये, जिस भाति महाराज का देहावसान हुआ, सब कह गयी।

दो भरतहि बिसरेउ पितु मरन, सुनत राम बन गौनु ।
हेतु अपनपउ जानि जिअँ, थकित रहे धरि मौनु ॥१६०॥

अर्थ भरतजी को रामजी का वन जाना सुनकर पिता का मरण भूल गया। अपने को ही कारण समझकर चुप होकर ठक हो गये।

व्याख्या राम वनगमन का चोट पितु मरण से भी बडा हुआ। मर्म पर घाव करने से विष की पट्टी अधिक दु खदायक हुई। बडा भारी दु ख आजाने से छोटा दु ख भूल जाता है। पिता का मरण सुनने पर तो रोये चिल्लाये। पर राम वनगमन सुनकर मौन होकर स्तब्ध हो गये। क्योकि मन मे समझा कि सब अनर्थ का कारण तो मैं हुआ पहिले वरदान का ही दूसरा वरदान पोषक है।

बिकल बिलोकि सुतहि समुझावति । मनहुँ जरे पर लोनु लगावति ॥
तात राउ नहिं सोचइ जोगू । बिढइ सुकृत जसु कीन्हेउ भोगू ॥१॥

अर्थ विकल देखकर बेटे को समझाती है। मानो जले पर नमक छिडकती

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है। बेटा! महाराज सोचने योग्य नही है। उन्होने पुण्य और यश उपार्जन करके ससार मे सुख किया है।

व्याख्या समझती है कि बाप के मरने के शोक मे लडके को राज्य प्राप्ति की खुशी दब गयी। मर्म पर चोट करके विष देना सहा जाता है। जले पर नमक छिडकना नही सहा जाता। भरतजी का कलेजा जल रहा है। तिस पर इसका समझाना नमक का काम कर रहा है। सहा नहीं जाता। कैकेयी कहती है कि पाप कर्म करके सुख नही भोगा। पुण्य भी कमाया। यश भी कमाया और सासारिक सुख भी भोगा। पापी के लिए सोचा जाता है कि इसकी क्या गति होगी या दुखिया के लिए सोचा जाता है कि बिचारा मर गया। कुछ सुख भोगने को न मिला। राजा को तो दोना लोक म सुख ही सुख हुआ। उनके लिए क्यो सोचते हो ?

जीवत सकल जनम फल पाए। अत अमरपति सदन सिधाए ॥
अस अनुमानि, सोच परिहरहू। सहित समाज राजु पुर करहू ॥२॥

अर्थ जीते जी जन्म पाने का सभी फल पाया। अन्त मे इन्द्रासन पर चल गय। ऐसा अनुमान करके शोक को छोडो और समाज सहित नगर का राज्य करो।

व्याख्या इन्द्रपुर जाना अनुमान से सिद्ध है। महाराज अश्वमेधान्त याजी थे। उनके इन्द्रपुर जाने मे सन्देह क्या ? तिस पर इन्द्र के मित्र थे। यथा ससुर सुरेस सखा रघुराऊ। अत इन्द्र ने बुलाकर अपने पास रखा होगा। इस अनुमान के बल पर सोच छोडो। राजा गये। पर अपना समाज छोड गये हैं। उस समाज के साथ राज्य करो। क्यो व्यथ दु ख करत हो।

सुनि सुठि सहमेउ राजकुमारू। पाके छत जनु लाग अगारू ॥
धीरजु धरि भरि लेहिं उसासा। पापिनि सबहिं भाँति कुल नासा ॥३॥

अर्थ सुनकर राजकुमार भरतजी एकदम सहम गये। मानो पके घाव पर अङ्गार छू गया। वे धैर्य धारण करके लम्बी सांस ली और बोल कि रे पापिनी! तैने सभी तरह से कुल का नाश किया।

व्याख्या एक एक बात रानी साहिबा की दूसरे से बढकर हो रही है। अत कवि उपमा भी वैसी ही देते जाते हैं। पहिली बात मर्म पाछि जनु माहुर देई। दूसरी बात मानहु लोन जरे पर देई। अब तीसरी बात की उपमा देते हैं कि मानो पके हुए फाडे पर कोई अङ्गार रख दे। राम का बनवास कहना मानो घाव पक गया है। उस पर राजपुर करऊ कहने ने तो मानो उस पर अङ्गार रखने का काम किया।

धैर्य करके तब उच्छ्वास लिया। नही तो स्तब्ध खडे थे। इस बार बोल ही बैठे। पापिनि बोली बैन। अत कहते है पापिनि सबहिं भाँति कुल नासा। दिन कर कुल जलरुह चन्दिनि है। राजा का मारा। परिजन को मरणान्त कष्ट दिया। बेटे को वन दिया। कुल नाश मे कोइ कसर न छोडा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जौं पै कुरुचि रही अति तोही। जनमत काहे न मारे मोही॥
पेड़ काटि तैं पालउ सीचा। मीन जिअन निति बारि उलीचा॥४॥

अर्थ : यदि तुझे अत्यन्त ही कुरुचि थी तो जन्म लेते ही मुझे क्यों नही मार दिया ? पेड़ काटकर तूने पल्लव सीचा। मछली के जीने के लिए तूने पानी ही उलीच डाला।

व्याख्या : रघुकुल की रीति के विरुद्ध रुचि होना कुरुचि है और मुनिवेष धारण कराके रामजी को वन भेजना अत्यन्त कुरुचि है। इस कुरुचि द्वारा तैने मेरे यशोमय शरीर का वध किया। तब मुझे जनमते ही क्यो नही मारा ? उस समय मर गये होते तो हम अपयश भाजन, प्रियजन द्रोही तो न होते।

यहाँ सीचा और उलीचा दोनो क्रियाओ से दोनो वरदान अर्थात् १. भरत को राज्य २ राम का वन मांगना द्योतित किया। रामजी को राज्य मिलना आमूल वृक्ष रूप था। उसके सिञ्चन से हम लोग पल्लव रूप आप से आप सिंच जाते। सो उसे तैंने काटा। वृक्ष की जड़ ही कट गयी। पल्लव के सीचने से पल्लव की रक्षा नही हो सकती।

मुझे राज्य देकर ही तू सन्तुष्ट नही हुई। तूने समझा कि राम के रहने से मैं राज्य न कर सकूँगा। सम्भव है कि मैं मारा जाऊँ। तूने यह न जाना कि जैसे मछली का जीवनाधार जल है उसी भाँति मेरे जीवनाधार राम हैं। जैसे कोई महामूर्ख यह समझकर कि जल मे मछली डूब मरेगी। पानी उलीच दे उसी भाँति तूने मेरी रक्षा के लिए रामजी को वनवास दिया। पहिले उदाहरण से राम के सुख से अपना सुख कहा। दूसरे से उन्हे जीवनाधार बताया। भाव यह कि मेरा हित चाहती हुई तूने मेरा सर्वनाश कर दिया।

दो. हंसबस दसरथु जनकु, राम लखन से भाइ।
जननी तूं जननी भई, बिधि सन कछु न बसाइ॥१६१॥

अर्थ : सूर्यवंश ऐसा कुल, दशरथ, ऐसे पिता, राम लक्ष्मण ऐसे भाई हुए और माता ! तुम माता हुई। विधाता से कोई वश नही चलता।

व्याख्या : जब ब्रह्मदेव ने सूर्यवंश ऐसे उज्ज्वल कुल मे जन्म दिया, जिसके समान दूसरा नही ऐसा पिता दिया। यथा : दसरथ गुन गन बरनि न जाही। अधिक कहा जेहि सम जग नाही। राम लक्ष्मण सा भाई दिया : जिन्हके जस प्रताप के आगे। ससि मलीन रबि सीतल लागे और माँ तुम्हे बना दिया। जिसके पापी हृदय ने मेरा हित चाहते हुए सर्वनाश कर दिया। यहाँ दूसरे जननी शब्द मे काकु है। भिन्नकण्ठध्वनिर्धीरैः काकुरित्यभिधीयते।

जबतें कुमति कुमत जिअ ठयेऊ। खंड खंड ह्वै हृदय न गयेऊ॥
बर माँगत मन भइ नहिं पीरा। गरि न जीह मुँह परेउ न कीरा॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : रे कुमति ! जब यह दुर्बुद्धि तेरे हृदय में आयी तेरा हृदय टुकड़े टुकड़े क्यों न हो गया ! वर माँगने में तेरे मन मे पीड़ा क्यों न हुई ! तेरी जीभ गली नही ! मुख में कीड़े न पड़े !

व्याख्या : जिस हृदय में सदा सुमति रही। जो सदा राम प्रेम से सरस रहा, उसमें जब दुर्बुद्धि का प्रवेश हुआ, उससे राम प्रेम जाता रहा। तब वह टुकड़े टुकड़े क्यों न हो गया। क्योकि सरस वस्तु रस के वियोग से फट जाता है। इसलिए हृदय को फट जाना चाहता था।

यदि फटा नही तो कम से कम वर माँगते समय उसमें पीड़ा तो होनी ही चाहती थी। पर तुझे पीड़ा तक न हुई। यथा : मागउँ दूसर वर करजोरी। पुरवहु नाथ मनोरथ मोरी। जिस जीभ से जिस मुख से तैने ऐसा वरदान माँगकर इतना बड़ा घोर पाप किया उस जीभ को सद्यः गल जाना चाहता था और उस मुख में कीड़े पड़ जाने चाहते थे। यथा : ते नर नरकरूप जीवत जग भवभंजन पद बिमुख अभागी। भला तुझसे बिगड़ा तो बिगड़ा महाराज कैसे भूल गये ?

भूप प्रतीति तोरि किमि कीन्ही। मरन काल बिधि मति हरि लीन्ही॥
बिधिहुँ न नारि हृदय गति जानी। सकल कपट अघ अवगुन खानी॥२॥

अर्थ : राजा ने तेरा विश्वास कैसे किया। मरती समय विधाता ने उनकी बुद्धि हरण कर ली। ब्रह्मदेव भी स्त्री के हृदय की गति नही जान पाते जो सब प्रकार के कपट पाप और अवगुण की खानि होती है।

व्याख्या : महाराज तो नीतिकुशल थे। उन्हे समझना चाहिए था कि रामजी का अभिषेक है। आज यह कोपभवन मे आयी है। खुशी नही मनाती। वरदान माँगती है। अवश्य इसे रामजी से भय है। रामजी के विरुद्ध ही कुछ माँगेगी। ऐसे अवसर पर विशेषतः तेरा विश्वास तो करना ही नही चाहता था। क्योकि कोपभवन में जाने से ही तेरा भव व्यक्त हो गया था। सो : कालदण्ड गहि काहु न मारा। हरै धर्म बल बुद्धि विचारा।

यदि कहिये कि राजा को इस बात का भरोसा था कि इसके हृदयगति को मैं जानता हूँ। यथा : जानेउ मरम राउ हँसि कहई। तुमहि कोहाब परम प्रिय अहई। तो मायारूप होने से ब्रह्मा भी नही जान सकते कि किस स्त्री को किस समय कैसी गति हो जायगी। माया के परिवार काम क्रोध से शिव चतुरानन के डरने की बात सुनी जाती है और नारि तो उनमे सबसे अधिक दारुण दुःखद है। यथा : काम क्रोध लोभादि पद प्रबल मोह कै धारि। तिन मह अति दारुन दुःखद मायारूपी नारि। जो जिसकी गति नही जानता उससे वह डरता है। अतः कहा जा सकता है कि विधाता को भी नारी के हृदय की गति नही मालूम। जितने कपट है, पाप हैं और अवगुण हैं। ये सब स्त्रियो के हृदय से ही उत्पन्न हुए हैं। जिस भाँति जितने धातु हैं। वे सब खानि से ही उत्पन्न होते हैं। कुछ पण्डितों का मत है कि विष देना

4365

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पहिले पहल स्त्रियो ने ही निकाला। नहीं तो जिसके पिता को वेदाधिकार हो, पति को हो, पुत्र को हो पर उसे न हो। यह बात निष्कारण नहीं हैं।

सरल सुसील धरमरत राऊ। सो किमि जानइ तीय सुभाऊ॥
अस को जीव जंतु जग माहीं। जेहि रघुनाथ प्रानप्रिय नांही॥३॥

अर्थ : महाराज सरल सुशील धर्मात्मा थे। वे स्त्री स्वभाव को क्या जानें। ऐसे जीव जन्तु ससार में कौन है जिसे रघुनाथ प्राणप्रिय न हो।

व्याख्या : सत्य कहहिं कवि नारि सुभाऊ। सब बिधि अगह अगाध दुराऊ। महाराज सरल, स्त्री कपटखानि : महाराज सुशील और स्त्री अघखानि : महाराज धर्मरत और स्त्री अवगुणखानि। कपटखानि होने से अगह, अघखानि होने से अगाध और अवगुणखानि होने से दुराऊ। अत: महाराज तो जान ही नही सकते थे।

जिनहि निरखि मग साँपिनि बीछी। तजहि विषम बिष तामस तीछी। क्योकि अपनी आत्मा किसे प्रिय नहीं है। राम सो परमातमा भवानी। राम परमात्मा होने से सबकी आत्मा है। अत: वे सबको प्रिय हैं।

भे अति अहित रामु तेउ तोही। को तू अहसि सत्य कहु मोही॥
जो हँसि सो हसि मुँह मसि लाई। आँखि ओट उठि बठहि जाई॥४॥

अर्थ : वे राम तुझे अत्यन्त अहित हो गये। तू है कौन मुझे ठीक ठीक बतला। चाहे तू जो हो मुख मे कालिख लगाकर उठ और मेरी आँखो के आड मे जाकर कही बैठ।

व्याख्या : अरिहु क अनभल कीन्ह न रामा। बैरिहु राम बड़ाई करही। वे राम तुझे अत्यन्त अहित हो गये। अब तू है कौन ? मुझसे सत्य बतला दे। मेरी वह माँ तो तू नही है। उसे तो रामजी प्राण से भी प्यारे थे। तब मेरे माँ के रूप मे तू कौन है ? कोई राक्षसी है या पिशाची है। जो मेरी माँ का रूप धारण किये हुए है।

अच्छा चाहे तू वही हो चाहे दूसरी हो। दुष्ट बुद्धि का मुख मसि योग्य होता ही है। यथा : असि बुधि तौ बिधि मुँह मसि लोई। लोचन ओट बैठु मुँह गोई कहकर पति ने त्याग किया था : आँखि ओट उठि बैठहि जाई कहकर पुत्र ने भी त्याग किया। यथा : तजेउ पिता प्रहलाद विभीषन बधु भरत महतारी।

दो. राम बिरोधी हृदय तें, प्रकट किन्ह बिधि मोहि।
मो समान को पातकी, बादि कहौं कछु तोहि॥१६२॥

अर्थ : ब्रह्मदेव ने मुझे राम विरोधी के हृदय से प्रकट किया है अत: मेरे समान पापी कौन है। तुझे मै व्यर्थ ही कुछ कह रहा हूँ।

व्याख्या : त्याग के बाद अब उस ओर से क्रोध हटा तब आत्मग्लानि हुई कि मै विरोधी के हृदय से पैदा हुआ। ऐसी ही ग्लानि सती को हुई थी। यथा : दच्छ सुक्र सम्भव यह देही। पापी मैं हूँ तुम्हे व्यर्थ पापिनी कहता हूँ। कर्म सुभासुभ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



देइ विधाता। विधाता ने मेरा पाप देखकर ही तेरे उदर से मेरा जन्म दिया है। तू तो राम विरोधी के उदर से नही उत्पन्न हुई। मैं तो पूर्वजन्म का पापी हूँ। तू तो केवल इस जन्म की पापिनी है अत मेरा तुझसे कहना व्यर्थ है।

सुनि सत्रुघुन मातु कुटिलाई। जरहिं गात रिस कछु न बसाई ॥
तेहि अवसर कुबरी तहँ आई। बसन बिभूषन बिबिध बनाई ॥१॥

अर्थ शत्रुघ्न का शरीर माता की कुटिलता सुनकर क्रोध से जल रहा था। कोई वश नही चलता था। उस अवसर पर कुबरी वहाँ आगयी। उसने अनेक प्रकार के कपडे और गहने से अपने को सजा रक्खा था।

व्याख्या अभी तक शत्रुघ्नजी बोल ही नही। यह रघुकुल का विनय है। बडो के सामने छोटे बोलते ही नही। शत्रुघ्नजी सबसे छोटे हैं। रामायण भर मे ये बोले ही नही। यही हाल लक्ष्मणजी का भरतजी के सामने रहता है। शत्रुघ्नजी भरतजी के साथ हैं। माता की कुटिलता सुन सुनकर देह मे आग लगी हुई है। आज दूसरे से यह बात हुई होती तो क्या न कर बैठते। माँ हैं। इसलिए कुछ कर नही सकते। भरतजी ने तो खरी खोटी भी कही। पर ये चुप ही रहे।

जिस समय भरतजी ने माता का त्याग किया उसी अवसर पर कुबरी वहाँ चली आयी। वहाँ कोई आ नही सकता था। एकान्त म बात हो रही थी। कुबरी का साहस बढा हुआ है। वाहवाही लेने आयी है। समझ लिया कि मेरी हितचिन्तकता अब तक रानी साहिबा कह चुकी होगी। सो वस्त्राभूषण जो कैकेयी से मिले हैं उससे सज धजकर चखपूतरी बनी हुई आयी मुबारकबादी देने।

लखि रिसि भरेउ लखन लघु भाई। बरत अनल घृत आहुति पाई ॥
हुमगि लात तकि कूबर मारा। परि मुह भरि महि करत पुकारा ॥२॥

अर्थ लखकर लक्ष्मणजी के छोटे भाई क्रोध से भर गये। मानो जलती हुई आग मे घी की आहुति पडी। कूबर ताककर हुमक कस कर लात मारा। मुँह के बल जमीन पर पुकार करती हुई गिरी।

व्याख्या . यद्यपि भरतजी के साथ हैं। पर लक्ष्मणजी के छोटे भाई हैं। तेजस्वी स्वभाव है। उसके सजधजकर आने का आशय लखा। क्रोध से भर गये कि इसी की लगायी सब आग है। उसके आने से जलती हुई आग मे घी का काम किया। क्रोध भभक उठा न बोले न चाले।

कूबर ताककर लात मारा कि सब दोष की गठरी यही है। वीर के लात का आघात कूबरी क्या सहती। मुँह के बल पृथ्वी पर गिरी। चिल्लाने लगी कि क्या यही नेकी का बदला है ? होम करते हाथ जल रहा है।

कूबर टूटेउ फूट कपारू। दलित दसन मुख रुधिर प्रचारू ॥
आह दइअ मै काह नसावा। करत नीक फलु अनइस पावा ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ कूबर टूटा। सिर फूटा। दाँत टूट गये। मुँह से रक्त बह चला कहने लगी हाय देव! मैने क्या बिगाडा? मैने भला किया उसके बदले मे फल बुरा मिला?

। व्याख्या कूबर पर लात लगा। इसलिए कूबर टूट गया। मुँह के बल गिरी। इससे कपाल मे भी चोट आयी। दाँत भी टूट गये। भीतर से भी रक्त और बाहर से भी रक्त बह चला। फोरैं जोग कपार हमारा का साफल्य है। कहने लगी अरे दैया रे मैंने क्या बिगाडा। बिगाडा तो कौसल्या ने जिन्होने रचि प्रपञ्च भूपति अपनाई। राम तिलक हित लगन धराई। मैंने तो भला किया। रानी को खबर दे दिया। नही तो आज रामचन्द्र राजा हो गये होते।

सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी। लगे घसीटन धरि धरि झोटी॥
भरत दयानिधि दीन्ह छडाई। कौसल्या पहिं गे दोउ भाई॥४॥

अर्थ सुनकर शत्रुघ्नजी उसे नख से चोटी तक खोटी जानकर उसको झोटा केश पकड पकडकर घसीटने लगे। दयासागर भरतजी ने उसे छोडा दिया। दोनो भाई कौसल्याजी के पास गये।

व्याख्या उसकी वात सुनकर शत्रुघ्नजी ने लखा कि इसके कूबर मे ही दोष नही है। इसके सर्वाङ्ग मे दोप भरा है। उसका केश पकडकर एक ओर घसीटकर फेंका और फिर घसीटकर दूसरी ओर फेंक दिया।

भरतजी दयानिधान हैं। उस पर भी दया किया कि यह चेरी है। इसकी इतनी ही बुद्धि थी। जब रानी की यह गति है तो चेरी का क्या दोप है। उठकर छोडाया। कहने से काम नही चला। अत दुखिनी रामजी की माता कौसल्याजो के पास दोनो भाई गये। महाराज का शव वही था।

## प्रेमवर्णन प्रसङ्ग

दो मलिन बसन बिबरन बिकल, कृस सरीर दुख भारु।
कनक कलप बर बेलि बन, मानहुँ हनी तुसारु॥१६३॥

अर्थ देखा कि कपडे मैले, बेरङ्ग, विकल, शरीर दुबली, दुख के बोझ से दबी ऐसी मालूम होती थी। जैसे सुनहली लहलहाती हुई कल्पलता को वन में पाला मार गया हो।

व्याख्या आज महाराज दशरथ की पट्टाभिषिक्ता महिषी की यह दशा है कि कपडे मैले हो गय हैं। शरीर का रङ्ग काला पड गया है। शोक से विकल हैं। दुबली पड गयी हैं। बडा भारी दुख है। क्या थी क्या हो गयी? जैसे पाला मार देने से कल्पलता झुलस गयी हो। कैकेयी मे ऐसे लक्षण एक भी न थे। उसके कपडे भी साफ थे। रङ्ग भी फीका नही था। पहले की सी ज्यों की त्यों थी। बल्कि अधिक प्रसन्न दिखायी पडी थी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भरतहि देखि मातु उठि धाई । मुरुछित अवनि परी झइआई ॥
देखत भरतु बिकल भये भारी । परे चरन तनु दसा बिसारी ॥१॥

अर्थ भरत को देखकर माता कौसल्या उठकर दौडी पर चक्कर खाकर पृथ्वी पर मूर्च्छित होकर गिर पडी। देखते ही भरतजी बडे विकल हुए। चरणा पर गिर पडे। शरीर की सुध बुध न रही।

व्याख्या कैकेयी और कौसल्या मे अन्तर दिखला रहे। दु ख के समय वेटे को आते देखकर जैसी माँ की गति होती है वही कौसल्याजी की है। जैसा वात्सल्य रामजी पर वैसा ही भरत पर। आते देखकर मिलने के लिए उठ दौडी। दुर्बलता से चक्कर आगया। मूर्च्छित हो गयी। इधर भरतजी की यह दशा हुई कि देखकर भारी व्याकुल हुए। कौसल्याजी के चरणो पर शरीर की सुध बुध खोकर जा गिरे। कौसल्याजी की दशा देखकर विकल हुए थे। मूर्च्छित देखकर भारी विकल हुए।

मातु तात कहँ देहि देखाई । कहँ सिय रामु लखनु दोउ भाई ॥
कैकइ कत जनमी जग माँझा । जौ जनमि त भइ काहे न बाँझा ॥२॥

अर्थ माता ! पिताजी को दिखा दो। सीताजी और दोनो भाई राम लक्ष्मण कहाँ हैं। कैकेयी संसार म क्यो पैदा हुई। यदि हुई तो वन्ध्या क्यो न हुई ?

व्याख्या मातु सम्बोधन से भाव यह कि कैकेयी माता नही। माता तो तू है। जो पिता को दिखावे वही माता है मरती समय पिता को नही देखा। अत शव का ही दर्शन चाहते हैं। सीताजी और राम लक्ष्मण दोनो भाई कहाँ हैं ? इन दोनो प्रश्नो से पिता के प्रति तथा भाइयो के प्रति अपना प्रेम द्योतित किया। अथवा इतना ही मालूम है कि वन गये। पर कहाँ है यह नही जानते। भाव के शुद्ध होने से अर्थ युक्त बातें आप से आप मुख से निकलती हैं। भरतजी के प्रश्न स्वाभाविक है। पर कैसा शोकोद्‌गार उससे प्रकट होता है।

माता नही कहते कैकेयी कहते हैं। उसी ने सब बिगाडा। इसलिए कहते हैं कि वह जनमी क्यो ? जगत् के हित के लिए जगत् मे जन्म होता है। उससे घोर अहित हुआ। यदि जनमी तो उसे वन्ध्या होना चाहिए था। न बेटा होता न उसके लिए यह इतना बडा अनर्थ करती।

कुल कलंकु जेहि जनमेउ मोही । अपजस भाजन प्रियजन द्रोही ॥
को तिभुवन मोहि सरिस अभागी । गति असि तोरि मातु जेहि लागी ॥३॥

अर्थ जिसने मुझ कुलकलङ्क को जन्म दिया है। मैं अपयश का पात्र और प्रियजन का द्रोही हुआ। मेरे समान तीनो भुवन म कौन अभागा है। जिसके कारण माँ ! यह तेरी दशा हुई।

व्याख्या जिसके पुत्रवती होने से रघुकुल मे कलङ्क लगा। मैं कलङ्की पैदा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : कूबर टूटा। सिर फूटा। दाँत टूट गये। मुँह से रक्त बह चला : कहने लगी हाय देव! मैंने क्या बिगाड़ा? मैंने भला किया : उसके बदले मे फल बुरा मिला?

। व्याख्या : कूबर पर लात लगा। इसलिए कूबर टूट गया। मुँह के बल गिरी। इससे कपाल मे भी चोट आयी। दाँत भी टूट गये। भीतर से भी रक्त और बाहर से भी रक्त बह चला। फोरँ जोग कपार हभारा का साफल्य है। कहने लगी अरे दैया रे मैने क्या बिगाड़ा। बिगाड़ा तो कौसल्या ने जिन्होंने : रचि प्रपञ्च भूपति अपनाई। राम तिलक हित लगन धराई। मैंने तो भला किया। रानी को खबर दे दिया। नही तो आज रामचन्द्र राजा हो गये होते।

सुनि रिपुहन लखि नख सिख खोटी। लगे घसीटन धरि धरि झोंटी॥
भरत दयानिधि दीन्हि छडाई। कौसल्या पहिं गे दोउ भाई॥४॥

अर्थ : सुनकर शत्रुघ्नजी उसे नख से चोटी तक खोटी जानकर उसको झोटा : केश पकड़ पकडकर घसीटने लगे। दयासागर भरतजी ने उसे छोड़ा दिया। दोनो भाई कौसल्याजी के पास गये।

व्याख्या : उसकी बात सुनकर शत्रुघ्नजी ने लखा कि इसके कूबर मे ही दोष नही हैं। इसके सर्वाङ्ग मे दोष भरा है। उसका केश पकड़कर एक ओर घसीटकर फेंका और फिर घसीटकर दूसरी ओर फेंक दिया।

भरतजी दयानिधान हैं। उस पर भी दया किया कि यह चेरी है। इसकी इतनी ही बुद्धि थी। जब रानी की यह गति है तो चेरी का क्या दोष है। उठकर छोड़ाया। कहने से काम नही चला। अत: दुखिनी रामजी की माता कौसल्याजी के पास दोनो भाई गये। महाराज का शव वही था।

## प्रेमवर्णन प्रसङ्ग

दो. मलिन बसन बिबरन बिकल, कृस सरीर दुख भारु।
कनक कलप बर बेलि बन, मानहुँ हनी तुसारु॥१६३॥

अर्थ : देखा कि : कपडे मैले, बेरङ्ग, विकल, शरीर दुबली, दु:ख के बोझ से दबी : ऐसी मालूम होती थी। जैसे सुनहली लहलहाती हुई कल्पलता को वन में पाला मार गया हो।

व्याख्या : आज महाराज दशरथ की पट्टाभिषिक्ता महिषी की यह दशा है कि कपडे मैले हो गय हैं। शरीर का रङ्ग काला पड गया है। शोक से विकल हैं। दुबली पड गयी है। बडा भारी दु:ख है। क्या थी क्या हो गयी? जैसे पाला मार देने से कल्पलता झुलस गयी हो। कैकेयी मे ऐसे लक्षण एक भी न थे। उसके कपडे भी साफ थे। रङ्ग भी फीका नही था। पहले की सी ज्यों की त्यों थी। बल्कि अधिक प्रसन्न दिखायी पडी थी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भरतहि देखि मातु उठि धाई। मुरुछित अवनि परी झइआई ॥
देखत भरतु बिकल भये भारी। परे चरन तनु दसा बिसारी ॥१॥

अर्थ : भरत को देखकर माता : कौसल्या उठकर दौड़ी पर चक्कर खाकर पृथ्वी पर मूर्च्छित होकर गिर पड़ी। देखते ही भरतजी बड़े विकल हुए। चरणों पर गिर पड़े। शरीर की सुध बुध न रही।

व्याख्या : कैकेयी और कौसल्या मे अन्तर दिखला रहे। दुःख के समय बेटे को आते देखकर जैसी माँ की गति होती है वही कौसल्याजी की है। जैसा वात्सल्य रामजी पर वैसा ही भरत पर। आते देखकर मिलने के लिए उठ दौड़ी। दुर्बलता से चक्कर आगया। मूर्च्छित हो गयी। इधर भरतजी की यह दशा हुई कि देखकर भारी व्याकुल हुए। कौसल्याजी के चरणों पर शरीर की सुध बुध खोकर जा गिरे। कौसल्याजी की दशा देखकर विकल हुए थे। मूर्च्छित देखकर भारी विकल हुए।

मातु तात कहँ देहि देखाई। कहँ सिय रामु लखनु दोउ भाई ॥
कैकइ कत जनमी जग माँझा। जौं जनमि त भइ काहे न बाँझा ॥२॥

अर्थ : माता ! पिताजी को दिखा दो। सीताजी और दोनों भाई राम लक्ष्मण कहाँ हैं। कैकेयी ससार मे क्यों पैदा हुई। यदि हुई तो वन्ध्या क्यो न हुई ?

व्याख्या : मातु सम्बोधन से भाव यह कि कैकेयी माता नही। माता तो तू है। जो पिता को दिखावे वही माता है : मरती समय पिता को नही देखा। अत· शव का ही दर्शन चाहते हैं। सीताजी और राम लक्ष्मण दोनो भाई कहाँ हैं ? इन दोनो प्रश्नो से पिता के प्रति तथा भाइयों के प्रति अपना प्रेम द्योतित किया। अथवा इतना ही मालूम है कि वन गये। पर कहाँ हैं यह नही जानते। भाव के शुद्ध होने से अर्थ युक्त बातें आप से आप मुख से निकलती हैं। भरतजी के प्रश्न स्वाभाविक हैं। पर कैसा शोकोद्गार उससे प्रकट होता है।

माता नही कहते कैकेयी कहते है। उसी ने सब बिगाड़ा। इसलिए कहते हैं कि वह जनमी क्यों ? जगत् के हित के लिए जगत् मे जन्म होता है। उससे घोर अहित हुआ। यदि जनमी तो उसे वन्ध्या होना चाहिए था। न बेटा होता न उसके लिए यह इतना बड़ा अनर्थ करती।

कुल कलंकु जेहि जनमेउ मोही। अपजस भाजन प्रियजन द्रोही ॥
को तिभुवन मोहि सरिस अभागी। गति असि तोरि मातु जेहि लागी ॥३॥

अर्थ : जिसने मुझ कुलकलङ्क को जन्म दिया है। मैं अपयश का पात्र और प्रियजन का द्रोही हुआ। मेरे समान तीनो भुवन मे कौन अभागा है। जिसके कारण माँ ! यह तेरी दशा हुई।

व्याख्या : जिसके पुत्रवती होने से रघुकुल में कलङ्क लगा। मैं कलङ्की पैदा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हुआ। जगत कहेगा कि भरत के कारण उसके पिता मरे। रामजी को वन हुआ। महाराज के मरण और रामजी के वन से बढकर प्रियजन द्रोह क्या होगा ?

जिस बेटे के कारण माता को विधवा होना पडे, पुत्र शोक भी सहन करना पडे, मूर्च्छित होना पडे और उस बेटे ने कुछ किया न हो तो उस बेटे से बडा अभागा तीनो लोक मे कौन होगा ?

पितु सुरपुर बन रघुबर केतू। मै केवल सब अनरथ हेतू ॥
धिग मोहि भयेउँ बेनु बन आगी। दुसह दाह दुख दूखन भागी ॥४॥

अर्थ पिताजी स्वर्ग गये। रघुकुल केतु वन गये। मैं इन सब अनर्थो का कारण हुआ। मुझे धिक्कार है। मै बाँस के वन मे आग होकर कठिन, दाह दुख और दूषण का भागी हुआ।

व्याख्या अपना अभाग कहते हैं पातीति पिता। रक्षा करनेवाले पिता तो स्वर्ग सिधारे और रघुकुल केतु श्रुतिसेतुरक्षक वन को गये। दोनो को असाधारण पीडा हुई। ये सब बडे बडे अनर्थ मेरे कारण हुए। दुसह दाह भागी यथा मरन कोटि सम दारुन दाहू। दुख के भागी यथा सकर साखि रहेऊ ये घाये। दूषण के भागी यथा एक भरत कर सम्मत करही। यह सब दुख मुझे हुआ। विलाप मे ही भरतजी जो कुछ उन्हे कहना था कह गये। अपने जन्म को धिक्कारते है। रघुबर केतू पाठ मानने से चारो भाइयो मे श्रेष्ठ अर्थ करना पडेगा।

दो मातु भरत के बचन मृदु, सुनि पुनि उठी सँभारि।
लिए उठाइ लगाइ उर, लोचन मोचति बारि ॥१६४॥

अर्थ माता भरत के वचन सुनकर फिर से संभलकर उठी। उठाकर छाती से लगाया। आँखो से आँसू चल रहा था।

व्याख्या अभी तक माँ भी पृथ्वी पर पडी है। भरतजी भी पडे है। भरत का विलाप पृथ्वी पर पडे ही पडे हो रहा है। भरत के मृदु वचन ने सिञ्चन का काम किया। माँ सँभलकर उठ बैठी। भरतजी को उठाकर छाती से लगाया और हृदय मे लगाये हुए रो रही है। माँ हैं बेटे का विलाप नही सुन सकी।

सरल सुभाय माय हिय लाए। अति हित मनहुँ राम फिरि आए ॥
भेंटेउ बहुरि लखन लघु भाई। सोकु सनेहु न हृदयँ समाई ॥१॥

अर्थ सरल स्वभाव से माँ ने हृदय मे लगाया। अत्यन्त प्रेम के साथ मानो रामजी लौट आये। फिर लक्ष्मणजी के छोटे भाई से मिली। शोक और स्नेह हृदय मे समाता नही है।

व्याख्या कौसल्याजी महाराज दशरथ की योग्या हैं। यथा तुम गुरु विप्र

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



धेनु सुर देवी। तस पुनीत कौसल्या देवी। जैसे महाराज सरल थे वैसी ही यह भी सरल हैं। भरतजी के मिलने पर ऐसा प्रेम है मानो रामजी लौटकर आये हैं।

भरत को राम समान जानकर मिली और शत्रुघ्न को लक्ष्मण के समान जानकर मिली। शोक भी हृदय मे समाने लायक नही। न प्रेम ही समाने लायक है। स्नेह से कलेजे से लगाती हैं। शोक से रो रही हैं। यहाँ पर स्पष्ट है कि शत्रुघ्नजी लक्ष्मणजी सहोदर भाई थे।

देखि सुभाउ कहत सबु कोई। राम मातु अस काहे न होई ॥
माता भरतु गोद बैठारे। आँसु पोछि मृदु वचन उचारे ॥२॥

अर्थ : स्वभाव को देखकर सब कोई कहता था कि रामजी की माँ ऐसी क्यो न हो! माता ने भरतजी को गोद मे बिठा लिया और आंसू पोछकर कोमल वचन कहा।

व्याख्या : घर के लोग प्रिय परिजन जिन्हे वहाँ जाने का अधिकार था सब लोग वहाँ पहुँच गये। बडे मारके का समय है। यही भविष्य का निर्णय है। कौसल्याजी के स्वभाव को सरलता देखकर सबके मुँह से वाह निकल गया। कहने लगे कि यह राम की माँ हैं। न रामजी के हृदय मे भेद न इनके हृदय मे भेद। दूसरी माँ ऐसे समय मे कठोर बोलती।

कौसल्याजी का भरतजी पर बिल्कुल और सपुत्र सा भाव है। गोद मे बिठाती हैं। आँसू पोछती हैं। रुख से समझ गयी कि कैकेयी का अनादर करके आ रहे हैं। कष्ट को कम करने के लिए इस प्रकार का बर्ताव कर रही हैं।

अजहुँ बच्छ बलि धीरज धरहू। कुसमउ समुझि सोक परिहरहू ॥
जनि मानहु हियँ हानि गलानी। काल करम गति अघटित जानी ॥३॥

अर्थ : वत्स! मैं बलि जाऊँ। अब भी धैर्य धरो। बुरा समय जानकर धैर्य धरो। मन मे हानि ग्लानि न मानो। इस बात को जान लो कि काल और कर्म की गति बनायी हुई नही है।

व्याख्या : धैर्य न धारण करने से बहुत काम बिगड चुका। धैर्य न धारण करने से ही महाराज का देहावसान हुआ। बहुत हो चुका। अब धैर्य धारण करो। समय घोर उपस्थित है। यह जानकर शोक छोडो। बडी बडो आपत्ति का सामना करना है : महाराज की और्ध्वदैहिक क्रिया की ओर इङ्गित है। जो बिगड़ा सो बिगडा। अधिक न बिगडे :

पितु सुर पुर बन रघुकुल केतू। यह हानि है। धिग मोहि भयउ बेनुबन आगी इत्यादि ग्लानि है। माँ समझाती हैं कि हानि ग्लानि न मानो। काल और कर्म गति किसी की की हुई नही है। अर्थात् किसी के करने से काल की और कर्म की गति नही बनती।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



काहुहि दोसु देहु जनि ताता । भा मोहि सब बिधि बाम बिधाता ।।
जो एतेहुँ दुख मोहि जिआवा । अजहुँ को जानइ का तेहि भावा ।।४।।

अर्थ बेटा ! किसी को दोष मत दो । विधाता सब प्रकार से मेरे प्रतिकूल हो गये है । यदि इतने दुःख पर भी मुझे जिलाया तो कौन जाने उसे क्या मञ्जूर है ।

व्याख्या वही बात जो लक्ष्मणजी ने निषादराज से कही था काहु न कोउ सुख दुःख कर दाता । निज कृत कर्म भोग सब भ्राता कौसल्याजी कह रही हैं। ये रामजी की माता हैं। इन्हे कैकेयी को दोष देना अखरता है। रामजी को भी इसी भाँति अच्छा नही मालूम हुआ कहा दोष देइ जननिहि जड तेई। जिन्ह गुरु साधु सभा नहि सेई। कहती हैं कि उनकी बुद्धि का पलटा खाना मेरे प्रति विधाता के वाम होने का फल है। न कैकेयी को दोष दो न अपने को ।

दो पितु आयसु भूषन बसन, तात तजे रघुबीर ।
बिसमउ हरषु न हृदयँ कछु, पहिरे बलकल चीर ।।१६५।।

अर्थ बेटा ! पिता की आज्ञा से रघुवीर ने गहने और कपडे उतार दिये । हृदय मे न हर्ष हुआ न विस्मय हुआ । वरकल छाल धारण कर लिया ।

व्याख्या यही चोट राजा दशरथ को हुई राउ सुनाइ दीन्ह बनबासू । सुनि मन भयउ न हरष हरासू । सो सुत बिछुरत गये न प्राना । को पापी बड मोहि समाना । कौसल्याकी के हृदय मे सरकार का बिना हर्ष विषाद के मुनिवेष धारण करना चुभा हुआ है । उसी कष्ट को भरतजी के सामने व्यक्त कर रही हैं ।

मुख प्रसन्न मन रग न रोषू । सब कर सब बिधि करि परितोषू ।।
चले बिपिन सुनि सिय सँग लागी । रहइ न राम चरन अनुरागी ।।१।।

अर्थ प्रसन्न मुख न राग, न रोष । सबका सब विधि से परितोष करके वन को चल । सुनिके सीता सङ्ग लगी । राम चरण से अनुराग करनेवाली रुकी नही ।

व्याख्या - भूषण वसन परित्याग और वल्कल धारण मे भी मुखश्री वैसी ही प्रसन्न थी जैसी सदा रहा करती थी । क्योंकि उनके मन मे न किसी के प्रति राग था न रोष था । राग और रोष दोनो म से किसी के वेग से आकृति मे विकार हो जाता है । उन्हे वन जाने का विषाद भी नही हुआ । राजिव लोचन राम चल तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं । जाने के पहिले सबका सब विधि से परितोष किया । यथा कहि प्रिय वचन सकल समुझाये । बिप्रबृद रघुबीर बोलाये । जाचक दान मान परितोषे । कहि प्रिय बचन प्रेम परिपोषे इत्यादि ।

विकलता से क्रम का ध्यान नही है । इसलिए कहती है कि उन्होने किसी को साथ नही लिया । उनका जाना सुनकर सीता साथ लग गयी । उनको मैंने समझाया । स्वय रामजी ने समझाया । उसके श्वसुर ने समझाया । और भी लोगो ने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



समझाया। पर उसका अनुराग ऐसा दृढ था कि कोई उसको अपने निश्चय से हटा न सका।

सुनतहिं लखनु चले उठि साथा। रहहिं न जतन किए रघुनाथा ॥
तब रघुपति सबही सिरु नाई। चले संग सिय अरु लघु भाई ॥२॥

अर्थ : सुनते ही लक्ष्मणजी उठकर साथ चले। रामजी के यत्न करने पर भी न रुके। तब रामजी सब ही को सिर नवाकर सीता और छोटे भाई को साथ लेकर चले।

व्याख्या : सुनते ही लक्ष्मण ने सोचने विचारने को स्थान ही नहीं दिया। उनके रोकने के लिए केवल रामजी ने ही यत्न किया। सुमित्राजी ने आज्ञा ही दे दी। उर्मिला बोली ही नहीं। महाराज ने अकेले उनका रोकना अनुचित समझा। अत उन्हें केवल रामजी ने रोका था पर नहीं रुके। तब रामजी सबको प्रणाम करके सीता और लक्ष्मण के साथ चले।

रामु लखनु सिय बनहिं सिधाए। गइउँ न संग न प्रान पठाए ॥
एहु सब भा इन्ह आँखिन्ह आगे। तउ न तजा तनु जीव अभागे ॥३॥

अर्थ : राम लक्ष्मण और सीता वन को चले गये। मैं न साथ गयी और न प्राणों को ही साथ भेज सकी। यह सब इन्हीं आँखों के सामने हुआ। फिर भी अभागे जीव ने शरीर न छोडा।

व्याख्या : लक्ष्मण और सीता के वन जाने पर दो ही रास्ता था। या तो मैं साथ चली जाती या प्राणों को साथ भेज देती। जैसा कि सीता ने सोचा था : चलन चहत वन जीवन नाथू। केहि सुकृती सन होइहि साथू। की तनु प्रान कि केवल प्राना। बिधि करतबु कछु जाइ न जाना।

सुनने मे और आँखो से देखने मे बडा भेद है। आँखो देखने मे जैसा प्रभाव हृदय पर पडता है वैसा सुनने मे नही पडता। यथा : अब सब आँखिन्ह देखेंउ आई। जिअत जीव जड सबइ सहाई। सो मैंने तो सब आँखों से देखा। परन्तु मेरा जीव सुकृती नहीं है। सुकृती होता तो शरीर छोड देता। यह अभागा है। इसलिए नहीं छोड सका। न जाने इसे क्या क्या देखना है।

मोहि न लाज निज नेहु निहारी। राम सरिस सुत मै महतारी ॥
जिअइ मरइ भल भूपति जाना। मोर हृदय सत कुलिस समाना ॥४॥

अर्थ : अपने स्नेह का विचार करने पर मुझे लज्जा नहीं है। राम जैसा बेटा और मैं माँ हूँ। जीना मरना ठीक महाराज ने जाना। मेरा हृदय तो सौ वज्र के समान है।

व्याख्या : राम ऐसा बेटा जिसने माँ बाप की आज्ञा से प्रसन्नता पूर्वक क्षण भर मे सर्वस्व त्यागकर वन का रास्ता लिया। मैं उसकी माँ हूँ। उसके विरह

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



होने पर जीते रहने मे मुझे लज्जा होनी चाहिए। सो मुझे लज्जा नही है। जिसे लज्जा थी उसने शरीर छोड दिया। लज्जा महाराज को थी। यथा 'कहेउ राज वन दियेउ नारि बस गरि गलानि गए राउ। उन्होने ही जाना कि कैसे जीना चाहिए और कैसे मरना चाहिए। जिअत राम बिधु बदन निहारा। राम बिरह करि मरन सँवारा। मेरा हृदय तो सौ वज्र का सा कठोर है। जो ऐसे ऐसे आघात : पुत्र वनवास और पति के स्वर्गवास पर भी खण्ड खण्ड नही हुआ।

दो. कौसल्या के बचन सुनि, भरत सहित रनिवासु।
ब्याकुल बिलपत राजगृह, मानहुँ सोक निवासु ॥१६६॥

अर्थ कौसल्याजी के वचनो को सुनकर भरतजी के सहित सारा रनिवास व्याकुल होकर विलाप करने लगा। राजगृह मानो शोकगृह हो गया।

व्याख्या : यहाँ मातु वचन न कहकर कौसल्या के वचन कहते हैं। क्योकि भरतजी का आना सुनकर सभी रानियाँ वहाँ चली आयी थी और सबने कौसल्याजी का वचन सुना। सबका धैर्य छूट गया। सब की सब विलाप कर रही हैं। वहाँ रोनेवाले सब हैं। समझानेवाला कोई नही। इसलिए कहते हैं कि राजगृह सीधे सीधे शोक का निवास स्थान हो गया।

बिलपहि बिकल भरत दोउ भाई। कौसल्या लिये हृदयँ लगाई ॥
भाँति अनेक भरतु समुझाए। कहि बिबेकमय बचन सुहाए ॥१॥

अर्थ : दोनो भाई विकल होकर विलाप करने लगे। तब कौसल्या ने हृदय से लगा लिया और विवेकमय अनेक बातें कहकर भरतजी को समझाया।

व्याख्या : भरतजी के साथ शत्रुघ्नजी भी विलाप करने लगे। शत्रुघ्नजी अब तक धैर्य धारण किये रहे। कौसल्याजी मूच्छित होकर गिरी। भरतजी व्याकुल होकर गिरे। विलाप करने लगे। पर शत्रुघ्नजी ने धैर्य न छोडा। पर कौसल्याजी के वचन सुनने पर उनका भी धैर्य छूट गया।

कौसल्याजी का अलौकिक विवेक है। भरतजी के प्रेम को जानती हैं। आगे कहेगी भी गूढ सनेह भरत मन माँही। रहे नीक मोहि लागत नाँही। सो दोनो भाइयो को विकल देखकर अपने हृदय के साथ बडी जबरदस्ती करती हैं। दोनो भाइयो को अधिक विकल देखकर हृदय से लगा लेती है। सुन्दर विवेकमय वचन कहकर अनेक भाँति से समझाती है। यथा

दो पुत्रजन्म पितु मातु गति हेतु होत जग जान।
याते सुत पितु हेतु जनि सोक करहु मति मान ॥
यथा दारुद्वे सरित बिच बहत कबहुँ मिलो जात।
तथा मिलन जग जीव को नहि अचरज बिलगात ॥
चौदह वर्ष बिताइ पुनि ऐहै रघुकुलकेतु।
भावी प्रबल न सकइ मिटी जनि सोचउ तेहि हेतु ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दुख सुख फल निज कर्म के टारि सकै नहिं कोय।
याते धरि धीरज सहिय जो कछु होनी होय॥

भरतहुँ मातु सकल समुझाईं। कहि पुरान श्रुति कथा सुहाईं॥
छल विहीन सुचि सरल सुबानी। बोले भरत जोरि जुग पानी॥२॥

अर्थ ' भरतजी ने भी सब माताओ को पुराण और वेद की सुन्दर कथायें कहकर समझाया। भरतजी दोनो हाथ जोडकर छलरहित पवित्र और सरल वाणी बोले।

व्याख्या : जब भरतजी शान्त हुए। तब सब माताओ को समझाने लगे। वेद के अधिकारी हैं। अत वेद पुराण की कथा कहकर समझाने लगे। यथा

दो बडे बडे सकट सहत सहि न सकत सो छोट।
कांच सहै नहिं सहि सकै हीरक घन को चोट॥
पतिदुख सुतदुख राजदुख निजदुख शैव्यारानि।
सह्यौ कह्यौ काहुहि न कछु धर्म मर्म पहिचानि॥
यहि असार ससार मे पग पग कठिन कलेस।
ईस भजन बिनु अम्ब सुनु कतहुँ नही सुख लेस॥
जहँ सयोग वियोग तहँ कोउ सकै नहि टारि।
सब प्रकार ममता तजै बुध अस हिय निरधारि॥
सपनो सो अपनो न कछु झूठो जग व्यवहार।
भजिय राम सब काम तजि अम्ब इहै जगसार॥

जब कुछ शान्ति हुई तब भरतजी अपनी सफाई देते है। स्थिति ऐसी बेढङ्ग है कि कोई मान नही सकता और न सफाई हो दी जा सकती है। अत शपथ लेते हैं। छलविहोन वाणी है। इसलिए शुचि है फिर भी सरल है। जिसके अर्थ समझने मे कोई कठिनता न हो। मृदु मधुर विनययुक्त वाणी ही सुवाणी है। माताओ के सामने बोल रहे हैं। अत दोनो हाथ जोडकर बोलते हैं कि कृपा करके सुन लिया जाय।'

जे अघ मातु पिता सुत मारे। गाइ गोठ महि सुरपुर जारे॥
जे अघ तिय बालक बध कीन्हे। मीत महीपति माहुर दीन्हे॥३॥
जे पातक उपपातक अहही। करम बचन मन भव कवि कहही॥
ते पातक मोहि होहु बिधाता। जौं एहु होइ मोर मत माता॥४॥

अर्थ जो पाप माता पिता और पुत्र के मारने से होता है और जो पाप गोशाला और ब्रह्मपुरी जलाने से होता है। जो पाप स्त्री और बालक के मार डालने से होता है और जो पाप मित्र और राजा को विष देने से होता है और जो जो पातक उपपातक मन वाणी और शरीर से किये हुए कवियो द्वारा कहे गये हैं। हे विधाता! वे सब पाप मुझे हो। यदि इसमे माता! मेरी सम्मति हो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : वेद की आज्ञा है : मातृदेवो भव पितृदेवो भव। माता पिता परमेश्वर के रूप हैं। वे ही उत्पन्न करनेवाले और पालन करनेवाले हैं। सन्तति अपनी आत्मा हैं। उन्हे जिसने मारा उसके पाप का क्या ठिकाना ? गाय लोक की माता है जिसके रोम रोम मे देवताओ का निवास है। जिसके पञ्चगव्य से त्वगस्थिगत पाप दूर होता है। जिसके गोबर के लेप से स्थान पवित्र होकर धर्म कर्म करने योग्य होता है। उनके रहने के लिए जो शाला बनी है उसमें जिसने आग लगाया, न जाने कितनी गाय उसमे बँधी है, ऐसे आग लगानेवाले के पाप का अन्त क्या है ? वर्णमात्र के जो गुरु हैं, जिनके धर्म की रक्षा से वैदिक धर्म की रक्षा है, उनकी पुरी मे जिसने आग लगाया उसने कौन सा महा पाप नही किया। इन लोगो का पाप घोरातिघोर है। इनके अतिरिक्त और भी महा पाप हैं। जैसे स्वर्णस्तेय सुरापान आदि तथा उपपातक हैं। यथा महायन्त्र निर्माण, बडे बडे इजिन बनाना। जिनसे हजारो लाखो की जीविका मारी पडे। भरतजी ब्रह्मदेव को साक्षी देकर कहते हैं कि ये सब पातक मुझे हो। अर्थात् अकृत्यकरणवाले सब पाप मुझे हो। यदि इस अनर्थ मे मेरी सम्मति हो।

दो० जे परिहरि हरि हर चरन, भजहिं भूतगन घोर।
तेहि कइ गति मोहि देउ बिधि, जौ जननी मत मोर ॥१६७॥

अर्थ : हे माता ! जो हरिहर के चरणो को छोडकर घोर भूतगण का भजन करते हैं, ब्रह्मदेव मुझे उनकी गति दें। यदि इस अनर्थ मे मेरी सम्मति रही हो।

व्याख्या : कर्म सम्बन्धी पाप के विषय मे कहकर अब उपासना सम्बन्धी पाप के विषय मे कहते हैं। परिहरि का भाव यह कि पहिले हरिहर का भजन करते थे। पर तुच्छ सिद्धियो के लोभ म पडकर घोर भूत प्रेतादि के पूजन मे लग गये। ऐसे कर्णपिशाची आदि देखे गये हैं। जो अतीत घटना सब ठीक ठीक कह देते हैं। उनको सदा अशुद्ध रहना पडता है। देव पितृकर्म से उन्हे वञ्चित रहना पडता है। फलत मरने पर उन्हे भूत ही होना पडता है आजकल परलोक विद्या के नाम से भूत भजन का प्रचार बढ चला है। भरतजी कहते है कि मुझे उनकी गति मिले। यदि इस अनर्थ मे मेरा मत हो।

बात यह है कि इतनी बात तो सभी जानते है कि भरतजी ने किया कुछ नही है। अधिक से अधिक जो उनके विरुद्ध कहा जा सकता है वह इतना ही है कि उनके सम्मति से सब कुछ हुआ। यथा एक भरत कर सम्मत कहही। इसलिए भरतजी अपनी सम्मति न होने का शपथ ले रहे है।

बेचहिं बेदु धरमु दुहि लेही। पिसुन पराय पाप कहि देही ॥
कपटी कुटिल कलह प्रिय क्रोधी। बेद बिदूषक बिस्व बिरोधी ॥१॥
लोभी लपट लोलुप चारा। जे ताकहि पर धनु पर दारा ॥
पावउँ मै तिन्ह कै गति घोरा। जौ जननी एहु समत मोरा ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : जो वेद को बेंचते हैं। धर्म को दूह लेते है। चुगुलखोर हैं। जो दूसरे का पाप मुँह से बोल देते है। कपटी कुटिल झगडालू क्रोधी वेद की दिल्लगी उडानेवाले और विश्व के विरोधी है। लोभी हैं। लम्पट हैं। लालच के दास हैं। जो पराये धन और पराई स्त्री पर निगाह लगाये रहते है। मै उनकी घोर गति को प्राप्त होऊँ। यदि माँ ! अनर्थ मे मेरी सम्मति हो।

व्याख्या : अब ज्ञान सम्बन्धी पाप के विषय से कहते हैं। मोल भाव का करना ही वेचना है। वेद का दान होता है विक्रय नही। गुरुदक्षिणा का ग्रहण होता है मूल्य का नही। वेद की कीमत आँकना महापाप है। धर्म को भावोपहत करना पाप है। जैसे विवाद के लिए विद्या पढना, मद के लिए धन कमाना, दूसरे को पीडा देने के लिए शक्ति सञ्चय करना, दूसरे का पाप कहना : उसका पाप भक्षण करना है। कपटी छली को कहते हैं। जिसके मन की वक्रगति हो उसे कुटिल कहते हैं। वेद साक्षात् परमेश्वर की वाणी है। उसका मजाक उड़ानेवाला वेद विदूषक है। ससार से द्रोह करनेवाला विश्व विरोधी है। अथवा वेदविक्रयी आदि आठो विश्व-विरोधी हैं। पैसे पैसे का लोभी वेहया। यथा : लोलुप भ्रम गृहपशु ज्यों जहँ तहँ सिर पद त्रान बजे। तदपि अधम विचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ़ लजै। ऐसे को ही लोलुपचार कहते हैं और जो साकाक्ष दृष्टि से परधन और पराई स्त्री को देखते हैं, उसके हरण का अवसर देखा करते हैं, ऐसे लोगो की बडी घोर गति होती है। भरतजी कहते है कि मैं इनकी घोर गति को प्राप्त होऊँ। यदि मेरी इस अनर्थ मे सम्मति रही हो।

जे नहिं साधु सग अनुरागे। परमारथ पथ विमुख अभागे ॥
जे न भजहिं हरि नर तनु पाई। जिन्हहि न हरि हर सुजसु सुहाई ॥३॥
तजि श्रुतिपंथु वाम पथ चलही। बंचक विरचि वेष जगु छलही ॥
तिन्ह कै गति मोहि संकर देऊ। जननी जौ एहु जानउँ भेऊ ॥४॥

अर्थ : जिन्होने साधु सङ्ग मे प्रेम नही किया। जो अभागे परमार्थ पथ से विमुख हैं। जिन्होने नर शरीर पाकर भगवान् को नही भजा। जिन्हे हरि हर सुयश अच्छा नही लगता। जो वेदमार्ग छोडकर वाममार्ग में चलते हैं। ठग हैं। वेप बनाकर ससार को ठगते हैं। मुझे शङ्कर उनकी गति दे यदि माता ! मुझे यह भेद मालूम हो।

व्याख्या : अब कृत्याकरण के लिए शपथ ग्रहण करते हैं। मान लिया कि भरत की सम्मति नही थी। पर उन्हे यह भेद मालूम था। उन्होंने प्रकाश नही किया चुप रह गये। यही कृत्याकरण है। इसके लिए कहते हैं।

मति कीरति गति भूति भलाई। जो जेहि जतन जहाँ जब पाई। सो जानब सतसग प्रभाऊ। लोकहुँ वेद न आन उपाऊ। जिसका ऐसे सत्सङ्ग मे अनुराग नही वह तो परमार्थ पथ विमुख होगा ही। अत वह अभागा है। नरतन भव-

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बारिधि कहँ वेरो। जो न तरइ भवसागर नर समाज अस पाइ। सो कृत निंदक मन्दमति आतम हन गति जाइ। जिसे हरि हर सुयश नही सोहाता वह खल है। यथा . हरि हर जस राकेस राहु से। पहिले जो वैदिक थे वामाचार को श्रेष्ठ समझकर दक्षिणमार्ग परित्याग किया। सिद्धि के लालच से पञ्चमकार मे रत हुए। सिद्धि कही कुछ नही। लाल कपडा पहन लिया। लाल तिलक हड्डी की माला धारण करके सिद्ध बने हुए ससार को ठगते हैं। ऐसे घोर कर्मियो की गति भरतजी कहते हैं कि मुझे शङ्कर दे यदि मुझे यह भेद भी मालूम हो।

गोस्वामीजी ने दो प्रकार का भेद माना . १ अकृत्यकरण और २ कृत्याकरण। अकृत्यकरण के तीन भेद माने १. कर्म सम्बन्धी २ उपासना सम्बन्धी ३ ज्ञान सम्बन्धी। कर्म सम्बन्धी के तीन भेद माने १ शरीरजन्य २ वाक्‌जन्य और मनोजन्य। सो उपर्युक्त शपथो मे सभी को गिनाया है।

दो. मातु भरत के बचन सुनि, साचे सरल सुभायँ।
कहति राम प्रिय तात तुम्ह, सदा बचन मन कायँ ॥१६८॥

अर्थ माता भरत के सरल स्वभाव के सच्चे वचन सुनकर कहने लगी कि बेटा ! तुम मनसा वाचा कर्मणा सदा रामजी को प्रिय हो।

व्याख्या : सरल स्वभाव से कहे हुए सच्चे वचन बिना प्रभाव डाले नही रहते। ऐसे वचन सुनकर माँ कौसल्या ने कहा कि मेरी जानी बात है। तुमको राम मनसा वाचा कर्मणा प्रिय है और राम को तुम मनसा वाचा कर्मणा प्रिय हो। राम प्रिय शब्द से दोनो अर्थ निकलते हैं और यहाँ दोनो अभिप्रेत हैं।

राम प्रानहु तें प्रान तुम्हारे। तुम रघुपतिहि प्रानहु ते प्यारे ॥
बिधु बिष चवइ स्रवइ हिमु आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी ॥१॥
भये ज्ञान बरु मिटइ न मोहू। तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू ॥

अर्थ : तुम्हे राम प्राणो से भी प्यारे है और तुम रामचन्द्र को प्राणो से प्यारे हो। चन्द्रमा से विष टपके और हिम पाले से आग निकले। जलचर जल से विरक्त हो जाय। ज्ञान होने पर चाहे मोह न मिटे पर तुम रामचन्द्र के प्रतिकूल नही हो सकते।

व्याख्या : प्राण का प्राण ही प्राण से प्यारा हो सकता है। सो प्राण का प्राण आत्मा है। तो तुम राम की आत्मा हो और राम तुम्हारी आत्मा हैं। इससे वनवास मे तुम्हारी सम्मति हो नही सकती। चन्द्रमा सुधाकर है। उनके किरणो मे अमृत स्राव हुआ करता है। सो चाहे वे अपना स्वभाव छोडकर विष गिराने लग जायँ और आग का स्वभाव गरम है। पाला उसके निकट नही फटक सकता। यथा : तात अनल कर सहज सुभाऊ। हिम तेहि निकट जाय नहिं काऊ। सो चाहे हिम से आग निकलने लगे। जलचरो को जल ही शरण है। सो चाहे जलचर जल से विरक्त हो जाय। मोह का नाश ही ज्ञान है। यदि मोह न मिटा तो ज्ञान कैसा ? इस पर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कहते हैं कि यदि ज्ञान होने पर भी मोह न मिटे। अर्थात् यदि ये चारा महा असम्भव सम्भव हो जायँ। पर तुम राम के प्रतिकूल हो नही सकते।

भरतजी ने चार बार शपथ लिया। माता यहाँ चार दृष्टान्त देकर उन्ही चारों का अनुमोदन करती हैं।

मत तुम्हार एहु जो जग कहही। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहही ॥२॥
अस कहि मातु भरतु हिय लाए। थन पय स्रवहि नयन जल छाए ॥
करत विलाप बहुत एहि भाती। बैठेहि बीत गई सब राती ॥३॥

अर्थ संसार मे जो कोई इसमे तुम्हारी सम्मति कहेगा। उसे सपने मे भी सुख और सुमति की प्राप्ति नही होगी। ऐसा कहकर माता ने भरतजी को कलेजे से लगा लिया। छाती से दूध बहने लगा और आंखो मे आंसू भर आया। इस भाँति बहुत विलाप करते बैठे ही बैठे सारी रात बीत गयी।

व्याख्या माता कौसल्याजी कहती हैं कि तुम्हारे ऐसे साधु को जो मिथ्या दोष लगावेगा उसे सुख और गति सपने से भी नही मिलेगी। अर्थात् उसका लोक परलोक दोनो नष्ट हो जायगा। पुरवासियो मे से जब किसी ने कहा कि इसमे भरतजो सम्मत है तो तुरन्त दूसरे ने कहा कि सुकृत जाय अस कहे तुम्हारे। राम भरत कहँ प्रान पियारे। महारानी कौसल्या इस व्याज से स्वय शपथ ले रही हैं कि मुझे तुम पर सन्देह नही हो सकता।

ऐसा कहकर भरत को हृदय से लगा लिया। वात्सल्य भाव के उमड आने से छाती मे दूध आगया और आँख मे आँसू आगया। इतने दिनो बाद छाती मे दूध का आना अति वात्सल्य का द्योतक है।

कवि कहते हैं कि उस समय की करुणा का मैंने प्रादेशमात्र वर्णन किया। इसी भाँति बहुत विलाप करते बैठे ही बैठे सारी रात बीत गयी। करुणा भी एक प्रधान रस है। रोने से शोक का वेग निकल जाता है। इस भाँति कुछ सुख मिल जाता है। जो अति दुःख मे नही रोता उसके मरने की सम्भावना रहती है।

## २० नृपक्रिया प्रसङ्ग

वामदेउ बसिष्ठ तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए ॥
मुनि बहु भाँति भरत उपदेसे। कहि परमारथ बचन सुदेसे ॥४॥

अर्थ तब वामदेव और वसिष्ठजी आये। मन्त्री तथा महाजन लोगो को बुलवाया। बहुत भाँति से मुनिजो ने अवसरानुकूल परमार्थ के वचन कहकर भरतजी को बहुत भाँति से समझाया।

व्याख्या वामदेव और वसिष्ठ दोनो महाज्ञानी और रघुकुल के हितचिन्तक हैं। भरतजी के आने का समाचार पाकर प्रातःकाल होते ही आये। महाराज का शव अन्तःपुर मे ही पडा है। अब भरतजी आगये। उनके हाथ संस्कार कराना है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अतः मन्त्रियो और नगर के प्रतिष्ठितो को बुलवाया। तब भरतजी को बहुत भांति से उपदेश दिया। क्योकि भरतजी पर अनेक प्रकार का शोक आ पड़ा है। परमार्थ के वचन ही शोक के दूर करने मे समर्थ हैं।

दो. तात हृदय धीरजु धरहु, करहु जो अवसर आजु।
उठे भरत गुरु बचन सुनि, करन कहेउ सबु साजु ॥१६९॥

अर्थ : बेटा! धैर्य धरो और जैसा अवसर आ पडा है वैसा आज करो। भरतजी गुरुजी के वचन सुनकर उठे और सब साज करने की आज्ञा दी।

व्याख्या : वसिष्ठजी ने उपदेश के अन्त मे कहा कि हृदय मे धैर्य धारण करो और जो अवसर आज उपस्थित है उसे करो। भाव यह कि भरतजी की अनुपस्थिति मे सबका कार्य वसिष्ठजी की आज्ञा से होता रहा। भरतजी के आते ही सब कार्य गुरुजी उनके सुपुर्द करते है कि अब तुम्हारी आज्ञा से कार्य होगा। अत भरतजी उठे और सब साज करने के लिए आज्ञा दी।

नृप तनु वेद विहित अन्हवावा। परम विचित्र बिमानु बनावा ॥
गहि पग भरत मातु सब राखी। रही रानि दरसन अभिलाषी ॥१॥

अर्थ · महाराज के शरीर को वेदोक्त विधि से स्नान कराया। परम विचित्र विमान बनाया। चरणो को पकड पकडकर माताओ को सती होने से रोका। वे भी रामजी के दर्शन की अभिलाषा से रुक गयी।

व्याख्या कार्य विवरण कहते हैं। भरतजी के न रहने से मरणोपरान्त का सब कार्य रुका हुआ था। और्ध्वदैहिक कृत्य प्रारम्भ हुआ। स्नान मे वेद मन्त्र पढे गये। शव के स्नान कराने की विधि है। शव के वहन के लिए परम विचित्र विमान बनाया गया। उत्साह से क्रिया हो रही है।

माताएँ वीरप्रसू होने पर भी सती होने के लिए उठी। वीरप्रसू को सती होने का अधिकार नही। यथा नान्वगात् वीरसू कृपी। परन्तु अन्य रानियो को अधिकार था। पर भरतजी ने सबको चरण पकडकर रोका। एक को पुत्र होने से सब माताएँ पुत्रवती हो जाती हैं। आप लोगों को चार चार पुत्र है। आप क्यो सती होती हैं? फिर जिसे अन्य वासना नही होती वे ही सती होती हैं तो क्या आप लोगो को रामजी के दर्शन की कामना नही है? यह दूसरी युक्ति काम कर गयी और सब रानियाँ रुक गयी।

चदन अगर भार बहु आए। अमित अनेक सुगध सुहाए ॥
सरजु तीर रचि चिता बनाई। जनु सुरपुर सोपान सुहाई ॥२॥

अर्थ : चन्दन और अगर के बहुत से बोझे आये और बेपरमान बहुत से सुगन्धित पदार्थ आये। सरयू के किनारे रचकर चिता बनायी गयी। मानो स्वर्ग की सुन्दर सीढी हो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : जहाँ नदी हो वहाँ नदीतटपर ही दाह का विधान है। यहाँ पुण्यतोया सरयू बहती हैं। अत: सरयू के किनारे चन्दन अगर आदि सुगन्धित पवित्र द्रव्यो से रचकर बडी ऊँची चिता बनायी गयी। देखने से मालूम होता था कि यही स्वर्ग जाने की सुन्दर सीढी है। सुन्दरता का बड़ा ध्यान सब कार्यो मे है। यहाँ तक कि चिता बनाने मे भी इसका ध्यान रक्खा गया।

एहि विधि दाह क्रिया सब कीन्ही। बिधिवत न्हाइ तिलाजुलि दीन्ही ॥
सोधि सुमृति सब बेद पुराना। कीन्ह भरत दसगात्र बिधाना ॥३॥

अर्थ : इस विधि से सब दाह क्रिया की और विधि के साथ स्नान करके तिलाञ्जलि दी। फिर स्मृति वेद और पुराणो को देख सुनकर भरतजी ने दशगात्र का विधान किया।

व्याख्या : उपर्युक्त सब विधि दाह क्रिया के अन्तर्गत हैं। दाह के बाद स्वय स्नान करके दाहजनित तृपोपशान्त्यर्थं तिलाञ्जलि दिया। प्राण निकल जाने पर भी यावत् देह पूर्णरूपेण नष्ट नही हो जाता। जब तक जीवात्मा का मृत शरीर से सम्बन्ध बना रहता है। यहाँ तक कि शरीर के जलने से जीव को ताप होता है।

दाह क्रिया के बाद दश दिनो तक दशगात्र विधान होता है। जिससे वह पुरुप सम्पूर्ण शरीरवाला होकर स्वर्ग मे आनन्द करता है। यथा : यद् वो अग्निरजहा-देकमङ्ग पितृलोक गमयज्जातवेदः। तद्एतन्युनराप्यायामि साङ्गास्वर्गे पितरो मादयध्वम् : अथर्ववेद। अर्थ : हे पितरो! पितृलोक जाते समय जो आपके जिस अङ्ग को अग्नि ने जलाया है उस अङ्ग को फिर पुष्ट करता हूँ। जिसमे सम्पूर्ण अङ्गवाले होकर आप स्वर्गलोक मे आनन्द करें। दशगात्र विधान मे त्रुटि होने से वह पुरुप विकलाङ्ग होकर स्वर्ग मे पूर्ण सुख का भागी नही हो सकता। अत दशगात्र विधान के सुसम्पन्न करने मे भरतजी ने बडो सावधानी से काम लिया। श्रुति स्मृति पुराण के समन्वय से दशगात्र विधान किया।

जहँ जस मुनिबर आयसु दीन्हा। तहँ तस सहस भाँति सबु कीन्हा ॥
भये बिशुद्ध दिये सब दाना। धेनु बाजि गज बाहन नाना ॥४॥

अर्थ : जहाँ मुनिश्रेष्ठ वसिष्ठजी ने जैसी आज्ञा दी वहाँ सब वैसा ही हजारो तरह से किया। शुद्ध हो जाने पर गाय घोडे हाथी और नाना प्रकार की सवारियाँ दान मे दी।

व्याख्या : अब एकादशाह का कृत्य कहते हैं। मुनिजी की आज्ञा का पालन हजार विधि से किया गया। दशगात्र के बाद जो कृत्य होता है उसे एकादशाह का कृत्य कहते हैं। शुद्ध होने पर वह कृत्य किया जाता है। उसके बाद विशुद्ध हो गये तो पिता के प्रीत्यर्थं सब प्रकार का दान किया। यथा : गोदान वाजिदान गजदान शिविकादि दान दिये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. सिंघासन भूपन बसन, अन्न धरनि धन धाम।
दिये भरतु लहि भूमिसुर, भे परिपूरन काम ॥१७०॥

अर्थ : सिंहासन गहने कपडे अन्न पृथ्वी धन प्रासादादि भरतजी ने दिये। पाकर ब्राह्मण लोगो की कामना पूर्ण हो गयी।

व्याख्या : अब एकादशाह का दान कहते है। धेनु घोडे हाथी तथा अनेक प्रकार के वाहन पहिले कह आये है और सात अब गिनाते हैं। इस भाँति ग्यारह की गिनती से एकादशाह का कृत्य कहते है। दान देने मे देश काल पात्र का विचार होना चाहिए। अत गोस्वामीजी तीनो दिखला रहे हैं। देश अयोध्यापुरी, काल एकादशाह, पात्र पृथ्वी के देवता, विद्या विनय सम्पन्न ब्राह्मण। अब दान का परिमाण कहते हैं कि प्रतिगृहीता पूर्णकाम हो गये। उन्हे अब किसी वस्तु की इच्छा न रह गयी। महाराज चक्रवर्तीजी के तृप्त्यर्थं दान हो रहा है। अतः शय्या का नाम न लेकर सिंहासन कहते हैं। भाव यह कि राजोपयोगी सम्पूर्ण वस्तुओ का दान किया।

## राज्याभिषेक प्रस्ताव

पितु हित भरत कीन्हि जसि करनी। सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी ॥
सुदिनु सोधि मुनिवर तब आए। सचिव महाजन सकल बोलाए ॥१॥

अर्थ पिता के निमित्त भरतजी ने जो करणी की उसे मुख से वर्णन नही किया जा सकता। सुदिन सोधकर वसिष्ठजी आये और सब महाजनो यथा मन्त्रियो को बुलाया।

व्याख्या त्रिभुवन तीन काल मे महाराज दशरथ ऐसा राजा हुआ नही। अत जैसे पिता थे उन्ही के अनुरूप करणी भरतजी ने की। इस भाँति एकादशाह का दान कहा। महाराज को यह सब अनन्तगुणित होकर प्राप्त होगा। ऐसा भाव मन मे रखकर भरतजी ने दान दिये। इस लोक और पर लोक का सुदृढ सम्बन्ध है। ब्रह्मदेव ने प्रजा की सृष्टि के साथ ही साथ यज्ञ की भी सृष्टि की और कहा कि इसी से तुम लोग बढो और यही तुम लोगो के लिए कामधेनु हो। इससे तुम लोग देवताओ की भावना करो और बदले मे देवता तुम्हारी भावना करें। इस प्रकार परस्पर की भावना करते हुए परमश्रेय को प्राप्त हो। तदनुसार यज्ञ द्वारा इस लोक और पर लोक मे व्यापार चलता है। उसी व्यापारानुसार योग्य पात्र मे उत्तम देशकाल मे दी हुई वस्तु जिसके निमित्त दी जाती है उसे अनन्त गुणित होकर प्राप्त होती है। भरतजी की करणी ही ऐसी होती है। जिसका वर्णन नही हो सकता। कि पुन पिता के लिए जो करणी की उसका वर्णन तो हो ही नही सकता। इसलिए सो मुख लाख जाइ नहिं बरनी कहा।

जब तक किसी का राज्याभिषेक न हो जाय तब तक मुनिजी पर राज्य का विशेष भार था। अत. स्वय मुहूर्त देखकर वसिष्ठजी आये। पहिले से किसी को

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सूचना न दी। रामजी के अभिषेक का समाचार एक रात पहिले फैल जाने से इतनी बड़ी बाधा उपस्थित हो गयी। अतः गुरुजी ने किसी को सूचना न देना ही उचित समझा। सभा से आ जाने पर मन्त्रियों को बुलाया। तब सब नगर के महाजनों को बुलाया। महाजनो येन गतः स पन्था। महाजन का अर्थ यह है जिसे लोग मानते हो, अनुसरण करते हो। देश के सच्चे प्रतिनिधि ऐसे महाजन हैं। उनके चुनने की आवश्यकता नहीं होती। स्वभावतः उनकी ख्याति होती है। इस भाँति मन्त्र को गुप्त रखकर कार्य करने में गुरुजी की नीतिमत्ता द्योतित होती है। गुरुजी सबकी सम्मति से आज ही भरत को गद्दी दिया चाहते हैं।

बैठे राजसभा सब जाई। पठए बोलि भरत दोउ भाई॥
भरतु बसिष्ठ निकट बैठारे। नीति धरममय बचन उचारे॥२॥

अर्थ : वे सब राजसभा में आकर बैठे। तब भरत शत्रुघ्न दोनों भाइयों को बुलवाया। भरतजी को वसिष्ठजी ने निकट बैठाया और धर्म नीतिमय वचन बोले।

व्याख्या : राजसभा में आकर गुरुजी ने सबको बुलवाया। अतः सब वहीं आये दरबार लग गया। इस समय कवि भरतजी के साथ हैं। अतः लिखते हैं कि बैठे राजसभा सब जाई। दरबार लग जाने पर दोनों भाई भरत की बुलाहट हुई। चक्रवर्तीजी के पुत्रों में इस समय ये ही दो भाई हैं। गुरुजी ने भरतजी से कहा था तात हृदय धीरज धरहु करहु जो अवसर आज। तदनुसार भरतजी ने धैर्य तो धारण किया। परन्तु पिता की क्रिया करने के बाद फिर सोच में पड़ गये।

अतः गुरुजी उन्हें बुलाकर आदर के लिए निकट बैठाया। भाव यह कि भरतजी पहिले से ही सिंहासन से दूर बैठ रहे हैं। तत्पश्चात् गुरुजी ने ऐसा वचन कहा जो धर्म और नीति दोनों दृष्टि से ठीक हो। यहाँ अर्थ का प्रश्न उपस्थित है। अर्थ का मूल्य राज्य है। जो अर्थ धर्म विरोधी होता है उसे अनर्थ कहते हैं और नीति विरुद्ध राज्य स्थायी नहीं होता। अतः गुरुजी के वचन धर्मनीतिमय हैं।

*प्रथम कथा सब मुनिबर बरनी। कइकइ कुटिल कीन्हि जसि करनी॥*
भूप धरमब्रतु सत्य सहारा। जेहि तनु परिहरि प्रेमु निबाहा॥३॥

अर्थ : पहिले मुनिवर ने जिस भाँति कुटिल कैकेयी ने करणी की थी वह सब कह सुनायी। फिर राजा के धर्मव्रत और सत्य की प्रशंसा की जिसने शरीर त्यागकर प्रेम का निर्वाह किया।

व्याख्या : जो बातें राजमहल में हुईं उनका सुना सुनाया ज्ञान लोगों को था। भरतजी थे नहीं। अतः उन्हें भी सुनी सुनायी जानकारी है। गुरुजी निष्पक्ष पुरुष हैं। अतः सबको जानकारी के लिए उपक्रम के रूप से कैकेयी की कुटिल करणी का वर्णन किया कि रामजी का अभिषेक आप लोगों की सम्मति से होनेवाला था। यह सुनकर कैकेयी जाकर कोपभवन में सोई। चक्रवर्तीजी मनाने गये। पूछा क्या

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चाहती हो। कहने लगी दिया हुआ जब नही मिलता तो नयी बात क्या माँगे। राजा ने रामजी की शपथ ली। तब उसने वरदान माँगे।

राजा धर्मव्रत थे। अधर्म उन्होने कभी किया नही। अत सत्य को धर्म का मूल समझकर उसे नही छोडा। तुलसी जान्यौ दसरथहि धरमु न सत्य समान। राम तज्यौ जेहि लागि बिनु राम परिहर्यौ प्रान। सो राजा धर्म और सत्य से न हटे। पर धर्म और सत्य के त्याग न करने से प्रेम का त्याग होता था। अत राजा ने शरीर परित्याग करके इस असामञ्जस्य को भी दूर किया। अर्थात् प्रेम का निर्वाह भी भली भाँति किया।

कहत राम गुन सील सुभाऊ। सजल नयन पुलकेउ मुनिराऊ॥
बहुरि लखन सिय प्रीति बखानी। सोक सनेह मगन मुनि ग्यानी॥४॥

अर्थ मुनिराज रामजी के गुण और स्वभाव को वर्णन करते हुए सजल नयन तथा पुलकित हो गये। फिर लक्ष्मणजी और सीताजी की प्रीति की प्रशसा करने म ज्ञानी मुनि शोक और स्नेह मे मग्न हो गये।

व्याख्या आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्थ्या अप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्यहैतुकी भक्ति-मित्थम्भूतगुणो हरि। श्रीरामजी के गुण शील और स्वभाव ही ऐसे हैं कि मुनि लोगो के भी चित्त जो हरण करते हैं। अस सुभाउ कहुँ सुनै न देखौ। केहि खगेस रघुपति सम लेखौं। को रघुबीर सरिस ससारा। सील सनेह निबाहनिहारा। इस अवसरपर उनके गुण शील और स्वभाव का ऐसा चमत्कृत प्रकाश हुआ कि उसके कहने मे मुनिराज को भी पुलक हो गया और आँखें डबडबा आयी।

प्रीति क बखान म लक्ष्मणजी की प्रशसा पहिले सीताजी की पीछे। सीताजी तो साथ जाने के लिए धर्मत भी बद्ध थी। पर लक्ष्मणजी को तो इस प्रकार का कोई बन्धन नहीं था। इनकी प्रीति का प्रभाव मुनिजी पर ऐसा पडा था कि वर्णन करने मे ज्ञानीमुनि होने पर भी शोक और स्नेह मे मग्न हो गये। रामजी की प्रीति न बखानी। क्योकि वे किसी को सङ्ग नही लिया चाहते थे। यहाँ पर रामजी के प्रीति प्रदर्शन न करने से ही शोभा है।

दो सुनहु भरत भावी प्रबल, बिलखि कहेउ मुनिनाथ।
हानि लाभु जीवन मरनु, जसु अपजसु बिधि हाथ॥१७१॥

अर्थ मुनिनाथ ने बिलखकर कहा कि भरतजी सुनो। यह प्रबल भावी है। हानि लाभ जीना मरना यश अपयश यह सब ब्रह्मदेव के हाथ म है।

व्याख्या भरतजी की अनुपस्थिति मे जो कुछ हुआ उसे कहते है। राम वनवास कहने मे मुनिजी बिलख उठे। कारण यह कि प्रबल भावी के सामने किसी का बल नही चलता। त्रिपुरारि भावी मेट सकते है। पर हरिइच्छा रूपी भावी के सामने उनका भी बल नही चलता। सो इन घटनाओ म हरिइच्छा रूपी प्रबल भावी काम करती थी। इसी से प्रतीकार न हो सका। हानि लाभ जीवन मरण यश अपयश

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मनुष्य के हाथो मे नही है। [1]लाभ जीवन और यश कौन नही चाहता। पर सबको प्राप्त नही होता। हानि मरण और अपयश कोई नही चाहता। पर इससे कोई बचता नही। अतः यह सब ब्रह्मदेव के हाथ मे है। यथा : कर्म सुभासुभ देइ बिधाता। सो यहाँ तो बात बिगाडने स्वय सरस्वती आयी थी। मुनिजी ने रामजी का वनवास नही कहा। बिलखने से वनवास सूचित हुआ।

अस बिचारि केहि देइअ दोसू। ब्यरथ काहि पर कीजिअ रोसू ॥
तात बिचारु करहु मन माही। सोच जोगु दसरथु नृपु नाही ॥१॥

अर्थ : ऐसा विचार करके किसको दोष दिया जाय और व्यर्थ किस पर क्रोध किया जाय। हे तात ! मन मे विचार तो करो। राजा दशरथ शोचनीय नही हैं।

व्याख्या : गुरुजी भरतजी को दु खी देखकर समझाते हैं कि हानि लाभ जीवन मरण यश अपयश विधि के हाथ में है। मनुष्य के हाथ मे नही है। क्योंकि काहु न कोउ दु ख सुखकर दाता। निजकृत कर्म भोग फल भ्राता। कोई किसी को दु ख सुख नही दे सकता। सब अपने ही किये का फल भोगते हैं। विधि भी शुभ और अशुभ कर्म के फल दाता हैं। अत. विचार करने से कोई दोषी नही ठहरता। राम गवन बन अनरथ मूला : यह हानि है। भूपति सुरपति पुर पगु धारे : यह मरण है और हेतु अपनपौ जानि जिय थकित भये धरि मौन : यह अपयश है। इसमे कैकेयी का भी दोष नही। यथा : सो भावी बस रानि अयानी। करि कुचाल अतहु पछितानी। अत : पापिनि सबहि भाँति कुल नासा। इस भाँति दोष देना अथवा जोहसि मोहसि मुह मसिलाई। लोचन ओट बैठु तैं जाई। इस भाँति क्रोध करना उचित नही है।

यदि कहिये कि मैं दोष नही देता हूँ। परन्तु पिता के मरण का सोच है। इस पर गुरुजी कहते हैं कि सोच तो असद्वृत्ति पुरुषो का किया जाता है। महाराज दशरथ तो परम सद्वृत्ति थे। जिसकी प्रजा सोच योग्य नही है। वह राजा सोच योग्य कैसे हो सकता है ?

सोचिअ बिप्र जो बेद बिहीना। तजि निज धरमु बिषय लयलीना ॥
सोचिअ नृपति जो नीति न जाना। जेहि न प्रजा प्रिय प्रान समाना ॥२॥

अर्थ : वह ब्राह्मण शोचनीय है जो वेदविहीन है और अपने धर्म को त्याग करके विषय मे दत्तचित्त रहता है। वह राजा शोचनीय है जो नीति नही जानता और जिसको प्रजा प्राण के समान प्रिय नही है।

---

१ सर्वं एव महाभाग महत्त्वं प्रति सोद्यमा। तथापि पुंसा भाग्यानि नोद्यमा भोगहेतव। वि. पु.। अर्थ : हे महाभाग ! सभी महत्त्व के लिए प्रयत्न करते हैं। परन्तु पुरुष का भाग्य भोग्य के कारण है। उद्यम कारण नहीं है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या केवल गायत्री जाननेवाला ब्राह्मण यदि वह धर्मात्मा है विषयलीन नहीं है तो वह तीनो वेद जाननेवाले सदाचारहीन ब्राह्मण से अच्छा है। ऐसा मनु भगवान् का मत है। अत यहाँ वेद विहीन से सन्ध्या गायत्री के भी न जाननेवाले से अभिप्राय है। अत जिस ब्राह्मण को सन्ध्या गायत्री तक का ज्ञान नहीं है और अपने धर्म शम दम तप शौचादि से रहित है वह स्पर्श रूप रसादि के सुखो मे भूला हुआ है। वह सोचने योग्य है कि इसकी क्या गति होगी? क्योकि तप श्रुति और योनि ये तीन ही ब्राह्मण कारक हैं। सो योनि तो उसे ईश्वर की कृपा से मिल गयी। पर उसने न तप किया न वेद विद्या पढ़ी। ऐसा पतित ब्राह्मण सर्वथा शोचनीय है।

राजन्यवर्ग के लिए नीति का जानना और प्रजा पालन ये ही प्रधान धर्म है। क्योकि बिना नीति जाने राज्य नही रह सकता। राज कि रहइ नीति बिनु जाने। और राजा की सृष्टि ही प्रजापालन के लिए हुई। प्रजा के लिए प्राणोत्सर्ग करना राजा का धर्म है। अत जिस राजा ने नीति न जाना और प्राण के समान प्रजा का पालन नही किया उसके लिए सोचना चाहिए। क्योकि उसका दोनो लोक बिगड गया। नीति न जानने से राज्य नही रहेगा। सो यह लोक बिगड गया और ठीक प्रजा पालन न करने से नरक का भागी होगा। यथा जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी। परलोक भी बिगडा। अत शोचनीय है।

सोचिअ बयसु कृपन धनवानू। जो न अतिथि सिव भगति सुजानू॥
सोचिअ सूद्र बिप्र अवमानी। मुखर मानप्रिय ग्यान गुमानी॥३॥

अर्थ धनी कृपण वैश्य का सोचना चाहिए जो अतिथि और शिवभक्त तथा सुजान नही है। ब्राह्मण की निन्दा करनेवाल शूद्र को सोचना चाहिए जो कि बकवादी प्रतिष्ठा चाहनेवाला और अपने को ज्ञानी मानता हो।

व्याख्या वैश्य यदि निर्धन है तो कृपण होना दोषावह नही है। धनवान होने पर उसे कृपण न होना चाहिए। मनुजी का कथन है कि ब्राह्मणो मे वही श्रेष्ठ है जिसे ज्ञान अधिक है। क्षत्रियो मे अधिक बलवाला श्रेष्ठ है और वैश्यो म धनी श्रेष्ठ है। ईप्सित फल की प्राप्ति बिना शिवजी की आराधना के नही होती। अत वैश्य धनधान्य की समृद्धि के लिए अवश्य शिवभक्ति करे और अपने धन का विनियोग आतिथ्य सत्कार मे करे। क्योकि जितने म पेट भरे उतना ही धनियो का धन ह। उससे अधिक को जो अपना धन मानता है उसे शास्त्र चोर बतलाता है। उसे दण्ड होना चाहिए। वैश्य को सुजान अर्थात् गुणग्राहक होना चाहिए। धनी यदि गुणग्राहक न होगा तो गुणो की पूजा का लोप हो जायगा। अत श्रेष्ठ वैश्य यदि कृपण है, शिवभक्त नही है, अतिथिभक्त नही है गुणग्राहक नही है तो वह निरयगामी होगा। वह सोचने योग्य है।

शूद्र शोचनीय होता है ब्राह्मणनिन्दक होने से। सति प्राप्तौ निषेध। राज्य

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



की कामना धन की कामना ब्राह्मणो ने नही की। अत राजन्य और वैश्य के निन्दित होने के लिए स्थान नही है। शूद्रो की सेवावृत्ति विधान करने से अज्ञानी मानप्रिय शूद्रो द्वारा निन्दा की सम्भावना है। वे यह नही सोचेंगे कि जाति आयु और भोग पूर्वजन्म के कर्म का फल है। उन्हे नही मालूम ब्रह्माद्या ऋषिपर्यन्ता स्मारका न तु कारका। ब्रह्मदेव से लेकर ऋषि पर्यन्त सब स्मरण करनेवाले हैं। बनानेवाले कोई नही। वे धर्मशास्त्रो मे अपना निम्न अधिकार देखकर ब्राह्मणो को दोषी ठहरावेंगे। उनकी निन्दा करेंगे। इस भाँति अपने लिए नरकका मार्ग निरर्गल करेंगे। शूद्र का धर्म है कि ब्राह्मण की सेवा करे। विनीत हो। ज्ञानी होने मे रोक नही है ज्ञानमानी न हो। युधिष्ठिर के यज्ञ मे ज्ञानी चाण्डाल के भोजन कराने की कथा है। बिना उसके भोजन कराये यज्ञ की पूर्ति नही होती थी। सो उसे बहुमान पुरःसर पाण्डव अपने यज्ञ मे लाना चाहते थे। पर उस ब्रह्मज्ञानी चाण्डाल ने सम्मान स्वीकार नही किया। केवल अन्न ग्रहण करके उनका यज्ञ पूर्ण कर दिया। अत ब्राह्मणनिन्दक मुखर मानप्रिय और पण्डितम्मन्य शूद्र शोचनीय हो जाता है। क्योकि उसकी असद्‌गति ध्रुव है।

सोचिअ पुनि पति बंचक नारी। कुटिल कलहप्रिय इच्छाचारी॥
सोचिअ बटु निज ब्रतु परिहरई। जो नहि गुरु आयसु अनुसरई॥४॥

अर्थ उस स्त्री को सोचना चाहिए जो पति को ठगती हो। कुटिल हो। लडाकी हो और स्वतन्त्र हो। उस ब्रह्मचारी को सोचना चाहिए जिसने अपना व्रत त्याग किया और गुरु की आज्ञा के बाहर हो गया।

व्याख्या चारो वर्णो के धर्मो का वर्णन करके स्त्रियो का धर्म कहते हैं। जो पति को ठगती है अर्थात् परपति मे रत है ऐसी स्त्री निरयगामिनी होती है। क्योकि स्त्रियो के लिए एक ही धर्म व्रत और नियम शास्त्र मे कहा है कि वे मनसा वाचा कर्मणा पति के चरणो मे प्रेम करे और जो पति को धोखा देकर जार को भजती है वह सौ कल्प तक रौरव नरक मे पडती है। यथा एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय वचन मन पतिपद प्रेमा। पति बचक पर पति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई। ऐसी पतिवचक नारी सरल तो हो ही नही सकती। कुटिल अवश्य होगी। कटुवादिनी के लिए सद्य त्याग का विधान है। स्त्री मे स्वातन्त्र्य की योग्यता नही है। उसका अवयव सङ्गठन इस प्रकार का होना है कि उसे सदा दूसरे की रक्षा की आवश्यकता रहती है। इसीलिए कहा है पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। पुत्रास्तु स्थविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति। जो इच्छाचारी स्त्री पिता पति और पुत्र से स्वतन्त्र होकर विचरेगी उसका पतन ध्रुव है। अत ऐसी स्त्री को शोचनीय कहा है।

अब आश्रम का वर्णन करते हुए पहिले ब्रह्मचर्याश्रम के ही विषय मे कहते हैं कि वह बटु ब्रह्मचारी सोचने योग्य है जो अपना व्रत परित्याग कर देता है। उसे अवकीर्णी कहते हैं। यथा अवकीर्णी भवेद् गत्वा ब्रह्मचारी तु योषितम्। गर्दभं

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पशुमालभ्य नैऋत स विशुध्यति। ब्रह्मचर्यावस्था मे ब्रह्मचर्य ही प्रधान है। तीनो प्रकार के स्नातको के लिए व्रतपालन आवश्यक है। जिसने पूर्ण विद्या नही भी पढी वह भी व्रतस्नात होकर आश्रम के फल को प्राप्त होता है। इसी भाँति महाभारत मे अनेक उदाहरण आये है कि गुरु की आज्ञा पालनमात्र से वे सिद्धि को प्राप्त हुए। भाव यह कि व्रतपालन और गुरु आज्ञापालन ये ही दोनो ब्रह्मचर्याश्रम के सार हैं। इनके अनादर से बटु निरयगामी होता है। अत शोचनीय है।

दो. सोचिअ गृही जो मोह बस, करइ करम पथ त्याग।
सोचिअ जती प्रपंच रत, बिगत बिबेक बिराग ॥१७२॥

अर्थ उस गृहस्थ को सोचना चाहिए जो मोहवश होकर कर्मपथ का त्याग करता है और उस सन्यासी को सोचना चाहिए जो प्रपञ्च मे लगा हुआ है और उसे वैराग्य और विवेक नही है।

व्याख्या : जो ब्रह्मचर्य अवस्था से सन्यास ग्रहण मे असमर्थ होता है वह गृहस्थाश्रम स्वीकार करता है उसका अधिकार केवल कर्म मे है। यथा · कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छत समा। एव त्वयिनान्यथेतोस्ति न कर्म लिप्यते नरे। ईश०। केवल कर्म करता हुआ ही सौ वर्ष जीने की इच्छा करे। इसके अतिरिक्त हे नराभिमानी! तेरे लिए दूसरा रास्ता नही है। फल की इच्छा न करने से तुझे कर्म का लेप न होता। अत गृहस्थ को नित्य नैमित्तिक कर्म सदा करते रहने की विधि है। उसके त्याग से उसे प्रायश्चित होता है। ज्ञान होने पर वह सन्यास ग्रहण करके कर्मपथ का त्याग कर सकता है। पर मोहवश त्याग[1] करने से वह त्याग बन्धन का कारण है। इस भाँति मोहवश होकर कर्मपथ के त्याग से अधोगति होती है। अत ऐसा गृहस्थ शोचनीय है। बन्धायैव भवत्येषा ह्यविद्याप्यक्रमोज्झिता। क्रम से छोडी हुई अविद्या बन्धन का ही कारण होती है। वि पु।

लोकत्रय त्याग पूर्वक सन्यास ग्रहण किया जाता है। उसे यह सब ससार ब्रह्ममय प्रतीत होना चाहिए और त्याग पूर्वक जीवन यापन करना चाहिए। किसी के धन की इच्छा नही करनी चाहिए। यथा ईशावास्यमिद सर्वं यत्किञ्चिज्जगत्या जगत्। तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मागृध कस्यस्विद् धनम्। ईश०। सन्यास लेने पर जो प्रपञ्च मे पड जाता है, ज्ञान वैराग्य खो बैठता है, उसे वान्ताशी कुत्ता कहते है। क्योकि उसने जिस वस्तु का त्याग किया था उसे फिर ग्रहण कर लिया। अत प्रपञ्ची सन्यासी शोचनीय हो जाता है।

बैखानस सोइ सोचइ जोगू। तपु बिहाइ जेहि भावइ भोगू॥
सोचिअ पिसुन अकारन क्रोधी। जननि जनक गुर बधु बिरोधी ॥१॥

---

१ मोहवश कर्मपथ त्याग की इच्छा वाले अर्जुन का। भगवान् ने गीता का उपदेश करके कर्मपथारूढ किया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अथ वह वानप्रस्थ सोचने योग्य है जिसे तपस्या छोडकर भोग अच्छा लगे। चुगुलखार निष्कारण क्रोध करनेवाले तथा माँ बाप गुरु और भाई से विरोध करनेवाल को सोचना चाहिए।

व्याख्या तीसरा आश्रम वानप्रस्थ तप प्रधान है। ब्राह्मणो को चारा आश्रम का अधिकार है। क्षत्रिय को सन्यास का अधिकार नही है। वह विरक्त होकर वानप्रस्थ हो सकता है। यथा सत कहहिं यह नीति दसानन। चौथेपन जाइय नृप कानन। असहु नृपहिं उचित बनवासू। वानप्रस्थ म ऐसी तपस्या करनी चाहिए कि देह भूल जाय और तपस्या म ही मन लग जाय। यथा बिसरी देह तपहिं मन लागा। सो जिस वानप्रस्थी को भोग प्रिय है, तपस्या म मन नही लगता, वह स्वधर्म विरुद्धाचरण के कारण पापी है। उसे निरय निश्चय है।

वर्णाश्रमानुकूल सद्वृत्ति कहकर अब सर्व सामान्य असद्वृत्ति कहते है। चुगुलखोरी से बटकर कोई पाप नही है। यथा अघ कि पिसुनता सम किछु आना। अकारण क्रोधी ही पिशुन होते हैं। अकारण क्रोधी का कुशल होता नही। यथा जिमि चह कुसल अकारन क्रोधी। वही माँ बाप गुरु और बन्धु का भी विरोधी होता है। माँ बाप गुरु ता साक्षात् देवता है। भाई की सहायता करना परम कर्तव्य है। पर पिशुन इन लोगो का भी विरोध करता है। अत उसका दोनो लोक बिगडता है। वह निश्चय शोचनीय है।

सब बिधि सोचिय पर अपकारी। निज तनु पोषक निर्दय भारी॥
सोचनीय सबही बिधि सोई। जो न छाडि छल हरि जन होई॥२॥

*अर्थ दूसरे के अपकार करनेवाल को सब भाँति सोचना चाहिए। क्योकि* वह अपने शरीर का पोषण करनेवाला बडा भारी निर्दय है और सब प्रकार स तो वह सोचनीय है जो छल छोडकर हरिजन नही हो जाता।

व्याख्या उपर्युक्त शोच्य तो वर्ण धर्म की दृष्टि से अथवा आश्रम धर्म की दृष्टि से अथवा कुशल की दृष्टि स शोच्य हैं। परन्तु सब विधि शोच्य तो परापकारी हैं। क्योकि उनसा अधम कोई नही है। यथा परपीडा सम नहि अधमाई। उन्ही का लक्षण कहते हैं कि वह अपने शरीर का पोषण करनेवाला है। महा अविवेकी है। यह नही समझता सबके देह परम प्रिय स्वामी। वह भारी निर्दय होता है। क्याकि ठण्डी तबीयत से दूसरे को पीडा पहुँचाता है। निदय तो क्रोधी भी हाता है। पर उसकी निर्दयता तभी तक है जब तक कि उसे क्रोध है। शान्तावस्था मे क्रोधी बडी दया भी करते हैं। इसलिए परापकारी को भारी निर्दय कहते हैं। ये ही सच्चे खल हैं। परहित हानि लाभ जिन केरे। उजरे हर्ष बिषाद बसेरे। हिंसा पर अति प्रीति तिनके पापहि कवन मिति। अत ये सब विधि शाचनीय हैं।

जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ। सो कृत निंदक मंद मति आतमहन गतिजाइ। जो ऐसा नरजन्म पाकर भव सन्तरण नही करता वह आत्मघाती

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है और भव सन्तरण विना भगवद् भजन के हो नही सकता। यथा साधक सिद्ध विमुक्त उदासी। कवि कोविद कृतज्ञ सन्यासी। जोगी सूर सुतापस ग्यानी। धर्म निरत पडित विज्ञानी। तरहिं न विनु सेए मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी। अत भजन न करनेवाला आत्मघाती है। अन्य दोषो के न रहते हुए भी जिसने छल छोडकर हरिभक्ति न ग्रहण की वह सब प्रकार से शोचनीय है। हरिजन का अर्थ हरिभक्त है। समय ऐसा आगया है कि हरिजन शब्द का अर्थ लिखना पडा। इस काल मे शब्दो के सनातन स परिगृहीत अर्थ बदल रहे है। देखते देखते हरिजन शब्द का अर्थ अछूत हो गया। कोई ऐसा अर्थ न समझ ल इसलिए लिखना पडा।

सोचनीय नहिं कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥
भयउ न अहइ अब होनिहारा। भूप भरत जस पिता तुम्हारा॥३॥
बिधि हरि हर सुरपति दिसिनाथा। बरनहिं सब दसरथ गुन गाथा॥४॥

अर्थ कोसलनाथ सोचने योग्य नही हैं। उनका प्रभाव तो चौदहो लोको मे प्रकट है। हे भरत! तुम्हारे पिता जैसे राजा थे वैसा न कभी कोई हुआ न इस समय है और न भविष्य मे होनेवाला है।

व्याख्या कोसलनाथ महाराज दशरथ धर्म धुरन्धर राजर्षि ज्ञानी और परम भक्त थे। प्रजा का पालन उन्होने और स पुत्र की भाँति किया। वे शोचनीय कैसे हो सकते है? उनकी सद्गति ध्रुव है। त्रिभुवन तीन काल जग माँही। भूरिभाग दसरथ सम नाँही। यह वेजोड राजा था। पहिल भी बडे बडे राजा हुए पर दशरथ ऐसा कोई न हुआ। इस समय भी कोई नही है और न भविष्य म कोई होगा। रामचन्द्र भी दशरथ की बराबरी न कर सकेंगे। क्योकि राम सा पुत्र होना तो दशरथ के ही भाग्य मे था।

सभु बिरचि विष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अस ते नाना। जिस रामजी के अश से त्रिदेवो की उत्पत्ति है वे राम उनके पुत्र है। अत त्रिदेव दशरथजी के गुण ग्राम वर्णन करते है। यथा जासु सनेह सकोच बस राम प्रकट भए आइ। जे हरि हिय नयननि कबहुँ निरखे नही अघाइ। सुरपति बसहिं बाहु बल जाके। इसलिए सुरपति उनके गुण गाथ वर्णन करते हैं। लोकप करहिं प्रीति रुख राखे। अत दिक्पाल भी उनके गुणा का गान करते हैं।

दो कहहु तात केहि भाँति कोउ, करहि बडाई तासु।
राम लखन तुम्ह सत्रुहन, सरिस सुअन सुचि जासु॥१७३॥

अथ हे तात! कहो काई उनकी बडाई कैसे कर सकता है जिनके राम, लक्ष्मण से तुम से और शत्रुघ्न से बेटे हैं।

व्याख्या अब गुरजी बडाई का मुख्य कारण कहते है। पुत्रेणाय लोको जय्य। पुत्र से ही यह लोक जीता जाता है। अत यदि किसी को तुम लागो के ऐसा पुत्र हो तो उसकी गणना व रें। एसा भाग्यवान् कौन है? पिता के पुण्य की इयत्ता तो पुत्र

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



की महिमा से ही की जाती है। तुम चारो भाइयो सा शुद्धान्त करण पवित्र कौन है? यथा ईस प्रसाद असीस तुम्हारी। सुत सुतबधूँ देवसरि बारी। अत जिसके पुण्य से तुम चारो भाइयो का उनके घर जन्म हुआ उसकी बडाई कोई करना चाहे तो कैसे करे। इस व्याज से गुरुजी ने चारो भाइयो की बडी प्रशसा की।

सब प्रकार भूपति बडभागी। बादि बिषादु करिअ तेहि लागी ॥
यहु सुनि समुझि सोचु परिहरहू। सिर धरि राज रजायसु करहू ॥१॥

अर्थ . चक्रवर्तीजी सब प्रकार से भाग्यवान् थे। उनके लिए शोक करना व्यर्थ है। इसको सुनकर और समझकर शोक करना छोड दो और सिर पर धारण करके राजाज्ञा का पालन करो।

व्याख्या · चार प्रकार से ही लोग बडभागी होते हैं। यशस्वी होने से, राजा होने से, गुणी होने से तथा सत् सन्तान के होने से। भुवन चारि दस प्रकट प्रभाऊ से लेकर सरिस सुअन सुचि जासु तक कहकर गुरुजी ने चक्रवर्तीजी के चारो प्रकार का अत्यन्त उत्कर्ष कहा। अत चक्रवर्तीजी सब प्रकार से ही अशोच्य हैं। उन सा बडभागी कौन होगा। सोचे जाते हैं अभागी, जिनका न यह लोक बना न परलोक बना।

तात बिचार करहु मन माँही से शोक न करने का उपक्रम करके यह सुनि समुझि सोचु परिहरहू। से उपसहार करते हैं और उपदेश देते हैं कि राज्य को सिर पर चढाकर अर्थात् स्वीकार करके राजाज्ञा का पालन करो। सुख के ध्यान से नही राजाज्ञा के ध्यान से करो। राजा दण्डधरो गुरु। सबको राजाज्ञा मानना चाहिए। विशेषत तुम तो उनके पुत्र हो।

राय राजपदु तुम कहुँ दीन्हा। पिता बचनु फुर चाहिअ कीन्हा ॥
तजे रामु जेहिं बचनहि लागी। तनु परिहरेउ राम बिरहागी ॥२॥

अर्थ · चक्रवर्तीजी ने राजगद्दी तुम्हे दी। पिता के वचन को सत्य करना चाहिए। जिस वचन के लिए उन्होने रामजी को त्यागा और रामजी की विरहाग्नि मे शरीर त्याग दिया।

व्याख्या · भरतजी को चुप देखकर गुरुजी फिर कहते हैं कि तुम्हारे मन मे यदि यह हो कि बडे भाई के रहते मेरा गद्दी स्वीकार करना उचित नही है तो ऐसी बात नही है। महाराज सर्वथा राज्य के स्वामी थे। वे राज्य दान कर सकते थे। उनका राज्य पर पूरा अधिकार था। उन्होंने तुम्हे राज्यपद दिया। तुमको तो उनके वचन को सत्य करना ठहरा। यहाँ राज्य सुख का प्रश्न नही है। पिता के वचन के सत्य करने का प्रश्न है।

यदि कहो कि पिता को तो राम का राज्य प्रिय था तो यह बात भी नही है। उन्हे सबसे प्रिय अपना वचन था। अपने वचन के लिए ही उन्होने रामजी का परित्याग किया और रामजी उनको प्राणो से ...

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है और भव सन्तरण बिना भगवद् भजन के हो नही सकता। यथा साधक सिद्ध बिमुक्त उदासी। कबि कोबिद कृतज्ञ सन्यासी। जोगी सूर सुतापस ग्यानी। धर्म निरत पडित बिज्ञानी। तरहिं न बिनु सेए मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी। अत भजन न करनेवाला आत्मघाती है। अन्य दोषो के न रहते हुए भी जिसने छल छोडकर हरिभक्ति न ग्रहण की वह सब प्रकार से शोचनीय है। हरिजन का अर्थ हरिभक्त है। समय ऐसा आगया है कि हरिजन शब्द का अर्थ लिखना पडा। इस काल म शब्दो के सनातन से परिगृहीत अर्थ बदल रहे है। देखते देखते हरिजन शब्द का अर्थ अछूत हो गया। कोई ऐसा अर्थ न समझ ले इसलिए लिखना पडा।

सोचनीय नहि कोसलराऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥
भयउ न अहइ अब होनिहारा। भूपु भरत जस पिता तुम्हारा॥३॥
बिधि हरि हर सुरपति दिसिनाथा। बरनहि सब दसरथ गुन गाथा॥४॥

अर्थ कोसलनाथ सोचने योग्य नही है। उनका प्रभाव तो चौदहो लोको मे प्रकट है। हे भरत! तुम्हारे पिता जैसे राजा थे वैसा न कभी कोई हुआ न इस समय है और न भविष्य मे होनेवाला है।

व्याख्या कोसलनाथ महाराज दशरथ धर्म धुरन्धर राजर्षि ज्ञानी और परम भक्त थे। प्रजा का पालन उन्होने औरस पुत्र की भाँति किया। वे शोचनीय कैसे हो सकते हैं? उनकी सद्गति ध्रुव है। त्रिभुवन तीन काल जग माँही। भूरिभाग दसरथ सम नाँही। यह बेजोड राजा था। पहिले भी बडे बडे राजा हुए पर दशरथ ऐसा कोई न हुआ। इस समय भी कोई नही है और न भविष्य मे कोई होगा। रामचन्द्र भी दशरथ की बराबरी न कर सकेंगे। क्योकि राम सा पुत्र होना तो दशरथ के ही भाग्य मे था।

संभु बिरंचि बिष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना। जिस रामजी के अंश से त्रिदेवो की उत्पत्ति है, वे राम उनके पुत्र है। अत त्रिदेव दशरथजी के गुण ग्राम वर्णन करते है। यथा जासु सनेह सकोच बस राम प्रकट भए आइ। जे हरि हिय नयननि कबहुँ निरखे नही अघाइ। सुरपति बसहिं बाहु बल जाके। इसलिए सुरपति उनके गुण गाथ वर्णन करते हैं। लोकप करहिं प्रीति रुख राखे। अत दिक्पाल भी उनके गुणा का गान करते हैं।

दो कहहु तात केहि भाँति कोउ, करहि बडाई तासु।
राम लखन तुम्ह सत्रुहन, सरिस सुअन सुचि जासु॥१७३॥

अर्थ हे तात! कहो कोई उनकी बडाई कैसे कर सकता है जिनके राम, लक्ष्मण से, तुम से और शत्रुघ्न से बेटे हैं।

व्याख्या अब गुरुजी बडाई का मुख्य कारण कहते हैं। पुत्रेणाय लोको जय्य। पुत्र स ही यह लोक जीता जाता है। अत यदि किसी को तुम लोगो के ऐसा पुत्र हो तो उसकी गणना करें। ऐसा भाग्यवान् कौन है? पिता के पुण्य की इयत्ता तो पुत्र

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



की महिमा से ही की जाती है। तुम चारो भाइयो सा शुद्धान्त करण पवित्र कौन है ? यथा : ईस प्रसाद असीस तुम्हारी। सुत सुतबधूँ देवसरि बारी। अत जिसके पुण्य से तुम चारो भाइयो का उनके घर जन्म हुआ उसकी बडाई कोई करना चाहे तो कैसे करे। इस व्याज से गुरुजी ने चारो भाइयो की बडी प्रशसा की।

सब प्रकार भूपति बड़भागी। बादि विषादु करिअ तेहि लागी ॥
यहु सुनि समुझि सोचु परिहरहू। सिर धरि राज रजायसु करहू ॥१॥

अर्थ . चक्रवर्तीजी सब प्रकार से भाग्यवान् थे। उनके लिए शोक करना व्यर्थ है। इसको सुनकर और समझकर शोक करना छोड दो और सिर पर धारण करके राजाज्ञा का पालन करो।

व्याख्या : चार प्रकार से ही लोग बड़भागी होते है। यशस्वी होने से, राजा होने से, गुणी होने से तथा सत् सन्तान के होने से। भुवन चारि दस प्रकट प्रभाऊ से लेकर . सरिस सुअन सुचि जासु तक कहकर गुरुजी ने चक्रवर्तीजी के चारो प्रकार का अत्यन्त उत्कर्ष कहा। अत चक्रवर्तीजी सब प्रकार से ही अशोच्य हैं। उन सा वडभागी कौन होगा। सोचे जाते हैं अभागी, जिनका न यह लोक बना न परलोक बना।

तात विचार करहु मन माँही से शोक न करने का उपक्रम करके यह सुनि समुझि सोचु परिहरहू। से उपसहार करते है और उपदेश देते हैं कि राज्य को सिर पर चढाकर अर्थात् स्वीकार करके राजाज्ञा का पालन करो। सुख के ध्यान से नही राजाज्ञा के ध्यान से करो। राजा दण्डधरो गुरु.। सबको राजाज्ञा मानना चाहिए। विशेषत तुम तो उनके पुत्र हो।

राय राजपदु तुम कहुँ दीन्हा। पिता बचनु फुर चाहिअ कीन्हा ॥
तजे रामु जेहिं बचनहि लागी। तनु परिहरेउ राम बिरहागी ॥२॥

अर्थ . चक्रवर्तीजी ने राजगद्दी तुम्हे दी। पिता के वचन को सत्य करना चाहिए। जिस वचन के लिए उन्होंने रामजी को त्यागा और रामजी की विरहाग्नि मे शरीर त्याग दिया।

व्याख्या : भरतजी को चुप देखकर गुरुजी फिर कहते हैं कि तुम्हारे मन मे यदि यह हो कि बडे भाई के रहते मेरा गद्दी स्वीकार करना उचित नही है तो ऐसी बात नही है। महाराज सर्वथा राज्य के स्वामी थे। वे राज्य दान कर सकते थे। उनका राज्य पर पूरा अधिकार था। उन्होने तुम्हे राज्यपद दिया। तुमको तो उनके वचन को सत्य करना ठहरा। यहाँ राज्य सुख का प्रश्न नही है। पिता के वचन के सत्य करने का प्रश्न है।

यदि कहो कि पिता को तो राम का राज्य प्रिय था तो यह बात भी नही है। उन्हे सबसे प्रिय अपना वचन था। अपने वचन के लिए ही उन्होंने रामजी का परित्याग किया और रामजी उनको अपने देह से भी अधिक प्यारे थे। अत उनके

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विरहाग्नि मे शरीर का भी परित्याग किया। अर्थात् देह से प्रिय राम और राम से भी अधिक प्रिय वचन। यथा : तुलसी जान्यौ दसरथहि धरमु न सत्य समान। रामु तज्यौ जेहि लागि बिनु राम परिहरे प्रान।

नृपहिं वचन प्रिय नहिं प्रिय प्राना। करहु तात पितु बचन प्रवाना॥
करहु सीस धरि भूप रजाई। हइ तुम कहँ सब भाँति भलाई॥३॥

अर्थ : राजा को वचन प्यारा था। प्राण प्यारा नही था। हे तात! पिता के वचन को प्रमाण करो। राजाज्ञा को सिर चढाकर पालन करो। इसी मे तुम्हारी सब प्रकार की भलाई है।

व्याख्या : राजा का वचन ही सब कुछ होता है। अत राजा को वचन प्रिय था। प्राण प्रिय नही था। उस वचन को प्रमाण करना ही चाहिए। तुम पुत्र होकर उनके वचन को प्रमाण न करोगे तो कौन करेगा। जिस वचन के लिए उन्होने प्राण दिया वही अप्रमाण हो जायगा।

यदि कहो कि महाराज के बाद हक बडे भाई का होता है। बडा भाई भी पिता के समान होता है। ज्येष्ठो भ्राता पितु सम। अत. राज्य स्वीकार करने मे मेरी भलाई नही है तो यह बात भी नही है। राजाज्ञा को शिरोधार्य करने मे ही तुम्हारी सब प्रकार की भलाई है। तुम तो अपनी इच्छा से राज्य नही ले रहे हो। तुम पुत्रधर्मपुरसर पिता की आज्ञा मान रहे हो। उस आज्ञा मे यदि कोई दोष है तो उसके जिम्मेदार तुम नही हो। उसका प्रातिभाव्य आज्ञा देनेवाले पर है। प्रतिज्ञा और हेतु देकर अब उदाहरण देते है।

परसुराम पितु आग्या राखी। मारी मातु लोग सब साखी॥
तनय जजातिहि जौबनु दयऊ। पितु आग्याँ अघ अजसु न भयऊ॥४॥

अर्थ : परशुरामजी ने पिता की आज्ञा पालन की और माता को मार डाला। इसको ससार जानता है। ययाति राजा को बेटे ने जवानी दे दी। परन्तु पिता की आज्ञा के कारण उन लोगो को न पाप हुआ और न अपयश हुआ।

व्याख्या : परशुरामजी ने पिता की आज्ञा से मातृवध किया। उन्हे मातृवध इष्ट नही था। मातृवध से बड़ा कोई पाप नही। तुमने भी पहिले उसी को गिनाया। यथा : जे अघ मातु पिता सुत मारे। इतने बडे पाप को परशुरामजी ने पिता की आज्ञा के सामने कुछ न गिना और पितृ आज्ञा पालन के प्रताप से पाप उनका स्पर्श भी न कर सका और न उनकी इस कारण अपकीर्ति हुई। ससार इस कथा को जानता है कि एकबार जमदग्निजी ने अपनी पत्नी रेणुकादेवी पर रुष्ट होकर अपने पुत्रो को आज्ञा दे दी कि इसे मार डालो। पर कोई राजा नही हुआ। तब अपने छोटे पुत्र परशुरामजी को आज्ञा दी कि इसे मार डालो और मेरी आज्ञा न माननेवाले अपने भाइयो को भी मार डालो। परशुरामजी ने वैसा ही किया। जमदग्नि ऋषि प्रसन्न हो गये। परशुरामजी से कहा वर माँग। उन्होने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वर माँगा कि मेरी माँ और भाई जी उठें और उन्हे यह याद न रहे कि मैंने उन्हे मारा था। पिता ने तथास्तु कह के जिला दिया। जो हो मातृवध तो उनके हाथ हुआ। बतलाओ कौन उन्हे पूज्य नही मानता ?

ययाति राजा भगवान् भार्गव के शाप से बूढे हो गये। कामवासना से उनका मन तृप्त नही हुआ था। बडी विनती करने पर ऋषिजी ने शापानुग्रह किया कि यदि कोई तुम्हारी बुढाई लेकर अपनी जवानी दे दे तो मेरे प्रसाद से यह सम्भव होगा। अपने लडको से उन्होने जवानी माँगी पर किसीने न दिया। छोटे लडके ने अपनी जवानी दी और बाप की बुढाई लेकर बूढा हो गया। यदि विचारा जाय तो कितना बडा अनर्थ हुआ। बेटा अपनी जवानी बाप को दे इससे बडा अनर्थ क्या होगा। क्योकि पुत्र के यौवन से उसकी माता को ही भोगेगा। इस पाप और दुर्यश का क्या ठिकाना ? परन्तु उसे यौवन देने की इच्छा न थी। बाप की आज्ञा से दे दिया। अत न पाप हुआ न दुर्यश हुआ।

दो अनुचित उचित बिचारु तजि, जे पालहि पितु बयन।
ते भाजन सुख सुजसु के, बसहि अमरपति अयन ॥१७४॥

अर्थ · जो उचित अनुचित का विचार छोडकर पिता के वचन का पालन करते हैं वे सुयश के पात्र होकर इन्द्रलोक को प्राप्त करते है।

व्याख्या पिता के वचन मे उचित अनुचित के विचार को स्थान ही नही है। जो पिता ने आज्ञा दे दी वही पालनीय है। औचित्यानौचित्य का भार पिता पर है। पुत्र तो आज्ञा पालक ठहरा। उसे पिता के वचन पालन का पुण्य होता है। पाप से उसका स्पर्श नही होता। ऐसा वचन यदि दु ख का कारण दुर्यश का कारण तथा निरय का कारण भी जान पडे तो भी पुत्र पर इनका कोई प्रभाव न पडेगा। पिता की आज्ञा पालनेवाला दु ख न पाकर सुख पावेगा। उसकी अपकीर्ति न होकर कीर्ति होगी। वह नरकगामी न होकर इन्द्रलोक मे निवास पायेगा।

अवसि नरेस बचन फुर करहू। पालहु प्रजा सोकु परिहरहू ॥
सुरपुर नृपु पाइहि परितोषू। तुम्ह कहुँ सुकृत सुजसु नहिं दोषू ॥१॥

अर्थ . तुम राजा के वचन को अवश्य सत्य करो। प्रजा का पालन करो और शोक का त्याग करो। राजा को स्वर्ग मे सन्तोष होगा और तुमको पुण्य और सुन्दर यश होगा। दोष नही होगा।

व्याख्या · पहिले गुरुजी ने राजाज्ञा पालन करने को कहा। फिर पिता के वचन को सत्य करने को कहा। तीसरी बार पिता के प्रिय होने से वचन को प्रमाण करने के लिए कहा। चौथी बार राजाज्ञा पालन मे भरतजी की भलाई दिखलाया। अब पाँचवी बार भलाई का उदाहरण देकर उसी बात पर जोर देते हुए कहते है कि अवश्य राजा के वचन को सत्य करो। प्रधान राजधर्म प्रजा पालन है। वह इस समय सिवा तुम्हारे करता कौन है ? इसलिए शोक छोडकर राजधर्म संभालो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यदि कहो कि राजा ने सन्तुष्ट होकर नही कहा है, वचनबद्ध होने से लाचार होकर कहा है। इसपर कहते हैं कि सुरपुर मे राजा को सन्तोष होगा। तुम्हारे वचन पालन से जब सुरपुर मे राजा का सम्मान बढेगा तो उन्हे सन्तोष होगा। गुरु की हैसियत से कह रहे हैं कि तुम्हे पुण्य होगा, सुयश होगा। डरो मत कि मुझे पाप होगा या दुर्यश होगा। कारण देते है

वेद बिदित समत सबहीका। जेहि पितु देइ सो पावइ टीका॥
करहु राजु परिहरहु गलानी। मानहु मोर बचनु हित जानी॥२॥

अर्थ वेद म भी ऐसा ही कहा है और लोक भी ऐसा ही मानता है कि जिसे पिता दे वही राजतिलक पावे। ग्लानि छोडकर राज्य करो और मेरे वचन को हित जानकर मानो।

व्याख्या सर्वोपरि प्रमाण वेद है। वह भी यही कहता है कि जिसे पिता दे वह राज्य पावे। वेद की आज्ञा ही धर्म है। चोदनालक्षणोऽर्थो धर्मः। लोकविद्विष्ट-धर्म को न करने का भी विधान है। पर इस विषय म लोक भी ऐसा ही मानता है कि जिसे पिता दे वह राज्य पावे। कुलरीति पिता के विशेष आज्ञा के अभाव मे मान्य है।

इतना कहने पर भी भरतजी चुप हैं। अत कहते हैं कि तुम ग्लानि को छोडकर राज्य करो। मैं जो कहता हूँ उसे हित समझकर मानो। फिर भी भरतजी चुप हैं। गुरुजी की आज्ञा पर भी राज्य स्वीकार नही है। मम यह है कि स्वार्थ-सिद्धि की आज्ञा मे विचार को अवसर मिलता है। स्वार्थ विरोध की आज्ञा मे विचार को अवसर नही है। यही कारण है कि रामजी ने रुख देखकर आज्ञा मान ली और भरतजी कहने पर भी नही मान रहे हैं। गुरुजी इस बात को भलीभाँति समझते है कि इन्हे राम जानकी की अप्रसन्नता का भय है। कौसल्या आदि माताओ के दु खी होने का ख्याल है। रामजी के लौटने पर उनके सामने सिंहासन पर कैसे बैठेंगे। इस बात का क्षोभ है। अत फिर गुरुजी बोले।

सुनि सुख लहब राम बैदेही। अनुचित कहब न पडित केही॥
कौसल्यादि सकल महतारी। तेउ प्रजा सुख होहिं सुखारी॥३॥

अर्थ इस बात को सुनकर राम जानकी को सुख होगा और कोई पण्डित इसे अनुचित नही कहेगा। कौसल्या आदिक माता लोग भी प्रजा के सुख से सुखी होगी।

व्याख्या राम जानकी यह सुनकर कि तुमने भी पिता की आज्ञा को शिरोधार्य किया सुखी होगे। यह न सोचो कि वे अप्रसन्न होगे। मैं उनके स्वभाव से भली भाँति परिचित हूँ। राम पुनीत विषय रस रूखे। लोलुप भूमि भोग के भूखे। मूर्खो की कोई गणना नही। उनका कोई चला नही सकता। गणना तो पण्डित के कहने की है। उसका जिम्मा मैं लेता हूँ कि कोई पण्डित अनुचित नही कह सकता।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मूर्खों के विषय मे कहा गया है : भलो कहे बिनु जानही बिनु जाने अपवाद। ते नर गादुर जानि जिअ करिअ न हरख विषाद।

माताएँ भी महाराज दशरथ की योग्या हैं। उनको सबसे अधिक ख्याल प्रजा का रहता है। रामजी के वन-चलते समय माता कौसल्याजी ने कहा : वेगि प्रजा दुख मेटव आई। इस समय प्रजा के अनाथ होने से वे सब दुःखी हैं। तुम्हारे राजा होने से प्रजा सुखी होगी तो वे लोग भी सुखी हो जावेंगी।

मरम तुम्हार राम कर जानिहि। सो सब बिधि तुम्ह सन भल मानिहि॥
सौंपेहु राजु राम के आएँ। सेवा करेहु सनेह सुहाएँ॥४॥

अर्थ : जो तुम्हारे और रामजी के मर्म को जानेंगे वे सब प्रकार से तुमसे भला मानेंगे। रामजी के आने पर उन्हे राज सौंप देना और सुन्दर प्रेम के साथ उनकी सेवा करना।

व्याख्या : अब प्रजा के विषय मे कहते हैं कि वे तो इस समय भी तुमसे भला मानते हैं। वे ही क्यो जो तुम्हारे और रामजी के मार्मिक प्रेम को जानेगा वह सब तुमसे भला मानेगा। यथा : देवि परन्तु भरत रघुवर की। प्रीति प्रतीति जाइ नही तरकी। बिधु बिष चवइ स्रवइ हिमु आगी। होइ बारिचर बारि बिरागी। भए ग्यान बरु मिटइ न मोहू। तुम्ह रामहि प्रतिकूल न होहू।

तुम्हारा सेवाधर्म भी नही बिगडेगा। तुम केवल रामजी की अनुपस्थिति मे राज्य करो। उनके आने पर राज्य सौंप देना और आनन्द से उनकी सेवा करना। यह राज्य करना भी उनकी सेवा करना ही है। इतना कहकर गुरुजी मौन हो गये। वस्तुत जो निष्कर्ष गुरुजी ने निकला वह किसी का किया अन्यथा नहीं हो सका। फिर भी भरतजी का रुख अनुकूल न देखकर मन्त्री लोग बोले। राज्यकार्य मे गुरुजी के बाद इन्ही का नम्बर है।

दो. कीजिअ गुर आयसु अवसि, कहहिं सचिव कर जोरि।
रघुपति आये उचित जस, तस तब करब बहोरि॥१७५॥

अर्थ · मन्त्री हाथ जोडकर कहते है कि अवश्य गुरुजी की आज्ञा का पालन कीजिए। रामजी के लौट आने पर जैसा उचित होगा वैसा कीजियेगा।

व्याख्या : गुरुजी के प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए मन्त्री लोग बोले कि पहिली चार बातें जिनमे राज करने को कहा गया है स्वीकार न हो तो गुरुजी की आज्ञा तो अवश्य कीजिये। यह बात मन्त्री लोग हाथ जोड़कर विनय कर रहे हैं। अर्थात् प्रजापालन अवश्य कीजिये। सरकार को लौटने पर उचित विचार का अवसर है। इस समय तो प्रजापालन कर्तव्य है। आप नही पालन करेंगे तो कौन करेगा? पिता की आज्ञा का पालन भी हो गया और आपका सेवा धर्म भी बना रह गया। तब तस करब बहोरि : भाव यह कि इस समय दूसरा कुछ करने का अवसर नही है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कौसल्या धरि धीरजु कहई । पूत पथ्य गुर आयेसु अहई ॥
सो आदरिअ करिअ हित मानी । तजिअ बिपादु काल गति जानी ॥१॥

अर्थ कौसल्याजी धैर्य धारणकर बोली · बेटा ! गुरुजी की आज्ञा पथ्य है । उसका आदर करो और हित मान करके आचरण करो । कालगति मानकर विपाद छोडो ।

व्याख्या . इस अवसर पर कौसल्याजी का बोलना अत्यन्त आवश्यक था । सब रानियों मे प्रधान हैं । इन्ही के पुत्र को वनवास दिया गया । इनके बिना कहे भरतजी का राज्य स्वीकार करना उचित भी नही था । भरतजी का प्रेम देखकर धैर्य छूट जाता था । अभिषेक की चर्चा से राम वनवास आँख के सामने आगया । इसलिए धैर्य छूट रहा था । उसे धारण किया । तीसरे यह कि आज महाराज के न होने से यह गति हो रही है नही तो अभिषेक के लिए कितना बडा उत्सव होता इत्यादि । धैर्य छूटने के अनेक कारण वर्तमान होने पर भी धैर्य धारणकर माँ बोली । पूत सम्बोधन मे ही वात्सल्य उमडा पडता है । कहती है कि गुरुजी की आज्ञा पथ्य है । रोगी के लिए हितकर है । इस समय रामवियोगरूपी कुरोग से सब दु खी है । यथा राम वियोग कुरोग बिगोये । इसी से रोग का उपशमन सम्भव है । रोगी हो, अपने मन का न करो । सद्गुरु के वचन का विश्वास करो · कुपथ माँग रुज व्याकुल रोगी । सद्गुरु बैद्य बचन विस्वासा यहाँ विश्वास करना ही आदर करना है और आचरण करना ही पथ्य सेवन है ।

गुरुजी ने कहा था मानहु मोर बचन हित जानी । कौसल्याजी की गुरुचरणो मे महाराज की सी भक्ति है । यथा तम पुनीत कौसल्या देवी । मेरे विशेषि गति रावरी तुलसी प्रसाद जाके सकल अमगल भागे अत गुरुजी के वचन के लिए कहती हैं सा आदरिअ करिअ हित मानी और विपाद छोडने को कहती है । क्योकि काल की गति हटाई नही जा सकती । यथा काल करम गति अघटित जानी । अत विपाद व्यर्थ है । भरतजी रो रहे है । इस पर कहती है ।

बन रघुपति सुरपति नरनाहू । तुम एहि भाँति तात कदराहू ॥
परिजन प्रजा सचिव सब अबा । तुमही सुत सब कह अवलबा ॥२॥

अर्थ रघुपति रामजी वन मे हैं । महाराज इन्द्र के यहाँ है । और तुम इस भाँति कादर हो रहे हो । कुटुम्बीजन प्रजा मन्त्री तथा माताओ को बेटा ! केवल तुम अवलम्ब हो ।

व्याख्या माता कहती हैं कि उपाय भी तो दूसरा कोई नही है । रघुपति पालन मे समर्थ थे सो तो वन मे है यहाँ हैं नही महाराज भी नही है । वे अपने सखा इन्द्र के यहाँ चले गये । पहिले रामजी का नाम लिया । क्योकि उन्ही का अभिषेक सर्वसम्मति से होनेवाला था । महाराज वृद्ध हो गये थे । राज्य के भार से हलका होना चाहते थे । अत उनका नाम पीछे से लिया । वे भी होते तो लाचार

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



होकर पालन करते हो। जब दोनो नही है तो तुम्हारे अतिरिक्त पालन कौन करता है ? सो तुम वीर होकर इस भाँति कादर हो रहे हो कि रोते हो।

प्रिय परिजन पुरजन, तुम्हारे पिता के सामने के मन्त्री, माताएँ सब इस समय निराधार हो रहे हैं। केवल तुम्हारा सहारा है। तुम्हारे साहस छोडने से ये सब मारे पडेंगे। इन पर दु सह दु ख का भार आ पडेगा।

लखि विधि वाम काल कठिनाई। धीरजु धरहु मातु बलि जाई ॥
सिर धरि गुर आयसु अनुसरहू। प्रजा पालि पुरजन दुखु हरहू ॥३॥

अर्थ विधाता की प्रतिकूलता और काल की कठिनता को लखकर धैर्य धारण करो। माता तुम्हारी बलैया लती है। गुरु की आज्ञा को शिरोधार्य करो और तदनुसार आचरण करो। प्रजा का पालन करके नागरिको के दु ख का हरण करो।

व्याख्या धीरजु धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परखिअहिं चारी। सो यह आपत्काल उपस्थित है, विधाता प्रतिकूल है जिसने कैकेयी को पागल बना दिया। यथा विधि वाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्ही बावरी और काल भी कठिन उपस्थित है जिसके आगे किसी का बल नही चलता। यथा सब कर आज सुकृत फल बीता। भयउ कराल काल विपरीता यही समय धर्म की परीक्षा का है। अत मैं माँ हूँ तुम्हारी बलैया लती हूँ तुम धैर्य धरो।

पूत पथ्य गुरु आयसु अहई से उपक्रम करके सिर धरि गुरु आयसु अनुसरहू स उपसहार करती हुई कहती हैं कि प्रजापालन कौन करेगा ? इसलिए प्रजापालन करके पुरजन का दु ख हरण करो। क्योंकि इस समय बिना राजा के प्रजा अनाथ हो रही है।

गुरु के बचन सचिव अभिनदनु। सुने भरत हिय हित जनु चदनु ॥
सुनि बहोरि मातु मृदु बानी। सील सनेह सरल रस सानी ॥४॥

अर्थ गुरुजी के वचन और मन्त्रियो का अभिनन्दन भरतजी ने सुना। जो हृदय के लिए चन्दन सा हितकर था। फिर शील स्नेह और सरलता के रस से सनी हुई माता की वाणी सुनी।

व्याख्या गुरु के वचन प्रतीत न जेही। सपनेहु सुलभ न सुखसिधि तेही। जिसके लिए स्वय भरतजी कहते है अवसि फिरव गुरु आयसु मानी। सो गुरु की वाणी किसी प्रकार हटाने योग्य नही जिसके विषय म धर्म विरुद्ध होने की शङ्का भी नही की जा सकती। फिर मन्त्रियो ने उसका अनुमोदन किया। अत नीति विषयक सन्देह भी उस पर नही किया जा सकता। वह वाणी शीतल और हित कारक थी। जिस भाँति चन्दन हृदय के लिए और स्पर्श म शीतल है।

फिर माता की मृदु वाणी सुनी। जो शील, स्नेह और सरल रस से सनी हुई थी। शील यथा पूत पथ्य गुर आयसु अहई। सनेह यथा तुमही सुत सब कहँ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अवलम्बा। सरल यथा 'धीरज धरहु मातु बलि जाई। तथापि भरतजी का कष्ट घटने के स्थान मे बढा। उन्हे आशा थी कि कम से कम माता कहेगी कि यदि भरतजी राज्य नही लेते तो रामजी को लौटाओ पर ये ऐसो सरल थी कि जो सबने कहा उसी को इन्होने भी मान लिया।

छ. सानी सरल रस मातु बानी सुनि भरत ब्याकुल भये।
लोचन सरोरुह स्रवत सींचत बिरह उर अंकुर नये॥
सो दसा देखत समय तेहि बिसरी सबहि सुधि देह की।
तुलसी सराहत सकल सादर सीव सहज सनेह की॥

अर्थ सरलता के रस से सनी हुई वाणी को सुनकर भरतजी व्याकुल हो गये। उनके कमल रूपी नेत्रो से आँसू बहकर हृदय के नये विरहाङ्कुरो को सीचने लगे। उस दशा को देखकर सबको अपने देह की सुधि न रह गयी। तुलसीदासजी कहते है कि उस सहज सनेह की सीमा को सब लोग आदर के साथ सराहने लगे।

व्याख्या माता को ऐसी सरल वाणी सुनने से भरतजी व्याकुल हो गये। ऐसे सरल के ऊपर इतना बडा आघात हुआ और फिर भी इनकी सरलता ज्यो की त्यो है। भरतजी के नेत्रो से आँसू की धारा चली जिससे हृदय भीग उठा। मानो जो नये विरह के अकुर उगे हैं उन्हे यह अश्रुधारा सिञ्चन कर रही है। विरह के नये अङ्कुर उगने का भाव यह है कि भरतजी देखते हैं कि सभी ने रामजी का चौदह वर्ष वनवास मान लिया। उनके लौटाने के लिए यत्न करने की भावना भी किसी मे नही है। अत नये विरह के अङ्कुर उगे।

भरतजी के प्रेम की वह दशा देखने से सभी लोग प्रेम मे मग्न हो गये। किसी को अपने देह की सुधबुध न रही। कुछ समय तक तो यह दृश्य था। मन के सँभलने पर सभी लोग आदर के साथ सहज प्रेम की सीमा की सराहना करते लगे। भाव यह कि सभा को सरकार के चरणो मे प्रेम था। पर परम प्रेम की सीमा तो भरत मे थी। प्रेमियो मे प्रेम की गुण ग्राहकता होती है। अत: सादर सराहना करते हैं।

सो. भरतु कमल कर जोरि, धीर धुरन्धर धीर धरि।
बचन अमिअ जनु बोरि, देत उचित उत्तर सबहि॥१७६॥

अर्थ धैर्य को धुरा के धारण करनेवाले भरतजी धैर्य धारण करके अपने कमल सदृश हाथो को जोडकर मानो अमृत मे डुबाए हुए वचनो से सबको उचित उत्तर देने लगे।

व्याख्या : भरतजी को किसीकी सम्मति स्वीकार नही है। पर सब लोग धैर्य धारण करने को कहते हैं। इसलिए धैर्य धारण किया अथवा बिना धैर्य धारण किए उत्तर दिया नही जा सकता और यदि उत्तर नही देते तो मौन स्वीकारलक्षणम्

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हुआ जाता है। जिनको उत्तर देना है वे सब बडे है। इसलिए हाथ जोडकर उत्तर देते हैं। उत्तर देने मे कसर न रक्खेंगे इसलिए कहते है ' देत उचित उत्तर सबहिं। जिसको जैसा उत्तर देना चाहिए वैसा उत्तर देंगे। परन्तु उत्तर वस्तु ही ऐसी है जो किसी को प्रिय नही लगती। सभी चाहते है कि मेरी बात का कोई उत्तर न दे। क्योकि उत्तर सुनने मे रस बिगडता है। परन्तु भरतजी ऐसे शब्दो मे उत्तर देते हैं जिससे सुननेवाले को परम सुख हो। उत्तर मीठा लगे और उससे सन्तोष हो। भरतजी की पण्डिताई है कि भरतजी उत्तर तो देते हैं पर प्रजा को, पञ्च परमेश्वर को उत्तर देते है। धर्मतन्त्र के मूल सिद्धान्त को पकडे हुए उत्तर दे रहे हैं। उत्तर देने के लिए उपक्रम का ही यह अर्थ है कि कही हुई बात स्वीकार नही है और न स्वीकार करने का यथेष्ट कारण है।

मोहि उपदेसु दीन्ह गुर नीका। प्रजा सचिव समत सबहीका ॥
मातु उचित धरि आयसु दीन्हा। अवसि सीस धरि चाहौ कीन्हा ॥१॥

अर्थ मुझे गुरुजी ने अच्छा उपदेश दिया। प्रजा मन्त्री सभी की यह राय है। माँ ने भी उचित की धारणा से आज्ञा दी है। मैं शिरोधार्य करके अवश्य करना चाहता हूँ।

व्याख्या ' पहिले पहल गुरुजी ही बोले थे। कहा था : मानहु मोर बचन हित जानी। इसलिए कहते है कि उपदेश मे कोई त्रुटि नही है। वह अच्छा है। गुरुजी ने मानने के लिए कारण दिया। अत भरतजी उसे आज्ञा न मानकर उपदेश मानते हैं। बात पर जोर देने के लिए मन्त्री कहते है कीजिअ गुरु आयसु अवसि। माँ कहती हैं पूत पथ्य गुरु आयसु अहई। परन्तु वस्तुस्थिति यह है कि वह आज्ञा नही है उपदेश है। वह उपदेश मन्त्रियो की सम्मति के अनुकूल है। परन्तु प्रजा ने तो कुछ नही कहा फिर भा भरतजी प्रजा की सम्मति कहते हैं। क्योकि प्रजा की ओर से विरोध नही हुआ। धर्मशास्त्र कहता है कि सभा मे प्रवेश न करे और करे तो स्पष्ट बोले। क्योकि अनुचित कहनेवाला और चुप रहनेवाला समान पापी है। आजकल लोग उस नियम को भूल गये। इसलिए हाथ उठवाना पडता है। जब प्रजा चुप रह गयी तो निश्चय हो गया कि उसकी भी यही राय है।

माता ने नि सन्देह आदेश दिया। पर उन्होने भी उचित की धारणा से आदेश दिया। उसे पथ्य समझकर करने को कहा। भरतजी कहते हैं कि मै भी चाहता हूँ कि तदनुसार कार्य करूँ। पर करने मे असमर्थ हूँ। आप लोग कहते है कि शिरोधार्य करो। मैं शिरोधार्य करता हूँ। परन्तु चाहने पर भी करते नही बनता।

गुरु पितु मातु स्वामि हित बानी। सुनि मन मुदित करिअ भलि जानी ॥
उचित कि अनुचित किये बिचारू। धरमु जाइ सिर पातक भारू ॥२॥

अर्थ गुरु पिता माता स्वामी और हित की वाणी सुनकर उसे प्रसन्न मन

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



से अच्छा समझकर करे। उसम उचित अनुचित का विचार करने से धर्म जाता रहता है और सिर पर पाप का भार होता है।

व्याख्या गुरु पिता माता स्वामी और हित इनमे से एक का भी वचन उल्लघनीय नही हैं। यहाँ तो पाँचो का ऐकमत्य है। यथा

गुरुवाणी करहु राजु परिहरहु गलानी।
पितुवाणी कछु दिन गये भरत जुबराजू।
मातुवाणी प्रजा पालि पुरजन दुख हरहू।
स्वामिवाणी कहब सँदेसु भरत के आये। नीति न तजिअ राजपदु पाये।
हितवाणी कीजिय गुरु आयसु अवसि।

अत इसकी उपादेयता मे तो कोई प्रश्न ही नही है। सहज सुहृद गुरुस्वामि सिख जो न करई हित मानि। सो पछिनाय अघाय उर अवसि होय हितहानि। इनकी वाणी मे उचित अनुचित विचार करने से धर्म का लोप होता है और पाप का बोझ सिर पर आ जाता है। अत इसम औचित्यानौचित्य के विचार को अवकाश नही है। अत इस पर मैं भी विचार नही करता।

तुम्ह तउ देहु सरल सिख सोई। जो आचरत मोर भल होई॥
जद्यपि यह समुझत हौ नीके। तदपि होत परितोष न जीके॥३॥

अर्थ तुम लोग तो वही शिक्षा मुझे देते हो जिसके आचरण से मेरा भला हो। यद्यपि मैं इस बात को भली भाँति समझ रहा हूँ। फिर भी जी को परितोष नही होता।

व्याख्या उपदेश भी भावोपहत नही है सरल है। उसके समझने मे भी कठिनता नही है। तुम लोग मेरा भला देख रहे हो। इस बात को अच्छी तरह से मैं समझ रहा हूँ। परन्तु अपने ही भले से मुझे सन्तोष नही होता। भाव यह कि तुम लोग सरकारके कष्ट की ओर दृष्टिपात नही कर रहे हो। क्या उनके कष्ट विनिमुक्ति का कोई उपाय नही है ? जब तक वे दु ख सहते वन मे फिरते हैं तब तक मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है कि सोच छोडकर प्रजापालन मे दत्तचित्त हो जाऊँ। मेरे चित्त मे परितोष नही हो रहा है। मै आप लोगो की आज्ञा नहीं टाल सकता। परन्तु अपना हार्दिक भाव तो प्रकट कर सकता हूँ।

अब तुम्ह बिनय मोरि सुनि लेहू। मोहि अनुहरत सिखावनु देहू॥
ऊतरु देउँ छमब अपराधू। दुखित दोष गुन गनहि न साधू॥४॥

अथ अब तुम मेरी विनय सुन लो और मेरी योग्यतानुसार सिखावन दो। मैं उत्तर देता हूँ मेरे अपराध को क्षमा करो। सज्जन लोग दु खी आदमी के दोष गुण को नही गिनते।

व्याख्या अन्तिम आदेश के पहिले विनय सुनना उचित है। अत मेरी विनती सुनिये और तब ऐसी शिक्षा दीजिये जो मुझसे हो सके। जो बात मेरी की

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हुई नही हो सकती उसे मैं चाहता हुआ भी नही कर सकता। आप लोगों ने जो शिक्षा मुझे दी वह है बड़ी अच्छी पर मैं उसका अधिकारी नही। तदनुसार आचरण करना मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है।

आप लोग बडे हैं। आपका उत्तर देना अपराध है और मै उत्तर देता हूँ। इसके लिए क्षमा प्रार्थी हूँ। उत्तर देने का कारण यह है कि मैं दु खी हूँ। आप लोग साधु हैं। साधु लोग न तो दु खी के दोष को ही गिनते हैं और न गुण को ही गिनते हैं। यहाँ उत्तर देने का प्रकरण है। इसलिए दोष पहिले कहा। गुण पीछे कहते हैं। दु.खी गाढे मे पडकर कटु बोलता है। यथा : कटु कहिये गाढे परे सुनि समुझि सुसांई। परन्तु स्वामी उसके दोष को नही गिनता। दु.खी वैराग्ययुक्त वाणी बोलता है। पर उसके राग या विराग की वाणी पर साधु कुछ ख्याल नही करते। यथा : सुनि विराग संजुत कपि बानी।

दो. पितु सुरपुर सिय रामु बन, करन कहहु मोहि राजु।
एहि तें जानहु मोर हित, कै आपन बड़ काजु ॥१७७॥

अर्थ : पिताजी स्वर्ग चले गये। सीता राम वन मे हैं। मुझे राज करने को कहते हो। इसमे मेरी भलाई समझते हो या अपना कोई वडा काम समझ रहे हो।

व्याख्या : पहिले यह विचार लो कि किस परिस्थिति मे किससे क्या कह रहे हो। पिता मर गये। श्रीसीतारामजी वन गये और मेरे कारण से ये दुर्घटनाएँ हुईं। सो मुझ ही को राज करने को कहते हो। यह नही समझ रहे हो कि मेरे राज्य स्वीकार का अर्थ ही यही है कि इन दुर्घटनाओ मे मेरी सम्मति थी। अतः समझ लो कि राज्य स्वीकार करना मेरे सामर्थ्य के बाहर की बात है। दूसरी बात यह है कि जो कोई किसी काम के करने के लिए किसी से कहता है तो दो बातो मे एक बात अवश्य रहती है। उससे या तो करनेवाले का भला ईप्सित होता है या अपना भला ईप्सित होता है। भरतजी पूछते हैं कि यह तो बतलाओ कि तुम लोगो ने किसका भला सोचकर मुझे शिक्षा दी है। इससे तुम लोगो का भला होगा या मेरा ?

हित हमार सियपति सेवकाई। सो हरि लीन्ह मातु कुटिलाई ॥
मैं अनुमानि दीखि मन माँही। आन उपाय मोर हित नाँही ॥१॥

अर्थ : मेरी भलाई तो सीतापति की सेवा मे है। उसे माता की कुटिलता ने हरण कर लिया। मैंने मन मे अनुमान करके देख लिया कि किसी दूसरे उपाय से मेरा हित सम्भव नही है।

व्याख्या : यदि पहिला पक्ष लो कि मेरा हित राज्य स्वीकार मे है तो ठीक नही। क्योकि : सिव विरञ्चि सुर मुनि समुदाई। चाहत जासु चरन सेवकाई। वह सेवकाई मुझे प्राप्त थी। उस सेवकाई को माता की कुटिलता ने हरण कर लिया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मेरे हाथ से सेवकाई निकल गयी। अहह धन्य लछिमन बड़ भागी। राम पदारविंद अनुरागी : सियपति कहकर महामाया पति कहा। यथा : उद्भवस्थितिसंहारकारिणी क्लेशहारिणी सर्वश्रेयस्करी सीता नतोऽहं रामवल्लभां। माता और पुत्र का सम्बन्ध ऐसा है कि माता की कुटिलता का आरोप पुत्र पर होता ही है। विशेषतः उस समय जब कि उसका कुटिलाचरण पुत्र के स्वार्थ के लिए हो। अतः अब मेरी गणना सेवकों मे नही रह गयी। माता पुत्र को हित करती है। सो माता ने मेरा हित ही हरण कर लिया। आप लोग यदि हित चाहते हो तो सेवा का अवसर दो। माँ ने उन्हें वन मे भेजकर हित से वञ्चित किया है। यदि लौटें तो हित हो : स्वारथ साँच जीव कर एहा। मन क्रम वचन रामपद नेहा।

अनुमान द्वारा ही मन से देखा जाता है। पर्वतो वह्निमान् कहनेवाले ने बिना आँख से देखे मन द्वारा देख लिया। अन्वयव्यतिरेक से यही सिद्ध होता है कि मेरा हित दूसरे उपाय से होनेवाला नही। यथा : तुम बिनु दुखी सुखी तुमते ही। मेरा हित कहने का भाव यह कि दूसरे का हित भले ही दूसरे उपाय से हो : एक अग जो सनेहता निसिदिन चातक नेह। तुलसी जा सो हित लगै वहि अहार वहि देंह। जीव चराचर जहँ लगे है सबको हित मेह। तुलसी चातक मन बस्यो घन सो सहज सनेह।

सोक समाजु राजु केहि लेखें। लखन राम सिय बिनु पद देखें ॥
[1]बादि बसन बिनु भूषन भारू। बादि बिरति बिनु ब्रह्म बिचारू ॥२॥

अर्थ : लक्ष्मण राम और सीता के चरणों को बिना देखे यह राज्य किस गिनती में है। यह शोक समाज है। कपड़े के बिना गहने का बोझ व्यर्थ है और वैराग्य के बिना ब्रह्मविचार व्यर्थ है।

व्याख्या : यह राज्य नही है शोक समाज है। प्रिय के विरह मे सुखद वस्तु भी दुःखद हो जाती है। यथा : जे हित रहे करै ते पीरा। अतः यह राज समाज शोक समाज मालूम पड़ता है। इसका भला सुख मे क्या गिनती है। लक्ष्मण राम सीता के चरणो का दर्शन हो तो सभी मे सुख है। सुख उन चरणो मे है बाह्य उपकरणो मे नही। यथा : नाथ सकल सुख साथ तुम्हारे। सरद बिमल बिधु बदन निहारे। अब शङ्का यहाँ उठ सकती है कि लक्ष्मणजी तो छोटे हैं। उनके चरण दर्शन के लिए भरतजी क्यों कहते हैं। सीधा सा उत्तर यही है कि सीता और रामजी के साथ हैं। इसलिए : छत्रिणो गच्छन्ति की भाँति लक्ष्मणजी के साथ भी चरण शब्द का व्यवहार कर दिया। यथा : अनुज समेत गहेउ प्रभु चरना। दूसरी बात यह भी है कि यन्त्रराज के मुख्य त्रिकोण मे ये ही तीन मूर्तियाँ है और इसी त्रिकोण रूप के शरण मे देवता लोग गये। यथा :

---

१. विनोक्ति प्रथम अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हेमाभया द्विभुजया सर्वालङ्कारया[1] चिता।
श्लिष्टः कमलधारिण्या पुष्ट कोसलात्मजः ॥९॥
दक्षिणे लक्ष्मणेनाथ सधनुष्पाणिना पुनः।
हेमाभेनानुजेनैव तदा कोणत्रयं भवेत् ॥१०॥
एव त्रिकोणरूपं स्यात् तं देवा ये समाययु.। रा० ता० ४ ११

स्वर्ण वर्णवाली दो भुजाओंवाली सब अलंकार धारण किये हुए हाथ मे कमल लिये हुए सीता देवी से युक्त श्रीरामजी हैं। उनके दाहिनी ओर धनुष हाथ मे लिये हुए लक्ष्मणजी हैं जिनका रङ्ग सोने सा है। इस भांति त्रिकोण होता है। उसी त्रिकोण के शरण मे देवता लोग गये।

शत्रुघ्न भरत और हनुमान् दूसरे त्रिकोण मे हैं। यथा :

उदग्दक्षिणयोः स्वस्य शत्रुघ्नभरतौ धृतः।
हनूमन्तं च श्रोतारमग्रत. स्यात् त्रिकोणकम् ॥ ४ ३२।

अतः मुख्य त्रिकोण रूप मे भक्ति द्योतित करते हैं।

गहना शोभा का कारण है पर यदि वस्त्र हो तो और यदि वस्त्र ही नही तो भूषण से शोभा नही। वह व्यर्थ होकर भाररूप हो जाता है। इसी भांति रामजी हो तो राज्य सुखद है। उनके न होने पर राज्य में सुख कहाँ ? वह तो भाररूप हो जायगा। बिधुवदनी सब भांति सँवारी। सोह न बसन बिना बर नारी। इसी भांति वैराग्य हो तो ब्रह्मविचार मे आनन्द है। यदि वैराग्य ही नही तो ब्रह्मविचार मे आनन्द कहाँ ? उल्टा ब्रह्मविचार बड़ा भारी बोझा हो जाता है। उसका स्मरण रखना कठिन हो जाता है।

**सरुज सरीर वादि बहु भोगा। बिनु हरिभगति जायँ जप जोगा ॥**
**जांय जीव बिनु देह सुहाई। वादि मोर सबु बिनु रघुराई ॥३॥**

अर्थ : रोगी शरीर हो तो बहुत से भोग व्यर्थ हैं। विना हरिभक्ति के जप योग व्यर्थ है। जीव के विना सुन्दर देह व्यर्थ है। रघुराई के विना मेरा सब कुछ व्यर्थ है।

व्याख्या : भोग सुख देनेवाला है। पर यदि शरीर मे कोई रोग हो तो भोग शक्ति भी घट जाती है और भोग से उस रोग की वृद्धि भी होती है। या यों कहिये कि रोगी के लिए भोग विष है। यथा : कुपथ मांग रुज व्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनउ मुनि जोगी। अतः सब भोग उसके लिए व्यर्थ हैं। इसी भांति राम वियोग रूपी कुरोग से जो दुःखी हैं उनके लिए राज्य अपथ्य है।

जप योगादि अनुष्ठान हरिभक्ति के लिए ही किया जाता है। यथा : जहँ लगि साधन वेद बखानी। सब कर फल हरिभगति भवानी। यदि हरिभक्ति ही न हुई तो

१. पाठभेद : सर्वालङ्कृतया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सब साधन व्यर्थ गये। यथा : सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न रामपद प भाऊ। जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जह नहिं राम प्रेम परधानू।

सुन्दर देह हो पर उसमे जीव न हो तो वह देह व्यर्थ है। अमङ्गल रूप ह जीव रहने से वही देह मङ्गल रूप थी। यथा : जिय बिनु देह नदी बिनु वारि तैसिअ नाथ पुरुप बिनु नारी। परन्तु रामजी के बिना मेरा तो सब कुछ व्यर्थ है अर्थात् रामजी से ही मेरी शोभा है। रामजी से ही आनन्द है। रामजी से ही हि है। रामजी से ही सफलता है और रामजी से ही मङ्गल है अर्थात् बिना रामजी न शोभा है, न आनन्द है, न हित है, न सफलता है, न मङ्गल है।

जाउँ राम पहि आयसु देहू। एकहि आँख मोर हित एहू ॥
मोहि नृपु करि भल आपन चहहू। सोउ सनेह जड़ता बस कहहू ॥४॥

अर्थ : मुझे आज्ञा दीजिये। मैं भी रामजी के पास जाऊँ। इसी एक बात मेरा हित है। मुझे राजा बनाकर जो अपना भला चाहते हो सो स्नेह की जडत के वश होने से कहते हो।

व्याख्या : भरतजी सभा से कह रहे हैं कि मैं आज्ञा से बाहर नही हूँ। अत आज्ञा माँगते हैं कि मुझे रामजी के पास जाने की आप लोग आज्ञा दें। क्योंकि मेर भला उनके यहाँ जाने मे ही है और आप लोग मेरा हित चाहनेवाले हैं। अत अवश्य ही दीजिये।

यदि कहो कि हम लोग अपने लाभ के लिए तुम्हे राजा बनाना चाहते हैं। तब तो मैं यही कहूँगा कि मेरे ऊपर आप लोगो का इतना स्नेह है कि आप लोगो की बुद्धि मे जडता आगयी है। आप लोगो की दोषो की ओर दृष्टि ही नही जा रही है। दोषज्ञ पण्डित का नाम है। जो दोप का विवेचन न कर सके वह कैसा पण्डित? मेरे राज्य से सुख हो नही सकता। कारण कहते हैं।

दो. कैकइ सुअन कुटिलमति, राम विमुख गतलाज।
तुम्ह चाहत सुखु मोहवस, मोहि से अधम के राज ॥१७८॥

अर्थ : कैकेयी का बेटा, कुटिल बुद्धि, राम विमुख और निर्लज्ज ऐसे अधम के राज्य मे तुम सुख चाहते हो।

व्याख्या : मैं कैकेयी का बेटा हूँ। कैकेयी की बुद्धि की कुटिलता को सब जानते हैं। माँ का प्रभाव कहाँ तक बेटे पर न पडेगा। मेरी बुद्धि कुटिल है। रामजी के वन भेजने का कारण होने पर भी अपने को निर्दोष मानता हूँ। रामजी के विमुख हूँ। उनके सम्मुख होने की कोई चेष्टा न करने से निर्लज्ज हूँ। इतना बडा अपयश सहन करके जीवित हूँ। अधम कहते किसको है? जिसका जन्म बुद्धि कर्म और शील प्रशस्त न हो वही अधम है। मुझमे ये चारो नही है अत. मैं बहुत बडा अधम हूँ। अधम को राजा बनाना नही चाहिए। क्योंकि उसके कारण प्रजा का आदर्श बिगड़ जाता है। यथा राजा तथा प्रजा। केवल दण्ड विधान करना ही राजा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



का कार्य नही है। उसका चरित्र प्रजा के लिए आदर्शरूप होना चाहिए। अधम के राजा बनने से प्रजा अधम हो जायगी। फिर सुख का लेश कहाँ ? अतः अधम को राजा बनाकर सुख चाहना जड़ता है।

कहौं साँचु सब सुनि पतियाहू। चाहिअ धरमसील नरनाहू ॥
मोहि राजु हठि देइहहु जबही। रसा रसातल जाइहि तबही ॥१॥

अर्थ : मैं सच कहता हूँ। सुनकर विश्वास करो। राजा धर्मात्मा होना चाहिए। मुझे हठपूर्वक राज्य जिस समय दोगे उसी समय पृथ्वी रसातल को चली जायगी।

व्याख्या : मैं विनय प्रदर्शन के लिए नही कह रहा हूँ। अथवा जब मैं अपने को अधम स्वीकार कर चुका हूँ तो यह न समझ लो कि इस समय मैं झूठ कह रहा हूँ। मैं सच कहता हूँ। आप लोग विश्वास करिये। मैं वस्तुतः कुटिल हूँ। आप लोगो का सरलभाव से कहना मेरे हृदय में नही बैठ रहा है। मैं समझ रहा हूँ कि आप लोग मुझे वस्तुतः राज्यलिप्सु समझ रहे हैं। मुझे माँ की राय मे समझ रहे हैं। यथा : तुम्ह तउ देहु सरल सिख सोई। जो आचरत मोर भल होई। मैं राम विमुख हूँ। मेरे कारण रामजी सब प्रकार का कष्ट झेल रहे हैं। मुझे लज्जा नही है। जिसे लज्जा थी उसने शरीर त्याग दिया। मैं आप लोगो के सामने मुख दिखला रहा हूँ। अतः मैं राज्य के योग्य नही। कुटिल रामविरोधी और बेहया राजा नही होना चाहिए। राजा धर्मशील होना चाहिए। जिसमे प्रजा उसका अनुसरण करके धर्मात्मा हो।

अतः मैं राज लेना नही चाहता। आज्ञा के बल से मुझे दोगे तो मुझे लेना पड़ेगा। पर इसका फल बड़ा भयानक होगा। प्रजा मेरा अनुसरण करने लगेगी। पितृवध बन्धुविरोध धन-सम्पत्ति के लिए होने लगेगी। यथा राजा तथा प्रजा। प्रजा पतित हो जायगी। ऐसा पाप पृथ्वी पर बढेगा कि वह सह न सकेगी। रसातल को चली जायगी। मेरे सिंहासन पर बैठने की देर है। तुम्हारा भला कुछ न होगा। उलटा बड़ा भारी विनाश उपस्थित हो जायगा।

मोहि समान को पाप निवासू। जेहि लगि सीय राम बनवासू ॥
रायँ राम कहु काननु दीन्हा। बिछुरत गमनु अमर पुर कीन्हा ॥२॥

अर्थ : भला मेरे बराबर पाप का निवास स्थान कौन होगा ? जिसके लिए सीता और राम को वनवास हुआ। राजा ने रामजी को वन तो दिया पर उनके बिछुड़ने पर आप सुरपुर भी चले गये।

व्याख्या : रसातल जाने का कारण कहते हैं कि मेरा पाप ही ऐसा है। क्योकि मैं सीताजी और रामजी जैसे महापुण्यवानो के वनवास का कारण हूँ। वनवास बड़ा भारी दण्ड है। यथा : डरपहि धीर गहन सुधि आये। महा निकम्मो को ननवास बड़ा भारी दण्ड है। यथा : डरपहि धीर गहन सुधि आये। महा निकम्मो को वनवास दिया जाता है। यथा : अगुन अमान जानि तेहि दीन्ह पिता बनबास।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मेरे कारण इतने बडे पुण्यवान् को ऐसा घोर दण्ड दिया गया। मेरे पाप का क्या ठिकाना ?

यदि कहिये कि तुम तो केवल वनवास दिये जाने के कारण हुए। प्रयोजक कर्त्ता हुए। मुख्यकर्ता अर्थात् वनवास देनेवाले तो महाराज थे। तो इसपर यह कहना है कि उन्होने अपना प्राण देकर संसार के सामने अपनी सफाई भी दे दी। ससार जान गया कि राजा ने खुशी से वनवास नही दिया। वनवास जबरदस्ती राजा से दिलवाया गया जिसका उन्हे इतना दु:ख हुआ कि उन्होने प्राण दे दिया।

मै सठ सब अनरथ कर हेतू। बैठ बात सब सुनहुँ सचेतू॥
बिनु रघुबीर बिलोकि अवासू। रहे प्रान सहि जग उपहासू॥३॥

अर्थ : मैं शठ हूँ। सब अनर्थ की जड़ हूँ। बैठा हुआ सब बातें सुन रहा हूँ। बिना रघुबीर के घर को देखकर भी ये प्राण जगत् की हँसी सहकर भी बने है।

व्याख्या : मैं शठ हूँ। मीठी बातें शठ कहे करिके महा बिगार। महाराज साधु थे। मैं अनर्थ का मूल होकर नही मरा। जीते जागते होश हवाह मे बैठा सब बातें सुनता हूँ। एक भरत कर समत कहही। एक उदास भाव सुनि रहही : आदि। *यदि कहिये कि तुम तो थे ही नही जब यह काण्ड हुआ।* तो इसका उत्तर यह है कि जब घर लौटे और बिना सीता रामजी का घर पाया उस समय तो मुझ मर जाना था। पर नही मरा। मुझे कलङ्क से कौन बचा सकता है ? ससार मुज पर हँसता है कि इसी के कारण रामजी को बन हुआ और मैं जीता हूँ। अतः मेरे निर्लज्ज होने मे त्रुटि क्या है ?

राम पुनीत विषय रस रूखे। लोलुप भूमि भोग के भूखे॥
कहँ लगि कहौ हृदय कठिनाई। निदरि कुलिसु जेहि लही बड़ाई॥४॥

अर्थ : पवित्र राम विषय रस से रूखे हैं। लालची लोग पृथ्वी के भोग के भूखे होते हैं। मैं अपने हृदय की कठिनता को कहाँ तक कहूँ। इसने वज्र का भी निरादर करके बड़ाई पाया है।

व्याख्या : राज्य करने में अपनी अयोग्यता कहकर रामजी की योग्यता कहते हैं। चाहिअ धर्मसील नरनाहू। तो रामजी पुनीत हैं। धर्मशील हैं। उन्हे राज्य की भूख नहीं। वे विषय रस के रसिक नही। यथा : नवगयंद रघुबीर मनु राज अलान समान। छूट जान बनगवन सुनि उर अनन्द अधिकान। उन्हे राज्य छोड़ने और वन जाने की आज्ञा हुई। तुरन्त छोड़कर चले गये। परम त्याग का उदाहरण प्रजा के सामने उपस्थित कर दिया। आज कोई लालची भोग का भूखा होता तो क्या इस भाँति छोड़ देता। रामजी का वचन है :

वाताभ्रविभ्रममिदं वसुधाधिपत्यमापातमात्रमधुरा विषयोपभोगाः।
प्राणास्तृणाग्रजलबिन्दुसमा नराणां धर्मः सदा सुहृदहो न विरोधनीयः॥

हवा के बवण्डर की भाँति यह पृथ्वी का स्वामित्व है और विषयोपभोग भी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तत्काल के लिए ही मधुर है और तिनके के सिरे पर लटकते हुए जलबिन्दु की भाँति प्राणों की स्थिति है। अतः हे मित्रो ! कभी भी धर्म का विरोध नही करना चाहिए।

ऐसे पुनीत रामजी के वनवास पर भी हृदय नही फटा तो यही कहना है कि इसने अपनी कठिनता से वज्र को भी मात कर दिया। अब मेरे हृदय की कठिनता की प्रशंसा है। कोमल हृदय महाराज का था जिन्होने : बिछुरत गवन अमरपुर कीन्हा।

दो. कारन ते कारजु कठिन, होइ दोष नहि मोर।
कुलिस अस्थि तें उपल तें, लोह कराल कठोर ॥१७९॥

अर्थ : कारण से कार्य कठिन होता है। इसमें मेरा दोष नही है। हड्डी से वज्र और पत्थर से लोहा कराल कठोर होता है।

व्याख्या : मेरा हृदय ऐसा कठोर हो गया कि रामजी से सूना घर देखकर नही फटा और संसार मे उपहासास्पद होने पर भी नही सरका। इसमें मेरा दोष नही है। क्योकि कार्य से कारण कठोर अधिक होता ही है। वज्र दधीच ऋषि की अस्थि से बना है। पर वह अस्थि से कही अधिक कराल है। पत्थर मे ही लोहा पाया जाता है। सभी धातु पहाड़ से ही निकलते हैं। परन्तु पत्थर से भी अधिक कठोर लोहा होता है। भाव यह कि कैकेयी से मेरा जन्म हुआ है। अतः उनसे भी अधिक कठोर होने में मेरा दोष नही है।

कैकेयी ने मेरे लिए सब कुछ किया। पर वह इस समय अचेत है। पगली सी हो रही है और मैं सचेत होकर सब बात सुन रहा हूँ। अतः मैं अधिक कठोर हूँ।

कैकई भव तनु अनुरागे। पावन प्रान अघाइ अभागे॥
जौ प्रिय बिरह प्रान प्रिय लागे। देखब सुनब बहुत अब आगे ॥१॥

अर्थ : कैकेयी से उत्पन्न देह से प्रेम करनेवाले ये पावन प्राण बडे अभागे है। यदि प्यारे के विरह मे प्राण प्रिय लगा तो आगे बहुत कुछ देखना और सुनना है।

व्याख्या : प्राणो मे पाप का वेध नही होता। वह सदा पावन है। परन्तु बड़ा ही अभागा है। क्योंकि मेरे इष्ट रामजी से विरोध करनेवाली कैकेयी से उत्पन्न शरीर पर इसने प्रेम कर रक्खा है। उसे छोड़ना नही चाहता। इष्ट विरोधी से उत्पन्न तन पर सती ने अनुराग नही किया। यथा : पिता मंद मति निंदत ओही। दक्ष सुक्र संभव यह देही। तजिहौं तुरत देह तेहि हेतू। उर धरि चंद मौलि वृषकेतू। नही छोड़ने का फल यह हुआ कि भवभञ्जन पद विमुख होना पड़ा। यही अभाग है। यथा : भवभंजन पद विमुख अभागी। प्राण ही जीवात्मा बुद्धि और मन का सम्बन्ध शरीर से बनाये रखता है। यह यदि सम्बन्ध शरीर से तोड़ दे तो टूट जाता है। इसे यदि यह तन प्रिय न होता तो यह छोड़ देता। यह बडा भारी अभागा है कि ऐसे शरीर से सम्बन्ध बनाये हुए है।

प्राण सबको प्यारा होता है। परन्तु ऐसे प्रेमी होते हैं जिन पर प्राण से

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अधिक प्रेम होता है। उनके विरह मे प्राण प्रिय नही मालूम होता है। उसे छोड दिया जाता है। क्योकि वह महा दु खदायी हो जाता है। उसके रहने से प्रिय के प्रतिकूल वहुत सी बातें देखने और सुनने मे आती हैं। परन्तु मुझे तो प्राण प्रिय मालूम होते हैं। चाहता तो था कि यदि प्राण शरीर से सम्बन्ध नही छोडते तो मैं ही प्राणो से सम्वन्ध छोड देता। जिस भाँति चक्रवर्तीजी ने छोड दिया और वेदना से मुक्त हो गये। पर मै न छोड सका। इससे अनुमान होता है कि अभी न जाने क्या क्या मुझे देखना और सुनना बाकी है। भोग शेष है। इसलिए जीवात्मा प्राण और शरीर एक दूसरे से वँधे हुए हैं। भाव यह कि जिस परिस्थिति मे भरतजी हैं उसम उन्हे राज्य के लिए कथन मात्र से दु सह वेदना हो रही है और जितना ही उनको स्वीकार के लिए वल दिया जाता है उतनी ही वेदना वढ रही है।

लखन राम सिय कहुँ बनु दीन्हा। पठइ अमरपुर पति हित कीन्हा ॥
लीन्ह बिधवपन अपजसु आपू। दीन्हेउ प्रजहि सोकु सतापू ॥२॥

अर्थ लक्ष्मण राम और सीता को वन दिया। स्वर्ग भेजकर पति का हित किया और स्वय विधवापन और अपयश लिया। प्रजा को शोक और सन्ताप दिया।

व्याख्या भरतजी कहते हैं कि जिस कैकेयी से मेरा शरीर उत्पन्न हुआ है और उसकी करणी कैसी है कि राम जानकी को वन देकर अपयश लिया। पति को स्वर्ग भेजकर विधवापन लिया। मातृधर्म पत्नीधर्म तथा आत्मधर्म का खूब निर्वाह करके रानीपन भी खूब निबाहा[1] प्रजाओ को शोक सन्ताप दिया। यथा मुख सुखाहि लोचन स्रवहि सोक न हृदय समाइ। मनहु करुन रस कटकई उतरी अवध बजाइ। बिलपहि बिकल दास अरु दासी। घर घर रुदन करहि पुरवासी। यहाँ व्यङ्ग से भरतजी माता की भर्त्सना कर रहे है।

मोहि दीन्ह सुखु सुजसु सुराजू। कीन्ह कैकई सब कर काजू ॥
एहि ते मोर काह अब नीका। तेहि पर देन कहहु तुम टीका ॥३॥

अर्थ मुझे सुख सुयश और सुन्दर राज्य दिया। कैकेयी ने सबका काम बना दिया। इससे अच्छा मेरा क्या होगा। तिस पर तुम लोग मुझे टीका देने को कह रहे हो।

व्याख्या मै खास बेटा था। इसलिए मुझे तीन बातें दी १ सुख २ सुयश और ३ सुराज और लोगो को दो दो ही दी थी।

सुख। यथा भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत रामबन गौन।
सुयश। यथा हेतु अपनपौ जानि जिय थकित परे धरि मौन।
सुराज। यथा सोक समाज राज केहि लेखे।

---

१ यहाँ लेश अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इस भाँति कैकेयी ने पुत्रो का पति का अपना प्रजा का और सबका काम पूरा कर दिया। अर्थात् सर्वनाश कर दिया।

खास मेरी माँ के हाथ से यह सब अनर्थ हुआ मेरे सुख, सुयश और सुराज के लिए। तिस पर तुम लोग यह चाहते हो कि मै टीका भी कढवा लूँ। कही मुख दिखाने लायक भी मुझे रक्खोगे? यह तो मेरे सिर कलङ्क का टीका लगा देना है। मेरी माँ ने मेरे लिए इतना किया इतना ही अपयश कौन कम है। टीका देकर उसी बात की पुष्टि किया चाहते हो।

कैकें जठर जनमि जग माँही। यह मोहि कहँ कछु अनुचित नाँही ॥
मोरि बात सब बिधिहि बनाई। प्रजा पाँच कत करहु सहाई ॥४॥

अर्थ : जगत् में कैकेयी के पेट से जन्म लेने पर यह बात मेरे लिए अनुचित नही है। मेरी बातें तो सब ब्रह्मा ने ही बना दी है। अब प्रजा और पञ्च इसमे क्यो सहायता दे रहे हो।

व्याख्या : ऐसी स्थिति मे टीका लेना ससार मे किसी के लिए उचित न होता। पर मेरे लिए अनुचित नही है। क्योकि मैं कैकेयी के पेट से पैदा हूँ। उसने इतना इतना काम कर डाला। मैं इतना भी न करूँ कि टीका ले लूँ। मुझे तो अनुचित नही है। पर तुम्हे भी उचित नही है कि मेरे कलङ्क को और भी दृढ बनाओ।

मेरी बात तो सब ब्रह्मदेव ने ही बिगाड दी। यथा : हस बस दसरथ जनक राम लखन से भाइ। जननी तूँ जननी भई बिधिसन कछु न बसाइ। अब बिगडे हुए को और क्या बिगाडते हो। तुम प्रजा हो। तुम्हे ऐसा न करना चाहिए। पञ्च परमेश्वर है। इस नाते भी ऐसा न करना चाहिए।

दो० ग्रह ग्रहीत पुनि बात बस, तेहि पुनि बीछी मार।
ताहि पिआइअ बारुनी, कहहु काह उपचार ॥१८०॥

अर्थ : जो ग्रह से ग्रसित हो, बाई चढी हो, बीछी भी मारे हो उसे मद्य पिला रहे हो कहो तो यह कैसी चिकित्सा है।

व्याख्या ऊपर कह आये हैं १ लखन राम सिय कहुँ बन दीन्हा २ पठइ अमर पुर पति हित कीन्हा ३ दीन्हेउ प्रजहि सोक सन्तापू ४ मोहि दीन्ह सुख सुजसु सुराजू। कीन्ह कैकयी सब कर काजू। इसी प्रसङ्ग के उपसहार मे यह दोहा कहा गया है। इसमे भी चार बातें हैं १ ग्रह ग्रहीत २ बातबस ३ तेहि पुनि बीछी मार ४ ताहि पिआइय बारुनी कहहु काह उपचार। इससे स्पष्ट है कि पहिले के कही हुई चार बातो के दोपो को दिखलाते हुए पिछली चार बातें उदाहरण के रूप मे कही गयी है। लखन राम सिय का बन जाना ही ग्रह ग्रहीत होना है। यथा : हरखि हृदय कोसलपुर आई। जनु ग्रहदसा दुसह दुखदाई। पति को अमरपुर भेजना और विधवापन लेना एक ही बात है। इसका प्रभाव भरतजी पर सन्निपात

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सा पडा। भरतजी ऐसे घोर ने माता को दुर्वाद कहा। सन्निपात जल्पसि दुर्वादा ३ प्रजा को बीछी मारे जाने सा कष्ट है। अत भरतजी को वैसी ही पीडा हो रही है। ४ राज मिलने को वारुणी के समान समझ रहे हैं। यथा सबते कठिन राज मद भाई। सबका निर्गलितार्थ यह है कि भरत जी कह रहे हैं कि मैं तो इतना दुखी हूँ और आप लोग उस दुख को मिटाने के लिए मुझे राजरूपी वारुणी पिला रहे हैं। जिससे उसके नशे मे सब दुख भूल जाऊँ। नही समझ रहे हैं कि ऐसे रोगी को वारुणी घातक है। इसके लोक परलोक दोनो को नष्ट करेगी। ऐसी दयनीय दशा मे जो पडा हो उसके लिए सर्व शोकहरा सुरा देकर रोग शान्त करने का प्रयत्न करना कौन सी चिकित्सा है। ऐसे पुरुष के लिए तो सुरा विष है। भाव यह कि राज्य देना सुरा है। यथा सवसे कठिन राजमद भाई। जो अँचवत मातहिं नृप तेई। मेरे रोग की चिकित्सा करो। राज दे दो। सब भूल जांयगे। इस विचार से अनर्थ परम्परा बढेगी, घटेगी नही।

कैकइ सुअन जोगु जग जोई। चतुर विरंचि दीन्ह मोहि सोई॥
दसरथ तनय राम लघु भाई। दीन्हि मोहि बिधि वादि वडाई॥१॥

अर्थ कैकेयी के पुत्र के लिए जगत् मे जो योग्य था चतुर विधाता ने मुझे वही दिया। परन्तु दशरथ का बेटा होना और रामजी का छोटा भाई होना यह वडाई विधि ने मुझे व्यर्थ ही दी।

व्याख्या योग्य माता को योग्य बेटा दिया। विरञ्चि बडे चतुर हैं। माँ बेटे का अच्छा जोड जुटा दिया। अथवा कैकेयी के बेटे का क्या क्या मिलना चाहिए सो सब ब्रह्माजी ने मुझे दिया। अर्थात् दुख दुर्यश निर्लज्जता कठोरता करालता आदि।

पर दो वडाई मुझे व्यर्थ दिया। अर्थात् महाराज दशरथ का बेटा और रामजी का छोटा भाई बनाया। जब इस वडाई को ओर देखता हूँ तब पिता का प्राण देना और वडे भाई का वन जाना देखते हुए ऐसे पिता का पुत्र और ऐसे भाई का भाई होकर राज्य कैसे ग्रहण करूँ। ब्रह्मदेव यदि ये व्यर्थ की दो वडाइयाँ न दिये होते तो मैं राज्य स्वीकार कर लिये होता। अत

तुम्ह सब कहहु कढावन टीका। राय रजायसु सब कहँ नीका॥
उतरु देउ केहि बिधि केहि केही। कहहु सुखेन जथा रुचि जेही॥२॥

अर्थ तुम सब लोग मुझे राजतिलक कढाने को कहते हो। क्योंकि राजा की आज्ञा है और सबको अच्छा लगता है। मैं किसे किसे और किस विधि से उत्तर दूँ। जिसकी जैसे रुचि हो सुखपूर्वक कहते जाओ।

व्याख्या मेरे टीका के लिए राजा की आज्ञा भी है और सब लोग अच्छा समझते हो। मुझे तो न यह राजाज्ञा मालूम होती है और न सबके लिए उपकारक मालूम होती है। किसे किसे जवाब दें और किस विधि से दें। कहनेवालो म

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



गुरुजी हैं और पिताजी के मन्त्री भी सम्मिलित हैं। कोई उत्तर देने योग्य नही और न मुझे कोई विधि मालूम पड़ती है जिस विधि से उत्तर दिया जा सके। सभी लोग समझते हैं कि इस कुचक्र मे मेरी सम्मति है। इसकी सफाई मै दे नही सकता। अत. जिसे जैसी रुचि हो वह वैसा कहे। क्योकि टीका के लिए कहना और इस कुचक्र मे मेरी सम्मति मान लेना एक बात है। बात भी ऐसी ही है। राज्य उसी को दिया जाता है जिसने भलाई की हो। सो :

मोहि कुमातु समेत बिहाई। कहहु कहिहि के कीन्ह भलाई ॥
मो बिनु को सचराचर माही। जेहि सिय रामु प्रान प्रिय नाही ॥३॥

अर्थ : कुमाता के समेत मुझे छोडकर और कौन कहेगा कि मैंने भलाई की है। ससार मे मेरे बिना कौन है जिसे रामजानकी प्राणप्रिय न हो।

व्याख्या : टीका मुझे होना चाहिये। क्योकि राज्य के भलाई करनेवाले दो ही ठहरे : मेरी माँ या मैं। रामजी की माँ या रामजी ने तो राज की कोई भलाई की ही नही है। उन्हे टीका देने को आप लोग क्यो कहेगे ! इतना दबाव मुझ पर डाला जाता है अपयश के लिए। क्योकि यह मानी हुई बात है कि जगत् के प्राणसम राम मुझे प्रिय नही हैं। यदि सब लोग इतना दबाव रामजी पर दें गुरुजी भी, मन्त्री भी, माताएँ भी और प्रजा भी तो रामजी को राज्य स्वीकार करना पड़े।

जिसे राम प्राणप्रिय न हो वही टीका स्वीकार कर सकता है। नही तो प्राण-प्रिय से छीने हुए टीके को कौन स्वीकार कर सकता है ? इसीलिए आप लोग मुझे स्वीकार करने को कहते हैं।

परम हानि सबु कहँ बड़ लाहू। अदिन मोर नहि दूषन काहू ॥
संसय सील प्रेम बस अहहू। सबुइ उचित सबु जो कछु कहहू ॥४॥

अर्थ : जो परम हानि है उसी मे सबको बड़ा लाभ दिखाई पड़ता है। यह मेरा बुरा दिन है। किसी का दोष नही है। तुम सब लोग सन्देहशील और प्रेम के वश हो। इसलिए सब लोग जो कुछ कहो वह उचित ही है।

व्याख्या : जिसमे मेरी यशोहानि, धर्महानि, प्रेमहानि अर्थात् परम हानि है उसी मे सबको लाभ दिखाई पडना विपरीत बुद्धि है। मेरे बुरे दिन के कारण सबकी बुद्धि विपरीत हो गयी। मैं किसी को दोष नही देता।

भीतर से सशय है कि भरत की रुचि देखकर ही माँ ने राज माँगा होगा। आँखो मे शील है। इससे कैसे कहे कि तेरा राज मुझे स्वीकार नही। रामजी को बुलाओ। मेरे ऊपर प्रेम भी है। अजो इसी को राजा होने दो। ऐसी परिस्थिति मे जो कुछ कहते हो उचित ही है। यथा : सो सनेह जडता बस कहहू।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. राम मातु सुठि सरल चित, मो पर प्रेम बिसेखि।
कहइ सुभाय सनेह बस, मोरि दीनता देखि ॥१८१॥

*अर्थ : रामजी की माता अत्यन्त सीधे स्वभाववाली है और मुझपर उनका* प्रेम भी अधिक है। वे स्वभाव और स्नेह के वश होकर मेरी दीनता देखकर कह रही हैं।

व्याख्या : रामजी की माता का कहना कोई कहना नही है। वे बडी सरल हैं। जो सब लोगों ने कह दिया उन्होने तुरन्त मान लिया और मुझ पर प्रेम भी अधिक करती हैं। मुझे आर्त्त देखकर वे भी वही बात कहती हैं। वे इस पेच के बात को नहीं पकड़ सकती कि मेरे राज्य स्वीकार करने से मेरी और मेरी माँ की एक सम्मत्ति प्रमाणित हुई जाती है। कौसल्याजी के प्रति संशय का आक्षेप नही है। अतः उनके विषय में अलग कह रहे हैं। उनके सामने शपथ भी ले चुके है। वे कह चुकी हैं कि : मत तुम्हार यह जो जग कहही। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहहीं।

गुर विवेक सागर जगु जाना। जिन्हहि विस्व कर बदर समाना ॥
मो कहँ तिलक साज सज सोऊ। भय विधि बिमुख बिमुख सबु कोऊ ॥१॥

*अर्थ : संसार जानता है कि गुरुजी विवेक के समुद्र हैं। जिन्हे सारा संसार* हाथ मे आये हुए बेर के समान है। वे भी मेरे लिए तिलक का साज सजा रहे हैं। ब्रह्मा के विमुख होने पर सभी विमुख हो जाते हैं।

व्याख्या : दूसरा व्यक्ति जिस पर सशय का आरोप नही हो सकता गुरुजी हैं और वे विवेक के समुद्र हैं। जिसने योगवासिष्ठ देखा है उसे मानना पडेगा कि वसिष्ठजी विवेक के समुद्र हैं। इतना ही नही सर्वज्ञ हैं। ससार मे कोई वात इनसे छिपी नही है। इनके हाथ मे ससार बदरी फल की भाँति है। सो और लोगो ने तो केवल मुख से कहा। पर गुरुजी तो साइत देखकर आये है तिलक देने के लिए। ये तो जानते हैं कि मेरा मत नही था। न मैं चाहता हूँ। न उचित है। फिर ये राज्य देने की तैयारी क्यो करते हैं ? अतः कहना पड़ेगा कि ब्रह्मा के विमुख होने से सब विमुख हो गये। ब्रह्मा हिरण्यगर्भ हैं। प्राण और मन की समष्टि हैं। जब समष्टि ही विमुख हो गया तो व्यष्टि प्रतीपाचरण कैसे कर सकता है! जब सभी विमुख हो गये तो यह भी हो गये। अथवा गुरुजी ब्रह्मदेव के पुत्र हैं। पिता के नाराज हो जाने से ये भी अप्रसन्न हो गये हैं। पिता के प्रतिकूलाचरण धर्मतः भी नही कर सकते।

परिहरि रामु सीय जग माँही। कोउ न कहिहि मोर मत नाँही ॥
सो मै सुनब सहब सुख मानी। अंतहु कीच तहाँ जहँ पानी ॥२॥

अर्थ : रामजी और सीताजी को छोडकर जगत् मे और कोई नही है। जो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यह कहे कि इसमे मेरी सम्मति नही है। सो मैं सब सुनूँगा और सुख मानकर सहूँगा। क्योकि जहाँ पानी होता है वहाँ कीचड होता ही है।

व्याख्या जो लोग मुझे राज्य लेने को कहते हैं वे दूसरे शब्दो मे यह कहते हैं कि भरत का मत रहा है। अत अब सब किसी ने मुझे माता के राय म कह दिया। परन्तु एक ठिकाना मुझे है जो कहेगा कि इसमे भरत का मत नही है और वह राम सीता हैं। भरतजी का जैसा विश्वास रामजी पर है वैसा ही सीताजी पर है। जानते है कि दोनो मूर्त्तियो मे वास्तविक अभेद है। कोउ नहि कहहि का भाव यह कि जानता भी है कि मेरा मत नही है वह भी न कहेगा। नीति ही ऐसी है। असम्भाव्य न वक्तव्य साक्षात् दृष्टमपि क्वचित्। शिला तरति पानीयं गीत गायति वानर । इसी से कोई भी नही कहता।

जो बात लोग कह रहे हैं वह न सुनने लायक है न सहने लायक है। पर मै सुनूँगा और सुख मानकर सहूँगा। क्योकि . गगन चढे रज पवन प्रसगा। कीचहिं मिलै नीच जल सगा। सो मेरा जल रूप कैकेयी का सग है। अत मेरा कीच होना प्राप्त है।

डरु न मोहि जग कहहि कि पोचू। परलोकहु कर नाहिन सोचू ॥
एकइ उर बस दुसह दवारी। मोहि लगि भे सिय राम दुखारी ॥३॥

अर्थ मुझे ससार बुरा कहे इसका मुझे डर नही है। परलोक का भी मुझे सोच नही है। मेरे हृदय मे एक ही दु सह दावानल दहक रहा है कि मेरे लिए श्रीराम जानकी दु खी हुए।

व्याख्या · दुर्यश का भय सब ही प्रतिष्ठित पुरुषो को रहता है। यथा : सभावित कहँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू। परन्तु मुझे उसका भी डर नही है। जिसका अपयश होता है उसको स्वर्ग मे गति नही होती। उसका परलोक विगड जाता है। इस पर कहते हैं कि मुझे परलोक का भी सोच नही है। भाव यह कि इनको भी लक्ष्मणजी की भाँति कीर्ति भूति सुगति प्रिय नही है। यथा धरम नीति उपदेसिय ताही। कीरति भूति सुगति प्रिय जाही।

भरत जी कहते हैं कि मुझे एक ही सोच है जो मेरे हृदय में दावानल की भाँति दहक रहा है। यथा · जनु पुर दहँ दिसि लागि दवारी। इस समय अनेक प्रकार की दावाग्नि लगी हुई है। मेरे लिए उनमे से एक असह्य है और उसी ने हृदय मे डेरा डाल रक्खा है और वह यह है कि मेरे लिए राम जानकी दु खी हुए। अपने प्रेमी को कष्ट हो और अपने द्वारा हो इससे बढकर और कष्ट क्या होगा ?

जीवन लाहु लखन भल पावा। सबु तजि राम चरन मनु लावा ॥
मोर जनम रघुवर वन लागी। झूठ काह पछिताउँ अभागी ॥४॥

अर्थ लक्ष्मण जी ने जीने का अच्छा फल पाया। सब कुछ छोडकर रामजी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मैंने तो एक यही बात निश्चय की है। भाव यह कि मैं भी इसी चिन्त हूँ कि क्या करना चाहिए और आप लोग भी इसी चिन्ता मे हैं। आप लो मुझे राज्य देने का निश्चय किया है उसे कह सुनाया। अत मैं भी कहे देता मेरा निश्चय तो सवेरे सरकार के पास जाने का है।

जद्यपि मै अनभल अपराधी। भै मोहि कारन सकल उपाधी ॥
तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छमि सब करिहहिं कृपा बिसेखी ॥

अर्थ : यद्यपि मैं बुरा हूँ। अपराधी हूँ। मेरे ही कारण से सब उपद्रव हुअ तथापि मुझे शरण मे आया हुआ देखकर सब क्षमा करके विशेष कृपा करेंगे।

व्याख्या : यदि कहिये कि तुम बुरे हो। क्योंकि अपराधी हो। अपराध कि सम्पूर्ण उपाधि की जड तुम ही हो। मै इस बात से इनकार नही करत ऐसा ही अपराधी हूँ कि मुझे क्षमादान दिया नही जा सकता है। अपराध कैकेयी है। फिर भी वह अपराध का कारण नही है उसने अपराध मेरे लिये कि तो सबकी जड तो मैं ही ठहरा।

यदि कहिये कि शरण जाने पर तो वे क्षमा अवश्य करेंगे। अपने प्रण निर्वाह करेंगे। पर शरण जाना ही कौन आसान काम है। शरण जाने मे मद कपट छल सब छोड़कर शरण जाने का विधान है। तो क्या तुमने मद मोह छोड दिया जो शरण जाते हो। इस पर कहते है कि भले ही मुझमे शरणागत गुण नही हैं फिर भी जाने से शरण सम्मुख जो होऊँगा। शरण को मेरी तो रहेगी। उनके क्षमा दान के लिए इतना ही यथेष्ट है। इतने से ही न केवल अपराध क्षमा होगा बल्कि विशेष कृपा भी करेंगे।

सीलु सकुचि सुठि सरल सुभाऊ। कृपा सनेह सदन रघुराऊ।
अरिहुक अनभल कीन्ह न रामा। मै सिसु सेवक जद्यपि बामा।

अर्थ : रघुराज सुशील अत्यन्त सरल तथा सङ्कोची स्वभाववाले हैं। वे और प्रेम के घर हैं। राम ने कभी शत्रु का भी बुरा नही किया और प्रतिकूल होने पर भी बालक और सेवक हूँ।

व्याख्या : सरकार शीलनिधान हैं। प्रभु तरुतर कपि डार पर ते किय समान। तुलसी कहूँ न राम ते साहिब सीलनिधान। शीलनिधान बुरे को बुरा क तिरस्कार नही कर सकता। इन सा सङ्कोची तो तीन काल मे कही कोई हु नही। यथा : प्रेम कनौड़ी राम सो प्रभु त्रिभुवन तिहुँकाल न भाई। तरोरिनी हो कपि सों ऐसी मानिहि करै सेवकाई। अपराधी पर भी क्रोध नही करते। अ ही सरल हैं। यथा : रामहिं मातु बचन सब भाए। जिमि सुरसरिगत सलिल सो माता के वन मांगने को हो उन्होंने प्रतीपाचरण नही माना। अत तीनो स के अङ्ग मेरे अनुकूल पडते हैं। चौथी बात यह कि कृपा और स्नेह के तो घर ह



(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अतः मेरे अपराध को क्षमा करके विशेष कृपा करना उनके लिए कोई बड़ी बात नही है।

उनका नाम राम है। उन्होने शत्रु का भी कभी बुरा नही किया। 'बैरिउ राम बडाई करही। वैर वैर को सदा प्रेम से जीतना चाहते हैं। शत्रु का आदर शत्रु से भी विनय शत्रु पर प्रेम करने में वे ही समर्थ हैं। मैं प्रतिकूल तो हूँ पर शिशु, सेवक हूँ। अतः मेरे अपराध को क्षमा करते उन्हे कितनी देर लगेगी।

तुम्ह पै पाँच मोर भल जानी। आयसु आसिष देहु सुबानी॥
जेहि सुनि विनय मोहि जनु जानी। आवहि बहुरि रामु रजधानी॥४॥

अर्थ : तुम पञ्चलोग भी इसमें मेरा कल्याण मानकर आज्ञा दो और सुन्दर वाणी से आशीर्वाद दो। जिससे मेरी प्रार्थना सुनकर मुझे अपना सेवक जानकर रामजी राजधानी को लौट आवें।

व्याख्या : तुम पञ्च हो। परमेश्वर हो। यदि अपना कल्याण न समझो तो मेरा कल्याण समझकर मुझे आज्ञा दो। आशीर्वाद दो। अर्थात् जाने के लिए आज्ञा दो और सफल मनोरथ होने के लिए आशीर्वाद दो। अयोध्या का नियम है कि पञ्च की सम्मति से सब काम होता है। यथा : जो पाँचइ मत लागै नीका। करहु हरषि हिय रामहि टीका। आयसु आसिष देहु सुबानी। यहाँ सुबानी के अर्थ को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि आप लोग ऐसी वाणी कहिये कि तुम्हारी विनय सुनकर तुम्हे सेवक जानकर रामजी लौट आवें। मेरे कारण सकल उपाधि हुई। वही मैं लौटने के लिए विनय करने जाता हूँ। जब वनवास का कारण ही हट गया तब वनवास का प्रयोजन ही नही रह गया।

दो. जद्यपि जनम कुमातु तें, मै सठु सदा सदोस।
आपन जानि न त्यागिहहिं, मोहि रघुबीर भरोस॥१८३॥

अर्थ : यद्यपि मेरा जन्म कुमाता से हुआ है और मै शठ सदा दोष युक्त हूँ। पर अपना समझकर नही त्यागेंगे। मुझे तो रघुवीर का ऐसा ही भरोसा है।

व्याख्या : कुमाता से जन्म। यथा : साँइ द्रोह मोहि कीन्ह कुमाता। मैं शठ काम विगाडकर मीठी बातें करता हूँ। सदा सदोष हूँ। मेरे दोष की सफाई नही दी जा सकती। मेरी ओर से तो सब बिगड़ा बिगड़ाया हुआ ही है। पर : मेरो भलो कियो राम आपनी भलाई। हौ तो साइँ द्रोही पै सेवक हित साईं। अतः मुझे भरोसा है। अपना जानकर त्याग नही करेंगे। यथा : ससि कलंक हरि भृगुलता वड़वानलहि समुद्र। ग्रहण किये त्यागत नही महाघोर विषरुद्र।

भरत बचन सब कहुँ प्रिय लागे। राम सनेह सुधा जनु पागे॥
लोग बियोग बिषय बिस दागे। मंत्र सबीज सुनत जनु जागे[1]॥१॥

---

१. ये दोनो पद राजापुर की प्रति मे नही है और न उनकी आवश्यकता ही मालूम पडती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : भरत के वचन सबको अच्छे लगे : मानो वे रामजी के स्नेहरूपी अमृत से पगे हुए थे। लोग वियोगरूपी विषम विष से जल रहे थे। वे मानो बीज सहित मन्त्र सुनते ही जाग उठे हों।

व्याख्या : गुरुजी बोले, माता बोली, मन्त्री लोग बोले, पर प्रजा की ओर से उपेक्षा बुद्धि ही थी। पर भरत के वचन सबको प्रिय लगे। यहाँ राज्य के लिए प्रस्ताव हो रहा था। पर प्रजा मानो सो रही थी। कोउ नृप होउ हमहि का हानी वाली बात चरितार्थ हो रही थी। प्रजा रामजी के दर्शन के लिए आर्त थी। यथा : राम दरस हित नेम व्रत लगें करन नर नारि। मनहुँ कोक कोकी कमल दीन विहीन तमारि। सासारिक सुख दु ख की ओर से उपेक्षा थी। अत राज्य कौन करेगा ? इस प्रश्न पर ध्यान नही देते थे। राज्य के देवता तो प्रजा वर्ग हैं। उनके पुजारी राजा हैं। रञ्जनात् राजा। प्रजा के हित के लिए ही राजा है। प्रजा अपना हित रामदर्शन मे मानती थी। वह राम विरह की अग्नि से जल रही थी। गुरुजी माता तथा सचिव सभी का मन्त्र तो अच्छा था। परन्तु उन मन्त्रो मे बीज नही था। इससे देवता जाग्रत होकर अभिमुख नही होते थे। भरतजी के मन्त्र मे बीज था : प्रातकाल चलिहौ प्रभु पाही। जेहि सुनि विनय मोहि जन जानी। आवहिं बहुरि राम रजधानी। इसलिए कहते है कि लोग सबीज मन्त्र सुनते ही मानो जाग पडे। अमृत मे बोरी हुई बात थी। इसलिए सबको प्रिय भी लगी।

मातु सचिव गुर पुर नर नारी। सकल सनेह विकल भये भारी ॥
भरतहि कहहि सराहि सराही। राम प्रेम मूरति तनु आही ॥२॥

अर्थ : माताएँ मन्त्री गुरु और नगर के स्त्री पुरुष स्नेह से विकल हो गये। सब लोग भरतजी की प्रशंसा करके कहने लगे कि यह शरीर तो राम के प्रेम की मूर्ति ही है।

व्याख्या : माता, मन्त्री, गुरुजी तथा प्रजा सब अपना अपना प्रेम दबाये बैठे थे। महाराज के वरदान के सच्चा करने के लिए तथा भरतजी के सङ्कोच से राज्य के प्रस्ताव मे सहमत थे। उद्बोधक कारण के पाते ही दबा हुआ प्रेम उमड उठा। जिसके लिए सब कुछ हुआ वही राज्य अस्वीकार करके रामजी के पास चलने को कहता है। इससे बडा उद्बोधक कारण और क्या हो सकता है। सब उमडे हुए प्रेम के वेग के सँभालने मे असमर्थ हैं। इसलिए विकल भये भारी कहते हैं।

भक्तो का सिद्धान्त है : सब मानिअहि राम के नातें। भरत पर भी अधिक प्रेम राम के ही नाते था। यथा : भरत आगमनु सकल मनावहि। आवहुँ बेगि नयन फल पावहि। इतनी भक्ति से भरतजी ने पिता की क्रिया की : पितु हित भरत कीन्हि जस करनी। सो मुख लाख जाइ नहि बरनी। पर भरतजी की प्रशसा प्रजा ने नहीं की। अब भरतजी की बार बार सराहना होती है कि भरतजी तो मानो रामजी के प्रेम की मूर्ति है। मानो राम प्रेम ने नराकार धारण कर रक्खा है। ये भी रामजी की भाँति विषयरस रूखे हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तात भरत अस काहे न कहहू। प्रान समान राम प्रिय अहहू ॥
जो पाँवरु अपनी जड़ताईं। तुम्हहि सुगाइ मातु कुटिलाईं ॥३॥

अर्थ : तात भरत ! तुम ऐसा क्यों न कहोगे। तुम रामजी को प्राण के समान प्यारे हो। जो नीच अपनी जडता से माता की कुटिलता का तुम पर आरोप करता है।

व्याख्या : प्रजा कहती है कि भैया भरत ! ऐसी बात तुम्ही बोल सकते हो। क्योंकि रामजी को प्राणसे प्यारे हो। यथा : रामहि बधु सोचु दिन राती। अडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँति। भरत प्रान प्रिय पावहि राजू। भरत सरिस प्रिय को जग माँही। जिसको जितना भरोसा रामजी पर होता है वह रामजी को उतना ही प्रिय होता है। भरतजी को रामजी का वडा भारी भरोसा है। अत रामजी को प्राण समान प्रिय है। कहते भी हैं . जद्यपि जनम कुमातु ते मैं सठ सदा सदोस। आपन जानि न त्यागिहैं मोह रघुवीर भरोस।

भरतजी ने कहा है : परिहरि राम सीय जगमाही। कोउ नहिं कहिह मोर मत नाही। ससय सील प्रेम वस अहहू। इस बात का उत्तर सब लोग दे रहे हैं। शपथ लेते हुए कहते है कि हम लोगो को तुम पर सन्देह नही है। जिसे तुम पर सन्देह हो वह नीच है। उसे जडता हो गयी है। अपनी जडता से माता की कुटिलता का आरोप तुम पर करता होगा।

सो सठु कोटिक पुरुप समेता। बसहि कलप सत नरक निकेता ॥
अहि अघ अवगुन नहि मनि गहई। हरइ गरल दुख दारिद दहई ॥४॥

अर्थ : वह शठ करोडो पुरुपो के साथ सौ कल्प तक नरक मे रहेगा। साँप के अवगुण और पाप का मणि नही ग्रहण करती। वह साँप के विप का हरण करती है और दु ख और दरिद्र को जला देती है।

व्याख्या : ऐसा अनर्थकारी आरोप करनेवाला नरक मे निवास करेगा। यह अपराध इतना भारी है कि इसके करने से उसके कोटि कोटि पूर्वजो को भी नरक होगा और सौ कल्प के लिए होगा। इस व्याज से प्रजा वर्ग स्वय शपथ लेती है कि हम लोगो को तुम पर सन्देह नही है। पहिल कहा : सुकृत जाइ अस कह तुम्हारे। राम भरत कहँ प्रान पियारे। भरत के शपथ लेने पर माता कौसल्या ने कहा : मत तुम्हार यह जो जग कहही। सो सपनेहुँ सुख सुगति न लहही। अव सबाज मन्त्र सुनकर जगी हुई प्रजा कह रही है कि ऐसा कहनेवाला कोटि पुरुपो के साथ अनन्त काल तक नरक निवास करेगा।

यद्यपि जन्म कुमातु ते : का प्रजा उत्तर देती है कि कैकेयी सर्प है इसमे सन्देह नही। यथा : मानहु सरोप भुअग भामिनि बिषय भाँति निहारई। पर सर्प से ही मणि उत्पन्न होती है और मणि उसे बहुत प्यारी भी है। दिन रात का साथ है। पर उसका गुण सर्प से सर्वथा विपरीत है। उसमे पुण्य गुण है। जो सर्प कृत दोपो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



को हरण करता है सो भरतजी आप मणि है। अवसि चलिअ बन राम पहँ। यह निश्चय आप का विपहरण करनेवाला है और आवहिं बहुरि राम रजधानी। यह निश्चय आप का दुःख दरिद्र का दाह करनेवाला है।

दो० अवसि चलिअ वन रामु जहँ, भरत मन्त्रु भल कीन्ह।
सोक सिंधु बूडत सबहि, तुम्ह अवलम्बनु दीन्ह ॥१८४॥

अर्थ भरत ने बडी अच्छी सम्मति स्थिर की है। जहाँ वन मे रामजी है वहाँ अवश्य चलना चाहिए। शोकरूपी समुद्र मे डूबते हुए को तुमने सहारा दिया।

व्याख्या मन्त्र सबीज सुनत जनु जागे। अत कहते हैं भरत मन्त्र भल कीन्ह। जब रामजी प्रजा को तमसा तट पर सोते छोडकर चले गये तब कहा था मनहु वारिनिधि डूब जहाजू। भये बिकल सब बनिक समाजू। अत इस समय कह रहे हैं सोक सिंधु बूडत सबहि तुम अवलम्बन दीन्ह। यहाँ बूडत कहकर यह दिखलाया कि डूबता हुआ पुरुष इस बात पर ध्यान नही दे सकता कि गद्दी पर कौन बैठे। लोग कहते हैं कि भरतजी! हम लोग तुम्हारे सहारे बच गये। समुद्र के बाहर तो सरकार के निकाले निकलेंगे। कौसल्याजी ने यही बात महाराज से कही थी नाथ समुझि मन करिअ विचारा। राम वियोग पयोधि अपारा। कर्नधार तुम अवध जहाजू। चढ़ेउ सकल प्रिय पथिक समाजू। इत्यादि। सब को आशा थी कि महाराज जीते रहेगे। तो कोई उपाय रामजी को लौटाने का होगा। सो महाराज ने धैर्य छोड दिया। बिना कर्णधार के जहाज डूब रहा था कि भरतजी ने पतवार हाथ मे लिया। रामजी के पास दूसरे दिन चलने का दृढ निश्चय किया।

भा सब के मन मोदु न थोरा। जनु घन धुनि सुनि चातक मोरा ॥
चलत प्रात लखि निरनउ नीके। भरतु प्रान प्रिय भे सबही के ॥१॥

अर्थ सबके मन में थोडा आनन्द न हुआ। जैसे मेघ का गर्जन सुनकर चातक और मोर को होता है। सवेरे चलने का अभ्रान्त निर्णय समझकर भरतजी सभी को प्राणप्रिय हो गये।

व्याख्या चातक को बडी प्यास होती है। यथा चातक रटत तृषा अति ओही। उसे घन के गर्जन से बडा आनन्द होता है। मोर को घन के आगमन से ऐसा आनन्द होता है कि नाचने लगता है। अयोध्या मे दो प्रकार के भक्त हैं। ज्ञानी और जिज्ञासु। यथा मनहु कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि। इन्ही दोनो प्रकार के भक्तो की यहाँ चातक और मोर से उपमा दी हुई है।

जब भरतजी ने रामजी के पास जाने के लिए सब से आज्ञा और आशीर्वाद मांगा तब सब लोग भरतजी की बडाई करने लगे और स्वय चलने को तैयार हो गये। अत रामजी के पास वन चलने का स्पष्ट निर्णय हो गया। जब रामजी वन को चलने लगे तो अवध को अनाथ जानकर लोग विकल होकर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



साथ लगे थे। रामजी तमसा तीर सबको सोता हुआ छोडकर चले गये। उस समय ऐसी गति हुई मनहु बारिनिधि बूड जहाजू। भयउ बिकल बड बनिक समाजू। सो रामजी के पास जाने का सुअवसर भरतजी के द्वारा मिल रहा है। अत भरतजी सबको प्राण से प्यारे हो गये।

मुनिहि बदि भरतहि सिरु नाई। चले सकल घर बिदा कराई ॥
धन्य भरत जीवनु जग माही। सील सनेह सराहत जाही ॥२॥

अर्थ मुनिजी की वन्दना करके भरतजी को सिर झुकाया और सब बिदा माँगकर घर चले। जाते हुए भरतजी के शील और स्नेह की प्रशसा करते जाते हैं कि ससार मे भरतजी का जीवन धन्य है।

व्याख्या काम पूरा हो गया। बात निर्णीत हो गयी। सबके मन म भरतजी के साथ ही प्रस्थान करने का विचार है। यात्रा के लिए साज सामान करने की जल्दी है। इसलिए मुनिजी द्वारा सभा समाप्ति की घोषणा का इन्तजार बिना किये सब लोग जाने के लिए छुट्टी माँग रहे हैं। इतनी जल्दी है कि छुट्टी माँगने के पहिले ही विदाई का प्रणाम होने लगा। मुनिजी ने बुलवाया था भरतजी के लिए। अत दोनो व्यक्तियो से विदाई लेना प्राप्त था।

भरतजी की सराहना सभा मे सब लोगो ने किया था। पर इतने से सन्तोष नही है। घर जाते समय रास्ते मे भरतजी के शील और स्नेह की प्रशसा करते जाते हैं। शील यथा तुम पै पांच मोर भल मानी। आयसु आसिष देहु सुबानी। इत्यादि। स्नेह यथा देखे बिनु रघुनाथपद जियकै जरनि न जाइ। इत्यादि।

## २१ पुरवासी सहित चित्रकूट प्रस्थान प्रसङ्ग

कहहिं परसपर भा बड काजू। सकल चलइ कर साजहि साजू ॥
जेहि राखहि रहु घर रखवारी। सो जानइ जनु गरदनि मारी ॥३॥
कोउ कह रहन कहिअ नहिं काहू। कौन चहइ जग जीवन लाहू ॥४॥

अर्थ एक दूसरे से कहने लगे कि हुआ तो बडा भारी काम और अब चलने का साज सामान बनाने लगे। जिसे घर की रखवारी के लिए आज्ञा देते है वह समझता है कि मेरा सिर काट लिया गया। कोई कोई यह समझने लगे कि किसी को रहने के लिए न कहो। कौन ससार मे जीने का लाभ नही चाहता।

व्याख्या लोग कहते हैं कि बडा काम हुआ। तपस्या बहुत शीघ्र सफल हुई। रामजी के दर्शन के लिए सब लोग नियम व्रत कर रहे थे। सो उसका योग जुट गया। भरत के साथ मे हम लोग भी चलेंगे। उनसे किसी ने न कहा कि तुम भी चलो और न वह किसी से पूछते है। सीधे सीधे चलने का सामान ठीक कर रहे हैं। ये लोग कोक कोकी हैं। अर्थात् गृहस्थ है। घर की भी चिन्ता है। अरक्षित घर को छोड जाना ठीक न समझा। अत किसी को घर की रखवारी के लिए चलने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



से रोकते हैं। उसे घर मे रहने के ख्याल से प्राणदण्ड पाने सा कष्ट हो रहा है। जिस मसान को भूत भी छोड़ रहे हैं उस सूने श्मशान मे कैसे रहे। यथा : घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहु जमदूता।

उनका दु ख देखकर कोई कमल स्थानीय कहने लगे कि किसी को घर रहने के लिए न कहो। अपने ही भाँति दूसरे को भी समझो। आत्मवत् सर्वभूतेपु यः पश्यति स पश्यति। जिस भाँति तुम जीवन लाभ चाहते हो उसी भाँति दूसरा भी चाहता है। जीवन लाभ तो सब छोड़कर रामजी के चरणों में चित्त लगाने मे है। यथा : जीवन लाहु लखन भल पावा। सब तजि रामचरन मन लावा।

दो. जरउ सो संपति सदन सुख, सुहृद मातु पितु भाइ।
सनमुख होत जो रामपद, करइ न सहस सहाइ ॥१८५॥

अर्थ : वह सम्पत्ति वह गृहसुख और वे माता पिता भाई जल जायँ जो रामजी के चरणो के सम्मुख होने मे सहस्रो सहायता न करें।

व्याख्या : सुख सम्पत्ति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहौं सेवकाई। ये सब रामभगति के बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक। अतः सम्पत्ति गृहसुख मित्र माता पिता और भाई यदि रामजी के सम्मुख होने मे सहायक हों तो रहे नही तो जल जायँ। भाव यह कि सम्पत्ति सदन सुख जले। जिसकी रक्षा के लिए मै श्रीरामजी के दर्शन से वञ्चित किया जाता हूँ और सुहृद माता पिता भाई जले जो इनकी रखवारी के लिए मुझे रामदर्शन से वञ्चित कर रहे हैं। इनका तो कर्तव्य था कि रामजी के सम्मुख होने से सहस्र प्रकार से सहायता करते। क्योंकि ये तो हितचिन्तक हैं। इन्हे मेरा सच्चा स्वार्थ देखना चाहिए था। यथा : स्वारथ साँच जीव कहँ एहा। मन क्रम वचन रामपद नेहा। ये सच्चा स्वार्थ नही देखते। कच्चे हितचिन्तक हैं। अत. इनसे कोई सम्वन्ध नही।

घर घर साजहिं वाहन नाना। हरषु हृदय परभात पयाना॥
भरत जाइ घर कीन्ह विचारू। नगरु वाजि गज भवन भँडारू ॥१॥

अर्थ : घर घर अनेक प्रकार के वाहन लोग साज रहे हैं। सबके हृदय मे आनन्द है कि सवेरे चलना है। भरतजी ने घर जाकर विचार किया कि नगर घोड़े हाथी घर और कोष।

व्याख्या : अयोध्या नगर बड़ा सम्पत्तिशाली है। घर घर वाहन हैं। लोगों की उत्सुकता देखिये। प्रयाण तो प्रभात समय होगा और वाहन इसी समय साजे जा रहे हैं। अति मोद मे ऐसा ही होता है। लोग सोचते हैं कि कौन जाने भरतजी उसी वेग से चित्रकूट चलें जिस वेग से कैकय देश से अयोध्या आये हैं। यथा : चले समीर वेग हय हाँके। नाघत सरित सैल वन वाँके। अथवा वहीं अभिषेक के लिए चतुरङ्गिणी सेना लेकर चलें। तव तो हम लोगों को भी तैयारी के साथ सङ्ग चलना चाहिए। अतः सब प्रकार की तैयारी चाहिए। प्रस्थान करने में केवल रात्रि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मात्र का व्यवधान है। इसलिए हर्षित हैं। भरतजी विचार करते हैं कि राजा इस समय कोई है नही। मन्त्री लोगो का साथ चलना आवश्यक है। नगर वाजि गज भवन और भण्डार · कोष अरक्षित हो जायगा। नगर भी एक प्रकार से सूना हो जायगा। सभी चलने की तैयारी कर रहे हैं। नगर की रक्षा से ही सब की रक्षा है।

संपति सब रघुपति कै आही। जौ बिनु जतन चलौं तजि ताही ॥
तौ परिनाम न मोरि भलाई। पाप सिरोमनि साँइ दोहाई ॥२॥

अर्थ : यह सब सम्पत्ति रघुपति की है। जो बिना रक्षा किये छोड़कर चल दूँ तो अन्त मे मेरे लिए अच्छा न होगा। स्वामि दोहाई में पाप शिरोमणि हो जाऊँगा।

व्याख्या : उपर्युक्त सब सम्पत्ति सरकारी है। अपनी होती तो मैं भी कह देता कि जरौ सो सम्पत्ति सदन सुख। इन्तजाम इस समय मेरे हाथ मे है। मै सम्पत्ति को अरक्षित कैसे छोड जाऊँ। जो भवितव्य है वही होगा : यह ठीक है पर भवितव्य के भरोसे पुरुषार्थ त्याग तो नीति नही है। यत्ने कृते यदि न सिध्यति कोऽत्र दोषः। अतः दोष के बचाने लिए यत्न करना प्राप्त है।

यदि अरक्षित छोडकर चलूँ तो परिणाम मे दूसरे की भलाई चाहे हो भी पर मेरी भलाई तो नही ही होगी। मैं प्रभु और पिता के वचन को मोहवश हटाकर साज समाज के साथ वन जा रहा हूँ। इतनी ही धृष्टता कौन कम है। इतने से ही मैं पाप से बच न सकूँगा और इस पर यदि रक्षा में भी असावधानता रही तो राम दोहाई मेरे पाप शिरोमणि होने मे कोई कसर न रह जायगी। अत. रक्षा करके ही चलना चाहिए।

करइ स्वामि हित सेवकु सोई। दूषन कोटि देइ किन कोई ॥
अस बिचारि सुचि सेवकु बोले। जे सपनेहुँ निजधर्म न डोले ॥३॥

अर्थ : सेवक वही है जो स्वामी का हित करे। भले ही लोग उसे करोडो दूषण क्यो न लगावें। ऐसा विचार करके पवित्र सेवको को बुलाया। जो स्वप्न मे भी अपने धर्म से विचलित नही हुए थे।

व्याख्या : पर यहाँ रक्खें किसे ? जिनहि कहहि रहु घर रखवारी। सो जानै जनु गर्दन मारी। सब चलने को तैयार हैं। जिसे रहने को कहूँगा वही दूषण देगा। अथवा ससार कहेगा कि झूठ ही भरत राज्य से इनकार करते हैं, इन्हे तो राज्य की बडी ममता है। जैसा हम लोगो को घर वैसा ही इनको राज्य। हमे तो अपने घर की परवाह नही और ये राज्यरक्षा के लिए हमे छोड़ रहे है। भरतजी सोचते है कि इस प्रकार का दूषण लोग मुझे लगा सकते है। पर मुझे इन दूषणो की परवाह नही करनी चाहिए। मुझे सेवक धर्म सँभालना है। मैं स्वामी का हित करूँगा। भले ही लोग मुझे दोष लगावें।

यहाँ पर शुचि सेवक की परिभाषा स्वय ग्रन्थकार दे देते है कि जो सेवक

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अपने धर्म से स्वप्न मे भी चलायमान नही हुए। अर्थात् मालिक के न रहने पर शुचिसेवक ही प्राण की बाजी लगाकर स्वामी के हित की रक्षा कर सकता है।

कहि सब मरमु धरमु सब भाखा। जो जेहि लायक सो तेहिं राखा ॥
करि सबु जतनु राखि रखवारे। राम मातु पहिं भरतु सिधारे ॥४॥

अर्थ : सब मर्म कहकर धर्म का उपदेश दिया और जो जिस योग्य था उसे उस कार्य पर नियुक्त किया। सब प्रबन्ध करके रक्षको को नियुक्त किया। तब रामजी की माता के पास भरतजी गये।

व्याख्या : राज्य के ऐसे मर्म होते हैं जो केवल राजा ही जानते है। प्रजा को उसका पता भी नही रहता। उसे तो यह भी नही मालूम होना चाहिए कि राजा किस भाँति शोषण कर रहा है। यथा 'हरखत बरखत सब लखै करषत लखै न कोय। तुलसी पुहुमी भाग से भूप भानु सम होय। उसके मर्म को थोडा बहुत काम-दार जानते हैं। मन्त्री को बडी जानकारी होती है पर पूरी जानकारी राजा को ही होती है। अत शुचि सेवको को बुलाकर आवश्यक सब मर्म बतलाया। जिसमे भरतजी की अनुपस्थिति मे यथोचित कार्य करने मे समर्थ हों। कैसी अवस्था आ पडने पर क्या करना धर्म होगा। ये सब बातें भी बतलायी। परिस्थिति मे परिवर्तन होने से राजधर्म मे परिवर्तन करना होता है। अब भरतजी की पण्डिताई कहते हैं कि जो जिस योग्य था उसे वैसा ही कार्य भार दिया 'अयोग्य पुरुषो नास्ति योजकस्तत्र दुर्लभः।

यह सब व्यवस्था करके तत्पश्चात् भरतजी ने यथास्थान रक्षको की नियुक्ति की। नगर के रक्षक अलग, वाजि गज के अलग, कोष के अलग रक्षक योद्धा नियुक्त किये। तब कौसल्याजी के पास गये महल की व्यवस्था के लिए।

दो आरत जननी जानि सबु, भरत सनेह सुजान।
कहेउ बनावन पालकी, सजन सुखासन जान ॥१८६॥

अर्थ : स्नेह के पारखी भरतजी ने सब माताओ को आर्त जानकर उनके लिए पालकी सजने तथा सुखपाल आदि सवारी तैयार करने के लिए कहा।

व्याख्या : भरतजी ने जान लिया कि सब माताएँ दर्शन के लिए आर्त हैं। कैकेयी भी आर्त हैं। माताओ के लिए पालकी साजने तथा उनके सभी सहेलियो के लिए सुखासन, दासियो के लिए यान तैयार करने के लिए कहा। भरतजी प्रेम के बडे पारखी हैं। यद्यपि माताएँ अपने चलने के लिए अनुरोध नही कर रही हैं। फिर भी उनको आर्त देखकर उनके चलने के लिए सवारी की आज्ञा देकर उनकी आर्ति को तत्काल दूर करना चाहते हैं। माताएँ स्त्री धर्म को आगे किये हुए अपने को पुत्र के अधीन मानती हैं। पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने। पुत्रास्तु स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चक्र चक्रि जिमि पुर नर नारी। चलत प्रात उर आरत भारी ॥
जागत सब निसि भयउ विहाना। भरत बोलाए सचिव सुजाना ॥१॥

अर्थ चकवा चकई की भाँति पुर नर नारी सवेरे गमन के लिए आर्त हो रहे थे। पूरी रात जागते ही सवेरा हुआ। भरतजी ने सुजान मन्त्रियो को बुलाया।

व्याख्या चक्रवाक और चक्रवाकी मे रात्रि को विछोह रहता है। एक नदी के इस पार तो दूसरा नदी के उस पार रहता है। इस भाँति उनकी रात्रि विरहव्यथा मे कटती है। वे चाहते हैं कि कब रात्रि बीते और हम प्रियतम के पास चलें। इसी भाँति पुर नर नारी को भी रामजी के पास चलने मे रात्रि व्यवधानरूप है। अत उसके बीतने के लिए बडे आर्त हो रहे हैं। किसी समय अभिषेक के लिए ऐसी ही उत्सुकता थी। यथा सकल कहहिं कब होइहि काली।

लालसा और उछाह के कारण उस रात मे किसी को नीद नही आयी। यथा ' तेहि निसि नीद परी नहि काहू। राम दरस लालसा उछाहू। चित्त के चञ्चल होने से निद्रा नही आती। सवेरा होते ही भरतजी ने सुजान मन्त्रियो को बुलाया जिनके लिए इशारा काफी था। सुमन्त्रजी ने एकान्त वास ले रक्खा है। रामजी को वन पहुँचाने के बाद से उनका उल्लेख नही मिलता। रामजी जब वन से लौटे हैं तब सुमन्त्रजी भी दिखायी पडते है। अत अन्य सुजान मन्त्रियो को बुलाया।

कहेउ लेहु सब तिलक समाजू। बनहि देव मुनि रामहि राजू ॥
बेगि चलहु सुनि सचिव जोहारे। तुरत तुरग रथ नाग सँवारे ॥२॥

अर्थ · कहा कि तिलक का सामान सब ले चलो। वन मे ही मुनिजी रामजी को राज्य देंगे। जल्दी चलो ऐसा सुनकर मन्त्रियो ने जोहार किया और तुरन्त घोडे रथ और हाथी सजाये।

व्याख्या भरतजी ने आज्ञा दी कि तिलक का सामान जो सरकार के लिए पिताजी का एकत्रित किया हुआ है उसे साथ ले चलने की व्यवस्था करो। यथा · आनहु सकल सुतीरथ पानी। औषध मूल फूल फल पाना। कहे नाम गनि मगल नाना। चामर चमर वसन बहु भाँती। रोम पाट पट अगनित भाँती। मनिगन मगल वस्तु अनेका। जो जग जोग भूप अभिषेका। कारण भी कह देते है कि पिता जी का सकल्प सत्य हो। इसी सामान से मुनिजी वन मे ही रामजी को राज्य दें। रामजी ने माता से कहा था · पिता दीन्ह मोहि कानन राजू सो गुरुजी वन मे ही राज्य देंगे।

उन सब चीजो को लेकर जल्द चलो। यहाँ जोहार से भाव यह कि आज्ञा शिरोधार्य है। पहिला काम यह कि चतुरङ्गिनी सेना सजायी। मुनिजी ने अभिषेक के समय यह भी कहा था कि सजहु तुरग रथ नाग और सामान तो सब सजा सजाया ही रक्खा था। उठाने मात्र की देर थी। तुरङ्ग रथ नाग की अभिषेक योग्य तैयारी करनी थी। अत पहिले यही किया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अरुंधती अरु अगिनि समाऊ। रथ चढ़ि चले प्रथम मुनिराऊ॥
बिप्र बृंद चढि बाहन नाना। चले सकल तप तेज निधाना॥३॥

अर्थ : पहिले वसिष्ठजी भगवती अरुन्धती और अग्निहोत्र के सब सामान सहित रथ पर चढकर चले। फिर तपस्या और तेज के निधान ब्राह्मण लोग अनेक प्रकार के वाहनो पर चढकर चले।

व्याख्या : गुरुजी ने पत्नी के सहित अग्निहोत्र का सामान सब साथ मे लिया : अभिषेकाङ्गभूत हवनादि प्रक्रिया की सिद्धि के लिए। इस यात्रा मे अधिक दिन लगेंगे। अत. पूरी तैयारी से चले। पहिला रथ वसिष्ठजी का चला : मुनिजी को रामजी के लौटने मे पूरा सन्देह है। राज्य भरतजी का हो गया। वे चाहे रामजी को दे सकते हैं। परन्तु चौदह वर्ष की अवधि के परिवर्तन मे स्वय चक्रवर्तीजी का अधिकार रघुनाथजी ने नहीं माना। चक्रवर्तीजी ने तो कह दिया : रथ चढाइ देखराइ वन फिर्यौ गये दिन चारि। परन्तु रामजी ने इस आज्ञा को प्रियप्रेम प्रमाद ही समझा।

गुरुजी के पीछे ब्राह्मणो का समूह चला। ये लोग कोई रथ पर कोई घोडे पर कोई हाथी पर चढकर चले। सिविका सुभग सुखासन याना। आदि महारानियो की सवारी मे नियुक्त है। ये ब्राह्मण लोग बडे तेजस्वी थे। तप तेज के निधान थे। यथा : बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा। भावार्थ यह कि पूरे ब्राह्मण[1] थे तपः स्वाध्याय निरत थे।

नगर लोग सब सजि सजि जाना। चित्रकूट कहँ कीन्ह पयाना॥
सिविका सुभग न जाहिं बखानी। चढि चढ़ि चलत भईं सब रानी॥४॥

अर्थ : नगर के सवारियो को सजकर चित्रकूट को चल पडे। सुन्दर पालकियो मे जिनका वर्णन नही किया जा सकता सब रानियाँ चढकर चली।

व्याख्या : इसके बाद नगर के लोग चले। स्त्री पुरुष दोनो हैं। इसलिए : सब सजि सजि जाना कहा। नगर खाली पड गया। चित्रकूट की ओर चले। यद्यपि यह स्थिर नही है कि सरकार कहाँ हैं। पर इतना निषादराज से सुमन्त्रजी को पता चल गया है कि भरद्वाजजी के आश्रम से वाल्मीकिजी के आश्रम की ओर गये। वाल्मीकिजी का आश्रम चित्रकूट से अति सन्निकट है और चित्रकूट प्रख्यातस्थल है। अतः चित्रकूट की ओर प्रयाण करना कहते है।

भरतजी की आज्ञा से शिविका साजी गयी है। अत. कहते हैं : न जाहिं बखानी। माताएँ बेटे को राज्य देने चल रही हैं। अत. मङ्गल उपस्थित है। इसलिए

---

१. तप श्रुतश्च योनिश्च ह्येतद् ब्राह्मणकारकम्। तप श्रुताभ्यां यो हीनो जातिब्राह्मण एव स.। तप श्रुति और जन्म ये तीन ब्राह्मण कारक हैं। जो तप और श्रुति से हीन है। वह केवल जन्म से ब्राह्मण है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सरकार देर मे चले थे। बीच बीच मे लोगो के समझाने बुझाने मे भी देर हुई। अतः पहिला निवास तमसा तीर हुआ। भरतजी बडे सबेरे चले। परन्तु सेना साथ थी। अतः तमसा तीर रुक गये। बहुत लोग साथ हैं। अतः नदी तीर पर डेरा देते हैं। सरकार दूसरे दिन गङ्गा तीर पहुँचे। पर भरतजी चौथे दिन पहुँचे। इन्हे बीच मे गोमती तीर पर भी विश्राम करना पड़ा।

दो. पय अहार फल असन एक, निसि भोजन एक लोग।
करत राम हित नेम ब्रत, परिहरि भूपन भोग ॥१८८॥

अर्थ : कोई दूध ही पीते है। कोई फलाहार ही करते है। कोई रात्रि मे ही भोजन करते हैं। सब लोग रामचन्द्र के लिए भूषण और भोग छोड़कर नियम और व्रत करते थे।

व्याख्या : राम दरस हित नेम व्रत लगे करन नर नारि। इसी का स्पष्टीकरण करते हैं। पय अहार और फलअशन व्रत हैं और निशि भोजन नियम है। यह नियम व्रत रामजी के दर्शन के लिए हो रहा है। लोगो ने शृङ्गार और भोग दोनो को त्याग दिया है. भोग रोग सम भूषण भारू। पय अहार फल अशन ज्ञानी भक्त कर रहे हैं। निशि भोजन करनेवाले जिज्ञासु भक्त गृहस्थ लोग है। गृहस्थो के लिए रात्रि का उपवास वैद्यक शास्त्र मे मना है। राम के वियोग का विधायक जो पाप है उसके नाश के लिए अवधवासियो ने यह नियम और व्रत ले रखा है।

सई तीर बसि चले बिहाने। शृंगबेरपुर सब निअराने ॥
समाचार सब सुने निपादा। हृदयँ बिचार करै सबिपादा ॥१॥

अर्थ : सई के किनारे बसकर सबेरे ही चले। शृंगवेरपुर के पास पहुँचे। निपाद ने जब सब समाचार पाया तो विपाद के साथ मन मे विचार करने लगा।

व्याख्या . तीसरे दिन सई नदी के किनारे बसे। सबेरे ही चल पडे। जो रास्ता सरकार ने एक दिन मे तय किया था उसे तय करने मे सेना साथ रहने से भरतजी को तीन दिन से अधिक लगे। शृङ्गवेरपुर को ही सिंगरौर कहते है। यथा . सो जामिनि सिंगरौर गँवाई। सब लोग सिंगरौर के निकट पहुँच गये। अभी सबेरा ही है।

जब सिंगरौर से कुछ दूर रहे तभी निपादराज को पता लग गया कि भरतजी चित्रकूट जा रहे हैं और बडी भारी चतुरङ्गिनी सेना साथ लिये हैं। जिस बात की विधि नही बैठती उसमे विचार होता ही है। अनिष्ट की शङ्का मे सविपाद विचार होता है और इष्ट प्राप्ति की आशा मे सानन्द विचार होता है। सेना के साथ भरतजी का आगमन सुनने से उसे अनिष्ट की आशङ्का हुई। इसलिए सविपाद विचार करने लगा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कारन कवन भरतु बन जाँही। है कछु कपट भाव मन माँही ॥
जौ पै जियँ न होति कुटिलाई। तौ कत लीन्ह संग कटकाई ॥२॥

अर्थ क्या कारण है कि भरतजी वन जा रहे हैं। कुछ कपट भाव मन मे है। यदि कुटिलाई मन मे न होती तो साथ मे सेना क्यो लिया ?

व्याख्या रामजी के वन जाने का कारण था। वे पिता के वचन से गये। भरत को तो राज्य मिला है। महाराज की क्रिया से छुट्टी पाते ही इन्हे राज्य सँभालना था। ये वन क्यो जा रहे हैं ? यद्यपि ऐसे अवसर पर भाई से मिलकर उनका सन्तोष करके ही राज्य करना शिष्टता है। पर यह बात ऊपरी है। देखौआ है। इनके मन मे दूसरी बात है।

यदि इनके मन में कपट न होता तो साधारण रीति से चले जाते। पर सेन संग चतुरंग न थोरी की क्या आवश्यकता पडी। निष्कारण कार्य होता नही। सेना का साथ लेना ही कुटिलता का प्रमाण है। ठीक ऐसा ही लक्ष्मणजी ने सोचा। यथा जौ जिय होति न कपट कुचाली। केहि सोहात रथबाजि गजाली। यह निषादराज लक्ष्मणजी का शिष्य है। उन्ही की भाँति इसने भी सोचा। भरत के हृद्‌गत भाव तक गति नही हुई। यह न सोच सका कि भरत वन मे ही राज्य देने जा रहे है।

जानहि सानुज रामहि मारी। करौ अकटक राजु सुखारी ॥
भरत न राजनीति उर आनी। तब कलंकु अब जीवन हानी ॥३॥

अर्थ समझते हैं कि भाई के सहित रामजी को मारकर सुखी होकर निष्कण्टक राज्य भोगेंगे। भरत ने राजनीति को चित्त मे स्थान नही दिया। तब तो कलङ्क ही था। अब प्राणो की हानि होगी।

व्याख्या चौदह वर्ष के वनवास से इनका पेट न भरा। समझा कि चौदह वर्ष के बाद ही सही पर रामचन्द्र भारी कण्टक हैं। अभी तो पिता के वचन से बँधे हुए हैं। नाभिषेको न संस्कार सिंहस्य क्रियते मृगै। विक्रमार्जितराज्यस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता। विक्रम करके भी तुम राज्य न लेना। ऐसा वचन तो पिता का है नही। अत कण्टकोद्धार के लिए चौदह वर्ष बाद का खटका न बना रहे राम लक्ष्मण को मारकर सुखी होकर राज्य करना चाहते हैं। लक्ष्मण और राम का अभिन्न हृदय है। अत लक्ष्मण का भी वध चाहते हैं।

दण्डनीति अन्तिम उपाय है। पहिले तो राजा को साम, दान, और भेद से काम लेना चाहिए। यथा साम दान अरु दंड विभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह वेदा। नीति धर्म के चरन सोहाये। सो पहिले दण्डनीति से ही काम लते जान पडते हैं। यह राजनीति नहीं है। राज करने मे तो यशोहानि थी। पर अब अकण्टक राज करने के उद्योग म जीवन हानि होगी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहि समर न जीतनिहारा॥
का आचरजु भरत अस करही। नहिं विप बेलि अमिअ फल फरही॥४॥

अर्थ जितने योद्धा देवता और असुर हैं वे सब जुट जांय। फिर भी रामजी को नही जीत सकते। भरतजी के ऐसा करने मे कौन आश्चर्य है? विपकी लता मे अमृत फल नही फलता।

व्याख्या कारण यह है कि रामजी अजेय हैं। यथा जीति को सकै अजय रघुराई। सुरासुर मे सभी योद्धा नही होते। सो यदि सुरासरो मे से छांटकर सब योद्धा इक‌ट्ठे हो जांय फिर भी समर मे अकेले रामजी को नही जीत सकते। फिर यह मानुषी सेना उनका क्या कर सकती है। उसके लिए अकेले रामजी ही यथेष्ट हैं कि पुन लक्ष्मणजी भी साथ है। इनके जीतने की इच्छा करना ही मृत्यु सूचक है।

भरतजी यदि रामजी से सग्राम के लिए प्रस्तुत हो तो इसमे क्या आश्चर्य है। निपादराज कहते है कि जब माता ने १४ वर्ष के लिए वन दिया तब बेटा यदि प्राण लेना चाहे तो क्या आश्चर्य है। कैकेयी रूपी विपवेलि के ही फल तो भरतजी हैं। ये अमृतफल कैसे हो जावेंगे? विचार करके निपादराज इस निर्णय पर आगये।

दो अस विचारि गुह ग्याति सन, कहेउ सजग सब होहु।
हथवासहु बोरहु तरनि, कीजिअ घाटारोहु॥१८९॥

अर्थ ऐसा विचारकर गुह ने अपने जाति बिरादरी से कहा कि सब लोग सावधान हो जाओ। हाथ लगाओ और नावो को डुबा दो और घाट को रोक लो।

व्याख्या हृदय विचार करै से उपक्रम और अस बिचरि से उपसहार है। निपादराज का नाम गुह था। इन्हे सेना नही थी। इनके जाति भाई ही इनकी सेना थे। उनसे कहा कि तुम लोग होशियार हो जाओ। भरत से खतरा है। सब नावो को उठा उठाकर नदी मे डुबा दो। जिसमे हम लोगो का अनादर करके गङ्गा पार न होने पावें। तब घाट रोककर डँट जाओ। हम लोगो के मारे जाने पर भी हमारी नावो से काम न ल सके।

होइ सँजोइल रोकहु घाटा। ठाटहु सकल मरै के ठाटा॥
सनमुख लोह भरत सन लेऊ। जिअत न सुरसरि उतरन देऊं॥१॥

अर्थ तैयार होकर घाट को रोक लो और सब लोग मरने का साज साजो। सनमुख भरत से लोहा मै लूँगा और जीते जी गङ्गा न उतरने दूँगा।

व्याख्या भरतजी का सामना करना है। अत सब लोग तैयार हो जाओ। पार उतरने की जो जगह है वही रोको। यदि कहो कि इतनी बडी सेना को कैसे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रोकेंगे ? इसपर निषादराज कहते हैं कि रोक न सकेंगे तो मर तो सकेंगे। इसलिए मरने का सामान साजो। ठाटहु कहने का भाव है कि वीरगति प्राप्ति के लिए उत्साह चाहिए। गङ्गा तुलसी मुख मे लेकर तैयार हो जाओ तुम लोग सेना को रोको।

भरतजी के सम्मुख लोहा मै लूंगा। युद्धसिद्धिहि चञ्चला · अत यह निश्चय नही कि मैं ही हारूँगा। पर सम्भावना ऐसी ही है। अतः यह निश्चय है कि जीते जी गङ्गा उतरने न दूँगा। मुझे मारकर तब पार उतरें। यहां आकर सेना ठहर जावेगी। नाव सब डूबी रहेगी। अत· पार उतरने की व्यवस्था उन्हे करनी होगी। उसी समय सग्राम का अवसर प्राप्त होगा। जो व्यवस्था करें उसे विगाडो। उतरते समय उन पर प्रहार करो।

समर मरनु पुनि सुरसरि तीरा। राम काजु छनभंगु सरीरा॥
भरत भाइ नृप मैं जन नीचू। बडे भाग असि पाइअ मीचू॥२॥

अर्थ : युद्ध मे वीरगति तिस पर गङ्गा का किनारा तिस पर भी रामजी के कार्य के लिए और यह शरीर क्षण मे नष्ट हो जानेवाला है। भरत उनके भाई हैं, राजा हैं, मैं नीच सेवक हूँ, बडे भाग्य से ऐसी मौत मिलती है।

व्याख्या . यदि कहिये कि मर जाने से लाभ क्या ? तो इस पर निषादराज कहते हैं कि यदि शरीर चिरस्थायी होता तो यह प्रश्न बन सकता था। यह शरीर तो क्षणभङ्गुर है। कब छूट जायगा इसका क्या ठिकाना। पर छूटना निश्चित है। परन्तु ऐसा अवसर शरीर छोडने का क्या फिर मिल सकेगा ? द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ। परिव्राट् योगयुक्तस्तु रणे चाभिमुखे हत । समर मरण से उत्तम काल कहा। सुरसरि तीर से उत्तम देश कहा। यथा : रेवातीरे तप· कुर्यात् मरण जान्हवीतटे। भाव यह कि अनित्य वस्तु को नित्य की प्राप्ति के लिए त्यागना बडा भारी लाभ है। यह ऐसे ही किसी को बडे भाग्य से मिलता है। यथा : मरे बहुत मरिहैं बहुत आज कालि के बीच। तुलसी काहू नहिं लही गीधराज की मीच : राजा का सग्राम साधारण पुरुषो से नही होता। पर यहां ऐसा ही सुयोग आ पड़ा है। उत्तम के हाथ से मरना प्रशस्त है। भरतजी रामजी के भाई और नराणा च नराधिप हैं। इनसे उत्तम कौन होगा ?

स्वामि काज करिहउँ रन रारी। जस धवलिहौं भुवन दस चारी॥
तजौं प्रान रघुनाथ निहोरे। दुहूँ हाथ मुद मोदक मोरे॥३॥

अर्थ · मैं स्वामी के कार्य के लिए रण मे युद्ध करूँगा और चौदहो भुवन को अपने यश से सफेद कर दूँगा। रघुनाथ के लिए प्राण त्याग करूँगा। मेरे दोनो हाथ मे आनन्द के लड्डू हैं।

व्याख्या : मेरे स्वामी तो रामजी हैं। सब कुछ उनको अर्पण हो चुका है। यथा : देव धरनि धन धाम तुम्हारा। मैं सेवक समेत परिवारा। अत भरतजी भले साम्राज्य के स्वामी हो पर मेरे स्वामी तो रघुनाथजी ही हैं। उनके लिए

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सग्राम मे भरतजी के हाथ से शस्त्रपूत होकर गङ्गाजी के तीर वीरगति को प्राप्त हूँगा। मेरे यश से चौदह भुवन भर उठेगा। यश का कवियो ने श्वेत रङ्ग माना है। इसलिए निषादराज कहते है कि चौदहो भुवन मेरे यश से सफेद हो जायँगे।

निषादराज मरण का निश्चय किये हुए युद्ध को प्रस्तुत हैं। उनका इतना ही मात्र प्रयोजन है कि जिअत न सुरसरि उतरन देऊँ। भरत को समर मे जीतने की तो आशा भी नही की जा सकती। अपने लाभ के लिए लड़ने को तैयार हैं। लाभ यह है कि दोनो हाथ मे आनन्द के मोदक है। लोक परलोक दोनो बन जायगा। जस धवलिहौ भुवन दसचारी से लोक बनेगा और रघुनाथ निहोरे प्राण त्याग से परलोक बन जायगा। आज भी यह चाल है कि सौभाग्यवती स्त्री के मरने मे उसके दोनो हाथ मे लड्डू रखकर ही श्मशान ले जाते हैं। दोनो हाथ के लड्डू लोक परलोक दोनो के बन जाने के प्रतीक है।

साधु समाज न जाकर लेखा। राम भगत महुँ जासु न रेखा॥
जाय जिअत जग सो महि भारू। जननी जौवन बिटप कुठारू॥४॥

अर्थ साधु समाज म जिसकी गिनती न हो और रामजी के भक्तो मे जिसकी रेखा न हो वह ससार मे व्यर्थ जीता है। वह पृथ्वी का बोझ है। माता के यौवन रूपी वृक्ष के छेदन के लिए वह कुठार रूप हुआ।

व्याख्या परहित लागि तजहिं जे देही। सतत सत प्रससहि तेही। अत परहित के लिए शरीर त्याग से सत समाज मे गणना होगी और रघुनाथजी के निहोरे वीरगति प्राप्त होने से रामभक्तो मे मेरी रेखा होगी। रेखा से भाव यह कि मेरे भक्त होने का निश्चय हो जायगा। यथा रेख खँचाइ कहौ बल भाखी। सब भक्तो को रामजी के निहोरे प्राण त्याग करने का अवसर नही मिलता। यथा धन्य जटायू सम कोउ नाही। राम काज कारन तन त्यागी। हरिपुर गयउ परम बड भागी।

दो बिगत बिषाद निषादपति, सबहिं बढाइ उछाहु।
सुमिरि राम मांगेउ तुरत, तरकस धनुष सनाहु॥१९०॥

अर्थ विषाद से रहित होकर निषादपति ने सबका उत्साह बढाकर रामजी का स्मरण करके तुरन्त तरकस धनुष और कवच माँगा।

व्याख्या जब तक विचार करता था तब तक सविषाद था। अब निश्चय पर पहुँच गया। अत कहते हैं कि निषादपति विषाद से रहित हुए। इतना ही नही अपने जाति भाइयो का उत्साह भी अपने मरण को मङ्गलमय वर्णन करके बढाया और उस उत्साह को कार्य मे परिणत करने के लिए पहिले स्वय युद्ध के लिए तैयार होने लगा। इष्टदेव रामजी का स्मरण करके तरकस धनुष और कवच को जल्दी से लाने के लिए आज्ञा दी। जल्दी इसलिए है कि भरतजी की सेना आगे बढती चली आती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बेगहु भाइहु सजहु संजोऊ। सुनि रजाइ कदराइ न कोऊ॥
भलेहि नाथ सब कहहिं सहरषा। एकहिं एक बढ़ावइ करषा॥१॥

अर्थ : भाइयो ! जल्दी करो सब तैयारी कर लो। मेरी आज्ञा को सुनकर कोई साहस न छोड़ो। सब हर्ष के साथ कहने लगे कि : नाथ ! बहुत अच्छा और वे आपस में एक दूसरे से चढा ऊपरी करने लगे।

व्याख्या : निषादराज बोले कि मै तैयार हो रहा हूँ। तुम लोग जल्दी से तैयार हो जाओ। तुम लोग भाई हो। होहिं कुठाहर बंधु सहाए। तैयारी में कसर न रहे। इसलिए सजहु कह रहे हैं। मैंने मरने का ठाट ठटने की आज्ञा दे दी है। कादर मरने से डरते हैं। वे ऐसी आज्ञा सुनकर साहस छोड़ देते है। तुम लोग वीर हो। तुम में से कोई भी कादर की भाँति आचरण न करे।

निषादराज ने सबका उछाह बढ़ाया था। इसलिए सभी हर्ष के साथ आज्ञा को शिरोधार्य कर रहे हैं। सब गुह को राजा मानते हैं। अतः नाथ सम्बोधन दे रहे हैं। एक दूसरे से अमर्ष बढ़ाते है। जिसमे युद्ध करने में कसर न लगावें। आपस में चढ़ा ऊपरी है कि देखें कौन कैसा पुरुषार्थ करता है।

चले निषाद जोहारि जोहारी। सूर सकल रन रूचै रारी॥
सुमिरि राम पद पंकज पनही। भाथी बाँधि चढ़ाइन्हि धनही॥२॥

अर्थ : निषाद जोहारकर करके चले। सब शूर है। युद्धप्रिय हैं। रामजी की जूतियों का स्मरण करके तरकस बाँधा और धनुहियो को चढाया।

व्याख्या : रजायसु हुई : बेगहु भाइहु। अत: जोहारि जोहारि चले। क्योंकि सबके सब शूर हैं। रन रूचे रारी। भावार्थ यह कि सग्राम में झगड़ा रुचता है। घर में नहीं। निषाद की जाति की जाति ही वीर थी।

यहाँ पर कवि ग्राम्य शब्दों का प्रयोग कर रहे हैं। ये सब सरकारी जूतियो के उपासक हैं। अतः इष्ट स्मरणपूर्वक भाथी बाँधा। भाथी तरकस को कहते हैं। मालिक रामजी का स्मरण करता है। उसके सेवक रामजी के जूते का स्मरण करते हैं। दासानुदास हैं। तत्पश्चात् धनुही को चढाया। धनुही छोटे धनुष को कहते हैं।

अँगरी पहिरी कूँड़ सिर धरही। फरसा बाँस सेल सम करही॥
एक कुसल अति ओड़न खाँड़े। कूदहि गगन मनहु छिति छाँड़े॥३॥

अर्थ : कवच पहनकर सिर पर कटोरा बाँधते हैं और परशु बाँस तथा बरछियों को सुधारते है। कोई कोई तलवार ढाल के बडे पण्डित हैं। वे मानो पृथ्वी छोड़कर आकाश मे कूद रहे हैं।

व्याख्या : अँगरी लोहे की अँगरखी अङ्गरक्षा के लिए पहन रहे हैं। सिर पर टोप के स्थान पर कटोरा आदि बरतन बाँध रहे हैं। भाथी और धनुष बाँधा था।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दूर से लड़ाई के लिए फरसा, बाँस और बरछा निकट से लड़ने के लिए सीधा कर रहे हैं। ये दूसरे प्रकार के वीर हैं।

तीसरे प्रकार के तलवार बहादुर वीर हैं। बड़े पैंतरेबाज है। ओड़न ढाल स्थानीय वस्तु को कहते हैं। उनका पैंतरा अभी से आरम्भ हो गया। ऐसे उछल रहे हैं मानो धरती पर उनका पैर ही नही पड रहा है।

निज निज साजु समाजु बनाई। गुह राउतहिं जोहारे जाई ॥
देखि सुभट सब लायक जानें। लै लै नाम सकल सनमाने ॥४॥

अर्थ : अपना अपना साज समाज तैयार करके उन्होने अपने स्वामी गुह को जाकर प्रणाम किया। देखकर सुभटो को सब योग्य जाना और नाम ले लेकर सबका सम्मान किया।

व्याख्या : तीनो प्रकार के वीरो ने अपना अपना साज समाज तैयार करके अपने मालिक गुह को जाकर प्रणाम किया। यही से सब तैयारी के लिए चले थे। यथा : चले निषाद जोहारि जोहारी। और तैयार होकर यही लौटे और निषादराज का फिर से जोहार किया कि हम लोग तैयार होकर आगये।

गुह राउत ने जब सुभटो को देखा तो बडा भरोसा हुआ कि ये सब लायक हैं। भली प्रकार सामना करने मे समर्थ हैं। गुह राउत सबका नाम जानते हैं। कोई सेना तो है नही जो सबका नाम याद न रहे। यह तो टोली है। अपने ही भाई बन्धु सब हैं। अत एक एक का नाम लेकर सम्मान कर रहे हैं। किसी से कहते है कि तुम्हारा बडा भरोसा मुझे है। किसी से कहते हैं कि तुम मेरी भुजा हो।

दो. भाइहु लावहु धोख जनि, आजु काज बड़ मोहि।
सुनि सरोष बोले सुभट, बीरु अधीरु न होहि ॥१९१॥

अर्थ : भाइयो! कुछ भी कसर न उठा रखना। आज मेरा बडा भारी काम आ पडा है। सुनकर सब सुभट सरोष होकर बोले कि वीर धैर्य नही छोडते।

व्याख्या : निषादराज कहते हैं कि तुम सब भाई हो। नौकर नही हो। अत: लडने मे कोई कसर न पडने पावे। बडा काम मेरा तो आज ही पडा है। स्वामी का कार्य होने से मेरा बडा भारी काम है। दूसरी बात यह कि आज बडा भारी लाभ मेरे सामने है जो कि तुम्हारी सहायता से ही सिद्ध हो सकता है और वह यह है : जस धवलिहौं भुवन दस चारी। मेरे यश से चौदह भुवन प्रकाशित होनेवाला है और कीर्तिर्यस्य स जीवति। इतना सुनते ही वीरो को जोश आगया। कहने लगे कि वह वीर ही नही जो समय पर अधीर हो जाय। यह बात धनुर्धरो ने कही।

राम प्रताप नाथ बल तोरें। करहिं कटकु बिनु भट बिनु घोरें ॥
जीवत पाउ न पाछे धरहीं। रुंड मुंडमय मेदिनि करहीं ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : हे नाथ ! रामजी के प्रताप से और आपके बल से सेना को बिना वीर और बिना घोड़े का कर देंगे। जीते जी पीछे पैर न रक्खेंगे। पृथ्वी को रुण्ड मुण्ड से पाट देंगे।

व्याख्या : तब फरसा बाँस सेल सम करनेवाले बोले कि प्रताप रामजी का और बल आपका है, मेरा कुछ नहीं। सो उस प्रताप और बल की सहायता से सेना को बिना भट का और बिना घोड़े का कर दूँगा। भाव यह कि ऐसा चोट करूँगा यदि सवार बचे तो घोड़ा न बचेगा और यदि घोड़ा बचे तो सवार न बचेगा। मेरी चोट खाली जानेवाली नहीं है। भरत की सेना में यह विशेषता है कि उसमें सवार हैं। हमलोगों के पास घोड़े नहीं हैं। इसलिए हम लोग ऐसा युद्ध करेंगे कि घोड़ा बचे तो सवार नहीं और सवार बचा तो घोड़ा नहीं।

तब ओडन खाँडे मे कुशल तलवार बहादुर बोले कि हमलोग मरने पर चाहे जिस बल गिरें पर जीते जी पैर पीछे न रक्खेंगे। जिसमें कदराई का प्रश्न ही न उठने पावे और यों ही न मर जायेंगे। जिसे एक हाथ मारेंगे वे दो टुकड़े हो जायेंगे। इस भाँति पृथ्वी को रुण्ड मुण्डमय बना देंगे। मुण्ड सिर को और रुण्ड धड़ को कहते हैं।

दीख निषादनाथ भल टोलू। कहेउ बजाउ जुझाऊ ढोलू ॥
एतना कहत छीक भइ बाएँ। कहेउ सगुनिअन्ह खेत सुहाएँ ॥२॥

अर्थ : निषादनाथ ने देखा कि टोली तो अच्छी है। बोले कि जुझाऊ ढोल बजने दो इतना कहते ही बायी ओर छीक हुई। शकुन विचार करनेवालो ने कहा कि रणक्षेत्र सुन्दर होगा अपने पक्ष की जीत होगी।

व्याख्या : लोगों की बातें सुनकर निषादनाथ ने सुभटो की ओर देखा और मन मे कहा कि टोली तो अच्छी है। वीरों के उत्साह वर्धन के लिए कहा कि जुझाऊ ढोल बजने दो। जुझाऊ बाजा तो है नहीं कि मारूराग बज सके। अतः जुझाऊ ढोल बजाने की आज्ञा दी। इससे भरतजी की सेना को भी सूचना देना है कि निषाद लोग युद्ध के लिए प्रस्तुत हैं। निषादराज के पास छोटे परिमाण में सब कुछ था।

निषादराज के आज्ञा देते ही बायें ओर छीक हुई। प्राचीन काल में सेना के साथ सगुन विचारनेवाले भी रहते थे। उन्होंने कहा विजय होगी पर ये सब नौजवान बिना विचारे ही बोल दिया कि जिसमे टोली का जी न टूटे। यात्रा में छीक अच्छी नहीं मानी जाती। अथवा उन सबों ने यह अर्थ लगाया कि जो हम लोगों के बाएँ हैं, उन्हें विघ्न होगा।

बूढ़ एक कह सगुन बिचारी। भरतहि मिलिअ न होइहि रारी ॥
रामहि भरतु मनावन जाँही। सगुन कहै अस बिग्रहु नाँही ॥३॥

अर्थ : एक बूढ़े ने सगुन विचारकर कहा कि भरतजी से मिलिये झगड़े की

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बात नहीं है। भरत रामजी को मनाने जाते हैं। सगुन कह रहा है कि झगड़ा नही है।

व्याख्या : नौजवान सगुनियों ने विचार नही किया। यथा : कह्यौ सगुनिअन्ह खेत सोहाए। अवसरोपयुक्त बात बोल उठे। पर उनमें एक बूढ़ा था उसने सगुन पर विचार किया कि जुझाऊ ढोल बजने की आज्ञा देते ही छींक हुई तो इसका तात्पर्य यह कि जुझाऊ ढोल बजने की आज्ञा न दो। अतएव कहता है कि सगुन कह रहा है कि झगड़े की बात नहीं है आप भरतजी से मिल लीजिये।

जब सगुन कहता है कि झगड़ा नहीं है तब निश्चय है कि भरत लड़ने नही जा रहे हैं। क्योंकि सगुन जुझाऊ बाजा बन्द करने को कह रहा है। यदि लड़ने नही जा रहे हैं तो सिवा मनाने के लिए जाने के दूसरी बात हो क्या सकती है? सेना मन्त्री सब अगवानी के लिए जा रहे हैं।

सुनि गुह कहइ नीक कह बूढ़ा। सहसा करि पछिताहिं बिमूढ़ा॥
भरत सुभाउ सीलु बिनु बूझे। बड़ि हित हानि जानि बिनु जूझे॥४॥

अर्थ : यह बात सुनकर निषादराज गुह ने कहा कि बुड्ढा अच्छी बात कह रहा है। बिना विचारे काम करके विमूढ पछताते हैं। भरत का स्वभाव और शील बिना समझे अनजान में लड़ाई कर बैठने में बहुत बड़े कल्याण की हानि होगी।

व्याख्या : इस समय बड़ा भारी अनर्थ हो चुका था। सगुन के सावधान कर देने से बड़ा भारी अकल्याण रुक गया। सगुन पर ध्यान न देना अभिमान सूचक है। यथा : अति गर्व गनै न सगुन असगुन स्रवहिं आयुध हाथ ते। निषादराज विचार शील थे। बूढे की राय पर विचार किया कि मैने तो जूझने मे ही कल्याण देखा था पर यदि भरत सचमुच मनाने जा रहे हों तो उनके साथ जूझना रामजी का सद्य विरोध हुआ। रामजी के लिए जूझने मे जितना लाभ था उतनी ही हानि राम विरोधी होकर जूझने में है। लोक परलोक दोनो बिगडेगा। संसार मे अपकीर्ति होगी कि बड़ा बेवकूफ था। बिना समझे ही लड़ गया। इससे यह लोक बिगड़ेगा और परलोक भागवत के विरोध से नष्ट हो जायगा।

दो. गहहु घाट भट समिटि सब, लेउँ मरम मिलि जाइ।
बूझि मित्र अरि मध्य गति, तस तब करिहउँ आइ॥१९२॥

अर्थ : सब वीर लोग इकट्ठे होकर घाट पर कब्जा किये रहो। मैं मिलकर भेद लेने जाता हूँ। शत्रु मित्र और उदासीन भाव का पता लगाकर फिर जैसा उचित होगा वैसा करूँगा।

व्याख्या : निषादराज अपने वीरों को आज्ञा दे रहे है कि सब लोग सिमिट-कर घाट पर कब्जा जमाये रहो बाजा बजते क्या देर लगेगी। मै जाकर भरतजी से मिलकर पता लगाये लेता हूँ कि उनका भाव क्या है? रामजी का विरोध इनके

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हृदय मे है कि मित्र भाव है कि उपेक्षा है। यदि मित्र होगे तो सेवा करूँगा। विरोधी होगे तो युद्ध करूँगा। यदि उनकी उपेक्षा दृष्टि होगी तो मैं भी उदासीन रहूँगा।

लखब सनेहु सुभाय सुहाएँ। बैरु प्रीति नहिं दुरइ दुराएँ॥
अस कहि भेंट सजोवन लागे। कंद मूल फल खग मृग माँगे॥१॥

अर्थ : सुन्दर स्वभाव से प्रेम पहिचाना जायगा। वैर और प्रीति छिपाने से नही छिपती। इतना कहकर भेंट की तैयारी करने लगे। कन्द मूल फल पक्षी और मृग मँगाये।

व्याख्या : मित्र अरि और मध्यगति के समझने मे कोई कठिनता नही है। सुन्दर स्वभाव से ही प्रेम की परख हो जाती है। प्रेमी का ही सुन्दर स्वभाव सम्भव है। फिर वैर और प्रीति ऐसे प्रवल भाव हैं जो यत्नपूर्वक छिपाने से भी नही छिपते। जो स्वभाव और चेष्टा से मनोगत भाव नही लख सकता वह भेंट के पसन्द से क्या लखेगा? रिक्तपाणिर्न पश्येत राजानं भिषज गुरुम्। अतः भेंट की व्यवस्था करने लगे।

ईंधन घात किरात मिताई के अनुसार भेंट की तैयारी होने लगी। यद्यपि मङ्गल कार्य मे जलभाजन मे रखकर ही मछलियाँ लायी जाती हैं और केलि मृग पक्षी भी भेंट मे जाते हैं पर यहाँ ऐसा नही मालूम होता। सेना मे सब प्रकार के लोग होते हैं। राजसिक और तामसिक वृत्ति का तो यह आहार ही है। अत: उनके लिए भी शास्त्र मे देव पितृ अर्चन पूर्वक ही खाने का विधान है। निषादराज सात्त्विको के सत्कार के लिए कन्द मूल फल, राजसिक के लिए खग मृग इकट्ठा कर रहे हैं।

मीन पीन पाठीन पुराने। भरि भरि भार कहारन्ह आने॥
मिलन साजु सजि मिलन सिधाए। मंगल मूल सगुन सुभ पाए॥२॥

अर्थ : कहाँर लोग पुरानी मोटी मोटी पहिना मछलियो के भार भरकर लाये। मिलने का सामान सजकर मिलने चले तो मङ्गल मूल शुभ शकुन मिले।

व्याख्या : शास्त्रो मे मछली खाने की बडी निन्दा है। मत्स्याद सर्वमांसादः। जिसने मछली खायी वह सब मास खा चुका। अतः मछली घोर तामसिको का आहार है। अत. उनके लिए मछलियाँ आयी। यद्यपि कहाँर निषाद की अपेक्षा उच्च जाति के हैं पर बहँगी ढोना उन्ही का काम है। यथा : कोटिन्ह काँवर चले कँहारा।

निषादराज ने मिलने का साज सजा अर्थात् तर्कस धनुष और सन्नाह कवच उतार दिया। और स्वजात्यनुकूल वस्त्र भूषादि से सुसज्जित होकर तथा उपहारादि लेकर मिलने गया। लडने की तैयारी के समय छीक बायें हुई। पर मिलने चले तो मङ्गल मूल शुभ शकुन हुए। दधि दुर्वा रोचन फल फूला। नव तुलसी दल मंगल मूला। ये ही मङ्गलमूल शकुन हैं। इन्ही का मिलना मङ्गलमूल शुभ शकुनो का मिलना है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



देखि दूरि ते कहि निज नामू। कीन्ह मुनीसहि दंड प्रनामू॥
जानि रामप्रिय दीन्हि असीसा। भरतहि कहेउ बुझाइ मुनीसा॥३॥

अर्थ : दूर से ही मुनिराज को देखकर अपना नाम कहकर दण्डवत् किया। राम का प्यारा जानकर आशीर्वाद दिया और मुनिराज ने भरत को समझाकर कहा।

व्याख्या : पहिले ही मुनिराज के दर्शन हुए। यथा : अरुंधती अरु अगिनि समाजू। रथ चढ़ि चलत भये मुनिराजू। सो निषादराज ने उनसे दूर से ही साष्टाङ्ग प्रणाम किया। जिसमे छाया न छू जाय। यथा : जासु छांह छुइ लेइय सींचा। अपना नाम परिचय के लिए कहा। अर्थात् नामग्रहण पूर्वक प्रणाम किया।

गुरुजी ने नाम सुना था कि निषादराज रामजी का प्रेमी है और सरकार भी उस पर प्रेम करते है। अत मुनिराज ने आशीर्वाद दिया। मुनिराज के रथ के बाद ही भरतजी का रथ है। माताजी की आज्ञा से जब रथ पर सवार हुए तो रथ अन्य रथियो के पीछे नही रह सकता। सो गुरुजी ने कहा :

यह निषाद पति सुहृद अति, रघुपति सखा सुजान।
निरखि सेन सचित सजग, कीजिय याको मान॥

राम सखा सुनि स्यंदनु त्यागा। चले उतरि उमगत अनुरागा॥
गाउँ जाति गुह नाम सुनाई। कीन्ह जोहारु माथ महि लाई॥४॥

अर्थ : यह सुनते ही कि यह रामजी का सखा है। भरतजी रथ से उतर पडे और अनुराग से उमगते हुए उसकी ओर चले। गुह ने गाँव जाति और नाम सुनाकर पृथ्वी पर सिर रखकर जोहार किया।

व्याख्या : राम सखा से भाव यह कि सरकार की बराबरी का दर्जा है। अत: भरतजी ने उसके आदर के लिए रथ का त्याग किया और पैदल चल पडे। क्योंकि निषादराज दूर पर थे। यथा : देखि दूरि ते कहि निज नामू। कीन्ह मुनीसहि दंड प्रनामू। चलते समय हृदय मे अनुराग उमगा पडता था।

अपनी ओर भरतजी को बढते देखकर निषादराज ने पहिले ही अपने निवासस्थान का परिचय दिया। जिसमे समझ जाँय कि यह निषादो के गाँव का रहनेवाला निषाद है। अस्पृश्य है। फिर भी भरतजी नही रुके। तब स्पष्ट रूप से जाति की घोषणा की। तत्पश्चात् नाम भी सुना दिया। उसे भ्रम हुआ कि मुनीशजी से जो मैने कहा है उसे शायद भरतजी नही सुन सके। इसलिए उसने इस बार जोर से कह सुनाया। पर भरतजी आगे बढते ही गये। तब पृथ्वी पर सिर रखकर जोहार करता है। जिसमे स्पष्ट हो जाय कि यह अछूत है। मुनिजी को दण्डवत् किया। भरतजी को जोहार करता है। राजा लोगो को दोनो हाथ उठाकर प्रणाम किया जाता है। जिसे जोहार कहते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


दो करत दडवत देखि तेहि, भरत लीन्ह उर लाइ ॥
मनहु लषन सन भेंट भइ, प्रेम न हृदय समाइ ॥१९३॥

अर्थ उसे दण्डवत् करते देखकर भरतजी ने छाती से लगा लिया। मानो लक्ष्मणजी से भेंट हुई है। हृदय मे प्रेम नही समाता था।

व्याख्या प्रेम के उमङ्ग का अवसान तो हृदय लगाने पर ही होता है। भरतजी ने निषादराज को हृदय से लगा लिया और इतने अनुराग से गाढालिङ्गन किया मानो लक्ष्मणजी से भेंट हुई हो। फिर भी हृदय मे प्रेम नही समाता पुलक के मिससे प्रकट हो रहा है। लक्ष्मणजी पर भरतजी का साधारण प्रेम नही है। यथा सोक समाजु राजु केहि लेखे। लखन रामसियपद बिनु दखे। लक्ष्मणजी सा प्रेम होने का कारण यह कि इसका भी त्याग श्रीरामप्रीत्यर्थं वैसा ही है जैसा लक्ष्मणजी का है। यथा देव घरनि धनु धामु तुम्हारा। मैं जन नीच सहित परिवारा।

भेटत भरत ताहि अति प्रीती। लोग सिहाहिं प्रेम कै रीती ॥
धन्य धन्य धुनि मगल मूला। सुर सराहि तेहि वरसहि फूला ॥१॥

अर्थ भरतजी उसे बडे प्रेम से भेंटे। लोग ईर्ष्या करने लगे। यह प्रेम की रीति है। देवता लोग मङ्गलका मूल धन्य धन्य ध्वनि करके उसकी बडाई करते हैं और फूलो की वर्षा करते हैं।

व्याख्या प्रेम वस्तु ही ऐसी है जिसमे नीच ऊँच का विचार रह नही सकता। प्रेम के प्रवाह म भेद बह जाता है। निषादराज ने सरकार से कहा था कि थापिअ जनु सब लोग सिहाऊ। सो भरतलाल ने उसे स्थापन कर दिया और लोग भी इस प्रेम की रीति का डाह करने लगे कि वाह रे! निषादराज का भाग्य।

नीचे लोग सिहाते हैं। ऊपर देवता सराहते हैं। बार बार उसे धन्य कहते हैं। देवताओ की धन्य धन्य ध्वनि मङ्गल मूल है। निषादराज साधारण धन्य नही हुए। देवपूजित हो गये। देवताओ ने उन पर पुष्पवर्षा की। ऐसी स्थापना हुई कि देवताओ ने फूल चढाया।

लोक वेद सब भाँतिहि नीचा। जासु छाँह छुइ लेइअ सीचा ॥
तेहि भरि अक राम लघु भ्राता। मिलत पुलक परिपूरित गाता ॥२॥

अर्थ जो लोक म और वेद मे सब भाँति नीच था। जिसकी छाया छू जाने से मार्जन का विधान है उसी से रामजी के छोटे भाई पुलकित होकर छाती से लगाकर मिल रहे हैं।

व्याख्या लोक मे नीच। यथा हम जड जीव जीवगन घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती। पाप करत निसि बासर जाही। नहिं पट कटि नहिं पेट अघाही। यह हमारि अति बडि सेवकाई। लेहिं न बासन बसन चोराई। इस भाँति लोक म नीच हुआ। य इह कपूयाचरणा अभ्याशो हयत्ते कपूया योनिमापद्येरन्

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



श्वयोनिं सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा। इस भाँति निषाद होने से वेद में भी अपूय नीच योनि कहा गया। उसकी छाया के स्पर्श से मार्जन का विधान है। उसे स्पर्श करने की कौन चलावै ?

सो रामजी के छोटे भाई उसे अङ्क भरके हृदय लगा रहे है और प्रेम से ऐसे परिपूर्ण है कि सर्वाङ्ग मे रोमाञ्च हो रहा है। रामजी के छोटे भाई कहने का भाव यह है कि जिसके विषय मे स्वयं वसिष्ठजी कहते है कि समुझव कहव करव तुम्ह जोई। धर्मसारु जग होइहि सोई।

राम राम कहि जे जमुहाही। तिन्हहि न पाप पुंज समुहाही ॥
यह तौ राम लाइ उर लीन्हा। कुल समेत जग पावन कीन्हा ॥३॥

अर्थ : जो राम राम कहकर जँभाई लेते हैं पापो के समूह उनका सामना नही करते। इसे तो रामजी ने हृदय से लगा लिया और कुल के सहित जगत मे पवित्र कर दिया।

व्याख्या : जो राम कहकर जँभाई लेते हैं : भाव यह कि जो आलस्य से भी रामनामोच्चारण करते हैं उनका सामना करने का सामर्थ्य पापपुञ्ज को भी नही। क्योकि उनका सामना पड़ते ही नष्ट हो जाते है। नाम्नोऽस्ति यावती शक्तिः पापनिर्दहने हरेः। तावत् कर्तुं न शक्नोति पातक पातकीजन । आलस्य से जपना। यथा : भाव कुभाव अनख आलसहूँ। राम जपत मगल दिसि दसहूँ।

भरतजी के हृदय लगाने से ही रामजी का हृदय लगाना हो गया। यथा : तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ। भरतहिं मोहि कछु अतर काऊ। पहिले ही यदि रामजी हृदय लगाये होते तो भरतजी के हृदय लगाने पर देवताओं की पुष्प वर्षा इस समय न होकर उस समय होती सो वहाँ मिलना भी नही कहते। यथा : लिए फल मूल भेंट भरि भारा। मिलन चलेउ हिय हरखु अपारा। करि दडवत भेट धरि आगे। प्रभुहि विलोकत अति अनुरागे। देवता लोग कहते हैं कि अब यह कुल समेत ससार मे पवित्र हो गया। भरतजी ने जब इसे हृदय से लगा लिया तो रामजी लगा चुके। लोक मे यह जनश्रुति है कि रामजी के जल ग्रहण कर लेने से मल्लाहो की गिनती सत्शूद्रो मे हो गयी। इनका पानी चलने लगा।

करमनास जलु सुरसरि परई। तेहि को कहहु सीस नहिं धरई ॥
उलटा नामु जपत जग जाना। वालमीकि भए ब्रह्म समाना ॥४॥

अर्थ : कर्मनाशा का जल गङ्गाजी मे गिरता है। तो उसे कौन सिर पर नही चढाता। ससार जानता है कि उलटा नाम जपते-जपते वाल्मीकि जी ब्रह्म के तुल्य हो गये।

व्याख्या : जनश्रुति है कि कर्मनाशा का जल स्पर्श करने से कर्म का नाश हो जाता है। इसलिए कर्मनाशा का जल कोई छूता नही। परन्तु कर्मनाशा जाकर गङ्गाजी मे मिल गयी है। उसके जल के अनवरत गङ्गा मे गिरते रहने पर भी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



गङ्गाजल में अशुचिता नही आती। उसे सभी पापनाश के लिए सिर पर धारण करता है। अर्थात् जिसे सरकार ने अपना लिया वही पूज्य हो जाता है। उसके जाति आदि का विचार नही किया जाता। पर यह निश्चय हो जाना चाहिए कि रामजी ने अपना लिया। यथा :

जाको हरि दृढ करि अग करयौ।
सोई सुसील पुनीत वेद विद विद्या गुननि भरयौ॥
उतपति पांडु सुतन की करनी सुनि सत पथ डरयौ।
ते त्रैलोक्य पूज्य पावन जस सुनि सुनि लोक तरयौ॥
जो निज धर्म वेद बोधित सो करत न कछु बिसरयौ।
विनु अवगुन कृकलास कूप मज्जित कर गहि उघरयौ॥
ब्रह्म विसिख ब्रह्माण्ड दहन क्षम गर्भ न नृपति जरयौ।
अजर अमर कुलिसहु नाहिन वध सो पुनि फेन मरयौ॥
विप्र अजामिल अरु सुरपति ते कहा जो नहिं विगरयौ।
उनको कियो सहाय बहुत उर को सताप हरयौ॥

वाल्मीकिजी का उलटा नाम जप करना जगत् प्रसिद्ध है। उलटा जप का फल भी उलटा होना चाहिए। नाम के संसर्ग से उलटा जप भी महा फलदायक हुआ। वाल्मीकिजी ब्रह्म के समान हुए और उनकी वाणी वेद के समान हुई। यथा : वेदः प्राचेतसादासीत् साक्षात्रामायणात्मना।

दो. स्वपच सबर खस जवन जड़, पाँवर कोल किरात।
रामु कहत पावन परम, होत भुवन विख्यात ॥१९४॥

अर्थ : चाण्डाल खश मूर्ख यवन नीच कोल किरात आदि सभी राम नाम के कहने से पवित्र होकर संसार में विख्यात हो जाते हैं।

व्याख्या : वाल्मीकिजी उदाहरण मात्र हैं। नियम यही है कि नीच भी राम कहने से परम पवित्र और भुवन विख्यात हो जाते हैं। स्वपच यवन आदि कहने से वेदबाह्यलोग अभिप्रेत हैं। अर्थात् जो जन्म से अपावन हैं वे भी पावन हो जाते हैं और उनकी ससार मे ख्याति हो जाती है। कोई उनकी जाति का परवाह नही करता। इस प्रकार शास्त्र और लोक दोनों से शुद्धि कही।

नहि अचरज जुग जुग चलि आई। केहि न दीन्ह रघुवीर बड़ाई॥
राम नाम महिमा सुर कहही। सुनि सुनि अवध लोग सुखु लहही ॥१॥

अर्थ : आश्चर्य की बात नही है। यह प्रथा तो युग युग से चली आती है। रामजी ने किसे बड़ाई नही दी? राम नाम की महिमा देवता लोग कहते थे और सुन सुनकर अवधवासी सुखी होते थे।

व्याख्या : अनहोनी बात का हो पड़ना आश्चर्य है। पहिले बड़ा संशय हुआ कि लोक वेद सब भाँति से जो नीच है उससे इस भाँति भरतजी मिलते हैं। यह

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



क्या बात है ? फिर उस सशय का निरसन भी स्वय ही करते हैं कि जो बात सदा से होती चली आयी हो उसके होने मे आश्चर्य नही है। यथा संतत दासन्ह देहु बडाई। जो बड होत सो राम बडाई। सदा से ही भगवान् दासो को बडाई देते हैं। यह भी सरकार का अनन्य दास है। अत उस नाते से इसे बडाई मिल रही है। जो जाति मे बडे कहलाते हैं उन्हे ही बडाई कहाँ से मिली ? जिसने उन्हे बडाई दी थी वही निपादराज को भी बडाई दे रहा है।

राम की और नाम की महिमा देवगण आकाश मे वर्णन कर रहे हैं। सुर सराहि तेहि वरपहि फूला से उपक्रम और राम नाम महिमा सुर कहही से उपसहार। देवता कह रहे है और अवधवासी श्रवण कर रहे हैं। इससे उन्हे सुख हो रहा है। यथा हम सम पुण्य पुज जग थोरे। जिन्हहि राम जानत करि मोरे। देवताओ का सङ्कल्प है कि अवधवासी सुनें। अत सुन रहे हैं, नही तो आकाश मे कही हुई बात पृथ्वी पर क्यो सुनाई देने लगी ?

राम सखहि मिलि भरतु सप्रेमा। पूछी कुसल सुमगल पेमा ॥
देखि भरत कर सीलु सनेहू। भा निपाद देहि समय बिदेहू ॥२॥

अर्थ रामजी के सखा के साथ सप्रेम मिलकर भरतजी ने कुशल मङ्गल और क्षेम पूछा। भरतजी का शील और स्नेह देखकर निपादराज उस समय देह की सुधि भूल गये।

व्याख्या मिलन प्रसङ्ग पूरा करके फिर कथा प्रसङ्ग प्रारम्भ करते हैं। सप्रेम शब्द देहली दीपक न्याय से दोनों ओर लगेगा। अर्थात् सप्रेम मिलकर कुशलादि सप्रेम पूछा। कुशल शब्द से विघ्नराहित्य अभिप्रेत है। यथा बूझब राउर सादर साईं। कुसल हेतु सो भयउ गोसाईं। मङ्गल से इष्ट प्राप्ति और पेम से इष्ट सरक्षण के विपय मे प्रश्न किया। अर्थात् योगक्षेम पूछा।

निपादराज भरतजी के शील स्नेह का पता लगाने चले थे। सो उनका शील स्नेह देखकर स्तब्ध हो गये। उन्ह अपने देह की सुधि न रह गयी। शील देखा कि राम सखा सुनि स्यन्दनु त्यागा और स्नेह देखा भरत लीन्ह उर लाइ। मनहु लखन सन भेंट भइ। प्रेम न हृदय समाइ। मन मे भी यह बात न आयी थी कि भरतजी मे इतना शील स्नेह होगा। अत आश्चर्य और प्रेम मे डूबाडूब होकर शरीर की सुधि भूल गया।

सकुच सनेहु मोद मन बाढा। भरतहि चितवत एकटक ठाढा ॥
धरि धीरज पद बदि बहोरी। बिनय सप्रेम करत कर जोरी ॥३॥

अर्थ मन मे सङ्कोच प्रेम और आनन्द बढ गया और खडा खडा एकटक भरतजी को देखने लगा। धैर्य धारण करके फिर चरणो मे प्रणाम किया और प्रेम के साथ हाथ जोडकर विनय करने लगा।

व्याख्या निपादराज को अपने पूर्वकृत सन्देह पर सङ्कोच हुआ। शील

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



देखकर भरतजी पर स्नेह बढ़ा और स्वभाव देखकर मन मे मोद हुआ। भरतजी कुशल पूछते हैं। उसका उत्तर देना चाहिए। परन्तु निषादराज भरतजी के गुणो को देखकर स्तब्ध हैं और प्रेम के उल्लास से भरतजी को एकटक देख रहे हैं। उत्तर देते नही बनता।

अतः धैर्य धारण किया। पहिले प्रेम से धैर्य छूट गया था। सो मनसा : धरि धीरज, कर्मणा : पद वदि और वचसा : वचन सप्रेम कहत कर जोरी। सप्रेम प्रेम हुआ था। यथा : सप्रेमा, पूछी कुसल सुमंगल पेमा। अतः विनय सप्रेम करत कर जोरी। यह दूसरी वन्दना उत्तर देने के समय की है।

कुसल मूल पद पंकज पेखी। मै तिहुँ काल कुसल निज लेखी ॥
अब प्रभु परम अनुग्रह तोरे। सहित कोटि कुल मंगल मोरें ॥४॥

अर्थ : श्रीचरण ही कुशल के मूल हैं। उनका दर्शन करके मैंने तीनों काल ः अपना कुशल निश्चय कर लिया। प्रभो! अब आपकी कृपा से कोटि कुल के सहित मेरा मङ्गल है।

व्याख्या : कुशल पूछने का उत्तर निषादराज देते है कि अब तो मै कुशल के मूल : जड़ तक पहुँच गया। नही तो : तब लगि कुसल न जीव कहुँ सपनेहुँ मन विश्राम। जब लगि भजत न राम कहु सोक धाम तजि काम। पूर्व काल मे कुशल था। इसलिए चरणों का दर्शन हुआ। इस समय भी कुशल है। दर्शन कर रहा हूँ और भविष्य मे भी इन्ही चरणों के प्रताप से कुशल होगा।

मङ्गल पूछने का उत्तर निषादराज देते हैं कि दर्शन के बाद जो अनुग्रह हुआ उससे करोड़ों कुल के साथ मेरा मङ्गल हुआ। मेरी पूरी जाति पावन हो गयी। यथा : कुल समेत जग पावन कीन्हा। यथा : नभ सराहि सुर बरषहिं फूला।

दो. समुझि मोरि करतूति कुल, प्रभु महिमा जिअ जोइ।
जो न भजइ रघुबीर पद, जग बिधि बंचित सोइ ॥१९५॥

अर्थ : मेरे कूल और करतूति को समझकर और प्रभु की महिमा देखकर जो रघुवीर के चरण को न भजे वह ससार मे विधाता द्वारा ठगा गया।

व्याख्या : अब क्षेम का उत्तर देते है। कुल और करतूति दोनो मलिन हैं। यथा : जासु छाँह छुइ लेइय सीचा। हम जड़ जीव जीवगन घाती। कपटी कायर कुमति कुजाती और सरकार की महिमा का पारावार नही। यथा : भरत महा महिमा जल रासी। मुनि मति तीर ठाढ़ि अबलासी। इन दोनो बातों को जो देखेगा वह सब रघुवीर के पद को भजेगा। मैं भी भजूँगा। जो न भजे वह नृपशु है। मनुष्य शरीर देकर ब्रह्मदेव ने उसे ठग लिया। वह मनुष्य शरीर मे पशु ही है। आहार निद्रा भय मैथुन मे लगा है। उसे कुछ भी विवेक नही है। रघुवीर पद भजने से ही क्षेम होता है। यथा : राम विमुख सपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कपटी कायरु कुमति कुजाती। लोक बेद बाहेर सब भाँती॥
राम कीन्ह आपन जबही ते। भयेउँ भुवन भूषन तबही ते॥१॥

अर्थ कपटी कादर कुबुद्धि और कुजाति हूँ। सब भाँति लोक वेद से बाहर हूँ। पर जब से रामजी ने मुझे अपना कर लिया तभी से मैं संसार का भूषण हो गया।

व्याख्या निषादराज कहते हैं न मेरा स्वभाव अच्छा, न हृदय अच्छा, न बुद्धि अच्छी और न जाति अच्छी, स्वभाव से कपटी, हृदय से कादर, बुद्धि तामसी और जाति से निषाद। मेरे स्वभाव में कपट है। उसका आरोप भरतजी ऐसे महासाधु पर किया। यथा कारन कवन भरत बन जाँही। है कछु कपटभाव मन माँही। हृदय मेरा कादर है। युद्ध के लिए तैयार भी हुआ तो जाति भाइया के भरोसे। फिर भी अधीर हो उठा। जाति भाइयो ने कहा बीर अधीर न होहि। मैने अधर्म का धर्म माना। भरतजी ऐसे महा भागवत से युद्ध करने का सकल्प किया। इससे मेरी बुद्धि तामसी। अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता। सर्वार्थान् विपरीताश्च बुद्धि सा पार्थ तामसी। मेरी जाति पापमय है। राजा वेणु की जघा के मन्थन से जो पाप पुरुष उत्पन्न हुआ वही हमारा मूल पुरुष है। उसी से निषाद जाति हुई। कहा भी है कि अधम को वेनु समान।

मुझे न लौकिक कर्म समाज प्रवेश का अधिकार और न वैदिक कर्म यज्ञादि साधनो का अधिकार। अत हम लोक और वेद दोनो से बहिष्कृत हैं। कोई मुझसे सम्पर्क रखना नही चाहता। परन्तु जब से रामजी ने मुझे अपना लिया मेरे देव धरनि धन धाम तुम्हारा। मै जन नीच परिवारा। कहकर आत्मनिवेदन करने पर सरकार ने कहेउ सत्य सबु सखा सुजाना। कहकर स्वीकार कर लिया। इतना ही नही आतिथ्य भी स्वीकार किया। तब से तो मैं भुवन का भूपण हो गया। सब लोग मेरी ऐसी चाह करने लगे जैसी आभूषण की चाह करते हैं। अर्थात् अब मेरे साथ से लोग अपने को कृतकृत्य मानने लगे।

देखि प्रीति सुनि बिनय सुहाई। मिलेउ बहोरि भरत लघु भाई॥
कहि निषाद निज नामु सुबानी। सादर सकल जोहारी रानी॥२॥

अर्थ प्रीति देखकर और सुन्दर विनय सुनकर फिर भरतजी के छोटे भाई मिले। मीठी वाणी से अपना नाम ले लेकर उसने सब रानियो का आदर से जोहार किया।

व्याख्या भरतजी के छोटे भाई शत्रुघ्नजी तत्पश्चात् मिले। यहाँ बहोरि शब्द तत्पश्चात् के अर्थ मे आया है। भरतजी के मिलने के बाद इन्हे कुछ देखने सुनने की आवश्यकता नही थी। पर भरतजी तो साक्षात् गुरु आज्ञा से मिले। शत्रुघ्नजी को कोई ऐसी आज्ञा नही थी। अत शत्रुघ्नजी को देखने सुनने की आवश्यकता पडी। उन्होने निषादराज की प्रीति आँखो देखा। यथा सकुच सनेह

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मोद मन बाढा। भरतहि चितवत एकटक ठाढा। और सुन्दर विनय जो ऊपर लिखी गयी हैं कानों से सुना। अतः उसे आदर का पात्र जानकर उससे मिले।

तत्पश्चात् जिस भाँति मुनिजी को दण्डवत् दूर से अपना नाम सुनाकर किया था उसी भाँति सुन्दर वाणी से अपना नाम सुना सुनाकर सब रानियों का आदर से जोहार किया। जोहार : कर्मणा। सादर : मनसा। निज नाम सुबानी : वचसा।

जानि लखन सम देहिं असीसा। जिअहु सुखी सय लाख बरीसा॥
निरखि निषाद नगर नर नारी। भए सुखी जनु लखनु निहारी॥३॥

अर्थ : लक्ष्मण के समान जानकर रानियाँ आशीर्वाद दे रही हैं कि तुम सौ लाख बरस तक जीओ और सुखी रहो। निषादराज को देखकर नगर नर नारी ऐसे सुखी हुए मानो लक्ष्मण को देख पाया हो।

व्याख्या : संसार रानियों को जोहार करता है। पर रानियाँ सबको आशीर्वाद इस भाँति देती नहीं फिरती। अपने अति प्यारे पुत्रादि को ही आशीर्वाद देती है। पर निषादराज को सब ओर से आशीर्वाद इस भाँति दे रही हैं जैसे लक्ष्मणजी के प्रणाम करने पर माताएँ जिन शब्दों में आशीर्वाद देती थीं। सुखी होने का आशीर्वाद देती थीं और दीर्घायु का आशीर्वाद देती थीं। सौ लाख वर्ष यहाँ चिरकाल का बोधक है अथवा कीर्तियुक्त जीवन व्यतीत करने का आशीर्वाद देती थीं। यथा : कीर्तिर्यस्य स जीवति।

नगर नर नारी ने भी वैसा ही मान लिया। क्योंकि भरतजी ने उसी भाव से उसका सत्कार किया था। लक्ष्मणजी पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे थे। अत प्रिय के दर्शन से जैसे सुखी होते थे वैसे हुए। इसका आदर भरतजी माताओं और प्रजावर्ग की ओर से लक्ष्मणजी का सा हो रहा है। क्योंकि इसकी भक्ति उसी प्रकार की है। यह भी लक्ष्मणजी के समान रामजी के लिए प्राण निछावर करने को प्रस्तुत हैं।

कहहिं लहेउ एहिं जीवन लाहू। भेंटेउ रामभद्र भरि बाहू॥
सुनि निषादु निज भाग बड़ाई। प्रमुदित मन लै चलेउ लेवाई॥४॥

अर्थ : कहने लगे कि जीने का लाभ इसने पाया। रामजी के भाई ने इसे भुजा भरकर भेटा। निषादराज अपने भाग्य की बड़ाई सुनकर प्रसन्नचित्त होकर सबको लिवा ले चला।

व्याख्या : सब कहने लगे कि इसने जीने का लाभ प्राप्त कर लिया। क्योंकि रामजी के भाई इससे भुजा पसारकर मिले। यदि रामभद्र पाठ माना जाय तो अर्थ करना होगा कि रामजी ने इसको परिष्वङ्ग दिया ' रामभद्र का प्रयोग रामजी के लिए कवि ने कहीं किया नहीं। लक्ष्मणजी ने जीवन लाभ पाया है। यथा : जीवन लाहु लखन भल पावा। सब तजि राम चरन मन लावा। भरतजी लक्ष्मण के समान

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मानकर मिले। अत सब इसे लक्ष्मण के समान मान रहे हैं। इस प्रकार का मतैक्य अयोध्या मे चलता है।

अयोध्यावासियो के मुख से अपनी बडाई सुनकर निपादराज प्रमुदित हैं। क्योकि अयोध्यावासी सरकार को अति प्रिय हैं। यथा अति प्रिय मोहि इहाँ के वासी। जब रामजी के प्रिय किसी के भाग्य की बडाई करें तभी उसे भाग्यवान् समझना चाहिए। सर्व साधारण की बडाई का कोई मूल्य नही है। भलो कहै बिनु जाने ही बिनु जाने अपवाद। सो नर गादुर जानि जिअ करिअ न हरख बिपाद।

दो सनकारे सेवक सकल, चले स्वामि रुख पाइ।
घर तरु तर सर बाग बन, बास बनाएन्हि जाइ ॥१९६॥

अर्थ सब सेवको को इशारा किया। वे स्वामी का रुख पाकर चले। उन्होने घरो मे वृक्षो के नीचे तालाबो पर बगीचो और जगलो मे सबके ठहरने के लिए डेरे सँवारे।

व्याख्या निपादराज ने कहा था - देखि मित्र अरि मध्यगति तब तस करिहौं आइ। सो सबको लिवाकर निपादराज आगे आगे आ रहे हैं। इससे मित्र होना स्पष्ट हो गया और यह भी स्पष्ट हो गया कि निपादराज इनका आतिथ्य सत्कार करेंगे। अब इशारा पाकर उनके रुख से समझ गये कि टिकाने का बन्दोबस्त होना चाहिए। अत घाट को छोडा और टिकाने की व्यवस्था मे लग गये। सेना बडी है। सबके टिकाने का काम साधारण नही है। अत प्रधान लोगो के लिए घर मे दूसरो को गाँव मे औरो को पेड तले सैनिको का ग्राम के बाहर सर बाग वन मे डेरे सँवारे।

सृ गबेरपुर भरत दीख जब। भे सनेह बस अग सिथिल तब ॥
सोहत दिए निपादहि लागू। जनु धनु धरे बिनय अनुरागू ॥१॥

अर्थ जब भरतजी ने शृङ्गवेरपुर को देखा तब प्रेमवश अङ्ग ढीले पड गये। निपादराज को टेके हुए ऐसे शोभित हैं मानो विनय और अनुराग ने धनुप धारण कर रक्खा हो।

व्याख्या सरकार ने जब से अयोध्या से प्रस्थान किया तब से शृङ्गवेरपुर मे ही फल मूल भोजन किया। यही सोये। यही जटा बनायी। यही से वन चले। यथा सो जामिनि सिगरौर गँवाई। अत शृङ्गवेरपुर के देखने से सरकार की स्मृति अति अधिक रूप मे हुई। स्नेह के वश हो गये। अपने वश मे नही रह गये। अत अङ्ग ढीले पड गये।

ऐसी शिथिलता हुई कि सहारा लेने की आवश्यकता हुई तो निपादराज का सहारा लिया। उसके हाथ मे हाथ दिये चले जा रहे हैं। भरतजी मानो अनुराग की मूर्ति हैं और निपादराज इस समय विनय की मूर्ति हो गये। हाथ से हाथ मिलने की उपमा आकृति साम्य से धनुप के साथ दिया। विनय अनुराग का धनुप धारण

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



करना उनके उस समय प्रबल होने का द्योतक है। यहाँ भरतजी की उपमा अनुराग से और निषाद की उपमा विनय से दिया। तनु धरे पाठ मानने से यह अर्थ करना पडेगा कि मानो विनय और अनुराग ने शरीर धारण कर लिया है।

एहि विधि भरत सेनु सबु संगा। दीख जाइ जग पावनि गंगा ॥
रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू। भा मनु मगनु मिले जनु रामू ॥२॥

अर्थ इस विधि से भरत ने सेना के साथ जाकर जगत् को पवित्र करनेवाली गङ्गाजी का दर्शन किया। रामघाट को प्रणाम किया। मन ऐसा मग्न हुआ मानो रामजी मिल गये।

व्याख्या भरतजी निषादराज से मिलने के बाद फिर रथ पर सवार नही हुए और भरतजी के पैदल चलने से सारा समाज पैदल चला। तीर्थ के निकट सवारी पर चलना निषिद्ध है। यथा गिरिवर दीख जनक नृप जबही। करि प्रनाम रथ त्यागेउ तबही। अत सब पैदल चले। पहिले शृङ्गवेरपुर दिखायी पडा और उसके बाद ही गङ्गाजी दिखायी पडी। जगपावनि कहने से सर्वतीर्थमयी गङ्गा कहा। यथा समृद्ध सौभाग्य सकलवसुधाया।

अब जहाँ सरकार ने स्नान किया था उसका नाम रामघाट पड गया था। यथा उतरे राम देवसरि देखी। कीन्ह दडवत हरष बिसेखी। वह स्थल रामजी से अधिक पवित्र हो गया। विरह दशा म प्रेमास्पद के अङ्ग से लगी हुई वस्तु भी उसी की भाँति प्रिय मालूम होती है। अत भरतजी का मन मगन हो गया। मानो राम ही मिल गये। पहिले सवारी से उतरना कहा। तत्पश्चात् दर्शन कहा अब सप्रेम प्रणाम कहते हैं।

करहिं प्रनाम नगर नर नारी। मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी ॥
करि मज्जनु मॉगहि कर जोरी। रामचद्र पद प्रीति न थोरी ॥३॥

अर्थ नगर के नर नारी ब्रह्ममय वारि का दर्शन करके हर्षित होकर प्रणाम करते हैं। स्नान करके हाथ जोडकर मॉगते हैं कि रामचन्द्र के चरणो मे अधिक प्रेम हो।

व्याख्या भरतजी का प्रणाम कहकर अब पुरवासियो का प्रणाम कहते हैं कि नगर के नर और नारी सभी प्रणाम कर रहे हैं। भावना यह है कि गङ्गा जल जल नहीं है। स्वय ब्रह्म ही द्रवीभूत होकर जल रूप से विद्यमान है। अत गङ्गा का दर्शन ब्रह्मसाक्षात्कार है और स्पर्श ब्रह्मस्पर्श है। गोलोक मे भगवान् वासुदेव स्वयं द्रवीभूत होकर गङ्गारूप म वह चले। ऐसी कथा गर्ग सहिता मे है। इसीलिए गङ्गाजी की उपासना नीराकार ब्रह्म की उपासना है।

दर्शन और प्रणाम के बाद मज्जन का विधान है। अत सब स्नान करने लगे। स्नान के बाद गङ्गाजी से प्रार्थना करते हैं। गङ्गाजी मनोरथ पूर्ण करती हैं। ऐसा विश्वास सभी गङ्गातटवासियो को है। सभी मङ्गलकार्य सम्पन्न होने पर गङ्गा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पुजैया होती है। अवधवासियों को एक मात्र यही मनोरथ है कि रामचन्द्र के चरणों मे अनुराग बढे। जितना अनुराग है उतने को वे थोडा मानते है।

भरत कहेउ सुरसरि तव रेनू। सकल सुखद सेवक सुरधेनू॥
जोरि पानि वर माँगउ एहू। सीय राम पद सहज सनेहू॥४॥

अर्थ : भरतजी ने कहा हे सुरसरि ! तुम्हारी रेणु सब कामनाओं को देनेवाली कामधेनु है। हाथ जोडकर यही वर माँगता हूँ कि सीता राम के पद मे सहज स्नेह हो।

व्याख्या : सबने वारि की प्रशंसा की और गङ्गाजी से वरदान माँगा। भरतजी रेणु की प्रशंसा करते हैं। जो दिन रात जल से सम्बद्ध है। कहते हैं कि गङ्गाजी की रेणु सब सुख देनेवाली है और सेवक के लिए तो कामधेनु ही है। जो चाहे वह ले लो। अतः भरतजी कहते हैं कि तब आपकी क्या प्रशंसा की जाय। मैं हाथ जोड़कर यह वर माँगता हूँ कि सीताराम के चरणों में सहज अनुराग हो। जो किसी प्रकार भङ्ग न हो। इसी का विस्तार प्रयागराज से वर माँगने के प्रसङ्ग में है। यथा : जलद जनम भर सुरति विसारउ। जाचत जल पवि पाहन डारउ। चातक रटनि घटे घटि जाई। बढे प्रेम सब भाँति भलाई। यही सहज प्रेम है।

दो. एहि विधि मज्जनु भरत करि, गुरु अनुसासन पाइ।
मातु नहानी जानि सब, डेरा चले लवाइ॥१९७॥

अर्थ : इस विधि से गुरुजी की आज्ञा पाकर स्नान करके और यह जानकर कि सब माताएँ स्नान कर चुकी सबको डेरा पर लिवा ले चले।

व्याख्या : भरतजी ने गुरुजी की आज्ञा लेकर तब स्नान किया। क्योकि पुण्यकार्य की शोभा बिना गुरुपूजन के होती नही। यथा : सुकृत संभुतन विमल विभूती। भरतजी का स्नान सबके पीछे है। देख लिया कि माता लोग भी स्नान कर चुकी। तब सबको डेरे पर लिवा ले चले।

जह तहँ लोगन्ह डेरा कीन्हा। भरत सोधु सबही कर लीन्हा॥
सुर सेवा करि आयसु पाई। राम मातु पहि गे दोउ भाई॥१॥

अर्थ : लोगों ने जहाँ तहाँ डेरा डाल दिया। भरतजी ने सबकी खोज खबर ली। तत्पश्चात् देवार्चन किया। तब आज्ञा पाकर माँ के पास गये।

व्याख्या : निपादराज के सेवको ने तब तक घर तरुतर सर बाग और वन में डेरा के योग्य स्थान बना दिया। निपादराज की सम्मति के अनुसार सब लोगो ने डेरा डाल दिया। अब भरतजी की सावधानी कहते हैं कि सबकी खोज खबर ली। कौन कहाँ ठहरा हुआ है ? किसे क्या चाहिए ? यही खोज खबर लेना है। पहिला काम प्रजा संरक्षण है। सुर सेवा उसके बाद का काम है।

राजा के लिए प्रजा का रञ्जन ही सबसे बड़ी ईश्वर पूजा है। उससे समय

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बचे तो देवार्चन भी करें। अत. भरतजी ने प्रजा की व्यवस्था करके सब देवार्चन किया। राजाओ मे आज भी माँ के पास जाने मे आज्ञा की आवश्यकता रहती है। अतः दासियो द्वारा आज्ञा पाकर तब कौसल्या के पास दोनो भाई गये।

चरन चाँपि कहि कहि मृदु बानी। जननी सकल भरतु सनमानी ॥
भाइहि सौंपि मातु सेवकाई। आपु निषादहि लीन्ह बोलाई ॥२॥

अर्थ : भरतजी ने सब माताओ के पैर दबाकर और मृदु वाणी कहकर उनका सम्मान किया। माता कैकेयी की सेवा भाई को सौंपकर स्वयं निषादराज को बुला लिया।

व्याख्या : आज माताएँ पैदल चली हैं। अत भरतजी सबके पैर दबाते हैं और मदु वाणी कहते हैं। माँ ! आज आपको बडा कष्ट हुआ। पर तीर्थाटन में पैदल चलने का ही माहात्म्य है। इत्यादि बातें भरतजी ने कही।

कैकेयी का त्याग किया है। यथा : तज्यो पिता प्रहलाद बिभीषन बधु भरत महतारी। अतः उसके पास स्वयं सेवा के लिए नही गये। पर यह नही कि सेवा में त्रुटि होने पावे। इसलिए भाई शत्रुघ्न को उनकी सेवा का भार सौंपा। इस भाँति सब व्यवस्था करके तब अपने दु ख सुख की ओर दत्तचित्त हुए। अपनी जलन को कम करने के लिए निषादराज को बुला लिया।

चले सखा कर सों करजोरे। सिथिल सरीरु सनेहु न थोरे ॥
पूँछत सखहि सो ठाउँ देखाऊ। नेकु नयन मन जरनि जुड़ाऊ ॥३॥

अर्थ : सखा के हाथ से हाथ मिलाये हुए चले। शरीर शिथिल हो रहा था। क्योकि स्नेह थोड़ा न था। सखा से पूछते है कि वह स्थान बतलाओ। मैं अपने नेत्र और मन की जलन को कुछ शीतल कर सकूँ।

व्याख्या : सरकार ने निषादराज से सखा का नाता मान रक्खा है। अतः भरतजी भी सखा मान रहे हैं। उनके हाथ से हाथ मिलाये चले। जहाँ चले वहाँ का स्मरण आते ही फिर पहिले की भाँति शरीर शिथिल हो चला। अतः उसी भाँति सखा का सहारा लिए हुए चले। यथा : राम सखा कर दीन्हे लागू।

वह स्थल देखना चाहते हैं जिसका वर्णन आगे करेंगे। अतः सखा से पूछते हैं। क्योंकि उसी ने सरकार का आतिथ्य सत्कार किया है। प्रयोजन यह है कि नयन और मन विरहानल से सन्तप्त हो रहे हैं। यथा : देखे बिनु रघुबीर पद जिय की जरनि न जाय। सो जलन तो सरकार के दर्शन से ही मिटेगी। पर जिस स्थान से सरकार का सम्बन्ध वनगमन के समय हुआ है उसके दर्शन से भी कुछ शान्ति होगी।

जहँ सिय रामु लखनु निसि सोए। कहत भरे जल लोचन कोए ॥
भरत बचन सुनि भयउ बिषादू। तुरत तहाँ लइ गयेउ निषादू ॥४॥

अर्थ : जहाँ सीता राम और लक्ष्मण रात को सोये थे। इतना कहते ही

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नयन गोलक मे जल भर आया। भरतजी के वचन सुनकर निषाद को बडा दुःख हुआ। तुरन्त उन्हे वहाँ ले गया।

व्याख्या : अब भरतजी निषादराज से कहते हैं कि जहाँ श्री सीता रामजी तथा लखनलाल रात को सोये थे उस विश्राम स्थल का मै दर्शन करना चाहता हूँ। पृथ्वी पर ही सोये होंगे। यह बात चित्त पर चढते ही आंखो मे आँसू डबडबा आये। सरकार को सोते देखकर परिजन के साथ निषाद विकल हो गया था। यथा : सोवत प्रभुहि निहारि निषादू। भयउ सपरिजन बिकल बिषादू। अत भरतजी को उसका ध्यान बँधते ही विषण्ण होना प्राप्त ही था।

जब सरकार को सोते देखकर निषाद विकल हुआ तो लखनलाल ने उसे समझाया। लक्ष्मण गीता का उपदेश किया। उसका विषाद जाता रहा। दूसरो को विषादत्याग का उपदेश देने लगा था। यथा : अब सुमत परिहरहुँ बिषादू। सो भरतजी का वचन सुनकर उसे फिर विषाद हो गया। वह तुरन्त भरतजी को वहाँ ले गया। जिसमे जितनी जल्दी इनका ताप कम हो उतना ही अच्छा है।

दो जहँ सिसुपा पुनीत तरु, रघुबर किय बिश्रामु।
अति सनेह सादर भरत, कीन्हेउ दंड प्रनामु ॥१९८॥

अर्थ : जिस अशोकवृक्ष के नीचे रामजी ने विश्राम किया था वहाँ भरतजी ने अत्यन्त आदर और स्नेह के साथ दण्डवत् प्रणाम किया।

व्याख्या : वह स्थल तीर्थपूत हो गया था। यथा : जेहि तरु तर प्रभु बैठहि जाई। करहि कल्पतरु तासु बडाई। और उस वृक्ष के नीचे तो सरकार सोये थे। उसके तीर्थ होने मे सन्देह ही क्या ? जिसकी कृपा से मनुष्य विश्राम का पात्र होता है। यथा : जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदास हूँ। पायेउ परम बिश्राम राम समान प्रभु नाही कहूँ। उस महाप्रभु ने जिस स्थल मे विश्राम पाया उसकी क्या महिमा कही जाय। इसलिए भरतजी ने उस स्थल को अत्यन्त स्नेह और आदर के साथ दण्डवत् प्रणाम किया।

कुस साँथरी निहारि सुहाई। कीन्ह प्रनाम प्रदच्छिन जाई॥
चरन रेख रज आँखिन्ह लाई। बनइ न कहत प्रीति अधिकाई ॥१॥

अर्थ : कुश की सुन्दर चटाई को देखकर जाकर के प्रणाम किया और प्रदक्षिणा की। चरण की रेखाओ के रज को आंखो मे लगाया। प्रीति की अधिकता कहते नही बनती।

व्याख्या : सरकार के शृगवेरपुर आने के समय कह चुके हैं : गुह सँवारि साँथरी डसाई। कुस किसलयमय मृदुल सोहाई। सो वह साथरी आज तक जैसी की तैसी पडी है। जनसबाधवर्जित देश मे वस्तु ज्यो की त्यो पडी रह जाती है। अतः भरतजी ने उस सुन्दर साथरी का दर्शन किया। देखते ही भरतजी समझ गये कि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यही सरकार की शय्या रही है। अत सन्निकट जाकर प्रणामपूर्वक प्रदक्षिणा की जिस भाँति देवताओ की प्रदक्षिणा की जाती है।

उसी साथरी के निकट चरण चिह्न थे। ध्वज कुलिश अङ्कुश कञ्ज के स्पष्ट चिह्न को देखकर भरतजी पहिचान गये कि ये सरकार के चरण चिह्न हैं। चिह्न गम्भीर रेखा के है। अत अब तक स्पष्ट बने हैं। भरतजी सरकार के चरण चिह्न पहिचानते है। जगदम्बा जानकीजी के चरण चिह्न नही पहचानते। क्योकि पलग पीठ तजि गोद हिंडोरा। सिय न दीन्ह पद अवनि कठोरा। पूज्य चरणो के चिह्न भी पूज्य है और प्रिय हैं। अत उनकी धूलियो को आँखो म लगाते है आँखो की जलन कम करने के लिए। यथा नेकु नयन मन जरनि जुडाऊ। उसके स्पर्श से प्रीति ऐसी बढी कि कवि वर्णन करने मे अपनी असमर्थता प्रकट करते हैं।

कनक बिंदु दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीय सम लेखे॥
सजल बिलोचन हृदय गलानी। कहत सखा सन बचन सुबानी॥२॥

अर्थ दो चार सोने के घुँघुरू अथवा सलमा सितारा देखे। सीताजी के समान समझकर सिर पर रख लिया। आँखो मे आँसू और हृदय मे ग्लानि आयी। सखा से सुन्दर वाणी बोल।

व्याख्या रामजी और लक्ष्मणजी तो मुनि वेप म थे। परन्तु भगवती वसिष्ठजी की आज्ञा से राजवेप मे ही थी। उनके साथरी के निकट दो चार सोने के घुँघुरू गिरे हुए थे। अत भरतजी ने तुरन्त जान लिया कि ये भगवती के हैं। अत उन्हे सीताजी के समान जानकर उन्हे सिर पर रख लिया। उनका पृथ्वी पर पडा रहना सहन न कर सके। भरतजी को शृङ्गवेरपुर मे लक्ष्मण राम और जानकीजी तीनो व्यक्तियो से मिखने का सुख हुआ। रामजी से मिलने का सुख यथा राम-घाट कहँ कीन्ह प्रनामू। भे मनु मगनु मिल जनु रामू। लक्ष्मणजी से मिलने का सुख यथा करत दडवत देखि तेहि भरत लीन्ह उर लाइ। मनहु लखन सन भेंट भइ प्रीति न हृदय समाइ। सीताजी से मिलने का सुख यथा राखे सीस सीय सम लखे।

अब भरतजी की दशा कहते हैं। तन की दशा सजल बिलोचन। मन की दशा हृदय गलानी। वचन की दशा कहत सखा सन बचन सुबानी। घुँघुरुआ ने सीताजी के भी साथरी की याद दिला दी। सरकार क साथरी शयन के दु ख से भी अधिक दु ख सीताजी के साथरी शयन से भरतजी को हुआ। अत सखा से बोले।

श्रीहत सीय बिरह दुतिहीना। जथा अवध नर नारि बिलीना॥
पिता जनक देउँ पटतर केही। करतल भोग जोग जग जेही॥३॥

अर्थ ये घुँघुरू भी सीताजी के विरह स ऐसे कान्ति हीन हो गये हैं जिस भाँति रामजी के विरह से अवधवासी निस्तेज हो गये है। इनके पिता महाराज जनक की उपमा किससे दूँ। ससार म योग और भोग दोना जिनकी मुट्ठी मे हैं

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या उन कनकबिन्दु के उठाने के समय भरतजी कहते हैं कि ये श्रीहत हो गये हैं। इनकी श्री तो तब थी जब कि ये जगदम्बा के शरीर के साथ थे। मानो इन्हे भी सीताजी के विरह का दु ख है। पहिले ये विनती भी कर चुके हैं। यथा नूपुर मधुर मुखर कवि बरनी। मनहु प्रेमबस विनती करही। हमहि सीय पद जनि परिहरही। अब उदाहरण देते है कि जैसे रामजी के विरह से अवधवासी श्रीहीन हो गये है। भाव यह कि रामविरह से अवधवासी श्रीहीन और सीताजी के विरह से कनकबिन्दु श्रीहीन हैं। यहाँ विलीन और दुतिहीन शब्द समानार्थक है।

स्त्रियो की महिमा चार प्रकार से होती है १ पिता के प्रभाव से २ श्वसुर की महिमा से ३ पति के उत्कर्ष से और ४ अपने गुणो से। अत पहिले पिता का वर्णन भरतजी करते हैं। महाराज तो अनेक हैं। पर जनकजी का जोडी कोई नही। जहाँ योग है वहाँ भोग नही। जहाँ भोग है वहाँ योग नही है। योग भाग की युग पत् स्थिति ईश्वरकोटि म ही देखी जाती है। जीवकोटि मे केवल जनकजी ही ऐसे हैं जहाँ दोनो दिखायी पडते हैं।

ससुर भानुकुल भानु भूआलू। जेहि सिहात अमरावतिपालू॥
प्राननाथु रघुनाथ गोसाईं। जे बड होत सो राम बडाईं॥४॥

अर्थ जिसके श्वसुर सूर्यकुल के सूर्य हैं जिससे अमरावती के राजा इन्द्र भी ईर्ष्या करते है। जिनके प्राणनाथ स्वामी रामजी हैं। जो कोई वडा होता है वह उन्ही की वडाई से होता है।

व्याख्या पिता का वर्णन करके श्वसुर का वर्णन करते हैं कि एक तो सूर्य कुल वडा। उनम भी वे सूर्य। तिस पर राजा। तेज और ऐश्वर्य दोनो से सम्पन्न। यथा अवधराजु सुरराजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनद लजाई। भाव यह कि जो सुख इन्द्र को अमरावती मे नही वह सुख महाराज दशरथ अवध मे कर रहे हैं। इसलिए इन्द्र लज्जित हैं। सासारिक सुख की पराकाष्ठा इन्द्र सुख ही है। सो भी महाराज दशरथ के भोग के जोड का नही। अवधवासियो को सुरदुर्लभ सुख है। यथा सुरदुर्लभ सुख सदन बिहाई। ऐसे महाराज दशरथ की पुत्रवधू सीताजी हैं।

श्वसुर का वर्णन करके पति का वर्णन करते है कि वे तो रघुकुल के नाथ हैं। तिस पर गोसाईं है। अर्थात् हृषीकेश हैं हृषीकेस सुनि नाउँ जाउँ बलि अति भरोस जिअँ मोरे। तुलसिदास यह जीव सृखला छुटिहि तुम्हारेहि छोरे। अर्थात् रामजी स्वय बन्ध मोक्षप्रद सर्व पर माया प्रेरक सीव हैं। मुख्य बडाई उन्ही मे है। दूसरे तो उनकी बडाई पाकर बडे होते हैं। बिधिहि बिधिता हरिहि हरिता हरहि हरता जिन दई। सो जानकी पति मधुर मूरति मोद मय मगल मई।

दो पति देवता सुतीय मनि, सीय साँथरी देखि।
बिहरत हृदय न हहरि हर, पवि तें कठिन बिसेखि॥१९९॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ पतिव्रता भली स्त्रियो मे मणि सीताजी की कुशशय्या देखकर मेरा हृदय हे हर ! फट नही जाता। यह वज्र से भी अधिक कठोर है।

व्याख्या अब स्वय भगवती के गुण कहते हैं कि ये तो साक्षात् पार्वती सी पतिव्रता हैं। यथा पति देवता सुतीय मनि मातु प्रथम तव रेख। यहाँ पति देवता सुतीय मणि कहकर वही बात कही। उक्त विशेषण से पतिप्रिया भी कहा। यथा : पारवती सम पतिप्रिय होहू। जिनमें ऐसे अलौकिक गुण हैं उन्हे साथरी पर सोना पडा और यह दुःख उन्हें मेरे कारण हुआ। भरतजी शङ्कर की स्मरण करके कहते हैं कि मेरे हृदय को तो फट जाना चाहता था। शङ्कर के स्मरण का भाव यह है कि ये दूसरे के दुःख दूर करने के लिए विषपान करनेवाले हैं। मेरा हृदय वज्र से भी कठिन है जो अब भी नही फटता। भावार्थ यह कि हर इस दुःख को हरण करे।

लालन जोगु लखन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहि न होने ॥
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहि प्रानपिआरे ॥१॥

अर्थ छोटे लोने लखनलाल लाड प्यार के योग्य हैं। ऐसे भाई न हुए, न हैं, न होनेवाले हैं। पुरवासियो को प्रिय माता पिता के दुलारे और रामजानकी को तो प्राण से प्यारे हैं।

व्याख्या लक्ष्मणजी की साथरी नही देखी। इससे भरतजी समझ गये कि लक्ष्मणजी नही सोये। सरकार का पहरा देते थे। अत कहते है कि लक्ष्मणजी पहरा देने योग्य नही हैं। लाड प्यार के योग्य हैं। छोटे भाई हैं। पुत्र के समान हैं। सुन्दर सलोने हैं। पहरा इन्हे शोभा भी नही देता। इतिहास पुराण मे भी ऐसे भाई सुनने को नही मिले जो राज्य छोडकर भाई के साथ वन चला जाय। इस समय भी लक्ष्मण से भाई कहाँ हैं और भविष्य मे भी सम्भावना नही। क्योकि द्वापर मे मे तो सत्त्वगुण स्वल्प होता है। कलियुग मे तो नाम मात्र शेष रह जाता है। उनमे ऐसे भाइया के होने की कौन सी आशा है ?

लक्ष्मणजी मे गुण ही ऐसे हैं कि सब कोई इनका सम्मान करता है। भाईपन जो इनका है वह तो आँख के सामने है। प्रजापालक भी ये ऐसे हैं कि पुरजन को प्रिय है। मातृ पितृ भक्ति ऐसी है कि पितु मातु दुलारे हैं। अर्थात् सभी लखनलाल का मुँह जोहते हैं। रामजानकी के तो परम प्रिय हैं। भाव यह कि जन्म से इनकी लालना सब ओर से होती आयी है। इन्हे कभी कष्ट का सामना ही नही पडा।

मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ। तात बाउ तन लाग न काऊ ॥
ते बन सहहि बिपति सब भाँती। निदरे कोटि कुलिस एहि छाती ॥२॥

अर्थ : मूर्ति कोमल है। स्वभाव सुकुमार है। गरम हवा कभी शरीर मे लगी नही। वे वन मे सब भाँति विपत्ति सहते हैं। इस मेरी छाती ने कोटि वज्रो का निरादर किया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या जैसे शरीर सुकुमार होने से शीतोष्ण सहने म असमर्थ हैं उसी भाँति सुकुमार स्वभाव होने से किसी की बात सह नही सकते। जन्म से ऐसे दुलार मे पल हैं कि गरम हवा शरीर मे कभी लगी नही। इस गरमी म क्या वह अयोध्या मे घर के वाहर निकलने पाते।

आज वे वन म जहाँ गरमी से वचने के लिए कोई त्राण नही है और भयानक लू बहा करती है वहाँ सब प्रकार की विपत्ति सहन कर रहे है और कहाँ तक कहे साते भी नही। रात दिन पहरा दे रहे हैं इससे स्पष्ट है कि यह ज्येष्ठ का समय है और यह सब मेरे कारण हो रहा है। अत मेरी छाती फट जानी चाहिए। पर वह नही फटती। उसके सामने कोटिवज्र भी कुछ नही है।

राम जनमि जगु कीन्ह उजागर। रूप सील सुख सब गुन सागर ॥
पुरजन परिजन गुर पितु माता। राम सुभाउ सबहि सुखदाता ॥३॥

अर्थ रामजी ने जन्म लेकर सारे जगत् को उज्ज्वल कर दिया। वे रूप शील सुख सब गुणो की खानि है। पुरवासी कुटुम्वी गुरु पिता और माता सभी को राम का स्वभाव सुख देनेवाला है।

व्याख्या पुण्य का फल सुख और पाप का फल दु ख है। सो रामजी सा पुण्य किसका हो सकता है जिसव जन्म स ही ससार म उजेला फैल गया। यथा भुवन कोटि कल्यान कद जायो पूत कौसिल्या रानी। चारो भाई रूप शील और गुण के धाम है। उनमे भी रामजी अधिक सुख सागर हैं। यथा चारिउ रूप सील गुन धामा। तदपि अधिक सुख सागर रामा। यहाँ सुख सागर के गुणाधिक्य का वर्णन करते हुए भरतजी कहते है रामजी का स्वभाव ही ऐसा पुण्यमय है कि उससे प्रजा कुटुम्वी गुरु पिता और माता का सुख उपजता है। यथा अस सुभाउ कहुँ सुनौ न देखौ। केहि खगेस रघुपति सम लेखौं।

बैरिउ राम बडाई करही। बोलनि मिलनि विनय मन हरही ॥
सारद कोटि कोटि सत सेखा। करि न सकहि प्रभु गुन गन लेखा ॥४॥

अर्थ शत्रु भी रामजी की वडाई करते है। उनका बोलना मिलना और विनय मन का हरण कर लता है। कोटि कोटि शत शेप आदर के साथ प्रभु के गुणगान की लखा नही कर सकते।

व्याख्या स्वभाव का सौष्ठव कहाँ तक कहा जाय। इतने से ही समझ लना चाहिए कि वैरी भी रामजी की वडाई करते है। क्योकि रामजी का स्वभाव उनक भी प्रतिकूल नही पडता। यथा जासु सुभाउ अरिहि अनुकूला। रामजी के बालने मिलन और विनय से उनका भी मन हरण हो जाता हैं। यहाँ वैरी से कुल वैरी अभिप्रेत है। महाराज चक्रवर्तीजी कहते हैं सेवक सचिव सकल पुरवासी। जे हमरे अरि मित्र उदासी। सबहि राम प्रिय जेहि बिधि मोही। प्रभु असीस जनु तनु धरि साही। नियम यही है कि वैरी सदा निन्दा ही करते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



क्योंकि वे गुण को नहीं देख सकते। यथा : बैर अन्ध · प्रेमहि न प्रबोधू। पर सरकार के गुण ऐसे हैं कि अन्ध भी बिना अनुभव किये नहीं रह सकता।

यद्यपि प्राचीन पाठ सादर सेष है। परन्तु ठीक पाठ सारद सेष है। लेखक के प्रमाद से सारद के स्थान पर सादर लिख गया। शारदा वाग्देवता हैं। जितना वाग्व्यवहार है सो उन्ही की कृपा से चालू है। अत उनसे बढकर लेखा करनेवाला स्वर्गादि लोकों में कौन है और अति बुद्धिमान् शेषजी को सहस्र शीष हैं और प्रत्येक मुख में दो दो जिह्वा हैं। अत. वर्णन की इससे अधिक सामग्री किसी के पास हो नहीं सकती। ये पाताल के वक्ता हैं। सो दोनों लोकों के प्रधानवक्ता कोटि सख्या में प्रभु के गुणो को लेखा करना चाहें तो कर नहीं सकते। क्योंकि सरकार के गुणो का अन्त ही नहीं। जलसीकर महि रज गनि जाहीं। रघुपति गुन नहिं बरनि सिराहीं।

दो. सुख सरूप रघुबंस मनि, मंगल मोद निधान।
ते सोवत कुस डारि महि, बिधि गति अति बलवान ॥२००॥

अर्थ : रघुकुलमणि रामजी सुखस्वरूप ही हैं। मङ्गल और आनन्द के निधान हैं। वे पृथ्वी पर कुश बिछाकर सोते हैं। तो विधाता की गति अति बलवती है।

व्याख्या : श्रीरामजी तो सुख के स्वरूप ही हैं। मङ्गल और मोद के निधान हैं। यथा : जो आनद सिधु सुख रासी। सीकरते त्रैलोक्य सुपासी। मगल भवन अमगल हारी। द्रवहु सो दसरथ अजिर बिहारी। अर्थात् आनन्दमङ्गल के स्रोत हैं। भूपति भवनु सुभाय सुहावा। सुरपति सदन न पटतर आवा। मनिमय रचित चारु चौवारे। जनु रतिपति निज हाथ सँवारे। सुभग सुरभि पयफेन समाना। कोमल कलित सुपेती नाना। पलग मजु मनि दीप जहँ सब बिधि सकल सुपास। ऐसे सुख सामग्री के साथ शयन करनेवाले वे कुशा बिछाकर पृथ्वी पर सोते हैं। तो यहाँ यही कहना पड़ता है कि विधि की गति ही बड़ी बलवती है। जो अचिन्त्य कार्य विना कारण के कर डालती है।

राम सुना दुखु कान न काऊ। जीवन तरु जिमि जोगवइ राऊ॥
पलक नयन फनि मनि जेहि भाँती। जोगवहिं जननि सकल दिन राती ॥१॥

अर्थ : रामजी ने कभी कान से भी दु ख नहीं सुना। चक्रवर्तीजी जीवनवृक्ष की भाँति रक्षा करते थे। जैसे पलक आँखो की और सर्प मणि की रक्षा करता है। उसी भाँति माताएँ रक्षा करती थीं।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी की आज्ञा थी कि कुमार रामभद्र बड़ा करुणाकर तथा वैराग्यवान् हैं। उसके पास कोई दु ख का समाचार न पहुँचने पावे। दु ख के दृश्य देखने की बात तो दूर है। इसलिए रामजी ने कभी कान से भी दु ख नहीं सुना। ऐसी जनश्रुति है कि किसी किसी का प्राण किसी वृक्ष में बसता है। उसके हरे रहने से वह स्वस्थ रहता है। मुरझाने से रुग्ण होता है और सूखने से मर जाता

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है। एतद्विषयिणी अनेक कहानियाँ प्रचलित हैं। अतः प्राणपन से उस जीवन तरु की लोग रक्षा करते थे। क्योंकि उनका जीवनाधार वह वृक्ष था। महाराज चक्रवर्ती के जीवनवृक्ष रामजी थे। उसी भाँति वे उनकी रक्षा करते थे। यथा : सब सुत मोहि प्रिय प्रान की नाईं। राम देत नहिं बनै गोसाईं।

केवल कौसल्याजी ही नही बल्कि सब माताएँ दिन रात बडी सावधानी और प्रेम से रक्षा करती थी। जैसे पलक गोलक की रक्षा दिन रात करता है। कोई आघात आ जाने पर अपने ऊपर उसे ले लेता है। इतने से काम न चला। इसलिए फणिमणि से उपमा दी। क्योंकि फणि : सर्प मणि के पास किसी गैर को आने नही देता और बलप्रदर्शन करनेवाले को यमलोक पहुँचा देता है। इसी भाँति जननी भी रामजी की रक्षा करती थी। अथवा जागृतावस्था की उपमा पलक नयन से है और सुपुप्तावस्था की उपमा फणिमनि से है। अथवा रामजी की रक्षा की उपमा पलक नयन से है और जानकीजी की रक्षा की उपमा फणिमणि से है। यथा सुदर बधुन्ह सास लै सोई। फनिकन्ह जिमि निज मनि उर गोई।

ते अब फिरत बिपिन पदचारी। कंद मूल फल फूल अहारी ॥
धिग कैकेई अमंगल मूला। भइसि प्रान प्रियतम प्रतिकूला ॥२॥

अर्थ : वे अब पैदल जङ्गल मे घूमते है और कन्द मूल फल और फूल खाते हैं। अमङ्गल की मूल कैकेयी को धिक्कार है जो अपने प्राणप्रियतम के प्रतिकूल हो गयी।

व्याख्या : राजमहल के बाहर आँख के ओट जाने देने मे जिसके इतना कडा पहरा रहता था। सवारी की इतनी वडी व्यवस्था थी। दु ख का दृश्य जिसके सामने आने नही पाता था और न दु ख के समाचार सुनने पाते थे। वे रामजी अब जङ्गल मे घूमते है। उरपहिं धीर गहन सुधिआएँ। और वहाँ भी पैदल घूमते हैं। यथा बिनु पानहिन्ह पयादेहि पाएँ। संकर साखि रहेहुँ एहि घाएँ। अन्न का अधिकार नही। नही तो जङ्गल को ही मङ्गल बना दिया जाता। सब कुछ यही प्रस्तुत कर दिया जाता। जिस भाँति राजा लोग मृगया के लिए जगल मे जाते है उसी भाँति वनवास मङ्गलमय हो जाता। आज सब कुछ रहते किसी को सुख देने का सामर्थ्य नही।

उस सामर्थ्य की हरण करनेवाली कैकेयी को धिक्कार है। यही अमङ्गल की मूल है। मेरे घर मे अमङ्गल इसी के कारण हुआ। स्त्रियो के लिए पति ही सब कुछ है। यथा : मातु पिता भगिनी प्रिय भाई। सुत सुदर सुसील सुखदाई। जहँ लगि नाथ नेह अरु नाते। पिय बिनु तियहि तरनिहु ते ताते। तनु धनु धाम धरनि पुर राजू। पति विहीन सब सोक समाजू। भोग रोग सम भूषन भारू। जम जातना सरिस ससारू। सो यह अपने प्राणप्रियतम महाराज चक्रवर्ती के प्रतिकूल हो गयी। अथवा जीव जन्तु असको जग माँही। जेहि रघुनाथ प्रानप्रिय नाँही। भे अति

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अहित रामु तेउ तोही। को तू अहसि सत्य कहु मोही। सबको रामजी प्राणप्रियतम हैं। उनसे भी प्रतिकूल हो गयी।

मैं धिग धिग अघ उदधि अभागी। सबु उतपातु भयउ जेहि लागी ॥
कुल कलंकु करि सृजेउ बिधाता। साँइ दोह मोहि कीन्ह कुमाता ॥३॥

अर्थ : मुझ पापसिंधु भाग्य रहित को धिक्कार है। जिसके लिए ये सब उत्पात हुए। विधाता ने मुझे कुलकलङ्क पैदा किया और कुमाता ने मुझे स्वामिद्रोही कर दिया।

व्याख्या : कैकेयी भी प्राणप्रियतम के प्रतिकूल पुत्र स्नेह के कारण हुई। अतः भरतजी अपने को धिक्कार देते हैं। मै पापसिन्धु हूँ। क्योंकि दुर्यश विना पाप के नही होता। मैं ऐसा अपयश भाजन पैदा हुआ। अतः अघउदधि हूँ और अभागी हूँ। भाग्यदोष से यह सब उत्पात मेरे लिए हुआ। अथवा सब उत्पात का मूल कारण होने से मैं अभागी हूँ। भवभञ्जन श्रीरामजी के विमुख होने की परिस्थिति आ पड़ी। काई कुमति कैकयी केरी। परी जासु फल विपति घनेरा। चक्रवर्तीजी का स्वर्गवास और राम वनवास संक्षेपतः ये ही दोनों विपत्तियाँ हैं। भरतजी राज्य मिलने पर अपने को अघउदधि और रामजी के वनवास से अपने को अभागी मानते हैं। अथवा माताओं के विधवापन का कारण मानते हुए अपने को अभागी कहते हैं। यथा : को त्रिभुवन मोहि सरिस अभागी। गति असि तोरि मातु जेहि लागी। मोर जनम रघुवर वन लागी। व्यर्थ काह पछिताउँ अभागी।

भरतजी कहते हैं कि ब्रह्मा ने ही मुझे कुल का कलङ्क बनाकर सिरजा। क्योंकि मैं अपयश भाजन हुआ और प्रियजन द्रोही हुआ और स्वामिद्रोह तो मुझे कुमाता के प्रसाद से प्राप्त हुआ। कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति। जो अपने पुत्र को भगवद् द्रोही बनावे अपयश का भाजन बनावे वही कुमाता है।

सुनि सप्रेम समुझाव निषादू। नाथ करिअ कत बादि बिषादू ॥
राम तुम्हहि प्रिय तुम्ह प्रिय रामहि। यह निरजोसु दोसु विधि बामहि ॥४॥

अर्थ : सुन करके प्रेम के साथ निषादराज समझाते हैं कि हे नाथ! आप व्यर्थ विषाद क्यों करते हैं। रामजी तुम्हें प्रिय है और रामजी को तुम प्रिय हो। इसमें वाम विधि का ही सच्चा : निखालिस दोष है।

व्याख्या : जब स्वामी को सेवक प्रिय है और सेवक स्वामी प्रिय है तब स्वामी द्रोही की बात कहाँ से आयी? यहाँ पर तो निरकेवल दोष वाम विधि का है और स्थलो पर तो कुछ करणी कुछ कर्म गति मिलकर ही कार्य होता है। यहाँ तो करणी कुछ भी नही केवल कर्मगति काम कर रही है।

प्रेमी को प्रेम से ही सब समझाया जाता है तब वह समझता है नही तो नही समझता। अतः भरतजी को निषादराज प्रेम से समझा रहे हैं। प्रेम का पंथ ही

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ऐसा है। निषादराज भरतजी से कहते हैं कि आप का विषाद व्यर्थ है। न उसके लिए कोई कारण है और न फल ही है।

छं. विधि बाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्ही बावरी।
तेहि राति पुनि पुनि करहि प्रभु सादर सरहना रावरी॥
तुलसी न तुम सो राम प्रीतम कहत हौ सोहे किये।
परिनाम मंगल जानि अपने आनिये धीरजु हियें॥

अर्थ : विधि वाम की करणी बडी कठिन है जिसने माता को पागल बना दिया। उस रात मे प्रभु बार बार तुम्हारी सराहना करते थे। तुलसीदासजी कहते हैं कि रामजी को तुमसे अधिक प्रियतम कोई नहीं है। मै इस बात की शपथ लेकर कहता हूँ। परिणाम मे मङ्गल जानकर अपने हृदय मे धैर्य धारण कीजिये।

व्याख्या : वाम विधि की करणी बडी कठिन होती है। वह स्वभाव ही पलट देती है। यथा : भयउ बाम विधि फिरेउ सुभाऊ। माता ऐसी थी नही और न अब ऐसी है। बीच में ही अकस्मात् उसके स्वभाव मे घोर परिवर्तन हो गया। जैसे कोई पागल हो जाता है। आप विचार कर देखिये।

कैकयी करी धौ चतुराई कौन।
राम लखन सिय बनहि पठाए पति पठए सुरभौन॥१॥
वहा भलो धौं भयो भरत को लगे तरुनतन दौन।
पुरवासिन्ह के नयन नीर बिनु कबहुँ तो देखति हौन॥२॥
कौसल्या दिनरात बिसूरति बैठि मनही मन मौन।
तुलसी उचित न होइ रोइबो प्रान गए सँग जौन॥३॥

सुमति कुमति मे परिवर्तित हो गयी। हिताहित परिज्ञान शून्य हो गयी : चरइ हरित तृन बलि पसु जैसे। अपने होश मे कैकेयी ने कुछ नही किया। अत: मै उनका कुछ दोष नही मानता। प्रभु के हृदय मे भी कुछ नही है। वे आप पर सन्देह नही करते। जिस रात को यहाँ ठहरे थे। बार बार आपकी प्रशसा करते थे। निषादराज भरतजी के आश्वासन के लिए शपथ लेते है कि रामजी को तुमसे अधिक प्रियतम कोई नही है। क्योंकि जब पहिले पहल साथरी पर सोये तो वह समय कटु कहने का था सो आप की प्रशसा कर रहे थे। सरकार जहाँ जाते थे भरतलाल की भूरि भूरि प्रशसा करते थे। जिसमे उनकी कीर्ति को कलङ्कपङ्क स्पर्श न कर सके।

इस समय तो अमङ्गल हो ही गया। पर परिणाम में मङ्गल होगा। यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्। तत्सुख सात्त्विक प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्। जो सुख प्रारम्भ मे विष की भाँति होता है। पर परिणाम उसका अमृत के समान होता है। वही सात्त्विक सुख है। वह आत्मबुद्धि के प्रसाद से प्राप्त होता है। अत: परिणाम मे सात्त्विक सुख की प्राप्ति होगी। इस बात को मन मे लाकर अधीर न होइये। हृदय मे धैर्य को स्थान दीजिये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो० अंतरजामी रामु, सकुच सप्रेम कृपायतन।
चलिअ करिअ बिश्रामु, एह बिचार दृढ आनि मन ॥२०१॥

अर्थ : रामजी अन्तर्यामी है। सङ्कोच प्रेम और कृपा के आयतन हैं। ऐसा विचार मन मे दृढ करके चलिये। विश्राम कीजिये।

व्याख्या : निषादराज कहते हैं कि रामजी अन्तर्यामी है। उनसे कुछ छिपा नही है। यथा : *तुमते कछु न छिपी करुनानिधि तुम हौ अंतरयामी। भीतर की बात* सब जानते हैं। तब निर्दोष को भय क्या? तिस पर सङ्कोची स्वभाव है। यथा : कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची। रामजी कभी शील नही तोड़ेंगे। बात बनी बनायी समझिये। प्रेमी हैं। आप के सामना की देर है। प्रेम रोके न रुकेगा। कृपायतन हैं। आपको दुःखी देखकर कृपा करेंगे। इस भाँति चार कारण धैर्य धरने का देकर निषादराज कहते हैं कि बहुत देर हो गयी। आप चलकर विश्राम करिये। जो कारण मैंने दिये हैं। उन्हे आप भी जानते हैं। पर उन्हे दृढ रूप से मन मे स्थान नही देते हैं इसलिए व्यर्थ विषाद कर रहे हैं।

सखा बचन सुनि उर धरि धीरा। बास चले सुमिरत रघुबीरा ॥
एह सुधि पाइ नगर नर नारी। चले बिलोकन आरत भारी ॥१॥

अर्थ : सखा का वचन सुनकर हृदय मे धैर्य धारण किया और रामजी को स्मरण करते डेरे पर चले। यह खबर पाकर अवध के नर नारी अत्यन्त आर्त होकर देखने चले।

व्याख्या : सखा का वचन सुनकर धैर्य धारण किया। समझते हैं कि यह अन्यथा नही कहेगा। सुत की प्रीति प्रतीत मीत की। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं कि प्रीति तो बेटे पर होती है। परन्तु विश्वास तो मित्र का ही होता है। सखा ने कहा चलिअ करिअ बिश्राम। अतः रघुवीर का स्मरण करते डेरे पर चले। भाव यह कि रघुवीर हैं। सब सङ्कटो के सामना करने म समर्थ हैं। सखा के वचनानुसार विचार को दृढ करने के लिए रघुवीर का स्मरण करते हैं।

जैसा श्रेष्ठ पुरुष आचरण करता है वैसा ही दूसरे भी आचरण करते हैं। वह जो प्रमाण करता है ससार उसी का अनुसरण करता है। खबर फैल गयी कि भरतजी शयनस्थान के दर्शन के लिए गये हैं। अब सब अयोध्यावासी शयनस्थान के दर्शन के लिए आर्त हो उठे कि भरतजी चल गये हम लोगों को नही ले गये। अथवा उनके भी नयन मन म जरनि है। उस शीतल करने के लिए चले।

परदछिना करि करहिं प्रनामा। देहिं कैकइहि खोरि निकामा ॥
भरि भरि बारि बिलोचन लेहीं। बाम बिधातहि दूषन देहीं ॥२॥

अर्थ : प्रदक्षिणा करके प्रणाम करते हैं और कैकेयी का अत्यन्त दोष देते हैं। आँखो म आँसू बार बार आ जाता है और वाम विधि का दोष देते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : जिस भाँति भरतजी ने जाकर कुश साथरी की प्रदक्षिणा की थी और प्रणाम किया था उसी भाँति सारे अयोध्यावासी प्रदक्षिणा करके प्रणाम करते हैं। उन्हे भी साथरी देखकर विषाद होता है। अतः वे सब कैकेयी की निन्दा करते हैं कि यह सब अनर्थ केवल इसी के दोष से हुआ।

अत्यन्त दु ख से आँखो मे जल भर आता है। सोचते हैं कि क्या घाटा रहा। जङ्गल मे ही सब भोग की सामग्री जुट जाती। सब कुछ रहते कुछ करते नही बन रहा है। अतः वाम विधाता को दोष देते हैं। जिसके कारण कैकेयी के स्वभाव ने पलटा खाया। नही तो कैकेयी बड़ी शीलवती थी।

एक सराहहिं भरत सनेहू। कोउ कह नृपति निबाहेउ नेहू॥
निंदहि आपु सराहि निषादहिं। को कहि सकइ बिमोह बिषादहि॥३॥

अर्थ : कोई भरतजी की प्रशसा करते है। कोई कहते है कि स्नेह का निर्वाह तो चक्रवर्तीजी ने किया। अपनी निन्दा और निषाद की सराहना करते हैं। विमोह के विषाद को कौन कह सकता है।

व्याख्या : कोई भरतजी के स्नेह की प्रशसा करता है कि इन्ही के प्रेम से रामजी के दर्शन की आशा है। अथवा इसलिए प्रशसा करते हैं कि उनके कारण से साथरी का दर्शन हुआ। हम लोग तो सोच भी नही सक्ते थे। भरतजी का ऐसा प्रेम है कि सरकार के इस चिह्न को खोजकर निकाला। कोई चक्रवर्ती जी के स्नेह के निर्वाह की प्रशसा करते हैं कि सत्य के पास मे बँधकर यद्यपि रामजी को वन दिया पर शरीर का परित्याग करके स्नेह का भी भलीभाँति निर्वाह किया। यथा : नेह निबाहि देह तजि दसरथ कीरति अचल चलाई। वे लोग कहते है कि प्रेम का पन्थ ही ऐसा कठिन है कि निवह जाय तब जान पडे कि प्रेमी हैं। सो राजा की निबह गयी और किसी से प्रेम निबाहते न बना। भरतजी भी धर्म से बँधे हैं। देखें यह कैसे नेह का निर्वाह करते है।

अयोध्यावासी अपनी निन्दा करते हैं कि हम लोग सम्पत्ति के साथी हैं। निषादराज की प्रशसा करते हैं कि यह विपत्ति का साथी है। जन्म से हमारा साथ था। सो हम मे उतना प्रेम नही जितना निषादराज मे है। बात फैल गयी कि कुटुम्ब के साथ मरने को तैयार था। हम लोग मरने को तैयार नही हुए। माधुर्य मे विषाद बढा। अत. विमोह कहते हैं। साथरी देखने से अवधवासियो को करुणा उमड़ आयी। शोक और मोह ये ही दो ससारवृक्ष के बीज है। परन्तु ये ही भगवत्सम्बन्धी होने से कल्याण के हेतु हो गये।

एहि बिधि राति लोगु सबु जागा। भा भिनुसार गुदारा लागा॥
गुर्रहि सुनाव चढ़ाइ सोहाई। नई नाव सब मातु चढ़ाई॥४॥
दंड चारि महँ भा सबु पारा। उतरि भरत तब सबहिं सँभारा॥५॥

अर्थ . इस भाँति रात भर सब लोग जागते रहे। सवेरा होते ही गुदारे की

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नाव लग गयी। पहिले अच्छी और सुन्दर नाव पर गुरुजी को चढाया। नयी नावो पर माताओ को चढाया। चार घडी में सब पार हो गये। तब भरतजी उतरकर सबको सँभालने लगे।

व्याख्या इस भाँति रोते गाते रात बीती। करुणा से किसी को नीद न आयी। केवल कैकेयी भरत चक्रवर्तीजी और निषादराज की ही चर्चा होती रही। उधर निषादराज का इन्तजाम है। सवेरा होते ही नावें आकर घाट पर लग गयी। सुन्दर और मजबूत नाव पर पहिले गुरुजी का चढाया। सभी मङ्गलयात्रा में गुरुजी की ही सवारी पहिले निकलती है अरुधती अर अग्नि समाजू। रथ चढि चलत भये मुनिराजू। इसलिए एक नाव केवल गुरुजी के लिए है। माताओ को नयी नावो पर चढाया जिसमे भीतर जल आने का भय न रहे। भरतजी सबके पीछे उतरे। सेना बडी थी इसलिए कई खेवा करना पडा। चार घडी म सब पार हो गये। टिकने के समय भी · भरत साध सबही कर लीन्हा और उतरने पर भी उतरि भरत तब सबहि सँभारा।

दो. प्रात क्रिया करि मातु पद, बदि गुरहि सिरु नाइ।
आगे किये निषाद गन, दीन्हेउ कटकु चलाइ ॥२०२॥

अर्थ · प्रात काल की क्रिया करके माता के चरणो की वन्दना करके गुरुजी को सिर नवाया और निषादगण को आगे करके सेना का कूच बोल दिया।

व्याख्या · उस पार उतरकर प्रात काल का कृत्य किया। तब माता की वन्दना पश्चात् गुरु की वन्दना की। आगे का रास्ता निषादगण का देखा है। अत उन्ही को आगे कर दिया और सेना चल पडी। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। ऐसा वेद की आज्ञा है। अत माता का चरण वन्दन करके तब गुरुजी की वन्दना की।

कियेउ निषादनाथु अगुआई। मातु पालकी सकल चलाई॥
साथ बोलाइ भाइ लघु दीन्हा। विप्रन्ह सहित गवन गुर कीन्हा॥१॥

अर्थ · निषादराज ने अगुआई किया . अर्थात् आगे आगे चले। माताओं की पालकियाँ उसके बाद चलायी गयी। छोटे भाई को बुलाकर साथ मे दिया। ब्राह्मणो के साथ गुरुजी चले।

व्याख्या अपने राज्य की सोमा से बाहर वन मे चल रहे हैं इसलिए इन्तजाम बदल गया। सबसे पहिले गुरजी की सवारी चलती थी। सो सुरक्षा की दृष्टि से सबके पीछे चली। सबके आगे सेना चल रही है। उसके भी आगे रास्ता दिखलाने के लिए निषादगण चल रहे हैं। उसके बाद माताओ की पालकियाँ चली। उन पालकियों के आगे आगे स्वय निषादराज चल रहे हैं। माताओ की रक्षा भरतजी ने निषादराज के जिम्मे अपना प्रतिनिधि बनाकर किया और शत्रुसूदनजी को निषादराज के साथ कर दिया। उसके बाद ब्राह्मणो के समाज के साथ गुरजी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चले। इन्तजाम करनेवाले से कोई कारण नहीं पूछता। वह जैसा उचित है वैसी व्यवस्था करता है : एक नायक की आज्ञा चलनी चाहिए। क्योंकि बिना नायक के नाश होता है और अनेक नायक के होने से भी नाश होता है। अनायका विनश्यन्ति बहुनायका।

आपु सुरसरिहि कीन्ह प्रनामू। सुमिरे लखन सहित सिय रामू॥
गवने भरत पयादेहि पाएं। कोतल संग जाहिं डोरिआएं॥२॥

अर्थ : भरतजी ने स्वयं गङ्गाजी को प्रणाम किया। लक्ष्मणजी के सहित सीताराम का स्मरण किया। भरतजी पाँव पैदल चले। कोतल बिना सवार के घोड़े बागडोर से बँधे चले जा रहे थे।

व्याख्या : आने के समय भी गङ्गाजी को प्रणाम किया। अब जाने के समय भी प्रणाम कर रहे हैं। भेद इतना ही था कि आने के समय रामघाट कहँ कीन्ह प्रणामू। अब उस पार चले गये हैं। उधर जंगल होने से घाट नहीं है। अतः सुरसरिहि कीन्ह प्रनामू लिखा। लक्ष्मणजी के सहित सीतारामजी का स्मरण करते हैं। क्योंकि वे ही यात्रा के लक्ष्य हैं। यथा : सोक समाज राज केहि लेखे। लखन राम सिय पद बिनु देखे।

यहाँ से ही रामजानकी तथा लक्ष्मणजी ने पाँव पैदल यात्रा की थी। अतः यहाँ से भरतजी ने पैदल यात्रा आरम्भ की। अयोध्या से ही पैदल चले थे पर माताजी ने रोक दिया। कहा : तुम्हारे चलत चलिहि सब लोगू। सकल सोक कृस नहिं मग जोगू। फिर भी वही बात होगी। इसलिए इस बार भरतजी ने सबको आगे चला दिया। आप पीछे रह गये। जिसमें उन्हें पैदल देखकर लोग सवारी से उतर कर पैदल न चलने लगें। सेवकों ने सब समाज को चले जाते देखकर भरतजी की सवारी के लिए घोड़े रख लिये। समझा कि कुछ दूर पैदल चलने की इच्छा है। फिर सवारी का काम पड़ेगा ही। शत्रुघ्नजी भी साथ नहीं हैं। अतः रथ पर चलने की इच्छा नहीं मालूम होती है। इसलिए उन सबों ने भरतजी के सवारी के घोड़े रोक रक्खे। वे बिना सवार को बागडोर से बँधे चल रहे हैं।

कहहिं सुसेवक बारहिं बारा। होइअ नाथ अस्व असवारा॥
रामु पयादेहि पाय सिधाये। हम कहँ रथ गज बाजि बनाये॥३॥

अर्थ : सुसेवक लोग बार बार कह रहे हैं कि सरकार घोड़े पर सवार हो जायँ। रामजी पाँव पैदल ही गये हैं और मेरे लिए रथ हाथी घोड़े बनाये गये हैं।

व्याख्या : जब देख लिया कि मन बहलाने के लिए जितनी दूर पैदल चला जाता है उस सीमा का अतिक्रमण हो गया। तब सुसेवकों ने कहा कि सरकार घोड़े पर सवार हो जायँ। वे सुसेवक हैं। स्वामी का उचित से अधिक पैदल चलना सहन नहीं कर सकते। सेवक समय न ढीठ ढिठाई। अतः बोल बैठे। भरतजी ने उस कहने की उपेक्षा की। आगे बढ़ते ही चले गये। सुसेवकों से नहीं रहा गया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



फिर कहा फिर कहा। तब भरतजी बोले कि सरकार रामजी तो पैदल गये। रथ हाथी घोड़े सब उनके लिए हैं। मेरे लिए नहीं है। यथा सपति सब रघुपति कै आही। मैं सेवक हूँ। जहाँ उनका पैर पड़ा है वहाँ मेरा सिर लगना चाहिए। वहाँ मैं सवारी पर कैसे चलूँ।

सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सब ते सेवक धरमु कठोरा ॥
देखि भरत गति सुनि मृदु बानी। सब सेवक गन गरहिं गलानी ॥४॥

अर्थ : मेरे लिए उचित तो यह था कि सिर के बल जाता। क्योंकि सब धर्मों से कठिन सेवक धर्म है। भरतजी की अवस्था देखकर और कोमल वाणी सुनकर सेवकगण ग्लानि से गले जा रहे थे।

व्याख्या : कहहु तो कहाँ चरन कहँ माथा। जहाँ मालिक का चरण वहाँ सेवक का मस्तक। अत उचित तो था कि जहाँ रामजी पाँव के बल चले वहाँ मैं सिर के बल चलूँ। परन्तु यह सम्भव नही है। इससे कम से कम मैं पैदल तो चलूँ। सेवक का ठीक धर्म पालन मे मैं असमर्थ हो रहा हूँ।

भरतजी की प्रेम परवश दशा देखकर और मृदु वाणी सुनकर सेवक लोग ग्लानि से गल जा रहे थे। अर्थात् उन्हे ग्लानि हुई कि हम सुसेवक कहलाकर भी सेवाधर्म से अनभिज्ञ ठहरे और भरतजी स्वामी होकर सेवाधर्म मे ऐसे पटु हैं। भरतजी ने मृदु वाणी कहा। धिक्कारा नही पर बात लग गयी। ऐसे उच्चकोटि के सेवक हैं कि उन्हे अविवक्षित ध्वनि से ग्लानि हुई।

दो० भरत तीसरे पहर कहँ, कीन्ह प्रवेसु प्रयाग।
कहत राम सिय राम सिय, उमगि उमगि अनुराग ॥२०३॥

अर्थ भरतजी ने तीसरे पहर मे प्रवेश किया। सीताराम सीताराम अनुराग के उमङ्ग मे कहते जा रहे थे।

व्याख्या सब लोग बहुत पहिले प्रयाग पहुँच गये। पर भरतजी तीसरे पहर मे प्रयाग पहुँचे। ये पैदल पाँव बिना जूते के चल रहे थे। रेत धूप से जल रही थी। अत चलने मे अधिक कठिनता पड़ी। चित्रकूट जाने की इतनी त्वरा होने पर भी तीर्थ को बाँया नही दिया। प्रयागराज चले गये। मनसा वाचा कर्मणा धर्म प्रवृत्ति। यथा : कर्मणा कीन्ह प्रवेस प्रयाग। वचसा कहत रामसिय रामसिय। मनसा : उमगि उमगि अनुराग।

झलका झलकत पायन्ह कैसें। पंकज कोस ओस कन जैसे ॥
भरत पयादेहि आए आजू। भयउ दुखित सुनि सकल समाजू ॥१॥

अर्थ चरणो मे झलका : छाले कैसे चमक रहे हैं जैसे कमल के कोष मे ओस के कण चमकते हैं। भरतजी आज पैदल ही आये। यह समाचार सुनकर सब समाज दुःखी हो उठा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या जलती हुई धूलि मे विना जूते के चलने से सम्पूर्ण चरणो मे छोटे छोटे छाले पड गये। परन्तु चरणो की शोभा और भी बढ गयी। कमल के कोप पर ओस के कणो के पड जाने पर जैसी कमल की शोभा होती है वैसी ही चरणो की शोभा हुई। डेरे पर आने पर जब धूलि धूसरित चरण धोये गये तब यह शोभा दिखायी पडी।

समाचार सब समाज मे फैल गया। सब चिन्तित थे कि भरतजी के आने मे देर क्यो हो रही है। जब मालूम हुआ कि आज भरतजी पैदल ही आये। तो यह सुनकर सब समाज दु खी हो गया। सब लोग समझ गये कि जहां से जहां तक रामजी पैदल गये हैं भरतजी सवारी पर नही चलेंगे। अब भरतजी की यात्रा पैदल होगी। कोमल चरण हैं। जेठ की धूप से पृथ्वी तप रही है। पहिले दिन के चलने मे ही पैर मे छाले पड गये। यह पूरा रास्ता कैसे कटेगा ? भरतजी का निश्चय है यह टल भी नही सकता। अत सब समाज दु खी हो गया। माता लोग भी उनके सेवा धर्म मे बाधक नहीं होना चाहती।

खबरि लीन्ह सब लोग नहाये। कीन्ह प्रनामु त्रिबेनिहिं आये ॥
सबिधि सितासित नीर नहाने। दिये दान महिसुर सनमाने ॥२॥

अर्थ पता लगा लिया कि सब लोग नहा चुके। तब त्रिवेणी मे आकर प्रणाम किया। विधि के साथ श्याम और श्वेतजल के सङ्गम मे स्नान किया। ब्राह्मणो का सम्मान किया और दान दिया।

व्याख्या आते ही भरतजी सबका सँभाल करते हैं। पता लगा कि सब लोग स्नान कर चुके। क्योकि पहिले ही पहुँच चुके थे। तब आप स्नान के लिए सङ्गम पर गये और भगवती त्रिवेणी का प्रणाम किया।

सितासित शब्द से प्रयागराज का वेद प्रतिपाद्य होना द्योतित किया। यथा सितासिते सरिते यत्र सगते। श्रुति । प्रयागराज मे त्रिवेणी स्नान की जो विधि है। उस विधि से स्नान किया। सगम सिंहासन सुठि सोहा। चँवर जमुन अरु गग तरगा। देखि होहिं दु ख दारिद भगा। स्नान के उपरान्त दान की विधि है। अत ब्राह्मणो को दान दिया और सम्मान किया। क्योकि सम्मान सबसे बडा दान है। यथा तुलसी कहत पुकार के मुनहु सकल दै कान। हेम दान गज दान ते बडो दान सम्मान। सरकार के स्नान के समय कहा मुदित नहाइ कीन्ह सिव सेवा। पूजि यथाबिधि तीरथ दवा। दान देना नही कहा। क्योकि वे उदासीन थे। भरतजी के साथ धन है। अत दान सम्मान दोनो लिखा। बिना सम्मान का दान व्यर्थ है और बिना दान का सम्मान केवल दम्भ है। अत दान सम्मान दोनो होना चाहिए।

देखत स्यामल धवल हलोरे। पुलकि सरीर भरत कर जोरे ॥
सकल काम प्रद तीरथ राऊ। वेद विदित जग प्रगट प्रभाऊ ॥३॥

अर्थ काली और सुफेद लहरो को देखकर भरतजी ने पुलकित होकर हाथ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जोड़ा। हे तीर्थराज ! आप सब कामनाओ के देनेवाले हैं। आपका प्रभाव ससार मे प्रकट है और वेद मे भी विदित है।

व्याख्या : स्यामल धवल हिलोरे के देखने से भरतजी को रामजानकी का स्मरण हो उठा। अतः शरीर में पुलक हो गया। यथा : उतरि नहाये जमुन जल जो सरीर सम स्याम। तीर्थराज को प्रणाम करना चाहिए और मनोरथ प्राप्ति के लिए वरदान माँगना चाहिए। क्योकि तीर्थराज का भण्डार चारो फल से भरा पूरा है। यथा : चारि पदारथ भरा भंडारू। सेवहि सुकृती साधु सुचि पावहि सब मन काम। वदी बेद पुरान गन कहहिं विमल गुनग्राम। इस दोहे के पहिले पद से जग प्रगट प्रभाऊ और दूसरे पद से बेद विदित पद की व्याख्या की।

मागउँ भीख त्यागि निज धरमू। आरत काह न करइ कुकरमू॥
अस जिय जानि सुजान सुदानी। सफल करहि जग जाचक बानी॥४॥

अर्थ : मैं अपना धर्म छोड़कर भीख माँगता हूँ। क्योकि आर्त कौन सा कुकर्म नही करते। ऐसा मन मे समझकर जो सुजान सुदानी हैं वे संसार में याचक की वाणी को सफल करते हैं।

व्याख्या : भिक्षा माँगना क्षत्रिय के लिए निषिद्ध है। परन्तु आर्त पुरुष को विधि निषेध का ख्याल नही रहता। अत आर्त होकर क्षत्रिय भी भिक्षा माँगते हैं। भरतजी कहते हैं कि हे तीर्थराज ! आप प्रख्यात दानी हैं और मै अत्यन्त आर्त हूँ। प्रमाण यह है कि क्षत्रिय होकर आप से भिक्षा माँगता हूँ। इतना आर्त हूँ कि अपने धर्म का भी परित्याग कर रहा हूँ। अतः मैं आर्त अधिकारी हूँ।

सुजान सुदानी जाचक के पात्रापात्र का विचार यदि वह आर्त हो तो नही करते। अपात्र भी आर्त होने से पात्र ही है। अतः उसकी वाणी को सफल करते हैं। आप भी पात्रापात्र का विचार न करके मेरी वाणी सफल कीजिये।

दो. अरथ न धरम न काम रुचि, गति न चहौ निरवान।
जनम जनम रति राम पद, यह वरदानु न आन॥२०४॥

अर्थ : मुझे धर्मार्थ काम की रुचि नही है और निर्वाण गति भी नही चाहता हूँ। मैं यही वरदान चाहता हूँ कि जन्म जन्मान्तर मे मेरी भक्ति श्रीरामजी के चरणो मे हो। दूसरी कोई वात मैं नही चाहता।

व्याख्या : इतने आर्त होने का कारण कहते हैं कि आपका भण्डार धर्मार्थ काम और मोक्ष से भरपूर है और यही याचको को मिला करता है। पर इनमे मेरी रुचि नही। मैं तो जन्म जन्म में रामजी के चरणो मे रति प्राप्ति का वरदान चाहता हूँ। जो भण्डार मे नही है वह चाहता हूँ। आप याचक की वाणी पूरा करनेवाले सुजान दानी है। आप जैसे हो सके मुझे भक्ति भिक्षा दीजिये। अर्थ धर्म काम तथा मोक्ष मुझे नहीं चाहिए। यथा : सगुन उपासक मोक्ष न लेहीं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जानहु रामु कुटिल करि मोही। लोगु कहउ गुर साहिब द्रोही ॥
सीताराम चरन रति मोरे। अनुदिन बढउ अनुग्रह तोरे ॥१॥

अर्थ : रामजी भले ही मुझे कुटिल समझे और भले ही लोग मुझे गुरुद्रोही और स्वामिद्रोही कहे। सीताराम के चरणो मे मेरी प्रीति आपके अनुग्रह से नित्य बढती रहे।

व्याख्या · वरदान मे भरतजी एकाङ्गी प्रीति माँगते हैं। रामजी चाहे प्रेम करें चाहे प्रेम न करें। भले ही मुझे कुटिल मानकर घृणा करें मुझे स्वीकार है। उन पर आप कोई प्रभाव न डालें। उन्हे स्वच्छन्द रहने दें। पर रामजी के कुटिल जानने से दुर्यश होगा। लोग कहेगे कि भरत गुरुद्रोही और स्वामिद्रोही हैं और रघुकुल यशोधन हैं। यशोहानि कैसे सही जायगी ? इस पर भरतजी कहते हैं कि यशोहानि मुझे स्वीकार है। पर सरकार की स्वच्छन्दता मे भेद न पडने पावे। भरतजी कहते हैं कि वरदान का प्रभाव मुझ पर पडे। श्रीसीतारामजी के चरणो मे मेरी प्रीति नित्य बढती रहे। अर्थात् सिद्धा भक्ति के लिए भरतजी की प्रार्थना है।

जलदु जनम भरि सुरति बिसारउ। जाचत जलु पबि पाहन डारउ ॥
चातकु रटनि घटे घटि जाई। बढे प्रेम सब भाँति भलाई ॥२॥

अर्थ मेघ चाहे जन्म भर पपीहे को याद न करे। जल माँगने पर पत्थर और वज्र गिरावे। पपीहे की रटन घटने से वह घट जावेगा। प्रेम बढने म ही उसकी सब भाँति से भलाई है।

व्याख्या चातक हस सराहियत टेक विवेक विभूति। हस विवेकी है और चातक प्रेमी है। अत हस मे विवेक की विभूति है और चातक मे टेक की विभूति है। यदि चातक की रटनि घट जावे तो उसके टेक की विभूति ही जाती रही। उसकी भलाई तो प्रेम के बढने मे ही है। चाहे मेघ उसे कितना भी कष्ट दे। इसी बात को गोस्वामीजी ने दोहावली मे बडे मार्मिक शब्दो मे वर्णन किया है। यथा

मान राखिवो माँगिवो पिय सो नित नव नेहु।
तुलसी तीनिउ तब फबैं जौ चातक मत लेहु ॥
तीनलोक तिहुकाल जस चातक ही के हाथ।
तुलसी जासु न दीनता सुनी दूसरे नाथ ॥
जौ घन बरसै समयसिर जौं भरि जनम उदास।
तुलसी या चित चातकहि तऊ तिहारी आस ॥
रटत रटत रसना लटी तृषा सूखिगे अग।
तुलसी चातक प्रेम को नित नूतन रुचि रग ॥
चढत न चातक चित कबहुँ प्रियपयोद के दोष।
तुलसी प्रेम पयोधि की ताते नाप न जोख ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



परखि - परुप पाहन पयद पंख करौ टुक टूक।
तुलसी परी न चाहिये चतुर चातकहि चूक॥
उपल वरपि गरजत तरजि डारत कुलिस कठोर।
चितव कि चातक मेघ तजि कबहुँ दूसरी ओर॥

पवि पाहन दामिनि गरज झरि झँकोरि खरि खोझि।
रोप न प्रीतम दोप लखि तुलसी रागहि रीझि॥
प्रीति पपीहा पयद की प्रगट नई पहिचानि।
जाचक जगत कनाउडो कियो कनौडो दानि॥

साधन सांसति सब सहत सबहि सुखद फल लाहु।
तुलसी चातक जलद की रीझि बूझि बुध काहु॥
चातक जीवन दायकहि जीवन समय सुरीति।
तुलसी अलख न लखि परै चातक प्रीति प्रतीति॥

जीव चराचर जहँ लगे है सबको हित मेह।
तुलसी चातक मन बस्यौ घन सों सहज सनेह॥
प्रेम न परखिय परुपपन पयद सिखावन एहु।
जग कह चातक पातकी ऊसर बरपै मेह॥

चरण चंगु गत चातकहि नेम प्रेम को पीर।
तुलसी परवस हाड़ पर परिहैं पुहमी नीर॥
बध्यौ बधिक परयौ पुन्यजल उलटि उठाई चोंच।
तुलसी चातक प्रेम पट मरतहुँ लगी न खोंच॥
तुलसी चातक देत सिख सुतहिं बारही बार।
तात न तर्पन कीजिये बिना वारिधर धार॥

सो. जियत न नाई नार चातक घन तजि दूसरहिं।
सुर सरिहू को वारि मरत न मांगेउ अरध जल॥
सुन रे तुलसीदास प्यास पपीअहि प्रेम की।
परिहरि चारिउ मास जो अँचवै जल स्वातिको॥
जाचै बारह मास पियै पपीहा स्वाति जल।
जान्यौ तुलसीदास जोगवत नेही नेह मन॥

दो. उष्णकाल अरु देह खिन मग पंथी तन ऊख।
चातक बतियाँ ना रुची अनजल सींचे ऊख॥

जलद चातक का प्रेम पात्र है। चातक उसी का जल पीता है। दूसरे को उसे आशा नहीं। जलद जो उसे भूल जाय उस पर अत्याचार करे फिर भी चातक का प्रेम बढता ही जाता है। इसी भाँति भरतजी भी श्रीरामजी के चरणों में प्रेम चाहते हैं। यही वरदान है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कनकहि बान चढइ जिमि दाहे। तिमि प्रियतम पद नेम निवाहे ॥
भरत वचन सुनि माँझ त्रिवेनी। भइ मृदु बानि सुमंगल देनी ॥३॥

अर्थ : जिस भाँति सोने को तपाने से उस पर रङ्ग चढ जाता है वैसा ही रङ्ग प्रियतम के चरणो मे प्रीति निर्वाह करने मे चढे। भरतजी का वचन सुनकर मध्य त्रिवेणी मे शुभ मङ्गल देनेवाली कोमल वाणी हुई।

व्याख्या : चेतन की उपमा देकर अब जड की उपमा देते हैं। प्रेम जड की अवस्था अभीष्ट है। चेतन का दु खी होना सम्भव है। इसलिए जड़ की उपमा देते हैं। उसमे भी सोना तपाने के समय दमक उठता है। प्रेमास्पद के जलाने से और भी प्रेम मे चमक बढे। जानते हैं कि *सरकार विरहानल मे तप्त करके प्रेम की* परीक्षा ले रहे हैं। यथा प्रेम अमिअ मन्दर बिरह भरत पयोधि गँभीर। मथि प्रगटेउ सुरसाधु हित कृपासिंधु रघुबीर।

भरतजी के ये वचन सुनकर मध्य त्रिवेणी अर्थात् सङ्गमरूपी सिंहासन से वचन सुनायी पडा। स्वय त्रिवेणीजी बोल रही हैं।

तात भरत तुम्ह सब विधि साधू। राम चरन अनुराग अगाधू ॥
बादि गलानि करहु मन माँही। तुम्ह सम रामहि कोउ प्रिय नाँही ॥४॥

अर्थ तात भरत! तुम सब प्रकार से साधु हो। रामचरण मे तुम्हे अथाह प्रेम है। मन मे व्यर्थ ग्लानि कर रहे हो। तुम्हारे समान रामजी को कोई प्रिय ही नही है।

व्याख्या जानहु राम कुटिलकरि मोही। लोग कहउ गुरुसाहिब द्रोही। का उत्तर तीर्थराज देते है : तुम्ह सब विधि साधू। पर उपकार बचन मन काया। संत सहज सुभाउ खगराया। तुम मे स्वार्थ कहाँ? साधु समाज मे तुम्हारी रेखा और रामभक्तो मे तुम्हारी लेखा है। *तुम्हे स्वय अगाध अनुराग है। मै क्या दूँ?* केवल तुम्हारे सन्देह मिटाने के लिए निषादराज की भाँति निषादराज के ही शब्द दोहराये देता हूँ। यथा नाथ करिअ कत बादि बिषादू। राम तुमहि प्रिय तुम प्रिय रामहि। तुलसी न तुम सम राम प्रीतम कहत हौ सौहे किये। इत्यादि।

दो. तनु पुलकेउ हिय हरषु सुनि, बेनि बचन अनुकूल।
भरत धन्य कहि धन्य सुर, हरषित बरषहिं फूल ॥२०५॥

अर्थ : वेणी के अनुकूल वचन सुनकर भरतजी का शरीर पुलकित हो गया और हृदय मे हर्ष हुआ। भरतजी धन्य हैं धन्य है ऐसा कहकर देवता फूलो की वर्षा करते हैं।

व्याख्या · भई मृदु बानि सुमगल मूला से उपक्रम करके · बेनि बचन अनुकूल से उपसहार करते हैं। गङ्गा यमुना सरस्वती के सङ्गम तीर्थराज का सिंहासन है। अत. त्रिवेणी की वाणी ही प्रयागराज की वाणी है। भरतजी ने धिग धिग मोहि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अघ उदधि अभागी कहा था। अतः उसी का सम्मार्जन करते हुए देवता लोग भरतजी को धन्य धन्य कह रहे हैं और पुष्पवर्षा करके पूजन कर रहे हैं।

प्रमुदित तीरथराज निवासी। बैखानस बटु गृही उदासी ॥
कहहिं परसपर मिलि दस पाँचा। भरत सनेहु सीलु सुचि साँचा ॥१॥

अर्थ : प्रयागराज के रहनेवाले वानप्रस्थ गृहस्थ उदासी सब प्रसन्न हुए और दस पाँच आपस में मिलकर कहते हैं कि भरतजी का प्रेम और शील पवित्र और सच्चा है।

व्याख्या : भरतजी के साथ सेना आयी है। बड़ी भीड़भाड़ है। अत. सबको भरतजी के आने की खबर है। वैखानस वानप्रस्थ आश्रमी को कहते हैं। गृहस्थाश्रमी को गृही कहते हैं। बटु ब्रह्मचारी को कहते है और उदासी से यहाँ सन्यासी से तात्पर्य है। तीर्थराज हैं। अतः यहाँ सभी आश्रम के लोग बसते हैं। अत भरतजी को देखने के लिए पहिले से ही तैयार हैं। रामजी जब आये थे तो उनके साथ भीड़ नही थी। अत उनके आने का पता देर से लगा और वे सुन्दरता देखने की भावना से आये थे। यथा : यह सुधि पाइ प्रयाग निवासी। बटु तापसमुनि सिद्ध उदासी। भरद्वाज आश्रम सब आये। देखन दसरथ तनय सुहाये।

जहाँ तहाँ गोष्ठी मे बातचीत हो रही है। त्रिवेणी के मध्य से जो वाणी का प्रादुर्भाव हुआ उसी का अनुवाद कर रहे हैं। यथा : रामचरन अनुराग अगाधू। भरत सनेह सील सुठि साँचा। यथा : तात भरत तुम सब विधि साधू।

सुनत राम गुन ग्राम सुहाए। भरद्वाज मुनिवर पहिं आए ॥
दंड प्रनामु करत मुनि देखे। मूरतिमंत भाग्य निज लेखे ॥२॥

अर्थ : रामजी के गुणगणो को सुनते हुए भरद्वाज मुनिवर के पास आये। मुनिजी ने भरतजी को साष्टाङ्ग प्रणाम करते देखा तो उन्हे मूर्तिमान् अपना भाग्य माना।

व्याख्या : भरतजी के स्नेह और शील वर्णन के बाद प्रसङ्ग प्राप्त रामजी का गुणग्राम वर्णन करने लगे। रामजी का रूप और स्वभाव देख चुके हैं। यथा : राम प्रणाम कीन्ह सब काहू। मुदित भये लहि लोचन लाहू। देहिं असीस परम सुख पाई। फिरे सराहत सुदरताई। रामजी के दर्शन से मुदित थे। आज भरतजी के दर्शन से मुदित हैं। भरतजी उधर से ही जा रहे हैं। तमाम रास्ते यही चर्चा है। अतः राम गुणग्राम सुनते हुए भरद्वाज के आश्रम पर आये। प्रयाग मे भरद्वाजजी का दर्शन प्रधान है। क्योंकि ये जङ्गम तीर्थराज हैं। प्रयागराज के देवताओं की भाँति ये भी अङ्गभूत है। यथा : प्रयागं माधवं सोमं भारद्वाजं च वासुकिम्। वन्देऽक्षयवटं शेषं प्रयाग तीर्थनायकम्।

न तो सरकार के ही आने का पता मुनिजी को था जो आगे लेने आते और न भरतजी के ही आने का पता लगा। भावार्थ यह कि तीर्थराज में रहने से इनके

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यहाँ लोगो का आना जाना सदा लगा रहता था। घोर वन मे रहनेवाले मुनियो के यहाँ जिस भाँति किसी विशेष व्यक्ति का आना एक विशेष घटना समझी जाती थी और उसका समाचार बटु लोग पहिले से ही दे देते थे। वैसी कोई बात यहाँ न थी। अत शिष्यो ने पहिले से खबर नही दी। इसलिए भरतजी को दण्डवत् प्रणाम करते मुनिजी ने देखा तो अपना बडा भाग्योदय माना। पूर्वजन्मकृत कर्म तद्दैवमिति कथ्यते। अत भरतजी को मूर्तिमान पूर्व जन्मकृत पुण्य माना। सरकार को वर्त्तमान जन्म का किया हुआ पुण्य माना था। यथा लोचन गोचर सुकृत फल मनहु किये विधि आनि।

धाइ उठाइ लाइ उर लीन्हे। दीन्हि असीस कृतारथ कीन्हे॥
आसनु दीन्ह नाइ सिरु बैठे। चहत सकुच गृह जनु भजि पैठे॥३॥

अर्थ दौडे और उठाकर छाती से लगा लिया। आशीर्वाद देकर कृतार्थ किया आसन दिया तो सिर झुकाकर बैठे मानो सङ्कोच रूपी घर मे भागकर घुस जाना चाहते हैं।

व्याख्या भरतजी ने दूर से प्रणाम किया था। अत दौड पडे। इतने बडे भागवत का दण्ड की भाँति भूमि मे पडा रहना सह न सके तथा उन्हे हृदय लगा लेने की बडी चाह है। सत्कार करने का बडा उत्साह है। आशीर्वाद देने के लिए हृदय उमगा आ रहा है। अत चार क्रियाओ का एक साथ ही प्रयोग है। भरतजी इस सत्कार से कृतार्थ हुए अथवा भक्तिरस्तु ऐसा आशीर्वाद दिया। इससे भरतजी ने अपने को कृतार्थ माना। सिर झुकाकर बैठना सङ्कोच तथा सोच की मुद्रा है। सरकार से मुनिजी ने कुशल प्रश्न करके तब आसन दिया। भरतजी से कुशल प्रश्न नही किया। आसन द दिया। मुनिजी समझते हैं कि जब जानता हूँ कि कुशल नही है तब उसका प्रश्न करना और भी छेडकर दु ख देना है। भरतजी को देखा कि ये इतने सङ्कुचित है मानो सङ्कोचरूपी घर मे पैठ जाना चाहते हैं। सम्मुख होकर बात करने मे कष्ट है।

मुनि पूछब कछु येह बड सोचू। बोले रिषि लखि सीलु सकोचू॥
सुनहु भरत हम सब सुधि पाई। विधि करतब पर किछु न बसाई॥४॥

अर्थ यह बडा सोच था कि मुनिजी कुछ पूछेगे। ऋषिजी भरतजी का शील सङ्कोच देखकर बोले भरतजी! सुनो मुझे सब पता लग गया है। विधाता के किये हुए को कौन मिटा सकता है। किसी का कुछ वश्य नही है।

व्याख्या सङ्कोच को स्पष्ट करते है। मुनिजी ने कुशल तो नही पूछा। फिर भी कुछ तो पूछेंगे ही और यह पूछना चाहे किसी विषय म हो। माता की चर्चा बिना चले नही रह सकती। माता के निन्दनीय कर्म से सन्तान को सङ्कोच होता ही है और विशेषत जब उसी के पुत्र को किसी के पूछने पर कहना पडे। ये मुनि ठहरे। इनसे सब कहना पडेगा। इस सङ्कोच को लखकर मुनिजी बोल उठे कि भरतजी!

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ः कहना नही है। मुझे सब पता लग गया है। जो कुछ हुआ है उसमें
रणी नही है। वह सब विधि की करणी है। मानुषी करणी होती तो उस
लग सकता था। जो विधि लिखा लिलार। देव दनुज नर नाग मुनि कोउ
हार। अतः किसी का कोई वश्य नही है।

ो. तुम्ह गलानि जिय जनि करहु, समुझि मातु करतूति।
तात, कैकइहि दोसु नहिं, गई गिरा मति धूति ॥२०६॥

अर्थ : तुम माता की करतूत समझकर अपने मन मे ग्लानि न करो। हे
ृसमें कैकेयी का दोष नही है। सरस्वती उनकी वुद्धि को ठग ले गयी।

व्याख्या : मुनिजी को देवताओं के रहस्य का पता हैं। अतः स्पष्ट कहे देते
रस्वती ने आकर मन्थरा द्वारा कैकेयी की वुद्धि हरण कर ली। कैकेयी का
ष भी नही है। ब्रह्मदेव का रुख पाकर ही सरस्वती ने देवताओं के विनय को
किया। अतः यह सब विधि की करणी है। तुम व्यर्थ ग्लानि न करो।

कहत भल कहहि न कोऊ। लोकु वेदु बुध सम्मत दोऊ॥
ुम्हार बिमल जस गाई। पाइहि लोकउ वेदु वड़ाई ॥१॥

अर्थ : ऐसा कहने को कोई अच्छा नही कहेगा। क्योकि पण्डितों को लोक
ेद दोनो मान्य है। हे तात! तुम्हारे निर्मल यश को गाकर लोक और
ो वड़ाई पायेंगे।

व्याख्या : बात तो मैंने ठीक कही। पर इसे अच्छा कोई न कहेगा। क्योकि
कहने मे पण्डिताई नही है और पण्डितों को लोक और वेद मान्य है। लोक
वेद पीछे। क्योकि वेद कौन है ? इस प्रश्न का निपटारा तो लोक से ही होगा।
द भी लोक प्रमाण पर ही ठहरा है। माता के निर्दोष होने से तुम निर्दोष हो
ना तुम्हारा अपमान करना है। वात तो यह है कि कैकेयी के करतब से ही
ा इतना निर्मल यश हुआ।

क्योकि तुम्हारा यश वड़ा पवित्र है। तुम्हारे ऐसा आचरण करना महा दुर्लभ
के वर्णन से लोक और वेद की वड़ाई होगी। जो लोग तुम्हारा यश गावेंगे
वड़ाई होगी। वेद की भी तुम्हारे यशोगान से प्रशसा होगी। ऐसे महायशस्वी
र कोई कहे कि निर्दोष है तो कहनेवाले को ससार कहेगा कि इनसे कहते
।

बेद सम्मत सबु कहई। जेहि पितु देइ राजु सो लहई॥
सत्य ब्रत तुम्हहि बोलाई। देत राजु सुखु धरमु वड़ाई ॥२॥

अर्थ : सब लोग ऐसा ही कहते हैं। यह वात लोक और वेद सम्मत है कि
पिता दे वह राज्य पावे। सत्यव्रत राजा तुम्हे बुलाकर राज्य सुख धर्म और
दे देते।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या लोक और वेद के बडाई पाने का कारण कहते हैं कि तुम्हारी करणी लोक और वेद दोनो से ऊँची निकली। क्योकि इस बात म सबका ऐकमत्य है कि जिसे पिता दे वही राज्य पावे। यह सर्वसम्मत सिद्धान्त है।

राजा सत्यव्रत थे। अत विशेष नियम से काम ले सकते थे। वरदान दे दिया था उसे मिथ्या नही कर सकते थे। अत रामजी को न देकर तुम्ह दे देते और उसके साथ सुख धर्म और बडाई भी देते। सुख यथा हरखे सकल पाइ जनु राजू। धर्म यथा प्रजा पालि परिजन दुख हरहू। बडाई यथा राजा दण्डधरो गुरु।

राम गवनु वन अनरथ मूला। जो सुनि सकल विस्व भइ सूला ॥
सो भावी बस रानि अयानी। करि कुचालि अतहु पछितानी ॥३॥

अर्थ रामजी का वन जाना अनर्थ का मूल हो गया। जिसे सुनकर ससार को शूल हुआ। सो भी होनहार के वश बेसमझ रानी कुचाल करके अन्त मे पछतायी।

व्याख्या पर दूसरा वर बडा अनर्थकारी माँगा। राम वनगमन से अयोध्या उजाड हुई। महाराज मरे। जिनका घनिष्ठ सम्बन्ध था उनकी गति कौन कहे। ससार भर मे जिसने सुना उसे शूल हो गया। ससार से अभिप्राय उन लोगो से है जिनमे वस्तुत मनुष्यता है। मनुष्यरूप से जो पशु विचरते हैं उनकी गणना मनुष्यो मे नही है।

भावीवश हो जाने से वडे वडे बुद्धिमानो की बुद्धि बिगड जाती है। ज्ञानी महाराज भानुप्रताप की बुद्धि बिगड गयी। जिसने जन्मभर वासुदेवार्पण कर्म किया। यथा करै जे धरम करम मन बानी। बासुदेव अर्पित नृप ग्यानी। उसने वर माँगा देहाध्यासियो की भाँति। यथा जरा मरन दुख रहित तनु समर जितै जनि कोउ। एकछत्र रिपुहीन महि राज कल्पसत होउ। महारानी तो सूधी थी। यथा काह कहौं सखि सूध सुभाऊ। दाहिन बाम न जानेउँ काऊ। यह यदि भावीवश होकर विकृत मस्तिष्क हो गयी तो इसम आश्चर्य ही क्या है? भावीवश इसकी बुद्धि मारी गयी। यथा भावी बस प्रतीति उर आई। फिर जब प्रकृतिस्थ हुई तो पछतायी। पहिल भी रामजी मे प्रेम था। आज भी प्रेम है। तो बीच म हो क्या गया? यही भावी है।

तहउँ तुम्हार अलप अपराधू। कहइ सो अधमु अयान असाधू ॥
करतेहु राजु त तुम्हहि न दोषू। रामहि होत सुनत सतोषू ॥४॥

अर्थ वहाँ भी यदि कोई तुम्हारा स्वल्प भी अपराध कहे तो वह अधम है। अज्ञानी है और साधु नही है। यदि तुम राज्य भी करते तो तुम्हारा कोई दोष न होता। रामजी को सुनकर सन्तोष होता।

व्याख्या कुचाल म बडा अपराध प्रयोजक कर्ता का हुआ करता है और स्वल्प अपराध उपेक्षा करनेवाल का होता है। सो तुम्हे प्रयोजक कर्ता तो कोई कह नही सकता। यदि कोइ स्वल्पापराध भी कहे तो वह अधम है। अर्थात् लोक वेद

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



से विमुख है। बुद्धिहीन है और उसका हृदय दूषित है। ऐसे पुरुष ही अपने बुद्धि दोष से दूसरों में दोष देखते हैं।

अधम यथा : कहहि सुनहि अस अधम नर ग्रसे जे मोह पिसाच।

अयान यथा : मरम तुम्हार रामकर जानिहि।
ते सब बिधि तुम्ह सन भल मानिहि।

असाधु। यथा : मत तुम्हार यहु जो जग कहही।
ते सपनेहुँ सुख सुगति न लहही।

जो वसिष्ठजी ने कहा था वही भरद्वाजजी भी कहते हैं। यथा : सुनि सुख लहब राम वैदेही। अनुचित कहब न पंडित केही। राय राजपद तुम कहँ दीन्हा। पिता वचन फुर चाहिअ कीन्हा।

दो. अब अति कीन्हेउ भरत भल, तुम्हहिं उचित मत एहु।
सकल सुमंगल मूल जग, रघुबर चरन सनेहु ॥२०७॥

अर्थ : भरतजी! अब तुमने बहुत अच्छा किया। तुम्हारे लिए यही उचित राय थी। रामजी के चरणों में प्रेम होना इस संसार में सब सुमङ्गलों का मूल है।

व्याख्या : भरतजी! यदि तुम राज्य करते तो वह भी भली बात थी : धर्माविरुद्ध [1]प्रेय को कौन नहीं चाहता? तुमने नहीं किया। यह अत्यन्त भली बात हुई। राज्य करते तो धर्मानुकूल होता। इसलिए उसे भला कहा। परन्तु तुमने श्रीरामचरणानुराग को आगे करके राज्य का त्याग करके श्रेय का ग्रहण किया। अतः यह बहुत ही भला हुआ। तुम्हारे ऐसे साधु पुरुष के योग्य कार्य हुआ।

सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न रामपद पंकज भाऊ। जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहि राम प्रेम परधानू। अतः रामजी के चरणों में स्नेह ही सब मङ्गलों का मूल है। क्योंकि रामजी स्वयं मङ्गल मूल हैं। यथा : मंगल मूल राम सुत जासू। अतः मङ्गल मूल से स्नेह करना स्वयं मङ्गल मूल है।

सो तुम्हार धनु जीवनु प्राना। भूरिभाग को तुम्हहि समाना॥
यह तुम्हार आचरजु न ताता। दसरथ सुअन राम प्रिय भ्राता॥१॥

अर्थ : और वह तुम्हारा धन जीवन और प्राण है। तुम्हारे ऐसा महाभाग्यवान् कौन है? हे तात! यह तुम्हारे लिए आश्चर्य की बात नहीं है। तुम दशरथ के पुत्र और रामजी के प्रिय भाई ठहरे।

---

१. अन्यच्छ्रेयोऽन्यदुतैव प्रेयस्ते उभे नानार्थे पुरुषं सिनीतः। तयोः श्रेय आददानस्य साधु भवति। हीयतेऽर्थाद्य उ प्रेयो वृणीते। काठके। श्रेय दूसरी वस्तु है और प्रेम दूसरी वस्तु है। वे दोनों पृथक् पृथक् विषय में मनुष्यों को बाँधते हैं। उनमें से श्रेय के ग्रहण करनेवाले का कल्याण होता है और वह अर्थ से गिर जाता है जो प्रेय को स्वीकार करता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : वह रघुवर चरण स्नेह तुम्हारा धन है। यथा : मांगहु भीख त्यागि निज धर्मू से : अनुदिन बढहु अनुग्रह तोरे तक अथवा : सोक समाज राज केहि लेखे। लखन राम सिय पद बिनु देखे। तुम्हारा जीवन है। यथा : वादि जीव बिनु देह सोहाई। बादि मोर सब बिनु रघुराई। और वही तुम्हारा प्राण है। यथा : अस को जीव जन्तु जग माँही। जेहि रघुनाथ प्रान प्रिय नाही। अतः तुम्हारे ऐसा महाभाग्यवान् कोई नही।

जिस कुल मे जो न हो आयी हो उस काम को कर बैठना आश्चर्य की बात है। तुम्हारे कुल मे तो ऐसा होता आया है। अतः तुम्हारे लिए आश्चर्य की बात नही है। पहिले की बात न कहकर वर्तमान की बात कहता हूँ। तुम्हारे पिता महाराज दशरथ प्रेम के समुद्र थे। यथा ' बदौ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद। बिछुरत दीन दयाल प्रिय तन तृन इव परिहरेउ। तुम्हारे बड़े भाई कैसे भ्रातृवत्सल हैं। यथा : भरत प्रान प्रिय पावहि राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू। रामहि बधु सोच दिन राती। अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती। अतः तुम में इतना राम स्नेह होना आश्चर्य की बात नही है।

सुनहु भरत रघुपति मन माँही। प्रेम पात्रु तुम्ह सम कोउ नाँही ॥
लखन राम सीतहि अति प्रीती। निसि सब तुम्हहि सराहत बीती ॥२॥

अर्थ : भरतजी ! सुनो। रामजी के मन मे तुम्हारे समान प्रेमपात्र कोई दूसरा नही है। लक्ष्मण राम और सीताजी की सारी रात तुम्हारी प्रशसा करने मे ही बीती।

व्याख्या : भरद्वाजजी भरतजी को आश्वासन देते हुए कहते हैं कि रामजी तुमको प्रिय है; इतना ही नही है रामजी को तुम्हारे समान प्रिय कोई नही है। यथा : भरत सरिस प्रिय को जग माँही। इहै सगुन फल दूसर नाँही।

भरतजी की उस समय यह गति थी कि रात को भयानक सपने देखते थे। यथा ' देखहि रात भयानक सपना। जागि करहि कटु कोटि कलपना। भक्त भयानक स्वप्न देखता है। जागकर अनेक चिन्ता करता है। अत' सरकार नही सो रहे हैं। भक्त का स्मरण कर रहे हैं। इसी बात को निषादराज कह रहे है। यथा : तेहि रात पुनि पुनि करहि प्रभु सादर सरहना रावरी। और यही बात भरद्वाजजी कह रहे हैं कि जिस दिन मेरे यहाँ ठहरे तीनो प्राणी रात भर तुम्हारी ही सराहना करते रह गये।

जाना मरमु नहात प्रयागा। मगन होहि तुम्हरे अनुरागा ॥
तुम्ह पर अस सनेहु रघुबर कें। सुख जीवन जग जस जड़ नर कें ॥३॥

अर्थ : मैंने प्रयाग मे स्नान करते उनके मर्म को जाना। वे तुम्हारे प्रेम मे मग्न हो रहे थे। तुम पर ऐसा स्नेह रामजी का है जैसे जड़ पुरुष को संसार के सुखमय जीवन पर होता।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : भरद्वाजजी कहते हैं कि यद्यपि सब रात तुम्हारी प्रशंसा होती रही। पर तुम्हारे और रामजी के प्रेम का मर्म मैंने उनके प्रयाग स्नान करते समय जाना कि शरीर तो सितासित नीर में मग्न हो रहा है। पर मन तुम्हारे अनुराग में मग्न था। श्यामवर्ण वारि को देखकर तुम्हारे स्मरण से शरीर में पुलक हो गया : इसी भाँति भरतजी भी श्याम वर्ण जल को देखकर रामजी के स्मरण हो आने से विरह समुद्र में मग्न हुए थे। यथा : रघुवर बरन बिलोकि बर बारि समेत समाज। होत मगन बारिधि बिरह चढ़े बिबेक जहाज।

भरद्वाजजी कहते हैं कि तीर्थराज में स्नान के समय में भी तुम्हारे अनुराग में मग्न रहना श्रीरामजी के अतीव प्रेम का द्योतक है। ऐसा प्रेम जो जड़ मनुष्य को सुख जीवन पर होता है वह सुख जीवन के लिए क्या नहीं करता धर्म अर्थ काम और मोक्ष सबसे हाथ धो बैठता है। इसी का साफल्य दिखाते हुए कहेंगे : मुख प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करउँ सोइ आजु।

यह न अधिक रघुबीर बड़ाई। प्रनत कुटुंब पाल रघुराई॥
तुम्ह तउ भरत मोर मत एहू। धरे देह जनु राम सनेहू॥४॥

अर्थ : यह रामजी के लिए अधिक बड़ाई की बात नहीं है। वे प्रणत : प्रणाम करनेवाले के कुटुम्ब के पालन करनेवाले हैं। हे भरतजी ! मेरा मत तो यह है कि तुम शरीरधारी रामप्रेम हो हो।

व्याख्या : तुम्हारे ऊपर रामजी का इतना प्रेम होना रामजी के लिए कोई बड़ाई की बात नहीं है। क्योंकि वे तो एक बार के प्रणाम करनेवाले को अपना बना लेते हैं। उसके कुटुम्ब को अपना मान लेते हैं। अतः उसके पालन की बात कौन कहे। उसके कुटुम्ब का पालन करते हैं और तुम तो मेरे मत से शरीरधारी रामप्रेम ही हो। अतः तुम्हारे ऊपर उनका इतना प्रेम होना प्राप्त ही है।

दो. तुम्ह कहँ भरत कलंक यह, हम सब कहँ उपदेसु।
राम भगति रस सिद्धि हित, भा यह समउ गनेसु॥२०८॥

अर्थ : तुम्हारे लिए तो भरत यह कलङ्क है। पर हम तपस्वियों के लिए तो यह उपदेश : हो गया। रामभक्ति रस सिद्धि के लिए यह समय : जब कि रामजी तापस वेष से वन में हैं और तुम उन्हें लौटाने जा रहे हो गणेश रूप हो गया।

व्याख्या : मुनिजी कहते हैं : अवधराज सुरराज सिहाई। दसरथ धन मुनि धनद लजाई। ऐसा राज्य पिता ने तुमको दिया। उसकी स्वीकृति तुम : गृहस्थ को कलङ्क मालूम हो रही है। यह बात हम वनवासी तपस्वियों के लिए उपदेश रूप है। रामभक्ति के लिए तुम ऐसे समृद्ध राज्य का त्याग कर रहे हो जिसका अर्थ यही है कि भक्तिसुख के सामने स्वर्ग सुख भी तुच्छ है। यथा : सूख हाड़ लै भाग सठ स्वान निरखि मृगराज। छीन लेइ जनि जानि जड़ तिमि सुरपतिहि न लाज।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


तथा : सब सुख खानि भगति ते माँगी। नहिं जग कोउ तोहि सम बड भागी। लाभ कि कछु हरिभगति समाना। जेहि गावहिं श्रुति सत पुराना।

यह समय तो सिद्धिदाता गणेश हो गया। इसके स्मरण करने से भक्तिरस की सिद्धि होगी। यथा : जेहि सुमिरत सिधि होइ गन नायक करिबर बदन। विभाव अनुभाव और व्यभिचारी भावो से व्यञ्जना वृत्ति द्वारा जो स्थायी भाव अभिव्यक्त होता है उसी को रस कहते हैं। यथा : प्रीति की उत्पादिका ललना आदि आलम्बन है। प्रीति के पोषक चन्द्रोदय आदि उद्दीपन हैं। इन्ही आलम्बन और उद्दीपनो को विभाव कहते हैं। इसके बाद अश्रु और पुलक आदि जो अनुभव मे लाने योग्य विकृति होती है। उसे अनुभाव कहते हैं। विशेष रूप से हृदय मे स्थायी भाव सञ्चार करानेवाले जो हर्षादि भाव है उन्हे व्यभिचारी भाव कहते हैं और अविच्छिन्न प्रवाहवाला भाव स्थायीभाव कहलाता है।

जैसे सियमुख ससि भये नयन चकोरा। यहाँ सीताजी आलम्बन हैं। ककन किंकिन नूपुर धुनि सुनि उद्दीपन है। भये विलोचन चारु अचचल यह अनुभाव है। मानहु मदन दुदुभी दीन्ही। मनसा बिस्वबिजय कहँ कीन्ही। यह व्यभिचारी भाव है और यहां सीता विषयक जो प्रेमरूपा चित्तवृत्ति है यही रति स्थायी भाव है। यथा देखि सीय सोभा सुख पावा। हृदय सराहत बचन न आवा। यही स्थायी भाव उपर्युक्त आलम्बन, उद्दीपन, अनुभाव और विभाव से पुष्ट होकर रसरूप हो गया और शृङ्गार कहलाया।

इसी भाँति जहाँ सर्वेश्वर रामचन्द्र आलम्बन हैं। रामचरित्र का पाठ या श्रवण उद्दीपन है। पुलक और अश्रु अनुभाव है। हर्षादि व्यभिचारी भाव है। ये रामचरणरति स्थायी भाव को पुष्ट करके रसरूप मे परिणत कर देते हैं। यही भक्तिरस है।

परन्तु काव्य शास्त्र के पारङ्गत कहते हैं : रतिर्देवादिविषया व्यभिचारी तथाञ्चित। स्त्री पुरुष की एक दूसरे के विषय मे प्रेम नामक जो चित्तवृत्ति होती है उसे रति स्थायी भाव कहते हैं। वही प्रेम यदि देवता गुरु तथा पुत्रादि के विषय मे हो तो भाव कहलाता है। इसके लिए वे कई सूक्ष्म कारण भी देते हैं। परन्तु वह केवल बाल की खाल निकालना है। उन कारणो पर विचार करने पर यद्यपि वे इस बात को स्पष्ट नही कहते। तात्पर्य इतना ही निकलता है कि कान्ता विषयक प्रेम जितना गाढा होता है उतना देवतादि विषयक प्रेम नहीं होता।

और बात भी ऐसी ही है। ससार मे ऐसा ही देखा जाता है। वेद भगवान् भी साक्षी देते हैं कि उस प्रेम मे न बाहर का ज्ञान रहता है न भीतर का ज्ञान रहता है। जब देवादि के विषय मे वैसा प्रेम नही होता तो उसे रस कैसे कहे ? स्वय गोस्वामीजी नौ रस मानते हैं। यथा : नवरस जप तप जोग बिरागा। भक्ति को रस मानने से तो दस हो जायँगे।

इस पर भरद्वाजजी कहते है कि यह ठीक है। पहिले ऐसा ही था। पर भरतजी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तुम्हारे प्रेम ने भक्तिभाव का रस होना सिद्ध कर दिया। यथा : परम प्रेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई : रामजी और भरत लाल के मिलन में दोनों भाइयों का प्रेम ऐसा है कि बाहर भीतर का ज्ञान जाता रहा। इसका प्रभाव भी दर्शकों पर ऐसा पड़ता है कि भरत मिलाप जैसा मेला दूसरा काशी में कोई होता नही। अतः अब से भक्तिरस की सिद्धि हुई।

नव बिधु बिमल तात जसु तोरा। रघुबर किंकर कुमुद चकोरा ॥
उदित सदा अथइहि कबहू ना। घटिहि न जग नभ दिन दिन दूना ॥१॥

अर्थ : हे तात ! तुम्हारा यश निर्मल नया चन्द्रमा है और रामजी के भक्त लोग उसके लिए कुमुद और चकोर हैं। यह सदा उदित रहेगा। कभी अस्त न होगा और संसाररूपी आकाश में यह घटेगा नही। दिन दिन दूना होता चला जावेगा।

व्याख्या : रामभक्ति रस साक्षात् अमृत है। उसकी स्थिति भरत यश रूपी चन्द्र में सदा रहेगी। इसी के दिखलाने के लिए कवि भरतयश को नव बिधु से उपमित करते हुए रूपक बाँधते हैं। भरद्वाजजी कहते हैं कि हे तात ! तुम्हारा यश, निर्मल नवीन चन्द्र है। निर्मल शब्द से कलङ्क रहित होना कहा और नवीन शब्द से उसे बढ़नेवाला कहा। नवीन : दुइज का चन्द्र नित्य वर्धनशील होता है और पुराना पूर्णिमा का चन्द्र ह्रासशील होता है। रामजी के दो प्रकार के भक्त पकज और कोक स्थानीय भरतयश चन्द्र के लिए क्रमशः कुमुद और चकोर स्थानीय हो जाते हैं। रामचन्द्र का यश सूर्य है और भरत का यश चन्द्र है। रामोपासक ही भरतयश के प्रेमी होते हैं। अतः जो रामयश के लिए पङ्कज हैं वे भरतयश के लिए कुमुद हो जाते हैं और जो रामयश के लिए कोक हैं वे भरतयश के लिए चकोर हो जाते हैं।

भरतयश चन्द्र की इस चन्द्र से बहुत विशेषता है। यह चन्द्र कभी उदय होता है और कभी अस्त हो जाता है। शुक्लपक्ष मे बढ़ता है और कृष्णपक्ष में घटता है। पर भरतयश चन्द्र अस्त होना जानता ही नही और न घटना जानता है। दिन दिन बढता ही जाता है। इस चन्द्र का प्रचार तो आकाश में है। पर भरतयश चन्द्र का प्रसार सम्पूर्ण संसार मे होगा। निर्गलितार्थ यह कि चन्द्रमा में बहुत दोष है। यथा : अवगुन बहुत चन्द्रमा तोही। परन्तु भरतयश चन्द्र निर्दोष है और गुणाधिक्य भी इसमे है।

कोक तिलोक प्रीति अति करिही। प्रभु प्रतापु रबि छबिहि न हरिही ॥
निसि दिन सुखद सदा सब काहू। ग्रसिहि न कैकइ करतब राहू ॥२॥

अर्थ : त्रैलोक्यरूपी कोक इस पर अत्यन्त प्रीति करेगा। प्रभु रामजी के प्रताप का सूर्य इसकी छवि का हरण न करेगा। यह रात दिन सदा सबको सुख देनेवाला होगा और इसे कैकेयी का करतबरूपी राहु न ग्रस सकेगा।

व्याख्या : चन्द्र तो कोक को शोक देता है। परन्तु भरतयश चन्द्र के प्रति त्रिलोकरूपी कोक का अत्यन्त प्रेम है। चकोररूपी रामभक्त तो प्रेम करते ही हैं और

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


चन्द्र से न प्रेम करनेवाले कोक भी भरतयश चन्द्र से अत्यन्त प्रेम करते हैं। अर्थात् विरही को भी भरतयश चन्द्र शान्तिप्रद है।*

इस चन्द्र की छवि को सूर्य का प्रताप छीन लेता है। पर भरतयश चन्द्र की छवि को प्रभु प्रताप रवि नही छीनता। चन्द्रमा निसिदिन सवको सुखद नही होता। दिन के समय किसी को सुखद नही होता और रात्रि के समय विरहियो के लिए महा दुःखद है और भरतयश चन्द्र सदा सवको सुखद है।

राहु सूर्य और चन्द्र दोनो के तेज पर चोट करता है। इसी भाँति कैकेयी के करतबरूपी राहु ने राम और भरत दोनो के ऊपर अपना प्रभाव डाला। राम के प्रति यथा : तापस बेष बिसेष उदासी। चौदह वर्ष राम बनबासी। भरत के प्रति यथा : देहु एक बर भरतहि टीका। सो रामरूपी सूर्य पर तो कैकेयी के करतव का प्रभाव पड गया। अर्थात् रामजी को वनवास हो गया। पर भरतजी पर प्रभाव न पड़ा। भरतजी ने टीका स्वीकार नही किया।

पूरन राम सुपेम पियूषा। गुर अवमान दोष नहिं दूषा॥
राम भगत अब अमिअ अघाहू। कीन्हेहु सुलभ सुधा बसुधाहू॥३॥

अर्थ : रामजी के प्रेमामृत से परिपूर्ण है और गुरुअपमान रूपी दोष से दूषित नही है। रामजी के भक्त लोग अब इस अमृत से परितृप्त हो। क्योकि तुमने इस अमृत को वसुधा मे भी सुलभ कर दिया।

व्याख्या : चन्द्र मे अमृत का निवास माना गया है। पर भरतयश चन्द्र तो राम सुप्रेमामृत से पूर्ण है। चन्द्र गुरुअपमान से दूषित हैं। यथा : ससि गुरुतियगामी नहुष चढेउ भूमि सुर यान। पर भरतयश चन्द्र गुरुअपमान दोष से दूषित नहीं हैं। गुरुअपमान का प्रसङ्ग आ पडा। महाराज दशरथ ने रामजी को युवराज पद देना कहकर स्त्रीवश हो भरत को राज्य दिया। यदि भरतजी स्वीकार कर लेते तो बडे भाई के अपमान से दूषित हो जाते। पर भरतजी ने वह राज्य अङ्गीकार नही किया। अथवा भरतजी ने पिता की आज्ञा भङ्ग किया। फिर भी गुरु अपमान दोष से दूषित नही हुए।

चन्द्रमा मे अमृत बसता है। पर वह किसी को पान करने के लिए नही मिलता। ससार मे उसका मिलना दुर्लभ है। अब इस अमृत के रसिक रामभक्त लोग इस अमृत को जो भरकर पीकर परितृप्त हो जायँ। भरतजी के द्वारा श्रीराम सुप्रेमामृत जगत् को सुलभ हो गया।

भूप भगीरथ सुरसरि आनी। सुमिरत सकल सुमंगल खानी॥
दसरथ गुन गन बरनि न जाही। अधिकु कहा जेहि सम जग नाही॥४॥

अर्थ : राजा भगीरथ गङ्गा लाये जो स्मरण करने से सुमङ्गल की खानि है। राजा दशरथ के गुणगण का वर्णन नही हो सकता। अधिक के लिए क्या कहा जाय जिसके समान कोई भी नही है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : भानु बंस भये भूप घनेरे। अधिक एक ते एक बड़ेरे। इनमे राजा भगीरथ ने तो लाकर गङ्गाजी को पृथ्वी पर बहा दिया। जिस गङ्गा को स्मरण करने से सब सुमङ्गल सिद्ध होते हैं। गङ्गा गङ्गेति यो ब्रूयात् योजनानां शतैरपि। मुच्यते सर्वपापेभ्यो विष्णुलोक स गच्छति। गङ्गा गङ्गा ऐसा स्मरण करने से सब पाप कट जाते हैं। विष्णुलोक मे गति हो जाती है। इतना बड़ा कल्याण ससार का किया।

इसी वंश में राजा दशरथ हुए। इनके गुणो का वर्णन नही हो सकता। उनसे बड़ा कोई क्या होगा ? उनके बराबरी का ही ससार मे कोई नही हुआ। इसी बात को अगले दोहे मे स्पष्ट करते हैं।

दो. जासु सनेह सकोच बस, राम प्रगट भए आइ।
जे हर हिय नयननि कबहुँ, निरखे नही अघाइ ॥२०९॥

अर्थ : जिसके स्नेह और सङ्कोच के वश मे पड़कर रामजी आकर प्रकट हुए। जिन्हे महादेवजी हृदय की आँखो से जीभरकर कभी न देख सके।

व्याख्या : राजा भगीरथ विष्णुपदी गङ्गा लाये। राजा दशरथ स्वयं उस प्रभु को लाये जिनके चरणकमल से गङ्गाजी की उत्पत्ति है। राजा दशरथ ने स्वायम्भू मनु के रूप से बड़ा भारी तप करके रामजी का दर्शन पाया। संसार को भी यह दर्शन हो इसलिए पुत्ररूप मे उन्हें माँगा। उनके प्रेम और सङ्कोच से रामजी इस पृथ्वी पर आकर प्रकट हुए। नहीं तो रामजी का यथेष्ट दर्शन शिवजी को भी ध्यान मे दुर्लभ है। उस रामजी को जगत् के सब लोगो ने भौतिक नेत्रो से पेट भर देखा। अत: महाराज दशरथ राजा भगीरथ से भी बढ गये।

कीरति बिधु तुम कीन्ह अनूपा। जहँ बस राम प्रेम मृगरूपा ॥
तात गलानि जरहु जियँ जाएँ। डरहु दरिद्रहि पारस पाएँ ॥१॥

अर्थ : तुमने बडा अनोखा कीर्तिरूपी चन्द्रमा बनाया जहाँ राम का प्रेम मृग रूप होकर बसता है। हे तात ! तुम व्यर्थ ही जी मे ग्लानि करते हो। पारस पाने पर भी तुम दरिद्र को डरते हो।

व्याख्या : राजा भगीरथ को भरद्वाजजी ने गङ्गाजी के लाने के कारण महा यशस्वी कहा। महाराज दशरथ का यश उनसे अधिक हुआ। उन्होंने स्वयं राम को लाकर सबके लिए उनका दर्शन सुलभ कर दिया। परन्तु हे भरतजी जिस यशचन्द्र को तुमने बनाया उसकी उपमा नही है। इस चन्द्र में तो राम का प्रेम भक्त के प्रति मृग रूप से बसता है। यथा : जग जप राम राम जप जेही। राम सम्बन्धी प्रेम तो अमृतरूप से इस चन्द्र मे पूर्ण तो है ही। यथा : पूरण राम सुप्रेम पियूषा। राम प्रेम भक्त के प्रति इसमें मृगरूप से बसता है। यह रामप्रेम मृगरूप हैं। कहीं स्थिर नही रहता। यथा : बोले बिहँसि महेस तब ग्यानी मूढ न कोइ। जेहि जस रघुपति करहि जब सो तस तेहि छन होइ। पर तुम्हारे यशचन्द्र मे यह मृग स्थिर होकर बस गया

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है। इसे छोडकर कही जाता ही नही। यथा सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपच महँ सुना न दीसा। अत तुम्हारी महिमा सबसे बडी है।

तुम तो व्यर्थ ही मन मे ग्लानि करते हो। तुम रामोपासक परहितनिरत हो। तुम्हे दु ख कहाँ ? यथा कबहुँक दु ख सबकर हित ताके। तेहि कि दरिद्र परस मनि जाके। ग्लानि का कारण तुम्हारे सन्निकट आ नही सकता। अत व्यर्थ दु ख मत मानो।

सुनहु भरत हम झूठ न कहही। उदासीन तापस बन रहही॥
सब साधन कर सुफल सुहावा। लखन राम सिय दरसनु पावा॥२॥

अर्थ भरतजी सुनो ! हम झूठ नही कहते क्योकि उदासीन हैं। तपस्वी हैं और वन मे रहते हैं। सब साधनो की सुन्दर सफलता लक्ष्मण राम और सीताजी का दर्शन पाना है।

व्याख्या भरद्वाजजी कहते हैं कि जो बात मैं कहूँगा वह हठात् मनमे न बैठेगी। अत यह कहना आवश्यक पड गया कि मैं झूठ नही कहता। अत मेरी बात को अर्थवाद न मान लेना। क्योकि झूठ तो रागद्वेषवाले पुरुष विषय लोलुप तथा जनसमाज मे रहनेवाले बोलते हैं। मै उदासीन हूँ। तपस्वी हूँ और वन मे रहता हूँ। मुझे किसी से रागद्वेष नही। मैं झूठ क्यो बोलूँगा। सत्य से कर्मफल को आश्रय मिलता है। मैं यदि झूठ बोलूँ तो तपस्या ही नष्ट हो जाय। मै वन मे रहता हूँ। किसी से कोई प्रयोजन नही। असत्य तो किसी प्रयोजन से बोला जाता है।

इतनी भूमिका के पश्चात् भरद्वाजजी ने निम्नलिखित बात कही। लक्ष्मणजी रामजी तथा सीताजी का दर्शन पाना सब साधनो की सुन्दर सफलता है। यथा आजु सफल तपु तीरथ त्यागू। आजु सफल जप जोग बिरागू। सफल सकल सुभ साधन साजू। राम तुम्हहि अवलोकत आजू। लाभ अवधि सुख अवधि न दूजी। तुम्हरे दरस आस सब पूजी।

तेहि फल कर फलु दरस तुम्हारा। सहित पयाग सुभाग हमारा॥
भरत धन्य तुम्ह जस जग जयेऊ। कहि अस पेम मगन मुनि भयेऊ॥३॥

अर्थ उस फल का फल तुम्हारा दर्शन है। प्रयागराज के सहित हमारा अहोभाग्य है। भरतजी ! धन्य हो। तुमने यश से जगत् को जीत लिया। ऐसा कहकर मुनि जी प्रेम मे मग्न हो गये।

व्याख्या लखन रामजानकी का दर्शन तो दिव्य फल है। उस फल म भी फल लगता है। यथा मनु सतरूपा ने तप करके राम जी का दर्शन पाया। वह दर्शन उनके तप का फल था। पर उस फल म भी फल लगा। सरकार बोल माँगहु बर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि। सो मैंने जो कुछ साधन किया था उसके फल रूप मे रामजानकी तथा लक्ष्मणजी का दर्शन लाभ किया और उस फल का फल है कि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तुम्हारा दर्शन पाया। इस दर्शन से मै भी कृतार्थ हुआ और प्रयागराज भी कृतार्थ हुए। क्योकि महात्मा लोग ही तीर्थ को तीर्थ बनाते हैं।

भरद्वाजजी कहते हैं कि भरतजी तुम धन्य हो। तुमने यश से ससार को जीत लिया। शस्त्रबल अस्त्रबल सैन्यबल से ससार के जीतनेवाले धन्य नही हैं। ऐसा कहकर मुनिजी प्रेममग्न हो गये। आगे कुछ नही कह सके। भरतजी चुपचाप सुन रहे हैं। मुनिजी चार दोहे तक बोलते ही गये। प्रेम उनका बढता ही गया। यहाँ तक कि प्रेम मे मग्न होकर चुप हो गये।

सुनि मुनि बचन सभासद हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे ॥
धन्य धन्य धुनि गगन प्रयागा। सुनि सुनि भरतु मगन अनुरागा ॥४॥

अर्थ . मुनिजीका वचन सुनकर सभासद हर्षित हुए और साधु साधु ऐसी प्रशसा करके देवताओं ने फूल बरसाये। आकाश मे और प्रयागराज मे धन्य धन्य की ध्वनि गूँज उठी। उसे सुन सुनकर भरतजी प्रेम मे मग्न हो रहे थे।

व्याख्या : जिस समय भरतजी वहाँ गये थे मुनियो की सभा लगी थी। यथा · तहाँ होइ मुनि रिषय समाजा। जाहिं जे मज्जन तीरथ राजा। सो सभा की सभा ने मुनिजी के वचन का अनुमोदन हर्षित होकर किया। भरद्वाजजी के वचन ऐसे प्रभावपूर्ण थे कि आकाश से देवताओ ने उनकी प्रशसा करके पुष्पवृष्टि की।

आकाश मे देवताओ की धन्य धन्य ध्वनि और प्रयागराज मे मुनियो की धन्य धन्य ध्वनि हुई। भगवती सत्योक्ति की पूजा दोनो लोको मे हुई। कहनेवाले मग्न और सुननेवाल भरतजी प्रेम मे मग्न हो रहे थे।

दो पुलक गात हियँ रामु सिय, सजल सरोरुह नयन।
करि प्रनामु मुनि मंडलिहि, बोले गदगद बयन ॥२१०॥

अर्थ : शरीर मे पुलक और हृदय मे राम जानकी और नेत्रकमल अश्रु से पूर्ण थे। इस भाँति भरतजी मुनि मण्डली को प्रणाम करके गद्गद वचन बोले।

व्याख्या : पुलकगात और सजल सरोरुह नयन से भरतजी के तन की दशा कही। गद्गद बयन कहकर वाणी की दशा कही · हिय राम सिय से मन की दशा कही। इस भाँति प्रेम से पूर्ण भरतजी मुनिमण्डली को प्रणामकर बोले। भाव यह कि मुनिजी ने जो कुछ कहा है भरतजी का दु ख उससे व्यतिरिक्त है। यदि वही दु ख होता तो बोलने के लिए अवकाश नही था।

मुनि समाजु अरु तीरथ राजू। साँचिहु सपथ अघाइ अकाजू ॥
एहि थल जौ किछु कहिअ बनाई। एहि सम अधिक न अघ अधमाई ॥१॥

अर्थ : मुनियो का समाज और तीर्थों के राजा प्रयागराज यहाँ सच्चा शपथ लेने से भी हानि की पराकाष्ठा है। यहाँ पर यदि कुछ बनाकर कहा जाय तो इसके बराबर या अधिक पाप और नीचता नही है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या : सच्ची शपथ लेना भी धर्मशास्त्र से गर्हित है। फिर झूठी शपथ के लिए क्या कहा जाय। उससे तो बड़ा भारी पाप होता है। कोई अधम ही ऐसे पाप करने का दु साहस करेगा। उसमे भी तीर्थ पुण्य पाप के लिए उर्वरा भूमि है। इसमे किया हुआ पाप शतगुण सहस्रगुण अधिक हो जाता है। यह तो तीर्थराज प्रयाग है। तिस पर जङ्गम तीर्थराज साधु समाज के बीच मे बैठा हुआ हूँ। मुनिजी ने कहा था : सुनहु भरत हम झूठ न कहही। यहाँ पर भरतजी कहते हैं कि मैं झूठ नही कहता हूँ। मुनिजी यति हैं। अत झूठ न कहने का कारण अपनी विरक्तता बतलाते हैं। भरतजी गृहस्थ है। अत झूठ न कहने का कारणरूप से स्थल की महत्ता कहते हैं। भाव यह कि अपनी अपनी बातो पर सन्देह दोनो महापुरुषो को है कि श्रोता झूठ समझेंगे।

अत मुनि समाज अरु तीरथ राजू कहकर भरतजी शपथ ग्रहण कर रहे हैं। कहते है कि इस स्थल मे सच्ची बात मे भी यदि अलङ्कारादि रचना से कुछ बनावट की जाय तो इसके समान पाप नही है। नहि असत्य सम पातक पुजा। गिरि सम होहि कि कोटिक गुजा। उस असत्य का पुट भी यदि इस स्थल मे आ जाय तो उसके समान पाप कोई नही और ऐसे पाप करनेवाले सा अधम कोई नही। इससे अधिक पाप और अधमाई क्या होगी। भाव यह कि जो कुछ मै कहूँगा वह निवारण सत्य होगा। अर्थवाद को भी स्थान नही है।

तुम्ह सर्बग्य कहउँ सतिभाऊ। उर अतरजामी रघुराऊ ॥
मोहि न मातु करतब कर सोचू। नहि दुखु जियँ जगु जानिहि पोचू ॥२॥

अर्थ . आप सर्वज्ञ है। मै सच्चे भाव से कहता हूँ। रामजी हृदय की बात जाननेवाले है। मुझे माता की करतूति का सोच नही है और न इस बात का दु ख है कि ससार मुझे नीच समझेगा।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि तिस पर यह बात है कि आप सर्वज्ञ हैं। आपके सामने बनावट नही चल सकती और न जिसके विषय मे कुछ कहना है उसी के सामने कोई बनावट चल सकेगी। क्योकि रघुराज रामजी उर अन्तर्यामी हैं। आपने कहा : तुम गलानि जिय जनि करहु समुझि मातु करतूति। अत मुझे माता की करतूति का सोच नही है। आपने कहा . तात गलानि करहु जिय जायें। अतः मुझे ससार के यह समझने का कि भरत नीच हैं : कोई दु ख नही है। क्योकि श्री मुख से उसका निराकरण हो चुका।

नाहिन डरु बिगरिहि परलोकू। पितहु मरन कर मोहि न सोकू ॥
सुकृत सुजस भरि भुवन सुहाए। लछिमन राम सरिस सुत पाए ॥३॥

अर्थ : परलोक बिगड़ने का भी मुझे डर नही है। पिताजी के मरने का भी मुझे सोच नही है। उनका सुन्दर पुण्य और कीर्ति ससार मे भर उठी है और लक्ष्मण तथा राम ऐसे उन्हे पुत्र मिले हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : भरतजी कहते हैं : आपने कहा कि करतेहु राज त तुमहि न दोषू। रामहि होत सुनत संतोषू। सो मुझे इस बात का डर नहीं है कि राज्य ग्रहण से परलोक बिगड़ेगा। अथवा जो मैं पिता का वचन न मानकर जा रहा हूँ इससे परलोक बिगड़ेगा। इस बात का डर मुझे नहीं है। भले ही मेरा परलोक बिगड़े। पर रामजानकी और लक्ष्मण को सुख हो।

और क्या कहें पिताजी के मरने का भी मुझे सोच नहीं है। यथा : भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौन। अब गुरु मुख से सुने हुए अशोच्य प्रतिपादक प्रसङ्ग के अनुकूल पिता का अशोच्य होना कहते हैं। यथा :

सोचनीय नहि कोसल राऊ। भुवन चारिदस प्रगट प्रभाऊ॥
भयउ न अहइ न अब होनिहारा। भूप भरत जसपिता तुम्हारा॥
बिधि हरिहर सुरपति दिसिनाथा। बरनहि सब दसरथ गुनगाथा॥
दो. कहहु तात केहि भाँति कोऊ करहि बड़ाई तासु।
रामलखन तुम शत्रुहन सरिस सुअन सुचिजासु॥
सब प्रकार भूपति बड़ भागी। बादि बिषादु करिअ तेहि लागी॥

**राम बिरह तजि तनु छनभंगू। भूप सोच कर कवनु प्रसंगू॥**
**राम लखन सिय बिनु पग पनही। करि मुनि बेषु फिरहि बन बनही॥४॥**

अर्थ : रामजी के विरह में क्षणभङ्गुर शरीर का परित्याग किया। इसलिए महाराज के शोक का तो कोई प्रसङ्ग नहीं है। परन्तु राम लक्ष्मण और सीताजी पावों में बिना जूता पहिने मुनिवेष धारण किये हुए वन वन में फिर रहे हैं।

व्याख्या : गुरुजी ने जो : सब प्रकार भूपति बड़ भागी कहा था उसी को स्पष्ट करते हुए भरतजी कहते हैं कि उनके मरण की विधि में भी उनके बड़े भाग्य ने उनका साथ दिया। यथा : राम बिरह दसरथ मरन मुनि मन अगम सुमीचु। राम विरह मे प्राण त्यागना यह इतने बड़े भाग्य की बात है कि मुनि लोग मन से भी इसके पाने की आशा नहीं रखते। इसलिए भरतजी कहते हैं कि चक्रवर्तीजी के सोच करने के लिए तो कोई प्रसङ्ग ही नहीं है।

उपर्युक्त ये चार बातें ही ऐसी थी जिसके लिए दुःख होना चाहता था। सो उनका मुझे दुःख नहीं है। अब जिस बात का दुःख है उसे कहते हैं। राम लखन जिनके बारे में निषादराज कहता है :

मातु पिता परिजन पुरबासी। सखा सुसील दास अरु दासी॥
जोगवहि जिन्हहि प्रान की नाईं। महि सोवत तेइ रामु गोसाईं॥
पिता जनक जग बिदित प्रभाऊ। ससुर सुरेस सखा रघुराऊ॥
रामचंदु पति सो बैदेही। सोवत महि बिधि बाम न केही॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


लक्ष्मणजी के विषय मे स्वय भरतजी कह चुके हैं। यथा ·

लालन जोगु लखन लघु लोने। भे न भाइ अस अहहिं न होने॥
पुरजन प्रिय पितु मातु दुलारे। सिय रघुबीरहिं प्रान पियारे॥
मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ। तात बाउ तन लाग न काऊ॥

ते बन सहहिं बिपति सब भाँती। इन तीनो मूर्तियो के पैरो मे कुशकण्टकादि से रक्षा के लिए जूते नही हैं। शीत ऊष्ण निवारण के लिए कपडे नही हैं। मुनि का वेष बनाये हुए हैं। त्राण के लिए कोई स्थान नही है। वन वन मे घूम रहे है। राजा का रङ्क की भाँति रहना अति कष्ट कारक है।

दो. अजिन बसन फल असन महि, सयन डासि कुस पात।
बसि तरु तर नित सहत हिम, आतप बरषा बात ॥२११॥

अर्थ मृगछाला पहनना, फलो का भोजन, कुश और पत्ते बिछाकर पृथ्वी पर सोना और पेडो के नीचे रहकर नित्य धूप वर्षा और वात का सहन करना।

व्याख्या . जीवन के जितने आवश्यक साधन हैं उन सब में ही तीनो मूर्तियो को अत्यन्त कष्ट हो रहा है। बहुमूल्य सुखप्रद वस्त्र धारण करनेवालो को मृगचर्म पहनना पड रहा है। अमृतवत् सुस्वादु भोजन करनेवालो को अन्न दुर्लभ है। वन्य फलो पर गुजारा करना पड रहा है। क्षीर फेन सम मृदु बिछावन युक्त मञ्च · पलङ्ग पर सोनेवालो को कुश पल्लव बिछाकर पृथ्वी पर सोना पड रहा है। महल मे रहनेवाले पेड तले धूप पाला और झझावात सह रहे हैं। सुख के सब साधन सुलभ हैं। पर उनके उपभोग से वे बिना अपराध के वञ्चित किये गये है। भरतजी कहते हैं कि इन चार बातो का मुझे दु ख है।

एहि दुख दाह दहइ दिन छाती। भूख न बासर नीद न राती॥
एहि कुरोग कर औषधु नाँही। सोधेउँ सकल बिस्व मन माँही॥१॥

अर्थ · इस दु ख की जलन से सदा छाती जला करती है। न दिन को भूख लगती है और न रात को नीद लगती है। इस कुरोग की कोई दवा नही है। मैंने मन ही मन सारा विश्व ढूँढ डाला।

व्याख्या चिन्ता ज्वाल सरीर वन दावा लगि लगि जाय। प्रगट धुआँ नहिं देखिये उर अतर धुँधुवाय। उर अतर धुँधुवाय जरै जिमि काँच की भट्टी। जरिगे लोहू मास रह गयी हाड की ठट्टी। कह गिरिधर कवि राय सुनोरे मेरे मीता। सो नर कैसे जियै जासु उर व्यापै चीता।

सो भरतजो को रामजी की चिन्ता रूपी ज्वाला हृदय को जला रही है। क्षण भर भी शान्त नही होती। भूख और नीद जाती रही। कही विश्राम नही। यथा : निसि न नीद दिन भूख नहिं भरत बिकल सुठि सोच। नीच कीच बिच मगन जस मीनहि सलिल सकोच।

यह कुरोग है। इसने नित्यरोग क्षुधा निद्रा को भी दवा लिया है। यथा :

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कहा भलो धौ भयो भरत को लगे तरुन तन दौन। अथवा इसकी दवा नही है इसलिए कुरोग है। यह मानसिक रोग है। इसके शान्ति के उपाय ढूँढने मे भरतजी कहते हैं कि मैने मन से सम्पूर्ण विश्व ढूँढ डाला। सद्गुरु वैद्य का भी वचन सुन चुका। कोई औषध हाथ न लगा।

मातु कुमत बढई अघ मूला। तेहि हमार हित कीन्ह बसूला ॥
कलि कुकाठ करि कीन्ह कुजन्त्रू। गाडि अवध पढि कठिन कुमन्त्रू ॥२॥

अर्थ माता का बुरा विचार ही पापो का मूल बढई हुआ। उसने हमारे हित को वँसूला बनाया। उसने कलि के कुकाठ का कुयन्त्र बनाया और कठिन कुमन्त्र को पढकर अवध मे गाड दिया।

व्याख्या भरतजी का कहना है कि इस दु ख से मै ही दु खी नही हूँ। सम्पूर्ण प्रजा मण्डल का यही हाल है। अचल विपत्ति की नीव पड गयी। सम्पूर्ण अयोध्या उजाड हुआ चाहती है। इसी बात को यन्त्र के रूपक मे कहते हैं। देश के उजाडने के लिए बढई वँसूला द्वारा बहेडे के काठ का यन्त्र बनाता है। कलि शब्द का अर्थ बहेडे का वृक्ष है और विरोध अर्थ भी है। उस यन्त्र को कुमन्त्र पढकर गाडा जाता है। इससे वह देश उजाड हो जाता है। सिवा उस यन्त्र को उखाड फेंकने के देश के बसने का कोई उपाय नही। यहाँ कैकेयी का कुविचार ही बढई हुआ। उसने भरतजी के हित को वँसूला बनाकर विरोध रूपी काठ से वह यन्त्र तैयार किया और तापस वेष बिसेष उदासी। चौदह बरिस राम बनवासी। इस मन्त्र को पढकर अयोध्या मे गाड दिया अर्थात् वरदान माँग लिया। अघमूला। यथा काई कुमति कैकेई केरी। परी जासु फल बिपति घनेरी। अवधि पाठ मानने से भी अर्थ वही रहेगा। पर गाडने के स्थान का निश्चय नही हो सकेगा।

मोहि लगि यहु कुठाटु तेहि ठाटा। घालेसि सबु जगु बारहँबाटा ॥
मिटइ कुजोगु राम फिरि आएँ। बसै अवध नहि आन उपाएँ ॥३॥

अर्थ उसने यह कुठाट मेरे लिए रचा और सारे लोगो को बारह बाट करके नष्ट कर दिया। रामजी के लौटने से यह कुयोग मिट सकता है। अयोध्या के बसने का उपाय यही है। दूसरा नही है।

व्याख्या भरतजी कहते हैं कि यह कुसाज मेरे हित के लिए साजा गया। इससे साजनेवाले की महामूर्खता द्योतित किया। यन्त्र बनानेवाले ने यह न समझा कि इससे भरत का हित नही हो सकता उलटा देश उजड जायगा। जिस भाँति रामचरण मे लीन रहने से अन्त करण म स्वाराज्य रहता है। परन्तु बहिर्मुख होने से दश इन्द्रियाँ और मन बुद्धि का मार्ग पकडकर बारह बाट हो जीव दीन हो जाता है। उसी भाँति रामजी के रहने से सब सुख रहेगा और उनके वन जाने से सम्पूर्ण राज्य नष्ट हो जायगा। रामजी का लौटना ही उस यन्त्र का उखाडना है। वे यदि फिर आवें तो अयोध्या बसती है। नही तो दूसरा उपाय नही है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भरत बचन सुनि मुनि सुखु पाई । सबहि कीन्ह बहु भाँति बडाई ॥
तात करहू जनि सोचु बिसेखी । सब दुख मिटिहि राम पग देखी ॥४॥

अर्थ : भरत के वचन को सुनकर मुनि ने सुख पाया और सबने बहुत प्रकार से प्रशसा की और बोले हे तात ! विशेष सोच न करो । रामजी के चरण दर्शन से सब दु ख मिट जायगा ।

व्याख्या : भरतजी का वचन सुनकर मुनि भरद्वाज को सुख हुआ । भरतजी का श्रीराम चरणो मे प्रीति सूचक वचन सुनने से परमार्थपद परम सुजान को सुख होना स्वाभाविक है । सबने बहुत भाँति से भरतजी की प्रशसा की अर्थात् भरतजी के भायप, भगति, भरोस, भलाई की बडाई की ।

मुनिजी सोच करने को नही रोकते । क्योकि यह सोच भी कल्याणदायक है । विशेष सोच न करने की सलाह देते हैं । क्योकि दूसरी दवा है और वह यह सब दुख मिटिहि रामपद देखी । भरतजी पहिले कह भी चुके है देखे बिन रघुबीर पद जिय की जरनि न जाय ।

इस भाँति सोच को कम करने का आदेश देकर भोजन शयन के लिए आग्रह करते है ।

दो. करि प्रबोधु मुनिवर कहेउ, अतिथि प्रेमप्रिय होहु ।
कंद मूल फल फूल हम, देंहि लेहु करि छोहु ॥२१२॥

अर्थ · समझाने के बाद मुनिराज ने कहा कि अब तुम प्रेमप्रिय अतिथि होओ और कन्द मूल फल फूल जो कुछ हम दें कृपा करके उसे स्वीकार करो ।

व्याख्या · आतिथ्य सत्कार की स्वीकृति के लिए पहिले प्रबोध किया । चित्त का कष्ट मिटाया । उचित आतिथ्य की योग्यता अपने मे न समझकर प्रेम प्रिय होहु कहते है । अर्थात् मेरे प्रेम को स्वीकार करो । तुम्हे किसी वस्तु की आवश्यकता नही । कृपा करके मेरा दिया हुआ फल फूल स्वीकार करो । मुझ पर छोह करो । मुनिजी भरतजी की महामहिमा जानते हैं । यथा · जयति बिबुधेश धनदादि दुर्लभ महाराज सम्राज सुखप्रद बिरागी ।

सुनि मुनि वचन भरत हियँ सोचू । भयेउ कुअवसर कठिन सँकोचू ॥
जानि गरुइ गुरु गिरा बहोरी । चरन बदि बोले कर जोरी ॥१॥

अर्थ : मुनिजी का वचन सुनकर भरतजी के मन मे सोच हुआ कि कुअवसर मे कठिन सङ्कोच आ पड़ा । फिर गुरु की वाणी का गौरव समझकर चरणो की वन्दना करते हुए हाथ जोडकर बोले ।

व्याख्या भरतजी समझ गये कि भरद्वाजजी हम लोगो को विश्राम देना चाहते हैं । परन्तु यह अवसर सुखोपभोग का नही है । मै सेवा धर्म मे हूं । जब तक स्वामी सुखोपभोग स्वीकार न करें तब तक सेवक सुखोपभोग कैसे करे । अथवा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भरतजी ने यह सोचा कि मैं तीर्थ मे आया हूँ। यहाँ दान करना प्राप्त है। ब्राह्मण का आतिथ्य कैसे स्वीकार करूँ। परन्तु भरद्वाजजी के वचन का उल्लघन भी नही किया जा सकता। वर्णानां ब्राह्मणो गुरु। तिस पर भरद्वाजजी तापस शम दम दया निधान और परमार्थ पथ मे परम सुजान हैं। ये तो नितरा गुरु हैं।

ऐसे अवसर पर गुरुगिरा ही प्रमाण हैं। जहाँ धर्म दूसरा हो और गुरु आज्ञा कुछ भिन्न हो तो गुरु आज्ञा ही बडी मानी जाती है। गुरु की आज्ञा पालन मे उचित अनुचित विचार को स्थान नही है। यथा कह सिव जदपि उचित अस नाँहीं। नाथ वचन पुनि मेटि न जाँही।

सिर धरि आयेसु करिअ तुम्हारा। पर धरम येहु नाथ हमारा॥
भरत वचन मुनिवर मन भाए। सुचि सेवक सिष निकट बोलाए॥२॥

अर्थ : आप की आज्ञा को शिरोधार्य करके पालन करूँ। यही हे नाथ! मेरा परम धर्म है। भरत के वचन मुनिराज को अच्छे लगे। उन्होंने पवित्र सेवको और शिष्यो को निकट बुलाया।

व्याख्या : सिर धरि आयसु करिअ तुम्हारा। परम धर्म यह नाथ हमारा। यही अर्धाली ज्यों की त्यों उस प्रकरण मे आयी है। जिसमे रामजी उमा के स्वीकार करने के लिए शङ्करजी से अनुरोध करते हैं। वहाँ शङ्करजी की प्रतिज्ञा थी कि एहि तन सतिहि भेट मोहि नाँही और रामजी का अनुरोध इसके विपरीत था। यथा : जाइ विवाहहु सैलजहि यह मोहि माँगे देहु। यहाँ शिवजी को भी कुअवसर कठिन सङ्कोच पडा था। सामान्य धर्म का परम धर्म से बाध होता है। गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करना परम धर्म है। अत भरतजी ने अपने सामान्य धर्म के प्रतिकूल शिवजी की भाँति गुरु आज्ञा को परम धर्म मानते हुए आतिथ्य का स्वीकार कर लिया।

भरतजी की स्वीकृति से मुनिजी को प्रसन्नता हुई। अत मन भाए लिखते हैं। भरतजी से छोह करने के लिए मुनिजी ने कहा था। सो भरतजी ने छोह कर दिया। अत आतिथ्य सत्कार की तैयारी करनी चाहिए। भरतजी के आतिथ्य का अर्थ है सम्पूर्ण सेना तथा अयोध्यावासियो का आतिथ्य। इसलिए जितने व्यक्ति मुनिजी की सेवा मे थे क्या शिष्य क्या भृत्य जो सपने में भी अपने धर्म से विचलित नही हुए थे उन्हें निकट बुलाया। भरतजी के आतिथ्य मे केवल पुण्यात्मा लोगों से ही काम लिया जायगा। रामजी को मार्ग प्रदर्शन के लिए भी भरद्वाजजी ने इस बात का ध्यान रखा। यथा : मुनि बटु चारि सग तब दीन्हे। जिन बहु जन्म सुकृत सब कीन्हे।

चाहिअ कीन्ह भरत पहुनाई। कंद मूल फल आनहु जाई॥
भलेहि नाथ कहि तिन्ह सिर नाए। प्रमुदित निज निज काज सिधाए॥३॥

अर्थ : उनसे कहा कि भरत की पहुनाई करनी चाहिए। इसलिए कन्द मूल

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



फल जाकर ले आवो। उन्होने कहा हे नाथ ! बहुत अच्छा। सिर नवाया और प्रसन्न होकर अपने अपने काम पर चले गये।

व्याख्या : भरत की पहुनाई करनी चाहिए। इतने मे ही जो कुछ कहना था मुनिजी ने कह दिया। जगत् के भरण पोषण करनेवाले भरत की पहुनाई करनी है। अत. इनके अनुरूप कन्द मूल फल ले आवो। मुनिजी के शिष्य सेवक बडे पटु हैं। मुनिजी के पास अत्युत्तम फल मूलकन्द तैयार भी रहता है। रामजी के सत्कार के समय कहा गया है : कन्द मूल फल अकुर नीके। दिये आनि पुनि मनहु अमीके।

वे सेवक और शिष्य बडे शुचि थे। आज्ञा पाकर बडे प्रमुदित हुए। खोज खोजकर अधिक मात्रा मे जल्दी से लाना है। अतः तुरन्त चल दिये और छितरा कर चले फल लाने को कोई फलवाले वृक्षो की ओर चले। कन्द लाने कोई उस ओर चले जिधर उसकी बहुतायत थी। सब ने काम बाँट लिये। इसलिए निज निज काज सिधाये कहा : ऋषियो के सत्कार के लिए तो कन्द मूल ही जायगा।

मुनिहि सोच पाहुन बड़ नेवता। तसि पूजा चाहिअ जस देवता॥
सुनि रिधि सिधि अनिमादिक आई। आयसु होइ सो करहि गोसाई॥४॥

अर्थ : मुनिजी को सोच हुआ कि मैंने पाहुन · मेहमान तो बड़ा नेवत दिया है। अब जैसा देवता हो वैसी पूजा भी चाहिए। यह सुनकर ऋद्धि और अणिमादि सिद्धि आयी। बोली हे स्वामिन् जो आज्ञा हो सो हम करें।

व्याख्या : नेवता देना तो सहल है। पर आतिथ्य सत्कार कठिन कार्य है। देवता के स्वरूपानुकूल पूजा होनी चाहिए। बिश्व भरण पोषण कर जोई। ताकर नाम भरत अस होई। अतः भरत की महामहिमा है। ये बड़े पाहुन हैं। इनके स्वरूपानुकूल आतिथ्य कैसे हो मुनिजी इस सोच मे पडे। रामजी के आने पर सोच नही हुआ। क्योकि उनका मुनिव्रत वेष अहार था। कन्द मूल फल से काम चल गया। पर भरत के लिए तो यह बात नही है और राज समाज के साथ हैं। अतः इनका आतिथ्य तो बडे ठाट बाट से होना चाहिए।

परन्तु भरद्वाजजी की तपस्या और त्याग ऐसा है कि ऋद्धि सिद्धि शिष्यों से पूछती रहती हैं कि हम लोगो की सेवा का समय आ पडे तो बतलाना। ऋषिजी से जाकर पूछने का उनका साहस नही पड़ता। ऋषिजी को उनकी आवश्यकता नही। आज शिष्यो मे दौड़ धूप देखकर पूछा। अपना अवसर जानकर स्वय मुनिजी की सेवा मे उपस्थित हो गयी और आज्ञा माँगने लगी कि हमलोगो को भी कुछ सेवा के लिए हुकुम हो।

दो. राम बिरह ब्याकुल भरतु, सानुज सहित समाज।
पहुनाई करि हरहु श्रमु, कहा मुदित मुनिराज॥२१३॥

अर्थ : मुनिराज ने प्रसन्न होकर कहा कि रामजी के विरह मे भरतजी अपने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



छोटे भाई और समाज के साथ विकल हैं। सो तुमलोग उनका आतिथ्य सत्कार करके थकावट दूर करो।

व्याख्या : ऋद्धि सिद्धि के इस समय आ जाने से मुनिराज प्रसन्न हो उठे। बोले भरतजी शत्रुघ्नजी और उनका सारा समाज रामविरह से व्याकुल है। मनसे पीडित शरीर से श्रमित है। यथा : भरत पयादेहि आये आजू। भयउ दुखित सुनि सकल समाजू। झलका झलकत पायन्ह कैसे। पंकज कोस ओस कन जैसे। सो इन लोगो की ऐसी पहुनाई हो कि इन लोगो का चित्त पहुनाई के सुख की ओर खिंच आवे और कुछ समय के लिए विरह भूल जाँय और श्रम जाता रहे।

रिधि सिधि सिर धरि मुनिवर बानी। बड़भागिनी आपुहि अनुमानी ॥
कहहिं परसपर सिधि समुदाई। अतुलित अतिथि राम लघु भाई ॥१॥

अर्थ : ऋद्धि सिद्धि ने श्रेष्ठ मुनिजी की वाणी को शिरोधार्य करके अनुमान किया कि हम लोग बडी भाग्यवान् है। आपस मे सिद्धि लोग कहती हैं कि रामजी के छोटे भाई ऐसे अतिथि हैं जिनकी तुलना नही।

*व्याख्या : ऋद्धि साक्षात् कुबेरजी की धर्मपत्नी हैं। सिद्धियाँ आठ हैं। यथा :* १. अणिमा २ लघिमा ३ प्राप्ति ४ प्राकाम्य ५ महिमा तथा ६ ईशित्व ७ वशित्व च ८ तथा गरिमा। ऋद्धि और सिद्धियों ने भरद्वाजजी की आज्ञा शिरोधार्य किया। आज तक मुनिजी ने कभी कोई काम नही लिया था। अतः उन लोगो ने अनुमान किया कि हम लोगो का बडा भाग्य जगा है। तभी मुनिजी ने सेवा स्वीकार की है। सानुज सहित समाज भरतजी के पहुनाई करने का अवसर मिला और इस समय हमारी की हुई पहुनाई मुनिजी की मानी जायगी। अतः भरतजी को स्वीकार करना पडेगा। इससे भी अपने को बड़भागिनी माना। यथा : सीतापति सेवकाई। कामधेनु सत सरिस सोहाई। तथा ' मानत सुख सेवक सेवकाई।

सिद्धि लोग आपस मे बात करने लगी कि तस पूजा चाहिअ जस देवता और भरतजी तो रामजी के छोटे भाई हैं। अत बेजोड अतिथि हैं। इनके स्वरूपानुकूल पूजा कैसे बनेगी ? भरतजी के बेजोड़ होने के प्रमाण मे स्वय कवि कहते हैं : निरवधि गुन निरुपम पुरुष भरत भरत सम जानि। कहिअ सुमेरु कि सेर सम कविकुल मति सकुचानि।

मुनि पद बंदि करिअ सोइ आजू। होइ सुखी सब राज समाजू ॥
अस कहि रचेउ रुचिर गृह नाना। जेहि बिलोकि बिलखाहिं बिमाना ॥२॥

अर्थ : मुनिजी के चरणवन्दन करके आज ऐसा ही काम करना चाहिए जिसमे सारा राजसमाज सुखी हो। ऐसा कहकर उन लोगो ने ऐसे सुन्दर सुन्दर घर बनाये। जिन्हे देखकर विमान बिलख उठें।

व्याख्या : भरद्वाजजी कुबेरजी के नाना हैं। ऋद्धि सिद्धि ने सलाह की कि उनके चरणो की वन्दना करके ऐसा तो कर ही डालना चाहिए। जिसमे यदि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भरतजी को सुखी न कर सकें तो उनका समाज तो सुखी हो जावे। ऋद्धि सिद्धि को आशा नही है कि वे भरतजी को सुखी करने मे समर्थ होगी। तब उन्होने सोचा कि यदि उनके समाज को हम लोग सुखी बना सकी तो यह भी भरतजी के सुखी होने का कारण होगा।

ऐसा विचार करके उन लोगो ने अपनी दिव्य शक्ति से क्षणभर मे ऐसे घर बनाये जिनके सामने विमान भी कुछ न ठहरें। घर ही सुख के समान का आश्रय है। अत यही सम्पूर्ण भोग का उपलक्षण है। इसलिए पहिल गृह रचे। विमान की उपमा देकर उन्हे दैवी भोगो से परिपूर्ण कहा तथा अत्यन्त ऊँचा कहा अथवा उन्हे मङ्गम गृह कहा। समाज का टिकाना है। इसलिए नाना प्रकार के गृह बनाये।

भोग बिभूति भूरि भरि राखे। देखत जिनहि अमर अभिलाखे ॥
दासी दास साजु सब लीन्हे। जोगवत रहहिं मनहि मनु दीन्हे ॥३॥

अर्थ उन घरो मे बहुत सा भोग और ऐश्वर्य भर रक्खा। जिन्हे देखकर देवताओ का जी ललच जाय। दासी दास सब प्रकार क सामान लिये हुए मन मे मन मिलाकर उसकी सँभाल करते हैं।

व्याख्या उन घरो मे सब प्रकार के भोग तथा उनके साधन विभूति ऐश्वर्य को खूब भरा। मकान तो ऐसे बने जिनके टक्कर के विमान नही और उनमे सामान ऐसे भरे गये जिन्हे देखकर देवताओ को भी अभिलाषा हो उठे। क्योकि अवधवासी उनम ठहरनेवाले है। जो ऋद्धि सिद्धि से तथा सुरदुर्लभ सुख से अपरिचित नही हैं। यथा रिधि सिधि सपति नदी सुहाई। उमगि अवध अबुधि कहँ घाई। तथा सुर दुर्लभ सुख सदन बिहाई।

यदि अनुकूल सेवक न हो तो सम्पत्ति का आनन्द नही मिलता। अत घरो मे दासी दास सुख का साज लिए प्रस्तुत हैं। मालिक से मन मिलाकर सेवा करना जानते हैं। चाहते ही ईप्सित पदार्थ प्रस्तुत कर देते हैं। आज्ञा को आवश्यकता नही। यथा मधुपर्क मगल द्रव्य जो जेहि समय मुनिमन महुँ चहैं। भरे कनक कोपर कलस सो सब लिये परिचारक रहैं।

सब समाजु सजि सिधि पल माँही। जे सुख सुरपुर सपनेहु नाँही ॥
प्रथमहि बास दिये सब केही। सुदर सुखद यथा रुचि जेही ॥४॥

अर्थ सिद्धियो ने वहाँ पलभर म सब समाज सजा दिये। जो सुख स्वर्ग मे भी सपने मे न मिले। पहिल तो सबको उनकी रुचि के अनुसार सुन्दर सुखदायी निवास स्थान दिये।

व्याख्या इतने बडे समाज को सजने म ऋद्धि सिद्धि को कुछ भी विलम्ब न हुआ। सिद्धियो के लिए यह क्षणभर का काम था। जितना जल्दी पहुनाई आरम्भ हो जाय उतना ही अच्छा। अत पहिले उन घरो म सब लोगो को टिकाया। इस टिकाने म यथायोग्य से काम नही लिया गया। बल्कि यथारुचि से काम लिया

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



गया। योग्यता पर ध्यान देने से यथेप्सित सुख न मिलता। ये घर देखने मे सुन्दर और रहने मे सुखद थे।

दो. बहुरि सपरिजन भरत कहुँ, रिषि अस आयेसु दीन्ह।
बिधि बिसमय दायकु बिभव, मुनिवर तपबल कीन्ह ॥२१४॥

अर्थ : फिर कुटुम्ब सहित भरत को निवास दिया। क्योंकि ऋषिजी ने ऐसी ही आज्ञा दी और उन्होने अपने तप बल से ऐसा वैभव रच दिया जिसे देखकर ब्रह्मदेव को भी आश्चर्य हो।

व्याख्या : सपरिजन भरत के रहने के लिए ऋषिजी ने ऋद्धि सिद्धि को यह आज्ञा दी कि सबके टिका देने के पीछे इन्हे टिकाना और अपने तपबल से विधि विस्मय दायक विभव उत्पन्न किया। यथा : तप से अगम न कछु ससारा। विधि विस्मय दायक विभव से त्रिपाद् विभूति का विभव कहा। मुनिजी ने ऐसी व्यवस्था की कि मुनियो का सत्कार तो शिष्य सेवकी के सुपुर्द किया। राज समाज का सत्कार ऋद्धि सिद्धि के सुपुर्द किया और भरतजी का सपरिजन सत्कार तपबल से स्वय करने लगे।

मुनि प्रभाउ जब भरत बिलोका। सब लघु लगे लोकपति लोका ॥
सुख समाजु नहिं जाइ बखानी। देखत बिरति बिसारहिं ग्यानी ॥१॥

अर्थ · मुनिजी के प्रभाव को जब भरतजी ने देखा तो उन्हे सभी लोकपतियों के लोक छोटे जँचने लगे। सुख समाज की प्रशसा नही हो सकती। जिसके देखते ही ज्ञानी का वैराग्य भूल जाय।

व्याख्या : भरतजी का स्वभाव है कि सबकी खोज लेते हैं। अतः ऋद्धि सिद्धि का भी प्रभाव देखा : राजा जनक की ओर से सीताजी की आज्ञा से ऋद्धि सिद्धि आयी थी। यथा : सिधि सब सिय आयसु अकिन गयो जहाँ जनवास। लिये संपदा सकल सुख सुरपुर भोग बिलास। निज निज वास बिलोकि बराती। सुर सुख सकल सुलभ सब भाँती। बिभव भेद कछु कोउ न जाना। सकल जनक कर करहिं बखाना। सबका खोज खबर लेकर जब अपने डेरे की ओर देखा तो वहाँ की समृद्धि के सामने इन्द्रादि लोकपाल के लोक हलके मालूम पडे।

वहाँ कैसा सुख समाज था? इसका वर्णन नही हो सकता। क्योंकि वह तो विस्मय दायक विभव था। विधि के सृष्टि के जीव उसका क्या वर्णन कर सकें। उसे देखकर ज्ञानी का वैराग्य भूल जाय। ज्ञानी मे वैराग्य की पराकाष्ठा होती है। यह समाज महामाया की कृपा से हुआ। ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा। बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति। पर भरतजी परम भक्त हैं। इनकी विरति बनी रही। यथा : भरतहि होइ न राजमदु बिधि हरिहर पद पाय।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



आसन सयन सुबसन बिताना । बन बाटिका बिहग मृग नाना ॥
सुरभि फूल फल अमिअ समाना । बिमल जलासय बिबि बिधाना ॥२॥

अर्थ : आसन, शय्या, वस्त्र, चँदवा, उपवन, फुलवारी और नाना प्रकार के पक्षी और मृग सुगन्धित फूल और अमृत के समान स्वादिष्ट फल और अनेक प्रकार के निर्मल जलाशय ।

व्याख्या : आसन बैठने के लिए, शय्या सोने के लिए, सुवसन शीत उष्ण निवारण के लिए, वितान क्षुद्र जन्तुओ से रक्षा के लिए। वन वाटिका विहार के लिए, नाना प्रकार के पक्षी चहचहाने के लिए और मृग कुलेल करने के लिए। अब उन उपवन तथा वाटिका के फल फूल का वर्णन करते हैं। फूल सुगन्धित है और फल अमृत के समान स्वादु हैं।

असन[1] पान सुचि अमिअ अमी से । देखि लोग सकुचात जमी से ॥
सुर सुरभी सुरतरु सबही के । लखि अभिलाषु सुरेस सची के ॥३॥

अर्थ खान पान और पवित्र अमृत सा जल जिन्हे देखकर लोग यमी की भाँति सङ्कोच करते हैं। सभी के पास कामधेनु और कल्पवृक्ष थे। जिन्हे देखकर इन्द्र और इन्द्राणी को अभिलाष उत्पन्न हो।

व्याख्या अहिंसा सत्यास्तेयब्रह्मचर्यापरिग्रहा यमा । १ अहिंसा २ सत्य ३ चोरी न करना ४ ब्रह्मचर्य ५ सग्रह न करना। ये पाँच यम हैं। जिन्होंने इनका व्रत ले रक्खा है वे यमी हैं। इन्हे भोग्य पदार्थ के सग्रह मे सङ्कोच होता है। पर यहाँ के भोग्य पदार्थ इतने ऊँचे दर्जे के हैं कि लोगो को उन्हे देखकर यमियो की भाँति सङ्कोच होता है। उनका चित्त कहे देता है कि इनके उपभोग की मेरे मे योग्यता नही। अमिअ का अर्थ जल भी है। यथा पय कीलालममृत जीवन भुवन वनम्। यहाँ प्रथम अमिअ का अर्थ जल है।

इतने पर भी कोई घाटा न रह जाय। इसलिए सबके पास कामधेनु और कल्पवृक्ष हैं। जिन्हे देखकर इन्द्र इन्द्राणी को अभिलाष हो कि मेरे नन्दन वन मे भी ऐसी कामधेनु और ऐसे कल्पतरु होते। राजसमाज के सुख को देखकर अमर अभिलाखे पर मुनिवर के तपबल से अर्जित सम्पत्ति ऐसी थी कि उसे देखकर इन्द्र इन्द्राणी को अभिलाष हो जावे।

रितु बसत बह त्रिबिध बयारी । सब कहँ सुलभ पदारथ चारी ॥
स्रक चंदन बनितादिक भोगा । देखि हरख बिस्मय बस लोगा ॥४॥

अर्थ वसन्त ऋतु हो गयी। शीतल मन्द सुगन्ध वायु बहने लगी। सबको धर्मार्थ काम मोक्ष सुलभ हो गया। माला चन्दन तथा स्त्री आदि मे है जिनके : ऐसे भोगो को देखकर लोग हर्ष और आश्चर्य के वश मे हो गये।

---

१ यहाँ अभेद रूपक सम है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : समय का परिवर्तन हो गया। ग्रीष्म ऋतु वसन्त हो गयी। अतः त्रिविध समीर बहने लगा। धमार्थ काम की कौन चलावे मोक्ष भी उस समय सुलभ हो गया। माला और चन्दन का गृही को अधिकार है। क्योंकि ये कामोपभोग की सामग्री हैं और स्त्री शरीर को सांसारिक सुखों का सर्वश्रेष्ठ साधन माना गया है। इसीलिए वनितादिक भोग कहते हैं। जब स्वर्ग के सभी सुख हैं, कामधेनु हैं, कल्प-वृक्ष हैं तो अप्सराएँ क्यों न हों ? यह सब देखकर लोगों को हर्ष भी हुआ और आश्चर्य भी हुआ कि ऐसा भोग मोक्ष का एकत्रकरण कहीं देखा नहीं गया था और न सुना ही गया था।

दो. संपति चकई भरतु चक, मुनि आयसु खेलवार।
तेहि निसि आश्रम पिंजरां, राखे भा भिनुसार ॥२१५॥

अर्थ : सम्पत्ति चकई हुई, भरतजी चकवा हुए और मुनिजी की आज्ञा मानो खेलवाड़ हो गया। उस रात को आश्रम रूपी पिंजड़े में दोनों को रखे ही रखे सवेरा हो गया। चकवा चकई का समागम न हुआ।

व्याख्या : चकवा चकई में भोक्तृभोग्य सम्बन्ध है। परन्तु उनका मिलन सूर्य साक्षिक ही होता है रात्रि में वियोग रहता है। यह जानकर मानो किसी खेलवाड़ी ने उन दोनों को रात के समय एक पिंजड़े में बन्द कर दिया। यह देखने के लिए इतने सन्निकट होने पर भी दोनों का वियोग कैसे स्थिर रह सकता है। पर उन दोनों के एकत्रित होने पर वियोग बना रहा। दोनों ने एक दूसरे की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा। यहाँ तक कि सवेरा हो गया। वैसी ही दशा यहाँ हुई। यहाँ चकवा स्थानीय भरतजी और चकई स्थानीय सम्पत्ति हुई। भानुकुल भानु के न होने से वह समय रात्रि स्थानीय हुआ। उस विशेष रात्रि में मानो भरतजी सम्पत्ति के साथ एक स्थान में मुनिजी की आज्ञा से एकत्रित हो गये। अन्यथा भरतजी सम्पत्ति से दूर रहते थे। यथा : नंदि गाँव करि परन कुटीरा। कीन्ह निवास धरम धुर धीरा। पर उस एकत्रित होने से भरतजी के नियम में भङ्ग न हुआ। सम्पत्ति का कोई प्रभाव भरतजी पर नहीं पड़ा। भरतजी की वियोग व्यथा ज्यों की त्यों बनी रह गयी और रात्रि व्यतीत हो गयी। यथा : मनहुँ कोक कोकी कमल दीन विहीन तमारि।

कीन्ह निमज्जनु तीरथ राजा। नाइ मुनिहि सिरु सहित समाजा ॥
रिषि आयसु असीस सिर राखी। करि दंडवत विनय बहु भाषी ॥१॥

अर्थ : तीर्थराज में स्नान किया। समाज के सहित मुनिजी की वन्दना की। ऋषिजी की आज्ञा और आशीर्वाद को शिरोधार्य करके दण्डवत् की और बहुत विनय किया।

व्याख्या : तीर्थराज में प्रवेश होने के समय भी स्नान और जाते समय भी स्नान की विधि है। सरकार ने भी ऐसा ही किया था। यथा : राम कीन्ह विश्राम

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

निसि प्रात प्रयाग नहाइ। चले सहित सिय लखन जन मुदित मुनिहि सिर नाइ। सहित समाज पहुनाई हुई थी। अत सहित समाज सिर नवाया। विदाई माँगा। यहाँ प्रयाग न कहकर तीर्थराज कहा। भाव यह कि यह भी सहित समाज विराजमान है।

ऋषिजी की आज्ञा से पहुनाई स्वीकार किया था। अत जाने के लिए भी आज्ञा माँगी। सो आज्ञा मिली। वन्दना किया था। इसलिए आशीर्वाद मिला कि मनोवाञ्छित सिद्ध हो। अत आज्ञा और आशीर्वाद दोनो को शिरोधार्य करके दण्डवत् किया। आने के समय भी दण्डवत् किया था। मुनिजी ने सत्कार करने मे कुछ उठा नही रक्खा। इसलिए बहुत विनती भी की।

पथ गति कुसल साथ सब लीन्हे। चले चित्रकूटहि चितु दीन्हे॥
राम सखा कर दीन्हे लागू। चलत देह धरि जनु अनुरागू॥२॥

अर्थ रास्ते के जानने मे चतुर लोगो को साथ लिया और चित्रकूट मे चित्त दिये हुए चले। राम सखा के हाथ का सहारा पकडे चल जा रहे हैं। मानो देह धारण किये हुए साक्षात् अनुराग ही है।

व्याख्या सरकार के चलने के समय जब रास्ता दिखाने के लिए शिष्यो को बुलाया तो पचासो आगये और सब कहने लगे कि हमारा सब रास्ता देखा है। पर चार व्यक्तियो को रास्ता दिखाने के लिए पचास तो भेजे नही जा सकते। अधिक से अधिक चार जा सकते है। अत मुनिजी ने ऐसे चार को चुना जिन्होने अनेको जन्म मे बहुत से पुण्य किये थे। शेष शिष्यो का अभिलाष मन म ही रह गया। आज भरतजी को रास्ता दिखाना और इनके साथ पूरा समाज है। अत आज पचासो की नियुक्ति रास्ता दिखाने के लिए कर दी गयी। अथवा सरकार को रास्ता दिखाने के लिए चारो वेद शिष्य वेष मे गये थे और सारे समाज को रास्ता दिखाने के लिए साङ्गोपाङ्ग वेद सरहस्य सोपनिषद सेतिहास पुराण रास्ता दिखाने चले। पहिले तो चित्तवृत्ति प्रयाग की ओर थी। तीर्थराज को बायाँ देकर जाना नही चाहते थे। पर अब तो मन सीधे चित्रकूट मे लगा हुआ है।

अत्यन्त प्रेम से शरीर शिथिल है। अत निषादराज का सहारा लिये चल रहे हैं। मानो शरीरधारी अनुराग हैं। इस समय सखा मे वह विनय नही है जो प्रथम मिलन के समय था। यथा राम सखा कर दीन्हे लागू। जनु धनु धरे बिनय अनुरागू। घनिष्ठता अधिक हो जाने से विनय की मात्रा कम हो गयी।

नहि पद त्रान सीस नहि छाया। पेमु नेमु ब्रतु धरमु अमाया॥
लखन राम सिय पथ कहानी। पूछत सखहि कहत मृदु बानी॥३॥

अर्थ न पावो मे जूते हैं, न सिर पर छाया है और प्रेम नेम व्रत और धर्म सब मायारहित है। लक्ष्मण और रामजानकी की पन्थ कथा पूछते चलते है और सखा मृदुवाणी से कहता चला जा रहा है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या : राजा लोग जूता तो पहनते हैं पर छाता नही लगाते। छाता दूसरे खोले रहते हैं उसी की छाया में चलते हैं। यहाँ न जूता पैर में है न सिर पर छाया है। प्रेम ऐसा है : चलत देह धरि जनु अनुरागू। नेम ऐसा है : गवने भरत पयादहि पाएँ। कोतल संग जाहि डोरिआएँ। व्रत ऐसा है : नहि पद त्रान सीस नहि छाया और धर्म ऐसा : लखन रामसिय पंथ कहानी। पूछत सखहि कहत मृदु बानी। इन सब में छल का स्पर्श नही। अतः अमाया कहते हैं।

पन्थ कहानी मे पहिले लक्ष्मण विषयक प्रश्न किया। क्योंकि वे सर्वार्यकारी थे। तत्पश्चात् प्रभु विषयक प्रश्न है। सीता विषयक प्रश्न सबके पीछे है। क्योंकि वे तो रक्ष्य रही। सखा शृङ्गवेरपुर से यमुनातीर तक साथ रहा है। अतः उस कथा को मृदुवाणी से कह रहा है और भरतजी सुनते जा रहे हैं।

राम बास थल बिटप बिलोके। उर अनुराग रहत नहि रोके ॥
देखि दसा सुर बरसहि फूला। भइ मृदु महि मग मंगलु मूला ॥४॥

अर्थ : रामजी के निवासस्थल के वृक्ष को देखने से हृदय में अनुराग रोके नही रुकता। यह दशा देखकर देवगण पुष्पवृष्टि करते हैं। पृथ्वी कोमल हो गयी। रास्ता मङ्गलमूल हो गया।

व्याख्या : पन्थ कथा सुनते भरतजी अपने अनुराग को रोके चले जा रहे हैं। तब से वह वटवृक्ष आगया जिसके तले भगवान् ने विश्राम किया था। उसे देखने से अनुराग रोकने पर भी नही रुकता। सच्चे अनुरागी अपने अनुराग को छिपाया चाहते हैं पर वह छिपता नही। अति सनेह सादर भरत कीन्हेउ दंड प्रनाम। यह भरतजी की यात्रा विधि है।

अब प्रेम की दशा का फल कहते हैं। भक्ति की दशा में पूजन का सौभाग्य मिलना कठिन है। अतः देवताओं ने फूल की वर्षा ऊपर से की। पृथ्वी ने अपनी सहज कठोरता परित्याग किया। कुश कण्टकादि को दूर करके रास्ते को मङ्गलमूल कर दिया। क्योंकि भरतजी के पाँव मे जूते नही है।

दो. किये जाहि छाया जलद, सुखद बहइ बर बात।
तस मगु भयउ न राम कहँ, जस भा भरतहि जात ॥२१६॥

अर्थ : बादल छाया करते जा रहे हैं। सुख देनेवाली हवा बह रही है। वैसा रास्ता रामजी को भी नही हुआ जैसा भरत को जाने के समय मे हुआ।

व्याख्या : भरतजी को छाता नही लगा था। अतः बादल छाया करते जा रहे हैं। बादल की छाया के सामने छाता की छाया क्या वस्तु है। ज्येष्ठ का महीना है। सो लू नही चल रही है। शीतल मन्द सुगन्ध वायु बह रही है। यद्यपि ऐसी ही बात रामजी के चलने के समय हुई थी। यथा : परसि रामपद पदुम परागा। मानत भूमि भूर निज भागा। छाँह करहि घन बिबुध गन बरसहि सुमन सिहाहि। इत्यादि। पर भरत की यात्रा के समय मे अधिकता से हुई। राम ते अधिक रामकर दासा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

जड़ चेतन मग जीव घनेरे। जे चितए प्रभु जिन्ह प्रभु हेरे॥
ते सब भये परम पद जोगू। भरत दरस मेटा भव रोगू॥१॥

अर्थ : रास्ते में जड़ चेतन जीव भरे पड़े थे। उनमें जिन्होंने प्रभु को देखा या जिनको प्रभु ने देखा वे सब परमपद के अधिकारी हो गये। भरत के दर्शन से उनका संसाररूपी रोग छूट गया।

व्याख्या : सरकार के दर्शन के विषय में कह चुके हैं: जिन्ह जिन्ह देखे पथिक प्रिय सिय समेत दोउ भाइ। भवमग अगमु अनंदु तेइ बिनु श्रम रहे सिराइ। अब भरतजी की विशेषता कहते हैं कि रास्ते के जीवमात्र को परमपद की योग्यता प्राप्त हो गयी। जो चेतन जीव थे उन्होंने प्रभु भरतजी को देखा और जो जड़जीव थे देखने में असमर्थ थे उन्हे प्रभु भरत ने देखा। दोनों कृतार्थ हो गये। जिन्होने प्रभु को देखा उनकी अन्तःकरणवृत्ति भरताकार में परिणत हुई और ऐसा होते ही उनके सम्पूर्ण कल्मष दूर हो गये। उन्हे परमपद प्राप्ति की योग्यता हो गयी और जिनको भरतजी ने देखा। उनके आकार से भरतजी की अन्तःकरण की वृत्ति आकारित हो गयी। जिसके आकार से परम पुनीत भरतजी की वृत्ति आकारित हो जाय उसके सद्गति में सन्देह ही क्या है? यहाँ प्रभु शब्द भरतजी के लिए आया है। क्योंकि यहाँ भरतजी की प्रभुता कह रहे है। मेघनाद वध प्रकरण में देवताओ ने प्रभु कहकर ही लक्ष्मणजी की स्तुति की है। यथा . तुम प्रभु सब देवन्ह निस्तारा। भव रोग को नष्ट होने से अभिप्राय आवागमन से रहित होने का है।

यह बड़ि बात भरत कइ नाँही। सुमिरत जिनहि रामु मन माँही॥
बारक नाम कहत जग जेऊ। होत तरन तारन नर तेऊ॥२॥

अर्थ : भरतजी के लिए यह कोई बड़ी बात नही है। जिन्हे स्वयं रामजी मन में स्मरण किया करते हैं। संसार मे यदि कोई एक बार भी नाम स्मरण करता है वह स्वयं तरता है और दूसरो को तारता है।

व्याख्या : यदि कोई कहे कि यह तो बड़ी भारी बात है। रामजी के दर्शन से तो नेत्रवाले ही तरे। नेत्रविहीनो का कोई उपकार नही कहते और भरतजी के कारण चराचर का उपकार हुआ। इस पर कवि कहते हैं कि भरतजी के लिए बड़ी बात नही है। जिसके नाम का जप स्वयं रामजी किया करते हैं। यथा : जग जप राम राम जप जेही। उनकी महिमा स्पष्ट ही रामजी से बड़ी है। अब मार्ग के मङ्गलदातृत्व का कारण,कहते हैं।

एक बार भी जिसके नाम को लेकर मनुष्य स्वयं भी तर जाता है और दूसरों को भी तारता है। संभालकर रामजी का नाम लिया जाता है। यथा : बार बार रघुबीर संभारी। तरकेउ पवन तनय बल भारी। संभारि श्रीरघुवीर धरि प्रचारि कपि रावन हन्यो। महात्मा किनारामजी ने कहा है : सो प्रभु सब में रमि रह्यौ सर्व रूप सब ओर। ताते राम सँभारि गहु सब नामन को मोर। इसीलिए

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कहते हैं। जनम जनम मुनि जतन कराही। अत राम कहि आवत नाही। जिसके नाम की इतनी प्रभुता है।

भरतु राम प्रिय पुनि लघु भ्राता। कस न होइ मगु मगलदाता ॥
सिद्ध साधु मुनिवर अस कहही। भरतहि निरखि हरपु हिय लहही ॥३॥

अर्थ : भरतजी तो रामजी को प्रिय हैं और उनके छोटे भाई हैं। अत रास्ता मङ्गलदाता क्यो न हो ! यह बात सिद्ध साधु और श्रेष्ठ मुनि गण कहते हैं। और भरतजी का दर्शन करके हृदय से हर्षित हो रहे हैं।

व्याख्या : अपने सत्कार से मनुष्य उतना प्रसन्न नही होता जितना कि अपने प्रिय के सत्कार से तथा अपने पुत्र के सत्कार से प्रसन्न होता है। भरतजी तो रामजी को अत्यन्त प्यारे हैं। यथा : भरत सरिस प्रिय को जगमाँही। और छोटे भाई होने से पुत्र स्थानीय हैं। अतः रास्ता भरत के लिए रामजी से भी अधिक सुखकारक हुआ। कवि कहते हैं कि ऐसा न होने का कोई कारण नही।

ऐसी बातें सिद्ध साधक और स्थितधी महात्मा आपस में कहने लगे और भरतजी का दर्शन करके कृतकृत्य हो गये। सिद्ध लोग चाहने से सिद्धि द्वारा प्रकृति के किसी नियम मे परिवर्तन कर सकते हैं। यहाँ आप से आप हो रहा है। साधु लोगो का मनसा वाचा परोपकार करने का स्वभाव है। सो देख रहे है कि भरतजी के मार्ग मे चलने से चराचर का आप से आप उपकार हो रहा है। मुनि लोग स्थितप्रज्ञ हैं। इन्हे जीवो की परम प्राप्ति योग्यता से हर्ष है। अथवा बिना साधन के ही अपने कल्याण की प्राप्ति से हर्षित हैं।

देखि प्रभाउ सुरेसहि सोचू। जगु भल भलेहि पोच कहुँ पोचू ॥
गुरु सन कहेउ करिअ प्रभु सोई। रामहि भरतहि भेंट न होई ॥४॥

अर्थ : यह प्रभाव देखकर इन्द्र को चिन्ता हुई। संसार भले को भला और बुरे को बुरा है। गुरुजी से कहा कि हे प्रभो ! अब ऐसा कीजिये कि राम से और भरत से भेंट न हो।

व्याख्या : प्रकृति मे परिवर्तन द्वारा भरत की महामहिमा देखकर उपर्युक्त महानुभावो को तो सुख हुआ। परन्तु इन्द्र को सोच हुआ कि यहाँ तो जड़ पिघल रहे है। राम तो करुणासिन्धु हैं। उन्हे पिघलते कितनी देर लगेगी। ससार विचित्र वस्तु है। बुरे को यहाँ भला खोजने से नही मिलता। उसी भाँति भले को बुरा नही मिलता। यहाँ एक ही वस्तु एक को विष है और दूसरे को अमृत है। निर्णायक कुछ भी नही। अतः यही कहना होगा कि अपने भावनानुसार ससार की प्रतीति होती है।

इन्द्र गुरुजी को आज्ञा देते हैं। उनसे उपाय पूछना चाहिए। सो उन्हे ही उपाय बतलाते हैं। यह उनकी आसुरी सम्पत्ति है। कहते हैं कि आप प्रभु हैं। आप मे सामर्थ्य है। आप चाहे तो रामजी से भरतजी की भेंट न हो और इसी मे हम लोगो का कल्याण है और आप गुरु हैं। हमारा कल्याण साधन कीजिये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

दो. राम सँकोची प्रेम बस, भरत सपेम पयोधि ।
बनी बात बिगरन चहति, करिअ जतनु छलु सोधि ॥२१७॥

अर्थ : रामजी सङ्कोची और प्रेम के वश हैं और भरतजी सुन्दर प्रेम के समुद्र हैं। बनी बात बिगड़ना चाहती है। अतः माया करके कोई उपाय करना चाहिए।

व्याख्या : इन्द्रजी कहते हैं कि रामजी स्वभाव से सङ्कोची हैं। आगे कहेंगे : तेहि ते अधिक तुम्हार सँकोचू और प्रेमवश हैं। यथा : रामहि केवल प्रेम पियारा। जानिलेहु जो जाननि हारा। ये सङ्कोच प्रेमवश होकर सब कुछ कर सकते हैं और भरत प्रेम के समुद्र हैं। इन दोनो महात्माओ के मिलने की देर है। भरत निश्चय रामजी को लौटा ले जावेंगे। हम लोगो की बात बन गयी है। रामजी राज्य छोड़कर वन आगये हैं। सो सब करा धरा मिट्टी हुआ चाहता है। अतः इनके न मिलने में ही हम लोगो की कुशल है और न मिलने देने का कोई प्रशस्त यत्न नहीं है। माया से ही ऐसा उपाय सम्भव है। क्योंकि वही अघटित घटना पटीयसी है। सो ऐसी माया हम लोगो से साध्य नही है। आप गुरु हैं। समर्थ हैं। आप ही कोई ऐसी माया कीजिये जिससे राम और भरत से भेंट न हो।

वचन सुनत सुरगुरु मुसकानें। सहसनयन बिनु लोचन जानें ॥
मायापति सेवक सन माया। करिअत उलटि परइ सुरराया ॥१॥

अर्थ : वचन सुनकर बृहस्पतिजी मुसकुराये और हजार आँखवाले को बिना आंख का समझा। बोले हे देवराज ! मायापति के सेवक से यदि माया की जाय तो उलटकर अपने गले पड़ती है।

व्याख्या : देवराज ने तो कहा : करिय जतन छल सोधि। पर गुरुजी मुसकुरा पडे। सोचा कि इनकी तो यह दशा है : लोचन सहस न सूझ सुमेरू। इन्द्र को हजार आँखें हैं पर क्या एक से भी नही सूझता। ये अन्धे ही हैं। यथा : तुलसी स्वारथ सामुहे परमारथ तन पीठि। अंध कहे दुख पाइहैं दिठियारो केहि डीठि। ये केवल अपना ही स्वार्थ देख रहे हैं। परमार्थ की ओर से मुँह फेर लिया है। अतः ये अन्धे हैं। इन्हे आँखवाला किस हिसाब से कहा जाय।

देवराज से कहा कि रामजी मायापति हैं। इनकी माया सबसे प्रबल है। यथा : सुन खग प्रबल राम की माया। माया सब सिय माया माहू। वह रामजी की माया उनके सेवक पर बडी कृपा करती है। उसे नही व्यापती। यथा : नट कृत विकट कपट खगराया। नट सेवकहि न व्यापै माया। यदि उनके सेवक से कोई माया करता है तो वह माया उलटकर उस माया करनेवाले के गले पड़ जाती है। यथा : हिंस्रः स्वपापेन विहिंसितः खलः साधुः समत्वेन भयाद्विमुच्यते। पीड़ा देनेवाला अपने पाप से ही मारा पड़ता है और साधु समदर्शिता द्वारा भय से छूट जाता है।

तके नीच जो मीच साधुकी सो पामर तेहि मीच मरै।
वेद विदित प्रहलाद [illegible] न भगति पथ पाँव धरै ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तब किछु कीन्ह राम रुख जानी। अब कुचालि करि होइहि हानि॥
सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ॥२॥

अर्थ : उस समय तो रामचन्द्र का रुख जानकर कुछ किया था। अब कुचाल करने से हानि होगी। हे देवराज ! रघुनाथजी का स्वभाव सुनो। अपने अपराध से कभी अप्रसन्न नहीं होते।

व्याख्या : यदि कहो कि पहिले आप ऐसा कर चुके हैं। सरस्वती को प्रेरणा किया था। यथा : बिपति हमारि बिलोकि बड़ि मातु करिअ सोइ आजु। राम जाहिं बन राजु तजि होइ सकल सुर काजु। यद्यपि उस प्रसङ्ग मे स्पष्ट बृहस्पतिजी का उल्लेख नहीं आया है। पर मालूम होता है कि देवताओं की ओर से प्रवक्ता गुरुजी ही थे। गुरुजी ने उस समय रामजी का रुख देख लिया था। यथा : जनमे एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई। कर्नबेध उपवीत बिआहा। संग संग सब भयउ उछाहा। बिमल बंस यहु अनुचित एकू। बंधु बिहाइ बड़ेहि अभिषेकू। तथा : नवगयंदु रघुबीर मनु राजु अलान समान। छूट जानि बन गवनु सुनि उर अनंदु अधिकान। रुख देखकर माया के लिए सरस्वती की प्रेरणा की। राम रुख पाकर कुचाल में भी हानि नहीं। यथा : चलेहुँ कुमग पग परहिं न खाले। इस समय रामजी का रुख भरत से मिलने का है। दिन रात सोचते हैं। यथा : रामहि बंधु सोच दिन राती। इस समय कुचाल करने से रक्षा नहीं है।

देवता स्वार्थी होते हैं। देवराज होने से इनका महास्वार्थी होना द्योतित किया। यहाँ सुरेश शब्द में यही व्यङ्ग्य है। अब रामजी का स्वभाव देवराज को बतलाते हैं। जिससे व्यवहार करना हो उसके स्वभाव को समझ लेना बड़ा आवश्यक है। उनका स्वभाव है कि अपने अपराध से अप्रसन्न नहीं होते। रामजी को वन हुआ यह उनके प्रति अपराध था। इसलिए सरकार अप्रसन्न न हुए।

जो अपराधु भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई॥
लोकहुँ बेद बिदित इतिहासा। येह महिमा जानहिं दुरबासा॥३॥

अर्थ : जो भक्त का अपराध करता है वह रामजी के क्रोधाग्नि में भस्म होता है। इसका इतिहास लोक और वेद में भी विदित है। इस महिमा को दुर्वासाजी जानते हैं।

व्याख्या : भगवान् भक्त के प्रति किये हुए अपराध को नहीं सहते। क्रोध करते हैं और उनके क्रोध करने पर अपराधी फिर नहीं बचता। यथा : बेद बिरुद्ध मही सुर साधु ससोक कियो सुरलोक उजारयो। और कहा कहौं तीय हरी तबहूँ करुनाकर कोप न धारयो। सेवक छोह ते छाड़ी छमा तुलसी कहे राम सुभाउ तुम्हारो। तौलो न दाप दल्यौ दसकंधर जौ लौ बिभीषन लात न मारयो।

दो बड़े भारी प्रमाण हैं : लोक और वेद। सो दोनों में यह बात प्रसिद्ध है। तुम्हें नहीं मालूम यह बड़े आश्चर्य की बात है। भक्त की महिमा दुर्वासा ऋषि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जानते हैं। जिन्होने भक्त अम्बरीष पर क्रोध करके कृत्या उत्पन्न की। तुरन्त भगवान् का सुदर्शनचक्र चला। उसने कृत्या को भस्म करके दुर्वासा को अपना लक्ष्य बनाया। दुर्वासाजी साल भर भागते फिरे। ब्रह्मधाम शिवलोकादि मे रक्षा के लिए गये। पर रक्षा न हुई। सुदर्शन से पीछा नही छूटा। तब स्वय भगवान् के शरण गये। उन्होने कहा कि तुम्हे क्षमा प्रदान तो अम्बरीष ही कर सकता है। अन्तत भक्त अम्बरीष के शरण जाने पर ही रक्षा मिली।

भगत सरिस को राम सनेही। जगु जप राम रामु जप जेही ॥४॥

अर्थ भरत के ऐसा राम का स्नेही कौन है ? ससार तो राम को जपता है और रामजी भरत को जपा करते हैं।

व्याख्या राजा अम्बरीष भी बडे स्नेही रामजी के थे। परन्तु भरत ऐसा तो कोई भी नही है। यथा सुनहु भरत रघुबर मन माही। प्रेमपात्र तुम सम कोउ नाही। और कहाँ तक कहा जाय सम्पूर्ण ससार राम को जपता है। सो राम भरतजी के स्नेह के ऐसे वशीभूत हैं कि वे सदा भरत भरत भरत जपा करते हैं। सो भरत के अपराधी को कहाँ त्राण मिलेगा। राम भरत के भेंट मे बाधक होना भगवत् अपराध और भागवत अपराध दोनो ही है।

दो मनहु न आनिअ अमरपति, रघुबर भगत अकाजु।
अजसु लोक परलोक दुख, दिन दिन सोक समाजु ॥२१८॥

अर्थ हे अमरपति! रघुवर भक्त के काम बिगाडने की बात मन भी न आने दो। इससे लोक मे दुर्यश और परलोक मे दु ख होगा और दिन दिन शोक समाज बढेगा।

व्याख्या भगवत् का अपराध तथा भागवत अपराध मन मे भी स्थान देने योग्य नही है। इन्हे मन मे स्थान देने से लोक परलोक दोनो बिगडता है और सुख तो भाग ही जाता है। निरन्तर शोक की शृङ्खला बढती है। लोग दुयश तथा परलोक का दु ख ऐहिक सुख के लिए अङ्गीकार करते हैं। पर भागवतापराध से ऐहिक सुख भी नष्ट हो जाता है और उसे विपत्ति पर विपत्ति आती ही जाती है। दुर्यश तथा परलोक का नष्ट होना ऊपर से होता है। इस बात को दूसरे शब्द म कहा करे तो उलटि पडै सुरराया। मन मे स्थान देना ही कार्यारम्भ है। जिसने मन मे स्थान दिया वह एक दिन कर बैठेगा।

सुनु सुरेस उपदेसु हमारा। रामहि सेवक परम पियारा ॥
मानत सुख सेवक सेवकाई। सेवक बैर बैरु अधिकाई ॥१॥

अर्थ हे देवराज! मेरा उपदेश सुनो। रामजी को सेवक अत्यन्त प्रिय हैं। वे सेवक की सेवा करने से सुख मानते हैं। सेवक से वैर करने से अधिक वैर मानते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : इन्द्र ने गुरुजी से कहा था : करिअ प्रभु सोई। रामहिं भरतहिं भेंट न होई। उसी का उत्तर गुरुजी देते हैं कि मेरा उपदेश सुनो। आज्ञा मत दो। सचिव वैद्य गुरु तीन जौं प्रिय बोलहिं भय आस। राज धर्म तन तीनि कर होइ बेगि ही नास। मैं तुम्हारे भले की बात कहता हूँ। रामजी को सेवक के समान कोई प्यारा नहीं। यथा : पुनि पुनि सत्य कहौं तोहि पाहीं। मोहि सेवक सम कोउ प्रिय नाहीं। सो उनका स्वभाव है कि उनके सेवक की यदि कोई सेवा करे तो बड़े सुखी होते हैं। यथा : सीतापति सेवक सेवकाई। कामधेनु सय सरिस सुहाई।

और यदि कोई उनके सेवक से बैर करे तो उसके प्रति अधिक बैर मानते हैं। उन्हे देवता प्यारे हैं। इसमे सन्देह नही। पर सेवक के इतने नही : सहे सुरन्ह बहु काल बिषादा। नरहरि किये प्रकट प्रहलादा। देवता लोग तो हिरण्यकश्यप द्वारा बहुत सताये गये। पर अवतार न हुआ। पर जब वह भक्त प्रह्लाद को सताने लगा तो खम्भ फाड़कर प्रकट हुए।

यद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहहिं न पापु पूँनु गुन दोषू ॥
करम प्रधान बिस्व करि राखा। जो जस करइ सो तस फल चाखा ॥२॥

अर्थ : यद्यपि सम हैं। न उन्हे राग है न क्रोध है। किसी के पाप पुण्य का ग्रहण नही करते। विश्व मे कर्म को प्रधान कर रक्खा है। जो जैसा करता है वैसा फल पाता है।

व्याख्या : यद्यपि रामजी समता की सीमा हैं। उनमे रागरोषरूपी विषमता नही है। यथा : बिस्मय हरष रहित रघुराऊ। तुम जानहु सब राम प्रभाऊ। पर विश्व के कार्य सञ्चालन के लिए कर्म को प्रधान बना रक्खा है। यथा : करै जो कर्म पाव फल सोई। निगम नीति अस कह सब कोई। अर्थात् कर्म की प्रधानता मे किसी को सन्देह नही है। यथा : तुलसी यह तन खेत है मन बच कर्म किसान। पाप पुन्य द्वै बीज है बवै सो लवै निदान।

तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा ॥
अगुन अलेख अमान एकरस। रामु सगुन भये भगत प्रेम बस ॥३॥

अर्थ : फिर भी भक्त और अभक्त के हृदयानुसार वे सम और विषम विहार करते हैं। निर्गुण निर्लेप अमान और एकरस होते हुए भी रामजी भक्त के प्रेमवश सगुन हो गये।

व्याख्या : यद्यपि रामजी समता की सीमा है। विषमता से रहित है। न उन्हे राग द्वेष है न उन्हे किसी के पुण्य से कोई प्रयोजन है। ससार कर्मानुसार सुख दु:ख भोगा करता है। फिर भी उनका बिहार कभी सम और कभी विषम होता है। जिस भाँति दर्पण सबके लिए समान है। उसे किसी से रागद्वेष नहीं। पर उसमे यदि क्रोधपूर्वक देखें तो दर्पण मे क्रोधमयी मूर्ति का और यदि प्रसन्न होकर देखें तो हँसमुख मूर्ति का दर्शन होता है। उनमे भक्त और अभक्त के हृदयों का

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भाव प्रतिफलित होता है। ऐसा होने से न तो दर्पण मे विषमता आता है और न रामजी मे ही विषमता आती है। पर व्यवहार विषम होता है।

रामजी स्वभाव से निर्गुण है। निर्लेप हैं। उनमे भेद को स्थान नही है। इसलिए अमान हैं और उनमे विकार नही होता। इसलिए एकरस है। अत उन्हे अज कहा है। उनका जन्म नही होता। परन्तु परम भक्त स्वायम्भू को अभिलाषा हुई कि मै उनका दर्शन इस चर्म चक्षु से करूँ तो भगवान् को शरीर धारण करना पडा। वे निर्गुण से सगुण हो गये। यथा उर अभिलाष निरतर होई। देखिअ नयन परम प्रभु सोई। अगुन अखड अनत अनादी। जेहि चितहि परमारथवादी। नेति नेति जेहि बेद निरूपा। निजानद निरुपाधि अनूपा। सभु बिरचि बिष्णु भगवाना। उपजहि जासु अस ते नाना। ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगत हेतु लीला तनु गहई।

राम सदा सेवक रुचि राखी। बेद पुरान साधु सुर साखी॥
अस जिय जानि तजहु कुटिलाई। करहु भरत पद प्रीति सुहाई॥४॥

अर्थ रामजी ने सदा सेवक की रुचि रक्खी है। वेद पुराण दवता और सन्त इसके साक्षी हैं। ऐसा मन म समझकर कुटिलता छोडो और भरतजी के चरणो मे सुन्दर प्रीति करो।

व्याख्या सेवक सेवा धर्म म स्थिर है। कुछ माँगता नही। तब सरकार को उसकी रुचि देखकर कार्य करना पडता है। वेद पुराण सन्त और देवता रामकथा के जाननेवाले है। सो सब जानते हैं कि रामकथा वस्तुत सेवको की रुचि रखने की कथा है। सन्तो की रुचि रखने के लिए रामावतार हुआ। यथा तुम सारिखे सत प्रिय मोरे। धरौ देह नहि आन निहोरे। बाल लीला कुमार लीला आदि सेवको की रुचि रखने के लिए हुआ। राज्य त्यागकर वनगमन भी सेवको की रुचि रखने के लिए ही हुआ। यथा अत्रि आदि मुनिबर बहु बसही। करहि जोग जप तप तन कसही। चलहु सफल श्रम सबकर करहू। राम देहु गौरव गिरिवरहू। अत रामजी अपने सेवक भरत की रुचि अवश्य रक्खेंगे। इसमे सन्देह नही है।

तुम जो कहते हो करहु जतन छल सोधि यही कुटिलाई। सो कुटिलाई छोडकर भरत के चरणा म प्रीति करो। भरत तुम्हारा काम नही बिगडने देंगे।

दो राम भगत परहित निरत, पर दुख दुखी दयाल।
भगत सिरोमनि भरत ते, जनि डरपहु सुरपाल॥२१९॥

अर्थ हे सुरपति! भरतजी रामभक्त हैं। परहित म तत्पर रहते हैं। दूसरे के दु ख से दु खी होनेवाल दयालु हैं। भक्त शिरोमणि हैं। उनसे डरो मत।

व्याख्या रामभक्त से भी काम नही बिगडता। यथा साधु ते होइ न कारज हानी। क्योकि रामभक्त परहित निरत होते हैं। दूसरे के दु ख से दु खी होते हैं। उनका स्वभाव दयालु होता है। यथा सत हृदय नवनीत समाना। कहा कविन्न

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पर कहै न जाना। निज परिताप द्रवै नवनीता। पर दुख द्रवहिं संत सुपुनीता। यहां तो भरतजी भक्त शिरोमणि हैं। इनसे डरने की कौन बात है। सो तुम क्यों डरते हो। तुम तो सुरपाल हो। असुरपाल डरें तो एक बात भी है।

सत्यसंध प्रभु सुर हितकारी। भरत राम आयसु अनुसारी॥
स्वारथ बिबस बिकल तुम्ह होहू। भरत दोसु नहिं राउर मोहू॥१॥

अर्थ : प्रभु सत्यसन्ध हैं। देवताओं के हितकारी है और भरतजी रामजी के आज्ञा पालक हैं। स्वार्थ विवश हो। इसलिए तुम विकल होते हो। भरत का दोष नही है। तुम्हारा ही अज्ञान है।

व्याख्या : न डरने का कारण कहते हैं। रामजी समर्थ हैं। सत्यसन्ध हैं। जो प्रतिज्ञा की है उसे पूरा करेंगे। यथा : जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा''हरिहौं सकल भूमि गरु आई। निर्भय होहु देव समुदाई : देवताओं के सदा से हित करनेवाले हैं। यथा : जब जब नाथ सुरन्ह दुख पायो। नाना तनु धरि तुमहिं नसायो। जब मालिक ऐसा है और भरतजी सेवक हैं आज्ञाकारी हैं तब डरने की तो कोई बात नही है। अत्यन्त स्वार्थ के कारण तुम इस पर ध्यान न देकर विकल हो रहे हो। इसमे भरतजी का कोई दोष है ही नही। केवल अपने अज्ञान से आप व्यर्थ दुःखी हो रहे हैं।

सुनि सुरबर सुरगुर बर बानी। भा प्रमोदु मन मिटी गलानी॥
बरषि प्रसून हरषि सुरराऊ। लगे सराहन भरत सुभाऊ॥२॥

अर्थ : सुरगुरु की श्रेष्ठ वाणी सुनकर देवराज के मन की ग्लानि मिट गयी और प्रसन्नता हुई। देवराज ने हर्षित होकर फूल बरसाया और भरत के स्वभाव की प्रशंसा करने लगे।

व्याख्या : इन्द्र भगवान् देवताओं में श्रेष्ठ हैं। गुरु के वाक्य पर विश्वास है। उनकी संशयोच्छेदिनी वाणी सुनकर ग्लानि मिट गयी। यथा : बंदौं गुरुपद कंज कृपासिधु नररूप हर। महा मोह तम पुंज जासु बचन रबिकर निकर। देवराज प्रसन्न हो गये। देखि दसा सुर वर्षहिं फूला। सो देवराज के सोच से पुष्प वर्षा बन्द हो गयी थी। अब फिर प्रारम्भ हुई। देवराज ने स्वयं हर्षित होकर बरसाया और भरत के स्वभाव की प्रशंसा करने लगे। देवता लोग पहिले से ही भरत के स्वभाव पर मुग्ध हैं। उन्हे भ्रम हो गया था कि यह स्वभाव उनके प्रतिकूल पड़ेगा। जब गुरुजी के वचन से प्रतिकूलता की शङ्का जाती रही तब प्रशसा करने लगे।

एहि बिधि भरतु चले मग जाहीं। दसा देखि मुनि सिद्ध सिहाहीं॥
जबहिं रामु कहि लेहिं उसासा। उमगत प्रेमु मनहुँ चहुँ पासा॥३॥

अर्थ : इस भाँति भरतजी रास्ते से चले जाते थे। उनकी दशा देखकर मुनि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



और सिद्ध सिहाने लगे। जब राम कहकर लम्बी श्वास लेते थे तो मानो चारो ओर प्रेम उमडा पडता था।

व्याख्या : राम सखा के हाथ का सहारा लिये हुए नगे पैर बिना छाता लगाये लक्ष्मण राम और जानकीजी के रास्ते की कहानी सखा द्वारा सुनते प्रम मे मग्न चले जा रहे हैं। यह भरतजी के रास्ता चलने की विधि है। उनकी दशा प्रेम मे ऐसी हो रही है जिसे देखकर स्थितप्रज्ञ मुनिगण और जीवन्मुक्त सिद्ध को भी ईर्ष्या होती है कि यह दशा मेरी कभी नही हुई। सिद्ध सिहाते हैं कि बिना सिद्धि के लिए प्रयत्न किये ही भरत को ऐसी सिद्धि प्राप्त है : किये जाहि छाया जलद सुखद बहइ बरवात। भई मृदु महि मग मगल मूला। इत्यादि।

भरतजी प्रेम के पयोधि हैं। पयोधि जब उच्छ्वास लेता है तब जल फैल जाता है ज्वार भाटा आजाता है। इसी भाँति जब भरतजी राम कहकर उच्छ्वास लेते हैं तो चारो ओर प्रेम उमगने लगता है। उनके नामोच्चारण मे ऐसा दर्द है कि सुननेवाले का हृदय पिघल उठता है। इस दशा को मुनि लोग सिहाते हैं।

द्रवहि बचन सुनि कुलिस पखाना। पुरजन पेमु न जाइ बखाना ॥
बीचबास कर जमुनहि आए। निरखि नीरु लोचन जल छाए ॥४॥

अर्थ : वचन सुनकर वज्र और पाषाण पिघले जा रहे है। पुरजन के प्रेम का तो वर्णन नही हो सकता। बीच मे मुकाम करके यमुना तीर पहुँचे। जल देखकर आँखो मे जल आगया।

व्याख्या : उनके नामोच्चारण मे ऐसा दर्द है कि उसका प्रभाव जड पदार्थो पर पड रहा है। वज्र और पाषाण पिघल रहे हैं। तेन शृण्वन्ति पादपा। इस महाभरत के वचन से पता लगता है कि पेड भी सुनते हैं। गोस्वामीजी कहते हैं कि पत्थर और पाषाण भी सुनते है और द्रवीभूत भी होते हैं। पर वचन मे वैसा ही दर्द होना चाहिए। भरतजी के साथ पुरजन है। उनके कान मे जब पाषाण को द्रवीभूत करनेवाली वाणी पडती है तो उनकी कैसी दशा हुई जाती थी। इसका तो वर्णन नही हो सकता।

एक रात्रि रास्ते मे निवास हुआ। दूसरे दिन यमुना तीर पहुँच गये। यहाँ यमुना से तीर मे लक्षणा है। यमुना जल की श्यामता की उपमा सरकार की शरीर की श्यामता से दी जाती है। यथा : उत्तरि नहाए जमुन जल जो सरीर सम स्याम। उसी का साफल्य दिखाते हुए कहते हैं कि उस जल के देखने से सरकार की श्याम मूर्ति हृदय पटल पर हो आयी। अत. नेत्रो मे जल डबडबा आया।

दो. रघुबर बरन बिलोकि बर, बारि समेत समाज।
होत मगन बारिधि बिरह, चढे बिबेक जहाज ॥२२०॥

अर्थ : श्रीरघुनाथजी के रङ्ग का सुन्दर जल देखकर समाज सहित भरतजी राम विरह समुद्र मे डूबते डूबते विवेकरूपी जहाज पर चढ़ गये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : जितना आगे बढ़ते जाते हैं विरह की उत्कण्ठा बढ़ती जाती है। रामवास थल बिटप बिलोके। उर अनुराग रहत नहिं रोके। अब तो प्रभु सरीर सम स्याम यमुना जल देख लिया। बस विरह समुद्र में मग्न होने लगे। मग्न होने का भाव यह कि अपने को ही भूलने लगे। समुद्र म डूबनेवाला यदि जहाज पर चढ़ जाय तो बच जाता है। भरतजी भी समाज सहित विवेक जहाज का आश्रयण करके ही डूबने से बँचे। अपने को सँभालना ही विवेक है। यथा प्रेम मगन मन जानि नृप करि बिबेक धरि धीर। इस भाँति भरतजी ने समाज सहित अपने . स्वरूप को संभालकर धैर्य धारण किया।

जमुन तीर तेहि दिन करि बासू। भयेउ समय सम सबहि सुपासू ॥
रातहि घाट घाट की तरनी। आई अगनित जाइ न बरनी ॥१॥

अर्थ : यमुनाजी के किनारे उस दिन निवास किया। समयानुसार सबको सुभीता मिला। रात ही रात घाट की नौकाएँ अनगिनती आगयी। उनका वर्णन नहीं हो सकता।

व्याख्या : पहिले जो बात लक्षणा से कहा था उसे अभिधा से कह रहे हैं पहिले कहा था : बीच बास करि जमुनहि आए। सो यमुना मे कोई नही आता। सो यमुना शब्द ने अपना मुख्य अर्थ छोडा और पवित्र शीतल गुणयुक्त तट का ग्रहण किया। भरतजी समाज सहित यमुना तट आये। परन्तु पार नही गये। वही डेरा डाल दिया। सबके खाने पीने की व्यवस्था करली थी। सो ऐसी परिस्थिति मे जैसा सुभीता सम्भव है वैसा किया गया। इधर पार होने की भी व्यवस्था होने लगी। नियम यही है कि घाटो पर नाव लगी रहती हैं। जिसे आवश्यकता होती है वही से लेते हैं। सो रात ही रात सब घाटो से नावो को मँगाकर वहाँ बाँध दिया जिसमे सवेरे पार जाने में सुभीता हो। सेना को नदी के किनारे ठहराने मे सुभीता होता है। नही तो जल की व्यवस्था मे कठिनाई होती है।

प्रात पार भये एकहि खेवा। तोषे रामसखा की सेवा ॥
चले नहाइ नदिहि सिर नाई। साथ निषादनाथु दोउ भाई ॥२॥

अर्थ : सबेरे एक ही खेवा मे पार हो गये। अत राम सखा की सेवा से तुष्ट हुए। दोनों भाई साथ मे निषादनाथ स्नान करके और नदी को प्रणाम करके चले।

व्याख्या : यहाँ चले क्रिया का कर्त्ता दोउ भाई है। शब्द स्पष्ट है। इससे यह कल्पना करना कि निषादनाथ दो भाई थे। केवल श्रोता के मनोरञ्जन के लिए है। क्योकि ऐसा अर्थ करने से चले क्रिया का कर्त्ता ही लापता हो जाता है।

नाव को एक पार से दूसरे पार ले जाने को खेवा कहते है। सो रात ही रात नावों को जुटा लेने का यह फल हुआ कि सारा समाज एक खेवा मे ही पार हो गया। यह व्यवस्था रामसखा निषादनाथ ने की। अत उनकी इस सेवा पर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लोग सन्तुष्ट हुए । बडी हैरानी बची नही तो गङ्गा पार होने मे चार दण्ड लगा था। यथा दण्ड चार मँह भे सब पारा । उतरि भरत पुनि सबहि सँभारा ।

उस पार जाकर स्नान किया । प्रात कृत्य का उस पार ही किया जाना अनुमित है । चलने के समय नदी को प्रणाम किया । आने के समय प्रणाम नही कहा । नदी का दर्शन होते ही तो विरह सागर मे मग्न होने लगे, प्रणाम की सुधि ही न रही । अत चलते समय प्रणाम कहते हैं । निपादराज के अधिकृत वन प्रदेश मे आगये । अत शत्रुघ्नजी गुरु के साथ न रहकर भरतजी के साथ हैं । इन्तजाम बदल गया ।

आगे मुनिवर बाहन आछे । राज समाजु जाइ सबु पाछे ॥
तेहि पाछे दोउ बधु पयादे । भूपन बसन बेप सुठि सादे ॥३॥

अर्थं आगे मुनिजी की श्रेष्ठ सवारी थी । पीछे सब राज समाज चल रहा था । उसके पीछे दोनो भाई अत्यन्त सादे भूपण वसन और वेप मे पैदल जा रहे थे ।

व्याख्या कोई भय नही है । इसलिए मुनिजी की सवारी आगे आगे है । मुनिवर के साथ सारा समाज है । मुनिवर बाहन आछे कहने से सबका सवारी पर होना कहा ।

सबके पीछे दोनो भाई पैदल जा रहे हैं इससे भी और लोगो का सवारी पर जाना ही सिद्ध होता है । तापस वेप नही है । तथापि अत्यन्त सादा शृङ्गार है । महाराज कुमार के भूपण वसन वेष का सादा होना उदासी का लक्षण है । यहाँ दोउ भाई शब्द का तात्पर्य बहुत स्पष्ट हो गया । साथ निपादनाथ दोउ भाई पद मे जो दोउ भाई शब्द आया है उसी को यहाँ दोउ बधु पयादे शब्द से कह रहे हैं ।

सेवक सुहृद सचिवसुत साथा । सुमिरत लखनु सीय रघुनाथा ॥
जहँ जहँ राम वास बिश्रामा । तहँ तहँ करहिं सप्रेम प्रनामा ॥४॥

अर्थं सेवक मित्र और मन्त्री के पुत्र उनके साथ थे । लक्ष्मण और राम जानकी का स्मरण करते जाते थे । जहाँ जहाँ रामजी का निवास या विश्राम हुआ था वहाँ वहाँ प्रेम के साथ प्रणाम करते थे ।

व्याख्या भरत पयादेहि आये आजू । भयउ दुखित सुनि सकल समाजू । अत आज भरतजी का समाज भरतजी के साथ है । सेवक तो साथ हैं ही सुहृद् अर्थात् बालसखा तथा निपादराज साथ है । मन्त्री के पुत्र भी साथ मे हैं । राजकुमारो के साथ मन्त्री पुत्र रहते है । यथा निरखि राम रुख सचिव सुत कारन कहेउ बुझाइ ।

बीच मे रामजी के निवासस्थल भी मिले । विश्रामस्थल भी मिले । श्रद्धातिशय से सभी जगह प्रणाम करते हैं । रामजी के क्षणिक सगर्ग से वे तीर्थ हो गये ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. मगबासी नर नारि सुनि, धाम काम तजि धाइ।
देखि सरूप सनेह सब, मुदित जनम फलु पाइ ॥२२१॥

अर्थ : रास्ते मे रहनेवाले स्त्री पुरुष सुनकर घर के कामकाज छोडकर दौड पडते थे और सब लोग उनके रूप और स्नेह को देखकर जन्म लेने का फल पाकर प्रसन्न हो जाते थे।

व्याख्या : रास्ते मे के रहनेवाले प्रभु के आगमन का समाचार पाकर अपना काम छोडकर दौड़े थे। यथा : सुनत ग्रामबासी नर नारी। धाये निज निज काज बिसारी। राम लखन सिय सुंदरताई। देखि करहिं निज भाग्य बडाई। वे ही भरतजी का आगमन सुनते हैं। अत. उन लोगो ने अति आतुरता से धाम भी छोड़ा काम भी छोडा। दौड़ पडे।

स्वरूप और स्नेह को देखकर प्रसन्न हैं। स्वरूप से सौन्दर्य और स्नेह से स्वभाव अभिप्रेत है। दर्शन करके लोग कृतार्थ होते हैं। जिन्होने रामजी को नही देखा था शोभा सुनकर पछताते थे। वे भी दौडे। धाम को भी अरक्षित छोडा।

कहहिं सप्रेम एक एक पाँही। रामु[1] लखनु सखि होहि कि नाँही ॥
बयबपु बरन रूपु सोइ आली। सीलु सनेहु सरिस सम चाली ॥१॥

अर्थ : एक दूसरे से प्रेम के साथ कहती हैं कि हे सखी! ये राम लक्ष्मण हैं कि नही हैं। हे आली! आयु शरीर रङ्ग और रूप तो वही है। शील और स्नेह भी सदृश है तथा चाल भी वैसी ही है।

व्याख्या : स्त्रियो का हाल कहते हैं कि उन सबो ने रामजी का दर्शन किया है। तीनो मूर्तियो के नाम से भी परिचित हैं। यथा : सकल कथा तिन्ह सबहिं सुनाई। बनहि चले पितु आयसु पाई। भरतजी रामजी के ही सदृश हैं। एकाएक कोई लख नही सकता और लक्ष्मण शत्रुसूदन एक रूप हैं। अत भरत और शत्रुसूदन दोनो भाइयो को देखकर राम लक्ष्मण का भ्रम हुआ जनकपुर मे भरत शत्रुघ्न को देखकर एक सखी की उक्ति है : सखि जस राम लखन कर जोटा। तैसइ भूप सग दुइ ढोटा। स्याम गौर सब अग सोहाए। परन्तु कुछ सन्देह भी हो रहा है अत. आपस मे एक दूसरे से पूछती हैं कि कदाचित् किसी को अधिक जानकारी हो।

अब सशय का कारण कहती हैं कि उम्र भी इन लोगो की उतनी ही है। शरीर भी वैसा ही है। रग भी वही है। आकृति भी वैसी हो है। इस भाँति शरीर का मिलान करके स्वभाव का मिलान करती है कि शील और स्नेह भी वैसा ही है : जिस भाँति प्रत्येक पुरुष की आकृति और स्वर मे भेद होता है उसी भाँति उनकी गति भी भिन्न प्रकार की होती है। इनकी गति भी वैसी ही है। मत्त मजु कुंजर बर गामी हैं।

---

१. यहाँ सामान्य अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बेषु न सो सखि सीय न संगा। आगे अनी चली चतुरंगा ॥
नहि प्रसन्न मुख मानस खेदा। सखि संदेहु होइ एहि भेदा ॥२॥

अर्थ : हे सखि ! परन्तु वैसा वेष नहीं है और सीताजी भी साथ नहीं हैं। इनके आगे आगे चतुरंगिनी सेना चल रही है। मुख प्रसन्न नहीं है। इनके मन में खेद है इस भेद से सन्देह हो रहा है।

व्याख्या : जिस भाँति समता के तीन कारण हैं उसी भाँति भिन्नता के तीन कारण हैं। एक तो इनका तापस वेष नहीं है : राजसी वेष है। यथा : भूषन बसन बेष सुठि सादे। इनके साथ सीताजी भी नहीं हैं और तीसरा भेद यह बतलाती हैं कि उनके साथ तो कोई भी नहीं था। इनके साथ चतुरङ्गिणी सेना है। फिर भी ये तीनों भेद बहिरङ्ग हैं। अन्तरङ्ग नहीं हैं। इसलिए अन्तरङ्ग लक्षण कहती है कि इन्हें मानस खेद मालूम होता है। वे लोग तो प्रसन्न थे। यथा : आनद उमग मन, यौवन उमंग तन शोभा की उमग उमगत अंग अंग है।

तासु तरक तियगन मन मानी। कहहिं सकल तेहि सम न सयानी ॥
तेहि सराहि बानी फुरि पूजी। बोली मधुर बचन तिय दूजी ॥३॥

अर्थ : उसका तर्क स्त्रियों को ठीक जँचा। सब कहने लगी कि तेरे समान कोई चतुर नहीं है। उसकी प्रशंसा करके और उसकी सत्योक्ति का सम्मान करके दूसरी स्त्री मधुर वाणी बोली।

व्याख्या : उपर्युक्त सखी की युक्ति बड़ी परिष्कृत थी। समता और भेद को उसने गिनकर अलग दिखला दिया। अतः सबके मन में उसकी बात बैठ गयी। सबकी सब उसको सराहने लगी कि तेरे ऐसी सयानी कोई नहीं है। तूने एक एक बात को निगरा दिया।

तत्पश्चात् दूसरी सखी जिसे कथाप्रसङ्ग का परिचय था उसकी प्रशंसा करके उसकी सत्योक्ति की पूजा की अर्थात् कहा कि यह एकदम ठीक कह रही है। यहाँ सम्मान पूर्वक अनुमोदन ही पूजा है और तब सबकी जानकारी के लिए मधुर शब्दों में कहने लगी।

कहि सप्रेम सब कथा प्रसंगू। जेहि बिधि राम राज रस भंगू ॥
भरतहि बहुरि सराहन लागी। सील सनेह सुभाय सुभागी ॥४॥

अर्थ : उसने प्रेम के सहित सब कथाप्रसङ्ग कहा कि इस इस भाँति रामजी के राज्याभिषेक में विघ्न हुआ। तत्पश्चात् वह सुभागी भरतजी और उनके शील सनेह की प्रशंसा करने लगी।

व्याख्या : यह आख्यान उसको प्रिय था। इसलिए उसने प्रेम से रामजी के

१. यहाँ विशेष अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



राज्याभिषेक का प्रस्ताव तथा रानी कैकेयी का चक्रवर्तीजी से दो वरदान माँगना तदनुसार रामजी का वन गमन तथा सीता और लक्ष्मणजी का प्रेम से उनका अनुगमन करना वर्णन किया।

तत्पश्चात् भरतजी की प्रशसा करने लगी कि जिसके लिए सब कुछ हुआ उसने इस अनर्थ का अनुमोदन नही किया और गुरु मन्त्री आदि के अनुरोध पर भी राज्य स्वीकार नही किया और भाई प्रेम से दु.खी होकर उनके पास जा रहे हैं। भाव यह कि ये दोनो भी उन्ही राम लक्ष्मण के भाई हैं। इसीलिए वैसा ही रूप स्वभाव और चाल है। ये राम लक्ष्मण नही हैं।

दो. चलत पयादें खात फल, पिता दीन्ह तजि राजु।
जात मनावन रघुबरहि, भरत सरिस को आजु ॥२२२॥

अर्थ : पैदल चलते हैं। फल खाते हैं। पिता ने राज्य दिया उसे छोड़कर रामजी को मनाने जाते हैं। आज कौन भरत के समान है ?

व्याख्या : शील का वर्णन करती है : चलत पयादे खात फल। स्नेह का वर्णन करती है : पिता दीन्ह तजि राज। जात मनावन रघुपतिहि। राज छोड़ने का प्रमाण यह है : चलत पयादे खात फल। तब राज्य कौन करेगा ? इसके उत्तर मे कहती है : जात मनावन रघुपतिहि। अर्थात् रामजी लौट आवें और राज्य करें। इसलिए उन्हे मनाने जाते हैं। दूसरे के मनाने से उनके मानने की आशा नही है। पिता के दिये हुए राज्य को ठोकर मारनेवाला इस समय कौन है ? भाव यह कि चाहे पहिले कोई हुआ हो तो हम नही जानती। पर इस समय ऐसा कौन है : अर्थात् कोई नही है।

भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दुख दूषन हरनू ॥
जो किछु कहब थोर सखि सोई। राम बंधु अस काहे न होई ॥१॥

अर्थ : भरत का भाईपन भक्ति और आचरण कहते और सुनते दु:ख और दूषण का नाश होता है। हे सखि ! जो कुछ कहा जाय सो थोडा है। रामजी के भाई ऐसे क्यो न हो !

व्याख्या : पहिले जो शील सनेह सुभाय कह आये हैं उसी को दूसरे शब्दो मे भायप भगति और आचरण शब्द से कह रहे हैं। भायप शील के अन्तर्गत भक्ति स्नेह के अन्तर्गत है और आचरण स्वभाव के अन्तर्गत है। चलत पयादे खात फल : यह भरतजी की भक्ति है। पिता दीन्ह तजि राज : यह भाई पन है और जात मनावन रघुपतिहि : यह आचरण है। इन बातो के कहने सुनने से दु ख और उसका कारण दूषण दूर हो जाता है। अर्थात् भरतजी सबसे बडे पुण्यश्लोक हैं। यथा : पुण्यसिलोक तात तर तोरे। अत इनके ऐसा आज कोई नही है।

इनके विषय मे जो कुछ कहा जायगा वही थोडा पडेगा। क्योकि इनके गुण वैखरी के विषय नही हैं। इतना ही कहना यथेष्ट है कि ये रामजी के भाई हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

रामजी के गुण इनमे वर्तमान हैं। रामजी मे कैसा भायप है ? कहते हैं : भरत प्रान प्रिय पार्वहि राजू। विधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू। कैसा स्नेह है कि रामहि बंधु सोच दिन राती। अडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती। और कैसा आचरण है कि : राजिव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाँई।

हम सब सानुज भरतहि देखे। भइन्ह धन्य जुवती जन लेखे ॥
सुनि गुन देखि दसा पछिताँही। कैकइ जननि जोग सुत नाँही ॥२॥

अर्थ : हम लोग भाई के साथ भरतजी का दर्शन करके पुण्यवान् स्त्रियो की गिनती मे आगयी। भरतजी के गुण सुनकर और दशा देखकर सब पछताती हैं कि यह बेटा तो कैकेयी माता के योग्य नही है।

व्याख्या : भायप भगति भरत आचरनू। कहत सुनत दु ख दूपन हरनू। और हम लोगो ने तो इनका दर्शन पाया है। अतः हम लोगो का भी लेखा पुण्यवान् स्त्रियो मे हो गया। कहँ हम लोक बेद विधि हीनी। लघु तिय कुल करतूति मलीनी। पुण्यवान् स्त्रियाँ कह सकती हैं कि हमने अमुक पुण्य किया है। हम लोग अपना कौन पुण्य बतला सकती थी। पर अब हम भी कह सकती हैं कि हमने भरत शत्रुघ्न का दर्शन किया है। अत. *हम लोग भी धन्य युवतियो के लेखे मे आगयी।*

भरतजी का गुण सुना : पिता दीन्ह तजि राज। जात मनावन रघुपतिहि। और दशा दखी . चलत देह धरि जनु अनुरागू। तो सब पछताने लगी कि रामजी को वन नाहक हो गया। जब भरतजी राज्य चाहते ही नही तो उनके लिए राज्य और रामजी के लिए वन क्यो माँगा ? अतः कैकेयी बडी कठोर हृदय है। भरत ऐसा कोमल हृदय बेटे को ऐसा माता का मिलना योग्य कार्य न हुआ। अथवा भरत रामजी के भाई होने योग्य तो है कैकेयी के बेटे होने योग्य नही हैं।

कोउ कह दूपन रानिहि नाहिन। बिधि सबु कीन्ह हमहि जो दाहिन ॥
कहँ हम लोक बेद विधि हीनी। लघु तिय कुल करतूति मलीनी ॥३॥

अर्थ . किसी ने कहा है कि इसमे रानी का दोप नही है। यह सब ब्रह्मा ने किया जो कि हमारे दाहिने · अनुकूल है। कहाँ हम लोग लोक और वेद विधि से हीन स्त्रियो मे लघु है। कुल की करतूत भी मलिन है।

व्याख्या · एक कहती है हम लोगो को विधाता अनुकूल हो गये थे। घर मे बैठे इनका दर्शन दिलाना चाहते थे। अतः उन्होने इस प्रकार उलट फेर कर दिया। शुद्ध हृदय से जो बात निकलती है वह बिना जाने लक्ष्य वेध कर देती है। जो बात भरद्वाज मुनि कहते है : विधि करतब पर किछु न बसाई। वही बात ये स्त्रियाँ बिना जाने कह रही है।

ब्रह्मदेव के अनुकूल होने का कारण देती हैं कि यह अघटित घटना कैसे हुई ? हम लोग तो लोक वेद दोनो मे हीन हैं। यथा : लोक बेद सब भाँतिहि नीचा। जासु छाँह छुइ लेइअ सीचा। स्त्रियो मे भी हम अधम हैं। यथा : उत्तम मध्यम नीच लघु।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चार प्रकार कहा गया है। लघु शब्द अधम के अर्थ मे प्रयुक्त है। कुल करतूति मलीनी। यथा : पाप करत निसि बासर जाही। नहिं कटि पट नहिं पेट अघाही।

बसहिं कुदेस कुगाँव कुबामा। कहँ यह दरसु पुन्य परिनामा ॥
अस अनंदु अचरजु प्रतिग्रामा। जनु मरुभूमि कलपतरु जामा ॥४॥

अर्थ : हम कुदेश और कुगाँव मे बसती है और बुरी स्त्री हैं और कहाँ दर्शन पुण्यों का फल है। गाँव गाँव में ऐसा आश्चय और आनन्द हो रहा है जैसे मरुदेश मे कल्पवृक्ष उग आया हो।

व्याख्या : यहाँ कुदेश से अभिप्राय वन्य देश से है और कुगाँव से भीलों के ग्राम से तात्पर्य है और हम लोग स्वय बुरी स्त्री हैं। भाव यह कि पथभ्रष्ट, कुलभ्रष्ट, करणीभ्रष्ट, देशभ्रष्ट और धर्मभ्रष्ट। अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह महँ मैं मतिमंद अघारी। हमे यह दर्शन महादुर्लभ है। यह घटना तो ब्रह्मदेव के हमारे दाहिने होने से हुई है।

अनहोनी बात होने से आश्चर्य और परम मङ्गलदायक होने से आनन्द। गोस्वामीजी उदाहरण देते है कि जैसे मरुभूमि में कल्पवृक्ष उग जावे। मरुभूमि मे कोई वृक्ष नही होता। जहाँ तहाँ आक : मदार के पेड दिखायी पड़ते हैं। वहाँ आम का होना आश्चर्य और आनन्द की बात है कल्पवृक्ष के लिए कहना ही क्या है। यहाँ अच्छे लोग दिखायी ही नही पड़ते। भरतजी ऐसे महापुरुषो के आने की कौन आशा थी?

दो. भरत दरसु देखत खुलेउ, मगु लोगन कर भागु।
जनु सिंघलबासिन्ह भयउ, बिधि बस सुलभ प्रयागु ॥२२३॥

अर्थ : भरत दर्शन से रास्ते के लोगो का तो भाग्य खुल गया। जैसे सिंहलदेश : सीलोन के रहनेवालो को भाग्यवश प्रयागराज सुलभ हो गया हो। भारत वर्ष से सिंहल द्वीप जहाज पर जाना होता है।

व्याख्या : सिंहलद्वीप के निवासी लङ्का के पड़ोसी हैं। उनसे प्रयागराज से क्या मतलब? यदि ऐसी घटना घट जाय कि विधिवश प्रयागराज को ही वहाँ जाना पड़े तो उनके आश्चर्य और आनन्द का क्या ठिकाना है। श्रीगोस्वामीजी ने सत्सङ्ग को जङ्गम प्रयागराज माना है। उसका भी लङ्का के पड़ोस मे जाना दुर्घट है। अतः कवि का कथन है कि मगवासी लोगो का भाग्य खुल गया। जिस भरतजी के दर्शन को भरद्वाजजी : तेहि फल कर फल दरस तुम्हारा। सहित प्रयाग सुभाग हमारा : कहते हैं। वह दर्शन रास्ते के निवासियों को अनायास सुलभ हो गया। अतः उनका अहोभाग्य है।

निज गुन सहित राम गुन गाथा। सुनत जाहिं सुमिरत रघुनाथा ॥
तीरथ मुनि आश्रम सुरधामा। निरखि निमज्जहिं करहिं प्रनामा ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

अर्थ अपने गुणो के सहित रामजी के गुणग्राम सुनते और रघुनाथजी को स्मरण करते भरतजी चले जा रहे है। तीर्थ मुनि आश्रम और देव मन्दिर देखकर स्नान करते हैं और प्रणाम करते हैं।

व्याख्या इस समय लोगो म भरतजी की चरचा चल रही है। परन्तु भरत चरित्र का आश्रम रामचरित है। रामचरित से पृथक् करके भरत चरित नही वर्णन किया जा सकता। अत भरतजी रास्ते जाते हुए लोगो के मुख से अपने गुणग्राम के साथ ही साथ रामगुणग्राम सुनते चले जा रहे है। भरतजी रामगुणग्राम के सुनने के रसिक हैं। अत सुनत जाँहि क्रिया का कर्म रामगुणगाथा को रक्खा।

रास्ते मे तीर्थ मिलते है। उन्ही को पकडकर मुनि के आश्रम हैं और उन आश्रमो मे देव मन्दिर है। यह देखकर भरतजी तीर्थ मे स्नान करते हैं। आश्रम और मन्दिरो को प्रणाम करते हैं। यथा कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा। तीर्थ प्रायेण पुण्य जलाशय को ही कहते हैं।

मन ही मन माँगहि बर एहू। सीय राम पद पदुम सनेहू॥
मिलहिं किरात कोल बनबासी। बैखानस बटु जती उदासी॥२॥

अर्थ मन ही मन यह वरदान माँगते हैं कि राम जानकी के चरणो मे भक्ति हो। कोल किरात वन के रहनेवाले वानप्रस्थ, ब्रह्मचारी, सन्यासी और उदासी मिलते हैं।

व्याख्या भरतजी तीर्थ आश्रम और देव मन्दिर को जड पदार्थ नही मानते। इनके भी अधिष्ठात्री देवता होते हैं। उनकी प्रतिष्ठा होती है। अत उनको प्रणाम करके मन ही मन वरदान माँगते है। तीर्थराज से स्पष्ट शब्दो मे वरदान माँगा था। सो स्पष्ट शब्दो मे उत्तर मिला। अत दिखावा बचाने के लिए मन ही मन वरदान माँगा। वरदान भी वही है जो तीर्थराज से माँगा था। यथा सीता राम चरन रति मोरे। अनुदिन बढउ अनुग्रह तोरे।

वन मे जा रहे हैं। अत रास्ते मे किरात कोल वन के रहनेवाल मिलते हैं। वानप्रस्थ मिलते है। ब्रह्मचारी तथा सन्यासी मिलते हैं। उदासीन गृहस्थ भी मिलते हैं। भरतजी सबको प्रणाम करते हैं। भक्त आश्वचाण्डालगोखरम्। कुत्ता, चाण्डाल, गौ, गधा सबमे परमेश्वर को देखते हुए सबको प्रणाम करते हैं।

करि प्रनामु पूछहि जेहि तेही। केहि बन लखनु रामु बैदेही॥
ते प्रभु समाचार सब कहही। भरतहि देखि जनम फलु लहही॥३॥

अर्थ प्रणाम करके जिस किसी से पूछते हैं कि लक्ष्मण और राम जानकी किस वन मे रहते हैं। वे लोग सरकार का सब समाचार कहते हैं और भरतजी को देखकर जन्म का फल प्राप्त करते हैं।

व्याख्या जिस ज्ञान का आश्रय करके गोस्वामीजी ने जड चेतन जितने जीव हैं सबको प्रणाम किया। उसी ज्ञान का आश्रय करके भरतजी सबको प्रणाम

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



करते हैं। जी मे खटका लगा है : राम लखन सिय सुनि मम नाँऊ। उठि जनि अनत जाहि तजि ठाऊँ। अत. सबसे वन का नाम पूछते हैं। जिसमे लक्ष्मण राम जानकी निवास करते हैं। जैसे मुहल्ले और नगरो के नाम होते हैं उसी भाँति वनो के नाम भी होते हैं।

तब वे लोग प्रभु का समाचार बतलाते हैं। भरतजी तो केवल वन का नाम पूछते है। पर वे भरतजी को आर्त देखकर सब समाचार जो उन्हे मालूम हैं बतलाते हैं और भरतजी के दर्शन से उनका जन्म सुफल हो जाता है। भरद्वाजजी ने कहा ही है . तेहि फल कर फल दरस तुम्हारा। सहित प्रयाग सुभाग हमारा।

जे जन कहहि कुसल हम देखे। ते प्रिय राम लखन सम लेखे ॥
एहि बिधि बूझत सबहि सुबानी। सुनत राम बनवास कहानी ॥४॥

अर्थ : जो लोग कहते है कि हमने देखा है वे कुशल से हैं। उन्हे राम लक्ष्मण के समान प्रिय माना। इस प्रकार सबसे सुन्दर वाणी द्वारा पूछते और रामजी के वनवास की कहानी सुनते चले जाते है।

व्याख्या : प्रिय का कुशल कहनेवाला भी परम प्रिय होता है। यथा : जे कहिहैं आए राम लखन घर करि मुनि मख रखवारी। ते तुलसी प्रिय मोहि लागि है ज्यों सुभाय सुतचारी। शुभ समाचार देनेवाला प्रिय माना जाता है। उसे पुरस्कार दिया जाता है। अतः कुशल कहनेवाले ऐसे प्रिय लगे जैसे राम लक्ष्मण प्रिय थे।

सबसे पूछने का अभिप्राय यही कि यदि सब लोग एक ही वन का नाम लें तो निश्चय हो जाय कि मेरा नाम सुनकर वन छोडकर अन्यत्र नही गये। दूसरी बात यह है कि भरतजी रामचरित के रसिक हैं। सबसे पूछने से कुछ न कुछ नयी बात मालूम ही होती है।

दो. तेहि बासर बसि प्रातही, चले सुमिरि रघुनाथ।
राम दरस की लालसा, भरत सरिस सब साथ ॥२२४॥

अर्थ : उस दिन रहकर सवेरे ही रघुनाथजी को स्मरण करके चले। भरतजी ही के समान सब साथ मे रहनेवालो को रामजी के दर्शन की लालसा है।

व्याख्या : वन मे ही डेरा डाला। सवेरा होते ही चल पडे। पता चल गया कि सरकार का निवासस्थान सन्निकट है। इसलिए रामजी के दर्शन की लालसा बढी हुई है। जैसी भरत को लालसा है वैसी ही सब साथवालो को है। अतः सबको बडी जल्दी है। कवि ने भी शीघ्रता की है। कथा सक्षेप मे कह रहे हैं। दो शब्द मे उस रात का ठहरना कहा। स्मरण मे भी सक्षेप कर रहे हैं। पहिले लिखते थे : सुमिरत लखन सीय रघुनाथा। यहाँ कहते हैं : सुमिरि रघुनाथ।

जहाँ नदी किनारे नही ठहरते वहाँ स्नानादिक का वर्णन नही करते। क्योंकि अवगाह स्नान ही वस्तुतः स्नान है। यथा : बीच बास करि जमुनहि आये और

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यहाँ से चलते समय कहते हैं : चले नहाइ नदिहि सिर नाई। लक्ष्मण सीत रघुनाथजी का स्मरण करके प्रस्थान करते थे। आज शीघ्रता मे रघुनाथ स्मरण कहा।

मंगल सगुन होहिं सब काहू। फरकहिं सुखद बिलोचन बाहू
भरतहि सहित समाज उछाहू। मिलिहहिं रामु मिटहि दुख दाहू

अर्थ : मङ्गल शकुन सब किसी को हो रहा है। सुख देनेवाले नेत्र और फडकने लगी। भरतजी को समाज के सहित उत्साह है कि रामजी मिलें दु ख का दाह मिटेगा।

व्याख्या : शुभाशुभ सूचक कुछ चिह्न हैं जिन्हे भगवती प्रकृति शु घटनाओ के पहिले प्रकट कर देती हैं। इसके लिए शकुन शास्त्र ही पृथक् ब है जिसमे उन चिह्न विशेष के फल दिये हुए हैं। यह बराबर घटत श्री गोस्वामीजी इनका बार बार उल्लेख करते हैं। यहाँ पर कहते हैं कि सूचक शकुन सबको हो रहा है। सबकी आँखें और भुजाएँ फडक रही हैं। के वाम अङ्ग का फडकना शुभ है और पुरुषो के दक्षिण अङ्ग का फडक है। यथा : भरत नयन भुज दच्छिन फरकत बारहि बार। जानि सगु हरष अति लागे करन बिचार। तथा : जब अति भयेउ बिरह उरदाहू। ' बाम नयन अरु बाहू। यहाँ नर नारि दानो हैं। अत दक्षिण वाम न कहकर बिलोचन बाहू कहा।

शकुन विचार करके भरतजी को समाज सहित उत्साह है। क्योकि मिलन ही शुभ शकुन का फल है। यथा : सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी। अत र के मिलन का निश्चय हो रहा है। फलत वियोगजन्य दु खदाह के मिटाने कं दृढ आशा है। सो सबके हृदय मे उत्साह है। मुनिजी ने कहा भी है : सब मिटिहि रामपद पेखी।

करत मनोरथ जस जिय जाकें। जाहिं सनेह सुरा सब छाके ॥
सिथिल अग पग मग डगि डोलहिं। बिह्वल बचन प्रेम बस बोलहि ॥

अर्थ : जिसके मन मे जैसा मनोरथ है वैसा ही मनोराज करते हुए प्रे मदिरा मे उन्मत्त हुए सब चले जा रहे हैं। सब अङ्ग शिथिल हैं। पैर भी शि है। रास्ते मे डगमगाते हुए चल रहे है और प्रेमवश विह्वल वचन बोल रहे हैं।

व्याख्या : यहाँ पर सबके प्रेम का वर्णन करते हुए कवि उनको मद्य उपमा दे रहे हैं। जब मनुष्य सुरापान करके मदोन्मत्त हो जाता है तब अपने की बात जोर जोर से कहने लगता है। उसके अङ्ग शिथिल हो जाते हैं। रास ठीक ठीक पैर नहीं पडते। वही दशा यहाँ हो रही है। सबके सब प्रेममयी म से उन्मत्त हो रहे हैं। अत रामजी के दर्शन पाने पर क्या क्या करेंगे। वे सब मन मे ही न रखकर मुख से स्पष्ट बोलते जा रहे हैं। प्रिय के मिलने का नि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



होने पर मनोरथ उठते हैं। पर उसे व्यक्त कोई नही करता। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ। यहाँ मुख से बोलने लगे। शरीर और वाणी की भी वही दशा हो गयी जो शराबियो की होती है। पैर ओखा पड़ता है। हकला हकलाकर बोलते हैं।

राम सखा तेहि समय देखावा। सैल सिरोमनि सहज सुहावा॥
जासु समीप सरित पय तीरा। सीय समेत बसहिं दोउ बीरा॥३॥

अर्थ उस समय रामसखा ने उस स्वभावत सुन्दर पर्वत शिरोमणि को दिखलाया। जिसके समीप पयस्विनी नदी के तीर पर सीताजी के सहित दोनो वीर बसते थे।

व्याख्या प्रयागराज से ही सब लोग चित्रकूट की ओर चित्त लगाये चले जा रहे थे। यथा चले चित्रकूटहि चित दीन्हे। सो चित्रकूट कामदगिरि दिखायी पड़ने लगा। रामसखा पहिचानता था और उसे पता लग गया था कि सरकार का चित्रकूट के समीप पयस्विनी नदी के तट पर डेरा है। अत उसने दिखलाया कि वही चित्रकूट दिखला रहा है। चित्रकूट मेरु का शिखर है। वायु देवने मेरु से पृथक् करके यहाँ डाल दिया है। इसलिए सहज सुहावन है और सरकार के निवास से शैलशिरोमणि हो गया। यथा सैलहिमालय आदिक जेते। चित्रकूट जस गावहिं तेते।

देखि करहिं सब दंड प्रनामा। कहि जय जानकि जीवन रामा॥
प्रेम मगन अस राजसमाजू। जिमि फिरि अवध चले रघुराजू॥४॥

अर्थ देखकर सब लोग जानकीजीवन रामचन्द्र की जय कहकर दण्डवत् प्रणाम करने लगे। राजसमाज ऐसा प्रेम मे मगन हुआ मानो रामजी अयोध्या लौटकर चल रहे हो।

व्याख्या चित्रकूट का महा माहात्म्य है। शैल शृङ्ग भवभग हेतु लखु दलन कपट पाखड दभ दलु। जहँ जनमे जग जनक जगपति विधि हरिहरि प्रपच छलु। त्रिदेव मे से किसी से सम्बद्ध होने से ही वह भूमि महातीर्थ हो जाती है और चित्रकूट तो तीनो देव की जन्मभूमि है। यहाँ रुद्र भगवान् दुर्वासा होकर, विष्णु भगवान् दत्तात्रेय होकर, ब्रह्मदेव चन्द्रमा होकर अवतीर्ण हुए हैं और तीनो ब्रह्मज्ञानी ऋषि हुए। उत्पत्ति स्थिति सहार के प्रपञ्च से सम्बन्ध न रक्खा अत त्रिदेव की जन्मभूमि होने से इस महातीर्थ का दर्शन करके जनकजी ने रथ परित्याग किया। यथा गिरिवर दीख जनक नृप जबही। करि प्रनाम रथ त्यागेउ तबही। अत सब लोग दण्ड प्रणाम कर रहे हैं। इस समय जानकीजीवन राम का निवास स्थान हो रहा है। अत जानकीजीवन रामजी की जय कहकर दण्डवत् करत हैं।

दो भरत प्रेमु तेहि समय जस, तस कहि सकहि न सेषु।
कबिहि अगम जिमि ब्रह्म सुख, अह मम मलिन जनेषु॥२२५॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : उस समय भरत का जैसा प्रेम था वैसा शेषजी भी नही कह सकते। कवि को उसका कहना वैसा ही अगम है जैसा अहङ्कार और ममता से मलिन पुरुष को ब्रह्मसुख अगम होता है।

व्याख्या : सारे समाज की दशा कहकर तब भरतजी की दशा कहते हैं कि उनकी दशा तो शेष भी नही कह सकते। शेष बड़े प्रेमी है, सरकार का साथ नही छोड़ते, बडे वाग्मी हैं, दो सहस्र जिह्वा है। उन्हें अगम नही है। पर कह नही सकते। गोस्वामीजी कहते है कि मुझे अगम है। क्योकि मुझे अनुभव नही है। जैसे ब्रह्मसुख का अनुभव अहन्ता ममता से मलिन हृदय पुरुष को नही हो सकता। यथा : मैं तैं मोर मूढ़ता त्यागू। महामोह निसि सोवत जागू। तथा : मुकुर मलिन अरु नयन बिहीना। राम रूप देखहि किमि दीना। अतः मैं कैसे कह सकता हूँ। जब न द्वैत भासे और न निद्रा हो। उस सुख को ब्रह्मानन्द कहते हैं। अहन्ता ममता से मलिन पुरुष को या तो द्वैत भासेगा या निद्रा होगी। अतः उस ब्रह्मसुख का अनुभव हो ही नही सकता।

सकल सनेह सिथिल रघुबर कें। गए कोस दुइ दिनकर ढरकें॥
जलु थलु देखि बसे निसि बीते। कीन्ह गवनु रघुनाथ पिरीते॥१॥

अर्थ : सब लोग रामजी के स्नेह में शिथिल हो गये। दो कोस चले। सूर्य अस्ताचल की ओर अभिमुख हुए। जलाशय देखकर डेरा डाल दिया। सवेरा होते ही रामजी के प्रेमी चल पडे।

व्याख्या : सब लोग ऐसे स्नेह सुरा से छके थे कि रास्ता चलना असाध्य व्यापार हो पड़ा। शरीर शिथिल है। चलने मे डगमगाते हैं परन्तु दर्शन की लालसा से चलना बन्द भी नही करते। दिन भर चलते रहे। पर दो ही कोस चल पाये। तब तक सूर्यनारायण अस्ताचल के सन्निकट पहुँच गये।

तब होश आया कि कही ठहरना चाहिए। सो जलाशय देखकर ठहर गये। पर रात बीतना कठिन हो गया। रात तीन पहर मे ही खतम हो जाती है। चौथे पहर की दिन मे गिनती है। सो एक पहर रात रहते ही चल पड़े। ये सबके सब रामजी के प्रेमी हैं। कब भेंट होगी : इस लालसा के कारण बड़ी शीघ्रता है।

## लक्ष्मण क्रोध प्रसङ्ग

उहाँ रामु रजनी अवसेषा। जागे सीय सपन अस देखा॥
सहित समाज भरत जनु आए। नाथ वियोग ताप तन ताए॥२॥

अर्थ : वहाँ रामजी रात के अन्तिम भाग मे जागे। सीताजी ने स्वप्न देखा कि मानो सरकार के वियोग से सन्तप्त भरतजी समाज सहित आये हैं।

व्याख्या : कवि सदा भगवान् के साथ रहते हैं। अतः रामजी के यहाँ का जो कुछ हाल कहना है उस प्रकरण मे इहाँ शब्द का प्रयोग करते हैं और दूसरे स्थान

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



के लिए वहाँ कहते हैं। परन्तु भक्त का प्रसङ्ग आने पर कवि रामजी का साथ छोड़कर भक्त के पास चले जाते हैं। तब उस स्थान को इहाँ और रामजी के पास को उहाँ कहते हैं। इस नियम का निर्वाह सारे ग्रन्थ मे कवि ने किया है। अत: इस समय कवि भरतजी के साथ हैं। रामजी के यहाँ की कथा लिखने मे उहाँ का प्रयोग करते हैं।

वहाँ अवधवासियों के प्रयाण करने के पहिले ही सरकार जाग गये। उसी समय अर्थात् रात्रि अवशेष मे सीताजी ने स्वप्न देखा। जिस स्वप्न का घटना से सम्बन्ध होता है कवि उस स्वप्न का भी उल्लेख करते हैं। सीताजी ने वह सपना रामजी को सुनाया। वे समझती हैं कि यह स्वप्न निरर्थक नहीं है। क्योंकि जागते समय इसे देखा है। सपना देखने के बाद नींद लग जाने से स्वप्न निरर्थक हो जाता है।

और रामजी से कहने लगीं इतने शब्दों का अध्याहार करना होगा। सपना का हाल कह रही हैं। अत कहती है कि सहित समाज मानो भरतजी आये। अपना प्रातिभासिक सत्य है। व्यावहारिक सत्य की अपेक्षा मिथ्या होता है। अत मानो शब्द का प्रयोग किया और कहती हैं कि भरतजी समाज के सहित सरकार के वियोग से सन्तप्त हैं। नाथ शब्द का भाव यह कि भरतजी ने राज्य नही स्वीकार किया नाथ आप ही को माना। ताप तन ताये का भाव यह कि वियोगाग्नि सहन न हो सकी। मनाने आये हैं।

सबल मलिन मन दीन दुखारी। देखी सासु आन अनुहारी॥
सुनि सिय सपन भरे जल लोचन। भए सोचवस सोच बिमोचन॥२॥

अर्थ : सब मन मलिन हैं। दीन और दु खी हो रहे हैं और देखा कि सास लोग जैसी थी वैसी नहीं हैं।

व्याख्या . अब समाज की दशा कहती हैं सब उदास हैं। किसी मे प्रसन्नता नही बल्कि ऐसे दु खी हैं कि दीन हो रहे हैं। भाव यह कि मानसिक दु ख से दु खी हैं। मन की म्लानता से दु ख और दु ख की अधिकता से दीनता है। सास वही हैं पर उनका स्वरूप दूसरा हो रहा है। स्वप्न का कुछ भाग सत्य और कुछ का फल असत्य होता है। यथा : त्रिजटा का स्वप्न : बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी। इतना भाग सत्य हुआ : खर आरूढ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा। इत्यादि का फल असत्य हुआ। इसी भाँति यहाँ भी भरतजी का समाज सहित दु खी होकर आना सत्य हुआ और : सास आन अनुहारी का फल असत्य हुआ।

सीताजी के स्वप्न के फल का विचार करके आँखों में आँसू भर आया। सरकार सोच विमोचन हैं। फिर भी सोचवश हो गये : ऐसा कहने से सरकार की लीला कही। यथा : जथा अनेक वेष धरि नृत्य करै नट कोइ। सोइ सोइ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भाव देखावै आपुन होइ न सोइ। असि रघुपति लीला उरगारी। दनुज बिमोहनि जन सुखकारी।

लखन सपन यह नीक न होई। कठिन कुचाह सुनाइहि कोई ॥
अस कहि बंधु समेत नहाने। पूजि पुरारि साधु सनमाने ॥४॥

अर्थ लक्ष्मण! यह स्वप्न अच्छा नही है। कोई बहुत बुरा समाचार सुनावेगा। ऐसा कहकर भाई के साथ स्नान किया और शङ्कर की पूजा करके साधुओ का सत्कार किया।

व्याख्या जिस समय भगवती ने स्वप्न कहा उस समय लक्ष्मणजी भी पाद वन्दना के लिए आगये थे। अत सीताजी से कुछ न कहकर लक्ष्मणजी स कहते हैं कि इस स्वप्न का फल अच्छा नही है। कोई बडा अनिष्ट समाचार सुनावेगा। क्योकि भरतजी के आने की तो सम्भावना नही है। कोई समाचार ही लकर आवेगा और वह समाचार ऐसा होगा जिसके कारण भरत भी दु खी हैं। समाज भी दु खी है और माताओ के स्वरूप मे भी अन्तर पडा है।

कुछ सपने ऐसे होते हैं जिनका फल होते देखा जाता है। स्वप्नाध्यायी मे इसका विस्तार है कि कौन कौन सपने सत्य होते है और कौन निष्फल होते है तथा किस सपने का फल कितने विलम्ब से होता है। सीताजी का सपना ऐसा था जिसका फल सद्य होनेवाला था ऐसा ही सपना त्रिजटा का था।

स्वप्न दोष निवारण के लिए प्रात स्नान, शिव पूजन, दानादि का विधान है। अत मर्यादा पुरुषोत्तम ने भाई के साथ स्नान किया। शिव पूजन किया तथा मुनियो का सम्मान किया।

छ सनमानि सुर मुनि बंदि बैठे उतर दिसि देखत भये।
नभ धूरि खग मृग भूरि भागे सकल प्रभु आश्रम गये ॥
तुलसी उठे अवलोकि कारनु काह चित सचकित रहे।
सब समाचार किरात कोलन्हि आइ तेहि अवसर कहे ॥

अर्थ देवता तथा ऋषियो का सम्मान करके बैठे तो उत्तर की ओर देखने लगे। आकाश मे धूलि है और चिड़ियाएँ तथा मृग भागे हुए प्रभु क आश्रम मे पहुँचे। तुलसीदास कहते हैं कि यह देखकर उठे कि क्या कारण है और चकित रह गये। उस समय कोल किरातो ने आकर सब समाचार सुनाया।

व्याख्या सरकार स्वप्न की यथासाध्य शान्ति करके बैठ। उत्तर की ओर विशेषता दिखायी पडी। अत उस ओर देखने लगे। सेना के आगमन का चिह्न दृष्टिगोचर होने लगा। धूरि पूरि नभ मण्डल रहा। उत्तर से दक्षिण की ओर सेना आ रही है। अत खग मृग भागकर आश्रम की ओर चल आ रहे हैं। अयोध्या वहाँ से उत्तर ही पडती है। विशेष दृष्टि प्रसार के लिए उठे। चकित होकर देखते हैं कि धूलि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उठने और खग मृग के भागने का कारण क्या है। किरात कोलो ने कहा था हम सब भाँति करब सेवकाई। करि केहरि अहि बाघ बराई। सो सेना का आगमन देखकर उन सबो ने पता लगाया कि किसकी सेना है और आकर पहिले ही सरकार को समाचार दिया।

दो० सुनत सुमगल बैन, मन प्रमोद तन पुलक भर।
सरद सरोरुह नैन, तुलसी भरे सनेह जल ॥२२६॥

अर्थ सुन्दर मङ्गल के वचन सुनते ही मन मे आनन्द हुआ। शरीर मे पुलक हुआ। शरत्काल के कमल से आँखो मे तुलसीदास कहते हैं कि प्रेम का जल भर आया।

व्याख्या भरतजी के आगमन का समाचार सुमङ्गल है। तत्सूचक वचन भी सुमङ्गल है। भरतजी पर सरकार का इतना प्रेम है कि उनके आगमन के समाचार सुनते ही मन मे हर्ष हो उठा। शरीर म पुलक हो गया। पुलक होना और नेत्रो मे जल भर आना ये अनुभाव है। जो शोक और हर्ष दोनो मे होते हैं। यथा सकल सखी गिरिजा गिरि मैना। पुलक सरीर भरे जल नैना। नारदहूँ यह भेद न जाना। दस एक समुझब बिलगाना। सरकार ने कुछ कहा नही। अत यह पता न लग सका कि यह सजल नयन और पुलक तन किस विभाव का अनुभाव है।

बहुरि सोच बस भे सियरवनू। कारन कवन भरत आगवनू ॥
एक आइ अस कहा बहोरी। सेन सग चतुरग न थोरी ॥१॥

अर्थ फिर जानकी नाथ सोच मे पड गये कि भरत के आने का कारण क्या है? फिर एक ने आकर कहा कि उनके साथ थोडी चतुरङ्गिनी सेना नही है।

व्याख्या पहिले सीताजी का सपना सुनकर सोचवश हुए थे। यथा भये सोचवश सोच विमोचन। अब भरतजी का आगमन सुनकर रामजी फिर सोचवश हुए। सोच यह कि भरत के आने का कारण नही मालूम होता। पिताजी ने राज्य के लिए कह ही दिया था। मैंने भी उसका बार बार अनुमोदन किया। यथा भरत प्रान प्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू। और हमारे तथा कहब सदेस भरत के आए। नीति न तजिअ राजपद पाये। फिर पिताजी के आदेश के प्रतिकूल यहाँ आने का कारण क्या?

पहिले किरात ने आकर केवल भरतजी के आगमन का समाचार दिया। जैसा सुना था वैसा ही उसने खबर दिया। जब उन सबो ने आँखो देखा कि बडी भारी सेना है। यह तो अङ्गरक्षक सेना नही है। आक्रमणोपयोगी सेना है। तब दूसरी खबर भेजने की आवश्यकता हुई। क्योकि सेना का चलना युद्ध की सूचना देता है और यहाँ रामजी के सिवा दूसरा है कौन? अत दूसरे ने यह खबर भी दे डाली।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सो सुनि रामहि भा अति सोचू । इत पितु बच इत बंधु सकोचू ॥
भरत सुभाउ समुझि मन माँही । प्रभु चित हित थिति पावत नाँही ॥२॥

अर्थ : यह सुनकर रामजी को अत्यन्त सोच हुआ। इधर तो पिता का वचन और इधर भाई का सङ्कोच। भरतजी स्वभाव को मन मे समझकर प्रभु का चित्त हित स्थिति को प्राप्त नही होता।

व्याख्या : दूसरे समाचार को सुनते ही सरकार समझ गये कि भरत मेरे अभिषेक की तैयारी किये हुए आ रहे हैं। अतः यह सुनते ही सोच की मात्रा अधिक बढ गयी। पिता की आज्ञा और भाई का सङ्कोच इन दोनो मे कोई कम प्यारा नही है। अत. दोनों पक्षो के लिए इत शब्द का प्रयोग हुआ है। यदि तारतम्य होता तो जिधर अधिक प्रवृत्ति होती उधर के लिए इत और जिधर कम प्रवृत्ति होती उधर के लिए उत आता। ग्रन्थभर मे इत उत का इसी भाव मे प्रयोग हुआ है। इस समय परिस्थिति ऐसी आगयी कि या तो पिता का वचन छोडें या भाई का सङ्कोच छोडें। तीसरा मार्ग नही है। अत· सरकार को बडा सोच हुआ।

रामजी भरत के स्वभाव को सोचते हैं कि भरत को मेरे चरणो मे प्रेम है। यथा : राम चरन पंकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजै न पासू। बहुत सम्भव है कि भरतजी राज्य स्वीकार न करें। तब क्या होगा ? मै पिता का वचन छोड़ नही सकता। भरत राज्य स्वीकार नही करता। ऐसी विकट स्थिति मे तीसरा मार्ग कौन है जिससे सामञ्जस्य बैठ जाय। ऐसा कोई मार्ग दिखायी नही पड़ता।

समाधान तब भा यह जाने। भरत कहे महु साधु सयाने ॥
लखनु लखेउ प्रभु हृदय खभारू। कहत समय सम नीति बिचारू ॥३॥

अर्थ : तब यह जानकर समाधान हुआ कि भरत मेरी आज्ञा मे हैं और सयाने साधु हैं। लक्ष्मणजी ने लखा कि प्रभु के हृदय मे सोच है। समयानुकूल नीति का विचार कहा।

व्याख्या : इस विचार से सामञ्जस्य बैठ गया कि भरत मेरी आज्ञा माननेवाले हैं। यथा : मोरेहुँ भरत न पेलिहहिं मनसहुँ राम रजाय। तथा : भरत राम आयसु अनुसारी। इसके अतिरिक्त भरत सयाने साधु हैं। मुझे पुत्रधर्म से विमुख होने पर कभी हठ न करेंगे। स्वयं कष्ट सह जावेंगे पर किसी के धर्म पर आघात न होने देगें।

लक्ष्मणजी सदा प्रभु की चित्तवृत्ति को लखा करते हैं। सो इन्होने लखा कि सरकार कहते कुछ नही पर इनके हृदय मे सोच है। सीताजी ने बुरा सपना देखा है और उसका फल सरकार ने कह दिया कि कोई बड़ा अनिष्ट का समाचार सुनावेगा। यह किरात आकर चतुङ्गिनी सेना के साथ भरतजी के आगमन का समाचार दे रहा है। यह समाचार अति अनिष्टकर तभी हो सकता है जब भरत के मन मे पाप आवे। अत: यह अवसर युद्ध के लिए सन्नद्ध हो जाने का है। यह विचार का समय

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नहीं है कि भरत धर्म की मर्यादा कैसे मिटावेंगे और मुझसे प्रेम करना कैसे छोड़ देगें। अतः समयानुकूल नीतिका विचार कहने लगे।

बिनु पूछे कछु कहउँ गोसाईं। सेवकु समयँ न ढीठ ढिठाई ॥
तुम्ह सर्बग्य सिरोमनि स्वामी। आपुनि समुझि कहउँ अनुगामी ॥४॥

अर्थ : हे स्वामी! बिना पूछे ही कुछ कहता हूँ। सेवक समय पर ढिठाई करने से ढीठ नही होता। आप सर्वज्ञो मे शिरोमणि है। मैं सेवक हूँ। अपनी समझ कहता हूँ।

व्याख्या : लक्ष्मणजी ने कहा कि बिना पूछे कुछ कहना ढिठाई है। यह ख्यापन करना है कि मैं बड़ा समझदार हूँ। पर मेरी ढिठाई समय : मौके की है। अतः इस ढिठाई से मैं ढीठ नही समझा जा सकता। अथवा यह सेवक का समय है अतः मेरी ढिठाई ढिठाई नही है। सेना सिर पर आगयी। उसका सामना करना मुझ सेवक का काम है। प्रभु सर्वज्ञो मे शिरोमणि है। मै अल्पज्ञ जीव हूँ। आप का ही समझना उपादेय है पर मै अपनी समझ कहता हूँ। भरतजी के आगमन के दो ही कारण हो सकते हैं। एक तो जैसा सरकार सोचते हैं। दूसरा वह जो कि मै सोचता हूँ।

दो. नाथ सुहृद सुठि सरल चित, सील सनेह निधान।
सब पर प्रीति प्रतीति जियँ, जानिअ आपु समान ॥२२७॥

अर्थ : नाथ! आप सुहृद अत्यन्त सरलचित्त और शील स्नेह के निधान हैं। सबके ऊपर आपकी प्रीति है। सब पर विश्वास है और सबको अपने समान जानते है।

व्याख्या : लक्ष्मणजी कहते हैं कि जो मैं सोचता हूँ उसे सरकार सोच नही सकते। क्योकि निष्कारण भला चाहने का आपका स्वभाव है। मन वाणी और कर्म एक रूप है। महात्मा हैं। शील और स्नेह के निधान हैं। आप दु शील निर्दय स्वार्थी कपटियो की बातें समझ नही सकते। क्योंकि सब पर आपका प्रेम है और सब पर विश्वास है। अतः प्रीति प्रतीतिवाली बात ही सोचते है। यह सोचना भी ठीक ही है। क्योकि जो जैसा होता है वैसा ही ससार को देखता है।

बिषई जीव पाइ प्रभुताई। मूढ मोह बस होहिं जनाई ॥
भरत नीति रत साधु सुजाना। प्रभु पद प्रेमु सकल जगु जाना ॥१॥

अर्थ : विषयी जीव जब प्रभुता पाते हैं तो वे मूढ अज्ञान के वश अपने को जानते हैं। भरतजी नीतिरत हैं। सुजान साधु हैं। उनकी सरकार की चरणो मे प्रीति है। यह सारा ससार जानता है।

व्याख्या : तीन प्रकार के जीव ससार मे होते हैं। १ सयाने सिद्ध २ साधक और ३. विषयी। यथा बिषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिविध जीव जग बेद बखाने।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उनमे से सिद्ध और साधक तो सम्पत्ति पाकर अधिक नम्र हो जाते है। यथा : फल भारन नमि बिटप सब रहे भूमि नियराय। पर उपकारी पुरुष जिमि नवहिं सुसपति पाइ। परन्तु विषयी जीव की बात ही दूसरी है। उन्हे सम्पत्ति न रहे, प्रभुता न रहे तभी उनकी चित्तवृत्ति शान्त रहती है। बडे सीधे और बडे अच्छे बने रहते है। पर जहाँ उनको प्रभुता मिली तहाँ वे होश के बाहर हो जाते हैं। अपने को जनाने की धुन उन्हे सवार हो जाती है। मूढ लोग ही विषयी होते हैं। प्रभुता पाने से उनकी मूढता अधिक बढ जाती है। तब वे अपनी प्रभुता के ख्यापन के लिए अनर्थ करने लगते हैं। यह साधारण नियम है।

नीतिरत साधु प्रकृति हरिभक्त के प्रभुता पाने से तो ससार को सुख होता है। यथा : बिस्व सुखद जिमि इदु तमारी। वे सूर्य चन्द्र की भाँति सम्पूर्ण विश्व के सुखदाता हो जाते हैं। परन्तु यहाँ तो अद्भुत बात हुई। भरतजी नीतिरत भी हैं और साधुओ मे सुजान है। उनकी प्रसिद्धि है कि सरकार के चरणो के अनुरागी है।

तेऊ आज राज पदु पाई। चले धरम मरजाद मेटाई ॥
कुटिल कुबधु कुअवसरु ताकी। जानि राम बनवास एकाकी ॥२॥

अर्थ : वे भी आज राज्यपद पाकर धर्म की मर्यादा को मिटा चले। जो कुटिल कुबन्धु होते हैं वे कुअवसर देखनेवाले होते है। उन्होने रामजी को वनवास मे अकेला जानकर।

व्याख्या अत यह ठीक है 'श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि प्रभुता बधिर न काहि। देखिये जिन भरतजी मे आज के पहिले ऐसे उत्कृष्ट गुण थे आज जब उन्हे राजपद मिल गया तो धर्म की मर्यादा मिटाकर चल पडे। धर्म मे कर्म ज्ञान उपासना तीनो का अन्तर्भाव है। सो भरतजी ने तीनो मिटाया : कर्मपथ से विचलित हुए। यथा : भरत न राजनीति उर आनी। तब कलक अब जीवन हानी। ज्ञान भी नही रह गया : सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहि समर न जीतनि हारा। उपासना भी गयी जानहि सानुज रामहि मारी। करौ अकटक राज सुखारी।

भरतजी की इस करणी को देखकर पता चलता है कि अपने को असमर्थ पाकर अपने रूप को छिपाये रहे। राज पाने पर अपने यथार्थ रूप को प्रकट कर दिया। भरत कुबन्धु हैं। सुबन्धु तो कुअवसर मे सहाय होते है। यथा : होहि कुठायँ सुबधु सहाये। ये कुअवसर के ताक मे रहे। वह कुअवसर अब मिला। अयोध्या मे तो सारी प्रजा आपके साथ है। वहाँ आपका क्या कर सकते थे ? यहाँ देखा कि वन मे अकेले हैं। यद्यपि आप अकेले नही है। पर वे जानते है कि अकेले हैं। सरकार सुठि सरल हैं। भरत कुबन्धु हैं। सरकार सील सनेह निधान हैं। भरत कुअवसर ताकी है। सरकार को तो : सब पर प्रीति प्रतीति जि है और भरत अकटक राज करने आये हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



करि कुमंत्रु मन साजि समाजू । आए करइ अकटक राजू ॥
कोटि प्रकार कलपि कुटिलाई । आए दल बटोरि दोउ भाई ॥३॥

अर्थ : मन में बुरी सलाह ठानकर और समाज सजाकर अकण्टक राज्य करने आये हैं। करोड़ो प्रकार की कुटिलता की कल्पना करके दोनों भाई सेना इकट्ठी करके आये हैं।

व्याख्या : अत: आप अपने समान भरत को न समझिये। इन्होने अपने मन मे कुमन्त्र विचारा है। इसलिए साज समाज छोड़कर अकण्टक राज करने चले हैं। माता से जो कसर रह गयी उसे पूरा करने चले हैं। उसने १४ वर्ष के लिए सरकारी वनवास माँगा। पर चौदह वर्ष के बाद तो क्षत्रिय अपना धर्म सँभाले गा ही। राज्य के लिए युद्ध होगा ही। ऐसा निश्चय करके भरत आपको अकण्टक समझते हैं। अत: कण्टकोद्धार के लिए सेना इकट्ठी करके आये हैं।

इन्होने करोड़ो प्रकार से कुटिलता की कल्पना की है। अपने में कुटिलता है। इसलिए आप ऐसे महापुरुष में उन्हे करोड़ो प्रकार की कुटिलता दिखायी पड़ रही है। शत्रुघ्न भी षड्यन्त्र में सम्मिलित हैं। अत दोनों भाई सेना लिये आ रहे हैं।

जौं जिय होति न कपट कुचाली । केहि सोहात रथ बाजि गजाली ॥
भरतहि दोसु देइ को जाएँ । जग बौराइ राजपद पाएँ ॥४॥

अर्थ : यदि इनके जी मे कपट कुचाल न होती तो रथ घोड़े और हाथियो की पंक्ति किसे अच्छी लगती। व्यर्थ ही भरत को दोष कौन दे। राजपद पाने पर सभी उन्मत्त हो जाते हैं।

व्याख्या : यदि कहिये कि भरतजी सरकार से मिलने आये हैं। उनके मन मे कपट कुचाल नही है। उनके मन मे सरकार के वनवास होने का दुख है। अत: राजा होने पर भी भाई की समवेदना से मिलने आ रहे हैं तो यह बात भी नहीं है। यदि दुखी होते तो उन्हें यह ठाट बाट अच्छा न लगता। उन्हे ठाट बाट इतना प्रिय है कि केवल भेंट करने के लिए चतुरङ्गिनी सेना साथ लिये हुए है। यही इस बात का यथेष्ट प्रमाण है कि उन्हे सरकार के वनवास का दुख नही बल्कि खुशी है।

अपनी बात की पुष्टि करते हुए लक्ष्मणजी कहते हैं कि यही ससार का नियम है कि जो राजपद पा जावे वही पागल हो जाय। अत: हमारा भरतजी को दोष देना व्यर्थ है जो दोष सभी से हो जाता हो उसके लिए किसी एक को दोषी नही कहा जा सकता।

दो. ससि गुर तिय गामी नहुषु, चढेउ भूमिसुर जान ।
लोक बेद ते बिमुख भा, अधम को बेन समान ॥२२८॥

अर्थ : चन्द्रमा ने गुरु स्त्री से गमन किया। नहुष ब्राह्मणो के द्वारा ले चलने-

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वाले यान पर चढे। राजा बेन सा अधम तो कोई नही हुआ। क्योकि वह लोक और वेद दोनो से विमुख हुआ।

व्याख्या : उदाहरण देते है। चन्द्रमा ने राज्य पाकर : औषधियो और ब्राह्मणों के पति होकर महापातक किया। गुरुतल्पग हुए। क्या ससार अन्य सुन्दरियो से रिक्त हो गया था। नहुष राजा इन्द्रत्व पाकर ऐसे यान पर चढने की धृष्टता की जिसके ढोने मे ब्रह्मर्षि लोग लगाये गये थे। क्या ससार मे उसे दूसरी सवारी न मिली। ब्रह्मर्षियो के यान पर चढने मे क्या कोई विशेष सुख है। राजा वेणु लोक वेद दोनो से गया। न सासारिक सुख ही किया न धर्म ही कमाया। उसने परमेश्वर से कोई सम्बन्ध न रक्खा। न प्रेमी ही हुआ न वैरी ही हुआ। उसकी आज्ञा थी : न यष्टव्यं न होतव्यं न दातव्य कदाचन। कोई यज्ञ न करे, हवन न करे और न कोई दान करे। यज्ञ और होम मे खाद्य पदार्थ के हवन करने से लोगो की हानि होती है। दान करने से आलसियो की सख्या बढती है। अत यह कर्म कोई कर न पावे। इसलिए कहते है कि वेन सा नीच कौन होगा ?

सहस बाहु सुरनाथ त्रिसंकू। केहि न राजमद दीन्ह कलकू॥
भरत कीन्ह यह उचित उपाऊ। रिपु रिन रंच न राखब काऊ॥१॥

अर्थ : कार्तवीर्यार्जुन इन्द्र तथा त्रिशकु राजा इनमे से किसे राजमद ने कलङ्क नही दिया ? भरत ने यह उचित उपाय किया कि शत्रु और ऋण का शेष भी नही रखना चाहिए।

व्याख्या . सहस्रबाहु कार्त्तवीर्यार्जुन ने ऋषि की गाय चाही। उन्हे रत्नभुक् होने का मद था और वह जमदग्नि ऋषि की गाय रत्न थी। ऋषिजी ने देने से इनकार कर दिया। इस कलह मे ऋषिजी मारे गये। उनके अपराध से इक्कीस बार पृथ्वी नि क्षत्र की गयी। यह कलङ्क राजा सहस्रबाहु को राजमद के कारण लगा। नही तो राजा सहस्रबाहु ऐसे योगी थे कि चौदहो भुवन मे चौदह शरीर धारण करके एक ही समय मे अपना राज्याभिषेक कराया था। इन्द्र रत्नभुक् होने के अभिमान से स्त्रीरत्न अहल्या के जार हुए और घोर दुर्दशा को प्राप्त हुए। आज तक वह कलक न गया। सहस्र नेत्र के रूप मे उनके शरीर मे विद्यमान हैं। त्रिशकु राजा ने सशरीर स्वर्ग जाने की धुन मे गुरु वसिष्ठजी का अपमान किया। ऋषि पुत्र के शाप से चाण्डाल हो गये। महर्षि विश्वामित्र की कृपा से ऊर्ध्वगति भी हुई तो आजतक स्वर्ग मे उलटे लटके हैं। सो राजमद से सबको कलङ्क लगता ही है।

भरतजी तो राजमद से पागल नही हुए। जैसा कि ये लोग हो गये थे। ये तो उचित उपाय कर रहे हैं। नीति शास्त्र कहता है : ऋणशेषोऽग्निशेषश्च व्याधिशेष-स्तथैव च। विवर्धते पुनर्यस्मात् तस्माच्छेष न कारयेत्। ऋण और शत्रु का शेष भी न रहने देना चाहिए। क्योकि ये समय पाकर बढ जाते हैं। यदि कोई कहे कि हम लोग तो भाई भाई हैं शत्रु कैसे हुए ? तो एक भोग्य वस्तु के निमित्त सहोदरो मे बड़ा भारी बैर खडा हो जाता है। यथा : एकामिषप्रभवमेव सहोदराणामुज्जृम्भते

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जगति वैरमिति प्रसिद्धम्। भरत की दृष्टि से आप वैरी हैं। अत यह प्रयत्न भरतजी का कण्टकोद्धार के लिए है।

एक कीन्ह नहिं भरत भलाई। निदरे रामु जानि असहाई॥
समुझि परिहि सो आजु बिसेखी। समर सरोष राम मुखु पेखी॥२॥

अर्थ . भरत ने एक बात अच्छी नही की जो रामजी का असहाय जानकर निरादर किया है। सो आज वह भी विशेष रूप से समझ मे आ जायगा जब युद्ध म क्रुद्ध रघुनाथजी का मुख देखेंगे।

व्याख्या आज वे असहाय हैं। इसलिए रामजी को असहाय जानकर निरादर करने चले हैं। जब तक रामजी ससहाय थे तब तक तो सेवक ही बने फिरते थे। यथा प्रभु पद प्रेम सकल जग जाना। उन्होने समझ लिया है कि रामजी असहाय हैं। पर हैं नही। धनुष हाथ मे रहते असहाय कैसे हैं ?

भरतजी ने आज तक रामजी का क्रुद्ध मुख देखा ही नही है। क्योकि सग्राम मे कभी साथ नही रहे। मैंने सुबाहु मारीच के युद्ध मे कालानल के सदृश मुख रघुनाथजी का देखा है। वह मुख आज भरतजी को सग्राम भूमि मे दिखायी पडेगा। तब उन्हे विशेष रूप से समझ पडेगा कि रामजी का अनादर करके बहुत ही बुरा किया। यथा राम बिरोध कुसल चह सठ हठ बस अति अग्य।

*एतना कहत नीति रस भूला। रन रस बिटपु पुलक मिस फूला॥*
प्रभु पद बंदि सीस रज राखी। बोले सत्य सहज बल भाषी॥३॥

अर्थ इतना कहते हुए नीति रस भूल गया और युद्ध रस रूपी वृक्ष पुलक के व्याज से फूल उठा। प्रभु के चरणो मे नमस्कार करके रजको सिर पर चढाया और सच्चे सहज बल की घोषणा करते हुए बोले।

व्याख्या उनके रहते सरकार को युद्ध करना पडेगा। इस बात को वीर लक्ष्मण सहन नही कर सकते। युद्ध मे सरकार के मुख के देखने मे भरत असमर्थ होगे। इस बात के मुख से निकालते ही नीतिरस विस्मरण हो गया। क्योकि रणरस का बडे वेग से आविर्भाव हुआ। लक्ष्मणजी को पुलक हो गया मानो रणरस रूपी वृक्ष के लिए बहार आगयी। लक्ष्मणजी मानो स्वय रणरस हैं और पुलक होना उनका पुष्पित हो उठना है।

अब फल लग रहा है। युद्ध के लिए आज्ञा मांगेंगे। इसलिए वन्दना करते हैं। भाव यह कि सरकार को धनुष उठाना न पडेगा। सरकारी चरण रज के प्रभाव से लक्ष्मण सब करेगा। इसलिए चरणरज सिर पर धारण करते हैं। युद्ध मे दर्प करना वीर की शोभा है। अत दर्प करने मे भी लक्ष्मणजी अपने बल को बढाकर नही कह रहे हैं। अपने स्वाभाविक बल का सत्य स्वरूप वर्णन करते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अनुचित नाथ न मानव मोरा। भरत हमहि उपचरा न थोरा ॥
कहँ लगि सहिअ रहिअ मन मारे। नाथ साथ धनु हाथ हमारे ॥४॥

अर्थ हे नाथ! मेरे आचरण को अनुचित न मानियेगा। भरत ने हम लोगो की कम पूजा नही की। कहाँ तक सहे और मन मारे रहे। नाथ मेरे साथ हैं और धनुष मेरे हाथ मे है।

व्याख्या लक्ष्मणजी को डर है कि उनके इस आचरण से सरकार अप्रसन्न होगे। कहेगे कि तुम अनुचित करते हो। अत व्यङ्ग से कह रहे हैं कि भरत ने हम लोगो की थोडी पूजा नही की। माता छोडाया। पिता छोडाया। कुटुम्ब छोडाया। राज्य छोडाया। अब हम लोग वन वन मारे फिरते हैं। इतने पर भी सन्तोष नही। अब सेना लेकर प्राण लेने आये हैं।

सहने की भी तो कोई सीमा होती है। बिना एक बिन्दु रक्त गिराये हम लोगो ने राज्य छोड दिया। घर कुटुम्ब सर्वस्व छोड दिया। वन मे दु सह कष्ट बिना एक शब्द मुख स निकाल भाग रहे हैं। तिस पर हमे सेना बल दिखाने आये हैं। तो अब बतलाइये कहाँ तक सहे। यदि कोई कहे कि अनाथ असहाय के लिए अन्य उपाय क्या है? तो इस पर कहते है कि मै असहाय भी नही हूँ। हमारा सहाय धनुष है। मैं अनाथ भी नही हूँ। मेरे नाथ मेरे साथ हैं।

दो छत्र जाति रघुकुल जनमु, राम अनुग जग जान।
लातहुँ मारे चढति सिर, नीच को धूरि समान ॥२२९॥

अर्थ एक तो क्षत्रिय जाति दूसरे रघुकुल म जन्म। ससार जानता है कि मै राम का अनुगामी हूँ। धूल भी लात मारने से सिर चढती है। उसके बराबर तो नीच कोई नही है।

व्याख्या धर्म्याद्धि युद्धाच्छ्रेयोऽन्यत् क्षत्रियस्य न विद्यते। क्षत्रिय के लिए धर्म युद्ध से अधिक कल्याणकर कुछ भी नही। युद्ध हमारे लिए प्रेय भी है श्रेय भी है। दूसरे रघुकुल मे जन्म है। जिस कुल मे कोई सग्राम मे पीठ नही दिखाता। तीसरे मैं सरकार का अनुगामी हूँ। ऐसे अवसर पर अनुगामी ही अग्रगामी होता है। अत मैं चुप नहीं रह सकता। धूल तो महा नीच है। लात खाते हो खाते धूल हुई है। पर उसे कोई हाथ से मारे तो सिर चढ जाती है। भरत ने लात तो पहिले मारा। अब हाथ मारने आये हैं। अत मै उनके सिर चढ जाऊँगा। आगे बढकर भरत से लोहा लूँगा।

उठि करजोरि रजायसु माँगा। मनहु बीर रस सोवत जागा ॥
बाँधि जटा सिर कसि कटि भाथा। साजि सरासनु सायकु हाथा ॥१॥

अर्थ उठकर हाथ जोड आज्ञा माँगी। मानो वीर रस सोते से जग गया। सिर मे जटा बाँधी कमर मे तरकस कसा और धनुष को चढाकर हाथ मे बाण ले लिया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : इतना कहकर लक्ष्मणजी उठ खडे हुए। विना आज्ञा युद्ध नही कर सकते थे। इसलिए रजायसु माँगा। मानो लक्ष्मणजी मे वीर रस सो रहा था वह जाग उठा। प्रसुप्तावस्था से उदारावस्था को प्राप्त हुआ। सरकार चुप हैं। सब कुछ सुन रहे है। लक्ष्मणजी ने फिर भी युद्ध की तैयारी आरम्भ कर दी। आगे चलकर सेना का सामना करना है।

जटा बाँधा जिसमे युद्ध करते समय आँख के सामने न आ जावे। तरकस कमर मे बाँधा जिसमें युद्ध करते समय ईप्सित वाण के निकाल लेने मे सुभीता हो। धनुप पर प्रत्यञ्चा चढाना हो धनुप को साजना है। शत्रु का सामना होने पर प्रहार में देर न हो इसलिए एक वाण तरकस से निकालकर हाथ मे ले लिया।

आजु राम सेवक जसु लेऊँ। भरतहि समर सिखावन देऊँ ॥
राम निरादर कर फलु पाई। सोवहुँ समर सेज दोउ भाई ॥२॥

अर्थ · आज रामजी के सेवक होने का यश लूँगा। भरत को लड़ना सिखाऊँगा। रामजी के निरादर का फल पाकर दोनो भाई रणशय्या पर सोवें।

व्याख्या : लक्ष्मणजी यशोधन है। बडा भारी लाभ रामसेवक रूपी यश है। आज सेवा धर्म की परीक्षा का समय आगया है। आज भरत से युद्ध करना ही सरकारी सेवा है। सो उसमे यश लूँगा। भरत को बतलाऊँगा कि इस प्रकार से लड़ना होता है। तब ससार जानेगा कि तीनो भाइयो मे रामजी का सेवक तो लक्ष्मण है।

निदरे राम जानि असहाई। सो उस निरादर का फल पावें। राम निरादर का फल यही है कि रणशय्या पर दोनो भाई सोवें। भावार्थ यह कि मेरे हाथ उन लोगो का वध होगा। वे राम निरादर का फल पावेंगे। मैं तो निमित्त मात्र होकर यश का भागी हूँगा। राम का निरादर करनेवाला तो उसी समय गत प्राण हो जाता है जिस समय कि निरादर करता है। उसके मारने मे रक्खा क्या है। आये दल बटोरि दोउ भाई। अत सोवहु समर सेज दोउ भाई। भाव यह कि भरत लक्ष्मण मे भाई का नाता है। मुझसे कोई नाता नही। मानिय सबहि राम के नाते। जब रामजी के वैरी हैं तो हमारे वैरी है।

आइ बना भल सकल समाजू। प्रगट करउँ रिस पाछिल आजू ॥
जिमि करि निकर दलइ मृगराजू। लेइ लपेटि लवा जिमि बाजू ॥३॥

अर्थ : सब समाज आज भले ही जुट गया है पिछले क्रोध को आज प्रकट करूँगा। जैसे सिंह गजगणो का सहार करता है और बाज जैसे लवा को लपेट लेता है।

व्याख्या शत्रु का पूरा समाज का समाज हाथ लग गया। नही तो यह पता लगाना कठिन होता कि शत्रु समाज मे कौन कौन लोग हैं। बस इतने ही के सहार से शत्रु मात्र का सहार हो जायगा। वरदान से वँधे हुए हम क्रोध को दवाये

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

बैठे हैं। रिसि उर मारि रंक जिमि राजा। बिपिन बसै तापस के साजा। सो गति हमारी हो रही है। लक्ष्मण के हृदय मे आरम्भ से ही चोट है। यथा समाचार जब लछिमन पाये। ब्याकुल बिलखि बदन उठि धाये। तथा पुनि कछु लखन कही कटु बानी प्रभु बरजे बड अनुचित जानी अत क्रोध को प्रकट न कर सके।

आज तो बात दूसरी हो गयी। भाग्य से स्वय भरत सेना साजकर चढ आये हैं। अब तो पिछल क्रोध के प्रकट करने का समय आगया। अब तो युद्ध करने मे वरदान बाधक न होगा। आज सबको मारूँगा। समशीलवीर भरत शत्रुघ्न तथा सेनानायकादि है। उनका ऐसा विदारण करूँगा जैसे सिंह अकेला गजयूथ का विदारण करता है। रही सेना वह बिचारी क्या लडेगी? लाख लवा क्या एक बाज से युद्ध कर सकते है। बाज के चपेट से लवा कही दिखायी नही पडते। यथा बाज झपट जिमि लवा लुकाने।

तैसेहिं भरतहि सेन समेता। सानुज निदरि निपातउँ खेता॥
जौं सहाय कर संकरु आई। तौ मारउँ रन राम दोहाई॥४॥

अर्थ वैसे ही भरत को सेना समेत और छोटे भाई के समेत रणक्षेत्र म निरादर करके गिराऊँगा। यदि शिवजी भी सहायता के लिए आवेंगे तो भी राम दोहाई रण म विना मारे न छोडूंगा।

व्याख्या सानुज भरत के लिए लक्ष्मणजी जिमिकरि निकर दलइ मृगराजू और सेना के मर्दन के विषय म लेइ लपेटि लावा जिमि बाजू। उपमा देते है। उन्होने रामजी का निरादर किया है। उसका फल समर भूमि म निरादर करके दूंगा। अर्थात् खेलाकर मारूँगा।

शङ्कर भगवान् सहारकर्ता है। अत इनका सामना कोई नही कर सकता। तो यदि शङ्करजी भी भरतजी की सहायता करें तो भी राम दोहाई मै रण मे भरत को मार ही डालूँगा। दूसरे स्थान मे भी लक्ष्मणजी ने इन्ही शब्दो मे शङ्करजी को स्मरण किया है। यथा जो सत सकर करैं सहाई। तदपि हतौ रन राम दोहाई। अत यह शङ्का उठनी स्वाभाविक है कि रामजी के अत्यन्त प्रिय शङ्करजी पर लक्ष्मणजी इस भाँति आक्षेप क्यो करते हैं? इन स्थलो मे शङ्करजी का कोई प्रसङ्ग भी नही था। फिर व्यर्थ उन्हे अपमानित क्यो करते हैं?

बात यह है कि इन स्थलो मे शङ्कर सम्बन्धी आक्षेप सूचक शब्दो म वक्ता का तात्पर्य नही है। तात्पर्य तो इस बात पर जोर देने मे है कि मैं शत्रु का वध अवश्य करूँगा। क्योकि शङ्कर भगवान् का इन स्थलो मे कोई प्रसङ्ग नही है। अत तत्सम्बन्धी तात्पर्य नही है। न निन्दा निन्द्य निन्दितु प्रवृत्ता किन्तु विधेय स्तोतुम्। निन्दा का निन्द्य के निन्दा मे तात्पर्य नही है। किन्तु विधेय की स्तुति मे तात्पर्य है। शास्त्रा म जहाँ तुलसीमाला और ऊर्ध्वपुण्ड्र धारण की महिमा है वही भस्म रुद्राक्ष की निन्दा है और जहाँ भस्म रुद्राक्ष धारण की महिमा कही गई है वहाँ तुलसीमाला और ऊर्ध्वपुण्ड्र की निन्दा की गयी है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ऐसे वाक्यों में मोह उन्ही को होता है जो तात्पर्य निर्णय की विधि से अनभिज्ञ हैं। जहाँ ऊर्ध्वपुण्ड्र तुलसीमाला धारण की महिमा कही जा रही है वहाँ भस्म रुद्राक्ष धारण का कोई प्रसङ्ग नही है। अतः वह निन्दा तुलसीमाला और ऊर्ध्वपुण्ड्र की स्तुति के लिए है भस्म रुद्राक्ष की निन्दा के लिए नही। इसी भाँति जहाँ भस्म रुद्राक्ष की महिमा गायी गयी है वहाँ तुलसीमाला और ऊर्ध्वपुण्ड्र की निन्दा भस्म रुद्राक्ष की स्तुति के लिए है तुलसी ऊर्ध्वपुण्ड्र की निन्दा के लिए नही। इस बात को न समझकर लोग व्यर्थ बड़ा भारी विवाद उपस्थित करते हैं।

अतः यहाँ शिवजी पर आक्षेप केवल शत्रु वध के निश्चय पर जोर देने के लिए है न कि शिवजी की निन्दा के लिए। आज भी लोग कह बैठते हैं कि ब्रह्मा आवें तो भी मैं नही मानूँगा उनका तात्पर्य न मानने पर रहता है। ब्रह्मदेव की आज्ञा भङ्ग पर नही।

दो. अति सरोष माखे लखनु, लखि सुनि सपथ प्रवान।
समय लोक सब लोकपति, चाहत भभरि भगान ॥२३०॥

अर्थ : लक्ष्मणजी को अत्यन्त क्रोध मे भरा हुआ देखकर और उनके प्रमाण शपथ को सुनकर सब लोग डर गये और लोकपतियो ने घबराकर भागना चाहा।

व्याख्या : क्रोध के स्पष्ट चिन्ह देखकर जाना कि लक्ष्मणजी अतिक्रुद्ध है। यथा : माखे लखन कुटिल भइ भौंहें। रदपट फरकत नैन रिसौहे। और प्रमाण शपथ सुनकर समझा कि ये कर दिखावेंगे। यह तो प्रलयवाला क्रोध है। अतः लोकवासी लोग सभय हो गये और लोकपति लोक छोड़कर भागना चाहते हैं। जैसे भूकम्प मे लोग घर छोडकर भागते हैं। जनकपुर मे भी : लखन सकोप बचन जे बोले। डगमगानि महि दिग्गज डोले। इस समय तो शपथ लिया है। अतः लोकपति भागना चाहते हैं। लक्ष्मणजी जगत् के आधार साक्षात् शेष है। अत. उनके कोप से जगत् व्याकुल हो उठता है। जाग्रत के विभु के क्रोध के सामने कौन ठहरेगा ?

जगु भय मगन गगन भइ बानी। लखन बाहुबलु बिपुल बखानी ॥
तात प्रताप प्रभाउ तुम्हारा। को कहि सकइ को जाननिहारा ॥१॥

अर्थ : जगत् तो भय में मग्न था। इधर आकाश वाणी हुई। लक्ष्मणजी के बाहुबल की विपुलता का बखान किया। हे तात ! तुम्हारे प्रताप और प्रभाव को कौन कह सकता है और कौन जाननेवाला है।

व्याख्या : यहाँ जग शब्द से जगत् की अधिष्ठातृ देवता अभिप्रेत है। नही तो जड से हर्ष और भय बन नही सकता। आकाश से देवता बोले। देवता दिखायी नही पड रहे हैं। शब्द सुनायी पड़ रहा है। इसलिए कहते हैं कि आकाशवाणी हुई। वीरो के शान्त करने का यही उपाय है कि उनके उत्कर्ष का वर्णन किया जाय। अपकर्ष कहना तो तेजोवध है और शत्रु पक्ष के उत्कर्ष कहने से क्रोध ही बढता है। इसलिए लक्ष्मणजी के बाहुबल का वर्णन देवताओ ने किया कि आप कन्दुक :

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


गेंद की भाँति ब्रह्माण्ड के उठाने मे समर्थ हैं। कच्चे घडे की भाँति उसे तोड़ सकते हैं। मन्दर और मेरु को मूली की भाँति तोड़ सकते है इत्यादि।

बाहुबल कहने के बाद प्रताप कहते है। प्रताप बल से पृथक् होकर काम करता है। यथा : समुझि रामप्रताप कपि कोपा। सभा माँझ पन करि पद रोपा। प्रताप और प्रभुता दोनों बल से पृथक् काम करते है। भेद यही है कि प्रताप में ताप का अनुभव होता है प्रभाव मे ऐश्वर्य का। देवता लोग कहते हैं कि आप अनन्त हैं। अनन्त के प्रभाव और प्रताप का ज्ञान ही किसी को नही हो सकता। उसका वर्णन कैसे सम्भव हैं। यथा : जय अनत जय जगदाधारा।

अनुचित उचित काजु किछु कोऊ। समुझि करिअ भल कह सबु कोऊ ॥
सहसा करि पाछे पछिताही। कहहिं वेद बुध ते बुध नाही ॥२॥

अर्थ : कोई भी कार्य हो उचित और अनुचित विचारकर तब उसे करना चाहिए। जिसमे सब लोग अच्छा कहे। जो एकाएक कर बैठने के बाद पीछे से पछताते है वेद और विद्वान् कहते हैं कि वे पण्डित नही हैं।

व्याख्या : आकाशवाणी द्वारा देवता कहते है कि अनुचित उचित का विचार करके ही कार्य करना चाहिए। यही नियम है। यहाँ अनुचित होने जा रहा है इसी से उसे पहिले कहा। देवताओ से गुरुजी ने कहा था : करहु भरत पद प्रीति सोहाई। सो यह आकाशवाणी भरत पद प्रीति का फल है। नही तो : रामहिं भरतहि भेंट न होई का सयोग तो जुट ही गया था। यह : आकाशवाणी लक्ष्मणजी के क्रोध को अनुचित ठहराती है।

सहसा विदधीत न क्रियामविवेक' परमापदा पदम्। एकाएक कोई काम नही कर बैठना चाहिए। क्योकि अविवेक बडे भारी आपदा का कारण है। नीति रस भूल गये थे। उसे देवता लोग याद दिलाते है कि जो बिना विचारे भावावेश मे काम कर बैठता है उसे पीछे पछताना होता है। ऐसा कार्य आपके योग्य नहीं है। क्योकि ऐसा करनेवाले की निन्दा वेद ने भी की है और विद्वान् लोग भी कहते हैं कि बिना विचारे काम करनेवाला पण्डित नही है।

सुनि सुर बचन लखन सकुचाने। राम सीय सादर सनमाने ॥
कही तात तुम्ह नीति सुहाई। सब तें कठिन राजमदु भाई ॥३॥

अर्थ : देवताओं के वचन सुनकर लक्ष्मणजी सङ्कुचित हो गये। रामजी और सीताजी ने उनका आदर के साथ सम्मान किया और कहा हे तात! तुमने सुन्दर नीति कही। राजमद सबसे कठिन है।

व्याख्या : जब देवताओ के वचन लक्ष्मणजी ने सुने तो उन्हे सङ्कोच हुआ। देवता मिथ्या कह नही सकते। सरकार की ही समझ ठीक है। मैने बेसमझे बडे भाई को क्या कह डाला। यह समझकर सङ्कुचित हुए। तब रामजी और जानकीजी ने आदर के साथ सम्मान किया। लक्ष्मणजी की बाँह पकड़कर सन्निकट बिठाया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भरतजी ने पहिले कहा था : परिहरि राम सीय जग माँही। कोउ नहिं कहहि मोर मत नाँही। लक्ष्मणजी भी नही कहेंगे। दूसरे को गिनती क्या ? वही हुआ।

सरकार पहिले लक्ष्मणजी की नीति की प्रशंसा करते हैं। यही कायदा है कि जिसके बातो का उत्तर देना हो तो पहिले उसके कथन के उस अंश की प्रशसा करनी चाहिए जितना कि उपादेय हो। तत्पश्चात् अनुपादेय अश का खण्डन करना चाहिए। पहिले खण्डन ही आरम्भ करने से उपादेय अंश की प्रशसा करने के लिए अवसर नही मिलता। अत. सरकार ने पहिले नीति की प्रशंसा की : कनक कनक ते सौ गुनी मादकता अधिकात। यह खाये बौरात है वह पाये बौरात। लक्ष्मणजी ने कहा था : जग बौराय राजपद पाये। उसी की पुष्टि सरकार कर रहे हैं। यहाँ मद शब्द मद्य के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। भाव यह कि सभी मद्यो मे राजरूपी मद्य का नशा बडा कठिन हैं।

जो अँचवत मातहिं नृप तेई। नाहिन साधुसभा जेहिं सेई॥
सुनहु लखन भल भरत सरीसा। विधि प्रपंच महँ सुना न दीसा॥४॥

अर्थ : उसे पीते वे ही राजा लोग मतवाले हो जाते हैं जिन्होने साधु सभा की सेवा नही की। लक्ष्मण ! सुनो भरत सा भला ब्रह्मा की सृष्टि मे न कोई सुना गया न देखा गया।

व्याख्या : पर इस मद्य की मादकता साधुसेवियो पर प्रभाव नही डाल सकती। जो साधुसेवी नही हैं उनके विवेक को यह हरण कर ही लेती है। विषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिविध जीव जग बेद बखाने। राम सनेह सरस मन जासू। साधु सभा बड आदर तासू। साधु सभा मे बैठनेवाला जानता है कि उस सभा मे राजा का मान नही है। भक्तो का मान है।

ब्रह्मा का प्रपञ्च ही गुण अवगुण मिलाकर बना है। इसमे गुण अवगुण ऐसे मिले हुए हैं जैसे दूध मे जल मिल जाता है। यथा : सगुनु खीर अवगुनु जल ताता। मिलइ रचइ परपच बिधाता। पर भरत ने हस की भाँति उसमे से गुण को ही ग्रहण किया है। अवगुण को एक बारगी त्याग कर दिया है। यथा : गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्ह उँजियारी। भरत हस रबि बस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा। भरत साधु शिरोमणि हैं।

दो. भरतहि होइ न राजमदु, विधि हरिहर पद पाइ।
कबहुँ कि काजी सीकरनि, छीरसिंधु बिनसाइ॥२३१॥

अर्थ : भरत को तो विधि हरिहर पद पाने पर भी राजमद नही हो सकता। क्या काँजी के छींटे से क्षीरसिन्धु विकृत हो सकता है।

व्याख्या : यह कतिपय देश का राज्य क्या वस्तु है जो कि नदी देश पर्वतादि से सीमित है। विधि हरिहर का अधिकार असीम है जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर चलता है। सो उनका पद यदि अकेले भरतजी को मिल जाय तो भी उन्हे राजमद नहीं

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हो सकता। थोड़े दूध को छेना मे परिवर्तन करने के लिए उसमे काँजी का छीटा दिया जाता है जिससे दूध फट जाता है। पर उसका कुछ भी प्रभाव क्षीरसिन्धु पर नही पड़ सकता। विधि हरिहर पद भी भरतरूपी अगाध क्षीरसिन्धु के लिए काँजी का छीटा है। इसमे उसमे विकार आ नही सकता।

तिमिरु तरुन तरनिहि मकु गिलई। गगनु मगन मकु मेघहिं मिलई॥
गोपद जल बूड़हिं घटजोनी। सहज छमा बरु छाड़इ छोनी॥१॥

अर्थ : अन्धकार चाहे दोपहर के सूर्य को निगल जाय, आकाश चाहे डूबकर मेघ मे समा जाय, अगस्त्यजी गोपद के जल मे डूब जाय, पृथ्वी चाहे स्वाभाविकी क्षमा छोड़ दे।

व्याख्या : पञ्चभूतों मे कभी विकार नही होता। केवल सृष्टि के आरम्भ मे तथा प्रलय के समय विकार होता है। क्योकि इनको अपने स्वभाव पर स्थिर रहने से ही जगत् की स्थिति है। यथा : गगन समीर अनल जल धरनी। इन्हकइ नाथ सहज जड करनी। तव प्रेरित माया उपजाये। सृष्टि हेतु सब ग्रथनि गाये। प्रभु आयसु जेहि कहँ जो अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई। सो तेज का स्वभाव है कि वह अन्धकार को नष्ट कर देता है। अन्धकार तेज के सामने ठहर नही सकता। सो तेज: पुञ्ज मध्याह्न के सूर्य को चाहे अन्धकार ग्रस ले। आकाश सबको अवकाश प्रदान करता है। सो वह सङ्कुचित होकर मेघ मे मिल जाय। अगस्त्यजी समुद्र का शोषण कर गये थे। सो गोपद का जल ऐसा रूप धारण करे कि अगस्त्यजी को ही डुबा दे। पृथ्वी की क्षमा से ही संसार चल रहा है। वह सब कुछ सहन किया करती है। वह भी चाहे अपनी स्वाभाविकी क्षमा का परित्याग करे। इस भाँति तेज, आकाश, जल और पृथ्वी के विषय मे कहकर अब वायु के विषय में कहते हैं।

मसक फूँक मकु मेरु उड़ाई। होइ न नृपमदु भरतहि भाई॥
लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबंधु नहिं भरत समाना॥२॥

अर्थ : मच्छर की फूँक से चाहे मेरु पर्वत उड जाय। पर हे भाई! भरत को राजमद नही हो सकता। हे तात! तुम्हारी शपथ और पिता की दोहाई भरत के ऐसा पवित्र और अच्छा भाई कही नही है।

व्याख्या : गुणों मे तीव्रता या मन्दता का होना ही विकार है। अत: पञ्चभूतो मे दोनो प्रकार का विकार दिखाते हुए कहते है कि मच्छर के फूँक से रूई के कण मे भी गति नही देखी गयी। वह फूँक यदि मेरु को उडा दे ऐसा भारी परिवर्तन हो पर भरत को राजमद नही हो सकता। यथा : भरत सुभाउ सुसीलताई। सदा एकरस बरनि न जाई। भाव यह कि पचभूतो मे भले ही विकार हो जाय पर भरत के स्वभाव मे विकार आ नही सकता।

भरत पर कुटिल कुबंधु का आरोप न करो। तुम सा प्यारा कोई नही। पिता सा पूज्य कोई नही। सो मैं दोनो की शपथ लेकर कहता हूँ कि भरत के ऐसा पवित्र

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुबन्धु कोई नही। भाईपन के नाते तुम भी वैसे नही। तुम्हे तो राज्य छूटने का क्रोध है। भरत राज्य को गिनता नही। हम लोगो के कष्टो को सोचकर दु खी हुआ आ रहा है।

सगुनु खीरु अवगुन जलु ताता। मिलइ रचइ परपंचु बिधाता ॥
भरतु हंस रबिबंस तडागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा ॥३॥

अर्थ : गुण रूपी दूध और अवगुण रूपी जल मिलाकर ब्रह्मा ने इस ससार को रचा है। सूर्यवश रूपी तालाब मे भरत हस है। जिसने जन्म ग्रहण करके गुण दोष का विभाग किया है।

व्याख्या वेद पुराण और इतिहास सभी कहते हैं कि ब्रह्मदेव की सृष्टि गुण दोष को मिलाकर बनी है। यथा दु ख सुख पाप पुण्य दिन राती। साधु असाधु सुजाति कुजाती। दानव देव ऊँच अरु नीचू। अमिअ सुजीवनु माहुरु मीचू। माया ब्रह्म जीव जगदीसा। लच्छि अलच्छि रंक अवनीसा। कासी मग सुरसरि क्रमनासा। मरु मालव महिदेव गवासा। सरग नरक अनुराग बिरागा। निगम अगम गुन दोष बिभागा। ऐसा गुण दोष मिला हुआ है कि पता ही नही चलता। वेद शास्त्र ने उसका विभाग करके बतलाया है। परन्तु अवगुण को छोडकर गुण को ग्रहण करने की शक्ति हस की भाँति सन्त की है। हस दूध और पानी मिले हुए मे से दूध को ग्रहण कर लेता है जल को छोड़ देता है। सो सूर्यवश में हंस की भाँति भरत सन्त है। जैसे हस से तालाब शोभित होता है उसी भाँति भरत से सूर्यकुल शोभित है। भरतजी ने जो किया भरतजी जो करते है या जो करेंगे सो सब गुण है : इसीलिए गुरुजी ने कहा : समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धर्मसारु जग होइहि सोई।

गहि गुन पय तजि अवगुन वारी। निज जस जगत कीन्ह उँजिआरी ॥
कहत भरत गुन सीलु सुभाऊ। प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ ॥४॥

अर्थ : गुण रूपी दूध को लेकर और अवगुण रूपी जल का परित्याग करके अपने यश से ससार को उँजेला कर दिया। भरत के गुण शील और स्वभाव को वर्णन करते करते प्रेम के समुद्र मे रामजी मग्न हो गये।

व्याख्या : भरतजी ने ससार के सामने आदर्श उपस्थित कर दिया। संसार जान गया कि गुण क्या है और अवगुण क्या है। इस भाँति ससार में जो गुणावगुण के अविवेक का अन्धकार था सो मिट गया।

भरतजी के गुण शील स्वभाव पर सरकार रीझे हुए हैं। अतः उसके वर्णन करने मे रामजी प्रेम समुद्र मे मग्न हो रहे हैं : इसीलिए कहा है : भरत चरित करि नेम जे सप्रेम गावहि सुनहि। सीय राम पद प्रेम अवसि होइ भव रस बिरति। अथवा रामजी तो थोडे से प्रेम पर ही रीझ जाते हैं और भरत सुप्रेम पयोधि मे मग्न हो रहे हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. सुनि रघुबर बानी बिबुध, देखि भरत पर हेतु।
सकल सराहत राम सो, प्रभु को कृपा निकेतु ॥२३२॥

अर्थ : रामजी की वाणी सुनकर और भरत पर प्रेम देखकर सब देवता लोग सराहने लगे कि प्रभु के ऐसा कृपा निधान कौन है ?

व्याख्या : रामजी की भरत सम्बन्धिनी गुण शील स्वभाव निरूपिणी वाणी सुनी। गुण यथा : सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपंच महु सुना न दोसा। शील यथा : भरतहि होइ न राजमद बिधि हरिहर पद पाइ। स्वभाव यथा : भरत हंस रबिबंस तड़ागा। जनमि कीन्ह गुण दोष बिभागा। और भरत पर रामजी का प्रेम देखा। यथा : प्रेम पयोधि मगन रघुराऊ। सब देवता प्रशंसा करने लगे कि रामजी के ऐसा कोई प्रभु कृपानिकेत नहीं है। भाव यह कि प्रभु लोग दूसरे की वेदना समझते ही नहीं। [1]लक्ष्मीवन्तो न जानन्ति प्रायेण परवेदनाम्। शेषो धराभराक्रान्तः शेते नारायणः स्वयम्। सरकार तो सेवक के प्रेम में मग्न है। अतः ऐसा कृपानिधान स्वामी कहीं नहीं है।

जौं न होत जग जनम भरत को। सकल धरम धुर धरनि धरत को ॥
कबि कुल अगम भरत गुन गाथा। को जानइ तुम्ह बिनु रघुनाथा ॥१॥

अर्थ : यदि जगत् में भरत का जन्म न होता तो सब धर्मों की धुरा रूपी पृथ्वी को कौन धारण करता ? हे रघुनाथ ! कविकुल के पहुँच के बाहर भरत के गुणों की गाथा सिवा तुम्हारे और कौन जाने।

व्याख्या : धारणात् धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयति प्रजाः। सो एक धर्म का धारण करना कठिन हो जाता है सकल धर्म के धुरा को कौन धारण कर सकता है ? उसके धारण करने में भरतजी ही समर्थ हैं। इनके धारण करने से धरणी की रक्षा है। यथा : भरत भूमि रह राउर राखी। बिना धर्म के धुर धारण किये धारण की हुई भी धरणी अरक्षित होकर नष्ट हो जाती है।

कवियों से कोई बात नहीं छिपी रहती। नारदहू यह भेद न जाना। लछिमनहू यह मरम न जाना। सो कवियों ने जान लिया। परन्तु भरत की गुणगाथा कवियों के लिए अगम है। क्योंकि : कबिहि अरथ आखर बल साँचा। अनुहर ताल गतिहि नट नाचा। अर्थ ही कवि के हृदय में नहीं आता। यथा : कबिहि अगम जिमि ब्रह्म सुख अहमम मलिन जनेषु। जान सिरोमणि कोसल राऊ। मात्र उस गुण गाथ से परिचित हैं।

लखन राम सिय सुनि सुरबानी। अति सुखु लहेउ न जाइ बखानी ॥
इहाँ भरतु सब सहित सहाएं। मंदाकिनी पुनीत नहाएँ ॥२॥

---

१. लक्ष्मीवान् प्रायेण दूसरे के दुःख को नहीं समझते। शेष पर तो सम्पूर्ण पृथ्वी लदी हुई है। उस पर नारायण भी स्वयं जाकर सोते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ . लक्ष्मणजी रामजी और सीताजी ने देवताओ की वाणी सुनकर ऐसा सुख पाया जिसका वर्णन नही हो सकता। यहाँ भरतजी ने सेना के साथ पवित्र मन्दाकिनी नदी मे स्नान किया।

व्याख्या · यह आकाश वाणी देवताओ की हुई थी। इसलिए कहते हैं कि तीनो मूर्ति बडे प्रसन्न हुए। उसमे पहिले लक्ष्मणजी को कहते हैं। महात्माओ का क्रोध व्यक्ति पर नही होता अवगुण पर होता है। अवगुण पर क्रोध हुआ। पर जब मालूम हो गया कि ये अवगुण भरतजी मे नही हैं। क्योंकि देवता अन्यथा नहीं कहते और भरतजी मे बडे दिव्यगुण हैं जिन्हे रामजी ही जानते हैं। तो लक्ष्मणजी बडे प्रसन्न हुए। रामजी और सीताजी को भी बडी प्रसन्नता हुई। अपने प्रिय के गुणगणो की प्रशसा देवताओ के मुख से सुनकर ऐसा सुख हुआ जिसका वर्णन नही किया जा सकता।

उहाँ राम रजनी अवसेषा। जागे सीय सपन अस देखा। कहकर जिस प्रसङ्ग को उठाया उसे यहाँ समाप्त कर रहे हैं। अत इहाँ शब्द का प्रयोग करके कथन आरम्भ करते हैं। भाव यह कि अब भरतजी का चरित कहेगे और उन्ही के साथ कवि अपने को मान रहे हैं। जल थल देखि बसे निसि बीते। कीन्ह गवनु रघुनाथ पिरीते। यहाँ से प्रसङ्ग छोडा था। अब मन्दाकिनी स्नान से प्रसङ्ग फिर से आरम्भ करते है। जहाँ ठहरे थे वहाँ से सन्निकट ही मन्दाकिनी थी। अत वही स्नान किया है। मन्दाकिनी गङ्गाजी की धारा है। इसलिए पुनीत कहते है। यथा · सुरसरि धार नाँउ मदाकिनि। जो सब पातक पोतक डाकिनि।

सरित समीप राखि सब लोगा। माँगि मातु गुर सचिव नियोगा॥
चले भरतु जहँ सिय रघुराई। साथ निषादनाथु लघु भाई॥३॥

## रामजी से भेंट

अर्थ : नदी के तीर पर सब लोगो को ठहराकर तथा माता गुरु और मन्त्री से आज्ञा माँगकर भरतजी वहाँ चले जहाँ सीताजी और रामजी थे। उनके साथ निषादराज और शत्रुघ्नजी थे।

व्याख्या शरण जा रहे हैं। इसलिए भरतजी किसी को साथ नही लेते। मन्दाकिनी के तीर पर सबके टिकने का भी सुभीता है। गुरुजी तथा माताओ को लेने के लिए स्वय सरकार को आना चाहिए। अत उन्हे भी साथ नही लिया। सरकार मुनिवृत्ति मे हैं। अत वहाँ साज समाज का जाना भी ठीक नही। अत अकेले जाने के लिए गुरुजी माताजी तथा मन्त्रियो से आज्ञा माँगी। निषादनाथ रास्ता दिखाने के लिए साथ हैं। शत्रुघ्न के साथ रहते हुए भी भरतजी दो नही गिने जाते। लक्ष्मण ने भी दो नही गिना।

समुझि मातु करतब सकुचाही। करत कुतरक कोटि मन माही॥
रामु लखनु सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ माता का करतव समझकर सङ्कुचित होते हैं और मन मे कुतर्क की कोटि करते हैं। रामजी लक्ष्मण और सीताजी मेरा नाम सुनकर स्थान छोड किसी दूसरी जगह न चले जायँ।

व्याख्या : माता के कुकृत्य से पुत्र को सङ्कोच होना स्वाभाविक है। माता ने जो कुछ किया पुत्र की कल्याण कामना के लिए ही किया। अत माता के करतव से पृथक् होना सम्भव नही है। इसलिए स्वय निपराध होते हुए भी सङ्कुचित हैं और ऐसी अवस्था मे जैसे कुतर्क की कोटियाँ मन मे उठती हैं वैसी ही उठ रही हैं।

भरतजी की कुतर्क की कोटि का प्रादेशमात्र कवि दिखलाते हैं। भरतजी सोचते है कि मेरे आने का समाचार सरकार को पहिले ही लग जायगा। क्योकि मेरे साथ सेना है। मेरे करतब पर ध्यान करके कही यह निश्चय न कर लें कि मैं भरत का मुख न देखूँगा। इसलिए कही तीनो मूर्ति आश्रम छोडकर दूसरी जगह न चले जायें। जहाँ हमे पता न लग सके। सामान कोई पास नही है जिसे हटाने मे देर लगे। केवल उठकर दूसरी जगह चला जाना ही तो है।

दो मातु मते महुँ मानि मोहि, जो किछु करहिं सो थोर।
अघ अवगुन छमि आदरहिं, समुझि आपनी ओर ॥२३३॥

अर्थ . मुझे माता के मत मे मानकर जो कुछ कर बैठें वह थोडा है और यदि अपनी ओर समझें तो पाप और अवगुण को क्षमा करके आदर कर सकते है।

व्याख्या यहाँ विचार करने मे दो ही पक्ष उठ सकते हैं। या तो मुझे माता की राय मे समझें जैसा कुछ लोगो ने समझा था एक भरत कर सम्मत कहही। तब तो मेरा अपराध सर्वथा अक्षम्य है। फिर मुझे यह आज्ञा होना तुम मुख न दिखलाओ यहाँ से चले जाओ आदि जो कुछ कहे वह थोडा ही होगा। अपराध इतना गुरुतर है कि कोई दण्ड उसके मुकाबिले का नही है और यदि मुझे अपनी ओर समझें माता की ओर न समझें तो मातृकृत अपराध को क्षमा करके आदर भी कर सकते है। जैसा पुरवासियो ने कहा था अहि अवगुन नहिं मनि गहई। हरइ गरल दुख दारिद दहई। अथवा यदि अपने स्वरूप पर ध्यान दें तो अघ अवगुण को क्षमा करके आदर भी कर सकते हैं।

जौं परिहरहि मलिन मनु जानी। जौं सनमानहि सेवकु मानी ॥
मोरे सरन रामहि की पनही। राम सुस्वामि दोसु सब जनही ॥१॥

अर्थ · यदि मलिन मन जानकर त्याग करें या सेवक मानकर सम्मान करें। मेरे लिए तो रामजी की जूती ही शरण है। रामजी भले स्वामी हैं। दोष सब सेवक का है।

व्याख्या अब भरतजी अपना कर्तव्य निश्चय करते हैं। चाहे रामजी का उनके साथ जैसा बर्ताव हो। पर अपने लिए निश्चित मार्ग होना चाहिए। जिससे हर हालत मे काम लिया जा सके। मलिन मन का सरकार त्याग करते हैं। यथा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मोहि कपट छल छिद्र न भावा। परन्तु दूसरा पक्ष यह भी है निज अपराध रिसाहिं न काऊ। रहत न प्रभु चित चूक किये की। को साहिब सेवकहि नेवाजी। आपु समाज साज सब साजी। इत्यादि।

राम तो सुस्वामी हैं। उनमे दोष नही है। कुस्वामी पर सन्देह रहता है कि कदाचित् कुछ दोष स्वामी का भी हो। पर जब यह निश्चित है कि सुस्वामी हैं तब जो कुछ दोष सम्भव है वह जन का ही है। अत चाहे परित्याग करें चाहे सम्मान करें। मुझे उनकी जूती ही शरण है। पर जूती इस समय त्यक्त है। यथा : राम लखन सिय बिनु पग पनही। करि मुनिवेष फिरहिं बन बनही। अतः मै उसी त्यक्त जूती के शरण जाऊँगा या तो उसे पहना दूँगा नही तो उसी की उपासना करूँगा।

जग जस भाजन चातक मीना। नेम पेम निज निपुन नवीना ॥
अस मन गुनत चले मग जाता। सकुच सनेह सिथिल सब गाता ॥२॥

अर्थ : ससार मे पपीहा और मछली ये ही यश के पात्र हैं। जो अपने अपूर्व नेम और प्रेम मे निपुण हैं। ऐसा मन मे विचारते चले जाते हैं। सङ्कोच और प्रेम से सब शरीर शिथिल है।

व्याख्या : भरतजी मन मे कहते हैं कि ससार मे प्रेमियो मे से दो ने ही यश पाया : एक चातक ने और दूसरे मछली ने। चातक अपूर्व नेम मे निपुण है। यथा : डोलत विपुल बिहंग बन पियत पोखरिन्ह बारि। सुजस धवल चातक नवल तुही भुवन दस चारि। और मीन अपूर्व प्रेम मे निपुण है। यथा : मकर उरग दादुर कमठ जल जीवन जल गेह। तुलसी एकै मीन को है साँचिलो सनेह। भाव यह कि मीन के ऐसा प्रेम तो केवल चक्रवर्तीजी निबाह पाये और किसी से न निबहा। यथा : बदौ अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि रामपद। बिछुरत दीन दयाल प्रिय तनु तृन इव परिहरेउ। अब तो चातकवाला नेम निर्वाह करना है। जो सुख सम्पत्ति राम घनश्याम से न मिले उसे स्वीकार न करना यही निश्चय है

भरतजी रास्ते चले जाते हैं और इसी प्रकार का विचार करते जाते हैं। यहाँ भाव सन्धि है। स्नेह के साथ सङ्कोच है। रास्ते मे ही स्नेह से शिथिल शरीर हो रहा है और सरकार के सन्मुख जाने मे सङ्कोच भी है। इस द्विविध मनोगति से सारा शरीर शिथिल है।

फेरति मनहुँ मातु कृत खोरी। चलत भगति बल धीरज धोरी ॥
जब समुझत रघुनाथ सुभाऊ। तब पथ परत उताइल पाऊ ॥३॥

अर्थ : माता की की हुई दुष्टता मानो पीछे हटाती है। पर धैर्य धुरीण : भरतजी भक्ति के बल से चल रहे हैं। जब रामजी के स्वभाव को समझते हैं तब रास्ते मे जल्दी जल्दी पैर पड़ता है।

व्याख्या : शरीर शिथिल हो रहा है। जिस पर माता की की हुई करणी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मानो पीछे फेर रही है कि कौन मुँह लेकर सामने जाऊँ। पर भरतजी धीर धुरीण हैं। भक्ति के बल से चले जा रहे हैं। भरतजी भक्त शिरोमणि हैं। उनकी गति माता की करणी के स्मरण से तो रुकती है पर जब सरकार के स्वभाव का स्मरण करते हैं : अस सुभाउ कहुँ सुनै न देखे। केहि खगेस रघुपति सम लेखे। सुनहु सखा निज कहहुँ सुभाऊ। जान भुसुंडि सम्भु गिरि जाऊ। जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवइ सभय सरन तकि मोही। तजि मद मोह कपट छल नाना। करउँ सद्य तेहि साधु समाना। तब तो आशा के सञ्चार से पैर जल्दी जल्दी उठने लगता है।

भरत दसा तेहि अवसर कैसी। जल प्रवाह जल अलि गति जैसी ॥
देखि भरत कर सोचु सनेहू। भा निषाद तेहि समय बिदेहू ॥४॥

अर्थ : उस समय भरतजी की दशा वैसी ही रही है जैसी कि भौंरे की जल प्रवाह में होती है। भरतजी के सोच और स्नेह को देखकर निषादराज को तो अपने शरीर की सुधि न रह गयी।

व्याख्या : रामजी के स्वभाव के स्मरण से भरतजी की गति तीव्र हो जाती है और माता के दोष के स्मरण से एकाएक रुक जाते हैं। फिर चल पडते हैं। ऐसा ठहर ठहर कर वेग से चलने की उपमा गोस्वामीजी जल के भौंरे से देते हैं। वह प्रवाह में वेग से चलता हुआ बार बार रुकता ही जाता है। गोस्वामीजी ने यह एक अद्भुत उपमा दी जिसे जहाँ तक मेरी जानकारी में कोई भी कवि किसी अवसर में नहीं दे सका है।

निषादराज देखते हैं कि भरतजी कुछ सोचकर ठहर जाते हैं और फिर प्रसन्न होकर चल पडते हैं। इससे उनके सोच और स्नेह का अनुभव करते हुए निषादराज ऐसे मग्न हो गये कि उन्हे अपने देह की सुधि न रह गयी।

दो. लगे होन मंगल सगुन, सुनि गुनि कहत निषादु।
मिटिहि सोच होइहि हरषु, पुनि परिनाम बिषादु ॥२३४॥

अर्थ : मङ्गल शकुन होने लगे। उन्हे सुनकर और गुनकर निषादराज ने कहा कि सोच मिटेगा। हर्ष होगा। परन्तु परिणाम मे विषाद ही है।

व्याख्या : यहाँ शकुन का सुनना कहते हैं। इससे मालूम होता है कि यहाँ पक्षी की बोली से शकुन निर्णय किया जा रहा है। प्रधान शकुन तो पक्षी ही हैं। पक्षी को ही शकुन कहते हैं। अन्य शुभाशुभ सूचक घटनाएँ तो गौण हैं। निषादराज शकुन ज्ञान मे बडे पण्डित थे। इनकी युद्ध यात्रा के समय जो 'छीक हुई उसके फल निर्णय करने मे सगुनियो मे मतभेद हुआ तो उसका निर्णय निषादराज ने ही किया। यथा : नीक कह बूढा। पहिले पक्षी के बोलने से मालूम हुआ : मिटिहि सोच दूसरे के बोलने से पता लगा : होइहि हरख। तीसरे के बोलने से मालूम हुआ : पुनि परिनाम बिषाद। अथवा पक्षी नही दिखायी पड़ता है। केवल शब्द सुनायी पड़ता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इससे अनुमान हुआ कि हर्ष स्थायी नही होगा। उसी बात को निषादराज भरतजी से कह रहे हैं।

सेवक बचन सत्य सब जाने। आश्रम निकट जाइ निअराने ॥
भरत दीख बन सैल समाजू। मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू ॥१॥

अर्थ सेवक की सब बातो को सत्य जाना। आश्रम के सन्निकट जाकर समीप पहुँच गये। भरतजी ने वन और पर्वत्त के समाज को देखा। ऐसे प्रसन्न हुए जैसे भूखा सुअन्न पाकर प्रसन्न होता है।

व्याख्या भरतजी ने सेवक के तीनो वचनो को सत्य जाना। अर्थात् सरकार का दर्शन होगा। इसलिए मिटिहि सोच कह रहा है। सरकार सम्मान करेंगे। इसलिए होइहि हरख कह रहा है। पर अवध नही लौटेगे इसलिए परिणाम विषाद कह रहा है। आश्रम मे नही पहुँचे परन्तु राम वन जिसमे आश्रम है उसके निकट पहुँच गये।

इतने निकट पहुँचे कि वन और शैल का समाज दिखायी पडने लगा। सबका समाज पृथक् पृथक् होता है। सो कवि पहले वन समाज कहकर तब शैल समाज का वर्णन करेंगे। यहाँ उस समाज के देखने से भरतजी को कैसी प्रसन्नता हुई। उसी का वर्णन करते हैं। भूखे को अन्न चाहिए चाहे वह कैसा ही हो। कदन्न पाकर भी भूखा सुखी होता है। यदि उसे सुअन्न मिल जाय तो उसकी प्रसन्नता का क्या ठिकाना ! उस वन शैल समाज को देखने से हो भरतजी अति प्रसन्न हैं। इस प्रसन्नता के साथ आतुरता का योग है। इसलिए भूखे के सुअन्न प्राप्ति से उपमित किया।

ईति भीति जनु प्रजा दुखारी। त्रिबिध ताप पीडित ग्रह मारी ॥
जाइ सुराज सुदेस सुखारी। होहि भरत गति तेहि अनुहारी ॥२॥

अर्थ ईति प्रीति से जैसे प्रजा दु खी हो, तीनो ताप से तप्त हो, मारीग्रह से पीडित हो सो सुदेश और सुराज मे जाकर सुखो हो वैसी ही भरत की गति हो रही है।

व्याख्या भरतजी केवल अपने ही दु ख से दु खी नही हैं उन्हे माताओ और प्रजाओ का भी भारी दु ख है। यथा देखि न जाहिं बिकल महतारी। जरहिं त्रिविध जर पुर नर नारी। पहिले भरतजी के व्यक्तिगत दु ख का मिटना कहकर अब प्रजावर्ग के दु ख का मिटना कहते हैं। प्रजावर्ग के दु ख के मिटने से भरतजी का दूसरे प्रकार का भी दु ख मिटा।

अतिवृष्टिरनावृष्टिर्मूषका शलभा शुका। प्रत्यासन्नाश्च राजान षडेता ईतय स्मृता। अतिवृष्टि, अनावृष्टि, चूहे, टिड्डी, सुग्गो का आक्रमण तथा राजाओ का सन्निकट आना ये छ इति कही गयी है। इन छओ के कारण दुर्भिक्ष पडता है। सो जैसे ईति आदि के डर से प्रजा 'देश छोडकर भाग चली हो। उसे आधिदैविक

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



आधिभौतिक और आध्यात्मिक ताप भी हो, ग्रह भी उनके प्रतिकूल हो वे सुराज और सुदेश पाकर सुखी हो जाते है। सो अवधवासी ईति के भय से देश छोडकर चले आ रहे हैं। यथा : मुख सुखाहि लोचन स्रवहि सोकु न हृदय समाइ। मनहु करुन रस कन्टक कई उतरी अवध बजाइ। उन्हे आधिदैविक ताप भी है। यथा : मिलेहि माझ बिधि बात बिगारी। तथा कीन्ह मातु मिस काल कुचाली। ईति[1] भीति जनु पाकत साली। आध्यात्मिक ताप। यथा . तन कृस मन दुख बदन मलीने। बिकल मनहु माछी मधु छीने। आधिभौतिक ताप। यथा : नगर फैल गयी बात सुतीछी। छुअत चढी जनु सब तन बीछी। ग्रहमारी भी है। यथा : घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहु जमदूता।

ऐसी प्रजा को सुदेश की चाह होती है। जहाँ सुभिक्ष हो और सुराज की आवश्यकता होती है। जहाँ सुव्यवस्था हो। यदि उन्हे सुदेश और सुराज दोनो की प्राप्ति एक ही स्थल मे हो तो वे सुखी हो जाते हैं। सो पुर नर नारियो के दुख की शान्ति समझकर भरतजी का दूसरे प्रकार का भी दुख जाता रहा।

राम बास बन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा॥
सचिव बिरागु बिबेकु नरेसू। बिपिन सुहावन पावन देसू॥३॥

अर्थ . राम वास वन . वन की सम्पत्ति से ऐसा शोभित है जैसे अच्छे राजा की प्राप्ति से प्रजा सुखी होती है। विराग मन्त्री हैं विवेक राजा हैं। सुहावना वन ही पवित्र देश है।

व्याख्या पहिले राम वन का वर्णन कवि करते हैं कि वह वन वन की सम्पत्ति से शोभायमान है। अर्थात् मुनि तपस्वी के उपयोग की सामग्री से परिपूर्ण है। जैसे अच्छे राजा के होने से प्रजा सुखी हो जाती है। वन सात्त्विक प्रदेश है। यहाँ निवृत्तिमार्ग के ऋषि मुनि रहते हैं। उनके उपयुक्त सभी सामग्री यहाँ हैं।

वहाँ पर विराग मन्त्री हैं, विवेक राजा है और वन प्रदेश ही उत्तम देश है। जहाँ विवेक राजा का राज्य है। भाव यह कि ससार मे प्रायेण सर्वत्र ही मोह राजा का राज्य है और काम क्रोधादि का आधिपत्य है। पर यहाँ तो विवेक राजा की विजय है। मोह राजा के राज्य मे ससार दुख झल रहा है। सुख तो तभी सुलभ है जब विवेक राज्य मे पदार्पण करे।

भट जम नियम सैल रजधानी। साति सुमति सुचि सुदर रानी॥
सकल अग सपन्न सुराऊ। राम चरन आश्रित चित चाऊ॥४॥

अर्थ : यम नियमादिक योद्धा हैं। पर्वत ही राजधानी है और शान्ति तथा सुमति सुन्दर रानियाँ हैं। श्रेष्ठ राजा सब अङ्गो से परिपूर्ण है और रामजी के चरणो के आश्रित होने से चित्त मे प्रसन्नता है।

---

१ यह छठी ईति है। करुण रस रूपी राजा का धावा अवध पर हो गया है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या · राजा विवेक के योद्धा पांच यम और पांच नियम हैं। जिस भांति मोह राजा के काम क्रोधादि योद्धा है और विवेक राजा की राजधानी राम शैल है जिस भांति मोह राजा की राजधानी इन्द्रपुर है। राजधानी उस प्रदेश को कहते हैं जहां स्वय राजा का निवास हो। शैल पर मानो विवेक राजा स्वय रहते हैं। राजा को दो पवित्र रानियां भी हैं एक तो शान्ति रानी है और दूसरी सुमति रानी हैं।

राजा के जितने अङ्ग सेना कोषादि हैं सबसे विवेक राजा सम्पन्न हैं और वे रामचरण के आश्रित है। अत स्नेह मे मग्न रहते हैं।

दो. जीति मोह महिपालु दल, सहित बिबेक भुआलु।
करत अकटक राजु पुर, सुख संपदा सुकालु ॥२३५॥

अर्थ · विवेक राजा मोह राजा को दल सहित जीतकर निष्कण्टक राज्य कर रहे हैं और पुर मे सुख सम्पत्ति और सुकाल है।

व्याख्या : इससे यह पता चलता है कि पहिले यहाँ भी मोह राजा का राज्य था। पर जब से सरकार का आगमन हुआ तब से सरकार के आश्रय से विवेक राज की जीत हो गयी। अब वे वन और प्रदेश मे अकण्टक राज्य करते हैं। वहां सुख सम्पदा और सुकाल बना हुआ है। भाव यह कि जिस भाँति पिण्ड मे विवेक जय से आनन्द होता है उसी भांति राम वन और शैल मे आनन्द का साम्राज्य है। यथा *सेवक सुमिरत नाम सुप्रीति। बिनु श्रम प्रबल मोहदल जीती। फिरत सनेह मगन सुख अपने। नाम प्रसाद सोच नहिं सपने।*

बन प्रदेश मुनि बास घनेरे। जनु पुर नगर गाउँ गन खेरे ॥
बिपुल बिचित्र बिहग मृग नाना। प्रजा समाजु न जाइ बखाना ॥१॥

अर्थ : वन प्रदेश मे बहुत से मुनियो के निवास स्थान हैं। वे ही मानो पुर, नगर, गांव और पुरवा हैं। बहुत से अनेक प्रकार के पक्षी और बहुत प्रकार के मृग हैं। वे ही ऐसे प्रजा समाज हैं जिनका वखान नही हो सकता है।

व्याख्या उस वन प्रदेश मे बहुत से मुनियो के आश्रम हैं। वे आश्रम ही मानो पुर नगर ग्राम और खेट विस्तार के तारतम्य से हैं। नगर बडा होता है। पुर उससे छोटा, ग्राम उससे भी छोटा होता है। खेट शब्द का प्राकृत रूप खेर है अर्थात् पुरवा। यथा : आप पाप को नगर बसावत सहि न सक्त पर खेरे।

अब उन पुर, नगर, ग्राम और खेरा के निवासी प्रजा कौन से हैं? मुनि लोग प्रजा हो नहीं सक्ते और न एक आश्रम मे उतने मुनि ही रह सकते हैं कि उनकी उपमा नगरादि से दी जा सके। अतः कहते हैं कि उन आश्रमो मे अनेक प्रकार के बहुत से पक्षी बसे हुए हैं। उनमे अनेक प्रकार के मृग भी विचरते हैं। वे ही मानो प्रजा के समाज हैं। पक्षी ऐसे सुन्दर हैं, उनकी बोली इतनी सुहावनी है कि वर्णन नही किया जा सकता। सुन्दर मृग अनेक प्रकार से कलोल कर रहे हैं। उनके लिए भी ऐसी ही बात कही जा सकती है। भगवती ने कहा था : खग

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मृग परिजन नगर बन। माँ कौसल्या ने कहा था : खग मृग चरण सरोरुह सेवी। सो उन्हीं का प्रजा रूप से वर्णन हो रहा है।

खगहा करि हरि बाघ बराहा। देखि महिष वृष साजु सराहा ॥
बयरु विहाय चरहिं एक संगा। जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा ॥२॥

अर्थ : गैंडा, हाथी, सिंह, व्याघ्र, सूअर, भैंसा, बैल के साज को देखकर प्रशंसा की। वे वैर छोड़कर जहाँ तहाँ विचर रहे हैं। मानो वे ही चतुरंगिणी सेना हैं।

व्याख्या : इस पशु समाज को जो देखता है वही प्रशंसा करता है। खगहा गैंड़े को, हरि सिंह को, बाराह बनैले सुअर को, महिष भैंस और वृष बैल को कहते हैं। इन सबों में एक दूसरे से वैर है। सो स्वाभाविक वैर छोड़कर एक साथ विचर रहे हैं। जैसे चतुरंगिणी सेना विचर रही हो।

पहिले कह आये है : सकल अंग संपन्न सुराऊ। उन अङ्गों का वर्णन करते हुए सम्पत्ति, मन्त्री, देश, रानी, सेनापति, प्रजा, सेना का वर्णन करके अब सुराज के मङ्गल का वर्णन करते हैं।

झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं। मनहुँ निसान बिबिध बिधि बाजहिं ॥
चक चकोर चातक सुक पिक गन। कूजत मंजु मराल मुदित मन ॥३॥

अर्थ : झरना झरते हैं। मत्त हाथी गरजते हैं। मानो अनेक प्रकार के डंके बज रहे हैं। चकवा, चकोर, पपीहा, शुक, कोयल और हंस प्रसन्न मन होकर कूज रहे है।

व्याख्या : जहाँ मङ्गल होता है वहाँ डंके बजते हैं। वहाँ वाद्य, गान और नृत्य होता है। सो यहाँ जो झरना झर रहा और मत्त हाथी गरज रहे हैं। वे ही मानो डंके बज रहे हैं। ध्वनि मे भेद होने से बिबिध बिधि कहा।

यहाँ पर छः पक्षियो का कूजना लिखा जा रहा है। जो भिन्न ऋतुओ मे बोलते हैं। पर आनन्दातिरेक से यहाँ सब बोल रहे हैं। ये ही मानो तालधारी हैं बाजे बजा रहे हैं। पुष्पवाटिका मे चातक कोकिल कीर चकोरा। कुजत विहंग नटत कल मोरा कह आये हैं। यहाँ नदी के निकट होने से चक और हंस अधिक कह रहे हैं।

अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा ॥
बेलि बिटप तृन सफल सफूला। सब समाजु मुद मंगल मूला ॥४॥

अर्थ : भौंरो के झुण्ड गाते और मोर नाच रहे हैं। मानो सुराज मे चारो ओर मङ्गल हो रहा है। विटप तृण सब फल और फूल से सम्पन्न हैं। सब समाज आनन्द और मङ्गल का मूल हो रहा है।

व्याख्या : जब तालधारी लोगो ने साज मिला लिया तब गान आरम्भ होता है। यहाँ भ्रमरगण ही गानेवाले हैं। जब गान होने लगा और वाद्य बजने लगे तब उस रस की पूर्ति तो नृत्य से ही हो सकती है। अतः कहते हैं कि मोर नाच रहे हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नाचनेवाला बड़े सजधज से आता है। पक्षियो मे मोर से अधिक सजधज किसी का नही है।

लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना। उनमे भी फल फूल लगे हैं। राजा राम चरन आश्रित चित चारू है। प्रजा बैर बिहाय चरहिं एक संगा। पक्षी नाच गा रहे हैं। वेलि बिटप सब सफल सफूल है। इसलिए सब समाज को मङ्गल मूल कह रहे हैं।

दो. राम सैल सोभा निरखि, भरत हृदय अति पेमु।
तापस तप फल पाइ जिमि, सुखी सिराने नेमु ॥२३६॥

अर्थ : राम शैल की शोभा देखकर भरतजी के हृदय में अत्यन्त प्रेम हो रहा है। जैसे तपस्या का फल प्राप्त होने पर तपस्वी नियमो की समाप्ति मे सुखी होता है।

व्याख्या : भरत दीख बन सैल समाजू : उपक्रम करके : राम सैल सोभा निरखि से उपसहार करते हैं। उसके देखने से सबके हृदय में आनन्द हुआ। पर भरत के हृदय मे अत्यन्त आनन्द हुआ। यहाँ प्रेम का आनन्द है। यथा : तदपि प्रीति कै प्रीति सुहाई। मानो तपस्वी को तप फल मिल गया और जो कष्ट कर नियम उसने स्वीकार किये थे वे सब समाप्त हो गये। उस समय जैसा सुख तपस्वी को होता है वैसा सुख भरतजी को रामशैल शोभा निरीक्षण से हुआ। क्योकि जहाँ रामजी होते हैं वही शोभा रहती है। भरतजी स्वय अयोध्या की व्यवस्था देख चुके हैं। श्रीहत सर सरिता वन बागा। नगर विसेषि भयावनु लागा। खग मृग हय गय जाहिं न जोए। राम बियोग कुरोग बिगोए। अत: रामजी के यहाँ होने के निश्चय से भरतजी को अत्यधिक सुख हुआ। जिस भरतलाल को भरद्वाजजी के विधि विस्मय दायक विभव का कोई प्रभाव न पडा उस पर राम शैल का ऐसा प्रभाव पडा कि उसके दर्शन के सुख मे मग्न हैं।

तब केवट ऊँचे चढि धाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई ॥
नाथ देखिअहि बिटप बिसाला। पाकरि जंबु रसाल तमाला ॥१॥

अर्थ : तब केवट दौड़कर ऊँचे चढ गया और भरतजी से भुजा उठाकर कहने लगा कि हे नाथ! ये जो बडे बडे पेड देखे जाते हैं पाकर का पेड़ है। जामुन का पेड है। आम और आबनूस का पेड है।

व्याख्या : ऊँचे पर चढे जाने से दूर के और नीचे के दृश्य स्पष्ट दिखायी पड़ते हैं। केवट ने ठीक अन्दाज कर लिया है। फिर भी निश्चय करने के लिए ऊँचे पर दौडकर चढ गया। भरतजी को अतिप्रिय के दर्शन कराने की उत्सुकता से शीघ्रता की और भरतजी को दिग्दर्शन कराने के लिए भुजा उठाकर बोला।

कहता है कि इस वन के पेडो मे जो बडे बडे पेडो का झुण्ड है उसे देखिये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मृग परिजन नगर बन। माँ कौसल्या ने कहा था : खग मृग चरण सरोरुह सेव
सो उन्हीं का प्रजा रूप से वर्णन हो रहा है।

खगहा करि हरि बाघ बराहा। देखि महिष वृष साजु सराहा ॥
बयरु बिहाय चरहिं एक संगा। जहँ तहँ मनहुँ सेन चतुरंगा ॥२

अर्थ : गैंडा, हाथी, सिंह, व्याघ्र, सूअर, भैंसा, बैल के साज को देखकर प्रश
की। वे वैर छोड़कर जहाँ तहाँ विचर रहे हैं। मानो वे ही चतुरंगिणी सेना हैं।

व्याख्या . इस पशु समाज को जो देखता है वही प्रशंसा करता है। खग
गैंड़े को, हरि सिंह को, वाराह वनैले सुअर को, महिष भैंस और वृष बेल को कह
हैं। इन सबो में एक दूसरे से वैर है। सो स्वाभाविक वैर छोड़कर एक साथ विच
रहे हैं। जैसे चतुरंगिणी सेना विचर रही हो।

पहिले कह आये हैं · सकल अंग सपन्न सुराऊ। उन अङ्गो का वर्णन कर
हुए सम्पत्ति, मन्त्री, देश, रानी, सेनापति, प्रजा, सेना का वर्णन करके अब सुरा
के मङ्गल का वर्णन करते हैं।

झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं। मनहुँ निसान बिबिध बिधि बाजहिं ॥
चक चकोर चातक सुक पिक गन। कूजत मंजु मराल मुदित मन ॥३।

अर्थ : झरना झरते हैं। मत्त हाथी गरजते हैं। मानो अनेक प्रकार के डके ब
रहे हैं। चकवा, चकोर, पपीहा, शुक, कोयल और हंस प्रसन्न मन होकर कूज रहे हैं

व्याख्या : जहाँ मङ्गल होता है वहाँ डके बजते हैं। वहाँ वाद्य, गान औ
नृत्य होता है। सो यहाँ जो झरना झर रहा और मत्त हाथी गरज रहे है। वे हैं
मानो डके वज रहे हैं। ध्वनि मे भेद होने से विविध विधि कहा।

यहाँ पर छ : पक्षियो का कूजना लिखा जा रहा है। जो भिन्न ऋतुओ मे
बोलते हैं। पर आनन्दातिरेक से यहाँ सब बोल रहे हैं। ये ही मानो तालधारी हैं
बाजे बजा रहे हैं। पुष्पवाटिका मे चातक कोकिल कीर चकोरा। कुजत विहग
नटत कल मोरा कह आये हैं। यहाँ नदी के निकट होने से चक और हस अधिक
कह रहे हैं।

अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मंगल चहुँ ओरा ॥
बेलि बिटप तृन सफल सफूला। सब समाजु मुदु मगल मूला ॥४॥

अर्थ : भौंरो के झुण्ड गाते और मोर नाच रहे हैं। मानो सुराज मे चारो
ओर मङ्गल हो रहा है। विटप तृण सब फल और फूल से सम्पन्न है। सब समाज
आनन्द और मङ्गल का मूल हो रहा है।

व्याख्या : जब तालधारी लोगो ने साज मिला लिया तब गान आरम्भ होता
है। यहाँ भ्रमरगण ही गानेवाले हैं। जब गान होने लगा और वाद्य बजने लगे तब
उस रस की पूर्ति तो नृत्य से ही हो सकती है। अतः कहते हैं कि मोर नाच रहे हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नाचनेवाला बड़े सजधज से आता है। पक्षियों में मोर से अधिक सजधज किसी का नही है।

लागे बिटप मनोहर नाना। बरन बरन बर बेलि बिताना। उनमें भी फल फूल लगे हैं। राजा राम चरन आश्रित चित चारु हैं। प्रजा बैर बिहाय चरहिं एक संगा। पक्षी नाच गा रहे हैं। बेलि बिटप सब सफल सफूल हैं। इसलिए सब समाज को मङ्गल मूल कह रहे हैं।

दो. राम सैल सोभा निरखि, भरत हृदय अति पेमु।
तापस तप फल पाइ जिमि, सुखी सिराने नेमु ॥२३६॥

अर्थ : राम शैल की शोभा देखकर भरतजी के हृदय में अत्यन्त प्रेम हो रहा है। जैसे तपस्या का फल प्राप्त होने पर तपस्वी नियमों की समाप्ति में सुखी होता है।

व्याख्या : भरत दीख वन सैल समाजू : उपक्रम करके : राम सैल सोभा निरखि से उपसंहार करते हैं। उसके देखने से सबके हृदय में आनन्द हुआ। पर भरत के हृदय में अत्यन्त आनन्द हुआ। यहाँ प्रेम का आनन्द है। यथा : तदपि प्रीति कै प्रीति सुहाई। मानो तपस्वी को तप फल मिल गया और जो कष्ट कर नियम उसने स्वीकार किये थे वे सब समाप्त हो गये। उस समय जैसा सुख तपस्वी को होता है वैसा सुख भरतजी को रामशैल शोभा निरीक्षण से हुआ। क्योंकि जहाँ रामजी होते हैं वहीं शोभा रहती है। भरतजी स्वयं अयोध्या की व्यवस्था देख चुके हैं। श्रीहत सर सरिता वन बागा। नगर बिसेषि भयावनु लागा। खग मृग हय गय जाहिं न जोए। राम बियोग कुरोग बिगोए। अतः रामजी के यहाँ होने के निश्चय से भरतजी को अत्यधिक सुख हुआ। जिस भरतलाल को भरद्वाजजी के विधि विस्मय दायक विभव का कोई प्रभाव न पड़ा उस पर राम शैल का ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसके दर्शन के सुख में मग्न हैं।

तब केवट ऊँचे चढ़ि धाई। कहेउ भरत सन भुजा उठाई ॥
नाथ देखिअहि बिटप बिसाला। पाकरि जंबु रसाल तमाला ॥१॥

अर्थ : तब केवट दौड़कर ऊँचे चढ गया और भरतजी से भुजा उठाकर कहने लगा कि हे नाथ! ये जो बड़े बड़े पेड़ देखे जाते हैं पाकर का पेड़ है। जामुन का पेड़ है। आम और आबनूस का पेड़ है।

व्याख्या : ऊँचे पर चढे जाने से दूर के और नीचे के दृश्य स्पष्ट दिखायी पड़ते हैं। केवट ने ठीक अन्दाज कर लिया है। फिर भी निश्चय करने के लिए ऊँचे पर दौड़कर चढ गया। भरतजी को अतिप्रिय के दर्शन कराने की उत्सुकता से शीघ्रता की और भरतजी को दिग्दर्शन कराने के लिए भुजा उठाकर बोला।

कहता है कि इस वन के पेडो में जो बडे बड़े पेड़ों का झुण्ड है उसे देखिये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उसमे पाकर जामुन रसाल और तमाल के पेड हैं। भाव यह कि इतने निकट पहुँच गये हैं कि वृक्षो की पहिचान हो रही है।

जिन्ह तरुबरन्ह मध्य बटु सोहा। मजु बिसालु देखि मनु मोहा ॥
नील सघन पल्लव फल लाला। अविचल छाँह सुखद सब काला ॥२॥

अर्थ उन श्रेष्ठ वृक्षो के बीच मे वट का वृक्ष शोभित हो रहा है। वह बडा सुन्दर है। विशाल है। उसके देखने से मनमोहित हो जाता है। नीले घने पत्ते हैं और लाल फल है। इसकी छाया घनी और सब काल मे सुख देनेवाली है।

व्याख्या अब पाँचवाँ पेड दिखला रहे हैं जो उपर्युक्त चारो वृक्षो के बीच मे है। वह वट का वृक्ष है। वट के पत्ते दूर से देखने से नीले रङ्ग के मालूम होते हैं। उन पत्तो मे लाल फल बडी शाभा दे रहे हैं। वटवृक्ष सभी वृक्षो मे बडा होता है। इसका फैलाव बहुत विस्तृत होता है। घने पत्तो के कारण धूप छनकर भी नही आ सकती इससे उसकी छाँह भी घनी होती है। जाडे मे गरम होती है। बरसात मे भी यह जल को बहुत रोकता है। अत ये सब गुण वट को छोडकर अन्य वृक्षो मे नही पाये जाते।

मानहुँ तिमिर अरुनमय रासी। बिरची बिधि सँकेलि सुषमासी ॥
ए तरु सरित समीप गोसाई। रघुबर परनकुटी जहँ छाई ॥३॥

अर्थ मानो ब्रह्मदेव ने अन्धकार और अरुणिमा की राशि को इकट्ठा करके परम शोभा सी रच दी है। ये पेड हे गोसाईं! नदी के तीर पर हैं। जहाँ रामजी ने पर्णकुटी बना रक्खी है।

व्याख्या अब पहिले जो कह आये हैं कि देखि मन मोहा उसी का कारण कहते है कि वटवृक्ष मे मानो परम शोभा सी छायी हुई है। ऐसा जान पडता है कि अन्धकार की राशि और अरुण राशि को मिलाकर इसे ब्रह्मदेव ने बनाया है। अन्धकार और अरुणिमा को लकर कुछ रचना करना मनुष्य द्वारा साध्य नही है। इसलिए कहते हैं कि मानो ब्रह्मदेव ने बना रक्खा है। नील सघन पल्लव मानो अन्धकार है और लाल लाल फूल मानो अरुणिमा है।

ये पेड मन्दाकिनी के तट पर हैं। सरकारी पर्णकुटी के आगे हैं। केवट कहता है कि मैंने कहा था जेहि बन जाइ रहब रघुराई। पर्णकुटी मैं करब सुहाई। सो मुझ यमुना पार से ही लौटा दिया है। कला विधान से मालूम होता है कि स्वय ही बनाया है।

तुलसी तरुबर बिबिध सुहाए। कहुँ कहुँ सिय कहुँ लखन लगाए ॥
बट छायाँ बेदिका बनाई। सिय निज पानि सरोज सुहाई ॥४॥

अर्थ अनेक प्रकार के तुलसी के सुन्दर सुन्दर पेड कही कहीं सीताजी ने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कही कही लक्ष्मणजी ने लगा रक्खा है। वट की छाया मे वेदिका : चबूतरा बना हुआ है। उसे सीताजी ने अपने कर कमलो से बनाया है।

व्याख्या : निषादराज सब बातो की खबर दिन रात लिया करते थे। छोटी सी छोटी बातो का उन्हे पता है। कहते हैं कि बहुत से तुलसी के पेड वहाँ लगे हुए हैं। उनमे से किसी किसी को लक्ष्मणजी किसी किसी को सीताजी ने लगा रक्खा है। भाव यह कि तुलसी बहुत पवित्र है और रामजी को प्रिय है। यथा : रामहि प्रिय पावन तुलसी सी। पूजा के भी बडी उपयोगी है। स्वास्थ्य के लिए भी परम हितकर है। अतः कोई घर तुलसी से रहित न होना चाहिए।

वट की छाया मे जो वेदिका बनी है उसे सीताजी ने अपने हाथ से बनाया है। भाव यह : मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ होने पर भी लक्ष्मणजी तथा परम सुकुमारी जनक दुलारी सीताजी गृहस्थी के सब कार्य सानन्द अपने हाथो कर रही हैं।

दो. जहाँ बैठि मुनिगन सहित, नित सिय रामु सुजान।
सुनहिं कथा इतिहास सब, आगम निगम पुरान ॥२३७॥

अर्थ : जहाँ मुनि समाज के साथ बैठकर सुजान सीता रामजी कथा इतिहास शास्त्र वेद और पुराण सुना करते हैं।

व्याख्या : वह वेदिका भी छोटी सी नही है जिसे सीताजी ने बनाया है। उस पर मुनियो की सभा लगती है। सीताजी और रामजी बडे सुजान हैं। कथा सुनने के बडे प्रेमी हैं। सब जानने पर भी बार बार सुनते है। यथा : वेद पुरान वसिष्ठ बखानहि। सुनहि राम जद्यपि सब जानहिं। भाव यह कि इन ग्रन्थो का श्रवण महापुण्य जनक है। कल्याणकांक्षी को इनका श्रवण नित्य करना चाहिए। मुनिगण मिलन विसेष बन सबहि भाँति हित मोर : का साफल्य दिखला रहे हैं। बचपन से सरकार श्रवण के बडे रसिक हैं। यथा : वेद पुरान सुनहि मन लाई। आपु कहै अनुजन्ह समुझाई। काष्ठ जिह्वा स्वामीजी कहते हैं : श्रवनहि सब भावन की जरिहैं। बिना सुने कोउ कैसे जनिहैं बिनु जाने कोउ का करिहै।

सखा बचन सुनि बिटप निहारी। उमगे भरत बिलोचन बारी॥
करत प्रनाम चले दोउ भाई। कहत प्रीति सारद सकुचाई॥१॥

अर्थ : सखा का वचन सुनकर पेड़ो को देखा तो भरतजी के आँखों मे जल उमग चला। दोनो भाई प्रणाम करते हुए चले। उस प्रेम को कहते हुए सरस्वती सङ्कुचित होती हैं।

व्याख्या : राम सैल सोभा निरखि भरत हृदय अति प्रेम। राम शैल की शोभा देखने से ही भरत के हृदय मे अत्यन्त प्रेम उमड़ा था। तब से निषादराज ने भुजा उठाकर दिखलाया कि इस वट विटप को देखिये। जिसके नीचे मुनि सभा मे सरकार कथा सुनते हैं। सखा के इस वचन को सुनकर विटप को देखा तो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रेम और अधिक उमड़ा आँखों में जल उमग आया। सरकार को अति निकट समझकर वहीं से प्रणाम करते चले। जिस भाँति मन्दिर का शिखर दर्शन करते ही परम भक्त लोग साष्टाङ्ग करते चलते हैं। पहिले ही कहा था : सिर भर जाउँ उचित अस मोरा। सो यही सिर के बल चलना है। उतनी दूर से समाज के साथ इस भाँति चलने में बड़ी बाधा थी। पर यहाँ तो निकट भी पहुँच गये और समाज भी साथ नहीं है। अतः साष्टाङ्ग प्रणाम करते चले।

यहाँ प्रीति के वर्णन का प्रसङ्ग आगया। कवियों को शारदा का भरोसा रहता है। उन्हीं की कृपा से वर्णन करते हैं। यथा : भगति हेतु बिधि भवन बिहाई। सुमिरत सारद आवत धाई। सो स्वयं सरस्वती को प्रीति के वर्णन में सङ्कोच है। क्योंकि उस प्रेम तक शारदा की भी गति नहीं है। वर्णन क्या करे ?

हरषहिं निरखि रामपद अंका। मानहु पारस पायेउ रंका ॥
रज सिर धरि हियँ नयनन्हि लावहिं। रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं ॥२॥

अर्थ : रामजी के चरणों के चिह्न देखकर ऐसे प्रसन्न होते हैं जैसे दरिद्र को पारस मिल गया हो। धूलि को सिर पर धरकर हृदय और आँखों में लगाते हैं। रामजी से मिलने के बराबर सुख पाते हैं।

व्याख्या : यहाँ तक सरकार बराबर आते जाते हैं। दण्डवत् प्रणाम करते समय : ध्वज कुलिश अंकुश कञ्ज के चिह्न विस्पष्ट दिखायी पड़ रहे हैं। रामपद अङ्क पारस है। इसी से अभीष्ट सिद्धि होती है। रामजी मिलते हैं। पारस स्वयं सोना नहीं है। पत्थर है। पर सोना बनाता है। इसलिए उसका आदर सोना से भी अधिक है। गीधराज को दर्शन का बड़ी आर्ति रही। अतः उन्होंने पद अङ्क का ही ध्यान किया। यथा : सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा। अति दरिद्र को सोना की बड़ी चाह है। इसलिए पारस पाने पर उसकी प्रसन्नता का अन्त नहीं है। इसी भाँति चरण चिह्न की प्राप्ति से भरतजी कृतकृत्य हैं।

उस अङ्क के रज को सिर पर धारण करते हैं। प्रिय वस्तु के लिए शरीर मे तीन ही स्थान है। सिर हृदय और नयन। अतः उस धूलि को सिर पर रक्खा। जो उंगली लगी रह गयी उसे हृदय मे लगाया। फिर भी सूक्ष्म अंश, लगा रह गया उसे आंखो मे लगा रहे हैं। रामजी मिलते तो आँखो से देखते हृदय से लगाते। सिर से प्रणाम करते। यहाँ भी तीनो अङ्गो को इसी भाँति सुख मिल रहा है। इसीलिए कहते हैं : रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं।

देखि भरत गति अकथ अतीवाँ। प्रेम मगन मृग खग जड़ जीवाँ ॥
सखहिं सनेह बिबस मग भूला। कहि सुपंथ सुर, बरषहि फूला ॥३॥

अर्थ : भरत की अत्यन्त अकथनीय गति देखकर पशु पक्षी जड़ जीव प्रेम में मग्न हो गये। सखा तो प्रेम के विवश होने के कारण रास्ता भूल गया। तब देवताओं ने रास्ता बतलाकर फूल बरसाये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : भरत दसा तेहि समय जस तस कहि सकहिं न सेषु। कबिहि अगम जिमि ब्रह्म सुख अह मम मलिन जनेषु। मन्दाकिनी के उस पार से ही भरतजी की अकथ दशा थी। इस समय तो अतीव अकथ है। इसका प्रभाव कोल किरात को कौन कहे जड जीव पशु पक्षी पर भी पडा। वे भी प्रेममग्न हो गये।

सखा निषादराज रास्ता दिखाने लिए साथ थे। पेडो को पहिचानते ही ऊँचे पर चढे। भलीभाँति मार्ग का निर्णय कर लिया। पर भरतजी का प्रेम देखकर वे भी ऐसे प्रेममग्न हुए कि उन्हे रास्ता भूल गया। बेरास्ते चल पडे। देवताओ को सेवा करने का अवसर मिल गया। उन लोगो ने सुन्दर रास्ता बतलाया और ऐसी प्रेमावस्था मे भरतजी के पूजन की महा महिमा समझकर फूल बरसाया।

निरखि सिद्ध साधक अनुरागे। सहज सनेहु सराहन लागे ॥
होत न भूतल भाउ भरत को। अचर सचर चर अचर करत को ॥४॥

अर्थ : देखकर सिद्ध और साधक भी अनुराग मे आगये। स्वाभाविक स्नेह की सराहना करने लगे। इस भूतल पर यदि भरतजी का अस्तित्व न होता तो जड को चेतन और चेतन को जड कौन करता ?

व्याख्या : भरत के प्रेम का प्रभाव पशु पक्षी आदि निम्न कोटि के जीवो तक पडा और सिद्ध साधक ऐसे उच्चकोटि के जीवो पर भी पडा। विराग के बानावाले सिद्ध साधक भी अनुराग मे आगये क्योकि विरागी जिसके अनुरागी होते हैं यथा : जेहि लागि बिरागी अति अनुरागी उन्ही के ये भी अनुरागी हैं। अत स्वाभाविक प्रेम की प्रशसा करने लगे। वैधी भक्ति ऐसी हो नही सकती। यह तो स्वाभाविकी भक्ति है।

प्रशसा करते हुए कहते हैं कि यह सामर्थ्य भरत के ही प्रेम मे है जिसके प्रभाव से जड तो द्रवीभूत हो जायँ उनमे चेतन के धर्म दृष्टिगोचर होने लगे और चेतन स्तब्ध हो जायँ उनमे जड के धर्म लखायी पडने लगे। भाव यह कि भरत के कारण जगत् का बडा भारी उपकार हुआ और साधुओ के लिए तो आदर्श खडा हो गया। यथा :

दो० प्रेमु अमिअ मदरु बिरहु, भरतु पयोधि गँभीर।
मथि प्रगटेउ सुर साधु हित, कृपासिंधु रघुबीर ॥२३८॥

अर्थ : प्रेमरूपी अमृत को विरह रूपी मन्दर से भरत रूपी अथाह समुद्र को मथकर कृपा के समुद्र रामजी ने देवता रूपी साधु के लिए प्रकट किया।

व्याख्या : भरत गम्भीर पयोधि हैं। यथा : कबहुँ कि काँजी सीकरन्हि छीर सिंधु बिनसाइ। पयोधि का मन्थन तो मन्दर से हुआ। पर भरत रूपी गम्भीर पयोधि का मन्थन तो उससे नही हो सकता था। इसलिए उनके मन्थन के लिए विरह ही मन्दर हुआ। पयोधि को तो सुरासुर ने मन्थन किया था। परन्तु इस मन्दर के सञ्चालन की शक्ति तो उनमे भी नही। अतः सरकार ने स्वय अपने विरह से

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मन्थन किया। भरतजी विचलित हो उठे। भरतहि बिसरेउ पितु मरन सुनत राम बन गौन। उस पयोधि का मन्थन तो देवताओं के हित के लिए हुआ। पर भरत रूपी पयोधिका मन्थन साधुओं के लिए हुआ। क्योंकि मन्थन से प्रेमामृत प्रकट हुआ जिसके रसास्वादन करनेवाले साधु हैं। इतना बड़ा कष्ट साधुओं के हित के लिए उठाया। अतः कृपासिन्धु कहते हैं।

**सखा समेत मनोहर जोटा। लखेउ न लखन सघन बन ओटा॥**
**भरत दीख प्रभु आश्रमु पावन। सकल सुमंगल सदन सुहावन॥१॥**

अर्थ : सखा सहित मनोहर जोड़ी को घने वन के आड़ के कारण लक्ष्मणजी ने नही लखा। भरतजी ने प्रभु के पावन आश्रम को देखा। जो सब सुमङ्गल का सुन्दर घर था।

व्याख्या : भरत शत्रुघ्न की जोड़ी मनोहर है। यथा : सखि जस रामलखन कर जोटा। तैसइ भूप संग दुइ ढोटा। और सखा के संग हैं। अतः मिलने की बड़ी उत्कण्ठा होनी चाहिए। परन्तु लक्ष्मणजी ने नही लखा। लक्ष्मणजी सरकार का पहरा दिया करते हैं। बड़े सावधान रहते हैं। यथा : कछुक दूरि सजि बान सरासन। जागन लगे बैठि बीरासन। परन्तु बीच में सघन वन था। सघन वन में से बाहर की वस्तु दिखायी पड़ती है। परन्तु बाहर से सघन वन के भीतर कुछ भी नहीं दिखायी पड़ता। अतः सावधान होने पर भी लक्ष्मणजी लख न सके।

परन्तु भरतजी ने प्रभु के आश्रम को देखा जो कि पवित्र भी था। सुमङ्गल भवन भी था और सुन्दर भी था। पवित्र वस्तु इष्ट प्रापक नही होता और यदि दोनो बातें हों भी तो वह सुन्दर नही होती। प्रभु के आश्रम मे तीनों बातें हैं।

**करत प्रवेस मिटे दुख दावा। जनु जोगी परमारथु पावा॥**
**देखे भरत लखन प्रभु आगें। पूछे बचन कहत अनुरागें॥२॥**

अर्थ : प्रवेश करते ही दुःख दावानल मिट गया। मानो योगी को परमार्थ की प्राप्ति हुई। भरतजी ने देखा कि लक्ष्मणजी सरकार के सामने हैं। पूछने पर अनुराग मे पगे हुए कुछ कह रहे हैं।

व्याख्या : भरतजी के हृदय मे दु:ख का दावानल लगा हुआ है। वह उस आश्रम में प्रवेश करते ही मिट गया। यथा : एहि दुख दाह दहै दिन छाती। भूख न बासर नीद न राती। इससे उस आश्रम का सुमङ्गल सदन होना दिखलाया। दुखदाव भी मिटा और परम सुख की प्राप्ति हुई। दोषापनयन कहकर गुणाधान कहते है कि मानो योगी ने परमतत्त्व पा लिया। यथा : पावा परमतत्त्व जनु योगी। अमृत लहेउ जनु संतत रोगी। भावार्थ यह कि भरतजी मानो कृतकृत्य हो गये। यह वही समय है। जब सरकार पूछ रहे हैं कि भरतजी कहाँ तक आगये है। तुमने पेड़ पर चढ़कर क्या क्या देखा ? और लक्ष्मणजी उत्तर दे रहे हैं। प्रसगप्राप्त बात तो यही है। वाल्मीकीय में लक्ष्मणजी का पेड पर चढना और भरतजी की सेना का अवलोकन

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लिखा है। ग्रन्थकार कुछ स्पष्ट लिखते नही। अत अनुमान यही होता है कि लक्ष्मणजी के क्रोध की शान्ति के बाद सरकार उसी विषय मे कुछ पूछ रहे हैं।

सीस जटा कटि मुनि पट बाँधे। तून कसे कर सर धनु काँधे ॥
वेदी पर मुनि साधु समाजू। सीय सहित राजत रघुराजू ॥३॥

अर्थ सिर पर जटा बाँधे हुए हैं और कमर मे वल्कल बँधा हुआ है। तरकस कसे हुए हैं। हाथ मे बाण और कन्धे पर धनुष है। वेदी के ऊपर मुनि और साधुओ का समाज है। सीताजी के सहित रामजी सुशोभित है।

व्याख्या लक्ष्मणजी ने बीररस के आवेश मे युद्ध की तैयारी की थी अभी तक उसी वेष मे हैं। यथा बाँधि जटा सिर कटि कसि भाथा। साजि सरासन सायक हाथा। भेद इतना ही है कि उस समय सजा हुआ धनुष था। इस समय कन्धे पर लटक रहा है। लक्ष्मणजी वेदी के नीचे है। यह वही वेदी है जिसके बारे म निषादराज ने कहा था बट छाया बेदिका बनाई। सिय निज पानि सरोज सोहाई। जहाँ बैठि मुनि गन सहित नित सिय राम सुजान। सुनहि कथा इतिहास सब आगम निगम पुरान। सा सरकार भी बैठे हे सीताजी भी बैठी हैं। मुनि समाज भी जुट गया है। सरकार का दरबार लगा हुआ है। इस मुनि मण्डली मे राम जानकी की बडी शोभा है। क्योंकि सरकार मुनिवेष मे हैं।

बलकल बसन जटिल तनु स्यामा। जिमि मुनिबेष कीन्ह रति कामा ॥
कर [1]कमलनि धनु सायकु फेरत। जिय की जरनि हरत हँसि हेरत ॥४॥

अर्थ पेडो के छाल का कपडा है। शरीर श्याम है। मानो काम और रति ने मुनि का वेष बना रक्खा है। करकमलो से धनुष बाण फेरते हैं और सहासावलोकन से जी की जलन का हरण कर रहे है।

व्याख्या पीतरङ्ग के वल्कल धारण करने से स्याम सरीर सुभाय सुहावन की बडी शोभा हो रही है। सरकार का रङ्ग श्याम है। जगदम्बा का वर्ण गौर है। सौन्दर्य की पराकाष्ठा रति और काम मे ही माना गया है। अत कवि उपमा देते हैं कि मानो स्वय रति और काम ने ही मुनि का वेष धारण कर रक्खा है। रति का वर्ण गौर और काम का श्याम है।

सरकार वीरोचित स्वभावानुकूल अस्त्र शस्त्र से सदा सावधान रहते हैं। उसे सुधारा करते हैं। अभ्यास के लिए फेरा करते हैं। सो उस समय धनुष बाण फेर रहे हैं और हँसकर देख रहे हैं। उस सहासावलोकन से मानो जिय की जलन का हरण कर रहे हैं। भरतजी ने कहा था देखे बिनु रघुनाथ पद जिय के जरनि न जाइ। सो मानो उसी के मिटाने के लिए हँसकर दख रहे हैं।

---

१ यहाँ परिणामालङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो लसत मजु मुनि मडली, मध्य सीय रघुचदु ।
ग्यान सभाँ जनु तनु धरे, भगति सच्चिदानदु ॥२३९॥

अर्थ . सुन्दर मुनिमण्डली के बीच मे रामचन्द्र सीताजी के साथ विराजमान हैं। जैसे शरीर धारण किये हुए ज्ञान की सभा मे भक्ति और सच्चिदानन्द विराजमान हो।

व्याख्या · ज्ञान प्राचुर्य के कारण मुनि मण्डली की उपमा ज्ञानसभा से दी गयी। अर्थात् साक्षाल् विवेक विराग शम दम मानो मूर्तिमान बैठे हैं और ज्ञान की शोभा बिना भक्ति के होती नही। यथा सोह न राम प्रेम बिनु ग्यानू। करनधार बिनु जिमि जल जानू। जोग कुजोग ग्यान अग्यानू। जहँ नहिं राम प्रेम परधानू। सो सच्चिदानन्द राम है। यथा राम सचिचदानद दिनेसा। और भक्ति उनको प्रिया हैं। यथा पुनि रघुबीरहि भगति पियारी। अत सीय रघुचद की उपमा भक्ति सच्चिदानन्द से दी गयी। वे भी शरीर धारण किये हुए विराजमान है।

सानुज सखा समेत मगन मन। बिसरे हरष सोक सुख दुख गन ॥
पाहि नाथ कहि पाहि गोसाई। भूतल परे लकुट की नाईं ॥१॥

अर्थं भरतजी भाई और सखा सहित मगन मन हो गये। हर्ष शोक सुख दु ख सब भूल गये। हे नाथ! रक्षा करो। हे गोसाईं! रक्षा करो ऐसा कहकर दण्ड की भाँति पृथ्वी पर गिर गये।

व्याख्या भरतजी शत्रुघ्न और निषादराज सबका मन मग्न हो गया। अर्थात् अपना कार्य करने मे असमर्थ हो गया। अत हर्ष शोक सुख दु ख का स्मरण न रह गया। अनुभूतविषयासम्प्रमोष स्मृति । सो स्मृति नही रह गयी। पहिले हर्ष हुआ था। यथा हरषहिं निरखि रामपद अका। सुख यथा रघुबर मिलन सरिस सुख पावहिं। दु ख और शोक तो पहिले ही मिट गया था। यथा करत प्रवेस मिटे दुख दावा। जनु जोगी परमारथ पावा। इस समय तो स्मरण भी नही रह गया कि कभी शोक दु खादि थे।

भूयोऽर्थं मे दो बार पाहि कहा। यथा त्राहि त्राहि आरत हरन। अथवा प्रभु पितु बचन मोह बस बेली। आएउ इहाँ समाज सकेली। अत दोनो अपराध की क्षमा के लिए दो बार पाहि कहा। भरतजी दुर्बल हो रहे है। अत लकुटी की नाईं भूमि पर गिरना कहा। मनु शतरूपा हृष्टपुष्ट थे। अत उनके लिए लिखा परे दड इव गहि पद पानी।

बचन सप्रेम लखन पहिचाने। करत प्रनामु भरत जियँ जाने ॥
बधु सनेह सरस एहि ओरा। उत साहिब सेवा बस जोरा ॥२॥

अर्थं लक्ष्मणजी ने प्रेम सहित वचन पहिचाने और ऐसा जी मे जाना कि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। इधर तो भाई का सरस प्रेम और उधर स्वामी की सेवा की प्रबलता।

व्याख्या : भरतजी के सप्रेम वचन को लक्ष्मण ने पहिचाना और किसी ने नहीं। क्योकि सरकार की सेवा मे सावधान है। इतना ही नही यह भी जान लिया कि भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। भाई के सरस प्रेम ने इस ओर मन को खेंचा : दौड़कर भाई से लिपट जाने को जी चाहा और उधर सरकार पूछते थे। लखनलाल उत्तर दे रहे थे। अतः स्वामी की सेवा मे लगे थे। यथा : देखे भरत लखन प्रभु आगे। पूछें बचन कहत अनुरागे। गोस्वामीजी दोनो ओर इत लिखते हैं। यथा : इत पितु बच इत बंधु सकोचू।

मिलि न जाइ नहि गुदरत बनई। सुकबि लखन मन की गति भनई॥
रहे राखि सेवा पर भारू। चढ़ी चंग जनु खैंच खेलारू॥३॥

अर्थ : न मिलते बनता है और न छोडते ही बनता है। सुकवि लक्ष्मण के चित्त की गति का वर्णन करता है। सेवा पर ही भार रख छोड़ा। जैसे पतङ्ग उड़ानेवाला चढी हुई पतङ्ग को खीचता हो।

व्याख्या : सेवा मे रहने से मिलि न जाइ और भाई के सरस प्रेम के खैंच से मन उस ओर से इधर भी नही आता। इसलिए कहते हैं : नहि गुदरत बनई। छोडते भी नही बनता। लखनलाल दोनों ओर की खैंचतान मे पड़ गये। इस समय लखनलाल के मन की गति का वर्णन करना सुकवि का काम है सो सुकवि कहता है।

चङ्ग सीधे ऊपर नही जाती हवा के रुख पर जाती है। यहाँ चङ्ग उपमान है। मन उपमेय है। मन भरतजी की ओर खिचा। इसी को चङ्ग का चढना कहा। लक्ष्मणजी की उपमा खेलाड़ी : पतङ्गबाज से है सो खेलाड़ी ने पतङ्ग को हाथ से जाने न दिया। परेते पर बोझा दिया। यहाँ सेवा परेता है। उसी में लखनलाल की मनोवृत्ति रूप नख लिपटा हुआ है।

कहत सप्रेम नाइ महि माथा। भरत प्रनाम करत रघुनाथा॥
उठे रामु सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषंग धनु तीरा॥४॥

अर्थ : लक्ष्मण ने प्रेम सहित पृथ्वी पर सिर नवाकर कहा कि हे रघुनाथ! भरतजी प्रणाम कर रहे हैं। रामचन्द्र इस बात को सुनते ही प्रेम से अधीर हो उठे। कपड़ा कही है। निषग कही है। धनुष कही है और तीर कही है।

व्याख्या : बात करते करते प्रणाम का भाव यही कि अत्यन्त आवश्यकीय बात इस बीच मे आन पड़ी। यदि सादा प्रणाम होता तो बात के सिलसिले मे ही समझा जाता। अतः लक्ष्मणजी ने पृथ्वी पर सिर रखकर प्रणाम किया। भरतजी ने नाथ कहकर पाहि कहा था। अतः लक्ष्मणजी रघुनाथ सम्बोधन करके कहते हैं कि आप रघुकुल के नाथ हैं। रघुकुल के मुख्य भरत प्रणाम करते हैं।

लक्ष्मणजी का वचन सुनते ही सरकार उठे। उठते ही सबने देखा तीर की

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भाँति भरत के पास पहुँचते कोई देख न पाया। अतः गोसाईंजी ने सरकार का चलना नही लिखा। उठने मे अधीरता दिखलाते हैं। खबर नही कि उत्तरीय कहाँ गिरा। हाथ से धनु सायक फेर रहे थे सो धनुप कहाँ गिरा। निषङ्ग और तीर कहाँ गिरे इसका ध्यान न रहा। रामजी को अधीर करनेवाला केवल प्रेम है।

दो. बरबस लिए उठाइ उर, लाये कृपानिधान।
भरत राम की मिलन लखि, बिसरे सबहि अपान ॥२४०॥

अर्थ : कृपा निधान रामचन्द्र ने भरत को जोर से उठाकर छाती से लगाया। भरत और रामजी के मिलने को देखकर सब अपनी सुधि भूल गये।

व्याख्या : प्रेम मे जो मग्न होता है उसे उठना अच्छा नही लगता। यथा : प्रेम मगन तेहि उठब न भावा। अतः कहते हैं कि बल पूर्वक सरकार ने उठा लिया। स्वय प्रेम मे अधीर है। इसलिए हृदय से लगा लिया। भरतजी ने यह भी अनुमान किया था : जो सनमानहि सेवक मानी। सो हृदय से लगाकर सम्मान किया। अतः प्रभु को कृपानिधान कह रहे हैं। सो मिलते समय ऐसी प्रीति बढी कि देखनेवाले ऐसे मग्न हुए कि उन्हे अपनी सुधि न रही।

मिलनि प्रीति किमि जाइ बखानी। कबिकुल अगम करम मन बानी ॥
परम प्रेम पूरन दोउ भाई। मन बुधि चित अहमिति बिसराई ॥१॥

अर्थ : मिलने का प्रेम कैसे वर्णन किया जाय। क्योकि कवियो के लिए मनसा वाचा कर्मणा अगम है। मन बुद्धि चित्त अहन्ता को भूलकर दोनो भाई परम प्रेम से परिपूर्ण हो रहे हैं।

व्याख्या . रामजी की प्रीति भरत के प्रति जैसी थी उसे वर्णन भी किया यथा : रामहि बधु सोच दिन राती। अडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती था। भरत की प्रीति रामजी के प्रति जैसी थी सो भी कहा। यथा : राम चरन पकज मन बासू। लुबुध मधुप इव तजै न पासू। परन्तु कवि कहते हैं कि मिलने की प्रीति कैसे बखानी जा सकती है जब कि मार्ग मे चलने की प्रीति ही कविकुल के लिए अगम थी। यथा : कबिहि अगम जिमि ब्रह्म सुख अहमम मलिन जनेपु। वहाँ तो अगमता की उपमा दी थी। पर यहाँ तो सीधे कह रहे हैं कि मनसा वाचा कर्मणा अगम है।

परम प्रेम मे दोनो भाई ऐसे डूबाडूब है कि अन्त करण चतुष्टय का पता नही। प्रेम समाधि लग गयी। दर्शन करने से ही भरतजी को हर्ष शोक सुख दु ख गण भूल गया था। इस समय हर्ष शोक सुख दु ख गण के अनुभव के जो करण है : मन बुद्धि और चित्त उनकी भी विस्मृति हो गयी। भाव यह कि स्वय मिलनेवालो को ही अपनी दशा का पता नही तो दूसरे कैसे जानें। मन मे प्रेम के भर जाने से उसकी गति रुद्ध हो गयी। यदा : प्रेम भरा मन निज गति छूँछा।

कहहु सुप्रेम प्रगट को करई। केहि छायाँ कबि मति अनुसरई ॥
कबिहि अरथ आखर बलु साँचा। अनुहरि ताल गतिहि नटु नाँचा ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : कहिये तो उस प्रेम को कौन प्रकट करे। किस छाया का कवि की मति अनुसरण करे। कवि को तो अक्षर और अर्थ का सच्चा बल होता है। जैसे नट ताल की गति के अनुसार नाचता है।

व्याख्या . जिस प्रेम मे मन बुद्धि चित्त अहन्ता का विस्मरण हो गया वह कैसे प्रकट किया जा सकता है ? अन्त करण ही अन्त के प्रेम को प्रकट करते हैं। अन्त करण की गति की छाया का अनुसरण करके ही कवि वर्णन करते हैं। यहाँ अन्त करण मे गति ही नही। तब किस छाया का कवि अनुसरण करे। कवि को अक्षर और अर्थ का सच्चा बल है। शब्द और अर्थ ही काव्य का शरीर है। वह अक्षर और अर्थ का ऐसा प्रयोग करता है कि उसे सरस्वती का नृत्य कहा जाता है। कुछ भाव अक्षर के प्रयोग से ही प्रकट हो जाते हैं। कुछ अर्थ के बल से प्रकट होते हैं। परन्तु वह तभी सम्भव है जब मन बुद्धि चित्त अहङ्कार मे गति हो। बिना गति के ताल कैसे दिया जायगा। ताल कालक्रिया मानम् और बिना ताल के नाचनेवाला कैसे नृत्य करे। इस भाँति कविकुल के लिए कर्म मन वाणी से उस प्रीति को अगम बतलाया।

अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाइ मनु विधि हरि हर को ॥
सो मैं कुमति कहौ केहि भाँती। बाज सुराग कि गाँडर ताँती ॥३॥

अर्थ भरत और रामजी का स्नेह दुर्गम है। जहाँ ब्रह्मा विष्णु और रुद्र का भी मन नही जाता। उस प्रेम को मुझ सा कुबुद्धि कैसे कह सकता है। क्या भेंड की ताँत से अच्छा राग बज सकता है।

व्याख्या . अब मन से अगम कह रहे हैं कि बिधि हरिहर के मन के लिए अगम है। कवि तो मनुष्य है। उसकी क्या गिनती है। अहङ्कार शिव बुद्धि अज मनराशि चित्त महान। यहाँ मन बुधि चित्त अहमिति का ही विस्मरण है और विधि हरिहर उन्ही के अधिष्ठाता हैं। अत उनकी गति नही है।

विधि हरिहर सुमतियो के शिरोमणि हैं और मै तो कुमति हूँ। जब ऐसो की पहुँच नही तो मेरी पहुँच कहाँ तक हो सकती है। भेंड की ताँत आँत के नसो से सुराग नही बज सकता। सारङ्गी आदि मे बूढी भैंस आदि की आँत की नस का प्रयोग होता है तब अच्छा राग बजता है। भेंड को आँत छोटी होती है और उसमे लचक नही होती। अर्थात् मैं कुमति होकर उसे कैसे कह सकता हूँ। इस भाँति वाणी से अगम कहा। सङ्गीत मे तीन की आवश्यकता होती है। गान ताल और नृत्य की। इस भाँति कवित्व मे भी तीन की आवश्यकता होती है। शिक्षा जानकारी और शक्ति की। यहाँ विषम अगम्य शक्ति दुर्बल और कुमति गाँडर ताँती है। सुमति वृद्धा भैंसे की ताँती है। गाँडर ताँती से सुराग ही नही बजता और जिस गान के ताल का थाह नही वह गाँडर ताँती से कैसे बजेगा। गाँडर भेंड को कहते हैं। इसीलिए उसके चरवाहे को गँडेरिया कहा जाता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मिलनि बिलोकि भरत रघुबर की । सुरगन सभय धकधकी धरकी ॥
समुझाये सुरगुरु जड़ जागे । बरषि प्रसून प्रसंसन लागे ॥४॥

अर्थ : भरत और रघुवर का मिलन देखकर देवताओ की तो डर से छाती धड़कने लगी । जब बृहस्पतिजी ने समझाया तब उनकी जड़ता गयी । फूलो की वर्षा करके प्रशंसा करने लगे ।

व्याख्या : इतने बड़े प्रेम को देखकर देवताओं का कलेजा हिलने लगा कि यह तो वही बात हुई जिसको हमलोग डरते थे । राम सँकोची प्रेमबस भरत सुप्रेम पयोधि । बनी बात बिगरन चहति करिअ जतनु जल सोधि । भरतजी निश्चय लौटा ले जावेंगे और रामजी लौट जायँगे । भरत का अनुरोध कभी व्यर्थ नही जा सकता । हम कहते रहे : करिअ प्रभु सोई । रामहि भरतहि भेंट न होई । पर गुरुजी ने नही माना । अब तो भेंट हो गयी । अब क्या उपाय है ?

गुरुजी ने समझाया कि रामजी के अनुरोध को भरत ही कैसे टालेंगे । इस समय भक्त और भगवान् का सम्मिलन हो रहा है । यही पूजन का समय है । तुम लोग क्या सोच रहे हो ? तब देवताओ की जड़ता गयी और पुष्पवृष्टि तथा स्तुति करने लगे ।

दो. मिलि सप्रेम रिपुसूदनहि, केवटु भेंटेउ राम ।
भूरि भायँ भेंटे भरत, लछिमन करत प्रनाम ॥२४१॥

अर्थ : प्रेम के साथ शत्रुघ्न से मिलकर फिर रामजी केवट से मिले । लक्ष्मण को प्रणाम करते देखकर भरतजी बडे प्रेम के साथ उनसे मिले ।

व्याख्या : भरतजी के बाद सरकार शत्रुघ्नजी से मिले । तत्पश्चात् केवट से मिले । जब सरकार भरतजी से मिल चुके तब लक्ष्मणजी को प्रणाम करने का अवसर मिला । भरतजी लक्ष्मण से बडे प्रेम के साथ मिले । तब तक सरकार केवट से मिले । लक्ष्मणजी की भी वही दशा है जो भरतजी की थी । ये भी उठना नही चाहते । अतः भरतजी का मिलना कहते है ।

भेंटेउ लखन ललकि लघु भाई । बहुरि निषादु लीन्ह उर लाई ॥
पुनि मुनिगन दुहुँ भाइन्ह बंदे । अभिमत आसिष पाइ अनंदे ॥१॥

अर्थ : तब फिर लक्ष्मणजी उमगकर छोटे भाई से मिले । फिर निषाद को छाती से लगा लिया । फिर दोनो भाइयो ने मुनियो की वन्दना की और ईप्सित आशीर्वाद पाकर आनन्दित हुए ।

व्याख्या : भरतजी से छूटते ही लक्ष्मणजी शत्रुघ्नजी से लिपट गये । प्रणाम करने तक का अवसर नही दिया । इतनी उत्सुकता ललकि शब्द के द्योतित होती है । इधर रामजी केवट से मिल चुके तब से लक्ष्मणजी ने उसे हृदय से लगा लिया । जब तक रामजी और भरतजी का मिलन हुआ तब तक लोग स्तब्ध होकर खड़े

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रहे। फिर रामजी का और केवट मिलन तथा भरत लक्ष्मण मिलन एक काल मे हुआ। तत्पश्चात् लक्ष्मणजी ने केवट को हृदय से लगाया।

यह मिलन वेदी के बाहर हुआ। अब वहाँ से वेदी के पास लौटे तो देखा कि मुनि मण्डली खडी प्रेम मिलन देख रही है। अत मुनिगण को दोनो भाई भरत शत्रुघ्न ने प्रणाम किया। भगवद्भक्तिरस्तु यही अभिमत आशीर्वाद है। इस आशीर्वाद से दोनो भाइयो को बडा आनन्द हुआ। क्योकि मुनियो का अशीर्वाद है। निष्फल नही जा सकता।

सानुज भरत उमगि अनुरागा। धरि सिर सिय पद पदुम परागा ॥
पुनि पुनि करत प्रनाम उठाए। सिर कर कमल परसि बैठाए ॥२॥

अर्थ फिर भरतजी छोटे भाई के साथ उमगकर सीताजी के चरणो की धूलि को माथे चढाकर बार बार प्रणाम करने लगे। सीताजी ने उनके मस्तक को अपने कर कमल से स्पर्श करके उन्हे उठाया और बिठला दिया।

व्याख्या सरकार तो दौड पडे। लक्ष्मणजी भी साथ ही गये। पर सीताजी जहाँ की तहाँ रह गयी। अत वहाँ पहुँचने पर भरतजी ने पग धूलि ली। भगवती की चरण धूलि कही नही मिली थी। केवल कनकबिंदु दुइ चारिक देखे। राखे सीस सीयसम लेखे। सरकार की चरण धूलि अपेक्षाकृत सुलभ है। पर भगवती की चरण धूलि महा दुर्लभ है। स्त्रियो के चरण स्पर्श का अधिकार भारतवर्ष मे अतिविरल है।

भगवती को बारम्बार भरतजी प्रणाम कर रहे है। क्योकि इनके अनुग्रह पर सरकार का अनुग्रह अवलम्बित है जब से यह भाव देश से उठ गया तब से घर मे फूट होने लगी। भगवती ने हाथ के इशारे से उठाया। सिर का स्पर्श कर कमल से किया। यह सौभाग्य भरतजी का ही हुआ।

सीयँ असीस दीन्ह मन माही। मगन सनेह देह सुधि नाही ॥
सब विधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच डर अपडर बीता ॥३॥

अर्थ सीताजी ने मन ही मन मे आशीर्वाद दिया। वे स्नेह मे मग्न थी। उन्हे देह की सुधबुध नही थी। सब प्रकार से सीताजी को सानुकूल देखकर भरतजी सोच रहित हो गये। निर्मूल भय जाता रहा।

व्याख्या सीताजी आशीर्वाद देना चाहती हैं। परन्तु स्नेहाधिक्य से वाणी काम नही कर रही है। अत मन मे ही आशीर्वाद दिया। दोनो भाई परम प्रेम म पूर्ण थे। भगवती भी परम प्रेम मे पूर्ण हैं। इन्हे भी देह की सुधि नही है। भरतजी ने लख लिया। सिर के कर कमल द्वारा स्पर्श से जान लिया कि सीताजी सभी प्रकार से सानुकूल हैं। भरतजी को भरोसा भी ऐसा ही था। अवध की सभा मे कहा भी था: परिहरि रामुसीय जगमाँही। कोउ नहिं कहिहि मोर मत नाँही। फिर भी मन मे डर होता था कि कदाचित् दु खी हो। क्योकि दु खी होने के लिए

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


यथेष्ट कारण है। सो अब मालूम हुआ कि वह डर निर्मूल था। माता की पूरी प्रसन्नता है।

कोउ किछु कहइ न कोउ किछु पूंछा । प्रेम भरा मन निज गति छूंछा ॥
तेहि अवसर केवटु धीरजु धरि । जोरि पानि बिनवत प्रनामु करि ॥४॥

अर्थ : उस समय न किसी ने कुछ कहा न किसी ने कुछ पूछा। मन प्रेम से भर गया था। अतः अपनी स्वाभाविक गति से रीता था। उस अवसर केवट ने धैर्य धारण करके प्रणाम पूर्वक करबद्ध प्रार्थना की।

व्याख्या : इतने दिन के बाद भेंट हो रही है। कुशल मङ्गल पूछना चाहिए। परिस्थिति मे इतना बडा परिवर्तन हुआ है कि उस विषय की चर्चा होना प्राप्त है। सो कोई कुछ बोलता नही। सब व्यवहार का कारण मन की हलचल है। सो मन में प्रेम भरा है। अतः वह स्थिर हो रहा है। फिर पूछने या कहने की प्रक्रिया हो तो कैसे हो ' बड़ी सावधानी रक्खी गयी है कि चक्रवर्तीजी के देहावसान का समाचार रामजी को गुरुजी के अनुपस्थिति मे न लगने पावे। नही तो उन्हे सँभालेगा कौन ?

केवट ने ' धैर्य धारण किया ' डूबती हुई नाव के समय धैर्य धारण करने का उसे अभ्यास है। कुशल कुछ कहने लायक नही। अयोध्या का हाल गुरुजी के मुख से ही कहा जाना चाहिए। किसे साहस है कि चक्रवर्तीजी का मरण सुनाये और किसे सामर्थ्य है कि रामजी को उस समय सँभाले। अतः पहिले इनकी भेट गुरुजी से होनी चाहिए। अतः प्रणाम करके विनय करता है।

दो. नाथ साथ मुनिनाथ के, मातु सकल पुर लोग ।
सेवक सेनप सचिव सब, आए बिकल बियोग ॥२४२॥

अर्थ : हे नाथ ! मुनिनाथ के साथ सब माताएँ, नगर निवासी, सेवक, सैनिक और मन्त्री सब लोग वियोग से व्याकुल आये हैं।

व्याख्या : निषादराज का भाव यह कि भरतजी तो सानुज मेरे साथ चले आये। उधर गुरुजी के साथ माताएँ और सब प्रजा है। इतना ही नही मन्त्री लोग सेनापति लोग आये हैं। कारण यह है कि सब सरकार के वियोग से विकल हैं। यथा : सहि न सके रघुबर बिरहागी। चले लोग सब ब्याकुल भागी। इस तरह से निषादराज कह रहे है। जिसमे चक्रवर्तीजी के विषय मे प्रश्न ही न उठे। समझ लें कि महाराज वहाँ हैं ही। सबके आने मे कोई हानि नही।

सीलसिंधु सुनि गुर आगवनू । सिय समीप राखे रिपुदमनू ॥
चले सवेग रामु तेहि काला । धीर धरम धुर दीनदयाला ॥१॥

अर्थ : शीलसिन्धु रामजी ने गुरुजी का आगमन सुनकर सीताजी के पास शत्रुघ्नजी को रक्खा। धैर्य और धर्म के धुरन्धर दीनदयाल उस समय वेग से चले।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : सदाचार के समुद्र हैं। जिस गुरुजी के कहने से पिता वचन त्याग सकते हैं यथा : अवसि फिरिहि गुरु आयसु मानी : उस गुरुजी का आगमन सुनकर क्षण भर भी नही ठहर सकते। निषादराज ने तो माताओ का भी आगमन कहा। पर सबसे अधिक प्रभाव रामजी पर गुरु के आगमन का पडा। सीताजी को साथ ले जाने से फिर वही ठहरना पडेगा और यहाँ ठहरना ठीक नही। अतः सीताजी की रक्षा के लिए शत्रुघ्नजी को छोड दिया। लक्ष्मणजी का भी जाना प्राप्त था। कुलवधू अरक्षित किसी भाँति नही छोड़ी जा सकती।

सरकार मत्तमंजु कुंजर वर गामी हैं। पर उस समय वेग से चले। गुरुजी के अगवानी की त्वरा है। इस भाँति और किसी स्थान पर चलना नही पाया जाता। गुरुजी घर पर आये तो वहाँ भी सरकार ने अगवानी किया। गुरु आगमन सुनत रघुनाथा। द्वार आइ पद नायेउ माथा। यहाँ तो गुरुजी अयोध्या से चलकर आ रहे हैं। अतः अधिक आगे होकर लेना चाहिए। धीर हैं। पण्डित हैं। धर्म के धुरा के वहन करनेवाले हैं। दीनो के ऊपर दया करनेवाले हैं। बडो का सम्मान करेंगे। वियोग से विकल लोगो की आर्त्ति का हरण करेंगे।

गुरहिं देखि सानुज अनुरागे। दंड प्रनाम करन प्रभु लागे॥
मुनिवर धाइ लिए उर लाई। प्रेम उमगि भेंटे दोउ भाई॥२॥

अर्थ : गुरुजी को देखकर भाई के साथ अनुराग मे आगये। प्रभु दण्ड प्रणाम करने लगे। मुनिवर ने दौडकर उन्हे छाती से लगा लिया और प्रेम मे उमगकर दोनो भाइयो से मिले।

व्याख्या : सरकार का आना सुनकर गुरुजी को आगे करके मिलने के लिए सब लोग इकट्ठे हो गये। जहाँ से गुरुजी पर दृष्टि पडी वही से सरकार ने दण्ड प्रणाम साष्टाङ्ग दण्डवत् आरम्भ किया। क्योकि गुरुजी के चरणो मे अटूट प्रेम है।

सरकार को साष्टाङ्ग करते हुए आते देखकर गुरुजी दौड पडे कि अब एक दण्डवत् भी अधिक न हो। गुरुजी प्रेम से उमगकर दोनो भाइयो से मिले। भावार्थ यह कि दोनो भाई साष्टाङ्ग प्रणाम करते आ रहे थे।

प्रेम पुलकि केवट कहि नामू। कीन्ह दूरि ते दंड प्रनामू॥
राम सखा रिषि बरबस भेंटा। जिमि महि लुठत सनेह समेटा॥३॥

अर्थ : फिर केवट ने प्रेम से पुलकित हो अपना नाम कहकर दूर से प्रणाम किया। ऋषिजी राम सखा से जबरदस्ती मिले। मानो जमीन पर गिरते हुए धी प्रेम को समेट लिया।

व्याख्या : सरकार के साथ आया है और तदीय हैं। सरकार दण्डवत् करते हैं तो निषादराज भी दण्डवत् करता है। गुरुजी को देखता है कि प्रेम के उमंग मे हैं कही मुझे छू न लें। अत दूर से दण्डवत् करता है। अपना नाम कहता है। यह

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


नियम हाथ लगा कि अत्यन्त प्रेम मे स्पृश्यास्पृश्य का विचार आर्यसन्तान न करे और अस्पृश्य जाति उनको धर्मरक्षा के लिए स्वय दूर रहे।

मुनिजी ने केवट को नही भेंटा रामसखा को भेंटा। रामसखित्व के सामने जाति का विचार कुछ नही। वह मिलना नही चाहता था। ऋषिजी जबरदस्ती मिले। घी का घडा तो लुढकना चाहता है पर सावधान पुरुष गिरते हुए घी को समेट लेता है गिरने नही देता। इसी भाँति मुनिजी स्नेह · प्रेम का पृथ्वी पर लुढकना न देख सके। निषादराज के मिलने मे मुनिजी ने बल और त्वरा दोनो से काम लिया। यहाँ स्नेह शब्द मे श्लेष है। स्नेह प्रेम घी तेल आदि का वाचक है।

रघुपति भगति सुमगल मूला। नभ सराहि सुर बरसहि फूला ॥
एहि सम निपट नीच कोउ नाँही। बड बसिष्ठ सम को जग माँही ॥४॥

अर्थ . आकाश मे देवता लोग रघुपति भक्ति सुमगल मूल है। ऐसी प्रशसा करके फूल की वर्षा कर रहे हैं। कहते हैं इसके ऐसा एक बारगी नीच कोई नही और वसिष्ठ से बडा ससार मे कौन है ?

व्याख्या : सकल सुमगल मूल जग रघुवर चरन सनेह। इस स्नेह को प्रारब्ध के मिटाने की शक्ति है। भक्ति ने इसे शुद्ध बना दिया। भक्ति की स्तुति देवता कर रहे हैं और पुष्पवृष्टि द्वारा गुणो का पूजन कर रहे है।

देवता लोग आश्चर्य कर रहे है कि निषाद अत्यन्त नीच जाति है और वसिष्ठजी से बडा कोई नही है जिन्हे रामजी के गुरु होने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इन्होने ही विश्वामित्र को क्षत्रिय से ब्राह्मण बनाया। अत जो वसिष्ठजी करें वही प्रमाण है। वसिष्ठजी ने इसे स्पृश्य बना लिया। रामजी के मिलने पर देवताओ ने आश्चर्य नही किया। क्योकि ये तो सदा सर्वमत सर्वहित हैं। सभी से मिले मिलाये है। वसिष्ठजी के मिलने पर बडा आश्चर्य है। क्योकि ये तो कर्मकाण्डी हैं। इन्होने कर्मकाण्ड का अवहेलन कैसे किया।

दो जेहि लखि लखनहु ते अधिक, मिले मुदित मुनिराउ।
सो सीतापति भजन को, प्रकट प्रताप प्रभाउ ॥२४३॥

अर्थ जिसे देखकर मुनिराज लक्ष्मणजी से भी अधिक आनन्दित होकर मिले। यह सब सीतापति के भजन का प्रत्यक्ष प्रभाव है।

व्याख्या वसिष्ठजी लक्ष्मणजी से भी अधिक आनन्दित होकर निषादराज से मिले। स्वय मुनिनाथ हैं। लक्ष्मणजी मिलना चाहते थे और यह नही चाहता था। अत मुनिजी को बलपूर्वक मिलना पडा। भजन सत्कार विशेष के पाने की इच्छा से नही किया जाता। पर भजन का प्रभाव ऐसा है कि भक्त का जगत् सत्कार करता है। उसमे भी उद्भवस्थिति सहारकारिणी, क्लेशहारिणी, सर्वश्रेयस्करी सीता के वल्लभ के भजन का प्रभाव क्यो न सकल सुमङ्गल मूल हो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



आरत लोग राम सबु जाना । करुनाकर सुजान भगवाना ॥
जो जेहि भायँ रहा अभिलाखी । तेहि तेहि कै तसि तसि रुचि राखी ॥१॥

अर्थ करुणा की खानि तथा सुजान भगवान् ने सब लोगो को जाना कि आर्त हो रहे हैं। जो जिस भाव का अभिलाषी रहा उसकी वैसी ही रुचि रक्खी।

व्याख्या शत्रुघ्नजी से मिलने के बाद और लोगो से मिलने की बारी है और सब लोग मिलने के लिए उत्सुक हैं। सब लोग अपने हृदय मे अपना पृथक् पृथक् मनोरथ लिये है कि मैं इस भाँति मिलूँगा। भगवान् सुजान है। यथा को जियके रघुबर बिनु बूझा। करुणाकर हैं। सबको देख रहे हैं कि मिलने के लिए आर्त हैं। अत जिसे जिस भाव से जिसकी मिलने की अभिलाषा थी उससे उसी भाव से मिले। किसी की रुचि म भेद न पडने पाया। मिलने मे सबकी रुचि रखते हैं। कोई कृपा कटाक्ष के भूखे थे। कोई चरणरज चाहते थे। कोई गल लगाना चाहते थे। कोई अपने सिर पर सरकार का हाथ चाहते थे। कोई वचनामृत सुनना चाहते थे। सो सबकी अभिलाषा पूर्ण की।

सानुज मिलि पल महु सब काहू । कीन्ह दूरि दुख दारुन दाहू ॥
यह बड़ि बात राम कै नाही । जिमि घट कोटि एक रबि छाँही ॥२॥

अर्थ एक पल मे भाई के सहित सबसे मिलकर दु ख और दारुण दाह को दूर किया। *रामजी के लिए यह बडी बात नही है। जैसे करोडो घडा मे एक सूर्य* की छाया पडती है।

व्याख्या यह भगवान् का ऐश्वर्य है कि एक पल म सबसे भाई के साथ मिले। अमित रूप प्रकटे तेहि काला। सो नही हुआ। सरकार उसी रूप से लक्ष्मणजी के साथ सबसे मिले। एहि दुख दाह दहै दिन छाती। सो दाह कार्य और दु ख कारण है। मानसिक दु ख दाह का कारण होता है। सो कारण के साथ कार्य को दूर किया।

अब उदाहरण देते हैं कि जैसे भगवान् सूर्य एक ही हैं पर प्रतिबिम्ब द्वारा करोडो घट से एक साथ मिलते हैं। उसी भाँति अपनी अघटित घटना पटीयसी माया द्वारा सबसे मिले।

मिलि केवटहि उमगि अनुरागा । पुरजन सकल सराहहिं भागा ॥
देखी राम दुखित महतारी । जनु सुबेलि अवली हिम मारी ॥३॥

अर्थ सब पुरजन अनुराग से उमगकर केवट से मिलकर भाग्य की सराहना करते हैं। रामजी ने माताओ को दु खी देखा। जैसे सुन्दर लता की श्रेणी को पाला मार दिया हो।

व्याख्या सरकार से मिलकर सब केवट से मिलते हैं। गुरुजी का अनुमरण करते हैं। यद्यदाचरति श्रेष्ठ तत्तदेवेतरो जन। स यत् प्रमाण कुरुते लोकस्तदनु-

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


वर्तते। वास्तविक गुण पूजा के सामने जाति पर ध्यान नही दिया जाता। अपने भाग्य की प्रशसा करते हैं। अथवा केवट के भाग्य की प्रशसा करते हैं। केवट को सरकार का साथी मानते है। यह अयोध्यावासी नही है। वनवासी है।

देखी साम आन अनुहारी। यह भाग सीताजी के स्वप्न का ठीक हो रहा है। कौसल्याजी को भरत ने देखा कनक कलप बर बेलि जनु मानहु हनी तुषार। यही अवस्था सब माताओ की रामजी देख रहे हैं। मानो सुनहली कल्पवल्ली को पाला मार दिया हो। पाला मारते ही वेली झुलस जाती है। सरकार सबसे मिलकर तब माताओ से मिल रहे है।

प्रथम राम भेंटी कैकेई। सरल सुभायँ भगति मति भेई ॥
पग पर कीन्ह प्रबोधु बहोरी। काल करम बिधि सिर धरि खोरी ॥४॥

अर्थ पहिले रामजी कैकेयी से मिले। सरल स्वभाव के साथ और बुद्धि उनकी भक्तिरस से भीगी हुई थी। चरणो पर गिरकर फिर समझाया और दोप का कालकर्म और विधि के सिर पर रक्खा।

व्याख्या सरकार का यह हाल है कहैं मोहि मैया कहो मैं न मैया भरत की बलैया लैहौ भैया तेरी मैया कैकेयी है। सरल सुभाय रघुराय तेहि मातु मानी काय मन बानी हूँ न जानी कै मतेई है। अत पहिले कैकेयी से सरल स्वभाव तथा भक्ति भरे हुए मिले।

कैकेयी रोने लगी। अत चरणो को पकडकर समझाया। भरद्वाजजी ने केवल विधि को दोप दिया था। सरकार ने काल कर्म और विधि को दोष दिया। इन्ही को कर्म फल प्राप्ति का कारण कहा।

जननी जनि होय दुखी जिय मे करनी बिधि की कछू जात न जानी।
सब नाचत कर्म की डोर बँधे अस कोइ नही अपने बस प्रानी॥
मतिहू तसि होत समय जस होत बृथा मन मे नर मानत ग्लानी।
सपनो सो सबै अपनो न कछु जिय जानि के हानि न मानत ज्ञानी॥

दो भेंटी रघुबर मातु सब, करि प्रबोधु परितोषु।
अबु ईस आधीन जगु, काहु न देइअ दोषु ॥२४४॥

अर्थ फिर रामजी प्रबोध और परितोष करके सब माताओ से मिले। बोले हे अम्ब! यह जगत् ईश के अधीन है। किसी को दोष नही देना चाहिए।

व्याख्या तत्पश्चात् सब माताओ से मिले। यहाँ स्पष्ट है कि तीनो पट्टमहिषियो के अतिरिक्त जो माताएँ थी उनसे मिले। सबकी वही दशा है। अत सबको समझाना बुझाना और परितुष्ट करना पडा। उन लोगो ने कैकेयी को दोप दिया। अत सरकार कहते हैं कि ससार ईश्वर के अधीन नटमर्कट की भाँति नाचता है। परतन्त्र को क्या दोप है? वह तो प्रेरक की प्रेरणानुसार आचरण करता है। अहङ्कारविमूढात्मा कर्त्ताहमिति मन्यते। अत किसी को दोप नही देना चाहिए।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



गुरतिअ पद बंदे दुहुँ भाई। सहित विप्रतिय जे संग आई ॥
गंग गौरि सम सब सनमानी। देहिं असीस मुदित मृदु बानी ॥१॥

अर्थ : गुरुजी की स्त्री की दोनो भाइयो ने वन्दना की और जो ब्राह्मण की स्त्रियाँ उनके साथ आयी थी उन सबका गङ्गा और गौरी के समान सम्मान किया और वे प्रसन्न होकर मृदु वाणी से आशीर्वाद देने लगी।

व्याख्या : अरुन्धती अरु अगिनि समाऊ। रथ चढि चले प्रथम मुनिराऊ। सो भगवती अरुन्धती भी आयी हुई हैं। वे भी रनिवास के साथ हैं। अतः उनके चरणो की भी दोनो भाइयो ने वन्दना की। इनसे मिलना नही कहते। केवल चरण वन्दना का अधिकार है। वसिष्ठजी के साथ ब्राह्मण लोग थे। भगवती अरुन्धती के साथ ब्राह्मणियाँ थी। ब्रह्मकुल शङ्कर रूप हैं। शङ्कर की दो शक्तियाँ उमा और गगा। अत. उनका सम्मान गगा और गौरी के समान किया। ब्राह्मणियो के सम्मान मे मनुष्य बुद्धि ही नही। सभी मङ्गल कार्य मे गगा और गौरी का पूजन किया जाता है। [1]आरम्भ मे गौरी का और अन्त मे गगाजी का। सम्मान करने से वे प्रसन्न हो गयी। मृदुवाणी मे आशीर्वाद देने लगी।

गहि पद लगे सुमित्रा अंका। जनु भेटी संपति अति रंका ॥
पुनि जननी चरनन दोउ भ्राता। परे प्रेम ब्याकुल सव गाता ॥२॥

अर्थ : सुमित्राजी के पावो पडकर उनके गोद मे ऐसे लिपटे जैसे अति दरिद्र को सम्पत्ति मिले। तत्पश्चात् माँ के चरणो मे दोनो भाई गिरे। प्रेम से उनके अग शिथिल थे।

व्याख्या : चरण पकडने के बाद दोनो भाई सुमित्राजी के गोद मे लिपट गये। छोडना नही चाहते। जैसे सम्पत्ति पाने पर दरिद्र उससे लिपट जाता है। अलग होना चाहता ही नही। सुमित्राजी का सिद्धान्त है : सकल सुकृत कर बड फल एहू। सीय रामपद कमल सनेहू। अतः सरकार भी उन्हे उसी भाँति चाहते हैं।

तत्पश्चात् माँ कौसल्या के चरणो मे गिरे। प्रेम से अपने को सँभाल नही सक रहे हैं। अत. प्रेम से सब शरीर व्याकुल है। अति मात्रा होने से प्रेम मे और सुख मे भी व्याकुलता होती है।

अति अनुराग अंब उर लाए। नयन सनेह सलिल अन्हवाए ॥
तेहि अवसर कर हरख विषादू। किमि कवि कहइ मूक जिमि स्वादू ॥३॥

अर्थ : अत्यन्त प्रेम से माँ ने हृदय से लगा लिया। प्रेम के आँसू से नहला

---

१. गनपति गौरि गिरीस मनाई। चले राम तथा : तब गनपति सिव सुमिरि प्रभु नाइ सुरसरिहि माथ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दिया। उस समय के हर्ष विषाद को कवि कैसे कहे। जैसे गूँगा स्वाद का वर्णन कैसे करे।

व्याख्या : माँ ने कहा था : सुदिन सुघरी तात कब होइहि। जननी जिअत बदन बिधु जोइहि। सो वह घड़ी आगयी। अति अनुराग से प्रेमाम्बु प्रवाह वह चला। हृदय मे लगाये हुए है आँखों से आँसू बह रहा है। वह सरकार के ऊपर पड़ रहा है। दोनो भाई भीग गये।

हर्ष मिलने का और विषाद वनवास का। उस समय हर्ष भी अत्यन्त हुआ। साथ ही साथ विषाद भी कम नही है। उसे कवि अनुभव करता है। पर कह नही सकता। स्वाद का कहना अशक्य है। गुड़ चीनी शहद मिश्री का अन्तर कोई कह नही सकता। अनुभव सब करते हैं। सो मूक तो बोलने मे ही असमर्थ है। वह स्वाद का वर्णन क्या कर सकता है। कवि हर्ष विषाद के संमिश्रण का कैसे वर्णन करें।

मिलि जननिहि सानुज रघुराऊ। गुरसन कहेउ कि धारिअ पाऊ॥
पुरजन पाइ मुनीस नियोगू। जल थल तकि उतरेउ लोगू॥४॥

अर्थ : भाई के सहित रामजी माँ से मिलने के बाद गुरुजी से कहा कि पधारिये। तब नगर के लोग मुनिजी की आज्ञा पाकर जलयुक्त थल देखकर उतरने लगे।

व्याख्या : उदासीन रूप से रहने का [1]वचन है। इसलिए सरकार प्रजावर्ग के साथ रहना नही चाहते। केवल गुरुजी से चलने को कहते हैं। माता के मिलन से मिलन की पूर्णाहुति। किसे ठहरने को कहे। किसे साथ चलने को कहे। इस असामञ्जस्य मे केवल गुरुजी से कहा। गुरुजी जैसा उचित समझें करें।

गुरुजी ने चलने के पहिले सबको वहीं ठहरने की आज्ञा दी। लोग जलाशय देख देखकर वहाँ ठहर गये। भरतजी के कहने से लोग नदी के किनारे ठहर गये थे। मालूम नही कहाँ निवास करना होगा। अब मालूम हुआ कि यहीं ठहरना है। अत. जल थल देखना पडा। नदी के किनारे धूप रहती है। अत. छाया और जल दोनो का सुभीता देखकर लोग उतरे।

दो. महिसुर मंत्री मातु गुर, गने लोग लिए साथ।
पावन आश्रम गवनु किय, भरत लखन रघुनाथ॥२४५॥

अर्थ : ब्राह्मण, मन्त्री, माताएँ और गुरु तथा गिने हुए लोगों को साथ मे लिया और भरत लक्ष्मण तथा रामजी पावन आश्रम को गये।

व्याख्या : गुरुजी ने अपने साथ ब्राह्मण, मन्त्री, और माताओं को लिया। कवि भी पद मैत्री से काम लेकर बार बार मकार का प्रयोग करते हैं महिसुर,

---

१. यथा : तापस बेष बिसेष उदासी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मन्त्री और मातु और कम से कम लोग उनकी सेवा के लिए साथ मे लिया और आश्रम की ओर चले। शत्रुघ्नजी पहिले से वही हैं। इसलिए भरत, लखन और रघुनाथजी का चलना कहते हैं। गिने हुए लोग को साथ में लेने का भाव यह कि अनगिनती लोगो को वहाँ छोडा। अथवा साथ मे लेनेवालो को गिन लिया कि इनसे एक भी अधिक जाने न पावें।

सीय आइ मुनिवर पग लागी। उचित असीस लही मन मागी ॥
गुरुपतिनिहि मुनि तियन्ह समेता। मिली पेमु कहि जाइ न जेता ॥१॥

अर्थ : सीताजी आकर वसिष्ठजी के पावो पडी। मन मांगी हुई उचित आशीष प्राप्त हुई। तत्पश्चात् गुरुजी की स्त्री तथा मुनियो की स्त्रियो से मिलीं। वह प्रेम कहा नही जाता।

व्याख्या · गुरुजी को आया हुआ देखकर भगवती स्वय प्रणाम करने गयी। गुरुजी ने सावित्री भव ऐसा आशीर्वाद दिया। कुल वधुओ के लिए यही उचित आशीर्वाद है और यही सीताजी को ईप्सित था। सीताजी ने चाहा था कि गुरुजी से यही आशीर्वाद मिले और वही मिला। महिसुर मन्त्री और माताएँ गिने गिनाये लोग ही थे। अत सीताजी अकेले उस समाज मे चली गयी।

तत्पश्चात् अरुन्धतीजी के पास गयी। उनके साथ मुनिपत्नियाँ थी। उन लोगो से सीताजी जाकर मिली। उनसे मिलने मे अकथनीय प्रेम था। सीताजी ठीक क्रम के अनुसार मिल रही हैं। सरकार ने व्युत्क्रम कर दिया। माताओ को अति दु खी देखकर गुरुतिय वन्दन के पहिले ही उनसे मिले। यथा देखी राम दुखित महतारी। जनु सुबेलि अवली हिम मारी। प्रथम राम भेटी कैकेई।

बंदि बंदि पग सिय सबही के। आसिर बचन लहे प्रिय जी के ॥
सासु सकल जब सीय निहारी। मूँदे नयन सहमि सुकुमारी ॥२॥

अर्थ : सीताजी ने सभी के चरणो मे प्रणाम करके अपने जी के प्यारे आशीर्वाद पाये। सासुओ को जब सीताजी ने देखा तो सुकुमारी ने सहमकर आँखें बन्द कर ली।

व्याख्या : जितनी मुनि की स्त्रियाँ आयी थी सरकार ने सबका गङ्गा गौरी सा सम्मान किया। दूर से पूजन किया। भगवती पहिले सबसे मिली। तत्पश्चात् सबके चरणो की वन्दना की। उन लोगो ने भी जो हृदय को प्रिय रहा वही आशीर्वाद दिया। स्त्रियो मे तो एक ही आशीर्वाद सौभाग्य विषयक प्रचलित है।

सरकार ने माताओ को देखा। जनु सुबेलि अवली हिम मारी। परन्तु भगवती सुकुमारता के कारण देख न सकीं। भय से आँख मूंद ली। इतना बडा परिवर्तन माताओं मे हुआ है कि जो सीताजी निर्भीक वन मे गयी वे ही सासो की यह दशा देख न सकी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



परी बधिक बस मनहु मराली। काह कीन्ह करतार कुचाली ॥
तिन्ह सिय निरखि निपट दुखु पावा। सो सब सहिअ जो दैउ सहावा ॥३

अर्थ : मानों हंसिनियाँ बधिक के वश मे पडी हुई हैं। सोचने लगी : कत्त ने यह क्या कुचाल किया। उन्होने सीताजी को देखकर अत्यन्त ही दु ख पाय कहने लगी : जो दैव सहावें वह सहना ही है।

व्याख्या : मानस सलिल सुधा प्रतिपाली। जिअइ कि लवन पयोधि मराल सो मराली वधिक के वश पडी है। मानो आसन्न मृत्यु सी हैं। अति विकल है ब्रह्मदेव को दूषण देती हैं। जैसा सपना मे देखा था : देखी सासु आन अनुहारी। व दशा सासो की है। सरकार को माताएँ : जनु सुबेलि अबली हिम मारी : दिखा पड़ती है। क्योकि वे भी इनको सुबेलि की दृष्टि से देखती थी। यथा : मुदित म सब सखी सहेली। फलित बिलोकि मनोरथ बेली। और माता भगवती को मरा रूप से देखती थी। यथा जिअइ कि लवन पयोधि मराली। अतः उन्होने सास मराली रूप देखा।

सास ने सीताजी को आँख की पुतली की भाँति माना था। यथा : नय पुतरि करि प्रीति बढाई। राखेउ प्रान जानकिहि लाई। सो जानकी को तापस वे मे देखकर अत्यन्त दु खी हुई और सब दु ख तो सहा अब यह भी सहना पडा कि पुत्रवधू तापस वेष मे है। सोचती हैं कि यह पूर्वजन्म के कर्म का फल है। पूर्वजन्म कृत कर्म तद्दैवमिति कथ्यते। इससे सहना ही पडेगा।

जनक सुता तब उर धरि धीरा। नील नलिन लोयन भरि नीरा ॥
मिली सकल सासुन्ह सिय जाई। तेहि अवसर करुना महि छाई ॥४॥

अर्थ : तब राजा जनक की बेटी सीताजी ने हृदय मे धैर्य धारण करके और नीले कमल से नेत्रो मे आँसू भरकर सब सासो से जाकर मिली। उस अवसर पर करुणा पृथ्वी पर छा गयी।

व्याख्या : सीताजी महाराज जनक की बेटी हैं। तुरन्त धैर्य धारण किया पर आँखो मे आँसू भर गये। भगवती की आँखो मे कज्जल है। इसलिए नीले कमल की उपमा कवि दे रहे हैं।

जानकी प्रत्येक सास के पास जा जाकर मिली। उस समय करुण रस का ऐसा प्रवाह बहा कि सम्पूर्ण पृथ्वी पर छा गया। छाई का भाव यह कि सब पर असर पडा। कोई बाकी न रहा।

दो० लागि लागि पग सबनि सिय, भेंटति अति अनुराग।
हृदय असीसहि प्रेम बस, रहिअहु भरी सोहाग ॥२४६॥

अर्थ : सीताजी सबके पावो पर पड पड़कर अति प्रेम से मिलने लगी। वे लोग प्रेमवश हृदय से आशीर्वाद दे रही हैं कि सदा सौभाग्यवती रहोगी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : लडकियाँ माताओ से मिलती है। पर सास का चरण पकड़ती हैं। ऋषि पत्नियों मे माता की दृष्टि थी। अत' पहिले उनसे मिली। पूज्य होने के कारण प्रणाम पीछे किया। परन्तु रानियाँ तो सब सास हैं। अतः प्रणाम पहिले किया। पीछे से अति प्रेम के कारण मिली। सब का कण्ठ गद्गद है। जी भरा है। बोल नही सकती। अतः मन ही मन आशीर्वाद देती हैं। पति के जीवित रहने को सोहाग कहते हैं। तथा पति के प्रेम को भी सोहाग कहते हैं।

विकल सनेह सीय सब रानी। बैठन सबहि कहेउ गुर ग्यानी ॥
कहि जग गति मायिक मुनिनाथा। कहे कछुक परमारथ गाथा ॥१॥

अर्थ : सीताजी तथा सब रानियाँ स्नेह से व्याकुल हो रही थी। तब ज्ञानी गुरुजी ने सबको बैठने के लिए कहा। फिर मुनिनाथ ने जगत् की मायिक गति कहकर कुछ परमार्थ की गाथा कही।

व्याख्या : गुरुजी ज्ञानी हैं। अतः विकल नही है। यथा : सोक निवारेउ सबहि कर निज विज्ञान प्रकास। देखा कि सारा समाज विकल है। किसी को बैठने की सुधि नही है और अब महाराज चक्रवर्तीजी के स्वर्गारोहण का समाचार छिप नही सकता। अतः यही समय है कि रामजी को महाराज दशरथ की मृत्यु का समाचार सुनाया जाय। इस समाचार के सुनाने मे पाण्डित्य है। रामजी को सँभालना है। यह अपने विरह मे महाराज का मरण सुनकर अति विकल होगे। इसी से प्रयत्न पूर्वक इस समय तक इनसे चक्रवर्तीजो के मरण का समाचार छिपाया गया था। समाचार सुनाने के पहिले रामजी को उसके सुनाने के लिए तैयार करना है। अतः अनुकूल परिस्थिति उत्पन्न करने के लिए गुरुजी की आज्ञा हुई कि सब लोग बैठ जायें। सब लोग जहाँ के तहाँ बैठ गये।

सब मुनियो के नाथ हैं इन्होंने जगत् की गति का मायिक होना वर्णन किया कि यह जगत् क्षणभंगुर है। यहाँ सब कुछ परिवर्तनशील है। यहाँ जो पैदा हुआ है वह अवश्य मरेगा। यहाँ सब कुछ मृत्यु के मुख मे है और व्यवहार स्थिर की भाँति है। यहाँ न कोई किसी का पिता है न कोई किसी का पुत्र है। कोई किसी का कुछ नही है। जैसे नदी मे बहते हुए काठ कुछ देर के लिए इकट्ठे हो जाते हैं और उसी नदी के वेग से फिर अलग अलग हो जाते हैं। इसी भाँति यहाँ पुत्र पिता स्त्री पति आदि का मिलना है। सब प्रकार से विछोह ही सिद्ध है और कुछ परमार्थ की गाथा कही। यथा : इस नश्वर ससार से चित्त हटाकर इसे स्वप्न समझकर उस सत्य वस्तु मे ही चित्त स्थिर करना चाहिए। जिसमें इस विश्व की उत्पत्ति स्थिति और लय होता है। जिसके प्रकाश से सृष्टि प्रकाशित होती है। जो आनन्द तथा प्रकाश रूप शान्त सनातन है। यह द्वैत अन्धकार है। उसका परित्याग करके उस परम भूतेश्वर का सहारा लेना चाहिए। तभी यह संसाररूपी महा बन्धन से मनुष्य छूट सकता है। इस भाँति ज्ञान की भूमिका तैयार करके तब :

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


नृप कर सुरपुर गवनु सुनावा। सुनि रघुनाथ दुसह दुखु पावा॥
मरन हेतु निज नेहु बिचारी। भे अति बिकल धीर धुरधारी॥२॥

अर्थ राजा की स्वर्गयात्रा सुनायी। सुनकर रामजी को दु सह दु ख हुआ। मरने का कारण अपना स्नेह समझकर धीर धुरन्धर अत्यन्त व्याकुल हुए।

व्याख्या वसिष्ठजी ने राजा दशरथ के स्वर्गारोहण का समाचार कहा कि तुम्हारे वियोग ' चक्रवर्तीजी ने शरीर परित्याग किया। इतनी भूमिका करने पर भी इस समाचार से सरकार को ऐसा दु ख हुआ कि सह न सके। दु ख के न सहे जाने पर जो मनुष्य की दशा होती है वह दशा रामजी की हुई। यद्यपि रामजी स्वभाव से धीर धुरन्धर थे। पर यह विचारकर कि मेरे प्रेम से ही महाराज की मृत्यु हुई अत्यन्त भारी विकलता रामजी को हुई। इसी विकलता को सोचकर सबने यही निश्चय किया था कि गुरुजी ही यह समाचार कहे।

कुलिस कठोर सुनत कटु बानी। बिलपत लखन सीय सब रानी॥
सोक बिकल अति सकल समाजू। मानहुँ राज अकाजेउ आजू॥३॥

अर्थ वज्र के समान कठोर कटु वाणी सुनकर लक्ष्मणजी सीताजी तथा सब रानियाँ विलाप करने लगी। सारा समाज अत्यन्त शोक से विकल हो गया। मानो आज ही राजा का देहान्त हुआ है।

व्याख्या महाराज के स्वर्गारोहण की वाणी सुनने मे कुलिश कठोर और ग्रहण करने मे कटु थी। लक्ष्मणजी सीताजी तथा सब रानियाँ विलाप करने लगी। लक्ष्मण और सीताजी ने अभी सुना है। इसलिए पहिल उनका नाम देते हैं। सारा समाज इस भाँति शोक विकल हुआ मानो चक्रवर्तीजी का देहान्त आज ही हुआ। यथा सोक बिकल सब रोवहिं रानी। रूप सील बल तेज बखानी। करहिं बिलाप अनेक प्रकारा। परहिं भूमितल बारहिं बारा। भयउ कोलाहल अवध अति सुनि नृप राउर सोर। बिपुल बिहग बन परेउ निसि मानहु कुलिस कठोर।

मुनिबर बहुरि राम समुझाए। सहित समाज सुसरित नहाए॥
ब्रत निरबु तेहि दिन प्रभु कीन्हा। मुनिहु कहे जलु काहु न लीन्हा॥४॥

अर्थ मुनिवर ने फिर रामजी को समझाया। समाज के सहित मन्दाकिनी मे स्नान किया। उस दिन सरकार ने निर्जल व्रत किया। मुनिजी के कहने पर भी किसी ने जल ग्रहण नहीं किया।

व्याख्या गुरुजी ने पहिले भी समझाया था। ज्ञान की भूमिका समझाना ही था। सिवा गुरुजी के सरकार को समझावे कौन ? गुरुजी ने रामजी को समझाया। क्योंकि सबसे अधिक विकलता उन्हीं को थी। उनके समझाने पर सब लोग समझ जायेंगे। यथा तुम सुजान सब जानि जनि सोच करिय मतिमान। जनम मरन बिछुरन मिलन हित अनहित अज्ञान। झूठो सकल सनेह जग स्वारथ ही को नेह।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सकल सेल दिन चारि को बन्धु मातु पितु गेह। उठहु तात धीरज धरहु बिलपत सकल समाज। चह्यौ पुत्र जेहि हेतु नृप बेगि करौ सो आज।

पिता का मरण सुनते ही अशौच लगता है। अतः स्नान प्राप्त है। समाज सब शोक ग्रस्त है। अतः सभी अशुचि हैं। सो समाज के सहित सरकार ने मन्दाकिनी में स्नान किया। सरकार ने उस दिन निर्जल व्रत किया। सबने वैसा ही किया। प्रेमातिरेक से गुरुजी का भी वचन किसी ने नहीं माना। गुरुजी का कहना आज्ञा नहीं है। धर्मशास्त्र का निर्णय मात्र है। गुरुजी का कहना था कि व्रत रामजी करें तो कर सकते हैं। तुम लोगों को व्रत आवश्यक नहीं। कम से कम जल तो पी लो। पर किसी ने न पीया।

दो. भोरु भये रघुनंदनहि, जो मुनि आयसु दीन्ह।
श्रद्धा भगति समेत प्रभु, सो सबु सादरु कीन्ह ॥२४७॥

अर्थ : सवेरा होने पर मुनिजी ने जो आज्ञा दी उसे श्रद्धा भक्ति के साथ प्रभु ने बड़े आदर के साथ किया।

व्याख्या : ज्येष्ठ पुत्र होने से प्रिय होने से और्ध्वदैहिक क्रिया का अधिकार रामजी को ही था। उनकी अनुपस्थिति में भरतजी ने सब कुछ किया था। अत. फिर से पितृ क्रिया रामजी ने की। यहाँ मुनिजी की आज्ञा ही सब कुछ है। श्रद्धा बिना धर्म नहिं होई। गुरुवेदान्तवाक्येषु विश्वास. श्रद्धा।

करि पितु क्रिया बेद जसि बरनी। भे पुनीत पातक तम तरनी ॥
जासु नाम पावक अघ तूला। सुमिरत सकल सुमंगल मूला ॥१॥

अर्थ : जैसा वेद ने वर्णन किया है। वैसी पिता की क्रिया करके पापरूपी अन्धकार के लिए सूर्यरूप रामजी पवित्र हुए। जिसका नाम पापरूपी रूई के लिए अग्नि है। जिसका स्मरण सब सुमङ्गल का मूल है।

व्याख्या : जहाँ सूर्य हैं। वहाँ अन्धकार की प्राप्ति नहीं है जहाँ रामजी हैं वहाँ पातक की प्राप्ति नहीं है। फिर भी उन्होंने जैसा वेद ने वर्णन किया है उस विधान से क्रिया की। रामजी सात्त्विक कर्ता हैं। शास्त्र की मर्यादा का यथार्थ पालन करते हैं। अतः लौकिक व्यवहार के अनुसार शुद्ध हुए। नहीं तो उन्हें अशुद्धि कहाँ ? इसी बात को स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि प्रभु स्वयं पातकरूपी अन्धकार के लिए सूर्य हैं और उनका नाम पापरूपी रूई के लिए अग्नि है। सूर्य को अन्धकार के नाश में कोई आयास नहीं : उदय तासु त्रिभुवन तम भागा। अग्नि के एक कण को भी रूई के अपार राशि के नाश में कुछ अधिक आयास नहीं है। जिसकी उपाधि होने से नाम में इतनी सामर्थ्य है कि पापराशि का तो नाश करता ही है सम्पूर्ण मङ्गल का भी विधान करता है। दोषापनयन ही नहीं गुणाधान भी करता है।

सुद्ध सो भयउ साधु संमत अस। तीरथ आवाहन सुरसरि जस ॥
सुद्ध भएँ दुइ बासर बीते। बोले गुर सन राम पिरीते ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थं वे शुद्ध हुए ऐसी साधुओ की सम्मति है। जैसे गङ्गाजी मे तीर्थं का आवाहन। शुद्ध हुए दो दिन बीते तब रामजी ने प्रीति के साथ गुरुजी से कहा।

व्याख्या यह साधु सम्मत है कि स्वय राजा अपने बनाये हुए नियम से शासित हो। मनुष्यरूप धारण करने पर स्वय भगवान् वेद की मर्यादा का पालन करें। उसके विधान के अनुसार शुद्ध हो। जिस भाँति गङ्गाजी परम पावन हैं। सर्वं तीर्थमयी हैं। उन्हे पवित्र करने के लिए किसी तीर्थं की आवश्यकता नही है। फिर भी गङ्गाजी मे अन्य तीर्थों का आवाहन किया जाता है। साधु सम्मत नियम है कि जिस जल मे स्नान करना हो उसमे तीर्थों का पहिले आवाहन करे। जिसमे वह पुनीत हो जाय। उसी नियमानुसार गङ्गा स्नान करनेवाले गङ्गाजल को पवित्र करने के लिए तीर्थों का आवाहन करते हैं। इस पवित्रीकरण का यह अर्थ नही है कि गङ्गाजल अशुद्ध था। मतलब शास्त्र मर्यादा रक्षण से है। इसी भाँति *क्रिया करने पर रामजी का शुद्ध होना है। ज्येष्ठ कृ १४ को रामजी सम्भवत* शुद्ध हुए।

शुद्ध होने के बाद दो दिन और बीते। अर्थात् एकादशाह की क्रिया भी समाप्त हो गयी। अब जाने के लिए कहना है। सो प्रधान से ही कहना चाहिए। सब लोग गुरुजी के साथ आये हैं। यही समाचार महाराज को लगा था। नाथ साथ मुनिनाथ के मातु सकल पुरलोग। अत उन्ही से कहना है। जाने के लिए कहने मे प्रीति का हनन होता है। अत प्रीति के साथ बोले।

नाथ लोग सब निपट दुखारी। कद मूल फल अबु अहारी ॥
सानुज भरत सचिव सब माता। देखि मोहि पल जिमि जुग जाता ॥३॥

अर्थं हे नाथ! सब लोग अत्यन्त दु खी हैं। कन्द मूल फल और पानी से गुजर कर रहे है। शत्रुघ्न के साथ भरत मन्त्री और सब माताओ को देखकर मुझे एक पल युग के समान बीत रहा है।

व्याख्या जाने के लिए कहना है। इसलिए रामजी पहिले रहने के दु ख की चर्चा करते है। कहते हैं कि इन लोगो का दु ख मुझसे सहा नही जाता। ये लोग सुर सदन सुख घर छोडकर आये हैं और यहाँ कोई सुख का साधन नही है। भूमि सयन बलकल बसन असन कद फल मूल। अत सब लोग अत्यन्त ही दु खी हैं। यह तो प्रजा का हाल हुआ। शत्रुघ्न के सहित भरत, मन्त्री और माता सबको दु खी मैं नही देख सकता। सरकार अपने दु ख से दु खी नही है। अपने प्रमियो के दु ख से दु खी हैं। कहते हैं कि मुझे एक पल युग की भाँति बीतता है। निष्कारण इतना कष्ट क्यो उठा रहे हैं। भावार्थं यह कि इन लोगो को क्षणभर भी यहाँ रहना ठीक नही। जितना जल्दी हो सके सब लोग जायँ।

सब समेत पुर धारिअ पाऊ। आपु इहाँ अमरावति राऊ ॥
बहुत कहेउँ सबु कियेउँ ढिठाई। उचित होइ तस करिअ गोसाईं ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : सबके साथ अयोध्या पधारिये। आप यहाँ हैं और महाराज इन्द्रपुर में हैं। मैंने बहुत कह डाला। यह मैंने ढिठाई की। जैसा उचित हो वैसा करिये।

व्याख्या : आप सबके साथ अयोध्या पधारिये। भाव यह कि अपने साथ भरत शत्रुघ्न मन्त्री माता तथा पुरलोग को भी लेते जाइये। आप ही के साथ ये लोग आये हैं। आप के बिना अयोध्या अनाथ होगी। यदि महाराज होते तो कोई हर्ज नही था। वे भी तो अमरावती को कूच कर गये। अब अयोध्या का रक्षक कोई इस समय नही है। भाव यह कि यहाँ वहाँ दोनो जगह लोग दुःखी हैं।

आपको स्वयं सबकी चिन्ता है। मेरा इतना कह जाना अनुचित है। ढिठाई है। पर मेरे मन मे जो था मैंने कह दिया। मेरे बातो का ख्याल न करके जैसा उचित हो वैसा आप करें।

दो. धर्म सेतु करुनायतन, कस न कहहु अस राम।
लोग दुखित दिन दुइ दरस, देखि लहहुँ बिश्राम ॥२४८॥

अर्थ : हे धर्मसेतु करुणायतन राम! आप ऐसा क्यो न कहे? लोग दुःखित हैं। दो दिन आप का दर्शन पाकर विश्राम पा रहे हैं।

व्याख्या : गुरुजी कहते हैं कि आप धर्मसेतु है। प्रजा का इतना ध्यान होना आपको उचित है। गुरु पर इतनी आस्था होनी ही चाहिए। करुणायतन हैं। अपने कद मूल फल अम्बु अहार से दुःख नही है। लोगो को ऐसा आहार मिलता है इस बात का इतना दुःख है कि पल युग के समान बीतता है। सो बात ऐसी नही है। लोग तो आपके दर्शन बिना दुःखी थे। दो दिन से दर्शन हो रहा है। सो विश्राम पा रहे हैं। कन्द मूल फल अम्बु आहार की किसी को चिन्ता नही है। अयोध्या का यथेष्ट रक्षा का प्रबन्ध भरतजी कर आये हैं। अत. उसकी चिन्ता नही है। इतने दिनो में कुछ बनता बिगडता नही।

राम बचन सुनि सभय समाजू। जनु जलनिधि महुँ बिकल जहाजू ॥
सुनि गुर गिरा सुमंगल मूला। भयउ मनहु मारुत अनुकूला ॥१॥

अर्थ : रामजी का वचन सुनकर सारा समाज डर गया। जैसे समुद्र मे जहाज विकल हो उठे। सुमङ्गलमूल गुरुजी का वचन सुना मानो अनुकूल हवा चल पड़ी।

व्याख्या : रामजी का कहना कि सबके साथ आप लौट जाइये सुनकर समाज का समाज भयभीत हो गया कि इनके घर लौट चलने का तो प्रश्न ही नही उठने पाया और यह सबको घर लौटा रहे हैं। मानो हम लोग इनके हाथ से चक्रवर्तीजी की क्रिया सम्पन्न कराने आये थे। भगवती कौसल्या ने कहा था : नाथ समुझि मन करिय बिचारू। राम बियोग पयोधि अपारू। कर्नधार तुम अवध जहाजू। चढेउ सकल प्रिय पथिक समाजू। धीरजु धरिय त पाइअ पारू। नाहिं त बूड़िहि सब परिवारू। सो कर्णधार तो चल बसे। सब लोग शोक सिन्धु मे डूब रहे थे। उन्हे भरतजी ने अवलम्ब दिया। सबको लेकर चित्रकूट आये। यथा : सोक

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सिंधु बूड़त सबहिं तुम्ह अवलबनु दीन्ह। यहाँ आने पर रामजी के वचनरूपी प्रतिकूल मारुत का ऐसा झोका लगा कि सारा जहाज विकल हो गया। उसी समय गुरुजी का वचन ऐसा मङ्गलमूल हुआ कि उससे सबकी विदाई भी रुक गयी और यह बात भी स्पष्ट हो गयी कि प्रजा आपको अपनी आँखो के ओट नही चाहती। यह वचन तो ऐसा हुआ मानो हवा अनुकूल बह गयी।

पावन पय तिहुँ काल नहाही। जो बिलोक अघ ओघ नसाही ॥
मंगलमूरति लोचन भरि भरि। निरखहिं हरषि दंडवत करि करि ॥२॥

अर्थ · जिस जल के दर्शन से पाप समूह नष्ट हो जाता है उस पवित्र जल मे लोग त्रिकाल स्नान करते हैं। दण्डवत् करके लोग मङ्गल मूर्ति का दर्शन प्रसन्न होकर आँख भर कर रहे हैं।

व्याख्या : अब पवन की अनुकूलता मे जो सुख हुआ उसे कहते हैं। मन्दाकिनी गङ्गा की धारा है। पातक पोतक डाकिनि हैं। डाकिनी को देखने से बच्चे डरकर मर जाते हैं। इसी भाँति मन्दाकिनी के दर्शन से पाप नष्ट हो जाते हैं। उसके पवित्र जल मे सब लोग त्रिकाल स्नान करते हैं। स्नान के बाद दर्शन करते हैं। सरकार मङ्गल भवन अमङ्गल हारी है। उनका दर्शन आँख भरकर कर रहे हैं। क्योकि दर्शन की भूख है। पियत नयन पुट रूप पियूखा। मुदित सुअसन पाइ जिमि भूखा। पहिले साष्टाङ्ग दण्डवत् करते हैं। तत्पश्चात् खडे होकर दर्शन कर रहे है भाव यह कि किसी की सरकार के प्रति मनुष्य बुद्धि नही है।

राम सैल बन देखन जाँही। जहँ सुख सकल सकल दुख नाँही ॥
झरना झरहिं सुधासम बारी। त्रिबिध तापहर त्रिबिध बयारी ॥३॥

अर्थ रामशैल और रामवन देखने जाते हैं। जहाँ सब सुख है और दु ख सब के सब नही हैं। झरनो से अमृत के समान जल झरता है और त्रिविध ताप हरनेवाली त्रिविध वायु चल रही है।

व्याख्या तत्पश्चात् सब लोग यात्रा के लिए जाते थे। रामशैल और वन की यात्रा करते थे। वे लोग राम वन से बाहर ही टिकाये गये थे। अत वहाँ यात्रा के लिए जाते हैं। रामशैल वन की महिमा कहते है कि वहाँ सभी सुख हैं। शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध ही द्वारा बाह्य ज्ञान होता है। सो वहाँ सब अनुकूल हैं और दु ख सबके सब नही हैं। वहाँ शान्ति ऐसी है कि सब दु ख भाग जाते हैं और मन को परम विश्राम मिलता है। अब सब सुखो का वर्णन करते है कि झरनो के जल अमृत की भाँति स्वादु और तोषदायक है। शीतल मन्द सुगन्ध वायु चलती है। वह ऐसी अद्भुत है कि आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक ताप का हरण करती है और ससार की त्रिविध वायु तो केवल भौतिक ताप को कम करने वाली होती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विटप वेलि तृन अगनित जाती। फल प्रसून पल्लव बहु भाँती ॥
सुदर सिला सुखद तरु छाही। जाइ बरनि वन छबि केहि पाही ॥४॥

अर्थ अगणित जाति के विटप वेलि और तृण थे। फल फूल और पत्ते अनेक प्रकार के थे। सुन्दर चट्टान और सुख देनेवाली पेडो की छाया थी। वन की शोभा किससे वर्णन की जा सकती है।

व्याख्या रामशैल का वर्णन करके वन का वर्णन करते हैं। ऐसा वन है जिसमे एक ही जाति के पेड नही हैं सभी जाति के पेड हैं। जिनकी गिनती नही हो सकती। यही हाल वल्ली और तृण का है। अत अपूर्व शोभा वन की हो रही है। विटप मे फल हैं। वल्ली मे फूल हैं और तृण मे पत्ते हैं। जब विटप वेलि और तृण अगणित जाति के हैं तब फल फूल और पत्ते भी उतने ही भाँति के होगे।

सुन्दर चट्टान पडी है। चलते चलते थक जानेवालो के लिए वे विश्रामप्रद हैं और वे भी पेडो की छाँह मे है। जैसे बागो मे कुरसियाँ लगी रहती हैं। कवि का कहना है कि वन की छवि ऐसी है जो किसी से वर्णन की नही जा सकती। यथा : सो बन बरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रकट रघुवीर बिराजा।

दो सरनि सरोरुह जल बिहग, कूजत गुजत भृग।
बैर बिगत बिहरत बिपिन, मृग बिहग बहु रग ॥२४९॥

अर्थ तालाबो मे कमल खिल रहे है। जल के पक्षी कूज रहे हैं और भौंरे गूँज रहे है। वैर को छोडकर वन मे मृग और वहुत रङ्ग के पक्षी विहार कर रहे हैं।

व्याख्या सरनि सरोरुह से गन्ध कहा। बिहग कूजत गुजत भृग से शब्द कहा। झरना झरहि सुधासम बारी से रस कहा। त्रिविध ताप हर त्रिबिध बयारी से स्पर्श कहा। जाइ बरनि बन छवि केहि पाही से रूप कहा। इस भाँति उस वन को सर्वेन्द्रिय तर्पण कहा।

कोल किरात भिल्ल बनबासी। मधु सुचि सुदर स्वादु सुधा सी ॥
भरि भरि परन पुटी रचि रूरी। कद मूल फल अकुर जूरी ॥१॥

अर्थ वन के रहनेवाले कोलकिरात और भील पवित्र सुन्दर और अमृत सी सुस्वाद मधु को सुन्दर पत्तो की दोनियाँ रचकर उनमे भरकर और कन्द मूल फल अङ्कुर और जूरी को।

व्याख्या कोल किरात भील ये सब जङ्गली जातियो के नाम हैं। रामजी के पधारने पर भी इन सबो ने आतिथ्य सत्कार किया था। यथा कंद मूल फल भरि भरि दोना। चले रक जनु लूटन सोना। अब अयोध्यावासी जो वन मे विहरने गये हैं उनके आतिथ्य सत्कार का उपक्रम करते हैं। वे लोग पत्ते की दोनियो मे शहद भर भरकर लाये जङ्गली जाति ऐसी सुन्दर दोनियाँ बनाते है जिनमे भरा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हुआ जल टपक नही सकता। मधु शब्द का शहद भी अर्थ है और मद्य भी अर्थ है। इसीलिए शुचि शब्द दिया जिसमे शहद का ही बोध हो। सुन्दर स्वादु मधु कमल की होती है। कदाचित् ही कोई वस्तु ऐसी स्वादु होती हो। इसलिए अमृत सी कहते हैं। जङ्गली जाति मीठे के नाम पर केवल शहद को ही जानते हैं। अतः उनके आतिथ्य सत्कार मे प्रधानता मधु की है। इसलिए पहले उसी का उल्लेख करते हैं। कन्द मूल फल अकुर जूरी का तो बोझा ही है। इसलिए उनके लिए पात्र नही कहा। अथवा उन्हे भी दोनो मे भरकर लाये। जूरी बनारस प्रान्त की भाषा है। जिस अङ्कुर मे पत्ते आजायँ और फटकर अलग न हो उसे जूरी कहते हैं। सूरन आदि की जूरी ही खाने के काम मे आती है। क्योकि वह गला नही काटती।

सबहि देहिं करि बिनय प्रनामा। कहि कहि स्वादु भेदु गुन नामा॥
देहिं लोग बहु मोल न लेही। फेरत राम दोहाई देही॥२॥

अर्थ : सबको विनय और प्रणाम करके देते हैं। उनके स्वाद का भेद बतलाते हैं। उनके गुण कहते हैं। नाम बतलाते हैं। लोग उनका अधिक मूल्य देते हैं। फिर भी नही लेते। फेरने पर रामजीकी दोहाई देते हैं।

व्याख्या नगर के लोग वन के कन्द मूलादि को क्या जानें। इसलिए उन्हे उनका स्वाद गुण और नाम बतलाते हैं। भाव यह कि जो आपकी प्रकृति के अनुकूल पडे उसे स्वीकार करिये। जिसे बतलाइये उसे और लावें। उनके स्वीकार करने से अपने को कृतकृत्य समझते हैं। अत प्रणाम पूर्वक स्वीकार करने के लिए विनय करते हैं।

उनकी श्रद्धाभक्ति से प्रसन्न होकर अवधवासी उनकी बहुत कीमत देते हैं। वे कीमत लेने पर राजी नही। अवधवासी मुफ्त मे लेना नही चाहते। अत फेर देते हैं। इस पर वे रामजी की दोहाई देते हैं। विनय प्रणाम से जब काम न चला तब स्वामी की दोहाई दी।

कहहिं सनेह मगन मृदु बानी। मानत साधु प्रेम पहिचानी॥
तुम्ह सुकृती हम नीच निषादा। पावा दरसनु राम प्रसादा॥३॥

अर्थ वे स्नेह मे मग्न होकर कोमल वाणी से कहते थे कि प्रेम की पहिचान करके साधु लोग मानते हैं। आप लोग पुण्यात्मा है। हम नीच निषाद हैं। रामजी के प्रसाद से आपका दर्शन मिला।

व्याख्या · वे प्रेम मे मग्न हैं कि हमारे यहाँ ऐसे ऐसे पुण्यात्मा अतिथि आये हैं। अत मृदुवाणी बोलते हैं कि आप लोग साधु हैं। साधु लोग प्रेम के ग्राहक होते है। यह प्रेमोपहार है। हम लोग भी व्यवसायी नही हैं।

हम लोग आप लोगो के पादार्पण से कृतकृत्य हैं। क्योकि आप उत्तम हैं। सुकृती हैं। उस जन्म मे सुकृत किया है तब ऐसा जन्म पाया है। इस जन्म मे भी पुण्य ही कमा रहे हैं। किसी दूसरे की वस्तु बिना कीमत चुकाये लेना नही चाहते।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हम निषाद है। निषाद पापी जाति मात्र का उपलक्षण है। अत: निषाद मे कोल किरात भिल्ल तीनो का अन्तर्भाव है। निषाद कहने का भाव यह कि पूर्वजन्म के पाप से नीचकुल मे जन्म हुआ और इस जन्म मे भी पापाचरण ही हो रहा है। हमारा इतना भाग्य कहाँ कि आप लोगो का दर्शन हमे मिले। यह तो रामजी की कृपा है कि आपका दर्शन मिला। वे कृपा करके यहाँ आये और उसी कारण से आप यहाँ आये हुए हैं।

हमहि अगम अति दरसु तुम्हारा। जस मरु धरनि देवधुनि धारा॥
राम कृपाल निषाद नेवाजा। परिजन प्रजउ चहिअ जस राजा॥४॥

अर्थ : हम लोगो को तो आपका दर्शन दुर्लभ है। जैसे मरुभूमि मे गङ्गाजी की धारा दुर्लभ है। कृपालु रामजी ने निषादो पर दया की। परिजन प्रजा को भी राजा का अनुगमन करना चाहिए।

व्याख्या : कोल किरात कहते है कि हम लोगो की भूमि मरुभूमि तुल्य है। जहाँ जल दुर्लभ है। कूप भी ऐसे विरल हैं जहाँ कठिनता से भी जल की प्राप्ति हो सके वहाँ जैसे गङ्गा की धारा बह उठे। इस भाँति आपका आगमन हमारे यहाँ हुआ है। हम लोग कृतकृत्य हो गये तो क्या हम गङ्गा की धारा की पूजा न करें। गङ्गा की धारा को क्या यह शोभा देता है कि वह कहे कि मैं पापियो का उपहार न ग्रहण करूँगी। तब गङ्गा आयी क्यो ? गङ्गा का आगमन तो पापियो के उद्धार के लिए ही होता है।

कृपाल रामजी ने निषादो पर कृपा की। निषादराज का सत्कार स्वीकार किया। यहाँ आने पर हम लोग जो कुछ कन्द मूल फल ले गये उसे स्वीकार किया। आप लोग तो उनकी प्रजा है। प्रजा को राजा का अनुगमन करना चाहिए। राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठा. पापे पापा समे समा.। राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा। अत. आप लोग हमारा प्रत्याख्यान न कीजिये।

दो. यह जियँ जानि सँकोचु तजि, करिअ छोहु लखि नेहु।
हमहि कृतारथ करन लगि, फल तृन अंकुर लेहु॥२५०॥

अर्थ : ऐसा जी मे जानकर सङ्कोच छोडकर हमारा स्नेह देखकर छोह कीजिये। हम लोगो को कृतार्थ करने के लिए फल तृण और अङ्कुर को स्वीकार कीजिये।

व्याख्या : राजा रामचन्द्र ने हमारे सत्कार को स्वीकार किया। दाम देने की बात भी जबान पर न लाये। आप क्यो सङ्कोच करते है। आपके लिए रास्ता साफ है कि राजा स्वीकार कर चुके तो हमे क्या दोष है। अत: सङ्कोच न करिये। हम छोटे हैं। हम पर छोह करिये। हमारा प्रेम देखिये कि वन मे से ढूंढकर अच्छे फूल फल लाये हैं। आपको आवश्यकता नही है। अयोध्या से रसद लदकर आयी है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पर हम कृतार्थं कैसे होगे। आप हम लोगो को कृतार्थं करने के लिए स्वीकार करिये। हमारे गार्हस्थ्य धर्म की रक्षा कीजिये।

तुम्ह प्रिय पाहुने बन पगु धारे। सेवा जोगु न भाग हमारे ॥
देब[1] काह हम तुमहि गोसाईं। इंधनु पात किरात मिताईं ॥१॥

अर्थ : आप प्रिय अतिथि वन मे पधारे हैं। हमारे भाग्य आपकी सेवा करने योग्य नही। हे गोसाईं! हम आपको क्या देंगे। किरात की मित्रता तो ईंधन और पत्ते की होती है।

व्याख्या : पाहुन अर्थात् अतिथि। अतिथि कहकर पूज्य होना द्योतित किया। प्रिय दर्शन होने से प्रिय पाहुन कहते हैं। यथा प्रिय पाहुने भूप सुतचारी। यह अघटित घटना हुई कि आपका पधारना वन मे हुआ। हमारा धर्म है कि आपकी पूजा करें। मन मे बडा उत्साह भी है कि आपकी पूजा करें। परन्तु भाग्य हमारा खोटा है तस पूजा चाहिअ जस देवता। हममे आपकी पूजा की शक्ति नही है। हम आपका उचित सत्कार नही कर सकते।

आपको सङ्कोच है कि हम दूसरे का मुफ्त कैसे लें। यहाँ हमारे पास धरा ही क्या है जो आपको दें। प्रसिद्ध कहावत है ईंधन पात किरात मिताईं। किरात प्रेम करें तो ईंधन दें और पत्ते दें। सो हम ईंधन पत्तेवाले आप ऐसे ऐश्वर्यवान् की पूजा कैसे करे।

यह हमारि अति बडि सेवकाई। लेहि न बासन बसन चोराई ॥
हम जड जीव जीवगन घाती। कुटिल कुचाली कुमति कुजाती ॥२॥

अर्थ : हमारी बडी भारी सेवा यही है कि हम आपका बरतन कपडा नही चुरा लेते। हम जड जीव हैं। जीवगण को मारा करते हैं। कुटिल, कुचाली, कुमति और कुजाति हैं।

व्याख्या : आप ऐसे महान् हैं कि हमारे दिये हुए फल फूल को भी बिना मूल्य दिये स्वीकार नही करते और हम ऐसे नीच हैं कि चोरी करके भी दूसरे की वस्तु ले लेते हैं। हमे कपडे बर्तन कहाँ मिले। अत उसके लिए चोरी करते हैं। आपके यहाँ कपडे और बर्तन भरे पडे हैं। पर हमने नही चोराया। यह हमारी थोडी सेवकाई नही है। आप नही समझ सकते कि कपडा और बर्तन देखने के बाद एक किरात को चोरी से मन को रोकने मे कितने बडे मनोनिग्रह से काम लेना पडता है।

केवल चोरी ही नही प्राण मारकर चोरी करते हैं। हिंसा ही हमारा उद्यम है। हम जडजीव हैं। जीवो को मारा करते हैं। मन से कुटिल हैं। करणो से कुचाली हैं। बुद्धि से कुमति हैं और व्यवहार मे कुजाति हैं। दिन रात द्रोह करते हैं।

---

१ यहाँ लोकोक्ति अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पाप करत निसि बासर जाहीं। नहि पट कटि नहि पेट अघाहीं ॥
सपनेहुँ धरम बुद्धि कस काऊ। यह रघुनंदन दरस प्रभाऊ ॥३॥

अर्थ : पाप करते रात दिन बीतता है। न तो कमर में कपड़ा है और न पेट अघाता है। हमको कभी धर्म बुद्धि कैसी ? यह तो रघुनन्दन के दर्शन का प्रभाव है।

व्याख्या : किरात कहते हैं कि हम लोग रात दिन पाप ही करते हैं। चोरी और हिंसा की जीविका है। फिर भी भूखे नगे रहते हैं। जीवन निर्वाह दुष्कर है। पुनर्दरिद्री पुनरेव पापी। पाप करते हैं लोग लौकिक सुख के लिए। हमे पाप करने पर भी अन्न वस्त्र दुर्लभ है। यह तो जाग्रत का हाल है।

अब सपने का हाल सुनिये। जाग्रत के संस्कारानुसार ही स्वप्न होता है। अतः स्वप्न मे भी पाप कर्म ही देखते हैं। धर्मबुद्धि सपने में भी दुर्लभ है। यह धर्मबुद्धि जो हम लोगों में पाप देख रहे हैं कि अतिथि सत्कार का भाव जाग्रत हुआ है वह तो रघुनन्दन के दर्शन का प्रभाव है। आपके राजा द्वारा ही तो हममे धर्मबुद्धि का उदय हुआ है। हम सत्कार करने चले हैं और आप ही प्रत्याख्यान द्वारा उसका अवरोध कर रहे हैं।

जब तें प्रभु पद पदुम निहारे। मिटे दुसह दुख दोष हमारे ॥
बचन सुनत पुरजन अनुरागे। तिन्हके भाग सराहन लागे ॥४॥

अर्थ : जब से सरकारी चरण कमलों का हमे दर्शन हुआ हमारे दुःसह दुख और दोष मिट गये। वचन सुनकर पुरजन अनुराग में आगये। उनके भाग्य की प्रशंसा करने लगे।

व्याख्या : सरकार के दर्शन से बुद्धि भी पलटी और दु.ख दोष भी मिटा। दोष होने से ही दु.ख होता है। अतः दु.ख अपने कारण के साथ मिट गया।

भविष्य मे भी पाप की आशङ्का नही रह गयी। इस समय हम सब तरह से शुद्ध हैं। सरकार के दर्शन के बाद भी क्या हम मे दोष लगा है।

विनती युक्तियुक्त भक्ति संयुत वचन सुनकर पुरजनो को अनुराग हुआ। वे लोग उनके भाग्य की सराहना करने लगे : बड़ भागी बन अवध अभागी। जो रघु-बंश तिलक तुम त्यागी। भाग्यवान् ये लोग हैं जिनमे सरकार आकर बसे हुए हैं। आज हम लोग अभागी हो रहे हैं जिन्हे छोडकर सरकार यहाँ आये हैं।

छं. लागे सराहन भाग सब अनुराग बचन सुनावही।
बोलनि मिलनि सिय राम चरन सनेहु लखि सुखु पावही ॥
नरनारि निदरहि नेहु निज सुनि कोल भिल्लनि की गिरा।
तुलसी कृपा रघुबंसमनि की लोह लै लौका तिरा ॥

अर्थ : सब लोग उनके भाग की सराहना करते हैं और अनुराग के वचन सुनाते हैं। उन लोगों का बोलना मिलना और सीता रामजी के ऊपर जो उनका

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



स्नेह है उसे लखकर सुख पा रहे हैं। नर नारी कोल भीलो की वाणी सुनकर अपने प्रेम का अनादर करते है। श्री तुलसीदास कहते हैं कि यह रघुवशमणि की कृपा है कि लोहा लेकर लौका तिर गया।

व्याख्या यहाँ प्रसङ्ग यह है कि अवधवासियो मे और किरातो मे शास्त्रार्थ छिड गया है। जङ्गली लोग आतिथ्य के लिए कन्द मूल फल लाये हैं। अवधवासी उसका मूल्य देना चाहते हैं और न लेने पर उनका कन्द मूल फल फेर देते हैं। हम अन्त्यजो का प्रतिग्रह क्यो करें। धर्मशास्त्र मे यह महा निषिद्ध है। जङ्गलियो का उत्तरपक्ष यह था कि सरकार के दर्शन से हमारे दोष दु ख मिट गये। यह दान भी नही है आतिथ्य सत्कार है। उदाहरण मे वे स्वय सरकार को देते है कि उन्होने हमारा सत्कार स्वीकार किया है। इस वाग्युद्ध के अन्त मे जङ्गलियो की जीत हुई। अवधवासियो के पास उत्तर नही रह गया। उनका प्रेम देखकर अपने प्रेम की निन्दा करने लगे। अर्थात् उन्हे सत्कार स्वीकार करना पडा। इसी बात को महाकवि ने चार अक्षरो मे कहा लोहा लै लौका तिरा। अर्थात् सामना करके लौका तिर गया। लोहा लेना सामना करना था लडाई करने को कहते हैं। यथा सनमुख लोह भरत सन लेउँ। लौका तिरने का अधम साधन है सो समर मे लोहा लेकर सामना करके जहाज का तिरना कठिन हो जाता है। यहाँ अवधवासियो से मनिगन पुर नर नारि सुजाती। सुचि अमोल सुदर सब भाँति। से सामना करके अर्थात् शास्त्रार्थ करके लौका कुटिल कुचाली कुमति कुजाती। तिर गया। अर्थात् पार पा गया। अवधवासियो को उनका फल मूलादि ग्रहण करना पडा।

दो विहरहि बन चहुँ ओर, प्रतिदिन प्रमुदित लोग सब।
जल ज्यौ दादुर मोर, भये पीन पावस प्रथम ॥२५१॥

अर्थ सब लोग प्रसन्न होकर वन मे चारो ओर प्रतिदिन विचर रहे हैं। पहली ही वर्षा मे जिस प्रकार मेढक और मोर मोटे हो जाते हैं उसी प्रकार इन लोगो की भी दशा हो गयी।

व्याख्या मानसिक सुख दु ख का प्रभाव शरीर पर कितना बडा पडता है। इसी बात को दिखाते हुए कवि कहते हैं कि नित्य लोग प्रसन्न मन से वन मे चारो ओर विचरते है जहँ सुख सकल सकल दुख नाही। अत उनकी दशा उन मेढक और मोरो सी हो रही है जो पहिली ही बरसात मे हृष्ट पुष्ट हो जाते है।

बर्षारितु रघुपति भगति तुलसी सालि सुदास। राम नाम बर बरन जुग सावन भादो मास। एक ऐसे है जो मोर की भाँति ठहर ठहरकर सुस्वर से नामोच्चारण करते हैं और कुछ ऐसे हैं जो मेढक की भाँति नाम की धुन बांधते हैं। ये राम घनश्याम की कृपा दृष्टि को वृष्टि से पहिली ही वर्षा भक्ति की उमग मे हृष्ट पुष्ट हो हो गये। नही तो तनकृस मन दुख बदन मलीने थे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पुरजन नारि मगन अति प्रीती । बासर जाहि पलक सम बीती ॥
सीय सासु प्रति वेप बनाई । सादर करइ सरिस सेवकाई ॥१॥

अथ पुर नर नारि अत्यन्त प्रीति म मग्न थे । पलक की भाँति दिन बीत रहे थे। सीताजी जितनी सास थी उतने वेप बनाकर आदर के साथ समान सेवा करती थी।

व्याख्या पुर नर नारी ऐसे प्रेम मे मग्न हुए कि बाहर का उन्हे कुछ अनुसन्धान भी नही रहा। पूरा दिन बीत गया। उन्हे मालूम हो रहा है कि एक निमेप बीता है। अत्यन्त सुख के दिन बीतते देर नही लगती। यथा मास दिवसकर दिवस भा मरम न जानै कोइ।

सब लोगो का हाल कहकर अब रनिवास का हाल कहते हैं। भगवती सास की सेवा के लिए पहुँच गयी। सासो की सेवा की बडी अभिलापा है। यथा सेवा समय दैउ बन दीन्हा। मोर मनोरथ सफल न कीन्हा। सो मनोरथ के पूरा करने का अवसर हाथ लगा। सास हैं सख्या मे अधिक। एक शरीर से सबकी सेवा हो नही सकती। अत जिस भाँति सबसे मिलने के लिए सरकार ने अमित रूप धारण किया उसी भाँति भगवती भी जितनी सास थी उनती हो गयी। निरादर के साथ सेवा किसी काम की नही। अत सादर सबकी समान भाव से सेवा करने लगी। जैसी सेवा कौसल्या की वैसी ही सेवा कैकेयी की।

लखा न मरमु राम बिनु काहू। माया सब सिय माया माहूँ ॥
सीय सासु सेवा बस कीन्ही। तिन्ह लहि सुख सिख आसिप दीन्ही ॥२॥

अर्थ इस भेद को सिवा रामजी के और कोई नही लख पाया। क्योकि सब माया सीताजी की माया के अन्तर्गत है। सीताजी ने सासुवो को सेवा के वश कर लिया। उन्होने सुख पाकर शिक्षा और आशार्वाद दिये।

व्याख्या सब सास समझ रही है कि सीता केवल मेरी सेवा मे है। यहाँ पृथक् पृथक् महल भी नही हैं। सब दासियाँ सब जगह आ जा रही हैं। फिर भी इस मर्म को कोई न लख सका कि सीताजी की सब सासो के पास युगपत् उपस्थिति कैसे हो रही है। न लखने का कारण देते हैं कि यह सीताजी की माया है और जितनी माया है सबकी सब इसके सीताजी की माया के अन्तर्गत हैं। आदि सक्ति जेहि जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया। अत जिसकी माया है वही मर्म को लख सका। विवाह के समय भी जो महिमा भगवती ने प्रकट किया था उसे रघुनायक ही जान सके थे। जीव उस माया के मर्म को कैसे लख सकता है?

भगवती ने ऐसी सेवा की कि सास सब उनके वश मे हो गयी। उन्हे बडा सुख हुआ। सुख मिलने पर बडो से दो वस्तुएँ मिलती हैं। एक शिक्षा और दूसरा आशीर्वाद। सो दोनो मिला।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लखि सिय सहित सरल दोउ भाई । कुटिल रानि पछितानि अघाई ॥
अवनि जमहि जाचति कैकेई । महि न बीचु विधि मीचु न देई ॥३॥

अर्थ : सीताजी के सहित दोनों भाइयो को सरल देखकर कुटिल रानी पेट भर पछतायी। अब कैकेयी पृथ्वी और यम से याचना करती है। पर न तो पृथ्वी फटती है और न ब्रह्मदेव मृत्यु देते हैं।

व्याख्या : सब माताओं का हाल कहकर अब रानी कैकेयी का हाल कहते हैं। सीताजी की सेवा के वश हो गयी। उन्होने रामजी को कुटिल समझा था। यथा : सहज सरल रघुवर वचन कुमति कुटिल करि जान। अब देखा कि दोनों भाई सरल हैं। रामजी ने जो कहा था : सुनु जननी सोइ सुत बड़भागी। जो पितु मातु बचन अनुरागी। तनय मातु पितु तोषनिहारा। दुर्लभ जननि सकल संसारा। मुनिगन मिलन विसेषि बन सबहि भाँति हित मोर। तेहि महँ पितु आयसु बहुरि संमत जननी तोर। भरतु प्रान प्रिय पावहि राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू। सो इनका आन्तरिक भाव था। वन देने से मुझ पर कुछ भी रोष नही है और सीता भी वैसी ही हैं। मैंने इस महासाधुओं के साथ क्या किया ? पछतायी तो पहिले भी थी। पर अब पेटभर पछतायी। यह पश्चात्ताप तो तभी मिटे जब पृथ्वी फटे मै समा जाऊँ या विधाता मुझे मौत दें। अतः पृथ्वी और यम से प्रार्थना करती हैं। पर न तो पृथ्वी फटती है न विधाता मौत देते हैं। यम भो विधाता की आज्ञा के अनुवर्ती है। बिना विधाता की आज्ञा के मृत्यु भी नही दे सकते। अतः यम न कहकर विधाता कहा।

लोकहु वेद विदित कबि कहहीं । राम बिमुख थलु नरक न लहहीं ॥
यह संसउ सब के मन माँही । राम गवनु विधि अवध कि नाँही ॥४॥

अर्थ : यह बात लोक और वेद मे प्रसिद्ध है और कवि भी कहते हैं कि रामविमुख को नरक भी स्थान नही देता। यह संशय सबके मन मे है कि हे विधि ! रामजी अवध जायँगे कि नहीं।

व्याख्या : इस बात पर सबका ऐकमत्य है कि राम विमुख का कही ठिकाना नही लगता। अन्य पापियो का तो ठिकाना नरक मे लगता है। पर राम विमुख को स्थान देना नरक भी स्वीकार नहीं करता। सब जग ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुवीर बिमुख सुनु भ्राता।

रनिवास का हाल कहकर अब रामजी के घर के लौटने के विषय मे क्या हो रहा है उसका वर्णन करते हुए कहते हैं कि सबके मन मे यह संशय है कि रामजी घर लौटते है कि नही। उनके कहने से उनका रुख स्पष्ट है कि लौटना नही चाहते। पर गुरुजी हम लोगो की ओर से बोल रहे हैं। इसलिए सब लोग संशय मे पड़े हुए हैं कि देखें क्या होता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. निसि न नींद नहिं भूख दिन, भरतु बिकल सुचि सोच ।
नीच कीच बिच मगन जस, मीनहि सलिल सँकोच ॥२५२॥

अर्थ : न रात को नींद है न दिन को भूख है । भरतजी पवित्र सोच मे विकल हैं । जैसे कीच मे नीचे डूबी हुई मछली को जल का सङ्कोच हो . जल न मिले ।

व्याख्या : सोच करनेवाले को न रात को नीद लगती है न दिन को भूख लगती है । महात्माओं का सोच भी पवित्र होता है । क्योकि वह अविद्या के अन्तर्गत न होकर विद्या के अन्तर्गत होता है । विकलता भी साधारण नही है । अवधि अम्बु प्रिय परिजन मीना । सो यहाँ दो दिन की अवधि है वह भी बीत चली । पानी सूख चला कीचड़ बाकी है । कीचड़ के भी सूखने के भय से महाविकल है । इसी भाँति भरतलालजी की विकलता कहा । ये बडे मच्छ हैं । इसलिए विकलता विशेष है और मछलियो के लायक पानी है । उन्हे सोच नही वे मगन हैं । यथा : पुर नर नारि मगन अति प्रीती ।

कीन्हि मातु मिस काल कुचाली । ईति भीति जस पाकत साली ॥
केहि विधि होइ राम अभिषेकू । मोहि अवकलत उपाउ न एकू ॥१॥

अर्थ : माता के व्याज से काल ने कुचाल किया । जैसे धान पकते समय ईति का भय हो । किस विधि से रामजी का अभिषेक हो मुझे ता कोई उपाय नही फुर रहा है ।

व्याख्या : अब भरतजी का सोच कहते हैं । भरतजी को कैकेयी का पछिनावा है । अत. कहते हैं कि माता को तो ब्याज बनाया कराल काल ने । यथा : सब कर आज सुकृत फल बीता । भयउ कराल काल विपरीता । क्योकि सभी कार्यो की सिद्धि मे काल असाधारण कारण है । उपमा देते हैं कि जैसे धान पकने के समय अतिवृष्टि हो पडे । अथवा कोई दूसरी ईति आ पडे । अतिवृष्टि, अनावृष्टि, मूषक, टिड्डी और राजाओ का आक्रमण यह सब ईतियां हैं । इसी भाँति सरकार के राज्याभिषेक के समय कैकेयी का वरदान हुआ । यथा : मोर मनोरथ सुरतरु फूला । फरत करिनि जिमि हतेउ समूला ।

सब लोग तो केवल सशय मे पडे हैं कि देखें रामजी लौटते हैं या नही । पर भरतजी तो उपाय सोच रहे हैं कि किस उपाय से रामजी का अभिषेक हो । किस भाँति लौटने पर राजी हो जायँ । तब अभिषेक के लिए कहा जाय । जिससे राजसी ठाट से घर लौटें । पर कोई उपाय स्थिर नही कर पा रहे हैं । सबसे प्रबल उपाय मौजूद है । पर उनसे काम कैसे लिया जाय । अतः भरतजी कहते हैं कि कोई सामञ्जस्य नही बैठता ।

अवसि फिरिहि गुर आयसु मानी । मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी ॥
मातु कहेहुँ बहुरहि रघुराऊ । राम जननि हठ करबि कि काऊ ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ गुरुजी की आज्ञा मानकर तो निश्चय ही लौट चलेंगे। पर मुनिजी रामजी का रुख देख लेंगे तब कहेंगे। माता के कहने पर भी रामजी लौटेंगे। पर वे राम की माता हैं वे क्या कभी हठ करेंगी ?

व्याख्या सबसे बडा उपाय तो यह है कि गुरुजी आज्ञा दें तो पिता की आज्ञा गुरुजी की आज्ञा के सामने हट जायगी। आचार्यो यस्तु या जाति विधिवद्वेद पारग । उत्पादयति सावित्र्या सा सत्या साजरामरा। पिता तो इस स्थूल देह को उत्पन्न करता है। पर आचार्य से जो जन्म सावित्री द्वारा होता है यही सत्य है और अजर अमर है। अत गुरु का पद पिता से भी बडा है। उनके आज्ञा देने पर निश्चय अयोध्या लौट चलेंगे। पर गुरुजी तो उनका रुख देखते है। यदि उनका रुख अनुकूल होगा तभी आज्ञा देंगे। वन चलते समय महल से निकलकर गुरुजी के ही द्वार पर खडे हुए। गुरुजी चाहते तो रोक लेते। पर गुरुजी ने रुख नही पाया। इसलिए नही रोका।

इनके बाद माता का दर्जा है। माता यदि हठ पकड ले तो भी लौट चलेंगे। पहिले भी माता ने कहा था जौं केवल पितु आयसु ताता। तौ जनि जाहु जानि बडि माता। जौ पितु मातु कह्यौ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना। पर यह रामजी की माता हैं। यह कभी हठ करेगी नही। वन जाते रोका भी तो यह कह दिया कि यदि कैकेयी की भी आज्ञा हो तो चले जाओ। हठ करना तो मेरी माता जानती है कि चाहे प्रलय हो जाय वह अपने हठ से नही हटती। सो कौसल्याजी कभी हठ करेंगी ही नही।

मोहि अनुचर कर केतिक बाता। तेहि मह कुसमउ बाम बिधाता ॥
जौ हठ करउँ त निपट कुकरमू। हरगिरि ते गुरु सेवक धरमू ॥३॥

अर्थ मै तो सेवक हूँ। मेरी बात ही क्या ? तिस पर कुसमय है और विधाता प्रतिकूल है। यदि मै हठ कर बैठूँ तो यह बडा भारी बुरा काम होगा। क्योकि सेवक का धर्म कैलाश से भी भारी है।

व्याख्या भरतजी समझ रहे हैं कि इनके बाद यदि किसी का प्रभाव पड सकता है तो मेरा ही पड सकता है। सरकार स्वय कहेगे तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि ते अधिक तुम्हार सँकोचू। फिर भी मै तो सेवक हूँ। सेवक की बात ही क्या है। उसका धर्म स्वामी को सङ्कोच न आने देना ही है। यथा जो सेवक साहिबहि सकोची। निज हित चहै तासु मति पोची। सो मैं यदि हठ कर बैठता हूँ तब तो सेवक धर्म ही जाता रहेगा। इससे बढकर अनुचित क्या होगा ? सेवक धर्म का सँभाल बडा कठिन है। कैलाश पर्वत उठाना उतना कठिन नही है रावण ने कैलाश उठाया पर सेवक धर्म सँभाल न सका। स्वामी का घर ही उखाड डाला। अत मै हठ कर नही सकता।

एकउ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहि रैन बिहानी ॥
प्रात नहाइ प्रभुहि सिरु नाई। बैठत पठए रिषयँ बोलाई ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ एक युक्ति भी मन मे नही ठहरी। भरत को सो चते ही सोचते रात बीत गयी। सवेरे नहाकर और प्रभु को प्रणाम करके बैठते ही ऋषिजी ने बुला भेजा।

व्याख्या भरतजी ने इन उपायो के अतिरिक्त और भी उपाय सोचे जिनका वर्णन विस्तार से आगे होगा। जिसमे पिताजी का वचन भी बना रहे और सरकार अयोध्या भी लौट चलें और वह यह है कि हम दोनो भाई अपना अपना हिस्सा पलट लें। रामजी मानते हैं पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। सो कानन का राज मैं ले लूं और अवध का राज्य रामजी स्वीकार करे। पर यह बात प्रमाण न होने पावेगी। सरकार मुझ भी पिता के वचन से न हटने दगे। यह बात प्रमाण तो तब हो जब गुरुजी इसकी व्यवस्था दे। पर यह बात गुरुजी क्यो नही कहते। इसी विचार मे रात बीत गयी कोई बात मन मे बैठी नही। सब लोग सोये पर भरतजी जागते ही रह गये।

भरतजी भी स्नान करके सरकार के दर्शन के लिए जाते है। सो ज्योही दर्शन करके लौटकर बैठे तब तक ऋषिजी का बोलावा आगया। ऋषिजी का भाव यह कि दो दिन के लिए मैंने कहा था। सो बीत गया अब काम की बात होनी चाहिए।

प्रथम सभा पुनि रघुपति बहु विधि समझाए प्रकरण

दो० गुर पद कमल प्रनामु करि, बैठे आयसु पाइ।
विप्र महाजन सचिव सब, जुरे सभासद आइ ॥२५३॥

अर्थ गुरुजी के चरणो मे प्रणाम करके आज्ञा पाकर बैठे। ब्राह्मण, महाजन, मन्त्री सब सभासद आकर जुट गये।

व्याख्या सरकार ने गुरुजी से ही कहा था सब समेत पुर धारिअ पाऊ। आप इहाँ अमरावतिराऊ उचित होय सो करिअ गोसाई। अत अब क्या करना उचित है। इसलिए गुरुजी ने सवेरा होते ही ब्राह्मण, महाजन अगुआ मन्त्री को बुलवाया और भरतजी को बुलवाया। भरतजी ने आकर चरणकमलो की वन्दना की। गुरुजी की आज्ञा पाकर बैठ गये। तब तक सब समाज जुट गया। सभा लग गयी।

बोले मुनिबरु समय समाना। सुनहु सभासद भरत सुजाना ॥
धरम धुरीन भानुकुल भानू। राजा राम स्वबस भगवानू ॥१॥
सत्य सध पालक श्रुति सेतू। राम जनमु जग मगल हेतू ॥

अर्थ श्रेष्ठ मुनिजी समय के अनुसार बोले कि हे सभासदो तथा सुजान भरत सुनो। धर्म के धुरन्धर तथा सूर्यकुल के सूर्य राजाराम स्वतन्त्र भगवान् हैं। वे सत्यसन्ध हैं। श्रुतिसेतु पालक हैं। राम का जन्म ससार के मङ्गल के हेतु हुआ है।

व्याख्या मननात् मुनि। वसिष्ठजी मनन करनेवालो मे श्रेष्ठ हैं। ये जो सबसे सम्मति पूछ रहे हैं यही समयानुकूल बोलना है। अयोध्या मे यही निश्चय

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हुआ था अवसि चलिअ वन रामु हैं। तथा जेहि सुनि बिनय मोहि जनु जानी। आवहिं बहुरि राम रजधानी। सो रामजी के पास तो हम लोग पहुँच गये। अब रामजी अयोध्या कैसे लौटें कैसे उनका अभिषेक हो यही विचार करना है। इसी लए गुरुजी ने सभा इकट्ठी की है। जिसम सबकी लाभ हानि हो उसमे सबकी सम्मति लेनी चाहिए। सभा के धर्माधर्म मे सबका भाग है। अत सभासदो को पहिल सम्बोधन करते हैं। परन्तु गुरुजी जानते है कि इनमे करने धरनेवाले भरत हैं। अत विशेष लक्ष्य भरत की ओर है। उन्हे सुजान कहकर भणित भगति मति गति का जानकार होना सूचित किया।

अब कहते हैं कि रामजी धर्मधुरीण हैं। धर्म से डिगेंगे नही। भानुकुलभानु हैं। यथा जानहु तात तरनि कुल रीती। सत्यसध पितु कीरति प्रीती। पिता की कीर्ति को न बिगडने देगे। सत्यसन्ध हैं सत्य को छोडेंगे नही। श्रुति सेतुपालक है। पितृ देवो भव मातृ देवो भव आदि जो वेद का मार्ग है उसे नष्ट न होने देंगे। रामजी का जन्म केवल अयोध्या के मङ्गल के लिए नही है सम्पूर्ण ससार के मङ्गल के लिए है। सच्चे राजा तो राम ही हैं। इनकी आज्ञा का उल्लघन हो नही सकता। क्योकि सदा स्वतन्त्र हैं। और सभी परवश हैं। माया के नचाने से नाचते हैं। ये भगवान् हैं। *उत्पत्ति प्रलयश्चैव भूतानामगति गति। वेत्ति विद्यामविद्याश्च स वाच्यो भगवान् इति।* जो उत्पत्ति, प्रलय प्राणियो की अगति, गति, विद्या और अविद्या को जाने उसे भगवान् कहते हैं।

गुर पितु मातु वचन अनुसारी। खल दल दलन देव हितकारी ॥
नीति प्रीति परमारथ स्वारथु। कोउ न राम सम जान जथारथु ॥२॥

अर्थ गुरु पिता माता के वचन के अनुसार चलनेवाले है। खल दल के दलन करनेवाले और देवता के हितकारी हैं। नीति प्रीति परमार्थ और स्वार्थ को राम की भाँति यथार्थ कोई नही जानता।

व्याख्या कभी पिता की आज्ञा उल्लघन नही करेंगे। पूर्व के छवो विशेषणो का यही साराश है। अब पिछल दो विशेषणो का साराश कहते है कि इन्हे खल दल का नाश और देवताओ का हित करना है तुलसिदास जौ रहौं मातु हित को सुर साधु विप्र भय टारे।

इसके अतिरिक्त रामजी सा जानकार भी कोई नही। नीति प्रीति परमार्थ और स्वार्थ के भीतर ही सब कुछ है। सो इन चारो विषयो का इनके समान कोई जाननेवाला नही है। चारो को विचार के ही वन मे आये हैं। यथा परमार्थ मुनिगन मिलन विशेष वन। नीति तेहि पर पित आयसु। प्रीति सम्मत जननी तोर। स्वार्थ भरत प्रान प्रिय पावहिं राजू। बिधि सब बिधि मोहि सनमुख आजू।

बिधि हरि हरु ससि रवि दिसिपाला। माया जीव करम कुलि काला ॥
अहिप महिप जँह लगि प्रभुताई। जोग सिद्धि निगमागम गाई ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ ब्रह्मा, विष्णु, शिव, चन्द्र, सूर्य, दिक्पाल, माया, जीव, कर्म और काल ये सब शेष से लेकर राजा तक जो प्रभुताई है और योग की सिद्धियाँ जिनका गान वेद ने किया है।

व्याख्या विधि हरि हर उत्पत्ति स्थिति और लय करनेवाले हैं। रवि शशि संसार के हित कर्त्ता और इन्द्र, अग्नि, यम, निर्ऋति, वरुण, वायु, कुबेर, ईशान, ये क्रमश पूर्वादि दिशाओ के पालन करनेवाले है। माया जो सारे ससार को नचानेवाली है। जीव ससार का भोक्ता है। उसी के भोग के लिए ससार बना हुआ है और कर्म जिसकी मूर्त्ति ससार है और काल गुणो का क्षोभक जिसके कारण प्रकृति मे वैषम्य होकर सृष्टि होती है और जो सबका सहारकर्त्ता है प्रभुताई की सीमा शेष से लेकर राजा तक है। शेष पृथ्वी को धारण किये हुए हैं। राजा भी प्रजा रूपी धर्म द्वारा देश विदेश को धारण करता है और योग की अनेक सिद्धियाँ जो वेदादि शास्त्रो द्वारा प्रतिपादित हैं।

करि बिचार जिय देखहु नीकें। राम रजाइ सीस सबही के ॥४॥

अर्थ अच्छी तरह से जी मे विचार करके देखो। रामजी की आज्ञा सबके सिर पर है।

व्याख्या यहाँ पर वसिष्ठजी सरकार के ऐश्वर्य को एक बारगी खोले देते है। महात्मा है। सभा मे अन्यथा भाषण नही करेंगे। दूसरे यह कि त्रिकालज्ञ हैं। उन्हे भरतजी की इस भावना का उत्तर देना है . मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी। कहते है कि सब लोग विचार करके अच्छी तरह से देखो। यह जो ससार का बडा भारी आडम्बर चल रहा है उसके चलानेवाले क्षण भर विश्राम न करके जो अपने कार्य मे तत्पर हैं वे किसकी न हटाई जानेवाली आज्ञा के वशीभूत होकर काम कर रहे हैं। सभी रामजी की आज्ञा के वशीभूत है। वैसा ही चलने म उन्हे सुख है। यथा प्रभु अज्ञा जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई।

दो राखे राम रजाइ रुख, हम सब कर हित होइ।
समुझि सयाने करहु अब, सब मिलि समत सोइ ॥२५४॥

अर्थ रामजी की आज्ञा और रुख रखने से ही हम लोगो का कल्याण होगा। यह समझकर आप लोग सुचतुर हैं। सब लोग मिलकर राय बिठाओ।

व्याख्या गुरुजी का कहना है कि राय करने के पहिले इस बात को दृढ रूप से मन मे रख लो कि रामजी की आज्ञा मानने और रुचि रखने मे ही सबका कल्याण है। उनकी आज्ञा और रुख के विरुद्ध कार्य करने मे भलाई नही है। उनकी आज्ञा और रुख के विरुद्ध चाहे मैं आज्ञा दूँ। चाहे कौसल्याजी हठ करें। चाहे भरतजी सङ्कोच डालें। कभी कल्याणप्रद फल नही हो सकता। अत उनकी आज्ञा और रुख को ध्यान मे रखते हुए आप लोग कोई रास्ता सोचें।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सब कहँ सुखद राम अभिषेकू । मंगल मोद मूल मग एकू ॥
केहि बिधि अवध चलहिं रघुराऊ । कहहु समुझि सोइ करिअ उपाऊ ॥१॥

अर्थ रामजी का अभिषेक होना सबके लिए सुखद है और यही एक रास्ता मङ्गल मोद का मूल है। अब किस विधि से रामजी अवध चलें इस बात को आप लोग समझकर कहिये। वही उपाय किया जाय।

व्याख्या भरतजी सोचते थे केहि बिधि होइ राम अभिषेकू। मोहि अवकलत उपाउ न एकू। गुरुजी भी वही बात कहते हैं और उसका उपाय सबसे पूछते हैं। क्योंकि सबको इसी मे सुख है। यही रास्ता मङ्गलमूल है और अभिषेक तभी सम्भव है जब रामजी अयोध्या लौटने को राजी हो। अब इनके लौटाने की विधि क्या होगी ? पिता के वचन को ये छोडेंगे नही और बिना छोडे अयोध्या जाना कैसे बनता है ? और बिना अयोध्या जाने को राजी हुए अभिषेक कैसे बनता है ? अभिषेक मे झगडा नही है। उसे रामजी मान जायँगे। क्योंकि पिता ने भरतजी को राज्य दिया। भरत उसे स्वीकार करते हैं और रामजी के चरणो मे अर्पित किया चाहते है। अत अभिषेक मे बाधा नही है। बाधा है अयोध्या लौटने मे। उसे कैसे दूर किया जाय। इसी पर आप लोग विचार करिये। जो उपाय निश्चित हो तदनुसार ही काम किया जाय।

सब सादर सुनि मुनिवर बानी। नय परमारथ स्वारथ सानी ॥
उतरु न आव लोग भए भोरे। तब सिरु नाइ भरत कर जोरे ॥२॥

अर्थ सब ने आदर के साथ मुनिवर की श्रेष्ठ वाणी सुनी। जो नीति परमार्थ और स्वार्थ से सनी हुई थी। किसी से जवाब नही चलता। लोग भोले हो गये। तब सिर नवाकर भरतजी ने हाथ जोडा।

व्याख्या बोले मुनिबर समय समाना। सुनहु सभासद भरत सुजाना। इस भाँति सबसे सम्मति पूछना मुनिजी की नीतिमत्ता है। रामजी के स्वरूप का ज्ञान कराना परमार्थ है राखे राम रजाय रुख हम सबकर हित होइ। यह स्वार्थ है। इस भाँति वसिष्ठजी की नय परमारथ स्वारथ सानी वाणी सबने आदर से सुनी। भाव यह कि सबको विश्वास है कि मुनिजी कहते हैं वही तथ्य और वही पथ्य है।

वसिष्ठजी पहले सभासदो को सम्बोधन करके बोले थे। अत पहिले उन्ही से उत्तर की आशा थी। सो इन लोगो की बुद्धि काम नही करती। अत कवि ने कहा कि लोग भोले हो गये। अपनी बुद्धि का सभी को अभिमान होता है। पर जब वह काम नही करती तब लाचार होकर मानना ही पडता है कि बुद्धि काम नही कर रही है। अत सब लोग चुप है। सबको चुप देखकर भरतजी ने माथा नवाकर हाथ जोडा। अर्थात् कुछ कहा चाहते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भानुवंस भये भूप घनेरे। अधिक एक ते एक बडेरे ॥
जनम हेतु सब कहँ पितु माता। करम सुभासुभ देइ बिधाता ॥३॥

अर्थ : सूर्यवंश मे बहुत से राजा लोग हुए। उनमे से एक से एक अधिक और बडे भी हुए। माँ बाप से उनका जन्म हुआ और शुभाशुभ कर्म ब्रह्मदेव ने दिया।

व्याख्या · वैवस्वत मन्वन्तर भर मे सूर्यवशी राजाओ की प्रधानता रहती है। सो सूर्यवश मे न जाने कितने राजा हुए और बडे बडे प्रतापी हुए। किसे कम कहा जाय और किसे अधिक कहा जाय। पर इन लोगो के बडप्पन का कारण क्या हुआ ? इसे विचारने पर तो यही देखा जाता है कि माता पिता तो केवल जन्म के कारण हुए और ब्रह्मदेव ने उस जन्म मे भोगने के लिए शुभाशुभ कर्म का विधान कर दिया। अर्थात् प्रारब्ध कर्म निश्चित कर दिये। भाव यह कि माता पिता जन्म के साथी हैं पर कर्म का साथी कोई नही। ब्रह्मदेव के नियत शुभाशुभ कर्म को भोगने के सिवा अन्य गति नही।

दलि दुख सजइ सकल कल्याना। अस असीस राउरि जग जाना ॥
सो गोसाईं बिधि गति जेहि छेंकी। सकै को टारि टेक जो टेकी ॥४॥

अर्थ : संसार जानता है कि आपका आशीर्वाद ऐसा है कि दु ख को नाश करके सब कल्याणो को साज देता है। आप ऐसे स्वामी हैं कि ब्रह्मदेव की गति को भी रोक देते हैं। आपने जो टेक किया उसे कौन टाल सक्ता है।

व्याख्या : ब्रह्मदेव ने जो शुभाशुभ नियत कर दिया उसे मिटानेवाला कोई नही। यथा : कह मुनीस हिमवत सुनु जो विधि लिखा लिलार। देव यक्ष गन्धर्व मुनि कोउ न मेटनिहार। सो सूर्यवश के पुरोहित आप हैं। आपके आशीर्वाद से सूर्यकुल के राजाओ का दु ख टलकर सदा कल्याण हुआ। आपके आशीर्वाद का यह प्रताप ससार जानता है। अर्थात् मेरे कुल का कल्याण तो सदा आप द्वारा होता आया है।

ब्रह्मा की गति शुभाशुभ कर्मो का विपाक है। सो अशुभ कर्म के विपाक को आप सदा से रोकते आये है। माता पिता की की हुई रक्षा न हुई। वे तो जन्म के साथी थे। विधाता ने शुभाशुभ दोनो कर्म दिया। उनसे भी कोई सहायता नही मिली। सहायता तो आपसे सदा मिलती आयी है। आपने हमारे कुल के लिए ब्रह्मा की गति को भी रोका है। आपने जो टेक धर लिया उसे ब्रह्मा भी नही टाल सकते। तो दूसरे की गिनती क्या ? अत आप यदि रामजी को लौटने की टेक पकड लें तो कौन बाधा कर सकता है ?

दो. बूझिअ मोहि उपाउ अब, सो सब मोर अभागु।
सुनि सनेहमय बचन गुर, उर उमगा अनुरागु ॥२५५॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ : अब आप मुझसे उपाय पूछते हैं। यह सब मेरा अभाग्य है। स्नेहमय वचन सुनकर गुरुजी के हृदय मे अनुराग उमड पडा।

व्याख्या : उपाय बतलानेवाले आप सो मुझसे उपाय पूछते हैं। यह हमारा अभाग्य नही है तो क्या है? हम तो आज्ञाकारी ठहरे। आज्ञा देनेवाले तो आप हैं। यही हमारे कुल का रास्ता है। यथा : मोहि सम यहु अनुभयेउ न दूजे। सब पायेउँ रज पावनि पूजे। उत्तर मे भरतजी ने ऐसे स्नेहमय वचन कहे कि गुरुजी के हृदय मे अनुराग उमग आया। तात्पर्य यह कि आप उपाय बतलाइये। हम लोग तदनुकूल आचरण करें।

तात बात फुरि राम कृपाही। राम विमुख सिधि सपनेहुँ नाही ॥
सकुचउँ तात कहत एक बाता। (अरध तर्जाह बुध सरबसु जाता ॥१॥
तुम कानन गवनहु दोउ भाई। फेरिअहि लखन सीय रघुराई ॥
सुनि सुबचन हरखे दोउ भ्राता)। भे प्रमोद परिपूरन गाता ॥२॥

अर्थ : हे तात! पर राम कृपा की बदौलत ही यह बात है। राम के विमुख तो सपने मे भी सिद्धि नही है। बेटा! मैं एक बात कहने मे सङ्कोच करता हूँ : बुद्धिमान् लोग सर्वस्व जाता देखकर आधा छोड देते हैं। तुम दोनो भाई वन जाओ। लक्ष्मण सीता और रामजी को लौटा लिया जाय। ऐसा सुन्दर वचन सुनते ही दोनो भाई के शरीर मे पुलक हो गया।

व्याख्या : मैं टेक कर लेता था उसे कर डालता था। यह बात सच है। पर वह सिद्धि भी तो रामकृपा का ही फल है। यहाँ तो राम से ही काम पड गया है। अत: टेक चल नही सकती। राम की कृपा से टेक निबहता है। उनके विमुख होने से सिद्धि कहाँ?

गुरुजी ने यह बात तो कही। फिर भी उपाय बतलाने का बोझा तो उन पर ही रहा। पर जो उपाय था उसके कहने मे गुरुजी को सङ्कोच था। राजा ने अयोध्या का राज भरत को दिया और चौदह वर्ष के लिए वन का राज्य रामचन्द्र को। यथा : पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। सो दोनो भाई अपना अपना भाग बदल लो। तुम वन जाओ। राम राज पर जायँ। पर निरपराध भरत को वन कैसे भेजें। अत: कहा : सकुचउँ तात कहत एक बाता। परम बुद्धिमान् भरतजी भी वसिष्ठ के ही शिष्य थे। कहते ही लख लिया कि गुरुजी के मन में यह बात है। सो आनन्द से भर उठे।

श्री गोस्वामीजी : जहाँ प्रेम तहँ नेम नहिं - का अनुसरण करते हुए से मालूम होते हैं। सातो काण्ड मे कोई भी नियम निबहने नही दिया है। छ काण्डो मे श्लोको से मङ्गलाचरण करते हुए भी लङ्का मे दोहे से मङ्गलाचरण कर दिया। केवल अयोध्या मे प्रायेण नियम निबहा है। परन्तु उसमे भी कई स्थानो पर सात अर्धालियाँ हैं। पचीस दोहे पर बराबर छन्द आते गये हैं। पर स्थल पर २६ दोहो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पर छन्द दिया है। आरण्य मे तो दो अर्धालियो के बाद भी छन्द देखा गया है। अतः किसी विशेष स्थल पर छ अर्धालियाँ भी आश्चर्य जनक नही है।

राजापुर की प्रति को मैं प्रतिष्ठित प्राचीनतम प्रति मानता हूँ। उनमे उपर्युक्त कोष्ठान्तर्गत चार अर्धालियाँ अर्ध तजहिं बुध सर्बस जाता। आदि नही है। न उनकी आवश्यकता है और न सामञ्जस्य बैठता है। सर्वस क्या है ? अर्ध क्या है ? जो अर्थ बतलाया जाता है वह वस्तुत अर्थ होता है कि नही ? लखन सीय रघुबीर के लौटने मे दोनो भाइयो के वन जाने की कारणता कैसे हुई ? इन प्रश्नो का यथार्थ उत्तर नही मिलता। तुम कानन गवनहु दोउ भाई। ऐसा गुरुजी का आदेश सुनने पर भी उनसे : कीजिय बचन प्रवान कहकर प्रमाण माँगना और वन को न चले जाना और गुरुजी के सकुचहुँ तात कहत एक बाता। कहकर एकदम न ठहरना और बेधडक उस बात को कह डालना अस्वाभाविक मालूम पडता है।

यह बात अवश्य है कि अयोध्या में गुप्त भाव भरे हुए हैं और कठिनता से हाथ आते हैं। इस काण्ड मे आदेश से कम काम लिया जाता है। रुख से काम लिया जाता है। भरतजी को सोचते सोचते रात बीत गयी। कोई युक्ति प्रभु के लौटाने की स्थिर नही कर सके। कौन भरतजी ? जिनके महिमा सिन्धु के किनारे मुनिजी की मति अबला सी खडी रह गयी। उनके मन में यह धर्मसम्मत युक्ति भी आयी कि पिता ने प्रभु को चौदह वर्ष के लिए वन दिया और मुझे राज्य दिया। सो प्रभु तो उसे स्वीकार करके वन चले आये। पर मुझे अस्वीकार है। इसलिए हम दोनो भाई अपना अपना हिस्सा अदल बदल कर लें। इस भाँति प्रभु के धर्म मे पीडा भी न होगी। केवल यह एक युक्ति है जिसे धर्मसम्मत कह सकते हैं। पर प्रभु मुझे भी पिता की आज्ञा से हटने न देंगे। यथा मोहि अनुचर कर केतिक बाता। तेहि महँ कुसमउ बाम बिधाता। इसलिए यह युक्ति भी ठहर न सकी।

यहाँ सभा मे मुनिजी सरकार के लौटने का उपाय पूछने लगे। भरतजी खिझलाकर कहने लगे ' बूझिअ मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभागु। इस पर गुरुजी ने उसी एक मात्र उपाय को कहना चाहा। पर उस उपाय का कहनेवाला भी कैकेयी की भाँति निन्द्य समझा जायगा। अत इतना ही कहकर ठहर गये : सकुचहुँ तात कहत एक बाता।

मुनिजी के मुख से यह बात निकलते ही समझनेवाले लोग समझ गये कि वह कौन सी बात है। भरतजी प्रसन्न हो गये कि इस बात पर यदि मुनिजी स्थिर हो जायँ तो सरकार को भी मानना पडेगा। रह गयी मुझे निष्कारण वन भेजने की बात जिसके कहने मे मुनिजी को सङ्कोच है सो तो मुझे परम इष्ट है। अतएव मुनिजी के सङ्कोच मिटाने और उन्हे उसी बात पर दृढ रखने के लिए कहते हैं : कानन करहुँ जनम भर बासू। एहि ते अधिक न मोर सुपासू' नाथ निज कीजिअ बचन प्रवान।

यह बात अवश्य है कि इस प्रकार अर्थ करने मे दोनो भाइयो के हिस्से के अदल बदलवाली बात की कल्पना करनी होगी। परन्तु भरत के वन भेजने मे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ऐसी कल्पना विना किये अर्थ बैठ ही नही सकता। चाहे कोई भी अर्थ किया जाय। अत मै राजापुर की प्रति के पाठ से पूर्ण सम्मत हूँ और कौष्ठान्तर्गत चार पद मुझे क्षेपक मालूम होते हैं।

मन प्रसन्न तन तेजु बिराजा। जनु जिय राउ रामु भये राजा ॥
बहुत लाभ लोगन्ह लघु हानी। सम दुख सुख सब रोवहिं रानी ॥३॥

अर्थ मन प्रसन्न हो गया। शरीर मे तेज विराजमान हो गया। मानो चक्रवर्तीजी गये और रामजी राजा हो गये। लोगो को लाभ अधिक और हानि थोडी थी। रानियो के लिए दु ख सुख समान ही रह गया। वे रोने लगी।

व्याख्या दो बात का शोक था। एक चक्रवर्तीजी के सुरपुर गमन का। दूसरे राम के वनवास का। सो मानो दोनो बिगडी हुई बातें बन गयी। ऐसी प्रसन्नता भरतजी को हुई। दशरथजी के जी उठने के समान खुशी हुई। अत मन प्रसन्न हो गया और रामजी के राजा होने के समान उत्साह हुआ। अत शरीर मे तेज विराजमान हुआ। नही तो गँवारी कह रही थी मुख प्रसन्न नहिं मानस खेदा। इतनी खुशी का कारण यह कि भरतजी सोचते हैं कि रामजी के राजा होने से लोगो को बडा लाभ होगा और मेरे वन जाने से हानि बहुत थोडी होगी। पर रानियाँ रोने लगी कि एक बेटा लौटा तो दूसरा वन चला। उनके लिए बात वह की वही रह गयी।

कहहि भरतु मुनि कहा सो कीन्हे। फलु जग जीवन्ह अभिमत दीन्हे ॥
कानन करउँ जनम भरि बासू। एहि ते अधिक न मोर सुपासू ॥४॥

अर्थ भरतजी ने कहा कि मुनिजी का कहा करने से ससार के जीवो को अभिमत देने का फल मिलेगा। मैं जन्म भर वन मे ही रहूँ इससे बढकर मुझे कोई सुभीता नही है।

व्याख्या भरतजी कहते है सकचहुँ तात कहत एक बाता। कहकर मुनिजी की जो बात अभिप्रेत हैं। उसके करने से जगत् के जीवो को अभिमत दान का फल होगा। रामजी के वनवास से सारे विश्व को शोक है। उनका राज पर लौटना सबको इष्ट है। सम्पूर्ण विश्व को अभिमत दान के पुण्य की सीमा नही है। इसके लिए यदि मै जन्म भर वनवास करूँ तो भी थोडा है। इससे अच्छा सुअवसर कब मिलेगा कि केवल वनवास करने से जीव मात्र के अभिमत दान का फल मिले।

गुरुजी ने जिस बात का इशारा मात्र किया था उसके खोल देने से भरतजी का यह अभिप्राय था कि कहने मे जब गुरुजी सङ्कुचित होते है तो उनको सङ्कोच मे रखना उचित नही। अत स्वय उस बात को स्पष्ट करके तदनुकूल कार्य करने मे अपना बडा भाग्य होना ख्यापन करते हैं।

दो अन्तरजामी रामु सिय, तुम सरवग्य सुजान।
जौ फुर कहहु त नाथ निज, कीजिअ बचनु प्रवान ॥२५६॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : राम सीता अन्तर्यामी हैं और आप सर्वज्ञ तथा सुजान हैं। यदि आप सच कह रहे हैं तो हे नाथ ! आप अपने वचन को प्रमाण कीजिये अर्थात् पूरा कीजिये।

व्याख्या : भरतजी ने कहा कि आप जिस बात को कह रहे हैं वह मुझे स्वीकार है। उसे करने में मुझे बड़ा आनन्द है। चौदह वर्ष नहीं मैं यावज्जीवन वनवास के लिए प्रस्तुत हूँ। मेरी बातें बनावटी नहीं स्वयं सरकार तथा महारानी सीता देवी अन्तर्यामी हैं और आप सर्वज्ञों मे भी सुजान हैं। देख लीजिये कि मेरे हृदय में कितना आनन्द है। सम्बन्ध प्रागल्भ्य से कहते हैं कि यदि आपने मुझे बहकाने के लिए न कहा हो तो अपने वचन का प्रमाण कीजिये। सरकार को लौटाइये और मुझे वन भेजिये।

भरत वचन सुनि देखि सनेहू। सभा सहित मुनि भयउ बिदेहू ॥
भरत महा महिमा जलरासी। मुनि मति ठाढ़ि तीर अबला सी ॥१॥

अर्थ : भरत का वचन सुनकर और उनकी प्रीति देखकर मुनि वसिष्ठ को सभा के सहित देह की सुधि न रही। भरत की महा महिमा रूपी समुद्र के तट पर मुनिजी की बुद्धि स्त्री के समान खड़ी रह गयी।

व्याख्या : कानन करहुँ जनम भर बासू। एहि ते अधिक न मोर सुपासू। इत्यादि वचन सुनकर : मन प्रसन्न तन तेज बिराजा। जनु जिय राउ राम भये राजा। ऐसी प्रेम की दशा देखकर न मुनिजी को तन मन की सुधि रह गयी और न सभासदों को तन मन की सुधि रह गयी।

भरत की प्रशंसा करने के लिए उनकी महिमा का बखान करने के लिए मुनिजी का जी उमगा। पर मुनिजी की बुद्धि नहीं काम करती कि कैसे भरतजी का बखान करें। उनकी महा महिमा देखकर मुनिजी की बुद्धि ऐसी स्तब्ध रह गयी जैसे महा समुद्र को देखकर कोई स्त्री स्तब्ध रह जाय और उसे न सूझे कि इसमें मेरी गति कैसे हो। यहाँ अबला शब्द देखकर गोस्वामीजी ने यह दिखलाया कि वह प्रबला है अबला नहीं है जो दुःसाहस कर बैठे।

गा चह पार जतनु हियँ हेरा। पावत नाव न बोहितु बेरा ॥
अउर करहि को भरत बड़ाई। सरसी सीप कि सिंधु समाई ॥२॥

अर्थ : पार जाना चाहती है। मन से अनेक उपाय ढूँढे। पर उसे न नाव ही मिली न जहाज ही मिला और न बेड़ा ही हाथ लगा। दूसरा कौन भरत की बड़ाई कर सकता है। क्या तालाब की सीप में समुद्र समा सकता है ?

व्याख्या : समुद्र का सन्तरण भुज बल से नहीं हो सकता। अतः उसका उपाय नाव जहाज या बेड़ा की प्राप्ति है। इसी भाँति जब मुनिजी की बुद्धि ने भरत की महा महिमा रूपी समुद्र के पार करने के लिए विद्यारूपी नाव वेदरूपी जहाज और शरीररूपी बेड़ा का सहारा चाहा। पर कोई प्राप्त न हुआ। सब प्रयत्न

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



निष्फल गये · विद्या के नाव होने का प्रमाण। यथा : केवट बुधि विद्या बड़ि नावा। वेद के जहाज होने का प्रमाण। यथा : बंदौं चारिउ बेद भव बारिधि बोहित सरिस। शरीर के बेड़ा होने का प्रमाण। यथा : नर तन भव बारिधि कहुँ बेरो।

भावार्थ यह कि न तो विद्या के बल से पद्यादि की रचना से भरत की महामहिमा कह सके। न वेद मन्त्रो के उद्धरण से ही महिमा कही जा सकी। न न शरीर की चेष्टा से ही हृद्गत भाव व्यक्त कर सके। अतः मुनिजी की बुद्धि स्तब्ध रह गयी।

जब विवेक सागर गुरु वसिष्ठजी ही बडाई करने मे असमर्थ रहे तो दूसरे किस मे यह सामर्थ्य कहाँ से आवे कि भरत की बड़ाई कर सके। समुद्र से सीपी निकलती है। उसमे समुद्र नही समा सकता। अत जब समुद्र की सीपी मे जो कि दीर्घाकार होती है समुद्र नही समा सकता। तो तालाब की सीपी में जो कि अति क्षुद्राकार होती है समुद्र कैसे समायेगा? अगम सनेह भरत रघुबर को। जहँ न जाय मन बिधि हरिहर को। विधि समुद्र है। उससे उत्पन्न सीपी स्थानीय वसिष्ठजी है। सो भरत के स्नेह की महिमा मे विधि की गति नही। तब वसिष्ठजी की गति न होना स्वभाव से प्राप्त है। सामान्य लोग तो पल्वल की सीपी है। इनकी उत्पत्ति जीवो से है। इनके मन मे भरत की महिमा कैसे आ सकती है।

भरतु मुनिहि मन भीतर भाए। सहित समाज राम पहिं आए॥
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह सुआसनु। बैठे सब सुनि मुनि अनुसासनु॥३॥

अर्थ भरतजी मुनिजी के मन मे बहुत अच्छे लगे। तब समाज के सहित रामजी के पास आये। प्रभु ने प्रणाम करके सुन्दर आसन दिये और सब मुनिजी की आज्ञा पाकर बैठ गये।

व्याख्या मुनिजी भरतजी की बडाई तो नही कर सके। पर उनके हृदय मे उनकी महिमा का अनुभव हुआ और भरतजी पर उनका बडा प्रेम हो गया। अत. कुछ न कहकर भरतजी का काम करने के लिए रामजी के पास चल पडे। सारा समाज साथ हो गया। रामजी के पास पहुँचे। सरकार ने उठकर समयानुकूल सुन्दर आसन दिये। सरकार के सामने सब खडा रहना चाहते हैं। मुनिजी के अनुशासन पाने पर बैठे। यथा : बैठन सबहि कह्यो गुरुज्ञानी।

बोले मुनिवरु बचन बिचारी। देस काल अवसर अनुहारी॥
सुनहुँ राम सरबग्य सुजाना। धरम नीति गुन ग्यान निधाना॥४॥

अर्थ मुनियो मे श्रेष्ठ वसिष्ठजी देश काल और अवसर के अनुसार विचार कर बोले। हे सर्वज्ञ, सुजान, धर्म नीति, गुण और ज्ञान के निधान रामजी सुनिये।

व्याख्या : मुनिजी ने जब भरतजी को बुलवाया था उस अवसर पर समय के समान बोले थे। यथा : बोले मुनिबर समय समाना। पर यहाँ रामजी के सामने देश काल अवसर के अनुसार बोले। मुनिजी ने विचार किया कि ऐसे अवसर पर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रामजी से ही उपाय पूछना चाहिए। यहाँ सब लोग वन मे हैं। राजगद्दी खाली पड़ी है। सब लोग आर्त हो रहे हैं। भरतजी गद्दी स्वीकार नही करते। ऐसी स्थिति अधिक दिन चल नही सकती एव मनन करनेवाले श्रेष्ठ मुनिजी देश काल अवसर का विचार करते हुए बोले।

रामजी को सम्बोधन करते हुए सर्वज्ञ सुजान धर्म नीति और गुणनिधानादि विशेषण से विशेषित करते हैं। भाव यह कि एव गुण विशेषण विशिष्ट पुरुष ही ऐसे अवसर पर उपाय कह सकता है। रामजी सर्वज्ञ शिरोमणि हैं। कोई बात उनसे छिपी नही। सुजान हैं। गुण ग्राहक हैं। सबका सम्मान जानते हैं। धर्म नीति मे बाधा न पडे। दोष और मोह से सम्पर्क न हो ऐसा उपाय बतला सकते है।

दो. सबके उर अंतर बसहु, जानहु भाउ कुभाउ।
पुरजन जननी भरत हित, होइ सो कहहु उपाउ ॥२५७॥

अर्थ : सबके हृदय मे वास करते हो। सबके भाव कुभाव को जानते हो। जिससे पुरजन माता और भरत का हित हो ऐसा उपाय बतलाओ।

व्याख्या : सबके उर अतर बसहु। कहकर वसिष्ठजी आज ऐश्वर्य खोले देते हैं। क्योकि सबके हृदय देश मे रहनेवाला तो केवल ईश्वर है। ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। सो रामजी से किसी के हृदय का भाव छिपा नही है। अतः परिस्थिति समझाने की आवश्यकता नही। जो रामजी उपाय कहे वही धर्माविरोधी होगा। सन्तोष कारक होगा और हित होगा। अत कहते हैं : पुरजन जननी भरत हित होइ सो कहहु उपाउ।

भाव यह कि हम लोगो को उपाय नही सूझ रहा है। पुरजन जननी भरत हित पर ध्यान देने से धर्म मे बाधा है। धर्म की रक्षा करने से पुरजन जननी भरत हित नही होता और पुरजन जननी भरत हित किसी भाँति उपेक्षा का विषय भी नही है।

आरत कहहिं बिचारि न काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊ॥
सुनि मुनि बचन कहत रघुराऊ। नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ ॥१॥

अर्थ : आर्त विचारकर कभी नही कहते। जुआडी को अपना ही दाँव सूझता है। मुनिजी का वचन सुनकर रामजी कहने लगे कि नाथ! उपाय तो आपके हाथ मे है।

व्याख्या : इस पर यदि कहा जाय कि आप गुरु हैं। विवेक सागर हैं। आपके हाथ मे विश्व बदरीफल के समान है। आपका ही उपाय बतलाना प्राप्त है। अतः कहते हैं कि इस समय मैं आर्त हूँ। मैं विचार पूर्वक कुछ नही कह सकता। आर्त होने का कारण कहते हैं कि मेरी दशा इस समय जुआडी की सी हो रही है। मुझे भरत की रुचि रखने के अतिरिक्त और कुछ सूझ नही रहा है जुआडी को अपना ही दाँव सूझता है। हमारे सर्वस्व तो आप हैं। यथा : मुनि जन धन सर्वस सिव प्राना।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


सो आप लौटते हैं। या वन जाते हैं। यही दाँव लगा हुआ है। सो मुझे आपका लौटना ही सूझता है। उचित अनुचित नही सूझता। इतने में ही मुनिजी को जो कुछ कहना रहा सब कह दिया।

मुनिजी ने कहा था पुरजन जननी भरत हित होय सो कहिय उपाय। इस पर सरकार कहते हैं कि उपाय आपके हाथ है और तदनुसार कार्य करना मेरा काम है। दोनो भाई एक ही बात बोलते हैं। भरतजी ने कहा : बूझिअ मोहि उपाय अब सो सब मोर अभाग। और रामजी कह रहे हैं : नाथ तुम्हारेहि हाथ उपाऊ। अर्थात् उपाय कहना आपका कर्तव्य और आज्ञापालन मेरा कर्तव्य है।

सबकर हित रुख राउरि राखे। आयसु किए मुदित फुर भाखें ॥
प्रथम जो आयसु मो कहुँ होई। माथे मानि करउँ सिख सोई ॥२॥

अर्थ : आपका रुख रखने मे सच कहने और प्रसन्न होकर आज्ञा पालन मे सबका हित है। पहिले मुझे जो आज्ञा हो मै उस शिक्षा को माथे पर चढाकर करूँगा।

व्याख्या : मन से आपके रुख पर ध्यान रक्खे। कर्म से आपकी आज्ञा प्रसन्न मन से पालन करे और वचन को सत्य कहे। इसी मे पुरजन जननी और भरत सबका हित है। केवल कहता ही नही हूँ करने को स्वय तैयार हूँ। आज्ञा हो वन जाऊँ। आज्ञा हो अवध फिर चलूँ। पिता की आज्ञा छोड दूँ। जो आज्ञा हो वही करूँ और प्रसन्नता से महाप्रसाद रूप से आज्ञा को सिर चढाऊँ। यदि इस पर कहा जाय कि आप तो मान लेंगे। पर क्या इसी भाँति और लोग भी मानेंगे ? अत: कहते हैं :

पुनि जेहि कहँ जस कहब गोसाई। सो सब भाँति घटिहि सेवकाई ॥
कह मुनि राम सत्य तुम भाखा। भरत सनेह विचारु न राखा ॥३॥

अर्थ : तत्पश्चात् जिसको जो आज्ञा होगी वह सब तरह से सेवकाई करेगा। मुनिजी ने कहा कि रामजी ! आपने सत्य कहा। पर भरत के स्नेह ने विचार रहने नही दिया।

व्याख्या : भाव यह कि मै ही नही सब लोगो को आपकी आज्ञा माननी होगी। आपकी आज्ञा पालन करने के लिए ही मैंने जन्म लिया है। यथा : आयसु काह कहिय किन मोही। आप आर्त क्यो होते है ?

मुनिजी ने कहा कि रामजी ! आपका कहना ठीक है। सारा समाज और स्वय आप भी मेरा कहना मानेंगे। पर मै तो गुरु हूँ। मुझे तो जो धर्म है वही कहना चाहिए। पर भरत के स्नेह ने मुझे विचारपथ से विचलित कर दिया है। यहाँ सीधे सीधे धर्म कथन से भरत के प्रेम को बडा धक्का पहुँचेगा। प्रेमी प्रेमपात्र के समझाने से ही समझ सकता है। केवल धर्म की व्यवस्था देने से नही समझता।

तेहि ते कहउँ बहोरि बहोरी। भरत भगति बस भइ मति मोरी ॥
मोरे जान भरत रुचि राखी। जो कीजिअ सो सुभ सिव साखी ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : इसलिए मै बार बार कहता हूँ कि मेरी बुद्धि भरत की भक्ति के वश हो गयी है। मेरी समझ मे भरत की रुचि रखकर जो कीजियेगा वही शुभ होगा। इस विषय मे मै शङ्कर को साक्षी देता हूँ।

व्याख्या : वसिष्ठजी कहते हैं कि पहिले भी मैंने कहा था : भरत हित होय सो कहिय उपाउ। और अब भी कहता हूँ भरत सनेह विचार न राखा। मेरी बुद्धि अपने वश मे नही है। भरत की भक्ति के वश हो गयी है। भरत जैसा चाहते है। मेरी बुद्धि वैसी ही हो गयी है। मैं इस समय यथार्थ कहने मे असमर्थ हूँ। फिर भी इतना कहे देता हूँ कि चाहे घर लौटिये चाहे वन जाइये पर जो करिये वह भरत की रुचि रखते हुए करिये। इसमे सन्देह न कीजिये कि भरत की रुचि रखने मे अधर्म स्पर्श करेगा। मैं शङ्कर को साक्षी देकर कहता हूँ कि भरतजी की रुचि रखकर जो ही कुछ किया जायगा उससे शुभ ही होगा। क्योकि भरत जो समझेंगे कहेंगे करेंगे वही ससार मे धर्मसार होगा।

दो भरत विनय सादर सुनिअ, करिअ बिचार बहोरि।
करब साधुमत लोकमत, नृपनय निगम निचोरि ॥२५८॥

अर्थ भरतजी के विनय को आदर के साथ सुनिये और फिर से विचार कीजिये और साधुमत लोकमत राजनीति और वेद का जो निचोड हो वही कीजिये।

व्याख्या भरत की रुचि समझने के लिए उनके सन्तोष के लिए भरत के विनय को तदनुकूल कार्य करने का भाव हृदय मे रखकर सुनिये। मैं यह नही कहता कि वैसा कर ही डालिये। भरत का मनोभङ्ग न होने पावे और साधुमत लोकमत राजनीति और वेद का सार ग्रहण करके कार्य कीजिये। मुनिजी भरत के विनय का बल देख चुके हैं जिससे कि उनकी बुद्धि भरत के वश हो गयी। मुनिजी जानते हैं कि भरत की विनय सुनने के बाद भक्तवत्सल बिना द्रवीभूत हुए नही रह सकते। साराश यह कि *आप उचित ही करिये पर भरत को सन्तुष्ट करके।*

गुर अनुराग भरत पर देखी। राम हृदय आनदु विसेखी ॥
भरतहिं धरम धुरधर जानी। निज सेवक तन मानस बानी ॥१॥

अर्थ : गुरुजी का अनुराग भरत पर देखकर रामजी को विशेष आनन्द हुआ। भरतजी को धर्म धुरन्धर और मनसा वाचा कर्मणा अपना सेवक जानकर।

व्याख्या : पहिले कह आये हैं : भरत मुनिहि मन भीतर भाये। सो मन के भीतर अच्छा लगना ही अनुराग है। वह अनुराग गुरुजी के वचनो से खूब विस्पष्ट हो गया। मोरे जान भरत रुचि राखी। जो कीजिय सो सुभ सिव साखी। इससे अधिक क्या कहा जा सकता है ? सो गुरुजी का इतना प्रेम भरत पर देखकर सबको आनन्द हुआ। पर रामजी को विशेष आनन्द हुआ। क्योकि भरत रामजी के प्राणप्यारे हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यथा : तुम रघुपतिहि प्राणहुँ ते प्यारे। अपने प्रिय का इतना बडा भाग्य देखकर विशेष आनन्द हुआ।

रामजी की अपार भक्ति गुरु चरणो में है। गुरुजी के अनुराग होने से भरतजी को बडभागी समझा और उनको अपना आज्ञाकारी तथा सयाने साधु पहिले से ही जानते थे। यथा : भरत कहे मँह साधु सयाने। अतः भरतजी पर ही निर्णय छोड़ देना रामजी ने ठीक समझा। नीति भी है कि जिस पर भार दे उसे पहिले समझ भी लेना चाहिए।

बोले गुर आयसु अनुकूला। बचन मंजु मृदु मंगलमूला ॥
नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भएउ न भुअन भरत सम भाई ॥२॥

अर्थ : गुरजी की आज्ञा के अनुकूल मनोहर कोमल और मङ्गलमूल वचन बोले। हे नाथ! आपकी शपथ और पिता के चरणो की दोहाई देकर कहता हूँ कि इस ससार मे भरत सा भाई कोई हुआ नही।

व्याख्या : गुरुजी की आज्ञा के अनुकूल रामजी बोले। अर्थात् भरतजी की रुचि को भलीभाँति स्थान देने के लिए बोले :

नाथ सपथ पितु चरन दोहाई। भयउ न भुवन भरत सम भाई ॥
जे गुर पद अबुज अनुरागी। ते लोकहुँ बेदहुँ बडभागी ॥
मजुवचन : राउर जापर अस अनुरागू। को कहि सकै भरत कर भागू ॥
मृदु वचन : लखि लघु बधु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरत बड़ाई ॥
मङ्गलमूल वचन : भरत कहहिं सोइ किये भलाई।

शपथ दो ही का लिया जाता है पूज्य का या प्रिय का। यहाँ रघुनाथजी दोनो का शपथ लेते हैं : पूज्य वसिष्ठजी का और प्रिय पिताजी का और कहते है : भयउ न भुवन भरत सम भाई। इस भाँति भरत के स्नेह का विचार किया। भरतजी के पीठ पीछे भी लक्ष्मणजी से कहा था : लखन तुम्हार सपथ पितु आना। सुचि सुबधु नहिं भरत समाना।

जे गुर पद अंबुज अनुरागी। ते लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी ॥
राउर जा पर अस अनुरागू। को कहि सकइ भरत कर भागू ॥३॥

अर्थ : जो गुरु के चरण कमल के अनुरागी है वे लोक और वेद मे भी बडभागी माने जाते हैं। आपका जिस पर ऐसा अनुराग है उस भरत के भाग्य को कौन कह सकता है।

व्याख्या : गुरु के चरण मे प्रीति होने से इस लोक और परलोक दोनो मे कल्याण होता है। इसलिए लोकहुँ बेदहुँ बड़भागी कहा। यथा : बदौ गुरुपद पदुम परागा से : बडे भाग उर आवै जासू तक।

यहाँ तो बात बहुत चढी बढी है। स्वयं गुरुजी कहते हैं : भरत भगति बस

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भइ मति मोरी। इत्यादि। यहाँ तो गुरुजी का अनुराग भरत पर है। इसलिए भरत के भाग्य का वर्णन कौन कर सकता है।

लखि लघु बधु बुद्धि सकुचाई। करत बदन पर भरत बडाई॥
भरत कहहिं सोइ किएँ भलाई। अस कहि राम रहे अरगाई॥४॥

अर्थ छोटे भाई को देखकर उसके मुँह पर बडाई करने मे बुद्धि को सङ्कोच होता है। भरत जो कहे वैसा ही करने मे भलाई है। ऐसा कहकर रामजी चुप हो गये।

व्याख्या बडे के सम्मुख उनकी बडाई करना स्तुति प्राप्त है। परन्तु अपने से छोटे की बडाई उसके मुख पर नही करना चाहिए। भरत छोटा भाई है। उसके सामने उसकी बडाई करने मे बुद्धि सङ्कुचित होती है। तात्पर्य यह कि भरत म बडे गुण हैं जो मैं उनके सामने नही कह सकता।

जब भरतजी सामने नही रहे तब रामजी ने लक्ष्मण से भरतजी की बडाई करते कहा था।

सुनहु लखन भल भरत सरीसा। बिधि प्रपच महँ सुना न दीसा॥
भरतहि होइ न राजमद बिधि हरिहर पद पाइ।
कबहुँकि काँजी सीकरनि छीर सिंधु बिनसाइ॥
सगुन खीर अवगुन जल ताता। मिलइ रचइ परपच बिधाता॥
भरत हस रबिबस तडागा। जनमि कीन्ह गुन दोष बिभागा॥
गहि गुन पय तजि अवगुन बारी। निज जस जगत कीन्ह उँजियारी॥ इत्यादि।

अन्त मे रामजी ने कहा कि भरत जो कहे तदनुसार कार्य करने म भलाई है। भाव यह कि भरत साधुमत लोकमत नृप नय निगम को अवहेलना कभी करेंगे नही। अत यही विचार ठीक है कि भरत जो कहे वही सब करें मै भी करूँ।

दो तब मुनि बोले भरत सन, सब सँकोचु तजि तात।
कृपासिंधु प्रिय बधु सन, कहहु हृदयँ की बात॥२५९॥

अर्थ तब मुनिजी ने भरत से कहा कि हे तात! सब सङ्कोच छोडकर कृपासिन्धु प्रिय बन्धु रामजी से अपने हृदय की बात कह डालो।

व्याख्या रामजी को चुप देखकर मुनिजी बोले कि यही अवसर है अपने हृदय की बात कहने का। तुम मुझसे उपाय के लिए कहते थे। सो उपाय मैंने कर दिया। रामजी ने सब निर्णय तुम्हारे ऊपर छोड दिया। इस समय यदि सङ्कोच करोगे तो बात न बनेगी। फिर जिससे कहना है वे कृपासिन्धु हैं और प्रिय बन्धु हैं। उनसे दिल खोलकर बोलो। महूँ सनेह सकोचबस सन्मुख कहेउँ न बैन वाली बात इस अवसर पर ठीक नही।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुनि मुनि बचन राम रुख पाई । गुर साहिब अनुकूल अघाई ॥
लखि अपने सिर सबु छरु भारू । कहि न सकहिं कछु करहिं बिचारू ॥१॥

अर्थ : मुनिजी का वचन सुनकर रामजी का रुख पाकर गुरु और स्वामी को पूरी तरह से अनुकूल देखकर और अपने ऊपर नहीं सँभलनेवाला बोझा अनुभव करके कुछ कह नहीं सकते भरतजी विचार कर रहे हैं।

व्याख्या : मुनिजी का वचन सुना। सङ्कोच छोडकर बोलने के लिए और सरकार का भी रुख पाया कि हाँ कहो। गुरुजी ने कहा था : राखे राम रजाइ रुख हम सबकर हित होय। सो रुख भी देख लिया। अवसर ठीक पाकर ही बोलना चाहिए। सो भरतजी ने देख लिया कि गुरुजी और स्वामी रामजी पूरी तरह से अनुकूल हैं। विनय करने का यही अवसर है।

गुरुजी ने मेरी ओर से बहुत कहा। अतः स्वामी रामजी ने सब बोझा मेरे ऊपर छोड दिया। यह बोझा मेरे सँभालने लायक नहीं है। पिता के वचन त्याग से अधर्म है। सो उसे त्यागने को कैसे कहूँ। नहीं कहता हूँ तो पुरजन जननी और अपना स्वार्थ भी नहीं सधता। इधर सँभालो तो उधर नहीं सँभलता। उधर सँभालो तो इधर नहीं सँभलता। अपने ऊपर बोझा : जिम्मेदारी आ पड़ना बड़ी कठिन समस्या है। वही भरतजी जो सोचते थे : अवसि फिरब गुरु आयसु मानी। मुनि पुनि कहब राम रुचि जानी। मातु कहे बहुरहिं रघुराऊ। राम जननि हठ करबि कि काऊ। मोहि अनुचर कर केतिक बाता। तेति मँह कुसमउ बाम बिधाता। वही जब उनके ऊपर सब बोझा रख दिया गया तब लौटने के लिए कहने में हिचकते हैं। विचार करने लगे कि रामजन्म संसार भर के मङ्गल के लिए है। रामजी खलदल दलन देव हितकारी हैं। सो देवताओं का हित इनके वन जाने में है। प्रजाओं का हित इनके लौटने में है। यहाँ क्या करना चाहिए।

पुलकि सरीर सभाँ भये ठाढे । नीरज नयन नेह जल बाढ़े ॥
कहब मोर मुनिनाथ निबाहा । एहि ते अधिक कहौं मैं काहा ॥२॥

अर्थ : शरीर में पुलक हो गया। सभा में खड़े हो गये। कमल ऐसे नेत्र आँसू से भर गये। कहने लगे कि मेरा कहना तो मुनिनाथ ने निवाह दिया। इससे अधिक मैं क्या कहूँ ?

व्याख्या : गुर और स्वामी को अनुकूल जानकर भरतजी को हर्ष से सात्त्विक भाव हुआ। रोंगटे खडे हो गये। नेत्रों में जल भर आया। बोलने के लिए सभा में खडे हो गये। सबके हित अनहित का प्रश्न है। भरत के मन्त्र को ही पसन्द करके सब लोग भरतजी के साथ आये हैं। अतः सब कुछ भरतजी के विनय पर ही निर्भर है। अतः सबके सुनने के लिए भरतजी खड़े होकर बोले। अथवा बड़ों की सभा है। अतः बोलने के समय खड़े हो गये। सभा में खड़ा होकर बोलने की रीति अति प्राचीन मालूम होती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भरतजी कथन के प्रारम्भ मे ही मुनिजी के कथन को चर्चा करते हैं कि जो कुछ मुझे कहना था वह सब मुनिजी ने कह दिया। अर्थात् मेरी ओर से बोलने मे गुरुजी ने कुछ बाकी नही छोडा।

मै जानऊँ निज नाथ सुभाऊ। अपराधिहु पर कोह न काऊ ॥
मो पर कृपा सनेहु बिसेखी। खेलत खुनिस न कबहूँ देखी ॥३॥

अर्थ • मैं अपने स्वामी का स्वभाव जानता हूँ कि अपराधी पर भी कभी क्रोध नही करते। मुझ पर तो अधिक प्रेम करते हैं। खेल मे भी क्रोध करते कभी नही देखा।

व्याख्या भयउ न भुवन भरत सम भाई का उत्तर देते हुए कहते हैं कि यह तो मेरी जानी बात है कि अपराधी पर भी कभी न क्रोध करने का सरकार का स्वभाव है। मैंने पहिले ही कहा था यद्यपि मैं अनभल अपराधी। भा मोहि कारन सकल उपाधी। तदपि सरन सम्मुख मोहि देखी। छमि सब करिहै कृपा बिसेखी। वही हुआ। मेरे अपराध पर ध्यान नही उलटे मेरे भाईपन की प्रशसा हो रही है।

मेरे ऊपर तो सदा से ही अधिक कृपा करने का स्वभाव है। खेलने मे झगडा हो ही जाता। मैंने तो खेलने मे भी सरकार को कभी क्रोध करते नही देखा। यथा कहत राम बिधु बदन रिसौंहे सपनेहुँ लख्यौ न काउ। सो आज भी मुझ पर परम कृपा है।

सिसुपन ते परिहरेउँ न सगू। कबहु न कीन्ह मोर मन भगू ॥
मै प्रभु कृपा रीति जियँ जोही। हारेहु खेल जितावहिं मोही ॥४॥

अर्थ बचपन से कभी साथ नही छोडा। कभी मेरा मन नही तोडा। मैंने प्रभु की कृपा की रीति का अनुभव किया है कि हारा हुआ खेल भी मुझे जिता देते थे।

व्याख्या भरतजी सिसुपन ते परिहरेउ न सगू कहकर अपना दुख प्रकट कर रहे हैं कि आज जन्म का सग छूट रहा है। रामचरन पकज मन जासू। लुबुध मधुप इव तजै न पासू। सो आज भौंरे का कमल से विछोह हो रहा है। आज तक सरकार ने कभी मेरा मन भङ्ग नही किया। बचपन मे भी जीति हारि चुचुकारि दुलारत देत दियावत दाउँ। सो आज मेरा मन भङ्ग हो रहा है।

मैंने प्रभु की कृपा की रीति का अनुभव किया है कि हारी हुई बाजी मुझे जिता देते थे। वही स्वभाव पडा है। वही आशा दृढ है। आज भी मेरी हारी हुई बाजी जिताइये।

दो० महू सनेह सकोच बस, सनमुख कही न बयन।
दरसन तृपति न आजु लगि, पेम पियासे नयन ॥२६०॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नये घोघे से ही कोई मूल्यवान् वस्तु नही निकलती तो पुराने से मोती कैं निकलेगी। कही ताल पाठ है। वहाँ पर यह अर्थ करना होगा कि जब समुद्र के घो से मोती नही निकलती तो ताल के घोघे से कैसे निकलेगी।

सपनेहु दोस क लेस न काहू। मोर अभाग उदधि अवगाहू ॥
बिनु समझे निज अघ परिपाकू। जारिउँ जायँ जननि कहि काकू ॥३

अर्थ : सपने मे भी किसी के दोष का लेश नही है। मेरा दुर्भाग्य रूपी सम का थाह नही है। बिना अपने पापो का परिणाम समझे मैंने माता को का कहकर व्यर्थ जलाया।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि किसी को दोष का लेश भी नही है। न ब्रह्मदेव का कोई दोष है और न माता का ही दोष है। बिना पाप के दु:ख हो नही। पूर्वजन्म कृत कर्म ही वर्तमान जन्म का भाग है। मेरे पूर्वाजित कर्म ख खोटे हैं। अतः इस जन्म मे मेरा ऐसा अभाग्य उदय हुआ कि उसे अथाह सम कहा जा सकता है। इस बात को बिना समझे मैंने व्यर्थ ही काकु का प्रयोग कर अर्थात् : जननी तू जननी भई बिधि सन कछु न बसाइ। ऐसा कहकर माँ का दु:खाया। भिन्नकण्ठध्वनिर्धीरैः काकुरित्यभिधीयते। भिन्न कण्ठध्वनि को पण्डि लोग काकु कहते हैं।

हृदयँ हेरि हारेउँ सब ओरा। एकहि भाँति भलेहि भल मोरा ॥
गुर गोसाइँ साहिब सिय रामू। लागत मोहि नीक परिनामू ॥४

अर्थ : मैं अपने मन से चारो ओर ढूँढकर थक गया। केवल एक ही भाँ अच्छी तरह से मेरा भला है कि गुरुजी समर्थ हैं और सीताराम मालिक हैं। मु परिणाम भला मालूम पड़ता है।

व्याख्या : एकौ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहि रैन बिहानी। अ भरद्वाजजी से भी कहा : एहि कुरोग कर औषध नाँही। सोधेउँ सकल बिस्व म माँही। यही बात यहाँ कह रहे हैं कि कोई उपाय ऐसा नही जिसमे मेरा भलोभाँ भला हो। एक ही बात का आसरा है कि गुरुजी समर्थ हैं। यथा : सो गोसा बिधि गति जेहि छेकी और सीताराम स्वामी हैं। इन्हे छोडकर मुझे निर्दोष कह वाला कोई नही है। यथा : परिहरि रामसीय जग माँही। कोउ नहिं कहिहि मे मत नाँही। इनके किये मेरा सब प्रकार से भला होगा और इन सब बातो क परिणाम अच्छा होगा।

दो. साधु सभा गुर प्रभु निकट, कहउँ सुथल सति भाउ।
प्रेम प्रपंचु कि झूठ फुर, जानहिं मुनि रघुराउ ॥२६१

अर्थ : साधु सभा मे गुरुजी और स्वामी के निकट तथा पवित्र स्थल मे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सच्चे भाव से कह रहा हूँ। यह प्रेम है कि प्रपञ्च है। झूठ है कि सत्य है। इसे मुनिजी और रामजी जानते हैं।

व्याख्या : अब हृदय की बात कहते हैं। अतः शपथ ले रहे हैं कि मैं सत्यभाव से कहता हूँ। यहाँ साधु सभा है। तिस पर स्वयं गुरुदेव और स्वामी भी बैठे हैं। चित्रकूट सा तीर्थ है यहाँ पर मै कह रहा हूँ। असत्य नही कह सकता। यदि कहना भी चाहूँ तो बात छिप नही सकती। मुनि वसिष्ठजी तथा साक्षात् रघुराज खूब समझते है कि मेरा प्रेम है या प्रपञ्च है। मैं झूठ कह रहा हूँ या सच कह रहा हूँ। गुरुजी सर्वज्ञ है और रघुराज अन्तर्यामी हैं।

भूपति मरन पेम पनु राखी। जननी कुमति जगतु सबु साखी ॥
देखि न जाहिं बिकल महतारी। जरहिं दुसह जर पुर नर नारी ॥१॥

अर्थ : प्रेम के प्रण की रक्षा करके महाराज का देहावसान हुआ। माँ की दुर्बुद्धि को संसार जानता है। माँ लोग ऐसी विकल है कि देखते नही बनता। पुर के नर नारी दु सह ज्वर से जल रहे हैं।

व्याख्या : पहिला शूल यह है कि पिता का देहावसान हुआ। परन्तु सन्तोष की बात इतनी हुई कि प्रेमप्रण की रक्षा मे हुआ। जिसकी प्रशसा स्वय गुरुजी ने किया। यथा : भूप धरमव्रतु सत्य सहारा। जेहिं तनु परिहरि प्रेम निबाहा। दूसरी विपत्ति यह कि माँ का दुर्यश ससार मे फैल गया। जिसकी दुर्बुद्धि से महाराज का मरण हुआ। यदि माँ का मरण हो गया होता तो वह भी सह्य था। पर अपयश होना असह्य है। गुरुजी को भी कहना पड़ा। यथा : प्रथम कथा सब मुनिवर बरनी। कैकइ कुटिल कीन्हि जस करनी।

तीसरा शूल यह कि कौसल्यादि माता ऐसी विकल हैं उनकी दशा देखी नही जाती। यथा : मलिन बसन बिबरन विकल कृस सरीर दुख भार। कनक कलप बर बेलि बन मानहुँ हनी तुसार। चौथा यह कि प्रजागण दु सही विरह यातना भोग रहे हैं। यथा : नगर नारि नर निपट दुखारी। मनहु सबन्हि सब सम्पति हारी।

महीं सकल अनरथ कर मूला। सो सुनि समुझि सहिउँ सब सूला ॥
सुनि बन गवनु कीन्ह रघुनाथा। करि मुनि बेष लखन सिय साथा ॥२॥

अर्थ : मैं ही सब अनर्थों का मूल हूँ। सो सुनकर और समझकर सब शूल मैंने सहा। परन्तु रघुनाथजी लक्ष्मण और सीता के साथ मुनि का वेष बनाकर वन गये। यह सुनकर।

व्याख्या : ये सब अनर्थ मेरे कारण हुए। यथा : सुतहि राज रामहि बन-बासू। देहु लेहु सब सवति हुलासू। यह सब सुना और मन मे यह विचारा कि जब मै ही सब अनर्थ का मूल हूँ तो मुझे छोड़कर इन शूलो को कौन सहेगा। अत. ये तीनो शूल सहन करने योग्य न होने पर भी मैं सहन कर गया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अब शूलों से बड़ा शूल कहते है कि जब सुना कि रघुनाथजी वन को गये। साथ में सीता और लक्ष्मणजी गये और मुनिवेष बनाकर गये।

यथा : राम गवन बन अनरथ मूला।
जो सुनि सकल विस्व भइ सूला॥
तथा : पितु आयसु भूपन बसन तात तजे रघुबीर।
बिसमउ हरख न हृदय कछु पहिरे बलकल चीर॥
चले बिपिन सुनि सिय संग लागी। रहइ न रामचरन अनुरागी॥
सुनतहि लखन चले उठि साथा। रहहि न जतन किये रघुनाथा॥

**विनु पानहिन्ह पयादेहि पाँए। संकर साखि रहेउँ एहि धाए॥**
**बहुरि निहारि निपाद सनेहू। कुलिस कठिन उर भएउ न बेहू॥३॥**

अर्थ : कि विना जूते के पैदल गये। शङ्कर साक्षी हैं कि इस घाव से भी मैं बँच गया। फिर निषाद का स्नेह देखकर इस वज्र से कठिन हृदय में छेद नही हुआ।

व्याख्या : ऐसी दशा में भी पैदल वन गये। पैर में जूते भी नहीं। यह चोट ऐसी बैठी कि इससे वचना कठिन था। शङ्कर को साक्षी देकर भरतजी कह रहे है कि फिर भो मै बँच गया। यथा : भरतहि बिसरयौ पितु मरन सुनत राम बन गौन। हेतु अपनपौ जानि जिअ थकित रहे धरि मौन। फिर निपाद का प्रेम देखा कि सरकार के लिए मरने को तैयार था। यथा : भरत भाइ नृप मै जन नीचू। बड़े भाग अस पाइअ मीचू। इसका प्रेम देखने पर तो मेरे कलेजे को फट जाना चाहता था कि जिसके प्रेम से निपाद प्राण देने को प्रस्तुत है उसका भाई होकर मै जीवित हूँ। पर मेरा कलेजा नही फटा। यह वज्र से भी अधिक कठिन है।

**अब सबु आँखिन्ह देखेउँ आई। जिअत जीव जड़ सबइ सहाई॥**
**जिन्हहि निरखि मग साँपिनि बीछी। तजहि बिषम विष तापस तीछी॥४॥**

अर्थ : अब तो मैंने सब आँखों से देख लिया। जीव जड़ को जीते रहने से सभी सहना पड़ता है 'जिसे देखकर विषम विषवाली साँपिन और बीछी भी जो तपस्वियों के लिए भी तीखी है रास्ता छोड़ देती है।

व्याख्या : पहिले तो सव सुनता आता था। यहाँ आकर तो सब अपनी आँखो देख लिया। अब तो शरीर छूट जाना चाहिए था। परन्तु नही छूटा। यह शूल भी मैं सह गया। जड़ जीव जो अवसर आने पर भी नही मरता उसे क्या क्या नही सहना पड़ता ?

भयानक विषैली साँपिन और बीछी अधिक अन्धकार मे बड़ी विकराल हो उठती है। तनिक सा खटका होते ही काटती है। तपस्वियो के लिए तो उनका वैर त्यागना प्राप्त है। यथा : अहिंसाप्रतिष्ठायां तत्सन्निधौ वैरत्यागः। परन्तु वे नही त्यागती। रामजी के देखने से वे भी आर्द्र हो जाती है। रामजी को देखकर उनका

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भी वैर छूट जाता है। वे भी इतनी भली हो जाती हैं कि रास्ता छोड़कर हट जाती हैं।

दो. तेइ रघुनन्दनु लखनु सिय, अनहित लागे जाहि।
तासु तनय तजि दुसह दुख, दैउ सहावइ काहि ॥२६२॥

अर्थ वे ही रघुनन्दन लक्ष्मण और सीता जिसे वैरी मालूम पड़े उसके बेटे को छोड़कर दैव दु सह दु ख किसे सहावे।

व्याख्या : जिस रामजी लक्ष्मण और जानकी की तपस्वियो से भी अधिक अहिंसा प्रतिष्ठा है। अथवा जिस राम जानकी और लक्ष्मण को वन को साँपिन बीछी भी हित मानते हैं उन्हे जिसने अहित माना उसे घोर दण्ड होना ही चाहिए। फिर माता के लिए पुत्र का दु सह दु ख अतीव असह्य है। अत उसके बेटे को दु सह दु ख सहाना दैव का कर्त्तव्य हो जाता है। क्योकि दैव शुभाशुभ फल का देनेवाला है। यथा कर्म सुभासुभ देइ बिधाता।

सुनि अति बिकल भरत बर बानी। आरति प्रीति बिनय नय सानी ॥
सोक मगन सब सभा खँभारू। मनहु कमल बन परेउ तुषारू ॥१॥

अर्थ भरतजी की अति विकल आर्त्ति प्रीति विनय और नय से सनी हुई वाणी सुनकर सब सभा अति शोकयुक्त हो गयी जैसे कमल वन मे पाला पड गया हो।

व्याख्या यद्यपि भरतजी की वाणी अत्यन्त व्याकुलता से भरी है। फिर भी उसमे आर्त्ति, प्रीति, विनय और नय सना हुआ है। पहिले नय कहा। यथा कहब मोर मुनि नाथ निबाहा। एहि ते अधिक कहब मैं काहा। फिर विनय किया। यथा मैं जानउँ निज नाथ सुभाऊ। तब प्रीति कहा। यथा महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कहेउँ न बैन। अन्त मे आर्त्ति कहा। यथा तेइ रघुनन्दन लखन सिय अनहित लागे जाहिं।

भरतजी का ऐसा वचन सुनते ही सभी सभासद् के हृदयो मे शोक उमड आया। सब दु खी हो गये। उनके आकार और चेष्टा ऐसी दैन्यसूचक हो गयी जैसे कमल वन मे पाला पडे और वह खाक स्याह हो जाय। ऐसे ही अवसर पर खँभार शब्द का प्रयोग अन्यत्र भी देखा जाता है। यथा देखि निबिडतम दसहु दिसि कपि दल परेउ खँभार।

कहि अनेक बिधि कथा पुरानी। भरत प्रबोधु कीन्ह मुनि ग्यानी ॥
बोले उचित बचन रघुनदू। दिनकर कुल कैरव बन चदू ॥२॥

अर्थ अनेक प्रकार की पुरानी कथाएँ कहकर मुनि ज्ञानी ने भरतजी को समझाया। सूर्यकुल रूपी कोईं के चन्द्रमा रघुनन्दन रामजी उचित वचन बोले।

व्याख्या ऐसे अवसर पर प्राचीन कथा जिसमे ससार के अनित्यत्व का वर्णन हो और महापुरुषो के महाविपत्ति मे धैर्य धारण करने का वर्णन हो सुनाने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



से ही शोकयुक्त का शोक थमता है। अत ज्ञानी मुनिजी ने अनेक विधि से ऐसी कथाएँ कही।

पूत प्रह्लाद को न लाग्यौ पापलेश पितु पार करने को तासु भक्ति भई नैयासी।
त्योही पृथुराज को न लाग्यो वेनु कृत पाप प्रबल प्रताप पुहुमीहू भई गैयासी।
भगति बखानौं भूरि भापय बखानौं तेरी बिरति बखानौ एक बात नहिं मैयासी।
दुखित न होउ देखि दोप जननी को तुम कीरति तुम्हारी जग जागत जुन्हैयासी।

दो बिना पुण्य सुख होत नहिं दु ख न होत बिनु पाप।
काहुहिं दोप न दीजिये समुझि मनहिं मन आप॥
राम सच्चिदानन्द घन तहाँ नही दु ख लेश।
ताते बहुत न कीजये हिय महँ व्यर्थ कलेश॥

मुनिजी स्वय ज्ञानी है। अत उनके कथन का प्रभाव भरतजी पर पडा और उन्हे प्रबोध हुआ।

वसिष्ठजी के उपदेश और भरतजी के प्रबोध के बाद रघुनन्दन रामजी बोले। ये रघुकुल रूपी कैरव कोईं के वन के लिए चन्द्रमा हैं। इनके उदय से कैरव वन खिल उठता है। शोक का अपनयन गुरुजी ने किया। अब आनन्द का आधान रामजी करेंगे। इनकी वाणी मे ऐसा प्रभाव है कि तुपार के मारे कमल वन को कैरव वन बनाकर प्रफुल्लित कर दिया। फिर भी मुख से जो वचन निकलते हैं वे मनोरञ्जक होते हुए भी उचित ही होते हैं।

तात जायँ जिय करहु गलानी। ईस अधीन जीव गति जानी॥
तीन काल तिभुवन मत मोरें। पुन्यसिलोक तात तर तोरे॥३॥

अर्थ हे तात! ईश्वर के अधीन जीव की गति जानकर तुम व्यर्थ जी मे ग्लानि करते हो। मेरे मत से तो तीनो काल मे जो पुण्य श्लोक तीनो लोक के है वे सब तुम्हारे नीचे हैं।

व्याख्या सुभ अरु असुभ कर्म अनुहारी। ईस देइ फल हृदय बिचारी। शुभाशुभ फल का देनेवाला ईश्वर है। अत कर्म बन्धन से निबद्ध जीव की गति ईश्वर के अधीन है। फिर ग्लानि करना ही व्यर्थ है। ग्लानि करने से ईश्वरीय व्यवस्था उलट नही सकती।

रह गयी तुम्हारी बात। सो तुम्हारे विपय मे मै यह कह सकता हूँ कि जिन पुण्यात्माओ का नाम मङ्गलमय दिन बीतने के लिए प्रात काल लिया जाता है वे सब तुमसे निम्नकोटि मे हैं। तुम्हारे ऐसा पुण्य श्लोक तीनो लोक मे न हुआ न है और न होगा।

उर आनत तुम्ह पर कुटिलाई। जाइ लोकु परलोकु नसाई॥
दोसु देइ जननिहि जड तेई। जिन्ह गुर साधु सभा नहिं सेई॥४॥

अर्थ तुम्हारे ऊपर किसी प्रकार की कुटिलता हृदय म लाते ही लोक भी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जाता रहेगा और परलोक भी नष्ट होगा । माता को वे ही जड़ दोष देते है जिन्होने कभी गुरु और साधु की सभा का सेवन नही किया है ।

व्याख्या : महो सकल अनरथ कर मूला : इस भरतजी की उक्ति का उत्तर देते हुए सरकार कहते हैं कि तुम्हारे ऊपर जो मन से भी कुटिलता का आरोप करेगा उसका लोक परलोक सब बिगड़ जायगा। जितने ही पवित्र पुरुष का निन्दक निन्दा करता है उतनी ही उसके दोष को मात्रा बड़ी हो जाती है। सो तुम्हारे ऐसे पुण्यात्मा पर मिथ्यारोपण का भाव भी मन मे आना परम अकल्याण का कारण होगा।

भरतजी ने कहा था : जननी कुमति जगत सब साखी : इस उक्ति का उत्तर देते हुए कहते है कि माता को दोष देना अनुचित है। माता को दोष तो जड व्यक्ति दिया करते है जिन्हे समझ नही। मातृदेवो : भव ऐसा वेद कहता है। उनका हर प्रकार से मान करना चाहिए। जिसने गुरु साधु की सभा का सेवन किया है वह जानता है कि कोई भो किसी के दु ख सुख का देनेवाला नही है। अपना कर्म ही शुभाशुभ फल देते हैं। यथा : जीव कर्मबस दु.ख सुख भागी। फिर गुरु सेवी और साधु सेवी माता को दु ख देनेवाली कैसे मान सकते है ? भरतजो तुम तो गुरु साधु सेवी हो। तुम ऐसा न कहो। जिसे ज्ञान नही है वह दूसरे को दु ख सुख देनेवाला मानता है।

दो. मिटिहहि पाप प्रपंच सब, अखिल अमगल भार ।
लोक सुजसु परलोक सुखु, सुमिरत नामु तुम्हार ॥२६३॥

अर्थ : तुम्हारा नामस्मरण से सब पाप प्रपञ्च और सम्पूर्ण अमङ्गल के समूह मिट जायेंगे और इस लोक मे सुयश और परलोक मे सुख होगा।

व्याख्या : भरतजी सब पुण्य श्लोको मे बडे है। अत उनके नामस्मरण की महिमा सरकार श्रीमुख से कहते हैं कि तुम्हारे नामस्मरण से पाप का प्रपञ्च भी मिटेगा और अमङ्गल भो नष्ट होगे। स्मरण करनेवाले को इस लोक मे कीर्ति और परलोक मे आनन्द प्राप्त होगा। तुम्हारी अकीर्ति का तो प्रश्न ही नही है। यथा : समन सकल उतपात सब भरत चरित जप जाग। सरकार ने कह दिया : उर आनत तुम पर कुटिलाई। जाइ लोक परलोक नसाई। इससे कुछ अयोध्यावासी जिन्होने भरत का सम्मत कहा था लोक परलोक से भ्रष्ट हो चले थे उनका परिहार सरकार ने इस वचन से कर दिया कि वे भी भरतजी का नाम लेकर लोक मे सुयश और परलोक मे सुख के भागी होगे।

कहउँ सुभाउ सत्य सिव साखी। भरत भूमि रह राउरि राखी ॥
तात कुतरक करहु जनि जाएँ। बैर पेम नहि दुरइ दुराएँ ॥१॥

अर्थ : मै शिवजी की साक्षी देकर स्वभाव कहता हूँ। हे भरतजी ! कि तुम्हारे रखने से पृथ्वी ठहरी है। हे तात ! तुम व्यर्थ का कुतर्क न करो। वैर और प्रेम छिपाये नही छिपता।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : सरकार उस भाव को समझ रहे हैं जिससे प्रेरित होकर भरतजी ने कहा था : मोहि राज हठि देही जबही। रमा रसातल जाइहि तबही। आदर्श बिगड जाने से पृथ्वी रसातल को जाती है। अत॰ राजा का आचरण ऐसा होना चाहिए जिसमे प्रजा का आदर्श न बिगडने पावे। भरतजी के राज्य स्वीकार से प्रजा का आदर्श बिगड जाता। प्रजा के सामने यह आदर्श उपस्थित हो जाता कि पिता के मरने की परवाह न करके भाई को वनवास देकर स्वार्थ साधन करना चाहिए। ससार की व्यवस्था ही बिगड जाती और लोगो का घोर पतन होता : जैसा कि आजकल हो रहा है। अत सरकार कहते हैं कि आदर्श के न बिगड़ने देने का श्रेय तुम्हे ही है। अत तुम्हारे रक्षा करने से ससार बडे भारी पतन से बच रहा है।

जिससे कोई लाभ न हो ऐसा सुतर्क भी करना निष्फल है और निष्फल कुतर्क तो करना ही नही चाहिए। भगवती कैकेयी न कोदव हैं। न सबुक काली है। न साँपिन बीछी हैं। उनमे कोई दोष नही है और न तुममे दोष का लेश है। ते रघुनदन लखन सिय अनहित लागेजाहि। तासु तनय तजि दुसह दुख दैव सहावै काहि। ऐसी बाते करना कुतर्क है और इससे कोई लाभ भी नही है। तुम्हे अपने प्रेम के लिए शपथ लेने की आवश्यकता नही। वैर और प्रेम ये दोनो भाव ऐसे हैं कि इन्हे कोई छिपाना भी चाहे तो छिपा नही सकता। निषादराज ने भी यही कहा था : लखब सनेहु सुभाव सुहाएँ। वैरु प्रीति नहिं दुरइ दुराएँ।

मुनिगन निकट बिहग मृग जाही। बाधक बधिक बिलोकि पराही॥
हित अनहित पसु पंछिउ जाना। मानुष तनु गुन ग्यान निधाना॥२॥

अर्थ : मुनियो के पास चिड़ियाँ और जानवर चले जाते हैं और बाधक तथा वधिक को देखकर भागते हैं। अपना हित और अनहित पक्षी और पशु भी जानते हैं। मनुष्य का शरीर तो गुण ज्ञानका निधान है।

व्याख्या : मुनिगण अहिंसा मे प्रतिष्ठित हैं। वे जीव जन्तु से भी प्रेम करते हैं। अत. उनके प्रेम का प्रभाव पशु पक्षी पर भी पड़ता है। वे नि शङ्क उनके पास पहुँच जाते हैं और बाधक वधिक का प्रभाव इतना उग्र होता है कि उन्हे देखकर पशु पक्षी भाग खडे होते हैं। अत॰ यह सिद्ध है कि हित अनहित का परिज्ञान अज्ञानी पशु और पक्षियो को भी हो जाता है। फिर मनुष्य को क्यो न होगा। मनुष्य का चोला तो गुण ज्ञान का भण्डार है। उसे हित अनहित का ज्ञान होना स्वाभाविक है। नहि कस्तूरिकामोद शपथेन विभाव्यते। कस्तूरी की सुगन्ध शपथ से नही प्रमाणित की जाती। भाव यह कि तुम्हारा प्रेम ससार देख रहा है।

तात तुम्हहि मैं जानेउँ नीके। करौ काह असमंजसु जीके॥
राखेउ रॉय सत्य मोहि त्यागी। तनु परिहरेउ पेम पनु लागी॥३॥

अर्थ · हे तात ! मैं तुम्हें अच्छी तरह जानता हूँ। पर करूँ क्या ? जी मे बडा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



असामञ्जस्य हो रहा है। महाराज ने मेरा त्याग करके सत्य की रक्षा की और प्रेम के प्रण के लिए शरीर त्याग दिया।

व्याख्या तुम्हे तो बचपन से देख रहा हूँ। यथा जनमे एक सग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई। करनबेध उपबीत बिआहा। सग सग सब भयेउ उछाहा। अत तुम्हे अच्छी तरह जानता हूँ और तुम्हारे प्रेम प्रण को सफल भी करना चाहता हूँ। पर करूँ क्या? बडा भारी असामञ्जस्य उठ खडा हुआ है। उसकी विधि किसी भाँति नही बैठा सका। पिताजी भी असामञ्जजस्य मे पड गये थे। सत्य और प्रेम का सामञ्जस्य नही बैठता था। अत मुझे त्याग करके उन्होने सत्य की प्रतिष्ठा की और मेरे प्रेम के निर्वाह मे शरीर ही त्याग दिया। इस भाँति उन्होने तो सामञ्जस्य बिठा लिया।

तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि ते अधिक तुम्हार सकोचू॥
तापर गुरु मोहि आयसु दीन्हा। अवसि जो कहहु चहउ सोइ कीन्हा॥४॥

अर्थ उनके वचन के मिटाने मे मन मे सोच हो रहा है और उससे भी अधिक तुम्हारा सङ्कोच है। उसके ऊपर स्वय गुरु की आज्ञा हो गयी। अत जो तुम कहो उसे निश्चय सिर चढाकर करना चाहता हूँ।

व्याख्या असामञ्जस्य यह है कि उस सत्यप्रतिज्ञ प्रमनिधि पिता के वचन को कैसे मिटा दूँ और इधर तुम्हारा सङ्कोच मैं किसी भाँति नही छोड सकता। जब से तुम्हारा आना सुना तभी से इस असामञ्जस्य मे पडा हूँ। यथा सो मुनि रामहि भा अति सोचू। उत पितुवच इत बधु सँकोचू। एसी स्थिति मे पड गया कि किसे छोड़ूँ किसे ग्रहण करूँ। फिर भी पलडा तुम्हारे ही ओर झुकता था। अब तो कोई बात ही नही है। गुरुजी ने आज्ञा दे दी। यथा मोरे जान भरत रुचि राखी। रजो कीजिअ सो सुभ सिव साखी। अब तो जो तुम कहो वही मै करना चाहता हूँ।

दो मनु प्रसन्न करि सकुच तजि, कहहु करौ सोइ आजु।
सत्यसध रघुबर बचन, सुनि भा सुखी समाजु॥२६४॥

अर्थ मन प्रसन्न करके और सङ्कोच छोड करके जो कहो सो मैं आज करूँ। सत्यसन्ध रघुवर रामजी के बचन को सुनकर समाज सुखी हो गया।

व्याख्या रामजी कहते हैं कि भरत तुम्हारी सङ्कोची बान है। गुरुजी ने भी कहा और मैं भी कहता हूँ कि सङ्कोच छोडकर स्पष्ट कहो कि क्या चाहते हो इतना ही नही प्रसन्न मन से कहो। जिसम तुम प्रसन्न हो वही मै किया चाहता हूँ। जो तुम कहोगे उसे आज ही करूँगा हीलाहवाली नही। बोलो क्या चाहते हो।

सरकार का वचन सुनकर सारा समाज सुखी हो गया। रघुकुल कैरव वनचन्द के वचन को सुनकर कैरव वन खिल उठा। क्योकि सरकार सत्यसन्ध ह। जो कह दिया वह निश्चय करेंगे। भरतजी लौटने को कहेगे ही। अत आज्ञा की पूर्ति होते देखकर सब प्रसन्न हो गये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुर गन सहित सभय सुरराजू। सोचहिं चाहत होन अकाजू॥
बनत उपाउ करत कछु नाँहीं। राम सरन सब गे मन माँहीं॥१॥

अर्थ : देवगण के सहित इन्द्र भयभीत हो गये। सोचने लगे कि अब काम बिगडा चाहता है और कुछ करते धरते बन नही रहा है। सो सब मन से रामजी के शरण गये।

व्याख्या : रामजी की बात सुनकर सब देव समाज डर गया। इन्द्र भी डर गये कि रामजी ने तो सब बोझा भरतजी पर डाल दिया। अब भरतजी क्या कहेंगे कि आप वन चले जाइये। भरतजी कहेंगे ही अयोध्या लौटाने को। सरकार सत्यसन्ध हैं। अयोध्या लौट जायँगे और यदि वे अयोध्या चले गये तो फिर सीताहरण और रावण वध कैसे होगा? रावण स्वयं रामजी से लड़ने नही आवेगा। सुबाहु वध हुआ। विराध वध हुआ। पर रावण चुप रह गये। रामजी निष्कारण उसका वध करेंगे नही। तब तो हम लोगो का दु ख फिर ज्यो का त्यों रह गया।

हम पहिले ही कह रहे थे : करिय जतन छल सोधि। जिसमे रामजी से भरत की भेंट न हो। पर गुरुजी ने कहा : भगत सिरोमनि भरत से जनि डरपहु सुरपाल। अब क्या करें? समय का बड़ा सङ्कोच है। रामजी और भरतजी पर माया चल नही सकती। दूसरे पर चलावे तो उसे कार्य मे परिणत करने के लिए समय चाहिए। रामजी इधर प्रतिज्ञा कर बैठे हैं : मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आज। अतः अब तो कोई उपाय नही है। सभा बैठी हुई है। इस समय हम लोग प्रत्यक्ष जाकर कुछ कह नही सकते। अतः कोई उपाय नही है। इस भाँति अपने को असमर्थ पाकर सब देवता लोग मन से रामजी के शरण गये।

बहुरि बिचारि परसपर कहहीं। रघुपति भगत भगतिबस अहहीं॥
सुधि करि अंबरीष दुरबासा। भे सुर सुरपति निपट निरासा॥२॥

अर्थ : फिर विचारकर आपस मे कहने लगे कि रघुपति तो भक्त की भक्ति के वश मे रहते हैं। राजा अम्बरीष और दुर्वासा का कथानक स्मरण करके देवगण और इन्द्र अत्यन्त निराश हो गये।

व्याख्या : शरण जाने के बाद यह बुद्धि फुरी कि अब रामजी के हाथ रह ही क्या गया। ये तो भक्त के वश मे हैं। भरत ने जो प्रार्थना की तो इन्होने सब भार भरत पर ही डाल दिया। यही इनका स्वभाव है। जब दुर्वासा शरण मे गये तो कह दिया : अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज। इसी तरह हम लोगो को भी टका सा जवाब मिल गया : अहं भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव। अतः अब तो राम शरण से भी आशा नहीं।

सहे सुरन्ह बहु काल बिषादा। नरहरि किए प्रगट प्रहलादा॥
लगि लगि कान कहहिं धुनि माथा। अब सुर काज भरत के हाथा॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थं देवताओ ने बहुत काल तक दु ख उठाया। पर नृसिंह को प्रह्लाद ने प्रकट किया। सब एक दूसरे के कान लगकर और सिर धुनकर कहने लगे कि अब देवताओ का काम तो भरत के हाथ मे है।

व्याख्या सरकार को देवताओ से कही अधिक भक्त का ध्यान रहता है। पहिले भी हिरण्यकश्यप ने क्या कम दु ख दिया। पर सरकार प्रकट नही हुए। इन्हे तो भक्त प्रकट करता है। प्रह्लाद पर दु ख पडा तब प्रकट हुए। अत इनका वन जाना या अयोध्या लौटना अब भरत के हाथ है।

अत लज्जा से सभा मे खुले मैदान नही कह रहे हैं। एक दूसरे के कान मे कह रहे हैं और पश्चात्ताप से सिर पीटते हैं कि हम सब लोगो ने तो मिलकर पाँव रोपकर भरत का अपकार किया। यथा पाँव रोपि सब मिलि मोहि घाला। अब भरत के हाथ मे मेरी कार्यसिद्धि आयी। अत बात बिगडी ही बिगडाई है।

आन उपाई न देखिअ देवा। मानत रामु सुसेवक सेवा ॥
हिय सपेम सुमिरहु सब भरतहि। निज गुन सील राम बस करतहि ॥४॥

अर्थं हे देवता लोग! दूसरा उपाय तो अब कुछ दिखाता नही। रामजी सुसेवक की सेवा का मानते हैं। अत प्रेमयुक्त हृदय से सब कोई भरत का स्मरण करो। जिसने अपने गुण और शील से रामजी को वश कर लिया है।

व्याख्या सब देवता लोग इसी बात पर आगये कि सिवा भरत के शरण गये कोई उपाय नही है। क्योकि रामजी सुसेवक की सेवा को मानते है। देवताओ का सङ्कोच उसके सामने कुछ नहीं है। परन्तु भरत की शरण जाने का भी तो अवसर नही है। अत हृदय से ही भरतजी को प्रेम से सुमिरो। भरतजी बडे शीलवान् हैं। बडे गुणी हैं। हम लोगो का काम बिगडने नही देंगे। उनमे कम शील और गुण है। रामजी तो उनके शील और गुण के वश है।

दो सुनि सुर मत सुरगुर कहेउ, भल तुम्हार बड भागु।
सकल सुमगल मूल जग, भरत चरन अनुरागु ॥२६५॥

अर्थं देवताओ की सम्मति सुनकर वृहस्पतिजी ने कहा कि तुम्हारा वडा अच्छा भाग्य है। ससार मे भरत के चरण मे अनुराग होना सब शुभमङ्गलो का मूल है।

व्याख्या देवताओ की सम्मति जब गुरु वृहस्पति ने सुनी तब बोले। अभी तक चुप रहे क्योकि पहिले की उनकी कही हुई वात देवताओ के मन मे ठीक नही बैठी थी। उन्होने पहिले ही कह दिया था भगत सिरोमनि भरत से जनि डरपहु सुरपाल। सो सुरपाल समाज सहित डर गये। गुरुजी चुप है कि डर रहे हैं तो डरने दो। हम क्या करें। हमने तो पहिले ही कह दिया है कि मत डरो। अब जब देखा कि देवता भरतजी के शरण मे मन से जाना चाहते है तो इस प्रस्ताव का अनुमोदन करते हुए गुरुजी ने कहा कि तुम्हारा भाग्य अच्छा है और बडा भाग्य

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है कि तुम्हारे मन मे भरत के शरण जाने की बात आगयी। भरत के चरण मे अनुराग होना इस ससार में सब सुमङ्गलो का मूल है। अतः तुम्हारा मङ्गल होनेवाला है। उन लोगो का अभाग है जिनके मन मे भरत की भक्ति नहीं आती।

सीतापति सेवक सेवकाई। कामधेनु सय सरिस सुहाई ॥
भरत भगति तुम्हरे मन आई। तजहु सोचु बिधि बात बनाई ॥१॥

अर्थ : सीतापति सेवक की सेवकाई सौ कामधेनु के समान सुन्दर है। तुम्हारे मन मे भरत की भक्ति आगयी। सब सोच छोड दो। ब्रह्माजी ने ही बात बना दी।

व्याख्या : सीतापति के सेवक भरत हैं। उनकी सेवकाई अर्थात् भक्ति सौ कामधेनु के समान कल्याणकारिणी है। रामजी की भक्ति तो एक ही कामधेनु के समान कही गयी है। यथा 'सुनु खगेस हरि भगति बिहाई। जे सुख चाहहिं आन उपाई। ते जड कामधेनु गृह त्यागी। खोजत आकु फिरहिं पय लागी। एक कामधेनु सब मनोरथ पूर्ण करती है सौ कामधेनु क्यो न पूरा करेंगी?

तुम लोगो के मन मे यह बात जो आयी : हिय सप्रेम सुमिरहु सब भरतहि। सो मानो सौ कामधेनु का आगमन हुआ। अब मनोरथ पूर्ण होने मे सन्देह नहीं है। पहिले जो तुम लोगो ने विचार किया था : रामहि भरतहि भेंट न होई। वह बात बिगड़ने का रास्ता था। विधि सानुकूल होते हैं तब भरत की भक्ति मन मे आती है। अत: अब सोच छोड दो स्वयं ब्रह्मा ने ही बात बना दी। मेरे कहने पर बात मन मे न आयी और इस समय आगयो तो यह ब्रह्मा की ही करतूत है।

देखु देवपति भरत प्रभाऊ। सहज सुभायँ बिबस रघुराऊ ॥
मन थिर करहु देव डरु नाँही। भरतहि जानि राम परिछाहीं ॥२॥

अर्थ : हे देवराज! भरत का प्रभाव देखो। रामजी जिसके सहज स्वभाव से वश हो रहे हैं। भरतजी को राम की परछाही जानकर देवता लोग! मन को स्थिर करो। डर की कोई बात नही है।

व्याख्या : गुरुजी कहते है कि भरत के प्रभाव को आँखो देख लो। भरत ने न कोई तप किया, न आराधना की। अपने स्वभावानुकूल काम करते जा रहे हैं और उस पर रामजी उनके वश मे हैं। कह रहे हैं 'कहहु करउँ सो आज। भरत के मन रखने के सामने न पिता का वचन ही कुछ है और न तुम लोगो का सङ्कोच ही किसी गिनती मे है।

तुम्हारा मन चञ्चल हो उठा है। उसे स्थिर करो। क्योकि डर की कोई बात नहो है। भरत को राम की परिछाही : प्रतिबिम्ब जानो। पुरुप जैसी चेष्टा करता है उसका प्रतिबिम्ब भी वैसी ही चेष्टा करता है। प्रतिबिम्ब बिम्ब के प्रतिकूल चेष्टा कर नही सकता।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुनि सुरगुर सुर संपत सोचू। अंतरजामी प्रभुहि संकोचू ॥
निज सिर भारु भरत जियँ जाना। करत कोटि विधि उर अनुमाना ॥३॥

अर्थ : वृहस्पतिजी और देवताओं की सलाह और विचार सुनकर प्रभु अन्तर्यामी को सङ्कोच हुआ। भरतजी मन मे जान गये कि सब बोझा मेरे ऊपर है। इसलिए करोडो प्रकार का अनुमान करने लगे।

व्याख्या : वृहस्पतिजी की सम्मति और देवताओ का विचार सरकार ने सुना। उनके लिए व्यवधान कोई वस्तु नही है। बातचीत आकाश मे होती थी। पर सरकार सब सुनते थे। गुरुजी की सम्मति भी सुनी और देवताओ का विचार भी सुना। अत: सरकार सङ्कुचित हुए। सङ्कुचित होने का यथेष्ट कारण भी है। यथा : प्रभु प्रनाम करि दीन्ह भरोसो। चले मुदित मन डर न खरोसो। सो आज सब निर्णय भरत पर छोडे बैठे है। अन्तर्यामी हेतु गर्भ विशेषण है। सबके अन्तर का हाल जानते हैं।

देवताओ का विचार कहकर जहाँ से प्रसङ्ग छोडा था वही फिर उठाते है। रामजी के यह कहने से कि कहहु करउँ सोइ आज। भरतजी ने जान लिया कि सरकार ने सब बोझा मेरे ऊपर छोड दिया। पिता के वचन का भार, प्रजा के सुख का भार, स्वामी के धर्म का भार, माताओ की अभिरुचि का भार, देवताओ के कार्य का भार, सब भरतजी पर आ पडा। अतः तर्क की कोटियाँ उठी। स्वामी के धर्म को बचाते हैं तो पुरजन परिजन माताओ के दु ख का अन्त नही और अवध लौट चलने को कहते है तो देवताओ का कार्य बिगडता है और सरकार के धर्म मे बाधा पडती है। मैं सेवक हूँ स्वामी का धर्म कैसे बिगडने दूँ इत्यादि।

जरि विचारु मन दीन्ही ठीका। राम रजायसु आपन नीका ॥
निज पन तजि राखेउ पन मोरा। छोहु सनेहु कीन्ह नहिं थोरा ॥४॥

अर्थ : विचार करके मन मे यही ठीक किया कि रामजी की आज्ञा मे ही अपनी भलाई है। अपना प्रण छोडकर मेरा प्रण रक्खा। सो थोडा छोह और स्नेह नही किया।

व्याख्या : विचार करके गुरुजी के उपदेश पर आगये : राखे राम रजाय रुख हम सब कर हित होइ। राजा वही है जिसकी रजायसु . आज्ञा सब पर चले। अब यदि रामजी की आज्ञा से सब कार्य होना आरम्भ हो जाय तो स्वभावत: वे राजा हो जाते हैं। अत यदि न भी लौटे तो भी राज्य की स्वीकृति तो हो ही जाती है। जीव का कल्याण ईश्वर की आज्ञापालन में है। यथा ' प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई।

जिस समय सरकार ने कह दिया : मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौ सोइ आज। उसी समय वन से लौटना और सिंहासनारूढ होना स्वीकार कर लिया। अपना प्रण छोड दिया और मेरा प्रण रख लिया। छोह और स्नेह की सीमा हो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



गयी। अब जो वह आज्ञा दें वही करने में भलाई है। ऐसे मालिक को सङ्कोच में डालना अच्छा नही।

दो. कीन्ह अनुग्रह अमित अति, सब बिधि सीतानाथ।
करि प्रनामु बोलेउ भरतु, जोरि जलज जुग हाथ ॥२६६॥

अर्थ : सीतानाथ ने सब प्रकार से मुझ पर अत्यन्त अनुग्रह किया। दोनों कर कमल जोड़कर और प्रमाण करके भरतजी बोले।

व्याख्या : तदपि सरन सनमुख मोहि देखी। छमि सब करिहहिं कृपा बिसेखी। यह आशा जो भरतजी को थी वह परिपूर्ण हो गयी। सीतानाथ पद से दिखलाया कि सीताजी की भी वैसी ही कृपा हुई। यथा : सब बिधि सानुकूल लखि सीता। भे निसोच, उर अपडर बीता। अतः सरकार के कथन के उत्तर मे विनय करने के लिए प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बोले।

कहउँ कहावउँ का अब स्वामी। कृपा अंबुनिधि अंतरजामी ॥
गुर प्रसन्न साहिब अनुकूला। मिटी मलिन मन कल्पित सूला ॥१॥

अर्थ : हे स्वामिन्! क्या मैं कहूँ और क्या कहलाऊँ। आप कृपा के समुद्र हैं और अन्तर्यामी हैं। गुरुजी प्रसन्न हैं। स्वामी अनुकूल हैं। मलिन मन का कल्पित शूल मिट गया।

व्याख्या : भरतजी बड़े सङ्कोची हैं। यदि कुछ कहना होता है तो दूसरे से कहलाते हैं। यथा : महूँ सनेह सकोच बस सनमुख कहेउँ न बैन। अतः कहते हैं कि मैं क्या कहूँ या दूसरे से कहलाऊँ। कृपा के समुद्र और अन्तर्यामी से कहना क्या है? कहना या कहलाना तो उससे होता है जिसे कृपा भी थोड़ी हो और मन की बात भी न जानता हो। यहाँ तो कृपा का समुद्र उमड़ रहा है और किसी के हृदय की बात छिपी नहीं है।

गुरुजी ने कह दिया : मोरे जान भरत रुचि राखी। जो किजिअ सो सुभ सिव साखी। अतः देख लिया कि गुरुजी प्रसन्न हैं। सरकार स्वयं कह रहे हैं : तेहि ते अधिक तुम्हारा सकोचू। अब इससे अधिक अनुकूलता क्या होगी। मेरा मन मलिन है। अतः बात जल्दी समझ में नही आती। मन की मिथ्या कल्पना से शूल उठता था : राम लखन सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ। सो शूल जाता रहा। मैं गुरुजी को भी अप्रसन्न समझता था। यथा : बूझिअ मोहि उपाउ अब सो सब मोर अभाग। अब मन का सब दुःख मिट गया।

अपडर डरेउँ न सोच समूलें। रबिहि न दोसु देव दिसि भूलें ॥
मोर अभागु मातु कुटिलाई। बिधि गति बिषम काल कठिनाई ॥२॥

अर्थ : मैं झूठे डर से डर गया। मेरा सोच निर्मूल था। जिसे दिग्भ्रम हुआ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हो सूर्य को दोष नही देना चाहिए। मेरा अभाग और माँ की कुटिलता ब्रह्मा की विषमगति और काल की कठिनता।

व्याख्या सरकार के तात तुमहि मैं जानउँ नीके। इस कहने का उत्तर देते हैं कि दोष सरकार का नही। दोष मेरा है कि मैं निष्कारण भय से भीत हो गया। मेरी गति दिग्भ्रमवाले की सी हो गयी। दिग्भ्रमवाले को सूर्यनारायण पश्चिम उदित होते प्रतीत होते हैं तो उसमे सूर्यनारायण का कोई दोष नही। वे तो यथा पूर्व सदा पूर्व मे ही उदय होगे। दोष तो दिग्भ्रमवाले की मति का है जो विपरीत समझ रहा है।

बात यह हुई कि चार बातें आ पडी। १ मेरा अभाग्य उदय हो गया। २ माँ ने कुटिलता से काम लिया। ३ ब्रह्माजी बायें हो गये और ४ कराल काल उपस्थित हो गया। १ मोर अभाग। यथा झूठ काह पछिताउँ अभागी। २ माँ की कुटिलता। यथा कैकयनदनि मदमति कठिन कुटिलपन कीन्ह। ३ विधिगति विषय। यथा बिधि बाम की करनी कठिन जेहि मातु कीन्ही बावरी और। ४ काल कठिनाई। यथा भयउ कराल काल बिपरीता।

पाउँ रोपि सब मिलि मोहि घाला। प्रनतपाल पन आपन पाला ॥
येह नइ रीति न राउरि होई। लोकहुँ बद बिदित नहिं गोई ॥३॥

अर्थ सबने मिलकर पाँव रोपकर मेरा सत्यानाश किया। पर प्रणतपाल ने अपने प्रण का पालन किया। यह आपकी नयी रीति नही है। लोक और वेद मे विदित है। कही छिपी नही है।

व्याख्या उपर्युक्त चारो ने प्रतिज्ञा करके मेरा सर्वनाश किया। पाँव रोपना का अर्थ प्रतिज्ञा करना है। यथा सुनु दसकठ कहौं पन रोपी। इन चारो के विरोध करने पर रक्षा का उपाय नही। पर प्रणतपाल ने अपना प्रण पालन किया। सरकार का प्रण है कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्त प्रणश्यति ताते नाश न होइ भक्त कर। सरकार ने मुझ बचा लिया।

यह सरकार की बडी पुरानी नीति है। मेरी रक्षा करने मे किसी नयी रीति से काम नही लिया गया। यह नीति अनादिकाल से चली आती है। अत वेद ने भी कहा है लोक म भी सब कोई जानता है। इसी से सङ्कट आ पडने पर बडा भारी नास्तिक भी सरकार की शरण जाता है। क्योकि यह प्रसिद्ध बात है कि सरकार अशरण शरण हैं और अकारण करुण हैं।

जगु अनभल भल एकु गोसाईं। कहिअ होइ भल कासु भलाईं ॥
देउ देवतरु सरिस सुभाऊ। सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ ॥४॥

अर्थ ससार तो बुरा है। एक सरकार ही भले हैं। फिर किसकी भलाई से भला हो ? हे देव। आपका स्वभाव कल्पवृक्ष सा है। न आप कभी किसी के सम्मुख रहते हैं और न विमुख रहते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : भरत भूमि रह राउर राखी का उत्तर देते हुए भरतजी कहते हैं कि सरकार ही केवल भले हैं। क्योकि सच्चिदानन्द रूप हैं। जगत् तो अनित्य जड और दु.ख रूप है। जगत् मे भलाई है ही नही। उससे भलाई कैसे होगी। उसमे यदि कही भलाई की झलक दिखायी पडे तो वह सरकार की ही भलाई की झलक है।

सरकार देव है और स्वभाव सरकार का देवतरु अर्थात् कल्पवृक्ष सा है। कल्पवृक्ष न किसी के अनुकूल है न प्रतिकूल है। अपने स्वरूप मे स्थित है। कितना भी कोई बुरा हो कल्पवृक्ष किसी को दण्ड देने नही जाता और न भले को इनाम देने जाता है।

दो. जाइ निकट पहिचानि तरु, छाँह समनि सब सोच।
माँगत अभिमत पाव जग, राउ रंकु भल पोच ॥२६७॥

अर्थ : कल्पवृक्ष के पास जाय। उसे पहिचाने तो उसकी छाया से सब सोच नष्ट होता है और माँगने से राजा रक भले बुरे संसार मे उससे अभिलषित पदार्थ प्राप्त करते है।

व्याख्या : कल्पवृक्ष तो कही है ही। पर वह किसी को लाभ नही पहुँचाता। जिसे लाभ प्राप्त करना हो वह उसके पास जाय। तथा अन्य वृक्षो मे उसे पहिचाने। तो इतना फल वह तुरन्त देता है कि उसके छाँह मे जानेवाले का सोच हरण कर लेता है और यदि उससे प्रार्थना करे तो जो चाहे वही मिलता है।

इसी प्रकार जिसे कल्याण की कामना हो वह सरकार के सम्मुख जाय। सरकार को पहिचाने। आश्रय ग्रहण करे। तो इतने से ही उसके कोटि जन्म के पाप नष्ट हो जाते है। यथा : सनमुख होइ जीव मोहि जबही। जन्म कोटि अघ नासहिं तबही और माँगने से तो जो जिसकी अभिलाषा करता है उसकी प्राप्ति होती है। यथा : मोर दरस अमोघ जगमाँही।

लखि सब बिधि गुर स्वामि सनेहू। मिटेउ छोभु नहि मन संदेहू ॥
अब करुना कर कीजिअ सोई। जनहित प्रभु चित छोभु न होई ॥१॥

अर्थ : सब प्रकार से गुरु और स्वामी का स्नेह लख करके मेरा क्षोभ मिट गया। अब मन मे सन्देह नही है। हे करुणाकर ! अब ऐसा कीजिये कि सेवक के लिए प्रभु के चित्त मे क्षोभ न हो।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि मेरे मन मे क्षोभ भी था और सन्देह भी था। क्षोभ यथा : मही सकल अनरथ कर मूला। और सन्देह यथा : जौ परिहरहिं मलिन मनु जानी। जौ सनमानहि सेवक मानी। अब दोनो मिट गया। गुरुजी का इतना स्नेह कि मेरे लिए सरकार से कहा : भरत भगति बस भइ मति मोरी। और सरकार का इतना स्नेह कि मेरे सङ्कोच को पिता के वचन से अधिक माना। अत: अब न तो क्षोभ है न सन्देह है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सरकार करुणाकर मेरे ऊपर करुणा करके सब कुछ करने को तैयार है। पर ऐसे मालिक को क्षोभ मे डाल देने से मेरा धर्म बिगडेगा। अतः अब मेरी यही प्रार्थना है कि सरकार वैसा ही करें जिसमे मेरे कारण सरकार का चित्त क्षुब्ध न हो।

जो सेवकु साहिबहि सँकोची। निज हित चहइ तासु मति पोची ॥
सेवक हित साहिब सेवकाई। करइ सकल सुख लोभ बिहाई ॥२॥

अर्थ : जो सेवक मालिक को सङ्कोच मे डालकर अपना हित चाहता है उसकी बुद्धि नीच है। सेवक का हित तो इसी मे है कि स्वामी की सेवकाई सब सुखो का लोभ छोड़कर करे।

व्याख्या : सेवक का धर्म बड़ा गहन है। योगियो के लिए भी अगम्य है। जहाँ मालिक पयादे पाँव चले वहाँ सेवक का सिर बल चलना उचित है। यथा सिर भरि जाउँ उचित अस मोरा। अत सेवक का मालिक को सङ्कोच मे डालकर अपना काम निकालना नीचता है।

सेवक का धर्म यह है कि सब सुखो का लोभ छोडकर मालिक की सेवा करे। जो सेवक अपना सुख चाहेगा वह सेवा क्या करेगा ? अत: मैं अपने सुख के लिए तो सरकार को सङ्कोच मे डाल ही नही सकता।

स्वारथु नाथ फिरे सबही का। किये रजाइ कोटि बिधि नीका ॥
यह स्वारथ परमारथ सारू। सकल सुकृत फल सुगति सिंगारू ॥३॥

अर्थ : हे नाथ ! आपके लौटने मे सबका स्वार्थ है। पर आपकी आज्ञा शिरोधार्य करना कोटि गुना अच्छा है। यही स्वार्थ और परमार्थ का सार है। सब पुण्यो का फल है और सुगति का श्रृङ्गार है।

व्याख्या : सरकार के वियोग मे पुर नर नारी विकल हैं। यथा : जरहि बिषम ज्वर पुर नर नारी। अत: सरकार के लौट चलने से उनका ज्वर उतर जायगा। यथा : सब कँह सुखद राम अभिषेकू। वे सुखी हो जायँगे। यह अच्छी बात है। पर इससे करोडगुनी अच्छी बात यह है कि सब आपकी आज्ञा माने। क्योकि सबका कल्याण तो आपकी आज्ञा मानने से ही होगा। गुरुजी ने कह दिया है : राखे राम रजाय रुख हम सबकर हित होइ। क्योकि प्रभु की आज्ञा जिसके लिए जो हो वह उसी भाँति से चलने मे सुख पाता है। मनुष्य प्रेय के लोभ मे आकर श्रेय को हाथ से जाने देते हैं। यह उनकी भूल है। श्रेय तो सरकार के आज्ञापालन मे है। यथा प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई।

सरकार की आज्ञा का पालन ही स्वार्थ का सार है। यथा : स्वारथ साँच जीव कहँ एहा। मन क्रम बचन राम पद नेहा। और परमार्थ का सार भी यह है। यथा : सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम बचन रामपद नेहू। अर्थात् सरकार की भक्ति ही स्वार्थ परमार्थ का सार है और : आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। अर्थात्

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उत्तमोत्तम भक्ति सरकार की आज्ञा का पालन है। यही सब पुण्यों का फल है। यथा : जहँ लगि साधन बेद बखानी। सबकर फल हरि भगति भवानी। और यही सुगति का शृङ्गार है। यथा : सोह न राम प्रेम बिनु ज्ञानू। कर्नधार बिनु जिमि जल जानू। जोग कुजोग ग्यान अग्यानू। जँह नहि राम प्रेम परधानू।

देव एक बिनती सुनि मोरी। उचित होइ तस करब बहोरी॥
तिलक समाजु साजि सब आना। करिअ सुफल प्रभु जौं मनु माना॥४॥

अर्थ : हे देव ! एक विनती मेरी है। उसे सुन लीजिये। तत्पश्चात् जो उचित हो वह कीजिये। तिलक का सब समाज साज करके लाया हूँ। यदि सरकार का जी चाहे तो उसे सफल कीजिये।

व्याख्या : मुनिजी ने आज्ञा दी थी : कृपासिन्धु प्रियबंधु सन कहहु हृदय की बात। सो हृदय की बात कह रहे है कि वन मे ही राज्य देने के लिए तिलक साज सजा सजाया आया हुआ है। यदि सरकार का जी चाहे तो सफल कर दीजिये। यह मेरी विनय है। इसी के लिए गुरुजी ने कहा है : भरत बिनय सादर सुनिय करिय बिचार बहोरि। करब लोकमत बेदमत नृप नय निगम निचोरि। अब इस पर विचार करिये। जैसा उचित समझिये वैसा कीजिये। यह तो प्रथम पक्ष है।

दो. सानुज[1] पठइअ मोहि बन, कीजिअ सबहि सनाथ।
नतरु फेरिअहिं बंधु दोउ, नाथ चलौं मै साथ॥२६८॥

अर्थ : अथवा मुझे छोटे भाई के साथ वन भेज दीजिये और सबको सनाथ कीजिये। यदि यह भी स्वीकार न हो : तो दोनों भाई लौट जायँ मैं साथ चलूँ।

व्याख्या : मुनिजी की सोची हुई बात कह रहे हैं कि दोनो भाइयों मे दायका अदल बदल हो जाय। आप राज्य पर जाइये और मैं वन जाऊँ। इससे लाभ यह होगा कि प्रजा सनाथ हो जायगी। वह सरकार में ही अनुरक्त है। शत्रुघ्नजी विनय भरतजी से कर चुके हैं कि आप वन जाइयेगा तो मुझे अवश्य साथ ले लीजियेगा। अतः शत्रुघ्न सहित वन जाने की आज्ञा माँग रहे हैं। यदि यह भी पसन्द न हो तो तीसरा पक्ष कहते हैं कि दोनों भाई लक्ष्मण शत्रुघ्न घर फिर जायँ और सरकार के साथ मै वन चलूँ। भरतजी का मुख्य आशय यह है कि मुझे सरकार की सेवा का सौभाग्य हो। अयोध्या लौटकर शासन मे हाथ न लगाना पडे। एक क्षण के लिए राज्य भरतजी को स्वीकार नही।

नतरु जाहिं बन तीनिउँ भाई। बहुरिअ सीय सहित रघुराई॥
जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई। करुना सागर कीजिअ सोई॥१॥

अर्थ : नही तो हम तीनों भाई वन जायँ। सरकार जनकनन्दनी के साथ जायँ। जिस प्रकार सरकार का मन प्रसन्न हो हे करुणासागर ! वही कीजिये।

१. यहाँ आक्षेप : प्रथम अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : भाव यह कि सर्व प्रधान विनय तो यह है कि सरकार अपना अभिषेक स्वीकार करें। फिर राजा की इच्छा चाहे जहाँ से राज्य करें। नहीं तो राज्य मे और वन मे अदला बदली हो जाय। यह भी नही तो : कर्ता भोक्ता त्वमेव हि। ऐसा सरकार ने लक्ष्मणजी से कहा है। सो उन्ही को राज्य पर भेज दिया जाय। सहायता के लिए साथ मे शत्रुघ्न रहे और सेवा मे मै रहूँ। यदि सरकार समझें कि वन का शासन इस समय कठिन व्यापार है वह मुझसे ही सधेगा। यथा : पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड काजू। तो आप के स्थान पर हम तीनो भाई वन जायँ। तीनो मिलकर काम सँभाल लेंगे। हवि के विभाग के अनुसार भी रामचन्द्र के हवि के तुल्य शेष तीनो भाइयो का हवि मिलाकर होता है। यथा : अर्ध भाग कौसिल्यहि दीन्हा। उभय भाग आधे कर कीन्हा। इत्यादि।

सीय सहित कहने का यह भाव है कि कही यह आज्ञा न हो कि मैं सीता को लौटा देता हूँ। इतने से हो सन्तोष करो। यथा : जौं सिय भवन रहै कह अबा। मो कँह होइ बहुत अवलबा। यथा : तौ तुम्ह विनय करेहु कर जोरी। फेरिय प्रभु मिथिलेस किसोरी।

भरतजी कहते हैं कि यदि ये चारो विधियाँ नापसन्द हो तो जिस विधि से सरकार का मन प्रसन्न हो वही किया जाय। मैं यह जोर नही देता कि इन चार पक्षो मे से सरकार किसी को अवश्य स्वीकार करें। सरकार करुणासागर है। सरकार जो करेंगे वही ठीक होगा।

देव दीन्ह सबु मोहि अभारू। मोरे नीति न धरम बिचारू॥
कहउँ बचन सब स्वारथ हेतू। रहत न आरत के चित चेतू॥२॥

अर्थ : हे देव ! आप ने सब बोझा मेरे ऊपर रख दिया और मुझे नीति और धर्म का विचार नही है। जो वचन कहता हूँ सो स्वार्थ के लिए कहता हूँ। क्योकि आर्त्त के मन मे विवेक नही रहता।

व्याख्या : भरतजी कहते है कि नीति और धर्म के विचार की यहाँ आवश्यकता है। यह विवेचना करना है कि धर्म मे बाधा भी न हो और अपना स्वार्थ भी सधे। सो मुझमे यह सामर्थ्य नही। यथा एकौ जुगुति न मन ठहरानी। सोचत भरतहि रैन बिहानी। सो बोझा मेरे ऊपर डाला गया है। उसके वहन मे मैं समर्थ नही हूँ। इस पर कहा जा सकता है कि तब तुमने ये चार पक्ष कैसे उठाये ? इस पर भरतजी कहते हैं। इन चारो पक्षो मे मेरा स्वार्थ साधन होता है। स्वार्थ के कारण मैं आर्त्त हो रहा हूँ। आर्त्त को विचार शक्ति नही होती गुरुजी ने ठीक ही हा था : आरत कहहिं विचारिन काऊ। सूझ जुआरिहि आपन दाऊ।

उतरु देइ सुनि स्वामि रजाई। सो सेवकु लखि लाज लजाई॥
अस मै अवगुन उदधि अगाधू। स्वामि सनेहँ सराहत साधू॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : जो स्वामी की आज्ञा सुनकर उत्तर दे उस सेवक को देखकर लज्जा भी लज्जित हो जाती है। मैं ऐसे दोषों का अथाह समुद्र हूँ। यह स्वामी का स्नेह है कि मेरी प्रशसा साधु कहकर कर रहे हैं।

व्याख्या : स्वामी का रुख देखकर ही काम कर देना चाहिए। सेवक का धर्म है कि स्वामी के मन में मन मिलाये हुए उसके मनोनुकूल चले। यथा : जोगवत रहहिं मनहि मन दीन्हें। यदि स्वामी को कहना पड़ा तब तो अवश्य ही कर डालना चाहिए। फिर भी न करे तो लज्जा की बात है और यदि सेवक ने उत्तर दे दिया तो इससे बढ़कर लज्जा की बात क्या होगी : भृत्यश्चोत्तरदायकः। भृत्य का उत्तर देना बड़ा भारी दोष है।

मै तो ऐसा दोष का समुद्र हूँ कि सरकार की आज्ञा पाकर भी स्वीकार नही किया और यहाँ उत्तर देने को खड़ा हो गया। पर सरकार ऐसे करुणासागर हैं कि मेरी साधुता की सराहना करते है कि साधुता के कारण भरत मेरा वचन नही मानता। भरत साधु हैं। यथा : पुन्यसिलोक तात तर तोरे।

अब कृपाल मोहि सो मत भावा। सकुच स्वामि मन जाहि न पावा॥
प्रभु पद सपथ कहहुँ सति भाऊ। जग मंगल हित एक उपाऊ॥४॥

अर्थ : हे कृपाल ! अब मुझे यही मत अच्छा लगता है कि जिसमें स्वामी के मन में सङ्कोच न पाया जाय। प्रभु के चरण की शपथ सच्चे भाव से कहता हूँ कि संसार के मङ्गल के लिए एक ही उपाय है।

व्याख्या : जब सरकार ने कह दिया कि जो भरत कहे उसे आज कर डालूँगा तब तो बात सब पलटा खा गयी। भरत तो सेवक है। सरकार की आज्ञा का पालन करनेवाला है। उसे आज्ञा देने का अधिकार भी नही है। वह ऐसा चाह भी नही सकता। सरकार मालिक हैं। सरकार के मन मे सङ्कोच न हो। प्रसन्न चित्त से आज्ञा दें। मालिक तो वही है जिसकी आज्ञा चले। सरकार आज्ञा दें और उसी के अनुसार सब चलें। यही मेरा अब अभीष्ट है। अतः सरकार के चरण की शपथ लेकर शुद्ध हृदय से कहता हूँ कि संसार के मङ्गल के लिए यही एक उपाय है। सब कहँ सुखद राम अभिषेकू। मंगल मोद मूल मग एकू। सो सरकार की आज्ञा देने से और सबका उसका पालन करने से वह काम हो जाता है। अभिषेक आज हो या दस दिन बाद हो।

दो. प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि, जो जेहि आयसु देव।
सो सिर धरि धरि करिहि सबु, मिटिहि अनट अवरेब॥२६९॥

अर्थ : सरकार प्रसन्न होकर सङ्कोच छोड़कर जिसे जो आज्ञा देंगे वही शिरोधार्य करके सब लोग करेंगे। बड़ा भारी उपद्रव और उलझन मिट जावेगी।

व्याख्या : सरकार ने कहा था : तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि ते अधिक तुम्हार संकोचू। अतः भरतजी कहते हैं कि सोच छोड़ दीजिये। प्रसन्न मन से आज्ञा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दीजिये और सङ्कोच भी न करिये। जिस भाँति सरकार ने भरतजी से कहा था : मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करउँ सो आज। सो भरतजी भी उसी भाँति सरकार पर सब भार छोडते हुए कहते हैं : प्रभु प्रसन्न मन सकुच तजि जो जेहि आयसु देव इत्यादि। सो सिर धरि धरि करिहि सब : कहने का भाव यह कि इस समय भरतजी सम्पूर्ण प्रजावर्ग की ओर से बोल रहे हैं। गुरुजी के किये हुए निर्णय पर आगये ' राखे राम रजाय रुख हम सबकर हित होय। अतः कह रहे है कि आज्ञा पालन से ही यह कठिन अवरेव मिट जायगा। अर्थात् जो कुछ दुःख सुख होगा। वह राजाज्ञा के पालन मे होगा। अतः सरकार के दुःख से दुःखी प्रजा को बहुत बड़ा आश्वासन होगा।

भरत बचन सुचि सुनि सुर हरषे। साधु सराहि सुमन सुर बरषे ॥
असमंजस बस अवध निबासी। प्रमुदित मन तापस बनवासी ॥१॥

अर्थ : भरतजी का वचन सुनकर देवता प्रसन्न हो गये और वाह वाह कहकर उन पर फूल बरसाने लगे। अयोध्या निवासी असमञ्जस मे पड गये और तपस्वी तथा वन के निवासियो का मन प्रसन्न हो गया।

व्याख्या : वचन की शुचिता यही है कि वह सत्य प्रिय और हित हो। इसलिए शुचि कहा अथवा धर्मयुक्त होने से तथा स्वार्थ विहीन होने से भरतजी के वचन को शुचि कहा। सरकार का वचन सुनने से देवताओ के सहित इन्द्र भयभीत हो गये थे। सो भरतजी का वचन सुनकर हर्षित हुए कि जब रामजी पर बात आगयी तो ये अपनी प्रसन्नता से पिता का वचन नही छोडेंगे और अवधवासी भी असमञ्जस मे पड गये कि देखे भरतजी के कहे हुए पक्षो मे से रामजी किसे पसन्द करते है। बहुत सम्भावना तो यही है कि न लौटें। रामजी का वचन सुनकर बेचारे सुखी हो गये थे। सो फिर असमञ्जस मे फँस गये। तपस्वी और वनवासियो ने समझ लिया कि जब रामजी पर बात आगयी तो नही लौटना ही सिद्ध है। अतः सरकार के सहवास के आनन्द से वञ्चित न होगे। भावार्थ यह कि अपने अपने स्वार्थानुकूल लोगो को हर्ष या विषाद हुआ।

चुपहि रहे रघुनाथ सकोची। प्रभु गति देखि सभा सब सोची ॥
जनक दूत तेहि अवसर आए। मुनि बसिष्ठ सुनि बेगि बोलाए ॥२॥

अर्थ सङ्कोची रघुनाथजी चुप ही रह गये। प्रभु की गति देखकर सभा की सभा सोच मे पड गयी। उसी अवसर पर जनकजी के दूत आये। सुनकर वसिष्ठजी ने उन्हे तुरन्त बुलवाया।

व्याख्या : कोउ न राम सम स्वामि सँकोची। सरकार का स्वभाव ही सङ्कोची है। यद्यपि भरतजी ने कहा कि सरकार सङ्कोच छोडकर आज्ञा दें। पर सरकार सङ्कोच नही छोड़ सकते है। कैसे कह दें कि तुम लोग लौट जाओ मै नही जाऊँगा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सब सभा के लोगों को सरकार का सङ्कोच देखकर सोच पैदा हो गया कि ये अयोध्या जाने के लक्षण नहीं हैं।

सरकार सङ्कोच में पड़े हुए चुप हैं। सभा स्तब्ध है कि देखें क्या आज्ञा होती है। तब से प्रतिहारियों ने समाचार दिया कि महाराज जनक के दूत आये हैं। यह समाचार ऐसा आया कि सब काम ही रुक गया। गुरुजी ने कहा कि जल्दी बुलाओ। भाव यह कि जनकजी का समाचार सुनने के पहिले ही रामजी कोई निर्णय न कर दें।

करि प्रनाम तिन रामु निहारे। बेषु देखि भए निपट दुखारे॥
दूतन्ह मुनिबर बूझीं बाता। कहहु बिदेह भूप कुसलाता॥३॥

अर्थ : प्रणाम करके उन्होंने रामजी को देखा तो वेष देखकर बड़े दुःखी हुए। मुनिजी ने दूतों से कहा कि विदेह राजा कुशल कहो।

व्याख्या : दूत लोग सभा मे उपस्थित हुए। प्रणाम करके रामजी को देखा। विवाह के समय देखा था। कहाँ वह वेष और कहाँ वल्कल वसन पहिने और जटा बनाये हुए देखा। अतः दूतों को बडा भारी दु.ख हुआ।

मुनियों में श्रेष्ठ वसिष्ठजी ने इसके पहिले कि दूत कुछ कहें पूछा विदेह राजा का कुशल कहो। भाव यह कि राजा जनक विदेह हैं। उन्हे देहाध्यास नही है। इतना बड़ा अनर्थ अयोध्या में हो गया। जनकपुर से कोई पूछने न आया कि क्या हो रहा है। अतः यह जानने की उत्सुकता है कि महाराज विदेह कुशल से तो हैं?

सुनि सकुचाइ नाइ महि माथा। बोले चरबर जोरें हाथा॥
बूझब राउर सादर साईं। कुसल हेतु सो भयेउ गोसाईं॥४॥

अर्थ : सुनकर सङ्कुचित होकर दूत लोग नमस्कार करके हाथ जोड़े हुए बोले कि आपका जो आदर के साथ पूछना हुआ वही कुशल का कारण हो गया।

व्याख्या : मुनिजी के पूछने की ध्वनि समझकर दूत लोग सङ्कुचित हुए। परन्तु दूतों में ये श्रेष्ठ है। उत्तर देना जानते हैं। उन सबों ने तो पहिल पृथ्वी पर सिर रखकर प्रणाम किया। तत्पश्चात् हाथ जोड़कर : अत्यन्त विनय से बोले।

दूतों ने कहा कि आपने जो आदर के साथ पूछा कि विदेह राजा कुशल से तो है? आपने राजा कुशल से हैं ऐसा नही पूछा। आदर के लिए विदेह विशेषण दिया। वही विदेहता ही कुशल का कारण हो गयी। भाव यह कि अयोध्या के समाचार से महाराज को ऐसी चोट लगी कि विदेह होने के कारण रक्षा हो गयी। नही तो वहाँ भी अनर्थ हो ही चुका था।

दो. नाहि त कोसल नाथ कें, साथ कुसल गइ नाथ।
मिथिला अवध बिसेष ते, जगु सब भयउ अनाथ॥२७०॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ · हे नाथ ! नही तो कोसलनाथ महाराज दशरथ के साथ कुशल चली गयी। सारा जगत् अनाथ हो गया और मिथिला अवध तो विशेषरूप से अनाथ हो गये।

व्याख्या · दूत कहते हैं कि वस्तुस्थिति तो यह है कि कुशल तो कोसलनाथ साथ लेते गये। कोसलनाथ यद्यपि अवध के ही राजा थे पर चक्रवर्ती थे। सभी राजा उनकी कृपा के भिखारी बने रहते थे। यथा · नृप सब रहहिं कृपा अभिलाषे। लोकप करहिं प्रीति रुख राखे। उन पर उनका शासन चलता था। अत महाराज के देहावसान से ससार अनाथ हो गया। महाराज जनक तो सेवक सेव्यभाव रखते थे। यथा · यह राज साज समाज सेवक जानबी बिनु गथ लये। अत मिथिला और अवध विशेषरूप से अनाथ हो गये। क्योंकि इनसे उनका साक्षात् सम्बन्ध था। मिथिला के लोग तो महाराज से ऐसी प्रीति रखते थे दसरथ गवन सोहाइ न काहू। भावार्थ यह कि महाराज के देहावसान का दु ख अवध से कम मिथिला म नही मनाया गया।

कोसलपति गति सुनि जनकौरा। भे सब लोग सोक बस बौरा ॥
जेहिं देखे तेहि समय बिदेहू। नामु सत्य अस लाग न केहू ॥१॥

अर्थ कोसलपति की गति सुनकर जनकपुर के लोग तो मारे शोक के पागल हो गये। उस समय जिसने महाराज विदेह को देखा उसे उनका विदेह नाम सच्चा न मालूम हुआ।

व्याख्या रामजी के विरह मे महाराज के देहावसान के समाचार का ऐसा प्रभाव जनकपुर निवासियो के ऊपर पडा कि सब पागल से हो गये। किसी को अपनी सुधि न रह गयी और महाराज जो मिथिलाया प्रदग्धाया न मे किञ्चित् प्रदह्यते। माननेवाले थे। वे तो ऐसे विकल हुए कि उस समय जिसने उन्हे देखा उसे यही मालूम हुआ कि इनका नाम विदेह नाहक लोगो ने रख छोडा है। इन्हे तो प्रबल देहाध्यास है। समधी के मरने का समाचार पाकर इस भाँति तो कोई सामान्य पुरुष भी विकल नही होता।

रानि कुचालि सुनत नरपालहिं। सूझ न कछु जस मनि बिनु ब्यालहिं ॥
भरत राज रघुबर बनबासू। भा मिथिलेसहि हृदयँ हराँसू ॥२॥

अर्थ रानी की कुचाल को सुनते ही राजा की ऐसी दशा हो गयी जैसे मणि के बिना सर्प की हो जाती है। उन्हे कुछ सूझ ही नही पडता था। भरत को राज और राम का वनवास सुनकर मिथिलाधिपति के हृदय मे अत्यन्त दु ख हुआ।

व्याख्या स्वायम्भू मनु ने वर माँगा था मनि बिनु फनि जिमि जल बिनु मीना। मम जीवन तिमि तुमहि अधीना। सो जल बिनु मीन की दशा महाराज दशरथ की हुई उन्होने प्राण ही त्याग दिया और मणि बिनु फनि की दशा राजा जनक की हुई। यथा मनि बिनु फनि जियै व्याकुल बेहाल रे। और यह सब रानी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



के कुचाल से हुआ । अत: उसका प्रतीकार कुछ नही हो सकता था । यदि दूसरे द्वारा ऐसी बात होती तो महाराज दण्ड विधान करते । अब कुचाल को स्पष्ट करता हुआ दूत कहता है : भरत राज रामहि बनबासू । यह दोनो बातें ऐसी आपड़ी कि कुछ किया नही जा सकता था । भरत का राज्य अनिष्ट नही कहा जा सकता था । पर राम के वनवास से उसका सम्बन्ध जुटने से इष्ट भी नही कहा जा सकता । जैसे राम जामाता तैसे भरत जामाता । यहाँ पुरुषार्थ को एकदम कोई स्थान ही नही था । अतः महाराज के हृदय मे ह्रास हुआ ।

नृप बूझे बुध सचिव समाजू । कहहु बिचारि उचित का आजू ॥
समुझि अवध असमंजस दोऊ । चलिअ कि रहिअ न कह कछु कोऊ ॥३॥

अर्थ : महाराज ने विद्वत् समाज तथा मन्त्रिमण्डल से पूछा कि इस अवसर पर क्या करना चाहिए । अवध के दोनों असामञ्जस्यो को समझकर चलना चाहिए या रह जाना चाहिए । इस प्रश्न पर सब मौन रह गये ।

व्याख्या : अपनी बुद्धि काम करते न देखकर महाराज ने विद्वत् समाज और मन्त्रिमण्डल बुलाया । बडा विकट प्रश्न है । अतः राज्य के सभी बुद्धिमान् इकट्ठे किये गये । प्रश्न यह सामने रक्खा गया कि ऐसे अवसर पर महाराज को क्या करना चाहिए । अयोध्या प्रस्थान करें या यही ठहरकर देखे कि आगे क्या होता है । तब उचित अवसर पर कुछ किया जाय । इसी प्रश्न पर विचार करना था ।

रामजी और भरतजी दोनो दामाद हैं । किसी एक का पक्ष लिया नही जा सकता । जाने पर किसी न किसी का पक्ष ग्रहण करना ही होगा । रामजी वन गये भरत को राज्य मिला । पर इतने से ही मामला ठण्ढा नही हुआ । रामजी के विरह मे चक्रवर्तीजी ने प्राणत्याग किया । प्रजा रामजी मे ही अनुरक्त है । नही तो भरत के राज्य के साथ साथ रामजी को वनवास माँगने का क्या अभिप्राय था ? जब चक्रवर्तीजी ही सामञ्जस्य नही बिठा सके तो दूसरा कैसे बिठा सकेगा ? तिस पर जनकजी का सम्बन्ध ऐसा है कि ये कुछ भी नही कह सकते । अत: न जाना ही ठीक है । पर दूसरा पक्ष यह भी है कि इस समय अयोध्या मे आग लगी हुई है । यथा : बिधि कैकयी किरातिनि कीन्ही । जिन्ह दव दुसह दसहु दिसि दीन्ही । ऐसे समय पर अति सन्निकट सम्बन्धी दूर खडे तमाशा कैसे देख सकते हैं ? अत. इन दोनो असामञ्जस्य को देखकर किसी से कोई निश्चित निर्णय करते नही बना ।

नृपहि धीर धरि हृदय विचारी । पठए अवध चतुर चर चारी ॥
बूझि भरत सतिभाउ कुभाऊ । आएहु वेगि न होइ लखाऊ ॥४॥

अर्थ : राजा ने ही धैर्य धारण करके विचार किया और चार चतुर दूतो को अयोध्या भेजा और आज्ञा दी कि भरतजी का सद्भाव दुर्भाव समझकर जल्द आवो । पर कोई तुम लोगो को लख न सके ।

व्याख्या : महाराज ने देख लिया कि किसी की बुद्धि काम नही करती है ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



धीरजु धर्म मित्र अरु नारी। आपत काल परखिअहिं चारी। सो महाराज ने धैर्य धारण करके स्वय विचार किया कि रानी कैकेयी के कुभाव का पता चल गया। परन्तु भरतजी के मन मे क्या है इस बात का पता बिना लगे कर्तव्य निश्चित नही किया जा सकता। अत अत्यन्त चतुर चार दूतो को बुलाया और उन्हे अयोध्या भेजा कि जाकर के सद्भाव या कुभाव का पता लगावें। वेषभूषा और भाषा आदि से कोई लख न पावे कि ये दूत बाहर से पता लगाने आये हैं और जितना सम्भव हो उतनी शीघ्रता इस काम मे करें।

दो० गए अवध चर भरत गति, बूझि देखि करतूति।
चले चित्रकूटहि भरत, चार चले तिरहूति ॥२७१॥

अर्थ दूत लोग अवध गये। भरत की गति का पता लगाकर और करतूत देखकर जब भरतजी चित्रकूट चल तब दूत मिथिला चले।

व्याख्या वसिष्ठजी के पूछने की ध्वनि समझकर दूत महाराज का हाल भी कहने लगे। भाव यह कि चक्रवर्तीजी के देहावसान का समाचार पाते ही शोक के प्रथम वेग समाप्त होने पर महाराज स्वय अवध चलने को तैयार थे। परन्तु बिना सब बात समझे काम करना उचित न समझकर दूतो को सच्चा पता लगाने के लिए भेजा। ऐसे अवसरो पर राजकाज मे जिन भावो का प्रदर्शन किया जाता है वे प्रायेण वास्तविक नही होते। दूतो से ही असली भेद हाथ लगता है। सो दूत अवध आये। आप लोगो को पता न लगा और सब समाचार लेकर जब भरतजी चित्रकूट चले तब दूत भी मिथिला चल। यही कारण महाराज के देर करने का हुआ। यदि आपके यहाँ से समाचार गया होता तो महाराज के आने मे देर न होती।

दूतन्ह आइ भरत कइ करनी। जनक समाज जथामति बरनी ॥
सुनि गुरु परिजन सचिव महीपति। भे सब सोच सनेह बिकल अति ॥१॥

अर्थ दूतो ने आकर भरतजी की करणी जनकजी की सभा मे यथा बुद्धि वर्णन की। सुन करके गुरु सभासद मन्त्री और राजा सबके सब सोच और स्नेह मे अत्यन्त विकल हो गये।

व्याख्या भरतजी के ही सद्भाव और कुभाव के जानने के लिए दूत भेजे गये थे। अत उन लोगो ने भरतजी की मङ्गलमय करणी का वर्णन राज समाज मे किया और कहा कि हम लोग भरतजी की करणी यथामति कह रहे हैं। नही तो वह अवर्णनीय है।

महाराज उस समय सभा म थे। अत गुरु परिजन और मन्त्री लोग भी थे। यह समाचार सुनकर सब सोच और प्रेम मे मग्न हो गये। सोच रामजी का और प्रेम भरतजी का। रामजी पिता का वचन हटाकर लौट आवेंगे इस बात मे सबको सन्देह है और भरत राज्य स्वीकार नही करेंगे। यह भी निश्चय है। तब हाला

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



क्या है ? इस प्रकार का सोच पैदा हुआ और भरतजी की प्रेम कथा सुनने से सबके मन में प्रेम उमड़ आया।

धरि धीरजु करि भरत बड़ाई। लिए सुभट साहनी बोलाई ॥
घर पुर देस राखि रखवारे। हय गय रथ बहु जान सँवारे ॥२॥

अर्थ : धैर्य धारण करके भरतजी की बड़ाई की। योद्धाओं और सेनापतियों को बुलवाया। घर राजधानी और देश की रक्षा का प्रबन्ध करके हाथी, घोड़े, रथ और बहुत सी सवारियाँ सजायी।

व्याख्या : जिस भाँति चक्रवर्तीजी के निधन पर सबका धैर्य छूट गया था उसी भाँति भरतजी की करणी सुनकर भी सबका धैर्य जाता रहा। पहिली बार भी महाराज ने ही सब के पहिले धैर्य धारण किया। इस बार भी उन्हीं ने ही अपने को सबके पहले सँभाला और निश्चय कर लिया कि चलना चाहिए और देर न होने पावे। भरतजी और रामजी में कोई बात तय पाने के पहले मेरा पहुँचना जरूरी है। ऐसा सोचकर महाराज ने पहले घर की रक्षा की। तत्पश्चात् राजधानी और तत्पश्चात् देश की रक्षा की व्यवस्था की। जहाँ जैसा उचित था सेना और सेनापति स्थापित किये गये और साथ चलने के लिए चतुरङ्गिणी सेना तथा बहुत सी सवारियाँ सजायी गयी। दूतों से सुन चुके हैं कि भरतजी के साथ रनिवास की भी यात्रा हुई है। अतः महाराज ने भी रनिवास का ले जाना उचित समझा। ऐसी आपत्ति के समय बेटी दामाद से मिलने की उन लोगों को उत्कट इच्छा होना स्वाभाविक था।

दुघरी साधि चले ततकाला। किए बिश्रामु न मग महिपाला ॥
भोरहिं आजु नहाइ प्रयागा। चले जमुन उतरन सबु लागा ॥३॥

अर्थ : दुघरी साध के उसी समय चल पड़े। महाराज ने रास्ते में विश्राम भी नहीं किया। आज प्रातःकाल ही प्रयाग स्नान करके चल पड़े। लोग यमुना पार करने लगे।

व्याख्या : काल बल प्राप्त करने के लिए मुहूर्त देखकर ही कार्य करने की विधि है और यात्रा का मुहूर्त बड़ी कठिनता से मिलता है। यहाँ चलने की बड़ी शीघ्रता है। ऐसे अवसर के लिए दुघड़िया मुहूर्त का विधान है। अत्यन्तावश्यकता में उसी से काम लिया जाता है। वह मुहूर्त दो घड़ी में एक बार आ जाता है। अतः तत्काल यात्रा के लिए दुघड़िया साइत देखी गयी। महाराज चल पड़े सो अत्यन्त शीघ्र पहुँचने के लिए रास्ते में विश्राम भी नहीं किया। आज प्रातःकाल प्रयागराज पहुँच गये। त्रिवेणी स्नान करके चल पड़े। बीच में यमुनाजी पड़ी। पार करने की व्यवस्था हुई। लोग उतरने लगे।

खबरि लेन हम पठये नाथा। तिन कहि अस महि नायउ माथा ॥
साथ किरात छ सातक दीन्हे। मुनिवर तुरत बिदा चर कीन्हे ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : हे नाथ ! हम लोगों को खबर लेने के लिए भेजा है। ऐसा कहकर उन सबों ने सिर झुकाया। छः सात किरात साथ देकर मुनिजी ने तुरन्त उन सबों को विदा किया।

व्याख्या : मुनिजी के जिज्ञास्य विषय का उत्तर देकर उन सबों ने पुनः प्रणाम किया। अर्थात् यह दिखलाया कि हम लोगों का इतना ही कथन था। हम लोग तो केवल खबर लेने आये हैं। कोई विशेष बात हम लोगों को नहीं कहनी है।

मुनिजी ने समझ लिया कि महाराज जनक इन लोगों का इन्तजार करते होंगे। अतः इनका रोकना ठीक नही। अतः तुरन्त उनको विदा किया तथा उन सबको सरल मार्ग दिखाने तथा महाराज को सेना सहित सुभीते के रास्ते से लाने के लिए छः सात किरातों को साथ कर दिया।

## जनकागमन प्रसङ्ग

दो. सुनत जनक आगवनु सबु, हरषेउ अवध समाजु।
रघुनंदनहि सकोचु बड़, सोच बिबस सुरराजु ॥२७२॥

अर्थ : जनकजी का आना सुनकर अयोध्या का समाज प्रसन्न हो उठा। रामजी बड़े सङ्कोच में पड़ गये और इन्द्र देवता को तो बड़ा सोच हुआ।

व्याख्या : जनकजी के आने के समाचार मात्र से मामला पलटा खा गया। *अवध निवासी असमञ्जस में पड़े हुए थे सो हर्षित हो गये।* भरतजी का वचन सुनकर देवता हर्षित हो गये थे सो सोच के विवश हो गये। महाराज रामचन्द्र वैसे ही सङ्कोच के वश चुप हो रहे थे सो उनका सोच और भी बढ़ गया। महाराज जनक चक्रवर्तीजी के समकक्ष हैं। इनका बड़ा भारी प्रभाव सब पर है। इनके स्वयं आने का रामजी के लौटाने को छोड़कर दूसरा अर्थ हो नही सकता।

गरइ गलानि कुटिल कैकेई। काहि कहै केहि दूषनु देई ॥
अस मन आनि मुदित नर नारी। भयउ बहोरि रहब दिन चारी ॥१॥

अर्थ : कुटिल कैकेयी ग्लानि से गली जाती है। किस से कहे और किसे दूषण दे। स्त्री पुरुष तो यह बात मन में लाकर प्रसन्न हो रहे हैं कि फिर चार दिन तो रहना हो गया।

व्याख्या : जनकजी का आगमन सुनकर कैकेयी तो ग्लानि के मारे गली जाने लगी कि समधी आ रहे हैं। वे क्या कहेंगे। स्त्रियों को समधी का बड़ा ख्याल होता है। पछताती तो पहिले से ही थी। यथा : लखि सिय सहित सरल दोउ भाई। कुटिल रानि पछितानि अघाई। अब उसकी ग्लानि से बुरी दशा है। ग्लानि से सम्भावित पुरुष को तो मृत्यु हो जाती है। यथा : *कह्यौ राजबन दियो नारिबस गरि गलानि गये राउ।* कैकेयी का इस समय कोई सहानुभूति करनेवाला नही है। जिससे कि वह अपना दुःख कहे। क्योंकि कहने से भी कुछ दुःख घट जाता है और कोई

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ऐसा भी नही है जिसे वह दोप दे कि मैं अमुक के बहकावे मे आगयी। कुबरी को भी दोप नही दे सकती। क्योकि कुलमान्य जठेरी तथा उसके परम प्रिय सखियो ने बहुत समझाया था और अन्त में कह भी दिया : जौ नहिं लगिहौ कहे हमारे। नहिं लागिहि कछु हाथ तुम्हारे। सो सखियो की सलाह छोडकर उसने मतिमन्द कूबरी की बात क्यो मानी ? अत. स्पष्ट सब दोप उसी का था। उसने सखियो की भी सहानुभूति खो दी। अब मन ही मन मर रही है। किसी से कुछ कह नही सकती।

जनकजी के आने का परिणाम क्या होगा ? इस वात पर तर्क वितर्क न करके लोग इतने पर ही प्रसन्न है कि मिथिलेश के आने से चार दिन ठहरने का अवसर और हाथ लग गया।

एहि प्रकार गत बासर सोऊ। प्रात नहान लाग सबु कोऊ॥
करि मज्जनु पूजहि नर नारी। गनप गौरि तिपुरारि तमारी॥२॥

अर्थ : इस प्रकार वह दिन बीता। प्रात काल होते ही सब लोग नहाने लगे। नहा नहाकर स्त्री और पुरुष, गणेश, गौरी और सूर्य का पूजन करते हैं।

व्याख्या : अपने अपने हृद्गत भावो के उधेडबुन मे शेप दिन भी बीत गया। यहां दिन मे रात का भी अन्तर्भाव है। सवेरा हुआ। जनकजी के आने की बात है। इसलिए तुरन्त नित्यकृत्य के निर्वाह मे लग गये। अब अवधवासियो की दिनचर्या कहते हैं।

पहिले स्नान किया। सन्ध्या तर्पणादि का उसी मे अन्तर्भाव है। तब पूजन आरम्भ हुआ। अवधवासी स्मार्त वैष्णव हैं। शिवद्रोही नही हैं। शिव विष्णु मे अभेद है। यथा : माधवोमाधवावीशौ सर्वसम्पद्‌विधायिनौ। वन्दे परस्परात्मनौ परस्पर-नुतिप्रियौ। माधव विष्णु और उमाधव शिवजी दोनों सम्पत्ति के देनेवाले हैं। दोनो एक दूसरे की आत्मा हैं और दोनो को एक दूसरे की वन्दना करना प्रिय है। स्मार्त वैष्णव पञ्चदेवोपासक होते हैं। अत. ये लोग गणपति, गौरी, शिवजी और सूर्य का पूजन करते हैं।

रमा रमन पद बंदि बहोरी। बिनवहिं अंजुलि अंचल जोरी॥
राजा रामु जानकी रानी। आँनद अवधि अवध रजधानी॥३॥

अर्थ : तत्पश्चात् रमारमण विष्णु भगवान् के चरणो की वन्दना करके अञ्जलि और अञ्चल जोड़कर विनय करते हैं कि रामजी राजा हो। जानकी रानी हो और आनन्द की सीमा अयोध्या राजधानी हो।

व्याख्या : यहाँ रमारमण शब्द का अन्वय पूर्व की अर्धाली के साथ है अर्थात् पूजहि क्रिया का कर्म रमारमण शब्द है। पूजन के बाद चरणो की वन्दना करके पुरुप लोग अञ्जलि बाँधकर और स्त्रियाँ अञ्चल जोड़कर विनय करती हैं कि रामजी राजा हो। प्रजा सिवा [illegible]

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जानकी रानी हों। सबकी प्रीति जैसे रामजी मे है वैसी ही जानकीजी मे है। इस मनोहर जोडी के देखते रहने की बड़ी अभिलाषा है। यथा : फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी। देखिहौं नयन मनोहर जोरी।

राजा लोग अपने पसन्द के अनुसार कभी राजधानी बदल भी देते हैं। सो ऐसा न हो राजधानी अयोध्या ही रहे। क्योकि अयोध्या आनन्द की पराकाष्ठा है। सरकार के चार विग्रहो मे एक है। यथा : रामस्य नाम रूपञ्च लीलाधाम परात्परम्। एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद् रामस्य विग्रह.। पाठभेद· एतच्चतुष्टय नित्य सच्चिदान्दविग्रहम्। तथा· अवध प्रभाव जान तब प्रानी। जब उर बसहि राम धनुपानी।

सुबस बसउ फिरि सहित समाजा। भरतहि रामु करहुँ जुबराजा॥
एहि सुख सुधा सीचि सब काहू। देव देहु जगजीवन लाहू॥४॥

अर्थ : फिर आनन्द सहित सब समाज बसे। भरत को रामजी युवराज बनावें। इस सुखरूपी अमृत से सीचकर हे देव ससार मे जीने का लाभ दीजिये।

व्याख्या· भरतजी पहिले ही कह चुके हैं : मिटै कुजोग राम फिरि आये। बसिहि अवध नहि आन उपाये। नही तो सब बारहबाट हो जायेंगे। वही बात आज प्रजा पञ्चदेव की उपासना करके माँगती है कि राजा राम हो जानकी रानी हो इत्यादि। तब यह प्रश्न उठता है कि महाराज ने भरत को टीका देने का वचन दिया है। उसकी क्या गति होगी। इस पर कहते हैं कि चक्रवर्तीजी ने यौवराज्य के टीका का वचन दिया था। सो रामजी भरत को युवराज का टीका कर दें। चक्रवर्तीजी का वचन भी बना रह जाता है।

सब लोग दु सह ज्वर से जल रहे हैं। सो इस सुखरूपी अमृत से पञ्चदेव सबको सीचें। बिना इस अमृत का सिञ्चन किये ज्वर और जलन दोनो न मिटेगी। अभिलाष सबका यही है। यथा· कालि लगन भलि केतिक बारा। पूजिहि बिधि अभिलाषु हमारा। कनक सिंहासन सीय समेता। बैठहि राम होइ चित चेता। उसी अभिलाष मे बाधा पडने से ज्वर है। अभिलाष की पूर्ति ही जीवन का लाभ है। अतः हमारे जीवन का लाभ इसी मे है कि रामजी राजा हो इत्यादि।

दो. गुर समाज भाइन्ह सहित, रामराजु पुर होउ।
अछत राम राजा अवध, मरिअ माँग सबु कोउ॥२७३॥

अर्थ : बडो के समाज के और भाइयो के सहित रामजी का राज्य पुर मे हो और राम के राजा रहते ही सबका देहावसान हो जाय।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी तो चले गये। चौदह वर्ष मे न जाने कितने लोग चले जायँगे। उनका अभिलाप पूरा न हो सकेगा। भरतजी जो स्वयं वन जाने को तैयार हैं। भाइयो को भी साथ ले जाने को कह रहे हैं। सो भी न हो। ऐसा न होने से जो सुख हम लोग चाहते हैं वह पूरा न होगा। यथा : सम दु ख सुख सब

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रोवहिं रानी। और रामजी का वियोग किसी को कभी न हो। हम सबकी मृत्यु रामजी के राजा रहते ही हो जाय।

सुनि सनेहमय पुरजन बानी। निंदहि जोग बिरति मुनि ग्यानी ॥
एहि बिधि नित्य करम करि पुरजन। रामहि करहिं प्रनाम पुलकि तन ॥१॥

अर्थ : पुरजन की प्रेममय वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि योग और वैराग्य की निन्दा करते हैं। इस भाँति नित्यकर्म करके पुरजन रामजी को पुलकित शरीर होकर प्रणाम करते हैं।

व्याख्या : वाणी से पुरजन के प्रेम का उत्कर्ष जानकर ज्ञानी लोग लगे वैराग्य और योग की निन्दा करने। प्रजा राजा के सम्बन्ध के कारण इनकी इतनी प्रीति बढी हुई है। अतः सम्बन्ध ही परतम भाव है। जिससे बिना ध्यान, बिना तप, बिना योग और बिना ज्ञान के श्रीरघुनन्दन पर अव्यभिचारिणी प्रीति होती है। यथा 'एभ्य. परतमो भाव' सम्बन्धाख्य स्वय स्वराट्। विना ध्यानेन तपसा योग ज्ञान विनैव हि। श्रीरघुनन्दने प्रीति पराह्यव्यभिचारिणी। वर्धतेऽनुदिन विप्र सत्य सत्य न चान्यथा'[1]। सो यह सम्बन्धाख्य महाभाव का प्रभाव है कि इन सामान्य लोगो को जिनका ध्यान तप योग से कोई सम्बन्ध नही है रामजी मे ऐसी प्रीति है। अत. वैराग्य और योग सम्बन्धाख्य भाव के सामने कुछ नही है।

नित्य कर्म को विधि ऊपर कह आये हैं। सभी लोग पञ्चदेव की उपासना करके राम सम्बन्धी माँगन माँगते हैं। तत्पश्चात् रामजी को प्रणाम करने के लिए जाते हैं।

ऊँच नीच मध्यम नरनारी। लहहिं दरसु निज निज अनुहारी ॥
सावधान सबही सनमानहि। सकल सराहत कृपानिधानहि ॥२॥

अर्थ : उच्च नीच और मध्यम श्रेणी के नरनारी अपने अपने अनुसार दर्शन पातेहैं। भगवान् : सावधान होकर सबका सम्मान करते हैं और सब कृपानिधान की बड़ाई करते हैं।

व्याख्या . पुर नरनारी मे सात्त्विक राजस और तामस सभी प्रकृति के लोग आये हैं और वे सब सरकार के दर्शन के लिए गये। पर सबको एक रूप दर्शन नही हो रहा है। सात्त्विक रूप का दर्शन पाते हैं। राजसिक राजसरूप का दर्शन पाते हैं और तामसिक तामसरूप का दर्शन पाते हैं। तीनों प्रकार का ध्यान शास्त्रो मे कहा गया है।

सरकार बडी साहिबी मे बडे सावधान हैं। ऐसा नही होता कि कोई उपेक्षित रह जाय। जो राजदर्शन के लिए जाता है सरकार सबका सम्मान करते हैं। यथा : अस कपि एक न सेना माही। राम कुसल जेहि पूछी नाही। सम्मान ही सब

---

१. अहिर्बुध्न्यसंहितायाम्।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दानो मे वडा है। सो सम्मान पाकर सब कृतकृत्य हैं और सरकार की बडाई करते हैं। कहते है कि यह कृपानिधान की कृपा है जो हमारा इतना सम्मान हो रहा है।

लरिकाइहि तें रघुवर वानी। पालत नीति प्रीति पहिचानी ॥
सील सकोच सिंधु रघुराऊ। सुमुख सुलोचन सरल सुभाऊ ॥३॥

अर्थ वचपन से ही सरकार का स्वभाव है कि प्रीति की पहिचान करके नीतिका पालन करते है। श्रीरघुनाथ शील सङ्कोच के समुद्र हैं। उनका श्रीमुख सुन्दर नेत्र सुहावना और स्वभाव सरल है। भगवान् सुमुख हैं। मीठी वाणी वोलते हैं और सुलोचन हैं सदा कृपा दृष्टि से देखते हैं।

व्याख्या रीझत राम सनेह निसोते। प्रीति पहिचान यह रीति दरवार की। पुरलोग कहते हैं कि लोगो मे सद्‌गुण सिखाने से आते है। पर सरकार मे तो यह गुण वचपन से ही दिखायी पडते हैं। प्रीति की पहिचान करके नीति का पालन करते है। व्यवहार यथायोग्य करते हैं। परन्तु प्रीति के पहिचान की झलक वरावर रहती है। शील सङ्कोच के ता समुद्र हैं। सुमुख सुलोचन होने से उसका प्रभाव और भी वढ जाता है। तिस पर सरल स्वभाव होने से उत्कर्ष की सीमा हो जाती है।

शील। यथा चारिउ सील रूप गुन धामा।
तदपि अधिक सुखसागर रामा॥
सङ्कोच। यथा चुपहिं रहे रघुनाथ सँकोची।
प्रभु गति देखि सभा सव सोची॥
सुमुख। यथा सब बिधि सब पुरलोग सुखारी।
रामचद्र मुखचद निहारी॥
सुलोचन। यथा मामवलोक्य पकज लोचन।
कृपा विलोकनि सोच विमोचन॥
सरल सुभाऊ। यथा रामहि मातु वचन सब भाए।
जिमि सुरसरि गत सलिल सुहाए॥

कहत राम गुन गन अनुरागे। सब निज भाग सराहन लागे ॥
हम सम पुन्य पुज जग थोरे। जिनहि रामु जानत करि मोरे ॥४॥

अर्थ रामजी के गुणगणो को कहते कहते अनुराग मे आगये। सब अपने भाग्य की सराहना करने लगे कि हम लोगो के समान पुण्यपुञ्ज ससार मे थोडे ही लोग है। जिन्हे राम अपना करके मानते है।

व्याख्या सरकार के गुणगण ही ऐसे है कि उनके स्मरण करने स अनुराग वढता है। यथा सुमिरि सुमिरि गुनग्राम राम के उर अनुराग बढाउ। उपर्युक्त चौपाई म जो गुणगण सरकार के कहे गये हैं उनके स्मरण करने से रामपद मे अनुराग वढता है। अत उन लोगो का अनुराग बढा। तव अपने अपने भाग्य की

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सराहना करने लगे। ऐसे ही स्थल मे भाग्य की सराहना की उ
सराहना करने से बडे की स्तुति ध्वनित हो।

जो अतिप्रिय हो वही अपना होता है। जिससे प्रेम नही वह
भी अपना नही माना जाता। सरकार हम लोगो को अपना करके जान
हम लोग सरकार को अतिप्रिय हैं। यथा अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी
योगीन्द्र मुनीन्द्र बडे बडे पुण्यपुञ्ज चाहते है कि उनका सरकार पर प्रेम
सरकार हमारे पर प्रेम करते हैं। अत हमारे पुण्य का क्या ठिकाना ?
अपने भाग्य की बडाई करते है।

दो. प्रेम मगन तेहि समय सब, सुनि आवत मिथिलेसु।
सहित सभा सभ्रम उठेउ, रविकुल कमल दिनेसु ॥

अर्थ : उस समय सब प्रेम मे मगन थे। समाचार आया कि मिथिलेश
हैं। अत सभा के सहित सूर्यकुल कमल के सूर्य एकाएक उठ खडे हुए।

व्याख्या सब लोग मिथिलेश के आगमन की आशा से ही नित्यकृत्
निर्वाह करके पास जुट गये थे और सरकार से सम्मान पाकर उनके गुणो के स
से प्रेम मे विभोर हो रहे थे। उन्हे स्मरण भी नही रहा कि क्यो यहाँ इकट्ठे हुए
तब से समाचार मिला कि महाराज जनक आ रहे हैं। महाराज की इतनी प्रति
सरकार की दृष्टि मे है कि घबडाये से उठ खडे हुए और सभा की सभा उसी भ
उठ खडी हुई।

भाइ सचिव गुर पुरजन साथा। आगे गवनु कीन्ह रघुनाथा ॥
गिरिबरु दीख जनकपति जबही। करि प्रनामु रथु त्यागेउ तबही ॥१॥

अर्थ भाई मन्त्री गुरु और पुरजन को साथ लिये हुए रघुनाथजी आगे चले।
राजा जनक ने जब पर्वतो मे श्रेष्ठ चित्रकूट को देखा तो उसी समय प्रणाम करके
रथ से उत्तर पडे।

व्याख्या : सरकार से ज्यो ही जनकराज का आगमन सुना त्यो ही ससम्भ्रम
उठे और उनको आगे से लेने के लिए चल पडे। सभा मे उस समय भाई गुरु और
पुरजन जुटे थे। वे भी साथ ही लिये। अभी राजा जनक इतनी दूर है कि शैलश्रृङ्ग
का दर्शन हुआ ही चाहता है। सो दर्शन होते ही महाराज ने चित्रकूट को प्रणाम
किया और तीर्थ का आदर करते हुए रथ से उत्तर पडे। यहाँ से महाराज जनक
समाज सहित सरकार से मिलने पैदल चले और उधर समाज सहित सरकार उनसे
मिलने पैदल चले आ रहे हैं। जिस भाँति रघुपति शब्द का प्रयोग होता है उसी
भाँति जनकपति शब्द का प्रयोग है।

राम दरसु लालसा उछाहू। पथ श्रम लेसु कलेसु न काहू ॥
मन तहँ जहँ रघुबर बैदेही। बिनु मन तन दुख सुख सुधि केही ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : रामजी के दर्शन की लालसा और उत्साह से रास्ते के परिश्रम के लेश का भी क्लेश किसी को नही है। उनका मन तो रामजी मे लगा था। बिना मन के दु ख सुख की सुध किसको हो।

व्याख्या : राजा जनक के समाज का वर्णन करते हुए कहते है कि श्रीराम जानकी के दर्शन की लालसा और शीघ्र दर्शन की दृढ आशा से सबको ऐसा उत्साह है कि रास्ते चलने मे परिश्रम पडा है। उसके क्लेश का लेश भी किसी मे नही है। जनकपुर से चित्रकूट चले आ रहे हैं और रास्ते मे कही विश्राम भी नही किया। अत सबके थक जाने मे सन्देह नही है। परन्तु कोई थकावट का अनुभव नही कर रहा है। क्योकि सबका मन रामजी मे ऐसा लगा है कि तन की सुध बुध किसी को नही और शीघ्र दर्शन पाने के उत्साह से सब भरे हैं। इससे अयोध्यावासियो सा ही प्रेम मिथिलावासियो का भी दिखलाया।

आवत जनकु चले एहि भाँती। सहित समाज प्रेम मति माती॥
आये निकट देखि अनुरागे। सादर मिलन परसपर लागे॥३॥

अर्थ इस भाँति समाज सहित जनकजी चले आरहे थे। उन लोगो की बुद्धि प्रेम से मतवाली हो रही थी। निकट पहुँचकर सबको अनुराग हुआ और आदर के साथ एक दूसरे से मिलने लगे।

व्याख्या : इस भाँति लालसा उत्साह और प्रेम मे मग्न जनकजी समाज के साथ बढे चले आते थे। उधर से रघुनाथजी समाज सहित आगये। रास्ते मे भेंट हो गयी। दोनो समाज के लोग दूसरे समाज से परिचित हैं। देखते ही अनुराग उमड़ पडा। अत आदर से आपस में मिलने लगे। परिस्थिति मे बडा अन्तर है। इसलिए कवि आनन्द की चर्चा नही कर रहे है। जैसा व्याह के समय किया था। यथा : जनु आनद समुद्र दुइ मिलत बिहाइ सुबेल।

लगे जनक मुनिजन पद वन्दन। रिषिन्ह प्रनामु कीन्ह रघुनन्दन॥
भाइन्ह सहित रामु मिलि राजहि। चले लेवाइ समेत समाजहि॥४॥

अर्थ : जनकजी मुनियो की चरण वन्दना करने लगे और ऋषियो को रामजी ने प्रणाम किया। भाइयो के सहित रामजी महाराज से मिलकर समाज के सहित उन्हे लिवा चले।

व्याख्या : अवध समाज मे रामजी आगे हैं। मिथिला समाज मे जनकजी आगे हैं। अत: गोस्वामीजी पहिले इन्ही की व्यवस्था कहते हैं कि जनकजी तो वसिष्ठ वामदेवादि की वन्दना करने लगे और रामजी शतानन्द विश्वामित्रादि की वन्दना करने लगे। सगे सम्बन्धी से मिलने के पहिले ऋषियो की वन्दना आवश्यक समझी गयी। तत्पश्चात् रामजी भाइयो के साथ महाराज जनक से मिले और उन्हे समाज के साथ लिवा चले। ऐसे अवसर पर रास्ता दिखाने के लिए छोटे भी वडे के आगे चलते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो आश्रम सागर सांत रस, पूरन पावन पाथु।
सेन मनहुँ करुना सरित, लिए जाहिं रघुनाथु ॥२७५॥

अर्थ शान्त रसरूपी पावन जल से भरे हुए आश्रमरूपी समुद्र की ओर मानो सेनारूपी करुणानदी को रामजी लिवाये जा रहे हैं।

व्याख्या जिस भाँति राजा भगीरथ गङ्गाजी को लिवाकर समुद्र म मिला दिया। स्वय रथ पर आगे आगे चले और गङ्गाजी पीछे पीछे चली उसी भाँति रघुनाथजी सेनारूपी सरित को आश्रमरूपी समुद्र की ओर लिवा ले चल। यहाँ आश्रम की उपमा समुद्र से दी। समुद्र क्षीरजल से भरा होता है और आश्रम शान्तरस के जल से पूर्ण है। समुद्र का जल पावन नही होता। केवल विशेष विशेष अवसर तथा विशेष विशेष तीर्थ के योग होने पर ही उसके स्पर्श का विधान है। पर शान्तरस रूपी जल तो सदा पावन है।

सेना की उपमा करुणा नदी से दी। चक्रवर्तीजी के देहावसान के बाद आज ही अवध तथा जनकपुर के समाज से भेट हुई। भेंट होने से घाव ताजा हो गया। दोनो समाज मे करुणा छा गयी। सब विलाप करते जा रहे हैं। इसी से उनकी उपमा करुणा सरित से दिया। रामजी आगे आगे चल रहे हैं। सबको अपने आश्रम मे लिवाये जाते हैं। अत करुणा सरित का लिवा जाना उनके लिए कहा गया है।

बोरति ग्यान बिराग करारे। बचन ससोक मिलत नद नारे॥
सोच उसास समीर तरंगा। धीरज तट तरुबर कर भंगा॥१॥

अर्थ ज्ञान विराग रूपी करारो का डुबोती हुई चली। शोकयुक्त वचनरूपी नदनारे मिलते गये। सोच रूपी हवा से उच्छ्वासरूपी तरङ्गें उठने लगी। धैर्यरूपी तट के वृक्ष गिरने लगे।

व्याख्या समुद्र मे अनेक नदियाँ अनेक दिशाओ से आकर मिलती हैं। यहाँ रामजी के आश्रम की उपमा शान्तरस के समुद्र से दी गयी है। उसमे भी कुछ शान्तिरस की नदियो का आकर मिलना मानना ही होगा। जिन रास्ता से मुनिगण आकर सरकार का दर्शन करते थे उन्हें शान्तिरस की नदिया से उपमित किया जा सकता है। उन्ही रास्तो मे एक वह भी है जिससे रघुनाथजी महाराज जनक को लिवाये जा रहे हैं। आज उस रास्ते से शोकयुक्त समाज जा रहा है। अत वह शान्तिरस की नदी उस अत्यन्त भारी करुणारस की नदी से जिसे रघुनाथजी लिये जाते हैं ऐसी दब गयी है कि उसके ज्ञान विराग के करारे भी डूब गये। ज्ञान विरागरूप करारा शान्तरस की नदी का ही माना जा सकता है। करुणा सरित का नही माना जा सकता। भाव यह कि बडे बडे ज्ञानी विरागी भी करुणारस म मग्न हो रहे हैं। शोक भरे वचन नद और नाले हैं। जिससे नदी की वृद्धि होती जा रही है। सोच से जो उच्छ्वास ले रहे हैं वही मानों वायुजनित तरङ्ग हैं। धैर्यरूपी तट के वृक्ष जो अभी तक बद्धमूल थे इस प्रबल तरङ्ग से छिन्नमूल होकर गिरते जा रहे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हैं। भाव यह कि जिनका धैर्य अभी तक छूटा न था वह भी शोकपूरित उच्छ्वास से छूटा जा रहा है।

विषम बिषाद तोरावति धारा। भय भ्रम भवँर अवर्त अपारा ॥
केवट बुध बिद्या बडि नावा। सकहि न खेइ ऐक नहि आवा ॥२॥

अर्थ विषम विषाद ही त्वरावती धारा है। उसमे भयरूपी भँवर और भ्रमरूपी आवर्त चक्कर पड रहा है। पण्डित लोग विद्यारूपी बडी नाव के केवट है। सो वे नाव के चलाने मे असमर्थ है। क्योकि वे किंकर्तव्यविमूढ हो रहे है।

व्याख्या लोगो मे जो विषम विषाद है वही इस करुणा नदी की तीव्र धारा है। त्वरावती शब्द का प्राकृत रूप तोरावती हुआ। विषाद मे क्या होनेवाला है इस बात का भय उत्पन्न होता है और यथार्थ अनुभव की शक्ति जाती रहती है। इसलिए भ्रम होता है। इसीलिए विषादरूपी धारा का भँवर भय को और आवर्त भ्रम को कहा। भँवर और आवर्त वेगवती धारा मे ही पडते हैं। उसी भाँति विषम विषाद मे भय और भ्रम उत्पन्न होता है।

विषादरूपी धारा के पार करने मे विद्यारूपी नाव द्वारा पण्डितरूपी केवट ही समर्थ हैं। अर्थात् विद्या के बल से पण्डित ही ऐसी समय मे धैर्य बँधा सकते हैं। सो उनका किया भी कुछ नही हो रहा है। विषाद का वेग इतना बढा हुआ है कि उन्हे इस बात का अन्दाज ही नही लगता है कि कैसे धैर्य बँधावें।

बनचर कोल किरात बिचारे। थके बिलोकि पथिक हिय हारे ॥
आश्रम उदधि मिली जब जाई। मनहुँ उठेउ अबुधि अकुलाई ॥३॥

अर्थ बटोहीरूपी विचारे वन के फिरनेवाले काले और किरात उसे देखकर स्थगित हो गये। उनकी हिम्मत छूट गयी। जब वह आश्रमरूपी समुद्र मे जा मिली तो मानो समुद्र आकुल हो उठा।

व्याख्या जिस वेगवती नदी मे बडी बडी नाव और केवट की बुद्धि नही काम करती वहाँ वन मे फिरनेवाले कोल किरात क्या कर सकते है। वे तो विचारे हैं। उनका कोई चारा नही। उनके पास तो छोटी सी भी नाव नही है। उनकी हिम्मत तो इसी नदी को देखकर छूट जाती है। वे किंकर्तव्यविमूढ होकर देखते ही रह जाते हैं।

दु खी समाज को देखकर राह चलते हुए की भी इच्छा होती है कि उनके दु ख का कारण पूछें और उन्हे धैर्य बँधावें। सो यहाँ वन मे विचरनेवाले कोल किरात ही बटोही स्थानीय हैं। वे ही इस दु खी समाज के साथ समवेदना प्रकट करके धैर्य बँधाने का प्रयत्न कर सकते है। पर इस समाज मे इस समय विषाद का इतना वेग है कि बडे बडे ज्ञानी विरागी शोकमग्न हो रहे हैं। इनकी दशा देखकर ही वे अल्पज्ञ कोल किरात स्तब्ध हो गये। उन्हे कुछ भी चेष्टा करने का साहस न हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जब वह करुणा नदी जाकर आश्रमरूपी समुद्र से मिली तो मानो समुद्र आकुल हो उठा। अर्थात् वह शान्त रस से भरापूरा आश्रम इन विषाद करनेवालो के पहुँचने से कोलाहल पूर्ण हो गया।

सोक बिकल दोउ राज समाजा। रहा न ग्यानु न धीरजु लाजा ॥
भूप रूप गुन सील सराही। रोवहिं सोक सिंधु अवगाही ॥४॥

अर्थ : दोनो राज समाज शोक से विकल है। न वहाँ ज्ञान है। न धैर्य है। न लज्जा है। महाराज : दशरथ के रूप गुण और शील की सराहना करके शोक सिन्धु मे स्नान करनेवाले रो रहे हैं।

व्याख्या : जहाँ गङ्गा जाकर समुद्र से मिलती है उसे गङ्गासागर तीर्थ कहते हैं। वहाँ लोग स्नान करते हैं। यहाँ भी करुणा नदी और आश्रम सागर का सङ्गम हुआ है। यहाँ के स्नान करनेवाले यात्री दोनो राज समाज हैं। करुणा नदी के सङ्गम से वह आश्रम शोक सिन्धु हो गया। इसी मे यात्री स्नान करते हैं। अर्थात् शोक से विकल हैं। उनका धैर्य छूट गया है। ज्ञान का कही पता नही। उन्हे रोने मे छाती पीटने मे देह के सँभाल के बाहर हो जाने मे लज्जा नही है। वे स्तुति पाठ की भाँति महाराज चक्रवर्तीजी के रूप गुण और शील की प्रशसा करते हैं और रो रहे हैं।

छं. अवगाहि सोच समुद्र सोचहिं नारि नर ब्याकुल महाँ।
दै दोष सकल सरोस बोलहि बाम बिधि कीन्हो कहाँ ॥
सुर सिद्ध तापस जोगिजन मुनि देखि दसा बिदेह की।
तुलसी न समरथु कोउ जो तरि सकै सरित सनेह की ॥

अर्थ : शोक समुद्र मे स्नान करके स्त्री पुरुष अत्यन्त व्याकुल है। वे ब्रह्मा को दोष देकर रोष के साथ कह रहे हैं कि वामविधि ने क्या कर दिया। देवता सिद्ध तपस्वी और योगी लोगो ने महाराज विदेह की दशा देखी। तुलसीदास कहते है कि ऐसा समर्थ कोई नही है जो स्नेह की नदी का अतिक्रमण कर सके।

व्याख्या · यद्यपि चक्रवर्तीजी के देहावसान हुए एक महीना बीत गया है। दोनो समाज अपना शोक दबाये हुए थे। पर दोनो स्नेहियो का समाज मिल गया है। रामजी का वेष देखकर जनकपुर निवासियो का दु ख फूट पड़ा जो कि उन्हे वरवेष मे देख चुके थे। उनके दु ख फूटने से अयोध्यावासियो का भी दु ख ताजा हो गया। दोनो समाज इस समय रामजी के आश्रम मे ठहरकर रो रहे हैं। उसी दृश्य का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि नर नारी अत्यन्त व्याकुल हैं। उन्होने मानो शोक समुद्र मे स्नान किया है। वे सोच रहे हैं कि क्या हो रहा था और क्या हो गया ? वे इसमे ब्रह्मदेव को दोष दे रहे हैं और क्रोध से कह रहे हैं कि प्रतिकूल होकर ब्रह्मदेव ने यह क्या कर दिया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ऊपर कह आये हैं : रहा न ज्ञान न धीरज लाजा। उसी को यहाँ दिखला रहे हैं। व्याकुल महा : से धैर्य का न रहना कहा। शोक समुद्र मे स्नान से ज्ञान का न रहना कहा। दे दोप सकल सरोप बोलहिं बाम बिधि कीन्ही कहा : से लज्जा न रहना कहा। राजा विदेह मुनियो के भी गुरु स्थानीय हैं। यथा : जासु ज्ञान रवि भव निसि नासा। बचन किरन मुनि कमल विकासा। उनकी दशा सुरसिद्ध तापस योगियो ने देखी कि महा शोकाकुल हो रहे हैं। अत गोस्वामीजी कहते हैं कि जब देहाध्यास रहित जनकजी की यह दशा है तब यही कहना पडता है कि स्नेह की नदी के सन्तरण का सामर्थ्य किसी को भी नही।

सो. किए अमित उपदेस, जहँ तहँ लोगन्ह मुनिबरन।
धीरज धरिअ नरेस, कहेउ बसिष्ठ बिदेह सन ॥२७६॥

अर्थ · जहाँ तहाँ लोगो को मुनियो ने बहुत से उपदेश दिये। वसिष्ठजी ने महाराज से कहा कि राजन्! धैर्य धारण कीजिये।

व्याख्या : डूबते हुए लोगो को सहारा देने के लिए मुनिगण ने हाथ बढाया। अर्थात् स्नेह सरित के पार करने मे लोगो को असमर्थ देखकर महात्मा लोग करुणा करके ज्ञानोपदेश जहाँ तहाँ देने लगे। क्योकि प्रेम का वेग ज्ञान से ही शान्त होता है। यथा परम प्रेम तिनकर प्रभु देखा। कहा बिबिध बिधि ग्यान बेसेखा। यहाँ तो विदेह राजा जिन्हे देहाध्यास नही वे भी स्नेह सरित मे गोता खा रहे हैं। उन्हे कौन उपदेश दे। अत उन्हे वसिष्ठजी ने केवल इतना कहकर सावधान किया कि राजा अपनी जिम्मेदारी को समझें। यदि राजा ही धैर्य छोडेगा तो प्रजा कैसे धैर्य धारण करेगी।

जासु ग्यानु रबि भव निसि नासा। बचन किरन मुनि कमल बिकासा॥
तेहि कि मोह ममता निअराई। यह सिय राम सनेह बड़ाई॥१॥

अर्थ : जिसके ज्ञानरूपी सूर्य से ससाररूपी रात्रि का नाश हो जाता है और वचनरूपी किरण के लगने से मुनिरूपी कमल खिल उठते हैं। उनके निकट क्या मोह ममता आ सकती है? यह तो सीता राम के प्रेम की बडाई है।

व्याख्या : उत्तरकाण्ड मे ज्ञान दीपक का वर्णन है। जिसके प्रकाश से साधक के भेद भ्रम का नाश होता है। आत्मानुभव सुख होता है। परन्तु जनकजी का ज्ञान ऐसा है कि संसाररूपी रात्रि को ही नष्ट कर देता है और उनके वचन ऐसे होते है कि सुनकर मुनि लोग कमल की भाँति खिल उठते हैं। उस ज्ञान रवि के सामने मोह ममतारूपी अन्धकार जा नही सकता। यथा : तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू। उनमे जो मोह ममता दिखलायी पडती है वह भक्ति का उत्कर्ष हैं। मोह ममता नही है। वही स्नेह पुत्र कलत्रादि मे होने से मोह ममता कहलाता है। यदि परमेश्वर मे हो तो भक्ति कहलाता है और परम कल्याण का कारण होता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यथा आत्मारामश्च[1] मुनयो निर्ग्रन्थाअप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्यहैतुकी भक्तिमित्थ भूतगुणो हरि।

बिसई साधक सिद्ध सयाने। त्रिबिध जीव जग बेद बखाने ॥
राम सनेह सरस मन जासू। साधु सभाँ बड आदर तासू ॥२॥

अर्थ विषयी साधक और सयाने सिद्ध इन तीन प्रकार के जीव का होना वेद वर्णन करता है। परन्तु जिसका मन रामजी के प्रेम से सरस होता है। साधु सभा मे उसका बडा आदर होता है।

व्याख्या वेदादि शास्त्र कहते हैं कि तीन प्रकार के ही जीव होते हैं। एक जो विषय मे लिप्त हैं। दूसरे जो सद्‌गति के लिए यत्नशील हैं और तीसरे सयाने सिद्ध अर्थात् जीवन्मुक्त मुनीन्द्र। साधु सभा मे यथास्थान सभी का आदर है। परन्तु बडा आदर तो उसी का है जिसका हृदय रामजी के स्नेह मे सरस हो। चाहे वह विषयी ही क्यो न हो। अर्थात् जिसका चित्त भगवत् चरित्र से द्रवीभूत हो उसी का अत्यन्त आदर होता है। कठोर चित्तवाले का वैसा आदर नही होता।

सोह न राम प्रेम बिनु ग्यानू। करनधार बिनु जिमि जल जानू ॥
मुनि बहुबिधि बिदेहु समुझाए। रामघाट सब लोग नहाए ॥३॥

अर्थ रामजी के प्रेम के बिना ज्ञान की शोभा उसी भाँति नही होती जैसे बिना कर्णधार के जलयान की शोभा नही होती। मुनिजी ने अनेक प्रकार से विदेह राजा को समझाया। सब लोगो ने रामघाट पर स्नान किया।

व्याख्या निरुपास्ति ज्ञान से पतन होता है। इसलिए सोपास्ति ज्ञान की ही प्रशसा है। यथा जे ज्ञान मान बिमत्त तव भय हरनि भगति न आदरी। ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी। ज्ञान और भक्ति से वही सम्बन्ध है जो नाव और कर्णधार मे है। नाव मनुष्य को जल मे डूबने नही देगी। पर वह स्वय लक्ष्य स्थान प्राप्ति कराने अर्थात् पार पहुँचाने मे असमर्थ है। कर्णधार ही उसे पार पहुँचा सकता है। इसी भाँति ज्ञान साधक को भवसागर मे डूबने से बचा सकता है। पर उसके पार नही पहुँचा सकता। पार तो भक्ति ही पहुँचावेगी। यथा बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे। जपि नाम तव बिनु श्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे। भाव यह कि जनकजी का ज्ञान सोपास्ति ज्ञान था।

वसिष्ठजी ने बहुत प्रकार से विदेहराज को समझाया। यथा

जनम होत नृप मरन हित मरन जनम हित होय।
चला चली चहुँदिसि लखिय थिर कतहूँ नहि कोय॥

---

१ आत्माराम मुनिगण जिनकी चिज्जडमयी ग्रन्थि छूट गयी है वे भी भगवान् में निष्कारण भक्ति करते हैं। क्योंकि भगवान् के गुण ही ऐसे हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



थिर मानै गन्धर्बपुर दामिनि सरद पयोद।
सो थिर मानि शरीर को करै विनोद प्रमोद॥
गिरिहु गिरत तारा खसत सूख जाति जल राशि।
ध्रुवहु अध्रुव जग होत है कतहुँ न कोउ अविनाशि॥
शशक शृंग वन्ध्या तनय मृगजल सम जग जानि।
दुख सुख सम करि जानिये, किये शोक हित हानि॥
तुमसे ज्ञान विधान को उचित न करन विषाद।
जानत हौ एहि जगत को तीन काल मे बाध॥
सत्यसन्ध दसरथ नृपति, धर्म निरत जग जान।
तीनि काल तिहु भुवन मे नहि कोउ तासु समान॥
शोचनीय सो होइ नहि मनमह करहु विचार।
करि विवेक धीरज धरहु ज्ञानिन्ह के सरदार॥

शोक भी एक प्रकार का सूतक है। अत सबने रामघाट पर स्नान किया। जहाँ सरकार एक बार स्नान करते हैं उस घाट का नाम रामघाट पड जाता है। सरकार के स्नान से तीर्थ का उत्कर्ष बढ जाता है। शृङ्गवेरपुर मे भी इसी भाँति रामघाट नाम पडा। यथा रामघाट कहँ कीन्ह प्रनामू। भा मनु मगनु मिले जनु रामू।

सकल सोक सकुल नर नारी। सो बासरु बीतेउ बिनु बारी॥
पसु खग मृगन्ह न कीन्ह अहारू। प्रिय परिजन कर कौन बिचारू॥४॥

अर्थ सब नरनारी शोक से परिपूर्ण थे। वह दिन बिना जल के ही बीत गया। पशु पक्षी और मृगो ने भी कुछ न खाया। प्रिय परिजन की तो बात ही क्या है ?

व्याख्या लोगो का शोक ऐसा बढ गया था कि उस दिन किसी ने जल भी ग्रहण नही किया। यद्यपि मुनि लोगो ने बहुत उपदेश दिया। फिर भी शोक का दृढ सस्कार मिटा नही। दोनो समाज के भेंट हो जाने से चोट ताजी हो गयी। उसका प्रभाव वातावरण पर ऐसा पडा कि पशु खग मृग ने भी आहार ग्रहण नही किया। यहाँ पशु से अभिप्राय सेना के हाथी घोडो से है और खग मृग से अभिप्राय वन्य पशु पक्षी से है। जब इन लोगो की ऐसी दशा हुई तब सगे सम्बन्धियो के लिए यह कहना कि उन्होने भी जल नही ग्रहण किया व्यर्थ है।

दो दोउ समाजु निमिराजु रघु, राजु नहाने प्रात।
बैठे सब बट बिटप तर, मन मलीन कृस गात॥२७७॥

अर्थ महाराज जनक और रामचन्द्रजी तथा दोनो समाजो ने प्रात स्नान किया और दोनो जाकर वटवृक्ष के नीचे बैठे। उनके मन मलिन थे और शरीर दुर्बल था।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : रात मे दोनो समाज मे से किसी को नीद नही आयी। शोक से भूख नीद जाती रहती है। सवेरा होने की देर थी। सबने स्नानादि नित्य कर्म किये। तत्पश्चात् वट के पेड तले इकट्ठे हुए। वटवृक्ष का ही इतना बडा होना सम्भव है कि जिसके नीचे दो राजसमाज एकत्रित हो सकें। मन की खिन्नता का ऐसा प्रभाव पडता है कि कल जो हट्टे कट्टे थे यथा : जल ज्यौं दादुर मोर भये पीन पावस प्रथम : वे ही आज कृशगात हो गये है। दृढ मूलक शोक का सस्कार मुनियो के उपदेश से भी नही मिटा। स्नान करने पर भी मन मलिन हो रहे है।

जे महिसुर दसरथ पुर वासी। जे मिथिलापतिनगर निवासी ॥
हंस वंस गुर जनक पुरोधा। जिन्ह जग मगु परमारथु सोधा ॥१॥

अर्थ : दशरथपुर के रहनेवाले जो ब्राह्मण थे और जो जनकपुर के रहनेवाले थे तथा सूर्यवंश के गुरु तथा जनकजी के पुरोहित जिन्होने ससार मे परमार्थ का मार्ग ढूँढ निकाला था।

व्याख्या : जनकजी का आना सुनकर कल मुनि लोग आस पास से आगये थे। उन लोगो ने उपदेश किया था। आज वे लोग नही है और लोगो मे केवल शोक का वेग रुक मात्र गया है। पर भीतर ज्यो का त्यो बना हुआ है। अतः अयोध्या तथा मिथिला के महीसुर जो मोहजनित सशय के हरण मे समर्थ हैं वे लोग तथा सूर्यवश के गुरु ज्ञाननिधि वसिष्ठजी तथा पुरोहित शतानन्दजी जिन्होने ससार मे परमार्थ पथ ठीक कर लिया है कि कैसा आचरण करने से जीव परमार्थ पथ मे अग्रसर होता है।

लगे कहन उपदेस अनेका। सहित धरम नय बिरति बिबेका ॥
कौसिक कहि कहि कथा पुरानी। समझाई सब सभा सुबानी ॥२॥

अर्थ : वे लोक धर्म नीति वैराग्य और विवेक युक्त अनेक उपदेश कथन करने लगे। विश्वामित्रजी ने अनेक पुरानी कथाओ को कहकर सम्पूर्ण सभा को सुन्दर वाणी से समझाया।

व्याख्या : जनकपुर के लोगो को वहाँ के ब्राह्मण, अयोध्या के रहनेवालो को अयोध्या के ब्राह्मण, अयोध्या के राज घराने को वसिष्ठजी तथा मिथिला के राज-घराने को शतानन्दजी उपदेश करने लगे। इन लोगो को परमार्थ का रास्ता मालूम था। अतः इनके उपदेश का प्रभाव पडा। पहिले विषादयोग होता है। तब ज्ञानयोग के उपदेश का अवसर उपस्थित होता है। विषण्ण होकर आर्त्त हो गये थे। अतः इनमे उपदेश की पात्रता आगयी थी। अधिकारानुसार कही धर्म नीतिका उपदेश हो रहा है। यथा : सोचनीय नहिं कोसल राऊ। भुवन चारि दस प्रगट प्रभाऊ। कही विरति का उपदेश। यथा : राम बिरह तजि तन छन भगू। भूप सोच कर कौन प्रसंगू। कही ज्ञान का। यथा : जो तनु धरौं तजौं पुनि अनायास हरि जान। जिमि नूतन पट पहिरै नर परिहरै पुरान।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पीछे से विश्वामित्रजी ने पुरानी कथाएँ, हरिश्चन्द्र, शिवि, दधीचि, रन्तिदेवादि की कथाएँ कहकर सम्पूर्ण सभा को समझाया कि धर्माचरण मे जितना ही कष्ट होता है उतना ही अनुष्ठाता के पुण्य का उत्कर्ष है। विश्वामित्रजी का समझाना। यथा

आया है सो जायगा सुनहु सभासद वृंद।
यहाँ शोक करना नही कोई भी स्वच्छन्द॥
वे हैं धन्य जो धर्म के लिए उठाते कष्ट।
उनका जीना व्यर्थ जो धर्म पन्थ से भ्रष्ट॥
सत्य न छोडा भूप ने दिया देह को छोड।
दुनिया मे हो गया इक नृप दशरथ बेजोड॥
तौल तराजू पर दिया काटि काटि निज मांस।
गुरुता बढी कपोत की शिबि नहिं हुए उदास॥
गये काटते अन्त तक काँप उठा ससार।
कठिन परिक्षा धर्म की धन्य जो पावे पार॥
राज गया रानी बिकी बिके डोम के हाथ।
हरिश्चन्द्र फिर भी नही तजे धर्म का साथ॥
वामन ने बलि को ठगा बलि ने तजा न धर्म।
नाप दिया निज देह को कठिन धर्म का मर्म॥
बढी विरह ज्वाला बडी जल भुन गया शरीर।
सत्य न दशरथ तज सके ऐसे थे मति धीर॥
ऐसे राजा की प्रजा होकरके तुम लोग।
शोक तजो धीरज धरो नश्वर सुख दुख भोग॥

तब रघुनाथ कौसिकहि कहेऊ। हाथ कालि जल बिनु सबु रहेऊ॥
मुनि कह उचित कहत रघुराई। गयउ बीति दिन पहर अढाई॥३॥

अर्थ तब रघुनाथजी ने विश्वामित्रजी से कहा कि हे नाथ! कल सब लोग निर्जल रह गये। मुनिजी ने कहा कि रघुनाथजी ठीक कहते हैं। ढाई प्रहर दिन भी बीत गया।

व्याख्या सबका सोच रघुनाथजी को है। यथा सानुज भरत सचिव सब माता। देखि मोहि पल जिमि जुग जाता विश्वामित्रजी का उपदेश समाप्त होते ही सरकार ने उनसे कहा कि सबको भोजन करने के लिए आज्ञा दीजिये। कल किसी ने पानी तक नही पीया है। अत क्षुधातृषा भी चित्त के दुख बढाने म सहायक है। प्राप्त तो यह था कि आज लोग नित्य की अपेक्षा सवेरे ही भोजन करते।

श्री रघुनाथजी का आशय समझकर मुनिजी महाराज जनक की ओर अभिमुख होकर कहते हैं कि श्री रामजी का कहना उचित है। कल का दिन तो बीता ही

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



आज भी मध्याह्न से ऊपर आधा पहर बीत गया। मध्याह्न तक भोजन कर लेने का विधान है।

रिषि रुख लखि कह तेरहुति राजू। इहाँ उचित नहिं असन अनाजू॥
कहा भूप भल सबहि सोहाना। पाइ रजायसु चले नहाना॥४॥

अर्थ ऋषिजी का रुख देखकर विदेहराज ने कहा कि यहाँ अन्न खाना उचित नहीं। सबको यह बात अच्छी लगी। कहने लगे कि महाराज ठीक कहते हैं और राजा की आज्ञा पाकर नहाने चले।

व्याख्या विश्वामित्रजी का आशय कि अब सब लोगो को भोजन करना चाहिए। समझकर महाराज जनक बोले कि यहाँ आश्रम मे जहाँ कि श्रीरामजी कन्द मूल फल खाते हैं। हम लोगो का अन्न खाना ठीक नही हैं। यह बात सबको ठीक जँची। सब कहने लगे कि महाराज ठीक कह रहे हैं। सब लोग आज्ञा माँग माँगकर मध्याह्न स्नान के लिए चले। तीर्थ म आने से सब लोग त्रिकाल स्नान मन्दाकिनी मे करते हैं। यथा मन्दाकिनी मज्जन तिहुँकाला।

दो तेहि अवसर फल फूल दल, मूल अनेक प्रकार।
लै आये बनचर बिपुल, भरि भरि काँवरि भार॥२७८॥

अर्थ उसी समय बहुत से वनवासी कोल भील फल फूल मूल अनेक प्रकार के भारो बहँगियो मे भर भरकर ले आये।

व्याख्या उधर कोल भिल्लो को आतिथ्य सत्कार की चिन्ता लगी। सो उन लोगो ने बहुत फल फूल कन्द मूल इकट्ठे किये जिसमे सारे समाज का सत्कार हो सके। आतिथ्य सत्कार तो अवधवासियो से पहले ही स्वीकार करा चुके हैं। यथा तुलसी कृपा रघुबस मनि की लोह लै लौका तिरा। सो उसी समय जबकि लोग नहाने चले वे सब बहँगियो मे भर भरकर कन्द मूल फलादि ले आये।

कामद भे गिरि राम प्रसादा। अवलोकत अपहरत बिषादा॥
सर सरिता बन भूमि बिभागा। जनु उमगत आनद अनुरागा॥१॥

अर्थ रामजी के प्रसाद से पर्वत कामदायक हो गया। उसके देखने से विषाद जाता रहता था। तालाब नदी वन और भूमि का विभाग ऐसा था कि मानो आनन्द और अनुराग उमडा पडता है।

व्याख्या अब प्रश्न यह उठता है पर्वत पर इतना कन्द मूल फल कहाँ से आगया कि दोनो समाज के लिए यथेष्ट हो। इसलिए ग्रन्थकार कहते हैं कि रामजी के प्रसाद से वह पर्वत कामद हो गया। कामधेनु कामतरु तो सुना था पर कामद गिरि सुनने म नहीं आया। रामजी के प्रसाद से उस पर्वत मे कामनापूर्ण करने की शक्ति आगयी। जिसने जो कन्द मूल फल जिस परिणाम मे चाहा उसे वह उसी परिणाम म मिला और मनोहर ऐसा हो गया कि उसके देखने से विषाद का नाश

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हो जाय। सब लोग विषण्ण थे। मुनियो के समझाने बुझाने से धैर्य बँधा था। अतः उन पर अनुग्रह करके सरकार ने ऐसी शक्ति पहाड को दी। सर शैल विपिन विभाग मे ऐसी शोभा होती है कि उसके देखने से भगवत् चरणों मे अनुराग उपजता है। यथा : निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा। भयउ रमापति पद अनुरागा। यहाँ भगवत् कृपा से ऐसी शोभा हुई कि उन विभागो से मानो आनन्द और अनुराग उमगा पड़ता है।

बेलि बिटप सब सफल सफूला। बोलत खग मृग अलि अनुकूला ॥
तेहि अवसर बन अधिक उछाहू। त्रिबिध समीर सुखद सब काहू ॥२॥

अर्थ . लताएँ और वृक्ष फल और फूल से युक्त हो गये। खग मृग और भौंरे अनुकूल बोलते थे। उस अवसर पर वन मे अधिक उछाह था। शीतल मन्द सुगन्ध वायु सबको सुख देनेवाली वहती थी।

व्याख्या · ऋतु और कुऋतु की कालगति का उल्लङ्घन करके सभी वेलि विटप पुष्पित और फलित हो गये। इससे वन का कामदातृत्व कहा और खग के अनुकूल बोलने से उसका मनोहरत्व कहा। उस वन मे तो सदा उछाह रहता था। यथा · अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मगल चहुँ ओरा। परन्तु इस अवसर मे उछाह बढ गया। यहाँ तक कि जेठ के महीने मे शीतल मन्द सुगन्धि युक्त वायु चलने लगी। वन का वातावरण ऐसा हो गया कि उसका प्रभाव बिना लोगो पर पडे न रह सके।

जाइ न बरनि मनोहरताई। (जनु महि करत जनक पहुनाई ॥
तब सब लोग नहाइ नहाई)। राम जनक मुनि आयसु पाई ॥३॥

अर्थ : वहाँ की सुन्दरता का वर्णन नही की जा सकती : मानो पृथ्वी जनक आतिथ्य सत्कार कर रही हो। तब सब लोग स्नान करके रामजी जनकजी और मुनिजी की आज्ञा पाकर।

व्याख्या : अवलोकत अपहरत बिषादा · से इस प्रसङ्ग का उपक्रम करके : जाइ न बरनि मनोहरताई : से यहाँ उपसहार करते हैं। कोष्ठान्तर्गत पद राजापुर के प्रति मे नही है और खटकते भी हैं। जाइ न बरनि मनोहरताई · कहने से स्पष्ट है कि यहाँ मनोहरता का वर्णन समाप्त हो गया। जाइ न बरनि मनोहरताई के पहिले ही उत्प्रेक्षा के लिए अवसर था। वर्णन समाप्त करने के बाद उत्प्रेक्षा से उसी प्रसङ्ग को उठाना शोभा नही देता। अत इसे मै क्षेपक मानता हूँ।

देखि देखि तरुबर अनुरागे। जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे ॥
दल फल मूल कंद बिधि नाना। पावन सुदर सुधा समाना ॥४॥

अर्थ : श्रेष्ठ वृक्षो को देखकर पुरजनो को अनुराग हुआ और वे जहाँ तहाँ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

वैसा था। अत
सर शैल विपिन
में में अनुराग
स्नाति पद
मानों आनन्द
॥
॥२॥
र और
ान्व
ल
है



जनकजी की गति देखी कि ये महात्मा स्नेह से विशेष शिथिल हो गये
बड़ा सङ्कोच रघुनाथजी को है।

राम भगतिमय भरतु निहारे। सुर स्वारथी हहरि हिय
सब कोउ राम प्रेममय पेखा। भए अलेख¹ सोच बस ले

अर्थ : भरतजी को देखा कि राम भक्तिमय हो रहे है। तो स्वा
ने हहरकर हाथ पैर ढीला करके हिम्मत छोड दी। सब किसी को
राम प्रेममय हो रहे हैं तो देवता लोग ऐसे सोचवश हुए कि उनका
हो सकता।

व्याख्या : गुरुजी और जनकजी की दशा तो देखी ही थी। अब
को देखते है तो वे रामप्रेममय हो रहे हैं। इन तीनो व्यक्तियो पर देवताओ
चल नही सकती। अत: देवताओ ने भयभीत होकर हिम्मत छोड दी। राम
स्वभाव को देवता जानते हैं कि वे भक्तो के पराधीन से हो जाते है। अत.
लौट जाने के भय से भीत हो गये।

इतना ही नही वहां सभी को राम प्रेममय देख रहे है। अत उनके सोच
अन्त नही है। समझ रहे हैं कि ऐसे प्रेमियो के एक मत होने मे कितनी देर लगेगी

दो. रामु सनेह सकोच बस, कह ससोच सुरराजु।
रचहु प्रपंचहिं पंच मिलि, नाहि त भयउ अकाजु ॥२९४॥

अर्थ : शोकयुक्त होकर देवराज ने कहा कि रामजी सङ्कोची हैं और प्रेम के वश हैं। अत. सब पञ्च लोग मिलकर प्रपञ्च रचो। नहीं तो बात बिगडा चाहती है।

व्याख्या शोक के वश सब देवताओ की ऐसी गति देखकर स्वय देवराज शोकयुक्त होकर बोल उठे कि रामजी का सङ्कोची स्वभाव है और वे स्नेह के वशीभूत हो जाते हैं। अत· अब चुप रहने का समय नही है। सब पञ्च मिलकर माया करो। एक दो की माया से काम न चलेगा। यदि त्रुटि हुई तो काम को बिगड़ने मे देर नही है। यही समय पुरुषार्थ करने का है।

सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही। देबि देव सरनागत पाही॥
फेरि भरत मति करि निज माया। पालु बिबुध कुल करि छल छाया॥१॥

अर्थ : देवताओ ने सरस्वती का स्ममण करके स्तुति की और कहा कि हे देवि! हम लोग शरण मे आये हैं रक्षा करो। अपनी माया करके भरत की बुद्धि फेर दो और छल की छाया करके देवकुल की रक्षा करो।

व्याख्या : सरस्वती का ही आवाहन और स्तुति करके देवता लोगो ने रामा-भिषेक मे विघ्न किया। रामजी को वनवास हुआ। भरतजी के प्रेम के कारण वह

१. यहाँ विरोधाभास . अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हो जाय। सब लोग विषण्ण थे। मुनियो के समझाने बुझाने से धैर्य बँधा था। अतः उन पर अनुग्रह करके सरकार ने ऐसी शक्ति पहाड को दी। सर शैल विपिन विभाग मे ऐसी शोभा होती है कि उसके देखने से भगवत् चरणो मे अनुराग उपजता है। यथा . निरखि सैल सरि बिपिन बिभागा। भयउ रमापति पद अनुरागा। यहाँ भगवत् कृपा से ऐसी शोभा हुई कि उन विभागो से मानो आनन्द और अनुराग उमगा पडता है।

बेलि बिटप सब सफल सफूला। बोलत खग मृग अलि अनुकूला ॥
तेहि अवसर बन अधिक उछाहू। त्रिबिध समीर सुखद सब काहू ॥२॥

अर्थ : लताएँ और वृक्ष फल और फूल से युक्त हो गये। खग मृग और भौंरे अनुकूल बोलते थे। उस अवसर पर वन मे अधिक उछाह था। शीतल मन्द सुगन्ध वायु सबको सुख देनेवाली बहती थी।

व्याख्या : ऋतु और कुऋतु की कालगति का उल्लङ्घन करके सभी वेलि विटप पुष्पित और फलित हो गये। इससे वन का कामदातृत्व कहा और खग के अनुकूल बोलने से उसका मनोहरत्व कहा। उस वन मे तो सदा उछाह रहता था। यथा : अलिगन गावत नाचत मोरा। जनु सुराज मगल चहुँ ओरा। परन्तु इस अवसर मे उछाह बढ गया। यहाँ तक कि जेठ के महीने मे शीतल मन्द सुगन्धि युक्त वायु चलने लगी। वन का वातावरण ऐसा हो गया कि उसका प्रभाव बिना लोगो पर पडे न रह सके।

जाइ न बरनि मनोहरताई। (जनु महि करत जनक पहुनाई ॥
तब सब लोग नहाइ नहाई)। राम जनक मुनि आयसु पाई ॥३॥

अर्थ : वहाँ की सुन्दरता का वर्णन नही की जा सकती . मानो पृथ्वी जनक आतिथ्य सत्कार कर रही हो। तब सब लोग स्नान करके रामजी जनकजी और मुनिजी की आज्ञा पाकर।

व्याख्या : अवलोकत अपहरत बिषादा : से इस प्रसङ्ग का उपक्रम करके : जाइ न बरनि मनोहरताई : से यहाँ उपसहार करते हैं। कोष्ठान्तर्गत पद राजापुर के प्रति मे नही है और खटकते भी हैं। जाइ न बरनि मनोहरताई · कहने से स्पष्ट है कि यहाँ मनोहरता का वर्णन समाप्त हो गया। जाइ न बरनि मनोहरताई के पहिले ही उत्प्रेक्षा के लिए अवसर था। वर्णन समाप्त करने के बाद उत्प्रेक्षा से उसी प्रसङ्ग को उठाना शोभा नही देता। अत इसे मैं क्षेपक मानता हूँ।

देखि देखि तरुवर अनुरागे। जहँ तहँ पुरजन उतरन लागे ॥
दल फल मूल कद विधि नाना। पावन सुदर सुधा समाना ॥४॥

अर्थ : श्रेष्ठ वृक्षो को देखकर पुरजनो को अनुराग हुआ और वे जहाँ तहाँ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जनकजी की गति देखी कि ये महात्मा स्नेह से विशेष शिथिल हो गये। इनका बहुत बडा सङ्कोच रघुनाथजी को है।

राम भगतिमय भरतु निहारे। सुर स्वारथी हहरि हिय हारे॥
सब कोउ राम प्रेममय पेखा। भए अलेख[1] सोच बस लेखा ॥४॥

अर्थ : भरतजी को देखा कि राम भक्तिमय हो रहे हैं। तो स्वार्थी देवताओ ने हहरकर हाथ पैर ढीला करके हिम्मत छोड दी। सब किसी को देखा कि राम प्रेममय हो रहे हैं तो देवता लोग ऐसे सोचवश हुए कि उनका लेखा नही हो सकता।

व्याख्या : गुरुजी और जनकजी की दशा तो देखी ही थी। अब भरतजी को देखते हैं तो वे रामप्रेममय हो रहे हैं। इन तीनो व्यक्तियो पर देवताओ का बल चल नही सकती। अत: देवताओं ने भयभीत होकर हिम्मत छोड दी। रामजी के स्वभाव को देवता जानते हैं कि वे भक्तो के पराधीन से हो जाते हैं। अत: उनके लौट जाने के भय से भीत हो गये।

इतना ही नही वहाँ सभी को राम प्रेममय देख रहे हैं। अत: उनके सोच का अन्त नही है। समझ रहे है कि ऐसे प्रेमियो के एक मत होने मे कितनी देर लगेगी।

दो. रामु सनेह सकोच बस, कह ससोच सुरराजु।
रचहु प्रपंचहि पंच मिलि, नाहि त भयउ अकाजु ॥२९४॥

अर्थ : शोकयुक्त होकर देवराज ने कहा कि रामजी सङ्कोची हैं और प्रेम के वश हैं। अत: सब पञ्च लोग मिलकर प्रपञ्च रचो। नही तो बात विगडा चाहती है।

व्याख्या : शोक के वश सब देवताओ की ऐसी गति देखकर स्वयं देवराज शोकयुक्त होकर बोल उठे कि रामजी का सङ्कोची स्वभाव है और वे स्नेह के वशीभूत हो जाते है। अत: अब चुप रहने का समय नही है। सब पञ्च मिलकर माया करो। एक दो की माया से काम न चलेगा। यदि त्रुटि हुई तो काम को विगड़ने मे देर नही है। यही समय पुरुषार्थ करने का है।

सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही। देवि देव सरनागत पाही॥
फेरि भरत मति करि निज माया। पालु विबुध कुल करि छल छाया ॥१॥

अर्थ : देवताओ ने सरस्वती का स्मरण करके स्तुति की और कहा कि हे देवि! हम लोग शरण मे आये हैं रक्षा करो। अपनी माया करके भरत की वुद्धि फेर दो और छल की छाया करके देवकुल की रक्षा करो।

व्याख्या : सरस्वती का ही आवाहन और स्तुति करके देवता लोगो ने रामाभिषेक मे विघ्न किया। रामजी को वनवास हुआ। भरतजी के प्रेम के कारण वह

---

१. यहाँ विरोधाभास : अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सब प्रयत्न आज निष्फल हुआ चाहता है। अतः इन्द्र की आज्ञा मानकर देवताओं ने प्रपञ्च रचने के लिए फिर सरस्वती का आवाहन किया। उन्हें प्रसन्न करने के लिए स्तुति की। उन्हे सङ्कोच में डालने के लिए शरणागत हुए।

अन्त में अपना प्रयोजन निवेदन करते है कि भरत को बुद्धिरूपी आतप से हम लोग पीड़ित हैं। अतः माया करके भरत की बुद्धि तू फेर दे। माया के आवरण की छाया में हम लोग घोर आतप से बच जायँ। जैसे पहले कर चुकी हो। यथा : अजम पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि।

बिबुध बिनय सुनि देबि सयानी। बोली सुर स्वारथ जड़ जानी॥
मो सन कहहु भरत मति फेरू। लोचन सहस न सूझ सुमेरू॥२॥

अर्थ : देवताओं की स्तुति और विनय सरस्वतीजी ने आकर सुनी। परन्तु सरस्वती बडी सयानी हैं। देवता स्वार्थ के कारण जड़ हो गये है। यह जानकर बोली कि मुझे भरत की बुद्धि फेरने को कहते है। इन्हे नेत्र तो हजार हैं। पर सुमेरु पर्वत नही दीखता।

व्याख्या : इनकी बुद्धि काम नही करती। जहाँ बिबुध कुमुद द्विजराज स्वयं बैठे है। वहाँ विवुध : देवताओ को भय कहाँ? परन्तु देवता स्वार्थान्ध हो गये हैं। इनकी विवेक दृष्टि मारी पडी है। स्थूल दृष्टि हजार होने से भी कोई आँखवाला नही हो जाता। देखो हजार आँख होने पर भी इन्द्र को यह नही सूझ रहा है कि किसकी बुद्धि फेरी जा सकती है और किसकी नही फेरी जा सकती। रामजी के परम प्रेमी की बुद्धि कौन फेर सकता है। उनके स्नेह तक त्रिदेव का मन नही जाता वहाँ मेरी क्या गति है। पहिले जो मैने बुद्धि फेरा था तो मन्दमति मन्थरा की बुद्धि को फेरा था। मन्थरा सेर है और भरत सुमेरु हैं। कहाँ मन्थरा और कहाँ भरत।

बिधि हरि हर माया बड़ि भारी। सोउ न भरत मति सकै निहारी॥
सो मति मोहि कहत करु भोरी। चंदिनि कर कि चंडकर चोरी॥३॥

अर्थ : विधि हरिहर की माया बड़ी भारी है। वह भी भरत की मति की ओर देख नही सकती। उस मति को भोरी करने के लिए मुझे कहते हो। चाँदनी सूर्य को कैसे चुरा सकती है।

व्याख्या : जिसे भरत के स्वरूप का ज्ञान है वह समझ सकता है कि विधि हरिहर ईश्वर है। उनकी माया के बल से ससार की उत्पत्ति पालन और लय हुआ करता है। पर उनकी स्थिति भरत के सामने ऐसी है जैसे क्षीरसागर के सामने काँजी के दो चार बिन्दु। भरत की बुद्धि सूर्य के समान है। मायारूपी अन्धकार उसके सामने टिक नही सकता। मैं तो विधि की आश्रिता हूँ। चाँद की चाँदनी हूँ। मेरे तेज के सामने खद्योत भले ही छिप जायँ। सूर्य कैसे छिप सक्ते हैं। भाव यह

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कि जिस भाँति सूर्य की ज्योति से ही चन्द्र प्रकाशित है उसी भाँति भरत के तेज से ही विधि हरिहर का तेज है। तुम लोगों को भरत के स्वरूप का बोध नहीं है।

भरत हृदय सिय राम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू ॥
अस कहि सारद गइ विधि लोका। बिबुध बिकल निसि मानहु कोका ॥४॥

अर्थ : भरत के हृदय मे राम जानकी का निवास है। वहाँ अन्धकार कहाँ जहाँ सूर्य का प्रकाश है। ऐसा कहकर सरस्वती ब्रह्मलोक चली गयी। देवता लोग ऐसे विकल हो गये जैसे रात को चकवा।

व्याख्या : भरतजी की इतनी बडी महिमा का कारण यह है कि उनके हृदय मे राम जानकी का निवास है। रामजी सूर्य हैं। सीताजी उनकी प्रभा हैं। इसीलिए भरतजी की बुद्धि सूर्यरूप हो रही हैं। भरतजी की महिमा विधि हरिहर से अधिक कही गयी है। वहाँ मायारूपी अन्धकार की गति कहाँ ?

ऐसा कहकर सरस्वतीजी ब्रह्मलोक चली गयी। देवताओ को और कुछ कहने सुनने का अवसर नही दिया। देवताओ के लिए सूर्यास्त हो गया। वे कोक की भाँति विकल हो गये।

दो. सुर स्वारथी मलीन मन, कीन्ह कुमंत्र कुठाटु।
रचि प्रपंचु माया प्रबल, भय भ्रम अरति उचाटु ॥२९५॥

अर्थ : देवता स्वार्थी हैं। उनका मन मलीन है। उन्होने सलाह करके कुसाज साजा। प्रपञ्च, प्रबल माया, भय, भ्रम, अप्रीति और उचाट की रचना की।

व्याख्या : देवताओ को स्वार्थी कहने पर भी मलिन मन कहा। क्योकि सरस्वती के समझाने पर भी उन्हे बोध न हुआ। यथा : तदपि मलिन मन बोध न आवा। भरतजी ने कहा था : सबके सम्मत सर्वहित करिअ प्रेम पहिचानि। तो सबको यदि उचाट हो जाय : भ्रमादि हो जाय तो काम बन सकता है। भरत पर माया नही चल सकती। लोगो पर तो चल सकती है। देवताओ की समष्टि की माया है। इसलिए प्रबल माया कहते हैं। लोगो को वन मे भय लगने लगा। मन मे अस्थिरता आगयी। घर की ओर भी मन दौडने लगा। सरकार की प्रीति भी कम हो गयी। चित्त मे उचाट हो गया।

करि कुचालि सोचत सुरराजू। भरत हाथ सबु काजु अकाजू ॥
गये जनकु रघुनाथ समीपा। सनमाने सब रबिकुल दीपा ॥१॥

अर्थ : कुचाल करके इन्द्र सोचने लगे कि काम का बिगाड या सुधार तो भरत के हाथ मे है। जनकजी तब रामजी के पास गये। रविकुलदीप ने सबका सम्मान किया।

व्याख्या : यद्यपि सब देवताओं ने मिलकर प्रपञ्च : माया रची। फिर भी सबके सरदार होने से इन्द्र का नाम लिया जा रहा है। उन्हीं की आज्ञा से माया

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रची गयी। अब वे सोचने लगे कि जिनके ऊपर माया काम करेगी उनके हाथ में तो कुछ है नहीं। काम का बिगाड़ना या सुधारना तो भरतजी के हाथ में है और उन पर यह माया भी काम नहीं कर सकती। कवि ने : भूप भरत सब साधु समाजू। गे जहँ बिबुध कुमुद द्विजराजू : से प्रसङ्ग छोड़ा था। बीच मे देवताओं का हाल कहने लगे। अब फिर वहीं से प्रसङ्ग उठाते हैं कि जनकजी रामजी के पास पहुँचे। प्रधान होने से उन्हीं का नाम लिया। रामजी ने सबका सम्मान किया।

जब रामजी को सुमन्त चक्रवर्तीजी के यहाँ लिवा चले तब दीप कहा था। यथा : रघुकुल दीपहि चले लवाई। यहाँ जनकजी के सामने भी दीप ही कह रहे है। भानुकुल भानु नहीं कहते अथवा राम और भरत दोनों दीप है। यथा : जानेउ सदा भरत कुलदीपा। बार बार मोहि कहेउ महीपा।

समय समाज धर्म अबिरोधा। बोले तब रघुबंस पुरोधा॥
जनक भरत संबादु सुनाई। भरत कहाउति कही सुहाई॥२॥

अर्थ : रघुवंश के पुरोहित तब समय समाज और धर्म के अनुकूल बोले। उन्होने जनक और भरत की बातचीत कह सुनायी और भरतजी की सोहावनी उक्ति भी कही।

व्याख्या : सरकार ने वसिष्ठजी से कहा था : उचित होय सो कीजिय नाथा। अतः तुरन्त वसिष्ठजी काम मे लग गये। जनकजी के पास गये। उन्हें लिये दिये भरतजी के पास गये। समय समाज और धर्म के अविरोध बोलना ही उचित है। वसिष्ठजी रघुवंश के पुरोहित है। पूज्य है। सब प्रकार से हितचिन्तक हैं। इनका कहना कोई टाल नहीं सकता।

समय ऐसा उपस्थित है कि कोई कुछ निर्णय नहीं कर पाता। जनकजी ने भरत के ऊपर सब छोड़ा कि जो भरत कहे सो किया जाय और भरतजी कहते हैं : राखि राम रुख धर्म ब्रत पराधीन मोहि जानि। सबके सम्मत सर्वहित करिय प्रेम पहिचानि। अवध समाज के मुखिया भरत मैथिल समाज के मुखिया राजा जनक। सो इन्हीं दोनो की सम्मति सारे समाज की सम्मति समझनी चाहिए। ऐसे अवसर पर वसिष्ठ कहते हैं कि मेरी सम्मति यह है।

तात राम जस आयसु देहू। सो सब करइ मोर मत एहू॥
सुनि रघुनाथ जोरि जुग पानी। बोले सत्य सरल मृदु बानी॥३॥

अर्थ : हे तात राम! तुम जैसी आज्ञा दो वही सब करे। मेरा तो यही मत है। सुनकर रामजी दोनो हाथ जोड़कर मृदु वाणी बोले।

व्याख्या : नीति प्रीति परमार्थ और स्वार्थ सबके तुम यथार्थ जानकार हो। अतः सबके सम्मत सर्वहित का निर्णय तुम्हीं कर सकते हो। अत. तुम जो आज्ञा दो वही सब लोग करें। इससे भरत के सेवाधर्म का भी निर्वाह हो जायगा। क्योंकि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इसके बाद जो कुछ भरत करेंगे वह सब करना तुम्हारी आज्ञा का पालन होने से सेवकाई के अन्तर्गत होगा।

यह सुनकर रामजी ने आज्ञा नही दी। बड़ो के सामने जैसा बोलना चाहिए वैसा बोले। दोनो हाथ जोड़कर सत्य सरल और मृदु वाणी बोले।

विद्यमान आपुनि मिथिलेसू। मोर कहब सब भाँति भदेसू॥
राउर राय रजायसु होई। राउरि सपथ सही सिर सोई॥८॥

अर्थ : स्वयं मिथिलेश के विद्यमान होते हुए मेरा कहना सब तरह से गँवारपन है। आपकी और महाराज की जो आज्ञा हो मैं आपकी शपथ खाकर कहता हूँ कि वही मेरे लिए ठीक है और शिरोधार्य है।

व्याख्या : पिता के समान महाराज मिथिलेश है। उनके सामने आज्ञा देना अनुचित है। किसी प्रकार उचित नही है। आप गुरु हैं। आपकी आज्ञा सर्वोपरि है। अतः आप दोनो बडे उपस्थित हैं। आप लोग सम्मति कर लीजिये। वही मुझे शिरोधार्य होगा। इसके लिए मैं आपकी शपथ लेता हूँ। भाव यह कि यदि आप लोगो की यही आज्ञा हुई कि तुम लौट चलो तो मै पिता का वचन छोड़ दूँगा। यही रामजी की सत्य सरल और मृदु वाणी है।

दो. राम सपथ सुनि मुनि जनकु, सकुचे सभा समेत।
सकल बिलोकत भरत मुखु, बनइ न ऊतरु देत॥२९६॥

अर्थ : रामजी की शपथ सुनकर मुनिजी और जनकजी सभा समेत सङ्कुचित हो गये। सब लोग भरतजी का मुख देखने लगे। किसी से उत्तर देते नही बनता।

व्याख्या : धर्म के मर्म के जाननेवाले महापुरुष पिता के वचन के उल्लंघन करने की सम्मति दे नही सकते। तो जब लौटने को कह ही नही सकते तो और कहेंगे ही क्या? अतः किसी को उत्तर नही सूझता। रामजीने सरल बात कही कि मुझे तो बड़ो को बात माननी है। उनका वचन मानकर वन आया। अब स्वयं गुरुजी तथा पिता सदृश मिथिलेश कहे कि तुम लौट चलो तो मैं चलूँ। अब गुरुजी तथा जनकजी धर्मविरोध कैसे करें। इसलिए जवाब नही सूझता। भरतजी का मुख देखते हैं कि तुमसे जो कुछ कहते बने इस समय कहो। क्योंकि तुम्ही इस कार्य मे अग्रसर हो।

सभा सकुच बस भरत निहारी। रामबंधु धरि धीरजु भारी॥
कुसमउ देखि सनेहु सँभारा। बढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा॥१॥

अर्थ : भरतजी ने देखा कि सभा सङ्कोच के वश मे पड़ गयी। तब रामजी के भाई ने भारी धैर्यधारण किया। कुसमय देखकर इस भाँति स्नेह को सँभाला जिस भाँति बढ़ते हुए विन्ध्याचल को अगस्त्यजी ने रोक दिया था।

व्याख्या : भरतजी ने देखा कि रामजी के शपथ पूर्वक कहने से अब किसी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



को उत्तर नही सूझ रहा है। सबके सब सङ्कोच मे पड गये। भरतजी प्रेम से भरे हुए हैं। जनकजी के आ जाने पर स्वयं कुछ कहना नही चाहते। अत्यन्त आवश्यकता पडने पर एक बार बोले थे। अब फिर बिना बोले काम नही चलता। अत भारी धैर्य धारण करके बोले। रामजी भाई हैं। उनको उत्तर देने मे ये ही समर्थ हैं।

कथा है कि किसी समय विन्ध्याचल बढने लगा। उसका इरादा इतना बढने का था जिसमे सूर्यनारायण उसकी परिक्रमा करने लगें जिस भाँति सुमेरु की परिक्रमा करते हैं। इस अस्वाभाविक बढाव को देखकर देवताओ को भय हुआ। वे लोग काशी आकर अगस्त्यजी को लिवा ले गये जो विन्ध्य के गुरु थे। उन्हे देखकर विन्ध्याचल ने साष्टाङ्ग दण्डवत् किया। मुनिजी ने कहा कि जब तक मै दक्षिण से नही लौटता तब तक यो ही पडे रहो। उस समय से विन्ध्याचल का बढना रुक गया। अगस्त्यजी दक्षिण से लौटे ही नही।

यहाँ इतने से ही तात्पर्य है कि भरतजी का प्रेम विन्ध्याचल की भाँति बढता चला जाता था। उसे रोकने से सद्गुणरूपी सुरगण असमर्थ थे। फिर भी भरतजी ने उसे ऐसा रोका जैसे अगस्त्यजी ने विन्ध्याचल को बढने से रोक दिया। अर्थात् प्रेम को प्रसुप्तावस्था मे ला दिया।

यहाँ भरतजी की समता अगस्त्य मुनि से और प्रेम की विन्ध्याचल से है।

सोक कनकलोचन मति छोनी। हरी बिमल गुन गन जगजोनी ॥
भरत बिबेक बराह बिसाला। अनायास उधरी तेहि काला ॥२॥

अर्थ : शोकरूपी हिरण्याक्ष ने निर्मल गुणरूपी जग को उत्पन्न करनेवाली बुद्धिरूपी पृथ्वी को हर लिया था। भरत के विचाररूपी विशाल वराह ने उसका तत्काल उद्धार किया।

व्याख्या : कथा है कि किसी समय हिरण्याक्ष नामी दैत्य पृथ्वी को हरण करके पाताल मे ले गया था। उसे वाराह रूप मे प्रकट होकर भगवान् ऊपर ले आये। यहाँ शोक को हिरण्याक्ष कहा। उसने सबकी बुद्धि हरण कर ली। समष्टि की बुद्धि होने से उसे पृथ्वी से उपमित किया। जिस भाँति पृथ्वी स्थावर जङ्गम का उत्पत्ति स्थान है उसी भाँति बुद्धि भी सब गुणगणो का उत्पत्ति स्थान है। भरत के विवेक ने उसका उद्धार किया। इसीलिए उसे वाराह कहा। भरत के विवेक से सबको बात सूझने लगी। यह बात किसी को न सूझी कि सरकार से कहे कि आप पिता का वचन मानिये। भरत नही मान रहे हैं। उन्हे मानने के लिए आज्ञा दीजिये। आपकी आज्ञा से भरत सब करें। उनका सेवाधर्म न बिगडे।

करि प्रनामु सब कहँ कर जोरे। रामु राउ गुर साधु निहोरे ॥
छमब आजु अति अनुचित मोरा। कहउँ बदन मृदु बचन कठोरा ॥३॥

अर्थ : भरतजी ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। तत्पश्चात् श्रीरामजी का

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जनकजी का गुरुजी का और साधुओं का निहोरा किया और बोले कि आज मेरे अत्यन्त अनुचित आचरण को क्षमा कीजियेगा। मैं कोमल मुख से कठोर बातें कहता हूँ।

व्याख्या पहिले प्रणाम किया। तत्पश्चात् रामजी जानकीजी गुरुजी और साधुओं से क्षमा करने के लिए निहोरा किया कि आज मैं अत्यन्त अनुचित कर रहा हूँ। बात सरकार से और गुरुजनों से हो रही है। इस बीच म मेरा हस्तक्षेप अनुचित है और तिस पर मैं कठोर कहूँगा जो कहना कि मेरे ऐसे व्यक्ति के लिए शोभा नहीं देता। अत मेरे इस भारी अनुचित कर्म को आप लोग क्षमा करें। इसके लिए मैं निहोरा करता हूँ।

हियँ सुमिरी सारदा सुहाई। मानस ते मुख पकज आई॥
विमल विवेक धरम नय साली। भरत भारती मजु मराली॥४॥

अर्थ हृदय से स्मरण करते ही सुन्दर सरस्वती मानस से मुखकमल मे आगयी। भरतजी की सरस्वती निर्मल विवेक धर्म और नीतिवाली सुन्दर हसिनी रूप थी।

व्याख्या · यह भरतजी की सरस्वती हैं। अत बडी सुन्दर है। भरतजी ने उनका स्मरण किया। ये उनके मानस मे रहती हैं। इसलिए उन्हे मराली कहा। स्मरण करते ही भरतजी के मुख म आगयी। वाणी की सुन्दरता तभी है जब उसम विवेक धर्म और नीति तीनो का याग हो। वाणीरूपी हसिनी गुणरूपी पय और दोषरूपी जल को अलग करती हैं। पर यह हसिनी धर्म और नीति से भी युक्त हैं। अत अधिक सुन्दर है।

दो निरखि विवेक विलोचननि, सिथिल सनेह समाजु।
करि प्रनामु बोले भरतु, सुमिरि सीय रघुराजु॥२९७॥

अर्थ विवेकरूपी नेत्र से सारे समाज को स्नेह से शिथिल देखकर उन्हे प्रणाम किया और राम जानकी को स्मरण कर भरतजी बोले।

व्याख्या रामजी के स्नेह में मग्न समाज को देखकर भरतजी ने उस समाज को प्रणाम किया। यदि समाज का समाज प्रेममग्न हो तो वह सब प्रकार से प्रणम्य हो जाता है। बोलने के पहिले रामजानकी के स्मरण का भाव यह कि अपनी बात का सही उत्तर आप ही मेरे द्वारा दीजिये।

प्रभु पितु मातु सुहृद गुर स्वामी। पूज्य परम हित अतरजामी॥
सरल सुसाहिबु सील निधानू। प्रनतपालु सर्बग्य सुजानू॥१॥

अर्थ : हे प्रभो! आप पिता माता सुहृद परमहित अन्तर्यामी हैं। आप सरल सुस्वामी शीलनिधान प्रणतपाल सर्वज्ञ और सुजान हैं।

व्याख्या यहाँ भरतजी ने अठारह विशेषण दिये हैं। जिनमे सात तो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बन्धबोधक हैं और शेष सरकार के गुणो के व्यापक है। ये ही विरदावली हैं नका वर्णन भरतजी करेंगे। अगस्त्य सहिता मे सम्बन्ध को परतम स्वराट् भाव ुा है। इसके द्वारा बिना ध्यान और बिना योग के बिना तप के और बिना न के श्री रघुनन्दन मे परा अव्यभिचारिणी प्रीति नित्य बढती ही रहती है। ा : एभ्य परतमो भावो सम्बन्धाख्य स्वयं स्वराट्। बिना ध्यानेन तपसा योग न विनैव हि। श्रीरघुनन्दने प्रीतिः पराह्यव्यभिचारिणी। वर्धतेऽनुदिन विप्र सत्य य न चान्यथा। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं : मोहि तोहि नाते अनेक मानिये जो वै। सो भरतजी ने सात सम्बन्ध माने। पिता माता सुहृद गुरु स्वामी पूज्य र परम हित के सम्बन्ध। यहाँ पर भरतजी ने भाई के सम्बन्ध को नही गिनाया। ोकि उसके लिए कह आये हैं . दसरथ सुअन राम लघु भाई। दीन्ह मोहि बिधि दि बड़ाई। अङ्गद ने तीन सम्वन्ध माना था गुरु का पिता का और माता का। ा . मोरे तुम प्रभु गुरु पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जल जाता। यहाँ तो त सात सम्बन्ध हैं। भाव यह कि मैं आपको छोड़कर कहाँ जा सकता हूँ।

प्रभु यथा . राजाराम स्वबस भगवानू।
पितु यथा : ज्येष्ठ भ्राता पितु. समः।
मातु यथा : रामहि बधु सोच दिन राती।
अडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती॥
सुहृद यथा ' सिसुपन ते परिहरेउ न संगू।
कबहु न कीन्ह मोर मन भगू॥
गुरु यथा : वेद पुरान सुनहि मनलाई।
आप कहहि अनुजहि समुझाई॥
स्वामी यथा : जेठ स्वामि सेवक लघु भाई।
पूज्य यथा . पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते।
सब मानिये राम के नाते॥
परमहित यथा . भरत सरिस प्रिय को जगमांही।
कवहुँ न कीन्ह मोर मन भगू।

अब सरकार के सद्गुण कहते हैं कि श्रीमद से लोग टेढे हो जाते हैं। यथा : ीमद वक्र न कीन्ह केहि। पर सरकार महान् श्रीमान् होने पर भी सरल है। रकार सुस्वामी हैं। अपनी ओर देखकर कुसेवक का भी भरण करते हैं। यथा : म सुस्वामि कुसेवक मोसो। निज दिसि देखि दयानिधि पोसो। तिस पर भी शील ाधान हैं। सेवक की ढिठाई पर ध्यान नही देते। यथा प्रभु तरु तर कपि डारपर किये आपु समान। तुलसी कहूँ न राम से साहिब सील निधान। प्रणत के पालन रनेवाले हैं। यथा : सकृत प्रणाम किये अपनाये। सर्वज्ञ हैं। यथा : तुमसे कछु न ापी करुनानिधि तुम ही अन्तरजामी। सुजान है। जन के जी की बात जानते हैं। था . राम सुजान जान जन जी की। समर्थ हैं। दोप अपनी क्रिया उन पर नही कर कते। यथा समरथ कहुँ नहि दोप गोसाईं। रवि पावक सुरसरि की नाईं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



समरथु सरनागत हितकारी। गुनगाहकु अवगुन अघहारी॥
स्वामि गोसाइँहि सरिस गोसाईं। मोहि समान मै सांइ दोहाईं॥२॥

अर्थ : समर्थ हैं। शरणागत के हित करनेवाले हैं। गुणग्राहक हैं। अवगुण और पाप के नाश करनेवाले हैं। हे स्वामी ! मालिक तो मालिक से ही हैं और मैं भी अपने ही जैसा हूँ। स्वामी की शपथ लेकर कहता हूँ।

व्याख्या : समर्थ के विषय मे ऊपर कह आये हैं। अथवा समर्थ शब्द का अन्वय शरणागत हितकारी के साथ है। भाव यह कि सरकार शरणागत के हित करने मे समर्थ हैं। यथा : जौं सभीत आवा सरनाई। रखिहौं ताहि प्रान की नाईं। सरन गये प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा। सरकार गुणग्राहक हैं। यथा : देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने। सरकार अवगुन अघहारी हैं। यथा : करौ सद्य तेहि साधु समाना।

अनन्वयालङ्कार से अपने इस कथन का तात्पर्य कहते हैं कि न तो आप सा भला स्वामी कही है और न मुझ सा बुरा सेवक ही कोई है। यथा : राम सो खरो है कौन मोसो कौन खोटो। राम सो बड़ो है कौन मोसो कौन छोटो। अब अपनी खोटाई कहते हैं :

प्रभु पितु बचन मोह बस पेली। आयेउँ इहाँ समाजु सकेली॥
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू। अमिअँ अमरपद माहुरु मीचू॥३॥

अर्थ : प्रभु और पिता के वचन को मोह के वश हटाकर यहाँ समाज इकट्ठा करके आया हूँ। संसार मे बुरा भला ऊँचा और नीचा अमृत अमरपद विष और मृत्यु है।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि भलाई मे मेरे मालिक का जोड़ नही और खोटाई मे मेरा कोई जोड़ नही। मैं ऐसा खोटा कि अज्ञान के वश में आकर प्रभु सम्मत पिता के वचन को न मानकर मैं यहाँ समाज इकट्ठा करके आया। भाव यह कि प्रभु और पिता के वचन मानने मे विचार को स्थान नही है। इस पर विचार करना ज्ञान नही है अज्ञान है। सो प्रभुसम्मत पिता के वचन का मैंने स्वय तो उल्लङ्घन किया ही और आपसे भी उल्लङ्घन कराने के लिए गुरु माता सचिव तथा पुरजनो को इकट्ठा करके यहाँ ले आया। इस बात का भी विचार न किया कि आज्ञा कोई हटा नही सकता। चाहे भला हो चाहे बुरा हो। चाहे ऊँचा हो चाहे नीचा हो। चाहे अमृत हो चाहे विष हो। चाहे अमरपद हो चाहे मृत्यु ही हो। सबको मानना पड़ता है।

राम रजाइ मेटि मन माँही। देखा सुना कतहुँ कोउ नाँही॥
सो मइ सब विधि कीन्ह ढिठाई। प्रभु मानी सनेह सेवकाई॥४॥

अर्थ : पर जिसने रामजी की आज्ञा को मन से भी मेटा हो ऐसा कही भी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



किसी को न देखा न सुना। सो मैंने सब प्रकार से ढिठाई की। पर स्वामी ने उस ढिठाई को स्नेह और सेवा मान लिया।

व्याख्या उपर्युक्त भलो और बुरो मे कितनो को तो मैने देखा है और कितनो को सुना है। पर ऐसा सामर्थ्य कही किसी मे न पाया जो आपकी आज्ञा मन से भी मेट सके। भाव यह नट मर्कट इव सबहि नचावत। राम खगेस बेद अस गावत। तथा प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई। प्रभु आज्ञा अपेल श्रुति गाई। करहु सो बेगि जो तुम्हहि सोहाई।

मैंने ऐसे प्रभु की आज्ञा को सब प्रकार से न मानने की ढिठाई की। यह मेरी खोटाई है और उस ढिठाई को स्नेह और सेवकाई मान लेना यह सरकार का अघहारित्व है।

दो. कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषन भे भूषन सरिस, सुजसु चारु चहुँ ओर ॥२९८॥

अर्थ अपनी कृपा और भलाई से नाथ ने मेरा भला किया। मेरे दूषण ही भूषण हो गये और सुन्दर सुयश चारो ओर फैल गया।

व्याख्या जग अनभल भल एकु गोसाईं। कहिअ होइ भल कासु भलाईं। सा मुझम भलाई थी ही नही। सरकार ने कृपा करके ऐसी भलाई की कि मेरे दूषण ही भूषण हो गये। मेरी ढिठाई लोगो की दृष्टि मे स्नेह और सेवा के रूप म परिणत हो गयी। सरकार ने प्रशसा कर दिया भयउ न भुवन भरत सम भाई। सो मेरा सुन्दर सुयश चारो ओर फैल गया। यह सरकार का गुणग्राहकत्व है।

राउरि रीति सुबानि बडाई। जगत बिदित निगमागम गाई ॥
क्रूर कुटिल खल कुमति कलकी। नीच निसील निरीस निसकी ॥१॥

अर्थ आपकी सुन्दर रीति आपका सुन्दर स्वभाव आपकी बडाई ससार म प्रसिद्ध है। उसका गान वेद शास्त्र ने किया है। जो क्रूर, कुटिल, खल, कुबुद्धि, कलङ्की, नीच, दु शील, नास्तिक और नि शङ्क है।

व्याख्या सरकार की रीति ही ऐसा है कि पतिता को पवित्र करते हैं। इसी से पतितपावन विरद है। यथा ऐसी कौन प्रभु की रीति। बिरद हेतु पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति। स्वभाव ऐसा सुन्दर है कि नीच से भी प्रीति करते हैं यदि उसम प्रेम हो। यथा श्रीरघुबीर की यह बानि। नीच हूँ सो करत प्रीति सुप्रीति उर अनुमानि। बडाई अर्थात् महिमा की तो सीमा ही नही है। यथा महिमा अमित न कहि सकहिं सहस सारदा सेस। यह बात छिपी नही है। ससार जानता है। वेद और शास्त्रो म इसकी प्रशसा है। यह सरकार का समरथ सरनागत हितकारित्व है।

क्रूर म दया नही हाती और दया म ही सब धर्मों का निवास है। यथा दया म बसत नाथ सकल धरम। कुटिल म सरलता नही हाती। कुटिल ही दुरात्मा है। उसके मन वाणी और कर्म म एकवाक्यता नही। यथा मनस्यन्यत् वचस्यन्यत्

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कर्मण्यन्यत् दुरात्मनाम् । खल निष्कारण ही दूसरे की बुराई करते हैं। यथा खल बिनु कारण पर अपकारी । तामसी बुद्धिवालो की विपरीत बुद्धि होती है। वे अधर्म को ही धर्म समझते हैं। हित को अनहित समझते हैं। यथा : तव उर कुमति बसी बिपरीता । हित अनहित मानहुँ रिपु प्रीता। कलङ्की को दुनिया बुरा कहती है। यथा : कुल कलंक जेहि जनम्यौ मोही । अपजस भाजन प्रिय जन द्रोही। लोक वेद से बहिष्कृत को नीच कहते हैं। यथा : लोक वेद बाहर सब भाँती। आचारहीन को दु:शील कहते हैं। उन्हे वेद भी पवित्र नही कर सकते। यथा : आचारहीन न पुनन्ति वेदा । निरीश ही असुर हैं। यथा : मानहिं मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहिं सेवा । जिनके अस आचरण भवानी । ते जानहु निसिचर सब प्रानी। नि:शङ्क से भाव यह कि जिनको परलोक का डर नही । यथा स्वारथ बस परलोक नसाही । ये शरण में रखने जाने के पात्र नही हैं।

तेउ सुनि सरन सामुहे आए । सकृत प्रनाम किहे अपनाए ॥
देखि दोष कबहु न उर आने । सुनि गुन साधु समाज बखाने ॥२॥

अर्थ : वे भी सुनकर जहाँ सामने आये और एक बार प्रणाम किया तहाँ आपने अपना लिया। देखकर भी दोष को हृदय में स्थान नही देते। गुणो को सुनकर भी साधुसमाज मे बखान करते हैं।

व्याख्या : ऐसे क्रूर कुटिल खल से सभी दूर भागते है। पर सरकार की बात दूसरी है। आपके सामने यदि ऐसा पुरुष भी आपके गुण गणों को सुनकर शरण में आवे तो एक बार प्रणाम करने से ही आप उसे अपना लेते है। पहिली बात यह है कि आपके सुयश सुनने से उसे यह सङ्कल्प हो कि मैं ऐसे के अनुकूल चलूँगा। इनके प्रतिकूल का परित्याग करूँगा और उसे विश्वास हो जाय कि सरकार निश्चय मेरी रक्षा करेंगे मैं इन्हीं को अपना रक्षक मानूँगा। मुझ से तो सब बिगड़ गया और अपने को सरकार को समर्पण कर दें तो सरकार एक प्रणाम से प्रसन्न होकर उसे अपना बना लेते हैं। वह तदीय हो जाता है।

यथा : सनमुख होइ जीव मोहि जबही । जनम कोटि अघ नासहिं तबही।
जौ नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही।
तजि मदमोह कपट छल नाना । करौं सद्य तेहि साधु समाना।

उसके एक प्रणाम से रामजी प्रसन्न हो जाते हैं। उस प्रणाम की बडी महिमा है। यहाँ : प्रनत पाल सरबज्ञ सुजानू का साफल्य दिखलाया।

उसके दोषो को कभी हृदय मे स्थान नही देते। देखते हुए भी नही देखते।

यथा : जेहि अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली।
फिरि सुकठ सोइ कीन्हि कुचाली॥
सोइ करतूति बिभीषन केरी।
सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तेहि भरतहि भेंटत सनमाने।
गजमर्गा रघुवीर बखाने॥

जो सदोष हो चुका उससे चूक भी हो जाय तो वह फिर परित्यक्त नहीं होता। ऐसा सुन्दर सरकार का स्वभाव है। अब बड़ाई कहते हैं।

को साहिब सेवकहि नेवाजी। आपु समाज साज सब साजी॥
निज करतूति न समुझिअ सपनें। सेवक सकुच सोचु उर अपने॥३॥

अर्थ : ऐसा कौन स्वामी है जो सेवक पर कृपा करके अपने सब समाज और साज साज दे। अपनी करतूत पर स्वप्न में भी ध्यान न दे। यदि सेवक को सङ्कोच हो तो अपने मन में सोच हो।

व्याख्या : सेवक कैसा भी हितचिन्तक हो पर उसे कोई बराबरी का दर्जा नहीं देता। पर रामजी की यह बड़ाई है कि उसका स्वय समाज साज देते हैं।

यथा बालि त्रास ब्याकुल दिन राती।
तन बहु ब्रन चिंता जर छाती॥
सो सुग्रीव कीन्ह कपि राऊ।
अति कृपाल रघुबीर सुभाऊ॥
प्रभु तरुतर कपि डारपर ते किये आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सील निधान॥

सरकार का स्वभाव बडा विस्मरणशील है। स्वय जो जो भलाई किया है उसे भूल जाते है और सेवक को यदि सङ्कोच हो तो उन्हे मन मे सोच होता है अर्थात् सङ्कोच मिटाने का प्रयत्न करते हैं। यथा : सकुच बिहाय मागु नृप मोही। तथा मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करउँ सोइ आजु।

सो गोसाईं नहिं दूसर को पी। भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी॥
पसु नाचत सुक पाठ प्रबीना। गुन गति नट पाठक आधीना॥४॥

अर्थ ऐसा मालिक दूसरा कोई नहीं है। मैं भुजा उठाकर और प्रण करके कहता हूँ। पशु नाचते हैं और तोता पाठ करने मे प्रवीण होता है। परन्तु गुण और गति नट और पाठक के अधीन होता है।

व्याख्या भरतजी कहते हैं कि मालिक तो बहुत हैं। पर ऐसा मालिक कोई है नहीं। भुजा उठाकर प्रण रोपकर मैं कहता हूँ : सारी सभा में सबका साक्षी देने के लिए भुजा उठाकर प्रण किया जाता है। यथा : निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह। कि : स्वामि गोसाइँहि सरिस गोसाईं।

सरकार ने जो कहा : भयउ न भुवन भरत सम भाई इत्यादि। उसपर भरतजी कहते है कि इसमे मेरी करतूत कुछ नहीं। पशु नाचता है। उसके नृत्य की गति नट के आधीन होती है। उसकी शिक्षा के अनुसार वह नाचता है। तोता श्लोक

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पढ़ता है। वह कुछ नही समझता। जैसा सिखाया हुआ है वैसा कहता है। सो मेरे में जो गुण दिखायी पड़ते हैं वे सरकार की प्रेरणा से हैं। यह अन्तर्यामित्व है।

दो. यों सुधारि सनमानि जन, किये साधु सिरमोर।
को कृपालु बिनु पालिहै, बिरदावलि बरजोर ॥२९९॥

अर्थ : इस भाँति अपने जन को सुधारकर और सम्मान देकर साधुओं का सिरमौर बना दिया। कृपालु के बिना ऐसी बाँकी विरदावली का कौन बल पूर्वक पालन कर सकता है।

व्याख्या : मुझमे गुण कहाँ। जो दिखायी पड़ते हैं वे सरकार के सिखाये हैं। यथा : बेद पुरान सुनहिं मन लाई। आप कहहिं अनुजन्ह समुझाई। अथवा मैने तो ढिठाई की। न पिता की आज्ञा मानी न सरकार की शिक्षा मानी। परन्तु सरकार ने बलपूर्वक बिगड़ी हुई बात को सुधार दिया। यथा : सुनहु लखन भल भरत सरीखा। बिधि प्रपच मह सुना न दीखा। सम्मान दिया। यथा : उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निपग कहुँ तीरा। साधु सिरमौर बनाया। यथा : भरतहिं होइ न राजमद बिधि हरि हर पद पाइ। कबहुँ कि काँजो सीकरन्हि छीर सिंधु बिनसाइ। यहाँ : प्रभु पितु मातु सुहृद गुर स्वामी। पूज्य परम हित का साफल्य दिखलाया।

सोक सनेह कि बाल सुभाएँ। आयेउँ लाइ रजायसु बाएँ ॥
तबहुँ कृपाल हेरि निज ओरा। सबहि भाँति भल मानेउ मोरा ॥१॥

अर्थ : शोक से स्नेह से या बाल स्वभाव से आज्ञा को हटाकर मै यहाँ आया। फिर भी कृपालु ने अपनी ओर देखकर सभी भाँति से मेरा भला ही माना।

व्याख्या : भरतजी अपना दोष कहते हैं कि मैं स्वय निश्चय नही कर सकता कि मै यहाँ क्यो आया ? शोक के कारण आया कि स्नेह के कारण आया कि बाल-स्वभाव से आया। यहाँ बाल का अर्थ अज्ञानी है। अर्थात् स्वभाव से मै अज्ञानी हूँ। उसी स्वभाव की प्रेरणा से आया है। चाहे जैसे आया पर आज्ञा उल्लंघन करके ही आया। क्योकि आज्ञा पालन मे विचार को स्थान नही है। यथा : मातु पिता गुरु प्रभु कै बानी। बिनहिं बिचार करिअ सुभजानी। शोक यथा : राम लखन सिय बिनु पग पनही। करि मुनिबेप फिरहि बन बनही। एहि दुख दाह दहै दिन छाती। भूख न बासर नींद न राती।

स्नेह यथा : देखे बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ।

बाल सुभाएँ यथा : आन उपाउ मोहि नहिं सूझा।

सरकार कृपालु हैं। अपनी ओर देखते हैं। जन के दोप को नही देखते। जब मुझ से आज्ञा भङ्ग का अपराध नही हुआ था तब तो भला मानना ही था। यथा : तात बचन पुनि मातु हित भाइ भरत अस राउ। मो कह दरस तुम्हार प्रभु सब मम पुन्य प्रभाउ। आज्ञा भङ्ग करने पर भी भला ही माना। नही तो मैं इस योग्य

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दानन्द दिनेश कहा। ऐसे महाप्रभु की शपथ लेकर अपनी रुचि कहते हैं। जो जाग्रत अवस्था में तो सदा बनी ही रहती है। स्वप्न भी जाग्रत के सस्कार के अनुरूप ही होता है। अत स्वप्न मे भी यही रुचि सस्कार रूप से रहती है। घोर निद्रा के समय म भी वह बीज रूप से रहती है। गुरुजी ने सरकार को मेरी रुचि रखने को कहा। सरकार भी उसके रखने के लिए सब तरह से तैयार हैं। अत मैं उसे कहे देता हूँ।

सहज सनेह स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई॥
अग्या सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसादु जन पावइ देवा॥२॥

अर्थ स्वामी की सेवा मे स्नेह हो। चारो फल सम्बन्धी स्वार्थ रूपी छल छोडकर हो। अच्छे स्वामी की सबसे बडी सेवा आज्ञा पालन है। वही प्रसाद आपका दास चाहता है।

व्याख्या सच्ची सेवा मे स्वार्थ ही छल है और जितने स्वार्थ है वे अर्थ धर्म काम और मोक्ष के अन्तर्गत हैं। अत इनसे रहित स्वामी की सेवा मे सहज स्नेह चाहता हूँ। कपट प्रीति या कृत्रिम प्रीति नही चाहता। सेवा मे भी सबसे बडी स्वामी की आज्ञा है। अत आप कृपा करके आज्ञा दें। उसी का मैं पालन करूँ। आपकी आज्ञा से जो कुछ मैं करूँगा। वही सरकार की सेवा हो जायेगी। अत अब मैं यही प्रसाद चाहता हूँ कि मुझे आज्ञा हो कि भरत ! तू यह कर। बस इतना ही मेरा अभीष्ट है।

अस कहि प्रेम बिबस भए भारी। पुलक सरीर बिलोचन बारी॥
प्रभु पद कमल गहे अकुलाई। समउ सनेहु न सो कहि जाई॥३॥

अर्थ ऐसा कहकर भारी प्रेम के वश हुए। उनके शरीर मे पुलक हो आया। आँखें डबडबा आयी। सरकार के चरण को व्याकुल होकर पकड लिया। उस समय का वह स्नेह कहा नही जाता।

व्याख्या पहिले स्नेह सँभाला था। बढत विन्ध्य जिमि घटज निवारा। परन्तु इस बात के निवेदन करने मे वह स्नेह नही सँभल सका। फूट चला। अत एकदम प्रेम के विवश हो गये। उन्हे सात्त्विक भाव हो गया। प्रेम मे डूबने लगे। आधार की भाँति चरण को व्याकुल होकर पकड लिया। भरतजी को सब दुःख स्वीकार है। पर सरकार असामञ्जस्य मे न रहे।

कृपासिंधु सनमानि सुबानी। बैठाये समीप गहि पानी॥
भरत बिनय सुनि देखि सुभाऊ। सिथिल सनेह सभा रघुराऊ॥४॥

अर्थ कृपासिन्धु ने सुन्दर वाणी से सम्मान करके हाथ पकडकर बैठाया। भरतजी का विनय सुनकर और स्वभाव देखकर सारी सभा और स्वयं रामजी स्नेह से शिथिल हो गये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्धाली मे 'तापर राम प्रेम सिसु सोहा' कहकर वर्णन किया। यही प्रेम जनकजी के ज्ञान का अवलम्बन हुआ। तापस वेष मे सीताजी को देखकर जो प्रेम बढा उसी की समता अक्षय वट से दी गयी है। उसी के आधार पर रामप्रेम था। जनकजी के लिए रामप्रेम का आधार सीताप्रेम का ही होना स्वाभाविक है। वही प्रेम ज्ञान का अवलम्बन हुआ। उसी से विशेष परितोष हुआ।

अब परितोष का रूप कहते हैं कि इस पतिप्रेम से रघुकुल निमिकुल दोनो पवित्र हुए। ऐसा सती बेटी के उत्पन्न होने से पितृकुल और पतिकुल दोनो पवित्र हो जाते हैं। सो तेरा सुयश ससार मे फैल गया। सभी कहते हैं कि धन्य है ससार जिसमे ऐसी स्त्रीरत्न उत्पन्न होती है।

जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवनु कीन्ह बिधि अड करोरी॥
गग अवनि थल तीनि बडेरे। एहि किए साधु समाज घनेरे॥२॥

अर्थ : तुम्हारी कीर्तिरूपी नदी गङ्गाजी को भी जीतकर करोडो ब्रह्माण्ड मे चली गयी। गङ्गाजी के तीन बडे स्थल पृथ्वी पर हैं। पर इस कीर्ति ने बहुत से साधु समाज बनाये।

व्याख्या : जनकजी कहते हैं कि त्रिपथगा गङ्गा तो केवल तीनो लोको मे गयी हैं। पर तेरी कीर्तिरूपी नदी तो करोडो ब्रह्माण्डो मे पहुँच गयी। गङ्गाजी ने केवल तीन बडे तीर्थ बनाये। १ हरद्वार २ प्रयाग और ३ गङ्गा सागर। पर तेरी कीर्ति नदी ने न जाने कितने साधु समाज बना दिये। जो तीर्थ को भी तीर्थ बनाते हैं। यथा 'तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि'। भाव यह कि धर्म के लिए कष्ट सहने का ऐसा उदाहरण तुमने स्थापन किया कि कितने लोग धर्म के लिए कष्ट सहने को खडे हो जावेंगे और यही साधुता है।

पितु कह सत्य सनेह सुबानी। सिय सकुच महुँ मनहुँ समानी॥
पुनि पितु मातु लीन्हि उर लाई। सिख आसिष हित दीन्हि सुहाई॥३॥

अर्थ : पिता तो सच्ची स्नेह युक्त सुन्दर वाणी कहते थे। पर सीताजी तो मानो सङ्कोच मे गडी जाती थी। फिर पिता माता ने उन्हे गले से लगा लिया और हितकर शिक्षा तथा आशीर्वाद दिया।

व्याख्या : जनकजी ने प्रेम से सच्ची बात प्रशसा के रूप मे कहा। यह पिता के मुख से अपने पतिप्रेम की प्रशसा सुनकर सीताजी अत्यन्त सङ्कुचित होती जाती थी। स्नेहमयी वाणी यथा : 'पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ'। सत्य वाणी यथा 'सुयस धवल जग कह सब कोऊ'। सुवाणी यथा : 'जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी' इत्यादि :

अति प्रेम से फिर पिता ने और माता ने हृदय से लगाया। कवि वात्सल्य दिखलाते हुए कहते हैं कि पिता माता ने शिक्षा दी कि इसी भाँति धर्मपालन करने से ही दोनो लोक बनता है इत्यादि और आशीर्वाद दिया। यद्यपि यहाँ सीताजी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



द्वारा वन्दना नही लिखा। फिर भी आशीर्वाद देने से प्रणाम का अनुमान करना पडेगा।

कहति न सीय सकुचि मनमाही। इहाँ बसब रजनी भल नाही॥
लखि रुख रानि जनायउ राऊ। हृदयँ सराहत सीलु सुभाऊ॥४॥

अर्थ सीताजी मन मे सङ्कोच करती हुई यह कह न सकी कि यहाँ रात को रहना ठीक नही। रानी ने रुख समझकर महाराज को सूचित किया और मन से शील स्वभाव की प्रशसा की।

व्याख्या सीताजी रामजी के साथ वानप्रस्थ धर्म से रहती है। सरकार को : मुनि ब्रत बेष अहार · की आज्ञा पिता द्वारा मिली हुई है। वानप्रस्थावस्था मे क्षत्रिय पत्नी के साथ शयन करें और दोनो के बीच से साक्षीरूप से खड्ग रक्खा रहे। अत: रामजी के पास जाना आवश्यक था। पर सङ्कोच से कह नही सकती थी। पर उनका रुख देखकर माँ समझ गयी। हृदय से सीताजी के शील स्वभाव की प्रशसा करती हुई महाराज जनक से जाकर कहा कि सीताजी कहती नही है पर उनका जाना आवश्यक है।

दो. बार बार मिलि भेंटि सिय, बिदा कीन्ह सनमानि।
कही समय सिर भरत गति, रानि सुबानि सयानि॥२८७॥

अर्थ · सीताजी से बार बार मिलकर और सम्मान करके उन्हे विदा किया और चतुर रानी तो ठीक अवसर देखकर भरत का हाल सुन्दर वाणी से कह सुनाया।

व्याख्या · अत्यन्त प्रेम के कारण बार बार मिली। समय ऐसा था कि विदाई मे कुछ दे नही सकते थे। अत. सम्मान करके ही सीताजी को विदा किया। कौसल्याजी ने कहा था : रानि रायसन अवसर पाई। अपनी भाँति कहब समुझाई। सो सयानी रानी ने अच्छा मौका देखकर भरतजी का हाल सुन्दर वाणी द्वारा राजा से कहा कि भरत का प्रेम ऐसा है कि इन्हे घर लौटाने मे बड़ा खतरा मालूम होता है। इनका प्रेम भी महाराज दशरथ सा ही है। एक गलती हो चुकी है कि महाराज दशरथ को लोगो ने रामजी के पास वन मे नही भेजा। अब दूसरी गलती भरत को अयोध्या भेजकर न करनी चाहिए। बल्कि लक्ष्मण को अयोध्या भेज दिया जाय इत्यादि।

सुनि भूपाल भरत ब्यवहारू। सोन सुगध सुधा ससि सारू॥
मूँदे सजल नयन पुलके तन। सुजसु सराहन लगे मुदित मन॥१॥

अर्थ : राजा ने भरत का व्यवहार सुनकर जो सोने मे सुगन्ध और चन्द्रमा के सारभूत अमृत सा था आँखें मूद ली और शरीर उनका पुलकित हो गया तथा प्रसन्न मन होकर उनके सुयश की प्रशसा करने लगे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : गति और व्यवहार समानार्थक शब्द हैं। उस व्यवहार को सोना सा कहा। पर सोने में सुगन्ध नहीं स्वाद नहीं। इस व्यवहार रूपी सोने में सुगन्ध भी है और अमृत सा स्वाद भी है। व्यवहार में सोनापन भरतजी का स्वभाव है। यथा : कनकहि बान चढ़ै जिमि दाहे। कनकौ पुनि पखान ते होई। जारेउ सहज न परिहरि सोई। कसे कनक मनि पारिख पाये। पुरुष परखियहि समय सुभायें। सुवास से भाईपन कहा। यथा : १. अवलोकनि बोलनि मिलनि प्रीति परसपर हास। २. भायप भलि चहु बंधु की। १ जल माधुरी २ सुवास। सुधा ससि सारू से भक्ति कहा। यथा : राम सनेह सुधाकर सारू। भाव यह कि भरत का व्यवहार अलौकिक सोना है जो इस संसार में नहीं है। अमृत भी अनेक प्रकार का होता है। वह भी अमृत ही था जिसे पाताल में पीकर भीमसेन बलवान हुए थे। पर वह उन्हें अमर न कर सका। वह पाताल लोक का अमृत था। परन्तु चन्द्रमा में जो अमृत है उसे देवता लोग पान करते हैं। वह अमृतों में भी उत्तम कोटि का है। इसी भाँति भरतजी की भक्ति भी उत्तम कोटि की है।

ऐसे व्यवहार को सुनकर महाराज जनक को सात्त्विक भाव हुआ। आनन्द से उन्होंने आँखें बन्द कर ली। रोंगटें खड़े हो गये। बोल न सके। मन ही मन सुयश की सराहना करने लगे। भाव यह कि तन मन वचन से प्रेम में मग्न हो गये। मूँदे सजल नयन से तन की दशा कही। सुजस सराहन लगे से वचन की दशा कही और मुदित मन से मन की दशा कही।

सावधान सुनु सुमुखि सुलोचनि। भरत कथा भव बंध बिमोचनि ॥
धरम राजनय ब्रह्मबिचारू। इहाँ जथामति मोर प्रचारू ॥२॥

अर्थ : राजा ने कहा कि हे सुमुखि सुलोचनि ! भरत की कथा भवबन्धन से छुड़ानेवाली है। तुम सावधान होकर सुनो। धर्म राजनीति और ब्रह्मविचार इन विषयों में यथामति मेरी पहुँच है।

व्याख्या : जनकजी प्रिया होने से सुमुखि सुलोचनि सम्बोधन देते हैं। अथवा रानी का नाम सुलोचनि . सुनयना है और सुमुखि नाम का विशेषण है। भरत की कथा असाधारण है। उसके सुनने से भवबन्धन कट जाता है। यथा ' भरत चरित करि नेम तुलसी जे सादर सुनहिं। सीय रामपद प्रेम अवसि होइ भवरस बिरति। अतः मैं जो कहता हूँ उसे सावधान होकर सुनो।

मेरी गति तीन विषयों में है। धर्मशास्त्र में राजनीति में और ब्रह्मविद्या में। इन तीनों विषयों की यदि कोई बात हो तो उसमें मैं अपनी सम्मति दे सकता हूँ। अपनी बुद्धि के अनुसार निर्णय भी कर सकता हूँ।

सो मति मोर भरत महिमाही। कहइ काह छल छुअति न छाँही ॥
बिधि गनपति अहिपति सिव सारद। कबि कोबिद बुध बुद्धि बिसारद ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भरत चरित कीरति करतूती । धरम सील गुन बिमल बिभूती ॥
समुझत सुनत सुखद सब काहू । सुचि सुरसरि रुचि निदरि सुधाहू ॥४॥

अर्थ वह मेरी बुद्धि भरत की महिमा का क्या वर्णन करे। उसकी छाया को भी छल छू नहीं पाता। ब्रह्मदेव गणेश शेष सारद कवि कोविद और बुद्धि विशारद पण्डित के लिए भरत का चरित कीर्ति करतूति धर्म शील गुण और निर्मल ऐश्वर्य सुनने और समझने में तो सबको सुखद है और गङ्गाजल सा पवित्र और अमृत से अधिक सुस्वादु है।

व्याख्या महाराज जनक कहते हैं कि वह मेरी बुद्धि जो धर्मशास्त्र राजनीति और ब्रह्मविचार मे काम कर जाती है भरत महिमा कहने मे कुण्ठित हो जाती है। किसी विषय के कथन करने मे उसे सीमित करना पडता है। उसका आदि अन्त कहना पडता है। महिमा का विचार वही तक है जहाँ तक छल का स्पर्श नही है। छल का स्पर्श होते ही महिमा समाप्त हो जाती है। अत जहाँ तक छल नही है वही तक महिमा का वर्णन होता है। पर भरत की महिमा की छाया का छल स्पर्श नही करता। अत उसका वर्णन हो तो कैसे हो ?

१ विधि, २ गणपति, ३ अहिपति, ४ शिव, ५ शारद, ६ कोविद कवि और ७ बुद्धि विशारद पण्डित। ये ही सात बडे वर्णन करनेवाले हैं। इन सब लोगो को १ भरत का चरित्र, २ कीर्ति, ३ करतूति, ४ धर्म, ५ शील, ६ गुण और ७ निर्मल विभूति, समझने और सुनने मे सुखद है।

१ विधि को चरित्र सुखद सृष्टि रक्षा के कारण। यथा
सोक सिंधु बूडत सबहि तुम अवलब न दीन्ह।

२ गणपति को कीर्ति सुखद विघ्न विनाशकारी होने से। यथा
समन अमित उतपात सब भरत चरित जप जाग।

३ शेषजी को करतूति सुखद पृथ्वी सँभालने से। यथा
भरत भूमि रह राउर राखी।

४ शिवजी को धर्म सुखद रामभक्ति होने से। यथा
रामभगति मय भरत निहारे॥

५ शारदा को शील सुखद स्वार्थ रहित होने से। यथा
परमारथ स्वारथ सुख सारे।
भरत न सपनेहु मनहु निहारे॥

६ कवि कोविद को गुण सुखद रसास्वाद होने से। यथा
करहु सो प्रेम प्रगट को करई।
केहि छाया कबि मति अनुसरई॥

७ बुद्धि विशारद पण्डित को विमल विभूति सुखद शिक्षामय होने से। यथा
भरतहि होइ न राज मद बिधि हरिहर पद पाइ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



क्योंकि ये गङ्गाजल की भाँति पवित्र है। छलहीन होने से और अमृत से भी मीठे हैं। राम प्रेममय होने से।

दो. निरवधि[1] गुन निरुपम पुरुषु, भरतु भरत सम जानि।
कहिअ सुमेरु कि सेर सम, कबिकुल मति सकुचानि ॥२८८॥

अर्थ : असीम गुणवाले उपमारहित पुरुष भरत भरत के ही समान हैं। सुमेरु को क्या सेर के समान कहा जायगा ? इसलिए : कवि समाज की बुद्धि सङ्कुचित हो गयी।

व्याख्या : भरत के गुणो की सीमा नही इसलिए निरवधि कहा और उनकी उपमा भी नही इसलिए निरुपम कहा। अनन्वयालङ्कार देते हुए महाराज कहते हैं कि भरत के समान भरत ही है। दूसरे लोगों से समानता दी नही जा सकती। अन्य लोगो में और भरत मे उतना ही अन्तर है जितना कि सुमेरु पर्वत और सेर : बटखरे मे है। अतः दूसरे से उपमा देने मे कवि की बुद्धि सङ्कुचित होती है कि इतना बड़ा वैपम्य होते हुए उसे सामान्य धर्म मे लाना ठीक नही।

अगम सबहि बरनत बर बरनी। जिमि जलहीन मीन गमु धरनी ॥
भरत अमित महिमा सुनु रानी। जानहि रामु न सकहि बखानी ॥१॥

अर्थ : हे श्रेष्ठ वर्णवाली ! सभी के लिए वर्णन करना अगम है। जैसे जल रहित पृथ्वी पर मछली की गति नही होती। हे रानी ! भरतजी की असीम महिमा रामजी जानते हैं। परन्तु वे भी वर्णन नही कर सकते।

व्याख्या : भरत का चरित विषय वासना रहित है। इसलिए उसकी उपमा जलहीन धरनी से दी गयी। विषय को अत्यत्र जल और मन को मीन माना गया है। यथा : विषय बारि मन मीन भिन्न नहि होत कबहुँ पल एक। विषयरूपी जल से मनरूपी मछली क्षण भर के लिए भी अलग नही हो सकती। इसलिए निर्विषय वस्तु में मन की गति होना वैसा ही है जैसे जलहीन स्थान में मीन की गति। अतः भरत के चरित्र में किसी की गति नही है। मछली जानती ही नही कि बिना जल का प्रदेश कैसा होता है। इसी भाँति भरत की महिमा कोई नही जानता। केवल रामजी जानते है क्योकि वे भी विषय रस से रूखे हैं। यथा : राम पुनीत विषय रस रूखे। परन्तु वे भी कह नहीं सकते। क्योकि कहना और सीमित करना एक बात है। असीम का वर्णन हो नही सकता। असीमता जानी जा सकती है पर कही नही जा सकती। अतः भरत की महिमा रामजी जानते है कि असीम है। कही नही जा सकती इसीलिए तो असीम है।

बरनि सप्रेम भरत अनुभाऊ। तिय जिय की रुचि लखि कह राऊ ॥
बर नहि लखनु भरत बन जाँही। सब कर भल सबके मन माँही ॥२॥

---

१. यहाँ अनन्वयालङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : प्रेम के साथ भरत की महिमा का वर्णन करके स्त्री की रुचि देखकर राजा ने कहा कि भरत वन जायँ। इसी मे सबका भला है और यही बात सबके मन मे है। लक्ष्मण का जाना अच्छा नही।

व्याख्या : पहिले राजा जनक ने भरतजी की महत्ता का वर्णन किया। रानी ने भरत की गति कहने मे इस बात के दिखलाने का पूरा प्रयत्न किया कि लक्ष्मणजी को रोक लिया जाय और भरत को रामजी के साथ वन जाने दिया जाय। क्योंकि रामजी का विरह भरत के लिए असह्य है। लक्ष्मण और शत्रुघ्नजी मिलकर राजकाज सँभालेंगे। अतः रानी की रुचि का समर्थन करते हुए राजा ने कहा कि जो तुमने कहा है वह सबके भले की बात है और सभी यह चाहते हैं कि लक्ष्मण का जाना ठीक नही। भरतजी वन जायँ।

देखि परंतु भरतु रघुबर की। प्रीति प्रतीति जाइ नहिं तरकी ॥
भरतु अवधि सनेह ममता की। यद्यपि राम सीम समता की ॥३॥

अर्थ : परन्तु हे देवी! भरत और रामजी की प्रीति और प्रतीति मे तर्क काम नही करता। यद्यपि रामजी समता की सीमा है तथापि भरत स्नेह और ममता की सीमा हैं।

व्याख्या : जनकजी रानी से कहते हैं कि तुम्हारा तर्क ठीक है। परन्तु रामजी मे और भरत मे कितनी प्रीति है और कितनी प्रतीति है इसमे तर्क काम नही करता। क्योंकि बुद्धि की वहाँ तक पहुँच नही।

जिस भरतजी के कल्याण के लिए तुम उनका वन जाना सोच रही हो वे अपना कल्याण किस बात मे मानेंगे। रामजी की आज्ञा पालन मे या उन पर सङ्कोच डालने मे यह कौन कह सकता है।

यद्यपि रामजी समता की सीमा है। उनके साथ चाहे लक्ष्मण जायँ या भरत जायँ उनके लिए दोनो बराबर हैं। पर भरत भी स्नेह और ममता की सीमा है। वे कभी लक्ष्मणजी या रामजी के मन मे ठेस नही लगने देंगे।

परमारथ स्वारथ सुख सारे। भरत न सपनेहुँ मनहुँ निहारे ॥
साधन सिद्धि राम पग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू ॥४॥

अर्थ : परमार्थ और स्वार्थ के सारे सुखो को तो मानो भरत ने कभी सपने मे भी नही देखा। साधन और सिद्धि : दोनो रामजी के चरणो का प्रेम है। मुझे तो यही भरत का मत मालूम पड़ता है।

व्याख्या : भरत ने प्रयागराज से माँगा : *अर्थ न धर्म न काम रुचि गति न चहौं निर्वान*। अर्थ धर्म काम से स्वार्थ सुख कहा और निर्वाण गति से परमार्थ सुख कहा। इन दोनो सुखों को भरतजी चाहते नही। मानो इनकी ओर कभी आँख उठाकर देखा ही नही है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नियम तो यही है कि भक्ति से मुक्ति सुलभ हो जाती है। यथा राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अनइच्छित आवै बरिआईं। रामभक्ति साधन हुई और मुक्ति साध्य हुई। यही साधारण नियम है। यथा भक्तिर्मुक्तिविधायनी भगवत श्रीरामचन्द्रस्य हि। परन्तु मुझे मालूम होता है कि भरतजी साधन और सिद्धि भक्ति को ही मानते हैं। रामभजन करके वे भक्ति ही चाहते हैं मुक्ति नही चाहते। यथा सगुन उपासक मोक्ष न लही। तिनकहँ राम भगति निज देही।

दो भोरेहुँ भरत न पेलिहहिं, मनसहु राम रजाइ।
करिअ न सोचु सनेह बस, कहेहु भूप बिलखाइ ॥२८९॥

अर्थ भूल करके भरतजी मन से भी रामजी की आज्ञा का उल्लघन न करेंगे। प्रेम के वश होकर सोच न करो। ऐसा राजा ने विलखकर कहा।

व्याख्या आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। सबसे बडी सेवा आज्ञापालन है। रामजी आज्ञा देंगे कि तुम राज्य पर जाओ तो भरत मन से भी उसका उल्लघन न करेंगे। दु ख सह लगें। सो जिसे दु ख झेलना है वह स्वय झलने के लिए तैयार हो तो उसके लिए सोच न करना चाहिए। स्नेह के वश होकर शोक करना व्यर्थ है। यह बात राजा ने बिलखकर कहा।

राम भरत गुन गनत सप्रीती। निसि दपतिहि पलक सम बीती ॥
राज समाज प्रात जुग जागे। न्हाइ न्हाइ सुर पूजन लागे ॥१॥

अर्थ रामजी और भरतजी के गुणो को प्रेम के साथ गिनते हुए दोनो प्राणी को सारी रात पलक के समान बीत गयी। सवेरे दोनो राज समाज जागे और नहा नहाकर देव पूजन करने लगे।

व्याख्या न तो रामजी के गुणो की सख्या और न भरतजी के गुणो की सीमा थी। यथा जल सीकर महिरज गनि जाही। रघुपति गुन नहिं बरनि सिराही। तथा निरवधि गुन निरुपम पुरुष भरत भरत सम जानि। भगवान् और भागवत के गुण ही ऐसे है। उनकी गणना मे बडा मन लगता है। अत दोना प्राणी रात भर उन्ही की गणना करते रहे। रात कब बीत गयी उन लोगो को पता नही। राजा रानी तो जागते रहे पर समाज खूब सोया। अत उनका जागना लिखते। उठने के साथ ही नित्यकृत्य मे लग गये। गनप गौरि तिपुरारि तमारी। रमारमन पद बदि बहोरी। बिनवहि अजुलि अचल जोरी। इत्यादि।

## २२ दूसरी सभा रघुपति प्रबोध प्रसङ्ग

गे नहाइ गुर पहि रघुराई। बदि चरन बोले रुख पाई ॥
नाथ भरतु पुरजन महतारी। सोक बिकल बनवास दुखारी ॥२॥

अर्थ रघुराज स्नान करके गुरुजी के पास गये। चरण की वन्दना करके

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रुख पाकर बोले। हे नाथ! भरत, नगरनिवासी और माताएँ सब सोच से विकल और वनवास से दु खी हैं।

व्याख्या सब लोगो ने तो नहा नहाकर इष्टदेवो का पूजन किया। पर सरकार के तो इष्टदेव गुरुजी हैं। ये स्नानादि करके गुरुजी के दर्शन को जाते हैं। आज भी इसीलिए गये। पर आज कुछ कहना है मुनिजी ने समझ लिया। सो मुनिजी का जब रुख पाया कि क्या कहना चाहते हो। तो चरण वन्दना करके बोले।

भरत, पुरजन और माताएँ ये सब लोग मानसिक और शारीरक कष्ट से दु खी है। शोक विकल से मानसिक कष्ट कहा और वनवास से शारीरक कष्ट कहा। गुरुजी तो तपस्वी है। अत उनके दु ख का नाम नही लते। ये लोग व्यर्थ दु ख सह रहे हैं।

सहित समाज राउ मिथिलेसू। बहुत दिवस भये सहत कलेसू॥
उचित होइ सोइ कीजिअ नाथा। हित सबही कर रउरे हाथा॥३॥

अर्थ महाराज मिथिलेश को सहित समाज कष्ट उठाते बहुत दिन हो गये। इसलिए हे नाथ! जो उचित हो वही कीजिये। आप ही के हाथ सबका हित है।

व्याख्या भरत माता पुरजन तो क्लेश उठा रहे हैं। सम्बन्धी भी कष्ट उठा रहे है। राजा मिथिलेश के कष्ट उठाने का कोई कारण नही है। फिर वे भी कष्ट उठा रहे है। पहिले भी मैने कहा था। तब आज्ञा हुई लोग दुखित दिन दुइ दरस देखि लहुँ बिश्राम। सो वे दो दिन तो कभी के बीत गये। तब से मिथिलेश आगये। इन्हे भी आये कई दिन हो गये। मुझे जो कहना था कह दिया आगे आप मालिक है। जो आप उचित समझें सो करें। आपकी ही आज्ञा मानने और रुख रखने म सबकी भलाई है। आप जैसा कहेगे वैसा ही सब करगे। अत जिसम सबका हित हो सो कीजिये। हित सदा उचित करने म होता है। ध्वनि यह है कि पिता के वचन की रक्षा हो।

अस कहि अति सकुचे रघुराऊ। मुनि पुलके लखि सीलु सुभाऊ॥
तुम्ह बिनु राम सकल सुख साजा। नरक सरिस दुहु राज समाजा॥४॥

*अर्थ ऐसा कहकर रामजी अति सङ्कुचित हो गये। मुनिजी शील स्वभाव* देखकर पुलकित हो गये। कहा हे राम! तुम्हारे बिना दोनो राजसमाज का सुख साज नरक के समान है।

व्याख्या गुरुजी को कुछ भी करने के लिए विनय करने मे भी रामजी को सङ्कोच होता है। पहिले भी जाने के लिए जब कहा था तब अन्त म यही कहा बहुत कहेउँ सब कियेउँ ढिठाई। उचित होय तस करिअ गोसाईं। वही बात फिर कह रहे है। इसलिए अत्यन्त सकुचे। मुनिजी प्रभु का सङ्कोची स्वभाव देखकर मग्न हो गये। पुलक हो आया। अस सुभाउ कहुँ सुनै न देखैं। केहि खगेस रघुपति सम लेखैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रिय के विरह मे सुख के साज और भी दु खदायी हो जाते हैं। अत गुरुजी कहते हैं कि दोनो समाज को सुख तो तुम्हारे सयोग मे है। तुम्हारे विरह मे ये सुख के साज नरक समान दु खदायक हो जायेंगे।

दो. प्रान प्रान के जीव के, जिव सुख के सुख राम।
तुम्ह तजि तात सोहात गृह, जिनहि तिनहि विधि वाम ॥२९०॥

अर्थ : हे तात ! तुम प्राण के प्राण हो। जीव के जीव हो और सुख के सुख हो। तुमको छोडकर जिन्हे घर अच्छा लगता है उन पर विधाता बायें हो गये हैं।

व्याख्या : सब लोग कष्ट सह रहे हैं। इस बात का उत्तर देते हुए वसिष्ठजी कहते हैं कि सुख के मूल स्रोत तो आप हैं। आपके छोडने मे सुख कहाँ ? आप ही के कारण प्राण प्राणन क्रिया करता है। इसलिए आप प्राण के प्राण हैं। जिस बिम्ब का जीव प्रतिबिम्ब है वह बिम्ब आप ही हैं। इसलिए आप जीव के जीव हैं। विषय सुख के भी मूल मे ब्रह्म सुख है। इसलिए आप सुख के सुख हैं। गृह मे भी सुख है। पर वह सुख भी आप के होने से है। आपको छोडकर सुख कहाँ। यथा : जगदातमा प्रानपति रामा। तासु विमुख किमि लह बिश्रामा। यही साधारण नियम है। स्वभाव से जीव और ब्रह्म मे स्नेह है। यथा ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू। जिस पर विधाता वाम होते हैं उसका स्वभाव पलट जाता है। यथा : भयउ बाम विधि फिरेउ सुभाऊ। अत आपको छोडकर जिसे घर अच्छा लगा उसके लिए समझ लेना चाहिए कि इस पर विधाता ही बाये हो गये। भाव यह कि सब लोग यही रहने से सुखी हैं किसी को घर जाने की रुचि नही है।

सो सुख करमु धरमु जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ॥
जोगु कुजोगु ग्यानु अग्यानू। जहँ नहि राम पेम परधानू ॥१॥

अर्थ : वह सुख और वह कर्म धर्म जल जाय जिसमे रामजी के चरणो मे प्रेम न हो। वह योग कुयोग है। वह ज्ञान अज्ञान है। जिसमे रामजी का प्रेम प्रधान न हो।

व्याख्या . उचित होय सो कीजिय नाथा का उत्तर देते हुए गुरुजी कहते हैं कि यहाँ उचित अनुचित कुछ नही। जिसमे धर्म अर्थ और काम मे बाधा न हो वही उचित है। परन्तु जिस धर्मार्थ काम मे आप के चरणो के प्रेम का अभाव हो वह धर्मार्थ काम जले। उससे कोई प्रयोजन नही।

जिस योग मे रामप्रेम न हो उससे मोह का नाश नही होता और जिस ज्ञान मे रामप्रेम की प्रधानता न हो वह तारने मे समर्थ नहीं होता। यथा : पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी। मोह बिटप नहिं सकै उपारी। तथा : सोह न रामप्रेम बिनु ज्ञानू। करनधार बिनु जिमि जलजानू।

तुम्ह बिनु दुखी सुखी तुम्ह तेही। तुम्ह जानहु जिअँ जो जेहि केही॥
राउर आयसु सिर सबही के। बिदित कृपालहि गति सब नीके ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ तुम्हारे बिना दु खी और तुमसे ही सब सुखी है। जिसके हृदय मे जो है उसे तुम जानते हो। आपकी आज्ञा सबके सिर पर है। हे कृपाल! आपको सबकी गति विदित है।

व्याख्या चाहे विषयी हो। चाहे साधक हो। चाहे सिद्ध हो। सब तुम्हारे बिना दु खी रहते है। यथा तन कृस मन दु ख बदन मलीने। बिकल मनहु माछो लघु छीने और तुम्हारी उपस्थिति से सब सुखी होते हैं। यथा सब बिधि सब पुरलोग सुखारी। रामचद मुखचद निहारी। तुम्ही सबके हृदय के जाननेवाले हो। यथा को जिय कै रघुबर बिनु बूझा।

जो आपने कहा 'हित सबही कर रउरे हाथा। सो बात नही है। आपकी आज्ञा सबके सिर पर है। मेरे सिर पर भी है। क्योकि आप कृपाल है और अन्तर्यामी सबकी गति जानते हैं। यथा सबके उर अन्तर बसहु जानहु भाउ कुभाउ। जीव चाहे कैसा ही बडा हो ईश के ऐसा नही हो सकता। अत आपकी ही आज्ञा के पालन से सबका हित है। यथा प्रभु आज्ञा अपेल स्तुति गाई। तथा प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई।

आपु आश्रमहि धारिअ पाऊ। भयउ सनेह सिथिल मुनिराऊ ॥
करि प्रनामु तब राम सिधाए। रिषि धरि धीर जनक पहँ आए ॥३॥
राम बचन गुरु नृपहि सुनाए। सील सनेह सुभाव सुहाए ॥

अर्थ अब आप आश्रम मे पधारिये। यह कहकर मुनिराज प्रेम से शिथिल हो गये। रामजी प्रणाम करके चले गये। ऋषिजी धैर्य धारण करके जनकजी के पास आये। गुरुजी ने रामजी का शील स्नेह और स्वभाव से सुन्दर वचन राजा को सुनाया।

व्याख्या ऋषिजी ने आपु आश्रमहिं धारिअ पाऊँ। कहकर यह जना दिया कि मै आपका अभिप्राय समझ गया। वही होगा। रामजी के वचन सुनकर ऋषिजी स्वय स्नेह से शिथिल हो गये थे। अत रामजी के चल जाने पर धैर्य धारण करके महाराज जनक के यहाँ आये और रामजी का शील स्नेह और उनका स्वाभाविक सुन्दर वचन उन्हे कह सुनाया। शील यथा बदि चरन बोले रुख पाई। तथा अस कहि अति सकुचे रघुराऊ। स्नेह यथा नाथ भरतु पुरजन महतारी। साक बिकल बनवास दुखारी। सहित समाज राउ मिथिलेसू। बहुत दिवस भये सहत कलेसू। सुन्दर स्वभाव यथा उचित होइ सोइ कीजिअ नाथा। हित सबही कर तुम्हरे हाथा।

इस भाँति ऋषिजी ने महाराज को रामजी के आन्तरिक भावो से परिचित करा दिया। कोष्ठान्तर्गत दो पद राजापुर की प्रति म नही है। पर इन्हे बिना माने काम नही चलता।

महाराज अब कीजिअ सोई। सबकर धर्म सहित हित होई ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : गुरुजी ने कहा कि महाराज ! अब वही कीजिये जिससे सबका सहित हित हो।

व्याख्या : भाव यह कि यह अर्धाली रामजी के वचन ' उचित होइ सोइ कीजे नाथा का अनुवाद है। धर्म सहित सबका हित करना ही उचित है। चक्रवर्तीजी के न रहने पर जनकजी की उपस्थिति मे उनकी ही आज्ञा सब पर चलेगी। अतः मुनिजी उन्ही से कहते है।

दो. ग्यान निधान सुजान सुचि, धरम धीर नरपाल।
तुम्ह बिनु असमंजस समन, को समरथ एहि काल ॥२९१॥

अर्थ : हे राजन् ! तुम ज्ञान के घर सुजान पवित्र और धर्मधीर हो। तुम्हारे विना इस असामञ्जस्य के मिटाने मे इस समय कौन समर्थ है।

व्याख्या · भाव यह धर्म राजनय ब्रह्म बिचारू। इहाँ यथा मति मोर प्रचारू। जनकजी ने कहा था सो मुनिजी जिन विशेषणो से राजा को सम्बोधित करते है उनका भी यही अभिप्राय है। ज्ञान निधान से ब्रह्म विचार कहा। सुचि सुजान से राजनय कहा। धर्मधीर से धर्मशास्त्र का ज्ञान कहा। ऐसा गुणी राजा इस समय मे कौन है। सामञ्जस्य बिठाना निर्णय करना राजा का काम है। यहाँ जो असामञ्जस्य आ पडा है कि धर्म पर ध्यान देने से सबका अहित होता है। सबका हित करने से रामजी का धर्म जाता है। इस असामञ्जस्य को आप ही मिटा सकते है।

सुनि मुनि बचन जनक अनुरागे। लखि गति ग्यानु बिरागु बिरागे ॥
सिथिल सनेह गुनत मन माँही। आए इहाँ कीन्ह भल नाँही ॥१॥

अर्थ : मुनिजी का वचन सुनने से जनकजी प्रेम मे आगये। उनकी गति देखकर ज्ञान विराग को भी विराग हो गया। स्नेह से शिथिल होकर मन मे विचार करने लगे कि मैंने यहाँ आकर अच्छा नही किया।

व्याख्या · जनकजी ने जब मुनिजी का वचन सुना कि आप इस प्रेम और धर्म के सामञ्जस्य को बिठलाइये। जिसका स्पष्ट अर्थ यही है कि मुझसे सामञ्जस्य नही बैठता तो जनकजी स्वय प्रेम मे आगये। रामानुराग का दर्जा ज्ञान विराग से बढा चढा है। जनकजी का अनुराग देखकर ज्ञान विराग को भी विराग हो गया कि अब हम यहाँ नही रहेगे। अब अनुराग ही यहाँ रहे। क्योकि काम आ पडने पर जनकजी अनुराग का ही सम्मान करते है। वे हृदय से अनुरागी है। यथा : जाहि रामपद गूढ सनेहू। इनके लिए राजा जनक विचारते हैं। यहाँ धर्म तो यही है कि रामजी वन जायँ और स्नेह वन जाने देना नही चाहता। मैं सम्बन्धी हूँ। मे कैसे कहूँ कि रामजी का वन जाना ही ठीक है अत मेरा यहाँ आना ठीक नही हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

रामहि राय कहेउ बन जाना। कीन्ह आपु प्रिय प्रेम प्रवाना ॥
हम अब बन ते बनहि पठाई। प्रमुदित फिरब विवेक बडाई ॥२॥

अर्थ : चक्रवर्तीजी ने रामजी को वन जाने को कहा और स्वयं उन्होंने प्यारे के प्रेम को सच्चा कर दिखलाया और हम अब रामजी को वन मे ही भेजकर विवेक की वडाई के साथ लौटेंगे।

व्याख्या : भाव यह कि जनकजी चक्रवर्तीजी के समकक्ष हैं। यथा : सम समधी देखा हम आजू। सो चक्रवर्तीजी ने तो रामजी को वन मे भेजकर धर्म निवाहा और अपना शरीर छोडकर प्रेम का निर्वाह भी कर दिखाया। यही तो एक मात्र रास्ता धर्म और प्रेम के सामञ्जस्य बिठाने का है। यह तो नही है कि मैं रामजी को वन से लौटा ले चलने के बदले वन जाने की सम्मति देकर घर लौटूँ और यह समझकर सन्तोष कर लूँ कि मैं बड़ा विवेकी हूँ।

तापस मुनि महिसुर सुनि देखी। भये प्रेम बस विकल बिसेखी ॥
समउ समुझि धरि धीरजु राजा। चले भरत पहिं सहित समाजा ॥३॥

अर्थ तपस्वी मुनि और ब्राह्मण लोग सुनकर और देखकर प्रेम के वश हो विशेष व्याकुल हुए। फिर राजा समय का विचार करके और धैर्य धारण करके समाज के सहित भरतजी के पास आये।

व्याख्या सभी लोगो की बात नही कहते। जो लोग विराग का व्रत लिये हुए है वे भी वसिष्ठजी की बात सुनकर और दोनो महाज्ञानियो की दशा देखकर प्रेमवश हो गये। उनकी विकलता सामान्य लोगो से भी अधिक थी। क्योंकि वे विषय की सूक्ष्मता को विशेषरूप से समझ रहे थे।

प्रजा का रञ्जन करनेवाला ही राजा कहलाता है। राजा ने सोचा कि मेरी विकलता के व्यक्त होने से प्रजा अधिक विकल होगी और मेरी स्थिति ऐसी हैं कि जब मै यहाँ आया हूँ तो मुझे ही सामञ्जस्य बिठलाना है। वसिष्ठजी कहते हैं। अत राजा ने धैर्य धारण किया। जनकजी राजा है। सामञ्जस्य बिठलाने की विधि जानते हैं। देखा कि सम्पूर्ण प्रजा की दृष्टि इस समय भरतजी पर है और प्रेम भी भरतजी का सबसे अधिक है। धर्म के भी जानकार भरतजी हैं। अत सामञ्जस्य बिठाने का भार भरत पर ही छोडा जाय। अत कुछ न कहकर समाज सहित भरतजी के पास चल पडे।

भरत आइ आगे भइ लीन्हे। अवसर सरिस सुआसन दीन्हे ॥
तात भरत कह तिरहुति राऊ। तुम्हहि बिदित रघुबीर सुभाऊ ॥४॥

अर्थ भरतजी ने आगे आकर उनका स्वागत किया और समयानुकूल अच्छा आसन दिया। तिरहुत तीरयुक्त के राजा ने कहा कि हे तात भरत ! तुम्हें रामजी का स्वभाव मालूम है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या श्वसुर भी पिता के तुल्य है। अत जनकजी का आगमन जानकर भरतजी आगे आकर उनका स्वागत करके अपने डेरे पर लिवा ले गये। यहाँ वन मे सिंहासन का योग नही था। अत सुन्दर आसन जो इस समय दिया जा सकता था सो दिया।

बैठने के बाद महाराज जनक ने भरतजी को सम्बोधन करते हुए कहा कि तुम तो जानते हो कि रामजी का कैसा सङ्कोची स्वभाव है। यथा कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची।

दो राम सत्यव्रत धर्म रत, सब पर सीलु सनेहु।
सकट सहत सँकोच बस, कहिय जो आयसु देहु ॥२९२॥

अर्थ रामजी सत्यव्रत है। धर्म मे रत हैं। सब पर उनका स्नेह और शील है। सङ्कोच के वश पडे हुए सङ्कट सह रहे है। इसलिए जो तुम आज्ञा दो उनसे कहा जाय।

व्याख्या रामजी के सङ्कोच को और भी स्पष्ट करते हुए कहते है कि रामजी का व्रत ही सत्य है और सदा धर्म मे ही लगे रहते हैं। अर्थात् सत्य और धर्म वे छोड नही सकते और सत्य धर्म तो यही है कि वे वन जायँ। साथ ही साथ उन्हे सबका शील है और सब पर उनका स्नेह है। अत यह स्पष्ट आज्ञा भी नही दे रहे हैं कि तुम लोग यहाँ से चले जाओ। मै नही लौट सकता। वे शील स्नेह भी नहीं छोड सकते। अत वे सङ्कोच वश सङ्कट सह रहे है। उन्हे सङ्कट से छुडाना तुम्हारा काम है। अब एक बात स्पष्ट हो जानी चाहिए। यह द्विविधा की दशा असह्य है। अत तुम जो आज्ञा दो वही उनसे करने का कहा जाय। भाव यह कि तुम्हारे ऐसा उनका स्नेही कोई नही है। तुम्ही उन्हे लौटाने आये हो। हम लोग तो तुम्हारे पक्ष को पुष्ट करने आये है। अत रामजी के सत्यव्रत और धम को विचार करके तथा स्नेह को भी ध्यान मे रखकर जो तुम निर्णय करके कहो वही हम लोग चलकर रामजी स करने के लिए कहे।

सुनि तन पुलकि नयन भरि बारी। बोले भरतु धीर धरि भारी ॥
प्रभु प्रिय पूज्य पिता सम आपू। कुलगुरु सम हित माय न बापू ॥१॥

अर्थ सुनकर भरतजी को पुलक हो गया और आँखो मे आँसू भर आया। भरत जी भारी धैर्य धारण करके बोल। आप प्रभु पूज्य पिता के समान हैं। कुलगुरु के समान हितकारी न वाप है और न माँ है।

व्याख्या जनकजी का उपर्युक्त वचन सुनकर भरतजी को सात्त्विक भाव हुआ, उनके रोगटे खडे हो गये। नेत्रो मे जल आगया। उन्हे बोलने मे भारी धैर्य धारण करना पडा। यहाँ प्रेमियो का समाज इकट्ठा हुआ है। सबका धैर्य छूटा जा रहा है। जनकजी चलते है तो धैर्य धारण करके चलते हैं। भरतजी बोलते हैं तो भारी धैर्य धारण करके बोलते है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पिता धर्मंत पुत्रो का प्रभु भी हैं और पूज्य भी है। श्वशुर पिता के तुल्य है। इसलिए भरतजी कहते हैं कि आप प्रभु पूज्य पिता के तुल्य हैं। धर्म यही है कि आप आज्ञा दें और मै पालन करूँ और कुलगुरु आप से भी अधिक है। क्योंकि वे पिता और माता से भी विशेष हितकारी हैं। उन्हे मुझे आज्ञा देनी चाहिए। मुझसे सम्मति न पूछनी चाहिए।

कौसिकादि मुनि सचिव समाजू। ग्यान अंबुनिधि आपुनु आजू ॥
सिसु सेवकु आयसु अनुगामी। जानि मोहि सिख देइअ स्वामी ॥२॥

अर्थ : विश्वामित्रादि मुनिसमाज है। सचिवसमाज है। हे स्वामी ! मुझे बच्चा सेवक और आज्ञा पालक जानकर आप लोग आज्ञा दीजिये।

व्याख्या विश्वामित्रादि मुनिगण सभी प्रभु और पूज्य हैं। पिताजी का मन्त्री समाज है। सभी को मुझे आज्ञा देने और उपदेश देने का अधिकार है। स्वय आप आज दिन ज्ञान के समुद्र है। सभी ऋषि मुनि आपका थाप मानते हैं। मैं आप के लिए शिशु, गुरुजी के लिए सेवक और शेष महानुभावो के लिए विधेय हूँ। आप लोगो के सामने मुझे आज्ञा देने का अधिकार नही है। मै तो आज्ञाकारी हूँ। ऐसा जानकर आप लोग आज्ञा दीजिये।

एहि समाज थल बूझब राउर। मौन मलिन मै बोलब बाउर ॥
छोटे बदन कहौ बडि बाता। छमब तात लखि बाम बिधाता ॥३॥

अर्थ ऐसे समाज मे ऐसी जगह मे आपका पूछना ! मुझसे मैं मौन हूँ और मलिन हूँ। मै उलटा सुलटा बोलूँगा। मैं छोटे मुँह बडी बात कहता हूँ। हे तात ! विधाता को बायें समझकर आप क्षमा कीजियेगा।

व्याख्या : बडे का प्रश्रय : अदब यहाँ तक माना जाता है कि जब से भरतजी आये हैं लक्ष्मणजी मौन है कि जो कुछ बातचीत करना होगा भरतजी करेंगे। उनके सामने मेरा बोलना अनुचित है और जब से जनकजी आये है भरतजी मौन है कि मुझ से बडा बोलने के लिए आगया है। बोलते भी हैं तो कहते है कि मेरा कहना छोटे मुँह बडी बात के सदृश है। उसे क्षमा कीजिये। जिसके विधाता विमुख हो जाते हैं वह ऐसा ही बोलता है।

इसीलिए भरतजी कहते हैं कि मै तो सब भार आप पर छोडकर मौन हूँ। जो आप कर दें सो स्वीकार है और दूसरी बात यह कि मैं दु खी हूँ। इसलिए अन्त करण मलिन हो रहा है। न जाने कैसी बात मुख से निकल जाय। भाव यह कि आप लोग बडे हैं। आपकी आज्ञा रामजी पर चल सकती है। सो आप लोग कुछ कहते नही। मुझ सेवक से कहने के लिए कहते हैं। ऐसी बातें मेरे मन मे है जिसके कहने मे धृष्टता है। अत कहते हैं. मै बोलब बाउर। रामजी के पास भरत या लक्ष्मण मे से कोई न कोई रहता ही है। इसी से शत्रुघ्नजी को बोलने का अवसर ही रामायण भर मे न मिला।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



आगम निगम प्रसिद्ध पुराना। सेवा धरमु कठिन जग जाना ॥
स्वामि धरमु स्वारथहि विरोधू। वैरु अध प्रेमहि न प्रबोधू ॥४॥

अर्थ वेद शास्त्र और पुरान म प्रसिद्ध है और ससार जानता है कि सेवाधर्म कठिन है। स्वामी के धर्म और स्वार्थ मे विरोध है, वैर अन्धा है, और प्रेम का प्रबोध नही होता।

व्याख्या यहाँ स्वामी के धर्म से और सेवक के स्वार्थ से विरोध पड गया है। स्वामी का धर्म यथा मैं सोइ धर्म सुलभ करि पावा। तजे तिहूँ पुर अपजस छावा। सेवक का स्वार्थ। यथा जेहि सुनि बिनय मोहि जनु जानी। आवहिं बहुरि राम रजधानी। दोनो मे विरोध पड गया। दोनो एक साथ नही हो सकता। स्वामी का धर्म सेवक के स्वार्थ को नही देख सकता और न सेवक का स्वार्थ स्वामी के धर्म को देख सकता है। क्योकि वैर अन्धा है। इस पर यदि यह कहा जाय कि फिर सेवक अपना स्वार्थ छोडे तो इस पर यह कहते हैं कि प्रेम को प्रबोध नही। वह मानता नही।

दो राखि राम रुख धरमु व्रतु, पराधीन मोहि जानि।
सब कें समत सर्व हित, करिय पेमु पहिचानि ॥२९३॥

अर्थ रामजी का रुख धर्म व्रत की रक्षा करते हुए, मेरी पराधीनता पर ध्यान देते हुए, सब की राय से जो सबका हित हो उसे प्रेम पहिचान कर करना चाहिए।

व्याख्या भरतजी कहते हैं कि मेरा सेवाधर्म न बिगडने पावे। इसलिए रामजी का रुख रखिये और स्वामी का धर्म व्रत न भङ्ग हो इसलिए उसकी भी रक्षा कीजिये। मुझे कुछ कहने का अधिकार नही। अत मुझे पराधीन जान लीजिये। मेरा विचार छोडिये। जिसमे सबकी राय हो सबका हित होता हो उसे प्रेम के पहिचान के साथ कीजिये। जिसम दरबार का कायदा न बिगडने पाये। यथा प्रीति पहिचान यह रीति दरबार की। कहिय जो आयसु देउ का उत्तर देते हुए भरतजी कहते हैं कि मैंने पहिल ही कहा था मौन मलिन मै बोलब बाउर। आप एक सामञ्जस्य बिठाने के लिए मेरे यहाँ आये और मैंने बहुत से सामञ्जस्य बिठाने के लिए निवेदन किया।

भरत बचन सुनि देखि सुभाऊ। सहित समाज सराहत राऊ ॥
सुगम अगम मृदु मजु कठोरे। अरथु अमित अति आखर थोरे ॥१॥

अर्थ भरत के वचन सुनकर और स्वभाव देखकर समाज सहित राजा जनक प्रशसा करने लगे कि भरतजी की वाणी सुगम भी है अगम भी है। मृदु मञ्जु भी है। कठोर भी है। असीम अर्थ है और अक्षर थोडे है।

व्याख्या सब लोग भरतजी की वाणी और स्वभाव पर मुग्ध है कि क्या

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वाणी है और कैसा सुन्दर स्वभाव है कि सब कुछ कह दिया पर कठोरता व्यक्त न हुई। वाणी की प्रशसा करते हैं कि सुनने मे तो सुगम है पर समझने मे अगम है। विनय प्रेम युक्त होने से मृदु है। निर्दोष होने से मञ्जु है। फिर भी कठोर उत्तर है कि आप कुलगुरु है। अवस फिरब गुरु आयसु मानी। और आप पिता के समान हैं। सब कुछ कह सकते हैं। पर कुछ कहना नही चाहते। मुझ पराधीन सेवक से कहलाना चाहते हैं। ऐसी ध्वनि निकलती है। इससे कठोर भी है। स्वामिधर्म स्वारथहिं बिरोधू। बैर अध प्रेमहि न प्रबोधू। इतने से अक्षरो मे असीम अर्थ भरा पडा है।

जिमि मुखु मुकुर मुकुरु निज पानी। गहि न जाइ अस अदभुत बानी॥
भूप भरतु मुनि साधु समाजू। गे जहँ बिबुध कुमुद द्विजराजू॥२॥

अर्थ जैसे दर्पण मे मुख का प्रतिबिम्ब हो और दर्पण अपने हाथ मे हो। पर मुख का प्रतिबिम्ब पकडा नही जाता। ऐसी अद्भुतवाणी है। तब राजा जनक भरत और मुनि साधु का समाज देवकुल कुमुद चन्द्र रामचन्द्र के पास गये।

व्याख्या भरतजी की वाणी दर्पण की भाँति निर्मल है और उसमे प्रतिबिम्बित मुख अत्यन्त स्पष्ट हैं। दर्पण इतना छोटा कि हाथ म आगया। फिर भी इतना बडा मुख ज्यो का त्यो उसमे आगया। पर यह सामर्थ्य किसी को नही कि उस प्रतिबिम्बित मुख को कोई पकड सके। हाथ के भीतर दर्पण और उसके भीतर मुख फिर भी हाथ उसे नही पकड सकता। यही अद्भुतता है। ऐसी ही भरतजी की वाणी है। बात स्पष्ट और थोडे शब्दो मे कही। पर पकड मे नही आती है। भाव यह कि भरत के वचन का उत्तर किसी के पास नही।

वसिष्ठजी जनक के पास गये। वे भरतजी के पास गये। कुछ निर्णय न हुआ। अब सब लोग मिलकर रामजी के पास जा रहे हैं।

सुनि सुधि सोच बिकल सब लोगा। मनहुँ मीनगन नव जल जोगा॥
देव प्रथम कुलगुर गति देखी। निरखि बिदेह सनेह बिसेखी॥३॥

अर्थ यह समाचार सुनकर लोग सोच से ऐसे व्याकुल हुए जैसे नये जल के याग से मछलियाँ व्याकुल होती हैं। देवताओ ने पहले कुलगुरु की गति देखी। फिर राजा जनक के विशेष प्रेम को देखा।

व्याख्या जलती हुई पृथ्वी पर जब पहिला जल गिरता है तो वह भी तप्त हो जाता है और जब वह जल जलाशय मे पहुँचता है तो मछलियाँ व्याकुल हो उठती हैं। इसी प्रकार यह समाचार पाकर लोग विकल हो गये। समाचार नवीन जल स्थानीय है।

देवताओ को अपना स्वार्थ इतना सताये हुए है कि ये प्रत्येक हलचलो पर निगाह रखत हैं। उन्होने पहिले कुलगुरु की गति देख ली कि स्नेह से शिथिल हो रहे हैं। इनकी आज्ञा मिलने पर रामजी पिता के वचन को भी नही मानेंगे। इधर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जनकजी की गति देखी कि ये महात्मा स्नेह से विशेष शिथिल हो गये। इनका बहुत बडा सङ्कोच रघुनाथजी को है।

राम भगतिमय भरतु निहारे। सुर स्वारथी हहरि हिय हारे ॥
सब कोउ राम प्रेममय पेखा। भए अलेख[1] सोच बस लेखा ॥४॥

अर्थ · भरतजी को देखा कि राम भक्तिमय हो रहे हैं। तो स्वार्थी देवताओं ने हहरकर हाथ पैर ढीला करके हिम्मत छोड दी। सब किसी को देखा कि राम प्रेममय हो रहे हैं तो देवता लोग ऐसे सोचवश हुए कि उनका लेखा नही हो सकता।

व्याख्या गुरुजी और जनकजी की दशा तो देखी ही थी। अब भरतजी को देखते हैं तो वे रामप्रेममय हो रहे हैं। इन तीनो व्यक्तियो पर देवताओं का बल चल नहीं सकती। अत देवताओं ने भयभीत होकर हिम्मत छोड दी। रामजी के स्वभाव को देवता जानते हैं कि वे भक्तो के पराधीन से हो जाते हैं। अत उनके लौट जाने के भय से भीत हो गये।

इतना ही नही वहाँ सभी को राम प्रेममय देख रहे है। अत उनके सोच का अन्त नही है। समझ रहे हैं कि ऐसे प्रेमियो के एक मत होने में कितनी देर लगेगी।

दो रामु सनेह सकोच बस, कह ससोच सुरराजु।
रचहु प्रपचहि पच मिलि, नाहि त भयउ अकाजु ॥२९४॥

अर्थ शोकयुक्त होकर देवराज ने कहा कि रामजी सङ्कोची हैं और प्रेम के वश हैं। अत सब पञ्च लोग मिलकर प्रपञ्च रचो। नही तो बात बिगडा चाहती है।

व्याख्या शोक के वश सब देवताओं को ऐसी गति देखकर स्वय देवराज शोकयुक्त होकर बोल उठे कि रामजी का सङ्कोची स्वभाव है और वे स्नेह के वशीभूत हो जाते हैं। अत अब चुप रहने का समय नही है। सब पञ्च मिलकर माया करो। एक दो की माया से काम न चलेगा। यदि त्रुटि हुई तो काम को बिगडने मे देर नही है। यही समय पुरुषार्थ करने का है।

सुरन्ह सुमिरि सारदा सराही। देवि देव सरनागत पाही ॥
फेरि भरत मति करि निज माया। पालु बिबुध कुल करि छल छाया ॥१॥

अर्थ देवताओं ने सरस्वती का स्मरण करके स्तुति की और कहा कि हे देवि! हम लोग शरण मे आये है रक्षा करो। अपनी माया करके भरत की बुद्धि फेर दो और छल की छाया करके देवकुल की रक्षा करो।

व्याख्या · सरस्वती का ही आवाहन और स्तुति करके देवता लोगो ने रामाभिषेक मे विघ्न किया। रामजी को वनवास हुआ। भरतजी के प्रेम के कारण वह

---

१ यहाँ विरोधाभास अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सब प्रयत्न आज निष्फल हुआ चाहता है। अत इन्द्र की आज्ञा मानकर देवताओ ने प्रपञ्च रचने के लिए फिर सरस्वती का आवाहन किया। उन्हे प्रसन्न करने के लिए स्तुति की। उन्हे सङ्कोच मे डालने के लिए शरणागत हुए।

अन्त मे अपना प्रयोजन निवेदन करते है कि भरत की बुद्धिरूपी आतप से हम लोग पीडित है। अत माया करके भरत की बुद्धि तू फेर दे। माया के आवरण की छाया मे हम लोग घोर आतप से बच जायँ। जैसे पहले कर चुकी हो। यथा: अजम पेटारी ताहि करि गई गिरा मति फेरि।

बिबुध बिनय सुनि देबि सयानी। बोली सुर स्वारथ जड जानी॥
मो सन कहहु भरत मति फेरू। लोचन सहस न सूझ सुमेरू॥२॥

अर्थ देवताओ की स्तुति और विनय सरस्वतीजी ने आकर सुनी। परन्तु सरस्वती बडी सयानी है। देवता स्वार्थ के कारण जड हो गये हैं। यह जानकर बोली कि मुझे भरत की बुद्धि फेरने को कहते है। इन्हे नेत्र तो हजार हैं। पर सुमेरु पर्वत नही दीखता।

व्याख्या इनकी बुद्धि काम नही करती। जहाँ बिबुध कुमुद द्विजराज स्वय बैठे है। वहाँ बिबुध देवताओ को भय कहाँ? परन्तु देवता स्वार्थान्ध हो गये है। इनकी विवेक दृष्टि मारी पडी है। स्थूल दृष्टि हजार होने से भी कोई आँखवाला नही हो जाता। देखो हजार आँख होने पर भी इन्द्र को यह नही सूझ रहा है कि किसकी बुद्धि फेरी जा सकती है और किसकी नही फेरी जा सकती। रामजी के परम प्रेमी की बुद्धि कौन फेर सकता है। उनके स्नेह तक त्रिदेव का मन नही जाता वहाँ मेरी क्या गति है। पहिले जो मैंने बुद्धि फेरा था तो मन्दमति मन्थरा की बुद्धि को फेरा था। मन्थरा सेर है और भरत सुमेरु है। कहाँ मन्थरा और कहाँ भरत।

बिधि हरि हर माया बडि भारी। सोउ न भरत मति सकै निहारी॥
सो मति मोहि कहत करु भोरी। चंदिनि कर कि चंडकर चोरी॥३॥

अर्थ विधि हरिहर की माया बडी भारी है। वह भी भरत की मति की ओर देख नही सकती। उस मति को भोरी करने के लिए मुझे कहते हो। चाँदनी सूर्य को कैसे चुरा सकती है।

व्याख्या: जिसे भरत के स्वरूप का ज्ञान है वह समझ सकता है कि विधि हरिहर ईश्वर है। उनकी माया के बल से ससार की उत्पत्ति पालन और लय हुआ करता है। पर उनकी स्थिति भरत के सामने ऐसी है जैसे क्षीरसागर के सामने काँजी के दो चार बिन्दु। भरत की बुद्धि सूर्य के समान है। मायारूपी अन्धकार उसके सामने टिक नही सकता। मैं तो विधि की आश्रिता हूँ। चाँद की चाँदनी हूँ। मेरे तेज के सामने खद्योत भले ही छिप जायँ। सूर्य कैसे छिप सकते हैं। भाव यह

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कि जिस भाँति सूर्य की ज्योति से ही चन्द्र प्रकाशित है उसी भाँति भरत के तेज से ही विधि हरिहर का तेज है। तुम लोगो को भरत के स्वरूप का बोध नही है।

भरत हृदय सिय राम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू॥
अस कहि सारद गइ विधि लोका। विबुध बिकल निसि मानहु कोका॥४॥

अर्थ : भरत के हृदय में राम जानकी का निवास है। वहाँ अन्धकार वहाँ जहाँ सूर्य का प्रकाश है। ऐसा कहकर सरस्वती ब्रह्मलोक चली गयी। देवता लोग ऐसे विकल हो गये जैसे रात को चकवा।

व्याख्या : भरतजी की इतनी बड़ी महिमा का कारण यह है कि उनके हृदय मे राम जानकी का निवास है। रामजी सूर्य हैं। सीताजी उनकी प्रभा हैं। इसीलिए भरतजी की बुद्धि सूर्यरूप हो रही हैं। भरतजी की महिमा विधि हरिहर से अधिक कही गयी है। वहाँ मायारूपी अन्धकार की गति कहाँ ?

ऐसा कहकर सरस्वतीजी ब्रह्मलोक चली गयी। देवताओ को और कुछ कहने सुनने का अवसर नही दिया। देवताओ के लिए सूर्यास्त हो गया। वे कोक की भाँति विकल हो गये।

दो. सुर स्वारथी मलीन मन, कीन्ह कुमंत्र कुठाटु।
रचि प्रपंचु माया प्रबल, भय भ्रम अरति उचाटु॥२९५॥

अर्थ : देवता स्वार्थी हैं। उनका मन मलीन है। उन्होने सलाह करके कुसाज साजा। प्रपञ्च, प्रबल माया, भय, भ्रम, अप्रीति और उचाट की रचना की।

व्याख्या : देवताओं को स्वार्थी कहने पर भी मलिन मन कहा। क्योंकि सरस्वती के समझाने पर भी उन्हे बोध न हुआ। यथा तदपि मलिन मन बोध न आवा। भरतजी ने कहा था . सबके सम्मत सर्बहित करिअ प्रेम पहिचानि। तो सबको यदि उचाट हो जाय . भ्रमादि हो जाय तो काम बन सकता है। भरत पर माया नही चल सकती। लोगो पर तो चल सकती है। देवताओ की समष्टि की माया है। इसलिए प्रबल माया कहते हैं। लोगो को वन मे भय लगने लगा। मन मे अस्थिरता आगयी। घर की ओर भी मन दौडने लगा। सरकार की प्रीति भी कम हो गयी। चित्त मे उचाट हो गया।

करि कुचालि सोचत सुरराजू। भरत हाथ सबु काजु अकाजू॥
गये जनकु रघुनाथ समीपा। सनमाने सब रबिकुल दीपा॥१॥

अर्थ : कुचाल करके इन्द्र सोचने लगे कि काम का बिगाड या सुधार तो भरत के हाथ मे है। जनकजी तब रामजी के पास गये। रविकुलदीप ने सबका सम्मान किया।

व्याख्या : यद्यपि सब देवताओं ने मिलकर प्रपञ्च माया रची। फिर भी सबके सरदार होने से इन्द्र का नाम लिया जा रहा है। उन्ही की आज्ञा से माया

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रची गयी। अब वे सोचने लगे कि जिनके ऊपर माया काम करेगी उनके हाथ मे तो कुछ है नही। काम का बिगाडना या सुधारना तो भरतजी के हाथ में है और उन पर यह माया भी काम नही कर सकती। कवि ने ' भूप भरत सब साधु समाजू। गे जहँ बिबुध कुमुद द्विजराजू ' से प्रसङ्ग छोड़ा था। बीच मे देवताओ का हाल कहने लगे। अब फिर वही से प्रसङ्ग उठाते हैं कि जनकजी रामजी के पास पहुँचे। प्रधान होने से उन्ही का नाम लिया। रामजी ने सबका सम्मान किया।

जब रामजी को सुमन्त चक्रवर्तीजी के यहाँ लिवा चले तब दीप कहा था। यथा : रघुकुल दीपहि चले लवाई। यहाँ जनकजी के सामने भी दीप ही कह रहे है। भानुकुल भानु नही कहते अथवा राम और भरत दोनो दीप है। यथा : जानेउ सदा भरत कुलदीपा। बार बार मोहि कहेउ महीपा।

समय समाज धर्म अबिरोधा। बोले तब रघुबस पुरोधा॥
जनक भरत संवादु सुनाई। भरत कहाउति कही सुहाई॥२॥

अर्थ रघुवश के पुरोहित तब समय समाज और धर्म के अनुकूल बोले। उन्होंने जनक और भरत की बातचीत कह सुनायी और भरतजी की सोहावनी उक्ति भी कही।

व्याख्या : सरकार ने वसिष्ठजी से कहा था : उचित होय सो कीजिय नाथा। अत तुरन्त वसिष्ठजी काम मे लग गये। जनकजी के पास गये। उन्हे लिये दिये भरतजी के पास गये। समय समाज और धर्म के अविरोध बोलना ही उचित है। वसिष्ठजी रघुवश के पुरोहित है। पूज्य है। सब प्रकार से हितचिन्तक हैं। इनका कहना कोई टाल नही सकता।

समय ऐसा उपस्थित है कि कोई कुछ निर्णय नही कर पाता। जनकजी ने भरत के ऊपर सब छोडा कि जो भरत कहे सो किया जाय और भरतजी कहते हैं राखि राम रुख धर्म व्रत पराधीन मोहि जानि। सबके सम्मत सर्बहित करिय प्रेम पहिचानि। अवध समाज के मुखिया भरत मैथिल समाज के मुखिया राजा जनक। सो इन्ही दोनो की सम्मति सारे समाज की सम्मति समझनी चाहिए। ऐसे अवसर पर वसिष्ठ कहते हैं कि मेरी सम्मति यह है।

तात राम जस आयसु देहू। सो सब करइ मोर मत एहू॥
सुनि रघुनाथ जोरि जुग पानी। बोले सत्य सरल मृदु बानी॥३॥

अर्थ · हे तात राम ! तुम जैसी आज्ञा दो वही सब करें। मेरा तो यही मत है। सुनकर रामजी दोनो हाथ जोडकर मृदु वाणी बोले।

व्याख्या : नीति प्रीति परमार्थ और स्वार्थ सबके तुम यथार्थ जानकार हो। अत सबके सम्मत सर्वहित का निर्णय तुम्ही कर सकते हो। अत तुम जो आज्ञा दो वही सब लोग करें। इससे भरत के सेवाधर्म का भी निर्वाह हो जायगा। क्योकि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इसके बाद जो कुछ भरत करेंगे वह सब करना तुम्हारी आज्ञा का पालन होने से सेवकाई के अन्तर्गत होगा।

यह सुनकर रामजी ने आज्ञा नहीं दी। बड़ों के सामने जैसा बोलना चाहिए वैसा बोले। दोनो हाथ जोड़कर सत्य सरल और मृदु वाणी बोले।

विद्यमान आपुनि मिथिलेसू। मोर कहब सब भाँति भदेसू ॥
राउर राय रजायसु होई। राउरि सपथ सही सिर सोई ॥४॥

अर्थ : स्वयं मिथिलेश के विद्यमान होते हुए मेरा कहना सब तरह से गँवारपन है। आपकी और महाराज की जो आज्ञा हो मैं आपकी शपथ खाकर कहता हूँ कि वही मेरे लिए ठीक है और शिरोधार्य है।

व्याख्या : पिता के समान महाराज मिथिलेश हैं। उनके सामने आज्ञा देना अनुचित है। किसी प्रकार उचित नहीं है। आप गुरु हैं। आपकी आज्ञा सर्वोपरि है। अतः आप दोनों बड़े उपस्थित हैं। आप लोग सम्मति कर लीजिये। वही मुझे शिरोधार्य होगा। इसके लिए मैं आपकी शपथ लेता हूँ। भाव यह कि यदि आप लोगों की यही आज्ञा हुई कि तुम लौट चलो तो मैं पिता का वचन छोड़ दूँगा। यही रामजी की सत्य सरल और मृदु वाणी है।

दो. राम सपथ सुनि मुनि जनकु, सकुचे सभा समेत।
सकल बिलोकत भरत मुखु, बनइ न ऊतरु देत ॥२९६॥

अर्थ : रामजी की शपथ सुनकर मुनिजी और जनकजी सभा समेत सङ्कुचित हो गये। सब लोग भरतजी का मुख देखने लगे। किसी से उत्तर देते नहीं बनता।

व्याख्या : धर्म के मर्म के जाननेवाले महापुरुष पिता के वचन के उल्लंघन करने को सम्मति दे नहीं सकते। तो जब लौटने को कह ही नहीं सकते तो और कहेंगे ही क्या? अतः किसी को उत्तर नहीं सूझता। रामजीने सरल बात कही कि मुझे तो बड़ों की बात माननी है। उनका वचन मानकर वन आया। अब स्वयं गुरुजी तथा पिता सदृश मिथिलेश कहें कि तुम लौट चलो तो मैं चलूँ। अब गुरुजी तथा जनकजी धर्मविरोध कैसे करें। इसलिए जवाब नहीं सूझता। भरतजी का मुख देखते हैं कि तुमसे जो कुछ कहते बने इस समय कहो। क्योंकि तुम्हीं इस कार्य में अग्रसर हो।

सभा सकुच बस भरत निहारी। रामबंधु धरि धीरजु भारी ॥
कुसमउ देखि सनेहु सँभारा। बढ़त बिंधि जिमि घटज निवारा ॥१॥

अर्थ : भरतजी ने देखा कि सभा सङ्कोच के वश में पड़ गयी। तब रामजी के भाई ने भारी धैर्यधारण किया। कुसमय देखकर इस भाँति स्नेह को सँभाला जिस भाँति बढ़ते हुए विन्ध्याचल को अगस्त्यजी ने रोक दिया था।

व्याख्या : भरतजी ने देखा कि रामजी के शपथ पूर्वक कहने से अब किसी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



को उत्तर नही सूझ रहा है। सबके सब सङ्कोच मे पड गये। भरतजी प्रेम से भरे हुए हैं। जनकजी के आ जाने पर स्वयं कुछ कहना नही चाहते। अत्यन्त आवश्यकता पडने पर एक बार बोले थे। अब फिर विना बोले काम नही चलता। अत भारी धैर्य धारण करके बोले। रामजी भाई है। उनको उत्तर देने मे ये ही समर्थ है।

कथा है कि किसी समय विन्ध्याचल वढने लगा। उसका इरादा इतना बढने का था जिसमे सूर्यनारायण उसकी परिक्रमा करने लगें · जिस भाँति सुमेरु की परिक्रमा करते हैं। इस अस्वाभाविक बढाव को देखकर देवताओ को भय हुआ। वे लोग काशी आकर अगस्त्यजी को लिवा ले गये जो विन्ध्य के गुरु थे। उन्हे देखकर विन्ध्याचल ने साष्टाङ्ग दण्डवत् किया। मुनिजी ने कहा कि जब तक मैं दक्षिण से नही लौटता तव तक यो ही पडे रहो। उस समय से विन्ध्याचल का वढना रुक गया। अगस्त्यजी दक्षिण से लौटे ही नही।

यहाँ इतने से ही तात्पर्य है कि भरतजी का प्रेम विन्ध्याचल की भाँति बढता चला जाता था। उसे रोकने से सद्‌गुणरूपी सुरगण असमर्थ थे। फिर भी भरतजी ने उसे ऐसा रोका जैसे अगस्त्यजी ने विन्ध्याचल को बढने से रोक दिया। अर्थात् प्रेम को प्रसुप्तावस्था मे ला दिया।

यहाँ भरतजी की समता अगस्त्य मुनि से और प्रेम की विन्ध्याचल से है।

सोक कनकलोचन मति छोनी। हरी विमल गुन गन जगजोनी॥
भरत बिबेक वराह विसाला। अनायास उधरी तेहि काला॥२॥

अर्थ शोकरूपी हिरण्याक्ष ने निर्मल गुणरूपी जग को उत्पन्न करनेवाली बुद्धिरूपी पृथ्वी को हर लिया था। भरत के विचाररूपी विशाल वराह ने उसका तत्काल उद्धार किया।

व्याख्या · कथा है कि किसी समय हिरण्याक्ष नामी दैत्य पृथ्वी को हरण करके पाताल मे ले गया था। उसे वाराह रूप मे प्रकट होकर भगवान् ऊपर ले आये। यहाँ शोक को हिरण्याक्ष कहा। उसने सबकी बुद्धि हरण कर ली। समष्टि की बुद्धि होने से उसे पृथ्वी से उपमित किया। जिस भाँति पृथ्वी स्थावर जङ्गम का उत्पत्ति स्थान है उसी भाँति बुद्धि भी सब गुणगणो का उत्पत्ति स्थान है। भरत के विवेक ने उसका उद्धार किया। इसीलिए उसे वाराह कहा। भरत के विवेक से सबको बात सूझने लगी। यह बात किसी को न सूझी कि सरकार से कहे कि आप पिता का वचन मानिये। भरत नही मान रहे हैं। उन्हे मानने के लिए आज्ञा दीजिये। आपकी आज्ञा से भरत सब करें। उनका सेवाधर्म न बिगडे।

करि प्रनामु सब कहँ कर जोरे। राम राउ गुरु साधु निहोरे॥
छमब आजु अति अनुचित मोरा। कहउँ बदन मृदु बचन कठोरा॥३॥

अर्थ : भरतजी ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। तत्पश्चात् श्रीरामजी का

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जनकजी का गुरुजी का और साधुओं का निहोरा किया और बोले कि आज मेरे अत्यन्त अनुचित : आचरण को क्षमा कीजियेगा। मैं कोमल मुख से कठोर बातें कहता हूँ।

व्याख्या : पहिले प्रणाम किया। तत्पश्चात् रामजी जानकीजी गुरुजी और साधुओं से क्षमा करने के लिए निहोरा किया कि आज मैं अत्यन्त अनुचित कर रहा हूँ। बात सरकार से और गुरुजनों से हो रही है। इस बीच में मेरा हस्तक्षेप अनुचित है और तिस पर मैं कठोर कहूँगा जो कहना कि मेरे ऐसे व्यक्ति के लिए शोभा नहीं देता। अतः मेरे इस भारी अनुचित कर्म को आप लोग क्षमा करें। इसके लिए मैं निहोरा करता हूँ।

हियँ सुमिरी सारदा सुहाई। मानस ते मुख पंकज आई॥
बिमल बिबेक धरम नय साली। भरत भारती मंजु मराली॥४॥

अर्थ : हृदय से स्मरण करते ही सुन्दर सरस्वती मानस से मुखकमल में आगयी। भरतजी की सरस्वती निर्मल विवेक धर्म और नीतिवाली सुन्दर हंसिनी रूप थीं।

व्याख्या : यह भरतजी की सरस्वती हैं। अतः बड़ी सुन्दर हैं। भरतजी ने उनका स्मरण किया। ये उनके मानस में रहती हैं। इसलिए उन्हें मराली कहा। स्मरण करते ही भरतजी के मुख में आगयी। वाणी की सुन्दरता तभी है जब उसमें विवेक धर्म और नीति तीनों का योग हो। वाणीरूपी हंसिनी गुणरूपी पय और दोषरूपी जल को अलग करती हैं। पर यह हंसिनी धर्म और नीति से भी युक्त है। अतः अधिक सुन्दर हैं।

दो. निरखि बिबेक बिलोचननि, सिथिल सनेह समाजु।
करि प्रनामु बोले भरतु, सुमिरि सीय रघुराजु॥२९७॥

अर्थ : विवेकरूपी नेत्र से सारे समाज को स्नेह से शिथिल देखकर उन्हें प्रणाम किया और राम जानकी को स्मरण कर भरतजी बोले।

व्याख्या . रामजी के स्नेह में मग्न समाज को देखकर भरतजी ने उस समाज को प्रणाम किया। यदि समाज का समाज प्रेममग्न हो तो वह सब प्रकार से प्रणम्य हो जाता है। बोलने के पहिले रामजानकी के स्मरण का भाव यह कि अपनी बात का सही उत्तर आप ही मेरे द्वारा दीजिये।

प्रभु पितु मातु सुहृद गुर स्वामी। पूज्य परम हित अंतरजामी॥
सरल सुसाहिबु सील निधानू। प्रनतपालु सर्बग्य सुजानू॥१॥

अर्थ : हे प्रभो! आप पिता माता सुहृद परमहित अन्तर्यामी हैं। आप सरल सुस्वामी शीलनिधान प्रणतपाल सर्वज्ञ और सुजान हैं।

व्याख्या : यहाँ भरतजी ने अठारह विशेषण दिये हैं। जिनमें सात तो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सम्बन्धबोधक है और शेष सरकार के गुणो के व्यापक हैं। ये ही विरदावली हैं जिनका वर्णन भरतजी करेंगे। अगस्त्य संहिता म सम्बन्ध को परतम स्वराट् भाव कहा है। इसके द्वारा बिना ध्यान और बिना योग के बिना तप के और बिना ज्ञान के श्री रघुनन्दन मे परा अव्यभिचारिणी प्रीति नित्य बढ़ती ही रहती है। यथा एभ्य परतमो भावो सम्बन्धाख्य स्वय स्वराट्। विना ध्यानेन तपसा योग ज्ञान विनैव हि। श्रीरघुनन्दने प्रीति पराह्यव्यभिचारिणी। वर्धतेऽनुदिन विप्र सत्य सत्य न चान्यथा। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं मोहि तोहि नाते अनेक मानिये जो भावै। सो भरतजी ने सात सम्बन्ध माने। पिता माता सुहृद गुरु स्वामी पूज्य और परम हित के सम्बन्ध। यहाँ पर भरतजी ने भाई के सम्बन्ध को नही गिनाया। क्योकि उसके लिए कह आये हैं दसरथ सुअन राम लघु भाई। दीन्ह मोहि बिधि बादि बडाई। अङ्गद ने तीन सम्बन्ध माना था गुरु का पिता का और माता का। यथा मोरे तुम प्रभु गुरु पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जल जाता। यहाँ तो सात सात सम्बन्ध हैं। भाव यह कि मै आपको छोडकर कहाँ जा सकता हूँ।

| | | |
|---|---|---|
| प्रभु | यथा | राजाराम स्ववस भगवानू। |
| पितु | यथा | ज्येष्ठ भ्राता पितु सम। |
| मातु | यथा | रामहि बधु सोच दिन राती। |
| | | अडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती॥ |
| सुहृद | यथा | सिसुपन ते परिहरेउ न सगू। |
| | | कबहु न कीन्ह मोर मन भंगू॥ |
| गुरु | यथा | वेद पुरान सुनहि मनलाई। |
| | | आप कहहि अनुजहि समुझाई॥ |
| स्वामी | यथा | जेठ स्वामि सेवक लघु भाई। |
| पूज्य | यथा | पूजनीय प्रिय परम जहाँ ते। |
| | | सब मानिये राम के नाते॥ |
| परमहित | यथा | भरत सरिस प्रिय को जगमांही। |
| | | कबहुँ न कीन्ह मोर मन भगू। |

अब सरकार के सद्‌गुण कहते है कि श्रीमद से लोग टेढे हो जाते है। यथा श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि। पर सरकार महान् श्रीमान् होने पर भी सरल है। सरकार सुस्वामी हैं। अपनी ओर देखकर कुसेवक का भी भरण करते हैं। यथा राम सुस्वामि कुसवक मोसो। निज दिसि देखि दयानिधि पोसो। तिस पर भी शील निधान हैं। सेवक की ढिठाई पर ध्यान नही देते। यथा प्रभु तरु तर कपि डारपर ते किये आपु समान। तुलसी कहूँ न राम स साहिब सील निधान। प्रणत के पालन करनेवाल हैं। यथा सकृत प्रणाम किये अपनाये। सर्वज्ञ है। यथा तुमसे कछु न छिपी करुनानिधि तुम ही अन्तरजामी। सुजान हैं। जन के जी की बात जानते हैं। यथा राम सुजान जान जन जी की। समर्थ हैं। दोप अपनी क्रिया उन पर नही कर सकते। यथा समरथ कह नहि दोष गोसाइँ। रवि पावक सुरसरि की नाइँ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



समरथु सरनागत हितकारी। गुनगाहकु अवगुन अघहारी॥
स्वामि गोसाइँहि सरिस गोसाईं। मोहि समान मै साइ दोहाईं॥२॥

अर्थ : समर्थ हैं। शरणागत के हित करनेवाले हैं। गुणग्राहक है। अवगुण और पाप के नाश करनेवाले हैं। हे स्वामी ! मालिक तो मालिक से ही है और मै भी अपने ही जैसा हूँ। स्वामी की शपथ लेकर कहता हूँ।

व्याख्या : समर्थ के विषय मे ऊपर कह आये हैं। अथवा समर्थ शब्द का अन्वय शरणागत हितकारी के साथ है। भाव यह कि सरकार शरणागत के हित करने मे समर्थ हैं। यथा : जौं सभीत आवा सरनाई। रखिहौं ताहि प्रान की नाई। सरन गये प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा। सरकार गुणग्राहक हैं। यथा : देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने। सरकार अवगुन अघहारी हैं। यथा : करौं सद्य तेहि साधु समाना।

अनन्वयालङ्कार से अपने इस कथन का तात्पर्य कहते हैं कि न तो आप सा भला स्वामी कही है और न मुझ सा बुरा सेवक ही कोई है। यथा : राम सो खरो है कौन मोसो कौन खोटो। राम सो बड़ो है कौन मोसो कौन छोटो। अब अपनी खोटाई कहते हैं :

प्रभु पितु बचन मोह बस पेली। आयेउँ इहाँ समाजु सकेली॥
जग भल पोच ऊँच अरु नीचू। अमिअँ अमरपद माहुरु मीचू॥३॥

अर्थ : प्रभु और पिता के वचन को मोह के वश हटाकर यहाँ समाज इकट्ठा करके आया हूँ। ससार मे बुरा भला ऊँचा और नीचा अमृत अमरपद विष और मृत्यु है।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि भलाई मे मेरे मालिक का जोड़ नही और खोटाई मे मेरा कोई जोड नही। मैं ऐसा खोटा कि अज्ञान के वश मे आकर प्रभु सम्मत पिता के वचन को न मानकर मै यहाँ समाज इक्ट्ठा करके आया। भाव यह कि प्रभु और पिता के वचन मानने मे विचार को स्थान नही है। इस पर विचार करना ज्ञान नही है अज्ञान है। सो प्रभुसम्मत पिता के वचन का मैंने स्वय तो उल्लङ्घन किया ही और आपसे भी उल्लङ्घन कराने के लिए गुरु माता सचिव तथा पुरजनो को इक्ट्ठा करके यहाँ ले आया। इस बात का भी विचार न किया कि आज्ञा कोई हटा नही सकता। चाहे भला हो चाहे बुरा हो। चाहे ऊँचा हो चाहे नीचा हो। चाहे अमृत हो चाहे विष हो। चाहे अमरपद हो चाहे मृत्यु ही हो। सबको मानना पड़ता है।

राम रजाइ मेटि मन माँही। देखा सुना कतहु कोउ नाँही॥
सो मइ सब बिधि कीन्ह ढिठाई। प्रभु मानी सनेह सेवकाई॥४॥

अर्थ : पर जिसने रामजी की आज्ञा को मन से भी मेटा हो ऐसा कही भी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



किसी को न देखा न सुना। सो मैंने सब प्रकार से ढिठाई की। पर स्वामी ने उस ढिठाई को स्नेह और सेवा मान लिया।

व्याख्या उपर्युक्त भलो और बुरो मे कितनो को तो मैने देखा है और कितनो को सुना है। पर ऐसा सामर्थ्य कही किसी मे न पाया जो आपकी आज्ञा मन से भी मेट सके। भाव यह नट मर्कट इव सबहि नचावत। राम खगेस वेद अस गावत। तथा प्रभु आयसु जेहि कहँ जस अहई। सो तेहि भाँति रहे सुख लहई। प्रभु आज्ञा अपेल श्रुति गाई। करहु सो बेगि जो तुमहि सोहाई।

मैंने ऐसे प्रभु की आज्ञा को सब प्रकार से न मानने की ढिठाई की। यह मेरी खोटाई है और उस ढिठाई को स्नेह और सेवकाई मान लेना यह सरकार का अघहारित्व है।

दो. कृपा भलाई आपनी, नाथ कीन्ह भल मोर।
दूषन भे भूषन सरिस, सुजसु चारु चहु ओर ॥२९८॥

अर्थ अपनी कृपा और भलाई से नाथ ने मेरा भला किया। मेरे दूषण ही भूषण हो गये और सुन्दर सुयश चारो ओर फैल गया।

व्याख्या जग अनभल भल एकु गोसाईं। कहिअ होइ भल कासु भलाईं। सो मुझमे भलाई थी ही नही। सरकार ने कृपा करके ऐसी भलाई की कि मेरे दूषण ही भूषण हो गये। मेरी ढिठाई लोगो की दृष्टि म स्नेह और सेवा के रूप मे परिणत हो गयी। सरकार ने प्रशसा कर दिया भयउ न भुवन भरत सम भाई। सो मेरा सुन्दर सुयश चारो ओर फैल गया। यह सरकार का गुणग्राहकत्व है।

राउरि रीति सुबानि बडाई। जगत बिदित निगमागम गाई॥
कूर कुटिल खल कुमति कलकी। नीच निसील निरीस निसकी ॥१॥

अर्थ आपकी सुन्दर रीति आपका सुन्दर स्वभाव आपकी बडाई ससार मे प्रसिद्ध है। उसका गान वेद शास्त्र ने किया है। जो क्रूर, कुटिल, खल, कुबुद्धि, कलङ्की, नीच, दु शील, नास्तिक और नि शङ्क है।

व्याख्या सरकार की रीति ही ऐसी है कि पतितो को पवित्र करते है। इसी से पतितपावन विरद है। यथा ऐसी कौन प्रभु की रीति। बिरद हेतु पुनीत परिहरि पाँवरनि पर प्रीति। स्वभाव ऐसा सुन्दर है कि नीच से भी प्रीति करते है यदि उसम प्रेम हो। यथा श्रीरघुबीर की यह बानि। नीच हू सो करत प्रीति सुप्रीति उर अनुमानि। बडाई अर्थात् महिमा की तो सीमा ही नही है। यथा महिमा अमित न कहि सकहि सहस सारदा सेस। यह बात छिपी नही है। ससार जानता है। वेद और शास्त्रो म इसकी प्रशसा है। यह सरकार का समरथ सरनागत हितकारित्व है।

क्रूर म दया नही होती और दया मे ही सब धर्मों का निवास है। यथा दया म बसत नाथ सकल धरम। कुटिल म सरलता नही होती। कुटिल ही दुरात्मा है। उसके मन वाणी और कर्म म एकवाक्यता नही। यथा मनस्यन्यत् वचस्यन्यत्

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कर्मण्यन्यत् दुरात्मनाम् । खल निष्कारण ही दूसरे की बुराई करते हैं। यथा खल बिनु कारण पर अपकारी । तामसी बुद्धिवालो की विपरीत बुद्धि होती है। वे अधर्म को ही धर्म समझते हैं। हित को अनहित समझते हैं। यथा तव उर कुमति बसी बिपरीता । हित अनहित मानहुँ रिपु प्रीता। कलङ्की को दुनिया बुरा कहती है। यथा : कुल कलंक जेहि जनम्यौ मोही । अपजस भाजन प्रिय जन द्रोही। लोक वेद से बहिष्कृत को नीच कहते हैं। यथा : लोक वेद बाहर सब भाँती। आचारहीन को दुःशील कहते है। उन्हे वेद भी पवित्र नही कर सकते। यथा आचारहीन न पुनन्ति वेदा. । निरीश ही असुर है। यथा : मानहि मातु पिता नहिं देवा। साधुन्ह सन करवावहि सेवा । जिनके अस आचरण भवानी । ते जानहु निसिचर सब प्रानी। निःशङ्क से भाव यह कि जिनको परलोक का डर नही। यथा स्वारथ बस परलोक नसाही । ये शरण मे रक्खे जाने के पात्र नहीं हैं।

तेउ सुनि सरन सामुहे आए। सकृत प्रनाम किहे अपनाए ॥
देखि दोष कबहु न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने ॥२॥

अर्थ : वे भी सुनकर जहाँ सामने आये और एक बार प्रणाम किया तहाँ आपने अपना लिया। देखकर भी दोष को हृदय मे स्थान नही देते। गुणो को सुनकर भी साधुसमाज मे बखान करते है।

व्याख्या : ऐसे क्रूर कुटिल खल से सभी दूर भागते हैं। पर सरकार की बात दूसरी है। आपके सामने यदि ऐसा पुरुष भी आपके गुण गणो को सुनकर शरण मे आवे तो एक बार प्रणाम करने से ही आप उसे अपना लेते है। पहिली बात यह है कि आपके सुयश सुनने से उसे यह सङ्कल्प हो कि मै ऐसे के अनुकूल चलूँगा। इनके प्रतिकूल का परित्याग करूँगा और उसे विश्वास हो जाय कि सरकार निश्चय मेरी रक्षा करेंगे मैं इन्ही को अपना रक्षक मानूँगा। मुझ से तो सब बिगड गया और अपने को सरकार को समर्पण कर दें तो सरकार एक प्रणाम से प्रसन्न होकर उसे अपना बना लेते हैं। वह तदीय हो जाता है।

यथा : सनमुख होइ जीव मोहि जबही । जनम कोटि अघ नासहिं तबही ।
जौं नर होइ चराचर द्रोही । आवै सभय सरन तकि मोही।
तजि मदमोह कपट छल नाना । करौं सद्य तेहि साधु समाना।

उसके एक प्रणाम से रामजी प्रसन्न हो जाते है। उस प्रणाम की बडी महिमा है। यहाँ : प्रनत पाल सरवज्ञ सुजानू का साफल्य दिखलाया।

उसके दोषो को कभी हृदय मे स्थान नही देते। देखते हुए भी नही देखते।

यथा : जेहि अघ बधेउ ब्याध जिमि बाली।
फिरि सुकठ सोइ कीन्हि कुचाली ॥
सोइ करतूति बिभीषन केरी।
सपनेहुँ सो न राम हियँ हेरी ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तेहि भरतहि भेटत सनमाने।
राजसभाँ रघुबीर बखाने॥

जो तदीय हो चुका उससे चूक भी हो जाय तो वह फिर परित्यक्त नही होता। ऐसा सुन्दर सरकार का स्वभाव है। अब बडाई कहते हैं।

को साहिब सेवकहि नेवाजी। आपु समाज साज सब साजी॥
निज करतूति न समुझिअ सपने। सेवक सकुच सोचु उर अपने॥३॥

अर्थ ऐसा कौन स्वामी है जो सेवक पर कृपा करके अपने सब समाज और साज साज दे। अपनी करतूत पर स्वप्न मे भी ध्यान न दे। यदि सेवक को सङ्कोच हो तो अपने मन मे सोच हो।

व्याख्या सेवक कैसा भी हितचिन्तक हो पर उसे कोई बराबरी का दर्जा नही देता। पर रामजी की यह बडाई है कि उसका स्वय समाज साज देते हैं।

यथा बालि त्रास ब्याकुल दिन राती।
तन बहु ब्रन चिंता जर छाती॥
सो सुग्रीव कीन्ह कपि राऊ।
अति कृपाल रघुबीर सुभाऊ॥
प्रभु तरुतर कपि डारपर ते किये आपु समान।
तुलसी कहूँ न राम से साहिब सील निधान॥

सरकार का स्वभाव बडा विस्मरणशील है। स्वय जो जो भलाई किया है उसे भूल जाते हैं और सेवक को यदि सङ्कोच हो तो उन्हे मन मे सोच होता है अर्थात् सङ्कोच मिटाने का प्रयत्न करते हैं। यथा सकुच बिहाय मागु नृप मोही। तथा मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करउँ सोइ आजु।

सो गोसाइँ नहि दूसर को पी। भुजा उठाइ कहउँ पन रोपी॥
पसु नाचत सुक पाठ प्रबीना। गुन गति नट पाठक आधीना॥४॥

अर्थ ऐसा मालिक दूसरा कोई नही है। मै भुजा उठाकर और प्रण करके कहता हूँ। पशु नाचते हैं और तोता पाठ करने मे प्रवीण होता है। परन्तु गुण और गति नट और पाठक के अधीन होता है।

व्याख्या भरतजी कहते है कि मालिक तो बहुत हैं। पर ऐसा मालिक कोई है नही। भुजा उठाकर प्रण रोपकर मै कहता हूँ सारी सभा मे सबका साक्षी देने के लिए भुजा उठाकर प्रण किया जाता है। यथा निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ पन कीन्ह। कि : स्वामि गोसाइँहि सरिस गोसाइँ।

सरकार ने जो कहा. भयउ न भुवन भरत सम भाई इत्यादि। उसपर भरतजी कहते है कि इसमे मेरी करतूत कुछ नही। पशु नाचता है। उसके नृत्य की गति नट के आधीन होती है। उसकी शिक्षा के अनुसार वह नाचता है। तोता श्लोक

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पढ़ता है। वह कुछ नहीं समझता। जैसा सिखाया हुआ है वैसा कहता है। सो मेरे मे जो गुण दिखायी पड़ते हैं वे सरकार की प्रेरणा से हैं। यह अन्तर्यामित्व है।

दो. यों सुधारि सनमानि जन, किये साधु सिरमोर।
को कृपालु बिनु पालिहैं, बिरदावलि बरजोर ॥२९९॥

अर्थ : इस भाँति अपने जन को सुधारकर और सम्मान देकर साधुओं का सिरमौर बना दिया। कृपालु के बिना ऐसी बाँकी बिरदावली का कौन बल पूर्वक पालन कर सकता है।

व्याख्या : मुझमे गुण कहाँ। जो दिखायी पड़ते है वे सरकार के सिखाये हैं। यथा : वेद पुरान सुनहिं मन लाई। आप कहहिं अनुजन्ह समुझाई। अथवा मैंने तो ढिठाई की। न पिता की आज्ञा मानी न सरकार की शिक्षा मानी। परन्तु सरकार ने बलपूर्वक बिगड़ी हुई बात को सुधार दिया। यथा : सुनहु लखन भल भरत सरीखा। बिधि प्रपंच महु सुना न दीखा। सम्मान दिया। यथा : उठे राम सुनि प्रेम अधीरा। कहुँ पट कहुँ निषग कहुँ तीरा। साधु सिरमौर बनाया। यथा : भरतहि होइ न राजमद बिधि हरि हर पद पाइ। कबहुँ कि काँजी सीकरन्हि छीर सिंधु बिनसाइ। यहाँ : प्रभु पितु मातु सुहृद गुर स्वामी। पूज्य परम हित का साफल्य दिखलाया।

सोक सनेह कि बाल सुभाएँ। आयेउँ लाइ रजायसु बाएँ॥
तबहुँ कृपाल हेरि निज ओरा। सबहि भाँति भल मानेउ मोरा ॥१॥

अर्थ : शोक से स्नेह से या बाल स्वभाव से आज्ञा को हटाकर मैं यहाँ आया। फिर भी कृपालु ने अपनी ओर देखकर सभी भाँति से मेरा भला ही माना।

व्याख्या : भरतजी अपना दोष कहते हैं कि मैं स्वयं निश्चय नहीं कर सकता कि मैं यहाँ क्यो आया ? शोक के कारण आया कि स्नेह के कारण आया कि बाल-स्वभाव से आया। यहाँ बाल का अर्थ अज्ञानी है। अर्थात् स्वभाव से मै अज्ञानी हूँ। उसी स्वभाव की प्रेरणा से आया है। चाहे जैसे आया पर आज्ञा उल्लंघन करके ही आया। क्योंकि आज्ञा पालन मे विचार को स्थान नहीं है। यथा : मातु पिता गुरु प्रभु के बानी। बिनहि बिचार करिअ सुभजानी। शोक यथा : राम लखन सिय बिनु पग पनही। करि मुनिबेष फिरहि बन बनही। एहि दुख दाह दहै दिन छाती। भूख न बासर नीद न राती।

स्नेह यथा : देखे बिनु रघुनाथ पद जिय कै जरनि न जाइ।

बाल सुभाएँ यथा : आन उपाउ मोहि नहिं सूझा।

सरकार कृपालु हैं। अपनी ओर देखते हैं। जन के दोष को नहीं देखते। जब मुझ से आज्ञा भङ्ग का अपराध नहीं हुआ था तब तो भला मानना ही था। यथा : तात बचन पुनि मातु हित भाइ भरत अस राउ। मो कहु दरस तुम्हार प्रभु सब मम पुन्य प्रभाउ। आज्ञा भङ्ग करने पर भी भला ही माना। नहीं तो मैं इस योग्य

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



था कि मेरा मुख भी न देखते। यथा राम लखन सिय सुनि मम नाऊँ। उठि जनि अनत जाहिं तजि ठाऊँ। सो मुझ दर्शन दिया।

देखेउँ पायँ सुमंगल मूला। जानेउँ स्वामी सहज अनुकूला ॥
बड़े समाज बिलोकेउँ भागू। बड़ी चूक साहिब अनुरागू ॥२॥

अर्थ सुमङ्गलमल चरणो का दर्शन पाया। जाना कि स्वामी की स्वभाविक कृपा बनी है। बड़े समाज मे अपना भाग्य देखा कि मुझ से बड़ी चूक होने पर भी स्वामी अनुकूल हैं।

व्याख्या सरकार मेरा नाम सुनने पर भी दूसरी जगह नही चले गये। इन मङ्गलमूल चरणो का दर्शन हुआ। तब मुझे मालूम हुआ कि सरकार की स्वाभाविक अनुकूलता म कोई भेद नही पड़ा।

इतना ही नही। इतनी बड़ी चूक पर भी स्वामी का इतना अधिक अनुराग है। इससे मैं अपने को बड़भागी मानता हूँ। यह सभा बड़ो की है। जिसमे गुरु श्वशुर माता सचिव तथा वृद्ध महाजन सभी एकत्रित हैं। इसमे सरकार ने पिता के वचन के गौरव से अधिक मेरे सङ्कोच को स्थान दिया। यथा तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि ते अधिक तुम्हार सकोचू जो मैं कहूँ वही कर डालने पर तैयार हो गये और श्रीमुख से मेरे भाग्य की बड़ाई की।

कृपा अनुग्रह अगु अघाई। कीन्हि कृपानिधि सब अधिकाई ॥
राखा मोर दुलार गोसाईं। अपने सील सुभायँ भलाई ॥३॥

अर्थ हे गोसाईं! हे कृपानिधे! आप ने कृपा और साङ्ग अनुग्रह जी खोलकर अधिकता क साथ किया। अपने शील स्वभाव और भलाई से मेरा दुलार रक्खा।

व्याख्या भरतजी कहते हैं कि मेरे अपराधो को केवल क्षमा ही नही किया बल्कि उन अपराधो को ही सद्गुण का रूप दे दिया। दूषण भूषण हो गये। दुर्यश सुयश हो गया। सम्मान मिला। मै साधुओ का सिरमौर बन गया। मेरे लिए पिता का बचन तक त्यागने को प्रस्तुत हो गये। अब कृपा और अनुग्रह का कौन सा अङ्ग बचा जिसका प्रयोग मुझ पर जी खोलकर और पूरी तरह से नही किया गया।

मेरा दुलार सदा से होता आया हैं। उसे ब्रह्मा नही सह सके। माँ के व्याज से उसम बीज डालना चाहा। यथा विधि न सकेउ सहि मोर दुलारा। नीच बीच जननी मिस पारा। परन्तु सरकार ने अपने शील स्वभाव और भलाई से मेरा दुलार रख लिया। ब्रह्मा का बिगाड़ा भी नही बिगड़ा। सरकार का शील स्वभाव और भलाई प्रख्यात है।

शील यथा तुलसी कहूँ न राम ते साहिब सील निधान।
स्वभाव यथा जासु स्वभाव अरिहु अनुकूला।



(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भलाई। यथा : राम निकाई रावरी है सबही को नीक।

नाथ निपट मइ कीन्हि ढिठाई। स्वामि समाज सकोच विहाई॥
अविनय विनय जथारुचि बानी। छमिहि देउ अति आरति जानी॥४॥

अर्थ : हे नाथ ! मैंने अत्यन्त ढिठाई की। जो स्वामी और समाज के सङ्कोच को छोडकर नरम और कड़ी मनमानी वाणी कही। हे राजन् ! उसे मुझे अत्यन्त आर्त्त जानकर क्षमा करें।

व्याख्या : कहऊँ बदन मृदु बचन कठोरा से उपक्रम करके : अविनय विनय यथा रुचि बानी से उपसंहार कर रहे हैं। यहाँ स्वामी और बड़ो का समाज उपस्थित है। ऐसे समाज मे सङ्कोच ही उचित है। यदि बोले भी तो सयत भाषा मे ही बोलना उचित है। भरतजी कहते है सो मैं सङ्कोच छोड़कर इतना बोल गया और उसमे कठोर वाणी भी कही। यथा : फरइ कि कोदव बालि सुसाली। मुकता प्रसव कि सबुक काली इत्यादि। अतः क्षमा माँगता हूँ। मैं अत्यन्त आर्त्त हूँ और आप सुस्वामी हैं। यथा : कटु कहिये गाढे परे सुनि समुझि सुसाईं।

दो. सुहृद सुजान सुसाहिबहि, बहुत कहब बड़ि खोरि।
आयसु देइअ देव अब, सबुइ सुधारी मोरि॥३००॥

अर्थ : सुहृद सुजान और सुस्वामी से बहुत कहना भी बडा दोष है। हे राजन् ! *अब आप आज्ञा दें और मेरा सब कुछ सुधार दें।*

व्याख्या : सुहृद सुजान और सुसाहिब से अधिक न कहना चाहिए। क्योकि अधिक कहने का यह अर्थ होता है कि स्वामी सुहृद सुजान नही हैं। अब मैं विनती कर चुका और सरकार ने सादर सुना भी। अब आप आज्ञा दें। आपके आज्ञा देने से ही सब सुधर जायगा। भाव यह कि जिसकी आज्ञा चले वही राजा है। आपकी आज्ञा से मैं काम करूँगा तो राजा आप रहे मैं सेवक रहा। मेरा सेवधर्म बना रह जायगा। सरकार ने मेरे दूषण को भूषण तो किया। अब आज्ञा देकर मेरी बिगड़ी भी सुधार दें। यथा : बिगरी बनावै कृपानिधि की कृपा नई।

प्रभु पद पदुम पराग दोहाई। सत्य सुकृत सुख सीव सुहाई॥
सो करि कहउँ हिये अपने की। रुचि जागत सोवत सपनेकी॥१॥

अर्थ : जो सत्य सुकृत और सुख की सुन्दर सीमा हैं उस स्वामी के चरण कमल के रज की दोहाई देकर जागत सोवत और सपने की रुचि जो हृदय मे है कहता हूँ।

व्याख्या : सरकार सुन्दर सत्य की सीमा हैं। जगत् मे आपेक्षिक सत्य है। पूर्ण रूपेण सत्य तो सरकार ही हैं। सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म। सत्यसंध दृढव्रत रघुराई। सरकार सुकृत की सीमा हैं। यथा : सुकृत सनेह अवधि रघुराई। सरकार आनन्द की सीमा हैं। यथा : जो आनन्द सिंधु सुख रासी। इस भाँति रामजी को सच्चित-

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दानन्द दिनेश कहा। ऐसे महाप्रभु की शपथ लकर अपनी रुचि कहते हैं। जो जाग्रत अवस्था मे तो सदा बनी ही रहती है। स्वप्न भी जाग्रत के सस्कार के अनुरूप ही होता है। अत स्वप्न मे भी यही रुचि सस्कार रूप से रहती है। घोर निद्रा के समय मे भी वह बीज रूप से रहती है। गुरुजी ने सरकार को मेरी रुचि रखने को कहा। सरकार भी उसके रखने के लिए सब तरह से तैयार हैं। अत मैं उसे कहे देता हूँ।

सहज सनेह स्वामि सेवकाई। स्वारथ छल फल चारि बिहाई ॥
अग्या सम न सुसाहिब सेवा। सो प्रसादु जन पावइ देवा ॥२॥

अर्थ स्वामी की सेवा मे स्नेह हो। चारो फल सम्बन्धी स्वार्थ रूपी छल छोडकर हो। अच्छे स्वामी की सबसे बडी सेवा आज्ञा पालन है। वही प्रसाद आपका दास चाहता है।

व्याख्या सच्ची सेवा मे स्वार्थ ही छल है और जितने स्वार्थ हैं वे अर्थ धर्म काम और मोक्ष के अन्तर्गत हैं। अत इनसे रहित स्वामी की सेवा मे सहज स्नेह चाहता हूँ। कपट प्रीति या कृत्रिम प्रीति नही चाहता। सेवा मे भी सबसे बडी स्वामी की आज्ञा है। अत आप कृपा करके आज्ञा दें। उसी का मैं पालन करूँ। आपकी आज्ञा से जो कुछ मै करूँगा। वही सरकार की सेवा हो जायेगी। अत अब मै यही प्रसाद चाहता हूँ कि मुझे आज्ञा हो कि भरत! तू यह कर। बस इतना ही मेरा अभीष्ट है।

अस कहि प्रेम बिबस भए भारी। पुलक सरीर बिलोचन बारी ॥
प्रभु पद कमल गहे अकुलाई। समउ सनेहु न सो कहि जाई ॥३॥

अर्थ ऐसा कहकर भारी प्रेम के वश हुए। उनके शरीर मे पुलक हो आया। आँखें डबडबा आयी। सरकार के चरण को व्याकुल होकर पकड लिया। उस समय का वह स्नेह कहा नही जाता।

व्याख्या पहिले स्नेह सँभाला था। बढत बिन्ध्य जिमि घटज निवारा। परन्तु इस बात के निवेदन करने मे वह स्नेह नही सँभल सका। फूट चला। अत एकदम प्रेम के विवश हो गये। उन्हे सात्त्विक भाव हो गया। प्रेम मे डूबने लगे। आधार की भाँति चरण को व्याकुल होकर पकड लिया। भरतजी को सब दु ख स्वीकार है। पर सरकार असामञ्जस्य म न रहे।

कृपासिंधु सनमानि सुबानी। बैठाये समीप गहि पानी ॥
भरत बिनय सुनि देखि सुभाऊ। सिथिल सनेह सभा रघुराऊ ॥४॥

अर्थ कृपासिन्धु ने सुन्दर वाणी से सम्मान करके हाथ पकडकर बैठाया। भरतजी का विनय सुनकर और स्वभाव देखकर सारी सभा और स्वयं रामजी स्नेह से शिथिल हो गये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : भरतजी चरणो पर गिरे थे। सरकार ने उनका हाथ पकडकर निकट बैठाया। सरकार कृपासिन्धु हैं। भरतजी के आचरण से द्रवीभूत हो गये। उनका सत्कार सुन्दर वाणी से किया। सभा ने और रामजी ने भरतजी का विनय सुना। जिसका तात्पर्य यह था कि मेरा स्वामीसेवक भाव न बिगडे। भरतजी सब दु ख सहने को तैयार हैं। पर सरकार की आज्ञा से। निर्गलितार्थ यह कि आप मालिक होना स्वीकार करिये। सब कुछ आप की आज्ञा से हो।

सुरगुरुजी ने पहिले ही कहा था : देखु देवपति भरत प्रभाऊ। सहज सनेह बिबस रघुराऊ। सो विनय सुनकर और स्वभाव देखकर सभा सहित रामजी स्नेह से शिथिल हो गये।

छं. रघुराउ सिथिल सनेहु साधु समाज मुनि मिथिला धनी।
मन महु सराहत भरत भायप भगति की महिमा घनी॥
भरतहि प्रसंसत बिबुध बरखत सुमन मानस मलिन से।
तुलसी बिकल सब लोग सुनि सकुचे निसागम नलिन से॥

अर्थ : रामजी साधु समाज मुनि मिथिलेश सब स्नेह से शिथिल हो गये और मन ही मन भरतजी के भाईपन तथा भक्ति की महा महिमा की सराहना करने लगे। देवता लोग भरतजी की प्रशसा करते हैं और मलिन मन से फूल बरसाते हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि सब लोग सुनकर विकल हो गये और रात आने पर कमल की भाँति सङ्कुचित हो गये।

व्याख्या : पहिले कह आये हैं : सिथिल सनेह सभा रघुराऊ। इसी पुरइन का कमल है : रघुराउ सिथिल सनेह साधु समाज मुनि मिथिलाधनी। सभा मे ये ही लोग थे। वे सबके सब स्नेह मे ऐसे शिथिल हो गये कि मुख से वाक्य नही निकलता। भरतजी के भाईपन की सराहना मन ही मन कर रहे हैं कि भरतजी सब दु ख सहने को तैयार हैं। पर रामजी के चित्त पर सङ्कोच की छाया तक नही आने देते और भक्ति की महामहिमा की प्रशसा करते हैं कि जिसके प्रभाव से सारी सभा जिसमें ऐसे ऐसे धुरन्धर ज्ञानी भी हैं स्नेह से शिथिल हो गयी। सभा की गति कहकर अब देवताओ का हाल कहते हैं कि अपनी कार्य सिद्धि भरतजी द्वारा होने देखकर फूलो का वर्षा कर रहे हैं। पर मलिन मन से करते हैं। क्योंकि मन इनका शुद्ध नही है। लोगों की यह अवस्था हुई कि यह दशा सुनकर वे मुरझा गये। पहले उनका छटपटाना कहा था। यथा : सुनि सुनि सोच बिकल सब लोगा। मनहु मीनगन नव जल जोगा। अब उनका मुरझाना कहते हैं कि निशागमन के कारण जैसे कमल सङ्कुचित हो जाता है वैसे हो गये।

सो. देखि दुखारी दीन, दुहु समाज नर नारि सब।
मघवा महा मलीन, मुए मारि मंगल चहत॥३०१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ दोनो समाज के सब नर नारियो को दीन दुखी देखकर महामलिन इन्द्र मरे हुए को मारकर मङ्गल चाहते हैं।

व्याख्या जो स्वयं दुख से दुखी हो रहा हो उसे और दुख देने के लिए तत्पर होना ही मरे हुए को मारना है। सभा का सब समाचार पाकर लोग बडे दुखी हुए। इन्द्र ने देखा कि इनका दुखी होना भी सरकार के लौट चलने का कारण हो सकता है। अत ऐसा उपाय होना चाहिए जिसमे लोगो की बुद्धि ही पलट जाय। ये रामजी के साथ वन म रहना चाहते हैं। सो उन्हे घर लौटना अच्छा लगने लगे। दीन दुखियो का मन स्वस्थ नही होता। उन पर माया शीघ्र काम करती है। अत यही समय माया करने का है। देवता मानस मलिन हैं। देवराज इन्द्र महा-मलिन हैं।

कपट कुचालि सीव सुरराजू। पर अकाज प्रिय आपन काजू ॥
काक समान पाकरिपु रीती। छली मलीन कतहूँ न प्रतीती ॥१॥

अर्थ देवराज तो कपट और कुचाल की सीमा हैं। इन्हे दूसरे का काम बिगाडना और अपना काम बनाना प्रिय है। इन्द्र की रीति कौवे के समान है। छली हैं। मलिन हैं। इन्हे कही भी विश्वास नही है।

व्याख्या इन्द्र को केवल अपना काम प्रिय हो इतनी ही बात नही। दूसरे का काम बिगाडना भी उतना ही प्रिय है। देवता लोगो को केवल अपना काम प्रिय था। अपना काम हाते ही फूलो की वर्षा करने लगे। परन्तु इन्द्र से लागो मे इतनी भक्ति का होना न देखा गया। उनके मानसिक सद्भाव को बिगाडने पर तुल गये।

उनकी रीति कौवे की रीति सी है। जिस भाँति कौआ छली मलिन होता है उसे किसी का विश्वास नही होता। उसी भाँति इन्द्र भी छली है। मलिन हैं। दिव्य शरीर प्राप्त करने पर भी इनके हृदय का मालिन्य दूर नही हुआ। माया कर ही बैठे। इन्हे कही विश्वास नही। स्पष्ट देख रहे है कि भरतजी रामजी की आज्ञानुसार ही चलना चाहते हैं और रामजी को पिता की आज्ञा शिरोधार्य है। पर इन्द्र को इन पर भी विश्वास नही। कदाचित् लोगो के अनुरोध से ही रामजी लौट जायँ इस सन्देह के कारण उन पर माया चलाना चाहते हैं। भाव यह कि जहाँ विषय की लोलुपता है वहाँ कपट और कुचाल रहेगा ही। इन्द्रपद विषय भोग की सीमा है। अत वहा कपट कुचाल की पराकाष्ठा रहेगी ही।

प्रथम कुमत करि कपटु सकेला। सो उचाटु सबके सिर मेला ॥
सुरमाया सब लोग बिमोहे। राम प्रेम अतिसय न बिछोहे ॥२॥

अर्थ पहिले ही कुमन्त्रणा करके माया की रचना की थी। उसी उच्चाटन को सबके ऊपर डाल दिया। देवताओ की माया से सब लोग मोहित हो गये। रामजी के प्रेम से अत्यन्त बिरहाकुल नही हुए।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या रचि प्रपंच माया प्रबल भय भ्रम अरति उचाट। इस प्रकार जो माया पहिले सब ने मिलकर बनायी थी उसी का प्रयोग समय पाकर सबके ऊपर कर दिया। यहाँ उच्चाटन के अन्तर्गत भय भ्रम और आर्त्ति को समझ लेना चाहिए। देवताओ ने उच्चाटन का प्रयोग किया। इससे लोगो को रामजी के विरह का जितना दु ख होना था उतना नही हुआ। कर मीजहिं सिर धुनि पछिताही। जिमि बिनु पख विहग अकुलाही। ऐसी दशा नहीं हुई।

भय उचाट बस मन थिर नाही। छन बन रुचि छन सदन सोहाही ॥
दुबिध मनोगति प्रजा दुखारी। सरित सिंधु संगम जनु बारी ॥३॥

अर्थ भय और उचाट के वश हो गये। मनमे स्थिरता नही रह गयी। क्षण मे वन मे रहने को जी चाहने लगा। दूसरे क्षण मे घर की ओर मन दौडने लगा। मन की द्विविध गति से प्रजा दु खी हो गयी जैसे नदी और समुद्र के सङ्गम मे थेड़ जल की दशा हो जाती है।

व्याख्या उच्चाटनवाली माया सबके हृदय मे काम करने लगी। ज्वारभाटा आने लगा। कभी समुद्र के पानी का वग नदी मे आ जाता है। इससे नदी मे बाढ आजाती है और कभी उसके हट जाने से स्वाभाविक अवस्था मे हो जाती है। इसी भाँति उनके हृदय म कभी रामजीका प्रेम अत्यन्त अधिक हो जाता है और कभी घर की सुधि आने से कम हो जाता है। पर सर्वथा प्रेमाभाव नही होता।

नदी की गति स्वाभाविक समुद्र की ओर जाने की है। पर समुद्र का सङ्गम होने पर उस गति म बाधा आ पडती है। समुद्र के झोंके के कारण नदी का जल कभी उलट पडता है और उसकी उलटी गति हो जाती है फिर ठीक हो जाता है। फिर उलटा बहने लगता है। यह क्रम सङ्गम पर चला ही करता है। जल की एक गति नही होने पाती। यही दशा लोगो के चित्त नदी की हो गयी। मन रामसिन्धु की ओर तो अनवरत जाता ही रहता है पर बार बार घर की ओर भी लौटता है।

दुचित कतहुँ परितोषु न लहही। एक एक सन मरमु न कहही ॥
लखि हियँ हँसि कह कृपानिधानू। सरिस स्वान मघवान जुवानू ॥४॥

अर्थ मनकी द्विविध गति हो जाने से कही भी सन्ताप नही हो रहा है। एक दूसरे से मर्म नही कह रहे हैं। इस बात को लखकर कृपानिधान मन ही मन हँसकर कहने लगे कि स्वान जवान और मघवान इन्द्र एक से ही हैं।

व्याख्या न घर म मन ठहरता है न वन म लगता है। कही शान्ति नही पाता। मन के इस प्रकार के परिवर्तन को कोई एक दूसरे पर प्रकाशित नही करता। सङ्कोच मालूम होता है कि कही सुख समेत सम्वत दुइ साता। पल सम होहिं न जनिअहिं जाता। इत्यादि भावना थी और वहाँ दो ही दिन म घर की ओर मन दौडने लगा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इस बात को कृपा सिन्धु रामजी ने लखा। कृपा सिन्धु हैं। यह देखकर भी अप्रसन्न नही होते। मन ही मन इन्द्र की करणी पर हँसते हैं कि व्याकरण शास्त्र मे भी श्वन् युवन् मघवन् शब्दो की एक ही गति है। यथा श्वयुवमघोनामतद्धिते। व्यवहार मे भी ऐसा ही जान पडता है। विषय लोलुपता तीनो मे समान है।

दो भरतु जनकु मुनिजन सचिव, साधु सचेत विहाइ।
लागि देवमाया सबहि, तथा जोगु जनु पाइ॥३०२॥

अर्थ भरत, जनक, मुनिगण, मन्त्री और सावधान साधुओ को छोडकर देववाओ की माया और सभी को जो जैसा था उसे वैसी ही लगी।

व्याख्या सो उचाट सबके सिर मेला। इसलिए सबको देवमाया लगी। किसी को कम किसी को अधिक। उनकी साधुता और सावधानता के तारतम्यानुसार लगी। भरतजी, जनकजी, मुनिगण, मन्त्रिगण और सावधान साधु पर देवमाया का कोई प्रभाव नही पडा। भाव यह राम भगति चितामनि सुन्दर। बसइ गरुड जाके उर अतर। तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकै कछु निज प्रभुताई।

कृपा सिंधु लखि लोग दुखारे। निज सनेह सुरपति छल भारे॥
सभा राउ गुरु महिसुर मन्त्री। भरत भगति सब कै मति जन्त्री॥१॥

अर्थ कृपा सिन्धु रामजी ने देखा कि लोग मेरे स्नेह और इन्द्र की प्रबल माया से दु खी हो रहे हैं और सभा, राजा, गुरुजी, ब्राह्मण और मन्त्रियो की बुद्धि को भरतजी की भक्ति ने जकड रक्खा है।

व्याख्या सरकार ने देखा कि द्विविधा मे पडे हुए लोग दु खी हो रहे हैं। इन्द्र की माया उन्हे घर की ओर खीच ल जाती है। मेरा स्नेह भी छोडते नही बनता और इधर सभा, महाराज, जनक, वसिष्ठजी, ब्राह्मण और मन्त्री समाज भरत की भक्ति के वशीभूत हो रहा है। यथा रघुराउ सिथिल सनेह साधु समाज मुनि मिथिलाधनी। कोई अपने काबू मे नही है।

रामहि चितवत चित्र लिखे से। सकुचत बोलत बचन सिखे से॥
भरत प्रीति नति बिनय बडाई। सुनत सुखद बरनत कठिनाई॥२॥

अर्थ रामजी को इस भाँति देख रहे है मानो चित्र मे लिखे गये हो और बोलते हुए सङ्कुचित होते है। मानो सिखायी हुई बातें बोल रहे हैं। भरत की प्रीति नम्रता विनय और बडाई सुनने मे तो सुख देनेवाली है पर उसका वर्णन कठिन है।

व्याख्या अत जिन्ह इन्द्र की माया लगी है व भी और जिन्हे नही लगी है वे भी एकटक रामजी की ओर दख रहे हैं कि देखें सरकार की क्या मर्जी होती है। सबको स्वय कुछ कहने मे सङ्कोच हो रहा है जैसे सिखी सिखायी बात कहने मे सङ्कोच होता है। जो बात मन से उठती है वह बिना कहे नही रही जाती और सिखी सिखायी बात समय पडने पर भूल जाती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भरतजी की प्रीति यथा अस कहि प्रेम विवस भये भारी।
भरतजी की नति यथा प्रभु पद पदुम गहे अकुलाई।
भरतजी की विनय यथा प्रभु पद पदुम पराग दोहाई।
सत्य सुकृत सुख सीम सोहाई॥
सो करि कहौ हिये अपने की।
रुचि जागत सोवत सपने की॥
भरतजी की बड़ाई यथा सहज सनेह स्वामि सेवकाई।
स्वारथ छल फल चारि बिहाई॥

जासु बिलोकि भगति लवलेसू। प्रेम मगन मुनिगन मिथिलेसू॥
महिमा तासु कहै किमि तुलसी। भगति सुभाय सुमति हियँ हुलसी॥३॥

अर्थ जिसके भक्ति के लवलेश को देखकर मुनिगण और मिथिलेश प्रेम मे मग्न हो गये। उसकी महिमा तुलसी कैसे कहे। भक्ति के स्वभाव से सुमति तो उठी।

व्याख्या भरत सुप्रेम पयोधि। भरत जी प्रेम के समुद्र हैं। समुद्र की तरङ्ग तट पर स्थित मनुष्य को सराबोर कर देती है। पर भरत ऐसे समुद्र हैं कि इनकी भक्ति के लवलेश के दर्शन से मुनिगण और स्वय मिथिलेश जैसे ज्ञानी प्रेम मे मग्न हो जाते है। उस भक्ति की महिमा तुलसी कैसे कह सकता है। परन्तु भक्ति का स्वभाव है कि उसके कारण सुमति उठती है। सो हृदय म सुमति उठी परन्तु

आपु छोटि महिमा बडि जानी। कविकुल कानि मानि सकुचानी॥
कहि न सकत गुन रुचि अधिकाई। मति गति बाल बचन की नाई॥४॥

अर्थ अपने को छोटी और महिमा को बडी जानकर कविकुल की मर्यादा पर ध्यान देकर सङ्कुचित हो गयी। गुण कह नही सकती और रुचि अधिक है। सो बुद्धि की गति बच्चा के वचन जैसी हो गयी।

व्याख्या भक्ति के प्रभाव से सुमति तो उठी पर उसने देखा कि मैं छोटी हूँ और महिमा बडी है। मेरा वर्णन करने के लिए प्रयत्न करना कविकुल की प्रतिष्ठा को बिगाडना है। अत गुणो का वर्णन कर नही सकती और रुचि वर्णन करने की बहुत है। अत उसकी गति बालक के वचन सी हो गयी। बालक को बोलने की बडी रुचि है। पर उससे बोलते बनता नही।

दो भरत बिमल जसु बिमल बिधु, सुमति चकोर कुमारि।
उदित बिमल जन हृदय नभ, एकटक रही निहारि॥३०३॥

अर्थ भरत का निर्मल यशरूपी चन्द्रमा जो भक्त के हृदयरूपी आकाश म उदय हुआ है उसे सुमतिरूपी चकोर की कन्या टकटकी लगाये देखती रह गयी।

व्याख्या तव बिधु बिमल तात जस तोरा। रघुबर किंकर कुमुद चकोरा। गुरु अपमान दोष नहि दूषा। वही भरत का निर्मल यश भक्त के निर्मल हृदय रूपी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इस बात को कृपा सिन्धु रामजी ने लखा। कृपा सिन्धु हैं। यह देखकर भी अप्रसन्न नही होते। मन ही मन इन्द्र की करणी पर हँसते हैं कि व्याकरण शास्त्र मे भी श्वन् युवन् मघवन् शब्दो की एक ही गति है। यथा : श्वयुवमघोनामतद्धिते। व्यवहार मे भी ऐसा ही जान पडता है। विषय लोलुपता तीनो मे समान है।

दो. भरतु जनकु मुनिजन सचिव, साधु सचेत बिहाइ।
लागि देवमाया सबहि, तथा जोगु जनु पाइ ॥३०२॥

अर्थ · भरत, जनक, मुनिगण, मन्त्री और सावधान साधुओ को छोडकर देवताओ की माया और सभी को जो जैसा था उसे वैसी ही लगी।

व्याख्या : सो उचाट सबके सिर मेला। इसलिए सबको देवमाया लगी। किसी को कम किसी को अधिक। उनकी साधुता और सावधानता के तारतम्यानुसार लगी। भरतजी, जनकजी, मुनिगण, मन्त्रिगण और सावधान साधु पर देवमाया का कोई प्रभाव नही पडा। भाव यह : राम भगति चिंतामनि सुन्दर। बसइ गरुड जाके उर अतर। तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकै कछु निज प्रभुताई।

कृपा सिंधु लखि लोग दुखारे। निज सनेह सुरपति छल भारे॥
सभा राउ गुरु महिसुर मंत्री। भरत भगति सब कै मति जत्री ॥१॥

अर्थ · कृपा सिन्धु रामजी ने देखा कि लोग मेरे स्नेह और इन्द्र की प्रबल माया से दु खी हो रहे हैं और सभा, राजा, गुरुजी, ब्राह्मण और मन्त्रियो की बुद्धि को भरतजी की भक्ति ने जकड रक्खा है।

व्याख्या सरकार ने देखा कि द्विविधा मे पडे हुए लोग दु खी हो रहे हैं। इन्द्र की माया उन्हे घर की ओर खीच ले जाती है। मेरा स्नेह भी छोडते नही बनता और इधर सभा, महाराज, जनक, वसिष्ठजी, ब्राह्मण और मन्त्री समाज भरत की भक्ति के वशीभूत हो रहा है। यथा · रघुराउ सिथिल सनेह साधु समाज मुनि मिथिलाधनी। कोई अपने काबू मे नही है।

रामहि चितवत चित्र लिखे से। सकुचत बोलत बचन सिखे से॥
भरत प्रीति नति बिनय बड़ाई। सुनत सुखद बरनत कठिनाई ॥२॥

अर्थ : रामजी को इस भाँति देख रहे है मानो चित्र मे लिखे गये हो और बोलते हुए सङ्कुचित होते है। मानो सिखायी हुई बातें बोल रहे है। भरत की प्रीति नम्रता विनय और बडाई सुनने मे तो सुख देनेवाली है पर उसका वर्णन कठिन है।

व्याख्या : अत. जिन्हे इन्द्र की माया लगी है वे भी और जिन्हे नही लगी है वे भी एकटक रामजी की ओर देख रहे हैं कि देखें सरकार की क्या मर्जी होती है। सबको स्वय कुछ कहने मे सङ्कोच हो रहा है जैसे सिखी सिखायी बात कहने मे सङ्कोच होता है। जो बात मन से उठती है वह बिना कहे नही रही जाती और सिखी सिखायी बात समय पडने पर भूल जाती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भरतजी की प्रीति यथा अस कहि प्रेम बिबस भये भारी।
भरतजी की नति यथा प्रभु पद पदुम गहे अकुलाई।
भरतजी की विनय यथा प्रभु पद पदुम पराग दोहाई।
सत्य सुकृत सुख सीम सोहाई॥
सो करि कहौं हिये अपने की।
रुचि जागत सोवत सपने की॥
भरतजी की बडाई यथा सहज सनेह स्वामि सेवकाई।
स्वारथ छल फल चारि बिहाई॥

जासु बिलोकि भगति लवलेसू। प्रेम मगन मुनिगन मिथिलेसू॥
महिमा तासु कहै किमि तुलसी। भगति सुभाय सुमति हियँ हुलसी॥३॥

अर्थ जिसके भक्ति के लवलेश को देखकर मुनिगण और मिथिलेश प्रेम मे मग्न हो गये। उसकी महिमा तुलसी कैसे कहे। भक्ति के स्वभाव से सुमति तो उठी।

व्याख्या भरत सुप्रेम पयोधि। भरत जी प्रेम के समुद्र हैं। समुद्र की तरङ्ग तट पर स्थित मनुष्य को सराबोर कर देती है। पर भरत ऐसे समुद्र हैं कि इनकी भक्ति के लवलेश के दर्शन से मुनिगण और स्वय मिथिलेश जैसे ज्ञानी प्रेम मे मग्न हो जाते हैं। उस भक्ति की महिमा तुलसी कैसे कह सकता है। परन्तु भक्ति का स्वभाव है कि उसके कारण सुमति उठती है। सो हृदय मे सुमति उठी परन्तु

आपु छोटि महिमा बडि जानी। कबिकुल कानि मानि सकुचानी॥
कहि न सकत गुन रुचि अधिकाई। मति गति बाल बचन की नाई॥४॥

अर्थ अपने को छोटी और महिमा को बडी जानकर कविकुल की मर्यादा पर ध्यान देकर सङ्कुचित हो गयी। गुण कह नही सकती और रुचि अधिक है। सो बुद्धि की गति बच्चो के वचन जैसी हो गयी।

व्याख्या भक्ति के प्रभाव से सुमति तो उठी पर उसने देखा कि मैं छोटी हूँ और महिमा बडी है। मेरा वर्णन करने के लिए प्रयत्न करना कविकुल की प्रतिष्ठा को बिगाडना है। अत गुणो का वर्णन कर नही सकती और रुचि वर्णन करने की बहुत है। अत उसकी गति बालक के वचन सी हो गयी। बालक को बोलने की बडी रुचि है। पर उससे बोलते बनता नही।

दो० भरत बिमल जसु बिमल बिधु, सुमति चकोर कुमारि।
उदित बिमल जन हृदय नभ, एकटक रही निहारि॥२०३॥

अर्थ भरत का निर्मल यशरूपी चन्द्रमा जो भक्त के हृदयरूपी आकाश म उदय हुआ है उसे सुमतिरूपी चकोर की कन्या टकटकी लगाये देखती रह गयी।

व्याख्या नव बिधु बिमल तात जस तोरा। रघुबर किंकर कुमुद चकोरा॥ गुरु अपमान दोष नहि दूषा। वही भरत का निर्मल यश भक्त के निर्मल हृदय रूपी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

आकाश मे उदित हुआ। उसे सुमतिरूपी चकोर कुमारि एकटक देखती रह गयी। कुछ कह न सकी। सुमति भक्ति के स्वभाव से अभी उत्पन्न हुई है। यथा भगति सुभाय सुमति हिय हुलसी। इसलिए चकोरी न कहकर चकोरकुमारि कहा। बोलने की कुशलता भी उसमे नही है। प्रेम भी नया है। अत वर्णन म सर्वथा असमर्थ है।

भरत सुभाउ न सुगम निगमहूँ। लघु मति चापलता कवि छमहू ॥
कहत सुनत सतिभाउ भरत को। सीय राम पद होइ न रत को ॥१॥

अर्थ भरत का स्वभाव वेद को भी सुगम नही है। हे कविलोग! लघुमति की चपलता आप लोग क्ष्मा करें। भरत के सत्य भाव को कहते सुनते हुए सीतारामजी के चरणो म कौन रत नही होगा।

व्याख्या त्रैगुण्यविषया वेदा। वेद का विषय त्रैगुण्य है और भरत का सुन्दर भाव त्रैगुण्य से परे है। परमहसो को प्रिय हैं। अतएव कहते हैं न सुगम निगमहूँ। ऐसे महापुरुष के गुण वर्णन को रुचि की अधिकता यदि लघुमति तुलसीदास को हो तो उसका प्रयत्न चपलता ही है। अत कवि लोगो से गोस्वामीजी क्षमा माँगते हैं।

अब ऐसे प्रयत्न करने का कारण कहते हैं कि भरतजी के सद्भाव कथन श्रवण से उस भाव का मज्जन पान हो जाता है। यथा मज्जन पान पाप हर एका। कहत सुनत एक हर अबिबेका। अत भरत के सद्भाव मे मज्जन करने से उसे पान करने से श्रीसीताराम के चरणो म प्रीति उत्पन्न होती है। अत इस कथन का प्रयत्न भी महाफल देनेवाला है।

सुमिरत भरतहिं प्रेमु राम को। जेहि न सुलभु तेहि सरिस बाम को ॥
देखि दयाल दसा सबही की। राम सुजान जानि जन जी की ॥२॥

अर्थ भरतजी को स्मरण करते हुए भी जिसे रामजी का प्रेम सुलभ न हो। उसके ऐसा वाम कौन है? दयाल रामजी ने सबकी दशा देखी। सरकार सुजान हैं। जन के जी की बात जानते हैं।

व्याख्या सुमिरिअ नाम रूप बिनु देखे। आवत हृदय सनेह बिसेखे। नाम स्मरण से ही नामी म विशेष प्रेम हो जाता है। भरतजी का स्मरण करना और रामजी मे प्रम होना एक बात है। यथा तुम्ह तउ भरत मोर मत एहू। धरे देह जनु राम सनेहू। अत भरत के स्मरण से ही रामप्रेम की प्राप्ति होनी चाहिए। जिसे नही हुई उसके ऐसा बुरा कोई नही।

रामजी दयालु है। उन्होने सबकी दशा देखी कि सब दुखी हैं। तिस पर इन्द्र की माया का भी प्रभाव इन पर पडा है। सुजान हैं। उनकी मनोगति भी देख रहे हैं कि बिचारे द्विविधा म पडे हैं। साधु समाज ने मुनि मिथिलश की दशा देखी कि स्नेह से शिथिल हैं। भरत की दशा देखी कि प्रेम मे आकुल हो रहे है। अत

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

धरम धुरीन धीर नय नागर। सत्य सनेह सील सुख सागर ॥
देसु कालु लखि समउ समाजू। नीति प्रीति पालक रघुराजू ॥३॥

अर्थ : धर्म के धुरन्धर, धीर, नीति मे चतुर, सत्यस्नेह और सुख के समुद्र नीति और प्रीति के पालन करनेवाले रघुराज, देशकाल, समाज और अवसर देखकर।

व्याख्या : सरकार धर्मधुरन्धर है : धर्म कभी छोड़ेंगे नही। धीर हैं : नही लौटेंगे। नयनागर हैं : सभी विषमताओ का सामञ्जस्य बिठावेंगे। सत्य के सागर हैं : प्रतिज्ञा भङ्ग कभी न करेंगे। स्नेह के सागर हैं प्रेम का भङ्ग न करेंगे। शील के सागर हैं शील भङ्ग नही करेंगे और सुख सागर है : सबको सुख पहुँचावेंगे। देश काल अवसर और समाज का ध्यान रखते हुए नीति प्रीति का पालन करते हुए बोले।

बोले बचन बानि सरबसु से। हित परिनाम सुनत ससिरसु से ॥
तात भरत तुम्ह धरम धुरीना। लोक बेद बिद प्रेम प्रबीना ॥४॥

अर्थ रामजी वाणी के सर्वस्व जैसे वचन बोले। जो परिणाम मे हित और सुनने मे अमृत सा था। हे भैया भरत! तुम धर्म धुरीण हो। लोक और वेद को जाननेवाले हो और प्रेम मे प्रवीण हो।

व्याख्या . बिमल बिबेक धरम नयसाली। भरत भारती मंजु मराली। भरत की वाणी ऐसी थी। उसके उत्तर मे रामजी का वचन मानो वाणी का सर्वस्व था। क्योंकि : हित मनोहारि च दुर्लभ वच और सरकार के वचन परिणाम मे हित और सुनने मे अमृत से मनोहारी था।

भरतजी ने कहा था : प्रभु पितु बचन मोह बस पेली। आयेउँ इहाँ समाज सकेली। मैंने सरकारी आज्ञा भङ्ग किया। मैं अपराधी हूँ। इस पर सरकार कहते हैं कि तुम धर्मधुरीण हो। जो तुमने किया वही धर्म है। लोक और वेद के जाननेवाले के लिए ऐसा ही करना प्राप्त था। ऐसा ही करने से प्रेम का निर्वाह होता है। तुम्हारे आचरण का कही जोड नही है।

दो. करम बचनु मानस बिमल, तुम्ह समान तुम्ह तात।
गुरु समाज लघु बंधु गुन, कुसमय किमि कहि जात ॥३०४॥

अर्थ . हे तात! कर्म वचन और मन की निर्मलता मे तुम तुम ही जैसे हो। बडो के समाज मे छोटे भाई का गुण इस कुसमय मे कैसे कहा जा सकता है।

व्याख्या सरकार कहते हैं कि तुमने जो कहा है : मोहि समान मैं साइँ दोहाई। सा ठीक है। सचमुच तुम्हारा जोड नही। परन्तु अवगुणो मे नही गुणो मे। तुम्हारे ऐसा : कर्म वचन मानस बिमल। कहाँ खोजने से मिलेगा। यह समय तुम्हारे गुणो के कथन के अनुकूल नही है। क्योंकि उसका अर्थ दूसरा लग जायगा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



और बडो के समाज मे छोटे भाई के गुणो का वर्णन भी उचित नही है। तुम अपने को सापराध मत मानो। तुम्हारे गुणो पर मैं मुग्ध हूँ।

जानहु तात तरनि कुल रीति। सत्यसध पितु कीरति प्रीती ॥
समउ समाजु लाज गुरुजन की। उदासीन हित अनहित मन की ॥१॥

अर्थ हे तात! सूर्यकुल की रीति जानते हो कि सत्यसन्ध होते हैं और पिता की कीर्ति पर प्रीति होती है। समय समाज बडो की लज्जा और उदासीन मित्र और शत्रु के मन को भी जानते हो।

व्याख्या सरकार कहते हैं कि हे तात! तुम सूर्यकुल की रीति जानते हो रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्रान जाहु बरु बचनु न जाई। अज, दिलीप, रघु आदि जितने महाराज इस कुल में हुए हैं सभी सत्यसन्ध हुए है। सभी पिता की कीर्ति के बढानेवाले हुए। अत सत्य का अनादर नही होना चाहिए और पिता की कीर्ति न बिगडनी चाहिए। तुम समय को भी जान रहे हो कि कैसा कठिन समय उपस्थित है कि सब व्यवस्था ही डाँवाडोल हो रही है। समाज की भी दशा जान रहे हो कि सब अपने को अनाथ मान रहे हैं। गुरुजन की लज्जा को भी तुम जान रहे हो कि ये कैसे सङ्कोच मे पडे है कि सामञ्जस्य बिठाना भी चाहते हैं फिर भी स्वय कुछ नही कह रहे हैं। हमी दोनो भाइयो को आपस मे निर्णय करने के लिए कह रहे हैं। राजाओ के कितने शत्रु मित्र होते हैं। कितने उदासीन होते हैं। उनका पता लगाना कठिन होता है। परन्तु तुम राजकाज से भली भाँति परिचित हो। तुम सबको जानते हो। इतना ही नही उनके मन मे क्या है यह भी तुम्हे अविदित नही है।

तुमहि बिदित सबही कर करमू। आपन मोर परम हित धरमू ॥
मोहि सब भाँति भरोस तुम्हारा। तदपि कहउँ अवसर अनुसारा ॥२॥

अर्थ तुम सबके कर्मो को भी जानते हो। अपने और मेरे परमहित और धर्म को भी जानते हो। मुझे सब तरह से तुम्हारा भरोसा है। फिर भी अवसर के अनुसार कहता हूँ।

व्याख्या शत्रु मित्र और उदासीनो ने कब कब क्या क्या किया है। सो भी तुम जानते हो अर्थात् राज्य के मर्मो के जानकार हो। मेरा परमहित कैसे होगा। मेरा धर्म क्या है। तथा स्वय तुम्हारा परमहित कैसे होगा तथा स्वय तुम्हारा धर्म क्या है। उसे भी जानते हो। भावार्थ यह कि शासकोचित सभी बातें तुम मे मौजूद हैं। अत मुझे तुम्हारा भरोसा सब प्रकार से है। फिर भी अवसर ऐसा प्राप्त है कि मुझे मुख से कहना ही पड रहा है।

तात तात बिनु बात हमारी। केवल गुरकुल कृपा सँभारी ॥
नतरु प्रजा परिजन परिवारू। हमहि सहित सबु होत खुआरू ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ · हे तात ! पिताजी के विना हमारी बात को केवल कुलगुरु की कृपा ने सँभाल लिया। नही तो प्रजा नगरवासी कुटुम्बी सभी हमारे साथ बडे दु ख को प्राप्त होते।

व्याख्या हम लोगो की बात तो विगड ही चुकी थी। चक्रवर्तीजी का देहान्त हुआ और वहाँ हम चारो भाइयो मे से कोई नही। ऐसे ही समय मे शत्रुओ की बन पडती है। सो कुलगुरु ने चक्रवर्तीजी के देहावसान के समाचार को नगर की सीमा के बाहर जाने नही दिया। महाराज के शव को तेलभरी नाव मे रक्खा। तुम्हे बुलाने के लिए दूत कैकय देश मे भेजा। मुझे बुलाने के लिए यहाँ कोई नही आया। यदि कोई आता तो मुझे अपनी प्रतिज्ञा छोडकर पिता की क्रिया करने के लिए अयोध्या जाना ही पडता। सम्भव था कि मैं उस चोट को न सह सकता। तो और भी अनर्थ होता। तुम्हे भी गुरुजी ने पिताजी के मरण और मेरे वनवास का समाचार नही भेजा। केवल इतना ही कहलाया कि गुरुजी ने बुलाया है। ठीक समाचार मिलने से तुम्हारी वहाँ क्या दशा होती कौन कह सकता है। गुरुजी की उपस्थिति मे समाचार मिलने पर चोट हम लोगो को लगी। उसे गुरुजी ने अपने विज्ञान के प्रकाश से सँभाल लिया। इसी भाँति माताओ को भी गुरुजी ने सँभाला। प्रजा परिवार का सरक्षण भी राजा के अभाव मे गुरुजी ने ही किया। यदि गुरुजी ने यह सब न किया होता तो हम लोग सभी प्रजा परिवार के सहित नष्ट भ्रष्ट हो जाते।

जौ बिनु अवसर अथव दिनेसू। जग केहि कहहु न होइ कलेसू ॥
तस उतपातु तात बिधि कीन्हा। मुनि मिथिलेस राखि सबु लीन्हा ॥४॥

अर्थ यदि बेसमय ही सूर्य अस्त हो जायँ तो कहो ससार मे किसे कष्ट न होगा। ऐसा उत्पात हे तात ! ब्रह्मदेव ने किया। पर मुनिजी तथा मिथिलाधिपति ने सबको बँचा लिया।

व्याख्या रामजी भी विधि को ही उत्पात का कारण बतला रहे हैं। यह उत्पात इतना प्रबल था कि जैसे बेसमय सूर्य का अस्त होना। बेसमय मे सूर्य का अस्त होना विधि के किये ही हो सकता है। दूसरे को ऐसा सामर्थ्य ही नही है। ऐसा होने पर ससार मे उथल पुथल मच जाना स्वाभाविक है। समय पर अस्त होना तो स्वाभाविक नियम ही है। चक्रवर्तीजी का प्रियविरह मे शरीरत्याग अनवसर का सूर्यास्त था। उस समय सब सँभालना गुरुजी का ही काम था। गुरुजी जिस भाँति सदा से विधिगति को रोकते आये हैं वैसे ही इस बार भी रोका। महाराज के देहावसान का पता लगने के बाद जनकजी ने भी रक्षा का प्रयत्न किया। स्वय रक्षा के लिए सन्नद्ध होकर दूतो के द्वारा समाचार लेते रहे। इसलिए जनकजी का भी नाम पीछे से रक्षा के कार्य मे जोड दिया।

दो. राज काज सब लाज पति, धरम धरनि धन धाम।
गुर प्रभाव पालिहि सबहि, भल होइहि परिनाम ॥३०५॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : सब राजकार्य, लज्जा, प्रतिष्ठा, धर्म, धरणी, धन और धाम का पालन गुरुजी की कृपा करेगी और परिणाम अच्छा होगा।

व्याख्या : मोहि राज हठि दै हौ जबही। रसा रसातल जाइहि तबही। आदि बातें जो तुम्हारे मनमे भरी हैं : उन्हे छोडो। राजकार्य लज्जा प्रतिष्ठा धर्म धरणी आदि का पालन गुरु के प्रसाद से होता रहेगा। मुझे या तुम्हे तो निमित्त मात्र होना है। भावार्थ यह कि गुरुजी की आज्ञा मानते हुए चले चलना मात्र हम लोगो का काम है। परिणाम की चिन्ता कदापि नही करनी चाहिए। गुरु की आज्ञा पालन रूप मे जो कुछ होगा उसका परिणाम बुरा हो नही सकता।

सहित समाज तुम्हार हमारा। घर बन गुरु प्रसाद रखवारा ॥
मातु पिता गुर स्वामि निदेसू। सकल धरम धरनीधर सेसू ॥१॥

अर्थ : समाज के सहित तुम्हारा और हमारा रक्षक घर और वन मे गुरुजी की कृपा है। माता पिता गुरु और स्वामी की आज्ञा सम्पूर्ण धर्मरूपी धरणी के लिए शेष रूप है।

व्याख्या भाव यह कि 'राज काज सब लाजपति धरम धरनि धन धाम का रक्षक तो गुरुजी का प्रभाव है और हमारा तुम्हारा रक्षक उनका प्रसाद है। प्रभाव प्रभुता को कहते हैं और प्रसाद कृपा को कहते हैं। गुरुजी बैठे रहेगे . उनके प्रभाव से राजकार्य आदि ठीक चलता रहेगा और उनकी कृपा से मेरी रक्षा वन मे होती रहेगी और घर मे तुम्हारी रक्षा होती रहेगी।

क्योकि माता पिता गुरु और स्वामी की आज्ञा पर ही सब धर्म उसी भाँति टिके हुए हैं जैसे पृथ्वी शेषजी पर टिकी है। सम्पूर्ण धर्मो के सँभालने की शक्ति केवल माता पिता गुरु और स्वामी की आज्ञा पालन मे है दूसरे मे नही। सम्पूर्ण धर्म का विचार करके पृथक् पृथक् पालन मे कौन समर्थ है ? माता पिता आदि की आज्ञा पालन से ही सब धर्मो का पालन आप से आप हो जाता है।

सो तुम करहु करावहु मोहू। तात तरनि कुल पालक होहू ॥
साधक एक सकल सिधि देनी। कीरति सुगति भूतिमय बेनी ॥२॥

अर्थ : उसे तुम भी करो और मुझ से भी कराओ। हे तात ! सूर्यकुल के पालक बनो। साधक के लिए यह सब सिद्धिया की देनेवाली कीर्त्ति सुगति और भूतिमय त्रिवेणी एक ही है।

व्याख्या : भाव यह कि यदि तुम मुझ से पिता के वचन का पालन न कराओगे तो मैं न कर सकूँगा। मै तो कह चुका हूँ : मन प्रसन्न करि सकुच तजि कहहु करौं सोइ आजु। अत पिता की आज्ञा का पालन तुम भी करो और मुझ से भी कराओ। इस भाँति सूर्यकुल की रक्षा करो। नही तो सूर्यकुल की सत्यसन्ध पितु कीरति प्रीतीवाली रीति मिट जायगी।

कामनाओ के पूर्ण करनेवाली त्रिवेणी मे जिस भाँति गङ्गा यमुना और

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


सरस्वती का सङ्गम है उसी भाँति पिता की आज्ञापालनरूपी त्रिवेणी में कीर्त्ति सुगति और भूति तीनो का सङ्गम है और यह साधना सकल सिद्धियों को देनेवाली है।

सो विचारि सहि संकटु भारी। करहु प्रजा परिवारु सुखारी ॥
बाँटी विपति सबहि मोहि भाई। तुमहि अवधि भरि बड़ि कठिनाई ॥३॥

अर्थ : यह विचारकर भारी सङ्कट सहकर तुम प्रजा और परिवार को सुखी करो। हे भाई ! मुझ पर विपत्ति आयी। उसे सबने बाँट ली। फिर तुम्हे तो चौदह वर्ष की अवधि तक बहुत कष्ट है।

व्याख्या : ऐसा विचार करके हमारे वन जाने के सङ्कट को सहो। मैं जानता हूँ कि मेरे वन जाने को तुम पिता के मरण से भी बड़ा सङ्कट मानते हो : इसलिए संकटु कहते हैं। उसे तुम सहो और प्रजा परिवार को सुखी करो। तुम्हारे लिए राज्य सङ्कट है। फिर भी प्रजा परिवारके सुख के लिए इस सङ्कट को सहो।

विपत्ति बँटानेवाला वही है जो उस विपत्ति में दुःखी हो और स्वयं साथ में दुःख भोगे। यथा : बिपति बँटावनिहार बंधु बिनु करौं भरोसो का को। सो मेरी विपत्ति को सबने बाँट लिया। यथा : राम दरस हित नेम ब्रत लगे करन नर नारि। मनहु कोक कोकी कमल दीन विहीन तमारि। सो मै तुम्हे विपत्ति बाँटने को कहता हूँ राज करने के लिए नही कहता।

जानि तुम्हहि मृदु कहउँ कठोरा। कुसमय तात न अनुचित मोरा ॥
होहि कुठायँ सुबंधु सहायें। ओड़िअहि हाथ असनिहु के घायें ॥४॥

अर्थ : तुम्हे कोमल जानकर भी मै कठोर कह रहा हूँ। यह समय ही ऐसा कठिन है। मेरा अनुचित नही है। ऐसे बुरे समय पर अच्छे भाई ही सहायक होते हैं, वज्र की चोट को भी हाथ से ही रोका जाता है।

व्याख्या : तुम्हारे ऐसे कोमल स्वभाव के पुरुष से यह कहना कि तुम भारी सङ्कट सह जाओ कठोरता है। पर समय ही ऐसा उपस्थित है कि मैं लाचार होकर कह रहा हूँ। इसलिए मेरा कहना भी अनुचित नही है। वज्र की चोट ऊपर आयी तो सिवा हाथ के और कौन आड़े आवेगा। यही भारी विपत्ति ऊपर आयी तो सिवा भाई के और किसे आगे करें। राज्य विपत्ति है : इसे तुम जानते हो। मैं जानता हूँ। ससार नही जानता। उसे चौदह वर्ष सँभाल दो। उसके बाद मैं आकर सँभाल लूँगा। राज्ये गृध्नन्त्यविद्वासो ममत्वाहृतचेतसः। अहंमानमहामानमदमत्ता न मादृशाः। मूढ़ लोग जिनके चित्त को अहन्ता ममता ने ग्रस लिया है राज्य चाहते हैं। मेरे ऐसे लोग नही चाहते। वि ७.१.७।

दो. सेवक कर पद नयन से, मुख सो साहिब होइ।
तुलसी प्रीति कि रीति सुनि, सुकबि सराहहिं सोइ ॥३०६॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ सेवक तो हाथ पैर और आँख सा होता है और मालिक मुख की भाँति होता है। तुलसीदास कहते है कि इस तरह की प्रीति की रीति सुनकर सुकवि उसकी बडाई करते हैं।

व्याख्या परस्पर भावयन्त श्रेय परमवाप्स्यथ। सेवक और स्वामी दोनो राज्य मे परस्परोपकारक हैं। भाव यह है कि तुम प्रसाद चाहते हो। यथा : सो प्रसाद जन पावइ देवा। सो यही नियम है कि कर पद नयन सेवक हैं। खाद्य लाकर मुख को अर्पण करते है और फिर उसी के रस को प्रसाद रूप से ग्रहण करते हैं। इस भाँति सरकार ने भरत के राज्य अर्पण को स्वीकार किया और पुन प्रसाद रूप से भरत को सुपुर्द करते हैं। यही प्रीति की रीति है और इसी की सुकवि प्रशसा करते हैं। निर्गलितार्थ यह कि मुझे राज्य स्वीकार है। अब तुम उसके सेवक की भाँति चलाओ।

सभा सकल सुनि रघुबर बानी। प्रेम पयोधि अमिअ जनु सानी ॥
सिथिल समाजु सनेह समाधी। देखि दसा चुप सारद साधी ॥१॥

अर्थ सारी सभा ने रामजी की वाणी सुनी। जो प्रेम के समुद्र के समान अमृत से सनी थी। सारा समाज स्नेह की समाधि मे शिथिल हो गया। यह दशा देखकर सरस्वती मौन हो गयी।

व्याख्या रामजी की वाणी मे से प्रेम का समुद्र उमड पडता था। उसका जल लवण समुद्र के जल की भाँति खारा न था। अमृत के समान मीठा था। जैसे परिचित समुद्र का जल लवण से सना होता है उसी भाँति प्रेम समुद्र मानो अमृत से सना हुआ था।

सभी सभासद् भरतजी के वचन से स्नेह मे शिथिल हो रहे थे। रामजी की वाणी सुनते ही उनको प्रेम समाधि लग गयी। गोरक्ष सहिता के मत से प्रेम समाधि भी समाधि का एक भेद है। सो सब के सब प्रेम समाधि मे मग्न हो गये। उन लोगो की यह दशा देखकर समाधि भङ्ग के भय से सरस्वती भी चुप हो गयी। नही तो स्वभावत वे तो मुखर हैं। यथा गिरा मुखर तन अर्ध भवानी। भाव यह कि सब चुप है। किसी के मुख से बात नही निकलती। सन्नाटा छा गया।

भरतहि भयउ परम सतोषू। सनमुख स्वामि बिमुख दुखु दोषू ॥
मुखु प्रसन्न मन मिटा बिषादू। भा जनु गूँगेहि गिरा प्रसादू ॥२॥

अर्थ भरतजी को परम सन्तोष हुआ कि स्वामी अनुकूल है और दोष दु ख हट गया। भरतजी का मुखमण्डल प्रसन्न हो गया। मन से विषाद मिट गया। जैसे गूँगे पर सरस्वती की कृपा हो गयी हो।

व्याख्या सन्तोष तो सभा मात्र को हुआ। पर भरतजी को परम सन्तोष हुआ। कारण कहते हैं कि स्वामी हमारे अनुकूल है और दोष तथा उसका कार्य दु ख दूर हो गया। सरकार ने राज्य स्वीकार कर लिया। कर पद नयन की भाति

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



काम करने के लिए आज्ञा हुई। अब मेरा शासन करना भी राज करना नहीं हैं। विपत्ति बटाना है। रामजी की सेवा करना है।

भरतजी का विषण्ण मुख प्रसन्न हो गया। ग्रामवासियों तक ने कहा था : मुख प्रसन्न नहिं मानस खेदा। मानस खेद भी दूर हो गया। जनकजी से कहा था : मौन मलिन मैं बोलब बाउर। सो मानो गूँगे पर सरस्वती की कृपा हो गयी। वह बोलने भी लगा और उसे सब शास्त्र भी फुरने लगा। ऐसी प्रसन्नता भरतजी को हुई।

कीन्ह सप्रेम प्रनामु बहोरी। बोले पानि पंकरुह जोरी॥
नाथ भयेउ सुखु साथ गए को। लहेउँ लाहु जग जनमु भए को॥३॥

अर्थ : फिर प्रेम के साथ प्रणाम किया और करकमल जोड़कर बोले। हे नाथ! *साथ जाने का सुख मुझे मिल गया। संसार में जन्म लेने का लाभ मिल गया।*

व्याख्या : सप्रेम : से मनसा। बोले : से वाचा और : पानि पंकरुह जोरी : से कर्मणा प्रेम कहा। अब यह प्रणाम कृतकृत्य होने का है अथवा पुनः कुछ कहना चाहते हैं। अतः प्रणाम करते हैं। हाथ जोड़कर बोलने का भाव यह कि दसो नह जोड़कर मैं सेवा के लिए प्रस्तुत हूँ।

भरतजी कहते हैं कि मुझे बड़ी अभिलाषा थी कि मैं लक्ष्मण की भाँति साथ वन में जाता और सेवा करता। इसलिए मैंने कहा था : नतरु फेरिअहिं बंधु दोउ नाथ चलौं मैं साथ। क्योंकि सरकार की सेवा में ही जीवन जन्म का लाभ है। यथा : जीवन लाहु लखन भल पावा। सब तजि रामचरन चित लावा। सो लाभ मुझे मिल गया। सरकार के साथ वन में जाने से सेवा करने से जो सुख मिलता वही सुख मुझे अयोध्या मे रहकर सरकारी सेवा करने से मिलेगा। भावार्थ यह कि भरतजी ने रामजी का वनवास और अपना अवधवास स्वीकार कर लिया।

अब कृपाल जस आयसु होई। करउँ सीस धरि सादर सोई॥
सो अवलंब देउ मोहि देई। अवधि पार पावउँ जेहि सेई॥४॥

अर्थ : हे कृपालु! अब आपकी जैसी आज्ञा हो वही सिर धरकर आदर के साथ करूँ। आप मुझे वह अवलम्ब दीजिये। जिसकी सेवा करके अवधि का पार पा जाऊँ।

व्याख्या : बात सब ठीक हो गयी। फिर भी भरतजी स्पष्ट आज्ञा के लिए विनय करते हैं। भाव यह : प्रभु पितु बचन मोह बस पेली। आयेउँ इहाँ समाज सकेलो। सो बात अब नहीं होगी। अब जो आज्ञा होगी उसे शिरोधार्य करके आदर के साथ पालन करूँगा।

चरण की सेवा साक्षात् रूप से नहीं कर सकता तो ऐसा आधार तो मिलना चाहिए। जिसे चरणों का प्रतीक मानकर सेवा करता हुआ अवधि का पार पा सकूँ। बिना अवलम्ब चौदह वर्ष काटे नहीं कटेगा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. देव देव अभिषेक हित, गुर अनुसासनु पाइ।
आनेउँ सब तीरथ सलिल, तेहि कहँ काह रजाइ ॥३०७॥

अर्थ : हे राजन्! आपके अभिषेक के लिए सब तीर्थों का जल गुरुजी की आज्ञा पाकर लाया हूँ। उसके लिए क्या आज्ञा होती है।

व्याख्या : अभिषेक मे सब तीर्थों के जल की आवश्यकता पड़ती है। सो गुरुजी की आज्ञानुसार चक्रवर्तीजी ने मँगवाया था। यथा : आनहु सकल सुतीरथ पानी। उस जल को गुरुजी की आज्ञा से ही साथ लाया हूँ। अन्य सामग्री तो टिकाऊ हैं। पर जल तो चौदह वर्ष नही रह सकता। सब तीर्थों का जल होने से अद्भुत वस्तु हो गयी। आपके ही अभिषेक के लिए प्रस्तुत किया गया है। अतः अब आप जैसी आज्ञा दें वैसा किया जाय।

एकु मनोरथु बड़ मन माही। सभय सकोच जात कहि नाही ॥
कहहु तात प्रभु आयेसु पाई। बोले बानि सनेह सुहाई ॥१॥

अर्थ : एक बड़ी लालसा मन मे है। परन्तु भय और सङ्कोच के कारण कहते नही बनता। प्रभु की आज्ञा हुई कि हे भाई! कहो। तब सुन्दर स्नेहमय वाणी बोले।

व्याख्या : पहिले कह चुके हैं : राम सैल सोभा निरखि भरत हृदय अति प्रेम। सो अति प्रेम होने से उसके देखने की बड़ी लालसा है। सब लोगो ने घूम घूमकर देखा। यथा : विहरहिं वन चहुँ ओर प्रति दिन प्रमुदित लोग सब। जल ज्यों दादुर मोर भये पीन पावस प्रथम। परन्तु भरतजी सोच मे ही पड़े रहे : निसि न नीद नहि भूख दिन भरत विकल सुठि सोच। नीच कीच बिच मगन जस मीनहि सलिल सकोच। इन्होने घूमकर नही देखा। अब सोच के दूर होने पर वह लालसा जाग पडी। अतः कहते हैं कि मन मे बड़ी लालसा है।

बड़ो के सामने सैर सपाटा की लालसा प्रकट करने मे सङ्कोच होना स्वाभाविक है। यथा : लखन हृदय लालसा विसेखी। जाइ जनकपुर आइअ देखी। प्रभु भय बहुरि मुनिहि सकुचाही। प्रगट न कहहिं मनहि मुसुकाही। यहाँ उसी भाँति भरतजी को भी कहने मे भय और सङ्कोच होता है। परन्तु लालसा के अधिक होने से कहना ही पडा।

चित्रकूट सुचि थल तीरथ बन। खग मृग सर सरि निर्झर गिरिगन ॥
प्रभु पद अंकित अवनि बिसेखी। आयसु होइ त आवउँ देखी ॥२॥

अर्थ : यदि आज्ञा हो तो चित्रकूट के पवित्र स्थल, तीर्थ, वन, पक्षी, मृग, नदी तालाब झरने, पर्वत और विशेष करके सरकार के चरण चिह्न से अङ्कित भूमि को देख आऊँ।

व्याख्या : चित्रकूट मे प्रवेश करते समय भरतजी ने वहाँ की शोभा देखी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तो उस वन के भली भाँति देखने की लालसा उसी समय हुई। परन्तु वह समय पर्यटन के लिए उपयुक्त नहीं था। उसी लालसा को ही प्रकट करते हुए उस हृदय का वर्णन करते हुए कवि ने कहा . भरत दीख बन सैल समाजू। मुदित छुधित जनु पाइ सुनाजू' 'राम वास वन संपति भ्राजा। सुखी प्रजा जनु पाइ सुराजा ''बन प्रदेस मुनि वास घनेरे ''विपुल बिचित्र विहंग मृग नाना। प्रजा समाज न जाइ बखाना'' झरना झरहिं मत्त गज गाजहिं इत्यादि। उस पर भी वह भूमि प्रभुपद अंकित होने से बड़ी सौभाग्यवती हो गयी है। यथा · हरखहिं निरखि राम पद अंका। जनु मेटी संपति अति रंका। अत· इन वस्तुओ के देखने की आज्ञा चाहते हैं।

अवसि अत्रि आयसु सिर धरहू। तात बिगत भय कानन चरहू ॥
मुनि प्रसाद बनु मंगल दाता। पावन परम सुहावन भ्राता ॥३॥

अर्थ : हे तात ! अवश्य अत्रिजी की आज्ञा को शिरोधार्य करो। हे भाई ! निर्भय होकर वन मे विचरो। मुनिजी की कृपा से यह वन मङ्गलदाता पावन और परम सुहावना है।

व्याख्या . यहाँ के मुख्य ऋषि अत्रिजी हैं। यथा : अत्रि आदि मुनिवर जहँ बसही। करहिं जोग जप तप तन कसही। सो जो विधि से बतलावें उसी विधि और क्रम से यात्रा करो। फिर वन के विचरने मे कोई भय नही है। किसी तपस्वी या मुनि को उद्वेग ·न होगा। इस वन में जो पवित्रता, शोभा और माङ्गल्य जो देख रहे हो वह मुनिजी के प्रसाद से है। यहाँ की प्रधान नदी मन्दाकिनी भी उन्ही की धर्मपत्नी भगवती अनुसूया की लायी हुई हैं।

रिषिनायकु जहँ आयसु देही। राखेहु तीरथ जलु थल तेही ॥
सुनि प्रभु बचन भरत सुखु पावा। मुनि पद कमल मुदित सिरु नावा ॥४॥

अर्थ · ऋषियो के राजा अत्रिजी को जहाँ के लिए आज्ञा दे वहाँ तीर्थ के जल को रखना। प्रभु का वचन सुनकर भरतजी को सुख हुआ और प्रसन्न होकर मुनिजी के चरणो मे सिर नवाया।

व्याख्या : भरतजी ने पहिले पूछा था : आनेउँ सब तीरथ सलिल तेहि कहँ काह रजाइ। उसके उत्तर मे रामजी कहते हैं कि यहाँ अत्रिजी का शासन है। उन्ही से पूछो कि जल कहाँ रक्खा जाय। जहाँ बतलावें वही रख देना। रख देना कहने का भाव यह है कि वे ही जानते हैं कि कहाँ रख देने से वह जल सदा बना रहेगा।

लालसा पूर्ति के अनुकूल आज्ञा पाने से भरतजी को सुख हुआ। मुनिजी भी उस सभा मे आसीन थे और सब सुन रहे थे। भरतजी ने जाकर उनके चरणो मे प्रसन्न होकर प्रणाम किया। भाव यह कि अब जैसी आज्ञा आपकी हो वैसा करूँ। सरकार जो कुछ करते हैं ऋषियो की आज्ञा लेकर करते हैं। वैसी ही आज्ञा भी भरतजी को दी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. भरत राम संवाद सुनि, सकल सुमंगल मूल।
सुर स्वारथी सराहि कुल, बरषत सुरतरु फूल ॥२०८॥

अर्थ : भरत और रामजी के सकल सुमङ्गल मूल सम्वाद को सुनकर स्वार्थी देवता लोग कुल की प्रशंसा करते हुए हर्षित होकर कल्पवृक्ष के फूल बरसाने लगे।

*व्याख्या : भरतजी और रामजी का सम्वाद सभी मङ्गलों का मूल है : कीरति* सुगति भूति मय बेनी। इसी में सारे संसार के सुमङ्गल का बीज निहित है। इसलिए इसे सुमङ्गल मूल कहते है। इसे सुनकर देवता लोग हर्षित होकर कल्पवृक्ष के फूल बरसाने लगे। पहिले फूल बरसे थे। उस समय मलिन मन से बरसे थे। अब हर्षित होकर वर्षा कर रहे हैं। क्योंकि निश्चय हो गया कि रामजी अयोध्या न लौटेंगे और सूर्यकुल की प्रशंसा करते हैं। स्तुति करते हैं कि इस कुल में सभी धर्मात्मा हैं। स्वार्थी केवल अपना स्वार्थ देखते हैं। संसार का भला बुरा नहीं देखते। देवता लोग अपना काम बिगड़ते देखकर जिन रघुवंशियों पर : रचि प्रपंच माया प्रबल भय भ्रम अरति उचाट फेंका था इस समय अपना काम बनते देखकर उन्ही पर कल्पवृक्ष का फूल बरसा रहे हैं।

धन्य भरत जय राम गोसाईं। कहत देव हरषत बरिआईं ॥
मुनि मिथिलेस सभाँ सब काहू। भरत बचन सुनि भयेउ उछाहू ॥१॥

अर्थ : भरत धन्य हैं। राम गोसाईं का उत्कर्ष है। ऐसा देवता कहते है और जबरदस्ती प्रसन्न होते हैं। मुनिजी को मिथिलेश को और सभी सभासद् को भरत के वचन को सुनकर उत्साह हुआ।

व्याख्या : देवता लोग कहते है कि भरत पुण्यात्मा है। अपने कष्ट का ख्याल न किया। संसार के मङ्गल पर ध्यान दिया। इसलिए धन्य हैं। सुकृती पुण्यवान् धन्यः। और स्वामी रामजी का उत्कर्ष है कि जैसा हम लोगों को भरोसा दिया था वैसा ही किया। सबका मन भी रख दिया। धर्म सम्बन्धी असामञ्जस्य भी मिटा दिया। इसलिए उनकी जय जयकार है। देवताओं का कार्य अग्रसर हुआ। इसलिए प्रसन्नता प्रकाश करते हैं। परन्तु उन्हें सच्ची प्रसन्नता नहीं हुई। उनकी प्रसन्नता पूरी तो तब होती जब उनकी माया द्वारा कार्य होता। सो उनकी माया द्वारा तो कोई कार्य हुआ नही। वह तो रामजी, भरतजी, जनकजी, तथा सावधान साधुओं पर काम ही न कर सकी। जो कुछ हुआ सो रामजी की और भरतजी की सज्जनता के कारण हुआ। किसी तरह कार्य तो हो गया। इसलिए मन में व्यर्थ माया के प्रयोग करने की लज्जा भी है। अतः प्रसन्नता सच्ची नहीं है।

सबको भरत का स्नेह देखकर भय था कि यदि रामजी न लौटे तो इनकी क्या दशा होगी। पर जब उनका वचन सुना : नाथ भयउ सुख साथ गए को। लहेउँ लाहु जग जनम भए को। तो मुनिजी, जनकजी तथा सभी सभासदों को उछाह हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भरत राम गुन ग्राम सनेहू। पुलकि प्रसंसत राउ बिदेहू ॥
सेवक स्वामि सुभाउ सुहावन। नेमु पेमु अतिपावन पावन ॥२॥

अर्थ : विदेह राजा पुलकित होकर भरत और रामजी के गुणगण तथा स्नेह की प्रशंसा करने लगे। सेवक और स्वामी दोनो का स्वभाव सुहावना है। उनका नियम और प्रेम अत्यन्त पवित्र को भी पवित्र करनेवाला है।

व्याख्या : देहाध्यास रहित राजा जनक को भी भरत और रामजी के गुणो और प्रेम को देखकर आनन्द से पुलक हो गया। प्रशसा करने लगे कि दोनो भाइयों मे कैसा स्नेह है। जो देखने मे नहीं आता और कैसे अद्भुत गुण हैं। जिनके कारण बडा भारी असामञ्जस्य दूर हुआ। जिसे देखकर मेरे मन मे यह बात उठ गयी : आये इहाँ कीन्ह भल नाही।

गुणग्राम। यथा : सेवक स्वामि सुभाव सोहावन। स्नेह। यथा : नेम प्रेम अतिपावन पावन। जो पावन होता है वह सोहावन नही होता और जो सोहावन होता है वह पावन नही होता। पर यहाँ तो दोनो भाइयों के स्वभाव नेम और प्रेम मे सुन्दरता और पावनता भरी है। ज्ञान अतिपावन है। यथा : नहि ज्ञानेन सदृश पवित्रमिह विद्यते। परन्तु इनका नेम उसको भी पवित्र करनेवाला है। यथा : भक्तार्थं कल्पित द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम्।

मति अनुसार सराहन लागे। सचिव सभासद सब अनुरागे ॥
सुनि सुनि राम भरत सम्बादू। दुहु समाज हियँ हरषु बिषादू ॥३॥

अर्थ : मन्त्री और सभासद सब अनुराग से अपनी बुद्धि के अनुसार प्रशसा करने लगे। रामजी और भरतजी के सम्वाद को सुन सुनकर दोनो समाज के हृदय मे हर्ष और विषाद दोनो हुआ।

व्याख्या : सबकी समाधि भङ्ग हो गयी। सरस्वती खुल गयी। मन्त्री और सभासद सभी अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार प्रशसा करने लगे। पूरी प्रशसा तो हो नही सकती। फिर भी अनुराग ऐसा है कि बिना प्रशसा किये रहा नही जाता।

सबका तो सभा मे प्रवेश सम्भव नही था। अत सभा मे जो जो हुआ सो सब कर्ण परम्परा से सब लोगो को मालूम हुआ। पता लगने पर सबको हर्ष भी हुआ और विषाद भी हुआ। रामजी के राज्य स्वीकार से हर्ष हुआ और चौदह वर्ष का विछोह तो सहना पडेगा इस बात का विषाद भी हुआ। सभी के मन मे यह शङ्का थी कि चौदह वर्ष के बाद भी रामजी राज्य स्वीकार नही करेंगे।

राममातु दुखु सुखु सम जानी। कहि गुन राम प्रबोधी रानी ॥
एक कहहिं रघुबीर बडाई। एक सराहत भरत भलाई ॥४॥

अर्थ : रामजी की माता ने दुःख सुख को समान जानकर रामजी के गुणो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



का वर्णन करके रानियो को समझाया। एक रामजी की बडाई करने लगी। एक भरत की सज्जनता की प्रशंसा करने लगी।

व्याख्या समदु खसुख धीरम्। दु ख सुख को समान देखना ही पण्डिताई है। रामजी की माता हैं। कारण के गुण कार्य मे रहते है। माता समदु खसुख धीर हैं। इसलिए रामजी भी वैसे ही हैं। अत कौसल्या माता ने सुख दु ख सम जानकर और रानियो को जो विषाद कर रही थी समझाया कि रामजी ता साधु हैं। उन्हे सुख दु ख बराबर है। राम वैराग्यवान् हैं राम धर्मात्मा हैं। इनका वनवास मे कोई अनिष्ट नही हो सकता इत्यादि।

रानियो मे कोई रामजी की बडाई करती है कि रामजी कैसे सत्यप्रतिज्ञ हैं। कैसे धर्मात्मा हैं। कैसे शीलवान् हैं। इसी भाँति कोई कैसे साधु हैं कैसे आज्ञाकारी हैं। कैसे प्रेमी हैं इत्यादि भरत की सज्जनता कह रही हैं।

दो अत्रि कहेउ तब भरत सन, सैल समीप सुकूप।
राखिअ तीरथ तोय तहँ, पावन अमिअ अनूप ॥३०९॥

अर्थ अत्रिजी ने भरतजी से तब कहा कि इस पर्वत के सन्निकट एक कूआँ है। यह पवित्र अमृत रूप अनुपम है। तीर्थ जल वही रखिये।

व्याख्या सरकार ने भरतजी स कहा था कि अत्रिजी जहाँ कहे वहाँ तीर्थ जल रख दो। अत अत्रिजी ने भरत से कहा कि कही दूर नही जाना है। इसी पर्वत के निकट एक सुन्दर कूआँ है जो स्वय पवित्र है। उसी मे यह तीर्थ जल रक्खा। गुणवान् मे देने से इसका महत्त्व और भी बढ जायगा। नदी नही बतलाया। क्योकि उसमे जल ठहर नही सकता। कूआँ मे छोडने से वह कूआँ सदा के लिए परम पावन हो जायगा। तीर्थजलप्रभाव के कारण पावन है। गुण होने से अमिअ है और अनादि सिद्ध स्थल होने से अनूप है।

भरत अत्रि अनुसासन पाई। जल भाजन सब दिये चलाई ॥
सानुज आपु अत्रि मुनि साधू। सहित गये जहँ कूप अगाधू ॥१॥

अर्थ भरतजी ने अत्रि मुनि की आज्ञा पाकर सब जलपात्रो को रवाना कर दिया। स्वय भाई के सहित, अत्रि मुनि और साधुओ के सङ्ग वहाँ गये जहाँ वह अथाह कूआँ था।

व्याख्या अत्रिजी ने यह तो बतला दिया कि इसी पर्वत के सन्निकट कूआँ है। उसी मे तीर्थ जल रखना चाहिए। परन्तु किस मुहूर्त मे जल का स्थापन करना चाहिए ? कौन स्थापन करे ? किस विधि से स्थापन हो ? इन सब बातो के लिए जब भरतजी ने पूछा तब अत्रिजी की आज्ञा हुई कि आज ही मुहूर्त अच्छा है। जल ले चलो। अत भरतजी ने सब जलपात्रो का तुरन्त रवाना कर दिया और भरतजो शत्रुघ्नजी अत्रिमुनि तथा साधुगण उस जल के पीछे पीछ चले।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पावन पाय पुन्यथल राखा । प्रमुदित प्रेम अत्रि अस भाखा ॥
तात अनादि सिद्ध थल एहू । लोपेउ काल विदित नहिं केहू ॥२॥

अर्थ : उस पवित्र जल को उस पुण्य स्थल मे स्थापन किया और प्रेम से प्रसन्न होकर महर्षि अत्रि ने कहा कि हे तात ! यह अनादि सिद्धपीठ है। बहुत दिन से इसका लोप हो गया था। किसी को इसका पता न रहा।

व्याख्या : इस पृथ्वी में भिन्न भिन्न स्थानों का भिन्न भिन्न प्रभाव है। जिस भाँति कही केसर होता है कहीं घास तक नहीं जमती। कही घान होता है तो कही गेहूँ होता है। इसी भाँति कोई स्थल धर्म के लिए अनुकूल है तो कोई अर्थ के लिए अनुकूल है। कोई काम के लिए अनुकूल है और कोई मोक्षदायक है। इसी भाँति बहुत से सिद्धपीठ हैं जहाँ अनुष्ठान करने से सिद्धि की प्राप्ति होती है। ऐसे सिद्धपीठ भी कही किसी महापुरुष के तपश्चर्या से बन गये हैं और कोई स्वभाव से ही बने हुए हैं। जिस स्थल मे जल रखने का प्रस्ताव मुनिजी ने किया था वह अनादि सिद्धपीठ था। मुनिजी कहते हैं कि काल के प्रभाव से यह पट गया था। किसी को मालूम भी नही था कि यहाँ तीर्थ है। वहाँ जल का स्थापन करके मुनिजी उस तीर्थ की महिमा कहने लगे। संसार का उपकार होने से मुनिजी बड़े प्रसन्न हैं और प्रेम से भरे हुए हैं।

तब सेवकन्ह सरस थलु देखा । कीन्ह सुजल हित कूप बिसेखा ॥
बिधि बस भयउ बिस्व उपकारू । सुगम अगम अति धरम बिचारू ॥३॥

अर्थ : तुम्हारे सेवकों ने देखा कि इस स्थल मे खोदने से पानी जल्दी निकलेगा। अतः सुन्दर जल के लिए विशेष कूआँ बना दिया। सो दैवयोग से संसार का उपकार हो गया। धर्म का विचार अत्यन्त सुगम भी और अगम भी है।

व्याख्या : सेना प्रस्थान के पहिले ही कुछ लोग आगे से जाकर उसके विश्राम के लिए उपयुक्त स्थल ठीक करते हैं और उसके ठहरने की व्यवस्था करते हैं। जहाँ जलाशय नही होता वहाँ पहिले से ही कूप खोदकर तैयार कर देते हैं। क्योंकि प्यास लग जाने पर कूआँ खोदते नही बनता। मुनिजी ने भरतजी से कहा कि तुम्हारी सेना के अग्रगामी दल ने देखा कि यहाँ सेना का विश्राम होना चाहिए और जल यहाँ पर वही सेना के उपयोग के लिए यथेष्ट नही है। विशेषज्ञों ने बतलाया कि इस स्थान पर खोदने से जल मिलेगा। अतः यही खोदकर कूआँ बना दिया : मालूम होता है कि भरतजी की सेना यही ठहरी थी। क्योंकि गुरुजी की आज्ञा से गिने गिनाये लोग ही आश्रम में गये।

सो दैवयोग से संसार का उपकार हो गया। सेना तो आकर चली गयी। परन्तु कूआँ बना हुआ है। इसके जल से जो काम लेगें उन्हे पुण्य होगा। अतः बड़े भारी तीर्थ का उद्धार अनायास हो गया। कही धर्म बड़ी सुगमता से अनायास प्राप्त होता है और किसी अवसर पर बड़े आयास करने पर भी प्राप्त होना कठिन हो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जाता है। इसी को कहते हैं धर्मस्य सूक्ष्मा गति। सो यह बड़ा भारी पुण्य कार्य तीर्थोद्धार अनायास तुम्हारे द्वारा हो गया।

भरतकूप अब कहिहै लोगा। अति पावन तीरथ जल जोगा॥
प्रेम सनेम निमज्जत प्रानी। होइहि बिमल करम मन बानी॥४॥

अर्थ लोग अब इसे भरतकूप कहेंगे। यह अत्यन्त पवित्र तीर्थ जल के योग्य था। प्रेम और नेम के सहित इसमे स्नान करने से प्राणी कर्म मन और वाणी से निर्मल हो जायँगे।

व्याख्या मज्जन और पान करने से तीर्थ का जल पाप हरण करता है। भगवद् गुणानुवाद से वाणी निर्मल होती है। शास्त्र विचार से मन निर्मल होता है। परन्तु इस कूप मे यह अपूर्वता है कि यदि प्रेम और नियम के साथ इसका सेवन हो तो यह कर्म मन और वाणी तीनो के निर्मल कर देने मे समर्थ है।

दो कहत कूप महिमा सकल, गये जहाँ रघुराउ॥
अत्रि सुनायेउ रघुबरहि, तीरथ पुन्य प्रभाउ॥३१०॥

अर्थ कूप की महिमा कहते हुए सब रामजी के पास गये। तब मुनिजी ने रघुनाथजी को तीर्थ के पुण्य प्रभाव को सुनाया।

व्याख्या सुनि अनुकथन परस्पर होई। पथिक समाज सोह सर सोई। सो लौटते समय तीर्थ के पुण्य प्रभाव का कथनानुकथन हो जाता था। तीर्थ सम्बन्धी बातो म ही रास्ता कटा। सरकार के पास पहुँचने पर रामजी को अत्रि मुनिजी ने उन्हे तीर्थ का पुण्य प्रभाव सुनाया। जिस समय मुनिजी ने उसकी फलस्तुति की थी उस समय रघुनाथजी नही थे और उन्हे सुनाना परमावश्यक था। उनके सुन लने से ही कथन की हुई महिमा स्थायी भी हो गयी।

कहत धरम इतिहास सप्रीती। भयउ भोरु निसि सो सुख बीती॥
नित्य निबाहि भरत दोउ भाई। राम अत्रि गुर आयसु पाई॥१॥

अर्थ धार्मिक इतिहास कहते कहते सवेरा हो गया। वह रात सुख से बीत गयी। नित्य कर्म का निर्वाह करके दोनो भाई भरत रामजी गुरु और अत्रि की आज्ञा पाकर।

व्याख्या उस पुण्य स्थल मे जो जो धार्मिक घटनाएँ हुई थी उनका इतिहास अत्रिजी प्रेम से वर्णन करने लगे। सब लोग प्रेम से सुनने लगे। इस भाँति सारी रात बीत गयी। किसी को कुछ मालूम न हुआ। भावार्थ यह कि उस स्थल का ऐसा महा माहात्म्य है जिसके वर्णन मे अनेक कथाएँ अत्रिजी ने सुनायी।

नित्य कर्म भी सक्षेप से किया। इसीलिए निर्वाह करना चाहते है। शास्त्र भी ऐसे समय मे नित्यकर्म के सक्षेप करने की आज्ञा देता है। दोनो भाई अर्थात् भरत शत्रुघ्न ने पहिले रामजी की आज्ञा प्राप्त की। स्वामी की आज्ञा प्राप्त की

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जिसमे रामवन मे पर्यटन का अधिकार प्राप्त हो। तत्पश्चात् गुरु की आज्ञा प्राप्त की। जिसमें सुकृत की शोभा हो। तत्पश्चात् अत्रिजी की आज्ञा प्राप्त की। जिसमे मुनि तापस के बाधा पाने का भय न हो।

सहित समाज साज सब सादे। चले राम बन अटन पयादे ॥
कोमल चरन चलत बिनु पनही। भइ मृदु भूमि सकुचि मन मनही ॥२॥

अर्थ : समाज के सहित सादे साज से राम वन की यात्रा के लिए पैदल चले। बिना जूते के कोमल चरणो द्वारा चल रहे हैं। अत पृथ्वी मन ही मन सकुचाकर कोमल हो गयी।

व्याख्या . तीर्थाटन की विधि कहते हैं। तीर्थाटन मे ठाटबाट मना है। इसलिए सब साज समाज सादा है। राजसी ठाट कोई भी नही। यहाँ तक कि पैर में जूते भी नही। पैदल वन मे चले जा रहे हैं। चक्रवर्ती के पुत्र हैं। बिना जूते के पैदल चलने का अभ्यास नही और चरण भी इतने कोमल हैं कि पृथ्वी पर चलने योग्य नही।

उनको इस भाँति चलते देखकर पृथ्वी को अपने मन मे अपनी कठिनाई पर सङ्कोच हुआ। अत वह स्वय कोमल हो गयी जिसमे भरतजी उसके कठोरता का अनुभव न करें। जिसकी रक्खी भूमि रह रही है उसको दु खद होने मे पृथ्वी को सङ्कोच है। यथा . भरत भूमि रह राउर राखी।

कुस कंटक काँकरी कुराई। कटु कठोर कुबस्तु दुराई ॥
महि मजुल मृदु मारग कीन्हे। बहत समीर त्रिबिध सुख लीन्हे ॥३॥

अर्थ : कुश, कण्टक, कङ्कडी, कुराई, कटु कठोर बुरी वस्तुओ को छिपाकर पृथ्वी ने सुन्दर कोमल रास्ता कर दिये और सुख लिये शीतल मन्द सुगन्ध वायु बहने लगी।

व्याख्या रास्ते के छोटे गड्हे जिसके चारो ओर घास पात जम जाते है। उसे कुराई कहते हैं। कोई इसका अर्थ कुरैया का वृक्ष कहते हैं। भूमि के मृदु होने का वर्णन करते हैं कि उसने अति कठोर बुरी वस्तुओ को अपने भीतर कर लिया। जिसमे कोमल चरणो को कष्ट न हो। गड्हो के अभाव से मार्ग मञ्जुल हो गया और कुश कण्टकादि के न होने से मृदु हो गया। ज्येष्ठ के महीने मे लू चलती है। सो यहाँ शीतल मन्द सुगन्ध वायु बहती है जिससे शरीर को सुख मिले।

सुमन बरषि सुर घन करि छाँही। बिटप फूलि फलि तृन मृदुताही ॥
मृग बिलोकि खग बोलि सुबानी। सेवहि सकल राम प्रिय जानी ॥४॥

अर्थ : देवता फूल बरस करके, बादल छाया करके, पेड़ फूल व फलकर, तृण कोमल होकर, मृग देखकर, पक्षी सुन्दर वाणी बोलकर सब भरतजी की सेवा करते हैं। वे जानते हैं कि ये रामजी को प्रिय हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : त्रिविध समीर : से स्पर्श सुख कहा। सुमन वृष्टि : से गन्ध सुख कहा। बिटप फूलि फलि : से रस सुख कहा। मृग बिलोकि : से रूप सुख कहा और खग बोलि सुबानी : से शब्द कहा। इससे सर्वेन्द्रिय तर्पण दृश्य का वर्णन किया। जो राम को प्रिय होता है उस पर चराचर की कृपा स्वभाव से होती है। राम सब की आत्मा है। अतः अपनी आत्मा के प्रिय की कौन सेवा नही करेगा ?

जो जिसको प्रिय होता है। उसकी शक्ति उसमे काम करने लगती है। महात्माओं में अलौकिक शक्ति के काम करने का यही रहस्य है। भरतजी रामजी को अत्यन्त प्रिय है। अतः उनकी जड़ को चेतन बनानेवाली शक्ति भरत में काम कर रही है। यथा : होत न भूतल भाव भरत को। अचर सचर चर अचर करत को। अतः भरत के सन्निधान मे उनका जड़त्व अत्यन्त शिथिल हो गया और उन्होने भरत को राम प्रिय जानकर उनकी सेवा की।

दो. सुलभ सिद्धि सब प्राकृतहु, राम कहत जमुहात।
राम प्रानप्रिय भरत कहुँ, यह न होइ बड़ि बात ॥३११॥

अर्थ : साधारण पुरुष को भी जो राम कहकर जँभाई लेता है उसे सब सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं। सो राम के प्राणप्रिय भरत के लिए यह बड़ी बात नही है।

व्याख्या : श्रोता के चित्त मे शङ्का हो सकती है कि ऐसी सिद्धि होनी कि उसके सान्निध्य से अचर को भी ज्ञान हो जाय बड़ी बात है। इस पर गोस्वामीजी कहते हैं कि यह भरत के लिए बड़ी बात नही है। क्योकि भरतजी रामजी को प्राण प्रिय हैं। उनमे रामजी की सब शक्तियाँ काम कर सकती हैं। जो लोग रामजी का इतना ध्यान रखते है कि कम से कम जँभाई लेने के समय तो उनका नाम मुँह से निकले। ऐसे ध्यान रखनेवाले को भी सब सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं और भरतजी तो रामजी को ऐसे प्रिय हैं कि रामजी उनका दिन रात ध्यान रखते हैं। यथा : रामहि बधु सोच दिन राती। अडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती।

यहाँ पर गोस्वामीजी ने सिद्धि प्राप्ति का अत्यन्त सरल मार्ग बतला दिया। साधक को बस इतना ध्यान नाम का रखना पडेगा कि जँभाई के समय अवश्य नाम मुख से निकल जाय। इतने ध्यान के सतत बने रहने से सामान्य अधिकारी को भी सिद्धियाँ सुलभ हो जाती हैं। नाम का प्राण से सम्बन्ध होने पर सिद्धियाँ मिलती है। नाम का निःश्वास प्रश्वासात्मक जप करने से प्राणो से नाम का सम्बन्ध हो जाता है।

एहि बिधि भरत फिरत बन माही। नेमु प्रेमु लखि मुनि सकुचाही॥
पुन्य जलासय भूमि बिभागा। खग मृग तरु तृन गिरि बन बागा ॥१॥

अर्थ : इस विधि से भरतजी वन में घूम रहे है। नेम प्रेम देखकर मुनियों को

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सङ्कोच हो रहा है। पवित्र जलाशय, भूखण्ड, पक्षी, मृग, तृण, वृक्ष, पर्वत, वन और बाग।

व्याख्या भरतजी के वन की यात्रा की विधि का उपसहार करते हुए कहते हैं कि इस विधि से भरतजी वन की यात्रा कर रहे हैं। राजकुमार होकर अत्यन्त सादे वेप से पैदल बिना जूता के ऐसे वन मे जहाँ कुश कण्टक कङ्कडी भरी हुई है जेठ के महीने की धूप मे घूम रहे हैं। इसे देखकर मुनि लोगो को भी सङ्कोच होता है कि हम लोग भी इस भाँति नही यात्रा कर सकते। कम से कम पादुका तो धारण कर ही लेते हैं और न हम लोगो मे ऐसा प्रेम ही है कि सरकार के चरण चिह्नो को देखकर ऐसा हर्ष हो जैसा भरत को हो रहा है।

चित्रकूट के जलाशय पावन हैं। जिन्हे देखकर देवनदी और देवसर ईर्ष्या करते हैं। यथा 'जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिनहि देवसर सरित सराहहिं। भूखण्ड पवित्र है। क्योकि वे सरकार के चरण चिह्नो से अङ्कित हैं। पक्षी मृग बेलि विटप तृण सब धन्य हैं। क्योकि उन्हे रामजी का सन्निधान प्राप्त है। यथा चित्रकूट के बिहँग मृग बेलि बिटप तृन जाति। पुन्य पुज सब धन्य अति कहत देव दिन राति।

चारु पवित्र बिचित्र बिसेखी। बूझत भरतु दिव्य सब देखी ॥
सुनि मन मुदित कहत रिषिराऊ। हेतु नाम गुन पुन्य प्रभाऊ ॥२॥

अर्थ सुन्दर पवित्र और विशेष विचित्र तथा दिव्य देखकर भरतजी पूछते हैं और ऋषिराज उनके प्रश्नो को सुनकर प्रसन्न मन से उनके हेतु गुण और प्रभाव बतलाते हैं।

व्याख्या जलाशय, भूमि विभाग, खग, मृग, तृण, तरु सब अलौकिक शोभा सम्पन्न हैं। मानो इस लोक के हैं ही नही। इसलिए भरतजी जलाशय के पुण्यमय होने का हेतु पूछते हैं। खग मृग के नाम पूछते हैं। तृण तरु के गुण पूछते हैं। गिरि वन बाग का पुण्य प्रभाव पूछते हैं और अत्रि मुनि सबका पृथक् पृथक् वर्णन करते हैं। भाव यह कि यात्रा मे यात्री को इन सब बातो की जानकारी प्राप्त करनी चाहिए। केवल रास्ता नापने से यात्रा का साफल्य नही है।

कतहुँ निमज्जन कतहुँ प्रनामा। कतहुँ बिलोकत मन अभिरामा ॥
कतहुँ बैठि मुनि आयसु पाई। सुमिरत सीय सहित दोउ भाई ॥३॥

अर्थ कही स्नान करते थे। कही प्रणाम करते थे। कही मनोहर वन का दर्शन करते थे। कही मुनिजी की आज्ञा पाकर बैठ जाते थे और सीताजी के साथ रामजी का स्मरण करते थे।

व्याख्या पुण्य जलाशयो मे स्नान करते थे। भूमि विभाग को प्रणाम करते थे। खग मृग तृण तरु को देखते थे। वन बाग मे मुनिजी की आज्ञा से ठहर जाते थे और बैठकर रामजानकी का स्मरण करते थे। भक्त को भगवान् के स्मरण चिन्तन

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मे ही विश्राम मिलता है सृष्टि वैचित्र्य के देखने से उन्हे उस स्रष्टा के विचित्र महा-सृष्टिनैपुण्य का ध्यान बँधता है।

देखि सुभाउ सनेहु सुसेवा। देहिं असीस मुदित बनदेवा ॥
फिरहि गएँ दिनु पहर अढाई। प्रभु पद कमल बिलोकहिं आई ॥४॥

अर्थ : स्वभाव स्नेह और अच्छी सेवा देखकर वनदेव प्रसन्न होकर आशीर्वाद देते हैं। ढाई पहर बीतने पर यात्रा से लौटते है और सरकार के चरण कमलो का दर्शन करते हैं।

व्याख्या : वनो के भी पृथक् पृथक् अधिष्ठातृ देवता और देवियाँ होती है। यथा : बनदेवी बनदेव उदारा। करिहहि सास ससुर सम सारा। सो वनदेव भरतजी का स्नेह देखकर कि सरकार के चरणो मे इतनी प्रीति है। स्वभाव देखकर कि मुनिजी की आज्ञा से ही सब कुछ करते हैं। एक एक वस्तु के विषय मे जानकारी प्राप्त करते है। माहात्म्य जानकर कही स्नान करते हैं और कही प्रणाम करते है। ऐसी सेवा देखकर वनदेवता प्रसन्न हो जाते हैं और आशीर्वाद देते है।

इस भाँति भरतजी ढाई पहर तक तो यात्रा मे व्यतीत करते हैं। तब अपराह्ण मे भोजनादि के लिए लौटते हैं। लौटने पर फिर सरकार के चरणो का दर्शन करते है और उसी दर्शन से यात्रा की परिपूर्णता मानते है।

दो. देखे थल तीरथ सकल, भरत पाँच दिन माँझ।
कहत सुनत हरिहर सुजसु, गयउ दिवस भइ साँझ ॥३१२॥

अर्थ : भरतजी ने पाँच दिन मे चित्रकूट के सब तीर्थो का दर्शन कर लिया। हरिहर का सुयश कहते सुनते दिन बीता और सन्ध्या हुई।

व्याख्या : आज भी चित्रकूट की यात्रा पाँच दिनो मे की जाती है। पाँच दिनो मे यात्रा पूर्ण हुई। यात्रा के दिनो मे अवशिष्ट समय को हरिहर सुयश के कथन श्रवण मे बिताना चाहिए। अत' कहते हैं कि भरतजी का दिन इस भाँति यात्रा के नियमो को पालन करते बीता।

## तीसरी सभा

भोर न्हाइ सबु जुरा समाजू। भरत भूमिसुर तिरहुति राजू ॥
भल दिनु आजु जान मन माही। रामु कृपाल कहत सकुचाही ॥१॥

अर्थ : सवेरे नहाकर सब समाज जुटा। जिसमे भरतजी ब्राह्मण लोग तथा तिरहुत के राजा थे। आज अच्छा दिन है ऐसा मन मे जानने पर भो राम कृपालु कहने मे सङ्कोच करते हैं।

व्याख्या ˙ सब कुछ निर्णय हो गया। भरतजो की समाज के सहित यात्रा भो समाप्त हो गयो। लोग नहा नहाकर सरकार के पास आगये। अब उन लोगो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



को छुट्टी माँगनी चाहिए। पर कोई कुछ कहता नहीं है। रामजी मन में सोच रहे हैं कि आज यात्रा के लिए शुभ मुहूर्त है। यात्रा का मुहूर्त जल्दी मिलता नहीं। अत: इन लोगों को आज चला जाना चाहिए। पर मैं कैसे कहूँ कि आप लोग जाइये। रामजी इस सङ्कोच में पड़ गये। बड़े कृपालु हैं। निष्ठुर वचन मुख से कहना नहीं चाहते।

गुर नृप भरत सभा अवलोकी। सकुचि राम फिरि अवनि बिलोकी ॥
सील सराहि सभा सब सोची। कहुँ न राम सम स्वामि सँकोची ॥२॥

अर्थ : रामजी ने गुरु, राजा, भरत तथा सभा की ओर देखा। फिर सङ्कुचित होकर नीचे देखने लगे। शील की प्रशंसा करके सभा ने सोचा कि राम के समान सङ्कोची मालिक कहीं नहीं हैं।

व्याख्या : शुभ मुहूर्त का ध्यान गुरुजी को होना चाहिए। इसलिए उनकी ओर देखा। महाराज जनक को ख्याल होना चाहिए कि दोनों राज्य सूने पड़े हैं। इसलिए जनकजी की ओर देखा। भरतजी ने वन देखने के लिए आज्ञा माँगा था। सो देख चुके। अब ठहरने का कारण नहीं है। अत: उनकी ओर देखा। अन्य लोगों को ठहर ठहरकर घर की सुधि आ जाती है। यथा : छन बन रुचि छन सदन सोहाहीं। अत: उन लोगों की ओर देखा। जब कोई न बोला तो सङ्कोच से निगाह नीची कर ली।

सभी सभासद रुख पहिचाननेवाले हैं। समझ लिया कि सरकार विदा करना चाहते हैं। पर सङ्कोच से कह नहीं रहे हैं। मन ही मन प्रशंसा करते हैं कि ऐसा सङ्कोची मालिक कहाँ मिलेगा। रामजी शील के सागर हैं।

भरत सुजान राम रुख देखी। उठि सप्रेम धरि धीर बिसेखी ॥
करि दंडवत कहत कर जोरी। राखी नाथ सकल रुचि मोरी ॥३॥

अर्थ : सुजान भरतजी ने रामजी का रुख देखा। विशेष धैर्य धारण करके प्रेम के साथ उठे। दण्डवत् करके हाथ जोड़कर बोले कि नाथ ने मेरी सब रुचि रख ली।

व्याख्या : भरत सुजान हैं। समझते है कि सरकार से छुट्टी भी मुझे ही लेनी पड़ेगी। मेरो ही मन्त्र से सब लोग यहाँ आये हैं। अत: विदाई के लिए कोई न कहेगा और रामजी के सबकी ओर देखने और सङ्कुचित होने का मतलब यही है कि आज अच्छा दिन है। अब सब लोग प्रस्थान करें। अत: रामजी के वियोग जन्य दु:ख के सहन करने के लिए विशेष धैर्य धारण किया और प्रेम के साथ उठकर दण्डवत् प्रणाम किया और हाथ जोड़कर बोले कि सरकार ने मेरी सभी रुचि रख ली। मुझे सेवक जानकर सम्मानित किया। मेरा कलङ्क मिट गया। मेरे कहने पर अपनी प्रतिज्ञा भङ्ग करने के लिए भी तैयार हो गये। वन की यात्रा के

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लिए भी आज्ञा दे दी। अतः मेरा आना सार्थक हुआ। यथा : नाथ भयउ सुख साथ गए को। लहेउँ लाहु जग जनम भए को।

मोहि लगि सहेउ सबहि सतापू। बहुत भाँति दुखु पावा आपू ॥
अब गोसाइँ मोहि देउ रजाई। सेवउँ अवध अवधि भर जाई ॥४॥

अर्थ : मेरे लिए सभी सन्ताप सहा और बहुत भाँति स्वय दु ख उठाया। हे स्वामी! अब मुझे आज्ञा मिले कि मै जाकर अवधि भर अवध की सेवा करूँ।

व्याख्या : भरतजी कहते है कि मेरे लिए सरकार को मानसिक सन्ताप सब प्रकार का सहना पडा। मैने सरकारी आज्ञा नही मानी। सबको इकट्ठा करके सरकार को सङ्कोच मे डाला। सरकार के चित्त मे क्षोभ हुआ। कष्ट उठाया। यथा राम सत्यब्रत धर्मरत सबकर सील सनेहु। सकट सहत सकोच बस कहिअ जो आयसु देहु। और भी बहुत प्रकार के दु ख आपको हुए। अब मैं अधिक कष्ट देना नही चाहता। केवल आज्ञा चाहता हूँ। मुझे आज्ञा हो कि जब तक सरकार वन से नही लौटते तब तक मै अयोध्या की सेवा करूँ। अर्थात् प्रजा पालन करूँ।

दो. जेहिं उपाय पुनि पाँय जनु, देखइ दीनदयाल।
सो सिख देइअ अवधि लगि, कोसल पाल कृपाल ॥३१३॥

अर्थ हे कोसलपाल कृपाल! अवधि तक के लिए मुझे ऐसी शिक्षा दीजिये जिस उपाय से हे दीनदयाल! यह दास फिर चरणो का दर्शन करे।

व्याख्या : भरतजी कहते हैं कि कोसलपाल आप है। आप ही कोसल के प्रकृत राजा हैं। प्रजा के हृदय पर आप का राज्य है। मै तो कोसलपुर का सेवक होकर उसकी सेवा उतने ही दिन करूँगा जितने दिन कि आप वन मे हैं। अब आप कृपा करके ऐसी शिक्षा दीजिये जिससे मै अयोध्या का पालन भी करूँ और लौटने पर सरकार उसे जूठा न समझें और मैं भी जिस उपाय का अवलम्बन करके उतने दिन तक जीवन धारण कर सकूँ। भाव यह है कि आप दीनदयाल है। कृपाल हैं। मैं दीन हो रहा हूँ। मुझे यह उपाय नही सूझ रहा है कि चौदह वर्ष तक विना आपके मैं कैसे जीवन धारण कर सकूँगा और लौटने पर सरकार को यह धारणा भी न हो कि चौदह वर्ष तक भरत ने शासन किया तो अब मै जाकर इसे कैसे हटाऊँ। इसी को शासन करने दो। सरकार की दयालु प्रकृति होने से मुझे यह भी भय हो रहा है। अत कृपा करके आप ही उपाय बताइये।

पुरजन परिजन प्रजा गोसाईं। सब सुचि सरस सनेह सगाईं ॥
राउर बदि भल भव दुख दाहू। प्रभु बिनु बादि परम पद लाहू ॥१॥

अर्थ : हे गोसाईं! पुरजन कुटुम्बी और प्रजा सब स्नेह के सगापन से सरस और पवित्र हैं। आप के लिए ससार के दु ख का दाह भी भला है। प्रभु के बिना परम पद का लाभ भी व्यर्थ है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : अपनी ओर से कहकर अब प्रजा की ओर से कहते हैं कि पुरजन और परिजन सब स्नेह के नाते से सरस है। यथा : हम सम पुन्य पुंज जग थोरे। जिन्हहि राम जानत करि मोरे। अतः सब पवित्र हैं। क्योंकि भक्ति से ही अन्तःकरण शुद्ध होता है। प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभ्यन्तर मल कबहुँ कि जाई।

सभी की यह व्यवस्था है कि आपके लिए यदि संसार दुःख का दाह भी हो तो अच्छा मानते हैं। भाव यह कि संसार के दुःख का दाह यदि अपने लिए हो तो बुरा है। यथा : डरपहि धीर गहन सुधि आये। पर आपके लिए वह भी सहना परम सुखद है। यथा : सुख समेत संवत दुइ साता। पल सम होहि न जनिअहि जाता। और यदि आप न हो तो परम पद की प्राप्ति भी व्यर्थ है। यथा : सगुन उपासक संग तहँ रहहि मोक्ष सुख त्यागी।

**स्वामि सुजानु जानि सबही की। रुचि लालसा रहनि जन जी की॥**
**प्रनतपालु पालिहि सब काहू। देउ दुहू दिसि ओर निबाहू॥२॥**

अर्थ : हे स्वामि सुजान प्रणतपाल! आप तो सबके हृदय की रुचि और रहनी सम्बन्धी जी की लालसा जानकर सबका पालन करेंगे। दोनों तरफ का पूरा निर्वाह करेंगे।

व्याख्या : सुजान तो वही हैं जो हृदय की बात जान ले। आप सुजान स्वामी हैं। सबके हृदय की बात जानते हैं। आपसे किसी की रुचि, लालसा और रहनी छिपी नहीं है।

रुचि यथा : दोउ समाज अस रुचि मन माँही।
बिनु सिय राम फिरब भल नाँही॥
दाहिन दैउ होइ जब सबही।
राम समीप बसिअ बन तबही॥
लालसा यथा : गनप गौरि त्रिपुरारि तमारी।
रमा रमनपद बंदि बहोरी।
बिनवहि अंजुलि अंचल जोरी॥
राजा राम जानकी रानी।
आनँद अवधि अवध रजधानी॥
गुरु समाज भाइन्ह सहित रामराज पुर होउ।
अछत राम राजा अवध मरिअ माँग सब कोउ॥
रहनि यथा : राम दरस हित नेम ब्रत लगे करन नर नारि।
मनहु कोक कोकी कमल दीन बिहीन तमारि॥

आप प्रणतपाल हैं। यहाँ सभी प्रणत हैं। यथा : मंगल मूरति लोचन भरि भरि। निरखहि हरषि दंडवत करि करि। अतः सरकार सबका पालन करेंगे और घर और वन दोनो ओर का निर्वाह करेंगे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अस मोहि सब बिधि भूरि भरोसो । कियें बिचारु न सोचु खरो सो ॥
आरति मोर नाथ कर छोहू । दुहुँ मिलि कीन्ह ढीठु हठि मोहू ॥३॥

अर्थ मुझे तो ऐसा बडा भारी भरोसा है। यदि विचार करता हूँ तो सोच की बात कुछ भी नही हैं। अपनी आर्त्ति और सरकार का छोह दोनो ने मिलकर मुझे हठ करके ढीठ बना दिया।

व्याख्या भरतजी कहते है कि सरकार सबका पालन करेंगे। घर वन दोनो का निर्वाह करेंगे। इस बात का मुझे पूरा भरोसा है। अत विचार करने पर तो सोच को कही स्थान नही है। फिर भी मैं सोच करता हूँ। अविनय विनय यथा रुचि वाणी बोलता हूँ। तो यह मेरी ढिठाई है। मै ढिठाई करना चाहता नही। परन्तु मैं आर्त्त हूँ और आर्त्त से ढिठाई हो ही जाती है। यथा आरति बस सनमुख भइउँ बिलगु न मानब तात। और छोह करने से भी बच्चे ढीठ हो जाते हैं। सो सरकार का छोह इतना है कि उसने भी मुझे ढीठ बना दिया है।

यह बड दोषु दूरि करि स्वामी । तजि सकोच सिखइअ अनुगामी ॥
भरत बिनय सुनि सबहि प्रसंसी । छीर नीर बिबरन गति हंसी ॥४॥

अर्थ हे स्वामिन्! इस बडे दोष को दूर करके मै अनुचर हूँ मुझे शिक्षा दीजिये। भरत की प्रार्थना सुनकर सबने प्रशसा की कि भरतजी की वाणी दूध और जल को अलग करने के लिए हस सी थी।

व्याख्या वात्सल्य को स्थान देकर सरकार मेरा सम्मान करते हैं। इससे मेरी ढिठाई बढती है। मैं इसे बडा दोष मानता हूँ। सो सरकार मेरा सम्मान न कर और सङ्कोच छोडकर मुझे शिक्षा दें कि मैं अवध की सेवा किस भाँति करूँ। मुझ जो बिधि पालन करने की सरकार बतलायेंगे उसी विधि से मै पालन करने का प्रयत्न करूँगा। भावार्थ यह कि आपके अयोध्या म न रहने पर आपकी आज्ञा से अवध का पालन करना मुझे स्वीकार है। परन्तु जिस विधि से मैं पालन करूँ वह विधि भी आपकी बतलायी हुई होगी तभी सेवा धर्म निबहेगा।

ऐसे गुण दोष को पृथक् करनेवाली वाणी की उपमा हस से दी गयी है। इसे सुनकर सभी ने प्रशसा की।

दो दीनबधु सुनि बधु के, बचन दीन छलहीन।
देस काल अवसर सरिस, बोले राम प्रबीन ॥३१४॥

अर्थ दीनबन्धु प्रवीण रामचन्द्र भाई के छलहीन दीन वचन सुनकर देश काल और अवसर के अनुकूल बोले।

व्याख्या सरकार दीनबन्धु है। भरतजी बन्धु भी है और दीन वचन बोल रहे हैं। सरकार प्रवीण हैं। जानते हैं कि इस वचन म छल की छाया नही है। यदि भरतजी शिक्षा के लिए प्रार्थना करते हैं तो उनका ऐसा करना उचित है। अत

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



देश काल और अवसर अनुसार बोले। देश काल और अवसर के अनुसार बोलना ही प्रवीणता है।

तात तुम्हारि मोरि परिजन की। चिंता गुरहिं नृपहि घर बन की ॥
माथे पर गुर मुनि मिथिलेसू। हमहि तुम्हहि सपनेहु न कलेसू ॥१॥

अर्थ : हे तात ! मेरी परिजन की, घर की और वन की चिन्ता गुरुजी और महाराज को है। हम लोगो के सिर पर गुरुजी और मिथिलाधिपति बने हैं। हमे और तुम्हें सपने मे भी क्लेश नही है।

व्याख्या : भरतजी ने कहा था ' देव दुहू दिसि ओर निबाहू। उसी के उत्तर मे सरकार कहते हैं हम लोग अनाथ नही हैं कि चिन्ता करें कि घर मे क्या होता होगा या वन मे क्या होता होगा। भरतजी ने सब बोझा अपने बडे रामजी पर रक्खा और रामजी सब बोझा अपने बडे गुरुजी तथा महाराज जनक पर रख रहे हैं।

हम लोगो के सिर पर गुरुजी तथा महाराज मिथिलेश के करकमलो की छाया है। हमे या तुम्हे चिन्ता करने की कोई बात नही है। गुरुजी तथा महाराज जनक सदा रक्षा करेंगे।

मोर तुम्हार परम पुरुषारथु। स्वारथु सुजसु धरमु परमारथु ॥
पितु आयसु पालिहिं दुहु भाई। लोक बेद भल भूप भलाई ॥२॥

अर्थ : मेरा तुम्हारा परम पुरुषार्थ स्वार्थ सुयश और परमार्थ यही है कि दोनो भाई पिता की आज्ञा पालन करें। राजा की भलाई से लोक और वेद मे भी भला है।

व्याख्या : नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न राम सम जान जथारथ। सो रामजी निर्णय किये देते है कि स्वार्थ, सुयश, धर्म और पुरुषार्थ सब कुछ पिता की आज्ञा पालन करने मे हैं। यथा ' पिता धर्म पिता कर्म पितैव परमा गति। पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्व देवता। अत रामजी कहते हैं कि हम दोनो भाइयो की सब तरह से भलाई पिता की आज्ञा के पालन करने म है। आज्ञा पालन से सुरपुर मे चक्रवर्तीजी को सन्तोष होगा। उनका सत्य अक्षुण्ण रह जायगा। उनकी भलाई होगी तो हम लोगो का भी लोक और परलोक सुधरेगा। यहाँ वेद शब्द परलोक का उपलक्षण है। क्योकि वह अज्ञातार्थ का ज्ञापक है।

गुर पितु मातु स्वामि सिख पालें। चलेहुँ कुमग पग परहिं न खाले ॥
अस बिचारि सब सोच बिहाई। पालहु अवध अवधि भरि जाई ॥३॥

अर्थ : गुरु पिता माता स्वामी की शिक्षा पालन करने से बेरास्ते चलने पर भी पैर खाले मे नही पडता। ऐसा विचार करके सब सोच छोडकर अवधि पर्यन्त अवध का पालन करो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या स्वय वेद कहता है मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। स्वामी भी पिता ही है। क्योकि वह रक्षा करता है। पातीति पिता। पिता शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ ही रक्षक है। इन चारो मे देवभाव रखना चाहिए। जिस भाँति देवता की आज्ञा मे विचार को स्थान नही है तदनुसार कार्य करने से हानि हो नही सकती। ईश्वरीय सहायता होती है। गुरु पिता माता स्वामी को आज्ञा अटपटी होने पर भी हानिकारक नही हो सकती। परिणाम उसका अच्छा ही होता है। रामजी के कहने का भावार्थ यह है कि हम लोग तो भल रास्ते पर चल रहे हैं हमारी हानि कैसे होगी ?

अब रामजी आज्ञा देते हैं कि ऐसा विचारकर सब सोच छोडकर चौदह वर्ष तक अयोध्या का पालन करो। लौट आने पर मैं सँभाल लूँगा।

देसु कोसु परिजन परिवारू। गुर पद रजहिं लाग छरुभारू ॥
तुम्ह मुनि मातु सचिव सिख मानी। पालेहु पुहुमि प्रजा रजधानी ॥४॥

अर्थ देश, कोश, पुरवासी और परिवार आदि की जिम्मेदारी तो गुरुजी के चरणा की धूलि को है। तुम मुनिजी माता और मन्त्रियो की शिक्षा मानकर पृथ्वी प्रजा और राजधानी की रक्षा करना।

व्याख्या भरतजी ने शिक्षा देने के लिए प्रार्थना की थी। अत सरकार कहते हैं कि तुम्हे तीन काम करना है पृथ्वी का पालन। प्रजा का पालन और राजधानी का पालन। सो गुरुजी माता और मन्त्रियो की सम्मति लेकर करना। पृथ्वी दूसरे के अधिकार मे न जाने पावे। प्रजा दु खी न हो और राजधानी की व्यवस्था बिगडने न पावे। राजधानी ही सम्पूर्ण व्यवहार का स्रोत है।

दो मुखिआ मुखु सो चाहिये, खान पान कहुँ एक।
पालइ पोषइ सकल अँग, तुलसी सहित बिबेक ॥३१५॥

अर्थ तुलसीदासजी कहते हैं कि मुखिया मुख की भाँति होना चाहिए। जो अकेले खाय और पीये। पर सब अङ्गो का विवेक के सहित पालन पोषण करे।

व्याख्या मुख अकेले ही खाता है और पीता है। पर अपने पास कुछ नही रखता। उसे कूँच पीसकर पाक के योग्य बनाकर पक्वाशय के सुपुर्द कर देता है और वहाँ से उसका रस बनकर यथायोग्य सब अङ्गो का पोषण होता है। विवेक के साथ भोजन का भाव यह कि इतना न खा जावे कि अजीर्ण हो जाय। न इतना कम खाय कि शरीर क्षीण हो जाय। शुद्ध और पथ्य पदार्थ का ही सेवन करे।

इसी भाँति मुखिया को आचरण करना चाहिए। वह जो कुछ ग्रहण करे इसमे से कुछ अपने पास न रक्खे। सबका सब सार्वजनिक कार्य विभाग के सुपुर्द कर दे और वहाँ से यथोचित सबका पालन हो। इतना अधिक कर न ले कि प्रजापीडा हो और इतना कम भी न ले कि शासन व्यवस्था दुर्बल हो जाय। जिनसे कर लेना उचित है उन्ही से ले। शास्त्रीय मर्यादा भङ्ग न हो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



राजधरम सरबसु एतनोई। जिमि मन माँह मनोरथ गोई ॥
बंधु प्रबोधु कीन्ह बहु भाँती। बिनु अधार मन तोषु न साँती ॥१॥

अर्थ : राजधर्म का सार सर्वस्व इतना ही है। जैसे मन में मनोरथ छिपा रहता है। रामजी ने बहुत प्रकार से समझाया। परन्तु बिना आधार के न मन में सन्तोष हुआ न शान्ति हुई।

व्याख्या : रामजी कहते हैं कि इतना ही राजधर्म का सर्वस्व है। शेष का सम्पूर्ण राजधर्म इसका विस्तार है। इस पर ध्यान रहने से सम्पूर्ण राजधर्म का पालन होगा। जैसे सम्पूर्ण मनोरथों का निवास मन में ही रहता है उसी भाँति सम्पूर्ण राजधर्म इसी दोहे में है। इस भाँति राजधर्म की शिक्षा देकर बहुत भाँति से भरतजी को समझाया। यथा :

तुम्हरे निबाहे निबहेगी सबही कि बलि उर धरि धीर धर्म मारग सँवारिये।
जा में विजय आनंद बधाई तिहुँलोक बजै विप्र सुर साधु महि सकट निवारिये ॥
होवै सुरकाज महाराज को वचन साँच तात कुल कीरति पताका फहराइये।
वचन तिहारो मानि आइके करोगे राज अवधि बिताय तौलों अवध सँवारिये ॥

इस प्रकार से बहुत समझाया। परन्तु भरतजी साकारोपासक हैं। उन्हें आधार चाहिए। बिना आधार के उन्हे न सन्तोष है न शान्ति है।

भरत सील गुरु सचिव समाजू। सकुच सनेह बिबस रघुराजू ॥
प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही। सादर भरत सीस धरि लीन्ही ॥२॥

अर्थ : भरत का शील और गुरु तथा सचिव का समाज, रघुराज सङ्कोच और स्नेह के वश में पड़ गये। कृपा करके प्रभु ने अपने खड़ाऊँ दिये जिन्हे आदर के साथ भरतजी ने सिर पर चढ़ा लिये।

व्याख्या : इधर भरतजी का शील उधर बड़ों का तथा पिता के मन्त्रियों का समाज। भरतजी अवलम्ब चाहते है। बड़े के अभाव में उसकी चरण पादुका के ही उपासना की सनातन रीति है। अतः अपनी चरण पादुका देना प्राप्त है। परन्तु बड़ों के समाज मे अपनी चरण पादुका देने में रामजी को सङ्कोच है। भरत का इतना शील स्नेह है कि उनके माँगने पर कैसे न दें। इधर बड़ो के समाज मे अपने चरण पादुका के देने मे सङ्कोच है। अतः रामजी सङ्कोच के वश में पड़ गये। अन्त मे स्नेह की ही विजय हुई। सरकार को चरणपादुका देनी पड़ी।

चरन पीठ करुनानिधान के। जनु जुग जामिक प्रजा प्रान के ॥
संपुट भरत सनेह रतन के। आखर जुग जनु जीव जतन के ॥३॥

अर्थ : करुणानिधान के खड़ाऊँ : चरणपीठ मानो प्रजाप्राण के दो पहरेदार हैं। भरतजी के प्रेमरूपी रत्न के लिए डब्बा है। जाव के यत्न के लिए मानो दो अक्षर है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : सरकार के खडाऊँ मानो दो पहरेदार प्रजा के प्राण के हैं। वे उसे निकलने न देंगे। प्रजा यह समझकर प्राण धारण करेगी कि सिंहासन पर रामजी नही हैं तो उनका खड़ाऊँ तो है। अब निर्विवाद रूप से रामजी का राज्य है।

रक्षा के लिए रत्न पेटक में रक्खे जाते हैं। पेटक मे दो ढकने होते हैं। भरत-जी का प्रेम बड़ा बहुमूल्य है। इसलिए उसे रत्न कहते हैं। जिस भाँति रत्न का आधार पेटक होता है। उसी भाँति भरतजी के प्रेम का आधार दोनो खडाऊँ हुए। भरतजी उन्ही का पूजन करेंगे। सिंहासन पर स्थापित करेंगे। उन्ही से आज्ञा लेकर सब राजकाज सँभालेंगे।

इन खडाऊँ की आराधना से रामजी की प्राप्ति होगी। जिस भाँति रा और म दोनो के जप से रामजी की प्राप्ति जीव को होती है। यथा : नाम निरूपन नाम जतन से। सोउ प्रकटत जिमि मोल रतन से।

कुल कपाट कर कुसल करम के। बिमल नयन सेवा सुधरम के॥
भरत मुदित अवलंब लहे ते। अस सुख जस सिय राम रहे तें॥४॥

अर्थ : कुल के लिए मानो किवाड़ थे। कर्म के लिए मानो दोनो कुशल हाथ थे। सेवारूपी सुधर्म के लिए मानो दोनो नेत्र थे। अवलम्ब प्राप्त होने से भरत प्रसन्न हुए। उन्हें ऐसा सुख हुआ जैसा सीता राम के रह जाने से होता।

व्याख्या : कुल के लोगों के लिए भी वह खड़ाऊँ प्राणाधार हुआ। अतः कुल का रक्षक हुआ। कपाट से रक्षा होती है। यथा : ध्यान तुम्हार कपाट। कपाट भी दो होते हैं और खडाऊँ भी दो होते हैं। कर्म का कौशल यही है कि वह बन्ध का कारण न हो। इन खड़ाऊँ को सिंहासनारूढ करके जो राजकार्य भरतजी करेंगे वह बन्धन का कारण न होगा। इसलिए उन्हे कर्म के लिए दो कुशल हाथो से उपमित किया। सेवारूपी सुधर्म के लिए तो वे मानो दोनो आँख हो गये। माँगि माँगि आयसु करत राज काज बहु भाँति। भरतजी उन्ही खड़ाऊँ की आज्ञा से सब राजकार्य करते थे। ये खड़ाऊँ न होते तो किससे आज्ञा माँगते। आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। अतः वह सेवा अन्धो की सेवा सी होती। मन मे स्थिर न कर सकते कि जो मैं कर रहा हूँ वह सरकार की मर्जी के अनुकूल है या नही। खड़ाऊँ के कारण निश्चय करने मे सुभीता था। इसलिए उसे आँख कहा।

दो. माँगेउ बिदा प्रनामु करि, राम लिये उर लाइ।
लोग उचाटे अमरपति, कुटिल कुअवसरु पाइ॥३१६॥

अर्थ : प्रमाण करके विदा माँगा। रामजी ने हृदय से लगा लिया। कुटिल इन्द्र ने कुअवसर पाकर लोगो के चित्त मे उचाट कर दिया था।

व्याख्या : पाँवरी मिल गयी। अतः काम पूरा हो गया। इसलिए भरतजी ने प्रणाम किया और विदा माँगी। रामजी ने हृदय से लगा लिया। भाव यह कि तुम प्राण से प्यारे हो। अवश होकर मैं विदा करता हूँ। कवि इन्द्र को कपटी कहते हैं

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कि ऐसे करुणा के अवसर मे भी उन्हे कपट न भूला। देखा कि यह मेरे लिये बड़ा अच्छा अवसर है। इस समय उचाट का प्रयोग करने से रामजी अप्रसन्न न होगे और लोगो ने जो निश्चय किया था कि बिना रामजी के फिरना अच्छा नही वे हठ भी न करेंगे।

सो कुचालि सब कहँ भइ नीकी। अवधि आस सम जीवनि जी की ॥
नतरु लखन सिय राम बियोगा। हहरि मरत सब लोग कुरोगा ॥१॥

अर्थ : वह कुचाल सब के लिए अच्छी हो गयी। अवधि की आशा के समान जीव की जीवन हो गयी। नही तो लक्ष्मण सीता और राम के वियोगरूपी कुरोग से सब लोग हहरकर मर जाते।

व्याख्या : अवधि आस सब राखहिं प्राना। सबका जीवनाधार अवधि हो गयी थी। अर्थात् सब यह आशा लगाये जी रहे थे कि चौदह वर्ष बाद फिर भेंट होगी। उसी भाँति यह उच्चाटन भी जीवनाधार हो गया। नही तो लक्ष्मण सीता और रामजी का वियोग ऐसा कुरोग था जो सबका प्राण लेकर ही छोडता। उच्चाटन के कारण वियोग व्यथा बहुत कुछ कम हो गयी।

रामकृपा अवरेब सुधारी। बिबुध धारि भइ गुनद गोहारी ॥
भेंटत भुज भरि भाइ भरत सो। राम प्रेमरसु कहि न परत सो ॥२॥

अर्थ : रामजी की कृपा ने अवरेब सुधार दिया। देवताओ की सेना गुणदायक गोहार हो गयी। भुजा भरके भरत से भाई को भेंटते हुए रामजी का वह प्रेमरस कहते नहीं बनता।

व्याख्या : देवताओ ने तो लोगो की बुद्धि को विकृत करने के लिए उच्चाटन का प्रयोग किया था। इससे उनकी बुद्धि मे विकार भी हो गया। पर रामजी की कृपा से वह विकार लाभदायक हो गया। बिगरी बनावै कृपानिधि की कृपा नई। अवरेब टेढी काट को कहते हैं। सो देवताओ की यह टेढी चाल 'कुचाल रामकृपा से हितकर सिद्ध हुई। देवता लोग तो सब मिलकर अहित करने चले थे। जिस भाँति सेना अहित करने चलती है। पर रामजी की कृपा से वह सेना गोहार हो गयी। हित-कारिणी हो गयी। निर्बल की सहायता के लिए जो लोग इकट्ठे होकर चलते हैं उसे गोहार कहा जाता है। यथा : गाय गोहार तिरिया गोहार आदि।

भयउ न भुवन भरत सम भाई। सो ऐसे भाई का गाढ आलिङ्गन करने मे जिस प्रीतिरस का प्रादुर्भाव हुआ वह सर्वथा अवर्णनीय था।

तन मन बचन उमग अनुरागा। धीर धुरंधर धीरजु त्यागा ॥
बारिज लोचन मोचत बारी। देखि दसा सुर सभा दुखारी ॥३॥

अर्थ : शरीर मन और वचन मे अनुराग उमड़ पड़ा। धैर्यधारियो के धुरन्धर ने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



धैर्य छोड दिया। कमल ऐसे नेत्रो से जल गिर रहा है। इस दशा को देखकर देवसभा दु खी हो गयी।

व्याख्या · तन मन बचन से रामजी का उमङ्ग कही नही कहा गया। क्योकि सरकार का स्वभाव हर्ष शोक से रहित है। यथा : बिस्मय हरख रहित रघुराऊ। तुम जानहु सब राम प्रभाऊ। सो यहाँ प्रेम ऐसा बढा कि सरकार के स्वभाव मे भी परिवर्तन दृष्टिगोचर होने लगा। इतने बडे धीर का धैर्य डग गया। आँखो से जल गिरने लगा।

देवताओ का तो काम बन रहा था। पर सरकार की दशा देखकर वे भी दु खी हो गये। इसीलिए सेना शब्द का प्रयोग न करके कवि ने सभा शब्द का प्रयोग किया।

मुनिगन गुर धुर धीर जनक से। ग्यान अनल मन कसे कनक से॥
जे बिरंचि निरलेप उपाए। पदुम पत्र जिमि जग जल जाए॥४॥

अर्थ मुनि समाज गुरु वसिष्ठजी और जनक के समान धीर जिनका मन-रूपी सोना ज्ञान की अग्नि मे कसा हुआ था। जिन्हे ब्रह्मदेव ने निर्लेप उत्पन्न ही किया था। ससाररूपी जल मे जो कमल के पत्ते की भाँति पैदा हुए थे।

व्याख्या : मुनि समाज का अर्थ ही ज्ञानी समाज है। स्थितधीर्मुनिरुच्यते। क्योकि स्थितप्रज्ञ को ही मुनि कहते है। उनमे भी वसिष्ठजी सबसे अग्रगण्य जिन्होंने योगवासिष्ठ कहा है और जनक के समान धीर। जिनका कहना है · सहज बिराग रूप मन मोरा। मिथिलाया न मे किञ्चित् प्रदह्यते। वामदेवादि गर्भज्ञानी। जो ससार मे ही पैदा हुए। ससार से ही जीवन धारण करते हैं। फिर भी पद्मपत्र की भाँति निर्लेप रहते है। वे भी।

दो० तेउ बिलोकि रघुबर भरत, प्रीति अनूप अपार।
भए मगन मन तन बचन, सहित बिराग बिचार॥३१७॥

अर्थ : वे भी रामजी के मिलने की अनुपम अपार प्रीति देखकर विराग और विचार के सहित तन मन वचन से मग्न हो गये।

व्याख्या भरत और रामजी की प्रीति की उपमा नही है। क्योकि प्रीति तो स्वार्थ को लेकर होती है। यथा सुर नर मुनि सबकै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती। और इनकी प्रीति मे स्वार्थ का लेश नही। इसलिए प्रीति को अनूप कहा और राम सकोची प्रेम बस भरत सुप्रेम पयोधि। इससे अपार कहा और भी अनूपता यह है कि ऐसे ऐसे ज्ञानी भी उसे देखकर प्रेम मे डूबने लगे। उनका विवेक विचार भी डूबने लगा। ज्ञानी तो पद्मपत्रमिवाम्भसा रहते हैं। उनके प्रेम मे डूबने का तो प्रश्न ही नही उठता। वे विवेक के जहाज पर चढे हैं। पर यह प्रेम ऐसा अनूप अपार था कि इसे देखकर डूबने लगे और ऐसा अपार था कि पार न पा सके।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भावार्थं यह कि ऐसे ऐसे लोग भी प्रेमाकुल हो गये। उनका विवेक विचार उ समय कार्य करने मे असमर्थ हो गया।

जहाँ जनक गुरु गति मति भोरी। प्राकृत प्रीति कहत बड़ि खोरी ॥
वरनत रघुबर भरत वियोगू। सुनि कठोर कवि जानिहि लोगू ॥१॥

अर्थं : जहाँ जनक और गुरुजी की मति की गति भोली हो जाती है उं प्राकृत प्रीति कहना बड़े दोष की बात है। रामजी और भरत के वियोग का वर्णं करने से सुनकर लोग कवि को कठोर जानेंगे।

व्याख्या : ऊपर कह आये हैं कि मुनिगण वसिष्ठजी और जनकीजो राम औ भरत की अपार प्रीति देखकर विवेक विचार के साथ मग्न हो गये। अर्थात् उन लोगं की मति गति भोली हो गयी। वह प्रीति सासारिक प्रीति नही है। वह भक्त औ भगवान् की प्रीति अलौकिक है। संसार से मन हटाकर ही भगवान् मे लगान सम्भव है। अतः उस प्रीति को सांसारिक प्रीति कथमपि नही कहा जा सकता। उरे सांसारिक प्रीति भाई भाई की प्रीति कहने मे बडा दोष है।

दूसरी बात यह है कि रामजी और भरतजी के वियोग वर्णन में इतनी करुण है कि उसके वर्णन को सुनकर लोग वर्णन करनेवाले को कठोर कहेगे। अतः जे विषय वर्णनातीत है और उसके वर्णन के प्रयत्न मे सुननेवाले भी उसे बुरा कहे उस विषयको अछूता छोड़ देना ही ठीक है।

सो सकोचु रसु अकथ सुबानी। समउ सनेहु सुमिरि सकुचानी ॥
भेटि भरतु रघुबर समुझाए। पुनि रिपुदवनु हरषि हिय लाए ॥२॥

अर्थं : वह सङ्कोच है और रस कथनीय नही है। सुन्दर वाणी समय के स्नेह को स्मरण करके सङ्कुचित हो गयी। रामजी ने भरत से गले मिलकर उन्हे समझाया। तत्पश्चात् फिर शत्रुघ्नजी को हर्षित होकर हृदय से लगा लिया।

व्याख्या : एक तो कठोर कहे जाने का सङ्कोच दूसरे वियोग में रसका उत्कर्ष संयोग से भी अधिक हो जाता है। सो राम और भरत के वियोग का रस सर्वथा अकथनीय है। अतः कवि की सुवाणी उस समय के स्नेह को स्मरण करके सङ्कुचित हो गयी। कुछ कह न सकी अर्थात् अपना नृत्य उसने बन्द कर दिया।

अब निष्कर्ष कहते हैं कि रामजी ने भरतजी से गले मिलकर उन्हे समझाया।

यथा : मै पितु बचन प्रमाण करि करि पूरन सुरकाज।
जब लगि आवत तात तुम पालहु राज समाज ॥
अघटित घटना जो घटी सो सुर माया जानि।
सोच करहु जनि ईस बस जीव सदा जिय जानि ॥
निज स्वारथ हित सब सहत दु:ख सुख योग वियोग।
जग मंगल हित सहहि दु:ख तात धन्य ते लोग ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


शत्रुघ्न सबसे छोटे हैं। उन पर बडा वात्सल्य है। अत हर्ष से हृदय से लगा लिया।

सेवक सचिव भरत रुख पाई। निज निज काज लगे सब जाई ॥
सुनि दारुन दुखु दुहूँ समाजा। लगे चलन के साजन साजा ॥३॥

अर्थ सेवक और मन्त्री भरतजी का रुख पाकर अपने अपने काम मे सब लग गये। दारुण दु ख की बात सुनकर दोनो समाज चलने का साज सजने लगे।

व्याख्या सरकार के समझाने से भरतजी को प्रबोध हो गया। क्योकि पादुका प्राप्त कर चुके थे। अत उनका चलने का रुख हुआ। रुख देखकर मन्त्री लोग अपने कार्य मे लगे। तिलक का साज साथ आया था। सबको सँभालकर ले चलना, सेना को आज्ञा देना, माताओ के चलने की व्यवस्था आदि मे तथा सेवक लोग अपनी अपनी सेवा सम्बन्धी व्यवस्थाओ मे लग गये। रुख पाकर कार्य करने की विशेषता। अयोध्याकाण्ड भर मे गोस्वामीजी ने दिखलाया है। चिन्तित कार्य करना ही उत्तम सेवक का लक्षण है। आज्ञा पाने पर कार्य करनेवाले मध्यम हैं। आज्ञा पाने पर भी आनाकानी करनेवाले अधम है।

दोनो समाज ने सुन लिया कि भरतजी विदा हो लिये। तो उन्हें दारुण दु ख हुआ। देवताओ की माया के काम करते रहने पर भी उनके प्रेम की मात्रा मे अधिक ह्रास नही हुआ। इतना ही हुआ कि वे दु खी मन से चलने को तैयार हो गये। अपना अपना बोरिया बधना बाँधने लगे।

प्रभु पद पदुम बंदि दोउ भाई। चले सीस धरि राम रजाई ॥
मुनि तापस बनदेव निहोरी। सब सनमानि बहोरि बहोरी ॥४॥

अर्थ सरकार के चरण कमलो की वन्दना करके दोनो भाई रामजी की आज्ञा शिरोधार्य करके चले। मुनि तपस्वी और वनदेव का निहोरा किया। सबका बार बार सम्मान किया।

व्याख्या दोनो भाई भरतजी और शत्रुघ्नजी ने मिलने के बाद रामजी के चरण कमलो की वन्दना की और चल पडे। जो सरकार से प्राप्त होता है उसे भरतजी शिरोधार्य करते हैं। पादुका मिली उसे शिरोधार्य किया। यथा प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही। सादर भरत सीस धरि लीन्ही। इस समय जाने के लिए आज्ञा हुई उसे भी शिरोधार्य किया। पहिले भरतजी ने कहा था अब गोसाइँ मोहि होइ रजाई। सेवहुँ अवध अवधि भरि जाई। सो आज्ञा मिल गयी कि अवधि भर अर्थात् मेरे लौटने तक जाकर राज्य की सेवा करो। अत आज्ञानुसार सेवा करने के लिए भरतजी चल। चलते समय मुनि तपस्वी और वनदेवो का भरतजी ने निहोरा किया। बार बार सम्मान किया कि आप लोगो ने बडी कृपा की। हम लोगो के दु ख सुख मे बडी सहानुभूति दिखलायी। ऐसी ही कृपा सदा बनी रहे इत्यादि।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. लखनहिं भेटि प्रनामु करि, सिर धरि सिय पद धूरि।
चले सप्रेम असीस सुनि, सकल सुमंगल मूरि॥३१८॥

अर्थ : लक्ष्मणजी से गले मिलकर और प्रणामपूर्वक सीताजी की चरण की धूलि सिर पर धारण करके सकल सुमङ्गल मूल आशीर्वाद श्रवण करके प्रेम के साथ प्रस्थान किया।

व्याख्या : इस समय लक्ष्मणजी सीताजी के सन्निकट थे। सो दोनों भाई लक्ष्मणजी से मिले। प्रणामादि प्रक्रिया मिलने के ही अन्तर्गत है। तत्पश्चात् भगवती जनकनन्दिनी को प्रणाम करके उनकी चरण की धूलि को सिर पर धारण किया। भगवती की चरण धूलि की महा महिमा भरतजी जानते हैं। आये तब भी उस धूलि को सिर पर धारण किया था। जाने के समय भी सिर पर धारण कर रहे हैं। इस समय भगवती ने स्पष्ट शब्दों में आशीर्वाद दिया। पहिले से ही चित्त को सावधान आशीर्वाद देने के लिए किये हुए हैं। माता का आशीर्वाद अमोघ है। यथा 'आसिस तव अमोघ विख्याता। अतः सुमङ्गल मूल कहते हैं।

सानुज राम नृपहि सिर नाई। कीन्हि बहुत बिधि बिनय बड़ाई॥
देव दया बस बड़ दुखु पायेउ। सहित समाज काननहि आयेउ॥१॥

अर्थ : लक्ष्मण के सहित रामजी ने जनकजी को प्रणाम किया और बहुत विधि से विनय और स्तुति की। कहा कि राजन्! आपने दया परवश होकर बहुत दुःख पाया। समाज के सहित वन में चले आये।

व्याख्या : भरतजी के विदा होने पर लक्ष्मणजी ने समझ लिया कि अब सरकार जनकजी को विदा करेंगे। अतः लक्ष्मणजी रामजी के पास चले आये और उनके साथ जनकजी को प्रणाम किया। श्री रामजी ने जनकजी की स्तुति की। ऐसे अवसर पर बड़ों की स्तुति करना प्राप्त है। विनय भी किया। सक्षेप में स्तुति कहते हैं कि आप ब्रह्मज्ञानियों के सरदार हैं। आपकी सब में समदृष्टि है। अतः आपके लिए अपना पराया कुछ भी नहीं। आपका कष्ट उठाना केवल दयापरवश होने से होता है। सो आपने बड़ा कष्ट उठाया। समाज के सहित जनकपुर से यहाँ वन में चले आये।

पुर पगु धारिअ देइ असीसा। कीन्ह धीर धरि गवनु महीसा॥
मुनि महिदेव साधु सनमाने। बिदा किए हरि हर सम जाने॥२॥

अर्थ : अब आशीर्वाद देकर पुर को पधारिये। महाराज ने धैर्य धारण करके प्रस्थान किया। मुनिगण, साधुगण, ब्राह्मणों का सम्मान करके हरि और हर के समान करके विदा किया।

व्याख्या : सरकार जनकजी से कहते हैं कि आपको कष्ट उठाते बहुत दिन हुए। सो अब हम लोगों को आशीर्वाद दीजिये। आपके आशीर्वाद से ही हम लोगों का मङ्गल होगा और अब राजधानी को सनाथ कीजिये। महाराज स्नेह से विह्वल

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हो रहे थे। रामजी का वचन सुनकर धैर्य धारण किया और चल पडे। फिर भी स्पष्ट शब्दो मे आशीर्वाद न दे सके।

तत्पश्चात् सरकार ने मुनिगणो ब्राह्मणो और साधुओं को विदा किया। उन लोगो का सम्मान हरि और हर की भाँति किया। त्रिदेव मे ब्रह्मा विष्णु और महादेव तीन देवता हैं। सो अपूज्य होने से ब्रह्मदेव का उल्लेख कवि ने नही किया।

सासु समीप गये दोउ भाई। फिरे बंदि पग आसिप पाई॥
कौसिक बामदेव जावाली। पुरजन परिजन सचिव सुचाली॥३॥

अर्थ : दोनो भाई सास के पास गये और चरणवन्दना की तथा आशीर्वाद पाकर लौटे। विश्वामित्र, वामदेव, जावालि, परिजन, पुरजन तथा सज्जन मन्त्रियों को।

व्याख्या : फिर दोनो भाई सास से मिलने जनकजी के डेरा पर गये। जाकर चरणवन्दना की। महाराज आशीर्वाद न दे सके। दोनो भाइयो के मिलन प्रीति देखने से अत्यन्त विह्वल हो गये थे। सास ने नही देखा था। अत: वे आशीर्वाद देने मे समर्थ हुईं।

जनक समाज को विदा करके सरकार धनुर्वेद के गुरु विश्वामित्र गर्भज्ञानी वामदेव तथा जावालि महर्षि तथा परिजन, पुरजन, सज्जन तथा मन्त्रियो को सम्मान करके लौटाया। परिजन पुरजन और मन्त्रिगण अपने अपने कामो मे लगे थे। अत उनके पास जा जाकर कृपानिधि ने सबका सत्कार किया सरकार का स्वभाव सज्जन सदाचारी के पास स्वय जाने का है। सुचाली शब्द से कवि ने वही बात जनायी।

जथा जोगु करि बिनय प्रनामा। बिदा किये सब सानुज रामा॥
नारि पुरुष लघु मध्य बडेरे। सब सनमानि कृपानिधि फेरे॥४॥

अर्थ : यथा योग्य विनय प्रणाम करके भाई के साथ रामजी ने विदा किया। कृपानिधान ने सब छोटे मध्यम और बडे स्त्री और पुरुषो को सम्मान करके लौटाया।

व्याख्या : प्रणाम मे भी दर्जा है। कोई वाङ्मात्र पूजन का अधिकारी है। किसी का चरण स्पर्श किया जाता है। किसी को साष्टाङ्ग प्रणाम किया जाता है। इसी प्रकार से विनय मे भी त रतम्य है। अत रामजी ने भाई के सहित सभी पूज्य महानुभावो को यथायोग्य प्रणाम तथा विनय पूर्वक विदा किया। पूज्यपूजा व्यतिक्रम नही होने पाया। प्रभु कृपानिधि हैं। शेष लोगो मे जो छोटे बडे मध्यम स्त्री और पुरुष थे उन सबका सम्मान करके घर लौटाया। सामान्य लोगो की विदाई न कह कर सम्मानपूर्वक घर लौटाना कहा।

दो. भरत मातु पद बंदि प्रभु, सुचि सनेह मिलि भेंटि।
बिदा कीन्ह सजि पालकी, सकुच सोच सब मेटि॥३१९॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : भरतजी की माता के चरणों की वन्दना करके पवित्र प्रेम से उनसे मिले भेंटे। उनका सङ्कोच और सोच को मिटाकर पालकी सजाकर विदा किया।

व्याख्या : अब माताओं को विदा करना शेष रहा। सो जिस भाँति : प्रथम राम भेंटी कैकेई। उसी भाँति पहिले कैकेयी को ही विदा किया। पवित्र स्नेह से न मिलने का यथेष्ट कारण था। अत: कवि कहते हैं कि पवित्र स्नेह से मिल भेटकर : गले लगाकर विदा किया। उनका सङ्कोच और सोच दूर किया। उनके आने पर भी सरल स्वभाव और भक्ति से मिले थे पर देखा कि उनका सङ्कोच और सोच गया नही है। बिना बात स्पष्ट किये सङ्कोच सोच जा नही सकता। अत. देवमाया के भेद को स्पष्ट कहकर और भूभार उतारने के लिए वन जाने की आवश्यकता बतलाकर उसे सोच सङ्कोच से विनिर्मुक्त किया। सम्मान के लिए स्वय पालकी सजाकर उस पर विठाया।

परिजन मातु पितहिं मिलि सीता। फिरी प्रानप्रिय प्रेम पुनीता॥
करि प्रनामु भेटी सब सासू। प्रेम कहत कबि हिय न हुलासू॥१॥

अर्थ : प्राणपति मे जिसका पवित्र प्रेम है। ऐसी सीताजी परिजन माता और पिता से मिलकर लौट आयी। तत्पश्चात् प्रणाम करके सब सासो से मिली। प्रेम के वर्णन करने मे कविहृदय मे हुलास नही है।

व्याख्या : जब भरतजी प्रणाम करने आये और आशीर्वाद लेकर चले गये तब यह समझकर कि विदाई हो रही है सीताजी जनकजी के डेरे पर गयी। उसी समय दोनो भाई राम और लक्ष्मणजी भी सास से मिलने आये। सीताजी पहिले परिजनो से मिली। पीछे माता और पिता से मिलकर लौट आयी। क्योकि प्राणप्रिय रामचन्द्र मे उनका पुनीत प्रेम है। यथा : प्रीति पुरातन लखै न कोई। तथा : मन बिहँसे रघुबसमनि प्रीति अलौकिक जानि।

अवध प्रान्त की रीति है कि बेटियाँ माँ से मिलती है प्रणाम नही करती। माताएँ भी बेटियो से मिल लेती हैं आशीर्वाद नही देती। तदनुसार कवि ने भी सीताजी का माता आदि से मिलना ही कहा। प्रणाम आशीर्वाद नही कहा।

लौटने पर सीताजी सास लोगो के डेरो पर गयी। उनसे प्रणाम करके सब मिली। उस समय जो प्रेम का दृश्य हुआ वह ऐसा करुणामय था कि उसके लिखने मे कवि के हृदय मे उल्लास नही होता। अत नही लिखा।

सुनि सिख अभिमत आसिष पाई। रही सीय दुहु प्रीति समाई॥
रघुपति पटु पालकी मँगाई। करि प्रबोधु सब मातु चढाई॥२॥

अर्थ : शिक्षा सुनकर और जो चाहा आशीर्वाद पाकर सीता दोनो ओर की प्रीति मे मग्न हो गयी। रामजी ने अच्छी पालकियाँ मँगायी और समझा बुझाकर सब माताओ को चढाया।

व्याख्या : सास लोगो ने शिक्षा दी कि इस भाँति पति तथा देवर के साथ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


बर्ताव करना इत्यादि और मनचाहा आशीर्वाद दिया कि परमेश्वर तुम्हे पति देवर के साथ कुशलपूर्वक वन से घर लौटावें। यथा : पति देवर संग कुसल बहोरी। आइ करौ जेहि पूजा तोरी। तब से रामजी भी कैकेयी को विदा करके आगये। सीताजी मैके और ससुराल दोनो ओर की प्रीति मे मग्न हो रही थी।

रामजी ने अच्छी पालकियाँ मँगायी। माताओंकी इच्छा जाने की नही। अत उन्हे समझाया। यथा :

अवधि मात्र धीरज धरिअ अम्ब समुझि बिधि बाम।
जेहि पावै परितोष नृप अधिक बसत सुर धाम।।
तुम्हरे दुख कीन्हे अधिक पीर भरत हिय होइ।
रहैं सुखी जेहि बिधि भरत सब मिलि कीजै सोइ।।
त्यागि मोह ममता सकल सिर धरि ईस रजाय।
भजिय ताहि ससार भ्रम जाते जाय नसाय।।

एवं समझा बुझाकर पालकियो पर चढाया।

बार बार हिलि मिलि दुहु भाई। सम सनेह जननी पहुँचाई।।
साजि बाजि गज बाहन नाना। भूप भरत दल कीन्ह पयाना।।३।।

अर्थ : दोनो भाई बार बार हिल मिलकर समान स्नेह के साथ माताओ को पहुँचाया। घोडे हाथी आदि अनेक प्रकार के वाहनो का साजकर राजा जनक और भरत की सेनाओ ने प्रस्थान किया।

व्याख्या : सब माताओ से हिलने मिलने मे लक्ष्मणजी साथ हैं। माताओ के साथ ठीक बच्चो सा भाव वात्सल्य की दृढता के लिए दर्शाया। सब माताओ के समान स्नेह के साथ सेना तक पहुँचाया।

इधर सेना भी आयी थी। इससे गजबाजि का सजाना लिखते हैं। आने के समय दोनो सेनाएँ अलग-अलग आयी। अब विदा होकर साथ साथ चल रही है। क्योकि जनकजी अवध जाना चाहते हैं। जनकजी बडे हैं। इससे उनकी सवारी आगे आगे चल रही है। भरतजी समाज सहित उनके पीछे है।

हृदय रामु सिय लखनु समेता। चले जाहि सब लोग अचेता।।
बसह बाजि गज पसु हिय हारे। चले जाहि परबस मन मारे।।४।।

अर्थ : लक्ष्मण के सहित राम जानकी हृदय मे हैं। सब लोग अचेत चले जा रहे हैं। बैल घोडे हाथी आदि पशु मन मारे हिय हारे परवश मे पडे चले जा रहे हैं।

व्याख्या : राम जानकी तथा लक्ष्मण को साथ नही ले जा सके तो उनकी मनोमयी मूर्तियों को हृदय मे धारण किये हुए चले जा रहे हैं। पर साक्षात् उनका साथ नही है। अत. अचेत हैं। अर्थात् अन्तर्यामी की प्रेरणा से चले जा रहे हैं। मन जाने का अब भी नही है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अचेत का उदाहरण देते हुए लिखते हैं कि सेना में क्रम नहीं है। पहिले बैल चल रहे हैं। सबसे आगे चलनेवाले घोड़े उनके पीछे हैं। हाथी बीच में चल रहे हैं। बेसर महिष उनके पीछे हैं। उनका मन भी जाने का नहीं है। पर पराये वश में हैं। अतः हियहारे चले जा रहे हैं। उत्साह उन्हें भी नहीं है।

दो. गुर गुरतिय पद बंदि प्रभु, सीता लखन समेत।
फिरे हरख बिसमय सहित, आये परन निकेत ॥३२०॥

अर्थ : सरकार सीता और लक्ष्मण के सहित गुरु और गुरु की स्त्री के चरणों की वन्दना करके हर्ष और विस्मय के साथ लौटे और अपने पर्णकुटी में आये।

व्याख्या : सबसे प्रधान होने के कारण अन्त में भगवती अरुन्धती के साथ वसिष्ठजी की वन्दना की। गुरुजी भी जनकीजी की भाँति धैर्य सँभाले रह गये। आशीर्वाद तक न दे सके। गुरुजी की वन्दना है। धर्मकृत्य है। अतः सपत्नीक वन्दना किया। यथा : धरे चरन सिय सहित बहोरी। रघुनाथजी हर्ष विस्मय रहित हैं। सो हर्ष विस्मय सहित लौटे। सङ्कोचवश सङ्कट में पड़े थे। उसके छूटने से हर्ष और प्रिय परिजन के वियोग से विस्मय।

बिदा कीन्ह सनमानि निषादू। चलेउ हृदय बड़ बिरह बिषादू ॥
कोल किरात भिल्ल बनचारी। फेरे फिरे जोहारि जोहारी ॥१॥

अर्थ : सम्मान करके निषाद को विदा किया। वह चल पड़ा। उसके हृदय में बड़ा विरह और विषाद था। कोल किरात भील वन के रहनेवाले लौटने पर जोहार कर करके लौटे।

व्याख्या : सबके पीछे विदा किया। क्योंकि निषादराज पर्णकुटी के यहाँ बैठे रह गये थे। सरकार लौटकर आये तब उसका सम्मान करके विदाई की। निषादराज विदा करने पर चल तो पड़े पर उनकी इच्छा जाने की नहीं थी। सरकार के विरह से उनके हृदय में बड़ा विषाद हुआ था।

कोल किरात भील आदि वन के रहनेवाले सरकार के यहाँ इतने अतिथियों का आना देखकर आप से आप सेवा के लिए उपस्थित हो गये थे। इतने दिन साथ रहने से उन्हें सरकार का साथ छोड़ा अच्छा नहीं लगता था। अत सरकार ने कहा कि अब तुम लोग अपने अपने निवास स्थान को लौट जाओ। तब जोहार करके लौटे।

प्रभु सिय लखन बैठि बट छाहीं। प्रिय परिजन बियोग बिलखाहीं ॥
भरत सनेहु सुभाउ सुबानी। प्रिया अनुज सन कहत बखानी ॥२॥

अर्थ : प्रभु सीताजी लक्ष्मणजी वट की छाया के तले बैठकर प्रिय परिजन के वियोग में बिलखने लगे। भरतजी का स्नेह स्वभाव सुवाणी सरकार प्रिया और अनुज से बखान करके कहने लगे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या इस समय वट तले कोई नही है। केवल यही तीन प्राणी बैठे हैं और प्रिय परिजन के वियोग मे बिलख रहे हैं। उधर वे लोग भी विरह मे अचेत चले जाते थे। ये यथा मा प्रपद्यन्ते तास्तथैव भजाम्यहम्। यह युक्ति चरितार्थ हो रही थी।

सरकार भरत के स्वभाव स्नेह और सुवाणी का वर्णन प्रिया और अनुज से करने लगे।

भरत का स्वभाव यथा भरत सुभाउ न सुगम निगमहू।
भरत का स्नेह यथा होत न भूतल भाव भरत को।
सचर अचर चर अचर करत को॥
भरत की सुवाणी यथा बिमल विवेक धरम नय साली।
भरत भारती मंजु मराली॥

प्रीति प्रतीति बचन मन करनी। श्रीमुख राम प्रेम बस बरनी॥
तेहि अवसर खग मृग जल मीना। चित्रकूट चर अचर मलीना॥३॥

अर्थ रामजी ने भरतजी के मनसा वाचा कर्मणा प्रीति प्रतीति का वर्णन प्रेम के वश होकर श्रीमुख से किया। उस अवसर मे चित्रकूट के पक्षी मृग और पानी की मछलियाँ चर और अचर सब उदास हो गये।

व्याख्या सरकार प्रेम के वश म हैं। इसलिए श्रीमुख से भरतजी के मनसा वाचा कर्मणा प्रीति प्रतीति का वर्णन सीताजी और लक्ष्मणजी स कर रहे हैं। सच्चा बखान वही है जो सामने भी किया जाय और पीठ पीछे भी किया जाय। यथा: बामदेव रघुकुल गुर ज्ञानी। बहुरि गाधिसुत कथा बखानी। यह बखान विश्वामित्रजी के चले जाने पर किया गया। जो कि उनकी कथा का बखान उनके सामने हो चुका था।

यथा मुनि मन अगम गाधिसुत करनी।
मुदित बसिष्ठ विपुल बिधि बरनी॥
बोले बामदेव सब साँची।
कीरति कलित लोकतिहुँ माँची॥

उस समय चित्रकूट के आकाशवासी खग पृथ्वी पर के रहनेवाले मृग तथा जल मे की रहनेवाली मछलियाँ जिन्हे दर्शन का भी सौभाग्य प्राप्त न था सबके सब खिन्न हो गये। चर और अचर के उदास होने का कारण यह है कि चित्रकूट के अधिष्ठात्री देवता स्वय इस वियोग के दृश्य को देखकर दु खी हो गये थे।

बिबुध बिलोकि दसा रघुबर की। बरषि सुमन कहि गति घर घर की॥
प्रभु प्रनामु करि दीन्ह भरोसो। चले मुदित मन डर न खरो सो॥४॥

अर्थ देवताओ ने रामजी की दशा देखकर फूलो की वर्षा की और घर घर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



की जो गति हो रही थी सो निवेदन किया। प्रभु ने प्रणाम करके भरोसा दिया। प्रसन्न होकर चले। उन्हे तृण के समान भी भय नही रह गया।

व्याख्या : सरकार को पीड़ित देखकर मन पलटने के लिए देवताओं ने पुष्प की वर्षा की और रावण के कारण जो दशा उन लोगो की हो रही थी उसका पृथक् पृथक् वर्णन किया। उसमे सरकार के हृदय से वीररस का उदय हो। दूसरी बात यह भी है कि वनवास के प्रधान कारण होने से अपने को सापराध भी मानते हैं। अतः अपनी अपनी पीड़ा को कथा कह सुनायी कि बिना सरकार के आये हम लोगो की पीड़ा मिट नही सकती थी इसलिए हम लोग निरुपाय थे।

सरकार मर्यादापुरुषोत्तम हैं। अत॰ प्रणाम किया और उन लोगो को भरोसा दिया कि अब मैं आगया। अब आप लोग चिन्ता न करें। सुनकर देवता लोग प्रसन्न हो गये। सरकार के अप्रसन्न होने का भय जाता रहा और सरकार के भरोसा देने से रावण से पिण्ड छूटने का दृढ विश्वास हो गया। अत अपने अपने लोक को चले। नही तो जब से भरतजी चले थे देवता लोग साथ थे। उन्हे बड़ी उत्सुकता थी कि देखें क्या होता है।

दो. सानुज सीय समेत प्रभु, राजत परन कुटीर।
भगति ग्यानु बैराग्य जनु, सोहत धरे सरीर ॥३२१॥

अर्थ : लक्ष्मण और सीताजी के साथ सरकार पर्णकुटी मे ऐसे शोभित हैं जैसे भक्ति ज्ञान और वैराग्य शरीर धारण करके शोभित हो।

व्याख्या : यहाँ कवि सरकार की कथा को विश्राम दे रहे हैं। पहिले जब आकर चित्रकूट मे ठहरे थे। तब आनन्द का वर्णन करते हुए कहा था : राम लखन सीता सहित सोभित परन निकेत। जिमि बासव बस अमर पुर सची जयन्त समेत। इस समय प्रभु वियोगावस्था मे है। इसलिए पर्ण निकेत न कहकर पर्ण कुटीर कह रहे हैं। लक्ष्मणजी की उपमा जयन्त से न देकर वैराग्य से दे रहे हैं। सीताजी को शची न कहकर भक्ति कह रहे हैं। सरकार को वासव न कहकर सशरीर ज्ञान से उपमित कर रहे हैं। निर्गलितार्थ यह कि सरकार जिस अवस्था मे रहे उसी मे उनकी शोभा है। यहाँ कथा को विश्राम देकर अब जहाँ से भरतचरित्त छोड़ा था वही से उठाते हैं।

## १३. पादुका सहित अवध प्रत्यागमन प्रसङ्ग

मुनि महिसुर गुर भरत भुआलू। राम बिरह सब साज बिहालू॥
प्रभु गुन ग्राम गनत मन माही। सब चुपचाप चले मग जाही ॥१॥

अर्थ : मुनि, ब्राह्मण लोग, गुरुजी, भरतजी तथा राजा जनक तथा सब साज समाज रामजी के विरह मे बेहाल हो रहा है। सरकार के गुणग्राम को मन मे गुनते हुए सब चुपचाप रास्ते मे चले जा रहे हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : बसह बाजि गज पसुहिय हारे। चले जात परबस मन मारे। यहाँ से प्रसङ्ग छोडा था। अब : राम बिरह सब साज बिहालू। कहकर उसी प्रसङ्ग को फिर से उठाते हैं। पहिले कह आये हैं : हृदय राम सिय लखन समेता। चले जात सब लोग अचेता। उसी बात को : प्रभु गुन ग्राम गुनत मन माँही। पद से कह रहे हैं। चले जात सब लोग अचेता : का अनुवाद करते हुए कहते हैं : सब चुपचाप चले मग जाही।

जमुना उतरि पार सबु भएऊ। सो बासर बिनु भोजन गएऊ ॥
उतरि देवसरि दूसर बासू। रामसखाँ सब कीन्ह सुपासू ॥२॥

अर्थ : यमुना उतरकर सब लोग पार हुए। वह दिन बिना भोजन के बीत गया। दूरे दिन गङ्गापार करके डेरा डाला। रामसखा निषादराज ने सब सुभीता किया।

व्याख्या : लौटते समय सीधा रास्ता पकड़ा। पहिले ही दिन यमुना पार करके डेरा डाला। जिसमे सबेरे नाव पर चढने उतरने का टण्टा न रहे। विषादी को भूख नही लगती। अतः किसी ने कुछ खाया नही। प्रयागराज जाना नही था। इसलिए दूसरे दिन गङ्गापार करके डेरा डाला। दो दो सेना एक साथ चल रही हैं। अत· सिवा नदी के किनारे के दूसरी जगह पड़ाव पड़ नही सकता। गङ्गा पार होने पर शृङ्गवेरपुर मे आगये। वहाँ निषादराज का निवास स्थान है। अतः उसने सब सुभीता कर दिया।

सई उतरि गोमती नहाये। चौथें दिवस अवधपुर आये ॥
जनकु रहे पुर बासर चारी। राज काज सब साज सँभारी ॥३॥

अर्थ : फिर सई उतरकर गोमती नदी मे स्नान किया। चौथे दिन अयोध्या पहुँच गये। जनकजी चार दिन राजधानी मे रहे। राजकाज और सब साज को सँभाला।

व्याख्या : जाते समय : तमसा प्रथम दिवस करि बासू। दूसर गोमति तीर निवासू। सई तीर बसि चले बिहाने। लौटाते समय पहिले सई पड़ी। तब गोमती पड़ी। दो दिन का रास्ता एक दिन मे तय किया। अवध पुर आये : कहने से ही तमसा पार होना कह दिया गया।

जनकजी का पहिले पहल अयोध्या आना ग्रन्थकार लिखते हैं। अयोध्या आकर जनकजी चार दिन ठहरे। इसी बीच मे वहां के शासन प्रणाली का निरीक्षण किया। सेना कोप दुर्ग आदि की व्यवस्था का निरीक्षण किया। देख लिया कि सब ठीक है। तब :

सौंपि सचिव गुर भरतहि राजू। तेरहुति चले साजि सब साजू ॥
नगर नारि नर गुर सिख मानी। बसे सुखेन राम रजधानी ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ मन्त्री गुरु और भरत को राज्य सौंपकर सब साज सजकर मिथिला को प्रस्थान किया। नगर के नर नारी गुरुजी की शिक्षा मानकर सुख से रामजी की राजधानी मे बसे।

व्याख्या जनकजी ने राज्य की व्यवस्था मन्त्रियो के जिम्मे किया। गुरुजी को निरीक्षण का भार दिया। शासन भरतजी के सुपुर्द करके मिथिला को प्रस्थान किया। सेना साथ है। इसलिए सब साज साजना कहते हैं। सौंपने का भाव यह कि यह थाती रामजी की है। जब तक वे न लौटें तब तक सँभालो। कोई अडचन आ पडे तो मुझे समाचार दो।

लोगो ने सुना कि रामजी नही लौटे। अत वे बडे दु खी हुए। उनका मन उचटा हुआ है। अवध म बसना नही चाहते। पर गुरुजी ने सबको समझाया कि रामजी नही लौटे यह ठीक है। पर राज उन्होंने स्वीकार कर लिया। यह राज उन्ही का है और उन्ही की राजधानी है। उनकी अनुपस्थिति म राज्यभार भरतजी के ऊपर है। आप लोग किसी बात की चिन्ता न करें। इस भाँति गुरुजी के प्रबोध करने पर सब लोग सुख से बसे।

दो राम दरस लगि लोग सब, करत नेम उपवास।
तजि तजि भूषन भोग सुख, जिअत अवधि की आस ॥३२२॥

अर्थ रामजी के दर्शन के लिए सब लोग नियम और उपवास करने लगे। भूषण और भोग सुख को छोड दिया। रामजी के दर्शन की आशा से सब जी रहे हैं।

व्याख्या फिर लोगो का नियम उपवास आरम्भ हो गया। नियम यथा पय अहार फल असन इक। उपवास यथा निसि भोजन इक लोग। काम्य कर्म सब लोगो ने बन्द कर दिया। भूषण से आभिमानिक सुख होता है। अत उसे भी छोडा। उस भाँति अनुष्ठान करने से ही इष्ट की प्राप्ति होती है। इन लोगो की इष्टप्राप्ति रामजी का दर्शन है। ये उसी की आशा से जीवन धारण कर रहे हैं।

## २४ भरत रहनि प्रसङ्ग

सचिव सुसेवक भरत प्रबोधे। निज निज काज पाइ सिख ओधे ॥
पुनि सिख दीन्हि बोलि लघु भाई। सौंपी सकल मातु सेवकाई ॥१

अर्थ भरतजी ने मन्त्रियो और सुसेवको को समझाया। वे सब शिक्षा पाकर अपने अपने काम मे लग गये। फिर छोटे भाई को बुलाकर शिक्षा दी। सब माताओ की सेवा उन्हे सौंपी।

व्याख्या नगर के लोगो को गुरुजी ने समझाया और वे उनका कहना मानकर अवध मे सुख से बसे। गुरुजी आज्ञा मे रामजी भी हैं। भरतजी भी हैं। अत जो गुरुजी ने कहा उसमे सन्देह करने के लिए किसी को स्थान नही है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इसलिए प्रजा मात्र को दिलासा गुरुजी ने दिया और प्रजा ने उसे माना। जनकजी के सौपने के अनुसार गुरुजी ने कार्यारम्भ कर दिया।

इस समय शासक भरतजी है। पर वे राजकाज मे दिन रात व्यस्त रहना नही चाहते। अत मन्त्रियो और कामदारो को बुलाकर[1] समझाया कार्य विभाग करके उन लोगो मे काम बाँट दिया और वे लोग अपने अपने काम मे लग गये। अब रह गयी माताओ की सेवा। उसे छोटे भाई शत्रुघ्न के सुपुर्द किया। दूसरे से यह सेवा बन नही सकती थी और उन्हे तत्सम्बन्धी शिक्षा भी दी।

भूसुर बोलि भरत कर जोरे। करि प्रनाम बय बिनय निहोरे ॥
ऊँच नीच कारजु भल पोचू। आयसु देब न करब सकोचू ॥२॥

अर्थ ब्राह्मणो को बुलाकर भरतजी ने हाथ जोडे और प्रणाम करके विनय निहोरा किया कि ऊँचा नीचा भला बुरा जो काम हो उसके लिए आज्ञा दीजियेगा। सङ्कोच न कीजियेगा।

व्याख्या भरतजी ने तत्पश्चात् ब्राह्मणो को बुलवाया। ये पृथ्वी के देवता हैं। इनकी प्रजा मे गिनती नही है। प्रजा मे गिनती वैश्य और शूद्र की है। इसलिए राजा विशाम्पति कहलाता है। ब्राह्मणो के लिए किसी पर दावा करने का विधान नही है। वह अपने अपराधी को अपनी तपस्या के बल से दण्ड दे। अत भरतजी ने उन्हे प्रणाम किया। उनसे बहुत विनती की और उनका निहोरा किया कि जो उनकी आज्ञा मे न चले उनके लिए मुझे आज्ञा दें। सङ्कोच न करें कि नित्य उठकर आज्ञा देना भी अच्छा नही है। मै उस आज्ञा के लिए कृतज्ञ हूँगा और जिस प्रकार का कार्य हो उसके लिए मुझे आज्ञा मिले। इस बात का सङ्कोच न किया जाय कि अमुक कार्य ऐसा तुच्छ है। ऐसा छोटा है। इसके लिए भरत को कैसे कहे इत्यादि।

परिजन पुरजन प्रजा बोलाए। समाधानु करि सुबस बसाए ॥
सानुज गे गुर गेहँ बहोरी। करि दडवत कहत कर जोरी ॥३॥

---

१ जब लगि प्रभु आवत नाही तब लगि सब अधिकार।
जो जाको जैसो रह्यो सो सब करै सँभार ॥
सम्मति रघुपति की सकल राज पाट धन धाम।
योग क्षेम बाढै सदा समुझि सँभारो काम ॥
दुखी प्रजा रघुपति विरह करहु तासु मनुहार।
करहि सकल सत भाव से वेद विहित आचार ॥
होय न पावै पाप कहुँ करिअ नित्य यह सोध।
रहै प्रजा सुख शान्ति से बढै न कतहुँ विरोध ॥
सेवक धर्म सँभारिये सजग होउ सब कोय।
परमधर्म [illegible]

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ : परिजन पुरजन और प्रजाओ को बुलवाया। उनका उन्हे स्वतन्त्र करके बसाया। छोटे भाई के साथ गुरुजी के घर गये करके हाथ जोड़कर बोले।

व्याख्या : तत्पश्चात् परिजन अर्थात् कुटुम्बी क्षत्रियवर्ग को बु धानी के रहनेवाले तथा देशवासियो को बुलवाया। उनका समाधान कि सरकार धर्मशाप मे बँधे रहने के कारण नही लौटे फिर भी उन्होने रा कर लिया है। मैं तो उनकी आज्ञा से आप लोगो की सेवा करूँगा। आ व्यक्तिगत स्वातन्त्र्य मे कोई बाधा नही पडने पायेगी।

फिर शत्रुघ्नजी को लिये हुए गुरुजी के पास गये। जिसमे जो कुछ उससे शत्रुघ्नजी परिचित रहे। वहाँ गुरुजी को दण्डप्रणाम किया और बोले

आयसु होइ त रहउँ सनेमा। बोले मुनि तन पुलकि सपेमा
समुझब कहब करब तुम्ह जोई। धरम सारु जग होइहि सोई

अर्थ : आज्ञा हो तो नियमपूर्वक रहूँ। मुनिजी पुलकित होकर प्रेम से कि जो कुछ तुम समझोगे, कहोगे, करोगे, ससार मे वही धर्म का सार : तथ्य हो

व्याख्या : रामजी पिता की आज्ञा से मुनिव्रत वेप आहार स्वीकार किये हैं। उनके इस भाँति जीवन पालन करने पर मैं सुख नही चाहता। मैं भी भाँति रहना चाहता हूँ। पर उस भाँति रहने के लिए बडे की आज्ञा की आवश्यक है। सो आप यदि आज्ञा दें तो मैं उसी नियम से रहूँ। भरतजी की यह वा सुनकर मुनिजी प्रेम से पुलकित हो उठे और बोले कि तुम्हारी ऐसी स्थिति ह गयी है कि जो तुम मन मे समझोगे, वाणी से कहोगे, और कर्म से आचरण करोगे वही धर्म का सार होगा। अर्थात् तुम साक्षात्कृतधर्मा हो गये। तुम्हारे लिए किसी की आज्ञा की आवश्यकता न रह गयी और न धर्मशास्त्र देखने की आवश्यकता रही।

दो. सुनि सिख पाइ असीस बड़ि, गनक बोलि दिनु साधि।
सिघासनु प्रभु पादुका, बैठारे निरुपाधि ॥३२३॥

अर्थ : शिक्षा सुनकर और बहुत बडा आशीर्वाद पाकर ज्योतिषियों को बुलाकर सुदिन निश्चय किया और सरकार को पादुकाओ को सिंहासन पर निर्विघ्न प्रतिष्ठित कर दिया।

व्याख्या : मुनिजी की शिक्षा हुई कि जो कुछ तुम सोच रहे हो। उसे नि.सन्देह कर डालो। क्योकि वही धर्म होगा। संसार धर्म के अनुसार चलकर अपने को कृत-कृत्य मानता है। परन्तु तुम जो आचरण करोगे वही धर्म होगा। यह इतना बड़ा आशीर्वाद है जो किसी को कभी मिला नही। अत: भरतजी ने ज्योतिषियों को बुलाकर शुभ मुहूर्त निकलवाया और उसी मुहूर्त मे सरकार की पादुका को सिंहासनारूढ़ किया। इस प्रकार से पिता की आज्ञा से जो राज्य मिला था उसे रामजी को

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्पण किया। पितु आयसु पालिअ दोउ भाई कहकर जो रामजी ने आज्ञा दी थी उस वचन को भी पूरा किया। इसके लिए गुरुजी से सुदिन नही पूछा। गुरुजी तो सरकार के अभिषेक का सुदिन बतलावेंगे। यथा गुरु बसिष्ठ द्विज लिये बुलाई। आज सुघरी सुदिन समुदाई। रामजी के अभिषेक मे उपाधि उठ खडी हुई थी। अत भरतजी ने सरकारी पादुका को निर्विघ्न सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया।

इस सिंहासन पर पादुका प्रतिष्ठत हो चुकी है। इस पर सरकार का अभिषेक होना ठीक नही। यही समझकर प्रभु बिलोकि मुनि मन अनुरागा। तुरत दिव्य सिंहासन माँगा। रबि सम तेज सो बरनि न जाई। बैठे राम द्विजन्ह सिर नाई।

राम मातु गुर पद सिरु नाई। प्रभु पद पीठ रजायसु पाई॥
नंदिगाँव करि परन कुटीरा। कीन्ह निवासु धरम धुर धीरा॥१॥

अर्थ रामजी की माता के और गुरुजी के चरणो मे प्रणाम करके और सरकार की पादुका की आज्ञा पा करके नन्दिग्राम मे पत्ते की कुटिया बनाकर धर्मधुरधीर भरतजीने निवास किया।

व्याख्या आज्ञा अपनी माता से ही माँगना उचित था। यथा बिदा मातु सन आवहुँ माँगी। पर भरतजी ने उनका त्याग किया था। यथा तज्यो पिता प्रहलाद बिभीषन बधु भरत महतारी। अत रामजी की माता से आज्ञा माँगी। उन्ही को माता मानते हैं। यहाँ केवल प्रणाम ही लिखा है। पर इस प्रणाम का तात्पर्य स्वीकृति प्राप्त करना है। गुरुजी की स्वीकृति तो मिल चुकी है। तत्पश्चात् स्वामी के अभाव म उनकी पादुका से आज्ञा ली। क्योंकि वे ही बिमल नयन सेवा सुधरम के हैं। देवताओ के अस्त्र शस्त्र आभूषण वाहन सभी उनके स्वरूप से पृथक् नही होते। अत पादुका ने आज्ञा दे दी। यह तो आखर युग जनु जीव जतन के हैं। इनसे तो सरकार स्वय रत्न से मूल्य की भाँति प्रकट होते हैं। सो उन्हे प्रकट करके आज्ञा ले ली।

नन्दिग्राम तीन पुण्य [1]ग्रामो मे से एक है और राजधानी से अत्यन्त दूर है और न अत्यन्त निकट है। वही पर्णकुटी बनायी। सरकार को पर्णकुटी मे रहते देख आये हैं। अत महल मे न रहेंगे। धर्म धुरधीर हैं। अपने रहने के लिए पर्णकुटी बनायी।

जटा जूट सिर मुनिपट धारी। महि खनि कुस साँथरी सँवारी॥
असन बसन बासन ब्रत नेमा। करत कठिन रिषिधरम सप्रेमा॥२॥

अर्थ सिर मे जटाजूट और वल्कल वसन धारण किया। पृथ्वी खोदकर कुश लेकर साथरी बनायी। भोजन, वसन, बरतन, व्रत, नेम आदि कठिन ऋषि धर्म को प्रेम के साथ करने लगे।

---

१ शालग्राम नन्दिग्राम [illegible] सम्पदि।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : देखा था कि सरकार वल्कल वसन और जटा धारण किये हुए हैं। अत. आप ने भी जटा धारण की और वल्कल वसन पहिना। देख आये हैं कि सरकार साथरी पर सोते हैं। इसलिए भरतजी ने भी कुशाओ की साथरी बनायी। छिन्न मूल होने से कुशा अशुद्ध हो जाते हैं। इसलिए पृथ्वी खोदकर कुशा निकाले। सरकार का मुनिव्रत वेष आहार है। अत भरतजी ने भी उन्ही की भाँति भोजन वसन और बरतनो से काम लिया और व्रत तथा नियम जैसा वानप्रस्थ अवस्था मे किया जाता है करने लगे। वानप्रस्थ का धर्म बडा कठिन है। पर भरतजी प्रेम से उसका पालन करने लगे।

भूषन बसन भोग सुख भूरी। मन तन बचन तजे तिन तूरी ॥
अवधराजु सुरराजु सिहाई। दसरथ धनु सुनि धनद लजाई ॥३॥

अर्थ : भूषण वसन और भोग के बडे भारी सुख को मनसा वाचा कर्मणा तृण के समान तोडकर फेंक दिया। अवध के राज्य को इन्द्र भी सिहाते थे और चक्रवर्तीजी के धन को सुनकर कुबेरजी भी लज्जित होते थे।

व्याख्या : धर्मशील महाराज दशरथ के राज्य मे सुख सम्पत्ति बिना बुलाये ही चली आती थी। यथा रिधि सिधि सपति नदी सुहाई। उमगि अवध अबुधि कहँ धाई। कहि न जाइ कछु नगर बिभूती। जनु एतनिअ बिरचि करतूती। अत. अवध का राज्य ऐसा सुखसमृद्धि से भरा था और चक्रवर्तीजी के पास इतना धन था कि उसे त्रिलोकीनाथ इन्द्र और धनाधिप कुबेर ईर्ष्या करते थे। लज्जित होते थे कि लोकपाल होने पर भी हम राजा दशरथ के जोड के नही हैं। ऊँच निवास नीच करतूती। देखि न सकहिं पराइ बिभूती।

तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। चंचरीक जिमि चंपक बागा ॥
रमा बिलासु राम अनुरागी। तजत बमन जिमि जन बड़भागी ॥४॥

अर्थ . उस पुर मे भरतजी रागरहित होकर बसते हैं जैसे चम्पक बाग मे भौरा बसे। लक्ष्मी के विलास को बडभागी रामानुरागी वमन की भाँति त्याग देते हैं।

व्याख्या : ऐसे समृद्ध राज्य मे जहाँ : करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा। भरतजी विरक्त की भाँति रहते हैं। उन्हे सुख नही। क्योकि वे तो रामजी के चरण कमल के भौरे हैं। वही सुख मानते हैं। चम्पक बाग मे उन्हे सुख कहाँ ? अयोध्या चम्पक बाग की भाँति सबको सुखदायी है पर भरत को नही। चम्पा मे गुन बहुत है रूप रग अरु वास। पर यह अवगुन एक है कि भंवर न आवे पास। सो दैवयोग से भरतरूपी भौरे को अवधरूपी चम्पक बाग मे बसना पडा। अत उसमे विरक्त की भाँति वे बस रहे हैं।

कारण यह कि लक्ष्मी का विलास रामानुरागी के अनुकूल नही पडता है। वे उसे पचा नही सकते। अजीर्ण अन्न की भाँति वह उनके लिए महा कष्टकर होता है। वमन की भाँति उसे परित्याग करके ही वे सुखी होते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो० राम पेम भाजन भरतु, बडे न येहि करतूति।
चातक हस सराहिअत, टेक विवेक बिभूति ॥३२४॥

अर्थ रामजी के प्रेमपात्र भरतजी इस करतूति से बडे नही हैं। टेक की विभूति से चातक की और विवेक की विभूति से हस की प्रशसा होती है।

व्याख्या लक्ष्मी के प्रेम भाजन रामजी हैं। यथा जासु कृपा कटाच्छ सुर चाहत चितव न सोइ। राम पदारबिंद रति करति सुभावहि खोइ। और रामजी के प्रेम भाजन भरतजी हैं। भरतजी की ऐसी महिमा है कि उनके गुणो पर रामजी मुग्ध है और रामजी के गुणो पर लक्ष्मी मुग्ध हैं। अत लक्ष्मी के गुणो पर यदि भरतजी न मुग्ध हो तो उनके लिए कोई बात नही है। उनके लिए ऐसा टेक तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा। और ऐसा विवेक तजत बमन जिमि जन बडभागी। कोई बडी बात नही है। टेक के लिए चातक की प्रशसा ठीक है। विवेक विभूति के लिए हस की प्रशसा उचित है। क्योकि वे पक्षी होकर ऐसा टेक और ऐसी क्षीर नीर विवरण की विभूति को धारण करते हैं।

देह दिनहुँ दिन दूबरि होई। घटइ तेजु बलु मुखछबि सोई॥
नित नव राम पेम पनु पीना। बढत धरम दलु मन न मलीना॥१॥

अर्थ शरीर प्रतिदिन दुर्बल होकर घटता जाता था। पर तेज और बल नही घटता था और मुख की शोभा भी वैसी ही थी। नित्य नवीन रामप्रेम प्रण से पुष्ट होकर धर्म दल बढता जाता था और मन उदास नही होता था।

व्याख्या जिस भाँति कसरत करनेवालो का शरीर दुर्बल हो जाता है परन्तु उसमे कस बढता जाता है। उसी भाँति योग जप तप से शरीर की स्थूलता मात्र कम हुई तेज और बल नही। यथा करहिं जोग जप तप तन कसही। यथार्थं बल के ह्रास न होने से मुख छवि मे अन्तर नही पडा। दल अर्थात् जप तप आदि नित्य नये रामप्रेम के प्रण से पुष्ट होकर बढते जाते थे। उदासी मन मे आने नही पाती थी। अत शरीर की दुर्बलता से कोई वास्तविक हानि नही थी। क्योकि दिव्य तेज और दिव्य बल जिनका सम्बन्ध धर्म से है वह बढ रहा था। बिना रामप्रेम के धर्म पुष्ट नही होता।

जिमि जलु निघटत सरद प्रकासे। बिलसत बेतस बनज बिकासे॥
सम दम सजम नियम उपासा। नखत भरत हियँ बिमल अकासा॥२॥

अर्थ जिस भाँति शरद ऋतु के प्रकाश से जल तो घटता है परन्तु बेंत का विलास बढता है। कमल खिल जाते हैं। शम, यम, नियम, उपवासरूपी नक्षत्र भरत के निर्मल हृदयरूपी आकाश म शोभित होते हैं।

व्याख्या शरद ऋतु मे वर्षा की बुढाई आजाती है। इसलिए जल घटने लगता है। पर बेंत मे पत्ते नये नये बढ जाते हैं और कमल फूलने लगते हैं। यहाँ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भरतजी का शरीर ही तालाब है। वह मुनि व्रतरूपी शरद के आगमन से क्षीण तो होने लगा।

यहाँ भरतजी का शरीर जल है। वह नेमरूपी शरद के आगमन से नित्य घट रहा है। परन्तु जल का आश्रित वेंत बढ रहा है। उसके पत्ते पुष्ट हो रहे हैं। कमल विकसित हो रहा है। यहाँ धर्मदल को वेतसविलास से उपमित किया है और अम्लान मन को विकसित कमल से उपमित किया है। यहाँ दल शब्द मे श्लेष है। धर्म के पक्ष मे इसका अर्थ सेना होगा और वेंत के पक्ष मे पत्ता अर्थ किया जायगा। भावार्थ यह कि भरतजी की धर्म सम्पत्ति बढती जाती है और मन मे म्लानता नही आने पाती। शरदागमन से भरत का दहराकाश हृदयाकाश निर्मल हो गया है। शम, दम, नियम, उपवास आदि नक्षत्र स्पष्टरूप से चमक रहे हैं।

ध्रुव बिस्वासु अवधि राकासी। स्वामि सुरति सुरवीथि बिकासी ॥
राम पेम बिधु अचल अदोषा। सहित समाज सोह नित चोखा ॥३॥

अर्थ विश्वास ही ध्रुव तारा है। अवधि पूर्णिमा सी है। स्वामी की सुरति-रूपी सुरवी थी प्रकाशित हो रही है। रामजी का प्रेम ही निश्चल और निष्कलङ्क चन्द्रमा है जो समाज के सहित नित्य शोभायमान है।

व्याख्या : ताराओ मे ध्रुव अविचल है। यथा ध्रुव अबिचल कबहूँ न चलै। इसी भाँति भरतजी के हृदय मे रामजी के प्रति अविचल विश्वास है। वही ध्रुव है और चौदह वर्ष की अवधि ही पूर्णिमा तिथि है। बारहो पूर्णिमाओ मे शरद पूर्णिमा बडी सुन्दर होती है। इसी भाँति सयोगदशा के प्रेम से वियोग के समय के प्रेम मे अधिक चमत्कार है। स्वामी की स्मृतिरूपी सुरवीथी सम्पूर्ण आकाश मे फैला हुई है। उसका प्रकाश बहुत स्पष्ट हो रहा है एव राम प्रेमरूपी चन्द्रमा समाज के सहित भरतजी के हृदयरूपी निर्मल नभ मे नित्य अत्यन्त शोभायमान है। भेद इतना ही है कि यह चन्द्रमा सदा कलङ्कयुक्त है और चलायमान है। पर रामप्रेम-रूपी चन्द्र निश्चल और निष्कलङ्क है। वीथी की सख्या नव शास्त्रकारो ने बतलाया है। १ नाग वीथी २ गज वीथी ३ ऐरावती वीथी ४ आर्षभी वीथी ५ गो वीथी ६ जारद्गवी वीथी ७ अज वीथी ८ मार्गी वीथी और ९ वैश्वानरी वीथी। ये नवो वीथियाँ सम्पूर्ण नक्षत्र मण्डल मे फैली हुई है। तीन तीन नक्षत्र एक एक वीथी मे पडते हैं। इस भाँति सत्ताइस नक्षत्रो मे नव वीथियाँ हैं। स्मरण करने-वाले स्मरणीय के [1]गुणग्रामो को ही स्मरण करते है। अत. सुरवीथी से स्वामि सुरति को उपमित किया।

---

१. ये नवगुण गुरुजी के कहे हुए हैं जिनकी सुरति भरतलाल सदा किया करते है। यथा १. धर्म धुरीन २. भानुकुल भानू ३. राजाराम ४. स्ववस ५ भगवान् ६. सत्यसन्ध ७ पालक श्रुति सेतू ८. रामजन्म जग मगल हेतू ९ गुर पितु मातु बचन अनुसारी १०. खल दल दलन देव हितकारी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भरत रहनि समुझनि करतूती। भगति बिरति गुन बिमल बिभूती ॥
बरनत सकल सुकबि सकुचाही। सेस गनेस गिरा गमु नाही ॥४॥

अर्थ : भरत का रहन सहन समझ और करतूत, उनकी भक्ति, उनका वैराग्य, उनकी निर्मल विभूति का वर्णन करने मे सभी सुकवि सङ्कुचित होते हैं। शेष गणेश और सरस्वती की गति नही है।

व्याख्या : १. भरत रहनि यथा : तेहि पुर बसत भरत बिनु रागा।
चचरीक जनु चपक बागा ॥
२ समुझनि यथा : रमा बिलास राम अनुरागी।
तजत बमन जिमि जन बड़भागी ॥
३. करतूति यथा : रामप्रेम भाजन भरतु बडे न एहि करतूति।
चातक हस सराहिअत टेक बिबेक बिभूति ॥
४. भगति यथा : नित नव राम प्रेम पन पीना।
५ बिरति यथा : बढत धरम दल मन न मलीना ॥
६. गुन यथा : सम दम संजम नियम उपासा।
नखत भरत हिय बिमल अकासा ॥
७ बिमल बिभूति यथा : रामप्रेमु बिधु अचल अदोषा।
सहित समाज सोह नित चोखा ॥

भाव यह कि कवि समझ रहे हैं कि मुझसे वर्णन ठीक नही हुआ। अतः कहते हैं कि सभी सुकवि को सङ्कोच होता है। अतः मुझे सङ्कोच होना ठीक ही है। क्योकि भक्त की महिमा शेष शारदा भी नही कह सकते। स्वय सरकार कहते हैं : कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद पकज गहे। अस दीनबन्धु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे। गणेश और शारदा दोनो समकक्ष के योग्यतावाले हैं : एक वाङ्मय है और दूसरी वाग्देवता है। यथा : वर्णानामर्थसंधाना रसाना छन्दसामपि। मङ्गलानाञ्च कर्त्तारौ वन्दे वाणीविनायकौ। अतः गणेशजी के लिए भी वही बात कही गयी।

दो. नित पूजत प्रभु पाँवरी, प्रीति न हृदय समाति।
माँगि माँगि आयसु करत, राज काज बहु भाँति ॥३२५॥

अर्थ : नित्य प्रभु की पादुका की पूजा करते हैं, प्रीति हृदय मे समाती नही और आज्ञा माँग माँगकर बहुत भाँति के राजकार्य का सम्पादन करते हैं।

व्याख्या : नित पूजत प्रभु पाँवरी : कर्मणा। प्रीति न हृदय समात : मनसा। माँगि माँगि आयसु करत : वाचा। प्रभु करि कृपा पाँवरी दीन्ही। सादर भरत सीस धरि लीन्ही। अतः करुणानिधान के चरणपीठ को सिंहासनारूढ किया। सीताराम की भावना से उसकी नित्य पूजा करते हैं और राजकार्य करने मे उसकी आज्ञा माँग लेते हैं। क्योकि वही : कुल कपाट कर कुसल करम के। बिमल नयन

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


सेवा सुधरम के : स्थानीय हैं। उसी के द्वारा भरतजी की जिज्ञासा सरकार तक पहुँचती है और वहाँ से जो आज्ञा होती है वह भरतजी तक पहुँच जाती है। उपासना के बल से पादुका टेलीफोन का काम दे रहा है।

पुलक गात हियँ सिय रघुबीरू। जीह नामु जप लोचन नीरू॥
लखन राम सिय कानन बसहीं। भरतु भवन बसि तपु तनु कसहीं॥१॥

अर्थ : शरीर में पुलक है। हृदय में रामजानकी हैं। जिह्वा से नाम जप हो रहा है। नेत्रो मे जल है। लक्ष्मण राम और सीता तो वन में बसते हैं। पर भरतजी तो घर में ही रहते हुए तप से तन को कस रहे हैं।

व्याख्या : अब भरतजी की दशा कहते हैं। प्रेमातिशय से शरीर में पुलक और नेत्रों में जल बना रहता है। यह तो शरीर की दशा है और सदा हृदय मे रामजानकी का निवास रहता है। यह मन की दशा है और जिह्वा से नाम का जप चला जा रहा है। यह वचन की दशा है। लक्ष्मण राम और जानकी तो वनमें बसते हैं। फिर भी ऐसे रङ्ग से रहते है जैसे शची और जयन्त के साथ इन्द्र अमरावती मे रहते हैं। समय पाकर भगवती का पुष्प शृङ्गार भी हो जाता है। यथा : एक बार चुनि कुसुम सोहाए। निजकर भूषन राम बनाए। सीतहि पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर। परन्तु भरतजी अयोध्या में ही रहते हुए ऋषियोंकी भाँति तप से शरीर को कस रहे हैं। यथा : अत्रि आदि मुनिवर बहु बसहीं। करहिं जोग जप तप तन कसहीं।

दोउ दिसि समुझि कहत सबु लोगू। सब बिधि भरत सराहन जोगू॥
मुनि ब्रत-नेमु साधु सकुचाहीं। देखि दसा मुनिराज लजाहीं॥२॥

अर्थ : दोनों ओर का विचार करके सब लोग कहते हैं कि सब प्रकार से तो भरत ही सराहना के योग्य हैं। भरतजी का नियम और व्रत सुनकर साधु सङ्कुचित होते हैं और दशा देखकर मुनीश्वर लज्जित हो जाते हैं।

व्याख्या : लोग रामजी का रहन सहन देख आये हैं और अब भरतजी का रहन सहन देखते हैं। दोनों का मिलान करते हैं तो इसी निश्चय पर पहुँचते हैं कि सब विधि से भरतजी की सराहना उचित है। रामजी तो पिता के वाक्य से वन मे गये। मुनिव्रत वेष आहार स्वीकार किया। उनकी इस विधि से सराहना है। इधर भरतजी को पिता ने राज्य दिया। परन्तु भरतजी ने उसका परित्याग किया। सेवाधर्म को अग्रसर करके रामजी की पादुका को सिंहासनारूढ किया। अब उसी की सेवा करते हैं। मुनिजी की आज्ञा लेकर मुनिव्रत वेष आहार सम्पूर्ण भोग सामग्री के रहते हुए घर मे रहकर कर रहे हैं। अतः भरतजी सभी विधि से प्रशंसा के योग्य हैं।

साधु लोग सब कुछ छोड़कर नियमव्रत करते हैं। सो भरतजी का नियम व्रत घर मे ही उनसे बढ़ा चढ़ा है। मननशील मुनि लोग वन मे रहकर स्थितप्रज्ञ होते

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हैं। यहाँ भरतजी सदा प्रेम मे डूबाडूब रहते हैं। अत' इनकी दशा सुनकर साधु और मुनियो को सङ्कोच होता है· हम लोगो ने गृहस्थी छोडा फिर भी ऐसा नियम व्रत और भगवत् प्रेम का निर्वाह नही कर सकते। यही सङ्कोच है।

परम पुनीत भरत आचरनू। मधुर मजु मुद मंगल करनू ॥
हरन कठिन कलि कलुप कलेसू। महामोह निसि दलन दिनेसू ॥३॥

अर्थ भरतजी का चरित्र परम पवित्र, मधुर, सुन्दर, मुद और मङ्गल का करनेवाला है। कठिन कलियुग के कलुप : पाप और क्लेश को हरण करनेवाला है और महामोहरूपी रात्रि को दूर करने के लिए तो सूर्य है।

व्याख्या कवि उपसहार करते है कि भरत का चरित्र परम पवित्र है। साधु और मुनियो के लिए भी अनुकरणीय है। वडा ही मधुर है। यथा : नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदय समाति। माँगि माँगि आयसु करत राज काज बहु भाँति। सुन्दर ऐसा है कि सब लोग सराहना करते हैं। यथा · सब बिधि भरत सराहन जोगू। मुद मङ्गल करण ऐसा है · सुनि व्रत नेम साधु सकुचाही। देखि दसा मुनिराज लजाही। प्रशस्त आचरण ही मङ्गल है तथा कलियुग मे पाप और क्लेश की तीक्ष्णता का आधिक्य है। उसे हरनेवाला है और महामोह को तो ऐसा नाश करता है जैसे सूर्य रात्रि का नाश करते हैं। कही अन्धकार का लेश नही रह जाता। क्लेश पाँच है · अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेप, भिनिवेश। आचरण म रहनि, समुझनि करतूति, भगति, विरति, गुन और विभूती इन सातो का अन्तर्भाव है।

पाप पुंज कुजर मृगराजू। समन सकल सताप समाजू ॥
जन रजन भजन भव भारू। राम सनेह सुधाकर सारू ॥४॥

अर्थ पापरूप हाथी के लिए तो सिंहरूप है। सन्ताप समाज के लिए यमरूप हैं। भक्तो के मन को प्रसन्न करनेवाला, ससार के भार को दूर करनेवाला और राम के स्नेहरूपी चन्द्र का तो साररूप अमृत है।

व्याख्या : इन सातो की फलश्रुति कहते हुए बतलाते हैं कि भरतजी की रहनि · कठिन कलि कलुप और क्लेश को हरनेवाली हैं। उनकी समुझनि महामोह निसि दलन दिनेश हैं। उनकी करतूति . पापपुंज कुजर मृगराज हैं। उनकी भक्ति सकल सन्ताप समाज के लिए यमराज हैं। यमराज का ही नाम शमन है। यथा शमनो यमराड् यम। भरतजी की विरति जनरञ्जन है। उनके गुण भवभार भञ्जन है और उनकी विभृति : रामसनेह सुधाकर सार है।

छ. सिय राम प्रेम पियूप पूरन होत जनमु न भरत को।
मुनि मन अगम जम नियम सम दम विपम व्रत आचरत को ॥
दुख दाह दारिद दभ दूपन सुजस मिस अपहरत को।
कलिकाल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ : रामजानकी के प्रेम से भरे हुए भरत का यदि जन्म न हुआ होता तो मुनि के मन के लिए भी अगम यम, नियम, शम, दम और विषम व्रत का आचरण कौन करता? दुःख जलन दरिद्र दम्भ और दूषण को सुयश के बहाने से कौन हरण करता? कलिकाल में भी तुलसी ऐसे शठों को हठ करके रामजी के सम्मुख कौन करता?

व्याख्या : सीताराम के चरणों में भरतजी का प्रेम जन्म से ही था। यथा : 'तुम तउ भरत मोर मत एहू। धरे देह जनु राम सनेहू। रामजी में प्रेम होना और सीताजी में प्रेम होना एक ही बात है। क्योंकि रामजी और सीताजी : देखिअत भिन्न न भिन्न हैं। इसीलिए : सिय राम प्रेम कहा। रामजी में अवधवासियों को इतना प्रेम था : पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग। करत राम हित नेम व्रत परिहरि भूषन भोग। और भरतजी तो रामप्रिय और लघु भाई थे। इसलिए उन्होंने जो यम, नियम, शम, दम और विषम व्रत किये वह मुनि लोगों के लिए करने को कौन चलावे मन से भी अगम था। अर्थात् ऐसा अनुष्ठान किसी ने नहीं किया। भाव यह है कि जिसे रामभक्ति होती है वह राम की प्राप्ति के लिए शम, दम, यम, नियमादि विषम व्रत का आचरण करता है। जो रामजी की प्राप्ति के लिए अनुष्ठान नहीं करता है उसे रामभक्ति हुई ही नहीं।

अब भरत चरित्र की फलश्रुति कहते हैं। भरत चरित्र से दोषापनयन होता है उसे कहते हैं कि दुःख दाह दरिद्र दम्भ और दूषण का इस चरित्र के श्रवण से नाश होता है। यम के श्रवण से दुःख का नाश होता है। नियम के श्रवण से दाह का नाश होता है। शम के श्रवण से दरिद्रता का नाश होता है। दम के श्रवण से दम्भ का नाश होता है और विषम व्रत के श्रवण से दूषण का नाश होता है।

| | | | |
|---|---|---|---|
| यम | १. | भरत की अहिंसा | यथा : देखि दसा मुनिराज लजाहीं।<br>भरत दयानिधि दीन्ह छड़ाई। |
| | २. | „ अस्तेय | यथा : संपति सब रघुपति कर आही। |
| | ३. | „ ब्रह्मचर्य | यथा : नन्दिग्राम करि पर्नकुटीरा। |
| | ४. | „ अपरिग्रह | यथा : जटाजूट सिर मुनिपट धारी।<br>महि खनि कुस साथरी सँवारी। |
| | ५. | „ सत्य | यथा : कहहुँ साँच सब मुनि पतियाहू। |
| नियम | १. | „ तप | यथा : भरत भवन बसि तप तन कसहीं। |
| | २. | „ शौच | यथा : करत सकल रिपि धर्म सप्रेमा। |
| | ३. | „ सन्तोष | यथा : भरत मुदित अवलंब लहे ते।<br>अस सुख जस सिय राम रहे ते। |
| | ४. | „ स्वाध्याय | यथा : जीह नाम जप लोचन नीरू। |
| | ५. | „ ईश्वर प्रणिधान | यथा : नित पूजत प्रभु पाँवरी।<br>प्रीति न हृदय समाति। |

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



शम यथा : पुलक गात हिय सिय रघुबीरू।
जीह नामु जप लोचन नीरू॥
दम यथा : भूषन बसन भोग सुख भूरी।
मन तन बचन तजे तृन तूरी॥
व्रत : विषम यथा : मुनि व्रत नेम साधु सकुचाही।

दोषापनयन कहकर गुणाधान कहते हैं कि इस कराल कलिकाल मे भी अत्यन्त शठो को हठ करके राम सम्मुख तो भरत का यश ही करता है! जो अपने अज्ञान को राम पर धरनेवाले शठ हैं। यथा : ते सठ हठ बस संसय करही। निज अज्ञान राम पर धरही। वे भी यदि भरत चरित्र सुने तो यह चरित्र उन्हे बलपूर्वक रामजी के सम्मुख कर देता है।

सो. भरत चरित करि नेमु, तुलसी जे सारद सुनहि।
सीय राम पद पेमु, अवसि होइ भव रस बिरति ॥३२६॥

अर्थ : भरत चरित्र को जो नियम पूर्वक प्रेम से गाते या सुनते है उनको अवश्य श्रीसीतारामजी के चरणो मे प्रेम होता है और संसार के रस से उन्हे अवश्य वैराग्य हो जाता है।

व्याख्या : अत्यन्त शठ के लिए रामभक्ति प्राप्त करने का यही साधन है कि भरत चरित्र को प्रेम और नेम के साथ गान करे या सुने। उसकी शठता छूट जाती है। वह भव रस मे निरत था सो विरत हो जायगा। वह अपने अज्ञान का आरोप रामजी पर करता था। सो उसकी : गुन तुम्हार समुझै निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा। ऐसी बुद्धि अवश्य हो जायगी।

भरत चरित्र की इति नही है। अत. ग्रन्थकार ने इति नही दिया।

नम. शिवाय

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



## मङ्गलाचरण

श्लो. मूलं[1] धर्मतरोर्विवेकजलधेः पूर्णेन्दुमानन्ददं
वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघनध्वान्तापहं तापहम् ।
मोहाम्भोधरपूगपाटनविधौ स्वःसम्भवं शंकरं
वन्दे ब्रह्मकुलं कलंकशमनं श्रीरामभूपप्रियम् ॥१॥

अर्थ : धर्मरूपी वृक्ष के मूल, विवेकरूपी समुद्र को आनन्द देनेवाले पूर्णचन्द्र, वैराग्यरूपी कमल के लिए सूर्यरूप, पापरूपी अन्धकार को निश्चय ही मिटानेवाले, तीनो तापो के हरण करनेवाले, मोहरूपी बादलो के समूह को छिन्न भिन्न करने की क्रिया मे वायुरूप तथा शंकररूप, श्री राजा रामचन्द्र के प्रिय, कलङ्कनाशक ब्रह्मकुल की मैं वन्दना करता हूँ।

व्याख्या : जिस भाँति शङ्कररूप हनुमानजी की वन्दना करने से शिवजी की पृथक् वन्दना सुन्दरकाण्ड मे नही की। उसी भाँति इस काण्ड मे भी शङ्कररूप ब्रह्मकुल की वन्दना करते हैं। पृथक् वन्दना शङ्करजी की नही करते। इस काण्ड मे कथानुसार सरकार का ब्रह्मकुल मे निवास अनेक वर्षों तक होता रहा। किसी ब्रह्मकुल मे पन्द्रह दिन ही रहे। किसी मे छ महीने रहे। वनवास का अत्यधिक भाग यो ही व्यतीत किया। इसलिए उस महावन का नाम महाकोसल पड गया। कहा भी है सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह। ब्रह्मकुल की रक्षा के लिए ही शेष कथा का विस्तार हुआ। यथा निसिचर हीन करउँ महि भुज उठाइ प्रन कीन्ह। इसी के लिए अगस्त्यजी से मन्त्र पूछा। यथा : अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारौ सुर द्रोही। अत कवि ने भी शङ्कर की वन्दना ब्रह्मकुल के रूप मे ही की। शङ्करजी अष्टमूर्ति है। १ पृथ्वी २ अप ३ तेज ४ वायु ५ आकाश ६ सूर्य ७ चन्द्र और ८ यजमान। इसी भाँति ब्रह्मकुल भी अष्टमूर्ति हैं। उसी का विवरण करते हैं। गीताभाष्य मे भाष्यकार कहते हैं : ब्राह्मणत्वस्य हि[2] रक्षणेन रक्षितो भवति वैदिको धर्म। अत धर्मवृक्ष का मूल ब्रह्मकुल ही है। एव वृक्षमूल कहकर पृथ्वीरूप कहा : १

विवेक का कोई ओर छोर नही है। इसीलिए इसकी उपमा समुद्र से दी जाती है। यथा : गुर बिबेक सागर जग जाना। उस विवेक समुद्र को आनन्द देनेवाला ब्रह्मकुल है। ब्रह्मकुल के दर्शन से विवेक की वृद्धि होती है। ब्राह्मणो के दर्शन न होने से विदेश मे गये हुए क्षत्रिय ही म्लेच्छ, हूण, पुल्कस यवन आदि हो गये। अत ब्रह्मकुल को चन्द्ररूप कहा : २

---

१. शार्दूल विक्रीडित छन्द है।

२ ब्राह्मणत्व की ही रक्षा मे वैदिक धर्म की रक्षा होती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वैराग्यरूपी कमल का पोषण करनेवाला ब्रह्मकुल सूर्यरूप हैं : ३. ब्रह्मकुल के उदय से ही वैराग्य विकसित हो उठता है। यथा : प्रथमहि विप्र चरन अति प्रीती। निज निज कर्म निरत श्रुति रीती। एहि कर फल पुनि बिषय बिरागा।

पापान्धकार के नाश के लिए ब्रह्मकुल तेजरूप हैं : ४. ब्राह्मण के दक्षिण अङ्गुष्ठ में सब तीर्थों का निवास है। अतः विप्रपादोदक के पान करनेवाले के सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं।

तापनाशक होने से ब्रह्मकुल को जलरूप कहा : ५ यथा : विपद्घनध्वान्त-सहस्रभानवः समीहितार्थार्पणकामधेनवः। अपारसंसारसमुद्रसेतवः पुनन्तु मां ब्राह्मण-पादरेणवः॥

मोहरूपी मेघ आकाशरूपी आत्मस्वरूप को आच्छादित कर देता है। उसे तितरबितर कर देने में वायुरूप ब्रह्मकुल समर्थ हैं : ६ यथा : बंदों प्रथम मही सुर चरना। मोह जनित संसय सब हरना।

आकाश अवकाश प्रदान से सबका कल्याण करता है। इसलिए वह शङ्कर है। ब्रह्मकुल भी अपने ब्रह्मकर्म से संसार का कल्याण करता है। इसलिए वह भी शङ्कर हैं। इस भाँति ब्रह्मकुल को आकाशरूप कहा : ७

श्रीरामभूपप्रियं का अर्थ है श्रीरामभूप प्रिय हैं जिसको। या जो रामभूप को प्रिय है। यथा : हरितोषन ब्रत द्विज सेवकाई। यजमान यज्ञ से भगवान् की पूजा करता है। इसलिए वह भगवान् को प्रिय है और ब्राह्मण का कर्म ही यजन याजन है। अतः ब्रह्मकुल को यजमान रूप कहा : ८.

इस भाँति अष्ट मूर्ति ब्रह्मकुल शङ्कररूप होकर कलङ्क का नाश करता है। कलङ्क ब्रह्मकुल की कृपा बिना नहीं छूटता। जब ब्राह्मण प्रायश्चित्तादि से पवित्र करके किसी को ग्रहण करते हैं तभी उसका कलङ्क छूटता है। ऐसे ब्रह्मकुल की श्रीग्रन्थकार वन्दना करते हैं।

श्लो. [1]सान्द्रानन्दपयोदसौभगतनुं पीताम्बरं सुन्दरं
पाणौ बाणशरासनं कटिलसत्तूणीरभारं वरं।
राजीवायतलोचनं धृतजटाजूटेन संशोभितं
सीतालक्ष्मणसंयुतं पथिगतं रामाभिरामं भजे ॥२॥

अर्थ : जिनका शरीर घना आनन्दरूपी जल बरसानेवाले मेघों के समान शोभायुक्त हैं। जो पीताम्बर धारण किये हैं और सुन्दर[2] हैं। जिनके हाथों में बाण और धनुष है। जिसका कटि भाग उत्तम तरकस के भार से सुशोभित है। कमल के

---

१ यह भी शार्दूल विक्रीडित छन्द है।

२. समविभक्ताङ्ग।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



समान जिसके विशाल नेत्र है। जो मस्तक पर जटाजूट धारण करने से अत्यन्त शोभायमान हैं और जो सीताजी और लक्ष्मणजी सहित मार्ग मे चले जा रहे हैं। ऐसे आनन्द देनेवाले श्री रामचन्द्रजी को मैं भजता हूं।

व्याख्या : बादल जल की वर्षा करते हैं। परन्तु सरकार का शरीर आनन्द बरसानेवाला बादल है। अत: वैसी ही उसकी शोभा है। पीतवल्कल उनके शरीर पर आ जाने से पीताम्बर की शोभा दे रहा है अथवा भगवती जनकनन्दनी पीताम्बर धारण किये हुए है। उसका आरोप सरकार पर करके उनको पीताम्बर कह रहे हैं। यथा : छत्रिणो गच्छन्ति कहने मे जो छाता नही लगाये हुए हैं उस पर भी छातावाले का आरोप होता है। अथवा श्याम शरीर पर पीताम्बर सा मुनिपट अत्यन्त खिल रहा है। इससे सुन्दर कहते हैं। हाथ मे धनुषबाण और कटि मे तूणीर की शोभा है। इससे भक्त विपत्तिभञ्जन गुण का वर्णन किया। यथा : राजिव नयन धरे धनु सायक। भगत बिपति भजन सुखदायक। कृपादृष्टि युक्त होने से : राजीवायत लोचन कहा। यथा . चितइ कृपाकरि राजिव नैना। जटाजूट धारण करने से शोभा घटी नही, प्रत्युत और बढ़ गयी। यथा : मरकत सयलपर लरत दामिनि कोटि। सीता और लक्ष्मण के साथ मार्ग चलने से और भी मनोहरता बढी। यथा : जनु मधु मदन मध्य रति लसई। ऐसे सुन्दर राम को गोस्वामीजी कहते हैं कि मैं प्रणाम करता हूं।

सान्द्रानन्दपयोद सौभागतनु से : रघुपति चित्रकूटबसि जाना। चरित किये श्रुति सुधा समाना कहा। पीताम्बर सुन्दर से दिव्यबसन भूषन पहिराये। जे नित नूतन अमल सोहाये। अर्थात् अत्रि मिलन कहा। पाणौ बाणशरासनो कटिलसत्तूणीरभार वरं से : विराध बध तथा खरदूषण बध कहा। राजीवायतलोचन से : मुनियो पर कृपा कहा। धृतजटाजूटेन सशोभित से मुनिवेष में भी सूर्पणखा[1] का आसक्त होना कहा। सीतालक्ष्मणसयुत से : पञ्चवटी निवास कहा। पथिगत से : सीतान्वेषण कहा। अभिराम से : शवरी गीध गति तथा नारद वरदान कहा। इस प्रकार सरकार के ध्यान वर्णन के व्याज से अरण्यकाण्ड की सम्पूर्ण कथाओ के प्रतीक दे दिये।

इस काण्ड मे सीताहरण होगा। अत. दो ही श्लोको मे वन्दना किया। सुन्दरकाण्ड मे पता लग जायगा तब फिर उस काण्ड से तीन श्लोको मे वन्दना प्रारम्भ हो जायगी।

## २५. सुरपति सुत करनी प्रसग

सो. उमा राम गुन गूढ, पडित मुनि पावहिं बिरति।
पावहिं मोह बिमूढ, जे हरि बिमुख न धर्म रति ॥१॥

---

१. यहाँ मुद्रा अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ हे उमा ! रामजी के गुण गूढ हैं। पण्डित मुनि इससे वैराग्य प्राप्त करते हैं। परन्तु जो विमूढ हैं। परमेश्वर से विमुख हैं और जिन्हे धर्म मे प्रेम नही है वे मोह को प्राप्त होते हैं।

व्याख्या अरण्यकाण्ड की कथा मे ही उमा को सती शरीर मे मोह हुआ था। अत शङ्कर भगवान् सावधान करते हैं। जब से रामजी जनकपुर मे गये तब से लेकर यहाँ तक की कथा मे गोस्वामीजी के वक्तृत्व की ही प्रधानता है। धनुषभङ्ग हुआ, ब्याह हुआ, वनवास हुआ, भरतजी मनाने गये, महाराज जनक आये, भरत जी को पादुका मिली, भरतजी के साथ महाराज जनक अवध आये, राज को सँभाल-कर जनकपुर लौट गये, यह सब माधुर्य की कथा थी। अत गोस्वामीजी ही बोलते रहे। ऐश्वर्य की कथा आते ही ज्ञान घाट के वक्ता शिवजी बोल उठे : उमा राम गुन गूढ। गूढ कथा को ज्ञानी ही समझ सकता है।

जो शीघ्र लखाई न पडे उसे गूढ कहते हैं। यथा गूढ प्रेम लखि परै न काहू। लखनेवाले पण्डित ज्ञानी और मुनि मनन करनेवाले हैं। उन्हे राम गुण मे वैराग्य होता है। यथा कामिन्ह कै दीनता देखाई। धीरन्ह के मन विरति दृढाई। जिसे सीधी बात न समझ पडे उसे मूढ कहते हैं। यथा माया विवस भये मुनि मूढा। समुझी नहिं हरि गिरा निगूढा। जिन्हे बात उलटी समझ पडे वे विमूढ है। विमूढ होने से ज्ञान के अधिकारी नही। हरिविमुख होने से भक्ति के अधिकारी नही। धर्म रति न होने से कर्म के अधिकारी नही। ऐसे वेदबाह्यो को रामगुण से मोह प्राप्त होता है। भरत चरित ऐसा नही है। यथा भरत चरित करि नेमु तुलसी जे सादर सुनहिं। सीयराम पद प्रेम अवसि होहिं भव रस विरति। भरत चरित समाप्त हुआ। अत रामचरित प्रारम्भ करने के पहिल अपने शिवजी श्रोता को सावधान करते हैं।

**पुर नर भरत प्रीति मे गाई। मति अनुरूप अनूप सुहाई॥**
**अब प्रभु चरित सुनहु अति पावन। करत जे बन सुर नर मुनि भावन॥१॥**

अर्थ पुरवासियो और भरतजी के अनुपम और सुन्दर प्रेम का मैने अपनी बुद्धि के अनुसार गान किया। अब अत्यन्त पवित्र प्रभु के चरित्र सुनो जिसे सुर नर मुनि भावन चरित्र को वे वन मे कर रहे है।

व्याख्या अब द्वितीय सोपान और तृतीय सोपान के दाब की कथा चली एक सीढी दूसरे को दाबकर ही बनती है। उसे दोनो की सन्धि समझना चाहिए। इसे सङ्गति भी कह सकते हैं। पुर नर प्रीति पहिले यथा राम दरस हित लोग सब करत नेम उपवास। परिहरि भूषन भोग सुख जिअत अवध की आस। तत्पश्चात् भरत की प्रीति कही। यथा नित पूजत प्रभु पाँवरी प्रीति न हृदय समात। माँगि माँगि आयसु करत राज काज बहु भाँति। मति अनुरूप कहकर यथार्थ गान मे अपनी असमर्थता कहा। भगवान् और भागवत का यश मति अनुरूप ही कहा जा सकता है। यथा बरनत सकल सुकबि सकुचाही। सेष गनेस गिरा गमु नाही। अनूप

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यथा : मुनिमन अगम जम नियम सम दम बिषम ब्रत आचरत को। सुहाई यथा : कलि काल तुलसी से सठन्हि हठि राम सनमुख करत को।

शिवजी कहते हैं कि तुम सेवक का चरित सुन चुकी। अब प्रभु का चरित सुनो। एहि बिधि प्रभु बन बसहिं सुखारी। खग मृग सुर तापस हितकारी। सो वह पावन चरित था। इस चरित मे खग मृग के स्थान मे नर का हित होने लगा। अतः इसे अतिपावन कहते हैं। अथवा भक्तिका श्रृङ्गार रस के योग से अत्यन्त उत्कर्ष हो उठता है, इसलिए अतिपावन कहा।

एक बार चुनि कुसुम सुहाए। निज कर भूषन राम बनाए॥
सीतहिं पहिराए प्रभु सादर। बैठे फटिक सिला पर सुंदर॥२॥

अर्थ—एक बार सुन्दर सुन्दर फूल चुनकर रामजी ने अपने हाथों से गहने बनाये और सीताजी को अत्यन्त आदर के साथ पहिनाये। तब सुन्दर स्फटिक की शिला पर बैठे।

व्याख्या : श्रृङ्गार तो प्रायेण करते ही रहते थे। यथा : सिय अंग लिखे धातु राग सुमननि भूषन बिभाग तिलक करनि का कहौ कला निधान की। माधुरी बिलास हास गावत यश तुलसीदास बसत हृदय जोरी प्रिय परम प्रान की। गीतावली। इस समय एक बार की बात कही जाती है। कुसुम : कहने से वसन्त ऋतु कहा। क्योंकि इसी ऋतु मे कुसुम फूलता है। सुहाये चुनि : कहने का भाव यह कि भूषण बनाने योग्य फूल। निजकर . कहने का भाव यह कि पूजन के लिए अपने हाथों से फूल चुनने का विधान है। दूसरे यह कि भूषण बनानेवाला ही जान सकता है कि किन किन फूलो की कितनी आवश्यकता है। राम बनाये ' कहने से प्रभु की रसिकता कलाज्ञान तथा शास्त्रनिष्ठा सूचित की। स्त्रियो की पूजा वस्त्र भूषण द्वारा करनेका शास्त्र विधान है और तापस बेष बिसेख उदासी : रहने का वरदान है। अत फूलो के गहने जगदम्बा के पूजन के लिए बना रहे हैं। नवरात्र मे पूजन का माहात्म्य अधिक है।

सादर पहिराये : कहने से पूजन करना कहा। सुन्दरी सीता सुन्दर राम सुन्दर फटिक शिला पर बैठे हैं। सामने मन्दाकिनी बह रही हैं। उस पार सामने जयन्त टोला है। चारो ओर हरियाली छा रही है। अद्भुत झाँकी है।

सुरपति सुत धरि बायस बेषा। सठ चाहत रघुपति बल देखा॥
जिमि पिपीलिका सागर थाहा। महा मंदमति पावन चाहा॥३॥

अर्थ : इन्द्र का बेटा शठ था। उसने कौए का रूप धारण करके रघुपति का बल देखना चाहा। जैसे महामन्दमति चीटी समुद्र का थाह पाना चाहे।

व्याख्या : बल की महिमा सुन रक्खा था। चरित्र से विलासप्रियता सूचित हुई। अतः सन्देह हुआ। सुरपति सुत : कहने का भाव यह है : ऊँच निवास नीच करतूती। देखि न सकैं पराई बिभूती। ऐसे का बेटा है। रङ्ग मे भङ्ग करने चला। दूसरे यह कि : काक समान पाक रिपुरीती। छली मलीन न कतहुँ प्रतीती। उनका

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


बेटा होने से यह भी छली मलिन और प्रतीतिहीन है। आप्त पुरुषों से सुनने पर भी इसे प्रतीति नहीं। काक सा स्वभाव है। अत वही वेष धारण किया। छली है। समझता है कि किसी को सम्भावना भी नहीं होगी कि सुरपति का बेटा काक बनेगा। शठ है व्यर्थ दुराव करता है। उसकी इच्छा है कि किसी को पता भी न लगे और मैं परीक्षा ले लूँ। इसलिए यह रूप लाया। कपट सार सूची सहस बाँधि बचन परवास। करि दुराव चह चातुरी सो सठ तुलसीदास।

पिपीलिका के लिए जल की रेखा दुर्लंघ्य है। उसके लिए समुद्र के थाह पाने की वासना ही महाअमङ्गलरूप है। कोई चींटी ऐसी मतिमन्द नहीं है जो किसी घट के जल का भी थाह जानना चाहती हो। पर यह महामतिमन्द है। चींटी होकर समुद्र का थाह स्वयं लेना चाहता है।

सीता चरन चोंच हति भागा। मूढ़ मंदमति कारन कागा॥
चला रुधिर रघुनायक जाना। सींक धनुष सायक संधाना॥४॥

अर्थ : काग होने के कारण सीताजी के चरण में मूढ मन्दमति चोंच मारकर भागा। रक्त बह चला तो रघुनाथजी ने जाना। सींक के धनुष पर बाण का सन्धान किया।

व्याख्या : मूढ बेसमझ को कहते हैं। बेसमझी के कारण भगवत् अपराध और भागवत अपराध दोनों कर बैठा। रामजी तो चाहने पर परीक्षा भी दे देते हैं। यथा कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। बालि महाबल अतिरन धीरा। दुंदुभि अस्थिताल देखराये। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाये। ऐसे सरल प्रभु से कपट करके दो दो अपराध करने की क्या आवश्यकता थी। अतः मूढ कहा। अवसर चूक गया। इसलिए मन्दमति कहा। यथा : अहह मंदमनु अवसर चूका। जगदम्बा के चरणों को पाकर लोग कौन सा मनोरथ नहीं सिद्ध कर लेते। सो इस मन्दमति ने उस पर प्रहार किया। कारण कागा : भाव यह कि मन उसका कौआ सा था ही। शरीर भी कौआ का धारण कर लिया। अत. भीतर बाहर से कौआ ही हो गया। अत मूढ़ता और मति की मन्दता का परिचय दे रहा है। सीताजी के चरण में चोंच मारकर भागा। रामजी ने आघात करने के समय न जाना। जगदम्बा के अङ्क में आराम करते थे। यथा : ममाङ्के भरताग्रजः। जब गरम गरम रक्त का शरीर से योग हुआ तब जाना। रघुकुल की प्रतिष्ठा रखने के लिए बाध्य थे। नहीं तो देवताओं के रक्षक हैं। शृङ्गार में थे धनुष बाण पास न था। क्रियासिद्धिः सत्वे भवति महतां नोपकरणे। सींक का ही धनुष बाण बना लिया। कौआ उड़ाने के लिए यही बहुत है। उसने भी समझा कि रामजी ने मुझे कौआ ही जाना है। इसलिए सींक धनुष और बाण से मुझे डरा रहे हैं।

---

१. ऐन्द्रः काकस्तदागत्य नखैस्तुण्डेन चाक्षतत्। मत्पादाङ्गुष्ठमारक्त विददाराभिषाशया। (अध्या०। इन्द्र का बेटा काक बनकर नख और चोंच से मेरे पैर के अँगूठे में चोट किया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. अति कृपाल रघुनायक, सदा दीन पर नेह।
ता सनु आइ कीन्ह छलु, मूरख अवगुन गेह ॥१॥

अर्थ : रघुनाथजी अत्यन्त कृपालु हैं। सदा दीनो पर उनकी अनुकम्पा रहती है। मूर्ख अवगुण के घर ने उनसे आकर छल किया।

व्याख्या : रघुनाथ अति कृपालु हैं। यदि यह उनका अपराध किये होता तो क्रोध भी नही करते। यथा : सुनु सुरेस रघुनाथ सुभाऊ। निज अपराध रिसाहिं न काऊ। जो अपराध भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई। उनका दीन पर सदा प्रेम रहता है। यदि यह दीन होकर सुग्रीव की भाँति बल मे सन्देह करता तो कृपा पूर्वक उसको बल भी दिखा देते और उसका अकल्याण भी न होता। ऐसे प्रभु से छल करना मूर्खता और दोषाकरता का परिचय देना है। छल तो उससे किया जाता है जिससे सरलता से काम न निकले। ऐसे कृपालु दीनानाथ से छल किया। अत मूर्ख है। अवगुण का घर है। उसे अच्छी बात सूझती ही नही।

प्रेरित मंत्र ब्रह्मसर धावा। चला भाजि वायस भय पावा ॥
धरि निज रूप गयउ पितु पाँही। राम बिमुख राखा तेहि नाँही ॥१॥

अर्थ मन्त्र से प्रेरित होकर ब्रह्मास्त्र दौडा। कौआ भयभीत होकर भाग चला। अपना रूप धारण करके पिता के पास गया। पर राम विमुख होने से उसने नही रक्खा।

व्याख्या वह सीक का बाण मन्त्र बल से ऐपीकास्त्र हो गया। ऐपीकास्त्र ब्रह्मास्त्र का भेद है। उसका प्रयोग सीक द्वारा ही होता है। जिस भाँति यह देखने मे कौआ पर वस्तुत इन्द्र पुत्र था, उसी भाँति उसके प्रति जिस बाण का प्रयोग किया गया वह देखने म सीक था। पर वस्तुत ब्राह्मस्त्र था। जयन्त ने पहिले साक ही समझा। अत निर्भय था। पर जब उसने ऐपीकास्त्र कालानल के समान तेज देखा तो डर के भागा। वायस भय पावा कहने का भाव यह कि काँय काँय करता भागा।

पातीति पिता। पिता शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ ही रक्षक है। पुत्र का परमाश्रय पिता ही होता है। अत पहिले इन्द्रलोक गया। वहाँ काक का प्रवेश नही। इसलिए काक रूप परित्याग करके अपना रूप धारण किया। दूसरे यह कि काक रूप होने से पिता के पहिचानने मे विलम्ब की सम्भावना थी और विलम्ब होने से अस्त्र के मार लन का भय था। इसलिए अपना रूप धारण किया। तीसरे पिता की अप्रसन्नता का भी भय था कि तूने काक रूप क्यो धारण किया। चौथे यह पिता के लिए पुत्र प्रिय दर्शन है। अत अपने रूप मे होने से वात्सल्य की अधिक आशा थी। सो पिता ने रक्खा नही। अर्थात् निकाल दिया कि जैसा किये है वैसा फल भोग। मैं इसमे कुछ नही कर सकता। जयन्त ने ज्ञान बल और दिव्य बल तो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



देख ही लिया। ब्रह्मास्त्र को अप्रतिक्रिय जानकर ही भागा है। अब प्रभाव का अनुभव कर रहा है।

भा निरास उपजी मन त्रासा। यथा चक्र भय रिषि दुर्वासा ॥
ब्रह्मधाम सिवपुर सब लोका। फिरा श्रमित व्याकुल भय सोका ॥२॥

अर्थ : निराश हो गया। उसके मन में त्रास उत्पन्न हो गया जिस भाँति दुर्वासा ऋषि चक्र से सन्त्रस्त हो गये थे। वह ब्रह्मलोक शिवलोकादि समस्त लोकों में थका हुआ और भय शोक से व्याकुल होकर भागता फिरा।

व्याख्या : पहिले जयन्त को आशा थी कि पिता रक्षा करेंगे। उनके प्रत्याख्यान से वह निराश हो गया। पहिले भयभीत होकर भागा था अब सन्त्रस्त हो गया। जैसे चक्र के भय से दुर्वासा ऋषि निराश और सन्त्रस्त हो गये थे वही दशा इसकी हो गयी। अम्बरीष राजा के यहाँ दुर्वासा ऋषि अतिथि हो गये। उस दिन द्वादशी थोड़ी थी। राजा एकादशी व्रत करके पारण करने जा रहा था। ऋषिजी से भोजन के लिए प्रार्थना किया। ऋषिजी ने स्वीकार किया और आवश्यक कार्य के लिए यमुना किनारे गये। ऋषिजी के आने में देर हुई। इधर द्वादशी बीत रही थी। इसलिए ब्राह्मणों से आज्ञा लेकर राजा ने जल प्राशन कर लिया। इस पर क्रुद्ध होकर ऋषि ने कृत्या प्रकट की। सुदर्शनचक्र राजा की रक्षा करता था। उसने कृत्या को तो भस्म कर ही दिया स्वयं दुर्वासा ऋषिजी पर धावा कर दिया।

ऋषिजी भाग चले। चक्र ने पीछा किया। जितना ऋषिजी भागते थे उतना ही सुदर्शन भी दौड़कर उनका पीछा करता था। ऋषिजी सन्त्रस्त होकर शरण खोजने लगे। पर किसी ने उन्हे शरण नहीं दी।

इसी भाँति जयन्त भी भागता हुआ देवताओं की परम शरण ब्रह्माजी के पास गया। वहाँ भी शरण न मिली तो अवढर दानी शिवजी के शरण गया। वहाँ से भी निराश होकर वरुण कुबेरादिक के लोको में घूमता फिरा। दौड़ते-दौड़ते श्रमित हो गया। भय और शोक से उसकी बुरी गत हो गयी।

काहू बैठन कहा न ओही। राखि को सकै राम कर द्रोही ॥
मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होइ विष सुनु हरिजाना ॥३॥

अर्थ : किसी ने उसे बैठने तक को नही कहा। रामजी के द्रोही की कौन रक्षा कर सकता है। माता मौत हो जाती है। पिता यमराज के समान हो जाते हैं। हे गरुड़जी ! अमृत विष हो जाता है।

व्याख्या : शरण में रखना तो दूर की बात है। किसी ने यह भी नही कहा कि बहुत थके हो। दम भर विश्राम कर लो। क्योंकि उसके पीछे ही पीछे रामजी का बाण भी साथ ही जाता था। राम के द्रोही की रक्षा करने मे कोई समर्थ नही। यथा : जौं खल भयेसि राम कर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यहाँ भगवान् के उत्कर्ष का प्रसङ्ग है। अतः उपासना घाट के वक्ता भुसुण्डिजी बोल उठे : सुनु हरिजाना। जब माता पिता की यह गति है तो सम्पूर्ण जगत् के विरोधी हो जाने में कौन सन्देह है। पिता के प्रत्याख्यान के अन्तर्गत ही माता का भी प्रत्याख्यान आ जाता है। उस समय इन्द्राणी भी वही थी। जब बाण पीछा कर रहा हो उस समय लौटाना मृत्यु के मुख में फेंकना ही है। इसलिए कहा : मातु मृत्यु पितु समन समाना। मृत्यु और शमन : यम एक ही वस्तु है पुल्लिङ्ग स्त्रीलिङ्ग मात्र का भेद है। रक्षा और नाश की शक्ति किसी वस्तु में नही है। प्रभु के अनुग्रह निग्रह में है। अनुग्रह हो तो सुमेरु भी रेणु हो जाय और निग्रह हो तो माँ बाप भी मृत्यु और यम हो जायँ। इसी प्रकार प्राणद शक्ति और मारक शक्ति अमृत विष मे नही है। सरकारी अनुग्रह हो तो विष अमृत हो जाता है। नही तो अमृत विष हो जाता है। सुरलोक मे अमृत का होना प्रसिद्ध है। सो पिता माता ने अमृत से सिञ्चन नही किया। रामविरोधी के लिए उसे भी विष ही समझा।

मित्र करै सत रिपु कै करनी। ता कहुँ बिबुधनदी बैतरनी ॥
सब जगु ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता ॥४॥

अर्थ : मित्र सौ शत्रु की करणी करता है। उसके लिए गङ्गाजी वैतरणी हो जाती है। हे भाई ! जो राम विमुख हो तो सम्पूर्ण संसार उसके लिए अग्नि से भी गरम हो जाता है।

व्याख्या : राम के विमुख होते ही जमीन आसमान पलट जाता है। मित्र सौ शत्रु की करणी कर बैठता है। अपने समझ मे वह भला करता है। पर उससे बड़ी हानि हो जाती है। यहाँ जयन्त की काया पलट विद्या ने उसके सौ शत्रु के समान हानि की। न उसे कायापलट विद्या आती और न वह काक होकर भगवती पर प्रहार करता। शङ्कर भगवान् के जटा मे सकल कलुष विध्वंसिनी गङ्गाजी सदा रहती हैं। परन्तु जयन्त के पाप का हरण न कर सकी। उसे वैतरणीरूप दिखायी पड़ी। वहाँ से भी वह भागा।

सम्पूर्ण जगत् उसे अग्नि से अधिक दाहक हो गया। कही वह बैठ नही पाता : राम विमुख थल नरक न लहही। प्रभु के सम्मुख होने से अग्नि भी शीतल हो जाती है। यथा : गरल सुधा रिपु करै मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई। गरुड़ सुमेरु रेनु सम ताही। रामकृपा करि चितवा जाही। भाव यह कि जीवन मरण, साध्यासाध्य, लाभ हानि तथा शीतोष्ण की शक्तियाँ सरकार के विमुख सम्मुख होने पर अवलम्बित हैं। स्वतन्त्ररूपेण किसी वस्तु मे नही है। प्रभु के विमुख होने से जयन्त के लिए सब कुछ उलटा हो गया।

नारद देखा बिकल जयंता। लागि दया कोमल चित संता ॥
पठवा तुरत राम पहिं ताही। कहेसि पुकार प्रनत हित पाही ॥५॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : नारदजी ने जयन्त को विकल देखा। सन्त का चित्त कोमल होता है। सो दया आगयी। तुरन्त उसे रामजी के पास भेजा। उसने पुकारकर कहा कि हे प्रणत के हित करनेवाले! रक्षा कीजिये।

व्याख्या : नारदजी ने जयन्त को देखा। पर वह इतना विकल था कि उसने नारदजी को नही देखा। सन्तो मे यही विशेषता है कि ये राम विमुख पर भी दया करते हैं। इसीलिए कहा गया है : *बिधि हरिहर कबि कोबिद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी।* जयन्त : कहने का भाव यह कि इन्द्र और इन्द्राणी से लालित पालित इसे मालूम भी नही था कि विकलता किसे कहते हैं। दूसरा भाव यह कि इस समय अपने असली रूप में हैं। काक रूप मे नही हैं। सन्त हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह पर कहै न जाना। निज परिताप द्रवै नवनीता। पर दुख द्रवहिं सत सुपुनीता। जिस पर पिता ने दया न की, पितामह ने न की, अवढरदानी शङ्कर ने न की। उस पर सन्त की दया हो गयी और वह दया अमोघ है।

सन्त लोग ऐसी युक्ति बतलाते हैं कि तुरन्त कार्यसिद्धि हो। नारदजी बोले कि शरण के लिए क्यो व्यर्थ अन्य स्थानो मे टक्कर मारता है। तू स्वय रामजी के शरण मे चला जा। मन्त्र और विधि बतला दी। मन्त्र 'प्रणत हित पाही। विधि : कहेसि पुकारि। पुकारकर कहने का भाव यह कि मद, मोह, कपट को अवसर न मिले। मद मोह कपट छलवाले पुकारकर शरण नही जा सकते।

**आतुर सभय गहेसि पद जाई। त्राहि त्राहि दयाल रघुराई॥**
**अतुलित बल अतुलित प्रभुताई। मै मतिमंद जान नहि पाई॥६॥**

अर्थ : आतुर और सभीत होकर उसने चरण पकड लिये और कहा हे दयाल! हे रघुराई! रक्षा कीजिये, रक्षा कीजिये। आप के बेतौल बल और प्रभुता को मैं मतिमन्द जान न सका।

व्याख्या : अति विकल था। इसलिए उसे आतुर कहा। विकलता का कारण भय था। *इसलिए सभय कहा अथवा चरण ग्रहण के लिए आतुर था।* शरण आने मे तीन बातो की आवश्यकता है १. भयभीत होना २ शरण ताककर आना ३ मद मोह कपट छलादि का त्याग। यथा : जौ नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही। तजि मद मोह कपट छल नाना। करौं सद्य तेहि साधु समाना। तीनो बातें जयन्त मे दिखलाया। सभय : शब्द से भयभीत होना कहा। आतुर शब्द से शरण ताकना कहा। पाहि पाहि की पुकार से : मद मोह कपट छल त्याग कहा। अथवा सभय से : मनसा। गहेसि पद जाई से : कर्मणा और त्राहि त्राहि दयाल रघुराई : वाचा शरण ग्रहण कहा।

सरकार के सीक धनुष सायक मे इतना सामर्थ्य है कि ब्रह्म रुद्र भी उससे रक्षा नही कर सकते। इससे अतुलित बल कहा और : काहू बैठन कहा न ओही। इससे, अतुलित प्रभुताई कहा। अब परीक्षा हो चुकी। देख लिया। सब देवताओ ने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



समझा मैं न समझ सका। अतः मैं मतिमन्द हूँ। सीताजी को पुष्प से शृङ्गारित करते देखकर विलासी समझ लिया था।

निज कृत कर्म जनित फल पाएउ। अब प्रभु पाहि सरन तकि आएउ॥
सुनि कृपाल अति आरत बानी। एक नयन करि तजा भवानी॥७॥

अर्थ : अपने किये हुए कर्म का फल पा चुका। हे प्रभो ! अब रक्षा कीजिये। मैं शरण ताककर आया हूँ। हे भवानी ! कृपालु रामजी ने अत्यन्त आर्तवाणी सुनकर उसकी एक आँख फोड़कर छोड़ दिया।

व्याख्या : जयन्त कहता है : राम बिमुख थल नरक न लहही। यह बात ठीक है। संसार मे मुझे कही त्राण नही है। यही मेरे किये हुए कर्म का फल है। जब फल पा चुका तब शरण के उपदेष्टा गुरु मिल गये। मैं अनन्य शरण हूँ। अनन्यता द्योतित करने के लिए कवि ने शरण का ताकना कहा। यथा : सब ताकेसि रघुनायक सरना। आवै समय सरन तकि मोही। भाव यह कि आप ही रक्षा करें तो होय। नही तो मै मरा।

सासति करि पुनि करहिं पसाऊ। नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ। कृपाल हैं। उसका वध नही चाहा। इसलिए बाण ने उसे मारा नही केवल उसके पीछे लगा हुआ उसे डराता गया। अब आर्तवाणी सुना। इसलिए काना करके छोड़ दिया। ब्रह्मास्त्र अमोघ है। अप्रतिक्रिय है। अत· वह खाली जा नही सकता। उसकी मर्यादा भी रखनी है। एक नेत्र के नष्ट होने से भी काम नही रुकता। अतः उस अस्त्र को एक नेत्र पर ही गिराया। सरकार एक बाण सन्धान कर लेते हैं तो फिर नही लौटाते। यहाँ तो बाण चल गया था। अतः बाण की मर्यादा रक्षा के लिए जयन्त को एक नेत्र देना पड़ा। अथवा अपना अपराध क्षमा कर दिया। पर भक्त का अपराध अक्षम्य है। अतः एक नयन करके ही प्राण छोड दिया। प्रभु नेत्र की भाँति जानकीजी तथा लक्ष्मणजी की रक्षा करते है। यथा : जोगवहिं प्रभु सिय लखनहिं कैसे। पलक बिलोचन गोलक जैसे। अतः जानकीजी पर प्रहार करनेवाले के नेत्र पर प्रहार न्याय था।

दो. कीन्ह मोह बस द्रोह, जद्यपि तेहि कर बध उचित।
प्रभु छाडेउ करि छोह, को कृपाल रघुबीर सम॥२॥

अर्थ : उसने मोहवश द्रोह किया था। उसका तो वध ही दण्ड था। पर प्रभु ने छोह करके छोड़ दिया। रघुबीर के समान कृपाल कौन है ?

व्याख्या : रामजी का बल जानने के लिए सीताजी पर चोट करना अन्याय की पराकाष्ठा है। द्रोह का कोई कारण नही था। मोहवश द्रोह करनेवाले का दण्ड ही वध है। शरण आने से छोह किया प्राण छोड़ दिया। ऐसे द्रोही पर कृपा करना रघुवीर का ही काम है। अत. गोस्वामीजी आक्षेपार्थ प्रश्न करते है : को कृपाल रघुबीर सम ? अर्थात् कोई नही।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रघुपति चित्रकूट बसि नाना । चरित किए श्रुति सुधा समाना ॥
बहुरि राम अस मन अनुमाना । होइहि भीर सबहि मोहि जाना ॥१॥

## २६. प्रभु अत्रि भेंट प्रसंग

अर्थ : रघुपति ने चित्रकूट में बसकर श्रवणामृत चरित्र किये। फिर रामजी ने यह अनुमान किया कि सब लोग मुझे जान गये। अब : भीड़ होगी।

व्याख्या : वाल्मीकिजी ने कहा था : चित्रकूट गिरि करहु निवासू। जहँ तुम्हार सब भाँति सुपासू। उसी का साफल्य दिखलाते हैं। सब भाँति सुपास दिखलाने के लिए शृङ्गार रस का वर्णन किया। केवल पुष्प शृङ्गार ही नही नाना प्रकार के चरित्र किये। जिस भाँति राधानाथ का विहार स्थल वृन्दावन है उसी भाँति सीतानाथ का विहार स्थल प्रमोदवन प्रसिद्ध है। चरित्र मे शृङ्गार रस के योग से माधुर्यातिशय हो गया। इसलिए : श्रुति सुधा समाना या अति सुधा समाना कहते हैं। अथवा अलौकिक रति ही वेदों का सार है। इसलिए : श्रुतिसुधा समाना कहा।

सरकार ने निषादराज को यमुनातीर से ही विदा कर दिया, जिसमें सबको निवासस्थल का पता न चले। सरकार अवध निवासियों के प्रेम को जानते हैं। यथा : जेहि राखें रहु घर रखवारी। सो जानै जनु गरदन मारी। सब रामजी का दर्शन चाहते हैं। घर की रखवारी के लिए रहना नहीं चाहते। अब तो भरतजी समाज के साथ निवासस्थल देख गये। अब तो अयोध्या भर को सरकार के निवास स्थान का पता चल गया। अयोध्या से बराबर आना जाना लगा रहेगा। भीड़ बनी ही रहेगी। विशेष रूप से घर से उदासीन रहने का वरदान महाराज से माँगा गया है। यथा : तापस वेष बिशेष उदासी। चौदह बरिस राम बनवासी। अतः श्रीरामजी ने निवास-स्थल बदल देने का निश्चय किया।

सकल मुनिन्ह सन बिदा कराई। सीता सहित चले द्वौ भाई ॥
अत्रि के आश्रम जब प्रभु गएऊ। सुनत महा मुनि हरषित भएऊ ॥२॥

अर्थ : सब मुनियों से विदा लेकर सीता सहित दोनों भाई चले। जब प्रभु अत्रिजी के आश्रम पर पहुँचे तो सुनते ही महामुनिजी प्रसन्न हो उठे।

व्याख्या : वाल्मीकिजी की आज्ञा लेकर तो चित्रकूट आये थे। अब चलने के समय सब मुनियो से विदा लेकर चलते हैं। राजधर्म दिखला रहे हैं कि राजा सब कार्य ब्राह्मणों की आज्ञा से करें। शासनशक्ति सदा ज्ञानशक्ति के सामने अब नतमस्तक हो। यहाँ तो सब मुनियो की तपस्या सफल करने आये थे। यथा : चलहु सफल श्रम सबकर करहू। अतः सबसे विदा लेना प्राप्त है। एहि बिधि सीय सहित दोउ भाई। बसहिं बिपिन सुरमुनि सुखदाई। अतः अब चलने के समय कहते हैं : सीता सहित चले द्वौ भाई। यहाँ : सुरपति सुत करणीवाला प्रसङ्ग समाप्त हुआ। अब : प्रभु अरु अत्रि भेंट प्रसङ्ग चला।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चित्रकूटवासी मुनियो मे अत्रिजी प्रधान हैं। यथा : अत्रि आदि मुनिवर बहु बसही। अथवा : मुनि नायक जहँ आयसु देही। राखहु तीरथ जल थल तेही। अतः सब मुनियोंसे विदा ले लेने पर भी इनसे विदा लेना आवश्यक था। अतः उनके आश्रम पर गये। मुनिजी ने शिष्यो द्वारा प्रभु के आगमन का समाचार सुना। बडे हर्षित हुए : सेवक सदन स्वामि आगमनू। मगल मूल अमगल दमनू।

पुलकित गात अत्रि उठि धाए। देखि रामु आतुर चलि आए॥
करत दडवत मुनि उर लाए। प्रेम वारि द्वौ जन अन्हवाए॥३॥

अर्थ—पुलकित शरीर होकर अत्रिजी उठकर दौड पडे। यह देखकर रामजी आतुरता के साथ चले आये। दण्डवत् करते ही मुनिजी ने हृदय से लगा लिया और प्रेमाश्रु से दोनो को स्नान कराया।

व्याख्या अत्रिजी हर्षित हुए। इसलिए सात्त्विक भाव हुआ। रोमाञ्च हो गया। आश्रम मण्डल मे सरकार का पादार्पण हुआ। आगे से आकर लेना चाहिए। इस शिष्टाचार मे अन्तर न पडने पावे। इसलिए उठि धाए कहा। मुनिजी आतुर हैं। दौडे चले आते हैं। इसलिए रामजी भी आतुरता से चले आये। भगवती साथ मे हैं इसलिए दौडे नही। पर मानसिक अवस्था समान ही है। ये यथा मा प्रपद्यन्ते तास्तथैव भजाम्यहम्। यह नियम है। इस भाँति स्वागत कहा।

अत्रिजी को अतिप्रेम है। इसलिए भलीभाँति दण्डवत् भी नही करने दिया। उठाकर हृदय से लगा लिया। सरकार मर्यादा पालन करते हैं। मुनिजी भी उसका उल्लघन नही कर सकते। पर आनन्दाश्रु की झरी लग गयी। आशीर्वाद तक न दे सके। मानो आनन्दाश्रु से ही स्नान करा रहे हैं। यहाँ षोडशोपचार पूजा होगी। यथा आसन स्वागत पाद्य अर्घ्यमाचमनीयकम्। मधुपर्काचमन स्नान वस्त्र चाभरणानि च। सुगन्ध सुमनो धूप दीप नैवेद्यवन्दनम्।

देखि राम छवि नयन जुडाने। सादर निज आश्रम तब आने॥
करि पूजा कहि बचन सुहाए। दिए मूल फल प्रभु मन भाए॥४॥

अर्थ : श्रीरामजी की छवि देखकर मुनिजी के नेत्र शीतल हो गये। तब वे उनको आदरपूर्वक अपने आश्रम मे ले आये। सुन्दर वचनो को कहकर पूजा की और मूल फल का नैवेद्य लगाया जो प्रभु को बहुत अच्छे लगे।

व्याख्या . घनश्याम राम के दर्शन से आँखें शीतल हुई। मुनिजी दौडकर आश्रम के बाहर ही सरकार से मिले थे। अत आदर के साथ लिवा ले गये। रामायण मे सभी स्थलो पर जिस भाग्यवान् को दोनो भाइयो का दर्शन हुआ उसने पहिले तो दोनो भाइयो को देखकर आनन्द पाया। पर पीछे से आँखें प्रभु मे ही बँध गयी। यथा . पहिले : दीन्ह असीस देखि भल जोटा। पर पीछे से : रामहि चितइ रहे भरि लोचन। रूप अपार मार मद मोचन। इत्यादि।

शेष पूजा, आसन, पाद्य, अर्घ्य, आचमनीय मधुपर्क, आचमन, वस्त्र, आभरण,

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



गन्ध, पुष्प, धूप, दीप से तथा मेरा बडा भाग्य है, मैं कृतकृत्य हुआ इत्यादि वचन कहकर किया। अथवा सुहाये वचन वेद वाक्यो से पूजन किया। अन्त मे मूल फल का नैवेद्य लगाया। भक्ति से अर्पण किये गये। अत मनभायें लिखते हैं। यथा • पत्र पुष्प फल तोय यो मे भक्त्या प्रयच्छति। तदह भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मन। गी

दो प्रभु आसन आसीन, भरि लोचन सोभा निरखि।
मुनिवर परम प्रवीन, जोरि पानि अस्तुति करत ॥३॥

अर्थ प्रभु आसन पर विराजमान हैं। नेत्र भरकर उनकी शोभा देख करके परम प्रवीण मुनिश्रेष्ठ हाथ जोडकर स्तुति करने लगे।

व्याख्या जब से सरकार आसन पर बैठे हैं तब से मुनि पूजाम लगे हैं। पूजा करते हुए भी शोभा देखते जा रहे हैं। परन्तु कृत्य म लगे रहने से आँखभर देख न सके। अत आसन पर बैठी हुई पूजित मूर्त्ति की शोभा आँख भरकर पूजन के बाद देखा। मुनिजी परम प्रवीण हैं। पूजा के बाद स्तुति भी होनी चाहिए। अत हाथ जोडकर स्तुति करते हैं। अथवा या लोकद्वयसाधनी चतुरता सा चातुरी चातुरी। इसलिए ऐसी स्तुति करते हैं जिससे दोनो लोक सधे। क्योकि मुनिवर परम प्रवीण हैं। यह गुणग्राम स्तुति नवाँ अश्लेषा नक्षत्र है। इसकी फल स्तुति प्रियपालक परलोक लोक के है।

नमामि भक्तवत्सल। कृपालु सील कोमल ॥
भजामि ते पदाम्बुज। अकामिना स्वधामद ॥१॥

अर्थ हे भक्तवत्सल ! हे कृपालु, हे कोमल स्वभाववाले ! मैं आपको नमस्कार करता हूँ। निष्काम पुरुषो को अपना परम धाम देनेवाले आपके चरणो को मैं भजता हूँ।

व्याख्या विश्ववास भगवान् भक्त पर कृपा करके प्रकट हुए हैं। इसलिए भक्तवत्सल कृपालु कहा। यथा भक्तबछल प्रभु कृपा निधाना। विस्ववास प्रगटे भगवाना। केवल प्रकट ही नही होते। भक्त पर बडा छोह करते हैं। जेहि जन पर ममता अति छोहू। जेहि करुणा करि कीन्ह न कोहू। गई बहोरि गरीब नेवाजू। सरल सबल साहिब रघुराजू। कभी भक्त पर क्रोध नही करते। उसकी बिगडी सुधारा करते हैं। अत कोमल सील कहते हैं। यथा अति दयालु गुरु स्वल्प न क्रोधा। पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा। एक सूल माहि बिसर न काऊ। गुरु कर कोमल सील सुभाऊ। इससे भजनीय भगवान् का स्वभाव कहा।

अब सामर्थ्य कहते हैं सरकार के चरण कमल कामना रहित जनो को स्वधाम देते हैं। यथा तन तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम पूरन कामा। ऐसे चरण कमलो को मैं भजता हूँ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



निकाम स्याम सुदर। भवाम्बुनाथ मदर ॥
प्रफुल्ल कज लोचन। मदादि दोष मोचन ॥२॥

अर्थ आप अत्यन्त श्याम सुन्दर ससाररूपी समुद्र के मन्थन के लिए मन्दराचल रूप, फूले हुए कमल के समान नेत्रवाल और मद आदि दोषों को नष्ट करनेवाले हैं।

व्याख्या स्याम सरीर सुभाय सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन। अत सरकार के श्याम शरीर को अति सुन्दर कहा। शरीर की सुन्दरता बन्ध का कारण होती है। उसी सुन्दरता म बँधा हुआ ससार दुख पाता है। पर यह सुन्दरता भवसागर को अभिभूत करनेवाली है। अत उसे मन्दर रूप कहते हैं।

प्रफुल्ल कञ्ज की उपमा देकर नेत्रो की सुन्दरता कहा। मदादि दोष मोचन कहकर उसका प्रभाव कहा। उसी नेत्र मे कृपावलोकनि बसती है। क्रोध मनोज मोह मद माया। छूटै सकल राम की दाया। इसीलिए श्रीनारदजी ने विनय किया मामवलोकय पकज लोचन।

प्रलब बाहु विक्रम। प्रभोऽप्रमेय वैभव ॥
निषग चाप सायक। धर त्रिलोक नायक ॥३॥

अर्थ हे प्रभो! आप की लम्बी भुजा का पराक्रम और आपका ऐश्वर्य अप्रमेय है। आप तरकस और धनुष धारण करनेवाल। तीनो लोको के स्वामी हैं।

व्याख्या कर्तुंमकर्तुंमन्यथा कर्तुं समर्थ प्रभु। अत प्रभु सम्बोधन दिया। आजानुभुज हैं। अत प्रलम्ब बाहु कहा। उसके बल की सीमा नही। वही पृथ्वी का भार हरण करने मे समथ है। यथा भुजबल बिपुल भार महि खडित। अथवा सुमिरत श्री रघुबीर की बाहे। होत सुगम भव उदधि अगम अति कोउ लाँघत कोउ उतरत थाहें। सीतल सुखद छाँह जेहिकर की मेटत पापताप माया। निसि बासर तेहिकर सरोज की चाहत तुलसीदास छाया। अप्रमेय वैभव यथा जो नहि देखा नहि सुना जो मनहू न समाय। सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवनि बिधि जाय। जो कुछ भुसुण्डिजी ने देखा वह प्रभु का वैभव नहीं था।

सरकार जो धनुष बाण धारण किये रहते है। जो अखण्ड दण्डायमान काल तथा खण्ड काल के प्रतीक हैं। निषङ्ग खण्ड कालो का कोष है। तथा लव निमेष परमान जुग वर्ष कल्पसर चड। भजसि न मन तेहि रामकहँ काल जासु कोदड। अत त्रिलोक के नायक हैं। यहाँ तक नित्य दिव्य मूर्ति का वर्णन है।

दिनेस वस मडन। महेस चाप खडन ॥
मुनीद्र सत रजन। सुरारि वृद भजन ॥४॥

अर्थ आप सूर्यकुल के भूषण हैं। शिवजी के धनुष के तोडनेवाल हैं। मुनीश और सन्तो को सुख देनेवाल और देवताओ के शत्रु समूह के नाश करनेवाल हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : दिनेशवश मण्डन कहकर सूर्यवंश मे अवतार कहा। महेशचाप खण्डन कहकर सीता स्वयम्वर कहा। इस भाँति बालकाण्ड की कथा सूत्र रूप मे कहा। जन्म से लेकर विवाह तक की कथा इसी का विस्तार है।

सरकार मुनिगण के मिलन मे सब प्रकार से अपना हित मानते हैं। वनवास स्वीकार के समय श्रीमुख से कहते हैं · मुनिगन मिलन बिसेष बन सबहि भाँति हित मोर। और वन मे जाकर मुनियो के श्रम को सफल करते हैं। यथा अत्रि आदि मुनिवर बहु बसही। करहि जोग जप तप तन कसही। चलहु सफल श्रम सबकर करहू। राम देहु गौरव गिरि बरहू। मुनियो का अस्थि समूह देखकर पृथ्वी को निशिचर हीन करने की प्रतिज्ञा करते है। यथा निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुबीर नयन जल छाए। निसिचर हीन करहुँ महि भुज उठाई पन कीन्ह। सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह। तब से निशिचर हीन महि करने का उद्योग प्रारम्भ हुआ। अगस्त्यजी से मन्त्र पूछा अब सो मन्त्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारौं मुनि द्रोही। मुनि ने पञ्चवटी मे निवास का मन्त्र दिया। वही सूर्पणखा की नाक कटी और राक्षसो से वैर बँधा। इसीलिए : मुनीद्र सतरजन कह रहे हैं।

उसी कारण से खरदूषण से युद्ध हुआ। सीताजी हरी गयी। उन्हे खोजते समय सुग्रीव मिताई हुई। लङ्कापर चढाई हुई और निशिचर वश का विनाश हुआ। इसलिए · सुरारि वृद भजन कहा एव अयोध्याकाण्ड, अरण्य, सुन्दर, किष्किन्धा और लङ्का की कथा सूत्र रूप से कही।

मनोज वैरि वदित। अजादि देव सेवित॥
विशुद्ध बोध विग्रह। समस्त दूषणापह॥५॥

अर्थ : आप कामारि शिवजी द्वारा वन्दित तथा ब्रह्मादि देव सेवित हैं। आप की मूर्ति विशुद्ध बोधमय है और आप सब दोषो के नष्ट करनेवाले।

व्याख्या : राक्षसो के वध के बाद लङ्का मे ही शिवजी आये। ब्रह्मादि देवगण आये और प्रभु की स्तुति की। अत. कामारि वन्दित तथा ब्रह्मादि देवो से सेवित होना कह रहे हैं : कोसलेन्द्र पदकञ्जमञ्जुलौ कोमलावजमहेश वन्दितौ। अथवा : मन जात किरात निपात किये। मृगलोग कुभोग सरे न हिये। हतिनाथ अनाथन्हि पाहि हरे। बिषया बन पाँवर भूलि परे। अर्थात् सरकार की सेवा से कामजय होता है और देवो की सेवा से देवत्व प्राप्ति होती है। यह सूचित किया।

लीलाविग्रह भी पाञ्चभौतिक नही है। यथा . चिदानद मय देह तुम्हारी। बिगत बिकार जान अधिकारी। माया का परदा कुछ काल के लिए कुछ हट जाता है और विशुद्ध बोधमय विग्रह प्रकट हो जाता है। यही प्रभु का अवतार है। यथा : भये प्रगट कृपाला। उस लीला विग्रह के सम्मुख होते ही सब दूषण नष्ट हो जाते हैं। यथा सम्मुख होइ जीव मोहि जबही। जन्म कोटि अघ नासहि तबही। इससे शिव ब्रह्मादि से सेवित और वन्दित होने का कारण भी कहा।



(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नमामि इंदिरापति । सुखाकर सता गति ॥
भजे सशक्ति सानुज । शचीपति प्रियानुज ॥६॥

अर्थ मैं लक्ष्मीपति को नमस्कार करता हूँ। जो सुखो की खानि तथा सत्य पुरुषो की गति हैं। मैं शचीपति के छोटे भाई को शक्ति और अनुज के साथ भजता हूँ।

व्याख्या इन्दिरापति कहकर रामजी का अयोध्या मे राज्याभिषेक कहा। यथा राम बाम दिसि सोहति रमारूप गुन खानि। देखि मातु सब हरखी जनम सुफल निज जानि। सुखाकर से रामराज्य की सुख सम्पदा कहा। यथा रामराज्य कर सुख सपदा। बरनि न सकहि फनीस सारदा। सता गतिम् कहकर सन्तो का दर्शन के लिए आगमन कहा। यथा नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा। दिन प्रति सकल अयोध्या आवहिं। देखि नगर बिराग बिसरावहिं।

सीताजी शक्ति हैं। सरकार शक्तिमान् हैं। शक्ति और शक्तिमान् मे भेद नही है। सानुज से भरत लक्ष्मण और शत्रुघ्नरूपी अशो का ग्रहण है। सरकार अशी हैं। यथा असन्ह सहित देह धरि ताता शचीपति के अनुज तो बहुत से देवता हैं। पर प्रिय अनुज तो उपेन्द्र वामनरूप से सरकार ही हैं। जिन्होने बलि को छल कर त्रिलोकी इन्द्र को दी। यहाँ भी माया मानुष रूप धारण करके रावण से त्रिलोकी को छीनकर इन्द्र को ही लौटाने क फेर मे हैं। अत वामनावतार का उल्लख करते हैं। सरकार गुणातीत अरु भोग पुरन्दर है। अत शचीपति प्रियानुज कहते है।

त्वदंघ्रिमूल ये नरा । भजति हीन मत्सरा ॥
पतति नो भवार्णवे । वितर्क वीचि सकुले ॥७॥

अर्थ जो मनुष्य मत्सर रहित होकर आपके पैर के तलवे का भजन करते हैं वे वितर्करूपी तरङ्गो से परे भवसागर मे नही पडते।

व्याख्या यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावताम्। सरकार के चरण ही भवसागर के लिए नौकारूप हैं। नौका का आश्रय ग्रहण करनेवाला पार चला जाता है और जल से उसका स्पर्श नही होता। इसी भाँति सरकार के चरणतल के भजन करनेवाले का सस्पर्श ससार म रखते हुए भी ससार से लेप नही रहता। वे ससार म गिरते नही। शर्त यही है कि उनमे मत्सरता न हो। मत्सर मान मद चोर हैं। ये भक्तिमणि को चुरा ले जाते हैं। अत शुद्ध हृदय से भजन होना चाहिए। सागर मे नित्य नयी तरङ्गें उठा करती है। कभी वह क्षीणकल्लोल नही होता। उसी भाँति भवसागर मे तर्क वितर्क की लहरें उठा करती हैं। इन्ही के थपेडो से तिरने म असमर्थ होकर प्राणी डूब जाता है। यथा खेद खिन्न मन तर्क बढाई। भयउँ मोहबस तुम्हरिहि नाई।

तिरनेवाली भी दो प्रकार के होते हैं। एक ऐसे हैं जो भक्ति ही चाहते हैं

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मुक्ति नहीं चाहते। यथा : राउर बदि भलभव दुख दाहू। प्रभु बिनु बादि परम पद लाहू। ऐसे भक्त भी वितर्क वीचि सङ्कुल भवसागर में नही पड़ते। सरकार के चरणों का शरण ग्रहण किये हुए जहाज पर सैर करते हुए फिरते हैं और दूसरों को भी कृतार्थ करते हैं और एक ऐसे हैं जो भजन से मुक्ति चाहते हैं। भवसागर से पार चले जाते हैं और फिर उन्हें जहाज की भी आवश्यकता नही रह जाती। ऐसे दोनों प्रकार के भक्तों को संसार सागर बाधा नही कर सकता। यहाँ तक भक्ति कहा।

विविक्तवासिनः सदा। भजंति मुक्तये मुदा॥
निरस्य इन्द्रियादिकं। प्रयान्ति ते गतिं स्वकं॥८॥

अर्थ : एकान्तवासी सदा प्रसन्नतापूर्वक मुक्ति के लिए इन्द्रियो का निग्रह करके भजन करते हैं। वे अपने स्वरूप को प्राप्त होते हैं।

व्याख्या : इनमें से मुक्ति चाहनेवाले : मुमुक्षु जनसंबाध वर्जित स्थान मे रहकर आनन्द से भजन करते है। देहेन्द्रियादिको को अपने से पृथक् मानते हुए अन्वय व्यतिरेक द्वारा स्वात्मगति अर्थात् कैवल्य को प्राप्त होते हैं। यथा : राम भजत सोई मुकुति गोसाईं। अन इच्छित आवइ बरिआईं। पहिले नमामि भक्त वत्सलं : कहकर भजनीय का स्वभाव कहा। अकामिनां स्वधामद : कहकर भजनीय का सामर्थ्य कहा। निकाम श्यामसुन्दरं : कहकर स्वरूप कहा। दिनेश वशमंडनं आदि कहकर चरित्र कहा। त्वदंघ्रिमूल ये नराः आदि कहकर भक्ति और मुक्ति के लिए भजन करने का उपदेश देते हैं।

तमेकमद्भुतं प्रभुं। निरीहमीश्वरं विभुं॥
जगद्गुरुं च शाश्वतं। तुरीयमेव केवलं॥९॥

अर्थ : उसी एक, अद्भुत प्रभु, इच्छारहित, ईश्वर, व्यापक, जगद्गुरु, नित्य, तुरीय और केवल को।

व्याख्या : आप निर्गुण रूप में जगत् से विलक्षण हैं। अतः अद्भुत हैं तथा सगुण रूप से भी अद्भुत है। यथा : जो नहिं देखा नहिं सुना जो भजहू न सभाय। सो अब अद्भुत देखेउँ बरनि कवन विधि जाय। तथा प्रभु होने पर भी निरीह हैं और ईश्वर होकर विभु है। अतः सभी प्रकार से अद्भुत है। आश्चर्यवत् पश्यति कश्चिदेनमाश्चर्यवद्वदति तथैव चान्यः। आश्चर्यवच्चैनमन्यः शृणोति श्रुत्वाप्येनं वेद न चैव कश्चित्।

स सर्वेषामपि गुरुः कालेनानवच्छेदात्। इस योगसूत्र का ठीक उल्था है : जगद्गुरु च शाश्वतं। यह अनन्तकाल से सबका गुरु है। ब्रह्मदेव को भी जिसने वेद दिया। आज भी गुरुमुख से वही उपदेश करता है। नही तो एक मनुष्य दूसरे का गुरु नही हो सकता। मनुष्य विनाशी है। ईश्वर अविनाशी हैं। वे ही अनादि गुरु हैं। वे ही जिसके मुख द्वारा उपदेश करते हैं उसी को ससार गुरु मानता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सो अनादि गुरु आप ही है। जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति अवस्था से परे होने से आप तुरीय कहे जाते है। तीनो अवस्था की भी अपेक्षा न करके आप केवल तुरीय अर्थात् तुरीयातीत हैं।

भजामि भाववल्लभं। कुयोगिनां सुदुर्लभं॥
स्वभक्त कल्प पादपं। समं सुसेव्यमन्वहं॥१०॥

अर्थ : जो भाव प्रिय, कुयोगियो के लिए अत्यन्त दुर्लभ, अपने भक्तो के लिए कल्पवृक्ष सम और सदा सुखपूर्वक सेवन करने योग्य हैं। ऐसे आपको : मै निरन्तर भजता हूँ।

व्याख्या : ऐसे तुरीय का भजन जाग्रदावस्था मे कैसे सम्भव है। इस पर कहते है कि भाव आपको प्यारा है। जिस भाव से जो भजता है। उसके लिए वैसे ही हो जाते है। यथा : जाकी माया बस बिरंचि सिव नाचत पार न पायो। करतल ताल बजाइ ग्वाल जुवतिन्ह सोइ नाच नचायो इत्यादि। जो भगवद्भक्ति हीन योग है उसी को कुयोग कहते हैं। यथा : योग कुयोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहिं रामप्रेम परधानू। कुयोगियो के लिए आप इसलिए दुर्लभ हैं कि वे मोह वृक्ष उखाड नही सकते। यथा पुरुष कुयोगी सुनु उरगारी। मोह बिटप नहिं सकें उपारी।

भक्तयोगी के लिए आप कल्पवृक्ष हैं। यथा : देव देवतरु सरिस सुभाऊ। सनमुख बिमुख न काहुहि काऊ। जाइ निकट पहिचानि तरु छाँह समन सब सोच। माँगे अभिमत पाइ जग राव रंक भल पोच। आप वैषम्यरहित हैं। यथा : यद्यपि सम नहिं राग न रोषू। आप सदा सुसेव्य हैं। यथा बलि पूजा चाहत नही चाहत एक प्रीति।

अनूप रूप भूपतिं। नतोहमुर्विजा पतिं॥
प्रसीद मे नमामि ते। पदाब्ज भक्ति देहि मे॥११॥

अर्थ : हे अनूप रूप पृथ्वीपति ! हे धरणीसुता नाथ ! मै आपको प्रणाम करता हूँ। मुझ पर प्रसन्न होइये। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। मुझे अपने चरणो की भक्ति दीजिये।

व्याख्या : आप सगुण रूप भी है और निर्गुण रूप भी हैं। अथवा आप मे अनुपम सौन्दर्य है। इसलिए अनूप रूप हैं। आप पृथ्वीपति भी है और पृथ्वी की कन्या सीता के भी पति हैं। पति शब्द पा रक्षणे धातु से बना है। सो रक्षा करनेवाले को पति कहते है और सप्तपदी के बाद वर को पति सञ्ज्ञा होती है। यहाँ पति शब्द दोनो अर्थ मे आया है। धरणी की आप रक्षा करनेवाले हैं और धरणी सुता के आप स्वामी हैं।

जो एक बार प्रणाम करता है उसे आप अपना लेते है। मैने तो तीन बार प्रणाम किया है। यथा : १. नमामि भक्तवत्सलं २. नमामि इन्दिरापतिं और

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



३. प्रसीद मे नमामि ते। अतः भक्ति माँगते हैं। यह स्तुति : भक्तवत्सलं से प्रारम्भ होकर : भक्ति देहि मे से समाप्त होती है। इसका आरम्भ और पर्यवसान दोनों भक्ति में है। आदि अन्त के मिलने से चक्राकार आकृति हो जाती है। अतः इसका वर्णन अश्लेषा नक्षत्र की भाँति चक्राकार है और भजन ही इसमें तारे की भाँति पाँच स्थानों में चमकता है। यथा : १ भजामि ते पदाम्बुजं २. भजे सशक्ति सानुजं ३. भजति हीनमत्सराः ४ भजंति मुक्तये मुदा ५. भजामि भाववल्लभं।

पठंति ये स्तवं इदं। नरादरेण ते पदं॥
व्रजंति नात्र संशयं। त्वदीय भक्तिसंयुताः॥१२॥

अर्थ : जो इस स्तुति को आदर से पढ़ते हैं वे आपकी भक्ति संयुक्त होकर आपके पद को प्राप्त होते हैं।

व्याख्या : फलश्रुति कहते हैं : प्रिय पालक परलोक लोक के। २८ गुणग्रामों की अट्ठाईस फलश्रुतियाँ बालकाण्ड के आरम्भ में ही कही गयी हैं। यह नवाँ गुणग्राम है। गुणग्राम को ही स्तुति कहते हैं। भक्तिरूपी पूर्णिमा में ये नक्षत्रों की भाँति सुशोभित हैं। नवी नक्षत्र अश्लेषा है। उसका आकार चक्र सा है और उसमें पाँच तारे चमकते हैं। ये बातें ऊपर दिखला दी गयी हैं। फलश्रुतियाँ भी ठीक इसी क्रम से हैं। यथा : जल मंगल गुनग्राम राम के। दानि सकल धन धर्म धाम के। इत्यादि। यहाँ : ते पद व्रजंति से परलोक का पालक कहा और त्वदीय भक्तिसंयुता से इस लोक का पालक कहा। यथा : सोह सैल गिरिजा गृह आये। जिमि जन राम भगति के पाये।

दो. बिनती करि मुनि नाइ सिरु, कह कर जोरि बहोरि।
चरन सरोरुह नाथ जनि, कबहुँ तजै मति मोरि॥४॥

अर्थ : विनती करके मुनिजी ने सिर नवाया और फिर हाथ जोड़कर बोले कि चरण कमल को हे नाथ! कभी मेरी बुद्धि परित्याग न करे।

व्याख्या : जोरि पाणि अस्तुति करत : से उपक्रम और बिनती करि मुनि सिर : से उपसंहार है। पहिले हाथ जोड़कर स्तुति की थी। अब हाथ जोड़कर वरदान माँगते हैं कि आप सबके हृदय के प्रेरक हैं। मेरी मति को ऐसी प्रेरणा कीजिये कि इन चरण कमलों को कभी न छोड़े। इस समय तो मेरी बुद्धि इन चरणों में लगी है। क्योंकि साक्षात् दर्शन हो रहा है। पर आपके चले जाने पर समय पाकर कहीं मेरी बुद्धि बहिर्मुख न हो जाय। क्योंकि चरणों के छोड़ने पर फिर कहीं ठिकाना नहीं है। यथा : श्रीरघुवीर चरन चितन तजि नाहि न ठौर कहूँ। मुनिजी योग जप और तप से शरीर को कस रहे थे। यथा : करहि जोग जप तप तन कसही। आज उस परिश्रम के फल की प्राप्ति का अवसर आया है। अतः मुनिजी बुद्धि की प्रेरणा का वरदान माँगकर गायत्री जप के लक्ष्य की ही सिद्धि चाह रहे हैं। गायत्री की उपासना में बुद्धि की प्रेरणा ही माँगी जाती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सरकार जिससे बड़ा का नाता मान लेते हैं उसके वरदान माँगने पर एवमस्तु नहीं कहते। अभीष्ट प्रदान कर देते हैं। तत्पश्चात् मुनिजी के कहने पर सीताजी भगवती अनुसूया के पास गयी।

अनसूया के पद गहि सीता। मिली बहोरि सुसील विनीता॥
रिपिपतिनी मन सुख अधिकाई। आसिप देइ निकट बैठाई॥१॥

अर्थ : फिर सुशील और विनीत सीताजी अनसूया के चरणों को पकड़कर उनसे मिली। ऋषिपत्नी के मन में बड़ा सुख हुआ। उन्होंने आशीर्वाद देकर निकट बिठलाया।

व्याख्या : न गुणान् गुणिनो हन्ति स्तौति चान्यगुणानपि। न हसेत् परदोषांश्च सानसूया प्रकीर्त्यते। जो गुणी के गुण में दोष नहीं लगाता और दूसरे के गुणों की स्तुति करता है दूसरे के दोषों का उपहास नहीं करता उसे अनसूया कहते हैं। अत्रिजी की पत्नी का जैसा नाम था वैसा ही गुण था। ये पतिव्रताओं की शिरोमणि थीं। इनके राम अत्रिजी ही थे। दूसरे राम को ये नहीं जानती थी। अतः दर्शन के लिए नहीं आयी। ऋषिपत्नी के पास जगदम्बा सीताजी गयीं। बड़ी विनीत हैं। इसलिए जाकर चरण ग्रहण किया। सुशील हैं : इसलिए मिलीं। स्त्रियों के लिए दण्डवत् प्रणाम की विधि नहीं। प्रणाम करके परिष्वङ्ग देने का ही सदाचार है। यथा : करि प्रनाम भेटीं सब सासू।

अनसूयाजी का परिचय देते हुए कवि कहते हैं कि ऋषिजी की पत्नी हैं। आह्लादिनी शक्ति भगवती सीताजी के परिष्वङ्ग से उन्हें बड़ा सुख प्राप्त हुआ। सीताजी ने चरण ग्रहण किया। इसलिए आशीर्वाद दिया . सौभाग्यवती भव। पुत्रवती भव। यही आशीर्वाद स्त्री समाज में आज भी प्रचलित है। सीताजी ने दूर बैठना चाहा तो आदर से उन्हें निकट बिठलाया। मनसा : सुख अधिकाई। वचसा : आसिप देइ और कर्मणा : निकट बैठाई।

दिब्य बसन भूपन पहिराए। जे नित नूतन अमल सुहाए॥
कह रिपिवधू सरस मृदु बानी। नारि धर्म कछु ब्याज बखानी॥२॥

अर्थ : दिव्य कपड़े और गहने पहिनाये। जो सदा नये स्वच्छ और सुन्दर बने रहते थे। फिर ऋषिपत्नी कुछ स्त्रीधर्म के ब्याज से मधुर और कोमल वाणी से बखानकर कहने लगी।

व्याख्या : भगवती अनसूया चन्द्र की माता हैं। चन्द्र से ही क्षत्रियों का प्रधान वंश चला है। सूर्यवंश और चन्द्रवंश में कन्या का लेन देन है। इसलिए अनसूयाजी कुलवृद्धा हैं। अतः उनका प्रीतिदान स्वीकार करना पड़ा। सम्भवतः इसी भय से सीताजी फिर किसी ऋषिपत्नी से नहीं मिलीं। अनसूयाजी तापस वेष में जानकीजी को नहीं देख सकीं। अतः दिव्य वसन भूपण पहिनाया। जिसमें वनवास की अवधि भर काम दे। दिव्य वसन भूषण का प्रभाव कहते हैं कि जो कभी पुराना मैला तथा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विकृत न हो। ऋषिजी ने सरकार का पूजन किया। ऋषिपत्नी जानकी जी का पूजन करती हैं। स्त्रियों का पूजन वस्त्रालङ्कार से ही होता है।

ऋषिजी ने पूजनोत्तर श्रीरामचन्द्र से सोहाए वचन कहे थे। अब ऋषिपत्नी पूजनोपरान्त सरस मृदुवाणी बोली। नारीधर्म के व्याज से सीताजी की स्तुति की तथा ससार को उपदेश दिया। यथा : कहेउँ कथा ससार हित। पातिव्रत्य पुरःसर ही भगवती का वनवास हुआ था। अतः पातिव्रत्य धर्म वर्णन से सरसता कहा। अर्थतः सरस और शब्दतः मधुर।

मातु पिता भ्राता हितकारी। मित प्रद सब सुनु राजकुमारी ॥
अमित दानि भर्ता बैदेही। अधम सो नारि जो सेवन तेही ॥३॥

अर्थ : हे राजकुमारी! सुनो : माता, पिता, भाई सभी हित करनेवाले हैं। परन्तु वे सब एक सीमा तक ही देनेवाले हैं। परन्तु हे जानकी! पति तो असीम देनेवाला है। वह स्त्री अधम है। जो ऐसे पति की सेवा नही करती।

व्याख्या : हितकारियों मे माता प्रथम है। पिता उसके बाद है। भाई का तीसरा नम्बर है। ये सब देनेवाले हैं। पर इनके देने की सीमा है। राजकुमारी सम्बोधन का भाव यह है कि महाराज जनक ने इतना दिया फिर भी दायज की सीमा थी। सर्वस्व न दे सके। यही संसार की रीति है। माता पिता देते हैं और कह देते हैं कि बेटी! इतना सब तुम्हारा है। इसलिए मितदानी हैं।

भर्ता यह नहीं कहता। उसका जो कुछ है सब पर स्त्री का अधिकार है। यथा : प्रिया प्रान सुत सर्बस मोरे। परिजन प्रजा सकल बस तोरे। यह बात भर्ता ही कह सकता है। मित ददाति च पिता मितं भ्राता मित सुत.। अमितस्य च दातार भर्तारं कानुसेवयेत्। अतः भर्ता की सेवा न करनेवाली स्त्री अधम है। तुमने तो पति सेवा के लिए राज्य छोड़ा। तुम उत्तम हो।

धीरजु धर्म मित्र अरु नारी। आपद काल परिखिअहि चारी ॥
बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अति दीना ॥४॥

अर्थ : धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री, इन चारों की परीक्षा आपत्ति के समय होती है। बूढ़ा, रोगी, मूर्ख, दरिद्र, अन्धा, बहरा, क्रोधी और अत्यन्त दीन।

व्याख्या : सम्पत्तिकाल मे धैर्य, धर्म, मित्र और स्त्री ये चारों अनुकूल रहते हैं। विपत्तिकाल ही इनकी कसौटी है। अर्थात् तुम्हारी भाँति परीक्षा में कोई उत्तीर्ण नही हुआ। यथा : तापस बेष जनक सिय देखी। भयउ प्रेमु परितोषु बिसेषी। पुत्रि पवित्र किये कुल दोऊ। सुजस धवल जगु कह सबु कोऊ। जिति सुरसरि कीरति सरि तोरी। गवनु कीन्ह बिधि अंड करोरी। आपत्तिकाल कहकर ऐसा उदाहरण देती हैं जिनसे सुख मिल ही नही सकता।

ये आठ दुःखद होने से अपमान के पात्र हो जाते हैं। १. वृद्ध जो पाँचवी अवस्था अपक्षय को प्राप्त है। २. रोगवश अर्थात् असाध्य रोग से गृहीत कुष्ठी आदि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हैं। ३ बुद्धिविहीन ४ धनहीन ५ चक्षुरिन्द्रियहीन ६ और बहिरा ७ क्रोधी स्वभाव तथा ८ अति दीना स्त्री की प्रतिष्ठा तथा सुख पति से ही है। उसमे यदि ऐसे दोष हो फिर भी पति अपमान की वस्तु नही है।

ऐसेहु पति कर किए अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना ॥
एकै धर्म एक व्रत नेमा। काय बचन मन पति पद प्रेमा ॥५॥

अर्थ : ऐसे पति का भी अपमान करने से स्त्री यमपुर मे अनेक प्रकार के दुख पाती है। मनसा वाचा कर्मणा पति के चरणो मे प्रेम करना। स्त्री के लिए बस एक ही धर्म है एक ही व्रत है और एक ही नियम है।

व्याख्या पति का अपमान नरक मे गिरानेवाला है। चाहे पति उपर्युक्त दोषो से युक्त ही क्यो न हो। उपर्युक्त दोषियो मे पापी को नही गिनाया। पापी जबतक प्रायश्चित्त न कर ले तब तक त्याज्य है। पति के अपमान से यमपुर प्राप्ति और नरक मे घोर दण्ड होता है। जो अपमान के पात्र नही हैं उनके अपमान से नरक होने मे कहना ही क्या है। जिस प्रकार लोकोत्तर सुख प्राप्ति के लिए स्वर्ग है उसी प्रकार लोकोत्तर दुख के लिए नरक है।

अनेक धर्म है। असख्यात व्रत है। बहुत से नियम हैं। परन्तु स्त्री के लिए कोई भी नही है। उसका पति से पृथक् नियम व्रतादि मे अधिकार नही है। पतिपद प्रेम होने से ही उसे सम्पूर्ण धर्म, व्रत और नियम का फल मिल जाता है। स्त्री यदि कोई व्रत या नियम का पालन करना चाहे तो पति की आज्ञा से उसके कल्याण के लिए कर सकती है। प्रेम रहते अनादर नही होता। अत अनादर करते ही स्त्रियाँ पतित हो जाती हैं। किसी प्रकार से प्रेम मे व्यभिचार न होने पावे। अथवा काम से प्रेम धर्म, वचन से प्रेमव्रत, और मन से प्रेम यही स्त्रियो के लिए नियम है।

जग पतिब्रता चारि बिधि अहहीं। बेद पुरान संत सब कहहीं ॥
उत्तम के अस बस मन माँही। सपनेहु आन पुरुष जग नाँही ॥६॥

*अर्थ : संसार मे चार प्रकार की पतिव्रताएँ हैं। वेद पुराण और सब सन्त* ऐसा ही कहते हैं। उत्तम के मन मे ऐसा भाव बसा रहता है कि सपने मे भी जगत् मे दूसरा पुरुष नही है।

व्याख्या पतिव्रता के चार प्रकार के होने मे सबका ऐकमत्य है। अर्थात् यह शिष्टानुगृहीत सिद्धान्त है। स्त्री पुरुष मे भोक्तृ भोग्य दृष्टि स्वभाविकी है। स्वभाविकी प्रवृत्ति के निरोध मे ही शास्त्र की उपयोगिता है। वह निरोध स्त्रियो मे चार प्रकार से सम्भव है। स्वभाविकी प्रवृत्ति का सर्वात्मना निरोध हठात् नही हो सकता। अत उस दृष्टि को सब पर से हटाकर एक मे केन्द्रित करना शास्त्रीया प्रवृत्ति है। अत स्त्री का अपनी भोक्तृ दृष्टि को पाणिगृहीता के ऊपर ही केन्द्रित करना पातिव्रत्य है। उसी का चार प्रकार कहा गया है १ भोक्तृभोग्य दृष्टि कही

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



न होकर केवल पति मे ही होना। २ भोक्तृभोग्य दृष्टि को सब ओर से खीचकर केवल पति मे केन्द्रित करना। ३ भोक्तृभोग्य दृष्टि केन्द्रित नही हो सकी। पर धर्मादि के विचार से इन्द्रियदमन करना। ४ दूसरो के भय आदि से धर्म का निभ जाना।

इनमे प्रथम श्रेणी की स्त्रियाँ उत्तम हैं जो पुरुषरूप से अपने पति को ही जानती हैं। दूसरे के पुरुत्व की भावना ही नही है। यद्यपि स्वप्न मे अपना वश नही है। पर बिना वासना के स्वप्न भी नही होता। अत उन्हे स्वप्न मे भी पर पुरुष मे पुरुत्व की भावना नही होती।

मध्यम परपति देखै कैसे। भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ॥
धर्म विचारि समुझि कुल रहई। सो निकृष्ट त्रिय श्रुति अस कहई ॥७॥

अर्थ मध्यम पराये पति को ऐसे देखती है जैसे वह अपना भाई पिता या पुत्र हो। जो धर्म का विचारकर और अपने कुल की मर्यादा समझकर बची रहती हैं वह निकृष्ट स्त्री है। ऐसा वेद का मत है।

व्याख्या वह स्त्री मध्यम श्रेणी की है जिसे दूसरो म भी पुरुत्व की भावना है पर उन्हे भोग्यदृष्टि से नही देखती। समानवयस्क पर भाई की दृष्टि, वयोवृद्ध पर पिता की दृष्टि, अल्पवयस्क पर पुत्र की दृष्टि रखती है। यहाँ तक मानसिक अपवित्रता को स्थान नही है।

परन्तु जिस स्त्री को अन्य पुरुष के प्रति भोग्यदृष्टि तो हुई पर वह धर्म का विचार करके कुल की मर्यादा पर ध्यान करके व्यभिचार से बच जाती है। उसकी शारीरिक शुद्धता अक्षुण्ण है। मानसिक अशुद्धि भी अधिक नही हुई। अत वह पतिव्रताओ मे निकृष्ट है।

बिनु अवसर भय ते रह जोई। जानेहु अधम नारि जग सोई ॥
पति बचक परपति रति करई। रौरव नरक कल्प सत परई ॥८॥

अर्थ जो अवसर न मिलने से या भय से बच जाती है उसे ससार मे अधम पतिव्रता समझना। पति को ठगकर जो परपति से रति करती हैं वह सौ कल्प तक रौरव नरक मे पडती हैं।

व्याख्या। जिसे कोई विचार नही है। केवल भय से या अवसर न मिलने से पतिव्रता बनी हुई है वह भी शारीरिक शुद्धि के कारण से पतिव्रता ही है। पर उनमे अधम है। क्योकि उसकी रक्षा मे उसका विचार करना नही है। दूसरो का भय कारण है। अत पातिव्रत्य की रक्षा के लिए स्त्रियो पर रोक लगाये गये हैं। जिसमे उनका परलोक और यह लोक बना रहे। स्वार्थान्धता इसमे कारण नही हैं। स्थान नास्ति क्षणो नास्ति नास्ति प्रार्थयिता नर । तेन नारद नारीणा सतीत्वमुपजायते। स्थान नही है। फुरसत नही कोई प्रार्थना करनेवाला नही है। तब जाकर हे नारद स्त्रियो मे सतीत्व उत्पन्न होता है। पातिव्रत्य उत्पन्न होने पर भी कुमारावस्था मे पिता, यौवन मे पति और वृद्धावस्था मे पुत्र रक्षा करे। स्त्री मे स्वतन्त्रता

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



की योग्यता प्रकृति के नियम से नहीं है। स्वतन्त्रता के लिए प्रोत्साहन देनेवाले ही उनके धर्मनाश के कारण हैं। वे भला चाहते हुए भी अज्ञानवश उनका महा अकल्याण करते हैं।

यहाँ तक स्वकीया के विषय मे कहा। अब परकीया के विषय मे कहते हैं। जो पतिव्रता का आडम्बर बनाये हुए अपने पति को धोखा देकर दूसरे से प्रेम करती है उसने यहाँ तो प्रतिष्ठा बना रक्खी है पर परलोक मे धोखा नही चलता। वहाँ उसे सौ कल्प तक घोर नरक भोगना पडेगा। एक सहस्र चतुर्युगी का एक कल्प होता है।

छन सुख लागि जनम सत कोटी। दुख न समझ तेहि मम को खोटी॥
बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिब्रत धर्म छाँडि छल गहई॥९॥
पति प्रतिकूल जनम जहँ जाई। बिधवा होइ पाइ तरुनाई॥

अर्थ : क्षण भर के सुख के लिए जो सौ करोड़ जन्म के दुःख को नही समझती उसके ऐसी खोटी कौन है। जो स्त्री छल छोडकर पातिव्रत्य धर्म ग्रहण करती है वह बिना परिश्रम के परमगति को प्राप्त होती है। जो पति के प्रतिकूल है वह जहाँ जाकर जन्म लेती है वही युवावस्था के प्राप्त होने पर विधवा हो जाती है।

व्याख्या : विषयसुख क्षणभङ्गुर है। इसके लिए उसने अपना सौ कोटि जन्म बिगाडा। अल्प के लिए बडी भारी हानि को कुछ न गिना। इसलिए उसे अत्यन्त खोटी बतलाते है। खोटे की परिभाषा ही यही है। जो थोडे से लाभ के लिए अपना धर्म छोड़े। विषयेन्द्रियसयोगात् यत्तदग्रेऽमृतोपमम्। परिणामे विषमिव तत्सुख राजस स्मृतम्। विषय और इन्द्रिय के सयोग से जो पहिले अमृत सा जान पड़े और परिणाम मे विष के समान हो उसे राजस सुख कहते हैं। पहिले तो रतिसुख ही राजस है। सो भी धर्मविरुद्ध होने से घोर तामस हो गया। तामस का फल ही अधोगति है। उसे असख्य जन्म तक श्व-सूकरादि योनियो म दुःख भोगना पड़ता है।

पुरुषगण यज्ञ मे दान से तथा ऐसे ही अन्य कष्टसाध्य उपायो से क्रमश प्राजापत्य आदि लोको को प्राप्त होते हैं। किन्तु स्त्रियाँ तन मन वचन से पति की सेवा करने से ही उनकी हितकारिणी होकर पति के समान शुभ लोको को अनायास ही प्राप्त कर लेती हैं जो कि पुरुषो को अत्यन्त परिश्रम से मिलते हैं। इसलिए स्त्रियाँ धन्य हैं।

ऐसे उदाहरण भी हैं जहाँ सतीत्व भङ्ग नही हुआ पर पति से विरोध हो गया। उस प्रतिकूलाचरण का दण्ड कहते हैं कि ऐसी स्त्री का जहाँ जन्म होता है वहाँ भी पतिसुख उससे छीन लिया जाता है। वह तरुणावस्था मे विधवा हो जाती है। तरुणावस्था मे विधवा होना परमेश्वरीय दण्ड है। उसके भोग लेने मे ही कल्याण है। इसीलिए शास्त्रो मे विधवा विवाह का विधान नही है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सो सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभ गति लहइ ।
जसु गावत श्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय ॥
सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिव्रत करहिं ।
तोहि प्रान प्रिय राम कहेउ कथा ससार हित ॥५॥

अर्थ : स्त्री स्वभाव से ही अपवित्र होती है। उन्हे शुभ गति पतिसेवा से होती है। आज भी तुलसी हरि को प्रिय हैं और चारो वेद उनके यश का गान करते हैं।

व्याख्या : स्त्री के शरीर की बनावट ही ऐसी है कि वे शुद्ध नही रह सकती। वे महीने मे तीन दिन क्रम से चाण्डाली, ब्रह्मघातिनी और रजकी की भाँति अशुद्ध रहती हैं। पुरुष के शुक्र को नौ मास गर्भ के रूप मे धारण करती हैं। इसलिए सहज अपावनी कहा। फिर भी पति से इनकी शुभ गति होती है। अन्य उपाय इनकी सद्गति का है नही। पति के पाणिग्रहण से इनके शरीर का पति के शरीर से अभेद हो जाता है। वे उसकी अर्धाङ्गिनी हो जाती हैं। अत उपर्युक्त दोष पति सेवा करनेवाली को नही लगता। इसलिए हिन्दुओं मे लडके भले ही बिना ब्याहे रह जायँ पर लडकी बिना ब्याही नही रहने पाती। इतना ही नही कि वे दोष से विनिर्मुक्त हो जाती हैं। उनकी शुभ गति होती है। उसके यश को चारो वेद गाते हैं। अर्थात् उसकी शाश्वती गति होती है। क्योकि पतिव्रता स्त्री भगवान् को प्रिय होती है। यथा : परम सती असुराधिप नारी। तेहि बल ताहि न जितहिं पुरारी। छल करि टारयो तासु ब्रत प्रभु सुर कारज कीन्ह। जब तेहि जान्यो मर्म सब साप कोप करि दीन्ह। तासु श्राप प्रभु कीन्ह प्रमाना। आज भी वही असुराधिप नारी तुलसी रूप से भगवान् के गले की हार बनी रहती है। यथा ' रामहि प्रिय पावन तुलसी सी।

सीता नाम स्मरण से पातिव्रत्य का निर्वाह होता है। अत पहिले की भाँति ' सुनु राजकुमारी न कहकर नाम लेकर . सुनु सीता कहती हैं। तुम्हारा तो नाम लेकर स्त्रियाँ पातिव्रत्य धर्म का निर्वाह करेंगी। तुम्हारे लिए क्या कहना है। तुम पतिप्राणा हो। गौरी का नाम लेकर स्त्रियाँ पातिव्रत्यरूपी खड्गधारा पर चढती हैं और तुम्हारा नाम लेकर उनका निर्वाह होता है। गुणवान से कहने से सम्वाद का ससार मे प्रसार हो जाता है और उससे ससार का हित हो जाता है। इसलिए तुम से कहा। तुम्हे उपदेश देने के लिए नही।

सुनि जानकी परम सुख पावा। सादर तासु चरन सिरु नावा ॥
तब मुनि सन कह कृपानिधाना। आयसु होइ जाउँ बन आना ॥१॥

अर्थ . सुनकर जानकीजी को परम सुख हुआ। आदर के साथ उनके चरणो मे सिर नवाया। तब मुनिजी से कृपानिधान रामजी ने कहा कि आज्ञा हो तो दूसरे वन मे जाऊँ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : जिस धर्म पर परम प्रेम था उसीका निरूपण सरस मृदुवाणी द्वारा सुनने से बड़ा भारी सुख हुवा। अथवा परम सुख पाया कहकर शिष्य की कृतकृत्यता दिखलाया। उपदेश की समाप्ति पर प्रणाम करना चाहिए। यथा : तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया। अथवा विदा होने के लिए प्रणाम करती हैं।

जब देखा कि सम्वाद समाप्त हो गया जानकीजी प्रणाम कर चुकी तब सरकार ने विदाई के लिए आज्ञा मांगी। ऋषि की आज्ञा लेकर ही नया काम करते हैं। वाल्मीकिजी की आज्ञा लेकर ही चित्रकूट मे बसे थे। अत्रिजी की आज्ञा लेकर तब दूसरे वन मे जायेंगे। कृपानिधान हैं। अत्रि आदि का श्रम सफल कर चुके। अब अन्य ऋषियो के श्रम को सफल करने के लिए जाना चाहते हैं।

संतत मो पर कृपा करेहू। सेवक जानि तजेहु जनि नेहू॥
धर्म धुरंधर प्रभु कै बानी। सुनि सप्रेम बोले मुनि ज्ञानी॥२॥

अर्थ : सदा मुझपर कृपा करते रहियेगा। मुझे सेवक जानकर स्नेह न छोड़ियेगा। धर्मधुरन्धर प्रभु की वाणी सुनकर ज्ञानी मुनि प्रेम पूर्वक बोले।

व्याख्या · प्रभु अपना कुशल ऋषियो की दया पर निर्भर मानते हैं। इसलिए सदा कृपा बनाये रखने के लिए प्रार्थना करते हैं। यथा : हमरे कुसल तुम्हारिहि दाया। मुनिजी सेवक सेव्य भाव के उपासक हैं और प्रभु ब्रह्मण्य देव हैं। अतः ये भी सेवक सेव्य भाव रखते हैं। अत कह रहे हैं कि सेवक जानकर प्रेम बनाये रखियेगा। यथा : सेवक सुत पति मातु भरोसें। रहइ असोच बनै प्रभु पोसे। ब्राह्मणत्व की रक्षा से ही वैदिक धर्म की रक्षा होती है। सो ब्राह्मणत्व का इतना बडा आदर है कि प्रभु अपने को अत्रि के ब्राह्मण होने के नाते सेवक कह रहे हैं। अत. धर्मधुरन्धर कहा। मुनिजी ज्ञानी हैं। पर भक्ति को नही छोडते। अत विनीत वाणी सुनकर भक्ति के सहित बोले। आत्मारामाश्च मुनय· निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्यहैतुकी भक्तिमित्थं-भूतगुणो हरिः। भागवते।

जासु कृपा अज सिव सनकादी। चहत सकल परमारथ बादी॥
ते तुम्ह राम अकाम पिआरे। दीन बंधु मृदु बचन उचारे॥३॥

अर्थ : जिसकी कृपा ब्रह्म शिव सनकादिक सभी परमार्थवादी चाहा करते हैं। आप वे ही अकाम प्रिय दीनबन्धु राम हैं। मृदु वचन बोल रहे हैं।

व्याख्या : ब्रह्मदेव ब्रह्मविद्या के सम्प्रदाय के प्रवर्तक हैं। शिवजी साक्षात् दक्षिणा मूर्ति हैं। यथा : तस्मै श्रीगुरुमूर्तये नम इद श्रीदक्षिणामूर्तये। सनकादिक निवृत्ति मार्ग के उपदेष्टा है। ये सभी परमार्थवादी है। ये लोग आपकी कृपा चाहते हैं। क्योकि आप स्वयं परमार्थ रूप हैं। यथा : राम ब्रह्म परमारथ रूपा।

जिन्हे और वस्तुएँ प्यारी हैं, उन्हे आप प्यारे नही हो सकते। अतः आप अकाम पियारे हैं परन्तु दीनबन्धु हैं और मैं अकाम न होने पर भी दीन हूँ। इसलिए दया करके ऐसा मृदु वचन कह रहे हैं। यह आपका अप्रतिम शील है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अब जानी मै श्री चतुराई । भजी तुमहि सब देव बिहाई ॥
जेहि समान अतिसय नहि कोई । ता कर सील कस न अस होई ॥४॥

अर्थ : अब मैंने लक्ष्मीजी की चतुराई समझी । जिन्होने सब देवताओ को छोड़कर आपको ही भजा । जिसके न तो कोई समान है । न बढ़कर है । उसका शील ऐसा क्यो न हो ?

व्याख्या : आपका शील देखकर मुझे लक्ष्मीजी की चतुरता का पता चला कि उन्होंने सीधे सीधे शील को देखा । ऐसा शील किसी मे न पाया । अतः सबको छोड़कर आपका ही भजन किया । त्रैलोक्य की प्रभुता शीलवान् का ही भजन करती हैं : महाभारत मे शीलनिरूपणाध्याय द्रष्टव्य है ।

शील ही उत्कर्ष का कारण है । तुम्हारे समान कोई नही है तो बढ़कर कोई कैसे हो सकता है । अतः तुम्ही अपने एक तुच्छ सेवक को इतनी बड़ाई देने में समर्थ हो । नत्वत्समस्त्वभ्यधिक· कुतोऽन्यः । गीतायाम्. । अतः आप मे ही ऐसे शील का होना सम्भव है ।

केहि बिधि कहौ जाहु अब स्वामी । कहहु नाथ तुम्ह अंतरजामी ॥
अस कहि प्रभु बिलोकि मुनि धीरा । लोचन जल बह पुलक सरीरा ॥५॥

अर्थ . हे स्वामी ! मैं किस प्रकार कहूँ कि चले जाइये । हे नाथ ! आप अन्तर्यामी हैं । आप ही बतलाइये ऐसा कहकर धीर मुनि प्रभु को देखने लगे । उनके नेत्रो से जल बह चला और शरीर पुलकित हो उठा ।

व्याख्या : आयसु होइ जाउँ बन आना : के उत्तर मे मुनिजी कहते हैं : तुमसे कछु न छिपी करुनानिधि तुम हौ अंतरजामी । विनय । मेरा मन आपको छोड़ने को नही चाहता और आप स्वामी होकर आज्ञा माँग रहे हैं । अतः नही भी नही कर सकते । अब आप ही बताइये कि मै आपको जाने के लिए कैसे कहूँ ?

यद्यपि ज्ञानी मुनि धैर्यवाले हैं । फिर भी प्रेम के वश हो गये । आने पर भी : प्रेम बारि दोउ जन अन्हवाये । और जाते समय भी : लोचन जल बह पुलक सरीरा । ऐसी दशा हो गयी ।

छं. तन पुलक निर्भर प्रेम पूरन नयन मुख पंकज दिए ।
मन ग्यान गुन गोतीत प्रभु मै दीख जप तप का किए ।
जप जोग धर्म समूह ते नर भगति अनुपम पावई ।
रघुबीर चरित पुनीत निसि दिनु दास तुलसी गावई ॥

अर्थ : मुनिजी अत्यन्त प्रेम से पूर्ण हैं । शरीर मे पुलक है । मुख कमल मे आँखें लगी हुई है । विचारते हैं कि मैंने क्या जप तप किये थे कि मन ज्ञान और इन्द्रियो से परे प्रभु के दर्शन पाये । जप योग और धर्म समूह से मनुष्य को अनुपम

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भक्ति की प्राप्ति होती है। रघुवर के पुनीत चरित को रात दिन तुलसी दास गान करता है।

व्याख्या : ज्ञानी मुनि जब अत्यन्त प्रेम में मग्न हो जाते हैं तो वह दशा कहते नही बनती। यथा : निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी। उसी दशा का यहाँ यथासाध्य वर्णन है। मुनिजी के शरीर मे पुलकावलि छायी हुई है। एकटक होकर मुख की शोभा देख रहे हैं। अत्यन्त सुख का अनुभव हो रहा है। अतः कहते हैं कि जो जप तप मैंने किये वह क्या था ? इस सुख के आगे कुछ न था। जप योग और धर्म का बहुत अनुष्ठान करने से तव अनुपम भक्ति की प्राप्ति होती है। जप वचसा, योग मनसा और धर्म कर्मणा अनुष्ठित होता है। मनसा वाचा कर्मणा साधन करने से भक्ति मिलती है। मुझसे तो कुछ न बन पडा।

दासो मे तुलसी बड़ा निकम्मा है। यथा : साहिब सीतानाथ सो सेवक तुलसीदास। उससे जप योग धर्म समूह कुछ नही बन पड़ता और दृढ भक्ति चाहता है। इसलिए रात दिन रघुवीर का यशगान किया करता है। रावनारि जस पावन गावहिं सुनहि जे लोग। राम भगति दृढ पावहिं बिनु बिराग जप जोग।

दो. कलिमल समन दमन मन, राम सुजस सुखमूल।
सादर सुनहि जे तिन्ह पर, रामु रहहिं अनुकूल ॥

अर्थ : कलियुग के मल का नाश करनेवाला मन का दमन करनेवाला रामजी का सुयश सुख का मूल है। आदर के साथ श्रवण करनेवाले पर रामजी अनुकूल हो जाते है।

व्याख्या : मन के दमन से ही सुख होता है। कलिमल से दूषित मन का निरोध होता नही। अतः अयोध्याकाण्डान्तर्गत रामचरित को : कलि मल समन दमन मन कहा। कलि का अर्थ और अवगुण ही कलि मल है। दूसरी कोई बात न सोचे। एकाग्र होकर कथा श्रवण करे। यही सादर श्रवण है। यथा : एहि बिधि अमित जुगुति मन गुनेऊँ। मुनि उपदेस न सादर सुनेऊँ। कथा कहने की अपेक्षा श्रवण का माहात्म्य अधिक बतला रहे हैं। भरत चरित सुनने से भी सीय रामपद प्रेम की प्राप्ति होती है और राम चरित्र सुनने से श्रीरामजी की अनुकूलता होती है। यथा : ताकहँ प्रभु कछु अगम नहि जापर तुम अनुकूल। प्रभु प्रताप बड़वानलहि जारि सकइ खलु तूल।

अयोध्याकाण्ड मे : राम लखन सीता सहित सोहत परन निकेत। जिमि बासव बस अमरपुर सची जयंत समेत। यहाँ तक रामयश है। इसके बाद सुमन्त का लौटना तथा चक्रवर्तीजी का देहान्त कहकर भरत चरित्र आरम्भ कर दिया और भरत चरित्र की समाप्ति करते हुए काण्ड की समाप्ति कर दी। इति न देकर कथन की अपूर्णता दिखलाया। पर वस्तुतः अयोध्याकाण्ड की समाप्ति चित्रकूट की कथा की समाप्ति के साथ है। अतः अयोध्याकाण्ड की सन्धि यहाँ तक आयी है। वाल्मीकि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तथा अध्यात्म मे भी अयोध्याकाण्ड की समाप्ति चित्रकूट की कथा समाप्त होने पर ही माना है।

सो. कठिन काल मल कोस, धर्मु न ग्यान न जोग जप।
परिहरि सकल भरोस, रामहि भजहिं ते चतुर नर ॥६॥

अर्थ : यह कठिन काल कलिमल का निधान है। इसमे ज्ञान योग जप सभी असम्भव हैं। इसलिए सब भरोसा छोडकर जो राम को भजते हैं वे ही मनुष्य चतुर है।

व्याख्या : अघ अवगुण की खानि होने से कलियुग को मलकोप तथा कठिन कहा। यथा : सो कलिकाल कठिन उरगारी। पाप परायन सब नर नारी। अत. धर्म न ज्ञान न योग जप यह सब कुछ नही हो सकता। ये सब निर्विकार चित्त से ही साध्य हैं। अतः इनका भरोसा नही। अनुष्ठान का निषेध नही है। पर भरोसा इनका नही है। भरोसा भजन का है। देशकाल का विचार करके कार्य करनेवाला चतुर है। अत चतुरता इसी में है कि रामजी का भजन करे।

## २७. विराधवध प्रसङ्ग

मुनि पद कमल नाइ करि सीसा। चले बनहि सुर नर मुनि ईसा ॥
आगे रामु अनुज पुनि पाछे। मुनिबर बेष बने अति काछे ॥१॥

अर्थ मुनिजी के चरणो मे सिर नवाकर देवता मनुष्य और मुनियो के स्वामी वन को चले। रामजी आगे है। छोटे भाई पीछे हैं। श्रेष्ठ मुनि का वेष बनाये अत्यन्त . कसे कसाये सुशोभित हैं।

व्याख्या : यद्यपि मुनिजी ने प्रेमवश स्पष्ट आज्ञा नही दी। फिर भी ' केहि बिधि कहौं जाहु वन स्वामी। कहने से आज्ञा हो ही गयी। अत प्रणाम करके चले। अर्थात् इस वन से दूसरे वन मे चले। प्राकृत सीमा के अनुसार वनो का भी विभाग होता है। उनके नाम भी होते हैं। सुर नर मुनि की रक्षा के लिए अधिक सङ्कट सहन करेंगे। इसलिए सुर नर मुनि ईसा : कहा। अथवा यद्यपि सुर नर मुनि ईश हैं तथापि मर्यादा पालन के निमित्त मुनि चरण कमल को प्रणाम करके चले।

चित्रकूट जाने के समय का वर्णन है : आगे राम लखनु बने पाछें। तापस बेष बिराजत काछें। यहाँ लखन के स्थान मे अनुज शब्द का प्रयोग हुआ। परन्तु बात वही है। उसी वेष और उसी क्रम से चले। अत पुनि कहा। लखन प्यार से पुकारने का नाम था। सो उसका प्रयोग अयोध्याकाण्ड तक हुआ। अब अवध से दूर जा रहे हैं और ऐश्वर्यप्रधान लीला आरम्भ हो रही है। अत. लछिमन सीता आदि नामो का प्रयोग होगा। यहाँ भी लखन न कहकर अनुज शब्द का प्रयोग किया। यहाँ से घोर वन आरम्भ हुआ। विकट परिस्थिति के सामना की भी सम्भावना है। अतः सब प्रकार से तैयार होकर चल रहे हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उभय बीच श्री सोहइ कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी॥
सरिता बन गिरि अवघट घाटा। पति पहिचानि देहिं बर बाटा॥२॥

अर्थ : दोनों के बीच में श्री जानकी कैसी शोभित हैं। जैसे ब्रह्म और जीव के बीच में माया हो। नदी पर्वत और दुर्गम घाटियाँ स्वामी को पहिचानकर सुन्दर रास्ता दे देते हैं।

व्याख्या : श्री शब्द के प्रयोग से ही दिखलाया कि इस समय भगवती सीता तापस वेष मे नही हैं। दिव्य वसन भूषन पहिरे हुए हैं। जो ऋषिवधू भगवती अनसूया ने पहिना दिया था।

ब्रह्म का अनुसरण माया करती है और जीव माया का अनुसरण करता है। यथा : माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुनखानी। ब्रह्म माया को नही देखता माया ब्रह्म को देखा करती है। यथा : सोइ प्रभु भ्रूबिलास खग राजा। नाच नटी इव सहित समाजा। अथवा ब्रह्म जीव में भेद नही है। माया बीच में आकर भेद बनाये हुए हैं। यथा : मुधा भेद जद्यपि कृत माया। इसलिए रामजी की उपमा ब्रह्म से सीताजी की माया से और लक्ष्मणजी की जीव से दिया।

अत्रिजी के आश्रम से विराधवन पहुँचने मे सरिता सर गिरि अवघट घाट सभी मिलते हैं। उनके अभिमानी देवता प्रभु को पहिचानकर सुन्दर मार्ग देते हैं। यथा : बनदेवी बन देव उदारा। करिहहिं सासु ससुर सम सारा। ब्रह्म माया और जीव की भाँति शोभा है। अतः पहिचानने में कठिनता नही है।

जहँ जहँ जाहिं देव रघुराया। करहिं मेघ तहँ तहँ नभ छाया॥
मिला असुर बिराध मग जाता। आवत ही रघुबीर निपाता॥३॥

अर्थ : जहाँ जहाँ रघुराज देव जाते हैं वहाँ वहाँ आकाश से मेघ छाया करते जाते है। रास्ते मे जाते हुए विराध राक्षस मिला। सामने आते ही श्रीरघुवीर ने उसे मार गिराया।

व्याख्या : यहाँ देव शब्द के प्रयोग से ऐश्वर्य द्योतन किया। यहाँ अधिदैव चरित्र का प्राधान्य है। जहाँ प्रभु जाते हैं वही मेघ छत्र की भाँति छाया करते हैं। आकाश मण्डल मे घिरे नही हैं। द्यावा पृथ्वी सब सेवा में तत्पर हैं।

असुर विराध कहने से आसुरी सम्पत्ति द्योतन किया। दम्भोदर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च। अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ सम्पदमासुरीम्। इससे विराध मे सब दुर्गुण दिखाये। ये सब लोग विश्राम ले रहे थे और विराध रास्ते से जा रहा था। आवत ही रघुबीर निपाता : विराध का आततायी होना दिखलाया : आततायिनमायान्तं हन्यादेवाविचारयन्। रघुवीर निपाता पद से विराध का पराक्रमी होना द्योतित किया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तुरतहि रुचिर रूप तेहि आवा। देखि दुखी निज धाम पठावा ॥
पुनि आए जहँ मुनि सरभंगा। सुदर अनुज जानकी संगा ॥४॥

## २८. शरभंग देह त्याग प्रसंग

अर्थ : उसने तुरन्त ही सुन्दर रूप प्राप्त किया। दुःखी देखकर उसे अपने धाम मे भेज दिया। फिर वे सुन्दर भाई और जानकी के साथ शरभङ्ग मुनिजी के पास आये।

व्याख्या : प्रभु के बाणो के प्रहार से विराध के अङ्ग प्रत्यङ्ग जर्जर हो गये। वर प्रसाद से उसके प्राण नही निकलते थे। अतः गड्ढा खोदकर उसी मे उसे तोप दिया। यथा : खनि गर्त गोपित विराधा और उसे दुःखी देखकर अपने धाम मे भेज दिया। धाम जाने योग्य सुन्दर रूप उसे मिल गया जिसे धारणकर वह राम धाम गया।

वहाँ से दो कोस पर शरभग मुनि का आश्रम था। उनकी तीनो मूर्ति की उपासना थी। अत कहते हैं : सुंदर अनुज जानकी सगा। वरदान मे भी मुनिजी ने तीनो मूर्तियो को अपने हृदय मे वास माँगेंगे। यथा सीता अनुज सहित प्रभु नील जलद तनु स्याम। मम हिय बसहु निरंतर सगुन रूप श्रीराम।

दो. देखि राम मुख पंकज, मुनिवर लोचन भृंग।
सादर पान करत अति, धन्य जनम सरभग ॥७॥

अर्थ : श्रीरामजी के मुख कमल को देखकर श्रेष्ठ मुनिजी की आँखें भौंरा होकर आदर के साथ पान कर रही हैं। शरभग का जन्म धन्य है।

व्याख्या : मुनिजी की आँखें भृङ्ग होकर रूप मकरन्द का पान कर रही हैं। यथा : पियत नयन पुट रूप पियूपा। मन तो चोरी चल गया। इसलिए उसका उल्लेख नही करते। यथा : निजपन राख्यौ जन मन चोरा। इसीलिए प्रणाम आशीर्वाद नही कहते। शरभङ्गजी का जन्म अति धन्य कहा। क्योकि खूब ठगे गये। यहाँ तो ठगे जाने का ही माहात्म्य है। सरकार के दर्शन पर भी जिसका मन चोरी न जाय सावधान रहे उसे श्री गोस्वामिपाद धिक्कार देते है। यथा : ठगिसी रही जे न ठगे धिक ते। कविता। एक बात और है। चोर से प्रणाम आशीर्वाद का शिष्टाचार नही है। रूप सुधा का पान करनेवाला धन्य और अति पान करनेवाला अति धन्य हैं। सो शरभङ्गजी अतिधन्यो में हैं। देखा तो तीनो व्यक्तियो को पर ध्यान तो राममुख पकज मकरन्द का ही कर रहे हैं।

कह मुनि सुनु रघुबीर कृपाला। संकर मानस राजमराला ॥
जात रहेउँ विरंचि के धामा। सुनेउँ श्रवन वन ऐहहिं रामा ॥१॥

अर्थ : मुनि ने कहा कि हे रघुवीर! हे शङ्कर के मानस के राजहस! सुनो। मैं ब्रह्मलोक को जा रहा था। कान से सुन पाया कि वन मे रामजी आवेंगे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या अभी विराध वध किये चले आ रहे हैं। इसलिए रघुवीर कहा। यथा : आवत ही रघुवीर निपाता। कृपा करके दर्शन दिया। इसलिए कृपाल कह रहे हैं। अपने मानस मे बसाना है। इसलिए ' सकर मानस राज मराल कहते हैं। राज मराल से सौन्दर्य तथा गाम्भीर्य का आधिक्य द्योतन किया। मुनिजी ने प्रभु को बोलने न दिया। आप ही बोलते चले गये। बडी जल्दी है। प्रभु खडे हैं।

इन्द्र भगवान् लेने आये थे ब्रह्मलोक ले जाने के लिए। पर प्रभु के दर्शन के सामने ब्रह्मलोक क्या है ? इसलिए नही गये। चलने की तैयारी कर चुके थे। प्रभु के आने का समाचार पाकर रुके। अत पूजा सत्कार कुछ न कर सके। काक्षामृत्यु हैं : जब चाहे तब मरें। इनके लिए मरना कुछ नही है। केवल आने जाने की बात है।

चितवत पथ रहेउँ दिन राती। अब प्रभु देखि[1] जुडानी छाती ॥
नाथ सकल साधन मैं हीना। कीन्ही कृपा जानि जन दीना ॥२॥

अर्थ . दिन रात बराबर आपकी राह देख रहा था। अब सरकार को देखकर छाती ठण्ढी हुई। हे नाथ ! मैं सब साधनो से हीन हूँ। मुझे दीन सेवक जानकर आपने कृपा की।

व्याख्या घोर वन मे यही एक मार्ग है। कही आप रात को इधर से निकल न जायँ इसलिए रात दिन बराबर रास्ता देखता रहा। सोया नही। देखे बिनु रघुनाथ पद जिय की जरनि न जाय। सो अब जलन गयी। छाती ठण्ढी हुई।

अपने को सकल साधन से हीन मानना कार्पण्य है। भक्त के लिए यह भाव आवश्यक है। प्रभु का दर्शन क्रियासाध्य नही कृपासाध्य है। सरकार को दीन प्रिय हैं। अत दीन सेवक जानकर आपने दर्शन दिया।

सो कछु देव न मोहि निहोरा। निज पन राखेउ जन मन चोरा ॥
तब लगि रहहु दीन हित लागी। जब लगि मिलौं तुम्हहि तनु त्यागी ॥३॥

अर्थ हे देव ! यह मेरे ऊपर कुछ भी एहसान नही है। आप जन के मन के चोर हैं। अपने प्रण की रक्षा आपने की है। जब से शरीर त्यागकर आपसे मिल जाता हूँ तब तक दीन के हित के लिए यही ठहरे रहिये।

व्याख्या . तस्कराणा पतये नम । चोर तो धन चुराते हैं। आप भक्तो का मन चुराते हैं। मेरा मन चुरा लिया। मैं दीन हो रहा हूँ। क्षण भर आपके बिना नही रह सकता। कही मन लेकर चले न जाना। इसलिए तब तक ठहरिये। अब आपसे मिलने मे स्थूल शरीर का ही व्यवधान है। उसे छोडकर आपसे मिलना चाहता हूँ। सदा आपके पास बना रहूँ अर्थात् सामीप्य मुक्ति चाहते है।

---

१ यहाँ प्रहर्षण अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जोगु जग्य जप तप जत कीन्हा । प्रभु कहुँ देइ भगति वर लीन्हा ॥
येहि विधि सर रचि मुनि सरभंगा । बैठे हृदय छाड़ि सब संगा ॥४॥

अर्थ : योग यज्ञ जप और तप जो कुछ मुनिजी ने किया था वह सब प्र को समर्पण करके भक्ति वर ले लिया । इस प्रकार से चिता बनाकर शरभङ्ग मु सब आसक्तियों को छोड़कर उस पर बैठ गये ।

व्याख्या : सभी शुभ कर्मों को रामजी को अर्पण कर दिया । यथा : यत्करो यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत् । यत् तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् । औ उसके बदले में भक्ति वरदान माँग लिया । मुनिजी बड़े चतुर हैं । इस भाँति अध्रु को देकर ध्रुवपद को प्राप्त किया । क्योंकि : तीर्थाटन साधन समुदाई । जोग बिरा ज्ञान निपुनाई । नाना कर्म धर्म व्रत दाना । संजम जम जप तप मख नाना । भूतदय द्विज गुरु सेवकाई । बिद्या विनय बिबेक बड़ाई । जहँ लगि साधन वेद बखानी सबका फल हरि भगति भवानी ।

एहि विधि : कहने का भाव यह है कि सब कर्मों को ब्रह्मार्पण करके भक्तिव ले करके और इहलोक परलोक की सब वासना छोड़ करके योगाग्नि से शरीर त्याग करेंगे । अतः स्वयं चिता रचकर उस पर बैठे ।

दो. सीता अनुज समेत प्रभु, नील जलद तनु स्याम ।
मम हिय बसहु निरंतर, सगुन रूप श्रीराम ॥८॥

अर्थ : नीले बादल के समान श्याम शरीरवाले श्रीरामजी सगुण रूप से हे प्रभु ! सीता और लक्ष्मण के सहित निरन्तर मेरे हृदय मे वास कीजिये ।

व्याख्या : सीता अनुज सहित अपने हृदय में बसाते हैं । अपने हृदय को प्रभु के निवास के लिए भवन बना रहे हैं । अतः भवनाकार यह गुणग्राम : स्तुति दसवी मघा नक्षत्र है । इसमें पाँच तारे चमकते हैं । पाँच कार्य हुए हैं । वे ही पाँच तारे हैं : १. कहने से सुना : वन ऐहैं रामा २. प्रभु को देखकर छाती शीतल हुई ३. शरीर छोड़कर प्रभु से मिलना चाहा ४. भक्ति वर लिया ५ सीता अनुज समेत प्रभु को हृदय में बसाकर देह त्याग किया । इसकी फल स्तुति है : सचिव भूपति बिचार के ।

इसी नील जलद तनु श्याम ने मन चुराया था । सो चोर को स्त्री भाई सहित हृदय में बन्द कर लिया । कभी बाहर न जाने देंगे । अतः निरन्तर कहते हैं । यद्यपि निर्गुण सगुण रूप में अन्तर नही । पर चोरी सगुण रूप ने की है । अतः वे ही कैद भी रहें । भाव यह कि प्रभु निर्गुण रूप से तो सबके हृदय में बसते हैं पर इससे दु.ख तो नही दूर होता । यथा : अस प्रभु हृदय अछत अविकारी । सकल जीव जग दीन दुःखारी । दुःख दूर तो सगुण रूप के बसने से होता है । इसलिए सगुण रूप से बसाते हैं । सीता लक्ष्मण के साथ ही प्रभु का मुख्य त्रिकोण रूप बनता है । अतः दोनों के साथ हृदय में बसाने का बरदान माँगा ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अस कहि जोग अगिनि तनु जारा । राम कृपा बैकुंठ सिधारा ॥
ताते मुनि हरि लीन न भयऊ । प्रथमहि भेद भगति बर लयऊ ॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर शरभङ्गजी ने योगाग्नि से अपने शरीर को जला डाला और रामजी की कृपा से वैकुण्ठ चले गये । पहिले भेदभक्ति का वर माँग रक्खा था । इसलिए मुनिजी भगवान् मे लीन नही हुए ।

व्याख्या : योगाग्नि से शरीर त्यागने की क्रिया समान ही थी । इसलिए सतीजी और शरभङ्गजी के देहत्याग प्रकरण मे दोनो स्थान मे एक ही पद का प्रयोग किया । अस कहि जोग अगिनि तन जारा । तब लगि रहौं दीन हित लागी । जब लगि तुम्हहि मिलौ तनु त्यागी : कहकर सरकार को खड़ा कराये हुए हैं । अतः वही जल्दी है । एवमस्तु सुनने की भी प्रतीक्षा नही की । कृपा का बड़ा भरोसा है । कहा भी है : सुनु रघुबीर कृपाला । कीन्ही कृपा जानि जन दीना । अतः रामकृपा वैकुण्ठ सरकार का रूप ही है । उसकी लोक मे गणना नही है । यथा : कहु मतिमद लोक वैकुठा ।

योगाग्नि से शरीर छोडनेवाले को हरिपद लीन होना चाहिए । यथा : तजि जोग पावक देह हरिपद लीन भइ जहँ तहि फिरे । परन्तु मुनिजी लीन नही हुए । इसका कारण देते हैं कि अभेद भक्ति से जीव लीन होता है । भेदभक्ति से नही । यथा ताते उमा मोक्ष नहिं पायो । दसरथ भेदभक्ति मन लायो । सती के लीन न होने मे भी ऐसा ही कारण हुआ । यथा ' सती भरत हरिसन वर माँगा । जन्म जन्म सिव पद अनुरागा ।

रिषि निकाय मुनिबर गति देखी । सुखी भए निज हृदय बिसेखी ॥
अस्तुति करहि सकल मुनि बृंदा । जयति प्रनत हित करुना कंदा ॥२॥

अर्थ : ऋषि समूह मुनिश्रेष्ठ की श्रेष्ठ गति देखकर अपने मन मे विशेष सुखी हुए । सब मुनि लोग स्तुति कर रहे हैं कि प्रणाम करनेवाले हितकारी करुणा के मेघ की जय हो ।

व्याख्या : ऋषि मन्त्रद्रष्टा हैं । उन लोगो ने मुनिवर का वैकुण्ठ पधारना देखा तो अपने मन मे बडे हर्षित हुए । यह ऋषियो की मुदिता है कि पुण्यवान् की उत्तम गति से उन्हे प्रसन्नता हुई ईर्ष्या नही हुई ' विराध वध का समाचार पाने से । शरभङ्ग के आश्रम आते आते ऋषियो की भीड इकट्ठी हो गयी । उन्हे प्रभु से अपना कष्ट निवेदन करना है । प्रभु को देखकर सुखी हुए । मुनिवर की गति देखकर विशेष सुखी हुए । अतः प्रणत हित और करुणाकन्द की जय ऐसा कहकर स्तुति करते हैं । प्रणतहित कहकर अपनी शरणागति दिखलायी और करुणाकन्द कहकर सभी ऋषियो पर करुणादृष्टि की वृष्टि की आशा दिखलायी ।

पुनि रघुनाथ चले बन आगे । मुनिबर बृंद बिपुल सँग लागें ॥
अस्थि समूह देखि रघुराया । पूँछी मुनिन्ह लागि अति दाया ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : फिर रघुनाथजी आगे वन मे चले। श्रेष्ठ मुनि लोगो का बड़ा समूह साथ लग गया। हड्डियो का ढेर देखकर रघुनाथजी को बडी दया आयी। मुनियो से पूछा।

व्याख्या : रघुनाथ हैं। अनाथ मुनियो को सनाथ करने आये है। पहिले कह चुके हैं कि चले बनहि सुर नर मुनि ईसा। शरभङ्ग के आश्रम पर ठहर गये थे। अत: आगे चलना कहते हैं। अपने अपने यहां ले जाने के लिए मुनि लोगो ने साथ पकड़ लिया। अस्थि समूह देखने से प्राणियो के असामयिक मृत्यु का अनुमान हुआ। इससे बड़ी दया हुई। इतने नर कङ्काल के एकत्र होने का कोई विशेष कारण होना चाहिए : इससे पूछा। मुनियो के मुख से अत्याचारियो के अत्याचार का वर्णन सुनना चाहते हैं। राजधर्म का आश्रयण करके उनका दण्ड विधान करना है।

जानतहूँ पूछिअ कस स्वामी। सबदरसी तुम्ह अंतरजामी ॥
निसिचर निकर सकल मुनि खाए। सुनि रघुबीर नयन जल छाए ॥४॥

अर्थ : जानते हुए भी आप कैसे पूछते हैं। हे स्वामी! आप तो सर्वज्ञ और अन्तर्यामी हैं। राक्षसो के समूह ने सब मुनियो को खा डाला है। सुनकर श्रीरघुवीर की आँख डबडबा आयी।

व्याख्या : आप सर्वज्ञ हैं। सब कुछ जानते हैं, अन्तर्यामी हैं। आप से कुछ छिपा नही है। अत: यह घटना भी आपको अविदित नही है। फिर क्यो पूछते हैं? भाव यह कि पापियो के पाप कहने मे भी दोष है पर आप स्वामी हैं। आपकी आज्ञा अपेल है। अत: निवेदन करते हैं। राक्षस लोग इकट्ठे होकर सब मुनियो का यहाँ भोजन किया है। राक्षसो के आहार ही मनुष्य हैं कि पुन: ब्राह्मणो का खाना तो उन्हे अति प्रिय है। यथा : खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। मुनि लोग गर्भगत बालक की भाँति प्रतिरोध करने मे असमर्थ थे। अत: उनका भोज इसी स्थान पर राक्षसो द्वारा हुआ।

सरकार केवल युद्धवीर दानवीर ही नही हैं दयावीर भी हैं। इसलिए रघुवीर शब्द का प्रयोग किया। उपर्युक्त बातें सुनते ही करुणाकर की आँखों में जल आगया। अपराधियो के अपराध का पर्याप्त प्रमाण मिल गया। अत: दण्ड विधान के लिए प्रतिज्ञा हो रही है।

दो. निसिचर हीन करउँ महि, भुज उठाइ पन कीन्ह।
सकल मुनिन्ह के आश्रमन्हि, जाइ जाइ सुख दीन्ह ॥९॥

अर्थ : भुजा उठाकर प्रतिज्ञा की कि मैं पृथ्वी को बिना [illegible] की कर दूंगा। फिर सब मुनियो के आश्रमो मे जा जाकर उन्हे सुख दिया।

व्याख्या : मुनियो ने कहा : निसिचर निकर [illegible] खाए। [illegible] सरकार प्रतिज्ञा करते हैं : निसिचर हीन करउँ महि। [illegible]

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



देने के लिए भुज उठाइ प्रन कीन्ह। अपना दृढ निश्चय सूचित करने के लिए भुजा उठाकर प्रण करने का नियम है। यथा भुजा उठाइ कहौं प्रन रोपी। प्रन बिदेह-कर कहहिं हम भुजा उठाइ विसाल। बहुत से ऋषि इस अभिलाषा से साथ थे कि सरकार को अपने अपने आश्रम मे ले चलें। अत सरकार सबके आश्रमो मे गये और सुख दीन्ह कहने का भाव यह कि सबके आश्रमो मे ठहरे। किसी के आश्रम पर पन्द्रह दिन, किसी के यहाँ एक महीना, किसी के आश्रम पर डेढ महीना, किसी के आश्रम पर तीन महोना, कही छ महीना, कही सालभर। इस भाँति वनवास की अवधि का दस साल व्यतीत किया। राक्षस लोग विराध वध से सशङ्क हो गये थे। अत एक भी हाथ न लगे। उन सबो ने उधर का रास्ता छोड दिया। इसके बाद सुतीक्ष्ण प्रीति प्रसङ्ग आरम्भ करते हैं।

## २९ सुतीक्ष्ण प्रीति प्रसग

मुनि अगस्ति कर सिष्य सुजाना। नाम सुतीछन रति भगवाना॥
मन क्रम बचन राम पद सेवक। सपनेहुँ आन भरोस न देवक॥१॥

अर्थ मुनि अगस्त्य के एक सुजान शिष्य थे। उनका नाम सुतीक्ष्ण था। उनकी भगवान् मे भक्ति थी। मन कर्म और वचन से रामजी के चरणो के सेवक थे। उन्हे सपने मे भी दूसरे देवता का भरोसा न था।

व्याख्या अगस्त्य मुनि के बहुत शिष्य थे। कोई कर्मठ थे, कोई योगी थे, कोई, ज्ञानी थे, उनमे सुतीक्ष्णजी बडे सुजान थे। क्योंकि उनकी रति भगवान् मे थी। यथा राम सनेह सरस मन जासू। साधु सभा बड आदर तासू। मुनि अगस्त्य कर शिष्य कहने का भाव यह कि महा प्रभावशाली ऋषि के शिष्य थे। उनकी भक्ति प्रसिद्ध है। अगस्त्यसहिता रामभक्ति का प्रधान ग्रन्थ है। उनका शिष्य कहकर उनमे भी रामोपासना सूचित किया।

मनक्रम बचन छाडि चतुराई। भजत कृपा करिहहिं रघुराई। सो ये मन वचन कर्म से रामजी के चरणो के सेवक थे। अत सरकारी कृपा के पात्र थे। सेवकाई मे भी अनन्यता कहते हैं कि नित्य नैमित्तिक कर्म के निर्वाह करने मे जिन जिन देवताओ के पूजन स्तवन या व्रत का विधान है। सो सब करते थे। पर भरोसा किसी का स्वप्न मे भी नही करते थे। उन्हे केवल रामजी का भरोसा था।

प्रभु आगवनु श्रवन सुनि पावा। करत मनोरथ आतुर धावा॥
हे बिधि दीनबधु रघुराया। मो से सठ पर करिहहि दाया॥२॥

अर्थ कानो से प्रभु का आगमन सुन पाया। मनोरथ करते हुए आतुरता से दौड पडे। क्या यह सम्भव है कि दीनबन्धु रघुराज मुझ से शठ पर दया करेंगे?।

व्याख्या चलते फिरते किसी भाँति वह बात कान मे पड गयी कि सरकार इधर आ रहे हैं। इस बात को पक्की करने के लिए अवसर कहाँ? आतुर हो दौड

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पड़े। प्रेमपात्र के आगमन को सुनते ही प्रेमी के मनोरथों का अन्त नहीं रह जाता। यथा : करत मनोरथ बहु मन माही। एक विधि करत मनोरथ जात न लागी पार। आतुर धावा : से पहिली दशा अभिलाष कहा। : १ :

है विधि : कहकर ब्रह्मदेव का आश्चर्य के साथ स्मरण करते हैं। विधि का कार्य तो विधि से होता है। मेरे ऊपर दया करने की कौन विधि है? मैं शठ हूँ। शठ सेवक तो स्वामी के लिए शूल समान होता है। क्या प्रभु की दीनबन्धुता इतनी है कि मेरे ऐसे भारी शठ पर भी उनकी अनुकम्पा होगी? यह दूसरी दशा चिन्ता है। : २ :

सहित अनुज मोहि राम गोसाईं। मिलिहहिं निज सेवक की नाईं॥
मोरे जियँ भरोस दृढ़ नाही। भगति बिरति न ग्यान मन माही॥३॥

अर्थ : क्या छोटे भाई के सहित स्वामी रामजी मुझसे निज सेवक की भाँति मिलेंगे। मेरे मन में तो दृढ़ भरोसा नहीं होगा। क्योंकि मेरे मन में भक्ति, वैराग्य या ज्ञान नहीं हैं।

व्याख्या : ऊपर की अर्धाली में कहा है कि क्या मुझसे शठ पर दया करेंगे। अब उसी बात को स्पष्ट करते हैं। वह कौन सी दया है जो सुतीक्ष्णजी चाह रहे हैं? सो वह दया सरकार का परिष्वङ्ग देना है और वह दया परिष्वङ्ग ऐसा हो जो निज दास को सरकार देते हैं। क्योंकि परिष्वङ्ग तो पिता, माता, पुत्र, सखा आदि को भी दिया जाता है। पर उसे मुनिजी नहीं चाहते। क्योंकि सरकार को सबसे अधिक प्रिय निज दास हैं। स्वयं भरतजी ने प्रभु द्वारा निज दास की भाँति स्मरण किये जाने की अभिलाषा प्रकट की। यथा : निज दास ज्यों रघुवंस भूषन कबहुँ मन सुमिरन करयो। मुनिजी उसी भाव से मिलना चाह रहे हैं और उससे भी भाई सहित मिलने में पूरा सत्कार है। भगवत् भागवत दोनों के मिलने का सुख है। यथा : अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी। अब प्रश्न यह रहा कि निज दास किसे कहते हैं? इस बात को स्वयं प्रभु ने स्पष्ट किया है : तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा। जिसे प्रभु को छोड़कर दूसरे की आशा नहीं वही निज दास है। परिष्वङ्ग मिलने को कहते हैं। सरकार ने स्वयं कहा है कि परिष्वङ्ग से अधिक मेरे पास देने के लिए कुछ नहीं है। उसी अत्यन्त सुख का स्मरण करके मुनिजी विह्वल हैं। यह तीसरी अवस्था स्मरण है। : ३ : रामजी गोसाईं हैं। सब के मालिक हैं। दयालु हैं। ये शठ सेवक की प्रीति रुचि रखनेवाले हैं। अतः मुझसे अनुज के साथ निज सेवक की भाँति मिलना उनके लिए असम्भव तो नहीं है। यह चौथी अवस्था सरकार का गुण कथन है। : ४ :

मुनिजी कहते हैं कि फिर भी मेरे मन में दृढ़ भरोसा नहीं हो रहा है। क्योंकि मेरे में साधन का बड़ा घाटा है। भक्ति पथ पर मैं आरूढ़ नहीं हूँ : श्रुति सम्मत हरि भगति पथ संजुत बिरति बिबेक। हरिभक्ति में भक्ति वैराग्य और विवेक तीनों चाहिए।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मुझमे तीनो मे से एक भी नही है। अत उनकी दीनबन्धुता का भरोसा है। अपनी ओर दृष्टि करने से तो दृढता नही होती। यह पाँचवी दशा उद्वेग है। : ५ :

नहि सतसग जोग जप जागा। नहि दृढ चरन कमल अनुरागा ॥
एक बानि करुनानिधान की। सो प्रिय जाके गति न आन की ॥४॥

अर्थ : इधर तो सत्सङ्ग योग जप यज्ञ कुछ भी नही और न चरण कमल मे दृढ अनुराग है। हाँ करुणा निधान का ऐसा स्वभाव है कि उनको वही प्रिय है। जिसे दूसरे का भरोसा न हो।

*व्याख्या श्रुति सम्मत हरि भगति पथ वैधी भक्ति है। इसके अतिरिक्त पाँच* साधन और भी है। १ सत्सङ्ग यथा सतसगति मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला। २ योग यथा : करहि जोग जोगी जेहि लागी। ३ जप यथा : द्वादस अच्छर मत्र पुनि जपहि सहित अनुराग। ४ यज्ञ यथा श्रेता बिबिध यज्ञ नर करही। प्रभुहि समर्पि कर्म भव तरही। ५ दृढ चरन कमल अनुराग यथा 'पद कमल परागा रस अनुरागा। मम मनमधुप करइ पाना। अर्थात् रागानुगा भक्ति। यहाँ पाँच मे एक भी नही। यह छठी दशा प्रलाप है। ६ प्रिय को विद्यमान मानकर निरर्थक वचन रचना है।

तब उनके कारुणिक स्वभाव का भरोसा है। मुझे अन्य गति नही है और उन्हे अनन्यगतिक प्रिय हैं। यथा है तुलसी के एक गुन अवगुन बिधि कह लोग। भलो भरोसो रावरो राम रीझिबे जोग।

होइहै सुफल आजु मम लोचन। देखि बदन पकज भव मोचन ॥
निर्भर प्रेम मगन मुनि ग्यानी। कहि न जाइ सो दसा भवानी ॥५॥

अर्थ : भव मोचन मुख कमल के दर्शन से आज मेरी आँखें सुफल होगी। मुनि ज्ञानी पूर्ण प्रेम मे निमग्न हो गये। हे भवानी! वह दशा कही नही जा सकती।

व्याख्या : अत यह निश्चय किया कि दर्शन मिलेगा। लोचन का साफल्य सरकार के दर्शन से होता है। यथा करहु सुफल सब के नयन सुन्दर बदन देखाइ। आँखें तो अगणित जन्म से मिलती चली आयी है सफल कभी न हुईं। सफल हुई होती तो जन्म ही क्यो होता। इसलिए वदन पकज का भव मोचन विशेषण दिया।

सुतीक्ष्णजी ज्ञानी मुनि हैं। योगवासिष्ठ के प्रधान श्रोता हैं। तथापि निर्भर प्रेम मे मग्न हैं। यह रामजी के प्रेम की महिमा है। यथा मोह मगन मति नहि बिदेह की। महिमा सिय रघुबर सनेह की। आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था. अप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थंभूतगुणो हरि। ज्ञानघाट के वक्ता जवाब देते हैं कि वह दशा कही नही जा सकती। जिसकी यह दशा है वह स्वय उस दशा को नही समझ रहा है। यह सातवी दशा उन्माद है। ७.

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



न अरु बिदिसि पथ नहिं सूझा। को मैं चलेउ कहाँ नहिं बूझा॥
कहुँक फिरि पाछे पुनि जाई। कबहुँक नृत्य करइ गुन गाई॥६॥

अर्थ : उन्हे दिशा विदिशा और रास्ता कुछ भी सूझ नही रहा है। मैं कौन हूँ जा रहा हूँ। इसका भी चेत नही है। कभी घूमकर पीछे चले जाते हैं। कभी का गान करके नाचने लगते है।

व्याख्या : पहिले करत मनोरथ आतुर धावा। अब मनोरथ करते करते निर्भर मे विभोर होने से रास्ता सूझना वन्द हो गया। उन्हे यह पता नही कि पूर्व, चम, उत्तर, दक्खिन किधर है। नैऋत्य, वायव्य, अग्नि और ईशान कोण कौन इधर उधर देखते हैं। कुछ मालूम नही होता। दशा बढती ही गयी अपने को गये। कहाँ चले थे यह भी मालूम नही' पन्थ का न सूझना आठवी दशा धि है। : ८

जब कहाँ जाते है. यही भूल गये तब लौट पडे, फिर लौटना भूलकर गान करके नाचने लगे : होइहि सुलभ आजु मम लोचन। इस आशा पर इतना न्द बढा हुआ है : आगे जाते जाते रुक गये। लौटे तो फिर गति रुक गयी। यह ता का सञ्चार नवी दशा है। . ९ :

बरल प्रेम भगति मुनि पाई। प्रभु देखहिं तरु ओट लुकाई॥
तसै प्रेम देखि रघुबीरा। प्रगटे हृदय हरन भव भीरा॥७॥

अर्थ · मुनि ने प्रगाढ प्रेमाभक्ति प्राप्त कर ली। सरकार वृक्ष की आड मे छिपे देख रहे हैं। मुनि का अत्यन्त प्रेम देखकर भव भय के हरण करनेवाले रामजी य मे प्रकट हो गये।

व्याख्या : जडता का सञ्चार कहकर अविरल भक्ति की प्राप्ति कहते हैं। इतने तक सरकार पेड के आड मे खडे देख रहे थे। भक्तो के पागलपन की दशा कार को प्रिय है। छिपे इसलिए हैं कि प्रकट होने से विप्रलम्भावस्था ही समाप्त जायगी।

असह्य प्रेमवेग अर्थात् दशम दशा . मरण की प्राप्ति होते देखकर हृदय मे प्रकट । दशा ऐसी थी कि पत्ता खटकने से काम बिगडता। इसलिए तरु ओट से सामने ने का प्रयत्न नही किया। हृदय मे प्रकट हो गये। अतिशय प्रेम से ही प्रभु प्रकट ने हैं और उसी से भव भय का नाश होता है।

ने मग माँझ अचल होइ बैसा। पुलक सरीर पनस फल जैसा॥
त रघुनाथ निकट चलि आए। देखि दसा निज जन मन भाए॥८॥

अर्थ · मुनिजी बीच रास्ते मे अचल होकर बैठ गये। उनका शरीर कटहल के ान रोमाञ्चित हो गया। तब रामजी उनके पास चले आये और अपने भक्त की ा देखकर अपना भक्त उन्हे बहुत प्यारा लगा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : मुनिजी को प्रेम समाधि लग गयी। नही तो बीच रास्ते में कोई अचल होकर नही बैठता। ये रास्ते मे ही अचल हुए। क्योंकि रास्ते मे ही इन्हे हरि की प्राप्ति हुई। आनन्द से अद्भुत पुलक हो गया। कटहल के काँटे घने पुलक के ऐसे होते हैं। मुनिजी के शरीर मे कोई स्थान ऐसा न रह गया जहाँ उत्तम पुलक न हो।

जब रामजी ने देख लिया कि मुनिजी अत्यन्त आनन्द से पुलकित हैं। तब निकट गये। प्रभु का स्वभाव है कि निज जन को अपना लेते हैं। सुतीक्ष्णजी का मनोरथ भी था कि रामजी उन्हे निज जन जाकर मिलें। यथा : निज जन जानि ताहि अपनावा। प्रभु सुभाउ कपि कुल मन भावा।

मुनिहि राम बहु भाँति जगावा। जाग न ध्यान जनित सुख पावा ॥
भूप रूप तब राम दुरावा। हृदयँ चतुर्भुज रूप देखावा ॥९॥

अर्थ : मुनिजी को रामजी ने अनेक भाँति से जगाया। पर मुनिजी नही जागे। क्योंकि उन्हे सरकार के ध्यान का सुख मिल रहा था। तब रामजी ने राजा के रूप को अन्तर्धान कर दिया और उनके हृदय मे चतुर्भुज रूप दिखलाया।

व्याख्या : सोने से मूर्च्छा से तथा समाधि से व्युत्थान दशा मे होश मे आने को जागना कहते हैं। अतः श्रीरामजी ने समाधि अवस्था से उन्हे जाग्रत अवस्था मे लाने की अनेक चेष्टा की। जो जो उपाय समाधि से उतारने के हैं सो सब काम मे लाये। पर उनकी समाधि भङ्ग न हुई। तात्पर्य यह कि प्रेमाधिक्य से आप से आप समाधि लग जाती है और ऐसी लगती है कि उससे उतारना कठिन हो जाता है। क्योंकि समाधि जनित आनन्द को साधक छोड़ना नही चाहता। सरकार ने देखा कि इस तरह ये न जागेंगे।

ये माधुर्य के उपासक थे। ऐश्वर्य रूप के नहीं थे। भूप रूप माधुर्य का रूप है और चतुर्भुज रूप ऐश्वर्य का है। यद्यपि दोनो रूप सरकार के ही हैं। द्विचत्वारि षडष्टासा दश द्वादश षोडश। अष्टादशामी कथिता हस्ताः शङ्खादिभिर्युता। पूर्व तापनीये। दो, चार, छ, आठ, दस, बारह, सोलह, अठारह हाथ तक भगवान् रामभद्र के शङ्ख आदि से युक्त माने गये हैं। पर भूप रूपवाली माधुर्य मूर्ति द्विभुज है। मुनिजी उसी के उपासक थे। प्रभु ने उस मूर्ति को अन्तर्धान कर लिया और उसके स्थान पर चतुर्भुज मूर्ति शङ्खचक्रादि से युक्त प्रकट कर दिया।

मुनि अकुलाइ उठा तब कैसे। बिकल हीन मनि फनिवर जैसे ॥
आगे देखि राम तनु स्यामा। सीता अनुज सहित सुख धामा ॥१०॥

अर्थ : मुनिजी तब किस भाँति आकुल होकर उठे। जैसे मणि ले लेने से श्रेष्ठ सर्प व्याकुल होकर उठता है। आगे देखा कि श्यामसुन्दर सुखधाम राम सीता और अनुज के सहित विराजमान हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : मुनिजी ने भूप रूप की शोभा को हृदय में धारण कर रक्खा था। यथा : निरखि राम सोभा उर धरहू। निज मनि फनि मूरति मनि करहू। अपने मन को फणि सर्प और प्रभु की मूर्ति को मणि बना रक्खा था। माधुर्योपासकों के लिए भूप रूप ही अति सुन्दर है। विष्णु चारि भुज बिधि मुख चारी। बिकट बेष मुख पंच पुरारी। अपर देउ अस कोउ न आही। एहि छबि सखी पटतरिअ जाही। सो उस रूप के अन्तर्धान होते ही चतुर्भुज रूप का कुछ भी ख्याल न करते हुए मुनिजी मणिहीन भुजङ्ग की भाँति विकल होकर उठे। यथा : सूखहिं अधर जरहिं सब अंगू। मनहु दीन मनि हीन भुअंगू।

त्रेता मे विष्णु भगवान् का पीतरङ्ग रहता है। यहाँ तनु स्यामा पाठ होने से यह अर्थापत्ति होती है कि चतुर्भुज मूर्ति जो प्रकट हुई थी उसका श्याम तन भी नहीं था। जिसने सर्प का मणि लिया उस पर सर्प का बडा क्रोध होता है। समाधि भङ्ग करनेवाले पर समाधिस्थ का भयानक क्रोध होता है। यथा : भयउ ईस मन छोभ बिसेखी। नयन उघारि सकल दिसि देखी। सौरभ पल्लव मदन बिलोका। भयउ कोप कंपेउ त्रैलोका। तब सिव तीसर नैन उघारा। चितवत काम भयउ जरि छारा। अत: मुनिजी ने आँख खोलकर देखना चाहा कि किसने उनकी समाधि भङ्ग की। तो आगे अपने परम प्रिय सुखधाम राम की मूर्ति पाते हैं। मनोरथ से भी अधिक की प्राप्ति होती है। अनुज तो साथ में ही हैं। जगदम्बा जानकीजी भी साथ मे हैं।

परेउ लकुट इव चरनन लागी। प्रेम मगन मुनिवर बडभागी॥
भुज बिसाल गहि लिए उठाई। परम प्रीति राखे उर लाई॥११॥

अर्थ : बडे भाग्यवान् मुनियों मे श्रेष्ठ प्रेम मे मग्न होकर छडी की भाँति गिरकर चरणों मे लगे। सरकार ने विशाल भुजाओं से पकडकर उन्हें उठा लिया और बडे प्रेम से उन्हें हृदय मे लगाये रहे।

व्याख्या : प्रेम मगन कहने से देह दशा की विस्मृति कहा। चरणों मे छडी के गिरने की भाँति गिरे। इस भाँति गिरने से चोट लगेगी। इस बात का ध्यान न रहा। बडा भाग्यवान् वही है जिसे सरकार के चरणों की प्राप्ति हो। श्री गोस्वामीजी लकुट और दण्ड मे कुछ भेद करते हैं। लकुट पतला होता है। दण्ड मोटा होता है। मुनिजी दुर्बल हैं। अत इनकी उपमा लकुट से देते हैं। भरतजी भी प्रभु के विरह से दुर्बल हो गये थे। उनके लिए भी कवि लिखते हैं : भूतल परेउ लकुट की नाईं। मनुजी आकाशवाणी सुनकर हृष्ट पुष्ट हो गये थे। यथा : हृष्ट पुष्ट तनु भयउ सोहाये। मानहु अबहिं भवन ते आये। अत: उनकी उपमा दण्ड से देते हैं। यथा : हरष बिबस तन दसा भुलानी। परेउ दण्ड इव गहि पद पानी। ऐसे को ही यहाँ प्रेम मगन शब्द से कहा।

प्रभु की भुजाएँ विशाल हैं। दूर से ही उठा लेती हैं। मुनिजी का मनोरथ पूर्ण हो रहा है। राम गोसाईं निज सेवक की भाँति मिल रहे हैं। मुनिजी लकुट

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : मुनिजी को प्रेम समाधि लग गयी। नही तो बीच रास्ते में कोई अचल होकर नही बैठता। ये रास्ते मे ही अचल हुए। क्योकि रास्ते मे ही इन्हें हरि की प्राप्ति हुई। आनन्द से अद्भुत पुलक हो गया। कटहल के कांटे घने पुलक के ऐसे होते हैं। मुनिजी के शरीर मे कोई स्थान ऐसा न रह गया जहाँ उत्तम पुलक न हो।

जब रामजी ने देख लिया कि मुनिजी अत्यन्त आनन्द से पुलकित हैं। तब निकट गये। प्रभु का स्वभाव है कि निज जन को अपना लेते हैं। सुतीक्ष्णजी का मनोरथ भी था कि रामजी उन्हे निज जन जाकर मिलें। यथा : निज जन जानि ताहि अपनावा। प्रभु सुभाउ कपि कुल मन भावा।

मुनिहि राम बहु भाँति जगावा। जाग न ध्यान जनित सुख पावा ॥
भूप रूप तब राम दुरावा। हृदयँ चतुर्भुज रूप देखावा ॥९॥

अर्थ : मुनिजी को रामजी ने अनेक भाँति से जगाया। पर मुनिजी नही जागे। क्योकि उन्हे सरकार के ध्यान का सुख मिल रहा था। तब रामजी ने राजा के रूप को अन्तर्धान कर दिया और उनके हृदय मे चतुर्भुज रूप दिखलाया।

व्याख्या : सोने से मूर्च्छा से तथा समाधि से व्युत्थान दशा मे होश मे आने को जागना कहते हैं। अतः श्रीरामजी ने समाधि अवस्था से उन्हें जाग्रत अवस्था मे लाने की अनेक चेष्टा की। जो जो उपाय समाधि से उतारने के हैं सो सब काम मे लाये। पर उनकी समाधि भङ्ग न हुई। तात्पर्य यह कि प्रेमाधिक्य से आप से आप समाधि लग जाती है और ऐसी लगती है कि उससे उतारना कठिन हो जाता है। क्योकि समाधि जनित आनन्द को साधक छोड़ना नही चाहता। सरकार ने देखा कि इस तरह ये न जागेंगे।

ये माधुर्य के उपासक थे। ऐश्वर्य रूप के नहीं थे। भूप रूप माधुर्य का रूप है और चतुर्भुज रूप ऐश्वर्य का है। यद्यपि दोनो रूप सरकार के ही है। द्विचत्वारि षडष्टासा दश द्वादश षोडश। अष्टादशामी कथिता हस्ताः शङ्खादिभिर्युताः। पूर्व तापनीये। दो, चार, छः, आठ, दस, बारह, सोलह, अठारह हाथ तक भगवान् रामभद्र के शङ्ख आदि से युक्त माने गये हैं। पर भूप रूपवाली माधुर्य मूर्ति द्विभुज है। मुनिजी उसी के उपासक थे। प्रभु ने उस मूर्ति को अन्तर्धान कर लिया और उसके स्थान पर चतुर्भुज मूर्ति शङ्खचक्रादि से युक्त प्रकट कर दिया।

मुनि अकुलाइ उठा तब कैसे। बिकल हीन मनि फनिवर जैसें ॥
आगे देखि राम तनु स्यामा। सीता अनुज सहित सुख धामा ॥१०॥

अर्थ : मुनिजी तब किस भाँति आकुल होकर उठे। जैसे मणि ले लेने से श्रेष्ठ सर्प व्याकुल होकर उठता है। आगे देखा कि श्यामसुन्दर सुखधाम राम सीता और अनुज के सहित विराजमान हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



की भाँति चरणो मे पडे हैं। उठना नही चाहते। छडी आपसे नही उठती : उठाने से उठती है। अतः प्रभु ने अपने हाथो से इन्हे उठा लिया। अपना दास उन्हे सबसे अधिक प्रिय है। इसलिए परम प्रेम से हृदय मे लगाये हुए हैं। विरह सन्तप्त हृदय को शान्ति दे रहे हैं।

मुनिहि मिलत अस सोह कृपाला। कनक तरुहि जनु भेंट तमाला ॥
राम बदनु बिलोकि मुनि ठाढा। मानहु चित्र माँझ लिखि काढा ॥१२॥

अर्थ : मुनिजी से मिलते हुए कृपाल ऐसे शोभित हुए जैसे धतूर के पेड़ से तमाल : आबनूस पेड मिल रहा हो। मुनिजी खडे हुए श्रीरामजी का मुख देख रहे हैं। मानो चित्र मे लिखकर बनाये गये हो।

व्याख्या : प्रेमाधिक्य से भक्त भगवन्त दोनो मे जाडय है। इसलिए पेडो से उपमा दी। मुनिजी को इस समय भी पुलक है। अत· उनकी उपमा धतूर के वृक्ष से दिया। धतूर का फल भी कटहल के फल सा कटकित होता है। प्रभु की उपमा तमाल वृक्ष से दिया। तमाल वृक्ष श्याम होता है। उसके पत्ते भी श्याम होते हैं। अतः प्रभु से उपमित किया।

मिलने के बाद मुनिजी खडे हुए मुह देख रहे है। कुछ कहने सुनने की सामर्थ्य नही है। न होश है। जैसे चित्र मे लिखे हुए मुनि जैसे लिखे जाते है वैसे ही बने रहते हैं। यदि आँख खुली है तो खुली ही रहती है। पलक गिरती ही नही। सिवा दर्शन के किसी अन्य भाव का हृदय मे स्थान नही है।

दो. तब मुनि हृदय धीर धरि, गहि पद बारहि बार।
निज आश्रम प्रभु आनि करि, पूजा बिबिध प्रकार ॥१०॥

अर्थ : तब मुनिजी धैर्य धारण करके और बार बार चरणो को पकडकर प्रभु को अपने आश्रम मे ले आये और अनेक प्रकार से पूजा।

व्याख्या : दु ख मे जो उद्विग्न न हो, सुख की जिसे इच्छा न हो, राग द्वेष भय जिसका निकल गया हो, उसे मुनि कहते हैं। इस समय उनका धैर्य छूटा हुआ है। सो हृदय मे धैर्य धारण किया। प्रेम से बार बार चरण ग्रहण करते हैं। अथवा अपने आश्रम मे लिवा चलने के लिए बार बार सङ्कोच मे डाल रहे हैं। यथा · बार बार गहि चरण सकोची। यहाँ सरकार की ओर से प्रणाम दण्डवत् कुछ नही हो रहा है। क्योकि ऐश्वर्य खुल गया है। रास्ते मे पूजा नही हो सकती। अतः आश्रम मे लिवा लाये। षोडशोपचार राजोपचारादि पूजनो मे से जो जो सम्भव था सब किया। इसलिए बिबिध प्रकार कहा।

कह मुनि प्रभु सुनु बिनती मोरी। अस्तुति करौ कवन बिधि तोरी ॥
महिमा अमित मोरि मति थोरी। रबि सनमुख खद्योत अँजोरी ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : मुनि ने कहा हे प्रभु ! मेरी विनती सुनो। तुम्हारी स्तुति किस विधि से करूँ। महिमा अपार है और मेरी बुद्धि थोड़ी है। जैसे सूर्य के सामने जुगनू का प्रकाश।

व्याख्या : पूजा के बाद स्तुति होनी चाहिए। सो पूजा तो शास्त्रानुसार कर डाला। उसके लिए विधि नही पूछा। पर स्तुति करने मे तो शास्त्र भी असमर्थ है। यथा : महिमा निगम नेति कहि गाई। अत स्तुति की विधि नही सूझती। सो सरकार से ही विनय करते हैं कि आप ही विधि बतलाइये। यदि नही बतलाते तो स्तुति करने मे बिगड जाय तो मेरा दोष नही।

विधि न समझने का कारण बतलाते हैं कि आपकी महिमा का पारावार नही और महिमा कथन को ही स्तुति कहते हैं। तिस पर मेरी बुद्धि बहुत थोड़ी है। जब प्रभु की महिमा की ओर देखती है तब काम नही करती। वैसे ससार मे तो खूब काम करती है। तथा निसि तम घन खद्योत बिराजा। पर सूर्य का सामना पड़ते ही खद्योत का प्रकाश सूर्य के प्रकाश मे लीन हो जाता है। कुछ भी काम नही कर सकता। पता भी नही चलता कि खद्योत भी ससार मे कही है। ऐसी ही मेरी बुद्धि की गति हो रही है। जो लोग प्रवीण हैं उनकी बुद्धि भी दीपादिवत् निस्तेज हो जाती है। पर अपने अस्तित्व का प्रकाश करती है। यथा : मुनिवर परम प्रवीन जोरि पानि अस्तुति करत। यहाँ तो मेरी जुगुनू की दशा है। रात मे भी जुगनू चमकते चमकते रह जाता है। एकरस प्रकाश नही कर पाता। दिन मे क्या प्रकाश करेगा।

स्याम तामरस दाम सरीरं। जटा मुकुट परिधान मुनि चीरं ॥
पानि चाप सर कटि तूनीरं। नौमि निरंतर श्रीरघुवीरं ॥२॥

अर्थ : नीलकमल की माला के समान शरीरवाले। जटा का मुकुट और मुनिवस्त्र धारण करनेवाले हाथो मे धनुष बाण लिये हुए। तथा कमर मे तरकस कसे हुए श्रीरघुवीर को मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : स्याम तामरस दाम शरीर : से सुन्दरता कहा। यथा : स्यामसरोज दाम सम सुन्दर। जटा मुकुट परिधान मुनिचीर : से धर्म परायणता कही। यथा : पितु आयसु भूषन बसन तात तजे रघुवीर। हृदय न हरष बिषाद कछु पहिरे बलकल चीर। अथवा ऐसा सौन्दर्य है कि जटा मुकुट मालूम होता है और वल्कल परिधान मालूम होता है। यथा : पीताम्बर सुदर। पानि चाप सर कटि तूनीरं से द्विभुज मूर्ति कहा। तथा भक्तो की सब प्रकार से रक्षा दिखलाया। यथा तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना। जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि भाथा। प्रभु की ऐसी श्री है कि लोभ मोहादि सामने ठहर नही सकते। सरकार को सशस्त्र देखते ही भाग जाते हैं। इसलिए श्रीरघुवीर कहा। अथवा श्रीरूपिणी सीताजी साथ हैं इसलिए श्रीरघुवीर कहा। यथा : उभय बीच श्री सोहइ कैसी। ब्रह्म जीव बिच माया जैसी प्रभु का। स्वभाव है कि एक बार प्रणाम

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



करनेवाले को अपना कर लेते हैं। इसलिए तदीय होने के लिए निरन्तर प्रणाम करते हैं। यह पहला नमस्कार है। यह स्तुति वीररस से भी है। इसलिए इसे विचाररूपी भूप का सुभट फल श्रुति प्रकरण में कहा है। अथवा असाध्य जानकर भी उत्साह के साथ स्तुति करते चले जाते हैं। अतः इसकी स्तुति विचार भूपति की सुभटरूपा है।

मोह विपिन घन दहन कृशानुः। संत सरोरुह कानन भानुः॥
निसिचर करि बरूथ मृगराजः। त्रातु सदा नो भव खग बाज.॥३॥

अर्थ : हे मोहरूपी घन बन के जलाने के लिए अग्निरूप, हे सन्तरूपी कमल बन के सूर्य, हे राक्षस रूपी हाथी के झुण्ड के लिए सिंह, हे संसाररूपी चिड़िया के लिए बाजरूप ! हमारी रक्षा कीजिए।

व्याख्या : अति दुःखद होने से मोह को विपिन कहा। यथा : डरपहिं धार गहत सुधि आये। घन कहने का भाव यह कि इसमें पड़ने से मनुष्य मार्गभ्रष्ट हो जाता है। और फिर उससे बाहर निकलना कठिन हो जाता है। मोह विपिन में भी सरकार अव्यक्त रूप से भरे पड़े हैं। पर उसमें अति सघर्ष होने से। यथा : करहिं अनीति जाइ नहिं बरनी। सीदहिं विप्रधेनु सुर धरनी। प्रभु अग्नि की भाँति व्यक्त हो जाते हैं। मोह विपिन का नाश कर देते हैं। इससे अवतार का कारण कहा। अब कार्य कहते हैं। प्रभु के उदय से सूर्योदय की भाँति सन्तरूपी कमल का बन विकसित हो उठता है। इस भाँति साधु परित्राण कहकर दुष्टों का विनाश कहते हैं। प्रभु को प्रतिज्ञा करके बन में रहते इतने दिन बीते। पर एक भी राक्षस हाथ न चढ़ा। जिस भाँति सिंह का गन्ध न सहकर हाथी जंगल छोड़ देते हैं। उसी भाँति प्रभु का गन्ध, सहने में राक्षस असमर्थ हो जाते हैं। अब प्रभु का मोक्षदातृत्व गुण कहते है। आवागमन भव है। उसे खग कहा है। खग का आकाश मे और पृथ्वी में आना जाना लगा रहता है। बाज उसको भक्षण कर जाता है। प्रभु भी भव भय को भक्षण करके मुक्ति देते हैं। त्रासु कहकर अपनी रक्षा के लिए प्रार्थना की। स्वरूप को नमस्कार करके मनमे बसाते हैं और गुणों से अपनी रक्षा चाहते हैं।

अरुन नयन राजीव सुवेसं। सीता नयन चकोर निसेसं॥
हर हृदि मानस बाल मरालं। नौमि राम उर बाहु विसालं॥४॥

अर्थ : जो लाल कमल से लाल नेत्र वाले और सुन्दर वेष वाले हैं। जो सीताजी के नेत्र चकोर के चन्द्रमा है और जो शिवजी के हृदयरूपी मानसरोवर के लिए जो हंस हैं ऐसे विशाल वक्षःस्थल और भुजावाले रामजी को मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : नयन की अरुणिमा चक्रवर्ती होने का चिन्ह है। कमल से नेत्रो की उपमा कृपा कटाक्ष के लिए दी जाती है। यथा : मामवलोकय पंकज लोचन। कृपा विलोकनि सोच विमोचन। पहिले रूप का वर्णन किया था। फिर गुण वर्णन करने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लगे। अब फिर रूप वर्णन करते हैं। यथा : वल्कल बसन जटिल तनु स्यामा। जनु मुनिवेष कीन्ह रति कामा। इस भाँति सुवेष हैं। अब सुन्दरता की पराकाष्ठा कहते हैं कि सीताजी ऐसी सुन्दरी के नेत्ररूपी चकोर के लिए चन्द्रमा है। यथा : जाइ समीप राम छवि देखी। रही जनु कुँअरि चित्र अवरेखीं।

बूढ़े मुनि ने संकर मानस राज मराल कहकर वर्णन किया था। ये मुनि शिष्य हैं। इसलिए बाल मराल कह रहे हैं। सीता जी साक्षात् देखती हैं। इसलिए चन्द्र चकोर की उपमा दी। शिवजी ध्यान से देखते हैं इसलिए उनके हृदयरूपी मानसरोवर का हंस बतलाया। उर बाहु बिसाल कहकर विक्रम सूचित करते हैं। श्री रघुबीर कहकर रघुकुल में जन्म दिखलाया। सीता नयन चकोर कहकर विवाह कहा। यह दूसरा नमस्कार है।

संसय सर्प ग्रसन उरगादः। समन सुकर्कस तर्क बिषादः॥
भव भंजन रंजन सुर जूथः। त्रातु सदा नो कृपा बरूथः॥५॥

अर्थ : जो संशयरूपी सर्प के ग्रसन के लिए गरुड़ हैं। अत्यन्त कर्कश तर्क जनित विषाद के नाश करनेवाले हैं। आवागमन को मिटानेवाले और देवताओं के समूह को आनन्द देने वाले हैं। ऐसे कृपा के समूह रामजी सदा हमारी रक्षा करें।

व्याख्या : संशय को सर्प कहते हैं। क्योंकि संशयग्रस्त के हृदय में दुःखद कुतर्क की लहरें उठती हैं। यथा : संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहरि कुतर्क बहु ब्राता। सो संशय सर्प ही आपका भक्ष्य है। इसलिए गरुड़ से उपमा दी। सर्प का ग्रास तो हुआ। पर जिसका उसने दंशन किया है उसकी रक्षा कैसे होगी? अतः कहते हैं कि आप दुःखद तर्क विषाद के भी शमन करनेवाले हैं। विष के उतरने के कारण भी गरुड़ ही होते हैं। गारुड़ी विद्या से विष उतरता है। एवं ज्ञान स्वरूप कहा : यथा : ज्ञान उदय जिमि संसय जाहीं। इस स्तुति में भव का उल्लेख तीन बार आया है। १. ज्ञानियों के लिए संसार की पारमार्थिक स्थिति है ही नहीं। केवल व्यावहारिकी स्थिति है। इसलिए उनके लिए वह खग है। कभी काम खग से ही पड़ जाता है। उसके लिए प्रभु बाज हैं। उसे निर्मूल कर देते हैं। तब सजात वाद सामने आ जाता है। २. कर्मठों के लिए संसार वास्तविक है। इसलिए उसका भङ्ग कर देते हैं तब दैवी प्रकृतिवालों को सुखानुभव होता है। अतः भव भंजन रंजन सुर यूथः कहा। ३. भक्तों के लिए सेतु हो जाते हैं। उनका आश्रयण करके भक्त भव सरिता के आरपार आया जाया करते हैं। उन्हें भव सरिता बाधक नहीं है।

निर्गुन सगुन बिषम सम रूपं। ग्यान गिरा गोऽतीतमनूपं॥
अमलमखिल - मनवद्यमपारं। नौमि राम भंजन महि भारं॥६॥

अर्थ : जो निर्गुण, सगुण, विषम और समरूप हैं। जो ज्ञान, वाणी और इन्द्रियों से अतीत हैं। जो अनूप, निर्मल सम्पूर्ण, दोष रहित, अनन्त और पृथ्वी का भार उतारनेवाले हैं। ऐसे रामजी को मैं नमस्कार करता हूँ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : निर्गुण सगुण कहकर मिश्र ब्रह्म कहा। विषम समरूप कहकर जगन्मय कहा। ग्यान गिरा गोतीत से साक्षात् ब्रह्म कहा। तीनों होने से अनूप कहा। यथा : अनूप रूप भूपति। अवतार रूप मे तीनो का समावेश है। यथा : ब्रह्माड निकाया निर्मित माया रोम रोम प्रति वेद कहै। सो मम उर वासी यह उपहासी सुनत धीर मति थिर न रहै। अमल से शुद्ध, अविरल से पूर्ण, अनवद्य से निर्विकार, अपार से व्यापक अथवा अपरिच्छिन्न कहा। भजन महिभार से पूर्णावतार धारण करके रावणादि का बध कहा। यथा : अतिसय देखि धर्म कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी। गिरि सर सिंधु भार नहिं मोही। जस मोहि गरुअ एक पर द्रोही। ऐसे रामजी को नमस्कार करते हैं। यह तीसरा नमस्कार है।

भक्त कल्पपादप आरामः। तर्जन क्रोध लोभ मद कामः॥
अति नागर भव सागर सेतुः। त्रातु सदा दिनकर कुल केतुः॥७॥

अर्थ : जो भक्त के लिए कल्पवृक्ष के वाग हैं। क्रोध, लोभ, मद और काम को डांटनेवाले हैं। अत्यन्त चतुर और ससार समुद्र के सेतु हैं। ऐसे सूर्यकुल के ध्वजारूप श्रीरामजी हमारी रक्षा करें।

व्याख्या : रूप कहकर फिर गुण कहते हैं। कल्पवृक्ष तो सबके लिए समान है। किसी के सन्मुख या विमुख नही है। उसके निकट जाने और पहिचानने की आवश्यकता है। माँगने से वह चाही हुई वस्तु दे देता है। परन्तु भक्त को तो किसी वस्तु की कामना नही है। यथा 'नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये। वह तो उन्ही प्रभु को ही चाहता है। इसलिए उसके लिए प्रभु कल्पवृक्ष के वाग हो जाते हैं। उन्ही मे भक्त विहार करते हैं। उसी वाग की सुन्दरता देखने में मग्न रहते हैं। उन्हे काम, क्रोधादिक शत्रुओ का भी भय नही रहता। क्योकि प्रभु उन्हे भगा देते हैं। अतः तर्जन क्रोध लोभ मद काम कह रहे हैं। इन्हे शत्रु इसलिए कहा कि ये ही जीव को नरक में ले जाते है। यथा 'काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पंथ।

नागर चतुर को कहते हैं। यहाँ प्रभु को अति नागर कहते हैं। प्रभु भक्त के लोक परलोक दोनो को सँभालते हैं। भवसागर के सेतु हैं। इनका आश्रयण करने से अनायासेन भवसागर पार किया जा सकता है। यथा : अति अपार जे सरित वर जौ नृप सेतु कराहिं। चढि पिपोलकउ परम लघु विनु श्रम पारहिं जाहिं। सर्वात्मना साधनहीन चीटी जिस भाँति सेतु का आश्रयण करके अनायासेन पार चली जाती है उसी भाँति सभी साधनो से हीन भक्त भी केवल प्रभु का आश्रय करके अनायासेन भवसागर पार हो जाते हैं। उन्हे भवसागर के मध्य उत्ताल तरङ्ग तथा मकर उरग वाधा नही कर सकते। दिनकर कुलसेतु कहकर रामावतार कहा। मुनिजी उन्ही से सदा अपनी रक्षा चाहते हैं। दूसरे से नही। यथा : बनै तो रघुवर ते बनै या बिगरै भरपूर। तुलसी बनै जो और तेहि बनिवे मह धूर।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अतुलित भुज प्रताप बल धामः । कलि मल विपुल विभंजन नामः ॥
धर्म वर्म नर्मद गुन ग्राम. । संतत संतनोतु मम रामः ॥८॥

अर्थ : जिसके भुज प्रताप की तौल नही । जो बल के धाम है। जिसका नाम कलि के विशाल मल का नाश करनेवाला है। जो धर्म के कवच हैं। जिनका गुणग्राम सुख देनेवाला है । ऐसे राम सदा मेरा कल्याण करें।

व्याख्या : सक्षेप मे नाम रूप लीला और धाम चारो कह रहे हैं। अतुलित-भुजप्रतापबलधामः से रूप कहा : कलिमलविपुलविभजननाम. से नाम कहा । धर्मवर्मनर्मदगुणग्राम से लीला कहा : और सतत सतनोतु मम राम. से धाम के लिए प्रार्थना करते हैं।

प्रभु बल के धाम हैं। उन्ही के बल से सम्पूर्ण सृष्टि चल रही है। यथा सुनु रावन ब्रह्माड निकाया। पाइ जासु बल विरचति माया। जाके बल विरचि हरि ईसा । पालत सृजत हरत दससीसा । जा बल सीस धरत सहसानन । अडकोस समेत गिरि कानन । इत्यादि । उनके भुजा के प्रताप की भी तुलना नहीं है। यथा ब्रह्म धाम सिवपुर सब लोका । फिरा श्रमित व्याकुल भय सोका । काहू बैठन कहा न ओही । राखि को सकै राम कर द्रोही । अन्त मे वही जयंत कहता है अतुलित बल अतुलित प्रभुताई । मैं मतिमद जान नहि पाई । नाम की प्रभुता ऐसी है कि इस कराल कलिकाल मे लोक परलोक उसी द्वारा सिद्ध होता है। नही तो सब धर्मों को कलिमल ग्रसे हुए हैं। किसी से काम नही चलता । यथा नाम काम तरु काल कराला । सुमिरत समन सकल भव जाला । प्रभु के गुणग्राम से धर्म की रक्षा होती है और सुख मिलता है। यथा : राम को सुमिरिबो सब बिधि ही को राज रे । रामको बिसारिबो निषेध सिरताज रे। तथा : एहि विधि कहत राम गुनग्रामा । पावा अनिर्वाच्य बिश्रामा ।

तीन प्रकारसे भजन कहा गया है। तस्यैवाह ममैवासौ स एवाहमिति त्रिधा । मैं उनका हूँ। वे मेरे हैं और वही मै हूँ। ये ही तीन प्रकार हैं। सेवक आरम्भ मे समझता है कि मैं उनका हूँ। जब सम्बन्ध प्रागल्भ्य होता है तब समझता है कि वे मेरे हैं और जब उस प्रागल्भ्य की अति वृद्धि होती है तब समझने लगता है कि उनमे और मुझमे भेद नही है। यहाँ पर मुनिजी सम्बन्ध प्रागल्भ्य से मम रामः कह रहे हैं और उन्ही से सदा अपना कल्याण चाहते है। यथा . मोर दास कहाइ नर आसा । करै तौ कहहु कहाँ बिस्वासा ।

जदपि बिरज ब्यापक अबिनासी । सब के हृदय निरंतर बासी ॥
तदपि अनुज श्री सहित खरारी । बसतु मनसि मम कानन चारी ॥९॥

अर्थ : यद्यपि आप निर्मल व्यापक और अविनाशी है। सबके हृदय मे निरन्तर वास करते हैं। फिर भी छोटे भाई और लक्ष्मी के सहित हे खरारि ! हे काननचारी ! मेरे मन मे बसो ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या विरज से प्रकृति पार कहा। व्यापक से अपरिच्छिन्न कहा। अविनासी से नित्य कहा। अर्थात् निर्गुण रूप से सरकार सबके हृदय मे निवास करते हैं। फिर भी ससार के सब जीव दीन और दु खी हो रहे है। अत निर्गुण रूप से काम नही चलता। इसलिए मुनिजी सगुण रूप से हृदय मे बसाना चाहते हैं और सगुण रूप मे भी उस रूप से जिस रूप मे उस समय लीला कर रहे हैं। क्योकि लीला विग्रह से ही काननचारी होकर मुनिगण को सुलभ हो रहे है। खरारि होकर उन्हे अभय दे रहे हैं। अनुज लक्ष्मण तथा श्री सीता शक्ति साथ मे है। अत उनके साथ ही हृदय मे बसाना चाहते हैं जिसम सानन्द निवास हो। यथा राम लखन सीता सहित सोहत परन निकेत। जिमि बासव बस अमरपुर सची जयत समेत। भाव यह कि दण्डक वन की भाँति अपने मनको पवित्र करने की प्रार्थना करते हैं।

जे जानहि ते जानहु स्वामी। सगुन अगुन उर अतरजामी ॥
जो कोसल पति राजिव नयना। करौ सो रामु हृदय मम अयना ॥१०॥

अर्थ हे स्वामी! जो आपको सगुण निर्गुण और उर अन्तर्यामी भी जानते हैं वे जाना कर। मेरे हृदय को तो जो राजीवनयन कोसलपति राम हैं वे ही घर बनावें।

व्याख्या रामजी सगुण निर्गुण तथा अन्तर्यामी रूप है। ऐसा शास्त्र कहता है। और शास्त्रज्ञ लाग इस बात को जानते हैं। सो उनका जानना उन्ही के लिए कल्याणदायक हो। मै तो ऐश्वर्य उपासक नही। मेरे लिए तो माधुर्य ही सब कुछ है। अत मै सगुण निर्गुण या अन्तर्यामी रूप नही चाहता। मै तो राजीवलोचन कोसलपति रामको हृदय मे बसाना चाहता हूँ। सो रामजी अवतीर्ण होकर कासल-पति हुए हैं। वे मेरे मन में घर करें। पहिले काननचारी रूप से बसने की प्रार्थना की थी। फिर सोचा कि यह रूप तो कुछ ही दिनो के लिए है। इसके बाद जाकर अयोध्या के राजा हो जायँगे। अत कोसलपति होकर भी हृदय मे निवास करें।

अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे ॥
सुनि मुनि बचनु राम मन भाए। बहुरि हरषि मुनिवर उर लाए ॥११॥

अर्थ ऐसा भूलकर अभिमान न छूटे कि मै सेवक हूँ और श्री रघुनाथजी मेरे स्वामी हैं। मुनिजी का वचन सुनकर श्रीरामजी मन मे बहुत प्रसन्न हुए। तब उन्हाने फिर हर्षित होकर श्रेष्ठ मुनि को हृदय से लगा लिया।

व्याख्या : सरकार को अभिमान प्रिय नही है। अत भक्त को अभिमान होने देना प्रभु नही चाहते। यथा : जन अभिमान न राखहि काऊ। पर सेवक सेव्यभाव-वाला अभिमान तो भक्ति का प्राण है। इतना ही ज्ञानी और भक्त मे अन्तर है। ज्ञानी भी ब्रह्ममय जगत् को देखता है। भक्त भी ब्रह्ममय देखता है। पर ज्ञानी मे कोई अभिमान नही रहता। अपने अस्तित्व को भी ब्रह्म म लय कर देता है। भक्त

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सेवक रूप से अपना अस्तित्व अलग बनाये रहता है। यथा : मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत।

यह गुणग्राम पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र है। इसमे दो तारे चमक रहे हैं। एक रूप और दूसरा गुण। नौमि के साथ द्वितीयान्त विभक्तिवाले रूप के विशेषण हैं और त्रातु के साथ प्रथमान्त विभक्तिवाले गुणबोधक शब्द हैं। इन्ही दोनों ताराओ की चमक सम्पूर्ण स्तुति मे है। दूसरी बात यह है कि इस तारा का रूप मञ्च सा है। मञ्च की स्थिरता नही। जहाँ आवश्यक हो उठाकर रख दिया। इसी भाँति इस स्तुति मे स्थिरता नही है। कहीं बसहु मनसि मन काननचारी : कहीं काननचारी को बसाते हैं तो कही कोसलपति को बसाना चाहते हैं। यही मम हिय गगन इन्दु इव बसहु : कहते हैं। सिद्धान्त तो यह है कि सगुन उपासक परहित निरत नीति दृढ़ नेम। ते नर प्रान समान मम जिन्हके द्विजपद प्रेम। अतः सगुणोपासना ही ध्येय जानकर मुनिजी के वचन सरकार को प्यारे लगे। प्राण समान प्रिय होने से फिर हृदय से लगाया।

परम प्रसन्न जानु मुनि मोही। जो बर माँगहु देउँ सो तोही ॥
मुनि कह मैं बर कबहुँ न जांचा। समुझि न परइ झूठ का सांचा ॥१२॥

अर्थ : हे मुनि ! मुझे परम प्रसन्न जानो। जो वर माँगो वही तुम्हे दूँ। मुनि ने कहा कि मैंने कभी वर नही माँगा। क्योकि यह रूढि का साँचा समझ मे नहीं आता। अथवा क्या झूठ है क्या सत्य है : यह समझ मे नही आता।

व्याख्या : प्रभु की प्रसन्नता अमोघ है और मुनिपर परम प्रसन्न है। अतः कहते हैं कि मुझे प्ररम प्रसन्न जानकर माँगो अर्थात् माँगने में कसर न करो। यह शङ्का मन मे न करो कि अमुक वस्तु न मिलेगी। जो तुम्हे अच्छा लगेगा वही तुमको दूँगा। सरकार महादानी हैं। याचक को प्रोत्साहन देते हैं कि थोड़ा न माँगना। यथा : बोले कृपा निधान पुनि अति प्रसन्न मोहि जानि। माँगहुँ वर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि।

मुनिजी ने कहा कि वरदान तो मैंने कभी माँगा नही। क्योकि यह ससार रूढि का साँचा है। बस ऐसा ही न जाने कब से चढा आता है। अच्छे बुरे का पता नही चलता। सम्भव है कि जिसे मैं अमृत समझता हूँ वह विष हो। यदि झूठ का साँचा पाठ माना जाय तो यह अर्थ करना होगा कि मुझे झूठ और सच का परिज्ञान नही। झूठ और सच की पहिचान बिना ब्रह्मज्ञान के होती नही। यथा : झूठेहु सत्य जाहि बिनु जाने। जिमि भुजग बिनु रजु पहिचाने। और मुझे ब्रह्मज्ञान नही है। इससे मुझे पहिचान नही है। सम्भव है कि कोई मिथ्या वस्तु माँग लें। इसीलिए मैंने कभी वरदान नहीं माँगा। सदा से फलानुसन्धान रहित कर्म करते आये।

तुम्हहि नीक लागै रघुराई। सो मोहि देहु दास सुखदाई ॥
अबिरल भगति बिरति बिग्याना। होहु सकल गुन ग्यान निधाना ॥१३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : हे रघुनाथजी ! जो तुम्हे अच्छा लगे। हे दासो के सुख देनेवाले ! वही मुझे दो। तुम प्रगाढ भक्ति, वैराग्य, विज्ञान और सभी गुण और ज्ञान के निधान हो जाओ।

व्याख्या : प्रभु माँगने के लिए कहते हैं। अतः अवश्य माँगूँगा। सो हे रघुनाथजी ! आप सर्वज्ञ हैं। आप दासो के सुख देनेवाले हैं और मैं आपका दास हूँ। आप निर्णय कर सकते हैं कि कौन वस्तु मेरे लिए सुखकारक होगी। आप मुझे सुखी करना चाहते है : इसलिए जो वर माँगहु देहु सो तोही कह रहे हैं। पर मेरी चाह तो यही है जो आपको अच्छी लगे। जो आप न चाहे वह मैं भी नही चाहता। सो अपने पसन्द के अनुसार ही मुझे दो।

प्रभु ने मुनीजी की बात को युक्तियुक्त समझकर स्वय उनके हितकर पदार्थों का निर्णय किया। अथवा अपने पसन्द के अनुसार बोले कि पाँच बातें हमें पसन्द है : १ अविरल भक्ति २ वैराग्य ३ विज्ञान ४ सकल गुण निधानता तथा ५. ज्ञान निधानता। अत. पाँचो तुम्हे दिया।

**प्रभु जो दीन्ह सो बरु मैं पावा। अब सो देहु मोहि जो भावा ॥१४॥**

अर्थ प्रभुने जो दिया वह वर तो मैने पा लिया। अब जो मुझे अच्छा लगा सो दीजिये।

व्याख्या : सरकार के देते ही पाँचो बातें मुनिजी को प्राप्त हो गयी। वे स्वय अनुभव कर रहे है कि अविरल भक्ति विज्ञानादि पाँचो गुण उनमे प्रवेश कर गये। अतः कहते हैं कि सरकार ने जो जो दिया सो सब मुझे मिल गया। अब सब बातें मेरी समझ मे आने लगी। फिर भी देखते है कि जिस बात की मुझे चाह थी वह परम कल्याणकारी है और उसे सरकार ने नही दिया। अतः कहते हैं कि अब मुझे जो अच्छा लगा है उसे दीजिये।

**दो. अनुज जानकी सहित प्रभु, चाप बान धर राम।**
**मम हिय गगन इदु इव, बसहु सदा येह काम ॥११॥**

अर्थ : हे प्रभो ! हे रामजी ! कामना यह है कि छोटे भाई लक्ष्मण और सीताजी के सहित मेरे हृदय रूपी आकाश मे चन्द्रमा की भाँति निवास कीजिये।

व्याख्या : परन्तु चाहने मे दो बात हो गयी थी। बसतु हृदय मम कानन चारी और जो कोसलपति राजिव नयना। करहु सो राम हृदय मम अयना। अतः इस बार और भी सँभालकर माँगते हैं। रामजी का निवास वन मे तो बहुत थोडे दिनो के लिए है और कोसलपुरी मे तो वहुत दिनो तक रहेगा पर सदा तो नही रहेगा और चन्द्रमा का निवास आकाश मे रहता है। अतः मुनिजी चन्द्रमा की भाँति सरकार को अपने हृदय गगन मे सदा के लिए बसाना चाहते हैं। सूर्य की भाँति अकेले नही। जैसे चन्द्रमा बुध और रोहिणी के साथ बसते हैं उसी भाँति सरकार भी छोटे भाई लक्ष्मण तथा सीताजी के सहित बसें। कभी सरकार का

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विछोह न हो। इस भाँति मुनिजी ने सदा के लिए तीनों मूर्तियों को हृदय में बसा लिया।

एवमस्तु करि रमानिवासा। हरखि चले कुंभज रिषि पासा॥
बहुत दिवस गुर दरसनु पाएँ। भए मोहि एहिं आश्रमु आएँ॥१॥

अर्थ : एवमस्तु ऐसा वरदान देकर रमानिवास रामजी हर्षित होकर अगस्त्य ऋषि के पास चले। गुरुजी का दर्शन पाये और इस आश्रम में आये मुझे बहुत दिन हुए।

व्याख्या : सरकार परम प्रसन्न हैं। अतः स्वयं भी वर दिया और मुनिजी के माँगे हुए वर के लिए ऐसा ही हो कहा और एक रूप से उनके हृदय में निवास किया। दूसरे रूप से चले। अगस्त्यजी वसिष्ठजी के भाई हैं। अतः उनके दर्शन के लिए हर्षित होकर चले।

अगस्त्यजी से रावण वध के लिए मन्त्र लेंगे। शरणागत मुनियों के त्रास का हरण करके उन्हें सुख देंगे। इसलिए रमानिवास कह रहे हैं। यथा : दे भक्ति रमानिवास त्राणहरण सरन सुखदायक।

गुरुजी के आश्रम में जाने का प्रभु का विचार जानकर सुतीक्ष्णजी ने कहा कि गुरुजी के आश्रम को छोड़कर यहाँ मुझे बहुत दिन हुए और जब से यहाँ आये तब से गुरुजी का दर्शन नहीं किया : इतने सन्निकट होने पर भी गुरुजी का दर्शन न करना शास्त्रविरुद्ध है और उसकी अभिलाषा भी है। फिर भी न जाने का कारण था। बिना सरकार को सङ्ग लिये गुरुजी के पास जा नहीं सकते थे।

अब प्रभु संग जाउँ गुर पाँहीं। तुम्ह कहुँ नाथ निहोरा नाँहीं॥
देखि कृपानिधि मुनि चतुराई। लिए संग बिहँसे द्वौ भाई॥२॥

अर्थ : अब प्रभु के साथ गुरुजी के पास चलूँ। हे नाथ! यह निहोरा आप पर नहीं है। कृपानिधि मुनिजी की चतुराई देखकर उन्हें साथ ले लिया और दोनों भाई विहँसे।

व्याख्या : मुनिजी कहते हैं कि अब आपके सङ्ग गुरुजी के पास चलूँगा। आपको पहुँचाने नहीं जा रहा हूँ। इसलिए आप पर निहोरा नहीं है। अपने मतलब से जा रहा हूँ।

प्रभु कृपानिधि हैं। नयी कृपा करते ही जाते हैं। यथा : बिगरी बनावै कृपानिधि की कृपा नई। मुनिजी की चतुराई देखा कि साथ में चलकर मुझे गुरुजी को दक्षिणा रूप में देना चाहते हैं। गुरुजी के पास बिना मेरे साथ न जाने का अर्थ क्या है? अतः मुनिजी की चतुराई पर दोनों भाई खूब हँसे और साथ ले लिया।

## ३०. प्रभु अगस्त्यसत्संग

पंथ कहत निज भगति अनूपा। मुनि आश्रम पहुँचे सुरभूपा॥
तुरत सुतीछन गुर पहिं गयऊ। करि दंडवत कहत अस भयऊ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : रास्ते मे अपनी अनूप भक्ति का वर्णन करते हुए सुरभूप रामजी मुनिजी के आश्रम पर पहुँच गये। सुतीक्ष्णजी तुरन्त गुरुजी के पास गये और दण्डवत् करके ऐसा कहने लगे।

व्याख्या : बातचीत करते करते रास्ता कट जाता है। अतः रास्ता चलते बातचीत होती जाती है। यथा : बरनत पथ बिबिध इतिहासा। बिस्वनाथ पहुँचे कैलासा। मुनिजी को भक्ति प्रिय है और सरकार को भी वही प्रिय है। इसलिए अनूप भक्ति जो सुख की मूल है उसका वर्णन करते चले। यथा : भगति तात अनुपम सुख मूला। मिलहइ जो सत होहिं अनुकूला। सुरभूप हैं। प्रजा के हित के लिए पहुँचे।

सुतीक्ष्णजी गुरुजी के पास त्वरित गति से आगे बढ गये और जाकर दण्डवत् किया। गुरुजी साकाक्ष हुए कि गुरु दक्षिणा मे रामजी को मिलाने के लिए कहकर गया था। इतने दिनो के बाद आया है। देखें क्या कहता है ?

नाथ कोसलाधीस कुमारा। आए मिलन जगत आधारा॥
राम अनुज समेत बैदेही। निसि दिनु देव जपत हहु जेही॥४॥

अर्थ हे नाथ! कोशलाधीश के कुमार जगत् के आधार रामजी छोटे भाई तथा जानकीजी के समेत मिलने आये हैं। हे देव! जिनका आप दिन रात जप करते हैं।

व्याख्या : कोसलाधीस कुमारा कहकर दाशरथि राम अर्थात् अवतार होना द्योतित किया। यथा : ते दसरथ कौसल्या रूपा। कोसलपुरी प्रकट नरभूपा। तिनके गृह अवतरिहौं जाई। जगत् आधार से ब्रह्म कहा। यथा : एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई। आये मिलन से गुरु दक्षिणा की उपस्थिति कही। गुरुजी राम बाम दिसि जानकी लखन दाहिनी ओर के उपासक हैं। अतः केवल रामजी के आने की बात सुनकर मनोरथ को पूर्ण न मानते हुए उतने प्रसन्न हुए जितना होना चाहिए था।

सुतीक्ष्णजी की बुद्धि बडी तीक्ष्ण है। तुरन्त समझ गये। अतः कहते हैं : अनुज समेत बैदेही : आये हुए हैं। रात दिन जिसे आपजपा करते है : कहकर अभिलाषा की पूर्ति की ओर सङ्केत करते हैं।

सुनत अगस्ति तुरत उठि धाए। हरि बिलोकि लोचन जल छाए॥
मुनि पद कमल परे द्वौ भाई। रिषि अति प्रीति लिये उर लाई॥५॥

अर्थ : यह सुनते ही अगस्त्यजी तुरन्त उठकर दौडे। भगवान् को देखते ही उनकी आँखो मे जल भर आया। दोनो भाई मुनिजी के चरणो मे गिरे। ऋषिजी ने अत्यन्त प्रेम से हृदय मे लगा लिया।

व्याख्या : सुनते ही अगस्त्यजी अति उत्कण्ठा से उठकर दौड़ पडे। आगे जाकर लेना चाहिए। कही चले न आवें और इस सत्कार से मैं वञ्चित रह जाऊँ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अथवा आश्रम द्वार पर ही कहीं खड़े न हों। प्रभु को देखा तो सात्त्विक भाव हुआ। आँखों में आनन्दाश्रु छा गया। दृष्टि थोड़ी हो गयी। गुरुजी के सम्बन्ध से दोनों भाइयों ने दण्डवत् किया। अगस्त्यजी बड़े ऊँचे दर्जे के ऋषि है। इनके यहाँ साक्षात् शङ्कर भगवान् सत्सङ्ग के लिए आते हैं। सनकादिक आते हैं। यथा : एक बार त्रेता जुग माहीं। संभु गये कुंभज रिषि पाहीं। तहाँ रहे सनकादि भवानी। जहँ घट संभव मुनि बिज्ञानी। दण्डवत् करते देखकर ऋषिजी ने अत्यन्त प्रीति से हृदय में लगा लिया। अपने सन्तप्त हृदय को शीतल किया।

सादर कुसल पूँछि मुनि ग्यानी। आसन बर बैठारे आनी ॥
पुनि करि बहु प्रकार प्रभु पूजा। मोहि सम भाग्यवंत नहि दूजा ॥६॥

अर्थ : ज्ञानी मुनि ने आदरपूर्वक कुशल पूछकर उन्हें लाकर आसन पर बिठलाया। फिर बहुत प्रकार से प्रभु की पूजा करके बोले कि मेरे समान दूसरा कोई भाग्यवान् नहीं है।

व्याख्या : मुनि ज्ञानी कहकर उनकी भक्ति को अहैतुकी कहा। यथा : आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्यहैतुकीं भक्तिमित्थम्भूतगुणो हरिः। आदर से विनय पूछना सत्कार का प्रथम अङ्ग है। तत्पश्चात् आश्रम में ले गये। आसन दिया। सरकार को उनके सामने आसन पर बैठाने में सङ्कोच है। अतः मुनिजी ने आग्रहपूर्वक बिठाया। भगवती गायत्रीरूपा ब्राह्मणों की उपास्य देवता हैं। अतः उसके उपासना के विरुद्ध पड़ने की आशङ्का से प्रणाम नहीं करती। केवल बड़ों की आज्ञा से वसिष्ठजी को प्रणाम करती हैं। यथा : सास ससुर गुरु सेवा करेहू।

पञ्चोपचार, षोडशोपचार, सहस्रोपचार पूजा की जाती है। यहाँ कोई नियम नहीं। जितने प्रकार की पूजाएँ बन पड़ीं सभी की गयीं। तत्पश्चात् अपने भाग्य की प्रशंसा की। साक्षात् प्रभु के आगमन से बढ़कर और भाग्य क्या होगा। अथवा सरकार की प्राप्ति से भाग्यवान् तो और लोग भी हुए। पर गुरुदक्षिणा में सरकार को मुनिजी ने ही पाया। इसलिए मो सम भाग्यवंत नहि दूजा कह रहे हैं।

जहँ लगि रहे अपर मुनि बृंदा। हरखे सब बिलोकि सुख कंदा ॥७॥

अर्थ : जितने मुनि थे वे सब सुख के बादल रामजी को देखकर हर्षित हुए।

व्याख्या : अपर मुनिवृन्द श्रीराम मन्त्र की व्याख्या सुन रहे थे। जिस समय प्रभु आये उस समय अगस्त्यजी श्रीराम मन्त्र की व्याख्या कर रहे थे। व्याख्या समाप्त होते न होते श्रीरामजी की प्राप्ति हो गयी। आनन्द की वर्षा हो गयी। यथा : भूसुर ससि नव बृंद बलाहक हैं। अतः मुनि लोग नव शस्य की भाँति आनन्द कन्द की प्राप्ति से हर्षित हो उठे।

दो. मुनि समूह महँ बैठे, सनमुख सब की ओर।
सरद इंदु तन चितवत, मानहु निकर चकोर ॥१२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : मुनि समूह के बीच मे रामजी सबके सम्मुख बैठे। जैसे चकोर का समूह शरत्चन्द्र की ओर टकटकी लगाये देख रहा हो।

व्याख्या : मुनिमण्डली के मध्य मे बैठे हैं। और किसी की ओर पीठ नही है। सब अपने सामने ही देख रहे हैं। मुनिलोग बड़े प्रेमी हैं। बडे आनन्द से दर्शन कर रहे हैं। इसलिए चकोर निकर से उपमा दी। रामजी बड़े सुन्दर हैं। इसलिए उन्हे शरत्चन्द्र से उपमित किया। चकोरो को चन्द्रमा का दर्शन बड़ा प्रिय है। कि पुन. शरत्चन्द्र के दर्शन से तो वे अघाते ही नही। ऐसी ही मुनियो की दशा हुई। चन्द्रमा का पृष्ठ भाग किसी को दृष्टिगोचर नही होता। क्योकि चन्द्रमा अपनी धुरी पर नही घूमते। सरकार का इच्छामय रूप है। अतः सङ्कल्पानुसार दर्शन हो रहा है।

तब रघुबीर कहा मुनि पाँही। तुम्ह सन प्रभु दुराव कछु नाँही ॥
तुम्ह जानहु जेहि कारन आयेउँ। ताते तात न कहि समझाएउँ ॥१॥

अर्थ : तब रघुबीर ने मुनिजी से कहा हे प्रभो ! आपसे कोई छिपाव नही है। मैं जिस कारण से आया हूँ आप जानते है। इससे हे तात ! मैंने समझाकर नही कहा।

व्याख्या : जब पूजनोपरान्त मुनिजी कृतकृत्य होकर बैठे तब कहा। रघुबीर है : अपनी प्रतिज्ञा : निसिचर हीन करौ महि भुज उठाइ प्रन कीन्ह : पूरी किया चाहते हैं। अगस्त्यजी को सरकार प्रभु कहते है। स्वामी सेवक का नाता जोड़े बैठे हैं। स्वामी से छिपाव नही करना चाहिए। यथा : स्वामिहि सर्व भाव छल त्यागी। अत: कहते हैं कि आप से कोई छिपाव नही है। भावार्थ यह कि औरो से छिपाव है। यथा : गुप्त रूप अवतरेउ प्रभु।

दूसरी बात यह कि जो भेद जानता हो उससे क्या दुराव है। लोग तो यही जानते हैं कि कैकेयी के वरदान के कारण पिता ने वन दिया। इसीलिए आये हैं। पर मुख्य कारण आप जानते हैं। तुलसी जौ गृह रहौं मातु हित को सुरधेनु विप्र भय टारै। गी। वाल्मीकिजी से थोड़ा दुराव किया था। सो उन्होने सारा भेद ही खोल दिया। यथा : श्रुति सेतु पालक राम तुम जगदीस माया जानकी। जो सृजति जग पालति हरति रुख पाइ कृपा निधान की। जो सहस सीस अहीस महिधर लखन सचराचर धनी। सुरकाज धरि नरराज तन चले दलन खल निसिचर अनी। अतः कहते हैं कि आप जानते हैं विस्तार से कहने की अवश्यकता नही है।

अब सो मंत्र देहु प्रभु मोही। जेहि प्रकार मारौं मुनिद्रोही ॥
मुनि मुसुकाने सुनि प्रभु बानी। पूछेहु नाथ मोहि का जानी ॥२॥

अर्थ : हे प्रभो ! अब मुझे ऐसा मन्त्र दीजिये जिस प्रकार से मुनिद्रोही को मैं मारूँ। प्रभु की वाणी सुनकर मुनिजी मुसकुराये : बोले कि मुझसे नाथ ! क्या समझकर पूछ रहे है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : भाव यह कि प्रतिज्ञा तो कर दिया कि निसिचर हीन करौं महि पर तब से एक निसिचर भी हाथ न लगा। विराध वध से सब सावधान हो गये हैं। सामना बचा जाते हैं। अब ऐसा मन्त्र चाहिए कि जिसमें निसिचर सामने आवें और उन्हें मार सकूँ। यहाँ मन्त्र शब्द का अर्थ सम्मति है। यथा : मत्र न यह लछिमन मन भावा।

रामजी मुनिजी को प्रभु कहते हैं। और मुनिजी रामजी को प्रभु कहते हैं। परस्पर एक दूसरे में स्वामी सेवक भाव मान रहे हैं। मुनिजी मुसकुराये कि सर्वज्ञ तथा सर्वशक्तिमान् होकर कैसी अल्पज्ञ तथा अल्प सामर्थ्य की सी वाणी बोल रहे हैं। अतः कहते हैं कि मुझे क्या समझकर पूछा। नियम यह है कि अपने अधिक जानकार से बात पूछी जाती है। क्या मैं आपके पूछने योग्य हूँ जो आप पूछ रहे हैं। प्रभु के स्थान पूछने पर वाल्मीकिजीने भी ऐसा ही उत्तर दिया था कि जहँ न होउ तहँ देउँ कहि तुम्हहि बतावौं ठाउँ। भरद्वाजजी से रास्ता पूछा तो उन्होंने कहा : सुगम सकल मग तुम कहँ अहही। ऐसा ही उत्तर अगस्त्यजी दे रहे हैं।

तुम्हरेइ भजन प्रभाव अघारी। जानौं महिमा कछुक तुम्हारी॥
ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्माड अनेक निकाया॥३॥

अर्थ : हे पाप नाशक! तुम्हारे ही भजन के प्रभाव से तुम्हारी कुछ महिमा मैं जानता हूँ। तुम्हारी माया गूलर के विशाल वृक्ष के समान है। जिसमें ब्रह्माण्डों के अनेक समूह फलरूप से लगे हुए हैं।

व्याख्या : मुनिजी कहते हैं कि मेरी जानकारी इतनी ही है कि आपकी महिमा का प्रादेशमात्र जानता हूँ। इतना ज्ञान भी आपके भजन से ही हुआ। यथा : जाना चहहिं गूढ गति जेऊ। नाम जीह जपि जानहिं तेऊ। यही तो मेरी जानकारी है। उसे भी सुन लीजिये।

मुनिजी ने प्रभु की माया की उपमा गूलर के वृक्ष से दिया। इससे अच्छी उपमा दूसरी मिलनी दुर्लभ है। अब साधारण धर्म कहते हैं। गूलर के वृक्ष में तमाम फलों के गुच्छे लगते हैं। उसी भाँति मायावृक्ष में ब्रह्माण्ड निकाय लगे हुए है। यथा : रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मांड।

जीव चराचर जंतु समाना। भीतर बसहिं न जानहि आना॥
ते फल भच्छक कठिन कराला। तव भय डरत सदा सोउ काला॥४॥

अर्थ : ये चराचर जीव उन फलों के जन्तु के समान है। जो उनके भीतर बसते हैं। और दूसरा कुछ भी नहीं जानते। उन फलों का खानेवाला काल है। वह कठिन कराल है। पर आपके डर से वह भक्त सदा डरा करता है।

व्याख्या : जिस भाँति गूलर के फल के भीतर जन्तु बसते हैं उसी भाँति ब्रह्माण्ड के भीतर चराचर जीव बसते हैं। न उन जन्तुओं को गूलर के फल के बाहर का कोई वृत्तान्त ज्ञात है और न चराचर जीवों को अपने ब्रह्माण्ड के बाहर का

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कुछ पता है। मुनिजी कहते हैं कि मैने आपके भजन के प्रभाव से इतना ही जान पाया है कि यही ब्रह्माण्ड सब कुछ नही है। ऐसे ऐसे अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड मायावृक्ष मे गूलर के फल के गुच्छो की भाँति गुथे हुए है।

वह मायावृक्ष मानो काल के लिए ही लगा हुआ है। गूलर के फल की भाँति ही काल भी एक ब्रह्माण्ड का एक ही ग्रास करता है। लोग गूलर के फल को फोडकर उसमे के जीवो को पहिले उडा देते है। तब उसे खाते हैं। पर काल ब्रह्माण्डो को जीवो के सहित खा जाते है। इसलिए कठिन कराल है। इस भाँति सब ब्रह्माण्डो को खाया करता है। गूलर वृक्ष की ही भाँति मायावृक्ष मे नये नये ब्रह्माण्ड उत्पन्न हुआ करते हैं। और काल उनका कलेवा किया करता है। वह ऐसा कराल है कि उसका पेट भरता नही। केवल कलेवा से किसी का काम नही चलता। यथा सुर नर असुर नाग मुनि देवा। नाथ सकल जग काल कलेवा और प्रभु तो काल व्याल के भी भक्षक साक्षात् गरुड रूप हैं। अपने अन्तक से सभी डरते हैं। अत वह काल भी आपके भय से भयभीत रहता है। भाव यह है कि उस काल का भी अन्त है। देशत कालत वस्तुत अपरिच्छिन्न केवल आप हैं। आप ही कालत्रयातीत हैं।

ते तुम्ह सकल लोकपति साँई। पूछेहु मोहि मनुज की नाई ॥
यह वर मागउँ कृपानिकेता। बसहु हृदय श्री अनुज समेता ॥५॥

अर्थ वे ही आप सब लोगो के स्वामी होकर भी मुझसे मनुष्य की भाँति पूछ रहे हैं। हे कृपानिकेत! मैं तो यह वर माँगता हूँ कि मेरे हृदय मे सीताजी तथा छोटे भाई के सहित सदा निवास कीजिये।

व्याख्या जैसी बात आपने पूछा ऐसी बातें तो मनुष्य पूछा करते है। आप तो मनुष्य नही हैं। आप तो काल के भी काल अखिल ब्रह्माण्डनायक हैं। आप स्वामी हैं। आपके ऐसा कहने से अस्मदादिक को मोह हो सकता है। यथा प्रभु जोइ कहहु तुम्हहि सब सोहा। हमरे होत बचन सुनि मोहा। अत मोह के भय से तुरन्त मुनिजी ने वरदान माँगा। अनुज श्री सहित बसने से फिर मोह का भय न होगा। अत मेरे हृदय म सीता और अनुज सहित बसिये। यथा तब लगि हृदय बसत खलना। लोभ मोह मत्सर मद माना। जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि माथा। तथा भरत हृदय सिय राम निवासू। तहँ कि तिमिर जहँ तरनि प्रकासू गुरु शिष्य की समान रुचि है। सुतीक्ष्णजी ने भी हृदय मे बसाने के लिए वरदान माँगा था।

अविरल भगति बिरति सतसगा। चरन सरोरुह प्रीति अभगा ॥
जद्यपि ब्रह्म अखड अनता। अनुभव गम्य भजहि जेहि सता ॥६॥

अर्थ और प्रगाढ भक्ति वैराग्य सत्सग तथा चरण कमलो मे अटूट प्रेम

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

माँगता हूँ। यद्यपि जिस अखण्ड और अनन्त ब्रह्म को सन्त भजते हैं वे अ
ही जाने जाते हैं।

व्याख्या : अन्तराय रहित भक्ति को अविरल भक्ति कहते हैं। यह सब
का फल है। यथा : सबकर फल हरि भगति भवानी। वैराग्य सब धर्मों का फ
यथा : तेहिकर फल पुनि विषय विरागा। सत्सङ्ग फल सिद्धि है। यथा : सत
मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला। इस भाँति मुनिजी ने
फल ही माँगा। फिर भी अटूट प्रेम के लिए प्रार्थना करते हैं। प्रेम का प्रवाह
धारावत् अविच्छिन्न होना चाहिए। बीच मे भङ्ग न हो। भजन तो वैरभाव से
होता है। यथा : वैरभाव सुमिरत मोहि निसिचर : पर मुनिजी को वैसा भ
पसन्द नही। क्योकि उससे जाड़े मे गङ्गास्नान की भाँति इस लोक मे आनन्द न
मिलता। अतः प्रेम भाव से भजन चाहते हैं। गरमी मे गङ्गास्नान की भाँति
भाव से भजन करने मे इस लोक और परलोक दोनो मे सुख है अथवा अविर
भक्ति तो निर्गुण रूप की भी होती है। अतः चरण सरोरुह प्रीति अभङ्गा से बा
स्पष्ट कर दिया कि सगुण रूप की भक्ति मुनिजी चाहते हैं।

मुनिजी ने दोषापनयन के लिए सरकार का हृदय मे निवास माँगा। अ
गुणाधान के लिए अविरल भक्ति आदि माँग रहे हैं।

अब सगुण भक्ति माँगने का कारण कहते हैं। यद्यपि निर्गुण रूप से प्रभु
ब्रह्म है। अत्यन्त बृहत् अर्थात् व्यापक है। वस्तुत अपरिच्छिन्न है। अखण्ड होने से
देशतः अपरिच्छिन्न है। अनन्त होने से कालत अपरिच्छिन्न है। अनुभवगम्य है
अर्थात् स्वसंवेद्य हैं। परम अधिकारी सन्त लोग उनका भजन करते हैं। यथा :
मोहि परम अधिकारी जानी। लागे करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा :
और यही परमार्थ रूप है।

असं तव रूप बखानौ जानौ। फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानौ ॥
संतत दासन्ह देहु बड़ाई। ताते मोहि पूँछेहु रघुराई ॥७॥

अर्थ : ऐसे रूप का मैं वर्णन करता हूँ और जानता हूँ। फिर भी लौट
लौटकर सगुण ब्रह्म मे ही रति मानता हूँ। आप सदा से ही दासो को बड़ाई देते
आये हैं। इसीलिए हे रघुनाथजी। आपने मुझसे पूछा है।

व्याख्या : सरकार के इस परमार्थ रूप का मैं वर्णन भी किया करता हूँ।
ऐसा कहने पर भी मुनिजी कहते हैं कि रूप को मैं जानता हूँ। भाव यह कि वर्णन
तो परोक्ष ज्ञानवाले भी किया करते हैं। पर उन्हे अनुभव नहीं है और वह रूप
अनुभवगम्य है। मुनिजी का कहना है कि मुझे अनुभव भी है। अर्थात् अपरोक्ष ज्ञान
भी है। फिर भी उस अनुभव से वारवार हटकर सगुण रूप मे प्रीति करता हूँ।
यथा : सुनि गुन गान समाधि बिसारी। सादर सुनहि परम अधिकारी : अतः
समाधि छोड़कर सगुण ब्रह्म पे प्रीति करता हूँ। क्योकि प्रभु मे गुण ही ऐसे हैं।

ankurnagpal108@gmail.com



यह स्तुति उत्तराफाल्गुनी नक्षत्र है। इसमे दो तारे चमकते हैं सगुण और निर्गुण। आकार शय्या का सा है। जिस भाँति दिनभर घूम फिरकर मनुष्य शय्या मे ही विश्राम पाता है इसी भाँति निराधार निर्गुण मे घूम घामकर शय्या की भाँति सगुण मे ही रति होती है। यथा अस तव रूप बखानौ जानौ। फिरि फिरि सगुन ब्रह्म रति मानौ इस स्तुति की फलश्रुति मे ग्रन्थकार ने कुम्भज शब्द रखकर स्पष्ट कर दिया कि यह अगस्त्यजी की स्तुति है। उन्ही की भाँति अपार लोभसमुद्र को सोख जाती है। यथा कुंभज लोभ उदधि अपार के। जिसे यह भावना हो गयी कि इस ब्रह्माण्ड मे हम गूलर फल के कीट की भाँति रहते हैं: कुछ जानते नही उसमे लोभ की भावना रह नही सकती।

मुनिजी के वरदान माँगने पर सरकार ने एवमस्तु नही कहा। क्योकि उन्हें बडा मान लिया है पर दे दिया। मुनिजी अनुभव कर रहे हैं कि वरदान मिल गया। अब जो मन्त्र पूछा गया था उसके विषय म कहते हैं कि मैं दास हूँ। प्रभु की प्रीति दास पर अधिक है। अत उन्हे बडाई देते हैं। नही तो आपके लिए अज्ञेय क्या है? प्रभु के पूछने पर हठात् गुरु की भाँति उपदेश करने बैठना धृष्टता है और कुछ न कहना आज्ञा भङ्ग है। अत भूमिकापूर्वक उत्तर देते हैं।

## ३१ दण्डक वन की पावनता

है प्रभु परम मनोहर ठाँऊँ। पावन पचवटी तेहि नाँऊँ॥
दडक बनु पुनीत प्रभु करहू। उग्र श्राप मुनिवर कर हरहू॥८॥

अर्थ हे प्रभो! एक परम मनोहर स्थान है। पवित्र पञ्चवटी उसका नाम है। हे प्रभो! आप दण्डक वन को पवित्र कीजिये और श्रेष्ठ मुनि के उग्र शाप को दूर कीजिये।

व्याख्या अब अपनी सम्मत्ति कहते हैं कि दण्डक वन मे एक स्थान है जिसे पञ्चवटी कहते हैं। वह परम मनोहर है। अश्वत्थो बिल्ववृक्षश्चवटो धात्री अशोककम्। वटीपञ्चकमित्युक्त स्थापयेत् पञ्चदिक्षु च। वहाँ पाँच दिशाओ मे पञ्चवट स्थापित हैं। पीपल, बेल, वट, आँवला और अशोक। उसका नाम पवित्र है। वह स्थान तो भृगुमुनि के शाप से अपवित्र हो चुका है वह दण्डक राजा का राज्य था। उसने मुनिपुत्री के साथ बलात्कार किया। इस पर मुनिजी ने दारुण शाप दिया। वह राज्य नष्ट होकर वन हो गया। वहाँ राक्षस रहते हैं। मुनि नही रह सकते। उसको शाप विनिर्मुक्त करने मे आप ही समर्थ है। अर्थात् वहाँ आपको राक्षस मिलेंगे। वह स्थान बडा रमणीय है। आपके जाने से शाप के कारण जो अपवित्रता आगयी है राक्षसा का निवासस्थल हो गया है वह अपवित्रता दूर हो जायगी।

बास करहु तहँ रघुकुल राया। कीजे सकल मुनिन्ह पर दाया॥
चले राम मुनि आयसु पाई। तुरतहिं पचवटी नियराई॥९॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : हे रघुकुल के राजा ! आप वहीं वास कीजिये और सब मुनियों पर दया कीजिये। मुनिजी की आज्ञा पाकर रामजी वहाँ से तुरन्त ही चल दिये और पञ्चवटी के सन्निकट पहुँच गये।

व्याख्या : आपके निवास योग्य वह स्थल है। वहीं आप निवास कीजिये। आप रघुकुल के राजा हैं। आपको दुष्टों को दण्ड देने का अधिकार और सामर्थ्य है। मुनिजी महात्मा हैं। राक्षसों का वध करना न कहकर मुनियों पर दया करने को कहते हैं। मुनियों पर दया करके ही प्रभु प्रतिज्ञा कर चुके हैं : निसिचर हीन करौं महि। उस प्रतिज्ञा की पूर्ति वहीं निवास करने से होगी। दुष्टों का निग्रह ही सज्जनों पर अनुग्रह करना है। यही बड़ी भारी अहिंसा है और दुष्टों पर अनुग्रह ही बड़ी भारी हिंसा है। इस अहिंसा के सिद्धान्त के स्थापना के लिए ही अवतार होता है। यथा : परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय सम्भवामि युगे युगे।

आज्ञा पाने से ही आज्ञा माँगना अर्थतः सिद्ध है। प्रतिज्ञा पूर्ति की उत्कट इच्छा है। अतः तुरन्त चल दिये। इसलिए केवल रामजी का ही चलना लिखते हैं। क्योंकि केवल उन्हीं ने प्रतिज्ञा की थी। वहाँ से पञ्चवटी दो योजन पर थी। अतः उसी दिन उसके निकट पहुँच गये।

## ३२. गीध मैत्री प्रसङ्ग

दो. गीधराज सैं भेंट भइ, बहु बिधि प्रीति बढाइ।
गोदावरी निकट प्रभु, रहे परन गृह छाइ ॥१३.७॥

## ३३. पञ्चवटी निवास मुनित्रास भञ्जन प्रसङ्ग

अर्थ : वहाँ गीधराज से भेंट हुई। उसके साथ बहुत प्रकार से प्रेम बढ़ाकर प्रभु गोदावरी नदी के निकट पत्ते की कुटी बनाकर रहने लगे।

व्याख्या : गीधराज का नाम जटायु था। वे वहाँ रहते थे। उनसे भेंट हुई। बड़े पुराने परिचित निकले। महाराज दशरथ की उनकी मैत्री थी। इस भेंट से वह प्रीति और बढ़ी। उन्होंने कहा कि जिस समय आप दोनों भाई आखेट के लिए जायेंगे उस समय मैं जानकीजी की रक्षा करूँगा। एक सहायक मिलने के नाते से भी प्रीति बढ़ी। इसलिए कवि लिखते हैं : बहु बिधि प्रीति बढाइ। प्रभु समर्थ हैं : गोदावरी नाम की पुण्य नदी के निकट पर्णकुटी बनाकर ठहर गये। नहीं तो वहाँ राक्षसों का इतना भय था कि देवता लोग कुटी बनाने नहीं आये। जैसा कि चित्रकूट में किया था या प्रवर्षण गिरि पर करेंगे। यथा : प्रथमहिं देवन्ह गिरि गुहा राखी रुचिर बनाइ। राम कृपा निधि कछु दिन बास करहिंगे आइ।

जब ते राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भये मुनि बीती त्रासा॥
गिरि बन नदी ताल छबि छाए। दिन दिन प्रति अति होहिं सुहाए॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : जब से रामजी ने वहाँ निवास किया मुनि लोग सुखी हो गये। उनका डर जाता रहा। पहाड वन नदी ताल सब शोभा से छा गये। नित्य प्रति वे अधिक सुहावने होने लगे।

व्याख्या : अगस्त्यजी ने कहा था। बास करहु तहँ रघुकुल राया। कीजिअ सकल मुनिन्ह पर दाया। उसी का साफल्य दिखला रहे है। दया यह हुई कि वे अभय हो गये। सूर्पणखा रावण से कहेगी कि जिन्हकर भुजबल पाइ दसानन। अभय भये विचरत मुनि कानन। दण्डकारण्य के बाहर रहनेवाले भी त्रस्त रहते थे। अब तो सभी मुनि निर्भय आनन्द से वन मे घूमने लगे।

अब मुनिजी के दूसरे वचन का साफल्य दिखलाते है। दूसरा वचन यह था कि दंडक वन पुनीत प्रभु करहू। सो दण्डक वन पुनीत हो गया। परम मनोहर होने पर भी भयप्रद था। इससे उसकी मनोहरता दबी हुई थी। अब भय के हट जाने से निर्दोष हो गया। अत कहते हैं कि शोभा छा गयी। इतना ही नही प्रभु के निवास के माहात्म्य से शोभा नित्य बढ़ने लगी। गिरि, वन, नदी और ताल ये ही प्राकृत दृश्य हैं। दण्डक वन में ये सब थे। इनकी शोभा नित्य नवीन मालूम होने लगी।

खग मृग बृंद अनंदित रहही। मधुप मधुर गुंजत छबि लहही॥
सो बन बरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रकट रघुबीर बिराजा॥२॥

अर्थ पशु पक्षी सब आनन्दित होकर रहने लगे और मधुर गुंजार करते भौंरे शोभा पा रहे थे। जहाँ प्रत्यक्ष रघुवीर विराजमान है उस वन का स्वय शेषजी वर्णन नही कर सकते।

व्याख्या . प्रभु के निवास से चित्रकूट की भाँति यहाँ भी सब जीवो ने सहज वैर छोड दिया और उस वन मे एक दूसरे से प्रेम करने लगे। यथा : सहज वैर सब जीवन्ह त्यागा। गिरिपर सकल करहिं अनुरागा। अत. कहते है : खग मृग बृंद *अनंदित रहही। वन के पेड सदा फूलने फलने लगे। यथा . फूलहिं फलहिं सदा तरु* कानन। फल फूलो की सरसता कहते है कि भौंरे गूँज रहे थे। फल फूलो की शोभा भौरो के गूंजने से हो जाती है। अत· छबि लहही कह रहे हैं। वन मे भी छवि है और वनवासी जीवो मे भी छवि है।

सभी वर्णन करनेवालो मे शेपजी को बडा सुभीता है। फणमण्डल से मण्डित होने से सब ओर एक साथ देखते है और वर्णन करने का साधन भी अत्यन्त अधिक है। सहस्रमुख हैं और एक एक मुख मे दो दो जिह्वाएँ हैं। सब ओर से सबका वर्णन अनेक भाँति से एक साथ कर सकते हैं। पर यहाँ तो प्रभु के आने से क्षण क्षण नित्य नवीन शोभा बढ रही है। वर्णन करते ही करते शोभा आगे बढ जाती है। तब कैसे वर्णन कर सकें ? इससे दण्डक वन का केवल दोपापनयन नही कहा। गुणाधान भी कहा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



## ३४. लक्ष्मणोपदेश प्रसग

एक बार प्रभु सुख आसीना। लछिमन बचन कहे छलहीना ॥
सुर नर मुनि सचराचर साँई। मै पूछौ निज प्रभु की नाँई ॥३॥

अर्थ : एक बार प्रभु सुख से बैठे थे। उस समय लक्ष्मणजी ने छलहीन वचन कहे। हे सुर नर मुनि तथा चराचर के स्वामी ! मैं अपने स्वामी की भाँति पूछता हूँ।

व्याख्या : एकवार : भाव यह कि देश पहिले कह चुके है। सो वन बरनि न सक अहिराजा। जहाँ प्रक्ट रघुवीर विराजा। अर्थात् दण्डक वन का यह वृत्तान्त है। समय के लिए कह रहे हैं कि दिन निश्चित नही। पर अगस्त्यजी से मिलकर पञ्चवटी मे ठहरने के वाद और सूर्पणखा के आगमन के पहिले ही किसी दिन।

प्रभु कर्तुंमकर्तुंमन्यथा कर्तुं समर्थ. प्रभुः अर्थात् समर्थ हैं। दण्डक वन का उग्र शाप हरण करके उसे पवित्र करके विराजमान हैं। यथा . अगस्त्य वचन : दडक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र श्राप मुनिवर कर हरहू।

सुख आसीना : भाव यह कि नित्य क्रिया करके सावकाश वैठे है। एकान्त है। जनकनन्दनी भी वहाँ पर नही है। ऐसा हो समय प्रश्न के लिए उपयुक्त है। सुखासन से वैठे हैं। योगशास्त्र का भी यही अनुशासन है कि स्थिरसुखमासनम्।

लछिमन : बचपन से ही प्रभु के चरणो मे प्रेम करनेवाले है। यथा : वारेहि ते निज हित पति जानी। लछिमन राम चरन रति मानी। अर्थात् भक्त भी और सखा भी।

छलहीन वचन कहे : यहाँ अहङ्कार का अनुवेध ही छल है। अन्याय युक्त प्रश्न करनेवाले का उत्तर देना निषिद्ध है। यथा : नापृष्ट कस्यचिद् ब्रूयात् न चान्यायेन पृच्छतः। यहाँ छलहीन शब्द से सच्ची जिज्ञासा दिखलायी। सुनी चहैं प्रभु मुख कै बानी। जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी।

सुरनर मुनि सचराचर साइँ . भाव यह कि आप सर्वेश्वर हैं। सबके गुरु है। स सर्वेषामपि गुरु कालेनानवच्छेदात्। जगद्गुरु च शाश्वत। तुरीयमेव केवल। इत्यादि।

मैं पूछौ · भाव यह कि मैं तो आपका निज दास हूँ। यथा : गुरु पितु मातु न जानउँ काहू। कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू। जहँ लगि जगत् सनेह सगाई। प्रीति प्रतीति निगम निजगाई। मोरे सबुइ एक तुम्ह स्वामी। दीनबधु उर अतरजामी।

निज प्रभु की नाइँ : भाव यह कि जीव और ईश्वर मे अनेक सम्बन्ध है। यथा : मोहि तोहि नातो अनेक मानिये जो भावे। सो मुझे तो आप की ही गति है। दूसरे की आशा नही। अत निज प्रभु की नाइँ पूछता हूँ। यथा . पुनि मोहि तिन्हते प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा । सब तजि करौ चरन रज सेवा ॥
कहहु ग्यान विराग अरु माया । कहहु सो भगति करहु जेहि दाया ॥४॥

अर्थ ' हे देव ! मुझे वही समझाकर कहो । जिससे सब त्याग करके चरणरज की सेवा करूँ । मुझे ज्ञान विराग और माया बतलाओ और वह भक्ति बतलाओ जिससे दया करते हो ।

व्याख्या देवा श्रीरामजी इष्टदेव हैं । इसलिए देव सम्बोधन दिया । जिसकी सेवा करनी है उसीसे सेवा की विधि जान लने से भ्रम को स्थान नही रह जाता । सो सेव्य होने से उनका देव शब्द से सम्बोधन किया गया ।

सोइ मोहि समुझाइ कहो यद्यपि छहो प्रश्नो के लिए समझाकर कहने के लिए प्रार्थना है । तथापि सोइ शब्द के प्रयोग से अन्तिम प्रश्न पर अधिक जोर मालूम पडता है । क्योकि सिद्धान्त तो थोडे शब्दोमे ही कहा जा सकता है । परन्तु साधन के बिना विस्तारपूर्वक कहे काम नही चलता । यह प्रश्न साधन विषयक है ।

सब तजि भाव यह कि आप सुर नर मुनि सचराचर साइँ है । आपका सभी भजन करते हैं । रागी पुरुष को श्री चरणा म अति अनुराग नही हो सकता । वह तो विरागी को ही हो सकता है । यथा जेहि लागि विरागी अति अनुरागी विगत मोह मुनि बृंदा । दूसरा भाव यह है कि बिना सब कुछ तजे रात दिन भजन नही हो सकता । यथा अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती । सब तजि भजन करौ दिनराती ।

चरन रज सेवा करौं लक्ष्मणजी का बडा प्रेम श्री चरणो मे है । यथा चापत चरन लपन उर लाये । समय सप्रेम परम सचुपाये । वह प्रेम पिपासा बढती ही जाती है । अत चरण रज सेवा को ही लक्ष्मणजी पूछते हैं । यहाँ पर चरण रज सेवा कहकर अपना आर्ताधिकारी होना सूचित किया ।

ग्यान दूसरा प्रश्न ज्ञान विषयक है । क्योकि कहहि सत मुनि वेद पुराना । नहिं कुछ दुर्लभ ग्यान समाना । तथा ग्यान मोच्छ प्रद वेद बखाना । विषय सम्बन्धी ज्ञान तो सभी को है । पर जानने योग्य ज्ञान कौन सा है ?

विराग तीसरा प्रश्न विराग विषयक है । क्योकि यही विवेक राजा का मन्त्री है । यथा सचिव विराग विवेक नरेसू । इसके बिना सन्यासी भी उपहास योग्य समझा जाता है । यथा सब नृप भये जोग उपहासी । जैसे बिन बिराग सन्यासी । वह विराग क्या है ?

अरु माया यद्यपि माया मे ही ससार पडा हुआ है । तथापि उसके जानने की आवश्यकता है । क्योकि इसके चरित्र को कोई लख नही पाता । और इसी के वश मे पडा हुआ ससार नाच रहा है । यथा जो माया सब जगहि नचावा । जासु चरित लखि काहु न पावा । यह माया बिना रामजी की कृपा के नही छटती । लक्ष्मणजी इसका भी परिचय जानना चाहते हैं । यह चौथा प्रश्न है ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कहहु सो भगति : भक्ति शब्द की व्युत्पत्ति दो प्रकार से है। एक तो भावव्युत्पत्ति है। यथा : भजनं अन्तःकरणस्य भगवदाकारता भक्तिः । भजन अर्थात् अन्तःकरण की भगवदाकारता भक्ति है और दूसरे में करणव्युत्पत्ति होती है। यथा : भज्यते सेव्यते भगवदाकारमन्तःकरण क्रियते अनया। जिससे सेवन अर्थात् भगवदाकार अन्त करण किया जाता है उसे भक्ति कहते हैं। पहिली को फलरूपा और दूसरी को साधनरूपा भक्ति कहते हैं। शाण्डिल्यशतसूत्री तथा नारद-भक्तिसूत्र मे परम प्रेम को भक्ति माना है। यथा सा पराऽनुरक्तिरीश्वरे। शा सू.। सा वस्मै परमप्रेमरूपा। परन्तु यह सात्त्विकी परिभाषा है। इसके अन्तर्गत राजस और तामस भक्त नही आ सक्ते। भक्तिरसायन मे दी हुई परिभाषा में सभी प्रकार के भक्तो का समावेश है। यथा ' द्रुतस्य भगवद्धर्माद् धारावाहिकता गता। सर्वेशे या मनोवृत्तिर्भक्तिरित्यभिधीयते। भगवत् गुणश्रवण से जिसका चित्त द्रवीभूत होता है उसकी चित्तवृत्ति यदि परमेश्वर मे धारावाहिकता को प्राप्त हो तो उसे भक्ति कहते है।

कहहु जेहि दाया भजत कृपा करिहैं रघुराई। सो रघुराई सात्त्विकी भक्ति होने पर तो कृपा करते ही हैं। राजसी और तामसी भक्ति होने पर भी करते हैं। यथा : उमा राम मृदु चित करुनाकर। वैर भाव सुमिरत मोहि निसिचर। देहि परम गति सो जिअ जानी। अस कृपालु को कहहु भवानी।

दो. ईस्वर जीव भेद प्रभु, सकल कहहु समुझाइ।
जाते होइ चरन रति, सोक मोह भ्रम जाइ ॥१४.८॥

अर्थ : प्रभो ! ईश्वर और जीव मे क्या भेद है। यह सब समझाकर कहिए। जिसमे आपके चरणो मे प्रेम होकर शोक मोह तथा भ्रम दूर हो।

व्याख्या : ईश्वर जीव भेद . भाव यह कि ईश्वर भी चेतन है और जीव भी चेतन है। दोनो कर्म करते है। दोनो माया से सम्बद्ध हैं। दोनो अनादि हैं। फिर दोनो मे अन्तर क्या ?

प्रभु : भाव यह कि पहिले ही कह आये हैं कि मै पूछहुँ निज प्रभु की नाईं। अतः इस लछिमन उपदेश प्रकरण भर मे सरकार के लिए प्रायेण प्रभु शब्द का ही प्रयोग है। यथा : एक बार प्रभु सुख आसीना। मै पूछौ निज प्रभु की नाईं। ईस्वर जीव भेद प्रभु सकल कहहु समुझाइ। तथा लछिमन प्रभु चरनहि सिरनावा।

सकल कहहु समुझाइ : भाव यह कि छहो प्रश्न समझाकर कहिए। यहाँ इन प्रश्नो का उत्तर केवल व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ अथवा परिभाषा मात्र से हो सकता है। अत. प्रार्थना की जा रही है कि समझाकर कहिए। समझाने से ही भ्रान्ति दूर होती है।

जाते होइ चरन रति : अपना लक्ष्य भी कहे देते हैं कि मेरा लक्ष्य भक्ति है : मुक्ति नही। जिसका लक्ष्य मुक्ति है उसके समझाने का मार्ग दूसरा है। जैसा कि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उत्तरकाण्ड के ज्ञान दीपक प्रसङ्ग में विस्तृत रूप से कहा गया है और भक्ति के समझाने का दूसरा ही मार्ग है। जो इस प्रकरण मे कहा जायगा।

सोक मोह भ्रम जाई : इष्टवियोग जन्य दु:ख से शोक होता है। मोह अज्ञान को कहते हैं। भ्रम अन्यथा ज्ञान कहते हैं। इसके विना हटे भक्ति नही होती। यथा : होइ विवेक मोह भ्रम भागा। तब रघुनाथ चरन अनुरागा। इससे यह भी दिखला दिया कि ये ही प्रश्न सब प्रश्नो के मूल हैं। इनका अभ्रान्त उत्तर यदि मन में बैठ जाय तो शोक मोह भय निवृत्तिपूर्वक भक्ति प्राप्ति का अधिकार होता है।

**थोरेहि मंह सब कहहुँ बुझाई। सुनहु तात मति मन चितु लाई॥**
**मै अरु मोर तोर तैं माया। जेहि बस कीन्हे जीव निकाया॥१॥**

अर्थ : हे तात! मैं थोडे ही में सब समझाकर कहता हूँ। तुम बुद्धि मन और चित्त लगाकर सुनो। मै मेरा तैं और तेरा यही माया है। जिसने जीव समूह को वश कर रक्खा है।

व्याख्या : थोरेहि मँह सब कहहुँ बुझाई : यह वक्ता का पाण्डित्य है कि सब कुछ समझाकर कहे और विस्तार न होने पावे। कितना काम तो उत्तर के क्रम से निकाल दिया। यहाँ देखेगे कि प्रश्न के क्रम से उत्तर का क्रम भिन्न है। मोहि समझाइ कहौं सोइ देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा : ऐसा प्रश्न किया। पर सरकार ने इस प्रश्न का उत्तर पहिले न देकर चौथे प्रश्न का उत्तर : मै अरु मोर तोर तैं माया कहकर देते हैं। क्योकि भूमौ पतित पादाना भूमिरेव पर बलम् जो जमीन पर गिरा है वह उसी को टेककर उठेगा। सब लोग माया ही मे पड़े है। अत: पहिले माया को ही समझना उचित समझा। उसके समझ लेने पर शेष का समझना कष्टसाध्य नही रह जाता। तात : यह प्यार का शब्द है। बड़े छोटे सबके लिये आता है। यथा : तात तात बिनु बात हमारी। तात सुनावहु मोहि निदानू। इत्यादि।

सुनहु मन मति चितु लाई : सकल्पविकल्पात्मक मन है। निश्चयात्मिका बुद्धि होती है। चित्त धारण करता है। परन्तु अन्त:करण चार हैं : मन बुद्धि चित्त और अहङ्कार। सो तीन को लगाकर सुनने को कहते हैं। अहङ्कार का निषेध उसका नाम न लेकर करते है। अहङ्कार से जिज्ञासा की पात्रता नही रह जाती। और एकाग्रता के लिए मन बुद्धि चित्त को लगा देने की अनिवार्य आवश्यकता है।

मैं अरु मोर : बोलने वाला अपने को मैं कहता है। इसी को व्याकरण मे उत्तम पुरुष कहते हैं। यहाँ मैं शब्द का प्रयोग मुख्य अर्थ मे हुआ। अर्थात् चिदाभास और कूटस्थ का एकीभाव। अविद्या मे पड़े हुए चेतन के प्रतिबिम्ब को चिदाभास कहते हैं। और उसके अधिष्ठानभूत चिदंश को कूटस्थ कहते है। कूटस्थ और चिदाभास का विवेक न करके दोनो को एक मान लेना ही यहाँ एकीभाव है। इसी अर्थ में मैं शब्द का प्रयोग सर्व साधारण किया करते है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मे शब्द के षष्ठी का रूप मोर है। इसके द्वारा गृहादि से अपने सम्बन्ध का बोध होता है। यही मैं अरु मोर सब अनर्थों की [1]जड है। पहिले मैं अहंभाव का स्फुरण होता है। उसके फुरते ही जगत् दृश्य सपने की भाँति सामने खडा हो जाता है। मैं अरु मोर को ही मोह निशा कहा है। इसी रात मे सोता हुआ मनुष्य ससार रूपी स्वप्न देख रहा है। यथा . मै तैं मोर मूढता त्यागू। महामोह निसि सोवत जागू।

तोर तैं : मै का प्रतिद्वन्द्वी तैं है सो कोई यह न समझ ले कि तै और तोर माया की सीमा के बाहर है। अतः इसका अलग उल्लेख किया गया। बोलनेवाला जिससे बोलता है उसे तैं तुम आप कहता है। इसे व्याकरण मे मध्यम पुरुष कहा है। मैं के स्फुरण के बाद तै का स्फुरण होता है। इसलिए मै अरु मोर के बाद तै अरु तोर का उल्लेख किया। मोर की भाँति तोर भी तै के षष्ठी का रूप है। और सम्बन्ध स्थापन करता है।

माया : भाव यह कि मै अरु मोर तोर तै माया है। निस्तत्त्व है। कार्य तो इसका दिखलाई पडता है। अधिष्ठान से इसकी पृथक् सत्ता कुछ भी नही है। जिस भाँति सीप मे रजत तीन काल मे नही है। पर प्रत्यक्ष भासता है। यह भासना निस्तत्त्व है। पर यह मिटाये नही मिटता। इसी भाँति माया की स्थिति है। वह तीन काल मे नही है। पर ससार भ्रम किसी के हटाये नही हटता। यथा : जासु सत्य ताते जड माया। भास सत्य इव मोह सहाया।

रजत सीप महुँ भास जिमि यथा भानु कर बारि।
जदपि मृषा तिहुकाल सोइ भ्रम न सकइ कोउ टारि॥

एहि बिधि जग हरि आश्रित रहई। जदपि असत्य देत दुख अहई॥

जेहि बस कीन्हे : भाव यह कि जिसे माया ने वश्य कर रक्खा है। इससे माया का कार्य कहते हैं। माया और प्रकृति पर्यायवाची शब्द हैं। यथा : माया तु प्रकृतिं विन्द्यात् मायिनं तु महेश्वरम्। इसी से सम्पूर्ण जगत् की रचना होती है और इसी ने सबको वश्य कर रक्खा है। यथा : जीव चराचर बस कै राखे। सो माया प्रभु सो भय भाखे।

जीव निकाया : भाव यह कि कूटस्थ चिदाभास और लिङ्ग शरीर के समूह को जीव कहते हैं। ये जीव असख्य है। ये सब माया के वश हैं। जिस भाँति जल मे पडा हुआ प्रतिबिम्ब जल के वश मे होता है जल के ऊपर उठने से वह ऊपर उठता है। जल के नीचे गिरने से वह नीचे गिरता है। जल के चञ्चल होने से वह चञ्चल होता है। इसी भाँति जीव माया के वश रहता है। माया जैसा कराती है

---

१. अनात्मन्यात्मबुद्धिर्या श्वास्वे स्वमिति या मति।
ममारत्वसम्भूतिबीजमेतद् द्विधा स्थितम्॥ वि पु ६.७.११

अनात्मा मे आत्मबुद्धि मैं और जो अपना नही है उसे अपना मानना : मोर ये ही दोनों ससार वृक्ष की उत्पत्ति के बीज हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वैसा करता है। यथा ईश्वर अंस जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी। सो मायावस भयउ गोसाईं। बँध्यौ कीर मरकट की नाईं।

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥
तेहि कर भेद सुनहु तुम सोऊ। बिद्या अपर अविद्या दोऊ॥२॥

अर्थ इन्द्रिय विषय और मन की जहाँ तक दौड है इन सबको हे भाई! माया जानना। उसके दोनो भेदो को सुनो एक अपर विद्या और दूसरी अविद्या।

व्याख्या गो गोचर गो अर्थात् इन्द्रियाँ। इन्द्रियाँ दश हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रिय और पाँच कर्मेन्द्रिय। गोचर अर्थात् पाँच विषय शब्द स्पर्श रूप रस और गन्ध।

जहँ लगि मन जाई मनकी दौड बहुत दूर तक होती है। यह मन स्थूलतम पदार्थो म अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड तक जाता है और सूक्ष्मतम पदार्थ मे महत् तत्त्व तथा प्रकृति तक पहुँचता है। सो सब माया जानेहु अर्थात् परा प्रकृति अपरा प्रकृति ये दोनो ही माया हैं। जो हो न सके उसे कर दिखलानेवाली माया है। इसलिए अघटितघटनापटीयसी कहते हैं।

भाई भाई सम्बोधन से अपना प्रम द्योतित किया। जिस भाँति सदा से शिक्षा देते आये हैं। उसी भाँति इस बार भी शिक्षा द रहे हैं। यथा

राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती॥
बेद पुरान सुनहिं मन लाई। आपु कहहिं अनुजहि समुझाई॥

तेहि कर भेद ऊपर कहा जा चुका है कि माया और प्रकृति पर्यायवाची शब्द हैं। मैं अरु मोर तोर तैं माया कहकर परा प्रकृति का वर्णन किया जो कि जीवभूत होकर जगत् को धारण किये हुए है और गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई। कहकर अपरा प्रकृति का वणन किया। अब दूसरे प्रकार से उसके भेद कहेगे।

सुनहु तुम सोऊ यद्यपि भेद विषयक प्रश्न नही है। तथापि विषय को स्पष्ट करने के लिए उसके भेद का भी वर्णन करेंगे। उसके सुनने के लिए कह रहे है।

बिद्या अपर अबिद्या दोऊ उस माया के दो भेद हैं। एक अपर विद्या दूसरी अविद्या। यथा प्रभु सेवकहिं न ब्याप अबिद्या। प्रभु प्रेरित ब्यापै तेहि बिद्या। अङ्गो सहित वेदत्रयो अपरा विद्या है। तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेद सामवेदोऽथर्ववेद शिक्षा कल्पो व्याकरण निरुक्त ज्योतिषमिति। मुण्डक। अपरा विद्या कहने से ही पता चलता है कि कोई पराविद्या भी उसकी चचा आगे की जायगी। यहाँ अपरा विद्या तथा अविद्या का वर्णन किया जा रहा है जा माया की सीमा के भीतर है।

एक दुष्ट अतिसय दुखरूपा। जा बस जीव परा भवकूपा॥
एक रचइ जग गुन बस जाके। प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके॥३॥

अर्थ एक दुष्ट अत्यन्त दु खरूप है। जिसके वश म आकर जीव ससार कूप

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मे पड़ा हुआ है और एक जिसके वश मे गुण : सत्त्व रजस् और तमस् हैं प्रभु से प्रेरित होकर संसार को रचते हैं। उसे अपना बल नही है।

व्याख्या : एक दुष्ट : यहाँ एक एक कहकर क्रम नही देते। क्योंकि क्रम इष्ट नही है। पहले अविद्या का ही वर्णन करना है। उसे दुष्ट इसलिए कहा कि वह दोषयुक्त है। शुद्धसत्त्वप्रधाना नही है। जो दुष्ट होता है दोषयुक्त होता है। उससे दूसरे को पीड़ा पहुँचती है। अतः कहते हैं :

अतिसय दुःख रूपा : यह दुष्ट अविद्या अविशुद्धि के तारतम्य से अनेक प्रकार की होती है। यही स्थूल और सूक्ष्म शरीर की कारणभूता : प्रकृति की अवस्था विशेष कारण कहलाती है। पञ्च महाभूतो से निर्मित इस अस्थि मासमय देह को स्थूल शरीर कहते हैं। इसी के भीतर इसका अनुकरण करती हुई अपञ्चीकृत महाभूत तथा उसके कार्य पञ्च प्राण दश इन्द्रिय मन और बुद्धि की बनी हुई सूक्ष्म देह है। इन दोनो सूक्ष्म और स्थूल शरीरो से अविद्या द्वारा ही जीव बद्ध होता है। यथा :

ईस्वर अंस जीव अविनासी। चेतन अमल सहज सुखरासी ॥
सो माया बस भयउ गोसाईं। बँध्यो कीर मरकट की नाईं ॥
जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई। जदपि मृषा छूटत कठिनई ॥
तब ते जीव भयउ संसारी। छूट न ग्रंथि न होइ सुखारी ॥
जिय जब तें हरि तें बिलगान्यो। तब तें देह गेह निज जान्यो ॥
माया बस स्वरूप बिसरायो। तेहि भ्रम ते दारुन दुख पायो ॥

पायो जो दारुन दुसह दुख सुख लेस सपनेहु नहि मिल्यो।
भव सूल सोक अनेक जेहि तेहि पंथ तू हठि हठि चल्यो ॥
बहु जोनि जन्मि जरा बिपति मतिमन्द हरि जान्यो नहीं।
श्रीराम बिनु बिश्राम मूढ बिचारु लखु पायो कहीं ॥
विनय. १३६.

जेहि बस जीव परा भवकूपा : अविद्या द्वारा स्थूल सूक्ष्म शरीर का अध्यास भ्रम ही बन्धन है। इसी बन्धन के कारण जीव भवकूप मे पड़ा हुआ दुःख पा रहा है। द्वैत ही भवकूप है। जगत् ईश्वर का कार्य : रचित है और जीव का भोज्य है। माया वृत्त्यात्मक ईश्वर का सङ्कल्प जगत् की उत्पत्ति का कारण है और मनोवृत्त्यात्मक जीव का सङ्कल्प भोग का साधन है। जैसे ईश्वर ने स्त्री बना दी। अब उसी को कोई भार्या, कोई बहू, कोई ननद, कोई देवरानी और कोई माता मानता है। वह मांसमयी स्त्री तो एक ही है। परन्तु मनोमयी के अनेक भेद हो गये। जीव का बन्धन करनेवाली यह मनोमयी : स्त्री है। ईश्वर की बनायी हुई मांसमयी बन्धन करनेवाली नही है। इस भाँति द्वैत दो प्रकार का है। एक ईश्वरकृत और दूसरा जीवकृत। ईश्वरकृत द्वैत बन्धन का कारण नही है। सो जीवकृत द्वैत को भवकूप कह रहे हैं। कूप इसलिए कहते हैं कि यह तमोमय दुःख रूप है और इससे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बाहर केवल अपने पुरुषार्थ द्वारा निकलना भी कठिन है। करुणानिधान भगवान् या उनके कृपापात्र गुरु ही करावलम्बन देकर बाहर निकाल सकते हैं। विनय मे गोस्वामीजी ने द्वैत को भवकूप कहा है। यथा

द्वैतरूप भवकूप परौ नहिं अस कछु जतन बिचारो।

उसी अविद्या को मोहशक्ति कहा गया है। माया मे निर्माण शक्ति की भाँति एक मोहशक्ति भी है। वही जीव को मोहित करती है। मोह से अतीशता को प्राप्त होकर भवकूप मे पडा जीव सोचता है

मैं जन्म्यौ मोहि मातु पिता तिय तनय धाम धन।
ये मेरे हैं शत्रु मित्र विद्या बल परिजन॥
यो ही यह विद्वान् चित्त फुरना से कल्पित।
दखत बहु बिधि स्वप्न अविद्या ते अति निद्रित॥१॥
तथा बोत हैं विषवल्लि बीज दुःख को जो प्रेम के नाम से।
होते हैं अँखुए भरे अनल के सो नेह के धाम से॥
शोकारण्य बढा विशाल इनसे सौ लाख शाखा धरे।
देहो को दहता तुपानल यथा निर्धूम ज्वाला भरे॥२॥

प्रबोधचन्द्रोदय

एक रचइ जग वह भगवती अपरा विद्या ससार की रचना करती है। यहाँ रचना उपलक्षण है। इसीके साथ पालन और उपसहार भी समझ लेना चाहिए। यह अपरा विद्या भगवान् की पुरातनी परा नाम्नी शक्ति है।

सर्वशक्ति परा विष्णोर्ऋग्यजु सामसज्ञिता।
सैषा त्रयो तपत्यंहो जगतश्च हिनस्ति या॥७॥
सैषा विष्णु स्थित स्थित्या जगत पालनोद्यत।
ऋग्यजु सामभूतोऽन्त सवितुर्द्विज तिष्ठति॥३॥
मासि मासि रविर्यो यस्तत्र तत्र हि सा परा।
त्रयीमयो विष्णुशक्तिरवस्थान करोति वै॥९॥
ऋच स्तुवन्ति पूर्वाह्णे मध्याह्नेऽथ यजूषि वै।
बृहद्रथन्तरादीनि सामान्यह्न क्षये रविम्॥१०॥
अङ्गमेषा त्रयो विष्णोर्ऋग्यजु सामसज्ञिता।
विष्णुशक्तिरवस्थान सदादित्ये करोति सा॥११॥
न केवल रवे शक्तिर्वैष्णवी सा त्रयीमयी।
ब्रह्माथ पुरुषो रुद्रस्त्रयमेतत् त्रयीमयम्॥१२॥
सर्गादौ ऋङ्मयो ब्रह्मा स्थितौ विष्णुर्यजुर्मय।
रुद्र साममयोऽन्ताय तस्मात् तस्याशुचिर्ध्वनि॥१३॥
एव सा सात्त्विकी शक्तिर्वैष्णवी या त्रयीमयी।
आत्मसप्तगणस्थ त भास्वन्तमधितिष्ठति॥१४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


तया चाधिष्ठितः सोऽपि जाज्वलीति स्वरश्मिभि ।
तमः समस्तजगता नाश नयति चाखिलम् ॥१५॥
अंश २ अ० ११ ' विष्णुपुराण

इसी को ऋक्, यजु', साम कहते है। यही त्रयी सूर्य को ताप प्रदान करती है। संसार के पाप को नाश करती है। स्थिति के समय यही विष्णु होकर जगत् का पालन करती है। यही ऋक्, यजु', साम रूप से सूर्य के भीतर ठहरी हुई है। प्रत्येक मास मे जो पृथक् पृथक् सूर्य कहे गये हैं उनमे यह वेद त्रयी रूपिणी पराशक्ति निवास करती है। पूर्वाह्न से ऋक्, मध्याह्न से यजु और सायंकाल वृहद्रथन्तरादि साम श्रुतियाँ सूर्य की स्तुति करती हैं। यह ऋक्, यजु' सामरूपिणी वेदत्रयी भगवान् विष्णु का ही अङ्ग है। ये सदा आदित्य में रहती हैं। यह त्रयीमयी वैष्णवी शक्ति केवल सूर्य की ही नही है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र तीनो त्रयीमय हैं। सर्ग के आदि मे ब्रह्मदेव ऋक्मय होते हैं। पालन के समय विष्णु यजुर्मय होते हैं। और अन्त मे रुद्र साममय होते हैं। इसीलिए उसकी ध्वनि अपवित्र कही गयी है। इस प्रकार यह त्रयीमयी वैष्णवी शक्ति अपने सातो गणो मे स्थित सूर्य मे अवस्थित रहती है। उसमे अधिष्ठित सूर्यदेव अपनी प्रखर रश्मियो से प्रज्वलित होकर ससार के सम्पूर्ण अन्धकार को नष्ट करते हैं। इस भाँति त्रयीमयी अपरा विद्या ही ससार की रचनेवाली है। यथा :

एतना मन आवत खगराया। रघुपति प्रेरित व्यापी माया ॥ अपरा विद्या
सो माया न दुखद मोहि काही। आन जीव इव ससृत नाही ॥
उदर माझ सुनु अडजराया। देखेउँ बहु ब्रह्माण्ड निकाया ॥
अति विचित्र तहँ लोक अनेका। रचना अधिक एक ते एका ॥
कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगणित उडगन रवि रजनीसा ॥
अगनित लोकपाल जमकाला। अगनित भूधर भूमि बिसाला ॥
सागर सरि सर बिपिन अपारा। नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा ॥
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किंनर। चारि प्रकार जीव सचराचर ॥

दो० जो नहिं देखा नहिं सुना जो मनहूँ न समाइ।
सो सब अद्भुत देखेउँ बरनि कवन बिधि जाइ ॥
एक एक ब्रह्माड महुँ रहौं बरष सत एक।
एहि बिधि देखत फिरौं मै अड कटाह अनेक ॥

लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता। भिन्न बिस्नु सिव मनु दिसित्राता ॥
नर गन्धर्व भूत बेताला। किंनर निसिचर पसु खग व्याला ॥
देव दनुज गन नाना जाती। सकल जीव तहँ आनहि भाँती ॥
महि सरि सागर सर गिरि नाना। सब प्रपच तहँ आनहि आना ॥
भ्रमत मोहि ब्रह्माड अनेका। बीते मनहुँ कल्प सत एका ॥ इत्यादि।

गुन बस जाकें : इस अपरा विद्या के वश मे गुण है। विशुद्ध सत्त्व प्रधाना

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



होने से उसमे जो ब्रह्म का प्रतिविम्ब पडता है वह पूर्ण होता है। उसी को सर्वज्ञ ईश्वर कहते हैं। उन्ही की यह परा शक्ति सत्त्व रज और तम को वश मे रखती है। ब्रह्मा विष्णु रुद्रमयी होने से यह सत्त्व रज तम की अधिष्ठात्री देवी है। अत इसके वश म गुण है। उसके जिस रूप से हम परिचित हैं वह उसकी वाङ्मयी मूर्ति है।

प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताकें भगवान् कहते हैं कि वेद नामवाली पुरातनी परा[1] शक्ति मेरी है। यह सर्ग के आदि मे ऋक् यजु साम रूप से प्रवृत्त होती है। अर्थात् उसको प्रवृत्त करनेवाला, उसके प्रभु भगवान् हैं। उनकी प्रेरणा बिना वह कुछ नही कर सकती। अत कहते हैं नहिं निज वल तार्कें। शक्तिमान् से पृथक् शक्ति की कोई सत्ता नही होती। अत कहा गया कि उसको अपना स्वतन्त्ररूपेण वल नही है। यथा

सुनु रावन ब्रह्माड निकाया। पाइ जासु बल विरचति माया ॥
लव निमेष महँ भुवन निकाया। रचइ जासु अनुसासन माया ॥
जासु सत्यता ते जड माया। भास सत्य इव मोह सहाया ॥

अपरा विद्या और अविद्या दोनो माया के भेद हैं। अत दोनो के लिए माया शब्द व्यवहृत है। प्रसङ्ग से पहिचानना चाहिए। चौथे प्रश्न का उत्तर समाप्त हुआ।

**ज्ञान मान जहँ एकौ नाँही। देख ब्रह्म समान सब माँही ॥**
**कहिअ तात सो परम बिरागी। तृन सम सिद्धि तीन गुन त्यागी ॥४॥**

अर्थ जहाँ एक भी मान नही है। ब्रह्म को सब मे समान देखता है। वही ज्ञान है। हे तात उसे परम वैराग्यवान् कहा गया है। जो तृण के समान सिद्धि तीनो गुणो का त्यागी हो।

ज्ञान पराविद्या[2] जिससे अक्षर ब्रह्म जाना जाता है। इसी को ब्रह्मविद्या कहते हैं। चारो[3] महावाक्यो द्वारा ब्रह्मका उपदेश होता है। उसमे से छान्दोग्य श्रुतिगत वाक्य का उपदेश लोमश महर्षि ने भुसुण्डि को ब्राह्मण जन्म मे किया था। यथा

लागे करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा ॥
अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभवगम्य अखड अनूपा ॥
मन गोतीत अमल अविनासी। निर्विकार निरवधि सुख रासी ॥
सो तैं तोहि तोहि नहिं भेदा। वारि बीचि इव गावहिं वेदा ॥

———

१ ममैवैषा परा शक्तिर्वेदसंज्ञा पुरातनी। ऋग्यजु सामरूपेण सर्गादौ सम्प्रवर्तते ॥
कूर्मपुराणे।

२ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।

३ चारो वेदो से चार महावाक्य लिये गये हैं १ ऋग्वेदान्तर्गत ऐतरेय आरण्यक से २ यजुर्वेदान्तर्गत बृहदारण्यक से ३ सामवेदान्तर्गत छान्दोग्य से और ४ अथर्व वेद से।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इसी को ज्ञान कहा है। क्योंकि आगे चलकर गरुड़जी भुसुण्डिजी से पूछते हैं कि कहहिं संत मुनि वेद पुराना। नहिं कछु दुर्लभ ज्ञान समाना। सोइ मुनि तुम्ह सन कहेउ गोसाईं। नहिं आदरेहु भगति की नाईं। शेष तीन वाक्य भी इसी भाँति ब्रह्म जीव के ऐक्य का प्रतिपादन करते हैं। यहाँ भगवान् लक्ष्मणजी को ऐतरेय आरण्यक गत महावाक्य प्रज्ञानं के तात्पर्य का उपदेश कर रहे हैं।

मान जहँ एकौ नाही : मीयते अनेन इति मानम्। जिससे नापा जाता है उसे मान कहते हैं। वह मान लघु, गुरु, महत्, अणु, उत्तम, मध्यम, अधम आदि भेद से अनेक प्रकारके होते हैं। ब्रह्मा, इन्द्रादि देव उत्तम हैं। मनुष्य मध्यम हैं। अश्व गजादि अधम हैं। एवं विद्या विनयसम्पन्न ब्राह्मण तथा गो पूज्य, हाथी मध्यम, कुत्ता श्वान आदि निकृष्ट हैं। ये बातें मान से सिद्ध हैं। यह मान देहादिकों में ही सम्भव है पर जो चेतन ब्रह्म सबमे व्याप्त है उसका कोई मान नहीं है।

देख ब्रह्म समान सब माही : चक्षु इन्द्रिय द्वारा निकले हुए अन्तःकरण वृत्ति से उपहित चैतन्य से ही पुरुष दर्शन योग्य रूपादि को देखता है। श्रोत्र द्वारा निकले हुए अन्तःकरणवृत्ति उपाधिवाले चैतन्य से सुनता है। घ्राण द्वारा निकले हुए अन्त करणवृत्ति उपहित चैतन्य से सूँघता है। वागिन्द्रियावच्छिन्न चैतन्य से बोलता है। रसेन्द्रिय द्वारा निकले हुए अन्त.करणवृत्ति उपहित चैतन्य से चखता है। वही प्रज्ञान चैतन्य ब्रह्म है और वह सबमे समान है। इन्द्रियादि की विकलता या सकलता से दर्शनादि में तारतम्य हो सकता है। परन्तु चैतन्य सबमें समान ही है ऐसी समान दृष्टि रखना ही ज्ञान है। यथा :

बिषय करन सुर जीव समेता। सकल एक ते एक सचेता॥
सबकर परम प्रकाशक जोई। राम अनादि अवध पति सोई॥

जगत प्रकाश्य प्रकासक रामू।

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राम मय जानि।
बन्दौं सबके पद कमल सदा जोरि जुग पानि॥
उमा जे राम चरन रत बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभुमय-देखहिं जगत का सन करहिं बिरोध॥
देस काल दिसि बिदिसहु माही। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाही॥
अग जगमय सब रहित बिरागी। प्रेम ते प्रभु प्रगटइ जिमि आगी॥

: यह दूसरे प्रश्न का उत्तर हुआ

तात : प्यार का शब्द है। यहाँ छोटे भाई के लिए आया है। भाव यह कि तुमने वैराग्य के विषय में प्रश्न किया है। सो वैराग्य तुम्हे स्वभाव से ही प्राप्त है वनगमन के समय में मैंने स्वय देख लिया है। यथा :

राम बिलोकि बन्धु कर जोरे। देह गेह सब सन तृन तोरे॥
मातु चरन सिर नाइ चले तुरत सङ्कित हृदय।
वागुर बिषम तोराइ मनहु भाग मृग भाग बस॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अत तुमसे वैराग्य का वर्णन करना केवल कथा को विस्तार देना है। अतः जो वैराग्य से भी साध्य परम वैराग्य है। उसका वर्णन मैं तुमसे करूँगा।

सो परम बिरागी कहिअ . भाव यह कि विषय दो प्रकार का है : एक दृष्ट और दूसरा आनुश्रविक। जो इस लोक मे देखा सुना जाता है वह दृष्ट कहलाता है जैसे शब्द रूपादि। अनुश्रव वेद को कहते है। सो जिसका पता वेद से लगता है उसे आनुश्रविक कहते है। जैसे स्वर्गादि। सो दोनो प्रकार के विषयो के परिणाम विरसत्व के देखने से जिनको इनका लोभ नही रह गया वे इन विषयो के वश्य नही होते। विषय ही उनके वश मे रहते हैं। उनके वैराग्य की वशीकार सज्ञा है। यथा ' यहि तन कर फल बिषय न भाई। सरगहु स्वल्प अन्त दुखदाई। इन विषयविषयक वैराग्यवालो को परम विरागी नही कहते। परम विरागी का लक्षण है '

तृन सम सिद्धि तीन गुन त्यागी ' जिसने अणिमादिक अष्ट सिद्धि तथा सत्त्व, रज और तम का त्याग किया हो वह परम विरागी है। पहला वैराग्य अर्थात् ऊपर कहा हुआ वैराग्य विषयविषयक था। पर परम वैराग्य तो गुण विषयक होता है। गुण विषयक वैराग्य ही सच्चा वैराग्य है। ऐसे वैराग्यवान् को परम विरागी कहना चाहिए। यथा :

विषया विनिवर्तन्ते निराहारस्य देहिन'।
रजवर्जं रसोऽप्यस्य पर दृष्ट्वा निवर्तते ॥ गीता २ ५९

बिधि हरिहर तप देखि अपारा। सनु समीप आये बहु बारा॥
माँगहु बर बहु भाँति लोभाए। परम धीर नहिं चलहि चलाए॥

यहाँ रजोगुण के अधिष्ठाता विधि सत्त्वगुण के अधिष्ठाता हरि और तमोगुण के अधिष्ठाता हर अपने गुण सम्बन्धी सब प्रकार के सुख तथा सिद्धियो का लोभ दिखा रहे हैं। पर परम वैराग्यवान् स्वायम्भू मनु को उन गुणो तथा सिद्धियों की इच्छा नही हुई। यह तीसरे प्रश्न का उत्तर हुआ।

दो माया ईस न आपु कहुँ, जान कहिअ सो जीव।
बध मोच्छ प्रद सर्बपर, माया प्रेरक सीव ॥९.१५॥

अर्थ जो माया, ईश्वर और अपने को न जाने उसे जीव कहा जाता है और जो बन्ध मोक्ष का देनेवाला, सबके परे, माया का प्रेरक है वह शिव है।

व्याख्या माया ईस न आपु कहँ जान . भाव यह कि माया का ज्ञान . ईश्वर का ज्ञान तथा अपने आत्मा का ज्ञान ऐसा परस्पर सापेक्ष है कि एक के ज्ञान के लिए शेष दो का ज्ञान अनिवार्य है। क्योकि ब्रह्म और जीव मे भेद करनेवाली केवल माया है।

यथा ' ब्रह्म जीव बिच माया जैसी। तथा . मुधा भेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया। उस माया की स्थिति बडी ही विचित्र है। न वह सत् है न असत् है न सदसत् है। न भिन्न है न अभिन्न है न भिन्नाभिन्न है। न

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



निरवयव है न सावयव है। वह ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान से हटाई जा सकती है। यथा : कोऊ कह सत्य झूठ कह कोऊ जुगल प्रबल करि मानै। तुलसीदास परिहरै तीन भ्रम सो आपन पहिचानै। वह माया जिसकी सत्यता से भासती है उस मायी ईश्वर का बिना निरूपण किये माया का निरूपण कैसे होग ? अथवा जिस [1]जीव पर उसका अधिकार है उसका बिना निरूपण किये ही माया कैसे जानी जायेगी ? इसी भाँति जिसका अंश [2]जीव है उसी अंशी का बिना निरूपण किये अथवा जिस [3]माया ने उस अखण्ड ईश्वर का अंश कल्पित किया है उसका बिना निरूपण किये जीव का निरूपण कैसे होगा ? एवं जिसके कारण ईश्वर मायी है और जिसके अंश होने से वह अंशी है उस माया और जीव के निरूपण बिना ईश्वर का निरूपण कैसे होगा ? और बिना निरूपण किये ज्ञान कैसे होगा ? अतः जिसे एक का सम्यक् ज्ञान नहीं है उसे तीनों का सम्यक् ज्ञान नहीं है। इसीलिए कहा : माया ईस न आपु कहुँ जान। जिसे माया, ईश्वर व अपना ज्ञान नहीं है।

कहिअ सो जीव : ऐसे अज्ञानी अथवा अल्पज्ञ को जीव कहते हैं। अर्थात् अज्ञान और अल्पज्ञता ही उसे जीव बनाये हुए है। अज्ञान का हटाना और स्वरूप का ज्ञान एक ही वस्तु है। ज्ञान होते तो वह जीव नहीं रह जाता। वह ब्रह्मपद को [4]प्राप्त हो जाता है। यथा :

सोइ जानै जेहि देहु जनाई। जानत तुम्हहि तुमहि होइ जाई॥

बन्ध मोच्छप्रद : मिथ्या ज्ञानकृत जो कर्तृत्वाभिमान है उसे बन्ध कहते हैं और तत्त्वज्ञान से जो अज्ञान और उसके कार्य का अभाव होता है उसी को मोक्ष कहते हैं। सो बन्धप्रद ईश्वर है वही कर्मफल दाता है। जीव भी अनादि है और उसके कर्म भी अनादि हैं। ये दोनों बीजाङ्कुर न्याय से सिद्ध हैं। सदा से ही अङ्कुर का कारण बीज और बीज का कारण अङ्कुर होता चला आया है। इसी भाँति

---

१. माया बस मति मंद अभागी। हृदय जवनिका बहु बिधि लागी॥

२ ईश्वर अंश जीव अबिनासी। चेतन अमल सहज सुख रासी॥

३ बाधा काटा जिनने उस आदि पुरुष को।
पुरजन ने काटा शाश्वत जगदीश्वर को॥
उन ब्रह्मविदों का विद्या द्वारा बिधि से।
हो मरण पुराहित ब्रह्मैकत्व हो फिर से॥ प्र. च.।

४ प्राप्त नहीं बाधित नहीं नहीं उदित नहिं अस्त।
भ्रम विकास वा लय नहीं नहीं असत नहिं सत्त॥
नहीं असत नहिं सत्त लोकत्रय बाधित होता।
मेरा सहज प्रकाश उदित भासित जब होता॥
बरनै मिथ्र बिचारि प्रबोधोदय मैं प्राकृत।
होगा भूले कभी जीव पदवी अब प्राप्त न॥ प्र. च.।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जन्म का कारण पूर्वार्जित कर्म और उसका भी कारण पूर्वजन्म यह क्रम अनादि काल से चला आता है और ईश्वर भी अनादि काल से तत्तत् कर्मों का फल देता चला आता है। इसी से उसे बन्धप्रद कहते हैं। यथा जेहि बाध्यो सुर असुर नाग मुनि प्रबल कर्म की डोरी। वही ईश्वर मोक्षप्रद भी है। उसी की कृपा से जीव मिथ्या ज्ञानकृत कर्तृत्वादि अभिमान से छूटता है। यथा 'तुलसीदास यह मोह सृखला छुटिहै तुम्हरे छोरे। दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेता तरन्ति ते। भगवान् कहते हैं यह मेरी दैवी गुणमयी माया पार पाने योग्य नही है। जो मेरी शरण मे आते हैं वे ही इस माया को हर सकते हैं।

सर्वपर वही ईश्वर सबके परे हैं। सबका उपादान होने से प्रकृति सबका कारण है। परन्तु ईश्वर उससे भी परे है। यथा

प्रकृति पार प्रभु सब उर बासी। ब्रह्म निरीह बिरज अविनासी॥
जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा॥
सोइ प्रभु भ्रूबिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित सहाजा॥
जगु पेखन तुम्ह देखनिहारे। बिधि हरि सभु नचावनि हारे॥

माया प्ररक सीव प्रश्न है कि ईश्वर जीवहि भेद प्रभु सकल कहहु समुझाइ। सो उसका उत्तर देते हुए जीव का लक्षण कहकर शिव अर्थात् ईश्वर का लक्षण कहते हैं। तद्भव रूप से शकार का [1]सकार और ह्रस्व का [2]दीर्घ विकल्प करके होता है। इस भाति शिव का प्राकृत रूप सीव है। शिव नाम ईश्वर का है। विष्णुसहस्रनाम मे भी शिव शम्भु शङ्करादि नाम आये हैं। शिव और राम म अभेद माना गया है। यथा सेवक स्वामि सखा सियजी के। हित निरुपधि सब बिधि तुलसी के। तथा पूजि पार्थिव नाएउ माथा। लिंग थापि बिधित करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा। कहकर शिवजी को रामजी का आत्मा[3] ही

---

१ शषो स २४३ प्राकृतप्रकाशे। सवत्र शकार षकार का सकार होता है।
२ ईत् सिंहजिह्वयोश्च ॥१७॥ चकारोऽनुक्तसमुच्चयार्थ।
सिंह सीहो जिह्वा जीहा यहाँ इकार का ईकार हुआ।
३ रुद्रस्य परमो विष्णुर्विष्णोश्च परमः शिव।
एक एव द्विधा भूतो लोके चरति नित्यश॥
न विना शकर विष्णुर्न विना केशव शिव।
तस्मादेकत्वमायातौ रुद्रोपेन्द्रौ तु तौ पुरा॥ हरिवशे

अथ रुद्र के बड विष्णु हैं और विष्णु के बड रुद्र हैं। एक ही दो भाग होकर लोक मे विचरते हैं। बिना शकर के विष्णु नही और बिना केशव के शिव नहीं। इसलिए पहले ही रुद्र और विष्णु एकत्व को प्राप्त हुए।

ये त्वेन विष्णुमव्यक्त मा च देव महेश्वरम्। एकीभावेन पश्यन्ति न तेषा पुनरुद्भव॥
तस्मादनादिनिधन विष्णुमात्मानमव्ययम्। मामिव सप्रपश्यध्व पूजयध्व तथव च॥
कूर्म पुराण ईश्वर गीता।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



स्वीकार किया है। क्योंकि सबके प्रिय आत्मा ही होता है। अयमात्मा परानन्दः परप्रेमास्पदं यत । तात्पर्य यह कि जीव शिव से वास्तविक भेद नही है। सच्चिदानन्द रूप से जीव और शिव मे अभेद है। पर माया ने कल्पित भेद कर रखा है। व्यवहार काल मे वह भेद सत्य भी है। शिव बन्ध मोक्षप्रद सर्व पर और मायाप्रेरक है एक हैं। जीव बद्ध हैं, अभिमानी हैं, माया के वश में हैं और अनेक हैं। यथा : माया वश परिछिन्न जड जीव कि ईश समान।

ग्यान अखंड एक सीतावर। माया वस्य जीव सचराचर ॥
जौ सबके रह ज्ञान एक रस। ईस्वर जीवहि भेद कहहु कस ॥
माया वस्य जीव अभिमानी। ईस वस्य माया गुन खानी ॥
परबस जीव स्ववस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता ॥
मुधा भेद यद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया ॥

दो० रामचन्द्र के भजन बिनु जो चह पद निर्बान।
ज्ञानवंत अपि सो नर पसु बिनु पूँछ बिषान ॥

यह छठे प्रश्नका उत्तर हुआ।

[1]धर्म ते बिरति जोग ते ग्याना। ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना ॥
जा तें बेगि द्रवउँ मै भाई। सो मम भगति भगत सुखदाई ॥१॥

अर्थ : धर्म से वैराग्य, वैराग्य से योग और योग से ज्ञान होता है और वेद

---

अर्थ : जो इन अव्यक्त विष्णु और मुझ देव महेश्वर को एक भाव से देखेगा उसका फिर जन्म नहीं होगा। इसलिए अनादिनिधन विष्णु अव्यय आत्मा को मेरे ऐसा देखो और उसी भाँति पूजा करो।

ये नमस्यन्ति गोविन्दं ते नमस्यन्ति शंकरम्।
येऽर्चयन्ति हरिं भक्त्या तेऽर्चयन्ति वृषध्वजम् ॥
ये द्विषन्ति विरूपाक्षं ते द्विषन्ति जनार्दनम्।
ये रुद्रं नाभिजानन्ति ते न जानन्ति केशवम् ॥

रुद्रहृदय उपनिषद्.

अर्थ : जो गोविन्द को नमस्कार करते हैं वे शंकर को नमस्कार करते हैं। जो हरि की भक्ति पूर्वक पूजा करते हैं वे वृषध्वज की पूजा करते हैं। जो विरूपाक्ष से द्वेष करते हैं वे जनार्दन से द्वेष करते हैं। जो रुद्र को नहीं जानते वे केशव को भी नहीं जानते। इत्यादि प्रमाणों से शास्त्र भरे पड़े हैं।

१ यहाँ कारणमाला अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बखान करता है कि ज्ञान मोक्ष देनेवाला है। जिससे मैं शीघ्र द्रवीभूत होता हूँ। वह तो[1] सब प्रकार के भक्तों को सुख देनेवाली मेरी भक्ति है।

धर्म तें बिरति ' जो जगत् की स्थिति का कारण है . धारणाद्धर्ममित्याहुर्धर्मो धारयति प्रजा । तथा प्राणियो की उन्नति और मोक्ष का हेतु है यतोऽभ्युदय नि श्रेयससिद्धि स धर्म । एव कल्याण का भी ब्राह्मणादि वर्णाश्रमावलम्बियो से जिसका अनुष्ठान किया जाता है चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म । उसे धर्म कहते हैं।

वेद ने दो प्रकार के धर्म बतलाये हैं एक प्रवृत्तिलक्षण और दूसरा निवृत्तिलक्षण। ज्ञान वैराग्य जिसका लक्षण है उसे निवृत्तिलक्षण धर्म कहते हैं। वह साक्षात् कल्याण का हेतु है। वर्ण और आश्रम को लक्ष्य करके जो सासारिक उन्नति के लिए कहा गया है वह प्रवृत्तिलक्षण धर्म है। वह यद्यपि स्वर्गादि के साधन का हेतु है। फिर भी ईश्वरार्पण बुद्धि से फलकामना रहित होकर किये जाने पर अन्त -करण शुद्धि का कारण होता है। शुद्धान्त करण पुरुष के लिए ज्ञाननिष्ठा की योग्यता प्राप्ति द्वारा ज्ञानोत्पत्ति का कारण होने से वह मोक्ष का हेतु भी होता है। इसी को कर्मयोग भी कहते हैं।

गुरु सुर सत पितर महि देवा। करै सदा नृप सब कै सेवा ॥
भूप धरम जे बेद बखाने। सकल करै सादर सुख माने ॥
दिन प्रति देइ बिबिध बिधि दाना। सुनै शास्त्र बर बेद पुराना ॥
नाना वापी कूप तडागा। सुमन वाटिका सुदर बागा ॥
बिप्र भवन सुर भवन सुहाए। सब तीरथन्ह बिचित्र बनाए ॥

जहँ लगि कहे पुरान श्रुति एक एक सब जाग।
बार सहस्र सहस्र नृप किये सहित अनुराग ॥

हृदय न कछु फल अनुसधाना। भूप बिबेकी परम सुजाना ॥
करै जे धरम करम मन बानी। बासुदेव अर्पित नृप ग्यानी ॥

इस प्रकार धर्माचरण से वैराग्य होता है। उसकी उत्पत्ति जिस विधि से होती है उसका विशद वर्णन शतपञ्च चौपाई ग्रन्थ मे मिलेगा। उसका सक्षेप इतना ही है कि शास्त्र विधि के अनुसार फल की काक्षा न रखते हुए कर्तव्य बुद्धि से आनन्द

---

१. १. नाम जीह जपि जागहिं जोगी। बिरति बिरचि प्रपच वियोगी ॥
ब्रह्म सुखहि अनुभवहिं अनूपा। अकथ अनामय नाम न रूपा ॥
२ जाना चहहि गूढ गति जेऊ। नाम जीह जपि जानहिं तेऊ ॥
३. साधक नाम जपहिं लय लाये। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाये ॥
४. जपहि नाम जन आरत भारी। मिटहिं कुसकट होहि सुखारी ॥
राम भगत जग चारि प्रकारा। सुकृती चारिउ अनघ उदारा ॥
५. सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूप हृद तिनहुँ किये मन मीन ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पूर्वक जप, तप, व्रत, यम, नियमादि वेदविहित शुभ धर्मो का आचरण श्रद्धापूर्वक करे और वे भावोपहत[1] न होने पावे। तब परम धर्म अहिंसा का उदय होता है। उसे वशीकृत निर्मल मन द्वारा विश्वास से दृढ करें। उस अहिंसा का योग, विषय-वासना त्याग, क्षमा, तोष और धृति से भी हो। जब ऐसी स्थिति हो जाय तब मुदिता तथा इन्द्रिय दमन पूर्वक सत्योक्ति वेद के अनुसार विचार करे तब निर्मल विराग का उदय होता है। यथा

सात्विक श्रद्धा धेनु सोहाई। जो हरि कृपा हृदयबस आई॥
जप तप व्रत यम नियम अपारा। जे श्रुति कह सुभ धरम अचारा॥
तेइ तृन हरित चरै जब गाई। भाव बच्छ सिसु पाइ पेन्हाई॥
नोइ निवृत्ति पात्र बिस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा॥
परम धरम मय पय दुहि भाई। अवटइ अनल अकाम बनाई॥
तोष मरुत तब छमा जुडावै। धृति सम जावन देइ जमावै॥
मुदिता मथै बिचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी॥
तब मथि काढि लेइ नवनीता। बिमल बिराग सुभग सुपुनीता॥

योग ते ज्ञाना : वैराग्य से सत् लक्ष्य पर चित्त के स्थिर करने के अभ्यास से चित्तवृत्ति का निरोध होता है उसी को योग कहते हैं। योगी का कर्म अशुक्ला कृष्ण होता है। तब ममता मल के दूर होने से वही वैराग्य मे परिणत होता है। वह वैराग्य ज्ञान ही है। यही तत्पद का शोधन है। तत्पश्चात् सबमे ब्रह्मदृष्टि दृढ करे तब जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति अवस्थाओ मे से क्रमश वैषयिक ज्ञान उसके सस्कार और अज्ञान को दूर करे। तब तुरीय अवस्था की प्राप्ति होती है। इसे त्व पद का शोधन कहते हैं। सो त्व पद के लक्ष्यार्थ को तत्पद के लक्ष्यार्थ मे लीन करके सानन्द समाधि मे स्थित हो। वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ दो होते हैं। फल पेड मे होता है। फल शब्द का वाच्यार्थ पेड में होनेवाली वस्तु विशेष है। परन्तु कर्मफल कहने से फल शब्द का वह अर्थ नही लिया जायगा। इसमे लक्ष्यार्थ लिया जायगा। यहाँ फल का लक्ष्यार्थ है कर्म का परिणाम : नतीजा। इसी भाँति त्व पद का वाच्यार्थ जीव और लक्ष्यार्थ कूटस्थ : तुरीय है एव तत् पद का वाच्यार्थ ईश्वर और लक्ष्यार्थ शुद्ध चेतन ब्रह्म है। यही अपरोक्ष ज्ञान है। यथा :

---

१ तपो न कल्कोऽध्ययन न कल्क. स्वाभाविको ज्ञानविधिर्न कल्क.।
प्रसह्य वित्ताहरण न कल्क. सर्वाणि भावोपहतानि कल्क ॥

अर्थ . तप करना पाप नही हैं। न वेद पढना पाप है। स्वाभाविक ज्ञान की विधि भी पाप नही है। हठ करके धन छीन लेना भी पाप नहीं है। परन्तु भावोपहत हो जाने से ये सब पाप हो जाते हैं। भाव यह कि दम्भ के लिए तप करना। दूसरे को जीतने के लिए वेद पढना। बुरी नियत से देखना सुनना और धन के मालिक के भले के लिए नहीं किन्तु अपने स्वार्थ के लिए धन छीन लेना पाप है। क्योकि ऐसा करने में भाव बिगडता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. जोग अगिनि करि प्रगट तब कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत ममता मल जरि जाइ॥
तब बिज्ञान निरूपिणी बुद्धि बिसद घृत पाइ।
चित्त दिया भरि धरै दृढ समता दियटि बनाइ॥
तीनि अवस्था तीनि गुन तेहि कपास ते काढि।
तूल तुरीय सँवारि पुनि बाती करै सुगाढि॥
एहि बिधि लेसै दीप तेजरासि बिज्ञानमय।
जातहिं जासु समीप जरहिं मदादिक सलभ सब॥

ज्ञान मोक्ष प्रद : भाव यह है कि तब अखण्ड : सोहमस्मि वृत्ति का उदय होता है। उससे आत्मानुभव सुख होता है। भेद भ्रम जाता रहता है। मोहादि दूर होते हैं। तब चिद् जड़ ग्रन्थि खुल जाती है और जीव का मोक्ष हो जाता है। यही ज्ञानयोग है। यथा :

सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भवमूल भेद भ्रम नासा॥
प्रबल अविद्या कर परिवारा। मोह आदि तम मिटै अपारा॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजियारा। उर गृह बैठि ग्रथि निरु आरा॥
छोरन ग्रथि पाव जौं सोई। तौ यह जीव कृतारथ होई॥
जौं निर्बिघ्न पथ निर्बहई। सो कैवल्य परम पद लहई॥
अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम वद॥

बेद बखाना . वेद ने स्वयं ज्ञान का बखान किया है। यथा · ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः। तमेव विदित्वातिमृत्युमेति नान्य पन्था विद्यतेऽयनाय। ज्ञानादेव हि कैवल्यम्। बिना ज्ञान के मुक्ति नही होती। उसे जानने से ही मृत्यु का अतिक्रमण किया जा सकता है। मुक्ति का दूसरा मार्ग नही है। ज्ञान से ही कैवल्य की प्राप्ति होती है। इत्यादि। भाव यह कि मोक्ष का साक्षात् कारण ज्ञान है। यही संक्षेप मे अद्वैतवाद है। अन्य मोक्षप्रद साधन ज्ञान द्वारा ही मोक्ष देते हैं। काशी मोक्ष देती है। क्योंकि ज्ञानखानि है। भक्ति मुक्ति देती है। क्योंकि ज्ञान विज्ञान उसके अधीन हैं। यथा :

मुक्ति जन्म महि जानि ज्ञान खानि अघ हानिकर।
जहँ बस संभु भवानि सो कासी सेइअ कस न॥
सो स्वतंत्र अवलम्ब न आना। तेहि आधीन ज्ञान विज्ञाना॥

भाई : यहाँ भाई सम्बोधन का भाव यह है कि तुम हमारे स्वभाव से परिचित हो। यहाँ मै अपना स्वभाव कहता हूँ। अथवा भाई होने से तुम्हारा मेरे मे भाव स्वाभाविक है और प्रेम का ही मार्ग सुलभ और सुखद है। उसी का मैं निरूपण करूँगा। यथा : सुलभ सुखद मारग यह भाई। भक्ति मोर पुरान श्रुति गाई। अतः भाई सम्बोधन दिया। मैं से सगुण ब्रह्म अभिप्रेत है। क्योंकि एकरस निर्विकार निर्गुण ब्रह्म मे द्रवता सम्भव नहीं। और यहाँ उसी का प्रसङ्ग है। सगुण ब्रह्म के

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अवतारों में भी रामावतार प्रसक्त है। क्योंकि उसकी विशेषता कही गयी है। अध्यात्म रामायण कहता है 'अवतारा ह्यसंख्येया हरे: सत्त्वनिधेर्द्विजा:। तेषां सहस्रसदृशो रामो नाम जनै: श्रुत:'। अर्थात् सत्त्वनिधि हरि के बहुत से अवतार हैं। उनमें से जगद् विख्यात रामावतार सहस्रों के समान हैं और विनय में ग्रन्थकार भी कहते हैं कि : एकइ दानि सिरोमनि साँचो। हरिहु और अवतार आपने राखी वेद बड़ाई। लै चिउरा निधि दई सुदामहि जद्यपि बाल मिताई।

जाते वेगि द्रवउँ : भाव यह कि अन्य साधनों से भी मैं द्रवीभूत होता हूँ। परन्तु शीघ्र नहीं। क्योंकि उसमें साधक को अपने बल का भरोसा रहता है। उन्हें भगवान् ने प्रौढ तनय माना है। परन्तु अमानी दास को शिशु बालक सम माना है। जिसे अपना भरोसा कुछ नहीं। सर्वात्मना माँ का भरोसा है। यथा : मोरे प्रौढ तनय सम ज्ञानी। बालक सिसु सम दास अमानी। जनहिं मोर बल निज बल ताही। दोउ कहँ काम क्रोध रिपु आही। भगवान् भी वीतचिन्त्य रहते हैं कि यह प्रौढ तनय है। यह काम क्रोधादि शत्रु का सामना कर लेगा। परन्तु अमानी दास की रखवारी करते हैं। यथा 'गहि सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखै जननी अरगाई। अत: मानना पड़ेगा कि भगवान् के शीघ्र द्रवीभूत होने के भी कारण हैं। दूसरी बात यह है कि निर्गुण की उपासना में अधिक क्लेश है। देहाभिमानियों की गति अव्यक्त में बड़ी कठिनता से होती है। सर्व कर्मों का सन्यास करके गुरु के पास जाना और वहाँ वेदान्त वाक्यों का विचार करना और उन विचारों से अनेक प्रकार के भ्रमों को दूर करने में महान् प्रयास करना पड़ता है। सगुणोपासना में कोई प्रतिबन्ध नहीं है। उसे ईश्वर की कृपासे स्वयं तत्त्वज्ञान का उदय होता है और ब्रह्मलोक के ऐश्वर्य को भोगकर कैवल्य प्राप्त करता है। गीता में भगवान् ने कहा है कि हे पार्थ ! जो सब कर्मों को मुझे अर्पण करके मुझमें लग जाते हैं और अनन्य योग से मेरा ध्यान करते हुए उपासना करते हैं। ऐसे मुझ में चित्त लगानेवालों को मैं शीघ्र ही संसार सागर से पार कर देता हूँ। ध्यान देने योग्य बात यह है कि कभी वह करुणावरुणालय भक्तों पर द्रवीभूत होकर पूति दुर्गन्धियुक्त संसार में भी अवतीर्ण होता है। कभी राजा बन्दियों पर करुणा करके कारागार के निरीक्षण के लिए वहाँ पदार्पण करता है। यदि कभी ईश्वर अवतीर्ण ही न हो तो उसके होने का प्रमाण ही क्या है ? उस अवतीर्ण रूप के भजन की बड़ी महत्ता है। क्योंकि वह अवतार उस विश्व रूप भगवान् की द्रवीभूत मूर्ति है। उसे कृपा करते देर नहीं लगती।

सो मम भगति : भक्ति प्रेम को कहते हैं। वही प्रेम यदि छोटों पर हो तो वात्सल्य कहलाता है। बराबर पर हो तो मैत्री सौहार्द या सख्य कहलाता है। बड़ों के प्रति हो तो भक्ति कहलाता है। वही प्रेम यदि संसारी पुरुषों पर हो तो बन्ध का कारण होता है और वही यदि ईश्वर के चरणों में हो तो भवबन्ध से मुक्ति देता है। यथा :

जननी जनक बन्धु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥
सबकै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



समदरसी इच्छा कछु नाही। हरख सोक भय नहिं मन माही॥
अस सज्जन मम उर बस कैसे। लोभी हृदय बसै धन जैसे॥

इसी भक्ति से भगवान् शीघ्र ही द्रवीभूत होते हैं। द्रवीभूत होने का प्रारम्भ जीव के ईश्वर प्रति अनुकूल होते ही हो जाता है। यथा : सम्मुख होइ जीव मोहि जबही। जनम कोटि अघ नासहिं तबही। बिना करुणानिधान के प्रति अनुकूल हुए तो सब साधन ही निष्फल हैं। यथा जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहिं राम प्रेम परधानू। निरुपास्ति ज्ञान भी टिकाऊ नही होता। क्योकि भक्ति ही योग और ज्ञान के भी विघ्नो को दूर करनेवाली है। यथा : अत प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च। यो १ पाद २९ सूत्र। अर्थात् भक्ति से प्रत्यक् चेतना का ज्ञान होता है और विघ्नो का नाश भी होता है। भक्ति के साथ होने से करुणानिधान की करुणा बनी रहती है और उसी से सिद्धि होती है। परन्तु उसमे देर लगती है। क्योकि भक्ति के साथ अन्य साधनो का मिश्रण रहता है। शुद्ध भक्ति होने से भगवान् की पूर्ण करुणा मे देर नही लगती। यथा ·

रामहि केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननि हारा॥
रीझत राम सनेह निसोते। को जग मंद मलिन मति मोते॥
जौ पै हरि जन के गुन गहते।
तौ सुरपति कुरुराज बालि सौ, कत हठि बैर बिसहते॥
जौ जप जाग जोग ब्रत बर्जित, केवल प्रेम न चहते॥
तौ कत सुर मुनि बर बिहाइ, ब्रज गोप गेह बसि रहते॥

भगत सुखदाई भाव यह कि दु खदाई पदार्थों को हटाकर ही भक्ति भगवती का पादार्पण होता है। जननी जनक बधु सुत दारा। आदि नश्वर पदार्थों मे ममता रहना ही दु खदाई है। सो भक्ति करने मे इनसे मनोवृत्ति को हटाकर तब भगवान् के चरणो मे लगायी जाती है। जब तक इनमे प्रेम है तब तक भक्ति कहाँ? और जब अविनाशी भगवान् के चरणो मे मन लगा तब सुख ही सुख है। स्वयं भगवती भास्वती भक्ति मे ही ऐसी सामर्थ्य है कि भक्त के सन्निकट विपत्ति को फटकने नही देती। यथा : बचन काय मन मम गति जाही। सपनेहुँ बूझिअ बिपति कि ताही। यदि भक्ति मे त्रुटि है तभी विपत्ति का आगमन होता है। भुसुण्डि ने कहा : देखेउँ करि सब करम गोसाईं। सुखी न भयेउँ अबहिं कि नाईं। भक्ति के सामने दूसरे की कौन कहे स्वयं माया का बल नही चलता। क्योकि भक्ति भगवान् की प्यारी है। यथा :

पुनि रघुबीरहि भगति पियारी। माया खलु नर्तकी बिचारी॥
भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया॥

भुसुण्डिजी कहते हैं कि भक्ति छोडकर सुख पाने का दूसरा उपाय नही है। यथा

श्रुति पुरान सब ग्रथ कहाही। रघुपति भगति बिना सुख नाही॥
कमठ पीठ जामहि बरु बारा। बध्या सुत बरु काहुहि मारा॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



फूलहि नभ बरु बहु बिधि फूला । जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला ॥
तृषा जाइ बरु मृगजल पाना । बरु जामहि सस सीस बिषाना ॥
अन्धकार बरु रबिहि नसावै । राम बिमुख न जीव सुख पावै ॥
हिम ते अनल प्रगट बरु होई । बिमुख राम सुख पाव न कोई ॥

इसी से चिद्रूप जीव और अचिद्रूप जगत् दोनो का शरीर माननेवाला विशिष्टाद्वैतवाद, जीव जगत् के सूक्ष्मतत्त्व को ईश्वर मे वर्तमान माननेवाला द्वैताद्वैतवाद, जीव ब्रह्म का सार्वकालिक भेद माननेवाला द्वैतवाद तथा जीव को अग्नि के स्फुलिङ्ग के समान अश माननेवाला शुद्धाद्वैतवाद सभी ने एक मुख से भक्ति को ही साधन माना है । अद्वैतवाद के परमाचार्य शङ्कर भगवान् . सत्यपि भेदापगमे नाथ तवाहं न मामकीनस्त्वम् । सामुद्रो हि तरङ्गः क्वचन समुद्रो हि न तारङ्गः कहते हैं । अर्थात् भेद चले जाने पर भी हे नाथ ! मैं तुम्हारा हूँ । मेरे तुम नही हो । समुद्र का तरङ्ग होता है तरङ्ग का समुद्र नही होता ।

सो सुतंत्र अवलंब न आना । तेहि अधीन ज्ञान बिज्ञाना ॥
भगति तात अनुपम सुख मूला । मिलइ जो संत होंहि अनुकूला ॥२॥

अर्थ : वह : भक्ति स्वतन्त्र है । उसे : दूसरे का अवलम्बन नही है । ज्ञान विज्ञान उसके अधीन हैं । हे ! तात अनुपम सुख मूल भक्ति यदि सन्त अनुकूल हो तो मिलती है ।

व्याख्या : सो सुतन्त्र : जो परमुखापेक्षी न हो वही स्वतन्त्र है । कर्म और ज्ञान स्वतन्त्र नही है । यज्ञ यागादि कर्म मे अधिकार, द्रव्य, विधान, सामर्थ्य, देश, काल आदि का बड़ा बखेड़ा है । उसकी सिद्धि इनके अधीन है । फिर भी यदि उसमे भक्ति का पुट न रहा तो उससे ससार ही दृढ होता चला जाता है । इसीलिए श्रीगोस्वामीजी कहते हैं :

सो सब करम धरम जरि जाऊ । जहँ न रामपद पंकज भाऊ ॥
करतउ सुकृत न पाप सिराही । रक्त बीज इव बाढत जाही ॥

ज्ञान भी स्वतन्त्र नही है । ऊपर कह आये हैं कि ज्ञानदीप के प्रज्ज्वलित करने मे तत् पद के और त्वं पद शोधन मे तथा एकीकरण मे कितने साधनो की अनिवार्य आवश्यकता है । सब कुछ होने पर भी आत्मानुभव प्रकाश मे तथा चित् जडग्रन्थि के छोड़ने मे अचिन्त्य बाधायें आ पड़ती हैं । यथा :

छोरत ग्रथि जानि खगराया । बिघन अनेक करै तब माया ॥
रिद्धि सिद्धि प्रेरै बहु भाई । बुद्धिहि लोभ दिखावहि आई ॥
कल बल छल करि जाहि समीपा । अचल बात बुझावहि दीपा ॥
जौं तेहि बुद्धि बिघ्न नहि बाधी । तौ बहोरि सुर करहि उपाधी ॥
इन्द्री द्वार झरोखा नाना । तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना ॥
आवत देखहि बिषय बयारी । ते हठि देहि कपाट उघारी ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जब सो प्रभजन उर गृह जाई। तबहिं दीप बिज्ञान बुझाई॥
ग्रन्थि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा॥
बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी। तेहि बिधि दीप को बार बहोरी॥

दो तब फिर जीव बिबिध बिधि, पावइ संसृति क्लेस।
हरि माया अति दुस्तर, तरि न जाइ बिहगेस॥

यदि ज्ञान सिद्ध हो तो भी भक्ति का आदर वहाँ भी अनिवार्य है। नही तो निरुपास्ति ज्ञान से साधक का पतन होता है। यथा 'जो ज्ञान मान बिमत्त तव भव हरनि भगति न आदरी। ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी।

अवलम्ब न आना भक्ति के स्वातन्त्र्य का कारण कहते हैं कि उसे दूसरे का अवलम्बन नही है। वह कर्म 'यज्ञादि और ज्ञान की मुखापेक्षी नही है। यह बात नही है कि बिना यज्ञ किये भक्ति होती ही नही। यहाँ पर ग्रन्थकार कहते हैं '

कौन धौं सोमयाजी अजामिल अधम। कौन गजराज धौं बाजपेयी। अर्थात् ये आर्त्त भक्त बिना यज्ञयागादि के ही कल्याण भाजन हुए और यह बात भी नही कि बिना ज्ञान के भक्ति न हो। किरातो को कौन बडा ज्ञान था। यथा : किरात बचन प्रभु प्रति

कीन्ह बास भल ठाउ बिचारी। इहाँ सकल रितु रहब सुखारी॥
हम सब भाँति करब सेवकाई। करि केहरि अहि बाघ बराई॥
बन बेहड गिरि कदर खोहा। सब हमार प्रभु पग पग जाहा॥
तहँ तहँ तुम्हहि अहेर खेलाउब। सर निर्झर जल ठाँउ देखाउब॥
हम सेवक परिवार समेता। नाथ न सकुचब आयसु देता॥

दो बेद बचन मुनि मन अगम ते प्रभु करुना अयन।
बचन किरातन्ह के सुनत जिमि पितु बालक बयन॥

इसलिए भक्ति को स्वतन्त्र कहा है। भक्ति विशेष से चाहे हुए भगवान् भक्त के अभिमुख होते है और इच्छामात्र से उसके अभीष्ट प्रदान पूर्वक उस पर अनुग्रह करते हैं।[1] ईश्वर की इच्छामात्र से उस भक्तयोगी को शीघ्र से शीघ्र समाधि की प्राप्ति होती है और समाधि का फल भी होता है। भगवत्स्मरण से भक्त को रोगादि विघ्न भी नही होते और स्वरूप[1] दर्शन भी उसे होता है। अत भक्ति की उपमा चिन्तामणि से दिया। जिस भाँति चिन्तामणि का प्रकाश स्वाभाविक है। दीप के प्रकाश की भाँत आगन्तुक नही है। उसी भाँति भक्ति मे स्वात्मानुभव प्रकाश स्वाभाविक है।

---

१. प्रणिधानाद् भक्तिविशेषादावर्जित ईश्वरस्तमनुगृह्णात्यभिधानमात्रेण। तदभिध्यानमात्रादपि योगिन आसन्नतम समाधिफल च भवति।

यो भा १.२३

ये तावदन्तराया व्याधिप्रभृतयस्ते तावदीश्वरप्रणिधानान्न भवन्ति। स्वरूपदर्शनम-प्यास्य भवति। योग भा १ २९

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जिस भाँति चिन्तामणि से सब सुखो का लाभ होता है उसी भाँति भक्ति से भी सर्वाभीष्ट की सिद्धि होती है। अतः भक्ति स्वत सब कुछ करने में समर्थ है। यथा :

राम भगति चिंतामनि सुन्दर। बसइ गरुड जाके उर अंतर ॥
परम प्रकाश रूप दिन राती। नहिं कछु चहिय दिया घृत बाती ॥
मोह दरिद्र निकट नहिं आवा। लोभ बात नहिं ताहि बुझावा ॥
प्रबल अविद्या तम मिटि जाई। हारहिं सकल सलभ समुदाई ॥
खल कामादि निकट नहिं जाहीं। बसै भगति जाके उर माहीं ॥
गरल सुधा सम अरि हित होई। तेहि मनि बिन सुख पाव न कोई ॥
ब्यापहिं मानस रोग न भारी। जिन्ह के बस सब जीव दुखारी ॥
राम भगति मनि उर बस जाके। दुख लव लेस न सपनेहुँ ताके ॥
चतुर सिरोमनि तेइ जग माहीं। जे मनि लागि सुजतन कराहीं ॥

तेहि आधीन ज्ञान बिज्ञाना : ऊपर दिखला चुके हैं कि ज्ञान विराग की स्थिति बिना भक्ति के नही होती। श्रीमद् भागवत माहात्म्य में ज्ञान विराग के अधीन होने का बडा सुन्दर उपाख्यान हैं। वृन्दावन मे एक युवती सुन्दरी रुदन करती थी और दो वृद्ध पुरुष मृत्यु शय्या पर पडे ऊर्ध्वश्वास ले रहे थे। नारदजी के पूछने पर मालूम हुआ कि वृद्ध युवती भक्ति है और दोनो चेतना रहित पुरुष ज्ञान विराग उसके पुत्र हैं। वृन्दावन मे आने से भक्ति तो वृद्धा से तरुणी हो गयी। पर उसके पुत्रो का कोई उपकार नही हुआ। अन्त म नारद भगवान् के उद्योग से भागवत की कथा हुई और उससे ज्ञान विराग भी स्वस्थ हो गये। तात्पर्य्य यही है कि भक्ति से ही ज्ञान वैराग्य उत्पन्न हाते हैं तथा उसको कृपा से स्वास्थ्य लाभ करते हैं। जिसे भक्ति होती है उसे ज्ञान विराग स्वय ही प्राप्त हो जाते हैं। यथा :

सब सुख खानि भगति तै माँगी। नहिं जग कोउ तोहि सम बडभागी ॥
जो मुनि कोटि जतन नहिं लहहीं। जे जप जोग अनल तट दहहीं ॥
रीझेउँ देखि तोरि चतुराई। मागेहु भगति मोहि अति भाई ॥
सुनु बिहंग प्रसाद अब मोरे। सब सुभ गुन बसिहहिं उर तोरे ॥
भगति ज्ञान बिज्ञान बिरागा। जोग चरित्र रहस्य बिभागा ॥
जानब तै सबही कर भेदा। मम प्रसाद नहिं साधन खेदा ॥

तात : प्रश्न हुआ था ' कहहु सो भगति कहहु जेहि दाया। आदेश हो रहा है। जाते बेगि द्रवौं मैं भाई। यहाँ भी प्रश्न से उत्तर मे विशेषता है। अतः प्यार के शब्द : तात से सम्बोधन करते हैं। ऊपर भी ऐसा ही हो चुका है। पूछा था सकल कहहु समुझाई। उत्तर हुआ : थोरेहि महँ सब कहउँ बुझाई। सुनहु तात। प्रश्न बिराग के विषय मे हुआ। उत्तर मिला : सुनहु तात सो परम बिरागी। अतः निष्कर्ष यही निकला कि जहाँ प्रश्न से उत्तर मे कुछ विशेष बात प्यार के कारण कहनी है वहाँ तात शब्द से सम्बोधन करते हैं।

भगति अनुपम सुख मूला : भक्ति के तीन विभाग है : १. साधन २. भाव

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



और ३ प्रेम। जो करने से हो और जिससे उसके कारण नित्य सिद्ध भाव का हृदय मे आविर्भाव हो उसे साधन भक्ति कहते हैं। द्रवीभूत चित्तवृत्ति मे जब राम रङ्ग चढ जाता है तो उसे भाव भक्ति कहते हैं। जब श्रीराम चरण मे क्षण क्षण अविच्छिन्न आसक्ति बढती चले। गुणो की कामना न रहे। ऐसे परमानन्द शान्तिमय अनुभव रूप निरोध को प्रेमा भक्ति कहते हैं। १ साधन भक्ति यथा. भगति के कहौं बखानी। २ भाव भक्ति यथा भये काल बस जब पितु माता। मैं बन गयउँ भजन जन त्राता। ३ प्रेमा भक्ति यथा : अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई। प्रभु देखहिं तरु ओट लुकाई। जो भगति सदा बनी रहे। जिसमे कभी व्यवधान पडे ही नही। जिसमे अन्तराय का होना सम्भव ही नही वही अनुपम है। कर्म तो ऐसा हो नही सकता। क्योकि उसका स्वरूप ही त्याग ग्रहणात्मक है। ज्ञान भी जीव म एक रस नही रह सकता। यथा जौ सबके रह ज्ञान एक रस। ईश्वर जीवहि भेद कहहु कस। परन्तु भक्ति ऐसी है जिसम अन्तराय सम्भव नही। उसी को अविरल, अनपायिनी, सिद्धा, अनन्या आदि अनेक नामो से कहते हैं। उस पर माया का भी बल नही चलता। अत वह अनूप हैं। सुखमूल है। यथा

राम भगति निरुपम निरुपाधी। बसइ जासु उर सदा अबाधी॥
तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकै कछु निज प्रभुताई॥
अस बिचारि जे मुनि बिज्ञानी। जाचहिं भगति सकलसुख खानी॥

मिलइ भाव यह कि कृपासाध्य है क्रियासाध्य नही। अपने पुरुषार्थ से उसे कोई नही प्राप्त कर सकता। वह भगवान् के अनुग्रह से ही मिलती है। यथा अबिरल भगति बिसुद्ध तव श्रुति पुराण जो गाव। जेहि खोजत योगीश मुनि प्रभु प्रसाद कोउ पाव। भगत कल्पतरु प्रनत हित कृपासिन्धु सुखधाम। सोइ निज भगति मोहि प्रभु देहु दया करि राम।

जो सन्त होहिं अनुकूला भाव यह कि प्रभु प्रसाद से ही वह मिलती है। चाहे साक्षात् प्रभु द्वारा मिले। चाहे उनके अपर रूप सन्तो द्वारा मिले। विशुद्ध सन्त का समागम भी बिना प्रभु की कृपा सम्भव नही है। यथा :

सन्त बिसुद्ध मिलहि परि तेही। चितवहिं राम कृपा करि जेही॥

जिसके अङ्ग अङ्ग के प्रति वेदा ने लोको की कल्पना की है। उस प्रभु का दर्शन दुर्लभ है। स्वय भगवान् कहते हैं

सुदुर्दर्शमिद रूप दृष्टवानसि यन्मम।
देवा अप्यस्य रूपस्य नित्य दर्शनकाङ्क्षिण॥
नाह वेदैर्न तपसा न दानेन न चेज्यया।
शक्य एवविधो द्रष्टु दृष्टवानसि मा यथा॥
भक्त्या त्वनन्यया शक्य अहमेवविधोऽर्जुन।
ज्ञातु द्रष्टु च तत्त्वेन प्रवेष्टुं च परतप॥

गीता ११ ५२-५४

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थात् हे अर्जुन ! तुमने मेरे जिस सुदुर्दर्श रूप का दर्शन किया है उसके दर्शन के लिए देवता भी सदा लालायित रहते हैं। वेद से, तप से, दान से या यज्ञ से कोई मेरा दर्शन इस भाँति नही पा सकता जिस भाँति तुमने पाया है। केवल अनन्य भक्ति से ही भक्त इस प्रकार से जान सकता है देख सकता है और मेरे मे प्रवेश कर सकता है। सो विश्व रूप भगवान् समुद्र हैं। सबकी इन तक गति नही। यह पुरुषार्थ मेघरूपी सन्तो मे ही है कि भगवान् की ही मङ्गलमयी मधुर मनोहर मूर्ति भक्ति को लाकर मिला दे। आनन्दकन्द भगवान् चन्दन के वृक्ष हैं। पर सर्पादि विघ्नबाहुल्य से कोई चन्दन वृक्ष तक जा नही सकता। पर यह सामर्थ्य सन्तरूपी मरुत् मे ही है कि उसकी आनन्दमयी विभूति भक्ति को लाकर पुरुषार्थहीन प्राणी से मिला दे। इसलिए कहते हैं मिलै जो सन्त होहि अनुकूला। यथा

मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा॥
रामसिन्धु घन सज्जन धीरा। चदन तरु हरि सत समीरा॥
सब कर फल हरि भगति सोहाई। सो बिनु सत न काहू पाई॥
अस बिचारि जोइ कर सतसगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहगा॥

यह पाँचवें प्रश्न का उत्तर समाप्त हुआ। अब प्रथम प्रश्न का उत्तर कहते हैं।

## भक्तियोग साधना

भगति के साधन कहहुँ बखानी। सुगम पथ मोहि पावहि प्रानी॥
प्रथमहि बिप्र चरन अति प्रीती। निज निज कर्म निरत श्रुति रीती॥३॥

अर्थ भक्ति के साधनो को बखान करके कहता हूँ। इस सुगम पन्थसे मुझे प्राणी प्राप्त होते हैं। पहिले ही विप्र के चरणो मे अति प्रीति हो और वैदिक रीति से अपने अपने कर्म मे निरत लगे हो। ७ २० बरनाश्रम निज निज धरम निरत बेद पथ लोग।

व्याख्या भगति के साधन अविरल भक्ति का प्रसङ्ग समाप्त हुआ। अब जो पहले प्रश्न किया था मोहि समुझाउ कहौ सो देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा। उसका आरम्भ होता है। भाव यह कि जिस साधन से सुख सम्पत्ति परिवार और बडाई आदि का परित्याग करके सेवकाई म जीव प्रवृत्त होता है उसका वर्णन किया जा रहा है। वे ही भक्ति क साधन हैं। ईश्वर के अस्तित्व का ज्ञान मनुष्य मे स्वाभाविक है। वह छोटे छोटे बच्चा म भी पाया जाता है। निरीश्वरवाद अस्वाभाविक है। बडी कठिनता से गले उतरता है। फिर भी ईश्वर नही है ऐसा अभ्रान्त ज्ञान तो किसी को होता ही नही। उसके बिना जाने भी ईश्वर के अस्तित्व की धारणा छिपी छिपायी कही न कही उसके हृदय म पडी ही रहती है। तब ईश्वर की प्राप्ति के लिय प्रयत्न करना उसके लिए स्वाभाविक है। फिर भी मनुष्य जो ईश्वर की भक्ति नही करता उसका कारण यह है कि सुख सम्पत्ति परिवार

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बडाई इत्यादि उसके बाधक हैं। इन बाधको को दूर करने से हृदय में स्वत भक्ति का सञ्चार हो उठता है। यथा :

सुख सम्पति परिवार बडाई। सब परिहरि करिहौं सेवकाई॥
ये सब राम भगति के बाधक। कहहिं सत तव पद अवराधक॥
अब प्रभु कृपा कहहु एहि भाँति। सब तजि भजनु करउँ दिन राती॥

कहहुँ बखानी . भाव यह कि समझाकर कहता हूँ। क्योंकि प्रार्थना ही ऐसी है · मोहि समुझाइ कहौं सोइ देवा। साधन के वर्णन मे कुछ विस्तार करना ही पडता है। साधन अनेक होते हैं और उनके पूर्वापर का क्रम होता है। उनमें उलट फेर होने से सिद्धि मे कठिनाई होती है और ठीक क्रम से चलने मे सुगमता होती है और सिद्धि भी शीघ्र होती है। दूसरी बात यह कि ज्ञानपन्थ की भाँति यह अकथ कहानी नही है। जो न समझते ही बने न बखानते ही बने। यथा : सुनहु तात यह अकथ कहानी। समुझत बनै न जात बखानी।

सुगम पंथ : जिस मार्ग से चलने मे विघ्नबाधा न हो। आयास न हो। वही सुगम पंथ है। इन पंथ पर चलनेवालो की रखवारी स्वय भगवान् करते हैं। अतः उसे विघ्नबाधा दबा नही सकती और उसमे योग जप तप व्रत उपवासादि कष्टकर अनुष्ठान नही है। आप से आप समाधि सिद्ध होती है। भक्ति योग के पथिक को भगवान् के सहारे से पार का प्राप्त करना कठिन नही होता है। यथा :

ज्ञान पथ कृपान के धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा॥
कहत कठिन समुझत कठिन साधन कठिन विवेक।
होई घुनाच्छर न्याय ज्यौ पुनि प्रत्यूह अनेक॥
सोम कि चापि सकै कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू॥
कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा॥
सुमिरत हरिहि श्राप गति बाधी। सहज बिमल मन लागि समाधी॥

मोहि पावहि प्रानी एक व्यापक अविनाशी अविकारी सच्चिदानन्दघन ब्रह्म सबके हृदय मे विद्यमान है पर उसकी प्राप्ति तो नही होती। यदि प्राप्ति होती तो जीव दीन दुखारी नही होते। काष्ठ मे अग्नि तो अव्यक्तरूप से व्याप्त है पर मन से काष्ठ और अग्नि को पृथक् करने से अग्नि की प्राप्ति नही होती। उसकी प्राप्ति तब होगी जब यत्न से उस अव्यक्त अग्नि को व्यक्तरूप मे लाया जाय। इसी भाँति अव्यक्त ब्रह्म सर्वत्र व्याप्त है। स्वय हृदय मे विराजमान है पर प्राप्ति उसकी नही होती। जब भक्ति द्वारा उसे व्यक्तरूप . सगुणरूप मे लाया जाय तब उसकी प्राप्ति होती है। हीरे मे मूल्य है पर हीरे से स्वय तो कोई काम नही चलता। जब यत्न किया जाय और उसके कुव्यक्त मूल्य को व्यक्तरूप मे लाया तब उससे काम चल सकता है। यथा .

सहे सुरन्ह बहुकाल बिषादा। नरहरि किये प्रगट प्रहलादू॥
एक दारुगत देखिय एकू। पावक सम जुग ब्रह्म बिबेकू॥
नाम निरूपन नाम जतन तें। सोउ प्रकटत जिमि मोल रतन तें॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रथमहि ' भाव यह कि भक्ति पथ पर पैर रखनेवाल को पहिले साधन भक्ति को अङ्गीकार करना पडता है। प्रथमहिं कहकर यह दिखलाया कि यहाँ जो कुछ कहा जायगा उसमे क्रम है। दूसरा तीसरा कहकर स्पष्ट न गिनाने पर भी क्रम समझ लेना चाहिए।

विप्र चरन अति प्रीति विप्र वेदपाठी ब्राह्मण को कहते हैं। ब्राह्मण मे यदि ब्राह्मणोचित गुण न हो तो भी उसका कर्मठ होना अनिवार्य है। वेद विहीन ब्राह्मण शोच्य हो जाता है। अत गोस्वामीजी ने विप्र शब्द का अधिक प्रयोग किया है। ब्राह्मण शब्द का अति विरल प्रयोग है। सो पहला साधन यह है कि विप्र के चरण मे अति प्रीति हो। क्योकि द्विज सेवकाई हरि तोषण व्रत हैं। विप्र के पूजित होने से भगवान् तुष्ट होते हैं। इसीलिए ये महिदेव कहलाते हैं।

अति प्रीति कहने का भाव यह कि उनसे शापित ताडित तथा अपमानित होने पर भी क्रोध न करे। उनकी पूजा ही करे। क्याकि शील गुणहीन ब्राह्मण के भी पूजन का विधान है। गुण ज्ञान प्रवीण शूद्र के पूजन का विधान नही है। पूर्व जन्म के [1]कर्मों से ही जाति आयु और भोग की प्राप्ति होती है। जो रमणीयाचरण है उनको रमणीय योनि की प्राप्त होती है वे ब्राह्मण क्षत्रिय या वैश्य होते हैं और जो कपूयाचरण है उनको कपूय योनि की प्राप्ति होती है वे चाण्डाल योनि या कुत्ते की योनि को प्राप्त होते हैं। अत शील गुण रहित विप्र की पूजा वस्तुत उसके पूर्व जन्म के रमणीयाचरण की पूजा है। जिसके विपाक से उसे ब्राह्मण शरीर मिला है और गुण ज्ञान प्रवीण शूद्र की अपूज्यता उसके पूर्व जन्म के कपूयाचरण का परिचायक रूप है। इस जन्म का रमणीयाचरण अभी परिपक्व नही हुआ है। आगामी जन्म मे उसके आयु और जाति व भोग का कारण होगा। यथा

सुनु गन्धर्व कहौं मैं तोही। मोहि न सोहाय ब्रह्मकुल द्रोही॥
दो मन क्रम बचन कपट तजि जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत बिरंचि सिव बस तावे सव देव॥
सापत ताडत परुष कहता। विप्र पूज्य अस गावहिं संता॥
पूजिअ विप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुनगन ग्यान प्रवीना॥

अत जिस भाँति अश्वत्थ तुल्सी आदि स्वय अपने कल्याण सम्पादन मे असमर्थ हैं। पर उनके पूजको का कल्याण होता है। उसी भाँति शील गुण हीन विप्र अपना कल्याण करने मे असमर्थ हैं। पर उनके पूजक का कल्याण होता है।

निज निज कर्म निरत अपने वर्ण और अपने आश्रम के कर्म मे लगा रहे। भाव यह कि शोक मोहादि दोषा से जिनका चित्त घिरा हुआ है ऐसे सभी प्राणियो से स्वधर्म का त्याग और निषिद्ध धर्म का सेवन स्वाभाविक ही होता है तथा च "सर्वप्राणिना शोकमोहादि दोषाविष्टचेतसा स्वभावत एव स्वधर्मपरित्याग प्रतिषिद्ध

---

१ सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगा। प० यो० सू०

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सेवा च स्यात् । शा० भा० जैसे अर्जुन पहले स्वय ही क्षात्रधर्म रूप युद्ध मे प्रवृत्त हुआ था। तब भी शोक मोह द्वारा विवेक ज्ञान के दब जाने से उस युद्ध से उपरत हुआ और दूसरो का धर्म भिक्षाचरण मे प्रवृत्त होने लगा। अत ब्राह्मण मे जो अन्य जाति के कर्म करने की प्रवृत्ति देखी जाती है या हीन जाति मे जो उच्च जाति के कर्म करने की प्रवृत्ति देखी जाती है। इसी भाँति सन्यस्त मे जो गृहस्थ धर्म की प्रवृत्ति तथा गृहस्थ मे सन्यास धर्म की प्रवृत्ति है। उसका कारण शोक मोहादि से विवेक विज्ञान का दब जाना ही है। दूसरी बात यह है कि जिनका सम्बन्ध ब्राह्मणो से टूट जाता है। उनसे वर्णाश्रम धर्म का निर्वाह किसी भाँति सम्भव नही। मनु भगवान् ने स्पष्ट लिखा है कि यही के क्षत्रिय जो बाहर जाकर बसे। वे ब्राह्मणो से असम्बद्ध होने के कारण वर्णाश्रम धर्म से पतित होकर यवन, म्लेच्छ, पुल्कस, किरातादि अवस्था को प्राप्त हो गये हैं। स्वधर्मत्याग से मनुष्य पतित हो जाता है। यथा

विप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ बृपली स्वामी॥
सूद्र करहिं जप तप ब्रत नाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना॥
गुन मन्दिर सुन्दर पति त्यागी। भजहिं नारि नर पर पुरुष अभागी॥
सौभागिनी बिभूषन हीना। बिधवन्ह के सिंगार नवीना॥
तपसी धनवंत दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही॥

इत्यादि।

श्रुति रीति भाव यह कि वेद की रीति से जिसका जो कर्म है वही करे। दूसरा न करे। अदृष्टार्थ का ज्ञान वेद तथा तच्चरणाश्रित शास्त्रो से ही हो सकता है। ईश्वर स्वर्ग या धर्म को किसी ने देखा नही। इनका ज्ञान अन्य किसी प्रमाणो से नही हो सकता। अचिन्त्या खलु ये भावा न तास्तर्केण योजयेत्। जो भाव अचिन्त्य हैं उन सब मे तर्क को स्थान नही देना चाहिए। अत धर्म कैसे पालन करना चाहिए इसे श्रुति ही बतला सकती है। लाखो मनुष्यो के एक स्वर के चिल्लाने से भी न कोई वस्तु पुण्य हो सकती है न पाप हो सकती है। करोडो आदमियो के एक साथ आवाज उठाने पर भी न शीशा हीरा हो सकता है और न हीरा शीशा हो सकता। इसका विवेक तो पारखी जौहरी ही कर सकता है। अत कल्पित आचार न करे। जो कर्म एक के लिए धर्म है वही दूसरे के लिए अधर्म हो जाता है। इसलिए कार्याकार्य की व्यवस्था मे शास्त्र ही प्रमाण है। शास्त्र विधान को जानकर ही कर्म करना चाहिए। तस्माच्छास्त्र प्रमाण ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ। ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्त कर्म कर्तुमिहार्हसि। गीता १६ २४। य शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारत। न स सिद्धिमवाप्नोति न सुख न परा गतिम्। गीता १६ २३। जो शास्त्र विधि को छोडकर अपने मन का करते हैं उन्हे न तो सिद्धि मिलती है न सुख मिलता है। न उनको परा गति की प्राप्ति होती है। श्रुतिरीति कर्म करने की यह है कि शास्त्रविहित कर्म को सग रहित होकर बिना रागद्वेष के फल की इच्छा न रखते हुए करे। तात्पर्यार्थ यह कि अपनी स्वाभाविकी प्रवृत्ति

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



को शास्त्रीया बनावे और उसे ऐसा दृढ बनावे कि उसके त्याग में उतनी ही कठिनता मालूम पड़े जितनी कि पहिले स्वाभाविकी प्रवृत्ति के त्याग में मालूम पड़ी थी। यथा :

सिवि दधीच हरिचंद नरेसा। सहे धरमहित कोटि कलेसा॥
रंतिदेव बलि भूप सुजाना। धरम धरेउ सहि संकट नाना॥
मैं सोइ धर्म सुलभ करि पावा। तजें तिहूँ पुर अपजस छावा॥
संभावित कहँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू॥

एहि कर फल पुनि विषय विरागा। तब मम धर्म उपज अनुरागा॥
श्रवनादिक नव भक्ति दृढ़ाहीं। मम लीला रति अति मन माहीं॥४॥

अर्थ : इसका फल फिर विषय विराग है। तब मेरे धर्म में अनुराग उत्पन्न होता है। तब श्रवणादिक नव भक्तियाँ दृढ़ होती हैं और मन मे मेरी लीला की अत्यन्त प्रीति होती है।

एहि कर फल पुनि : भाव यह कि कार्यकारण शृंखला चल रही है। विप्रचरण प्रीति का फल श्रुतिरीति से स्वधर्माचरण। अब उसका फल कहते हैं। इसलिए पुनि शब्द का प्रयोग किया है।

विषय विरागा : अर्थात् वशीकार संज्ञा वैराग्य प्राप्त होता है। जिसका वर्णन पहले किया है जा चुका है। भाव यह कि शास्त्रीया प्रवृत्ति दृढ होने से ही वस्तु विचार का उदय होता है। तब विषय के दोष परिणाम विरसत्वादि दिखायी पड़ने लगते हैं। बिना दोष दर्शन के वैराग्य नही होता।

तुरत विरत होके रोक के इन्द्रियों को
स्मरण मनन से भी नारि के जी हटाऊँ।
सुरत बिरसता को देह बीभत्सता को
प्रति दिन जिय सोचूँ काम यों नसाऊँ॥

कमलदल से सूक्ष्म चर्म बिरचि यदि मढ़ता नही।
मांस के इस पिंड को त्वक् खोल में धरता नहीं॥
गृद्ध काक शृगाल लोहु मांस के भक्षक सदा।
टूटते इस देह पर मिलते कहाँ रक्षक तदा॥
कभी नही उपकार करेंगे किया नही करते।
पुत्र किसी के भी क्या तेरे सुखद नहीं होते॥
उनका विरह मर्मभेदी दुख है नाहक उनके।
लिये बहुत सा मेहनत करना कष्ट बहुत सह के॥
ब्रह्मा इन्द्र मुनीस सागर मही मन्वादि दीर्घायु हैं।
वे भी लाख करोड़ होकर मरे ये जीव अल्पायु हैं॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वो है मोह अहो प्रकाश करता जो शोक का लोक मे।
वुद्‌वुद से तनके लिये मिलन है जो पांच का पांच मे॥

प्रबोध चन्द्रोदय

वैराग्योदय की आवश्यकता दोनो मार्गो मे अनिवार्य है। धर्म ते विरति ज्ञानयोग प्रकरण मे कहा गया है और यहाँ भी वही बात कही जा रही है। पर इसके बाद की प्रक्रिया म भेद है। ज्ञानमार्गी वैराग्योदय के बाद योग द्वारा ' तत् त्व पद शोधन करके सोहमस्मि वृत्ति से आत्मानुभव करते हुए चिज्जड ग्रन्थि को सुलझाकर मोक्ष लाभ करते है। पर सगुणोपासक यह रास्ता नही पकडते। वे मोक्ष नही चाहते। उन्हे सिद्धा भक्ति चाहिए। यथा

सगुन उपासक मोक्ष न लेही। तिन कहँ राम भगति निज देही॥
साधन सिद्धि राम पद नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू॥

तब मम धर्म श्री रामजी कहते हैं कि मेरा धर्म उनके धर्मो का पता उनके गुण श्रवण से ही लग सकता है। अत उनके गुणगणो का श्रवण ही भगवद्धर्म है। यथा भगवद्धर्मश्च भगवद्गुणश्रवण न तु धर्मबुद्धया तदनुष्ठानपर्यन्त विवक्षितम्। भक्तिरसायने। अर्थ भगवद्धर्म भगवद्गुण श्रवण हैं। यहाँ धर्म बुद्धि से उसके अनुष्ठान तक की विवक्षा नही हैं। यथा तस्मात् केनाप्युपायेन मन कृष्णे निवेशयेत्। यहाँ केनाप्युपायेन का तात्पर्य यही है कि चाहे धर्मबुद्धि से अनुष्ठान करके चाहे न करके अर्थात् भगवद् गुण श्रवण से मन को भगवच्चरणो मे लगावे। अत कहते हैं

उपज अनुरागा भाव यह कि जब तक वैराग्य का उदय नही हुआ था तब तक तो विषय मे अनुराग था। मन सदा विषय के धर्मो म ही आसक्त रहता था और जब विषय से विराग हुआ तो स्वभाव से ही भगवान् की ओर जायगा। उनके करुणा भक्तवत्सलतादि गुणो पर अनुरक्त होगा यहाँ से भाव भक्ति का प्रारम्भ हुआ। यथा

समुझि समुझि गुनग्राम राम के उर अनुराग वढाउ।
मन मेरे मानै सिख मेरी। जो निज भगति चहै हरि केरी॥
उर आनहि प्रभुकृत हित जेते। सेवहि ते जे अपन पो चेते॥
दियो सुकुल जनम सरीर सुदर हेतु जो फल चारि को।
जो पाइ पडित परम पद पावत पुरारि मुरारि को॥
यह भरत खड समीप सुरसरि थल भलो सगति भली॥
तेरी कुमति कायर कलपवल्ली चहत विषफल फली॥

इत्यादि।

श्रवणादिक नव भक्ति १ श्रवणम् २ कीर्तन विष्णो ३ स्मरणम् ४ पाद सेवनम् ५ अर्चन ६ वन्दन ७ दास्य ८ सख्यम् ९ आत्मनिवदनम्। ये ही श्रवणादिक नव भक्ति हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



१. श्रवण : १. नाम २. चरित्र ३. गुणादि के सुनने को श्रवण कहते हैं।

१. नाम श्रवण यथा : वेगि विलम्ब न कीजिये लीजिय उपदेस।
महाँ मंत्र जपिये सोई जेहि जपत महेस॥

२. चरित्र श्रवण यथा : लागी मुनैं श्रवन मन लाई।
आदिहि ते सब कथा सुनाई॥
आसा वसन व्यसन येह तिन्हही।
रघुपति चरित होइ तह सुनही॥

३ गुण कीर्तन, यथा : सुनत फिरौ हरिगुन अनुवादा।
अव्याहत गति संभु प्रसादा॥

२. कीर्तन : १. नाम २ लीला और ३ गुणादि के गान को कीर्तन कहते हैं।

१. नाम कीर्तन यथा : राम नाम महिमा सुर कहहीं।
सुनि सुनि अवध लोग सुख लहही॥

२. लीला कीर्तन यथा : वर तर कह हरि कथा प्रसंगा।
आवँहि सुनहि अनेक बिहंगा॥

३ स्मरण : जिस किसी भाँति मन द्वारा सम्बन्ध को स्मरण कहते हैं। यह इतना बड़ा प्रवल साधन है कि इसके प्रभाव से भगवद्विरोधियो का भी उद्धार हो जाता है। यथा : उमा राम मृदु चित करुनाकर। बैर भाव सुमिरत मोहि निसिचर। देहि परम गति अस जिय जानी। अस कृपालु को कहहु भवानी। तथा तुलसी अपने राम को रीझि भजै चह खीझ। खेत परे ते जामिहैं उलटी सीधो बीज। स्मरण यथा :

सुमिरत हरिहि साप गति बाधी। सहज विमल मन लागि समाधी॥
सुमिरत रामहि तजहि जन तृन सम बिषय बिलासु।
राम प्रिया जग जननि सिय कछु न आचरज तासु॥
सुमिरि पवनसुत पावन नामू। अपने बस करि राखेउ रामू॥ इत्यादि।

४. पाद सेवन : चरणो की पूजा सेवा। कुछ भक्त ऐसे हैं जो केवल चरणो का ही ध्यान पूजन करते हैं। कोई ऐसे हैं जो चरण चिह्नों का ही ध्यान पूजन किया करते है। यथा :

कर नित करहि राम पद पूजा। राम भरोस हृदय नहि दूजा॥
आगे परा गीध पति देखा। सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा॥

५. अर्चन : शुद्धि न्यासादि पूर्वाङ्ग निर्वाह पूर्वक उपचारो द्वारा मन्त्रो से पूजन को अर्चन कहते हैं। यथा :

तब मुनि हृदय धीर धरि, गहि पद वारहि वार।
निज आश्रम प्रभु आनि करि, पूजा विविध प्रकार॥

६. वंदन : दण्डवत् प्रणाम यथा : सकृत् प्रणाम किये अपनाए।
मंगल मूल प्रणाम जासु जग मूल अमंगल को खने। विनय,

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पुनि मन वचन करम रघुनायक। चरन कमल बदौं सब लायक॥
मो ते होइ न प्रति उपकारा। बदौं तव पद बारबारा॥

७ दास्य मैं ईश्वर का किङ्कर हूँ ऐसे अभिमान को दास्य कहते हैं। यथा
अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे॥
मोर दास कहाइ नर आसा। करै तौ कहहु कहाँ बिस्वासा॥

८ सख्य सख्य के दो भेद हैं विश्वास और २ मित्रवृत्ति।
१ विश्वास यथा है तुलसी के एक गुन अवगुन निधि कहै लोग।
भलो भरोसो रावरो राम रीझिबे जोग॥
२ मित्रवृत्ति तुलसी कहीहै साँची रेख बार बार खाँची।
ढील किये नाम महिमा की नाव बोरिहौं॥ विनय

९ आत्म निवेदन आत्मा शब्द का दो अर्थ पण्डितो ने माना है। एक तो अहन्तास्पद देही और दूसरा ममतास्पद देह।
देही यथा अब मैं जन्म सभ हित हारा। को गुन दोष न करै बिचारा॥
देह यथा। हृदय घाउ मेरे पीर रघुबीरै।
पाइ सजीवन जागि कहत यौं प्रेम पुलकि बिसराय सरीरै॥
मोहि कहा बूझत पुनि पुनि जैसे पाठ अरथ चरचा कीरै॥
सोभा सुख छति लाभ भूप कहँ केवल कांति मोल हीरै॥
तुलसी सुनि सौमित्रि वचन सब धरि न सकत धीरौ धीरै॥
उपमा राम लखन की प्रीति की क्यों दीजै खीरै नीरै॥

दृढाही भाव यह है कि श्रवणादिक नव भक्तियो का कर्तव्य रूप से शास्त्रो मे वर्णन है। अत इनकी गिनती साधन भक्ति म है। साधक इनका आचरण स्वधर्मानुष्ठान समझकर करता आ रहा था। परन्तु अनुराग के बिना ये दृढमूलक नही हो पाती थी। अब प्रभु के धर्मो मे अनुराग उत्पन्न हो जाने से दृढमूलक हो गयी।

मम लीला रति लीला का अर्थ चरित्र है। भगवान् आप्तकाम हैं। अत किसी प्रयोजन का उद्देश्य रखकर उनकी प्रवृत्ति नही होती। उनका चरित्र उनकी लीला है। परन्तु उनके चरित्र का कथन और श्रवण का उपयोग नवधा भक्ति के कीर्तन और श्रवण प्रकरण मे कहा जा चुका है। अत यहाँ पर लीला से उनके चरित्र के अनुकरण से तात्पर्य है। यथा खेलौ तहाँ बालकन्ह मीला। करौ सकल रघुनायक लीला। श्रीमद्भागवत म भी प्रमाधिक्य से गोपियो द्वारा भगवान् के चरित्र के अनुकरण का वर्णन है। यथा लीला भगवतस्तास्ता ह्यनुचक्रुस्तदात्मिका। अत यहाँ मम लीला का अर्थ हुआ रामलीला।

लीला और नाटक बहुत अशो म समान होने पर भी एक वस्तु नही है। इन दोनो मे उतना ही भेद है जितना कि बाजार म रखी हुई मूर्ति और स्थापित मूर्ति म भेद होता है। लीला उपासना की दृष्टि से की जाती है। उसम मुकुट पूजा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



होती है। ब्राह्मण के बच्चों का श्रीराम लक्ष्मण के रूप में वरण होता है। और जब तक उनके सिर पर मुकुट रहता है तब तक उनकी पूजा प्रतिष्ठा भगवद्विग्रह के समान ही होती है। आज भी श्रीगोस्वामीजी के मन्दिर भदैनी काशी में प्रतिवर्ष रामलीला होती है। इससे पता चलता है कि ग्रन्थकार का लीला के प्रति कितना अनुराग था। लीला से उपासकों को असाधारण लाभ होता है। भक्तिरस के आविर्भाव के लिए तथा रस के अंकुरित होने के लिए श्रीरामलीला वर्षाऋतु है। आलम्बन उद्दीपनादि सभी सामग्री रामलीला से सुलभ हो जाती हैं।

अति मन माही : भक्तों की रामलीला में बड़ी प्रीति रहती है। बड़ा उत्साह रहता है। जिस मधुर मूर्ति की झाँकी श्रीरामलीला में हो जाती है उसका दृढमूलक छाप हृदय में बैठ जाता है। परम्परा के अनुसार श्रीरामलीला वर्ष में एक बार आश्विन मास में होती है। परन्तु उसकी प्रीति मन में बराबर बनी रहती है और उन दिनों के लिए चित्त सदा लालायित रहता है जब कि लीला प्रारम्भ होती है। सुना जाता है कि ग्रन्थकार को श्रीअवध में रामलीला के व्याज से ही भगवद्दर्शन हुआ था। परतन्त्रता के दिनों में स्वातन्त्र्य की भावना की बड़ी भारी रक्षा श्रीरामलीला से हुई और आज भी धार्मिक भावों का प्रभाव जैसा जनता पर पड़ता है वैसा अन्य उपायों से सम्भव नहीं। हताश हृदयों में आशा लता को प्राण प्रदान तो रामलीला ही करती है।

संत चरन पंकज अति प्रेमा। मन क्रम बचन भजन दृढ नेमा॥
गुरु पितु मातु बंधु पति देवा। सब मोहि कहँ जानै दृढ सेवा॥५॥

अर्थ : संत चरन पंकज से अत्यन्त प्रीति होती है। मनसा वाचा कर्मणा मेरा भजन दृढ नियम से होता है। गुरु पिता बन्धु पति और देवता सब कुछ मुझी को दृढ सेवावाला जानता है।

संत चरन पंकज अति प्रेमा : जब लीला द्वारा साधक प्रत्यक्ष देखता है कि सन्तों के परित्राण के लिए ही प्रभु अवतार धारण करते हैं। सन्तों के मिलने की इच्छा के सामने उन्हें राज्य तिलक फीका मालूम पड़ता है : वनवास श्रेयस्कर बोध होता है। जब लीला में प्रभु को सन्तचरणों में अवनत होते देखते हैं तब सन्तचरण पङ्कज से अति प्रेम न होना आश्चर्य है। जब श्रीमुख से सन्तों की स्तुति सुनते हैं तब उनके प्रति साधक का अत्यन्त अनुराग बढ़ता है। यथा :

सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ। जिन्ह ते मैं उनके बस रहऊँ॥
षट् बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुख धामा॥
अमितबोध अनीह मित भोगी। सत्य सार कबि कोबिद जोगी॥
सावधान मानद मद हीना। धीर धर्म गति परम प्रबीना॥
दो० गुनागार संसार दुख रहित बिगत संदेह।
तजि मम चरन सरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह॥ इत्यादि।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मुनि सुनु साधुन के गुन जे ते। कहि न सकहिं सारद श्रुति ते ते ॥
छ कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद पकज गहे।
अस दीनबन्धु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे ॥

परन्तु ऐसे सन्त महात्मा की पहिचान अत्यन्त कठिन है। बिना सन्तो के ससार चल नही सकता। वे सबको सब देशो मे सुलभ हैं। परन्तु विषयी जीव को उनकी पहिचान नही। अत उनकी प्राप्ति नही होती। उनकी प्राप्ति के लिए पुण्यपुञ्ज चाहिए। भगवान् की कृपा चाहिए। यथा

पुन्य पुज बिनु मिलहि न सता। सत सगति ससृति कर अता ॥
पुन्य एक जग मह नहि दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा ॥
सत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहि राम कृपा करि जेही ॥

भगवान् भाववश्य हैं। इसलिए भाव भक्ति करनेवाले पर हरिकृपा होती है। उन्हें सन्त मिलते हैं और उनसे उनको भक्ति चिन्तामणि की प्राप्ति होती है। यथा

भाववस्य भगवान सुख निधान करुणा अयन।
तजि ईर्ष्या मदमान भजिय सदा सीता रमन ॥

मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम ते अधिक राम कर दासा ॥
राम सिंधु घन सज्जन धीरा। चदन तरु हरि सत समीरा ॥
सबकर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु सत न काहू पाई ॥
अस बिचारि जोइ कर सतसगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहगा ॥

मन क्रम बचन भजन दृढ नेमा भाव यह कि पहले उसे श्रवणादिक नव भक्ति दृढ हुई थी। अब सन्तो के प्रसाद से मनसा वाचा कर्मणा दृढ नियम के साथ भजन प्रारम्भ हुआ। राम भगति के बाधको की ओर से वृत्ति फिर गयी। यथा :

जरउ सो सपति सदन सुख सुहृद मातु पितु भाइ ॥
सनमुख होत जो रामपद करै न सहस सहाय ॥

मन क्रम बचन रामपद सेवक। सपनेहुँ आन भरोस न देवक ॥

अब साधक महात्मा पद को प्राप्त हुआ। जो मन मे हो वही वाणी में हो। वही कर्म से हो। यह लक्षण महात्मा का है और मन मे दूसरी बात हो वाणी से कोई दूसरी बात कहे और कर्म उन दोनो से पृथक् ही कुछ करे यह दुरात्माका लक्षण है। मनस्येक वचस्येक कर्मण्येक महात्मनाम्। मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यत् दुरात्मनाम्। वाणी से भजन करना और मन दूसरी ओर रहे अथवा कर्म से भजन करना वाणी से कुछ दूसरी बातें करते रहना तथा मन से अन्य विषयो का ध्यान करते रहना यथार्थ भजन नही है। मन मे भी भगवान् हो वाणी से भी उनकी स्तुति हो कर्म से उनकी परिचर्या होती रहे तब उस भजन को मन वच कर्म से भजन कहेगे।

दूसरी बात यह है भोजन की भाँति भजन भी हित है। अत इसे नित्य नियम के साथ प्रीतिपूर्वक करना चाहिए। अन्यथा भजन का ठीक प्रभाव नही पडता। यथा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भोजन करिय तृपिति हित लागी। जिमि सो असन पचव जठरागी॥
असि हरि भगति सुगम सुखदाई। को अस मूढ़ न जाहि सोहाई॥

गुरु पितु मातु : जिनके लिए स्वयं श्रुति भगवती कहती हैं मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। माता पिता आचार्य ये तीनों ही देव हैं। ये ही तीनों अग्नियाँ हैं। इन्ही की सेवा से लोक परलोक बनता है। इनकी आज्ञापालन में यदि बुरे रास्ते पर चलना पड़े तो भी अकल्याण नहीं होता। यथा :

गुरु पितु मातु स्वामि सिख पाले। चलेहुँ कुमग पग परहिं न खाले॥

बन्धु पति देवा : बन्धु जो आड़े समय में काम आते हैं। यथा :

होहिं कुठाँय सुबंधु सहायें। ओड़िअहिं हाथ असनिहुँ के घाये॥

पति का अर्थ स्वामी है। जिसका सब भाँति छल छोड़कर सेवा का विधान है। यथा : भानु पीठि सेइअ उर आगी। स्वामिहि सर्व भाव छल त्यागी। देवता इष्ट फल देनेवाले हैं। यथा : इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः। तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः। गीतायाम् ३ १२.

यहाँ पर छ. को गिनाया है। और भी जितने प्रेम के पात्र हैं उन सबको भी समझ लेना।

सब मो कह जाने . भाव यह कि सबकी ओर से ममता हटाकर श्रीरामजी से प्रीति करे। श्रीरामजी को ही माता पिता गुरु बन्धु स्वामी और देवता माने। अर्थात् माहात्म्य-ज्ञान युक्त सुदृढ़ और सबसे अधिक स्नेह हो। यथा :

राम मातु पितु बन्धु सुजन गुरु पूज्य परम हित।
साहेब सखा सहाय नेह नाते पुनीत चित॥
देस कोस कुल कर्म धर्म धन धाम धरनि गति।
जाति पाँति सब भाँति लागि रामहि हमारि मति॥
परमारथ स्वारथ सुजस सुलभ राम ते सकल फल।
कह तुलसीदास अब जब कबहुँ एक राम त मोर भल॥

दृढ सेवा : अर्थात् जिस साधक की सेवा दृढ़ हो गयी है। भाव यह कि जिसके लिए ऊपर लिख आये हैं : मन क्रम वचन भजन दृढ़ नेमा। दृढ सेवावाला भक्त सब नाता : सम्बन्ध जोड़ने में समर्थ हो सकता है।

मम गुन गावत पुलक सरीरा। गद्‌गद गिरा नयन बह नीरा॥
काम आदि मद दंभ न जाके। तात निरन्तर बस मै ताके॥६॥

अर्थ : मेरे गुणों का गान करते हुए जिसके शरीर में रोमाञ्च हो जाय। गला भर उठे। आँखो से अश्रु की धारा बहे और काम आदि मद दम्भ जिसे न हो। हे तात! मै उसके वश में रहता हूँ।

मम गुन गावत : भाव यह कि तब उस भक्ति की श्रीहरि में अविच्छिन्न मनोगति हो जाती है। उन्ही का गुण बराबर गान किया करता है। उन्ही की

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मूर्ति का ध्यान किया करता है। दूसरी कोई बात उसे अच्छी नही लगती और श्रीहरि को भी भक्तो का गान परम प्रिय है। उन्ही का वचन है नाह वसामि वैकुण्ठे योगिना हृदये न हि। मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद। मैं न तो वैकुण्ठ म बसता हूँ और न योगियो के हृदय म वसता हूँ। हे नारद! जहाँ मेर भक्त गान करते हैं मैं वही रहता हूँ। इसकी कोई आवश्यकता नही कि वह गान स्वरताल युक्त मीठा हो। यह अभिप्राय होता तो कहते गायका यत्र गायन्ति। पर ऐसा नही कहते। अत भक्ता का गान उन्हे प्रिय है। चाहे वह सगीत दृष्टि से कैसा ही हो।

पुलक सरीरा गद्गद गिरा नयन बह नीरा शरीर म रोमाञ्च होना गला भर आना आखो से आँसू की धारा चलना। ये सब प्रेम म डूबाडूब होने के लक्षण है। यहाँ पर भक्तो के गानप्रिय होने का कारण कहते हैं। भक्त प्रम मे डूबाडूब है। वह प्रम मे मग्न होकर गान करता है। उसे लय स्वर ताल का पता नही। श्रीहरि ऐसे ही गान पर रीझ जाते है। भीतर के प्रेम के बाहरी लक्षण—पुलक शरीर गद्गद और नयन नीर है। यथा

कछु ह्वै न आई गयो जन्म जाय।
अति दुलभ तनु पाइ कपट तजि। भजे न राम मन वचन काय॥
रामविमुख सुख लह्या न सपनेहुँ निसिवासर तयो तिहुँ ताय॥
सेये नहि सीतापति सेवक साधु सुमति भली भगति भाय॥
सुने न पुलकि तन कहे न मुदित मन किये जे चरित रघुवस राय॥

काम आदि मद दभ न जाके काम क्रोध माह लोभ मद दभ आदि दुरभिसधि हैं। जो किसी कामना से गान करता हो वह भक्त हो अर्थार्थी भक्त हो पर प्रमा भक्ति उसे नही है। जो मदसे गान करता हो कि मै सगीत शास्त्र का आचार्य हूँ अथवा मुझसे गानेवाल दुलभ है उसे भी भगवद् गुणगान का कुछ फल तो होता ही है। पर प्रमभक्तिसे उसका कोई सम्बन्ध नही। अथवा जो लोभ से गान करता है कि गान करने से मुझे कुछ मिलगा या जो दम्भ से गान करता है कि लोग मुझे भक्त कहेगे उनका गान वैसा नही चाहे वह कितना ही लय सुर तानसे ठीक हो जो भगवान् को रिझा सके। अत गान सभी अभिसन्धियो से रहित होना चाहिए। यथा प्रम भगति जल बिनु रघुराई। अभिअन्तर मल कबहुँ कि जाई।

तात प्रश्न है मोहि समुझाइ कह सोइ देवा। सब तजि करौं चरन रज सेवा। और उत्तर हो रहा है तात निरतर बस मै ताक। यहाँ भी उत्तर प्रश्न से कही अधिक विशेषता रखता है। इसलिए फिर तात सम्बोधन देते है।

निरतर बस मैं ताके श्रीमद्भागवत मे दुर्वासा से स्वय भगवान् ने कहा है कि हे ब्राह्मण! मै भक्त के पराधीन हू। एक प्रकार से अस्वतन्त्र हूँ। अह भक्तपराधीनो ह्यस्वतन्त्र इव द्विज। सो भगवान् ही भक्त के पराधीन रहते हैं। यथा

ankurnagpal108@gmail.com



मनोगतिरविच्छिन्ना हरौ प्रेमपरिप्लुता। अभिसन्धिविनिर्मुक्ता भक्तिर्विष्णुवशंकरी। पञ्चरात्रे,

श्रीहरि मे अविच्छिन्न और अभिसन्धि रहित प्रेमपरिप्लुता मनोगति का होना ऐसी भक्ति है जो हरि को वश मे रखती है।

दो. वचन कर्म मन मोरि गति, भजनु करहि निहकाम।
तिन्हके हृदय कमल महुँ, करौ सदा बिस्राम ॥१६.१०॥

अर्थ : जिन्हे मनसा वाचा कर्मणा मेरी ही गति है और निष्काम भजन करते हैं उनके हृदय कमल में मैं सदा विश्राम करता हूँ।

व्याख्या : वचन कर्म मन मोरि गति : जिन्हे मनसा वाचा कर्मणा श्रीराम की ही गति है दूसरा चारा नही वे ही जागते सोते भगवान् की शरण मे रहते हैं। दूसरे से बोलना भी पडा तो सत्य प्रिय और विचारकर हित की बात बोलते हैं। उन्ही को दु ख सुख प्रशसा और गारी समान होती है। वे सबके हितकारी और सबके प्रिय होते हैं। यथा :

सबके प्रिय सबके हितकारी। दु ख सुख सरिस प्रसमा गारी ॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥
तुम्हहि छाड़ि गति दूसर नाही। राम बसहु तिन्हके मन माही ॥

भजन करहिं निहकाम : वे ही भक्त निष्काम भजन कर सकते हैं जिन्हे न तो परमार्थ की कामना है न गूढ गति जानना चाहते हैं। न उन्हें अणिमादिक सिद्धि चाहिए और न किसी सङ्कट से विनिर्मुक्ति चाहते हैं। यथा :

सकल कामना हीन जे राम भगति रस लीन।
नाम सुप्रेम पियूष हृद तिनहु किये मन मीन ॥

तिनके हृदय कमल महँ : भाव यह कि उन्ही के हृदय की शोभा है। इससे कमल की उपमा दी है। भ्रमर को भी उस कमल को छोड़ : दूसरि गति नही। वही हृदय ऐसा है जहाँ भगवान् सगुण रूप से रहते हैं। निर्गुण रूप से तो उनका निवास सभी हृदयो मे है। यथा :

व्यापक एक ब्रह्म अविनासी। सत चेतन घन आँनद रासी ॥
अस प्रभु हृदय अछत अविकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी ॥

करहुँ सदा बिश्राम : जिनके हृदय में कुछ और कामनाएँ हैं उनके हृदय मे सगुण रूप से प्रकट होने पर भी श्री हरि विश्राम नही कर पाते। उसकी रुचि रखने के लिए सतत चञ्चल रहना पडता है। यथा . राम सदा सेवक रुचि राखी। वेद पुरान साधु सुर साखी। पर प्रेमाभक्तिवाले निष्काम भजन करते हैं। अत: भगवान् को विश्राम उन्ही के हृदयमे मिलता है। उस प्रेमाभक्ति के भी चौदह भेद श्रीवाल्मीकिजी ने कथन किया है। यथा :

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



१ जिन्हके श्रवन समुद्र समाना। कथा तुम्हारि सुभग सरि नाना ॥
भरहिं निरंतर होहिं न पूरे। तिन्हके हिय तुम्ह कहुँ गृह रूरे ॥
२ लोचन चातक जिन्ह करि राखे। रहहिं दरस जलधर अभिलाषे ॥
निदरहिं सरित सिंधु सर भारी। रूप बिंदु जल होहिं सुखारी ॥
तिन्हके हृदय सदन सुखदायक। बसहु बंधु सिय सह रघुनायक ॥
३ जसु तुम्हार मानस बिमल हंसिनि जीहा जासु।
मुकताहल गुन गन चुनइ राम बसहु हिअ तासु ॥
४ प्रभु प्रसाद सुचि सुभग सुबासा। सादर जासु लहइ नित नासा ॥
तुम्हहि निवेदित भोजन करहीं। प्रभु प्रसाद पट भूषन धरहीं ॥
सीस नवहिं सुर गुरु द्विज देखी। प्रीति सहित करि बिनय बिसेषी ॥
कर नित करहिं राम पद पूजा। राम भरोस हृदय नहिं दूजा ॥
चरन राम तीरथ चलि जाहीं। राम बसहु तिन्हके मन माहीं ॥
५ मंत्रराजु नित जपहिं तुम्हारा। पूजहिं तुम्हहि सहित परिवारा ॥
तरपन होम करहिं बिधि नाना। बिप्र जेवाँइ देहिं बहु दाना ॥
तुम्ह तें अधिक गुरहि जियँ जानी। सकल भायँ सेवहिं सनमानी ॥

दो० सबु करि मागहिं एक फलु राम चरन रति होउ।
तिन्ह कें मन मंदिर बसहु सिय रघुनंदन दोउ ॥

६ काम कोह मद मान न मोहा। लोभ न छोभ न राग न द्रोहा ॥
जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया। तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया ॥
७ सब के प्रिय सब के हितकारी। दुख सुख सरिस प्रसंसा गारी ॥
कहहिं सत्य प्रिय बचन बिचारी। जागत सोवत सरन तुम्हारी ॥
तुम्हहि छाड़ि गति दूसरि नाहीं। राम बसहु तिन्ह के मन माहीं ॥
८ जननी सम जानहिं परनारी। धनु पराव बिष तें बिष भारी ॥
जे हरषहिं पर संपति देखी। दुखित होहिं पर बिपति बिसेषी ॥
जिन्हहि राम तुम्ह प्रानपिआरे। तिन्ह के मन सुभ सदन तुम्हारे ॥
९ स्वामि सखा पितु मातु गुर जिन्ह के सब तुम्ह तात।
मन मंदिर तिन्ह कें बसहु सीय सहित दोउ भ्रात ॥
१० अवगुन तजि सब के गुन गहहीं। बिप्र धेनु हित संकट सहहीं ॥
नीति निपुन जिन्ह कइ जग लीका। घर तुम्हार तिन्ह कर मनु नीका ॥
११ गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा ॥
राम भगत प्रिय लागहिं जेही। तेहि उर बसहु सहित बैदेही ॥
१२ जाति पाँति धनु धरम बड़ाई। प्रिय परिवार सदन सुखदाई ॥
सब तजि तुम्हहि रहइ उर लाई। तेहि के हृदयँ रहहु रघुराई ॥
१३ सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ देख धरें धनु बाना ॥
करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि कें उर डेरा ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



१४ जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु, तुम सन सहज सनेहु।
वसहु निरंतर तासु मन, सो राउर निज गेहु॥

भगति जोग मुनि अति सुख पावा। लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा॥

अर्थ : भक्तियोग सुनकर लछिमन को बड़ा सुख मिला। उन्होंने प्रभु चरणों में नमस्कार किया।

व्याख्या : भक्तियोग भक्ति के साधन कहहु बखानी से लेकर तिन्ह के हृदय कमल महुँ करउँ सदा तक भक्तियोग है। भक्तियोग सब योगों में उत्तम है। स्वयं भगवान् ने कहा है योगिनामपि सर्वेषां मद्गतेनान्तरात्मना। श्रद्धावान् भजते यो मां स मे युक्ततमो मतः। सभी योगियों में जो मुझमें मन लगाकर श्रद्धा पूर्वक मेरा भजन करता है वह सबसे बड़ा योगी है।

सुनि अति सुख पावा भाव यह कि कर्मयोग और ज्ञानयोग सुनकर सुख मिला। पर भक्तियोग सुनकर अति सुख मिला। प्रभु मुख की वाणी सुनने से सकल भ्रम की हानि होती है। अतः भक्तियोग के अभ्रान्त ज्ञान से परम सुख की प्राप्ति हुई।

लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा इसमें शिष्य की कृतकृत्यता कहा। मैं पूछौं निज प्रभु की नाईं से उपक्रम करके प्रभु चरनन्हि सिरु नावा से उपसंहार करते हैं।

एहि बिधि गये कछुक दिन बीती। कहत बिराग ग्यान गुन नीती॥१॥

अर्थ : इस प्रकार वैराग्य ज्ञान, गुण और नीति कहते हुए कुछ दिन बीत गये।

व्याख्या : इस भाँति कहते सुनते कुछ दिन बीत गये। भाव यह कि अवधि का समय बहुत बीत गया। अब थोड़ा ही शेष है। उसमें भी कुछ दिन कथा कहते सुनते बीता। ये कथाएँ वैराग्य, ज्ञान, गुण और नीति विषयक थी। नीति में धर्मार्थ काम का सामञ्जस्य बिठाना होता है। सरकार का स्वभाव है कि भाइयों को शिक्षा दिया करते हैं। यथा राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती।

## ३५ सूर्पणखा विरूप करण प्रसङ्ग

सूपनखा रावन कै बहिनी। दुष्ट हृदय दारुन जसि अहिनी॥
पंचवटी सो गइ एक बारा। देखि बिकल भइ जुगल कुमारा॥२॥

अर्थ : सूर्पणखा नाम की रावण की बहन थी। जो नागिन जैसी भयानक और दुष्ट हृदय थी। वह एक बार पञ्चवटी गयी। दोनों कुमारों को देखकर विकल हो गयी।

व्याख्या सूपनखा जिमि कीन्हि कुरूपा प्रकरण आरम्भ हुआ। जैसे रावण

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जगत् के रुलानेवाले थे वैसे ही उन्हे बहन विधाता ने दी थी। रावण के नाम से परिचय देकर उसका वैधव्य भी सूचित किया। जैसा रावण दुष्ट हृदय और सर्प की भाँति दारुण था। यथा जस पावन रावन नाग महा। उसी भाँति उसकी बहन भी साँपिन थी। रावण की बहिनी कहकर उसका प्रताप भी कहा। किसकी सामर्थ्य जो उसके प्रतिकूल आचरण करे। अहि से अहिनी अधिक दारुण होती है। रावण को दस सिर थे उसे दस नख सूप के से थे।

वह कुलटा थी। घूमा करती थी। एक बार पञ्चवटी पहुँच गयी। मुनिजी के मन्त्र के साफल्य का समय आ पहुँचा। मुनिजी ने कहा था है प्रभु परम मनोहर ठाऊँ। पावन पचवटी तेहि नाऊँ। बास करहु तहँ रघुकुल राया। कीजे सकल मुनिन्ह पर दाया। तदनुसार सरकार पञ्चवटी मे बसे। वहाँ सूर्पणखा पहुँची। पादचिह्न की शोभा पर मोहित होकर अन्वेषण करती हुई राम लक्ष्मण के पास तक पहुँच गयी। दोनो भाई यद्यपि मुनिवेष मे हैं पर हैं राजकुमार। वह कुलटा दोनो भाइयो पर मोहित हो गयी। अति कामासक्त होने से विकल हो गयी। उसने दोनो कुमारो को देखा। दोनो कुमारो ने उसे नही देखा।

भ्राता पिता पुत्र उरगारी। पुरुष मनोहर निरखत नारी ॥
होइ बिकल सक मनहि न रोकी। जिमि रविमनि द्रव रबिहि बिलोकी ॥३॥

अर्थ हे गरुडजी! स्त्री मनोहर पुरुष को देखकर चाहे वह भाई, पिता, पुत्र ही क्यो न हो विकल हो जाती है। मन को रोक नही सकती। जैसे सूर्यकान्त मणि सूर्य को देखकर द्रवीभूत हो जाता है।

व्याख्या समान वयस्को म भ्राता, ज्येष्ठो मे पिता और कनिष्ठो मे पुत्र को भी देखकर विकल हो जाती हैं। उन्हे सम्बन्ध का भी विचार नही रह जाता। इनकी मनोहरता पर राक्षसी नारी आसक्त हो जाती हैं। यह नियम पतिव्रताओ पर लागू नही है। यथा ' उत्तम के अस बस मन माही। सपनेहु आन पुरुष जग नाही। इत्यादि।

ऐसी राक्षसी नारियो को सम्बन्ध या वय का भी विचार नही होता। वे रूपमात्र देखती हैं। अग्निस्राव हो सूर्यकान्तमणि का द्रवीभूत होना है। उसी भाँति उनके मन मे कामाग्नि प्रकट हो जाती है। स्त्री जाति सुलभ मान से अपने को रोकना भी चाहती हैं पर रोक नही सकती। सुवेष पुरुष दृष्ट्वा भ्रातर यदि वा सुतम्। योनि क्लिद्यति नारीणा सत्यं सत्य हि नारद। इसी बात को बडी पण्डिताई से गोस्वामीजी कह गये।

रुचिर रूप धरि प्रभु पहिं जाई। बोली बचन बहुत मुसुकाई ॥
तुम्ह सम पुरुष न मो सम नारी। यह सँजोग बिधि रचा बिचारी ॥४॥

अर्थ सुन्दर रूप धारण करके प्रभु के पास जाकर बहुत मुसकुराकर वचन

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बोली। न तुम्हारे सा पुरुष है न मेरे समान स्त्री है। यह सयोग ब्रह्मदेव ने विचारकर रचा है।

व्याख्या सूर्पणखा महाविकट रूप स्थूलोदरी करालास्या थी। उसने माया से अपना सुन्दर रूप बनाया। जानती थी कि स्वाभाविक रूप से काम बिगड जायगा। ऐसा रूप बनाऊँ कि य मुझ पर मोहित हो जायँ करहि उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहि करि माया। सूर्पणखा मोहित तो दोनो भाइयो पर हुई थी। किन्तु प्रभु जानकर रामजी के पास गयी। स्वय दूती बनकर आयी। शृङ्गार का प्रस्ताव स्वय उसे ही करना ह। अत माया फैलाती हुई मुसकुराकर बोली। भाव यह कि स्मितपूर्वाभिभापिणीवाली मुसकुराहट नही थी।

उसका कहना यह था कि तुम और मैं दोनो अप्रतिम सुन्दर हैं। सीता मुझ सी सुन्दरी नही है। यह तुम्हारे जोड की नही है। तुम्हारा इसका सयोग दैवात् हो गया। तुम्हारा और मरा सयोग ब्रह्मदेव ने विचारकर रचा है। जेहि बिरंचि रचि सीय सँवारी। तहि स्यामल वर रचेउ विचारी ऐसा जनकपुर म स्त्रियो ने कहा था। वही भाव लिये सूर्पणखा अपने को कह रही है।

मम अनुरूप पुरुष जग माही। देखेउँ खोजि लोक तिहुँ नाही॥
ताते अब लगि रहिउँ कुमारी। मनु माना कछु तुम्हहि निहारी॥५॥

अर्थ मेरे जोड का पुरुष ससार म नही है। मैंने तीना लोक खोजकर देख लिया। इसलिए अबतक कुमारी ही रह गयी। तुम्हे देखकर कुछ मन आकर्षित हुआ।

व्याख्या अनुरूप वर मिलने की इच्छा कन्या के लिए स्वाभाविक है। सूर्पणखा कहती है कि मेरे अनुरूप तो वर ही ससार म नही है। मैं तीनो लोक मे खोजकर देख चुकी। इससे स्पष्ट ध्वनि निकलती है कि यह तीनो लोक मे अपने लिए पुरुष खोजती फिरती है। इसका भाइ रण मदमत्त होकर तीनो लोक मे फिरता है। उसे प्रतिभट नही मिलता रन मदमत्त फिरै जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा। और यह कामोन्मत्त होकर तीनो लोका म पुरुष खोजती फिरती है। पर कोई अनुरूप नही मिलता। जनकपुर की स्त्रियाँ परदे म रहनेवाली थी। अत वे विचारी कहती हैं सोभा अस कहुँ सुनियत नाही। वे देखना नही कहती। यह देखना कहती है। अत इसका कुलटा होना ध्वनित है।

सूपणखा पूण युवती है। विवाह के काल का अतिक्रमण किये हुए है। ऐसी अवस्था मे रामजी को उसके परपूर्वा होने का सन्देह न उठे। इसलिए इतने वर्ष तक कुमारी रहने का कारण बतलाती है कि किसी को देखकर मन ही नही माना। विवाह कैसे करे। अत आज तक कुमारी ही हूँ। इस भाँति अपना स्वातन्त्र्य भी द्योतन किया। फिर भी स्त्री गुण सुलभ मान को कुछ बचाए हुए है। कहती है कि तुम्ह देखकर कुछ मन माना। पूरी तरह नही। अपने मन मे यह न समझना कि मैं बडा सुन्दर हूँ। मैं तुमसे अधिक सुन्दरी हूँ। परन्तु जब कही मन नही मानता

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तो जहाँ थोड़ा भी मानता है उसी में सन्तोष करना चाहिए। भाव यह कि लङ्का मे स्त्री पुरुष के संयोग मे मन मानना ही कारण है। किसी धर्म बन्धन या समाज बन्धन की आवश्यकता नहीं होती।

सीतहिं चितइ कही प्रभु बाता। अहै कुँआर मोर लघु भ्राता॥
गइ लछिमन रिपु भगिनी जानी। प्रभु बिलोकि बोले मृदु बानी॥६॥

अर्थ : सीताजी की ओर देखकर प्रभु ने यह बात कही कि मेरा छोटा भाई कुँआर है। लक्ष्मणजी के पास गयी। उन्होने शत्रु की बहन जानकर प्रभु को देखकर कोमल वाणी में कहा।

व्याख्या : सीताजी की ओर देखने का भाव यह कि मेरे तो स्त्री है। मेरा भाई कुमार है। यहाँ पर शङ्का होती कि लक्ष्मणजी का विवाह हो चुका था। उन्हे कुमार कहने से तो मिथ्या भाषण हो जायगा। उत्तर यह है गो ब्रह्मणहिंसायां वृत्त्यर्थे प्राणसङ्कटे स्त्रीषु नर्मविवादेषु नानृतं स्याद् जुगुप्सितम्। यहाँ स्पष्ट नर्मविवाद है। सूर्पणखा अपने को कुमारी बतला रही है। प्रभु ने नर्मविवाद मे भी मिथ्या को स्थान न मिले इसलिए लक्ष्मण को कुमार कह रहे हैं। राजा के बेटे कुमार कहलाते हैं। चाहे विवाह हुआ हो चाहे न हुआ हो। यथा . देखि बिकल भई जुगल कुमारा। यहाँ रामजी को भी कुमार ही राजपुत्र होने से कहा गया। यहाँ सरकार का लक्ष्मणजी को कुमार कहना परिहास में भी सत्य की रक्षा का अद्भुत उदाहरण है। सीताजी की ओर देखकर सूर्पणखा को उत्तर देने के अनेक कारण हैं। पहिले तो यह कि उसने कहा था : यह सयोग बिधि रचा बिचारी। उसके उत्तर मे सीताजी की ओर देखते हैं कि सयोग जो होना था हो गया। मैं सस्त्रीक हूँ। दूसरा भाव यह कि रघुवशी के मन और दृष्टि को पराई स्त्री नही पाती। सूर्पणखा विद्युज्जिह्व की विधवा है। अतः इसकी ओर दृष्टि न देकर बातचीत के समय सीताजी की ओर देखते हैं। तीसरे यह कि दूसरी ओर देखकर बात करना अनादर सूचक है। चौथे यह कि इधर देखो : रुचिर रूप धारण करने पर भी ऐसी न बन सकी। मन माना कछु तुमहि निहारी : का उत्तर देते हुए कहते है : अहै कुमार मोर लघु भ्राता। वह भी मेरे सा ही है। उसे देखकर तुम्हारा मन मान जायगा : तुम अहिनी हो। यथा : दुष्ट हृदय दारुन जिमि अहिनी और वह तो साक्षात् अहीश है। यथा ' जो सहससीस अहीस महि धर लखन सचराचर धनी।

सूर्पणखा राक्षसी थी परिहास नही समझ सकी। वह तो दोनो मूर्तियो पर आसक्त थी। नही बड़े छोटे ही सही। अतः वह लक्ष्मणजी के पास तुरन्त पहुँची और सब बात कहा। लक्ष्मणजी की दृष्टि को उसकी माया आवृत न कर सकी। उन्होने जान लिया कि यह शत्रु : रावण की बहन है। यह लक्ष्मणजी का ऐश्वर्य है कि सूर्पणखा को देखकर उसे रावण की बहन उसके वेष बदलने पर भी पहिचान लिया। परन्तु अभी तो सीताहरण हुआ नही। रावण शत्रु कैसे हो गया? इसका उत्तर यह है कि रावण अधर्म मे निरत था और भूतद्रोही था। इसलिए वह परम

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



शत्रु था। यथा : यस्त्वधर्मेषु निरतः सर्वलोकविरोधकृत्। त रिपुं परमं विद्यात् शास्त्राणामेष निर्णयः। नारद पुराणे। सरकार का रुख देखने के लिए उनकी ओर देखते हैं। रुख देखकर समझ गये कि परिहास चलने देना चाहते हैं। अतः उससे कोमल वाणी बोले।

सुंदरि सुनु मै उनकर दासा। पराधीन नहिं तोर सुपासा॥
प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा। जो कछु करहिं उनहिं सब छाजा॥७॥

अर्थ : हे सुन्दरी! सुनो मैं तो उनका दास हूँ। पराधीन हूँ। यहाँ तेरा सुभीता नही। वे प्रभु हैं। समर्थ हैं। कोसलपुर के राजा हैं। वे जो कुछ करें सभी शोभा देता है।

व्याख्या : पहिले ही सुन्दरि सम्बोधन करते हैं। भाव यह कि तुम सुन्दरी हो प्रत्याख्यान योग्य नही हो। पर करूँ क्या, मै तो उसका दास हूँ : जिनके पास से तुम लौटी आती हो। तुम सुन्दरी हो। रानी होने लायक हो। दासी बनना क्यो चाहती हो। भोग विलास के लिए स्वतन्त्र पुरुष चाहिए। मैं पराधीन हूँ और : पराधीन सपनेहु सुख नाही। जिसे सपने मे भी सुख नही वह तुम्हे सुख कहाँ से देगा।

रामजी की ओर देखकर ही बोल रहे हैं। ये भी पराई स्त्री की ओर दृष्टिपात नही करना चाहते। कहते हैं कि मै दास हूँ और वे मेरे प्रभु हैं। एक रानी होने से क्या हुआ? वे समर्थ है। चाहे सो रानी ब्याहे। इनके पिता को तीन पटरानी और सात सौ रानियाँ थी, तुम दूसरी पटरानी होकर रहोगी। अतः उन्हे सात सौ ब्याह भी फबता है। दास एक स्त्री को सँभाल नही सकता। इसलिए बिना स्त्री का हूँ।

सेवक सुख चह मान भिखारी। ब्यसनी धनु सुभ गति बिभिचारी॥
लोभी जसु चह चार गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी॥८॥

अर्थ : सेवक सुख चाहे, भिखारी मान चाहे, व्यसनी धन चाहे, व्यभिचारी शुभगति चाहे, लोभी यश चाहे, संशयी चार चाहे। ये प्राणी आकाश का दोहन करके दूध चाहते है।

व्याख्या : सब धर्मों से सेवक धर्म कठोर है। अतः सेवक को अपने सुख की आशा ही न करना चाहिए। इसी भाँति भिखारी मान की आशा ही न करे। जिसे कुछ भी मान होगा वह भीख कैसे माँगेगा? लोलुप भ्रमत गृह पशु ज्यौं जहँ तहँ सिरपद त्रान बजै : ऐसा पुरुष मान की आशा कैसे करेगा। व्यसन में धन का दुष्प्रयोग होता है। व्यसनी धन खोनेवाला है। अत. उसे धनी होने की आशा छोड़ देनी चाहिए। परतियगामी को निश्चय नरक होता है। यथा : सुभ गति पाव कि परतियगामी। उसे शुभगति की आशा करनी व्यर्थ है। लोभी का प्रात काल कोई नाम नही लेता। उसका यश कैसा होगा। यह तो उदार के हिस्से की चीज है। उसके लिए लोभी की आशा झूठी है। सशयी को दोनो लोक

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मे से किसी मे सुख नही। नाय लोकोस्ति न परो न सुख सशयात्मन । गी । अर्थात् चारो फल मे किसी की प्राप्ति नही हो सकती। यहाँ गुमान शब्द का अर्थ सशय है। यथा तुलसी जु पै गुमान को होतो कछू उपायु। तौ कि जानकिहि जानि जियँ परिहरते रघुराउ। अत संशयी को चारो फल की आशा निराशा ही है। चार से चार फल अभिप्रेत है। 'जैसे सोरह से सोलह शृङ्गार का ग्रहण होता है। यथा नव सप्त साजे सुदरी सब मत्त करिवर गामिनी।

अथवा गुमानी शब्द का अर्थ अभिमानी और चार शब्द का अर्थ दूत किया जाय। भाव यह कि दूत चाहे कि मेरा अभिमान अक्षुण्ण रहे यह भी असम्भव है। जब कि हनुमान्‌जी ऐसे दूत को कहना पडा मोहि न कछु बाधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभु कर काजा। निर्गलितार्थ यह है कि इन छवो की आशाएँ झूठी हैं।

पुनि फिरि राम निकट सो आई। प्रभु लछिमन पहिं बहुरि पठाई ॥
लछिमन कहा तोहि सो बरई। जो तृन तोरि लाज परिहरई ॥९॥

अर्थ वह लौटकर फिर रामजी के पास आयी। प्रभु ने फिर उसे लक्ष्मणजी के पास भेज दिया। लक्ष्मणजी ने कहा कि वही वरेगा जिसने लज्जा को तृण के समान तोडकर फेंक दिया हो।

व्याख्या सूर्पणखा लक्ष्मणजी के पास से फिरी कि ठीक है। दास से सुख न मिलेगा। मेरा रानी होना ही ठीक है। भाई लङ्केश्वर है मैं कोसलेश्वरी बनूँगी। ऐसा सोचकर सरकार के पास गयी। तब उन्होने समझाया कि रानी को सापत्न्य दुख सहना ही पडता है। लक्ष्मण वैसा दास नही है। वह मेरा छोटा भाई है। वही कर्ता धर्ता है। वह कुमार रहे मैं दो दो व्याह कर लूँ। यह नही हो सकता। सूर्पणखा ने समझा कि ठीक है। इनसे तो व्याह तो हो जाय। स्वय मुझको ही क्या घाटा है। मैं इन्हे लेकर लङ्का चली जाऊँगी।

यह सब सोचकर वह लक्ष्मणजी के पास आयी कि क्या हुआ मुझे दासी रहना स्वीकार है। तब लक्ष्मणजी ने कहा तू बेहया है। जो बेहया हो वह तुझसे व्याह करे। इस प्रकार तू कामातुर हो गयी है कि हम दोनो भाइयो म से किसी पर तेरी स्थिरता नही। बडे को चाहकर छोटे को चाह और छोटे को चाहकर बडे को चाहते तुझे लाज न आयी। मुझे तो अब तुझे उनके पास भेजने म भी लज्जा आती है। इस भाँति कोरा जवाब लछिमनजी की ओर से मिल गया।

तब खिसिआनि राम पहिं गई। रूपु भयकर प्रगटत भई ॥
सीतहि सभय देखि रघुराई। कहा अनुज सन सयन बुझाई ॥१०॥

अर्थ तब खिसियाई हुई रामजी के पास गयी। और अपना भयङ्कर रूप प्रकट किया। सीताजी को डरी हुई देखकर रामजी ने छोटे भाई को इशारे से कहा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : कोरा जवाब पाकर खिसियाई कि रामजी ने जो इनके पास भेजा इसका अभिप्राय यह था कि मैं वेहया प्रमाणित हो जाऊँ। रामजी ने मेरी दुर्गति की। दोनों में से कोई मुझे व्याहना नहीं चाहता। ये मजाक कर रहे हैं। आगे कहेगी भी : तासु अनुज काट्यो श्रुति नासा। सुनि तव भगिनि करी परिहासा। अतः साम से काम न चलेगा। तब भयङ्कर रूप धारण करके सीताजी को खाने दौड़ी की यह मेरे मार्ग में कंटक है।

सीताजी को सभय देखकर रामजी ने छोटे भाई को इशारा कर दिया। ऋग् यजु साम अथर्व कहकर उँगली से आकाश को काटा। भाव यह कि श्रुति और नाक काट दो। ऋगादि श्रुति है और श्रुति कान को कहते हैं। आकाश का नाम नाक है और प्राकृत में नासिका को नाक कहते हैं। यथा : वेदनाम कहि अंगुरिन्ह खडि अकास। पाठयो सूपनखाहि लखन के पास।

दो. लछिमन अति लाघव सो, नाक कान बिनु कीन्ह।
ताके कर रावन कहुँ, मनो चुनौती दीन्हि ॥१७.११॥

अर्थ : लक्ष्मणजी ने बड़ी फुर्ती से उसे बिना नाक कान की कर दिया। मानो उसके हाथ से रावण को चुनौती दे दी।

व्याख्या : लक्ष्मणजी ने ऐसी फुर्ती की कि वह जान न पायी कि कब लक्ष्मणजी आये और कब शस्त्र चलाया। वह नाक पर हाथ न रख सकी : यथा : अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा। दमकेउ दामिनि जिमि जब लयऊ। पुनि धनु नभ मंडल सम भयऊ। लेत उठावत खैंचत गाढे। काहु न लखा देख सब ठाढे। यह सूर्पणखा का नाक काटना मानो रावण को चुनौती दी गयी कि तुम्हारे बहन का नाक कान मैंने काटा जो करना हो सो करो।

यह कर्म लक्ष्मणजी का इन्द्र से भी अशक्य था। किसकी सामर्थ्य जो रावण के जीते सूर्पणखा की नाक काटे। नाक कान काटना कवि ने नहीं कहा। क्योंकि काटते किसी ने देखा नहीं एकाएक बिना नाक कान की हो गयी। इससे अनुमान हुआ कि नाक कान काटा गया। रावण की बहन है। इसलिए रावण को चुनौती लक्ष्मणजी ने दी।

## ३६. खरदूषण वध प्रसंग

नाक कान बिनु भइ बिकरारा। जनु स्रव सैल गेरु कै धारा॥
खरदूषन पहिं गइ बिलपाता। धिग धिग तव पौरुष बल भ्राता॥१॥

अर्थ : बिना नाक कान के विकराल हो गयी। मानो पर्वत से गेरु की धारा बह रही हो। विलाप करती हुई खरदूषण के पास गयी, बोली भाई! तेरे पौरुष और बल को धिक्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या नाक ही मुख की शोभा है। सो नाक कान दोनों कट गये। भयङ्कर रूप तो उसका था ही। यथा ' रूप भयकर प्रगटत भई। अब बिना नाक कान के विकराल हो गयी। पर्वताकार उसका शरीर नाक कान कटने से तीन धाराएँ रक्त की बहने लगी। ऐसा मालूम होने लगा कि मानो अञ्जन पर्वत पर से गेरु की तीन धाराएँ गिर रही हो।

अब सूर्पणखा को प्रतिहिंसा वृत्ति उत्पन्न हुई। रोती चिल्लाती खरदूषण के पास गयी। खर इसका सगा भाई था। रावण के तुल्य बलवान् था और सन्निकट था। उसके पास पहुँचकर उसे धिक्कारने लगी कि तू जीता बैठा है और मेरी नाक कट गयी। तेरे बल और पौरुष को धिक्कार है। तेरे बल और पौरुष का जिसे भय होता वह मेरी नाक कैसे काटता ? बहन है। उसे अपने भाई के बल पौरुष का बडा भरोसा था।

तेहि पूँछा सब कहेसि बुझाई। जातुधान सुनि सेन बनाई ॥
धाए निसिचर निकर बरूथा। जनु सपच्छ कज्जल गिरि जूथा ॥२॥

अर्थ उसने पूछा तो सब समझाकर बतलाया। सुनकर उस राक्षस ने सेना तैयार की। राक्षसो के झुण्डो की सेना दौडी जैसे पक्षवान् कज्जलगिरि के समूह दौडते हो।

व्याख्या . खरदूषण ने पूछा कि किसने नाक काटो, क्यो काटी ? उसने समझा दिया कि अवध के राजा के लडके हैं। मृगया के लिए वन मे आये हैं। मुझे सुना कि रावण की बहन है तो मुझसे परिहास करने लगे। मेरे नाराज होने पर उसके छोटे भाई ने नाक कान काट ली। यथा .

राजा है अँवध को अँवधि बल विक्रम को
नाँम राँम श्याँम सरसीरुह बरन हैं।
सग सुकुमारि नारि तीर गोदावरी के
करँत विहार मुनिगन को सँरन है॥
ताको लघुभाँय हाँय पाँय के सजाँय मेरो
रूप हरि लीन्ह्यो काँटि नासिकाँ श्रवन हैं।
पिशित खियाँव ताँको शोणित पियाँव नातो
आँज दईमाँर मेरो निहिचित मरेँन है॥

खरदूषण ने सोचा कि राजा का लडका है तो सहाय भी होगा। दुर्बल का इतना सामर्थ्य और साहस कहाँ कि इसकी नाक कान काट सके। अत सेना साथ मे रहनी चाहिए। अत उसने सेना तैयार की। यूथपो को बुलाकर क्रमबद्ध होकर चलने का आदेश देना तथा योग्य सेनापति के अधीन कर देना यही सेना तैयार करना है।

खरदूषण की आज्ञा की देर थी। राक्षसो का झुण्ड दौड चला। बडा उत्साह है युद्ध करने का, साथ ही स्वामी के बहन की नाक कटने पर अमर्ष भी है। राजा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


का लडका मुलायम आहार है। इसलिए झुण्ड के झुण्ड दौड पडे कि पहिले हमही जाकर मार डालें। राक्षस सब विशाल थे और काले थे। इसलिए कज्जलगिरियूथ से उपमा दी और वे सबके सब दौड पडे। इसलिए सपक्ष कह रहे हैं। पक्षहीन होने पर तो पर्वत अचल हो गये। ये सबके सब आसन्न मृत्यु है। इसलिए कवि : सहित प्राण कज्जलगिरि नही कह रहे हैं।

नाना वाहन नानाकारा। नानायुध धर घोर अपारा॥
सूपनखा आगे करि लीनी। असुभ रूप श्रुति नासा हीनी॥३॥

अर्थ : नाना प्रकार के वाहन थे। नाना प्रकार का आकार था। नाना प्रकार के अपार घोर हथियार थे। उन्होंने अशुभ रूप नककटी कनकटी सूर्पणखा को आगे कर लिया।

व्याख्या : सेना में नियम है कि आकार आयुध और वाहन एक सा होता है। पर राक्षसी सेना मे यह नियम नही। उनके वाहन भी नाना प्रकार के, उनके आकार भी नाना प्रकार के, उनके हथियार भी अनेक प्रकार के हैं। वे हथियार ऐसे घोर हैं कि प्रतिद्वन्द्वी को उनका पार पाना कठिन है। भाव यह कि खरदूषण की सेना बड़ी विकट थी जो देवताओं को युद्ध मे जीत चुकी थी।

सबो ने सूर्पणखा को आगे कर लिया कि तू चलकर बतला कि शत्रु कहाँ है? अथवा अब तू आगे आगे चल। देखें कोई क्या कर लेता है। इससे उनकी बुद्धि का नाश कहा। जब यात्रा के समय अमङ्गल रूप को आगे कर लिया तब उनके मङ्गल की कौन आशा है।

असगुन अमित होहिं भयकारी। गनहिं न मृत्यु बिबस सब झारी॥
गर्जहिं तर्जहिं गगन उड़ाही। देखि कटकु भट अति हरषाही॥४॥

अर्थ : अगणित भयङ्कर अपशकुन होने लगे। वे सबके सब मृत्यु के विवश हैं। इसलिए गिनते नही। वे गर्जते हैं। ललकारते हैं। आकाश मे उडते हैं। सेना को देखकर वीर लोग बडे प्रसन्न हो रहे हैं।

व्याख्या : प्रकृति अपनी परिस्थिति द्वारा भविष्य का ज्ञापन कराती है। विचारशील पुरुष उससे लाभ उठाते हैं। यहाँ युद्ध यात्रा के समय असत्य भय सूचक अपशकुन हो रहे है। यथा ' भट गिरहिं रथते बाजि गज चिक्करहिं भाजहिं साथ ते। गोमायु गीध कराल खर रव स्वान बोलहिं अति घने। जनु काल दूत उलूक बोलहि बचन परम भयावने। परन्तु जिनका भविष्य बुरा रहता है वे इन अपशकुनो से सचेत नही होते। यथा : भयउ कालबस काहु न माना। कहेसि बजावहु जुद्ध निसाना। इसी भाँति ये सब काल के वश थे। अत अपशकुन की परवाह न की। बल्कि गर्जते और ललकारते चले हैं। राक्षस होने से आकाश मे उडने की शक्ति है। सेना ऐसी बनी हुई कि देखकर सुभटो को बडा हर्ष है। क्योकि उनकी समझ मे जीत निश्चित है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कोउ कह जिअत धरहु द्वौ भाई। धरि मारहु तिय लेहु छुडाई ॥
धूरि पूरि नभ मडल रहा। राम बोलाइ अनुज सन कहा ॥५॥

अर्थ : कोई कहता है कि जीते जी दोनो भाइयो को पकड लो। पकड कर मारो और स्त्री छीन लो। आकाश मे धूलि भर उठी। तब रामजी ने छोटे भाई को बुलाकर कहा।

व्याख्या : मन मे बडा हर्ष है। इसलिए मनोरथ भी बढा चढा है। एक कहता है कि जीते जी पकड लो। वे हम लोगो से क्या लडेंगे ? वीर का जीते जी बन्दी हो जाना बडे अपमान की बात है। दो ही भाई तो हैं। दो चार वार करें तो उसे सह लेना उनके चोट से हम मर तो जायँगे नही पर पकड लो जीते जी। जिसमे स्त्री हरण का दु ख वे अपनी आँखो देख लें। तब अपनी चाही हुई विधि से उनका वध करना। सूर्पणखा के नाक कान कटने का बदला तो तभी चुकेगा।

सेना के चलने से धूलि उडती है। जिसके देखने से सेना के आने की सूचना मिल जाती है। यथा नभ धूरि खग मृग भूरि भागे बिकल प्रभु आश्रम गये। यहाँ तो आकाश मण्डल धूरि से भर गया। सरकार ने देखा। बात समझ गये। यहाँ पहिला काम सीताजी का हटाना है। सीताजी की रक्षा मे चित्त बँटा रहने से भली भाँति युद्ध न हो सकेगा। तब रामजी ने बुलाकर अपने छोटे भाई लक्ष्मण से कहा। सीताजी से नही कहा। छोटा भाई कहने का भाव यह कि सरकार की भाँति वे भी युद्ध मे समर्थ है। यथा अनुज निसाचर कटक सहारा।

लै जानकिहि जाहु गिरि कदर। आवा निसिचर कटकु भयकर ॥
रहेहु सजग सुनि प्रभु कै बानी। चले सहित श्री सर धनु पानी ॥६॥
देखि राम रिपुदल चलि आवा। बिहँसि कठिन कोदड चढावा ॥७॥

अर्थ : जानकी को लेकर पर्वत की कन्दरा मे चले जाओ। राक्षसो की भयङ्कर सेना आ पहुँची। सावधान रहना ऐसी सरकार की वाणी सुनकर हाथ मे धनुष बाण लेकर श्री : सीता के सहित चले।

रामजी ने देखा कि शत्रु की सेना आगयी। हँसे और कठिन धनुष पर प्रत्यञ्चा चढाया।

व्याख्या : सीताजी तो राक्षसी को देखकर डर गयी थी। सेना देखने पर इनकी क्या गति होगी। अथवा नाक कान काटने का बदला स्त्री हरण है। सो मुख्य चोट जानकी पर तथा तुम पर होगा। तुमने नाक काटा है। सो जानकी को लेकर तुम पहाड की गुफा मे चले जाओ। वे न देख पावें कि तुम कहाँ हो। राक्षसी सेना के आने मे विलम्ब नही है और वहाँ भी सावधान रहना। कन्दरा मे जानकी रहे। द्वार पर तुम रहना। यदि राक्षस वहाँ तक पहुँच जायँ तो उनका वध करना। लक्ष्मणजी की इच्छा जाने की नही। स्वय युद्ध करना चाहते है। परन्तु प्रभु की वाणी को हटा न

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ बगमेल आगये। पकडो पकडो कहते सुभट दौडे। जैसे अकेला देखकर उदयकालीन सूर्य को दानव घेर लेते है।

व्याख्या इतने अन्दाज से प्रभु ने युद्ध की तैयारी की कि इधर तैयारी समाप्त हुई और उधर शत्रु की सेना पहुँच गयी। घुडसवारो का दस्ता जो बाग मिलाकर सेना के आगे चलता है अर्थात् अग्रगामिनि सेना आगयी। प्रभु को अकेला देखकर जीते ही पकड लेने के लिए पकडो पकडो ऐसी अवाज देते दौडे और प्रभु को घेर लिया। कवि कहते है कि उस समय ऐसी शोभा हुई जैसे प्रात काल दस सहस्र मन्देह नाम के दैत्य उदयकालीन सूर्य को घेर लेते है। पौराणिकी कथा है कि नित्य उदयकाल मे दस सहस्र दैत्य सूर्यनारायण से युद्ध करने के लिए उन्हे घेर लेते है और मारे जाते है। ब्रह्मदेव के वरदान से फिर वे जी उठते है और नित्य सूर्यनारायण द्वारा मारे जाते हैं। सूर्यनारायण का कुछ कर नही पाते। बालरवि के साथ प्रभा भी नही चन्द्र भी नही रहते। इसलिए अकेला कहते हैं। यहाँ भी सरकार के साथ सीताजी भी नही और लक्ष्मणजी भी नही। अत अकेले थे। पास जाने का साहस नही। मुख से पकडो पकडो कहते हैं। इसलिए चारो ओर से घेर लिया।

प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी। थकित भई रजनीचर धारी ॥
सचिव बोलि बोले खर दूषन। यह कोउ नृपबालक नर भूषन ॥१॥

अर्थ प्रभु को देखकर हाथ से बाण नही छूटता। राक्षसी सेना थकित रह गयी। तब मन्त्री को बुलाकर खरदूषण बोले कि यह कोई राजा का लडका मनुष्यो का भूषण है।

व्याख्या राक्षसा न दूर से घेरा डाल रक्खा है। सरकार तक शस्त्र की पहुँच नही है। बाण पहुँच सकता है। पर उसे चलाने का सामर्थ्य किसी को नही। प्रभु के देखने से साहस छूट गया। यह प्रभु की प्रभुता है। सबके सब स्थगित हो गये। यथा जिन बीथिन्ह बिहरहिं सब भाई। थकित होहिं सब लोग लोगाई। लोग लोगाई थकित होते ही थे। आज रजनीचर धारी थकित हो गयी।

खरदूषण ने देखा कि क्या मामला है। सेना रुक क्यो गयी ? सरकार को देखते ही बात समझ गया। मन्त्री को बुलवाया। ऐसे तेजस्वी के सामने जाकर सन्देश कहना भी सामान्य दूत का काम नही है। अत मन्त्री को दूत बनाकर भेजना चाहता है। खर और दूषण का साथ बोलना कहकर दोनो का एकप्राण होना कहा। नृपबालक कहकर अल्पबल और अपरिपक्व बुद्धि होना द्योतित करता है। पर कहता है कि इन्हे देखने से आँखो को सुख मिल रहा है। अत ये नरभूषण हैं। यथा नरभूषण लोचन सुखदाई। खरदूषण ने समझ लिया कि अपराध सूर्पणखा का है। राजपुत्र हैं। व्यभिचारिणी समझकर दण्ड दिया है।

नाग असुर सुर नर मुनि जेते। देखे जिते हते हम केते ॥
हम भरि जन्म सुनहु सब भाई। देखी नहिं असि सुदरताई ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : नाग, असुर, सुर, नर और जितने मुनि हैं उनमें से कितनों को मैंने देखा है। जीता है और मार डाला है। पर हे भाइयो ! सुनते जाओ। मैंने ऐसी सुन्दरता नही देखी।

व्याख्या : जब सूर्पणखा तीनों लोक देख चुकी है तो खरदूषण के तीनों लोक को देख डालने में आश्चर्य ही क्या है ? अतः व्यवहार योग्य पाँच प्रकार की सृष्टि उनकी देखी हुई है। नाग असुर से पाताल लोक कहा। सुर से स्वर्गलोक कहा और नर और मुनि से मर्त्यलोक कहा। उनमे से जो बलवान् थे उन्हे जीता या मारा। पर हाथ कही रुका नही।

यहाँ हाथ रुक रहा है। अलौकिक सुन्दरता देखकर स्तब्ध है। अतः सबको सुनाकर कहता है कि जब से होश सँभाला ऐसी सुन्दरता नही देखी। उसके कहने का भाव यह कि तुम लोग भी सुन्दरता देखकर ही स्तब्ध हो प्रभुता से नही।

जद्यपि भगिनी कीन्हि कुरूपा। वध लायक नहिं पुरुष अनूपा ॥
देहु तुरत निज नारि दुराई। जीअत भवन जाहु द्वौ भाई ॥३॥

अर्थ : यद्यपि बहन को कुरूप कर दिया तथापि ये अनूप पुरुष हैं। वध के योग्य नहीं हैं। अपनी छिपाई हुई स्त्री दे दें और दोनों भाई जीते जी घर लौट जाएँ।

व्याख्या : इन्होने अपराध बड़ा भारी किया। हमारे बहन का नाक कान काटकर कुरूप बना दिया। इस कुरूप करण का दण्ड तो वध ही है। सूर्पणखा मनुष्य के लिए तो बड़ी भयावनी थी। पर राक्षसो की दृष्टि मे वहाँ भी सौन्दर्य था। रावण ने जब स्वर्ग पर धावा किया था उसी समय लङ्का से सूर्पणखा का हरण हुआ था। अतः खरदूषण कहते हैं कि इतना अपराध करने पर भी इनका वध उचित नही है। ससार से शोभा उठ जावेगी। इन्हे दूसरा दण्ड देना चाहिए। यह अकेले ही दिखाई पडते है। स्त्री और भाई नही दिखाई पडते। अतः सिद्ध है कि इन्होने उस स्त्री को छिपा दिया है। सो उस छिपाई हुई स्त्री को दे दें। यही दण्ड है। मैं दोनो भाइयो का प्राण नही मारूँगा।

मोर कहा तुम ताहि सुनावहु। तासु बचन सुनि आतुर आवहु ॥
दूतन्ह कहा राम सन जाई। सुनत राम बोले मुसुकाई ॥४॥

अर्थ : मेरा यह कहना तुम लोग उसे जा सुनाओ और उसका वचन सुनकर शीघ्र लौट आवो। दूतो ने जाकर रामजी से कहा। सुनते ही रामजी ने मुसकुरा कर कहा।

व्याख्या : खरदूषण अङ्गुल्या निर्देश करके कहता है कि मेरा कहना तुम उसे जाकर सुना दो। यहाँ से कही हुई बात वह नही सुन सकता और तुरन्त आकर उसका उत्तर मुझसे कहो। खरदूषण के मन में सन्देह है कि रामजी इस प्रस्ताव को स्वीकार नही करेंगे। उन्होंने अपने भाई के साथ स्त्री को हटा दिया है और अकेले निर्भीक

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



युद्ध के लिए खडे हैं। आतुर आवहु • कहने का भाव यह है कि जवाब सवाल न करना। जितनी कृपा मैं कर रहा हूँ वही बहुत है। सचिवगण ही दूत हैं। उन्होंने जाकर रामजी से कह डाला। दूसरे को इतना कहने का साहस न पडता। सरकार स्मितपूर्वाभिभाषी है। अत स्वभावत मुसकुराकर बोले अथवा उसकी चतुरता पर मुसकुराये कि बिना युद्ध किये ही जीत चाहता है। अथवा इस बात पर मुसकुराये कि इसने मुझे इतना नरम चारा समझ रक्खा है कि मै स्त्री देकर सन्धि कर लूँगा। अथवा अपने दौर्बल्य को कृपा रूप दे रहा है अथवा उसकी कामुकता पर मुसकुराये कि इसे यदि सुन्दरी स्त्री मिल जाय तो बहन का नाक कान काटना कुछ नही।

हम छत्री मृगया बन करही। तुम्ह से खल मृग खोजत फिरही ॥
रिपु बलवत देखि नहिं डरही। एक बार कालहु सन लरही ॥५॥

अर्थ रामजी ने कहा हम क्षत्रिय है। वन मे आखेट करते फिरते हैं। तुम्हारे ऐसे दुष्ट पशुओ को तो खोजते फिरते है। बलवान् शत्रु को देखकर डरते नही। एक बार तो काल से भी लड जाते हैं।

व्याख्या प्रभु कहते हैं कि ऐसी बात तो किसी राक्षस से कहनी थी। जो स्त्री प्रतिष्ठा से अनभिज्ञ हो। हम क्षत्रिय है। क्षतात्किल त्रायत इत्युदग्र क्षत्रस्य शब्दो भुवनेषु रुढ। जो क्षत से रक्षा करे वह क्षत्रिय है। नगर की रक्षा करके बन मे आखेट करते है। खल मृग हिंसक जन्तु व्याघ्रादि को खाजते फिरते है। यदि कोई मिले तो कोसो उसके पीछे दौडते चले जाते है। तुम लोग भी पशु हो। आहार निद्रा भय मैथुन म ही आसक्त हो। धर्म से तुम्हारा कोई सम्बन्ध नही। यथा . आहारनिद्राभयमैथुनश्च सामान्यमेतत् पशुभिर्नराणाम्। धर्मो हि तेषामधिको विशेष धर्मेण हीना पशुभि समाना और पशुओमे भी दुष्ट पशु हो ऐसे पशु को तो हम लोग खोजते फिरते हैं। सो तुम लोग इतने हमे मिल गये हो। हम कैसे छोड सकते है ?

यदि कहो कि व्याघ्रादि मेरे सामने क्या है। हम बडे बलवान् हैं। तो हम लोग भी डरनेवाल नही। क्षत्रिय तनु धरि समर सकाना। कुल कलकु तेहि पामर आना। जौं रन हमहिं प्रचारै कोऊ। लरहिं सुखेन काल किन होऊ। काल से बली तो कोई नही। मैं उससे भी लडने को प्रस्तुत हूँ।

जद्यपि मनुज दनुज कुल घालक। मुनि पालक खल सालक बालक ॥
जौ न होइ बल घर फिरि जाहू। समर बिमुख मै हतौ न काहू ॥६॥

अर्थ यद्यपि मैं मनुष्य हूँ। पर दनुजकुल का नाश करनेवाला हूँ। मुनियो का पालन करनेवाला और खलो के हृदय मे चुभनेवाला बालक हूँ। यदि बल न हो ता घर लौट जाओ। लडाई मे पीठ दिखानेवाले किसी को मै नही मारता।

व्याख्या नरभूषण का उत्तर देते हुए प्रभु कहते है कि साधारणत मनुष्य राक्षसो के भक्ष्य हैं। पर मै मनुष्य हूँ। पर दनुजकुल का नाश करनेवाला हूँ इससे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अपना अवतार होना भी ध्वनित किया। परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्। अथवा मारीच सुबाहु वध की ओर लक्ष्य करते हुए कहते हैं। यथा ये कौसिक मख के रखवारे। जिन रन अजिर निसाचर मारे। अथवा अपनी प्रतिज्ञा को जनाया। जो अस्थि समूह देखकर किया था। निसिचर हीन करउँ महि।

ये कोउ नृप बालक का उत्तर देते हुए कहते हैं मुनि पालक खल सालक बालक। भाव यह कि खल वध का कारण मुनिपालन है। बिना खल वध के मुनि-पालन नही होता। साधुता से खल के स्वभाव के परिवर्तन की आशा मूर्खता है। अत खलो का वध ही सच्ची अहिंसा है।

प्रभु कहते हैं कि युद्ध करने के लिए चढ आये। तब युद्ध न करने मे दो ही पक्ष हैं। या तो हम दुर्बल और कादर हो या तुम दुर्बल और कादर हो। सो मैं तो काल से लडने को तैयार हूँ। रह गया दूसरा पक्ष कि तुम निर्बल और कादर हो तो मेरा वीर व्रत है। पीठ दिखानेवाले पर शस्त्र प्रहार नही करता। घर लौट जाओ। मैं पीछा करके मारनेवाला नही हूँ।

रन चढि करिअ कपट चतुराई। रिपु पर कृपा परम कदराई॥
दूतन्ह जाइ तुरत सब कहेऊ। सुनि खरदूषन उर अति दहेऊ॥७॥

अर्थ लडाई पर चढ आकर अब कपट चतुराई करते हो। शत्रु पर दया करना तो भारी कादर का लक्षण है। दूतो ने जाकर तुरन्त सब कह सुनाया। सुनकर खरदूषन का कलेजा अत्यन्त जल उठा।

व्याख्या . बध लायक नहिं पुरुष अनूपा का उत्तर। बिना लडे ही जीत चाहते हो। सेना की दुरवस्था देखकर भीतर से भयभीत हो। बाहर से दया का रूपक दिखाते हो। केवल धमकी देकर स्त्री लेना चाहते हो। बात ऐसी करते हो कि लडाई न पडे कपट चतुर नहिं होइ जनाई। मैं तुम्हारा शत्रु मैंने तुम्हारे बहन का नाक कान काटा। मेरे पर दया कैसी ? वस्तुत तुम कादर हो। केवल बातें बनाते हो।

जाने के समय जो वेग दूतो मे था लौटने के समय वह न रह गया। पारा उतर गया। अत जाना कहते हैं। आतुर आवहु आज्ञा थी। अत जाइ तुरत सब कहेऊ। सुनकर सबका कलेजा जल उठा। खरदूषण के हृदय मे तो अधिक दाह हुआ। इस पुरइन से जो छन्द रूपी कमल निकला है। वह निम्नोक्त है।

छ उर दहेउ कहेउ कि धरेहु धाए बिकट भट रजनीचरा।
सर चाप तोमर सक्ति सूल कृपान परिघ परसु धरा॥
प्रभु कीन्ह धनुष टँकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा।
भए बधिर व्याकुल जातुधान न ग्यान तेहि अवसर रहा॥

अर्थ कलेजा जल उठा। बोले कि पकड लो। विकट भट राक्षस दौड पडे। सब धनुष, बाण, भाला, बरछी, त्रिशूल, तलवार, बेबँडा और गँडासा लिये हुए थे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



शर शक्ति तोमर शूल कृपाण परिघ और परशु की चोट सामने जाकर करते हैं। जिसे देखकर हाथ से बाण नही चलते थे मरण ठान लेने पर उन्ही के सामने जाकर प्रहार कर रहे हैं। उनको भागते देखकर प्रभु ने बाण चलाना बन्द कर दिया था। प्रतिज्ञा भी है समरबिमुख मैं हतौं न काहू। अब उनके सामने जब जाकर प्रहार करने लगे प्रभु ने प्रहार सहा।

पहिले भी कुपित थे। तब दूर से अस्त्र शस्त्र की वर्षा करते थे। अब परम कुपित हैं। अत सन्मुख जाकर चोट करते हैं। प्रभु ने तब फिर धनुष पर बाण चढाया। दूसरी लडाई प्रारम्भ हुई। इस लडाई मे लोहमय बाण नाराच छूटे। बिकट पिशाच कटने लगे। पिशितमाचमतीति पिशाच। मास खानेवाले को पिशाच कहते हैं। ये ही सब मुनियो को खाये थे।

उर सीस भुज कर चरन। जहँ तहँ लगे महि परन ॥
चिक्करत लागत बान। धर परत कुधर समान ॥५॥
भट कटत तन सत खड। पुनि उठत करि पाखड ॥
नभ उडत बहु भुज मुड। बिनु मौलि धावत रुड ॥६॥
खग कक काक सृगाल। कटकटहि कठिन कराल ॥७॥

अर्थ छाती, सिर, हाथ, भुजा और पैर जहाँ तहाँ पृथ्वी पर गिरने लगे। बाण लगते ही चिग्घाडते हैं। धड पहाड की भाँति गिर रहे हैं। वीर लोग सौ सौ टुकडे कटकर गिर रहे है और फिर माया करके उठते हैं। आकाश म बहुत सी भुजाएँ और सिर उड रहे हैं। बिना सिर के रुण्ड दौड रहे हैं। चील्ह, कौए, आदि पक्षी और गीदड भयङ्कर कटकट शब्द कर रहे हैं।

व्याख्या नाराच के चाट से पाँच पाँच खण्ड होकर कट रहे हैं। यह कोई विशेष विद्या बनैती की है। क्योकि अन्यत्र भी नाराच चलने पर इसी भाँति कटना लिखा है। यथा जँह तहँ चल बिपुल नाराचा। लगे कटन भट बिकट पिसाचा। कटहि चरन सिर उर भुज दडा। बहु तक बीर होहि सत खडा। जिन्हे देखो वे पाँच खण्ड होकर गिरते हैं।

बाणो का वेग और बढा तो सात खण्ड या सौ खण्ड होकर गिरने लगे। जब पाँच खण्ड होकर गिरना कहा था वहाँ धड का पहाड की भाँति गिरना कहा। अब तो सौ खण्ड होकर गिर रहे हैं। अत धडो का पहाड की भाँति गिरना नही लिखते। सौ खण्ड होने पर भी माया से सब खण्ड एकत्रित हो जाते है और वे सब उठ खडे होते हैं। यह नये प्रकार की माया है। ऐसी माया लङ्का के युद्ध मे भी नही देखी गयी। तब प्रभु ने युद्ध की शैली बदली। भुज मुण्डो को काट काटकर आकाश मे फेंकने लगे। जिसमे जुटने न पावें। तब बिना सिर के रुण्ड दौडने लगे।

अब रणभूमि मास रुधिरमय हो गयी। हिंसक जन्तु प्रकट हुए काक कक लै

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भुजा उडाही। एकते छीनि एक लै खाँही। एक कहहिं ऐसेउ सौंघाई। सठहु तुम्हार दरिद्र न जाई। जबुक निकर कटक्कट कट्टहिं। खाहिं अवाहिं हुआहिं दुपट्टहिं। जब रणभूमि मास रुधिरमय हो गयी तब हिंसक जीव प्रकट हुए। बीभत्स रस का प्रादुर्भाव हुआ। शृगाल को कवि ने कठिन कराल कहा है। क्योंकि मरते हुए का मास नोचकर खाते हैं। एक दूसरे पर कटकटाते हैं कि यह तो मेरा आहार है तू कैसे यहाँ आगया।

कटकटहिं जबुक भूत प्रेत पिसाच खर्प्पर सचही।
बेताल बीर कपाल ताल बजाइ जोगिनि नचही॥
रघुबीर बान प्रचड खडहिं भटन्ह के उर भुज सिरा।
जहँ तहँ परहिं उठि लरहिं धरुधरु धरु करहिं भयकर गिरा॥१॥

अर्थ गीदड कटकटाते हैं। भूत प्रेत और पिशाच खप्पर मे रक्त जमा करते हैं। वीर बेताल खोपडियो पर ताल देते हैं और योगिनियाँ नाच रही हैं। रघुवीर के प्रचण्ड बाण योद्धाओ की छाती भुजा और सिरोको काट रहे हैं। वे जहाँ तहाँ गिरते हैं फिर उठकर लडते हैं और भयङ्कर शब्दसे पकडो पकडो कहते हैं।

व्याख्या प्रेत लोक के घोर जीव भी आ डँटे। पेटभर खाया पीया। अब दूसरे दिनके लिए खप्पर भरकर रख रहे हैं। निश्चिन्त होने के बाद आनन्द का जलसा आरम्भ हुआ। बेताल वीर नट कपाल को बजाकर ताल दे रहे हैं और योगिनी नृत्य कर रही हैं। ये योगिनी भी एक प्रकार की प्रेत ही है। रुधिर पान से सब मत्त हो रहे हैं। योद्धा लोग जहाँ उठे कि तीन टुकडे हुए। फिर भी वे माया से उठ खडे होते हैं और लडने लगते हैं। सबके सब रण मद म मत्त हैं। मालिक ने पकडने की आज्ञा दी थी। अत पकडो, पकडो, पकडो यही शब्द भयङ्कर ध्वनि से उच्चारण कर रहे हैं।

अतावरी गहि उडत गीध पिसाच कर गहि धावही।
सग्राम पुर बासी मनहु बहु बाल गुडी उडावही॥
मारे पछारे उर बिदारे बिपुल भट कहँरत परे।
अवलोकि निज दल बिकल भट त्रिसिरादि खरदूपन फिरे॥२॥

अर्थ अँतडियो को लेकर गीध उडे जाते है। उन्हें पिशाच हाथ से पकडे हुए दौडते हैं। मानो सग्रामरूपी पुर के रहनेवाले बहुत से बालक पतङ्ग उडा रहे हो। मारे गये। पृथ्वी पर गिराये गये बहुत से योद्धा कराहते हुए पड गये। अपनी सेना को बिकल देखकर त्रिशिरा आदि खरदूषण लौटे।

व्याख्या आँत स्वभावत लम्बी होती है। फिर शैतान की आँत तो बहुत लम्बी सुनी जाती है। सो उन्हे लेकर गीध उड चले। उनके दूसरे सिरो को पिशाचो ने पकड लिया और दौडने लगे तो ऐसा दृश्य उपस्थित हुआ मानो सग्राम भूमि ही

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



एक पुर है। वहाँ के रहनेवाले लडके पतङ्ग उडाते हो। सेना के कुछ लोग मारे गये। कुछ पछाड खाकर गिरे और बहुत से पडे पडे कराह रहे थे। खरदूषण त्रिशिरा ने देखा कि सेना समाप्त हो चली। तो स्वय सरकार की ओर लौट पडे। पहिले सैनिको को प्रेरणा करके सरकार से लडने के लिए भेजते थे। यथा भये क्रुद्ध तीनिउ भाई। जा भागि रन ते जाइ। तेहि वधव हम निज पान।

सर सक्ति तोमर परसु सूल कृपान एकहि बारही।
करि कोप श्रीरघुवीर पर अगिनिति निसाचर डारही ॥
प्रभु निमिष महुँ रिपु सर निवारि पचारि डारे सायका।
दस दस विसिख उर माँझ मारे सकल निसिचर नायका ॥३॥

अर्थ अगणित निशाचर श्रीरघुवीर के ऊपर वाण, बरछी, तोमर, फरसा, त्रिशूल और तलवार एक साथ ही फेंकने लगे। प्रभु ने क्षणभर म शत्रुओ के बाणो को दूर करके, ललकारकर वाण छोडे। प्रत्येक राक्षसो के नायक के हृदय मे दस दस वाण मारे।

व्याख्या तीसरी लडाई प्रारम्भ हुई। खरदूषण त्रिशिरादि वीर योद्धा भी अकेले सरकार से युद्ध करने का साहस नही करते। क्रोध से भरे हुए दूर से हथियार फेंक रहे है। हथियारो की वर्षा हो गयी। प्रभु वीरव्रत है। उनकी अस्त्र शस्त्र वर्षा का सहन करते हुए अपने बाणो से उसका निवारण किया और प्रत्येक सेनापति के हृदय मे दस दस बाण मारे बहुतो के साथ युद्ध करते समयकी कोई प्रक्रिया है जिससे दस दस बाण प्रतिभटो के हृदय मे लगते है। यथा दसदस सर सब मारेसि परे भूमि कपि बीर।

छ महि परत उठि भट भिरत मरत न करत माया अति घनी।
सुर डरत चौदह सहस प्रेत बिलोकि एक अवध धनी ॥
सुर मुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अति कौतुक करचो।
देखहि परसपर राम करि सग्राम रिपुदल लरि [1]मरचो ॥४॥

अर्थ पृथ्वी पर गिरते है और उठकर योद्धा फिर लडते हैं मरते नही। और घनी माया कर रहे है। देवता लोग चौदह सहस्र प्रेतो मे अकेले श्री रामजी को देखकर डर रहे हैं। देवता और मुनियो को डरा हुआ देखकर मायानाथ ने बडा खेल किया कि एक दूसरे को राम दखते हुए सग्राम करके शत्रु की सेना लड मरी।

---

१ यह सग्राम मृगशिरा नक्षत्र है प्रथम मृगसीरस को जलपात। गोजर बीछी साँप छछूदर वीर बहूटी चरत। पहिले कह आये हैं वर्षा घोर निसाचररारी। सो वर्षा के दसो नक्षत्र बरसेंगे। यह सग्राम पहिले नक्षत्र की वर्षा है। सुरकुल सालि सुमगलकारी है। यथा हरषित बरखहि सुमन सुर, बाजहि गगन निसान।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : ये वीर अमर मालूम पड़े। क्योंकि कटकर टुकड़े टुकड़े होकर तो पृथ्वी पर गिरते थे। परन्तु फिर उठ जाते थे। मरते न थे और अत्यन्त दुरूह माया करते थे। कवि उन्हें प्रेत कहते हैं। क्योंकि ये मर मरकर जीते हैं। देवताओं ने देखा कि ये चौदह हजार प्रेत हैं और अवधेश रामजी अकेले हैं। अत डरने लगे कि देखें क्या होता है। सरकार ने देखा कि देवता और मुनि डर रहे है तो उनकी माया के जवाब मे एक खेल कर दिया कि वे सब एक दूसरे को राम देखने लगे और आपस मे ही कटकर मर गये।

दो. राम राम कहि तनु तजहिं, पावहिं पद निर्बान।
करि उपाय रिपु मारे, छन महुँ कृपानिधान ॥२०॥

अर्थ : राम राम कहकर शरीर छोड़ते हैं। निर्वाण पद को प्राप्त हो रहे हैं। इस भांति उपाय करके कृपानिधान ने क्षण भर मे शत्रुओं का संहार कर दिया।

व्याख्या : एक दूसरे को शत्रु सेना के सैनिक राम देखने लगे। जो मारता है वह कहता है कि राम को मारा। जो मारा जाता है वह कहता है कि राम ने मारा। इस भाँति अन्तकाल मे सबके मुख से राम नाम का उच्चारण हो रहा है। अत सबको निर्वाण पद की प्राप्ति हो रही है। यथा : अन्तकाले च मामेव स्मरन् मुक्त्वा कलेवरम्। यः प्रयाति त्यजन् देह स याति परमा गतिम्। जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमौ मुकुत होत स्रुति गावा।

सरकार कृपानिधान है। ऐसा उपाय किया कि अनायासेन सब राक्षसो का मोक्ष हो गया।

दो. हरषित बरषहिं सुमन सुर, बाजहिं गगन निसान।
अस्तुति करि करि सब चले, सोभित बिबिध बिमान ॥१४.२०॥

अर्थ : प्रसन्न होकर देवता लोग फूल बरसाने लगे। आकाश मे डङ्का बजने लगा। स्तुति करके सब देव आकाश मे विमानों पर शोभायमान होकर चले।

व्याख्या देवता लोग डर गये थे सो हर्षित होकर फूल बरसाने लगे। राक्षसो से इतने भयभीत थे कि यहाँ पर्ण तृणशाला भी बनाने नही आये थे। सो आकाश मे डङ्का बजा रहे हैं। युद्ध देखने आये थे सो किसी ने नही जाना। अब जाते समय प्रत्यक्ष हो गये। आकाश में विमान पर शोभित हुए।

जब रघुनाथ समर रिपु जीते। सुर नर मुनि सब के भय बीते॥
तब लछिमन सीतहि लै आए। प्रभु पद परत हरषि उर लाए ॥१॥

अर्थ : जब रघुनाथजी युद्ध मे शत्रु को जीत गये तब सुर नर मुनि सबका भय बीत गया। तब लक्ष्मण सीताजी को ले आये। पैर पड़ते हुए प्रभु ने हर्षित हो लक्ष्मणजी को हृदय से लगा लिया।

व्याख्या : जब से सरकार पञ्चवटी में ठहरे हैं मुनि लोगो का त्रास तो तभी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दूर हो गया था। यथा जब ते राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भये मुनि बीती सा। अब जब शत्रुओ को रण मे जीत लिया तब सुर नर मुनि सबका भय ाप्त हो गया।

आकाश मे निशान बजा। देवताओ ने स्तुति की। जब लक्ष्मणजी ने सुना र युद्ध का कोलाहल शान्त हो गया तब समझ लिया कि जीत हो गयी। तब ताजी को लेकर लक्ष्मणजी आये। प्रभु के चरणो मे नमस्कार किया। सरकार ने जय की खुशी मे हर्षित होकर हृदय से लगाया। माधुर्य लीला है। रण सङ्कट से निर्मुक्त होकर भाई से मिल रहे हैं। चुनौती तो सरकार ने लक्ष्मण के हाथ से लाया। परन्तु युद्ध की धार को अपने ऊपर लिया।

ाता चितव स्याम मृदु गाता। परम प्रेम लोचन न अघाता ॥
चबटी बसि श्रीरघुनायक। करत चरित सुर मुनि सुखदायक ॥२॥

अर्थ : सीताजी श्याम मृदुगात को देख रही हैं। उन्हे परम प्रेम है। उनकी ाँखें नही अघाती। पञ्चवटी में बसकर श्री रघुनायक सुर मुनि सुखदायक चरित रते है।

व्याख्या : आँखें दर्शन की प्यासी हैं। निज पानि मनि महुँ देखिअत मूरति ,रूप निधान की। चालति न भुजबल्ली बिलोकनि बिरह भयबस जानकी। ही जानकी समर सङ्कट से विनिर्मुक्त देखकर श्याम मृदु गात को परम प्रेम से देख ही हैं और जी चाह रहा है कि देखा ही करें।

चित्रकूट का चरित सुर नर मुनि भावन था। यथा : करत जे बन सुर नर ुनि भावन। पर पञ्चवटी का चरित सुरमुनि सुखदायक है। वहाँ नर का निवास ही। अत: उनका नाम नही लिखा। राक्षस मुनियो को खा गये तो कोलकिरात ो कैसे छोडते ?

## ३७. दशानन समाचार प्रसंग

ुआँ देखि खरदूषन केरा। जाइ सुपनखा रावन प्रेरा ॥
ोलि बचन क्रोध करि भारी। देस कोस कै सुरति बिसारी ॥३॥

अर्थ : खरदूषण का शव देखकर सूर्पणखा ने जाकर रावण को प्रेरणा िया। भारी क्रोध करके बोली कि देश और कोश की सुध विसराकर।

व्याख्या धुआँ अर्थात् शव या लाश। पहिले गिरकर उठ जाते थे। मरत न करत माया अति घनी। पर इस बार नही उठे। अत सूर्पणखा ने जान लिया के मर गये। तब जाकर रावण को प्रेरणा किया। ताकि कर रावन कहँ मनौ चुनौती दीन्ह। सो रावण तक चुनौती पहुँच गयी। पहिले खरदूषण को प्रेरा था : कुल मे कुलटा उत्पन्न होने से कुल का नाश हो जाता है। दूसरा कोई रावण के प्रेरने मे समर्थ नही था।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सूर्पणखा का खरदूषण पर क्रोध था। पर रावण पर भारी क्रोध था। इसी के कारण विधवा हुई। विधवा होने के कारण नाक कान कटा। बहन है इसलिए भारी क्रोध कर सकती है। नही तो : कर जोरे सुर दिसिप बिनीता। राजा के लिए देश काल प्रधान है। सूर्पणखा रावण से कहती है कि तुझे दोनों की खबर नही। खरदूषण के मरने की खबर देने मे आ रही हूँ। तुझे नही मालूम की देश मे इस समय क्या हो रहा है। अब जनस्थान के कोप का भी कोई रक्षक नही रह गया।

करसि पान सोवसि दिनु राती। सुधि नहिं तव सिर पर आराती ॥
राजनीति बिनु धन बिनु धर्मा। हरिहि समर्पे बिनु सतकर्मा ॥४॥
बिद्या बिनु बिबेक उपजाएँ। श्रम फल पढ़ें किये अरु पाएँ ॥
संग[१] तें जती कुमंत्र ते राजा। मान ते ग्यान पान ते लाजा ॥५॥
प्रीति प्रनय बिनु मद ते गुनी। नासहि वेगि नीति अस सुनी ॥६॥

अर्थ : तू शराब पीता है और दिन रात सोता है। तेरे सिर पर शत्रु है और तुझे खबर नही है। १. नीति के बिना राज पाने से २ और बिना धर्म के धन पाने से ३. भगवान् के समर्पण बिना सत् कर्म करने से ४. बिना विवेक उपजाये विद्या पढने से केवल श्रम ही फल है। संग हो जाने से सन्यासी। १. कुमन्त्र से राजा २. मान से ज्ञान ३. और पान से लाज ४. बिना ईमानदारी के प्रीति ५ और मद से गुणी ६ शीघ्र ही नष्ट होते हैं। ऐसी नीति सुनी गयी है।

व्याख्या : सूर्पणखा अपना दोष छिपाने के लिए सब दोष रावण के सिर मढ रही है कि तेरी असावधानी से तेरे शत्रु इतने बढ गये हैं कि आज उन्होने मेरी नाक काट ली। तू देश कोष की सुरति बिसारकर मद्यपान करता है और रात दिन पडा रहता है। सर्वशोक हरा सुरा मे मस्त रहता है। तुझे कुछ भी चिन्ता नही है। तेरा शत्रु अयोध्या से चलकर जनस्थान पहुँच गया। अब यहाँ आना चाहता है। तुझे वह नही छोड़ेगा।

तू नीति शास्त्र की अवहेलना करता है। मैंने जो नीति सुनी है उसे सुनाती हूँ। चार का श्रम ही फल होता है। छः का शीघ्र ही नाश होता है और छः को छोटा नही गिनना चाहिए।

१. बिना नीति के राज्य प्राप्ति में जो श्रम होता है वही[२] फल है। क्योकि राज्य तो रहेगा नही। यथा 'राज कि रहै नीति बिनु जाने। २. विना धर्म के अर्थ के उपार्जन मे जो श्रम हुआ वही फल है। क्योकि वह अर्थ अनर्थ है। टिकाऊ नही

---

१. यहाँ दीपकालङ्कार है।

२ तत्कर्म यन्न बन्धाय सा विद्या या विमुक्तये। आयासायापरं कर्म विद्यान्या शिल्पकौशलम्। कर्म वही है जिससे बन्ध न हो। विद्या वही है जिससे मोक्ष हो। दूसरे कर्म श्रम के लिए हैं और दूसरी विद्या शिल्प कौशलमात्र है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हो सकता। ३. बिना हरि के समर्पण किये सत्कर्म के अनुष्ठान मे जो श्रम हुआ वही फल है। क्योकि वह बन्ध का कारण है। ४. और बिना विवेक उत्पन्न हुए विद्योपार्जन मे जो श्रम हुआ वही फल है। क्योकि विद्या का फल ही विवेक है। मै तो देखती हूँ कि तुम्हारे राज्य, धन, सत्कर्म और विद्या के उपार्जन का फल श्रम ही हुआ।

१ सङ्ग से यती का शीघ्र ही पतन होता है। यथा : सब नृप भये जोग उपहासी। जैसे बिनु बिराग संन्यासी।

२ कुमन्त्र से राजा का शीघ्र ही पतन होता है। यथा : सचिव बैद गुरु तीन जौ प्रिय बोलहिं भय आस। राजधर्म तन तीनि कर होइ बेगिही नास।

३ मान से ज्ञान का नाश होता है। क्योकि : ज्ञान मान जहँ एकौ नाही। देख ब्रह्म समान सब माही।

४ पान से तुरन्त लज्जा का नाश होता है। शराबी नङ्गे होकर नाचते बहुधा देखे गये हैं।

५ बिना ईमानदारी के प्रीति का तुरन्त नाश होता है। यथा : बिलग होत रस जाय कपट खटाई परत ही।

६ मद से गुणो का नाश होता है। यथा ' अवगुन मूल सूलप्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना।

मै देखती हूँ कि कुमन्त्र, मान, पान और मद से तेरे राज्य ज्ञान लज्जा और गुणो का नाश हो चला।

दो रिपु रुज पावक पाप प्रभु, अहि गनिअ न छोट करि।
अस कहि बिबिध बिलाप, करि लागी रोदनु करन ॥२१॥

अर्थ : शत्रु, रोग, अग्नि, पाप, मालिक और सर्प को छोटा करके नही गिनना चाहिए। ऐसा कहकर अनेक प्रकार से विलाप करके रोने लगो।

व्याख्या : ये छ. गूढ वीर्य हैं। इनका तुरन्त उपाय करना चाहिए। ये कथमपि उपेक्षणीय नही हैं। मैं देखती हूँ कि तुम अति प्रबल शत्रु की उपेक्षा कर रहे हो।

ऐसा कहकर, छाती पीटकर, सिर कूटकर, जमीन पर पछाड़ खाकर रोने लगी। धैर्य धारण करके इतना नीति का उपदेश उसने इसलिए दिया जिसमे रावण समझे कि सूर्पणखा बडी विचारशीला है। इसने अनीति नही किया होगा। सब दोष राजपुत्रो का ही है।

दो. सभा माँझ परि ब्याकुल, वहु प्रकार कह रोइ।
तोहि जिअत दसकंधर, मोरि कि असि गति होइ ॥२१.१५॥

अर्थ : सभा के बीच मे व्याकुल होकर गिर पडी और वहुत प्रकार से रोकर कहा कि दशकन्धर ! तेरे जीते ही जीते मेरी क्या ऐसी दशा होनी थी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : बात और बढ़ी अब सभा में गिर गयी और बहुत प्रकार से रोकर कहा कि तुम मर गये होते और मेरी नाक कटती तो मुझे सन्तोष होता। जिसको एक सिर होता है उसके जीते उसकी बहिन की नाक कोई काट नहीं सकता। पर तुझे दस सिर हैं। मुझे तैने विधवा किया। मुझे तो अब तेरी ही गति है।

सुनत सभासद उठे अकुलाई। समुझाई गहि बाँह उठाई ॥
कह लंकेस कहसि निज बाता। केइ तव नासा कान निपाता ॥१॥

अर्थ : सुनते ही सभासद व्याकुल होकर उठे। उसे समझाया और बाहु पकड़कर उठाया। रावण ने कहा कि अपनी बात कह कि तेरा नाक कान किसने काटा ?

व्याख्या : रावण अपने स्थान से न हिला। पिछली बात से सबने पहिचाना। नहीं तो पहिले पहिचान भी नहीं सके थे। आकुल होकर सभासद उठे कि राजा की बहन की नाक किसने काटी और उसे समझाने लगे :

सूपनखे धीरज धरहि अनहोनी यह बात।
किन कीन्ह्यो कैसे भयो यह दारुण उत्पात ॥
मिटिहि इन्द्र पद ब्रह्मपद रहिहि न नेक निसानि।
दियो चुनौती कौन जग लंकपतिहि लघु मानि ॥

इतना समझाने पर भी नहीं उठी। तब उसको भुजा पकड़कर उठाया।

तब रावण बोले कि अपना हाल कह। मैं क्या करता हूँ उससे तुझे क्या प्रयोजन ? यह बतला कि तेरी नाक और कान किसने काटा ?

अवध नृपति दसरथ के जाए। पुरुष[1] सिंह वन खेलन आए ॥
समुझि परी मोहि उन्ह कै करनी। रहित निसाचर करिहहिं धरनी ॥२॥

अर्थ : अयोध्या के राजा दशरथ के बेटे जो कि पुरुषों में सिंह हैं वन में अहेर खेलने आये हैं। उनकी करणी मुझे समझ पड़ी कि वे पृथ्वी को निशिचर हीन करेंगे।

व्याख्या : लक्ष्मणजी ने सूर्पणखा से कहा था : प्रभु समर्थ कोसलपुर राजा और सरकार के मुख से सुन चुकी है : हम क्षत्रिय मृगया वन करहीं। अयोध्या के राजा दशरथ की ख्याति संसार में थी। यथा : जीति को सक संग्राम दसरथ के रन बाँकुरे। अतः उसने परिचय तदनुसार ही दिया और कहा कि उनकी करणी देखकर मुझे निश्चय हो गया कि वे पृथ्वी का निशिचरहीन किया चाहते हैं और कर डालेंगे। उन्होंने कहा था : हम क्षत्रिय मृगया वन करहीं। तुमसे खल मृग खोजत फिरहीं। वही कर दिखाया। करि उपाय रिपु मारे छन महँ कृपानिधान। एक ने चौदह सहस्र का संहार किया और उनका कोई कुछ न कर सका।

---

१. यह रत्नावली अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जिन्ह कर भुजबल पाइ दसानन। अभय भये बिचरत मुनि कानन ॥
देखत बालक काल समाना। परम धीर धन्वी गुन नाना ॥३॥

अर्थ हे दशानन! जिनके भुजबल को पाकर मुनि लोग निर्भय होकर वन मे विचरते हैं। देखने मे तो बालक हैं। पर काल के समान हैं। बडे भारी धनुर्धर हैं और उनमे नाना प्रकार के गुण हैं।

व्याख्या तुम्हारा शासन उस देश से उठ गया। अब वहाँ उनका शासन चल रहा है। जो मुनि लोग निशाचरो के डर से छिपे फिरते थे वे अब आनन्द से वन मे विचरते है। किसी का सामर्थ्य नही कि उनसे बोल सके। यथा जब ते राम कीन्ह तहँ बासा। सुखी भये मुनि बीती त्रासा।

वे देखने मे ही अल्पवयस्क हैं। राक्षसो के सहार करने मे साक्षात् काल ही हैं। बडे भारी धनुर्धर हैं। उनकी बाण विद्या के आगे किसी का किया कुछ नही होता। इसके अतिरिक्त भी अनेक गुण हैं। न जाने कौन विद्या कर दी कि सारी सेना आपस मे ही कट मरी।

अतुलित बल प्रताप द्वौ भ्राता। खल बध रत सुर मुनि सुखदाता ॥
सोभा धाम राम अस नामा। तिन्ह के सग नारि एक स्यामा ॥४॥

अर्थ उन दोनो भाइयो के बल प्रताप का कोई तौल नही है। वे देवता और मुनि के सुख देनेवाले हैं और खलो के नाश मे लगे रहते है।

व्याख्या बल ऐसा है कि उनके धनुष का टङ्कार कोई सह नही सकता। यथा प्रभु कीन्ह धनुष टकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा। और प्रताप ऐसा है कि उनकी ओर देखा नही जाता। यथा प्रभु बिलोकि सर सकहि न डारी। दोनो भाई एक से एक हैं मुनि पालक खल शालक बालक इस भगवदुक्ति का अनुवाद करती हुई कहती हैं खल बध रत सुर मुनि सुखदाता। छवि पर आसक्त है। अत सोभा धाम कहती हैं। राक्षस लोग उन्हे राम कहते थे। यथा राम राम कहि तनु तजहि। अत कहती हैं राम अस नामा राक्षसो को नाम मालूम था। बहुत दिनो से नाम सुनते थे। सीताजी पर बडी डाह है। इसलिए परिचय देती है। तिनके सग नारि एक स्यामा। श्यामा भवति श्यामाङ्गी श्यामा षोडशवार्षिकी। अप्रसूता भवेत् श्यामा श्यामा मधुरभाषिणी। अप्रसूता और मधुरभाषिणी होने से श्यामा कहा। जानती हैं कि रावण को उसके नाक कान कटने की उतनी परवाह नही होगी। सुन्दरी स्त्री के लिए वह सब कुछ कर सकता है।

रूप रासि बिधि नारि सँवारी। रति सत कोटि तासु बलिहारी ॥
तासु अनुज काटे स्रुति नासा। सुनि तव भगिनि करहिं परिहासा ॥५॥

अर्थ विधाता ने उस स्त्री को ऐसी रूप की राशि बनाया है कि सौ करोड

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रति भी उस पर निछावर हैं। उन्ही के छोटे भाई ने मेरे नाक कान काट डाले। मैं तेरी बहिन हूँ। यह सुनकर वे मुझसे हँसी करने लगे।

व्याख्या : रावण को कामुक जानकर सीताजी के रूप की प्रशसा करती है। राम शोभाधाम नारि रूप राशि। राम के अग अग पर वारिये कोटि कोटि शत काम। नारि के लिए कहती हैं ' रति सतकोटि तासु बलिहारी। उसे ब्रह्माजी ने अपने हाथ से सँवारकर बनाया है। तुम्हारे महल मे ऐसी स्त्री एक भी नही है।

उसी राम के छोटे भाई ने नाक कान काटा। जब सुना कि मैं तुम्हारी बहिन हूँ तब मुझसे परिहास करने लगे। बड़ा कहने लगा कि छोटे से ब्याह कर लो। छोटा कहने लगा कि बडे से ब्याह करो स्वय ब्याह करने गयी थी इस बात को छिपा रक्खा। जब मैं चिढी तो नाक काट लिया।

खर दूपन सुनि लगे पुकारा। छन महुँ सकल कटक उन्ह मारा॥
खर दूपन तिसिरा कर घाता। सुनि दससीस जरे सब गाता॥६॥

अर्थ : मेरी पुकार सुनकर खरदूषण सहायता करने आये। पर उन्होने क्षण भर मे सारी सेना को मार डाला। खरदूषण और त्रिशिरा का वध सुनकर रावण के सारे अग जल उठे।

व्याख्या : अन्याय सुनकर ही कमजोर की ओर से गोहार इकट्ठा होता है। सो खरदूषण हमारी पुकार सुनकर सब सेना लेकर दण्ड देने गये। सो करि उपाय रिपु मारे छन महँ कृपानिधान। देखते देखते उन्होने सबका सहार कर दिया। सकल कटक मे खरदूषण त्रिशिरा भी आगये। नाक कान काटने से जलन न हुई। खर दूषण का मरना सुनकर जल भुन उठा। क्रोध से जलन होती है। पहिले अपना ही शरीर जलता है। शत्रु की हानि जब होगी तब होगी।

दो. सूपनखहि समुझाइ करि, बल बोलेसि बहु भाँति।
गयउ भवन अति सोच बस, नीद परै नहि राति॥२२.१६॥

अर्थ : उसने सूर्पनखा को समझाकर बहुत प्रकार से अपने बल का बखान किया। किन्तु वह अत्यन्त चिन्तावश होकर अपने महल मे गया। उसे रात भर नीद नही पडी।

व्याख्या ' समझाया कि हमारी ओर तो पूरा इन्तजाम था। १४००० सुभट के साथ खरदूषण तेरी रक्षा के लिए थे। जब उनको पता न लगा तो मुझे कैसे लग जाता ? अब तो उन्हे दण्ड देना मेरा काम ठहरा। खरदूषण मे केवल एक बल शारीरिक था। मुझे भुजबल, तपबल, अस्त्रबल, सेनाबल, दुर्गबल, सब बल है। राम मे क्या है ?

बढी भयानकता अधिक कटे नाक अरु कान।
अब केवल तव दरस ते मुनिगन तजिहैं प्रान॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



देव यक्ष गन्धर्व नर मुनिमँह नाक प्रधान।
भीमरूप निशिचरन मे कौन नाक की मान॥
तदपि देहुँ बैरिहि तुरत उत्कट फल परिपाक।
करौ हवाले कालके जिन काट्यौ सब नाक॥
कौन बली या जगत् मे जो मोको समुहाय।
लोकपाल निज लोक ते मेरे भय भगि जाय॥
क्षण महँ एकार्णव करौं कहा नान की बात।
देव दनुज को को कहै कालहु मोहि डरात॥
मैं तेरे रिपु को अभी डारत मूल बहाय।
जाहु सुखेन सुषेनपहँ करिहैं अवसि सहाय॥

ऐसा कहकर दरबार बरखास्त कर दिया। अति सोच से रात नीद न आयी · सो किमि सोअ सोच अधिकाई।

सुर नर असुर नाग खग माँही। मोरे अनुचर कहँ कोउ नाँही॥
खर दूषण मोहि सम बलवंता। तिन्हहि को मारइ बिनु भगवंता॥१॥

अर्थ : विचार करने लगा। देवता, मनुष्य, असुर, नाग और पक्षियो मे कोई ऐसा नही जो मेरे सेवक की भी बराबरी का हो। खर दूषण तो मेरे ही समान बलवान् थे। उन्हे भगवान् के सिवा और कौन मार सकता है।

व्याख्या · रावण सोचता है · कुमुख अकम्पन कुलिसरद धूम्रकेतु अतिकाय। एक एक जग जीति सक ऐसे सुभट निकाय। ये सब हमारे अनुचर हैं। इन्ही का कोई प्रतिभट नही है। जग मे सुर नर असुर नाग खग हैं। ये ही पाँच पराक्रमी हैं। वे मेरे ही अनुचर के बराबर नही है।

जीव मे सामर्थ्य नही कि मेरे समान बलवान को मार सके। ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई। जीव मात्र के जय के लिए मेरे अनुचर यथेष्ट हैं। मेरे अनुचर भी ईश्वर के ही मारे मर सकते हैं।

सुर रंजन भंजन महि भारा। जौ भगवंत लीन्ह अवतारा॥
[1]तउ मैं जाइ बयरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ॥२॥

अर्थ देवताओ को आनन्द देनेवाले और पृथ्वी का भार हरण करनेवाले भगवान् ने यदि अवतार लिया है तो मैं जाकर उनसे हठपूर्वक वेर करूँगा और प्रभु के बाण से प्राण छोडकर भवसागर तर जाऊँगा।

व्याख्या · महा पण्डित है। जानता है कि मुझसे देवताओ को कष्ट है। हम लोगो के कारण पृथ्वी का भार बढ गया है। ऐसे ही अवसरो पर अवतार होता है। गुप्त अवतार भी होते हैं। यथा : वामनावतार, ईश्वर होकर यदि चाहे कि पता न

१ यहाँ विचित्रालङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लगे तो कैसे लग सकता है। और जीवों में भी ऐसे बलवान कभी कभी हो जाते हैं कि राक्षसों को मार लेते हैं। यथा : तेहि के सत सुत अरु दस भाई। खल अति अजय देव दु:खदाई। प्रथमहि भूप समर सब मारे। विप्र संत सुर देखि दुखारे। अतः यह निश्चयपूर्वक नही कहा जा सकता कि अवतार हुआ है। यदि ईश्वर हैं तो वैर नही करेंगे। सूर्पणखा कथित निरपराधता उसके मन मे नही आयी। मैं हठपूर्वक वैर करूँगा। क्योकि निर्वाणदायक क्रोध जाकर भगति अवसहिं बस करी। रावण अपनी गति के लिए व्यग्र है। इतना ही रावण विभीषण मे भेद है। विभीषण मे निश्चयात्मिका बुद्धि है रावण मे नही है। विभीषण भजन कर सकता है। रावण नही कर सकता। प्रभु शर से तीनो शरीरें नष्ट हो जाती हैं। यह प्रभु शर की विशेषता है।

होइहि भजनु न तामस देहा। मन क्रम बचन मंत्र दृढ़ एहा ॥
जौ नररूप भूप सुत कोऊ। हरिहउँ नारि जीति रन दोऊ ॥३॥

अर्थ : इस तामस शरीर से भजन तो होगा नही। अतएव मन वचन और कर्म से यही दृढ निश्चय है। यदि वे मनुष्य रूप कोई राजकुमार होगे तो उन दोनो को रण मे जीतकर स्त्री को हर लूँगा।

व्याख्या : भजन करना ही सुगति का शास्त्रानुमोदित उपाय है। सो मुझसे होगा नही। वैर भली भाँति कर सकूँगा : मैं कौन सा काम भलीभाँति कर सकूँगा। इस बात को सोच निकालना साधारण पण्डिताई नही है। खूब विचार के बाद यही मन्त्र दृढ किया कि किसी की सलाह न मानूँगा। वैर करूँगा और यदि जिस पर मुझे अवतार का सन्देह है वह मनुष्य निकला तो जीतकर स्त्री हरण करूँगा : यद्यपि जीति पूर्वकालिक क्रिया है। इससे अर्थ निकला कि पहिले जीतकर पीछे स्त्री हरण करूँगा। पर इस पर कोई निश्चय नही है। निश्चय वैर करने मे और स्त्री हरण करने मे है।

चला अकेल जान चढ़ि तहवाँ। बस मारीच सिंधु तट जहवाँ ॥

## रामजी की युक्ति

इहाँ राम जसि जुगुति बनाई। सुनहु उमा सो कथा सुहाई ॥४॥

अर्थ : रावण रथ पर चढकर अकेला ही वहाँ चला जहाँ समुद्र के तट पर मारीच रहता था। शिवजी कहते हैं कि : हे पार्वती ! यहाँ श्रीरामचन्द्रजी ने जैसी युक्ति रची वह सुन्दर कथा सुनो।

व्याख्या : षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रः। ऐसा नीतिशास्त्र का आदेश है। अतः अकेला चला। सारथि को भी साथ न लिया। बस मारीच सिंधु तट जहवाँ : से पता चलता है कि और भी विचार उसने किया। जो उसकी क्रिया से लक्षित होता है। लिखा नही गया। माया से बचने के लिए साधुओ को भी युक्ति करनी चाहिए। व्रजन्ति ते मूढधियः पराभवम् भवन्ति मायाविषु ये न मायिनः। वे मूढ हार जाते

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है जो मायावी से माया नही करते सम्बोधन से शिवजी उमा को सावधान करते है।

दो लछिमन गए बनहिं जब, लेन मूल फल कद।
जनकसुता सन बोले, बिहँसि कृपा सुख बृद ॥२३ १७॥

अर्थ लक्ष्मणजी जब कन्द मूल फल लेने के लिए वन मे गये तब कृपा और सुख के समूह श्रीरामचन्द्रजी हँसकर जानकीजी से बोले।

व्याख्या इधर प्रभु ने सोचा कि अब सूर्पणखा रावण के पास जावेगी। खर दूषण के व्यवहार से पता चल गया कि चोट सीताजी पर होगी। रावण सम्मुख सग्राम का साहस न करेगा। सीताहरण करेगा। रावण ने भी सबसे बात छिपायी। प्रभु भी लछिमन तक से बात छिपाते हैं। लक्ष्मण के जान लेने पर विलापादि न बन सकेगा। माया को प्रेरणा करना है इससे हँसे। रत्न की चोरी के लिए चोर चला। इधर रत्न बदल शीशा इमीटेशन उस स्थान पर रखखा जा रहा है। चोर को धोखा देना चाहते है। इसलिए हँसकर बाले। भगवती पर कृपा है। उन्हे दु ख मे नही डालना चाहते। इससे कृपा सुखवृद कहा।

सुनहु प्रिया व्रत रुचिर सुसीला। मै कछु करबि ललित नरलीला॥
तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौ लगि करौ निसाचर नासा॥१॥

अर्थ हे प्रिये! हे सुन्दर पातिव्रत धर्म पालन करनेवाली सुशीले! सुनो। मैं अब कुछ मनोहर मनुष्य लीला करूँगा। इसलिए जबतक मै राक्षसो का नाश करूँ तबतक तुम अग्नि में निवास करो।

व्याख्या सरकार करुणानिधान हैं। सुजान है। भगवती के शील सनेह को जानते हैं। यथा करुणानिधान सुजान सील सनेह जानत रावरो। करुणानिधान हैं। अत इस झमेले मै उनको डालना नही चाहते। झमेला बडा है। लै जानकिहि जाहु गिरि कदर से काम न चलगा। कुछ दिन तक अलग रखना है और भगवती के स्नेह को जानते हैं। अत कहते हैं सुनहु प्रिया। गुणग्राहक सुजान हैं। अत व्रत रुचिर कहते हैं। भगवती के शीलको जानते है। अत सुशीला कहते है।

शुद्ध माधुर्य की लीला ललित नरलीला है। अभी तक ऐश्वर्य मिश्रित लीला किया है। और शुद्ध माधुर्य मे तुम्हे अत्यन्त कष्ट होगा। अधिक दिनो का विछोह होगा। हरण होगा राक्षसो की अश्लील बाते सुननी पडेंगी। अत ऐसे समय मे तुम्हारा साथ रहना ठीक नही है।

पावक मेरी ही विभूति है ' वसूना पावकश्चास्मि तथा अग्निर्देवानामवमो विष्णु। अत उसमे निवास से सर्वथा मेरा वियोग न होगा और बिना पावक मे निवास किये प्रतिबिम्ब की उत्पत्ति न होगी ' पावक सन्निधान विद्या से बायस्कोप मे प्रतिबिम्ब का खेल देखा जाता है। निसिचर नाश के समय तक तुम्हारे प्रतिबिम्ब से काम लिया जायगा। शपथ लेने के समय तुम अग्नि से प्रकट होना।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जबहिं राम सबु कहा बखानी । प्रभु पद धरि हियँ अनल समानी ॥
निज प्रतिबिंब राखि तहँ सीता । तैसेइ सील रूप सुबिनीता ॥२॥

अर्थ : श्रीरामजी ने ज्यो ही सब समझाकर कहा । त्यो ही श्रीसीताजी प्रभु के चरणो को हृदय मे धरकर अग्नि मे समा गयी । सीताजी ने अपनी ही छायामूर्ति वहाँ रख दी । जो उनके जैसे ही शील स्वभाव और रूपवाली तथा वैसे ही विनम्र थी ।

व्याख्या : रामजी ने कहा रावण चल पडा तुम्हारे हरण के लिए । यदि छल मे कृतकार्य न होगा तो बल से हरण चाहेगा एवं रावण वध हो जायगा । परन्तु निशिचरहीन महि न हो सकेगी । अत निशिचरहीन महि करने के लिए यह आवश्यक है कि तुम्हारा हरण हो । कम से कम रावण यह समझे कि मैने सीता हरण कर लिया । प्रभु पद हृदय मे धारण करती हैं आधार के लिए । अग्नि मे लय हो गयी । क्योकि अग्नि से ही प्रकट होना है ।

सब समझाकर कहा । अत अपना प्रतिबिम्ब छोडती गयी । देवयोनि मे यह सामर्थ्य है । अथवा योग से भी अनेक शरीर प्रकट किया जा सकता है । बिम्ब और प्रतिबिम्ब के रूप मे तो भेद नही होता । यहाँ तो शील और विनय मे भी भेद नही था ।

लछिमनहूँ येह मरमु न जाना । जो कछु चरित रचा भगवाना ॥

## ३८ दशकन्धर मारीच बतकही प्रसङ्ग

दसमुख गयउ जहाँ मारीचा । नाइ माथ स्वारथ रत नीचा ॥३॥

अर्थ : भगवान् ने जो कुछ लीला रची इस रहस्य को लक्ष्मणजी ने भी नही जाना । स्वार्थपरायण और नीच रावण वहाँ गया जहाँ मारीच था और उसको सिर नवाया ।

व्याख्या : यह मर्म प्रभु और भगवती के ही बीच मे रहा । साहश्य ऐसा था कि लक्ष्मणजी भी नही समझ सके कि भगवती बदल गयी । नारद शाप नारि बिरह तुम होब दुखारी । का अभिनय लछिमन के जान जाने से नहीं हो सकता था । लछिमन कन्द मूल लेकर लौटे । देखा कि पहिले की तरह दोनो सरकार बैठे है । जबतक रावण मारीच के पास न पहुँचा तबतक यहाँ से सीताजी हटा दी गयी । लछिमनजी के लौट आने के बाद रावण मारीच के पास पहुँचा । तबतक अपने ही रूप म रहा । अत दशमुख कहते है । अथवा दसो सिर झुकाया । उसके एक प्रणाम मे दस प्रणाम है । नीच का जब स्वार्थ आ पडता है तब ऐसे ही प्रणाम करते हैं । यथा करि बिनती पद गहि दस सीसा । बोला बचन सुनहु जगदीसा ।

नवनि नीच कै अति दुखदाई । जिमि अकुस धनु उरग बिलाई ॥
भय दायक खल कै प्रिय बानी । जिमि अकाल के कुसुम भवानी ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : नीच का झुकना अत्यन्त दुखदायी होता है। जैसे अकुश धनुष साँप और बिल्ली का झुकना। हे भवानी! दुष्ट की मीठी वाणी भय देनेवाली होती है। जैसे बिना ऋतु के फूल।

व्याख्या : नीच का मिलना दुखदायी है। यथा मिलत एक दारुण दुख देही। और नवनि : अति दुखदायी है चाहे दूसरे की प्रेरणा से नमन करे। यथा 'अकुश धनु। चाहे स्वेच्छा से नमन करे। यथा 'उरग बिलाई। भाव यह कि यह प्रणाम मारीच के प्राण लेने के लिए है। यह नीच है। उसका कहना न मानेगा केवल स्वार्थ से प्रणाम मात्र करता है। यथा बान प्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहिं मानेहि नोचा।

खल प्रिय वाणी नही कहते बचन बज्र जेहि सदा पियारा। वे यदि प्रिय वाणी बोलें तो सावधान होना चाहिए। यह प्रिय वाणी प्राण घातक है। कुसुम बडा सुहावना होता है। वह कुसुम वसन्त मे ही फूलता है। यदि अन्य ऋतु मे फूले तो अनिष्ट सूचक है। रावण ने मधुर वाणी से अभिवादन किया। आगे दिखाया जायगा कि उसने अकुश धनु उरग और बिलाई की भाँति आचरण भी किया।

दो करि पूजा मारीच तब, सादर पूछी बात।
कवन हेतु मन ब्यग्र अति, अकसर आयेहु तात ॥२४ १८॥

अर्थ तब मारीच ने उसकी पूजा करके आदर पूर्वक बात पूछी हे तात! आपका मन किस कारण इतना अधिक व्यग्र है और आप अत्यन्त अकेले क्यो आये हैं?

व्याख्या राजा का आगमन है। अत पहिले पूजा की। तब बडे आदर से बात पूछी। सब बातें मधुर भी बोलते हैं। उलटी हैं। मन से अति व्यग्र हैं और अत्यन्त अकेले भी हैं। यथा अति अकेल बन बिपुल कलेसू। राजा का दो चार के साथ रहना भी एकान्त ही समझा जाता है। किसी के साथ न रहना अति अकेल है। मनसा वाचा कर्मणा व्यग्रता दिखलायी। दशरथजी ने विश्वामित्र की पूजा करके तब आने का कारण पूछा। भुसुण्डिजी ने भी गरुडजी से ऐसा ही किया। यही सदाचार है।

दसमुख सकल कथा तेहि आगे। कही सहित अभिमान अभागे ॥
होहु कपट मृग तुम्ह छलकारी। जेहि बिधि हरि आनौ नृपनारी ॥१॥

अर्थ भाग्यहीन रावण ने सारी कथा अभिमान सहित उसके सामने कही : और फिर कहा तुम छल करनेवाला कपट मृग बनो। जिस उपाय से मै उस राजवधू को हर लाऊँ।

व्याख्या दशमुख कहने का भाव यह कि दसो दिशा मे देखता जाता है कि हमे कोई देखता तो नही। चोरी खुलने का डर है। रावण ने किसी से सब कथा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नहीं कहो। सूर्पणखा का नासिका छेदन केवल मारीच से कहा। सो भी भव भजन पद विमुख अभागी ने अभिमान के सहित कहा। यथा सूर्पनखा का घोखे मे नाक कान काटा। खर दूषण ऐसे मूर्ख थे लड़ने गये राम से सो आपस मे ही लड़कर मर गये। अब अकुश देता है। होहु कपट मृग तुम छलकारी। धनु की भांति लक्ष्य स्थिर करता है जेहि बिधि हरि आनौ नृपनारी।

उपाय मे परिवर्तन कर रहा है। बलप्रयोग के साथ स्त्रीहरण का सकल्प छोड़ दिया। स्त्रीहरण करके हठपूर्वक वैर करना यही निश्चय हो गया। कहने लगा कि तुम मायावी हो। कपट मृग बनो। मृग बनकर छल करो। अकुश का काम कर रहा है महा मत्त गजराज कहँ बसकर अकुस खर्व। अब धनुष का लक्ष्य वेध काम करना है जेहि बिधि हरि आनौ नृपनारी। बहिन के नाक कान काटने का यही उत्तर है। अर्थात् वह विधि भी तुम्ही को ठीक करना पडेगा जिसमे लछिमन भी वहाँ से हट जायँ। व्यग्रता के उत्तर मे सकल कथा कही।

तेहि पुनि कहा सुनहु दससीसा। ते नररूप चराचर ईसा॥
तासो तात बयरु नहि कीजै। मारे मरिअ जिआएँ जीजै॥२॥

अर्थ तब मारीच ने कहा हे दशशीश! सुनिये। वे मनुष्यरूप मे चराचर के ईश्वर हैं। हे तात! उनसे वैर न कीजिये। उन्ही के मारने से मरना और उनके जिलाने से जीना होता है।

व्याख्या तेहि पुनि बोलने का मुहावरा है। यथा मैं पुनि निज गुरु सन सुनी। विशेष बात कहने के अर्थ मे पुनि का प्रयोग है। सकल कथा तेहि आगे कही सहित अभिमान' का उत्तर मारीच देता है कि अभिमान जीव से चलता है ईश्वर से नही। तुमने चराचर से वैर किया। यथा तुम सुर असुर चराचर जीते। पर चराचर के स्वामी से वैर न करो।

मारे मरिअ जिआए जीजै उन्हे मारने जिलाने दोनो का अधिकार है सुबाहु को मारना चाहा मार डाला। मुझे भी मार डालते। मै तो उन्ही का जिलाया जीता हूँ। जेहि बिधि हरि आनउ नृपनारी का उत्तर यही है कि नारी का हरण करना और अपने काल को बुलाना एक ही बात है।

मुनि मख राखन गयउ कुमारा। बिनु फर सर रघुपति मोहि मारा॥
सत योजन आएउँ छन माँही। तिन्ह सन बयरु किए भल नाँही॥३॥

अर्थ यही राजकुमार मुनि विश्वामित्र के यज्ञ की रक्षा के लिए गये थे। उस समय श्री रघुनाथजी ने बिना फल का बाण मुझे मारा था। जिससे मैं क्षण भर मे सौ योजन पर आ गिरा। उनसे वैर करने मे भलाई नहीं है।

व्याख्या होहु कपट मृग तुम छलकारी का उत्तर देता है कि मैं उनका बाण नही सह सकता। तब तो कोमल अवस्था थी। अब तो प्रौढ हुए होगे। मैं विघ्न करने गया था। वे रक्षा करने गये थे। फर सहित मारते तो मैं भी मर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जाता। उस बार छोड दिया। इस बार मार ही डालेंगे हम लोगो से लडने बिना सेना के गये थे।

बिनु फर बाण राम तेहि मारा। सत योजन गा सागर पारा। भयानक बाण का वेग है। हम शत योजन फेंकना क्या साधारण बल की बात है। छलकारी मृग क्या बनेंगे ? वहाँ कोई विधि बैठने की नही। एक बाण मे मामला तय है। ऐसे प्रबल पुरुषार्थी के साथ वैर न करो। यद्यपि तुम्हारा भला वैर करने ही से हुआ है। लका वैर से मिली। पुष्पक वैर से मिला। यहाँ तो मृत्यु ही मिलनी है।

भइ मम कीट भृग की नाई। जहँ तहँ मै देखऊँ दोउ भाई॥
जौ नर तात तदपि अति सूरा। तिन्हहि बिरोधि न आइहि पूरा॥४॥

अर्थ मेरी दशा तो भृगी कीडे की सी हो गयी है। जहाँ तहाँ श्रीराम लक्ष्मण दोनो भाइयो को ही देखने लगा और हे तात ! यदि वे मनुष्य हैं तो भी बडे शूरवीर हैं। उनसे बिरोध करने मे पूरा न पडेगा।

व्याख्या भृग से छोटा कीट चारा ओर भृग ही भृग देखता है। उसी भाति मेरी वुद्धि म विकार आगया। अत्यन्त भीत हो गया था। बाण लगने के पहिल दोनो भाइयो को देखा था। वे ही दोना सब जगह दिखाई पडने लगे। मेरा सामथ्य उनके बाण के सामने जाने का नहीं है।

तुष्यतु दुर्जनन्यायेन कहता है मैं तो नर नही मानता। यदि नर भी मान लो तो अतिशूर हैं। सबके विरोध से पूरा पडा। भुजबल बिस्व वस्य करि राखेसि कोउ न स्वतन्त्र। परन्तु इनसे पूरा न पडेगा।

दो जेहि ताडका सुबाहु हति, खडेउ हर कोदड।
खर दूपन तिसिरा बधेउ, मनुज कि अस बरिवड॥२५ १९॥

अर्थ जिसने ताडका और सुबाहु को मारकर शिवजी का धनुप तोड दिया और खर दूपण और त्रिशिरा का वध कर डाला। ऐसा प्रचण्ड वली कही मनुष्य हो सकता है।

व्याख्या ये चारा अमानुप कर्म थे। ताडका वध से मुनि ने चीन्हा। यथा तब मुनि निज नायहि जिय चीन्हो। सुबाहु वध से देव मुनि ने चीन्हा। यथा अस्तुति करहि दव मुनि बृंदा। धनुष भग से तुलसी ने चोन्हा। यथा कोदड भजेउ राम तुलसी जयति बचन उचारहीं। खर दूपण वध से सूपनखा ने चीन्हा। यथा खल वध रत सुर मुनि सुखदाता। अत कहता है मनुज कि अस बरिवड। इस तर्क मे आप भी जान जाइये। बचपन से ही इनके सब अमानुप कर्म है।

मारग जात भयानक भारी। केहि विधि तात ताडका मारी॥
घोर निसाचर बिकट भट समर गनहि नहि काहु।
मारेउ सहित सहाय किमि खल मारीच सुबाहु॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कमठ पीठ पविकूट कठोरा । नृप समाज महँ सिव धनु तोरा ।।
सकल अमानुष कर्म तुम्हारे ।

जाहु भवन कुल कुसल बिचारी । सुनत जरा दीन्हेसि बहु गारी ।।
गुरु जिमि मूढ करसि मम बोधा । कहु जग मोहि समान को योधा ।।१।।

अर्थ अत अपने कुल की कुशल विचारकर आप लौट जाइये। यह सुनकर रावण जल उठा और उसने बहुत सी गालियाँ दी। और कहा अरे मूर्ख ! तू गुरु की तरह मुझे ज्ञान सिखाता है ? बता तो ससार म मेरे समान योद्धा कौन है ?

व्याख्या मारीच ने कहा जो रास्ता तुम पकडना चाहते हो उससे तो कुल का नाश हो जायगा राम रोष पावक अति घोरा। होइहि सलभ सकल कुल तोरा। जो अपराध भगत कर करई। राम रोष पावक सो जरई। भाव यह कि मैं तो जाऊँगा ही नही। तुम भी यह उद्योग छोड दो। पर रावण मन्त्र दृढ किये हुए हैं। इसके विरोध मे सुनना नही चाहता। जबतक सिद्धान्त निश्चय की कोटि मे नही पहुँचता तब तक विरोधी तर्क सुनने की प्रवृत्ति होती है। अत बिगडा आज्ञा भङ्ग भी करता है और मुझे भी बेवकूफ भी बनाता है। सर्प की भाँति रावण पलट गया। अभी प्रणाम किया है। अभी गाली देने लगा। क्षुद्र लोगो की यही दशा है। स्वार्थ सधते न देखकर जल उठा। मार डालता पर काम लेना है। इससे गाली ही दिया। उल्लू गधा आदि मूर्खता द्योतक शब्दो का प्रयोग किया गोस्वामीजी प्रेम की गाली भी नही कहते। यह तो द्वेष मूलक थी। सर्पो की भाँति विष वमन करता है।

तू मूढ है। सरल बात नही समझता। वह मनुजो म बरिवड होगा। पर नर बानर केहि लखे माही। नर मेरा क्या कर सकता है। तुझे सौ योजन फेंक दिया तो इससे क्या हुआ ? कौन सी बडी बात किया ? गुरु बोध कराने का अधिकारी है। मैं महापण्डित और तू महा मूर्ख। तू मुझे बोध देने चला। तुझे यह अधिकार कहाँ से हुआ जो ज्ञान देने चला है।

तब मारीच हृदय अनुमाना । नवहि बिरोधे नहिं कल्याना ।।
शस्त्री मर्मी प्रभु सठ धनी । बैद बंदि कबि भानस गुनी ।।२।।

अर्थ तब मारीच ने हृदय मे अनुमान किया कि शस्त्रधारी, भेद जानने वाला, समर्थ स्वामी, हठी, धनवान, वैद्य, भाट, कवि और रसोइया इन नौ व्यक्तियों से वैर करने मे कुशल नही होता।

व्याख्या अनुमान द्वारा सामान्य से विशेष म अवतरण होता है। नौ के विरोध से कल्याण नही होता। यह भी नव म से हैं। अत इसमे भी विरोध नही करना चाहिए। हृदय मे अनुमान करता है। अपने कल्याण का निर्णय मन मे ही करना चाहिए।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



शस्त्री से विरोध नही करना चाहिए। उसका विश्वास नही कब चोट कर बैठे। नदीना च नखीना च शृगीणा शस्त्रपाणिनाम्। विश्वासो नैव कर्त्तव्य स्त्रीषु राजकुलेषु च। शस्त्र न हो तो भी मर्मी से विरोध न करे। मर्म पर आघात करेगा। यथा नाभी कुण्ड पियूष बस याके। नाथ जियत रावण बल ताके शस्त्री, मर्मी न होने पर भी प्रभु का विरोध नही करना। यथा प्रभुअहि गनिअ न छोट करि। कुछ भी न हो यदि शठ हो जिद्दी हो तो भी बचना चाहिए। वह सब सङ्कट सहकर भी अपकार करेगा। धनी से भी वैर नही करना चाहिए। अर्थस्य पुरुषो दास नार्था दासो हि कस्यचित्। उसे बहुत सहायक मिलेंगे। वैद्य प्राणधनानि च। वैद्य तो प्राण के धन है। इनसे वैर कभी नही करना चाहिए। बदी जहाँ तहाँ अपकीर्ति फैलाते हैं। कविपद के लालित्य से लोग उस पद को स्मरण कर लते है और उसकी अपकीर्ति अमर हो जाती है। रसोइया के हाथ तो सदा प्राण रहता है। अत इनसे वैर करने मे कल्याण नही होता।

उभय भाँति देखा निज मरना। तब ताकेसि रघुनायक सरना ॥
उतरु देत मोहि बधब अभागे। कस न मरो रघुपति सर लागे ॥३॥

अर्थ जब मारीच ने दोना प्रकार से अपना मरण देखा। तब उसने श्रीरघुनाथजी की शरण ताकी। सोचा कि उत्तर देते ही यह अभागा मुझे मार डालेगा। फिर श्रीरघुनाथजी के बाण लगने से ही क्यो न मरूँ।

व्याख्या रामादपि च मर्तव्य मर्तव्य रावणादपि। उभयोर्यदि मर्तव्य वर रामो न रावण। जब राम से भी मरना है और रावण से भी मरना है तो राम के हाथ से मरना ठीक है रावण के हाथ से नही। भगवान् का कथन है जो नर होय चराचर द्रोही। आवै समय सरण तकि मोही। तजि मद मोह कपट छल नाना। करौं सद्य तेहि साधु समाना। सो यह कपट छल न छोड सका। अत साधु समान नही बनाया। पर साधु की गति दे दी। कपट छल सहित शरण जाने से वह दण्ड होता है।

प्रश्न था कहु जग मोहि समान को जोधा। उत्तर तो यही है कि तब चोरी से स्त्री हरण क्यो करते हो? जाओ छीन लाओ। पर यह उत्तर सुनते ही यह अभागा मुझ मार डालगा। अब यह अभागा है। अपने कुल भर का सहार अपनी आँखो देखेगा। मेरा मरण देखना इसके लिए क्या है! तो अभागे के हाथ क्यो मरूँ? यह भवभजन पद विमुख है रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहै सही। सो सही परम गति क्यो न लें।

अस जिय जानि दसानन संगा। चला राम पद प्रेमु अभगा ॥
मन अति हरष जनाव न तेही। आजु देखिहौ परम सनेही ॥४॥

अर्थ हृदय मे वह ऐसा समझकर रावण के साथ चला। श्रीरामजी के चरणो मे उसका अखण्ड प्रेम है। उसके मनम इस बात का अत्यन्त हर्ष है कि आज मैं

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अपने परम स्नेही श्रीरामजी को देखूँगा; किन्तु उसने यह हर्ष रावण को नहीं जनाया।

व्याख्या : गाली खाकर भी चुप देखकर रावण ने समझ लिया कि ठीक हो गया। अब विलाई का कार्य करता है। बिलाई जिस भाँति चूहे को दाब ले जाती है उस भाँति ले चला। दशानन के सङ्ग जा रहा है। किसी ओर से भागकर निकल नहीं सकता। फिर भी रामपद प्रेम अभग है। जाता है रावण के साथ प्रेम राम में है। जिसके साथ जाता है उसका काम करेगा। राक्षस भी अपना वर्ग नहीं छोड़ता। मनुष्य छोड़ देता है। रामके हाथसे मरने की अभिलाषा है। क्योंकि प्रेमी के हाथसे मरने में भी आनन्द है।

प्राणभय से दर्शन नहीं करते थे। अब तो दर्शन करेंगे। अद्भुत प्रेमी हैं। उसे बड़ा हर्ष है। पर उस हर्ष को दबाये हैं। कहीं रावण न जान जाय नहीं तो मुझ पर अविश्वास करके अभी मार देगा। वह जानता है कि प्रभु परम सनेही हैं। सबको मारा मुझे छोड़ दिया।

छं. निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं।
श्री सहित अनुज समेत कृपानिकेत पद मन लाइहौं॥
निर्वान दायक क्रोध जा कर भगति अवसहि बस करी।
निज पानि सर संधानि सो मोहि बधिहि सुखसागर हरी॥

अर्थ : अपने परम प्रियतम को देखकर नेत्रों को सफल करके सुख पाऊँगा। जानकीजी सहित और छोटे भाई लक्ष्मणजी समेत कृपानिधान श्रीरामजी के चरणों में मन लगाऊँगा। जिनका क्रोध भी मोक्ष देनेवाला है और जिनकी भक्ति उन स्वतन्त्र भगवान् को भी वश में करनेवाली है। अहा! वे ही आनन्द के समुद्र श्रीहरि अपने हाथों से बाण सन्धान कर मेरा वध करेंगे।

व्याख्या : प्रियतम नहीं परम प्रीतम : स तु प्राणस्य प्राणाः। होइहैं सुफल आजु मम लोचन। देखि बदन पकंज भवमोचन। उन्हें आँखभर देखूँगा। श्री सहित नहीं देखा था। अनुज समेत तो देखा था। कृपा निकेत हैं। ऐसी कृपा सुनी देखी नहीं गयी कि उनका क्रोध भी कृपा ही है। क्रोध करें तो निर्वाण दें। भगवान् सर्वतन्त्रस्वतन्त्र हैं। पर भक्ति से वश हो जाते हैं : रीझे बस होहिं खीझे देत निज धाम रे। खर दूषण सरकार के हाथ से नहीं मरे फिर भी निर्वाण पाया। सुखसागर के हाथ मरने में भी सुख है। मेरा भाग्य देखो कि मारने के लिए मुझे लक्ष्य बनावेंगे। जिसे मुनि लोग लक्ष्य बनाते हैं। प्रणवो धनु. शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते। अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत् तन्मयो भवेत्। प्रणव धनु है। आत्मा शर है और ब्रह्म लक्ष्य है। सो बाण की भाँति तन्मय होकर सावधानी से लक्ष्यवेध करना चाहिए।

दो. मम पाछें धर धावत, धरे सरासन बान।
फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहौं, धन्य न मो सम आन॥२०.२६॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : धनुष बाण धारण किये मेरे पीछे पीछे पकडने के लिए पृथ्वी पर दौड़ते हुए प्रभु को मैं फिर फिरकर देखूँगा। मेरे समान धन्य दूसरा कोई नही है।

व्याख्या : शरासन बाणधारी मूर्ति ध्येय है। यथा : बन खेलत राम फिरैं मृगया तुलसी छवि सो बरनै किमि कै। जानकीजी का भी यह ध्यान था ' जेहि बिधि कपट कुरग सग धाइ चले श्रीराम। वह छवि अपूर्व है मुनि जेहि ध्यान न पावहि नेति नेति कह बेद। मृग घूम घूमकर शिकारी को देखता है। बडे बडे प्रेमी और क्या करते हैं ? देखन मिस मृग बिहँग तरु फिरै बहारि बहोरि। ऐसा भाग्य किसी का हुआ नही कि जिसके पीछे पीछे रामजी दौडते फिरें।

तेहि बन निकट दसानन गएऊ। तब मारीच कपट मृग भएऊ ॥
अति बिचित्र कछु बरनि न जाई। कनक देह मनि रचित बनाई ॥१॥

अर्थ : जब रावण उस वन के निकट पहुँचा तब मारीच कपट मृग बन गया। वह अत्यन्त ही विचित्र था। कुछ वर्णन नही किया जा सकता। सोने का शरीर मणियो की पच्चीकारी करके बनाया था।

व्याख्या ' आश्रम निकट नही गया। वन निकट गया। आश्रम से निकलकर वन जाना पडता था। यथा ' लछिमन गये बनहि जब लेन मूल फल कन्द। कारण यह कि दशानन है कोई भी पहिचान सकता है। वन का पता सूर्पणखा से लग चुका है। वन के निकट तक दोनो अपने रूप मे गये। वहां पहुँचने पर मारीच कपट मृग हुआ। होहु कपट मृग तुम छलकारी ' का साफल्य। खरदूषण की ओर से पीछे माया हुई। रावण ने माया से ही कार्य प्रारम्भ किया।

बनने की तारीफ तो इसमे है कि भेद लखाई न पडे। परन्तु माया से बनी हुई वस्तु प्राकृत से सुन्दर होती है। यहां प्राकृत मृग भगवती का चित्त आकर्पण न कर सकेगा। वन मे मृग फिरा ही करते हैं। अत अवर्णनीय रूप अति विचित्र धारण किया। मृग पीले होते हैं। अत कनकदेह बनाया। दांत श्वेत, खुर सीग कृष्ण, जिह्वा लाल। अत हीरा नीलमणि माणिक्य के बनाये। जड मे चेतन की भांति लचकने की शक्ति है। अत' अति विचित्र कहा माया वराह भी अति विचित्र था : नील महीधर सिखर सम देखि बिसाल बराह।

## ३९. माया सीताहरण प्रसंग

सीता परम रुचिर मृग देखा। अंग अंग सुमनोहर बेषा ॥
सुनहु देव रघुबीर कृपाला। येहि मृग कर अति सुंदर छाला ॥२॥

अर्थ : सीताजी ने उस परम सुन्दर हिरन को देखा। जिसके अंग अग की छटा अत्यन्त मनोहर थी। वे बोली हे देव ! हे कृपालु रघुबीर ! सुनिये। इस मृग की छाल बहुत सुन्दर है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या सूर्पणखा रुचिर रूप धरि प्रभु पहँ आई। पर काम न चला दोनों भाइयो ने प्रत्याख्यान किया। अत परम रुचिर मृग बना। सीताजी परम रुचिर मृग देखकर ही मोहित हो सकती हैं। सीताजी ने मृग रूप देखा। पर दोनों भाइयो ने मारीच रूप देखा। दोनो भाई कथा कहने सुनने मे लगे हैं। अत पहिले न देखा। यथा बैठे हैं राम लखन अरु सीता। पंचवटी वर पर्णकुटी तर कहैं कछु कथा पुनीता। एक एक अंग सुष्ठु मनोहर है। जहाँ जाय मन तहँइ लुभाई।

दिवि क्रीडाविजिगीषा के अर्थ मे आता है। उसी का देव शब्द बनता है। सरकार कौतुकी हैं। शिकारी है। अत देव शब्द सम्बोधन दिया। अथवा देव हैं राजा हैं। राजा रत्नभुक् होते हैं। यह मृग रत्न है। उनके पास रहने योग्य है। रघुवीर के लिए इसके वध मे मया रखा है। मुझ पर कृपा कीजिये। इसे जीता पकड लीजिये तो पायि पालिवे योग मजु मृग मारेउ मंजुल छाला। गी०

सत्यसध प्रभु बध करि येही। आनहु चर्म कहति बैदेही ॥
तब रघुपति जानत सब कारन। उठे हरषि सुर काज सँवारन ॥३॥

अर्थ जानकीजी ने कहा हे सत्यप्रतिज्ञ प्रभो! इसको मारकर इसका चमडा ला दीजिये। तब श्री रघुनाथजी मारीच के कपट मृग बनने का सब कारण जानते हुए देवताओं का कार्य बनाने के लिए हर्षित होकर उठे।

व्याख्या आप सत्यसन्ध है। आप का निशाना खाली नही जा सकता है और समर्थ हैं। मृग पर अत्यन्त मोहित हैं। अत उपर्युक्त विशेषण देती हैं। यदि जीता न पकडा जाय तो इसे मारकर चमडा ल आइये। शोभा तो इसके चर्म मे ही है। यदि आप प्रतिज्ञा कर लें तो अवश्य लावेंगे।

सब कारण जानते हैं। रावण का भेजा मारीच आगया। इसीलिए इसका वध नही किया था। समुद्र पार फेंक दिया था। इसी के द्वारा सब कार्य देवताओ का सुधरेगा। उठे हरषि जिस कार्य के लिए चौदह वर्ष वनवास स्वीकार किया वह उपस्थित हो गया। प्रतिज्ञा पूरी होने का लक्षण देखकर उठे हरषि। क्योकि सुर काज सँवारना है।

मृग बिलोकि कटि परिकर बाँधा। करतल चाप रुचिर सर साँधा ॥
प्रभु लछिमनहि कहा समुझाई। फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई ॥४॥

अर्थ हिरन को देखकर श्रीरामजी ने कमर मे फेंटा बाँधा और हाथ मे धनुष लकर उस पर सुन्दर बाण चढाया। फिर प्रभु ने लक्ष्मणजी को समझाकर कहा। हे भाई! वन म बहुत से राक्षस फिरते हैं।

व्याख्या पकडने के लिए दौडना है। अत कमर कसा। परम रुचिर मृग है। इसलिए शर भी रुचिर है। छिपाकर सन्धान करते हैं। इसलिए करतल कहा। दृष्टि बराबर मृग पर ही रही। कही निकल न जाय। तुमसे खल मृग खोजन फिरही। पूरी तैयारी करके सीताजी की रखवारी का बन्दोवस्त करते हैं। स्त्रिया की सदा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रक्षा करनी चाहिए। उन्होने सरकार से कहा। अतः स्वयं उठे। लक्ष्मणजी को न कहा। सीय लखन जेहि बिधि सुख लहही। सोइ रघुबीर कर्हाहि सोई करही।

समझाया कि हम लोग निशाचरो से बद्धवैर हो चुके। मृग ऐसा होता नही। मेरे जाने पर सीताजी पर चोट न हो। हम दोनो भाइयों से डरते है। सामना न करेंगे। चोट सीता पर है और राक्षसों को भी दूर दूर से आते जाते देखता हूँ। सम्भव है कि एक आवे अथवा बहुत से आ जावें। नासिका छेदन का उत्तर स्त्री हरण है। मारीच आगया कोई माया हुआ चाहती है।

सीता केरि करहु रखवारी। बुधि बिबेक बल समय बिचारी ॥
प्रभुहि बिलोकि चला मृग भाजी। धाए रामु सरासन साजी ॥५॥

अर्थ : तुम बुद्धि और विवेक के द्वारा बल और समय का विचार करके सीताजी की रखवारी करना। प्रभु को देखकर मृग भाग चला। श्रीरामचन्द्रजी भी धनुष चढाकर उसके पीछे दौडे।

व्याख्या : रामजी ने कहा कि सीताजी की रक्षा तुम्हे सुपुर्द करता हूँ। स्त्री रक्षा मे चार बात की आवश्यकता होती है। केवल १ बल से ही रक्षा नही होती ? शत्रु छल से भी काम लेते हैं। अत' उसके समझने के लिए २ बुद्धि चाहिए। स्त्रियाँ अविवेकी होती है। अत' ३ विवेक से काम लेना चाहिए। जैसा ४ समय देखे वैसा काम करे। समय के प्रतिकूल कार्य निष्फल होता है।

बँध्यो वैर निशिचरन्ह ते भयो विपुल सहार।
छलही उनको परम बल जानत सब ससार ॥१॥
साहस सनमुख समर को अब ये करिहहि नाँहि।
सोचहि सीता हरन ही को उपाय मन माँहि ॥२॥
दूर दूर ते देखियत निशिचर परैं लखाय।
पै हम दोऊ वधु ढिग सकैं न ये नियराय ॥३॥
होय न प्राकृत हिरन यह मायामय मारीच।
पै कर्तव्य प्रधान मम जाते छीजै नीच ॥४॥
पाइ कुअवसर रचि सकत ये प्रपच बहु भाँति।
ताते तात सजग रहेउ मायावी यह जाति ॥५॥

मारीच के मन मे तो यह बात है : निज परम प्रीतम देखि लोचन सुफल करि सुख पाइहौं। फिर भी साथ मे आने की लाज है। अत वहाँ से हटाने के लिए भाग चला। रामजी धनुष चढाये हुए ही दौडे। पीछा किया। भक्त का मनोरथ पूर्ण हो रहा है : मम पाछे धर धावत धरे सरासन बान। फिरि फिरि प्रभुहि बिलोकिहौं, धन्य न मो सम आन।

निगम नेति सिव ध्यान न पावा। मायामृग पाछे सोइ धावा ॥
कबहुँ निकट पुनि दूरि पराई। कबहुँक प्रगटै कबहुँ छपाई ॥६॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : वेद जिनके विषय मे नेति नेति कहकर रह जाते हैं और शिवजी भी जिन्हे ध्यान मे नही पाते। वे ही श्रीरामजी माया से बने हुए मृग के पीछे दौड़ रहे हैं। वह कभी निकट आ जाता है और फिर दूर भाग जाता है। कभी प्रकट हो जाता है और कभी छिप जाता है।

व्याख्या : सरकार का अद्भुत माधुर्य है। वेद वाणी से न पा सके। नेति नेति जेहि वेद निरूपा। योगी शिव ध्यान मे न पा सके : जो हर हिय नयनन्हि कबहुँ निरखे नही अघाय। ये लोग जिसके पाने के लिए पीछे दौड़ते है। आज वह मायामृग के पीछे दौड़ा। यह सरकार की नरलीला है। उमा करत रघुपति नर लीला।

मारीच मृग दूर ले जाने का प्रयत्न कर रहा है। यदि बहुत दूर चला जाय तो शिकारी हताश होकर फिर जाय। इसलिए निकट भी आ जाता है। निकट ही बना रहे तो पकड़ा जाय। इसलिए दूर भागता है। अलक्षित रहे तो फिर शिकारी निराश हो लौट जाय। इसलिए प्रकट हो जाता है और लक्षित रहे तो मारा जाय। इसलिए छिप भी जाता है।

प्रगटत दुरत करत छल भूरी। येहि बिधि प्रभुहि गयेउ लै दूरी॥
तब तकि राम कठिन सर मारा। धरनि परेउ करि घोर पुकारा॥७॥

अर्थ : इस प्रकार प्रकट होता और छिपता हुआ तथा बहुतेरा छल कपट करता हुआ वह प्रभु को दूर ले गया। तब श्रीरामचन्द्रजी ने ताककर कठोर बाण मारा। जिसके लगते ही वह घोर शब्द करके पृथ्वी पर गिर पड़ा।

व्याख्या : अपनी जान भी बँचाता है और शिकारी का साहस भी नहीं छूटने देता। अतः प्रगटत दुरत चला जा रहा है। छल भी खूब करता है। यथा : तुरत कीन्ह नृप सर संधाना। महि मिलि गयउ बिलोकत बाना। यह दूर ले जाने की विधि है। पञ्चवटी से वस्तर : रियासत ले गया। वही मृगवध हुआ है। अब वहाँ के वन मे मृग होते ही नही।

इससे मालूम होता है कि रामजी ने हल्के बाण मारे। जिसमे घायल हो जाय। मरे नही और मैं पकड़ लूँ। इसी से रुचिर शर साधा था। इस भाँति सरकार दूर चले आये। रावण को पूरा मौका देते है। जब देख लिया कि काफी दूर आ गये तब ताककर जिसमे निशाना न चूके और कठिन शर जो प्राण ले ले मारा। राक्षस माया करता है। सरकार उसकी माया को मानते जाते हैं और वह माया उलटी पड़ती जाती है। जानकी हरण दानो को इष्ट है। घोर पुकार : जिसमे शब्द पञ्चवटी तक पहुँचे।

लछिमन कर प्रथमहि लै नामा। पाछे सुमिरेसि मन महुँ रामा॥
प्रान तजत प्रगटेसि निज देहा। सुमिरेसि राम समेत सनेहा॥८॥

अर्थ : उसने पहिले लक्ष्मणजी का नाम लेकर पीछे मन मे श्रीरामजी का

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



स्मरण किया। प्राण त्याग करते समय उसने अपना राक्षसी शरीर प्रकट किया और प्रेम सहित श्रीरामजी का स्मरण किया।

व्याख्या होहु कपट मृग तुम छलकारी कहा है सो छलकारी का साफल्य कहते हैं। लक्ष्मण को पुकारता है। पीछे से राम का स्मरण मुक्ति के लिए करता है। जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमौ मुकुत होइ स्रुति गावा उसने रावण का काम कर दिया।

प्राण त्याग के समय कपट छोडा। देह जो मृग रूप मे छिपा था प्रकट कर दिया। सादर सुमिरन जे नर करही। भव बारिधि गोपद इव तरही। स्नेह के साथ स्मरण ही सादर सुमिरन है।

अतर प्रेमु तासु पहिचाना। मुनि दुर्लभ गति दीन्ह सुजाना ॥९॥

अर्थ सर्वज्ञ श्रीरामजी ने उसके हृदय के प्रेम को पहचानकर उसे वह गति दी जो मुनियो को भी दुर्लभ है।

व्याख्या जगत् म ऐसे प्रेम की पहिचान नही है। विरोधी क्रियाओं के बीच मे अन्त प्रेम सरकार ने पहिचान लिया। सुजान है। उसे मुनिदुर्लभ गति दी। रीझत राम सनेह निसोते। निर्वाण मुनिदुर्लभ है। पर प्रभु ज्ञानशिरोमणि हैं। ऐसी दुर्लभ गति भी उस राक्षस का दे दी। तत्र ताकेसि रघुनायक सरना का साफल्य। सरकार ने भी ताककर बाण मारा कि मोक्ष हो जाय।

दो विपुल सुमन सुर बर्षहि, गावहि प्रभु गुन गाथ।
निज पर दीन्ह असुर कहुँ, दीनबन्धु रघुनाथ ॥२७ २१॥

अर्थ देवता बहुत से फूल बरसा रहे हैं और प्रभु के गुणो की गाथाएँ गा रहे हैं कि श्री रघुनाथजी एसे दीनबन्धु हैं कि उन्होंने असुर को अपना परम पद दे दिया।

व्याख्या खर दूषण वध म हर्षित बर्षहि सुमन सुर बाजहिं गगन निसान। यहाँ निसान नही बजाते। रावण सुन लेगा। हर्षित भी नही हैं। सीता हरण हो रहा है पर उनके कल्याण की सिद्धि प्रारम्भ हो गयी। अत विपुल सुमन बरसा रहे हैं कि ऐसे दीनबन्धु हैं कि इसे अपना पद दिया। यह पक्का असुर था। प्रभु को पहिचानने पर भी इसने पराकाष्ठा की खलता की। मिलत एक दारुण दुख देही। असुर भी दीन हो जाय तो उसे निज पद देते हैं। सुमिरेसि राम समेत सनेहा। उसकी दीनता है।

खल बधि तुरत फिरे रघुबीरा। सोह चाप पर कटि तूनीरा ॥
आरत गिरा सुनी जब सीता। कह लछिमन सन परम सभीता ॥१॥

अर्थ दुष्ट मारीच को मारकर श्री रघुवीर तुरन्त लौट पडे। हाथ म धनुष

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



और कमर में तरकस शोभा दे रहा है। इधर जब सीता ने दुःख भरी वाणी सुनी तो वे बहुत ही भयभीत होकर लक्ष्मणजी से कहने लगी।

व्याख्या : *यद्यपि मुनि दुर्लभ गति मिली पर था वह खल : परहित घृत जिनके मन माखी। जिमि कुठार चंदन आचरनी।* प्रभु ने उसका प्राण छोड़ दिया था। सो उनके साथ इसने ऐसा घात किया। तुरत फिरे। उसके पुकारने पर चिन्ता हुई कि यह शब्द सीता सुनी होगी तो उसका क्या हाल हुआ होगा। इसने छल किया है। लक्ष्मण को सीताजी के पास से हटाने के लिए सीता हरण का उद्योग राक्षसों की ओर से हो रहा है। रघुवीर हैं। एक राक्षस को मारा। औरों का सामना करने के लिए त्वरा है। सीताजी ने जिन शब्दों से सम्बोधन किया है उनका साफल्य कवि ने दिखलाया। देव शब्द का साफल्य लिख चुके हैं। रघुवीर शब्द का साफल्य यहाँ हुआ। निज पद दीन्ह असुर कहँ : से दयाल शब्द सफल हुआ। तब तक राम कठिन सर मारा : से सत्यसन्ध शब्द का सफल हुआ। बिपुल सुमन सुर बर्षहि गावहि प्रभु गुण गाथा : से प्रभु शब्द सफल हुआ। खल वध से ही चाप तूणीर की शोभा है। यथा : तुम से खल मृग खोजत फिरही। काम न होने से हाथ में तीर नहीं है।

सुनी तो लछिमन ने भी पर बुद्धि से काम लिया। समझ गये कि मारीच की चाल है। पर सीताजी सुनकर परम सभीत हो गयी। तन पसेव कदली जिमि कांपी। पति भाव प्रधान है। ऐश्वर्य पर ध्यान नहीं है। जानती हैं कि लछिमन ने भी सुना। सुनकर उन्हें कोई तरद्दुत नहीं हुआ। फिर भी कहती हैं : सुनहु तात कोउ तुमहि पुकारत प्राणनाथ की नाईं। कह्यो लखन हत्यो हिरन कोपि सिय हठि पठयो बरियाईं। गीतावली.

*जाहु बेगि संकट अति भ्राता। लछिमन बिहँसि कहा सुनु माता॥*
*भृकुटि बिलास सृष्टि लय होई। सपनेहु संकट परै कि सोई॥२॥*

अर्थ : तुम शीघ्र जाओ। तुम्हारे बड़े भाई सङ्कट में हैं। लक्ष्मणजी ने हँसकर कहा : हे माता! सुनो : जिनके भौं के इशारे मात्र से सारी सृष्टि और प्रलय हुआ करता है वे रामजी क्या कभी स्वप्न में भी सङ्कट में पड़ सकते हैं?

व्याख्या : सङ्कट है देर करने से प्राणान्त होगा। भ्राता कहने से भाव यह : होहि कुठायँ सुबंधु सहायें। लक्ष्मणजी ने हँस दिया। इतने दिन साथ रही। महिमा न जान पायी। जब से सुमित्राजी ने कहा है : तात तुम्हार मातु बैदेही। तब से माँ कहते हैं : यह लक्ष्मणजी का विवेक है।

सृष्टि के भीतर ही सब जीव हैं। उन्हीं से सङ्कट की सम्भावना है। सो सृष्टि और लय उनके भृकुटि बिलास से होता है। इतनी बड़ी उनकी महिमा है। उन्हें सङ्कट की सम्भावना स्वप्न में भी नहीं। क्योंकि जाग्रत् के संस्कार से ही स्वप्न होता है। सकल सुरासुर जुरहिं जुझारा। रामहि समर न जीतन हारा। अतः लक्ष्मणजी कहते हैं कि यह राक्षस के मरणकाल का चिग्घाड़ है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मरम बचन जब सीता बोला । हरि प्रेरित लछिमन मन डोला ॥
बन दिसि देव सौंपि सब काहू । चले जहाँ रावन ससि राहू ॥३॥

अर्थ इस पर सीताजी जब मर्म वचन कहने लगी तब भगवान् की प्रेरणा से लक्ष्मणजी का मन भी चञ्चल हो उठा। वे श्री सीताजी को वन और दिशाओ आदि के देवताओ को सौंपकर वहाँ चले जहाँ रावणरूपी चन्द्रमा के लिए राहुरूपी श्रीरामचन्द्रजी थे।

व्याख्या हँसने से खराब अर्थ लगा। तब मर्माघात करनेवाला अनुपयुक्त वचन कहा। इस बात को कवि ने अनुपयुक्त पद प्रयोग से दिखलाया सीता बोला अनुपयुक्त प्रयोग सा मालूम पडता है। पर अशुद्ध नही है। बोल धातु रूप है। उसे भूतकाल के अर्थ मे प्रयुक्त किया। ऐसा ही करते है। यथा कह सीता सुनु जती गोसाईं। कह सीता धरि धीरज गाढा। यहाँ केवल धातु रूप भूतकाल के अर्थ मे प्रयुक्त हुआ है। अकार को दीर्घ तुकबन्दी के लिए किया। यथा मन अस रहन कहिहि मोहि रामा। अत बोला का प्रयोग अशुद्ध नही है।

लक्ष्मण का मन मर्म वचन सुनने पर भी न डोलता। पर हरि की प्रेरणा के आगे कुछ नही चलता हरि इच्छा भावी बलवाना।

यह लक्ष्मण का समय विचार है कि वनदेव, वनदेवी, दिशिदेव तथा जितने जीवजन्तु हैं सबको सौंपा। अर्थात् भगवान् विश्व रूप को सौंपा। राहु से चन्द्र प्रभाहीन हो जाते है। इसी भाँति रामजी से रावण भी प्रभाहीन हो गया है। यथा राक्षसान् मर्त्यरूपेण राहुर्मनसिज यथा। प्रभाहीनास्तथा कृत्वा राज्यार्हाणा महीभृताम्।

सून बीच दसकधर देखा। आवा निकट जती के बेषा ॥
जाकें डर सुर असुर डेराही। निसि न नीद दिन अन्न न खाँही ॥४॥

अर्थ · रावण शून्य के बीच देखकर सन्यासी के वेष मे श्री सीताजी के समीप आया। जिसके डर से देवता और दैत्य तक इतना डरते है कि रात को नीद नही आती और दिन म भर पेट अन्न नही खाते।

व्याख्या · वहाँ कोई नही था और चारो ओर रेखा खिंची हुई थी। यथा रामानुज लघु रेख खँचाई। सो नहि अस नाघेहु मनुसाई। तब यती के वेप से निकट आया जिसम विश्वास हो। अर्घ पाद्य भिक्षा देने के लिए शून्य से बाहर आजायें। त्रिदण्डी का रूप धारण किया जिसमे शिखा यज्ञोपवीत रह सके। यती से स्त्री हरण की आशङ्का ही नही होती।

जिसके डर से देवताओ को रात के समय नही लगती। यथा सो किमि सोअ सोच अधिकाई। सोच से क्षुधा भी मारी जाती है। गले अन्न नही उतरता। देवताओ का अन्न अमृत है। सो श्रौत कर्म से बनता है। श्रौतकर्म दिन को ही होता है। अत दिन को अन्न न खाना कहा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सो दससीस स्वान की नाईं । इत उत चितइ चला भड़िहाईं ॥
इमि कुपथ पग देत खगेसा । रह न तेज तन बुधि बल लेसा ॥५॥

अर्थ : वही दस सिरवाला रावण कुत्ते की तरह इधर उधर ताकता हुआ भड़िहाइ चोरी के लिए चला । हे गरुडजी ! इस प्रकार कुमार्ग पर पैर रखते ही शरीर मे तेज तथा बुद्धि एव बल का लेश भी नही रह जाता ।

व्याख्या रावण ऐसा पराक्रमी था और परमेश्वर की देन म भी उसे नव सिर अधिक मिले थे । सो यती का वेप धारण करके चला । यती को स्त्री की इच्छा होना ही कुत्तापन है । ऐसे को वान्ताशी कुत्ता कहते हैं । कही मालिक मकान देख न ले । लक्ष्मण या राम आ न जायँ । इस भय से रावण इधर उधर देखते जैसे भड़िहाई के लिए कुत्ते चलते हैं वैसे चले । खुले घर मे कुछ खाने को चोज पा जाने की लालच से दिहात मे कुत्त भड़िहाई के लिए चलते है । उन्हे डर लगा रहता है कि कही घर का मालिक न आजाय । नही तो बिना मारे नही छोडेगा ।

स्वान कहकर तेज नाश कहा । इत उत चितइ चला से बल का नाश कहा । भड़िहाई से बुद्धि का नाश कहा ।

नाना बिधि कहि कथा सुहाई । राजनीति भय प्रीति देखाई ॥
कह सीता सुनु जती गोसाईं । बोलेहु बचन दुष्ट की नाईं ॥६॥

अर्थ रावण ने अनेको प्रकार की सुहावनी कथाएँ रचकर सुनायी सीताजी को राजनीति भय और प्रेम दिखलाया । सीताजी ने कहा हे यति गोसाईं ! तुमने तो दुष्ट की तरह वचन कहे ।

व्याख्या सन्यासी को उपदेश का अधिकार इन्द्र और अहिल्या की कथा कहा । राजा का रत्नभुक् होना कहा । भगवती को स्त्री रत्न कहा । राजा के अपमान करनेवाले को घोर दण्ड होता है । तुम महल मे रहने योग्य हो । मैं बहुत दिन से प्रीति करता हूँ ।

सीताजी की ओर से सभ्यता की पराकाष्ठा है । यती को साक्षात् दुष्ट नही कहती । दुष्ट की नाईं कहती हैं । वेप के अनुकूल वचन नही हैं । मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यद् दुरात्मनाम् ।

तब रावन निज रूप देखावा । भई सभय जब नामु सुनावा ॥
कह सीता धरि धीरजु गाढा । आइ गएउ प्रभु रहु खल ठाढा ॥७॥

अर्थ जब रावण ने अपना असली रूप दिखलाया और जब नाम सुनाया तब तो सीताजी भयभीत हो गयी । उन्होने गहरा धीरज धरकर कहा अरे दुष्ट ! खडा तो रह ! प्रभु आगये ।

व्याख्या मैं यती नही हूँ इस बात के कहने के बदल अपना स्वरूप दिखलाया । अत उसके नाम से भय होता था । यथा कीधौ स्रवण सुनेसि नहि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मोही। नाम सुनकर सीताजी डरी कि इससे तो वैर बँधा हुआ है। इसके बहिन की नाक काटी गयी है। यह वैर चुकाने आया है। अत समीत हुईं।

ऐसी सभीत हुईं कि बहुत बडा धीरज धारण करके बोलने म समर्थ हुईं। सीताजी ने पहिला प्रयत्न उसके भगाने का किया कि प्रभु का आना सुनकर भाग जायगा। अपना स्वरूप धारण करने पर खल कहती हैं। जानती हैं कि दोनो सरकारो के न रहने पर इसे आने का साहस हुआ है।

जिमि हरिबधुहि छुद्र सस चाहा। भएसि कालबस निसिचर नाहा ॥
सुनत बचन दससीस रिसाना। मन महुँ चरन बंदि सुख माना ॥८॥

अर्थ जैसे सिंह की स्त्री को क्षुद्र खरगोश चाहे वैसे ही अरे राक्षसराज! तू काल के वश हुआ है। यह वचन सुनकर रावण लज्जित हो गया। पर मन म उसने सीताजी के चरणो की वन्दना करके सुख माना।

व्याख्या को प्रभु सग मोहि चितवन हारा। सिंह बधुहि जिमि ससक सियारा। मै स्वय तेरा सहार करने मे समर्थ हूँ। शश को सिंह वधू की चाह होना ही उसके कालवश होने का चिह्न है। नही तो सिंहवधू की कामना कैसे करेगा।

उसने अपना स्वरूप दिखाया। नाम सुनाया वश मे लाने के लिए। यदि जानता कि इस भाँति फटकारा जायगा तो नाम न कहता। नाम सुनकर भी उसे शश कह रही है। अपने को सिंहवधू कहती हैं। इस तेजस्विता पर लज्जित हो गया।

भगवती का उपासक है एहि के हृदय बस जानकी, जानकी उर मम बास है। भगवती के ध्यान से ही अजेय है। काटत सिर होइहि बिकल छूट जाइहि तव ध्यान। तब रावणहि हृदय महँ मरिहहि राम सुजान। जगदम्बा के उचित क्रोध पर मन मे सुख हुआ।

दो क्रोधवत तब रावन, लीन्हिसि रथ बैठाइ।
चला गगनपथ आतुर, भयँ रथ हाँकि न जाइ ॥२८ २२॥

अर्थ फिर क्रोध म आकर रावण ने सीताजी को रथ मे बिठा लिया और वह बडी उतावली के साथ आकाश मार्ग से चला। किन्तु डर के मारे उससे रथ हाँका नही जाता था।

व्याख्या माया से रथ उपस्थित हो गया। उस पर केश पकडकर सीताजी को बिठा लिया और गगन पथ से चला जहाँ मनुष्य की गति नही। भय से हाथ पैर भारी हो गये कि कहीं राम लक्ष्मण आ न जायँ। रथ हाँकते नही बनता। पर रावण का रूप देखते ही वनदेवी वनदेव तथा भूत मात्र भयभीत हो गये। अत वे भी रक्षा नही कर सके।

हा जगदेक बीर रघुराया। केहि अपराध बिसारेहु दाया ॥
आरति हरन सरन सुखदायक। हा रघुकुल सरोज दिननायक ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : हा जगत् के अद्वितीय वीर श्रीरघुनाथजी। आपने किस अपराध से मुझ पर दया भुला दी। हे दु.खो के हरनेवाले। हे शरणागत को सुख देनेवाले। हा रघुकुलरूपी कमल के सूर्य।

व्याख्या : जोर से चिल्लाती है कि सरकार तक शब्द पहुँचे। जगदेक वीर यथा : तुला पिनाक साहु नृप परिजन भट बटोरि सबके वल जोखे। परसुराम से वीर सिरोमनि क्षनमँह भये खेत के से धोखे। रघुराया सिव अज पूज्य चरन रघुराई। रघुकुल की प्रतिष्ठा की रक्षा इन्ही से है। विरह का प्रलाप है। प्रभु को पता भी नही। फिर भी मानो जानकर दया विसरा दिया। ऐसा उपालम्भ करती है। भर्ता को आज्ञा दी है यह अपराध अवश्य है सत्यसन्ध प्रभु बध कर एही। आनहु चर्म कहति वैदेही। पर यह ऐसा अपराध नही जिससे दया विस्मरण हो जाय। आप की तो दया विस्मरण होती ही नही।

आरति हरण से अपना आर्त्त होना कहा . जपहि नाम जन आरत भारी। मिटहि कुसक्ट होहि सुखारी। शरण सुखदायक से अपना शरण होना कहा। स्त्री को पति ही शरण है। आप शरण सुखदायक हैं मैं दु खी हूँ। आप दिननायक हैं : मैं रघुकुल की ही कमलिनी हूँ।

हा लछिमन तुम्हार नहि दोसा। सो फलु पायेउँ कीन्हेउँ रोसा॥
बिबिध बिलाप करति वैदेही। भूरि कृपा प्रभु दूरि सनेही॥२॥

अर्थ : हा लक्ष्मण तुम्हारा दोष नही है। मैने क्रोध किया उसका फल पाया। हा। प्रभु की कृपा तो बहुत हैं। परन्तु स्नेही प्रभु बहुत दूर रह गये हैं। श्रीजानकीजी वहुत प्रकार से विलाप कर रही हैं।

व्याख्या : अव देवर को स्मरण करती हैं। लक्ष्मण के हटाने का मै ही कारण हुई। मैं लक्ष्मण का दोष समझती थी। सो उनका दोष नही था। दोष हमारा था जो निर्दोष पर क्रोध किया। उसका फल पाया। प्रभु का वियोग हुआ। लक्ष्मण ऐसे देवर क्या रोष योग्य हैं।

कवि ससार की गति दिखलाते हैं कि वैदेही विविध विलाप करती है और कहती हैं कि प्रभु समर्थ हैं। कृपा भी बहुत है। स्नेह भी हैं। इसके हाथ से छूटने का सभी योग है। पर दूर हैं। मेरे शब्द उन तक नही पहुँचते।

बिपति मोर को प्रभुहि सुनावा। पुरोडास चह रासभ खावा॥
सीता कै बिलाप सुनि भारी। भए चराचर जीव दुखारी॥३॥

अर्थ : प्रभु को मेरी यह विपत्ति कौन सुनावे। पुरोडाश को गदहा खाना चाहता है। सीताजी का भारी विलाप सुनकर जड चेतन सभी जीव दु खी हो गये।

व्याख्या : कोई ऐसा नही जो मेरी विपत्ति प्रभु को सुनावे। किसी ने हरण करते नही देखा। न ले जाते कोई देख रहा है। फिर हमारी विपत्ति उन्हे कौन सुनावेगा ? जल मे डूब जाने या हिंसक जन्तु के खा जाने का भ्रम हो सकता है :

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पुरोडाश चावल की टिकिया यज्ञाग्नि मे पकायी जाती है। उसे यज्ञ के बाहर के लोग नही प्राप्त कर सकते। दूर्वाकन्दनिकन्दन का उससे कौन सम्बन्ध।

विलाप मे इतनी करुणा थी कि स्थावर जङ्गम जीव दु खी हो गये। द्रवहि बचन सुनि कुलिस कठोरा। भाव यह कि वनदेव वनदेवी लोकपाल सब दु खी है। पर किसी को सामर्थ्य नही कि हिल सके।

गीधराज सुनि आरत बानी। रघुकुल तिलक नारि पहिचानी॥
अधम निसाचर लीन्हे जाई। जिमि मलेच्छ बस कपिला गाई॥४॥

अर्थ गीधराज जटायु ने सीताजी की दु ख भरी वाणी सुनकर पहिचान लिया कि ये रघुकुल तिलक श्रीरामचन्द्रजी की पत्नी हैं। नीच राक्षस इनको लिये जा रहा है जैसे कपिला गाय म्लच्छ के पाले पड गयी हो।

व्याख्या पर गीधराज ऐसे नही है। अत इनका सुनना पृथक् लिखते है। आर्त्त के गीधराज सहायक हैं। तिस पर ' हा जगदेक वीर रघुराया से समझ लिया कि ये रघुकुल तिलक की स्त्री हैं और मेरी रघुकुल से मैत्री है।

अधम निशाचर चोरी से लिये जा रहा है। कपिला गाय बडी सीधी होती है। म्लच्छ गोभक्षक होते हैं। उनसे गाय का छुडाना सबका परम धर्म है। ऐसे प्रयत्न में प्राण की आहुति देना ही प्राप्त है। खर दूषण भी निशाचर थे। पर अधम नही थे। लडकर सीताजी को लिया चाहते थे। यह अधम है।

सीते पुत्रि करसि जनि त्रासा। करिहौ जातुधान कर नासा॥
धावा क्रोधवत खग कैसे। छूटै पवि पर्वत कहूँ जैसे॥५॥

अर्थ हे सीते पुत्रि ! भय मत कर। मै इस राक्षस का नाश करूँगा। वह पक्षी क्रोध मे भरकर कैसे दौडा जैसे पर्वत की ओर वज्र छूटता हो।

व्याख्या महाराज दशरथ का मित्र होने से वृद्ध होने से पुत्रि कहता है। अभय देता है। मैं मौजूद हूँ। मैं यातुधान का नाश करूँगा। सीताजी को ढाढस बँधाया और रावण को सचेत किया।

नीचे से ऊपर जा रहा है। वेग ऐसा है कि मालूम हाता है कि ऊपर से नीचे टूट रहा है। वज्र से ही पर्वत क पक्ष कटे है। पर्वत पर प्रहार करनेवाला वज्र ही है। सो गीधराज वज्र की भाँति रावणरूपी पर्वत आ रहे हैं।

रे रे दुष्ट ठाढ किन होई। निर्भय चलेसि न जानेहि मोही॥
आवत देखि कृतात समाना। फिरि दसकधर कर अनुमाना॥६॥

अर्थ . रे रे दुष्ट ! खडा क्यो नही हाता ? निडर हाकर चल दिया। मुझे तूने नही जाना। उसको यमराज के समान आता हुआ देखकर रावण घूमकर मन मे अनुमान करने लगा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : रावण निकला चला ही जा रहा है। अतः खड़ा होने के लिए ललकारा। मेरी पहिले ही ललकार : करिहौ जातुधान कर नासा। पर ही खड़ा हो जाना चाहता था। अतः कारण पूछते हैं। तू राम लक्ष्मण के दूर होने से निर्भय जा रहा है। यह तुझे नहीं मालूम कि मैं पहरे पर हूँ। अपना पुरुषार्थ घोषित किया।

रावण ने मुड़कर देखा कि काल की भाँति क्रुद्ध चला आ रहा है। रावण लौट पड़ा कि इसके वेग के सामने रथ का वेग कुछ नहीं है। अनुमान करता है कि यह है कौन? बड़ा भारी है। इतना बड़ा कौन हो सकता है?

की मैंनाक कि खगपति होई। मम बल जान सहित पति सोई ॥
जाना जरठ जटायू एहा। मम कर तीरथ छाँड़िहि देहा ॥७॥

अर्थ : यह या तो मैनाक पर्वत है या पक्षियों का स्वामी गरुड़ है। पर वह तो अपने स्वामी विष्णु सहित मेरे बल को जानता है। रावण ने उसे पहिचान लिया कि यह तो बूढ़ा जटायु है। यह मेरे हाथरूपी तीर्थ में शरीर छोड़ेगा।

व्याख्या : पर्वत है पर उड़ रहा है तो यह मैनाक है और कोई पर्वत तो उड़ नहीं सकते। निकट आने पर चोंच आदि दिखायी पड़े तब कहता है कि गरुड़ है पर अनुमान से तो यही सिद्ध है कि गरुड़ नहीं हो सकता। क्योंकि विष्णु और गरुड़ दोनों मेरे बल को जानते हैं : साहिब महेस सदा संकत रमेस मोहि।

जब और निकट आया तो उसके मुँह से निकल पड़ा कि यह तो बूढ़ा जटायु है। इनकी जवानी सत्ययुग में थी। यथा : हम दोउ बंधु प्रथम तरुनाई। त्रेता ब्रह्म मनुज तन धरिहि। बूढा कहने का भाव कि अब इसमें बल नहीं है। वृद्धावस्था से दुःखी होकर शरीर छोड़ने के लिए मेरे पास चला आ रहा है। मेरे कररूपी तीर्थ मे शरीर विसर्जन करेगा।

सुनत गीध क्रोधातुर धावा। कह सुनु रावण मोर सिखावा ॥
तजि जानकिहि कुसल गृह जाहू। नाहि तो अस होइहि बहुबाहू ॥८॥

अर्थ : यह सुनकर गीध क्रोध में भरकर बड़े वेग से दौड़ा और बोला : रावण! मेरा सिखावन सुन। जानकीजी को छोड़कर कुशल पूर्वक अपने घर चला जा। नहीं तो हे बहुत भुजाओंवाले! ऐसा होगा कि :

व्याख्या : क्रुद्ध तो पहिले ही थे। पर इसका उत्तर ऐसा था कि गीधराज क्रोधातुर हो गये। पर वृद्ध कहा था इससे शिक्षा देने के लिए ठहर गये और कहा कि मेरी सीख सुन। भाव यह कि तू किसी की सीख नहीं सुनता। यदि पुलस्त्य और विश्रवा की सीख सुनता तो ऐसे कर्म में हाथ ही न लगाता। मैं परलोक की शिक्षा नहीं देता हूँ। इस लोक की ही शिक्षा देता हूँ : दोनों दोनों को पहिचान गये।

पहिले मैं ही तुम्हे कुशल से घर न जाने दूँगा। पर तुझे बहुत वाँह है। कदाचित् मेरे हाथ से बँचा भी तो :

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



राम रोष पावक अति घोरा। होइहि सकल सलभ कुल तोरा ॥
उतरु न देत दसानन जोधा। तबहिं गीध धावा करि क्रोधा ॥९॥

अर्थ : श्रीरामजी के क्रोधरूपी अत्यन्त भयानक अग्नि मे तेरा सारा वंश फनगा होकर भस्म हो जायगा। योद्धा रावण कुछ उत्तर नही देता। तब गीध क्रोध करके दौडा।

व्याख्या : जो घर कुशल सहित पहुँचे तो कुल सहित नाश होगा। रामजी का रोष घोर पावक है। पावक तुम्हारे कुल को भस्म कर देगा : यद्यपि लघुता राम कहँ तोहि वधे बड दोष। तदपि कठिन दसकठ सुनु क्षत्रि जाति कर रोष। राम रोष अति घोर पावक है। किसी को भी न छोडेगा। जानकी के छोड देने से बच जाओगे।

उत्तर कोई है नही। प्रत्युत्तर मे राम लक्ष्मण के आजाने का भय भी है। रावण योद्धा है। लड़ने को तैयार हो गया। गोधराज ने समझ लिया कि यह न मानेगा तब क्रोध से दौडे।

धरि कच बिरथ कीन्ह महि गिरा। सीतहि राखि गीध पुनि फिरा ॥
चोचन्ह मारि बिदारेसि देही। दंड एक भइ मुरुछा तेही ॥१०॥

अर्थ : उसने रावण को बाल : शिखा पकडकर उसे रथ के नीचे गिरा दिया। रावण पृथ्वी पर गिर पडा। गीध सीताजी को अपने घोसले मे बिठाकर फिर लौटा और चोचो से मार मारकर रावण के शरीर को विदीर्ण कर डाला। इससे उसे एक घडी के लिए मूर्च्छा हो गयी।

व्याख्या : पहिला काम विरथ करना है। अत केश पकडकर पृथ्वी पर नीचे फेंक दिया। चोच से सिवाय केश पकडकर फेंकने के और क्या उपाय था ! जब से रावण अपने को सँभाले तब तक अपने घोसले मे सीताजी को रखकर जहाँ रावण था वहाँ गीधराज आये। युद्ध के बीच मे सीताजी के रहने से युद्ध न हो सकेगा : रावण के केश पकडनेवाले गीधराज मन्दोदरी के केश पकडनेवाले हनुमानजी।

चोच के प्रहार भयानक हैं। किसी अस्त्र से नही रुकते। गीधराज पर चोट करता है तो पङ्ख पर रोकते है। गीधराज ने रावण के वज्र जैसे शरीर को विदार डाला। दूसरा वीर मर जाता। पर वह प्रसाद से न मरा। एक दण्ड मूच्छित हो गया। गीधराज खडे हैं। मूर्च्छित वीर पर चोट नही करते हैं।

तब सक्रोध निसिचर खिसिआना। काढेसि परम कराल कृपाना ॥
काटेसि पख परा खग धरनी। सुमिरि रामु करि अद्भुत करनी ॥११॥

अर्थ : तब खिसियाये हुए रावण ने क्रोधयुक्त होकर अत्यन्त भयानक तलवार निकाली और उससे जटायु के पख काट डाले। जटायु अद्भुत करणी करके और श्रीरामजी को स्मरण करके पृथ्वी पर गिर पडे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : बल न चलने पर खिसिआया । जिसको वृद्ध समझकर अनादर किया उसी के हाथ से मूर्च्छा हुई । अतः खिसियाया । कराल अस्त्रों से काम न चला तब परम कराल कृपाण निकाला । यह शङ्करदत्त चन्द्रहास कृपाण है । इसके चोट से कोई बचता नही । पख से ही शस्त्र रोकते हैं सो पख ही काटा ।

आकाश में युद्ध होता था । पंख कटने से जटायुजी पृथ्वी पर गिरे । यथा : पंख बिनु खग अति दीना । गिरते समय राम का स्मरण किया मृत्यु समझकर । अद्भुत करणी : ऐसी दुर्दशा रावण की कोई कर न सका था । मुये मरत मरिहैं सकल घरी पहर के बीच । लही न काहू आजुलौं गीधराज की मीच ।

सीतहि जान चढ़ाइ बहोरी । चला उताइल त्रास न थोरी ॥
करति बिलाप जाति नभ सीता । ब्याध बिबस जनु मृगी सभीता ॥१२॥

अर्थ : सीताजी को फिर रथ पर चढाकर रावण बड़ी उतावली के साथ चला । उसे भय कम न था । सीताजी आकाश मे विलाप करती हुई जा रही है । मानो व्याध के वश में पड़ी हुई कोई भयभीत हिरनी हो ।

व्याख्या : पहिले : क्रोधवंत तब रावण लीन्हेसि रथ बैठाई । अब : सीतहि जान चढाई बहोरी । चला । पहिले : चलेउ गगन पथ आतुर । अब : चला उताइल । पहिले : भय रथ हाँकि न जाय । अब : त्रास न थोरी । अभी तो गीध मिला न जाने अब कौन मिले ।

सीताजी का फिर विलाप आरम्भ हुआ । अब आकाश में विलाप हो रहा है । कपिला गौ म्लेच्छ वश होने पर विलाप मात्र करती हैं और मृगी वन्यजन्तु हैं छटपटाती हैं । पर मृगी को छुड़ाने कौन आवे : अब कोई छुड़ाने न आवेगा । जिस दृष्टि से जटायु ने देखा उस दृष्टि से दूसरा कोई देख न सका । इसलिए मृगी की उपमा दी ।

गिरि पर बैठे कपिन्ह निहारी । कहि हरि नामु दीन्ह पट डारी ॥
एहि बिधि सीतहि सो लै गएऊ । बन असोक महु राखत भएऊ ॥१३॥

अर्थ : पर्वत पर बैठे हुए बन्दरों को देखकर सीताजी ने हरिनाम लेकर वस्त्र डाल दिया । इस प्रकार वह सीताजी को ले गया और उन्हे अशोक वन मे जा रक्खा ।

व्याख्या : गिरि ऋष्यमूक पर मन्त्रियों के सहित सुग्रीव विचार कर रहे थे । सीताजी को बड़ी चिन्ता है कि गीधराज भी मारे गये । अब फिर वही प्रश्न उठा : बिपत मोर को प्रभुहि सुनावा । अतः आभूषण बाँधकर सुग्रीव की ओर फेंका और राम राम हा राम ऐसा पुकारा । भाव यह कि मैं राम की हूँ । राम को पट देना । हा राम ! अर्थात् इच्छा के प्रतिकूल यह लिये जाता है । रावण ने व्यग्रता में इस बात का ध्यान न किया ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



एहि विधि अर्थात् बलपूर्वक वह सीताजी को ले गया : रावण का महा अन्याय प्रमाणित हो गया। स्त्री हरण करनेवाला आततायी है। उसके वध मे विचार नही। अशोक वन अति सुरक्षित था। विभीषण के बिना बताये जिसका पता हनुमानजी को न चला। वहाँ ले जाकर उसने सीताजी को रक्खा।

दो. हारि परा खल बहु बिधि, भय अरु प्रीति देखाइ।
तब असोक पादप तर, राखिसि जतनु कराइ॥
जेहि बिधि कपट कुरग सँग, धाइ चले श्रीराम।
सो छबि सीता राखि उर, रटति रहति हरि नाम॥२९.२३॥

अर्थ सीताजी को बहुत प्रकार से भय और प्रीति दिखलाकर जब वह दुष्ट हार गया तब उन्हे यत्न करके अशोक वृक्ष के नीचे रख दिया। जिस प्रकार कपट मृग के साथ श्रीरामजी दौड चले थे उसी छवि को हृदय मे रखकर वे हरिनाम रटती रहती हैं।

व्याख्या दान और भेद के लिए कोई स्थान नही था। अत भय और प्रीति से काम लिया। खल है। खल को पर अकाज मे अधिक पुरुषार्थ हो जाता है। यथा · पर अकाज भट सहसबाहु से। पर यहाँ हारना पडा। पहिले अशोक वन के प्रासाद मे रखना चाहा। पर भगवती वहाँ न रहेगी। वनवास मिला है। अतः अशोक वृक्ष के तले रक्खा और वहाँ भी पहरे मे।

प्रेम ते पीछे तिरीछे प्रियाहि चितै चित दै चले लै चित चोरे।
श्याम शरीर पसेउ लसै हुलसै तुलसी छबि सो मन मोरे॥
लोचन लोल चलै भृकुटी कल काम कमाननि सो तृण तोरे।
राजत राम कुरग के सग निपग कसे धनु से सर जोरे॥

यह विधि कपट कुरग के सग धाय चलने की है। उसी छवि ने चित्त चुराया है। अत उसी छवि को हृदय मे रखकर नाम रटती हैं।

## ४०. रघुवीर विरह वर्णन प्रसङ्ग

रघुपति अनुजहि आवत देखी। बाहिज चिंता कीन्ह बिसेखी॥
जनकसुता परिहरिउ अकेली। आयहु तात बचन मम पेली॥१॥

अर्थ . इधर श्रीरघुनाथजी ने छोटे भाई लक्ष्मणजी को आते देखकर वाह्य रूप मे बहुत चिन्ता की और कहा हे भाई। तुमने जानकीजी को अकेली छोड दिया और मेरा वचन टालकर यहाँ चले आये।

व्याख्या : अनुज को आते देखकर बाहर से विशेष चिन्ता की मुद्रा नाटक के पात्र की भाँति रामजी ने धारण की। पर हृदय से निश्चिन्त थे। व्यग्र होने के कारण अनुज ने सरकार को न देखा। चिन्तावाली बात भी बोले। बाह्य तभी लिखा जाता है जब अन्तर से भेद हो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जनक सुता से भाव यह कि जिसके लिए इतना वडा समारोह हुआ था : देव दनुज धरि मनुज सरीरा,। बिपुल बीर आये रन धीरा। ऐसे स्त्री रत्न को अकेले क्यो छोडा ? अथवा यदि कोई अनिष्ट हुआ तो जनकजी को क्या जवाब देगें ? भोरेहु भरत न पेलिहहि मनसहुँ राम रजाइ। सो तुमने मेरी आज्ञा कैसे हटायी।

निसिचर निकर फिरहिं बन माही। मम मन सीता आस्रम नाही ॥
गहि पद कमल अनुज कर जोरी। कहेउ नाथ कछु मोहि न खोरी ॥२॥

अर्थ : राक्षसो के झुण्ड वन मे फिरते रहते हैं। मेरे मन मे ऐसा आता है कि सीता आश्रम मे नही हैं। छोटे भाई लक्ष्मणजी ने श्रीरामजी के चरण कमलो को पकडकर हाथ जोडकर कहा : हे नाथ ! मेरा कुछ भी दोप नही है।

व्याख्या : मैने तुम्हे समझा दिया था ' फिरत बिपिन निसिचर बहु भाई। सीता केरि करेहु रखवारी। मारीच ने तुम्हारा नाम लेकर इसीलिए पुकारा कि तुम चले आओ और इसीलिए मैने भी कहा था ' बुद्धि बिबेक बल समय बिचारी। सो तुमने बडी गलती की। अवश्य सीता को या तो राक्षस खा गये या हरण कर ले गये।

लक्ष्मणजी ने चरण पकडा अपराध क्षमापन के लिए। हाथ जोड़ा प्रार्थना करने के लिए। इसमे मेरा थोडा भी अपराध नहीं। सब अपराध सीताजी का है ऐसा ध्वनि से लक्षित कराते है। मुख से अपराध नही कहते। न वह मर्म वचन कहते है जो सीताजी बोल बैठी थी।

अनुज समेत गए प्रभु तहवाँ। गोदावरि तट आस्रम जहवाँ ॥
आस्रम देखि जानकी हीना। भए बिकल जस प्राकृत दीना ॥३॥

अर्थ : लक्ष्मणजी सहित प्रभु श्रीरामचन्द्रजी वहाँ गये जहाँ गोदावरी के तट पर उनका आश्रम था। आश्रम को जानकीजी से रहित देखकर श्रीरामजी साधारण मनुष्य की भाँति व्याकुल और दु खी हो गये।

व्याख्या : भाई का उत्तर पाते ही बात समझ लिया फिर उनसे इस विषय मे कुछ न कहा। लक्ष्मणजी भी साथ लौट पडे। सीताजी होती तो आये लिखते। गोदावरी निकट प्रभु रहे पर्णगृह छाइ : आश्रम तो मन्दाकिनी के निकट भी था। अत आश्रम के साथ गोदावरी शब्द दिया।

पहिले ही कहा था . मम मन सीता आस्रम नाही वही बात हुई। जिस इन्द्रिय से जिस वस्तु का भाव ग्रहण होता है उसी से उसके अभाव का भी ग्रहण होता है। ससारिक पुरुष जैसे दीन और विकल होते है वैसे विकल हुए ' मुनि अति विकल मोह मति नाठी। मनि गिरि गई छूटि जनु गाठी।

हा गुन खानि जानकी सीता। रूप सील ब्रत नेम पुनीता ॥
लछिमन समुझाए बहु भाँती। पूछत चले लता तरु पाँती ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : हा गुणों की खानि जानकी ! हा रूप, शील, व्रत और नियमों में पवित्र सीते ! लक्ष्मणजी ने बहुत प्रकार से समझाया। तब श्री रामजी लताओं और वृक्षों की पंक्तियों से पूछते हुए चले।

व्याख्या : जिस भाँति भगवती ने विलाप किया . हा जगदेक वीर रघुराया। उसी भाँति सरकार भी विलाप करते हैं। उन्होने जगदेक वीर कहा। ये गुण खानि कहते हैं। उन्होने रघुराया कहा। ये जानकी सीता कहते हैं। उन्होने : आरति हरन सरन सुख दायक कहा। ये : रूप सील व्रत नेम पुनीता कहते हैं। अनुज दियो भरोसो तौ लौ है सोच खरोसो। सिय समाचार प्रभु जौ लौ न लहे।

लक्ष्मणजी ने समझाया कि सरकार को विलाप शोभा नही देता। उनका पता लगाना चाहिए :

नाथ रोकि मन सोक वस होहु न परम सुजान।
कलुपित मति अति करत नहिं तुमसे ज्ञान निधान ॥
लखि वियोग दुख तजहु प्रभु प्रेमपात्र को नेह।
गीलीहू बाती जरत जव लगि भरो सनेह ॥
तात तजिय यह कृपिण मति आनि हिये उत्साह।
अर्थी जन को अर्थ बिनु होइ न सकै निवाह ॥
नहि दुर्लभ कछु तिनहि जग जिनहि सदा उत्साह।
नहि कोउ वल उत्साह सम गोपद होय अथाह ॥
होत दुखी नहिं कर्म मे उत्साही जन कोय।
निश्चय सीता को मिलन उत्साहहि से होय ॥
तुम कहँ कैसी दीनता तुम त्रिभुवन आधार।
भूलि रहे निज रूप को कीजिय तनिक सँभार ॥
कहँ सीता कहि नाथ जव पूछेउ अति बिलखाय।
सहसा उठि मृगगन दयो दच्छिन दिसा दिखाय ॥
याते दच्छिन दिसि चलिय सीता हेरन हेतु।
चिन्ता कार्य बिनासिनी त्यागहु रघुकुल केतु ॥

सो उनकी वात मान गये तो लता तरु से पूछते चले। उन्मादावस्था कह रहे हैं। जो सुन सकता है वह देख भी सकता है। सीता के विलाप सुनि भारी। भये चराचर जीव दुखारी। यथा . तस्मात् शृण्वन्ति पादपा.। तथा : तस्मात् पश्यन्ति पादपाः। वहाँ लता वृक्ष थे।

हे खग मृग हे मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृगनैनी ॥
खंजन सुक कपोत मृग मीना। मधुप निकर कोकिला प्रबीना ॥५॥
कुंद कली दाड़िम दामिनी। कमल सरद ससि अहि भामिनी ॥
वरुन पास मनोज धनु हंसा। गज केहरि निज सुनत प्रसंसा ॥६॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ · हे पक्षियो ! हे मृगगण ! हे भौंरे की पक्तियो ! तुमने कही मृगनयनी सीता को देखा है ? खञ्जन, तोता, कबूतर, हिरण, मछली, भौंरों का समूह, प्रवीण कोल, कुन्दकली, अनार, बिजली, कमल, शरद का चन्द्रमा और नागिनी, वरुण का पाश, कामदेव का धनुष, हस, गज और सिंह ये सब आज अपनी प्रशसा सुन रहे हैं।

व्याख्या : वहाँ खग मृग और मधुकर थे। खग मृग बृद अनदित रहही। मुखर मधुप गुजत छबि लहही। सो न खग कूजते हैं। न मधुकर गूँजते हैं। न मृग कलोल करते हैं। अत समझा कि ये लोग कुछ जानते हैं। अत उन्ही से पूछते हैं। नाम न जानते हो तो रूप बतलाते हैं मृगनयनी। सरकार मृगलोचनी कहते ही थे। मृगलोचनि तुम भीरु सुभाए।

इस वर्णन मे कोई क्रम नही है। प्रेमोन्माद के कथन मे क्रम निबह भी नही सकता। गोस्वामीजी ने सरकार का नखशिख स्थान स्थान पर वर्णन किया है। भगवती के नखशिख के वर्णन का अधिकार नही है। पुत्र को माँ के नखशिख वर्णन का अधिकार स्वभावत नही है। अत वर्णन नही किया। यहाँ स्वय सरकार विरहावस्था मे नखशिख वर्णन कर रहे हैं। उसे भी कवि ने कितना सँभालकर लिखा। उपमेय का नाम तक नही आने दिया केवल उपमान कह रहे हैं। अठारह उपमाओ मे सब कहा। नेत्र की उपमा खञ्जन से, मृग मीन से, नासिका की शुक से, कण्ठ की कपोत से, केश की मधुप निकर, सर्पिणी और वरुण पाश से, स्वर की कोकिला से, दाँत की कुन्दकली और दाडिम से, वर्ण की दामिनी से, कर पद की कमल से, मुख की शरद शशि से, गति की हस और गज से और कटि की केहरि से उपमा दी जाती है।

इन अठारह की निन्दा होती रही कि ये उपमान सीताजी के सामने कुछ नही हैं। ये जूठी की भाँति सीताजी के अङ्गो के सामने घृणास्पद समझी जाती रही। यथा · सब उपमा कवि रहे जुठारी। केहि पटतरिय बिदेह कुमारी। अब प्रशसा हो रही है कि इनके सामने उपमेय कोई है ही नही।

**श्रीफल कनक कदलि हरषाही। नेकु न संक सकुच मन माही ॥**
**सुनु जानकी तोहि बिनु आजू। हरषे सकल पाइ जनु राजू ॥७॥**

अर्थ . बेल और कनक कदली . एक प्रकार का केला। हर्षित हो रहे हैं। इनके मन मे जरा भी शङ्का और सङ्कोच नही है। हे जानकी ! सुनो। तुम्हारे बिना ये सब आज ऐसे हर्षित हैं मानो राज पा गये हो।

व्याख्या : कुच की उपमा श्रीफल से और कनक केदली की उपमा जघा से दी जाती है। ये अङ्ग आवृत रहते हैं। जो अङ्ग आवृत रहते हैं उनके उपमान को निरावरण देखकर कहते हैं कि इन्हे लज्जा नही है। अत. अनावृत है और शङ्का भी नही है कि कदाचित् जानकीजी आजायँ तो फिर ये फीके पड जायँगे। अथवा इस बात की भी शङ्का नही है कि कोई हरण कर लेगा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



आज तक तेरे रहने से ये नही हरखे। आज इतने हर्षित हैं मानो इन्हे राज मिल गया है राज्य म आभिमानिक सुख बडा भारी है। राज्य तुल्य भोग आमात्यादिक धनियो का भी होता है। पर उन्हे आभिमानिक सुख नही होता। आभिमानिक सुख ही साधारण धर्म है जिससे राज की उपमा दी। क्षत्रियो[1] को तो राज्य प्राप्ति से अधिक प्रिय और कुछ नही होता। अत रामजी उनके हर्ष की उपमा राज्य प्राप्ति के हर्ष से देते है।

किमि सहि जात अनख तोहि पाही। प्रिया बेगि प्रगटसि कस नाही ॥
एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहुँ महा बिरही अति कामी ॥८॥

अर्थ तुमसे यह स्पर्द्धा कैसे सही जाती है? हे प्रिये! तुम शीघ्र ही प्रकट क्यो नही होती? इस प्रकार स्वामी श्रीरामजी सीताजी को खोजते हुए ऐसा विलाप करते हैं जैसे कोई महा विरही और अत्यन्त कामी पुरुष हो।

व्याख्या इनकी ऐंठ तू कैसे सह रही है। इनकी ऐंठ को प्रकट होकर क्यो नही मिटा देती। यहाँ प्रभु भी जानकी को प्रत्यक्ष कल्पना करके प्रलाप कर रहे हैं। मुझसे तो इनकी ऐंठ नही देखी जाती। क्योकि तुझसे स्पर्द्धा रखते हैं। तुझसे कैसे सहा जा रहा है। तू शीघ्र ही प्रकट होकर इनकी ऐंठ मिटा क्यो नही देती।

रावण के ल जाने की विधि कहकर अब सरकार के खोजने और विलाप करने की विधि कहते है। खोजने की विधि पूछत चल लता तरु पाँती। विलाप की विधि किसी उपमान को देखकर उपमेय स्मरण हो उठता है। भाव यह कि विधि ऐसी पकड रखी है जो अति विरही और अति कामी पकडते है।

पूरन काम रामु सुखरासी। मनुज चरित कर अज अबिनासी ॥

## ४१ गीधक्रिया प्रसङ्ग

आगे परा गीधपति देखा। सुमिरत राम चरन जिन्ह रेखा ॥९॥

अर्थ पूर्णकाम, आनन्द की राशि अजन्मा और अविनाशी श्रीरामजी मनुष्यो के से चरित्र कर रहे हैं। आगे जाने पर उन्होने गीधपति जटायु को पडा देखा।

व्याख्या परन्तु सरकार पूर्णकाम है। अत उन्हे कामना नही। यथा कहेहु तात अस मोर प्रणामा। सब प्रकार प्रभु प्ूरण कामा। और सुखराशि हैं। उनका विलाप करना विडम्बना है। मनुज चरित कर रहे हैं। यथा एक बार अतिसै सब चरित किये रघुबीर। जो प्रभु बिपिन फिरत तुम देखा। बधु समेत धरे मुनि बेखा। जासु चरित अवलोकि भवानी। सती सरीर रहिहु बौरानी। नही तो न उनका जन्म होता है और न उनमे विकार आता है। उमा के समझाने के लिए माधुर्य के साथ ही ऐश्वर्य कहा।

---

1 राज्यलाभाद्विना नान्यत् क्षत्रियाणामतिप्रियम्। वि पु ६ ७ १

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इस भाँति जहाँ जटायुजी पडे थे वहाँ पहुँच गये। गीधपति को सामने पडा हुआ देखा। गीधपति ने नही देखा। आसन्नमृत्यु हैं। आँख बन्द है। मानसिक क्रिया मात्र थोडी सी हो रही है। सरकार के चरण के चिह्न ध्वज कुलिश अकुश कज का ध्यान कर रहे हैं। गीध की दृष्टि तीव्र होती है। इन्होने सूक्ष्म रेखाओ को भी देखा था। उन रेखाओ पर मोहित थे। रेखाओ के ध्यान के पृथक् पृथक् माहात्म्य है। यथा : अकुश मन गज वशकारी है। वज्र पाप पहाड का नाश करता है। ध्वजा के ध्यान से परलोक जय होता है। कज भवमोचन है। इससे ताप नष्ट होता है। इत्यादि।

दो. कर सरोज सिर परसेउ, कृपासिन्धु रघुबीर।
निरखि राम छबि धाम मुख, बिगत भई सब पीर ॥३०.२४॥

अर्थ : कृपा सागर श्रीरघुवीर ने अपने कर कमल से उसके सिर का स्पर्श किया। श्रीरामजी का शोभाधाम मुख देखकर उसकी सब पीडा जाती रही।

व्याख्या · कबहुँ सो कर सरोज रघुनायक धरिहउ नाथ सीस मेरे। जेहि कर अभय किये जन आरत वारक बिवस नाम टेरे। अभी तक गीध के घायल होने का कारण नही मालूम। फिर भी दु खी देखकर अस्पृश्य गीध के सिर पर हाथ रक्खा। क्योकि कृपासिन्धु है। रघुवीर हैं। अत. दयावीर भी है। सिर पर हाथ रखते ही आँख खुल गयी। तब मुख छवि देखा। देखते ही पीड़ा मिटी। क्योकि वदन पकज भव मोचन हैं। सब पीर, कालकर्म गुण सुभाव उसके सीस तपत।

तब कह गीध बचन धरि धीरा। सुनसु राम भजन भव भीरा ॥
नाथ दसानन एह गति कीन्ही। तेंहि खल जनक सुता हरि लीन्ही ॥१॥

अर्थ : तब धीरज धरकर गीधराज ने यह वचन कहा : हे जन्म मृत्यु के भय का नाश करनेवाले श्रीरामजी! सुनिये। हे नाथ! रावण ने मेरी यह दशा की है। उसी दुष्ट ने जानकीजी को हर ली है।

व्याख्या : सरकार की मुख छवि देखकर पीर मिटने पर धीर धारण किया। शरीर क्षत विक्षत होने से बोल नही सकते थे। उनको भवभीर दर्शन से मिट गयी। इसलिए भजन भवभीरा कहते हैं। राम नाम का भी उच्चारण हुआ। प्रभु कुछ पूछते नही हैं। पर इन्हे कहने की जल्दी है कि कही सीता की सुधि बिना दिये ही मेरे प्राण न निकल जायँ।

दशानन ने यह गति की। भाव यह है कि उसे दशमुख हैं। यही उसकी पहिचान है : दस सिर ताहि बीस भुजदडा। रावन नाम बीर बरिबडा। रावण का हाल कहते हैं कि वह खल है। उसने जनकसुता का हरण किया। जनक ऋषियो के मान्य हैं और यह ऋषिपुत्र होकर जनकसुता का हरण करता है। अर्थापत्ति से जटायुजी का जीतेजी जानकी को न जाने देना सिद्ध हुआ। गीधराज ने एहसान न

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जताया। भगवती को चिन्ता थी : बिपति मोर को प्रभुहि सुनावा। सो गीधराज ने सुना दिया।

लै दच्छिन दिसि गएउ गोसाईं। विलपति अति कुररी की नाईं॥
दरस लागि प्रभु राखेउँ प्राना। चलन चहत अब कृपानिधाना॥२॥

अर्थ : हे गोसाईं! वह उन्हे लेकर दक्षिण दिशा को गया है। सीताजी कुररी की तरह अत्यन्त विलाप कर रही थी। हे प्रभो! मैंने आपके दर्शन के लिए ही प्राण रोक रक्खे थे। हे कृपानिधान! अब ये चलना चाहते हैं।

व्याख्या : अब खोजने का मार्ग बतलाते हैं। दक्षिण दिशा ले गया। आकाश मार्ग मे विलाप करती जाती थी। इससे कुररी की उपमा दी। कुररी क्रौञ्च पक्षी को कहते है। यह जोडा के बिछोह मे अत्यन्त विलाप करती है। पृथ्वी पर गिरने पर भी जाने की दिशा देख रक्खा था। किसी वस्तु मे अत्यन्त ममता रहने से जल्दी प्राण निकलता नही। मुझे दर्शन की अत्यन्त इच्छा थी। जिसमे सीताजी का समाचार दे सकूँ। क्षत विक्षत होने पर जीने के लिए प्राण रखने की इच्छा आवश्यक है। अथवा गीधराज की मृत्यु और मोक्ष दो वस्तु नही है। किसी वासना के रहने से मोक्ष नही होता। इसलिए गीधराज की मृत्यु नही हुई। अब कहते हैं कि वासना पूरी हो गयी। अतः अब चलना चाहता हूँ। इससे पहिले मैंने चलना नही चाहा : काक्षा मृत्यु की सिद्धि प्राप्त हो गयी। सरकार का हाथ सिर पर है इसलिए कृपानिधान कहा।

राम कहा तनु राखहु ताता। मुख मुसुकाइ कही तेंहि बाता॥
जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमौ मुकुत होइ स्रुति गावा॥३॥

अर्थ : श्रीरामचन्द्रजी ने कहा : हे तात! शरीर को बनाये रखिये। तब उसने मुसकुराते मुँह से यह बात कही : मरते समय जिसका नाम मुख मे आ जाने से महान् पापी भी मुक्त हो जाता है। ऐसा वेद गाते हैं।

व्याख्या : रामजी ने कहा हे तात! आप शरीर रक्खें। यथा :

मेरे जान तात कछू दिन जी जै।
देखिअ आप सुअन सेवा सुख मोहि पितु को सुख दीजै।
दिव्य देह इच्छा जीवन जग विधि मनाइ मँगि लीजै॥
हरिहर सुजस सुनाइ दरस दै लोग कृतारथ कीजै॥

सुनकर गीधराज मुसकुराये कि भला! मै ऐसा अवसर चूक सकता हूँ। यथा : जन्म जन्म मुनि जतन कराही। अत राम कहि आवत नाही। मम लोचन गोचर सोइ आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनहि बनावा। और बोले यथा—

देखि बदन सुनि बचन अमिय तन राम नयन जल भीजे।
बोल्यो बिहँसि बिहँग रघुवर बलि कहौं सुभाव पती जे॥
मेरे मरिबे सम न चारि फल होंहि तौ क्यो न कही जे।
तुलसी प्रभु दियो उतरु मौन ही परी मानो प्रेम सही जे॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सो मम लोचन गोचर आगे। राखौं देह नाथ केहि खाँगे॥
जल भरि नयन कहहिं रघुराई। तात करम निज तें गति पाई॥४॥

अर्थ : वही आप मेरे नेत्रों के विषय होकर सामने खड़े हैं। हे नाथ! अब मैं किस कमी की पूर्ति के लिए देह को रक्खूँ? नेत्रों में जल भरकर श्रीरघुनाथजी कहने लगे : हे तात! आपने अपने श्रेष्ठ कर्मों से दुर्लभ गति पायी।

व्याख्या : गीधराज ने कहा : मरती समय तुम्हारे नाम स्मरण का महा माहात्म्य है। महा पापी भी तर जाता है। पर उस समय तुम्हारे स्मरण की सम्भावना ही नहीं है : प्राणप्रयाणसमये कफवातपित्तैः कण्ठावरोधनविधौ स्मरणं कुतस्ते। मेरा ऐसा सौभाग्य है कि ऐसे समय मे तुम स्वयं मेरे आँखों के सामने हो। अब किस घाटा की पूर्ति के लिए शरीर रक्खूँ।

रघुराई हैं बड़े कृतज्ञ। शरीर छोड़ने का निश्चय सुनकर आँख में आँसू आगया। कहने लगे : तुम जो दुर्लभ गति प्राप्ति कर रहे हो वह तुम्हारे कर्म का फल है।

परहित बस जिन्ह के मन माहीं। तिन्ह कहुँ जग दुर्लभ कछु नाहीं॥
तनु तजि तात जाहु मम धामा। देउँ काह तुम्ह पूरनकामा॥५॥

अर्थ : जिनके मन में दूसरे का हित बसता है उनके लिए जगत् में कुछ भी दुर्लभ नही है। हे तात! शरीर छोड़कर आप मेरे परम धाम में जाओ। मैं आपको क्या दूँ। आप तो पूर्णकाम हैं।

व्याख्या : स्वार्थ तो सबके मन में बसता है। पर जिस महापुरुष के मन में परहित बसे उसके अन्त समय में मेरा आना दुर्लभ नही है। क्योंकि : परहित सरिस धर्म नहि भाई। तुमने परहित के लिए प्राण दिया है। सद्गति तुम्हारे हिस्से की चीज है। गीधराज : राखौं देह नाथ केहि खाँगे कह चुके हैं। अतः प्रभु भी उन्हे पूर्णकाम कह रहे हैं। पूर्णकाम को कोई कुछ दे नही सकता। पूर्णकाम के लिए ही राम धाम है। जहाँ से फिर लौटना नही पड़ता।

दो. [1]सीताहरण तात जनि, कहेहु पिता सन जाइ।
जौं मैं राम त कुल सहित, कहिहि दसानन आइ॥३१.२५॥

अर्थ : हे तात! सीताहरण की बात आप जाकर पिताजी से न कहियेगा। यदि मैं राम हूँ तो दशमुख रावण कुटुम्ब सहित वहाँ जाकर स्वयं ही कहेगा।

व्याख्या : सीताहरण सुनकर पिताजी परलोक में भी दुःखी होंगे। हरण प्राप्ति दोनों साथ ही सुनेंगे तो दुःख न होगा। धर्मात्माओं के सङ्कल्प मात्र से परलोक में माता पिता पुत्र सुहृद उपस्थित हो जाते हैं। सो तुम ऐसे लोक को जा रहे हो

१ यहाँ पर्यायोक्ति अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जहाँ स्मरण मात्र से मित्र उपस्थित होंगे। महाराज दशरथ उपस्थित हो जायँगे और महाराज के स्मरण से आप उपस्थित होंगे। सो यह चर्चा न करना। जटायुजी ने कहा था होइहि सलभ सकल कुल तोरा। उसी को दृढ करते हुए कहते हैं कि शीघ्र ही रावण कुल सहित वहाँ उपस्थित होगा। वह राग द्वेष शून्य देश है। रावणादि भी प्रेम से मिलेंगे। वहीं सब कथा कहेंगे। मेरो सुनियो तात सँदेसो। सीय हरन जनि कहेउ पिता सन होइहैं अधिक अँदेसो। रावरे पुन्य प्रताप अनल महँ अलप दिननि रिपु दहिहै। कुल समेत सुरसभा दसानन समाचार सब कहिहैं।

गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा ॥
स्याम गात बिसाल भुज चारी। अस्तुति करत नयन भरि बारी ॥१॥

अर्थ जटायु ने गीध का देह त्यागकर हरि का रूप धारण किया और बहुत से दिव्य आभूषण और अनूप पीताम्बर पहना। श्याम शरीर है। विशाल चार भुजाएँ है और नेत्रों में जल भरकर वह स्तुति कर रहे हैं।

व्याख्या प्रभु ने कहा तनु तजि तात जाहु मम धामा। उसी का साफल्य दिखला रहे हैं कि जटायु की गीधवाली शरीर छूट गयी और हरिधाम में जाने योग्य शरीर की प्राप्ति हुई। वह देह स्वय हरि के अनुरूप थी। मुकुट अङ्गदादि भूषणो से सुशोभित थी और दिव्य पिताम्बर धारण किये थी। उसका श्याम वर्ण था। विशाल चार भुजाएँ थी हरिलोक निवासियो का रूप भूषण वसनादि हरि के सदृश होता है। भोग और ऐश्वर्य भी वैसा ही होता है। केवल कौस्तुभ मणि विप्रचरण चिह्न नहीं रहता और न उत्पत्ति प्रलय का सामर्थ्य होता है।

दिव्य शरीर प्राप्ति के अनन्तर जटायुजी आँखो म आँसू भरकर स्तुति करने लगे।

छ जय राम रूप अनूप निर्गुन सगुन गुन प्रेरक सही।
दससीस बाहु प्रचड खडन चड सर मडन मही ॥
पाथोद गात सरोज मुख राजीव आयत लोचनं।
नित नौमि राम कृपाल बाहु बिसाल भव भय मोचनं ॥

अर्थ हे रामजी! आपकी जय हो। आपका रूप अनुपम है। आप निर्गुण हैं। सगुण हैं और सत्य ही गुणा के प्रेरक हैं। दस सिरवाले रावण के प्रचण्ड भुजाओ को खण्ड खण्ड करने के लिए प्रचण्ड बाण धारण करनेवाले, पृथ्वी को सुशोभित करनेवाले, सजल मेघ के समान श्याम शरीरवाल कमल के समान मुख और कमल के समान नेत्रवाले, विशाल भुजाओवाले और भवभय से छुडानेवाल कृपालु श्रीरामजी को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या जटायुजी कहते हैं कि आपका राम रूप अनूप है। क्योकि वह सगुण भी है। निर्गुण भी है और वस्तुतस्तु गुण का प्रेरक है। अर्थात् आपके सगुण होने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पर भी निर्गुण रूप अक्षुण्ण ज्यो का त्यो बना हुआ है। निर्गुण होते हुए भी गुणो पर आपका सच्चा आधिपत्य है। आपकी प्रेरणा से घोर तामसी देह छूटकर मुझे यह शुद्ध सात्त्विकी शरीर प्राप्त हुआ है। मैं भविष्य को वर्तमान की भाँति देख रहा हूँ। ये आपके चण्ड बाण दशशीश के प्रचण्ड बाहु के खण्डन करनेवाले हैं और पृथ्वी को रोग विनिर्मुक्त करके शोभा प्रदान करनेवाले हैं। यथा दससीस बिनासन बीस भुजा कृत दूर महामहि भूरि रुजा। आपका सजल जलद नील वर्ण, कमल सा मुख और कमल से ही बडे बडे नेत्र और विशाल भुजाएँ ससार के भय को दूर करनेवाली है। यथा स्याम सरूप सुभाय सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन। निरखि बदन पकज भवमोचन। मामवलोकय पकज लोचन कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन तथा सुमिरत श्री रघुबीर की बाहे। होत सुगम भव उदधि अगम अति कोउ लाँघत कोउ उतरत थाहे। आपसे पृथ्वी की शोभा हो रही है।

लोचन और भुज सबके सब भवमोचन हैं।

| | |
|---|---|
| पाथोद गात भवमोचन | यथा स्यामल गात प्रणत भयमोचन। |
| सरोज मुख भवमोचन | यथा देखि बदन पकज भवमोचन। |
| राजीव लोचन भवमोचन | यथा राजीव बिलोचन भवभय मोचन। |
| बाहु बिसाल भवभय मोचन | यथा सुमिरत श्रीरघुबीर की बाहें। होत सुगम भव उदधि अगम अति कोउ लाँघत कोउ उतरत थाहें॥ |

अत हे कृपाल राम! मैं आपका नित्य नमस्कार करता हूँ।

बलमप्रमेयमनादिमजमव्यक्तमेकमगोचर।
गोविंद गोपर द्वद्वहर बिग्यानघन धरनीधर॥
जे राम मत्र जपत सत अनत जन मन रजन।
नित नौमि राम अकाम प्रिय कामादि खल दल गजन॥

अर्थ आप अपरिमित बलवाले हैं। अनादि, अजन्मा, अव्यक्त, एक अगोचर गोविन्द वेद वाक्यो द्वारा जानने योग्य। इन्द्रियो से अतीत, जन्म मरण, सुख दु ख, हर्ष, शोकादि द्वन्द्वो को हरनेवाले विज्ञान की घनमूर्ति और पृथ्वी के आधार हैं तथा जो सत राम मत्र को जपते हैं उन अनन्त सेवको के मन का आनन्द देनेवाले हैं। उन निष्काम प्रिय तथा काम आदि दुष्टो के दलन करनेवाले श्रीराम जी को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या बलमप्रमेय - स सर्वशक्तिमान् होना कहा। अनादि कहकर पुराण पुरुष होना जनाया। अज कहकर माया से मानुष रूप धारण करना बतलाया। अव्यक्त कहकर मन बुद्धि से परे होना द्योतित किया। एक से एकमेवाद्वितीयम्, नेह नानास्ति किञ्चन रूप को लक्षित किया। अगोचर कहकर इन्द्रियो से परे होना कहा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यथा न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनु शिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि। गोविन्द कहकर औपनिषद पुरुष होना बतलाया। यथा तमौपनिषद पुरुष पृच्छामि। गोपर से विज्ञाता होना कहा। यथा विज्ञातार वा अरे केन विजानीयात्। द्वन्द्वहर से विपत्ति नाशक। विग्यान घन से ब्रह्मरूप और धरनीधर से सर्वाधिष्ठान कहा।

इस भाँति प्रभु के स्वरूप का वर्णन करके मन्त्रराज की महिमा कहते हैं कि अनन्त असख्य सन्तो ने इसी का जप किया है करेंगे और करते हैं और आनन्द को प्राप्त होते हैं। यथा बरन विलोचन जनजिअ जोऊ।

जटायुजी कहते है कि मैं ऐसे राम की नित्य वन्दना करता हूँ। जिसे अकाम प्रिय हैं और जो अकाम को प्रिय है। क्योकि कामादि खल दल के नाश करनेवाले वे ही हैं। यथा तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना। जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि भाथा।

जेहि स्रुति निरजन ब्रह्म व्यापक बिरज अज कहि गावही।
करि ध्यान ग्यान बिराग योग अनेक मुनि जेहि पावही॥
सो प्रगट करुनाकद सोभा बृद अग जग मोहई।
मम हृदय पकज भृग अग अनग बहु छबि सोहई॥

अर्थ जिनको श्रुतियाँ माया से परे ब्रह्म व्यापक निर्विकार और जन्मरहित कहकर गान करती है। मुनि जिन्हे ध्यान, ज्ञान वैराग्य और योग आदि अनेक साधन करके पाते हैं। वे ही करुणाकन्द शोभा के समूह स्वयं प्रकट होकर जड चेतन समस्त जगत् को मोहित कर रहे हैं। वे ही मेरे हृदयकमल के भ्रमर रूप हैं और उनके अग अग मे बहुत से कामदेवा की छवि शोभा पा रही है।

व्याख्या श्रुति कहती है कि रामजी निरञ्जन है। अति सूक्ष्म होने से आकाश की भाँति निर्लेप हैं। ब्रह्म है। सबसे बडे हैं। व्यापक है। देश काल दोनो मे व्याप्त है। यथा देस काल दिसि बिदिसहु माँही। कहहु सो कहाँ जहाँ प्रभु नाँही। बिरज से अर्थात् प्रकृति के पार हैं। अत अज हैं। किसी भाँति परिछिन्न होने योग्य नही हैं। ध्यान, ज्ञान, विराग से अर्थात् काण्डत्रय की सहायता से योग द्वारा मुनि जिसे प्राप्त करते हैं। यथा ज्ञान कर्म च भक्तिश्च नान्योपायोऽस्ति भूतल। दूसरा उपाय कोई नही है। अब सुयोग कहते हैं कि वही नयन विषय हो रहे है। कारण यह है कि करुणाकन्द हैं। इस समय करुणा की वर्षा हो रही है। रामावतार ही करुणावतार है। इससे और भी सुभीता है। भयानक रूप से प्रकट होते तो लोग घबराते। यहाँ तो सुन्दरता से ससार को मोहित कर रहे हैं। जटायुजी कहते हैं कि कहाँ तक करुणा कही जाय। मेरे हृदय कमल के भृङ्ग हो रहे हैं। अङ्ग अङ्ग पर अनेक कामोकी शोभा हो रही है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जो अगम सुगम सुभाव निर्मल असम सम सीतल सदा।
पश्यन्ति जं जोगी जतन करि करत मन गो बस सदा॥
सो राम रमा निवास सतत दास बस त्रिभुवन धनी।
मम उर बसउ सो समन संसृति जासु कीरति पावनी॥

अर्थ : जो अगम और सुगम हैं। निर्मल स्वभाव हैं। विषम और सम हैं तथा सदा शीतल हैं। मन और इन्द्रियों को सदा वश में करते हुए योगीजन बहुत साधन करने पर जिन्हें देख पाते हैं। वे तीनों लोकों के स्वामी रमानिवास श्रीरामजी निरन्तर अपने दासों के वश में रहते हैं। वे ही मेरे हृदय में निवास करें। जिनकी पवित्र कीर्ति आवागमन को मिटानेवाली है।

व्याख्या : जो अगम हैं और सुगम भी हैं। यथा मुनि जेहि ध्यान न पावहिं नेति नेति कह वेद। सो अज प्रेम भगति बस कौसल्या के गोद। जिसका स्वभाव निर्मल है। यथा : रामहि मातु वचन सब भाये। जिमि सुरसरि गत सलिल सोहाये। जो सम भी हैं। विषम भी हैं। यथा : जद्यपि सम नहिं राग न रोषू। गहइ न पाप पुण्य गुन दोषू। तदपि करइ सम बिषम विहारा। भक्त अभक्त हृदय अनुसारा। सदा शीतल हैं। यथा : सिसुपन ते पितु मातु बंधु गुरु सेवक सचिव सखाउ। कहत राम विधु बदन रिसौ हे सपनेहु लख्यौ न काउ। वह मासचक्षु से नहीं देखे जा सकते। उनके लिए योग दृष्टि तथा शास्त्र दृष्टि चाहिए। यथा : तदीक्षणस्य स्वाध्यायचक्षुर्योगस्तथा परम्। न मांसचक्षुषा द्रष्टु ब्रह्मभूतः स शक्यते। वि पु और योग दृष्टि के लिए चित्तवृत्ति का निरोध सदा चाहिए। दास पर वशता कहते हैं।

ऐसेउ प्रभु सेवक बस अहई। भगति हेतु लीला तनु गहई॥
जग पावन कीरति बिस्तरिहहि। गाइ गाइ भवनिधि नर तरिहहि॥

अतः जटायुजी उन्हें हृदय में बसने के लिए प्रार्थना करते हैं। पाँच विषय का ही इसमें वर्णन है। १ सगुण रूप २ निर्गुण रूप ३ मन्त्र ४ अवतार ५ और भक्त परतन्त्रता। ये ही हस्तनक्षत्र के पाँच तारे हैं। इसको फल श्रुति है : काम कोह कलिमल करि गन के। केहरि सावक जन मन बन के।

दो. अबिरल भगति माँगि बर, गीध गएउ हरिधाम।
तेहि की क्रिया जथोचित, निज कर कीन्ही राम॥३२.२६॥

अर्थ : अखण्ड भक्ति का वर माँगकर गृध्रराज जटायु श्रीहरि के परम धाम को चले गये। श्रीरामचन्द्रजी ने उसकी दाह कर्म आदि सारी क्रियाएँ यथायोग्य अपने हाथों से की।

व्याख्या : अविरल भक्ति स्तुति के बाद माँगी। बड़े का नाता मान रखा है। इसलिए एवमस्तु नहीं कहा। सरकार ने : जाहु मम धामा कहा था। सो हरि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



धाम गये। सरकार ने स्वय पिता की भावना से यथोचित क्रिया की। पक्षियो मे मास वितरण किया। तृप्यन्तु पक्षिण सर्वे तृप्तो भवतु पक्षिराट्। धाम देने के बाद क्रिया की आवश्यकता न थी। परन्तु गीधराज के शरीर की प्रतिष्ठा के लिए सरकार ने अपने हाथ से क्रिया की।

कोमल चित अति दीनदयाला। कारन बिनु रघुनाथ कृपाला ॥
गीध अधम खग आमिष भोगी। गति दीन्ही जो जाचत जोगी ॥१॥

अर्थ श्री रघुनाथजी अत्यन्त कोमल चित्तवाले दीनदयालु और विना ही कारण कृपालु हैं। गीध पक्षियो मे भी अधम पक्षी और मासाहारी था। उसको भी वह दुर्लभ गति दी। जिसे योगीजन माँगते रहते हैं।

व्याख्या प्रायेण प्रभु लोग पर वेदना नही जानते कठोर चित्त होते हैं। पर अति कोमल रघुबीर सुभाऊ। यद्यपि अखिल लोक कर राऊ। परन्तु श्रीरामजी अति कोमल चित्त हैं। अपना धाम देने पर भी सन्तोष नही। अपने हाथ से क्रिया करने लगे। दीनदयाल से सङ्कटहारी कहा। यथा दीनदयाल बिरद सभारी। हरहु नाथ मम सकट भारी। बिनु हेतु सनेही हैं। इसी भाँति बिनु हेतु कृपाल हैं। कोमल चित्त हैं। अत अविरल भक्ति दिया। दीनदयाल है। अत निज धाम दिया। निष्कारण कृपालु हैं। इसलिए अपने हाथ क्रिया किया। आप ही गुण देते है और आप ही उस गुण पर मुग्ध होते हैं।

भक्ति स्पृहारहित को दी जाती है। गीध को नही। हरि धाम पवित्र मुनियो के लिए है अधम खग के लिए नही। प्रभु के करकञ्ज की छाया दयालु लोगो के लिए है हिंसक के लिए नही। गीध शकुनाधम सब भाँति अपावन होते हैं। उनके जीवन का मूल्य क्या है? अधम खग तो बहुत हैं। पर मुर्दा खानेवाला गीध ही है। योगी का सार्वभौम अहिंसा महाव्रत है। सो गीध को ऐसी गति दी जिसके लिए योगी लोग तरसते है।

सुनहु उमा ते लोग अभागी। हरि तजि होहिं बिषय अनुरागी ॥

## ४२ कबन्धवध तथा शबरी गति प्रसङ्ग

पुनि सीतहि खोजत द्वौ भाई। चले बिलोकत बन बहुताई ॥२॥

अर्थ हे पार्वती। सुनो। वे लोग अभागे हैं जो भगवान् को छोडकर विषयो से अनुराग करते है। फिर दोनो भाई सीताजी को खोजते हुए आगे चले। वे वन की सघनता देखते जाते हैं।

व्याख्या नर तन पाइ बिषय मन देही। पलटि सुधा ते सठ बिष लेही। हरि रूप सुधा है और विषय विष है। गीध से इतना ही हुआ कि हरिपद मे अनुरक्त हो गया। अत वह महा भाग्यवान् हो गया। गीध भाग्यवान् हुआ। रावण अभागी हुआ। पहले खग, मृग तथा मधुकर श्रेणी से सीता का पता पूछते थे। अब पता

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लग गया। अत अब उनसे नही पूछते हैं पर खोजते हैं। यह नही मालूम कि रावण ने कहाँ रख छोडा है। वन बहुत बडा है। इतना बडा वन अब तक नही मिला। अत उसकी बहुतायत देखते हुए चले जाते हैं।

सकुल लता विटप घन कानन। बहु खग मृग तहँ गज पचानन ॥
आवत पथ कवध निपाता। तेहि सब कही साप कै बाता ॥३॥

अर्थ वह सघन वन लताओ और वृक्षो से भरा है। उसम बहुत से पक्षी, मृग, हाथी और सिंह रहते हैं। श्रीरामजी ने रास्ते मे आते हुए कबन्ध राक्षस को मारा। उसने शाप की सब बातें कही।

व्याख्या वन की घनता कहते है कि विटप से भरा हुआ था और उनमे लताएँ लिपटी हुई थी। फलदार वन है। खग मृग बहुत हैं। बडा घोर वन है। इसलिए गज पञ्चानन भी हैं। मनुष्य का उल्लेख नही है। इससे ज्ञात होता है कि घोर निर्जन वन था। कवन्ध के भय से कोई आता जाता न था।

प्रभु जिधर जाते थे उधर वह आता था। इससे उसका मार्ग मे बाधक होना कहा। मरने के बाद वह अपने पूर्व रूप मे हो गया। शाप मिलने के कारण वह राक्षस हो गया था। मारे जाने को उसने उपकार माना। कृतज्ञता के प्रकाश के लिए उसने शाप का सब वृत्तान्त प्रभु से निवेदन किया कि मैं पूर्वजन्म मे बडा सुन्दर था। पर ऐसा ही भयानक रूप धारण करके मुनियो को डराता फिरता था।

दुरवासा मोहि दीन्ही सापा। प्रभु पद पेखि मिटा सो पापा ॥
सुनु गधर्व कहउ मै तोही। मोहि न सोहाइ ब्रह्मकुल द्रोही ॥४॥

अर्थ उसने कहा कि इसी पर दुर्वासाजी ने मुझे शाप दे दिया। अब प्रभु के चरणो को देखने से वह पाप मिट गया। श्रीरामजी ने कहा हे गन्धर्व! सुनो मैं तुम्हे कहता हूँ। ब्राह्मणकुल से द्रोह करनेवाला मुझे नही सुहाता।

व्याख्या दुर्वासा का शाप था। मिटनेवाला नही। वह देवासुर सग्राम मे लडा। इन्द्र का वज्र लगा। फिर भी शाप न मिटा। पाप के कटने के लिए ही मुनि लोग कृपा करके शाप देते हैं। सो पाप प्रभु के दर्शन से कटा। सन्मुख होइ जीव मोहि जबही। जन्म कोटि अघ नासहि तबहीं।

प्रभु ने गन्धर्व कहकर उसको सम्बोधन किया इससे पता चलता है कि पूर्वजन्म मे वह गन्धर्व था। और कहा कि मुझे ब्राह्मणकुल से द्रोह करनेवाला अच्छा नही लगता। ब्राह्मण[१] और गाय एक कुल की दो शाखा है। एक म मन्त्र और दूसर में हवि प्रतिष्ठित है। अर्थात् ये ही दोनो यज्ञ के मुख्य साधन हैं और यज्ञ से ही दोनो लोको का कल्याण होता है। गो ब्राह्मणकुल का द्रोह करना तो देवलोक

---

१ ब्राह्मणाश्चैव गावश्च कुलमेक द्विधा कृतम्। एकत्र मन्त्रास्तिष्ठन्ति हविरन्यत्र तिष्ठति। मनु

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



से चलते हुए व्यापार के बन्द करने की चेष्टा है। यह यज्ञपुरुष को प्रिय हो नही सकती। जिस भाँति गो के दुग्धादि से ही यज्ञ सम्पन्न होते हैं। बकरी के दूध से सम्पन्न नही हो सकते। उसी भाँति ब्राह्मण मुखोच्चरित मन्त्रो से ही यज्ञ सुसम्पन्न होते हैं। अब्राह्मण के मुखोच्चरित मन्त्र से नही होते। इसीलिए हिन्दू जाति और उसके शास्त्रो मे गोकुल और ब्राह्मणकुल का बडा मान है। यथा

दो मन क्रम बचन कपट तजि, जो कर भूसुर सेव।
मोहि समेत बिरंचि सिव, बस ताके सब देव ॥३३.२७॥

अर्थ मन कर्म और वचन से कपट छोडकर जो ब्राह्मणो की सेवा करता है। मुझ समेत ब्रह्मा शिव आदि सब देवता उसके वश मे हो जाते हैं।

व्याख्या ब्राह्मणो का वेद म प्रधान अधिकार है। अत वे पृथ्वी के देवता हैं। आज भी जिसको शास्त्र का ज्ञान है उसे साक्षात् या परम्परया ब्राह्मणो से ही हुआ है। अत उनकी सेवा कपट छोडकर करनी चाहिए। बाहर से नम्र रहे और भीतर से नम्र नही यही कपट सहित सेवा है बाहिज नम्र देखि मोहि साई। बिप्र पढाव पुत्र की नाई। सब देवो के वशीकरण का द्विज सेवा हो उपाय है। यथा किं तस्य दुर्लभतरमिह लाके परत्र च। यस्य विप्रा प्रसीदन्ति शिवो विष्णुश्च सानुग। भाग०

सापत ताडत परुप कहता। बिप्र पूज्य अस गावहिं संता॥
पूजिय विप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना॥१॥

अर्थ शाप देता हुआ मारता हुआ और कठोर वचन कहता हुआ भी ब्राह्मण पूज्य हैं। ऐसा सन्त कहते है। शील और गुण से हीन भी ब्राह्मण पूजनीय है और गुणगणो से युक्त और ज्ञान म निपुण भी शूद्र पूजनीय नही है।

व्याख्या गुणत तो सभी पूज्य होता है। गुण की पूजा स्वाभाविक है। पर ब्राह्मण जन्मत भी पूज्य हैं। यदि उनम गुण भी ब्राह्मण के हो। वेदपाठी भी हो तो शापत मन से, ताडत कर्म से और परुष कहता वाणी से होने पर भी वे पूज्य हैं। शापत ताडत परुपवक्ता पूज्य योग्य नही है। पर विप्र हैं। उनके पूर्वजन्म के कुछ कर्म ऐसे है कि जिससे वे पूजा माने जाते है यथा तुलसी पीपल आदि। तद् य इह रमणीयचरणा अभ्याशोहयत् ते रमणीया योनिमापद्येरन्। ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिययोनिं वा वैश्ययोनिं वाथ य इह कपूयचरणा अभ्याशोहयत् कपूया योनिमापद्येरन् श्वयोनिं वा सूकरयोनिं वा चाण्डालयोनिं वा। भगवान् वासुदेव कहते हैं विप्र कृतागसमपि नैव द्रुह्यत मामका। घ्नन्त बहु शपन्त वा नमस्कुरुत नित्यश। भा०। मेरे भक्त अपराधी ब्राह्मण का भी द्रोह न करें। मारते हुए शाप देते हुए ब्राह्मण को भी नमस्कार ही करें। बधे पाप अपकीरति हारे। मारतहूँ पा परिय तुम्हारे। साप सीस धरि हरषि हिय प्रभु बहु बिनती कीन्ह। भृगुपति बकहिं कुठार उठाये। मन मुसुकाहिं राम सिर नाये। इत्यादि।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ब्राह्मण कम से कम गायत्री मात्र जाने, आचरण और गुण से हीन हो फिर भी पूजा उसकी होगी। जहाँ शास्त्रो मे ब्राह्मण पूजन विधान है वहाँ ब्राह्मणोचित गुणवाला शूद्र पूजित नही होगा। हीनगुणवाला ब्राह्मण ही पूजित होता है। यथा : तुलसी पूजन विधान मे तुलसी के स्थान पर अनार अगूर का पूजन नही हो सकता।

कहि निज धर्म ताहि समुझावा। निज पद प्रीति देखि मन भावा ॥
रघुपति चरन कमल सिरु नाई। गयउ गगन आपनि गति पाई ॥२॥

अर्थ : श्रीरामजी ने अपना धर्म कहकर उसे समझाया। अपने चरणो मे प्रेम देखकर वह उनके मन को अच्छा लगा। तदनन्तर श्रीरघुनाथजी के चरण कमलो मे सिर नवाकर वह अपनी गति गन्धर्व का स्वरूप पाकर आकाश मे चला गया।

व्याख्या : प्रभु ब्रह्मण्य देव हैं। ब्राह्मणो पर प्रीति करना अपना धर्म मानते हैं। यथा

प्रभु ब्रह्मण्य देव मैं जाना। मोहि निति पिता तजेउ भगवाना ॥

जेते धर्म सकाम सबै को फल कटु जानो।
धन दारा सुत गेह विनश्वर दुखमय मानो ॥
स्वर्गहु विनशन शील चारि दिन को सुखदाई।
श्री गुरु चरण सरोज शरण मे भूरि भलाई ॥
गुरु गोविन्द को निष्कपट सेवा विजयानन्द करो।
विरति ज्ञान संयुत सुभग भगति पथ नित अनुसरो ॥
सतसगति नित करौ शौच तप मौन निवाहो।
ब्रह्मचर्य व्रत धरौ अहिंसा समता चाहो ॥
जड चेतन को आत्मरूप ईश्वर करि देखो।
गहो सदा सतोप सत रहनी जिय लेखो ॥
प्रभु सबमे सब प्रभुहि मे जानि अहता को तजो।
ये तेरह हैं भागवत सद्गुण विजयानद भजो ॥

अत द्विज सेवा को हरितोषण व्रत कहा गया है। इससे भगवान् तुष्ट होते हैं। इस बात को उसे समझाया। जिसमे फिर उससे ऐसी चूक न हो। अपने चरणो मे प्रेम देखकर उसे परम कल्याणकर उपदेश दिया। तब वह कृतकृत्य होकर प्रभु चरणो पर नत हुआ तथा गन्धर्व लोक को गया। स्वय भक्ति का उपदेश दे चुके हैं। उसे अन्यस्पृहा न होने से और कुछ न दिया। अत गगन जाना कहा। चरण मे सिर देने से ही ऊर्ध्व गति होती है। यथा अतिशय बड भागी चरणन्हि लागी जुगल नयन जल धार बही . गई पतिलोक अनन्द भरी। अधोगति हो गयी थी। सो ऊर्ध्व गति की बाधा दूर हो गयी।

ताहि देइ गति राम उदारा। सबरी के आस्रम पगु धारा ॥
सबरी देखि राम गृहँ आए। मुनि के बचन समुझि जिय भाए ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ उदार श्रीरामजी उसे गति देकर शबरीजी के आश्रम पधारे। शबरीजी ने रामजी को घर मे आये देखा। तब मुनि : मतङ्गजी के वचनो को याद करके उनका मन प्रसन्न हो गया।

व्याख्या कबन्ध के उद्धार मे उदार कह रहे हैं। यथा . ऐसो को उदार जग माही। बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाही। कबन्ध ने क्या सेवा की। उदार हैं · गति देने से तृप्ति नही। घर जा जाकर गति देते हैं तथा · सुगम अगम बरदायक होने से उदार हैं। अथवा ऐसे उदार हैं कि शबरी के आश्रम चले। सकल मुनिन्ह के आस्त्रम जाइ जाइ सुख दीन्ह। सो शबरी कौन मुनि थी ? प्रभु के चरण पडने से उसकी कुटिया भी आश्रम हो गयो।

शबरी ने देखते ही पहिचान लिया कि ये ही राम हैं। शबरी उसे गृह ही समझती है। आश्रम का ख्याल उसे मन से भी नही है। राम किसी के गृह नही जाते। विभीषण ने कहा अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजै। सरकार नही गये। ग्रामवास उचित नही है। पर शबरी का गृह सरकार के विचार मे आश्रम ही है। मुनि के जिय भाये वचन, समझकर उसने पहिचाना। मुनिजी ने जो ध्यान बताया था सो आंखो के सामने देखा।

सरसिज लोचन बाहु बिसाला। जटा मुकुट सिर उर बनमाला ॥
स्याम गौर सुदर दोउ भाई। सबरी परी चरन लपटाई ॥४॥

अर्थ · कमल सदृश नेत्र और विशाल भुजावाले सिर पर जटाओ का मुकुट और हृदय पर वनमाला धारण किये हुए सुन्दर साँवले और गोरे दोनो भाइयो के चरणो मे शबरी लिपट पडी।

व्याख्या मुनिजी ने उसको योग्यतानुकूल सामान्य ध्यान बतलाया था कि बड़ी बडी कमल की सी आँखें हैं। लम्बी लम्बी भुजाएँ हैं। दो गहना भी बतला दिया था। जटा का ही मुकुट और पैर तक लटकती हुई माला रहती है। यह भी उदारता है कि उसके ध्यानानुरूप वेष से उसके सामने आये। नही तो यहाँ नवमाला कहाँ से आगयी ?

दोनो भाई का एक रूप और वेष है। वर्ण मे केवल भेद है। शबरी चरणो मे लिपट गयी। स्त्री है। उसे चरण मे लिपटने का ही अधिकार है।

प्रेम मगन मुख बचन न आवा। पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा ॥
सादर जल लै चरन पखारे। पुनि सुदर आसन बैठारे ॥५॥

अर्थ : वह प्रेम मे मग्न हो गयी। मुख से वचन न निकला। बार बार चरण कमलो मे सिर नवा रहो है। फिर उसने जल लेकर आदर पूर्वक दोनो भाइयो के चरण धोये और फिर उन्हे सुन्दर आसनो पर बिठाया।

व्याख्या : प्रेम मगन : मनसा। मुख वचन न आवा : वाचा। सिर नावा . कर्मणा। मुख से बोलना चाहती है। पर कहते नही बनता। तब बार बार प्रणाम करती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



श्रीचरणो को केवट ने पखारा था। अब शबरी पखार रही है। शबरी बड़े इन्तजाम मे थी। जब से मुनिजी कह गये तभी से नित्य नये आसन बनाती। सुन्दर सुन्दर कन्द मूल फल लाती। कौन जाने कब राम आवेंगे। शबरी के पूजन मे न विधि है न मत्र है। केवल भक्ति है। तीन उपचार से पूजन करती है। पाद्य आसन और नैवेद्य से।

दो. कंद मूल फल सुरस अति, दिए राम कहुँ आनि।
प्रेम सहित प्रभु खाए, बारबार बखानि ॥३४.२८॥

अर्थ : उसने अत्यन्त रसीले और स्वादिष्ट कन्द मूल और फल लाकर श्रीरामजी को दिये। प्रभु ने बारंबार प्रशसा करके उन्हे प्रेम सहित खाया।

व्याख्या : लाकर दिया कहने का भाव यह कि कही इकट्ठा करके रक्खे थी वहाँ से लाकर दिया। जब से गुरुजी कहकर चले गये कि तेरे पास रामजी आवेंगे : पर कब आवेंगे यह नही कहा · तब से नित्य शबरी पूजोपचार इकट्ठा करती थी। न जाने किस समय आ जावेंगे। इसलिए फलो को खाकर उनके मिठास की परीक्षा कर लेती थी। जो मीठे जँचते थे उन्हे तोडकर नैवेद्य लगाने के लिए रख लेती थी। आज भी लोग सट्टी मे जाकर आम को चख लेते हैं। पसन्द आने पर खरीदते हैं। उसी भाँति जहाँ अति सरस कन्द मूल फल रक्खे थे वहाँ से लाकर रामजी को दिये। अति कृतज्ञ परम सुजान प्रभु ने उनका बार बार बखान करके भोजन किया। यहाँ यह न समझना चाहिए कि लक्ष्मणजी ने नही खाया। रामजी का खाना कहने मे ही लक्ष्मणजी का भोजन करना आगया। आगे चले बहुरि रघुराई का अर्थ यह नही है कि लक्ष्मणजी नही चले।

पानि जोरि आगें भइ ठाढी। प्रभुहि बिलोकि प्रीति अति बाढी॥
केहि बिधि अस्तुति करौ तुम्हारी। अधम जाति मैं जडमति भारी ॥१॥

अर्थ : फिर वह हाथ जोडकर आगे खडी हो गयी। प्रभु को देखकर उसका प्रेम अत्यन्त बढ गया। कहा · मै किस प्रकार आपकी स्तुति करूँ। मैं नीच जाति की और अत्यन्त मूढ़ बुद्धि हूँ।

व्याख्या · पहिले कन्द मूल फल परोसती थी। जब सरकार खा चुके तब हाथ जोडकर आगे खडी हुई स्तुति के लिए : भाव यह कि मेरी इतनी ही पूजा थी। मैं किसी योग्य नही। पूजा मे व्यग्र होने से एकाग्र होकर दर्शन नही कर सकी थी। प्रीति तो बढी हुई थी ही। दर्शन से और प्रीति बढी।

बोली कि मैं स्तुति की विधि नही जानती। तिस पर तुम्हारी स्तुति : स्तुतिर्ब्रह्मादीनामपि तदवसन्नास्त्वयि गिर'। अधम जाति हूँ · कोई स्तोत्र भी कण्ठ नही है कि उससे स्तुति करूँ। भारी जडमति हूँ। अपने मन से कुछ कल्पना भी नही कर सकती।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह मँह मैं अतिमन्द अघारी ॥
कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। मानउँ एक भगति कर नाता ॥२॥

अर्थ अधमाधमो मे भी स्त्री अधम हैं। उनमे भी हे पाप नाशन ! मै अतिमन्द हूँ। श्रीरघुनाथजी ने कहा कि हे भामिनि ! मेरी बात सुन। मैं तो केवल एक भक्ति का ही नाता मानता हूँ।

व्याख्या पहिले अधम से जाति हीन कहा। दूसरे अधम शब्द से अघ जन्म महि कहा। तीसरा अधम शब्द नारी होने के नाते कहा। नारी होने से दोप मे उत्कर्ष आ जाता है। यथा काने खोरे कूबरे कुटिल कुचाली जानि। तिय बिसेष पुनि चेरि कहि भरत मातु मुसुकानि। ऐसी स्त्री भी यदि बुद्धिमती हो तो भी कुछ स्तुति कर ही सकती है। शबरी कहती है कि मैं ऐसी स्त्रियो मे भी भारी जडमति हूँ। स्तुति करना जानती भी नही। प्रभु के साक्षात्कार होने पर स्तुति करना चाहिए। अब मै क्या करूँ। जिससे आप प्रसन्न हो। यथा स्तोतुन जानामि देवेश कि करामि प्रसीद मे। अ रा

रघुपति हैं सुनि सनमानहिं सबहिं सुबानी। भगति भनिति मति गति पहिचानी। यह प्राकृत महि पाल सुभाऊ। जान सिरोमणि कौसल राऊ। रीझत राम सनेह निसोते। को जग मद मलिन मति मोते। अत कहते हैं मेरी बात सुन। मैं एक ही नाता सम्बन्ध मानता हूँ। भक्त मेरे नातेदार सम्बन्धी हैं। तू अधम क्यो कहती है। तू तो मेरी नातेदार है कवन्ध के प्रकरण मे जाति की बडाई किया। क्योकि वह गुण को वडा माननेवाला था। दोनो के सामञ्जस्य के लिए यहाँ गुण की प्रशसा करते हैं। क्योंकि यह जाति को बडा मानती है।

जाति पाँति कुल धर्म बडाई। धन बल परिजन गुन चतुराई ॥
भगति हीन नर सोहै कैसा। बिनु जल बारिद देखिअ जैसा ॥३॥

अर्थ जाति, पाँति, कुल, धर्म, बडाई, धन, बल, कुटुम्ब, गुण और चतुरता। इन सबके होने पर भी भक्ति से रहित मनुष्य कैसा लगता है जैसे जलहीन बादल दिखायी पडता है।

व्याख्या : दस गुण कहे जिससे मनुष्य की शोभा होती है। गुण की वृद्धि के साथ साथ शोभा का उत्कर्ष होता है। जाति मे होना ही शोभा की बात है। फिर यदि पाँति मे बैठने पावे तो शोभा और भी बढे। उससे भी यदि कुलीन हो तो क्या बात है। इसी भाँति दसो के होने से बडी भारी शोभा होती है।

भक्तिहीन होने से ये दसो शोभाएँ व्यर्थ हैं। जैसे बिना जल का बादल। वह राम सुयश का वर्षा कर नहीं सकता। देखने मे तो वह स्वच्छ है, श्वेत है, पर उसमे मनुष्यता नही है। अत शाभा की कमी पड गयी बसन हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूपण भूपित बर नारी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नवधा भगति कहउँ तोहि पाँही। सावधान सुनु धरु मन माँही॥
प्रथम भगति सतन्ह कर संगा। दूसरि रति मम कथा प्रसंगा॥४॥

अर्थ मैं तुझसे अब अपनी नवधा भक्ति कहता हूँ। तू सावधान होकर सुन और मन मे धारण कर। पहिली भक्ति है सन्तो का सत्सङ्ग। दूसरी भक्ति है मेरे कथा प्रसङ्ग मे प्रेम।

व्याख्या तुझसे कहता हूँ दूसरे किसी से नही कहा। भागवत धर्म गन्धर्व से कहा। नवधा भक्ति जिससे सम्बन्ध नाता स्थापित होता है उसे तुझसे कहता हूँ। यह चाण्डाल तक के लिए है। सुनने म अनवधानता होने से बात मन मे ठीक आवेगी नही। अत सावधान होकर मन में धारण कर। बिना मन मे धारण किये निश्चय न हो सकेगा कि कौन सी भक्ति कितनी मुझमे है और किसकी कमी है। सरकार को उसका सङ्कोच छुडाना है सेवक सकुच सोच उर अपने। और उसे नगरवासियो की भांति उपदश देकर कृतकृत्य करना है। इसलिए नाता के स्पष्ट करने के व्याज से उसे नवधा भक्ति का उपदेश करते हैं।

श्रवण कीर्तन विष्णो स्मरण पादसेवनम्। अर्चन वन्दन दास्य सख्यमात्म-निवेदनम्। यही नवधा भक्ति प्रसिद्ध है और भगवान् ने भी इसी नवधा भक्ति का उपदेश लक्ष्मणजी को दिया। यथा स्रवणादिक नवभक्ति दृढाही। मम लीला रति अति मन माही। परन्तु शबरी को जिस नवधा भक्ति का उपदेश दिया वह तो स्पष्ट ही श्रवणादिक नवभक्ति से पृथक् है। इस पार्थक्य का कारण होना चाहिए।

लक्ष्मणजी को सरकार ने भक्तियोग का उपदेश दिया। यथा भक्तियोग सुनि अति सुख पावा। लछिमन प्रभु चरनन्हि सिरु नावा। जिसमे साधनभक्ति भावभक्ति तथा प्रेमा भक्ति तीनो का समावेश है। उसमे कोई बात छूटी नही है। यथा थोरेहि महँ सब कहौं बुझाई। सुनहु तात मति मन चितलाई। और यह भी मानना पडेगा कि दोनो उपदेशो का हृदय एक है। फिर भी प्रकार मे इतना बडा अन्तर क्यो ? यह प्रश्न बिना उठे नही रह सकता।

दोनो प्रकरणो को निविष्ट चित्त से मनन करने से यह बात मन मे आती है कि भक्तियोग का लक्ष्य भगवान् को अपना प्रेमपात्र बनाना है। भक्त को कोई कामना न होनी चाहिए। यहाँ तक कि प्रेमपात्र की प्रसन्नता की भी अपेक्षा न रहे। यथा जानहु राम कुटिल करि मोही। लोग कहउ गुर साहिब द्रोही। सीता-राम चरन रति मोरे। अनुदिन बढउ अनुग्रह तोरे। तथा वचन कर्म मन मोरि गति भजन करै निष्काम। तिन्हके हृदय कमल मह करौ सदा बिस्राम अर्थात् भक्तियोग का पर्यवसान भगवान् को प्रेमपात्र बनाने म है।

परन्तु शबरी को जिस नवधाभक्ति का उपदेश दिया है उसका पर्यवसान स्वय भगवान् के प्रेमपात्र बनने मे है। यथा नवमहुँ एकउ जिन्हके होई। नारि पुरुष सचराचर कोई। सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरें। सकल प्रकार भगति दृढ तोरें।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



शबरी अपने को भक्तियोग का अधिकारी नही मानती। यहाँ तक कि उसे स्तुति करने मे भी सङ्कोच है। कहती है केहि बिधि अस्तुति करौ तुम्हारी। अधम जाति मै जडमति भारी। अधम ते अधम अधम अति नारी। तिन्ह मँहु मै अतिमद अघारी। इस पर भगवान् उसे भक्ति के नव लक्षण बताते हैं। जिससे भक्त भगवान् का प्रेमपात्र बन जाता है। एव शबरी को आश्वासन देते हैं कि तू अपनेको अधम न जान। तुझमे नवो प्रकार की भक्ति है। इससे तू मुझ अतिशय प्रिय है। इसका प्रमाण यह जोगि वृद दुर्लभ गति जोई। तो कहँ आज सुलभ भइ सोई।

अत निष्कर्ष यह निकला कि भक्तियोग का पर्यवसान भगवान् को प्रेमपात्र बनाने मे है और शबरी को जिस नवधा भक्ति का उपदेश दिया उसका पर्यवसान भगवान् का प्रेमपात्र बनने मे है। अत दोनो मे पार्थक्य निष्कारण नही है। अत दोनो का पृथक् पृथक् उपदेश हुआ।

सरकार का उपदेश भगवद्गीता के उपदेश की भाँति किसी व्यक्ति विशेष के लिए ही नही है। पार्थो वत्स सुधोर्भोक्ता दुग्ध गीतामृत महत्। अजुन तो केवल बछडे थे। गीतामृत के भोक्ता तो पण्डित लोग है। इसी भाँति इन उपदेशो से लाभ उठानेवाल भक्त लोग हैं। लक्ष्मणजी तथा शबरी तो निमित्त मात्र हुए। शबरी मे नवधा भक्ति पूर्ण रूप से विद्यमान थी। फिर भी ससार के कल्याणार्थ उसे उपदेश दिया गया। जिस भाँति भगवती अनसूया ने सीताजी को पातिव्रत का उपदेश दिया। यथा

सुनु सीता तव नाम सुमिरि नारि पतिब्रत करहिं।
तोहि प्रानप्रिय राम कहेउँ कथा ससार हित॥

एक भक्ति से कल्याण होता है। केवल सत्सग से ही सध जाता है। यथा अस विचारि जो कर सतसगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहगा। सतसगति मुद मगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला। दूसरी भक्ति रामकथा मे रति। यथा

रामचरित राकेस कर सरिस सुखद सब काहु।
सज्जन कुमुद चकोर चित हित बिसेष बड लाहु॥
महा मोह महिखेस बिसाला। रामकथा कालिका कराला॥
रामकथा सुदर कर तारी। ससय बिहग उडावन हारी॥

दो गुरु पद पकज सेवा, तीसरि भगति अमान।
चौथी भगति मन गुन गन, करै कपट तजि गान॥३५ २९॥

अर्थ तीसरी अमान भक्ति है गुरु के चरण कमलो की सेवा और चौथी भक्ति यह है कि कपट छोडकर मेरे गुण समूहो का गान करे।

व्याख्या गुरु के चरण की सेवावाली भक्ति मानरहित होनी चाहिए। स्वय प्रभु उसे अपनाये हुए हैं। धनुष भङ्ग के लिए सीय स्वयम्बर म सब राजा लोग

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इष्ट देवता को प्रणाम करके चले। पर प्रभु ने तो गुरु चरणों को प्रणाम किया। यथा : गुरहि प्रनाम मनहि मन कीन्हा। अति लाघव उठाइ धनु लीन्हा। श्री चक्रवर्तीजी : राजा दशरथ कहते हैं : मोहि सम येहु अनुभयेउ न दूजे। सब पाँयेउ रज पावन पूजे। मानरहित यथा : गुरुपद पद्मस पलोटत प्राते।

चौथी भक्ति हरि गुणगान है। भगवान् कहते हैं कि न मैं वैकुण्ठ में बसता हूँ और न योगियों के हृदय में बसता हूँ। मेरे भक्त जहाँ गान करते हैं वहीं मैं बसता हूँ। नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिनां हृदये न हि। मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।

परन्तु समय : शर्त यह है कि कपट छोड़कर गान करें। दूसरों के दिखाने के लिए या अपनी प्रसिद्धि के लिए नहीं। सभी पुण्य भावोपहत हो जाने पर पाप हो जाते हैं। यथा : सर्वाणि भावोपहतानि कल्कः।

मंत्र जाप मम दृढ़ बिस्वासा। पंचम भजन सो बेद प्रकासा॥
छठ दम सील बिरति बहु कर्मा। निरत निरंतर सज्जन धर्मा॥१॥

अर्थ : मेरे मन्त्र का जप और मुझमे दृढ विश्वास : यह पाँचवीं भक्ति है जो वेदों में प्रसिद्ध है। छठी भक्ति है इन्द्रियों को निग्रह : शील : बहुत कार्यों से वैराग्य और निरन्तर सन्त पुरुषों के आचरण में लगे रहना।

व्याख्या : मननात् त्रायत इति मन्त्रः। कौनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा। मन्त्र जप में तो विश्वास का अधिक उपयोग है। भविष्यतीति मनः कृत्वा सतत-मव्यथैः। जब वाणी मन मे प्रतिष्ठित हो और मन वाणी में प्रतिष्ठित हो तभी यथार्थ रूप से जप होता है। भगवती श्रुति कहती हैं : वाङ् मे मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमाविरावीर्म एधि और श्रुति भगवती ने ही राममन्त्र में प्राणीमात्र का अधिकार बतलाया है। यथा : मन्त्रेषु तेषु सर्वेषामधिकारोऽस्ति देहिनाम्। इसीलिए कहते हैं : पंचम भजन सो बेद प्रकासा। दम से इन्द्रिय जय और शील से आचार का ग्रहण किया : बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्। काम्य कर्म से विरत हो नित्य नैमित्तिक से नहीं। सज्जनधर्म परोपकारादि हैं जिनका सविस्तर वर्णन : प्रभु नारद सम्वाद प्रकरण में है। उनमें सदा लगा रहे। यह छठी भक्ति हुई।

सातवँ सम मोहि मय जग देखा। मो तें संत अधिक करि लेखा॥
आठवँ जथालाभ संतोषा। सपनेहुँ नहि देखइ पर दोषा॥२॥

अर्थ : सातवीं भक्ति है : जगत् भर को समभाव से मुझमे ओत प्रोत देखना और सन्तों को मुझसे भी अधिक करके मानना। आठवी भक्ति है : जो कुछ मिल जाय उसी में सन्तोष करना और स्वप्न मे भी पराये दोषों को न देखना।

व्याख्या : सातवी भक्ति है : निज प्रभुमय देखहि जगत् कासन करहि विरोध।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



परन्तु सन्तो को भगवान् से भी अधिक माने। क्योकि भगवत्प्राप्ति उन्ही के द्वारा होती है। यथा : रामसिंधु घन सज्जन धीरा। चदन तरु हरि सत समीरा।

आठवी भक्ति है · यथा लाभ सन्तोष। सन्तोषादनुत्तमसुखलाभ । यो द सन्तोष से ऐसा सुख मिलता है जिससे बढकर कोई सुख नही है। यथा : कोउ बिस्राम कि पाव तात सहज सन्तोष बिनु। बिनु सन्ताष न काम नसाही। काम अछत सुख सपनेहु नाही। राम भजन बिनु मिटहि कि कामा।

और दूसरे का दोष तो सपने मे भी न देखे। दूसरे के दोष देखने का स्वभाव हो जाने से बिना जाने वे दोष अपने हृदय मे डेरा करने लगते हैं। इसीलिए परदोष निरीक्षण खल का लक्षण कहा गया है।

नवम सरल सब सन छलहीना। मम भरोस हिय हरष न दीना ॥
नव महुँ एकउ जिन्ह के होई। नारि पुरुष सचराचर कोई ॥३॥

अर्थ · नवी भक्ति है सरलता और सबके साथ कपट रहित व्यवहार करना : हृदय मे मेरा भरोसा रखना और किसी भी अवस्था मे हर्ष और विषाद का न होना। इन नवो मे से जिनके एक भी होतो है वह स्त्री पुरुष जड चेतन कोई भी हो।

व्याख्या सरलता महात्मा का लक्षण है। मनस्येक वचस्येक कर्मण्येक महात्मनाम्। शत्रु मे भी छलहीन साधु ही हो सकता है। हिंस्र स्वपापेन विहिंसित खलु साधु समत्वेन भयाद्विमुच्यते। मम भरास हिय यथा मोर दास कहाइ नर आसा। करै तो कहहु कहाँ बिस्वासा। तथा आपन जानि न त्यागिहहिं मोहि रघुबीर भरोस। हर्ष और दीनता के लिए फिर कोई कारण नही रह जाता।

ये नवो भक्ति स्वतन्त्र हैं। इसीलिए कहते हैं कि इन नवो मे से एक[1] के भी होने से वह भक्त मुझे प्रिय होता है। इस नवधा भक्ति मे एक का भी होना दुर्लभ है। नारी होने से अपने को अनधिकारी क्यो समझती है। पुरुष नपुसक नारि वा जीव चराचर कोइ। सर्व भाव भज कपट तजि मोहि परम प्रिय सोइ।

आनिन्द्ययोन्यधिक्रियते पारम्पर्यात् सामान्यवत्। शा० भ० सू०। भक्ति मे निन्द्य योनि सामान्य रूप से सबको अधिकार है।

सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरे। सकल प्रकार भगति दृढ तोरें ॥
जोगि बृन्द दुर्लभ गति जोई। तो कहुँ आज सुलभ भइ सोई ॥४॥

अर्थ . हे भामिनि ! मुझे अत्यन्त वही प्रिय हैं। फिर तुझमे तो सभी प्रकार की भक्ति दृढ है। अतएव जा गति योगियो को भी दुर्लभ है वही आज तेरे लिए सुलभ हो गयी।

---

१ ईश्वर तुष्टेरे कोपि बली। शा० भ० सू०। एक का भी विशेष रूप से अनुष्ठान करने पर वही परमेश्वर को सन्तुष्ट करके बलवान् हो जाता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : नर नारि होने से मेरे वर्ताव मे भेद नही। रीझत राम सनेह निसोते। सकल प्रकार भक्ति दृढ होने से भामिनि कहा। तेजोमयी मूर्ति शबरी हो गयी।

योगि वृन्द दुर्लभ गति कैवल्य पद है अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। ससार को अति दुर्लभ तेरे लिए सुलभ हो गयी। आज का भाव यह कि काल पाकर नही आज ही तू मुक्त होगी।

मम दरसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा ॥
जनकसुता कइ सुधि भामिनि। जानहि कहु करिवरगामिनि ॥५॥

अर्थ : मेरे दर्शन का परम अनुपम फल यह है कि जीव अपने सहज स्वरूप को प्राप्त हो जाता है। हे भामिनि ! हे गजगामिनि ! अब यदि तू जानकीजी की कुछ खबर जानती हो तो कह।

व्याख्या : सहज स्वरूप की प्राप्ति ही कैवल्य पद है। यह मेरे दर्शन का फल है। ईश्वर दृष्टि से दर्शन किया। मेरे साक्षात्कार विना मुक्ति नही होती। मेरा दर्शन : साक्षात्कार परम अनूप है। मेरा स्वरूप ही बना देता है।

भामिनि से उपक्रम करके : कह रघुपति सुनु भामिनि बाता। भामिनि मे अभ्यास : सोइ अतिसय प्रिय भामिनि मोरे। तथा भामिनि से उपसहार करते हैं। यथा : जनकसुता कर सुधि भामिनि। उसके गति की भी प्रशसा करते हैं। यथा : जानहि कहु करिवरगामिनि। भाव यह है कि जिस भाँति प्रेम की मिठास शबरी के फलो मे थी उसी भाँति प्रेम का सौन्दर्य उसके शरीर मे था। जिसने उसके फल की प्रशसा की वही महाप्रभु उसके सौन्दर्य की भी प्रशसा कर रहे हैं एव सब प्रकार से उसका आदर कर रहे हैं। उसकी ग्लानि का सम्मार्जन कर रहे हैं। खोई हुई वस्तु को सबसे पूछना चाहिए। सीता हरण के बाद पहिली मनुष्य शबरी ही मिली। अतः उससे सीताजी की सुधि पूछते हैं। उसे कृतज्ञता प्रकाश का भी समय नहीं दे रहे हैं।

पंपा सरहि जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई ॥
सो सब कहिहि देव रघुबीरा। जानत हूँ पूछहु मति धीरा ॥६॥

अर्थ : शबरी ने कहा : हे रघुनाथजी ! आप पम्पा नामक सरोवर को जाइये। वहाँ आपकी सुग्रीव से मित्रता होगी। हे देव ! हे रघुवीर ! वह सब हाल बतावेगा। हे धीरबुद्धि ! आप सब जानते हुए भी मुझसे पूछते हैं।

व्याख्या : शबरी ने सीताजी को स्वय नही देखा। सुग्रीव ने देखा है। योगबल से जानती है। अतः सुग्रीव का पता बतला रही है। अथवा गुरु मुख से पूरा रामायण सुन चुकी है। यथा : यह सब जागबलिक कहि राखा। गुरुजी ने तो कहा था कि सुग्रीव सब बतलावेंगे। हमे बतलाने को तो नही कहा था।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



देव से कौतुक प्रियता अथवा सर्वज्ञता और रघुवीर से सामर्थ्य कहा। तुमसे क्या छिपी है। यह आपका कौतुक है कि जानते हुए भी पूछते है। मतिधीर हैं राजनीति राखत सुर त्राता। अत रघुवीर कहा।

वार बार प्रभु पद सिरु नाई। प्रेम सहित सब कथा सुनाई ॥७॥

अर्थ वार बार प्रभु के चरणो मे सिर नवाकर प्रमसहित उसने सब कथा सुनायी।

व्याख्या उपक्रम म पुनि पुनि पद सरोज सिर नावा कहा था। अब उपसहार मे भी कहते वार बार प्रभु पद सिर नाई। जोगि बद दुलभ मति जोई। तो कहुँ आज सुलभ भइ सोई। कहने के बाद प्रभु ने शवरी को पुन कृतज्ञता प्रकाश करने का समय नही दिया। जनकसुता का हाल पूछने लगे। अत उत्तर देकर तब प्रणाम करती हैं। जिसे सक्षेप म कहा था उसे विस्तार मे कहने लगी।

छ कहि कथा सकल बिलोकि हरि मुख हृदय पद पकज धरे।
तजि जोग पावक देह हरि पद लीन भइ जहँ नहिं फिरे ॥
नर विविध कर्म अधर्म बहु मत सोकप्रद सब त्यागहू।
बिस्वास करि कह दास तुलसी रामपद अनुरागहू ॥

अर्थ सब कथा कहकर भगवान् के मुख दशन कर हृदय म उनके चरण कमलो को धारण कर लिया और योगाग्नि से देह को त्यागकर वह उस दुर्लभ हरिपद मे लीन हो गयी जहाँ से लौटना नही होता। तुलसीदासजी कहते हैं कि अनेको प्रकार के कर्म अधम और बहुत से मत ये सब शोकप्रद हैं। हे मनुष्यो! इनका त्याग कर दो और विश्वास करके श्रीरामजी के चरणो म प्रेम करो।

व्याख्या सब कथा कही कैसे गुरुजी के पास आयी? कैसे गुरुजी की कृपा हुई? कैसे गुरुजी ने सब कथा सीताहरण रावण वध की कही थी। बदन पकज भव मोचन का निरीक्षण किया पर उपासक चरणो की थी। इसकी कथा मे चरण का ही बार बार उल्लख होता है। अत चरणो को ही हृदय मे रक्खा।

योगाग्नि से शरीर छोडा। उमा तथा शरभङ्ग ने भी योगाग्नि से शरीर छोडा। पर वे हरिपद लीन नही हुए। क्योकि वर दूसरे प्रकार का मॉग चुके थे। इसने कोई वर नही मॉगा। अत हरिपद लीन हुइ। उस पद से लौटना नही होता। न स पुनरावर्तते।

अत गोस्वामीजी नरजाति को शिक्षा देते हैं। बहुशाखा ह्यनन्ताश्च बुद्धयोऽव्यवसायिनाम्। अत काम्य धर्म के अनेक प्रकार हैं। बहुमत लखि श्रुति शास्त्र पुराणन्हि जहाँ तहाँ झगरो सो। इन्हे छोडो सबकर मत खग नायक एहा। करिय राम पद पकज नेहा। अत इन्ही मे अनुराग कर।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


दो. जाति हीन अघ जन्म महि, मुक्त कीन्हि अस नारि।
महामन्द मन सुख चहसि, ऐसे प्रभुहि बिसारि ॥३६.३०॥

अर्थ : जो नीच जाति की और पापो की जन्मभूमि थी। ऐसी स्त्री को भी जिन्होने मुक्त कर दिया। अरे महा दुर्बुद्धि मन ! तू ऐसे प्रभु को भूलकर सुख चाहता है।

व्याख्या : जिसका जन्म कर्म दोनो बिगडा हुआ। तिस पर स्त्री पाप योनि उसको मुक्त किया भजन पर रीझ के। यह मन महा मन्द है। जयन्त के मन सा है। सुख रूप को भूलकर सुख चाहता है। ऐसे प्रभुहि बिसार ' बलि पूजा चाहत नही चाहते एकै प्रीति। ऐसा प्रभु क्या भूलने योग्य है।

## ४३. सरोवरतीरगमन प्रसंग

चले राम त्यागा बन सोऊ। अतुलित बल नर केहरि दोऊ ॥
बिरही इव प्रभु करत बिषादा। कहत कथा अनेक संबादा ॥१॥

अर्थ : श्रीरामचन्द्रजी ने उस वन को भी छोड दिया और वे आगे चले। दोनो भाई अतुलित बलवान् और मनुष्यो मे सिंह के समान हैं। प्रभु विरही की तरह विषाद करते हुए अनेक कथाएँ और सवाद कहते हैं।

व्याख्या : बहुरि बिरह बरनत रघुबीरा। जेहि बिधि गये सरोवर तीरा। सो विरह वर्णन प्रसङ्ग कहते हैं। पुनि सीतहिं खोजत दोउ भाई। चले बिलोकत बन बहुताई। इसी वन मे शबरी का आश्रम था। अब उस वन को भी पीछे छोड दिया। एक वन को छोड दूसरे मे निर्भीक घुसे चले जा रहे हैं। अतः अतुलित बल कहा। रावण के वध का तो तौल रहा। वन मे निर्भीक घुसने से नर केहरि कहा। दो सिंह साथ नही रहते यहाँ दोनो साथ है।

एहि बिधि खोजत बिलपत स्वामी। मनहु महा बिरही अति कामी : की अवस्था तो नही है। फिर भी बिरही इव विषाद कर रहे हैं। कबहूँ योग वियोग न जाके। योग हुआ हो तो वियोग भी हो। अत. विरही इव विषाद करते हैं। नर गति भगत कृपालु देखाई। कथा भी विरह की सवाद भी विरह का। जो दूसरो मे हुई उसकी कथा : संवाद जो आपस मे हुआ।

लछिमन देखु बिपिन कइ सोभा। देखत केहि कर मन नहिं छोभा ॥
नारि सहित सब खग मृग बृंदा। मानहुँ मोरि करत हहिं निंदा ॥२॥

अर्थ : हे लक्ष्मण ! जरा वन की शोभा तो देखो। इसे देखकर किसका मन क्षुब्ध न होगा ? पक्षी और पशुओ के समूह सभी स्त्री सहित हैं। मानो ये मेरी निन्दा कर रहे हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : अब कथा आरम्भ हुई। पिछला वन बडा था। यह सुहावना है। उद्दीपन उपस्थित हुआ। लक्ष्मण को दिखलाते हैं। कहेहू ते कछु दुख घटि होई : अत कहते हैं। आलम्बन की प्राप्ति मे भी लछिमन से ही कहा था। यथा : जासु बिलोकि अलौकिक शोभा। सहज पुनीत मोर मन छोभा।

इस उद्दीपन के समय सबको आलम्बन है। मै निरालम्ब हूँ। खग मृग तक नारी सहित हैं और मैं नारी रहित हूँ। कोई खग मृग ऐसे नहीं जिन्हे जोडा न हो। जो कोई बिना जोडा के होता तो मैं अपनी निन्दा न मानता। खग मृग सा भी सुख मुझे प्राप्त नही है। वे निन्दा नही करते पर मुझे वैसी ही लज्जा हो रही है। जैसी निन्दा सुनने से होती है ग्लानि सञ्चारी है। मानो कहते हैं कि इन्होने नारी को साथ नही रक्खा। बडा बुरा किया। खग मृग मुझसे बुद्धिमान् हैं।

हमहि देखि मृग निकर पराही। मृगी कहहि तुम्ह कहँ भय नाही ॥
तुम्ह आनद करहु मृग जाए। कचन मृग खोजन ए आए ॥३॥

अर्थ हमे देखकर जब हिरनो के झुण्ड भागने लगते हैं तब हिरनियाँ उनसे कहती हैं तुमको भय नही है। तुम तो साधारण हिरनो से पैदा हुए हो। अत तुम आनन्द करो। ये तो सोने का हिरन खोजने आये हैं।

व्याख्या : मनुष्य को देखकर ही मृगादि वन्यजन्तु भाग जाते हैं ? किं पुन. धनुर्धारी को देखकर मृग जाति में भी स्त्री अवध्य हैं। अतः भय मृग को ही रहता है। सो मृग भाग खडे होते हैं कि ये मृग के खोज म आये है : मुझे मारेगे। मनुष्य की आहट पाकर भागते हैं। पर प्रभु की शोभा देखकर खडे हो जाते है। इस पर प्रभु उत्प्रेक्षा करते हैं कि वे मृगी के कहने से भागते भागते रुक गये। मृग जाये : कहकर आर्यपुत्र की भाँति पति को सम्बोधन करती है और कहती हैं कि ये मृग के बच्चे को नही मारते। ये तो कञ्चनमृग को खोजने आये हैं। असम्भव हेममृगस्य जन्म तथापि रामो लुलुभे मृगाय।

संग[1] लाइ करिनी करि लेहीं। मानहुँ मोहि सिखावन देही ॥
शास्त्र सुचिंतित पुनि पुनि देखिय। भूप सुसेवित बस नहिं लेखिय ॥४॥

अर्थ : हाथी हथिनियो को साथ लगा लेते हैं। वे मानो मुझे शिक्षा देते है। भली भाँति चिन्तन किये हुए शास्त्र को भी बार बार देखते रहना चाहिए। अच्छी तरह सेवा किये हुए भी राजा को वश में नही समझना चाहिए।

व्याख्या : हथिनी छूट जाती हैं। पर हाथी बडा ख्याल रखते हैं। उसे सङ्ग ले लेते हैं। मुझे सिखाने के लिए नही। पर मुझे मालूम होता है कि मुझे सिखावन देते हैं। इन्हे इतनी बुद्धि हुई मुझे न हुई। यद्यपि जानकी ने मुझे कहा था कि जाओ : सत्यसन्ध प्रभु बध कर एही। आनहु चर्म कहति वैदेही। पर मुझे मानना नही था।

---

१. यहाँ निदर्शन . तीसरा अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मुझे उसका साथ छोडना नही चाहिए था। मृग तुच्छ जीव हैं। मेरे मन्दबुद्धि तथा लोभ की निन्दा करने लगे। ये गजराज हैं। वडे हैं। ये निन्दा नही करते। सिखावन देते हैं : शास्त्रं सुचिन्तितमपि प्रतिचिन्तनीयमाराधितोऽपि नृपति परिशङ्कनीय॰।

राखिअ नारि जदपि उर माही। जुवती सास्त्र नृपति बस नाही॥
देखहु तात बसंत सुहावा। प्रिया हीन मोहि भय उपजावा॥५॥

अर्थ : और स्त्री को चाहे हृदय मे ही क्यो न रक्खा जाय। परन्तु युवती स्त्री, शास्त्र और राजा किसी के वश म नही रहते। हे तात! इस सुन्दर बसन्त को तो देखो। प्रिया के बिना मुझको यह भय उत्पन्न कर रहा है।

व्याख्या : अङ्के स्थितापि युवती परिरक्षणीया। शास्त्रे नृपे च युवतौ च कुतो वशित्वम्। उर माही राखिय : आलिङ्गित भी रहे। अत अङ्के स्थिता और राखिय उर माही मे भेद नही है। भेद इतना ही है कि कुतो वशित्वं कहने के समय मे गोस्वामीजी ने युवती पद पहिले दिया। अर्थात् वश मे न आनेवालो मे युवती की प्रथम गणना है।

विपिन की शोभा कहते कहते मृग दिखायी पडे तो उसका हाल कहने लगे। तब से हाथी दिखायी पडा उससे अपना सम्वाद कहने लगे। अब फिर वन वर्णन प्रारम्भ किया। विपिन की शोभा का कारण कहते हैं। वसन्त सुहावा। प्रिया के सहित होने से यह उत्सव मनाने का समय था। उनके शृङ्गार के लिए फूलो के गहने बनाते। सो प्रिया के न होने से यह भयदायक हो गया। जे हित रहे करइ तेइ पीरा। मेरे लिए जमाना पलट गया।

दो. बिरह बिकल बलहीन मोहि, जानेसि निपट अकेल।
सहित बिपिन मधुकर खग, मदन कीन्ह बगमेल॥३७.३१॥

अर्थ : मुझे विरह से व्याकुल बलहीन और बिल्कुल अकेला जानकर कामदेव ने वन भौरो और पक्षियो को साथ लेकर मुझ पर धावा बोल दिया।

व्याख्या : काम से मेरी अनबन बहुत दिनो से चली आती है। एकबार पुष्पवाटिका मे मदन ने डङ्का दिया था। मानहु मदन दुदुभी दीन्ही। मनसा बिस्व बिजय कहँ कीन्ही। पर उस समय उसका किया कुछ न हो सका। विश्व विजय मेरे हाथ लगी। यथा : बिस्व बिजय जसु जानकि पाई। तब से जानकी का विरह कभी हुआ नही। अत॰ उसका घात बैठा नही। इस समय मैं विरह विकल बलहीन हूँ : जब से सीताहरण हुआ है तब से राक्षस अदृश्य रूप से रामजी के पहरे पर हैं। बराबर रावण को खबर दिया करते हैं। उन्ही से खबर पाकर रावण ने अगद से कहा : तब प्रभु नारि बिरह बलहीना। और उसके समझ मे मैं अकेला हूँ। अत. मदन ने बगमेल किया है। बिपिन मधुकर खग उसकी सेना हैं। वसन्त मित्र है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. देखि गयउ भ्राता सहित, तासु दूत सुनि बात ।
डेरा कीन्हेउ मनहुँ तब, कटकु हटकि मन जात ॥३७॥

अर्थ : परन्तु जब उसका दूत यह देखा गया कि मै भाई के साथ हूँ तब उसकी बात सुनकर कामदेव ने मानो सेना को रोककर डेरा डाल दिया है ।

व्याख्या . त्रिबिधि बयारि बसीठी आयी । वन मे से दूत बाहर निकलकर आया सन्देश लेकर । पर दूत नही मालूम पडता । यह भेदिया है यथा : रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने । ब्रह्मचारी भाई साथ मे है । वह सहायक है · समझा बुझा लेता है । यह समाचार पाकर फौज को मानो आगे बढने से रोक दिया । तुमसे लक्ष्मण । काम भय खाता है । डेरा दे दिया । समझ बूझकर धावा करेगा । कहाँ बगमेल किया था, कहाँ डेरा डार दिया यह सोचकर कि जब अकेला पावेंगे तब चोट करेंगे ।

बिटप बिसाल लता अरुझानी । बिबिध बितान दिये जनु तानी ॥
कदलि ताल बर ध्वजा पताका । देखि न मोह धीर मन जाका ॥१॥

अर्थ विशाल वृक्षो मे लताएँ उलझी हुई ऐसी मालूम होती हैं कि मानो नाना प्रकार के तम्बू तान दिये गये है । केला और ताड सुन्दर ध्वजा पताका के समान हैं । इन्हे देखकर वही नही मोहित होता जिसका मन धीर है ।

व्याख्या · डेरा दिया है, इससे पहिले डेरा का ही वर्णन प्रारम्भ किया । एक वृक्ष की लता दूसरे पर जा रही हैं । इस भाँति लाखो तम्बू तने हुए है । लताएँ अनेक रग की और अनेक प्रकार के फूलवाली होती है । इसलिए बिबिध बितान कहा । लता के फैलने का भी क्रम एक सा नही । परिमाण भी एक सा नही ।

चतुष्कोण झण्डे को ध्वजा त्रिकोण को पताका कहते हैं । फौज मे जहाँ तहाँ ध्वजा पताका फहराते हैं । ध्वजा छोटा पताका बडा होता है । कदली ध्वजा और ताल पताका हैं । ध्वजा पताका देखकर मनुष्य का साहस छूट जाता है कि शत्रु आया । ध्वजा पताका देखकर किला छोड़कर भागने का दृष्टान्त इतिहासो मे मिला है ।

बिबिध भाँति फूले तरु नाना । जनु बानत बने बहु बाना ॥
कहुँ कहुँ सुदर बिटप सुहाए । जनु भट बिलग बिलग होइ छाए ॥२॥

अर्थ : अनेको वृक्ष नाना प्रकार के फूले हुए हैं । मानो अलग अलग वर्दी धारण किये हुए बहुत से तीरन्दाज हो । कही कही सुन्दर वृक्ष शोभा दे रहे हैं । मानो योद्धा लोग अलग अलग होकर ठहरे हो ।

व्याख्या : वसन्त मे वृक्ष फूल उठते हैं । एक पेड मे एकही रंग के फूल होते हैं । वृक्ष नीचे से ऊपर तक फूल से लदे हैं मानो अनेक बीर अनेक प्रकार की वर्दी पहिने हैं । बानैत = सिपाही । धनुर्वेद सभी प्रकार के शास्त्रो की शिक्षा देता

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है। अत· शस्त्रकुशल सिपाही को बानैत कहते हैं। ‑डेरा पड गया है। इसलिए पलटन मे क्रम नही है विलग विलग है।

सुन्दर पेड बहुत नही होते। कुछ कुछ दूर पर होते है। इसी भाँति सभी सिपाही भट नही होते। वे अपने अपने समाज के साथ अलग अलग ठहरे हुए हैं। अत· उनकी उपमा सुन्दर वृक्ष से दी गयी है।

कूजत पिक मानहुँ गज माते। ढेक महोख ऊँट बिसराते ॥
मोर चकोर कीर बर बाजी। पारावत मराल सब ताजी ॥३॥

अर्थ : कोयलें कूज रही है। मानो मतवाले हाथी चिग्घाड रहे हैं। ढेक और महोख पक्षी मानो ऊँट और खच्चर है। मोर, चकोर, तोते, कबूतर और हंस मानो सब सुन्दर ताजी घोडे हैं।

व्याख्या : मत्त गज गर्जते है और पिक कूजते हैं गर्जहि गज घंटा धुनि घोरा। विरही को पिक का कूजना हाथी के गर्जन सा डरावना प्रतीत होता है। पञ्चम निषाद प्रतीत होता है। आम के बौर पर बैठी कोकिल मालूम होती है कि गजराज के पाँव मे सोने का लगर पडा है। ढेक की टाँग लम्बी होती हैं। महोख चौडे होते हैं। गज का वर्णन करके बार बरदारी के जानवर ऊँट और खच्चर का वर्णन करते हैं।

मोर चकोर कीर की चाल अच्छी होती हैं। इससे इन्हे बरबाजी कहा और कबूतर और हस की बडी भारी गति है। इसलिए इन्हे ताजी कहा। कबूतर और घोड़ो के रग की भी बडी बारीकी हैं। कबूतरबाजो को खूब रंगो का पहिचान होता है।

तीतर लावक पदचर यूथा। बरनि न जाइ मनोज बरूथा ॥
रथ गिरि सिला दुंदुभी झरना। चातक बंदी गुन गन बरना ॥४॥

अर्थ : तीतर और बटेर पैदल सिपाही के झुण्ड हैं। कामदेव की सेना का वर्णन नही हो सकता। पर्वतो की शिलाएँ रथ और जल के झरने के नगाडे हैं। पपीहे भाट हैं जो गुण समूह का वर्णन करते है।

व्याख्या : तीतर लावा ऊँचे नही उडते। प्रायेण पैर से ही बड़ो तेजी से चलते है। इससे इन्हे पैदल कहा। काम की सेना का वर्णन नही हो सकता। लौकिक सेना का तो वर्णन सम्भव है। वन मे जितने पशु पक्षी हैं सब काम की सेना हैं : बन उपवन वाटिका तडागा। जहँ तहँ जनु उमगत अनुरागा।

जब रथ से घोडे खोल दिये जाते हैं तो रथ गिरि शिला की भाँति स्थिर दिखायी पडते हैं। झरना का शब्द हुआ करता है मानो दुदुभी बज रही है। नौबत झर रही है। चातक भाट की भाँति काम का गुण गा रहे हैं। पीय पीय कहकर उसे जगत् का प्रिय बतला रहे हैं। काम की जीत से ही संसार चल रहा है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मधुकर मुखर भेरि सहनाई। त्रिविध बयार बसीठी आई॥
चतुरंगिनी सेन सँग लीन्हे। बिचरत सबहि चुनौती दीन्हे॥५॥

अर्थ भौरो की गुञ्जार भेरी और शहनाई है। शीतल मन्द और सुगन्धित हवा मानो दूत बनकर आयी है। इस प्रकार चतुरङ्गिणी सेना साथ लिये कामदेव मानो सब को चुनौती देता हुआ विचर रहा है।

व्याख्या गुजत अलि लै चल मकरन्दा। ये मधुर मुखर होते हैं। अत इन्हे शहनाई और नगाडा कहा। शहनाई राजा के पास बजती है। जो हवा का झोका आया सो शीतल मन्द सुगन्धित था। इसलिए इसे बसीठी कहा। सुलह की बात लेकर आया हमारे शरण आ जाओ प्राण छोड देंगे। हम लोगो ने रावण को चुनौती दिया। यह जगत् को चुनौती देता घूमता है। जहाँ जहाँ बसन्त आया है वहाँ वहाँ यही हाल है। अथवा बसन्त की सेना संसार मे व्याप्त हो गयी है। अत सबको एक साथ चुनौती दे रहा है।

लछिमन देखत काम अनीका। रहहिं धीर तिन्ह कै जग लीका॥
एहि के एक परम बल नारी। तेहि ते उबर सुभट सोइ भारी॥६॥

अर्थ हे लक्ष्मण! कामदेव की इस सेना को देखकर जो धीर बने रहते हैं जगत् मे उन्ही की वीरो मे प्रतिष्ठा होती है। इस कामदेव को एक स्त्री का बडा भारी बल है। क्योकि सामारिक भोगो मे स्त्री शरीर ही सर्वोत्कृष्ट भोग है। उससे जो बच जाय वही श्रेष्ठ योद्धा है।

व्याख्या पहिले देखने को कहा लछिमन देखु बिपिन कर सोभा। देखत केहि कर मन नहि छोभा। देखहु तात बसन्त सुहावा। इत्यादि। इस भाँति कामियो की दीनता दिखायी। अब धीरो के मन मे विरति को दृढ करते है। कहते हैं कि जिसे क्षोभ न हुआ ससार मे उसी का लीक है रेख खँचाइ कहौं बल भाखी। वही बडा धीर है।

लोभ के इच्छा दम्भ बल काम के केवल नारि। नारि मे चित्त न हो तो काम अकिञ्चित्कर है। अवगुन मूल सूल प्रद प्रमदा सब दुख खानि। ताते कीन्ह निवारन मुनि मैं यह जिय जानि।

दो तात तीनि अति प्रबल खल, काम क्रोध अरु लोभ।
मुनि बिग्यान धाम मन, करहि निमिष महुँ छोभ॥३८॥

अर्थ हे तात! काम क्रोध और लोभ ये तीन अत्यन्त प्रबल दुष्ट हैं। ये विज्ञान के धाम मुनियो के भी मनो को पलभर मे क्षुब्ध कर देते हैं।

व्याख्या बिना कारण वैर करते हैं। इसलिए खल कहा। इन्ही से प्रयुक्त होकर मनुष्य पापाचरण करते हैं। इसलिए प्रबल खल कहा। त्रिविध नरकस्येद द्वार नाशनमात्मन। काम क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रय त्यजेत्। काम एष

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



क्रोध एष रजोगुणसमुद्भव'। महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्। खल बिनु कारण पर अपकारी। मुनि मन छोभ करहिं छन माँही। ये आत्मा के नाश करनेवाले काम क्रोध और लोभ नरक के द्वार है। ये बडे खानेवाले पापी हैं। इन वैरियो को जाने रहो। ये निष्कारण अपकार करते हैं। मुनि के मन में पलक मारते क्षोभ करते हैं।

दो. लोभ के इच्छा दंभ बल, काम के केवल नारि।
क्रोध के परुष बचन बल, मुनिबर कहहि बिचारि ॥३८.३२॥

अर्थ : लोभ को इच्छा और दम्भ का बल है। काम को केवल स्त्री का बल है और क्रोध को कठोर वचनो का बल है। श्रेष्ठ मुनि विचारकर ऐसा कहते हैं।

व्याख्या : इनका मर्म कहते हैं। इच्छा और दम्भ को स्थान न देने से लोभ मारा पडता है। स्त्री की कामना न रहने से काम मारा पडता है। परुष वचन के त्याग तथा सहन से क्रोध का जय होता है। मुनियों के ऊपर चोट करता है। अतः मुनियों ने उसका उपाय सोच निकाला है।

गुनातीत सचराचर स्वामी। राम उमा सब अंतरजामी ॥
कामिन्ह कै दीनता देखाई। धीरन्ह के मन बिरति दृढ़ाई ॥१॥

अर्थ : शिवजी कहते हैं : हे पार्वती! श्रीरामचन्द्रजी तीनो गुणो से परे चराचर जगत् के स्वामी और सबके अन्तर के यमन करनेवाले हैं। ऊपर की बातें कहकर : उन्होने कामी लोगों की बेबसी दिखलायी और विवेकी पुरुषो के मन मे वैराग्य को दृढ किया।

व्याख्या : विषाद तमोगुण का कार्य है। सरकार गुणातीत है। अतः उनसे विषाद का सम्पर्क नही। चराचरात्मक जगत् उनका स्व है। जगत् से निर्लेप रहने पर भी वे उसके स्वामी हैं। चेतन जीव के भी प्रेरक हैं। वे विषाद से प्रेरित नही हो सकते। यही उमा को मोह हुआ था। अतः ज्ञान घाट के वक्ता यहाँ सरकार के स्वरूप का निरूपण करते है। अतः उमा सम्बोधन दिया।

यह उनकी लीला है। फिर भी कुछ प्रयोजन होना चाहिए। अतः कहते हैं लोक शिक्षा के लिए : चाटत चाम सँवारत चामहि चाम बिना मन दोन : अवतार भी हो यदि स्त्री संग्रह करे तो उसे भी विलाप करना पडता है। दीनता का प्रदर्शन पण्डितो के हृदय मे वैराग्य सदीपनार्थ किया : उमा राम गुन गूढ का साफल्य।

क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहिं सकल राम की दाया ॥
सो नर इंद्रजाल नहि भूला। जा पर होइ सो नट अनुकूला ॥२॥

अर्थ : क्रोध, काम, लोभ, मद और माया ये सभी श्रीरामजी के दया से

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



छूट जाते हैं। वह नट भगवान् जिस पर प्रसन्न होता है वह मनुष्य इन्द्रजाल : माया : मे नही भूलता।

व्याख्या : सकल बिघ्न ब्यापहिं नहिं तेही। राम सुकृपा बिलोकहिं जेही। तुम्हारी कृपा तुम्हहि रघुनन्दन। जानहिं भगत भगत उर चंदन। अतः सरकार की कृपा से माया ही छूट जाती है। कामनादि तो उसके अधीन हैं।

छूटने की प्रक्रिया कहते है। माया इन्द्रजाल है। सरकार नट हैं। यह संसार उसी नट का फैलाया हुआ इन्द्रजाल है। नट कृत बिकट कपट खगराया। नट सेवकहि न ब्यापै माया। शेष जगत् उसी मे भूला फिरता है। नट तो इन्द्रजाल पसारनेवाला है। उसका कृपापात्र इन्द्रजाल में नही भूलता वह कैसे भूलेगा।

उमा कहउँ मै अनुभव अपना। सत हरि भजनु जगत सब सपना॥
पुनि प्रभु गये सरोवर तीरा। पंपा नाम सुभग गंभीरा॥३॥

अर्थ हे उमा! मैं तुम्हे अपना अनुभव कहता हूँ : हरि का भजन ही सत्य है। यह सारा जगत् तो स्वप्न की भाँति असत् है। फिर प्रभु श्रीरामजी पम्पा नामक सुन्दर और गहरे सरोवर के तीर पर गये।

व्याख्या . कोई ऐसा कृपापात्र है भी जो इस इन्द्रजाल में न भूला हो। तो शिवजी पहिले अपने को ही उदाहरण रूप मे देते हैं। अतः अपना अनुभव कहते हैं। मुझे जगत् सपना सा मिथ्या प्रतीत होता है ' व्यावहारिक सत्य स्वीकार नही है : दिखायी मुझे भी पडता है। पर मुझे उसके सत्यता का भान नही होता। सब प्रातिभासिक है। मुझे हरि भजन सत्य मालूम होता है। हरि भजन से ही संसार के मिथ्यात्व का निश्चय होता है। हरि भजन मात्र से सत् की प्रतीति होती है।

पपा सरहि जाहु रघुराई। सो सरकार वहाँ पहुँचे। गम्भीर सरोवर है और सुन्दर है। उत्तर मे मानस सरोवर है और दक्षिण मे पम्पा है। दोनो सुभग गम्भीर हैं। देखने मे सुन्दर अवगाहन मे गम्भीर। गहराई आँख से दिखायी पड़ती है।

संत हृदय जस निर्मल बारी। बाँधे घाट मनोहर चारी॥
जहँ तहँ पियहिं बिबिध मृग नीरा। जनु उदार गृह जाचक भीरा॥४॥

अर्थ · उसका जल मन्तो के हृदय जैसा निर्मल है। मन को हरनेवाले सुन्दर चार घाट बँधे हुए है। भाँति भाँति के पशु जहाँ तहाँ जल पी रहे हैं। मानो उदार दानी पुरुषो के घर याचको की भीड लगी हो।

व्याख्या . गहराई दिखायी पडने के लिए नि र्मल जल चाहिए। अतः कहते है सन्त हृदय की भाँति निर्मल है। सन्त लोग गम्भीर होते है। परन्तु ऐसे निर्मल हृदय के होते हैं कि कोई बात छिपाते नही। उनके हृदय की बात स्पष्ट मालूम हो जाती है। मनस्येक वचस्येक कर्मण्येक महात्मनाम्। ऐसा निर्मल हैं कि तल में पड़ी हुई वस्तु दिखायी पडती है। उस जगल मे भी घाट बँधा हुआ है। राजा की सावधानी द्योतित होती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बड़ा भारी सरोवर है। बहुत दूर तक फैला हुआ है। अत विविध मृग बिना बाधा जल पी रहे हैं। सरोवर की उपमा उदार गृह से दिया। मृगों की उपमा याचकों से दिया। सबकी प्यास मिट रही है। मनोरथ पूर्ण हो रहा है। बस्ती सन्निकट नही है।

दो. पुरइनि सघन ओट जल, बेगि न पाइअ मर्म।
मायाछन्न न देखिऐ, जैसे निर्गुन ब्रह्म ॥३९. क॥

अर्थ : घनी पुरइनों के आड मे जल का जल्दी पता नही मिलता। जैसे माया के ढँके रहने के कारण निर्गुण ब्रह्म नही दीखता।

व्याख्या : देखने मे पुरइन पुरइन दिखायी पडती है। पत्तो ने जल को ढँक रक्खा है। कहाँ जल है इस बात का पता नही चलता और जल है सभी जगह। इसी भाँति निर्गुण ब्रह्म का पता नही चलता माया ही दिखायी पडती है जब कि निर्गुण ब्रह्म सर्वत्र है। इससे माया का अपने अधिष्ठान का ही आवरण करना दिखलाया। माया की तुच्छता भी दिखलायी। परिसीमित होना भी दिखलाया।

दो. सुखी मीन सब एक रस, अति अगाध जल माहि।
जथा धर्मसीलन्ह के, दिन सुख संजुत जाहि ॥३९.३३॥

अर्थ : उस सरोवर के अत्यन्त अथाह जल मे सब मछलियाँ सदा एक समान सुखी रहती हैं। जैसे धर्मशील पुरुषो के सब दिन सुखपूर्वक बीतते हैं।

व्याख्या : धर्म वारि है। धर्मशील मछली है। अगाध धर्म होने से दु ख आ ही नही सकता : सुखी मीन जहँ नीर अगाधा। एक रस यथा : तुलसी पछिन के पिये घटै न सरवर नीर। धर्म किये धन ना घटै जो सहाय रघुबीर। अति अगाध जल न हो तो एक रस सुख नही रहता। वर्णास्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग। चलहिं सदा पावहिं सुखहिं नहिं भय सोक न रोग। धर्मशीलन की उपमा मछलियो से दिया और धर्म की उपमा अगाध जल से दिया। धर्मो रक्षति रक्षित·। गोस्वामीजी प्रकृति वर्णन मे भी उपदेशात्मक उपमाएँ देते हैं। यथा वर्षा शरद वर्णन मे दिया।

बिकसे सरसिज नाना रंगा। मधुर मुखर गुंजत बहु भृंगा॥
बोलत जल कुक्कुट कल हंसा। प्रभु बिलोकि जनु करत प्रससा ॥१॥

अर्थ : उसमे रगबिरगे कमल खिले हुए हैं। बहुत से भौंरे मधुर स्वर से गुञ्जार कर रहे हैं। जल के मुर्गे और राजहस बोल रहे हैं मानो प्रभु को देखकर उनकी प्रशसा कर रहे हों।

व्याख्या · फूले कमल सोह सर कैसा। निर्गुण ब्रह्म सगुन भए जैसा। जल को निर्गुण, पुरइन को माया, गुण को कमल कहा। गुणो मे नाना रङ्ग है · मुनि मन मधुप रहत जिन्ह छाये। माया से ऊपर माया मे ही ब्रह्म सगुण रूप से व्यक्त होते है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जलपक्षी सिर उठा उठाकर बोलते हैं : मानो प्रभु की प्रशसा करते हैं। ये मृगो की भाँति निन्दा नही करते। ये निर्गुण ब्रह्म मे विचरण करनेवाले हैं। इनकी वाणी सुन्दर है। पर सगुण ब्रह्म की प्रशसा करते हैं। सगुण ब्रह्म दर्शनीय हैं।

चक्रवाक बक खग समुदाई। देखत बनइ बरनि नहिं जाई ॥
सुन्दर खग गन गिरा सुहाई। जात पथिक जनु लेत बोलाई ॥२॥

अर्थ · चक्रवाक बगुले आदि पक्षियो का समुदाय देखते ही बनता है। उसका वर्णन नही किया जा सकता। सुन्दर पक्षियो की बोली बडी सुहावनी लगती है मानो रास्ते मे जाते हुए पथिक को बुलाये लेती हो।

व्याख्या : सरोवर जलपक्षियो से भरा है। अनेक रङ्ग के पक्षी चकवा बगुला आदि से बडी शोभा हो रही हैं। देखते ही बनता है कहते नही बनता। कहा भी है वयासि तद् व्याकरण विचित्रम्।

चहचहाहट सुनकर पथिक का जो चाह जाय कि वहाँ चलकर विश्राम कर लें। विश्राम करने की इच्छा नही है। इसलिए जात पथिक कहा। वे पक्षी देखने मे भी सुन्दर और उनकी गिरा भी मनोहर है।

ताल समीप मुनिन्ह गृह छाए। चहुँ दिसि कानन बिटप सुहाए ॥
चंपक बकुल कदब तमाला। पाटल पनस पनास रसाला ॥३॥

अर्थ उस झील के समीप मुनियो ने आश्रम बना रक्खे हैं। उसके चारो ओर वन के सुन्दर वृक्ष है। चम्पा मौलसिरी, कदम्ब, तमाल, पाटल, कटहल, ढाक और आम आदि।

व्याख्या महातीर्थ है। अत उसके सन्निकट मुनि लोग बसे हैं। धर्म कार्य मे जल का बराबर काम पडता है। अत तीर मे ही कुटिया छा रक्खा है। पेड और झाडियो के बीच मे कुटियाँ हैं।

अब वृक्ष और झाडियो का नाम गिनाते हैं। ये सब वृक्ष मुनियो के काम के है। आठ मे से चार फल फूलवाले है। शेष फूलवाले या पत्तेवाले है।

नव पल्लव कुसुमित तरु नाना। चचरीक पटली कर गाना ॥
सीतल मद सुगध सुभाऊ। सतत बहइ मनोहर बाऊ ॥४॥

अर्थ : बहुत प्रकार के वृक्ष नये नये पत्तो और पुष्पो से युक्त है जिन पर भौरो के समूह गुञ्जार कर रहे हैं। स्वभाव से ही शीतल, मन्द, सुगन्धित एव मन को हरनेवाली हवा सदा बहती रहती है।

व्याख्या : नये पल्लव और कुसुम से वृक्ष की शोभा और चचरीक पटली से पुष्प पल्लव की शोभा है। मारे आनन्द के गान कर रहे हैं। क्योकि पत्र पुष्प मे रसबाहुल्य है। जितना गिनाया है सो उपलक्षण मात्र है। अनेक प्रकार के वृक्ष हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पुण्य तीर्थ का माहात्म्य दिखलाते हैं। जे सर सरित राम अवगाहहिं। तिनहि देवसर सरित सराहहिं। जिस सम्पत्ति से परोपकार नही वह सुसम्पत्ति भी नही है। क्योकि उसकी प्रथम गति नही है। यथा सो धन धन्य प्रथम गति जाकी।

जेहि तरुतर प्रभु बैठहिं जाई। करहि कल्पतरु तासु बडाई। यहाँ वर शब्द श्लिष्ट है। वट के पेड तल बैठे। यथा तेहि गिरि पर वट बिपट बिसाला। अविरल छाँह सुखद सब काला। रघुराई हैं। ऐसे स्थान पर बैठते हैं जहाँ दरबार लग सके। अनुज सहित बैठे। अनुज ही सहाय है। यथा देखि गयउ भ्राता सहित तासु दूत सुनि बात।

## ४४ प्रभु नारद सवाद

तहँ पुनि सकल देव मुनि आए। अस्तुति करि निज धाम सिधाए ॥
बैठे परम प्रसन्न कृपाला। कहत अनुज सन कथा रसाला ॥२॥

अर्थ फिर वहाँ सब देवता और मुनि आये और स्तुति करके अपने अपने धाम को चल गये। कृपालु रामजी परम प्रसन्न बैठे हुए छोटे भाई लक्ष्मणजी से रसीली कथाएँ कह रहे हैं।

व्याख्या सुरन्ह बिलोकि दसा रघुबर की। बरषि सुमन कह गति घर घर की। तथा निसिचर निकर सकल मुनि खाये। देवता और मुनि दोनो ने फिर याद किया था। सो देवमुनि के लिए सरकार ने राक्षसो से वैर किया। अत उन लोगो ने स्तुति की और चले गये। ईश्वर बुद्धि से आये। अत सरकार ने प्रणाम नहीं किया।

सदा भाई से कहा करते हैं। सूपनखा के आने पर कथा छूटी है। एहि बिधि गये कछुक दिन बीती। कहत बिराग ग्यान गुन नीति। फिर विरह का नाटच होने लगा। नारदजी के शाप को अङ्गीकार करके तब तक अभिनय किया जब तक कि नारदजी को असह्य न हो जाय। नारद को सोच होते ही शाप का साफल्य हो गया। अब परम प्रसन्न बैठे हैं।

बिरहवत भगवतहि देखी। नारद मन भा सोच बिसेखी ॥
मोर स्राप करि अगीकारा। सहत राम नाना दुख भारा ॥३॥

अर्थ भगवान् का विरह युक्त देखकर नारदजी के मन मे विशेष रूप से सोच हुआ कि मेरे ही शाप को स्वीकार करके श्रीरामजी नाना प्रकार के दुखो का भार सह रहे हैं।

व्याख्या कबहूँ योग बियोग न जाके। उसको विरहवत देखकर नारदजी को विशेष सोच हुआ। अर्थात् सोच तो सबको हुआ। नारद को अपनी करतूत समझकर अधिक सोच हुआ। मुझ पर इतनी कृपा की कि मेरे कहने पर भी मेरी बात नही हटायी। इन्हे कर्म शुभाशुभ बाधा नही कर सकता। फिर भी मेरे शाप

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



को अङ्गीकार किया। अब करिहैं कीस सहाय तुम्हारी। इसे सत्य करने के लिए सुग्रीव की शरण जा रहे हैं। भूमि सयन बल्कल बसन असन कन्द फल मूल चल ही रहा है।

ऐसे प्रभुहि बिलोकउँ जाई। पुनि न बनिहि अस अवसरु आई॥
येह बिचार नारद कर बीना। गए जहाँ प्रभु सुख आसीना॥४॥

अर्थ ऐसे भक्तवत्सल प्रभु को जाकर देखूँ। फिर ऐसा अवसर न बन आवेगा। यह विचारकर नारदजी हाथ मे वीणा लिये हुए वहाँ गये जहाँ प्रभु सुखपूर्वक बैठे हुए थे।

व्याख्या प्रभु के अवतार तो अनेक हुए पर जैसी भक्तवत्सलता रामावतार म दिखा रहे हैं ऐसी तो कभी देखी नही गयी। अपने क्षुद्र भक्त के शाप को सत्य करने के लिए इतना कष्ट उठा रहे हैं। इस भक्तवत्सलता का तो कीर्त्तिस्तम्भ स्थापित करना चाहिए और वह कीर्तिस्तम्भ अचल तभी होगा जब रामनाम मत्स्य कूर्म वाराहादि नामो से अधिक महत्त्ववाला हो। इस समय मुझ पर सरकार की बडी भारी दया का उद्रेक है। इस समय जाकर वरदान के रूप मे यही बात माँगने से बहुत सम्भव है कि मिल जाय। क्योकि यही ऐसे वरदान माँगने का अवसर है है। फिर ऐसा अवसर नही मिलेगा। अत नारदजी ने परम वात्सल्यमयी भगवान् की मूर्ति के दर्शन करने का निश्चय किया।

वीणापाणि हैं। गाते बजाते चल। सुख आसीन तहाँ दोउ भाई। कथा हो रही है।

गावत राम चरित मृदु बानी। प्रेम सहित बहु भाँति बखानी॥
करत दडवत लिये उठाई। राखे बहुति बार उर लाई॥५॥

अर्थ वे कोमल वाणी से प्रेम के साथ बहुत प्रकार से बखान बखानकर रामचरित्र का गान करते हुए चले आ रहे थे। दण्डवत् करते देखकर श्रीरामचन्द्रजी ने नारदजी को उठा लिया और बहुत देर तक हृदय से लगाये रक्खा।

व्याख्या वीणा से कर्मणा। गावत रामचरित वाचा। प्रेम सहित मनसा। ऐसी मृदु वाणी कि वीणा का साथ दे सके।

दण्डवत कर नही पाये और प्रभु ने उठा लिया। अपराधी अपने को मानकर दण्डवत प्रणाम करते हैं। बहुत बार उर लाई। आश्वासन क लिए सोच मिटाने के लिए। तुम मुझे बडे प्रिय हो। तुम्हारे शाप क अनुसार बत्तने म मुझे सुख है। देखो मैं परम प्रसन्न हूँ। ये सब भाव बहुत देर तक हृदय लगान से द्योतित हुए।

स्वागत पूछि निकट बैठारे। लछिमन सादर चरन पखारे॥६॥

अर्थ फिर कुशल पूछकर पास बिठा लिया। लक्ष्मणजी ने आदर के साथ उनके चरण धोये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या स्वागत कर निकट आसन दिया। ईश्वर भाव लेकर आये हैं। इसलिए स्वयं पैर नहीं धोया। लक्ष्मणजी ने आदर से धोया। शास्त्र मर्यादा का पालन हो रहा है। पेड के नीचे बैठे है। फिर भी तृणभूमि, उदक और सूनृत से नारदजी का आतिथ्य हो रहा है। यथा : तृणानि भूमिरुदक वाक् चतुर्थी तु सूनृता। एतान्यपि सता गेहे नोच्छिद्यन्ते कदाचन। मनु।

दो नाना बिधि बिनती करि, प्रभु प्रसन्न जियँ जानि।
नारद बोले वचन तब, जोरि सरोरुह पानि ॥४१.३५॥

अर्थ : बहुत प्रकार से विनती करके और प्रभु को मन मे प्रसन्न जानकर तब नारदजी कमल सदृश हाथों को जोडकर वचन बोले।

व्याख्या अपराध क्षमापन के लिए पहिले नाना विधि से विनती की। जब देख लिया कि प्रभु की मेरे ऊपर प्रसन्नता है। तब हाथ जोडकर बोले : मनोरथ पूर्ति के लिए विनय करने का उपयुक्त समय वही है जब दाता को अपने ऊपर प्रसन्नता हो।

सुनहु उदार सहज रघुनायक। सुदर अगम सुगम बर दायक ॥
देहु एक बर मागउँ स्वामी। जद्यपि जानत अंतरजामी ॥१॥

अर्थ हे स्वभाव से उदार श्रीरघुनाथजी! सुनिये। आप सुन्दर अगम और सुगम वर के देनेवाले है। हे स्वामी! मै एक वर माँगता हूँ वह मुझे दीजिये। यद्यपि आप अन्तर्यामी होने के नाते सब जानते ही हैं।

व्याख्या : सहज उदार होने का कारण देते हैं रघुनायक रघुकुल ही सहज उदार हैं। मगन लहइ न जिनके नाही। सरकार तो उस कुल के नायक हैं। सहज उदार से ही मनोवाञ्छित की प्राप्ति होती है। यथा : माँगहु बर जोइ भाव मन महादानि अनुमानि। माँगनेवाले से चूक हो तो सरकार सँभाल लेते है। अवढर दानी नहीं हैं। यथा . कुपथ माँग रुज व्याकुल रोगी। बैद न देइ सुनहु मुनि जोगी। उदारता बडी है पर सुन्दरता पर भी ध्यान रहता है। अगम वर को भी सुगम की भाँति दे देते हैं एक लालसा बडि उर माही। सुगम अगम कहि जात सो नाही। तुमहि देत अति सुगम गोसाई। अगम लागि मोहि निज कृपनाई।

स्वामी को छोडकर किससे माँगे। स्वामी ही समर्थ है। जो माँगेगे वह उनका स्व है। उदार से अनेक वर माँगा जा सकता है। पर मैं एक ही वर माँगता हूँ जिससे अवश्य मिले। सो आप जानते हैं। क्योंकि आप ही माँगने के लिए प्रेरणा कर रहे हैं : को जिय की रघुबर बिन बूझा। पर वर मे शब्द प्रमाण है। इसलिए माँगता हूँ।

जानहु मुनि तुम्ह मोर सुभाऊ। जन सन कबहु कि करउँ दुराऊ ॥
कवन बस्तु असि प्रिय मोहि लागी। जो मुनिवर न सकहु तुम्ह मागी ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : श्रीरामजी ने कहा : हे मुनि ! तुम मेरा स्वभाव जानते ही हो। क्या मैं अपने भक्तों से कभी कुछ छिपाव करता हूँ ? मुझे ऐसी कौन सी वस्तु प्रिय लगी है जिसे हे मुनिश्रेष्ठ ! तुम नहीं माँग सकते ?

व्याख्या : जो वस्तु जिसे प्रिय होती है। उसे वह छिपाकर रखता है कि दूसरा ले न ले। परन्तु उसी वस्तु को उसे अपने प्रेम पात्र के देने मे हर्ष होता है। भगवान् नारदजी से कहते हैं कि तुम मेरे स्वभाव को जानते हो कि मुझे भक्त के समान कोई प्रिय नहीं है। यथा मोरे हित हरि सम नहि कोऊ। मैंने अपनी स्वतन्त्रता भक्त को दे रक्खी है। उनके परतन्त्र रहता हूँ। अहं भक्तपराधीन' ह्यस्वतन्त्र इव द्विज। मुझे ऐसी कौन वस्तु प्रिय लगी जिसे तुम नहीं माँग सकते। अतः माँगने में सङ्कोच क्यों करते हो ? यहीं पर : तब विवाह मैं चाहौं कीन्हा। प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा : इस शङ्का का बीज पड़ गया। नारदजी को याद आगया कि वह वस्तु विश्व मोहिनी थी। जिसे माँगने पर भी मुझे न देकर स्वयं ले लिया। यथा : दुलहिनि लै गये लच्छि निवासा। नृप समाज सब भयउ निरासा।

जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरें। अस बिस्वास तजहु जनि भोरें॥
तब नारद बोले हरपाई। अस बर मागउँ करउँ ढिठाई॥३॥

अर्थ : मुझे भक्त के लिए कुछ भी अदेय नहीं है। ऐसा विश्वास भूलकर भी मत छोड़ो। तब नारद जी हर्षित होकर बोले. मैं ऐसा वर माँगता हूँ यह धृष्टता करता हूँ।

व्याख्या : यह न समझो कि मैं कह दूँगा : अदेयस्तु वरो ह्येष'। अतः सङ्कोच छोड़कर माँगो : सकुच बिहाय माँगु नृप मोही। मोरे नहिं अदेय कछु तोही। विश्वास छोड़ने मे अकल्याण है। भक्तिपथ से पतन हो जाता है। नारद का माँगने मे साहस न पड़ते देखकर प्रोत्साहन के लिए पहिले ही देने के लिए वचनबद्ध हो रहे हैं। बड़ी इच्छा है कि नारद माँगें।

नारदजी प्रसन्न हो गये कि मनोवाञ्छा सिद्ध हुई। इनकी अवस्था ठीक स्वायम्भू मनु सी है। वर माँगने मे आगा पीछा हो रहा है। बात ढिठाई की है। सरकार के नामों के महत्त्व मे उलट फेर करने का जीव को कौन सा अधिकार है। ऐसा वर माँगना अनधिकार चेष्टा है।

जद्यपि प्रभु के नाम अनेका। स्रुति कह अधिक एक तें एका॥
राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका॥४॥

अर्थ : यद्यपि प्रभु के अनेकों नाम हैं और वेद कहते हैं कि वे सब एक से एक बढ़कर हैं। तो भी हे नाथ ! राम नाम और पापरूपी पक्षियों के समूह के लिए बधिक होने में सब नामों से बढ़कर हो।

व्याख्या : ढिठाई को स्पष्ट करते हैं। राम अनन्त अनन्त गुनानी। जन्म कर्म अनन्त नामानी। उन नामों मे छोटा बड़ा कोई नहीं। एक से एक अधिक है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इसमे वेद प्रमाण है। उसमे कुछ बोलना वेद मे हाथ लगाना है। वेद सरकार की वाणी है।

जिस अवतार मे इतनी भक्तवत्सलता है कि मेरी बात : शाप : झूठी न हो इसलिए सरकार इतना कष्ट सहन कर रहे हैं। उस अवतार का नाम सब नामो से अधिक हो। वेद मे हस्तक्षेप न हो। इसलिए कहते हैं कि अघ खग वधिकत्व मे अधिक हो। वधिक बडे बडे उपाय से चिडिया फँसाता है। यह नाम अघखग को निर्मूल कर दे।

दो राका रजनी भगति तव, राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडगन विमल, बसहुँ भगत उर ब्योम ॥४२॥

अर्थ आपकी भक्ति पूर्णिमा की रात्रि है। उसमे राम नाम यही पूर्णचन्द्र होकर और अन्य सब नाम तारागण होकर भक्तो के हृदयरूपी निर्मल आकाश मे निवास करें।

व्याख्या भक्ति मे लेशाविद्या स्वीकार है। इसी से राका रजनी कहा। उसमे पूर्णचन्द्र राम नाम हो। चन्द्र की भाँति मायान्धकार का नाशक हो। पर अकेले चन्द्र की भी शोभा नहीं और नाम भी तारो की भाँति साथ रहे। शोभा बढावें। पर महावीर्य राम नाम ही मे हो। भक्तो के दहराकाश मे सदा चाँदनी बनी रहे।

दो एवमस्तु मुनि सन कहेउ, कृपासिधु रघुनाथ।
तब नारद मन हरप अति, प्रभु पद नायउ माँथ ॥४२ ३६॥

अर्थ कृपासागर श्रीरघुनाथजी ने मुनि से ऐसा ही हो कहा। तब नारदजी ने मन मे अत्यन्त हर्षित होकर प्रभु के चरणो मे मस्तक नवाया।

व्याख्या कृपासिन्धु हैं। करुणानिधि हैं। नारद पर कृपा होती ही जाती है। रघुनाथ है। अत दे दिया। एवमस्तु कहा। कृतकृत्य होकर नारदजी प्रणाम करते हैं। मनोरथ की पूर्ति से अति हर्ष है।

अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी। पुनि नारद बोले मृदु बानी ॥
राम जबहि प्रेरेहु निज माया। मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया ॥१॥

अर्थ श्रीरघुनाथजी को अत्यन्त प्रसन्न जानकर नारदजी फिर कोमल वाणी बोले हे रामजी! हे रघुनाथजी! सुनिये। जब आपने अपनी माया को प्रेरित करके मुझे मोहित किया था।

व्याख्या नारदजी ने देखा कि वर देने पर भी प्रसन्नता मे कुछ भी अन्तर न पडा। अत निश्चय किया कि इस समय अति प्रसन्न हैं। जो जो काम लेना हो उसे लेने का यही समय है। जो कुछ प्रष्टव्य है उसके पूछ लेने का भी यही समय है। अत नारदजी मृदु वाणी बोले।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जब काम मुझे मोहित न कर सका। आपकी माया से मैं मोहित हुआ। आप रघुराया हो। अभिमान नही रहने देता। यथा : श्रीपति निज माया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि केरी।

तब बिबाह मैं चाहेँ कीन्हा। प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा॥
सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥२॥

अर्थ : तब मैं विवाह करना चाहता था। हे प्रभु ! आपने मुझे किस कारण विवाह नही करने दिया। प्रभु बोले : हे मुनि ! सुनो। मैं तुम्हे उत्साह के साथ कहता हूँ कि जो समस्त आशा : भरोसा छोडकर केवल मुझको ही भजते हैं।

व्याख्या : मैंने कोई अनुचित बात ·ही चाही। विवाह करना धर्माविरुद्ध काम है। इसकी प्रशसा शास्त्रों मे है। यथा : धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ। सो उसमें आप ही बाधक हुए। स्वयं ब्याह कर लिया। विश्वमोहिनी को स्वयं लेने के अतिरिक्त और कौन कारण हो सकता है। जिससे आपने मुझे ब्याह न करने दिया और आप कहते हैं : जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरे। ये दोनों बातें तो असमञ्जस हैं।

सरकार ने उत्तर दिया कि कार्य भार बढ जाने के भय से मैं हतोत्साह नही हूँ। अतः उत्साह के साथ कहता हूँ कि जो लोग सबका भरोसा छोड़कर मुझे भजते हैं : जिन्हे दूसरे किसी का भी भरोसा हो उन लोगो के लिए नही कहता। जिन्हे केवल मेरा भरोसा है उनके लिए कहता हूँ।

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालकहि राख महतारी॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखै जननी अरगाई॥३॥

अर्थ : मैं सदा उनकी वैसे ही रखवारी करता हूँ जैसे माता बालक की रक्षा करती है। छोटा बच्चा जब आग और साँप को पकड़ने दौडता है तो वहाँ माता उसे : अपने हाथो अलग करके बचा लेती है।

व्याख्या : दूसरे की भी भरोसा रखनेवालो की सदा रखवारी नही करता। सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहइ असोच बनै प्रभु पोसे। उन्हे किसी का आसरा नही होता। इसलिए मैं भी उन्हे दूसरो पर नही छोड़ता। जैसे माँ बच्चे की रखवारी करती है। उसकी सब चेष्टाओ पर ध्यान रखती है।

शिशु बच्छ अर्थात् छोटा : नादान बच्चा। यथा : बहुरि बच्छ कहि लाल कहि रघुपति रघुबर तात। प्यार बच्चा : अगारा सूत्र चमकता है और सर्प बड़ा सुन्दर है। यह देखकर पकड़ने के लिए दौड़ता है। यहाँ विषय अनल है काम सर्प है। यथा : मनकरि विषय अनल बन जरई। काम भुजग डसत जब जाही। उस समय माँ लडके की इच्छाभिघात का ख्याल नही करती। बलपूर्वक हटा लेती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इसमे वेद प्रमाण है। उसमे कुछ बोलना वेद मे हाथ लगाना है । वेद सरकार की वाणी है।

जिस अवतार मे इतनी भक्तवत्सलता है कि मेरी बात : शाप : झूठी न हो इसलिए सरकार इतना कष्ट सहन कर रहे हैं। उस अवतार का नाम सब नामो से अधिक हो। वेद मे हस्तक्षेप न हो। इसलिए कहते हैं कि अघ खग वधिकत्व मे अधिक हो। वधिक बडे बडे उपाय से चिड़िया फंसाता है। यह नाम अघखग को निर्मूल कर दे।

दो राका रजनी भगति तव, राम नाम सोइ सोम।
अपर नाम उडगन बिमल, वसहुँ भगत उर ब्योम ॥४२॥

अर्थ आपकी भक्ति पूर्णिमा की रात्रि है। उसमे राम नाम यही पूर्णचन्द्र होकर और अन्य सब नाम तारागण होकर भक्तो के हृदयरूपी निर्मल आकाश मे निवास करें।

व्याख्या भक्ति मे लेशाविद्या स्वीकार है। इसी से राका रजनी कहा। उसमे पूर्णचन्द्र राम नाम हो। चन्द्र की भाँति मायान्धकार का नाशक हो। पर अकेले चन्द्र की भी शोभा नही और नाम भी तारो की भाँति साथ रहे। शोभा बढावें। पर महावीर्य राम नाम ही मे हो। भक्तो के दहराकाश मे सदा चाँदनी बनी रहे।

दो एवमस्तु मुनि सन कहेउ, कृपासिंधु रघुनाथ।
तब नारद मन हरप अति, प्रभु पद नायउ माँथ ॥४२.३६॥

अर्थ कृपासागर श्रीरघुनाथजी ने मुनि से ऐसा ही हो कहा। तब नारदजी ने मन मे अत्यन्त हर्षित होकर प्रभु के चरणो मे मस्तक नवाया।

व्याख्या कृपासिन्धु हैं। करुणानिधि हैं। नारद पर कृपा होती ही जाती है। रघुनाथ हैं। अत दे दिया। एवमस्तु कहा। कृतकृत्य होकर नारदजी प्रणाम करते हैं। मनोरथ की पूर्ति से अति हर्ष है।

अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी। पुनि नारद बोले मृदु बानी ॥
राम जवहि प्रेरेहु निज माया। मोहेहु मोहि सुनहु रघुराया ॥१॥

अर्थ श्रीरघुनाथजी को अत्यन्त प्रसन्न जानकर नारदजी फिर कोमल वाणी वोले हे रामजी! हे रघुनाथजी! सुनिये। जब आपने अपनी माया को प्ररित करके मुझे मोहित किया था।

व्याख्या नारदजी ने देखा कि वर देने पर भी प्रसन्नता मे कुछ भी अन्तर न पडा। अत निश्चय किया कि इस समय अति प्रसन्न हैं। जो जो काम लेना हो उसे लेने का यही समय है। जो कुछ प्रष्टव्य है उसके पूछ लेने का भी यही समय है। अत नारदजी मृदु वाणी बोले।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जब काम मुझे मोहित न कर सका। आपकी माया से मैं मोहित हुआ। आप रघुराया हो। अभिमान नही रहने देता। यथा : श्रीपति निज माया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि केरी।

तब विवाह मैं चाहेंउ कीन्हा। प्रभु केहि कारन करै न दीन्हा॥
सुनु मुनि तोहि कहउँ सहरोसा। भजहिं जे मोहि तजि सकल भरोसा॥२॥

अर्थ : तब मैं विवाह करना चाहता था। हे प्रभु! आपने मुझे किस कारण विवाह नही करने दिया। प्रभु बोले : हे मुनि! सुनो। मैं तुम्हे उत्साह के साथ कहता हूँ कि जो समस्त आशा : भरोसा छोड़कर केवल मुझको ही भजते हैं।

व्याख्या : मैंने कोई अनुचित बात ·ही चाही। विवाह करना धर्माविरुद्ध काम है। इसकी प्रशंसा शास्त्रो मे है। यथा : धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्पभ। सो उसमें आप ही बाधक हुए। स्वयं व्याह कर लिया। विश्वमोहिनी को स्वयं लेने के अतिरिक्त और कौन कारण हो सकता है। जिससे आपने मुझे व्याह न करने दिया और आप कहते हैं : जन कहुँ कछु अदेय नहिं मोरे। ये दोनो बातें तो असमञ्जस हैं।

सरकार ने उत्तर दिया कि कार्य भार बढ जाने के भय से मैं हतोत्साह नही हूँ। अतः उत्साह के साथ कहता हूँ कि जो लोग सबका भरोसा छोड़कर मुझे भजते हैं : जिन्हें दूसरे किसी का भी भरोसा हो उन लोगो के लिए नही कहता। जिन्हे केवल मेरा भरोसा है उनके लिए कहता हूँ।

करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालकहि राख महतारी॥
गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखै जननी अरगाई॥३॥

अर्थ : मैं सदा उनकी वैसे ही रखवारी करता हूँ जैसे माता बालक की रक्षा करती है। छोटा बच्चा जब आग और साँप को पकड़ने दौड़ता है तो वहाँ माता उसे : अपने हाथो अलग करके बचा लेती है।

व्याख्या : दूसरे की भी भरोसा रखनेवालो की सदा रखवारी नही करता। सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहइ असोच बनै प्रभु पोसे। उन्हे किसी का आसरा नहीं होता। इसलिए मैं भी उन्हे दूसरो पर नही छोड़ता। जैसे माँ बच्चे की रखवारी करती है। उसकी सब चेष्टाओ पर ध्यान रखती है।

शिशु बच्छ अर्थात् छोटा : नादान बच्चा। यथा : बहुरि बच्छ कहि लाल कहि रघुपति रघुवर तात। प्यार बच्चा : अगारा खूब चमकता है और सर्प बड़ा सुन्दर है। यह देखकर पकड़ने के लिए दौडता है। यहाँ विषय अनल है काम सर्प है। यथा : मनकरि विषय अनल बन जरई। काम भुजंग डसत जब जाही। उस समय माँ लड़के की इच्छाभिघात का ख्याल नही करती। बलपूर्वक हटा लेती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रौढ भए तेहि सुत पर माता। प्रीति करै नहि पाछिलि बाता॥
मोरे प्रौढ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी॥४॥

अर्थ किन्तु जब वह सयाना हो जाता है तब उस पुत्र पर माता प्रेम तो करती है। परन्तु पिछली बात नही रहती। ज्ञानी मेरे सयाने पुत्र के समान हैं और अपने सामर्थ्य का मान न करनेवाले सेवक मेरे शिशु पुत्र के समान है।

व्याख्या · वही बच्चा जब कुछ बडा हो जाता है फिर भी माँ प्रीति करती है। पर प्रत्येक चेष्टा पर ध्यान नही रखती। माँ जानती है कि इसे इतना ज्ञान है कि भले बुरे को पहिचान सकता है। इसी भाँति ज्ञान के कारण ईश्वर की ओर से देखरेख कम हो जाती है कि ज्ञान है सँभाल लेगा।

ज्ञानी प्रौढ तनय है। अमानी दास बालक शिशु है। यहाँ वच्छ शिशु का अर्थ खुल गया इसका अर्थ बालक शिशु है।

जनहि मोरे बल निज बल ताही। दुहु कहँ काम क्रोध रिपु आही॥
येह बिचारि पडित मोहि भजही। पाएहुँ ज्ञान भगति नहि तजही॥५॥

अर्थ मेरे सेवक को केवल मेरा ही बल रहता है और उसे ज्ञानी को अपना बल होता है। पर काम क्रोधरूपी शत्रु तो दोनो के लिए हैं। ऐसा विचारकर बुद्धिमान् लोग मुझको ही भजते हैं। व ज्ञान प्राप्ति होने पर भी भक्ति को नही छोडते।

व्याख्या भेद का कारण कहते हैं। भक्त को मेरा भरोसा और ज्ञानी को अपना भरोसा रहता है। यथा तामैश्वर्य्यपरा काश्यप परत्वात्। आत्मैक्यपरा बादरायण। ईश्वर का आश्रय करना यह काश्यप का मत है। आत्मा का आश्रय करना बादरायण का मत है। मेरी ओर से भेद नही है। भेद ज्ञानी की ओर से है। उसने मेरा भरोसा छोडा। अपना भरोसा किया। काम क्रोध तो ज्ञानी और भक्त दोनो के शत्रु हैं।

पण्डित अपना भरोसा नही रखते। यही उनकी पण्डिताई है। जिसमे हर समय मुझे उन पर ध्यान रखना पडे। ज्ञानी होकर भी भक्ति करते है। ज्ञानी होकर यदि मुझे न भजा तो उसे यथार्थ ज्ञान नही हुआ। वाक्य ज्ञान कुशल मात्र हैं।

दो काम क्रोध लोभादि मद, प्रबल मोह कै धारि।
तिन्ह महँ अति दारुन दुखद, मायारूपी नारि॥४३.३७॥

अर्थ काम, क्रोध, लोभ, और मद आदि अज्ञान की प्रबल सेना है। इसम माया की साक्षात् मूर्ति स्त्री तो अत्यन्त दारुण दु ख देनेवाली है।

व्याख्या ये सब मोह की फौज हैं। ये सब दारुण दु खद हैं। उनमे स्त्री तो मायारूपिणी ही है। यह अति दारुण दु खद है। काम क्रोधादि तो इसके सेवक है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मोह न अंध कीन्ह केहि केही । को जग काम नचाव न जेही ॥
तृष्णा केहि न कीन्ह बौराहा । केहि कर हृदय क्रोध नहिं दाहा ॥
ज्ञानी तापस शूर कवि, कोविद गुन आगार ।
केहि कै लोभ बिडंबना, कीन्ह न येहि संसार ॥
यह सब माया कर परिवारा । प्रबल अमित को बरनै पारा ॥
सिव चतुरानन जाहि डराही । अपर जीव केहि लेखे माँही ॥

मायारूपी नारी का भाव यह कि वस्तु विचार से कुछ नहीं ठहरती । अब नारी का मायामयत्व बतलाते हैं ।

सुनु मुनि कह पुराण स्रुति संता । मोह बिपिन कहुँ नारि वसंता ॥
जप तप नेम जलासय झारी । होइ ग्रीपम सोखइ सब नारी ॥१॥

अर्थ : हे मुनि ! सुनो । पुराण वेद और सन्त कहते हैं कि मोहरूपी वन को विकसित करने के लिए स्त्री वसन्त ऋतु के समान है । जप तप नियमरूपी सम्पूर्ण जलाशयों को स्त्री ग्रीष्म रूप होकर सर्वथा सोख लेती है ।

व्याख्या : पुराण, श्रुति के कहने पर भी सन्तो के कहने की अपेक्षा रहती है कि अमुक धर्म शिष्टानुगृहीत है कि नही । मोह विपिन है । महा कष्टकर इसमें जो भूला सो बाहर नही निकल सकता । डरपहिं धीर गहन सुधि आये । नारि वसन्त है । मोह विपिन पल्लवित्त पुष्पित्त हो उठता है । मोह बिपिन यों ही दुःखद है । फिर जहाँ स्त्री आयी तब फिर क्या कहना है । अब बाल बच्चे होंगे । माया बढ़ती ही जावेगी ।

१. जप २. तप ३. नियम से ही कार्य की क्षमता होती है । १. जपात् सिद्धि प्रजायते । २. तप बल रचै प्रपच बिधाता । तप अधार सब सृष्टि भवानी । ३. नियम : नेम प्रेमु शंकर कर देखा । अबिचल हृदयँ भगति कै रेखा । प्रगटे राम कृतज्ञ कृपाला । सो ये तीनों जलाश्रय की भाँति उपयोगी है । जलाश्रय तीन सर कूप बापी हैं । यथा : बन बाग उपवन बाटिका सर कूप बापी सोहही । ग्रीष्म में चाहे कोई सर वापी कूप बिना सूखे रह जाय । पर नारी तो सब जप तप नियम सोख ही लेती हैं : मुनि अति बिकल मोह मति नाठी । जप तप कछु न होइ तेहि काला : वन को बढ़ाती है जल को सुखाती है ।

काम क्रोध मद मत्सर भेका । इन्हहि हरपप्रद बरपा एका ॥
दुर्बासना कुमुद समुदाई । तिन्ह कहँ सरद सदा सुखदाई ॥२॥

अर्थ : काम क्रोध मद और डाह आदि मेढक हैं । इनको वर्षाऋतु होकर हर्ष प्रदान करनेवाली एक मात्र स्त्री है । बुरी वासनाएँ कुमुदो के समूह हैं । उनको सदैव सुख देनेवाली यह शरद् ऋतु है ।

व्याख्या : सर सूखने से भेकों को नष्ट हो जाना चाहिए । सो उनके लिए वर्षा हो जाती है । मरे भी जी उठते हैं । ये काम क्रोध मत्सर भेक हैं । ये व्यर्थ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



टरटराया करते है। कभी राम नही कहते। जीभ सो दादुर जीभ समाना। एका का अर्थ बेजोड है।

कुमुद रात को फूलते हैं। शरदऋतु मे इनकी बढोत्तरी होती है। दुर्वासना रात को बढती है। चोरी जारी रात मे ही होती है। इन्हे शरद ऋतु होकर बढाती है। भाव यह कि षड्ऋतुरूपा होकर कालचक्र रूपिणी है। एक साथ अनेक ऋतु का कार्य कर रही है। और सब भाँति हानिकारक है।

धर्म सकल सरसीरुह बृंदा। होइ हिम तिन्हहि दहै सुख मंदा ॥
पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई ॥३॥

अर्थ समस्त धर्म कमलो के झुण्ड हैं। यह मन्द : विषयजन्य सुख देनेवाली स्त्री हिम ऋतु होकर उन्हे जला डालती है। फिर मानसरूपी जवास का समूह स्त्रीरूपी शिशिर ऋतु को पाकर हरा भरा हो जाता है।

व्याख्या · धर्म कमल है। हिमऋतु सब कमलो का नाश करती है। एक कमल भी नही बचता। स्त्री सुख देकर धर्म का नाश करती है और वह सुख भी मन्द सुख है। आपातमात्रमधुरा विषयोपभोगा। नारदजी के चरण पंकज का भाव ही हरण कर लिया। कहने लगे स्वारथ साधक कुटिल तुम सदा कपट व्यवहार। सरकार के विमुख हो गये। और · सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न राम पद पकज भाऊ।

जवास मे काँटा ही काँटा होता है। ममता भी जवास की भाँति कण्टकाकीर्ण है। कलेजे मे चुभती है। शिशिर ऋतु मे इसकी वृद्धि होती है। वर्षा मे नाश होता है। सो काम क्रोधरूपी भेक के लिए वर्षा होने पर भी यह ममता जवास के लिए शिशिर हो जाती है। चार को सुख और दो को दु ख देती है।

पाप उलूक निकर सुखकारी। नारि निबिड रजनी अँधियारी ॥
बुधि बलु सील सत्य सब मीना। बनसी सम त्रिय कहहिं प्रबीना ॥४॥

अर्थ पापरूपी उल्लुओ के समूह के लिए यह स्त्री सुख देनेवाली घोर अन्धकारमयी रात्रि है। बुद्धि, बल, शील और सत्य ये सब मछलियो को फाँसने के लिए स्त्री वशी के समान है। चतुर पुरुष ऐसा कहते हैं।

व्याख्या मोह निसा सब सोवनिहारा। सो यह अमावस की रात्रि है। इसमे किसी का प्रचार नही। केवल पाप उलूक का प्रचार इसमे होता है। पुण्य पक्षी तो इसमे अन्धे रहते है। स्त्री पाने पर न भीतर का ज्ञान रहता है न बाहर का।

जप तप नियम जलाश्रय के बुद्धि बल शील सत्य मे सब मीन है। इन्ही से इनका जीवन है। स्त्री वशी है। उसमे · परम प्रेम मृदु चारो। परम प्रेम चारा है। चारा के लाभ से बुद्धि बल शील सत्य सब मारे पडते हैं। इनके कारण मनुष्य

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दुर्बुद्धि निर्बल दुःशील और झूठा हो जाता है। जो जो गुण तुम्हारे मे है सो सब हरण हो जाता। दुर्गुण आकर डेरा लगाते हैं।

दो अवगुन मूल सूलप्रद, प्रमदा सब दुख खानि।
ताते कीन्ह निवारन, मुनि मै यह जियँ जानि ॥४४ ३८॥

अर्थ युवती स्त्री अवगुणो की मूल, पीडा देनेवाली और सब दु खो की खान है। इसलिए हे मुनि! मैंने जी मे ऐसा जानकर तुमको विवाह करने से रोका था।

व्याख्या संसृति मूल सूलप्रद नाना। सकल सोकदायक अभिमाना। सो उस अभिमान को तोडने का उपाय किया था। यदि ब्याह हो जाता तो प्रमदा सग्रह से अवगुन मूल नाना शूलप्रद वस्तु तो बनी ही रहती। तुम अनर्थ से न बच सकते। अत मैने ब्याह से रोक दिया। प्रमदा कहने का भाव यह कि इन्हे मद बना ही रहती है। यह उपदेश यति तथा ब्रह्मचारी के लिए है। यहाँ पर अच्छी बुरी स्त्री का प्रश्न नही है। ब्रह्मचारी स्त्री मात्र से विरत हो। न पश्येत् लिखितामपि। चित्र की स्त्री न देखे। गृहस्थ के लिए तो कह ही आये हैं नारि सहित सब खग मृग वृंदा। मानहु मोरि करतहहिं निन्दा।

सुनि रघुपति के बचन सुहाए। मुनि तन पुलक नयन भरि आए ॥
कहहु कवन प्रभु कै असि रीती। सेवक पर ममता अरु प्रीती ॥१॥

अर्थ श्रीरघुनाथजी के सुन्दर वचन सुनकर मुनि का शरीर पुलकित हो गया और नेत्र भर आये। वे सोचने लगे कहो तो किस प्रभु की ऐसी रीति है कि जिसका सेवक पर इतना ममत्व और प्रेम हो।

व्याख्या अति प्रसन्न रघुनाथहि जानी। तब प्रश्न किया। उत्तर देने पर कहते है मुनि रघुपति के बचन सुहाए। ऐसे भाये कि सात्त्विक भाव हो गया यह समझकर कि मैने क्या समझा था और सरकार का क्या भाव था।

ऐसा मालिक कौन होगा कि गाली सुनकर भी कल्याण ही करे। यथा मथत सिंधु रुद्रहि बौराएहु सदा कपट ब्यवहारु। सेवक पर ऐसी ममता यथा साप सीस धरि हरषि हिय प्रभु बहु बिनती कीन्ह। ऐसी प्रीति यथा निज माया कै प्रबलता करषि कृपानिधि लीन्ह।

सेवाधर्म कठिन जग जाना। सो स्वामी धर्म को कठिन करके दिखला दिया।

जे न भजहि अस प्रभु भ्रम त्यागी। ग्यान रंक नर मंद अभागी ॥
पुनि सादर बोले मुनि नारद। सुनहु राम बिग्यान बिसारद ॥२॥

अर्थ जो मनुष्य भ्रम को त्यागकर ऐसे प्रभु को नहीं भजते वे ज्ञान के कङ्गाल दुर्बुद्धि और अभागे हैं। फिर नारद मुनि आदर सहित बोले हे विज्ञान विशारद श्रीरामजी! सुनिये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : यहाँ : प्रभु रक्षा करेंगे ऐसे विश्वास का न होना ही भ्रम है। जिसे भजनीय में ही भ्रम है उसे ज्ञान कहाँ हुआ ? वह मोहवश है। अतः मन्द है। न वह शिशु वच्छ ही हो सका। न प्रौढ तनय ही हो सका। अतः अभागी है।

नारदजी का गद्गद कण्ठ है। इससे मृदु वचन न कह सके सादर बोले। मुनि हैं। मनन शील हैं। मन में ठीक किया कि सरकार ने सन्तों को बड़ा ऊँचा पद दिया। स्वयं कहते हैं और अपने वचन के प्रमाण में : सुनु मुनि कह पुराण स्नुति संता। कहते हैं। सो सन्त को कैसे पहिचाने। अतः इन्हींसे लक्षण पूछना चाहिए। ये विज्ञान विशारद हैं।

संतन्ह के लच्छन रघुबीरा। कहहु नाथ भव भंजन भीरा ॥
सुनु मुनि संतन्ह के गुन कहऊँ। जिन्ह ते मैं उन्ह के बस रहऊँ ॥३॥

अर्थ : हे रघुवीर ! हे भवभय का नाश करनेवाले मेरे नाथ ! अब कृपाकर सन्तों के लक्षण कहिये। श्रीरामजी ने कहा : हे मुनि ! सुनो। मैं सन्तों के गुणों को कहता हूँ जिनके कारण मैं उनके वश में रहता हूँ।

व्याख्या : सरकार भवभय भंजन और भीर भञ्जन है। भीर : आपत्ति को कहते हैं। असाधारण धर्म को लक्षण कहते हैं। आप रघुवीर हैं। दया करके कहिये।

दूसरी बात प्रारम्भ होती है। अतः सुनु कहते हैं। सन्तो के गुण ही उनके लक्षण हैं। वे असन्त में नही पाये जाते हैं। उनकी बातें मेरे लिए प्रमाण है। क्योंकि मैं स्वयं उनके वश मे रहता हूँ : भगति अवसहि बस करी।

षट बिकार जित अनघ अकामा। अचल अकिंचन सुचि सुखधामा ॥
अमितबोध अनीह मितभोगी। सत्यसार कवि कोबिद जोगी ॥४॥

अर्थ : वे सन्त, काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मत्सर इन छः दोषों को जीते हुए, पाप रहित, कामना रहित, स्थिर बुद्धि, सर्व त्यागी, बाहर भीतर से पवित्र, सुख के धाम, असीम ज्ञानवान्, इच्छारहित, मिताहारी, सत्यनिष्ठ, कवि, विद्वान् और योगी होते हैं।

*व्याख्या : पहिला लक्षण षट् विकार काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद, मत्सर* उनके वश मे हैं। वे इनके वश नही है। अनघ हैं सञ्चित पाप भी नष्ट हो गये हैं और क्रियमाण से लेप नहीं है। अकाम हैं वासना रहित हैं। अचल हैं। अपने धर्म से चलायमान नही होते। यथा : बट बिस्वास अचल निज धर्मा। अकिञ्चन है। किसी वस्तु में उन्हे ममत्व बुद्धि नही है। बाहर भीतर से शुद्ध होते हैं। फलतः सुखधाम हैं।

उनका ज्ञान परिच्छिन्न नही है। यथैकेन मृत्पिण्डेन विज्ञातेन सर्वं मृण्मय विज्ञातं भवति। जैसे एक मिट्टी के पिण्ड के जान लेने से उसके सभी विकार घटशरावादि जाने जाते हैं। उसी भाँति एक ब्रह्म के ज्ञान होने से कुछ ज्ञातव्य शेष नही रह जाता। इसलिए उन्हे अमित बोध कहा। अब उन्हे इच्छा नही होती। ऐसे ज्ञानी विधि निषेध से परे होते हैं। फिर भी मितभोगी होते है। भिक्षा, कौपीन, कंथा, पादुका मे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ही उनका भोग सीमित रहता है। सत्यसार : व्यवहार सच्चा है। सच्चा लेना, सच्चा देना, सच्चा भोजन, सत्य चबेना। मितभोगी और सत्यसार होने से कवि · त्रिकालज्ञ हो जाते हैं। उन्हे वेदार्थ का भान होने लगता है। आपसे आप निरुद्ध होकर मन भगवच्चरण मे लग जाता है। कुयोगी भी नही है। मोह विटप के उखाडने में समर्थ हैं : इससे ज्ञान कहा।

सावधान मानद मदहीना। धीर धर्म गति परम प्रबीना ॥५॥

अर्थ : सावधान, दूसरो को मान देनेवाले, अभिमान रहित, धैर्यवान्, धर्म की गति मे अत्यन्त निपुण होते हैं।

व्याख्या : सावधान का अर्थ है प्रमादरहित - प्रमादो वै मृत्यु । इन्हे दूसरे को मान देने मे प्रमाद नही होता। जो मान देता है वह स्वय भी मान चाहता है। वे मदहीन रहते हैं। मान नही चाहते। धीर हैं · ते धीर अछत बिकार हेतु जे रहत मनसिज बस किये। धर्मगति बहुत सूक्ष्म होती है। गहना कर्मणो गति । सो उनकी गति मे परम प्रवीण हैं। कर्म विकर्म अकर्म तीनो की सूक्ष्मता को समझते हैं इसमे कर्म कहा।

दो० गुनागार ससार दुख, रहित बिगत सदेह।
तजि मम चरण सरोज प्रिय, तिन्ह कहुँ देह न गेह ॥६ ४५ ३९॥

अर्थ · गुणो के घर ससार के दु खो से रहित और सन्देहो से सर्वथा छूटे हुए होते हैं। मेरे चरण कमलो को छोडकर उनको न देह ही प्रिय होती है न घर ही।

व्याख्या . पण्डिते च गुणा सर्वे। खल अघ अगुण साधु गुण गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा। गुण के आस्पद वे ही है। ससृत सन्निपात दारुण दु ख से रहित हैं। कभी कभी विद्या व्याप जाती है। अत विद्या के दु ख का निषेध नही किया : हरि सेवकहि न व्याप अविद्या। प्रभु प्रेरित व्यापे तेहि विद्या। उन्हे सन्देह होता ही नही। मेरा चरण ही प्रिय है देह गेह प्रिय नही। मेरे चरण के सम्बन्ध से देह गेह मे प्रेम है। यदि बाधक हो तो उसे त्याग देवें . इससे भक्ति कहा।

निज गुन स्रवण सुनत सकुचाही। पर गुन सुनत अधिक हरषाही।'
सम सीतल नहि त्यागहि नीति। सरल सुभाउ सबहि सन प्रीती ॥७ १॥

· अर्थ कानो से अपने गुण सुनने मे सकुचाते हैं। दूसरो के गुण सुनने मे विशेष हर्षित होते हैं। सम और शीतल हैं। न्याय का कभी त्याग नही करते। सरल स्वभाव होते हैं और सभी से प्रेम रखते हैं।

व्याख्या निरभिमान हैं। ससार अपने गुण को सुनकर फूल उठता है पर उन्हे सङ्कोच होता है। गुणो के ठीक महत्त्व को जानते हैं। उनके मन मुताबिक वे गुण अपने मे नही पाते। ऐसा उदार हृदय है कि पर गुण से हर्ष होता है। ससार

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



परगुण सहन नही कर सकता। वे गुणो पर आसक्त हैं। गुणो की वढोत्तरी परम इष्ट है।

वे सम हैं यथा : निज प्रभु मय देखहिं जगत। शीतल हैं यथा : जहाँ सान्ति सत गुरु की दई। तहाँ क्रोध की जरि जरि गई। नीति नही छोड्ते : नीति विरोध सोहाइ न मोही। सब पर प्रीति प्रतीति जिय जानिय आपु समान। अतः स्वभाव से सरल होते है। सब पर प्रीति करते हैं : आत्मवत् सर्वभूतेषु य. पश्यति स पश्यति। अर्थात् भक्त मे भगवान् के सब गुण आ जाते हैं।

**जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु गोविंद बिप्र पद प्रेमा॥**
**स्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया॥८.२॥**

अर्थ वे जप, तप, व्रत, दम, सयम और नियम मे रत रहते हैं। और गुरु गोविन्द तथा ब्राह्मणो के चरणो मे, प्रेम रखते हैं। उनमे श्रद्धा, क्षमा, मैत्री, दया, प्रसन्नता और मेरे चरणो मे निष्कपट प्रेम होता है।

व्याख्या : उन्हे जप · मन्त्र का अभ्यास। तप चान्द्रायणादि। व्रत . एकादशी आदि। दम इन्द्रिय निग्रह। सयम धारणा ध्यान समाधि। नेम : कार्यानुष्ठान मे दृढता। उसमे भङ्ग न हो। गुरु : ज्ञानदाता। गोविन्द गोरक्षक भगवान् और विप्र इन पर स्वाभाविक प्रीति होती है।

श्रद्धा जननीव पाति योगिनम् · माँ की भाँति योगी की रक्षा करती है। श्रद्धा बिन धर्म नहिं होई। क्षमा क्रोध का जीतनेवाली है। सामर्थ्य रहते अपराधी को दण्ड न देना क्षमा है। सुखी लोगो मे मित्रता का भाव रखना। उनसे वैर न करना। दु खी पर दया। पुण्यात्माओ को देखकर प्रसन्न होना · मैत्री करुणामुदितोपेक्षाणा सुखदु.खपुण्यापुण्यविषयाणा भावनातश्चित्तप्रसादनम्। ये सब गुण उनमे होते हैं।

**बिरति बिबेक बिनय बिग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना॥**
**दभ मान मद करहिं न काऊ। भूलि न देहिं कुमारग पाऊ॥९.३॥**

अर्थ तथा उन्हे वैराग्य, विवेक, विनय, विज्ञान और वेद पुराण का यथार्थ ज्ञान रहता है। वे दम्भ, अभिमान, मद कभी नही करते और भूलकर भी कुमार्ग पर पैर नही रखते।

व्याख्या विवेक राजा है। विराग उसका मन्त्री है। यथा · सचिव बिराग बिबेक नरेसू। विनय विद्या का फल है। ज्ञानी होने पर भी विनय रहे। अपरोक्ष ज्ञान को विज्ञान कहते हैं। उन्हे वेद पुराण का यथार्थ बोध होता है। श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ कहाते हैं। वेद पुराण के जाननेवाले बहुत हैं। पर यथार्थ बोध सबको नही है। सन्तो मे ये सब गुण होते हैं।

अब जो सन्त नही करते उसे कहते हैं। १ दम्भ · करौं जो कछु धरौं सचि पचि सुकृत सिला बटोरि। पैठि उर बरबस दयानिधि दंभ लेत अजोरि। २ मान यथा :

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सकल सोक दायक अभिमाना । ३. मद यथा : श्रीमद वक्र न कीन्ह केहि । ४. कुमार्ग मे पैर रखना । ये चार बात सन्त कभी नही करते ।

गावहि सुनहि सदा मम लीला । हेतु रहित परहित रत लीला ॥
मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते । कहि न सकहि सारद श्रुति तेते ॥१०.४॥

अर्थ · सदा मेरी लीला को गाते सुनते हैं और बिना ही कारण दूसरो के हित मे लगे रहते हैं । हे मुनि । सन्तो के जितने गुण हैं उनको सरस्वती और वेद भी नही कह सकते ।

व्याख्या : मेरी लीला गावे भी सुने भी : श्रोता मिले तो गावे वक्ता मिले तो सुने । निष्कारण परोपकार कहते हैं । यथा : पर उपकार बचन मन काया । सत सहज सुभाव खगराया । प्रकरण का उपसहार करते हुए अन्त मे दो प्रधान गुण कहा । यहाँ तक असाधारण गुण कहा : जिनते मैं उनके बस रहहू । वैसे तो अगणित गुण हैं ।

शारदा स्वर्गलोक की वक्ता, श्रुति मर्त्यलोक की वक्ता । वे भी सन्तो के सब गुण नही कह सकते । भाव यह कि अकथनीय हैं । वैखरी मे उनका वर्णन नही हो सकता : सत हृदय नवनीत समाना । कहा कविन्ह पै कहै न जाना । निज परिताप द्रवै नवनीता । पर दु ख द्रवहि सत सुपुनीता ।

छं. कहि सक न सारद सेप नारद सुनत पद पंकज गहे ।
अस दीनबंधु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे ॥
सिरु नाइ बारहि बार चरनन्हि ब्रह्मपुर नारद गए ।
ते धन्य तुलसीदास आस बिहाइ जे हरि रँग रँए ॥

अर्थ : शेप और शारदा भी नही कह सकते : यह सुनते ही नारदजी ने श्रीरामजी के चरण कमल पकड़ लिये । दीनबन्धु कृपालु प्रभु ने इस प्रकार अपने श्रीमुख से अपने भक्तो के गुण कहे । भगवान् के चरणो मे बार बार सिर नवाकर नारदजी ब्रह्मलोक को चले गये । तुलसीदासजी कहते हैं कि वे पुरुप धन्य हैं जो सब आशा छोडकर केवल श्रीहरि के रग मे रँग गये है ।

व्याख्या : पूर्व अर्धाली मे शेप को कहने के लिए स्थान नही था । अतः छन्द मे कहते हैं । शिष्य की कृतकृत्यता । अपने सेवक का गुण कोई अपने मुख से नही कहता । सरकार की इतनी अनुकम्पा है कि अपने मुख से सेवक के गुण कहे । अर्थात् भागवत धर्म का वर्णन किया । नारदजी ने इसीलिए पूछा था कि जो गुण अपने मे न हो उसके लिए मैं प्रयत्न करूँ । सो देखा कि मेरे गुणो को अपने मुख से कह रहे हैं । अत' बार बार चरणो मे सिर नवाया ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



परगुण सहन नही कर सकता। वे गुणो पर आसक्त हैं। गुणो की बढोत्तरी परम इष्ट है।

वे सम हैं यथा: निज प्रभु मय देखहि जगत। शीतल हैं यथा: जहाँ सान्ति सत गुरु की दई। तहाँ क्रोध की जरि जरि गई। नीति नही छोडते: नीति विरोध सोहाइ न मोही। सब पर प्रीति प्रतीति जिय जानिय आपु समान। अतः स्वभाव से सरल होते हैं। सब पर प्रीति करते हैं: आत्मवत् सर्वभूतेषु यः पश्यति स पश्यति। अर्थात् भक्त मे भगवान् के सब गुण आ जाते हैं।

**जप तप ब्रत दम संजम नेमा। गुरु गोबिंद बिप्र पद प्रेमा॥**
**स्रद्धा छमा मयत्री दाया। मुदिता मम पद प्रीति अमाया॥८.२॥**

अर्थ वे जप, तप, व्रत, दम, सयम और नियम मे रत रहते हैं। और गुरु गोविन्द तथा ब्राह्मणों के चरणो मे प्रेम रखते हैं। उनमे श्रद्धा, क्षमा, मैत्री, दया, प्रसन्नता और मेरे चरणो मे निष्कपट प्रेम होता है।

व्याख्या: उन्हे जप मन्त्र का अभ्यास। तप चान्द्रायणादि। व्रत · एकादशी आदि। दम इन्द्रिय निग्रह। सयम धारणा ध्यान समाधि। नेम: कार्यानुष्ठान मे दृढता। उसमे भङ्ग न हो। गुरु: ज्ञानदाता। गोविन्द. गोरक्षक भगवान् और विप्र इन पर स्वाभाविक प्रीति होती है।

श्रद्धा जननीव पाति योगिनम् · माँ की भाँति योगी की रक्षा करती है। श्रद्धा बिन धर्म नहिं होई। क्षमा · क्रोध का जीतनेवाली है। सामर्थ्य रहते अपराधी को दण्ड न देना क्षमा है। सुखी लोगो मे मित्रता का भाव रखना। उनसे वैर न करना। दु खी पर दया। पुण्यात्माओ को देखकर प्रसन्न होना मैत्री करुणामुदितोपेक्षाणा सुखदु खपुण्यापुण्यविषयाणा भावनातश्चित्तप्रसादनम्। ये सब गुण उनमे होते हैं।

**बिरति बिबेक बिनय बिग्याना। बोध जथारथ बेद पुराना॥**
**दभ मान मद करहि न काऊ। भूलि न देहि कुमारग पाऊ॥९.३॥**

अर्थ तथा उन्हे वैराग्य, विवेक, विनय, विज्ञान और वेद पुराण का यथार्थ ज्ञान रहता है। वे दम्भ, अभिमान, मद कभी नही करते और भूलकर भी कुमार्ग पर पैर नही रखते।

व्याख्या विवेक राजा है। विराग उसका मन्त्री है। यथा सचिव बिराग बिबेक नरेसू। विनय विद्या का फल है। ज्ञानी होने पर भी विनय रहे। अपरोक्ष ज्ञान को विज्ञान कहते हैं। उन्हे वेद पुराण का यथार्थ बोध होता है। श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ कहाते हैं। वेद पुराण के जाननेवाले बहुत हैं। पर यथार्थ बोध सबको नही है। सन्तो मे ये सब गुण होते है।

अब जो सन्त नही करते उसे कहते हैं। १ दम्भ करौं जो कछु धरौं सचि पचि सुकृत सिला बटोरि। पैठि उर बरबस दयानिधि दभ लेत अजोरि। २ मान यथा:

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सकल सोक दायक अभिमाना। ३. मद यथा : श्रीमद वक्रन कीन्ह केहि। ४. कुमार्ग मे पैर रखना। ये चार बात सन्त कभी नही करते।

गावहिं सुनहिं सदा मम लीला। हेतु रहित परहित रत लीला ॥
मुनि सुनु साधुन्ह के गुन जेते। कहि न सकहिं सारद श्रुति तेते ॥१०.४॥

अर्थ : सदा मेरी लीला को गाते सुनते है और बिना ही कारण दूसरो के हित में लगे रहते है। हे मुनि ! सन्तो के जितने गुण है उनको सरस्वती और वेद भी नही कह सकते।

व्याख्या : मेरी लीला गावे भी सुने भी · श्रोता मिले तो गावे वक्ता मिले तो सुने। निष्कारण परोपकार कहते हैं। यथा · पर उपकार बचन मन काया। सत सहज सुभाव खगराया। प्रकरण का उपसहार करते हुए अन्त मे दो प्रधान गुण कहा। यहाँ तक असाधारण गुण कहा : जिनते मै उनके बस रहहू। वैसे तो अगणित गुण हैं।

शारदा स्वर्गलोक की वक्ता, श्रुति मर्त्यलोक की वक्ता। वे भी सन्तो के सब गुण नही कह सकते। भाव यह कि अकथनीय हैं। वैखरी मे उनका वर्णन नहीं हो सकता : सत हृदय नवनीत समाना। कहा कविन्ह पै कहै न जाना। निज परिताप द्रवै नवनीता। पर दु ख द्रवहिं सत सुपुनीता।

छं. कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पद पंकज गहे।
अस दीनबंधु कृपाल अपने भगत गुन निज मुख कहे ॥
सिरु नाइ बारहिं बार चरनन्हि ब्रह्मपुर नारद गए।
ते धन्य तुलसीदास आस बिहाइ जे हरि रँग रँए ॥

अर्थ : शेष और शारदा भी नही कह सकते : यह सुनते ही नारदजी ने श्रीरामजी के चरण कमल पकड लिये। दीनबन्धु कृपालु प्रभु ने इस प्रकार अपने श्रीमुख से अपने भक्तो के गुण कहे। भगवान् के चरणो मे बार बार सिर नवाकर नारदजी ब्रह्मलोक को चले गये। तुलसीदासजी कहते हैं कि वे पुरुष धन्य है जो सब आशा छोडकर केवल श्रीहरि के रग मे रँग गये है।

व्याख्या : पूर्व अर्धाली मे शेष को कहने के लिए स्थान नही था। अतः छन्द मे कहते हैं। शिष्य की कृतकृत्यता। अपने सेवक का गुण कोई अपने मुख से नही कहता। सरकार की इतनी अनुकम्पा है कि अपने मुख से सेवक के गुण कहे। अर्थात् भागवत धर्म का वर्णन किया। नारदजी ने इसीलिए पूछा था कि जो गुण अपने मे न हों उसके लिए मैं प्रयत्न करूँ। सो देखा कि मेरे गुणो को अपने मुख से कह रहे हैं। अतः बार बार चरणो मे सिर नवाया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



आशा छोडकर हरि के रंग मे रँग जाने म ही सब गुण है।

सोइ सरवग्य गुनी सोइ ज्ञाता। सोइ महि मडित पडित दाता॥
धर्मपरायण सोइ कुलत्राता। रामचरण जाकर मन राता॥
बिधि हरिहर कबि कोविद बानी। कहत साधु महिमा सकुचानी॥
सतसगति दुर्लभ ससारा। निमिष दड भरि एकौ वारा॥

दो० रावनारि जसु पावन, गावहि सुनहिं जे लोग।
राम भगति दृढ पावहिं, बिनु बिराग जप जोग॥४६ क॥

अर्थ जो लाग रावण के शत्रु अथवा जिसका शत्रु रावण है ऐसे श्रीरामजी का पवित्र यश गावेंगे और सुनेगें वे वैराग्य जप और योग के बिना ही श्रीरामजी की दृढ भक्ति पावेंगे।

व्याख्या रावण का यश मन्द। रावणारि का पावन। इस काण्ड मे [illegible]ण से वैर हो गया। इसलिए रावणारि कहते है। भक्ति के साधन हैं [illegible]ग जप और योग। यथा जप योग धर्म समूह ते नर भगति अनुपम पावई। सो कथा गान और श्रवण से मिल जाती है। यह इस काण्ड का माहात्म्य है।

दो० दीप सिखा सम जुवति तनु, मन जनि होसि पतग।
भजहि राम तजि कामु मदु, करहि सदा सतसग॥४६ ख ४०॥

अर्थ युवती स्त्रियो का शरीर दीपक की लौ के समान है। हे मन! तू उसका पतिंगा न बन। काम और मद को छोडकर श्री रामचन्द्रजी का भजन कर और सदा सत्सग कर।

व्याख्या दीपशिखा को मनोहर देखकर मन पतग होकर कूदता है और भस्म हो जाता है। यौवनावस्था मे ही मनोहर है। जहाँ यौवनावस्था गयी तहाँ मनोहरता भी चली जाती है। अपने मन को शिक्षा देते है। सरकार ने नारदजी को स्त्री सग्रह नहीं करने दिया। अत तू भी सग्रह न कर।

काम मद भजन पथ के बाधक है। इन्हे छोडकर भजन कर और सदा सत्सग कर। यथा तुलसी पट नव छिद्र को सतसगति सर बोर। बाहर रहै न प्रेम जल कीजे जतन करोर। उमा रामगुण गूढ पण्डित मुनि पावहि बिरति का साफल्य दिखलाया।

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वसने विमलवैराग्यसपादनो नाम तृतीय सोपान समाप्त

यह काण्ड श्रीरामचरित मानस म आरण्यक का काम देता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

# श्रीरामचरितमानस

## विजया टीका

### तृतीय भाग

टीकाकार
मानसराजहंस पं० श्री विजयानन्दजी त्रिपाठी

सम्पादक
डा० श्रीनाथ मिश्र रामायणी
डा० सहजानन्द त्रिपाठी

ankurnagpal108@gmail.com

प्रकाशक :
इण्डियन डवलपमेण्ट ट्रस्ट
३१, नेताजी सुभाष रोड
कलकत्ता, ७००००१

प्रकाशन तिथि
विजयादशमी १९८० ई०

मूल्य : प्रथम भाग से सबद्ध

मुद्रक
विश्वम्भरनाथ द्विवेदी
आनन्दकानन प्रेस
सीके ३६/२०, ढुण्ढिराज
वाराणसी, २२१००१

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

# विषयानुक्रमणिका


## ४. किष्किन्धाकाण्ड

मङ्गलाचरण : सीतान्वेषण तत्पर दोनों रघुवरों से भक्ति की प्रार्थना। सदा रामनामामृत पान करनेवाले सुकृतियों को धन्यवाद : संस्कृत। काशी विश्वनाथ के सेवन का मन को उपदेश। पृष्ठ १ से।

मारुतिमिलन प्रसंग : प्रभु का ऋष्यमूक पर्वत के निकट पहुँचना। सुग्रीव का भयभीत होकर हनुमान् को भेजना। हनुमान् का विप्ररूप से जाना। हनुमान् के प्रश्न। राम के उत्तर। हनुमान्‌जी का विनय। अनन्य भक्ति की परिभाषा। सुग्रीव की कथा समझाकर हनुमान्‌जी का दोनों भाइयों को पीठ पर चढ़ाकर सुग्रीव के पास ले जाना : दो. ३.५ तक। पृ० ६ से।

सुग्रीव मिताई प्रसंग : सुग्रीव से भेंट। हनुमान् का दोनों ओर की कथा समझाकर राम सुग्रीव की अग्निसाक्षिक मैत्री कराना। लक्ष्मण का सब रामचरित्र वर्णन करना। आकाशमार्ग से जाती हुई जानकी के समाचार का सुग्रीव द्वारा निवेदन। पट देना। प्रभु का पट को हृदय में लगाकर सोच करना। सुग्रीव की प्रतिज्ञा। रामचन्द्र का सुग्रीव के वन में बसने का कारण पूछना। सुग्रीव की आत्मकथा। वालिवध की प्रतिज्ञा। मित्रधर्मोपदेश। रामचन्द्र का अपने बल के भरोसे सुग्रीव को शोक त्यागने के लिए कहना। सुग्रीव का सन्देह। रामचन्द्र के बल की परीक्षा। सुग्रीव को ज्ञान। निवृत्तिमार्ग से भजन के लिए कृपा करने का विनय। रामचन्द्र का उत्तर : दो. ६.२४ तक। पृ० १७ से।

वालिवध प्रसंग : प्रतिज्ञा सत्य करने के लिए सुग्रीव को साथ लेकर रामचन्द्र का किष्किन्धा जाना। राम के भेजे हुए सुग्रीव का गर्जन। बालि को तारा का समझाना। बालि का निश्चय। युद्ध से भागकर सुग्रीव का राम के यहाँ जाना। राम का माला और बल देकर उसे युद्ध के लिए फिर भेजना। नानाविध युद्ध। सुग्रीव की हार। रामचन्द्र का बाण मारना। बालि का प्रश्न। रामचन्द्र का उत्तर। वालि की अति कोमल वाणी सुन रामचन्द्र का उसके सिर पर हाथ हाथ रखना। बालि का शरीर रखने के लिए प्रस्तुत न होना। अङ्गद को सौंपना। बालि का तन त्याग। प्रजा की विकलता। तारा का विलाप। तारा का ज्ञानलाभ। वालि की अन्त्येष्टि : दो. १०.८ तक। पृ० ३४ से।

कपि तिलक प्रसंग : रामचन्द्र का लक्ष्मण को समझाकर भेजना। सुग्रीव को राज्य। अङ्गद को यौवराज्य। सुग्रीव का राजनीति उपदेश। अपने कार्य के न भूलने की चेतावनी। सुग्रीव का घर लौट आना : दो. ११.१० तक। पृ० ४८ से।

प्रवर्षण शैल वास : वन वर्णन। सिद्ध मुनि की सेवा। फटिक शिला पर लक्ष्मण को भक्ति, वैराग्य, राजनीति और विवेक का उपदेश : दो. १२.७ तक। पृ० ५१ से।

वर्षा शरद वर्णन प्रसंग बादल का घिर आना। मोर का नाचना। मेघ गर्जन। बिजली की चमक। पानी पड़ना। पर्वतों की स्थिरता। बरसाती नदियों


(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



का तोड। पानी का ढावर होना। बहकर तालाबो मे जाना। जल का नदी द्वार से समुद्र मे पहुँचना। पृथिवी का हरा भरा होना। दादुर ध्वनि। पेडो मे नये पल्लव। अर्क जवास का होना। धूल का कठिनता से मिलना। धान की खेती। जुगुनू की बहार। महावृष्टि से क्यारियो का फूट चलना। किसानो का निराना। ऊसर मे तृण का न उगना। पृथिवी का जन्तुओ से भर जाना। पथिको का जहाँ का तहाँ ठहर जाना। कभी कभी प्रबल हवा बहना। कभी दिन मे अन्धकार और कभी धूप का वर्णन। शिक्षाप्रद उपमाओं का निर्देश। शरद ऋतु काश का फूलना। अगस्त्य का उदय होना। सरितासर मे निर्मल जल। जल का घटना। खञ्जन का आगमन। बिना कीचड और रेणु की पृथिवी। मीन की विकलता। आकाश की निर्मलता। कही कही पर थोडी वृष्टि का होना। रास्तो का खुल जाना। अगाध जल की मछलियो का सुखी रहना। कमल के फूलने से सर की शोभा। सुन्दर रात्रि मे भी चक्रवाक को दु ख। चातक की रटन। चन्द्र का तापहरण। चकोरा का आह्लाद। मशक दश का नाश। बरसाती जीवो के विनाश का वर्णन शिक्षाप्रद उपमाओ के साथ दो १७ तक। पृ० ५४ से।

**राम रोष प्रसग** सुग्रीव के सुधि विसारने पर रामच द्र का क्रोध। लक्ष्मण का सुग्रीव वध के लिए उद्यत होना। रामचन्द्र का समझा कर भेजना। इधर हनुमान् का सुग्रीव को समझाना। सुग्रीव की आज्ञा मे वन्दरो को बुलाने के लिए दूत भेजना दो १८ ७ तक। पृ० ७० से।

**कपि त्रास प्रसग** लक्ष्मण का क्रोध प्रदर्शन। अङ्गद को अभय दान। तारा और हनुमान् को भेजकर सुग्रीव का लक्ष्मणजी को बुलवाना। लक्ष्मण से सुग्रीव की भट। सुग्रीव की विनय। दूतो के भेजने का समाचार कहना। सबका रामचन्द्र के पास आना। सुग्रीव की विनय। रामचन्द्र का प्रेम दो २० ८ तक। पृ० ७५ से।

**सुग्रीव दूत प्रेरणा प्रसग** बानर कटक का आगमन। उसकी अपारता। रामचन्द्र का शील। सीता की खोज के लिए बानर भटा को सुग्रीव की आज्ञा। सुभटो को दक्षिण भेजना। सुग्रीव का उपदेश। हनुमान् को अँगूठी देना और सीताजी को समझाने के लिए शिक्षा। सबका प्रस्थान दो २३ ४ तक। पृ० ८२ से।

**सीता की खोज प्रसग** निशाचरो का वध। मुनियो को घेरना। सुभटो को प्यास। वन मे भूल जाना पृ० ८३ से।

**विवर प्रवेश प्रसग** हनुमान् का गिरि पर चढकर विवर म चिडियो के घुसने का कौतुक देखना। सबको लेकर दिखाना। विवर प्रवेश। तपस्विनी नारी का दर्शन। उसकी आज्ञा से मज्जन। फलाहार। सबका आँख मूँदना। खोलने पर अपने को समुद्र तट पर पाना। उक्त नारी का रघुनाथजी के यहाँ जाना। अनपायिनी भक्ति का लाभ। बदरी यात्रा दो २५ तक। पृ० ९० से।

**सम्पाती मिलन प्रसग** बानरो को सोच। समुद्र किनारे अनशन। जाम्बवान् का उपदेश। सम्पाती का आगमन। उसके वचनो स बानरो को भय। अगद द्वारा जटायु की प्रशसा। सम्पाती द्वारा उसका वृत्तात पूछा जाना। जटायु का

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इति वृत्त। जटायु की क्रिया। सम्पाती की आत्मकथा। सीता का समाचार। सम्पाती का पक्ष लाभ। वानरो को ढाढस देकर प्रस्थान दो २८५ तक। पृ० ९३ से।

सम्पाती कथा श्रवण प्रसग पृ० ९८ से।

हनुमान् कृत वल कथा श्रवण प्रसग सबका पार जाने मे सशय रखकर अपना बल कहना। जाम्बवान् का अपनी बुढाई की ओट पकडना। अपनी जवानी की कथा। अङ्गद का लौटने मे सशय बतलाना दो २९ २ तक। पृ० १०३ से।

अथ हनुमत् चरित जाम्बवान् द्वारा पवन तनय की प्रशसा। हनुमान् का आवेश। पराक्रम कथन। जाम्बवान् से शिक्षा के लिए प्रार्थना। जाम्बवान् की शिक्षा। काण्ड की फलश्रुति उमा के छठे प्रश्न के उत्तरार्ध का उत्तर प्रारम्भ। यथा सुनिअ तासु गुनग्राम। जासु नाम अघ खग बधिक दो ३० तक। पृ० १०५ से।

५ सुन्दरकाण्ड

मगलाचरण वेदान्त वेद्य सुरगुरु रामचन्द्र वन्दना। भक्ति के लिए याचना। रामदूत वन्दना सस्कृत पृ० १११ से।

समुद्रोल्लघन प्रसग: जामवन्त के वचन का अच्छा लगना। हनुमान् का सबको तसल्ली देकर प्रणाम करना। सुदर भूधर पर चढकर हनुमान् का कृपण के धन की भाति राम का सुमिरना। कूदना। मैनाक का सम्मान। सुरसा भगवती का विघ्नाचरण। परीक्षा के बाद सुरसा देवी का आशीर्वाद। सिंहिकावध। पार पहुँचना। वन की शोभा देखना। विशाल शैल पर चढकर लकानिरीक्षण। लका वर्णन दो ३ तक। पृ० ११४ से।

लका प्रवेश प्रसग. मशकसमान रूप से रात को नरहरिस्मरण पूर्वक लका मे प्रवेश। लकिनी का पहिचान लेना। उसपर प्रहार। लका की विनय। भगवान् को स्मरण करके लका प्रवेश। घर घर ढूंढना। दशानन का महल। विभीषण से भेंट। विभीषण हनुमान् सवाद। पूछने पर विभीषण का सीता के दर्शन की युक्ति बतलाना। अशोक वन में भगवती का दर्शन। तरुपल्लव मे छिपकर विचार। रावण का आगमन। रावण सीता सवाद। रावण का सीता वध के लिए उद्यत होना। मन्दोदरी का समझाना। सीता को त्रास दिखाने के लिए निशाचरियो को रावण की आज्ञा। एक मास की अवधि। रावण का प्रस्थान। निशाचरियो का त्रासना। त्रिजटा का अपना स्वप्न तथा उसका फल सुनाना। निशाचरिया का भयभीत होकर सीताजी के पैर पकडना। सबका प्रस्थान। सीता का चितारोपण तथा अग्निदान के लिए त्रिजटा से विनय। त्रिजटा का समझाना तथा प्रस्थान। सीता का प्रेमोन्माद। अशोक वृक्ष से अग्नि के लिए प्रार्थना दो ११ १२ तक। पृ० १२५ से।

सीता धैर्य दान प्रसङ्ग हनुमान् का मुद्रिका गिराना। अशोक वृक्ष का दिया हुआ अङ्गार समझकर सीता का उठा लेना। मुंदरी की पहिचान। हर्ष विषाद। हनुमान् द्वारा राम गुण वर्णन। सीता का एकाग्र होकर सब सुनना। वक्ता को देखने की इच्छा। हनुमान् का निकट

१ कहहु नाथ जिमि रावन मारा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जाना। सीता को विस्मय। विश्वास दिलाने के लिए हनुमान् का शपथ लेना। नर वानर सङ्ग विषयक प्रश्न। उत्तर। सीताजी का विश्वास। सीता हनुमान् सवाद। रामचन्द्र का सन्देश। सीता की प्रेम विह्वलता। हनुमान् का ढाढस बँधाना। सीता का कपिसेना की कार्यकारिता में सन्देह। हनुमान् का निज देह प्रकट करना। सीता को भरोसा। हनुमान् की विनय। सीता को सन्तोष। आशीर्वाद। हनुमान् का बार बार प्रणाम दो १६ ६ तक। पृ० १४८ से।

**वन विध्वंस प्रसङ्ग** सीताजी से फल खाने की आज्ञा पाकर हनुमान् का बाग में प्रवेश। फल खाने के बाद पेड़ तोड़ना। बहु भटों से युद्ध। रावण के यहाँ पुकार। अनेक भटों का आगमन तथा युद्ध। सुभटों के साथ अक्षकुमार का आगमन। अक्षवध। बहुत बड़ा युद्ध। महाभटों के साथ इन्द्रजीत का आगमन। घोर युद्ध। मेघनाद को मूर्च्छा। मेघनाद की माया। ब्रह्मास्त्र प्रयोग। हनुमान् को मूर्च्छा। हनुमान् को नागपाश से बाँधकर मेघनाद का ले जाना दो १९५ तक। पृ० १६२ से।

**रावण प्रबोध प्रसङ्ग** रावण की सभा। हनुमान् की निर्भीकता। रावण के चार प्रश्न। हनुमान् के उत्तर। हनुमान् का विनती के ब्याज से अतिहित उपदेश। वध दण्ड के लिए रावण की आज्ञा। विभीषण का आगमन। दूत के अवध्य होने से अन्य दण्ड के लिए विभीषण की विनय। सबकी सम्मति। पूँछ जलाने की आज्ञा। पूँछ जलाने की विधि। नगर में घुमाकर पूँछ में आग लगाना दो २४ ७ तक। पृ० १७० से।

**लङ्का दहन प्रसङ्ग** हनुमान् का अति-लघु रूप धारण कर बन्धन से निकल जाना। तीन बार उलट पुलट कर लङ्का दाह। समुद्र में कूदकर पूँछ बुझाना। विश्राम। सीता से चिह्न के लिए प्रार्थना। चूडामणि प्राप्ति। सीता का सन्देश। सीताजी की विह्वलता। हनुमान्‌जी का धीरज देना। प्रस्थान के समय घोर गर्जन दो २७ १ तक। पृ० १८४ से।

**पुनः समुद्रोल्लङ्घन प्रसङ्ग** समुद्र लाँघकर पार जाना। सबसे मिलना। नवीन इतिहास कहते सुनते प्रभु के पास प्रस्थान दो २७ ६ तक। पृ० १९१ से।

**रघुनाथ सन्निकट आगमन प्रसंग** मधुवन का फल पाना। रखवारों की सुग्रीव के पास पुकार। सुग्रीव का हर्ष। तब तक वानरों का आगमन। सुग्रीव का सबसे मिलना। कुशल प्रश्न। हनुमान् द्वारा कार्यसिद्धि सुनकर उनसे फिर मिलना। सबका राम के पास जाना। प्रणाम। रामचन्द्र का सबसे कुशल प्रश्न दो २९ तक। पृ० १९३ से।

**वैदेही कुशल कथन प्रसंग** जाम्बवान् का हनुमत् चरित राम को सुनाना। राम का पुनः हनुमान् से मिलना। रामचन्द्र हनुमत् संवाद। प्रभु की कृतज्ञता। हनुमान् का चरणों पर गिरना। रामचन्द्र का हृदय लगाना। लंका दाह विधि पूछना। हनुमान् का प्रभु प्रताप को कारण बतलाकर शिव मनभावनी भक्ति माँगना। प्रभु का एवमस्तु कहना। इस संवाद की फलश्रुति। वानरों का जय जयकार। इति हनुमत् चरित्र दो ३३ ५ तक। पृ० १९६ से।

**सेना समेत रघुवीर का समुद्रतट-**

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रस्थान प्रसग सुग्रीव को यात्रा का बनाव करने के लिए आज्ञा। सुग्रीव का यूथप यूथ को बुलाना। रामचन्द्र का प्रस्थान। शकुन। सीता को शकुन। रावण को अशकुन। कटक यात्रा वर्णन। सिन्धु तीर पर उतरना। कपि वीरो का फलाहार दो ३५ तक। पृ० २०७ से।

मन्दोदरी का रावण को समझाना प्रथम बार: मन्दोदरी को दूतियों द्वारा लंका के आतङ्क का समाचार। मन्दोदरी का एकान्त मे रावण को समझाना। रावण का उसकी भीरुता पर हँसना। रावण का सभा मे जाना दो ३६ ६ तक। पृ० २१४ से।

रावण की सभा रावण को सिन्धुपार सेना के आने का समाचार। मन्त्रियो से सलाह। मन्त्रियों की ठकुरसोहाती बात। विभीषण का आगमन। ऋषि पुलस्त्य का सन्देश और अपनी विनय सुनाना। माल्यवान् का अनुमोदन। दोनो का निकाल देने के लिए रावण की आज्ञा। माल्यवान् का प्रस्थान। विभीषण की पुन. विनय। रावण का क्रोध चरण-प्रहार। विभीषण का बार बार पैर पकडना और हितोपदेश। सचिव सहित आकाश मे जाकर विभीषण को रावण को चेतावनी। विभीषण का प्रस्थान दो ४१ ३ तक। पृ० २१८ से।

विभीषण मिलन विधि प्रसङ्ग: विभीषण का मनोरथ। सिन्धु पार आना। वानरो का विभीषण को ठहराकर सुग्रीव को समाचार देना। सुग्रीव की विभीषण के बाँधने की सलाह। रामजी की शरणागत वत्सलता। उभय भाँति लाने की आज्ञा। अङ्गद हनुमान् का जाकर विभीषण को ले आना। विभीषण का प्रेम। विभीषण की शरणयाचना। दण्डवत। रामचन्द्र का उठकर हृदय लगाना। पास बिठाना। कुशल पूछना। विभीषण राम सवाद। विभीषण का शम्भुमनभाविनी भक्ति माँगना। एवमस्तु कहकर राम का विभीषण को अभिषिक्त करना। रामचन्द्र का सुग्रीव विभीषण से समुद्र सन्तरण का उपाय पूछना। विभीषण का समुद्र से विनय करने की सलाह। लक्ष्मण का विरोध। रामचन्द्र का लक्ष्मण को समझाकर सिन्धुतीर कुश बिछाकर बैठना दो ५० ७ तक। पृ० २३२ से।

शुक सारण की कथा विभीषण के साथ ही रावण का दूत भेजना। कपि वेष से उनका सब चरित्र देखना। प्रेममग्न होकर कपट भूल जाना। तब वानरों का पहचानना और उन्हे बाँधकर सुग्रीव के यहाँ ले जाना। अङ्ग भग के लिए सुग्रीव की आज्ञा। शुक सारण का रामचन्द्र की दोहाई देना। लक्ष्मण का छुडा देना। रावण का उसके हाथ चिट्ठी भेजना। वाचिक सन्देश। शुक सारण का रावण के पास जाना। रावण के चार प्रश्न। शुक के उत्तर। रावण का समुद्र से मार्ग माँगने पर हँसी उडाना। दूत का पत्र देना। चीठी बँचवाना। रावण का पुन हँसी उडाना। शुक का विनयपूर्वक उपदेश। रावण का चारण प्रहार। शुक का चरणो पर सिर नवाकर रामचन्द्र के पास जाना। आत्म कथा। शुक की गति: दो ५०.१२ तक। पृ० २५८ से।

सागर निग्रह प्रसङ्ग तीन दिन बीतने पर भी समुद्र का विनय न मानना। रामचन्द्र का क्रोध। लक्ष्मण से धनुष बाण माँगना। शर सन्धान। समुद्र के

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हृदय में ज्वाला। जल जन्तुओं का जलना। विप्र वेष में समुद्र का शरण आना। समुद्र की विनय। रामचन्द्र का कपि कटक उतरने के लिए उपाय पूछना। समुद्र का उपाय कथन। समुद्र की उत्तर तटवासी पापियों के वध के लिए उस शर को छोड़ने की प्रार्थना। रामचन्द्र का वैसा ही करना। रामचन्द्र का पौरुष देखकर समुद्र को हर्ष। समुद्र का सब चरित्र सुनाना। चरण वन्दन करके प्रस्थान। काण्ड की फलश्रुति दो ६० तक। पृ० २७४ से।

### ६. लङ्काकाण्ड

**मङ्गलाचरण** गोस्वामीजी का मन को राममजन के लिए समझाना हिन्दी। खल वध निरत रामचन्द्र की वन्दना। कन्दर्पहन्ता शङ्कर की वन्दना। खलों के दण्ड विधायक शङ्कर से मङ्गल की प्रार्थना। संस्कृत : पृ० २८३ से।

**सेतुबन्ध प्रसङ्ग** रामचन्द्र की सेतुबन्ध के लिए मन्त्रियों की आज्ञा। जाम्बवान् द्वारा समुद्र सन्तरण के ब्याज स नाम की स्तुति। हनुमान् की अत्युक्ति। जाम्बवान् की नलनील को बुलाकर सेतुबन्ध के लिए आज्ञा। वानरों को विटप गिरि लाने का आदेश। सेतु-रचना। रामचन्द्र का शङ्कर स्थापना की इच्छा प्रकट करना। सुग्रीव का दूत भेजकर मुनियों को बुलवाना। श्रीरामेश्वर स्थापना। शिवद्रोही की निन्दा। राम-द्रोही शैव और शिवद्रोही वैष्णव की निन्दा। श्री रामेश्वर तथा सेतु की महिमा। मुनियों का प्रस्थान। सेतु का दृढ़ीकरण। सेना का चलना। सेतुबन्ध के निकट ऊँचे पर स कृपालु का सिन्धु की बहुताई देखना। प्रभु के दर्शन के लिए जल जन्तुओं का प्रकट होना। राम की आज्ञा से कटक का चलना। सिन्धु पार डेरा। फलाहार की आज्ञा। कपिदल का उत्साह। निशाचरों का नासिका छेदन दो ४८ तक। पृ० २८७ से।

**मन्दोदरी का रावण का समझाना दूसरी बार** नकटे राक्षसों का रावण को खबर देना। सेतुबन्ध सुनकर रावण की आकुलता। रावण का घर जाना। मन्दोदरी का उसे अपने महल में ले जाना। चरणों पर सिर नवाकर अञ्चल रोपकर समझाना। रावण का अपनी प्रभुता का बखान करना। सभा में जाना दो ७५ तक। पृ० ३०२ से।

**रावण सभा** रावण का सभा म जाकर मन्त्रियों से युद्धविधि निश्चय के लिए मन्त्र पूछना। मन्त्रियों का फिर ठकुर सुहाती बात कहना। प्रहस्त की फटकार और सीता भेजकर प्रीति करने तथा न मानने पर युद्ध की सलाह। रावण का अत्य त लगती बात बोलना। प्रहस्त का प्रस्थान। रावण का जाकर लङ्का के शिखर के मकान पर बैठकर नाच देखना दो १० तक। पृ० ३१० से।

**सुबेली की झाँकी** रामचन्द्र का सुबेल शैल पर उतरना। उसके शिखर पर किसलय सुमन बिछाकर लक्ष्मण का मृगछाला बिछाना। उस पर सरकार का शयन झाँकी वर्णन। ध्यान की फलश्रुति। चन्द्रमा पर उत्प्रेक्षा। रामचन्द्र के बाण से रावण के छत्र मुकुट और मन्दोदरी के ताटङ्क का गिरना। सभासदों को भय। मन्दोदरी को शोक दो १३ ६ तक। पृ० ३१७ से।

**मन्दोदरी का रावण को समझाना तीसरी बार** मन्दोदरी का विश्वरूप

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वर्णन। राम स प्रीति करने के लिए विनय। रावण द्वारा स्त्रियो के आठ अवगुणो का वर्णन। विश्वरूप वर्णन के व्याज से अपनी प्रभुताई का वर्णन मानकर रावण द्वारा मन्दोदरी की उक्ति की प्रशसा। रावण के मतिभ्रम होने से कालवश होने का मन्दोदरी को निश्चय। प्रात काल रावण का सभा के लिए प्रस्थान दो १६ तक। पृ० ३२७ से।

अगद दूत प्रसङ्ग रामचन्द्र का मन्त्रियो को बुलाकर मन्त्र पूछना। अङ्गद को दूत बनाकर भेजने के लिए जाम्बवान् की सलाह। सबकी यही सम्मति। प्रभु की आज्ञा। अङ्गद का प्रस्थान। पुर मे प्रवेश करते हुए रावणसुत वध। नगर म कोलाहल। बिना पूछे मार्ग प्रदर्शन। निशाचर भेजकर अङ्गद का रावण को समाचार देना। रावण का बुलवाना। रावण का रूप। अङ्गद की निर्भयता। सभासदा का अभ्युत्थान। रावण का क्रोध। अङ्गद से परिचय पूछना। अङ्गद का परिचय देना तथा राम के कार्य और उसके हित की बात कहना। रावण से आठ बार प्रश्नोत्तर। रावण द्वारा राम की निदा। अङ्गद का क्रोधपूवक पृथिवी पर हाथ मारना। भूकम्प। रावण का मुकुट गिरना। अङ्गद द्वारा चार मुकुटो का प्रभु के पास फका जाना। पृथिवी मर्कटहीन करने के लिए रावण की आज्ञा। अङ्गद का उस पर गाल बजाने का उपालम्भ। रावण का अङ्गद को लबार कहना। अङ्गद की कठिन प्रतिज्ञा। किसी के हटाय पैर का न हटना। अङ्गद के प्रचारने पर रावण का उठना। पैर पकडते समय अगद द्वारा रामचरण ग्रहण का उपदेश। रावण का लज्जित होकर लौटना। सिर नीचा करके सिंहासन पर बैठना। अगद द्वारा नाना प्रकार की नीतियो का उपदेश। रावण का एक न मानना। प्रभु सुयश सुनाकर अगद का प्रस्थान। रावण को सुतवध का समाचार मिलना। निशाचरो की व्याकुलता। अगद का जाकर प्रभुचरण ग्रहण दो ३५ तक। पृ० ३३५ से।

मन्दोदरी का रावण को समझाना. चौथी बार सन्ध्या समय रावण का दुखी होकर घर लौटना। मन्दोदरी का समझाना। लक्ष्मण की खीची हुई रेख के उलङ्घन करने का साहस न करने का अगद के पराक्रम का हनुमान् के पुरुषार्थ का उदाहरण देकर रामचन्द्र को अजेय बतलाना। रावण के गाल बजाने की निन्दा करना। राम के पराक्रम का वर्णन। काल सन्निकट आने की चेतावनी। नगर दाह और दो पुत्रो के वध से ही बात खतम करने की प्रार्थना। नारी की बाण सी बात सुनकर प्रात काल ही सभा मे जा बैठना। अति अभिमान से त्रास विस्मरण दो ३७ २ तक। पृ० ३९३ से।

निशाचर कीश लडाई प्रसङ्ग प्रभु के यहाँ अगद की बुलाहट। गढ का समाचार कथन। मन्त्रियो को बुलाकर रामचन्द्र का लङ्का म प्रवेश की विधि पूछना। कपीश जाम्बवान् और विभीषण का कपि-कटक को चार अनियो मे विभक्त करना। यथायोग्य सेनापतियो की नियुक्ति। लङ्का पर पहिला धावा। लङ्का मे कोलाहल। रावण की आज्ञा। कोट के कँगूरो पर निशाचरी सेना। बानरो का गढ पर चढ जाना।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



निशाचरो को पकडकर नीचे कूदना। दूसरे धावे म निशाचरो का भागना, रावण का क्रोध। निशाचरी सेना का प्राणपण से युद्ध। बानरोका पलायन। मेघनाद के प्रभाव से पश्चिम फाटक का न टूटना। हनुमान् को बानरी सेना के पलायन का समाचार। हनुमान् के प्रहार से मेघनाद को मूर्च्छा। अङ्गद को हनुमान् के अकेले गढ पर जाने का समाचार मिलना। अगद का भी कूद कर लका पर चढना। रावण का महल गिराना। राक्षसी सेना के मध्य म कूदना। घोर युद्ध। महामुखियो को प्रभु के पास फकना। उनकी गति। राक्षसी सेना का मदन करके अङ्गद हनुमान् का लौटना। प्रदोष का बल पाकर राक्षसो का लौट पडना। फिर युद्ध। अकम्पन और अतिकाय की माया। सरकार का अगद हनुमान् को भेजना। अग्न्यस्त्र से प्रकाश। फिर युद्ध। निशाचरी सेना का भागकर गढ पर चढ जाना। बानरी सेना का लौट आना। ७ दोहो म चारो फाटक की लडाई समाप्त दो ४७ २ तक। पृ० ४०० से।

रावण की सभा मन्त्रियो को बुलाहट। आधी सेना का सहार होने पर परामर्श। माल्यवान् की सीता दे देने की सम्मति। रावण का क्रोध। माल्यवान् का प्रस्थान। मेघनाद का भरासा देना। दो ४८ ७ तक। पृ० ४२५ स।

मेघनाद का गढ से उतरकर युद्ध करना सवेरा होते ही बानरो का लका घेरना। लका पर से तोप का चलना। बन्दरो का शैल फेंककर निशाचरो को मारना। मघनाद का दुर्ग से उतर कर युद्ध के लिए डका देना। मघनाद के प्रहार से कपिसेना की विकलता। हनुमान् द्वारा मेघनाद का विरथ होना। मेघनाद का रामचन्द्र के पास प्रस्थान। अस्त्रो के निष्फल होने पर माया। रामचन्द्र के एक बाण से माया भग। लक्ष्मण का युद्ध के लिए चलना। रावण के भेज हुए सुभटो का आना। जोडी स जोडी का युद्ध। लका के सब सुभटो का सहार। गड्ढो का रुधिर स भर जाना। लक्ष्मण मेघनाद की जोडी। प्राणावशेष होने पर मेघनाद द्वारा वीरघातिनी साँगी का प्रहार। लक्ष्मण की मूर्च्छा सन्ध्या समय दोनो कटको का लौटना ५ दोहो मे मेघनाद का प्रथम युद्ध दो ५४ ४ तक। पृ० ४२९ से।

लक्ष्मण का उपचार हनुमान्‌जी का मूर्च्छित लक्ष्मण को लाना। सरकार का अति दुःख करना। जाम्बवान् के कहने पर हनुमान्‌जी का भवन सहित सुषेण को लाना। सुषेण का पर्वत और औषधि बतलाना। हनुमान् का जाना। रावण का कालिनेमि को भेजना। कालिनेमि की माया। कालिनेमि वध औषधि न पहचानकर हनुमान्‌जी का शैल उखाड लेना। आकाश मार्ग मे दौडते हुए अवधपुरी के ऊपर चला जाना। भरतजी का निशिचर समझकर बाण मारना। हनुमान् को मूर्च्छा। भरत का जगाना। समाचार पाने पर भरत का सशैल हनुमान् को बाण द्वारा भेजने का प्रस्ताव। बाण के समान जाने की प्रतिज्ञा करके हनुमान्‌जी का प्रस्थान। राम का विलाप प्रलाप। हनुमान् का आगमन। प्रभु का मिलना। वैद्य का

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उपाय करना। लक्ष्मण का उठ बैठना। राम लक्ष्मण मिलन। हनुमान् जी का सुषेण को लका पहुँचाना। दो. ६१.४ तक। पृ० ४४२।

कुम्भकर्ण वल पौरुष सहार प्रसग : समाचार सुनकर रावण की व्याकुलता। कुम्भकर्ण को जगाना। रावण द्वारा सीताहरण तथा राक्षस वध निवेदन। कुम्भकर्ण द्वारा रावण की निन्दा। कुम्भकर्ण की भक्ति। रावण का मद्य और महिष मँगाना। खा पीकर कुम्भकर्ण का एकाकी प्रस्थान। विभीषण से भेंट। समाचार पाकर बलवान बानरो का दौडना। विटप भूधर प्रहार। कुम्भकर्ण के प्रहार से वानर भटो को मूर्च्छा। सुग्रीव को काँख में दाबकर कुम्भकर्ण का लौटना। सुग्रीव का मूर्च्छा भङ्ग और कुम्भकर्ण के नाक कान काटकर प्रभु के यहाँ आगमन। कुम्भकर्ण का लौटना। कपिसेना मर्दन। निशाचरी सेना का आगमन। राम का युद्ध के लिए उतरना। धनुप टङ्कार। लक्ष बाणो से क्षण मे सेना सहार। कुम्भकर्ण के फेंके पर्वतो का बाणो से चूर्णीकरण। कुम्भकर्ण पर वाण प्रहार। विकल देखकर बानरी सेना का आक्रमण। बानरी सेना मर्दन। आर्त्तनाद। राम का अपनी सेना को पीछे करके आगे बढना। कुम्भकर्णवध। उसके तेज का प्रभु के मुख मे प्रवेश। सुर मुनि को आश्चर्य। देवस्तुति। पुष्प वर्षा। नारद का आकर खल वध मे शीघ्रता करने को कहना। सग्राम भूमि मे सरकार की शोभा : ७ दोहो मे कुम्भकर्ण वध : दो. ७१ तक। पृ० ४६२ से।

मेघनाद वल पौरुष सहार प्रसग. रावण का तथा रानियो का विलाप। मेघनाद का समझाना। सवेरा होते ही बानरी सेना का चारो फाटको पर डट जाना। युद्ध मेघनाद का मायामय रथ पर चढकर आकाश मे जाना। बाण वर्षा। शरपञ्जर। खरारि को भी नागपाश से बाँधना। अन्त मे दुर्वाद कहते हुए प्रकट होना। जाम्बवान का पराक्रम। पैर पकडकर मेघनाद को लङ्का मे फेंकना। नारद का गरुड को भेजना। नागपाश से मुक्ति। बानरो का आक्रमण। राक्षसो का पलायन : दो दोहो मे मेघनाद की लडाई। मेघनाद का अजय मख करना। विभीषण का प्रभु को समाचार देना। सरकार का अङ्गदादि के साथ लक्ष्मण को भेजना। मेघनाद वध के लिए आदेश। लक्ष्मण का प्रस्थान। यज्ञ विध्वस। मेघनाद बध. १ दोहे मे तीसरी लडाई, कुल आठ दोहो मे मेघनाद युद्ध। हनुमान् का मेघनाद का शव लङ्का द्वार पर रख आना। सब देवताओ का आगमन। स्तुति. दो. ७६.५ तक। पृ० ४८८ से।

निशिचर निकर मरण प्रसंग : रावण का प्रथम युद्ध सुत वध श्रवण से रावण को मूर्च्छा। मन्दोदरी रुदन। नागरिको की विकलता। रावण का ज्ञानोपदेश। सवेरा होते ही बानरो का आक्रमण। रावण की घोषणा। रथ का सजाव। असगुन का न गिनना। सेना प्रस्थान वर्णन। रावण की अपनी सेना को कपिसेना सहार की आज्ञा। दोनो भाइयो का वध अपने जिम्मे लेना। सेना का सम्मुखीकरण। युद्ध। रावण को रथी और सरकार को विरथ देख कर विभीषण का धैर्य त्याग। रामचन्द्र द्वारा जयप्रद रथ का वर्णन। धर्म रथ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रूपक। विभीषण की कृतकृत्यता। दोनों सेनाओं में घोर युद्ध। निशाचरों का पलायन। रावण का रथ आगे बढ़ाना। रावण का प्रहार। कपिसेना में विकलता। लक्ष्मण का संग्राम भूमि में उतरना। रावण को ललकार। रावण के आयुधों का लक्ष्मण द्वारा खण्डन। लक्ष्मण का प्रहार। रावण को मूर्च्छा। जागकर ब्रह्मदत्त साँगी का प्रयोग। लक्ष्मण को मूर्च्छा। रावण का न उठा सकना। हनुमान् से युद्ध। हनुमान् का लक्ष्मण को लाना। राम के वाक्य से लक्ष्मण का जागना। धनुर्बाण लेकर रावण पर आक्रमण। रावण को मूर्च्छा। सारथि का उसे रथ पर लाद ले जाना छ ८४ तक। पृ० ५०६ से।

रावण यज्ञ विध्वंस रावण का यज्ञ। विभीषण का समाचार देना। सवेरा होते ही सरकार द्वारा सुभटों का भेजा जाना। सुभटों का रावण भवन प्रवेश। यज्ञ विध्वंस। सुभटों का कुशलपूर्वक राम के यहाँ प्रस्थान दो ८५ तक। पृ० ५३२ से।

रघुपति रावण समर प्रसंग रावण का सक्रोध प्रयाण। असगुन। सेना का धावा। प्रभु से देवताओं की विनती। सरकार का युद्ध के लिए तयारी। निशाचरी सेना का आगमन। युद्ध में वर्षा का रूपक। रुधिर सरिता का प्रादुर्भाव। रामबाण से निशिचर संहार। सुरपति का निजरथ भेजना। रामजी का सवार होना। रावण से बानरों के प्रहार का न सहा जाना। रावण की माया। सेना का चकित होना। राम बाण से माया का नाश। विप्र चरण नमस्कारपूर्वक राम का रथ आगे बढ़ाना। रावण का दुर्वचन। सरकार का उपदेश। राम रावण युद्ध। विभीषण पर घोर शक्ति प्रहार। सरकार का उस शक्ति को अपने ऊपर लेना। मूर्च्छा। विभीषण रावण युद्ध। विभीषण को श्रामन्त देखकर हनुमान् का दौड़ना। हनुमान् रावण युद्ध। हनुमान् पर संकट देखकर बानरी सेना का आक्रमण। कपिसेना मर्दन। रामचन्द्र के ललकारने पर प्रचण्ड बानरों का दौड़ना। रावण का अन्तर्धान होना। असंख्य रावणों का प्रादुर्भाव। कपिसेना का पलायन। देवताओं का पलायन। एक बाण से सब दशकन्धरों का नाश। रावण को एक देखकर देवताओं को हर्ष। सरकार का भुजा उठाकर बानरों को फेरना। देवताओं की स्तुति। रावण का क्रोध करके देवताओं पर धावा। देवताओं में हाहाकार। अङ्गद का रावण को नीचे गिराना। रावण की बाण वर्षा से कपिसेना का घायल होना। राम रावण युद्ध। सिर भुजा बढ़ते देखकर बानरों को क्रोध। उन पर प्रहार। रावण के बाणों से बानर वीरों को मूर्च्छा। जाम्बवान् का आक्रमण। जाम्बवान् के प्रहार से रावण को मूर्च्छा। सूत का लादकर रावण को घर ले जाना। बानरों का प्रभु के पास लौटना रावण का दूसरा युद्ध दो ९८ तक। पृ० ५३५ से।

सीता विलाप त्रिजटा का यह समाचार सीता को देना। रामबाण से सिर कटने पर भी रावण के न मरने पर सीताजी का विलाप। त्रिजटा का समझाना। विरह व्यथा से विलाप। सगुन से धैर्य दो ९९ तक। पृ० ५७५ से।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रावण वध प्रसंग : तीसरा युद्ध : अर्धरात्रि में रावण का मूर्च्छा से जागना। रणभूमि छुड़ाने से सारथि पर क्रोध। प्रातःकाल होते ही रथ पर सवार होकर दौड़ना। निशाचरों का बानरों के प्रहार से भाग जाना। बानरों के प्रहार से रावण की विकलता। रावण की माया। लक्ष्मण कपीश समेत कपिसेना की विकलता। रामबाण से माया का नाश। राम रावण युद्ध। सरकार का विभीषण की ओर देखना। विभीषण का मर्म बतलाना। रामचन्द्र द्वारा कराल बाण सन्धान। उत्पात। रावण वध। उसके तेज का प्रभुमुख में प्रवेश। जयजयकार सरकार की समराङ्गण-शोभा : २२ दोहों में रावणवध : दो. १०३ तक। पृ० ५८१ से।

मन्दोदरी शोक प्रसंग : बाण से गिराये हुए पति के सिर को देखते ही मन्दोदरी को मूर्च्छा। अन्य युवतियों का रोते हुए मन्दोदरी को लेकर रणाङ्गन में आना। मन्दोदरी का विलाप। विभीषण को दुःख। लक्ष्मण का विभीषण को लेकर सरकार के पास आना। क्रिया करने की आज्ञा। रावण की विधिवत् क्रिया, तिलाञ्जलि देकर मन्दोदरी आदिकों का प्रस्थान : दो. १०५ तक। पृ० ५९५ से।

विभीषण राज्य प्रसंग : विभीषण का आकर प्रणाम करना। सरकार का लक्ष्मण को सुग्रीवादि के साथ भेजना। विभीषण को गद्दी। सबका विभीषण के साथ लौट आना। सरकार का बन्दरों के प्रति कृतज्ञता प्रकाशन। अपने सहित बानरों के कीर्तिमान की फल-श्रुति : दो. १०६ तक। पृ० ६०१ से।

सीता रघुपति मिलन प्रसङ्ग : रावण-वध समाचार देने तथा सीता का कुशल लेने के लिए हनुमान् का भेजा जाना। हनुमान् का जाकर समाचार देना। सीता को हर्ष। आशीर्वाद। सरकार के दर्शन के लिए त्वरा। हनुमान् का लौटकर प्रभु को कुशल सुनाना। सरकार द्वारा हनुमान् का विभीषण अङ्गद के साथ सीता को लाने के लिए भेजा जाना। सीताजी का मज्जन। शिविका पर चढ़ाकर सीता को लाना। बानरों को दर्शन की अभिलाषा। सरकार की आज्ञा से पैदल लाना। प्रभु द्वारा दुर्वाद। अग्नि परीक्षा। अग्नि का मूर्ति धारण करके सीता समर्पण। राम जानकी की छवि। मातलि की विदाई : दो. १०९.१ तक। पृ० ६०४ से।

देव स्तुति प्रसङ्ग : सुर सिद्धों की स्तुति। ब्रह्मा स्तुति। दशरथ का आगमन। दशरथ को दृढ़ ज्ञान। दशरथ का सुरधाम गमन। इन्द्र स्तुति। इन्द्र को कपि भालु के जिलाने की आज्ञा। सुधा वृष्टि। कपि भालुओं का जी उठना। शङ्कर की स्तुति। गृह पवित्र करने के लिए विभीषण की विनय। सरकार की भरत मिलन के लिए त्वरा। विभीषण का मणि वसन से भरकर पुष्पक विमान भेंट देना। विमान पर चढ़कर कपिदल में सरकार की आज्ञा से विभीषण द्वारा मणि वसन की वर्षा। बन्दरों की लीला। तीनों सरकार का बार बार हँसना। बन्दरों की विदाई। सुग्रीवादि का अतिशय प्रेम देखकर सबको विमान पर चढ़ा लेना : दो. ११८.३ तक। पृ० ६१४ से।

अवध प्रयाण प्रसङ्ग : विमान पर प्रभु की शोभा। सीता को रणभूमि दिख-

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


लाना। रामेश्वर को प्रणाम। दण्डक वन में रामजी का अगस्त्यादि मुनियों के स्थान में जाना। चित्रकूट में मुनियों से मिलना। फिर त्रिवेणी स्थान। हनुमान् को भरत के पास अपना कुशल सुनाने तथा समाचार लेने के लिए भेजना। भरद्वाज से मिलकर फिर गङ्गा पार उतरना। गङ्गा पुजाई। निषाद की प्रीति। सरकार का हृदय से लगा लेना। काण्ड की फलश्रुति। मन को नाम का आधार ग्रहण के लिए उपदेश दो १२१ तक। पृ० ६४५ से।

### ७. उत्तरकाण्ड

मंगलाचरण ६५५ से।

उमा[१] के सातवें प्रश्न का उत्तर

**नगरनिकट आगमन विधि प्रसङ्ग** पुष्पकारूढ राम की वन्दना। चरणकमल वर्णन। शङ्कर की वन्दना। संस्कृत पुरजनों की आरती। भरत को शकुन। भरत का विचार। उनका विरहसागर में मग्न होना। हनुमदागमन। समाचार कथन। भरत को हर्ष। पूछने पर हनुमान् द्वारा आत्मपरिचय। भरत का मिलन। सम्वाद। हनुमान् का जाकर राम से कुशल कहना। सरकार का प्रयाण। भरत का कोसलपुर आना। अवध में उछाह। रामचन्द्र का कपियों को पुरी दिखलाना तथा पुरी का बखान। सरकार का पुष्पक से उतरकर उसे कुबेर के पास भेजना। भरत के सङ्ग सबका आगमन। मिलन। आरती। निछावर। सखाओं का परिचय। सुखकन्द का घर चलना। अयोध्या में तैयारी। अयोध्या सनाथ। कैकेयी के घर जाना। कैकेयी प्रबोध तत्पश्चात् अपने घर जाना दो ९२ तक। पृ० ६५८ से।

**रामाभिषेक प्रसङ्ग** गुरु वसिष्ठ का मुहूर्त। ब्राह्मणों का अनुशासन। गुरुजी की आज्ञा से सुमन्त का रथ गजवाजि सँवारना। परिचार को मङ्गल द्रव्य लाना। अवधपुरी की रचना। पुष्पवृष्टि। सखा तीनों भाई सरकार तथा जानकी का मज्जन तथा शृङ्गार। राम वाम दिशि रमा का शोभा। ब्रह्मादि देवों का आगमन। अभिषेक। देवस्तुति। वेद स्तुति। शिव स्तुति। अभिषेक की फलश्रुति। सखाओं का छः महीने निवास। बिदाई। अङ्गद का प्रेम। निषाद की बिदाई दो १९ ५ तक। पृ० ६८९ से।

**पुरवर्णन तथा अनेक नृपनीति प्रसंग** रामराज्य की विशेषता। चारों चरणों से धर्म। काल कर्म स्वभाव गुण कृत दुःख की हानि। सप्तसागर मेखला भूमि में एकछत्र राज्य। सबका मनोजय। प्रकृति की अनुकूलता। कोटि अश्वमेध। सीता की गुणगाथा। चारों भाइयों का सौभ्रात्र। चारों भाइयों के दो दो पुत्र। राजा से प्रजा तक सब कथा के रसिक। नारदादि की नित्य अवधयात्रा। नगर की शोभा। जहाँ तहाँ गुण गान। दोषों को दुःख और गुणों को सुख। भाइयों तथा हनुमान् के सहित रामचन्द्र का उपवन जाना। सनकादिक का आगमन। राम का सत्कार। मुनियों की स्तुति। अभीष्ट वर पाकर ब्रह्मलोक प्रस्थान। भरत के प्रश्न पर सरकार का सन्त असन्त की करनी। सन्तों के गुण। असन्तों के स्वभाव। वेद पुराण का

---

१ राज बैठि कीन्ही बहु लीला। सकल कहहु सकर सुखसीला॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



निर्णय। अपना फलदातृत्व। परम सयानो के उपाय गुण और दोष वर्णन करना। फिर घर जाना। ब्रह्मलोक मे कथा। पुरवासियों को उपदेश। अवधवासी का कृतार्थ होना। वसिष्ठ मुनि का आगमन। आत्मकथा। भक्ति वरदान याचना दो ४९१ तक। पृ० ७२३ से।

**उमा के आठवें प्रश्न का उत्तर** [1]एक बार पुर बाहर गमन। गज रथ तुरग का सविभाग। अमराई म विश्राम। नारद का आगमन। गुणगान। शोभा सिन्धु को हृदय म रखकर प्रस्थान दो ५१ तक। पृ० ७९१ से।

**कथोपसहार** जो कथा भुसुण्डिजी ने गरुडजी से कही थी उसे उमा को सुनाकर अर्थात् बारह प्रश्नो मे से आठ का उत्तर देकर। आगे क्या कहू? इस विषय मे शिवजी का प्रश्न। उमा की कृतकृत्यता। कथा से मन का न अघाना दो ५२ ७ तक। पृ० ७९६ से।

**उमा के पाँच प्रश्न** १ अतिदुर्लभ हरिभक्ति काक ने कैसे पाई? २ यह प्रभुचरित कैसे पाया? ३ तुमने उससे कैसे सुना? ४ गरुड ने मुनियो को छोडकर काक से क्या सुना? ५ किस विधि से सम्वाद हुआ दो ५४ ५ तक। पृ० ८०० से।

**तीसरे[2] प्रश्न का उत्तर** प्रश्न सुनकर शिवजी को आनन्द। कथनीय इतिहास का माहात्म्य। गरुड द्वारा ऐसे ही प्रश्न काक के प्रति किये जाने का उल्लेख। उन सब बातो के कहने की प्रतिज्ञा। अत पहिले तीसरे प्रश्न के उत्तर की आवश्यकता। दक्ष यज्ञ मे सती के शरीर त्याग पर दु खित शिवजी का नील शैल पर जाना। वहाँ का दृश्य। भुसुण्डि की दिनचर्या। मराल शरीर धारण करके शिवजी का कथा श्रवण। तत्पश्चात् कैलासागमन दो ५७ तक। पृ० ८०४ से।

**चौथे[3] प्रश्न का उत्तर** नागपाश मे बँधे हुए रामचन्द्र को छुडाने पर गरुड को विषाद। गरुड का सशयोच्छेद के लिए नारद के पास जाना। नारद का उसे ब्रह्मदेव के पास भेजना। ब्रह्मदेव का शिव के पास भेजना। शिव का भुसुण्डि के पास भेजना। अभिमान भङ्ग तथा पक्षीभाषा म यथार्थ बोध होना ही काक के पास गरुड को भेजने का कारण दो ६२ तक। पृ० ८१० से।

**पाँचवें[4] प्रश्न का उत्तर** अथ उत्तरघाट प्रारम्भ गरुड का भुसुण्डि के यहाँ जाना। तडाग मज्जन। जल पान। कथा प्रारम्भ क समय पहुँचना। भुसुण्डि का सत्कार। पूजा। आज्ञा के लिए प्रार्थना। आश्रम के दर्शन से ही मोह सशय भ्रम का भङ्ग। श्रीराम कथा सुनने के लिए विनय। भुसुण्डि का चौरासी प्रसङ्गो मे रामकथा कहना मूल रामचरितमानस। गरुड की कृत कृत्यता। उसी भ्रम को सत्सङ्ग का

---

१ बहुरि कहहु करुनायतन कीन्ह जो अचरज राम।
प्रजा सहित रघुबसमनि किमि गवने निज धाम॥

२ तुम केहि भाति सुना उरगारी। कहहु मोहि अति कौतुक भारी॥

३ सो कहि हेतु तात कहि जाई। मुनि कथा मुनि निकर बिहाई॥

४ कहहु कवन बिधि भा सवादा। दोउ हरिभगत काग उरगादा॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कारण होने से हितकर मानना। गरुड की वाणी से काग को हर्ष। गोप्यमत प्रकाशन के लिए अधिकारी। श्रोता के लक्षण। भुसुण्डि की सुशीलता। मोह होना आश्चर्य की बात नही। माया कटक का वर्णन। उनकी करतूत। मिथ्या होने पर भी रामकृपा बिना माया से मुक्ति नही। माया प्रेरक का स्वरूप। भक्त हेतु अवतार तथा नटसमान चरित। दनुजविमोहनी जन सुखकारिणी लीला। अपने मोह से राम म मोह का भ्रम। गृहासक्त के लिए रामस्वरूप ज्ञान असम्भव। निर्गुण रूप की अतिसुलभता। सगुण के सुगम अगम चरित्र श्रवण से मुनि को भी भ्रम दो ७३ तक। पृ० ८२० से।

रामरहस्य उमा के ग्यारहवें प्रश्न का उत्तर. [१]आत्ममोह की कथा सुनाने की प्रतिज्ञा। राम का स्वभाव मानहारी। जब जब रामावतार तब तब अपने इष्टदेव बालक राम दर्शन के लिए भुसुण्डि की अवधयात्रा। जन्म महोत्सव देखना। पाँच वर्ष रह जाना। एक बार सब चरित्रो की अतिशयिता। नृप अजिर विहारी के नख शिख का वर्णन। शिशु लीला। लघु वायस रूपधारी भुसुण्डि से विविध विधि क्रीडा। प्राकृत शिशु सदृश लीला देखकर भुसुण्डि को मोह। एक मायापति का अखण्ड ज्ञान जीव मायावश्य। जीव ईश भेद मिथ्या माया कृत। तथापि बिना हरिकृपा के कोटि उपाय से भी अच्छेद्य। हरिसेवक को अविद्या न व्याप कर विद्या का व्यापना। भ्रम से भुसुण्डि को चकित देखकर। राम का हँसना, भुसुण्डि का मुख मे चला जाना। राम के उदर मे अनन्त ब्रह्माण्डो का दर्शन। वहाँ की रचना। अगणित ब्रह्मा, शङ्कर, सूर्य, चन्द्र, अगणित भूधर, भूमि, सागर, सर, सरिता, विपिन, तथा जो न देखा न सुना न मन में समाया सो सब देखना। प्रत्येक ब्रह्माण्ड मे सृष्टिवैषम्य। प्रति ब्रह्माण्ड मे अपने रूप मे भेद। प्रति भुवन मे अवधपुरी, सरयू पुर नरनारी, दशरथ कौसल्या के रूप मे भेद। प्रतिब्रह्माण्ड मे रामावतार अभेद। बालचरित घूमते घूमते एक सौ एक कल्पो का बीतना। अपने आश्रम मे आना। रामावतार सुनकर अवध मे जाना। उन्ही राम का दर्शन। दो घडी मे सब देखना। भुसुण्डि को विकल देखकर पुन हास। भुसुण्डि का मुख के बाहर आना और फिर वही शिशु लीला। भुसुण्डि का त्राहि त्राहि करके पृथिवी पर गिरना। सरकार द्वारा माया को प्रभुता का रोका जाना। भुसुण्डि का विनय। वरदान के लिए आज्ञा। दुर्लभ भक्ति माँगना। सब सद् गुणो के बसने का वरदान। सिद्धान्तोपदेश। अति नीच भक्त का भी प्रिय होना। अजान पुत्र भी भक्त होने से पिता का प्राणप्रिया सरकार का दूध के लिए रोना। माता का दूध पिलाना। इस सुख के लवलेश की प्राप्ति के सम्मुख ब्रह्मसुख का अनादर। तब से माया का न व्यापना। भुसुण्डिजी का अनुभव राम के भजन का उपदेश। राम की महिमा। राम के गुण। राम की मायवश्यता। गरुडजी की कृतज्ञता : दो ९२ १ तक। पृ० ८८७ से।

---

१ औरौ राम रहस्य अनेका। कहहु नाथ अति बिमल बिवेका।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



## भुसुण्डि चरित

**पहिले और दूसरे प्रश्न का उत्तर** [१] गरुड का हर्ष। पिछले मोह के लिए पश्चात्ताप। भुसुण्डिजी को प्रणाम। प्रशंसा। गरुडजी के चार प्रश्न १ काक देह पाने का कारण २ रामचरितसर प्राप्तिस्थान ३ काल के व्यापने का कारण ४ भुसुण्डि के आश्रम में आने से मोह भागने का कारण। प्रश्न सुनकर भुसुण्डि को हर्ष। गरुड की बुद्धि की प्रशंसा। बहुत जन्मों की सुधि आना। काक शरीर में रामभक्ति की उत्पत्ति अतः उसका प्रिय होना। इच्छा मरण होने से शरीर का न त्यागना। मोह द्वारा भुसुण्डिजी का पहिले बहुत सताया जाना। सब कर्म करके देख लेना ऐसे सुख का कहीं न मिलना। पूर्व काल के कलियुग में अयोध्या जाकर शूद्र होना। परम शैव अन्यदेव निन्दक राम की महिमा से अनभिज्ञ होना। अवध की महिमा। कलियुग धर्म वर्णन। अधर्म और विपरीत धर्म का प्रचार। कलि के गुण। नाम से गति। हरिगुण गान का आधार होना। मानस पुण्य का होना। मानस पाप का न होना। दान से कल्याण। चारों युगों की विवेचना। युग धर्म के ज्ञान से अधर्म का त्याग। धर्म में रति। राम के भक्त पर कालधर्म का बल नहीं। मायाकृत गुण दोष का बिना भजन के नाश न होना। बहुत दिन अवध वास के बाद दुकाल पड़ना। भुसुण्डि का उज्जैन जाना। ब्राह्मण से मन्त्र लेना। भुसुण्डि के विष्णुद्रोह से गुरु को पीड़ा। गुरु के उपदेश की उपेक्षा। गुरु के जाने पर शिव मन्दिर में बैठे जप करते रह जाना। शिव का शाप। गुरु का हाहाकार करना। शङ्कर की स्तुति करना। रुद्राष्टक। उसकी फलश्रुति। वर माँगने के लिए आकाश-वाणी। गुरु द्वारा शङ्कर चरण भक्ति तथा भुसुण्डि के लिए परम कल्याण का माँगा जाना। शापोद्धार। विन्ध्यगिरि में सर्प होना। अन्त में ब्राह्मण शरीर प्राप्ति। भुसुण्डि की हरि भक्ति। माता पिता के मरने पर भजन के लिए प्रस्थान। रामचरणदर्शन की लालसा। ईश्वर के सर्वभूतमय होने में मुनियों का ऐकमत्य। मेरु शिखर पर वट छाया में बैठे हुए लोमश ऋषि का शरण ग्रहण दो. ११० तक। पृ० ८९६ स।

**प्रसगात् उमा के नवें प्रश्न का उत्तर** [२] ब्रह्मज्ञानरत विज्ञानी मुनि का भुसुण्डि का परम अधिकारी समझकर ब्रह्मो-पदेश। षोडशलक्षणयुक्त सुखराशि का निरूपण। महावाक्य का उपदेश। भुसुण्डि की सगुण उपासना कहने के लिए प्रार्थना। मुनि द्वारा सगुण मत का खण्डन। निर्गुण का उपदेश। भुसुण्डि का निर्गुण मत दूर करके हठपूर्वक सगुण निरूपण। मुनि का सकोप ज्ञान निरूपण।

---

१. सो हरि भगति काक किमि पाई।
यह प्रभु चरित पवित्र सोहावा।
कहहु कृपाल काक किमि पावा॥

२ पुनि प्रभु कहहु सो तत्व बखानी।
जेहि बिज्ञान मगन मुनि ज्ञानी॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



गरुड भुसुण्डि संवाद का उपसंहार : उत्तरघाट की समाप्ति : अनुपम हरिचरित कथन की समाप्ति। श्रुति सिद्धान्त। भजनीय राम। भुसुण्डि की विनय। सत्संग की महिमा। भजन से अपावन भी पावन। भुसुण्डि की सुशीलता। रामचरित की अपारता। राम के गुण-गण स्मरण से भुसुण्डि को हर्ष। राम की महिमा। बल प्रताप प्रभुताई। राम का स्वभाव। उनकी सेवा बिना निस्तार नहीं। उन्हें तीन बार प्रणाम। अघ-राशिपावनकरण को प्रणाम जिसका नाम भवभेषज है। उस कृपाल के सदा अनुकूल रहने की प्रार्थना। गरुड की कृतकृत्यता तथा कृतज्ञता प्रकाश। सन्त हृदय स्तुति। जन्म का साफल्य। श्रोता का कर्तव्य। प्रणामपूर्वक गरुड़ का वैकुण्ठ प्रस्थान : दो. १२५ तक। पृ० १०१३ से।

उमा शम्भु संवाद का उपसंहार : पश्चिम घाट की समाप्ति : भुसुण्डि चरित की फलश्रुति। सब साधनो का फल हरि-भक्ति। इस कथा के निरन्तर श्रवण से भक्तिप्राप्ति। छल छोडकर भजन करने-वाला ही लायक। नौ धन्यो का विवरण। अधिक प्रीति देखने पर ही गुप्त कथा का प्रकाश। रामकथा के अनधिकारी। रामकथा के अधिकारी। रामकथा से यथेच्छा भक्ति या मुक्ति। रामचरित की फलश्रुति। गिरिजा का कृतज्ञता प्रकाश तथा कृतकृत्यता : दो. १२९ तक। पृ० १०२१ से।

भरद्वाज याज्ञवल्क्य संवाद का उपसंहार : दक्षिण घाट की समाप्ति : उमा शम्भु संवाद की फलश्रुति। राम उपासको को इस सवाद का प्रिय होना। रघुपति कृपा से यथामति गान की प्रतिज्ञापूर्ति : दो. १२९.४ तक। पृ० १०२७ से।

ग्रन्थोपसंहार : पूर्वघाट की समाप्ति : इस कलिकाल मे राम स्मरण। राम गुणगान। राम-कथा-श्रवण ही साधन। राम भजन के लिए मन को उपदेश। एक बार नामोच्चारण से पावन होना। सम्पूर्ण ग्रन्थ की फलश्रुति। शतपञ्च-चौपाई ग्रन्थ की फलश्रुति। ग्रन्थकार की परम विश्राम प्राप्ति। राम की विनय : संस्कृत : अपने अज्ञान की शान्ति के लिए शम्भुकृत दुर्गम रामायण को भाषा-बद्ध करने की प्रतिज्ञा की पूर्ति। श्रीरामचरितमानस मे भक्तिपूर्वक अव-गाहन के फल।

ग्रन्थ की समाप्ति।

ankurnagpal108@gmail.com

बावरो तू बावरो बतावै शिवशंकर को,
किंकर है जाके देव सेवत सुरेश है।
महिमा बखानै नेति-नेति करि मानै,
भेद वेदहुं न जानै गुन गावत गनेश है॥
तनया तिहारी ताको जानती प्रताप पति—
भाव तिनही मे ताते धरति महेश है।
सबके सुपासी आप रहत उदासी मुक्ति—
मुक्ति जहं दासी ऐसे मालिक महेश है॥

—विजयानन्द त्रिपाठी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

बावरो तू बावरो बतावै शिवशकर को,
किंकर है जाके देव सेवत सुरेश है।
महिमा बखानै नेति - नेति करि मानै,
भेद वेदहुँ न जानै गुन गावत गनेश है ॥
तनया तिहारी ताको जानती प्रताप पति—
भाव तिनही मे ताते धरति महेश है।
सबके सुपासी आप रहत उदासी मुक्ति—
मुक्ति जहँ दासी ऐसे मालिक महेश है ॥

—विजयानन्द त्रिपाठी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

दुर्गापुरस्थित श्रीराम जानकी मंदिर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

मानसराजहंस श्रीविजयानन्द त्रिपाठी के प्रमुख शिष्य

**डॉ. श्रीनाथ मिश्र रामायणी**

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

# श्रीरामचरितमानस
## विजया टीका

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वस्तुतस्तु जीव भी अजन्मा है और ब्रह्म भी अजन्मा है। गीता मे भगवान् कहते हैं कि कदाचित् इस जीव का जन्म नही होना और अपने लिए भी कहते हैं कि मैं अजन्मा हूँ, अव्ययात्मा हूँ और भूतो का ईश्वर हूँ। यथा न जायते म्रियते वा कदाचित् तथा अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्। भेद इतना ही है कि जीव का जन्म अविद्या द्वारा होता है और ईश्वर माया द्वारा देह ग्रहण करते हैं। माया से ही दो स्वरूप से भासित होते हैं। यथा ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय वेष धरि सोइ कि आवा। रघुकुल मे जन्म लिया है। इससे रघुवर कहते हैं। धर्मसेतु रक्षक हैं। धर्मग्लान्यधर्माभ्युत्थान की निवृत्ति के लिए जगत् के कल्याण के लिए अवतीर्ण हैं। अवतार तथा अवतार ग्रहण का प्रयोजन कहकर अब प्रसङ्गानुकूल ध्यान करते हैं कि सीताहरण हो गया। सो उन्ही की खोज मे तत्पर हैं। ऐसे अवसर मे भी रास्ते चलते भक्ति चिन्तामणि का वितरण हो रहा है। अत गोस्वामी जी भक्ति की याचना कर रहे हैं। अथवा जो भक्त के लिए इतना कष्ट उठा रहे हैं कि वन वन मे ढूंढते फिरते हैं जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत बिरह दुख दुखित सुजाना। उनसे भक्ति ही मांगना चाहिए। अत दीनघाट के वक्ता दीन जनो के लिए भक्ति की याचना कर रहे हैं। इसीलिए बहुवचन न का प्रयोग किया।

श्लो ब्रह्माभोधिसमुद्भव[1] कलिमलप्रध्वसन चाव्यय
श्रीमच्छभुमुखेदुसुदरवरे सशोभित सर्वदा।
ससारामयभेषज सुखकर श्रीजानकीजीवन
धन्यास्ते कृतिन पिबन्ति सतत श्रीरामनामामृतम् ॥२॥

अर्थ वे सुकृती धन्य हैं जो वेदरूपी समुद्र से उत्पन्न, कलिमल के नाश करनेवाले, अव्यय, श्रीमान् शम्भु के सुन्दर मुखचन्द्र मे सर्वदा विराजमान, ससाररूपी रोग के औषध, सुख कर, श्री जानकी के जीवन, श्री रामनामामृत को सदा पान किया करते हैं।

व्याख्या नामी का वर्णन करके नाम का वर्णन करते हैं। स्वाद तोपसम सुगति सुधा के कह आये हैं। इसलिए उसका वर्णन अमृत रूप से करते हैं। अमृत पीनेवाल धन्य नही हैं। केवल दीर्घजीवी होकर कौन धन्य हुआ है। काकोऽपि जीवति चिराय बलि च भुक्ते। पुण्यमय जीवन एक मुहूर्त का भी बहुत है। इसलिए कहते हैं कि जो पुण्यात्मा सदा रामनामामृत का पान करते हैं वे धन्य हैं। अमृत तो लौकिक अम्भोधि से उत्पन्न है।

१ पर नामामृत तो वेदाम्भोधि से उत्पन्न है। यथा बिधि हरिहर मय बेद प्रण सो मल की निवृत्ति होती है। पर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

श्रीराम

श्रीगणेशाय नमः। श्रीगुरवे नमः

# श्रीरामचरितमानस

## किष्किन्धाकाण्ड : चतुर्थ सोपान

## सटीक

### मङ्गलाचरण

श्लो. कुंदेंदीवरसुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ
शोभाढ्यौ वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृन्दप्रियौ।
मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ
सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौहि नः ॥१॥

अर्थ : कुन्द और नील कमल के समान सुन्दर, अत्यन्त बलवान विज्ञान धाम शोभा के धनी, श्रेष्ठ धनुर्धर, वेद से वन्दित, गो ब्राह्मण समूह के प्रिय या प्रेमी, माया से मनुष्य का रूप धारण किये, सद्धर्म के लिए कवचरूप, हितकारी, श्री सीता जी के खोज में तत्पर, दोनों पथिक, दोनों रघुकुल में श्रेष्ठ, हमें भक्ति के देनेवाले हों।

व्याख्या : कुन्द की भांति गौरवर्ण लक्ष्मण जी और नील कमल से सुन्दर श्यामवर्ण रामजी हैं। इनकी फूलों से उपमा देकर कोमलता, सौन्दर्य और सौगन्ध्य कहा। सुन्दर और सुकुमार व्यक्ति में बल की न्यूनता होती है। पर ये दोनों व्यक्ति अतिबल हैं।

पुनः बलवान् शरीर की ही सेवा मे लगे रहते हैं। उन्हे देहाध्यास की मात्रा अधिक होती है। पर ये विज्ञान के धाम हैं। अतः शोभा के धनी हैं। अथवा दूसरों को इनसे शोभा मिलती है। इसलिए शोभा के धनी हैं। यथा : राज कुँअर दोउ सहज सलोने। इनते लहि दुति मरकत सोने। इतने पर भी विख्यात धनुर्धर हैं। मेघनाद कहता है : कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता। धन्वी सकल लोकविख्याता। विरुद्धधर्माश्रयत्व दिखलाकर तब कहते हैं कि वेद इन्ही को नमो नमः करते है। अर्थात् ये ही परमात्मा हैं। अब अवतीर्ण होने का कारण कहते हैं कि इन्हे गो ब्राह्मण प्यारे हैं। उन्हीं के लिए इन्होने माया से मनुष्य रूप धारण किया है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

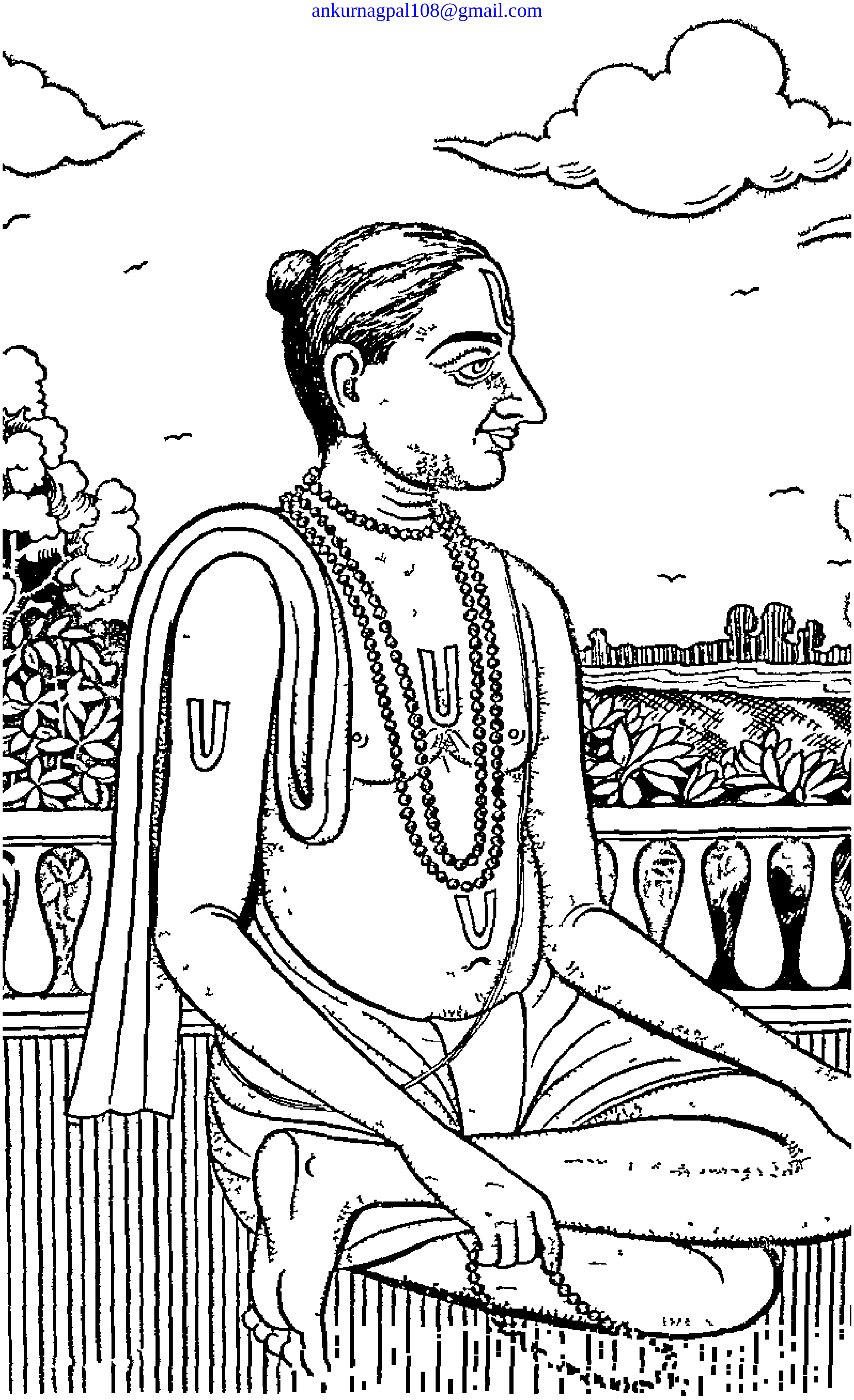

ankurnagpal108@gmail.com

श्रीराम

श्रीगणेशाय नमः । श्रीगुरवे नमः

# श्रीरामचरितमानस

## किष्किन्धाकाण्ड : चतुर्थ सोपान

## सटीक

### मङ्गलाचरण

श्लो. कुंदेंदीवरसुन्दरावतिबलौ विज्ञानधामावुभौ
शोभाढ्यौ वरधन्विनौ श्रुतिनुतौ गोविप्रवृन्दप्रियौ ।
मायामानुषरूपिणौ रघुवरौ सद्धर्मवर्मौ हितौ
सीतान्वेषणतत्परौ पथिगतौ भक्तिप्रदौ तौहि नः ॥१॥

अर्थ : कुन्द और नील कमल के समान सुन्दर, अत्यन्त बलवान विज्ञान धाम शोभा के धनी, श्रेष्ठ धनुर्धर, वेद से वन्दित, गो ब्राह्मण समूह के प्रिय या प्रेमी, माया से मनुष्य का रूप धारण किये, सद्धर्म के लिए कवचरूप, हितकारी, श्री सीता जी के खोज में तत्पर, दोनों पथिक, दोनों रघुकुल में श्रेष्ठ, हमें भक्ति के देनेवाले हों।

व्याख्या : कुन्द की भाँति गौरवर्ण लक्ष्मण जी और नील कमल से सुन्दर श्यामवर्ण रामजी हैं। इनकी फूलों से उपमा देकर कोमलता, सौन्दर्य और सौगन्ध्य कहा। सुन्दर और सुकुमार व्यक्ति में बल की न्यूनता होती है। पर ये दोनों व्यक्ति अतिबल हैं।

पुनः बलवान् शरीर की ही सेवा में लगे रहते हैं। उन्हें देहाध्यास की मात्रा अधिक होती है। पर ये विज्ञान के धाम हैं। अतः शोभा के धनी हैं। अथवा दूसरों को इनसे शोभा मिलती है। इसलिए शोभा के धनी हैं। यथा : राज कुँअर दोउ सहज सलोने। इनते लहि दुति मरकत सोने। इतने पर भी विख्यात धनुर्धर हैं। मेघनाद कहता है : कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता। धन्वी सकल लोकविख्याता। विरुद्धधर्माश्रयत्व दिखलाकर तब कहते हैं कि वेद इन्हीं को नमो नमः करते हैं। अर्थात् ये ही परमात्मा हैं। अब अवतीर्ण होने का कारण कहते हैं कि इन्हें गो ब्राह्मण प्यारे हैं। उन्हीं के लिए इन्होंने माया से मनुष्य रूप धारण किया है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वस्तुतस्तु जीव भी अजन्मा है और ब्रह्म भी अजन्मा है। गीता मे भगवान् कहते हैं कि कदाचित् इस जीव का जन्म नही होता और अपने लिए भी कहते हैं कि मैं अजन्मा हूँ, अव्ययात्मा हूँ और भूतो का ईश्वर हूँ। यथा न जायते म्रियते वा कदाचित् तथा अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन्। भेद इतना ही है कि जीव का जन्म अविद्या द्वारा होता है और ईश्वर माया द्वारा देह ग्रहण करते हैं। माया से ही दो स्वरूप से भासित होते हैं। यथा ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा। उभय वेष धरि सोइ कि आवा। रघुकुल मे जन्म लिया है। इससे रघुवर कहते हैं। धर्मसेतु रक्षक हैं। धमग्लान्यधर्माभ्युत्थान की निवृत्ति के लिए जगत् के कल्याण के लिए अवतीर्ण हैं। अवतार तथा अवतार ग्रहण का प्रयोजन कहकर अब प्रसङ्गानुकूल ध्यान करते हैं कि सीताहरण हो गया। सो उन्ही की खोज मे तत्पर हैं। ऐसे अवसर मे भी रास्ते चलते भक्ति चिन्तामणि का वितरण हो रहा है। अत गोस्वामी जी भक्ति की याचना कर रहे हैं। अथवा जो भक्त के लिए इतना कष्ट उठा रहे हैं कि वन वन मे ढूँढते फिरते हैं जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत बिरह दुख दुखित सुजाना। उनसे भक्ति ही माँगना चाहिए। अत दीनघाट के वक्ता दीन जनो के लिए भक्ति की याचना कर रहे हैं। इसीलिए बहुवचन न का प्रयोग किया।

श्लो ब्रह्माभोधिसमुद्भव[१] कलिमलप्रध्वसन चाव्यय
श्रीमच्छभुमुखेदुसुदरवरे सशोभित सर्वदा।
ससारामयभेपज सुखकर श्रीजानकीजीवन
धन्यास्ते कृतिन पिबन्ति सतत श्रीरामनामामृतम् ॥२॥

अर्थ वे सुकृती धन्य हैं जो वेदरूपी समुद्र से उत्पन्न, कलिमल के नाश करनेवाल, अव्यय श्रीमान् शम्भु के सुन्दर मुखचन्द्र मे सर्वदा विराजमान, ससाररूपी रोग के औषध, सुख कर, श्री जानकी के जीवन, श्री रामनामामृत को सदा पान किया करते हैं।

व्याख्या नामी का वर्णन करके नाम का वर्णन करते है। स्वाद तोषसम सुगति सुधा के कह आये है। इसलिए उसका वर्णन अमृत रूप से करते है। अमृत पीनेवाल धन्य नही हैं। केवल दीर्घजीवी होकर कौन धन्य हुआ है। काकोऽपि जीवति चिराय बलि च भुंक्ते। पुण्यमय जीवन एक मुहूर्त का भी बहुत है। इसलिए कहते हैं कि जो पुण्यात्मा सदा रामनामामृत का पान करते हैं वे धन्य हैं। अमृत तो लौकिक अम्भोधि से उत्पन्न है।

१ पर नामामृत तो वेदाम्भोधि से उत्पन्न है। यथा बिधि हरिहर मय बेद प्रण सो अमृत से स्थूल मल की निवृत्ति होती है। पर

---

१ यह शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



२. इस नामामृत से कलिमल की निवृत्ति होती है। अमृत तो पीने से चुक जाता है। पर

३. नामामृत तो कभी चुकता नहीं। अमृत का निवास तो चन्द्रमण्डल में सुना जाता है। पर

४. नामामृत तो साक्षात् श्रीमान् शङ्कर जी के सुन्दर मुखचन्द्र में सर्वदा शोभित रहता है। भाव यह कि शिवजी के मुखचन्द्र के सामने यह चन्द्रमण्डल क्या है? चन्द्रमण्डल में अमावस्या को अमृत की हानि हो जाती है। पर नामामृत तो सदा शिवजी के मुखचन्द्र में विराजमान रहता है। यथा : तुम पुनि राम राम दिनराती। सादर जपहु अनंग अराती। अमृत रोगों की दवा है। पर

५. नामामृत तो संसाररूपी रोग की दवा है और सुख देनेवाला है। भाव यह कि दोषापनयन ही नहीं गुणाधान भी करता है। अमृत सामान्य जीवों का जीवन है। पर

६. रामनामामृत तो उद्भवस्थितिकारिणी, क्लेशहारिणी, सर्वश्रेयस्करी, रामवल्लभा श्री जानकीजी का जीवन है। भगवान् राम षडैश्वर्य सम्पन्न हैं। उसी भाँति रामनाम भी षडैश्वर्य सम्पन्न है। इसलिए श्रीरामनाम को अमृत कहते हैं। इस भाँति श्रीग्रन्थकार श्रीरामनामामृत को अमृत से सर्वात्मना श्रेष्ठ समझकर सदा पान करने का उपदेश देते हैं। इसका पान चीख चीखकर करना चाहिए। यथा : चीखि चीखि चसकन सों रामसुधा पीजिये : देवस्वामी। जितने साधन हैं। सब आयाससाध्य हैं। केवल नामाराधन साधनकाल में भी सुखकर और फलकाल में भी श्रेयस्कर है। यहाँ सतत श्रीरामनामामृत पान करनेवालों की स्तुति से तात्पर्य यह है कि इस काण्ड में योग जप करनेवाले ऋषियों से भेंट न होगी। इसमें तो केवल भालू बन्दरादिकों से भेंट होगी। जिन्हें केवल नामामृत पान में अधिकार है और वे धन्य हैं। क्योंकि : अधम सरीर राम जिन पाये।

इस काण्ड में किष्किन्धा का राज्य सरकार ने सुग्रीवजी को दिया है और प्रधानतः किष्किन्धा की ही कथा इसमें है। अतः इसका नाम किष्किन्धा रक्खा। यदि किष्किन्धा नाम न रखते तो पता ही न चलता कि अर्धराति पुरद्वार पुकारा, मन्त्रिन्ह पुर देखा विनु साईं : आदि पदों में किस पुर का उल्लेख कर रहे हैं। क्योंकि इस काव्य भर में कहीं किष्किन्धा का नाम नहीं आया है।

यह सप्तपुरियों में से चौथी काशी की भाँति काण्डों के मध्य मे स्थित है। काशीजी में रामनाम की महिमा शंकर पार्वती की महिमा और स्वय पुरी की महिमा है। इस काण्ड में न सबकी स्तुति : वन्दना है। यहाँ रुद्ररूप हनुमान्जी को रामजी ने दर्शन दिया है। भक्ति का उपदेश दिया है। हनुमान्जी की कृपा से बन्दर भालुओं को भी भगवत्प्राप्ति हुई है। इसलिए यह काण्ड काशी है। जिसकी कहीं गति नहीं उसकी गति काशी है। यथा : येषां क्वापि गतिर्नास्ति तेषां वाराणसी गतिः। इस काण्ड में भी : वालित्रास व्याकुल दिन राती। तन वहु व्रण

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चिताजर छाती। सो सुग्रीव कीन्ह कपिराऊ। अति कृपाल रघुबीर सुभाऊ। इस भाँति यह काण्ड काशी है।

सो. मुक्ति जन्म महि जानि, ग्यान खानि, अघ हानिकर।
जहँ बस संभु भवानि, सो कासी सेइअ कस न॥
जरत सकल सुरबृन्द, बिषम गरल जेहिं पान किय।
तेहि न भजसि मनमंद, को कृपाल संकर सरिस॥

अर्थ : मुक्ति की जन्मभूमि, ज्ञान की खानि और पाप नाशिनी जहाँ शिव पार्वती बसते हैं : ऐसा : जानकर उस काशी की सेवा क्यों न की जाय? सब देवताओं को जलते हुए : जानकर : उल्वण विष को जो पान कर गये। हे मन्द मन! उसे : क्यो नही भजता। शङ्कर ऐसा कृपाल और कौन है?

व्याख्या : काशी मुक्ति की जन्मभूमि है। यही मुक्ति उत्पन्न होती है और कहीं मुक्ति उत्पन्न होती ही नहीं। जिस भाँति रामावतार अयोध्या में ही होता है। कृष्णावतार मथुरा में ही होता है उसी भाँति मुक्ति का अवतार काशी में ही होता है। अन्य पुरियाँ काशी प्राप्त करानेवाली हैं और काशी द्वारा मुक्ति हो जाती है। इसलिए वे भी मुक्तिदायिनी कहलाती हैं पर मुक्ति काशी मे ही होती है। अन्य स्थलों में अथवा अवस्था विशेष में मुक्ति मिलने की कथा शास्त्रों में सुनने में आती है। वह मुक्ति भी काशी द्वारा ही होती है। काशी के दो रूप और हैं। भ्रू और नासिका के सन्धिस्थल पर जो त्रिपुटी है वह आध्यात्मिक काशी है। सूर्य मण्डल के मध्य में आधिदैविक काशी है। अन्य स्थानों और अवस्थाओं में जो मुक्ति होती है उसका कारण आधिदैविक और आध्यात्मिक काशी है। अतः काशी को मुक्ति की जन्म-भूमि कहा।

परन्तु श्रुति कहती है कि बिना ज्ञान के मुक्ति नहीं होती : ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः। तमेव विदित्वातिमृत्युमेति। इस पर कहते है : ग्यान खानि। काशी ज्ञान की खानि है। जिस भाँति खानि से निकलकर ही धातुओं का प्रसार जगत् में होता है इसी भाँति जो कुछ ज्ञान का प्रसार जगत् में है उसका मूल स्रोत काशी है। परन्तु मन मे मल रहते ज्ञान हो नही सकता और निर्मल मन होने पर ज्ञान क्यों नही होगा? इसलिए कहते हैं : अघ हानिकर। काशी पापनाशिनी है। जहाँ शिव पार्वती जगत् के माता पिता सदा निवास करते हैं किसी अवस्था मे भी काशी को नही छोड़ते। शिवजी के काशीके छोड़ने की भी कथा पुराणो मे आयी है। परन्तु उस अवस्था मे भी उनका सूक्ष्म रूप से निवास रहता है। इसीलिए इसे अविमुक्त क्षेत्र कहते हैं। यहाँ निवास करके महासत्र चलाते हैं। भगवती अन्नपूर्णा काशीनिवासियो को अन्न देती हैं और भगवान् शिव मुमूर्षु के दक्षिण कर्ण में राम तारक मन्त्र का उपदेश करते हैं। जिससे उसे ज्ञान होकर मुक्ति हो जाती है। अतः भवानी शकर की कृपा से यहाँ यावज्जीवन योगक्षेम चलता है और अन्त में मुक्ति मिलती है। ग्रन्थकार

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अपने मन से कहते हैं : क्योकि मन से ही वेद्य जाना जाता है कि ऐसी काशी का सेवन क्यो नही करता ? यथा :

सेइय सहित सनेह देह भरि कामधेनु कलिकासी ।
समन सोक संताप पापरुज सकल सुमंगल रासी ॥
मरजादा चहुँ ओर चरनवर सेवत सुरपुरवासी ।
तीरथ सब सुभ अग रोम सिवलिंग अमित अबिनासी ॥
अतरअयनु अयनुभल थनफल वच्छ वेद विस्वासी ।
गल कंवल वरुना विभाति जनु लूम लसति सरितासी ॥
दडपानि भैरवविषान मलरुचि खलगन भयदासी ।
लोल दिनेम तिलोचन लोचन करन घट घटासी ॥
मनिकर्निका वदन ससि सुन्दर सुरसरि सुख सुषमासी ।
स्वारथ परमारथ परिपूरन पचकोस महिमासी ॥
विस्वनाथ पालक कृपालु चित लालति नित गिरिजासी ।
सिद्धिसची सारद पूजहि मन जोगवत रहति रमासी ॥
पचाच्छरी प्रान मुद माधव गव्य सुपचनदासी ।
ब्रह्म जीव सम रामनाम दोउ आखर विस्व विकासी ॥
चारितु चरति करम कुकरम करि मरत जीवगन घासी ।
लहत परमपद पय पावन जेहि चहत प्रपच उदासी ॥
कहत पुरान रची केसव निज कर करतूति कलासी ।
तुलसी वसि हरपुरी राम जपु जो भयो चहै सुपासी ॥

काशी मे बसकर राम नाम का जप करना सर्वथा इष्ट है । जिस मन्त्र के बल से मुक्ति लेना है उसका अभ्यास अवश्य करना चाहिए । परन्तु कामधेनु काशी का प्राण पञ्चाक्षरमन्त्र शिवाय नम है । अर्थात् शिवजी का भजन काशीवास का प्राण है । स्वयं सरकार ने शिवजी के भजन का बार बार उपदेश दिया है । यथा : जपहु जाइ संकर सतनामा । तथा : औरो एक गुपुत मत सबहि कहौ कर जोरि । सकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि । सिव सेवा कर फलसुत सोई । अविरल भगति रामपद होई । इत्यादि ।

अत ग्रन्थकार अपने मन को उपदेश देते हैं कि रे मन मन्द ! तू शङ्कर का भजन कर । बिना कारण का कार्य नही होता । शङ्कर भजन कारण है और राम भक्ति उसका फल है । भजनीय मे दो गुण होना चाहिए । एक तो वह समर्थ हो । दूसरे कृपालु हो । यदि भजनीय समर्थ है और कृपाल नही है तो उसका भजन व्यर्थ है और यदि कृपाल होने पर भी समर्थ नही है तो भी उसके भजन का कोई फल नही है । भगवान् शङ्कर मे ये दोनो गुण अत्यन्त उत्कर्ष रूप मे हैं । एक ही उदाहरण मे ग्रन्थकार दोनो गुण दिखलाते है । जब समुद्रमन्थन के समय रत्न निकलने लगे तब अन्य देवता लोग उन्हे ग्रहण करने लगे, परन्तु जब उल्वण

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विपका प्रादुर्भाव हुआ और उसके झार से अमर मरने और अजर जरने लगे तब तो सबने त्राहि त्राहि किया। उस समय भगवान् शङ्कर आगे आकर उस विपका पान कर गये और देवताओंकी रक्षा हो गयी। उस पान से शिवजी का कोई अपकार नही हुआ। ऐसे समर्थ और ऐसे दयालु शङ्कर हैं। दूसरा कोई ऐसा नही है। इससे यही गमक निकलता है कि श्री गोस्वामीजी शेप जीवन काशी में बसकर शिवजी की आराधना मे तथा श्री रामनाम के जप में व्यतीत करना चाहते हैं।

## ४५. [1]मारुति मिलन प्रसंग

आगे चले बहुरि रघुराया। रिष्य मूक पर्वत नियराया॥
तहँ रह सचिव सहित सुग्रीवाँ। आवत देखि अतुल बल सीवाँ॥१॥

अर्थ : रघुनाथजी फिर आगे चले। ऋष्यमूक पर्वत के निकट पहुँच गये। वहाँ मन्त्रियों के सहित सुग्रीव रहते थे। सो अतुल बल की सीमा को आते देखकर :

व्याख्या : शवरी के आश्रम से चले थे। तब कहा गया था : चले राम त्यागा वन सोऊ। तत्पश्चात् शवरी के कथनानुसार पम्पासर गये। यथा : पपासरहि जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई। वहाँ ठहर गये थे। अब फिर आगे चले। अत: कहते हैं : आगे चले बहुरि : रघुराया हैं। नीति के अनुसार कार्य करेंगे। सुहृत्तम चाहे साधन और वित्त से हीन हो पर बुद्धिमान् हो तो शीघ्र ही कार्य साधन करता है : असाधना वित्तहीना बुद्धिमन्तः सुहृत्तमाः। साधयन्त्याशु कार्याणि काककूर्ममृगाखुवत्। अत: बुद्धिमान् सुहृत्तम हनुमान् जी से मिले और उन्हीं के द्वारा सब कार्योंका साधन हुआ। पम्पासर के पास ही मातङ्ग ऋपि का आश्रम पर्वत पर था। ऋषिजी बड़े प्रगल्भ थे। अत: उन्हे ऋष्यमूक कहा जाता था। उन्ही के नाम से वह पर्वत प्रसिद्ध था। सो उसके इतना सन्निकट पहुँच गये कि पर्वत पर से सरकार का स्पष्ट दर्शन होने लगा।

ऋष्यमूक जाने का प्रयोजन कहते हैं कि वहाँ मन्त्री सहित सुग्रीव रहते थे। भाव यह कि षडङ्ग राज्य मे उन्हे एक अङ्ग मन्त्री बच गये थे। राज्य, कोप, सेना, दुर्ग, मित्र कुछ नही रह गया था। साधन हीन और वित्त हीन थे। परन्तु थे बुद्धिमान्। सब कुछ जाने पर भी मन्त्रियो को उन्होने हाथ से बाहर नही जाने दिया था। क्योंकि मन्त्री के बचे रहने से पुन: राज्य के लौट आने की आशा रहती है और इस बात पर भी ध्यान रखते थे कि उधर से कौन आता जाता है। सो उन्होने अतुल बल की सीमा राम लक्ष्मण को आते देखा। यद्यपि बल का चाक्षुप प्रत्यक्ष नहीं होता तथापि : तेज प्रताप रूप जहँ तहँ बल बूझिअ : जा० मं०। अत: परम बुद्धिमान् सुग्रीवजी तेज प्रताप रूप के देखने से जान गये कि ये तो अतुल बल की सीमा हैं।

---

१. यहाँ से ४५ वाँ : मारुति मिलन प्रसङ्ग प्रारम्भ होता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुग्रीव को चार मन्त्री थे। परन्तु उनकी बड़ी आस्था हनुमान्‌जी पर थी। क्योंकि कार्य सिद्धि हनुमान्‌जी से ही होती थी।

अति सभीत कह सुनु हनुमाना। पुरुष जुगल बल रूप निधाना॥
धरि बटु रूप देखु तैं जाई। कहेसु जानि जिअ सैन बुझाई॥२॥

अर्थ : अत्यन्त सभीत होकर कहा कि हनुमान्! सुनो। दोनों पुरुष बल और रूप के निधान हैं। ब्रह्मचारी का रूप धारण करके तुम जाकर देखो। उनका अभिप्राय जानकर मुझे इशारे से बतला देना।

व्याख्या : सुग्रीव वालिके भय से सभीत तो रहते ही थे। यथा : इहाँ साप बस आवत नाही। तदपि सभीत रहौ मन माही। इन अतुल बल सीव दोनों भाइयों को देखकर अब अत्यन्त सभीत हो गये। अपने मन्त्री हनुमान्‌जी से कहा कि ये दोनों पुरुष बल और रूप के निधान हैं। इनके पास तुम ब्रह्मचारी का वेष धारण करके जाओ और इनसे : संस्कृत में बातचीत करके इनके मनोगत भाव को जानकर हाथ के इशारे से मुझे आगाह कर दो : बतला दो। अर्थात् यदि उनसे कोई भय न हो तो मुझे हाथ के इशारे से आश्वासन दे देना। किसी प्रकार का आश्वासन न पाने पर मैं समझ लूँगा कि इनसे भय है। ब्रह्मचारी के भेष मे जाकर मिलने से वे तुम्हें मेरा सखा न समझेंगे। क्योंकि नर वानर का कोई साथ नही है। यथा : नर वानरहिं संग कहु कैसे। और अपने हृद्‌गत भावों को न छिपावेंगे। यथा : अध्यात्मे : ताभ्यां सम्भाषणं कृत्वा जानीहि हृदयं तयोः। विनयावनतो भूत्वा एवं जानीहि निश्चयम्। यदि तौ दुष्टहृदयौ संज्ञां कुरु कराग्रतः। अर्थ : उन दोनों से बातचीत करके उनके हृदय को जानो। विनय से अवनत होकर उनके निश्चय को जानो। यदि उनका हृदय दुष्ट हो तो हाथ के अग्रभाग से इशारा कर देना।

पठए बालि होहिं मन मैला। भागौं तुरत तजौं यह सैला॥
बिप्ररूप धरि कपि तहँ गयऊ। माथ नाइ पूछत अस भयऊ॥३॥

अर्थ : यदि मनमलीन वालि के भेजे हों अथवा वालि के भेजे हुए ये मन के मैले हों तो मैं तुरन्त भागूँ और इस पहाड़ को छोड़ दूँ। विप्र का रूप धारणकर कपि वहाँ गये और सिर नवाकर ऐसा पूछने लगे।

व्याख्या : वालि का मन मैला है। वह मेरे वध के लिए कितने वानर भेज चुका। जो मेरे हाथ से मारे गये। कौन कहता है कि ये दोनों अतुल बलसीव उसके भेजे हुए नही है। यदि उसके भेजे हुए होगे तो इनका भी मन मैला होगा। मेरे वध के लिए ही आये होंगे। बातचीत से पता लग जायगा। वे मेरी खोज में होंगे तो तुम्हे ब्रह्मचारी ब्राह्मण समझकर अत्यन्त छिपाव न करेंगे। यदि उनके हृदय में दुर्भावना होगी तो मै तुरन्त भाग जाऊँगा। ये बड़े पराक्रमी मालूम होते हैं। इनसे मैं नही बच सकता। ये धनुर्धारी हैं। इनका सामना पड़ जाने पर भाग करके भी प्राण बचाना अशक्य है। अतः तुरन्त भागूँगा और यही पर्वत एकमात्र शरण है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


यथा : इहाँ स्राप बस आवत नाही। सो इसका भी परित्याग करूँगा जिससे उनके तीर का निशाना न बनना पडे।

सुग्रीव तथा हनुमान् आदि उनके सचिव सब वानर थे। इसलिए हनुमान्‌जी के लिए यहाँ कपि शब्द का प्रयोग हुआ है। यद्यपि हनुमान्‌जी कपि थे। पर वेदपाठी ब्राह्मण यथा वेदपाठो भवेद्विप्र. के रूप में रामजी तथा लक्ष्मणजी के पास गये। बन्दर की ललान बडी बडी होती है। तुरन्त लख गये कि मैं ही नही रूप बदले हुए हूँ। ये लोग भी रूप बदले हुए हैं। निश्चय ये सूर्य से तेजस्वी कोई बडे देवता हैं। इसलिए पहिले सिर नवाया। तत्पश्चात् इस भाँति पूछने लगे। सिर नवाकर पूछने का दूसरा भाव यह है कि मैं पूज्य बुद्धि से पूछता हूँ। हनुमान्‌जी संस्कृत मे बोले। जिससे राम लक्ष्मण समझ सकें। उनसे किष्किन्धा की भाषा समझने की आशा नही थी।

हनुमान्‌जी विश्वविद्याग्रणी, सामगाताग्रणी हैं। अत. जब रूप बदलते हैं तब ब्राह्मण का ही रूप धारण करते हैं। रामजी से विप्ररूप से मिले। विभीषण से भी विप्ररूप मे ही मिले। यथा ' विप्र रूप धरि बचन सुनाये। भरतजी से भी विप्र रूप से ही मिले। यथा : बिप्र रूप धरि पवनसुत धाइ गये जनुपोत।

**को तुम स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा॥**
**कठिन भूमि कोमल पदगामी। कवन हेतु बिचरहु बन स्वामी॥४॥**

अर्थ : साँवरे और गोरे शरीरवाले वीर! तुम कौन हो। क्षत्रिय रूप से वन मे विचरण कर रहे हो। भूमि कठिन है और तुम कोमल चरण से चलनेवाले हो। हे स्वामिन्! किस कारण से वन मे घूमते हो।

व्याख्या : धनुर्धारी देखकर बीर सम्बोधन कर रहे हैं और कुन्देन्दीवर सुन्दर देखकर स्यामल गौर सम्बोधन कर रहे हैं और परिचय पूछते हैं : तुम कौन हो? रूप तुम्हारा क्षत्रिय का सा है। पर तुम मनुष्य नही हो कोई देवता हो। यहाँ की भूमि बडी कठोर है और तुम्हारे चरण बडे कोमल हैं। बिना यान या पादत्राण के किसी भाँति यात्रा करने योग्य नही हैं और वानप्रस्थ भी नही हो। फिर तुम्हारे वन मे विचरने का कोई कारण नही मालूम होता : इस भाँति वन मे विचरण का प्रयोजन पूछते हैं। अथवा इस भाँति बिना पादत्राण के विचरण करनेवाले का पद भी कठोर हो जाना चाहिए। पर तुम्हारे चरण कोमल ही बने है। यह अलौकिक गुण मनुष्य मे नही हो सकता। अत: देवबुद्धि से : स्वामिन् सम्बोधन करते हैं। बिना पादत्राण के चलने से तुम्हे शिकारी भी नही कह सकते हैं। अत: तुम्हारे वन विचरण का कोई भी प्रयोजन नही मालूम होता। अथवा लक्षण से तुम स्वामी मालूम होते हो। यथा : राज लषन सब अंग तुम्हारे। देखि सोचु अति हृदय हमारे। मारग चलहु पयादेहि पाएँ। ज्योतिष झूठ हमारेहि भाएँ। और इस भाँति वन मे घूमते हो इसलिए पूछता हूँ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मृदुल मनोहर सुन्दर गाता। सहत दुसह बन आतप बाता॥
की तुम्ह तीनि देव मँह कोऊ। नर नारायन की तुम्ह दोऊ॥५॥

दो. जग कारन तारन भव, भंजन धरनी भार।
की तुम्ह अखिल भुवनपति, लीन्ह मनुज अवतार॥१॥

अर्थ : मन को हरण करनेवाला आपका सुन्दर शरीर है और वन में दुःसह धूप और लू सहन कर रहे हो। क्या तुम त्रिदेवों मे से कोई हो या तुम दोनों नरनारायण हो या संसार के कारण भवसागर के पार उतारनेवाले पृथ्वी का भार उतारनेवाले अखिल ब्रह्माण्ड के नायक हो। मनुष्य का अवतार धारण किये हो।

व्याख्या : पहिले चरण पर ध्यान गया : जिन चरणों का ध्यान करते थे वैसे ही चरण देखकर प्रश्न किया। अब मृदुल मनोहर सुन्दर शरीर देखकर तद्विषयक प्रश्न करते हैं। ऐसा शरीर वन की भयानक लू और धूप सहने के योग्य नही है। अथवा ऐसी कड़ी धूप और लू सहने पर भी शरीर के सुकुमारतादि गुण बने हैं। यह आश्चर्य की बात है। इसका कारण जानने के लिए प्रश्न कर रहे हैं। कौन सा ऐसा प्रयोजन आपड़ा है कि आप वन में ग्रीष्म ऋतु की भयानक लू और धूप सहन करते हुए भी बिना छाता जूता के इस निर्जन वन में घूम रहे हैं ?

अब हनुमान्जी यह भी बतला रहे हैं कि सरकार को देखकर उनके मन में कौन सी भावनाएँ उठ रही हैं। वे पूछते हैं कि क्या आप तीनो देवों में से कोई हैं ? भाव यह कि आप सामान्य देवता भी नही हो या तो विष्णु शिव या विष्णु और ब्रह्मा हो। श्यामल गौर वर्णों के देखने से यह अनुमान उठ रहा है। नही तो तुम दोनो नर नारायण हो। अनुमान में बराबर सन्निकट चले आ रहे हैं। पहिले तीन में से दो का अनुमान किया। अब दो का ही अनुमान करते हैं। चुप देखकर तीसरा अनुमान करते है।

या अखिल भुवनेश्वर संसार के बीज हो। भक्तानुग्रह के लिए संसार के तारण और धरणी के भार के भञ्जन के लिए मनुष्य का अवतार धारण किये हो। अथवा जिस जिस कल्प मे जिसका जिसका रामावतार हुआ था उस उस कल्प में उस उस कल्प के हनुमान् ने अपने तर्क से उन्हें पहिचाना। जिस कल्प में जय विजय रावण कुम्भकर्ण हुए थे उस कल्प मे वैकुण्ठनाथ का रामावतार हुआ था। अतः उस कल्प के हनुमान्जी पूछते हैं : की तुम तीन देव महँ कोऊ। और जिस कल्प में जलन्धर रावण हुआ था तथा जिस कल्प में दोनो रुद्रगण रावण कुम्भकर्ण हुए थे और क्षीरशायी का रामावतार हुआ था। उन दोनों कल्पो में जो हनुमान् हुए थे उन्होंने प्रश्न किया : नर नारायण की तुम दोऊ। तथा जिस कल्प में भानु प्रताप और अरिमर्दन रावण कुम्भकर्ण हुए थे और स्वयम्भू ब्रह्म का रामावतार

१. यह सन्देहालङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हुआ था उस कल्प के हनुमान्‌जी ने पूछा : की तुम अखिल भुवन पति लीन्ह मनुज अवतार।

कोसलेस दसरथ के जाए। हम पितु बचन मानि बन आए॥
नाम राम लछिमन दोउ भाई। सग नारि सुकुमारि सुहाई॥१॥

अर्थ : हम कोसल के राजा दसरथ के पुत्र हैं। हम पिता का वचन मानकर वन मे आये हैं। राम और लक्ष्मण नाम के दोनो भाई हैं। सङ्ग मे सुन्दर सुकुमारी स्त्री थी।

व्याख्या : को तुम स्यामल गौर सरीरा। छत्री रूप फिरहु बन बीरा। इस प्रथम प्रश्न का उत्तर देते है। अपना पूरा परिचय अपना नाम, पिता का नाम, जाति और निवासस्थान कहकर दिया जाता है। सो : कोसलेस दसरथ के जाए कहकर पिता का नाम, जाति और निवासस्थान कहा। नाम राम लछिमन दोउ भाई : कहकर अपना नाम राम और भाई का नाम लक्ष्मण बतलाया। नाम बतलाने के क्रम से अपना ज्येष्ठ होना और लक्ष्मणजी का कनिष्ठ होना कहा। साथ ही साथ घूमने का कारण कहते है कि हम दोनो भाई है। बन मे आने का प्रयोजन कहते हैं : हम पितु बचन मानि बन आए। अब : कठिन भूमि कोमल पद गामी। कौन हेतु बिचरहु बन स्वामी। मृदुल मनोहर सुदर गाता। सहत दुसह बन आतप बाता का उत्तर देते हैं कि हम दो नही तीन थे। मेरे सङ्ग मे एक सुन्दर सुकुमारी स्त्री थी। यथा : सग नारि सुकुमारि सुहाई। हम तीनो वन मे आये थे। इससे अपना सस्त्रीक होना कहा। तुम्हे हम सुकुमार सोहाये मालूम पडते हैं। सुहाई और सुन्दरी तो वह थी।

इहाँ हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहि हम खोजत तेही॥
आपन चरित कहा हम गाई। कहहु बिप्र निज कथा बुझाई॥२॥

अर्थ : यहाँ निशिचर ने वैदेही को हरण कर लिया। हे विप्र ! हम उसी को खोजते फिरते हैं। अपनी कथा तो मैंने कह सुनायी। अब अपनी कथा समझा कर कहिये।

व्याख्या : इहाँ अर्थात् वनमे। कोसल देश की गिनती तो अब वहाँ मे है। क्योकि उसे छोडकर वन मे आये हैं। सग मे सुकुमारी नारी थी इस कहने मे ही इस प्रश्न का बीज है कि वह क्या हुई ? इस पर कहते हैं कि उसे निशिचर ने हरण किया। नाम पता नही जानते। इतना ही जानते हैं कि दक्षिण की ओर ले गया। यथा : लै दच्छिण दिसि गयउ गोसाईं। वह भी राजकन्या थी। राजा विदेह की पुत्री थी। उसीकी खोज मे हम आतप वात की परवाह नही कर रहे हैं। आप विप्र हैं। जानते ही हैं कि विवाह के समय प्रतिज्ञा की जाती है कि धर्म मे, अर्थ मे, काम मे इसी के साथ वर्तेंगे सो त्रिवर्ग की हानि हो रही है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



श्री रामजी कहते हैं कि अपनी कथा तो मैंने कह सुनायी। अर्थात् पूरी कथा कह दी। कोसलेस दसरथ के जाये : कहकर बालकाण्ड की कथा कही। हम पितु वचन मानि बन आए। नाम राम लछिमन दोउ भाई। संग नारि सुकुमारि सोहाई। कहकर अयोध्या काण्ड की कथा कही। इहाँ हरी निसिचर बैदेही। बिप्र फिरहिं हम खोजत तेही : कहकर अरण्यकाण्ड की कथा कही। आधिभौतिक प्रश्न के उत्तर में आधिभौतिक कथा कह सुनायी। आधिदैविक विषयक प्रश्न : कि तुम तीन देव मह कोऊ आदि का उत्तर नही दिया। क्योंकि पूर्व जन्म की कथा परिचय के उपयोगी नहीं है। अथवा प्राकृत राजा की भाँति अपना परिचय देना ही इष्ट था। यथा : नर तन धरेहु संत सुरकाजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा। तुम जो कहहु करहु सब साँचा। जस काछा तस चाहिअ नाचा। जो वेष धारण किया है उसके विरुद्ध पड़ता। इसलिए अन्तिम प्रश्न का उत्तर नही दिया। अब कहते है कि हमारा परिचय पूछा तो अपना भी कहो। जिस भाँति मैंने विस्तार से अपना चरित्त कहा उसी भाँति विस्तार से अपना चरित सुनाओ। इस घोर निर्जन वन मे ब्रह्मचारी का ही कौन काम है ?

प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। सो सुख उमा जाइ नहि बरना॥[1]
पुलकित तन मुख आव न बचना। देखत रुचिर बेष कै रचना॥३॥

अर्थ : प्रभु को पहिचानकर चरण पकड़कर पड़ गये। हे उमा ! वह सुख वर्णन नहीं किया जा सकता। शरीर पुलकित हो गया। मुख से वचन नही निकलता था। सुन्दर वेष की रचना देखते थे।

व्याख्या : जो रामजी ने परिचय दिया वह आकाश वाणी से मिल गया। यथा : ते दसरथ कौसल्या रूपा। कौसलपुरी प्रकट नर भूपा। तिन्हके गृह अवतरिहौ जाई। रघुकुलतिलक सो चारिउ भाई। नारद बचन सत्य सब करिहौ। परम सक्ति समेत अवतरिहौ। शक्ति साथ नही थी। इसीसे कुछ सन्देह था। अब पता चल गया : इहाँ हरी निसिचर बैदेही। अतः पहिचान में सन्देह नहीं रह गया। यहाँ ये लोग सरकार की बाट जोह रहे थे। यथा : गिरितरु नख आयुध सब बीरा। हरि मारग चितवहिं मति धीरा। हनुमान्‌जी को तो अवतार हो जाने का भी पता था। प्रभु के जन्म और प्रत्येक उत्सवों की कथा नारदजी जा जाकर सुना आते थे। यथा : राम जनम सुभकाज सब कहत देव रिषिआइ। सुनि सुनि मन हनुमान के प्रेम उमँग न अमाइ। रा. प्र.। परिचय पाते ही पहिचान लिया कि ये ही प्रभु है। हनुमान्‌जी परम भक्त है। चरण पकडकर साष्टाङ्ग दण्डवत् किया। भक्त भगवन्त के मिलने का सुख शिवजी कहते हैं कि हे उमा वर्णनातीत है। यथा : राम लखन हनुमान् मन दुहुदिसि

१. न वै जनो जातु कथञ्चनाव्रजेन्मुकुन्दसेव्यन्यवदङ्ग संसृतिम्।
स्मरन्मुकुन्दाङ्घ्र्युपगूहनं पुनर्विहातुमिच्छेन्न रस ग्रहो यतः॥
श्रीमद्भागवत

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



परम उछाहु। मिला सुसाहिब सेवकहि प्रभुहि सुसेवक लाहु। रा० प्र०। मन से उछाह कहते हैं। यथा सो सुख उमा जाइ नहि वरना। तन मे उछाह कहते हैं प्रभु पहिचानि परेउ गहि चरना। देखत रुचिर वेषकै रचना। वाणी से उछाह। यथा मुख आव न वचना। हनुमान्‌जी को सात्त्विक भाव हो गया।

पुनि धीरज धरि अस्तुति कीन्ही। हरष हृदय निज नाथहि चीन्ही ॥
मोर न्याउ मै पूछा साईं। तुम्ह पूछहु कस नर की नाईं ॥४॥

अर्थ फिर धैर्य धारण करके स्तुति की। अपने स्वामी को पहिचानकर हृदय मे हर्ष हो रहा था। कहने लगे मैने जो आप से पूछा सो मेरा पूछना उचित था। आप मनुष्य की भाँति क्यो पूछ रहे हैं ?

व्याख्या हनुमान्‌जी पण्डित हैं। समझते हैं कि दर्शन होते ही स्तुति करना चाहिए। अति प्रेम से धैर्य छूट गया था। मुख से वचन नही निकलता था। सो धैर्य धारण करके स्तुति की। प्राकृत मे वर्ण विशेष का आगम हो जाता है। सो यहाँ अकार का आगम होकर स्तुति का अस्तुति रूप हो गया।

प्रमी के मिलते ही उलाहना शुरू हो जाता है। जवाबतलब होता है। सो आरम्भ हो गया। प्रभु ने पूछा था कहहु बिप्र निज कथा बुझाई। सो कथा नही कहते। उलाहना देते हैं कि मैने आपसे परिचय पूछा था। उसी बल से आप मुझ से पूछते है। पर मेरा पूछना तो न्याय था। मैं जीव हूँ। अल्पज्ञ हूँ। आपको नही पहिचान सका। इसलिए पूछा। परन्तु आपका पूछना तो न्याय नही है। आप तो सर्वज्ञ हैं। आप मनुष्य की भाँति कैसे पूछते हैं। अपना पहिचान लेना व्यक्त करते हैं कि मैं नरके धोखे मे अब नही हूँ। सरकार का पूछना न्याय नही है। मेरे साथ अन्याय हुआ है।

तव मायावस फिरौं भुलाना। ताते मै नहि प्रभु पहिचाना ॥

दो० एक मै मद मोह बस, कुटिल हृदय अग्यान।
पुनि प्रभु मोहि बिसारेउ, दीन बन्धु भगवान ॥२॥

अर्थ मैं तो आपकी माया के वश मे भूला फिरता हूँ। इसलिए मैंने प्रभु को नही पहिचाना। एक तो मैं मन्द हूँ। मोह के वश म हूँ। मेरा हृदय कुटिल है। मैं अज्ञानी हूँ। तिस पर हे दीनबन्धु भगवान् ! आपने मुझे भुला दिया।

व्याख्या मेरे भूलने का यथेष्ट कारण है। मैं जीव हूँ। अल्पज्ञ हूँ। माया के वश मे हूँ। इसलिए भूला फिरता हूँ। भूल यहाँ तक बढ गयी कि स्वामी को नही पहिचान सका। जान बूझकर मैंने पूछा हो यह बात नही है। पर आप तो ईश्वर हैं। सर्वज्ञ है। माया के नाथ हैं। यथा परबस जीव स्वबस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता। तथा देखी माया सब बिधि गाढी। अति सभीत जोरे कर ठाढी। देखा जीव नचावै जाही। आप तो अपने बंदाजीवा को पहिचानते हैं। आपने जान बूझकर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मुझे भुलाया। यह ठीक है कि मैं भूला फिरता हूँ। पर आप तो भक्त को खोजते फिरते हैं ? आपके लिए भूलने का कोई कारण नही है।

मोह वश माया वश होना एक ही बात है। मायावश होने से मै मन्द हूँ। मेरा हृदय कुटिल है। वेष बदल के प्रभुका भेद लेने आया हूँ। मुझे ज्ञान नही है। अन जानत की चूक क्षमा की जाती है। सो मेरी चूक क्षमा नही की गयी। मेरा उद्धार तो केवल स्वामी की कृपा पर निर्भर है। सो प्रभु ने दीनबन्धु और भगवान् होकर मुझे जान बूझकर भुला दिया। क्योकि पूर्ण को विस्मृति नही होती। अपूर्ण को तत्परता के तारतम्यानुसार अविस्मृति होती है।

जदपि नाथ बहु अवगुन मोरे। सेवक प्रभुहि परै जनि भोरे॥
नाथ जीव तव माया मोहा। सो निस्तरै तुम्हारेहि छोहा॥१॥

अर्थ : हे नाथ ! यद्यपि मुझ मे बहुत से अवगुण है। फिर भी सेवक को प्रभु भूल नही जाते। हे नाथ ! जीव तो आपकी माया से मोहित हुआ पडा है। उसका निस्तार तो आपके छोह से ही हो सकता है।

व्याख्या : यद्यपि : संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि वारि विकार। सन्त लोग गुण का ही ग्रहण करते हैं और विकार का त्याग करते हैं। और मेरे मे विकार बाहुल्य है : यहां विकार शब्द अवगुण के अर्थ मे आया है। अतः मेरे बिसारे जाने के लिए पर्याप्त कारण है। पर मैं सेवक हूँ। मुझे दूसरा आसरा भरोसा नही है। अतः सरकार मुझे न भूलें।

आप के भूलने से मेरा निस्तार नही है। जीव तो आपकी माया से मोहित है। उसका सामर्थ्य नही है कि वह अपने बल द्वारा माया के पञ्जे से निकल सके : जो ज्ञानिन्हकर चित अपहरई। बरिआई बिमोह बस करई। उसका निस्तार तो आपके छोह से ही सम्भव है : यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं-स्वाम्। वेद कहता है कि जिसे यह वरण करता है उसी को प्राप्त होता है। उसे हो विश्वात्मा अपने रूप का दर्शन देता है। अवगुण बाहुल्य का भी मै दोषी नही। अतिसय प्रबल देव तव माया। छुटै राम करहु जौ दाया। अपने बल से माया का हटाना सर्वथा असाध्य है : दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया : भ० गी०। मेरी दैवी गुणमयी माया उल्लघन नही की जा सकती।

तापर मैं रघुबीर दोहाई। जानहुँ नहि कछु भजन उपाई॥
सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहइ असोच बनै प्रभु पोसें॥२॥

अर्थ : तिस पर मैं रघुवीर की दोहाई भजन का उपाय कुछ भी नही जानता। सेवक स्वामी के भरोसे उसी भाँति रहता है जैसे बच्चा माँ के भरोसे बेफिक्र रहता है। प्रभु को सेवक का पोषण करते ही बनता है।

व्याख्या : हनुमान्‌जी अपनी विशेषता कहते हैं कि मैं अपने को सेवक

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मानता मात्र हूँ। पर सेवा का उपाय कुछ भी नही जानता कि सरकार को कैसे और कहाँ पावें और किस प्रकार से सेवा करें। यह मैं विनय प्रदर्शन के लिए नहीं कह रहा हूँ। शपथ खाकर सत्य कहता हूँ। रघुबीर से बढ़कर मुझे कौन है ! उनकी शपथ करता हूँ। जिन्होंने सेवा धर्म का दर्शन पाया है वे कहते हैं : सब ते सेवक धर्म कठोरा। मुझे तो सेवा धर्म का दर्शन भी नहीं हुआ। मैं क्या जानूँ कि सेवा कैसे की जाती है ?

मैं तो यही जानता हूँ कि सेवक बच्चा है। वह स्वामी रूप माँ के भरोसे बेपरवाह होकर घूमता है। उसे अपनी फिक्र नही। यदि माँ पोषण करे तभी बात बन सकती है। और माँ ख्याल करती ही है। यथा : मोरे प्रौढ़ तनय समझानी। बालक सुत सम दास अमानी। गह सिसु बच्छ अनल अहि धाई। तहँ राखै जननी अरगाई। भाव यह कि मुझे प्रभु को छोड़कर दूसरा भरोसा नहीं है। इतना ही सेवक सेव्य भाव मेरे में है। श्री गोस्वामीजी कहते हैं :

है तुलसी के एक गुन अवगुन निधि कह लोग।
भलो भरोसो रावरो राम रीझिबे जोग॥

यह हनुमत् कृत स्तुति चित्रा नक्षत्र है। हनुमान्जी की मति रूप सीपी में स्वाती सरस्वती की कृपा से उत्पन्न हुई है। अतः इसे मोती माना है। इसमें एक तारा : प्रभु बार बार चमक रहा है। फल श्रुति है : अतिथि पूज्य प्रियतम पुरारिके। क्योंकि हनुमान् रूपी रुद्र को अतिथि रूप से भगवत्प्राप्ति हुई है।

अस कहि परेउ चरन अकुलाई। निज तनु प्रगटि प्रीति उरछाई॥
तब रघुपति उठाइ उर लावा। निज लोचन जल सीचि जुड़ावा॥३॥

अर्थ : ऐसा कहकर चरणों में आकुल होकर पड़ गये। प्रीति हृदय मे छा गयी। अपना शरीर प्रकटकर दिया। तब रघुपति ने उठाकर हृदय से लगा लिया और अपने नेत्रों के जल से सीचकर शीतल किया।

व्याख्या : प्रेमाकुल होकर चरणों में गिरे। अत्यन्त प्रेम के कारण दुराव जाता रहा। यथा : अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ। प्रीति हृदय मे छा गयी। कपट के लिए स्थान नही रह गया। ब्राह्मण का शरीर कपटमय था। सो अन्तर्धान हो गया। फिर बन्दर के बन्दर हो गये। दुराव छूटते ही प्रभु ने उठाकर हृदय से लगा लिया। रामहि केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननिहारा। कपट सहित होने से ब्राह्मण शरीर को हृदय मे नही लगाया और निश्छल होने से वानर शरीर को हृदय से लगाया। जीव तो ईश्वर को प्रिय है ही। यथा : सब मम प्रिय सब मम उपजाये। तथा : ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू। दुराव ही जीव को ईश्वर से अलग किये हुए है। यथा : कपट करौं अन्तर्यामिहु ते अघ व्यापकहि दुरावौं। दुराव देखकर ही प्रभु प्रेम को रोके हुए थे। सो दुराव के हटते ही उमड पडा। श्रीरामजी ने उठा लिया हृदय से लगाया और प्रभु के अश्रुपात से

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हनुमान्‌जी भीग उठे। आकुलता से सन्तप्त हो रहे थे। सो प्रेमपात्र के प्रेमाश्रु से शीतल हुए। भाव यह कि सरकार की हम पर इतनी प्रीति है। यह जानकर हृद्‌गत सन्ताप जाता रहा।

सुनु कपि जिय मानसि जनि ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना ॥
समदरसी मोहि कह सब कोऊ। सेवकप्रिय अनन्य गति सोऊ ॥४॥

अर्थ : हे कपि! सुनो। तुम मन मे न्यूनता न मानता। तुम मुझे लक्ष्मण से दूने प्रिय हो। मुझे सब लोग समदर्शी कहते हैं। पर : मै सेवक प्रिय हूँ। क्योंकि : उसे भी अन्य गति नही है।

व्याख्या : अब विप्र नही कहते कपि कहते हैं। विप्र सम्बोधन के साथ प्रेमाभाव था। बेगाना बने हुए प्रश्न करते थे कि अपना परिचय दो. कहहु बिप्र निज कथा बुझाई। कपि सम्बोधन के साथ प्यार है। अब परिचय की आवश्यकता नही है। ईश्वर हैं। सर्वज्ञ हैं। सब जानते ही हैं। अब रामजी न इनसे परिचय पूछेंगे और न ये परिचय देंगे। प्रभु हनुमान्‌जी की ग्लानि देखकर आश्वासन देते हैं कि मैंने विस्मरण कर दिया। इस बात की हीनता न मानना। तुम उपेक्षित नही हो। मुझे अत्यन्त प्रिय हो। जो अपने को उपेक्षित मान रहा है उसे लक्ष्मण से दूना न कहें तो अपने मे जो प्यार की मात्रा है वह प्रकाशित नही होती। हनुमान् जी को इस वचन से जो सान्त्वना मिली उसे समझते हुए ही हनुमान्‌जी ने सीताजी को : जनि जननी मानहु जिअ ऊना। तुम्हते प्रेमु राम के दूना। कहकर सान्त्वना दी।

रामजी कहते है कि सबके लिए मैं तो समदर्शी हूँ। समान व्यवहार करता हूँ। पर सेवक के लिए नही। वह प्रिय है। उसके लिए मुझे विषम व्यवहार करना पड़ता है। यथा · यद्यपि सम नहि राग न रोषू। गहहिं न पापु पुन्य गुन दोषू। तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा। क्योंकि उसे दूसरी गति नही है। तुम भी अनन्य गतिक हो। अत परम प्रिय हो। ऐसे भक्तो की मैं सदा रखवारी करता हूँ। यथा : करउँ सदा तिन्ह कै रखवारी। जिमि बालकहिं राख महतारी।

दो. सो अनन्य जाके असि, मति न टरइ हनुमंत।
मै सेवक सचराचर, रूप स्वामि भगवत ॥३॥

अर्थ : हे हनुमान्‌जी! वही अनन्य है जिसकी ऐसी बुद्धि कभी टलती नही कि मैं तो सेवक हूँ। और यह चराचर रूप स्वामी भगवान् का ही रूप है।

व्याख्या : हनुमान्‌जी ने कहा था कि मुझे भजन का उपाय नही मालूम : इसलिए उन्हे भजन का उपाय बतलाते हैं कि चराचरात्मक सब कुछ मेरा शरीर है। अतः चराचरात्मक स्वामी भगवान् का भजन करना ही अनन्य भक्ति है। वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः। यह सब कुछ वासुदेव हैं ऐसा माननेवाले

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


महात्मा अत्यन्त दुर्लभ है। यही अनन्य भक्त की विशेषता है कि चराचरात्मक जगत् को तो भगवान् का रूप मानें और अपने को सेवक मानें। यह भावना किसी भाँति टलने न पावे : अस अभिमान जाइ जनि मोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे। चराचरात्मक जगत् को भगवद्रूप मानता हुआ अपने को भी वही न मान ले। अपने को सेवक माने। इस बुद्धि के टल जाने की बड़ी सम्भावना है। अतः सावधान करते हैं। ऐसे उपासक [1]अनन्य कहलाते हैं।

**देखि पवन सुत पति अनुकूला। हृदय हरष बीती सब सूला॥**
**नाथ सैल पर कपिपति रहई। सो सुग्रीव दास तव अहई॥१॥**

अर्थ : पवनसुत ने देखा कि स्वामी : अपने अनुकूल हैं तो उनके हृदय में हर्ष हुआ। और सब शूल जाता रहा। बोले हे नाथ! पर्वत पर कपिपति सुग्रीव रहता है। वह आपका दास है।

व्याख्या : कवि यथावसर कहते कहते कवि समाज का परिचय भी देते जा रहे हैं। पहिले बतलाया कि ऋष्यमूक पर्वत पर सुग्रीव मन्त्रियों के सहित रहते हैं। उनमें से जिस मन्त्रि पर उन्हे बडी आस्था है उनका नाम हनुमान् है। यथा : अति सभीत कह सुनु हनुमाना। ये लोग सब कपि जाति के थे। यथा : सुनु कपि जिय मानेसि जनि ऊना। अब हनुमान्जी के पिता का नाम बतलाते है। देखि पवन सुत पति अनुकूला। पवन सुत कहकर हनुमान्जी का दिव्य जन्म तथा महाबली होना भी द्योतित किया। पति अनुकूला : कहकर इनकी सेवक सेव्य भाव से रामजी की उपासना भी कहा। रामजी के ऐसा पूछने से : बिप्र कहहु निज कथा बुझाई। हनुमान्जी को बड़ा दुःख हुआ था कि स्वामी मेरे अनुकूल नही हैं। उनकी अनुकूलता देखने से सब दुःख जाता रहा।

उर लावा : से कर्मणा अनुकूलता। निज लोचन जल सींचि जुडावा : से मनसा अनुकूलता और जनि जिय मानेसि ऊना : से वचसा अनुकूलता देखा। तब हृदय की तीव्र वेदनाएँ जाती रही और बड़ा हर्ष हुआ। यथा : तुम्ह कृपालु जापर अनुकूला। ताहि न व्याप त्रिविध भव सूला। हनुमान्जी को अपनी मन्दता अपने कपट और अपने अज्ञान तथा सरकार द्वारा विस्मृति किये जाने का बडा शूल हुआ था। यथा : एक मंद मैं मोह बस कुटिल हृदय अज्ञान। पुनि प्रभु मोहि बिसारेहु दीन बंधु भगवान्।

---

१ खं वायुमग्निं सलिलं महीञ्च ज्योतींषि सत्त्वानि दिशो द्रुमादीन्।
सरित्समुद्रांश्च हरेः शरीरं यत् किञ्चभूतं प्रणमेदनन्यः॥
—श्रीमद्भा०

अर्थ आकाश वायु अग्नि, जल, पृथ्वी, तारागण, जीव, दिशायें, वृक्ष आदि नदी समुद्र सब हरि के शरीर हैं। अनन्य इन्हे प्रणाम करे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अब प्रभु के पूछे हुए प्रश्न : बिप्र कहहु निज कथा बुझाई का उत्तर देते हैं। सैल पर : कहकर अपना उस समय का निवासस्थान बतलाया। कपि पति रहई कहकर अपने को उन्हीं कपि पति का दूत होना बतलाया। सुग्रीव कह उनका नाम बतलाया। दास तव अहई कहकर उनका सरकारी उपासक होना बतलाया। फलत: अपना परिचय दास के सेवक रूप से दिया।

तेहि सन नाथ मयत्री कीजे। दीन जानि तेहि अभय करीजे ॥
सो सीता कर खोज कराइहि। जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि ॥२॥

अर्थ : हे नाथ! उससे मैत्री कीजिये। उसे दीन जानकर अभय करिये। वह सीता की खोज करावेंगे और सर्वत्र करोड़ों बन्दरों को भेजेंगे।

व्याख्या : वह कपिपति समान शील व्यसन हैं। कपिपति होने पर राज च्युत है। स्त्री विरही है। शैल वास कर रहा है। पर धर्मज्ञ है और कृतज्ञ है। नीतिसम्मत है : समानशीलव्यसनेषु मैत्री। यहां पर हनुमान्जी उत्तम दूत का कार्य कर रहे हैं। जिससे सुग्रीव को इतना भय है कि रूप देखने मात्र से शैल छोड़कर भागना चाहते हैं। उनसे मैत्री कराने का प्रयत्न कर रहे हैं। कहते हैं कि इस समय वह दीनावस्था में है और भयभीत है। उसे आप अभय करने में समर्थ हैं। यदि आप उसे अभय करेंगे तो वह आपके बड़े काम आयेगा। राक्षस आपकी पत्नी को हरण करके ले गया है। वह कौन राक्षस है। कहाँ ले गया है। इसका पता नहीं है। आप दोनों भाई कहाँ कहाँ खोजेंगे। जिस भाँति आप लोग खोज रहे है यह खोजने की विधि नही है। एक वन से दूसरे वन मे खोजते चले जाते हैं। वनो का बड़ा विस्तार है। उन्हो वनों का बड़ा भारी भाग बिना खोजा ही रह जाता है। यदि सुग्रीव का भय हट गया तो वह एक एक स्थान पर करोड़ों बन्दर भेजेगा। थोड़े ही समय मे सम्पूर्ण संसार छान डालेगा। जहाँ से होगा वहाँ से पता लगायेगा। स्त्री की खोज स्त्रियों में होनी चाहिए। सो बन्दरों से कहीं परदा भी नहीं होता। वे सर्वत्र जा जाकर पता ले सकते हैं। आप दोनों मित्र होकर परस्परोपकारक होगे। आप उसका उपकार पहिले कीजिये। उपकार का ही फल मित्रता है। रामजी ने विदेह राजकन्या का परिचय देते हुए उनका नाम भी बतला दिया था। अत: हनुमान्जी कहते है : सो सीता कर खोज कराइहि।

## ४६. सुग्रीव मिताई

एहि विधि सकल कथा समुझाई। लिये दुऔ जन पीठि चढ़ाई ॥
जब[1] सुग्रीव राम कहुँ देखा। अतिसय जन्म धन्य करि लेखा ॥३॥

अर्थ : इस विधि से सब कथा समझाकर दोनों व्यक्तियों को अपनी पीठ पर

१. यहाँ से ४६ वाँ प्रसङ्ग : सुग्रीव मिताई प्रारम्भ हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चढ़ा लिया। जब सुग्रीव ने रामजी को देखा तब अपने जन्म को अतिशय धन्य माना।

व्याख्या : समझाया कि सब बन्दरों ने सुग्रीव को राजा मान लिया है। परन्तु वालि के भय से सुग्रीव भागे भागे फिरते हैं। किसी की शक्ति नहीं कि सुग्रीव को शरण दे। यदि आपके द्वारा सुग्रीव का भय हट गया तो वानर मात्र पर उसकी आज्ञा चलेगी। इस समय वह स्वयं दीन और भयभीत हो रहा है। कुछ नहीं कर सकता। अभय होने पर वह सब कुछ कर सकता है इत्यादि। दोनों भाइयों ने समझ लिया कि बात ठीक है। शबरी ने पहिले ही कह रक्खा है : पंपासरहि जाहु रघुराई। तहँ होइहि सुग्रीव मिताई। सो सब कहिहि देव रघुबीरा। अत सुग्रीव की मित्रता इन लोगों को पहिले से ही इष्ट थी। इधर हनुमान्‌जी ने वही प्रस्ताव सामने रक्खा। सरकार ने उसे मान लिया। अब हनुमान्‌जी दोनों भाइयों को सुग्रीव के पास ले जाना चाहते हैं। पर्वत के ऊपर ले जाना है। इसलिए अपनी पीठ पर चढ़ा लिया। हनुमान्‌जी को उस कठिन भूमि में सरकार का कोमल पद से चलना बहुत अखरा। अब एक पद पृथ्वी पर चलने देना नहीं चाहते। अतः पीठ पर लेकर चले। यथा : हनूमान सम नहिं बड़भागी। नहिं कोउ रामचरन अनुरागी।

इधर सुग्रीव् के लिए यथेष्ट संकेत भी मिल गया कि जिसे तुम शत्रु समझते थे उससे परम कल्याण की आशा है। इनका आगमन बड़ा हितकारी होगा। इसीलिए पीठ पर चढाये लिये आता हूँ। संकेत बहुत स्पष्ट है। सुग्रीवजी समझ गये। दोनों भाइयों को देखकर जन्म को धन्य माना। परन्तु सन्निकट आने से जब बहुत स्पष्ट दर्शन होने लगा तो रामजी को अधिक गुणसागर देखकर अपने जन्म को अतिशय धन्य माना। इसी मूर्ति का तो ध्यान करते थे : पुरखा ते सेवक भये हर ते भये हनुमान्। सुग्रीवजी साक्षात् सूर्यनारायण के अवतार थे। सो अपने वानर जन्म को अतिशय धन्य माना। क्योंकि उसीके द्वारा भगवत् प्राप्ति सम्भव हुई। यथा : बिछुरे ससि रबि मन नयनहि ते पावत दुख बहु तेरो। भ्रमत श्रमित निसि दिवस गगन महँ तहँ रिपु राहु बडेरो। विनय पद ८७.

सादर मिलेउ नाइ पद माथा। भेंटेउ अनुज सहित रघुनाथा॥
कपि कर मन बिचार एहि रीती। करिहहिं बिधि मोसन ए प्रीती॥४॥

अर्थ : आदर के साथ चरणों में सिर नवाकर तब गले मिले और रघुनाथजी भी भाई के साथ उनसे मिले। अब सुग्रीवजी अपने मन में विचार कर रहे हैं कि हे विधि! क्या ये हमसे प्रीति करेंगे?

व्याख्या : हनुमान्‌जी ने कहा था : सो सुग्रीव दास तव अहई। उसी का साफल्य दिखाते हुए सुग्रीवजी का शिष्टाचार कहते हैं कि चरणों पर सिर रख दिया और मिले। अब रामजी की ओर का शिष्टाचार कहते हैं कि रामजी भाई के सहित

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मिले। भाव यह है कि आते ही उन्हे सखा का पद दिया। इसी भाँति विभीषण से मिलेंगे। यथा : अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी।

पहिले तो सुग्रीवजी को इनसे प्राण का भय हुआ। अब हनुमान्जी के संकेत से तथा मिलने के ढङ्ग से मैत्री की आशाएँ थी। मन में विचार करने लगे कि हम जाति के बन्दर और ये इतने महान् हैं। क्या मेरा इतना बड़ा भाग्य होगा कि ये मुझसे प्रीति करेंगे। मनुष्य बन्दरों से सदा बचते रहते हैं। उन्हें अपने पास नही आने देते। आगे चलकर सीताजी यही शङ्का हनुमान्जी से करेंगी : नर बानरहिं संग कहु कैसे ? अत: कर्म शुभाशुभ के देनेवाले ब्रह्मदेव को सम्बोधन करके मन से प्रश्न करते हैं।

दो. तब हनुमंत उभय दिसि, की सब कथा सुनाइ।
पावक साखी देइ करि, जोरी प्रीति दृढ़ाइ ॥४॥

अर्थ : तब हनुमान्जी ने दोनों ओर की सब कथा सुनाकर अग्नि साक्षिक मैत्री द्वारा दृढ प्रीति जोड़ दी।

व्याख्या : तत्पश्चात् हनुमान्जी ने दोनों ओर की कथा : बात को स्पष्ट करने के लिए जिसमें पीछे से कोई बात ऐसी न निकले जिससे किसी को धोखा हो कह सुनायी। सुग्रीवजी से कहा कि ये अयोध्या के राजा के पुत्र हैं। पिता की आज्ञा मानकर वन आये हैं। यहाँ इनकी स्त्री को कोई राक्षस हर ले गया। उसी को आप लोग ढूँढ रहे हैं : पता नहीं लगता और रामजी से कहा कि ये हम लोगों के राजा सुग्रीव हैं। इनके भाई ने इनका सर्वस्व तथा स्त्री हरण कर रक्खा है। आप सहाय होकर इनका राजपाट लौटवाइये। ये सीता का अन्वेषण करायेंगे और उनकी प्राप्ति मे सहायक होंगे। परन्तु इस कार्य मे एक दूसरे पर विश्वास करना होगा। कार्य का गौरव देखकर यह उचित मालूम होता है कि आप लोगो मे अग्नि साक्षिक मैत्री हो। किसी प्रकार से सहायता मे कोई त्रुटि न होने पावे। दोनो पक्ष से स्वीकृति मिलने पर अग्नि को साक्षी देकर हनुमान्जी ने मैत्री करा दी। समान शत्रु मित्रवाली मैत्री हुई। इसलिए : जोरी प्रीति दृढाइ कहा।

अग्निदेव कर्म के साक्षी हैं। सबकी गति जानते है। इस लोक और देवलोक मे व्यापार इन्ही के द्वारा चलता है : अग्निर्वै देवानामवमा विष्णुः। अग्नि ही देवताओं के रक्षक विष्णु रूप है। ये प्रत्यक्ष देव निरपराध की रक्षा तथा अपराधी को दण्ड देते हैं। यथा : तौ कृसानु सबकै गति जाना। मो कहँ होहु श्रीखण्ड समाना।

कीन्हि प्रीति कछु बीच न राखा। लछिमन राम चरित सब भाखा ॥
कह सुग्रीव नयन भरि बारी। मिलिहि नाथ मिथिलेस कुमारी ॥१॥

अर्थ : प्रीति किया कोई अन्तर न रक्खा। लक्ष्मण ने रामजी के सब चरित्र कह सुनाये। सुग्रीवजी ने आँखो मे आँसू भरकर कहा कि नाथ ! मिथिलेश की बेटी मिलेगी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : अग्नि साक्षिक मैत्री होने से दोनों पक्ष ने एक दूसरे में कोई भेद न रक्खा। तब लक्ष्मणजी ने सब रामचरित्र कह सुनाया। हनुमान्‌जी को पूरी जानकारी न थी। जितना जान पाये थे उतना कह दिया। पर ऐसी मैत्री मे यह उचित है कि एक दूसरे का रत्ती रत्ती हाल जाने। जिसमें कार्य साधन में कहीं चूक न हो। अतः लक्ष्मणजी ने सब रामचरित्र कह सुनाया। राज्याभिषेक के समय वनवास और उसमें भी स्त्री हरण। इस करुण कथा को सुनकर सुग्रीवजी के नेत्रो में जल आगया। मित्र के दुःख से सुग्रीवजी दुःखी हो गये। धैर्य बंधाते हुए बोले कि सीताजी मिलेंगी। पता पर पता चलता जा रहा है। यहाँ तक आप ठीक पते पर आये हैं। कुछ जटायुजी ने कहा और कुछ मुझे भी मालूम है। इससे निश्चय होता है कि जानकीजी मिलेगी।

[1]मंत्रिन्ह सहित इहाँ एक बारा। बैठ रहेउँ मै करत बिचारा॥
गगन पंथ देखी मै जाता। परबस परी बहुत बिलपाता॥२॥

अर्थ : मैं यहाँ एक बार मन्त्रियो के साथ बैठा कुछ विचार कर रहा था। तब मैंने : सीताजी को पराये वश मे पड़ी बड़ा भारी विलाप करती हुई आकाश मार्ग से जाते देखा।

व्याख्या : सुग्रीवजी कहते हैं कि आप इतने ठीक रास्ते से आये हैं कि ठीक इसी के ऊपर से सीताजी गयी हैं। एक बार मैं मन्त्रियों के साथ इसी स्थान पर बैठा कुछ विचार कर रहा था। हनुमान्, तार, नील और नल चारो थे। मेरी दृष्टि पड़ गयी। आकाश मार्ग से सीताजी बहुत बड़ा विलाप करती चली जाती थी। पराये वश मे पड़ी थी। भाव यह कि रावण का रथ बड़े ऊँचे से जा रहा था। पहाड़ के शिखर पर तो सुग्रीवजी थे ही। पर उनसे भी इतने ऊँचे पर जा रहा था कि इन्होने रावण को नहीं पहिचाना। इतना ही जान सके कि कोई स्त्री पराये वश पड़ी विलाप करती जा रही है।

राम राम हा राम पुकारी। हमहि देखि दीन्हेउ पट डारी॥
मागा राम तुरत तेहिं दीन्हा। पट उर लाइ सोच अति कीन्हा॥३॥

अर्थ : राम राम और हा राम। ऐसा पुकारकर हम लोगो को देखकर कपड़ा फेंका। रामजी ने मांगा। उन्होने तुरन्त लाकर दिया : रामजी ने पट को हृदय से लगाकर अत्यन्त सोच किया।

व्याख्या : अब वह स्त्री सीताजी ही थी। इस निश्चय के लिए कहते है। राम, राम हाय राम पुकारकर वस्त्र फेंका। तीन बार राम कहने का भाव यह कि राम को देना। दूसरी बार कहने का भाव यह कि मै राम की हूँ। तीसरी बार हाय

१. चार मन्त्री हनुमान, नील, नल, और तार।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



राम कहने का भाव यह कि मैं राम को चाहती हूँ। बलपूर्वक हरण की जा रही हूँ। इस भाँति राम, राम, हा राम, कहने मे जो कुछ कहना चाहती थी सो सब कह दिया। सुग्रीवजी कहते हैं कि उन्होने हम लोगो को देखा। हरण करनेवाले ने न हम लोगो को देखा और न पट डारते उन्ही को देखा। ऊपर का फेंका हुआ वस्त्र खण्ड ठीक लक्ष्य पर नही गिर सकता। अतः कपडा फाड़कर उसमे केयूर, कुण्डल और नूपुर बाँध कर फेंका। पर धर्मात्मा सुग्रीवजी ने उसे खोलकर भी न देखा कि उसमे क्या है? उसे न्यासभूत समझकर राम जब मिलें तो उन्हे देने के लिए रख लिया। इसीलिए पट दीन्हा कह रहे हैं।

रामजी ने तुरन्त माँगा। उत्सुकता बढी कि देखें वह पट सीताजी का ही है या नही। सुग्रीवजी ने उसे पर्वत की गुफा मे डाल रक्खा था। तुरन्त लाकर दिया। सरकार तुरन्त पहिचान गये। विरही का प्रेमास्पद की भाँति ही उसके वस्त्राभरण पर प्रेम होता है। उसे हृदय से लगा लिया और विलाप करने लगे। लक्ष्मणजी से कहते हैं लक्ष्मण! देखो ये केयूर, कुण्डल और नूपुर सीता के ही तो हैं। लक्ष्मणजी कहते हैं कि केयूर कुण्डल तो आप जानें मैं नही जानता। मैं तो नूपुर को पहिचानता हूँ। क्योकि नित्य चरणो की वन्दना करता था।

यथा : नाहं जानामि केयूरे नाहं जानामि कुण्डले।
नूपुरावेव जानामि नित्यं पादाभिवन्दनात्॥

कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। तजहु सोच मन आनहु धीरा॥
सब प्रकार करिहउँ सेवकाई। जेहि बिधि मिलहिं जानकी आई॥४॥

अर्थ : सुग्रीव ने कहा कि हे रघुवीर सुनो। सोच छोड़ो। मन मे धैर्य लाओ। मैं सब प्रकार से सेवकाई करूँगा और जिस विधि से जानकी आकर मिलें : सो सब करूँगा।

व्याख्या : सुग्रीवजी ने मित्र का कार्य आरम्भ कर दिया। आश्वासन देते हैं कि आप रघुवंशियो मे वीर हैं। वीर अधीर न होहिं। आप ऐसे वीरो को शोक करना शोभा नही देता। चिन्ता कार्यविनाशनी है। उसे छोडिये। धैर्य धारण करिये। उत्साह बढाइये। अब धैर्य धारण की भूमिका कहते हैं कि हम केवल पता लगा कर नही रह जायेंगे। शत्रु को मारकर सीताजी को लाकर मिला देंगे। आप किसी बात की अब चिन्ता न करें।

दो. सखा बचन सुनि हरषे, कृपा सिन्धु बल सींव।
कारन कौन बसहु बन, मोहि कहौ सुग्रीव॥५॥

अर्थ : कृपासिन्धु और बल की सीमा रामजी सखा का वचन सुनकर प्रसन्न हो गये। कहने लगे : सुग्रीव! मुझे बतलाओ तुम वन मे क्यो रहते हो?

व्याख्या : सखा के वचन पर बडा विश्वास है। सुनकर हर्षित हुए कि मित्र

ankurnagpal108@gmail.com



को जैसा बोलना चाहिए वैसी बात सुग्रीव बोले। सरकार कृपा के सिन्धु हैं। सुग्रीव पर बड़ी कृपा है। अतः उसके आश्वासन देने पर हर्षित हो रहे हैं। नही तो बलशील हैं। शत्रु के विजय करने मे किसी की अपेक्षा नही है : एक बार कैसेहुँ सुधि जानौ। कालहु जीति निमिष महु आनौ। सुग्रीव ने अपनी प्रतिज्ञा स्पष्ट कर दी। अब स्वयं प्रतिज्ञा करने के लिए सुग्रीव के वनवास का कारण पूछते हैं। स्वयं सुग्रीव के मुख से सविस्तार कथा सुनना चाहते हैं। हनुमान्जी ने अति संक्षेप मे अवसरानुकूल कथा कही थी। लक्ष्मणजी के रामचरित्र कहने पर सुग्रीवजी को अपना चरित्र कहना प्राप्त था। परन्तु सुग्रीव को कहने का अवसर नही मिला था। इसलिए स्वयं पूछते है।

नाथ वालि अरु मै दो भाई। प्रीति रही कछु वरनि न जाई॥
मयसुत मायावी तेहि नाऊँ। आवा सो प्रभु हमरे गाऊँ॥१॥

अर्थ : नाथ! वालि और मै दोनो भाई हूँ। ऐसी प्रीति रही जिसका वर्णन नही हो सकता। मय का बेटा जिसका नाम मायावी था हमारे गाँव मे आया।

व्याख्या : श्रीराम की आज्ञा को शिरोधार्य करके अपने वन मे बसने का कारण आद्योपान्त वर्णन करते हैं। जिसके कारण से वनवास स्वीकार किया है उसका नाम निर्देश करते हुए कहते है कि वालि और मैं दोनो भाई है। दोनो मे वालि ज्येष्ठ हैं। इस कारण भी उसके नाम का पहिले निर्देश किया। सम्बन्ध की घनिष्ठता प्रेम की घनिष्ठता दिखाते है कि हम दोनो भाइयो मे अवर्णनीय प्रीति थी। एक दूसरे पर प्राण निछावर करते थे।

अब उस प्रीति के भग होने की कारणभूत घटना का वर्णन करते हैं कि मय दानव का बेटा जिसका नाम मायावी था। अर्थात् रावण का साला एक दिन हमारे गाँव किष्किन्धा मे आया। किष्किन्धा को मैं भी उसी भाँति अपना समझता था जिस भाँति वालि समझते थे। इसी बात का द्योतन के लिए कवि ने बहुवचन : हमरे शब्द का प्रयोग किया है। मय असुरो के विश्वकर्मा थे। उनका बेटा होने से उसे बड़ा अभिमान था। किष्किन्धा को वह गाँव मानता था। वालि द्वारा रावण के पराभव से रुष्ट था। बल से उन्मत्त होकर अकेले ही युद्ध की आकाक्षा से आया।

अर्ध राति पुरद्वार पुकारा। बाली रिपुबल सहइ न पारा॥
धावा वालि देखि सो भागा। मै पुनि गयउँ बन्धुसँग लागा॥२॥

अर्थ : आधी रात को उसने किष्किन्धा के पुरद्वार पर आकर ललकारा। वालि शत्रु के बल प्रदर्शन को सह न सका। दौड़ पड़ा। देखते ही वह भाग चला। मैं भाई के साथ ही साथ चला।

व्याख्या : आधी रात का समर असुरो के लिए अत्यन्त अनुकूल होता है। प्रदोष के समय से ही उनका बल बढ़ने लगता है। यथा ' पाइ प्रदोष हर्ष दसकधर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



और आधी रात को तो वह अपनी पराकाष्ठा को पहुँच जाता है। उस समय बन्दर अत्यन्त ही निर्बल रहते हैं। क्योकि रात को उन्हें सूझता ही नहीं। मायावी किष्किन्धा को गाँव समझकर आया था। आने पर पता चला कि वह पुर है। प्राकार से घिरा हुआ है। उसने पुर के भीतर प्रवेश नहीं किया। बाहर से ही ललकारा। समझता था कि इस समय पुर के बाहर आने का साहस बन्दर न कर सकेंगे और हमारी जीत हो जायगी।

बात भी ऐसी हुई। किष्किन्धा वीर वानरों से भरी हुई थी। परन्तु कुसमय होने से सब लोग उस ललकार को सह गये पर वालि से नहीं सहा गया। वह शत्रु का सामना करने के लिए दौड़ पड़ा। निशाचर रात को भी देखते हैं। वालि के स्वरूप को देखते ही उसका साहस छूट गया। वह भाग चला। वालि ने उसका पीछा किया। उस समय किसी ने वालि का साथ न दिया। पर : ओड़िअहि हाथ असनिहुँ के घाए। होहि कुठासु वधु सहाए। सुग्रीवजी कहते हैं मैं भाई के साथ ही साथ पुर के बाहर आया और जब उन्होंने पीछा किया तो मै भी साथ रहा।

गिरिवर गुहा पैठ सो जाई। तब बाली मोहि कहा बुझाई॥
परिखेसु[1] मोहि एक पखवारा। नहिं आवौं तौ जानेसु मारा॥३॥

अर्थ : वह एक पर्वत की गुफा में घुस गया। तब वालि ने मुझे समझाकर कहा कि तुम मेरी बाट एक पखवारे तक जोहना। यदि इतने दिनो तक मैं न लौटूँ तो तुम समझ लेना कि मैं मारा गया।

व्याख्या : बालि पर अपनी प्रीति दिखलाकर सुग्रीवजी अपने ऊपर वालि की प्रीति दिखलाते हैं कि वह राक्षस पर्वत की गुफा मे घुस गया। समझा कि इसमें घुसने का साहस न करेगा। इस अँधेरी गुफा मे दिन को घुसने का साहस किसी का नहीं पड सकता है रात को कौन घुसेगा? पर वालि ही बड़ा वीर है। उसने उसके वध का दृढ सङ्कल्प कर लिया था। मुझे भी साथ ही गुफा मे घुसने के लिए तैयार देखकर मुझे समझाकर कहा : जानता था कि इस समय मेरी आज्ञा पर भी सुग्रीव नहीं रुक सकता।

जानि जाइ नहि गुफा महँ राक्षस होहिं कितेक।
तदपि गुफा है साँकरी सम्मुख आइहि एक॥१॥
इहाँ न पीछे ते कोऊ करि सकिहै उपकार।
याते सब को मारिहौं जो वे होयँ हजार॥२॥

---

१. प्रतीक्षा का तद्भव रूप 'परिखा' हुआ। सर्वत्र लवराम् इस सूत्र से 'प्र' का लोप हुआ। 'प्रतिवेतस पताकासु ड.' इस सूत्र से 'त' का 'ड' हो गया और 'ष्क स्क क्ष ख' इस सूत्र से 'क्ष' का 'ख' हो गया इस भाँति प्रतीक्षा का प्राकृत रूप 'पडिखा' हुआ। उसी का अपभ्रंश 'परिखेसु' है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सो तुम बाहर ही ठहरि रखो बिल को द्वार।
जाते पीछे आइ नहि राक्षस करैं प्रहार॥३॥

बिलग बिलग ह्वै बंधु दोउ यथा साधिहौं काज।
तथा सचिव नहिं संग रहि होइहि अधिक अकाज॥४॥

याते मोहि अकेल ही जान गुफा महँ देहु।
ह्वै सचेत बाहिर रहहु करहु न मन संदेहु॥५॥

जाते समय कहता गया कि एक पखवारे का दम मेरे मे है। इससे अधिक काल तक भी मैं अनवरत युद्ध कर सकता हूँ। पर एक पखवारे तक तो मुझे कोई मार नहीं सकता। अतः पन्द्रह दिन तक तुम मेरे लौटने की आशा से यहाँ ठहरना। यदि इतने दिनों तक मैं न लौटूँ तो समझ लेना कि मैं मारा गया। इससे अधिक काल तक ठहरने की आवश्यकता नहीं है।

**मास दिवस तहँ रहेउँ खरारी। निसरी रुधिर धार तहँ भारी॥**
**बालि हतेसि मोहि मारिहि आई। सिला देइ तहँ चलेहुँ पराई॥४॥**

अर्थ : हे खरारि! मैं महीने दिन रहा। वहाँ से भारी रक्त की धारा निकली। तब मैंने निश्चय किया कि बालि मारा गया। अब मुझे भी मारेंगे। इसलिए उस बिल के द्वार को : शिला से बन्द करके मैं भाग चला।

व्याख्या : खरारि सम्बोधन का भाव यह है कि रामजी ने भी खरदूषण के युद्ध मे भाई लक्ष्मण को वहाँ से हटा दिया था। भाई की ममता भाई ही जानता है। अतः सुग्रीवजी कहते हैं कि पन्द्रह दिन बीतने पर वहाँ से लौट नहीं आया। एक पखवारे को कौन कहे मैं दो पखवारे तक बाट जोहता रहा और भी अधिक समय तक बाट जोहता। पर हुआ क्या कि उस गुफाद्वार से भारी रक्त की धारा निकली। मैंने निश्चय कर लिया कि बालि मारा गया। एक पखवारे का उसका दम था। उसे बीते एक पखवारा और हो गया। जब बिल्कुल दम टूट गया तब राक्षसो ने उसे मार पाया है। जिसे बालि दम रहते न मार पाया उसे दम टूटने पर कैसे मार सकेगा? अतः बालि ही मारा गया। इसमे सन्देह नहीं। मास दिवस : शब्द ग्रन्थ भर मे एक महीने के अर्थ मे आया है। इसका अर्थ बारह दिन करना उचित नहीं है। यथा : मास दिवस कर दिवस भा। मास दिवस महँ नाथ न आवा। इत्यादि। अध्यात्म मे तो स्पष्ट उल्लेख है : इत्युक्त्वाऽऽविश्व स गुहां मासमेकं न निर्ययौ। ऐसा कहकर वह गुफा मे घुसा और एक महीने तक बाहर न आया। बारह दिन अर्थ करने मे सुग्रीव अपराधी सिद्ध होते हैं और सुग्रीव यह सब अपनी निरपराधता सिद्ध करने के लिए ही कह रहे हैं। अतः महीने भर : अर्थ करना ही ठीक है।

सुग्रीवजी कहते हैं कि तब मुझे भय उत्पन्न हुआ कि जिसने बालि को मारा उसके सामने मै क्या हूँ। अब बाहर निकल कर मुझे भी मारेगा। मैं यहाँ बिल्कुल

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अकेला हूँ। बहुत सम्भव है कि भागकर भी मैं न बच सकूँ। इसलिए मैंने पहिले शिला द्वारा उस गुफा के द्वार को बन्द किया जिसमें बाहर निकलनेवाले को यथेष्ट समय लगे और तबतक मैं उनके पहुँच के बाहर चला जाऊँ और भाग चला।

मंत्रिन्ह पुर देखा बिनु सांई। दिन्हेहु मोहि राज बरिआई ॥
बाली ताहि मारि गृह आवा। देखि मोहि जियँ भेद बढावा ॥५॥

अर्थ : मन्त्रियों ने पुर को बिना स्वामी का देखा तो मुझे इच्छा न रहते भी राजगद्दी दे दी। तब तक : बालि उसे मार कर आया। मुझे देखकर उसने मन में भेद बढाया।

व्याख्या : किष्किन्धा लौटकर वालि के मारे जाने का सब वृत्तान्त कहा। तब तक अङ्गद का जन्म नहीं हुआ था। मन्त्रियों ने देखा कि राज्य अनाथ हो रहा है। मैं राज्य चाहता नही था। बहुत दुःखी था। पर मन्त्रियों ने बहुत आग्रह किया कि आपका हक है। बिना राजा के राज्य चल नही सकता। अतः मुझे स्वीकार करना पड़ा।

पर बात यह हुई कि वालि ही अन्त में विजयी हुआ। वह रुधिर की धारा मायावी तथा उसके साथियों की थी। लौटते समय उसे गुफा से बाहर निकलने में बड़ी कठिनाई हुई। गुहा द्वार को शिला को हटाकर किसी भाँति बाहर आया तो वहाँ सुग्रीव को न पाया। घर लौटा तो देखता क्या है कि सुग्रीव राजा बने बैठे हैं। विचार से यदि काम लेता तो रुष्ट होने की कोई बात न थी। परन्तु उसने उलटा सोचना प्रारम्भ किया। अर्थ लगाया कि सुग्रीव को उसका मरना इष्ट था। इसलिए गुफा द्वार को शिला से बन्द किया। इत्यादि।

रिपु सम मोहि मारेसि अति भारी। हरि लीन्हेसि सर्बस अरु नारी ॥
ताके भय रघुबीर कृपाला। सकल भुवन मइ फिरेउँ बिहाला ॥६॥

अर्थ : शत्रु की भाँति उसने मुझे बहुत मारा। मेरा सर्वस्व हरण कर लिया और स्त्री भी ले ली। हे रघुवीर कृपालु! उसके डर से मै सम्पूर्ण भुवनों में वेहाल भागता फिरता था। यहाँ शाप के कारण नही आता। फिर भी मन में डरा करता हूँ।

व्याख्या : मुझे अपराधी ही नहीं उसने शत्रु माना और शत्रु की भाँति मुझ पर प्रहार किया। अर्थात् वध की इच्छा से मुझे मारा। मैं वेहाल होकर भागा। उसने पीछा किया। सम्पूर्ण पृथ्वीतल मे मै भागता फिरा। उसने पीछा न छोड़ा। किसी का सामर्थ्य भी नही कि उससे मेरी रक्षा कर सके। मुझे कही शरण नही मिली। उसने मेरा सर्वस्व हरण कर लिया और स्त्री भी हरण कर ली। सूर्य के अंश होने से सुग्रीव की गति वालि की गति से अधिक तीव्र थी। अतः सुग्रीव हाथ न आये। तब उसने धन दारापहरण किया। यहाँ तक कथा जो सुग्रीव ने कही उसका अधिक

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रभाव रामजी पर न पड़ा। अपनी प्रकृति के अनुसार उसका अच्छा अर्थ लगाते गये कि समझने में सबसे चूक होती है। वालि से भी चूक हुई। इसलिए उसने मारकर निकाल दिया। स्त्री को नहीं निकाला रहने दिया। भाई पर रुष्ट होने पर वह निकाला जा सकता है पर उसकी स्त्री कैसे निकाली जायगी ?

इहाँ श्राप बस आवत नाहीं। तदपि सभीत रहउँ मनमाँही ॥
सुनि सेवक दुख दीनदयाला। फरकि उठीं द्वौ भुजा बिसाला ॥७॥

अर्थ : यहाँ शाप के कारण नहीं आता। फिर भी मैं मन सभीत रहता हूँ। सेवक के दुःख को सुनकर दीन दयालु की दोनों विशाल भुजाएँ फड़क उठीं।

व्याख्या : शङ्का उठती है कि तब तुम किष्किन्धा के पास ही ऋष्यमूक पर कैसे ठहरे हो। इस पर सुग्रीवजी कहते हैं कि यहाँ के लिए उसे शाप है। यहाँ आवे तो उसका सिर फटकर प्राण निकल जाय। फिर भी मुझे मारने के लिए बलवान् वानरों को भेजा ही करता है। वे मेरे द्वारा मारे गये पर डर लगा रहता है कि अब वह न जाने किसको भेजेगा।

जब इस बात को सुना तो निश्चय कर लिया कि वालि इनके जान का भूखा है नहीं तो अब बैर बढ़ाने से क्या प्रयोजन ? उसे यथेष्ट समय मिल गया कि वह सब बातों को समझता। सुग्रीव की निरपराधता पर दया करता। पर उसने ऐसा नहीं किया। निष्कण्टक होकर उसकी स्त्री को भोगना चाहता है। अतः उसके वध के लिए बलवान् वानरों को भेजता है। सरकार दीनदयाल हैं। सुग्रीव की दीन दशा पर दया आयी। दोनों विशाल भुजाएँ फड़क उठीं। इस प्रकार भुजाओंके फड़कने का सम्बन्ध शकुन अपशकुन से नहीं है। वीरता के आवेश से है।

दो. सुनु सुग्रीव मारिहौं, बालिहि एकहि बान।
ब्रह्म रुद्र सरनागत, गए न उबरिहि प्रान ॥६॥

अर्थ : सुनो सुग्रीव मैं वालि को एक ही बाण से मारूँगा। ब्रह्म रुद्र के शरण जाने पर भी उसका प्राण न बचेगा।

व्याख्या : अब सरकार सुग्रीव को आश्वासन देते हैं कि मैं वालि को मारूँगा और एक ही बाण से मारूँगा। मेरे एक प्रहार को वालि नहीं सह सकता। मैं दो बार बाण चढाता ही नहीं। आश्रित को दो स्थानों मे स्थापित नहीं करता। अर्थी को दो बार देता नहीं और न दो बार बोलता हूँ : द्विः शरं नाभिसन्धत्ते द्विः स्थापयति नाश्रितान्। द्विर्ददाति न चार्थिभ्यो रामो द्विर्नाभिभाषते। यदि कहो कि उसके बड़े बड़े सहायक हैं। तो इस पर कहते है कि पहिले तुम्हें शरण देनेवाला कोई नहीं था। अब मेरे बाण के पीछा करने पर उसे शरण देनेवाला कोई न मिलेगा। सबसे बड़े शरणद ब्रह्म रुद्र हैं। वे भी शरण मे नहीं रक्खेंगे। जयन्त को नहीं रक्खा। तुम शोक छोड़ दो। अब बालि का भय तुम्हें नहीं है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



न मित्र दुख होहिं दुखारी। तिन्हहिं बिलोकत पातक भारी ॥
ाज दुख गिरि सम रज करि जाना। मित्र क दुख रज मेरु समाना ॥१॥

अर्थ : जो लोग मित्र के दु ख से दुःखी नही होते उनके देखने से महापाप ाता है। अपने पर्वत के समान दुःख को धूल के समान जाने और मित्र के रज के मान दुःख को मेरु पर्वत के समान माने।

व्याख्या : या तो सरकार ने अस्थि समूह देखकर निशिचरहीन पृथ्वी करने ी प्रतिज्ञा ऋषि समाज में की थी या इस समय सुग्रीव के दुःख से सन्तप्त होकर तिज्ञा वालि वध के लिए की है। ऐसी प्रतिज्ञा के औचित्यख्यापन के लिए तथा सार के उपदेश के लिए मित्रधर्म का वर्णन कर रहे हैं। मित्र के दुख से दुःखी होना र्म है। जिसने इस धर्म का उल्लङ्घन किया उसका पाप महापापो से भी बढ़कर है। हापातकी के संसर्ग से महापातक होता है। पर मित्र के दुःख से दुःखी न होनेवाले ; मुखदर्शन से महापातक होते हैं। पुण्यात्मा के दर्शन से पुण्य का और पापात्मा । दर्शन से पाप का प्रभाव मन पर पड़ता है। क्योंकि विपयावच्छिन्न चेतन के ाथ अन्त करणावच्छिन्न चेतन के विना एक हुए दर्शन की क्रिया ही सम्पन्न नही ोती। वालि ने मेरे मित्र की स्त्री हरण की। मै उसे बिना मारे नही छोड़ ाकता।

निषेधमुख से निरूपण करके अव वही बात विधिमुख से कहते हैं कि मित्र ६ दुःख के आगे अपने दु.ख के भूलने की विधि है और वह तभी सम्भव है जब अपने ाड़े भारी दुःख को भी तुच्छ समझे और मित्र के तुच्छ दुःख को भी बड़ा भारी जाने। ऐसी दृष्टि मैत्री के बल से होती है। भाव यह कि यद्यपि मैं भी स्त्रीविरह से दुःखी हूँ। ायोंकि निशिचर उसे हरण कर ले गया है। पर वह दुःख इस समय मेरे लिए कुछ ाही है। यथा : तिय बिरही सुग्रीव सखा लखि प्रान प्रिया बिसराई। जानत प्रीति रीति रघुराई। मै पहिले सुग्रीव के दु.ख को दूर करूँगा। फिर मेरे लिए जैसा होगा देखा जायगा।

जिन्हके असिमति सहज न आई। ते सठ कत हठि करत मिताई ॥
कुपथ निवारि सुपंथ चलावा। गुन प्रगटै अवगुनहि दुरावा ॥२॥

अर्थ : जिनका स्वभाव से ही ऐसी बुद्धि न हो वे शठ क्यो हठ करके मित्रता करते है? कुपन्थ से हटाकर सुपन्थ में चलावे। उसके गुण को प्रकट करे और दुर्गुण को छिपावे।

व्याख्या : मैत्री के अधिकारी वे ही है जिनमे ये गुण स्वभाव से ही प्राप्त हों। सिखाने पढाने से नही और जिनमें ये गुण स्वभाव से प्राप्त नही हैं वे मैत्री के अधिकारी नही हैं। उन्हें मैत्री न करना चाहिए। यदि वे करना चाहे तो वे शठ हैं। उनमे मैत्री न निबहेगी। मैत्री करके वे मित्र को तो विपत्ति में डालेंगे ही

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अपना भी लोक परलोक व्यर्थ बिगाड डालेंगे। जब मन मे यह ठान सकें कि इनके लिए मै बडा से बडा कष्ट उठाऊँगा तभी मैत्री करना उचित है।

मित्र के लोक परलोक की चिन्ता चाहिए। कुपथ पर चलने से उसका त्याग न करे। उसे अच्छे रास्ते पर ले चले। कुपन्थ से उसे हटावे। व्यक्तिगत जीवन मे रोक टोक करने का मित्र को ही अधिकार है। गुरु न होकर भी गुरु का कार्य करे। माता पिता की भाँति उसके अपराध को सहन करे। उसका कल्याण चाहे। उसके दुर्गुणो को छिपावे और लोगो म उसके गुणो की प्रशसा करे। सुग्रीवजी के लिए सरकार को सब कुछ करना पडा। १ कुपथ निवारि सुपथ चलावा। यथा भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव। २ गुन प्रगटै अवगुनहि दुरावा। यथा ते भरतहि भेटत सनमाने। राजसभा रघुबीर बखाने।

देत लेत मन सक न धरई। बल अनुमान सदा हित करई।
बिपतिकाल कर सतगुन नेहा। श्रुति कह सत मित्र गुन एहा ॥३॥

अर्थ दने लने मे मन म शङ्का न रक्खे। अपने बल के अनुसार सदा हित करे। विपत्तिकाल मे सौगुना प्रेम करे। वद और सन्त कहते हैं कि ये मित्र के गुण हैं।

व्याख्या मित्र के धन और अपने धन म भेद नहीं है। इसलिए देने लेने मे शङ्का न करे। मित्र का प्रेम पुरस्कार स्वीकार करे। यह बात मन मे न लावे कि इनका मैं क्यो लूँ। इसी भाँति प्रेमोपहार मित्र को दे। इस बात पर ध्यान न दे कि इसकी इन्हे क्या आवश्यकता है। परन्तु देने पर पहिले ध्यान रहे। लेने पर पीछे। इसीलिए देत लेत कहा। लेत देत नही कहा। पौरुष की अपेक्षा न करके काम करना तामस हो जाता है। उससे किसी का हित नही होता। अनहित होने का ही विशेष भय रहता है। अत जहाँ तक किया हो सके मित्र का हित ही करे। कहा गया है कुसमय मीत का को कौन ? पर यह बात नही है। मित्र की परीक्षा का काल ही कुसमय है धीरजु धरम मित्र अरु नारी। आपदकाल परिखिअहि चारी। उस समय उस पर सौगुनी प्रीति बढनी चाहिए। श्रुति कहती है और सन्त कहते हैं। भाव यह है कि शिष्टानुमोदित श्रुति मित्र के ये ही धर्म बतलाती हैं।

आगे कह मृदु बचन बनाई। पाछे अनहित मन कुटिलाई ॥
जाकर चित अहिगति सम भाई। अस कुमित्र परिहरेहि भलाई ॥४॥

अर्थ मुख के सामने तो मीठी बातें बना बनाकर कहता है। पीछे बुराई करता और मन मे कुटिलता रखता है। जिसका मन साँप की गति की भाँति टेढा है। ऐसे कुमित्र के परित्याग मे ही कल्याण है।

व्याख्या अब कुमित्र का लक्षण कहते हैं। पहले कह आये हैं ते सठ कत हठ करत मिताई। शठ का स्वभाव है मीठी बातें सठ करै करिके महाबिगार।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ो स्वभाव के अनुकूल वह मित्र के साथ भी आचरण करता है। आँख के सामने वह मृदुवचन बना बनाकर बोलता है। उसका कल्याण नही देखता। पीठ पीछे ाई करता है। उसके मन मे कुटिलता है। उसके मन, कर्म और वाणी की गति ग्र प्रकार की होती। कवि उसके चित्त की उपमा सर्प से देते हैं। वह कुमित्र है। । दूर से परित्याग करना चाहिए। नही तो कल्याण नही हो सकता। सच्चा त्र तो उसका कल्याण देखेगा। उसके कल्याण के लिए आवश्यकता पडने पर ठोर भी बोलेगा। उसका व्यवहार सदा सरल होगा। मन वाणी और कर्म से ल्याण ही करेगा। वह पीठ पीछे स्तुति करेगा। भलाई करेगा।

वक सठ नृप कृपिन कुनारी। कपटी मित्र सूल सम चारी ॥
वा सोच त्यागहु बल मोरे। सबबिधि घटब[1] काज मँइ तोरे ॥५॥

अर्थ शठ सेवक, कृपण राजा, बुरी स्त्री और कपटी मित्र ये चार शूल की ाति दु खदायक हैं। हे सखे! मेरे बल के भरोसे पर शोक का त्याग करो। ब प्रकार से मैं तुम्हारा काम बनाऊँगा।

व्याख्या हेयम् दु खमनागतम्। जो दु ख बीत गया है उससे छुट्टी मिल चुकी। जो आ पडा है उसे भोगना ही है। आनेवाले दु ख से बचने का उपाय होना ाहिए। शत्रु से तो मनुष्य स्वभाव से ही सावधान रहता है। मध्यस्थ को भी शय की दृष्टि से देखता है। धोखा सदा उनसे होता है जिन्हे मनुष्य अपना तचिन्तक समझता है। वे चार हैं सेवक, राजा, स्त्री और मित्र। इन्ही के रोसे मनुष्य सोता है। इनकी कुचाल से रक्षा नही है। अत कवि कहते है कि ठ सेवक का परित्याग करना चाहिए। शठ सेविका मन्थरा की कुचालि से अयोध्या सर्वनाश उपस्थित हो गया। रावण कृपण राजा थे। उनके दान की चर्चा ही नही सुनाई पडती। लूट खसोट से ही तो उन्हे सोने की लङ्का पुष्पक विमान न्दर स्त्रियाँ और अपार सम्पत्ति राशि मिली थी। पर उनकी कुचालि से ही नशिचरहीन पृथ्वी हो गयी। कुनारी सूर्पणखा थी। उसके कुचाल से सारा कुटुम्ब स्म हो गया। कपटी मित्र एकतनु थे। उनकी कुचाल से राजा भानुप्रताप के राज्य गैर कुल का सहार हो गया। अत शठ सेवक कृपण राजा कुनारी और कपटी मत्र सर्वथा त्याग करने योग्य है। ये अपने होकर तीव्र वेदना पहुँचाते हैं। अत नकी उपमा शूल से दी है। शूल शरीर म ही उत्पन्न होकर शरीर का नाश करता है। अत शूल के नाश क लिए चिकित्सा की जाती है। इनसे शीघ्रातिशीघ्र पण्ड छुडाने का महत् प्रयत्न होना चाहिए।

मित्र धर्म निरूपण करके सुग्रीव को समझाया और आश्वासन दिया कि मैं मित्रधर्म को जानता हूँ। मेरे बल के भरोसे सोच छोडो। मैं तुम्हारा काम सब तरह से बनाऊँगा। १ तुम्हारे शत्रु को मारूँगा। २ तुम्हे राज्य दूँगा। ३ तुम्हे

१ यहाँ घटब का अर्थ करब है। यथा सो सब भाँति घटिहि सेवकाई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुपन्थ पर चलाऊँगा। ४ तुम्हारे यश का विस्तार करूँगा। ५ तुम्हारा परलोक बनाऊँगा।

१ शत्रुवध यथा · मारा वालि राम तव हृदय माँझ सरतानि।

२ राज्यदान यथा : राज दीन्ह सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुवराज।

३ सुपथ पर चलना यथा : भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव।

४. यश का विस्तार यथा : ते भरतहिं भेटत सनमाने।
राज सभा रघुबीर बखाने॥

५ परलोक सुधार यथा अब गृह जाहु सखा सब भजेहु मोहि दृढ़नेम।
सदा सर्वगत सर्वहित जानि करेहु अति प्रेम॥

**कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। बालि महाबल अति रनधीरा॥**
**दुंदुभि अस्थि ताल देखराये। बिनु प्रयास रघुनाथ उठाये॥६॥**

अर्थ · सुग्रीव ने कहा हे रघुवीर। सुनो। वालि महाबल और अति रणधीर है। दुन्दुभी की हड्डी और ताल दिखलाया। रघुनाथ ने उसे विना परिश्रम के ही उठा लिया · अर्थात् हटा दिया।

व्याख्या : सुग्रीव ने समझा कि मेरे मित्र ने वालि का बल विना जाने ऐसी प्रतिज्ञा कर दी। ये धोखे मे न रहे। इसलिए उसने कहा कि यद्यपि आप रघुकूल मे वीर हैं। पर वालि महाबली है और रण मे अत्यन्त धीर है। आप वालि के बल को समझ लें। यह जो पहाड के समान सिर की हड्डी पडी है यह दुन्दुभी नाम के राक्षस की है। यह रात्रि को भैसा बनकर किष्किन्धा मे आया और वालि को युद्ध के लिए ललकारा। वालि ने उसकी सीग पकडकर उसे पृथ्वी पर पछाड़ दिया और उसका सिर लेकर ऊपर उछाल दिया। सो यहाँ एक योजन पर आकर गिरा। मातङ्ग ऋषि के आश्रम मे रक्त की वर्षा हो गयी। उसी पर ऋषि ने शाप दिया कि यदि तू मेरे पर्वत के निकट आवेगा तो तेरा सिर फट जायगा। इस सिर को यदि आप उठा सकें तो समझा जा सकता है कि आप उससे लड सकेंगे। रघुनाथ ने उसे पैर के अँगूठे से दस योजन पर फेंक दिया। सुग्रीव और उनके मन्त्री वाह वाह करने लगे। सुग्रीव ने बल तो देख लिया। फिर भी युद्ध कौशल देखने के लिए कहा कि ये सात ताल हैं जिन्हे हिलाकर वालि पत्रहीन कर देता था। इन्हें यदि आप एक बाण से वेध दें तो निश्चय आप वालिवध मे समर्थ होगे। रामजी का बाण उन सातो तालो को वेधकर पर्वत और पृथ्वी को वेधता हुआ लौटकर उनके तूणीर मे प्रवेश कर गया।

मित्र ने परीक्षा लेनी चाही। सरकार सहर्ष देने के लिए तैयार हो गये। शुद्ध हृदय से यदि जयन्त इसी भाँति विनय किये होता तो इतनी दुर्दशा मे न फँसता।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व अमित बल 'बाढी प्रीती । बालि बधब इन्ह भइ परतीती ॥
र बार नावइ पद सीसा । प्रभुहि जान मन हरष कपीसा ॥७॥

अर्थ : अपरमित बल देखकर प्रीति बढी। विश्वास हो गया कि ये वालि मारेंगे। बार बार चरणो मे सिर झुकाने लगा। प्रभु को जानकर सुग्रीव हर्ष हुआ।

व्याख्या : सुग्रीव ने देखा कि वालि महाबल है। पर इनके बल का तो थाह नही है। यह अमानुप पराक्रम किसी मे हो नही सकता। इनके वालिवध करने सन्देह नही है। मनुष्य नही है। ईश्वर हैं। अत. सुग्रीव बार बार चरण पर रने लगे। प्रभु को पहिचान लेने से सुग्रीवजी को बडा हर्ष हुआ। उन्होने शोक परित्याग किया।

सरकार को देखकर ही सुग्रीवजी समझ गये थे कि ये बल की सीमा हैं। इस अचिन्त्य पराक्रम को देखकर तो आश्चर्य से चकित हो गये। कार्य सिद्धि दृढ आशा से प्रीति बढी। यथा : जेहि ते कछु निज स्वारथ होई। तेहि पर मता कर सब कोई। जो बाण पाताल मे प्रवेश कर सकता है वह वालिवध ी कर सकता है।

पजा ग्यान बचन तब बोला। नाथ कृपा मन भयउ अलोला ॥
ख संपति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहउँ सेवकाई ॥८॥

अर्थ : ज्ञान उपजा तब यह बात बोले कि नाथ की कृपा से मन स्थिर हो या। सुख, सम्पत्ति, परिवार और बडाई इन सबो को छोडकर सेवा करूँगा।

व्याख्या : ईश्वरबुद्धि से ईश्वर दर्शन ही दर्शन है। विश्व रूप भगवान् का ोडा बहुत दर्शन तो सभी को होता है। परन्तु उसमे ईश्वरबुद्धि न होने से फल ही होता। प्रभु के जान लेने से दर्शन का तुरन्त फल मिला। शोकापनोदन होकर न मे प्रसन्नता आयी। उससे बुद्धि स्थिर हुई। तब ज्ञान उपजा। यथा : मम रसन फल परम अनूपा। जीव पाव निज सहज सरूपा। तब वचन बोले कि प्रभु की कृपा से मेरा मन स्थिर हो गया। मन का स्थिर होना बड़ा कठिन कार्य है। अर्जुन को भी यह असाध्य जान पडा। भगवान् ने भी · असशय महाबाहो मनो दुर्निग्रह चलम्। उसी बात को दोहरा दिया। ऐसे चल मन के एकाएक स्थिर हो जाने का सिवा भगवत्कृपा के और दूसरा कारण हो नही सकता। यद्यपि परम चपल श्री सतत थिर न रहत कतहूँ। हरिपद पकज पाइ अचल भइ करम बचन मनहूँ।

चित्त के स्थिर हो जाने से सुख सम्पत्ति परिवार बड़ाई से चित्त हट जाता है। जब तक इनमे चित्त लगा है तब तक स्थिर हो सकता नही। अतः कहते हैं कि इन्हे छोडकर सेवकाई करूँगा। यथा : स्वामिहि सर्वभाव छल त्यागी। यही ज्ञान का लक्षण है कि सब छोडकर भगवान् के भजन की इच्छा हो। यथा : हृदय बहुत दु:ख लाग। जनम गयउ हरि भगति बिनु।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ए सब राम भगति के बाधक। कहहिं संत तव पद अवराधक।।
सत्रु मित्र सुख दुःख जग माही। माया कृत परमारथ नाही।।९।।

अर्थ : आपके चरणो की आराधना करनेवाले सन्त लोग कहते हैं कि ये सब राम भक्ति के बाधक हैं। शत्रु मित्र सुख और दुःख जो संसार मे हैं वे सब माया के बनाये हुए हैं। परमार्थ नही हैं।

व्याख्या : सुख सम्पत्ति परिवार और बड़ाई रहते हुए क्या सेवकाई नही हो सकती? इस पर कहते हैं कि सन्त लोग भी जिन्होने प्रभु की आराधना के मार्ग मे अपने को लगा दिया है कहते हैं कि ये सब रामभक्ति के बाधक हैं। केवल मेरा ही यह अनुभव नही है। यथा : रमाबिलास राम अनुरागी। तजहिं वमन जिमि जन बडभागी।

अब सुग्रीवजी कहते हैं कि शत्रु मित्र सुख दुःख जो जग मे हैं वे अविद्याकृत है। यथा : धरनि धामु धनु पुर परिवारू। सरगु नरकु जहँ लगि ब्यवहारू। देखिअ सुनिअ गुनिअ मन माँही। मोह मूल परमारथ नाँही। सुग्रीवजी को व्यावहारिक और पारमार्थिक सत्ता का विवेक हुआ। पारमार्थिक सत्ता तो केवल राम की है। यथा : राम ब्रह्म परमारथ रूपा। न कश्चित् कस्यचिन्मित्र न कश्चित् कस्यचिद्रिपुः। व्यवहारेण मित्राणि जायन्ते शत्रुवस्तथा। इस संसार मे न कोई किसी का मित्र है न कोई शत्रु है। व्यवहार से ही शत्रु मित्र उत्पन्न होते हैं।

बालि परम हित जासु प्रसादा। मिलेहु राम तुम्ह समन विषादा।।
सपने जेहि सन होइ लराई। जागे समुझत मन सकुचाई।।१०।।

अर्थ . बालि तो परम हित है। जिसकी कृपा से हे रामजी। विषाद के शमन करनेवाले आपकी प्राप्ति हुई। जिससे अब यदि स्वप्न मे भी लडाई हो तो जागने पर समझने से मन सङ्कुचित होगा।

व्याख्या · बालि अब शत्रु नही रहा। वह तो परम हित हो गया। क्योकि उसके कोप ने प्रसाद का काम किया। हित की कृपा से कल्याण होता है यह तो परम हित है। उसके तो कोप से कल्याण हो रहा है। विषाद के शमन करनेवाले स्वय श्री चरणो की प्राप्ति हो रही है। अब इससे बढ़कर और दूसरा क्या होगा। ऐसी कल्याणकारिणी भावना तो केवल मुनियो मे देखो जाती है कि उनके शाप से परिणाम मे परम हित होता है। यथा : मुनि श्राप जो दीन्हा अति भल कीन्हा परम अनुग्रह मैं माना। देखेउँ भरि लोचन हरिभव मोचन ईहइ लाभु सकर जाना। जाग्रत् म तो अब उससे लडाई हो नही सकती। हाँ सपने की घटनाओ मे अपना कुछ वश नही चलता। सो यदि सपने मे कही लडाई हो भी जाय तो जागने पर जब उसे विचारेंगे तो बडा पश्चात्ताप होगा कि इतने बडे उपकारी से मैं सपने मे भी क्यो लड गया? गोकि सपने के अपराध का अपराध मे गिनती नही है। अत अब सरकार बालिवध का विचार छोड़ दें।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती । सब तजि भजनु करौ दिन राती ।।
सुनि बिराग सजुत कपि बानी । बोले बिहँसि रामु धनु पानी ।।११।।

अर्थ अब प्रभु इस प्रकार से कृपा करें कि मैं सब कुछ छोडकर दिन रात भजन करूँ। कपि की विराग सयुक्त वाणी सुनकर के हाथ मे धनुष धारण करनेवाले रामजी हँसकर बोले ।

व्याख्या अब प्रभु वालि के वध की कृपा न करें। इस भांति कृपा करें कि वालि से मेरी लडाई सपने मे भी न हो और सुख सम्पत्ति परिवार बडाई सब छोड कर आपको रात दिन सेवकाई करूँ। यह बात आपको कृपा से ही सम्भव है। कृपा से ही मन स्थिर हुआ। ज्ञान हुआ। अब भक्ति दीजिये। नीति शास्त्र भी कहता है शत विहाय भोक्तव्यं सहस्र स्नानमाचरेत्। लक्ष विहाय दातव्य सर्वं त्यक्त्वा हरिं भजेत्। सौ काम छोडकर भोजन कर लेना चाहिए। हजार काम छोडकर स्नान कर लेना चाहिए। लाख काम छोडकर दे डालना चाहिए और सब कुछ छोडकर हरि भजन करना चाहिए।

सुग्रीवजी की चञ्चलता पर प्रभु हँस पडे कि पहले तो दु ख की कहानी सुना कर मुझसे प्रतिज्ञा करा ली और जब मैं प्रतिज्ञा कर चुका तो अब ज्ञान छाँटता है। स्वभावो दुरतिक्रम । चञ्चलता कपि का स्वभाव है वह नही छूटता। इसी पर हँसे। यह ज्ञान नही है प्रज्ञावाद है। ज्ञानी तो मरे हुए और जीते हुए का सोच नही करता। यह अशोच्य को सोच रहा है और बुद्धिमानो की सी बात बोल रहा है। यथा तमुवाच हृपीकेश प्रहसन्निव भारत। सेनायोरुभयोर्मध्ये विषीदन्तमिदं वच । अशोच्यानन्वशोचस्त्व प्रज्ञावादाश्च भापसे। गतासूनगतासूश्च नानुशोचन्ति पण्डिता । यहाँ रामजी का धनुपाणि विशेषण देने का भाव यह है कि अपनी प्रतिज्ञा की पूर्ति के लिए धनुष उठा लिया है। उस समय सुग्रीवजी ऐसी विनती करने लगे।

जो कछु कहेउ सत्य सब सोई। सखा बचन मम मृपा न होई ।।
नट मरकट इव सबहि नचावत। रामु खगेस वेद अस गावत ।।१२।।

अर्थ जो कुछ तुमने कहा वे सब बातें सच्ची हैं। परन्तु सखे! मेरी बातें मिथ्या नही हो सकती। भुसुण्डिजी कहते हैं हे खगेश! वेद ऐसा कहते हैं कि रामजी सभी को इस भाँति नचाते है जैसे बन्दर को नट नचावे।

व्याख्या प्रभु ने कहा कि तुम्हारा कहना बिल्कुल ठीक है। पारमार्थिक सत्य के सामने व्यावहारिक की स्थिति कुछ नही है। परन्तु शरीर से व्यवहार का सर्वथा त्याग भी नही होता। व्यवहार म भी तो सत्य मिथ्या होता है। जो व्यवहार मे सत्य का निर्वाह नही कर सकता वह पारमार्थिक सत्य पर कितने दिन टिक सकता है। परमार्थ का बाध तो व्यवहार से नही होता है। अत व्यवहार म भी सत्य का परित्याग नही किया जा सकता। मैंने जो कह दिया है वह तो होकर ही रहेगा। वह मिथ्या नही हो सकता।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उपासना घाट के वक्ता भुसुण्डिजी कहते हैं कि जैसे नट की प्रेरणा से बन्दर नाचते हैं उसी भाँति रामजी की प्रेरणा से सब कार्य हो रहे हैं। अहंकार से विमूढात्मा अपने को कर्ता मानते हैं। वेद का प्रमाण देते हैं। उससे संवाद रूप में कहा गया है : किससे प्रेरित हुआ मन चलायमान होता है। किससे प्रेरित होकर प्राणी की हलचल आरम्भ होती है। किससे प्रेरित होकर वाणी अपना व्यवहार करती है और चक्षु श्रोत्र को कौन देवता प्रेरणा करता है। इस पर उत्तर रूप में कहा गया है : जो कान का भी कान है। मन का भी मन है। वाणी की भी वाणी है। वही प्राण का प्राण है। यथा : केनेषितं पतति प्रेषितं मनः। केन प्राणः प्रथमः प्रैति युक्तः। केनेषितां वाचमिमां वदन्ति। चक्षुः श्रोत्रं क उ देवो युनक्ति। श्रोत्रस्य श्रोत्रं मनसो मनोयद्वाचोह वाच स उ प्राणस्य प्राणः। उसी प्राण के प्राण जीवन के जीव की प्रेरणा से सब कुछ होता है। अतः कहते हैं रामजी तो नट हैं। मर्कट उनके प्रतिकूल कैसे जायगा। जीव सब उसी के मर्कट हैं। नट जैसा चाहता है वैसा नचाता है। प्रभु के कहते ही सुग्रीवजी मान गये। हँसकर बोलने से माया की प्रेरणा भी कही : माया हास बाहु दिगपाला। उन्हें जैसा नाटक रचना है तदनुकूल चलायेंगे।

## ४७. बालि वध प्रसङ्ग

लै[1] सुग्रीव संग रघुनाथा। चले चाप सायक गहि हाथा॥
तब रघुपति सुग्रीव पठावा। गर्जेसि जाइ निकट बल पावा॥१३॥

अर्थ : सुग्रीव को साथ लेकर रघुनाथ धनुप बाण लेकर चले। तब रघुपति ने सुग्रीव को भेजा। वह सहायक : रामजी को निकट पाकर जाकर गर्जा।

व्याख्या : हाथ मे धनुप था ही। तरकश में से वह बाण भी निकाल लिया। जिसके द्वारा बालि वध होनेवाला था। रघुकुल के नाथ हैं। नीति के अनुसार आचरण करेंगे। सुग्रीव की चञ्चलता देखकर तुरन्त चल पड़े। कपि स्वभाव है। कब कौन सा पलटा खा जावे। क्या ठिकाना। मैं प्रतिज्ञाबद्ध हो चुका हूँ। उसे पहिले पूरा करना चाहिए। अतः सुग्रीव को साथ लेकर किष्किन्धा की ओर चल पड़े। पुरद्वार के निकट पहुँचने पर सुग्रीव को भेजा कि जाकर गर्जन करें। सुन चुके हैं कि बालि रिपु बल को नही सह सकता। वह गर्जना सुनकर अवश्य पुर के बाहर आजायगा। क्योकि रामजी पुर में जा नही सकते। यथा : पुर न जाउँ दस चारि बरीसा। स्वयम् सुग्रीव के साथ नही गये। क्योंकि सामना पड़ने पर उपयुक्त दण्ड नही दिया जा सकेगा। इसके अपराध की अपेक्षा बध दण्ड बहुत न्यून है। इसे व्याध की भाँति मारना ही उपयुक्त दण्ड है। इसी से इसकी शुद्धि होगी और दण्ड कर्ता को पाप स्पर्श न करेगा। सरकार के भेजे हुए सुग्रीव गये और गरजे। समझते थे कि बलवान् सहायक सन्निकट है।

१. यहाँ से ४७वाँ प्रसङ्ग : बालि प्रान कर भङ्ग १ प्रारम्भ हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुनत वालि क्रोधातुर धावा। गहि कर चरन नारि समुझावा ॥
सुनु पति जिन्हहि मिला सुग्रीवा। तै द्वौ वंधु तेज बल सींवा ॥१४॥

अर्थ : सुनते ही वालि क्रोध से आतुर होकर दौड़ा। स्त्री ने चरण पकड़ लिया और समझाया। हे पति ! सुनो। जिन्हे सुग्रीव मिला है वे दोनों भाई तेज और बल की सीमा हैं।

व्याख्या : सुग्रीव पर सबका प्रेम था। उनके गरजने पर कोई बाहर न निकला। सब जानते थे कि यह गरजना वालि के प्रति है। भाई भाई का झगड़ा है। हम लोगों के बोलने लायक नही है। स्वर से वालि ने पहिचान लिया कि सुग्रीव गरजता है। अतः क्रोध से आतुर होकर दौड़ा कि इसका इतना साहस कि गर्जने आया है। हाथ से निकल न जाय। इसे मैं कब से खोज रहा हूँ हाथ नही आता। भले ही स्वयं आया है। कही इस बार भी हाथ से निकलने न पावे। इसलिए दौड़ा। स्त्री ने पैर पकड़ लिया। दूसरा उपाय रोकने का नहीं था। समझाया कि सुग्रीव अपने बल पर यहाँ आकर गरज नहीं सकता। दुन्दुभी के गरजने पर एवं मायावी के गरजने पर मैंने तुम्हें नही रोका था। इस बार रोकती हूँ।

पति : सम्बोधन का भाव यह कि आप मेरे स्वामी हो। रक्षा करनेवाले हो। मुझे तुम्हारा कुशल इष्ट है। अविचार से काम कर रहे हो। इसलिए रोकती हूँ। सुग्रीव की क्या शक्ति है कि यहाँ आकर गर्जे। जिनसे उसने मित्रता की है उनके बल पर गरजने आया है। वे दोनों भाई है और तेज बल की सीमा हैं। अङ्गद को यह पता लगा है वही मुझसे कहता था।

कोसलेस सुत लछिमन रामा। कालहु जीति सकहिं संग्रामा ॥१५॥

दो. कह वाली सुनु भीरु प्रिय, समदरसी रघुनाथ।
जौ कदाचि मोहि मारहिं, तौ पुनि होउँ सनाथ ॥७॥

अर्थ : वे कोसलाधीश के बेटे हैं। उनका नाम राम लक्ष्मण है। वे काल को भी संग्राम में जीत सकते हैं। वालि ने कहा कि प्रिये ! तू भीरू है। रघुनाथ से क्या डर है। वे समदर्शी हैं। जो कदाचित् मार भी देंगे तो भी सनाथ हो जाऊँगा।

व्याख्या : सुग्रीव को मारने जाना उनसे संग्राम करना है। वे काल से भी अजेय हैं। यथा : जाके बल अतिकाल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई। उनसे युद्ध करनेवाले का कुशल नही हो सकता। कोसलेस सुत : कहकर आकाशवाणी की याद दिलाती है। यथा : कोसल पुरी प्रकट नर भूपा। तिनके गृह अवतरिही जाई। इस भाँति अवतार वतला रही है। काल पर विजय पाने का कारण कह रही है। लछिमन राम : कहकर उनका नाम कह रही है। उनसे लड़ना है, सुग्रीव से नही। सुग्रीव को उन्होने लड़ने के लिए आगे खड़ा किया है। तुमसे कोई वैर नही है निष्कारण कैसे लड़ें ?

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वालि ने भी रावण की भाँति ही कहा : सभय सुभाउ नारि कर साँचा। मंगल महु भय मन अति काँचा। सनाथ होने के समय रोकती है। मेरा भाग्य कहाँ कि वे मुझे मारे। वे समदर्शी हैं। उन्हे जैसा सुग्रीव वैसा ही मैं। यदि कदाचित् मार ही दें क्योकि भक्त के लिए विषम बिहार भी कर बैठते हैं। यथा : तदपि करहिं सम बिषम बिहारा। भगत अभगत हृदय अनुसारा। तब तो मै सनाथ हो जाऊँगा। समर में मरना और भगवान् के हाथ से। ऐसा अवसर क्या हाथ लगनेवाला है। अभी तो मैं अनाथ हूँ। सनाथ तो उनके हाथ से मर कर हूँगा। वे प्राण हरण करते हैं तो बदले में निजपद भी देते हैं।

अस कहि चला महा अभिमानी। तृन समान सुग्रीवहि जानी॥
भिरे उभौ बाली अति तरजा। मुठिका मारि महा धुनि गरजा॥१॥

अर्थ : ऐसा कह कर वह महा अभिमानी सुग्रीव को तृण समान जानकर चला। दोनो भिड़ गये। वालि अत्यन्त तड़पा और घूँसा मारकर बड़ी ध्वनि से गरजा।

वालि महा अभिमानी है। ईश्वर बुद्धि होने पर भी शरण में जाने की इच्छा नही करता। यदि मार देंगे तो मरने को तैयार है। झुकना उसे इष्ट नही है। भाई को निर्बल होने के कारण तिनका समझता है। भ्रातृ वध उसके लिए तृणच्छेदन के तुल्य है। समझता है कि सुग्रीव को तो मार ही डालूँगा। पीछे जो हो। समझने से क्रोध का वेग कुछ कम हुआ। पहिले तो क्रोधातुर होकर दौड़ा था। अब चला। पुर के बाहर आया। सुग्रीव को देखकर उस पर टूटा।

प्रभु को सन्निकट जानकर सुग्रीव भी भिड़ गये। एक दूसरे को देखकर तड़पे। परन्तु वालि बड़े वेग से तड़पा और सुग्रीव को एक घूँसा मारकर बड़ी ध्वनि से गर्जा। वालि इन्द्र का अंश है। अतः उसका प्रहार भी वज्र के समान होता है। वज्रप्रहार में चमक पहिले और शब्द पीछे होता है। उसी नियमानुसार बालि मुष्टि प्रहार के बाद गरजा। जानता था कि मेरा प्रहार सुग्रीव सह नही सकता।

तब सुग्रीव बिकल होई भागा। मुष्टि प्रहार बज्र सम लागा॥
मै जो कहा रघुबीर कृपाला। बन्धु न होइ मोर यह काला॥२॥

अर्थ : तब सुग्रीव विकल हो कर भागा। घूँसे की चोट वज्र की चोट जान पड़ी। हे रघुबीर कृपाल ! मैं ने पहिले ही कहा था। यह भाई नही है मेरा काल है।

व्याख्या : वही बात हुई। सुग्रीव वालि का एक घूँसा भी नही सह सके। घूँसे की चोट क्या हुई मानों वज्र गिरा। सुग्रीव विकल होकर भाग निकले कि कही दूसरा घूँसा न चला दे। नही तो प्राण ही जाता रहेगा। वालि बड़ा बलवान् था। परन्तु सुग्रीव की गति बड़ी तीव्र थी। सम्पूर्ण भुवन में वालि इनका पीछा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



करता रहा। पर इन्हें पाया नहीं। ये रामजी के पास पहुँच गये। बोले कि आप रघुवीर हैं। वालि पुर के बाहर आपके सामने आगया और आपने प्रतिज्ञा की थी कि एक बाण से ही मार दूँगा। सो कुछ न हुआ। आप कृपाल है। इतना बड़ा वज्र मुझ पर गिरा। आपने कृपा न की। यदि कहिये कि लड़ाई तो कुछ हुई ही नही। यदि तुम दुर्बल पड़ते तो मैं मारता। इस पर सुग्रीव कहते हैं कि वह भाई तो है नही। मेरा काल है। काल से कौन लड़ाई है। किसी भाँति उसके प्रहार से जीता बच गया। सुग्रीव के हृदय से : वालि परम हित जासु प्रसादा वाला भाव बिल्कुल मिट गया। अब वह अपनी बात को वापस लेते हैं और पहिले कही हुई बात को स्मरण दिलाते है और उसका वध चाहते हैं। यहाँ शुद्धापन्हुति अलङ्कार है। भाई होना सच्ची बात है। उसे काल के आरोप से छिपाते हैं।

एक रूप तुम भ्राता दोऊ। तेहि भ्रम ते नहिं मारेउँ सोऊ ॥
कर परसा सुग्रीव सरीरा। तनु भा कुलिस गई सब पीरा ॥३॥

अर्थ : तुम दोनों भाई एक रूप के हो। इसी भ्रम से मैंने नही मारा। सुग्रीव के शरीर पर हाथ फेरा। उनका शरीर वज्र हो गया। सब पीड़ा जाती रही।

व्याख्या : पहिले से ही राय निश्चित हो चुकी है कि सुग्रीव जाकर गरजें। जब वह सुग्रीव को मारने के लिए पुर के बाहर निकलें और सुग्रीव को मारने लगे तब रामजी बाण मारें। अब इसी बात का उलाहना सुग्रीवजी देते हैं। प्रभु ने उत्तर दिया कि मै नही जानता था कि तुम दोनों भाइयों मे इतना सादृश्य है। मुझे मालूम न पड़ा कि इन दोनों में कौन तुम हो ? कौन वालि है ? इसी भ्रम से मैंने प्रहार न किया कि कही तुम्हे चोट न बैठ जाय। प्रभु अपराध करते समय ही अपराधी को दण्ड देना चाहते हैं। अतः सुग्रीव को फिर युद्ध के लिए भेजते हैं और मुष्टि प्रहार से इस समय भी पीड़ित हैं। अतः प्रभु ने सुग्रीव के शरीर पर हाथ फेरा। उसका प्रभाव कहते हैं कि सुग्रीव के शरीर में बड़ा भारी परिवर्तन हुआ। प्रकृति के आपूर से शरीर वज्र हो गया। सुग्रीवजी वालि के प्रहार को सहन करने मे समर्थ हो गये। तृण को कुलिश और कुलिश को तृण करने का प्रभु को व्यसन है। यथा : अम्भोधिः स्थलतां स्थलं जलधिता धूलीलवः शैलता शैलोमृत्कणतां तृणं कुलिशतां वज्रं तृणक्षीणताम्। अग्निः शीतलतां हिमो दहनतामायाति यस्येच्छया लीलादुर्ललिताद्भुतव्यसनिने तस्मै नमो ब्रह्मणे।

मेली कंठ सुमन कै माला। पठवा पुनि बल देइ बिसाला ॥
पुनि नाना बिधि भई लराई। बिटप ओट देखहिं रघुराई ॥४॥

अर्थ : गले मे फूलों की माला डाल दी और विशाल बल देकर फिर भेजा। तब तो नाना प्रकार से युद्ध हुआ। पेड़ की आड़ से रघुनाथ देख रहे थे।

व्याख्या : वालि के गले मे इन्द्र की दी हुई माला रहती थी। जिससे उसकी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रक्षा होती थी। प्रभु ने सुग्रीव के गले मे उसको रक्षा तथा पहिचान के लिए फूल की माला डाल दी। इस भाँति सुग्रीव की प्राण रक्षा का उपाय तो हो गया। फिर भी बिना तुल्य बल हुए युद्ध कैसे हो सकता है। इसलिए बलप्रद भगवान् ने विशाल बल देकर सुग्रीव को युद्ध के लिए भेजा।

अब सुग्रीव लडने योग्य हुए। वज्र के समान मुष्टि प्रहार सहने लगे और वज्र के समान मुष्टि प्रहार करने लगे फिर तो नाना प्रकार से युद्ध हुआ। पत्थर से, वृक्ष से, दाँतो से, नखो से लडाई हुई उमा बिभीषनु रावनहि सनमुख चितव कि काउ। सो अवभिरत काल ज्यौं श्री रघुबीर प्रभाउ। वालि जिसे तृण समझते थे। आज वही वज्र समान होकर युद्ध कर रहा है। वालि को समझने के लिए यथेष्ट अवसर दिया गया। वालि को समझना चाहता था कि जो सुग्रीव मेरा एक घूँसा नही सह सका और भाग खडा हुआ। वही वहाँ से बल लेकर लौटा है। जो इस प्रकार से मुझसे युद्ध करने मे समर्थ हो रहा है। पर उसने इस घटना से लाभ न उठाया। बडा भारी समरधीर था। एक महीने तक बराबर राक्षसो से गुफा मे लडता रहा। अत लडता चला गया। प्रभु विटप के ओट से इस सग्राम का दृश्य देख रहे हैं। दो बार विटप के ओट से देखने का प्रसङ्ग मानस मे आया है। एक बार तो तरु ओट से सुतीक्ष्ण मुनि की प्रेमोन्मत्त चेष्टा देखा। तथा . अबिरल प्रेम भगति मुनि पाई। प्रभु देखहि तरु ओट लुकाई। और इस बार वालि का रण कौशल देख रहे हैं।

दो बहु छलबल सुग्रीव करि, हिय हारा भय मानि।
मारा बालि राम तब, हृदय माँझ सर तानि ॥८॥

अर्थं बहुत छल बल करके सुग्रीव ने भयभीत होकर साहस छोड दिया। तब रामजी ने बाण तानकर वालि के हृदय मे मारा।

व्याख्या सुग्रीव लडे तो परन्तु वालि के महा बल और रणधीर होने की जो धाक सुग्रीव पर जमी थी वह न गयी। युद्ध म बल से अधिक छल से ही काम लेते रहे। इसी से कवि ने बलछल न कहकर छलबल कहा। अन्त मे साहस छोड दिया। गिर गये। वालि ने तुरन्त उनके सिर को दक्षिणवाम भुजमूल प्रविष्ट ग्रीवसलग्न×गुणेचिह्नाकृतियुक्त अपने पैरो से बाँध लिया। इस दाँव को वालिबन्ध दाँव कहते हैं। तब से आज तक गुरु शिष्य परम्परा से इस दाँव को मल्ल लोग जानते हैं। इस दाँव से प्रतिभट को बाँधना निषिद्ध है। अखाडे मे यह दाँव नही होने पाता। इस दाँव से बँध जाने पर लडाई समाप्त हो जाती है। फिर तो प्रतिभट को कोई सूई से छेद छेद कर मार सकता है और उसका किया कुछ भी नही हो सकता। सुग्रीवजी जव इस प्रकार बँध गये तब रामजी ने वालि के हृदय मे तान कर बाण मारा। क्योंकि एक ही बाण से मारने की प्रतिज्ञा थी। हृदय बडा भारी मर्म है। इस पर चोट आने से कोई बच नही सकता। वालि का हृदय कलुषित था।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुग्रीव का वध करके उसकी स्त्री को अकण्टक होकर भोगना चाहता था। अतः उसके हृदय को शस्त्रपूत किया।

परा बिकल महि सर के लागें। पुनि उठि बैठ देखि प्रभु आगें॥
स्यामगात सिर जटा बनायें। अरुन नयन सरचाप चढ़ायें॥१॥

अर्थ : बाण के लगते ही पृथ्वी पर विकल होकर गिरा। फिर उठकर बैठा तो प्रभु को सामने देखा। श्याम शरीर जटा रक्खे हुए लाल नेत्र और बाण तथा चढाया हुआ धनुष था।

व्याख्या : बाण के लगते ही विकल होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। परन्तु बड़ा धीर है। रामजी के बाण से हृदय छिद जाने पर भी धैर्य धारण करके उठ बैठा। इतने में तो रामजी सामने आगये। गोली लगने पर शेर की भयङ्करता बहुत बढ जाती है। बाण लगने पर कही सुग्रीव की कथा समाप्त न कर दे। इस शङ्का से प्रभु बाण के साथ ही वहां पहुँच गये। वालि देखता है कि प्रभु सामने खडे हैं। प्रभु के बाण के आघात से हृदय शुद्ध हो गया। चोट भूलकर शोभा देखने लगा। स्याम सरीर सुभाय सुहावन हैं। सिर पर जटा बँधी है। कही युद्ध में आँख के सामने जटा न आजाय। नेत्र लाल हो रहे हैं। सुग्रीव के चोट खाने पर क्रोध है। हाथों मे बाण है और चढ़ाया हुआ धनुष है। इस शङ्का से कि राजा का वध सुनकर वानरी सेना धावा न बोल दे। रौद्र रस की झांकी है।

पुनि पुनि चितै चरन चित दीन्हा। सुफल जन्म माना प्रभु चीन्हा॥
हृदय प्रीति मुख बचन कठोरा। बोला चितै राम की ओरा॥२॥

अर्थ : बार बार देखकर चरणो मे चित्त लगाया। प्रभु को पहिचाना और अपने जन्म को सफल माना। हृदय मे प्रीति है। पर रामजी की ओर देखकर कठोर वचन बोला।

व्याख्या : अपार शोभा को वालि बार बार देख रहा है। अन्त मे चरणों मे चित्त लगाया। क्योंकि वे ही भक्तो के परम ध्येय हैं। जौ कदाचि मोहि मारही तौ पुनि होउँ सनाथ। वही बात सामने आयी। सनाथ हो जाने से अपने जन्म को सफल माना। हनुमान्‌जी ने उत्तर पाकर प्रभु को चीन्हा। सुग्रीवजी ने परीक्षा लेकर चीन्हा। बालि ने देखकर चीन्हा। दर्शन हो गया। शस्त्रपूत भी हो ही गया। अब दो दो बातें भी हो जायें। इसलिए हृदय मे प्रीति रहते हुए भी कठोर वचन बोला। उसके साथ कठोर व्यवहार हुआ है। इसलिए कठोर वचन बोला। अथवा कठोर वचन से उत्तर पाने के लिए कठोर वचन बोला। प्रभु के कठोर वचन कहने से वाग्जनित सब पाप नष्ट हो जायँगे। बाण लगने से शारीरिक पाप नष्ट हुए। अरुण नयन करके देखने से मानसिक पाप नष्ट हो गये। यथा : निर्बान दायक क्रोध जाकर। अब कठोर वचन भी सुनकर सर्वथा निष्पाप हो जांय। अथवा मानी है इसलिए कठोर वचन बोला। सुग्रीव की ओर न देखा। रामजी की ओर देखकर बोला अर्थात् आप उत्तर दें।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



धरम[1] हेतु अवतरेउ गोसाँई। मारेहु मोहि व्याध की नाँई॥
मैं बैरी सुग्रीव पियारा। अवगुन कवन नाथ मोहि मारा॥३॥

अर्थ : हे गोस्वामिन् हे हृषीकेश! धर्म के लिए तो आपने अवतार लिया और मुझे व्याध की भाँति मारा। मैं बैरी हूँ सुग्रीव प्यारा है? मेरा कौन दोष है जो प्रभु ने मुझे मारा?

व्याख्या : गोस्वामी अर्थात् हृषीकेश सम्बोधन करके द्योतित करता है कि मैं पहिचानता हूँ कि आप ईश्वर हैं। अतः आप की प्रीति जीवमात्र पर है। धर्मग्लान्य-*धर्माभ्युत्थाननिवृत्तिपूर्वकधर्मसंस्थापनार्थं आप अवतीर्ण हुए हैं। निरपराध किसी* को वध करना अधर्म है। तिस पर व्याध की भाँति औचट प्रहार करना वध के प्रकार में भी अत्यन्त घोरतर प्रकार है। जो धर्म के संस्थापन के लिए अवतीर्ण हो वही यदि ऐसा अधर्म करे तो क्या वह न्यायकारी कहा जा सकता है? पुनः ईश्वर के लिए तो सब समान है। यथा : सब मम प्रिय सब मम उपजाये। तब मैं बैरी हो गया। सुग्रीव प्यारा कैसे हो गया। अर्थात् यह भी आप नही कह सकते कि सुग्रीव को तुम दुःख देते थे। इसलिए तुम्हे मारा, क्योंकि सुग्रीव मेरा प्यारा है। तब मालिक होकर आप ने किस दोष से मुझे मारा?

अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ कन्या सम ये चारी॥
इन्हहि कुदृष्टि बिलोकै जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई॥४॥

अर्थ : रे शठ! सुन। छोटे भाई की स्त्री, बहन, पतोहू और बेटी ये चारों समान है। इन्हे जो बुरी दृष्टि से देखता है उसके वध मे अधर्म नही है।

व्याख्या : भगवान् ने वालि की अभिलाषा को पूर्ण किया, कठोर वचन बोले। वालि को शठ कहते हैं। भाव यह कि यहाँ अधर्म करके अब तू धर्म की बातें करता है? अच्छा धर्मशास्त्र सुन ले। धर्मशास्त्र ने अनुजवधू, भगिनी, सुतनारी और कन्या को समान बतलाया। इन पर कुदृष्टि कैसी? कुदृष्टि रखनेवाले का दण्ड ही वध है। इसमे अधर्म कुछ नही। कुदृष्टि की बात दूर गयी। तू तो अनुजवधू मे रत है और इसीलिए अनुज का वध चाहता है। ऐसे पापी को व्याध की भाँति मारना ही दण्ड है। अतः मैंने न्याय किया।

मूढ तोहि अतिसय अभिमाना। नारि सिखावनु करसि न काना॥
मम भुज बल आश्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी॥५॥

अर्थ : रे मूढ! तुम्हे बड़ा भारी अभिमान है। तुमने स्त्री की सीख भी नही सुनी। उसे मेरे भुजबल का आश्रित जानकर भी तुमने मार डालना चाहा।

व्याख्या : धर्मशास्त्र विषयक प्रश्न किया था। उसका उत्तर हो चुका। अब

---

१. यह असगति अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ा रामजी को ईश्वर मानकर जो प्रश्न किया था उसका उत्तर देते हैं। तुझको ानना चाहिए कि मैं श्रोत्र का भी श्रोत्र हूँ। जब स्त्री सिखावन तुम्हे देती थी मैं हाँ से सुनता था। तुमने उस सिखावन पर ध्यान नही दिया। स्त्री ने तुमसे स्पष्ट ह दिया था कि वह राम लक्ष्मण के बल पर लड़ने को ललकार कर रहा है। तब ो तुम्हे समझना चाहता था कि अब सुग्रीव का अपमान करना ईश्वर के भुजबल ा अपमान करना है। पर तुमने उसका कुछ ख्याल नही किया। तुमने उसे मार ही ालना चाहा। तुमने अपनी आँखो देखा कि सुग्रीव भागकर वृक्ष की ओट मे गया ौर वहाँ से माला धारण करके युद्ध के लिए आया है। तब तुमने क्या नही जाना क मैं वृक्ष के ओट मे हूँ। फिर भी तुम शरण मे नही आये। उसे मार डालना ो चाहा। तुमने मुझसे अभिमान किया। तुम अधम अभिमानी हो। तुमने मेरे ाश्रित को मेरी आँखो के सामने मार डालना चाहा। इतनी बडी धृष्टता ?

दो. सुनहु राम स्वामी सन, चल न चातुरी मोरि।
प्रभु अजहूँ मै पापी, अंतकाल गति तोरि ॥९॥

अर्थ : हे राम सुनो। स्वामी के साथ मेरी चतुराई नही चली। प्रभो ! क्या अब भी मैं पापी हूँ। जब कि अन्त समय आपकी ही गति प्राप्त हुई।

व्याख्या : वालि जैसे बलवान् थे वैसे चतुर भी थे। अपनी समझ से ऐसा प्रश्न किया था जिसका उत्तर न हो। परन्तु ऐसा पर्याप्त उत्तर मिला, जिसका प्रत्युत्तर नही है। अनुजवधू रत के लिए व्याध की नाईं वध ही यथार्थ दण्ड है। वध दण्ड तो कुदृष्टि से देखनेवाले के लिए है। यह हुआ भागवतापराध और भगवत् अपराध यह हुआ कि भगवान् के आश्रित को उनके सामने वध की चेष्टा करके भगवत् शक्ति का अनादर किया। यह उत्तर ऐसा सटीक था कि वालि को मान लेना पडा। अतः कहता है कि मेरी चतुराई स्वामी से नही चली। क्योंकि वे सर्वत्र रमण करनेवाले हैं। कोई गुप्त भेद उनसे छिपा नही है। स्त्री ने मुझे समझाया। वह भी इन्हे मालूम हो गया। ऐसे से चतुराई क्या चलेगी ? परन्तु एक प्रश्न और है। अभी प्रभु का क्रोध मेरे पर से गया नही है। आँखें लाल हैं। सो क्या अब भी मुझमे पाप शेष है। अन्त समय में तो अब आपकी ही गति है। क्या प्रभु के अस्त्र से भी मैं पवित्र न हो सका ? जब कि प्रभु प्रतिज्ञा है : सनमुख होइ जीव मोहि जबही। जन्म कोटि अघ नासहि तबही।

सुनत राम अति कोमल बानी। बालि सीस परसेउ निज पानी ॥
अचल करौ तनु राखहु प्राना। बालि कहा सुनु कृपा निधाना ॥१॥

अर्थ : अति कोमल वाणी सुनते ही रामजी ने वालि के सिर पर हाथ फेरा। और कहा कि : तुम प्राण रक्खो। मैं तुम्हारे शरीर को अचल करता हूँ। वालि ने कहा कि कृपानिधान ! सुनो।

व्याख्या : हृदय मे तो प्रीति थी। परन्तु चतुराई दिखलाता हुआ पहिले

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कठोर वचन कहे। उत्तर भी कठोर मिला। कठोरता में भी पार नही पा सका। यह तो। कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि। परम बुद्धिमान् वालि ने तुरन्त अति कोमल वाणी का प्रयोग किया। तब उत्तर न मिलकर रक्षा का हाथ सिर पर फिरा। यथा : कर सरोज प्रभु मम सिर धरेऊ। दीन दयाल सकल दुख हरेऊ सीतल सुखद छाँह जेहि कर की मेटति पाप ताप माया। निसि बासर तेहि कर सरोज की चाहत तुलसिदास छाया। प्रभु ने कहा कि तुमको मारे जाने का कष्ट है तो मैं तुम्हारे विदलित शरीर को अचल करता हूँ परन्तु तुम जीना चाहो। भाव यह कि तुमने सदा मेरे हाथ से वध चाहा। अब वध करने पर उलाहना देते हो। तो मैं तुम्हारे शरीर को अचल किये देता हूँ। पर तुम भी तो जीना चाहो। तुम्हे तो अब भी भीतर से मेरे हाथ से शरीर छोडने को अभिलाषा है। वालि ने कहा कि सरकार कृपानिधान हैं। अपनी प्रतिज्ञा मेरे लिए छोडना चाहते है। पर मेरी बात सुनिये।

जन्म जन्म मुनि जतन कराँही। अंत राम कहि आवत नाँही ॥
जासु नाम बल संकर कासी। देत सबहि सम गति अबिनासी ॥२॥
मम लोचन गोचर सोइ आवा। बहुरि कि प्रभु अस बनहि बनावा ॥३॥

अर्थ जन्म जन्म मुनि चेष्टा करते है। पर अन्त में राम कहते नही बनता। जिसके नाम के बल से शिवजी काशी में सबको समान अविनाशी गति देते हैं वही मेरे नेत्रों का विषय हो रहा है। प्रभो! क्या फिर ऐसा सयोग बनाने से बन सकेगा ?

व्याख्या : भावनानुसार ही गति होती है। अन्तकाल मे जिस भाव को स्मरण करता हुआ जीव शरीर त्याग करता है उसी को प्राप्त होता है। क्योकि सदा वह वैसी भावना करता था। यथा 'य य वापि स्मरन् भाव त्यजत्यन्ते कलेवरम्। तन्तमेवैति कौन्तेय सदा तद्भावभावित'। तदनुसार जन्म जन्म से मुनि यत्न करते हैं कि अन्त समय राम नाम स्मरण कर सकें। परन्तु अन्त में ईश्वर का स्मरण इतना कठिन है कि राम नाम मुख से नही निकलता। इसीलिए काशी की महा महिमा है कि काशी मे मरण के समय मुमुक्षु के दक्षिण कर्ण में भगवान् शङ्कर राम नाम का उपदेश देते हैं। उस उपदेश के प्रभाव से प्राणी को ज्ञान हो जाता है और उसको अविनाशी गति अर्थात् मुक्ति प्राप्त होती है। यह मुक्ति का सदावर्त काशी मे राम नाम के बल से ही चलता है। वही राम आज मरने के समय मेरी आँखो के सामने है। यदि मै इस समय प्राण न त्याग करूँ तो फिर क्या मरने के समय आपका आँखो के सामने ला सकना किसी के वश की बात है ?

छं. [1]सो नयन गोचर जासु गुन नित नेति कहि श्रुति गावहीं।
जिति पवन मन गो निरस करि मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं ॥१॥

---

[1] १. यह हरिगीतिका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मोहि जानि अति अभिमान बस प्रभु कहेउ राखु सरीरही ।
अस कवन सठ हठि काटि सुर तरु बारि करहि बबूरही ॥२॥
अब नाथ करि करुना बिलोकहु देहु जो बर माँगऊ ।
जेहि जोनि जनमउँ कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ ॥३॥
यह तनय मम सम बिनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिए ।
गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिए ॥४॥

अर्थ · वह आँखो का विषय हो रहा है जिसके गुणो को सदा नेति नेति[1] कह कर वेद गान करता है। मन और प्राण को जीतकर तथा इन्द्रियो को नीरस करके जिसे मुनि कभी ध्यान मे पा जाते हैं। मुझे अति अभिमान के वश जानकर प्रभु शरीर रखने के लिए कह रहे हैं। पर ऐसा शठ कौन होगा जो कल्पवृक्ष को काटकर हठपूर्वक बबूर के लिए उसकी बाड लगावे। हे नाथ! अब करुणा करके देखिये और जो माँगता हूँ वह वर दीजिये कि जिस योनि मे मैं कर्मवश जन्म ग्रहण करूँ उसमे रामपद मे अनुराग हो। यह मेरा बेटा विनय और बल मे मेरे समान है। हे कल्याणप्रद प्रभो! इसे स्वीकार कीजिये और हे सुरनरनाथ! इसकी बाँह पकड कर अपना दास बनाइये।

व्याख्या . वेदने ब्रह्मको मूर्तामूर्त से परे बतलाया है। छिति जल पावक मूर्त द्रव्य हैं और गगन समीर अमूर्त द्रव्य है। ब्रह्मनित्य इन दोनो से परे हैं। अमूर्त द्रव्य ही नयनगोचर नही हो सकता। तब मूर्तामूर्त से परे के नयनगोचर होने की कथा ही क्या है। आज मेरा ऐसा भाग्योदय हुआ है कि वह ब्रह्म मेरे नयनगोचर हो रहा है। आज मुझ पर ईश अनुकूल हैं। यथा · नयन विषय मो कहँ भयउ सो समस्त सुख मूल। सबइ सुलभ जगजीव कहँ भये ईस अनुकूल। वेद नेति नेति कह-कर यही बतलाता है कि न वह स्थूल है और न सूक्ष्म है। हठयोग मे प्राण को जय करके मन का जय किया जाता है और राजयोग मे मन का जय करके प्राण पर विजय पाते हैं। अर्थात् दोनो को मन और प्राण पर जय प्राप्त करना होता है। मन बडा चञ्चल और दुर्निग्रह है और प्राण को वश करना सिंह को वश करना है। सो इन दोनो को वश करके इन्द्रियो से हटाकर अन्तर्मुख होकर स्थितप्रज्ञ मुनि ध्यान करते है। फिर भी जो ध्यान म नही आते। कभी एक झलक आजाती है। यथा · मुनि जेहि ध्यान न पावहिं नेति नेति कह बेद। उनका मुझे प्रत्यक्ष दर्शन हो रहा है। फिर भी प्रभु जो मुझसे कह रहे हैं · अचल करौं तनु राखहु प्राना। सो मुझे अति अभिमानवश जानकर मुझमे देहाभिमान अत्यन्त प्ररूढ जानकर कह रहे हैं। मैं जैसा प्रभु ने कहा अभिमानी भी हूँ और शठ भी हूँ। पर ऐसा नही हूँ कि

१ यहाँ तुल्ययोगिता (द्वितीय) अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इतने बडे हानि लाभ को न समझ सकूँ। संसार मे यही नियम है कि बबूल को काटकर आम की रक्षा के लिए उसकी बाड़ बनाते हैं। क्योंकि आम काम की वस्तु है और बबूल किसी काम का नहीं होता। वह बाड लगाने के ही काम में आता है। जिससे आम के छोटे पौधे को पशु चर न जावें। यथा : आप नही कछु काम के डार पात फल फूल। औरन को रोकत फिरें रहिमन पेंड़ बबूल। सो आम क्या मुझे तो अन्त के समय आपका दर्शन हो रहा है यह सुयोग कल्पवृक्ष है। इससे यथार्थ लाभ न उठाकर इसका उपयोग मैं शरीर की रक्षा के लिए नही कर सकता। शरीर बबूल है किसी काम का नहीं। इसे तो एक दिन जाना ही है। यथा : रहिहि न अन्तहुँ अधम सरीरू। अतः ऐसे सुयोग को हाथ से शरीर रक्षा के लिए जाने देना कल्पवृक्ष को काटकर बबूल की बाड़ लगाना है।

आप नाथ हैं। आप जो शरीर रखने को कह रहे हैं। इससे मालूम होता है कि अभी मुझ पर पूरी करुणा नहीं हुई। इसलिए प्रार्थना करता हूं कि करुणा की दृष्टि से मुझे देखिये। मैं इस शरीर को बचाने के लिए वर नही मांगूंगा। इस समय इसका परित्याग मुझे परम इष्ट है। परन्तु नाथ वर देने को प्रस्तुत हैं। इसलिए दूसरा वर जो अभीष्ट है उसे मांगता हूँ। वह यह है कि जो जो कर्म मैने किये हैं उनके फलो से मै बचना नहीं चाहता। मुझे मुक्ति भी नही चाहिए। मुझे कर्मानुसार शरीर मिले। पर जो शरीर मिले उसमे मुझे आपके चरणो मे अनुराग सदा बना रहे। भाव यह कि प्रभु तो अनेक प्रकार के शरीर धारण करते हैं। यथा : मीन कमठ सूकर नर हरी। वामन परसुराम बपुधरी। ईश्वर स्वतन्त्र है। वह माया द्वारा अपने इच्छानुकूल शरीर धारण करता है। जीव परतन्त्र है वह अपने कर्मानुसार अविद्या द्वारा शरीर धारण करता है। मेरा दूसरा जन्म कर्मानुसार किसी योनि मे होगा। सम्भव है कि उस समय प्रभु भी अपने इच्छानुकूल कोई दूसरा शरीर धारण करें। पर मेरा अनुराग इस राममूर्ति मे बना रहे। मेरी अव्यभिचरित भक्ति इस राममूर्ति मे हो। अपना कल्याण कर लेने के बाद अङ्गद की ओर देखा।

उसे रोते हुए देखकर उसे सुरनरनाथ प्रभु को समर्पण कर रहा है। भाव यह कि सुग्रीव सेवा नही कर सकेगा। इसमे बल और विनय यथेष्ट नही है। यह मेरा बेटा बल और विनय मे मेरे तुल्य है। मै तो चला सेवा न कर सका। पर : आत्मा वै पुत्रनामासि। यह मेरी आत्मा है। यह सेवा करेगा। सुग्रीव से इसे भय है। इसकी बाँह पकडकर अपना दास बनाइये। यह कहकर अङ्गद को रामजी के गोद मे डाल दिया। यथा : मरती बेर नाथ मोहि बाली। गयउ तुम्हारेहि कोछे घाली।

दो. रामचरन दृढ प्रीति करि, बालि कीन्ह तनु त्याग।
सुमन माल जिमि कंठ ते, गिरत न जानै नाग ॥१०॥

अर्थ : रामजी के चरणो मे दृढ प्रीति करके वालिने इस भाँति शरीर का

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



त्याग किया जैसे मतवाले हाथी को अपने गले की फूल की माला के गिरने का पता न चले।

व्याख्या : पहिले अपना कल्याण किया। तब पुत्र का कल्याण किया। फिर प्राणत्याग के समय पुत्र मे मनोवृत्ति के जाने को अशुभ समझकर मन को फिर मोड़कर राम चरणो मे लगा दिया और प्रेम उधर ही दृढ कर लिया। राम मे प्रेम के दृढ कर लेने से मरने मे कुछ भी आयास न हुआ। रामचरण के दृढ प्रेमी, स्नेहसुरा से छके हुए, मतवाले हाथी के समान हो जाते हैं। उनका देहाभिमान इतना मिट जाता है कि शरीर उनके लिए फूल की माला हो जाती है। जिस भाँति मतवाले हाथी को पता नही चलता कि उसके गले की फूल की माला कब और कहाँ गिरी। उसी भाँति प्रेमसुरा से छके हुए वालिको पता ही न चला कि उसका शरीर कब छूटा।

राम बालि निज धाम पठावा। नगर लोग सब व्याकुल धावा ॥
नाना बिध बिलाप कर तारा। छुटे केस न देह सँभारा ॥१॥

अर्थ : रामजी ने वालि को अपने धाम भेज दिया। नगर के लोग व्याकुल होकर दौडे। नाना भाँति से तारा विलाप करने लगी। उसके बाल छूट गये। देह की सँभाल नही रह गयी।

व्याख्या : कल्पवृक्ष ने चाहा हुआ फल दिया। रामजीने वालि को अपने धाम भेज दिया। वालि ने माँगा था : जेहि जोनि जनमौ कर्म वस तहँ रामपद अनुरागऊँ। अतः सायुज्य मुक्ति नही हुई। पर कर्म बन्धन से मुक्त करके अपना धाम दिया, जहाँ जाकर कोई लौटता नही। यथा : यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम।

१ सुनत बालि क्रोधातुर धावा : यह वालि की तेजस्विता है।

२ मुठिका मारि महा धुनि गर्जा : यह वालि का बल है।

३. बहु छलबल सुग्रीव करि हिय हारा भयमानि : यह वालि का रण पाण्डित्य है।

४. पुनि उठि बैठ देख प्रभु आगे : यह वालि का धैर्य है।

५. पुनि पुनि चितय चरन चित दीन्हा : यह वालि की भक्ति है।

६. सफल जनम माना प्रभु चीन्हा : यह वालि का ज्ञान है।

७. हृदय प्रीति मुख बचन कठोरा। बोला चितय राम को ओरा : यह वालि का प्रागल्भ्य है।

८. अस कवन सठ हठि काटि सुरतरु वारि करई बबूरही : यह वालि का विवेक है।

९ गहि बाँह सुर नर नाह आपन दास अंगद कीजिये : यह वालि की नीतिज्ञता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



१०. राम चरन दृढ प्रीति करि बालि कीन्ह तन त्याग : यह वालि की सावधानता है। और

११.१२. राम वालि निज धाम पठावा : यह वालि का भाग्य है। नगर लोग सब व्याकुल धावा : यह वालि की प्रजापालकता है।

वालि के स्त्री का नाम तारा है। वध का समाचार पाकर वह चली आयी। नाना प्रकार से विलाप करने लगी। रोना, छाती पीटना, सिर पीटना, शव पर गिर पड़ना, उसको जीवित की भाँति सम्बोधन करना। रामजी से अपने वध के लिए प्रार्थना आदि नाना विध विलाप के अन्तर्गत है। नगर के लोग व्याकुल हैं। तारा अत्यन्त व्याकुल है। विलाप मे ज्ञान धैर्य और लज्जा नही रह जाती। नाना विधि विलाप से ज्ञान का अभाव, केश के छूटने से धैर्य का अभाव और देह के सँभाल न रहने से लज्जा का अभाव दिखलाया।

**तारा बिकल देखि रघुराया। दीन्ह ज्ञान हरि लीन्ही माया ॥**
**छिति जल पावक गगन समीरा। पंच रचित यह अधम सरीरा ॥२॥**

अर्थ : तारा को विकल देखकर रघुनाथ जीने उसे ज्ञान दिया और माया हर लिया। पृथ्वी जल तेज वायु और आकाश इन पाँचो से बना हुआ यह शरीर अत्यन्त अधम है।

व्याख्या : रघुनाथजी की कृपा अघानेवाली कृपा नही है। वालि पर कृपा किया। उसके पुत्र अङ्गद पर कृपा किया। अब विकल देखकर उसकी स्त्री तारा पर करते है। विषाद योग होने पर ही ज्ञानोपदेश की परिपाटी देखने मे आती है। संसार का बीज शोक मोह है। यह ज्ञान से ही नष्ट होता है। अत: सरकार ने तारा को ज्ञान दिया और माया हरण कर लिया। यहाँ माया का अर्थ अविद्या है और ज्ञान का अर्थ विद्या है। अतस्मिन् तद्‌बुद्धि: अर्थात् जो वस्तु जैसी नही है उसे वैसी जानना अविद्या है और उसके ठीक स्वरूप को जानना : वस्तुस्वरूपावधारण विद्या है। यथा : चेतन और जड़ विरुद्ध स्वभाववाली दो पृथक् वस्तुएँ हैं। चेतन का धर्म दूसरा और जड का धर्म दूसरा है। अत चेतन मे जड का अवभास होना अथवा जड़ मे चेतन का अवभास होना अविद्या है। विवेक पूर्वक दोनो के स्वरूप का ठीक ठीक ज्ञान होना विद्या है। सो सरकार की कृपा से तारा की अविद्या जाती रही और विद्या की प्राप्ति हुई। जिस उपदेश द्वारा तारा का कल्याण हुआ उसे कहते हैं—

पृथ्वी, अप्, तेज, वायु और आकाश से ही सृष्टि हुई है। अत: शब्द स्पर्श, रूप, रस और गन्ध की अनुभूति ही ससार की अनुभूति है। शरीर भी इन्ही से बना है। इसमे जो कठिन है वह पृथ्वी है। जो द्रव है वह जल है। जो उष्ण है वह तेज है। जो सञ्चार करता है वह वायु है और जो पोला है वह आकाश है। ज्ञानेन्द्रियाँ और कर्मेन्द्रियाँ भी इन्ही से उत्पन्न हैं। अस्थि, चर्म, नाडी, रोम, माँस,

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पृथ्वी के अंश हैं। मूत्र, श्लेष्म, जल, शुक्र और स्वेद जल के अंश हैं। क्षुधा, तृषा, आलस्य, मोह और मैथुन अग्नि के अंश हैं। प्रचारण, विलेखन, उन्मेष, निमेषादि वायु के अंश हैं। काम, क्रोध, लोभ, मोह और भय आकाश के अंश हैं और शब्द स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि भी आकाशादि भूतों के गुण हैं। अतः यह शरीर कृतक : बना हुआ होने से अनित्य है। मलायतन होने से अशुचि है। भोगायतन होने से दुःख रूप है। महाभूतों का समवाय होने से जड है। अतः इसे अति अधम कहा।

प्रगट सो तनु तव आगे सोवा। जीव नित्य केहि लगि तुम्ह रोवा॥
उपजा ज्ञान चरन तब लागी। लीन्हेसि परम भगति बर मागी॥३॥

अर्थ : यह शरीर प्रगट है। तुम्हारे आगे सोया हुआ है और जीव तो नित्य है। तुम किसके लिए रोयी। ज्ञान उपजा तब चरणों में सिर नवाया और परम भक्ति का वर माँग लिया।

व्याख्या : शरीर ही प्रकट है। जीव तो सदा अव्यक्त है। यथा : अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्य्योऽयमुच्यते। सो वह अति अधम शरीर तुम्हारे सामने सोया : निश्चेष्ट पडा है। यही इसकी प्रकृति है। जीव तो इसके विरुद्ध स्वभाववाला है। वह तो नित्य शुचि आनन्दमय तथा चेतन है। अतः दोनों में से किसी के लिए भी शोक करना नहीं बनता : सरकार जब बोलने लगे तो तारा रोना बन्द करके सावधान होकर सुनने लगी। अतः रोवा भूतकाल की क्रिया का प्रयोग किया।

यह सरकार के वचन का सामर्थ्य है कि अति संक्षिप्त उपदेश से ही अज्ञान का नाश हो गया। अज्ञान का नाश ही ज्ञान का उपजना है। तब चरणों पर गिरना कहकर शिष्य की कृतकृत्यता दिखलाया। ज्ञान होने पर भी बहुत जन्मों के बाद कहीं ज्ञानी भगवत् शरण में जाते हैं। यथा : बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान् मां प्रपद्यते। अतः परम भक्ति का वर उसने सरकार से माँग लिया। क्योंकि : सबकर फल हरि भगति भवानी।

उमा दारु योषित की नाईं। सबहिं नचावत राम गोसाईं॥
तब सुग्रीवहि आयसु दीन्हा। मृतक कर्म बिधिवत सब कीन्हा॥४॥

अर्थ : हे उमा! कठपुतली की भाँति सब को राम गोसाईं नचाते हैं। तब रामजी ने सुग्रीव को आज्ञा दी। उन्होंने विधिवत् सब मृतक कर्म किया।

व्याख्या : क्षण भर पहिले तारा शोक मोह से छाती कूटती थी और क्षण भर में भक्ति वरदान माँगकर कृतकृत्य हो गयी। इस पर महादेवजी उमा से कहते हैं कि जिस भाँति सूत्रधार जैसे चाहता है अपनी कठपुतलियों को नचाता है उसी भाँति राम गोसाईं सबको नचाते हैं। शिवजी ज्ञान घाट के वक्ता हैं। दो ही विभाग

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पदार्थों[1] का मानते हैं एक जड़ और दूसरा चेतन। उनके मत से चेतन एक है जिसे ब्रह्म कहते हैं। उससे अतिरिक्त सब जड़ हैं। यथा : मिलल भल एक भरोसवा। कठपुतली अस हम सब नाची करम जाल में फँस के। हम सब कहँ तौ प्रगट नचावहुँ आप बैठि भलगोसवा। हम सबकै तौ जड़ में गिनती चेतन तुमहीं एक। तब कैसे हमहन के प्रभु जी लागि सकै गुन दोसवा : देवस्वामी। अतः उन्होने जीवों की जड़ कठपुतली से उपमा दी। उपासक आत्मा परमात्मा का भेद मानते हैं। इसलिए उपासना घाट केवल भुसुण्डीजी ने : नट मर्कट इव सबहि नचावत। राम खगेस वेद अस गावत। कहकर जीवों की उपमा चेतन मर्कट से दी। यथा : ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। भ्रामयन् सर्वभूतानि यन्त्रारूढानि मायया। जड़चेतन के पृथक्त्व के ज्ञान होने पर तारा ने भगवदाश्रय ग्रहण किया।

तारा के शान्त हो जाने पर सुग्रीव को आज्ञा दिया कि विधिवत् मृतककर्म सब करो। सुग्रीव को आज्ञा देने का भाव ही यह है कि अब तुम राजा हो। मरणान्तानि वैराणि। मरने के साथ ही वैर समाप्त हो जाता है। अब वह बन्धु है। विधि के साथ उसके दाहादि संस्कार सम्पन्न करो। सुग्रीव ने वैसा ही किया।

## ४८. कपितिलक प्रसंग

राम[2] कहा अनुजहि समुझाई। राजु देहु सुग्रीवहि जाई॥
रघुपति चरन नाइ करि माथा। चले सकल प्रेरित रघुनाथा॥५॥

अर्थ : रामजी ने छोटे भाई को समझाकर कहा कि जाकर सुग्रीव को राज दो। रघुपति के चरणों मे माथा झुकाकर सब रघुनाथजी से प्रेरित होकर चले।

व्याख्या : युद्ध में मरे हुए के लिए सद्यः शौच है। इसलिए दाह संस्कार के बाद ही राज्य देने की आज्ञा दी। रामजी ने लक्ष्मणजी को समझाकर कहा।

सौंपि गयउ निज सुत हमहिं मरन समय कपिराज।
कीजिय नृप सुग्रीव कहँ अंगद कहँ जुवराज॥

राज काज सब कछु करिहि जब अंगद मतिमान।
प्रजा वर्ग में होयगो तब सन्तोष महान॥

बहुत दिन से सहिरह्यौ दुख दुखिया सुग्रीव।
सुख विलसिहि निश्चन्त ह्वै पाइहि शान्ति अतीव॥

किये नीति अनुसरण यह सबही कह सुख होय।
विजयानँद सोइ कीजिये अनुचित कहै न कोय॥

---

१. चेत्यचितोर्नतृतीयम्—शा० सू० २ अ० ४० सू० चेत्य और चित् से भिन्न कोई तीसरा पदार्थ नहीं है।

२. ४८ वां प्रसङ्ग कपितिलक प्रारम्भ हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रामजी की आज्ञा पाकर उनके चरणो म सिर नवाकर उनकी प्रेरणा से सब चले। जो व्याकुल होकर दौडे आये थे वे भी शान्त भाव से चल।

दो लछिमन तुरत बोलाए, पुरजन बिप्र समाज।
राजु दीन्ह सुग्रीव कहुँ, अगद कहुँ जुवराज ॥११॥

अर्थ लक्ष्मणजी ने तुरन्त नगरवासियो को और ब्राह्मण समाज को बुलाया। सुग्रीव को राज्य और अङ्गद को युवराज पद दिया।

समझाने के अनुसार ही लक्ष्मणजी ने प्रजावर्ग को बुलाया विप्र समाज प्रजा वर्ग मे नही है। अत उनका पृथक् निर्देश किया ब्राह्मण समाज की अभिषेक के कृत्य के लिए भी आवश्यकता थी। अत उन्हे भी बुलाया। सुग्रीव को राजतिलक दिया और अङ्गद का यौवराज्य के लिए अभिषिक्त किया। लक्ष्मणजी ने सब कार्य शीघ्रता से किया। क्योंकि उस समय सरकार की सेवा म कोई नही था वालि की भावना थी कि रघुनाथ समदर्शी हैं। सो विचार कर दखिये तो माल्म होता है कि रामजी ने दोनो के साथ एक सा व्यवहार किया।

| सुग्रीव के साथ व्यवहार | वालि के साथ व्यवहार |
|---|---|
| जब सुग्रीव राम कहुँ देखा। | पुनि पुनि चितै चरन चित दीन्हा। |
| अतिसय जन्म धन्य करि लेखा। | सफल जन्म माना प्रभु चीन्हा। |
| करपरसा सुग्रीव सरीरा। | बालि सीस परसा निज पानी। |
| तेहि सर हतौं मूढ कहुँ काली। | सुनु सुग्रीव मैं मारिहौं बालिहि एकै बान। |
| अचल करौं तन राखहु प्राना। | भय देखाइ लै आवहु तात सखा सुग्रीव। |
| प्रतिज्ञा छोड रहे हैं। | यहाँ भी प्रतिज्ञा छोडा। |
| राज दीन्ह सुग्रीव कहुँ। | अगद कहुँ जुवराज। |

उमा राम समहित जगमाँही। गुरु पितु मातु बन्धु प्रभु नाँही ॥
सुर नर मुनि सबकै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती ॥१॥

अर्थ हे उमा! राम सा हित ससार म गुरु, पिता, माता, बन्धु या प्रभु कोई नही है। देवता मनुष्य और मुनि सबकी यह रीति है कि स्वार्थ के लिए प्रीति करते हैं।

व्याख्या ये ही पांच कल्याण करनेवाले हैं। राखै गुरु जौ कोप बिधाता। सेवक सुत पति मातु भरोसे। रहै असोच बनै प्रभु पोसे। तथा होहिं कुठाय सुबन्धु सहाये। परन्तु वे भी राम के समान हित नही है। ये लोग भी अत्यन्त बहिर्मुख का परित्याग करते हैं। पर किसी अवस्था म जोव का रामजी परित्याग नही करते। यथा

कानन भूधर बारि बयारि महा बिष ब्याधि दवा अरि घेरे।
सकट कोटि जहाँ तुलसी सुत मातु पिता हित बन्धु न नेरे॥

U366

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



राखिहै राम कृपालु तहाँ हनुमान से सेवक हैं जेहि केरे।
नाक रसातल भूतल मे रघुनायक एक सहायक मेरे॥
जबही जमराज रजायसु ते मोहि लै चलिहैं भट बाँधि नटैया।
तात न मात न स्वामी सखा सुत बन्धु बिसाल बिपत्ति बँटैया॥
साँसति घोर पुकारत आरत कौन सुनै चहूँ ओर डँटैया।
एक कृपालु तहाँ तुलसी दसरथ को नन्दन बदि कटैया॥
जहाँ जमजातना घोर नदी भर कोटि जलच्चर दन्त टेवैया।
जहँ धार भयंकर वार न पार न बोहित नाव न मीत खेवैया॥
तुलसी जहँ मातु पिता न सखा नहि कोउ कहूँ अवलम्ब देवैया।
तहाँ बिनु कारन राम कृपालु बिसाल भुजा गहि काढ लेवैया॥
जहाँ हित स्वामि न सग सखा वनिता सुत बन्धु न बाप न भैया।
काय गिरा मन के जन के अपराध सबै छल छाडि छमैया॥
तुलसी तेहि राम कृपाल बिना दूजो कौन है दारुन दु ख दमैया।
जहाँ सब सकट दुर्घट सोच तहाँ मेरो साहिब राखै रमैया॥

यहाँ मातृ पितृ शब्द का तद्भव रूप पितु मातु दिया हुआ है। उहत्वादिपु इस सूत्र से ऋ का उत्व होकर मातु और पितु शब्द सिद्ध हुआ।

दैवी सम्पत्तिवाले तीन ही हैं सुर नर और मुनि। इनकी यह रीति है कि स्वार्थ के लिए ही प्रीति करते हैं। भुशुण्डिजी कहते है जाते कछु निज स्वारथ होई। तापर ममता कर सब कोई। माता पिता भी स्वार्थ रत हैं। सबकी प्रीति अर्थ से है। व्यर्थ प्रीति कोई क्यो करे। परन्तु हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम तुम्हार सेवक असुरारी।

**बालि त्रास व्याकुल दिन राती। तन बहुब्रन चिन्ता जर छाती॥**
**सोइ सुग्रीव कीन्ह कपि राऊ। अति कृपाल रघुबीर सुभाऊ॥२॥**

अर्थ: जो बालि के डर से दिन रात विकल रहता था। शरीर मे अनेक घाव बने रहते थे और चिन्ता से छाती जला करती थी उस सुग्रीव को बन्दरो का राजा बना दिया। रघुवीर का स्वभाव बडा ही कृपालु है।

व्याख्या: जिस सुग्रीव की यह अवस्था थी कि बालि के डर से दिन रात व्याकुल रहते थे। ऐसा पाछे पडा रहता था कि जहाँ आप नही पहुँच सकता था वहाँ बलवान बन्दरो को सुग्रीव को मारने के लिए भेजता था। यद्यपि सुग्रीव ने उन सबों को मारा। पर प्रत्येक युद्ध मे चोट तो आ ही जाती थी, एक चोट सूखने न पाया तब से दूसरा लगा तीसरा लगा। इस भाँति शरीर मे बहुत से घाव बने रहते थे और चिन्ता से कलेजा जला करता था। शारीरिक और मानसिक दोनो प्रकार की वेदना से रात दिन कभी भी चैन नही रहता था। किसी ने तो सुग्रीव की सहायता नही की। किसी को तो उसकी दुरवस्था पर दया आती। पर नहो आयी। रामजी ने उस

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पर ऐसी दया की कि वही सुग्रीव बानरो का राजा हो गया। दुख तो दूर कर ही दिया। राजा भी बना दिया। स्वभाव से ही सरकार अति कृपाल हैं।

जानतहू अस प्रभु परिहरही। काहे न विपति जाल नर परही ॥
पुनि सुग्रीवहि लीन्ह बोलाई। बहु प्रकार नृप नीति सिखाई ॥३॥

अर्थ : जानते हुए भी जो ऐसे प्रभु का परित्याग करते है ऐसे मनुष्य विपत्ति जाल मे क्यों न पडे। फिर सुग्रीव को बुला लिया और बहुत प्रकार से राजनीति सिखलाया।

व्याख्या : जो न जानता हो उसकी बात दूसरी है। अनजानत की चूक क्षमा की जाती है। परन्तु जो जानता है और जान बूझकर ऐसी चूक करता है कि ऐसे समर्थ और दयाल स्वामी को नही भजता उसका विपत्ति जाल म पड़ना प्राप्त : वाजिब है। उसके विपत्ति मे न पडने का कोई कारण नही है। जो विपत्ति को काटने वाला है उसी का परित्याग कर दिया। अत: उनका विपत्ति जाल मे सदा पड़ा रहना युक्तियुक्त है। राजतिलक पाने पर सुग्रीव को स्वय प्रणाम करने के लिए आना उचित था। सो बुलवाने पर आये। प्रभु ने देखा कि सुग्रीव राजनीति मे बड़े कच्चे हैं। इसलिए बुलाकर बहुत प्रकार से राजनीति सिखायी। पहिले मित्रधर्म सिखाया था। अब राजनीति सिखाते हैं। जिसमें सुग्रीव का राज अचल रहे। यथा : राज कि रहै नीति बिनु जाने।

कह प्रभु सुनु सुग्रीव हरीसा। पुर न जाउँ दस चारि बरीसा ॥
गत[1] ग्रीषम बरषा रितु आई। रहिहौं निकट सैल पर छाई ॥४॥

अर्थ : प्रभु ने कहा कि कपिराज! सुनो। मै चौदह वर्ष पुर मे नही जाता। गरमी का मौसम गया। बरसात आयी। यही निकट ही पर्वत पर टिक रहूँगा।

व्याख्या : आप ही कहते हैं कि हे कपिराज! मै स्वय तुम्हारे पुर में चलकर सब कारबार तुम्हारा सँभाल देता। परन्तु पिता के वचन से मै पुर मे नही जाता। निषादराज ग्राम मे रहते थे तो उनसे कहा : ग्राम बास नहिं उचित मोहि। विभीषणजी नगर मे रहते थे तो उनसे कहा : पिता बचन मैं नगर न आऊँ। सुग्रीवजी पुर के रहनेवाले हैं। इसलिए इनसे कहते हैं कि पुर मे चौदह वर्ष के लिए न जाने का मेरा व्रत है। गरमी के दिन बीत गये बरसात आ गयी। अब रास्ते बन्द हो जायँगे। सीताजी के खोजने का काम इस बीच में नही हो सकता। मैं यही निकट के पर्वत पर रहूँगा। आवश्यकता पड़ने पर मिल लेना। चौदह न कहकर दसचारि कहने का यह भाव है कि चौदह वर्ष मे से अधिक दिन बीत गये हैं। थोडे ही शेष हैं।

अंगद सहित करहु तुम राजू। संतत हृदय धरेहु मम काजू ॥
जब सुग्रीव भवन फिरि आये। राम प्रबरषन गिरि पर छाये ॥५॥

1. ४९वाँ प्रसङ्ग प्रवर्षण वास प्रारम्भ हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

अर्थ अङ्गद के साथ तुम राज करना और मेरे काम को सदा स्मरण रखना। तब सुग्रीव घर लौट आये और रामजी प्रवर्षण पर्वत पर ठिके।

व्याख्या राज कार्य कोई ऐसा न करना जिससे अङ्गद की सम्मति न हो सब कार्यो मे अङ्गद सम्मिलित रहे। जिसम अङ्गद को पिता के मरने का अति कष्ट न हो। वर्षा समाप्त होते ही मेरे कार्य मे हाथ लगा देना और मन म उसे सदा बनाये रहना। सम्भव है कि इस बीच म ही कुछ पता लग जाय सुग्रीवजी बुलाने पर गये। बात समाप्त होते ही घर लौट आये। गृहसुख से बहुत दिन से वञ्चित हैं अत घर लौटने की बडी उत्कण्ठा है। श्री रामजी अपने कथनानुसार प्रवर्षण पर्वत पर जाकर ठहर गये।

दो प्रथमहि देवन्ह गिरिगुहा, राखी रुचिर बनाइ।
राम कृपानिधि कछु दिन, बास करहिंगे आइ ॥१२॥

अर्थ पहिले ही से देवताओ ने पर्वत की गुफा को सुन्दर बना रक्खा था। यह जानकर कि कृपा के सागर रामजी कुछ दिनो तक यहाँ आकर वास करेंगे।

व्याख्या जहाँ प्रभु जाते हैं देवता लोग वहाँ निवास स्थान की रचना कर देते हैं। केवल पञ्चवटी म राक्षसो के भय से नही बनाया। यहाँ गुफा तो पहिले से ही प्रवर्षण गिरि पर थी। पर देवताओ ने उसे सँवारकर सुन्दर सुखद बना दिया। वे जानते हैं कि रामजी कृपा के समुद्र हैं हमारी सेवा अवश्य स्वीकार करेंगे। कुछ दिन वर्षा म यही ठहरेंगे।

सुन्दर बन कुसुमित अति सोभा। गुञ्जत मधुप निकर मधु लोभा॥
कन्दमूल फलपत्र सुहाये। भये बहुत जबते प्रभु आये ॥१॥

अर्थ फूला हुआ सुन्दर वन अत्यन्त शोभित हुआ। भौरो का समूह मधु के लोभ से गुञ्जार कर रहा था। सुन्दर कन्दमूल फल और पत्र जब से प्रभु आये तब से बहुत पैदा होने लगे।

व्याख्या वन जब कुसुमित हो और भौंरे मकरन्द लोभ से गुञ्जार करते हो तभी वन की शोभा है। वह वन स्वभाव से ही सुन्दर था। पर जब वह कुसुमित हुआ और भौंरे गुञ्जार करने लगे तब अत्यन्त शोभित हुआ। यथा तहाँ जाइ देखी बन सोभा। गुञ्जत चञ्चरीक मधु लोभा। ग्रीष्म ऋतु बीत चली परन्तु इस वन मे अब भी वसन्त बरत रहा है। इस वन म कन्दमूल फल और पत्ते भी सुन्दर हैं। प्रभु के आ जाने से उनकी बहुतायत हो गयी। प्रभु के पदार्पण से स्थल मे उर्वरा शक्ति बढ गयी। वृक्षादि म जीवनी शक्ति आगयी।

देखि मनोहर सैल अनूपा। रहे तहँ अनुज सहित सुर भूपा॥
मधुकर खग मृग तनु धरि देवा। करहिं सिद्ध मुनि प्रभु की सेवा ॥२॥

अर्थ मन को हरण करनेवाले अनुपम पर्वत को देखकर सुरभूप रामजी

ankurnagpal108@gmail.com



अपने अनुज लक्ष्मणजी के साथ वहाँ रहे। भौंरे पक्षी और मृग का रूप धरकर देवता सिद्ध और मुनि प्रभु की सेवा करने लगे।

व्याख्या ऐसे सुन्दर बन मे एक पर्वत था। उसी के गुफा को प्रभु के ठहरने योग्य समझकर देवताओ ने सँवार रक्खा था। इसीलिए उसे अनूप कहते हैं अथवा उस पर्वत पर झरने और सरोवर आदि बहुत थे। इसलिए उसे अनूप कहते हैं। वर्षा की ऋतु आयी थी। अत प्रभु ने पर्वत पर ठहरना ही उचित माना। सुग्रीवजी से भी कह चुके हैं रहिहौं निकट सैल परछाई। देवताओ की सेवा स्वीकार कर रहे हैं। इसलिए कवि ने सुरभूपा कहा। सीताजी का हरण हो चुका है। इसलिए अनुज सहित रहना कहा।

देवता लोग भौरे पक्षी और मृग का रूप धारण करके तथा सिद्ध और मुनि अपने स्वाभाविक रूप से प्रभु की सेवा कर रहे है अथवा भौंरे के रूप से देवता पक्षी के रूप से सिद्ध और मृग के रूप से मुनि प्रभु की सेवा करते हैं। देवता सिद्ध और मुनि पूज्य हैं। प्रभु ने नरावतार धारण कर रक्खा है। मर्यादा पुरुषोत्तम उन पर पूज्य दृष्टि रखते हैं। उनसे साक्षात् सेवा न लेगे। इसलिए रूपान्तर से सेवा कर रहे है। यथा मृग बिलोकि खग बोलि सुबानी। सेवहिं सकल राम प्रिय जानी। मधुकर निकर भेरि सहनाई।

मगल रूप भयउ बन तबते। कीन्ह निवास रमापति जबते॥
फटिक सिला अति सुभ्र सुहाई। सुख आसीन तहाँ द्वौ भाई॥३॥

अर्थ जब से रमानाथ ने वहाँ निवास किया तब से वन मङ्गल रूप हो गया। स्फटिक की शिला अत्यन्त स्वच्छ और सुन्दर थी। उस पर दोनों भाई सुखासन से बैठते थे।

व्याख्या - माता का आशीर्वाद है कि जौ पितु मातु कहेउ बन जाना। तौ कानन सत अवध समाना। उसी का साफल्य दिखाते हुए कहते हैं कि जहाँ प्रभु का विश्राम होता है वही वन मङ्गलमय हो जाता है। अथवा प्रभु रमानिवास हैं। जहाँ जाते हैं वहाँ लक्ष्मी छा जाती हैं। उस समय जिस वन के पर्वत पर प्रभु ने डेरा दिया वह वन मङ्गलमय हो गया।

जिस शिला पर प्रभु आसीन होते है उसी की शोभा स्फटिक शिला सी हो जाती है अथवा जब देवताओ ने पर्वत के गुफा को प्रभु के रहने के लिए सँवारा तो बाहर बैठने के लिए स्फटिक की शिला भी रख दी। बडा घोर निर्जन वन है। यहाँ मुनियो का भी आश्रय सन्निकट नही है। उन लोगो के भी आने जाने की कोई बात नही है। अत चित्रकूट की भाँति वेदिका की आवश्यक्ता नही थी। भगवती भी साथ नही। केवल दोनो भाइयो को ही एक साथ बैठना है। इसलिए स्फटिक शिला ही यथेष्ट थी। जब नित्यकृत्य से निवृत्त होते थे तो दोनो भाई उसी पर आसीन होते थे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

## ५०. वर्षा शरद वर्णन प्रसङ्ग

कहत अनुज सन कथा अनेका। भगति बिरति नृप नीति विवेका ॥
बरषा काल मेघ नभ छाये। गर्जत लागत परम सुहाये ॥४॥

अर्थ : भाई से भक्ति, वैराग्य, राजनीति और विवेक की अनेक कथाएँ कहा करते थे। वर्षाऋतु मे मेघ आकाश मण्डल मे घिर गये। गरजने के समय बड़े सोहावने लगते थे।

व्याख्या : अनधिकार चर्चा शास्त्र से निषिद्ध ठहरायी गयी। पराये की चर्चा करना अथवा काम कथा जिसे गपशप कहते हैं पाप है। नियम यह है कि जब फुरसत रहे : कृतक्षण हों तब संस्कार को जाग्रत् रखने तथा दृढ करने के लिए शास्त्रीय चर्चा करे। तदनुसार प्रभु जब फुरसत से बैठते हैं तो शास्त्रीय चर्चा करते हैं। पञ्चवटी मे जब ठहरे थे तब उस समय भी एहि बिधि गये कछुक दिन बीती कहत बिराग ग्यान गुन नीती। शास्त्र चर्चा ही होती थी इस समय भी वही हो रही है।

पहिले कह चुके हैं गत ग्रीषम बर्षा रितु आई। सो आगयी। आकाश मे बादल घिर आये। वर्षा काल मे मेघ की शोभा होती है। असमय के मेघ शोभित नही होते और जब वर्षा काल के मेघ गर्जन करने लगते हैं तो उनकी बडी शोभा बढ जाती है। यह कवि की उक्ति है। विरही को पावस ऋतु महा दु:खदायक हो जाता है। प्रभु इस समय विरही हैं। अत: उनके मुख से दूसरे प्रकार से वर्णन कराना है।

दो. लछिमन देखु मोरगन, नाचत बारिद पेखि।
गृही बिरति रत हरष जस, बिष्णु भगत कहुँ देखि ॥१३॥

अर्थ : हे लक्ष्मण ! देखो मोर लोग मेघ को देखकर नाच रहे हैं। जैसे वैराग्य में लगा हुआ गृहस्थ विष्णुभक्त को देखकर हर्षित हो उठता है।

व्याख्या : रामजी छोटे भाई लक्ष्मण से कहते हैं कि देखो लक्ष्मण मेघ को देखकर मोरगण ऐसे प्रसन्न हुए कि नाच उठे। दृढ आशा बँध गयी कि पानी पडेगा। जल ज्यो दादुर मोर भये पीन पावस प्रथम। इसी भाँति उदासीन गृहस्थ जिन्हे वैराग्य हो चला है *और गृहस्थी का त्याग नही किया है* उनकी शास्त्र में उदासीन संज्ञा है : भी विष्णु भक्त को देखकर हर्षातिरेक से नाचने लगते हैं। उन्हे भी दृढ आशा हो जाती है कि अब 'राम चरित वर वारि की वर्षा होगी। वेद पुराण रूपी समुद्र से रामचरित रूपी श्रेष्ठ जल लेकर ये महात्मा गर्ज गर्ज कर वर्षा करेंगे।

भाव यह कि अपनी प्रिया से युक्त होने से मोरगण मेघागम से इस प्रकार हर्षित है। परन्तु वियोग के कारण मुझे हर्ष नही होता। यहाँ सांसारिक वस्तुओ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



की अवस्तुता कही। वही वस्तु एक के लिए सुखदायक है दूसरे के लिए दुःखदायक है। अतः उसका वास्तविक रूप अनिर्वचनीय है। इससे विराग कहा और उदासीन गृही का विष्णु भक्त के दर्शन से हर्ष कहकर भक्ति दिखलाया।

घन घमंड नभ गर्जत घोरा। प्रिया हीन डरपत मन मोरा ॥
दामिनि दमक रह न घन माँही। खल कै प्रीति यथा थिर नाँही ॥१॥

अर्थ : आकाश मे बादल घुमड़ कर घोर गर्जन कर रहे हैं। प्रियाहीन होने से मेरा मन डर रहा है। बिजली की चमक बादल में ठहरती नहीं। जैसे खल की प्रीति स्थिर नही रहती।

व्याख्या : घमण्ड होने से ही लोग गरजते हैं। ऊँचे चढ कर बैठते हैं। यहाँ बादल को भी जल का घमण्ड हो गया है। अतः आकाश पर चढकर घोर गर्जन कर रहा है। मोरगण तो नाचते हैं। पर मोर मन तो भयभीत हो रहा है। उसे डर है कि अब तप्त तेल की वर्षा होगी। यथा : बारिद तपत तेल जनु बरिसा।

बिजली की चमक से सारा आकाश चमक उठता है। पर वह चमक ठहरती नहीं। तुरन्त अलक्षित हो जाती है। यही दशा खल की प्रीति की है। कभी अनुराग का प्रकाश बडे जोरो से हो जाता है पर वह ठहरता नही। स्वार्थ समाप्त होते ही समाप्त हो जाता है। घन और मोर दूर हैं। फिर भी प्रेम चिरस्थायी है। घन और दामिनि एकत्र हैं पर प्रीति स्थिर नही है। यथा : बहु विधि खल सीतहि समुझावा। पुनः सुनत वचन पुनि मारन धावा।

यहाँ प्रकृति की शोभा का वर्णन करते हुए कवि ने भौतिक जगत् की घटनाओ का इतना सुन्दर सादृश्य मानसिक जगत् की घटनाओ के साथ वर्णन किया है कि सहृदय व्यक्ति ही उसका ठीक रसास्वादन कर सकता है।

दामिनि दमक रह न घन माही से नीति कहा।

बरषहिं जलद भूमि नियराये। जथा नवहिं बुध बिद्या पाये ॥
बूँद अघात सहहिं गिरि कैसे। खल के बचन संत सह जैसे ॥२॥

अर्थ : भूमि के निकट आये हुए बादल बरसते हैं जैसे विद्या पाकर पण्डित नम्र हो जाते हैं। बूँदो की चोट पर्वत उसी भाँति सह रहे हैं जैसे खल के वचनो को सन्त सहते हैं।

व्याख्या : बादल आये बिजली चमकी। अब वर्षा होने लगी। तब कहते हैं कि बरसनेवाले बादल जलाधिक्य के कारण पृथ्वी की ओर लटक आये। दृष्टान्त देते हैं कि जैसे विद्या के अधिक हो जाने से पण्डित विनम्र हो जाते हैं। तभी उनसे जगत् का कल्याण होता है। कहा भी है : विद्या ददाति विनयम्। बिना विनय के विद्वान् को बिना जल का मेघ समझना चाहिए। यह नीति है।

पहली छूटी हुई बूँदो की चोट को कोई सह नही सकता। पर्वत ही उसे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है। हिंसा से भी धर्म होता है : यह बात किसी प्रकार युक्तिसगत नही है। अग्नि मे हवि जलाने से फल होगा यह भी बच्चो की सी बात है। अनेक यज्ञो द्वारा देवत्व लाभ करके यदि इन्द्र को शमी आदि काष्ठ ही भोजन करना पड़ता है तो इससे तो पत्ते खानेवाला पशु ही अच्छा है। यदि यज्ञ मे बलि किये हुए पशु को स्वर्ग होता है तो यजमान अपने पिता को क्यो नही मारता। यदि किसी अन्य पुरुष के भोजन से अन्य की तृप्ति होती है तो विदेश जानेवाले पिता के लिए पुत्र श्राद्ध क्यो नही कर दिया करते। खाद्य पदार्थ के ढोने का परिश्रम क्यो किया जाता है? यह सब अन्धश्रद्धा है इसकी उपेक्षा करनी चाहिए और अपने श्रेय साधन के लिए जो कुछ मैंने कहा है उसमे रुचि करना चाहिए एवं पाखण्डवाद हरी हरी घासो की भाँति सन्मार्ग को ढँक लेता है। अविवेकी पुरुष विषय के लोलुप पशु की भाँति उसी को चाह करते हैं। अन्त मे ऐसी दुर्दशा की अवस्था को प्राप्त होते हैं कि उन्हे कोई रास्ता नही सूझता। आँखो देखते हैं कि इस रास्ते के कारण देश के देश का सर्वनाश हुआ चाहता है। पर वे ऐसी परिस्थिति मे पड जाते है कि वे उसे छोड नही सकते। इस पाखण्डवाद के बढ जाने से प्रचाररहित होकर सद्ग्रन्थ गुप्त हो जाते है।

कवि कहते हैं कि यह बरसात भर की बात है। थोडे ही दिनो मे वे घास नष्ट हो जाती हैं। मार्ग स्वच्छ हो जाता है और सद्ग्रन्थ फिर प्रकट हो जाते हैं।

इस भाँति श्रावण का वर्णन समाप्त हुआ। एक दोहे मे श्रावण का वर्णन करके अब दूसरे दोहे मे भाद्रपद का वर्णन करते हैं। भक्ति, विरति, नृपनीति, विवेक की कथा कहते थे। बीच बीच मे वर्षा की घटनाओ का उल्लेख दृष्टान्त रूप मे करते जाते थे। कवि ने उनको एकत्रित करके एक साथ लिख दिया है।

**दादुर धुनि चहुँ दिसाँ सोहाई। बेद पढहिं जनु बटु समुदाई॥**
**नव पल्लव भये बिटप अनेका। साधक मन जस मिले बिबेका॥१॥**

अर्थ : मेढको की ध्वनि चारो दिशाओ मे सुशोभित हो रही है। जैसे ब्रह्मचारियो का समूह वेद पढ रहा हो। अनेक वृक्ष नव पल्लव युक्त होकर सुशोभित हैं। जैसे विवेक के मिलने से साधक के मन की शोभा होती है।

व्याख्या : भाद्रपद मे तीज के लगभग हस्त नक्षत्र मे सामवेदियो का उपाकर्म होता है। तालाबो के चारो ओर वेद ध्वनि होती है। गुरुओ के साथ ब्रह्मचारी लोग वेद पढते हैं। किसी ओर कोई मन्त्र पढा जाता है किसी ओर दूसरा ही मन्त्र बोला जाता है। सब मिलकर एक ध्वनि हो रही है। उसी को मेढको के बोलने से उपमित कर रहे है। नही तो मेढक तो पावस के आरम्भ मे जल के गिरते ही बोलने लगते हैं। जहाँ केवल गुरु लोग ही एकत्र होकर वेद पढते है : वहाँ कवि कहते हैं : भवन वेद धुनि अति मृदु बानी। जिमि खग मुखर समय जनु सानी। वेद मे तथा पुराण मे भी वेदध्वनि की उपमा दादुर ध्वनि से दी हुई है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पानी पड़ने पर कुछ दिनो मे बहुत से वृक्ष पल्लवित हो जाते हैं। उनकी शोभा हो जाती है। उसी की उपमा विवेकयुक्त साधक के मन से देते हैं। साधक अर्थार्थी भक्त को कहते हैं। यथा : साधक नाम जपहिं लय लाये। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाये : अर्थार्थी को विवेक नही होता। वे तो अणिमादिक सिद्धि के लिए साधन करते हैं। उनकी शोभा नही क्योकि उनका साधन फल के लिए होता है। यदि उन्हे विवेक की प्राप्ति हो जाय तो वे वही साधन ईश्वर प्रीत्यर्थ करने लगते हैं और तब उनके साधन की शोभा होती है। यथा : जो कछु करइ कर्म मन बानी।। वासुदेव अर्पित नृप ग्यानी। इससे विवेक का उपदेश दिया।

अर्क जवास पात बिनु भएऊ। जस सुराज खल उद्यम गएऊ ॥
खोजत कतहुँ मिलिइहि धूरी। करै क्रोध जिमि धर्महि दूरी ॥२॥

अर्थ : मदार और जवास : हिंगुआ : बिना पत्ता के हो गये। जैसे सुराज में खल के उद्यम नष्ट हो जाते हैं। खोजने से ही कही धूलि मिलेगी। जैसे क्रोध धर्म को दूर कर देता है।

व्याख्या : ग्रीष्म ऋतु कुराज रहा। राजा प्रजा का खूब शोषण कर रहा था। प्रजा के हित पर ध्यान नही करता था। उस समय मदार और जवास रूपी खल खूब हरे भरे हो रहे थे। यथा : बाढे खल बहु चोर जुआरा। जे लम्पट पर धन परदारा। इत्यादि। पावस की झरी लगते ही उनके पत्ते गिर गये। इस भाँति सुराज होते ही खल का उद्यम चला गया। यथा : अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने। मत्सर मान मोह मद चोरा। इनकर हुनर न कौनिउ ओरा। यह राजनीति विषयक उपदेश है।

पावस में धूलि सब कीचड़ में मिल जाती है। नगर मे धूलि मिलनी कठिन हो जाती है वन में कहाँ मिले। कही पर्वत की गुफाओ मे खोजने से मिल जाय तो सम्भव है। इसी भाँति क्रोध आ जाने पर धर्म का कही पता नही लगता। क्रुद्धः पापं न कुर्यात् कः क्रुद्धो हन्याद्गुरूनपि। क्रोधी कौन सा पाप नही करता। वह अपने गुरु को मार सकता है। ऐसे कोई ही महात्मा होते हैं जिनमे क्रोध आने पर भी कुछ धर्म बचा रहे। यथा : बहै न हाथु दहै रिसि छाती। भा कुठार कुठित नृप घाती। यह विरति का उपदेश है।

ससि[1] संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी कइ संपति जैसी ॥
निसि तम घन खद्योत बिराजा। जिमि दंभिन कर मिला समाजा ॥३॥

अर्थ : धान से युक्त पृथ्वी कैसी शोभित है। जैसे उपकारी की सम्पत्ति से शोभा होती है। रात के घने अन्धकार में जुगुनू विशेषरूप से चमक रहे हैं। जैसे दम्भियो का समाज जुट गया हो।

---

१. इ स्वप्नादौ इस सूत्र से य का इ होकर शस्य का ससि रूप सिद्ध हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है। हिंसा से भी धर्म होता है : यह बात किसी प्रकार युक्तिसंगत नही है। अग्नि मे हवि जलाने से फल होगा यह भी बच्चो की सी बात है। अनेक यज्ञो द्वारा देवत्व लाभ करके यदि इन्द्र को शमी आदि काष्ठ ही भोजन करना पड़ता है तो इससे तो पत्ते खानेवाला पशु ही अच्छा है। यदि यज्ञ मे बलि किये हुए पशु को स्वर्ग होता है तो यजमान अपने पिता को क्यों नही मारता। यदि किसी अन्य पुरुष के भोजन से अन्य की तृप्ति होती है तो विदेश जानेवाले पिता के लिए पुत्र श्राद्ध क्यो नही कर दिया करते। खाद्य पदार्थ के ढोने का परिश्रम क्यो किया जाता है? यह सब अन्धश्रद्धा है इसकी उपेक्षा करनी चाहिए और अपने श्रेय साधन के लिए जो कुछ मैंने कहा है उसमे रुचि करना चाहिए एवं पाखण्डवाद हरी हरी घासो की भाँति सन्मार्ग को ढँक लेता है। अविवेकी पुरुष विषय के लोलुप पशु की भाँति उसी को चाह करते हैं। अन्त मे ऐसी दुर्दशा की अवस्था को प्राप्त होते हैं कि उन्हे कोई रास्ता नही सूझता। आँखो देखते हैं कि इस रास्ते के कारण देश के देश का सर्वनाश हुआ चाहता है। पर वे ऐसी परिस्थिति मे पड जाते हैं कि वे उसे छोड़ नही सकते। इस पाखण्डवाद के बढ जाने से प्रचाररहित होकर सद्ग्रन्थ गुप्त हो जाते है।

कवि कहते हैं कि यह बरसात भर की बात है। थोडे ही दिनो मे वे घास नष्ट हो जाती है। मार्ग स्वच्छ हो जाता है और सद्ग्रन्थ फिर प्रकट हो जाते हैं।

इस भाँति श्रावण का वर्णन समाप्त हुआ। एक दोहे मे श्रावण का वर्णन करके अब दूसरे दोहे मे भाद्रपद का वर्णन करते हैं। भक्ति, विरति, नृपनीति, विवेक की कथा कहते थे। बीच बीच मे वर्षा की घटनाओ का उल्लेख दृष्टान्त रूप मे करते जाते थे। कवि ने उनको एकत्रित करके एक साथ लिख दिया है।

दादुर धुनि चहुँ दिसाँ सोहाई। बेद पढ़हिं जनु बटु समुदाई॥
नव पल्लव भये बिटप अनेका। साधक मन जस मिले बिबेका॥१॥

अर्थ : मेढको की ध्वनि चारो दिशाओ मे सुशोभित हो रही है। जैसे ब्रह्मचारियो का समूह वेद पढ रहा हो। अनेक वृक्ष नव पल्लव युक्त होकर सुशोभित है। जैसे विवेक के मिलने से साधक के मन की शोभा होती है।

व्याख्या : भाद्रपद मे तीज के लगभग हस्त नक्षत्र मे सामवेदियो का उपाकर्म होता है। तालाबो के चारो ओर वेद ध्वनि होती है। गुरुओ के साथ ब्रह्मचारी लोग वेद पढते हैं। किसी ओर कोई मन्त्र पढा जाता है किसी ओर दूसरा ही मन्त्र बोला जाता है। सब मिलकर एक ध्वनि हो रही है। उसी को मेढको के बोलने से उपमित कर रहे है। नही तो मेढक तो पावस के आरम्भ मे जल के गिरते ही बोलने लगते हैं। जहाँ केवल गुरु लोग ही एकत्र होकर वेद पढते है : वहाँ कवि कहते हैं : भवन वेद धुनि अति मृदु बानी। जिमि खग मुखर समय जनु सानी। वेद मे तथा पुराण मे भी वेदध्वनि की उपमा दादुर ध्वनि से दी हुई है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पानी पड़ने पर कुछ दिनो में बहुत से वृक्ष पल्लवित हो जाते हैं। उनकी शोभा हो जाती है। उसी की उपमा विवेकयुक्त साधक के मन से देते हैं। साधक अर्थार्थी भक्त को कहते हैं। यथा : साधक नाम जपहिं लय लाये। होहिं सिद्ध अनिमादिक पाये : अर्थार्थी को विवेक नही होता। वे तो अणिमादिक सिद्धि के लिए साधन करते हैं। उनकी शोभा नही क्योंकि उनका साधन फल के लिए होता है। यदि उन्हें विवेक की प्राप्ति हो जाय तो वे वही साधन ईश्वर प्रीत्यर्थ करने लगते हैं और तब उनके साधन की शोभा होती है। यथा : जो कछु करइ कर्म मन बानी।। बासुदेव अर्पित नृप ग्यानी। इससे विवेक का उपदेश दिया।

अर्क जवास पात बिनु भएऊ। जस सुराज खल उद्यम गएऊ ॥
खोजत कतहुँ मिलिइहि धूरी। करै क्रोध जिमि धर्महि दूरी ॥२॥

अर्थ : मदार और जवास : हिंगुआ : बिना पत्ता के हो गये। जैसे सुराज में खल के उद्यम नष्ट हो जाते हैं। खोजने से ही कहीं धूलि मिलेगी। जैसे क्रोध धर्म को दूर कर देता है।

व्याख्या : ग्रीष्म ऋतु कुराज रहा। राजा प्रजा का खूब शोषण कर रहा था। प्रजा के हित पर ध्यान नही करता था। उस समय मदार और जवास रूपी खल खूब हरे भरे हो रहे थे। यथा : बाढ़े खल बहु चोर जुआरा। जे लम्पट पर धन परदारा। इत्यादि। पावस की झरी लगते ही उनके पत्ते गिर गये। इस भाँति सुराज होते ही खल का उद्यम चला गया। यथा : अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने। मत्सर मान मोह मद चोरा। इनकर हुनर न कौनिउ ओरा। यह राजनीति विषयक उपदेश है।

पावस में धूलि सब कीचड़ में मिल जाती है। नगर में धूलि मिलनी कठिन हो जाती है वन में कहाँ मिले। कही पर्वत की गुफाओ में खोजने से मिल जाय तो सम्भव है। इसी भाँति क्रोध आ जाने पर धर्म का कही पता नही लगता। क्रुद्धः पापं न कुर्यात् कः क्रुद्धो हन्याद्गुरूनपि। क्रोधी कौन सा पाप नही करता। वह अपने गुरु को मार सकता है। ऐसे कोई ही महात्मा होते हैं जिनमे क्रोध आने पर भी कुछ धर्म बचा रहे। यथा : बहै न हाथु दहै रिसि छाती। भा कुठार कुंठित नृप घाती। यह विरति का उपदेश है।

ससि[1] संपन्न सोह महि कैसी। उपकारी कइ संपति जैसी ॥
निसि तम घन खद्योत बिराजा। जिमि दंभिन कर मिला समाजा ॥३॥

अर्थ : धान से युक्त पृथ्वी कैसी शोभित है। जैसे उपकारी की सम्पत्ति से शोभा होती है। रात के घने अन्धकार में जुगनू विशेषरूप से चमक रहे हैं। जैसे दम्भियों का समाज जुट गया हो।

---

१. इ. स्वप्नादौ इस सूत्र से य का इ होकर **सस्य** का ससि रूप सिद्ध हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पृथ्वी सबका उपकार करनेवाली है। यथा : सत विटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबनि कै करनी : परन्तु जब वह धान से लहलहाने लगती है तब उसकी शोभा अधिक हो जाती है। क्योंकि जगत् के उपकार की सामग्री उसके पास अधिक हो गयी। इसी भाँति उपकारी की शोभा उसके पास सम्पत्ति आने से होती है। क्योंकि तभी वह उपकार करने मे यथेष्ट समर्थ हो सकता है। यहाँ देशबल से ससि का अर्थ शस्य 'धान : हुआ। चन्द्रमा नही हुआ। शस्य का तद्भवरूप ससि होता है।

भादो के रात की अँधियारी प्रसिद्ध है। उसमे खद्योत विराजमान होते हैं। रात मे राजते हैं और अँधेरी रात मे विराजते हैं। जैसे अविद्यान्धकार मे कही धर्म का नाम नही। केवल दाम्भिक समाज मे धर्म की चमक उसी भाँति दिखाई पडती है जैसे जुगुनू की चमक हो। पेडो पर जब अँधेरी रात को जुगुनू का समाज चमकता है तो एक बार पेड भी स्पष्ट हो जाता है। परन्तु उससे अन्धकार ही बढता है। उस प्रकाश को प्रकाश मे गिनती नही है। इस भाँति अधार्मिक समाज अपने दम्भ से बार बार प्रकाशित होता है। पर उसका दम्भ धर्म नही है। केवल लोगो को धोखा हो जाता है कि धर्म हो रहा है।

महा बृष्टि चलि फूटि कियारी। जिमि सुतंत्र भये बिगरहिं नारी॥
कृषी निरावहिं चतुर किसाना। जिमि बुध तजहिं मोह मद माना॥४॥

अर्थ : जब बडी भारी वर्षा होती है तो मेंड : मर्यादा : टूट जाती है। जैसे अरक्षित होने से स्त्री बिगड जाती है। चतुर किसान खेती को निराते ' घास पात दूर करते हैं। जैसे पण्डित मोह मद मान का परित्याग करते हैं।

व्याख्या : बडी भारी वृष्टि होने से किसान मेंड़ : कियारी . की रक्षा नही कर सकता। ऐसे पानी मे बाहर निकलना कठिन होता है। खेत तक पहुँचना तो और भी कठिन है। अरक्षित होकर कियारी जल का वेग स्वभावत· नही सह सकती। इसी भाँति स्वतन्त्र होकर स्त्रियाँ बिगड जाती है।

स्त्री जाति का शारीरिक सगठन ही ऐसा है कि वे अपनी रक्षा स्वयं करने मे सर्वथा असमर्थ हैं। जो आँखो के होने पर भी उससे काम न लेना चाहे और स्त्री तथा पुरुष को समान बतावे उसे कोई कैसे समझा सकता है। इसीलिए जगत् स्रष्टा का वचन है कि स्थान न होने से प्रार्थयिता न होने से स्त्री मे सतीत्व उत्पन्न होता है। जब सतीत्व उत्पन्न हो गया तब तो वह उसके लिए परमगति तक सुलभ हो जाता है। यथा ' बिनु श्रम नारि परम गति लहई। पतिव्रत धर्म छाड़ि छल गहई। पिता स्त्री की कुमारावस्था मे रक्षा करे। भर्त्ता यौवन मे रक्षा करे। वृद्धावस्था मे पुत्र रक्षा करे। स्त्री मे अरक्षित रहने की योग्यता नही है। उनकी परतन्त्र रूप से सृष्टि ही हुई है। उनका सच्चा सुख पिता पति तथा पुत्र पारतन्त्र्य मे है। स्त्री हृदय के न जाननेवाले सुधारक इस विषय मे भ्रान्त है। यथा :

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पाया न समझ माली गँवार।

क्या प्रेम नेम था वेली मे। क्या क्या गुन थे अलवेली मे॥
वह तरु के ऊपर चढती थी। फैलती फूलती फलती थी॥
जब प्रेम पाश उसने डाला। बँध गया पेड हो मतवाला॥
यह बेलि वृक्ष का दिव्य प्यार। पाया न समझ माली गँवार॥१॥

दोनो ही मिलकर हुए एक। रह गया नही कुछ भी विवेक॥
लू झझा अन्धड वज्रपात। दोनो सहते थे एक साथ॥
तरु के सुख मे वेली निहाल। बेली के दुख मे तरु विहाल॥
दाम्पत्य प्रेम का यही सार। पाया न समझ माली गँवार॥२॥

देखिये बेलि तरु के अधीन। पर बात नहीं यह समीचीन॥
वस्तुत वृक्ष ही पराधीन। वेली के बन्धन कठिन पीन॥
वह व्यापि रही है डार डार। तरु के उर पै करती विहार॥
क्या थी तरु को वह वेलिभार। पाया न समझ माली गँवार॥३॥

है जहाँ प्रेम का राज पाट। फिर कहाँ नेम का ठाट बाट॥
केवल भर्ता है अमित दानि। किस गिनती मे है लाभ हानि॥
जब दुख सुख दो का हुआ एक,। सह सकै प्रेम क्या भेद नेक॥
है नही स्वार्थ का कुछ बिचार। पाया न समझ माली गँवार॥४॥

उसने वेली का लिया पक्ष। समझा अपने को बड़ा दक्ष॥
जब स्वत्व बेलि का अलगाया। आपसी प्रेम को बिलगाया॥
यो बीज फूट का डाल दिया। प्रिय प्रेम पैज पामाल किया॥
वहता फिरता इसको सुधार। पाया न समझ माली गँवार॥५॥

बेली को तरु से हटा दिया,। अपने पैरो पर खडा किया॥
उसको स्वतन्त्रता सिखलाया। पश्चिम का रास्ता बतलाया॥
वह भूल गई अपना स्वभाव। लायी अपने मे वृक्ष भाव॥
पर रह सकती क्या निराधार। पाया न समझ माली गँवार॥६॥

फिर पतित हुई वह बार बार। कैसे कोई सकता सँभार॥
तब हुआ भूमि पर ही पसार। उस पर भी सबका पग प्रहार॥
दुर्दशा गर्त्त मे गिरी जाय। स्वातन्त्र्य पाठ पढ नि सहाय॥
इस भाँति हुआ उपवन उजार। पाया न समझ माली गँवार॥७॥

जिस ओषधि का जो खेत हो उसमे से विजातीय ओषधि को दूर करने : न्यारा करने . को निराना कहते हैं। विजातीय ओषधियो के साथ से धान की उपज भारी पडती है और वह विजातीय ओषधि ऐसी होती है कि आरम्भ मे उसका पहिचानना कठिन होता है। चतुर किसान ही उनके भेद को पहिचानते हैं। वे विजातीय ओषधि को अकुरित होते ही। उखाड कर दूर फेंकते हैं। यह शरीर ही

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



खेत है यथा . इद शरीर कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते इसके किसान मन, वाणी और कर्म हैं। इसमे पाप और पुण्य दो प्रकार के बीज हैं। इनमे से पाप बीज की इतनी बहुतायत है कि वह स्वभाव से ही खेत में पहुँच जाता है और पुण्य का बीज बोने से जमता है। किसान अपने-अपने खेत मे पुण्य बीज बोता है। विचार, क्षमा, सन्तोषादि पुण्य बीज हैं। जब ये बीज अङ्कुरित होते हैं तो इसके साथ ही मोह, मद, मानादि पाप बीज भी अङ्कुरित होते हैं। गँवार किसान अर्थात् असंस्कृत मन वाणी कर्म वाले को दोनो में भेद नही जान पडता। सभी प्रिय मालूम होते हैं। उन्हे साथ ही बढने का सुभीता देने से विचार क्षमा सन्तोषादि पुण्यौषधियाँ मारी पडती हैं। बुध अर्थात् जिनके मन वाणी और कर्म सुसंस्कृत हैं वे इन विजातीय ओषधि मोह मद मान को अङ्कुरित होते ही उखाड फेंकते हैं। क्योंकि बडे हो जाने पर इनका उखाड़ना भी कठिन हो जाता है और तब तक विचार क्षमा सन्तोषादि दुर्बल हो जाते है। यथा : करुणा निधि मन दीख विचारी। उर अकुरेउ गर्व तरु भारी। वेगि सो मैं डारिहौं उखारी। पन हमार सेवक हितकारी। यह विवेकसम्बन्धी उपदेश है।

देखिअत चक्रवाक खग नाही। कलिहि पाइ जिमि धर्म पराही ॥
ऊसर बरषै तृन नहि जामा। जिमि हरिजन हिय उपज न कामा ॥५॥

अर्थ : चक्रवाक पक्षी दिखायी नही पड़ रहे है। जैसे कलियुग को पा कर धर्म भाग जाते है। ऊसर मे वर्षा होने से तृण नही जमता जैसे हरिजन के हृदय मे काम नही उत्पन्न होता।

*व्याख्या :* पावस मे सब पक्षी दिखायी पड़ते हैं। पर चक्रवाक : चकवा नही दिखायी पडते। जैसे कलियुग के प्राप्त होने पर धर्म भाग जाते है। ऊसर मे भी वर्षा होती है पर उसमे तृण नही जमता। जैसे भगवद्भक्त के हृदय मे काम नही उपजता।

पावस मे चक्रवाक दिखायी नही पडते। इसका मतलब यह नही कि वे मर जाते है। केवल उनका प्रचार विरल हो जाता है। वे यहाँ मैदान से कहीं हट जाते हैं। पर्वतादि पर चले जाते हैं। छिपे छिपाये रहते है। इसी भाँति कलियुग आने मे भारतवर्ष मे धर्म का विरल प्रचार रह जाता है। भारतवर्ष मे ही चारो युगो की व्यवस्था है। अतः जहाँ जहाँ युगो की व्यवस्था है वे सभी देश भारतवर्ष के अन्तर्गत हैं। उन देशो मे कलियुग के प्रचार के बढने के साथ ही साथ धर्म की व्यवस्था घटती ही जाती है। कलियुग का पूर्ण प्रचार होने पर कहीं दिखायी नही पड़ता। पर धर्म नष्ट नही होता। *जहाँ या जिस व्यक्ति मे कलियुग का प्रभाव कम* पड़ता है वहाँ और उस व्यक्ति मे किसी रूप या किसी परिमाण मे धर्म रह जाता है। खुले मैदान धर्म का प्रचार नही रह जाता।

हरिजन का अर्थ हरिभक्त है। आज यह कहना पड़ता है कि हरिजन का

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



र्थ अन्त्यज जाति नही है। कुछ लोगो ने देश का कल्याण इसी मे देखा है कि अन्त्यज जाति को हरिजन नाम देकर उस जाति की अस्पृश्यता को अमर कर दें और हरिजन शब्द को अपने मुख्य अर्थ से नीचे गिरा दें। वस्तुत हरिजन शब्द का अर्थ बहुत उदार है। इससे जाति व्यवस्था से कोई सम्पर्क नही है। जो कोई प्राणी भगवद्भक्त हो वह हरिजन है। चाहे वह ब्राह्मण हो चाहे चमार हो। उस शब्द को इतना संकीर्ण कर देना कि वह केवल किसी जाति विशेष का बोधक रह जाय कलियुग के शासन की महिमा है।

हरिजन के मन मे काम की उत्पत्ति नही होती। जिसके मन मे काम की उत्पत्ति हो वह हरिजन नही है। श्री आचार्य चरण कहते हैं कि कामरूपी बीज के लिए हरिजनरूपी क्षेत्र ऊसर है। कैसा ही आलम्बन या उद्दीपन हो पर हरिजन के मन मे काम बीज अङ्कुरित हो ही नही सकता। हरिजन के मन मे काम के लिए उर्वरा शक्ति नही है। वह शक्ति भगवच्चरणो मे लग गयी है।

विविध जन्तु सकुल महि भ्राजा। प्रजा बाढ जिमि पाइ सुराजा॥
जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इन्द्रिय गन उपजे ग्याना॥६॥

अर्थ . पृथ्वी अनेक प्रकार के जन्तुओ से भरी हुई शोभायमान है। जैसे अच्छे राजा को पाकर प्रजा बढती है। जहाँ तहाँ अनेक पथिक थक कर ठहर गये। जैसे ज्ञान के उपजने पर इन्द्रिय गण थक कर अपना कार्य करने मे असमर्थ हो जाते हैं।

व्याख्या · वर्षा होने से अनेक प्रकार के जीव उत्पन्न हो जाते हैं। पृथ्वी क्षुद्र जन्तुओ से भर उठती है। इसी भाँति अच्छे राजा के होने से प्रजा सुखी होती है। उनकी रक्षा होती है। इसीलिए उनको बढोत्तरी होती है। सुख से ही प्राणी उत्पन्न होते हैं और सुख से ही जीते है। आनन्दाद्ध्येव खल्विमानि भूतानि जायन्ते आनन्देन जातानि जीवन्ति। कुराज मे प्रजा दु खी होती है उनकी रक्षा नही होती। इसलिए प्रजा उजड जाती है। यह राजनीति का उपदेश है। बरसात मे पथिक लोग जहाँ के तहाँ थक कर ठहर जाते थे, रास्ता चलना बन्द हो जाता था। नदी-नद के उमडने से और वर्षा की झरी लग जाने से रास्ता चलना कठिन हो जाता था। इस भौतिक उन्नति के समय जब कि इतने साधन बाधाओ के अतिक्रमण के लिए सुलभ है। वर्षा के समय तो रास्ता बन्द ही हो जाता है और जब वे साधन नही थे तब तो ग्राम सीमोल्लघन करना भी अनुचित समझा जाता था। उस समय निरुपाय होकर पथिक जहाँ तक पहुँचे थे वही ठहर जाते थे।

ज्ञान के उत्पन्न होने पर वही गति इन्द्रियो की हो जाती है। नही भोजन करने से भी इन्द्रियाँ अपने अपने विषयो को नहीं ग्रहण करती। परन्तु उन उन विषयो के आनन्द का सस्करण उनमे बना रहता है। पर आत्मदर्शन से वह सस्करण भी जाता रहता है। तब वे विषय ग्रहण मे असमर्थ भी हो जाती हैं। यथा · कर्म कि होहिं सरूपहि चीन्हे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. कबहुँ प्रबल वह मारुत, जहँ तहँ मेघ बिलाहिं।
जिमि कपूत के उपजें, कुल सद्धर्म नसाहिं ॥१५॥

अर्थ : कभी हवा जोर से चलती है और मेघ जहां तहां हट जाते हैं। जैसे कपूत के उपजने से कुल का सद्धर्म नष्ट हो जाता है।

व्याख्या . मेघ को सद्धर्म और कपूत के उपजने को प्रबल मारुत के बहने से उपमित किया है। हमारे यहाँ कपूत सपूत का निर्णय धनोपार्जन के तारतम्य से नही होता था। सब प्रकार से योग्य होने पर भी जिसने कुल धर्म का पालन न किया वह कपूत ही है। इसी से वर्ण सङ्कर की गणना कपूत मे की गयी है। वर्ण सङ्कर पुत्र कुलघ्नो के कुल के नरक के लिए होते हैं। उनके पितरो का पिण्डोदक क्रिया के लुप्त हो जाने से पतन होता है। जिन लोगो द्वारा कुल धर्म और जाति धर्म नष्ट होता है वे सब कुपुत्र है। जो नरक से पितरो की रक्षा करे वही पुत्र है। जिस भाँति प्रबल वेग से वायु के बहने से मेघो का नाश होता है वैसे ही कपूतो के उपजने से कुल के सद्धर्मों का नाश होता है। जो धर्म दूसरे का नाश करते हैं वे धर्म नही हैं कुधर्म हैं। सद्धर्म वही है जो सबको अपने धर्म की मर्यादा पर दृढ करे। यथा : स्वधर्मो निधन श्रेय. परधर्मो भयावह:। यह नीति का उपदेश है।

दो. कबहुँ दिवस महू निविड तम, कबहुँक प्रगट पतंग।
बिनसै उपजै ग्यान जिमि, पाइ कुसंग सुसंग ॥१६॥

अर्थ : कभी दिन मे घोर अन्धकार छा जाता है और कभी सूर्य नारायण प्रगट हो जाते हैं। जैसे कुसङ्ग और सुसङ्ग से ज्ञान उत्पन्न होता है और नष्ट हो जाता है।

व्याख्या · अविद्या निशा मे तो अन्धकार रहता ही है। परन्तु विद्यारूपी दिन मे भी कुसङ्ग से ज्ञान रवि ढँक जाया करते हैं। यथा : को न कुसंगति पाइ नसाई। रहै न नीच मते चतुराई। इसी भाँति बरसात मे दिन के समय भी बादलो के घिरने से, कभी घोर अन्धकार हो जाता है और कभी सूर्य के दर्शन मे उजेला हो जाता है। यहाँ सूर्य के दर्शन को सुसङ्ग से बादल के घिर जाने को कुसङ्ग से उजेले को ज्ञान से और अंधेरे को अज्ञान से उपमित किया है। यह विवेकसम्बन्धी उपदेश है। यहाँ भादो का वर्णन समाप्त होता है।

बरषा बिगत सरद रितु आई। लछिमन देखहु परम सुहाई ॥
फूले कास सकल महि छाई। जनु बरषाकृत प्रगट बुढाई ॥१॥

अर्थ . वर्षा बीत गयी। शरद ऋतु आ गयी। लक्ष्मण ! देखो बडी शोभा हो रही है। फूले हुए कास तमाम पृथ्वी मे छा गये। मानो वर्षा ने बुढाई प्रगट कर दी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : भाद्रपद का महीना बीत गया। सूर्य भगवान् कन्यागत हो गये। सो राम जी लक्ष्मण से कहते हैं कि यह ऋतु परम सोहायी है वर्षा को सोहायो नही कहा। क्योकि प्रभु विरही हैं। विरहियो को वर्षा कष्टप्रद होती है। वहाँ लक्ष्मण को छोड़कर दूसरा कोई है नही। इसी से उन्ही से कहते हैं। कुआर आते ही जब कासा फूलता है तब जगल का जंगल श्वेत रंग का हो जाता है। उसी दृश्य को कहते हैं कि मानो वर्षा ने बुढ़ाई प्रगट कर दी। यहाँ काश के फूल का सादृश्य वृद्धों के श्वेत केश से दिया है।

**उदित अगस्त पंथ जल सोखा। जिमि लोभहि सोखै संतोखा॥**
**सरिता[1] सर निर्मल जल सोहा। संत हृदय जस गत मद मोहा॥२॥**

अर्थ : अगस्त्य ने उदय होकर रास्ते का जल सोख लिया जैसे लोभ को सन्तोष सोख लेता है। नदी और तालाब मलरहित जल से शोभित हुआ। जैसे सन्त का हृदय मद मोह से रहित होकर शोभित होता है।

व्याख्या : अगस्त्य ने समुद्र सोखा था। अतः उदित होने पर जो जल सूर्य के सोखने से बचा रहता है उसे वह सोख लेते हैं। जहाँ अगस्त्य का उदय हुआ तहाँ रास्ते का जल सूखा। इसी भाँति जहाँ सन्तोष का उदय हुआ वहाँ लोभ नही रह जाता। यथा :

वन के वृक्षों मे लगते फल अनायास ही मिलते हैं। शीतल मधुर पुण्य सरिता जल सेतमेत के बहते हैं। कोमल पल्लव लतामयी बिस्तरे मुफ्त मे बनते हैं। क्यों ये भुक्खड़ धनियो के द्वार पर धक्के सहते हैं?

धन मिला कठिनता से अवश्य उसका भी।
या व्यय होगा या नाश वियोग व्यथा भी॥
है लोप भला या उसका नही कमाना।
आया धन जावे दुख का नही ठिकाना॥
जो नानामुख विजयी तीनो लोको का।
जिसने चाहा था बन्धन द्विज देवो का॥
दसशीश रूप है लोभ उसे मारूँगा।
श्री रामचन्द्र की समता मैं पाऊँगा॥

इस भाँति जो लोभ ज्ञान सूर्य के सोखने से बच जाता है उसे सन्तोष सोखता है।

सरिता और तालाब मे जल बरसात भर मिट्टी के मिलने से गँदला रहता है। आश्विन मास मे ही मलरहित होकर शुद्ध होता है तब उसको शोभा होती है। यथा . सत हृदय जस निर्मल बारी। इस भाँति मोह मल से रहित होकर सन्त के हृदय की शोभा होती है।

---

१. यहाँ विनोक्ति . द्वितीय अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रस रस सूख सरित सर पानी । ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी ॥
जानि शरद ऋतु खंजन आये । पाइ समय जिमि सुकृत सुहाये ॥३॥

अर्थ : नदी और तालाब का पानी धीरे धीरे सूख रहा है। जैसे ज्ञानी धीरे धीरे ममता त्याग करते हैं। शरद ऋतु जानकर खंजन आये जैसे समय जानकर सुन्दर पुण्य आजाते हैं।

व्याख्या : नदी और तालाब का जल धीरे धीरे घटता है। इसी भाँति ज्ञानी धीरे धीरे ममता का त्याग करते हैं। अज्ञानी हठात् त्याग करके वान्ताशी होते हैं। यहाँ नदी तालाब की उपमा ज्ञानी से और जल की उपमा ममता से दी गयी है। जिस भाँति नदी तालाब मे सर्वथा जल का अभाव नही होता उसी भाँति ज्ञानी में भी सर्वथा ममता का अभाव नही होता। उसकी ममता जड़ से छूटकर स्व स्वरूप शुद्ध चेतन मे रह जाती है। बरसात में खञ्जन चले गये थे वे शरद का आगमन जान कर चले आये। जैसे अपने फल देने का अवसर जानकर पुण्य उदय हो जाते है। बिना पुण्य के सुख नही होता और बिना पाप के दुःख नही होता। जिस समय पाप के परिपाक का समय रहता है उस समय पुण्य नही दिखाई पड़ते। अपने फल देने के समय में आते हैं। इसीसे इनको खञ्जन से उपमित किया। भावार्थ यह कि शरद जानकर खञ्जन आये पर अभी तक सुग्रीव नही आये।

पंक न रेनु सोह अस धरनी । नीति निपुन नृप के जसि करनी ॥
जल संकोच बिकल भइ मीना । अबुध कुटुम्बी जनु धन हीना ॥४॥

अर्थ : बिना कीचड़ और धूलि के पृथिवी ऐसा शोभा दे रही है जैसे नीति मे निपुण राजा की करणी शोभित हो। पानी की कमी से मछलियाँ ऐसी विकल हैं जैसे मूर्ख कुटुम्बी धनहीन होने से विकल होता है।

व्याख्या : पावस मे लोगों को कीचड़ से कष्ट होता है। ग्रीष्म में धूल से कष्ट होता है। शरद में कीचड़ भी नही रह जाता और धूल भी नही उडती। इसलिए उसे सुखद कहते हैं। राजा के अत्यन्त दयार्द्र होने से व्यवस्था बिगड़ती है और निष्ठुर होने से प्रजा सन्तप्त हो उठती है। अतः मध्यममार्ग अवलम्बन करनेवाले नीतिनिपुण राजा की करणी से ही प्रजा सुखी रह सकती है। धन ही जीवन है : जल है कुटुम्बी मछली है। उसके घटने से अबुध कुटुम्बी विकल हो उठते हैं। बुध नही। यथा : दोउ सम धीर धरहिं मन माँही।

बिनु घन निर्मल सोह अकासा । हरिजन इव परिहरि सब आसा ॥
कहुँ कहुँ दृष्टि सारदी थोरी । कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी ॥५॥

अर्थ : बिना बादल का आकाश सब प्रकार की आशा छोड़े हुए हरिजन की भाँति शोभायमान है। शरद काल मे कही कही वृष्टि होती है और सा भी अल्प परिमाण मे होती है। जैसे कोई एक दो मेरी भक्ति पाता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : शरद काल मे आकाश बड़ा निर्मल हो जाता है। वर्षा के कारण धूल दब जाती है और शरद काल में जब मेघ हट जाते हैं तो आकाश ऐसा स्वच्छ हो जाता है कि सूक्ष्म तारे भी स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगते हैं। इसी भाँति भगवद्भक्त जब सब आशा छोड़ देता है तब उसके हृदयाकाश मे भगवान् के सूक्ष्म गुण बहुत स्पष्ट प्रतिभात होने लगते हैं। यथा : जे पामर भये दास आस के ते सब ही के चेरे। रघुपति कृपा आस जीती जिन्ह ते सेवक हरि केरे।

शरत् काल मे मण्डल बाँधकर वर्षा नही होती। कही कही होती है और फिर भी अल्प मात्रा मे होती है। यही गति भक्ति की है। वह किसी एक को होती है और फिर भी यथेष्ट नही होती। यथा : धर्मसील विरक्त पुनि ज्ञानी। जीवन मुक्त ब्रह्म पर प्रानी। सब ते सो दुर्लभ सुरराया। राम भगति रत गत मद माया। यह भक्तिविषयक उपदेश है।

दो. चले हरषि तजि नगर नृप, तापस बनिक भिखारि।
जिमि हरि भगति पाइ श्रम, तजहि आश्रमी चारि ॥१७॥

अर्थ : राजा तपस्वी व्यापारी और भिक्षुक नगर छोड़कर हर्षित चले। जैसे हरि भक्ति की प्राप्ति से चारो आश्रमवाले श्रम का परित्याग करते है।

व्याख्या : बरसात के कारण रास्ता बन्द था। बरसात भी बीत गयी। विजयादशमी आगयी। इसी दिन राजाओ की विजय यात्रा होती है। सभी लोग उस दिन सीमोल्लघन करते है और जिनकी यात्रा बरसात के कारण रुकी थी वे तो उसी दिन अपनी यात्रा आरम्भ कर देते है। ऊपर कह आये हैं : जहँ तहँ रहे पथिक थकि नाना। जिमि इन्द्रिय गन उपजे ग्याना। ज्ञान के उपजने से इन्द्रिय गण थककर रह गये थे। कवि कहते हैं कि भक्ति के आजाने से सभी थकावट : श्रम का परित्याग करते हैं और काम मे लग जाते हैं। भाव यह कि सम्पूर्ण संसारी अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए कार्य करते हैं। अतः इस भवाटवी मे वे श्रमित हुए भटका करते हैं और ज्ञानी की इन्द्रिय आत्मसाक्षात्कार से श्रमित हो जाती है। वह श्रम बिना भक्ति के जाता नही। भक्त अपना सर्वस्व भगवान् को अर्पण कर देता है। उसका अपना स्वत्व किसी वस्तु पर नही रह जाता। वह स्वय परमेश्वर का उसके लड़के बाले परमेश्वर के उसका धन धान्य परमेश्वर का वह जो कुछ करता है परमेश्वर प्रीत्यर्थ करता है। उसका निजी कोई हानि लाभ नही रह जाता। अतः : यद्यत् कर्म करोमि तत्तदखिल शम्भो त्वदाराधनम् : उसका प्रत्येक हलचल भगवान् का आराधन है। अत वह सब व्यापार आनन्दपूर्वक करता है। उसी ने श्रम का परित्याग किया है।

भावार्थ यह कि आज विजया दशमी को भी सुग्रीव ने सीमोल्लघन न किया।

सुखी मीन जे नीर अगाधा। जिमि हरिसरन न एकौ बाधा॥
फूले कमल सोह सर कैसा। निरगुन ब्रह्म सगुन भएँ जैसा ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

अर्थ वे मछलियाँ सुखी हैं जो अथाह जल मे हैं। जैसे हरिशरण मे कोई बाधा नही होती। कमल फूलने से तालाब ऐसे शोभायमान हैं जैसे निर्गुण ब्रह्म सगुण हो गये हो।

व्याख्या जो ससार से भयभीत होकर रक्षा के लिए निष्कपट भाव से भगवान् के शरण जाता है। यथा श्रवन सुजस सुनि आयेउँ प्रभु भजन भव भीर। त्राहि त्राहि आरत हरन सरन सुखद रघुबीर। उसकी रक्षा स्वय भगवान् करते हैं। इसलिए उसे कोई बाधा नही होने पाती। यथा सीम कि चाँपि सकै कोउ तासू। बड रखवार रमापति जासू। इसलिए हरिशरण ग्रहण करनेवाले को उन मछलियो से उपमित किया है जा अगाध जल मे रहती हैं। मछली का जीवन जल है। उसके सङ्कोच से मछलियाँ विकल हो जाती हैं। अगाध जल मे किसी प्रकार का सङ्कोच नही है। अत स्वच्छन्द विचरण करती हैं। उनकी रक्षा अगाध जल करता है।

जिस तालाब मे कमल फूले हो उसकी उपमा सगुण ब्रह्म से और जिसमे न फूले हो उसकी उपमा निर्गुण ब्रह्म से दिया है। कमल की लता तालाब के जल के आधार से रहती है और जल को ही आच्छादन करती है। इसी भाँति माया का आधार ब्रह्म है और वह माया ब्रह्म को ही ढकती है। इस प्रकार आच्छादित ब्रह्म सगुन कहलाते हैं। यथा पुरइन सघन ओट जल बेगि न पाइअ मर्म। मायाछन्न न देखिये जैसे निर्गुण ब्रह्म। पुरइन से फूल निकलते हैं। इसी भाँति माया द्वारा ब्रह्म का अवतार होता है। उनके अवतीर्ण होने से ऐसी शोभा अधिक हो जाती है जैसे तालाब की कमल खिलने से हो जाती है। इसी से शरद मे कमल के खिलने से निर्गुण ब्रह्म के सगुण होने का दृश्य स्मरण हो उठा।

गुजत मधुकर मुखर अनूपा। सुन्दर खगरव नाना रूपा ॥
चक्रवाक मन दुख निसि पेखी। जिमि दुर्जन पर सपति देखी ॥२॥

अर्थ बकवादी भौंरो के गूँजने की उपमा नही है। अनेक प्रकार की चिड़िया चहचहा रही हैं। रात को देखकर चकवे के मन मे दु ख है। जैसे दूसरे की सम्पत्ति देखकर दुर्जन के मन मे दु ख होता है।

व्याख्या वसन्त के मधुकर के गुञ्जार की उपमा है पर शरद के गुञ्जार की उपमा नही है। इसलिए नही दिया वसन्त वर्णन मे मधुकर निकर भेरि सहनाई कह चुके हैं। सुन्दर खग गन गिरा सोहाई। जात पथिक जिमि लेत बोलाई। यह सब शोभा कमल के फूलने पर होती है।

शरत् काल की चन्द्रिका रात्रि की सम्पत्ति है। क्योकि उससे उसकी बडी शोभा होती है। पर चक्रवाक को वह सम्पत्ति उसी भाँति सह्य नही है जैसे परायो सम्पत्ति दुर्जन को सह्य नही होती सरद चन्द चन्दनि लगत जिमि चकई अकुलानि।

चातक रटत तृषा अति ओही। जिमि सुख लहइ न सकर द्रोही ॥
सरदातप निसि ससि अपहरई। सत दरस जिमि पातक टरई ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : पपीहा रट लगाये हुए है। उसे बड़ी प्यास है जैसे शिवद्रोही को सुख की प्राप्ति नही होती। शरत् की धूप का रात का चन्द्रमा हरण कर लेता है। जैसे सन्त के दर्शन से पाप मिट जाता है।

व्याख्या : बारह महीने पपीहा जल के लिए रट लगाये रहता है। बरसात भी बीत गयी उसे जल न मिला। उसकी उपमा कवि शङ्करद्रोही से देते है। उसके अनुकूल वेदनीय घटना घट जाने पर भी उसकी प्यास नही बुझती। उसे कल नही पड़ता। सुखानुभव शङ्कर की कृपा बिना होता नही। यथा : इच्छित फल बिनु सिव अवराधे। लहिअ न कोटि जोग जप साधे।

अति निर्मल और तापहर होने से सन्त की उपमा शरत् चन्द्र से दिया। शरत् चन्द्र ताप हरते हैं और सन्त पाप हरते हैं। यथा : मुख दीखत पातक हरै, परसत कर्म बिलाहि। बचन सुनत मन मोह गत पूरब भाग मिलाहि।

देखि इंदु चकोर समुदाई। चितवहि जिमि हरिजन हरि पाई ।।
मसक दंस बीते हिम त्रासा। जिमि द्विज द्रोह किये कुल नासा ।।४।।

अर्थ : चन्द्रमा को देखकर चकोर समूह इस भाँति देख रहे है जैसे हरिजन हरि को पाकर देखते हैं। मच्छर और डाँस ठण्डक के भय से नष्ट हो जाते हैं। जैसे ब्राह्मण के द्रोह से कुल का नाश हो जाता है।

व्याख्या : चकोर का समूह शरत् पूर्णिमा के चन्द्रमा को चारो ओर से एकटक देख रहे हैं। कवि कहते हैं कि इसी भाँति हरि को पाकर हरिजन एकटक होकर दर्शन करते हैं। यथा : एकटक सब सोहहि चहुँ ओरा। रामचन्द्र मुख चन्द्र चकोरा। तृप्ति नही होती।

नाश दो प्रकार का होता है। एक तो आत्यन्तिक और दूसरा व्याधि आदि द्वारा। अत्यन्त क्षीण होने को भी नाश कहते हैं। यहाँ पर दूसरे प्रकार का नाश अभिप्रेत है। हिम आया नही पर उसके निकट आने से ही मशक और दश का विरल प्रचार हो जाता है। वे निर्बल पड़ जाते हैं। इसी भाँति ब्रह्मद्रोह की भावना से कुल की सुखसमृद्धि जाती रहती है और द्रोह करने से तो वश ही नष्ट हो जाता है। यथा : बस कि रह द्विज अनहित कीन्हे।

दो. भूमि जीव संकुल रहे, गये सरद रितु पाइ।
सदगुरु मिले जाहिं जिमि, संसय भ्रम समुदाइ ।।१८।।

अर्थ : पृथ्वी मे जीव भरे थे। वे शरद्ऋतु आने से नष्ट हो गये। जिस भाँति सद्गुरु के मिलने से सशय और भ्रम का समुदाय नष्ट हो जाते हैं।

व्याख्या : वर्षा काल मे क्षुद्र जन्तुओ से पृथ्वी भर उठती है। पर वे शरद्-ऋतु के आगमन से नष्ट हो जाते हैं। उसी की उपमा देते हुए कहते हैं कि सद्गुरु के मिलने से जितने संशय और भ्रम है वे सब मिट जाते हैं। क्योंकि उनके वचन

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


महामोहतम पुञ्ज के नाश के लिए सूर्य की किरणों के तुल्य हैं। यथा : वंदौं गुरुपद कंज कृपासिंधु नररूप हर। महामोह तम पुंज जासु बचन रविकर निकर। उनके नाश का दूसरा उपाय नही है।

बरषा गत निर्मल रितु आई। सुधि न तात सीता कर पाई॥
एक बार कैसेहुँ सुधि जानौं। कालहु जीति निमिष महुँ आनौं॥१॥

अर्थ : वर्षा बीत गयी और निर्मल ऋतु आगयी। हे भाई! सीता का पता न लगा। एक बार किसी भांति सीता का पता लग जाय तो काल को जीतकर एक क्षण में ले आऊँ।

व्याख्या : वर्षा बिगत सरद ऋतु आयी से शरदऋतु के वर्णन का उपक्रम करके निर्मल रितु आयी कहकर उपसहार करते है। अर्थात् वर्षा के कारण अन्वेषण में जो बाधाएँ उपस्थित हो गयी थी वे सब हट गयी। रास्ता चलता हो गया। वर्षा भर निर्मल ऋतु का भरोसा था सो भी आधे के ऊपर बीत गयी। फिर भी सीता की सुधि नही पायी। वर्षा भर सन्तोष किये बैठे रहे। पर उद्योग का काल उपस्थित होने पर उद्योग होते न देखकर उत्कण्ठा बहुत बढ़ गयी। इसलिए लक्ष्मणजी कहते हैं कि कार्यसिद्धि में एकमात्र बाधक पता का न लगना है। सो कुछ भी तो पता लगना चाहिए। यहाँ पता लग जाय कि मर गयी तब निश्चय हो जाय कि काल के वश में है तो उसे जीतकर एक क्षण मे ले आऊँ। राजा लोग जिनका उठाया पिनाक न उठा सीताजी के लिए काल को जीतने का साहस करने लगे। यथा : एक बार कालहु किन होई। सिय हित समर जितब हम सोई। मैं तो एक क्षण मे काल के जीतने में समर्थ हूँ। यथा : काल ब्याल कर भक्षक जोई। उसे जीतकर सीता को लाऊँगा। गृहस्थ के जितने धर्मकृत्य हैं वे सब स्त्री के बिना निष्फल होते है। वह अपने धर्म से गिर जाता है। अतः उसकी स्त्री विषयक उपेक्षा अधर्म है।

## ५१. रामरोष प्रसंग

कतहुँ रहौ जौ जीवति होई। तात जतनु करि आनौं सोई॥
सुग्रीवहु[१] सुधि मोरि बिसारी। पावा राज कोस पुर नारी॥२॥

अर्थ : कहीं भी हो यदि हो तो हे भाई! उसे यत्न करके ले आऊँ। सुग्रीव ने भी मेरी याद भुला दी। उसे राज्य कोष पुर और स्त्री मिल गयी।

व्याख्या : यदि नहो मरी तब तो उसका पता लगाना चाहिए। पता लगने के लिए यत्न होना चाहिए। इस कार्य का भार सुग्रीव ने अपने ऊपर ले रक्खा था। यथा : सब प्रकार करिहौं सेवकाई। जेहि बिधि मिलहि जानकी आई। वह भी

---

१. ५१वाँ प्रसङ्ग 'रामरोष' प्रारम्भ हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हमारा काम भूल गया। मैंने उसका काम पहले कर दिया। मित्र का धर्म ही यह है : निज दुःख गिरि सम रज करि जाना। मित्रक दुख रज मेरु समाना। सो सुग्रीव ने मित्र धर्म का भङ्ग कर दिया। मेरे पर्वत ऐसे दुःख को भूल ही गया। जब राज कोप और नारी से हीन था तब मेरे दुःख को सुनकर दुःखी होता था। यथा : कह सुग्रीव नयन भरि वारी। मिलिहि नाथ मिथिलेस कुमारी। अब राज्य कोप पुर और नारी सब मिल गयी तो मुझे भूल गया। उचित तो यह था कि जिसके कारण से सबकी प्राप्ति हुई उसे न भूलता। मुझे तो इस समय उसी का भरोसा था सो वह कृतघ्न निकला।

हनुमान् तो भूल ही गया। जिसने कहा था : सो सीता कर खोज कराइहि। जहँ तहँ मरकट कोटि पठाइहि। पर उसने मुझसे पाया क्या था ? सुग्रीव ने सब पाया। वह कैसे भूल गया। कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः। उसे अपने पूर्व अवस्था को और मेरे कष्ट को स्मरण करना चाहिए था।

जेहि सायक मारा मै बाली। तेहि सर हतहुँ मूढ कहँ काली ॥
जासु कृपा छूटहि मद मोहा। ताकहुँ उमा कि सपनेहु कोहा ॥३॥

अर्थ : जिस बाण से मैंने बालि को मारा था उसी से कल उस मूढ़ को मारूँगा। जिसकी कृपा से मद मोह छूटता है हे उमा ! उसे क्या स्वप्न में भी क्रोध हो सकता है।

व्याख्या : आज भर और प्रतीक्षा करूँगा। यदि आज भी न आया तो कल मारूँगा। जिस बाण से बालि को मारा वह मेरा बाण खो नहीं गया है। उससे बालि न बच सका। यह क्या बचेगा ? यह भी बालि की भाँति मूढ हो गया है। उसने तो स्त्री की शिक्षा न सुनी और इसने तो मेरी शिक्षा का अनादर किया। मैंने कह दिया था : अंगद सहित करहु तुम राजू। संतत हृदय धरेहु मम काजू। गत ग्रीषम बरषा रितु आई। रहिहौं निकट सैल पर छाई। सो मै उसके सन्निकट ही हूँ। तीन महीने बीत गये। उसने मुँह न दिखलाया। अतः आज और प्रतीक्षा करूँगा। प्रतीक्षा की पराकाष्ठा हो गयी। यदि आज आजाय तो कुशल है नहीं तो कल उसे मारूँगा।

ज्ञानघाट के वक्ता ने उचित समझा कि इस अवसर पर अपने श्रोता को सावधान कर दें। वह यह न समझ लें कि रामजी को वस्तुतः क्रोध हो गया। क्योंकि मोहपूर्वक ही क्रोध होता है पर : इहाँ मोह कर कारन नाही। रवि सनमुख तम कबहुँ कि जाही। मोह ही नही हो सकता। क्रोध कैसे होगा ? इनकी कृपा जिस पर हो जाय उसे मद मोह बाधा नहीं कर सकता। यथा : सीम कि चाँपि सकै कोउ तासू। बड़ रखवार रमापति जासू। अतः यहाँ स्वप्न मे भी क्रोध की प्राप्ति नही है।

जानहि यह चरित्र मुनि ग्यानी। जिन्ह रघुबीर चरन रति मानी ॥
लछिमन क्रोधवंत प्रभु जाना। धनुष चढ़ाइ गहे कर बाना ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ इस चरित्र को ज्ञानी मुनि जानते हैं जिन्होने रघुनाथ के चरणो मे प्रेम लगा रक्खा है। लक्ष्मणजी ने समझ लिया कि प्रभु क्रुद्ध हैं तो धनुप पर प्रत्यञ्चा चढा ली और तरकस से वाण निकालकर हाथ म लिया।

व्याख्या कवि कहते है कि प्रभु के इस चरित्र को अज्ञानी नही समझ सकते। वे समझेंगे कि जिस भाँति इष्ट के अभिघात से मुझ क्रोध आया करता है उसी भाँति रामजी को भी आगया। परन्तु ज्ञानी जानते हैं कि परम ज्ञानी पुरुष अपना कुछ भी प्रयोजन नही रहने पर लोकसग्रहार्थ कार्य किया करते है। शुष्क ज्ञानी भी इसे नही समझते। जो ज्ञानी रघुनाथ के चरणो मे प्रेम रखते हैं अर्थात् जो ज्ञानी भक्त हैं वे ठीक समझते हैं। यथा तुम जो कहहु करहु सब साँचा। जस काछिय तस चाहिअ नाचा।

लक्ष्मणजी तो परम ज्ञानी भक्त है। उन्होने प्रभु को क्रोधवन्त कैसे जान लिया? इसका उत्तर यही है राम कीन्ह चाहहिं सोइ होई। करइ अन्यथा अस नहि कोई। प्रभु ने चाहा कि लक्ष्मण उन्हे क्रोधवन्त जान। इसलिए लक्ष्मणजी ने वैसा ही जाना। यहाँ पर रघुनाथजी ने जो कुछ दोष सुग्रीव का कहा वह इसीलिए कहा था। पर लक्ष्मणजी चुप रहे। सरकार को सहनशीलता को जानते है कि सुग्रीव से मैत्री हो चुकी है। प्रभु उनका सब कुछ सहन करेगे। पर जब तेहि सर हतौं मूढ कहँ काली कहा तब लक्ष्मणजी ने जान लिया कि सरकार को रोष आगया। ऐसा सुन्दर नाट्य है कि लक्ष्मणजी को भ्रम हो गया कि क्रोध वास्तविक है। इसलिए धनुष चढाकर बाण निकाल लिया कि वालि वडा भाई था वह आपके हिस्से मे पडा था। सुग्रीव छोटा है यह मेरे हिस्से का है। उसे मैं आज मारता हूँ।

दो तब अनुजहि समुझावा, रघुपति करुना सींव।
भय देखाइ लै आवहु, तात सखा सुग्रीव ॥१८॥

अर्थ तब करुणा की सीमा रघुपति ने छोटे भाई को समझाया कि हे भाई! डर दिखलाकर ल आओ। सुग्रोव मरा सखा है।

व्याख्या लक्ष्मणजी अकेल किष्किन्धा के सहार मे समर्थ है। यथा जग महँ सखा निसाचर जेते। लछिमन हनहि निमिष महँ तेते। कही सचमुच जाकर सुग्रीव का वध न कर डालें। इसलिए करुणा की सीमा ने लक्ष्मणजी को समझाया

सवैया मीत को दोष सहै बिनु मीत को मीत बिना दुख कौन मिटावै।
मीत अनेक उपाय करै अरु मीत को लाइ सुपथ लगावै॥
मीत अनीत पै पाँव धरै तब मीतहि कोपित ह्वै डरपावै।
पै कतहूँ कबहूँ विजयानंद मीत की हानि हिये नहि लावै॥

कवित्त
भोरी होत सुमति कविन्द औ मुनिनन्दन की विषय समीर की चपेटैं जबै चलती।
भूलि जात योग जप सयम समाधि नित्य नूतन अनङ्ग की उमङ्गैं चित चढती॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कौन है कहाँ है हम बिसरि सुरत जाते माते मद सदियाँ निमेप की सी लगती।
दुखिया दिनों का आज सुखिया हुआ है ऐसे विषय बयारि में सुकण्ठ की क्या गिनती।।

अतः सुग्रीव को डराकर रास्ते पर ले आओ। यही मित्र धर्म है : कुपथ नेवारि सुपथ चलावा।

इहाँ[1] पवन सुत हृदय बिचारा। राम काजु सुग्रीव बिसारा।।
निकट जाइ चरनन्हि सिरु नावा। चारिहु बिधि तेहि कहि समुझावा ।।१।।

अर्थ : यहाँ पवनसुत हनुमान्‌जी ने हृदय मे विचार किया कि रामजी के कार्य को सुग्रीव ने भुला दिया। तब निकट जाकर चरणो मे सिर झुकाया और चारो प्रकार से उसे कहकर समझाया।

*व्याख्या :* गोस्वामीजी हनुमान्‌जी के साथ हैं। इसलिए इहाँ कहते हैं। ग्रन्थ भर मे इहाँ और उहाँ शब्द के प्रयोग ध्यान देने योग्य हैं। कवि रामचरितमानस का साक्षात्कार कर रहे है। स्वय अपने को चरित मे सम्मिलित देख रहे हैं। ये सदा भगवान् के साथ रहते हैं। पर यदि भक्त और भगवान् पृथक् पृथक् स्थान मे हो तो भक्त के साथ रहेगे। इसलिए किष्किन्धा को इहाँ और प्रवर्षण गिरि को उहाँ मान रहे हैं। वहाँ रामजी ने विचारा : सुग्रीवहु सुधि मोरि बिसारी। यहाँ पवनसुत ने विचारा : राम काज सुग्रीव बिसारा। यद्यपि हनुमान्‌जी सुग्रीव के साथ किष्किन्धा मे हैं। पर मन उनका रघुनाथजी के चरणो मे तन्मय है। शरत् की बाट जोह रहे हैं। बिना कुछ कार्य किये सामने जाने मे सङ्कोच है। वर्षा ऋतु मे खोजने का कार्य सुचारु रूप से सम्पन्न नही हो सकता। अतः सुग्रीव से भी कुछ नही कहा। पर जब विजया दशमीवाली यात्रा का मुहूर्त टल गया तो रामजी और हनुमान्‌जी दोनो के मन मे एक साथ ही यह भाव उठा : राम काज सुग्रीव बिसारा। रामजी फिर भी प्रतीक्षा करते थे। पर हनुमान्‌जी सुग्रीव के निकट गये और रामजी के कहने से एक पखवारा : पक्ष पहिले ही जाकर सुग्रीव के चरणो मे प्रणाम किया।

सुग्रीवजी विषय मे आसक्त हो गये हैं। महल के बाहर नही निकलते। अतः हनुमान्‌जी उनके पास महल मे गये। सुग्रीव राजा हैं। हनुमान्‌जी मन्त्री हैं। सुग्रीवजी सूर्यपुत्र होने से गुरुपुत्र और रामजी के सखा हैं। सर्वतोभाव से पूज्य हैं। अतः उनके चरणो मे सिर नवाया और साम दान भय और भेद दिखलाकर समझाया। यथा :

साम : राम काज भूल्यो तुमहिं, चलो सरद रितु बीति।
कपि समूह सिय खोज हित, भेजि निबाहो प्रीति।।
दान : जाको दीन्ह्यो राज लहि, करिय सकल सुख भोग।
तेहि सहायता देन को, आइ बन्यो संयोग।।

---

१. ५२वाँ प्रसङ्ग। षष्ठिविश्राम प्रारम्भ हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


भय : बालि बध्यो जेहि एक शर, भलो न तासु विरोध।
उदासीनता देखि तब अवसि करैंगे क्रोध॥
भेद . अगद को युवराज करि, भली करी नृप नीति।
सावधान होइय तुरत, जानि सीस पर भीति॥

सुनि सुग्रीव परम भय माना। बिषय मोर हरि लीन्हेउ ग्याना॥
अब मारुत सुत दूत समूहा। पठवहु जहँ तहँ बानर जूहा॥२॥

अर्थ · सुनकर सुग्रीवजी बहुत डर गये · पछताने लगे कि विषय ने मेरे ज्ञान को हरण कर लिया। बोले · हे मारुतसुत! अब तुम दूतो को जहाँ जहाँ बानरो का समाज है वहाँ वहाँ भेजो।

व्याख्या · सुनकर सुग्रीवजी बहुत डर गये। क्योकि रामजी ही एकमात्र उनके शरण थे। उनके कार्य को भूलना बडा भारी अपराध है। सुग्रीवजी उन भक्तो मे थे जो जागते सोते हर समय ही रामजी के शरण मे रहते हैं। चूक सभी से होती है पर भले को पश्चात्ताप होता है। इन्हे पछतावा हुआ कि मेरे ज्ञान को विषय ने हरण कर लिया। मैंने प्रभु से कहा था · सुख सपति परिवार बडाई। सब परिहरि करिहौं सेवकाई। सो मैं सुख सम्पत्ति परिवार बडाई मे मग्न हो गया। ये सब राम भक्ति के बाधक है। मेरी भक्ति मे भी इन सबो ने भारी बाधा पहुँचाई। मैं रामजी के कार्य को ही भूल गया। अत हनुमान्‌जी कहते हैं कि सम्पूर्ण विश्व मे सीताजी को खोजवाया है। अत विश्व भर के वानरो को बुलाना चाहिए और उन्हे खोज के लिए भेजना चाहिए। वे सम्पूर्ण विश्व मे फैल जायँ और सीताजी को खोज निकालें। अत तुम दूतो के समूह को जहाँ जहाँ बानर समूह हैं तुम्हारा सब जाना है वहाँ वहाँ भेजो।

कहहु पाख महुँ आव न जोई। मोरे कर ताकर बध होई॥
तब हनुमत बोलाए दूता। सब कर करि सनमान बहूता॥३॥

अर्थ कह देना कि जो पन्द्रह दिन मे नही आयेगा उसका वध मेरे हाथ से होगा। तब हनुमान्‌जी ने दूतो को बुलाया और सबका बहुत सम्मान किया।

सुग्रीवजी कहते हैं कि उन दूतो से कह देना कि वे जाकर एक पक्ष के भीतर ही सबको लिये दिये चले आयें। यदि पक्ष के भीतर कोई नही आया चाहे वह दूत हो और चाहे वह व्यक्ति हो जिसके पास दूत भेजे जाते हैं तो उसका वध राजा अपने हाथ से करेगा दूसरे का विश्वास न करेगा। अब सुग्रीवजी यह चाह रहे हैं कि कम से कम शरद के भीतर ही भीतर एक साथ खोज आरम्भ हो जानी चाहिए। सब ओर एक साथ खोज होने से स्थान परिवर्तन करनेवाले का भी पता लग जाता है।

यहाँ तो आज्ञा मिलने की देर थी। हनुमान्‌जी राजा के बडे विश्वासपात्र

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ान्त्री हैं। सभी जानते हैं। दूत लोग मन्त्री के शासन मे रहते हैं। अतः उन्होने सब ्तों को बुलाया और बहुत सम्मान किया। पहिले ही दान नीति का प्रयोग किया।

तुलसी कहत पुकारि के सुनहु सकल दे कान।
हेम दान गज दान ते बड़ो दान सम्मान॥

ाय अरु प्रीति नीति देखराई। चले सकल चरनन्हि सिरु नाई॥
्हि अवसर लछिमनु पुर आए। क्रोध देखि जहँ तहँ कपि धाए॥४॥

अर्थ : हनुमान् जी ने भय प्रीति और नीति दिखलाई। सब चरणों मे सिर ावाकर चले। उसी अवसर मे लक्ष्मणजी पुर मे आये। उनका क्रोध देखकर ानरगण जहाँ तहाँ दौड़ पड़े।

व्याख्या : सम्मान करने के बाद राजा की आज्ञा सुनायी : गिरि कानन जहँ हँ भरि पूरी। रहे निज निज अनीक रचि रूरी। पृथक् पृथक् पर्वत और वनो में ाने के लिए पृथक् पृथक् दूतों को आदेश दिया कि तुम लोग वहाँ वहाँ जाकर सभी रदारो को सेना सहित अपने साथ लेते आवो। पन्द्रह दिन बीतने न पावे। इसी बीच े तुमको भी और उनको भी आजाना चाहिए। इनमे किसी को देर हुई तो उसका ध स्वयं राजा अपने हाथ से करेगा। भय दिखलाकर फिर प्रीति दिखलाया कि ेखो राजा कैसा कृतज्ञ है। जिस भाँति रामजी से प्रीति निर्वाह करता है उसी भाँति सबके किये हुए कार्य को स्मरण रखखेगा। फिर नीति दिखलायी कि जिस ्वामी का सर्वस्व भोग करते हो उसके कार्य मे धोखा न होना चाहिए।

दूत लोग भी वन्दर ही हैं। कोई सामान घर से लेना नहीं है। वे तुरन्त चरणों मे सिर नवाकर चल पडे। दूत बिदा हो गये और काम पूरा करके अभी नही ौटे उसी अवसर मे लक्ष्मणजी किष्किन्धा में आये। ये ही सुग्रीव को राज्य देने आये थे। इनसे सब परिचित हैं। उन्हे क्रुद्ध देखकर बड़ी दौड़ धूप मची। कुछ समाचार देने दौड़े। कुछ सेना को सावधान करने दौड़े। कुछ इकट्ठे होने लगे।

## ५२. कपि त्रास प्रसङ्ग

दो. धनुप चढ़ाइ कहा तब, जारि करौ पुरछार।
व्याकुल नगरु देखि तब, आयउ बालि कुमार॥१९॥

अर्थ : धनुप चढ़ाकर कहा कि पुर को जलाकर भस्म कर दूँगा। नगर को व्याकुल देखकर बालि के बेटा अङ्गद आये।

व्याख्या : तब लक्ष्मणजी ने धनुप चढाया और बोले कि अग्निबाण से इस पुर को जलाकर भस्म कर दूँगा। इस भरोसे न रहना कि मैं अकेला हूँ। तुम लोग सब मिलकर भी मेरा कुछ बिगाड़ नही सकते। यह सेना का संयोजन नगर मात्र को मेरे कोप का भाजन बनायेगा। मैं पूरे नगर को भस्म कर दूँगा। लक्ष्मणजी का वचन सुनकर नगर व्याकुल हो उठा। पता लगते ही अङ्गद जी आये। लक्ष्मणजी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



के ही बनाये॰ये युवराज है। अपने का भाव यह है कि चाहे नगर भर सुग्रीव का हो पर मै आपका हूँ। अथवा मै युवराज हूँ राज कार्य मे चलाता हूँ। नगरवासी निरपराध है। वे आपके क्रोध से व्याकुल है उनकी रक्षा कीजिए।

चरन नाइ सिरु बिनती कीन्ही। लछिमनु अभय बाँह तेहि दीन्ही ॥
क्रोधवंत लछिमनु सुनि काना। कह कपीस अतिभय अकुलाना ॥१॥

अर्थ : चरणो मे सिर नवाकर विनती की। लक्ष्मणजी ने उसे अभय बाँह दिया। लक्ष्मण क्रुद्ध हैं ऐसा कान से सुनकर बन्दरो के राजा सुग्रीव भय से व्याकुल होकर कहने लगे।

व्याख्या : अङ्गदजी ने पहिले आकर प्रणाम किया। चरणो मे सिर नवाया। तत्पश्चात् विनती की कि मुझे तो आप ही शरण हैं। मरती बार पिता ने रामजी को मेरी बाँह पकडा दिया है। मै तो उन्ही की शरण मे हूँ। मेरे तो गुरु पिता माता वे ही है। मैं बालक हूँ। ज्ञान बुद्धि बल से हीन हूँ। मेरी रक्षा कीजिये।

अभय बाँह अर्थात् अभय हस्त से अङ्गद का परितोष किया। देवताओ की मूर्तियो मे अभय और वरद हस्त कही-कही दिखलाया जाता है। उन्हे अभय मुद्रा और वरद मुद्रा कहते है। ऊपर उठा हुआ हाथ अभय दान का चिह्न है। सो लक्ष्मणजी ने अभयहस्त होकर अङ्गद का सन्तोष किया अथवा अभय करने के लिए उसके शिर पर हाथ रखा कि तुम्हारी रक्षा की जायगी। तुम्हे भय नहीं है। क्रोध का अभिनय हो रहा है। क्रोध से भरा हुआ पुरुष प्रेम से बात नही कर सकता। उस समय इङ्गित से ही अभयदान दिया जाता है जिसमे रौद्ररस का भङ्ग न हो।

नगर की व्याकुलता कहकर अब राजा की व्याकुलता कहते हैं। सुग्रीव के पास समाचार पहुँचा कि लक्ष्मणजी क्रुद्ध होकर आये है कि किष्किन्धा का जलाकर भस्म करेगे। यह शब्द कान मे पडते ही वानरराज अत्यन्त भय से व्याकुल हो उठे। प्रसङ्ग देखने से यही मालूम पडता है कि हनुमान्जी ने समाचार दिया। अङ्गदजी तो अपनी रक्षा के लिए लक्ष्मणजी के पास गये। पर हनुमान्जी मन्त्री हैं। राजा की रक्षा के लिए उनके पास गये। समाचार सुनाया। भाव यह कि जिस बात को मैं डरता था वही सामने आयी। लक्ष्मणजी क्रुद्ध होकर नगर मे आगये। नगर को जला डालने के लिए कह रहे हैं। अङ्गदजी उनके पास पहुँच गये। भारी भय उपस्थित है। अब जैसा उचित हो कीजिये। लक्ष्मणजी के क्रोध का समाचार पाकर नगर व्याकुल हो उठा था। सुग्रीवजी अति व्याकुल हो उठे। हनुमान्जी के पहिले समझाने पर ही परम भयभीत हो गये थे। अब उस भय के उपस्थित होने पर तो भय से अत्यन्त व्याकुल हो गये। लक्ष्मणजी के क्रुद्ध होने का अर्थ ही यही है कि सरकार अप्रसन्न हैं। जिनके शरण मे आकर ही सुग्रीव सुग्रीव हुए थे उस शरणद के ही क्रुद्ध होने पर ठिकाना कहाँ है। अत हनुमान्जी से बोले :

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुनु हनुमन्त संग लै तारा। करि बिनती समुझाउ कुमारा ॥
तारा सहित जाइ हनुमाना। चरन बन्दि प्रभु सुजस बखाना ॥२॥

अर्थ : हे हनुमान् ! सुनो, तुम तारा को साथ लेकर जाओ और विनती करके कुमार लक्ष्मण को समझाओ। तारा सहित हनुमान्‌जी गये और चरण वन्दना करके प्रभु के सुयश की वर्णना की।

व्याख्या : इस व्याकुलता में भी सुग्रीव ने विचार से काम लिया। पुर ने तो कुछ बिगाड़ा नही है। मुझसे ही अपराध हुआ है। मैं ठीक समय से उनके कार्य का सम्पादन नही कर सका अत: मुझे दण्ड दिया चाहते हैं। क्रोध अधिक है इसलिए समाज के सहित दण्ड देने को कह रहे हैं। इस क्रोध के वेग में तुरन्त हमारा जाना ठीक नही। क्रोध के वेग के रुकने पर ही सामने जाना ठीक है। दया के उद्रेक के लिए तारा को साथ लेकर जाओ। अङ्गद गया है। उसकी मां के जाने से उसकी बातें सुनेंगे। तुमने मैत्री जोड़ी है। यथा : तब हनुमन्त उभय दिसि की सब कथा सुनाइ। पावक साखी देइ करि जोरी प्रीति दृढाइ। अत: जो कुछ उन्हें कहना है वह तुमसे अवश्य कहेगे और तुम्हारी वात सुनेंगे। इसलिए जाकर पहिले विनय करो। जब क्रोध का वेग कम हो जाय तव समझाओ। क्योंकि क्रोध का वेग सीधे सीधे समझाने से वढता है। विनय से ही क्रोध का वेग घटता है और तव समझाना भी काम करता है।

तदनुसार हनुमान्‌जी तारा को साथ लेकर गये। लक्ष्मणजी के चरणों की और प्रभु के सुयश का बखान करने लगे। भक्त को प्रभु का सुयश बड़ा प्रिय होता है। उससे उसे तुरन्त शान्ति मिलती है। प्रभु के सुयश का वर्णन ही उसके लिए सच्ची विनती है। अत: हनुमान्‌जी ने सुयश वर्णन प्रारम्भ किया।

यथा : अपराध अगाध भए जन ते, अपने उर आनत नाहिं न जू।
गनिका गज गीध अजामिल के, गनि पातक पुंज सिराहिं न जू ॥
लिये बारक नाम सुधाम दियो, जेहि धाम महा मुनि जाहिं न जू।
तुलसी भजु दीनदयालुहि रे, रघुनाथ अनाथहि दाहिन जू ॥
दसरत्थ को दानि सिरोमनि राम, पुरान प्रसिद्ध सुन्यो जसु मै।
नर नाग सुरासुर जाचक जो तुम सो मन भावत पायो न कै ॥
तुलसी कर जोरि करै विनती, जो कृपा करि दीन दयाल सुनै।
जेहि देह सनेह न रावरो सो, असि देह धराइ कै जाय जियै ॥
को भरिहै हरि के रितये, रितवै पुनि को हरि जो भरिहै।
उथपै तेहि को जेहि राम थपै थपिहै तेहि को हरि जो टरिहै ॥
तुलसी यह जानि हिये अपने, सपने नहिं कालहु ते डरिहै।
कुमया कछु हानि न औरन की, जौ पै जानकी नाथ कृपा करिहै ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



करि बिनती मंदिर लै आये। चरन पखारि पलंग बैठाये ॥
तब कपीस चरनन्हि सिरु नावा। गहि भुज लछिमन कंठ लगावा ॥३॥

अर्थ : बिनती करके घर ले आये। चरणों को धोकर पलङ्ग पर बिठलाया। तब सुग्रीवजी ने चरणों में सिर झुकाया। लक्ष्मणजी ने उनको बाँहे पकड़कर गले से लगा लिया।

व्याख्या : रामजी के श्रवणामृत सुयश सुनने से जब क्रोध का वेग घटा तब बिनती किया कि अब गृह को पवित्र कीजिये। बानर राज बहुत भयभीत हैं। सामने नहीं आ रहे हैं। सरकार के प्रताप से ही निष्कण्टक राज्य पाकर सुखी हैं। उनके तो सर्वस्व आप ही हैं इत्यादि। इस भाँति लक्ष्मणजी को घर ले आये। पाद प्रक्षालन का विधान है तब पलङ्ग पर बिठाया। लक्ष्मणजी ने मित्र के पलङ्ग को अपनी समझकर स्वीकार किया और बैठ गये। पलङ्ग पर बैठने का अर्थ ही क्षमा करना है। तब सुग्रीवजी ने आकर चरणों में सिर झुकाया। रामजी की चेतावनी थी : तात सखा सुग्रीव। अतः लक्ष्मणजी ने उनकी भुजा पकड़ी और गले लगाया। समझा कि इनकी इतनी नम्रता बहुत है। भरतजी ने यह सुनकर कि निपादराज रामजी के सखा हैं उनके आने पर रथ पर से उतर पड़े थे। अतः उनका यथेष्ट सत्कार होना चाहिए।

नाथ विषय सम मद कछु नाँही। मुनि मन मोह करै छन माँही ॥
सुनत विनीत बचन सुख पावा। लछिमन तेहि बहु बिधि समुझावा ॥४॥

अर्थ : बोले हे नाथ! विषय के समान कोई मद नहीं है। क्षण भर में मुनियों के मन में क्षोभ उत्पन्न करता है। विनययुक्त वचन सुनकर लक्ष्मणजी सुखी हुए और उन्हें बहुत प्रकार से समझाया।

व्याख्या : विनययुक्त वचन से ही सुख होता है। यथा : मुनि रघुबीर परस्पर नवहीं। बचन अगोचर सुख अनुभवहीं। सुग्रीवजी सत्य और प्रिय वचन विचारपूर्वक बोलते हैं और जागते सोते सदा रघुनाथजी की शरण में रहते हैं। स्वल्पाक्षरों में सब कुछ कह दिया। नाथ सम्बोधन से सेवक सेव्य भाव का अक्षुण्ण होना जनाया। विषय मद को सब मदों से बड़ा कहकर यह बात जनाया कि मैं अपने होश में नहीं था। समय का ज्ञान नहीं रहा। साक्षात् विश्वामित्रजी को अप्सरा के सामने दस वर्ष का दिन पल के समान बीत गया। मेरे मन में मोह उपजना कौन सी बात है? तब लक्ष्मणजी ने उन्हें अनेक विधि से समझाया। यथा :

तुमते मीत पुनीत लहि भे सनाथ रघुनाथ।
ऐसइ भाव स्वभाव को होन चहिय कपिनाथ ॥

अवसि कृतारथ होहिगे, तव प्रताप बलराम।
धर्म धुरन्धर धीर सम बचन कहेहु अभिराम ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ह्वै समर्थ निज दोष गुनि कौन सकै अस भाषि।
कै रघुपति कै कीशपति और न शंकर साखि॥
बल विक्रम मे राम के सरिस तुही कपिराय।
समुझि सुरन्ह दीन्ह्यौ हमहिं तुम सन सबल सहाय॥
करिय वीर अब बेर नहि चलिय हमारे साथ।
धीरज दै समझाइये तिय विरही रघुनाथ॥

पवन तनय सब कथा सुनाई। जेहि विधि गये दूत समुदाई॥५॥

दो. हरखि चले सुग्रीव तब, अंगदादि कपि साथ।
रामानुज आगे करि, आये जहँ रघुनाथ॥२०॥

अर्थ : पवनसुत महावीरजी ने जिस भाँति दूतो के समूह भेजे गये वह सब कथा कह सुनाई। तब हर्षित होकर अङ्गदादि वन्दरो को साथ लेकर सुग्रीवजी चले और लक्ष्मणजी को आगे करके रघुनाथजी के पास आये।

व्याख्या : क्रोध का वेग देखकर अपराध स्वीकार कर लेना ही उपाय है। अतः हनुमान्जी ने पहिले दूतो का भेजा जाना नही कहा। सब प्रकार की शान्ति हो जाने पर हनुमान्जी ने दूतो के भेजे जाने की सब कथा लक्ष्मणजी को सुनायी। भाव यह कि आपका कार्य हो रहा है। वानरी सेना आना ही चाहती है। पन्द्रह दिन की अवधि देकर अमुक अमुक पर्वत और अमुक अमुक वनों में दूत भेजे गये हैं।

लक्ष्मणजी जब वृत्तान्त जान चुके तब राजा सुग्रीव हर्षित होकर चले। प्रभु के दर्शन को जा रहे हैं इसलिए हर्षित है। बडे भारी भय के हट जाने और लक्ष्मणजी से समादृत होने से हर्षित हैं। राजा के चलते ही युवराज अङ्गद मन्त्री हनुमान्जी सेनापति नीलादि साथ हो लिये। लक्ष्मणजी को आगे कर लिया। जिसमे दूर से ही रघुनाथजी को विदित हो जाय कि हम लोग लक्ष्मणजी के वश मे हैं अथवा शरण जाने मे श्रीरामानुज को ही आगे करना चाहिए।

नाइ चरन सिरु कह कर जोरी। नाथ मोहि कछु नाहि न खोरी॥
अतिसय प्रबल देव तव माया। छूटै राम करहु जौ दाया॥१॥

अर्थ : चरणो मे सिर झुकाकर और हाथ जोड़कर कहने लगे कि हे नाथ! मेरा कुछ भी दोष नही है। आपकी माया अत्यन्त ही प्रबल है। आप दया करें तो छूटे।

व्याख्या : श्रीरामजी किष्किन्धा के इतने सन्निकट ठहरे हुए हैं और इतने दिन हुए सुग्रीवजी कभी मिलने भो नही आये। प्रभु ने कहा था : संतत हृदय धरेहु मम काजू। उसे भी भुला दिया। जब लक्ष्मणजी जाकर नगर जलाने की धमकी दी तब आज मिलने आ रहे है। अत. अपने को सापराध मानते हुए चरणों मे पड़े और इन सब चूकों का कारण बतलाते हुए हाथ जोड़कर सत्य और प्रिय

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



करि बिनती मंदिर लै आये। चरन पखारि पलंग बैठाये ॥
तब कपीस चरननिह सिरु नावा। गहि भुज लछिमन कंठ लगावा ॥३॥

अर्थ : विनती करके घर ले आये। चरणो को धोकर पलङ्ग पर बिठलाया। तब सुग्रीवजी ने चरणो मे सिर झुकाया। लक्ष्मणजी ने उनकी बाँहे पकड़कर गले से लगा लिया।

व्याख्या : रामजी के श्रवणामृत सुयश सुनने से जब क्रोध का वेग घटा तब विनती किया कि अब गृह को पवित्र कीजिये। बानर राज बहुत भयभीत हैं। सामने नही आ रहे है। सरकार के प्रताप से ही निष्कण्टक राज्य पाकर सुखी है। उनके तो सर्वस्व आप ही हैं इत्यादि। इस भाँति लक्ष्मणजी को घर ले आये। पाद प्रक्षालन का विधान है तब पलङ्ग पर बिठाया। लक्ष्मणजी ने मित्र के पलङ्ग को अपनी समझकर स्वीकार किया और बैठ गये। पलङ्ग पर बैठने का अर्थ ही क्षमा करना है। तब सुग्रीवजी ने आकर चरणो मे सिर झुकाया। रामजी की चेतावनी थी : तात सखा सुग्रीव। अत लक्ष्मणजी ने उनकी भुजा पकडी और गले लगाया। समझा कि इनकी इतनी नम्रता बहुत है। भरतजी ने यह सुनकर कि निषादराज रामजी के सखा हैं उनके आने पर रथ पर से उतर पडे थे। अत उनका यथेष्ट सत्कार होना चाहिए।

नाथ विषय सम मद कछु नाँही। मुनि मन मोह करै छन माँही ॥
सुनत विनीत वचन सुख पावा। लछिमन तेहि बहु बिधि समुझावा ॥४॥

अर्थ : बोले हे नाथ ! विषय के समान कोई मद नही है। क्षण भर मे मुनियो के मन मे क्षोभ उत्पन्न करता है। विनययुक्त वचन सुनकर लक्ष्मणजी सुखी हुए और उन्हे बहुत प्रकार से समझाया।

व्याख्या विनययुक्त वचन से ही सुख होता है। यथा : मुनि रघुबीर परस्पर नवही। वचन अगोचर सुख अनुभवही। सुग्रीवजी सत्य और प्रिय वचन विचारपूर्वक बोलते हैं और जागते सोते सदा रघुनाथजी की शरण मे रहते हैं। स्वल्पाक्षरो मे सब कुछ कह दिया। नाथ सम्बोधन से सेवक सेव्य भाव का अक्षुण्ण होना जनाया। विषय मद को सब मदो से बडा कहकर यह बात जनाया कि मैं अपने होश मे नही था। समय का ज्ञान नही रहा। साक्षात् विश्वामित्रजी को अप्सरा के सामने दस वर्ष का दिन पल के समान बीत गया। मेरे मन मे मोह उपजना कौन सी बात है ? तब लक्ष्मणजी ने उन्हे अनेक विधि से समझाया। यथा

तुमते मीत पुनीत लहि भे सनाथ रघुनाथ।
ऐसइ भाव स्वभाव को होन चहिय कपिनाथ ॥

अवसि कृतारथ होहिगे, तव प्रताप बलराम।
धर्म धुरन्धर धीर सम बचन कहेहु अभिराम ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ह्वै समर्थ निज दोष गुनि कौन सकै अस भाषि।
कै रघुपति कै कीशपति और न शंकर साखि॥
बल विक्रम मे राम के सरिस तुही कपिराय।
समुझि सुरन्ह दीन्ह्यौ हमहि तुम सन सबल सहाय॥
करिय वीर अब वेर नहि चलिय हमारे साथ।
धीरज दै समझाइये तिय बिरही रघुनाथ॥

पवन तनय सब कथा सुनाई। जेहि विधि गये दूत समुदाई॥५॥

दो हरखि चले सुग्रीव तब, अगदादि कपि साथ।
रामानुज आगे करि, आये जहँ रघुनाथ॥२०॥

अर्थ पवनसुत महावीरजी ने जिस भाँति दूता के समूह भेजे गये वह सब कथा कह सुनाई। तब हर्षित होकर अङ्गदादि बन्दरो को साथ लेकर सुग्रीवजी चले और लक्ष्मणजी को आगे करके रघुनाथजी के पास आये।

व्याख्या क्रोध का वेग देखकर अपराध स्वीकार कर लेना ही उपाय है। अत हनुमान्जी ने पहिले दूतो का भेजा जाना नही कहा। सब प्रकार की शान्ति हो जाने पर हनुमान्जी ने दूतो के भेजे जाने की सब कथा लक्ष्मणजी को सुनायी। भाव यह कि आपका कार्य हो रहा है। वानरी सेना आना ही चाहती है। पन्द्रह दिन की अवधि देकर अमुक अमुक पवत और अमुक अमुक वनो मे दूत भेजे गये हैं।

लक्ष्मणजी जब वृत्तान्त जान चुके तब राजा सुग्रीव हर्षित होकर चले। प्रभु के दर्शन को जा रहे हैं इसलिए हर्षित हैं। बडे भारी भय के छूट जाने और लक्ष्मणजी से समादृत होने से हर्षित हैं। राजा के चलते ही युवराज अङ्गद मन्त्री हनुमान्जी सेनापति नीलादि साथ हो लिये। लक्ष्मणजी को आगे कर लिया। जिसमे दूर से ही रघुनाथजी को विदित हो जाय कि हम लोग लक्ष्मणजी के साथ में हैं अथवा शरण जाने म श्रीरामानुज को ही आगे करना चाहिए।

नाइ चरन सिरु कह कर जोरी। नाथ मोहि कछु नाहि न खोरी॥
अतिसय प्रबल देव तव माया। छूटै राम करहु जौ दाया॥१॥

अर्थ चरणा मे सिर झुकाकर और हाथ जोडकर कहने लगे कि हे नाथ! मेरा कुछ भी दोष नही है। आपकी माया अत्यन्त ही प्रबल है। आप दया करें तो छूटे।

व्याख्या श्रीरामजी किष्किन्धा के इतने सन्निकट [illegible] दिन हुए सुग्रीवजी कभी मिलने भी नही आये। प्रभु ने [illegible] परेहु मम काजू। उसे भी भुला दिया। जब लक्ष्मणजी [illegible] धमकी दी तब आज मिलने आ रहे हैं। अत अपने [illegible] म पडे और इन सब चूकी का कारण बतलाते हुए हाथ [illegible]

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वचन विचारकर बोले कि नाथ ! मेरा कुछ भी दोष नही है। मैंने जानबूझकर कोई चूक नही किया। मैं अपने वश मे नही था। माया के वश मे पड गया। वह माया आपकी है। बडी ही प्रबल है। जीव मे इतनी सामर्थ्य नही कि अपने को छुडा सकें। मैंने पहिले ही विनती की थी अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँती। सब तजि भजन करउँ दिन राती। सुख सम्पत्ति परिवार बडाई। आपकी भक्ति के बाधक है इन्हे मैं नही चाहता। पर मुझे राज्य दे दिया गया। मैं सुख सम्पत्ति परिवार बडाई मे पड गया। भजन भूल गया। मैंने जानबूझकर भजन नही बिसारा। मैंने आपकी माया का बल देखा। वह अत्यन्त ही प्रबल है। जीव की उसके सामने कुछ नही चल सकती। आप ही कृपा करें तो छूट सकती है। मेरे ऊपर बडी कृपा हुई इसमे सन्देह नही। पर माया से छोडानेवाली कृपा नही हुई। क्रोध मनोज मोह मद माया। छूटहिं सकल राम की दाया।

**बिषय बस्य सुर नर मुनि स्वामी। मै पाँवर पसु कपि अति कामी।।**
**नारि नयन सर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निसि जो जागा।।२।।**

अर्थ हे स्वामी देवता मनुष्य और मुनि सब विषय के वश्य हैं। मैं तो नीच पशु अति कामी बन्दर हूँ। स्त्री के नयनरूपी वाण जिसे नही लगे और क्रोध के घोरान्धकार मे जो रात को जागा।

व्याख्या जो माया ज्ञानियो के चित्त को अपहरण करके बलपूर्वक विमोह के वश कर देती है उसके वश मे देवता मनुष्य और मुनि सभी हैं। यथा सिव बिरचि कहँ मोहै को है बपुरा आन। कोई उसके अतिक्रमण मे समर्थ नही है दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। उसके सामने मेरी गिनती क्या ? मै तो नीच योनि पशु हूँ और पशुओ मे भी अति कामी बन्दर हूँ। पशुओ मे भी कुछ विचार पाया जाता है। जोडा जोडा साथ रहनेवाले अनेक जातिवाले पशु हैं। भैंसे मातृ गमन नही करते। जाति विशेष के बैल दूसरे जाति के बैल का जूठा नही खाते। कितनी जाति के पशु ऋतुकालाभिगामी होते हैं। बन्दरो मे कोई नियम किसी प्रकार का देखा नही जाता। इसलिए वे स्वभाव से अति कामी पामर पशु हैं। उनका माया वश मे पड जाना कौन सी बात है ?

नारिनयन जगद्विजयी कामदेव का वाण है। शूल कुलिश और वज्र के सहनेवाले भी इस वाण को नही सह सकते। यथा सूल कुलिस असि अगवनि हारे। ते रति नाथ सुमन सर मारे। जड जीव का क्या सामर्थ्य है कि उसे सह जाय ? अविद्या रात्रि है उसमे क्रोधरूपी घोर अन्धकार है। उस अन्धकार मे स्वभाव से ही सब सो जाते है अर्थात् मोह को प्राप्त होते है। रात्रि मे भी कुछ रात्रियाँ ऐसी हैं जिसमे उँजेला भी रहता है। उनमे जागने का अवसर मिलता है। परन्तु घोर अन्धकारयुक्त रात्रि मे तमाम सोता पड जाता है। दृष्टि के प्रसार न होने से सब सो जाते है। इसी भाँति क्रोधान्धकार के आने पर जगत् मूढ हो जाता है। उसमे जड जीव कैसे जाग सकते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लोभ पास जेहि गर न वँधाया । सो नर तुम्ह समान रघुराया ॥
यह गुन साधन ते नहिं होई । तुम्हरी कृपा पाव कोइ कोई ॥३॥

अर्थ : जिसने लोभ के फन्दे से अपना गला नहीं बँधाया वह मनुष्य हे रघुराई ! तुम्हारे समान है । यह गुण साधन से नहीं होता । तुम्हारी कृपा से किसी-किसी को मिल जाता है ।

व्याख्या : काम वाण है । यह प्राण हरण करता है । क्रोध अन्धकार है, इसमें विवेक दृष्टि लुप्त हो जाती है और लोभ पाश है । यह परवश कर देता है । लोभ से ही मनुष्य अपने को दूसरे के वश में कर देता है । दूसरे की गुलामी करता है । अनेक प्रकार का अपमान सहन करता है । लोभ के पाश में अपना गला मनुष्य स्वयं बँधाता है । उसे अपने को परवश करने में लज्जा नहीं होती । यथा : लोलुप भ्रमत गृह पसु ज्यों जहँ तहँ सिरपद त्रान बजे । तदपि अधम विचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ़ लजे । केवल आप में ये तीनों नहीं हैं । काम नहीं है । यथा : मोरे अति प्रतीति जिय केरी । जेहि सपनेउ पर नारि न हेरी । क्रोध नहीं है । यथा : सिसुपन ते पितु मातु बंधु गुरु सेवक सचिव सखाउ । कहत राम बिधु बदन रिसौं हैं सपनेहुँ लख्यौ न काउ । लोभ नहीं है । यथा : राजिव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाउ कि नाईं । अतः जिनमें ये तीनों न हों वह मनुष्य तो तुम्हारे समान है । कामरहित होना क्रोधरहित होना और लोभरहित होना क्रियासाध्य नहीं हैं । कृपासाध्य हैं । काम क्रोध और लोभ के जय के लिए सभी साधक सचेष्ट होते हैं । पर इसमें कृतकार्य तो कोई एक ही होता है और वह तुम्हारी कृपा से होता है । यथा : तब लगि हृदय बसत खल नाना । लोभ मोह मत्सर मद माना । जब लगि उर न बसत रघुनाथा । धरे चाप सायक कटि भाथा ।

तब रघुपति बोले मुसुकाई । तुम्ह प्रिय होहि भरत जिमि भाई ॥
अब सोइ जतनु करहु मन लाई । जेहि बिधि सीता कै सुधि पाई ॥४॥

अर्थ : तब रघुपति मुसकुराकर बोले कि तुम मुझे भाई भरत के समान प्रिय हो । अब मन लगाकर वैसा ही यत्न करो जिसमें सीताजी की सुधि मिले ।

व्याख्या : मुसकुराने से अपराध का क्षमापन सूचित किया । क्रोध बनावटी था । मित्र का सामना पड़ते ही मुसकुरा पड़े । कहने लगे कि यह सन्देह न करो कि तुम्हारे ऊपर मेरी कृपा नही है । तुम भाई भरत के समान प्रिय हो । तुम्हारा स्मरण मुझे रात दिन बना रहता है । यथा : रामहि बन्धु सोच दिन राती । अंडन्हि कमठ हृदउ जेहि भाँती । प्रिय होने में हनुमान्‌जी को लक्ष्मण की कोटि में गिना था । सुग्रीवजी को भरतजी की कोटि में गिन रहे हैं । अपराध अगाध भये जन ते अपने उर आनत नाहिन जू । कहते हैं कि अब मेरी अप्रसन्नता हटाने की चिन्ता न करो । अब सीता का पता लगाने की विधि के लिए मन लगाकर यत्न करो । यत्न तुमने आरम्भ कर दिया । इसमे सन्देह नहीं है पर मन लगाकर यत्न नहीं किया ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हनुमान्‌जी के स्मरण कराने पर भी दूतो को स्वयं बुलाकर नही कहना। हनुमान्‌जी को उन्हें बुलाकर कहने की आज्ञा देना। इस बात का प्रमाण है कि तुमने मन लगाकर यत्न नही किया। अब मन लगाकर करो।

## ५३ सुग्रीव दूत प्रेषण प्रसग

दो० एहि विधि होत बतकही, आये बानर जूथ।
नाना बानर सकल दिसि, देखिअ कीस बरूथ ॥२१॥

अर्थ इस प्रकार बातचीत होती ही रही कि वानरी सेना आगयी। सब दिशाएँ वानरी सेना के कारण नाना रङ्ग के दिखाई पडने लगी अथवा नाना रङ्ग की वानरी सेना सब दिशाओ मे दिखाई पडती थी।

व्याख्या हनुमान्‌जी ने चारो ओर दूत भेजे थे। अत वे दूत चारो दिशाओ के पर्वत वना से वानरी सेनाओ को लिए हुए आ पहुँचे। पन्द्रह दिन का उनको समय दिया गया था। आज पन्द्रहवाँ दिन था। अत चारो दिशाओ से सेना पहुँचने लगी। बन्दर अनेक रङ्ग के होते हैं। एक-एक रङ्ग के बन्दरा की अलग अलग सेना है। अत इतनी वडी वडी सेनाएँ पृथक् पृथक् रङ्ग के बन्दरो की जो चारो दिशाओ से आयी तो उनके रङ्ग से दिशाएँ लाल, पीली, काली, नीली हो गयी। इससे बानरी सेना की अपारता कहा।

बानर कटक उमा मैं देखा। सो मूरुख जो करन चह लेखा ॥
आइ राम पद नावहिं माथा। निरखि बदनु सब होहिं सनाथा ॥१॥

अर्थ उमा! मैंने वानरी सेना देखी। जो उनकी लखा करना चाहे वह मूर्ख है। आकर रामजी के चरणो मे सिर नवाते हैं और मुख देखकर सब सनाथ होते हैं।

व्याख्या बात मन म बैठने योग्य नही है। अत शिवजी उमा से कहते हैं कि मेरी आँखो देखी बात है अथवा उमा अद्भुत दृश्य का स्मरण करके सेना की महत्ता बतलाने के लिए कहते हैं कि मैने देखा पर यह अन्दाज न कर सका कि सब मिला कर कितने बन्दर होगे। यथा महा बली बानर बिसाल भालु काल से कराल हैं रहे कहाँ? समाहिं कहाँ मही? लेखा करना पण्डित का काम है। मूर्ख लेखा नही कर सकता। पर वहाँ तो असख्य बन्दर थे। इनकी सख्या करने की इच्छा करनी ही मूर्खता थी।

सब के सब आकर रामजी के चरणो मे सिर नवा रहे हैं सुग्रीव के चरणो म नही करते। सबको मालूम है कि महाप्रभु रामजी हैं सुग्रीव तो उनके बनाये हुए राजा हैं। सर्वं पदा हस्तिपदे निमग्ना इन्ही के प्रणाम से सुग्रीव को भी तुष्टि है अथवा सभी प्रणामो का पर्यवसान रामजी के चरणो म हा होता है। यथा सर्वदेवनमस्कार केशव प्रति गच्छति। अत उन्ही को प्रणाम किया अथवा रामजी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



के विद्यमान होने पर दूसरे को प्रणाम करना उचित नही समझा अथवा सुग्रीवजी का रुख है रामजी को ही प्रणाम करो।

प्रणाम करने के बाद सब मुख देखते हैं और सनाथ होते हैं। यही समय है अत्यन्त निकट आकर दर्शन करने का। अत: प्रणाम करके मुख देखते हैं और प्रभु को पहिचानकर सनाथ होते हैं। यथा : जो कछु आयसु ब्रह्मा दीन्हा। हरखे देव बिलंब न कीन्हा। बनचर देह धरी छिति माही। अतुलित बल प्रताप तिन्ह पाही। गिरि तरु नख आयुध सब धीरा। हरि मारग चितवहिं मति धीरा। जबतक प्रभु को नही देखा था अपने को अनाथ मानकर नाथ के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। अत: नाथ को पहिचानकर सनाथ हो रहे हैं अथवा प्रभु के दर्शन से कृतार्थ होकर सनाथ हो रहे हैं।

अस कपि एक न सेना माँही। राम कुसल जेहि पूछा नाँही ॥
यह कछु नहिं प्रभु कै अधिकाई। बिस्व रूप व्यापक रघुराई ॥२॥

अर्थ : एक भी वन्दर सेना मे ऐसा नही था जिससे रामजी ने कुशल न पूछा हो। यह प्रभु के लिए कोई विशेषता नहीं है। क्योंकि रघुराई तो विश्वरूप व्यापक हैं।

व्याख्या : सेवकों ने ही प्रभु को पहिचाना यह बात नही। प्रभु ने भी सेवकों को पहिचाना और सबसे कुशलप्रश्न किया। यह कुशलप्रश्न आदर का द्योतक है। शङ्का उठती है कि जब इतने असख्य वन्दर थे तो सबसे कुशलप्रश्न करना कैसे सम्भव है? बात यह है कि जीव के लिए तो यह बात अवश्य असम्भव है पर रघुराई के लिए नही। वे तो व्यापक हैं सभी के साथ सयुक्त हैं और सर्वरूप है। जिमि घट कोटि एक रवि छाही। वे सबसे एक साथ मिल सकते हैं। उनके लिए सबसे कुशलप्रश्न करना बड़ी बात नही है। ब्रह्म का जीव पर सहज स्नेह होता है। यथा : ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू। अत. स्नेही का कुशलप्रश्न न करना ही अनुचित है। यहाँ पर सरकार का स्वभाव कहते हैं। सामान्य राजा चाहे सेनापति से कुशल पूछ लें पर सैनिक से कुशल नही पूछते। यहाँ तो कोई वन्दर ऐसा बचा नही जिससे कुशल न पूछा गया हो। अस सुभाउ कहुँ सुनें न देखें। केहि खगेस रघुपति सम लेखें।

## ५४. सीता खोज

ठाढ़े[1] जहँ तहँ आयसु पाई। कह सुग्रीव सबहिं समुझाई ॥
राम काजु अरु मोर निहोरा। बानर जूथ जाहु चहुँ ओरा ॥३॥

अर्थ : आज्ञा पाकर सब जहाँ तहाँ खड़े हो गये और सुग्रीव सबको समझा

१. ५३वाँ प्रसग सीता खोज यहाँ से प्रारम्भ हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कर कहने लगे। एक तो रामजी का कार्य है और दूसरे मैं निहोरा करता हूँ। इससे हे वानर समूह! चारों ओर जाओ।

व्याख्या : ज्यो सुग्रीवजी आज्ञा देने लगे सब के सब जहाँ के तहाँ खडे हो गये। सुग्रीवजी सबको समझाकर कहने लगे कि अमुक यूथप अमुक दिशा मे जायें। और उनकी जानकारी के लिए उन उन दिशाओ के देश, पर्वत, नदी आदि का पता बतलाया और जहाँ तक गति है उन स्थानो की सीमा बतलायी। प्रयोजन बतलाते हुए कहा कि यह राज्यकार्य है इनके करने से तुम्हारा पारलौकिक कल्याण होगा और लोक मे भी तुम्हारा भला होगा। मैं राजा होकर तुम्हारा कृतज्ञ हूँगा।

जनक सुता कहुँ खोजहु जाई। मास दिवस महुँ आयेहु भाई ॥
अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाएँ। आवइ बनिहि सो मोहि मराएँ ॥४॥

अर्थ : जाकर राजा जनक की बेटी को खोजो। एक महीने के भीतर लौट आना। यदि बिना पता लगाये कोई महीने भर के बाद लौटेगा उसे मेरे हाथ से मरना पडेगा।

व्याख्या : जनकसुता कहने से जगद्विख्यात रूप कहा। भाव यह कि अति-रूपवती स्त्री देखना तब पता लगाना कि यह किसकी बेटी है। जब मालूम हो जाय कि राजा जनक की बेटी है तब लौटकर मुझे समाचार देना। भाई! सम्बोधन से अभिप्राय है कि तुम हमारे भाई हो। इस सङ्कट मे सहायता करो। यथा : ओढिअहि हाथ असनिहुँ के छाए। होहि कुठाय सुबंधु सहाये। मैने प्रतिज्ञा की है कि : सब प्रकार करिहौं सेवकाई। जेहि बिधि मिलहि जानकी आई। सो तुम्हारे ही बल पर की है। अतः तुमलोग जानकीजी का पता लगाओ और महीने भर मे अवश्य लौट आना। तुम्हारा किया न हो सके तो लौटकर समाचार देना कि पता नही लग सका।

यदि पता लग जाय तो स्वयं आँख से देखकर तब लौटना। इस प्रयत्न मे देर भी हो जाय तो कोई चिन्ता नही। पर यदि पता भी न लगा और लौटने मे भी देर हुई तो वह अपराध अक्षम्य समझा जायगा। उसका वध दण्ड है।

दो. बचन सुनत सब बानर, जहँ तहँ चले तुरंत।
तब सुग्रीव बोलाये, अंगद नल हनुमंत ॥२२॥

अर्थ : वचन सुनते ही सब बानर जहाँ तहाँ तुरन्त चल पडे। तब सुग्रीव ने अङ्गद नल और हनुमान्‌जी को बुलाया।

व्याख्या : ऐसी आज्ञा पाने पर बन्दरो ने एक क्षण का भी देर करना उचित नही समझा। अपनी अपनी निर्दिष्ट दिशाओ मे चल पड़े। पता पहले से ही था कि सीताजी का हरण करनेवाला उन्हे दक्षिण दिशा मे ले गया है। अत' विशेष रूप

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दक्षिण दिशा म ही खोज करना था। अत अत्यन्त विश्वस्त तथा प्रख्यातपौरुष वीरो को उधर ही भेजना निश्चय करके बुलाया। सम्भव है कि हरण करनेवाले ने आगे जाकर मार्ग परिवर्तन कर दिया हो। इसलिए सभी ओर खोजने के लिए सेना भेजी यह दोहारूपी कमल अगली चौपाईरूपी पुरइन से सम्बद्ध है इस दोहा मे तीन सुभटो का नाम गिनाया। अङ्गद हनुमान् और नल का। परन्तु कवि को चार का नाम गिनना इष्ट है। अत शेष का अगली चौपाई मे गिनावेंगे।

सुनहु नील अगद हनुमाना। जामवत मति धीर सुजाना॥
सकल सुभट मिलि दच्छिन जाहू। सीता सुधि पूंछेहु सब काहू॥१॥

अर्थ हे नील! अङ्गद युवराज है। हनुमान् और धीरमति सुजान जाम्बवान सुनो। सब बीर मिलकर दक्षिण दिशा मे जाओ और सीताजी की सुधि सबसे पूछो।

व्याख्या नील सेनापति हैं। अङ्गद युवराज है। हनुमान् और जामवन्त मन्त्री हैं। नल स्थपति इन्जीनियर। इनमे जाम्ववान् सबसे वयोवृद्ध हैं। इन्हे मतिधीर और सुजान विशेषण देकर यह द्योतित किया कि इनकी सम्मति से शेष वीर लोग काम करें। यथा जामवन्त मै पूछौ तोही। उचित सिखावन दीजहु मोही। अन्य दिशाओ मे एक ही एक सुभट भेजे गये। विनय पूर्व दिशा मे भेजे गये थे। शतवलि उत्तर दिशा मे। सुषेण पश्चिम दिशा मे भेजे गये थे। दक्षिण दिशा मे यद्यपि नाम पाँच का ही लेते हैं पर सकल सुभट कह कर यह दिखलाते हैं कि शेष सभी सुभट द्विविद मयद नील नल अगद गद विकटासि। दधिमुख केहरि निसठ सब जामवंत बलरासि। दक्षिण दिशा मे ही मैथिली सीताजी के ले जाने का पता चलता है। अत इस ओर अधिक प्रयत्न किया गया। सुग्रीवजी उपदेश देते हैं कि सीता का पता सबसे पूछना। भाव यह कि यह महामन्त्र है कि जिसकी खोज हो उसक विषय मे सबसे पूछे। यह विचार न करे कि अमुक व्यक्ति न जानता होगा उससे क्या पूछ अथवा बार बार निषेधात्मक उत्तर पाने से धैर्य न छोडें और पूछने म सङ्कुचित न हो। इसलिए सबसे पूछने का उपदेश दे रहे हैं।

मन क्रम बचन सो जतन बिचारेहु। रामचन्द्र कर काज सँवारेहु॥
भानु पीठ सेइअ उर आगी। स्वामिहि सर्बभाव छलत्यागी॥२॥

अर्थ मनसा वाचा कर्मणा वही उपाय सोचना जिसमे रामजी का काम बन जाय। सूर्य की पीठ पीछे और अग्नि को हृदय से सेवा करे। पर स्वामी की तो सर्वतोभाव से छल छोडकर सेवा करनी चाहिए।

व्याख्या अग्रे वह्नि पृष्ठे भानु। यही नियम है कि अग्नि की सेवा आगे से और सूर्य की सेवा पीछे से करनी चाहिए। इसी मे हित है। व्यतिक्रम होने से हानि की सम्भावना है। जाडा कलेजे म पैठ जाती है। यथा जडता जाड विषम डर लागा। अत अग्नि की सेवा उर से करनी चाहिए। सामने से सूर्य की सेवा करने से

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नेत्रों में हानि पहुँचती है। पर स्वामी की सेवा सामने और पीठ पीछे भी सर्वतोभाव से करनी चाहिए। पीठ पीछे सेवा करनेवाले में छल की सम्भावना नहीं रहती। मुख के सामने सेवा करने में छल की सम्भावना रहती है। इसलिए सर्व भाव छल त्यागी कहा।

अथवा आगे से अग्नि और पीठ की ओर से सूर्य की सेवा करे तो जाड़ा चली जाय। पर जड़तारूपी जाड़ा तो स्वामी की छल छोड़कर सर्वतोभाव से भजन करने से ही जाती है। रामजी सबके स्वामी हैं। सौभाग्य से इनकी सेवा का अवसर प्राप्त हुआ है। अतः छल छोड़कर सर्वतोभाव से इनका कार्य करो।

तजि माया सेइअ परलोका। मिटहिं सकल भव संभव सोका॥
देह धरे कर यह फलु भाई। भजिअ राम सब काम बिहाई॥३॥

अर्थ : माया का परित्याग करके परलोक का काम जब करे तब संसार से उत्पन्न सब शोक मिटते हैं। हे भाई! देह धारण का यही फल है कि सब कामनाओं को छोड़कर राम को भजे।

व्याख्या : माया का सर्वथा परित्याग नही हो सकता। शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध को छोड़कर कोई कहाँ जावेगा? गो गोचर जहाँ तक मन की दौड़ है वह सब माया ही तो है और बिना उसके त्यागे परलोक का सेवन हो नहीं सकता। शोक मोह संसार का बीज है। यह मैं और मेरा तैं और तेरा इन भावों के रहते हुए नष्ट नही हो सकता। अतः मन से अहंता और ममता का परित्याग करने से ही परलोक की सेवा सम्भव है। यथा : रस रस सूख सरित सर पानी। ममता त्याग करहिं जिमि ग्यानी। राम ब्रह्म ही परलोक रूप है। यथा : राम ब्रह्म परमारथ रूपा। अतः इनकी सेवा सब कोई अहंता ममता परित्याग करके करो। पहिले स्वामिहि सर्बभाव छल त्यागी जो कहा है सो माया ही छल है। भाव यह कि देह और गेह की ममता छोड़कर जगदम्बा जानकी के खोज में लग जाओ। यथा : सो जननी सो पिता सोइ माइ सो भामिनि सो सुत सो हित मेरो। सोइ सगो सो सखा सोइ सेवक सो गुरु सो सुर साहिब चेरो। सो तुलसोप्रिय प्रान समान कहाँ लौं बनाइ कहौं बहु तेरो। सो तजि देह को गेह को नेह सनेह सों राम को होइ सबेरो।

देह धारण का फल कामभोग नहीं है। इससे तो इन्द्रियों का तेज नष्ट होता है। देह धारण का फल भजन है। क्योंकि बिना देह के राम भजन नहीं होता। देह में ममता इसलिए होनी चाहिए कि इसके द्वारा राम भजन होता है। यथा : तजौं न तनु निज इच्छा मरना। तनु बिनु बेद भजन नहिं बरना। जेहि तें कछु निज स्वारथ होई। तेहि पर ममता कर सब कोई। रामभगति यहि तन उर नामी। ताते मोहि परम प्रिय स्वामी। अर्थात् यह समय देह धारण के फल प्राप्त करने का आ गया है। अतः भाइयो! इस अवसर को न चूको। रामजी की सेवा में शरीर को लगा दो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सोइ गुनज्ञ सोई बड भागी । जो रघुबीर चरन अनुरागी ॥
आयसु माँगि चरन सिरु नाई । चले हरषि सुमिरत रघुराई ॥४॥

अर्थ वही गुणज्ञ है और वही बडा भाग्यशाली है जो रघुबीर के चरण का अनुरागी हो । आज्ञा माँगकर और चरणो मे सिर नवाकर सब हर्षित होकर रामजी का स्मरण करते हुए चले ।

व्याख्या कलाओ के ज्ञान से कोई गुणज्ञ नही होता और सुख सम्पत्ति के होने से कोई भाग्यशाली नही होता । कलाओ का ज्ञान और सुख सम्पत्ति तो पापी को भी होती है । जो प्रमादी वित्त मोह से मूढ हैं उन्हे परलोक प्रतिभात नही होता । वह इसी लोक को सब कुछ मान बैठता है परलोक नही मानता और बार बार यमराज के वश मे जाता है । अत भवभञ्जन के पद का जो अनुरागी है वही बडभागी है । रमा बिलास राम अनुरागी । तजत बमन जिमि जन बड भागी । कहा भी गया है कौपीनवन्त खलु भाग्यवत्त जिन्हे कौपीन लगोटी मात्र है वे ही भाग्यवान् हैं । जरउ सा सम्पति सदन सुख सुहृत मातु सुत भाइ । सनमुख होत जो रामपद करइ न सहस सहाइ ।

तीन दिशाओ मे जो बन्दर सीताजी का समाचार लेने को भेजे गये उनका न तो प्रणाम करना और न हर्षित होकर चलना कहते हैं । अत उनके द्वारा कार्य सिद्ध का न होना द्योतित किया । दक्षिण दिशा के यात्री वीरो ने प्रणाम किया । आज्ञा माँगी और रघुराई का स्मरण करते चले । उनके ऊपर सुग्रीवजी के उपदेश ने काम किया । सुग्रीवजी ने कहा भजिअ राम सब काम बिहाई । सो वे रघुराई का स्मरण करते चल पडे ।

पाछे पवन तनय सिरु नावा । जानि काज प्रभु निकट बोलावा ॥
परसा सीस सरोरुह पानी । कर मुद्रिका दीन्हि जन जानी ॥५॥

अर्थ पीछे से हनुमान्जी ने सिर नवाया । इनके द्वारा कार्यसिद्धि जानकर प्रभु ने समीप बोलाया । उनके सिर पर करकमल फेरा और भक्त जानकर हाथ की अँगूठी दी ।

व्याख्या हनुमान्जी परम अमानी हैं । अत सबके प्रणाम करने के बाद जाकर प्रणाम किया । सभी लोग दूर से प्रणाम करते है । उसी भांति हनुमान्जी ने भी दूर से ही प्रणाम किया । सुग्रीवजी ने बार बार कहा है कार्यसिद्धिहंनुमति कार्य सिद्धि तो हनुमान् म है और प्रभु स्वय जानते हैं कि इस कार्य का सम्पादन हनुमान्जी करेंगे । इसलिए निकट बोलाया सन्देश कहने के लिए ।

रक्षा का हाथ सिर पर फेरा । जेहि कर सभय किये जन आरत वारक विवस नाम टेरे । शीतल सुखद छाँह जेहि कर की मेटत पाप ताप माया । हनुमान्जी को अभय किया और अपने हाथ की मुद्रिका दी सीताजी के पहिचान के लिए ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


यह मुद्रिका अदेय थी। परम विश्वस्त को ही यह दी जा सकती थी। अतः अपना जानकर हनुमान्‌जी को दिया कि इसे सीताजी को ले जाकर देना। इसे पाकर वह तुम्हारे विषय में सन्देह न करेंगी और जब तक वे विरह में रहेंगी तब तक के लिए यह अँगूठी उनको आधार होगी।

बहु प्रकार सीतहि समुझायेहु। कहि बल बिरह वेगि तुम्ह आयेहु॥
हनुमत जनम सुफल करि माना। चले हृदय धरि कृपा निधाना॥६॥
जद्यपि प्रभु जानत सब बाता। राज नीति राखत सुरत्राता॥७॥

अर्थ: बहुत प्रकार से सीताजी को समझाना। मेरा बल और विरह कहना और जल्दी लौट आना। हनुमान्‌जी ने अपना जन्म सफल माना और हृदय में कृपानिधान को रखकर चले। यद्यपि प्रभु सब बात जानते हैं। परन्तु देवताओं के रक्षक रामजी राजनीति की रक्षा करते हैं।

व्याख्या: अब रामजी आदेश देते है कि सीताजी को बहुत प्रकार से समझाना। उनके हृदय में बड़ा विषाद होगा शीघ्र सान्त्वना न हो सकेगी। मेरा बल वर्णन करके उन्हे भरोसा देना और विरह वर्णन करके सान्त्वना देना। प्रेम पात्र को प्रेम है यह जानने से ही सान्त्वना होती है। मै तुम्हारे लौटने की प्रतीक्षा करता रहूँगा। अतः लौटने में शीघ्रता करना। सीता को लेते न आना। प्रभु हनुमान्‌जी के स्वभाव को देख चुके हैं कि सुग्रीवजी ने उनके पास हनुमान्‌जी को केवल शत्रु मित्र की परीक्षा के लिए भेजा था। सो ये महात्मा रामजी को पीठ पर चढ़ाकर लेते आये। सो इसी भाँति सीताजी को लेते न आवें। हनुमान्‌जी के पराक्रम को भी जानते हैं कि ये लाने मे समर्थ हैं। ऐसा होने से निशिचरहीन मही न हो सकेगी। इसलिए कहते है कि तुम जल्द लौट आना।

मुद्रिका प्राप्ति और सन्देश श्रवण से हनुमान्‌जी ने अपने जन्म को सफल माना। रूप से नाम की प्राप्ति हुई। समझ लिया कि इस कार्य का श्रेय सरकार मुझे देना चाहते हैं। यदि यह कार्य मेरे द्वारा न होना होता तो न मुझसे सन्देश कहते और न अँगूठी ही देते। सुग्रीवजी ने देह धारण का जो फल बतलाया था सो मुझे मिला और साथी लोग रघुराई को स्मरण करते चले। पर हनुमान्‌जी तो स्वयं कृपानिधान को हृदय में रखकर चले। भाव यह कि सरकार की मनोमय मूर्ति हृदय में धारण करके तब चले।

प्रश्न हो सकता है कि जब रामजी जानते हो थे कि कार्य हनुमान्‌जी द्वारा होगा तो इतने बन्दरों के भेजने का आडम्बर क्यों किया। इस पर कवि कहते हैं कि लोकशिक्षा के लिए राजनीति की रक्षा रामजी ने की। पता लगाने की जो विधि है उसका उल्लंघन नही किया।

दो. चले सकल बन खोजत सरिता सर गिरि खोह।
रामकाज लयलीन मन बिसरा तन कर छोह॥२३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : सब वन, नदी, तालाब, पहाड़ की कन्दराओं को खोजते हुए चले। रामजी के कार्य में मन लीन हो गया सो देह की ममता जाती रही।

व्याख्या : सभी ने सुग्रीवजी की आज्ञा का ऐसा पालन किया कि रामजी के कार्य मे तन्मय हो गये। वन खोजते चले। राक्षसी माया से सशङ्क होकर नदी तालाब और पर्वत के खोहों में भी घुसकर सीता को खोजते चले। ऐसे दत्तचित्त हुए कि उनको अपने शरीर की ममता नही रह गयी। स्वामिहि सर्ब भाव छल त्यागी : इस उपदेश का साफल्य दिखलाते हैं :

कतहुँ होइ निसिचर सैं भेटा। प्रान लेहिं एक एक चपेटा॥
बहु प्रकार गिरि कानन हेरहिं। कोउ मुनि मिलै ताहि सब घेरहिं॥१॥

अर्थ : यदि कही राक्षस से भेंट हुई तो एक एक चपेटा मारकर उसका प्राण ले लेते थे और यदि कोई मुनि मिल जाता था तो उसे सब घेर लेते थे।

व्याख्या : अब सुग्रीवजी की इस आज्ञा का पालन हो रहा है कि : सीता सुधि पूछेहु सब काहू। वन के खोजने मे कही राक्षस मिल जाते थे। निसिचर निकर नारि नर चोरा। ये मनुष्यों को चोराते हैं। सीताजी को भी राक्षस ने ही हरण किया है। इनसे साम द्वारा काम निकल नही सकता। अतः चपेटा मार मारकर पूछते थे कि बता सीता कहाँ है ? और उसका प्राण लेकर ही मानते थे और यदि कही मुनि मिल जाते थे तो उन्हें सब घेरते थे। अनुनय विनय से पूछते थे कि आप को जनकनन्दनी का कुछ समाचार ज्ञात है ? वन और पर्वतों में अनेक प्रकार से खोजते हैं। कोई झाड़ी या गुफा ऐसी नही छूटती थी जहाँ इन लोगों ने न खोजा हो। कोई जगली जाति ऐसी न रह गयी जिसमे इन लोगो ने पता न लगाया हो।

लागि तृषा अतिसय अकुलाने। मिलै न जल घन गहन भुलाने॥
मन हनुमान कीन्ह अनुमाना। मरन चहत सब बिनु जलपाना॥२॥

अर्थ : उन लोगो को प्यास लगी तो अत्यन्त व्याकुल हो गये। कही जल मिलता नही था और घने जंगल में रास्ता भूल गये। हनुमान्‌जी ने मन मे अनुमान किया कि सब बिना पानी के मरा चाहते हैं।

व्याख्या : तुलसी जसि भवितव्यता तैसइ मिलै सहाइ। आपु न आवइ ताहि पहँ ताहि तहाँ लै जाइ। यही गति राजा भानु प्रताप की हुई। यथा : खेद खिन्न छुद्धित तृषित राजा बाजि समेत। व्याकुल खोजत सरित सर जल बिनु भयउ अचेत। पर उनकी भवितव्यता खोटी थी। इनकी अच्छी है। भूख सही जाती है प्यास नही सही जाती। निर्जल वन था और ऐसा घना था कि दिशाओं का थाह नही लगता था। भूल गये कि किधर से आये और किस ओर जाना है। सबके कण्ठ ओठ और तालू सूख रहे हैं। भाव यह कि हनुमान्‌जी सिद्ध हैं। क्षुधातृषा की इन्हें बाधा नही हुई। पर दूसरों की गति देखकर इन्होंने अनुमान किया कि ये लक्षण मुमूर्षु के हैं। अब यदि इनको शीघ्र जल न मिलेगा तो सब के सब मर जावेंगे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



## ५४. विवर[1] प्रवेश प्रसंग

चढ़ि गिरि सिखर चहूँ दिसि देखा । भूमि विवर एक कौतुक देखा ॥
चक्रवाक बक हंस उड़ाहीं । बहु तक खग प्रबिसहिं तेहि माहीं ॥३॥

अर्थ : पर्वत की चोटी पर चढ़कर चारों ओर देखा तो भूमि के एक बड़े बिल में एक अद्भुत बात दिखायी पड़ी कि चकवा, बगले और हंस उड़ रहे हैं और बहुत सी चिड़ियाँ उस बिल में घुसी जा रही हैं।

व्याख्या : घने जंगल में यह पता नहीं लगता कि किस ओर कितनी दूर पर कोई आश्रय बस्ती तालाब या नदी है। बिना किसी उच्च स्थान पर चढ़े कुछ थाह नहीं लगता। जंगल इतना बड़ा है कि पेड़ों पर चढ़ने से काम चलनेवाला नहीं। हनुमान्‌जी बुद्धिमतां वरिष्ठ हैं : बड़े बुद्धिमान् हैं। एक पर्वत के शिखर पर चढ गये और चारों ओर देखने लगे कि किसी ओर कुछ जल का पता लगता है या नहीं। सो कोई तालाब या नदी तो नहीं दिखायी पड़ी। पर एक दरार के ऊपर चकवे बगले और हंस उतरे दिखायी पड़े। ये जल पक्षी हैं : जल के पास ही रहते हैं। अतः यह आशा हुई कि उस स्थान पर जल है। पक्षी बिल में घुसते कभी देखे नहीं गये। पर वहाँ यह कौतुक दिखायी पड़ा कि बहुत से पक्षी उसमे प्रवेश कर रहे हैं। इससे निश्चय हुआ कि उस बिल मे जल है।

गिरि ते उतरि पवन सुत आवा । सब कहुँ लेइ सोइ बिवर देखावा ॥
आगे कै हनुमंतहि लीन्हा । बैठे बिबर बिलंबु न कीन्हा ॥४॥

अर्थ : हनुमान्‌जी पर्वत पर से उतर आये और सबको ले जाकर वह विवर दिखलाया। सबने हनुमान्‌जी को आगे कर लिया और विवर के पैठने मे देर न की।

व्याख्या : पवन सुत है। इन्हें पर्वत पर चढने उतरने मे कोई आयास नहीं है। पर्वत से नीचे उतर आये सब हाल कहा और सबको ले जाकर वह विवर दिखला दिया कि इसी मे पानी है। विवर के भीतर न जाने क्या है ? ऊपर गुल्म लताओं से ढका है। भीतर घोर अंधकार के सिवा कुछ दिखायी नहीं पड़ता है। अनजान स्थान मे घुसना है और बिना घुसे दूसरी गति नहीं है। प्यास बढ़ती ही जा रही है। मरना ही है तो बिना पानी क्यों मरें तो भी हनुमान्‌जी को आगे कर लिया। सभी जानते थे कि संकटमोचन यही हैं। यदि कोई विघ्न उपस्थित होगा तो उसे वे ही दूर कर सकेंगे। तुरन्त एक दूसरे का हाथ पकड़े हुए बिल में घुसे। अधिक विचार के लिए समय नहीं था।

दो. दीख जाइ उपवन बर सर बिगसित बहु कंज ।
मंदिर एक रुचिर तहँ बैठि नारि तप पुंज ॥२४॥

---

१. ५४वाँ विवर प्रवेश प्रसङ्ग आरम्भ हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



। अर्थ वहाँ जाकर उत्तम बाग देखा। तालाब था जिसमे बहुत से कमल खिल थे। एक सुन्दर मकान था जिसमे एक तप पुज स्त्री बैठी हुई थी।

व्याख्या उसी अन्धकार म कुछ दूर घुसते चल गये तब दिखायी पडने लगा कि भीतर बडा अवकाश था। सुन्दर फल फूल से युक्त उपवन था। तालाब था जिसमे कमल फूल हुए थे। परन्तु वहाँ कोई मनुष्य नही था। केवल एक सुन्दर मकान था जिसमे एक तपोमूर्ति स्त्री बैठी हुई थी।

दूरि ते ताहि सबन्हि सिरु नावा। पूँछे निज वृत्तात सुनावा ॥
तेहि तब कहा करहु जल पाना। खाहु सुरस सुन्दर फल नाना ॥१॥

अर्थ दूर से ही सबने उसे सिर नवाया और पूछने पर अपना वृत्तान्त कह सुनाया। उसने कहा कि जलपान करो और सुन्दर स्वादवाल अनेक प्रकार के फल खाओ।

व्याख्या इतने भूखे प्यासे होने पर भी जल और फल पर नही टूटे। उस उपवन के स्वामी को ढूँढने लगे कि उसकी आज्ञा पा लें तो जल ग्रहण करें। उस मकान मे गये तो वह मकान सब गुणो से युक्त मणि वस्त्रादि से पूर्ण था। दिव्य भोज्य पदार्थ रक्खे हुए थे पर कोई मनुष्य उसमे नही था। ये महात्मा वानर माँ की भाँति परनारो और विष से भी बडा विष पराये धन को माननेवाल थे। आश्चर्य म आकर उस घर को ढूँढा तो उसमे सुवर्ण के आसन पर बैठी हुई ध्यान में निमग्न एक योगिनी को देखा। इन लोगो ने दूर से ही उसे प्रणाम किया।

उस योगिनी ने पूछा कि तुम लोग कौन हो? किसके दूत हो? मेरे स्थान म क्या आये हो? तब हनुमान्‌जी ने कहा कि देवि! मै तुमसे सब कहता हूँ सुनो। अयोध्या के राजा दशरथ के ज्येष्ठ पुत्र श्री रामचन्द्र हैं। वे पिता का वचन मानकर भाई और स्त्री के साथ वन मे चल आये। उनकी स्त्री को दुष्ट रावण हरण कर ल गया। तब रामजी भाई के साथ सुग्रीव के यहाँ आये। सुग्रीव ने मित्र भाव से उनकी स्त्री को खोजने के लिए हम लोगो को भेजा है। सो इस घोर वन म उनकी स्त्री जानकी को खोजते खोजते जल के लिए इस घोर गह्वर मे घुसे। दैवात् यहाँ आ पडे। हे शुभे! तुम यहाँ किसलिए रहती हो? और कौन हो? सो बताओ।

योगिनी ने कहा कि पहिल तुम लोग जल पी लो और पेट भर सुस्वादु नाना प्रकार के फल खा लो तब मैं अपना वृत्तान्त सुना दूँगी।

मज्जन कीन्ह मधुर फल खाये। तासु निकट पुनि सब चलि आये ॥
तेहि सब आपनि कथा सुनाई। मैं अब जाब जहाँ रघुराई ॥२॥

अर्थ वानरो ने मज्जन किये मीठे फल खाये और तब सब उनके पास

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


चले आये। उसने सब अपनी कथा सुनायी और कहा कि अब मै वहाँ जाऊँगी जहाँ रघुपति रामचन्द्र है।

व्याख्या : मज्जन कीन्ह पंथ श्रम गयऊ। सुचि जल पियत मुदित मन भयऊ। बन्दरो ने थकावट मिटाने के लिए स्नान किया जलपान किया मीठे मीठे फल खाये। सब प्रकार से सन्तुष्ट होकर उसके पास चले गये। पहिले स्नान नही किया था अतः दूर से ही प्रणाम किया। अब स्नानादि से शुद्ध हैं अतः उसके निकट चले गये। तब उसने अपनी कथा सुनायी कि विश्वकर्मा की पुत्री दिव्य-रूपिणी हेमा नामवाली थी। उसने नृत्य से महादेवजी को प्रसन्न कर लिया। शिवजी ने प्रसन्न होकर उसे यह दिव्य पुर दिया। यहाँ वह सहस्रो वर्ष रह चुकी है। उसी की मैं सखी हूँ। मोक्ष के लिए विष्णु भगवान् की उपासना करती हूँ। मेरा नाम स्वयंप्रभा है। हेमा जब ब्रह्मलोक को जाने लगी तब मुझसे कहा कि तुम यही तप करो। त्रेता मे साक्षात् नारायण राजा दशरथ के पुत्र होंगे। वे भू भार के हरण करने के लिए वन मे घूमेंगे। उनकी स्त्री को खोजते हुए बानर तेरी गुहा में आवेंगे। उनकी पूजा करके और रामजी की स्तुति करके तुम विष्णु के सनातन योगिगम्य लोक को प्राप्त होगी। अब मुझे श्रीरामचन्द्र के दर्शन की जल्दी है।

मूँदहु नयन विवर तजि जाहू। पैहहु सीतहि जनि पछिताहू॥
नयन मूँद पुनि देखहि बीरा। ठाढे सकल सिन्धु के तीरा॥३॥

अर्थ : आँख बन्द करो बिल के बाहर चले जाओगे। सीता की प्राप्ति होगी। पछतावा न करो। बीरो ने आँख बन्द करके खोला तो अपने को समुद्र के किनारे खड़ा पाया।

व्याख्या : तब बन्दर लोग पछताने लगे कि सीता के खोजने की अवधि तो यहाँ विवर मे ही बीत गयी और अब तक हम लोगो को कोई पता न लगा। तब योगिनी ने कहा कि इस गुहा के भीतर आकर कोई बाहर नही जा सकता। मैं योगबल से तुम लोगो को बाहर भेजती हूँ। आँखें बन्द कर लो। गुफा के बाहर चले जाओगे। सीताजी मिलेंगी पछताओ मत। तदनुसार बन्दरो ने आँखें बन्द कर ली और जब खोला तो अपने को समुद्र के किनारे खडा पाया। स्वय न कही गये न आये। केवल आँखें बन्द कर ली और खोली। पर योगिनी के योग के प्रभाव से वे गुफा के बाहर निकल गये और समुद्र के किनारे पहुँच गये। यहाँ योगबल से काल का अतिक्रमण करना दिखलाया।

सो पुनि गई जहाँ रघुनाथा। जाइ कमल पद नायेसि माथा॥
नाना भाँति बिनय तेहि कीन्ही। अनपायनी भगति प्रभु दीन्ही॥४॥

अर्थ : फिर वह जहाँ रघुनाथ रामजी थे वहाँ गयी। जाकर कमल ऐसे चरणो मे माथा नवाया। नाना भाँति से उसने विनती की। प्रभु ने उसे अविरल भक्ति दी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : बन्दरों को गुफा के बाहर समुद्र किनारे खड़ा करके तब वह योगिनी प्रभु के पास गयी। हेमा के उपदेशानुसार उसने बन्दरो की पूजा की। फल और जल से उनका सत्कार किया। अपनी कथा सुनाकर उनको आश्वासन दिया कि तुम लोग दैवात् नहीं आगये। पहिले से ही जैसा नक्सा बँधा हुआ है उसी के अनुसार आये हो। यह सब हेमा मुझसे पहिले ही कह चुकी है। उसी नक्से के अनुसार सीता तुम्हें मिलेंगी। फिर उनकी सहायता भी उन्हे गुफा के बाहर निकालकर की। लंका के सामने समुद्र तीर पर खड़ा कर दिया जहाँ से सम्पाती द्वारा उन्हें सब पता मिल सके। तत्पश्चात् वह हेमा के उपदेशानुसार ही प्रभु के पास गयी। बन्दरों से न पूछा कि प्रभु कहाँ हैं। अपनी योगविद्या से जानकर चली गयी। चरणों पर गिरी और बहुत विनती की। अपाय विघ्न को कहते हैं। अनपायिनी भक्ति से अभिप्राय उस भक्ति से है जिसमें विघ्न नहीं होता। वही भक्ति प्रभु ने उस योगिनी को दी।

दो. बदरीवन कहुँ सो गई प्रभु अग्या धरि सीस।
उर धरि राम चरन जुग जे बन्दत अज ईस ॥२५॥

अर्थ : प्रभु की आज्ञा सिर पर धारण करके रामजी के दोनों चरणो को जिन्हे ब्रह्मा और शङ्कर बन्दना करते हैं हृदय में धरकर बदरीबन को गयी।

व्याख्या : विन्ध्य आदि पर्वतों पर तप:सिद्धि होने के बाद हिमालय पर तपस्या करने के लिए आदेश मिलता है। ऐसी प्रसिद्धि आज भी महात्माओं में है। स्वयंप्रभा को बदरिकाश्रम जाने की आज्ञा हुई। जहाँ साक्षात् नरनारायण तपस्या करते हैं। वह श्री रामजी के चरणों को हृदय मे धारण करके वहाँ चली गयी। उन चरणो की महिमा कहते है कि उन्हे ब्रह्मदेव और शिवजी वन्दना करते है। यथा : कोसलेन्द्रपदकंजमंजुलौ कोमलावजमहेशवंदितौ। जानकीकरसरोजलालितौ चिंतकस्य मनभृंगसंगिनौ।

## ५५. सम्पाती मिलन प्रसङ्ग

इहाँ बिचारहिं कपि मन माँही। बीती अवधि काज कछु नाँही॥
कह अंगद लोचन भरि बारी। दुहुँ प्रकार भइ मृत्यु हमारी॥१॥

अर्थ : यहाँ वानर मन मे विचार करते हैं कि अवधि बीत गयी और काम कुछ न हुआ। अङ्गद आँखों में आँसू भरकर कहने लगे कि हम लोगो की दोनों प्रकार से मृत्यु हुई।

व्याख्या : यह तो वहाँ का हाल कहा जहाँ रामजी है। अब यहाँ का हाल कहते हैं जहाँ बन्दर लोग हैं। कवि अपने समाज मे भक्तों के साथ हैं इसीलिए इहाँ कहा। सभी वानर अपने मन मे विचार करते हैं कि एक महीने की अवधि तो गुफा मे ही बीत गयी और काम कुछ भी नही हुआ। सीताजी के दर्शन को कौन

ankurnagpal108@gmail.com



कहे उनका पता भी कुछ न लग सका। सब समुद्र के किनारे खड़े हैं जहाँ तक जल बढ़कर भाद्रपद बदी चतुर्दशी तक पहुँचता है वहाँ तक तो गर्भसंज्ञा है उसके बाद तट कहलाता है। तीर तो और भी दूर तक रहता है। योगिनी ने समुद्र के तीर ले जाकर खड़ा कर दिया। अब आगे क्या किया जाय? कोई बात समझ में नहीं आती। निराश होकर अङ्गद आँखों में आँसू भर लाये। वे ही सबके नायक हैं। सो कहने लगे कि संसार में लोग एक ही मृत्यु से मरते हैं। कोई चर्म मांसमयी शरीर की रक्षा यशोमयी शरीर के नाश से करते हैं और कोई यशोमयी शरीर की रक्षा के लिए चर्ममांसमयी शरीर को न्यौछावर कर देते हैं। हमारी तो दोनों प्रकार की मृत्यु हुई।

इहाँ न सुधि सीता कै पाई। उहाँ गये मारिहि कपिराई॥
पिता बधे पर मारत मोही। राखा राम निहोर न ओही॥२॥

अर्थ : यहाँ तो सीताजी की सुधि न मिली और वहाँ जाने पर कपिराज सुग्रीव वध करेंगे। वे तो पिता के मरने पर ही मुझे मार डालते पर रामजी ने मेरी रक्षा की। इसमें उनका निहोरा नहीं है।

व्याख्या : सीता की सुधि न पाने से यशोमयी शरीर का हनन हुआ और वहाँ घर पर जाने से सुग्रीव इस चर्म मांसमयी शरीर का हनन करेगा। यथा : अवधि मेटि जो बिनु सुधि पाएँ। आवै बनिहि सो मोहि मराएँ : अतः हमारे ऐसा अभागा कौन होगा जिसका यश भी जाय और प्राण भी जाय। यदि कहो कि तुम्हें न मारेंगे सो बात भी नहीं। हमें तो पहिले ही मारेंगे। वे तो पिता के मारे जाने के बाद ही हमें मारते पर रामजी ने रक्षा कर ली। मुझे युवराज बना दिया। राजकार्य सब मेरे हाथ आगया। अब तो हम रामजी के भी अपराधी हो गये। सीताजी की बिना सुधि पाये अवधि बिता दी। अब हमारी रक्षा कैसे होगी।

असकहि लवन सिन्धुतट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई॥
जामवंत अंगद दुख देखी। कही कथा उपदेस बिसेषी॥३॥

अर्थ : ऐसा कहकर लवण सिन्धु के किनारे जाकर सब वानर कुश बिछा कर बैठे। जाम्बवान ने अङ्गद का दुःख देखकर विशेष उपदेश व कथा कही।

व्याख्या : ऐसा कहकर अङ्गद लवण सिन्धु के तट पर जाकर जहाँ का पानी भी पीने योग्य नहीं अनशन करने के लिए कुशा बिछाकर बैठ गये कि यहीं शरीर छोड़ेंगे। यश बच जायगा। संसार कहेगा कि पता न लगा तो लौटे भी नहीं। सभी बन्दरों ने अङ्गदजी का अनुसरण किया। इसीलिए कहते हैं कि बैठे कपि सब दर्भ डसाई। सबकी समवेदना अङ्गद के साथ है। यहाँ तीर और तट का भेद स्पष्ट है। पहिले समुद्र के तीर खड़े रहे। अब जाकर तट पर बैठे।

अङ्गद ही सबके नायक है। वे ही इस प्रकार से दुःखी हो रहे हैं। किसी का

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



साहस नही होता कि सान्त्वना दे और क्या कहकर दे। अङ्गद ठीक कहते हैं। जब मरना ही है तो यश की रक्षा क्यो न करें। अपराधी की भाँति क्यो मारे जायँ? जाम्बवान मतिधीर और सुजान है वे नही घबराये। अङ्गद को दुखी देखकर ऐसी कथा कही जिसमे विशेष उपदेश हो। परमेश्वर भलाई के लिए ही सकट उपस्थित करते हैं। इसमे साहस और धैर्य न छोडना चाहिए अथवा पृथ्वी के दु खी होने की ब्रह्मदेव की स्तुति करने की आकाशवाणी की और देवताओ के अवतार की कथा कही। निशाचरो के दण्ड देने के लिए ही सीताहरण होने दिया है। उनका कार्य स्वय सिद्ध है।

तात राम कहुँ नर जनि मानहु। निर्गुन ब्रह्म अजित अज जानहु ॥
हम सब सेवक अति बड़ भागी। संतत सगुन ब्रह्म अनुरागी ॥४॥

अर्थ : हे तात ! रामजी को मनुष्य न मानो। निर्गुण ब्रह्म अजित और अज जानो। हम सब सेवक अत्यन्त बड़भागी है। सदा सगुण ब्रह्म के अनुरागी बने रहते है।

व्याख्या : यह दु.ख जो तुम्हे हो रहा है वह रामजी को मनुष्य मानने से हो रहा है। रामजी मनुष्य मानना ही बडा भारी अभाग है। वही तो सुगम मार्ग अवतरण का है। निर्गुण ब्रह्म मे तो वाणी बुद्धि और मन का प्रवेश नही होता इसलिए देवता लोग भी अवतारो की ही उपासना करते हैं। अत. अवतार मे मनुष्य बुद्धि रखनेवाले ब्रह्म की उपासना से ही वञ्चित हो जाते है। हीरा को पत्थर जाननेवाले अभागी हैं। वे उसका प्रस्तर बुद्धि से परित्याग करते हैं। राम निर्गुण ब्रह्म हैं। सगुण रूप मे भी उनको निर्गुणता अक्षुण्ण बनी है। वे जायमान मालूम होने पर भी अज हैं। वे पराजित से जान पड़ने पर भी अजित हैं। तुम अपने को अभागी क्यो समझते हो? निर्गुण ब्रह्म के उपासक भाग्यवान् है और हम सब तो अति भाग्यवान् है। क्योकि सगुण ब्रह्म मे अनुराग रखते है। निर्गुण ब्रह्म के उपासको को अधिक क्लेश है। हम लोगो को सगुण उपासना मे आनन्द ही आनन्द है। अतः हम लोग अति भड़भागी हैं।

दो. निज इच्छा प्रभु अवतरइ, सुर महि गोद्विज लागि।
सगुन उपासक संग तहँ, रहहि मोक्ष सुख त्यागि ॥२६॥

अर्थ : प्रभु अपनी इच्छा से देवता, पृथ्वी, गाय और ब्रह्म के लिए अवतार धारण करते हैं। तब सगुण ब्रह्म की उपासना करनेवाले मोक्षसुख का परित्याग करके साथ रहते है।

व्याख्या : निर्गुण ब्रह्म का इच्छा द्वारा अवतार होता है। यथा : इच्छामय नर देत सँवारे। होइहो प्रकट निकेत तुम्हारे. उनका जीव की भाँति कर्म परवश जन्म नही होता। कारागार देखने जाने से सम्राट् कैदी नही कहा जाता। ये ही ससार के सार हैं, देवता, पृथ्वी, गौ और ब्राह्मण के लिए अवतार धारण करते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कहकर निकट गया और पूछा कि जटायु कैसे मरा ? किसने मारा ? क्या क्या हुआ ? सो सब बातें मुझे बतलाओ। बन्दरों ने जटायु की सब कथा जिसका वर्णन आरण्य काण्ड में हो चुका है : कह सुनायी।

काटेसि पंख परा खग धरनी। सुमिरि राम करि अद्भुत करनी। गीध देह तजि धरि हरि रूपा। भूषन बहु पट पीत अनूपा। स्याम गात बिसाल भुज चारी। इत्यादि। इस भांति रामधाम प्रयाण सुनकर उसने रामजी की महिमा का बहुत भांति से वर्णन किया। सम्पाती चन्द्रमा मुनि से रामजी की महिमा सुन चुका है। अतः वह महिमा का जानकार है। बन्दरों को आश्वासन देने तथा धैर्य बँधाने के लिए उसने बहुत विधि से रामजी की महिमा का वर्णन किया।

दो. मोहि लै जाहु सिन्धु तट, देउँ तिलांजलि ताहि।
बचन सहाइ करबि मैं, पैहहु खोजहु जाहि ॥२७॥

अर्थ : मुझे समुद्र तट पर ले चलो। उसे तिलाञ्जलि मुझे देना है। मैं तुम लोगो की सहायता वचन से करूँगा। जिसे तुम लोग खोज रहे हो उसे पाओगे।

व्याख्या : ताकी क्रिया जथोचित निज कर कीन्ही राम। उसकी क्रिया तो श्रीरामजी ने जैसा उचित था पुत्रवत् कर दिया। मैं भाई हूँ। उसे तिलाञ्जलि तो देऊँ। मैं पर्वत के नीचे नहीं उतर सकता। मुझे तुम लोग पर्वत के नीचे लाद ले चलो जिसमें समुद्र के जल से उसका तर्पण करूँ। जिसको तुम लोग खोज रहे हो उसका पता मैं जानता हूँ। तुम लोगो को बतलाऊँगा। मै भाई की भांति क्रियारूप से किसी प्रकार की सहायता करने का सामर्थ्य नही रखता। पर वचन से तुम लोगो की सहायता करूँगा। स्वयंप्रभा ने कहा था : पैहहु सीतहि जनि पछिताहू। यहाँ सम्पाती आश्वासन देता है : पैहहु खोजहु जाहि।

## ५६. [1]संपाती कथा श्रवण प्रसङ्ग

अनुज क्रिया करि सागर तीरा। कहि निज कथा सुनहु कपि बीरा॥
हम द्वौ बन्धु प्रथम तरुनाई। गगन गए रबि निकट उड़ाई ॥१॥

अर्थ : भाई की क्रिया समुद्र के किनारे करके अपनी कथा कहने लगा कि हे वीर वानरो ! सुनो ! हम दोनों भाई चढ़ती जवानी मे आकाश मे उड़ते सूर्य के निकट जा पहुँचे।

व्याख्या : पक्षियो में और कीटों मे भी और्ध्वदेहिक कृत्य का विधान देखा गया है। चीटें और पक्षी विशेष को गङ्गाजी मे शव का प्रवाह करते देखा गया है। यद्यपि जटायु की वीरगति प्राप्ति के बाद रामजी द्वारा उसका कृत्य किया जाना उसे अपने धाम भेजने की कथा सुन चुका है। फिर भी उसने समुद्र के किनारे भाई

---

[1] ५६ वाँ सम्पाती कथाश्रवण प्रसङ्ग प्रारम्भ हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



की जल दानादि क्रिया कर्तव्य बुद्धि से की। तीर्थ म क्रिया करने का विशेष महत्त्व है। इसलिए समुद्र के किनारे जाकर क्रिया की। चेतना के तारतम्यानुसार कर्तव्य पालन का प्रातिभाव्य भी बढता है। क्रिया कर लेने के बाद वन्दरो मे उत्साह बढाने के लिए अपनी कथा सुनाने लगा। बोला की बीर वन्दरो! सुनते जाओ।

मै और जटायु दोनो भाई थे। चढती जवानी थी। दोनो को वल का अभिमान था। परीक्षा के लिए सूर्यमण्डल तक उडने का सङ्कल्प करके उड चले। हजारो योजन ऊपर उडते ही चले गय। जितना सूर्य के निकट पहुँचते गये ताप वढता गया। इतने निकट पहुँचे कि ज्वालामाल का प्रभाव हम लोगो पर पडने लगा इससे अपना वेग भी कहा कि एक ही दिन मे सहस्रो योजन ऊपर चले गये।

**तेज न सहि सक सो फिर आवा। मै अभिमानी रबि नियरावा॥**
**जरे पख अति तेज अपारा। परेउ भूमि करि घोर चिकारा॥२॥**

अर्थ वह तेज सह न सका लौट आया। मै अभिमानी था। सूर्य के निकट चला गया। अत्यन्त अपार तेज से मेरे पक्ष जल गये और मैं चिग्घाड मारकर पृथ्वी पर गिरा।

व्याख्या इतने ऊँचे उडने पर भी हम दोनो भाई थके नही। पर जटायु तेज न सह सका लौट आया। पर मै अभिमानी था। अभिमान के कारण उस तेज की भी परवाह न करके ऊपर उडता ही चला। इतनी घोर वेदना सहन करके भी उस ज्वालामाल मे घुसते ही चल जाने का सिवा अपने उत्कर्ष प्रदर्शन के और कोई प्रयोजन नही था। अभिमानी अपने उत्कर्ष प्रदर्शन के लिए क्या नही करते।

सूर्यनारायण का तेज अत्यन्त अपार है। उसका उल्लङ्घन जीव के सामर्थ्य के बाहर की बात है। अधिक निकट जाने पर मेरे पङ्खो म आग लग गयी और वे जल उठे। पक्षी को तो पक्ष का ही सहारा होता है। उसके जलने पर फिर गति कहाँ? मैं दीन होकर चिग्घाडता हुआ पृथ्वी पर गिरा।

**मुनि एक नाम चद्रमा ओही। लागी दया देखि करि मोही॥**
**बहु प्रकार तेहि ज्ञान सुनावा। देह जनित अभिमान छँडावा॥३॥**

अर्थ एक चन्द्रमा नाम के मुनि थे। उन्ह मुझे देखकर दया आगयी। उन्होने बहुत प्रकार से मुझे ज्ञान सिखाया और देह से उत्पन्न मेरा अभिमान छुडा दिया।

व्याख्या तीन दिनो तक अचेतावस्था मे पडा रहा। यही नही मालूम होता था कि मैं कहाँ हूँ। देखा तो मुझे बहुतो ने पर मुझपर चन्द्रमा नामक मुनि की ही दया आयी। उन्होने बहुत प्रकार से ज्ञान सिखाया। जिससे मेरा देहाभिमान जाता रहा। उन्होने कहा बेटा! मेरी बातें सुनो। फिर जैसी तुम्हारी इच्छा हो वैसा करना। इस दुःख का देह ही मूल है और देह कर्म से हुआ है। देह म अहंबुद्धि होने से ही जीव कर्म म प्रवृत्त होता है। अहकार का कारण अविद्या है। इस जड अहङ्कार मे चेतन की छाया है। इसी के तादात्म्य से देह चेतनावाला हो जाता

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है। तब आत्मा मे मैं देह हूँ ऐसी बुद्धि हो जाती है। यही ससार का मूल है। निर्विकार आत्मा का देह के साथ तादात्म्य मिथ्या है। मै देह हूँ मै कर्त्ता हूँ यह सङ्कल्प करके ही जीव कर्म करता है और उसके फल से बँध जाता है। तब पुण्यात्मा और पापी बनकर उच्च और नीच योनियो को प्राप्त होता है। इसी भाँति ससार सागर मे बहता फिरता है। मैंने बहुत पुण्य किया। मुझे स्वर्ग होगा। इस भावना से उसे स्वर्ग होता है। स्वर्ग भोगकर फिर नीचे गिरता है। माँ के गर्भ मे आता है। उसमे बहुत दुःख पाता है। यथा

आगे अनेक समूह ससृत उदरगत जान्यो सोऊ।
सिर हेठ ऊपर चरन संकट बात नही पूछे कोऊ॥
सोनित पुरीष जो मूत्र मल कृमि कर्दमावृत सोवई।
कोमल शरीर गँभीर वेदन सीस धुनि धुनि रोवई॥

तू निज करम जाल जहँ घेरो। श्रीहरी सङ्ग तज्यो नहि तेरो॥
बहु विधि प्रतिपालन प्रभु कीन्हो। परम कृपालु ज्ञान तोहि दीन्हो॥

तोहि दियो ग्यान विबेक जनम अनेक की तब सुधि भई।
तेहि इसकी हौ सरन जाकी बिषम माया गुन मई॥
जेहि किये जीवनिकाय बस रसहीन दिन दिन अति नई।
सो करौ वेगि सँभार श्रीपति बिपति महँ जेहि मति दई॥

पुनि बहु विधि गलानि जिय मानी। अब जग जाइ भजौ चक्रपानी॥
ऐसहि करि बिचार चुप साधी। प्रसवपवन प्रेरेउ अपराधी॥

प्रेरेउ जो परम प्रचण्ड मारुत कष्ट नाना तै सह्यौ।
सो ग्यान ध्यान बिराग अनुभव जातना पावक दह्यौ॥
अति खेद ब्याकुल अल्प बल छिन एक बोलिन आवई।
तब तीव्र कष्ट न जान कोउ सब लोग हरषित गावई॥

इसी प्रकार से बालपन का दुःख सभी लोग भोगते हैं। तुमने सब अनुभव किया ही है। इसलिए यौवनादिक का दुःख मैं वर्णन नही करता। इस प्रकार से अभिनिवेश द्वारा ही मैं देह हूँ इस अभ्यास से नरक पतन गर्भवासादि दुःख होते हैं। स्थूल और सूक्ष्म देह से पृथक् प्रकृति से परे आत्मा को जानकर देहादि की ममता छोडकर ज्ञानवान होओ। जाग्रदादि अवस्थाओ का त्याग करके सत्य ज्ञानादि लक्षण शुद्ध बुद्ध तथा सदा शान्त आत्मा को जानो। चिदात्मा के जान लने पर और मोह के नष्ट हो जाने पर चाहे देह गिर जाय अथवा प्रारब्ध कर्म के वेग से ठहरा रहे। उससे कोई प्रयोजन नही रह जाता। इसलिए जबतक प्रारब्ध का नाश न हो तबतक तुम सुख से केंचलीवाले सर्प की भाँति बन रहो।

त्रेता ब्रह्म मनुज तनु धरिही। तासु नारि निसिचर पति हरिही॥
तासु खोज पठइहि प्रभु दूता। तिनहि मिले तै होब पुनीता॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : त्रेता मे ब्रह्म मनुष्य शरीर धारण करेंगे। उनकी स्त्री को राक्षसराज हरण करेगा। उनके खोज के लिए प्रभु दूत भेजेंगे। उनसे मिलकर तुम पवित्र हो जाओगे।

व्याख्या : शोक मोह के नाश के लिए ही ज्ञानोपदेश दिया। देह मे जो अहबुद्धि थी सो जाती रही। शान्ति आयी। तब आशा भी देते हैं कि यदि देहाभिमान रहता तो इतने दिनो की प्रतीक्षा के लिए धैर्य न होता। मुनिजी त्रिकालदर्शी थे। यह कथा सत्ययुग की है। ब्रह्मदेव से कश्यप कश्यप से अरुण और अरुण से सम्पाती की उत्पत्ति हुई। अतः कहते हैं कि त्रेता मे ब्रह्म मनुष्य शरीर धारण करेंगे। भाव यह कि सत्ययुग मे तो मीन, कमठ, शूकरादि अवतार होते हैं। उनमे लीला अधिक नही होती। मनुष्य अवतार धारण करेगे तब लीला करेगे। उनकी स्त्री का हरण राक्षसो का राजा रावण करेगा। उसके खोजने के लिए प्रभु दूत भेजेंगे। इस भाँति चार काण्डो की कथा कही। पहली अर्घाली से बाल, अयोध्या और आरण्य की कथा कही और दूसरे से किष्किन्धाकाण्ड की कथा कहते हैं। उन्हे मिलने पर तुम पवित्र होगे। भाव यह कि दग्धाङ्ग होने से अभी तुम अपवित्र हो। तुम दीन न हो कि मै कैसे जीऊँगा ? क्या मैं सदा पक्षहीन होकर ही रहूँगा ? इत्यादि। व उन दूतो के मिलने से तुम पविन होगे। भाव यह कि मैं तुम्हारे दर्शन से पविन्न हुआ। तुम लोग राम दूत हो। अपने को दीन हीन क्यो मानते हो ? सब बातें पहिले से ही निर्णीत हैं। वैसी ही होगी। तुम लोग नही जानते। इसी से दु.खी हो रहे हो।

जमिहहि पंख करसि जनि चिंता। तिन्हहि देखाइ दिहेसु तैं सीता ॥
मुनि कइ गिरा सत्य भइ आजू। सुनि मम बचन करहु प्रभु काजू ॥५॥

अर्थ : तुम्हे पख जम जावेंगे। तुम चिन्ता न करो। तुम उन्हे सोता दिखला देना। आज मुनिजी की वाणी सत्य हुई। अब मेरी बात सुनकर प्रभु का कार्य करो।

व्याख्या . देखो मुनिजी ने जो आश्वासन दिया था वह कैसा सत्य उतर रहा है। त्रेता मे ब्रह्म ने रामावतार धारण किया। उनकी स्त्री को निशिचर पति ने हरण भी किया। रामजी ने तुम लोगो को दूत बनाकर भेजा है और मुझसे भेंट भी हो गयी। इसीलिए कहता हूँ कि मुनिजी ने जो बात सत्ययुत मे कहा था वह आज त्रेता मे सच्ची उतर रही है। अब मुझे तुम्हे सीताजी को दिखला देना है। मेरी बातो को सुनकर तुम लोग काम मे लग जाओ। अकर्मण्य होकर चिन्ता न करो। मै सीता को अब तुम्हे दिखलाता हूँ।

गिरि त्रिकूट ऊपर बस लंका। तहँ रह रावन सहज असंका ॥
तहँ असोक उपवन जहँ रहई। सीता बैठि सोच रत अहई ॥६॥

अर्थ : त्रिकूट पर्वत के ऊपर लङ्का बसी हुई है। वहाँ रावण रहता है। वह

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



स्वभाव से ही वेडर है। वहाँ अशोक वन है जहाँ सीताजी रहती हैं और बैठी हुई सोच मे मग्न हैं।

व्याख्या . ये लोग इतने ऊँचे पर हैं कि वहाँ से देखनेवाले को सीता दिखायी पड सकती थी। इसलिए सम्पाती उन्हे बतला रहा है कि ठीक इसके सामने समुद्र में त्रिकूटाचल पर्वत है। उसके ऊपर लङ्का पुरी बसी है। उसी मे रावण रहता है। वह स्वभाव से ही निःशङ्क है। सीताजी का हरण करके लङ्का मे ही रखे हुए हैं। किसी दूसरे स्थान मे नही रक्खा है। उस लङ्का मे अशोक उपवन है। वही बैठी सीता सोच रही है। अङ्गुल्या निर्देश करके वन्दरो को दिखला रहा है।

दो. मै देखौ तुम्ह नाही, गीधहि दृष्टि अपार।
बूढ़ भयेउँ नत करतेउँ, कछुक सहाय तुह्मार ॥२८॥

अर्थ : मैं देख रहा हूँ। तुम्हे दिखायी नही पड़ रहा है। क्योंकि गृद्ध की दृष्टि का कोई पारावार नही। मै बूढा हो गया नही तो तुम्हारी कुछ सहायता भी करता।

व्याख्या : जब सम्पाती के बतलाने पर वन्दरो को पर्वत भी दिखायी न पडा सीता की कौन चलावे तब कहता है कि तुम नही देख सकते। बन्दरो की दृष्टि थोड़ी होती है। गृद्ध की दृष्टि प्रसिद्ध है वह बहुत दूर तक देखती है। मैं सीताजी को देखता हूँ और उनके मुख विकार को देख रहा हूँ कि सोच मे निमग्न बैठी हुई है। मैं बूढा हुआ नही तो पीठ पर बिठाकर किसी एक को लङ्का मे पहुँचाकर सीता को दिखला देता। अब उतना सन्निकट पहुँचना कि तुम्हे सीता दीखने लगें तुम्हारा काम है। मैने चन्द्रमा मुनि की आज्ञानुसार अपना कार्य कर दिया।

जो नाँघइ सतयोजन सागर। करै सो राम काज मति आगर॥
मोहि बिलोकि धरहु मन धीरा। राम कृपा कस भयेउ सरीरा ॥१॥

अर्थ : जो सौ योजन समुद्र पार करेगा वही बुद्धिमान् रामजी का कार्य कर सकता है। मुझे देखकर हृदय मे धैर्य धारण करो। रामजी की कृपा से मेरा शरीर कैसा हो गया।

व्याख्या : कार्य की दुष्करता कह रहा है। पहिले तहँ बस रावन सहज असंका : कहकर शत्रु की प्रबलता कही। अब समुद्र का पार . आयाम बतलाता है कि बीच मे सौ योजन समुद्र है। अत. यहाँ बल और बुद्धि दोनो की बड़ी भारी परीक्षा है। अत. जिसकी बुद्धि अतीव पैनी हो इतने बलवान शत्रुओं मे घुसकर कार्य कर सके और सकुल मकर उरग झख जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँती। समुद्र को पार कर सके। वही इस कार्य मे हाथ लगावे अर्थात् तुम लोगो मे जो अतीव बलवान और बुद्धिमान् हो उसी को इस कार्य मे नियुक्त करो।

जब देखा कि कोई साहस नही कर रहा है तब धैर्य बँधाता है कि मुझे देखकर धैर्य धारण करो। देखो रामजी की कृपा से मेरा शरीर कैसा हो गया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नये नये कोपल पक्ष निकल आये। रामजी की कृपा से तुम लोगो से भेंट हुई और तुम्हारे दरस परस से मेर जले हुए पख फिर निकल आये। जिसने मुझे पख दिया वही तुम लोगो की सहायता करेगा। बिना पख के उडकर समुद्र पार करोगे।

पापिउ जाकर नाम सुमिरही। अति अपार भवसागर तरही॥
तासु दूत तुम तजि कदराई। राम हृदय धरि करहु उपाई॥१॥

अर्थ : पापी भी जिसका नाम स्मरण करके अत्यन्त अपार भवसागर को पार करते हैं तुम तो उनके दूत हो। कादरपन को छोडकर रामजी को हृदय मे धारण करके उपाय करो।

व्याख्या . यह ससार सागर अत्यन्त अपार है। इसे पार करना पुण्यात्मा के लिए भी सुखसाध्य नही है। पापी क्या पार कर सकता है ? पापी भी उनके नाम के बल से भवसागर पार जाते हैं। यथा सादर सुमिरन जे नर करही। भव वारिधि गोपद इव तरही। उनके नाम मे ऐसा सामर्थ्य है कि वह पापी को भी ऐसी सन्तरणशक्ति प्रदान करता है। तुम लोग तो उस महामहिम नामी के दूत हो। तुम्हारे लिए इस शत योजन सागर के पार जाना कौनसी बात है ? तुम लोग वीर हो। आगन्तुक कातरता का परित्याग करो। सफलता का साधक महामन्त्र बतलाता है कि रामजी को हृदय मे रखकर उपाय करो। उनके हृदय मे रहने से सभी उद्यम सफल होते हैं।

अस कहि गरुड गीध जब गयेऊ। तिन्हके मन अति बिसमय भयऊ॥

## ५६ हनुमत् द्वारा बलकथाश्रवण प्रसङ्ग

निज निज बल सब काहू भाषा। पार जाइ कर ससय राखा॥२॥

अर्थ हे गरुड ! जब ऐसा कहकर गीध गया तो उन लोगो के मन मे बडा आश्चर्य हुआ। अपना अपना बल सब किसी ने कहा परन्तु पार जाने मे सन्देह प्रकट किया।

व्याख्या ऐसा कहकर गीध के चले जाने पर सबके मन मे बडा भारी आश्चर्य हुआ। अभी यही गीध समुद्र तट तक जाने मे असमर्थ था। हनुमान्जी ने उठाकर तट तक पहुँचाया और इतनी देर मे ही इसे पख निकल आये। बिना किसी की सहायता के ही चला गया। चलने मे भी पक्षी के पख सहायक होते है अथवा उडकर चला गया।

अब सागर सन्तरण पर विचार होने लगा। सब के मन मे यही बात है कि हम सब मे बलवान और बुद्धिमान् हनुमान्जी हैं वही जायें। यथा आगे कै हनुमन्तहि लीन्हा। पैठे बिवर बिलबु न कीन्हा अत उन्हे आज्ञा देना उचित न समझकर अपना पूरा बल किसी ने प्रकट नहीं किया। किसी ने कहा मैं नि सन्देह बीस योजन जा सकता हूँ। किसी ने कहा कि मैं तीस योजन जा सकता हूँ। किसी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ने चालीस, किसी ने पचास, इसी भाँति नब्बे योजन तक बतलाते चले गये। किसी ने यह न कहा कि मैं नि सन्देह पार जा सकता हूँ।

जरठ भयेउँ अस कहइ रिछेसा। नहि तन रहा प्रथम बल लेसा ॥
जबहि त्रिविक्रम भये खरारी। तब मै तरुन रहेउँ बल भारी ॥४॥

अर्थ : ऋक्षेश जाम्बवान ने कहा कि मै बूढा हो गया। अब जवानी के बल का लेश भी शरीर मे नही है। जब खरारि रामजी ने त्रिविक्रमावतार धारण किया था तब मेरी जवानी थी और भारी बल था।

व्याख्या : प्रख्यातपौरुष जाम्बवानजी क्या कहे ? तब उन्होने बुढापा का ओट लिया। कहते है कि मेरे सामने तीन अवतार हो चुके। वामन परशुराम और दाशरथि राम। सो वामनावतार के समय मेरी जवानी थी। तब से कितनी चतुर्युगियाँ बीत गयी। अब शरीर मे उस बल का लेश भी नही रह गया जो पहिले था। उस समय मुझ मे भारी बल था। त्रिविक्रम कहकर वामनावतार के शरीर की विशालता कही कि उस शरीर मे उन्होने तीन पादविक्षेप मे तीनो लोक नाप लिया और फिर भी तीन पग पूरा न हुआ। खरारि कहने का भाव यह कि वह वामनावतार भी रामजी का ही था। ये मायावी असुरो को माया के बल से ही पराजित करते हैं। इनकी माया का थाह नही है। यह सब जो हो रहा है वह सब भी उनकी माया है। उनके लिए दुष्कर कुछ भी नही है। उनकी इच्छानुकूल ही सब कुछ हो रहा है। धैर्य छोड़ने की कोई बात नहीं है।

दो. बलि बाँधत प्रभु बाढेउ, सो तनु बरनि न जाइ।
उभय घरी महँ दीन्ही, सात प्रदच्छिन धाइ ॥२९॥

अर्थ : बलि के बाँधते समय प्रभु बढे। उस शरीर का वर्णन नही किया जा सकता। मैंने दो घडी मे दौडकर उनकी सात प्रदक्षिणा की थी।

व्याख्या : उस समय इन्द्र को जीतकर राजा बलि तीनो लोक के स्वामी हो गये थे। बलि धर्मात्मा थे अत. प्रभु ने उनका वध न करके उनका बन्ध चाहा। अत: वामनावतार धारण करके बलि के यज्ञ मे जाकर उनसे तीन पैर पृथ्वी की याचना की। बलि के सङ्कल्प दे देने पर प्रभु ने अपना शरीर बढाया। बलि को विश्वरूप से दर्शन दिया। तीनो लोक तीन पद के लिए थोड़ा पड़ा। यथा : जेहि जग कियो तिहुँ पगहुँ ते थोरा। अत. पूरा करने के लिए शरीर को भी नाप लिया। प्रभु का वह विशाल शरीर दो घडी के लिए ही था। उसी के लिए कहते हैं कि उसका वर्णन नही हो सकता। परिक्रमा करने मे दूर दूर उस शरीर के चारो ओर घूमना था। अत: शनै: शनै. चलकर उसकी परिक्रमा हो नही सकती। अत. दौडकर परिक्रमा करनी पड़ी। अपना बल और वेग कहते हैं कि उस शरीर का जिसके अन्तर्गत कितने समुद्र और पर्वत थे दो घडी मे मैंने सात प्रदक्षिणाएँ की

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



थी। प्रलक्षिणा करने मे इस भाँति शनै शनै चलन का विधान हैं। जिस भाँति गर्भवती स्त्री सिर पर जल भरा घडा लेकर धीरे धीरे चलती है।

अगद कहइ जाउँ मइ पारा। जिय ससय कछु फिरती बारा॥
जामवत कह तुम सब लायक। पठइअ किमि सबही कर नायक॥१॥

अर्थ अङ्गद ने कहा मै पार जा सकता हूँ पर लौटती समय जी म कुछ सशय है। जाम्बवान ने कहा कि तुम सब लायक हो पर सब के नायक को कैसे भेजा जाय।

व्याख्या जब जाम्बवान ने अपनी असमर्थता प्रकट की तब अङ्गदजी बोले। इनका भी पौरुष प्रख्यात है। स्वय वालि ने कहा यह तनय मम सम बिनय बल कल्याण प्रद प्रभु लीजिये। अत इन्होंने कहा कि मै पार तो जा सकता हूँ। पर लौटने मे कुछ सन्देह जी म हो रहा है। भोगवती और अमरावती से भी अधिक बाँका है। उसम प्रवेश करके जानकीजी को देखना और किसी के बिना जाने लौट आना साधारण व्यापार नही है। सम्भव है कि बात खुल जाय और युद्ध छिड जाय। युद्ध छिड जाने पर क्या होगा कौन कह सकता है युद्धसिद्धिहि चञ्चला। अत लौटने म कुछ सन्देह अवश्य है। हनुमान्‌जी साधु हैं। अब भी नही बोलते कि कदाचित् किसी को रामदूत पद प्राप्ति की अभिलाषा हो तो मै उसमे बाधक क्यो होऊँ? ठीक विचार चल रहा ह। यदि सब लोग मुझ इस योग्य समझेंगे तो आज्ञा देंगे ही।

जाम्बवान ने अङ्गदजी को उत्तर दिया कि तुम सब लायक हो पार भी जा सकते हो, मति आगर बुद्धिमान् भी हो। कार्यसिद्धि करके लौट आ सकते हो पर सबके सरदार हो। हम लोगो के रहते तुम कैसे जाओगे। अच्छा तो जो जाने योग्य है उसे भेजता हूँ।

## घ अथ हनुमत् चरित

कहइ रीछपति सुनु हनुमाना। का चुप साधि रहेउ बलवाना॥
पवन तनय बल पवन समाना। बुधि बिबेक बिग्यान निधाना॥१॥

अर्थ ऋक्षपति जाम्बवान ने कहा कि हनुमान्! सुनो। हे बलवान्! तुमने चुप्पी क्यो साध रक्खी है? हे पवन के पुत्र! तुम्हे पवन के समान बल है। तुम बल विवेक और विज्ञान के निधान हो।

व्याख्या हनुमान्‌जी को आज्ञा देने म अङ्गदजी को भी सङ्कोच है। अत वयोवृद्ध जाम्बवानजी ने कहा कि वस्तुत जो बलवान है वह तो चुप्पी साधे हुए है। चुप्पी साधने का करण क्या है? हनुमान्‌जी! तुम पवन के पुत्र हो। अत तुम म पवन सा ही बल है। पवनदेव तो दिन रात समुद्र के आर पार जाया करते हैं। अत तुम्हारे लिए समुद्रोल्लङ्घन खेल है और बुद्धि तुम्हारी ससार पारदर्शी है उभय लोकावगाहिनी है। तुम बुद्धि, विवेक और विज्ञान के निधान हो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कवन सो काज कठिन जग माँही । जो नहि होय तात तुम्ह पाँही ॥
राम काज लगि तव अवतारा । सुनतहि भयेउ पर्वताकारा ॥२॥

अर्थ संसार में कौन ऐसा कार्य कठिन है जो तुमसे न हो सके। तुम्हारा तो अवतार रामकार्य के लिए है। यह सुनते ही हनुमान्‌जी पर्वताकार हो गये।

व्याख्या जितने कार्य है उनकी सिद्धि तो बल और बुद्धि से ही होती है। सो परमेश्वर ने तुमको सबसे अधिक दिया है। तुम्हारे बल बुद्धि का पारावार नही है। अत संसार मे कोई ऐसा कार्य नही है जिसे तुम न कर सको। कि पुन रामकार्य जिसके लिए तुम्हारा अवतार है। ऐसी कथा है कि भगवान् ने शङ्कर की आराधना करके उनसे वरदान माँगा था कि आप मेरे सेवक होकर मेरा कार्य साधन करें। तदनुसार साक्षात् रुद्र भगवान ही हनुमान् रूप से अवतीर्ण हुए। अत कहते हैं कि हम लोग तो कौतुक के लिए साथ हैं। रामकाज के लिए अवतार तो तुम्हारा ही है। सुनते ही हनुमान्‌जी का आकार पर्वत सा हो गया।

कनक बरन तन तेज बिराजा । मानहु अपर गिरिन्ह कर राजा ॥
सिहनाद करि बारहि बारा । लीलहि नाघौ जलनिधि खारा ॥३॥

अर्थ सोने के रंग के शरीर में तेज शोभायमान हुआ। मानो पर्वत के दूसरे राजा हैं। बार बार सिंहनाद करके कहा कि इस लवणसिंधु का तो खेल में ही डाक जाऊँगा।

हनुमान्‌जी का शरीर स्वभाव से ही सोने के रंग का है। सो जाम्बवानजी के कथन ने मानो मन्त्र का काम किया। उनके वचन से ऐसा उत्साह बढ़ा कि शरीर तेज से चमकने लगा। विशाल शरीर था ही। ऐसे मालूम होने लगे जैसे दूसरे सुमेरु हैं। जाम्बवानजी के इस कहने का कि चुप्पी क्यो साधे हो? बार बार सिंहनाद करके उत्तर दिया। कौन सो काज कठिन जगमाही। जो नहि होय तात तुम पाही का उत्तर देते हैं कि इस खार समुद्र को तो खेल में डाक जाऊँगा। खारे समुद्र से उत्तरोत्तर छ समुद्र एक से एक आयाम मे दुगुने हैं। कहिये तो उन्हे डाक जाऊँ। इस खारे समुद्र म रक्खा ही क्या है?

सहित सहाय रावनहि मारी । आनौ इहाँ त्रिकूट उपारी ॥
जामवंत मै पूछौ तोही । उचित सिखावन दीजहु मोही ॥४॥

अर्थ सहाय के सहित रावण को मारकर यहाँ त्रिकूट पर्वत उखाड लाऊँ। जाम्बवान! मैं तुमसे पूछता हूँ। मुझे उचित शिक्षा दीजिये।

व्याख्या यहाँ संशय को स्थान नही है। समुद्र पार करके सेना सहित रावण को मारकर यहाँ त्रिकूटाचल को जिस पर लङ्कापुरी बसी है उखाड लाऊँ। राम का कार्य ही पूरा कर दूँ। इस भाँति राम काज लगि तव अवतारा का उत्तर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दिया। त्रिकूट उखाड़ लाने का भाव यह कि तब आप लोग खोज ले कि सीता कहाँ हैं ?

अब हनुमान्‌जी जाम्बवान से पूछते हैं कि आप सबसे वयोवृद्ध हैं। आप मुझे बतलाइये कि मैं क्या करूँ ? रामजी का सब कार्य ही पूरा कर दूँ कि केवल आज्ञा मात्र का पालन करूँ। मेरे लिए क्या उचित होगा ?

एतना करहु तात तुम जाई। सीतहि देखि कहहु सुधि आई ॥
तब निज भुज बल राजिव नैना। कौतुक लागि संग कपि सैना ॥५॥

अर्थ : हे तात ! तुम इतना ही करो कि सीताजी को देखकर लौट आओ और समाचार कहो। तब कमलनयन : रामजी अपने भुजबल से बन्दरो की सेना खेलवाड के लिए साथ लेकर :

व्याख्या : जितनी आज्ञा तुम्हे हुई है उतना ही करो। आज्ञा इतनी ही है कि : कहि बल बिरह बेगि तुम आएहु। सुग्रीव ने कहा है कि : सीता सुधि पूछेहु सब काहू। अत न तो रामजी की न सुग्रीवजी की आज्ञा कुछ विशेष करने की है। रावण को सहाय सहित मारने और त्रिकूटाचल के लाने की आवश्यकता नही। इससे प्रभु की यशोहानि होगी। वे शेष कार्य अपने भुजबल से करेंगे। वानरी सेना कौतुक के लिए साथ रहेगी।

छं. कपि सेन संग संहारि निसिचर रामु सीतहि आनिहै।
त्रैलोक पावनु सुजसु सुर मुनि नारदादि बखानिहै ॥
जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।
रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई ॥

अर्थ : वानरो की सेना के साथ राक्षसो को मारकर रामजी सीताजी को लावेंगे। त्रैलोक्य को पवित्र करनेवाला सुयश देवता और नारदादि मुनि वर्णन करेंगे। जिसे सुनते गाते कहते और समझते हुए मनुष्य परम पद प्राप्त करेंगे। रामजी के पद कमल का भ्रमर तुलसीदास गान कर रहा है।

व्याख्या : रावण वध से ही निशिचर सहार होगा। सो रामजी अपने हाथो करेंगे। प्रतिज्ञा कर चुके हैं निसिचर हीन करौं महि भुज उठाइ प्रन कीन्ह। बन्दरो की सेना साथ रहेगी। उसमे हम लोग भी साथ रहेंगे। पर सीताजी को वे लावेंगे। इसी मे शोभा है। तीनो लोक मे उनका यश होगा। उस सुयश से तीनो लोक पवित्र होगा। यथा : अध्यात्मरामगेय पुनाति भुवनत्रयम्। उसे शिव ब्रह्मादि देव तथा नारदादि महर्षि वर्णन करेंगे। इससे ससार का बडा भारी कल्याण होगा। ससार सागर सन्तरण करके परम पद की प्राप्ति अतीव दुस्तर कार्य है। सो अनायास साध्य हो जायगा। मनुष्य उस यश को कहकर गाकर सुनकर और समझकर परम पद के भागी होगे। इसीलिए रघुबीर के चरण कमलो का भौंरा तुलसीदास

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


गान करता है। जिस भाँति मकरन्द पान करते हुए भौरे गुनगुनाते जाते हैं। उसी भाँति प्रभु चरण कमल के मकरन्द का पान करता हुआ तुलसीदास भी गान करता है। यथा : पद कमल परागा रस अनुरागा मम मन मधुप करै पाना। यह काण्ड वैराग्य भक्तिप्रद है। अत. परम पद की प्राप्ति उपसहार मे कह रहे हैं।

दो. भव भेषज रघुनाथ जसु, सुनहि जे नर अरु नारि।
तिनकर सकल मनोरथ, सिद्ध करहि त्रिसिरारि ॥३०॥

अर्थ : रघुनाथ यश ससाररूपी रोग की दवा है। इसे जो स्त्री पुरुष सुनते है। उनके सब मनोरथ को त्रिशिरारि : रामजी सिद्ध करते हैं।

व्याख्या . ससार ही एक बडा भारी रोग है। इसी से जगत् पीडित है। यथा : एहि विधि सकल जीवजग रोगी। हर्ष सोक भय प्रीति वियोगी। एक रोग बस नर मरहिं ये असाधि बहु व्याधि। पीड़हि सतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि। इसकी अचूक ओपधि रामजी का यश है। इसका सुनना ही सेवन करना है। अत जो स्त्री पुरुष इसका सेवन करेगा उसके सब मनोरथो को रामजी सिद्ध करेंगे। मनोरथ सिद्धि के लिए उसे दूसरा अनुष्ठान न करना पडेगा।

सो. नीलोत्पल तन स्याम, काम कोटि सोभा अधिक।
सुनिअ तासु गुन ग्राम, जासु नाम अघ खग बधिक ॥३०॥

अर्थ : नीले कमल के सदृश श्याम रामजी की शोभा कोटि काम से अधिक है। उसके गुणग्राम को सुनो। जिसका नाम पापरूपी चिडियो के लिए बधिक है।

व्याख्या : नाम रूप लीला और धाम को महात्माओ ने रामजी का साक्षात् विग्रह माना है। यहाँ चारो के विषय मे कहते हैं। नारदजी वरदान ले चुके हैं। राम सकल नामन्ह ते अधिका। होउ नाथ अघ खग गन बधिका। इससे नाम कहा। नीलोत्पल तनु स्याम · काम कोटि सोभा अधिक से रूप कहा। जेहि कहत गावत सुनत समुझत परम पद नर पावई। से धाम कह चुके हैं। अब कहते हैं कि उसको लीला गुणग्राम सुनिये। भाव यह कि ऐसे की ही लीला सुनने मे सुख है तथा श्रवण की सार्थकता है। अथवा जिसका नाम अघ खग बधिक है। जिसका रूप नीलोत्पल तन स्याम कोटि काम सोभा अधिक है। उसी के गुणग्राम का मै गान करता हूँ। यथा · रघुवीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई। श्रोताओ को अभिमुख करके कहते हैं कि उसे सुनो। क्योकि उसके सुनने से परम पद की प्राप्ति होती है। और सुननेवाले के सब मनोरथो को त्रिशिरारि सिद्ध करते हैं। उसका लोक परलोक दोनो बन जाता है। अध्यात्म जगत् मे लोभ ही त्रिशिरा है। काम क्रोध और लोभ ये ही उसके शिर हैं। वध करनेवाले रामजी हैं। उसके वध से काम, क्रोध का भी साथ ही साथ वध हो जाता है। नरक का रास्ता बन्द हो जाता है। यथा : त्रिविध नरकस्येद द्वार नाशनमात्मन:। काम. क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत्त्रय त्यजेत्। इसलिए त्रिशिरारि का कृपा करना कहा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इस काण्ड का पाठ मनोरथ सिद्धि के लिए करना चाहिए। लौकिक कार्य के आपड़ने पर हनुमान्‌जी के स्मरण का विधान है। सो इस काण्ड मे हनुमान्‌जी का श्रीरामचन्द्र से मिलन, सुग्रीव की राज्य प्राप्ति तथा हनुमान्‌जो का रामकार्य के लिए उत्साह वर्णित है। इसके पाठ से रामजी की कृपा होती है। अत अनुष्ठान करनेवाले के मनोरथ की सिद्धि होती है।

इति श्रीमद्रामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वसने
विशुद्धसन्तोषसम्पादनो नाम चतुर्थ सोपान समाप्त ।

यह श्रीमद्रामचरितमानस की चौथी सीढ़ी पूरी हुई।

यह चौथी सीढ़ी काशी पुरी है। यथा अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची ह्यवन्तिका। पुरी द्वारावती ज्ञेया सप्तैता मोक्षदायिका। इनमे काशीपुरी भी चौथी है। काशी मे ही भगवान् वृषभध्वज ने श्रीराम मन्त्र का जप करके श्रीरामजी की प्राप्ति की थी। इसी भाँति रुद्ररूप हनुमान्‌जी को रामजी की प्राप्ति किष्किन्धाकाण्ड म ही हुई है। अत श्रीरामभक्त काशी वुद्धि से किष्किन्धाकाण्ड का सेवन करें।

मीतहि किष्किन्धा दई दानि सिरोमनि राम।
काड नाम ताते परयो किष्किन्धा अभिराम॥

●

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

श्रीराम

श्रीगणेशाय नम । श्रीगुरवे नम

# श्रीरामचरितमानस

## सुन्दरकाण्ड : पचम सोपान

## सटीक

मन भावन २ काचीपुरी ३ हनुमत चरित ललाम ।
सुन्दर सानुकथा ५ तथा ताते सुन्दर नाम ॥

ड के सुन्दर नाम पडने के अनेक कारण हैं। यहाँ १ हनुमान्जी को उपक्रम है। यथा जामवत के वचन सुहाए। सुनि हनुमत हृदय र रामजी को अच्छे लगने से उपसहार है। यथा निज भवन गवनेउ ह यह मल मायऊ इससे सुन्दर नाम पडा। २ यह पाँचवाँ सोपान काञ्ची है। जिस भाँति काञ्ची के दो भाग हैं—शिव काञ्ची और सी भाँति इस काण्ड म दो चरित हैं। हनुमत् चरित और रामचरित। ाक होने से सुन्दर नाम पडा। ३ रामायण महामाला के रत्नरूप ारित होने स सुन्दर नाम पडा। ४ त्रिकूटाचल के तीन शिखर सुने सुन्दर और सुवेल। सो इस काण्ड म प्रधानत सुन्दर शिखर की पर अशोक वाटिका थी। इसलिए सुन्दर नाम पडा और ५ इस छ सुन्दर हैं। इस पार सिंधु तीर एक भूधर सुन्दर उस पार लङ्का कनक कोट विचित्र मनिकृत सुन्दरायतना घना। मुद्रिका सुन्दर मुद्रिका मनोहर। राम नाम अकित अति सुन्दर। फल फूल सुन्दर तु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुदर फल रूखा। कथा सुन्दर मन करि पुनि सकर। लागे वहन कथा अति सुन्दर। अत सुन्दर

### मङ्गलाचरण

ान्त' शाश्वतमप्रमेयमनघ गीर्वाणशान्तिप्रद
ह्मागम्भुफणीन्द्रसेव्यमनिश वेदातवेद्य विभु ।

शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रामाख्यं जगदीश्वरं सुरगुरुं मायामनुष्यं हरिं
वन्देऽहं करुणाकरं रघुवरं भूपालचूडामणिं ॥१॥

अर्थ : शान्त, नित्य, अप्रमेय, निष्पाप, देवताओं को शान्ति देनेवाले, ब्रह्मा शम्भु और शेष द्वारा निरन्तर सेवित, वेदान्त से जानने योग्य, व्यापक जगत् के ईश्वर, देवताओं के गुरु, माया से मनुष्य रूप, दु खो को हरण करनेवाले करुणा की खानि, भूपालों के चूडामणि राम नामवाले रघुवर की मैं वन्दना करता हूँ।

व्याख्या : जो निष्क्रिय होने से शान्त, आदि रहित होने से सनातन प्रमाण से परे अर्थात् स्वयसिद्ध होने से अप्रमेय। पाप पुण्य से रहित होने से अनघ, दैवी सम्पत्तिवालों को अपना स्वरूप देने अथवा देवताओं की अशान्ति दूर करने से गीर्वाण शान्तिप्रद, ब्रह्मा शम्भु और शेष को भी स्व-स्वकार्य सम्पादन की शक्ति देने से अथवा उनके पूज्य होने से निरन्तर ब्रह्मा शम्भु फणीन्द्रसेव्य। औपनिषद पुरुष होने से वेदान्तवेद्य। अभिन्न-निमित्तोपादान कारण होने से विभु। सबके स्वामी होने से जगदीश्वर। वेदादि शास्त्रों के आदि उपदेष्टा होने से सुरगुरु। इच्छामय नररूप धारण करने से माया मनुष्य। दु खो के दूर करनेवाले होने से रघुवर। राजाओं के आदर्श होने से भूपालचूडामणि। आनन्दसिन्धु, सुखराशि और सर्वसुखद होने से राम हैं। श्री गोस्वामीजी कहते हैं कि मैं उनकी वन्दना करता हूँ। इस श्लोक के पहिले दो पदो से निर्गुण रूप और पिछले दो पदो से सगुण रूप का वर्णन किया। इस भाँति सगुण निर्गुण रूप कहा और चूडामणि से इस काण्ड में चूडामणि प्राप्ति की कथा का होना भी ध्वनित किया।

श्लो.[1] नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये
सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा।
भक्तिं प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे
कामादिदोषरहितं कुरु मानसं च ॥२॥

अर्थ : हे रघुपति! मैं सत्य कहता हूँ। आप तो सबके अन्तरात्मा हैं। मेरे हृदय में दूसरी कोई लालसा नहीं है। हे रघुश्रेष्ठ! मुझे पूर्ण भक्ति दीजिये और मेरे मन को कामादि दोषों से रहित कीजिये।

व्याख्या : दूसरी लालसा रहते भक्ति नहीं मिलती। यथा बहुत कीन्ह प्रभु लषन सिय नहि कछु केवट लेइ। बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बर देइ। अतः कहते हैं कि मुझे दूसरी लालसा नहीं है। जिनसे भक्ति चाहते हैं उन्हीं से माँगते हैं। क्योंकि भक्ति कृपासाध्य है। क्रियासाध्य नहीं है। यथा :

---

१. यह वसन्ततिलका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रघुपति भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार जानै सोइ जेहि बनिआई ॥१॥
जो जेहि कला कुसलता कहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल प्रवाह सुरसरी बहै गज भारी ॥२॥
ज्यों सर्करा मिलै सिकता महँ बल ते न कोउ बिलगावै।
अति रसज्ञ सूच्छम पिपीलिका बिनु प्रयास ही पावै ॥३॥
सकल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख अतिसय द्वैत बियोगी ॥४॥
सोक मोह भय हरष दिवस निसि देस काल तहँ नाही।
तुलसिदास यहि दसा हीन संसय निर्मूल न जाही ॥५॥

रघुपति सम्बोधन देकर भी यही बात दिखलायी। अपनी दृढ़ता दिखलाते हुए कहते हैं कि सत्य कहता हूँ। फिर यह बात भी है : तुमसे कछु न छिपी करुना-निधि तुम हौ अन्तर्जामी। रघुवशी के यहाँ से मंगन विमुख नही फिरते। इसलिए दूसरा सम्बोधन रघुपुङ्गव देते हैं और निर्भरा भक्ति माँगते हैं। इस काण्ड मे हनुमान्‌जी और विभीषणजी को अनपायिनी भक्ति मिली है। इसीसे कवि भी माँगते हैं। भक्ति का बड़ा भारी बाधक : सुख सम्पत्ति परिवार बड़ाई हैं। यही कामादि दोष हैं। इन पर बल नही चलता। अतः इनके दूर करने के लिए भी प्रभु से प्रार्थना करते हैं।

श्लो. अतुलितबलधामं[1] स्वर्णशैलाभदेहं,
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यं।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं,
रघुपतिवरदूतं वातजातं नमामि[2] ॥३॥

अर्थ : अतुलित बल के धाम हैं। सोने के पर्वत की सी कान्ति देह में है। दानव के वन के लिए अग्नि रूप हैं और ज्ञानियो मे अग्रगण्य हैं। सम्पूर्ण गुणो के स्वामी हैं। ऐसे रघुनाथजी के श्रेष्ठ दूत पवनसुत को मैं प्रणाम करता हूँ।

व्याख्या : रुद्र देह तजि नेह बस बानर भे हनुमान। इसलिए शिवजी के स्थान पर हनुमान्‌जी की स्तुति करते हैं। बालकाण्ड से यह नियम चला आता है कि रघुनाथजी से पहिले शिवजी की स्तुति ग्रन्थकार करते हैं। पर सुन्दरकाण्ड में शिवजी हनुमान् रूप से सेवक होकर उपस्थित हो गये। अतः यहाँ से स्तुति का

---

१. अन्त्यस्य हलो नित्यम् इस सूत्र द्वारा नकार का लोप होकर अकारान्त धाम शब्द सिद्ध हुआ।

२ यह मालिनीछन्द है। इसमे पन्द्रह अक्षरो का एक पाद होता है। इसमें दो नगण, एक मगण और दो यगण होते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



क्रम पलट गया : रघुनाथजी की स्तुति पहिले होने लगी। इस श्लोक में हनुमत् चरित का बीज है। अतुलित बल धाम से समुद्रोल्लंघन सुरसा आदि का अतिक्रम कहा। स्वर्ण शैलाभदेहं से जानकीजी को भरोसा देना कहा। यथा : कनक भूधराकार सरीरा समर भयंकर अति बलबीरा। सीता मन भरोस तब भयऊ। दनुजवनकृशानुं से अक्षादि बध तथा लङ्कादाह कहा। ज्ञानिनामग्रगण्यं से रावण को उपदेशदान कहा : सकलगुणनिधान से जानकीजी का आशीर्वाद मिलना कहा : वानराणामधीशं से बन्दरों की इनके द्वारा प्राणरक्षा कही। रघुपतिवरदूतं से सन्देश कहने की पण्डिताई तथा कहे हुए कार्य से तदविरोधी अधिक कार्य करना कहा। वातजातं से श्रमरहित होना कहा।

अब समुद्रोल्लङ्घन प्रकरण आरम्भ होता है। यहाँ दोहा या सोरठा काण्ड के आदि में नहीं दिया। क्योंकि हनुमान्‌जी को विश्राम नहीं है और सोरठा या दोहा पर विश्राम होता है। यथा : सुनि सब कथा समीरकुमारा। नाँघत भयो पयोधि अपारा। इसलिए दोहा या सोरठा न देने का यथेष्ट कारण है।

## ५७. समुद्रोल्लंघन प्रसंग

जामवंत के बचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए॥
तब लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई। सहि दुख कंद मूल फल खाई॥१॥

अर्थ : जाम्बवान् के सोहाए और हृदय मे अच्छे लगनेवाले वचन सुनकर हनुमान्‌जी : बोले हे भाई! तुम लोग दुःख सहकर और कन्दमूल फल खाकर तब तक मेरी राह देखना।

व्याख्या : जाम्बवान्‌जी के वचन भाये तो सबको, पर हनुमान्‌जी को अति भाये। वचन यह था : कपिसेन संग संहारि निसिचर रामु सीतहि आनिहैं। त्रैलोक पावनु सुजसु सुर मुनि नारदादि बखानिहैं। जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई। जिसे जो बात अच्छी लगती है, वह उसे दूसरों से ही कहता है। हनुमान्‌जी को ऐसा अच्छा लगा कि उन्होंने अक्षरशः इसी वाक्य को सीताजी से दोहराया है। यथा : कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहैं रघुबीरा। निसिचर मारि तोहि लै जैहैं। तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहैं।

कार्य के गौरव का ध्यान करके समय कुछ नहीं देते, राह देखने को कहते हैं। कहीं घबराकर बन्दर लोग समुद्र पार करने का साहस न कर बैठें। अतः प्रतीक्षा करने का दुःख सहने और अनशन तोड़कर फल फूल खाने के लिए अनुरोध करते हैं।

जब लगि आवौं सीतहि देखी। होइहि काजु मोहि हरष बिसेषी॥
अस कहि नाइ सबन्हि कहुँ माथा। चलेउ हरषि हियँ धरि रघुनाथा॥२॥

अर्थ : जबतक मैं सीता को देखकर लौट आऊँ। कार्य होगा : क्योंकि मुझे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विशेष हर्ष हो रहा है। यह कहकर सबको मस्तक नवाकर और हृदय मे रघुनाथजी को रखकर हर्षित होकर चले।

व्याख्या कहना चाहिए था कि जबतक लौटकर न आऊँ, परन्तु यह न कहकर जबतक लौट आऊँ कहते हैं। कारण यह है कि सिद्ध पुरुष हैं न लौट आऊँ कहते तो लौटते नही। शङ्कर भगवान् भी इसी प्रकार के वाक्य का प्रयोग करते हैं। यथा तब लगि बैठ अहौं बट छाहीं। जब लगि तुम अइहौ मोहि पाही। यहाँ भी नहि अइहौ मोहि पाही कहना चाहता था। परन्तु ऐसा नही कहा यदि कह देते तो सती फिर लौटकर नही आती। उप प्रशस्यते गर्ग शकुनश्च बृहस्पति। अङ्गिरा मन उत्साह विप्रवाक्य जनार्दन। यात्रा मे गर्ग ऋषि उषा काल की प्रशसा करते हैं। बृहस्पति शकुन की प्रशसा करते हैं। अङ्गिरा मन के उत्साह और जनार्दन ब्राह्मणो के वाक्य की प्रशसा करते हैं। यहाँ कपि अङ्गिरा के वचन के आधार पर कहते हैं कि मुझे बडा उत्साह है। इसलिए कार्य का होना निश्चित है।

विदा होने के लिए सब को प्रणाम करते हैं। अथवा सबका आशीर्वाद सुनकर सबको प्रणाम करते हैं अथवा प्रभुका उपदेश स्मरण करके सबको प्रणाम करते हैं। यथा सो अनन्य जाकें असि मति न टरइ हनुमत। मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत। रामजी को हृदय मे धारण करना कार्यसिद्धिका अमोघ उपाय है। चलेउ कहने से बोध होता है कि सिन्धुतीर होने पर भी जल से कुछ दूर पर थे।

सिंधुतीर एक भूधर सुदर। कौतुक कूदि चढेउ ता ऊपर॥
बार बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवन तनय बलभारी॥३॥

अर्थ समुद्र के किनारे एक सुन्दर पर्वत था। खेल से ही कूदकर उसके ऊपर जा चढे। बार बार श्रीरघुवीर को सँभालकर अत्यन्त बलवान हनुमान्जी बडे वेग से उछले।

व्याख्या समुद्र अपने किनारे से ऊँचा होता है। इसलिए बिना ऊँचे पर चढे कूदना नही बनता। इस कारण से पर्वत पर कूदकर चढे। वाल्मीकीय मे इस पर्वत का बडा वर्णन है। इसलिए सुन्दर कहा। प्रवर्षण गिरि पर से श्रीरघुवीर को हृदय म धारण करके चले थे। यथा हनुमत जनम सफल करि जाना। चलउ हृदय धरि कृपानिधाना। सो कही कूदते समय खिसक न जायँ। इसलिए पूँजी की भाँति रघुवीर को सँभालते हैं। यथा मन माधव को नेकु निहारहि। सुन सठ सदा रक क धन ज्यों छिन छिन प्रभुहि सँभारहि। पवन तनय कहकर वेगाधिक्य कहा। बल भारी से समुद्र म उथल पुथल का होना कहा। इसका स्पष्टीकरण आगे चलकर करते हैं।

जेहि गिरि चरन देइ हनुमता। चलेउ सो गा पाताल तुरता॥
जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चला हनुमाना॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : जिस पर्वत पर हनुमान्‌जी पैर रखकर चले वह तुरन्त ही पाताल चला गया। जिस भाँति रघुपति का अमोघ बाण चलता है उसी भाँति हनुमान्‌जी चले।

व्याख्या : उसी पर्वत के विषय मे कहते हैं : जिसके ऊपर से हनुमान्‌जी कूदे कि वह उनके चरण के चपेट को नही सह सका। यथा : तुलसी रसातल को निकसि सलिल आयो कोल कलमल्यो अहि कमठ को बलुगो। चाहिहु चरन के चपेट चाँप चिपिटिगो उचके उचकि चार अङ्गुल अचलुगो। क० रा०।

अमोघ से कार्यसिद्धि कहा। रघुपति कर बाना : कहकर वेग अन्तरिक्ष गमन तथा लौटकर आना द्योतित किया। रामजी के बाण कार्य करके लौट आते थे। यथा : प्रविसे सब निषग महु आई। देखि सुरन्ह दुन्दुभी बजाई। स्वय हनुमान्‌जी ने अपने वेग की उपमा रामबाण से दी है। यथा · जेहीं रामबाण की नाईं। लङ्का पर रघुनाथजी का पहिला बाण छूटा।

जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तैं मैनाक होहि श्रमहारी ॥५॥

अर्थ : समुद्र ने उन्हे रघुपति का दूत विचारकर मैनाक पर्वत से कहा कि तू इनकी थकावट को हरण करनेवाला हो।

व्याख्या : समुद्र मे बड़ा भारी उथल-पुथल देखकर समुद्र के अधिष्ठात्री देवता ने विचार किया कि यह कौन है ? उसने विचार से स्थिर किया कि यह रामदूत है। समुद्रजी को रामभक्त बडे प्रिय हैं। अत मैनाक से श्रमहारी होने के लिए कहा। पहिले पर्वतो को पक्ष होता था, इन्द्र ने काट डाला। पवन देव ने उस समय मैनाक को समुद्र में फेंककर बचा लिया। उसके पक्ष न कटे। अत वह पवन देव का उपकृत था। इसलिए मैनाक से कहा। दूसरी बात यह कि इसी का पक्ष बच गया था। अत. विश्राम भूमि बनने मे यही समर्थ था।

दो. हनूमान तेहि परसा, कर पुनि कीन्ह प्रनाम।
राम काजु कीन्हे बिनु, मोहि कहाँ बिश्राम ॥१॥

अर्थ : हनुमान्‌जी ने उसे हाथ से छू दिया। फिर प्रणाम किया और कहा कि रामजी का कार्य बिना किये मुझे विश्राम कहाँ ?

व्याख्या : आतिथ्य सत्कार की स्वीकृति द्योतन के लिए स्पर्श कर लिया। पहिले विघ्न समझा था : इसलिए प्रणाम नही किया। परिचय पाने पर प्रणाम किया। पिता के मित्र है। पार्वतीजी के भाई है। अत सर्वथा प्रणम्य हैं। मेनया अपत्य पुमान् मैनाक। विश्राम न करने का कारण कहते है कि यदि मुझे रामकार्य के लिए त्वरा न होती तो अवश्य विश्राम करता।

जात पवन सुत देवन्ह देखा। जानैं कहुँ बल बुद्धि बिसेषा ॥
सुरसा नाम अहिन कै माता। पठइन्हि आइ कही तेहि बाता ॥१॥

अर्थ : देवताओ ने पवनसुत को जाते हुए देखा। उनकी विशेष बल बुद्धि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जानने के लिए सुरसा नाम के सर्पो की माता को भेजा। उसने आकर यह बात कही।

व्याख्या : पवनसुत कहने का भाव यह कि अपने समाज के हैं। सूर्य मण्डल ग्रास की कथा जानते हैं। अतः हनुमान्‌जी के बल से देवता अपरिचित नही हैं। फिर भी उतना बल यथेष्ट न समझा गया। विशेष बल बुद्धि के जानने की इच्छा हुई। विशेष बुद्धि बल न होने से लङ्का में प्रविष्ट होने के समय पकड़े जा सकते हैं। यदि बात फूट गयो कि पवनपुत्र है तो देवताओं पर भारी विपत्ति आ पडेगी। दूसरी बात यह है कि वेगाधिक्य देखा। थोड़ी ही देर मे पार पहुँचना चाहते हैं। अतः बहुत जल्द परीक्षा लेनी चाहिए। ऐसा विघ्न उपस्थित करना चाहिए कि उनके अतिक्रमण में सारी परीक्षा हो जाय। यदि असमर्थ ठहरें तो इनके न जाने मे कुशल है। हनुमान्‌जी ने भी रावण को अपना परिचय पवनपुत्र कहकर नही दिया।

कद्रू भी सर्पो की माता है। इसलिए सुरसा नाम दिया। लङ्का तो मानो सर्पों का निवास ही है। यथा : भोगावति जस अहिकुल वासा। रावण स्वय महासर्प है। यथा : जस पावन रावन नाग महा। राक्षसी भी सर्पिणी हैं। यथा : दुष्ट हृदय दारुन जिमि अहिनी। अत. सर्पो की माता को परीक्षा के लिए भेजा। दूसरी बात यह है कि पवन सर्पो का आहार है और हनुमान्‌जी पवनपुत्र हैं। ये सर्पों की माता सुरसा से ही दब सकेंगे। अतः परीक्षा के लिए उसी को भेजा। अब भगवती सुरसा का वेग कहते हैं। उधर देवताओ ने भेजा और इधर देखिये तो हनुमान्‌जी के सामने खड़ी हैं। इसलिए चलना नही कहा।

आजु सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा। सुनत बचन कह पवनकुमारा॥
राम काजु करि फिरि मै आवौं। सीता कर सुधि प्रभुहि सुनावौं॥२॥

अर्थ : आज देवताओ ने मुझे भोजन दिया है। यह वचन सुनते ही पवनकुमार ने कहा कि रामजी का कार्य करके मैं लौट आऊँ और सीता का समाचार प्रभु को सुना दूँ।

व्याख्या : बनावटी बातो से ही बुद्धि की परीक्षा होती है। परीक्षा लेने मे जो कहा जाता है उसकी असत्य मे गणना नही होती। अतः सुरसा देवी ने कहा कि आज के लिए देवताओं ने तुमको मेरा आहार कल्पित किया है। सुरन्ह कहने से भाव यह कि सब देवताओ की सम्मति है। पवनकुमार कहने से भाव यह कि पिता की आज्ञा भङ्ग नही करेंगे। यथा : सेवक भयो पवन पूत साहिब अनुहरत : रामजी ने पिता की आज्ञा से राज्य छोड़ा। यह देह छोड़ने को तैयार हैं। हनुमान्‌जी बड़े प्रत्युत्पन्न मति हैं। तुरन्त बोले : रामकाज करि फिर मैं आवौ इत्यादि। भाव यह कि रामाज्ञा देवताओ की आज्ञा से बड़ी हैं क्योंकि रामजी सुरगुरु हैं। उनका कार्य देवकार्य से भी बड़ा है। सीता की सुधि प्रभु को सुनाने तक आज्ञा की पूर्ति हो जावेगी। प्रभु की आज्ञा है : कहि बल बिरह बेग तुम्ह आयेहु। सो तुम्हारे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हाथ सन्देश भेजने से भी काम न चलेगा, मुझे जाना पड़ेगा, तुम स्त्री हो, स्त्री पर दया करो।

तब तुअ बदन पइठिहउँ आई। सत्य कहउँ मोहि जान दे माई॥
कवनेहुँ जतन देइ नहिं जाना। ग्रससि न मोहि कहेउ हनुमाना॥३॥

अर्थ : तब मैं आकर तेरे मुख में घुस जाऊँगा। हे माता! मैं सत्य कहता हूँ मुझे जाने दे। किसी उपाय से भी जाने नही देती तब हनुमान्जी ने कहा : तो फिर मुझे खा ले।

व्याख्या : रह गयी तुम्हारे खाने की बात। सो रामजी को सीता की सुधि सुनाने के बाद मैं स्वयं आकर तुम्हारे मुख मे प्रवेश करूँगा। विश्वासोत्पादन के लिए कहते हैं सत्य कहो। पहिले ही सुरसा देवी ने : आज सुरन्ह मोहि दीन्ह अहारा कहकर धर्मपाश से बाँध लिया है। हनुमान्जी अपना पराक्रम दिखला नही सकते। क्योंकि ऐसा करने से देवताओं की आज्ञा का उल्लंघन होगा। अत दया उत्पादन के लिए माई कहा अथवा यह झलकाया कि मै जान गया तुम देवी हो। अतः माँ हो तुम्हारे मुख में प्रवेश करने मे मुझे कोई आपत्ति नही है। मैं अवश्य लौटकर मुख म प्रवेश करूँगा।

साम दिखलाया यथा : फिर मैं आवौं। सीता के सुधि प्रभुहि सुनावौं। दान यथा : तब तुअ बदन पैठिहौं आई। राम काज कहकर भय भी दिखलाया और माई सम्बोधन से भेद भी दिखलाया। तुम सर्प की माता होने से चाहे बच्चे को खा जाओ पर यह कार्य कश्यपजी को प्रिय न होगा। इतने पर भी जब नही माना तो दाहिने बायें ऊपर नीचे से निकल जाना चाहते हैं। पर बड़ी सावधान है जाने नही देती। तब हनुमान्जी ने कहा कि मुझे खा न ले। हनुमानजी को वाक् सिद्धि है। यदि खा ले कहे तो उसका आहार बनना पडे।

जोजन भरि तेहिं बदनु पसारा। कपि तनु कीन्ह दुगुन बिस्तारा॥
सोरह जोजन मुख तेहिं ठयऊ। तुरत पवनसुत बत्तिस भयऊ॥४॥

अर्थ : उसने योजन भर मुँह फैलाया। तब हनुमान्जी ने अपने शरीर को उससे दूना कर लिया। उसने सोलह योजन का मुख किया। हनुमान्जी तुरन्त ही बत्तीस योजन के हो गये।

व्याख्या : ग्रससि न मोहि के उत्तर मे सुरा ने मुँह फैलाया। मालूम होता है कि उस समय हनुमान्जी का शरीर अर्ध योजन का था। अतः उसने एक योजन भर मुख फैलाया। हनुमान्जी दो योजन के हो गये। सुरसा देवी ने समझ लिया कि यह दूना बढ़ेगा। मैं चार योजन मुख फैलाऊँगी तो यह आठ योजन बढ़ेगा। अतः धोखा देने के लिए सोलह योजन मुख फैलाया। हनुमान्जी धोखे मे आकर बत्तीस योजन के हो गये। यहाँ भौतिक बल की परीक्षा न होकर दिव्यबल की परीक्षा हो रही है। महिमा सिद्धि का उत्कर्ष दिखलाया जा रहा है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जस जस सुरसा बदन बढावा । तासु दून कपि रूप देखावा ॥
सत जोजन तेंहि आनन कीन्हा । अति लघु रूप पवनसुत लीन्हा ॥५॥

अर्थ : जैसे जैसे सुरसा ने मुख का विस्तार किया हनुमान्जी ने उसका दूना रूप दिखलाया। उसने सौ योजन का मुख फैलाया तब हनुमान्जी ने बहुत ही छोटा रूप धारण कर लिया।

व्याख्या : सोलह का दूना बत्तीस होना है। अतः कहते हैं कि सुरसा ने कोई क्रम नही रक्खा। हनुमान्जी ने क्रम रक्खा दूने होते चले गये। सुरसा ने फिर धोखा देने के लिए सोलह योजन के बाद सौ योजन मुख फैला दिया। हनुमान्जी बढने के बदले एकाएक अत्यन्त छोटे हो गये। सुरसा का चित्त बढाव की ओर था। धोखा देना चाहा था सो स्वय धोखा खा गयी। हनुमान्जी ने महिमा सिद्धि दिखलाते दिखलाते एकाएक लघिमा सिद्धि का उत्कर्ष दिखलाया।

बदन पइठि पुनि बाहेर आवा । माँगा बिदा ताहि सिरु नावा ॥
मोहि,सुरन्ह जेहि लागि पठावा । बुधि बल मरमु तोर मैं पावा ॥६॥

अर्थ : उसके मुँह में घुसकर फिर बाहर निकल आये और उससे सिर नवाकर विदा माँगा। उसने कहा मैंने तुम्हारे बुद्धि बल का मर्म पा लिया जिसके लिए कि देवताओ ने मुझे भेजा था।

व्याख्या : सुरसा मुख समेट न सकी। जितनी देर में सुरसा ने महिमा सिद्धि दिखलायी उतनी देर में हनुमान्जी ने महिमा लघिमा दोनो सिद्धियाँ दिखलायी। अपने को धर्मपाश से मुक्त कर लिया। देवताओं ने आहार कल्पना किया था सो उसके मुख मे प्रविष्ट हो गये। देवताओ की बात रख ली। अब सुरसा यदि गले के नीचे उन्हे न उतार सकी तो यह उसकी त्रुटि थी। अब देवी समझकर उससे प्रणाम करके विदा माँगते हैं। इससे अपनी बड़ी भारी निर्भीकता तथा सज्जनता का परिचय देते हैं।

दो. राम काजु सबु करिहहु, तुम्ह बल बुद्धि निधान ।
आसिष देइ गई सो, हर्षि चलेउ हनुमान ॥२॥

अर्थ : तुम बल बुद्धि के भण्डार हो। तुम सब कार्य करोगे। आशीर्वाद देकर वह चली गयी। हनुमान्जी हर्षित होकर चले।

व्याख्या : यही मर्म पाया कि हनुमान्जी बल बुद्धि के निधान हैं। अतः आशीर्वाद देती है : राम काज करिहहु तुम्ह। देवताओं की भेजी आयी थी। परीक्षा लेकर देख लिया कि इसका लङ्का मे कोई बाल बाँका नही कर सकता और यह बिना रावण को पता लगे लङ्का मे प्रवेश करके सीताजी को देखकर लौट आ सकता है। अतः जाने की आज्ञा आशीर्वाद के मिस से देकर लौट गयी। हनुमान्जी फिर हर्षित होकर चले। क्योकि सुरसादेवी से सब रामकार्य करने का आशीर्वाद पाया

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है और रामकार्य करने मे ही हनुमान्‌जी के जीवन का साफल्य है। यथा : राम-काज लगि तव अवतारा। सुनतहि भयउ पर्वताकारा। रामजी की कृपा से गरल : साँपो की माँ सुधा हो गयी। आशीर्वाद देकर गयी।

निसिचरि एक सिधु महुँ रहई। करि माया नभ के खग गहई ॥
जीव जतु जे गगन उडाही। जल बिलोकि तिन्हकै परिछाही ॥१॥

अर्थ : समुद्र मे एक राक्षसी रहती थी। वह माया करके आकाश के चिडियो को पकड लेती थी। आकाश मे जो जीव जन्तु उडा करते थे वह जल मे उनकी परिछाही देखकर :

व्याख्या . निसिचरि एक सिन्धु महुँ रहई कहकर भगवती सुरसा का भी राक्षसीरूप धारण करना ध्वनित किया। वह स्वर्ग मे रहती थी और यह सिन्धु मे रहती थी। बातचीत का अवसर नही मिला इसलिए नाम नही दिया। अघटित घटना पटीयसी माया है। जो हो न सके उसे माया कर दिखाती है। वह रहती थी समुद्र मे और चिडिया आकाश की पकडती थी। पराक्रम का उसमे कोई उपयोग नही था। बडे को जीव और छोटे को जन्तु कहते हैं जो आकाश मे उडते थे। उन सबका प्रतिबिम्ब जल मे पड ही जाता था। वह उसे देख लेती थी। उसकी निगाह से कोई बच नही सकता था। सबको वह पकड लेती थी। थल पर उसका कोई अधिकार नही था। उसका नाम सिंहिका था। इसके बेटे राहु मे इतना सामर्थ्य है कि गगनचारी सूर्य और चन्द्रमा को ग्रसता है।

गहै छाँह सक सो न उडाई। एहि बिधि सदा गगनचर खाई ॥
सोइ छल हनूमान कहँ कीन्हा। तासु कपटु कपि तुरतहि चीन्हा ॥२॥

अर्थ : उस परछाई प्रतिबिम्ब को पकड लेती थी जिससे वे उड नही सकते थे। इस प्रकार वह सदा आकाश मे उडनेवाले जीवो को खाया करती थी। उसने वही छल हनुमान्‌जी से किया। कपि ने तुरन्त ही उसका छल पहिचान लिया।

व्याख्या : छाया को कोई पकड नही सकता। पुरुष के पकडने से छाया पकडी जाती है। मायाबल से यह उलटा ही करती थी। छाया पकडकर पुरुष को पकडती थी। जिस प्रकार डोरी पकडकर पतङ्ग उतार ली जाती है उसी प्रकार से आकाशचारी जीवो को छाया पकडकर खीच लेती थी। उनका कोई पुरुषार्थ नही चलता था। छाया के साथ खिचे हुए उसके मुख मे चले आते थे। गगनचरो के भक्षण की यही विचित्र विधि थी।

वही माया उसने हनुमान्‌जी से किया। किसी ने आज तक उसकी माया को पहिचान नही पाया था। पहिचान मे आजाने पर माया का बल नही चलता। ये महात्मा कपि होने पर भी ऐसे प्रत्युत्पन्नमति हैं कि तुरन्त ही पहिचान गये कि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इसका बल छाया के मार्ग मे ही है। जिधर यह खीच रही है उधर ही पराक्रम करने से काम चल सकता है। प्रतिकूल विधि से पराक्रम विफल होगा।

ताहि मारि मारुत सुत बीरा। वारिध पार गयउ मतिधीरा ॥
तहाँ जाइ देखी बन सोभा। गुंजत चंचरीक मधु लोभा ॥३॥

अर्थ : पवनपुत्र मतिधीर वीर हैं। उसे मारकर समुद्र पार गये। वहाँ जाकर वन की शोभा देखी। मधु के लोभ से भौंरे गुञ्जार कर रहे हैं।

व्याख्या : उसी के मुख मे कूद पडे और उसे फाड़ डाला। पहिले सात्विकी माया स्वर्ग से विघ्न रूप होकर आयी। उससे मेल कर लिया। यह तामसी माया पाताल की विघ्नरूपा उपस्थित हुई। सो इसे मार ही डाला। मारुतसुत कहकर उनका वेग द्योतित किया। विघ्न के कारण दो स्थानो पर ठहरना पडा। फिर भी दिन रहते ही पार पहुँच गये। मारुत नदन मारुत को मन को खगराज को बेग लजायो। वीर मतिधीर थे अत. पार जाने मे समर्थ हुए। वीर मतिधीर कहकर बल बुद्धि का उत्कर्ष कहा। हनुमान्‌जी ने समुद्रोल्लंघन मे अन्तरिक्ष मार्ग का भी आलम्वन किया था।

जलदुर्ग कहकर वनदुर्ग कहते हैं। पार जाने पर वन मिला जो बडा सोहावना और सरस था। मकरन्द से भरे फल फूल थे। अत: गुजत अलि लै चल मकरदा। बानर वन के जौहरी होते हैं। अत. शोभा देख रहे हैं।

नाना तरु फल फूल सुहाए। खग मृग बृंद देखि मन भाए ॥
सैल बिसाल देखि एक आगे। तापर धाइ चढे भय त्यागे ॥४॥

अर्थ : अनेक प्रकार के वृक्ष और सुन्दर फल फूल थे। पशु पक्षी के समूह को देखकर प्रसन्न हुए। सामने एक विशाल पर्वत देखा। भय त्यागकर उस पर दौडकर जा चढे।

व्याख्या : अब गिरि दुर्ग कहते हैं। पर्वत तो बहुत थे पर उनमे एक विशाल पर्वत था। विशालता कहते हैं कि उस पर दौड़कर चढना पड़ा। कूदकर नही चढे। भय त्यागे कहने से उसपर किसो भय विशेष का होना सूचित किया अथवा एकाएक ऊपर चढ जाने से राक्षसो द्वारा दिखाई पड जाने का भय था। लङ्का बडे ऊँचे पर्वत पर है। उसका दृश्य देखने के लिए विशाल पर्वत पर चढे।

उमा न कछु कपि कै अधिकाई। प्रभु प्रताप जो कालहि खाई ॥
गिरि पर चढि लका तेंहि देखी। कहि न जाइ अति दुर्ग बिसेषी ॥५॥
अति उतंग जल निधि चहु पासा। कनक कोट कर परम प्रकासा ॥६॥

अर्थ : हे उमा! इसमे वानर की कोई बडाई नही है। प्रभु का प्रताप ही ऐसा है जो काल को भी खा जाता है। पर्वत पर चढकर उन्होने लङ्का देखी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बहुत ही विकट किला था जिसका कुछ वर्णन नही हो सकता। उसके चारो ओर अत्यन्त ऊँचा समुद्र है। सोने के परकोटे का परम प्रकाश हो रहा है।

व्याख्या : इस पर्वत पर निर्भय चढ जाना इतना विकट कार्य था कि शिवजी ने इस अवसर पर प्रभु के प्रताप की प्रशसा की कि वह काल को खा जाता है। इन बातो से महात्माओ ने यह अनुमान किया है कि उस पर्वत पर काल का पहरा था। हनुमान्जी के दौडकर चढने पर वह भी भागा। हनुमान्जी का पराक्रम ही ऐसा है। यथा : पटकउँ मीच नीच मूषक ज्यौं सबहिको पाप बहावो। गी। ज्ञानघाट के वक्ता शिवजी उमा को सम्बोधन करके कहते हैं कि इसमे कपि की बडाई कुछ भी नही। क्योकि स्वय वानर रूप से पराक्रम दिखला रहे हैं। अपनी बडाई करना उचित नही है। वस्तुत बल तो प्रभु का ही है। जिससे जीव का काम चलता है। इसमे जीव का अभिमान मिथ्या है। पर इसका अर्थ यो भी किया जा सकता है कि उस पर्वत पर चढने से हनुमान्जी लङ्कावासियो से देखे जा सकते थे। अत उस पर चढना काल का सामना करना था। फिर भी हनुमान्जी उसपर दौडकर चढ गये। प्रभु के सेवक सपने मे भी काल से नहीं डरते। क्योकि वे प्रभु ही ऐसे हैं। जिनका प्रताप काल को भी खा जानेवाला है। शत योजन विस्तीर्ण समुद्र है। इसलिए उसे अत्यन्त ऊँचा कहा। तट से ही समुद्र की ऊँचाई बढने लगती है और बढती ही चली जाती है। अपराह्ण का समय होने से लाल किरणो द्वारा सोने की लङ्का का परम प्रकाश हो रहा था। समुद्र और लङ्का किले के बीच मे कोई जलाशय नही है। इससे धनु दुर्ग कहा।

छ कनक कोट बिचित्र मनि कृति सुदरायतना घना।
चउहट्ट हट्ट सुबट्ट बीथी चारु पुर बहु बिधि बना॥
गज बाजि खच्चर निकर पदचर रथ बरूथन्हि को गनै।
बहुरूप निसिचर जूथ अतिबल सेन बरनत नहि बनै॥१॥
बन बाग उपवन बाटिका सर कूप बापी सोहही।
नर नाग सुर गधर्व कन्या रूप मुनि मन मोहही॥
कहुँ माल देह बिसाल सैल समान अतिबल गर्जही।
नाना अखारेन्ह भिरहि बहुबिधि एक एकन्ह तर्जही॥२॥
करि जतन भट कोटिन्हि बिकट तन नगर चहुँ दिसि रच्छही।
कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छही॥
एहि लागि तुलसीदास इन्ह की कथा कछु एक है कही।
रघुबीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहहि सही॥३॥

अर्थ सोने का परकोटा है। उसके अन्दर विचित्र मणियो से जडे हुए बहुत

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुन्दर सुन्दर घर है। चौराहे बाजार सुन्दर मार्ग और गलियाँ हैं। सुन्दर नगर बहुत प्रकार से बना हुआ है। हाथी घोड़े खच्चरों के समूह पैदल और रथों के समूहों को कौन गिन सकता है ? अनेक रूपो के राक्षसों के दल और अत्यन्त बलवती सेना वर्णन करते नही बनती।

वन बाग उपवन फुलवारी तालाब कूएँ और बावलियाँ सुशोभित हैं। मनुष्य नाग[१] देवताओ और गन्धर्व की कन्यायें अपने सौन्दर्य से मुनियों के भी मनों को मोह लेती हैं। कही पर्वत के समान बड़े शरीरवाले बड़े ही बलवान् मल्ल गरज रहे हैं। ये अनेकों अखाड़ों में बहुत प्रकार से भिड़ते और एक दूसरे को डाँटते हैं।

भयङ्कर शरीरवाले करोड़ों योद्धा यत्न करके चारों दिशाओं से नगर की रखवारी करते हैं। कही दुष्ट राक्षस भैंसों मनुष्यों गायों गदहों और बकरों को खा रहे हैं। इसीलिए तुलसीदास ने इनकी कथा कुछ थोड़ी सी ही कही है। क्योंकि ये रघुवीर के तीररूपी तीर्थ में शरीरों को त्याग करके सच्ची गति को प्राप्त होंगे।

व्याख्या : जब सोने का परकोटा हुआ तब विचित्र मणि कृत भवन होने ही चाहिए। बहुत से मणिकृत भवन कहने से यह अर्थापत्ति हुई कि कुछ भवन साधारण भी थे। पहिले ही कह चुके हैं। गिरि त्रिकूट एक सिंधु मझारी। विधि निर्मित दुर्गम अति भारी। तेहि मय दानव बहुरि सँवारा। कनक रुचिर मनि भवन अपारा। मय दानव की कारीगरी प्रख्यात है। द्वापर में युधिष्ठिर की सभा बनायी थी। जिसमें जल में थल का और थल में जल का भ्रम होता था। इसलिए विचित्र कहते हैं। चौहट बाजार सड़कें और गली कमठ पृष्ठादि भूमिकाओं पर शास्त्र के विधानानुसार बनाये गये थे। जिस ओर जाइये मकान का पिछवाड़ा न दिखायी पड़े इत्यादि। अथवा नगर मे अनेक पुर है। सबकी बनावट भिन्न भिन्न प्रकार की है। भीतर चतुरङ्गिणी सेना है। जिसमें खच्चरों का समूह भार वहन : बार बरदारी के लिए हैं। राक्षस अनेक रूप होते है। सो सभी प्रकार के राक्षसों के जूथ अलग अलग है। इसलिए बहुरूप निसिचर जूथ कहा। जूथ कहकर सेना कहते हैं। सेना में अनेक जूथ होते है। सो सेना अतिबल है। किसी के पास ऐसी बलवती सेना नही हैं। जूथ असख्य हैं सेना का बल अवर्णनीय है। अत: को गनै बरनत नहि बनै कहा। यहाँ पर बार बार गोस्वामीजी वर्णनातीत कहते चले जावेंगे।

---

१. नाग का अर्थ सर्प भी होता है और नाग नाम की देवताओ की जाति विशेष है जिनमे मनुष्यो की अपेक्षा क्षेत्रज शक्ति का अधिक प्रकाश होता है। यथा : पशुभ्यो मनुजातिश्चाशक्त्या पुंसः प्रभाविताः। तेभ्योऽपि नागगन्धर्वयक्षाद्या देवता नृप : वि. पु. ६.७.६६। अर्थ : पशुओ की अपेक्षा मनुष्य भगवान् की क्षेत्रज्ञ शक्ति से अधिक प्रभावित है और उनसे भी अधिक हे राजा ! नाग गन्धर्व यक्षादिक देवता प्रभावित हैं। यहाँ नाग का अर्थ जाति विशेष के देवता हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अब नगर के चारो ओर का दृश्य कहते हैं कि सब ओर वन बाग उपवन और वाटिकाएँ हैं। स्वतः सिद्ध वृक्ष समूह को वन कहते हैं। फलवाले वृक्षो के समूह को बाग कहते हैं। आरोपित वृक्ष समूह को उपवन कहते हैं। फुलवारी को वाटिका कहते हैं। वन मे जल की व्यवस्था नही रहती। उसका सींचा जाना दैवाधीन है। बाग मे सर उपवन मे कूप और वाटिकाओ मे वावलियाँ हैं। सायंकाल का समय है। हवा खाने के लिए स्त्रियाँ नगर के बाहर बगीचो मे आयी हुई हैं। देव यक्ष गन्धर्व नर किन्नर नाग कुमारि। जीति बरी निज बाहुबल बहु सुन्दर बर नारि। लङ्का मे धर्म्य विवाह नही काम्य विवाह है। नसल ठीक रखने का कोई नियम नही है। सौन्दर्य की उपासना है चाहे कोई हो और बल की प्रधानता है। कही उपवनो मे अखाड़े हैं। वहाँ मल्ल लोग बल के उमङ्ग मे गर्जन कर रहे हैं। कुश्ती लड़ते हैं। शस्त्राभ्यास करते हैं। लड़ने मे एक दूसरे को डाँटते है। अखाड़े नगर के बाहर है।

अब नर दुर्ग कहते हैं। अनेक यत्न करके विकट भट नगर की रक्षा करते हैं। इतना बल सम्पन्न होने पर भी नगर रक्षा मे इतनी बड़ी सावधानी है। बिना जाने वहाँ हवा भी नही बह सकती। भोजन की व्यवस्था कहते है। भैसे, मनुष्य, गाय, बकरी, सब कुछ खा जाते हैं। इसीलिए खल कहा। अच्छही कहने का भाव यह कि कच्चा ही खा जाते हैं। मनुष्य कहकर यह दिखलाया कि बाहर से ये सब पकड़ पकड़कर लङ्का रसद की भाँति भेजे जाते हैं। नही तो लङ्का म मनुष्य की गन्ध कहाँ? पापियो की कथा नही करनी चाहिए। यहाँ कुछ कहना पड़ा। उसे बहुत थोड़े मे कहा। और यह समझकर कि अन्त मे इनकी गति होगी। श्रीरामजी के तीर रूपी तीर्थ मे ये शरीर त्याग करेंगे इसलिए कहा। यदि इनकी गति भी अनिष्ट होती तो न कहते।

दो. पुर रखवारे देखि बहु, कपि मन कीन्ह बिचार।
अति लघु रूप धरौं निसि, नगर करौं पैसार ॥३॥

अर्थ: नगर मे बहुत से रखवालों को देखकर हनुमान्‌जी ने मन मे विचार किया कि अति लघुरूप धारण करूँ और रात को नगर म प्रवेश करूँ।

व्याख्या. करोड़ो राक्षसो का चारो ओर पहरा है। बिना सबका संहार किये लङ्का मे प्रवेश करना असम्भव है। सीताजी का देखना तो दूर गया यहीं युद्ध ठन जायेगा। अत शैल समान शरीर से काम न चलेगा। अत. अति लघुरूप धारण करने का विचार किया। गगनचारियों मे अति लघुरूप मशक का और अत्यन्त बड़ा गरुड़ का है। प्राकार डाकना है। अत गगनचारी रूप धारण करना ही उपयुक्त है। सो भी रात को जब मच्छरो के विचरण का समय होता है। दिन को फिर भी सब लख जायँगे। चोरी रात को ही ठीक होती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



## ५८. लङ्का प्रवेश प्रसङ्ग

मसक[1] समान रूप कपि धरी। लंकहि चलेउ सुमिरि नरहरी॥
नाम लंकिनी एक निसिचरी। सो कह चलेसि मोहि निदरी॥१॥

अर्थ : हनुमान्‌जी ने मच्छर के समान रूप छोटा धारण किया और नृसिहजी का स्मरण करके लङ्का को चले। लङ्किनी नाम की एक राक्षसी थी। उसने कहा कि मेरा निरादर करके जा रहा है ?

व्याख्या : फिर लघिमा सिद्धि से काम लिया। अपना आकार मच्छर के समान छोटा बनाया। रूप बन्दर का ही रहा। अँगूठी भी जिसे मुख मे लेकर चले थे उसी तारतम्य से छोटी हो गयी गयी। देवताओ के वसन भूषण अस्त्र वाहनादि उनके रूप से भिन्न नही होते। गीतावली मे अँगूठी के बोलने का भी उल्लेख है। वे यथावसर छोटे बडे हुआ करते हैं। अथवा जिस लघिमा सिद्धि से अपना शरीर छोटा किया उसी से अँगूठी भी छोटी कर ली। नरहरि शब्द नृसिह के लिए प्रयुक्त हुआ है। यथा : मीन कमठ सूकर नरहरी। वामन परसुराम वपुधरी। सो नृसिह का स्मरण किया। जहाँ कोई मार्ग न हो वहाँ मार्ग निकालनेवाले नृसिहजी हैं। हिरण्यकश्यप ने मृत्यु का सब रास्ता रोक दिया था। नृसिहजी ने उसमे भी रास्ता निकालकर उसका वध किया था। अत: अवसरानुकूल उन्ही का स्मरण किया।

लङ्कापुरी की अधिष्ठात्री देवी लङ्किनी नाम से पुकारी जाती थी। राक्षसी रूप से रहती थी। इसलिए एक निसिचरी कहते हैं। यहाँ एक का अर्थ प्रधान है। इतने राक्षस थे किसी ने हनुमान्‌जी को नही देख पाया। पर उसने देख लिया। पहरे मे धोखा देकर निकल जाना पहरेदार का अनादर है। उसने अपनी प्रधानता द्योतन करते हुए ललकारा। मालूम होता है कि और सब पहरेदारो को डाँककर हनुमान्‌जी वन बाग उपवन वाटिका डाँक रहे थे। तब इसने देखा : क्योकि आगे कहेगी : प्रविसि नगर कीजे सब काजा। लङ्किनी को अभिमान है कि मेरा कोई निरादर नही कर सकता। यहाँ मृत्युलोकी राजसी बाधा उपस्थित हुई। अत: इसका वध न करेंगे दण्ड देंगे। प्रवृत्ति दुर्ग के विरोधी को पहिले सात्त्विक तामसी

---

१ हनुमत तहाँ लघुरूप बने। अनिमा के परभाव जने।
अपुना जस के तस ही है पै लोगन छोट सरूप गने।
अनिमा के प्रभाव ही से तौ निकट वस्तु मे दूरपने।
कोउ विडाल सम कोउ मसक सम कहत तहाँ सदेहु जने।
बडो नजर काहू की छोटी भये नजर मे भेद घने।
घर घर लखत अलख बनि अपुना जस ईश्वर सब माहि सने।
मिलत जतन से वह पताल को पानी जैसे मिलत खनै।
—काष्ठजिह्व स्वामी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



और राजसी माया से काम पडता ही है। अतः उसे सात्त्विक को अपनाना पड़ता है। तामसी का वध और राजसी का निग्रह करना पडता है।

जानेहि नही मरम सठ मोरा। मोर अहार जहाँ लगि चोरा ॥
मुठिका एक महा कपि हनी। रुधिर बमत धरनी ढनमनी ॥२॥

अर्थ : रे शठ ! तूने मेरा भेद नही जाना। जितने चोर हैं वे ही मेरे आहार हैं। महाकपि हनुमान्‌जी ने उसे एक घूँसा मारा। जिससे वह रक्त की उलटी करती हुई पृथ्वी पर लुढक गयी।

व्याख्या : लङ्किनी ने कहा कि तू शठ है चालाकी से अपने को छिपाना चाहता है। करि दुराव यह चातुरी सो सठ तुलसीदास। तू औरो का मर्म जानता है कि इतने छोटे रूप का ख्याल न करेंगे। पर मेरा मर्म नही जानता। जितने चोर हैं वे ही रावण द्वारा मेरे आहार कल्पित किये गये हैं। चोर पकडूँ तो पेट भरे न पकडूँ तो भूखी मरूँ। अत. मेरा ध्यान छोटे से छोटे चोर पर भी रहता है। औरो को तो बाहर से रसद आया करती है। यथा . कहुँ महिष मानुष धेनु अज खर खल निसाचर भच्छही। उन्हें क्या पडी है कि इतना ध्यान रक्खे। हनुमान्‌जी ने विचार किया कि इस रूप से इसका मैं कुछ नही कर सकता। इसलिए बडे वानर का रूप धारण किया। स्त्री अवध्य है और इसे चुप करना आवश्यक है। अतः बाये हाथ से एक घूँसा मारा। इतना ही उसके लिए बहुत हो गया।

पुनि संभारि उठी सो लंका। जोरि पानि कर बिनय ससंका ॥
जब रावनहि ब्रह्म बर दीन्हा। चलत बिरंचि कहा मोहि चीन्हा ॥३॥

अर्थ : फिर वह लङ्का सँभालकर उठी और सशङ्क होकर हाथ जोड विनती करने लगी कि जब ब्रह्मदेव ने रावण को वर दिया तब चलते समय उन्होने मुझे एक पहिचान बतला दी।

व्याख्या : यहाँ पर कवि ने लङ्का कहकर बात स्पष्ट कर दी कि वह स्वयं लङ्का थी : अधिष्ठात्री देवी थी। इसी से उठी नही तो न उठती। रावण की आज्ञा से निशिचरी बनी पहरा देती थी। उसने रात को छिपकर हनुमान्‌जी को जाते देखकर उन्हे शठ और चोर कहा। अब सशङ्क होकर विनय करती है कि शठ कहने के दण्डरूप मे तो एक घूसा खाया अब चोर कहने के दण्डरूप मे दूसरा घूसा न खाना पडे। इस बार के घूसे से न बच सकूँगी। अत कहने लगी कि मैं देवी हूँ। रावण का शासन मुझे पसन्द नही है। जब ब्रह्मदेव रावण को वर दे रहे थे उस समय मैं वहाँ उपस्थित थी। चलते समय ब्रह्मदेव मुझे चिह्न बतलाते गये। यहाँ कहा मोहि चीन्हा का दो अर्थ करना चाहिए : १ मुझे पहिचानकर कहा २ मुझे चिह्न बतलाया।

बिकल होसि तैं कपि कें मारें। तब जानेसु निसिचर संहारे ॥
तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : जब तू बन्दर के मारने से व्याकुल हो जाय तब जान लेना कि राक्षसों का संहार अब हुआ ही चाहता है। हे तात ! मेरा अत्यन्त बड़ा पुण्य है जो आँखो से रामदूत का दर्शन पाया।

व्याख्या : बन्दर अल्पवीर होते हैं। मेरे सामने क्या हैं। यथा : नर बान कैहि लेखे माही। जब कपि के मारने पर तुझे विकलता हो तब यह समझ लेना कि यह रामदूत है। रामावतार हो गया। अब राक्षसो का नाश होगा। सो आपके द्वारा जो विकलता हुई उससे मुझे हर्ष हुआ। मुझे आपसे महापुरुषो का दर्शन कहाँ? सवेरे से साँझ तक राक्षस ही देखते देखते दिन जाता है। भले का दर्शन पुण्य का फल है। देवदूत का दर्शन बड़े पुण्य का फल है और रामदूत का दर्शन अति अधिक पुण्य का फल है। देखेऊँ नयन का भाव यह कि यहाँ भले का नाम भी सुनने में नही आता। यहाँ आँखो से रामदूत के दर्शन की कौन आशा थी ?

दो. सात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिअ तुला एक अंग।
तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सत संग ॥४॥

अर्थ : सात स्वर्ग और अपवर्ग के सुख को तराजू के एक पलरे पर रख जाय तो भी वे सब मिलकर उस सुख के बराबर नही हो सकते जो सत्संग के लव मात्र से होता है।

व्याख्या : भू स्वर्ग से लेकर सत्यलोक तक की सात स्वर्ग मे गिनती है। आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन। वहाँ से फिर लौटना होता है। अपवर्ग मोक्ष को कहते हैं। जहाँ से फिर लौटना नही होता। ब्रह्मलोक तक सुख का तारतम्य है और मोक्ष में निरतिशय सुख है। यह सब सुख तराजू के एक पलड़े पर रखा जाय और सत्संग के लव मात्र का सुख दूसरे [illegible] पलड़ा ऊपर उठता है। सो यहाँ इतना अन्तर पड़ा कि स्वर्गवाला पलड़ा तो आकाश मे गया और सत्संगवाले पलड़े ने जमीन न छोड़ी।

प्रविसि नगर कीजे सब काजा। हृदय राखि कोसल पुर राजा ॥
गरल सुधा रिपु करइ मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई ॥१॥

अर्थ : नगर में प्रवेश करके सब काम कीजिये। कोसलपुर के राजा को हृदय में रख लीजिये। उसके लिए विष अमृत हो जाता है। शत्रु मित्रता करने लगते हैं, समुद्र गाय के खुर के बराबर हो जाता है। अग्नि में शीतलता आजाती है।

व्याख्या : लङ्का ने कहा कि अब बेखटके नगर मे प्रवेश करके सब काम

१. तुलयाम लवेनापि न स्वर्गं नापुनर्भवम्। भगवत्सङ्गिसङ्गस्य मर्त्यानां किमुताशिषः —श्रीमद्भा०

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कीजिये। आप को जान लेने का सामर्थ्य अब लङ्का मे किसी को नही है। मेरी ओर से भी बेखटके रहिये मै भी किसी से न कहूँगी। परन्तु भगवान् कोसलेश को हृदय मे रख लीजिये। भाव यह कि कोसलेश को हृदय मे रखकर चले थे। उस मूर्ति मे क्या घाटा था कि उसके स्थान पर आप ने नृसिंहमूर्ति को पधराया? ध्येय मूर्ति के परिवर्तन से कार्य मे बाधा उपस्थित होती है। अत. जिस भाँति कोसलपुर के राजा को हृदय मे रखकर चले थे फिर उसी भाँति उन्हे हृदय मे रख लीजिये। इस भाँति लङ्का ने अच्छी सलाह देकर मित्रता का कार्य किया।

उपासनाघाट के वक्ता भुसुण्डीजी बोल उठे क्योकि उपासना का महत्त्व कहने का अवसर आगया। भजन से भगवत्कृपा होती है। यथा : भजत कृपा करिहैं रघुराई और भगवत्कृपा से विष भी अमृत हो जाता है। सुरसा विषधरो की माँ है। सो राम कृपा से अमृत हो गयी। आशीर्वाद दिया : रामकाज सब करिहहु तुम बल बुद्धि निधान। रिपु ने मित्र का काम किया। लङ्किनी ने उत्तम परामर्श दिया। समुद्र तो गोष्पद हो ही गया था। यथा : गोष्पदीकृतवारीशम्। अनल मे शीतलता आने की कथा आगे आयेगी। यथा : ताकर दूत अनल जेहि सिरजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा।

गरुड़ सुमेरु रेनु समताही। राम कृपा करि चितवा जाही॥
अति लघु रूप धरेउ हनुमाना। पैठा नगर सुमिरि भगवाना॥२॥

अर्थ · हे गरुडजी! सुमेरु पर्वत उसके लिए रज के समान हो जाता है जिसे रामजी ने कृपा करके देखा। हनुमान्‌जी ने अति लघुरूप धारण किया और भगवान् का स्मरण करके नगर मे प्रवेश किया।

व्याख्या : यहाँ पर अनेक पुस्तको मे गरल पाठ है। परन्तु वह समीचीन नही है। उपासनाघाट की कथा हो रही है। अत भुसुण्डिजी वक्ता हैं उनका गरुड सम्बोधन करना ही उपयुक्त है। ऐसे ही अवसर पर उदाहरण देते समय ठीक इसका उलटा कहने मे भी गरुड सम्बोधन है। यथा . मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होइ विष सुनु हरिजाना। मित्र करइ सतरिपु कै करनी। ताकहुँ विबुध नदी बैतरनी। सब जग ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता। अत यहाँ भी गरुड सम्बोधन ही उपादेय है। रामजी जिसे कृपा करके देखते है। उसके लिए जड वस्तु भी अपना सहज स्वभाव त्यागकर सुखद हो जाता है। सुमेरु ऐसा दुरल्लघ्य पर्वत भी : जिसके उल्लघन का निषेध भी शास्त्र मे है। माला के भी सुमेरु का कोई उल्लघन नही करता। उसके लिए रेनु की भाँति पद दलित होने योग्य हो जाता है। यथा : रज मग परी निरादर रहई। सब कर पग प्रहार नित सहई।

हनुमान्‌जी ने फिर अति लघु रूप धारण किया। यह तीसरा अवसर है। पहिले सुरसा के प्रसङ्ग मे। यथा · अति लघु रूप पवन सुत लयउ। दूसरा लङ्का की ओर चलने के समय। यथा : मसक समान रूप कपि धरी और तीसरा इस

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



समय। लङ्किनी की उचित शिक्षा को हनुमान्‌जी ने मान लिया। अब भगवान् रामचन्द्र का स्मरण करके नगर मे प्रवेश किया।

मंदिर मंदिर प्रति करि सोधा। देखे जहँ तहँ अगनित जोधा ॥
गयउ दसानन मंदिर माँही। अति विचित्र कहि जात सो नाँही ॥३॥

अर्थ : एक एक करके घरो को खोजा। जहाँ तहाँ असंख्य योद्धा देखे। रावण के मन्दिर मे गये। वह अत्यन्त विचित्र था उसका वर्णन नही हो सकता।

व्याख्या : एक ओर से खोजना आरम्भ किया। सम्पाती ने उपवन मे बतलाया था। यथा : तहँ असोक उपवन जहँ रहई। सीता बैठी सोचरत अहई। पर वह दिन की बात थी। रात को किस घर मे हैं कौन कह सकता है? चोर चोरी करके घर में नही रखता। अतः पहिले लङ्का भर की तलाशी ले ली। जिस मन्दिर मे जाते हैं योद्धा ही दिखलायी पडते हैं। सीता के लक्षणवाली किसी स्त्री को नही देखा। इस भाँति असंख्य मकान खोजे।

नाम किसी का नही जानते। इसलिए उल्लेख नही किया। मालिक को दशमुख देखकर निश्चय हुआ कि यह दशानन का मन्दिर है। अथवा अतिविचित्र होने से अनुमान किया कि यही राजमन्दिर होगा। उसे देखकर हनुमान्‌जी को स्वर्गलोक और देवलोक का भ्रम हुआ। यथा : स्वर्गोऽयं देवलोकोऽयमिन्द्रस्यापि पुरी भवेत्। वा०। इसलिए अति विचित्र कहा। लौकिक रचना होती तो कहते बनता। वहाँ अलौकिक रचना थी। अतः कहते है : कहि जात सो नाही।

सयन किएँ देखा कपि तेही। मंदिर महुँ न दीखि बैदेही ॥
भवन एक पुनि दीख सुहावा। हरि मंदिर तहँ भिन्न बनावा ॥४॥

अर्थ : हनुमान्‌जी ने उसे शयन किये देखा। परन्तु उस घर मे वैदेही को नही देखा। फिर एक सुन्दर घर दिखायी पड़ा। वहाँ भगवान् का एक अलग मन्दिर बना हुआ था।

व्याख्या : पहिले पहल निद्रितावस्था मे रावण को देखा। पर वहाँ भी सीताजी का पता नही। सरकार ने रूप शील स्वभाव का ऐसा वर्णन कर दिया था कि हनुमान्‌जी ने निर्णय कर लिया कि इतनी रानियो मे सीताजी कोई नही हैं।

भवन तो एक से एक देखे पर हनुमान्‌जी को सोहाये नही। क्योंकि भगवत् सम्बन्धी वस्तु वहाँ कुछ भी नही थी। लङ्का भर मे एक घर हनुमान्‌जी को सोहाया। क्योकि उसमे हरिमन्दिर था और सो भी शास्त्रानुसार गृहस्थी से अलग बना हुआ था। गृहस्थी के भीतर भगवान् के विग्रह के पधारने का विधान नही है। उसके लिए पृथक् स्थान चाहिए। बाल बच्चो द्वारा रहने के स्थान मे कुछ न कुछ अशुद्धि रहने की शङ्का बनी ही रहती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. रामायुध अंकित गृह, सोभा बरनि न जाइ।
नव तुलसिका बृंद तहँ, देखि हरख कपिराइ ॥५॥

अर्थ : वह घर श्रीरामजी के आयुध के चिह्नो से अंकित था। उसकी शोभा वर्णन नही की जा सकती। वहाँ नवीन नवीन तुलसी के समूहो को देखकर कपिराज हनुमान्‌जी हर्षित हुए।

व्याख्या : रहनेवाले घर मे भी रामायुध धनु असि चर्म और शक्ति अङ्कित हैं। उससे घर की अवर्णनीय शोभा है। पवित्र शोभा तो यही दिखायी पड रही है। सम्राट् के छोटे भाई का घर है। ऐश्वर्य की कोई कमी नही। रावण के घर के बाद यही घर है। पवित्रता अधिक है। तुलसी के नये पौदे बहुत से लगे हैं। सहस्र नाम से तुलसीदल नित्य चढता है। तुलसीवन हनुमान्‌जी को बडा प्यारा है। यह सब देखकर कपिराज हर्षित हुए। भक्तिरस के आलम्बन और उद्दीपन दोनो को देखकर सञ्चारी भाव हर्ष का उदय हुआ।

लंका निसिचर निकर निवासा। इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा ॥
मन महुँ तरक करै कपि लागा। तेही समय बिभीषनु जागा ॥१॥

अर्थ : लङ्का तो निशिचर समूह का निवास है। इहाँ सज्जन का घर कहाँ? अथवा गन्ध कहाँ? हनुमान्‌जी मन मे तर्क करने लगे। उसी समय विभीषन जागे।

व्याख्या : घर घर देख लिया लङ्का मे सब निशिचर हैं। ऐसे दुष्टो का सङ्ग तो सज्जन भूलकर नही करते। सज्जन यहाँ रह कैसे सकता है? फिर क्या यह कोई निशाचरी माया है? या कोई सज्जन ही समय के हेरफेर से इन लोगो मे फँसा पडा है। इन लोगो मे से निकल नहीं सकता और ये लोग भी किसी कारण वश उसे प्राण से वियुक्त नही करते।

हनुमान्‌जी मन मे तर्क करने लगे। किसी निश्चय पर नही पहुँच सके। उसी समय सरकारी सहायता हुई। विभीषणजी जागे। रात भर तो हनुमान्‌जी को खोजते बीता। उष काल आगया। यही समय महात्माओ के जागने का है। जब भक्त असमञ्जस मे पड़ते हैं तब सरकार उनकी सहायता का सयोग जुटा देते हैं। बन्दर प्यासे मरते थे। तब तो तपस्विनी से भेंट हुई। उसने समुद्र तट तक पहुँचा दिया। वहाँ अनशन करके बैठे तो सम्पाती से भेंट हुई। उसने सीताजी का पता बतला दिया। यहाँ हनुमान्‌जी असमञ्जस मे फँसे तो विभीषणजी जागे। उनकी बतलायी युक्ति से श्रीजनकनन्दनी का साक्षात्कार होगा। इसी भाँति भक्तो की सहायता का योग जुटता ही जाता है। यथा : करहिं कृपानिधि सोइ सजोगा।

दो बार श्रीराम नाम लेने से विभीषण पर हर्षित होकर श्रीमारुति ने कृपा की तो जो निरन्तर श्रीराम नाम हनुमान्‌जी को सुनाते हैं उससे अञ्जनीनन्दन कितने अधिक प्रसन्न होंगे! दर्शन देते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



राम राम तेहि सुमिरन कीन्हा। हृदय हरष कपि सज्जन चीन्हा ॥
एहि सनु हठि करिहौं पहिचानी। साधु ते होइ न कारज हानी ॥२॥

अर्थ : उसने राम राम सुमिरन किया। हनुमान्‌जी ने पहिचान लिया कि सज्जन हैं और हृदय में हर्षित हुए। इनसे हठ करके परिचय करूँगा। क्योंकि साधु से कार्य की हानि होती नही।

व्याख्या : जो सोचता हुआ प्राणी सोता है वही विचार लिये जागता है। राम राम स्मरण करते जो सोयेगा वह राम राम कहते ही जागेगा। दम्भ के लिए जो नाम स्मरण करता है वह जागते ही नाम स्मरण नही कर सकता। वह जब अवसर देखेगा तब वह राम राम कहेगा। अतः हनुमान्‌जी के निर्णय के लिए अचूक प्रमाण मिल गया। निश्चय हो गया कि सज्जन है। अतः सज्जन के पहिचान लेने से मन में हर्ष हुआ। क्योकि भगवती जनकनन्दिनी की तमाम खोज डाला। कही पता नही चला। लङ्का में किसी से पूछ सकते नही थे। बिना पूछे अब पता चलने की कोई आशा नही। कोई सज्जन मिले तो उससे पूछें। सो एक सज्जन तो मिला। इसे मेरा हाल क्या मालूम ? अतः मै ही इससे हठपूर्वक जान पहिचान करूँगा। यह साधु है। इससे यदि काम बनेगा नही तो बिगड़ेगा भी नहीं। दूसरे के कार्य को साधन करनेवाले को ही साधु कहते हैं। फिर वह साधु कैसा जिससे दूसरे का कार्य बिगड़ जाय।

बिप्र रूप धरि बचन सुनाए। सुनत बिभीषनु उठि तहँ आए ॥
करि प्रनाम पूछी कुसलाई। बिप्र कहहु निज कथा बुझाई ॥३॥

अर्थ : ब्राह्मण का रूप धरकर वचन सुनाया। सुनते ही विभीषणजी उठकर वहाँ आये। प्रणाम करके कुशल पूछी : ब्राह्मण देवता ! अपनी कथा समझाकर कहिये।

व्याख्या : हनुमान्‌जी ने जो रूप धारण किया था उस रूप को भेंट करने के अनुपयुक्त समझकर त्याग दिया। प्रातःकाल बन्दर का दर्शन भी शुभ नही माना जाता। अतः विप्ररूप धारण किया। वेदपाठी भवेद्विप्रः। वेदपाठी की विप्र संज्ञा है। इससे यह ध्वनित किया कि वेद मन्त्र सुनाया। उस समय लङ्का मे वेदध्वनि हो रही थी। ब्रह्मराक्षसों ने वेद पढ़ना आरम्भ कर दिया था। बुद्धिमान् हनुमान्‌जी ने ऐसे अवसर पर वेद मन्त्र ही सुनाया। विभीषणजी को ब्राह्मण बहुत प्रिय हैं। यथा : विप्र धेनु हित संकट सहही। सो स्वयं उठकर आये। वेदध्वनि सुनकर आये। ब्राह्मण देखकर प्रणाम किया। कुशल पूछा। इतना ही नही कहने लगे कि अपनी कथा समझाकर कहो। यहाँ खल मनुजाद द्विजामिष भोगी बसते हैं। आप यहाँ क्यों आये ? यहाँ तक कैसे पहुँच पाये ? आपके ऊपर कौन सी विपत्ति है जो मौत के मुख में कूद पड़े ? मैं कौन सी सहायता करूँ ? इसलिए अपनी कथा समझाकर कहने के लिए प्रार्थना की। विभीषणजी को भी शङ्का हुई कि यहाँ सज्जन कैसे आया ?

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



की तुम्ह हरिदासन्ह महँ कोई । मोरे हृदय प्रीति अति होई ॥
की तुम्ह रामु दीन अनुरागी । आयेहु मोहि करन बड़ भागी ॥४॥

अर्थ वया आप हरिभक्तो मे से कोई हैं ? मेरे हृदय मे अत्यन्त प्रेम उमड रहा है। अथवा आप दीनो से प्रेम करनेवाले स्वय रामजी हैं जो मुझे वडभागी बनाने आये हैं।

व्याख्या मेरी स्वाभाविकी प्रीति हरिदासों मे है और आपको देखकर मुझे अति प्रीति हो रही है। अत आप हरिदासो मे से कोई हैं। सता हि सन्देहपदेपु वस्तुपु प्रमाणमन्त करणप्रवृत्तय । सन्देहास्पद विषयो मे सज्जनो के लिए उनके अन्त करण की वृत्ति ही प्रमाण है और हरिदास को छोडकर अन्य को यहाँ तक आने का सामर्थ्य भी नही है।

यदि दास नही तो आप स्वय प्रभु हो। प्रभु दीनो पर अनुराग करके उसे वडभागी बनाने चले आते हैं। भाग्य का निर्णय सम्पत्ति से नही होता। भगवच्च-रणानुराग से होता है। पहिल यथावसर हनुमान्‌जीने विभीपण के विषय में मन मे ही तर्क किया था। अब विभीषणजी उनके विषय मे उनके सामने तर्क कर रहे हैं। महात्माओ का तर्क भी अव्यर्थ होता है। कहते हैं कि दो मे आप कौन है ? स्पष्ट कहिये जो आप दिखायी पडते है सो नही हैं।

दो तब हनुमत कही सब, रामकथा निज नाम ।
सुनत जुगल तन पुलक मन, मगन सुमिरि गुनग्राम ॥६॥

अर्थ तब हनुमान्‌जी ने श्रीरामजी की सारी कथा कही और अपना नाम बताया। सुनते ही दोनो के शरीर पुलकित हो गये और मन श्रीरामजी के गुण समूह का स्मरण करके मग्न हो गया।

व्याख्या सप्रेम वचन सुनकर विश्वास हुआ। यथा कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास। पहिले सज्जन चीन्हा था। अब अभ्रान्त निश्चय हो गया। तब सब रामकथा कह सुनायी। जो लक्ष्मणजी से सुनी थी। यथा . लछिमन रामचरित सब भाषा। और जो स्वय देखा था। चरित कहकर अन्त मे अपना नाम कहा। भाव यह कि चरितसम्बन्धी सब पुरुषो का नाम लिया। अपने लिए मैं कहते थे। अन्त मे अपना नाम कह देने से कथा पूर्ण हुई। कहनेवाले को भी पुलक और सुननेवाले को भी पुलक हुआ और गुणग्राम के स्मरण से मन आनन्द म मग्न हो गया। यथा कहत सुनत हरखहिं पुलकाही। ते सुकृती मन मुदित नहाही।

सुनहु पवन सुत रहनि हमारी । जिमि दसनन्हि महु जीभ बिचारी ॥
तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा । करिहहिं कृपा भानुकुल नाथा ॥१॥

अर्थ हे पवनसुत ! मेरी रहनी सुनो। जैसे दांतो मे बिचारी जीभ रहती है। हे तात ! मुझे अनाथ जानकर क्या कभी भानुकुलनाथ कृपा करेंगे ?

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : यद्यपि रामजी का परिचय देने मे ही अपना परिचय दिया। फिर भी अपने नाम के साथ पिता का नाम भी बतलाया। नही तो विभीषणजी पवनसुत कहकर कैसे सम्बोधित करते ? लङ्किनी की भांति ये भी अपनी सफाई दे रहे है कि मैं निशिचर निकर के साथ इच्छापूर्वक नही रहता हूँ। विधिवश कुसङ्गति मे पड गया हूँ। जिह्वा मुख के साथ ही उत्पन्न है। वह उसे छोड़कर कही जा नही सकती। दिन रात दाँतों की सेवा किया करती है और सावधानी से अपने को बचाये रहती है। पर दांतो को उसपर दया नही। अवसर पायें तो उसे चाब जायँ। भाव यह कि इन दुष्टो के बीच मेरी वही दशा है जैसे पर दांतो के बीच जिह्वा की। दशन शब्द का अर्थ ही काटनेवाला है। जीभ तो विचारी है। चाहने पर भी कुछ नही कर सकती।

इसी भांति मै भी अनाथ हूँ और सरकार अनाथ पर प्रीति करनेवाले हैं। यथा . सुदर सुजान कृपा निधान अनाथ पर का प्रीति जो। भानु को कही कृपा करने मे कोई परिश्रम नही। ये तो भानुकुल नाथ है। जहां है वही से बैठे कृपा कर सकते हैं। मुझे उन तक पहुँचने का सामर्थ्य नही है। अनाथनाथ ही कृपा करें तो बने। विभीषणजी इतना जानना चाहते हैं कि वे क्या कभी कृपा करेंगे ? चाहे जब करें।

तामस तन कछु साधन नाँही। प्रीति न पद सरोज मन माँही ॥
अब मोहि भा भरोस हनुमंता। बिनु हरिकृपा मिलहि नहि संता ॥२॥

अर्थ : मेरा शरीर तामसी है। इसलिए साधन कुछ भी नही है। चरण कमलो मे प्रीति भी नही है। हे हनुमान्‌जी ! अब मुझे भरोसा हुआ। क्योकि हरि की कृपा के बिना सन्त मिलते नही।

व्याख्या : यहां साधन से कर्म और ज्ञान अभिप्रेत है। यथा : लोकेऽस्मिन् द्विविधा निष्ठा पुरा प्रोक्ता मयानघ। ज्ञानयोगेन साख्याना कर्मयोगेन योगिनाम्। कर्म और ज्ञान न होने पर भी केवल भक्ति से सब कुछ सध जाता है। इस पर कहते हैं कि चरण कमलो मे प्रीति भी नहीं है। यही बात रावण ने भी कही : होइहि भजन न तामस देहा। तामस देह से वह भी दुखी था। दोनो भाइयो को भजन पर आस्था थी।

विभीषणजी कहते हैं कि अभी तक तो मैं निराश था कि मुझपर कृपा कैसे हो सकती है ? पर अब भरोसा हुआ। क्योकि : सत बिसुद्ध मिलहिं परितेही। चितवहि रामकृपा करि जेही। मुझे आज विशुद्ध सन्त का दर्शन हुआ। इससे सिद्ध हुआ कि रामजी की कृपादृष्टि मुझ पर हुई। अत. भरोसा हुआ कि जब कृपादृष्टि मेरी ओर फिरी है तो कृपा भी करेंगे अर्थात् सनाथ करेंगे।

जौ रघुबीर अनुग्रह कीन्हा। तौ तुम्ह मोहि दरसु हठि दीन्हा ॥
सुनहु बिभीषण प्रभु कइ रीती। करहि सदा सेवक पर प्रीती ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ जब रघुवीर ने कृपा की है तभी तो आपने हठ करके दर्शन दिये हैं। विभीषणजी सुनिये प्रभु की यही रीति है कि सेवक पर सदा प्रीति करते है।

व्याख्या त्यागवीरो दयावीरो विद्यावीरो विचक्षण। पराक्रममहावीरो धर्मवीर सदा स्वत। पञ्चवीरा समाख्याता राम एव स पञ्चधा। रघुवीर इति ख्यात सर्ववीरोपलक्षण। त्यागवीर यथा राजीव लोचन राम चले तजि बाप को राज बटाऊ की नाईं। दयावीर यथा तुरत विभीषण पाछे मेला। सनमुख राम सहेउ सो सेला। विद्यावीर यथा नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न रामसम जान जथारथ। पराक्रमवीर यथा सक सर एक सोखि सतसागर। धर्मवीर यथा मै सोइ धर्म सुलभ करि पावा। तजे तिहूँपुर अपजस छावा। यहाँ दयावीर से प्रयोजन है। मुझ पर कृपा की यह प्रभु की दयावीरता है। सन्त के हठपूर्वक दर्शन देने से अनुग्रह का अनुमान करते हैं। यथा एहिसन हठि करिहौ पहिचानी।

हनुमान्‌जी तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहैं कृपा भानुकुल नाथा। का उत्तर देते हैं कि प्रभु की रीति सुनो। वे तो सदा सेवक पर प्रीति करते है। पर कोई उनका वास्तविक सेवक भी तो बने। सेवा की पात्रता आने पर कृपा का अनुभव होगा। यहाँ यह ध्वनि निकलती है कि आप कुछ वास्तविक सेवा कीजिये उनकी कृपा मे सन्देह न कीजिये।

**कहहु कवन मैं परम कुलीना। कपि चञ्चल सबही विधि हीना॥**
**प्रात लेइ जो नाम हमारा। तेहि दिन ताहि न मिलै अहारा॥४॥**

अर्थ कहिये मै ही कौन बडा कुलीन हूँ। चञ्चल बन्दर हूँ और सब विधि से हीन हूँ। प्रात काल जो हम बन्दरो का नाम ले लेवे तो उस दिन भोजन न मिले।

व्याख्या तामस तन कछु साधन नाही। का उत्तर देते हैं कि आप तामस तन पाने पर भी कुलीन तो हैं। मेरा तो तन भी तामस है और मैं कुलीन भी नहीं। चञ्चल क्षिप्त चित्त मे साधन का अधिकार नही। अत सबही विधिहीन बतलाते हैं। कपि कौन सा कर्म ज्ञान और उपासना करेगा? सवेरे उसका कोई नाम नही लेता और आप तो प्रात स्मरणीय हैं।

यथा प्रह्लादनारदपराशरपुण्डरीकव्यासाम्बरीषशुकशौनकभीष्मदाल्भ्यान्।
रुक्माङ्गदार्जुनवसिष्ठविभीषणाद्यानेतानह परमभागवतान् स्मरामि।

**दो० अस मै अधम सखा सुनु, मोहू पर रघुवीर।**
**कीन्ही कृपा सुमिरि गुन, भरे बिलोचन नीर॥७॥**

अर्थ हे सखे! सुनिये मैं ऐसा अधम हूँ। पर रघुवीर ने मुझ पर भी कृपा की। स्मरण करके आँखो मे जल भर आया।

व्याख्या विभीषणजी को रामानुरागी देखकर सखा का नाता जोडा। अब मोहि भा भरोस हनुमता का उत्तर देते हैं कि जो तुम मुझ से अधम को सन्त कह

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भ्राता कहा। यथा : होहिं कुठायँ सुबधु सहाये। भाव यह कि अब तुम हमारे भ्राता हुए। रावण के नही रहे। तुम्हे पिता का दर्शन नही हुआ है। मुझे माताजी का दर्शन नही हुआ है। सो दर्शन करना चाहता हूँ। कैसे हो ?

जुगुति बिभीषन सकल सुनाई। चलेउ पवनसुत बिदा कराई ॥
करि सोइ रूप गयउ पुनि तहवाँ। बन असोक सीता रह जहवाँ ॥३॥

अर्थ विभीषणजी ने सब युक्तियाँ कह सुनायी। तब पवनसुत विदा लेकर चले। वही रूप धरकर वहाँ गये जहाँ अशोक वन मे सीताजी रहती थी।

व्याख्या · विभीषणजी ने वहाँ पहुँचने की सब युक्तियाँ बतलायी। युक्ति मजु मनि सीप सोहाई सीप की भाँति युक्ति समुद्र तल मे छिपी रहती है। उसे वे ही जानते थे। पवनसुत है। ठहर नही सकते। विभीषणजी ठहराते थे। पर न ठहरे विदा लेकर चले।

सोइ रूप अर्थात् मशक समान रूप अथवा जो रूप कि विभीषणजी ने युक्ति कहते समय बतलाया था। अशोक वन जहाँ सीताजी रहती थी वहाँ से कुछ दूर था। इसी से चलेउ कहा। असोक बन को चले। सम्पाती ने भी उपवन बतलाया था। यथा तहँ अशोक उपवन जहँ रहई। सीता बैठि सोच रत अहई।

देखि मनहि महुँ कीन्ह प्रनामा। बैठेहि बीति जात निसि जामा ॥
कृस तनु सीस जटा एक बेनी। जपति हृदय रघुपति गुन श्रेनी ॥४॥

अर्थ : देखकर हनुमाजीन् ने मन ही मन प्रणाम किया। उन्हे बैठे ही बैठे रात के प्रहर बीत जाते थे। शरीर दुबला हो गया है। सिर पर जटा की एक लट हो गयी है और हृदय मे रघुपति के गुण समूह का जप करती हैं।

व्याख्या महात्माओं की युक्ति अचूक होती है। दर्शन हुआ। प्रकट प्रणाम नही कर सकते और बिना प्रणाम किये भी नही रह सकते। अत मन ही मन प्रणाम किया। अद्भुत दृश्य देखा। माँ सोती नही। रात के पहर बैठे ही बीतते हैं। लेटती भी नही। दारुण तप कर रही हैं। देखि कहने का भाव यह कि रामजी के कथित गुण स्वभाव का मिलान नही करना पडा। देखते ही निश्चय हो गया कि यही माँ हैं।

अशन शयन के त्याग से तथा विरह यातना से शरीर कृश हो गया है। प्रोषितपतिका के लिए केश सस्कार निषिद्ध है। सो बाल सब मिलकर जटा के रूप से एक वेणी हो गयी है। रघुपति के गुणो की श्रेणी का मानसिक जप कर रही हैं। जगदम्बा का तपस्विनी रूप मे दर्शन हुआ।

दो. निज पद नयन दिएँ मन, राम चरन महुँ लीन।
परम दुखी भा पवन सुत, देखि जानकी दीन ॥८॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : नेत्रों को अपने चरणों में लगाये हुए हैं और मन श्रीरामजी के चरणों में लीन हैं। जानकीजी को दीन देखकर पवनसुत परम दुःखी हुए।

व्याख्या : नयन का संयोग पद के साथ है, फिर भी देखती नहीं हैं, क्योंकि मन रामचरण में लीन है। यथा : चित्र से नयन अरु गढे से श्रवन नहि सुनति पुकारे। निर्वितर्क समाधि लग रही है। स्मृति के अच्छी तरह शुद्ध हो जाने पर स्वरूप शून्य की भाँति जब ध्येय मात्र का ही ध्यान रह जाय तब निर्वितर्क समाधि होती है। जिन चरणों की साक्षात् सेवा करती रही, अब उन्हीं के लिए समाधि लगा रही हैं। हम लोगों के लिए वह समाधि दुर्गम है, पर माँ के लिए वह महा दीनावस्था थी। पवनसुत हैं, बडे बलवान् हैं, परन्तु पराक्रम का समय नहीं, इससे परम दुःखी हुए। बिना देखे दुःखी और देखने पर परम दुःखी यथा : देखी जानकी जब जाय, परम धीर समीर सुत के प्रेम हिय न समाय। कृस सरीर सुभाय सोभित लगी उडि उडि धूलि। मनहु मनसिज मोहनी मनि गयउ भोरे भूलि। लङ्काप्रवेश प्रसङ्ग यहाँ तक है।

तरु पल्लव महुँ रहा लुकाई। करै विचार करौं का भाई॥
तेहि अवसर रावनु तहँ आवा। संग नारि बहु किएँ बनावा॥१॥

अर्थ : वृक्ष के पत्तों में छिप रहे। विचार करने लगे कि भाई! क्या करूँ। उसी समय सजधजकर बहुत सी स्त्रियों को साथ लिये वहाँ रावण आया।

व्याख्या : मशक समान रूप है, फिर भी पेड के एक पत्ते में छिपे हैं। राक्षसियों का बड़ा कड़ा पहरा पड रहा है कहीं कोई लख न ले। भाई सम्बोधन मन के लिए है। यथा : चली सती सिव आयसु पाई। करैं विचार करौं का भाई। जग बहु नर सर सरिसम भाई। इत्यादि। असमञ्जस आ पडने पर विचार न करना चूक है। विचार ही सब कल्याणों का मूल है। हनुमान्जी विचार कर रहे हैं। कोई बात मन में जमती नहीं। ऐसे ही अवसर पर प्रभु संयोग जुटा देते हैं। उसी समय रावण आया। रावण का अर्थ ही रुलानेवाला है। रुलाने के लिए आया। अध्यात्म रामायण की कथा है कि रावण ने स्वप्न देखा कि रामजी का दूत एक बन्दर सीताजी को देखने आया है। रावण बड़ा पण्डित है। जान लिया कि स्वप्न सच्चा है। इस समय जाकर जानकी को वाक्यबाण से विद्ध करूँ। दूत जाकर कहेगा तब रामजी आने में शीघ्रता करेंगे। क्योंकि रावण ने सीताहरण ही अपनी सद्गति के लिए किया था। इसमें श्रुति प्रमाण है। यथा रामपत्नी वनस्था यः स्वनिवृत्त्यर्थमाददे। १७ रा ता.। रावण की सब बातें प्रायेण दोरुखी होती हैं। यथा : सुनत वचन दसकठ रिसाना। मन महुँ चरन वदि सुख माना। सो आप भी ठाटबाट से आया और रानियों को भी सजाकर ले आया। दिखाने के लिए कि रावण अपनी स्त्रियों को बडा सुख देता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बहु बिधि खल सीतहि समुझावा । साम दान भय भेद देखावा ॥
कह रावनु सुनु सुमुखि सयानी । मदोदरी आदि सब रानी ॥२॥

अर्थ उस खल ने बहुत भाँति से सीताजी को समझाया । साम दान भय और भेद भी दिखाया । रावण ने कहा हे सुमुखि, सयानी ! सुनो, मन्दोदरी आदि सब रानियो को ।

व्याख्या उनकी प्रक्रिया मे तथा समझाने मे खलता भरी है । इसलिए उसे कवि खल कह रहे है । साम दान भय और भेद दिखलाकर समझाया इसलिए बहुविधि कहते है । मन्दोदरी आदि सब रानी । तव अनुचरी करौ प्रन मोरा । यह कहकर साम दिखलाया । नगर मालिनी पृथ्वी का आधिपत्य जनक राजा को दे देने का लोभ दिखलाया । यह दान है । न मानोगी तो वध करूँगा यह भय दिखलाया । जिसके लिए तू मर रही है वह तुझ पूछता भी नही इत्यादि बातें कहकर भेदनीति का प्रयोग किया । सवैया

प्रमहि ते उपजै सुख सुन्दरि त्यागि सदेह सनेह लगाओ ।
पूरी महीपुर मालिनि आज विदह को रावण त दिलवाओ ॥
जो न सुनो हित की मम बात तो प्रम निरादर को फल पाओ ।
जो नहि पूछत है तुमको तिनके हित क्यो निज जन्म गँवाओ ॥

मुख पर ही पुरुष आसक्त होता है । इसलिए सुमुखि कहता है । सयानी कहकर विचार करने के लिए प्रोत्साहित करता है अपने हित को देखो इमीमे सयानापन है । ये जो मेरे साथ है सब रानियाँ हैं । मन्दोदरी इनमे मुख्य है । इनकी ओर देखो । म सबको कितने सुख से रखता हूँ और वह तपस्वी तुम्हारी भी रक्षा न कर सका ।

तव अनुचरी करौ प्रन मोरा । एकबार बिलोकु मम ओरा ॥
तृन धरि ओट कहति बैदेही । सुमिरि अवधपति परम सनेही ॥३॥

अथ तुम्हारी दासी बना दूँगा यह मेरा प्रण है । तुम एकबार मेरी ओर देख दो । परम स्नेही अवधपति का स्मरण करक वैदेही तिनके के ओट से कहने लगी ।

व्याख्या रावण कहने लगा कि मन्दादरी समेत इन सब रानियो को तुम्हारी दासी बनाऊँगा । यह मेरा प्रण है । मै इन सबो के सामने प्रण कर रहा हूँ । देखो किसी को दासी बनने मे इनकार नही है । फिर भी भगवती ने न देखा तब कहता है कि इतनी बडी प्रतिज्ञा केवल इस बात पर है कि तुम मेरी ओर एकबार देख लो । भीतरी भाव यह है कि मै पञ्चम लोकपाल कहलाता हूँ परन्तु वस्तुत लोकपाल तो इनके देखने से होऊँगा । यथा लोकप होहिं बिलोकत तोरे ।

रावण ने बडे असमञ्जस म सीताजी को डाल दिया । ऐसी बात कही कि न

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उत्तर देने से स्वीकृति समझी जाय। अतः उत्तर देना ही पड़ा। साध्वी स्त्री को परपुरुष से बात करने मे ओट लेना ही पड़ता है। वहाँ कोई ओट था नहीं। अतः तृण को ओट मे रखकर बोली। यह भी द्योतित करती है कि जिससे मै बोल रही हूँ उसे तृण समझती हूँ। अथवा अपना अन्तर्भाव द्योतित करती है कि अवधपति परम स्नेही के सामने तेरा ऐश्वर्य तेरा प्रेम और स्वय तू तृण है।

सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कबहुँ कि नलिनी करइ बिकासा ॥
अस मन समुझु कहति जानकी। खल सुधि नहि रघुबीर बान की ॥४॥
सठ सूने हरि आनेहि मोही। अधम निलज्ज लाज नहिं तोही ॥५॥

अर्थ : रे दशमुख ! सुन, जुगनू के प्रकाश से कभी कमलनी खिल सकती है ? ऐसा ही मन मे समझ। रे खल ! तुझे रघुवीर के बाण की सुधि नही है। रे शठ ! तू मुझे सूने मे हरण कर लाया। रे अधम निलंज्ज ! तुझे लज्जा नही है।

व्याख्या : सुमुखि सम्बोधन के उत्तर मे दशमुख शब्द से सम्बोधित किया। सयानी सम्बोधन के उत्तर मे खद्योत कहा। खद्योत का प्रकाश घने अन्धकार मे होता है। यथा : निसि तम घन खद्योत विराजा। मै उस सूर्य की नलिनी हूँ जिसके सामने खद्योत का अस्तित्व ही लुप्त हो जाता है। तेरा कथन खद्योत का प्रकाश है। इससे नलिनी का विकसित होना प्रकृति के विरुद्ध है। इस उपमा से ही प्रभु की अनुपस्थिति मे रावण की चोरी करना आदि सूचित किया। कहने लगी कि रे खल ! परधन परदार लम्पट ! मेरी कही बात मन मे समझ। रामजी सूर्य और तू जुगनू है कि नहीं। लङ्का मे आकर रघुवीर के बाण की सुधि भूल गया। चोरी के समय तुझे सुधि थी। यथा : सो दससीस स्वान की नाई। इत उत चितइ चला भड़िहाई। तथा : चले गगन पथ आतुर भय रथ हाँकि न जाय।

मीठी बातें सठ करै करिके महा बिगार। अतः शठ सम्बोधन दिया। दो भाइयो के रहते तेरा साहस न पड़ा। राजा होकर परस्त्रीहरण की इच्छा ही लज्जा की बात है और सो भी सूने मे हरण करना अधम निर्लज्जता है। इन विचारी स्त्रियो के सामने भले ही तू सूर्य से स्पर्धा कर ले पर मैं जानती हूँ कि तू खद्योत है। कितना भी कोई निर्लज्ज हो पर उसमे भी लज्जा का लेश रहता है। पर तुझमे लज्जा का लेश भी नही है। इसी से कहा : लाज नहि तोही।

दो. आपुहि सुनि खद्योत सम, रामहि भानु समान।
परुष वचन सुनि काढि असि, बोला अति खिसिआन ॥९॥

अर्थ : अपने को जुगनू के समान और रामजी को सूर्य के समान सुनकर और कठोर वचन सुनकर तलवार निकाला और झल्लाकर बोला।

व्याख्या : जिसका किन्नर गन्धर्व गुणगान किया करते हैं। दिक्पाल भृकुटी देखा करते हैं उसे सिवा जगदम्बा के खद्योत कौन कहे। इतना ही नही रामजी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



को सूर्य भी कहा। रावण दूसरे की बड़ाई सुन नहीं सकता। वह भी सुनना पड़ा और परुष वचन भी सुना। यथा : अधम निलज्ज लाज नहिं तोही। उत्तर कुछ है नहीं। तब झल्लाया। झल्लाने पर रावण तलवार खींचता है। यथा : तब सकोप निसिचर खिसियाना। काढ़ेसि परम कराल कृपाना. यहाँ लाचार होकर वह भय का प्रयोग कर रहा है।

सीता तैं मम कृत अपमाना। कटिहउँ तव सिर कठिन कृपाना॥
नाहित सपदि मानु मम बानी। सुमुखि होत नत जीवन हानी॥१॥

अर्थ सीते! तैंने मेरा अपमान किया। मै तेरे सिर को इस कठिन तलवार से काट डालूँगा। नही तो जल्दी मेरी बात मान ले। हे समुखि! नही तो जान से हाथ धोना पड़ेगा।

व्याख्या मेरा अपमान किसी ने न किया। किसकी सामर्थ्य जो मेरा अपमान करे? मेरा तुझ पर इतना प्रेम और तूने अपमान किया। इसका दण्ड प्राणदण्ड है। अपनी कठोरता का आरोप कृपाण पर करता है। क्रुद्ध है इसलिए सीते सम्बोधन किया। स्वयवर के समय से ही नाम जानता है। अत. कहता है कि एक विकल्प और है। उसी कारण से अभी तक मैंने तेरा सिर नहीं काटा और वह यह है कि यदि तू तुरन्त मेरी बात मान ले तो यह अपमान प्रणयकोप मे परिगणित हो जायगा। प्रणयकोप अपमान नही है। इसीलिए वधदण्ड नही दिया जायगा। तू सयानी नही है। केवल सुमुखी है। सयानी होती तो इतने बड़े ऐश्वर्य को लात न मारती। अब से अच्छा है मेरी बात मान नही तो जीवन हानि हुआ ही चाहती है।

स्याम सरोज दाम सम सुदर। प्रभु भुज करि कर सम दसकधर॥
सो भुज कठ कि तव असिघोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा॥२॥

अर्थ हे दशकण्ठ! प्रभु की भुजा जो श्याम कमल की माला के समान सुन्दर और हाथी के शुण्ड के समान सुन्दर है। या तो वह भुजा ही मेरे कण्ठ मे पड़ेगी या तेरी भयानक तलवार! रे शठ! सुन। यह मेरा प्रमाण प्रण है।

व्याख्या प्रभु की भुजा श्यामल कमल की माला की भाँति सुन्दर धारण करने योग्य है। कमल की माला कहने से सुगन्ध कोमलता तथा सुखद होना कहा। करि कर सम: कहकर उसमे उतार चढाव तथा बल का होना कहा। दशकन्धर · सम्बोधन से उसका . भुजा बिटप सिर सृग समाना। रोमावली लता तरु नाना। भयङ्कर होना कहा। भाव यह कि तेरी भुजाएँ तरु समान होने से भयङ्कर हैं और प्रभु की भुजा करि कर सम होने से तरुभञ्जक हैं।

या तो वह भुजा गले मे पड़ेगी या तेरी तलवार। भाव यह कि या तो प्रभु से मिलन होगा या तेरे हाथ वध होगा। तैंने जो प्रण किया था कि : मदोदरी आदि सब रानी। तव अनुचरी करों पन मोरा। सो अप्रमाण है और मेरा प्रण

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रमाण है। मेरा प्रण है। सो भुजकंठ कि तव असि घोरा। रावण ने सुमुखि कहकर सम्बोधन किया। भगवती सठ कहकर सम्बोधन करती हैं।

चंद्रहास हरु मम परितापं। रघुपति बिरह अनल संजातं॥
सीतल निसित बहसि बरधारा। कह सीता हरु मम दुख भारा॥३॥

अर्थ : हे चन्द्रहास! रघुपति विरहरूपी अग्नि से उत्पन्न मेरी जलन को तू हरण कर। तू शीतल तीव्र और श्रेष्ठ धार को वहन करता है। तू मेरे दुःख के बोझ को हरण कर ले।

व्याख्या : रावण ने अपना दो निश्चय कहा। दो मे एक मानना होगा। भगवती ने भी अपना दो निश्चय कहा। उनमे से भी एक ही होगा। रावण का अति भयदायक निश्चय जो जीवनहानिवाला है। उसी को भगवती अत्यन्त सुखद मान रही हैं। क्योंकि उससे सद्य: विरह की शान्ति होगी। प्रभु के मिलन का तो अभी कोई निश्चय नही है। रावण अपने कृपाण मे कठिनता का आरोप करके बोला था। अत. उसी को सम्बोधन करके कहती है। उन्होने लङ्का मे सुना है कि चन्द्रहास नाम की तलवार रावण ने शिवजी से पाया है। उसकी चोट से कोई बचता नही। अत: उसी से कहती हैं कि मेरा सन्ताप मरने से ही मिट जायगा। देह जल रही है। इससे कहती है कि तू चन्द्रहास है। चन्द्र ताप हरता है। तू मेरे ताप को हरण कर।

धारा नदी और तलवार दोनो मे कही जाती है। सो कहती हैं कि तेरी धारा शीतल है। अत: स्पर्श सुख का अनुभव होगा। तीखी है शीघ्र ही दुःख काटेगी। भारी दुःख काटने मे यही समर्थ है। शिरश्छेदन नही है। दु:खच्छेदन है। सीधे ललकारती है कि मार। रामजी के विरह के सामने मृत्यु क्या है? मागु माथ अबही देउँ तोही। राम बिरह जनि मारेसि मोही।

सुनत बचन पुनि मारन धावा। मयतनया कहि नीति बुझावा॥
कहेसि सकल निसिचरिन्ह बोलाई। सीतहि बहुबिधि त्रासहु जाई॥४॥
मास दिवस महुँ कहा न माना। तौ मैं मारबि काढ़ि कृपाना॥५॥

अर्थ : वचन सुनते ही वह मारने दौड़ा। तब मय की पुत्री : मन्दोदरी ने नीति कहकर उसे समझाया। रावण ने सब राक्षसियो को बुलाकर कहा कि जाकर सीता को बहुत प्रकार से भय दिखलाओ। यदि महीने भर में उसने कहा न माना तो मैं उसे तलवार निकालकर मार डालूँगा।

व्याख्या : साम, दान, भेद और भय सब उपाय व्यर्थ गये। तब मार डालने का उपक्रम करता है। क्योंकि इतनी दूर पर नहीं था कि दौड़ना पड़े। तब मन्दोदरी ने शान्त किया। बड़ी नीति की पण्डिता है। मयदानव की बेटी और मेघनाद की माता है। रावण उसकी अधिक प्रतिष्ठा करता है। रावण के रोकने मे यही समर्थ है। नीति बुझावा यथा : दुखित दोष गुन गनहिं न साधू। दुःखिनी है। प्राण

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


पर खेले हुए है। उसकी शान्ति के लिए और समय दीजिये। निसहाय अबला के अपमान से अप्रतिष्ठा नही है। किसी वीर ने आपका अपमान नही किया।

त्यागहु दीना मानुषी कृपिणा कृशा दुखारि।
हैं केतिक गन्धर्व सुर किन्नर नाग कुमारि॥
अनुरागिनी तुम पर सदा मदमाती सुकुमारि।
कामकला महँ कुसल अति तिनकहँ भजहु सुरारि॥
का न कहँ दुखिया तिया तन की ममता त्यागि।
ताहि कान नहि कीजिये जरत विरह की आगि॥
समय देहु जामे कछुक हिय की अगिन बुझाय।
तब अवसर कछु कहन को जब दुख घटत लखाय॥

बात समझ गया। वध से उपरत हुआ। रानियो के साथ उसके आने से पहरेदार राक्षसियाँ दूर हट गयी थी। सो उन सबो को बुलाकर कहा : सीता को डरावो। मारना मत। तुम लोगो को स्पर्श का अधिकार नही है। त्रास दिखाने की जो जो विधि है सो सब करो। उठा कुछ न रक्खो। सीताजी को सुनाकर कहता है। एक महीने का समय और देता हूँ। तू उस तपस्वी के आने का आसरा एक महीने और देख ले। इतने दिन मे भी न आया तो नही आयेगा। फिर भी तैने न माना तो अपने हाथ से वध करूँगा। मन्दोदरी के समझाने पर तलवार कोप मे रख ली थी। इसलिए काढ़ि कृपाना कहता है।

दो. भवन गयउ दसकधर, इहाँ पिसाचिनि वृद।
सीतहि त्रास दिखावहि, धरहि रूप बहु मद॥१०॥

अर्थ : रावण तो घर गया। यहाँ राक्षसियो का समूह बुरे बुरे रूप धारण करके सीताजी को भय दिखाने लगी।

व्याख्या दसकधर कहकर उस भीषण मूर्ति का घर जाना कहा। अथवा हनुमान्‌जी के रहते भी दसो सिर सही सलामत लेकर घर गया। क्योकि अकनि कटु बानी कुटिल की क्रोध बिध्य बढोइ। सकुच सम भयो ईस आयसु कलस भव जिय जोइ। करत कछू न बनति हरि हिय हरष साक समोइ। कहत मन तुलसीस लका करहुँ सघन घमोइ। मास खानेवाले को पिशाच कहते हैं। सो पिशाचिनी सीताजी को डराने लगीं कि हम लोग तुम्हारा मास खावेंगी और हिंसक जन्तुओ का रूप धारण करती हैं।

त्रिजटा नाम राच्छसी एका। राम चरन रति निपुन बिबेका॥
सबन्हौ बोलि सुनाएसि सपना। सीतहि सेइ करहु हित अपना॥१॥

अर्थ उनमे एक त्रिजटा नाम की राक्षसी थी। उसकी रामजी के चरणो मे प्रीति थी और विवेक म निपुण थी। उसने सबको बुलाकर अपना स्वप्न सुनाया। कहा कि सीताजी की सेवा करके अपना कल्याण करो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : एक शब्द प्रायेण बेजोड़ : प्रधान : के अर्थ मे आया है। यथा : निसिचरि एक सिंधु मह रहई। भवन एक पुनि दीख सुहावा। माल्यवंत अति जरठ निसाचर। मंदिर एक रुचिर तहँ बैठ नारि तप पुंज। इत्यादि। भाव यह कि त्रिजटा नाम की एक राक्षसी थी। शरीर तो उसका तामस था, पर गुण उसमे दिव्य थे। रामचरण रति से उपासना कहा और निपुण विवेका से ज्ञान कहा। ऐसी कोई राक्षसी लङ्का मे न थी। सीताजी का दु.ख वह न देख सकी। अन्याय उससे देखा नही जाता था। रावण की आज्ञा सबको हुई। पर वह डराने न गयी। जब औरो को देखा कि सीताजी को बहुत कष्ट दे रही है तो सबको अपना सपना सुनाने के लिए बुलाया। सब त्रिजटा के महत्त्व से परिचित थी। उसने समझाया कि तुम लोग रावण की आज्ञा तो पालन करती हो पर अपना अहित कर रही हो। तुम्हारा हित सीताजी की सेवा मे है। यद्यपि जगदम्बा की सेवा से इस लोक और परलोक दोनों प्रकार का हित था, पर पारलौकिक हित को राक्षसियां न समझेंगी। अत: उन्हे ऐहिक हित बतलाया। यह त्रिजटा की भक्ति की निपुणता है। उसने उन्हे अपना सपना सुनाया।

सपनें बानर लंका जारी। जातुधान सेना सब मारी ॥
खर आरूढ़ नगन दससीसा। मुंडित सिर खंडित भुज बीसा ॥२॥

अर्थ : मैंने सपने मे देखा कि बन्दर ने लङ्का जला दी। राक्षसो की सेना मार डाली। रावण नङ्गा है और गधे पर सवार है। उसके सिर मुड़े हुए है और बीसो भुजाएँ कटी हुई हैं।

व्याख्या : शुद्धान्त:करण लोगो का सपना सच्चा होता है। भगवती कैकेयी ने भी कहा था : दिन प्रति देखा रात कुसपने। भरतजी भी : देखहिं रात भयानक सपना। सीताजी : जागें सीय सपन अस देखा। सहित समाज भरत जनु आये। नाथ वियोग ताप तन ताये। ये सब सपने सच्चे उतरे। इसी भाँति इसके सपने भी सच्चे होते हैं। अत: उन्हे अपना सपना सुनाती है। सपने मे बन्दर ने लङ्का जलाया। सन्देह उठता है कि तब राक्षसों की इतनी बड़ी सेना क्या करती थी ? इस पर कहती है कि सब सेना मारी गयी। फिर भी रावण की भुजाओ से रक्षित लङ्कादुर्ग के जलाने की तो कोई विधि ही नही है। हिन्दी मे कहावत है। खाने खराब गदहे असवार। सो नगन से खाने खराब और खर आरूढ़ से गदहे असवार कहा। मुण्डित सिर से राजचिह्न रहित कहा। खण्डित भुज बीसा से सर्वथा बन्धुहीन तथा असहाय कहा।

एहि बिधि सो दच्छिन दिसि जाई। लंका मनहु बिभीषन पाई ॥
नगर फिरी रघुबीर दोहाई। तब प्रभु सीता बोलि पठाई ॥३॥

अर्थ : इस विधि से वह दक्षिण दिशा की ओर जा रहा है और मानो लङ्का

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


विभीषण को मिली है। नगर मे रघुवीर की दोहाई फिरी है। तब प्रभु ने सीताजी को बुला भेजा है।

व्याख्या एहि विधि अर्थात् सर्वस्वनाश की विधि से रावण दक्षिण दिशा जिधर यमपुर है चला जा रहा है। ये सब लक्षण स्वप्नाध्यायी मे मृत्युसूचक बतलाये गये हैं। तब शङ्का यह उठती है कि फिर लङ्का का राज्य किसे मिला? इस पर कहती है · मनहु विभीषन पाई। स्वप्न होने से मनहु का सब घटनाओ के साथ सयोग है। राज्य विभीषण को मिला पर दोहाई रघुवीर की फिरी जिसके पराक्रम से लङ्का विभीषण को मिली। अर्थात् विभीषण प्रभु के मातहत राजा हुए और तब सीताजी बुलाई गयी। वह कहती है कि मैने तो इतना ही सपना देखा। बाद को नीद खुल गयी। सीता ने जाकर जब सब अपना दु ख सुनाया तब तुम लोगो की क्या दशा हुई। यह मैंने नही देखा।

यह सपना मै कहौ पुकारी। होइहि सत्य गएँ दिन चारी ॥
तासु बचन सुनि ते सब डरी। जनकसुता के चरनन्हि परी ॥४॥

अर्थ मै पुकारकर कहती हूँ कि यह सपना चार दिनो बाद सत्य होगा। उसके वचन सुनकर सब डर गयी और जानकीजी के चरणो मे जाकर गिरी।

व्याख्या . मै पुकारकर कहती हूँ। यह सपना चार दिनो मे सत्य होकर रहेगा। जाय सूपनखा रावण से कह दे: सत्य कहने मे डर की कोई बात नही है। सूपनखा भी पहरे पर राक्षसियो मे थी। चार दिन का अर्थ यहाँ कुछ दिन है। यथा . कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहैं रघुवीरा। निसिचर मारि तोहि लै जैहैं। कछुक दिन के लिए चार दिन बोलने की रीति है। यथा · भयउ बहोरि रहब दिन चारी। रथ चढाइ दिखराइब बन फिरेहु गये दिन चारि। आजकल भी कहते हैं · चार दिना की चाँदनी और फिर अँधेरा पाख। यह सपना सत्य होगा। यहाँ तक तो निश्चय हो गया। पर तुम्हारा दण्ड अभी तक निश्चित नही हुआ है। अभी तुम्हे अवसर है कि डराना बन्द करो और जो किया है उसके लिए क्षमा याचना करो। यह त्रिजटा का विवेक है।

त्रिजटा के वचन पर सबका विश्वास है। सब जानती हैं कि पहले भी जो जो सपना इसने देखा कोई झूठा न हुआ। अत· यह सपना भी सत्य होगा। तब हम लोगो की क्या दशा होगी? यह सोचकर सब डर गयी। जाकर भगवती जनकनन्दनी के पैरो पर पडी। भाव यह कि अपराध क्षमा करा लिया।

दो. जहँ तहँ गई सकल तब, सीता कर मन सोच।
मास दिवस बीते मोहि, मारिहि निसिचर पोच ॥११॥

अर्थ : तब वे सब जहाँ तहाँ चली गयी। सीताजी मन मे सोचने लगी कि महीना दिन बीतने पर नीच राक्षस मुझे मारेगा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : हम लोगों ने बहुत दुःख दिया। अब कहाँ से हम लोगों के हट जाने से ही इन्हें शान्ति मिल सकती है। इन्हे विश्वास हो जाय कि इन सबों ने पहरे की कड़ाई कम कर दी। इसलिए सब वहाँ से हट बढ़ गयी। सीताजी को इतनी देर तक सोच नही था। चित्त उन राक्षसियों के भयानक बातों की ओर था। जब चित्त स्थिर हुआ तब यह सोच उत्पन्न हुआ कि एक महीने बाद नीच राक्षस के हाथ मेरी मृत्यु होगी। मरने का सोच नही। अधम के हाथों से मृत्यु होने का सोच है। यदि मृत्यु भी हो तो भले के हाथ हो। यथा : रघुवीर सर तीरथ सरीरन्हि त्यागि गति पैहैं सही। पापी के हाथ मरना कालिनेमि ने भी नही चाहा। यथा : रामदूत कर मरौं बस यह खल रत मलभार। मारीच ने भी ऐसा ही सोचा। यथा : उभय भाँति देखा निज मरना। तब ताकेसि रघुनायक सरना।

त्रिजटा सन बोली कर जोरी। मातु बिपति संगिनि तैं मोरी॥
तजौं देह करु बेगि उपाई। दुसह बिरहु अब नहि सहि जाई॥१॥

अर्थ : हाथ जोड़कर त्रिजटा से बोली कि हे माता! तू मेरी विपत्ति की सङ्गिनी है। जल्दी उपाय कर जिससे मै शरीर छोड़ सकूँ। असह्य विरह अब नही सहा जाता।

व्याख्या : सब चली गयी। केवल त्रिजटा रह गयी। जगदम्बा दुष्कर कार्य के लिए उससे कह रही हैं। अत: हाथ जोड़कर बोलती हैं। यथा : माँगउँ दूसर बर कर जोरी। अति आर्त हैं। इसलिए हाथ जोड़ रही हैं। विपत्ति की सङ्गिनी माँ होती है। मेरे लिए तैं रावण के क्रोध को भी अपने ऊपर लेने में न डरी। इसलिये तू माँ है। मै देह छोड़ने के उपाय करने में भी परतन्त्र हूँ। अतः तू उपाय कर दे। मैं बेटी हूँ। तू दया करके मेरा संकट काट दे। बेगि कहने का भाव यह कि इस समय सब हट गयी हैं। न जाने कब आजायँ। अतः जल्दी कर। दुःसह विरह ज्वाला को बहुत दिनों तक सहा। अब सहा नही जाता। यथा : हा रघुनन्दन प्रान पिरीते। तुम बिनु जिअत बहुत दिन बीते।

आनि काठ रचु चिता बनाई। मातु अनल पुनि देहि लगाई॥
सत्य करहि मम प्रीति सयानी। सुनै को श्रवन सूल सम बानी॥२॥

अर्थ : काठ लाकर सजाकर चिता लगा दे। हे माता! फिर उसमें आग लगा दे। हे सयानी, तू मेरी प्रीति को सत्य कर दे। ऐसी शूल के समान वाणी कानो से कौन सुने।

व्याख्या : बाहर से लकड़ी लाना है। अशोकवाटिका में सूखी लकड़ी कहाँ से मिलेगी? यथा : समय पुराने पात परत डरत वात पालत रति मार को बिहार सो। क० रा०। सुन्न को वस्तु सँवारकर बनायी जाती है अथवा चिता को रचकर बनाने का विधान है। यथा : सरयु तीर रचि चिता बनाई। अग्नि बन्धु देते हैं। यहाँ कोई नही है। तू माँ है। तू अग्नि दे। विरहाग्नि के सामने यह अग्नि शीतल

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है। तू सयानी है। इस बात को समझ सकती है। मेरी प्रीति झूठी हुई जा रही है। मैं अबतक मरी नहीं। मैंने कहा था : को तनु प्रान कि केवल प्राना। विधि करतब कछु जाइ न जाना। प्रभु को भी विश्वास हो गया : हठि राखे नहिं राखिहिं प्राना। सच्ची प्रीति की परीक्षा मरण से ही है। यथा : बर्दौं अवध भुआल सत्य प्रेम जेहि राम पद। बिछुरत दीनदयाल प्रियतनु तृन इव परिहरेउ। तिसपर रावण शूल की सी वाणी बोलता है। इसने मुझे समझा क्या है ? मैं प्राण दूँगी।

सुनत बचन पद गहि समुझाएसि। प्रभु प्रताप बल सुजस सुनाएसि ॥
निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी ॥३॥

अर्थ : सीताजी के वचन सुनकर चरण पकड़कर उन्हे समझाया। प्रभु का प्रताप बल और सुयश सुनाया। हे सुकुमारी ! सुनो रात के समय आग नही मिलती। ऐसा कहकर वह अपने घर चली गयी।

व्याख्या : सीताजी ने हाथ जोडकर कहा। त्रिजटा ने पैर पकडकर समझाया कि धैर्य धारण करो। धैर्य के लिए ही प्रभु का प्रताप सुनाया कि विचारशील लोग त्रस्त हैं। लङ्का मे असगुन हो रहा है। यथा : जब ते तुम सीता हरि आनी। असगुन होइ न जाइ बखानी। बल सुनाया कि बहन की नाक काटी गयी। खरदूषण ऐसे भाई मारे गये। फिर भी रावण का साहस नही है कि उनके सामने जा सके। सुयश सुनाया कि तीनो लोक मे जिसका यश व्याप्त है। रावण जिसके घर चोरी करने गया। उसकी अपकीर्ति तुम्हारे प्राण देने से होगी।

सिर पै तुम्हारे रघुनाथ से नाथ अनाथ सी ह्वै किमि बैन उचारो।
दशकंठ को कुंठित साहस भो तब चोरन की करनी निरधारो।
जन के पन की जेहि लाज सदा विजयानद सो तुम्हरो रखवारो।
आय गये प्रभु देर नहीं यह जानि कै जानकी धीरज धारो।

निसि न अनल का भाव यह है कि रात को आग बनाये रखने की आज्ञा नही है। नियमित समय पर घण्टा बजता है आग बुझाने के लिए। फिर कोई आग नही रख सकता। हाथ जोडकर की हुई प्रार्थना को अस्वीकार नही करती। पर उसका पालन करने में अपने को असमर्थ बतलाती है। सुकुमारी कहने का भाव यह कि स्वभाव भी सुकुमार है। बात नही सह सकती। यथा : मृदु मूरति सुकुमार सुभाऊ। त्रिजटा ने सोचा कि जबतक मैं यहाँ रहूँगी यह ऐसी ही बातें किया करेंगी। अतः वह घर चली गयी। अथवा स्वप्न पर उसे पूरा विश्वास है। हनुमान्‌जी का आना जानती है। बातचीत के लिए अवसर देने के लिए चली गयी।

कह सीता बिधि भा प्रतिकूला। मिलिहि न पावक मिटिहि न सूला ॥
देखिअत प्रगट गगन अँगारा। अवनि न आवत एकौ तारा ॥४॥

अर्थ : सीताजी कहने लगी कि विधाता ही प्रतिकूल हो गया। न आग

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मिलेगी न शूल मिटेगा। आकाश मे अगारे प्रकट दिखायी पडते हैं। पर पृथ्वी पर एक भी तारा नही आता।

व्याख्या : भगवती कहती हैं कि मुझे ब्रह्मा ही बायें हो गये। हा! मुझे आज आग माँगे नही मिलती है। और बिना आग मिले शूल मिटने का कोई अन्य उपाय भी नही है। यह खल ऐसी शूल सी वाणी बोल गया है जो विरह से भी अधिक असह्य है। त्रिजटा कह गयी कि रात को आग नही मिलती। यहाँ तो आकाश मे अगारे ही अगारे हैं। इनको ठहरने के लिए आधार भी नही है। इन सबो को नीचे गिरना चाहिए। पर एक भी पृथ्वी पर नही गिर रहा है। इस प्रकार का विचार ही प्रेमोन्माद है। विरहावस्था मे तारे अङ्गार प्रतीत होते हैं।

पावकमय ससि स्रवत न आगी। मानहु मोहि जानि हतभागी ॥
सुनहि[1] बिनय मम बिटप असोका। सत्य नाम करु हरु मम सोका ॥५॥

अर्थ : चन्द्रमा अग्निमय है। किन्तु वह भी मानो मुझे हतभागिनी जानकर आग नही गिराता। हे अशोकवृक्ष! मेरी विनती सुनो। अपना नाम सत्य करो। और मेरे शोक का हरण करो।

व्याख्या : भला अङ्गारे पृथ्वी पर नही आते तो नहीं सही पर यह चन्द्रमा तो अग्नि का पुञ्ज है। अग्निपुञ्ज से तो चिनगारियाँ निकला करती हैं। परन्तु इससे भी चिनगारी निकलकर पृथ्वी पर नही आ रही है। कारण की उपस्थिति मे भी कार्य क्यो नहीं हो रहा है। प्रकृति के नियम मे अन्तर पडने का कारण मेरा अभाग है। चन्द्रमा ने भी मुझे भवभजन पद विमुख अभागी जान लिया।

तब से अशोकवृक्ष के लाल-लाल कोपलो पर दृष्टि पडी। अब उससे कह रही हैं। विटप अशोक! मैं तो तुम्हारी छाया मे हूँ। तुम मेरी विनय सुनो। मेरी विनय कोई नही सुनता। तुम सन्त के जोडीदार हो। सत विटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबनि की करनी। तुम मेरी विनय सुनो। अपने अशोक नाम की लाज रक्खो। तुम अशोक हो और मैं तुम्हारी छाया मे बैठी हुई सशोक हूँ। तुम्हारा नाम झूठा हुआ जा रहा है।

नूतन किसलय अनल समाना। देहि अगिनि तन करहि निदाना ॥
देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता ॥६॥

अर्थ : तेरे नये पत्ते अग्नि के समान है। तू अग्नि दे और शरीर का नाश कर। सीताजी को विरह से परम व्याकुल देखकर वह क्षण हनुमान्‌जी को कल्प के समान बीता।

व्याख्या : यदि कहो कि मेरे पास अग्नि नही है कहाँ से दें। इस पर कहती हैं कि ये नये कोपल तो अग्नि के समान दाहक हैं। इन्ही के द्वारा अग्नि देकर मेरे

---

१ यहाँ परिकराङ्कुर ( अलङ्कार ) है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



शरीर को समाप्त कर। निदानं त्वादिकारणम् आदि कारण को निदान कहते हैं। कार्य के कारण भाव की प्राप्ति से उसका नाश होता है। शरीर का कारण भाव की प्राप्ति शरीर का नाश है।

परम व्याकुल हैं। कहीं शरीर न छोड़ दें। यही समय सँभालने का है। बड़ा नाजुक समय है। तनिक सा दिल पर ठेस लगने से ही शरीर छूटेगा। हनुमान्‌जी विचारते हैं कि इस समय मैं क्या करूँ ? मेरे देखते इनका शरीर छूटा चाहता है। इस असामञ्जस्य मे वह क्षण हनुमान्‌जी को कल्प के समान अपार हो गया। कल्प १००० चतुर्युगी का होता है। इसी समय का वर्णन करते हनुमान्‌जी ने रामजी से कहा : निमिष निमिष करुनानिधि जाहिं कल्प सम बीति। अनुभव करनेवाले को निमिष कल्प सा और देखनेवाले को क्षण कल्प सा बीता।

## ५९. सीता धैर्यदान प्रसङ्ग

दो. कपि[1] करि हृदय बिचार, दीन्हि मुद्रिका डारि तब।
जनु असोक अंगार, दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ ॥१२॥

अर्थ : तब हनुमान्‌जी ने हृदय मे विचार करके अँगूठी डाल दी। मानो अशोक ने अङ्गारा गिराया सीता जी ने हर्षित होकर उसे हाथ मे ले लिया।

व्याख्या : करै विचार करौं का भाई। तब से विचार चल रहा है। इस सकट मे उपाय सूझ गया। मुँदरी गिरा दी। तर पल्लव मे छिपे थे। वहीं से मणि मुँदरी अङ्गार सी गिरी। सीताजी को भान हुआ कि लो अङ्गार तो गिरा। अशोक ने विनती सुन ली। प्रसन्न हो गयी। आदर से मुँदरी उठा ली। उसमें लाल मणि जड़ी थी। उसी के चमक से अङ्गारे का भ्रम हुआ। यह बुद्धिमान् वरिष्ठ की बुद्धिमत्ता है। सीताजी को उस अवस्था से निकाल लेना इन्हीं का काम था। इस भाँति प्राण बचा लिया।

तब देखी मुद्रिका मनोहर। राम नाम अंकित अति सुदर ॥
चकित चितव मुदरी पहिचानी। हरष बिषाद हृदय अकुलानी ॥१॥

अर्थ : तब अत्यन्त सुन्दर राम नाम से अङ्कित मनोहर अँगूठी देखी। अँगूठी को पहिचानकर आश्चर्य से चकित होकर देखने लगी और हर्ष तथा विषाद से हृदय मे आकुल हो उठी।

व्याख्या : जब हर्षित होकर उठी और हाथ से उठा लिया तो स्पर्श मे शीतल जान पड़ी। तब देखा कि यह तो अङ्गार नहीं है। मुँदरी अगूठी है। बड़ी सुन्दर मनोहर है। उस पर प्रभु का नाम खुदा हुआ है। हनुमन्नाटक मे सुवर्णस्य सुवर्णस्य सुवर्णस्याङ्गुलीयकम्। सोने की अँगूठी राम नाम से युक्त सोलह मासे की है।

---

१. यहाँ भ्रमालङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सोलह मासे की कहने से धार्मिक कृत्य के उपयुक्त कहा। अन्यानि च पवित्राणि कुशदूर्वात्मकानि च। हेमात्मकपवित्रस्य श्लोका नार्हन्ति वै कलाम्। हेमाद्रि का मत है कि कुश और दूर्वा की पविश्री सुवर्ण की पवित्री के एक कला के बराबर नही है। धार्मिक कृत्योपयोगी होने से सरकार ने वन चलने के समय इनका त्याग नही किया।

पहिचानी हुई मुँदरी है। इसने व्याह के समय ही मन चुराया था। यथा : कर मुद्रिका चोर चित लेई। चकित होकर देखती है कि यह यहाँ कैसे आगयी? यह तो प्रभु के हाथ मे थी। सो मुँदरी मिलने का हर्ष और यहाँ कैसे आयी। इस बात का विस्मय। द्विविध मनोगति होने से व्याकुलता हुई।

जीति को सकइ अजै रघुराई। माया ते असि रचि नहि जाई॥
सीता मन विचार कर नाना। मधुर बचन बोलेउ हनुमाना॥२॥

अर्थ : श्रीरघुनाथजी अजेय हैं। उन्हे कौन जीत सकता है? और माया से ऐसी अँगूठी बनायी नही जा सकती। सीताजी मन मे अनेक विचार करने लगी। हनुमान्जी मधुर वचन बोले।

व्याख्या : यह मुँदरी अदेय है। पुरस्कार रूप से नही दी जा सकती। विना उन्हे जीते कोई इसे पा नही सकता। इससे मुँदरी की बडी भारी विशेषता दिखलायी। प्रभु किसी से जीते जा नही सकते। यथा : सकल सुरासुर जुरैं जुझारा। रामहि समर न जीतनिहारा। दूसरा पक्ष यह है कि किसी ने माया से ऐसी बना ली हो। सो यह भी सम्भव नही। माया से कोई ऐसा बना नही सकता : माया सब सिय माया माहूँ। अतः ये ही निर्णय कर सकती हैं कि : माया ते असि रचि नहि जाई। सरकार की अँगूठी बोलती है। दूसरी नही बोल सकती। दो ही रास्ता अँगूठी के यहाँ आने का है। या तो कोई प्रभु को जीतकर ले आवे या माया से दूसरी रच ली गयी हो। पर यह दोनो बातें असम्भव है।

श्री सीताजी के मन मे नाना प्रकार के विचार उठे। अभी रावण भग्नमनोरथ होकर गया है और उसके बाद ही मुँदरी गिरी है। आज इस समय उसके आने का विशेष कारण होना चाहिए। आग माँगने के समय अँगूठी का गिरानेवाला अदृश्य क्यो है? इत्यादि। हनुमान्जी ने देख लिया कि उन्मादावस्था मिट गयी। अब ये विचार मे स्थित हो गयी। अतः यही बोलने का समय है। फिर चौंक न पड़ें इसलिए मधुर वचन बोले। जो सीताजी को ही सुनाई पडे।

रामचंद्र गुन बरनइ लागा। सुनतहि सीता कै दुख भागा॥
लागी सुनै श्रवन मन लाई। आदिहु तें सब कथा सुनाई॥३॥

अर्थ : रामचन्द्रजी के गुणो का वर्णन करने लगे। सुनते ही सीताजी का दुःख भाग गया। कान और मन लगाकर सुनने लगी। आदि से लेकर सब कथा सुनायी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या : स्वरत मधुर कहकर अब अर्थत भी मधुर कहते हैं। रामचन्द्र ऐसे चन्द्र हैं कि उनके गुण वर्णन मात्र से परिताप की शान्ति होती है। रघुपति विरहानल सञ्जात दु:ख प्रभु के गुण श्रवण से भाग गया। दु:ख के भागने का यह अचूक औषध है। यथा : मन करि विषय अनल वन जरई। होइ सुखी जौ एहि सर परई। कान और मन को बड़ा सुख हुआ। कान और मन लगाकर सुनने का भाव यह है कि अति सूक्ष्म स्वर है। हनुमान्‌जी ने देखा कि खूब मन लगाकर सुन रही हैं। तब तो भगवती के सामने रामायण पारायण ही आरम्भ कर दिया। जो लक्ष्मणजी से सुना है सो सब सुना दिया।

श्रवनामृत जेहि कथा सुहाई। कही सो प्रकट होत किन भाई॥
तब हनुमन्त निकट चलि गयऊ। फिरि बैठी मन बिसमय भयउ॥४॥

अर्थ : जिसने कानों के लिए अमृत के समान यह कथा कही हे भाई! वह प्रकट क्यों नहीं होता? तब हनुमान्‌जी पास चले गये। फिर बैठी क्योंकि उनके मन में विस्मय हुआ।

व्याख्या : श्रवणामृत कथा से श्रवणशूल मिटा। पहिले ही कहा था सुनै श्रवन सूल सम बानी। और सुख भी हुआ। अत: चिकित्सक का दर्शन चाहती हैं। भगवती ने समझ लिया कि वक्ता प्रकट होना चाहता है। पर क्रम से काम कर रहा है। पहिले मुद्रिका गिराया। तब गुन वर्णन किया। तत्पश्चात् कथा सुनाया। मुझे अपने साक्षात्कार के लिए तैयार कर रहा है। अब मैं उसे देखने के लिए कहूँ। अब प्रगट होने का कारण नहीं है। अत: कहती हैं सो प्रकट होत किन भाई।

तब हनुमान्‌जी निकट चले गये। वानररूप देखकर मुँह फेरकर बैठ गयीं। मन में विस्मय हुआ कि बन्दर मनुष्य की वाणी कैसे बोलता है। निश्चय यह रावण है। फिर मुझे दु:ख देने आया है। अथवा : एक बार बिलोकु मम ओरा। यह जो अभिलाषा प्रकट की थी। उसी की पूर्ति के लिए आया है।

रामदूत मैं मातु जानकी। सत्य सपथ करुनानिधान की॥
यह मुद्रिका मातु मैं आनी। दीन्हि राम तुम्ह कहँ सहिदानी॥५॥
नर बानरहि संग कहु कैसें। कही कथा भइ संगति जैसें॥६॥

अर्थ : हे माता जानकी! मैं रामजी का दूत हूँ। करुणानिधान की शपथ है। मैं सच कहता हूँ। हे माता! इस अँगूठी को मैं लाया हूँ। रामजी ने आपके लिए यह निशानी दी है। प्रश्न किया : नर और वानर का साथ कैसे हुआ? तब वह सब कथा कही। जिस भाँति संगति हुई।

व्याख्या : हनुमान्‌जी ने कहा : मैं रामदूत हूँ। तू मेरी माँ है। जनक राजा की बेटी है। उनके सामने दैवी आसुरी माया की कौन चलावे ईश्वरीय माया नहीं चलती। ईश्वरीय माया का न चलना यथा : ब्रह्म जो निगम नेति कहि गावा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उभय वेष धरि सोइ कि आवा। दैवी आसुरी माया का न चलना यथा : देव दनुज धरि मनुज सरीरा। विपुल वीर आये रनधीरा। हनुमान्‌जी सेवक सेव्य का नाता प्रभु से जोड़ चुके है। अब माँ बेटे का नाता भगवती से जोड़ रहे हैं। रामदूत होने की सचाई के लिए करुणानिधान की शपथ लेते हैं। अत्यन्त प्यार की शपथ ली जाती है। सो हनुमान्‌जी को करुणानिधान सा प्यारा कौन है ? अतः उन्ही की शपथ लेते हैं। करुणानिधान की कृपा से क्या नही होता ? मै बन्दर होकर विद्वान् की भाँति बोल रहा हूँ। यह मुद्रिका जो तुम्हारे हाथ मे है : इसे मैं लाया हूँ। यही मेरे रामदूत होने का प्रमाण है। तुम शीघ्र विश्वास न करोगी। इसीलिए यह चिन्हानी मुझे प्रभु ने दी है। तुम्हे देने के लिए। जीति को सकै अजय रघुराई। इस तर्क को इधर लगाओ। यदि वह न देते तो मैं कैसे पाता ? यदि कहो कि अदेय है तो किसी दूसरे को तो नही मिली। तुम्हारे लिए दिया है। सत्य सपथ करुणानिधान की। यह पद यहाँ भी लगेगा। वहाँ शब्द सङ्केत है। गिरजा भगवती ने कहा था ' करुना-निधान सुजान सील सनेहु जानत रावरो। तब से भगवती सरकार को करुणानिधान कहती हैं। वस्तु की और शब्द की दोनो सहदानियाँ : पहिचान मिल गयी। सहदानी चिह्न : पहिचान या निशानी को कहते हैं। यथा : मै तैं मेट्यौ मोहतम ऊग्यो आतम भानु। सत राज सोइ जानिये तुलसी या सहिदानु। वै० स०।

अब एक शङ्का यह रह गयी कि नर वानर का साथ कैसे हुआ ? इस पर हनुमान्‌जी ने मारुति मिलन प्रसग। पुनि सुग्रीव मिताई। बालि प्राण कर भग। आदि कथा कहि सुनाई। पहिले लक्ष्मणजी से सुनी हुई रामकथा कहा। यह प्रमाणित करने के लिए कि मै भली भाँति सरकार से परिचित हूँ। इतना परिचय राक्षसो को नही हो सकता। वानर सङ्ग की कथा छेड़ने से अविश्वास हो जायगा। इसलिए पहिले नही कहा। अब पूछने पर सब कह सुनाया।

दो. कपि के वचन सप्रेम सुनि, उपजा मन विस्वास।
जाना मन क्रम वचन यह, कृपासिंधु कर दास ॥१३॥

अर्थ : कपि का प्रेम से युक्त वचन सुनकर मन मे विश्वास उपजा। जान लिया कि यह मनसा वाचा कर्मणा कृपासिन्धु का दास है।

व्याख्या : बैर प्रेम नहि दुरै दुराये। जो विश्वास अँगूठी से नही हुआ कथा से नही हुआ सो सप्रेम वचन से हुआ। जान लिया कि यह मनसा वाचा कर्मणा रामजी का दास है। सप्रेम वचन से मनसा दास जाना। अँगूठी देने से कर्मणा और कथा सुनकर वचन से दास जाना। तिन्हते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा। अतः समझ लिया कि यह कृपासिन्धु का परम प्रेमपात्र है।

हरिजन जानि प्रीति अति बाढी। सजल नयन पुलकावलि ठाढ़ी ॥
बूड़त बिरह जलधि हनुमाना। भयहु तात मो कहुँ जलजाना ॥१॥

अर्थ : भगवान् का भक्त जानकर अत्यन्त प्रीति बढ़ी। नेत्रो मे जल भर आया

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


और शरीर पुलकित हो उठा : बोली : हे तात ! मैं तो विरह के समुद्र में डूब रही थी। तुम मेरे लिए जहाज हो गये।

*व्याख्या :* कृपासिन्धु के दास को हरिजन कहते हैं। हरिजन बहुत बड़ा दर्जा है। प्रीति तो पहिले ही कथाश्रवण से हुई थी। अब हरिजन जानने से अत्यन्त प्रीति बढ़ी। सात्त्विक भाव हुआ। सब शङ्काएँ जाती रही। तब कहती हैं कि मैं तो विरह समुद्र में डूबती थी। बेटा ! तुम जहाज की भाँति मेरे लिए आगये। डूबनेवाले को जहाज के दिखाई पड़ने से ऐसा साहस आ जाता है। ऐसी आशा बँध जाती है कि वह अपने बचाने के लिए नयी स्फूर्ति के साथ हाथ पैर मारने लगता है और जहाज की प्राप्ति से तो उसके प्राण की रक्षा ही हो जाती है।

अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी। अनुज सहित सुख भवन खरारी ॥
कोमलचित कृपालु रघुराई। कपि केहि हेतु धरी निठुराई ॥२॥

अर्थ : मैं बलिहारी जाती हूँ। अब कहो कि छोटे भाई के सहित सुखधाम खरारि कुशल तो है। रघुनाथ तो कोमल हृदय और कृपालु हैं। हे हनुमान् ! उन्होंने किस कारण से निष्ठुरता धारण कर ली है ?

व्याख्या : हनुमान्‌जी ने माता का नाता जोड़ा। इसलिए माँ की भाँति भगवती बोल रही हैं कि जब से बिछोह हुआ तब से कुछ कुशल समाचार न मिला : बड़े असमय मे बिछोह हुआ था। जब मारीच ने कपट से मरती समय लक्ष्मण का नाम लेकर पुकारा और जगदम्बा ने श्रीरामजी पर सङ्कट समझकर लक्ष्मणजी को भेजा। उधर से कोई समाचार न आया। इधर सीताहरण हो गया। अब सीताजी यह भी नही जानती कि दोनो भाइयो पर क्या बीती ? अतः भाई सहित रामजी की कुशल पूछती हैं। यद्यपि विश्वास है कि सुखभवन का सदा कुशल है और खरारि का राक्षसी माया क्या कर सकती है ? तथापि पापशङ्की चित्त कुशल जानना चाहता है। दूसरा प्रश्न यह है कि कोमल चित्त के लिए निष्ठुरता स्वभाव विरुद्ध है। फिर भी यदि कादर हो तो कृपा करने मे असमर्थ होता है। प्रभु तो कृपालु है। दया वीर हैं। तिसपर रघुराई हैं और रघुकुल की प्रतिष्ठा संशय मे है। अतः निष्ठुरता धारण करने का कोई कारण नही है। इसलिए पूछती हैं।

सहज बानि सेवक सुखदायक। कबहुँक सुरति करत रघुनायक ॥
कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहि निरखि स्याम मृदु गाता ॥३॥

अर्थ : सेवक को सुख देने की उनकी स्वाभाविक बानि : प्रकृति है। वे रघुनाथजी क्या कभी स्मरण करते हैं ? क्या कभी उनके कोमल श्यामल शरीर देखकर मेरे तप्तनेत्र शीतल होंगे ?

व्याख्या : उनका तो सेवक को सुख देने का सहज स्वभाव है। यथा : पुनि पुनि सत्य कहौं तोहि पाही। मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाही। सो क्या इस

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विका का कभी स्मरण करते हैं। प्रेमास्पद कभी स्मरण करता है : इतना ही
नने से प्रेमी कृतकृत्य हो जाता है। इसलिए यह तीसरा प्रश्न है। अब चौथा
श्न करती हैं। मेरी आँखें उस श्याम मृदु गात के दर्शन की प्यासी हो रही हैं।
या ऐसा दिन भी कभी होगा जो ये आँखें उनके दर्शन से शीतल हों ? उस श्याम
दु गात के दर्शन न होने से ही तारे अङ्गारमय, चन्द्रमा पावकमय और नूतन
किशलय कृशानु से प्रतीत होते थे।

चनु न आव नयन भरि वारी। अहह नाथ हौं निपट बिसारी ॥
खि परम बिरहाकुल सीता। बोला कपि मृदु बचन बिनीता ॥४॥

अर्थ : बोली नहीं निकलती। नेत्रों में जल भर आया। हा नाथ ! मैं बिल्कुल
ला दी गयी। सीताजी को परम विरहाकुल देखकर हनुमान्‌जी कोमल और
वनीत वचन बोले।

व्याख्या : फिर वही दशा हो गयी जो मुद्रिका पाने के पहिले हुई थी। न
मुख से बात निकलती न आँखों में आँसू भर जाने से दिखाई पड़ता है। भूल गयी
र मैं हनुमान्‌जी से बात कर रही हूँ। सरकार को सम्बोधन करके कहने लगी।
हा नाथ ! मैं सर्वात्मना भुलायी गयी। यह असह्य है। तन मन वचन से दीन हो
ही हैं। वचन से दीनता यथा : बचन न आव। तन से दीनता यथा : नयन भरि
वारी और मन से दीनता यथा : अहह नाथ हौं निपट बिसारी।

अत फिर वही पद ज्यों का त्यों रख दिया : देखि परम बिरहाकुल सीता।
इस बार हनुमान्‌जी को क्षण कल्प के समान नहीं बीता क्योंकि उपाय करने में
समर्थ हैं। हनुमान्‌जी समयोचित वचन बोलते हैं। सुखी करने के श्रवणामृत वचन
बोले थे। यथा : श्रवणामृत जेहि कथा सुहाई विश्वास उपजाने के लिए सप्रेम
बोले। यथा : कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास। समझाने के लिए अब
मृदु विनीत वचन बोल रहे हैं।

मातु कुसल प्रभु अनुज समेता। तव दुख दुखी सुकृपा निकेता ॥
जनि जननी मानहु जिय ऊना। तुम्हते प्रेमु राम के दूना ॥५॥

अर्थ : हे माता ! छोटे भाई के सहित प्रभु कुशल हैं। परन्तु सुन्दर कृपा के
धाम आपके दुःख से दुःखी हैं। हे माता ! मन में न्यूनता न मानो। श्रीरामजी का
प्रेम आपके प्रेम से दूना है।

व्याख्या : मातु सम्बोधन करके सावधान करते हैं। अपनी उपस्थिति का
स्मरण दिलाते हैं। पहिला प्रश्न यह था : अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी। अनुज
सहित सुख भवन खरारी। उसका उत्तर देते हुए कहते हैं कुसल प्रभु अनुज समेता।
प्रेमी प्रेमास्पद को अपने दुःख से दुःखी सुनकर सन्तुष्ट होता है। अत उनका दुःख
भी सुना दिया कि आपके दुःख से दुःखी हैं। नहीं तो और कोई दुःख उन लोगों
को नहीं है। क्योंकि दूसरा प्रश्न यह पूछा था : कपि केहि हेतु धरी निठुराई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


उसका भी उत्तर साथ ही हो गया कि निठुराई एकदम नही है। तुम्हारे दुःख से दुःखी हैं। तीसरा प्रश्न है : कबहुँक सुरति करत रघुनायक। भाव यह कि प्रिया के नाते न सही सेविका के नाते कभी स्मरण करते हैं ? इसके उत्तर में हनुमान्‌जी कहते हैं कि तुम अपने को छोटा मानती हो। समझती हो कि प्रभु भूल गये। प्रेम करना मैं ही जानती हूँ। सो ऐसा ख्याल न करना। मैंने दोनों व्यक्ति का प्रेम देखा है। उनको तुमसे दूना प्रेम है। हनुमान्‌जी ने उत्तर देने मे सरकार का ही रास्ता पकड़ा। बिना दूना प्रेम सुने प्रेमी को सन्तोष नही। जब हनुमान्‌जी से रामजी ने कहा : सुनु कपि जनि मानेसि मन ऊना। तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना। तब हनुमान्‌जी को सन्तोष हुआ था। अतः आप भी उसी भाँति बोले।

दो. रघुपति कर संदेस अब, सुनु जननी धरि धीर।
अस कहि कपि गदगद भयउ, भरे बिलोचन नीर ॥१४॥

अर्थ : हे माता ! अब धीरज धरकर रघुपति का सन्देश सुनिये। ऐसा कहकर हनुमान्‌जी प्रेम से गद्‌गद हो गये। उनके नेत्रों मे जल भर आया।

*व्याख्या : केवल सुरति ही नही करते सन्देश भी भेजा है। यहाँ तक तो* मैंने अपने मन से बातें कही हैं। अब उनका सन्देशा कहता हूँ। दूतो वदति नान्यथा : दूत को ज्यो का त्यो कहना पड़ता है। यह रघुपति का सन्देश है। सुनने से धैर्य छूट जायगा। सो पहले धैर्य धारण कर लें। इनकी गति देखकर बार बार सम्बोधन करते हैं। यथा : मातु कुसल प्रभु अनुज समेता। जनि जननी मानेसि जिय ऊना। सुनु जननी धरि धीर। जब कहते हुए वक्ता का धैर्य छूटता है तब सुनने से श्रोता का धैर्य छूटे हो गा। यहाँ वक्ता का धैर्य छूटा। हनुमान्‌जी गद्‌गद हो गये। वाणी नही निकलती। आँखो मे आँसू भर आये।

कहेउ राम बियोग तव सीता। मो कहु सकल भये बिपरीता॥
नव तरु किसलय मनहु कृसानू। काल निसा सम निसि ससि भानू ॥१॥

अर्थ : रामजी ने कहा है कि हे सीते ! तेरे वियोग मे मेरे लिए सब कुछ प्रतिकूल हो गया। पेड के नये नये कोपल : पत्ते तो मानो आग हो गये। रात्रि काल रात्रि हो गयी और चन्द्रमा सूर्य हो गये।

व्याख्या : यहाँ पर हनुमान्‌जी रघुपति का सन्देश कहते है। उसमें ऐसे शब्द हैं जिसे रामजी ही कह सकते हैं हनुमान्‌जी नही कह सकते। परन्तु सन्देश कहनेवाले को उन शब्दो को दोहराना ही पड़ता है। दूतो वदति नान्यथा : दूत अन्यथा नही कहता। अतः ज्यो के त्यो रामजी के शब्दो को दोहराते हैं। चलते समय इन सब बातो को रामजी ने हनुमान्‌जी से कहा था। परन्तु कवि ने यहाँ पर अतिसंक्षेप मे सङ्केत की भाँति जना दिया है। यथा : बहु प्रकार सीतहि समुझाएहु। कहि बल बिरह बेगि तुम आएहु। क्योकि यहाँ पर उसे विस्तार के साथ कहना था। हनुमान्‌जी ने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अवसर के अनुसार पहिले विरह ही कहा। इसलिए कहते हैं कि कहेउ राम ये रामजी के शब्द हैं कि हे सीते ! तेरे वियोग में सब सुख के साधन मेरे लिए प्रतिकूल हो गये। प्रिय प्रियजन के वियोग में तो केवल विषाद हुआ था। यथा : प्रभु सिय लखन बैठि बट छाहीं। प्रिय परिजन बियोग बिलखाहीं। परिस्थिति ने पलटा नहीं खाया था। पर तेरे वियोग में परिस्थिति पलट गयी। मेरे लिए संसार बदल गया सबके लिए ज्यों का त्यों है।

परिस्थिति परिवर्तन को स्पष्ट करते हैं कि पतझड़ : शिशिर के मौसम में पेड़ों के पुराने पत्ते गिर जाते हैं और नये लाल लाल पत्ते निकलते हैं। तुम्हारे संयोग के समय वे शीतल मालूम होते थे। अब वे आग के समान दाहक प्रतीत होते हैं। हिमऋतु की बड़ी रात्रि तुम्हारे संयोग से सुखद थी। अब वह काल रात्रि सी प्रतीत होती है। ग्रीष्म में रात को केवल शीतांशु : चन्द्रमा का भरोसा रहता है। सो वे भी तुम्हारे बिना सूर्य की भाँति आग उगलते हैं।

कुवलय बिपिन कुंत बन सरिसा। बारिद तपत तेल जनु बरिसा ॥
जे हित रहे करत तेइ पीरा। उरग स्वास सम त्रिबिध समीरा ॥२॥

अर्थ : कमल तथा कुमुद के वन भालों के वन के समान हो गये हैं। मेघ मानो खौलता हुआ तेल बरसाते हैं। जो हित करनेवाले थे वे ही पीड़ा देते हैं और शीतल मन्द सुगन्ध वायु सर्प के श्वास के समान हो गयी है।

व्याख्या : शरद में दिन को कमल फूलते हैं और रात को कुमुद वन विकसित होते हैं। उनकी छटा तुम्हारे रहने से बड़ी कमनीय प्रतीत होती थी। सो अब वे भालों के वन की भाँति भयावह मालूम होते हैं। कुवलय का अर्थ कमल भी है और कुमुद भी है। यहाँ दोनों के ग्रहण के लिए पङ्कजादि अनेक शब्दों के रहते हुए भी कुवलय शब्द का प्रयोग किया है। भाव यह है कि रात और दिन दोनों भयानक हो गये हैं। पावस ऋतु में मेघों का बरसना कितना आनन्ददायक था। सो तुम्हारे बिना मालूम होता है कि तप्त तेल बरस रहे हैं। ज्यों बादल गरजते हैं त्यों मैं डर उठता हूँ कि ये अब तप्त तेल बरसेंगे। यथा : घन घमण्ड नभ गर्जत घोरा। प्रियाहीन डरपत मन मोरा।

तुम्हारे न रहने से हित ही पीड़ा करनेवाले हो गये हैं। जिनका वर्णन हो रहा है वे सब जगत् के हित करनेवाले हैं। सो आज ये सब मेरे लिए दुःखदायक हो गये। यहाँ तक कि वसन्त की शीतल मन्द सुगन्ध वायु भी उरग श्वास की भाँति उष्ण तीव्र और दुर्गन्धयुक्त प्रतीत होता है एवं सुखदायक छवों ऋतुएँ मेरे लिए प्राण की गाहक हो गयीं। पहिले कह आये हैं : तुमसे प्रेम राम कर दूना। उसी का प्रमाण देते हैं कि तुम्हें तो तारा चन्द्र और किशलय केवल तीन दुःखदायक हैं और मुझे तो किशलय, निसि, ससि, कुवलय, बिपिन, बारिद ये छवों दुःखदायक हुए। अतः दूना प्रेम सिद्ध है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


कहेहू तें कछु दुख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई ॥
तत्व प्रेम कर मम अरु तोरा। जानत प्रिया एकु मनु मोरा ॥३॥

अर्थ : कह डालने से दुःख कुछ घटता है पर कहूँ किससे। इसे कोई जानता नही। मेरे और तेरे प्रेम के तत्त्व को केवल मेरा मन जानता है।

व्याख्या : दूसरे से कहने से अवश्य दुःख मे कुछ कमी होती है। कहा भी है : सुहृदि निरन्तरचित्ते गुणवति भृत्येऽनुवर्तिनि कलत्रे। स्वामिनि शक्तिसमेते निवेद्य दुःखं सुखी भवति। पर कहूँ किससे कोई इसका जाननेवाला भी तो हो। जो उस दुःख को समझे जिसे सहानुभूति हो उसी से कहने से दुःख घटता है। सुख दुःख को ससार जानता है। जो अनुकूल वेदनीय हो सो सुख है। जो प्रतिकूल वेदनीय है वही दुःख है। पर जिस दुःख मे सारे अनुकूल वेदनीय पदार्थ प्रतिकूल वेदनीय मालूम पड़ने लगे उस दुःख को सब नही जानते। ससार लौकिक प्रेम से परिचित है। वह कान्ताविरह से दुःखी होता है। क्योकि उसको भोग की प्राप्ति बन्द हो जाती है। उसके प्रेम का तत्त्व स्वार्थ है। वह ऐसे दुःख को नही जान सकता जिसमे सब सुखमय पदार्थ दुःखदायक जान पडने लगे।

हम लोगो : दोनो का प्रेम अलौकिक है। पुनोत है। उसमे स्वार्थ का गन्ध नही है। वह भेद अन्तर नही सहन कर सकता। उसे केवल मेरा मन जानता है। और लोगो के मन की वहाँ तक पहुँच नही है। यथा सिय राम अवलोकनि परस्पर प्रेम काहु न लखि परै। मन बुद्धि बर बानी अगोचर प्रगट कवि कैसे करै। यह विषय रस रूखे दम्पती का प्रेम लोक मे दिखायी नही पडता। यथा . तुम्हरे जान काम अब जारा। अब लगि सभु रहे सविकारा "हमरे जान सदा सिव जोगी। अज अनवद्य अकाम अभोगी। जौ मैं सिव सेयेउ अस जानी। प्रेम समेत कर्म मन बानी। तौ हमार पन सुनहु मुनीसा। करिहैं सत्य कृपानिधि ईसा।

तथा : गिरा अर्थ जल बीचि सम कहिअत भिन्न न भिन्न। सिय राम अवलोकनि परस्पर प्रेम काहु न लखि परै। मन बुद्धि बर बानी अगोचर प्रकट कवि कैसे करै।

सो मनु सदा रहत तोहि पाहीं। जानु प्रीति रस इतनेहि माहीं ॥
प्रभु सदेसु सुनत बैदेही। मगन प्रेम तन सुधि नहि तेही। ४॥

अर्थ . वह मन सदा तेरे ही पास रहता है। इतने मे ही प्रीति रस का समझ ले। प्रभु का सन्देश सुनते ही वैदेही प्रेम मे मग्न हो गयी। उनको शरीर की सुधि नही रह गयी।

व्याख्या : वह . मेरा मन तुझे छोडकर कही जाता ही नही। भावार्थ यह है कि मानसिक वियोग नही है। इतने मे ही प्रेमरस को समझ लो। अधिक जो कुछ कहना है वह इसी का विस्तार है। जो तुम समझती हो . मोहि निपट बिसारी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सो बात नही है। एक क्षण भी मेरे चित्त से तुम उतरती ही नही। मेरा शरीर केवल यहाँ है मन तुम्हारे पास है। आधिदैविक दृष्टि से भी यही बात है। वह मायावृत्ति माया मे रहती है ब्रह्म में नही रहती। अतः कहते हैं कि वह मन तुम्हारे पास है मेरे पास नही है। अर्थात् तुम्हारे और मेरे बीच में एक ही मन है यही प्रीति का रस है। विरह मे ही प्रेम तत्त्व का यथार्थ विकास होता है। अतः इतनी बातों में ही प्रेमरस के जान लेने के लिए प्रभु का सन्देशा है।

रघुपति कर सन्देस अब सुनु जननी धरि धीर : से उपक्रम और प्रभु सन्देस सुनत बैदेही : से उपसहार दिखलाया। पहिले ही सावधान किया था ' सुनु जननी धरि धीर। सो धीर न धर सकी। ऐसी प्रेम में मग्न हुईं कि शरीर की सुधि न रह गयी। प्रभु का सन्देशा है : जानु प्रीति रस इतनेहि माँही। सो प्रीति रस का अनुभव दिखलाते हैं : मगन प्रेम तन सुधि नहि तेही।

कह कपि हृदय धीर धरु माता। सुमिरु राम सेवक सुखदाता ॥
उर आनहु रघुपति प्रभुताई। सुनि मम बचन तजहु कदराई ॥५॥

अर्थ : हनुमान्‌जी ने कहा कि हे माता! हृदय मे धीरज धारण करो और सेवको के सुख देनेवाले रामजी का स्मरण करो। श्री रघुनाथजी की प्रभुता को हृदय मे लाओ और मेरे वचन को सुनकर कायरता छोड़ो।

व्याख्या : वार वार हनुमान्‌जी को धैर्य धारण करने के लिए कहना पड़ा। पहिले विरह कहा। अब धैर्य धारण करने के लिए बल कहेगे। सुमिरु राम सेवक सुखदाता। यही दु:ख हटाने का साधन है। यथा : जपहि नाम जन आरत भारी। मिटहि कुसंकट होहि सुखारी। रघुपति की प्रभुता आप जानती हो पर उसे हृदय मे स्थान नही देती हो। कदराई को स्थान दिये हो। सो उसे हृदय से निकालकर बाहर करो और प्रभुता को स्थान दो। जो शिक्षा सम्पाती से पाकर आये हैं उसी के अनुसार भगवती से विनय करते हैं। यथा : तासु दूत तुम तजि कदराई। राम हृदय धरि करहु उपाई।

दो. निसिचर निकर पतंग सम, रघुपति बान कृसानु।
जननी हृदयँ धीर धरु, जरे निसाचर जानु ॥१५॥

अर्थ : राक्षसों का समूह पतङ्गो के समान और रघुपति के बाण अग्नि के समान हैं। हे माता! हृदय मे धैर्य धारण करो। राक्षसो को जला हुआ ही समझो।

व्याख्या : जलती हुई आग मे पतङ्गे अपने नाश के लिए आप से आप बड़े वेग से जा कूदते हैं। यथा : प्रदीप्त ज्वलनं पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगाः। सो यह राक्षसो का समूह भुनगो का समूह है और रघुपति के बाण धधकती हुई आग हैं। आग के पहुँचने की देर है। भुनगे आप से आप आग मे आ पड़ेंगे। यथा : प्रभु सनमुख धाये खल कैसे। सलभ समूह अनल कहँ जैसे। अतः इन्हे जला हुआ ही

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



समझो। यह भाव ध्वनित है कि बाण रूप मैं आगया हूँ। इन सबो को अभी भस्म करता हूँ। अतः धैर्य धरो। भगवती के पता लगाने मे बहुत देर लगी। देर के उपालम्भ में तीसरा प्रश्न है। इसलिए इस प्रश्न पर बहुत कहना पड़ा जिसमें भगवती को धैर्य हो।

जौं रघुबीर होति सुधि पाई। करते नहिं बिलंबु रघुराई ॥
राम बान रबि उएँ जानकी। तम बरूथ कहँ जातुधान की ॥१॥

अर्थ : यदि रघुवीर ने सुधि पायी होती तो रघुराई देर न करते। हे जानकी ! रामबाणरूपी सूर्य के उदय होने पर राक्षसों की सेना रूपी अन्धकार फिर कहाँ ?

व्याख्या : अब चौथे प्रश्न का उत्तर देते हैं। प्रश्न है : कबहुँ नयन मम सीतल ताता। ह्वैहै निरखि स्याम मृदुगाता। कहते हैं अब दर्शन मे विलम्ब नही है। तुम्हारा पता ही नही था। उनका कोई दोष नही। पता के लिए छटपटा रहे थे। लक्ष्मणजी से कहा - बर्षा बिगत सरद रितु आई। सुधि न तात सीता कर पाई। एक बार कैसहु सुधि जानौं। कालहुँ जीति निमिष महु आनौं। कतहुँ रहे जौ जीवत होई। तात जतन करि आनौ सोई। मित्र सुग्रीव पर बिगड़ गये। हम लोगो से कहा : सीता सुधि पूँछेहु सब काहू। रघुराई हैं। नीति का पालन करते हैं। रघुकुल की प्रतिष्ठा रक्षा मे कभी विलम्ब न करेंगे। यदि कहिये कि राक्षसो से युद्ध करना पड़ेगा तो उस पर कहते हैं। रामबाण सूर्य है। यातुधान वरूथ अन्धकार है। कितना ही अधिक अन्धकार क्यों न हो सूर्य के उदय होने पर रह नही जाता। यथा : जिमि रबि उदय जाहि तम फाटी। भाव यह कि जो भुनगे होकर मुझ पर गिरेंगे उनको तो मै निपटा दूँगा और सरकार के आने पर राक्षस निःशेष ही हो जावेंगे अथवा सरकार के बाण रात को अग्निरूप और दिन को सूर्य रूप होकर राक्षसो का संहार करेंगे।

अबहिं मातु मै जाउँ लवाई। प्रभु आयसु नहिं राम दोहाई ॥
कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा ॥२॥

अर्थ : हे माता ! मैं आपको अभी लिवा जाता। परन्तु रामजीकी शपथ है मुझे आज्ञा नही है। हे माता ! कुछ दिन धीरज धरो। रघुवीर बन्दरो के साथ आवेंगे।

व्याख्या : तब क्या पहिला बाण असमर्थ है ? इस पर कहते हैं : अबहिं मातु मैं जाउँ लवाई। अथवा भगवती को दृढ धैर्य देने के लिए कहते हैं। लङ्का भर के राक्षस अकेले मेरा कुछ नही कर सकते। पर प्रभु की आज्ञा इतनी ही है : कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आयेहु। बात की सत्यता द्योतन के लिए हनुमान्जी शपथ लेते हैं केवल सान्त्वना के लिए नही। वस्तुस्थिति कह रहे हैं। आपके लेनेके लिए वे स्वयं आवेंगे। अब महीनों की बात नही है दिनों की बात है। रघुवीर हैं स्वयं समर्थ हैं। तिस पर वानरी सेना साथ होगी। यह बात वानरो की प्रतिष्ठा रखने के

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लिए कह रहे हैं। अथवा रावण ने जो वर माँगा है : हम काहू के मरै न मारे। बानर मनुज जाति दुइ बारे। सो दोनो योग जुट जायगा।

निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं। तिहुँ पुर नारदादि जसु गैहहिं ॥
है सुत कपि सब तुम्हहि समाना। जातुधान अति भट बलवाना ॥३॥

अर्थ : राक्षसोको मारकर आपको ले जावेंगे। तीनो लोक मे नारद आदि यश का गान करेंगे। हे बेटा! क्या सब बन्दर तुम्हारे ही ऐसे हैं। राक्षस लोग अतिभट और बलवान् हैं।

व्याख्या : अपनी प्रतिज्ञा भी पूरी करेंगे। यथा : निसिचर हीन करौं महि भुज उठाइ प्रन कीन्ह। आदर के लिए स्वय आवेंगे और इससे लोकोपकार भी होगा। यथा : त्रैलोक्य पावन सुजस सुरमुनि नारदादि बखानिहैं। जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई। यहाँ हनुमान्‌जीने जाम्बवान के वचन को दोहराया। क्योकि यह वचन हनुमान्‌जी को अत्यन्त प्यारा लगा था। इस भाँति लङ्का और उत्तरकाण्ड की भी कथा कही। पूरा रामायण भगवती को सुना दिया।

प्रत्यक्ष का बाध शपथ से भी नही होता। हनुमान्‌जी का आकार देखकर विश्वास न हुआ। आठ अङ्गुल का तो हनुमान्‌जी का देह था। बारह अङ्गुल की पूँछ थी। यथा : अष्टाङ्गुलमयः कायः पुच्छो मे द्वादशाङ्गुलः। माता ने समझा कि उत्साह तथा भक्ति के उमङ्ग मे राक्षसो को कुछ नही गिन रहा है। इसका किया क्या होनेवाला है? अत कहती है कि तुम्हारे समान बन्दरो की सहायता से क्या उपकार होगा। जो कहते हो : कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा। यहाँ तो राक्षस अति भट है और बडे बलवान् है। भट से अधिक को महाभट और उससे भी अधिक को अतिभट कहते हैं।

मोरे हृदय परम संदेहा। सुनि कपि प्रगट कीन्ह निज देहा ॥
कनक भूधराकार सरीरा। समर भयंकर अतिबल बीरा ॥४॥
सीता मन भरोस तब भएऊ। पुनि लघु रूप पवनसुत लएऊ ॥५॥

अर्थ : मेरे हृदय मे बड़ा भारी सन्देह है। यह सुनकर हनुमान्‌जी ने अपना देह प्रकट किया। सुमेरु : सोने के पहाड के समान शरीर है। समर मे भयंकर और अति बलवीर हैं। तब सीताजी के मन मे भरोसा हुआ। फिर पवनसुत ने अत्यन्त छोटा रूप धारण कर लिया।

व्याख्या : सीताजी ने कहा कि मुझे तो उनके उपकारक होने मे बडा भारी सन्देह है। हनुमान्‌जी को विश्वास दिलाना परम आवश्यक था। अब बिना अपना शरीर दिखलाये काम नही चलता। अत जिस शरीर को छिपा रक्खा था उसे प्रकट किया। अब यदि राक्षस देख लें तो भी कोई हानि नही। बातचीत कर ही चुके हैं। ह्रस्वाकार से कनक भूधराकार हो गये। कनक कहकर वर्ण तथा तेज भी

ankurnagpal108@gmail.com



कहा। मूर्ति सुहावनी है, पर समर भयङ्कर है। मूर्ति के दर्शन से पता चलता है कि अति बलवीर हैं। यह हनुमान्‌जी का स्वाभाविक शरीर है। इसी का वर्णन काण्ड के आदि मे है। ऐसी शरीर देखकर भगवती जनकनन्दनी को भरोसा हुआ कि हाँ! यह मुझे अकेले लिवा जा सकता है। तब हनुमान्‌जी ने फिर शरीर समेट लिया। माँ के सामने अपना गौरव प्रदर्शन नही चाहते थे। लाचार होकर ऐसा करना पडा। अत: उसके सम्मार्जन के लिए कहते है।

दो. सुनु माता साखामृग, नहि बल बुद्धि बिसाल।
प्रभु प्रताप ते गरुड़हि, खाइ परम लघु ब्याल ॥१६॥

अर्थ : माता सुनो! हम पेड के डाल पर रहनेवाले मृग हैं। हमे विशाल बल बुद्धि नही होती। परन्तु प्रभु के प्रताप से गरुड को अत्यन्त छोटा सा साँप खा सकता है।

व्याख्या : हनुमान्‌जी ने कहा कि माता! मेरी जाति का यही रूप है जो मेरा इस समय आप देख रही हैं। न बुद्धि ही बडी है और न बल ही अधिक है। मेरी जाति की बल बुद्धि की समाप्ति एक शाखा से दूसरे पर कूद जाने में ही है। इसीलिए लोग शाखामृग कहते हैं। ये लोग उसी भाँति राक्षसो के भक्ष्य है जिस भाँति सर्पगण गरुड के भक्ष्य हैं। परन्तु प्रभु के प्रताप के योग से मुझमे इतना सामर्थ्य आगया है कि अपनी जाति मे औरो से छोटा होते हुए भी राक्षसो का नाश कर सकता हूँ। प्रभु का प्रताप ही वानरी सेना से सब कुछ करावेगा। यथा : धरि गाल फारहिं उर बिदारहिं गल अँतावरि मेलही। प्रहलादपति जनु बिबिध तन धरि समर अगन खेलही। नही तो वानरी सेना अपने बूते से क्या कर सकती है?

मन संतोष सुनत कपि बानी। भगति प्रताप तेज बल सानी ॥
आसिष दीन्हि राम प्रिय जाना। होहु तात बल सील निधाना ॥१॥

अर्थ : भक्ति प्रताप तेज और बल से सनी हुई हनुमान्‌जी की वाणी सुनकर सीताजी के मन मे सन्तोष हुआ। रामजी का प्रिय जानकर आशीर्वाद दिया कि हे तात! तुम बल और शील के निधान होओ।

व्याख्या : स्वरूप देखनेसे भरोसा हुआ। वाणी सुनने से सन्तोष हुआ। क्योंकि इतना होने पर भी वाणी दीनता द्योतक थी और प्रभु दीनबन्धु हैं। अत यह रामजी को प्रिय है, अथवा जो रामजी को प्रिय हो उसे छोडकर अन्य कोई इतना समर्थ और बुद्धिमान् होने पर भी गलित अभिमान हो नही सकता। अत निश्चय कर लिया कि यह प्रभु को प्रिय है। उनकी भक्ति प्रताप तेज और बल सानी वाणी सुनकर मन मे सन्तोष हुआ। भक्ति से सनी हुई यथा सुमिरु राम सेवक सुख दाता। प्रताप से सनी हुई यथा राम बान रबि उए जानकी। तम बरूथ कहँ जातुधान की। तेज से सनी हुई यथा प्रभु प्रताप से गरुडहि खाइ परम लघु ब्याल। बल सानी यथा : अबहि मातु मैं जाउँ लवाई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सन्तुष्ट होने पर आशीर्वाद देना प्राप्त है। यहाँ राम प्रिय शब्द का तत्पुरुष और बहुव्रीहि दोनो समासो से अर्थ करना होगा। अर्थ होगा राम का प्रिय या राम हैं प्रिय जिसको। सो मन सदा रहत तोहि पाही : का उदाहरण यही देखिये कि प्रिय हैं रामजी को और आशीर्वाद सीताजी से मिल रहा है। पहिला आशीर्वाद बल के लिए है। क्योंकि इस जगत् मे बल ही सब कुछ है। निर्बल को आत्मलाभ भी नही होता। यथा : नायमात्मा व बलहीनेन लभ्यः। शील बिना बल अनर्थ का कारण होता है। इसलिए दूसरा आशीर्वाद शीलनिधान होने का दिया।

अजर अमर गुननिधि सुत होहू। करहुँ बहुत रघुनायक छोहू ॥
करहुँ कृपा प्रभु अस सुनि काना। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना ॥२॥

अर्थ : हे पुत्र ! तुम अजर अमर और गुण के निधान होओ और श्रीरघुनाथजी तुम पर बहुत छोह करें। प्रभु कृपा करें : ऐसा कान से सुनते ही हनुमान्‌जी पूर्ण प्रेम मे मग्न हो गये।

व्याख्या : जरावस्था आ जाने से बल शील का नाश हो जाता है। अतः तीसरा आशीर्वाद अजर होने का मिला। जरावस्था न आवे। ऐसा आशीर्वाद शाप का भी काम दे सकता है। जवानी में मर जाने से भी वह आशीर्वाद सफल हो सकता है। अतः अमर कहा है। गुणहीन का दीर्घजीवन भी व्यर्थ ही है। यथा : काकोऽपि जीवति चिराय बलिञ्च भुंक्ते। अतः गुणनिधि होने का आशीर्वाद मिला। इतने आशीर्वाद पर भी हनुमान्‌जी को हर्षित न देखकर छठा आशीर्वाद देती हैं : करहु बहुत रघुनायक छोहू। राम के प्रिय हैं। अतः छोह तो इन पर बना ही है। अतः बहुत छोह के लिए आशीर्वाद देती हैं। पहिले भगवती ने तात कहा था। परन्तु तात का बड़ा विस्तृत अर्थ है। पिता, पुत्र, मित्र और प्रिय सबके लिए तात शब्द का प्रयोग होता है। परन्तु इस बार सुत सम्बोधन करके बेटा मान लिया। हनुमान्‌जी को हर सेवाओ के पुरस्कार में छः आशीर्वाद मिले। पहिले विरहोन्माद के समय हर्षोत्पादन किया। यथा : कपि कर हृदय विचार दीन्ह मुद्रिका डारि तब। जनु असोक अंगार दीन्ह हरखि उठ कर गहेउ। अब मुद्रिका देखकर हर्ष विषाद से हृदय मे व्याकुलता हुई। तब राम गुण वर्णन करके दुःख भगाया। यह दूसरी सेवा हुई। माता ने खल की शूल सी वाणी सुनी थी। उसे मिटाने के लिए श्रवणामृत राम कथा सुनाई। यह तीसरी सेवा हुई। सीताजी का नैराश्य मिटाया। यह चौथी सेवा हुई। यथा : भयउ तात मोकहु जल जाना। भरोसा देना पाँचवी सेवा है। यथा : सीता मन भरोस तब भयऊ। उन्हें सन्तुष्ट करना छठी सेवा थी। यथा : मन संतोष सुनत कपि बानी। दारुण तप करके जिस अमरत्व को असुर न प्राप्त कर सके उस अमरत्व की प्राप्ति पर भी हनुमान्‌जी को हर्ष नही हुआ। करहु बहुत रघुनायक छोहू। इस आशीर्वाद पर हर्ष हुआ।

प्रभु का सन्देश सुनाकर भगवती को हनुमान्‌जी ने प्रेम मे मग्न कर दिया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यथा मगन प्रेम तन सुधि नहिं तेही। इधर आशीर्वाद देकर भगवती ने उन्हे प्रेम मे मग्न कर दिया। यथा निर्भर प्रेम मगन हनुमाना।

बार बार नाएसि पद सीसा। बोला बचन जोरि कर कीसा ॥
अब कृतकृत्य भयउँ मै माता। आसिष तव अमोघ बिख्याता ॥३॥

अर्थ हनुमान्‌जी बार बार सीताजी के चरणो मे सिर नवाते हैं। हाथ जोडकर हनुमान्‌जी बोले। हे माता! अब मैं कृतकृत्य हुआ। आपका आशीर्वाद अमोघ है। यह बात प्रसिद्ध है।

व्याख्या बार बार सिर नवाना कृतकृत्यता का लक्षण है। आगे चलकर कृतकृत्यता कहेगे। निर्भर प्रेम मगन हनुमाना से मानसा प्रेम कहा। बार बार नाएसि पद सीसा से कर्मणा प्रम और बोला बचन जोरि कर कीसा से वचसा प्रेम भी कहा। भगवत् प्रीत्यर्थं ही सब साधन किया जाता है। प्रीति और छोह पर्यायवाची शब्द हैं। अत छोह की प्राप्ति से कृतकृत्यता हुई अमरत्व प्राप्ति से नही। प्रभु के बाण अमोघ हैं। भगवती का आशीर्वाद अमोघ है। यह बात विख्यात है। यथा तव प्रभाव जगविदित न केही। जाकी कृपा कटाक्ष सुर चाहत चितवन सोइ। यहाँ तक पुनि सीतहि धीरज जिमि दीन्हा प्रसङ्ग है।

## ६० वनविध्वस प्रसङ्ग

सुनहु मातु मोहि अतिसय भूखा। लागि देखि सुदर फल रूखा ॥
सुनु सुत करहिं बिपिन रखवारी। परम सुभट रजनीचर भारी ॥४॥
तिन्ह कर भय माता मोहि नाँही। जौ तुम्ह सुख मानहु मन माँही ॥५॥

अर्थं माता! सुनो सुन्दर फल और देखकर मुझे तो अत्यन्त भूख लग गयी है। बेटा! सुनो बडे सुभट भारी राक्षस इस वन की रखवाली करते हैं। माता! यदि आप सुख माने तो इनका भय तो मुझे कुछ भी नही है।

व्याख्या अस कहि लवन सिंधु तट जाई। बैठे कपि सब दर्भ डसाई। तब से बन्दरो का अनशन चल रहा है। हनुमान्‌जी और बन्दरो को तो फल मूल कन्द खाने के लिए कह आये हैं। पर अपने लिए तो यह निश्चय किया है कि बिना जगदम्बा का दर्शन किये जल न ग्रहण करूँगा। सो दर्शन हो गया। अब पारण होना चाहिए। इधर सवेरा भी हो गया। फल फूल स्पष्ट दिखाई देने लगे बासव बरण बिधि बन ते सुहावनो दसानन को कानन बसत के सिंगार सो। उसे देखकर और भी जोरो से भूख लगी। चित्त चाहने लगा कि रूख भी खा जायँ। बेटा अपनी भूख माँ से कहता है और माँ सुनती है। अत माँ से कहते हैं। बात यह है कि हनुमान्‌जी को युद्ध करना इष्ट है। प्रभु की आज्ञा लेकर नही चले हैं। अत माँ से फल खाने की आज्ञा माँगते हैं। अपनी भूख सुनाते हैं। जिसमे माँ से आज्ञा अवश्य ही मिल जाय। उसी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याज से युद्ध छिड जाय। प्रतिज्ञा किये हुए हैं। कहौंगे मुख की समर सहि कालि कारिख धोई। उसे पूरी करनी है।

माँ ने सुत सम्बोधन मे वात्सल्य दिखलाया। बोली फल और वृक्षो की रक्षा के लिए बडे भारी भारी राक्षस नियत हैं। सो वे सब न खाने देवेंगे। युद्ध करेगे। हनुमान्‌जी ने कहा कि माता उनका मुझे डर नही है। तुम्हारा डर है। कही यह न समझो कि मैं विपत्ति के दिन बैठी हुई इस वाटिका मे काट रही हूँ। सो हनुमान् ऐसा अविनीत है कि यहाँ आकर उपद्रव मचा दिया। आप मन से सुख मानें। बाहर से मेरे फल खाने आदि पर भले ही नाराजगी दिखलावें।

दो. देखि बुद्धि बल निपुन कपि, कहेउ जानकी जाहु।
रघुपति चरन हृदय धरि, तात मधुर फल खाहु ॥१७॥

अर्थ : कपि को बुद्धि और बल मे निपुण देखकर जानकीजी ने कहा कि जाओ और रघुपति के चरणो को हृदय में धारण करके मीठे फल खाओ।

व्याख्या : तिन्ह कर भय माता मोहि नाही से बल का परिचय पाया और जौं तुम सुख मानहु मन माही' से बुद्धि का परिचय पाया। तब आज्ञा दे दी और विजय का मन्त्र बतला दिया कि रघुपति के चरणो को हृदय मे रख लो। सब कल्याण होगा। यथा 'ध्येय सदा परिभवघ्नमभीष्टदोह तीर्थास्पद शिवविरंचिनुत शरण्यम्। भृत्यार्तिह प्रणतपालभवाब्धिपोतम् वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्। माता है शिक्षा देती है कि मीठे फल खाना। भूख मे कच्चे फल न खा जाना।

चलेउ नाइ सिरु पैठेउ बागा। फल खाएसि तरु तोरन लागा॥
रहे[1] तहाँ बहु भट रखवारे। कछु मारेसि कछु जाय पुकारे॥१॥

अर्थ : सीताजी को : सिर नवाकर चले और बाग मे घुस गये। फल खाये और वृक्ष तोडने लगे। वहाँ पर बहुत से भट रखवाले थे। उनमे से कुछ को मार डाला और कुछ ने जाकर पुकार की।

व्याख्या . आसिख आयसु पाइ कपि सीय चरन सिर नाइ। तुलसी रावन बाग फल खात बराइ बराइ। बाग में नही थे वाटिका मे थे। फिर भी वहाँ से बाग दिखायी पडता था इसलिए : चलेउ नाइ सिर कहा। माता की आज्ञानुसार पका फल चुनकर खाते हैं। फल खाने तक शान्त रहे किसी ने न जाना। खा चुकने के बाद पेड तोडने लगे। तब बडा शब्द हुआ। इसलिए पहिले पेड नही तोडा कि युद्ध प्रारम्भ हो जायगा तो खाने नही पावेंगे। बाग मे रखवारे तो बहुत थे पर उस समय वे ही थे जिनका पहरा था। फिर भी कम नही थे। उनमे से कुछ को

---

१ बर्षा घोर निशाचर रारी—आर्द्रादि दशतारक वर्षा के नक्षत्र हैं। उनमे से हनुमान्‌जी की लङ्का मे यह पहिली लडाई आर्द्रा नक्षत्र की वर्षा है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मारा और कुछ को रावण के यहाँ खबर देने के लिए छोड़ दिया। यदि सबको मार देते तो लड़ाई वहीं समाप्त हो जाती। जिन्होंने चोट नहीं खायी थी उन्होंने जाकर रावण के यहाँ पुकार मचायी।

नाथ एक आवा कपि भारी। तेहिं असोक बाटिका उजारी॥
खाएसि फल अरु बिटप उपारे। रच्छक मर्दि मर्दि महि डारे॥२॥

अर्थ : हे नाथ! एक भारी बन्दर आया है। उसने अशोक वाटिका उजाड़ डाली। फल खाये। वृक्षों को उखाड़ डाला और रक्षकों को मसल मसलकर पृथ्वी पर फेंक दिया।

व्याख्या : कपि भारी : कहने का भाव यह कि यदि सामान्य बन्दर होता तो हम लोग मार डाले होते। पर वह हम लोगों के बूते का नही है। बड़ा भारी है। नाथ कहने का भाव यह कि आप से नाथ के रहते हम लोग अनाथ की भाँति मारे गये। उस बन्दर की ढिठाई और बल दिखलाते हैं कि उसने अशोक वाटिका : प्राणन ते प्यारो मेघनाद ते दुलारो बाग : उजाड़ डाला। अब उजाड़ने की विधि कहते हैं कि फल सब खा गया और पेड़ उखाड़ डाले। पेड़ों का नाश ही उसने यथेष्ट नही समझा। टूटने के बाद कदाचित् फिर न पनपें इसलिए जड़ से उखाड़ फेंका। इतना बलवान् है कि राक्षसों को मसलकर फेंक दिया। तीन अपराध किये : १. खायेसि फल २. बिटप उपारे और ३. रक्षक मर्दि मर्दि महि डारे।

सुनि रावन पठएउ भट नाना। तिनहि देखि गर्जेउ हनुमाना॥
सब रजनीचर कपि संहारे। गए पुकारत कछु अधमारे॥३॥

अर्थ : सुनकर रावण ने नाना प्रकार के भट भेजे। उन्हें देखकर हनुमान्जी गर्जे। सब राक्षसों को हनुमान्जी ने मार डाला। कुछ अधमरे पुकार करते हुए गये।

व्याख्या : नाना भट अर्थात् मन्त्री पुत्र किङ्कर नामवाले और जम्बूमाली को भेजा। पहिली लड़ाई के भट हनुमान्जी को कुछ मालूम ही नही पड़े। इसलिए गर्जना नही की। ये नाना भट कुछ समझाई पडे। अतः उन्हे देखकर गर्जे। रावण को पता चल गया है। इसलिए किसी को छोड़ने की आवश्यकता नही रह गयी। अतः सबको मार डाला। कुछ अधमरे बच गये। वे वहीं से ही रोते चिल्लाते रावण के यहाँ चले। हार जीत की खबर मालिक को देना चाहिए। हनुमान्जी के निसिचर सहार विधि का वर्णन अन्यत्र इस प्रकार से किया है। यथा—

हाथिन सो हाथी मारे घोर सो संघारे घोरे
रथनि सो रथ बिदरनि बलवान की।
चंचल चपेट चोट चरन चकोट चाहें
हहरानी फौजें भहरानी जातुधान की॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वार बार सेवक सराहना करत राम
तुलसी सराहैं रीति साहेब सुजान की।
लांबी लूम लसत लपेटि पटकत भट
देखो देखो लखन लरनि हनुमान की॥

पुनि पठयउ तेहिं अच्छकुमारा। चला संग लै सुभट अपारा॥
आवत देखि बिटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महा धुनि गर्जा॥४॥

अर्थ : फिर रावण ने अक्षकुमार को भेजा। वह असंख्य सुभटों को लेकर चला। आते देखकर हनुमान्‌जी ने पेड़ लेकर डांटा और उसे मारकर महाध्वनि से गर्जना की।

व्याख्या : राजा के बेटे को कुमार कहते हैं। इससे अक्ष को रावण का पुत्र होना द्योतित किया। रावण ने समझा कि अब यहाँ अक्ष का काम है। अक्ष के बल पर भरोसा है। वह असंख्य सुभटो को साथ लेकर चला। पहिली लड़ाई के योद्धा भट थे। दूसरी लड़ाई में नाना भट भेजे गये। अब तीसरी लड़ाई में सुभट चले।

हनुमान्‌जी पेड़ पर चढ़े हुए लङ्का से कुमक आने का बाट जोह रहे थे। आते देखकर उखाड़े हुए पेड़ों में से एक को उठा लिया। हनुमान्‌जी आगे बढ़कर स्वागत करते है। ऐसी चोट की कि अक्ष समाप्त ही हो गया और तब महा धुनि से गर्जे जिससे रावण तक शब्द पहुँच जाय। पहिली लड़ाई में गर्जे हो नही। दूसरे में गर्जे और इस बार तो महाधुनि से गर्जे। जिस भांति रावण की ओर से उत्तरोत्तर बलवत्तर सेना आ रही है उसी प्रकार महावीरजी का पुरुषार्थ उत्तरोत्तर बढ़ता चला जाता है। क्योंकि दनुज बन कृसानु हैं। पहिली लड़ाई से दूसरी दूनी हुई। क्योंकि पहिले का वर्णन आधे पद में है और दूसरे का पूरे पद में। यह लड़ाई दूसरी से भी पञ्चगुनी हुई। क्योंकि इसका वर्णन पांच पदों में करते हैं।

दो. कछु मारेसि कछु मर्देसि, कछु मिलएसि धरि धूर।
कछु पुनि जाइ पुकारे, प्रभु मर्कट बल भूरि॥१८॥

अर्थ : कुछ को मारा। कुछ को मसल डाला और कुछ एक को पकड़कर धूल मे मिला दिया और कुछ ने जाकर पुकार की कि बन्दर बड़ा बलवान् है।

व्याख्या : पहिले ही सरदार को मार दिया। अब सेना की ओर झुके तो कुछ एक तो मार डाला और कुछ एक को शरीर में मर्दन किया। यथा : कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा। और कुछ एक को धूल में मिला दिया। उनके अवयवों का भी पता न चला। अपार सुभट आये थे पर यहाँ सब आकर कुछ हो गये। चार बार कुछ शब्द का प्रयोग है। इससे सिद्ध होता है कि एक चौथाई मारे गये। एक चौथाई मर्दे गये। एक चौथाई धूल में मिलाये गये और एक चौथाई भाग निकले। मारा पेड़ से मर्दा शरीर से और धूल में मिलाया हाथ से। किसी का

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


सामर्थ्य नही कि रावण से जाकर कहे कि अक्ष मारे गये। अत उन सबो ने जाकर पुकार मचायी कि बन्दर बडा बलवान् है। जिसका अर्थ ही यही है कि अक्ष मारा गया।

सुनि सुत बध लंकेस रिसाना। पठएसि मेघनाद बलवाना॥
मारेसि जनि सुत बाँधेसु ताही। देखिअ कपिहि कहाँ कर आही॥१॥

अर्थ : पुत्रबध सुनकर रावण क्रोधित हो उठा। बलवान् मेघनाद को भेजा : कहा कि बेटा ! उसे मार न डालना। उसे बाँध लेना। देखा जाय कि वह कहाँ का है।

व्याख्या सुतबध सुनकर रावण ने विशेष क्रोध किया। विशेष क्रोध करने को ही रिसाना कहते हैं। अक्ष के भेजने तक महल मे रहा। समय आ जाने से दरबार मे चला गया। वहाँ अक्ष बध की खबर लगी। इसी से . लकेस रिसाना कहते हैं। विभीषण और मन्दोदरी की राय थी कि जो हुआ सो हुआ बन्दर को निकल जाने दो। रावण के वर का स्मरण करके भय के लिए यथेष्ट कारण था। यथा : काहू कान कियो न मैं कह्यो हौं केतिक कालि है। बापुरो विभीषण पुकारि बार बार कह्यो बानर बडो बलाय घने घर घालि है। रावण दरबार मे चले गये। अक्ष से बडा वीर मेघनाद ही है। उसके बल पर रावण को बडा भरोसा है। अत मेघनाद को भेजा। जानता है कि मेघनाद बन्दर को मार भी सकता है और बाँध भी सकता है। अत उससे कहा कि भ्रातृहा समझकर मार न डालना। बाँध लेना। *असली शत्रु तो वह है जिसने इसे भेजा है। इसके मारे जाने से उसका पता न* चलेगा : बन्दरो का राजा वालि मेरा मित्र है। बन्दर मेरे प्रतिकूल आचरण नही कर सकते। यह कहाँ का बन्दर है जो वालि का अनुशासन नही मानता ? अथवा यह इन्द्रादिक किसी देवता का भेजा हुआ है। ठीक पता लगाना ही चाहिए।

चला इंद्रजित अतुलित जोधा। बंधु निधन सुनि उपजा क्रोधा॥
कपि देखा दारुन भट आवा। कटकटाइ गर्जा अरु धावा॥२॥

अर्थ इन्द्र को जीतनेवाला अतुल योद्धा चला। भाई का मरना सुनकर क्रुद्ध हो उठा। हनुमान्‌जी ने देखा कि दारुण भट आगया। सो कटकटाकर गर्जे और दौड पडे।

व्याख्या अतुलित योद्धा हैं : बारिद नाद जेठ सुत तासू। भट महँ प्रथम लीक जग जासू। जेहि न होइ रन सम्मुख कोई। सुरपुर नितहि परावन होई। केवल पिता की आज्ञा से वीररस के अधिष्ठाता इन्द्र को बाँध लाया था। इस पर ब्रह्मदेव ने उसे इन्द्रजीत की पदवी दी थी। इस बार तो पिता की आज्ञा भी है और भाई के मारे जाने से क्रुद्ध भी है। सो बाँध लाने के लिए चला। वीर दूसरे वीर को देखकर बल का अन्दाज कर लेते हैं। यथा दुहु दिसि जय जयकार करि निज निज जोरी जानि। भिरे वीर इत रामहित उत रावनहि बखान। हनुमान्‌जी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ने देखा कि भट, नाना भट, सुभट हो चुके। अब दारुण भट आ रहा है। अतः कटकटाकर उसके स्वागत के लिए गर्जे और दौड़े। ध्यान रखने की बात है कि अक्ष की अगवानी मे महाध्वनि से गर्जे थे। इसके आने पर कटकटाकर गर्जे। युद्ध का बडा उत्साह है। शत्रु से आगे जाकर मिलते हैं।

अति बिसाल तरु एक उपारा। बिरथ कीन्ह लंकेस कुमारा ॥
रहे महा भट ताके संगा। गहि गहि कपि मर्दइ निज अंगा ॥३॥

अर्थ : एक बडा भारी पेड़ उखाड़ लिया और लङ्कापति के बेटे के रथ को तोड़ डाला। उसके साथ मे महा भट थे। उन्हे पकड़ पकड़कर हनुमान्‌जी अपने शरीर मे मर्दन करने लगे।

व्याख्या : दारुण भट हैं। इसे रथी रहने देना ठीक नही। अतः उसके रथ के नष्ट करने के लिए एक बड़ा भारी पेड़ उखाड़ लिया और उसके चोट से मेघनाद के रथ का तोड़ डाला। भारी विजय हुई। इन्द्रजीत को विरथ करनेवाला दूसरा कौन है?

अक्ष के साथ सुभट थे। इसके साथ महाभट हैं। उन्हे पकड पकडकर हनुमान्‌जी शरीर से मर्दन करते हैं। इस समय कालरूप हो रहे हैं। राक्षसो के रुधिर वसा के पङ्क से शरीर लिप्त हो रहा है। मानो उबटन लगाकर कालिमा छुडा रहे हैं। भाव यह कि विरथ करके उसके सहायको को मार करके उसे अपने बराबर की परिस्थिति मे लाना चाहते है। अक्ष के साथ अपार सेना थी। अक्ष के जीते जी उस सेना के पार पाने मे कठिनता थी। अतः पहिले अक्ष को मारा तब सेना के सहार मे सुभीता हुआ। यहाँ दारुण भट हैं। उसके ससहाय रहने से विजय मे कठिनता थी। अतः उसे विरथ करके उसके सहाय का सहार करके उसे अपनी भाँति एकाकी बनाया।

तिनहि निपाति ताहि सन बाजा। भिरे जुगल मानहु गजराजा ॥
मुठिका मारि चढ़ा तरु जाई। ताहि एकछन मुरुछा आई ॥४॥

अर्थ : उन सबो को मारकर उससे भिड़ गये। मानो दो गजराज भिड़ गये हो। घूँसा मारकर पेड़ पर जा बैठे। उसे एक क्षण के लिए मूर्च्छा आगयी।

व्याख्या : मेघनाद बलदर्पित खड़ा है। दूसरे से संग्राम मे लगे हुए वीर पर अस्त्र नही छोडता। हनुमान्‌जी सबको मारकर उससे जा भिडे। मेघनाद ने भी अस्त्र नही चलाया। मल्लयुद्ध करने लगा। देखा कि बन्दर बिना अस्त्र के बाहुबल से युद्ध कर रहा है। इसके साथ बाहुबल से ही युद्ध करना चाहिए। अतः दोनो के भिड़ने का गजराजो के भिड़ने से उपमा देते हैं। गजराज सिर से सिर मिलाकर शुण्ड से शुण्ड लपेटकर युद्ध करते हैं। यहाँ भी सिर से सिर भुजा से भुजा मिलाकर युद्ध हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हनुमान्‌जी घूँसा मारकर पेड़ पर जा चढ़े कि देखें, अब लङ्का से कौन आता है ? भीतर यह धारणा हुई कि इस घूँसे से यह न उठेगा। हनुमान्‌जी का घूँसा बड़ा दृढ है। यथा : लागेगी तापै दृढ़ मूकी हनुमान् की। रावण के साथ भी यही बात हुई। जब रावण इनका घूँसा खाकर गिरा और उठकर हनुमान्‌जी के बल की प्रशंसा करने लगा तब कहते हैं : धिग धिग मम पौरुष धिग मोही। जौ तै जिअत रहेसि सुरद्रोही। यहाँ मेघनाद असाधारण वीर है। घूँसा लगने पर भी नहीं मरा। केवल क्षणभर के लिए मूर्च्छित हो गया।

उठि बहोरि कीन्हिसि बहु माया। जीति न जाइ प्रभंजन जाया ॥५॥

अर्थ : फिर उठकर उसने बहुत सी माया की। पर प्रभञ्जन : वायु के पुत्र जीते नहीं जा सकते।

व्याख्या : मूर्च्छा बीत जाने पर उठ तो गया पर भिड़ने का साहस नहीं रह गया। दूर दूर से माया करने लगा। ऐसा घूँसा खाया है कि अब यावज्जीवन हनुमान्‌जी के निकट न जायगा। यथा : बार बार पचार हनुमाना। निकट न आव मरमु सो जाना। राक्षसों का परम बल माया है। पर ये प्रभञ्जन के पुत्र हैं। सबका भञ्जन कर दिया। तब मेघनाद समझ गया कि शत्रु अजेय है।

दो. ब्रह्मअस्त्र तेहि साधा, कपि मन कीन्ह बिचार।
जौं न ब्रह्मसर मानौं, महिमा मिटइ अपार ॥१९॥

अर्थ : अन्त में उसने ब्रह्मास्त्र का सन्धान किया। तब हनुमान्‌जी ने विचार किया कि यदि मैं इसे भी नहीं मानता तो अपार महिमा मिट जायगी।

व्याख्या : जब कोई बल नहीं चलता तभी ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया जाता है। मनुष्यों पर उसका चलाना मना है। सो प्राणकृच्छ्र उपस्थित होने पर उसने बन्दर पर चला दिया। हनुमान्‌जी धनुर्वेद के आचार्य हैं : रुक्मी के गुरु हैं। रुक्मी सम्पूर्ण कौरव वीरों या पाण्डव वीरों से सामना करने का साहस रखता था। तुरन्त पहिचान गये। विचार करने लगे कि यदि मैं ब्रह्मास्त्र न मानूँ तो वह भी मेरा कुछ नहीं कर सकता। परन्तु मेरे हाथों से ब्रह्मदेव की अपार महिमा न मिटनी चाहिए। अपार इसलिए कहा कि ब्रह्मदेव के वचन को सत्य करने के लिए रामावतार हुआ है। यथा : प्रभु बिधि बचन कीन्ह चह साँचा। उस मर्यादा की रक्षा करनी चाहिए और ब्रह्मदेव ने वर देने के समय कहा भी था कि एक बार राजदर्शन के लिए तुम्हे ब्रह्मास्त्र मानना पड़ेगा और मेरा यह महान् उद्यम भी रावण से बातचीत करने के लिए है। सो ब्रह्मास्त्र मान लेने से ये मुझे रावण के यहाँ ले जावेंगे। तब उसे समझाने का अवसर प्राप्त होगा। अतः हनुमान्‌जी ने ब्रह्मास्त्र मान लेना निश्चय कर लिया।

ब्रह्मबान कपि कहुँ तेहि मारा। परतिहु बार कटकु संघारा ॥
तेहि देखा कपि मुरुछित भयऊ। नागपास बाँधेसि लै गयऊ ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ उसने कपि को ब्रह्मास्त्र मारा जिसके लगते ही नीचे गिर पडे। गिरते हुए भी सेना मारी। उसने हनुमान्‌जी को मूर्च्छित देखा। नागपाश से बाँध ले गया।

व्याख्या परतिहु बार कहकर हनुमान्‌जी का ब्रह्मास्त्र मान लेना कहा। जो महाभट मेघनाद के साथ आये थे उनके मारे जाने पर नयी कुमक लङ्का से आयी है उसका सहार गिरते गिरते किया। ब्रह्मास्त्र लगने पर भी इतनी सावधानी है कि सेना म जाकर गिरे और ऐसा हाथ पैर पीटा और पलटा लिया कि कटक का सहार हो गया। मेघनाद निकट नही आता। दूर से देखता है कि सचमुच मूर्च्छित हुआ है कि दूसरा घूँसा मारने के लिए दम्मी साधे है। मेघनाद को इनका पराक्रम देखकर भय था कि कदाचित् इस पर ब्रह्मास्त्र भी काम न करे। अथवा यह देखा कि मर गया या मूर्च्छित है। देख लिया कि मूर्च्छित है तब चिन्ता हुई कि मूर्च्छा से जागने पर इसके लिए क्या उपाय किया जायगा ? अत इसी समय बाँध लना चाहिए। पर यह लौकिक बन्धन के वश का नही है। इसलिए नागपाश से बाँधा और ले गया। पिता की आज्ञा थी मारेसि जनि सुत बांधेसु ताही। सो पूरी हुई।

जासु नाम जपि सुनहु भवानी। भव बधन काटहिं नर ग्यानी ॥
तासु दूत कि बधतर आवा। प्रभु कारज लगि कपिहि बधावा ॥२॥

अर्थ हे भवानी! सुनो। जिसका नाम जपकर ज्ञानी भवबन्धन को काट डालते हैं उसका दूत कही बन्धन मे आ सकता है ? प्रभु के कार्य के लिए कपि ने स्वय अपने को बँधा लिया।

व्याख्या भवानी के सन्दह की आशङ्का से ज्ञानघाट के वक्ता शङ्करजी बोल। यह बात भवानी सम्बोधन से स्पष्ट हुई। नाम जपने से ज्ञान होता है। यथा तत प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च। यो सू। नाम जपने से प्रत्यक् चेतन का ज्ञान होता है और विघ्न नष्ट होते हैं और ज्ञान मोच्छप्रद बेद बखाना। अत नाम के जप से भवबन्धन कटता है और नागपाश ब्रह्मपाश और वरुणपाशादि तो भवबन्धन के कार्य हैं। य भवबन्धन के सामने कुछ भी नही हैं।

हरि सेवकहि न ब्याप अविद्या। जिसे अविद्या नही बाँध सकती उसे नागपाश क्या बाँधेगा ? भाव यह कि नागपाश का प्रभाव मिट गया। मूख निशाचरो ने बन्धन दृढ करने के लिए रस्सा सीकड आदि अन्य बन्धनो से भी बाँध दिया। नागपाश अन्य बन्धन को सहन नही कर सकता। इसलिए उसका प्रभाव जाता रहा जिसे जानकर मेघनाद बडा दु खी हुआ। पर हनुमान्‌जी ने रावण को समझाने का अवसर पाने के लिए उन बन्धनो को मान लिया। नही तो वस्तुत वे विनिर्मुक्त हो गये थे।

कपि बधन सुनि निसिचर धाए। कौतुक लागि सभा सब आए ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



## ६१. रावणप्रवोध प्रसङ्ग

दसमुख सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई ॥३॥

अर्थ बन्दर का बांधा जाना सुनकर राक्षस दौडे और तमाशा देखने के लिए सब सभा मे आये। हनुमान्‌जी ने जाकर दशानन की सभा देखी। अत्यन्त प्रभुता कुछ कही नही जाती।

व्याख्या : बन्दर के देखने का कौतुक लङ्का भर को था। पर कोई देखने नही जाता था कि कही सैनिक के धोखे मे मारे न जायँ। कपि का बन्धन बडा दुर्घट व्यापार था। सो बन्धन की खबर लङ्का भर मे गूँज गयी। अत. सब दौडे पर आये सभा मे। रास्ते मे नही मिले कि कही बन्धन छुडा न ले और दरबार मे यदि तोडावेगा भी तो रावण रहेगे। कोई हर्ज न होगा। इसलिए सब सभा मे कौतुक देखने आये।

हनुमान्‌जी ने दशमुख को सोये तो देखा था। पर सभा मे नही देखा था। सभा मे रावण के सामने पेश हुए। दीख कपि जाई का भाव यह कि अपनी इच्छा से बँधे बँधाये गये। लङ्का की सभी बातें अलौकिक है। अत कहते हैं. कहि न जाय कछु अति प्रभुताई। सैनिको के लिए कहा : को गनै। सेना बल के लिए कहा. बरनत नहि बनै। महल के लिए कहा कहि जात सो नाही। अब प्रभुता के लिए कहते है· कहि न जाय कछु अति प्रभुताई।

कर जोरे सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि विलोकत सकल सभीता ॥
देखि प्रताप न कपि मन सका। जिमि अहिगन महु गरुड असंका ॥४॥

*अर्थ : देवता और दिक्पाल बडी नम्रता से हाथ जोडे सब रावण की भौह* भयभीत हुए ताक रहे हैं। प्रताप देखकर बन्दर के मन मे कुछ भी शङ्का नही हुई जैसे सर्प समाज में गरुड निशङ्क हो।

व्याख्या · अति प्रभुताई को स्पष्ट करते हैं। दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरहि ते सिर नावै। आज्ञापालन के लिए भृकुटी देखते हैं। क्या आज्ञा कब होगी इसका ठीक नही। इसलिए सभीत है। इशारे पर काम न हुआ तो रावण नाराज हो जायँगे। इसलिए सभीत हो भृकुटी देखते हैं।

दिक्पाल सशङ्क हैं पर हनुमान्‌जी नही। साँपो की सभा मे कौन सशङ्क न होगा? विशेषत· रावणरूपी महानाग के सामने। यथा · जस पावन रावन नाग महा। *पर गरुडजी नही सभीत होते। प्रभु प्रताप से गरुड व्याल हो गये और परम* लघु व्याल गरुड हो गया। यथा . प्रभु प्रताप ते गरुडहि खाइ परम लघु व्याल। *हनुमान्‌जी कहते हैं :* देखो मैं दसकठ सभा सब मोते कोउ न सबल तो।

दो कपिहि बिलोकि दसानन, बिहँसा कहि दुर्बाद।
सुतबध सुरति कीन्हि पुनि, उपजा हृदय बिषाद ॥२०॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : हनुमान्‌जी को देखकर दशानन दुर्वचन कहकर खूब हँसा। फिर पुत्रवध का स्मरण करने से मन में विषाद उपजा।

व्याख्या : रावण ने पहिले हनुमान्‌जी को कभी नही देखा था। इनके बँध जाने की खुशी में सुतवध भूल गया। हँस पड़ा। दुर्वाद तो आसुरी प्रकृति के लिए स्वाभाविक ही है। यथा : रघुपति निकट गयउ घननादा। नाना भाँति करेसि दुर्वादा। दुर्वाक कहकर हँसा तो पर हँसी टिकी नही। सुतवध स्मरण हो आया तब विषण्ण हो गया।

कह लंकेस कवन तइ कीसा। केहि के बल घालेहि बनखीसा॥
की धौ स्रवन सुनेहि नहिं मोही। देखउँ अति असंक सठ तोही॥१॥

अर्थ : लङ्कापति ने कहा रे वानर तू कौन है और किसके बल से तूने वन उजाड़ा। क्या तूने मुझे कभी कान से भी नही सुना है। मैं तुझे बड़ा निडर देख रहा हूँ।

व्याख्या : लङ्का का राजा है। जो घटनाएँ वहाँ हों उनके निर्णय का अधिकार है। अतः पूछता है कि बन्दर ! तू कौन है ? यह पहिला प्रश्न है। हनुमान्‌जी चुप है कि सब प्रश्न हो जाने दो। यहाँ अङ्गदजी के और इनके स्वभावका अन्तर स्पष्ट दृष्टिगोचर होता है। अङ्गदजी प्रश्न समाप्त होते न होते ही उत्तर देते हैं। यथा : कह दसकंठ कौन तै बन्दर। मैं रघुबीर दूत दसकंधर। मम जनकहिं तोहि रही मिताई। इत्यादि। हनुमान्‌जी सीताजी के प्रति दूत बनकर भेजे गये थे। इसलिए इन्हे रावण को प्रणाम करना आवश्यक नही था। अङ्गदजी तो सीधे सीधे रावण के प्रति दूत बनाकर भेजे गये थे। अतः उन्हे प्रणाम करना आवश्यक था। यथा : बैठ सभा सिर नाय। दूसरा प्रश्न है किसके बल से वन को उजाड़ा ? रावण के यहाँ उचित अनुचित का विचार नही है। बलाबल का विचार है। बली हो तो उसे उजाड़ने का अधिकार है। दूसरी बात यह कि शत्रु तो वह है जिसने तुम्हे पीठ ठोंककर भेजा है। जिसकी आँखो मे मेरा उपवन गड़ता है। तुझसे कोई वैर नही है।

तीसरा प्रश्न है कि तू निडर दिखायी पड़ता है। मुझे प्रणाम भी नहीं किया। तुझे अभी भरोसा है कि भेजनेवाला तेरी सहायता करेगा। इससे यह अनुमान होता है कि तूने मुझे कान से भी नही सुना अर्थात् तुझे मेरे प्रभाव का सामान्य परिचय भी नही है। यदि होता तो तू इतना निःशङ्क कैसे होता ? किसका सामर्थ्य है कि मेरे सामने आवे। रावण नाम विदित जग जाना। लोकप जाके बंदी खाना। मेरा नाम सुनकर संसार सशङ्क हो उठता है। यथा : भई सभय जब नाम सुनावा। रूप से ठीक परिचय नही होता। बड़े विशालकाय भी अल्पवीर्य होते हैं। अतः यथार्थ परिचय नाम से होता है। अति असंक का भाव यह कि इस भाँति मेरे प्रश्न को सुन रहा है जिस भाँति प्रभु लोग विनय सुनते हैं : फिर भी हनुमान्‌जी चुप रहे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मारे निसिचर केहि अपराधा । कहु सठ तोहि न प्रान कै बाधा ॥
सुनु रावन ब्रह्मांड निकाया । पाइ जासु बल बिरचति माया ॥२॥

अर्थ : तूने राक्षसों को किस अपराध से मारा ? रे शठ ! बतला तुझे प्राण की बाधा नही है । हे रावण ! सुन जिसका बल पाकर माया सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड समूहो की रचना करती है ।

व्याख्या : चौथा प्रश्न निशिचर वध विषयक है । बाग के उजाड़े जाने का निशिचर वध से अधिक कष्ट है । इसलिए निशिचर वध की बात सबके पीछे पूछता है । यथा : प्राणन ते प्यारो मेघनाद ते दुलारो बाग अति अनुराग हिय जातुधान धीर को । जो कारण निशिचर वध का है वही अक्ष वध का है । इसलिए अक्ष वध विषयक पृथक् प्रश्न नही किया । दूसरे यह कि अक्ष विषयक पृथक् प्रश्न न करके अपनी प्रजा पालकता दिखलाता है । तीसरे यह कि ऐसा प्रश्न करने मे अप्रतिष्ठा है । इतना पूछने पर भी जब हनुमान्जी नही बोले तब समझा कि यह प्राण से निराश है । इसलिए नही बोलता है । तब कहा कि तेरा प्राण नही मारा जायगा । तू असली बतला दे कि क्या माजरा है ? इस भाँति रावण मुख्य शत्रु को जानना चाहता है । सठ सम्बोधन से निर्लज्जता ध्वनित है । भाव यह कि बन्ध से तुझे लज्जा नही है । वध के लिए मैं क्षमा प्रदान करता हूँ ।

चारो प्रश्न सुनकर हनुमान्जी मुख्य अभिप्राय रावण का समझ गये । अत. दूसरे प्रश्न का उत्तर पहिले देना उचित समझा । रावण का बल पर बड़ा ध्यान है । इसलिए बल निरूपण द्वारा ही परिचय देते हैं । इसी व्याज से उपदेश भी करते हैं । ब्रह्माण्डो के समूहो की रचना माया जिसके बल से करती है । यथा : एक रचइ जग गुन बस जाके । प्रभु प्रेरित नहिं निज बल ताके । लव निमेष महु भुवन निकाया । रचइ जासु अनुसासन माया । अथवा राक्षसो का परम बल माया है । उस माया को भी प्रभु का ही बल है ।

जाके बल बिरंचि हरि ईसा । पालत सृजत हरत दससीसा ॥
जा बल सीस धरत सहसानन । अंडकोस समेत गिरि कानन ॥३॥

अर्थ : हे दशशीश ! जिसके बल से ब्रह्मा विष्णु महेश सृष्टि का पालन सर्जन और संहार करते हैं । जिसके बल से सहस्रमुखवाले शेषजी पर्वत और वन के सहित समस्त ब्रह्माण्ड को सिर पर धारण करते हैं ।

व्याख्या : माया का आधिपत्य सम्पूर्ण ब्रह्माण्डो पर है और विधि हरि हर का आधिपत्य एक ब्रह्माण्ड पर रहता है । यथा : लोक लोक प्रति भिन्न बिधाता । भिन्न बिष्णु सिव मनु दिसि त्राता । सो वे भी उसी के बल पर अपना कार्य करने मे समर्थ होते हैं । किसी कल्प मे शिवजी से ही सृष्टि हुई । किसी कल्प मे ब्रह्मदेव से और किसी मे विष्णु से सृष्टि हुई । इसीलिए गोस्वामीजी क्रम नही देते । विरञ्चि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



के लिए पालत और हरि के लिए सृजत कह दिया · सृष्टि की विचित्रता कहते हैं कि दस सिर वाले को भी बनाते हैं। माया ब्रह्माण्ड बनाती है। उन ब्रह्माण्डो मे उत्पन्न होकर त्रिदेव सृष्ट्यादि करते हैं। ब्रह्माण्ड के अधिपतियो को कहकर उसके आधार का हाल कहते हैं . महतानन के सामने दशानन क्या है। ब्रह्माण्ड भुवन विराज जाके एक सिर जिमि रजकनी। वे भी प्रभु के बल से ही ब्रह्माण्ड उठाये हैं . तुम कैलास उठाकर ही कृत कृत्य बने बैठे हो।

धरै जो विविध देह सुरत्राता। तुम्ह से सठन सिखावनु दाता ॥
हर कोदंड कठिन जेहि भजा। तोहि समेत नृप दल मद गजा ॥४॥
खरदूषन त्रिसिरा अरु बाली। बधे सकल अतुलित बलसाली ॥५॥

अर्थ : जो देवताओ की रक्षा करनेवाला अनेक प्रकार के शरीरो को धारण करता है। जो तुमसे शठों को सिखावना देनेवाला है। शिवजी के कठिन धनुष को जिसने तोडा और तुम्हारे सहित राजसमाज के मद का भङ्ग किया। जिसने सब अतुलित बलशाली खरदूषण त्रिशिरा और बालि का वध किया।

व्याख्या वे ही सुरत्राता हैं। देवताओ की रक्षा के लिए अनेक प्रकार का शरीर धारण करते हैं। यथा : मीन कमठ सूकर नर हरी। बामन परसुराम बपुधरी। जब जब नाथ सुरन्ह दुख पायो। नाना तनु धरि तुमहि नसायो। रावण ने शठ कहा था। उसी के उत्तर मे कहते हैं · तुमसे सठन्ह सिखावन दाता। शठ विनय से नही मानते दण्ड से ही मानते हैं। सो तुम से शठो के लिए ही जो देवताओ का बुरा चाहते है। यथा · तिन्हकर मरन एक बिधि होई। कहौं बुझाइ सुनहु अब सोई। फिर शरीर धारण किया है। परशुरामावतार तक ऊपर कहा था। अब रामावतार कहते हैं। शिवजी का धनुष तोडना मानवी शक्ति के बाहर की बात थी। उसे भी जिसने तोडा। वहाँ तुम भी थे। तुम्हारा भी पराभव हो चुका है। तुम उन्हे भली प्रकार से जानते हो। यथा : जनक सभा अगनित भुवपाला। रहे तुम्हउ बल अतुल बिसाला। भजि धनुप जानकी बिआही। तब सग्राम जितेहु किन ताही। और भी सुनो। खरदूषण रावण के समान बलवाले थे। बालि अधिक बलवाला था। तथा अतुलित बलशाली विराध आदि सबको मारा। अब केवल तुमही बच रहे हो। सो तुम्हारा भी योग आ गया है। उनसे विरोध कर बैठे हो और यह भी नही जानते कि—

दो. जाके बल लवलेश तें, जितेहु चराचर झारि।
तासु दूत मै जा करि, हरि आनिहु प्रिय नारि ॥२१॥

अर्थ जिनके बल के लवलेश मात्र से तुमने चराचर को जीत लिया और जिनकी प्रिय पत्नी को तुम हरण कर लाये हो उन्ही का मैं दूत हूँ।

व्याख्या . उन्ही के बल का लव ब्रह्मदेव और शिवजी मे है। यथा : जेहि सुख सुधा सिंधु सीकर ते सिव बिरंचि प्रभुताई। और उनके बल का लेश तुम्हारे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मे है। यथा : मैं ब्रह्मा मिलि तेहि बर दीन्हा। इसीलिए लवलेश कहा। उससे तुमने चराचर को जीत लिया। यहाँ तक द्वितीय प्रश्न का उत्तर देकर प्रसङ्ग प्राप्त प्रथम प्रश्न का उत्तर देते हैं कि जिसकी प्रिय स्त्री को हरण कर लाये हो : उसी का मै दूत हूँ। भाव यह कि तुम्हारा अनुमान ठीक नही। मै किसी का भेजा बाग उजाड़ने के लिए नही आया हूँ। जिसका तुमने इतना अपकार किया है उसी का भेजा हुआ सीताजी को देखने आया हूँ : इससे स्वयं राजा रावण का अपराधी होना सिद्ध किया।

जानउँ मै तुम्हारि प्रभुताई। सहसबाहु सन परी लराई ॥
समर बालि सन करि जसु पावा। सुनि कपि बचन बिहँसि बहरावा ॥१॥

अर्थ : मैं तुम्हारी प्रभुता जानता हूँ। सहस्रबाहु से तुम्हारी लडाई हुई थी और बालि से भी युद्ध करके तुमने यश प्राप्त किया है। हनुमान्‌जी का वचन सुनकर उसने हँसकर बात उड़ा दी : वाह वाह कर दिया।

व्याख्या : कीधौ स्रवन सुनेहि नहिं मोही। देखउँ अति असक सठ तोही। इस तीसरे प्रश्न का अब उत्तर देते हैं कि केवल कान से सुना हो नही है। मेरी व्यक्तिगत जानकारी है। सहस्रार्जुन से लडाई पड़ी थी। भाव यह कि जीतोगे क्या ? लड़ाई ठान देना ही तुम्हारी प्रभुता है। यह भी यश हुआ कि रावण बालि से लड गये थे। भाव यह कि तुम्हे बलाबल का परिज्ञान नही है। भला आज तक कोई योद्धा प्रतिद्वन्द्वी के कोखतले रहा हो ? यह यश अकेले तुमने ही पाया है। तुम्हारी प्रभुताई जानकर ही मैं अशङ्क हूँ। इन बातो को रावण ने हँसकर उड़ा दिया। जिसमे जो न जानता हो वह यही समझे कि रावण द्वारा इनका पराभव हुआ होगा।

खायेउँ फल प्रभु लागी भूखा। कपि सुभाउ ते तोरेउँ रूखा ॥
सबके देह परम प्रिय स्वामी। मारहिं मोहि कुमारग गामी ॥२॥

अर्थ : हे प्रभो ! भूख लगी थी सो फल खा लिया। वानर स्वभाव के कारण वृक्ष तोड़ा। हे स्वामी ! देह सब को प्रिय है। कुमार्ग मे चलनेवाले मुझे मारने लगे।

व्याख्या : चौथा प्रश्न मारे निसिचर केहि अपराधा का उत्तर देते हैं। जिस अशोक वाटिका का फल खाया उसका वह प्रभु है। इसलिए प्रभु सम्बोधन यहाँ दिया। अथवा जहाँ तक दूत सम्बन्धी बातें कहते रहे तहाँ तक शठ के उत्तर में शठ ही कहा। और जब व्यक्तिगत अपराध का उत्तर माल मालिक के सामने देना पड़ा : प्रभु कहते हैं। अत्यन्त भूख में फल तोडकर खा लेना कोई अपराध नही है और न स्वभावानुसार आचरण ही अपराध है। पेड तोडना तो बन्दर का स्वभाव ही है। अतः इन दोनो प्रक्रियाओ मे मेरा कोई अपराध नही है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तुम्हारे निसिचर कुमार्गगामी हैं। हांका भी नही सीधे सीधे मारना ही प्रारम्भ कर दिया। आप तो महिष मनुप धेनु खा जाते हैं। मुझे फल खाने पर मारने लगे। मैंने देखा कि न बोलूँगा तो ये मार ही डालेंगे। मुझ शस्त्र विहीन पर अस्त्र शस्त्र से प्रहार करने लगे। आत्मरक्षा तो सभी करते हैं। क्योंकि ब्रह्मदेव से लेकर स्तम्बपर्यन्त देह तो सबको परम प्रिय है। इसमे सेना का अपराध कहा।

जिन्ह मोहि मारा ते मैं मारे। तेहि पर बाँधेउ तनय तुम्हारे ॥
मोहि न कछु बांधे कइ लाजा। कीन्ह चहउँ निज प्रभुकर काजा ॥३॥

अर्थ : जिन्होने मुझे मारा उन्हे मैने भी मारा। तिसपर तुम्हारे पुत्र ने मुझे बांध लिया। मुझे अपने बाँधे जाने की कुछ भी लज्जा नही है। मैं तो अपने प्रभु का कार्य किया चाहता हूँ।

व्याख्या : फिर तो लड़ाई छिड़ गयी। जिन्होंने मुझे मारा उसे मैंने मारा। मै निरपराध हूँ। आप प्रभु हैं। वेद के भाष्यकार हैं। स्वय वेद कहता है। योऽस्मान् धूर्वयति त वय धूर्वयामः। जो हमें मारता है उसे हम मारते हैं। भला वे तो साधारण सैनिक थे। तुम्हारा बेटा तो राजकुमार है। उसे तो न्याय करना था। उसने उलटे मुझी को बांध लिया। अपराध राजकुमार का है मेरा कुछ भी नही। इससे मेघनाद का अपराध कहा।

कहु सठ तोहि न प्रान कर बाधा का उत्तर देते हैं। पहिले सठ कहने का उत्तर। तोहि से सठन्ह सिखावन दाता कहकर दिया। अब दूसरी बार जो शठ शब्द का उपयोग किया उससे ध्वनि यह निकली कि तू निर्लज्ज है। बँधने पर भी बेपरवाह दिखायी पड़ता है। इस पर कहते है कि मुझे बँध जाने की लज्जा नही है। क्योंकि लजा तो जुगुप्सित कर्म करने से होती है। स्वामी के कार्य सम्पादन के प्रयत्न मे बांधा जाना शोभा है। भाव यह कि मैं नागपाश के बन्धन मे नही हूँ। स्वामी का कार्य किया चाहता हूँ। इसलिए बँधा हुआ आया हूँ। दूसरे उपाय से तुम्हारे तक पहुँच न होती।

बिनती करउँ जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन ॥
देखहु तुम्ह निज कुलहि बिचारी। भ्रम तजि भजहु भगत भय हारी ॥४॥

अर्थ : हे रावण! मैं हाथ जोडकर विनती करता हूँ। अभिमान छोड़कर मेरी सीख सुनो। तुम अपने कुल को विचारकर देखो। भ्रम छोड़कर भक्त भयहारी भगवान् को भजो।

व्याख्या : अब निज प्रभु का काज कह रहे हैं। महात्मा लोग हाथ जोड विनती करके भी उपकार करते हैं। राम भक्ति से यन्त्रित साक्षात् शिवजी अपने भक्त के कल्याण के लिए हनुमान् रूप मे हाथ जोडकर विनती कर रहे हैं। मोर सिखावन सुनहु : कहकर अपना गुरु होना भी द्योतित कर रहे हैं। नही तो विनती

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



करनेवाला अपनी गरज कहता है। सिखावन नही देता। मान रहने से सिखावन काम नही करता। इसलिए पहिले मान छोड़ने को कहते हैं।

सिखावन यह है कि तुम विद्वान् हो। कुल धर्म न छोड़ो। जिस मार्ग से बड़े लोग चले हों उसी मार्ग से चलना चाहिए। तुम्हारे पितामह कैसे भजन करनेवाले हैं। तुम्हारे पिता कैसे भजन करते हैं। भाई कैसा भक्त है। सब भक्त भयहारी को भजते हैं। तुम भ्रम में पड़ गये हो। तुम में भजन करने की शक्ति है। यह बात गलत है कि : होइहि भजन न तामस देहा। तुम भजन करो। वैर करने से दुर्वंश होगा। भजन करने से वे तुम्हारे वश हो जायँगे। अथवा जो तुम्हें इनके मनुष्य होने का भ्रम है उसे छोड़कर इनका भजन करो।

जाके डर अति काल डेराई। जो सुर असुर चराचर खाई॥
तासों बयरु कबहुँ नहिं कीजे। मोरे कहे जानकी दीजे॥५॥

अर्थ : जो देवता राक्षस चर अचर सबको खा जाता है। ऐसा काल भी जिसके डर से अत्यन्त डरता है। उससे कभी वैर न करना चाहिए। मेरे कहने से जानकी को दे दो।

व्याख्या : अगजग जीव नाग नर देवा। नाथ सकल जग काल कलेवा। काल का पेट कभी नही भरता।

ऊमरि तरु विसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया॥
जीव चराचर जन्तु समाना। भीतर बसहि न जानहि आना॥
ते फल भच्छक कठिन कराला। तव भय डरत सदा सोउ काला॥

काल ब्याल कर भच्छक जोई। विषम बली ते वादि बैर को बढ़ावनो। ऐसे विषम बलवान से तुम वैर बढ़ा रहे हो। वे तुमसे वैर नही करते। अभिमानी बात समझ जाने पर भी अभिमान के कारण से बात नही मानता। इसलिए हनुमान्जी कहते हैं : मेरे कहने से जानकी दे दो। भाव यह कि तुम्हारे ऐसे अभिमानी के लिए सुअवसर है। तुम कह सकते हो कि उनका दूत आकर हाथ जोड़ बिनती करने लगा तो मैंने दे दिया। दूसरा भाव यह कि गुरुजी का अनुशासन है। अपने शिष्य से कह रहे हैं कि मोरे कहे जानकी दीजे। तीसरे यह भी द्योतित किया कि ये सब बातें मै अपनी ओर से कहता हूँ। प्रभु ने तुमसे कहने के लिए नहीं भेजा है।

दो. प्रनतपाल रघुनायक, करुनासिंधु खरारि।
गए सरन प्रभु राखिहैं, तव अपराध बिसारि॥२२॥

अर्थ : खरारि रघुनायक प्रणतपाल और करुणासिन्धु हैं। शरण जाने पर तुम्हारे सब अपराधों को भूलकर तुम्हारी रक्षा करेंगे।

व्याख्या : यदि अपराध की गम्भीरता से तुम निराश होते हो तो मत हो। यद्यपि खरारि हैं। दुष्टो के नाश के लिए ही उनका प्रादुर्भाव है। तथापि रघुनायक

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



करुणासिन्धु हैं। एक बार के प्रणाम से अपना लेते हैं। रघुनायक से कुल का उत्कर्ष कहा। प्रणतपाल से व्रत कहा। करुणासिन्धु कहकर स्वभाव कहा। प्रभु कहकर उनका सामर्थ्य द्योतित किया। राखिहैं कहने से भाव यह कि तुम्हारी प्रभुता बनी रहेगी। अपराध तो क्षमा हो ही जायगा। वे तुम्हारे अपराध का स्मरण भी न करेंगे। यथा : बानि बिसमरन सील हैं मानद अमान की। निज गुन अरिकृत अनहितौ दास दोष सुरति चित रहत न दिये दान की।

राम चरन पंकज उर धरहू। लंका अचल राजु तुम करहू॥
रिषि पुलस्ति जस बिमल मयंका। तेहि ससि महुँ जनि होउ कलंका॥१॥

अर्थ : रामजी के चरणों को हृदय में धारण करो और लङ्का का तुम अचल राज करो। पुलस्त्य ऋषि का यश निर्मल चन्द्रमा के समान है। उस चन्द्रमा में तुम कलङ्क न बनो।

व्याख्या : अभी तक लङ्का में तुम्हारा राज्य अचल नहीं हुआ। छीन छोर की वस्तु छीन छोर में हो चली जाती है। मैं तुम्हें राज्य को अचल करने का मन्त्र बतलाता हूँ। श्रीरामजी के चरण कमल को हृदय में धारण : अचल करो। उन चरणों से लक्ष्मी पृथक् नहीं हो सकती। यथा : यद्यपि परम चपल श्री सन्तत थिर न रहति कबहूँ। हरि पद पकज पाइ अचल भइ करम बचन मनहूँ। अभी माँ से यही मन्त्र मिला है : रघुपति चरन हृदय धरि तात मधुर फल खाहु। सो ब्रह्मास्त्र ने काम न किया। नागपाश व्यर्थ हुआ। अतः वही उपदेश देते हैं। रावण के मन में बात बैठती न देखकर कहते हैं कि इस चन्द्र में कलङ्क है। ऋषि पुलस्त्य का यश ऐसा चन्द्र है कि उसमें कलङ्क नहीं है। कपूत के उत्पन्न होने से कुल में कलङ्क लगता है। जो अपयश भाजन प्रियजन द्रोही हो वही कुल कलङ्क है। यथा : कुल कलंक जेहि जनम्यो मोही। अपजस भाजन प्रिय जन द्रोही। स्त्री चोरी का अपयश भी होगा और तुम्हारे अपराध से सब प्रिय जन मारे जायँगे।

राम नाम बिनु गिरा न सोहा। देखु बिचारि त्यागि मद मोहा॥
बसन हीन नहिं सोह सुरारी। सब भूषन भूषित बर नारी॥२॥

अर्थ : राम नाम के बिना वाणी की शोभा नहीं। मद मोह छोड़कर विचार कर देखो। हे देवताओं के शत्रु सब गहनों से आभूषित श्रेष्ठ स्त्री की शोभा बिना कपड़े के नहीं होती।

व्याख्या : आहार, निद्रा, भय और मैथुन का भाव पशु भी आपस में प्रकट कर ही लेते है। वाणी की विशेषता तो भगवन्नाम ग्रहण में ही है। मद मोह के परित्याग में पुरुषार्थ अपेक्षित है। भोग तो प्रारब्धाधीन है। तू पण्डित है। मद मोह का परित्याग कर। मोहनिशा है। उसमें मद : अभिमान ही अन्धकार है। यथा : त्यागहु तम अभिमान। इसी अन्धकार के कारण तुम्हे बीस आँख रहते दिखायी नहीं पड़ता।

ankurnagpal108@gmail.com



वरनारी अर्थात् सौभाग्यवती चन्द्रवदनी गहनो से भली भाँति सजी हुई होने पर भी बिना सारी के अदर्शनीया होती है। इसी भाँति तुम्हारी वाणी मे सभी उत्कर्ष विधायक गुण है। पर राम नाम की सारी नही है। अतः अमङ्गल रूपा है। रावण राम नाम नही लेता। आवश्यकता पडने पर अन्य कल्पित शब्दो से काम चलाता है। यथा वह तपसिन कर बात बहोरी। हौ मारिहौं भूप दोउ भाई। जिनके बल कर गर्व ताहि इत्यादि। अतः पण्डिताई भी तुम्हारी व्यर्थ गयी। रह गयी सम्पत्ति प्रभुताई। उसकी भी गति सुनो।

राम बिमुख सपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिन पाई॥
सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाही। बरषि गएँ पुनि तबहि सुखाही॥३॥

अर्थ : जो राम विमुख हैं उनकी सम्पत्ति और प्रभुताई ठहरती नही। उसका पाना न पाना बराबर हो जाता है। जिन नदियो के उद्गम स्थान मे जल नही है वर्षा हो जाने पर वे सूख जाती हैं।

व्याख्या : बरसाती नदियो मे भी कभी मेघ की वर्षा से बाढ आ जाती है। नही तो साल भर वे सूखी ही पडी रहती हैं। इसी भाँति सम्पत्ति और प्रभुताई कभी राम विमुख को भी हो जाती है पर ठहरती नही। उससे कोई वास्तविक लाभ नही होता। अर्थ का फल धर्म है काम नही है। वह तो अवान्तर प्रयोजन है। राम विमुख की सम्पत्ति और प्रभुताई का पर्यवसान काम मे होता है। महा प्रयोजन सिद्ध नही होता। इसीलिए : पाई बिन पाई कहा। पाई बिना दिये केवल अङ्क लिखने से द्रव्य का बोध नही होता। पाई देने से सौ का अर्थ सौ रुपया है १००)। उसी पाई बिना १०० का कोई अर्थ नही होता। राम के सम्मुख होना पाई है। उसी से सम्पत्ति का बोध होता है। जाय रही का उदाहरण देते हैं।

राम विमुख मे भी सुकृत मेघ की वर्षा से कभी सम्पत्ति प्रभुताई की बाढ आजाती है। यथा : छुद्र नदी भरि चली तोराई। जस थोरेहु धन खल इतराई। पर वह जल ठहरता नही। आता है और निकल जाता है। इसी भाँति तुम्हारी सम्पत्ति और प्रभुताई भी ठहरनेवाली नही है। भगवच्चारणारविन्द सजल मूल है। वहाँ से सम्बद्ध सम्पत्तिरूपी नदी कभी नही सूखती।

सुनु दसकंठ कहौ पन रोपी। बिमुख राम त्राता नहि कोपी॥
संकर सहस बिस्नु अज तोही। सकहि न राखि रामकर द्रोही॥४॥

अर्थ : हे दशशीश! सुनो। मै प्रतिज्ञा करता हूँ कि रामविमुख होने से कोई रक्षक नही होता। हजार शङ्कर विष्णु और ब्रह्मा राम के द्रोही की रक्षा नही कर सकते।

व्याख्या : यदि कहो कि मेरे लिए यह नियम लागू नही है। मेरी सहायता शङ्करजी और ब्रह्मदेव करेंगे। यथा : साहिब महेस सदा सकित रमेस मोहि निज तप साहस बिरंचि लियो मोल है। इसपर कहते हैं कि मैं प्रणपूर्वक कहता हूँ। कोई इसे अन्यथा नही कर सकता। जबतक रामजी विमुख नही हैं तभी तक वे भी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रक्षा कर सकते हैं। रामजी के विमुख होने पर कोई रक्षा नहीं कर सकता। यथा : धरि निज रूप गयउ पितु पाहीं। रामविमुख राखा तेहि नाहीं : जवाब दे देते हैं कि मेरी की हुई रक्षा नहीं हो सकती।

यदि कहो कि मैंने शिर चढ़ाया है रक्षा क्यों न करेंगे? इसपर कहते हैं कि उनके सामर्थ्य की बात नहीं है। उनकी प्रभुता स्वतः सिद्ध नहीं है रामजी की दी हुई है। यथा : बिधिहि विधिता, हरिहि हरिता, हरहि हरता जिन दई[1]। सो जानकी पति मधुर मूरति मोदमय मंगल मई : रामविमुख की रक्षा वे कर नहीं सकते। यथा : काहू बैठ न कहा न ओही। राखि को सकै रामकर द्रोही।

दो. मोह मूल बहु सूल प्रद, त्यागहु तम अभिमान।
भजहु राम रघुनायक, कृपासिंधु भगवान ॥२३॥

अर्थ : मोह ही जिसका मूल है और बहुत से शूलों का देनेवाला अभिमान अन्धकार रूप है। इसका त्याग करो और रघुनायक कृपासिन्धु भगवान् राम को भजो।

व्याख्या : मोह मानस व्याधि का मूल है और अति अभिमान संसार का मूल है। यथा : मोह सकल व्याधिन्ह कर मूला। तथा संसृत मूल सूल प्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना : अथवा मोह रात्रि मे अभिमान रूपी अन्धकार छाया रहता है। इस अभिमान को छोड़ो। पुरुषार्थ करके रामनाम रूपी चन्द्र को स्थान दो तो यह मोह रात्रि पलटकर राका रजनी रूपी भक्ति हो जावे। यथा : राका रजनी भगति तव रामनाम सोइ सोम : तव तुम्हें सूझ पड़ेगा। नहीं तो तुम्हें सूझता नहीं है। मानस व्याधि के मूल मोह और शूलप्रद अभिमान को भजते हो कृपासिन्धु भगवान् को नहीं भजते।

जदपि कही कपि अति हित बानी। भगति बिबेक बिरति नयसानी ॥
बोला बिहँसि महा अभिमानी। मिला हमहि कपि गुरु बड़ ग्यानी ॥१॥

अर्थ : यद्यपि हनुमान्‌जी ने अत्यन्त हित की वाणी कही। जिसमें भक्ति, ज्ञान, वैराग्य और नीति सनी हुई थी। वह महा अभिमानी खूब हँसा और बोला कि मुझे तो यह बन्दर बड़ा ज्ञानी गुरु मिला।

व्याख्या : इस लोक या परलोक का उपदेश हित है और दोनों लोक के कल्याण का उपदेश अति हित है। संक्षेप से हनुमान्‌जी के उपदेश में ब्रह्म निरूपण, अवतार निरूपण, अवतार का कारण, रामकथा, दोष त्याग, गुण ग्रहण, रक्षा का उपाय शरणागति आदि का निरूपण था। अतः उसे अतिहित कहा तथा उपासना काण्ड, ज्ञानकाण्ड और कर्मकाण्ड की संमत बात कही। धर्मार्थ और काम का सामञ्जस्य जिसमें हो ऐसा मार्ग बतलाया। भजन से उपक्रम यथा : भ्रम तजि

---

१. कुछ प्रतियों मे यह पाठ भेद है। हरिहि हरिता बिधिहि बिधिता सिवहि सिवता जो दई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भजहु और भजन से ही उपसंहार किया। यथा : भजहु राम रघुनायकहि : अतः भक्तिरससानी वाणी हुई तथा मान तजि से उपक्रम और त्यागहु तम अभिमान से उपसहार करके विवेकसानी वाणी कही। देखहु तुम निज कुलहि बिचारी से उपक्रम और तेहि कुल महि जनि होहि कलंका से उपसंहार करते हुए विरत सानी वाणी कही तथा तासो बैर कबहुँ नहि कीजे से उपक्रम करके तथा बरखि गएँ पुनि तबहि सुखाही से उपसहार करके नयसानी वाणी कही।

जो उचित शिक्षा न सुने वह महा अभिमानी है। यथा : अस कहि चला महा अभिमानी : इतनी देर तक हँसी रोके रहा। उपदेश समाप्त होते ही हँसा। मन मे यह भाव है कि मैं पण्डित वेदो का भाष्यकर्ता मुझे यह बन्दर गुरु बनकर उपदेश करने चला है।

मृत्यु[1] निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही॥
उलटा होइहि कह हनुमाना। मति भ्रम तोहि प्रगट मै जाना ॥२॥

अर्थ : रे खल ! तेरे निकट मृत्यु आगयी है। तू अधम मुझे सिखाने चला है। हनुमान्जी ने कहा कि उलटा होगा। क्योकि मति भ्रम तुझे है मैंने स्पष्ट जान लिया।

व्याख्या : रावण बोला कि तू खल है। साधु होता तो मुझसे सीखने आता। जिसकी मृत्यु निकट आती है उसी को मुझे सिखाने का साहस होता है। भला मुझे कोई क्या सिखावेगा ? तिस पर यह अधम है। यथा : अस मैं अधम सखा सुनु और मैं उत्तम हूँ। यथा : उत्तम कुल पुलस्त्य कर नाती . अधम का उत्तम को सिखावन देने का हौसला ही मृत्युसूचक है।

हनुमान्जी ने कहा कि उलटा होगा। भाव यह कि मृत्यु तेरे निकट है और बतलाता है कि मेरे निकट है यह उलटी बात है। क्योकि मतिभ्रम तो तुझे हुआ है। मुझे तो मतिभ्रम है नही। यह बात मै स्पष्ट देख रहा हूँ और जो कालवश हो जाता है उसे मतिभ्रम होता है। यथा : निकट काल जेहि आवत साईं। तेहि भ्रम होइ तुम्हारेहि नाईं। मै हितोपदेश देता हूँ तुम्हे अविनय प्रतीत होता है अथवा तेरी खलता तो मेरी आँखो देखी हुई बात है। यथा : बहु बिधि खल सीतहि समुझावा · सो तू अपने को साधु मानता है और मै हाथ जोड़कर हित कर रहा हूँ। सो मुझे खल ठहराता है। यह स्पष्ट मतिभ्रम है।

सुनि कपि वचन बहुत खिसिआना। बेगि न हरहु मूढकर प्राना॥
सुनत निसाचर मारन धाए। सचिवन्ह सहित बिभीषनु आए ॥३॥

अर्थ : हनुमान्जी का वचन सुनकर बड़ा झल्लाया : और आज्ञा दिया कि

---

१. यहाँ चित्रालङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इस मूढ का प्राण क्यों शीघ्र ही नही हरण कर लेते। सुनते ही राक्षस मारने दौड़े। तब तक मन्त्रियो के साथ विभीषणजी आगये।

व्याख्या : बात सच्ची थी। कोई उत्तर तो था ही नही अतः झल्लाया। रावण जब झल्लाते है तब प्राण लेने पर तैयार हो जाते हैं। यथा : परुष वचन सुनि काढि असि बोला अति खिसिआन। तब सक्रोध निसिचर खिसियाना। काढेसि परम कराल कृपाना : इसलिए प्राण हरण की आज्ञा देता है। हनुमान्‌जी को मूढ कहता है कि यह सच्ची बात नही समझता। पशु को शिक्षा देने का अधिकार क्या है ?

हनुमान्‌जी रावण के सन्निकट खडे हैं और जिनका वध दण्ड देने का काम है वे दूर खड़े हैं। दरबार भी बहुत बड़ा है। अतः निशाचरो का दौडना लिखते है। विभीषण का बहुत बड़ा दर्जा है। इनके सचिव अलग है इसी से रावण ने कहा कि करत राज लका सठ त्यागी। इनके सचिवो के लिए भी दरबार मे स्थान है। विभीषण के आते ही कार्य बन्द हो गया। क्योकि इनकी सम्मति से राय पलट सकती है अथवा विभीषण के इगित से सब ठहर गये।

नाइ सीस कर बिनय बहूता। नीति बिरोध न मारिय दूता ॥
आन दंड कछु करिय गोसाईं। सबही कहा मंत्र भल भाई ॥४॥
सुनत बिहँसि बोला दसकंधर। अंग भंग करि पठइअ बन्दर ॥५॥

अर्थ : सिर नवाकर और बहुत विनय करके कहा कि दूत को मारना नही चाहिए। यह बात नीति के विरुद्ध है। हे गोसाईं ! कोई दूसरा दण्ड दिया जाय। सबने कहा कि यह मन्त्र ठीक है। यह सुनकर रावण हँसकर बोला। अच्छा तो अङ्ग भङ्ग करके बन्दर को यहाँ से भेज दो।

व्याख्या : प्रणाम के पश्चात् बड़ी विनती की क्योकि राजाज्ञा को रोक दिया और बिना पूछे सम्मति दे रहे हैं। विनय यथा . आप सम्राट् हैं। महापण्डित हैं। नीतिशास्त्र के आश्रय हैं। आप नीतिपालन नही करेंगे तो कौन करेगा ? दूत अवध्य है। शस्त्रो के निकल पड़ने पर बन्धुओ के वध पर भी तथा कडी बात बोलता हुआ भी दूत अवध्य है। यथा : उद्यतेष्वपि शस्त्रेषु बन्धुवर्गवधेष्वपि। पौरुषाण्यपि जल्पन्तो वध्या दूता न भूभुजा। प. त.।

यदि वह वध्य ही हो तो कोई दूसरा दण्ड दीजिये। सबने कहा कि बात तो ठीक है। दूत अवध्य हैं। सबही अर्थात् उन सब लोगो ने जिनको मन्त्र देने का अधिकार है एक स्वर से यही बात कही। सभी चाहते हैं कि वध दण्ड न हो। यह अवध्य है बडी भारी विपत्ति आकर खड़ी हो जावेगी। दूसरे प्रकार के दण्ड के लिए बाहर जाना होगा। सभा मे तो उपद्रव न होगा।

रावण सबके ऐकमत्य पर हँसे अथवा इस बात पर हँसे कि देखो सबको कैसा बेवकूफ बनाता हूँ। अथवा मेरा पुत्रवध हुआ। इनको क्या हानि हुई ? अथवा मेरे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



घर के नीतिमूर्ति आगये। अब इनकी नीति चली। वध के बदले मे बन्धन नही कहता। क्योंकि यह बँधने पर भी अपराध करता है। इसका अङ्ग भङ्ग कर दो। पर इस भाँति कि यह अङ्ग भङ्ग होने पर लौटकर मालिक के पास जाने लायक रहे।

दो. कपि कै ममता पूँछ पर, सबहि कह्यौ समुझाइ।
तेल बोरि पट बाँधि पुनि, पावक देहु लगाइ ॥२४॥

अर्थ : सबको समझाकर कहता हूँ। देखो। बन्दर की ममता पूँछ पर होती है। सो तेल मे कपडा डुबोकर उसे इसकी पूँछ मे बाँधकर फिर आग लगा दो।

व्याख्या : बन्दर जाति मूर्ख होती है। बेकार अङ्ग जो पूँछ होती है उसी पर इनकी बडी ममता होती है। सो देखो कहीं पूँछ काट न लेना। इसकी पूँछ जलाओ। जलाने की विधि बतलाता है : इस भाँति वध का घोरतम उपाय अङ्ग भङ्ग के *व्याज से बतला रहा है। रावण अपने मन्त्र से* राज्य करता है। किसी की सुनता नही। राजा को मन्त्री चाहिए इसलिए मन्त्री हैं। मन्त्री भी समझे बैठे हैं कि हम लोग तो इनके कथन की पुष्टि करने के लिए इनकी सेवा मे हैं। अत: अस्तुति करहिं सुनाइ सुनाई। पर यहाँ सब मन्त्रियो की सम्मति विरुद्ध हो *गयी* फिर भी वह अपनी ही बात रखता है। कहने के लिए अङ्ग भङ्ग की आज्ञा है। पर वस्तुत. वह अति यातनामय वध दण्ड दे रहा है।

पूँछहीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नाथहि लेइ आइहि ॥
जिन्ह कै कीन्हेसि बहुत बडाई। देखउँ मै तिन्हकै प्रभुताई ॥१॥

अर्थ . बिना पूँछ का होकर जब बन्दर जायगा तब यह शठ अपने मालिक को ले आवेगा। जिनकी इसने बहुत बडाई की है उनका पुरुषार्थ मैं देखूँगा।

व्याख्या : रावण कहता है कि ऐसी पूँछ जलाओ कि कुछ भी शेष न रहे। जिस वस्तु पर ममता होती है उसके वियोग से प्राणी दु खी होता है। इसे जब पूँछ हीन होने का दु.ख होगा तो यह स्वभाव से शठ है जाकर निश्चय अपने मालिक को लेकर अपनी पूँछ का बदला चुकाने के लिए आवेगा। इसका पुरुषार्थ तो देख लिया गया। अब इसके मालिक का पुरुषार्थ देखना है। उसे यह जाके डर अति काल डराई। पाइ जासु बल विरचित माया आदि कहकर बडी प्रशसा करता है। अब उसका पुरुषार्थ देखना है। तुम लोग जानते हो हो कि मुझे सदा प्रतिभट से युद्ध करने की इच्छा रही पर *कही* कोई *मिला नही। यथा :* रन मद मत्त फिरइ जग धावा। प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा। यह एक प्रतिभट बतला रहा है। पर मैं उसे वनो मे कहाँ खोजता *फिरूँगा। भले यह उसे बुला लावेगा यह सब बात रावण ने* प्रवञ्चनामय कही है। वस्तुत. उसके हृदय का भाव यह है कि पूँछ के जलाने मे ही यह पीडा सहन न कर सकने के कारण आप ही छटपटाकर मर *जायगा नही* तो वह पूँछ काट लेने की आज्ञा देता। जलाने मे कौन सी फल सिद्धि विशेष थी ? इस भाँति से बातें बनाकर वह अपनी प्रथम आज्ञा को ही और भी क्रूरतापूर्वक

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



स्थिर रखना चाहता है। सबको दिखाने के लिए और विशेषत: विभीषण को वेवकूफ बनाने के लिए दण्ड का रूप परिवर्तन करके केवल अङ्ग भङ्ग की आज्ञा दे रहा है।

वचन सुनत कपि मन मुसकाना। भइ सहाय सारद मै जाना ॥
जातुधान सुनि रावन वचना। लागे रचै मूढ सोइ रचना ॥२॥

अर्थ . यह बात सुनकर हनुमान्जी मन ही मन मुसकुराये और कहने लगे कि मै जान गया कि भगवती सरस्वती सहाय हुई हैं। मूढ राक्षस लोग रावण का वचन सुनकर वैसी ही रचना रचने लगे।

व्याख्या हनुमान्जी यदि प्रत्यक्ष मुसकुराते तो राक्षस सावधान हो जाते कि कुछ दाल मे काला है। नही तो जिसे इतना कठोर दण्ड दिया जाय उसके चेहरे पर मुसकुराहट कैसी ? हनुमान्जी को पहिले से ही इच्छा थी कि जिस नगर मे जगदम्बा विरह ज्वाला मे जल रही है। जहाँ उन्हे माँगने पर अग्नि नही मिलती है उस नगर को ज्वालमाल के सुपुर्द कर देना ही प्राप्त है। पर जलानेवाला आततायी कहलाता है। इसलिए जलाते नही थे। महालक्ष्मी के दो रूप और है : १ काली और २ सरस्वती। सो महाकाली रूप से तो लङ्का मे निवास ही कर रही है। यथा . काल राति निसिचर कुल केरी। पर यहाँ सरस्वती रूप से मेरी सहायता करने पहुँच गयी। इन्हे पूँछ जलाने की सूझी। अब मुझे अग्निद भी नही होना पडा पूँछ मे आग लगने पर जिस भाँति बन्दर भागते है उस भाँति मुझे लङ्का मे इधर उधर दौडना और पूँछ पटकना ही मेरे लिए शेष रहा। भागते समय स्वय आग लग जावेगी। मैं जाना का भाव यह कि मै तो जगदम्बा की कृपा से समझ गया। पर ये मूढ नही समझ रहे हैं।

राक्षसो ने रावण के वचन को सुना समझा कुछ नही। न यही बात समझो कि रावण वस्तुत वध दण्ड दे रहा है और न यही समझ पाया कि वन्दर की पूँछ मे आग लगाकर उसे छोड देने का अर्थ ही यह है कि वह अत्यन्त वेदना से नगर भर मे भागता और पूँछ पटकता फिरे और नगर मे आग लग जाय। इसीलिए कवि कहते हैं कि वे मूढ वही रचना रचने लगे। तेल मे पुराने कपडे भिगोने लगे और भिगा भिगाकर पूँछ मे लपेटने लगे।

रहा न नगर वसन घृत तेला। बाढी पूँछ कीन्ह कपि खेला ॥
कौतुक कहँ आये पुरबासी। मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी ॥३॥

अर्थ . नगर मे घी तेल और लत्ते : पुराने कपडे . न रह गये। बन्दर ने खेल किया। पूँछ बढने लगी। नागरिक तमाशा देखने के लिए आ पहुँचे। लातो स मारने और खूब हँसी करने लगे।

व्याख्या . यहाँ वसन का अर्थ जलाने योग्य पुराने कपडे हैं। प्रसङ्ग बल से अर्थ करना पडा कि पहिले तेल मे भिगो भिगोकर कपड़ा पूँछ मे बाँधने लगे। पर जब हनुमान्जी ने खेल किया पूँछ बढने लगी और नगर भर का तल समाप्त

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हो गया तब उसके स्थान मे घी चुपड़ने लगे। तमाम नगर मे घर घर से माँगकर पुराने कपडे जुटाये गये वे सब भी समाप्त हो गये। पर इन मूढो ने पूँछ के बढने पर ध्यान ही नही दिया। नगर मे शोर मच गया कि बन्दर की पूँछ जलायी जा रही है। अत. आनन्द मे विभोर होकर नगरवासी इस क्रूरदृश्य के अवलोकन के लिए वहाँ चले आये। आकर हनुमान्‌जी को लात से मारते है और आनन्द मानते हैं। इन पापी कृपारहित हिंसक विश्व के परतापियो को वेदना के दृश्य के देखने मे बडे आनन्दानुभव की आशा थी। बँधे हुए प्राणी के ऊपर लात चलाने मे उन्हे आनन्द विशेष का अनुभव हो रहा है।

बाजहि ढोल देहि सब तारी। नगर फेरि पुनि पूँछ प्रजारी ॥

## ६२. लङ्कादाह प्रसङ्ग

पावक जरत देखि हनुमंता। भयउ परम लघु रूप तुरंता ॥४॥
निबुकि चढेउ कपि कनक अटारी। भई सभीत निसाचर नारी ॥५॥

अर्थ . ढोल बजते है, सबलोग तालियाँ पीटते हैं। हनुमान्‌जी को नगर मे फिराकर फिर पूँछ मे आग लगा दी। आग को जलती हुई देखकर हनुमान्‌जी तुरन्त बहुत छोटे रूप मे हो गये। बन्धन से निकलकर वे सोने की अटारी पर चढ गये। उन्हे देखकर राक्षस की स्त्रियाँ भयभीत हो गयी।

व्याख्या : अब राक्षसो के आनन्द का वर्णन हो रहा है कि लात मारते ही थे अब ढोल भी बजने लगा। मारे आनन्द के तालियाँ पीट रहे हैं। इस दुर्दशा से नगर मे घुमाये गये। भाव यह कि सभी नगरवासी भागवतापराध मे सम्मिलित हुए। यथा :

बसन बटोरि बोरि बोरि तेल तमीचर खोरि खोरि धाइ आइ बाँधत लगूर हैं।
तै सोइ कपि कौतुकी डेरात ढीलो गात कै कै लात को अघात सहै जी मे कहै कूर हैं॥
बाल किलकारी कै कै तारी दै दै गारी देत पाछे लागे बाजत निसान ढोल तूर हैं।
बालधी बढन लागी ठौर ठौर दीन्ही आगी बिंधकी दवारि कैधो कोटिसत सूर हैं॥
क. ५।

इधर हनुमान्‌जी दिन को नगर देख रहे हैं कि किस ओर से धावा करने मे सुभीता होगा। प्रजारी का भाव यह कि पूँछ मे भली भाँति आग लगायी गयी जिसमे बुझे न। यथा : लाइ लाइ आग भागे बालजाल जहाँ तहाँ। हनुमान्‌जी ने देखा कि आग भलीभाँति लग गयी। आग पूँछ नही जला रही है, कपडे मात्र जल रहे है। इसलिए हनुमानजी को दाह का अनुभव नही हो रहा है। देखकर जाना कि आग ने भलीभाँति पकड़ लिया। तब आप तुरन्त लघुरूप होकर बन्धन से निकल गये। पर पूँछ ज्यो की त्यो रही। वह लघु नही हुई। उसके लघु होने से जलते हुए कपड़े ढीले होकर गिर पडते। यथा : लघु ह्वै निबुकि गिरि मेरु ते बिसाल

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भो। कौतुकी कपीस कूदि कनक कँगूरा चढ्यौ रावन भवन चढ़ि ठाढ़ो तेहिकाल भो। तुलसी बिराज्यौ व्योम बालधी पसारी भारी देखे हहरात भटकाल सो कराल भो। तेज को निधानु मानो कोटिक कृसानु भानु, नख विकराल मुख तै सोइ रिसिलाल भो।

रावण का घर सबसे ऊँचा था। उसपर चढ़े हुए मेरु के समान हनुमान्‌जी ऊँचे और उनसे भी ऊँची उनकी जलती हुई पूँछ थी। यह दृश्य देखकर निशाचर की स्त्रियाँ डर गयी। यथा :

बालधी बिसाल बिकराल ज्वाल माल मानौ लंक लीलवे को काल रसना पसारी है।
कैधो व्योम बीथिका भरे हैं भूरि धूमकेतु बीररस बीर तरवारि सी उघारी है॥
तुलसी सुरेस चाप कैधौं दामिनी कलाप कैधों चली मेरु ते कृसानु सरिभारी है।
देखे जातुधान जातुधानी अकुलानी कहै कानन उजारयौ अब नगर प्रजारी है॥

दो. हरि[1] प्रेरित तेहि अवसर, चले मरुत उनचास।
अट्टहास करि गर्जा, कपि बढ़ि लाग अकास ॥२५॥

अर्थ : उस समय हरि की प्रेरणा से उनचासो पवन चले। हनुमान्‌जी अट्टहास करके गर्जे और आकाश मे जा लगे।

व्याख्या : उनचासों : ४९ वायु प्रलय काल मे चलते है। सो हरि की प्रेरणा से उस समय लङ्का मे चले। इन्ही वायु मे से किसी की ग्रहगणो के घुमाने की शक्ति और किसी की मोक्ष तक पहुँचाने की शक्ति है। भाव यह कि गति मात्र ही वायु है। एक एक अणु की गति मे भेद पड़ा। इतना बिना हुए लङ्का का दाह न होता। तब हनुमान्‌जी ने समझ लिया कि हरि की भी इच्छा है। अतः अमगल सूचक अट्टहास करते हुए गर्जे और शरीर ऐसा बढ़ाया कि सिर आकाश मे सटा हुआ मालूम होने लगा।

देह बिसाल परम हरुआई। मंदिर ते मंदिर चढ़ धाई॥
जरइ नगर भा लोग बिहाला। झपट लपट बहु कोटि कराला ॥१॥

अर्थ : देह परम विशाल है। परन्तु परम हलकी है। एक घर से दूसरे घर पर चढते हुए दौड़ने लगे। नगर जलने लगा। लोग बेहाल हो गये। आग की करोड़ो लपटें झपट रही हैं।

व्याख्या : लङ्का मे हनुमान्‌जी को आठो सिद्धियो से काम लेना पड़ा। ऐसे विशाल शरीर मे बड़ी गुरुता होनी चाहिए थी। पर गुरुता एकदम नही थी। सामान्य बन्दरों की भाँति एक मकान से दूसरे पर कूदते चले जाते हैं। नगर भर मे आग लग गयी। करोड़ो लपट की झपट लगने लगी। लोग विकल हो गये।

---

१. समाधि : अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लोगो की विकलता यथा : जरत निकेत धाओ धाओ लागी आगि रे। कहाँ तातु मातु भ्रात भगिनी भामिनी भाभी ढोटे छोटे छोहरा अभागे भोंडे भागि रे। क रा । पानी पानी पानी सब रानी अकुलानी कहे जात हैं परानी गति जानी गज चालिहै। बसन बिसारे तन भूषन सभारें नहि आनन सुखाने कहैं क्योंहूँ कोऊ पालिहै।

तात मातु हा सुनिअ पुकारा। एहि अवसर को हमहि उबारा॥
हम जो कहा यह कपि नहि होई। बानर रूप धरे सुर कोई॥२॥

अर्थ हाय रे बाप हाय रे माँ ! इस अवसर पर हमे कौन बचावेगा ? चारो ओर यह पुकार सुनायी पड रही है। हमने तो पहिले ही कहा था कि यह बन्दर नही है। वानर का रूप धारण किये हुए कोई देवता है।

व्याख्या पुकार का वर्णन करते हुए कवित्त रामायण म कहते हैं
प्रिया तू पराहि नाथ नाथ तू पराहि बाप बाप तू पराहि पूत पूत तू पराहि रे। एक पर गाढे एक डाढत ही काढे एक देखत हैं ठाढे कहे पावक भयावनो। क रा । वीथिका बजारन प्रति अटनि अगारन प्रति पँवरि पगारन प्रति बानर बिलोकिये। सब पुकार करते है कि इस अवसर पर हम बचानेवाला कौन है ?

युद्ध के समय मे ही लङ्कावालो म से कुछ ने निश्चय किया कि यह वानर नही है। वानर मे इतना पराक्रम कहाँ ? इस रूप म कोई देव है। नहीं तो नर कपि भालु अहार हमारा। सो बात ठीक निकली। यह कोई देवता है। सभी सिद्धियाँ इसमे है।

साधु अवग्या कर फल ऐसा। जरइ नगर अनाथ कर जैसा॥
जारा नगरु निमिष एक माँही। एक बिभीषण कर गृह नाँही॥३॥

अर्थ साधु के अपमान का यह फल है कि नगर अनाथ के नगर की भाँति जल रहा है। हनुमान्‌जी ने पलक पडने म लङ्का जला दिया। एक विभीषण का घर नही जलाया।

व्याख्या साधु अवग्या तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कर हानी। नगर भर मे साधु की अवज्ञा की। पूँछ जलाने के लिए तेल घी और कपडा बडे उत्साह से दिया। आनन्द मनाया। यथा बाजहि ढोल देहि सब तारी। लात मारा यथा मारहि चरन करहि बहु हाँसी। इसका फल यह हुआ कि सब अखिल कल्याण की हानि हुई। रावण ऐसे नाथ के रहते अनाथ सा नगर जल रहा है। सब प्रयत्न निष्फल गये। यथा

गाज्यौ कपिराज ज्यौ बिराज्यौ ज्वाल जाल युत भाजे वीर धीर अकुलाइ उठ्यो रावनो। धाओ धाओ धरौ सुनि धाए जातुधान धारि वारिधारा उलदै जलद ज्यों न सावनो॥ लपट झपट झहराने हहराने बात भहराने भट परयो प्रबल परावनो। ढकनि ढकेलि पलि सचिव चले लै ठेलि नाथ ना चलैगो बलु अनल भयावनो॥



(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कोपि दसकंध तव प्रलय पयोद बोले रावन रजाइ धाइ आये जूथ जोरि कै।
कह्यौ लंकपति लंक बरत बुताओ बेगि बानर बहाइ मारौ महाबारि बोरि कै॥
भले नाथ। नाइ माथ चले पाथप्रदनाथ बरषैं मुसलधार बार बार घोरि कै।
जीवन ते जागी आगी चपरि चौगुनी लागी तुलसी भभरि मेघ भागे मुख मोरि कै॥
इहाँ ज्वाल जरे जात उहाँ ग्लानि गरे गात सूखे सकुचात सब कहत पुकार हैं।
जुगपट भानु देखे प्रलय कृसानु देखे सेष मुख अगिन बिलोके बार बार हैं॥
तुलसी सुन्यौं न कान सलिल सर्पी समान अति अचरज कियो केसरी कुमार हैं।

अत्यल्प काल मे देखते देखते लंका जल गयी। किसी का किया कुछ न हुआ। यह हनुमान्‌जी का बडा अलौकिक पुरुषार्थ है। जिनका घर जलाना चाहा वे ही घर जले। विभीषण का घर जलाना नही चाहा। वह बच गया। अग्नि वश मे है।

ताकर दूत अनल जेहि सिरिजा। जरा न सो तेहि कारन गिरिजा॥
उलटि पलटि लंका सब जारी[1]। कूदि परा पुनि सिंधु मझारी॥४॥

अर्थ : हे गिरिजे! जिन्होने अग्नि बनाया उन्हीका वह दूत था इसलिए नही जला। हनुमान्‌जी ने उलट पलटकर सारी लङ्का जला दी। फिर वे समुद्र मे कूद पडे।

व्याख्या : अपने सिरजनहार के दूत को अग्नि ने जलाना नही चाहा। यद्यपि पञ्चभूतो की जडकरणी है। ये विचारपूर्वक कार्य करते नही देखे जाते और इनके विचार पूर्वक कार्य न करने से ही सृष्टि चल रही है। परन्तु कही कही ये अपनी क्रिया नही करते हुए भी देखे गये हैं। और ऐसा होने के लिए कारण विशेष होना चाहिए। यहाँ रामजी का दूत होना कारण है। यथा गोपद सिन्धु अनल सितलाई। गरुड सुमेरु रेनु समताही। रामकृपा करि चितवा जाही।

हनुमान्‌जी एक बार जलाते हुए चले गये। फिर उधर से उलटे और जलाते हुए चले। किनारे पर पहुँचकर फिर पलटे इस प्रकार तीन आवृत्ति की। जिसमे कोई घर बच न जाय और नगर के सम्पूर्ण भागो मे एक साथ ही आग लगे। पहिली आवृत्ति का वर्णन कवित्त रामायण मे सुन्दरकाण्ड के चौथे कवित्त से १४ तक है। यथा : लाइ लाइ आगि भागे बाल जाल जहाँ तहाँ . से लेकर चित्रहू के कवि सो निसाचर न लागिहैं : तक है। दूसरी आवृत्ति का वर्णन १५वें कवित्त से लेकर २२वें कवित्त तक है। यथा लागि लागि आगि भागि भागि चले जहाँ तहाँ। से लेकर जारत प्रचारि फेरि फेरि सो निसंक लंक जहाँ बाँको बीर तो सो सूर सिर ताजहैं : तक। तीसरी आवृत्ति का वर्णन २३वें कवित्त से २५वें तक। यथा :

---

१ कवि केशवदासजी लङ्कादाह विषयक विचित्र कथा कहते हैं। लङ्किनी के रोकने पर हनुमत बली तेहि धापर मारी। तजि देह भई तबही वर नारी। चलन लगौ जबही तब बोली। मृतक शरीरहि पावक दीजो। अब उलटि पलटि लंका सब जारी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पान पकवान विधि नाना को सँधानो सीधो : से लेकर रतन : जतन जारि किया है मृगाक सो : तक। तत्पश्चात् समुद्र मे कूद पडे। शरीर बडा भारी था इसलिए सिन्धु मझारी कहा।

दो. पूँछ बुझाइ खोइ श्रम, धरि लघुरूप बहोरि।
जनक सुता के आगें, ठाढ भयउ कर जोरि ॥२६॥

अर्थ : पूँछ बुझाकर थकावट दूर करके और फिर छोटा सा रूप धारण करके श्री जानकीजी के सामने हाथ जोडकर खडे हो गये।

व्याख्या : पूँछ बुझाने से ही स्नान सूचित है। स्नान से श्रमापनोदन होता है। समुद्रजी का मनोरथ पूर्ण किया। उन्होने मैनाक से कहा था कि मैं तो श्रमापनोदन मे असमर्थ हूँ। तुम श्रमहारी हो। सो हनुमान्‌जी ने समुद्र का ही श्रमहारी बनाया। फिर हनुमान्‌जी ने छठी बार लघु रूप धारण किया। जिस रूप से लङ्कादहन किया था उस रूप से जानकीजी के सामने जाने मे अभिमान सूचित होता। अत जितने बडे रूप से पहिले सामने आये थे उसी रूप से फिर सामने खडे हुए। सीताजी ने सुना था कि बन्दर पकडा गया। उसकी पूँछ जलायी जा रही है सो बहुत दुःखी थी। अत उनके सामने खडे हुए कि मैं कुशल हूँ। ये राक्षस मेरा कुछ न कर सके। पहिले ही कहा था तिन्ह कर भय माता माहि नाही। जनकसुता का सब आशीर्वाद कार्य मे परिणत हुआ।

मातु मोहि दीजे किछु चीन्हा। जैसे रघुनायक मोहि दीन्हा॥
चूडामनि उतारि तब दयऊ। हरष समेत पवन सुत लयऊ॥१॥

अर्थ : हे माता ! मुझे कोई चिह्न दीजिये। जैसे रघुनायक ने दिया था। तब चूडामणि उतार कर दिया। हनुमान्‌जी ने हर्षित होकर ले लिया।

व्याख्या चिह्न का अर्थ इनाम न हो जाय इसलिए कहते है कि जैसे रघुनायक ने मुझे दिया था। आपके विश्वास के लिए चिह्न लेकर आये थे। अत सरकार के विश्वास के लिए चिह्न चाहिए। अथवा चिह्न पाकर जो हर्ष आपको हुआ सो देखा। डूबते के लिए आधार हो गया। सो सरकार के आधार के लिए चिह्न चाहिए। यह मुद्रिका मातु मैं आनी, अत मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा। सरकार को मालूम हो जाय कि मुद्रिका ठीक पते पर पहुँच गयी।

और सब आभूषण अशोक वृक्ष पर लटका दिया था। पर चूडामणि केश मे बँधा हुआ सिर पर था। रक्षा के लिए सरकार ने अँगूठी भेजी। प्रणाम के लिए माता चूडामणि भेज रही हैं। अथवा कन्यादान मे सरकार को सीताजी और चूडामणि दोनो मिली थी। अत अपनी सखीरूप चूडामणि को उस समय की याद दिलाने के लिए भेजा। हनुमान्‌जी ने हर्ष के सहित लिया। क्योंकि जैसा चिह्न चाहते थे वैसा ही मिला।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कहेहु तात अस मोर प्रनामा। सब प्रकार प्रभु पूरनकामा॥
दीन दयाल बिरदु संभारी। हरहु नाथ मम संकट भारी॥२॥

अर्थ : हे तात! मेरा इस प्रकार से प्रणाम निवेदन करना और कहना कि यद्यपि सब प्रकार से प्रभु पूर्णकाम हैं तथापि अपने दीनदयाल विरद को सँभालकर मेरे भारी सङ्कट को दूर कीजिये।

व्याख्या : प्रणाम अभिनय करके वह परिपाटी भी वतला देती हैं जो कि महाराजों के आने पर अयोध्या में महारानियों के प्रणाम करने की थी। यह दूसरा चिह्न उसी प्रकार का है। जैसा हनुमान्‌जी ने करुणानिधान पद से ध्वनित किया था। विरह का सन्देश पाने पर भी पूर्णकाम कहती हैं। क्योंकि जानती हैं कि जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत विरह दुःख दुःखी सुजाना।

विरद गरीबनेवाज राम को। सो वह विरद गिरा चाहता है। उसे सँभालिए। मुझे प्राणान्त सङ्कट है। एक तो दुःसह विरह अब नहिं सहि जाई। दूसरे सुनै को श्रवन सूल सम बानी। तीसरे यहाँ माँगने से आग नहीं मिलती। चूड़ामणि उतारि तब दयऊ यह : भेंट है। कहेतु तात अस मोर प्रनामा : यह पाँव पड़ना है। और हरहु नाथ मम संकट भारी : यह निवेदन है।

तात सक्रसुत कथा सुनाएहु। बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु॥
मास दिवस महुँ नाथ न आवा। तौ पुनि मोहि जिअत नहिं पावा॥३॥

अर्थ : हे तात! इन्द्र के पुत्र की कथा सुनाना और प्रभु को उनके बाण का प्रताप समझाना। महीने भर में नाथ न आये तो मुझे जीती न पायेंगे।

व्याख्या : हनुमान्‌जी ने कहा था। तव वियोग संभव नाना दुःख बिसरि गयी महिमा सुवान की। अतः कहती हैं कि शक्रसुत की कथा सुनाना। यह कथा लक्ष्मणजी को भी नहीं मालूम है। एकान्त की कथा है। सरकार भगवती के गोद में सोये थे। यथा : ममाङ्के भरताग्रजः। हनुमान्‌जी के मुख से रामायण पारायण सुनने से भगवती जान गईं कि इतनी कथा हनुमान् नहीं जानता। अतः उसे सुनाकर हनुमान्‌जी को रामचरित्र की जानकारी भी पूरी की और प्रभु के लिए यह तीसरा चिह्न है। साथ ही साथ वाण की महिमा की द्योतक यह कथा है। तात्पर्य यह है कि जिस भाँति तुमने मुझे समझाया है उसी भाँति उन्हें भी समझाना।

शर प्रताप जानत जगत कोउ न सामुहे होय।
कारण मोर अभाग जो भूलि गये प्रभु सोय॥
जगत रचत अरु संहरत अस समर्थ विधिरुद्र।
सकै न राखि जयन्त कहँ यद्यपि कृपासमुद्र॥
रावण को गिनती कहा जो विधि हर वर पाय।
प्रभु के कालानल सरिस शरहि सकै समुहाय॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


पान पकवान विधि नाना को सँधानो सीधो . से लेकर रतन . जतन जारि किया है मृगाक सो : तक। तत्पश्चात् समुद्र मे कूद पडे। शरीर बडा भारी था इसलिए सिन्धु महारी कहा।

दो पूंछ बुझाइ खोइ श्रम, धरि लघुरूप वहोरि।
जनक सुता कें आगे, ठाढ भयउ कर जोरि ॥२६॥

अर्थ : पूंछ बुझाकर थकावट दूर करके और फिर छोटा सा रूप धारण करके श्री जानकीजी के सामने हाथ जोडकर खडे हो गये।

व्याख्या · पूंछ बुझाने से ही स्नान सूचित है। स्नान से श्रमापनोदन होता है। समुद्रजी का मनोरथ पूर्ण किया। उन्होने मैनाक से कहा था कि मैं तो श्रमापनोदन मे असमर्थ हूं। तुम श्रमहारी हो। सो हनुमानजी ने समुद्र को ही श्रमहारी बनाया। फिर हनुमानजी ने छठी बार लघु रूप धारण किया। जिस रूप से लङ्कादहन किया था उस रूप से जानकीजी के सामने जाने म अभिमान सूचित होता। अत जितने बडे रूप से पहिले सामने आये थे उसी रूप से फिर सामने खडे हुए। सीताजी ने सुना था कि बन्दर पकडा गया। उसकी पूंछ जलायी जा रही है सो बहुत दुखी थी। अत उनके सामने खडे हुए कि मैं कुशल हूँ। ये राक्षस मेरा कुछ न कर सके। पहिले ही कहा था तिन्ह कर भय माता मोहि नाही। जनकसुता का सब आशीर्वाद कार्य मे परिणत हुआ।

मातु मोहि दीजे किछु चीन्हा। जैसे रघुनायक मोहि दीन्हा॥
चूडामनि उतारि तब दयऊ। हरप समेत पवन सुत लयऊ॥१॥

अर्थ . हे माता! मुझे अब कोई चिह्न दीजिय। जैसे रघुनायक ने दिया था। तब चूडामणि उतार कर दिया। हनुमानजी ने हर्पित होकर ले लिया।

व्याख्या . चिह्न का अर्थ इनाम न हो जाय इसलिए कहते हैं कि जैसे रघुनायक ने मुझे दिया था। आपके विश्वास के लिए चिह्न लेकर आये थे। अत सरकार के विश्वास के लिए चिह्न चाहिए। अथवा चिह्न पाकर जो हर्ष आपको हुआ सो देखा। डूबते के लिए आधार हो गया। सो सरकार के आधार के लिए चिह्न चाहिए। यह मुद्रिका मातु मैं आनी। अत मातु मोहि दीजे कछु चीन्हा। सरकार को मालूम हो जाय कि मुद्रिका ठीक पते पर पहुँच गयी।

और सब आभूषण अशोक वृक्ष पर लटका दिया था। पर चूडामणि केश मे बँधा हुआ सिर पर था। रक्षा क लिए सरकार ने अँगूठी भेजी। प्रणाम क लिए माता चूडामणि भेज रही है। अथवा कन्यादान म सरकार को सीताजी और चूडामणि दोनो मिली थी। अत अपनी सखीरूप चूडामणि को उस समय की याद दिलाने के लिए भेजा। हनुमानजी ने हर्ष के सहित लिया। क्योंकि जैसा चिह्न चाहते थे वैसा ही मिला।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कहेहु तात अस मोर प्रनामा । सब प्रकार प्रभु पूरनकामा ॥
दीन दयाल बिरदु संभारी । हरहु नाथ मम संकट भारी ॥२॥

अर्थ : हे तात ! मेरा इस प्रकार से प्रणाम निवेदन करना और कहना कि यद्यपि सब प्रकार से प्रभु पूर्णकाम हैं तथापि अपने दीनदयाल विरद को सँभालकर मेरे भारी सङ्कट को दूर कीजिये ।

व्याख्या : प्रणाम अभिनय करके वह परिपाटी भी बतला देती हैं जो कि महाराजों के आने पर अयोध्या मे महारानियो के प्रणाम करने की थी । यह दूसरा चिह्न उसी प्रकार का है । जैसा हनुमान्जी ने करुणानिधान पद से ध्वनित किया था । विरह का सन्देश पाने पर भी पूर्णकाम कहती हैं । क्योकि जानती हैं कि जदपि अकाम तदपि भगवाना । भगत विरह दु.ख दु.खी सुजाना ।

विरद गरीबनेवाज राम को । सो वह विरद गिरा चाहता है । उसे सँभालिए । मुझे प्राणान्त सङ्कट है । एक तो दु:सह विरह अब नहिं सहि जाई । दूसरे सुनै को श्रवन सूल सम बानी । तीसरे यहाँ माँगने से आग नही मिलती । चूडामणि उतारि तब दयऊ यह : भेंट है । कहेतु तात अस मोर प्रनामा : यह पाँव पड़ना है । और हरहु नाथ मम संकट भारी : यह निवेदन है ।

तात सक्रसुत कथा सुनाएहु । बान प्रताप प्रभुहि समुझाएहु ॥
मास दिवस महुँ नाथ न आवा । तौ पुनि मोहि जिअत नहि पावा ॥३॥

अर्थ : हे तात ! इन्द्र के पुत्र की कथा सुनाना और प्रभु को उनके बाण का प्रताप समझाना । महीने भर मे नाथ न आये तो मुझे जीती न पायेंगे ।

व्याख्या : हनुमान्जी ने कहा था । तव वियोग संभव नाना दुःख बिसरि गयी महिमा सुवान की । अतः कहती हैं कि शक्रसुत की कथा सुनाना । यह कथा लक्ष्मणजी को भी नही मालूम है । एकान्त की कथा है । सरकार भगवती के गोद मे सोये थे । यथा : ममाङ्के भरताग्रजः । हनुमान्जी के मुख से रामायण पारायण सुनने से भगवती जान गईं कि इतनी कथा हनुमान् नही जानता । अतः उसे सुनाकर हनुमान्जी को रामचरित की जानकारी भी पूरी की और प्रभु के लिए यह तीसरा चिह्न है । साथ ही साथ वाण की महिमा को द्योतक यह कथा है । तात्पर्य यह है कि जिस भाँति तुमने मुझे समझाया है उसी भाँति उन्हे भी समझाना ।

सर प्रताप जानत जगत कोउ न सामुहे होय ।
कारण मोर अभाग जो भूलि गये प्रभु सोय ॥
जगत रचत अरु संहरत अस समर्थ विधिरुद्र ।
सकै न राखि जयन्त कहँ यद्यपि कृपासमुद्र ॥
रावण की गिनती कहा जो विधि हर घर पाय ।
प्रभु के कालानल सरिस दारहि सकै समुहाय ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मम हित कीन्ह्यो काक पर प्रभु ब्रह्मास्त्र प्रयोग।
हरन हार को वयो नही दससिर दलिवे जोग॥

शीघ्रता के लिए निवेदन करती है आज्ञा नही देती। एक बार आज्ञा दिया सत्य सघ प्रभु वध करि एही। आनहु चर्म कहति वैदेही। सो इतनी विरह-यातना भोगनी पडी। अत न आने पर जो होगा उसे कहती हैं। मै प्राण दे दूँगी। इस अधम के हाथ से मृत्यु स्वीकार नही।

कहु कपि केहि बिधि राखउँ प्राना। तुमहू तात कहत अब जाना॥
तोहि देखि सीतलि भइ छाती। पुनि मो कहुँ सोइ दिनु सोइ राती॥४॥

अर्थ : हे कपि! कहो मैं किस प्रकार प्राण रक्खूं। हे तात! तुम भी जाने को कह रहे हो। तुमको देखकर छाती ठण्डी हुई। फिर मुझे वही दिन और वही रात है।

व्याख्या : अब हनुमान्‌जी को विदा करती है। अत कहती है कि प्राण रखने की विधि बतलाते जाओ। तुम देख चुके हो कोई विधि नही है। पति के विरह मे पुत्र को देखकर सन्तोप होता है। यथा : बूडत विरह जलधि हनुमाना। भयउ तात मो कहँ जलजाना। तुम मेरे लिए जहाज हो गये थे। सो जहाज भी हटा चाहता है। विरह समुद्र मे डूबता हुआ प्राणी कैसे जीये।

हरिजन जानि प्रीति अति बाढी। सजल नयन पुलकावलि ठाढी। अत कहती हैं कि तुझे देखकर छाती ठण्ढी हुई। अब तेरे चले जाने पर उन्ही रात और उन्ही दिनो से सामना पडेगा जो काटे नही कटते। यथा : देखि परम बिरहाकुल सीता। सो छन कपिहि कलप सम बीता।

दो. जनकसुतहि समुझाइ करि, बहु बिधि धीरजु दीन्ह।
चरन कमल सिरु नाइ कपि, गवनु राम पहिं कीन्ह॥२७॥

अर्थ : हनुमान्‌जी ने जानकीजी को समझाकर बहुत प्रकार से धीरज दिया और उनके चरण कमलो मे सिर नवाकर श्रीरामजी के पास गमन किया।

व्याख्या : दो. अब मोहि यहँ ते चलन मे होइहि बेर जितेक।
प्रभु पयान मे जानकी जननी देर तितेक॥
तेहि खोजन हित कपि कटक गयउ चहूँ दिसि धाय।
सीता सुधि पायो नही कहे होयगे जाय॥
दच्छिन दिसि जे कपि गये, तिन पर आस लगाय।
बाट जोहते होहिंगे अति आरत रघुराय॥
समाचार तेरो सुनत प्रभु को धीरज होय।
घटै पीर रघुबीर हिय उचित करन अब सोय॥
मेरो लक प्रवेश कोउ सकै न निसिचर जानि।
ताते मम गति विधि समुझि रहिहैं ते भय मानि॥

ankurnagpal108@gmail.com



लंक संक आतंक अति दसकंधर उरमाहि।
अब तोको दुख देन हित कोई आइ है नाहि॥
याते मोहि अब एक छन जनि रोकै तू माय।
जाइ वेगि रघुबीर को आवौं तुरत लवाय॥

मुँदरी देखकर सन्तोष करना यह उनके स्वरूप से भिन्न नही है। यह अपने मुख से जाओ न कहेगी। अतः प्रणाम करके चल पड़े। आशीर्वाद का भी इन्तजार न किया : मन असीस दीन्ह्यौं होइहै तिहारोइ भायो। गी.।

**चलत महा धुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्रवहि सुनि निसिचर नारी॥**

## ६३. पुनः समुद्रोल्लङ्घन प्रसङ्ग

**नाघि सिंधु एहि पारहिं आवा। सबद किलिकिला कपिन्ह सुनावा॥१॥**

अर्थ : चलते समय महा ध्वनि से भारी गर्जना किया। जिसे सुनकर राक्षसों के स्त्रियों के गर्भ गिर गये। समुद्रोल्लंघन करके इस पार आये और बन्दरों को किलकिला शब्द सुनाया।

व्याख्या : महाध्वनि से भारी गर्जना करने का अभिप्राय यह है कि जिसमें कोई यह न कह सके न जाने कब चोरी से बन्दर भाग गया। दूसरी बात यह भी हुई कि राक्षसियो को गर्भ गिरने का रोग हो गया। यथा : समुझत जासु दूत कर करनी। श्रवहि गर्भ रजनीचर घरनी। अब उनका वंश नहीं बढ़ सकता। इस गर्जन से जो गर्भ थे वे गिर गये और भविष्य में हनुमान्जी की करणी के स्मरण से गिर जावेंगे। रावण के सभी कुकृत्यों का फल हनुमान्जी ने दिया। रावण ने सुरलोक उजाड़ा। यथा : वेद बिरुद्ध महीसुर साधु ससोक कियो सुरलोक उजारयो : हनुमान्जी ने उसके प्राणों से प्रिय बाग को उजाड़ डाला। यथा : तेहि असोक बाटिका उजारी : रावण ने देवताओ का आहार बन्द किया। यथा : जाके डर सुर असुर डराही। निसि न नीद दिन अन्न न खाही। हनुमान्जी के भय से वही गति राक्षसों की हुई। यथा : लंक नहि खात कोउ भात राँधो। क. रा.। राक्षसो ने मुनियों को खाया। यथा : निसिचर निकर सकल मुनि खाये : हनुमान्जी ने कछु मारेसि कछु मर्देसि कछु मिलएसि धरि धूरि। रावण ने नगर ग्राम पुर में आग लगाया। यथा : नगर ग्राम पुर आग लगावहि : हनुमान्जी ने जारा नगर निमिष एक माही केवल गर्जत गर्भ स्रवहि सुररवनी का बदला बाकी था सो उसे भी इस महाधुनि के भारी गर्जन से चुका दिया।

एहि पारहि आवा का भाव यह कि जहाँ कवि कपि समाज के साथ बैठे हैं। हनुमान्जी ने कहा था : तब लगि मोहि परखेहु तुम्ह भाई। इसलिए कवि भी इस पार ही रह गये। इसलिए एहि पारहि आवा कह रहे हैं। जहाँ से हनुमान्जी दृष्टिगोचर हो सकते हैं वहाँ तक इस पार में ही गिनती है। किलकिला शब्द हर्षसूचक है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हरखे सब बिलोकि हनुमाना । नूतन जनम कपिन्ह तब जाना ॥
मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा । कीन्हेसि रामचन्द्र कर काजा ॥२॥

अर्थ हनुमान्‌जी को देखकर सब प्रसन्न हो गये। वन्दरो ने तब जाना कि हमारा नया जन्म हुआ है। हनुमान्‌जी का मुख प्रसन्न था। शरीर मे तेज विराजमान हो रहा था इससे मालूम हो गया कि इन्होने रामचन्द्र का कार्य सम्पादन किया।

व्याख्या शब्द सुनते ही बानर लोगो ने उधर देखा तो हनुमान्‌जी दिखायी पड़ गये। सब बडे दु खी थे कि इहाँ न सुधि सीता कर पाई। उहाँ गये मारिहि कपिराई। दोउ प्रकार भई मृत्यु हमारी। सो दोनो प्रकार से नया जन्म हुआ। अत हनुमान्‌जी को देखकर हरखे। यथा नाथ काज कीन्हेउ हनुमाना। राखेउ सकल कपिन्ह कर प्राना।

कृतकार्य होने का चिह्न बतलाते हैं। मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा। दूर से प्रत्यक्ष करने मे दो ही इन्द्रियाँ समर्थ हैं एक श्रोत्र और दूसरा चक्षु। दोनो से ही कृतकार्यता के ही लक्षण अनुभूत हुए। श्रोत्र से किलकिला शब्द का अनुभव किया और चक्षु से मुख की प्रसन्नता और शरीर क तेज का अनुभव हुआ। अत सबको निश्चय हो गया कि कृतकार्य होकर आ रहे हैं। सुग्रीव का भी निहोरा पूरा हुआ। यथा : राम काज अरु मोर निहोरा। रामचन्द्र कर काज सँवारेहु।

मिले सकल अति भये सुखारी । तलफत मीन पाव जिमि बारी ॥
चले हरखि रघुनायक पासा । पूछत कहत नवल इतिहासा ॥३॥

अर्थ · सब मिले और ऐसे सुखी हुए जैसे तडपती हुई मछली को जल मिल जाय। सब इस नये इतिवृत्त को पूछते और कहते रघुनाथजी के पास चले।

व्याख्या आयो हनुमान प्रान हेतु अंक माल देत लेत पग धूरि एक चूमत लगूर है। क रा। बिना हनुमान्‌जी के सब मछली की भाँति तडपते थे। यानी एक मछली वहुत होती है। अकेला पानी सबसे मिलता है। इसी भाँति हनुमान्‌जी सबसे मिले। इससे हनुमान्‌जी का प्राणप्रिय होना दिखलाया। पवनसुत हैं।

राम काज करि फिरि मैं आवो। सीता कै सुधि प्रभुहि सुनावो। इस बीच मे हनुमान्‌जी विश्राम नही लते। इसलिए सब रघुनाथजी के पास चल पडे। हनुमान्‌जी से बडे अविकत्थन स्वभाव के है। व्यवरेवार सब बात कहने से अपना गौरव कहना पडेगा। अत अत्यन्त सक्षेप मे अपनी कृतकार्यता कह सुनायी। अब ब्योरेवार सब कथा सुनने के लिए वन्दर लोग एक एक बात को छेड छेडकर पूछते हैं। तब हनुमान्‌जी को भी कहना पडता है। इस भाँति वन्दर लोग प्रश्न पर प्रश्न करते चले और हनुमान्‌जो समाचार सुनाते चले। राम काज किया है। अत उन्ही के पास चलना लिखते है। पुर दहि नाँघेउ बहुरि पयोधी प्रसङ्ग समाप्त हुआ। अब आये कपि सब जहँ रघुराई बैदेही की कुसल सुनाई : प्रसङ्ग आरम्भ होता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



## ६४. रघुनाथ सन्निकट प्रसङ्ग

तब मधुबन भीतर सब आए। अंगद संमत मधु फल खाए॥
रखवारे जब बरजइ लागे। मुष्टि प्रहार हनत सब भागे॥४॥

अर्थ : तब सब मधुवन के भीतर घुस गये और अङ्गदजी की सम्मति से सबो ने मधु और फल खाये। जब रखवारी करनेवालों ने रोका तो उन पर घूसो की मार पड़ी वे भाग खड़े हुए।

व्याख्या : जैसे इन्द्र का नन्दन वन है। रावण का अशोक वन है। वैसे ही राजा सुग्रीव का मधुवन है। इसमें मधु बहुत होती है इसीसे इसका नाम मधुवन है। बन्दर लोग उसी उपवन मे घुस गये और अङ्गदजी की सम्मति से मधु फल खाने लगे। हनुमान्‌जी के मुख से अशोक वन के फलो का स्वाद सुनते आ रहे हैं। सो फल के रसिकों का चित्त चलायमान हो रहा है। अतः अङ्गदजी ने आज्ञा दे दी।

वहाँ के मधु और फल खाने की किसी को आज्ञा नही है। अतः सब रखवालों ने मिलकर रोका। खानेवाले बहुत हैं। दो एक रखवालों के रोकने से काम चलनेवाला नही था। सो रोकने का उत्तर घूसो से मिला। अङ्गदजी के साथ रहने से सबो ने रोकने के रसम की तामीली मात्र की। घूंसा खाते ही भाग खडे हुए।

दो. जाइ पुकारे ते सब, बन उजार जुवराज।
सुनि सुग्रीव हरख कपि, करि आये प्रभु काज॥२८॥

अर्थ : उन सबों ने जाकर पुकार किया कि युवराज ने वन उखाड़ डाला। सुनकर सुग्रीवजी हर्षित हुए कि बन्दर प्रभु का कार्य करके आगये।

व्याख्या : सुग्रीव राजा के पास पुकार मचाया : वन उजार युवराज। सरदार का नाम ले रहे हैं। युवराज कहने का भाव यह है कि हम लोग मार खाकर भागे आ रहे है। युवराज के साथ होने से मार न सके। सुनकर सुग्रीवजी को क्रोध न होकर हर्ष हुआ। तुरन्त समझ गये कि बन्दर कृतकार्य होकर आगये। इस हर्ष से रखवारे चकित है। सुग्रीवजी प्रसन्न हो उठे कि मैने प्रतिज्ञा की थी : सब प्रकार करिहौं सेवकाई। तो भला एक सेवा तो हुई।

जौं न होति सीता सुधि पाई। मधुबन के फल सकहिं कि खाई॥
एहि[1] बिधि मन बिचार कर राजा। आइ गए कपि सहित समाजा॥१॥

अर्थ : यदि सीताजी की सुधि न मिली होती तो क्या मधुवन के फल खा सकते थे? इस प्रकार से मन मे विचार करते ही थे कि बन्दर लोग समाज के साथ आगये।

---

१. प्रहर्षण : तृतीय अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : सीता की सुधि पानेवाली ही खुशी इतनी बडी है कि जिससे मधुवन की लूट माफ हो सकती है। यदि सुधि न पाये होते तो अपने प्राण का ही डर होता। मेरे क्रोध को और भी दीप्त न करते। अत मधुवन के फल खाने के व्याज से अपने कृतकार्यता का समाचार पहिले ही भेजा है। राजा है मन मे विचार कर रहा है। प्रकट नही कहता। पर प्रसन्नता मुख पर झलक आयी। इतने मे सब लोग समाज सहित आगये। भाव यह कि मधुवन मे भी अधिक नही ठहरे। फल खाया और चल दिये। चौदहो वीर अपने समाज सहित गये थे सो समाज सहित आगये।

आइ सबहि नावा पद सीसा। मिलेउ सबन्हि अति प्रीति कपीसा॥
पूँछी कुसल कुसल पद देखी। राम कृपा भा काजु बिसेषी॥२॥

अर्थ आकर सबने चरणो मे सिर नवाया। वानरराज सभी से बडे प्रेम के साथ मिले। कुशल पूछा। उत्तर मिला कि चरणो के दर्शन से सब कुशल है। श्रीरामजी की कृपा से विशेष रूप से कार्य हुआ।

व्याख्या : जाते समय सुग्रीव को प्रणाम नही किया। सरकार की उपस्थिति मे उन्ही को प्रणाम किया जाता है और किसी को नही। यथा आइ रामपद नावहि माथा। निरखि बदन सब होहि सनाथा। तथा आयसु मांगि चरन सिर नाई। चले हरषि सुमिरत रघुराई। इस समय सरकार नही हैं। अत सुग्रीवजी को प्रणाम करते हैं। पहिले कहा : चले हरषि रघुनायक पासा। पर यहाँ सुग्रीव के पास पहुँचना कह रहे हैं। भाव यह कि जिसने भेजा है उसी को खबर देना चाहिए। अब उन्हे आगे करके रघुनाथजी के पास जावेंगे। नमस्कार सबने आकर किया। पता न चला कि किसके द्वारा काम हुआ और सुग्रीवजी को अति हर्ष है। अत सबसे मिले।

सुग्रीवजी तन मन वचन से वानरो के अनुकूल हैं। मन से यथा एहि विधि मन विचार कर राजा। तन से यथा : मिले सबहि। वचन से यथा : पूछी कुसल। जिस भाँति बडो के कुसल प्रश्न की चाल है उसी भांति कुशल पद देखी। उत्तर देने की भी चाल है। यथा पूँछी कुसल नाथ अब कुसल देखि पदकंज। सीता की सुधि तो कार्य है। लङ्कादहन आदि विशेष कार्य है। सो विशेष कार्य ऐसा हुआ कि उसे कृपासाध्य ही कहना चाहिए। क्रिया से ऐसा नही हो सकता।

नाथ काज कीन्हेउ हनुमाना। राखे सकल कपिन्ह के प्राना॥
सुनि सुग्रीव बहुरि तेहि मिलेऊ। कपिन्ह सहित रघुपति पहिं चलेऊ॥३॥

अर्थ : हे नाथ! हनुमान्‌जी ने कार्य किया। सब बन्दरो का प्राण बचाया। सुनकर सुग्रीव फिर उनसे मिले और वानरो के साथ रामजी के पास चले।

व्याख्या : अब स्वाभाविक प्रश्न यह उठता है कि कार्य किसने किया। अत कहते हैं : कीन्हेउ हनुमाना। हम लोग तो व्यर्थ ही आदर के पात्र बन रहे हैं। हनुमान्‌जी के प्रति सब कृतज्ञ है। अत उनके नाम लेने मे उत्साह है। अवधि बीत

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



गयी सुधि न मिली। हम लोग तो वध्य हो गये थे। हनुमान् ने ही सबके प्राण की रक्षा की। अथवा हम लोग तो समुद्र के तट पर अनशन करने के लिए बैठ ही गये थे। परन्तु हनुमान्‌जी ने : तव लगि मोहि परिखेहु तुम्ह भाई। सहि दुख कदमूल फल खाई। कहकर सबके प्राणो की रक्षा की तथा रास्ते मे : मरन चहत सब बिनु जलपाना : वहाँ भी इन्होने ही सबके प्राणो की रक्षा की।

अब मालूम हो गया कि कार्य हनुमान् द्वारा हुआ। अत॰ कृतज्ञता प्रकाश के लिए पुन॰ मिलना समुचित हुआ। कार्य विशेष का ब्योरा सुनने के लिए ठहरे नही। जितनी जल्दी सरकार की पीडा मिट सके वही करते हैं। अतः सबके साथ तुरन्त रवाना हो गये। अब वही चलकर ब्योरेवार बात सुनी जाय।

राम कपिन्ह जब आवत देखा। किए काजु मन हरप बिसेषा॥
फटिक सिला बैठे द्वौ भाई। परे सकल कपि चरनन्हि जाई॥४॥

अर्थ : श्रीरामजी ने जब वानरो को कार्य किये प्रफुल्लित मन आते देखा तो दोनों भाई स्फटिक शिला पर जा बैठे। सब वानर जाकर उनके चरणो मे गिरे।

व्याख्या : वानरो ने रामजी को न देखा। रामजी ने उनको आते देखा। हर्ष विशेष से कार्यसिद्धि का अनुमान हुआ। मन हर्ष का बाह्य लक्षण : मुख प्रसन्न तन तेज बिराजा है। गिरि गुहा मे उस समय सरकार थे। अत॰ उन्होने बन्दरो को देखा। वे सरकार को न देख सके।

तब बाहर निकलकर दोनो भाई स्फटिक शिला पर जा बैठे सबके सुभीते के लिए। सुग्रीव के यहाँ : आइ सबहि नावा पद सीसा। पर रामजी के यहाँ : परे सकल कपि चरनन्हि जाई।

दो. प्रीति सहित सब भेंटे, रघुपति करुना पुंज।
पूँछी कुसल नाथ अब, कुसल देखि पद कंज॥२९॥

अर्थ : कृपा के समूह रघुनाथजी सबसे प्रेम के साथ मिले और कुशल पूछी। वानरो ने कहा : नाथ! अब श्रीचरणो के दर्शन से कुशल है।

व्याख्या : परे सकल कपि चरनन्हि जाई। इसलिए प्रीति सहित सबसे मिले। क्योकि रघुपति करुनापुञ्ज हैं। जानते हैं कि मेरे कार्य के लिए सब अनशन करके प्राण देने पर तुले हुए थे। दूसरी बात यह कि करुणापुञ्ज है। प्रेमाधिक्य से चरणो मे पडते देखकर गले लगा लिया। कायदा बिलकुल एक सा चल रहा है। सुग्रीवजी मिले सबहि अति हरप और रामजी प्रीति सहित सब भेंटे। सुग्रीवजी के कुशल पूछने पर उत्तर दिया : कुसल पद देखी। रामजी के कुशल पूछने पर भी वही उत्तर देते है : नाथ अब कुसल देखि पद कंज। आये कपि सब जहँ रघुराई। प्रसङ्ग यहाँ तक है। आगे वैदेही की कुसल सुनाई : प्रसङ्ग चलेगा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जामवंत कह सुनु रघुराया। जा पर नाथ करहु तुम दाया॥
ताहि सदा सुभ कुसल निरंतर। सुर नर मुनि प्रसन्न ता ऊपर॥१॥

अर्थ जाम्बवान ने कहा हे रामजी! सुनिये। हे नाथ! जिस पर आप दया करते हैं उसे सदा मंगल और सर्वदा कुशल है। देवता मनुष्य और मुनि सभी उस पर प्रसन्न रहते हैं।

व्याख्या बूढे जाम्बवान ने देखा कि कुशल कहने के प्रेम मे बन्दर कार्यसिद्धि कहना भूल गये। अतः कुशल कथा का विस्तार करते हुए कहते हैं कि कुशल तो आपकी दया पर ही निर्भर है जासु कृपा नहिं कृपा अघाती। आपकी कृपा ही सुर नर मुनि की प्रसन्नता का कारण है। भाव यह कि सब ओर से उसे सहायता मिलती है और सबका स्वार्थ उसी से सिद्ध होता है। शुभ से मङ्गल का योग होना कहा। निरन्तर कुशल से बाधाओ का अतिक्रमण होना कहा। सुर नर मुनि स्वार्थ के लिए प्रीति करनेवाले हैं। वे भी आपके कृपापात्र पर प्रसन्न हो जाते हैं। सबका स्वार्थ भी उसी से सधता है। मैनाक मिलन सुरसा आशीर्वाद बिभीषण मिलन शुभ वृत्तान्त है और सिंहिका वध काल का हटना लङ्किनी पराभव आदि निरन्तर कुशल की कथा है।

सोइ बिजई बिनई गुन सागर। तासु सुजसु त्रैलोक्य उजागर॥
प्रभु की कृपा भयउ सब काजू। जन्म हमार सुफल भा आजू॥२॥

अर्थ वही विजयी, वही विनयी है वही गुणसागर है। उसी का सुन्दर यश तीनो लोक मे प्रकाशित होता है। प्रभु की कृपा से सब कार्य हुआ और हम लोगो का जन्म सफल हुआ।

व्याख्या विजय भी उसी की होती है और वही विजय पर अभिमान नही करता। विजय की शोभा विनय से है। उसी मे सब गुण आ जाते हैं। वही यशस्वी होता है। गुण की शोभा यश से है। विजयी यथा प्रभु मर्कट बल भूरि। विनय यथा सुनु माता साखामृग नहिं बल बुद्धि बिसाल। गुनसागर यथा अजर अमर गुननिधि सुत होहू। सुयश यथा तासु चरित मन महुँ सब गावा। कार्य तो प्रभु की कृपा से हुआ और निमित्त होने से जन्म हम लोगो का सुफल हो गया। कार्य सबके सब असाध्य थे। मनुष्य जन्म का सफल होना महा कठिन हो जाता है। सो बन्दर भालुओ का जन्म सुफल हुआ। सरकार का कार्य सम्पादन करके आ रहे हैं देह धरे कर यह फल भाई। भजिय राम सब काम बिहाई। सो सरकार की सेवा बन पडी।

## ६५ वैदेही कुशल कथन प्रसङ्ग

नाथ पवनसुत कीन्हि जो करनी। सहसहुँ मुख न जाइ सो बरनी॥
पवनतनय के चरित सुहाए। जामवंत रघुपतिहि सुनाए॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : हे नाथ ! पवनसुत हनुमान्जी ने जो करणी की है वह सहस्रों मुख से वर्णन नही की जा सकती। तब जाम्बवान ने हनुमान्जी के सुन्दर चरित्र को श्रीरामजी से कह सुनाया।

व्याख्या : जान तो सबने लगाया। यथा : राम काज लयलीन मन बिसरा तन कर छोह : पर प्रशंसनीय करणी हनुमान्जी की ही है। उसका यथार्थ वर्णन सहस्र मुख से भी असम्भव है : भोगावति जस अहिकुल वासा। अमरावति जस सक्र निवासा। तिन्ह तें अधिक रम्य अति बंका। जग विख्यात नाम तेहि लंका। सहस्र मुख के पुर मे ऐसा दुर्ग नही है : जिसका हनुमान्जी ने विनाश किया। इसलिए वे वर्णन नही कर सकते। अथवा हनुमान्जी साधु हैं। उनकी करणी का वर्णन सहस्र मुख नही कर सकते। यथा : कहि सक न नारद सेष सारद सुनत पद पंकज गहे।

हनुमान्जी अविकत्थन हैं। ब्यौरेवार न कहेंगे और सरकार को सब बातें ब्यौरेवार सुनाना चाहिए। इसलिए रास्ते भर छेड़ छेड़कर पूछते आये। यहाँ हनुमच्चरित का उपसंहार दिखलाया। वक्ता जाम्बवान श्रोता स्वय रामचन्द्र। प्रवर्षण गिरि पर पहिले पहल हनुमच्चरित की कथा हुई।

सुनत कृपानिधि मन अति भाए। पुनि हनुमान हरषि हिय लाए ॥
कहहु तात केहि भाँति जानकी। रहति करति रच्छा स्वप्रान की ॥४॥

अर्थ : सुनते ही कृपानिधि के मन मे बहुत अच्छे लगे। उन्होने हर्षित होकर फिर हनुमान्जी को हृदय से लगा लिया : और कहा : हे तात ! कहो जानकी किस प्रकार से रहती और अपने प्राणों की रक्षा करती है।

व्याख्या : कृपानिधि हैं : इन्हे सेवक के सुहाए चरित अत्यन्त भाए। उस चरित्र का उपक्रम जाम्बवान के अति सुहाए वचन से है। यथा : जामवत के बचन सुहाए। सुनि हनुमंत हृदय अति भाए और उपसहार भी उन्ही के वचन से है। यह अत्यन्त सुहाता है। इसलिए सुन्दरकाड की कथा प्रायेण सुनी जाती है। श्रीहनुमान्जी के चरित भाए सबको। परन्तु कृपानिधि को अत्यन्त भाए। अत. हरषि हिय लाए।

अब सरकार हनुमान्जी से पूछते है कि जानकी ने तो वन यात्रा के प्रसंग मे कहा था राखिअ अवध जो अवधि लगि रहत जान अहि प्रान। और तदनुसार मैंने भी समझ लिया था कि हठि राखे नहिं राखिहि प्राना। सो लङ्का मे वह कौन सी विधि है जिससे सीता के प्राणों की रक्षा हो रही है : यह हा विकट प्रश्न सरकार ने हनुमान्जी से किया। हनुमान्जी उत्तर देते हैं :

दो. नाम पाहरु रात दिनु, ध्यान तुम्हार कपाट।
लोचन निज पद जन्त्रित, जाहि प्रान केहि बाट ॥३०॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : आपका नाम रात दिन पहरा देता है। आपका ध्यान ही किवाड़ है। चरणो मे नेत्रो का ताला लगा है। फिर प्राण किस रास्ते से जाय ?

व्याख्या : हनुमान्जी का कहना है कि शरीर पर रावण का पहरा है और प्राण पर तो सरकारी पहरा पड रहा है। प्राण तो निकल जाना चाहते हैं पर उन्हे रास्ता नही मिलता। सब वृत्तियो का अवरुद्ध होकर सरकार के आकार मे आकारित होना ही ध्यान है। सो ध्यानरूपी किवाड मे प्राण बन्द हैं। मन के रुकने से प्राण रुका हुआ है। यथा : चित्र से नयन अरु गढे से चरण कर मढे से 'नयन नहि सुनत पुकारे : गी :। चरणो मे नयन के यन्त्रित होने का कारण यह है कि चरण मे विष्णु भगवान् का निवास है। तिस पर नाम का श्वास नि.श्वासात्मक जप हो रहा है। इससे उसे रात दिन का पहरेदार बतलाया। इन्ही पहरेदारो के बल पर काल का जय होता है। श्रीजानकीजी का शरीर ही नही प्राण भी कैद है। जो किवाड मे बन्द हो, ताला लगा हो, उस पर भी पहरा पडता हो, वह बाहर निकले तो कैसे ?

चलत मोहि चूडामनि दीन्ही। रघुपति हृदय लाइ सोइ लीन्ही ॥
नाथ जुगल लोचन भरि बारी। बचन कहे कछु जनककुमारी ॥१॥

अर्थ : चलते समय मुझे चूडामणि दिया। श्रीरामजी ने उसे हृदय से लगा लिया। हनुमान्जी ने कहा 'हे नाथ ! दोनो आँखो मे आँसू भरकर कुछ वचन श्री जानकीजी ने कहा है।

व्याख्या : हनुमान्जी ने उत्तर समाप्त होते न होते दूसरी बात छेड दी। जिसमे इस प्रकार के दूसरे प्रश्न न उठने पावे। क्योकि माता पिता के वियोग के निरूपण मे पुत्र को बडी कठिनाई पडती है। यद्यपि माँगने पर चूडामणि मिली है पर यह बात हनुमान्जी नही कहते। हाथ मे लेकर चूड़ामणि उपस्थित करते हैं। कहते है कि चलते समय मुझे चूडामणि दिया। भाव यह कि देखने से जब चित्त द्रवीभूत हो तो सन्देश कहे। अभी तो चित्त तर्क वितर्क पर आरूढ है। वही बात सामने आयी। रामजी ने चूडामणि को हृदय से लगा लिया। भगवती के चिह्न को हृदय से लगाते हैं। तब हनुमान्जी बोले कि जनकनन्दिनी की दोनो आँखें बात कहने मे डबडबा आयी। कहना उन्हे बहुत था पर कुछ ही कह सकी। जनककुमारी कहकर दु:ख सहने की अयोग्यता ध्वनित किया।

अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना। दीन बंधु प्रनतारति हरना ॥
मन क्रम बचन चरन अनुरागी। केहि अपराध नाथ हौ त्यागी ॥२॥

अर्थ : जानकीजी ने कहा कि छोटे भाई समेत प्रभु का चरण पकडना और कहना कि आप दीनबन्धु है। शरणागत के दु:खो को हरनेवाले हैं। मैं मन वचन और कर्म से आपके चरणो की अनुरागिणी हूँ ? हे नाथ ! मै किस अपराध से त्यागी हुई हूँ ?

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : अति आर्त्त होने से लघुदेवर के भी चरण ग्रहण के लिए कह रही हैं अथवा उनके प्रति जो कटु वचन कहा था उसका बडा पश्चात्ताप हृदय मे है। क्षमापन के लिए उनके चरण ग्रहण करने को कह रही है। दोनो भाई दीनबन्धु हैं, दोनो प्रणतार्ति हरण हैं और मै दीन, आर्त तथा प्रणत हूँ। पहिला प्रश्न जानकीजी का यही था कि : कपि केहि हेतु धरी निठुराई। उसी का विवरण करते हैं कि मन क्रम वचन अनुरागी के त्याग का आप कारण वतलाइये। भगवती ने पहिले प्रणाम कहा तब सन्देश कहा। यथा : कहेहु तात अस मोर प्रणामा : उसी को स्पष्ट करते हैं। अनुज समेत गहेहु प्रभु चरना। इसके बाद सन्देश कहते हैं : पर जानकीजी के कहे हुए सन्देश से इस सन्देश के एक शब्द का मेल नही खाता। यही दूत की पण्डिताई है कि सन्देश के भावो को अवसरोचित रूप मे व्यक्त करे। अत. वाक्यो मे भेद होते हुए भी तात्पर्य ऐसे अवसरानुकूल शब्दो म कहा गया कि यदि सीताजी के वाक्य दोहरा दिये जाते तो वैसे प्रभावोत्पादक न होते।

अवगुन एक मोर मै माना। बिछुरत प्रान न कीन्ह पयाना॥
नाथ सो नयनन्हि कर अपराधा। निसरत प्रान करहिं हठि वाधा॥३॥

अर्थ : एक दोप मै अपना मानती हूँ कि वियोग होते ही प्राण नही चले गये। किन्तु हे नाथ! यह तो नेत्रो का अपराध है जो प्राणो के निकलने मे हठपूर्वक बाधा देते है।

व्याख्या : एक अवगुण मैं अपना मानती हूँ कि यदि प्राण नही जाने पाते तो विरह ज्वाला से शरीर तो भस्म हो जाना चाहिए। क्योकि : अस कहि सीय विकल भइ भारी। वचन वियोग न सकी सँभारी। सो शारीरिक वियोग कैसे सँभला ?

इस पर कहती हैं कि प्राण का कोई अपराध नही। वह तो निकल जाना चाहता है। अपराधी तो ये आँखें हैं जो उसके निकलने मे बाधा पहुँचाती हैं। अब मेरे अन्त करण प्राण और इन्द्रियो मे सामञ्जस्य नही है। गडबड़ी मच गयी है। कोई कुछ चाहता है कोई कुछ चाहता है।

विरह अगिनि तनु तूल समीरा। स्वास जरै छन माहिं सरीरा॥
नयन स्रवहिं जलु निज हित लागी। जरै न पाव देह विरहागी॥४॥

अर्थ : विरह अग्नि है। शरीर रूई है और श्वास पवन है। यह शरीर क्षणभर मे भस्म हो सकता है। परन्तु नेत्र अपने हित के लिए जल वरसाते हैं। विरह की आग से देह जलने नही पाती।

व्याख्या : भाव यह कि शरीर के स्थिर रहने से ही ध्यान श्वास नि.श्वासात्मक जप त्राटकादि क्रियायें वनती हैं तभी प्राण रुकता है। यदि शरीर ही विरह ज्वाला से जल जाय मकान ही न रहे तो किवाड पहरेदार और ताला क्या करेगा ? इसके उत्तर म कहती हैं कि शरीर के भस्म होने की सब सामग्री ठीक है। विरहाग्नि अति तीव्र है। जिसके आगे लौकिकाग्नि शीतल मालूम होती

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है। यथा : देहि अगिनि तन करहि निदाना। इस आग के सामने देह रूई है। सती के जलने का विज्ञान इसी दोहे मे है। और श्वास धौकनी की भाँति इस अग्नि को बढाता है। सती को पति के पुनर्दर्शन की आशा नही रहती। उसकी आँखें आँसू नही बहाती। मेरी आंखो को दृढ आशा दर्शन की है। अतः वे शरीर को जलने देना नही चाहती। शरीर को भिगो देती हैं। भीगी हुई रूई नही जलती। अत. वे ही मेरे शरीर के दग्ध होने मे बाधक हैं। वे सरकार के दर्शन की लालची हैं। इतना ही अवगुण है। अब सरकार ही विचार लें कि क्या इतना अवगुण अनुरागी के त्याग के लिए यथेष्ट कारण हो सकता है कि ग्रहण का? बडे मार्के का उत्तर है कि आपके दर्शन की आशा से जी रही है। नहीं तो उस मूर्ति का मैं दर्शन कर चुका हूँ। जब वे प्रेमोन्माद मे चन्द्र तारा और अशोक वृक्ष से अग्नि माँग रही थी।

सीता कै अति बिपति बिसाला। बिनहि कहे भल दीनदयाला ॥५॥

अर्थ : सीताजी की अत्यन्त विशाल विपत्ति का हे दीनदयाल! न कहना ही अच्छा है।

व्याख्या : आप दीनदयाल है। दीन की विपत्ति देख नही सकते। और सीताजी ऐसी दीन हो रही हैं कि उनकी विपत्ति न कहने मे ही कुशल है। सरकार बहुत दुःखी होगे सह न सकेंगे। रावण की कही शूलसम वाणी की ओर लक्ष्य है तृषित बारि बिनु जो तनु त्यागा। मुए करिहि का सुधा तडागा। अतः शीघ्र चलिए।

दो. निमिष निमिष करुनानिधि, जाहिं कलप सम बीति।
बेगि चलिअ प्रभु आनिअ, भुज बल खल दल जीति ॥३१॥

अर्थ. हे करुणानिधान! एक एक पल कल्प के समान बीत रहा है। अत. हे प्रभु! तुरन्त चलिए और अपनी भुजाओंके बल से दुष्टो को जीतकर उन्हे ले आइये।

व्याख्या : सीताजी की विरह की दशा देखकर. सो छन कपिहि कलप सम बीता। अतः जो स्वय अनुभव कर रहा है उसके एक पल के कल्प सम बीतने मे क्या सन्देह है। भाव यह कि बातचीत मे समय व्यर्थ बीत रहा है। एक निमेष इस समय कीमती : मूल्यवान् है। कौन कह सकता है कि कब उनका शरीर छूट जाय। अतः शीघ्रता कीजिये। हनुमानूजी जाम्बवान से सुन चुके हैं कि तब निज भुज बल राजिव नैना। कौतुक लागि सग कपि सैना। कपि सग सघारि निसिचर राम सीतहि आनिहैं। अतः कहते हैं भुजबल खल दल जीति। बिना युद्ध के सीता की प्राप्ति नही हो सकती।

सुनि सीता दुख प्रभु सुख अयना। भरि आए जल राजिव नयना ॥
बचन काय मन मम गति जाही। सपनेहु बूझिअ बिपति कि ताही ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : सीता का दुःख सुनकर सुखधाम प्रभु के नेत्रों में जल भर आया। वचन मन और तन से जिसे मेरी गति हो उसे क्या सपने मे भी विपत्ति आ सकती है।

व्याख्या : जिस सीता का नाम सोने में भी उच्चरित होता है। जिसके ऊपर आघात करने से काग पर भी ऐषीकास्त्र का प्रयोग किया गया उसी सीता का दुःख सुनकर सुखधाम प्रभु की आँखों मे आँसू भर आये। राजीव नयन शब्द का प्रयोग कृपाद्योतन के अर्थ में कवि करते हैं। यथा : चितइ कृपा करि राजिव नयना इत्यादि। उधर सन्देश कहने में भगवती के नयनों मे जल भर आया था। यथा : नाथ जुगल-लोचन भरि बारी। वचन कहे कछु जनककुमारी। इधर सन्देश सुनकर सरकार के नेत्रों मे जल भर आया। यथा : भरि आये जल राजिव नयना।

प्रभु ने कहा अनन्य चिन्तन करनेवाले को विपत्ति कहाँ? सीताजी ने अपने को कहा था मन क्रम वचन चरन अनुरागी। और हनुमान्‌जी कहते हैं सीता कै अति बिपति बिसाला। इन दोनों बातों का सामञ्जस्य नही बैठता। क्योंकि सरकार के अनुराग मे विपत्ति हरण का सामर्थ्य है। रामानुरागी को विपत्ति कहाँ? अतः कहते हैं : सपनेहु बूझिअ बिपति कि ताही।

कह हनुमंत बिपति प्रभु सोई। जब तव सुमिरन भजनु न होई॥
केतिक बात प्रभु जातुधान की। रिपुहि जीति आनवी[१] जानकी॥२॥

अर्थ : हनुमान्‌जी ने कहा कि हे प्रभो! विपत्ति तो वही है जब कि तुम्हारा स्मरण और भजन न हो। हे प्रभो! राक्षसों की बात ही कितनी है। आप शत्रु को जीतकर जानकी को ले आवेंगे।

व्याख्या : प्रभु का स्मरण भी निर्विघ्न नहीं होने पाता। राक्षस बाधक होते हैं। भजन तो दूर की बात है। सरकार का स्मरण भजन जब न हो तभी विपत्ति है। सांसारिक विपत्ति को तो भक्त स्वयं नही गिनते।

फिर हनुमान्‌जी ने उत्तर समाप्त होते ही दूसरी बात छेड़ दी। इन्हे सरकार के ले चलने की जल्दी है। चिन्ता को स्थान देना नहीं चाहते। चिन्ता कार्यविनाशिनी है अतः उत्साह बढ़ाते है। कहते हैं सरकार के सामने जातुधान क्या हैं! ब्रह्म रुद्र को सरकार का भय रहता है। यथा : ब्रह्मधाम सिवपुर सबलोका। फिरा श्रमित ब्याकुल भय सोका। अतः जीत निश्चय है। अकेला मैं सीता के लाने मे समर्थ था।

सुनु कपि तोहि समान उपकारी। नहिं कोउ सुर नर मुनि तनुधारी॥
प्रति उपकार करौं का तोरा। सनमुख होइ न सकत मन मोरा॥३॥

अर्थ : हे हनुमान्‌जो! सुनो तुम्हारे ऐसा उपकारी शरीरधारी देवता मनुष्य

१. बुन्देलखण्ड मे आनिवी क्रिया का प्रयोग बहुवचन मे होता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



और मुनियो मे कोई नही है। मैं तुम्हारे उपकार के बदले मे क्या करूँ। मेरा तो मन भी सामने नही हो रहा है।

व्याख्या : सुर नर मुनि सबकै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती। अत: उसके उऋण होने का उपाय शास्त्रो मे लिखा है। उनके स्वार्थ साधन से मनुष्य उऋण हो जाता है। यज्ञ करके देव ऋण से तर्पण करके पितृऋण से शास्त्राध्ययन करके ऋषिऋण से उत्तीर्ण होता है। अध्ययन करनेवाला ही मन्त्रो के ऋषियो को जानता है। उनके नाम को बनाये रखनेवाला है। उनके दिये हुए दिव्य ज्ञान को जीता जागता रखनेवाला अध्येतृवर्ग ही है। पर तुम्हारा तो कोई स्वार्थ ही नही है। तुम्हारा प्रत्युपकार कोई कैसे करे ? और उपकारी का प्रत्युपकार करना सनातन धर्म है। अथवा तुम्हारा उपकार इतना बड़ा है कि मेरी यही इच्छा होती है कि तुम्हारा ऋणी ही बना रहूँ। क्योकि उपकार का बदला जो देना चाहता है वह उपकारी के ऊपर विपत्ति आने की प्रतीक्षा करता है। नर: प्रत्युपकारार्थी विपत्तिमभिकाक्षति। अत मेरा मन उस ओर जाता ही नही। प्रत्युपकार की बात ही सोचना नही चाहता।

सुनु सुत तोहि उरिन मै नाही। देखेउँ करि विचार मन माही॥
पुनि पुनि कपिहि चितव सुरत्राता। लोचन नीर पुलक अति गाता॥४॥

अर्थ : हे पुत्र ! मैंने मनमे विचार करके देख लिया कि मै तुमसे उऋण नही हो सकता। देवताओ के रक्षक प्रभु बार बार हनुमान्‌जी को देखते हैं। नेत्रो मे जल भरा है और शरीर मे अत्यन्त पुलक है।

व्याख्या सरकार ने भी बेटा का नाता मान लिया। अत सुत सम्बोधन करते हैं। उऋण होने के लिए प्राण तक दिये जाते है। पर सीताजी की खोज उनकी सान्त्वना स्वयं प्रभु को सान्त्वना प्रस्थान के लिए प्रोत्साहन। अपने श्रम और प्राण को न गिनना। अति बुद्धिमत्ता ये सब एक एक बातें ऐसी है जिसके बदले मे प्राण दिया जा सकता है। अत प्राण देने पर भी शेष उपकारो के लिए ऋणी ही रहूँगी।

सीताजी के आशीर्वाद करहुँ बहुत रघुनायक छोहू का साफल्य हो रहा है। पुनि पुनि कपिहि चितव सुर त्राता। अति प्रेम होने से बार बार देखते हैं। यथा : कौसल्या पुनि पुनि रघुवीरहि। चितवति कृपा सिंधु रनधीरहि। बेटे के महान पुरुषार्थ कर आने पर जो अवस्था माता की होती है वही सरकार को इस समय हो रही है। सरकार सुरत्राता हैं। देवता लोग चाहा करते हैं कि मेरी ओर देखें। यथा : मामवलोकय पकज लोचन। कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन। सो प्रभु बार बार हनुमान्‌जी की ओर देख रहे है। नेत्रो मे जल भरा है। शरीर अत्यन्त पुलकित है सात्त्विक भाव हो रहा है।

दो. सुनि प्रभु बचन बिलोकि मुख, गात हरषि हनुमत।
चरन परेउ प्रेमाकुल, त्राहि त्राहि भगवंत॥३२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : प्रभु का वचन सुनकर और उनका मुख देखकर हनुमान्जी पुलकित शरीर हो गये और प्रेम से आकुल होकर हे भगवान् मेरी रक्षा करो रक्षा करो कहते हुए श्रीरामजी के चरणों में गिर गये।

व्याख्या : प्रभु का वचन सुना कि अपने को मेरा ऋणी मान रहे हैं। मुख देखा कि बार बार मेरी ओर देख रहे हैं। हनुमान्जी पुलकित हो उठे। चरणों पर गिर पड़े कि सरकार को सभी कहना और करना शोभा देता है। पर मुझे तो ऐसा कहने से मोह हो सकता है। सरकार ऐसा न कहें। अतः त्राहि त्राहि पुकारा। बड़ाई देने से हनुमान्जी सनेह सभीत हो गये। बड़ाई भजन में बाधक है। यथा : ए सब राम भगति के बाधक। यहाँ हनुमान्जी का मनसा वाचा कर्मणा शरण में आना कहा। मनसा प्रेमाकुल। वाचा त्राहि त्राहि भगवत। कर्मणा चरण परेउ। प्रभो! मेरे त्राहि त्राहि शब्द को सुनके आप उऋण हो जायँ।

बार बार प्रभु चहइ उठावा। प्रेम मगन तेहि उठब न भावा॥
प्रभु कर पंकज कपि के सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा॥१॥

अर्थ. प्रभु बार बार उठाना चाहते हैं। प्रेम मे डूबे हुए हनुमान्जी को उठना नहीं सोहाता। प्रभु का करकमल हनुमान्जी के सिर पर है। उस दशा का स्मरण करके शिवजी मग्न हो गये।

व्याख्या : जो प्रेम मे मग्न होता है वह चरणो मे पड़े रहने के सुख को छोड़ना नही चाहता और मालिक के उठाने मे विलम्ब होने से उपेक्षा सूचित होती है। अत. सरकार उठाना चाहते हैं हनुमान्जी उठना नही चाहते। यथा : परे भूमि नहिं उठत उठाये। जब त्राहि त्राहि करके चरणो मे गिरे तब रक्षा का हाथ भगवान् ने सिर पर रक्खा और सिर पर हाथ रक्खे हुए ही उठाना भी चाहते हैं।

सरकार का हाथ सिर पर पड़े। इस बात को भक्त सदा चाहा करते हैं। यथा :

कबहुँ सो कर सरोज रघुनायक धरिहौ नाथ सीस मेरे।
जेहि कर अभय किये जन आरत बारक बिबस नाम टेरे॥
सीतल सुखद छाँह जेहि करकी मेटत पाप ताप माया।
निसि बासर तेहि कर सरोज की चाहत तुलसिदास छाया॥

हनुमान् शरीर से उस सुख का अनुभव किया है और गौरीश शरीर से उसका स्मरण करते हैं। जिसे अनुभव होता है वही स्मरण कर सकता है। अत. शिवजी मग्न हो गये। कथा बन्द हो गयी। यही एक अवसर है जहाँ शिवजी आनन्द मे विभोर होकर कथा कहना भूल गये।

सावधान मन करि पुनि संकर। लागे कहन कथा अति सुंदर॥
कपि उठाइ प्रभु हृदय लगावा। कर गहि परम निकट बैठावा॥२॥

अर्थ : फिर मन को सावधान करके शिवजी अत्यन्त सुन्दर कथा कहने लगे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हनुमान्‌जी को उठाकर प्रभु ने हृदय से लगाया और हाथ पकड़कर अत्यन्त समीप बिठलाया।

व्याख्या : सावधान कहने से ही पहिले की असावधानता सूचित हुई। यह अनवधानता सावधानता से भी कही अच्छी है। फिर भी मन के सावधान करने का भाव यह कि परोपकार का दर्जा ब्रह्मानन्द से भी अधिक है। यथा : परोपकारकैवल्ये तोलयित्वा जनार्दनः। गुर्वीमुपकृतिं मत्वा ह्यवतारान् दशाग्रहीत्। भगवान् जनार्दन ने परोपकार और कैवल्य को तौल डाला। परोपकार का पलड़ा भारी मानकर दश अवतार धारण किये। इस अवसर पर कवि भी असावधान हो गये। कथा को सुन्दरी कहना चाहिए सो सुन्दर लिख दिया।

बलकरि कृपासिंधु उर लाये। हनुमान्‌जी परम निकट बैठना नहीं चाहते थे पर सरकार ने जबरदस्ती हाथ पकड़ कर परम निकट बिठाया। हनुमान्‌जी ने बड़ा भारी कार्य किया है। इसलिए उन्हें बड़ा भारी आदर दिया जा रहा है। पुनि हनुमान् हरषि उर लाये से उपक्रम करके कपि उठाइ प्रभु हृदय लगावा से उपसंहार किया। सीता के सन्देश की कथा समाप्त हुई। अब हनुमान्‌जी की बहादुरी की बात चली।

कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका॥
प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना। बोला बचन बिगत अभिमाना॥३॥

अर्थ : हे कपि ! लङ्का तो रावण द्वारा रक्षित है। उस बड़े बाँके दुर्ग को तुमने किस भाँति जलाया ? हनुमान्‌जी ने प्रभु को प्रसन्न जाना अतः अभिमान रहित वचन बोले।

व्याख्या : सरकार अपना आश्चर्य प्रकट करते हैं कि अमरावती और भोगावती को जलाना सरल कार्य है पर लङ्का का जलाना कठिन है। तिसपर रावण ऐसा प्रतापी उसकी रक्षा कर रहा है जिसकी आज्ञा में प्रलय के बादल हैं। ऐसी सोने की लङ्का रावणपालित होने पर जली कैसे ?

जब सरकार प्रसन्न होते है तब ऐसी ही बात बोलते हैं। यह परीक्षा का समय है। यदि अभिमान आगया तो उन्नति रुक जाती है। यथा : करुणानिधि मन दीख बिचारी। उर अंकुरेउ गर्ब तरु भारी। बेगि सो मैं डारिहौं उखारी। पन हमार सेवक हितकारी। परन्तु सयाने भक्तों को अभिमान नहीं होता। ऐसा ही बर्ताव अंगद के साथ हुआ। सरकार पूछने लगे : रावन जातुधान कुलटीका। भुजबल अतुल जासु जगलीका। तासु मुकुट तुम चारि चलाये। कहहु तात कवनी बिधि पाये। उत्तर में अङ्गदजी अभिमान रहित बाणी बोले।

साखामृग कै बड़ि मनुसाई। साखा तें साखा पर जाई॥
नाघि[१] सिंधु हाटकपुर जारा। निसिचर गन बधि बिपिन उजारा॥४॥

१. यहाँ पर्यस्तालङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सो सब तव प्रताप रघुराई। नाथ न कछू मोरि प्रभुताई ॥५॥

अर्थ : शाखा के मृगो वन्दरो की बडी भारी प्रभुताई यही है कि एक डाल पर से दूसरे पर चला जाय। जो समुद्रोल्लघन किया सोने का पुर जलाया। राक्षसो को मारकर अशोक वन उजाडा। इसमे नाथ मेरी प्रभुताई कुछ भी नही सब आपके प्रताप से हुआ।

व्याख्या यहाँ शाखामृग कहने का भाव यह कि मै तो शाखा पर रहनेवाला पशु हूँ। एक डाल पर से दूसरे पर उछल जाऊँ और डाल न चूके। इतनी ही मेरी वहादुरी है। यह सामर्थ्य अन्य किसी पशु मे नही है। अत यह मेरी जाति की प्रभुताई है। न तो शाखामृग नदी लाँघ सकते हैं न आग लगा सकते हैं और न रक्षको को मारकर फुलवाडी ही उजाड सकते हैं। समुद्र लांघना ग्राहादि से भी अशक्य है। हाटक सोना का जलाना स्वर्णकार से भी अशक्य है। निशिचरो को मारना देवताओ से भी अशक्य है और अशोक वन उजाडना इन्द्र से भी अशक्य है। इन सब कामो को मैंने किया तो क्या इनमे मेरी प्रभुता थी ?

यह सब सरकार की प्रभुता ने किया। यह कहकर हनुमान्‌जी ने बुद्धि म इन्द्रादिक को भी जीत लिया। वेद मे कथा है कि एक बार देवो के द्वारा ब्रह्म ने असुरो को जीता। देवताओ को अभिमान हुआ कि यह हमारी विजय है। हमारी महिमा है। तव यक्ष रूप से ब्रह्म का प्रादुर्भाव हुआ। देवताओ ने उनके जानने के लिए अग्नि को भेजा। यक्ष ने उनके सामने एक तृण रख दिया कि इसे जलावो। वे न जला सके। तब वायु भेजे गये। उनका उडाया वह तृण न उडा। तब इन्द्र स्वयं गये। उनके अभिमान को देखकर ब्रह्म अन्तर्धान हो गये। तव उमा ने उनका परिचय दिया कि यही ब्रह्म है। इन्ही की सदा विजय होती है। इन्ही की जीत से तुम्हारी पूजा हो रही है। हनुमान्‌जी जानते थे कि जीत मे वस्तुत करामात प्रभु की प्रभुता की है। अत बुद्धि में हनुमान्‌जी इन सबसे बढ गये।

दो ताकहुँ प्रभु कछु अगम नहि, जापर तुम्ह अनुकूल।
तव प्रताप वडवानलहि, जारि सकइ खलु तूल ॥३३॥

अर्थ : हे प्रभो ! जिस पर आप अनुकूल हो उसके लिए कोई भी वात कठिन नही है। आपके प्रभाव से रूई निश्चय करके वडवानल को जला सकती है।

व्याख्या सबइ लाभ जग जीव कहँ भये ईसु अनुकूल। बडवानल मे ऐसी दाहिका शक्ति है कि दिन रात एक योजन जल समुद्र का जलाया करता है और समुद्र उसे बुझा नही पाता। पर सरकार यदि रुई के अनुकूल हो जायँ तो वह वडवानल को जला सकती है। भाव यह कि एक अमोघ शक्ति करनाकर अमोघ शक्ति केवल सरकार हैं। सरकार जिसके अनुकूल हो जाते हैं उसम सरकारी शक्ति काम करने लगती है। फिर उससे कुछ भी असाध्य नहीं है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नाथ भगति अति सुखदायनी । देहु कृपा करि अनपायनी ॥
सुनि प्रभु परम सरल कपि बानी । एवमस्तु तब कहेउ भवानी ॥१॥

अर्थ : हे नाथ ! अत्यन्त सुख देनेवाली अविरल भक्ति कृपा करके दीजिये। हनुमान्‌जी की अत्यन्त सरल वाणी सुनकर तब प्रभु ने कहा कि ऐसा ही हो।

व्याख्या : भक्त भगवान् के प्रताप से सब कुछ करता है और भगवान् ऐसे दयासागर हैं कि उसे उसका किया हुआ मान लेते हैं। यहाँ हनुमान्‌जी सोचते हैं कि मैंने क्या किया ? सब सरकार के प्रताप ने किया और सरकार इस चिन्ता से क्षुब्ध हैं कि इसका प्रत्युपकार मैं कैसे करूँ। मैं अति बहुमूल्य वस्तु जो ज्ञान और विराग से भी अधिक सुख देनेवाली है माँगकर क्षोभ मिटाये देता हूँ। वह वस्तु है अनपायनी भक्ति। जिसमे अपाय अर्थात् विघ्न न उपस्थित हो सके उसे अनपायनी कहते हैं। मेरी सेवा मे कुछ नही है। प्रभु कृपा करके दें तो सम्भव है।

सरकार की वाणी सरल थी। यथा : कहु कपि रावन पालित लंका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बंका। पर हनुमान्‌जी की वाणी परम सरल थी। यथा साखामृग कै बड़ि मनुसाई इत्यादि। बिना परम सरल हृदय हुए ऐसी सरल वाणी कोई बोल नही। सरलता और निर्मल मन जन सो मोहि पावा। अतः सरकार ने एवमस्तु कहा। हनुमान्‌जी को अविरल भक्ति की प्राप्ति हुई।

उमा राम सुभाउ जेहि जाना । ताहि भजनु तजि भाव न आना ॥
यह संवाद जासु उर आवा । रघुपति चरन भगति सोइ पावा ॥२॥

अर्थ : हे उमा ! जिसने रामजी का स्वभाव जान लिया उसे भजन छोड़कर दूसरी बात ही नही सोहाती। यह संवाद जिसके हृदय मे आगया वह रघुपति के चरणो की भक्ति पा जाता है।

व्याख्या : अस सुभाउ कहुँ सुनौं न देखौं। केहि खगेस रघुपति सम लेखौं। सरकार का स्वभाव ही ऐसा है कि उसके जान लेने पर वे ही अच्छे लगते हैं। दूसरा कोई सुहाता ही नहीं। यथा : अब न आँखि तर आवत कोऊ। और न कोई दूसरी वस्तु ही अच्छी लगे। उसे फिर उनका भजन ही अच्छा लगता है। हनुमान्‌जी को प्रभु के स्वभाव का परिज्ञान था। यथा : तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ : अतः उन्हें प्रभु की भक्ति ही अच्छी लगी।

अनपायिनी भक्ति तो हनुमान्‌जी ने पायी। पर उसे भी भक्ति की प्राप्ति होगी जिसके मन मे यह सम्वाद बैठ जायगा। यथा : सकल सुकृत कर बड़ फल एहू। राम सीय पद सहज सनेहू। इस सम्वाद की महा महिमा है। प्रत्येक काण्ड की पृथक् फलश्रुति तो दी हुई है। पर प्रसङ्ग विशेष की भी जो बडे महत्त्व के हैं पृथक् फलश्रुति दी गयी है।

सुनि प्रभु बचन कहहिं कपि बृंदा । जय जय जय कृपालु सुखकंदा ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



## ६६. सेना समेत रघुवीर का समुद्रतट प्रस्थान प्रसङ्ग

तव रघुपति कपिपतिहि बोलावा । कहा चलै कर करहु बनावा ॥३॥

अर्थ . प्रभु के वचन सुनकर वानरगण कहने लगे कि कृपालु आनन्दकन्द रामजी की जय हो, जय हो, जय हो। तब रामजी ने कपिपति सुग्रीव को बुलाया और कहा कि चलने की तैयारी करो।

व्याख्या · अनपायिनी भक्ति की दुर्लभता का ज्ञान वानरो को है। यथा ·

नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्म व्रत धारी॥
धर्मसील कोटिक महँ कोई। विषय बिमुख बिराग रत होई॥
कोटि बिरक्त मध्य श्रुति कहई। सम्यक् ज्ञान सकृत कोउ लहई॥
ज्ञानवत कोटिक महँ कोऊ। जीवन मुक्त सकृत जग सोऊ॥
तिन सहस्र महुँ सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्म लीन विज्ञानी॥
सब ते सो दुर्लभ सुरराया। राम भगति रत गत मद माया॥

अत जब हनुमान्‌जी ने अनपायिनी भक्ति माँगी तब सभी सशङ्क हो गये कि देखें सरकार इस पर क्या कहते हैं। सो एवमस्तु सुनते ही सबो ने जय जयकार किया। यह भक्ति कृपासाध्य है इसलिए कृपा कहा। भक्ति सुखदायिनी है इसलिए सुखकन्द कहा अथवा हनुमान्‌जी के वर मिलने पर सब सुखी हुए। इसलिए सरकार को सुख का मेघ कह रहे हैं। उन लोगो के भी तापत्रय नष्ट हुए क्योंकि यह सम्वाद उनके सामने हुआ था। अत तीन बार जय बोल रहे हैं।

सब वानरो पर कपिपति की आज्ञा चलती है और उन पर रघुपति की आज्ञा चलती है। इस समय सरकार के अति सन्निकट हनुमान्‌जी हैं और जाम्बवानजी हैं। सुग्रीवजी कुछ दूर पर हैं। इसलिए बुलावा कहते हैं। हनुमान्‌जी की विनती है कि बेगि चलिय प्रभु। अतः कहते हैं चलै कर करहु बनावा। सेना तैयार करो।

अब बिलंबु केहि कारन कीजे। तुरत कपिन्ह कहुँ आयसु दीजे॥
कौतुक देखि सुमन बहु बरषी। नभ ते भवन चले सुर हरषी॥४॥

अर्थ : अब विलम्ब क्यो किया जाय। वानरो को तुरन्त आज्ञा दीजिये। कौतुक देखकर बहुत से फूल बरसाकर और हर्षित होकर देवता आकाश से अपने अपने घर चले।

व्याख्या विलम्ब का कारण पता का न लगना था सो तो लग ही गया। भाव यह कि जब तक यह बातचीत हो रही थी इसी बीच मे सेना को तैयार होने के लिए आज्ञा दे देना प्राप्त था। वानरी सेना लेकर शत्रु पर चढाई करना न कभी देखा गया था और न सुना गया था। ऐसे कौतुकी सरकार हैं कि लङ्का ऐसे दुर्ग पर चढाई, करने के लिए वानरी सेना तैयार करवा रहे हैं। यथा : कौतुक

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लागि सग कपि सेना नही तो सभी निशाचरो के सहार के लिए केवल लक्ष्मणजी पर्याप्त थे। यथा जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछिमन हनइ निमिष महुँ तेते। जिस लक्ष्मण की उपासना से अर्जुन ने अकेले ही उत्तर कुरु तक विजय किया उस लक्ष्मणजी के लिए केवल लङ्का विजय कुछ नही है। लक्ष्मणजी का अवतार ही राक्षसो के नाश के लिए हुआ है। यथा जो अवतरेउ भूमि भय टारन।

यो जपेल्लक्ष्मणमनु नित्यमेकान्त आस्थित ।
मुच्यते सर्वपापेभ्य स कामानश्नुतेऽखिलान् ॥
प्रयोगायैव मन्त्रोऽयमुपदिष्टोहि शार्ङ्गिणा।
अर्जुनस्य पुरा सम्यगनेनैव धनञ्जय ॥
दिशा विजित्य सकला स कुरुनेन एव हि।
प्रातिष्ठिपत् धर्मराज पैतृके राज्य उत्तम ॥

—रामायनचन्द्रिका

दो० कपिपति बेगि बोलाए, आए जूथप जूथ।
नाना बरन अतुल बल, बानर भालु बरूथ ॥३४॥

अर्थ वानरराज ने तुरन्त बोलाया। सेनापतिया का समूह आगया। अतुल बलवान् और वानर भालुओ की सेनाएँ अनेक रग की है।

व्याख्या बडी भारी वानरी सेना है। वानरराज के बुलाने पर यूथपो का यूथ आया। वानरो का अनेक जातियाँ है उनके रग भी अलग अलग है और भालुओ की भी एकाधिक जातियाँ है। जिनके रङ्गो म भेद है। रामकृपा अतुलित बल तिनही। तृन समान त्रैलोकहि गिनही। अत उनके बल का तौल नही है और रग बिरगी सेना है।

पूरा हनुमच्चरित देवताओ न आकाश से देखा। यथा जात पवनसुत देवन्ह देखा तब से अभी तक साथ है। सरकार की वानरी सेना के प्रस्थान का कौतुक देखकर तब घर चले। सेना के साथ तमाशा देखने न जावेंगे। नही तो रावण का कोप होगा कि मेरे ऊपर ये ही सब रामजी को चढा लाये।

प्रभु पद पकज नावहि सीसा। गर्जहि भालु महाबल कीसा ॥
देखी राम सकल कपि सेना। चितइ कृपा करि राजिव नैना ॥१॥

अर्थ बडे बलवान् रीछ और वानर प्रभु के चरणो मे सिर नवाते हैं और गरज रहे है। श्री रामजी ने वानरो की सारी सेना देखी। कमल से नेत्रवाले राम ने कृपा करके उन्हे देखा।

व्याख्या प्रभु वही है अत वानर रीछ गण उन्ही को नमस्कार कर रहे है। उनके सामने कोई भी नमस्य नही है। नावहि सीसा भक्ति मे और गर्जहि उत्साह से। आने मे वानर को पहिले कहा। गर्जने मे रीछो को पहिले कह रहे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है। महाबल शब्द देहलीदीपक न्याय से बानर और रीछ दोनो के साथ अन्वित है। द्विविद मयद नील नल अगदगद बिकटासि। दधिमुख केहरि निसठ सठ जामवत बलरासि। इन अतुल बलो का गर्जन नही कहते। इन लोगो का गर्जन शत्रु के सम्मुख ही होता है। रामजी का पहिला देखना सेना विस्तार दर्शन परक है। दुसरादेखना कृपापरक है। कृपा करके देख रहे हैं इसलिए राजिवनयन पद आया है। यह अवलोकन मौलिक परिवर्तन मे समर्थ है। यथा . गरल सुधा रिपु करै मिताई। गोपद सिंधु अनल सितलाई। गरुड सुमेरु रेनु सम ताही। राम कृपा करि चितवा जाही। इस कृपावलोकन का मद्य फल कहते हैं।

राम कृपा बलु पाइ कपिंदा। भए पच्छजुत मनहुँ गिरिंदा॥
हरषि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भए सुदर सुभ नाना॥२॥

अर्थ रामजी की कृपा का बल पाकर श्रेष्ठ वानर मानो पङ्खवाले बडे बड पर्वत हो गये। तब श्रीरामजी ने हर्षित होकर प्रस्थान किया। अनेक सुन्दर और शुभ शकुन हुए।

व्याख्या : रामजी की कृपा से उडने मे समर्थ हो गये। लङ्का पर चढाई करना है जिसके प्राकार पर चिडिया उडकर नही बैठ सकती। हनुमान्जी कहते हैं कि सम्पूर्ण वानरी सेना म केवल चार लङ्का पर चढ सकते हैं। यथा : चतुर्णामेव हि गतिर्वानराणा तरस्विनाम्। अत. उडने की सामर्थ्य दी गयी और राम कृपा कपि दल बल बाढा। जिमि तृन पाइ लाग अति डाढा। अत: गगनचारित्व तथा अपूर्व बल पाने से पक्षयुत पर्वत के समान हो गये अर्थात् निशाचरो से युद्ध करने म समर्थ हो गये।

कृपादृष्टि करि वृष्टि प्रभु अभय किये सुर वृद। सो वानरी सेना को पहिले ही अभय करके तब पयान किया। उस समय शकुन हुए जो देखने मे सुन्दर और फल देने मे शुभ थे। अनेक प्रकार के शुभ के विधान के लिए विधि नाना कहते हैं। यथा ' मगलमय कल्याणमय अभिमत फल दातार। सरकार के मन मे उत्साह है। इसलिए हरषि कहते है। मन मे उत्साह होना अङ्गिरा के मत से यात्रा म शुभ है।

जासु सकल मगलमय कीती। तासु पयान सगुन यह नीती॥
प्रभु पयान जाना वैदेही। फरकि वाम अग जनु कहि देही॥३॥

अर्थ जिसकी सब कीर्ति मङ्गलमय है उसके प्रस्थान मे शकुन होना यह नीति है। प्रभु का प्रस्थान जानकीजी ने जान लिया। उनके वाम अग फडक फडककर मानो कह देते थे।

व्याख्या : सरकार का रूप मङ्गलमय यथा : स्याम सरीर सुभाय सुहावन। नाम मङ्गलमय यथा : नाम जपत मगल दिसि दसहूँ। लीला मगलमय यथा : जासु सकल मगलमय कीती और धाम मगलमय है : रामपुरी मंगलमय पावनि। ऐसे क

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रस्थान मे शकुन होना नीति है। अथवा उसका पयान ही सगुन है। सोभा कोटि मनोज लजावन। मंगलमय अति पावन पावन।

भगवती का वाम अंग बार बार फड़क रहा है। मानो कहे देता है कि सरकार चल पडे। वैदेही हैं प्रभु के ध्यान मे मग्न हैं। अतः उन्हे जानने के लिए बार बार सगुन हो रहा है। सरकार के मुख से सुन चुकी हैं कि सगुन प्रतीति भेंट प्रिय केरी। अतः बार बार सगुन होने से समझ लिया कि मिलने के लिए सरकार ने प्रस्थान किया।

जोइ जोइ सगुन जानकिहि होई। असगुन भयउ रावनहि सोई ॥
चला कटकु को बरनैं पारा। गर्जहि बानर भालु अपारा ॥४॥

अर्थ : जानकीजी को जो जो सगुन हुए वही वही रावण के लिए अपशकुन हुए। सेना चली। उसका वर्णन कौन कर सकता है ? वानर और रीछ अपार गर्जन कर रहे हैं।

व्याख्या : शकुन की कार्यकारिता दिखलाते हैं। विजय प्रस्थान मे शकुन और जहां के लिए प्रस्थान हो वहां अपशकुन हो रहा है। सीताजी के इष्ट से ही रावण का अनिष्ट है अथवा रावण के अनिष्ट से ही सीताजी का इष्ट है। अतः सीताजी को शकुन और रावण को अपशकुन हो रहा है। सोई का भाव यह कि वाम अङ्ग का फडकना स्त्री के लिए शुभ और पुरुष के लिए अशुभ है अथवा सीताजी को प्राणद शकुन और रावण को प्राणघातक अपशकुन हुए।

वानर कटक उमा मैं देखा। सो मूरख जो करन चह लेखा। गर्जहि भालु महाबल कीसा से गर्जन प्रारम्भ हुआ और गरजते ही चले जा रहे हैं। कुछ के गर्जन के समाप्त होने के पहिले दूसरों ने गर्जन प्रारम्भ कर दिये। अतः अपारा कहा। समुद्र की भांति गर्जन करती सेना चली जा रही है।

नख आयुध गिरि पादपधारी। चले गगन महि इच्छाचारी ॥
केहरिनाद भालु कपि करही। डगमगाहि दिग्गज चिक्करही ॥५॥

अर्थ : नख ही जिनके शस्त्र हैं वे इच्छानुसार चलनेवाले पर्वत और वृक्षो को धारण किये कोई आकाश मार्ग से और कोई पृथ्वी पर चले जा रहे है। वे सिंह के समान गर्जना कर रहे हैं। उनके चलने और गर्जने से दिशाओ के हाथी विचलित होकर चिग्घाड़ रहे हैं।

व्याख्या : आकाश मे चलने की भी शक्ति सरकार के कृपावलोकन से हो गयी है। अतः इच्छाचारी हो गये। सो कोई कोई पाँव पांव चल रहे हैं कोई कोई उड़ते जा रहे हैं। इस भांति दो सेनायें चली। पृथ्वी से एक और आकाश से दूसरी। हथियार के नाम पर गिरि तरु और नख हैं। गिरि लेकर दूर से लड़ें। तरु लेकर निकट से और हाथ से हाथ मिलने पर नख से युद्ध करें। यथा : धरि गाल फारहि उर बिदारहिं गल अतावरि मेलहीं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



गर्जन के उपक्रम मे वानरो की प्रधानता और उपसहार मे भालुओ की। इधर सेना का हलचल उधर घोर अपार गर्जन। अत दिग्गजो को आतङ्क हुआ। वे भी चिग्घाडने लगे। शब्द और भी बढा। सिंहनाद से गज को भय होता ही है।

छ चिक्करहिं[1] दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे।
मन हरष दिनकर सोम सुर मुनि नाग किंनर दुख टरे॥
कटकटहिं मर्कट बिकट भट बहु कोटि कोटिन्ह धावही।
जय राम प्रबल प्रताप कोसलनाथ गुन गन गावही॥१॥

अर्थ दिशाओ के हाथी चिग्घाडने लगे। पृथ्वी डोलने लगी। पर्वत चञ्चल हो गये। समुद्र खलबला उठे। सूर्य चन्द्र के मन मे हर्ष हुआ। देवता मुनि नाग और किंनर के दु ख टल गये। अनेको करोड भयानक वानर योद्धा कटकटा रहे हैं और दौड रहे हैं। प्रबल प्रताप कोशलनाथ रामजी की जय हो। ऐसा पुकारते हुए उनके गुणगण का गान कर रहे हैं।

व्याख्या दिग्गज का चिग्घाड पहले और भूकम्प उसके बाद होता है। भयानक भूकम्प मे ऐसी बात होती है। पिछले भूकम्प मे ऐसा ही देखा गया। पहिले बडा भारी शब्द पृथ्वी मे हुआ। उसके बाद पृथ्वी डोली। पृथ्वी के डोलने पर पर्वतो का हिलना और समुद्र मे खरभर होना स्वाभाविक है।

तब चलनाथ डोल नित धरनी। तेजहीन पावक ससि तरनी। अत शशि तरणी सूर्य को पुन तेजस्विता प्राप्ति की आशा से हर्ष है। यहाँ सूर्य मे ही अग्नि का अन्तर्भाव कर लिया। किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पर्थहिं लागा। अत लिखते हैं कि इनके दु ख टल गये। पर्थहिं लागा का अर्थ ही यह है कि अनेक प्रकार से दु ख देता था। निश्चय होनहार की आशा से भूतकाल का प्रयोग किया। पृथ्वी का डोलना आदि विपत्ति है। पर यह डोलना रामजी की सेना के उत्कर्ष का द्योतक है। अत सुखद है।

अब भूकम्प आदि का कारण कहते है। पहाड ऐसे विशालकाय करोडो वीरो का एक साथ दौडना ही इसका कारण है। पहले गर्जन कहा था। अब कटकटाना कहते हैं। रावण के प्रति क्रोध बढता जा रहा है। यथा कटकटाइ गरजा अरु धावा। रास्ता जल्द तय करने के लिए सेना दौडती चली जा रही है। सेना बहुत थोडा रास्ता चलती है पर यहा यह बात नहीं है। क्योकि वानर वीरो को अपने श्रान्त होने का भय नही है और लङ्का पहुँचने का बडा उत्साह है। जब से रावण का राज्य हुआ तब से लङ्का पर धावा करना देवताओ को भी मन से अशक्य था। सो वानरी सेना उस पर धावा करने के लिए घर से ही दौडती चली जा रही है।

---

[1] यह हरिगीतिका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अपने मे अटूट बल और उड़ने की शक्ति पाकर सरकार के प्रबल प्रताप का जय जयकार कर रहे हैं। कोसलनाथ कहकर सरकार को लोक विख्यात धनुर्धर कहा। यथा कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता। धन्वी सकल लोक बिख्याता। सरकार के वीरोचित गुणगणो का गान कर रहे हैं। सरकार और लक्ष्मणजी क्रमश हनुमान्‌जी और अगदजी के कन्धो पर चढे हुए सेना के मध्य भाग मे चले जा रहे हैं और चारो ओर जय जयकार होता चला जा रहा है।

छं. सहि सक न भार उदार अहिपति बार बारहि मोहई।
गह दसन पुनि पुनि कमठ पृष्ठ कठोर सो किमि सोहई॥
रघुबीर रुचिर पयान प्रस्थिति जानि परम सुहावनी।
जनु कमठ खर्पर सर्पराज सो लिखत अबिचल पावनी॥२॥

अर्थ ' उदार सर्पराज शेष भी सेना का बोझ सह नही सकते। वे बार बार मोहित हो जाते हैं और पुन पुन कच्छप की कठोर पीठ को दाँतो से पकडते हैं। मानो रघुवीर की सुन्दर यात्रा के प्रस्थान को परम सुहावन जानकर उसकी अचल पवित्र कथा को सपराज शेषजी कच्छप की पीठ पर लिख रहे हो।

व्याख्या सकल जगत् का आधार होने से अहिपति शेषजी को उदार कहा। अथवा असह्य भार को वहन कर रहे हैं इसलिए उदार हैं। उन्हे भी अति परिश्रम से बार बार चक्कर आ रहा है पर बडे उदार है। उस समय भी लोकहित का ध्यान बना हुआ है। मेरे चक्कर आने से भी पृथ्वी क्यो अपने स्थान से विचलित हो। अत अपने आधार कच्छप की पीठ को दाँत से पकडते हैं। पर वह पीठ बडी कडी है मन्दर के पीठ पर घूमने से कच्छप भगवान् ने कण्डूयन का सुख अनुभव करके आँखें मीच ली थी और चौरस है पकड मे आती नही, दाँत छलक जाता है। फिर दूसरी जगह पकडते है फिर छलकता है उसी की शोभा कहते है कि विजय प्रयाण तो बहुत हुए पर ऐसा रुचिर प्रयाण कोई नही हुआ। लङ्का सा अजेय दुर्ग और रावण से प्रबल शत्रु पर चढ़ाई हो रही है। वानरो की सेना साथ लेकर तीन लोक के आर्ति हरण के लिए यह प्रयाण है और वानरी सेना के बीच मे हनुमान् अगद के कन्धो पर सवार दोनो सरकारो की अद्भुत झाँकी है। इन कारणो से यह प्रयाण ऐसा अलौकिक है कि उसकी प्रस्थिति लिखी जानी चाहिए।

ऐसी पावनी प्रस्थिति के लिखने के लिए वैसी ही सामग्री चाहिए जिसमे वह प्रस्थिति टिकाऊ हो। इसीलिए ऐसी बातें लोग पत्थरो पर खुदवाते हैं। यहाँ कमठ की पीठ पर मानो सपराज अपने दाँतो से लिख रहे हैं। कमठ के पीठो पर जो लकीरें पाई जाती है वे मानो उसी लिखावट की छाप हैं। कमठ के पृष्ठ पर लिखा हुआ कभी मिटेगा नही और कच्छप कही जानेवाले भी नही हैं।

दो. एहि बिधि जाइ कृपानिधि, उतरे सागर तीर।
जहँ तहँ लागे खान फल, भालु बिपुल कपि बीर॥३५॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ इस प्रकार कृपानिधि समुद्रतट पर जा उतरे। बहुत से वानर रीछ और वानर जहाँ तहाँ फल खाने लगे।

व्याख्या : जो सेना चली तो उसने बीच में कहीं विश्राम नहीं किया। रात दिन कूच करती हुई प्रवर्षण गिरि से समुद्रतट तक चली गयी। कृपानिधि हैं : विभीषण तथा सागर पर कृपा करनी है। अतः समुद्र तीर पर उतरे। रसद साथ नहीं है पर फलों की बहुतायत है। यथा : सब तरु फरे राम हित लागी। रितु अरु कुरितु कालगति त्यागी। कपि फल खाने लगे। यह किसी ने ख्याल न किया कि मालिक ने कुछ खाया या नहीं। अथवा भालु कपि वीर हैं। समुद्र देखकर डरे नहीं कि इसे पार कैसे करेंगे ? लगे फल खाने। जहाँ से कथा उठायी थी वहीं पहुँचा दिया। नाघि सिंधु एहि पारहिं आवा से कथा उठी और उतरे सागरतीर जाकर रुकी।

उहाँ निसाचर रहहिं ससंका। जब ते जारि गयउ कपि लंका॥
निज निज गृह सब करहिं बिचारा। नहिं निसिचर कुल केर उबारा॥१॥

अर्थ : जब से हनुमान्‌जी लङ्का जलाकर गये तब से वहाँ राक्षस सशंक रहने लगे। अपने अपने घरों में सब विचार करते हैं कि अब राक्षसकुल का कुशल नहीं है।

व्याख्या . यहाँ का हाल कहकर अब कवि वहाँ : जहाँ पर कवि नहीं है तहाँ : का हाल कहते हैं। ग्रन्थभर में यहाँ वहाँ शब्दों का प्रयोग इस बात को ध्यान रखकर किया गया है कि कवि की उपस्थिति कहाँ पर है। कवि अपने आराध्य देव रामजी के साथ हैं। अतः लङ्का के लिए वहाँ शब्द का प्रयोग किया।

चलत महाधुनि गर्जेसि भारी। गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी। स्त्रियाँ इतनी डरी हुई हैं कि उन्हें गर्भ नहीं ठहरता। जो था वह गिर गया। अब पुरुषों का हाल कहते हैं कि वे सब भी लङ्का जलने के बाद से सशङ्क रहने लगे। इसके पहिले अशंक रहते थे कि यहाँ कौन आ सकता है। रावण ने सहज अगम जानकर ही उसे राजधानी बनाया था। यथा : सुन्दर सहज अगम अनुमानी। कीन्ह तहाँ रावन रजधानी। सशंक रहने का कारण यह कि हनुमान्‌जी को न किसी ने आते देखा न जाते। अकस्मात् अशोक वाटिका में प्रकट हो गये। फिर कब कहाँ प्रकट हो जावेंगे इसका क्या ठिकाना !

घर के बाहर रावण के डर से विचार नहीं करते। कहीं कोई गुप्तचर खबर न कर दे। क्योंकि लङ्का में रावण के अनेक गुप्तचर छूटे रहते हैं जो अनेक वेष धारण किये हुए नगर भर का भेद रावण तक पहुँचाया करते हैं। इन गुप्तचरों के भय से घर के बाहर कोई ऐसी बात नहीं करने पाता जो रावण को अप्रिय हो। अतः सभी राक्षस एक ही बात विचार करते हैं : पर घर के भीतर : कि रावण के अपराध से राक्षसकुल ही नष्ट हुआ चाहता है। बचने का कोई उपाय नहीं मालूम होता।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आये पुर कवनि भलाई॥

## मन्दोदरी का रावण को समझाना

दूतिन्ह सन सुनि पुरजन बानी। मदोदरी अधिक अकुलानी॥२॥

अर्थ : जिसके दूत के बल का वर्णन नही हो सकता उसके नगर मे आने पर कौन भलाई है। दूतियो के मुख से नगरवासियो के वचन को सुनकर मन्दोदरी अधिक व्याकुल हो उठी।

व्याख्या : जिसके दूत के ही बल का पारावार नही है बारिध नाघि एक कपि आवा। तासु चरित मन महु सब गावा उसका पूरा वर्णन कोई कर नही सकता। वह सीता को देखकर यहाँ से गया है। अब उसका मालिक आवेगा। रावण की उत्कण्ठा पूरी हुए बिना न रहेगी : पूँछ हीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नार्थाहि लै आइहि : तब न जाने क्या होगा ! सब दुर्दशा तो दूत ने ही कर डाली। भाव यह है कि लङ्का म कोई ऐसा नही जिसे ऐसे बलवान् से युद्ध के लिए उत्साह हो : लका नहि रात कोउ भात राँधो।

बाहर बातचीत नही हुई। इसलिए रावण के दूतो ने नही सुना। घर के भीतर की बात है। अत दूतियो ने सब जानकर मन्दोदरी को खबर दे दी। रानी मन्दोदरी राजकार्य मे हाथ बँटाती है। जिस भाँति रावण की ओर से दूत छूटे रहते है उसी भाँति रानी मन्दोदरी की दूतियाँ भेद लेने के लिए छूटी रहती हैं। स्त्रियो मे बात बहुत जल्द फूटती है। आकुल तो सभी स्त्रियाँ हो गयी थी। पर प्रजा मात्र की आकुलता सुनकर मन्दोदरी अधिक आकुल हो उठी। क्योकि आपत्ति की मार तो सीधे उसी पर पडनेवाली थी। उसी का लडका अक्ष हनुमान्‌जी के हाथ से मारा गया था।

रहसि जोरि कर पति पद लागी। बोली बचन नीति रस पागी॥
कत करष हरिसन परिहरहू। मोर कहा अति हित हिय धरहू॥३॥

अर्थ : एकान्त मे हाथ जोडकर पति के चरणो मे गिरी और नीति रस मे पगी हुई वाणी बोली। हे कन्त ! हरि से विरोध छोड दीजिये। मेरे अत्यन्त हितकर कहने को हृदय मे धारण कीजिये।

व्याख्या : अभिमानी दस आदमी के बीच मे तो किसी का सिखावन सुनेगा ही नही। एकान्त मे भी सिखावन के रूप मे किसी के बात को स्वीकार करना असम्भव है। अत. मन्दोदरी एकान्त मे सिखावन न देकर विनय करती है। अत. हाथ जोडकर पैर पर गिरी और अपने विनती के स्वीकृति के लिए प्रार्थना की। विनती करते हुए कहती है कि मैं जानती हूँ कि सीताहरण तुमने आसक्ति के कारण नही किया है। सीताहरण का कारण वैर है। यथा सूपनखहि समुझाइ करि बल बोलेसि बहु भाँति। गयउ भवन अति सोच बस नीद परी नहि राति। सो उस

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रात मे रावण को नीद नही आना मन्दोदरी से छिपा नही है। उसी के दूसरे दिन सीताहरण होता है। स्पष्ट है कि सूर्पणखा नासिकाछेदन का बदला सीताहरण करके आप चुका रहे हैं। अतः मेरी विनती है। आप हरि से वैर छोड दीजिये। क्योंकि वे हरि हैं। सबके दु खो का वही हरण करते हैं। साक्षात् भगवान् हैं : उनसे वैर छोडने मे ही कल्याण है। दूसरा भाव यह है कि वे हरि हैं। सूर्पणखा को भी उन्होंने दु ख देना नही चाहा। इसमे सूर्पणखा का ही अपराध होगा। वे किसी से वैर करनेवाले नही हैं। आप उनसे वैर कर रहे हैं सो वैर छोड दीजिये।

अथवा रामजी हरि : सिंह है। उनका डर स्वय रावण को ही कम नही है : जाके डर सुर असुर डेराही। निसि न नीद दिन अन्न न खाही। सो दससीस स्वान की नाई। इत उत चितै चला भड़िहाई। इसीलिए चोरी से हरण किया।

मन्दोदरी कहती है कि मेरी बात मुँह देखी कहनेवालो की बात नही है। मेरी बात अतिहित है। इससे दोनों लोको का कल्याण सधेगा। इसे हृदय मे धारण कर लो। बाहर से मेरे ऊपर चाहे अप्रसन्नता ही दिखलाओ। कहो कि मैं इसके रोने गाने से लाचार हो गया हूँ। ले जाओ सीता को उस तपस्वी के पास पहुँचा दो।

समुझत जासु दूत कइ करनी। स्रवहिं गर्भ रजनीचर घरनी॥
तासु नारि निज सचिव बोलाई। पठवहु कंत जो चहहु भलाई॥४॥

अर्थ : जिसके दूत की करणी समझकर राक्षसो की स्त्रियो का गर्भपात होता जा रहा है। हे कन्त ! यदि भला चाहते हो तो अपने मन्त्री को बुलाकर उनको स्त्री को भेज दो।

व्याख्या : लङ्कादाह का स्मरण करके निशाचरियो के गर्भ गिरते जा रहे हैं। हनुमान् चलते समय जो गर्जा उससे बहुत गर्भ गिरे। तब से नित्य समाचार मिलता है कि आज नगर में इतने गर्भ गिरे। सम्पूर्ण लङ्का भयभीत है। उसके मालिक के आने के भय स सम्पूर्ण नगर विचलित हो उठा है। मन्दोदरी बडी बुद्धिमती हैं। गर्भ गिरने का आड लेकर नगर मे भय के सञ्चार का हाल कहती है। यह नही कहती कि मुझे दूतियों से खबर मिली है। रावण के स्वभाव से परिचित है। जानती है कि तुरन्त वह दूती बुलायी जायगी और जिससे जिससे उसने सुना है उनकी न जाने कौन दुर्दशा रावण करेंगे। अतः नगर के भयभीत होने के प्रमाण मे लङ्का मे गर्भपात की बहुतायत बतला रही है और कहती है कि यही मेरे सामने अपने मन्त्री को बुलवाओ। ससार जाने कि रानी मन्दोदरी के अनुनय विनय पर रावण मान गये। मन्त्री के साथ सीता को भेज दो। सीता उनके पास चली जावेंगी तो वे क्यों आवेंगे। सीता के जाते हो नगर के लोग स्वस्थ हो जावेंगे। प्रजा के भय का दूर करना राजा का धर्म है।

तव कुल कमल बिपिन दुखदाई। सीता सीत निसा सम आई॥
सुनहु नाथ सीता बिनु दीन्हे। हित न तुम्हार संभु अज कीन्हे॥५॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : आपके कुलरूपी कमल वन को दुःख देनेवाली जाड़े की रात के समान सीता आयी है। हे नाथ! सुनिये सीता को दिये विना शम्भु और ब्रह्मा के किये भी आपका भला नही हो सकता।

व्याख्या : आप समझते हैं कि सीता को मै हरण करके लाया हूँ पर बात ऐसी नही है। आपका कुल इस समय कमल वन की भांति विकसित हो रहा है। उसके नाश के लिए यह सीता हिम की रात्रि होकर स्वय आयी है। यह केवल तुम्हारे ही निधान से तुष्ट नही है पूरे कुल का संहार चाहती है। यदि कहिए कि निज भुज बल मै वैर बढ़ावा। इस पर कहती है कि आपके दो ही हितु हैं। इन्ही का आपको बल है। शङ्कर और ब्रह्मा। सो बिना सीता के दिये वे भी आप का कल्याण नही कर सकते। सीता के दे देने पर ही आपकी ये रक्षा कर सकते है। दूसरों का किया क्या होगा? यथा : सकर सहस विष्णु अज तोही। सकहि न राखि राम कर द्रोही। भाव यह कि आप अपनी रक्षा क्या करेंगे? आपके इष्टदेव भी रक्षा नही कर सकते।

दो. राम बान अहि गन सरिस, निकर निसाचर भेक॥
जब लगि ग्रसत न तब लगि, जतनु करहु तजि टेक॥३६॥

अर्थ : रामजी के बाण सर्पों के समान और राक्षसो के समूह मेढको के समान हैं। जब तक ये नही ग्रसते तब तक हठ छोड़कर यत्न कर लो।

निशाचर मेढक हैं। कभी राम गुन गान नही करते। यथा : जो नहिं करहि राम गुन गाना। जीह सो दादुर जीह समाना। इनके लिए राम बाण सर्प हैं। यथा : राम मारगन गन चले लहलहात जनु ब्याल। मेढक सर्प के भक्ष्य हैं। इसी भांति ये राक्षस रामबाण की खुराक है। ये अपने भक्ष्य को खोजा करते हैं। सर्प के ग्रसने के पहिले ही मेढक को उचित है कि अपने बचने का उपाय कर ले। हठ करने से सर्प का ग्रास बनना पड़ेगा। अत: मैं यत्न बतलाती हूँ उसे अवश्य करना चाहिए। देखिये जन स्थान म अकेले ने कितने निशाचरो का संहार किया।

श्रवन सुनी सठ ता करि बानी। बिहँसा जगत बिदित अभिमानी॥
सभय सुभाव नारि कर साँचा। मंगल महु भय मन अति काँचा॥१॥

अर्थ : शठ ने उसकी वाणी कान से सुनी। तो वह जगत् प्रसिद्ध अभिमानी खूब हँसा : बोला सचमुच स्त्रियो का स्वभाव बड़ा डरपोक होता है। मङ्गल मे उन्हे भय होता है। क्योंकि उनका मन अत्यन्त कच्चा होता है।

व्याख्या : कान से बात सुन ली। मन मे न लाया। क्योंकि शठ है और शठ से विनय करना व्यर्थ है। यथा :

सठ सन विनय कुटिल सन प्रीती।
सहज कृपिन सन सुन्दर नीती॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ममतारत सन ग्यान कहानी।
अति लोभी सन बिरति बखानी॥
क्रोधिहि सम कामिहि हरिकथा।
ऊसर बीज बए फल जथा॥

लोग आजतक कहते हैं कि अमुक को रावण सा अभिमान है। अत रावण का अभिमान जगत् प्रसिद्ध है। बडे जोरो से हँसा कि यह जन्मभर मेरे साथ रही और मेरे प्रभाव को जान न सकी। कहता है कि सच्ची डरपोक स्त्रियाँ ही होती हैं। कहाँ लङ्का मे मङ्गल उपस्थित है गृह बैठे अहार बिधि दीन्हा। जौ आवै मरकट कटकाई। जिअँहि बिचारे निसिचर खाई और कहाँ यह अपना मन कच्चा कर रही है। झूठे डर से डरे वह कच्चा डरपोक। सच्चा डरपोक तो वही है जो मङ्गल उपस्थित होने पर अधीर हो जाय। अति काँचा कहने का भाव यह कि केवल डरी ही नही है। नर वानर वे न आने देने के लिए अनुनय विनय करती है। जब इसका यह हाल है तब अन्य स्त्रियो का गर्भ गिरना ही चाहिए।

जौ आवै मरकट कटकाई। जियहि बिचारे निसिचर खाई॥
कंपहिं लोकप जाकी त्रासा। तासु नारि सभीत बडि हासा॥२॥

अर्थ जौ कही वानरो की सेना आजाय तो बिचारे राक्षस खाकर जी जायँ। जिसके डर से लोकपाल काँपते हैं उसकी स्त्री डरती हो यह बडे हँसी की बात है।

व्याख्या अब रावण अपने हँसने का कारण कहते है कि मेरे राक्षस भूखे पडे है। यथा क्षुधावन्त सब निसिचर मेरे। बाहर से रसद मँगाते मै हैरान हूँ। इन्हे खाने के लिए नर वानर चाहिए। यहाँ नर वानर कहाँ? इसलिए समुद्र पार से मँगाना पडता है। यथा कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छही। यहाँ वन्दर की सेना के आने की कौन सी आशा है। यदि कही भाग्य से आगयी तो मेरे भुक्खड राक्षस खाकर जी जावेंगे। अत मर्कट कटकाइ का आना मङ्गल है।

लोकपालो का भयरूप तो मैं हूँ। यथा जनि जल्पसि जड जन्तु कपि सठ बिलोकु मम बाहु। लोकपाल बल बिपुल ससि ग्रसन हेतु सब राहु। तू मेरी स्त्री है। मै मौजूद हूँ। तेरे डरने का क्या कारण है? भला दुनिया क्या कहेगी? निशाचरियो का गर्भ गिरना ही हँसी की बात है। तेरा डर जाना तो बडी हँसी की बात है।

अस कहि बिहँसि ताहि उर लाई। चलेउ सभा ममता अधिकाई॥
मंदोदरी हृदय कर चिंता। भयउ कंत पर बिधि बिपरीता॥३॥

अर्थ ऐसा कहकर और हँसकर उसे हृदय से लगा लिया और सभा मे

ankurnagpal108@gmail.com



चला। ममता और बढ गयी। मन्दोदरी चिन्ता करने लगी कि कन्त पर विधाता प्रतिकूल हो गये।

व्याख्या : रावण ने केवल शब्द से ही नहीं कहा कि तासु नारि सभीत बड़ि हाँसा। आप हँस भी पड़े। बिहँसा नारि बचन सुनि काना। से उपक्रम और अस कहि बिहँसि से उपसंहार। वह पैर पड़ी थी। अतः आदर के लिए उसे हृदय से लगा लिया। स्त्री के आलिङ्गन से ममता की अभिवृद्धि हुई। यथा : पुनि ममता जवास बहुताई। पलुहइ नारि सिसिर रितु पाई।

रावण किसी की न सुनें पर मन्दोदरी की सुनते थे। आज उसकी भी नहीं सुन रहे है। अतः अनुमान करती है कि विधि विपरीत भलाई नाहीं। क सुखं तनोतीति कन्तः। सुख देने वाले पर ब्रह्म के विपरीत होने की चिन्ता होना स्वाभाविक है। एक बन्दर ने यह दुर्दशा की सो बानरी सेना का आना प्रिय मालूम हो रहा है।

## रावण की सभा

बैठेउ सभाँ खबरि असि पाई। सिन्धु पार सेना सब आई॥
बूझेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मष्ट करि रहहू॥४॥
जितेहु [1]सुरासुर तब श्रम नाहीं। नर बानर केहि लेखे माहीं॥५॥

अर्थ : सभा मे जाकर बैठा। समाचार मिला कि सारी सेना समुद्र के उस पार आगयी। मन्त्रियों से पूछा कि उचित सम्मति दो। तब वे सब हँसे और बोले कि चुप रहिये : उन्हे इस पर चले आने दीजिये : आपने देवता और असुरों को जीता तब तो कुछ श्रम हुआ ही नहीं। फिर मनुष्य और वानर किस गिनती में हे ?

व्याख्या : रावण सभा की ओर चले। इस बीच मे कवि ने मन्दोदरी का स्वगत विचार कहा। अब रावण का सभा मे जाकर बैठना कहते है। जब से लंकादाह हुआ है तब से और राजकाज बन्द हे। लंका की मरम्मत हो रही है और चरो द्वारा खबर ली जा रही है। सो सभा मे आते ही समाचार मिला कि उस पार सारी बानरी सेना आगयी। कहने का अभिप्राय यह कि सेना बड़ी भारी है।

सेना आजाने पर दो ही मार्ग है। या तो स्वयं तैयार होकर उसके धावा का प्रतीक्षा की जाय या स्वय उसपर धावा बोल दिया जाय। अत. रावण मन्त्रियों से पूछते हैं कि इन दोनों उपायो मे कौन सा उचित है। सो तुम लोग बतलाओ : सरस्वती कहती हैं कि उचित मत कहहू : उचित न कहो। सो वही हुआ। मन्त्रियो को पता है कि रावण बानरी सेना पर हँसते हैं। अतः उसको प्रिय लगने के लिए वे भी हँसे और कहा कि चुपके रहिये। यहाँ चले आने दीजिये। छेड़छाड़ करने से वे भाग जायँगे।

---

१. यहाँ काव्यार्थापत्ति : अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यदि यह कहा जाय कि उनके समुद्र पार करने मे ही वाधा करना प्राप्त है। थोडे ही श्रम मे काम चल जायगा तो इसपर कहते हैं कि आपने सुरासुर को जीता और श्रम न हुआ। इनके जीतने मे कौन सा श्रम है ? नर कपि भालु अहार हमारा। यह सेना तो हमलोगो की भक्ष्य है। भक्ष्य आपसे आप मुँह मे चला आ रहा है। उसे आने दीजिए।

दो. सचिव बैद गुर तीन जौ, प्रिय बोलहि भय आस
राज धर्म तन तीनि कर, होइ बेगिही नास ॥३७॥

अर्थ · मन्त्री वैद्य और गुरु ये तीन यदि अप्रसन्नता के भय या लाभ की आशा से प्रिय बोलते हैं तो क्रमश राज्य शरीर और धर्म का शीघ्र ही नाश हो जाता है।

व्याख्या यहाँ प्रकरण केवल सचिव का है। रावण के यहाँ सचिव केवल राज्याङ्ग समझकर रक्खे गये हैं। उनकी सुनवाई कभी नही होती। मडलीक मनि रावन राज करै निज मत्र। अत स्वतन्त्र मन्त्र देने का उन्हे साहस नही है। वे भयभीत रहते हैं कि उचित कहने पर रावण का कोपभाजन होना पडेगा। जबतक रामजी न आजायँ कम से कम तबतक तो जीने की आशा है। उचित कहने पर तो अभी मारेगा। रावण ने सम्मति पूछने के समय बहुत बडा अवकाश मन्त्रियो को दिया था कि जो उचित हो सो कहो। ऐसे अवसर पर वे सीताजी के देने की भी सम्मति दे सकते थे और यही उन सबो की रुचि भी थी। यथा निज निज गृह सब करहि बिचारा। नहि निसिचर कुल केर उबारा। पर प्राणभय से उन सबो ने प्रकट नही कहा। राज धर्म और तन तीन मे क्रम न होने से क्रम नही दिया। एक-एक के प्रिय बोलने से तीनो का नाश होता है।

सोइ रावन कहुँ बनी सहाई। अस्तुति करहि सुनाइ सुनाई ॥
अवसर जानि बिभीपनु आवा। भ्राता चरन सीसु तेहि नावा ॥१॥

अर्थ . रावण को वही सहायता आ मिली। सब उसे सुना सुनाकर स्तुति करते हैं। अवसर जानकर विभीपणजी आये। बडे भाई के चरणो मे सिर नवाया।

व्याख्या · तुलसी जसि भवितव्यता तैसइ मिलै सहाय। मन्त्री ऐसे मिले हैं। वैद्य सुपेणजी मिले हैं · जिन्होने लक्ष्मणजी को औषध बतलाकर स्वस्थ किया और गुरुजी का यह हाल है कि करत राम विरोध तेहि सपनेहु न हटक्यो ईस। रावण सबके रुलाने वाले हैं। इनका नाश प्रिय वाणी से हुआ। सब मन्त्री सुना सुनाकर स्तुति करते है। अनसुनी स्तुति व्यर्थ समझते हैं। सुनेंगे तब रावण प्रसन्न होगे।

पुलस्त्य ऋषि के सन्देश कहने का अवसर जानकर अथवा इस समय पर युद्ध के लिए विचार हो रहा है जाने पर अवश्य मुझसे राय पूछेंगे यह जानकर विभीपण रावण के पास आये। ज्येष्ठ भ्राता होने से प्रणाम किया, राजा-बुद्धि से नही। विभीपणजी दरबार मे बराबर हाजिर नही रहते। पर खबर एक एक बात

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



को रखते हैं। बात बिगड़ती देखकर पहुँच जाते हैं। यथा : सुनत निसाचर मारन धाए। सचिवन्ह सहित बिभीषण आये। भ्राता शब्द से विभीषणजी की प्रीति कही।

**पुनि सिरु नाइ बैठ निज आसन। बोला बचन पाइ अनुसासन ॥**
**जौं कृपाल पूँछेहु मोहि बाता। मति अनुरूप कहौं हित ताता ॥२॥**

अर्थ : फिर सिर नवाकर अपने आसन पर बैठे और आज्ञा पाकर वचन बोले : हे कृपालु ! जब आपने मुझसे बात पूछी है। तो हे तात ! तो मैं अपनी बुद्धि के अनुसार हित की बात कहता हूँ।

व्याख्या : आसन पर बैठने का दूसरा प्रणाम। दरबार मे सबके लिए आसन नियत है। विभीषणजी की अनुपस्थिति मे उनका आसन खाली रहता है। बड़े का अनुशासन और छोटे का विनय करना यही रीति है। सबकी सम्मति ली जाने पर भी इनकी सम्मति पूछी गयी। मन्दोदरी के कथन से कुछ रावण प्रभावित हैं अत' मन्त्रियो से कहा उचित ' मत कहहू। रावण जानते है कि मुँह देखी बात कहते हैं। इसलिए स्वच्छन्द सम्मति प्राप्त करने के लिए प्रोत्साहित करते है। फिर भी उन सबो की राय उसके मन मे जमी नही। अत विभीषणजी से भी राय पूछता है।

विभीषणजी के आने मे बैठने मे बोलने मे सब मे सज्जनता भरी है। छोटे से सम्मति पूछना बडे की कृपा है। अत. विभीषणजी कृपाल सम्बोधन करते है। दूसरा भाव यह है कि जिस भाँति कृपा करके पूछा उसी भाँति कृपा करके मान भी जाइये। मति अनुरूप कहने का भाव यह कि मैं आपको उपदेश देने योग्य नही हूँ। जितनी बुद्धि है तदनुसार कहूँगा। कुछ त्रुटि हो जाय तो कृपा करके क्षमा कीजियेगा। भीतरी बात यह है कि मैं तो सुजस सुमति सुभगति सुख नानावाली सम्मति दूँगा। केवल शुभगतिवाली सम्मति नही। दोनो भाइयो की सम्मति मे यही मौलिक भेद है। एक को सुजस सुमति शुभगति चाहिए। दूसरा किसी भाँति केवल सुगति चाहता है।

**जो आपन चाहइ कल्याना। सुजसु सुमति सुभ गति सुख नाना ॥**
**सो पर नारि लिलारु गोसाईं। तजौ चौथि के चंद कि नाईं ॥३॥**

अर्थ · जो मनुष्य अपना कल्याण, सुन्दरयश, सुबुद्धि, शुभगति और नाना प्रकार के सुख चाहता हो, वह हे स्वामी ! पर स्त्री के ललाट को चौथ के चन्द्रमा की भाँति त्याग दे।

व्याख्या पुलस्त्यजी का सदेसा समयोचित होने से अपने शब्दोम कहते हैं। साधारण नियम यही है कि अपना अकल्याण चाहने वाला चाहे जैसा करे। पर जो कल्याण चाहता है उसके लिए चेतावनी है। कल्याण का ही विवरण करते हैं। सुयश से धर्म कहा। यथा · पावन जसु कि पुन्य बिनु होई : सुमति से अर्थ कहा। यथा : जहाँ सुमति तहँ सपति नाना . शुभगति से मोक्ष कहा और सुख नाना से काम कहा। ये ही चारो पदार्थ कल्याण हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



श्रीकृष्ण भगवान् ने चौथ का चन्दा देखा था। सो उन्हे झूठा कलङ्क लगा। स्त्री के ललाट की भी आकृति चौथ के चांद सी होती है। सो परस्त्री के ललाट की ओर आँख उठाकर देखने से झूठा कलक लगता है। अत कल्याणेप्सु उस ओर आँख उठाकर न देखे। सुयश का नाश यथा कामी पुनि कि होइ अकलका। बुद्धि का नाश यथा : बुधिबल सील सत्य सब मीना। बन्सी सम तिय कहहि प्रबीना। शुभगति का नाश यथा : सुभगति पावकि पर तियगामी। सुख का नाश यथा अवगुन मूल सूल प्रद प्रमदा सब दुख खानि। इससे धर्मविरुद्ध काम का निषेध किया।

चौदह भुवन एक पति होई। भूत द्रोह तिष्ठै नहिं सोई॥
गुन सागर नागर नर जोऊ। अलप लोभ भल कहइ न कोऊ॥४॥

अर्थ : चौदहो भुवनो का अकेला स्वामी हो। फिर भी वह जीवमात्र से द्रोह करके ठहर नही सकता। जो मनुष्य गुणो का समुद्र और चतुर हो उसे भी यदि अल्प लोभ हो तो कोई भला नही कहता।

व्याख्या चौदहों भुवन का अकेला मालिक होना बडा दुर्लभ है। पर मान लीजिये कि यदि कोई ऐसा हो और वह मद मे आकर भूतद्रोह मे लग जाय तो इस पाप से वह ठहर नही सकता। क्योकि भूत द्रोह बडा भारी पाप है। यथा ' विश्वद्रोह कृत अघ जेहि लागा। इधर किन्नर सिद्ध मनुज सुरनागा। हठि सबही के पर्यहि लागा। आप ने भूतद्रोह को अपना रखा है। रामजी से हठ करके वैर किया है। यह पतन का लक्षण है : इससे मद और क्रोध का निषेध किया।

कोई कोई दोष ऐसे हैं जो गुणाधिक्य के सामने गिने नही जाते। पर लोभ ऐसा दोष है कि गुणसागर नागर पुरुष भी अल्प लोभ से दुर्यश को प्राप्त होता है। यथा . लोभी जसु चह चार गुमानी। अत. कीर्ति के लिए लोभ विष है। तुम्हारा यह हाल है कि सोने की लका से पेट न भरा। साक्षात् लक्ष्मी को ही उठा लाये। इससे लोभ का निषेध करते हैं।

दो. काम क्रोध मद लोभ सब, नाथ नरक के पंथ।
सब परिहरि रघुबीरहि, भजहु भजहिं जेहि संत॥३८॥

अर्थ : हे नाथ ! काम क्रोध मद और लोभ ये सब नरक के मार्ग हैं। इन सबको छोड़कर श्री रघुवीर को भजिये जिन्हे सन्त भजते हैं।

व्याख्या : त्रिविध नरकस्येद द्वार नाशनमात्मनः। कामः क्रोधस्तथा लोभ-स्तस्मादेतत् त्रय त्यजेत्। नरक के तीन द्वार हैं : काम क्रोध और लोभ। इनसे अपना नाश होता है। इसलिए इनका परित्याग करना चाहिए। मद का क्रोध मे अन्तर्भाव करके तीन ही कहा। नरकपथ छोडकर भक्तिपथ ग्रहण का विभीषणजी उपदेश देते हैं कि सब ओर से चित्त को माड़कर रघुवीर को भजो जिन्हे सन्त भजते हैं। सन्त कहने का भाव यह कि हमारे बाप दादा सन्त है उनके मार्ग का

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

अनुसरण करो। नगर के पथ सन्त मे वैषम्य के कारण तुकान्त मे भी विषम ही दिया।

तात रामु नहिं नर भूपाला। भुवनेश्वर कालहु कर काला॥
ब्रह्म अनामय अज भगवंता। व्यापक अजित अनादि अनंता॥१॥

अर्थ हे तात! रामजी मनुष्य राजा नही है। ये भुवनेश्वर काल के भी काल हैं। ये ब्रह्म विकार रहित जन्म रहित भगवान् हैं। व्यापक अजित अनादि और अनन्त हैं।

व्याख्या रावण की सरकार के प्रति सशयात्मिका बुद्धि थी। यथा जौ नर रूप भूप सुत कोऊ। हरिहौं नारि जीति रन दोऊ। उसी के हटाने के लिए बिभीषणजी कहते है कि नर की भाँति प्रतीत होते है पर है नही। भूपाल भी नही हैं। भुवनेश्वर हैं यथा भुवन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू। काल के भी काल हैं। यथा काल व्याल कर भच्छक जोई। इससे देश और काल दोनो का प्रभु कहा। अनामय ब्रह्म कहकर निरतिशय महत्ता कही। अजभगवन्त कहकर अवतार दिव्य जन्म कहा। व्यापक कहकर सर्वाधार कहा। सर्वाधार का कोई कैसे जीत सकता है? जिसका आदि अन्त हो वही बाधा देता है और बाधा पाता है। अनादि अनन्त पदार्थ न बाधा दे और न बाधा पावे। उसके जीतने के विषय मे प्रश्न ही नही बन सकता। यहाँ अनेक विशेषणो से निर्गुण का निरूपण किया।

गो द्विज धेनु देव हितकारी। कृपासिंधु मानुष तनु धारी॥
जन रंजन भंजन खल ब्राता। वेद धर्म रच्छक सुनु भ्राता॥२॥

अर्थ उन कृपा के समुद्र भगवान् ने पृथ्वी ब्राह्मण गौ और देवताओ के हित के लिए ही मनुष्य शरीर धारण किया है। हे भाई! सुनो। वे सेवको के आनन्द देनेवाले दुष्टो के समूह के नाश करनेवाले और वैदिक धर्म की रक्षा करने वाले हैं।

व्याख्या अब बिभीषणजी अवतार का कारण कहते है। तुमसे गो द्विज धेनु और देवताओ का अहित हो रहा है। गो पृथ्वी का अहित। यथा अतिसय देखि धरम कै ग्लानी। परम सभीत धरा अकुलानी। द्विज धेनु का अहित यथा जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं। नगर गाउँ पुर आगि लगावहिं। देवो का अहित। यथा जपजोग बिरागा तप मख भागा श्रवन सुनै दससीसा। आपुनु उठि धावइ रहै न पावइ धरि सब घालेइ खीसा। सुभ आचरन कतहुँ नहिं होई। देव विप्र गुरु मान न कोई। और वे गो द्विज धेनु देव हितकारी हैं। तुम्हारी मृत्यु मनुष्य के हाथ हैं। अत उन्होने मनुष्य शरीर धारण किया है। कृपासिन्धु कहने का भाव यह है कि इतनी कृपा दीनो पर है कि मनुष्य शरीर धारण मे सङ्कोच न किया

ankurnagpal108@gmail.com



अथवा यद्यपि तुम्हारे वध के लिए ही अवतार हुआ है पर ऐसे कृपासिन्धु हैं कि तुम्हारे ऊपर भी कृपा कर सकते हैं।

और भी अवतार के कारण बतलाते हैं। वे जनरञ्जन हैं। तुम भी उनके जन हो जाओ। भञ्जन खल व्राता से खलमण्डली का नाश उपस्थित है। राक्षस खल मनुजाद द्विजामिष भोगी हैं सो एक न बचेंगे। वे वेद धर्मरक्षक हैं और तुम्हारे यहाँ वेद के निर्मूल करने की विधि काम मे लायी जाती है। अब यह न होने पावेगा। वेद धर्मरक्षक आगये। विभीषणजी भाई की दृष्टि से कहते हैं। सुनु भ्राता। भाव यह कि मैं भाई हूँ। आज लड़ूँगा। मेरी बात माननी होगी। मैं राजा के रोब से मुँहदेखी बात नही कह सकता।

ताहि बयरु तजि नाइअ माथा। प्रनतारति भंजन रघुनाथा॥
देहु नाथ प्रभु कहुँ बैदेही। भजहु राम बिनु हेतु सनेही॥३॥

अर्थ : वैर त्यागकर उन्हे मस्तक नवाइये। वे रघुनाथजी शरणागत का दुःख मिटानेवाले हैं। हे नाथ! प्रभु को जानकीजी दे दीजिये और बिना कारण स्नेह करनेवाले रामजी को भजिये।

व्याख्या : तौ मैं जाइ बैर हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ। होइहि भजनु न तामस देही। यह सिद्धान्त ठीक नही। उनसे वैर छोडो। किसी के सामने माथा नही झुकाते पर उनके सामने झुकाओ। वे प्रणत की आर्ति के हरण करनेवाले हैं। तुम भी आर्त हो जाओ। आर्ति का कारण उपस्थित है। तुम्हे ज्ञान है कि मेरा तामस देह है। भजन नही हो सकता और सद्गति की इच्छा है। तुम्हे केवल प्रणत होने की देर है। इतने मे ही सब कल्याण हो जायगा। व्यर्थ सर्वनाश क्यो करते हो ?

वैर करने के लिए ही तुमने वैदेही हरण किया है। सो वैदेही देने से ही वैर समाप्त हो जायगा। उनकी ओर से तो प्रेम ही प्रेम है। वे तो निष्कारण प्रेम करते हैं। भजन करने से क्यो न करेंगे ? परमेश्वर के भजन करने ही मे शोभा है। उनसे वैर करना ही मूर्खता है। पहिले निर्गुण निरूपक विशेषण विभीषणजी ने दिये। अब सगुण निरूपक विशेषण दे रहे हैं। प्रभु को वैदेही दो। कहने का भाव यह कि : जनक सभा अगनित भुवपाला। रहे तुमहु बल अतुल बिसाला। भजि धनुष जानकी बिआही। तब संग्राम जितेहु किन ताही।

सरन गएँ प्रभु ताहु न त्यागा। बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा॥
जासु नाम त्रय ताप नसावन। सोइ प्रभु प्रकट समुझु जियँ रावन॥४॥

अर्थ : जिसे सम्पूर्ण जगत् से द्रोह करने का पाप लगा है। शरण जाने पर प्रभु उसका भी परित्याग नही करते। जिनका नाम तीनो तापो का नाश करने वाला है वे ही प्रभु प्रकट हुए हैं। हे रावण! हृदय में यह समझ लो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या यदि अपने अपराध की गुरुता सोच करके निराश हो तो यह भी ठीक नहीं है। तुम्हारा अपराध निःसन्देह बहुत बड़ा है किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पर्थहि लागा। पर ऐसो को तो क्षमा वहीं से मिलती ह जहाँ शरण गया तहाँ विश्वद्रोह कृत पाप भी क्षमा कर दिया जाता है। वह अपना लिया जाता है। वहाँ शरणागत का त्याग होता ही नहीं।

जिसके नाम से आध्यात्मिक आधिदैविक और आधिभौतिक तापो का नाश होता है आध्यात्मिक ताप का नाश यथा : ध्रुव सगलानि जप्येउ हरि नाऊँ। पायेउ अचल अनूपम ठाऊँ। आधिदैविक ताप का नाश यथा : नाम जपत मगल दिसि दसहूँ। आधिभौतिक ताप का नाश यथा नाम प्रभाउ जान सिव नीको। कालकूट फल दीन्ह अमी को। यहाँ तो वे स्वय प्रकट हैं। यह सन्देह ही नहीं किया जा सकता कि कोई गम्भीर पाप कैसे मिटेगा ? भाव यह कि तुम्हे ऐसा सुअवसर प्राप्त है कि नाम जपकर उन्हे प्रकट भी करना नहीं है। दूसरो ने बडे बडे जप तप करके उन्हे प्रकट किया है। तुम केवल शरण मे जाकर अपना काम बना लो। तुम रावण हो। सबको रुलानेवाले हो। समझ लो तुम्हारे वध के लिए अवतार हुआ है। देवताओं की रक्षा के लिए आये हुए हैं। सो वैरियो का मनोरथ पूरा न होने पावे। तुम ही उन्हे अपना लो।

दो बार बार पद लागउँ, बिनय करउँ दससीस।
परिहरि मान मोह मद, भजहु कोसलाधीस ॥
मुनि पुलस्ति निज सिष्य सन, कहि पठई यहि बात।
तुरत सो मै प्रभु सन कही, पाइ सुअवसरु तात ॥३९॥

अर्थ हे दशशीश ! मैं बार-बार पैर पडता हूँ और विनती करता हूँ कि मान मोह और मद को छोडकर कोसलपति रामजी का भजन करो। फिर पुलस्य ऋषि ने भी अपने शिष्य से यही बात कहला भेजी है। सुअवसर पाकर तुरन्त ही वह बात मैंने प्रभु से कही है।

व्याख्या . महात्मा लोग हाथ जोडकर पैरो पर गिरकर भी दूसरो का भला चाहते हैं और करते हैं। सो विभीषणजी महात्मा है। कह रहे हैं कि मै भाई हूँ। बार बार पैर पडता हूँ। हाथ जोडता हूँ। तुम जगत् विजयी होकर भी छवो रिपुओ के शरण मे पडे हो। काम क्रोध लोभ मद के लिए पहिले कह चुके हैं। यथा : काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पथ। और शेष दो मान मोह को इस समय कह रहे हैं। रावण अधिक मदान्ध हैं। इसलिए दोनों बार के निषेध करने मे मद की चर्चा की। इन छवो के रहते भजन हो नहीं सकता। तुम शत्रुओ को भज रहे हो। बिनु हेतु सनेही को नहीं भजते। दशशीश कहने का यह भाव कि किसी का दस प्रणाम और तुम्हारा एक प्रणाम। कोसलाधीश कहने का भाव

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यह कि लोकप्रसिद्ध धन्वी हैं। यथा : कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता। धन्वी सकल लोक विख्याता। उनके भजन में ही कुशल है।

पुलस्त्यजी ने विभीषण के द्वारा रावण से सन्देश कहलाया। रावण से अप्रसन्न हैं। सीधे सीधे उसके पास सन्देश नहीं भेजते। निज शिष्य कहने का भाव यह कि विश्वस्त व्यक्ति है। मेरा पहिचाना हुआ है। उसे लङ्का में प्रवेश का अधिकार दिया हुआ है। अथवा पुलस्त्यजी का निज शिष्य है। वह सिद्ध है। लङ्का में आकर मुझसे बात भी कर गया। पता किसी को भी नही। ये बातें जो मैंने कही हैं वे मेरी नही हैं। पुलस्त्यजी ने कहला भेजा है। समयानुकूल होने से मैंने अपनी ओर से कहा क्योकि मेरा भी यही मत है। ज्योंही मुझे सन्देशा मिला त्योंही मैं कहनेके लिए आया। यहाँ उसी विषय की चर्चा चल रही थी। मुझे सुअवसर मिल गया मैंने कह डाला। दूसरी बात यह कि तुम्हारे लिए भी सुअवसर है। पुलस्त्य ऋषि के कहने पर यदि तुम रामजी से मेल कर लोगे सीताजी को दे दोगे तो तुम्हारा बड़ा सुयश होगा। कोई यह भी नही कह सकेगा कि रावण ने डरकर मेल कर लिया। सब तुम्हारे गुरु आज्ञा पालन की प्रशंसा करेंगे। पुलस्त्य जी के संदेश में नाम रूप लीला और धाम चारों का वर्णन है। नाम यथा : जासु नाम त्रय ताप नसावन। लीला यथा : जन रंजन भजन खल व्राता। वेद धर्म रक्षक सुनु भ्राता। रूप यथा : ब्रह्म अनामय अज भगवंता। धाम यथा : भजहु कोसलाधीस।

**माल्यवंत अति सचिव सयाना। तासु वचन सुनि अति सुख माना॥**
**तात अनुज तव नीति बिभूषन। सो उर धरहु जो कहत विभीषन॥१॥**

अर्थ : माल्यवान् नाम का एक अति सयाना मन्त्री था। उसने उसकी : विभीषण की बात सुनकर बहुत सुख माना। उसने कहा : हे तात! आपका छोटा भाई नीतिविभूषण है। जो विभीषण कह रहे हैं उसे ही मनमें स्थान दो।

व्याख्या : माल्यवंत अति जरठ निसाचर। रावन मातु पिता मंत्री बर। अब रावण का मन्त्री है। इसीलिए अति सयाना कहा। अन्य मन्त्रियों की सम्मति पर दुःख माना था। अपना कोई अनुमोदक न देखकर मौन था। विभीषणजी के वचन पर फड़क उठा कि बड़े कल्याण की बात इसने कही। इधर विभीषण के प्रस्ताव का कोई अनुमोदक न था। अतः बोल उठा।

अति वृद्ध है। रावण के नाना का मन्त्री है। अतः तात सम्बोधन करता है। कहता है कि नीति विभूषण तो तुम्हारा भाई है। सचिव नीति विभूषण नही है। इनकी बातों को मन में न लाना विभीषण के वचन मानने योग्य हैं। अति प्रसन्न होकर विभीषण को नीतिविभूषण की पदवी प्रदान करता है।

**रिपु उतकरष कहत सठ दोऊ। दूरि न करहु इहाँ है कोऊ॥**
**माल्यवंत गृह गयउ बहोरी। कहइ विभीषनु पुनि कर जोरी॥२॥**

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : ये दोनों शठ शत्रु की बड़ाई कर रहे हैं। यहाँ कोई है। इन्हें दूर क्यों नहीं करते ? माल्यवान् तो उठकर घर चले गये और विभीषण हाथ जोड़कर फिर कहने लगे।

व्याख्या : रिपु का उत्कर्ष तेजोवध के लिए कहा जाता है। विभीषणने अपनी बात के साथ पुलस्त्य ऋषि का नाम ले दिया था। इसलिए रावण को कुछ कहने का मौका नहीं मिला था। जब माल्यवान् बोले तब मौका मिल गया। उसे किसी का उपदेश पसन्द नहीं। इससे रिपु के उत्कर्ष कथन का दोषारोपण कर रहा है। गो कि मन्त्रणा के समय उत्कर्ष अपकर्ष सब कुछ कहा जाता है। 'सठ' कहने का भाव यह कि ये दोनों शत्रु से मिल गये हैं। यहाँ पर बातें बनाते हैं। इन दोनों को बिना आज्ञा पाये ही : कायदे के मुताबिक : दरबार के बाहर निकाल देना चाहता था। सो क्यों ये निकाले नहीं जाते ? फिर भी कोई निकालने के लिए नहीं उठा। तब कहता है : इहाँ है कोऊ : भाव यह कि क्या सब मर गये ?

माल्यवान् बड़े सयाने हैं। धीरे से घर की राह ली। कोई उठा ही देगा। तब क्या रह जायगा ? विभीषण के उठाने के लिए फिर भी कोई नहीं उठा। राजा का भाई है। एक प्रकार से राजा ही है। यथा : करत राज लंका सठ त्यागी। विभीषणजी सब कहने को तैयार हैं। अभिप्राय यह है कि आज न कहूँगा तो फिर कब कहूँगा ?

सुमति कुमति सबके उर बसही। नाथ पुरान निगम अस कहही॥
जहाँ सुमति तहँ संपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना॥३॥

अर्थ : सुमति और कुमति सबके हृदय मे बसती है। हे नाथ ! पुराण और वेद ऐसा कहते हैं कि जहाँ सुमति है वहाँ नानाप्रकार की सम्पदाएँ बसती हैं और जहाँ कुमति है, वहाँ परिणाम में विपत्ति रहती है।

व्याख्या : सात्त्विकी बुद्धि को सुमति और राजसी तामसी बुद्धि को कुमति कहते है। ये सबके हृदय में रहती है। पुराण और वेदो ने इसका पृथक्करण करके बतलाया है। बुद्धि से ही पुरुष की पहिचान होती है और बुद्धि ही सम्पत्ति और विपत्ति का कारण है। जहाँ सुमति है वहाँ नाना प्रकार की सम्पत्ति रहती है और जहाँ कुमति है वहाँ चाहे पहिले सम्पत्ति दिखायी पड़े पर अन्त में बड़ी भारी विपत्ति आती है। प्रवृत्ति निवृत्ति कार्य अकार्य भय और अभय बन्ध और मोक्ष को जो जानती है उसे सात्त्विकी बुद्धि कहते हैं और जो धर्माधर्म कार्याकार्य को ठीक तरह से नहीं जानती उसे राजसी बुद्धि कहते हैं और जो बुद्धि तमोगुण से ढकी हुई अधर्म को ही धर्म मानती है वह बुद्धि तामसी है। यथा : प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च कार्याकार्ये भयाभये। बन्धं मोक्षं च या वेत्ति बुद्धिः सा पार्थ सात्त्विकी। यया धर्ममधर्मं च कार्यंचाकार्यमेव च। अयथावत् प्रजानाति बुद्धिः सा पार्थ राजसी। अधर्मं धर्ममिति या मन्यते तमसावृता। सर्वार्थान् विपरीतांश्च बुद्धिः सा पार्थ तामसी : भगवद्गीता :

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सात्त्विकी की ऊँची गति होती है। राजस बीच मे रहते हैं और निन्दित गुणवाले तामस का अध पतन होता है। यथा : ऊर्ध्वं गच्छन्ति सत्त्वस्था मध्ये तिष्ठन्ति राजसा। जघन्यगुणवृत्तिस्था अधो गच्छन्ति तामसा भगवद्गीता :

तव उर कुमति बसी बिपरीता। हित अनहित मानहु रिपु प्रीता ॥
कालराति निसिचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी ॥४॥

अर्थ तुम्हारे मन मे उलटी कुवुद्धि आ बसी है। हित को अहित और शत्रु को मित्र मान रहे हो। जो निशिचर कुल के लिए कालरात्रि तुल्या है उस सीता पर बडी प्रीति है।

व्याख्या : विपरीता कुमति अर्थात् तामसी बुद्धि तुम्हारे हृदय मे बस गयी है। मैं और माल्यवान् तुम्हारा हित कह रहे हैं। सो तुम्हे रिपु का उत्कर्ष कथन मालूम पड रहा है और तुम्हारे सचिव जो मष्ट करि रहहू ऐसी अहित शिक्षा दे रहे हैं सो तुम्हे हित मालूम हो रहा है। हनुमान्जी तथा विभीषणजी की शिक्षाओ मे बहुत साम्य है।

इतना ही नही यह सीता तुम्हारी बडी भारी शत्रु है। निशिचर मात्र का सहार चाहनेवाली साक्षात् कालरात्रि अर्थात् काली माई हैं। यथा : कालरात्रिर्महारात्रिर्मोहरात्रिश्च दारुणा। यह निशिचर कुलको खा जावेगी। उसपर तुम्हारी इतनी प्रीति कि उसे लाकर लङ्का मे रख लिया। यह मानहु रिपु प्रीता का उदाहरण है। सीता के शब्दो का अर्थ भी मन मे नही लाते। सो भुज कठ कि तव असि घोरा। सुनु सठ अस प्रवान पन मोरा।

दो. तात चरन गहि मागँहु, राखहु मोर दुलार।
सीता देहु राम कहुँ, अहित न होइ तुम्हार ॥४०॥

अर्थ : हे तात ! मैं चरण पकडकर आपसे माँगता हूँ। मेरा दुलार रख लो। रामजी को सीता दो। तुम्हारा अकल्याण न हो।

व्याख्या : भ्राता चरन सीस तेहि नावा से उपक्रम तात चरन 'गहि माँगौं राखहु मोर दुलार से उपसहार। मोर दुलार कहने का भाव यह कि मेरी सम्मति बुरी सही मैं छोटा भाई हूँ। मेरी रुचि है कि सीता लङ्का मे न रहे। मेरी रुचि रख लो। अपने मन मे यह समझ लो कि मैं छोटा भाई का दुलार रख रहा हूँ और सीताजी को दे दो। सीता के न देने से निश्चय अकल्याण है। चरन गहि माँगौ का भाव यह कि जो माँगता हूँ वही लूँगा। सन्त लोग चरण पकडकर विनयपूर्वक भी दूसरे का कल्याण चाहते हैं। सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महुँ जीभ बिचारी का यह बडा सुन्दर उदाहरण है। जीभ की भाँति विभीषणजी दाँत रूप रावण के हित मे रत हैं। दाँत के अन्तर मे तिनका आ पडा। सीता सोलनिया की भाँति आ फसी। विभीषण वहाँ से सीता

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



को बिना हटाये न मानेंगे। दशानन दशन रूप है। वे बल पडते ही चाभ जाने मे आगापीछा न करेगा। फिर भी उसका कल्याण ही करेंगे।

बुध पुरान श्रुति समत बानी। कही बिभीषन नीति बखानी ॥
सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि निकट मृत्यु अब आई ॥१॥

अर्थ पण्डित पुराण और वेदसम्मत वाणी से विभीषण ने नीति का प्रतिपादन किया। किन्तु सुनते ही दशानन खिझला उठा बोला खल तेरी मौत निकट आगयी।

व्याख्या विभीषण ने स्वय कहा है। नाथ पुराण निगम अस कहही और उसका कहा हुआ स्वय पुलस्त्य ऋषि के कथनानुकूल था। यथा रिषि पुलस्त्य निज सिष्य सन कहि पठई यह बात। अत विभीषणजी की उक्ति बुध पुराण श्रुति सम्मत थी। इसमें सन्देह नही है। श्रुति ही परम प्रमाण है उसके अर्थ का उपबृहण करनेवाले पुराण हैं। फिर भी शिष्टो द्वारा परिगृहीत होने की आवश्यकता रहती है। श्रुति पुराण सम्मत भी यदि शिष्टो द्वारा परिगृहीत न हो तो आचरण योग्य नही रहता। इसलिए कवि कहते हैं कि विभीषणजी की वाणी तो सर्वथा उपादेय थी। उसम नीति का प्रतिपादन था। धर्मार्थ काम का भी अविरोध था। अथवा सुमति कुमति सबके उर बसही। नाथ पुरान निगम अस कहही। जहाँ सुमति तहँ सपति नाना। जहाँ कुमति तहँ बिपति निदाना इत्यादि वाणी वेद पुराण सम्मत थी। बार बार पद लागउँ बिनय करउँ दससीस परिहरि मान मोह मद भजहु कोसलाधीस। पुनि पुलस्ति निज सिष्य सन कहि पठई यह बात इत्यादि उक्ति बुधसम्मत थी और जो आपन चाहै कल्याना। सुजसु सुमति सुभगति सुख नाना। सो परनारि लिलार गोसाई। तजउ चउथि के चद की नाई इत्यादि उक्तियो में नीति का प्रतिपादन था। ऐसी वाणी का राजसभा मे आदर होना चाहिए था।

परन्तु रावण सीताजी का देना कान से सुनना नही चाहता। अत सुनते ही खिझला उठा। दूरि न करो इहाँ है कोऊ कहने पर भी किसी को उठते न देखकर स्वयं उठ पडा। क्रोध को रोक न सका। रावण को शिक्षा देना अपनी मृत्यु का आह्वान करना है। उसके दरबार म शिक्षा देनेवाले के लिए मृत्युदण्ड है। यथा मृत्यु निकट आई खल तोही। लागेसि अधम सिखावन मोही। नियम भी यही है कि मूर्ख को उपदश से क्रोध होता है शान्ति नही होती। उपदेशो हि मूर्खाणा प्रकोपाय न शान्तये। पुलस्त्यजी का सँदेसा कहा। तभी रावण ने निकाल देने की आज्ञा दी। फिर भी विभीषणजी नही माने। नीति का प्रतिपादन करने लगे। तात चरन गहि मांगौ राखहु मोर दुलार। सीता देहु राम कहुँ अहित न होइ तुम्हार। तब रावण मारे क्रोध के सिंहासन छोडकर विभीषणजी को मारने उठा। भाव यह कि मेरी पहिली आज्ञा न मानकर अब तू ह० करता है। इसलिए अब मृत्यु ही तेरे निकट आगयी। यह विपरीत कुमति का उदाहरण है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जियसि सदा सठ मोर जियावा । रिपुकर पच्छ मूढ़ तोहि भावा ॥
कहसि न खल अस को जगमाही । भुजवल जाहि [1]जिता मै नाही ॥२॥

अर्थ : रे शठ ! सदा तू मेरा जिलाया हुआ जीता है। रे मूढ ! पक्ष तुझे शत्रु का ही अच्छा लगता है। अरे दुष्ट ! वता न जगत् में ऐसा कौन है जिसे मैंने अपनी भुजाओ के वल से न जीता हो।

व्याख्या : जिसका खावे उसका गावे यही संसार की नीति है। खिलाया जिलाया मैंने। शादी व्याह मैंने किया झोपड़ी में से निकालकर सोने की लङ्का में बिठा दिया। शत्रु से इसे कोई भी लाभ नही। उसका पक्ष इसे पसन्द क्यो है ? यह मूढ है शत्रु की ओर से पैर पड़ता है। दुलार रखने को कहता है। इसे शत्रु का पक्ष कितना प्रिय है। यह विचित्र बात है। यह भी विपरीत कुमति का उदाहरण है। रावण का जो कुछ विजय विभव है वह विभीषण के कारण है। यथा : रावन जबहि विभीषण त्यागा। भयउ विभव बिनु तबहि अभागा। और रावण समझ रहा है कि मेरे विजय और विभव का विभीषण उपभोग कर रहा है।

रह गयी यह बात कि विभीषण रावण के अहित न होने के लिए इतना हठ कर रहे हैं। इसपर रावण कहते हैं कि यह इसकी साधुता नही है खलता है। मेरे अहित का तो कोई प्रश्न ही नही है। यह मेरे शत्रु की भलाई के लिए मेरे हिताहित का प्रश्न उठा रहा है। मेरा अहित तो तभी सम्भव है जब शत्रु मुझसे अधिक बलवान् हो। अतः पूछते हैं कि तू नाम वतला किसको मैने भुजवल से नही जीता। यथा : भुजबल विश्ववस्य करि राखेसि कोउ न स्वतन्‍त्र। भुजबल जितेउ काल जम साई : भाव यह है कि विश्व के जय करने में मैने तपोवल, वरदान बल या अस्त्रबल से तो काम ही नही लिया। केवल भुजवल से जगत् जीत लिया। मेरे अहित का कौन प्रश्न है।

मम पुर बसि तपसिन्ह पर प्रीति । सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती ॥
अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा । [2]अनुज गहे पद बारहिं बारा ॥३॥

अर्थ : मेरे पुर मे रहकर तपस्वियों से प्रीति करता है। रे शठ ! तू जाकर उन्ही से मिल और उन्ही को नीति बतला ऐसा कहकर रावण ने लात मारी। विभीषण ने बार बार उनका चरण पकड़ा।

व्याख्या : रावण कहते हैं कि तू मेरे पुर मे बसता है और मेरा तपस्वियो से वैर है। यथा : निसिचर निकर सकल मुनि खाये : और तू तपस्वियो से प्रेम करता है। तू दगा करेगा। तेरी नीति से मैं हैरान हूँ। लङ्का जली तेरी नीति से।

१. दीर्घह्रस्वौ मिथो वृत्तौ : दीर्घ का ह्रस्व और ह्रस्व का दीर्घ होता है : इस प्राकृत सूत्र से जीता शब्द का जिता रूप हुआ।

२. यहाँ विकस्वरालंकार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तेरा मेल उस तपस्वी से ही मिलता है। वह भी नीति के पीछे पागल है। यथा : नीति विरोध सोहाइ न मोही : नीति के पीछे राजपाट छोड़े बैठा है। वही तेरी नीति सुनेगा और अपना अनभल करेगा। तू मेरे पुर मे रहने लायक नही है। तू लङ्का छोड दे : भलाई करनेवाले को लात मारना खल का असाधारण लक्षण है : ऐसा कहकर चरण प्रहार किया अर्थात् कसकर लात हृदय मे शत्रु की भाँति मारा। यथा : तुलसी हुमुकि हिये हन्यो लात। भले तात चल्यो सुरतरु ताकि तजि घोर घामे : गी.।

पहिले दरबार से निकालने की आज्ञा दी। अब लात मारकर लङ्का से बाहर निकाल रहा है। यह शत्रु के हित के लिए मेरा चरण पकड रहा है। ऐसा समझकर रावण ने चरण प्रहार किया। भरी सभा मे भाई को चरण प्रहार करना अत्यन्त अप्रतिष्ठा के लिए भी है। जिसमे यदि जीता बचे तो भी लङ्का छोडकर चला जाय। रावण ने देखा कि विभीषण की इतनी प्रतिष्ठा यहाँ है कि मेरी आज्ञा पर भी कोई इसे सभा के बाहर निकालने का साहस नही करता। यह मानधन है इसका मानमर्दन भरी सभा मे करना चाहिए। तभी यह लङ्का छोडेगा। इसके लङ्का मे रहने से शत्रुपक्ष की वृद्धि होगी। विभीषणजी बार बार चरण ग्रहण कर रहे हैं। जिसमे अब भी इसके हृदय मे दया आवे। अथवा अभिमानी को अवसर देते हैं कि वह इससे लाभ उठावे और कहे कि विभीषण से मै लाचार हो गया। ले जाओ उस तपस्वी को उसकी स्त्री दे आओ। अथवा यह भाव है कि मुझे और भी दण्ड दे लो। पर सीता को लौटा दो अथवा मै चरण नहीं छोड़ना चाहता। क्योकि छोडाते हो। यह रघुनाथजी की बडी भारी कृपा है कि रावण के चरण का प्रहार हृदय पर होने पर भी विभीषण को चोट न आयी। जिसके पादविक्षेप से पृथ्वी डोलती थी उसके हृदय मे लात मारने पर विभीषणजी को मूर्च्छा तक नही हुई।

उमा संत कइ इहै बड़ाई। मद करत जो करै भलाई॥
तुम्ह पितु सरिस भलेहिं मोहि मारा। राम भजे हित होइ तुम्हारा॥४॥

अर्थ : हे उमा ! सन्त की यही बड़ाई है जो बुराई करने पर भी भलाई ही करते हैं। तुम पिता के समान हो। मुझे मारा सो अच्छा किया। परन्तु नाथ ! राम के भजने मे ही तुम्हारा भला है।

व्याख्या : शिवजी उमा से कहते हैं कि खल लोग सन्त के वेष वचन आदि सभी बातो की नकल कर लेते हैं। यथा : लखि सुबेष जग बंचक जेऊ। वेष प्रताप पूजि अहि तेऊ। पर सन्त की जो विशेष बड़ाई है उसकी नकल खल क्या करेंगे। कोई भी नही कर सकता। जो अपनी बुराई करता हो उसकी भी भलाई करना यह सन्त का ही काम है। दूसरे का किया यह नही हो सकता। भला करनेवाले के साथ भलाई तो सब करते हैं। पर बुरा करनेवाले के साथ भलाई करना सन्तो से ही बन सकता है : क्रुद्ध्यन्त न प्रतिक्रुध्येत आक्रुष्ट कुशल वदेत् :

ankurnagpal108@gmail.com



सो रावण के क्रोध करने पर भी विभीषणजी ने क्रोध नही किया। लात खाने पर भी कल्याण ही बोलते हैं।

रावण ने कहा जिएसि सदा सठ मोर जिआवा उसके उत्तर मे कहते हैं तुम पितु सरिस भलेहि मोहि मारा। जेठे भाई हो, बाप के समान हो, मुझे मारा सो अच्छा ही किया। परन्तु हित करने मे मैं भी नही रुक सकता। तुम्हारा हित राम भजन मे है। सीता के न देने मे नही है। अपनी बात मे मुझे दृढता है। यह विभीषणजी का सत्याग्रह है।

सचिव सग लै नभ पथ गएऊ। सबहि सुनाइ कहत अस भएऊ ॥५॥

दो रामु सत्यसकल्प प्रभु, सभा कालबस तोरि।
मै रघुबीर सरन अब, जाउँ देहु जनि खोरि ॥४१॥

अर्थं बिभीषण अपने मन्त्रियो को साथ लेकर आकाश मार्ग मे गये और सबको सुना करके ऐसा कहने लगे कि रामजी सत्यसकल्प एव प्रभु हैं। तुम्हारी सभा काल के वश है। मै अब रघुवीर के शरण मे जाता हूँ, मुझे दोष न देना।

व्याख्या जब देख लिया कि इतने पर भी रावण नही सुनते, कोई सभा मे उनका साथी नही है। न कोई सहारा देनेवाला है। मन्त्रणा की सभा मे इतना बडा अन्याय हुआ। कोई बोलनेवाला नही। अब लका मे मेरा निर्वाह नहीं हो सकता। क्योकि रावण ने वधो वा त्यागो वा वाली नीति को अपना कर मेरा परित्याग कर दिया। अत विभीषणजी ने केवल अपने मन्त्रियो को अपने साथ लिया और सारे कुटुम्ब को छोडकर आकाश मार्ग मे चले गये। करत राज लका सठ त्यागी। सो सब राज्याङ्गो का परित्याग किया। केवल मन्त्रियो को नही छोडा। सबको सुनाकर कहते हैं—

सठ मिलु जाइ तिनहि कहु नीती का उत्तर विभीषणजी देते हैं कि रामजी सत्यसकल्प हैं। उन्होने निसिचरहीन महि करने का सकल्प कर लिया है। अत तुम लोग अपने वश मे नही हो। कालवश हो गये हो। यथा हित मत तोहि न लागत कैसे। काल विवस कहँ भेषज जैसे मैं डके की चोट के साथ रामजी के शरण म जाता हूँ। चोरी से नहीं। भाव यह है कि अब भी मेरे साथ चले चलो। नहीं चलते तो मेरा दोष नही अथवा मुझे लौटाना चाहते हो तो लौटा लो। यदि सभी की इच्छा है कि मैं चला जाऊँ तो मैं जा रहा हूँ। जब शरण मे चला जाऊँगा तो सर्वात्मना उनका हो जाऊँगा। फिर मेरा दोष न देना।

अस कहि चला बिभीषनु जबही। आयूहीन भए सब तबही ॥
साधु अवग्या तुरत भवानी। कर कल्यान अखिल कै हानी ॥१॥

अर्थ ऐसा कहकर विभीषणजी ज्यो ही चले त्यो ही सब राक्षस आयुहीन हो गय। हे भवानी! साधु का अपमान तुरन्त ही सम्पूर्ण कल्याण की हानि कर देता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : सन्त ने : सभा कालवस तोरि कह दिया। अतः तत्काल सब आयुहीन हो गये। दूसरी बात यह कि विभीषण ही उन सबकी आयुरूप रहे। यथा : जीव भवदंघ्रिसेवक विभीषन बसत मध्य दुष्टाटवीग्रसित चिंता। एक साधु पुरुष के रहने से सम्पूर्ण कुटुम्ब तथा नगर की रक्षा रहती है। लङ्का मे केवल विभीषन ही सन्त थे। नही तो इहाँ कहाँ सज्जन कर बासा। केवल इन्ही के लिए कवि कहते हैं कि हृदय हरख कपि सज्जन चीन्हा। विभीषणजी ने सबको सुनाकर कहा और सबके सामने चले। किसी ने उन्हे लौटाने के लिए रावण से विनय तक न की। सबको विभीषणजी का आचरण अप्रिय था। सुनहु पवन सुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्हि महु जीभ बिचारी। साधु के अपमान से जिस प्रकार हित की हानि होती है उसका उदाहरण लङ्कादाह प्रकरण मे दे चुके है। यथा : साधु अवज्ञा कर फल ऐसा। जरै नगर अनाथ कर जैसा। हनुमान्‌जी का भी अनादर लात मारकर लङ्का मे किया गया था। यथा . मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी। यहाँ विभीषण को लात मारा गया। उस बार नगर जरा इस बार सब आयुहीन हुए। दूसरे पाप देर मे फैलते हैं। साधु के अपमान का तुरन्त फल होता है। जहाँ सबके देखते हुए अधर्म से धर्म और झूठ से सत्य मारा जाता है उस सभा के सभासद् मारे पडते हैं। यथा यत्र धर्मो ह्यधर्मेण सत्यं यत्रानृतेन च। हन्यते प्रेक्षमाणाना हतास्तत्र सभासद ।

रावन जबहि बिभीषनु त्यागा। भयउ बिभव बिनु तबहि अभागा ॥

## विभीषण मिलन विधि प्रसङ्ग

चलेउ हरषि रघुनायक पाही। करत मनोरथ बहु मन माही ॥२॥

अर्थ . रावण ने जब विभीषण को त्यागा तभी वह अभागा वैभव से हीन हो गया। विभीषणजी हर्षित होकर मन मे अनेको मनोरथ करते हुए श्रीरघुनाथजी के पास चले। सबलायक के समीप जा रहे हैं।

व्याख्या वेद विरुद्ध महीसुर साधु ससोक कियो सुरलोक उजारो। और कहा कहौं तीय हरी तबहूँ करुनाकर कोप न धारो। सेवक छोह ते छाडी छमा तुलसी लख्यो राम सुभाउ तिहारो। तौ लौं न दापु दल्यो दसकंधर जौ लो बिभीषन लात न मारो। कवि०। रावण ने विभीषण को त्यागा। विभीषण ने नही त्यागा। रावण का धर्मरथ टूट गया। उसमे से दो पहिया और एक घोडा रह गया। यथा . सौरज धीरज जेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ ध्वजा पताका। बल बिबेक दम परहित घोरे। बडे भाग से सतसङ्ग मिलता है। सो उस अभागे ने लात मारकर सन्त को बाहर निकाल दिया। अत ऐश्वर्यहीन और अभागा हो गया।

विभीषणजी कहते थे। तात कबहुँ मोहि जानि अनाथा। करिहहि कृपा भानुकुल नाथा। सो भानुकुल नाथ ने कृपा कर दी। भइ कूबर की लात बिधाता राखी बात बनाइके गीतावली । सरस्वती सहाय हो गयी। रावण ने स्वय निकाल बाहर किया। इससे विभीषणजी को हर्ष है। सरकार के दर्शन का मनोरथ था।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मनोरथ करते-करते रास्ता कट जाता है। यथा : लागि नहिं विधि करत मनोरथ जात बहु बार। बहु मनोरथ का भाव यह कि यथा : महाराज ,राम पहँ जाऊँगो। सुख स्वारथ परिहरि करिहौं सोइ ज्यों साहिबहिं सोहाऊँगो। सरनागत सुनि बेग बोलिहौं निपटहिं सकुचाऊँगो। इत्यादि। गीतावली ५.३०।

देखिहौं जाइ चरन जलजाता। अरुन मृदुल सेवक सुखदाता॥
जे पद परसि तरी रिषिनारी। दंडक कानन पावनकारी॥३॥

अर्थ : मैं जाकर कोमल और लाल वर्ण के सुन्दर चरण कमलों का दर्शन करूँगा। जो सेवकों के सुख देनेवाले हैं जिन चरणों का स्पर्श करके ऋषिपत्नी अहल्या तर गयीं और जो दण्डक वन को पवित्र करनेवाले हैं।

व्याख्या : जिस चरण का अनुराग तपस्या करके माँगा था। यथा : तेहि माँग्यौ भगवंत पद कमल अमल अनुराग। आज उस चरण कमल का दर्शन होगा। अरुण होने से दर्शनीय मृदुल होने से स्पर्शनीय है। इसलिए सुखदाता हैं। जा को चरन बिरंचि सेइ सिधि पाइ संकरहूँ। सुक सनकादि मुकुत बिचरत तेउ भजन करत अजहूँ।

ऋषिनारी अहल्या पाषाणरूप होने से देख नहीं सकती थी। अतः स्पर्श से पार हो गयी। यथा : परसि जासु पद पंकज धूरी। तरी अहल्या कृत अघ भूरी। परसि चरन रज अचर सुखारी। भये परम गति के अधिकारी। इससे स्पर्श कहा। दण्डकारण्य भी इसी प्रकार ब्रह्मशाप से विनिर्मुक्त हुआ। यथा : दंडक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिवर कर हरहू। सुखदातृत्व का उदाहरण देते हैं कि न ऋषिनारी सेविका थी न दण्डकारण्य सेवक था। पर दोनों ब्रह्मशाप से केवल स्पर्श द्वारा मुक्त हुए। मैं भी मृदुल चरणो के स्पर्श द्वारा विप्रशाप निसाचर योनि से मुक्त होऊँगा। यथा : उपजे जदपि पुलस्त्यकुल पावन अमल अनूप। तदपि महीसुर साप बस भये सकल अघरूप।

जे पद जनकसुता उर लाए। कपट कुरंग संग धर धाए॥
हर उर सर सरोज पद जेई। अहोभाग्य मै देखिहौं तेई॥४॥

अर्थ : निज चरणों को जानकीजी ने हृदय में धारण कर रक्खा है जो कपट-मृग को पकड़ने के लिए दौड़े थे और जो चरणकमल साक्षात् शिवजी के हृदयरूपी सरोवर में विराजते हैं। मेरा अहोभाग्य है कि उन्हीं को आज मैं देखूँगा।

व्याख्या : मायामृगं दयितयेप्सितमन्वधावत् वन्दे महापुरुष ते चरणारविन्दम्। जेहि बिधि कपट कुरंग सग धाइ चले श्रीराम। सोइ छबि सीता राखि उर रटति रहति हरिनाम। अरुण मृदुल से रूप पद परसि से स्पर्श जनकसुता उर लाये से रस और पदसरोज से गन्ध कहा। शब्द आगे कहेंगे।

इसमें से किसी को चरण प्रत्यक्ष नहीं है। चरण की सरोज से उपमा दी है। अब वह सर भी बतलाते हैं जहाँ कि वे खिले हुए है। वह सर हरका हृदय है। वे चरण मेरे नयन के विषय होंगे। अतः विभीषणजी अपने भाग्य की प्रशंसा करते है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. जिन पायन्ह के पादुकन्हि, भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आज बिलोकिहौ, इन नयनन्हि अब जाइ ॥४२॥

अर्थ : जिन चरण के पादुकाओ मे भरतजी ने अपना मन लगा रक्खा है आज मैं उन्हीं चरणो को जाकर इन नेत्रो से देखूँगा।

व्याख्या : चरण बोलते नही पादुका बोलते है। यथा ' मॉगि मॉगि आयसु करत राज काज बहु भाँति। इससे शब्द कहा। इन नयनन्हि कहने का भाव यह कि जो दिनरात राक्षस ही देखते रहे जिन चरणो का दर्शन आज भरतजी को प्राप्त नही हैं वे पादुका पर ही सन्तोष किये बैठे हैं। उन चरणो का दर्शन मेरी इन आँखो द्वारा होगा। अत मेरे अहोभाग्य मे सन्देह नही।

एहि बिधि करत सप्रेम बिचारा। आयउ सपदि सिधु के पारा॥
कपिन्ह बिभीषनु आवत देखा। जाना कोउ रिपुदूत बिसेषा ॥१॥

अर्थ . इस प्रकार प्रेम सहित विचार करते हुए शीघ्र ही समुद्र के पार आ गये। वानरो ने विभीषण को आते हुए देखा। समझा कि शत्रु का कोई विशेष दूत है।

व्याख्या : सब विचार नही लिखा। प्रादेशमात्र दिखलाकर कहते हैं कि इस प्रकार विचार करते करते समुद्र के इस पार आ गये। इस पार कहने का भाव यह है कि जिस तट पर वानरी सेना के साथ कवि की उपस्थिति है। विचार समाप्त न न हुआ। समुद्र समाप्त हो गया। सप्रेम विचार और मनोरथ एक ही बात है। करत मनोरथ बहु मन माही से उपक्रम करके एहि बिधि करत सप्रेम बिचारा से प्रकरण का उपसहार दिखलाते हैं। मनोरथ करने मे रास्ता कट गया। समय का भान ही न हुआ। इसलिए कहते हैं कि तुरन्त इस पार आ गये। अथवा जासु नाम सुमिरत इकबारा। उतरत नर भवसिन्धु अपारा। उसी के दर्शन के मनोरथ मे इस सिन्धु का पार पा जाना क्या कठिन है ? अत तुरन्त आना लिखा।

विभीषणजी ने कपिसेना न देखी। अपने धुन मे चले आते रहे। वानरो ने विभीषणजी को देखा आकृति से वेषभूषा से। मन्त्रियो के साथ होने से जाना कि यह कोई रावण का भेजा हुआ विशेष दूत है। उस पार से आने से निर्भीकता से तथा वेष के अपरिवर्तन से दूत होने का अनुमान हुआ।

ताहि राखि कपीस पहिं आए। समाचार सब ताहि सुनाए॥
कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। आवा मिलन दसानन भाई ॥२॥

अर्थ : उसे ठहरा करके सुग्रीव के पास आये और उनको सब समाचार कह सुनाया। सुग्रीवजी ने कहा हे रघुनाथजी ! सुनिये रावण का भाई मिलने आया है।

व्याख्या ताहि राखि से विभीषणजी का अपना परिचय देना और प्रयोजन कहना ध्वनित है। सेना के नियमानुसार उन्हे पड़ाव से बाहर ही ठहरा दिया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विना सुग्रीवजी की आज्ञा के कोई पडाव के भीतर प्रवेश नही कर सकता। चारो ओर से वन्दरो का पहरा पड रहा है। शत्रु के देश के सन्निकट आ जाने से वडी सावधानी की जा रही है। अत सुग्रीवजी के पास आये और विभीषणजी का समाचार जो उनसे मालूम हुआ था सुग्रीवजी से कह सुनाया। रामजी भी वही हैं पर उनसे नही कहते। कायदे से काम हो रहा है। जिसे जो कहना हो सुग्रीवजी से कहे। सुग्रीवजी को यदि कुछ पूछना है तो सरकार से पूछेंगे। अथवा वे केवल किष्किन्धा की भाषा बोल सकते हैं। इसलिए सुग्रीवजी से कहा।

नाम रावण का ही प्रख्यात है। अत विभीषणजी ने उसी के नाम से अपना परिचय दिया था। तदनुसार ही सुग्रीवजी कहते हैं अथवा बन्दरो के वचन का अनुवाद सस्कृत अथवा अवधी भाषा मे करते हैं। उनके कहने का भाव यह कि दशानन स्वय नही आया। अपने भाई को भेजा है। दशानन है। पहिले भी यह ऐसा ही कर चुका है। स्वय यती बना हुआ कही छिपा बैठा था और मारीच को मृग बनाकर भेज दिया। उसी का भाई है। मिलने का स्वांग रचकर आया है। उसने दगा किया। यह भी वैसा ही करेगा। यही ध्वनितार्थ है।

कह प्रभु सखा बूझिए काहा। कहै कपीस सुनहु नरनाहा ॥
जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारन आया ॥३॥

अर्थ प्रभु ने कहा हे सखा! इसम पूछने की कौन सी बात है? सुग्रीव ने कहा हे नरनाथ! सुनिये राक्षस की माया जानी नही जाती। यह इच्छानुसार रूप बदलनेवाला न जाने किस कारण से आया है।

व्याख्या प्रभु ने कहा कि तुम सखा हो। तुम्हे मिलने देने का अधिकार है और यहाँ अवारित द्वार है। किसी को मिलने मे रोक नही है। इसम विचार की कौन सी बात है? आना चाहता है आने दो। यहाँ कपीश कहने का भाव यह है कि कपियो के कल्याण के विषय मे सशङ्क है। अत नरनाह सम्बोधन देकर बोलते हैं। भाव यह कि आप नरनाह हैं। मनुष्यो के साथ जैसा बरताव करना चाहिए उसे भलीभाँति जानते है। पर यह राक्षस है। मायावी है। यहाँ आकर न जाने कौन सी माया रचे। अत मैं इस विचार मे पडा हूँ कि इसे आपके सामने आने दिया जाय या नही।

देवमाया या नरमाया चाहे जानी भी जाय पर निशाचरो की माया जानी नही जाती। यथा करहि उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं करि माया। कामरूप जानहिं वहु माया। सपनेहुँ जिनके धरम न दाया। ये कामरूप है। जैसा चाहते हैं अपना रूप बना लेते हैं। मेरी सेना मे आकर न जाने कौन रूप बनाकर किससे क्या कहेगा। कहाँ क्या करेगा। इस बात का कौन ठिकाना और उसका परिणाम भयङ्कर हो सकता है। लङ्का मे क्या घाटा है जो मिलने आया है। जो यह कहेगा वह बात तो होगी नही। हम लोग सब धोखा खा जायँगे। ये स्वय सरकार को धोखा देकर जानकी अपहरण कर ले गये। इनका विश्वास क्या?

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बाँधि मोहि अस भावा॥
सखा नीति तुम नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी॥४॥
सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना। सरनागत बच्छल भगवाना॥५॥

अर्थ : यह शठ हमारा भेद लेने आया है। इसलिए मुझे तो यही अच्छा लगता है कि इसे बाँधकर रक्खा जाय। रामजी ने कहा कि सखा! तुमने नीति तो अच्छी विचारी। परन्तु शरणागत के भय का हरण करना मेरा प्रण है। प्रभु के वचन सुनकर हनुमान्‌जी हर्षित हुए कि भगवान् शरणागतवत्सल हैं।

व्याख्या : शठ है यहाँ आकर मीठी मीठी बातें करेगा और हमारा भेद लेगा। छिद्र देखकर कोई भारी उपद्रव कर बैठेगा। मेरी राय है कि इसे बाँधकर रक्खा जाय। शरणागत अवध्य हैं। मार सकते तो नहीं। बाँध रखना ही ठीक है। अथवा रावण ने हम लोगों को धोखा देने के लिए भाई को मिलने के व्याज से भेजा है तो यदि हम इसे बाँध रक्खेंगे तो उसकी चाल उलटी पड जायगी। उसके भाई की जान हमारे हाथ मे आ जायगी। इससे हम लोग बहुत लाभ उठा सकेंगे। रावण के यहाँ स्वयं जानकीजी बन्दी हैं तो हमारे यहाँ कम से कम उसका भाई तो बन्दी रहे।

सरकार ने सुग्रीव से कहा कि तुम्हारी नीति बहुत अच्छी है। इसमे कोई दोष नही। संशयावस्था मे बन्धन ही उचित है और लाभ की भी बहुत कुछ सम्भावना है। पर प्रण के सामने नीति कुछ नही। मेरा प्रण दूसरे प्रकार का है। जो शरण मे आवे उसके भय को दूर करने का मेरा प्रण है। उसे अन्यथा कैसे करें? प्रण पालन ही प्रधान धर्म है। उसके सामने अन्य धर्म अर्थ और काम की कोई गणना नहीं है।

यहाँ हनुमान्‌जी ही विभीषण से परिचित है। उसे मिलने के लिए प्रोत्साहन भी दे चुके है। यथा अस मैं अधम सखा सुनु मोहूँ पर रघुबीर। कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर। सो हनुमान्‌जी सुग्रीव का वचन सुनकर के असमञ्जस म पड गये थे। इनसे कुछ पूछा भी न गया कि हनुमान्‌जी! तुम लङ्का हो आये हो। इसके बारे मे कुछ जानते हो कि नही। केवल रामजी और सुग्रीवजी मे बात हो रही है। अत सरकार की बातें सुनकर हनुमान्‌जी हर्षित हो उठे। अथवा हानि लाभ का कोई विचार न करके शरणागत पर प्रेम देखकर हर्षित हुए। हनुमान्‌जी ने घोषणा की - वात्सल्य भाव से श्रीराम अपने शरणागत के दोषो को साफ कर देंगे। यथा : आश्रितदोषे भोक्तृत्व वात्सल्यमिति केचन।

मालूम होता है कि विभीषण मिलन की बात बन्दर लोग छेड छेडकर पूछने पर भी हनुमान्‌जी से नही निकाल सके। अत उन्होने कहा भी नही। बन्दरो ने हनुमान्‌जी यह नही पूछा कि लङ्का मे जाकर किसी को अपनी ओर फोडने का प्रयत्न किया कि नही। क्योंकि वे इसे असम्भव समझते थे। इधर सब असम्भवों

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



को सम्भव कर देनेवाले हनुमान्‌जी हैं। ये विभीषण को सिद्ध कर आये थे। अविकत्थन है। अतः बिना पूछे उस विषय पर कुछ नही कहा अथवा मानापमान न कहना चाहिए। ऐसी नीति है। अत. लङ्किनी द्वारा अपना अपमान और विभीषण द्वारा मान की चर्चा किसी से न की।

दो. सरनागत कहुँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पाँवर पापमय, तिन्हहि बिलोकत हानि ॥४३॥

अर्थ : जो अपने अकल्याण का अनुमान करके शरण में आये हुए का त्याग करते हैं। वे नर पामर हैं। पापमय हैं। उनके दर्शन में अकल्याण है।

व्याख्या : वेदविहित कर्म ही धर्म है। उसका अनुमान से बाध नही होता। अतः अनहित के अनुमान से शरणागत का त्याग उचित नही है। जो ऐसा करता है वह अनार्य है। परमार्थ है। महापातकी के संसर्ग से दोष होता है और इसके दर्शन में दोष है। अतः शरणागत का किसी अवस्था में भी परित्याग नही करना चाहिए। यह असाधारण धर्म है और रामजी कहते हैं कि मेरा तो यह प्रण है। जिसके त्याग में इतना बड़ा प्रायश्चित है उसका बन्ध कैसे किया जा सकता है। वह केवल मिलने नही आया है। शरणागत है। रावण से विमुख होकर केवल चार अनुचरों के साथ। बिना किसी छिपाव के तुम्हारी सेना में चला आया है। इससे उसका शरण में आना स्पष्ट है।

कोटि बिप्र बध लागहिं जाहू। आवें सरन तजउँ नहिं ताहू ॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबहीं ॥१॥

अर्थ : जिसे करोड़ हत्या लगी हो। शरण में आने पर मैं उसे भी नही त्यागता। ज्योंही मेरे सन्मुख होता है त्योंही उसके करोड़ों जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं।

व्याख्या : यदि कहा जाय कि खल मनुजाद द्विजामिष भोगी है। यह तो राजा का भाई है। न जाने कितने ब्राह्मणों को खाया होगा। अतः सर्वथा त्याज्य हैं। ऐसों का संसर्ग भी महापाप है। यथा : तत्संसर्गी तु पञ्चमः। इस पर कहते है कि एक नही करोड़ ब्रह्महत्या लगी हो मैं ऐसे को शरण आने पर नही त्यागता अर्थात् अपना ही लेता हूँ।

मैं तो न किसी के सम्मुख हूँ न विमुख हूँ। सम्मुख होना न होना जीव का काम है। ज्यों ही ससार से उसका मन लौटकर मेरी ओर आता है त्योंही उसके करोड़ जन्म के पाप : आप से आप नष्ट हो जाते हैं। यह शरण सम्मुख होने का माहात्म्य है। शरण आने पर उसे पाप कहां। सूर्य के सम्मुख होते ही अन्धकार का नाश हो जाता है। इसमे सूर्य को कुछ करना नहीं पड़ता।

पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजनु मोर तेहि भाव न काऊ ॥
जौं पै दुष्ट हृदय सोइ होई। मोरे सनमुख आव कि सोई ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भेद हमार लेन सठ आवा। राखिअ बाँधि मोहि अस भावा ॥
सखा नीति तुम नीकि बिचारी। मम पन सरनागत भयहारी ॥४॥
सुनि प्रभु बचन हरष हनुमाना। सरनागत बच्छल भगवाना ॥५॥

अर्थ : यह शठ हमारा भेद लेने आया है। इसलिए मुझे तो यही अच्छा लगता है कि इसे बाँधकर रक्खा जाय। रामजी ने कहा कि सखा ! तुमने नीति तो अच्छी विचारी। परन्तु शरणागत के भय का हरण करना मेरा प्रण है। प्रभु के वचन सुनकर हनुमान्‌जी हर्षित हुए कि भगवान् शरणागतवत्सल हैं।

व्याख्या : शठ है यहाँ आकर मीठी मीठी बातें करेगा और हमारा भेद लेगा। छिद्र देखकर कोई भारी उपद्रव कर बैठेगा। मेरी राय है कि इसे बाँधकर रक्खा जाय। शरणागत अवध्य हैं। मार सक्ते तो नहीं। बाँध रखना ही ठीक है। अथवा रावण ने हम लोगों को धोखा देने के लिए भाई को मिलने के व्याज से भेजा है तो यदि हम इसे बाँध रक्खेंगे तो उसकी चाल उलटी पड़ जायगी। उसके भाई को जान हमारे हाथ मे आ जायगी। इससे हम लोग बहुत लाभ उठा सकेंगे। रावण के यहाँ स्वयं जानकीजी बन्दी हैं तो हमारे यहाँ कम से कम उसका भाई तो बन्दी रहे।

सरकार ने सुग्रीव से कहा कि तुम्हारी नीति बहुत अच्छी है। इसमें कोई दोष नही। संशयावस्था मे बन्धन ही उचित है और लाभ की भी बहुत कुछ सम्भावना है। पर प्रण के सामने नीति कुछ नही। मेरा प्रण दूसरे प्रकार का है। जो शरण में आवे उसके भय को दूर करने का मेरा प्रण है। उसे अन्यथा कैसे करें ? प्रण पालन ही प्रधान धर्म है। उसके सामने अन्य धर्म अर्थ और काम की कोई गणना नही है।

यहाँ हनुमान्‌जी ही विभीषण से परिचित हैं। उसे मिलने के लिए प्रोत्साहन भी दे चुके हैं। यथा : अस मैं अधम सखा सुनु मोहूँ पर रघुबीर। कीन्ही कृपा सुमिरि गुन भरे बिलोचन नीर। सो हनुमान्‌जी सुग्रीव का वचन सुनकर के असमञ्जस में पड़ गये थे। इनसे कुछ पूछा भी न गया कि हनुमान्‌जी ! तुम लङ्का हो आये हो। इसके बारे मे कुछ जानते हो कि नही। केवल रामजी और सुग्रीवजी में बात हो रही है। अतः सरकार की बातें सुनकर हनुमान्‌जी हर्षित हो उठे। अथवा हानि लाभ का कोई विचार न करके शरणागत पर प्रेम देखकर हर्षित हुए। हनुमान्‌जी ने घोषणा की : वात्सल्य भाव से श्रीराम अपने शरणागत के दोषों को साफ कर देंगे। यथा : आश्रितदोषे भोक्तृत्वं वात्सल्यमिति केचन।

मालूम होता है कि विभीषण मिलन की बात बन्दर लोग छेड़ छेड़कर पूछने पर भी हनुमान्‌जी से नही निकाल सके। अतः उन्होने कहा भी नही। बन्दरों ने हनुमान्‌जी यह नही पूछा कि लङ्का मे जाकर किसी को अपनी ओर फोड़ने का प्रयत्न किया कि नहीं। क्योंकि वे इसे असम्भव समझते थे। इधर सब असम्भवों

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



को सम्भव कर देनेवाले हनुमानजी हैं। ये विभीषण को सिद्ध कर आये थे। अविकत्थन है। अतः बिना पूछे उस विषय पर कुछ नहीं कहा अथवा मानापमान न कहना चाहिए। ऐसी नीति है। अत. लङ्किनी द्वारा अपना अपमान और विभीषण द्वारा मान की चर्चा किसी से न की।

दो. सरनागत कहुँ जे तजहिं, निज अनहित अनुमानि।
ते नर पाँवर पापमय, तिन्हहि बिलोकत हानि ॥४३॥

अर्थ : जो अपने अकल्याण का अनुमान करके शरण में आये हुए का त्याग करते हैं। वे नर पामर हैं। पापमय हैं। उनके दर्शन में अकल्याण है।

व्याख्या : वेदविहित कर्म ही धर्म है। उसका अनुमान से बाध नहीं होता। अतः अनहित के अनुमान से शरणागत का त्याग उचित नहीं है। जो ऐसा करता है वह अनार्य है। परमार्थ है। महापातकी के संसर्ग से दोष होता है और इसके दर्शन में दोष है। अतः शरणागत का किसी अवस्था में भी परित्याग नहीं करना चाहिए। यह असाधारण धर्म है और रामजी कहते हैं कि मेरा तो यह प्रण है। जिसके त्याग में इतना बड़ा प्रायश्चित है उसका बन्ध कैसे किया जा सकता है। वह केवल मिलने नहीं आया है। शरणागत है। रावण से विमुख होकर केवल चार अनुचरों के साथ। बिना किसी छिपाव के तुम्हारी सेना में चला आया है। इससे उसका शरण में आना स्पष्ट है।

कोटि बिप्र बध लागहि जाहू। आवें सरन तजउं नहिं ताहू ॥
सनमुख होइ जीव मोहि जबहीं। जन्म कोटि अघ नासहिं तबही ॥१॥

अर्थ : जिसे करोड़ हत्या लगी हो। शरण में आने पर मैं उसे भी नहीं त्यागता। ज्योंही मेरे सन्मुख होता है त्योंही उसके करोड़ों जन्म के पाप नष्ट हो जाते हैं।

व्याख्या : यदि कहा जाय कि खल मनुजाद द्विजामिष भोगी हैं। यह तो राजा का भाई है। न जाने कितने ब्राह्मणों को खाया होगा। अतः सर्वथा त्याज्य हैं। ऐसों का संसर्ग भी महापाप है। यथा : तत्संसर्गी तु पञ्चमः। इस पर कहते हैं कि एक नहीं करोड़ ब्रह्महत्या लगी हो मैं ऐसे को शरण आने पर नहीं त्यागता अर्थात् अपना ही लेता हूँ।

मैं तो न किसी के सम्मुख हूँ न विमुख हूँ। सम्मुख होना न होना जीव का काम है। ज्यों ही संसार से उसका मन लौटकर मेरी ओर आता है त्योंही उसके करोड़ जन्म के पाप : आप से आप नष्ट हो जाते हैं। यह शरण सम्मुख होने का माहात्म्य है। शरण आने पर उसे पाप कहाँ। सूर्य के सम्मुख होते ही अन्धकार का नाश हो जाता है। इसमें सूर्य को कुछ करना नहीं पड़ता।

पापवंत कर सहज सुभाऊ। भजनु मोर तेहि भाव न काऊ ॥
जौं पै दुष्ट हृदय सोइ होई। मोरे सनमुख आव कि सोई ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : पापी का सहज स्वभाव होता है कि मेरा भजन उसे कभी नहीं सोहाता। यदि उसका हृदय दुष्ट होता तो क्या वह मेरे सम्मुख आता ?

व्याख्या : भगवद्‌गीता में भगवान् ने कहा है कि पापी अधम नर मेरी शरण में नहीं आते। पापी को भजन अच्छा ही नहीं लगता। उसके सामने भजन होने लगे तो वह वहाँ से उठकर चला जाता है। उसकी पापीयसी वृत्ति भजन की ओर अग्रसर नहीं हो सकती। तुलसी राम भजन कर बाधक पाप। पापीयसी वृत्ति अपनी विरोधिनी वृत्ति को उत्पन्न नहीं होने देती। मेरी ओर से पापियों के लिए रोक नहीं है। पर पापियों को ही मेरे सम्मुख होना पसन्द नहीं है। उसे वे सामयिक सभ्यता के प्रतिकूल ठहराते हैं।

भेद हमार लेन सठ आवा का उत्तर देते हैं। विभीषण दुष्ट हृदय नहीं है। यदि दुष्ट हृदय होता तो मेरे सामने ही न आता। दुष्टहृदय को मेरी प्राप्ति ही नहीं होती। हृदय ही एक स्थान है। जहाँ से भगवत्साक्षात्कार होता है उसके सदोष होने से भगवत्साक्षात्कार हो नहीं सकता और उसके निर्मल होने पर भगवत्साक्षात्कार न क्यों होगा ? अवश्य होगा।

निर्मल मन जन सो मोहि पावा। मोहि कपट छल छिद्र न भावा ॥
भेद लेन पठवा दससीसा। तबहुँ न कछु भय हानि कपीसा ॥३॥

अर्थ : जो मनुष्य निर्मल मन का होता है वही मुझे पाता है। मुझे कपट छलछिद्र नहीं सुहाते। यदि दशशीश ने भेद लेने के लिए भेजा हो हे कपीश ! तो भी कोई भय या हानि नहीं है।

व्याख्या : मन का मल कपट छल छिद्र है। परदा देने या बात छिपाने को कपट कहते हैं। यथा : कीन्ह्यो कपट लाग भल मोही। धोखा देने को छल कहते हैं। यथा : होहु कपट मृग तुम छलकारी। पोल या दोष को छिद्र कहते हैं। यथा : सहि दुख परछिद्र दुरावा। इन तीनों को मन का मल कहते है। इन्हीं के कारण मन मलिन हो जाता है। जहाँ कपट छल छिद्र नहीं है वहीं मन निर्मल है। निर्मल हृदय में मेरे प्रतिबिम्ब को कोई रोक नहीं सकता। मलिन हृदय में वह पड सकता नहीं। इसीलिए साक्षात्कार नहीं होता।

भेद हमार लेन सठ आवा का उत्तर। यदि मान भी लिया जाय कि हमारे भेद लेने के लिए रावण का भेजा हुआ आया है। अर्थात् विभीषणजी के कथन के एकदम विपरीत मान लिया जाय तो भी न कोई भय है न हानि है। अनिष्ट को हानि और भावी अनिष्ट को भय कहते है। यहाँ दोनों सम्भव नहीं। कपीश सम्बोधन का भाव यह कि अपने बन्दरों के विषय में शङ्का न करो। उनका कोई अनिष्ट न होगा। दशशीश है। अनेक प्रकार के प्रपञ्च सोचता है। उसका भेद लेने के लिए किसी को भेजना बहुत सम्भव है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछिमनु हनइ निमिष महुँ तेते ॥
जौ सभीत आवा सरनाईं। रखिहौ ताहि प्रान की नाईं ॥४॥

अर्थ : हे सखा ! जगत् में जितने राक्षस हैं लक्ष्मण क्षणभर में उन सबको मार सकते हैं और यदि वह भयभीत होकर मेरे शरण में आया है तो मैं उसे प्राण की भाँति रक्खूँगा।

व्याख्या : भेद लगाने मे हानि और भय वहाँ होता है जहाँ कोई कचाई हो। यहाँ तो भेद पाने से उसे और महत्व का ज्ञान होगा। अविकत्थन हैं। अपना बल नही करते। अतः लक्ष्मण का बल कहते हैं : वस्तुतः कपि सेना कौतुक के लिए ही है अथवा मुझे कुछ करना नही है। संसार में जितने राक्षस हैं उनके लिए अकेले लक्ष्मण यथेष्ट हैं। भू भार हरण के लिए इन्ही का अवतार है : जो अवतरेउ भूमि भय टारन और मेरा अवतार तो सन्तों पर अनुग्रह के लिए है। यथा : तुम सारिखे सन्त प्रिय मोरे। धरौ देह नहि आन निहोरे।

यदि वह सच्चे भाव से शरण में आया है तो उसकी रक्षा प्राण के समान करूँगा। प्राण के समान रक्षा करने का प्रण कर रहे हैं और प्राण से अधिक मानकर रक्षा किया। यथा :

आवत देखि सक्ति खर धारा। प्रणतारतिहर बिरद सँभारा ॥
तुरत बिभीषण पाछे मेला। सनमुख राम सह्यो सो सेला ॥

दो. उभय भाँति तेहि आनहु, हँसि कह कृपानिकेत।
जय कृपाल कहि कपि चले, अंगद हनू समेत ॥४४॥

अर्थ : कृपा के धाम श्रीरामजी ने हँसकर कहा कि दोनो ही विधि से उसे ले आओ। तब अङ्गद और हनुमान् के सहित बानरगण जय कृपाल कहकर चल पड़े।

व्याख्या : दोनों प्राण के समान प्रिय की भाँति तथा बद्ध की भाँति : दोनो भाँति से उसे ले आओ। ऐसी विचित्र आज्ञा हुई। कृपानिकेतन है। विभीषण पर भी कृपा किया और सुग्रीवजी का मनोभङ्ग नही होने दिया। अपनी विचित्र आज्ञा पर हँसते है। सरकार के सान्निध्य से बन्दर सब गुणआगर हो गये हैं। परन्तु अभिप्राय समझ लिया। अतः बन्दर चले। पर हनुमान् और अङ्गदजी आज्ञा की ठीक पूर्ति के लिए साथ हो गये। यहाँ छन्द के अनुरोध से हनू नाम दिया। नाम के एकदेश का ग्रहण किया अथवा सन्त के पास जाने मे नाम के लिए भी मान रखना उचित नही। अतः कवि ने मान शब्द न दिया।

सादर तेहि आगे करि बानर। चले जहाँ रघुपति करुनाकर ॥
दूरिहि ते देखे द्वौ भ्राता। नयनानंद दान के दाता ॥१॥

अर्थ : आदर के साथ बन्दर उसे आगे करके करुणाकर रघुनाथ के पास चले। दूर से ही नयानन्द दान के देनेवाले दोनो भाइयो को देखा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : पहरे मे कर लेना ही बन्ध है और जो प्राणप्रिय होता है उसका भी पहरा ही दिया जाता है। अत विभीषणजी को आदर से आगे कर लिया। प्रेम द्योतन के लिए आदर है। हनुमान्जी मन्त्री हैं। अङ्गदजी युवराज हैं। विभीषणजी इनके आगे आगे चल रहे है। फिर भी पहरे मे हैं। अथवा वानरो के बीच मे आगे आगे चल रहे हैं। इसलिए पहरे मे है। युवराज और मन्त्री लेने आये। इसलिए बडा आदर है। एक दृष्टि से लकेश के भाई हैं। मिलने आये है। इसलिए स्वय युवराज और मन्त्री लेने गये। दूसरी दृष्टि से शत्रु के बन्धु है। निशाचर हैं। कोई भारी उपद्रव न कर बैठे। इसलिए अङ्गद हनुमान् साथ हैं एव उभय भाँति से ले चले। रघुपति हैं। करुणा करके इसे लकेश बनावेंगे। इसलिए उनका रघुपति करुणाकर विशेषण दिया।

दोनो सरकार मध्य सेना मे हैं और सेना बहुत बडी है। इसलिए बाहर से दिखाई नही पडते थे। जब कुछ दूर चले और दृष्टि फैलाई तो दूर से ही दिखाई पडे। दोनो सरकार का उच्चासन है। देखने मे और बैठने के अन्दाज से भी भाई मालूम पड रहे हैं। विभीषणजी दर्शन के भिखारी हैं। रास्ते भर मनोरथ करते चले आ रहे है। सो नयनानन्द दान के दाता को देखा। दोनो भाई दाता हैं।

बहुरि राम छबिधाम बिलोकी। रहेउ ठटुकि एकटक पल रोकी ॥
भुज प्रलंब कंजारुन लोचन। स्यामल गात प्रनत भय मोचन ॥२॥

अर्थ : फिर शोभा के धाम रामजी को देखकर पलक गिरना रोके हुए स्तब्ध होकर एकटक देखते ही रह गये। भगवान् की विशाल भुजाएँ हैं। लाल कमल के समान नेत्र हैं और शरणागत के भय का नाश करनेवाला साँवला शरीर है।

व्याख्या : सभी जगह देखनेवाले पहले दोनो भाइयो की शोभा पर मुग्ध होते हैं। पर अन्त मे रामजी की शोभा पर जा ठहरते हैं। यथा तदपि अधिक सुख सागर रामा। राम देखि मुनि बिरति बिसारी। साँवर कुँवर सखी सुठि लोना। रामहिं चितइ रहे थकि लोचन। इत्यादि। स्तब्ध होना एकटक देखना सात्त्विक भाव का उदय है। विभीषणजी वही स्तब्ध होकर खडे रह गये।

चरण दर्शन का मनोरथ करते चले हैं। पर यहाँ चरण का वर्णन नही है। कारण यह कि सरकार अभी दूर है बानरो से घिरे हैं। निचले भाग का दर्शन नही हो रहा है। वहाँ से कहकर चले हैं मैं रघुबीर सरन अब जाऊँ। अत बीररस प्रधान झाँकी मिली। पहिले दृष्टि भुजाओ पर गयी। वीरो के बाँहो को ही पहिले पूजा होती है। यथा सकल भुवन मगल मदिर के द्वार बिसाल सुहाई सा हैं। जे पूजे कौसिक मख रिषि यनि जनक गनप सकर गिरिजा हैं। सो विक्रम द्योतक लम्बी भुजाएँ हैं। इन्ही से रक्षा की आशा है। फिर दृष्टि कजारुण लोचन पर गयी। यही से कृपादृष्टि की वृष्टि होती है। अब सम्पूर्ण शरीर का रंग कहते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विचित्र श्यामलता है। नीलसरोरुह नीलमनि नील नीरधर स्याम। सरकार की मूर्ति ही प्रणत भयमोचन है। यथा : दूरि ते दीनबंधु देखे जनु देत अभय वरदान हैं। गीता.।

सिंह कंध आयत उर सोहा। आनन अमित मदन मनु मोहा ॥
नयन नीर पुलकित अति गाता। मन धरि धीर कही मृदु बाता ॥३॥

अर्थ : सिंह सा कन्धा विशाल वक्ष.स्थल अत्यन्त शोभा दे रहा है। असंख्य कामदेवों के मन को मोहित करनेवाला मुख है। : देखकर नेत्रों में जल भर आया और शरीर अत्यन्त पुलकित हो उठा। मन में धैर्य धारण करके : विभीषणजी मृदु वचन बोले।

व्याख्या . वीरोचित अवयव संस्थान कहते हैं। परशुरामजी को : वृषभ कंध उर बाहु बिसाला कहा था। श्रीरामजी को : सिंह कंध आयत उर सोहा कहते हैं। वीररस और शृंगाररस का अद्भुत सम्मिश्रण है। मुख छबि कहि न जात मोहि पाहीं। जो बिलोकि बहु काम लजाहीं। कटि वसन चरणादि का वर्णन नहीं है। इन्हें विभीषणजी नहीं देख रहे हैं। वानर समूह से घिरे रहने के कारण निचले अङ्ग दिखाई नहीं पड़ रहे हैं।

इतना देखते देखते आँखें आँसू से भर गयी। लोचन सजल डीठि भइ थोरी। सात्त्विक भाव बढ गया। अत्यन्त पुलक हो उठा। प्रेमाधिक्य से धैर्य छूट रहा है। उसे बलपूर्वक धारण करके मधुर वचन बोले। सामने होते ही शरणागत को पुकार करनी चाहिए। यथा : कहेसि पुकारि प्रणत हित पाही। नयन नीर पुलकित अति गाता से तन की दशा कही। मन धरि धीर से मन की तथा कही मृदु बाता से वचन की दशा कही।

नाथ दसानन कर मै भ्राता। निसिचर बंस जनम सुरत्राता ॥
सहज पापप्रिय तामस देहा। जथा उलूकहि तम पर नेहा ॥४॥

अर्थ : हे नाथ! मैं दसानन का भाई हूँ। हे देवों के रक्षक मेरा जन्म राक्षसकुल में हुआ है। अत: तामसी शरीर है। स्वभाव से ही पापप्रिय हूँ। जैसे उल्लू का प्रेम अन्धकार पर होता है।

व्याख्या : जो परिचय कहला भेजा था उसी को मुख से भी निवेदन करते हैं। वह आया था:आवा मिलन दसानन भाई। अत कहते है :नाथ दसानन कर मै भ्राता। दसानन का भाई होने से मै भी दोषी हूँ। संसार चोर के भाई को गिरहकट मानता है अथवा कम से कम शङ्कनीय अवश्य हूँ। निसिचर वंश जन्म कहकर अपने को वध्य होना स्वीकार किया। किस मुँह से पुलस्त्य वंश कहें। अत मातृकुल से अपना परिचय देते हैं। यथा : काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा। भयउ निसाचर सहित समाजा : भाई भतीजे निशाचर, माँ बहन निशाचरी, बाल बच्चे निशाचर, स्वय निशाचर, अतः निसिचर वंश जन्म कहा। मुनि पिता और

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दानवकन्या माता : इनसे राङ्कर सृष्टि निशाचरी चली। विभीषणजी प्रणाम करना चाहते हैं। अतः पुलस्त्य वंश नहीं कहा निसिचर वंस कहा।

जो देह मुझे मिली है उसका स्वभाव पाप प्रिय है भजन प्रिय नहीं है। यथा : मोह निसा प्रिय ग्यान भानु गत : इसी से उलूक का दृष्टान्त देते हैं। अपने स्वभाव का परिचय देते हैं कि अधम स्वभाव है। जन्म संग स्वभाव और करणी से मनुष्य की पहिचान होती है। यथा जन्म सिंधु पुनि बंधु बिष दिन मलीन सकलङ्क वही सब दिखला रहे हैं। जन्म यथा : निसिचर बंस जन्म। संग यथा : दशानन कर मैं भ्राता स्वभाव यथा : सहज पाप प्रिय। करणी यथा उलूकहि तम पर नेहा। इससे सब प्रकार से अपनी हीनता कही।

दो. श्रवन सुजसु सुनि आयउँ, प्रभु भंजन भव भीर।
त्राहि त्राहि आरति हरन, सरन सुखद रघुबीर ॥४५॥

अर्थ : मैं कानो से सुयश सुनकर आया हूँ कि प्रभु भवभय का नाश करनेवाले हैं। हे आर्त्ति के हरण करनेवाले शरणागत को सुख देनेवाले रघुवीर ! मेरी रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये।

व्याख्या : सुयश सुनि श्रवन हौं नाथ आयो सरन।
उपल केवट गीध सवरी संसृति समन, सोक श्रमसीव सुग्रीव आरति हरन ॥
राम सजीव लोचन बिमोचन बिपति, स्याम नवतामरस दाम बारिद बरन।
लसत जटाजूट सिर चारु मुनिचीर कटि, धीर रघुबीर तूनीर सर धनु धरन ॥
जातुधानेस भ्राता बिभीषण नाम, बंधु अपमान गुर ग्लानि चाहत गरन।
पतित पावन प्रनतपाल ! करुनासिंधु ! राखिये मोहि सौमित्रि सेवित चरन ॥

प्रभु का सुयश विभीषन ने हनुमान्‌जी से सुना। यथा एहि बिधि कहत राम गुन ग्रामा। पावा अनिर्वाच्य विश्रामा। अतः कहते हैं कि मैं भवभय से डरा हुआ हूँ और प्रभु भजन भवभीर है, मैं आर्त्त हूँ, प्रभु आर्तिहरण हैं, मैं शरण हूँ और प्रभु शरणसुखद हैं। मैं त्राहि त्राहि पुकारता हूँ और प्रभु रघुवीर है। यथा : मैं पतित तुम पतितपावन दोऊ बानक बने।

भक्ति रूपी राका रजनी मे यह पन्द्रहवाँ गुणग्राम स्वातीनक्षत्र है। आवे समय सरन तकि मोही। विभीषणजी को एक मात्र रघुवीर शरण है। यही एक तारा चमकता है। सरकार को भी विभीषण के प्रति राग है। यथा : राखिहौं ताहि प्रान की नाईं। राग का रंग कविसम्प्रदाय मे लाल माना जाता है। इसलिए तारा का आकार विद्रुम : मूँगा के ऐसा कहा। फलश्रुति हैं : कामद घन दारिद दवारिके।

अस कहि करत दंडवत देखा। तुरत उठे प्रभु हरष बिसेषा ॥
दीन बचन सुनि प्रभु मन भावा। भुज बिसाल गहि हृदय लगावा ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : ऐसा कहकर दण्डवत् करते देखा तो प्रभु हर्षित होकर तुरंत उठे। दीन वचन सुनकर : विभीषणजी प्रभु को अच्छे लगे। विशाल भुजाओं से पकड़कर हृदय से लगा लिया।

व्याख्या : कहना सुना दण्डवत् करते देखा। अनादर पाकर आरहा है। अतः आदर के लिए प्रभु तुरन्त उठे। विभीषण को सरकार के दर्शन से हर्ष हुआ। यथा : नयनानंद दान के दाता और प्रभु को विभीषणजी के देखने से अति हर्ष हुआ। भक्त को भगवान् जितने प्रिय हैं उससे अधिक भगवान् को भक्त प्रिय हैं। प्रभु ने विभीषणजी का आदर किया। स्वयं उठकर खड़े हो गये।

तुलसी राम कृपाल से कहि सुनाउ गुन दोष। होय दूबरी दीनता परम पीन संतोष। उपर्युक्त दीन वचन प्रभु के प्रसन्न करने के लिए महामन्त्र हैं। रावण ने कहा था कि रिपु कर पक्ष मूढ तोहि भावा। रावण को विभीषणजी के वचन अच्छे नहीं लगे परन्तु प्रभु को अच्छे लगे। यथा : दीन वचन सुनि प्रभु मन भावा : दीन वचन ऐसे प्रिय लगे कि कञ्जारुण लोचन से देखा। प्रलम्ब भुजाओं से पकड़ा। श्यामलगात से मिले और हृदय से लगा लिया। रखिहौं ताहि प्रान की नाईं का साफल्य दिखलाया।

अनुज सहित मिलि ढिग बैठारी। बोले बचन भगत भयहारी॥
कहु लंकेस सहित परिवारा। कुसल कुठाहर बास तुम्हारा॥२॥

अर्थ : छोटे भाई के साथ मिलकर उनको अपने पास बिठाया और भक्तों के भय को हरण करनेवाले वचन बोले। हे लंकेश ! परिवार सहित अपनी कुशल कहो तुम्हारा निवास स्थान बेढंगा है।

व्याख्या : सरकार सुग्रीव से भी अनुज के सहित मिले थे। यथा : भेंटेउ अनुज सहित रघुनाथा। विभीषण से भी उसी भाँति मिले। रावण ने कहा था सठ मिलु जाइ तिनहि कहु नीती। सो अनुज सहित मिले। अनुज सहित मिलने का भाव यह कि अब तुम हमारे भाई हो। समीप बैठाना अति आदरसूचक है। यथा : अति आदर समीप बैठारी। करगहि परम निकट बैठाये इत्यादि। विभीषणजी ने त्राहि त्राहि आरति हरण कहा था। अतः भयहारक वचन बोले।

लङ्केश सम्बोधन से ही भय हरण कर लिया। लङ्का के राज्य को मजूरी हो गयी। सहित परिवार यथा : प्रनत कुटुम्ब पाल रघुराई। कुशल पूछते हैं। क्योंकि विभीषणजी अपना परिवार लङ्का में ही छोड़ आये थे। कुशल में सन्देह मालूम होता है। सन्देह का कारण कहते है कि तुम्हारा निवास स्थान बुरी जगह है। यथा : जिमि दसनन्ह महुँ जीभ बिचारी।

खल मंडली बसहु दिन राती। सखा धरम निबहै केहि भाँती॥
मै जानउँ तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ . दिन रात दुष्टो की मण्डली में रहते हो। हे सखे ! तुम्हारा धर्म कैसे निभता है ? मैं तुम्हारी सब रीति जानता हूँ। तुम अत्यन्त नीतिनिपुण हो। तुम्हे अनीति अच्छी नही लगती।

व्याख्या : विभीषणजी ने कहा था कि कुल भी मेरा खोटा है। सङ्ग भी खोटा है। स्वभाव भी खोटा है और करणी भी खोटी है। इस पर स्वभाव और करणी को खोटी न मानते हुए विभीषणजी की अलौकिक करणी द्योतन करते हुए प्रश्न करते हैं। आश्चर्य प्रकट करते हैं कि तुम अपने धर्म का निर्वाह कैसे कर पाते थे। जो खलमण्डली मे दिन को बसे उसे रात को धर्म निर्वाह का अवसर है जो रात को बसे उसे दिन को धर्म निर्वाह का अवसर है। पर तुमने तो रात दिन खलमण्डली मे ही बिताया। तुमने धर्म कैसे निबाहा ? वह विधि कौन सी थी जिस पर सरकार प्रसन्न होते है ? उससे इसी प्रकार का प्रश्न करते हैं। यथा : *कहु कपि रावन पालित लका। केहि बिधि दहेउ दुर्ग अति बका। प्रभु प्रसन्न जाना हनुमाना।* तथा : अंगद के प्रति कहा : *तासु मुकुट तुम चारि चलाए। कहहु तात कवनी बिधि पाए।* यहाँ भी विभीषणजी से धर्म निर्वाह की विधि पूछते हैं।

हनुमान्‌जी की भाँति विभीषण भी उपालम्भ न करें कि *पुनि प्रभु मोहि बिसारेहु दीनबन्धु भगवान।* अतः उनके स्वभाव को खोटा न मानते हुए कहते हैं : *मैं जानों तुम्हारि सब रीती। अति नय निपुन न भाव अनीती* अथवा हनुमान्‌जी ने कहा था : *सुनहु बिभीषन प्रभु की रीती। करहिं सदा सेवक पर प्रीती।* उसी का साफल्य दिखला रहे हैं। न भाव अनीती का तात्पर्य यह है कि लङ्का में सब सुख रहते हुए भी तुम दिनरात दुःखी थे। क्योंकि वहाँ की अनीति तुमसे देखी नही जाती थी। तुम अतिनय निपुण हो। तुम्हारा अनादर भी वहाँ नीतिप्रियता के कारण हुआ। यथा : *सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती।* सरकार भक्त को पाकर ऐश्वर्य नही छिपाते। कहते हैं कि मै यही से तुम्हारे गुणो को जानता हूँ।

बरु भल बास नरक कर ताता। दुष्ट संग जनि देइ बिधाता॥
अब पद देखि कुसल रघुराया। जौ तुम कीन्हि जानि जन दाया॥५॥

अर्थ : हे तात ! नरक मे निवास करना बल्कि अच्छा है पर विधाता दुष्ट का सङ्ग न दे। विभीषण बोले : हे रघुनाथ ! अब आपके चरणो के दर्शन से कुशल है जो आपने अपना सेवक जानकर मुझ पर दया की है।

व्याख्या : नरक का वास भला क्योंकि उससे पाप क्षय होता है और दुष्ट का सङ्ग बुरा क्योंकि उससे दारुण दुःख भी उपजता है और पाप की भी वृद्धि होती है। दुष्ट सङ्ग सज्जन चाहता नही पर विधिवश ऐसे सङ्ग मे पड जाता है। सो तुम दुष्ट सङ्ग से छूटे यह बड़ा काम हुआ।

कहु लङ्केश कुसल का उत्तर विभीषणजी देते हैं : *अब पद देखि कुसल।* भाव यह कि इससे पहले कुशल कहाँ ? क्योंकि कुशल के मूल तो ये चरण हैं। यथा : कुसल

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


मूल पद पंकज पेखी। सहित परिवारा का उत्तर है कि उनको कुशल प्रभु की कृपा पर अवलम्बित है। यथा : अब प्रभु परम अनुग्रह तोरे। सहित कोटि कुल मंगल मोरे। अथवा जीवमात्र की कुशल प्रभु की कृपा पर अवलम्बित है। अब प्रभु ने जन जानकर कृपा की है तो अब मेरा भी कुशल है। परिवार का भी कुशल है। तुम्हारी दया बिना चरणदर्शन नहीं होता और दर्शन बिना कुशल नहीं।

दो. तब लगि कुसल न जीव कहुँ, सपनेहु मन विश्राम।
जब लगि भजत न राम कहुँ, सोक धाम तजि काम ॥४६॥

अर्थ : तब तक जीव कुशल नही और न सपने में भी मन को विश्राम है। जब तक वह शोकधाम काम को त्यागकर रामजी को नही भजता।

व्याख्या : अब अवान्तर प्रक्रिया कहते हैं। भजत कृपा करिहहिं रघुराई। काम के रहते कुशल हो नहीं सकती। यथा : काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं। न मनको विश्राम मिल सकता है। यथा : नाचत ही निसि दिवस मरयो। तबही ते न भयो थिर जब ते जिव नाम धरयौं। वहु वासना विविध कंचुकि भूषन लोभादि भरयौं। चर अरु अचर गगन जल थल में कौन न स्वाँग करयौ। देव दनुज मुनि नाग मनुज नहि जाचत कोउ उबरयौ। मेरो दुसह दरिद्र दोष दुख काहू तो न हरयौ। थके नयन पदपानि सुमति जल संग सकल बिछुरयौ। अब रघुनाथ सरन आयो जन भवभय विकल डरयो। राम और काम दोनों का भजन एक साथ हो नहीं सकता। अतः काम त्यागपूर्वक राम के भजन करने से ही मनमें विश्राम होता है। काम को शोकधाम समझकर जब भजन करे तो विश्राम पावै। यथा : इहै कह्यौ सुत वेद चहूँ। श्री रघुवीर चरन चिन्तन तजि नाहि न ठौर कहूँ। और जब मन में विश्राम हो तब कुशल है। सुख सम्पत्ति परिवार बड़ाई। ये सब काम के ही चेष्टित हैं। इन्हें छोड़कर जब सरकार के शरण आये तो मन को विश्राम मिला नहीं तो सपने में भी मुझे विश्राम दुर्लभ था।

तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मच्छर मद माना॥
जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि भाथा ॥१॥

अर्थ : लोभ मोह मत्सर मद मानादिक अनेक खल तभीतक हृदय में बसते हैं जबतक धनुष बाण और कमर में तरकस धारण किये हुए श्रीरघुनाथजी हृदय में नही बसते।

व्याख्या : जब सब कामनाओं का त्याग करके जीव भगवान् के सम्मुख होता है तब उसे भीतरी शत्रुओं का परिज्ञान होता है। इससे पहले तो वह इन्हें मित्र मानता था अब समझा कि ये खल हैं। क्योंकि निष्कारण अपकार करते हैं यथा : खल बिनु कारण पर अपकारी। अहिमूषक इव सुनु उरगारी। तब वह प्रार्थना करता है : मम हृदय भवन प्रभु तोरा। तहँ बसे आइ बहु चोरा। अति कठिन करहि बरजोरा। मानहि नहि विनय निहोरा। तम मोह लोभ अहंकारा। मद क्रोध बोध

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रिपु मारा। अति करहिं उपद्रव नाथा। मर्दहिं मोहि जानि अनाथा। भागेहु नहि नाथ उबारा। रघुनायक करहु सँभारा। सगुण ब्रह्म के हृदय बसते ही ये भाग खड़े होते हैं। निर्गुण ब्रह्म तो सदा बसते हैं। पर वे निरुपाधि निष्क्रिय हैं। यथा ' अस प्रभु हृदयँ अछत अविकारी। सकल जीव जग दीन दुखारी। नाम निरूपन नाम जतन ते। सोउ प्रगटत जिमि मोल रतन ते।

वचन करम मन मोरि गति भजनु करहिं निहकाम। तिन्हके हृदय कमल महुँ करे सदा विश्राम। ऐसे भक्तो के हृदय मे विश्राम होता है। अत. वही सरकार भी विश्राम करते हैं। धनुपबाण देखते ही खल भाग जाते हैं। भाव यह कि बाहर भी खलमण्डली और भीतर भी खलमण्डली थी। सो बाहर की खलमण्डली से तो रक्षा हुई अब हृदय मे बसकर भीतर की खलमण्डली से भी रक्षा कीजिये।

ममता तरुन तमी अँधियारी। राग द्वेष उलूक सुखकारी॥
*तब लगि बसत जीव मनमाही। जब लगि प्रभु प्रताप रवि नाहीं॥२॥*

अर्थ : ममता पूर्ण अँधेरी रात है। जो राग द्वेष रूपी उल्लुओं को सुख देनेवाली है। वह तभी तक जीव के मन मे बसती है जबतक प्रभु प्रतापरूपी सूर्य नही हैं।

व्याख्या : चोर का उपद्रव रात को रहता है। अविद्या निशा मे आधी रात ममता है। इसमे कुछ नही सूझता। राग द्वेष रूपी उलूक का इसमें सञ्चार होता है। भक्ति उँजेली रात है। इसलिए ममता को अँधियारी कहा। उँजेली रात मे भी उल्लू का सुखसञ्चार नही होता। ज्ञान विराग सुख सन्तोष विज्ञान विवेक को यह अँधियारी रात दु खद है।

राम कृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाइ राम प्रभुताई। रामजी की प्रभुता का ज्ञान ही रामप्रताप रवि का उदय है। यथा . जब ते रामप्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा। तब तो आधी रात से मध्याह्न हो जाता है। फिर तो कही न चोर और न कही उलूक।

अब मै कुसल मिटे भयभारे। देखि राम पदकमल तुम्हारे॥
*तुम्ह कृपाल जापर अनुकूला। ताहि न ब्याप त्रिबिध भवसूला॥३॥*

अर्थ : हे रामजी! आपके चरणकमल के दर्शन से अब मैं कुशल से हूँ। मेरे भारी भय मिट गये। हे कृपालु! आप जिसपर अनुकूल होते हैं उन्हे तीनो प्रकार के भवशूल नही व्यापते।

व्याख्या : विभीषणजी अब पद देखि कुसल रघुराया से उपक्रम करके अब मैं कुसल कहकर इस प्रसङ्ग का उपसंहार करते है। भारी भय मिट गया। भवरात्रि ही चली गई· नयन विषय मोकहु भयऊ सो समस्त सुखमूल ' कुशल के तीन कारण हैं· १ निष्काम भजन २ रामजी का हृदय मे वास और ३ प्रताप रवि का उदय। अब तीनो की प्राप्ति हुई। अतः अब से कुशल है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

खल मण्डली बसहु दिन राती। सखा धर्म निबहै केहि भाँती। इस प्रश्न का उत्तर विभीषणजी देते हैं। कहते हैं कि :

मै निसिचर अति अधम सुभाऊ। सुभ आचरनु कीन्ह नहि काऊ ॥
जासु रूप मुनि ध्यान न आवा। तेहिं प्रभु हरषि हृदयँ मोहि लावा ॥४॥

अर्थ : मै अत्यन्त नीच स्वभाव का राक्षस हूँ। मैंने कभी शुभ आचरण किया नही जिसका रूप मुनियों के ध्यान में नही आता। उस प्रभु ने हर्षित होकर मुझे हृदय से लगा लिया।

व्याख्या : आनुकूल्यस्य संकल्प. प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्। रक्षिष्यतीति विश्वासो गोप्तृत्ववरणं तथा। आत्मनिक्षेपकार्पण्ये षड्विधा शरणागतिः। सकल्प यथा : अस कहि चला देखिहौं जाइ चरन जल जाता। प्रातिकूल्यका वर्जन यथा : अस कहि चला विभीषण जबहीं। विश्वास : सरन गये प्रभु ताहु न त्यागा। वरण। यथा : श्रवन सुजसु सुनि आयेउँ प्रभु भंजन भवभीर। आत्मनिवेदन। यथा : अस कहि करत दंडवत देखा। इस भाँति पाँच का वर्णन ऊपर हो चुका अब छठे कार्पण्य का वर्णन करते हैं। स्वभाव से कपि अधम होते हैं। परहिंसक होने से निशिचर अत्यन्त अधम होते हैं। मैं धर्मनिर्वाह क्या करूँगा। शुभ आचरन कीन्ह नहि काऊ। विभीषणजी अपने को तीनों काण्ड का अनधिकारी बतलाते हैं। अपने को निशिचर कहकर भजन का अनधिकारी कहा। अपना अधम स्वभाव बतलाकर ज्ञान का अनधिकारी कहा। सुभ आचरन कीन्ह नहि काऊ बतलाकर कर्म का अनधिकारी कहा।

जिति पवन मनगो निरसकरि मुनि ध्यान कबहुँक पावहीं। योगसाधन करने पर कभी एक झलक सरकार की मिल जाती है। ध्यान मे आते नही। सो सरकार की रीति देखी। तीनो काण्ड के अनधिकारी : मुझ : को हृदय से लगाया। सरकार के अभिष्वङ्ग से बढ़कर कुछ प्रासव्य नही है। सरकार प्रतिज्ञा कर चुके हैं। निसिचर हीन करौं महि भुज उठाइ प्रन कीन्ह। सो मुझे हृदय से लगाया। मेरे लिए प्रतिज्ञा भी छोड़ी।

दो. अहोभाग्य मम अमित अति, राम कृपासुख पुंज।
देखेउँ नयन बिरंचि सिव, सेव्य जुगल पदकंज ॥४७॥

अर्थ : हे कृपा और सुख के पुञ्ज रामजी ! मेरा अत्यन्त असीम सौभाग्य है जो मैंने ब्रह्मा और शिवजी के सेवनीय दोनों चरणों को आँखों से देखा।

व्याख्या : हर उर सर सरोज पद जेई। अहोभाग्य मैं देखिहौं तेई। चरण दर्शन से विभीषणजी ने अहोभाग्य माना। पर यहाँ तो दर्शन के साथ ही साथ अत्यन्त कृपा करके परिष्वङ्ग सुख का सौभाग्य प्राप्त कराया। अतः अति अमित अहोभाग्य है। तीन बार दर्शन का मनोरथ किया था। यथा : १. देखिहौं जाइ चरन जलजाता २. अहोभाग्य मैं देखिहौ सोई ३. ते पद आज बिलोकिहौ। अतः

ankurnagpal108@gmail.com


तीन बार मनोरथ की पूर्ति स्वीकार करते हैं : १ अब पद देखि २ देखि रामपद कमल तुम्हारे और ३ देखेउँ नयन विरंचि सिव सेव्य जुगल पद कंज। १. भजन का फल . कुशल तथा विश्राम है २ ध्यान का फल : लोभ मोह मत्सरादि का नाश है ३ चरण दर्शन का फल भवभय का नाश और रामकृपा का फल त्रयशूल का नाश है।

अथवा अमित अहोभाग्य होने से विरञ्चि शिव का दर्शन होता है। सो मुझे विरञ्चि शिव सेव्य युगल पद कञ्ज का दर्शन हुआ। अत मेरा अति अमित अहोभाग्य है।

सुनहु सखा निज कहहुँ सुभाऊ। जान भुसुण्डि संभु गिरिजाऊ॥
जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही॥१॥

अर्थ : रामजी बोले : हे सखे! सुनो मैं अपना स्वभाव कहता हूँ। जिसे काकभुसुण्डि शिवजी और पार्वतीजी भी जानती हैं। यदि कोई सम्पूर्ण जड़चेतन जगत् का द्रोही हो और वह भयभीत होकर मेरे शरण मे आ जाय।

व्याख्या . विभीषणजी से सरकार ने सखा का नाता कायम किया। सखित्व मे स्वभाव का परिचय आवश्यक है। अत अपना स्वभाव कहते हैं भुसुण्डि की जानकारी। यथा ' अस सुभाव कहुँ सुनै न देखै। केहि खगेस रघुपति सम लेखै। उमा शम्भु की जानकारी यथा . उमा राम सुभाउ जेहि जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना। भुसुण्डिजी जीवकोटि मे है, इनका सम्पर्क पाप से रह चुका है। इसलिए पहिले इन्ही का नाम लिया। क्योकि इन्हे साक्षात् अनुभव है।

चराचर मात्र के द्रोह करने की सामर्थ्य ही मनुष्य मे नही है। यह पाप रावणादि अति सामर्थ्यवान् से ही सम्भव है। यथा विस्व द्रोह रत यह खल कामी। निज अघ गयउ कुमारग गामी। चराचर मात्र के द्रोह से बड़ा पाप भी कोई नही। यथा ' बिस्व द्रोह कृत अघ जेहि लागा है ऐसा व्यक्ति भी यदि शरण मे आवे तो उसके लिए रोक नही है। यहाँ पर शरणागत के तीन अङ्ग भी कहे गये हैं : १ भयभीत होना २ अन्य साधन पर भरोसा न रखना और ३ अन्य आश्रय का न होना। आवै सभय सरन तकि मोही से ये ही तीन बातें कही।

तजि मद मोह कपट छल नाना। करौं सद्य तेहि साधु समाना॥
जननी जनक बधु सुत दारा। तनु धनु भवन सुहृद परिवारा॥२॥

अर्थ . मद मोह तथा नाना प्रकार के कपट छल त्याग दे तो मै उसे तुरन्त साधु क समान बनाता हूँ। माता पिता भाई पुत्र स्त्री शरीर धन घर मित्र और परिवार।

व्याख्या ४. मद के रहते शरणागति नही होती। यथा : अजहुँ तात त्यागहु अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना। ५. न मोह के रहते स्वरूप ज्ञान होता है और जिसके शरण मे जाना है उसके स्वरूप का ज्ञान न होना शरणागति मे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रतिवन्धक है। ६ कपट छल शरणागति धर्म का विरोधी है। यथा मोहि कपट छल छिद्र न भावा।

ममता के पात्रो मे प्रथम परिचय जननी से तब जनक से तत्पश्चात् बन्धु से। पुत्रप्रयोजना भार्या है। अत पुत्र के बाद भार्या कहा। तत्पश्चात् शरीर कहा। यथा सबके देह परम प्रिय स्वामी। धन और भवन शारीरिक सुख के साधन हैं, अत जड होने पर भी अतिप्रिय है। सुहृद के लिए तो स्वय सरकार ने कहा है कि अनुज राज सपति वैदेही। देह गेह परिवार सनेही। सब मम प्रिय नहि तुमहि समाना। परिवार भी प्रिय है। यथा होइहि प्रिय परिवार दुखारी। भाव यह कि इतने ही प्रेम के पात्र हैं, इन्ही पर ममता होती है कि ये मेरे हैं।

सबकै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बर डोरी ॥
समदरसी इच्छा कछु नाही। हरष सोक भय नहिं मन माही ॥३॥

अर्थ सबके ममता के तागो को बटोरकर और उन सबकी एक डोरी बटकर मेरे चरणो मे बाँध देवे। समदर्शी हो जावे। उसे कुछ इच्छा न रहे और न मन मे हर्ष शोक या भय रहे।

व्याख्या मन से वृत्तियाँ निकल कर इन्ही सबो मे बँधी हुई हैं। इन्ही वृत्तियो को ममता ताग कहा गया है। सो सब जगह से मनोवृत्तियो का हटाकर एकत्रित करके उनकी डोरी बट ले। यथा गुरु पितु मातु बधु पति देवा। सब मोहि कहँ जानै दृढ सेवा। त्वमेव माता च पिता त्वमेव त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव। त्वमेव विद्या द्रविण त्वमेव त्वमेव सर्वं मम देवदेव। और उस डोरी को मेरे चरणो मे बाँध दे।

ममता की डोरी चरण म बँधते ही वह सब ओर से स्नेहशून्य होकर समदर्शी हो जायगा। तब उसे मालूम होगा कि सब जगत् प्रभुमय है। वह प्रभु से पृथक् कुछ देखता ही नही। इच्छा किसकी करे। जब कोई इष्ट अनिष्ट ही न रहा तब हर्ष भय शोक भी नही रह जाता। ये सब डोरी लग जाने के स्वाभाविक फल हैं। इस बात को पहचान के लिए कहा यदि कुछ इच्छा शेष हो हर्ष शोक भय मन मे हो तो समझना चाहिए कि डोरी ठीक बँधी नही और बँधी भी तो दृढ नही बँधी।

अस सज्जन मम उर बस कैसे। लोभी हृदय बसइ धन जैसें ॥
तुम सारिखे सत प्रिय मोरे। धरउँ देह नहि आन निहोरे ॥४॥

अर्थ ऐसा सज्जन मेरे हृदय मे कैसे बसता है, जैसे लोभी के हृदय मे धन बसता है। तुम सरीखे सन्त ही मुझे प्रिय हैं। मैं और किसी के निहोरे से देह धारण नही करता।

व्याख्या स्वय सरकार मुनिजन धन हैं। पर ऐसे सज्जन सरकार के भी धन हैं। लोभी प्राण जाने पर भी धन नही छोड़ता। इसी भाँति सरकार भी किसी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अवस्था मे ऐसे सज्जन का परित्याग नही करते। हृदय बसै कहने का भाव यह कि मुझे उनका ध्यान करने मे आनन्द होता है। सदा उनका ध्यान बना रहता है।

तुम सन्तो के लिए उदाहरण रूप हो। ऐसे ही सन्त है तजि मम चरनसरोज प्रिय तिन्ह कहुँ देह न गेह। ये ही मुझे प्रिय हैं। इन्हीके लिए मैं देह धारण करता हूँ। अन्य कारण गौण है। भावार्थ यह कि तुम्हारे से सन्तो के लिए मेरा अवतार हुआ। पृथ्वी का भार उतारने के लिए तो लक्ष्मण का अवतार है। यथा : जो सहस सीस अहीस महिधर लषन सचराचर धनी। सुरकाज धरि नरराज तनु चले दलन खल निसिचर अनी।

दो० सगुन उपासक परहित, निरत नीति दृढ नेम।
ते नर प्रान समान मम, जिन्हके द्विज पद प्रेम ॥४८॥

अर्थ : जो सगुण उपासक है। दूसरे के हित मे लगे रहते हैं। नीति मे निरत है और नियम उनका दृढ है और जिन्हे ब्राह्मणो के चरण मे प्रेम है वे मनुष्य मेरे प्राणो के समान हैं।

व्याख्या : मै सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवन्त। सगुणोपासक चराचररूप विश्व को स्वामी रूप से मानते हैं। अत वे विश्व की सेवा मे दृढसकल्प होते हैं। इसलिए परहित कहा। निर्गुण ब्रह्म के उपासक तो अपने उपास्य की भाँति निष्क्रिय होकर बैठ जाते हैं। वे परहित के लिए यत्नशील नही हो सकते। परहित करने मे किसी का अहित भी हो जाता है। अत निरत नीति कहा। नीति के अनुसार बर्तने मे ही सबका हित है। कष्ट के भय से अपने नियम से विचलित नही होते। अत. दृढ नेम कहा. ये पाँचो गुण पाचा प्राण के समान हैं। अत कहते हैं ते नर प्राण समान मम।

सुनु लकेस सकल गुन तोरे। ताते तुम्ह अतिसय प्रिय मोरे॥
राम बचन सुनि बानरजूथा। सकल कहहि जय कृपाबरूथा ॥१॥

अर्थ : हे लकेश ! सुनो तुममे सब गुण हैं इससे तुम मुझे अत्यन्त प्रिय हो। रामजी का वचन सुनकर सब वानरो के समूह कहने लगे कृपा के समूह रामजी की जय हो।

*व्याख्या :* पहिले अपना स्वभाव कहा कि कौन कौन से गुण प्रिय होने के कारण है। अब विभीषणजी की ग्लानि मिटाने के लिए कहते है कि वे सब गुण तुममे हैं। तुम शरणागत भी हो तुम्हारी ममता की डोरी भी मेरे चरणो मे लग गयी है। सगुणोपासन तथा परहितादि गुण भी तुममे है। इसलिए अतिप्रिय हो। अतः हर्षित होकर हृदय से लगाया। मै निसिचर अति अधम सुभाऊ। सुभ आचरन कीन्ह नहि काऊ। ऐसा मत कहो। मेरा स्वभाव तुम्हारे स्वभाव से मिलता है। जो जो गुण मुझे प्रिय है वे सब तुम मे है. सुनु लंकेस सकल गुन तोरे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सरकार का ध्यान कुल पर नहीं है प्रीति पर है। यथा : रीझत राम सनेह निसोते। यह बात वानरों के अनुकूल है। वानर कुलीन नहीं होते। उन्हें प्रेम का ही भरोसा था। उसी प्रेम की विजय देखकर जय जयकार कर रहे हैं। अथवा : देखि दोष कबहुँ न उर आने। सुनि गुन साधु समाज बखाने। इस स्वभाव पर जय जयकार करते हैं।

सुनत बिभीषनु प्रभु कै बानी। नहिं अघात श्रवनामृत जानी ॥
पद अंबुज गहि बारहि बारा। हृदय समात न प्रेमु अपारा ॥२॥

अर्थ : विभीषणजी प्रभु की वाणी सुनकर उसे श्रवणामृत जानकर अघाते नहीं। वे बार बार रामजी के चरण कमलों को पकड़ते हैं। अपार प्रेम हृदय में समाता नहीं।

व्याख्या : श्रवणशूल के समान लङ्का के प्रभु रावण की वाणी सुनते रहे। यथा : रिपु उत्कर्ष कहत सठ दोऊ। दूरि न करउ इहाँ है कोऊ। मम पुर बसि तपसिन्ह सन प्रीती। सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती। इत्यादि। अब कवि कहते हैं कि मेरे प्रभु की श्रवणामृत वाणी सुनकर विभीषणजी अघाते नहीं। यथा : प्रभु वचनामृत सुनि न अघाऊँ।

परिमित हृदय में अपरिमित प्रेम नहीं समाता तब बाह्य क्रिया में व्यक्त होता है। यथा : पद अम्बुज गहि बारहि बारा। अथवा अन्तःकरण प्रेमानन्द से परिपूर्ण हैं। तब शरीर भी ब्रह्म संस्पर्श रूप अत्यन्त सुख के लिए चरण का आश्रयण करता है। अथवा अपने प्रेम का अपने को ही पार नहीं मिल रहा है। अतः बार बार चरणरूपी नौका का आश्रयण करते हैं।

सुनहु देव सचराचर स्वामी। प्रनतपाल उर अंतरजामी ॥
उर कछु प्रथम बासना रही। प्रभुपद प्रीति सरित सो बही ॥३॥

अर्थ : हे देव! चराचर जगत् के स्वामी! हे प्रणतपाल! हे अन्तर के प्रेरक! सुनिए मेरे हृदय में पहले कुछ वासना रही। अब प्रभु के चरण की प्रीति की नदी में वह बह गयी।

व्याख्या : देवो भूत्वा देवं यजेत्। जिस देव की पूजा करना चाहे उसके ऐसा होकर उसकी पूजा करे। सरकार बड़े सरल हैं। अतः परम सरल होकर ही सरकार की पूजा करनी चाहिए। विभीषणजी परम चतुर हैं। समझते हैं कि सरकार से छिपाव उचित नहीं। मेरे हृदय में परिवर्तन हुआ है। पहिले रावण की यह बात सुनकर कि : मम पुर बसि तपसिन्ह सन प्रीती। राज्य की वासना हो गयी कि पुर इनका है। मै कोई नहीं हूँ। सो सरकार अन्तर्यामी हैं। सब जान गये। देव हैं : रावण का संहार करेंगे ही। सचराचर स्वामी हैं : जिसे चाहें राजा बनावें। जिसे चाहे रंक बनावें तिस पर प्रणतपाल हैं। और मै शरण में आया

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हूँ। ये मेरे पूर्व वासनानुसार लङ्का का राज्य देना चाहते हैं। अत बार बार लकेश सम्बोधन कर रहे है।

अत स्पष्ट वह देना चाहिए कि सरकार! पहले अवश्य लङ्का की वासना रही। पर इस समय प्रेम की अविच्छिन्न धारा हृदय मे बह रही है। यह धारा उस वासना को कहाँ वहा ले गयी कुछ पता नही। अब मुझे इच्छा नही है।

अब कृपाल निज भगति पावनी। देहु सदा सिव मन भावनी॥
एवमस्तु कहि प्रभु रनधीरा। माँगा तुरत सिधु कर नीरा॥४॥

अर्थ अब हे कृपालु! सदा शिव के मन को सदा प्रिय लगनेवाली अपनी पवित्र भक्ति मुझे दीजिये। एवमस्तु बहुत अच्छा कहकर रणधीर प्रभु ने तुरन्त ही समुद्र का जल माँगा।

व्याख्या प्रभु के वचनामृत सुनने के पहिले कुछ उपर्युक्त वासना थी। अत कहते है कि आप कृपाल हैं। पहिली बात का ख्याल न कर अब जो चाहते हैं सो दें। अपावनी लङ्का अव मुझ न चाहिए। पावनी भक्ति चाहिए। सो भी सदा शिव मन भावनी भक्ति चाहिए अर्थात् सिद्धि भक्ति चाहिए। अविरल भक्ति कृपासाध्य है क्रियासाध्य नही है।

प्रभु है रणधीर हैं अत विजय के पहिल ही अभिषेक करते हैं। सुग्रीवजी को पहिल अभिषिक्त नही किया। क्योकि उन्हे प्रभुता म सन्देह उठ गया था। यथा कह सुग्रीव सुनहु रघुबीरा। बालि महा बल अति रनधीरा। दुदुभि अस्थि ताल दिखराये। बिनु प्रयास रघुनाथ ढहाये। परन्तु विभीषण को प्रभु की प्रभुता पर सन्देह नही हुआ। यथा राम सत्य सकल्प प्रभु सभा कालबस तोरि। अत प्रभु ने इन्ह रावण वध से पहिल ही अभिषिक्त किया। अभिषेक मे सिन्धु का जल प्रशस्त है। समुद्र सर्वतीर्थमय है। अत सिन्धु का जल अभिषेक करने के लिए माँगा। बही हुई वासना और प्रस्तुत वासना दोनो की पूर्ति की। प्रस्तुत वासना की पूर्ति एवमस्तु ऐसा ही हो कहकर किया और बही हुई वासना की पूर्ति के लिए अभिषेकार्थ सिन्धु जल माँगा।

जदपि सखा तव इच्छा नाही। मोर दरसु अमोघ जग माही॥
अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन बृष्टि नभ भई अपारा॥५॥

अर्थ हे सखे! यद्यपि तुम्हे इच्छा नही है पर जगत् मे मेरा दर्शन अमोघ है। वह व्यर्थ जा नही सकता। ऐसा कहकर रामजी ने उन्ह तिलक कर दिया। आकाश से पुष्पो की अपार वृष्टि हुई।

व्याख्या सरकार क जल माँगने की देर थी। समुद्र पास ही था। जल आने म देर न हुई। जिस इच्छा को हृदय मे रखकर भाग्यवान जीव ईश्वर का दर्शन करता है वह इच्छा चाहे दर्शन के बाद नष्ट भी हो जाय पर सरकारी दर्शन अमोघ है। वह फल दिये बिना नही रहता। सुग्रीव की भी वालिवध की इच्छा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दर्शनोपरान्त जाती रही। पर सरकार ने यही कहा। जो कछु कहेहु सत्य सब सोई। सखा वचन मम मृषा न होई। उस इच्छा में परिवर्तन देखकर सरकार जल्दी करते हैं। तुरन्त : लै सुग्रीव संग रघुनाथा। चले चाप सायक गहि हाथा। इसी भाँति यहाँ भी शीघ्रता की। रावण वध में देर है अतः अभिषेक तुरन्त कर दिया। विभीषण साधु हैं कहीं राज्याप्राप्ति : राज्य न मिलने का वर न माँगे।

दो. रावन क्रोध अनल निज, स्वास समीर प्रचंड।
जरत बिभीषनु राखेउ, दीन्हेउ राजु अखंड॥
जो संपति सिव रावनहि, दीन्हि दिये दसमाथ।
सो संपदा बिभीषनहि, सकुचि दीन्ह रघुनाथ॥४९॥

अर्थ : श्रीरामजी ने रावण के क्रोधरूपी अग्नि से जो अपनी स्वासरूपी पवन से प्रचण्ड हो रही थी जलते हुए विभीषण की रक्षा की और उसे अखण्ड राज्य दिया।

शिवजी ने जो सम्पत्ति रावण को दस सिर देने पर दी थी वही सम्पत्ति श्रीरघुनाथजी ने विभीषण को सकुचते हुए दी।

व्याख्या : रावण का क्रोध साक्षात् अग्नि ही था। वह क्रोध के पात्र को बिना जलाये नहीं छोड़ता था। सो विभीषण पर भारी क्रोध हुआ। यथा : सुनत दसानन उठा रिसाई। खल तोहि मृत्यु निकट अब आई। विभीषणजी को अपने अनादर से तथा मरणान्त कष्ट से दीर्घ नि.श्वास चलने लगा। इससे रावण का क्रोध और बढ़ा। यथा : अस कहि कीन्हेसि चरन प्रहारा। लात मारकर लङ्का से निकाल दिया। खूब समझता है कि रामजी के यहाँ भी जाकर यह बाँधा या मारा जायगा। इस सन्दिग्धावस्था में शत्रु के भाई पर कौन विश्वास करेगा। और दूसरे किसी का साहस नहीं है कि विभीषण को शरण में रख सके। सो रामजी ने विभीषण की रक्षा रावण के बढ़े हुए क्रोध से की। रावण की चलाई हुई शक्ति को जिसे उसने विभीषण के ऊपर फेंका था अपने ऊपर ली। इस भाँति भी रावण के क्रोध से जलते हुए विभीषण की रक्षा की और अखण्ड राज्य दिया। यथा : करेहु कल्प भर राज्य तुम मोहि सुमिरेहु मन माहि। वैवस्वत मन्वन्तर की चौबीसवीं चतुर्युगी में विभीषण को राज्य मिला। अतः कल्प पूरा होने तक सात मन्वन्तर और अड़तालीस चतुर्युगी विभीषण राज्य करेंगे। इस बीच में सात बार इन्द्र देवगणों के साथ बदले जायेंगे। अतः विभीषण के राज्य को अखण्ड कहा।

या विभूतिर्दशग्रीवे शिरश्छेदेन शङ्करात्। दर्शनात् रामभद्रस्य सा विभूतिर्विभीषणे : ह. ना.। रावण ने जिस सम्पत्ति के लिए दस सिर दिये विभीषण को उसकी इच्छा नहीं। यथा : तेहि माँगेउ भगवंत पद कमल अमल अनुराग। अतः भगवान् को उस सम्पत्ति के देने में सङ्कोच है। अथवा आत्मनिवेदन के सामने लङ्का की सम्पत्ति कोई वस्तु नहीं है। अतः सरकार को सङ्कोच है। रावण ने सिर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दिया पर आत्मनिवेदन न कर सका। विभीषण ने दो बार त्राहि किया। सो राज्य देकर रावण के भय से रक्षा की और भक्ति देकर भवभय से रक्षा की। यहाँ रामजी की कृपालुता तथा उदारता का अत्यन्त उत्कर्ष दिखलाया। शिवजी के ऐसा उदार कोई नही है। उन्होने भी जो सम्पत्ति रावण के सिर चढाने पर दी थी, उसी सम्पत्ति को शरण मे आने से रामजी ने विभीषण को सङ्कुचित होकर दी। भावार्थ यह कि दाता को देय के यथेष्ट न होने से सकोच है। यथा बार कोटि सिर काटि साटि लटि रावन सकर पै लई। सोइ लका लखि अतिथि अनवसर राम तृनाश्रम ज्यौं दई। विनय।

अस प्रभु छाडि भजहिं जे आना। ते नर पसु बिनु पूंछ बिसाना॥
निज जन जानि ताहि अपनावा। प्रभु सुभाव कपि कुल मन भावा॥१॥

अर्थ ऐसे प्रभु को छोडकर जो दूसरे को भजते है वे मनुष्य मे पशु हैं। केवल सीग पूछ उन्हे नही। अपना सेवक जानकर उसे अपना लिया। प्रभु का स्वभाव वानर कुल के मन को अच्छा लगा।

व्याख्या ऐसे भक्ति और मुक्ति देने वाले प्रभु, ऐसे आशुतोष महादानी को भजना चाहिए बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाही। अन्य तो सामर्थ्यहीन जीव हैं। उन्हें छोडकर इन्हे भजना चाहिए और जो इसके विपरीत करता है राम को छोडकर जीव को भजता है वह नर नही है पशु है। यथा मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिय पी के। पशु यावज्जीवन दूसरे को ही भजते हैं। पशुओ को विधाता ने लज्जा निवारण के लिए तथा मक्खी आदि बाधक जीवो के हटाने के लिए पूँछ और आत्मरक्षा के लिए सीग दो है। इन नर-पशुओ को वह भी नही है। यथा लोलुप भ्रमत गृहपशु ज्यौं जहँ तहँ सिर पदत्रान बजै। तदपि अधम विचरत तेहि मारग कबहुँ न मूढ लजै। विनय।

रिपु को बधु बिभीषन निसिचर। कवन भजन अधिकारी। यहाँ जाति पाति धन धम बडाई की पूछ नही है। यहाँ तो केवल प्रेम की पूछ है। यथा रामहि केवल प्रेम पियारा। अत प्रभु का स्वभाव कपिकुल के मन मे अच्छा मालूम हुआ कि ऐसे ही प्रभु की हम लोगो को आवश्यकता है। जहाँ जाति पाँति धन धम बडाई की पूछ है वहाँ हम लोगो का निवाह कहाँ? अत वानरो के चरवाहे सरकार ही थे। दूसरा कोई न ऐसा हुआ न होगा। इसलिए वानर के चरवाहे को भजो।

पुनि सर्बग्य सर्ब उर बासी। सर्ब रूप सब रहित उदासी॥
बोले बचन नीति प्रति पालक। कारन मनुज दनुज कुल घालक॥२॥

अर्थ फिर सब कुछ जाननेवाले सबके हृदय मे बसनेवाले सर्वरूप सबसे रहित उदासीन तथा नीति की रक्षा करनेवाले वचन बोले। कारण यह कि राक्षसो के कुल का नाश करनेवाले मनुज बने हुए हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : श्रोता की सावधानी के लिए जिसमे कि उसे मोह न हो वक्ता ने पांच विशेषण सरकार को दिये। क्योंकि यहाँ पर सरकार माधुर्य प्रदर्शन करते हुए अल्पज्ञ वनवासी मनुष्य ससारी तथा लिप्त की भाँति पूछेंगे। स्वरूप ज्ञान रहने से माधुर्य का आनन्द आवेगा नहीं तो मोह होगा। यहाँ से मिला : बिभीपण जेहि विधि आई : प्रसङ्ग समाप्त हुआ।

मन्त्रियो से मन्त्रणा करके ही कार्य करना चाहिए। स्वयं नीति पालन करके उदाहरण खड़ा करते हैं। नीति पालन से ही दनुज कुल का नाश होता है। अनीति से दनुज कुल की वृद्धि होती है। यथा : निसिचर छल बल करैं अनीती।

सुनु कपीस लंकापति बीरा। केहि बिधि तरिअ जलधि गंभीरा॥
संकुल मकर उरग झख जाती। अति अगाध दुस्तर सब भाँती॥३॥

अर्थ : हे वीर वानरराज और लङ्कापति सुनो! इस गम्भीर समुद्र को किस प्रकार पार किया जाय? अनेक जाति के मगर सर्प और मछलियो से भरा हुआ है। अत्यन्त अथाह है और सब भाँति से इसका तरना कठिन है।

व्याख्या : कपीश और लङ्केश दोनों सखा हैं अतः दोनों से पूछा। कपीश अपनी सेना के पराक्रम को जानते हैं। लङ्कापति अपने पड़ोसी समुद्र से परिचित हैं। अतः दोनों से पूछना प्राप्त था। बीर अधीर न होंहि इस न्याय से वैक्लव्य छोडकर उत्साहपूर्वक उपाय सोचे। अतः वीर शब्द से सम्बोधित किया। पावत नाव न बोहित बेरा। इसलिए सन्तरण की विधि पूछते हैं। वणिक् पोत को श्रीरामजी ऐसे शासक छीन सकते नही। पैर से हल करके पार किया नही जा सकता। क्योंकि गम्भीर जलधि है देखने से साहस छूटता है।

वाहु सन्तरण मे भी बड़ी बाधा है। मकर उरग तिमिङ्गिल आदि मत्स्यो से भरा पड़ा है। यथा : मकर नक्र नाना झख ब्याला। सत जोजन तनु परम बिसाला। ऐसेउ एक तिनहि जे खाही। एकन के डर तेऽपि डराही। अतः अति अगाध है। सन्तरण की कोई विधि दृष्टिगोचर नही होती। सर्वज्ञ सर्व उरवासी होकर दूसरो से पूछते हैं। सर्वरूप होकर भी मकर उरग झख से भयभीत हैं। सर्व रहित होकर भी समुद्र को अगाध कह रहे हैं। उदासीन होकर भी सन्तरण की विधि के लिए लालायित हैं।

कह लंकेस सुनहु रघुनायक। कोटि सिंधु सोषक तव सायक॥
जद्यपि तदपि नीति असि गाई। बिनय करिय सागर सन जाई॥४॥

अर्थ : लङ्केश ने कहा हे रघुनायक सुनो। करोड़ समुद्र का शोषण करनेवाला यद्यपि आपका बाण है तथापि नीतिशास्त्र कहता है कि जाकर समुद्र से विनय कीजिये।

व्याख्या : बड़ी भारी परीक्षा विभीषण की हो रही है। अभी राज्य दिया है और अब कह रहे हैं कि समुद्र तरने की तो कोई विधि ही नही मालूम होती।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लङ्केश ने समझ लिया कि यद्यपि मान रखने के लिए सुग्रीवजी से भी पूछा गया है पर प्रधान लक्ष्य मे ही हूँ। सुग्रीवजी चुप हैं। समझते हैं कि विभीषणजी इस विषय के विशेष जानकार हैं। दिन रात उन्हे समुद्र से काम पडता है। अत ये ही कहे। विभीषणजी सरकार के बाणो का प्रताप जानते हैं। परन्तु उनसे काम लेना चौथा उपाय है। अत प्रथम साम के लिये ही मन्त्र देते हैं कि सामर्थ्य रहते भी नीति का पालन कीजिये।

साम प्रथम नीति है अत उसी का प्रयोग पहिले होना चाहिए। परन्तु यह प्रयोग दूत द्वारा भी हो सकता है। पर यह राजा सगर का खनाया खुदाया हुआ है। सगर आपके पूर्वज हैं। अत स्वय जाकर विनय करना उचित है। रावण के वचन का साफल्य हो रहा है। उसने पहिले ही कहा था सठ मिलु जाइ तिनहि कहु नीती। सरकार सेना के मध्य मे हैं। अत विभीषण समुद्र के किनारे विनय करने के लिये भेज रहे हैं। नीति यही है कि निर्बल से भी पहिले विनय करो।

दो प्रभु तुम्हार कुलगुरु जलधि, कहिहि उपाय विचारि।
विनु प्रयास सागर तरहि, सकल भालु कपि धारि ॥५०॥

अर्थ हे प्रभो! समुद्र आपका कुल गुरु हैं। वह विचारकर उपाय बतला देगा और बन्दर भालुओ की सब सेना विना श्रम के समुद्र के पार उतर जायगी।

व्याख्या सगरस्यायम् सागर यह सगर का खुदाया हुआ उनके पुत्र स्थानीय है। सारा ससार इसे सागर अर्थात् सगर का पुत्र कहता है। अत यह आपका कुलगुरु पूर्वज हैं। कुल का कल्याण चाहनेवाला है। यथा जलनिधि रघुपति दूत बिचारी। तै मैनाक होहि श्रम हारी। अत यह नीति निष्फल न होगी। वह ऐसा उपाय बिचारकर बतलायेगा कि यह महान् कार्य अल्पयास मे सिद्ध हो जायगा। बडे बडे के सन्तरण मे स देह है। यथा निज निज बल सब काहू भाषा। पार जाइ के सशय राखा। सो छोटे बडे सब पार चल जायँगे।

सखा कही तुम्ह नीकि उपाई। करिअ दैव जौ होय सहाई॥
मन्त्र न येह लछिमन मन भावा। राम बचन सुनि अति दुख पावा ॥१॥

अर्थ रामजी ने कहा सखे! तुमने उपाय तो अच्छा बताया। यदि दैव सहाय हो तो किया जाय। यह मन्त्र लछिमनजी को नही अच्छा लगा और रामजी का वचन सुनकर बहुत ही दुःख हुआ।

पहिले निकाई की प्रशसा तत्पश्चात् मतभेद कथन की रीति है। यथा सखा नीति तुम नीक बिचारी। मम प्रण सरनागत भयहारी। सरकार पहिले उपाय की उपादेयता की प्रशसा करते हैं। १ साम सब उपायो मे श्रेष्ठ है। २ अपने मर्म को समुद्र ही ठीक जानता है। ३ इसमे हिंसा भी नही है। पर यह उपाय निश्चित फलप्रसू नही है। दैव सानुकूल होने से कृतकार्यता हो सकती है। पूर्वजन्मकृत कर्म तद्दैवमिति कथ्यते पूर्वजन्म के किये हुए कर्म को ही दैव कहते हैं। प्रार्थना को

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कृतकार्यता प्रार्थित की दया पर अवलम्बित है। उत्तम उपाय सशयास्पद होने पर भी करना चाहिए।

किसी ने विरोध न किया पर शत्रु की सीमा पर पहुँचकर विनय करना ठीक नही। ऐसी ही बात हुई। रावण को कहने का अवसर मिल गया सहज भीरु कर वचन दृढाई। सागर सन ठानी मचलाई। जो पुरुषार्थ से साध्य है उसके लिए विनय करना ठीक नही। अत लक्ष्मणजी के मन मे विभीषण का मन्त्र अच्छा न लगा। रामजी के स्वीकारात्मक उत्तर से तो लक्ष्मणजो अति दु खी हुए। मन मे सोचा कि पहिले भी इन्हे दैव का रोग लगा था। सो वसिष्ठजी के उपदेश से नष्ट हुआ योगवासिष्ठ देखिये अब यहाँ कौन उपदेश देगा ? यह सोचकर लक्ष्मणजी को अत्यन्त दु ख हुआ।

नाथ दैव कर कवन भरोसा। सोखिअ सिंधु करिअ मन रोसा ॥
कादर मन कहुँ एकु अधारा। दैव दैव आलसी पुकारा ॥२॥

अर्थ लक्ष्मणजी बोले हे नाथ ! दैव का कौन सा भरोसा है ? मन मे क्रोध कीजिये और समुद्र को सुखा डालिये। यह दैव तो कादर के मन का एकमात्र आधार है। आलसी दैव दैव पुकारते हैं।

व्याख्या पूर्वजन्म के अनुकूल होने या न होने का कौन ठिकाना है। दैव निहत्य कुरु पौरुषमात्मशक्त्य पूर्वजन्म के कम का भरोसा छोडकर यावद्‌बुद्धिबलोदय पुरुषार्थ करना चाहिए। बिना पूछे भी लक्ष्मणजी समय आने पर बोल वैठते हैं। यथा बिनु पूछे कछु कहहुँ गोसाईं। सेवकु समयँ न ढीठ ढिठाई। इसी भाँति यहाँ भी मन्त्र कहते हैं कि मन मे विनय को स्थान न देकर क्रोध को स्थान देना चाहिए। समुद्र को सुखा दीजिये। वानरी सेना पैदल पार हो जायगी।

तातस्य कूपोऽयमिति ब्रुवाणा क्षार जल कापुरुषा पिबन्ति। बाप का वनाया हुआ कुँआ है। यह सोचकर खारा पानी कादर लोग पीया करते हैं। सागर महाराज सगर का खुदाया हुआ है तो क्या हुआ ! यह कार्य मे बाधक है। इसे सोखिये। पूर्वजन्म का पुण्य समुद्र को सलाह देने के लिए लाचार न करेगा। दैवेन देयमिति कापुरुषा वदन्ति दैव देगा यह धारणा ही कादरोचित है। सरकार के स्वरूपानुकूल नही है। सरकार ने वीर सम्बोधन करके सम्मति माँगी सो कादरोचित सम्मति दी गयी। आलसी और कादर दोनो शब्द यहाँ समानार्थक माने गये।

सुनत बिहँसि बोले रघुबीरा। ऐसेइ करब धरहु मन धीरा ॥
अस कहि प्रभु अनुजहि समुझाई। सिंधु समीप गए रघुराई ॥३॥

अर्थ : यह सुनकर रघुवीर हँसकर बोले : ऐसा ही करूँगा। मन मे धैर्य रक्खो। ऐसा कहकर छोटे भाई को समझाकर रघुनाथजी समुद्र के पास गये।

व्याख्या रघुवीर हैं। वीरता के मन्त्र पर प्रसन्न हुए। लक्ष्मणजी की प्रकृति समझकर हँस पडे। इन्हे विभीषण कादर जँचा। उनके मन्त्र को कादरतासूचक

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बतलाते हैं। यहाँ से सरकार का निहँसना प्रारम्भ हुआ। लक्ष्मणजी से कहते हैं कि धैर्य धरो। तुम्हारा ही कहा करूँगा। हमारे यहाँ से विभीषण मन्त्र का अनादर होना चाहिए नहीं तो ससार कहेगा कि विभीषण का मन्त्र ही ठीक नहीं होता था।

लक्ष्मणजी को अति दु:ख हुआ था। अत: पहिले उन्हे समझाया। यथा :

सिंधु सोखिबे ते यथा, विश्व नाश नहिं होय।
अपनो कारजहू सधै, जतन कीजिये सोय ॥१॥
यद्यपि एहि थल मामते, सरै न अपनो काज।
दण्डनीति धारण तदपि, उचित होय नहि आज ॥२॥
यहाँ विभीषण मन्त्र को, जो आदर नहि होय।
यह न नीति जानै कछू, अवसि कहिहि सब कोय ॥३॥
रहिहि बिभीषण मान अरु, बनिहि नीति मर्याद।
सरिहि आपनो काजहू, ताते तजिअ बिषाद ॥४॥

तब अकेले समुद्र के निकट गये। तीर पर तो उतरे ही थे अब जल के निकट गये। सेवकों ने जहाँ अनशन ठाना था आज कृपालु स्वामी भी वही अनशन कर रहे हैं।

**प्रथम प्रनामु कीन्ह सिरु नाई। बैठे पुनि तट दर्भ डसाई ॥**

## शुकसारण की कथा

**जबहिं विभीषनु प्रभु पहिं आए। पाछे रावन दूत पठाए ॥४॥**

अर्थ : पहिले सिर नवाकर प्रणाम किया। फिर किनारे पर कुशा बिछाकर बैठ गये। ज्योंही विभीषण प्रभु के पास आये थे त्योंही रावण ने उनके पीछे दूत भेजे थे।

व्याख्या : कुलगुरु भाव से सिर झुकाकर प्रणाम किया। अनशन के लिए अथवा मुनिवृत्ति के लिए कुशा बिछाकर बैठ गये। तीन दिन तक सरकार ने अनशन किया। यथा : तीसरे उपाय वनवास सिंधु पास सो समाज महराज जू के एक दिन दान भो। मुझे सन्तरण का उपाय बताइये। मार्ग दीजिये : यही विनय है।

रावण ने यह सोचकर कि ऐसे समय मे विभीषण को निकाला है कि कोई नीतिज्ञ इसको स्थान नही दे सकता। देखना चाहिए कि इसके साथ कैसा व्यवहार उस ओर से होता है? सेना कैसी है?, राम लक्ष्मण की क्या दशा है? इस पार कैसे आते हैं? विभीषण के जाने पर सबका ध्यान उसी की ओर आकर्षित होगा। ऐसे समय सेना में प्रवेश करने मे दूत को भी सुभीता होगा। अत: रावण ने दूत भेजा।

**दो. सकल चरित तिन्ह देखे, धरे कपट कपि देह।**
**प्रभु गुन हृदय सराहहि, सरनागत पर नेह ॥५१॥**

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ कपट से वानर का शरीर धारणकर उन्होंने सब चरित्र देखे। प्रभु के गुण हृदय से सराहने लगे कि शरणागत पर इतना प्रेम है।

व्याख्या : कृपारहित हिंसक सब पापी लङ्का मे बसते थे। अत. रावण के दूत बन्दर बन गये। बानरो सेना मे मिलेजुले सब चरित्र देख रहे हैं। शरणागत विभीषण पर इतना स्नेह कि उसके आने पर स्वागत के लिए स्वय प्रभु उठ खडे होते हैं हृदय लगाते हैं। भक्ति वरदान देते हैं। लङ्का का राज्य देते हैं। अब भाई की बात हटाकर विभीषण की बात रक्खी जा रही है। मन मे सराहना करते हैं कि मालिक हो तो ऐसा हो। बोलते नही कि कही स्वरभेद से बन्दर पहिचान न लें।

प्रगट बखानहिं राम सुभाऊ। अति सप्रेम गा बिसरि दुराऊ॥
रिपु के दूत कपिन्ह तब जाने। सकल बाँधि कपीस पहिं आने॥१॥

अर्थ · रामजी के स्वभाव की प्रशसा प्रकट रूप से करने लगे। अत्यन्त प्रेम मे छिपाव भूल गये। तब बन्दरो ने पहिचाना कि ये शत्रु के दूत हैं। उन्हे बाँधकर बन्दरो के राजा के पास ले आये।

व्याख्या : पहिले गुण का बखान हृदय मे करते थे। प्रेम बढा तब स्वभाव का बखान स्पष्ट रूप से करने लगे। पर वानरी भाषा मे बखान कर रहे थे। अब प्रेम और अधिक बढा तो कपट जाता रहा। कपट के हटते ही राक्षसी शरीर प्रकट हो गया और वही भाषा भी बोलने लगे। रामजी के स्वभाव के जानकार मे कपट रह नही सकता। यथा उमा राम सुभाउ जेहि जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना। प्रेमाधिक्य मे भी कपट नही रह जाता। यथा · निज तनु प्रगटि प्रीति उर छाई।

पहिले बन्दरो ने उन्हे अपना ही भाई बन्धु समझा था। जब वे दुराव भूल गये और उनका असली देह प्रकट हो गया तब बन्दर जान पाये कि ये शत्रु के भेदिया हैं। यहाँ दूत शब्द भेदिया के अर्थ मे प्रयुक्त है। अपराधी को बाँधकर ले जाने की प्रथा है। फिर कही बन्दर वनकर सेना म घुस जाय तो इस सेना समुद्र मे पता चलना कठिन हो जायगा। इसलिए भी उन्हे बाँधकर राजा सुग्रीव के पास ले गये।

कह सुग्रीव सुनहु सब बानर। अग भग करि पठवहु निसिचर॥
सुनि सुग्रीव बचन कपि धाए। बाँधि कटक चहुँ पास फिराए॥२॥

अर्थ · सुग्रीव ने कहा सब वानरो। सुनो राक्षस को अग भग करके भेज दो। सुग्रीव के वचन सुनकर वानर दौडे। उन्हे बाँधकर सेना के चारो ओर घुमाया।

व्याख्या · सुग्रीवजी ने निश्चय किया कि जैसा व्यवहार शत्रु की ओर से मेरे दूत हनुमान्‌जी के साथ हुआ है वैसा ही उसके दूत के साथ होना चाहिए। रावण

ankurnagpal108@gmail.com



ने आज्ञा दी थी कि अग भग करि पठवहु बन्दर। अत सुग्रीवजी आज्ञा देते हैं कि अग भग करि पठवहु निसिचर। सुग्रीवजी की उसके वध की इच्छा नही थी। इसलिए उसके किसी अग विशेष के जलाने की आज्ञा नही दी। दूसरी बात यह थी कि रावण ने कहा था कि पूँछहीन बानर तहँ जाइहि। तब सठ निज नाथहि लेइ आइहि। सो वह तो अपने नाथ को यहाँ ला न सका। अब यह अगहीन होकर जाय और अपने मालिक को इस पार न आवे।

पुलिस के काम करनेवाले बन्दर दूसरे थे और दण्ड देनेवाले बन्दर दूसरे थे। आज्ञा सुनते ही दण्ड देनेवाले दौड आये। अत फिर से बाँधना कहते हैं। पहिले का बन्धन ऐसा था जिसमे भाग न जाय। दूसरा बन्धन ऐसा हुआ जिसमे दण्ड देते समय बाधा न दे सके। हनुमान्‌जी के लिए कहा गया है कि नगर फेरि पुनि पूँछ प्रचारी। अत इन्हे बाँधि कटक चहुँ पास फिराए। जिसमे कटक सावधान हो जाय कि रावण की ओर से गुप्तचर छूटे हुए हैं।

बहु प्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत तदपि न त्यागे॥
जो हमार हर नासाकाना। तेहि कोसलाधीस कै आना॥३॥

अर्थ वानर उन्हे अनेक प्रकार से मारने लगे। वे दीन होकर पुकारते थे। फिर भी उन्हें नहीं छोड़ा। दूत चिल्लाये जो हमारा नाक कान काटेगा उसे कोसलाधीश की सौगन्ध।

व्याख्या यद्यपि सुग्रीवजी की स्पष्ट आज्ञा नही है तथापि सब वानर हनुमान्‌जी का बदला ले रहे हैं। हनुमान्‌जी के साथ लंका मे यह बरताव हुआ था कि कौतुक कहँ आए पुरबासी। मारहि चरन करहि बहु हाँसी। अत इधर बन्दर लोग बहुत प्रकार से मारने लगे। थप्पड घूँसा लात और पूँछा की ऐसी मार पडी कि गुप्तचर दीन होकर चिल्लाने लगे फिर भी छोडा नही। आज्ञापित दण्ड के लिए विचार करने लगे कौन सा अग ऐसा भग किया जाय कि जिसमे इनके लका लौटने मे बाधा न हो। निश्चय हुआ कि राक्षसो को पूँछ तो होती नही। इनके नाक कान बेकार अग है और इन्हे प्रिय भी अधिक हैं। अत इनके नाक कान काट लेना चाहिए।

महाजनो येन गत स पन्था। बडे लोग जिधर से गये हो वही रास्ता है। सो लक्ष्मणजी ने सूर्पणखा का नाक कान काटा था। वही रास्ता हम लोगो का भी ग्रहण करना चाहिए। यही सम्मति स्थिर हुई। दूतो ने सोचा कि किष्किन्धाधीश की आज्ञा यदि टल सकती है तो कोसलाधीश की ही आज्ञा से टल सकती है और कोसलाधीश का स्वभाव अति कोमल है। वे निश्चित कृपा करेंगे अथवा उन्हे यह भी आशा है कि बन्दरो मे ऐसी भक्ति है कि वे कोसलाधीश की शपथ दिलाने पर सम्भव है कि नाक कान न काटें। उन गुप्तचरो को अग भग स्वीकार है नाक कटाना स्वीकार नही। अत उन सबो ने कोसलाधीश की दोहाई मचायी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुनि लछिमन सब निकट बोलाए। दया लागि हँसि तुरत छोड़ाए॥
रावन कर दीजेहु यह पाती। लछिमन बचन बाँचु कुलघाती॥४॥

अर्थ : सुनकर लक्ष्मणजी ने सबको निकट बुलाया। दया लगी इसलिए हँसकर तुरन्त छुडा दिया : उनसे कहा यह चिट्ठी रावण के हाथ देना। कहना कि रे कुलघातक। लक्ष्मण के शब्दो को बांच।

व्याख्या : दीन पुकार सुनकर लक्ष्मणजी को दया आयी। दूतो को छुडाना चाहते हैं। उसी समय चिट्ठी लिखा तब से दूतों ने कोसलाधीश की दुहाई दी। सरकार सयम मे हे बोलेंगे नही। उनकी दोहाई देनेवाले को दण्ड नही मिलना चाहिए। अन्य पर दया आने से करुणा और शत्रु पर दया आने से हँसी आती है। सो लक्ष्मणजी ने मारनेवालो और मार खानेवालो सभी को बुलाया। दोहाई देनेवालो का बन्धन देख नही सकते। अत. बन्ध और दण्ड दोनो से छुड़ा दिया। बन्दर लोग कपीश की आज्ञा से लक्ष्मणजी की आज्ञा को बड़ी मानते हैं। उनकी आज्ञा से उन दूतो को बन्धन से मुक्त कर दिया और उनका नाक कान भी न काटा। उधर से छोटा भाई शरण आया। इस नाते इधर छोटे भाई की ओर से पत्र दिया जा रहा है। यद्यपि पत्र बहुत ही छोटा है फिर भी उसका तात्पर्य जवानी भी कहला भेजते हैं कि तू कुलघाती है। तेरे अपराध से सम्पूर्ण राक्षसकुल का सहार हुआ चाहता है। लछिमन बचन का भाव यह है कि चुनौती देनेवाला तो मैं हूँ। यथा : ताके कर रावन कहँ मनौ चुनौती दीन्ह। सो मेरा कुछ न बिगाड़ कर तू सरकार का अपराध कर बैठा।

दो. कहेहु मुखागर मूढ सन, मम सदेह उदार।
सीता देइ मिलहु न त, आवा कालु तुम्हार॥५२॥

अर्थ : मेरा उदार सन्देश उस मूढ़ से जबानी कहना कि सीताजी को देकर मिलो नही तो तुम्हारा काल आगया।

व्याख्या : मूढ है कदाचित् चिट्ठी न पढ़े तो जबानी सदेसा कह देना। यह सन्देश उदारता के कारण भेजा जा रहा है भय के कारण नही। हरण करने का अपराध क्षमा कर दिया जावेगा। केवल सीता को देकर मिलो। लक्ष्मण तुम्हारा काल है सो आ गया। यथा : मोहि बिलोकु तोर मैं कालू। छोटे भाई के शरण आने से तुम्हे अवसर दिया जाता है। नही तो मैं चुनौती देनेवाला तुम्हारा काल हूँ। काल सदेश दे के नही आता।

तुरत नाइ लछिमन पद माथा। चले दूत बरनत गुन गाथा॥
कहत राम जसु लंका आए। रावन चरन सीस तिन्ह नाए॥१॥

अर्थ : लक्ष्मण के चरणो मे मस्तक नवाकर गुणो की गाथा वर्णन करते हुए

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दूत तुरन्त ही चल पडे। रामजी का यश कहते हुए लका मे आये और रावण के चरणो मे सिर नवाये।

व्याख्या : छुट्टी मिली, प्राण बचा, इसलिए कहते हैं कि तुरत चले अथवा उपकारी लक्ष्मणजी की आज्ञा पालन में तत्परता दिखलाते हैं। विदाई का प्रणाम है अथवा इन्ही की कृपा से सकुशल घर जा रहे हैं। इसलिए कृतज्ञतासूचक प्रणाम है। कई दूत हैं अत: गुणगाथा आपस मे वर्णन करते चले। सरकार के गुण ऐसे चित्त पर चढे हुए हैं कि कितनी मार खाने पर भी चित्त से नही उतरते अथवा लक्ष्मणजी ने छुडा दिया है। अत: दोनो भाइयो का गुणगाथा वर्णन करते चले।

अति प्रेम है। अत लक्ष्मणजी की गुणगाथा कहकर फिर राम गुणगान करने लगे अथवा प्राण बचानेवाले का वर्णन करके जिसकी दोहाई के कारण रक्षा हुई उस रामजी के यश का वर्णन करने लगे। यश कथन समाप्त न हुआ और लका पहुँच गये। हृदय मे तो राम प्रेम है पर प्रभु है इसलिए रावण को प्रणाम किया।

बिहँसि दसानन पूछी बाता। कहसि न सुक आपनि कुसलाता ॥
पुनि कहु खबरि बिभीषन केरी। जाहि मृत्यु आई अति नेरी ॥२॥

अर्थ : दशानन ने हँसकर बात पूछी कि शुक! तू अपनी कुशल क्यो नही कहता? फिर विभीषण का समाचार सुना जिसके अत्यन्त निकट मृत्यु आगयी है।

व्याख्या : दसो मुखो से हँसे। इसलिए यहाँ दसानन कहा। चकित देखकर रावण हँसे कि एक: विभीषण तो यहाँ से उल्लू बनकर गया है और यह वहाँ से उल्लू बनकर आ रहा है। दूतों मे प्रधान शुक से उसकी कुशल पूछता है। जिस कार्य के लिए भेजा था उसे पहिले न पूछ कर कुशल पहिले पूछने का अभिप्राय कि अपने कार्य से मुझे तुम्हारा कुशल अधिक प्रिय है। रावण के यहाँ नियम था कि आनेवाला स्वय ही अपना कुशलादि कह दिया करता था। पर शुक प्रणाम करके चुप रह गया। अत: पूछता है कि तू अपनी कुशल क्यो नहीं कहता है? रूप पलटने पर भी कही पहिचाना तो नही गया?

दूसरा प्रश्न विभीषण विषयक है। वह तो शत्रु से जा मिला इसलिए उसकी खबर पूछता हूँ। शत्रु पक्ष की बात कहता था। तभी मृत्यु उसके निकट आ गयी थी। अब तो शत्रु से जा मिला है अत: अति निकट मृत्यु आ गयी है।

करत राजु लका सठ त्यागी। होइहि जव कर कीट अभागी ॥
पुनि कहु भालु कीस कटकाई। कठिन काल प्रेरित चलि आई ॥३॥

अर्थ : शठ ने राज्य करते हुए लका को त्याग दिया। अभागा अब जव का कीड़ा बनेगा फिर भालु और वानरो की सेना का हाल कह जो कठिन काल की प्रेरणा से यहाँ चली आयी है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : वह लंका में राज्य भोगता था। पर ऐसा शठ है कि उसे छोड़कर चला गया। पर शत्रु पक्ष की गीत गाता ही गया। शत्रु पक्ष की बात कहने का तात्पर्य ही यही था कि उसे लंका में रहना मंजूर नहीं था। वह अभागी है। सम्पत्ति छोड़कर विपत्ति भोगने गया है। कोई घुन पीसने नहीं जाता। पर जव के पीसने के समय घुन आप ही पिस जाता है। जब हम लोग शत्रु का संहार करने लगेंगे तो शत्रु मध्यवर्ती होने से वह भी मारा जायगा।

तीसरा प्रश्न भालु कीस की सेना विषयक है। उनके सामने कैसा उत्तर देना चाहिए इसका इशारा रावण स्वयं देते जा रहे हैं। कहते हैं कि देखो काल कैसा कठिन है कि उन्हे हम लोगों के पास हाँके लिए चला आ रहा है। यथा : आए कीस काल के प्रेरे। छुधावन्त सब निसिचर मेरे।

जिन्हके जीवन कर रखवारा। भएउ मृदुल चित सिंधु बिचारा ॥
कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी। जिन्हके हृदयँ त्रास अति मोरी ॥४॥

अर्थ : जिन्हके जीवन का रक्षक कोमल चित्तवाला समुद्र बन गया है। फिर उन तपस्वियों की बात बता जिनके हृदय में मेरा बड़ा डर है।

व्याख्या : जितने विचारे दुखिया होते हैं वे मृदुलचित्त होते हैं। समुद्र का हटने बढ़ने में कोई चारा नहीं। अतः विचारा है। कठोर चित्त होता तो वानरों को यहाँ आने के लिए रास्ता देता और उन्हे राक्षस खा जाते। अतः वही विचारा मृदुलचित्त रक्षक हो गया।

चौथा प्रश्न राम लक्ष्मण विषयक है। जिनका नाम रावण नहीं लेते तपसी कहते है। भालु कीश तो पशु हैं। जिधर हाँक दो उधर चले जाँय। उन्हें समझ भी नहीं। इसलिए त्रास भी नहीं। अत्यन्त त्रास तो तपस्वियों को है। फिर स्त्री तो हरण कर ही लिया। अब यही मरवा न डाले। अतः कुछ न हो सका तो बन्दर भालु ही बटोरे हैं।

दो. की भइ भेंट कि फिर गये, श्रवन सुजसु सुनि मोर।
कहसि न रिपु दल तेज बल, बहुत चकित चित तोर ॥५३॥

अर्थ : उनसे तेरी भेंट भी हुई या वे मेरा सुयश सुनकर ही लौट गये? शत्रु सेना का तेज और बल बतलाता क्यों नहीं? तेरा चित्त चकित हो रहा है।

व्याख्या : विभीषण से उन लोगों की भेंट हुई कि वे सब मेरा सुयश सुनकर ही भाग गये। यदि नहीं भागे तो शत्रु सेना का तेज और बल बतला। शुक कुछ उत्तर नहीं देता। इस पर पूछता है कि तू कुछ कहता क्यों नहीं? तू बहुत चकित मालूम होता है। मालूम होता है कि यहाँ सुना कि : सिन्धु पार सेना सब आई। वहाँ जाकर देखा कि कहाँ कुछ भी नहीं। सब भाग गये थे। इसलिए तू चकित है कि वे सब गये कहाँ? रावण ने चार प्रश्न पूछे। हनुमान्‌जी से भी चार ही प्रश्न पूछा था।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


नाथ कृपा करि पूँछेहु जैसे । मानहु कहा क्रोध तजि तैसें ॥
मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा । जातहिं रामतिलक तेहि सारा ॥१॥

अर्थ : दूत ने कहा : हे नाथ ! आपने जिस भाँति कृपा करके पूछा उसी भाँति क्रोध छोड़कर मेरा कहना मानिये। जब आपका छोटा भाई जाकर रामजी से मिला। पहुँचते ही रामजी ने उसे राजतिलक कर दिया।

व्याख्या : रावण चार प्रश्न पूछते हैं। हनुमान्‌जी से भी चार ही प्रश्न पूछे थे। दूत से भी चार ही प्रश्न किये। अङ्गद के जाने पर भी चार ही प्रश्न करेंगे। यहाँ कहसि न सुक आपन कुसलाता से उपक्रम करके बहुत चकित चित्त तोर से प्रश्नो का उपसंहार किया। इससे दूत को परिज्ञात हुआ कि स्वामी की सेवक पर बड़ी कृपा है। सब कार्य पीछे पड़ गये। मेरी कुशल प्रधान हो गयी। उसने कहा कि मुझे भी आपके कुशल की बड़ी चिन्ता है। मै कुशल के लिए कुछ कहूँगा। उसे भी क्रोध छोड़कर मानिये। भाव यह कि वह अप्रिय सत्य है। पर हित की बात है। सुनने पर आपको क्रोध आ जाना सम्भव है शुक मन्त्री था। दूत होकर गया था। अत मानौं कहा। ऐसा कहने का अधिकार था।

पहिले प्रश्न का उत्तर न देकर दूसरे प्रश्न का उत्तर पहिले देता है। स्वामी की बड़ाई है कि पहले कुशल पूछते हैं। पर मुख्य प्रयोजन को ही पहिले निवेदन करना चाहिए। दूसरी बात यह कि कुशल का अन्दाज तो इन्हे मिल ही गया। स्वयं ही कहते हैं कि बहुत चकित चित तोर। अब जिसका अन्दाज इन्हे नही है वही पहले सुनाना चाहिए। मिला जाइ जब अनुज तुम्हारा। कहने का भाव यह कि उसकी ओर से भेद नीति का प्रयोग न होने पर भी तुम्हारा अनुज जाकर मिला। शत्रुपक्ष के लिए कैसी वाञ्छनीय घटना थी और अपनी ओर से कैसी कच्ची बात हुई। यह आप ही समझिये। जातहि कहने का भाव यह कि न कोई बातचीत हुई न परस्पर मे कोई समय करार स्थिर हुआ और रामजी ने उन्हे तिलक कर दिया। अब तुम्हारा भाई ही संग्राम मे अग्रणी हुआ। रामजी की उदार और नीति निपुणता का परिचय देता है।

रावन दूत हमहि सुनि काना । कपिन्ह बाँधि दीन्हे दुख नाना ॥
श्रवन नासिका काटइ लागे । राम सपथ दीन्हे हम त्यागे ॥२॥

अर्थ : हम रावण के दूत हैं। ऐसा कानो से सुनकर बन्दरो ने हमे बाँधकर बहुत कष्ट दिये। नाक कान काटने लगे। रामजी की शपथ दी तब जाकर मुझे छोड़ा।

व्याख्या : बन्दरो ने मुझे पकड़ लिया। पर रावण का दूत है यह बात विभीषणजी ने बतलायी। विभीषण का आपके विरोध मे कार्य आरम्भ हो गया। अब अपनी कुशल कहता है बहु प्रकार मारन कपि लागे। दीन पुकारत तदपि न त्यागे। किसी ने मारने की आज्ञा न दी रावण दूत सुनते ही मार पड़ने लगी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


उन्हे मालूम है कि दूत की हमारे यहाँ क्या गति होती है। वही व्यवहार वे साथ करने लगे।

उग्रदण्ड देने को प्रस्तुत हुए। पर राम की शपथ का इतना मान है कि छूट गये। वानरो की स्वामिभक्ति और विपक्ष की उदारता पर चकित हूँ। आ नाम से नाक कटती थी। रामजी के नाम से बच गयी। इतने ही से उसके सु का परिचय जान लीजिये। जिसके विषय मे आप कहते हैं कि 'की भइ भेंट फिरि गये श्रवण सुजस सुनि मोर।

पूँछिहु नाथ राम कटकाई। बदन कोटि सत बरनि न जाई॥
नाना बरन भालु कपि धारी। बिकटानन बिसाल भयकारी॥३

अर्थ : हे नाथ! आपने श्री रामजी की सेना पूछी। सो वह तो सौ क मुख से भी वर्णन नही की जा सकती। वानर और भालुओ की सेना अनेक रग है। उनके मुख विकट और शरीर विशाल और भयानक हैं।

व्याख्या . तीसरे प्रश्न पुनि कहु भालु कीस कटकाई का उत्तर देते हैं सौ कोटि मुख से वर्णन नही की जा सकती। विभीषण का समाचार कहा। अ कुशल सुनायी। पर भालु कीस कटकाई वर्णनातीत है। निशिचर सेना तो उ सामने नगण्य हैं। यही सब समझकर चकित हूँ।

रग बिरगी सेना है। मेरे यहाँ केवल काली सेना है। यथा वीर तमी सब अति कारे। नाना बरन बलीमुख भारे। यहाँ के राक्षस क्या विकटानन विश भयकारी होगे जैसे वे सब विकटानन विशाल भयकारो हैं। योद्धाओ का ऐसा हो गुण है। विपक्षी देखकर ही डर जाते हैं। इसी से सेना की भयकरता कहा।

जेहि पुर दहेउ हतेउ सुत तोरा। सकल कपिन्ह मह तेहि बलु थोरा॥
अमित नाम भट कठिन कराला। अमित नाग बलु बिपुल बिसाला॥४

अर्थ . जिसने नगर को जलाया और आपके पुत्र को मारा उसका बल सब वानरो की अपेक्षा कम है। असख्य नामवाले बडे ही कठोर और भयकर यो हैं। उन्हे असख्य हाथियो का बल है और वे बडे ही विशाल है।

व्याख्या असाध्य रोग देखकर तीव्रातितीव्र मात्रा का प्रयाग उपयुक्त। लका जलानेवाले और अक्षहन्ता के पुरुषार्थ मे तो सन्देह को स्थान नही है। पर उसको तो वहाँ गिनती ही नही है। न उससे कोई राय पूछी जाती है न किसी काम मे आगे दिखाई पडता है। चुप्पी साधे बैठा रहता है। यहाँ निर्बलो वह अपना पराक्रम दिखला गया। वहाँ बलवानो मे उसकी एक नही चलती।

थोडे होते तो नाम याद कर लेता। पहिले दूत ने सैनिको का वर्णन कि विकटानन विसाल भयकारी। अब सेनापतियो का वर्णन करता है कि भट क कराल हैं। यहाँ बल की नाप हस्तिबल मे है अश्वबल से नही। सैनिक विश भयकारो हैं और सेनापति बल बिपुल बिसाला हैं। इससे बल कहा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


दो. द्विबिद मयंद नील नलु, अंगद गद बिकटासि।
दधिमुख केहरि निसठ सठ, जामवंत बलरासि ॥५४॥

अर्थ : द्विविद मयन्त नील नल अगद गद विकटास्य दधिमुख केसरी निशठ शठ और जामवन्त ये वल की राशि हैं।

व्याख्या : सेनापतियो मे भी अतिबलवालो का पता लाया हूँ। वे बारह है : द्विविद मयन्द नील नल इत्यादि। हमारे यहाँ पाँच ही है : कुमुख अकंपन कुलिसरद धूम्रकेतु अतिकाय। एक एक जग जोति सक ऐसे सुभट निकाय। इन बारहो मे हनुमान्‌जी को नही गिनाया। उनके विषय मे कह चुका है कि सकल कपिन्ह मह तेहि बल थोरा।

ए कपि सब सुग्रीव समाना। इन्ह सम कोटिन्ह गनइ को नाना ॥
रामकृपा अतुलित बल तिनही। तृन समान त्रैलोकहि गनही ॥१॥

अर्थ : ये सब बन्दर बल मे सुग्रीव के समान हैं और इनके जैसे करोड़ो हैं। कहाँ तक गिना जा सकता है। रामजी की कृपा से उन्हे बेतौल वल है। वे तीनो लोक को तृण के समान गिन रहे हैं।

व्याख्या : समान शब्द का प्रयोग ईषत् न्यून के अर्थ मे होता है अर्थात् ये सुग्रीव से बल मे कुछ ही कम है और इनसे ईषत्न्यून करोड़ो हैं। इसलिए नाना कहा : अतः गिने नही जा सकते। यथा : बानर कटक उमा मै देखा। सो मूरख जो करन चह लेखा।

यदि कहा जाय कि बन्दरो मे अमित नागबल कहाँ से आया? इस पर कहता है कि रामकृपा से सब कुछ सम्भव है। यथा : रामकृपा बल पाइ कपिंदा। भए पक्षजुत मनहु गिरिंदा। कुमुख अकपनादि तो एक एक जग जीत सकते है। पर ये तो त्रैलोक्य को तिनका गिन रहे है। यहाँ तक दल का बल कहा। अब तेज कहते हैं।

अस मै श्रवन सुना दसकंधर। पदुम अठारह जूथप बंदर ॥
नाथ कटक महँ सो कपि नाही। जो न तुम्हे जीतै रन माही ॥२॥

अर्थ : हे दशकन्धर! मैने ऐसा कानो से सुना है कि अठारह पद्म तो केवल बानरो के यूथपति हैं। हे नाथ! उस सेना मे ऐसा कोई नही है जो आपको रण मे न जीत लें।

व्याख्या : अब सख्या बतलाता है कि मै गिन तो न सका पर उन लोगो ने अपनी गिनती कर रक्खी है। बातचीत करने पर पता चला कि व्यक्तियो की तो गणना नही है पर यूथपो की गणना है। वे अठारह पद्म है। श्रवण सुना कहने का भाव यह है कि कहने सुनने मे भूल हो सकती है पर जो सुना है सो कहता हूँ :

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


एतेषा गणना नवद्वयमहापद्मावधिर्वर्णिता अग्निवेशरामायणे। सचमुच कहने सुनने मे भूल हो गयी। अग्निवेश रामायण मे अठारह महापद्म सख्या दी हुई है।

कठिन काल प्रेरित चलि आई का उत्तर देते हुए कहता है कि हम लोगो का जीतना कौन सी बडी बात है। तृण का कुलिश और कुलिश को तृण बनानेवाले रामजी की कृपा से उनमे इतना बल आगया है कि तुम्हे युद्ध मे जीत लें। कठिन काल प्रेरित चलि आई कहना ठीक है। पर वह काल राक्षस कुल का विरोधी हो गया है।

परम क्रोध मीजहिं सब हाथा। आयसु पै न देहिं रघुनाथा॥
सोखहिं सिंधु सहित झप ब्याला। पूरहिं नत भरि कुधर बिसाला॥३॥

अर्थ सबके सब क्रोध से हाथ मीजते हैं पर श्रीरघुनाथजी आज्ञा नही देते। वे मछलियो और सर्पो के साथ समुद्र सोख लेंगे नही तो बडे बडे पर्वतो को लेकर पाट देंगे।

व्याख्या तिसपर वे परम क्रुद्ध हैं। प्रश्न उठता है कि तब वे समुद्र के किनारे ठहरे क्यो हैं। आते क्यो नही ? इस पर कहता है कि आने के लिए हाथ मीजते हैं। सामर्थ्य रहते जब बडे की आज्ञा से रुकना पडता है तब लोग हाथ मीजते हैं। वहाँ अभी रघुनाथजी की आज्ञा नही है।

यदि कहिये कि आज्ञा होकर ही क्या होगा ? जिन्हके जीवन कर रखवारा। भयउ मृदुल चित सिंधु बिचारा। समुद्र कैसे तरेंगे ? इस पर कहता है कि मछली और सर्पो के सहित वे समुद्र को ही पी जावेंगे। मछली और सर्पो को दाँत से भी न कुचलेंगे। इतने भारी भारी हैं और यदि इस भाँति पूरा शोषण न कर सके तो शष को पर्वतो से पाट देंगे। समुद्र उन्हे नही रोक सकता।

मर्दि गर्द मिलवहिं दससीसा। ऐसेइ बचन कहहिं सब कीसा॥
गर्जहिं तर्जहिं सहज असंका। मानहु ग्रसन चहत हहिं लंका॥४॥

अर्थ रावण को मसलकर धूल मे मिला देंगे। सब वानर ऐसा ही वचन बोल रहे हैं। सब सहज ही निडर हैं। गरजते हैं और डपटते हैं मानो लङ्का ही निगल जाना चाहते हैं।

व्याख्या उत्साह कहता है कि ऐसा साहस बढा हुआ है कि प्रत्येक यही कहते हैं कि मैं ही दसशीश को रगडकर मिट्टी मे मिला दूँगा। एक शीश का भी पता न चलेगा। यहाँ तो केवल आप ही अशङ्क हैं। यथा तहँ रह रावण सहज असंका। वहाँ सभी सहज अशङ्क हैं। यथा गूलर फल समान तव लंका। बसहु मध्य तुम जतु असंका। मैं वानर फल खात न बारा। आयसु दीन्ह न राम उदारा। जो भाव अगदजी का है वही सब बन्दरो का है। प्रत्येक बन्दर आपका जय करने का साहस कर रहा है। राक्षसी सेना को वे क्या गिनते हैं। आपके सुयश सुनने से वे लौटनेवाले नही हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

उत्साह इतना बढा हुआ है कि उस पार से ही सब गरजते तडपते हैं।

दो० सहज सूर कपि भालु सब, पुनि सिरपर प्रभु राम।
रावन काल कोटि कहुँ, जीति सकहिं संग्राम ॥५५॥

अर्थ सब बानर भालू सहज शूरवीर हैं। फिर उनके सिरपर प्रभु श्रीरामजी है। हे रावण! वे संग्राम म करोडो काल को भी जीत सकते हैं।

व्याख्या गिरि तरु नख आयुध सब बीरा। हरि मारग चितवहिं मति धीरा। अत सहज शूर हैं। रामजी ऐसे प्रभु की उनपर छाया है। अपने जीते जाने पर आश्चर्य न करिये। वे कोटि कोटि काल को जीत सकते हैं। उन्हे काल प्रेरित न समझिये। संग्राम करने का भाव यह कि जीव मात्र ही काल के वश हैं। अंड कटाह अमित लयकारी। काल सदा दुरतिक्रम भारी सा कभी न कभी काल के वश सभी को होना है। मै उस समय की बात नही कहता। इस समय संग्राम मे वे रामकृपा से काल को जीत सकते हैं। यहाँ तक दलका तेज कहा।

राम तेज बल बुधि बिपुलाई। सेष सहस सत सकहिं न गाई ॥
सक सर एक सोषि सत सागर। तव भ्रातहिं पूछेउ नय नागर ॥१॥

अर्थ श्रीरामचन्द्र के तेज बल और बुद्धि की अधिकता को लाखो शेष भी नही गा सकते। वे एक ही बाण मे सौ समुद्रो का शोषण कर सकते है। परन्तु नीतिनिपुण रामजी ने तुम्हारे भाई से उपाय पूछा।

व्याख्या कहु तपसिन्ह कै बात बहोरी का उत्तर देते हुए केवल रामजी का वृत्तान्त कहता है। लक्ष्मणजी का वृत्तान्त चिट्ठी कहेगी। रावण ने केवल तेज बल पूछा, क्योकि रावण के यहाँ केवल बल की ही प्रधानता मानी जाती है। परन्तु यह पहिले उनकी बुद्धि की प्रशंसा करता है। सरकार की बुद्धि देखकर चकित है। जितनी बातें उसने रामदल मे देखी वे सब चकित करनेवाली थी। सरकार के अहोरात्र के द्रष्टा तो शेष ही है। अत अन्य वर्णन करनेवालो का नाम न लेकर शेष का ही नाम लेता है। शेष को सहस्रमुख हैं। अत वर्णन करने की सामग्री बेजोड है। सौ लाख शेष भी अपने हजारो मुख से वर्णन नही कर सकते अर्थात् रामजी की बुद्धि सर्वथा अवर्णनीय है।

अब तेज और बल कहता है। एक बाण सौ समुद्र सोख सकता है। यथा कोटि सिंधु सोषक तव सायक। यहाँ सायक बहुवचन के अर्थ म प्रयुक्त है। अत विभीषण तथा शुक की उक्तियो मे कोई भेद नही है। फिर भी ऐसे नयनागर हैं कि तुम्हारे भाई से सम्मति पूछते हैं।

तासु बचन सुनि सागर पाहीं। मागत पंथ कृपा मन माहीं ॥
सुनत बचन बिहँसा दससीसा। जौं असि मति सहाय कृत कीसा ॥२॥

अर्थ उसके वचन सुनकर व समुद्र स मार्ग माँग रहे है। उनके मन म कृपा

ankurnagpal108@gmail.com



है। दूत के ये वचन सुनते ही रावण हँसा कि जब ऐसी बुद्धि है तभी तो वानरों को सहायक बनाया है।

व्याख्या वहाँ विभीषणजी के वचन का आदर है। तुम्हारे यहाँ उनकी सुनवाई नहीं होती थी। उनका वचन मानकर जिसे एक बाण से सोख सकते हैं उससे विनय कर रहे हैं। उनके सैनिक तो झख व्याल के सहित समुद्र सोखने को तैयार हैं। पर सरकार के मन मे कृपा है अतः रास्ता माँग रहे हैं। वे भय से विनय नहीं करते। कृपा से विनय कर रहे है।

रावण बात सुनकर समझने का यत्न नहीं करते। छिद्रान्वेषण करते हैं। इतनी बातें शुक ने ऐसी सावधानता से कही कि कहीं छिद्र न मिला। पर मागत पथ कहते ही उस बोलने का अवसर मिल गया। हँसकर सब बातें उड़ा दी। कहता है कि बन्दर न किसी की सहायता कर सकते है और उनसे कोई सहायता चाहता भी नहीं। क्योंकि किसी से उनका मेल नहीं खाता। पर तपस्वी की बुद्धि बन्दरो की बुद्धि से मेल खा गयी तभी बन्दर सहायक हुए। समानशीलव्यसनेषु मैत्री अथवा समुद्र जड है। उससे पन्थ माँगना भी उतना ही मूर्खतापूर्ण कार्य है जितना कि बन्दरो की सेना इकट्ठा करना है। न तो समुद्र रास्ता ही देगा और न बन्दरो की सेना युद्ध ही कर सकेगी।

सहज भीरु कर बचन दिढाई। सागर सन ठानी मचलाई ॥
मूढ मृषा का करसि बडाई। रिपु बल बुद्धि थाह मै पाई ॥३॥

अर्थ स्वाभाविक डरपोक के वचन को पुष्ट करके समुद्र से ही मचल बैठा है। अरे मूर्ख! तू झूठी बडाई क्या करता है। शत्रु के बल बुद्धि का थाह मुझे लग गया।

व्याख्या बुद्धि की निन्दा करके अब तेज बल की निन्दा करता है। एक भीरु वह जो समुद्र से मचलने की सम्मति दे और दूसरा भीरु वह है जो उसकी पुष्टि करे। मेरे यहाँ इसीलिए विभीषण की राय नहीं मानी जाती थी। क्योंकि सदा वह भीरुता की सम्मति देता था।

रावण ने कहा तू तो है मूढ। तुझे उसके बल बुद्धि का थाह न लगा। कहता है कि शेष सहस सत सकहिं न गाई अतः तेरी की हुई बडाई भी झूठी है। मुझे तो केवल तेरी बातो से थाह लग गया। थाह मैं लगाता हूँ। तू क्या लगावेगा? तूने यही समझ लिया कि जलजन्तुओ पर दया करके रास्ता माँग रहे हैं।

सचिव सभीत बिभीषनु जाकें। बिजय बिभूति कहाँ जग ताकें ॥
सुनि खल बचन दूत रिसि बाढी। समय बिचारि पत्रिका काढी ॥४॥

अर्थ जिसे विभीषण सा डरपोक मन्त्री हो, उसे जगत मे विजय और विभूति कहाँ? खल के वचन को सुनकर दूत का क्रोध बढा। अवसर जानकर उसने चिट्ठी निकाली।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या विभीषण ने सान्निध्य से मेरा बडा नुकसान हुआ। लङ्का जल गयी। वह सभीत होकर यहाँ से भागा है, जो राय देगा कादरता ही की देगा। जिस राजा का मन्त्री कादर हो उसकी जीत हो ही नही सकती। विजय विभूति तो निर्भय का वरण करती हैं। वहाँ मालिक मन्त्री दोनो बेकाम हैं।

दूत को क्रोध तो रावण के हँसने पर ही आया था। अब खलता की बातें सुनकर क्रोध बढा। खल का लक्षण हो यह है कि वचन वज्र जेहि सदा पियारी। सहस नयन परदोष निहारा। सरकार की निन्दा के वचन वज्र से लगे। देखा कि यह बातो से मन को रिझा रहा है। यही समय पत्र देने का है। अत. उत्तर न देकर चिट्ठी निकाली और उसे बँचवाकर सुनाने के लिए कहता है। जिसमें सारी सभा सुन ले कि इस बात का यही उत्तर है।

रामानुज दीन्ही यह पाती। नाथ बँचाइ जुडावहु छाती॥
बिहँसि बाम कर लीन्ही रावन। सचिव बोलि सठ लाग बचावन॥५॥

अर्थ : रामजी के छोटे भाई ने यह चिट्ठी दी है। हे नाथ! इसे बँचवाकर छाती ठण्ढी कीजिये। रावण ने हँसकर उसे बायें हाथ से लिया और वह शठ मन्त्री को बुलाकर बँचवाने लगा।

व्याख्या : तासु अनुज काटे श्रुति नासा। सुनि तव भगिनि करहिं परिहासा। यहाँ रामानुज कहने से यही भाव है कि जिसने तुम्हारी बहन की नाक काटी है। रावण का क्रोध बढा हुआ है। इसीलिए जुडावहु छाती कहता है। अथवा आपके अनुज वहाँ पधारे तो उनके अनुज ने भी मेल के लिए चिट्ठी भेजी है। यह हृदय को शीतल करनेवाली बातें हैं।

लक्ष्मणजी ने कहा था : रावण कर दीजेउ यह पाती। सो उसने रावण के हाथ मे चिट्ठी दी। रावण हँसा कि समुद्र पार करने का कोई उपाय नही मिलता तब मेल करने चला है। वाम कर से लेना अनादर सूचक है। शठ है : मन्त्री से पढवाता है। जिसमे सब लोग सुनें कि उनका भाई भी डर गया है। समुद्र के व्यवधान से स्वय न आ सका तो मेरे दूत के हाथ से चिट्ठी भेजता है।

दो. बातन्ह मनहि रिझाइ सठ, जनि घालसि कुल खीस।
राम बिरोध न उबरसि, सरन बिष्नु अज ईस॥
की तजि[1] मान अनुज इव, प्रभुपद पंकज भृंग।
होइ कि राम सरानल, खल कुल सहित पतंग॥५६॥

अर्थ : रे खल! केवल बातो से मन को रिझाकर कुल का नाश न कर। तू रामजी से विरोध करके विष्णु ब्रह्मा और महेश का शरण ग्रहण करके भी नही

---

१. यहाँ विकल्प अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बच सकेगा। या तो अभिमान छोड़कर छोटे भाई की भाँति प्रभु के चरण कमलों का भ्रमर बन नही तो रे खल! रामजी के बाणरूपी आग मे परिवार सहित पतङ्ग हो।

व्याख्या : बातें बना बनाकर अपनी आत्मा को धोखा देना शठता की पराकाष्ठा है। इस दोष से तेरे कुल का सर्वनाश होगा। लक्ष्मणजी हनुमान्‌जी से सुन चुके हैं कि रावण ऐसी ही बातें किया करते हैं। अतः लिखकर चेतावनी देते हैं कि यह समय बातें बनाकर मन के रिझाने का नही है। तुम सबसे विरोध करके बच गये पर राम का विरोध कर बैठे अब नही बच सकते। केवल तुम्हारा ही नही सम्पूर्ण कुल का नाश उपस्थित है। यदि ब्रह्मा रुद्र का भरोसा हो तो उसे भी छोड़ो। दो की कौन कहे तीनो देव मिलकर भी तेरी रक्षा नही कर सकते। यथा : काहू बैठन कहा न ओही। राखि को सकै राम कर द्रोही।

अब तुम्हें दो गति है। भृङ्ग बनो या पतङ्ग बनो। यदि अभिमान नही छोड सकते तो कुल के सहित पतङ्ग बनोगे। यथा : निसिचर निकर पतंग सम रघुपति बान कृसानु। जननी हृदय धीर धरु जरे निसाचर जानु। आसक्त दानों हैं भृङ्ग भी और पतङ्ग भी। सो भृङ्ग आनन्द से रस लेते हैं और पतङ्ग काल के मुख मे पड़ते हैं। सो यथेच्छसि तथा कुरु : जैसी इच्छा हो वैसा करो।

**सुनत सभय मन मुख मुसुकाई। कहत दसानन सबहि सुनाई॥**
**भूमि परा कर गहत अकासा। लघु तापस कर बाग बिलासा॥१॥**

अर्थ : सुनते ही मन मे भय हुआ। पर मुख से मुसकुराता हुआ दशानन सबको सुनाकर कहने लगा कि भूमि पर तो गिरा हुआ है और आकाश पकडना है। यह छोटे तपस्वी की बातचीत है।

व्याख्या : समय विचारि पत्रिका काढी। सो समय की बात ऐसी बैठ गयी कि रावण भीतर से डर गया। बात सच्ची थी। रावण असली बात छिपाकर अपनी आत्मा को धोखा देता था। बड़ा अभिमानी है। फिर भी इस बार हँस न सका। नही तो हर एक बातों पर हँसता था। यथा : बिहँसि दसानन पूछी बाता। सुनत बचन बिहँसा दससीसा। बिहँसि बाम कर लीन्ही रावन। इस बार चेष्टा करने पर भी ओष्ठ विकास हुआ हृदय विकास न हो सका। यह मनस्यन्यत् वचस्यन्यत् कर्मण्यन्यत् दुरात्मनाम् का उदाहरण है। मनस्यन्यत् यथा : सुनत सभय मन कर्मण्यन्यत् यथा : मुख मुसुकाई और वचस्यन्यत् यथा : कहत दसानन सबहि सुनाई। सबके ऊपर अपनी निर्भयता का सिक्का जमाये रखना चाहता है। अतः सबको सुनाकर कहता है।

कोठे पर चढ़कर भी कोई आकाश नही पकड़ सकता। क्योंकि आकाश स्पर्श की वस्तु ही नही है। इसी भाँति सिंहासनासीन पुरुष भी मुझसे युद्ध करने मे समर्थ नही है। क्योंकि मैं सर्वथा अजेय हूँ और यह तो भूमि पर पड़ा है। राज्य से भी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पतित है निकाला हुआ है। आकाश की भाँति मुझ अजेय को युद्ध करने का भय दिखला रहा है। और सबसे बढ़कर बात यह है कि यह छोटे तपस्वी का वाग्विलास है। जिसे न कभी राज्याधिकार था न है। रावण सदा तपस्वियो को दाम्भिक ही समझते हैं। यथा : मिलि तपसिन्ह तें भएसि लबारा।

कह सुक नाथ सत्य सब बानी। समझहु छाडि प्रकृति अभिमानी॥
सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा। नाथ राम सन तजहु बिरोधा॥२॥

अर्थ : शुक ने कहा कि हे नाथ! यह सभी वाणी सत्य है। आप अभिमानी प्रकृति का परित्याग करके समझिये। हे नाथ मेरा वचन क्रोध छोड़कर सुनिये। रामजी से विरोध छोड़ दीजिये।

व्याख्या शुक ने कहा वाग्विलास नही अक्षरश: सत्य है। बात के समझने मे अभिमान बड़ा भारी बाधक है। राम गीता का उपदेश करते हुए रामजी ने इसी से लक्ष्मणजी से कहा : सुनहु तात मन मति चित लाई। अन्तःकरण चार हैं। मन बुद्धि चित्त और अहङ्कार। अत: रामजी ने कहा कि मन बुद्धि और चित्त लगाकर सुनो। अहङ्कार को स्थान मत दो नही तो बात समझ मे नही आवेगी। अत: दूत कहता है कि अभिमानी प्रकृति को दूर रखकर समझो तो बात समझ मे आ जावेगी। लक्ष्मणजी ने दूत से कहा था कि कहेहु मुखागर मूढ सन मम सदेस उदार। सीता देइ मिलहु नत आवा काल तुम्हार। इस सन्देश का निर्वाह दूत ने सत्य सब बाणी कहकर किया। जब सब सभा ने चिट्ठी सुन ली तब उसी बात के दोहराने की आवश्यकता न रह गयी।

दूत मानहु कहा क्रोध तजि तैसे से उपक्रम करके सुनहु बचन मम परिहरि क्रोधा से उपसहार करता है। जानता है कि अभिमानी है। शिक्षा सुनते ही क्रोध करेगा। अत भूमिका पूरी करके तब कहता है कि रामजी से विरोध छोड़ो। भाव यह कि वे किसी के विरोधी नही। तुमने नाहक उनसे विरोध कर रक्खा है। उनसे विरोध करने मे कल्याण नही है। देवता तुम्हारे वैरी थे। उनसे विरोध किया तो एक बात थी। रामजी तो किसी के वैरी नहीं।

अति कोमल रघुबीर सुभाऊ। जद्यपि अखिल लोक कर राऊ॥
मिलत कृपा तुम्ह पर प्रभु करिही। उर अपराध न एकउ धरिही॥३॥

अर्थ : रघुवीर का स्वभाव अखिल लोक के स्वामी होने पर भी अत्यन्त कोमल है। मिलते ही प्रभु तुम पर कृपा करेंगे और तुम्हारे एक अपराध को भी हृदय मे स्थान नही देंगे।

व्याख्या : भूमि परा कर गहत अकासा। नही वे अखिल लोक के नाथ हैं। मनुष्य ऐसे होते नही। प्रमाण देता है कि अखिल लोक के नाथ होने पर भी उनका स्वभाव अत्यन्त कोमल है। श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि। प्रभुता बधिर न

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


काहिं। जीव तो थोड़ी सी प्रभुता पाकर कठोर स्वभाववाला हो जाता है। उनमें जीवधर्म अहंमिति अभिमाना नही है।

वे मिलते ही कृपा करेंगे। तुम पर का भाव यह कि तुमने उनका कितना बड़ा अपराध किया है। सो ऐसा कोमल स्वभाव है कि विभीषण पर ही कृपा किया यह बात नहीं। तुम पर भी कृपा करेंगे। निःसन्देह तुमसे भगवदपराध तथा भागवतापराध असाधारण रूप से हो पड़े हैं। परन्तु तुम्हारे सब अपराध मिलकर भी उनकी दया से बड़े नही है। सब क्षमा हो जायगा।

जनकसुता रघुनाथहिं दीजे। एतना कहा मोर प्रभु कीजे॥
जब तेहि कहा देन बैदेही। चरन प्रहार कीन्ह सठ तेही॥४॥

अर्थ : जानकीजी रघुनाथजी को दे दीजिये। हे प्रभो! इतना मेरा कहा करिये। जब उसने जानकीजी को देने के लिए कहा तो उस शठ ने लात मारी।

व्याख्या : यावज्जीवन मैंने आपका कहा किया है। कोई बात सेवक की स्वामी भी मान जाता है। अतः इतना मेरा कहा कीजिये। भाव यह कि शत्रु के कहने से नहीं मेरी बात मानकर जानकीजी रघुनाथजी को दे दीजिये। ऐसी ही बात हनुमान्‌जी ने कही थी : मोरे कहे जानकी दीजै। विभीषण ने कहा : तात चरन गहि मागौं राखौ मोर दुलार। सीता देहु राम कहँ अहित न होइ तुम्हार।

जिस बात में राय नहीं पूछी जाती उसमें राय देने से रावण क्रुद्ध हो जाते हैं। रावण अपनी निजी बातो में राय नहीं चाहते। तिसपर सीता का देना तो वह कान से सुनना नही चाहते। इसी बात पर उन्होने विभीषण को लात मारा था। क्योकि शठ है विनय नही सुनता। यथा : सठ सन विनय कुटिल सन प्रीती। लात मारने का अर्थ ही यही है कि लङ्का से निकल जाओ। वध नही करता त्याग करता है।

नाइ चरन सिरु चला सो तहाँ। कृपासिंधु रघुनायक जहाँ॥
करि प्रनामु निज कथा सुनाई। रामकृपा आपनि गति पाई॥५॥

अर्थ : वह सिर नवाकर वहाँ चला जहाँ कृपासागर रघुनाथजी थे। प्रणाम करके उसने अपनी कथा सुनाई और रामजी की कृपा से अपनी गति को प्राप्त हुआ।

व्याख्या : रावन चरन सीस तिन्ह नाए से उपक्रम और नाइ चरन सिर से उपसंहार। विदा होने का प्रणाम है। विभीषणजी का ही रास्ता इसने भी पकड़ा। जिसे राम प्रेम होता है वह मोह दसकण्ठ की सभा से लात मारकर निकाला ही जाता है। क्रोधसिन्धु को छोड़कर कृपासिन्धु की शरण मे चला।

सरकार समुद्र तट पर दर्भ डसाए बैठे हुए हैं। वही पहुँचा प्रणाम किया और अपनी कथा कह चला कि किस भाँति रावण द्वारा दूत बनाकर रामदल

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



में भेजा गया। किस भाँति पकड़ा गया कैसे छूटा। किस भाँति लक्ष्मणजी की चिट्ठी लेकर गया और किस भाँति निकाला गया। और कहने लगा कि मैं अनन्य शरण हूँ। रावण के क्रोधपात्र की रक्षा कौन त्रिभुवन में कर सकता है अथवा मोह की सभा से निकाले जाने के कारण दिव्य ज्ञान हो गया। सो अपने शाप की कथा सुनाई। प्रभु मौन थे न बोले।

रिषि अगस्ति कीं साप भवानी। राक्षस भएउ रहा मुनि ग्यानी ॥
बंदि रामपद बारहिं बारा। मुनि निज आश्रम कहुँ पगु धारा ॥६॥

अर्थ : हे भवानी! वह ज्ञानी मुनि था। अगस्त्य ऋषि के शाप से राक्षस हो गया था। बार बार श्रीरामचन्द्र के चरणों को वन्दना करके वह मुनि अपने आश्रम को चला गया।

व्याख्या : आपनि गति पाई इस पद को कवि स्पष्ट करते हैं। पहिले मुनि ज्ञानी था। अगस्त्यजी के शाप से सद्यः राक्षस हो गया था। सो सरकार की कृपा से ब्रह्म शाप से विनिर्मुक्त होकर फिर जैसा का तैसा मुनि हो गया।

कृतज्ञता प्रकाशन के लिए बारम्बार वन्दना करता है। अब मुनि का जाना कहते हैं। यथा : गई पति लोक अनन्द भरी। इस भाँति यह भी अपने आश्रम को चला गया। जब तक यह राक्षस था तब तक उसका आश्रम सूना पड़ा था। ज्ञानीभक्त की बाधा सरकार दूर करते हैं। अतः ज्ञानघाट के वक्ता भवानी सम्बोधन करके अपने वक्ता को सावधान करते हैं। भक्त अवश्य होना चाहिए।

## सागरनिग्रह प्रसङ्ग

दो. विनय न मानत जलधि जड़, गए तीनि दिन बीति।
बोले राम सकोप तब, भय बिनु होइ न प्रीति ॥५७॥

अर्थ : जड़ समुद्र विनय नहीं मानता। तीन दिन बीत गये। रामजी क्रोध के साथ बोले कि बिना भय के प्रीति नहीं होती।

व्याख्या : विनय न मानत कहने का भाव यह कि विभीषणजी ने कहा था कि : प्रभु तुम्हार कुल गुरु जलधि कहिहि उपाय बिचारि। सो तीन दिन विनय करते बीत गये। सिन्धु के सिर पर जूँ न रेंगी। इसलिए उसे जड़ कह रहे हैं। विभीषणजी की सम्मति से काम न चला तब लक्ष्मणजी के सम्मति के अनुकूल कार्य किया। यथा : सोखिअ सिंधु करिय मन रोसा। अतः रामजी सकोप बोले। सिन्धु रावण के कृपापात्र थे। इन्हीं के कारण लङ्का अगम्य थी। रावण इन्हीं के लिए प्रीति युक्त वचन बोले थे। यथा : भयउ मृदुल चित सिन्धु बिचारा। सो ये बिना भय प्रेम न करेंगे। सुर नर मुनि सबकै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


सब प्रीती। जब कोई स्वार्थ नही है तब भय के अतिरिक्त अन्य उपाय भी नही है।

लछिमन बान सरासन आनू। सोखौं बारिधि बिसिख कृसानू ॥
सठ सन बिनय कुटिल सन प्रीती। सहज कृपिन सन सुदर नीती ॥१॥

अर्थ: हे लक्ष्मण! धनुष बाण लाओ। मैं अग्नि बाण से समुद्र सोख डालूँ। शठ से विनय कुटिल के साथ प्रीति और स्वभाव से जो कृपण हैं उससे सुन्दर नीति :

व्याख्या सरकार मुनिवृत्ति मे थे। इसलिए धनुष बाण लक्ष्मण के पास था। और लक्ष्मणजी स्वय पहरे पर थे तथा लक्ष्मणजी से जो कहा था कि ऐसेइ करब धरहु मन धीरा वही करने को प्रस्तुत हैं। अत लक्ष्मणजी से कहते हैं धनुष बाण लाओ। तूणीर नही मांगा क्योंकि : द्वि शर नाभिसन्धत्ते दो बार बाण चढाते नही। तब कौन सा बाण चाहिए। अत कहते हैं कि समुद्र सोखना है आग्नेयास्त्र की आवश्यकता है।

यह समुद्र शठ है। इसकी जड करणी है। इससे विनय करना ऊसर मे बीज वपन की भांति निष्फल है। यह कुटिल है। डुबोनेवाला है। इससे प्रीति कैसी? प्रीति सरल पुरुष से की जाती है। यह सहज कृपण है। लेना ही जानता है देना जानता ही नही। इससे सब नीतियो से सुन्दर नीति साम का प्रयोग निष्फल है। साम का पात्र उदार पुरुष है।

ममता रत सन ग्यान कहानी। अति लोभी सन बिरति बखानी ॥
क्रोधिहिं सम कामिहि हरि कथा। ऊसर बीज बए फल जथा ॥२॥

अर्थ: ममता मे फँसे हुए मनुष्य से ज्ञान की कथा अत्यन्त लोभी से वैराग्य का वर्णन क्रोधी से शम : शान्ति की बात और कामी से भगवान् की कथा ऊसर मे बीज बोने के समान निष्फल है।

व्याख्या . यह सिन्धु ममता रत है। जल पर इसकी बडी ममता है। सम्पूर्ण जल को नमकीन बनाये रहता है जिसमे कोई पी न सके। इसके लिए ज्ञान : समता का उपदेश कि जिस भांति बलवान् लघन करनेवालो को मार्ग देते हो उसी भांति निर्बल कपि भालु को भी मार्ग दो निष्फल है। यह रास्ते भर जमीन भी अपने अधिकार के बाहर नही किया चाहता। निर्लोभ पुरुष ही वैराग्य की महिमा को समझ सकता है।

यह समुद्र क्रोधी है। दिनरात गर्जन किया करता है। इससे शान्ति की कथा निष्फल है। यह कभी क्षीणकल्लोल नही हो सकता। बिना थपेडा दिये नही मान सकता। क्रोधरहित पुरुष ही शान्ति कथा का अधिकारी है। यह सिन्धु कामी है। सहस्रो नदियो का पति है। इसका चित्त विषय पराङ्मुख होकर भगवत् कथा मे नही लगता। अत इसके सामने हरिकथा निष्फल है। रावण वध होकर हरि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रामजी अथवा कपि की कथा पूर्ण हो। इस बात की रुचि इसे नही है। सन्त ही हरि कथा के सहायक होते हैं। इस भाँति सात अवगुणो को हरिभक्ति का बाधक तथा तद्विपरीत सात गुणो को साधक बतलाया। अथवा सठ सन विनय प्रसङ्ग प्राप्त है। शेष छ केवल उदाहरण हैं।

अस कहि रघुपति चाप चढावा। यह मत लछिमन के मन भावा ॥
संधानेउ प्रभु बिसिख कराला। उठी उदधि उर अंतर ज्वाला ॥३॥

अर्थ ऐसा कहकर श्रीरघुनाथजी ने धनुष चढाया। यह मत लक्ष्मणजी को पसन्द आया। प्रभु ने कराल बाण का सन्धान किया तो समुद्र के हृदय मे ज्वाला उठी।

व्याख्या : बोले राम से उपक्रम और अस कहि से वचन का उपसहार करते हैं। कहने मात्र की देर थी। लक्ष्मणजी ने धनुष तथा आग्नेयास्त्र ला दिया। ऊसर बीज बए फल जथा कहकर धनुष पर गुण आरोपित किया। पहिला मन्त्र लक्ष्मण को नही भाया था। इसलिए कहते हैं कि यह मत लछिमन के मन भावा।

इतने पर भी समुद्र ने कुछ ख्याल न किया। तब कालानल के सदृश बाण का सन्धान किया। छोडा नही। लक्ष्यमात्र के स्थिर करते ही समुद्र के हृदय मे ज्वाला उठी। आग या ऊपर से लगती है या नीचे से लगती है। यहाँ बीच मे आग उठी।

मकर उरग झख गन अकुलाने। जरत जंतु जलनिधि जब जाने ॥
कनक थार भरि मनि गन नाना। बिप्ररूप आएउ तजि माना ॥४॥

अर्थ : मगर सर्प तथा मछलियों के समूह व्याकुल हो उठे। जब समुद्र ने जीवो को जलते हुए जाना तब सोने के थाल मे मणियों को भरकर ब्राह्मण का रूप धारण किये हुए मान छोडकर आया।

व्याख्या : जल खौलने लगा। जलजन्तु विकल हो उठे। जब समुद्र ने जाना कि जो जलजन्तु बडवानल से नहीं जले इस ज्वाला से जल रहे हैं। सम्पूर्ण प्रजा का सहार उपस्थित है। भय देने की सीमा का अतिक्रमण हो चुका अब दण्डपात हुआ ही चाहता है।

भय बिनु होइ न प्रीति इस नीति का साफल्य दिखलाते हैं। उपहार की तैयारी हुई। रिक्तपाणि न पश्येत् राजानं भिषज गुरुम्। राजा वैद्य और गुरु का दर्शन खाली हाथ नही करना चाहिये। यह नीति है। और मै रत्नाकार हैं अत सोने का थाल भरकर मणि लिये हुए आये। बाण छूट न जाय इसलिए विप्ररूप धारण किया। प्रभु ब्रह्मण्य देव हैं। ब्राह्मण पर अस्त्र न छोडेंगे। जिसकी विभूति है उन्ही से मान किये बैठे थे। उसे छोडकर आये। इसपर कवि की उक्ति है कि

दो. काटेहि पै कदली फरै, कोटि जतन कोउ सींच।
बिनय न मान खगेस सुनु, डाटेहि पइ नव नीच ॥५८॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

'। स्नहो
रा राक
स्नड्ड स्न

। ॥
॥३॥
न्तो
। में
;



अर्थ : हे गरुड़ ! सुनो । काटने पर केला फलता है । चाह
करके सीचे । नीच विनय से नही मानता । वह डाटने से ही झुकत

व्याख्या : जल की सदा नीच गति होती है । इसलिए समु
और है भी समुद्र संसार भर से नीचा । इसीलिए ऊँचाई की नाप
जाती है । नीच विनती करने से और भी आसमान पर चढ जाता ह
ने यहाँ नीच की परिभाषा दे दी । नीच से विनती करते जाइये वह
मानो उसे श्रवणेन्द्रिय है ही नही । और जहाँ उसने किसी पुरुषार्थ
सुना तहाँ उसके सामने पानी पानी हो जाता है । यथा : फला हुअ
फल नही देता । कितना ही सीचिये कोई नतीजा नही । उसका एक
काट डालना है । कट जाने पर वह फिर फल देता है । कदली को भी
नीच कहा । भुसुण्डिजी ने गरुड से कहा कि आप तो समुद्र का हाल ज
जब आपने डांटा तब उसने टिट्टिभ का अंडा दे दिया । नही तो टिट्टि
कितना आर्त्तनाद करती रही । पक्षी समाज ने कितना प्रयत्न किया
निष्फल गये । महाभारते ।

सभय सिंधु गहि पद प्रभु केरे । छमहु नाथ सब अवगुन मे
गगन समीर अनल जल धरनी । इन्हकइ नाथ सहज जड़ करनी

अर्थ . समुद्र ने सभीत होकर प्रभु का चरण पकड़कर कहा : हे नाथ
सब अवगुण क्षमा करो । हे नाथ । आकाश वायु अग्नि जल और पृथ्वी इन
करणी स्वभाव से ही जड़ है ।

व्याख्या . भय विनु होइ न प्रीति सो भय से प्रीति हुई । समुद्र ने आकर
पकड़ लिया । सात अवगुण जो सरकार ने कहा था उन सबको स्वीकार
क्षमा चाहता है । और भी जो अवगुण हैं जिसका पता पीछे से चलेगा उ
लिए भी क्षमा चाह रहा है ।

पञ्च महाभूत यद्यपि चेतन है पर इनकी करणी स्वभाव से ही जड़ है
सदा जड की भाँति वर्तते हैं । ये पञ्च महाभूत विवेक से काम नही लेते । केवल
ही नही चार और भी ऐसे हैं जिनसे मैं उत्पन्न हूँ : अग्नि और जो मुझसे उत्पन्न
है : पृथिवी सब ऐसे ही हैं : आकाशाद्वायु । वायोरग्निः अग्नेराप.। अद्भ्य
पृथिवी ।

तव प्रेरित माया उपजाए । सृष्टि हेतु सब ग्रंथनि गाए ॥
प्रभु आयसु जेहि कहँ जो अहई । सो तेहि भाँति रहे सुख लहई ॥२॥

अर्थ : तुम्हारी प्रेरणा से माया ने इन्हे सृष्टि के लिए उत्पन्न किया है । सब
ग्रन्थो ने ऐसा ही वर्णन किया है । जिसके लिए प्रभु की जैसी आज्ञा है वह उसी
भाँति रहने मे सुख पाता है ।

व्याख्या : जड़ता का कारण कहते हैं ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जड है। प्रेरणा सरकारी : चेतन की। हमारी उत्पत्ति ही सृष्टि के लिए है इस बात मे किसी शास्त्र का मतभेद नही है। यदि कहिए कि तुम चेतन होकर अपनी करणी जड सी क्यो बनाये हो ? तो इसपर कहते हैं कि मेरे लिए सरकारी आज्ञा ही ऐसो है। इसीलिए यह हमारा धर्म है। हम साधु असाधु दोनो को शीतलता पहुँचाते हैं। दोनो को डुबाते हैं। इससे विपरीत करना मेरे अधिकार के बाहर की बात है। इसी भाँति रहने मे मुझे सुख है। यही मेरा स्वभाव है। प्रभु की आज्ञा ही धर्म है चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म । अत अपने धर्मानुसार चलने मे ही सुख है।

*प्रभु भल कीन्ह मोहि सिख दीन्ही। मरजादा पुनि तुम्हरिअ कीन्ही ॥*
**ढोल गंवार सूद्र पसु नारी। सकल ताडना के अधिकारी ॥३॥**

अर्थ प्रभु ने अच्छा ही किया जो मुझे शिक्षा दी। परन्तु मर्यादा भी आपकी ही बनाई हुई है। ढोल गँवार शूद्र पशु और स्त्री ये सब दण्ड के अधिकारी हैं।

व्याख्या यद्यपि स्थूल दृष्टि से मेरा दोष नही प्रतीत होता पर वस्तुत मै दोषी हूँ। सरकार ने मुझे भय दिखलाया सो बहुत ही अच्छा किया। इससे मेरा बडा कल्याण होगा। आपकी बनाई हुई मर्यादा है। आपको अधिकार है कि उसे हटाकर दूसरी मर्यादा स्थापन करें। जब आपने पहिली बार मार्ग माँगा तभी मुझे हाजिर हो जाना चाहिए था।

चार दण्ड के अधिकारी है। इसमे ढोल को पहिले कहा। यही चौपाई लगने की किल्ली है। जिस भाँति हिसाब से ढीला पड जाने से ठीक काम न देने से ढोल को ठोक ठाँककर ठीक कर लेते है इसी भाँति गँवार शूद्र पशु और नारी का भी ठोक ठाँक उनके सुधार की दृष्टि से होना चाहिए। नही तो ये ढोल की भाँति ढीला पडकर बेकार हो जाते है। विशेषता यह है कि ताडन[1] का अधिकार तीन रात्रि उपवास के बाद प्राप्त होता है। अर्थात् जब सुधार के सब उपाय करके हार जाय तो इस मात्रा से दण्ड दें। जिससे वह कार्य लायक हो जाय। यहाँ ताडन का अर्थ शिक्षा देना है। यथा दशवर्षाणि ताडयेत्। दण्ड का अर्थ लाठी लकर पीटना ही नही है वाग्दण्ड भी दण्ड है। श्रीरामचरितमानस मे कही स्त्रियो के शारीरिक दण्ड का उदाहरण नही है। कूबरी और सूर्पणखा ऐसी स्त्रियाँ नि सन्देह

---

१ शास्त्र स्त्री-स्वातन्त्र्य का पक्षपाती नही है। उनको पिता पति और पुत्र के वशवर्ती रहने की आज्ञा है। उनका शरीर सघटन भी ऐसा है कि उनके शील की रक्षा के लिए दूसरे की आवश्यकता है। सत्य से आँख मीचना उचित नही। पति परिस्थिति विशेष मे ताडन कर सकता है। इसमे वेद प्रमाण है सा चेदस्मै न दद्यात् काममेनामवक्रीणीयात् सा चेदस्मै नैव दद्यात् काममेना यष्ट्या वा पाणिनावोपहत्यातिक्रामेमदिन्द्रियेण ते यशसा यश आदद इत्ययशा एव भवति। वृ छ ब्रा ७। दण्ड एवहि मूर्खाणा सन्मार्गप्रापक प्रभो। अध्यात्मरामायणे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


शारीरिक दण्ड की भागिनी थी। समुद्र ने अपनी गणना गँवारो मे किया। यदि चतुर होते तो पहिले ही उपस्थित हो जाते।

प्रभुप्रताप मैं जाब सुखाई। उतरिहि कटकु न मोरि बड़ाई ॥
प्रभु अग्या अपेल श्रुति गाई। करउँ सो वेगि जो तुम्हहि सोहाई ॥४॥

अर्थ : प्रभु के प्रताप से मैं सूख जाऊँगा। सेना पार हो जायगी। पर मेरी बडाई : सरसामस्मि सागरः न रह जायगी। वेद कहते हैं कि प्रभु की आज्ञा अपेल है। अतः तुरन्त वही करिये जो आपको अच्छा लगे।

व्याख्या : आग्नेयास्त्र से मैं नही सूख सकता। कितनो के पास आग्नेयास्त्र है पर कोई सुखा न सका। मैं सरकार के प्रताप से निःसन्देह सूख जाऊँगा और ऐसा सूख जाऊँगा कि सेना पैदल पार चली जायगी। पर सरकार तो दासो को बड़ाई देनेवाले हैं। श्रीमुख से कहा है कि सरो मे मैं सागर हूँ। सो मेरी बडाई जाती रहेगी।

रामरजाइ मेटि मन माँही। देखा सुना कतहुँ कोउ नाही। अत निग्रहानुग्रह जो हो मैं प्रस्तुत हूँ। सरकार बाण सन्धान करके रोके हुए हैं सो इतना कष्ट न सहे। जो उचित हो शीघ्र करें। जिसमे सरकार को कष्ट न हो अथवा हृदय की ज्वाला सहने मे असमर्थ हैं। अत. शीघ्रता के लिए अनुरोध करता है अथवा देर होने मे मेरी प्रजा सब मर जायगी।

दो. सुनत बिनीत बचन अति, कह कृपाल मुसुकाइ।
जेहि बिधि उतरै कपि कटकु, तात सो कहहु उपाइ ॥५९॥

अर्थ : अति विनीत वचन सुनकर कृपाल ने मुसुकराकर कहा। हे तात! जिस प्रकार बानरी सेना पार उतर जाय। हे तात! वह उपाय बतलाओ।

व्याख्या : गुन तुम्हार समुझइ निज दोसा। जेहि सब भाँति तुम्हार भरोसा। ऐसे ही पुरुष विनीत वचन कहने मे समर्थ हैं। प्रभु कृपाल हैं। तुरन्त दया आगयी। मुसकुरा पडे। भाव यह कि मैं तो उपाय बतलाने के लिए विनय कर रहा हूँ। मर्यादा भङ्ग चाहता तो विनय क्यो करता। जिसने तीन दिन तक विनय करने पर न माना उसके विनय पर तुरन्त दया किया। इसलिए कृपालु कहते हैं। मुसकुराने का भाव यह कि मेरी तो बानरी सेना है। यह तो नाव पर भी नही उतर सकती है। जिस नाव पर बन्दर रहे उसे बिना डुबाये नही छोड़ते। विभीषणजी ने भी उपाय के लिए ही सम्मति दी थी। यथा : प्रभु तुम्हार कुलगुरु जलधि कहिहि उपाय बिचारि।

नाथ नील नल कपि द्वौ भाई। लरिकाई रिषि आसिष पाई ॥
तिनके परस किएँ गिरि भारे। तरिहहिं जलधि प्रताप तुम्हारे ॥१॥

अर्थ : हे नाथ! नील और नल दोनो वानर भाइयो ने बचपन मे ऋषि से

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



आशीर्वाद पाया था। उनके स्पर्श करने से भारी भारी पहाड भी आप के प्रताप से समुद्र तर जायँगे।

व्याख्या : समुद्र ने कहा कि जिनके छूने से पहाड समुद्र तरेंगे वे दोनो भाई तो आपके सेना मे ही हैं। उनके नाम हैं नल और नील। ये दोनो बन्दर बचपन मे किसी ऋषि की पाषाणमयी वस्तु जल मे फेंक देते थे। ऋषिजी को इससे कष्ट होता था। परन्तु ऋषिजी को उन बन्दरो पर क्रोध न हुआ। उन्हे आशीर्वाद दे दिया कि इनके फेंके हुए पाषाण जल मे न डूबें।

उनका आशीर्वाद तो अपनी वस्तुओं की रक्षा के लिए था। अब उसी आशीर्वाद के सहारे काम होगा। सरकार के प्रताप से उसी गुण का उत्कर्ष बहुत बढ ज यगा। उनके छूने से बडे बडे पर्वत तरने लगेंगे। भाव यह कि जिस प्रताप के बल से आग्नेयास्त्र द्वारा मेरा शोषण होता था वही प्रताप नल नील को निमित्त बनाकर कार्य करेगा।

मै पुनि उर धरि प्रभु प्रभुताई। करिहौ बल अनुमान सहाई ॥
एहि विधि नाथ पयोधि बँधाइअ। जेहि यह सुजसु लोक तिहु गाइअ ॥२॥

अर्थ : मैं भी प्रभु की प्रभुता को हृदय मे धारण करके यावच्छक्य सहायता करूँगा। हे नाथ! इस प्रकार से समुद्र बँधाइये जिससे यह सुयश तीनो लोक मे गाया जाय।

व्याख्या : उपाय बतलाकर ही चुप न रह जाऊँगा यथाशक्ति सहायता भी करूँगा। जड होने से नियमो से अत्यन्त नियन्त्रित हूँ। फिर भी प्रवाहादि द्वारा बालू रेत आदि इकट्ठा करके पर्वतो को स्थिर करूँगा। धारण करूँगा। प्रभु की प्रभुताई को हृदय मे धारण करने से सहायतानुकूल सामर्थ्य का प्रादुर्भाव होगा।

जेहि विधि उतरै कपि कटकु का उत्तर देते हुए कहते है कि बिना पुल के यह सेना पार नही हो सकती और पुल बांधने की विधि यही है। सरकार यशोधन है। सो यश की भी वृद्धि होगी। जगत् मे आज तक कोई समुद्र पर पुल न बाँध सका। इससे तीनो लोक का कल्याण होगा। सब इस सुयश का गान करके बिना नौका आदि के ही भवसिन्धु तर जायेंगे।

एहिं सर मम उत्तर [1]तट बासी। हतहु नाथ खल नर अघरासी ॥
सुनि कृपाल सागर मन पीरा। तुरतहिं हरी राम रनधीरा ॥३॥

अर्थ : इस बाण से मेरे उत्तर तट के रहनेवालो का वध कीजिये। हे नाथ! वे मनुष्य पाप की राशि हैं। रणधीर कृपाल रामजी ने समुद्र के मन की पीड़ा सुनकर तुरन्त हरण कर ली।

---

१ द्रुमकुल्यनिवासी आभीर।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या सत्यसन्ध हैं। शर सन्धान कर चुके अब उसके लिए लक्ष्य बतलाना चाहिए। वह खाली नहीं जा सकता। अत कहते हैं कि मेरे उत्तर तट के रहनेवाले पापमय हैं। उनका वध कीजिये। क्योंकि पापियों का वध उनके कल्याण का कारण होता है। जिस भाँति पापियों का पाप पृथ्वी नहीं सह सकती उसी भाँति तटवासियों का पाप तीर्थ नहीं सह सकता।

कृपाल ने केवल अपराध ही नहीं क्षमा किया चिरस्थायिनी पीडा भी हरन की। उस शर को चलाकर उन पापियों का वध किया। इतना नहीं वह स्थल मरुभूमि हो गया। उसे ढोलढमक्का कहते हैं। वहाँ आज भी सरकार के शर की पूजा होती है। सरकार किसी का वध नहीं करते। वे सज्जनों की पीडा हरण करते हैं। उसी पीडा हरण मे खलों की मृत्यु होती है। उन्हे स्वय किसी का वध इष्ट नही है। रणधीर शब्द से शर प्रक्षेप का पाण्डित्य कहा। कृपाल है तुरन्त पीडा हर ली। समुद्र ने तुरन्त ही पीडा निवृत्ति अनुभव की।

देखि राम बल पौरुष भारी। हरखि पयोनिधि भएउ सुखारी॥
सकल चरित कहि प्रभुहि सुनावा। चरन बंदि पाथोधि सिधावा॥३॥

अर्थ श्रीरामजी का भारी बल और पौरुष देखकर समुद्र हर्षित होकर सुखी हो गये। सब चरित्र प्रभु को कह सुनाया और चरण वन्दना करके समुद्र घर गये।

व्याख्या सैकडो कोस पर बाण प्रक्षेप करना बल है। इतनी दूर जाकर बाण ने महा पुरुषार्थ दिखलाया। यह पौरुष है अथवा बल से अस्त्रबल तथा पौरुष से शारीरिक बल कहा।

इस समय सरकार लङ्का पर धावा करने चल हैं। यह अवसर उत्तर तट वासी के वध के लिए प्रार्थना करने का नहीं है और लौटते समय भरत मिलन की शीघ्रता मे रहेंगे। और फिर मुझे कब समय मिलेगा इसका क्या ठिकाना? उपाय कहने के बदले भी उत्तर तटवासियों के वध की प्रार्थना अनुपयुक्त थी। अत मैंने इतनी अवज्ञा की कि सरकार शर सन्धान करें। शरसन्धान होने पर शरण आया। अब उसी शर से उन खलों का वध हुआ। सरकारी प्रतिज्ञा है। मम प्रण सरनागत भयहारी। अत भयहरण द्वारा सरकारी प्रतिज्ञा की भी पूर्ति हो गयी। यह अपना चरित्र समुद्र ने सुना दिया। इसका सुनाना आवश्यक था। भगवत् शरण मे मद मोह कपट छल का परित्याग अपरिहार्य है।

छ निज भवन गवनेउ सिंधु श्रीरघुपतिहि यह मत भाएऊ।
येह चरित कलि मलहर जथामति दास तुलसी गाएऊ॥
सुख भवन संसय समन दवन बिषाद रघुपति गुन गना।
तजि सकल आस भरोस गावहि सुनहि संतत सठ मना॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ समुद्र अपने घर चला गया। श्रीरघुनाथजी को यह मत अच्छा लगा। इस कलिमल के हरण करनेवाल चरित्र को यथाबुद्धि तुलसीदास ने गान किया है। रघुनाथजी के गुण समूह सुख के धाम सन्देह के नाश करनेवाले और विषाद के दमन करनेवाले हैं। रे शठ मन! तू ससार की सब आशा भरोसा छोडकर निरन्तर इन गुणसमूह का गानकर और सुन।

व्याख्या सिन्धु जलराशि के अधिष्ठात्री देवता हैं। अत उनका घर जाना कहते है। सुयश वाला मन्त्र प्रिय लगा। अत श्रीरघुपति कहते हैं कि अविद्या की तीन शक्तियाँ हैं १ मल २ आवरण और ३ विक्षेप। सो मल के विषय मे पहिले ही कह आये हैं। यथा यह चरित कलिमल हर दमन विषाद कहकर आवरण शक्ति का नाश कहा और सशय शमन कहकर विक्षेप शक्ति का नाश कहा और सुखभवन कहकर परमानन्द की प्राप्ति कहा। सासारिक आशा भरोसा छोडकर गान करने का विधान है।

दो सकल सुमगल दायक, रघुनायक गुनगान।
सादर सुनहिं ते तरहिं भव, सिंधु बिना जलयान ॥६०॥

अथ श्रीरघुनाथजी का गुणगान सभी सुन्दर मङ्गलो का देनेवाला है। जो इसे आदर सहित सुनेगे वे बिना किसी जहाज के भवसागर को तर जायँगे।

व्याख्या प्रेय श्रेयदायक अथवा सकल धम के फल का देनेवाला रामजी का गुणग्राम है। अत बिना वेद के भी सादर सुननेवाला भवसागर तर जाता है। क्योकि वेद ही जलयान माना गया है बदउँ चारिउ वेद भव वारिधि बोहित सरिस। जिनहिं न सपनेहुँ खेद बरनत रघुबर बिसद जस। रघुबर यश साक्षात् वेदावतार है वद प्राचेतसादासीत् साक्षाद् रामायणात्मना। वेद की प्राप्ति न होने पर भी वेदावतार से काम निकल जाता है।

शुभम्।

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वसने
विमलज्ञानसम्पादनो नाम पञ्चम सोपान।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

श्रीराम

श्रीगणेशाय नमः । श्रीगुरवे नमः

# श्रीरामचरितमानस

## लंकाकाण्ड : षष्ठ सोपान

## सटीक

### मङ्गलाचरण

दो. लव निमेष परवानु जुग, बरष कलप सर चंड ।
भजसि न मन तेहि राम कहुँ, काल जासु कोदंड ॥

अर्थ : हे मन ! तू उस राम को क्यो नही भजता जिसका धनुष काल है और लव निमेष परमाणु युग वर्ष और कल्प जिसके तीखे भयानक बाण हैं ।

व्याख्या : काल के सबसे छोटे अश को परमाणु कहते है । कमल के पत्ते को सूई से छेदने मे जो समय लगता है लव कहलाता है और ये लवो का एक निमेष होता है । ये ही काल के सूक्ष्मातिसूक्ष्म अवयव हैं । सत्य त्रेता आदि युग हैं । प्रभव आदि वर्ष हैं । ब्राह्मादि कल्प हैं । ये काल के बडे बड़े विभाग है । इन्ही से आयु की इयत्ता नापी जाती है । प्राणी की क्षुद्रता और महत्ता के तारतम्यानुसार उनकी आयु को इयत्ता का भी तारतम्य है । कितने जीव इतने क्षुद्र हैं कि उनकी आयु की इयत्ता का नाप परमाणु से होता है । किसी का लव से होता है । किसी का निमेष से होता है । देवता आदि ऐसे महान् जीव है कि उनकी आयु की इयत्ता युग से नापी जाती है । जैसे इन्द्र की आयु लगभग बहत्तर चतुर्युगी है । मनुष्यो की आयु की इयत्ता वर्ष से नापी जाती है । ब्रह्मदेव की आयु की इयत्ता कल्प से नापी जाती है ।

मनुष्य का एक वर्ष देवताओ का एक दिन होता है । इस हिसाब से देवताओ के हजार वर्ष की एक चतुर्युगी होता है । ४०० वर्ष का सत्ययुग, ३०० वर्ष का त्रेता, २०० वर्ष का द्वापर और १०० वर्ष का कलियुग होता है । १००० चतुर्युगी का एक कल्प होता है ।

ये ही खण्ड काल रामजी के अमोघ बाण हैं । इनमे कोई बच नही सकता । जो उत्पन्न हुआ है वह एक न एक दिन अवश्य मरेगा । ब्रह्मा से लेकर स्तम्ब

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अति सूक्ष्म जीव तक खण्ड काल के वशीभूत हैं। यथा अग जग जीव नाग नर देवा। नाथ सकल जगु काल कलेवा।

खण्ड काल से अतिरिक्त एक अखण्ड दण्डायमान काल है जो इन खण्ड कालो का प्रेरक है। वह रामजी के हाथ का धनुष है। गोस्वामीजी अपने मनको समझाते हैं कि तू ऐसे समर्थ राम को क्यो नही भजता। जिसकी कृपा से ही काल के अधिकार का अतिक्रमण हो सकता है। जब तक काल का अधिकार बना है तब तक ससार से छुट्टी नही।

इस काण्ड को श्री गोस्वामीजी ने दोहे से ही प्रारम्भ किया। श्री गोस्वामीजी मे यह विचित्रता है कि ये महात्मा किसी नियम को निभने नहीं देते। अत श्लोक से प्रारम्भ करने के नियम को लङ्काकाण्ड मे निभने नही दिया। हिन्दी मे मङ्गलाचरण पहले किया और उसके पीछे सस्कृत म मङ्गलाचरण किया। आरण्य सुन्दर और उत्तर इन तीन काण्डो मे हिन्दी म मङ्गलाचरण ही नही है। बाल अयोध्या और किष्किन्धा इन तीन काण्डो म सस्कृत म मङ्गलाचरण पहिले और हिन्दी मे पीछे से मङ्गलाचरण किया। और भी बहुत से स्थल दिखाये जा सकते हैं जिनसे यही सिद्ध होता है कि कवि जानबूझकर क्रम नही निभने देते।

दूसरी बात यह है कि लङ्काकाण्ड की कथा म राम के न भजनेवालो को दण्ड मिलता है। यथा काहुहि लात चपेटन्हि केहू। भजेहु न रामहि सो फल लहू। अत गोस्वामीजी मङ्गलाचरण करने के पहिल ही अपने मनको रामभजन के लिए समझा रहे हैं। प्रबोध दे रहे हैं कि कही दण्डभागी न हो जाय और प्रबोध मातृभाषा मे ही ठीक बनता है। यथा भाषा बद्ध करब मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई।

श्लो रामं[1] कामारिसेव्य भवभयहरण कालमत्तेभसिंह  
योगीन्द्र ज्ञानगम्य गुणनिधिमजित निर्गुण निर्विकार।  
मायातीत सुरेश खलबधनिरत ब्रह्मवृदैकदेव  
वदे कदावदात सरसिजनयन देवमुर्वीशरूप ॥१॥

अर्थ कामारि से सेवित ससार के भय को हरण करनेवाल कालरूपी मतवाले हाथी के लिए सिंह योगेश्वर ज्ञान से प्राप्य गुणो के भण्डार अजित निर्गुण निर्विकार माया से परे देवताओ के स्वामी दुष्टो के वध मे लगे हुए ब्राह्मण समूह के एकमात्र देवता मेघ के समान सुन्दर कमल से नेत्रवाल पृथ्वीपति रूप देवता राम की मैं वन्दना करता हूँ।

व्याख्या : यहाँ राम के सोलह विशेषण हुए है। भाव यह कि षोडशकल पुरुष हैं। पूर्णावतार हैं। काम से बलवान् हैं। रावणादिक ने सब देवताओं को वश

---

१, यह स्रग्धरा छन्द है। इसमे २१ अक्षरो का एक पाद होता है। इसमे एक मगण एक रगण एक भगण एक नगण और तीन यगण होते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


कर रक्खा था। पर वह भी काम का दासानुदास था। उस काम के भी नाश करनेवाले भगवान् रुद्र भी जिसकी सेवा करते हैं उससे बड़ा और कौन हो सकता है। संसार का भय जन्म मरण जिसका लक्षण है जो किसी का छुड़ाया नही छूटता। यदि राम छुड़ावें तभी छूटे। यथा :

साधक सिद्ध विमुक्त उदासी। कवि कोविद कृतज्ञ सन्यासी॥
जोगी सूर सुतापस ग्यानी। धर्म निरत पंडित विग्यानी॥
तरहिं न बिनु सेए मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी॥

उसके हरण करनेवाले हैं। काल रूपी मतवाल हाथी के लिए सिंह हैं। यथा

जाके डर अति काल डराई। जो सुर असुर चराचर खाई॥

रामजी तो सच्चिदानन्द दिनेश है तब उनमे हरणादि क्रिया तथा सिंहादि के गुणो का होना कैसे बनेगा ? इसके उत्तर मे कहते हैं कि वे योगीन्द्र है। भगद्गीता म कहते हे मया ततमिदं सर्वं जगदव्यक्तमूर्तिना। मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाहं तेष्ववस्थित। न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्। मेरी अव्यक्त मूर्ति से यह सब संसार व्याप्त है। ये सब भूत मेरे मे हैं। मैं उनमे नही हूँ। फिर भी ये भूत मेरे म नही हैं हे अर्जुन! मेरे ऐश्वर योग को देख। अर्थात् महायोगेश्वर मे सब कुछ सम्भव है। वे प्रभु ज्ञान से पाये जा सकते हैं। यथा वेदान्ते सुप्रतिष्ठाऽहं वेदान्तं समुपाश्रय। मुक्तिकोपनिषद् मे स्वयं भगवान् ने अञ्जनीनन्दन से कहा कि हे हनुमान्‌जी! मैं वेदान्त म सुप्रतिष्ठित हूँ। तुम वेदान्त का समाश्रयण करो। श्री गोस्वामीजी स्वयं कहते हैं वेदान्तवेद्यं विभुम्। श्रीरामजी निर्गुण होने पर भी गुणनिधि हैं। क्योंकि सर्वाधिष्ठान हैं। निरतिशय उत्कर्ष होने से अजित हैं। यथा जीति को सकै अजय रघुराई। एकरस होने से निर्विकार हैं। क्योंकि माया से परे निर्माय हैं। यथा रवि सनमुख तम कबहुँ कि जाही। सुरेश कहकर दैवी सम्पत् वालो का रक्षक कहा खलबधनिरत कहकर अवतार कहा। तथा हम छत्री मृगया वन करही। तुमसे खल मृग खोजत फिरही। ब्रह्मवृन्दैकदेव कहकर सूर्यरूप कहा क्योंकि कुर्यादन्य नवा कुर्यात् मैत्रो ब्राह्मण उच्यते। और कुछ करे या न करे सूर्यभक्त को ब्राह्मण कहते हैं। बृहत्पाराशर मे श्रीरामचन्द्र को सूर्य का और श्रीकृष्ण को चन्द्र का अवतार कहा है। कन्दावदात कहकर नीलनीरद वर्ण कहा सरसिज नयन कहकर शोकविमोचन कहा। यथा

मामवलोकय पंकजलोचन। कृपा बिलोकनि सोक बिमोचन॥

और देवमुर्वीशरूप कहकर रामवतार की वन्दना कर रहे हैं।

इस श्लोक द्वारा पूरे लङ्काकाण्ड की कथाओ के प्रतीक भी दे दिये। कामारि सेव्यो यस्य स कामारि। बहुव्रीहिसमास से अर्थ निकलेगा कि कामारि सेव्य हैं जिसके। इस भाँति रामजी के द्वारा रामेश्वर की स्थापना द्योतित की। भवभयहरण से सेतुबन्ध लक्षित किया। यथा मम कृत सेतु जे दरसन करही। सो बिनु श्रम भवसागर तरही। कालमत्तेभसिंह आदि आठ विशेषण कहकर मन्दोदरी का समझाना

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इङ्गित किया। यथा : अति बल मधुकैटभ जेहि मारे। महावीर दितिसुत संहारे। जेहि बल बाँधि सहसभुज मारा। सोइ अवतरेउ हरन महिभारा। तासु विरोध न कीजिअ नाथा। काल कर्म जिव जाके हाथा। इससे काल का भी नियन्ता कहा : तासु भजन कीजिअ तहँ भरता। जो करता पालक संहरता। इससे योगीन्द्र कहा : सोइ रघुबीर प्रनत अनुरागी। भजहु नाथ ममता सब त्यागी। इससे ज्ञानगम्य कहा। मुनिवर जतन करहिं जेहि लागी। भूप राजु तजि होहिं बिरागी। सोइ कोसलाधीस रघुराया। आयेउ करन तोहि पर दाया। इससे गुणनिधि कहा। पिय तुम ताहि जितव संग्रामा। जाके दूर केर यह कामा। इससे अजित कहा। तेहि कहँ पिय पुनि पुनि नर कहहू। मुधा मान ममता मद वहहू। इससे निर्गुण निर्विकार तथा मायातीत कहा। सुरेश और खलवधनिरत इन दो विशेषणों से देवताओं की रक्षा के लिए रावणादि निशाचरों का वध द्योतित किया। यथा : जब जब नाथ सुरन्ह दुख पायो। नाना तनु धरि तुम्हहिं नसायो। ब्रह्मवृंदैकदेव कहकर ब्रह्मादिक कृत स्तुति लक्षित की। कन्दावदात तथा सरजिसनयन कहकर श्रीरामजी की समराङ्गण की शोभा द्योतित की। सिर जटा मुकुट प्रसून बिच बिच अति मनोहर राजही। जनु नीलगिरि पर तड़ित पटल समेत उड़गन भ्राजही। कृपादृष्टि करि वृष्टि प्रभु अभय किये सुरवृन्द। भालु कीस सब हरखे जय सुखधाम मुकुंद। देशमुर्वीशरूपम् कहकर श्रीरामजी का अपने राज्य पर लौटना दिखलाया। यथा : मन महुँ विप्र चरन सिर नाये। उत्तर दिसिहि बिमान चलाये।

श्लो. [1]शंखेन्द्वाभमतीवसुन्दरतनुं शार्दूलचर्माम्बरं
कालव्यालकरालभूषणधरं गंगाशशांकप्रियं।
काशीशं कलिकल्मषौघशमनं कल्याणकल्पद्रुमं
नौमीड्यं गिरिजापतिं गुणनिधिं कन्दर्पहं शंकरं ॥२॥

अर्थ : शङ्ख तथा चन्द्रमा के समान आभायुक्त अत्यन्त सुन्दर शरीरवाले सिंह के चर्म का कपड़ा पहने हुए कालसर्प का भयानक गहना पहने हुए गङ्गा और चन्द्रमा से प्रीति रखनेवाले काशीपति कलियुग के पापों के समूह को नष्ट करनेवाले कल्याण के कल्पवृक्ष पार्वती के पति गुण के निधान काम के शत्रु पूज्य शङ्करजी को मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : शङ्ख से श्वेत रङ्ग तथा कठोरता कहा। इन्दु से चमक तथा आह्लादकत्व कहा। श्याम रङ्ग में अतीव सुन्दर रामजी और श्वेत रङ्ग में अतीव सुन्दर शङ्करजी हैं। शार्दूलचर्माम्बर से क्रोध का जय कहा। कालव्यालकराल-भूषणधर से सर्वाभिभावक कहा। गङ्गाशशाङ्कप्रिय से पापताप का नाशक कहा। काशीश कहने से मोक्षदायक कहा। कलिकल्मषौघशमन कहकर काल के प्रभाव

---

१. यह शार्दूलविक्रीडित छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


का मिटानेवाला कहा। कल्याणकल्पद्रुम कहकर सर्वाभीष्टप्रद कहा। ईड्य से जगद्वन्द्य और गिरिजापति से मायापति द्योतित किया। गुणनिधि कहकर भजनीय होना कहा। काम का शत्रु कहकर भगवच्चरणारविन्दो मे अगाध प्रेम दिखलाया अथवा अमोघ सामर्थ्य सूचित किया। ऐसे गुणवाले महादेव को श्री ग्रन्थकार प्रणाम करते हैं।

सुन्दरकाण्ड मे भगवान् रुद्र हनुमान्जी के रूप से सेवक बने। अत शिवजी की वन्दना रामजी की वन्दना के बाद की गयी।

श्लो [1]यो ददाति सता शम्भु कैवल्यमपि दुर्लभम्।
खलाना दण्डकृद्योऽसौ शङ्कर श तनोतु माम्॥

अथ जो शम्भु भलो को दुर्लभ कैवल्य भी दे देते है और जो दुष्टो को दण्ड देनेवाले हैं ऐसे शङ्कर मेरा कल्याण करें।

व्याख्या अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। सत पुराण निगम आगम वद। जिसके प्रसाद से सज्जनो को ऐसा दुर्लभ पद प्राप्त होता है। यथा जोग कोटि करि जो गति हरि सो मुनि माँगत सकुचाही। वेद विदित तेहि पद पुरारिपुर कीट पतग समाँही। वही शिवजी दुष्टो को दण्ड देनेवाले हैं। यथा जौं नहि दड करौ खल तोरा। भ्रष्ट होइ श्रुति मारग मोरा। श्री गोस्वामीजी कहते हैं कि मैं तो साधु और खल दोनो की वन्दना करनेवाला हूँ। यथा वन्दौं सत असज्जन चरना। न साधु मे ही मेरी गिनती है न खल मे ही। मैं तो उपेक्षणीय हो गया। अत प्रार्थना करता हूँ कि आपका नाम शङ्कर है। इस बात पर ध्यान रखते हुए मेरा कल्याण कीजिये

## ६९ सेतुबन्ध प्रसग

सो सिधु बचन सुनि राम, सचिव बोलि प्रभु अस कहेउ।
अब बिलबु केहि काम[2], करहु सेतु उतरै कटकु॥
सुनहु भानुकुलकेतु, जामवत कर जोरि कह।
नाथ नाम तव सेतु, नर चढि भवसागर तरहिं॥

अर्थ समुद्र के वचन सुनकर प्रभु रामजी ने मन्त्री को बुलाकर ऐसा कहा कि अब देर का क्या काम है। सेतु बनाओ जिसमे सेना पार उतरे। जाम्बवान ने

---

१ यह अनुष्टुप् छन्द है।

२ हनुमान्जी ने सीताजी से कहा था कि जौ रघुबीर होत सुधि पाई। करते नहि विलम्ब रघुराई। सो जब से सीताजी की सुधि मिली है। अत कहते हैं कि अब विलम्ब केहि काम।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हाथ जोड़कर कहा कि हे सूर्यकुल की पताका रूपी रामजी सुनिये। आपका नाम ही सेतु है। जिस पर चढ़कर मनुष्य भवसागर पार होता है।

व्याख्या सिन्धुवचन। यथा एहि विधि नाथ पयोधि बँधाइअ। जेहि यह सुजस लोक तिहुँ गाइअ। इसे सुनकर रामजी ने मन्त्रियो जाम्बवान हनुमान् आदि को बुलाकर कहा। कहना नही होगा कि रामजी के मन्त्री बन्दर भालु थे। यथा उपल कीन्ह जल यान जेहि, सचिव सुमति कपि भालु। सीताजी का पता लग जाने पर सरकार को विलम्ब सह्य नही है। पहिले सुग्रीवजी से कहा था अब विलम्ब केहि कारन कीजे। तुरत कपिन्ह कहँ आयसु दीजे। और अब समुद्र के चले जाने के बाद मन्त्रियो से कहते हैं कि अब विलम्ब किसलिए हो रहा है। भाव यह है कि किष्किन्धा से धावा मारती हुई वानरी सेना समुद्र के किनारे तक चली आई और समुद्र के उतरने का कोई साधन न होने से सेना को रुक जाना पडा। तब से यही रुकी पडी है। अब समुद्र मे सेतुबन्ध का उपाय बतला दिया। अत उपाय को कार्य मे परिणत करना चाहिए। वानरी सेना सेतु से ही पार जा सकती है।

उत्साह बढाते हुए वृद्ध मन्त्री जाम्बवानजी ने कहा कि आपका नामरूपी सेतु तो बँधा बँधाया है जिसपर चढकर मनुष्य भवसागर के पार हो जाते हैं। उस पुल के सामने नील क्या पुल बाँधेंगे। फिर भी सरकार की आज्ञा है तो पुल बांधा जायगा। देर करने का यही अभिप्राय था कि कदाचित् उसी पुल से काम लिया जाय।

यह लघु जलधि तरत कति बारा। अस सुनि पुनि कह पवनकुमारा॥
प्रभु प्रताप बडवानल भारी। सोखेउ प्रथम पयोनिधि बारी॥१॥

अर्थ इस छोटे से समुद्र को पार करने मे क्या देर लगेगी। ऐसा सुनकर फिर हनुमान्जी ने कहा कि प्रभुप्रताप रूपी भारी बडवानल ने पहिले समुद्र का पानी सोख लिया था।

व्याख्या क्षार समुद्र सातो समुद्रो से छोटा है और भवसागर मे ऐसे न जाने कितने समुद्र हैं। यथा अगनित सरित सिन्धु महि कानन। भवसागर के लिए भले ही जहाज या पुल की आवश्यकता पडे परन्तु इस समुद्र के तरने मे क्या देरी है। यह तो बिना पुल के भी तरा जा सकता है। बेफिक्री के कारण विलम्ब हुआ। सरकारी काम न रुकेगा।

जब समुद्र के आ जाने से सेना को रुकना पडा था उस समय सरकार ने सुग्रीव और विभीषण केवल दो से प्रश्न किया था। यथा सुनु कपीश लङ्कापति बीरा। केहि विधि तरिअ जलधि गभीरा। यहाँ जाम्बवान और हनुमान्जी से प्रश्न हो रहा है। सो जाम्बवानजी के उत्तर दे देने पर पवनकुमार हनुमान्जी बोले। हनुमान्जी का वेग प्रख्यात है। मारुततनदनमारुत को मनको खगराज को वेग लजायो। गोष्पदीकृतवारीश मशकीकृतराक्षस। इन्हे समुद्र आँसू का जल मालूम

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पड़ता है। बोले कि यह बडवानल तो कब से समुद्र मे पडा है। पर उसका कुछ भी बिगाड़ न सका। पर भारी बडवानल सरकार का प्रताप है। पहिले समुद्र गम्भीर था। यथा : केहि बिधि तरिअ जलधि गभीरा। उसे तो आपके प्रताप ने सोख लिया। समुद्रजी भी कह गये कि प्रभु प्रताप में जाब सुखाई। अब जो समुद्र मे पानी है सो शत्रुओं के स्त्रियो की आँसू की धारा का जल है।

तव रिपु नारि रुदन जल धारा। भरेउ बहोरि भयेउ तेहि खारा ॥
सुनि अति उक्ति पवनसुत केरी। हरषे कपि रघुपति तन हेरी ॥२॥

अर्थ : आपके शत्रुओ की स्त्रियो के रोने से जो जल की धारा बही उसीसे यह समुद्र भर गया और उसी कारण से खारा हो गया। हनुमान्‌जी की अत्युक्ति सुनकर बन्दर लोग रघुपति की ओर देखकर हर्षित हो गये।

व्याख्या : प्रमाण यह है कि यह समुद्र खारा होता है आँसू भी खारा होता है। आँसू पर कवियो ने जल प्रलय तक का वर्णन किया है। यथा : अहो पथिक कहियो तुरत गिरधारी सन टेरि। दृग झरि लाई राधिका अब बूडत वृज फेरि। गोपिन के अँसुअन के धार पनारे बहे बहि ह्वै गये नारे। नारे ते नद केते भये नद ते नदियाँ भईं काटि करारे। वेगि चलो मिलिये जदुनन्दन नेक सुनो यह बैन हमारे। वे नद चाहत सिन्धु भयो अरु सिन्धु ते ह्वै है जलाहल सारे।

सो ऐसा अद्भुत वर्णन रोचकता के लिए है। इसे अत्यन्तातिशयोक्ति अलङ्कार कहते हैं। यहाँ रावण वध से पहिले ही स्त्री रुदन के आँसू से समुद्र का भर उठना अत्यन्तातिशयोक्ति है। अलङ्कार की कथा कहकर यदि कोई उसे इतिहास की भाँति साधु सिद्ध करने का प्रयत्न करे तो यह उसकी स्वादु पराङ्मुखता है। यथा : आनन्दनिष्यन्दनरूपकेपु व्युत्पत्तिमात्र फलमल्पबुद्धेः। योऽपीतिहासादिवदाह साधु तस्मै नम स्वादुपराङ्मुखाय। सुजान शिरोमणि को प्रसन्न करने के लिए भगवान् मारुति ने अत्यन्तातिशयोक्ति से जिसके प्रति अत्युक्ति की गयी उसे देखकर कपिगण हर्षे। कपियो को भी अत्युक्ति का आनन्द मिला। यही काव्य का चमत्कार है।

जामवंत बोले दोउ भाई। नल नीलहि सब कथा सुनाई ॥
राम प्रताप सुमिरि मन माँही। करहु सेतु प्रयास कछु नाँही ॥३॥

अर्थ : जाम्बवान ने नल नील दोनो भाइयो को बुलाकर सारी कथा सुनाई। कहा कि रामजी के प्रताप का मन मे स्मरण करके सेतु बनाओ कुछ परिश्रम नही होगा।

व्याख्या . सरकार से विलम्ब का कारण कहकर अब आज्ञा पालन करते है। समुद्र से बातचीत के समय केवल मन्त्रिमण्डल वहाँ था। नलनील केवल सेनापति होने के कारण सेना मे थे। उन्हे ये सब बातें नही मालूम थी। अत जाम्बवानजी ने उन्हे बुलाकर सब इतिवृत्ति सुनाया कि लड़कपन मे तुम दोनो भाइयो को ऋषि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



का आशीर्वाद मिला है। तुम्हारे फेंके हुए सिल लोढा पथरी आदि जल मे नही डूबती। अब राम प्रताप से तुम्हारे छूए हुए बडे बडे पर्वत तरेगे। समुद्र भी यथाशक्ति तुम लोगो की सहायता करेगा। रामजी का प्रताप सेतु बाँधेगा। तुम निमित्त मात्र हो जाओ। तुम लोगो को यश मिलना है। परिश्रम कुछ भी न पडेगा। सरकार का प्रताप काम करेगा।

बोलि लिए कपि निकर बहोरी। सकल सुनहु बिनती कछु मोरी ॥
राम चरन पंकज उर धरहू। कौतुक एक भालु कपि करहू ॥४॥

अर्थ : फिर उन्होने वानरो के समूह को बुला लिया और कहा कि सब लोग मेरी थोडी सी बिनती सुनो। रामजी के चरण कमल को हृदय मे धारण कर सब भालू और बन्दर एक खेल करो।

व्याख्या : कारीगर ठीक करके सामग्री सञ्चय का उपाय कर रहे हैं। समस्त वानरी सेना बुलायी गयी। आज्ञा नही देते बिनती करते हैं। सिपाही का काम बोझा ढोना नही है और इस समय इनसे बोझा ढोने का ही काम लिया जावेगा इसलिए बिनती करते हैं। युद्ध मे भेजने के समय बिनती नहीं करेंगे। यथा प्रभु प्रताप सब कहि समुझाये। सुनि कपि सिंहनाद करि धाए।

सेनापति स्थपति हो गये। सुभट भारवाही हो गये। विटप गिरि मसाला हो गया। इसलिए जाम्बवानजी कहते हैं कि अब करने योग्य कार्य इतना ही रह गया कि रामचरण को हृदय मे धरो। उसके हृदय मे धारण करने से वक्ष्यमाण कार्य कौतुक हो जावेगा और कौतुक मे आलस्य को स्थान नही है। यथा लौ कौतुकिअन्ह आलस नाही।

धावहु मरकट बिकट बरूथा। आनहु बिटप गिरिन्ह के जूथा ॥
सुनि कपि भालु चले करि हूहा। जय रघुबीर प्रताप समूहा ॥५॥

अर्थ हे मरकट विकट वरूथ ! तुम लोग दौड जाओ। वृक्षो और पर्वतो का समूह उठा लाओ। सुनकर बन्दर भालू हुहा करते चले और बोले कि रघुवीर के प्रताप समूह की जय हो।

व्याख्या : जाम्बवानजी ने कहा कि तुम लोग विकट वरूथ हो। प्राण को भी गिननेवाले नही हो। तुम्हे एक खेल बतलाता हूँ। तुम लोग दौड जाओ और पर्वत या वृक्ष जो जिस योग्य हो उठा लाओ। जाने के समय मे ही दौडना कहते हैं। लाने के समय दौडना नही कहते। क्योंकि बोझा भारी रहेगा।

कहा कि कौतुक एक भालु कपि करहू सो भालु कपि ने कौतुक ही माना। हूहा करते बडे उमग से चले। पर्वत लाकर समुद्र पाटना कठिन नही मालूम पडा। अत: कवि कहता है कि उत्कर्ष राम प्रताप म है अथवा राम प्रताप के भरोसे से राम प्रताप की जय बोलते चले।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. अति उतंग गिरिपादप, लीलहि लेंहि उठाइ।
आन देहि नल नीलहिं, रचहिं ते सेतु बनाइ ॥१॥

अर्थ : अत्यन्त ऊँचे ऊँचे पर्वत और वृक्ष बन्दर भालू खेल मे ही उठा लेते थे। लाकर नल नील को देते थे और वे रचकर सेतु बनाते थे।

व्याख्या : रामचरण के हृदय मे ध्यान रखने का साफल्य दिखाते हैं कि बन्दर भालुओ को बोझा मालूम ही नही पडता। इतने बन्दर ला ला कर देनेवाले हैं पर लेनेवाले केवल दो नील और नल। लाकर कही ढेर नही लगाया जाता। हाथो हाथ काम हो रहा है और वे कारीगरी के साथ सेतु बना रहे हैं। लहरो द्वारा यथाशक्ति समुद्र सहायता भी कर रहे हैं। गारे की आवश्यकता नही है। जहां के तहां पर्वत दृढ़ होते चले जा रहे हैं। श्रीरामनाम एव श्रीरामप्रताप ही गारा मसाला हुआ।

सैल बिसाल आनि कपि देही। कंदुक इव नल नील ते लेही ॥
देखि सेतु अति सुदर रचना। बिहँसि कृपानिधि बोले बचना ॥१॥

अर्थ : वानर बडे बडे पहाड़ लाकर देते थे और नल नील उन्हे गेंद की भांति लेते थे। सेतु की अति सुन्दर रचना देखकर कृपासिन्धु रामजी हँस कर बोले।

व्याख्या : अति उतग पर्वतो का उठा लाना कहा। अब नल नील का लेना कहते हैं। उन्हे भी प्रयास नही है। बन्दर पर्वतो को नल नील तक पहुँचाने के लिए उछाल देते हैं और वे उन्हे गेंद की भांति लोक लेते है। पांच दिनो तक यही क्रम चलता रहा। पहले दिन चौदह योजन। दूसरे दिन बीस योजन। तीसरे दिन इक्कीस योजन। चौथे दिन बाईस योजन और पांचवें दिन तेईस योजन पुल बँधकर तैयार हो गया।

रामजी ने देखा कि सेतु की रचना बडी सुन्दर हुई है। केवल काम चलाने की दृष्टि से नही बना है। सो हँस पडे कि हमारी वानरी सेना सेतु रचना मे भी बडी कुशल है। कृपानिधि हैं। इन्ही की कृपा से सब काम होता है और स्वय उसे भक्त का किया हुआ मानकर बडे प्रसन्न भी होते हैं। पांच ही दिन मे सौ योजन सेतुबन्ध होना और फिर भी रचना का सुन्दर होना अनाखी बात है। अब सेतुबन्ध को सनाथ करने के लिए प्रमाण युक्त वचन बोले।

परमरम्य उत्तम येह धरनी। महिमा अमित जाइ नहि बरनी ॥
करिहौं इहाँ संभु थापना। मोरें हृदय परम कलपना ॥२॥

अर्थ . यह भूमि अत्यन्त रमणीय और उत्तम है। इसकी अपार महिमा कही नही जा सकती। मैं यहाँ शिवजी की स्थापना करूँगा। मेरे हृदय मे यह एक बड़ी भावना है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : यह भूमि कैलास की भाँति परमरम्य है। यथा : परमरम्य गिरवर कैलासू। सदा जहाँ सिव उमा निवासू। अतः शिव उमा निवास योग्य है। पर्वतों मे उत्तम कैलास और स्थलों मे उत्तम यह धरणी। कैलास की भी अमित महिमा अवर्णनीय है। यथा : सिद्ध तपोधन योगिजन सुर किन्नर मुनिवृंद। बसहिं तहाँ सुकृती सकल सेवहिं सिव सुखकंद। हरि हर विमुख धर्म रति नाही। ते नर तहँ सपनेहुँ नहिं जाही। इस धरणी की भी अमित महिमा अवर्णनीय है। यथा : मम कृत सेतु जो दरसन करिही। सो बिनु श्रम भवसागर तरिही। समुद्र पाटकर सेतु बँधा। इसलिए धरणी कहा।

रामजी कहते हैं कि शंकर की स्थापना का मेरे हृदय मे सुदृढ विचार है। सो इस परमरम्य उत्तम धरणी मे स्थापन करूँगा।

सुनि कपीस बहु दूत पठाए। मुनिवर सकल बोलि लै आए ॥
लिंग थापि बिधिवत करि पूजा। सिव समान प्रिय मोहि न दूजा ॥३॥

अर्थ : सुनकर राजा सुग्रीव ने बहुत से दूत भेजे जो सब श्रेष्ठ मुनियों को बुला लाये। लिङ्ग की स्थापना करके और विधिपूर्वक पूजन करके रामजी ने कहा कि शिवजी के समान मुझे दूसरा कोई प्रिय नहीं है।

व्याख्या : श्रीरामजी ने इतना ही कहा कि : करिहौं इहाँ सम्भु स्थापना शेष कार्य कपिराज सुग्रीव का है। सुनते ही कपिराज ने बहुत से दूत भेजे। उस प्रान्त के सब मुनियों को बुलाने के लिए। स्थापनासम्बन्धी अन्य सामग्री सम्पादन के लिए। उसी समय की कथा है कि शिवलिङ्ग लाने के लिए हनुमान्जी काशी भेजे गये। यहाँ से लिङ्ग लेकर हनुमान्जी चले। पर भैरवनाथ ने उन्हे ऐसा करने से रोका। फलतः हनुमानजी और भैरवजी मे बड़ा सग्राम हो पडा। शिवजी के स्वय बीच मे पडने से युद्ध रुका। हनुमान्जी लिङ्ग लेकर चले पर वहाँ बहुत देरी हो जाने के कारण रामजी बालुका का लिङ्ग बनाकर स्थापन कर चुके थे। अतः उस लिङ्ग को वही पर हनुमान्जी ने स्थापित किया जो काशी विश्वनाथ कहलाते हैं। सब मुनि बुलाये गये जिसमे कोई विधि शेष न रह जाय। चारो वेद के सभी शाखावाले मुनि बुलाये गये।

लिङ्ग[1] स्थापन के अन्तर्गत ही उमा स्थापन भी है। क्योंकि जलधरी उमा का प्रतीक है। सावयव मूर्ति से लिंग का अधिक महत्त्व है। महाभारत के युद्ध मे *महानारायण अस्त्र* के निष्फल जाने पर जब अश्वत्थामा शास्त्र को दोष देते युद्ध

---

१ मूले ब्रह्मा तथा मध्ये विष्णुस्त्रिभुवनेश्वर.। रुद्रोपरि महादेव. प्रणवाख्य सदाशिव। लिङ्गवेदी महादेवी लिङ्ग साक्षान्महेश्वर। तयो सम्पूजनान्नित्य देवी देवश्च पूजितौ। लि. पु.।

अर्थ : लिङ्ग के मूल मे ब्रह्माजी मध्य मे विष्णु उपरिभाग मे प्रणव नामवाले शङ्करजी स्थित हैं। लिङ्गवेदी महादेवी है लिङ्ग साक्षात् महेश्वर है। वेदी और लिङ्ग के पूजन मे देवी और देवता का पूजन हो जाता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


त्यागकर चले तब व्यासजी ने उन्हें समझाया कि तुम अर्जुन और श्रीकृष्ण जन्मजन्मान्तर के शिवोपासक हो। तुमने शिवजी की सावयव मूर्ति की पूजा की है और कृष्णार्जुन ने लिंग मूर्ति की पूजा की है। अतः तुम कृष्णार्जुन को छोड़कर और सबको जीत सकते हो। इनके सामने तुम्हारी कुछ नहीं चल सकती। विजय लिंगोपासक की ही होगी। स्थापना के बाद प्रथम पूजा बड़े समारोह और विधि से होती है। यह पूजा होने पर स्थापना की समाप्ति मानी जाती है। अतः स्थापना समाप्त होने पर श्रीरामजी ने जगत् के कल्याण के लिए उपदेश दिया कि शिवजी के समान मुझे कोई प्रिय नहीं है। यथा : कोउ नहिं सिव समान प्रिय मोरे। असि परतीति तजहु जनि भोरे। इतने प्रिय हैं कि उन्ही के हाथ भक्ति का भण्डार सौंप दिया है। यथा : औरौ एक गुपुत मत सबहि कहउ कर जोरि। संकर भजन बिना नर भगति न पावै मोरि। तथा : सिव सेवा कर फल सुत सोई। अविरल भगति रामपद होई।

सिव द्रोही मम भगत कहावा। सो नर सपनेहुँ मोहिं न पावा॥
संकर बिमुख भगति चह मोरी। सो नारकी मूढ़ मति थोरी॥४॥

अर्थ : शिवद्रोही है और मेरा भक्त कहलाता है ऐसा मनुष्य स्वप्न में भी मुझे नहीं पाता। शिवविरोधी होकर जो मेरी भक्ति चाहता है वह नरक का अधिकारी मूढ थोड़ी बुद्धिवाला है।

व्याख्या : शिवद्रोही मेरा भक्त हो नहीं सकता भले ही वह अपने को मेरा भक्त कहा करे। मेरा भक्त कहलावे और मेरे परम प्रिय से वैर करे उसे मेरी प्राप्ति कैसे होगी। यहाँ पर श्रीकृष्ण गीतावली का एक पद जो कि गोपियों ने उद्धवजी से कहा है मनन करने योग्य है यथा :

कही है भली बात सबके मनमानी।
प्रिय सम प्रिय सनेह भाजन सखि, प्रीति रीति जग जानी॥
भूषन भूति गरल परिहरि के हरमूरति उर आनी।
मज्जन पान किये के सुरसरि कर्म नाश जल छानी॥
पूँछ सो प्रेम विरोध सींग सो यह विचार हित हानी।
कीजै कान्हकूबरी सो नित नेह करम मन बानी॥
तुलसी तजिअ कुचालि आलि सब सुधरै सबै नसानी।
आगे करि मधुकर मधुरा कहँ सोधिय सुदिन सपानी॥

शिव राम का अभेद दर्शन ही पूर्ण दर्शन है। परम स्नेहभाजन के विमुख होना मूढ मन्दमति का काम है यथा : सीता चरन चोच हति भागा। मूढ मदमति कारन कागा। इतना ही नहीं रामजी के परम स्नेह भाजन शिवजी का द्रोही रामभक्ति चाहता हुआ भी नरकगामी होता है।

दो. संकर प्रिय मम द्रोही, सिवद्रोही मम दास।
ते नर करहिं कलप भरि, घोर नरक महुँ बास॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : जो शिव के भक्त और मेरे द्रोही है और जो शिव के द्रोही और मेरे दास है वे नर कल्प भर घोर नरक मे निवास करते हैं।

व्याख्या : श्री रामजी कहते हैं कि वही गति उनकी भी है जिन्हे शकर प्रिय हैं और मुझसे द्रोह है वे भी शिवद्रोही मेरे दास की भाँति एक कल्प घोर नरक मे निवास करते हैं। इससे शिव राम मे भेददर्शी को अधोगति का होना ध्रुव बतलाया। उभयोरेका प्रकृति. प्रत्ययभेदात् पृथग्वद् भाति। कल्पयति कश्चन मूढ हरिहरभेद विनाशास्त्रम्। दोनो की प्रकृति एक है। प्रत्यय के भेद से अलग अलग मालूम पडते हैं। कोई मूढ ही हरिहर मे भेद की कल्पना शास्त्र के विरुद्ध किया करते हैं अथवा अपने विनाश का अस्त्र तैयार करते हैं।

ये नमस्यन्ति गोविन्द ते नमस्यन्ति शङ्करम्।
येऽर्चयन्ति हरिं भक्त्या तेऽर्चयन्ति वृषध्वजम्॥
ये द्विषन्ति विरूपाक्ष ते द्विषन्ति जनार्दनम्।
ये रुद्र नाभिजानन्ति ते न जानन्ति केशवम्॥
: रुद्रहृदयोपनिषदि।

ममैषा परमा मूर्तिर्नारायणसमाह्वया।
सर्वभूतात्मभूतस्था शान्ता चाक्षरसस्थिता॥
येऽन्यथा मा प्रपश्यन्ति लोके भेददृशो जना।
न ते मुक्ति प्रपश्यन्ति जायन्ते च पुन पुन॥ कूर्मपुराणे।

जो गोविन्द को नमस्कार करते हैं वे शकर को नमस्कार करते है। जो भक्ति से हरि की पूजा करते हैं वे वृषध्वज की पूजा करते है : रुद्रहृदय ईश्वरगीता मे कहा है कि यह जो नारायण नामवाली मूर्ति है वह मेरी परम मूर्ति है। सब भूतो के आत्मभूत होकर जो स्थित है शान्त है जिसे अक्षर कहते हैं जो भेद देखनेवाले हैं और मुझे अन्यथा देखते हैं उन्हे मुक्ति का दर्शन नही होता। वे बार बार जन्म लेते हैं।

जे रामेस्वर दरसनु करिहहिं। ते तनु तजि मम लोक सिधरिहहिं॥
जो गगाजलु आनि चढाइहि। सो सायुज्य मुक्ति नर पाइहि॥१॥

अर्थ : जो लोग रामेश्वर का दर्शन करेंगे वे शरीर छोडकर मेरे लोक को जावेंगे और जो गङ्गाजल लाकर चढायेगा वह मनुष्य सायुज्यमुक्ति पावेगा।

व्याख्या अपने नाम से नामकरण करते हैं। प्रश्न उठा कि फिर रामेश्वर शब्द का क्या अर्थ होगा? श्रीरामजी ने कहा सीधा सीधा षष्ठीसमास है रामस्य ईश्वर रामेश्वर। रामके स्वामी रामेश्वर है। लिङ्ग से शब्द हुआ कि यहाँ बहुव्रीहि समास है। राम ईश्वरो यस्य जिसके स्वामी राम हैं वह रामेश्वर हैं। मुनियो ने विचार किया कि दोनो वचन प्रमाण है। पर हम लोग क्या मानें? सो यह निर्णय किया

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


कि यहाँ कर्मधारय समास है रामश्चासौ ईश्वरश्च रामेश्वरः जो राम हैं वही ईश्वर हैं।

नामकरण करने के बाद श्रीरामजी श्रीमुख से दर्शन की महामहिमा कहते हैं। एक बार चाक्षुप सम्बन्ध हो जाने से मनुष्य सालोक्य मुक्ति का अधिकारी हो जाता है अर्थात् साकेत लोक को प्राप्त होता है।

शिवजी को गङ्गा बड़ी प्रिय हैं। यथा : गंगाशशांकप्रियम्। सो जो गङ्गाजल लाकर चढ़ावेगा वह सायुज्यमुक्ति पावेगा। स्वयं शिवजी मे लीन हो जायगा। लाकर चढ़ाने का भाव यह कि दर्शनोपरान्त सकल्प करे कि मैं गङ्गाजल लाकर चढ़ाऊँगा। तब वहाँ से वाराणसी पुरी जावे और वहाँ से गङ्गाजल लाकर श्रीरामेश्वरजी को चढ़ावे और भार को समुद्र में डाल दे। इस विधान से गङ्गाजल चढ़ाने से सायुज्य मुक्ति होती है। तपस्या बड़ी है इसलिए सर्वोत्तम फल भी मिलता है।

होइ अकाम जो छलु तजि सेइहि। भगति मोर तेहि संकर देइहि ॥
मम कृत सेतु जो दरसनु करिही। सो बिनु श्रम भव सागर तरिही ॥२॥

अर्थ : जो निष्काम वुद्धि से छल छोड़कर सेवा करेगा उसे शिवजी मेरी भक्ति देंगे। मेरे किये हुए सेतु का जो दर्शन करेगा वह बिना परिश्रम के ही ससार सागर के पार हो जायगा।

व्याख्या : शिव सेवा कर फल सुत सोई। अविरल भगति राम पद होई। यहाँ शिवसेवा शब्द से कामनारहित और छलरहित होकर भजन करना इङ्गित किया। यथा : सिरभर जाउँ उचित अस मोरा। सबते सेवक धर्म कठोरा। सकाम सेवन करनेवाले को भक्ति नहीं मिलती। क्योंकि उसके हृदय मे अन्य कामना है। यथा : नान्या स्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये सत्यं वदामि च भवानखिलान्तरात्मा। भक्ति प्रयच्छ रघुपुंगव निर्भरां मे और छल से सेवन करनेवाले को तो भक्ति स्वप्न मे भी दुर्लभ है। क्योकि कपट छल छिद्र भगवान् को नापसन्द है। यथा : मोहि कपट छल छिद्र न भावा। शङ्कर भगवान् रामभक्ति के भण्डारी हैं। बिना इनकी कृपा रामभक्ति मिलती ही नहीं। यथा : औरउ एक गुपुत मत सबहि कहौ कर जोरि। संकर भजन बिना नर भगति न पावइ मोरि। रामेश्वर लिङ्ग साक्षात् प्रभु के कर कमल से स्थापित है। अतः इसकी सेवा से शीघ्र ही निश्चित फल की प्राप्ति होगी।

शङ्कर भगवान् के दर्शन और भजन की फलश्रुति कहकर अब सेतु के दर्शन का माहात्म्य कहते हैं कि इसके दर्शन से मनुष्य बिना परिश्रम के भवसागर पार हो जायगा। भाव यह कि नामरूपी सेतु तो भवसागर सन्तरण के लिए अनादि काल से बँधा है। यथा : नाथ नाम तव सेतु नर चढ़ि भवसागर तरहिं। परन्तु अब जो सेतु बँधा है उसमे विशेषता यह है कि इस पर चढ़कर पार करने के श्रम की

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


भी आवश्यकता नही है। केवल दर्शन से ही भवपार पहुँच जाता है। विश्वास अवश्य करे।

राम बचन सबके जिय भाए। मुनिवर निज निज आश्रम आए॥
गिरिजा रघुपति कै यह रीती। सतत करहि प्रनत पर प्रीती॥३॥

अर्थ रामजी के वचन सबके जी मे अच्छे लगे। श्रेष्ठ मुनि लोग अपने अपने आश्रमो मे आये। हे गिरिजे! रघुपति की यह रीति है कि सदा प्रणत पर प्रीति करते हैं।

व्याख्या कर्मठ उपासक और ज्ञानी सभी का हित प्रभु के वचन मे निहित था। ज्ञानी की चाही हुई सायुज्य मुक्ति का भी इसमे उपाय कहा गया। भक्ति मिलने का भी रास्ता बतलाया गया और कर्मठ के लिए धाम की प्राप्ति अथवा ससार सागर तरण का भी सरल मार्ग दिखलाया गया। स्थापना का कार्य समाप्त हुआ। जिन जिन मुनियो को बुला लाये थे वे अपने आश्रमो पर आये। गये नही कहते क्योकि वे अपने अपने आश्रमो पर आये तो सही पर मन उनका भगवान् के चरणो मे ही रहा।

इस कथा के कहने म शिवजी को अपना महत्त्व कहना पडा। अपना महत्त्व स्वय कथन करना बडी लघुता है। अत शिवजी अपने श्रोता गिरजाजी से कहते हैं कि इसमे मेरा महत्त्व कुछ भी नही। रामजी की यह रीति है कि सदा प्रणत पर प्रीति करते हैं। मै प्रणत हूँ। इससे सदा मुझपर प्रीति करते हैं। परमरम्य उत्तम धरणी देखकर मेरी स्थापना की और अपने मुख से मेरी मूर्ति के दर्शन का महत्त्व कहा। अपने म और मुझमे अभेद प्रतिपादन किया। यह सब उनके प्रणतपालकता का उदाहरण है।

बाँधा सेतु नील नल नागर। राम कृपा जसु भयेउ उजागर॥
बूडहिं[1] आनहि बोरहि जेई। भए उपल बोहित सम तेई॥४॥
महिमा यह न जलधि कै बरनी। पाहन गुन न कपिन्ह कै करनी॥५॥

*अर्थ* चतुर नील नल ने राम की कृपा से सेतु बाँधा। उन्हे उज्ज्वल यश मिला। जो पत्थर स्वय डूबते हैं और दूसरे को भी ले बैठते हैं वे जहाज के सदृश स्वय तीर्ण होकर दूसरे के भी तारक हुए। यह न तो समुद्र की महिमा है न पत्थर के गुण हैं और न बन्दरो की करणी है।

---

१ यहाँ विभावना चतुर्थ अलकार है। हनुमन्नाटक मे ठीक इसी आशय का श्लोक है। यथा ये मज्जन्ति निमज्जन्ति च परास्ते प्रस्तरा दुस्तरे वार्धौ वीर तरन्ति वानरभटान् सन्तारयन्तेऽपि च। नैते ग्रावगुणा न वारिधिगुणा ना वानराणा गुणा श्रीमद्दाशरथ प्रतापमहिमारम्भ समुज्जृम्भते।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या : सैल बिसाल आनि कपि देही। कंदुक इव नल नील सो लेहीं। यहाँ से नल नील का प्रसङ्ग छोड़ा था। अब कहते हैं कि नल नील ने रामकृपा से समुद्र मे सेतु बाँधा। उनका यश जगत् मे प्रकाशमान हो गया। रामकृपा यह कि दूसरो को भी ले डूबनेवाले पत्थर दूसरो के उद्धार के लिए जहाज हो गये। रामकृपा से वस्तु का स्वाभाविक गुण बदल गया। न समुद्र मे सेतु बाँधने मे सहायक होता है न पत्थर तरते हैं और न बन्दर शिल्पी होते हैं और यहाँ सब हुआ। इस पर गोस्वामीजी कहते हैं।

दो. श्रीरघुबीर प्रताप तें, सिंधु तरे पाखान।
ते मतिमंद जे राम तजि, भजहिं जाइ प्रभु आन ॥३॥

अर्थ : श्रीरघुवीर के प्रताप से पत्थर समुद्र मे तर गये। ऐसे स्वामी राम को छोडकर जो दूसरे प्रभु को भजते हैं वे मतिमन्द हैं।

व्याख्या : श्रीरामजी के प्रताप से पर्वत : पत्थर समुद्र तर गये। अर्थात् उस प्रताप मे असम्भव को सम्भव करने की शक्ति है। बुद्धिमान् का कर्त्तव्य है कि प्रतापी का भजन करे। असमर्थ के भजन से क्या लाभ है ? सो श्रीरामजी सा समर्थ प्रभु कोई नही है। यथा : जो चेतन कहँ जड करै जडहि करै चैतन्य। अस समर्थ रघुनायकहि भजहि जीव ते धन्य। अतः जो रामजी को छोडकर दूसरे प्रभु देव दनुज नर नाग मनुज को भजते हैं वे मतिमन्द हैं। यथा : देव दनुज नर नाग मनुज खग माया विवस विचारे। तिनके हाथ दास तुलसी प्रभु कहा अपनपौ हारै। रामजी महामाया के पति हैं। उन्हे छोड़कर दूसरे के भजनेवाले नर पशु हैं। यथा अस प्रभु छाडि भजहि जे आना। ते नर पसु बिनु पूछ बिषाना। भजहिं जाइ कहने का भाव यह कि रामजी को भजने के लिए कही जाना नही है। वे तो सबके हृदय मे विराजमान हैं। यथा : सबके उर अन्तर बसहु जानहु भाउ कुभाउ। दूसरे के भजने मे उनके पास जाना पडेगा।

बाँधि सेतु अति सुदृढ बनावा। देखि कृपानिधि के मन भावा ॥
चली सेन कछु बरनि न जाई। गरजहिं मरकट भट समुदाई ॥१॥

अर्थ : सेतु बाँधकर उसे खूब मजबूत बनाया। देखकर कृपानिधि रामजी को बहुत प्रिय लगा। सेना चली जिसका वर्णन नही किया जा सकता। योद्धा बन्दरो का समाज गर्जन कर रहा है।

व्याख्या . बड़ी भारी सेना को उस पर से जाना है इसलिए अत्यन्त दृढ बनाया। इधर शङ्कर की स्थापना हो रही थी उधर सेतु को बाँधने के बाद भी सब प्रकार से उसे दृढ कर रहे थे। सेना के पार जाने के समय पुल के टूटने का डर रहता है। सैनिको के एक साथ पादप्रक्षेप से ऐसा स्पन्दन होता है जिससे पुल टूट जाता है। अत: पुल पार करने के लिए सेना को सुव्यवस्थित रूप से चलने की आज्ञा दी जाती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सरकार कृपानिधि हैं। उन्ही की कृपा से कार्यसिद्धि होती है और वे सेवक का बडाई देने के लिए कार्यसिद्धि पर प्रसन्न होते हैं। इसीलिए सेतु बँधने पर जब प्रभु ने उसे देखा तब भी कवि ने कृपानिधि कहा था और जब सुदृढ किया गया तब भी उसको देखकर सन्तुष्ट होने पर कवि कृपानिधि ही विशेषण देते हैं। यथा देखि कृपानिधि के मन भावा।

वानर कटक उमा मैं देखा। सो मूरख जो करन चह लेखा। अत कवि कहते है कि सेन कछु वरनि न जाई। उधर समुद्र का गर्जन इधर सेना का गर्जन। वानरी सेना को वडा उत्साह है। अत गर्जन करती हुई सेतु पर से चली जा रही है। सेना भी समुद्र है।

सेतुबध ढिग चढि रघुराई। चितव कृपाल सिंधु बहुताई ॥
देखन कहुँ प्रभु करुना कंदा। प्रगट भये सब जलचर बृंदा ॥२॥

अर्थ सेतुबन्ध के पास चढकर रघुराई रामजी समुद्र का विस्तार देख रहे हैं। करुणा के मेघरूप रामजी के दर्शन के लिए जलचरो का समूह सब का सब जल के ऊपर आगया।

व्याख्या : सिन्धु का विस्तार बिना ऊँचे चढे दृष्टिगोचर नही होता। बेला से ही समुद्र ऊँचा होता चला जाता है। अत तट से उसके विस्तार का पता नही चलता। समुद्र दर्शन का आनन्द लेनेवाले किसी ऊँचे स्थल पर चढकर समुद्र का विस्तार देखते है। जहाँ से चढकर सरकार ने समुद्र का विस्तार देखा था उस स्थान को आज भी लोग राम झरोखा के नाम से अभिहित करते हैं। वस्तुत विस्तार देखने के व्याज से कृपालु रामजी को अपना दर्शन देकर जलचरो को सुखी करना इष्ट था। हृदय मे बडी करुणा है कि मेरे बाण सन्धान से बिचारे जलने लगे थे विकल हो गये थे।

जलचर वृन्द जल मे छिपे रहते हैं। कभी कभी साँस लने के लिए उछल कर फिर गोता लगा लेते हैं। सो सब प्रभु के दर्शन के लिए जल के ऊपर प्रकट हो गये। उन्हे प्रभु के दर्शन मे बडा आनन्द मिलता था। प्रभु की करुणा से उनके हृदय मे जल के बाहर आने की प्रेरणा हुई। इसीलिए करुणाकन्द विशेषण दिया। करुणा की वर्षा सब जलचरो पर हो रही है। खारे समुद्र मे रहनेवाल जलचर आज मीठे समुद्र श्रीराम का रस ले रहे हैं।

मकर नक्र नाना झख ब्याला। सत जोजन तनु परम बिसाला ॥
ऐसेउ एक तिन्हहि जे खाही। एकन के डरतेपि डेराही ॥३॥

अर्थ अनेक प्रकार के मगर नाक मछली सर्प जिनके शरीर बडे विशाल सौ योजन तक के थे। कोई ऐसे विशाल भी थे जो उन्हे खा सकते थे और वे भी अपने से बडे के डर से डरते थे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : हनुमन्नाटक मे कहा है : अस्ति मत्स्यस्तिमिर्नाम शतयोजन-विस्तरः। तिमिङ्गिलगिलोप्यस्ति तद्गिलोप्यस्ति राघवः। एक मछली ऐसी होती है जिसका विस्तार सौ योजन का होता है उसे तिमि कहते हैं। परन्तु उसे भी निगलनेवाली मछली होती है जिसे तिमिङ्गिल कहते हैं और जो मछली तिमिङ्गिल को निगल जाती है उसे राघव कहते है। इससे यह दिखलाया कि शरीरधारियो मे मछली सबसे बडो होती है जिसका पता भी लोगो को नही है। अथाह जल मे रहती है वे सब भी प्रकट हो गई।

प्रभुहि बिलोकहिं टरहि न टारे। मन हरखित सब भये सुखारे॥
तिन्हकी ओट न देखिअ बारी। मगन भए हरि रूप निहारी ॥४॥
चला कटकु प्रभु आयसु पाई। को कहि सक कपिदल बिपुलाई ॥५॥

अर्थ : प्रभु को देखते हुए वे टालने से नही टलते थे। सब के मन हर्षित और सब सुखी हो गये। उनकी आड़ मे पानी नही दिखलायी पड़ता था। वे हरि का रूप देखकर मग्न हो गये। प्रभु की आज्ञा पाकर सेना चली। वानरी सेना के दल का कौन वर्णन कर सकता है। दोहावली ४०४ :

व्याख्या : जलचर एक दूसरे से भयभीत रहते हैं। एक दूसरे के भय से भागते फिरते है। यथा : सहवासी काँचो गिलहिं पुरजन पाक प्रवीन। कालछेप केहि मिलि करहिं तुलसी खग मृग मीन। सो ये जलचर प्रभु को देखकर दर्शन मे ऐसे तल्लीन हो गये कि उनको सुधबुध न रह गयी। इस समय वे एक दूसरे के हटाये नही हटते। पहिले व्याकुल और दुःखी हो गये थे। यथा : मकर उरग झख गन अकुलाने। जरत जन्तु जलनिधि जब जाने। सो हर्षित और सुखारे हो गये। आज उन्हे जल के ऊपर रहने मे सुख मिल रहा है। सिन्धु मे मग्न न होकर रूपसुधा सिन्धु मे मग्न हैं। छोटे बडे सब जलचरो के बाहर आजाने से जल बिलकुल ढक गया। अति विचित्र दृश्य उपस्थित हो गया।

प्रभु सिन्धु का विस्तार देख रहे हैं। जल जन्तु प्रभु की रूप सुधामृत का आनन्द ले रहे हैं। सेना सेतु पर से पार चली जा रही है। चली सेन कछु बरनि न जाई से प्रसङ्ग छोड़ा था अब फिर वही से प्रसङ्ग उठाते हैं। यथा : चला कटक कछु बरनि न जाई। को कहि सक कपि दल बिपुलाई। भाव यह कि जब शिवजी ने कह दिया है कि : सो मूरख जो करन चह लेखा तब दूसरा कौन कह सकता है।

दो. सेतुबंध भई भीर अति, कपि नभ पंथ उड़ाहिं।
अपर जलचरन्हि ऊपर, चढि चढि पारहि जाहिं ॥४॥

अर्थ : सेतु बन्ध पर बड़ी भीड़ हुई। वानर आकाश मार्ग से उड़ रहे हैं। अन्य जलचरो के ऊपर चढ़ चढ़कर पार जा रहे हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या इतने विस्तृत सेतु पर भी सेना समाती नहीं है। अत दो रास्ते और बन गये एक आकाश मार्ग और दूसरा जलचर मय मार्ग। बन्दर ही तो ठहरे जलचरो के ऊपर कूदते हुए पार चले जा रहे हैं आकाश मार्ग से जानेवाले विहगमार्गी ज्ञानी सेतु पर जानेवाले उपासक और जलचर मय मार्ग से जानेवाले कर्मठ हैं।

अस कौतुक बिलोकि दोउ भाई। बिहँसि चले कृपाल रघुराई ॥
सेन सहित उतरे रघुबीरा। कहि न जाइ कपि जूथप भीरा ॥१॥

अर्थ · ऐसा कौतुक दोनो भाइयो ने देखा। कृपाल रघुराई हँसकर चल पडे। सेना के सहित रघुबीर रामजी उतरे। वानर यूथपो की भीड कही नही जा सकती।

व्याख्या . पहिले बन्दरो द्वारा सेतु की ऐसी रचना देखकर हँसे थे अब जलचर मय सेतु पर बन्दरो को जाते देखकर विहँस रहे हैं। अब स्वयं प्रभु का प्रयाण लिखते हैं। भाव यह कि प्रभु सेना के मध्य मे चल रहे हैं। कृपाल रघुराई कहने का भाव यह है कि सेना की रक्षा के लिए चले अथवा भक्तो पर कृपा करने के लिए चले।

इस भाँति शत योजन चले गये। समुद्र पार जाकर उतरे। भाव यह कि हनुमान्‌जी के कन्धे पर रामजी और अङ्गद के कन्धे पर लक्ष्मणजी थे। चारो ओर से वन्दरो के यूथप चारो ओर से घेरे हुए हैं। इस भाँति समुद्र पार जाकर उतरे। इन यूथपो की भीड अकथनीय है।

सिधु पार प्रभु डेरा कीन्हा। सकल कपिन्ह कहुँ आयसु दीन्हा ॥
खाहु जाइ फल मूल सोहाए। सुनत भालु कपि जहँ तहँ धाए ॥२॥

अर्थ प्रभु ने समुद्र पार डेरा डाला और सब बानरो को आज्ञा दी कि जाकर अच्छे अच्छे फल और फूल खाओ। सुनते ही भालू और बन्दर जहाँ तहाँ दौड पडे।

व्याख्या · सौ योजन से सेतु पर बीच म कही डेरा नही डाला। धावा मारते चले ही गये। बीच मे मीठे जल तथा फल मूल के मिलने का योग नही था। अत डेरा डालना उचित भी नही था। वानरी सेना भी बिना खाये पीये सौ योजन बराबर चली गयी। अत डेरा देत ही प्रभु ने भालू बन्दरो को सुन्दर सुन्दर फल मूल खाने की आज्ञा दी। बन्दर भालू भी भूखे थे जहाँ तहाँ दौड पडे। हनुमान्‌जी उस वन की शोभा देख गये थे। यथा तहाँ जाइ देखी बन सोभा। गुजत चचरीक मधु लोभा। नाना तरु फल फूल सोहाए। इसलिए आज्ञा हुई खाहु जाइ फल मूल सोहाए। आज्ञा मिलने की देर थी सब दौड पडे। फूल खाने की आज्ञा नही हुई। फूल के नष्ट होने से फल का आगम मारा जाता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सब तरु फरे राम हित लागी । रितु अरु कुरितु काल गति त्यागी ॥
खाहिं मधुर फल बिटप हलावहिं । लंका समुख सिखर चलावहिं ॥३॥

अर्थ : रामजी के प्रीत्यर्थ सब पेड फले। ऋतु और कुऋतु तथा कालगति का त्याग किया। बन्दर भालु : मीठे फल खाते हैं पेडो को झकझोरते हैं और लका की ओर पर्वत शिखर फेंकते हैं।

व्याख्या : कालगति के अनुकूल पेडो मे फल लगते है। आम मे पांच बरस पर फल लगता है। महुआ पचीस वर्ष मे फलता है। इमली तीस वर्ष म फलती है। सरसोई मे फल लगने मे महीनो लगते हैं। इसी भाँति सब पेडो मे फल आने का काल है। इसी भाँति सब पेडो मे फल आने का ऋतु है। दूसरे ऋतु उसके लिए कुऋतु है। जैसे आम के फलने का ऋतु ग्रीष्म तथा पावस है। शरद हेमन्तादि उसके लिए कुऋतु है। महुआ के फलने के अनुकूल ऋतु वसन्त है। पावस आदि उसके लिए कुऋतु है। सो रामजी के प्रीत्यर्थ सभी पेड फल उठे। ऋतु का कोई नियम न रह गया। इसी भाँति छोटे बडे सभी पेडो मे फल लग गया।

बन्दर भालु कच्चे पक्के फल का विचार नही करते। काट काटकर गिरा देते है। पेडो को तोड डालते हैं। पर वे ऐसा नही कर रहे है। मीठे फल खाते हैं और पेड को हिलाते हैं जिसमे पके पके फल टपक पडे। दूसरे भी लाभ उठावें। लका के सम्मुख शिखर फेंकना एक प्रकार से ललकार है।

जहँ कहुँ फिरत निसाचर पावहिं । घेरि सकल बहु नाँच नचावहिं ॥
दसनन्हि काटि नासिका काना । कहि प्रभु सुजसु देहिं तब जाना ॥४॥

अर्थ वे जहां कही घूमते फिरते राक्षसो को पाते हैं तो उन्हे घेरकर अनेक प्रकार का नाच नचाते है। उनके नाक कान दाँत से काट लेते हैं और प्रभु का सुयश बोलवाकर तब उन्हे जाने देते हैं।

व्याख्या निशाचर लोगो का निवास तो लका मे है पर वन मे भी घूमने का उनका स्वभाव है। यथा व्याल कराल बिहंग वन घोरा। निसिचर निकर नारि नर चोरा। बन्दर लोग फल मूल के लिए वन मे घुसे तो कही कही उनको घूमते फिरते राक्षस भी हाथ लग गये तो सब मिलकर उसे घेर लेते है। बन्दर जानते हैं कि परवश पड जाने पर नाचना पडता है अत उस राक्षस को नचाते हैं। उसकी भलीभांति दुर्गति करते हैं। पास मे कोई हथियार तो है नही। अत दाँत से ही उनके नाक कान काटकर रावण को चुनौती देते हैं। सूर्पणखा के नासिकाच्छेदन से लक्ष्मण की ओर से तो चुनौती दे दी गयी है अब सैनिको की ओर से चुनौती दी जा रही है। उससे राजा रामचन्द्र की जय इत्यादि रामजी के सुयशसूचक घोषणा कराकर तब जाने देते हैं जिसमे व जाकर बानरी सेना के आजाने का शुभ समाचार दें।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



## मन्दोदरी का रावण को समझाना . दूसरी बार

जिनकर नासा कान निपाता। तिन्ह रावनहि कही सब बाता॥
सुनत श्रवन बारिधि बंधाना। दसमुख बोलि उठा अकुलाना॥५॥

अर्थ : जिनके नाक कान काटे गये उन्होने रावण से सब बातें कही। समुद्र का बांधा जाना सुनते ही दसो मुख से व्याकुल होकर बोल उठा।

व्याख्या : रावण को दूतो से पता चला : फरयादियो से पता चला कि समुद्र बँध गया और सेना इस पार चली आयी। प्रमाद की पराकाष्ठा है। जब से विभीषण गये हैं और शुकसारन की दुर्दशा देख चुके हैं तब से दूत रामदल के सन्निकट जाते हुए डरते है। रावण भी किसी को भेजकर छेडछाड नही करता। समझे बैठा है कि सेना इस पार कैसे आ सकती है। शत्रु सेना यदि किसी भांति आ भी जाय तो आ जाने दो। सभा मे यही निश्चित हुआ है। यथा पूछेसि सचिव उचित मत कहहू। ते सब हँसे मष्ट करि रहहू। जितेहु सुरासुर तब श्रम नाही। नर बानर केहि लेखे माही। तथा जो आवै मरकट कटकाई। जियहिं बिचारे निसिचर खाई।

रावण बडे स्वार्थी हैं। उन बिचारो के नाक कान कटने से उन्हे व्याकुलता नही है सेतु के बँध जाने से व्याकुता है। जो इनका किया जन्म भर नही हुआ उसे शत्रु ने कई एक दिनो मे कैसे कर लिया ? शत्रु उपेक्षा करने योग्य नही है। वह असम्भव का सम्भव करनेवाला है। इसलिए व्याकुलता है। पहिले भी बहन के नाक कान कटने पर इन्हे व्याकुलता नही हुई। खरदूषण वध सुनने पर शरीर मे आग लगी। यथा : खरदूषन त्रिसिरा कर घाता। सुनि दससीस जरे सब गाता।

दो० बाँध्यो बननिधि नीरनिधि, जलधि सिंधु बारीस।
सत्य तोयनिधि कंपति, उदधि पयोधि नदीस॥५॥

अर्थ : क्या सचमुच १ बननिधि २ नीरनिधि ३ जलधि ४ सिंधु ५ बारीस ६ तोयनिधि ७ कंपति ८ उदधि ९ पयोधि १० नदीस बांध लिया।

व्याख्या : जब यह रावणु जनमियो दह मुहु इक्कु सरीरु। जणणि वियम्भी चिन्तवइ कवणु पियावउँ खीरु। जब यह रावण दसमुख और एक शरीरवाला जन्मा तो माँ आश्चर्य म आकर चिन्ता करने लगी कि किसे दूध पिलाऊँ। सो रावण की शक्ति तो दसो मुख से बोलने की थी पर वे किसी एक मुख से ही बोला करते थे। कई मुखो से एक साथ बोलने से सुननेवाले को बात समझ मे नही आ सकती थी। अत रावण ध्यान रखते थे कि एक मुख से ही बोल। समुद्र बन्धन का समाचार लगते ही अधीर हो उठे। अत दसो मुख से बोल उठे। इस दोहे मे केवल दश नाम समुद्र के ही गिनाये गये हैं : बन नीर जल ताय क उद पय : ये सब

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पर्यायवाची शब्द हैं। भाव यह कि समुद्र का बँधना इतने आश्चर्य की बात थी कि रावण ने चकित होकर दसों मुख से समुद्र शब्द का उच्चारण[1] किया।

निज विकलता विचारि बहोरी। बिहँसि गयउ गृह करि भय भोरी ॥
मदोदरी सुनेउ प्रभु आयो। कौतुकही पाथोधि बँधायो ॥१॥

अर्थ फिर अपनी व्याकुलता को समझकर हँसकर और भय को भुलाकर घर चला। मन्दोदरी ने सुना कि प्रभु आगये और उन्होने खेलवाड मे ही समुद्र को बांध लिया।

व्याख्या : एक बार तो रावण व्याकुल होकर दसो मुख से समुद्र बोल उठे। पीछे से समझा कि मेरी कमजोरी : व्याकुलता सब पर प्रकट हो गयी अत: हँसकर उसे छिपाया। भय सिर पर उपस्थित है। इसे जानकर भी भुलाया और सभागृह से घर चला। वहाँ रहने से हृद्गत भावो के अधिक प्रकट होने का भय था।

मन्दोदरी रानियो मे बडी कुशल है। राजकाज मे हाथ बँटाती है। उसकी दूतियाँ हैं जो नगर भर का समाचार उसे दिया करती हैं। पहिले भी दूतिन्ह मन सुनि पुरजन बानी। मन्दोदरी अधिक अकुलानी। पुरजन को डर पैठ गया था कि : जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आये पुर कवनि भलाई। उस समय मन्दोदरी ने रावण को समझाया था पर उसने न माना। अब मन्दोदरी ने सुना कि प्रभु आगये। भाव यह कि जिसके दूत के बल का वर्णन नही हो सकता था वह प्रभु स्वय आगये। शका यह उठती है कि समुद्र के उस पार आये होगे। समुद्रोल्लघन का तो कोई सामान ही नही है। इस पर कहते हैं कि समुद्र पर सेतु बाँधकर आये पर समुद्र पर सेतु बाँधना हँसी खेल नही है। इतने बडे राजा प्रतापी हो गये पर किसी ने आज तक समुद्र पर सेतु बाँधने का मन से भी साहस नही किया पर प्रभु ने हँसी खेल मे ही उसपर पुल बाँध दिया। पहिले ही महापुरुषार्थ का अद्भुत प्रदर्शन किया।

करगहि पतिहि भवन निज आनी। बोली परम मनोहर बानी ॥
चरन नाइ सिरु अचल रोपा। सुनहु बचन पिय परिहरि कोपा ॥२॥

अर्थ : हाथ पकडकर पति को अपने घर ले गयी और बडी ही मन हरण करनेवाली वाणी बोली। चरण मे सिर नवाकर अञ्चल फैलाकर और कहा कि हे प्रिय ! क्रोध छोडकर मेरी बात सुनो।

व्याख्या : सुनना का अर्थ बात पर ध्यान देना है। रावण किसी की सुनते नही। अत उन्हे सुनाने का प्रयत्न रानी मन्दोदरी कर रही है। अन्त पुर मे रानियो

---

[1] यथा श्रुत्वा सागरबन्धन दशशिरा सर्वैर्मुखैरेकदा तूर्णं पृच्छति वार्तिकान् स चकितो भीत्या पर सम्भ्रमात्। बद्ध: सत्यमपा निधिर्जलनिधि कीलालधिस्तोयधि पाथोधिर्जलधि पयोधिरुदधिर्वारानिधिर्वारिधि:।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भोगा। हानि लाभु प्रिय मिलन वियोगा। काल कर्म बस होहिं गोसाईं। बरबस राति दिवस की नाईं। ईश्वर के हाथ में काल कर्म की बागडोर है। यथा : काल कर्म गति अगति जीव की सब हरि हाथ तुम्हारे। विनय०। अतः उनसे बैर न कीजिये।

दो. रामहि सौंपि जानकी, नाइ कमल पद माथ।
सुत कहुँ राज समर्पि बन, जाइ भजिय रघुनाथ ॥६॥

अर्थ : चरण कमल में सिर नवाकर रामजी को जानकी सौंपकर और राज्य बेटे को सौंपकर वन में जाकर रघुनाथ का भजन कीजिये।

व्याख्या : यदि कहो कि मैं तो इसी तरह से रहता चला आया हूँ। जिसका छीना उसको कभी लौटाया नहीं। अतः कहती कि अपना रास्ता बदलो। अब सब कुछ छोडो। मधुकैटभ हन्ता को जानकी सौंपो। क्योकि यह योगमाया हैं। उन्ही के वक्ष:स्थल पर निवास करती है। दितिसुत हन्ता को प्रणाम करो। ये बलि को बाँध कर त्रैलोक्य ले लेनेवाले है। अतः राज्य अपने हाथ में न रक्खो। बेटे को दे दो और सहस्रभुजहन्ता को तुम बीस भुजावाले भजो। क्योंकि भजन करनेवाला रमाविलास का त्याग बिना किये रह नहीं सकता। यथा : रमा विलास राम अनुरागी। तजत वमन जिमि नर बड़ भागी। अतः उसे वन मे ही विश्राम मिलता है।

नाथ दीन दयाल रघुराई। बाघौ सनमुख गये न खाई ॥
चाहिअ करन सो सबु करि बीते। तुम सुर असुर चराचर जीते ॥१॥

अर्थ : हे नाथ ! रघुराई तो दीन दयाल हैं। बाघ भी सामने जाने पर नहीं खाता। जो करना चाहता था सो सब आप कर चुके। आपने सुर असुर चर अचर सबको जीत लिया।

व्याख्या : यदि कहो कि वे पृथ्वी का भार हरण के लिए अवतार लिया है और मैं पृथ्वी के लिए भारभूत हूँ तो मुझे वे कभी नही छोड़ेंगे। तो मैं अपनी सी क्यो न करूँ ? तो इसका उत्तर यही है कि वे दीनदयाल हैं। वेद उनको ऐसा ही बतलाता है। यथा : जौ प्रभु दीनदयाल कहावा। आरति हरन वेद जस गावा। तुम्हे शरण सम्मुख देखकर तुमपर विशेष कृपा करेंगे। व्याघ्र बड़ा क्रूर जन्तु है। गुर्राने पर अपने बच्चे को मार डालता है। पर सामने चले जाने पर वह चोट नही करता। व्याघ्र का स्वभाव है कि सामने से चोट नही करता। उसके आँख से आँख मिली रहे तो कभी नही मारता। जो रघुराई हैं : जिसके यहाँ मङ्गन : याचक को नही नहीं किया जाता। जो दीन दयाल हैं : आर्त्ति हरण हैं वह शरण सम्मुख प्रणत को कैसे मारेंगे ?

आप राजधर्म में स्थित हैं। राजाओं के लिए जो कर्त्तव्य है वह सब कर चुके। शैशव में विद्या का अच्छा अभ्यास किया। यहाँ तक कि वेदो पर भाष्य

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बनाया। युवावस्था में विषयोपभोग भी यथेष्ट किया। यहाँ : सुनासीर सत सरिस सो संतत करत विलास। राजा लोग दिग्विजय करके अपने को कृतकृत्य मानते हैं और आपने तो तीनो लोक को जीत लिया। देवताओं के जीतने से स्वर्ग का जीतना कहा। असुरों के जीतने से पाताल का जीतना कहा। चराचर के जीतने से मृत्युलोक का जय कहा। अचर का जय कुहकविद्या से होता है जिसे आजकल साइन्स कहते हैं।

संत कहहि अस नीति दसानन। चौथेपन जाइहि नृप कानन॥
तासु भजन कीजिअ तहँ भर्त्ता। जो कर्त्ता पालक संहर्त्ता॥२॥

अर्थ : हे दशानन! सन्त लोग ऐसी नीति कहते हैं कि चौथेपन में राजा वन में चले जायँ। हे भर्ता! वहाँ उसका भजन कीजिए। जो कि संसार का कर्ता पालक और संहार करनेवाला है।

व्याख्या : राज कि रहै नीति बिनु जाने। अतः राजा की नीति का पालन अवश्य करना चाहिए। सो सन्त की कही हुई नीति श्रुतिपुराणस्मृति सम्मत होती है। यथा : संत कहहिं अस नीति प्रभु श्रुति पुरान मुनि गाव। और आप तो सन्त के वंशज हैं। आपको उनकी कही नीति का अवश्य पालन करना चाहिए। वह नीति यह है कि सब प्रकार से कृतकृत्य होकर वृद्धावस्था में राजा वानप्रस्थ होकर वन में चला जाय। यथा : शैशवेऽभ्यस्तविद्यानां यौवने विषयैषिणाम्। वार्धके मुनिवृत्तीनां योगेनान्ते तनुत्यजाम् : रघुवंश।

यदि विषय से विराग न हो तो भी साहस करके राज्य बेटे को दे दे और स्वय जाकर जगत् के उत्पत्ति स्थिति लयकर्ता को भजे। यथा : होइ न विषय विराग भवन बसत भा चौथपन। हृदय बहुत दुख लाग जन्म गयउ हरि भगति बिनु। बरबस राज सुतहि तब दीन्हा। नारि समेत गवन बन कीन्हा। आपने कर्ता और संहर्ता अर्थात् ब्रह्मा और रुद्र का भजन करके यह ऐश्वर्य प्राप्त किया। अब उनका भजन करिये जो कर्ता पालन और संहर्ता तीनो हैं अर्थात् रामजी का भजन कीजिए। क्योंकि जन्म का साफल्य उन्ही के भजन से है। यथा : जौ पै रहनि राम सो नाही। तौ नर खर कूकर सूकर सो समवृथा जाय जियत जग माही। काम क्रोध मद लोभ नीद भय भूख प्यास सबही के। मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिय पी के। सूर सुजान सपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई। बिनु हरि भजन इंदारुन के फल तजत नहीं करुआई। कीरति कुल करतूति भूति भलि सील सरूप सलोने। तुलसी प्रभु अनुराग रहित जस सीलन साक अलोने। विनय १७५ पद।

सोइ रघुबीर प्रनत अनुरागी। भजहु नाथ ममता सब त्यागी॥
मुनिवर जतनु करहि जेहि लागी। भूप राजु तजि होहि बिरागी॥३॥

अर्थ : वह प्रणत पर अनुराग करनेवाले रघुवीर हैं। हे नाथ! सब ममता

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



त्यागकर उन्ही को भजिए जिसके लिए मुनीश्वर यत्न करते हैं। राजा राज्य छोड़कर विरागी होते है।

व्याख्या : सोइ रघुवीर कहकर मन्दोदरी रामजी को कर्ता पालक संहर्ता बतला रही है। रघुवीर कहकर श्रुतिसिद्ध रघुकुल में अवतार ग्रहण कह रही है। यथा : रघो. कुले खिल राति राजते यो महीस्थितः। : तापनीयाश्रुति। प्रणत अनुरागी कहकर स्वभाव कह रही है। भजहु ममता सब त्यागी कहकर भजन का मार्ग प्रदर्शित कर रही है। यथा : सबकै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बर डोरी।

जन्म जन्म मुनि लोग यत्न करते हैं पर प्राप्ति दुर्लभ है। अन्त मे उनका नाम भी मुख से नही निकलता। यथा : जनम जनम मुनि जतन कराही। अन्त राम कहि आवत नाही। और जिसके लिए राजा लोग राज्य छोड़कर वैराग्य धारण करते है। क्योंकि राजपाट रामभक्ति का बाधक है। यथा : सुख सम्पति परिवार बड़ाई। सब परिहरि करिहौं सेवकाई। ये सब राम भगति के बाधक। कहहि संत तव पद अवराधक।

सोइ कोसलाधीस रघुराया। आयउ करन तोहि पर दाया॥
जौं पिय मानहु मोर सिखावन। सुजसु होइ तिहु पुर अतिपावन॥४॥

अर्थ : वही अयोध्यापति रघुराई आप पर दया करने आये हैं। हे प्रिय! यदि मेरी शिक्षा मानो तो तीनो लोको में तुम्हारा अत्यन्त निर्मल यश होगा।

व्याख्या : वे ही दुराराध्य और दुष्प्राप्य रामजी अयोध्या का राज्य छोड़कर वहाँ से चलते चलते आपके द्वार तक आपके ऊपर दया करने चले आये। आपका भाग्य बहुत बड़ा है। यह अवसर चूकने लायक नही है। आपकी प्रसिद्धि तो है पर दुर्यश है। सुयश नही है। यदि मेरी बात मान लो तो तीनो लोक में आपका अति पावन सुयश हो जाय कि रामजी को अपने यहाँ तक बुलाकर रावण ने अपना अन्त भी बना लिया।

दो. अस कहि नयन नीर भरि, गहि पद कंपित गात।
नाथ भजहु रघुनाथहि, अचल होइ अहिवात॥७॥

अर्थ : ऐसा कहकर आंखों में जल भरे हुए काँपते हुए शरीर से चरण पकड़ कर : माँगा कि हे नाथ! रघुवीर पद को भजो। मेरा अहिवात अचल हो जाय।

व्याख्या : रावण का रुख बात मानने का न देखकर अपने सौभाग्य के चले जाने के भय से काँपने लगी। आँखो मे आँसू भर आये। चरण पकड़ लिया और जो आँचल पहिले से पसारे हुए है उसी मुद्रा से सौभाग्य भिक्षा माँगती है कि आप रामचरण का भजन करें तो मेरा अहिवात अचल हो। मैं वैधव्य से भयभीत हूँ। मेरी रक्षा करो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


तब रावन मयसुता उठाई। कहै लाग खल निज प्रभुताई॥
सुनु तै प्रिया बृथा भय माना। जग जोधा को मोहि समाना॥१॥

अर्थ : तब रावण ने मय की बेटी को उठा लिया और वह खल अपनी प्रभुता कहने लगा। हे प्रिये! सुन। तू व्यर्थ ही डर गई। संसार मे मेरे समान योद्धा कौन है?

व्याख्या : मयतनया मंदोदरि नामा। मयतनया कहने का भाव यह कि असुरो के विश्वकर्मा की बेटी है। इसलिए रावण उसका बड़ा मान करते हैं। उसे अत्यन्त सभीत होकर कांपते हुए चरण पर गिरी देखकर उठा लिया। पर स्वभाव से खल है। हरिहर यशराकेश के लिए राहु के सदृश है। मन्दोदरी के मुख से हरियश सुनकर उसे अपनी प्रभुता सुनाने लगा। मन्दोदरी ने प्रार्थना की थी कि सुनहु बचन पिय परिहरि क्रोधा : अतः उसकी बातें चुपचाप सुनता रहा। बात समाप्त होते ही अपनी प्रभुताई का वर्णन प्रारम्भ कर दिया। अपने मुख से अपनी बड़ाई करना शिष्टसमाज मे निन्दित है पर खलो को ऐसा विचार नही होता।

मन्दोदरी ने कहा था : जौ प्रिय मानहु मोर सिखावन। उसी के उत्तर मे कहता है कि तू मेरी बात सुन। तू व्यर्थ ही डर रही है। जितनी बातें तू कर गयी उन सबका एकमात्र कारण भय है। तू मेरे लिए डर रही है। उस डर का कोई कारण नही है। डर तो जब हो जब किसी समबल योद्धा से काम पड़े। पहिले चाहे कोई रहा भी हो पर बतला इस समय मेरे समान योद्धा कौन है?

बरुन कुबेर पवन जम काला। भुजबल जितेउँ सकल दिगपाला॥
देव दनुज नर सब बस मोरे। कवन हेतु उपजा भय तोरे॥२॥

अर्थ : वरुण कुबेर पवन यम काल और सब दिक्पालो को मैंने भुजा के बल से जीत लिया। देवता दानव और मानव सब मेरे वश मे हैं। किस कारण से तुम्हारे मन मे भय उपजा है?

व्याख्या : यह बात भी नही कि मेरे बल की परीक्षा न हुई हो। बरुन कुबेर सुरेस समीरा। रन सनमुख धरि काहु न धीरा। भुज बल जितेउ काल यम साईं। इन सब दिक्पालो को अस्त्रबल शास्त्रबल तपबल वरदानबल सैन्य बल आदि की अपेक्षा न करके मैंने केवल भुजबल से जीत लिया। यथा : लोकपाल बल विपुल ससि ग्रसन हेतु सब राहु। लोकपालो से बढ़कर और कौन है। मैंने काल को भी जीत लिया। आयु मेरी चाहे जितनी हो वृद्धावस्था मुझे स्पर्श नही कर सकती। इसलिए चौथापन आ ही नही सकता। वन जाने की चर्चा ही क्या है?

कभी किसी ने किसी को मार दिया हो यह दूसरी बात है। पर कोई देव दनुज नर को वश न कर सका। न तो विष्णु न नृसिंह ने न वामन ने न परशुराम ने ही कभी राज किया और यहाँ तो ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनु धारी। दसमुख बसवर्ती

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नर नारी। कोई मेरी आज्ञा के बाहर नही है। तब तेरे भय का क्या कारण है जो अहिवात चिल्ला रही है।

नाना बिधि तेहि कहेसि बुझाई। सभा बहोरि बैठ सो जाई ॥
मंदोदरी हृदय अस जाना। काल बस्य उपजा अभिमाना ॥३॥

अर्थ: अनेक प्रकार से उसे समझाकर कहा। फिर जाकर सभा मे बैठा। मन्दोदरी ने मनमे समझ लिया कि काल विवश होने से इन्हे अभिमान उत्पन्न हो गया।

व्याख्या: उसे अनेक विधि से समझाया। मुझसे संग्राम करने के लिए मेरे इतना तपोबल चाहिए। उपासना बल चाहिए। वरदान बल चाहिए। फिर सेना बल दुर्गबल बन्धुबल भी मेरे ऐसा किसमे है। अतः खतरे की कोई बात ही नही है। यथा:

तपबल भुजबल सेनबल कोष दुर्ग अरु राज।
मेरो वरबल छदम बल सब विधि सुदृढ समाज ॥
मुण्डमाल निज सिरन्ह को को सक शिवहि चढाय।
वीर घीर दसकण्ठ तजि जग मे जन्यो न माय ॥
सहित शिवा शिवको सके गिरि कैलास उठाय।
जानि बूझि सामर्थ्य मम तू नाहक घबराय ॥
रह्यो महाबल कीश एक गयो अन्त मे हारि।
धोखा दैके धूर्त कपि सक्यो लंक को जारि ॥
कै दिनको तपसी वसी कहा तपस्या कीन्ह।
काहि पूजि केहि देव ते कहा महावर लीन्ह ॥
तिय बियोग दुख ते विकल राज काप ते हीन।
बेर असन वलकल वसन सब प्रकार ते छीन ॥
ऐसे नर ते कौन भय जाके कीश सहाय।
नहि मानुष गुन लेश लखि दीन्ह पिता बहिराय ॥

उसे तो अनेक प्रकार से समझाया पर स्वयं विचलित हो गये। वहाँ से उठकर सभा मे फिर जाकर बैठे। इधर मन्दोदरी ने मन मे समझ लिया कि ऐसा अभिमान इन्हे नही था। सदा बातो को समझते बूझते थे। यह प्रकृति विपर्यय कालविवश होने से हुआ है अर्थात् रावण के वचनो का प्रभाव मन्दोदरी पर कुछ भी न हुआ।

## रावण सभा

सभा आइ मंत्रिन्ह तेहि बूझा। करब कवन बिधि रिपु सै जूझा ॥
कहहि सचिव सुनु निसिचर नाहा। बार बार प्रभु बूझहु काहा ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


कहहु कवन भय करिअ विचारा। नर कपि भालु अहार हमारा ॥५॥

अर्थ : सभा में आकर उसने मन्त्रियों से पूछा कि शत्रु से किस प्रकार युद्ध किया जायगा ? मन्त्री लोग कहने लगे हे निशिचर नाथ ! हे प्रभो आप बार बार क्या पूछते हैं। कहिये कौन सा डर है जिसका विचार करें। नर कपि और भालु तो हमारे आहार ही ठहरे।

व्याख्या : जब सिन्धु पार सेना आयी थी उसी समय एक बार और रावण ने मन्त्रियों से पूछा था। तब उन लोगों ने कहा था कि चुप रहा जाय जिसमे वन्दर और निकट चले आवें। इस समय छेड़ छाड़ करने से सब भाग जावेंगे। मुख में आया हुआ आहार जाता रहेगा। तदनुसार सब चुप रह गये। अब तो सेतु बाँधकर सेना इस पार आगयी। युद्ध हुआ ही चाहता है। अतः रावण फिर मन्त्रियों से पूछते हैं कि युद्ध का नक्शा ठीक कर लिया जाय कि युद्ध किया जायगा ?

मन्त्री लोग राजा का पूरा पता रखते थे। राज्य का पता चाहे उन्हे न भी हो। उन्हे पता लग गया था कि रावण महल से यह कहकर आ रहे हैं कि भय का कोई कारण नही है। अतः वे भी ठकुरसोहाती सम्मति दे रहे है कि कहहु कवन भय करिय बिचारा। यदि कोई भय उपस्थित हो तब तो पूछना भी और विचार करना भी शोभा देता है। आहार मुख में चला आ रहा है तो इसे कैसे उदरस्थ कर लेंगे इसमे बार बार पूछने की न तो कोई आवश्यकता है और न विचार करने से कोई प्रयोजन सिद्धि है। नर अहार रजनीचर करही। अतः पहिले नर का ही नाम लेते हैं। कपि का दूसरा नम्बर है। वे नर की भाँति स्वादु नही हैं। भालु तो अधिक कठिन होते है। अतः उनका तीसरा नम्बर है।

दो. सबके बचन स्रवन सुनि, कह प्रहस्त कर जोरि।
नीति बिरोध न करिअ प्रभु, मंत्रिन्ह मति अति थोरि ॥८॥

अर्थ : सबके वचन कान से सुनकर प्रहस्त ने हाथ जोड़कर कहा कि हे प्रभो ! नीतिविरोध न कीजिये। इन मन्त्रियों की बड़ी अल्प बुद्धि है।

व्याख्या : सेनापति प्रहस्त ने सबकी बातें सुनी। देखा कि सब ठकुरसोहाती बोलनेवाले हैं। अब रावण की सभा मे कोई हित कहनेवाला नही है। तब हाथ जोड़कर बोले कि नीति विरोध हो रहा है। ये मन्त्री पूछने पर हित और परिणाम मे सुखावह सम्मति नही दे रहे हैं। ये प्रियवक्ता हैं। ये मित्र रूप मे शत्रु हैं। यथा : यो न पृष्टो हित ब्रूते परिणामे सुखावहम्। स मन्त्री प्रियवक्ता च केवल स रिपुः स्मृत.। प्रहस्त स्पष्ट शब्द मे उन्हे रिपु न कहकर अल्पबुद्धि कह रहा है। आगे चलकर प्रियवक्ता भी कहेगा।

कहहिं सचिव सठ ठकुरसोहाती। नाथ न पूर आव एहि भाँती ॥
बारिधि नाँघि एकु कपि आवा। तासु चरित मन महुँ सबु गावा ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : ये मन्त्री शठ हैं। ठकुरसोहाती कहते है। हे नाथ ! इस भांति पूरा न पड़ेगा। समुद्रोल्लघन करके एक बन्दर आया था। उसका चरित मन ही मन सब ने गान किया।

व्याख्या : ये बड़ी भारी हानि कर रहे हैं जो सच्ची बात छिपा रहे हैं और मीठी मीठी बातें बनाते हैं। जो आपको अच्छा लगता है वही ये सब कहते है। मालिक का पूरा ठकुरसोहाती कहने से नही पड़ता। इससे मालिक को धोखा होता है और वह बड़े संकट मे पड़ जाता है। अब मन्त्रियों की बातो का खोखलापन दिखलाता है।

इस समय तो अगणित बन्दर सेतु बांधकर आगये हैं। इसके पहिले अकेला बन्दर समुद्र उल्लघन करके आगया था। उसने क्या क्या किया। उन करणियों की बड़ाई सब लोगो ने मन ही मन की। यथा : उहाँ निसाचर रहहिं ससका। जबसे जारि गयउ कपि लंका। निज निज गृह सब करहिं विचारा। नहि निसिचर कुल केर उबारा। जासु दूत बल बरनि न जाई। तेहि आये पुर कौनि भलाई। आपके भय से प्रकट किसी ने कुछ नही कहा। राक्षस लोग हनुमच्चरित्र का मानसिक गान करके मोक्ष के पात्र हो गये। जो सानन्द वाणी से गाता है उसके लिए कहना ही क्या ? तुलसी फल चारो करतल जस गावत गई बहोर को। विनय. पद ३१।

छुधा न रही तुमहि तब काहू। जारत नगरु कस न धरि खाहू ॥
सुनत नीक आगे दुखु पावा। सचिवन्ह अस मत प्रभुहि सुनावा ॥२॥

अर्थ : तब क्या तुम लोगों को भूख नही थी ? नगर जलाने के समय उसे पकड़कर खा क्यो नही लिया ? सुनने मे अच्छी लगे पर पीछे जिससे दुःख हो ऐसी सम्मति मन्त्रियों ने प्रभु को दी है।

व्याख्या : अब मन्त्रियों से पूछते हैं कि क्या उस समय किसी को भूख नही थी। आप लोग इतने है किसी को तो उस समय भूख रही ही होगी। जब वह बन्दर नगर जला रहा था तो उसे पकड़कर खा क्यों नही गये ? भाव यह कि जिन बन्दरों को राक्षस खाया करते है वे बन्दर ये नही हैं। जब किसी ने उत्तर नही दिया तब रावण से कहता है कि विषसम्पृक्त मधु की भाँति मन्त्रियो की सम्मति है। जो सुनने में मीठी लगे और परिणाम उसका घोर हो।

जेहि बारीस बंधायेउ हेला। उतरे सेन समेत सुबेला ॥
सोभनु मनुज खाब हम भाई। बचन कहहि सब गाल फुलाई ॥३॥

अर्थ : जिसने खेल मे समुद्र बांध लिया और सेना सहित जो सुवेल पर्वत पर उतरा हुआ है उस सुन्दर मनुष्य को हम खायेंगे। यह वचन सब गाल फुलाकर कह रहे हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या : इस संसार मे बडे बडे पराक्रमी हुए पर आज तक समुद्र पर सेतु किसी ने नही बांधा। जिसका ऐसा पराक्रम है कि खेल मे समुद्र पर सेतु बाँध दिया और साहस ऐसा है कि ठीक लका के सामने सुवेल पर्वत पर सेना के सहित उतर पड़ा है।

उसके लिए कहते हो कि सुन्दर मनुष्य को हम खायेंगे। उसका खा जाना इतना सरल है कि यहाँ सभी लोग उसके खा जाने का हौसला अभिमान के साथ कर रहे हैं। मानो वह कोई सुन्दर फल है जिसके खाने के लिए सबका मन ललच उठा है।

तात बचन मम सुनु अति आदर। जनि मन गुनहु मोहि करि कादर ॥
प्रिय बानी जे सुनहि जे कहही। ऐसे नर निकाय जग अहही ॥४॥

अर्थ हे तात! मेरी बात अत्यन्त आदर के साथ सुनिये। मनमे मुझे कादर न समझ लीजियेगा। ऐसे मनुष्य बहुत हैं जो प्रिय वाणी कहते है और सुनते हैं।

व्याख्या : आपने इस ठकुरसोहती कहनेवाले मन्त्रियो की बात आदर के साथ सुनी। पर मेरी बात अत्यन्त आदर के साथ सुनिये अर्थात् तदनुसार कार्य कीजिये। मै युद्ध से भयभीत होकर ऐसा नही कह रहा हूँ। मै कादर नही हूँ। कादर समझकर मेरी वाणी की उपेक्षा न कीजिये। मै उचितवक्ता हूँ। मेरी वाणी अप्रिय है परन्तु हित है।

प्रियवाणी लोग इसलिए कहते है कि सुननेवाला रुष्ट न हो और प्रियवाणी इसलिए सुनना चाहते है कि इससे उन्हे सुख होता है। लाभ हानि का वाणी की प्रियता के साथ कोई सरोकार नही है। अत प्रिय बोलने और सुननेवालो से ससार भरा पडा है।

बचन परम हित सुनत कठोरे। सुनहि जे कहहि ते नर प्रभु थोरे ॥
प्रथम बसीठ पठउ सुनु नीती। सीता देइ करहु पुनि प्रीती ॥५॥

अर्थ . बडे कल्याण की बात जो सुनने मे कठोर हो उसके कहने और सुननेवाले थोडे हैं। नीति सुनिये। पहिले सुलह के लिए दूत भेजिये। तत्पश्चात् सीता देकर के उनसे प्रीति कर लीजिये।

व्याख्या : अप्रियस्य च पथ्यस्य श्रोता वक्ता सुदुर्लभ.। कल्याण की बात कहकर शत्रुता कौन मोल ले। इसलिए सब लोग प्रिय बात कहते हैं। सुननेवाला भी प्रिय बात सुनना चाहता है। कल्याण के सुननेवाले परम दुर्लभ हैं। अर्थात् मैं ऐसे दुर्लभ व्यक्तियो मे से हूँ और आपका भी उसी भाँति दुर्लभ होने की आशा करता हूँ। पहिले साम का प्रयोग करना ही नीति है। दूत भेजिये और सीता देकर प्रीति कर लीजिये। युद्ध तो वहाँ किया जाता है जहाँ साम और दान से काम न चले। पहिले युद्ध ही करना नीति विरोध है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


दो. नारि पाइ फिरि जाहि जौ, तौ न बढ़ाइअ रारि।
नाहित सनमुख समर महि, तात करिअ हठि मारि ॥९॥

अर्थ : यदि स्त्री पाकर फिर जांय तो झगड़ा न बढ़ाइये। नही तो हे तात ! सामने होकर रणाङ्गण में हठ करके युद्ध कीजिये।

व्याख्या : साम का प्रयोग भी अपनी प्रतिष्ठा रखते हुए कीजिये। उनकी स्त्री है उसे लौटा देने में अप्रतिष्ठा नही है। यदि वे इतने मे ही सन्तुष्ट हो तो झगड़ा न बढायें और यदि उनकी इच्छा बदला लेने को हो दण्ड देना चाहते हो तो उनके आक्रमण करने का बाट न जोहकर स्वय उनपर धावा वोलिये और सम्मुख होकर संग्राम भूमि में युद्ध कीजिये। इन मन्त्रियो की नीति में कादरता है। ये दुर्ग मे रहकर युद्ध करना चाहते हैं।

यह मत जौं मानहु प्रभु मोरा। उभय प्रकार सुजसु जग तोरा ॥
सुत सन कह दसकंठ रिसाई। अस मति सठ केहि तोहि सिखाई ॥१॥

अर्थ : हे प्रभो ! मेरी यह सम्मति यदि आप माने तो दोनों तरह से आपका सुन्दर यश संसार मे होगा। रावण क्रुद्ध होकर पुत्र से बोला कि रे शठ ! यह बुद्धि तुझे किसने सिखलाई ?

व्याख्या : रावण अपनी छोड़कर दूसरी बात सुनेंगे' इस बात मे सबको सन्देह है। मन्दोदरी ने भी यही कहा कि : जौ पिय मानहु मार सिखावन। प्रहस्त भी यही कहता है : यह मत जौ मानहु प्रभु मोरा। दोनो ने सुयश का लोभ दिखलाया। मन्दोदरी ने कहा : होय सुजसु तिहु पुर अति पावन। और प्रहस्त कहता है : उभय प्रकार सुजसु जग तोरा। प्रहस्त के कहने का भाव यह है कि मेरा मत न मानकर युद्ध करने से ससार मे तुम्हारा दुर्यश होगा और मेरे मत के मानने पर यदि युद्ध भी करना पड़े तो भी तुम्हारा सुयश होगा।

गोस्वामीजी के मत से प्रहस्त रावण का बेटा था। सुत सन कह का भाव यह कि रावण इस बात पर बहुत चिढे हुए हैं कि मेरा बेटा होकर इसकी ऐसी बुद्धि कैसे हुई। अत. कहता है कि यह तेरी उपज नहीं है। तुझे किसी ने सिखा-पढाकर दरबार मे भेजा है। मन्दोदरी अभी यही बात कहती रही। सम्भव है उसीने यह सब इसे सिखाया हो। प्रहस्त ने मन्त्रियो को शठ कहा था। रावण कहता है कि मन्त्री मेरे शठ नही हैं। तू शठ है : सर्वनाशकारी बात बोलता है। कौन कौन वस्तु दूसरो को मैं लौटाऊँगा। यहाँ तो जो कुछ है सो सब दूसरो से ही छीना हुआ है। लोग जान पावेंगे कि रावण चढ़ाई करने पर छीनी वस्तु लौटा देते है तो नित्य चढाई लङ्का पर हुआ करेगी।

अबही ते उर संसय होई। बेनु मूल सुत भयेउ घमोई ॥
सुनि पितु गिरा परुष अति घोरा। चला भवन कहि बचन कठोरा ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ अभी से तेरे हृदय मे सशय होने लगा। तू बाँस के जड मे घमोई भडभाँड हुआ। पिता का अति घोर कटु वचन सुनकर कठोर वचन कहकर घर चला।

व्याख्या सशय का ध्यान तो सग्राम मे सावधानी के लिए है। यथा युद्धसिद्धिहि कचला। तुझे सग्राम की चर्चा चलने से जय मे सन्देह उठ रहा है। यही कादर का लक्षण है। बाँस के जड मे बाँस ही होता है। दूसरा कोई पेड बाँस के जड मे नही जम सकता। क्योंकि उसके चारो ओर की भूमि उसके जड से ऐसी व्याप्त हो जाती है कि दूसरा वृक्ष उग ही नही सकता। भँडभाँड की जड बहुत नीचे नही जाती। अत यदि उसका बीज बाँस के क्षेत्र मे जा पडे तो भँडभाँड उग सकता है पर बाँस के कोई गुण नहीं होते। वह छूते ही टूट जाता है। भाव यह कि तू मेरे वीर्य से नही है तू कादर है।

इसी भावार्थ पर दृष्टि रखते हुए कहते हैं कि पिता का अतिघोर परुष गिरा सुनकर कठोर बोलता घर चला। दूसरा कोई ऐसी बात नही बोल सकता। बोलने से सिर काटता है। पर पिता ने कहा सो पिता का अपमान ही उसका वध है। अत प्रहस्त ने कठोर वचन कहा। वैसा ही कठोर वचन कहा जैसा पुत्र ऐसे समय पिता को कह सकता है।

हित मत तोहि न लागत कैसें। काल बिबस कहु भेषज जैसे॥
सध्या समय जानि दससीसा। भवन चलेउ निरखत भुजबीसा॥२॥

अर्थ भलाई की बात तुझ पर इस भाँति कोई प्रभाव नही करती जैसे काल विवश पर दवा का प्रभाव नहीं पडता। सन्ध्या का काल जानकर दशग्रीव बीसो भुजाओ को देखते घर चले।

व्याख्या भलाई की बात भगवान् पुलस्त्य ने कहलाया। बराबर के भाई विभीषण ने कहा पट्टमहिषी मन्दोदरी ने कहा। पुत्र होकर मैं कह रहा हूँ पर तेरे ऊपर कोई प्रभाव ही नही पडता। सौ रोग की दवा है एक की नही वह रोग काल है। उसके विवश जो हो जाता है उस पर कोई औषधि काम नही करती अर्थात् तू काल के वश हो गया है। तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गयी। हित की बात मनम नही बैठती।

रावण दरबार करने मे आलस्य नही करते। दोनो समय दरबार होता है। सन्ध्या करने का समय आया हुआ देखकर रावण घर चले। अग्निहोत्री हैं। नित्य नैमित्तिक कर्म का निर्वाह करते हैं। अपने भुजाओ का बडा गर्व है। अगद से कहेंगे · हरगिरि मथन निरखि मम बाहूँ। पुनि कपि सठ निज प्रभुहि सराहूँ। इत्यादि। सो उन भुजाओ को देखते हुए चले कि मम भुज सागर बल जल पूरा। जहँ बूडे बहु सुर नर सूरा। बीस पयोधि अगाध अपारा। को अस बीर जो पाइहि पारा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लंका सिखर उपर आगारा। अति विचित्र तहँ होइ अखारा ॥
बैठि जाइ तेहि मंदिर रावन। लागे किन्नर गुन गन गावन ॥४॥
बाजहि ताल पखाउज बीना। नृत्य करहि अपछरा प्रवीना ॥५॥

अर्थ : लंका में चोटी पर एक बंगला था। उसमें अति अद्भुत अखाडा हुआ करता था। रावण उसी घर में जाकर बैठा। किन्नर उसके गुणगण गाने लगे। ताल पखाउज और वीणा बज रही थी। नृत्यकला में चतुर अप्सराएँ नाच रही थी।

व्याख्या : राजाओ के बहुत से महल होते हैं पर पर्वत के शिखर पर का आगार बडा मनोरंजक होता है। जैसा वह आगार था वैसा ही वहाँ अखाडा होता था। जहाँ गुणी जन एकत्र होकर अपना अपना हुनर दिखावें वही अखाडा कहा जाता है। आजकल केवल मल्लविद्या के प्रदर्शन स्थान को ही अखाडा कहते हैं। वहाँ सङ्गीत का अखाडा था। रावण सङ्गीत शास्त्र के प्रधान आचार्य हैं।

आज रावण उसी सर्वोच्च मन्दिर मे जाकर विराजमान हुए जिसमे शत्रु देख सकें कि रावण को उनका रत्ती भर भय नहीं। वे यथापूर्व अपने भोग विलास मे आसक्त हैं। वहाँ देवयोनि विशेष किन्नरो का गान होता था। मण्डलीक मणि रावण के गुणगण गाये जाते थे। किन्नर गन्धर्व गान मे बडे निपुण होते हैं।

मजीरा आदि की ताल मे गणना है। पखाउज मृदग को कहते हैं और वीणा बज रही थी। वीणा पर गान करने की सामर्थ्य किन्नरो को ही है। मनुष्यो के गले मे इतना माधुर्य नही कि वीणा पर गान कर सकें और प्रवीण अप्सरा मेनका उर्वशी रम्भा आदि का नृत्य होता था। सामान्य अप्सराओ की भी सामर्थ्य नहीं कि रावण के सामने नृत्य कर सकें। मन्दोदरी साथ बैठी है। अप्सराओ से भी अधिक सुन्दरी है।

दो. सुनासीर सत सरिस सो, संतत करै बिलास।
परम प्रबल रिपु सीस पर, तद्यपि सोच न त्रास ॥१०॥

अर्थ : सौ इन्द्र के समान वह सदा भोग विलास किया करता था। अत्यन्त प्रबल शत्रु सिर पर है फिर भी उसे कुछ भी डर नही है।

व्याख्या : रावण बडा भारी व्यसनी है। सौ इन्द्र के बराबर भोग विलास नित्य करता है। भानु प्रताप के रूप मे इन्द्र से सौ गुना अधिक यज्ञ भी कर चुका है। इन्द्र तो शतक्रतु है। सौ अश्वमेध यज्ञ कर चुके है पर भानुप्रताप के शरीर से रावण अगणित यज्ञ किये हुए है। यथा जहँ लगि कहे पुरान स्रुति एक एक सब जाग। बार सहस्र सहस्र नृप किए सहित अनुराग। उसी पुण्य का फल सुनासीर सत सरिस विलास करके ले रहा है। सहज अशङ्क है। अत श्रीरामचन्द्र से प्रबल शत्रु के चढ आने पर भी उसे तनिक भी भय नहीं है। भाव यह है कि कितना बलवान राजा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



क्यों न हो भोग विलास में पड़कर मारा पड़ता है और शत्रु की उपेक्षा करनेवाले की भी ऐसी गति होती है। रावण में पराभव के दोनों लक्षण अत्यन्त स्पष्ट हैं।

## सुवेली की झांकी

इहाँ सुवेल सैल रघुबीरा। उतरे सेन सहित अति भीरा॥
सिखर एक उतंग अति देखी। परम रम्य मम सुभ्र बिसेखी॥१॥

अर्थ : यहाँ रघुवीर रामजी सुवेल पर्वत पर सेना सहित उतरे। बड़ी भारी भीड़ हुई उस पर्वत की एक चोटी को सुन्दर देखकर जो कि अत्यन्त ऊँची समतल और स्वच्छ थी।

व्याख्या : सिन्धु पार प्रभु डेरा कीन्हा। सकल कपिन्ह कहँ आयसु दीन्हा से प्रसङ्ग छूटा हुआ है। अब उसी प्रसङ्ग को उठाते हैं। प्रहस्त रावण की सभा में कह चुका है कि : उतरे सेन समेत सुवेला। इससे पता चलता है कि वन्दरों के फल खा लेने के बाद सुवेल पर बड़ी भीड़ हुई। तब सरकार के ठहरने के लिए एक सुन्दर शृङ्ग तजवीज किया गया। पर्वत का आनन्द उसके शृङ्ग पर से ही मिलता है। जितना ऊँचा शृङ्ग हो उतना ही प्राकृत दृश्य अधिक दृष्टिगोचर होता है। पर्वतो के पथिक इस बात से परिचित हैं कि वहाँ समतल भूमि की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ होती है। सो वह शृङ्ग अत्यन्त ऊँचा था और समतल था। अन्य शृंगों से रमणीय भी अधिक था। दूसरी बात यह है कि शत्रु से युद्ध करना है। अतः अपनी तथा सेना की रक्षा के लिए गिरि दुर्ग का आश्रयण किया गया।

तहँ तरु किसलय सुमन सुहाए। लछिमन रचि निज हाथ डसाये॥
तापर रुचिर मृदुल मृगछाला तेहि आसन आसीन कृपाला॥२॥

अर्थ : वहाँ पेड़ों के पत्ते और सुन्दर फूलों को लक्ष्मणजी ने अपने हाथ से बिछाये। उसपर सुन्दर और कोमल मृगछाला बिछाया गया। उसी आसन पर कृपाल रामजी विराजमान हुए।

व्याख्या : लक्ष्मणजी राजकुमार हैं। पुष्प शय्या रचना जानते हैं। अतः उन्होने अपने हाथों पत्ते और फूलों की शय्या तैयार की। पहिले ही कह आये हैं : नाना तरु फल फूल सुहाये सो फल बन्दरों के काम आये। फूलों से शय्या की रचना की गई।

वीर रस के बढ़ाने के लिए लक्ष्मणजी ने उसपर कपट मृग का चर्म बिछाया। उसे लक्ष्मणजी साथ लाये थे। यथा : हेम को हरिन हनि फिरे रघुकुल मनि लखन ललित कर लिए मृगछाल। वह कपट मृग परम रुचिर था। यथा : सीता परम रुचिर मृग देखा। कपट कुरंग कनक मनि मय लखि प्रिय सों कहति हँसि बाला। पाए पालिवे जोग मंजु मृग मारेहु मंजुल छाला। यहाँ रुचिर मृग छाला कहकर उसी मृग के चर्म को लक्षित करते हैं। विश्राम के लिए सरकार उसी आसन पर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भगवान् की सेवा कर रहे है और करुणाकर भगवान् सेवा स्वीकार कर रहे हैं। अत. इस मित्रगोष्ठी मे स्थित भगवान् के ध्यान की विशेष महिमा कही। जीव का हृदयस्थल श्रीरामराज्य होने के पहले लङ्का ही है। अत लङ्का का ध्यानकर विशेष माहात्म्य कहा गया।

दो. पूरब दिसा बिलोकि प्रभु, देखा उदित मयंक।
कहत सबहि देखहु ससिहि, मृगपति सरिस असंक ॥११ख॥

अर्थ : रामजी ने पूर्व दिशा मे देखकर चन्द्रमा को उदय हुआ देखा। सबसे कहने लगे चन्द्रमा को देखो। यह सिंह की तरह नि शङ्क है।

व्याख्या · सरकार पश्चिम की ओर पैर किये लेटे थे। पूर्व और दक्षिण व ओर पैर करके सोना निषिद्ध है। यथा : पश्चिमोत्तरशायी च हन्ति पुण्य पुराकृतम् जब चन्द्रोदय होने मे प्रकाश मालूम हुआ तो उधर देखा। चन्द्रमा के देखने से भाव हृदय मे आया उसी को व्यक्त करने के लिए सबसे कहते हैं। सबसे उत्प्रे करने के लिए कहेंगे। अत सबको दिखलाते हैं। मयङ्क शब्द मृगाङ्क का प्रा रूप है। यहाँ मयङ्क और शशि दोनो शब्द चन्द्रमा के लिए ऐसे कहे जिससे उस सकलङ्क होना सूचित होता है।

काव्यशास्त्रविनोदेन कालो गच्छति धीमताम्। व्यसनेन च मूर्खाणां नि कलहेन वा। बुद्धिमान् का समय काव्यशास्त्र के विनोद मे व्यतीत होता है। का समय व्यसन मे निद्रा मे अथवा कलह मे व्यतीत होता।

यहाँ कवि दिखला रहे है कि सरकार के विश्रामके समय मे काव्यशास्त्र विनोद होगा। इसके बाद ही यह दिखलावेंगे कि रावण के विश्राम का व्यसन मे बीतता है। सरकार अपनी वाणी का प्रारम्भ ही रूपकालङ्कार रहे हैं। चन्द्रमा का रूपक सिंह से बाँधा गया है।

पूरब दिसि गिरिगुहा निवासी। परम प्रताप तेज बलरासी
मत्त नाग तम कुंभ बिदारी। ससि केसरी गगन बनचारी

अर्थ पूर्व दिशा रूपी पर्वत की गुहा मे रहनेवाला अत्यन्त प्रताप बल की राशि यह चन्द्ररूपी सिंह अन्धकाररूपी मतवाले हाथी का गि करके आकाशरूपी वन मे विचरण कर रहा है।

व्याख्या · यहाँ सुवेलाचल पर सरकार है। त्रिकूटाचल पर राव उदयाचल पर चन्द्रमा है। सुवेलाचल पर पहिले उदयाचल की चर्चा पर्वत की गुफा मे रहता है और यह चन्द्रमारूपी सिंह उदयाचल है। तेज और बल की राशि है और यह चन्द्रमारूपी सिंह परम प्रताप तेज [illegible] दोहे मे प्रताप का सूचक मृगपति विशेषण दिया [illegible] आगे कहेंगे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



गुफा से निकलते ही यह चन्द्ररूपी सिंह अन्धकाररूपी मत्तनाग पर टूट पड़ा और उसके मस्तक को विदीर्ण कर दिया। अन्धकाररूपी हाथी मारा गया। दिशा रक्त से लाल हो गयी। अब आगे गगनरूपी वन मे बढ रहा है।

बिथुरे नभ मुकताहल तारा। निसि सुंदरी केर सिंगारा॥
कह प्रभु ससि महुँ मेचकताई। कहहु काह निज निज मति भाई॥२॥

अर्थ तारारूपी मोतियाँ आकाश मे बिखरी है। वे ही रात्रिरूपी सुन्दरी के शृङ्गार रूप हैं। प्रभु ने कहा भाई! चन्द्रमा मे जो कालापन है वह क्या है? अपनी अपनी बुद्धि से कहो।

व्याख्या जब हाथी का मस्तक विदीर्ण हुआ तो गजमुक्ता छलककर वन में बिखर गयी। इसी भाँति अन्धकाररूपी हाथी के मस्तक के मुक्तारूप ये तारे हैं। उसके मारे जाने पर वनरूपी गगन मे बिखर गये हैं।

यहाँ स्मरणालङ्कार है। चन्द्रमा मे कलङ्क देखकर पुलस्त्य वश मे रावण का स्मरण हुआ। यथा रिषि पुलस्त्य जस बिमल मयंका। तेहि ससि महु जनि होहु कलंका। अत सबको अपनी अपनी बुद्धि के अनुकूल उत्प्रेक्षा के लिए आज्ञा हो रही है। जिस भाँति सरकार ने पूछा उसी भाँति उत्प्रेक्षा मे ही कलङ्क के विषय मे अपना अपना मत सब लोग कहेगे।

कह सुग्रीव सुनहु रघुराई। ससि महुँ प्रगट भूमि कै झाईं॥
मारेहु राहु ससिहि कह कोई। उर महँ परी स्यामता सोई॥३॥

अर्थ, सुग्रीव ने कहा हे रघुराई! सुनिये। चन्द्रमा मे पृथिवी का प्रतिबिम्ब दिखाई पड रहा है। किसी ने कहा कि राहु ने चन्द्रमा को मारा। उसके हृदय मे वही कालापन पड गया है।

व्याख्या राजा सुग्रीव सम्पूर्ण भुवन के जानकार हैं। बडे भूगोलवेत्ता हैं। सबकी यात्रा कर चुके हैं। यथा ताके भय रघुबीर कृपाला। सकल भुवन मैं फिरेउँ बिहाला। यह कहते हैं कि चन्द्रमा मे भूमि की परिछाईं पडी हुई है। सुन्दर उत्प्रेक्षा है। भूगोल मे जलाश और स्थलाश दोनो हैं। यदि सम्पूर्ण स्थलाश को सामने करके भूगोल को देखा जाय तो सचमुच जल के बीच म स्थलाश चन्द्र की कालिमा के आकार का ही मालूम होता है। इसलिए चन्द्र के कलङ्क को पृथिवी की छाया बतला रहे हैं एव यह लक्षित करा रहे हैं कि यह पृथिवीपति होने का अभिमान है। पृथिवीपति अपने को रत्नभुक् मानते हैं। अत रावण ने स्त्रीरत्न सीता का हरण किया। इसी प्रकार की बात शुम्भ-निशुम्भ ने भी जगदम्बा पार्वतीजी से कहलाया था। यथा : मा वा ममानुज वापि निशुम्भमुरुविक्रमम्। भज त्वं चञ्चलापाङ्गि रत्नभूतासि वै यत। परमैश्वर्य्यमतुल प्राप्स्यसे मत्परिग्रहात्। एतद्बुध्या समालोच्य मत्परिग्रहता व्रज। हे चञ्चल नेत्रवाली! तू मुझे या बडे पराक्रमी मेरे भाई निशुम्भ को स्वीकार कर। क्योंकि तू स्त्रियो मे रत्न है। मुझे

ankurnagpal108@gmail.com



स्वीकार करने से अतुल महा ऐश्वर्य तुझे प्राप्त होगा। ऐसा मन मे समझकर मेरी स्त्री होना स्वीकार कर ले।

शरीर के जिस अङ्ग पर चोट कडी पड जाती है वहाँ काला दाग पड जाता है। चन्द्रमा को राहु प्रायेण ग्रसा करता है। सो ग्रास करने के समय चन्द्रमा के उर मे जो राहु ने प्रहार किया है वही काला दाग चन्द्रमा के उर मे है।

लक्ष्य यह है कि राहु तम है अन्धकार है। तम अन्धकार अज्ञान पर्यायवाची शब्द हैं अर्थात् यह कलङ्क अज्ञानकृत है। अङ्गदजी ने भी सीताहरण का कारण कहते हुए दो पक्ष रावण के सामने उपस्थित किया था कि नृप अभिमान मोह बस किंबा। हरि आनेहु सीता जगदंबा। वे ही दोनो पक्ष यहाँ क्रम से दिखाये गये हैं।

यद्यपि यहाँ अनिश्चयात्मक सर्वनाम कोई का प्रयोग कवि ने किया है। नाम नही दिया फिर भी मानस के रहस्यज्ञो का यही निश्चय है कि यह उत्प्रेक्षा विभीषणजी की है रावण के चरण प्रहार से ये व्यथित हैं। अत इन्हे वही उत्प्रेक्षा सूझ रही है। यथा यातुधानेस भ्राता बिभीषन नाम बन्धु अपमान गुरु ग्लानि चाहत गरन। गीतावली।

कोउ कह जब बिधि रतिमुख कीन्हा। सार भाग ससि कर हरि लीन्हा॥
छिद्र सो प्रगट इंदु उर माही। तेहि मग देखिअ नभ परिछाही॥४॥

अर्थ किसी ने कहा कि जब ब्रह्मदेव ने रति का मुख बनाया तो चन्द्रमा का सार भाग हरण कर लिया। वही छेद चन्द्रमा के हृदय मे स्पष्ट है। उसी मार्ग से आकाश की परिछाही दिखाई पडती है।

व्याख्या यहाँ भी कोऊ शब्द का प्रयोग है नाम नही दिया गया। पर महात्माओ का अनुमान है कि यह उक्ति अङ्गदजी की है। अङ्गदजी नवयुवक है। शृङ्गार रस लिए हुए उत्तर देते हैं। सौन्दर्य मे काम की शक्ति रति की ही प्रधानता है। सो अङ्गदजी उत्प्रेक्षा करते है कि ब्रह्मदेव जब रति के मुख का निर्माण करने लगे तो चन्द्रमा के साराश को लकर ही निर्माण किया। अत चन्द्रमा के हृदय मे छिद्र हो गया है। वहाँ शून्य है और कुछ नही। उसी मार्ग से आकाश की नीलिमा झलकती है।

लक्ष्य यह है कि वरदान देने के समय ब्रह्मदेव ने इस रावण की बुद्धि हरण कर ली और उसी से सरकार की विजयलक्ष्मी का मुख बनाया। यथा रावन कुभकरण वर माँगत सिव विरचि बाचा छल्यौ। अत इसका हृदय शून्य हो गया है। मूर्खस्य हृदय शून्य। वह शून्यता ही कलङ्क सी दीख रहा है। कहा भी है कि फूलै फरै न बेंत जदपि सुधा बरखहि जलद। मूरख हृदय न चेत जौ गुरु मिलहि बिरंचि सिव।

प्रभु कह गरल बधु ससि केरा। अति प्रिय निज उर दीन्ह बसेरा॥
बिष सजुत कर निकर पसारी। जारत बिरहवत नर नारी॥५॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ : सरकार ने कहा कि विष चन्द्रमा का भाई है और ऐसा प्रिय है कि उसे हृदय मे बसाया है। अब उसी विष से संयुक्त किरनों को फैलाकर यह विरही नर नारियो को जलाया करता है।

व्याख्या : सरकार विरही हैं। अतः चन्द्रमा इन्हें दाहक मालूम होता है। अत: ये यह उत्प्रेक्षा करते हैं कि चन्द्रमा को भाई तो अनेक हैं। पर चन्द्रमा को कोई भी इतने प्रिय नही हैं जितना कि विष प्रिय है और जो अतिप्रिय होता है। वहीं हृदय मे बसता है। सो चन्द्रमा के हृदय मे विष बसा हुआ है। उसी गरल की झाग किरनो से मानो झरता है। जिससे विरहवन्त नर नारी जले जा रहे हैं। लक्षित यह कर रहे हैं कि दशशीश बन्धु प्रेम के कारण हमारा दाहक हो रहा है। खरदूषन त्रिसिरा कर घाता। सुनि दससीस जरे सब गाता। खर उसका भाई था उसको बहुत प्रिय था। उसके वध का बदला लेने के लिए ही रावण ने सीताहरण किया जो सरकार के विरहजन्य दाह का कारण है।

दो. कह हनुमंत सुनहु प्रभु, ससि तुम्हार प्रिय दास।
तव मूरति बिधु उर बसति, सोइ स्यामता अभास ॥१२॥

अर्थ : हनुमान्जी ने कहा हे प्रभो! सुनो चन्द्रमा तुम्हारा प्रिय दास है। तुम्हारी मूर्ति उसके हृदय मे बसती है वही श्यामता की झलक है।

व्याख्या : हनुमान्जी परम भक्त हैं। सरकार के दासो पर हनुमान्जी की सदा कृपादृष्टि रहती है। अत चन्द्रमा के ऊपर किये हुए आक्षेपो को न सहन करते हुए सरकार की उक्ति हो जाने पर भी बोल बैठे कि चन्द्रमा आपका प्रियदास है और दास के हृदय मे सरकार का निवास रहता है। यथा : सरगु नरकु अपबरगु समाना। जहँ तहँ दीख धरे धनुबाना। करम बचन मन राउर चेरा। राम करहु तेहि के उर डेरा। अतः जो श्यामता चन्द्र के हृदय मे झलकती है वह सरकार के शरीर की श्यामता है।

लक्ष्य यह है कि : द्वारपाल हरि के प्रिय दोऊ। जय अरु विजय जान सब कोऊ। बिप्र स्राप ते दूनौ भाई। तामस असुर देह तिन पाई। भये निसाचर जाइ ते महाबीर बलवान। कुंभकरन रावन सुभट सुर बिजई जग जान। यह श्यामता कलङ्क नही सरकारी प्रेम ही इस रूप मे प्रादुर्भूत हुआ है। यथा : सुर रंजन भंजन महि भारा। जौ भगवंत लीन्ह अवतारा। तउ मैं जाइ बयरु हठि करऊँ। प्रभु सर प्रान तजे भव तरऊँ। होइहि भजन न तामस देहा। मन क्रम बचन मन्त्र दृढ एहा। तामस शरीर से दशशीश भजन करने में असमर्थ है। अतः प्रभु की प्राप्ति के लिए प्रभु के बाणो द्वारा शरीर त्यागने का यह उपाय निकाला है।

दो. पवनतनय के बचन सुनि, बिहँसे राम सुजान।
दच्छिन दिसि अवलोकि प्रभु, बोले कृपानिधान ॥१३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : पवनसुत के वचन सुनकर सुजान रामजी हँस पड़े। फिर दक्षिण दिशा की ओर देखकर कृपानिधान प्रभु बोले।

व्याख्या : हनुमान्‌जी बड़ी दूर की बात कहते है। इसपर रामजी प्रसन्न हो गये क्योंकि सुजान हैं। यथा : यह प्राकृत महिपाल सुभाऊ। जान सिरोमनि कोसल राऊ। रीझत राम सनेह निसोते। को जग मंद मलिन मन मोते। सुजानता दिखला कर कृपानिधित्व दिखलाते है। शत्रु को भी सावधान करना है कि अब भी चेत जावे। पहिले पूर्व की ओर देखकर सब से बोले। अब दक्षिण की ओर देखकर केवल विभीषण से कहेंगे। इधर जो दृश्य दिखाई दे रहा है वह भी अद्भुत है। अतः उसे देखकर मानो रामजी को मोह हो रहा है। यथार्थ ज्ञान के लिए विभीषणजी को दिखला रहे हैं।

देखु विभीषन दच्छिन आसा। घन घमंड दामिनी बिलासा ॥
मधुर मधुर गरजै घन घोरा। होइ वृष्टि जनु उपल कठोरा ॥१॥

अर्थ : विभीषण! दक्षिण की ओर देखो बादल घुमड़ आया है। बिजली चमक रही है। बादल मीठे मीठे घोर ध्वनि से गर्जन कर रहे हैं। मानो पत्थरो की कठोर वर्षा हो रही है।

व्याख्या : दक्षिण आशा कहकर दूरी द्योतित करते हैं। मालूम होता है कि दक्षिण ओर से बादल उमड़ आया है। परन्तु दूर से पर्वत शृङ्ग भी बादल से ही दिखाई पड़ते हैं। अतः बादल होने की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि बिजली भी चमकती है। इतना ही नहीं मधुर मधुर गर्जन करते करते घोर ध्वनि से भी गर्जन कर बैठता है। ऐसी तड़तड़ाहट हो रही है मानो कठोर पत्थर पड़ रहा हो। अत. यही सिद्ध होता है कि यह बादल ही है।

कहत बिभीषन सुनहु कृपाला। होइ न तड़ित न बारिद माला ॥
लंका सिखर उपर आगारा। तहँ दसकंधर देख अखारा ॥२॥

अर्थ : विभीषणजी बोले कि हे कृपालु! सुनिये। न तो बिजली है और न घन घमण्ड है। लङ्का के शिखर पर सुन्दर बँगला है। उसमें रावण अखाड़ा : नाच रंग देख रहा है।

व्याख्या : सरकार ने कहा था कि : घन घमंड दामिनी बिलासा। उसी का उत्तर देते हुए विभीषणजी कहते हैं कि न तो घन घमण्ड है और न बिजली ही चमक रही है। वहाँ दृश्य ही दूसरा है। वह लङ्का की चोटी पर वाला बँगला है। रावण वहीं बैठे बैठे नाच रंग देख रहे हैं। मूर्खों का समय इसी भाँति व्यसन मे व्यतीत होता है। अखाडा उस स्थान को कहते हैं जहाँ गुणीजन अपना कलाकौशल दिखाते हैं।

छत्र मेघ डंबर सिरधारी। सोइ जनु जलद घटा अतिकारी ॥
मंदोदरी स्रवन ताटंका। सोइ प्रभु जनु दामिनी दमंका ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ : जो मेघडम्बर छत्र सिर पर धारण किये हुए हैं वही मानो अति काली घटा है। मन्दोदरी के कान में कुण्डल है वही मानो बिजली चमक रही है।

व्याख्या : रावण के सिर पर जो काला छत्र है वह इतना विस्तृत है कि उसे देखकर मेघपटल का भ्रम होता है। उस छत्र का नाम भी मेघाडम्बर है। रावण के साथ रानी मन्दोदरी भी विराजमान है। उनके कानों के कुण्डल की झलक यहाँ बिजली को चमक सी दिखायी पड़ रही है। भाव यह कि ऐसा अद्भुत लोल कुण्डल रावण के ही पास है जिसकी झलक इतनी दूर से बिजली की चमक मालूम पड़ रही है।

बाजहि ताल मृदंग अनूपा। सोइ रव मधुर सुनहु सुरभूपा॥
प्रभु मुसुकान समुझि अभिमाना। चाप चढ़ाइ बान संधाना॥४॥

अर्थ : अनुपम ताल और मृदङ्ग बज रहे हैं। हे देवताओं के स्वामी सुनिये ! वही मधुर ध्वनि है। सरकार अभिमान समझकर मुसकुराये और धनुष चढ़ाकर बाण सन्धान किया।

व्याख्या : जैसे मृदङ्ग और ताल रावण के यहाँ बज रहे हैं वैसे लोक मे नही पाये जाते इसलिए अनूप कहा। जिससे बादल के गर्जने और पत्थर पड़ने सा शब्द होने पर भो सरस है अथवा मृदङ्ग से मधुर मधुर शब्द होता है। बीच बीच में ताल आ जाने पर थाप पड़ता है। उसी का घोर शब्द होता है और जो ताल बज रहे हैं उनका शब्द पत्थर पड़ने सा हो रहा है। सब मिलकर जो ध्वनि हो रही है वह सरस है।

सरकार के यहाँ अवकाश मे काव्यशास्त्र का विनोद होता है। रावण के यहाँ अवकाश के समय व्यसन होता है : यही मूर्ख का लक्षण है। सरकार अवकाश के समय शस्त्रास्त्र सुधारा करते हैं। रावण नाच देखते हैं। अतः सरकार की विजय निश्चित है।

रावण ने इस समय जो नाच गाने का आयोजन किया है वह यह दिखलाने के लिए किया है कि मुझे कोई भय नही है। मैं ऐसी ऐसी सेनाओं को किसी गिनती मे नहीं मानता। ऐसा रावण का अभिमान देखकर गर्वप्रहारी प्रभु ने भी अपने पराक्रम प्रदर्शन के लिए धनुष चढ़ाकर बाण सन्धान किया।

दो. छत्र मुकुट ताटंक तब, हते एकही बान।
सबके देखत महि परे, मरमु न कोऊ जान॥
अस कौतुक करि राम सर, प्रबिसेउ आइ निषंग।
रावन सभा ससंक सब, देखि महा रस भंग॥१३॥

अर्थ : तब एक ही बाण से छत्र मुकुट और कुण्डल काट दिया। सबके देखते वे पृथ्वी पर गिरे। मर्म किसीने न जाना। ऐसा खेल करके रामजी का बाण

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लौटकर तरकस में प्रविष्ट हो गया। बड़ा भारी रङ्ग में भङ्ग देखकर रावण की सभा की सभा डर उठी।

व्याख्या : एक ही वाण ने मेघाडम्बर छत्र को काट गिराया। रावण के सिर पर से मुकुट को नीचे गिरा दिया। मन्दोदरी के दोनों कानों में कुण्डलों को भी काट गिराया। बनैती की पराकाष्ठा है। न तो रावण को चोट आयी न मन्दोदरी के शरीर का वाण ने स्पर्श किया और न किसी ने बाण को आते जाते देखा। यह तो रावण मन्दोदरी तथा सम्पूर्ण सभा ने देखा कि छत्र मुकुट और कुण्डल गिर गये पर कैसे गिरे यह कोई समझ न सका।

इसी बाण से सरकार रावण का सिर गिरा सकते थे पर ऐसा करना उन्हे इष्ट न था। सरकार बड़े कौतुकी हैं। कौतुक के लिए वाण छोड़ा था। इसीलिए बाण ने तो किसी पर आघात नही किया। अभिमान तोडने के लिए छत्र मुकुट ताटंक गिरा दिया और लौटकर हाथ में भो नही आया। तरकस में प्रवेश कर गया। यहाँ की सभा ज्यो की त्यो बनी है पर रावण की सभा सशङ्क हो गयी। नाच गाना बन्द हो गया। यहाँ से सब लोग देख रहे है कि घन घमण्ड दामिनी अन्तर्धान हो गये और मधुर मधुर घोर गर्जन भी मेघ का बन्द हो गया।

कंप न भूमि न मरुत बिसेखा। अस्त्र सस्त्र कछु नयन न देखा ॥
सोचहिं सब निज हृदय मँझारी। असगुन भयउ भयंकर भारी ॥१॥

अर्थ : न भूकम्प हुआ न हवा ही विशेप रूप से चली। अस्त्र शस्त्र कोई आँख से दिखाई न पडा। सब अपने में सोचने लगे कि यह तो भारी भयङ्कर अपशकुन हुआ।

व्याख्या : ऐसी घटना के निर्धारण में तीन विकल्प उठते है। यदि भूकम्प आवे तो ऐसा हो सकता है। अति तीव्र वायु के झोके से भी ऐसा होना सम्भव है या हथियार फेंककर भी ऐसा किया जा सकता है। सो तीनो मे कोई बात न हुई। न भूकम्प हुआ न हवा का कोई ऐसा झोंका आया और हथियार कोई दिखायी न पड़ा। तब हुआ क्या ?

इसी बात को सभा के लोग मन में विचारने लगे। सब इसी निर्णय पर पहुँचे कि अकस्मात् राजचिह्न छत्र मुकुट गिरना तथा सौभाग्यसूचक ताटङ्क का भी उसी समय गिर पडना असाधारण घटना है। जब रावण सीता हरण कर ले आये हैं तभी से लङ्का में भयङ्कर असगुन हो रहे है। यथा : जब ते तुम सीता हरि आनी। असगुन होहिं न जाहिं बखानी। पर यह असगुन तो सबसे भारी भयङ्कर हुआ। शत्रु की सेना सिर पर है। इस समय ऐसा अपशकुन हुआ सो क्या होनेवाला है ? बोलता कोई नही पर मन मे सब यही एक बात सोच रहे हैं।

दसमुख देखि सभा भय पाई। बिहँसि बचन कह जुगुति बनाई ॥
सिरौ गिरे संतत सुभ जाही। मुकुट परे कस असगुन ताही ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankumargupta108@gmail.com

अर्थ : दशानन ने देखा कि सभा डर गयी। तब वह हँसकर युक्ति रचकर कहने लगा कि सिर का गिरना भी जिसके लिए सदा शुभ है उसके लिए मुकुट का गिरना अपशकुन कैसे है ?

व्याख्या : दशमुख हैं। बिना सिर घुमाये सबका मुख देख रहे हैं। सबके भय निवारणार्थ हँस पड़े और युक्ति की रचना करके ऐसी बात कही जिसमें सबका भय जाता रहे और सब लोग इसे सगुन समझने लगें। हँसने से उसी भाव को दृढ किया।

रावण कहते हैं कि सामान्य लोगो के लिए मुकुट का गिरना अवश्य असगुन है। परन्तु सिर गिरने से बढकर असगुन क्या होगा ? सो मेरा जब सिर गिरा तो मुझे वरदान मिला। मेरे ऊपर सामान्य नियम लागू नही हो सकता। मुकुट का गिरना भले ही दूसरो के लिए असगुन हो पर मेरे लिए तो सगुन ही है। ऐसा कहकर सभा विसर्जन करता है।

सयन करहु निज निज गृह जाई। गवने भवन सकल सिर नाई ॥
मंदोदरी सोच उर बसेऊ। जबतें स्रवनपूर महि खसेऊ ॥३॥

अर्थ : तुम सब अपने अपने घर जाकर सोओ। सब निशाचर सिर नवाकर अपने अपने घर गये पर जब से कान का कुण्डल पृथ्वी पर गिरा तब मे मन्दोदरी के हृदय में चिन्ता बस गयी।

व्याख्या : रावण ने कहा कि भय की कोई बात नही है। तुम लोग अपने अपने घर जाकर सोओ। लङ्का की सावधानी से रक्षा करने को भी नही कहता है। उनकी बातें सुनकर सब सिर झुकाकर चले। सिर झुकाने से रावण को प्रणाम करना कहा तथा यह भी द्योतित किया कि रावण की बात सभासदो के गले नही उतरी। वे सब सिर झुकाये हुए अति चिन्तित होकर घर गये।

मन्दोदरी को कभी कभी विशेष घटना घटित होने पर सोच हो जाता था। लङ्कादाह पर सोच हुआ था। समुद्र पर सेतुबन्ध हो जाने पर सोच हुआ था और तब तब उसने रावण को समझाया भी। अपने अहिवात : सौभाग्य की भिक्षा भी उसने माँगी पर रावण ने बात अनसुनी कर दी। पर इस बार सौभाग्य का चिह्न ताटङ्क के भूमि पर गिरने से उसके हृदय में सोच ने डेरा कर लिया।

## मन्दोदरी का रावण को समझाना : तीसरी बार

सजल नयन कह जुग कर जोरी। सुनहु प्रानपति बिनती मोरी ॥
कंत राम बिरोध परिहरहू। जानि मनुज जनि हठ मन धरहू ॥४॥

अर्थ : आँखो मे आँसू भरकर दोनो हाथ जोड़कर कहने लगी। हे प्राणनाथ ! मेरी विनती सुनो। हे कन्त ! रामजी से विरोध छोड़ दो। इन्हें मनुष्य जानकर मन में हठ न पकड़ो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : जब सब चले गये एकान्त हो गया। तब रावण से विनती करने लगी। इसके पहिले चरन नाइ सिर अचल रोपा। इस भाँति विनती की थी। पर आज तो और भी दीन हो गयी है। आँखो मे आँसू भरकर दोनो हाथ जोडकर विनती कर रही है कि आप प्राणपति हैं। आपके ही कल्याण से मेरा कुशल है। स्त्री को प्राणपति को छोड़कर दूसरी गति नही होती। आपने औरो की विनती नही सुनी पर मेरी सुनिये।

क सुख तनोति इति कन्त। सुख देनेवाले को कन्त कहते हैं। आप कन्त हैं, मै दुःखी हूँ, मुझे सुखी कीजिये। सुखी करने का उपाय कहती है। रामजी से विरोध करना आप छोड दें। रामजी किसी का विरोध नही करते। विरोध आप कर रहे हैं। राम विरोध कहने का भाव यह है कि राम विरोध से कुशल नही होता। यथा : कहुधौ कत कुशल बीती केहि किये राम अपराधु। आप रामजी को मनुष्य मानने का हठ छोड दें। मनुष्य क्या ऐसे होते हैं। मनुष्य शरीर धारण किये हुए भगवान् की अवहेलना करना उन्हे न पहिचानना मूढता है. अवजानन्ति मा मूढा मानुषी तनुमाश्रितम्। पर भावमजानन्तो मम लोकमहेश्वरम्। गीतायाम्। श्री राम वाण का स्पर्श मन्दोदरी के कानो से हो गया है। अत. उसे इतना ज्ञान हो गया कि प्रभु के विश्वरूप का वर्णन कितना सुन्दर कर रही है।

दो. बिस्वरूप रघुबंस मनि, करहु बचन बिस्वासु।
लोक कल्पना बेद कर, अग अंग प्रति जासु ॥१४॥

अर्थ : रघुकुल मणि रामजी सर्वरूप हैं। मेरी बात का विश्वास करो। जिसके प्रत्येक अग मे लोको की कल्पना वेद करता है।

व्याख्या : उसी परम महेश्वर भाव को जनाती हुई मन्दोदरी कहती है कि रघुवशमणि रामजी विश्वरूप हैं। यह सम्पूर्ण चराचरात्मक जगत् उन्ही का रूप है। रामजी के अन्य नाम न लेकर रघुवशमणि कहने से सूचित करती है कि तापनीयश्रुतियो मे उनका रघुकुल मे अवतार ग्रहण करना वर्णित है। यथा : रघोः कुलेऽखिल राति राजते यो महीस्थितः। मेरा कहना वेदानुमोदित है अत विश्वास करो। वेद उनके अग अग मे लोको की कल्पना करता है। यथा .

नाभ्या आसीदन्तरिक्ष शीर्ष्णो. द्यौ. समवर्तत।
पद्भ्या भूमिर्दिश. श्रोत्रांत्तथा लोकानकल्पयन्॥

इसी का उपबृहण करता हुआ श्रीमद्भागवत कहता है :

पातालमेतस्य हि पादमूल पठन्ति पार्ष्णिप्रपदे रसातलम्।
महातल विश्वसृजोऽथ गुल्फौ तलातल वै पुरुषस्य जङ्घे॥
द्वे जानुनी सुतल विश्वमूर्तेरूरुद्वय वितल चातलञ्च।
महीतल तज्जघन महीपते नभस्तलं नाभिसरो गृणन्ति॥
उर स्थल ज्योतिरनीकमस्य ग्रीवामहर्वदन वै जनोऽस्य।
तपोरराटी विदुरादिपुस सत्य तु शीर्षाणि सहस्रशीर्ष्णः॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


उस सहस्रशीर्षा पुरुष का पाद मूल पाताल है। रसातल उसका चौआ है। महातल टखना . गुल्फ है। तलातल पिंडली है वितल और अतल दोनो जंघे हैं। पृथ्वी उसका जघन है आकाश उसकी नाभि है। तारागण उसके वक्ष.स्थल हैं। महर्लोक उसकी ग्रीवा है। जनलोक उसका चेहरा है। तपोलोक उसका ललाट है और ब्रह्म : सत्य लोक उसका सिर है।

पद पाताल सीस अज धामा। अपर लोक अँग अँग बिश्रामा ॥
भृकुटि बिलास भयंकर काला। नयन दिवाकर कच घन माला ॥१॥

अर्थ : पाताल जिसके चरण हैं। ब्रह्मलोक जिसका सिर है अन्य लोक जिसके अङ्ग अङ्ग मे बसते हैं। जिसका भ्रूसञ्चालन भयङ्कर काल है। सूर्य नेत्र हैं और बादल केश है।

व्याख्या : पातालादि सात लोक नीचे हैं। और ब्रह्मलोकादि सात ऊपर हैं। अतः सबसे नीचे पाताल है सबसे ऊपर ब्रह्मलोक है। यहाँ मन्दोदरी ने रावण ऐसे पण्डित को जताने के लिए पद पाताल सीस अजधाम कह देना ही यथेष्ट समझा। अन्य लोको के लिए कह दिया कि बीच के अग हैं। भाव यह विश्वरूप भगवान् के शरीर ही मे चौदहो लोक हैं। वे चौदहो लोको की आत्मा हैं। हम लोग उनके जघन : कटि भाग पृथिवीतल के कीट स्थानीय हैं। हमारा उनका वैर कैसा ?

उनके भृकुटिविलास से सृष्टि और लय होता है। यथा : भृकुटि विलास सृष्टि लय होई। सपनेहुँ सकट परइ कि सोई। इसलिए भृकुटिविलास को भयकर काल कहा : क्योकि अड कटाह अमित लयकारी। काल सदा दुरतिक्रम भारी।

सूर्य ही चक्षुमात्र के अनुग्राहक हैं। इसलिए सूर्य को उनका नेत्र बतलाया। कहा भी है : द्यौरक्षिणी चक्षुरभूत् पतङ्गः। भाग.। बड़े बड़े बाल कभी आँखो पर आ जाते हैं और उन्हे ढक लेते हैं। इसलिए बालों को मेघमाल कहा। यथा : ईशस्य केशान् विदुरम्बुवाहान्। भाग.।

जासु घ्रान अस्विनीकुमारा। निसि अरु दिवसु निमेष अपारा ॥
स्रवन दिसा दस बेद बखानी। मरुत स्वास निगम निज बानी ॥२॥

अर्थ : अश्विनीकुमार जिसकी नाक : घ्राणेन्द्रिय हैं। जिसका पलक पड़ना ही अपार रात और दिन है। दसो दिशाएँ जिसके कान हैं ऐसा वेद वर्णन करते हैं। वायु जिसका श्वास है और वेद उनकी निजवाणी है।

व्याख्या : अश्विनीकुमार दो हैं। दोनों साथ ही रहते और साथ ही सब व्यापार करते हैं। इसी से उनकी उपमा घ्राणेन्द्रिय से दी गयी। यथा : नासत्यदस्रौ परमोऽस्य नासे। भाग.। अपार रात दिन तो कल्प और कल्पान्त है। भगवद्गीता मे उसी को यथार्थ रात दिन माना है। यथा : सहस्रयुगपर्यन्तमहर्यद् ब्रह्मणो विदुः। रात्रिं युगसहस्रान्तां तेऽहोरात्रविदो जनाः। अर्थ : ब्रह्मदेव का दिन एक सहस्र युग :

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चतुर्युगी का और रात्रि भी एक सहस्र युग की होती है। जो इस रात दिन को जानता है वही अहोरात्रविद् है।

दशो दिशाएँ श्रवणेन्द्रिय के अनुग्राहक हैं। इसलिए उन्हे सरकार का श्रवण कहा। दिश. श्रोत्रा। यजु ऐसा स्वय वेद कहते हैं। वेद उनकी निजी वाणी है अर्थात् ब्रह्मा की शक्ति जो वाणी है उस वाणी से यहाँ अभिप्राय नही है। यहाँ उस वाणी से अभिप्राय है जो परमेश्वर द्वारा ब्रह्माजी के हृदय मे पहुँचाई गयी। यथा : यो ब्राह्मण विदधाति पूर्वं यो वै वेदाश्च प्रहिणोति तस्मै। तह देव मात्म-वुद्धिप्रकाश मुमुक्षुर्वे शरणमह प्रपद्ये। श्वेताश्वतरोपनिषदि। जो परमेश्वर पहिले ब्रह्मा को बनाता है और ब्रह्मा के हृदय मे पहिले वेदो को पहुँचाता है मोक्ष के लिए मैं उसके शरण मे जाता हूँ। अर्थात् वेद स्वय सरकार की वाणी है। यह किसी के बनाये हुए नही हैं। वे अपौरुषेय हैं।

अधर लोभ जम दसन कराला। माया हास बाहु दिगपाला ॥
आनन अनल अबुपति जीहा। उतपति पालन प्रलय समीहा ॥३॥

अर्थ . लोभ जिसके होठ हैं, यम जिसके कराल दाँत है, माया जिसकी हँसी, दिक्पाल जिसकी भुजाएँ अग्नि मुख वरुण जिह्वा जगत् की उत्पत्ति पालन और प्रलय जिसकी इच्छा है।

व्याख्या नीचे के होठ को लोभ कहा है। दोनो मे ग्रहण करना साधारण धर्म है। कहा भी है कि ओष्ठोत्तरोष्ठोऽधर एव लोभ.। भाग। यम को कराल-दष्ट्रा कहा है। चर्वण करना साधारण धर्म है। यथा : दष्ट्रा यम स्नेहकला द्विजानि। माया उनकी हँसी है। इसी मे पडा हुआ मनुष्य उन्मत्तसा हुआ फिरता है। यथा हासो जनोन्मादकरी च माया। और दिक्पाल लोग उनके बाहुस्थानीय हैं। क्योकि सब दिशाओ का पालन करते हैं। यथा इन्द्राद्यो बाहव आहुरुस्रा। अग्नि को मुख कहा है। क्योकि उसी से यज्ञ पुरुष भगवान् आहुति ग्रहण करते हैं। यथा मुखमग्निरिद्ध' जिह्वा को वरुण कहा रसमय होने से। यथा रस एव जिह्वा। भा०। उत्पत्ति पालन और प्रलय को उनकी इच्छा बतलाया। क्योकि उन्ही से इस जगत् की उत्पत्ति स्थिति और भङ्ग होता है। यथा जन्माद्यस्य यत। वेदान्तसूत्र।

रोमराजि अष्टादस भारा। अस्थि सैल सरिता नस जारा ॥
उदर उदधि अधगो जातना। जगमय प्रभु की बहु कलपना ॥४॥

अर्थ अठारह धान्यो का समूह जिसके रोम की पक्तियाँ हैं। पर्वत हड्डी है। नदियाँ नसो का जाल है। समुद्र पेट है। नीचे की इन्द्रिय नरक है। इस प्रकार विश्वरूप प्रभु की अनेक कल्पनाएँ हैं। भृञ्+घञ्=भार.।

व्याख्या . सम्पूर्ण पृथिवी अठारह प्रकार के धान्यो के समूह से भरी है। यथा यवगोधूमधान्यानि तिला कङ्गुकुलत्थका। माषा मुद्गा मसूराश्च निष्पावा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


श्यामसर्षपा । गवेधुकाश्च नीवारा ओढक्योऽथ सतीनका । चणकाश्चीनकाश्चैव धान्यान्यष्टादशैव तु ।

१ जव, २ गेहूँ, ३ धान, ४ तिल, ५ कगुनी, ६ कुथली, ६ उडद, ८ मूग, ९ मसूर, १० बाजरा, ११ साँवा, १२ सरसो, १३ गवेधुका मुनि अन्न, १४ तिन्नी, १५ ओढक्य, १६ केराव, १७ चना, १८ चीना ये अठारह धान्य हैं। विश्वम्भर के रोम से विश्वका पोषण होता है भृञ् धारणपोषणयो । भ्रियते अनेनेति भारो धान्यम्। कारण म घञ् प्रत्यय होता है। शैल को अस्थि कहा। क्योकि पहाड भी अस्थि की भाँति पृथिवी को धारण किये हैं। यथा गिरयोऽस्थिसघा । नदियो को नस जाल कहा। क्योकि नदियाँ नसो की भाँति पृथिवी का सिञ्चन करती हैं। यथा नद्योऽस्यनाड्य । उदर को उदधि कहा भण्डार होने से। यथा कुक्षि समुद्रा । नीचे की इन्द्रिय को यातना कहा शुद्धि का कारण होने से। इस भाँति विश्वरूप भगवान् को अनेक प्रकार की कल्पनाएँ हैं। यथा ब्राह्मानन क्षत्रभुजो महात्मा विडूरुरङ्घ्रि श्रितकृष्णवर्णं । ब्राह्मण मुख है, क्षत्रिय भुजा है, वैश्य जघा है और शूद्र चरण हैं इत्यादि। इससे भगवान् का सगुण साकार रूप स्वयसिद्ध हो जाता है।

दो अहकार सिव बुद्धि अज, मन ससि चित्त महान।
मनुज बास सचराचर, रूप राम भगवान ॥१५॥

अर्थ अहकार शिव बुद्धि ब्रह्मा मन चन्द्रमा और चित्त महत् तत्व है। मनुष्य का निवासस्थान चर अचरमय रूप भगवान् राम है।

व्याख्या बाह्य करणा का वर्णन करके अब अन्त करण का वर्णन करते हैं। अन्त करण चार है मन, बुद्धि, चित्त अहङ्कार। यजमान रूप होने से भगवान् अष्टमूर्ति शिवजी को अहङ्कार कहा। गिरापति होने से ब्रह्मदेव का बुद्धि कहा। सब विकार कोप होने से मन को चन्द्रमा कहा। यथा अव्यक्तमाहुर्हृदय मनश्च सचन्द्रमा सर्वविकारकोश और सत्वप्रधान होने से महत् तत्व को चित्त कहा।

दो अस बिचारि सुनु प्रानपति, प्रभु सन बैरु बिहाइ।
प्रीति करहु रघुबीर पद, मम अहिवात न जाइ ॥१५॥

अर्थ ऐसा विचार कर हे प्राणपति ! सुनो वैर छोडकर प्रभु रघुवीर के चरणो, मे प्रीति करो जिसमे मेरा सुहाग न जाय।

व्याख्या आपने ऐसे प्रभु से वैर ठान रक्खा है जो कुशल का परम आश्रय है। उससे विरोध करने से कैसे कुशल होगा ? विचार तो करो विश्वरूप से वैर करनेवाले को स्थान कहाँ है। आप मेरे प्राणपति है। आपके कुशल से मेरा सुहाग है। आप यदि अपने ऊपर दया न करें तो मेरे ऊपर दया करके चरणो मे प्रेम करिये। विरोध करने से आप अपनी गति तो बना लेंगे पर मेरा सुहाग चला जायगा और प्रेम करने से आपकी भी सद्गति निश्चित है और मेरा सुहाग भी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बना रहेगा। सुनहु प्रान पति से उपक्रम और अस विचार सुनु प्रानपति से उपसंहार। कन्त राम विरोध परिहरहू से उपक्रम और प्रभु सन बैर बिहाइ से उपसंहार। मन्दोदरी के कहने का भाव यह कि मेरे सुहाग के अक्षुण्ण रहने का एक ही उपाय है : प्रीति करहु रघुबीर पद। क्योंकि वे विश्वरूप होने से तुम्हारी भी आत्मा हैं। ब्रह्म प्रभु जीव सेवक प्रभु सेवकहि समरु कस।

विहँसा नारि वचन सुनि काना। अहो मोह महिमा बलवाना॥
नारि सुभाउ सत्य सब कहही। अवगुन आठ सदा उर रहही॥१॥

अर्थ : स्त्री का वचन कान से सुनकर जोर से हँसा। कहने लगा : अहो मोह की महिमा बड़ी बलवती है। सब लोग स्त्री का स्वभाव जो कहते हैं सो सत्य ही कहते हैं कि उनके हृदय मे सदा आठ अवगुण रहते हैं।

व्याख्या : मन्दोदरी नारायण की महिमा कहती है। रावण मोह की महिमा की स्तुति कर रहे हैं। स्तुति का भाव यह कि जिसके ऊपर ममता रहती है उसके प्रति सदा मन पापशङ्की बना रहता है। इसकी मेरे ऊपर ममता है। अत युद्ध मे मेरे लिए अनिष्ट की शङ्का कर रही है। अथवा मेरी स्त्री होते हुए भी इसे मेरे पराक्रम का ज्ञान नही है। यही मोहमहिमा है। नारि वचन कहने का भाव यह कि स्त्री है। अतः सुहाग के भय से व्याकुल है। सुनि काना का भाव यह कि कान से सुना पर मन मे स्थान न दिया। मन्दोदरी इस स्वभाव से परिचित थी। अत उसने सुनहु करके ही उपक्रम किया और सुनु कहके ही उपसहार करती है। पर रावण हँस पडे कि यह इतनी बडी बेवकूफ है कि मुझे उपदेश देने का साहस करती है। मोह की महिमा देखो कि उस तपस्वी को भगवान् बतला रही है और मुझे निर्बल समझती है।

पहिले मैंने समझा था कि स्त्रियो से चिढकर लोगो ने अनृत साहस माया इत्यादि श्लोक गढ लिये है पर इसकी बातें सुनकर तो मालूम होता है कि उन लोगो ने सत्य ही कहा है। ये बातें चाहे कितनी भी बुद्धिमानी की करें पर इनके हृदय मे आठ अवगुण सदा डेरा जमाये रहते है। यथा :

साहस अनृत चपलता माया। भय अबिबेक असौच अदाया॥
रिपु कर रूप सकल तैं गावा। अति बिसाल भय मोहि सुनावा॥२॥

अर्थ : १. साहस २ झूठ ३. चपलता ४ माया ५ भय ६. अविवेक ७ अपवित्रता और ८ निर्दयता ये ही आठो अवगुण हैं। तू ने शत्रु का सब रूप वर्णन किया और मुझे बड़ा भारी भय सुनाया।

व्याख्या : १. मुझे सिखाने चली है यह इसका साहस है। २. शत्रु तो सुबेल के एक शृङ्ग पर सुग्रीव के गोद मे सिर डाले पड़ा है। उसे पद पाताल सीस अज धामा बतला रही है। यह इसका अनृत है। ३ इसे अपने वचन की पुष्टि के लिए

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



युक्ति तो कोई मिलती नहीं तो तुरन्त करहु वचन विश्वास कह रही है। यह इसकी चपलता है। ४ सजल नयन कह जुग कर जोरी। यह इसकी माया है। ५ विरोध त्याग के लिए प्रार्थना करती है। यह इसका भय है। ६ प्रीति करहु रघुबीर पद कहकर मनुष्य के चरणो मे प्रीति करने को कहती है। यह इसका अविवेक है। मेरे ऐसा वीर कौन है · सूर कवन रावन सरिस स्वकर काटि जेहि सीस। हुने अनल अति हरष बहु बार साखि गिरीस। सो उसे अविवेक से रघुवीरपद प्रीति करने को कहती है। रघुबीर ने भी कभी अपना सिर काटकर हवन किया है ? ७ अपना ही स्वार्थ देखती है। मेरी प्रतिष्ठा की ओर दृष्टि ही नही है। बस मम अहिवात न जाइ। एकमात्र यही लक्ष्य है। यह इसका आभ्यन्तर अशौच है। ८ इसे अपनी प्रजा पर भी दया नही है। जौ आवै मरकट कटलाई। जियहि बिचारे निसिचर खाई। सो इसमे बाधा कर रही है। यह इसकी निर्दयता है।

रूप सकल का भाव यह कि पाताल से लेकर ब्रह्मलोक तक सबको शत्रु का रूप बतला दिया। इस भाँति अपने समझ मे बडा भारी भय मुझे सुनाया। अथवा सब भयो से बडा प्राण भय है। सो शत्रु से तूने मुझे निश्चित प्राणभय बतलाया।

सो सबु प्रिया सहज बस मोरे। समुझि परा प्रसाद अब तोरे॥
जानेउ प्रिया तोरि चतुराई। एहि बिधि कहेउ मोरि प्रभुताई॥३॥

अर्थ हे प्रिये ! वह सब तो स्वभाव से ही मेरे वश मे है। तुम्हारे प्रसाद से यह बात अब समझ म आयी है। हे प्रिये ! तुम्हारी चतुराई मैंने जान ली। इस विधि से तुम मेरी प्रभुता कह रही हो।

व्याख्या पाताल से ब्रह्मलोक तक तो हमारे वश मे है। इस भाँति शत्रु के अङ्ग प्रत्यङ्ग पर मेरा अधिकार है। मैं समझा था कि उसे अभी जीतना है। तेरे प्रसाद से अब बात समझ मे आयी है कि उसे जीतना नही है वह जीता जिताया ही ठहरा। तू प्रिया है। सदा प्रिय आचरण किया करती है। तू शत्रु वर्णन के व्याज से मेरी प्रभुता का वर्णन कर रही है अत्यन्त अभिमानियो का यह स्वभाव होता है कि प्रत्येक बातो म अपनी बडाई का अर्थ बडे प्रयत्न से लगाया करते हैं और अपने विरुद्ध बातो को भी अपनी बडाई के अनुकूल सिद्ध करने का प्रयत्न किया करते हैं। रावण महा अभिमानियो के अग्रगण्य हैं। अत बैठकबाजी से मन्दोदरी की बातें उड़ाना चाहते हैं।

तव बतकही गूढ मृगलोचनि। समुझत सुखद सुनत भय मोचनि॥
मदोदरि मन महुँ अस ठयऊ। पियहि कालवस मति भ्रम भयऊ॥४॥

अर्थ हे मृगनयनी ! तेरी गूढ बातें समझने मे सुख देनेवाली और सुनने मे भय सूचित करनेवाली है। मन्दोदरी ने मन मे निश्चय कर लिया कि प्रियतम का कालवश होने से मतिभ्रम हो गया है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या गूढ का अर्थ ही छिपा हुआ है। रावण मन्दोदरी की बातो को गूढ बतलाते हैं। क्योकि उसका भेद छिपा हुआ है। सुनने मे तो उससे भय की सूचना मिलती है पर यदि डूबकर समझे तो उससे बडा सुख मिलता है। भावार्थ यह कि तुम्हारी बात सुनने मे तो ऐसी मालूम होती है कि तुम शत्रु की महिमा कह रही हो और मुझे भय की सूचना दे रही हो। पर उसी बात को जब डूबकर समझे तो मालूम होता है कि तुम हमारी प्रशसा कर रही हो और निर्भय रहने के लिए उत्साह बढा रही हो।

रावण के इस उत्तर सुनने से मन्दोदरी को निश्चय हो गया कि इन्हे मतिभ्रम हो गया। यह सीधी बात को उलटी समझने लगे। यही काल के निकट आने का चिह्न है। भाव यह है कि रावण को ऐसा मतिभ्रम पहिले नही होता था। मन्दोदरी की सम्मति पर ध्यान देता था। सो ध्यान तो अब भी देता है। पर अर्थ उलटा लगाता है।

दो एहि विधि करत बिनोद बहु, प्रात प्रगट दसकध।
सहज असक लकपति, सभा गयउ मदअध॥
फूलै फरै न बेंत, जदपि सुधा बरषहि जलद।
मूरुख हृदय न चेत, जौ गुरु मिलहि बिरचि सिव॥१६॥

अर्थ. इस विधि से अनेक प्रकार से विनोद करते हुए पौ फटने पर स्वाभाविक ही अशङ्क मदान्ध लङ्कापति दशकन्धर सभा मे गये।

यदि बादल से अमृत बरसे तो भी बेत फूलता फलता नही। इसी भाँति यदि शिव या ब्रह्मदेव गुरु मिलें तो भी मूर्ख के हृदय म चेत नही होता।

व्याख्या मद से अन्ध है। इसलिए इतने बडे अपशकुन होने को भी कुछ नही गिनता। यथा अतिगर्व गनइ न सगुन असगुन सहज अशङ्क है। अत मन्दोदरी के अति विशाल भय दिखलाने पर भी कुछ भी प्रभावित नही हुआ। सारी रात उसकी बातो को टालता और विनोद करता गया। जब रात बीत गयी प्रात काल हो गया तब सभा म गया। लकापति है। अत नित्य समय से सभा मे जाना अपना कर्त्तव्य समझता है।

जिस भाँति जल की वर्षा होने से वृक्ष फूलने फलने लगते है पर बेंत नही फूलता फलता। बगाल के बेंतो म फल और फूल देखे भी गये हैं पर वे भी नही के बराबर। न तो उससे फूल म कोई गुण फूल के सौन्दर्य सुगन्ध आदि देखे जाते है और न उसके फल म फल के गुण स्वाद प्रभावादि होते हैं। अत उस फूलने फलने को फूलना फलना नही कह सकते। यदि कहिए कि अमृत की वर्षा से उसके फूल फल मे रसोत्पत्ति होकर उसे फूल फल कहलाने योग्य बना देंगे तो यह भी सम्भव नही है। क्योकि जिसमे जो गुण स्वभाव से नही है उसे अमृत का सिञ्चन भी नही ला सकता। पर्वत पर के बेंतो मे तो फल फूल एकबारगी नही होते।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



फारसी के महाकवि शेख सादी ने अपने प्रख्यात रचना गुलिस्तां मे कहा है कि · अब्र गर आवे जिन्दगी वारद। हरगिज अज शाखे बेद बर नखुरी। यदि अभ्र मेघ अमृत की वर्षा करे तब भी तुम बेंत की शाखा से फल नही खा सकते। यहाँ पर नही खा सकते शब्द ध्यान देने योग्य है। फल खाया जाता है। फूल सूँघा जाता है। जो खाया न जा सके या सूँघा न जा सके उसकी गणना फूल फल मे नही। वह नगण्य है। इसीसे गोस्वामीजी कहते हैं कि फूलै फलै न बेंत।

यहाँ मूर्ख की उपमा बेंत से उसके चेत होने की उपमा फूलने फलने से और शिव ब्रह्मदेव के गुरु मिलने की उपमा अमृत बरसनेवाले मेघ से है। यहाँ विचार करने की बात है कि चेत से अभिप्राय ऐसे चेत से है जिसमे विवेक की सामर्थ्य हो खाने पीने आदि का स्वाभाविक चेत तो मूर्ख को भी रहता है। अत स्पष्ट है कि फूलने फलने से अभिप्राय ऐसे फूल फल देने से हो जिससे कुछ काम निकल सके।

कहा भी है कि सर्वस्यौषधमस्ति शास्त्रविहित मूर्खस्य नास्त्यौषधम्। सबकी दवा शास्त्र मे कही गयी है पर मूर्ख की दवा नही है। यहाँ गोस्वामीजी ने रावण को मूर्ख कहा है। यद्यपि महात्मा रावण बडे पण्डित थे। इनके रचे हुए वेदभाष्य के अश अब भी जहाँ तहाँ पाये जाते हैं। फिर भी जो विचार से काम न ले वह पण्डित होने पर मूर्ख है।

## ७० अगददूतप्रसग

इहाँ प्रात जागे रघुराई। पूछा मत सब सचिव बोलाई॥
कहहु बेगि का करिअ उपाई। जामवत कह पद सिरु नाई॥१॥

अर्थ यहाँ रामजी प्रात काल जागे और सब मन्त्रियो को बुलाकर सलाह पूछी कि बतलाओ शीघ्र कौन उपाय किया जाय। चरणो मे सिर नवाकर जाम्बवानजी बोले।

व्याख्या · वहाँ का हाल कहकर अब यहाँ जहाँ कवि की उपस्थिति है का हाल कहते हैं। वहाँ तो अशङ्क लकापति रात भर स्त्री से विनोद करते रहे। यहाँ भी शङ्का नही है। सरकार रात भर सोते रहे। प्रात काल रावण मदान्ध होकर सभा मे जाकर विराजमान हुए सभा की शोभा बढाने के लिए मन्त्र के लिए नही और सरकार ने जागते ही सब मन्त्रियो को बुलाया। मन्त्रियो से सम्मति लेकर तब नीति का निर्णय करते हैं। नीति है कि अचिर कुरु राजेन्द्र भोजने शयने रणे। हे राजन्! भोजन शयन और रण मे शीघ्रता करनी चाहिए। अत जो कुछ करना है उसमे शीघ्रता होनी चाहिए। उपाय चार हैं साम दान भेद और दण्ड। इनमे से किस उपाय का अवलम्बन करना चाहिए।

सब मन्त्रियो से प्रश्न किया गया। पर जाम्बवानजी चरणो मे सिर नवाकर बोले। ये मन्त्रियो मे वृद्ध हैं। अत इनका अधिकार बडा है। यथा जामवत मत्री अति बूढ़ा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुनु सर्बग्य सकल उर बासी। बुधि बल तेज धरम गुन रासी ॥
मंत्र कहहुँ निज मति अनुसारा। दूत पठाइअ बालिकुमारा ॥२॥

अर्थ : हे सर्वज्ञ ! सबके हृदय मे रहनेवाले ! बुद्धि बल तेज धर्म और गुन के राशि ! मैं अपनी बुद्धि के अनुसार सम्मति देता हूँ। वालि के बेटे अंगद को : अपना दूत बनाकर भेजिये।

व्याख्या : हम लोग अल्पज्ञ हैं : अल्पगुण हैं। आप मोघसकल्प और परागदर्शी है। सर्वज्ञ सकलगुण राशि सत्यसन्ध और सब उरवासी को क्या सलाह दे सक्ते है। जो प्रभु निर्णय कर वही ठीक है। पर जब मुझसे मन्त्र पूछा गया तो अपनी मति के अनुसार कहूँगा। मेरे मन मे यही बात ठीक जँचती है कि बालि के बेटे को दूत बनाकर भेजा जाय। पहिली बात यह कि चारो उपायो मे प्रथम साम है। विशेषत. जब शत्रु की ओर से न सेतुबन्ध मे कोई बाधा उपस्थित की गयी और न हम लोगो के यहाँ ठहरने मे ही कोई रोक-टोक की गयी। अत' दूत भेजकर उससे सन्धि की वार्त्ता की जाय। हनुमान्‌जी न भेजे जायँ नही तो शत्रु समझेगा कि रामदल मे केवल एक वीर हनुमान् ही है। उसी को बार-बार भेजते हैं। दूसरी बात यह कि रामदूत का पद हनुमान्‌जी को मिल चुका है अङ्गद को नही मिला है। अङ्गद के मन मे इस पद की अभिलाषा है। सीताजी का समाचार लेने के लिए अङ्गदजी तैयार हो गये थे। परन्तु मेरे रोकने से रुक गये। यथा : जामवत कह तुम सब लायक। पठइअ किमि सबही कर नायक। अतः इस बार अङ्गद का ही जाना प्राप्त है। और भी बात है अङ्गद बल और नियम मे बालि के तुल्य हैं। यदि रावण अपने स्वाभाविक अभिमान से अङ्गद का निरादर करना चाहेगा तो ये वल के मन्थन मे भी समर्थ हैं। रावण अपने भाई को सँभाल न सका। वह आकर हमारे दल मे मिल गया। उसे दिखाना है कि मैं उसको अपना दूत बनाकर भेज रहा हूँ। जिसके पिता का मैने वध किया है यदि तुम मे सामर्थ्य हो तो तुम इसे अपनी ओर मिला लो। यदि इतना भी नही कर सके तो मेरा सामना करने का व्यर्थ प्रयास क्यो करते हो। यह भी बात है कि अङ्गद वालि के पुत्र हैं। रावण बालि का सखा था। अत रावण किसी की बात सुन सकता है तो अङ्गद की ही बात सुन सकता है। अङ्गद मे प्रशस्त दूत के सब गुण भी हैं। यथा साकारो नि स्पृहो वाग्मी नानाशास्त्रविचक्षण। परचित्तावगन्ता च राज्ञो दूत प्रशस्यते। शारीरिक सम्पत्तिवाला इच्छारहित बोलनेवाला नानाशास्त्र का जानकार दूसरे के मन की बात जाननेवाला पुरुष का ही राजदूत होना प्रशसित है। अत सब जगह से विचार करने पर अङ्गद को ही दूत बनाकर भेजना ठीक जँचता है।

नीक मंत्र सबके मन माना। अंगद सन कह कृपानिधाना ॥
बालितनय बुधि बल गुन धामा। लंका जाहु तात मम कामा ॥३॥

अर्थ : यह राय सबको जँच गयी। कृपानिधान रामजी ने अङ्गद से कहा कि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



की ओर उठ पड़े और कहा कि हे ईश ! वही गुणों का समुद्र है जिसपर तुम कृपा करो।

सब कार्य तो स्वयसिद्ध है। नाथ ने केवल मुझे आदर दिया है। ऐसा विचार कर युवराज अङ्गद का शरीर पुलकित और हृदय हर्षित हो उठा।

व्याख्या अङ्गदजी के हृदय मे महादेवजी का सिद्धान्त जमा हुआ है। यथा बोले बिहँसि महेस तब ग्यानी मूढ न कोइ। जेहि जस रघुपति करहिं जब सो तस तेहि छन होइ। अत. कहते है कि आपकी कृपा मे बडी सामर्थ्य है। वह कृपापात्र को गुणसागर बना देती है।

आज्ञा होते ही अङ्गदजी ने शिरोधार्य करके प्रणाम किया और तुरन्त उठ खडे हुए। चलते समय गलित अभिमान होकर सरकार की कृपा का आश्रय ग्रहण किया और कहा कि आपका कार्य तो स्वयसिद्ध है। भाव यह कि मै जाता हूँ रावण को चरणो पर गिरने के लिए समझाने। सो रावण का सिर सरकार के सामने पृथिवी पर बिना गिरे नही रह सकता। चाहे कटकर गिरे चाहे बिना कटे गिरे। यदि शरण मे आया तो स्वय गिरेगा नही तो बाण काटकर गिरा ही देवेंगे। यथा . सन्धौ वा विग्रहे वापि मयि दूते दशाननो। अक्षता माक्षता वापि क्षितिपीठे लुठिष्यसि। ( दूताङ्गद )। विचारा कि नाथ ने मुझे आदर दिया है। सरकारी इच्छा है कि बतकही मे मैं रावण को निरुत्तर कर दूँ कि युद्ध करने मे तेरी भलाई नही है। सो रामकृपा से मेरे द्वारा सुसाध्य होगा और मेरी बडाई होगी कि रावण की सभा मे अङ्गद ने बडी पण्डिताई से काम लिया। रामदूत पद प्राप्ति से अङ्गदजी को सात्त्विक भाव हो उठा।

बंदि चरन उर धरि प्रभुताई। अंगद चलेउ सबहि सिरु नाई॥
प्रभु प्रताप उर सहज असंका। रन बाँकुरा बालिसुत बंका॥१॥

अर्थ चरणो की वन्दना करके और प्रभुता को हृदय मे धारण करके अङ्गद सबको सिर नवाकर चले। प्रभु का प्रताप हृदय मे और स्वभाव से ही निर्भय रण मे विकट बालि का पुत्र बाँका था।

व्याख्या प्रभु अग्या धरि सीस चरन बंदि अंगद उठेउ। इस कमल की पुरइन है बंदि चरन उर धरि प्रभुताई। स्वयसिद्ध तव काज। इस कमल की पुरइन है काज हमार तासु हित होई। प्रभु की प्रभुता को हृदय मे धारण करने से असाध्य साधन होता है। यथा मैं पुनि उरधरि प्रभु प्रभुताई। करिहौ बल अनुमान सहाई। और चरणो की वन्दना से सिद्धि प्राप्त होती है। यथा जाको चरन बिरंचि सेइ सिधिपाई संकरहु। अङ्गदजी ने यहाँ चरण-वन्दन भी किया और प्रभु की प्रभुताई को भी हृदय मे स्थान दिया। हनुमान्जी ने जिस भाँति लका को ओर चलते समय सबको माथ नवाया था उसी भाँति अङ्गदजी ने भी सबको सिर नवाया। ध्येय सदा श्रीमद्भागवत के दो श्लोकों का नित्य प्रातः पाठ कर लेना चाहिए।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लंका में जो कि सर्पों से भरी हुई गुफा सी भयङ्कर है जाते हुए अङ्गदजी को भय नहीं है। क्योंकि बालि के बेटे हैं। बालि के ऐसा ही इनका पराक्रम है। स्वभाव से ही अशङ्क हैं। स्वभाव से ही अशङ्क हैं। युद्धविद्या में बड़े प्रवीण और आनशानवाले : बाँके हैं। रावण सहज अशङ्क है। यथा : तहँ रह रावन सहज अशंका। उसके यहाँ दूत बनाकर रामजी ने सहज अशङ्क अङ्गदजी को भेजा है। अंगदजी में विशेषता यह है कि इनके हृदय में राम प्रताप है। वानरी सेना में चार रणबाँकुरे हैं। उनमें एक अङ्गदजी भी हैं। यथा : हनुमन्त अंगद नील नल अति बल लरत रन बाँकुरे। बाँका से उठती जवानी कहा।

पुर पैठत रावन कर बेटा। खेलत रहा होइ गइ भेंटा॥
बातहिं बात करष बढ़ि आई। जुगल अतुल बल पुनि तरुनाई॥२॥

अर्थ : पुर में प्रवेश करते ही रावण के बेटे से भेंट हो गयी। रावण का बेटा खेल रहा था। बात ही बात में बैर बढ़ गया। एक तो दोनों के बल का तौल नहीं था और दूसरे दोनों की युवावस्था थी।

व्याख्या : रावण का बेटा पुर के द्वार पर जवानों का खेल चौगान आदि खेल रहा था। अङ्गद के प्रवेश करते ही उससे भेंट हुई। रावण कर बेटा। कहने का भाव यह कि रावण के ऐसा यह भी महा अभिमानी तथा तामसी प्रकृति का था।

नये व्यक्ति के लंका प्रवेश करते देखकर उसका पूछना स्वाभाविक था। अतः यह मालूम होता है कि छेड़छाड़ उसी की ओर से हुई। उसका मुँहतोड़ उत्तर अङ्गद की ओर से दिया गया। प्रत्युत्तर में असमर्थ होकर उसने खिझलाकर लात चलाना चाहा। अब प्रश्न उठता है : दोनों में क्या बातचीत हुई ? निश्चय वे बातें असभ्यता से भरी थीं। इसीलिए ये महात्मा ऐसी बातें नहीं लिखते। यथा : तेहि कारन करुना निधि कहे कछुक दुर्बाद। अथवा, लखन कहे कछु बचन कठोरा। परन्तु रामायणी लोगों ने अनुमान किया है और बात बैठती सी है। रावण के पुत्र ने कहा तू कौन है ? अंगद ने कहा मैं राम दूत हूँ। रावण के बेटे ने कहा कौन राम जिनकी स्त्री मेरे पिता हर लाये हैं। अंगदजी ने कहा : हाँ वही राम जिसने तुम्हारे बूआ का नाक कान काट लिया। यदि वस्तुतः ऐसी बात न भी हुई हो तो भी कहा जा सकता है कि इसी प्रकार की कोई बात हुई दोनों असहनशील थे। क्योंकि दोनों तरुण थे और अपने समाज में अतुल बल माने जाते थे।

तेहि अंगद कहुँ लात उठाई। गहि पद पटकेउ भूमि भँवाई॥
निसिचर निकर देखि भट भारी। जहँ तहँ चले न सकहिं पुकारी॥३॥

अर्थ : उसने अंगद को लात उठाया। अंगद ने उसका पैर पकड़कर घुमाया और पृथिवी पर पटक दिया। राक्षसों के समूह ने देखा कि भारी योद्धा है। जो जहाँ था वह वहीं से खिसका। पुकार तक न मचा सके।

व्याख्या : अङ्गदजी ने देखा कि यह पैर उठा रहा है मेरे प्रति चलाने के

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लिए। तुरन्त लपककर उसका वही पैर पकड़ लिया और पैर पकड़कर उसे आसमान में घुमाकर जमीन में पटका। कहना नहीं होगा कि अपने समाज में अतुलबल होने पर भी अंगदजी के सामने वह कुछ नहीं था। इस तरह से घुमाकर जो जमीन पर पटका जायगा उसकी मृत्यु के लिए कहने की आवश्यकता नही है। रावण का बेटा है। खेल रहा है। अतः वहाँ राक्षसों का समूह जुटा था। उसके मारे जाने पर उन्हें लड़ना चाहिए। पर अंगदजी के इस पराक्रम को देखकर वे इस नतीजे तक पहुँच गये कि यह बन्दर हमलोगों की मान का नही है। इससे बोलना काल का आवाहन करना है। इसलिए जो जहाँ था वह वही से खिसका। उनका इतना साहस भी न हुआ कि पुकार मचाते। उन्होने समझ लिया कि लंका से सहायता आने के पहिले ही हम लोग मारे जावेंगे। अतः पुकार भी न मचाया।

एक एक सन मरमु न कहही। समुझि तासु बध चुप करि रहही॥
भयउ कोलाहलु नगर मंझारी। आवा कपि लंका जेहि जारी॥४॥

अर्थ : एक दूसरे से भेद नही कहते। उसका बध समझकर चुप रह जाते हैं। नगर में बड़ा कोलाहल हुआ कि वही बन्दर फिर आया जिसने लंका जलायी थी।

व्याख्या : एक दूसरे से यह भेद नही बतलाते कि रावण का बेटा मारा गया। बतलाने से यह सिद्ध हो जाता कि यह भी उस समय वहाँ थे। ऐसा होने से रावण के कोपभाजन होने का भय था। रावण कुपित हो उठते कि लड़का मारा गया यह वही था और कुछ न बोला। अतः भगदड़ मच गयी पर यह कोई नही कहता कि हुआ क्या ?

हनुमान्‌जी का आतङ्क छाया हुआ है। पुर में प्रवेश करते ही खबर फैल गयी। एक दूसरे से पुकार कर कह रहे है कि जिसने लंका जलायी थी वही बन्दर फिर आया है। बड़ी भारी आपत्ति आयी चाहती है। अङ्गदजी का आकार तेज आदि देखकर सबको हनुमान्‌जी का भ्रम हुआ। अतः नगर भर मे खलबली पैठ गयी। लोग अपना माल असबाब घर के बाहर निकालने लगे कि पहिले बार के लङ्कादाह मे बड़ा नुकसान हुआ। सब असबाब घर में ही जल गया। क्या जाने बन्दर फिर लंका दाह करे। अतः पहिले से ही सावधान रहना चाहिए। यथा : आयो आयो आयो सोई बानर बहोरि भयो सोर चहुँओर लंका आए जुवराज के। एक काढ़ैं सौंज एक धौज करै कहा ह्वै है पोच भई महा सोच सुभट समाज के। गाज्यो कपिराज रघुराज की सपथ करि मूदे कान जातुधान मानो गाजे गाज के। सहमि सुखात बात जात की सुरति करि लवा ज्यौ लुकात तुलसी झपेटे बाज के। कविता०।

अब धौं काह करिहि करतारा। अति सभीत सब करहिं बिचारा॥
बिनु पूछे मगु देहिं देखाई। जेहि बिलोक सोइ जाइ सुखाई॥५॥

अर्थ : हे करतार ! अब न जाने क्या करेगा ? ऐसा विचारकर सब लोग

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

व्याख्या · देखकर समझ लिया कि ये चोबदार लोग हैं। उन्ही मे से एक को भेजा कि लकेश्वर को मेरे आने का समाचार दो। अङ्गदजी को रोकने का किसी को साहस नही। दुर्गद्वार पर भी इन्हे किसी ने न रोका। दूतधर्म का पालन करते हुए ये यहाँ पर स्वय रुक गये और रावण की आज्ञा की प्रतीक्षा करने लगे। सुनते ही हँसा कि यह छोकडा प्रहस्त मुझे नीति सिखाता था कि पहिले वसीठो : सुलह के लिए दूत भेजो। मै क्या निर्बल हूँ कि वसीठ . दूत भेजूँ। देखो शत्रु की ओर से वसीठ आया। पहिली विजय तो हमारी यही हुई। मालूम होता है कि उस राक्षस ने आकर कहा कि एक बन्दर आया है। द्वार पर खडा है। आपके सामने आना चाहता है। सुनकर हँसने के बाद रावण बोले। उसको बुला लाओ। मै देखना चाहता हूँ कि वह बन्दर कहाँ से आया है। अति अभिमान की बातें करता है। बन्दरो ने लकापुरी घेर रक्खा है। फिर भी पूछता है कहाँ कर कीसा।

आयसु पाइ दूत बहु धाए। कपि कुजरहि बोलि लइ आए ॥
अगद दीख दसानन बैसे। सहित प्रान कज्जल गिरि जैसे ॥२॥

अर्थ : आज्ञा पाकर बहुत से दूत दौडे और हाथी के समान बन्दर को बुला ले गये। अङ्गद ने रावण को बैठा हुआ देखा। जैसे जीता जागता अञ्जन का पहाड हो।

व्याख्या बडा भारी सभाभवन है। जहाँ बाहर जाने के लिए दूत को दौडना भी पडता है। आदर के लिए बहुत से दूत दौडे अथवा बन्दरो से सशङ्क हैं। अत अकेले का जाना उचित नही समझा। अङ्गदजी का विशाल आकार होने से उन्हे कपिकुञ्जर कहा अथवा कुञ्जर है। यह रावण के विटपरूपी भुजा के भजन मे समर्थ हैं। इसलिए कुजर कहा।

अगदजी ने पहिले पहल रावण को देखा है। इसलिए वर्णन करते हैं कि बैठे हुए रावण कज्जल के पहाड से दीख पडते हैं। भेद इतना ही है कि कज्जल क पहाड मे प्राण नही है। इसमे प्राण है। हनुमान्जी के सभाभवन जाने के समय रावण के आकार का वर्णन नही है। क्योंकि हनुमान्जी उसको पहिले भी देख चुके हैं। यथा . सयन किये देखा कपि तेही। मदिर महुँ न दीख बैदेही।

भुजा बिटप सिर सृङ्ग समाना। रोमावली लता जनु नाना ॥
मुख नासिका नयन अरु काना। गिरि कदरा खोह अनुमाना ॥३॥

अर्थ · भुजा मानो पेड है। सिर मानो पहाड की चोटियाँ है। रोमावली मानो लता और पेड हैं। मुख नाक आँख और कान तो मालूम होता है कि पर्वत की कन्दराएँ हैं।

व्याख्या · पर्वतो पर पेड होते है। उनमे लताएँ लिपटी रहती है। पर्वतो के अनेक शृग होते है। यहाँ भी सब कुछ है। रावण को बहुत सो भुजाएँ पेड की

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


पक्षियाँ हैं। उसकी रोमावली ही लताएँ हैं। उसके दस सिर पर्वत के शृंग से प्रतीत होते हैं।

पर्वत में कन्दराएँ होती हैं। खोह होते हैं। कन्दराएँ बड़ी होती है। खोह छोटे होते हैं। रावण रूपी पर्वत में उसके मुख कन्दराकार हैं। नासिका नयन और कान के गोलक खोह के समान हैं। ऐसा विशाल भयानक राक्षसराज है। उसकी सभा है।

गयउ सभा मन नेकु न मुरा। बालितनय अति बल बाँकुरा ॥
उठे सभासद कपि कहुँ देखी। रावन उर भा क्रोध विसेखी ॥४॥

अर्थ : सभा में गये मन में तनिक सा भी क्षोभ न हुआ। बालि का बेटा अत्यन्त बलवान् और बाँका है। बन्दर को देखकर सभासद उठ खड़े हुए। रावण के मन में विशेष क्रोध हुआ।

व्याख्या : जिस भाँति हनुमान्‌जी के लिए कवि ने कहा था कि देखि प्रताप न कपि मन सका वही बात अंगदजी के लिए कह रहे हैं कि ऐसी भयानक सभा में भी अङ्गदजी को क्षोभ न हुआ। कारण कहते हैं कि क्षोभ निर्बल और कादर को होता है। अथवा कुलहीन को होता है। अङ्गदजी तो वानरराज बालि के बेटे हैं। अतिबल हैं और बाँके वीर हैं। इन्हें क्षोभ कैसे हो ?

शत्रु के दूत के आने पर राजा के सभासदों का खड़ा होना बड़ी भारी कचायी है। पर अङ्गदजी का व्यक्तित्व ऐसा है। साकारता ऐसी है कि उनके प्रवेश करने से सभासद बैठे न रह सके। जब अङ्गदजी को बुलाने बहुत से दूत गये तभी रावण को क्रोध हुआ और सभासदों के खड़े हो जाने पर तो विशेष क्रोध हुआ। पर क्रोध को उनने अनवसर जानकर प्रकट नहीं किया। मनमें ही छिपाये रहा।

दो० जथा मत्त गज जूथ महुँ, पंचानन चलि जाइ।
राम प्रताप सुमिरि मन, बैठ सभा सिरु नाइ ॥१९॥

अर्थ : जैसे मतवाले हाथियों के समूह में सिंह चला जाय। राम प्रताप को हृदय में सुमिरन कर सिर नवाकर सभा में बैठ गये।

व्याख्या : भाव यह कि जैसे मतवाले हाथियों के समूह में सिंह चला जाय तो हाथी बैठे नहीं रह सकते। स्वभाव से ही खड़े हो जाते हैं। उसी भाँति राक्षस अङ्गदजी को देखकर बैठे न रह सके। खड़े हो गये। जिस भाँति हनुमान्‌जी रामजी को हृदय में लेकर चले थे और समुद्रोल्लङ्घन के समय सँभाला था। यथा : बार बार रघुबीर सँभारी। तरकेउ पवनतनय बल भारी। उसी भाँति अङ्गदजी प्रभु की प्रभुता को हृदय में रखकर चले थे। उसी को इस समय फिर सँभालते हैं। सिर नवाकर सभा में जा बैठे। दूत है अतः शत्रु राजा को भी प्रणाम करना उचित हो पड़ा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रमाण नही है। यथा : तेहि अवसर रावन तहँ आवा। संग नारि बहु किये बनावा।। अत इनका साथ ले चलना परम आवश्यक है।

जानकीजी को आगे करने का भाव यह कि ये मेरी बडी हैं। माँ के सदृश हैं। इस विधि का पालन करने से फिर भय का कोई कारण नही है। मैं दूत होकर उधर से आया हूँ। मैं वचनबद्ध होता हूँ। अन्यथा न होगा।

दो प्रनतपाल रघुबंस मनि, त्राहि त्राहि अब मोहि।
आरत गिरा सुनत प्रभु, अभय करैगो तोहि ॥२०॥

अर्थ . हे प्रणतपाल ! रघुवशमणि ! मेरी रक्षा करो। ऐसा आर्त्त वचन सुनते ही प्रभु तुम्हे अभय कर देंगे।

व्याख्या सरकार प्रणतपाल हैं। उनकी प्रतिज्ञा है सकृदेव प्रपन्नाय तवास्मीति च याचते। अभय सर्वभूतेभ्यो ददाम्येतद् व्रत मम। भगवान् कहते हैं कि मेरी शरण मे आकर एक बार भी मै तुम्हारी शरण हूँ ऐसी याचना करता है तो उसे मैं प्राणिमात्र से निर्भय कर देता हूँ। यह मेरा व्रत है।

अङ्गदजी कहते हैं कि उनके सामने जहाँ त्राहि त्राहि किया। वहाँ आर्त्त वचन के सुनते ही तुम्हे वे अभय कर देंगे। अपने व्रत को वे कभी न छोड़ेंगे।

रे कपिपोत बोलु सभारी। मूढ न जानेहि मोहि सुरारी ॥
कहु निज नामु जनक कर भाई। केहि नाते मानिये मिताई ॥१॥

अर्थ अरे बन्दर के बच्चे ! सँभालकर बोल। मूढ ! तू मुझे नही जानता मै देवताओ का शत्रु हूँ। अरे भाई ! अपना और अपने बाप का नाम तो बतला। जिस नाते से मित्रता मान रहा है।

व्याख्या पहिले तो वन्दर ही महा अज्ञानी होते हैं तिसपर तू अभी बच्चा है। नही समझता कि किसके सामने कैसा बोला जाता है। तू मूढ है क्योकि मालूम होता है कि तू मुझे भी नही जानता। कोई जानकार ऐसा नही हो सकता जो मुझ न जाने। अपनी प्रसिद्धि का कारण कहते हैं। मैं देवताओ का शत्रु हूँ। देवता भले ही अपमान सह लें दीन हो जायँ पर मै नही हो सकता। इस भाँति दसन गहहु तृन कठ कुठारी का उत्तर दे रहा है। देवता हरण की हुई वस्तु लौटा सकते हैं। मैं सुरारि हूँ मैं नही लौटा सकता।

अब मम जनकहि तोहि रही मिताई का उत्तर देते हुए कहता है कि बिना नाम बतलाये कैसे पता लग सकता है कि वस्तुतस्तु उस व्यक्ति से मैत्री थी या नही। अपना नाम भी तुमने नही बतलाया। मै रघुवीर दूत कह देना पूरा परिचय नही है। अङ्गदजी ने कहा था तव हित कारन आयेउँ भाई। अत रावण भी कहते हैं कहु निज नाम जनक कर भाई। भाव यह कि अपना और अपने बाप का नाम बतलाओ। बन्दर और राक्षस मे मैत्री कैसी ? एसी कौन घटना हुई जिसके सम्बन्ध से मित्रता मानी जाय ?

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अंगद नाम बालि कर बेटा। तासो कबहुँ भई ही भेटा॥
अंगद वचन सुनत सकुचाना। हाँ बाली बानर मै जाना॥२॥

अर्थ : मेरा नाम अङ्गद है मैं बालि का बेटा हूँ। उनसे कभी तुम्हारी भेंट हुई थी। अङ्गद का वचन सुनकर कुछ संकुचित हुआ। कहने लगा : हाँ बालि नामक बन्दर को मैं जानता हूँ।

व्याख्या : रे कपिपोत बोल सँभारी। मूढ न जानेहि मोहि सुरारी का उत्तर अगद नाम बालि कर बेटा। भाव यह है कि मै बालि का बेटा हूँ। जानता हूँ कि तुममे कितना पानी है। अत जो कुछ कहा है बहुत समुझबूझकर कहा है। अब नाता भी सुन लो। तुम से बालि से कभी भेंट हुई थी। उसी समागम के नाते मैं तुमको उनका मित्र मानता हूँ। भाव यह कि उस समागम मे ही ऐसी घटना हुई कि तुम्हे उनसे अग्निसाक्षिक मैत्री करनी पडी।

रावण ने जान लिया कि इसने अपने पिता के मुख से मेरे पराभव की कथा सुन रक्खा है और उसी ओर लक्ष्य करके उत्तर दे रहा है। अतः कुछ सङ्कुचित हुआ। मित्रता तो नही पर परिचय स्वीकार करता है कि हाँ मै उसे जानता हूँ। अब अङ्गद के वचन से लाभ उठाकर बाप के परिचित होने के नाते नाराज होता है।

अंगद तही बालि कर बालक। उपजेउ बंस अनल कुल घालक॥
गर्भ न गयहु व्यर्थ तुम जायेहु। निज मुख तापस दूत कहायेहु॥३॥

अर्थ : हे अङ्गद ! तू ही बालि का बेटा है। तुम तो बाँस की आग की भाँति कुलघालक पैदा हुए। गर्भ मे ही क्यो नही नष्ट हो गये। तुम व्यर्थ ही पैदा हुए। अपने ही मुख से तुम तपस्वी के दूत कहलाते हो।

व्याख्या : तू ही बालि का बेटा है? तेरी क्या दशा है? राजा का बेटा होकर तपस्वी का दूतत्व करता है। अरे कुलघालक नालायक तेरी उत्पत्ति से वंश का नाश हुआ। राज्य कुल से चला गया। तुम गर्भ मे ही नष्ट हो गये होते तो सन्तोष की बात थी कि बालि को पुत्र ही नही हुआ। तुम्हारा जन्म लेना व्यर्थ हुआ : गुणिजनगणनारम्भे न पतति कठिनी ससम्भ्रमाद्यस्य। तेनाम्बा यदि सुतिनी वद वन्ध्या कीदृशी नाम। जब गुणियो की गणना होने लगे उस समय सम्भ्रम के साथ जिसकी ओर उँगली न उठे उससे यदि माँ बेटेवाली होती हो तो बतलाओ वन्ध्या किसे कहते हैं?

तुम इतना नीचे गिरे कि तुम्हे पूर्व गौरव का स्मरण भी नही है। यदि तुम्हे कोई किसी का दूत कहता तो तुम्हे उसे गाली समझना था न कि तुम स्वयं अपने को दूत कहते हो और सो भी एक तपस्वी का।

अब कहु कुसल बालि कहँ अहई। बिहँसि वचन तब अंगद कहई॥
दिन दस गये बालि पहिं जाई। बूझेउ कुसल सखा उर लाई॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : कुशल तो बता वालि कहाँ है ? अङ्गद ने हँसकर कहा : दस दिन बाद वालि के पास जाओगे तब सखा को हृदय से लगाकर कुशल पूछना।

व्याख्या : जानबूझकर कि बालि मारा गया है अङ्गद से कुशल पूछता कि वालि सकुशल तो हैं ? और आजकल कहाँ हैं ? जो तुम्हारी यह दशा हो रह है। उनसे बहुत दिन से भेंट भी नहीं हुई। रावण समझता है कि इस तरह पूछ से अङ्गद रो पड़ेगा। कहेगा कि चाचा ! उन्हे तो राम ने मार डाला। तब इ अपनी ओर मिला लेंगे। इसके मिलने से वानरी सेना भी छूट जावेगी। राव अङ्गद के रो पड़ने की आशा करते थे सो अङ्गदजी हँस पड़े। रावण के भेदनीि प्रयोग पर हँसे अथवा रामविरोधी के कुशल पूछने पर हँसे। अथवा हँसकर उसे बतला दिया कि हम तदीय हो गये। रामविरोधी जो हो गया। वह मेरे स्नेह य आदर का पात्र नहीं रह गया।

उसके भेद नीति के प्रयोग से अङ्गदजी समझ गये कि यह बात नहीं मानेगा अतः कहते हैं कि जब इतने दिन तक कुशल नहीं पूछा तो दस दिन और ठहर जाओ। तुम्हे भी बहुत शीघ्र वहीं जाना है जहाँ बालि गये हैं। तब स्वय उन्ही से कुशल पूछ लेना। वे तुम्हारे प्यारे सखा हैं। उन्ही के रास्ते पर तुम चल रहे हो। अतः तुम लोगों मे बड़ा प्रेम है। अतः हृदय लगाकर पूछने का अवसर प्राप्त होगा। मेरा उनका रास्ता दो है। अतः मै ठीक कुशल न सुना सकूँगा।

राम बिरोध कुसल जसि होई। सो सब तोहि सुनाइहि सोई॥
सुनु सठ भेद होइ मन ताके। श्रीरघुबीर हृदय नहि जाके॥५॥

अर्थ : राम का विरोध करने पर जैसा कुशल होता है वह सब तुमको वे ही सुनावेंगे। हे शठ ! सुन भेद उसके मन मे होता है। जिसके मन मे रघुवीर न हो।

व्याख्या : तुमने विरोध किया है। उन्होने भी विरोध किया था। मेरे कहने पर तो नाराज होते हो क्योंकि मैं छोटा हूँ। पर वे सखा है भुक्तभोग है। वे तुम्हें जैसा कुशल रामविरोध से होता है सो सब सुनावेंगे।

तुमने मुझ पर भेदनीति का प्रयोग किया। पर मेरे हृदय मे सरकार है। यहाँ भेदनीति काम नहीं कर सकती। यथा : तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना। जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि भाथा। रावण को अङ्गदजी ने शठ कहा। भाव यह कि तुमको मैंने परम हित का उपदेश दिया। उसका अनादर करके तुम भेदनीति द्वारा अपने पक्ष मे लाकर राम विरोधी बनाना चाहते हो सो होना नहीं है।

दो. हम कुल घालक सत्य तुम्ह, कुल पालक दससीस।
अंधौ बधिर न अस कहहि, नयन कान तव बीस॥२१॥

अर्थ : तुम सच कहते हो हम तो कुलघालक है और तुम दसशीश कुलपालक हो। ऐसी बात तो कोई अन्धा बहरा भी नहीं कहेगा। तुम्हे तो बीस आँख कान है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : यहाँ सत्य आक्षेप के अर्थ में प्रयुक्त है। अङ्गदजी कहते हैं मेरे हृदय में रघुवीर हैं। मैं धर्मपरायण कुलत्राता हूँ। यथा : धर्मपरायन सोइ कुलत्राता। रामचरन जाकर मन राता। मैं कुलघालक कैसे हुआ। तुम राम-विरोधी हो। तुम मुनि वंशज होकर मुनियों का संहार करते हो। यथा : निसिचर निकर सकल मुनि खाये। तुम्हारे ऐसा कुलघालक संसार मे कहाँ मिलेगा। जो अन्धा होगा वह भी सुना होगा कि तुम कितने बड़े कुलपालक हो और जो बहिरा होगा उसने तुम्हारी कुलपालकता देखी होगी। अतः अन्धे बहिरे करणहीन पुरुष भी ऐसा नही कहेंगे। तुम्हें तो बीस आँख कान दिखाई पड़ते हैं। क्या उनसे दिखाई सुनाई नही पड़ता ? बीस नयन मंदिर के से मोखे। अर्थात् तुम्हारी कुलघालकता तो जगद्विख्यात है।

सिव विरंचि सुर मुनि समुदाई। चाहत जासु चरन सेवकाई ॥
तासु दूत होइ हम कुल बोरा। ऐसिहु मति उर बिहर न तोरा ॥१॥

अर्थ : शिव ब्रह्म और देवता तथा मुनिराज जिसके चरण की सेवकाई चाहते हैं। उसका दूत होकर मैं कुल को डुबोनेवाला हूँ। ऐसी बुद्धि होने पर तुम्हारा हृदय विदीर्ण क्यो नही होता ?

व्याख्या : कुलपालक दससीस का उत्तर देकर कुलघालक का उत्तर देते हैं। जितने महान् हैं चाहे शिव हों चाहे ब्रह्मा हो चाहे देवसमाज हो चाहे मुनिसमाज हो : सभी चरण सेवकाई का अवसर ढूँढते हैं मिलता नही। जिसके शरण मे जाने से कुल धन्य हो जाता है। यथा : सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत। श्रीरघुवीर परायन जेहि नर उपज विनीत। उनके दूत होने से तुम मुझे कुलघालक बतला रहे हो। ऐसी बुद्धिवाले का तो हृदय फट जाना चाहिए। यथा : हिय फाटउ फूटउ नयन जरौ सो तन केहि काम। द्रवै स्रवै पुलकै नही तुलसी सुमिरत राम।

सुनि कठोर बानी कपि केरी। कहत दसानन नयन तरेरी ॥
खल तव कठिन बचन सब सहऊँ। नीति धर्म मै जानत अहऊँ ॥२॥

अर्थ : कपि की कठोर वाणी सुनकर रावण आँख तरेर कर बोला। रे खल ! मैं तेरे कठिन शब्दों को इसलिए सुनता हूँ कि मैं धर्मनीति को जानता हूँ।

व्याख्या : जिसके सुनने से चित्त को चोट लगे उसे कठोर वाणी कहते हैं। यदि कोई बड़ा होकर कठोर बोले तो किसी प्रकार सह्य भी हो सकता है। रावण नर वानर को किसी लेखे में नही समझते। पहले सन्देश सुनते ही रावण बिगड़ उठे। कहने लगे : रे कपिपोत बोल सँभारी। सो सँभालकर बोलना तो दूर गया बन्दर कठोर वाणी बोलने लगा। अतः रावण बीसो आँखों से टेढा देखते हुए बोले। इसीलिए दसानन कहा। रावण नाराज होकर अङ्गदजी को खल कहते हैं। पर दण्ड देने का साहस नही है कि कहीं यह भी हनुमान् की भाँति उपद्रव

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



न कर बैठे। वहाँ तजवीजकर दूत भेजे जाते हैं। अत बैठकबाजी से काम लेते है। अपनी दुर्बलता को पण्डिताई से छिपाते है। अत. कहते है कि तेरे अविनय का सहन मैं धर्म नीतिज्ञता के कारण कर रहा हूँ। क्योंकि अपराधी दूत का वध भी धर्मनीति के विरुद्ध है।

कह कपि धर्मसीलता तोरी। हमहु सुनी कृत परतिय चोरी॥
देखी नयन दूत रखवारी। बूडि न मरहु धर्मब्रत धारी॥३॥

अर्थ : अङ्गदजी ने कहा कि तुम्हारी धर्मशीलता मैने सुनी है। तुमने परायी स्त्री चुराया और आँख से दूत की रक्षा देखा। हे धर्मव्रतधारी डूब नही मरते।

व्याख्या : अङ्गदजी उसकी धर्मशीलता पर आक्षेप करते हुए कहते है कि तुम्हारी धर्मशीलता की प्रसिद्धि तो मेरे कानो तक पहुँची है कि आपने परायी स्त्री चुरायी। चोरी : जारी रोकने के लिए ही राजा की सृष्टि हुई है। सो तुमने राजा होकर परायी स्त्री चुरायी। भाव यह कि केवल पापी ही नही : कादर भी हो। और हनुमान्‌जी की जली हुई पूँछ तो मैने आँख से देखी है। तुमने अपने समझ मे मारने में कोई कसर नही रखी। ऐसे धर्म व्रतधारी को तो डूब मरना चाहिए। अर्थात् ऐसे जीवन से आत्मघात अच्छा।

नाक कान बिनु भगिनि निहारी। छमा कीन्हि तुम धर्म बिचारी॥
धर्मसीलता[1] तव जग जागी। पावा दरसु हमहु बड भागी॥४॥

अर्थ : अपनी बहन को बिना नाक और कान की देखकर तुमने धर्म बिचार कर ही तो क्षमा किया था। तुम्हारी धर्मशीलता ससार मे जग रही है। मैं बडा भाग्यवान् हूँ जिसने ऐसे धर्मशील का दर्शन पाया।

व्याख्या : नीति धर्म मैं जानत अहहूँ का उत्तर हो चुका। अब तब कठिन बचन मै सहहूँ का उत्तर देते हैं। सहना अर्थात् क्षमा भी तुममे अत्यन्त अधिक है। क्योंकि क्षमा बडन को धर्म है। तुम बहिन का नाक कान कटना क्षमा कर गये। खर दूषण नही क्षमा कर सके। तुमने क्षमा किया इसी से बचे हो। सो वह क्षमा नही है कादरता और असमर्थता है। वैसी ही क्षमा तुम यहाँ भी कर रहे हो।

तुम्हारी धर्मशीलता ससार विख्यात है। मै भी भाग्यवान् हूँ जो दर्शन पाया : कहने से ध्वनि यह निकलती है कि तुम जगद्विख्यात पापी हो। तुम्हारा मुख देखने से प्रायश्चित्त है। यह मेरा अभाग्य है कि तुम्हारा मुख देखना पडा। सो तुम धर्मात्मा बन रहे हो।

दो. जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि, सठ बिलोकु मम बाहु।
लोकपाल बल बिपुल ससि, ग्रसन हेतु सब राहु॥२२॥

---

१. यहाँ वक्रोक्ति अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : रे जडजन्तु बन्दर ! बक बक न कर। रे शठ ! मेरी भुजाएँ तो देख। लोकपालो के विशाल बलरूपी चन्द्रमा को ग्रास करने के लिए जो राहु रूप हैं।

व्याख्या : जन्तुओ मे भी बन्दर जड होते हैं अथवा कपि की गणना पशु में है। उनमे भी तू जड़ है। इसलिए निरर्थक बात बोलता है। मुझे किसका भय है ? मैंने धर्म नीति का ही ख्याल किया है। प्रमाण मे मेरी भुजा देख ले। है तेरे कटक में किसी को ऐसी भुजा ? भुजा विपट सिर सृग समाना। ये भुजाएँ पोली नही हैं। ये लोकपालों के बलो को इस प्रकार निस्तेज कर देती हैं जैसे राहु चन्द्रमा को निस्तेज कर देते हैं। दस दिक्पाल हैं और मुझे बीस भुजाए हैं। अतः दशो दिक्पालो को एक साथ निस्तेज करती हैं।

दो. पुनि नभ सर मम कर निकर, कमलन्हि पर करि बास।
सोभित भयउ मराल इव, संभु सहित कैलास ॥२२॥

अर्थ : फिर आकाशरूपी तालाब मे मेरे बाहुरूपी कमलो पर बैठकर शम्भु के सहित कैलास हंस की तरह शोभित हुआ।

व्याख्या एक एक भुजाओ का पृथक् पृथक् बल कहकर अब सबका एक साथ बल कहता है कि जब मैंने बीसो भुजाओ से कैलास उठाया जिस पर स्वयं शङ्कर भगवान् विराजमान थे तो ऐसी शोभा हुई जैसे आकाशरूपी सरोवर मे कमलो के ऊपर हंस आकर विराजमान हुआ हो। भाव यह कि एक तो कैलास पर्वत ही बडा भारी है उसे कोई हिला नही सकता। उस पर लोकसहार कर्त्ता साक्षात् शङ्कर भगवान् विराजमान थे। उसे मेरी इन भुजाओ ने उठा लिया। अतः इनकी बराबरी करनेवाला ससार मे कौन है जिससे मुझे भय हो सके ?

तुम्हरे कटक मांझ सुनु अंगद। मोसन भिरिहि कवन जोधा बद ॥
तव प्रभु नारि बिरह बल हीना। अनुज तासु दुख दुखी मलीना ॥१॥

अर्थ : सुनो अङ्गद ! तुम्हारी सेना मे ऐसा कौन योद्धा है जो मुझसे भिड सके। तुम्हारा मालिक तो स्त्री के विरह से निर्बल हो रहा है। उसका छोटा भाई उसके दु ख से दु खी और मलिन हो गया है।

व्याख्या : रावण अङ्गद से कह रहे हैं कि लोकपालो की सेना मे तथा स्वय शङ्करजी की सेना में तो कोई ऐसा मिला ही नही जो मुझसे लड़ सके। तुम्हारी बन्दरो की सेना किस गिनती मे है जो उसमें मेरा जोड मिल सके। रावण को अपने भुज बल पर बड़ी आस्था है। उसी के भरोसे बैर बढ़ाया था। यथा : निज भुज बल मैं बैर बढावा। अत कहता है कि सिवा धर्मनीति के और कोई वस्तु मेरे दण्डपात करने मे बाधक हो नही सकता।

रावण सरकार का नाम कभी नही लेता। पहिले तापस कहा था। यथा : निज मुख तापस दूत कहावा। अब तव प्रभु कह रहा है। शङ्कर के धनुष भङ्ग करनेवाले तथा खरदूषण के वध करनेवाले को अल्पबल किस मुँह से कहें। और

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बिना अल्पबल प्रमाणित किये उनकी बात बैठती नही। अत कहते हैं कि पहिले चाहे बल रहा हो पर जब से उनकी स्त्री हरण हो गयी है तब से उनके प्रेम की उत्कट विकलता से अब बलहीन हो गये हैं। युद्ध करने की योग्यता नही रह गयी।

यदि कहो कि उनके छोटे भाई तो स्वस्थ हैं। उन्होने धनुष भङ्ग के समय तथा खरदूषण वध के समय उत्साह दिखलाया था। वे तुम से लड सकते हैं। इस पर कहता है कि वह भी बडे भाई के दुख से दुखी रहते है। मन के विकृत होने का प्रभाव निसन्देह शरीर पर पडता है। अत वह भी चाहे पहले युद्ध मे समर्थ रहे हो इस समय तो नही है।

तुम्ह सुग्रीव कूल द्रुम दोऊ। अनुज हमार भीरु अति सोऊ ॥
जामवंत मंत्री अति बूढा। सो कि होइ अब समरारूढा ॥२॥

अर्थ तुम और सुग्रीव दोनो तट पर के वृक्ष हो। मेरा छोटा भाई है वह भी बडा कादर है। जामवन्त मन्त्री है वह भी बहुत बूढा हो गया। भला अब क्या वह युद्ध मे प्रवृत्त होगा ?

व्याख्या रावण कहते हैं कि यदि तुम कहो कि मेरे चचा सुग्रीव हैं और मैं हूँ। तो तुम लोगो की भी स्थिति बहुत खराब है। घर की लडाई ने तुम लोगों को निर्बल बना रक्खा है। तुम लोगो की दशा नदीतट के वृक्षो की सी है। जो देखने म तो बडे मालूम होते हैं पर दृढमूलक नही होते। नदी के वेग को नही सह सकते। इसी भाँति तुम लोग समर सरिता का वेग न सह सकोगे तुरन्त जा पडोगे।

मेरा छोटा भाई बलवान् तो है। पर उसे साहस नही है। और जिसे साहस नही उसका बल युद्ध के समय व्यर्थ पड जाता है। वह भी लडने योग्य नही है।

जामवन्त पहिले लडने लायक था। देवासुर सग्राम म इन्द्र की ओर से लडा भी था। पर अब बहुत बूढा हो गया। उस बल का अब लेश भी उसमे नही है। यथा जरठ भयउँ अब कहै रिछेसा। नहि तन रहा प्रथम बल लेसा। लडना तो दूर की बात है। अब उसके मन मे युद्ध की प्रवृत्ति भी नही हो सकती।

सिल्पि कर्म जानहि नल नीला। है कपि एक महाबल सीला ॥
आवा प्रथम नगरु जेहि जारा। सुनत बचन कह बालि कुमारा ॥३॥

अर्थ नल नील तो शिल्प कर्म जानते हैं। पर एक कपि महाबलशील है। जो पहिले आया था जिसने नगर जला दिया। सुनते ही बालि का बेटा बोला।

व्याख्या रावण कहते हैं कि नल और नील तो कारीगर हैं। इनसे युद्ध से क्या सम्बन्ध ? अत तुम्हारी सेना देखने मात्र की है। इस मे मुझसा पराक्रमी कोई नही। हाँ एक बन्दर महाबलशील है। रावण को भी हनुमान्जी का लोहा मानना पडा। रावण से हनुमान्जी ने अपना नाम नही बतलाया था। केवल इतना

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ही कहा था : तासु दूत मैं जाकर हरि आनेहु प्रिय नारि। इसलिए : आवा प्रथम नगर जेहि जारा। कहकर परिचय देता है।

हनुमान्‌जी के पराक्रम से रावण इनकार भी नहीं कर सकते थे। क्योंकि वे सबकी जानी हुई बात है। अतः रावण स्वीकार करते हैं कि तुम्हारी सेना भर में केवल एक बन्दर है जिसे महा बलवान् कह सकते हैं। उसे न किसी का विरह हैं न वह कादर है न बूढ़ा है और न शिल्पी है। मैं उसके बल की कदर करता हूँ। यह कहकर रावण अपनी सभा को धैर्य बँधाते हैं कि वही एक बन्दर बलवान् है। शेष सब शत्रु की सेना में निर्बल हैं। प्रहस्त ने कहा था : बारिधि लाँघि एक कपि आवा। तासु चरित मन महँ सब गावा। अतः यहाँ रावण कहते हैं : है कपि एक महाबल सीला।

सत्य बचन कहु निसिचर नाहा। साँचेहु कीस कीन्ह पुर दाहा ॥
रावन नगर अलप कपि दहई। सुनि अस बचन सत्य को कहई ॥४॥

अर्थ : हे निशाचरराज ! सच बताना। क्या सचमुच बन्दर ने लंका जला दी ? रावण के नगर को एक छोटा सा बन्दर जला दे ऐसी बात को सुनकर कौन इसे सच कहेगा ?

व्याख्या : अपने स्वामी का बलहीन कहना तथा सेना के सभी प्रतिष्ठित वीरों में बलहीनता का आरोप करना तथा हनुमान्‌जी को बन्दर बतलाना अङ्गदजी सह न सके। अतः जिसे रावण ने बड़ा बलशील मान लिया उसी में निर्बलता का आरोप करके रावण द्वारा निन्दित सभी वीरों की प्रतिष्ठा का स्थापन कर रहे हैं और हनुमान्‌जी को बन्दर बतलाने के उत्तर रूप में आश्चर्य प्रकट करते हुए कहते हैं कि तुम निशाचरों के राजा हो और राजा को परिनिष्ठित वचन कहना चाहिए। नीतिशास्त्र कहता है : असम्भाव्य न वक्तव्य साक्षाद् दृष्टिगत यदि। शिला तरति पानीयं गीतं गायति वानरः। यदि अपने आँखों की देखी भी बात हो तो भी असम्भव होने से नहीं कहनी चाहिए। जैसे पानी पर पत्थर का तरना और बन्दर का गीत गाना। तुम असम्भव बात कह रहे हो। बन्दर अग्नि का स्पर्श नहीं करते। बन्दरों का उत्पात करना तो जगत् में प्रसिद्ध है। पर बन्दर ने कहीं आग लगाया हो यह बात तो संसार में कहीं सुनी नहीं गयी। तिसपर जो रावण कि दूसरों के नगर और पुरों में आग लगानेवाले हैं यथा : जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं। नगर ग्राम पुर आग लगावहिं। उस रावण से पालित नगर को वह छोटा बन्दर जला डाले यह बात किसी के मन में बैठ नहीं सकती। कहनेवाले पर असत्य भाषण का सन्देह होगा। मुझे भी सन्देह हो रहा है। अतः पूछता हूँ कि तुम सत्य कहते हो कि हँसी करते हो ?

जो अति सुभट सराहेहु रावन। सो सुग्रीव केर लघु धावन ॥
चले बहुत सो बीरन होई। पठवा खबरि लेन हम सोई ॥५॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ हे रावण! जिसको बडा भारी योद्धा कहकर तुम प्रशसा करते हो वह तो सुग्रीव का छोटे दर्जे का हरकारा है। वह चलता बहुत है पर सुभटो मे उसकी गिनती नही है। उसे तो हम लोगो ने समाचार लेने के लिए भेजा था।

व्याख्या अङ्गदजी उसी निर्बलता के आरोप को पुष्ट करते हुए कहते हैं कि तुम्हे हमारी सेना के बल का कुछ पता नही है। जिसको महाबलशील कहते हो वह सुग्रीव के हरकारो मे छोटे दर्जे का है। वह बहुत चलता है। हम लोग उतना नही चल सकते। पर वीर मे उसकी गणना नही है। भाव यह कि जिसका हरकारा इतना बलवान् है उस सुग्रीव को कूलद्रुम कहना तुम्हारा अज्ञान है। सुग्रीव तो बडे दर्जे के हरकारो को भेजते हैं। उससे तो हम लोग काम लिया करते हैं। उसे हम लोगो ने सीताजी का समाचार लने को भेजा था। हम लोगों ने इससे अधिक कुछ करने की आज्ञा नही दी थी।

दो सत्य नगरु कपि जारेउ, विनु प्रभु आयसु पाइ।
फिरि न[1] गयउ सुग्रीव पहिं, तेहि भय रहा लुकाइ॥

अर्थ सचमुच बन्दर ने स्वामी की आज्ञा बिना ही नगर जला दिया। वह सुग्रीव के पास वापस नही गया। इसी डर से छिपा रहा।

व्याख्या यहाँ रावण की झुठाई सिद्ध करने के लिए अङ्गदजी ने हनुमान्जी के न लौटने और डर से छिप रहने की कथा गढ ली। अर्थात् रावण ने राम लक्ष्मण सुग्रीव अङ्गद जाम्बवान नल नील सबको निर्बल बतलाया। एक हनुमान्जी की प्रशसा की जिसमे सभासद् समझें कि रावण सच कहते हैं। यदि हनुमान्जी को भी निर्बल कह देते तो सभासद् राम लक्ष्मण सुग्रीवादि के निर्बल बतानेवाली बात को भी झूठी समझ लेते। क्योंकि हनुमान्जी के पराक्रम को तो सभी देख चुके हैं।

रावण की इस धूर्तता को समझकर अङ्गदजी ने कहा कि जिसे तुम इतना बलवान् समझते हो वह अपनी सेना मे सबसे दुर्बल है। बिना आज्ञा ही उसने नगर जला तो दिया पर डरा कि स्वामी सुग्रीव सुनकर अप्रसन्न होगे और दण्ड देंगे। इसलिए उनके पास लौटकर नही गया। कही छिप बैठा है। तात्पर्य कि हनुमान् की मेरी सेना मे कोई गणना नही। अत राम लक्ष्मणादि को निर्बल बतलानेवाली तुम्हारी उक्ति झूठी है।

ऐसे झूठ को झूठ नही कहते। क्योंकि वह सत्य के प्रकाशन मे सहायक होता है। यह तो वाक्य का अलङ्कार है। काव्यशास्त्र मे इसे मिथ्याध्यवसित कहते हैं। यथा एक झुठाई सिद्ध को झूठो बरनै और। सो मिथ्याध्यवसाय है भूषन कविसिरमौर।

---

१ यहा मिथ्याध्यवसित अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



धन छीन लेना देश से निकाल देना यही अधम ब्राह्मण का वध है। उसके शरीर का वध नहीं होता। इसलिए तेरे वध में बड़ा दोष भी है। इसी से तुम अब तक बचे हो और इसीलिए उन्होंने साम का प्रयोग किया है। तुम्हारे पास सन्धि के लिए दूत भेजा है। नहीं तो तुम्हारे ऐसे अपराधी का तो एकमात्र वध ही दण्ड है। यदि नहीं मानोगे तो वे क्षत्रिय है। लघुता या दोष का विचार न करके तुम्हारा वध करेंगे।

दो. वक्र उक्ति धनु वचन सर, हृदय दहेउ रिपु कीस।
प्रति उत्तर सड़सिन्ह मनहुँ, काढ़त भट दससीस ॥

अर्थ : वक्रोक्तिरूपी धनुष और वचनरूपी बाण से अङ्गद ने शत्रु के हृदय में दाह उत्पन्न कर दिया। सो प्रत्युत्तररूपी सड़सियों से वीर रावण उसे निकाल रहा है।

व्याख्या : भाव यह है कि इस वक्रोक्तिरूपी बाण ने रावण के हृदय पर चोट किया और उसके हृदय में दाह उत्पन्न हुआ। परन्तु रावण भट है। युद्ध में बाण लगने पर धैर्य से उसे सँड़सी से निकालकर शरीर के बाहर फेंक देता है। उसी स्वभाव से इस समय भी काम ले रहा है। अङ्गदजी की बातों से मर्माहत होने पर भी प्रत्युत्तर देकर उस पीड़ा को शान्त किया चाहता है।

दो. हँसि बोलेउ दसमौलि तब, कपि कर बड़ गुन एक।
जो प्रतिपालै तासु हित, करै उपाय अनेक ॥२३॥

अर्थ : रावण ने हँसकर कहा कि बन्दर में एक बड़ा गुण होता है कि जो उनका प्रतिपालन करे उसकी भलाई के लिए अनेक उपाय करते हैं।

व्याख्या : रावण के मर्म में अङ्गदजी का वाक्य बाण लगा है और हृदय जला रहा है पर बाहर से हँसता है। हँस करके पीड़ा को छिपाता है। यथा : ऐसिउ पीर बिहँसि तेहि गोई और कहता है कि बन्दरों में तो दोष ही दोष है। सदा दूसरों का नुकसान किया करते हैं। पर एक गुण भी बड़ा है कि अपने पालनेवाले के हित के लिए अनेक उपाय करते हैं। देखो इस बन्दर ने अपने स्वामी की बड़ाई के लिए कितनी बातें गढ़ लीं। हनुमान् को सेनाभर से निर्बल बतलाने के लिए उसका न लौटना और डरकर कहीं छिप रहना आदि बातें बना लीं। अब उसी के हित के लिए क्षत्रिय जाति का रोष कहकर मुझे डराना चाहता है। मै इसके गुण को समझ रहा हूँ।

धन्य कीस जो निज प्रभु काजा। जहँ तहँ नाचैं परिहरि लाजा ॥
नाचि कूदि करि लोग रिझाई। पति हित करै धर्म निपुनाई ॥१॥

अर्थ : वानर धन्य हैं जो अपने स्वामी के लिए लज्जा छोड़कर जहाँ तहाँ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नाचते हैं। नाच कूदकर लोगों को प्रसन्न करके अपने स्वामी का कल्याण करते हैं। यही धर्म में निपुणता है।

व्याख्या : अब धर्मात्मा तथा नीतिवेत्ता होनेवाली बात ओछी पड़ी। तब रावण सुजान गुणग्राहक होने की आड़ पकड़ रहे हैं। वस्तुतः अङ्गदजी इस बात पर तुल गये हैं कि रावण उन्हें दण्ड दे। जिसमें उन्हें पराक्रम प्रकट करने का अवसर मिले और सारी सभा देख ले कि रामदल में कैसे कैसे पराक्रमी वीर हैं और रावण की भी आँख खुले। रामजी का काम भी हो जाय और रावण का भी हित हो। पर रावण ऐसा नहीं चाहता। अतः दण्ड न देने की कमजोरी को बातों की चतुरता से छिपाना चाहता है। अतः रावण अपनी गुणग्राहकता प्रकट करता हुआ कहता है कि वानर जाति ही पुण्यवान है। ये लोग अपने स्वामी के लिए जहाँ नचाना चाहे नाचने लगते हैं। नाचने में उनका स्वार्थ कुछ भी नहीं होता। तमाशा देखनेवाले जो पैसे देते हैं वह स्वामी के जेब में जाते हैं। सब लोग उसके नाचने पर हँसते हैं पर उसे लाज नहीं। हनुमान् जब पकड़कर आया था तो उसने यह स्वीकार किया था। यथा : मोहि न कछु बाँधे कर लाजा। कीन्ह चहौ निज प्रभु कर काजा।

बन्दरों का नाचना यही है कि सलाम करते हैं। गौना लेकर चलते है। सूम की नकल करते हैं इत्यादि। इसलिए तुम भी अङ्गद! स्वामी के हित के लिए नाच कूद कर रहे हो। यह तुम्हारी धर्मनिपुणता है।

अंगद स्वामिभक्त तव जाती। प्रभु गुन कस न कहसि एहि भाँती॥
मै गुनग्राहक परम सुजाना। तव कटु रटनि करौ नहि काना॥२॥

अर्थ : हे अङ्गद! तुम्हारी जाति स्वामिभक्त है तो तुम अपने स्वामी का 'गुण इस भाँति क्यों न कहो। मैं गुणग्राहक हूँ। बड़ा सुजान हूँ। तुम्हारे कटु वचनों पर ध्यान नहीं देता।

व्याख्या : जो जाति स्वामिभक्त है उसी जाति के तुम एक व्यक्ति हो। अतः अपने प्रभु को सिंह बतलाना अन्य महाभटों को मेढक बतलाना इत्यादि बातें कहना तुम्हारे लिए स्वभाव सिद्ध है। अङ्गदजी ने कहा था कि : मोहि न सुनि कछु कोह। वही रास्ता पकड़े हुए रावण कहता है कि : तव कटु रटनि करहु नहि काना। भाव यह कि ,सुनता तो हूँ पर ध्यान नहीं देता। कारण यह कि मैं परम सुजान हूँ। सुजान लोग मूर्खो की बातो पर ध्यान नही देते। यथा : सुनहु नाथ तुम्ह सहज सुजाना। बालक बचन करिअ जनि काना। इतना ही नहीं मैं गुणग्राहक हूँ। तेरी कटु रटनि में मुझे स्वामिभक्ति का परिचय मिलता है। इसलिए दूत की रक्षा कर रहा हूँ। कुछ असमर्थ होने से नहीं।

कह कपि तव गुन गाहकताई। सत्य पवनसुत मोहि सुनाई॥
बन बिधंसि सुत बधि पुर जारा। तदपि न तेहिं कछु कृत अपकारा॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : अङ्गद ने कहा तुम्हारी गुणग्राहकता जो हनुमान्‌जी ने सुनायी थी सो सच है। उसने बाग को उजाड़ा बेटा को मारा और नगर को जलाया फिर भी तुमने उसका कोई अपकार नहीं किया।

व्याख्या : अङ्गदजी का भाव यह है कि पुरुषार्थ दिखाने के समय बगल दे जाना गुणग्राहकता नहीं है। असमर्थता है। उसी बात को व्यंग मे कहते हैं कि चलते समय हनुमान्‌जी ने मुझसे कहा कि रावण बडे गुणग्राहक हैं। गुण प्रदर्शन मे उनका बाग भी उजडे, बेटा भी मारा जाय, नगर भी जल जाय तब भी वे बुरा नहीं मानते। अपकारी के गुण पर ही लुब्ध रहते है। मैंने यह सब किया। अशोक वाटिका को उजाड़ा उनके बेटे अक्ष को मारा और लका जला दी फिर भी रावण ने मेरा कुछ अपकार नहीं किया। तुम्हारे व्यवहार के देखने से मुझे मालूम हो गया कि हनुमान्‌जी ने अक्षरशः सत्य कहा था।

सोइ बिचारि तव प्रकृति सोहाई। दसकंधर मै कीन्हि ढिठाई ॥
देखेउँ आइ जो कछु कपि भाखा। तुम्हरे लाज न रोष न माखा ॥४॥

अर्थ : हे रावण! तुम्हारा वही सुन्दर स्वभाव समझकर मैंने भी ढिठाई की है। हनुमान्‌जी ने जो कहा था मैंने वही आकर देखा। न तो तुम्हे लज्जा है न क्रोध है और न अपमान बोध होता है।

व्याख्या : तुम्हारी ऐसी सुन्दर प्रकृति का विचार करके मुझे भी इच्छा हुई कि कुछ अपना गुण दिखाऊँ। अत. मैंने ढिठाई की है। ध्वनि है कि मैंने भी तुम्हारे पुत्र का वध किया है और प्रत्यक्ष बात यह है कि कठोर वाणी का प्रयोग किया है। जी मे आया कि देखें तो रावण अप्रसन्न होते हैं कि नहीं। सो देख लिया हनुमान्‌जी ने सत्य ही कहा है। न तो तुम्हे लाज है न रोष है न माख है : तुम्हरे कटक माझ सुनु अंगद। मो सन भिरिहि कवन जोधा बद। यह कहते हुए तुम्हे लज्जा होनी चाहिए थी सो नहीं हुई। और मैंने जो उत्तर दिया कि : कोउ न हमरे कटक मह तुम सन लरत जो सोह। इस बात पर तुम्हे रोष होना चाहिए था सो भी न हुआ। मैंने कहा : जौ मृगपति बध मेढुकहि भल कि कहै कोउ ताहि। इस बात पर तुम्हे माष : क्रोध होना चाहिए पर नहीं हुआ।

जौ असि मति पितु खायेहु कीसा। कहि अस बचन हँसा दससीसा ॥
पितहि खाइ खातेउँ पुनि तोही। अबही समुझि परा कछु मोही ॥५॥

अर्थ : हे बानर! यदि ऐसी बुद्धि है तभी तो बाप को खा डाला। ऐसा कहकर दसशीश हँसा। मैं तो पिता के खाने के बाद तुम्हे भी खा जाता। पर अभी मेरे मन मे एक बात आयी है।

व्याख्या : ऐसे अवसर पर खाना शब्द का प्रयोग देहात मे प्रिय मरण इष्ट होने के अर्थ मे करते हैं। रावण कहता है कि यदि तुम्हारी ऐसी बुद्धि है कि लाज रोष और माख के न होने को गुणग्राहकता मानते हो तभी अपने पिता का मरण

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


तुम्हे इष्ट हुआ : बाप के मारनेवाले के सेवक होकर तुम अपने को बडा मानी समझ रहे हो। मेरी ऐसी मति नही है। मै तो नाक कान विहीन भगिनी को देखकर कुरूप करनेवाले की स्त्री को हर लाया।

इस पर अङ्गदजी का कहना है : जाके प्रिय न राम बैदेही। तजिये ताहि कोटि बैरी सम जद्यपि परम सनेही। रामविरोधी पिता भी हो तो वह बैरी ही है। अत. सचमुच मैने उसे खाया और यहाँ तुम्हे खाने के लिए आया था। पर एक बात अभी मन मे आगयी इसलिए तुम्हे छोड देता हूँ।

बालि बिमल जस भाजनु जानी। हतौ न तोहि अधम अभिमानी॥
कहु रावन रावन जग केते। मै निज स्रवन सुने सुनु जेते॥६॥

अर्थ : रे अधम अभिमानी ! बालि के निर्मल यश का पात्र समझकर मैं तुझे नहीं मारता हूँ। हे रावण ! कह तो इस ससार मे कितने रावण हैं ? जितनो को मैने सुन रक्खा है उन्हे सुन।

व्याख्या : तुम सरकार के भुजबल का अपमान करते हो। अत अधम अभिमानी हो। यथा : मम भुजबल आस्रित तेहि जानी। मारा चहसि अधम अभिमानी। तुम वधयोग हो पर तुम बालि के निर्मल यश के पात्र हो। बालि ने तुम्हे पकड़कर छोड़ दिया। न मारा और न राज्य लिया। यह बालि का निर्मल यश है। जब तक तुम जीते हो बालि के निर्मल यश का चिह्न बना हुआ है। मै अपने हाथ से उस चिह्न को मिटाना नही चाहता। यही तुम्हारे न मारने का कारण है।

रावण ने कहा है : सठ बिलोकु मम बाहु। लोकपाल बल बिपुल ससि ग्रसन हेतु जिमि राहु इत्यादि। इसका उत्तर देते हुए अङ्गदजी कहते हैं कि तुमने अपनी इतनी बड़ाई की। पर रावण का चरित मैने इससे विपरीत सुना है सो क्या वे दूसरे रावण हे ? अतः पूछते हैं कि यदि तुम्हे ठीक न मालूम हो कि तुम्हारे नामराशी कितने हैं तो मैने जितने सुने हैं उन्हें सुनाये देता हूँ। उनमे से यदि कोई तुम हो तो बोल देना।

बलिहि जितन एकु गयउ पताला। राखेउ बाँधि सिसुन्ह हयसाला॥
खेलहि बालक मारहि जाई। दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई॥७॥

अर्थ : बलि को जीतने एक पाताल गया था। उसे लड़को ने अश्वशाला मे बाँध रक्खा था। लड़के उससे खेलते थे और मारते थे। दया लगी तो बलि ने उसे छुड़ा दिया।

व्याख्या : उस रावण को भी बड़ा अभिमान था। राजा बलि पाताल मे रहते हैं। किसी से उनका सम्बन्ध नही। सो उन्हे जीतने को पाताल मे गया। वहाँ के निवासी बालको ने देखा कि दसशिर और बीस बाहु का यह कोई विचित्र पशु

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है सो उसे पशु समझकर घोडसार में बालको ने बांधा कि दोनो शाम इस पर सवारी करेंगे।

लडको का खेल आरम्भ हुआ। कभी एक सवार होना है कभी दूसरा। और उन सबो ने ऐसी पिटाई की कि बलि महाराज को दया आगयी। उसे छुडा दिया। जिसको जीतने गये थे उन्ही की कृपा से बन्धनमुक्त हुए और तुम कहते हो कि बिलोकु मम बाहु। लोकपाल बल बिपुल ससि ग्रसन हेतु जिमि राहु। यह सामञ्जस्य कैसे बैठेगा।

एकु बहोरि सहसभुज देखा। धाइ धरा जिमि जंतु बिसेखा ॥
कौतुक लागि भवन लै आवा। सो पुलस्ति मुनि जाइ छोडावा ॥८॥

अर्थ : एक रावण को कीर्तवीर्यार्जुन ने देख पाया। सो जन्तु विशेष समझकर दौडकर उसे पकड लिया। तमाशा के लिए घर ले आया। उसे पुलस्त्य मुनि ने जाकर छोडा दिया।

व्याख्या : एक और रावण था जो सहस्र भुजावाले अर्जुन की दृष्टि मे पड गया। उन्होने समझा कि यह कोई विशेष जन्तु है। हाथ से निकल न जाय। इसलिए दौडकर पकड लिया कि मेरे अजायबखाने मे ऐसा जन्तु नही है। इसी कौतुक से घर ले गया। उसके छोडाने के लिए स्वय पुलस्त्यजी को कष्ट करना पडा। उनके गौरव का ध्यान करके उसने छोड दिया। लङ्काभर के योद्धा मेघनाद कुम्भकरण आदि की एक न चली तब बूढे बाबा गये और छुडा लाये।

दो. एकु कहत मोहि सकुच अति, रहा बालि की कांख।
इन्ह महु रावण तै कवन, सत्य बदहि तजि मांख ॥२४॥

अर्थ : एक रावण की बात कहने मे मुझे बडी लज्जा लगती है कि वह बालि के कांख मे रहा। इनमे तू कौन रावण है ? मांख छोडकर सत्य बतला दे।

व्याख्या : एक बात को मुझे कहते लज्जा आती है। उस रावण का न आयी। वह बालि के कांख मे दबा रहा। भला एक शत्रु दूसरे की कांख मे कैसे दबा रहता है ? यह मेरे समझ मे बात नही आती। शत्रु के हाथ से मर जाने मे लज्जा नही है। पर इस प्रकार से अपमानित होकर जीना ऐसी लज्जा की बात है कि कहनेवाले को लज्जा आती है। इन्ही तीन रावणो की प्रसिद्धि है। इन्ही मे से तुम कोई होगे सो अपमान की भावना छोडकर सत्य बतला दो। मुझे उस रावण पर ध्यान रखना है जो बालि के कांख मे रहा।

सुनु सठ सोइ रावन बलसीला। हरगिरि जान जासु भुज लीला ॥
जान उमापति जासु सुराई। पूजेउं जेहि सिर सुमन चढाई ॥१॥

अर्थ : रावण ने कहा रे शठ सुन ! मैं वही बलवान रावण हूँ जिसके भुजाओ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



की लीला कैलास जानता है। जिसकी शूरता को उमापति जानते हैं जिनको मैंने सिररूपी फूल चढाकर पूजा है।

व्याख्या : रावण ने कहा तुझे अपने हृदय मे अपना बडा पक्ष है इसलिए तू शठ है। यथा : सठ स्वपच्छ तव हृदय विसाला। तेरी सब बातें अप्रमाण हैं। क्योकि वे सुनी सुनायी हैं। उनका कोई साक्षी नही है। मैं जो बातें कहता हूँ उसके साक्षी हैं। इसलिए सब प्रमाण हैं। रावण अङ्गद के तीन आक्षेपो के उत्तर पाँच घटनाएँ अपनी महिमा की द्योतक वर्णन करते हैं। पहिले तो अपना कहते हैं और साक्षी मे कैलास पर्वत को देते हैं। यथा · कौतुक ही कैलास पुनि लीन्हेसि जाइ उठाइ। मनहु तौलि निज बाहु बल चला बहुत सुख पाइ।

दूसरे अपना शौर्य वर्णन करते हैं और उसके साक्षी उमापति को बतलाते हैं कि मैंने जब उनकी पूजा की थी तो फूल के स्थान पर सिर उतार उतारकर चढाये थे। सिर को काटकर चढाने मे न तो विकलता का अनुभव किया न अश्रद्धा का।

सिर सरोज निज करन्हि उतारी। पूजेउँ अमित बार त्रिपुरारी ॥
भुज विक्रम जानहिं दिगपाला। सठ अजहूँ जिनके उर साला ॥२॥

अर्थ : सिररूपी कमलो को अपने हाथो से उतारकर उनसे मैंने असख्य बार शिवजी की पूजा की। दिक्पाल मेरे भुजाओ के पराक्रम को जानते है। रे शठ। आज भी जिनके हृदय मे शाल मौजूद है।

व्याख्या · अब लकेश अपना धैर्य और श्रद्धा कहते हैं। पूजन के लिए फूल अपने हाथ से उतारना चाहिए। सो अपने सिरो को मैंने अपने हाथ से काटा। युद्ध मे भले हो दूसरा कोई सिर काट ले पर अपने हाथ से अपना सिर काटनेवाला कौन है? इससे अपना वीरतातिशय कहा और इस भाँति असख्य बार त्रिपुरारि की पूजा की। यथा : सादर सिव कहँ सीस चढाये। इससे पूजातिशय कहा ऐसा पूजन करनेवाला कौन है? जैसे एक बार फूल लेने पर फिर फूल निकलते हैं। इस भाँति मेरे सिरो मे भी बाढ आती है। यह बात भी ससार मे कहाँ है? इससे सिर कटने पर भी दूसरे सिर निकलने से अपना अजेयत्व कहा। ऐसे रावणको क्या लडकर जीत सकते हैं?

मेरे भुजाओ का विक्रम कैलास जानता है। यदि जड समझकर उसे साक्षी रूप से स्वीकार न करो तो दिक्पालो से पूछ लो। उनसे युद्ध हुआ है। ऐसी चोट लगी कि कलेजे मे साल पड गयी। साँस लेते नही बनता। लडाई के समय उनको क्या दशा हुई थी यह इसी से समझ लो।

जानहिं दिग्गज उर कठिनाई। जब जब भिरेउँ जाइ बरिआई ॥
जिन्हके दसन कराल न फूटे। उर लागत मूलक इव टूटे ॥३॥

अर्थ : दिग्गज मेरी छाती की कठोरता को जानते हैं। जब जब मैं उनसे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


जाकर जबरदस्ती भिडा उनके दांत बडे कराल हैं। कभी फूटे नहीं थे। पर मेरी छाती मे लगने से मूली की भांति टूट गये।

व्याख्या : वीरो के भुजा और वक्ष स्थल की प्रशसा होती है। सो अपना बल और शौर्य कहकर भुजाओ की प्रशसा की। अब वक्ष स्थल की प्रशसा करता है कि वक्ष स्थल की कठिनाई के साक्षी दिग्गज हैं जो सब दिशाओ से पृथिवी को सँभाले हुए हैं। उनसे युद्ध करने का प्रयोजन नही था और न वे मुझसे लडना चाहते थे। पर मैं बल परीक्षा के लिए जबरदस्ती जाकर उनसे लडा। उनके दांत बडे कराल हैं। हाथियो के दांत बडे हो जाने पर किसी न किसी आघात से फूट जाया करते हैं। नही तो हाथी वृक्ष की सन्धियो मे डालकर उनको फोड देते हैं। पर उनके दांत ऐसे कराल हैं कि वे फूट न सके। उन दांतो से उन्होने पीछे हटकर चोट की। मैंने उस चोट को अपनी छाती पर ली और वे दांत टूट गये। मेरी भुजाएँ ऐसी, वक्ष स्थल ऐसा मुझे पकडनेवाला कौन है?

जासु चलत डोलत इमि धरनी। चढत मत्त गज जिमि लघु तरनी॥
सोइ रावन जग बिदित प्रतापी। सुनेहि न स्रवन अलीक प्रलापी॥४॥

अर्थ जिसके चलने से इस भांति पृथिवी डोल उठती है जैसे मतवाले हाथी के चढने से छोटी नाव डोल उठती है। वही ससारप्रसिद्ध प्रतापी रावण मैं हूँ। रे बेसिर पैर की हांकनेवाला! क्या तूने इसको कभी कान से भी नही सुना?

व्याख्या · अङ्गदजी ने रावण के तीन पराभवो का वर्णन किया था। एक तो पाताल लोक निवासी बालको से एक सहस्रबाहु से और एक बालि से। सो दो उदाहरणो से रावण ने पहिले पराभव को असम्भव बतलाया। फिर तीसरा और चौथा उदाहरण देकर दूसरे पराभव का असम्भाव्य होना सिद्ध किया। अब तीसरे पराभव बालि के कांख मे रहनेवाली कथा को असम्भवता सिद्ध करते हैं कि मेरे भार से नित्य ही भूकम्प होता है। इसे तो सभी जानता है। साक्षी देने की आवश्यकता नही। सो ऐसा भूडोल आता है जैसे मत्त हाथी के चढने से छोटी नाव डोल उठती है। हाथी के चढने से बडी से बडी नाव भी डोल उठती है। छोटी नाव डूब नही जाती यही बहुत है। ऐसे महान् गौरवशाली को कांख मे लेनेवाला कौन है?

जिसे कैलास जानता है उमापति जानते हैं दिग्पाल जानते हैं दिग्गज जानते हैं ससार जानता है। जो जग बिदित प्रतापी है। यथा रावन आवत सुनेउ सकोहा। देवन तकेउ मेरु गिरि खोहा। ऐसे को तूने सुना ही नही और कहता है. मैं निज स्रवन सुना सुनु जेते। तू अलीक प्रलापी बिना समझे बकता है। तेरी बातें सब असाक्षिक होने से अप्रमाण हैं।

दो तेहि रावन कहुँ लघु कहसि, नर कर करसि बखान।
रे कपि बर्बर खर्ब खल, अब जाना तव ग्यान॥२५॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : उस रावण को तू छोटा कहता है और नर की प्रशंसा करता है। रे बन्दर ! तू असभ्य तुच्छ और खल है। अब तेरी बुद्धि को मैंने जान लिया।

व्याख्या : अब अपने कथन का उपसंहार करते हुए रावण कहते हैं कि संसार मे नर की कोई गिनती नही है। ये तो कीट है। यथा : कहा कीट बपुरे नर नारी। सो तू नर की प्रशंसा करता है और ऐसा जग विदित प्रतापी मै हूँ। सो मेरी निन्दा करता है। मुझे छोटा बतलाता है। बतला तो उस नर ने कभी कैलास उठाया था ? सिर को काटकर कभी शंकर पर चढाया था ? दिक्पाल और दिग्गजो से कभी लडा था ? उसके चलने से कभी भूचाल आती है ? फिर वह बडा कैसे हुआ ? बन्दरो मे भी तू असभ्य है तुच्छ है और खल है। (१) कोउ न हमरे कटक महँ (२) जो मृगपति बध मेढुकहि (३) जदपि लघुता राम कह तोहि बधे बड दोष। ये तीन बातें अङ्गद ने कही हैं। इन्ही तीनो वाक्य के लिए तीन गालियाँ अङ्गदजी को सुनाता है। बर्बर खर्व और खल। और कहता है कि तेरी बुद्धि का अब मुझे पता लग गया कि वह तामसी है। उल्टी बात समझती है। मै तो धर्म का विचार करके तुझ दूत को छोड देता हूँ और तू उसे मेरी निर्बलता समझता है। तेरी समझ मे दूत का वध धर्म है और मुझे निर्बल समझना और उस तपस्वी को बलवान समझना ठीक है। अत कहता हूँ कि तेरी बुद्धि तामसी है और तू उलटा समझता है।

सुनि अंगदु सकोप कह बानी। बोलु सँभारि अधम अभिमानी ॥
सहसबाहु भुज गहन अपारा। दहन अनल सम जासु कुठारा ॥१॥

अर्थ यह सुनकर अङ्गदजी क्रोध के सहित बोले कि रे अधम अभिमानी। सँभालकर बोल। सहस्रबाहु की भुजाओ के अपार वन के जलाने के लिए जिसका कुठार अग्नि हुआ।

व्याख्या . जिस भाँति . आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करैंगे ताहि। सुनकर रावण को क्रोध हुआ और उसने रे कपिपोत बोल सभारी। कहा उसी भाँति : नर कर करनि बखान। सुनकर अङ्गदजी को क्रोध हुआ और बोले कि रे अधम अभिमानी सँभालकर बोल। सरकार के बल का अनादर करता है। तू अधम अभिमानी है।

तुम्हारी भुजाएँ विटप हैं। यथा भुजा विटप सिर सृङ्ग समाना। गिनती मे बीस हैं। पर जिसकी भुजाएँ जगल थी। नाम ही सहस्रबाहु था। जगल को तो कितने लोग पार कर जाते हैं पर उस जगल को कोई पार नही कर सकता था। तुमने भी पार नही पाया था। यथा : धाइ धरा जिमि जन्तु बिसेखा। एक पुरुष ऐसा है कि जिसके परशुरूपी अग्नि को पाकर पूरा जंगल ही समाप्त हो गया अर्थात् उसे परशुरामजी ने मारा।

जासु परसु सागर खर धारा। बूडे नृप अगनित बहु बारा ॥
तासु गर्ब जेहि देखत भागा। सो नर क्यों दससीस अभागा ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ जिसके परशुरूपी समुद्र के तीखे धार मे असख्य राजा अनेक बार डूब गये। उनका गर्व जिसके देखते ही दूर हो गया। अरे अभागा दसशीश! वे मनुष्य कैसे हैं?

व्याख्या परशुरामजी का क्रोध सहस्रबाहु को मारकर ही शान्त नही हुआ। इक्कीस बार पृथिवी को नि क्षत्र किया। यथा जिसने बार इकीस लहू की नदी बहाया। नृपति मास मस्तिष्क पङ्क मय कूल बनाया। किया तहाँ असनान दिया पितरो को पानी। जिसके कठिन कुठार धार की विदित कहानी। बाल वृद्ध वनिता निधन म भी जो निर्दय महा। कन्द कूट नृप यूथ के काटन मे अति पटु रहा। प्र० च०। उन्हे बडा गर्व था और ठीक था। पर जिसके दर्शन से उनका गर्व दूर हुआ। यथा अनुचित बहुत कहेउँ अग्याता। छमहु छमा मन्दिर दोउ भ्राता। उस महापुरुष को तुम नर कहते हो। तुम्हे सिर तो दस हैं पर भाग्य किसी मे नही है। तुम भवभञ्जन पद विमुख हो। इसलिए तुम अभागी हो।

साहिब सीतानाथ सो, जब धरिहैं अनुराग।
तुलसी तबही भाल ते, भभरि भागिहै भाग॥ दोहावली ७०॥

रामु मनुज कस रे सठ बगा। धन्वी कामु नदी पुनि गगा॥
पसु सुरधेनु कल्पतरु रूखा। अन्न दान अरु रस पीयूखा॥३॥

अर्थ • अरे नटखट! रामजी मनुष्य कैसे है? कामदेव क्या धन्वी है या गगा नदी है? क्या कामधेनु पशु है। कल्पवृक्ष पेड है। अन्न दान है और अमृत रस है?

व्याख्या जो किसी का उपदेश न मानकर मनमाना करे उसी को बगा कहते हैं। अगदजी कहते हैं कि तू शठ है और बगा है। विनय नही सुनता इसलिए शठ है और शिक्षा नही सुनता इसलिए बगा है। यहाँ पर अङ्गदजी ने उसे व्याज से विभूतियोग का उपदेश किया।

रामजी माया से मनुष्य रूप धारण किये हैं। अत मूढ लोग उन्हे मनुष्य ही मानते हैं। मारीच ने भी रावण को समझाया था। यथा तेहि पुनि कहा सुनहु दससीसा। ते नर रूप चराचर ईसा। तासो तात बयर नहि कीजे। मारे मरिय जियाये जीजे। पर रावण सठ बगा है। किसी की नही सुनता। अत आक्षेप करते हुए अङ्गदजी कहते हैं। यहाँ बारह विभूतियो का वर्णन है। जिन भावो से भगवान् चिन्ता करने योग्य है

१ मनुष्यो मे रामरूप से चिन्त्य हैं। यथा राम शस्त्रभृतामहम्। भगवद्गीता।

२ काम कुसुम धनुसायक लीन्हे। सकल लोक अपने बस कीन्हे। उसे गीता मे धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ। भगवान् कहते हैं कि धर्माविरोधी काम स्वय में हूं। उसे लौकिक धन्वी कहना अनर्थ है। सुख के चाहनेवाल कामरूप से भगवान् को उपासना करते हैं। यथा सुखार्थी कामरूपेण स्मरेदङ्गजमीश्वरम्।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



३. गङ्गा : गंगाजी तो निराकार ब्रह्म ही मानी जाती हैं। यथा : करहिं प्रनाम नगर नर नारी। मुदित ब्रह्ममय बारि निहारी। श्रीमद्भगवद्गीता मे भगवान् ने कहा है कि नदियो मे गंगा मैं हूँ। स्रसामस्मि जाह्नवी। उनमे नदी की दृष्टि रखना परम मूढ़ता का परिचायक है।

४. सुरधेनु : कामधेनु के लिए गीता मे भगवान् ने कहा है कि गायो मे मैं कामधेनु हूँ; यथा : धेनूनामस्मि कामधुक्। स्वयम् भगवान् की उपमा कामधेनु से दी जाती है। यथा : सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। उसमे पशु की दृष्टि करना अविवेक की पराकाष्ठा है।

५. कल्पतरु : सबके मनोरथ का पूर्ण करनेवाला कल्पवृक्ष है। यथा : जाइ निकट पहिचानि तरु छाँह समनि सब सोच। माँगते अभिमत पाव जग राउ रंक भल पोच। उस कल्पवृक्ष को केवल रूप के साम्य से पेड माननेवाला नितान्त बुद्धिहीन है।

६. अन्नदान : अन्न से ही जीवन है। जो अन्न देता है वह जीवन दान करता है। अतः अन्नदान सरकार की विशेष विभूति है। अन्न की निन्दा न करने का व्रत है। अन्न की ब्रह्मदृष्टि से उपासना का विधान है। अन्नदाता पिता समझा जाता है। उस अन्न का दान क्या अन्य वस्तुओ के दान के समकक्ष समझा जायगा ?

७. पीयूष : जिसके लिए सम्पूर्ण सुर और असुरों ने मिलकर समुद्र मन्थन किया। जिसके लिए देवासुर संग्राम हुआ और जिसके पीने से तुरन्त बलवान् होकर देवताओ ने असुरो पर विजय पाया। जो सम्पूर्ण स्वादु पदार्थ का सिरमौर है। जो सम्पूर्ण रोगो की अव्यर्थ औषध है। जिसे पान करने से जरा मरण टल जाता है। जिसके निवास से चन्द्र की इतनी शोभा है। जो जगत् का जीवन है। जिसकी उपमा रामनाम से दी जाती है। उस अमृत को द्रवरूप होने से रस : शर्बत समझना कितना बड़ा अविवेक है।

वैनतेय खग अहि सहसानन। चितामनि पुनि उपल दसानन ॥
सुनु मतिमंद लोक बैकुंठा। लाभ कि रघुपति भगति अकुंठा ॥४॥

अर्थ : क्या गरुड़ पक्षी हैं शेषजी सर्प हैं या चिन्तामणि पत्थर है ? रे मतिमन्द सुन; क्या बैकुण्ठ लोक है और रामजी की तीव्रभक्ति भी क्या लाभ है ?

व्याख्या : ८. गरुड़जी ज्ञानी हैं, भक्तशिरोमणि हैं ? त्रिभुवनपति की सवारी हैं। साक्षात् नारायण की विभूति विशेष हैं। यथा : वैनतेयश्च पक्षिणाम्। साम्छन्निशरीरस्त्वं वाहनः परमेष्ठिनः। मात्स्ये। वे गरुड़ भगवान् केवल पक्षधर होने से चिड़िया कहे जायँगे ?

९ सहसानन : शेषजी ! जिसके सहस्र सिरो मे से एक पर यह ब्रह्माण्ड धूलि के कण सा रक्खा हुआ है। यथा : ब्रह्मांड भुवन बिराज जाके एक सिर जिमि रज कनी। उस त्रिभुवनधनी को केवल सर्प सा आकार धारण करने से क्या साँप कहा जायगा ?

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



१० चिन्तामणि : जिस चिन्तामणि के प्रभाव से दरिद्रता का नाश होता है। अन्धकार दूर होता है। खल निकट नहीं जाते। विष नष्ट होता है। रोग दूर होते हैं। सब सुखों की प्राप्ति होती है। जिसकी उपमा भक्ति से दी जाती है। उसका रूप पत्थर सा होने से क्या वह पत्थर कहा जायगा ?

११. वैकुण्ठ : जद्यपि सब बैकुंठ बखाना। बेद पुरान बिदित जग जाना। जिस वैकुण्ठ की प्रशंसा वेद पुराण करते है। जो संसार मे प्रसिद्ध है। जो साक्षात् भगवद्-विग्रह है। साक्षात् लक्ष्मीनारायण का जहाँ निवास है। जो ब्रह्मलोक से भी परे हैं। उसे जीव का निवास स्थान कहना बुद्धिमान्द्य का ही परिचायक है।

१२ भक्ति : जितने साधन वेद ने बतलाये हैं : तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ग्यान निपुनाई। नाना कर्म धर्म ब्रत दाना। संजम दम जप तप मख नाना। जहँ लगि साधन वेद बखानी। सबका फल हरिभक्ति है। उस भक्ति की गणना फायदा : लाभ मे करना सामान्य मूढता नही है।

दो. सेन सहित तव मान मथि, बन उजारि पुर जारि।
कस रे सठ हनुमान कपि, गयेउ जो तव सुत मारि ॥२६॥

अर्थ : सेना के सहित तेरे अभिमान को मथकर वन उजाडकर नगर जलाकर तेरे बेटे को मारकर जो चल गया। वह हनुमान् क्यो रे शठ ! बन्दर है ?

व्याख्या : जिसने सेना के सहित तेरे मान का मर्दन किया। यथा

मत्तभट मुकुट दसकंठ साहस सैल शृंग बिद्दरनि जनु बज्र टाँकी।
दसनधरि धरनि चिक्करत दिग्गज कमठ शेष सकुचित शकित पिनाकी॥
चलत महि मेरु उच्छलत सागर सकल बिकल बिधि बधिर दिसि बिदिस झाँकी।
रजनिचर घरनि घर गर्भ अर्भक स्रवत सुनत हनुमान की हाँक बाँकी॥
क० रा०

बड़ो बिकराल बेष देखि सुनि सिंहनाद उठ्यो मेघनाद सबिषाद कहै रावनो।
बेग जीत्यो मारुत प्रताप मारतंड कोटि कालऊ करालता बड़ाई जित्यो बावनो॥
तुलसी सयाने जातुधान पछिताने मन जाको ऐसो दूत सो तो साहिब अबै आवनो।
काहे को कुसल रोषे राम बामदेवहू की बिषम बली सो बादि बैर को बढ़ावनो॥

तेरे प्राण से प्यारे अशोक बन को उजाडा। यथा :

बासव बरुन बिधि बन ते सुहावनो दसानन को कानन बसंत के सिंगारु सो।
समय पुराने पात परत डरत बात पालत लालत रति मार के बिहारु सो॥
देखे बर बापिका तड़ाग बाग को बनाव रागबस भो बिरागी पवनकुमार सो।
सीय की दसा बिलोकि बिटप असोक तर तुलसी बिलोक्यो सो तिलोक सोक सारु सो॥
माली मेघमाल बनपाल बिकराल भट नीके सब काल सींचे सुधासार नीर को।
मेघनाद तें दुलारो प्रान ते पियारो बाग, अति अनुराग जिय जातुधान धीर को॥
तुलसी सो जानि सुनि सीय को दरस पाइ पैठो बाटिका बजाइ बल रघुबीर को।
बिद्यमान देखत दसानन को कानन सो तहस नहस कियो साहसी समीर को॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तेरे नगर को जलाया। यथा :

पात्र पकवान विधि नाना को सँधानो सीधो विविध विधान धानवरत वखारहीं।
कनक किरीट कोटि पलंग पिटारे पीठ काढत कंहार सब जरे भरे भारही॥
प्रबल अनल बाढ़ै, जहाँ काढ़ै तहाँ डाढ़ै झपट लपट भरे भवन भंडारहीं।
तुलसी अगारु न पगारु न बजार बंच्यो हाथी हथिसार जरे घोर घोरसारही॥

तेरे बेटे को मारा। यथा :

आवत देखि विटप गहि तर्जा। ताहि निपाति महाधुनि गर्जा॥
देखत तोहि अच्छ जेहि मारा। तासु पंथ को रोकनि हारा॥

उसे बन्दर कहते तुम्हे लज्जा नही आती। जो तूने कह डाला कि : है कपि एक महा बलसीला। यहाँ पर अंगदजी ने संक्षेप से विभूतियोग कहा।

सुनु रावन परिहरि चतुराई। भजसि न कृपासिंधु रघुराई॥
जौ खल भयेसि रामकर द्रोही। ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही॥१॥

अर्थ : हे रावण! सुनो तुम चालाकी छोड़कर कृपासिन्धु रघुपति को क्यों नही भेजते। रे खल! यदि तू राम का द्रोही हुआ तो ब्रह्मा और शंकर तेरी रक्षा न कर सकेंगे।

व्याख्या : भाव यह कि तुम तथ्य पर नही जा रहे हो। चालाकी से बातें बना बनाकर आत्मा और आत्मीय को धोखा दे रहे हो। तुम चालाकी छोड़ दो। क्योकि चालाकी भजन में बड़ी भारी बाधक है। यथा : मन क्रम वचन छाड़ि चतुराई। भजन कृपा करिहहिं रघुराई। भजन में सरलता की अनिवार्य आवश्यकता है। दो गुण हैं। जिनका होना भजनीय मे आवश्यक है। एक सामर्थ्य और दूसरी दया। सो रघुपति मे दोनों गुणों का अत्यन्त उत्कर्ष है। कृपा के तो वे समुद्र ही हैं। और सामर्थ्य ऐसा है कि ब्रह्मा और रुद्र की भी वहाँ एक नही चलती। इन्ही दो देवो का तुम्हे भरोसा है। इन्ही के बल पर तुमने इन्द्रादि का द्रोह किया और ये तुम्हारी रक्षा करते आये। पर राम का द्रोह करने से ये चाहने पर भी रक्षा न कर सकेंगे। जयन्त की रक्षा नही कर सके। क्योकि इन्ही के बनाये ये ब्रह्मा रुद्र बने हैं। तू खल है। खल बिनु कारन पर अपकारी। निष्कारण वैर करता फिरता है। रामजी से भी तू निष्कारण विरोध कर रहा है।

मूढ़ वृथा जनि मारसि गाला। राम वयर अस होइहि हाला॥
तव सिर निकर कपिन्ह के आगे। परिहरि धरनि राम सर लागे॥२॥

अर्थ : रे मूढ! व्यर्थ डीग न हाँक। राम के वैर से तेरी गति ऐसी गति होगी कि तेरे सिर रामजी के बाणो के लगने से बन्दरो के आगे पृथ्वी पर गिरेंगे।

व्याख्या : नर कर करेसि बखान का उत्तर देकर अब अङ्गदजी : सुनु सठ सोइ रावन बल सीला। हर गिरि जान जासु भुज लीला। आदि उक्तियों का उत्तर देते हुए कहते हैं कि तू मूढ है। बात नही समझता। तेरा डींग हाँकना व्यर्थ है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रामजी ही बल के मूल स्रोत हैं। उन्ही के बल से ब्रह्मा विष्णु रुद्र उत्पत्ति पालन और सहार करते हैं, तुमने भी जो कुछ किया है सो उन्ही के बल के लवलेश से किया है। मूढता से तुम अपने को कर्त्ता मान रहे हो। उसी मूल स्रोत से विरोध करने पर बल कहाँ से आयेगा? फिर तो तुम्हारी बुरी गति होगी।

बखसीस ईस जू की खीस होत देखियत। ये जो तेरे सिर शङ्करजी पर चढे थे वे रामजी के बाण लगने से बन्दरो के आगे पृथ्वी पर गिरेंगे। लोकपालो के गिराये ये सिर नही गिरे पर रामजी के बाण के आगे ये न ठहर सकेंगे।

ते तव सिर कंदुक सम नाना। खेलिहहिं भालु कीस चौगाना॥
जबहि समर कोपिहि रघुनायक। छुटिहहि अति कराल बहु सायक॥३॥

अर्थ: तुम्हारे सिरो को अनेक गेदो की भाँति वे भालू और बन्दर चौगान खेलेंगे। जब रघुनायक युद्ध मे क्रोध करेंगे तो अत्यन्त कराल बहुत से बाण छूटेंगे।

व्याख्या: वे भालू बन्दर यह विचार न करेंगे कि यह सिर शिव निर्माल्य है। वे उसे गेंद बनाकर चौगान खेलगे। छोटा होने से हाथो से खेला जाता है और वड़ा होने से लात की ठोकर देकर खेलते हैं।

रघुनायक कभी कोप नही करते। इनका कोप समराङ्गण मे ही व्यक्त होता है। : तब चले बान कराल। फुंकरत जनु बहु व्याल। कोपे समर श्रीराम। चले विसिख निसित निकाम। अवलोकि खरतर तीर। मुरि चल निसिचर वीर। उन खरतर तीर का सामना खरदूषण नही कर सके। वे ही कराल बाण जब बहुत से छूटेगे तब तुम्हे समझ मे आवेगा। रावण ने पहिले अपने सिर की कथा कही थी और तत्पश्चात् शेष अङ्गो का पराक्रम कहा था। अत अङ्गदजी सिर की दुर्दशा पहिले कहके तब शेष अङ्गो की दुर्गति कहते हैं।

तबकि चलिहि अस गाल तुम्हारा। अस विचारि भजु राम उदारा॥
सुनत वचन रावनु पर जरा। जरत महानल जनु घृत परा॥४॥

अर्थ: तब तुम्हारा क्या ऐसा गाल चलेगा? ऐसा विचारकर उदार राम को भज। वचन सुनते ही रावण भभक उठा। जैसे जलती हुई आग मे घी पडे।

व्याख्या: घर बैठे ही गाल चलता है। जो चाहते हो बोलते हो चले जा रहे हो। जब सरकार के अति कराल बाण चलगे। तब तुम्हारा गाल बजाना बन्द हो जायगा। तुम विकल हो जाओगे। करते धरते कुछ न बनेगा। तुम्हारे समान कोटि के तथा तुमसे बडे वीरो से भी करते कुछ न बना। ऐसा विचार कर राम को भजो। वे बडे उदार हैं। उनके सामने दीनता स्वीकार करने मात्र की आवश्यकता है। उनके द्रवीभूत होते देर नही लगती। यथा: ऐसो को उदार जगमाही। बिनु सेवा जो द्रवै दीन पर राम सरिस कोउ नाही। रावण बोलु सभारि अधम अभिमानी आदि उक्तियो पर पहल से ही जल रहे थे। परन्तु अपनी दुर्दशावाली बात पर तो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



एक दम भभक उठे, जिस भाँति जलती हुई भारी आग में घी पड़ने से वह भभक उठती है।

दो. कुंभकरन अस बंधु मम, सुत प्रसिद्ध सक्रारि।
मोर पराक्रम नहि सुनहि, जितेउँ चराचर झारि ॥२७॥

अर्थ : कुम्भकर्ण जैसा मुझे भाई है। बेटा मेरा शक्रारि : इन्द्रशत्रु नाम से प्रसिद्ध है। तूने मेरा पराक्रम नहीं सुना। मैने सम्पूर्ण चर और अचर को जीत रक्खा है।

व्याख्या : रावण ने कहा कि तू तो ऐसा बोल रहा है जैसे कोई किसी अनाथ की दुर्दशा कह रहा हो। जो सब तरह से सनाथ है उसके लिए ऐसी बात कैसे सम्भव है। कुसमय मे भाई काम आते हैं। यथा : ओडिअहिं हाथ असनिहुँके घाए। होहि कुठाँय सुबंधु सहाए। सो मुझे अतिबल कुंभकरन अस भ्राता। जेहि कहुँ नहि प्रतिभट जगजाता। मेरे भाई का जोड़ संसार मे पैदा ही नही हुआ। ब्रह्मदेव देखकर स्वयं आश्चर्य में आ गये कि उसे रहते मुझे भय कहाँ। ससार जानता है कि मेरा आज्ञाकारी बेटा इन्द्र को जीतनेवाला है। यथा : जे सुर समर धीर बलवाना। जिन्हके लरिबे कर अभिमाना। तिन्हहि जीति रन आनेसु बाँधी। उठि सुत पितु अनुसासन काँधी। बारिदनाद जेठ सुत तासू। भट महुँ प्रथम लीक जग जासू। जेहि न होइ रन सनमुख कोई। सुरपुर नितहिं परावन होई है जिसे ऐसा बेटा हो उसे भय के लिए स्थान कहाँ। तिस पर अकेला मैं चराचर को जीत चुका हूँ। मुझे किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं है। मालूम होता है तूने मेरा पराक्रम सुना नही है। इसी से ऐसा बोलता है।

सठ साखामृग जोरि सहाई। बाँधा सिंधु इहै प्रभुताई ॥
नाघहिं खग अनेक बारीसा। सूर न होहि ते सुनु सब कीसा ॥१॥

अर्थ : रे शठ ! वानरो की सेना जुटाकर समुद्र बाँध लिया यही प्रभुता है। अनेक पक्षी समुद्र लाँघा करते हैं। इसलिए वे शूर नही हो जाते।

व्याख्या : भाव यह है कि तीन लोक मे उस तपस्वी को मेरे भय से सहायक तो यही मिले नही। बन्दर की जाति मूर्ख होती है। वे ही सहायता के लिए तैयार हुए। वे भी शाखामृग हैं। उनकी इतनी ही प्रभुता है कि एक शाखा पर से दूसरी पर जा रहें और चूके नही। उनकी सेना जोड़कर समुद्र पर सेतु बाँधा, यही उनकी प्रभुता है। इसके अतिरिक्त और कोई प्रभुता तुम उनकी बतला नही सकते। पर इसमें भी उस तपस्वी ने क्या किया : राम बैर अस होइहि हाला का यह उत्तर रावण ने दिया।

तुम लोग तो समुद्र मे सेतु बाँधकर पार आये हो। कितनी चिड़ियाएँ बिना सेतु के ही समुद्र लाँघा करती है। कार्य करने का पौरुष पृथक् सामग्री है। तू जड है

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



समझ नहीं सकता। समुद्र के बन्धन पर ही रीझा है। अजी ! समुद्रोल्लंघन से चिड़िया वीर नहीं हो जाती।

मम भुज सागर बल जल पूरा। जहँ बूड़े बहु सुर नर सूरा॥
बीस पयोधि अगाध अपारा। को अस बीर जो पाइहि पारा॥२॥

अर्थ : मेरी भुजारूपी समुद्र बलरूपी जल से पूर्ण है। जिसमे अनेक देवता और मनुष्य डूब गये हैं। ये बीस समुद्र अथाह और अपार है। ऐसा कौन वीर है जो इनका पार पा जाय।

व्याख्या : तव सिर निकर कपिन्ह के आगे। परिहहि धरनि राम सर लागे। का उत्तर रावण देते हैं। इस समुद्र मे तो उड़नेवाले की सामर्थ्य देखी जाती है। पर मेरे भुजसागर मे तो वीरों की परीक्षा है। ये बलरूपी जल से भरे हुए बीस समुद्र इकट्ठे हैं। इनमें कितने सुर नर शूर डूब गये—उनकी गिनती नहीं पर किसी ने पार न पाया क्योंकि न तो इनके आयाम का पता न गहराई का पता। अतः एक का पार होना दुस्तर है। बीसों को पार करनेवाला वीर है कौन ?

दिगपालन्ह मै नीर भरावा। भूप सुजसु खल मोहि सुनावा॥
जौ पै समर सुभट तव नाथा। पुनि पुनि कहसि जासु गुनगाथा॥३॥

अर्थ : मैंने दिक्पालो से पानी भराया है और तू शठ मुझे राजा का सुयश सुनाने चला है। यदि तेरा नाथ जिसके गुण गाथा का तू बार बार वर्णन करता है युद्धवीर है :

व्याख्या : अस विचारि भनु राम उदारा। का उत्तर देते हुए रावण कहते हैं कि दिक्पालो से मैंने नीच टहल करवाया। यह देखने के लिए कि देखें इनमे कुछ स्वात्माभिमान शेष है कि नहीं। तो मालूम हुआ कि कुछ भी शेष नहीं है। लगे पानी भरने। सेतु बाँधना तो प्राकृत राजाओं का सुयश है। यथा : अति अपार जे सरित वर जे नृप सेतु कराहि। तासु गर्व जेहि देखत भागा। सो नर क्यों दस सीस अभागा। का उत्तर देते हुए रावण कहते है कि तेरा नाथ तो वाक्वीर है युद्धवीर तो है नहीं। तू उसके गुणगाथा को बार बार कह रहा है। इस कारण यदि मान भी लें तो भी सामञ्जस्य नहीं बैठता।

तौ बसीठ पठवत केहि काजा। रिपु सन प्रीति करत नहि लाजा॥
हरगिरि मथन निरखि मम बाहू। पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू॥४॥

अर्थ : तो सन्धि के लिए दूत क्यों भेजता है। शत्रु से प्रीति करते हुए उसे लज्जा नहीं लगती ? कैलास के मथनेवाले मेरे बाहु को देख ले। तब शठ बन्दर ! तू अपने प्रभु की प्रशंसा कर।

व्याख्या : युद्धवीर तो प्रतिभट खोजते फिरते हैं। यथा : रन मद मत्त फिरइ जग धावा। प्रति भट खोजत कतहुँ न पावा। यदि वह युद्धवीर है तो उसने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दूत क्यों भेजा। दूत तो सन्धि चाहनेवाले भेजते हैं। मैं उसका दारापहर्ता परम शत्रु मुझसे प्रीति करने के लिए दूत भेजते उसे लज्जा नही आयी।

तब कि चलिहि अस गाल तुम्हारा। का उत्तर मेरी भुजाएँ देख ले। है तेरी सेना मे किसी की भुजा ऐसी ? इन भुजाओं ने शिवजी के पर्वत का मन्थन किया है। अर्थात् पर्वंत सहित शिवजी को भी उठा लिया। इनके देखने से फिर तुझे अपने प्रभु के सराहने का साहस न रह जायगा।

दो. सूर कवन रावन सरिस, स्वकर काटि जेहि सीस।
हुने अनल अति हरख बहु, बार साखि गौरीस ॥२८॥

अर्थ : रावण के ऐसा शूर कौन है जिसने अपने हाथ से अपना सिर काट डाला और अति हर्षित होकर अनेक बार अग्नि मे हवन कर दिया। शिवजी इसके साक्षी हैं।

व्याख्या : अब रावण अपनी शूरता कहते हैं। मैने अपना सिर अपने हाथ से काटा। कोई काटे तो हम उसे शूर माने। शूरो की अन्तिम परीक्षा सिर का काटना ही है। सो अपने हाथ से अपना सिर नहीं काटा जा सकता। सो मैंने कर दिखाया। अतः मुझसा शूर कोई नही। सिर कटते ही तो शूर की इतिश्री हो जाती है। उसे अग्नि मे हवन करने की किसे सामर्थ्य ? तिस पर हर्षित होकर बार बार सिर काटकर चढनेवाला कौन है ? चढाना तो दूर की बात है : इस बात पर विश्वास होना कठिन है। परन्तु इसके महादेवजी साक्षी है कि सब बातें सच्ची हैं। मूढ मृषा जनि मारेसि गाला। इत्यादि का उत्तर देते हुए रावण कहते हैं कि तेरी सब बातें झूठी हैं। मैं मृषा गाल बजानेवाला नही हूं।

जरत बिलोकेउँ जबहि कपाला। बिधि के लिखे अंक निज भाला ॥
नर के कर आपन बध बाँची। हँसेउ जानि बिधि गिरा असाँची ॥१॥

अर्थ : जब मैंने अपनी जलती हुई खोपड़ी देखी और उसमें ब्रह्मदेव के लिखे अङ्क देखे तो मनुष्य के हाथ से अपना वध बाँचकर ब्रह्मा का लिखा हुआ झूठा समझकर मैं हँसा।

व्याख्या : एक सिर जल रहा है और दूसरा सिर तमाशा देख रहा है। विधि ने जो कपाल मे लिख रक्खा है उसे बाँच रहा है। विधि के अङ्क सभी के कपाल मे रहते हैं। पर सब कोई उसे पढ नहीं सकता। उस विषय के पण्डित उसे पढ सक्ते हैं। अतः हस्तरेखा से काम चलाया जाता है। यथा : अस स्वामी एहि कहँ मिलिहि, परी हस्त अस रेख। हाथ मे रेखा रहती है और कपाल मे अङ्क रहता है। जब सिर जलने लगा तब रावण को ख्याल पड़ा कि ऐसा अवसर फिर न मिलेगा। देखें तो ब्रह्मदेव ने क्या लिखा है। तो उसमे देखा तो उसकी मौत मनुष्य के हाथ लिखी थी। रावण को उस पर हँसी आ गयी कि देखो ब्रह्मा भी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



झूठ लिख गये। भाव यह कि इस विषय मे रावण ब्रह्मदेव का कहना भी प्रमाण नही मानते। अङ्गद का कहना कि तब सिर निकर कपिन के आगे। परिहैं धरनि राम सर लागे। किस गिनती मे है।

सोउ मन समुझि त्रास नहि मोरें। लिखा बिरंचि जरठ मति भोरें॥
आन बीर बल सठ मम आगे। पुनि पुनि कहसि लाज पति त्यागें॥२॥

अर्थ उसे समझकर भी मुझे भय नही है। क्योकि बूढे ब्रह्मदेव ने भूल से ऐसा लिख दिया। रे दुष्ट! तू दूसरे वीर का बल मेरे सामने लज्जा और मर्यादा छोड़कर बार बार कहता है।

व्याख्या अस बिचारि भजु राम उदारा। का उत्तर देते हुए रावण कहते हैं कि स्वय ब्रह्मदेव का लेख देखकर तो मैं डरा ही नही। मुझे तो हँसी आ गयी कि बूढे होने से ब्रह्मा की भी अक्ल बुद्धि मारी गयी। तू चला है मुझे डराने। मेरी धारणा के प्रतिकूल यदि ब्रह्मा कह तो भी नही मानता।

रामजी का नाम तो रावण लेते नही। इसलिए कहते हैं कि दूसरे वीर का बल मेरे सामने नही कहना चाहिए। मुझसे यदि कोई अधिक हो तो उसका बल मेरे सामने कहना प्राप्त हो सकता है। सो मुझसे अधिक तो कोई है नही। ऐसा कौन है जो अपने हाथ से अपना सिर काटे। सिर कटने पर विचार करने की शक्ति रक्खे। ब्रह्मदेव का लिखा बाँचे और हँसे? अत दूसरे वीर की प्रशसा मेरे सामने करनेवालो को लज्जा होनी चाहिए। क्योकि ऐसा करके वह अपनी ही अप्रतिष्ठा कर रहा है।

कह अगद सलज्ज जग माही। रावन तोहि समान कोउ नाही॥
लाजवत तव सहज सुभाऊ। निजमुख निजगुन कहसि न काऊ॥३॥

अर्थ अङ्गद ने कहा हे रावण! तेरे समान लज्जाशील ससार मे दूसरा कोई नही है। लज्जाशीलता तुम्हारा जन्मसिद्ध स्वभाव है। अपने मुख से तुम अपनी प्रशसा कभी नही करते।

व्याख्या ध्वनि यह है कि तुम्हारे सा निर्लज्ज कोई ससार मे नही है। आत्मप्रशसा का तुम्हारा सहज स्वभाव है। बैठे बैठे दिन रात शेखी बघाडा करते हो। आत्मप्रशसा करना महा निर्लज्जता का काम है सो तुम निरन्तर किया करते हो और मैंने तो रामजी की प्रशसा की अपनी प्रशसा नही की। सो मुझ निर्लज्ज बतला रहे हो। निर्लज्ज तो वह है जो आत्मप्रशसा करे।

सिर अरु सैल कथा चित रही। ताते बार बीस तै कही॥
सो भुजबल राखे उर घाली। जीतेउ सहसबाहु बलि बाली॥४॥

अर्थ सिर और पर्वत की कथा याद रही। इससे तुमने बीस बार कहा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भुजाओं के उस बल को तुमने हृदय मे रख छोड़ा था। जब कि सहस्रबाहु बलि और बाली को जीता था।

व्याख्या : भाव यह कि सहस्रबाहु बलि और बालि तीनो से रावण का पराभव हुआ था। वे सब बातें तो तुम्हे सब भूल गयी। बस सिर और शैल की कथा याद रह गयी। इसलिए तुम इन कथाओं को बीस बार दोहरा चुके। जब सहस्रबाहु बलि और बालि से काम पड़ा तब तुम्हारा वह बल कहाँ रहा। क्या अपने लज्जाशील स्वभाव के कारण उसे हृदय मे छिपाये रहे।

सुनु मतिमंद देहि अब पूरा। काटे सीस कि होइअ सूरा॥
इन्द्रजालि कहुँ कहिअ न बीरा। काटइ निज कर सकल सरीरा॥५॥

अर्थ : रे मतिमन्द ! यही से बात समाप्त कर। क्या कोई अपना सिर काटने से बीर होता है ? बाजीगर को बीर नही कहा जा सकता। वह अपने हाथ से अपना सम्पूर्ण शरीर काट डालता है।

व्याख्या : अपने हाथ से अपना सिर काटना दूसरी बात है और युद्ध करना दूसरी बात है। बाजीगर लोग अपने हाथ से अपना सारा शरीर काट डालते हैं। उस समय बाजीगरी की विद्या यहाँ तक बढी थी कि सूत पकड़कर आकाश मे चढ जाते थे और वहाँ से उनका अङ्ग प्रत्यङ्ग कटकर गिरता था। इस समय भी ऐसा दृश्य दिखलानेवाले हैं कि टेबुल पर कटा हुआ सिर रक्खा हुआ है और वह बोलता है। अतः अपने हाथ से सिर काटने मे बाजीगरो को प्रशसा है शौर्य की नही।

दो. जरहिं पतंग मोह बस, भार बहहिं खर बृंद।
ते नहिं सूर कहावहिं, समुझि देखु मतिमंद॥२९॥

अर्थ : पतग मोहवश जलते हैं। गधे बोझा ढोते है। पर वे शूर नही कहलाते। रे मतिमन्द समझकर देख।

व्याख्या : बाजीगर का सिर काटना तो झूठा है केवल बाजीगरी मात्र है। क्योकि उससे वह मरता नही फिर सिरवाला हो जाता है। पर पतङ्ग तो सचमुच अपने प्राणो को दीप की लौ पर निछावर कर देता है। इसमे उसका अज्ञान कारण है। शौर्य नही। अतः तुम्हारा सिर काटने का कोई मूल्य नही है। इसी प्रकार बहुत बड़ा बोझा उठाने मे भी कोई बीरता नही है। गधे जैसा बोझा ढोते हैं ताजी घोडे नही ढो सकते। अतः कोई पतङ्ग और गधे को बीर नही कह सकता। अतः तुम्हारा कैलास उठा लेना तुम्हारे बोझा उठाने का परिचायक है : बीरता का नही।

अब जनि बत बढ़ाव खल करही। सुनु मम बचन मान परिहरही॥
दसमुख मै न बसीठी आयेउँ। अस बिचारि रघुबीर पठायेउँ॥१॥

अर्थ : रे खल ! अब बतबढाव न कर। मेरी बात सुनकर अभिमान छोड़।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रे दसमुख ! मैं सन्धि का प्रस्ताव करनेवाला दूत होकर नहीं आया हूँ। रघुवीर ने ऐसा विचारकर मुझे भेजा है।

व्याख्या : अङ्गदजी रावण के कहे हुए वाक्य : रिपु सन प्रीति करत नहि लाजा। का उत्तर देते हुए कहते हैं कि व्यर्थ बात को न बढ़ाओ नहीं तो यहीं युद्ध प्रारम्भ होगा। तुम खल हो सद्भाव को नहीं समझ सकते। बतबढ़ाव का फल मैं तुरन्त देता हूँ। यथा : बातहि बात करष बढ़ि आई। जुगल अतुल बल पुनि तरुनाई। तेहि अंगद कहु लात उठाई। गहि पद पटक्यो भूमि भँवाई। तुम मेरी बात सुनकर मान छोड़ दो। मान रहने से बात समझ में नही आती।

बार बार अस कहइ कृपाला। नहि गजारि जसु बधे सृगाला ॥
मन महुँ समुझि बचन प्रभु केरे। सहेउँ कठोर बचन सठ तेरे ॥२॥

अर्थ : कृपाल ने बार बार ऐसा कहा है कि शृगाल के मारने में सिंह का यश नही होता। रे शठ ! प्रभु के वचन को मन में समझकर मैंने तेरे कठोर वचन सह लिये।

व्याख्या : तौ बसीठ पठवत केहि काजा। का उत्तर देते हुए अङ्गदजी कहते हैं कि मैं प्रीति के लिए दूत बनकर नही आया हूँ। मैंने प्रीति करने के लिए कहा भी नहीं। शरण जाने के लिए कहा है। यथा : दसन गहहु तृन कंठ कुठारी। परिजन सहित संग निज नारी। सादर जनकसुता करि आगे। एहि विधि चलहु सकल भय त्यागे। प्रनतपाल रघुवंसमनि त्राहि त्राहि अब मोहि। आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करैगो तोहि। वे काम क्रोध मद गज पंचानन हैं। तू काम क्रोध का दासानुदास शृगाल है। चोरी करके स्त्री हरण करता है। बार बार अस कहेउ : का भाव यह है कि शृगाल के मारने में कीर्ति नही है। तुम्हें उसके पास भेज रहे है। वह अपनी बोली बिना बोले न रहेगा। तुम क्रोध करके उसे मार न देना। मालिक के वचन पर ध्यान देकर मैंने तेरे कठोर वचन को सहा। नहीं तो इस प्रकार कटुभाषी का दण्ड वध ही है।

नाहि त करि मुखभंजन तोरा। लै जातेउँ सीतहि बरजोरा ॥
जानेउँ तव बलु अधम सुरारी। सूने हरि आनिसि पर नारी ॥३॥

अर्थ : नही तो तेरे मुँह को तोड़कर सीता को अपने बल से ले जाता। रे अधम देवशत्रु ! तेरा बल जान गया। जब कि तू पराई स्त्री को अकेला पाकर हरण कर लाया।

व्याख्या : श्रीरामजी के समरसुभट होने की बात तो दूर है मैं अकेला तेरा मुख तोड़कर सीताजी को अपने भुजबल से ले जाता। खीरा सिर से काटिये दीजे नमक भराय। रहिमन कडुए मुखन को चहियत इहै सजाय। इसी से अङ्गदजी ने मुखभंजन कहा। जिस मुख से यह बात निकली : रिपु सन प्रीति करत नहि लाजा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उसे तोड़ डालता और जिस सीता को तू चुराकर लाया उसे मैं भुजबल से ले जाता।

अब दिगपालन मैं नीर भरावा। का उत्तर देते हुए कहते हैं कि तुम अपने को सुरारि कहने मे बड़ी प्रतिष्ठा मानते हो। उसे अपने बल का परिचायक समझते हो और पराई स्त्री की चोरी करते हो। यदि तुममे बल होता तो सामने से न ले जाते। सुरारि तो खरदूपण भी थे पर वे अधम नहीं थे। तू अधम है।

तै निसिचरपति गर्व बहूता। मै रघुपति सेवक कर दूता ॥
जौ न राम अपमानहि डरऊँ। तोहि देखत अस कौतुक करऊँ ॥४॥

अर्थ : तुम राक्षसो के राजा हो। घमण्ड बहुत है। मैं तो रघुपति के सेवक का दूत हूँ। यदि मै रामजी के अपमान का भय न करूँ तो तुम्हारे देखते हुए ऐसा खेल करूँ।

व्याख्या : मम भुज सागर बल जल पूरा। का उत्तर देते हुए अङ्गदजी कहते हैं कि तुम अपने समाज मे सबसे महान् हो और मेरी गणना अपने समाज मे तीसरी श्रेणी मे है। सबसे महान् रामजी दूसरी श्रेणी राजा सुग्रीव और मै तो उनका दूत हूँ। इस समय रामजी का दूत बनकर आया हूँ। यदि मैं तुम्हारी दुर्दशा कर दूँ तो रामजी का अपमान होगा। क्योकि वे तुझे अपने हाथ से दण्ड देगे। तब लोग कहेगे कि जिसकी अङ्गद ने दुर्दशा कर डाली थी उसे रामजी ने मारा तो कौन बड़ा पुरुषार्थ किया ? इस भाँति उनका अपमान होगा और उस अपमान को मैं डरता हूँ तुम्हे नही। तुम्हारे लिए तो मै ऐसा कर सकता हूँ कि तुम देखते ही रह जाओ और मै खेल कर जाऊँ।

दो. तोहि पटकि महि सेन हति, चौपट करि तव गाउँ।
तव 'युवतिन समेत सठ, जनकसुता लै जाउँ ॥३०॥

अर्थ : रे शठ ! तुम्हे पृथ्वीपर पटककर तेरी सेना मारकर तेरे गाँव को चौपट करके तुम्हारे युवतियो सहित मै जानकीजी को ले जाऊँ।

व्याख्या : पलक गिरने के पहिले मै तुझे सिहासन के नीचे गिरा दूँगा। जब से तू सँभालकर उठे उठे तब तक तेरी सेना निपटा दूँगा। जब तक तू सेना सँभाले तब तक लङ्का उजाड़ दूँगा। तुम लका सँभालने के फेर मे फँसे रहोगे तब तक मैं जानकीजी को लेकर चला जाऊँगा और साथ मे सीताजी की तपस्या वर्णन करने के लिए मन्दोदरी को भी बलपूर्वक ले जाऊँगा। जिसमे जगत् देख ले कि जो दूसरे की स्त्री चुराकर लाता है। उसकी स्त्री बलपूर्वक हरण की जाती है।

जौ अस करउँ तदपि न बड़ाई। मुयेहि बधे नहि कछु मनुसाई ॥
कौल कामबस कृपिन बिमूढ़ा। अति दरिद्र अजसी अति बूढ़ा ॥१॥

अर्थ : यदि ऐसा करूँ तो भी कोई बड़ाई की बात नही है। क्योकि मरे हुए

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



को मारने में कोई बड़ाई नही है। १. कौल २ कामी ३. कृपिण ४. विमूढ ५. अतिदरिद्र ६. ऐसा पुरुष जिसकी अकीर्ति हो। ७ अत्यन्त वृद्ध।

व्याख्या : अब अङ्गदजी : कुम्भकरन सम बंधु मम सुत प्रसिद्ध सक्रारि। मोर पराक्रम सुनेसि नहिं जितेउँ चराचर झारि। का उत्तर दे रहे है कि ये सब के सब मृतवत्तुल्य हैं। इनके पाप ने इनको पहिले मार दिया है। इनके मारनेवाले को निमित्तमात्र होने को देर है। क्योकि निम्नलिखित प्राणियो की गणना मृतको मे है :

१. पहिले कौल जिन्हे वाममार्गी कहते हैं। स्वय कवि ने कहा है : तजि स्रुतिपंथु,वाम पथ चरही। वचक बिरचि वेष जगु छरही। तन्त्र शास्त्रो मे दो मार्गों की चर्चा है : १. दक्षिण मार्ग और २ वाम मार्ग। वाम मार्ग मे पञ्च मकार : १ मद्य २ मांस ३ मत्स्य ४ मुद्रा और ५ मैथुन का प्रचार है। इसी के अनुयायी अपने को कौल कहते है। यथा :

नर कपाल को पात्र बनाया मरघट मे आवास लिया।
पहना गले हार हाडो का ईश बेष स्वीकार किया॥
योगाञ्जन से शुद्ध हुई हैं आँख देखता हूँ अब मैं।
आपस मे ये जगत भिन्न है, भेद रहित ईश्वर से हैं॥
मेद आँत चरबी मनुष्य का मास मनोहर।
लेकर के देते है पावक मे आहुतिवर॥
ब्राह्मण की खोपड़ी वही है मेरा चुक्कड।
भरके दुधुआ पारण करते हैं नित अक्खड़॥
विप्रमुण्ड ताजा कटा लोहू को धारा गरम।
देव महाभैरव निकट देते हैं बलि नित्य हम॥
देखा है न कही विना बिषय के आनन्द होवै जुदा।
मुक्ति पत्थर है भला यह गती क्यो तू लिया चाहता॥
देवी सी रमणी गले लपटती है शम्भु तू भी बना।
ऐसी अद्भुत मौज ही मुकुति है भूतेश ने यो कहा॥

: प्रबोध चन्द्रोदय

पीत्वा पीत्वा पुनः पीत्वा पीत्वा पतति भूतले। पुनरुत्थाय वै पीत्वा पुनर्जन्म न विद्यते।

सब आचारो से जो भ्रष्ट हो जाता है वही कौल होता है और उससे भी पतित होकर रौरव नरक म जाता है। यथा : सर्वाचारपरिभ्रष्टः कुलाचार समाश्रयेत्। कुलाचारपरिभ्रष्टो रौरवं नरकं व्रजेत्। मेरुतन्त्रे। ऐसे आचारवाले प्राणियो को मृतक ही समझना चाहिए।

२. कामवश : धर्म से अविरुद्ध काम की तो प्रशसा है। यथा : धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतर्षभ। परन्तु जो काम के वश हो जाता है वह धर्माधर्म नही देख सकता। अत. काम के वशीभूत पुरुष भी मृतक तुल्य हो है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जो सन्तत क्रोधी हैं वे सदा क्रोध से जला करते हैं। उनको कभी सुख नही। वह यदि और कुछ न करे तो साधु पुरुषो पर आक्षेप किया करता है। भावार्थं यह कि वह व्यर्थ पाप कमाता रहेगा। उसके दोनो लोक नष्ट होते हैं। अत वह भी मृतकतुल्य है।

१० विष्णु विमुख मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिय पी के। आहार निद्रा भय और मैथुन तो पशु और मनुष्य मे समान ही हैं। मनुष्य मे विशेषता यही है कि वह ईश्वर को पहिचानता और जानता है। परमेश्वर का भजन करता है और जो मनुष्य शरीर धारण करके परमेश्वर का विरोध हुआ उससे पशु अच्छे हैं। यथा

तिनते खर सूकर स्वान भल जडता बस ते न कहै कछु वै।
तुलसी जेहि राम सो नेह नही सो सही पसु पूछ विषान न द्वै॥
जननी कत भार मुई दस मास भई किन बाँझ गई किन च्वै।
जरि जाहु सो जीवन जानकि नाथ जियै जग मे तुम्हरो बिनु ह्वै॥
कवित्त रामायण

११ श्रुति सन्त विरोधी अद्भुत महिमा वेद की तुलसी कियो विचार। जेहि निन्दत निन्दित भयो विदित बुद्ध अवतार। वेद के विरोधी हो पाखण्डी और नग्नक नगे कहे गये हैं। सम्पूर्ण ज्ञान विज्ञान की प्रसूति वेद का जिसने विरोध किया वही ईश्वर का विरोधी है वही धर्म का विरोधी है। ईश्वर और धर्म के विरोध करनेवाले का कल्याण कैसे होगा। इसी भाँति सन्त विरोधी का भी कल्याण नही हो सकता। यथा साधु अवज्ञा तुरत भवानी। कर कल्याण अखिल कर हानी।

१२ तन पोषक देहात्मवादी जिनका मत है कि जब तक जीवे सुख से जीवे। ऋण करके भी घी खाय। भस्म हुए देह का फिर से लौटना कैसे हो सकता है। जिसने अनात्मा देह को आत्मा मान लिया उस चोर आत्मापहारी ने कौन सा पाप नही किया ? अत ऐसे पापी का जीवन भी व्यर्थ है। यथा सब विधि सोचिअ पर अपकारी। निज तन पोषक निर्दय भारी।

१३ निन्दक दूसरो की कीर्तिमयी देहो पर प्रहार करने का स्वभाव रखने वाले के बराबर पापी कौन है ? क्योकि सम्भावित कहु अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू। अत निन्दक स्वभाव से ही व्यर्थ पाप सचय किया करता है। उसका जीवन निष्फल है।

१४ अघखानी जो पापमय जीवन व्यतीत करता है और दूसरो मे भी पाप का प्रचार करता है वह स्वय भी दुःख उठाता है और दूसरो को भी दुःखगर्त के उन्मुख करता है। यथा करहिं पाप पावहिं दुख, भयरुज सोक वियोग। इनका जीवन स्पष्ट ही व्यर्थ है।

ये चौदह प्राणी शव के समान जीते हैं। अर्थात् इनका शरीर मात्र अक्षुण्ण बना है। उससे न स्वय उनका कोई उपकार हो न दूसरो का। वे ससार के लिए भारभूत हैं। अमङ्गलमय हैं। शव की भाति अस्पृश्य हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अस बिचारि खल बधउँ न तोही । अब जनि रिस उपजावसि मोही ॥
सुनि सकोप कह निसिचर नाथा । अधर दसन दसि मीजत हाथा ॥३॥

अर्थ : रे खल ! ऐसा विचारकर मैं तुझे नहीं मारता । अब तू मुझमें क्रोध न पैदा कर । यह सुनकर राक्षसेश्वर दाँतों से होठ चबाता हुआ और हाथ मलता हुआ बोला ।

व्याख्या : खल मेरे वध्य हैं और तू खल है । पर तुझे शव के समान समझकर नहीं मारता । क्योंकि मरे हुए के मारने मे कोई बहादुरी नहीं है । अब तक तो मैं क्रोध रोक सका । पर इससे अधिक क्रोध का वेग मैं नहीं रोक सकूँगा । अतः अब ऐसी बात न बोलना जिसमे मेरा क्रोध अधिक बढ़े ।

निशिचरनाथ है बड़ा गर्व है । अङ्गदजी की ऐसी वाणी सुनकर क्रोध से होठ चाबता है । पर कुछ किया नहीं हो सकता । इसलिए हाथ मलता है । रावण बातों से ही डरा धमकाकर चतुरता से काम निकालना चाहता है । हनुमान्‌जी का पराक्रम देख चुका है इसलिए सशङ्क है । अतः फिर बोला ।

रे कपि अधम मरन अब चहसी । छोटे बदन बात बड़ि कहसी ॥
कटु जल्पसि जड़ कपि बल जाकें । बल प्रताप बुधि तेज न ताकें ॥४॥

अर्थ : रे अधम बन्दर ! अब तू मरना चाहता है । छोटे मुँह बड़ी बात कहता है । जिसके बल पर तू ऐसा कटु : कड़ुआ बोल रहा है उसे बल प्रताप बुद्धि और तेज नहीं है ।

व्याख्या : सब विधि से हीन हो उसे अधम कहते हैं । यथा : कपि चञ्चल सबही विधि हीना । अस मैं अधम सखा सुनु । रावण अङ्गदजी से कहता है कि तू तपस्वी का दास है । इसलिए सब विधि से हीन है । बन्दरों में भी अधम है और बड़ी बड़ी बातें करता है । यथा : तोहि पटकि महि सैन हति चौपट करि तव गाँव । इत्यादि । दूत होने के कारण मैं तुझे नहीं मारना चाहता था पर अब स्वयं मरना चाहता है तो मैं क्या करूँ । इस प्रकार की बात मेरे सामने वही कर सकता है । जिसे मृत्यु इष्ट हो । तूने समझ रखा है कि मेरा स्वामी बड़ा बलवान् है । वह मेरी रक्षा करेगा । इसी बल पर तू कटु बोल रहा है । पर तू यह नहीं जानता कि उसे बल प्रताप बुद्धि और तेज नहीं है । बलवान् प्रतापी बुद्धिमान् और तेजस्वी ही अपने आश्रित की रक्षा मे समर्थ होता है ।

दो. अगुन अमान जानि तेहि, दीन्ह पिता बनबास ।
सो दुख अरु जुबती बिरह, पुनि निसि दिन मम त्रास ॥
जिन्हके[1] बल कर गर्ब तोहि, ऐसे मनुज अनेक ।
खाहि निसाचर दिवस निसि, मूढ़ समुझु तजि टेक ॥३१॥

१. यहाँ प्रतीप : द्वितीय अलङ्कार है ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : गुण रहित और मान रहित जानकर उसे पिता ने वनवास दिया। वह दुःख और स्त्री का विरह और दिन रात मेरा डर उसे बना रहता है।

जिनके बल का तुझे अभिमान है ऐसे मनुष्य बहुत से पड़े हैं। उन्हे रात दिन राक्षस खाया करते हैं। रे मूढ ! इस बात को तू हठ छोड़कर समझ।

व्याख्या : अब रावण इस बात का प्रमाण देते हैं कि रामजी मे बल प्रताप बुद्धि और तेज नही है। कहते हैं कि यदि उनमे गुण होता तो जेठे पुत्र थे। बाप राज देता। उसने देख लिया कि न तो इसमे राजोचित गुण है न मान है। यह वश परम्परागत प्रतिष्ठा की रक्षा न कर सकेगा यह तो तपस्वी होने योग्य है। इसलिए पिता ने वनवास दे दिया। भला कही पिता भी पुत्र को वनवास देता है ? इसकी अयोग्यता इतनी है कि पिता ने वनवास दे दिया। इससे सिद्ध है कि इसमे बल नही है। यदि इसमे बल होता तो पिता के कहने मात्र से यह राज्य कैसे छोड़ देता ? इसमे बल तो था नही इसलिए इसे राज्य छोडना पडा।

छोड़ने को राज्य तो छोड़ दिया पर उस बात का दुःख सदा बना रहता है। ऐसे राज्यभ्रष्ट दुःखी के प्रताप की चर्चा ही क्या है। स्त्री के विरह से उसकी बुद्धि भी मारी पडी और रात दिन मुझसे भयभीत रहता है : क्योकि मेरा अपराध किया है। सूर्पनखा का नाक कान काटा है : भयभीत को तेज कहाँ ? अत राम को बल प्रताप बुद्धि और तेज नही है।

अब राम मनुज बस रे सठ बगा। आदि का उत्तर देते हुए कहता है कि तुझे ऐसे ही बल प्रताप बुद्धि तेजहीन मनुष्य का गर्व है। ऐसे मनुष्यो से तो ससार भरा पड़ा है और राक्षस रात दिन ऐसे मनुष्यो को खाया करते हैं। यथा : कहुँ महिष मानुष धेनु अज खर खल निसाचर भच्छही तथा खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। तुझे हठ हो गया है कि राम मनुष्य नही है। सो इस हठ को छोड़कर यदि तू समझना चाहेगा तो मेरी बात तेरी समझ मे आ जावेगी।

जब तेहि कीन्ह राम कइ निंदा। क्रोधवंत अति भयउ कपिंदा ॥
हरिहर निंदा सुनै जो काना। होइ पाप गोघात समाना ॥१॥

अर्थ : जब उसने रामजी की निन्दा की तब कपीन्द्र अङ्गदजी अतिक्रुद्ध हो गये। विष्णु और शिव की निन्दा जो कान से सुनता है उसे गोबध का पाप होता है।

व्याख्या : यथार्थ दोष कथन को परिवाद और असत्य दोष कथन को निन्दा कहते है। निन्दा करने से कीर्तिरूपी देह का वध होता है। अत. निन्दा करने से वध से अधिक पाप होता है। जितनी अधिक पुण्यवान् की निन्दा हो उतना ही अधिक पाप निन्दक को होता है। जिस भाँति निन्दा करना पाप है उसी भाँति निन्दा सुनना भी पाप है। इसमे भी विष्णु और शिव की निन्दा सुननेवाले को गोहत्या के समान पाप लगता है। सुनहि जो काना का भाव यह कि जो सुनने की इच्छा से सुनता है अथवा बिना विरोध किये सुनता है। भाव यह कि सत सभु श्रीपति

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अपवादा। सुनिय जहाँ तहँ असि मरजादा। काटिय तासु जीभ जो बसाई। स्रवन मूँदि नत चलिअ पराई।

अतः जब उसने रामजी की निन्दा की। रामजी साक्षात् महाविष्णु हैं। अतः अङ्गदजी क्रुद्ध हुए। बिना विरोध प्रदर्शन के सुनने से गोघात का पातक लगता है और परिस्थिति ऐसी है कि जिसके यहाँ दूत बनकर आये हैं वही निन्दा करता है। अतः न तो उसकी जिह्वा काट सकते हैं और न वहाँ से कान बन्द करके भाग सकते हैं अतः :

कटकटान कपिकुंजर भारी। दुहु भुजदंड तमकि महि मारी ॥
डोलत धरनि सभासद खसे। चले भाजि भयमारुत ग्रसे ॥२॥

अर्थ : बन्दरों में हाथी के समान अङ्गदजी ने अत्यन्त कटकटाकर दोनों भुजाओं को क्रोध करके जमीन पर पटक दिया। पृथ्वी डोल उठी। सभासद् गिर पड़े और उन्हे भय की बाई चढ गयी सबके सब भाग चले।

व्याख्या : बन्दर जब क्रोध करते हैं तो कटकटाते हैं। प्रसन्न होते हैं तो किलकिला शब्द करते हैं। यथा : कटकटाइ गर्जा अरु धावा यहाँ पर भारी कपि कुंजर कहकर अङ्गदजी का विशालाकार होना द्योतित करते हैं। भारी शब्द देहलीदीपक न्याय से कटकटान के साथ भी लगेगा अर्थात् भारी कपि कुंजर भारी कटकटाया। क्रोध के वेग मे दोनों हाथ पृथ्वी पर पटका। पृथ्वी डोल उठी और ऐसी डली कि सभासद् मुँह के बल आ पड़े। डरे तो पहिले से ही थे। यथा : अबधौ कहा करिहि करतारा। अति सभीत सब करहिं बिचारा। अङ्गदजी के आने से ही उठ खड़े हो गये थे। यथा : उठे सभासद कपि कहँ देखी। अब अङ्गदजी के कटकटा कर हाथ पटकने के साथ ही पृथ्वी के डोलने से सब गिरे तो उठकर भाग चले कि यह कौन सी बला आयी। सबको मानो भय की बाई चढ़ गयी। जिस भाँति व्याघ्र से आहत पुरुष को भय की बाई चढ़ जाती है और वह अस्पताल में पड़ा हुआ भी अपने को व्याघ्र के वश मे मानता है। इस भाँति उन सभासदों की गति हुई। वे लौटकर देखते भी नही कि हुआ क्या ? बस भागते ही चले जाते हैं।

गिरत सँभारि उठा दसकंधर। भूतल परे मुकुट अति सुन्दर ॥
कछु तेहि लै निज सिरन्हि सँवारे। कछु अंगद प्रभु पास पँवारे ॥३॥

अर्थ : दशानन गिरते गिरते सँभलकर उठे। उसके अतिसुन्दर मुकुट पृथ्वी पर गिर पड़े। कुछ तो उसने उठाकर अपने सिरो पर रख लिया और कुछ को अङ्गदजी ने प्रभु के पास फेंक दिया।

व्याख्या : दशानन हैं। चारों ओर एक साथ देखते हैं। झुक तो वे भी गये। पर गिरते गिरते सँभल गये। वे तो सँभले पर दसो मुकुट पृथ्वी पर गिर गये। यहाँ दो बार कछु शब्द आया है तो पहिले कछु से छः मुकुटों का अभिप्राय है और दूसरे कछु से चार मुकुटो का। रावण ने चाहा कि जल्दी से मुकुटो को सिर पर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


रख लें। सो बीस हाथ होने पर भी जब से वह छ मुकुट उठावे तब से दो हाथवाले अङ्गद ने चार मुकुट रघुनाथजी के पास फेंक दिये।

आवत मुकुट देखि कपि भागे। दिनहि लूक परन विधि लागे ॥
की रावन करि कोपु चलाये। कुलिस चारि आवत अति धाये ॥४॥

अर्थ : मुकुटो को आता हुआ देखकर बन्दर भागे। हे विधाता! क्या दिन को ही लूक गिरने लगा अथवा रावण ने क्रोध करके ये चार वज्र चलाये हैं जो *बड़े वेग से चले आ रहे हैं।*

व्याख्या : पहिले कह चुके हैं कि अङ्गदजी ने चार मुकुट प्रभु के पास फेंके। उन मुकुटो को आते हुए बन्दरो ने देखा तो वे भी चले। क्योकि लङ्का के ऊपर वे उन्ही की ओर चले आ रहे थे। मुकुटो मे चमक ऐसी है कि दिन मे भी वे ऐसे चमक रहे हैं जैसे रात को लूक चमकता है। दिन मे लूक गिरता भी है तो किसी को मालूम नही होता। सूर्य की ज्योति मे उनकी ज्योति का पता नही चलता। अत: रात के लूक से ही ससार परिचित है। दिन को लूक का गिरना अनहोनी बात है। इससे बन्दर डर के भागे। वे कुछ स्थिर न कर सके कि यह क्या है? उन्हे यह भी भय हुआ कि कही रावण ने क्रोध करके चार वज्र चलाये हो जो हमारे ऊपर गिरा चाहते हैं। इस भय से सभी भागे अथवा पहिले लूक का भ्रम हुआ। कुछ और निकट आनेपर वज्र की धारणा हुई। जब और निकट आये तो बन्दरो को राहु केतु का भ्रम हुआ कि ये चन्द्र सूर्य के ग्रास करनेवाले हम लोगो का ग्रास करेंगे।

कह प्रभु हंसि जनि हृदय डराहू। लूक न असनि केतु नहिं राहू ॥
ए [1]किरीट दसकंधर केरे। आवत बालितनय के प्रेरे ॥५॥

अर्थ : प्रभु ने हँसकर कहा कि मन मे डरो मत। न तो ये लूक है न वज्र है न राहु केतु हैं ये रावण के मुकुट हैं। बालि के बेटे के फेंके हुए आ रहे हैं।

व्याख्या . सब लोग तो डरे पर सरकार हँस पड़े। ठीक समझ लिया कि अङ्गद ने अपना पराक्रम दिखलाया और साथ ही साथ वहां की परिस्थिति का भी परिचय दे दिया कि *रावण बात नही मान रहा है। बात बढ़ चली है पर विजय* सरकार की है। तब सरकार ने बन्दरो से कहा कि मन मे भय न मानो। तुमलोगो का अनुमान ठीक नही है। यह लूक वज्र अथवा राहु केतु नही हैं। ये रावण के मुकुट है। बालि के बेटे के फेंके हुए आ रहे हैं। बालितनय कहने का भाव है कि अङ्गद ने बालि की भाँति अपना पराक्रम रावण पर प्रकट किया है।

दो. तरकि पवनसुत कर गहेउ, आनि धरे प्रभु पास।
कौतुक देखहि भालु कपि, दिनकर सरिस प्रकास ॥३२॥

---

१. यहां भ्रान्तापह्नुति अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : हनुमान्‌जी ने कूदकर उन्हे हाथ से पकड लिया और लाकर प्रभु के पास रख दिया। बन्दर और भालु तमाशा देखने लगे कि इनका प्रकाश तो सूर्य के प्रकाश सा है।

व्याख्या : पवनसुत हैं बडा लाघव है। उछले तो दो ही हाथ से चारो को पकड लिया। पृथ्वी पर नही गिरने दिया कि कही टूट न जाय। लाकर प्रभु के सामने रख दिया। क्योकि अङ्गदजी ने प्रभु के पास ही फेंका था। दूसरी बात यह है कि प्रभु के पास रखने से सब दूर दूर से देखेगे। नही तो इन बन्दरो के देखने मे ही मुकुट का विध्वस हो जायगा। मुकुट के रख देने पर भालु और बन्दर लगे तमाशा देखने। क्योकि वह मुकुट सूर्य की भाँति प्रकाशमान था। ऐसा दिव्य मुकुट था कि उसपर आँख नही ठहरती थी।

दो. उहाँ सकोप दसानन, सब सन कहत रिसाइ।
धरहु कपिहि धरि मारहु, सुनि अंगद मुसुकाइ ॥३२॥

अर्थ : वहाँ क्रुद्ध रावण सबसे नाराज होकर कहता है कि पकड लो बन्दर को और पकडकर मारो। उपर्युक्त दोहे के स्थान मे किसी किसी प्रति मे यह अर्धाली है। यथा ' उहाँ वहत दसकध रिसाई। धरि मारहु कपि भागि न जाई। अर्थ मे कुछ अधिक भेद नही है। धरि मारहु कहने का अभिप्राय ही यह है कि भागने न पावे।

व्याख्या रावण क्रुद्ध होकर आज्ञा देते हैं कि देखो बन्दर कही कूदकर निकल न जाय। पहिले इसे सब लोग मिलकर पकड लो तब मारो। सब को आज्ञा देता है। क्योकि जानता है कि अकेले यह किसी के वश का नही है। इस आज्ञा को सुनकर अङ्गदजी मुसकुरा रहे हैं कि वे तो भागे जाते है और ये उन्हे मुझे पकडने की आज्ञा देते हैं।

एहि बिधि बेगि सुभट सब धावहु। खाहु भालु कपि जहँ तहँ पावहु॥
मरकट हीन करहु महि जाई। जिअत धरहु तापस दोउ भाई ॥१॥

अर्थ : इसी विधि से शीघ्रता के साथ सब सुभट लोग दौडते चले जाओ और जहाँ जहाँ भालु बन्दर मिले उन्हे खा जाओ। पृथिवी को बिना बन्दर का कर दो और दोनो भाई तपस्वियो को जीता ही पकड लो।

व्याख्या रावण बात बनाने मे बडे चतुर हैं। सबका भागना और अङ्गद का मुसकुराना देख कर कहते हैं कि बस इसी भाँति शीघ्रता से तुम लोग दौडते चले जाओ। लका दुर्ग के बाहर जहाँ तहाँ बहुत से बन्दर भालू पडे हुए हैं उन सब को खा जाओ। और देखो लका मे आये हुए वन्दरो को खाकर ही मत लौट आना। संसार भर मे फेरा लगा दो। सब बन्दरो को खा जाओ। इनकी नसल न रह जाय। पर इसका ध्यान रखना कि इस वेग मे कही उन दोनो तपस्वियो को

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


न मार डालना। उन्हे जीता ही पकड लेना। वे तापस दोनों भाई बड़े वीर बने हुए हैं। क्योंकि जीते हुए पकडे जाने से मारा जाना उनके लिए बहुत अच्छा है।

यह सब रावण अपने सुभटों की कमजोरी छिपाने के लिए कह रहे हैं। मानो वे सब राजा वे मुकुट गिरने से क्रुद्ध होकर वानरी सेना पर धावा करने के अभिप्राय से दौड पड़े हैं।

पुनि सकोप बोलेउ जुवराजा। गाल बजावत तोहि न लाजा ॥
मरु गर काटि निलज कुलघाती। बल बिलोकि बिहरति नहि छाती ॥२॥

अर्थ : फिर युवराज अङ्गदजी क्रोध करके बोले कि तुझे गाल बजाते लज्जा नही आती। रे निर्लज्ज कुलघाती ! तू गला काटकर मर जा। बल देखकर तेरी छाती नही फटी।

व्याख्या : इसी को गाल बजाना कहते हैं कि वे तो मारे डर के भागे चले जाते हैं और आप कह रहे हैं : एहि विधि वेगि सुभट सब धावहु। खाहु भालु कपि जहँ तहँ पावहु। राजा होकर ऐसी बात बोलता है। इस पर अङ्गदजी कहते है कि गाल बजाते तुझे लज्जा नही लगती। मेरा बल देखकर तेरी छाती फट जानी चाहती थी। इतने बडे पराभव को तू कैसे सह रहा है। यदि छाती नही फटी तो गला काटकर प्राण दे दे। अब कौन सा मुख ससार मे दिखलावेगा। जिसे छोटे वदन बात वड कहसी कहता था उसने पराक्रम करके दिखला दिया। तेरी सारी सभा भाग खड़ी हुई और स्वयं तुम छ सिरो पर मुकुट लगाये बैठे हो। चार सिर नङ्गे ही हैं।

रे तियचोर कुमारग गामी। खल मलरासि मंदमति कामी ॥
सन्यपात जल्पसि दुर्बादा। भयेसि कालबस खल मनुजादा ॥३॥

अर्थ : रे स्त्रीचोर ! कुमार्गी खल मल की ढेर मन्दबुद्धि कामी ! तुझे मानसिक सन्निपात हो गया है। उसी मे दुर्वाद बक रहा है। रे मनुष्यो का भक्षण करनेवाला खल ! तू काल के वश हो गया है।

व्याख्या : अङ्गदजी ने रावण के कहे हुए रामजी के प्रति छ निन्दासूचक वचनो के बदले उतने ही कठोर शब्द कहे। वस्तुत: यह कठोर शब्द नही है। रावण के कथन का उत्तर है। अङ्गदजी कहते हैं तू स्त्रीचोर सरकार को बलहीन बतलाया है। तू कुमार्गगामी उन्हे गुणहीन कहता है। तू खल है और उन्हे प्रतापहीन कहता है। तू मलराशि होकर उन्हे तेजहीन बतलाता है। स्वय तू मन्दमति है और सरकार को बुद्धिहीन कह रहा है। तू कामी सरकार की निन्दा अमान कहकर कर रहा है। तुझे मानसिक सन्निपात हो गया है। यथा : काम वात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा। प्रीति करहि जो तीनो भाई। उपजै सन्निपात दुखदाई। जैसे सन्निपात मे लोग दुर्वाद कहते हैं वैसे ही मानसिक सन्निपातवश तू दुर्वाद कह रहा है। कालदंड गहि काहु न मारा। हरै धर्म बल

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बुद्धि विचारा। सो तू कालवश हो गया है। यह : रे कपि अधम मरन अब चहसी। का उत्तर है।

याको फल पावहुगे आगे। बानर भालु चपेटन्हि लागे॥
राम मनुज बोलत असि बानी। गिरहिं न तव रसना अभिमानी॥४॥
गिरिहहिं रसना संसय नाहीं। सिरन्हि समेत समर महि माहीं॥५॥

अर्थ : इसका फल तुमको बन्दर भालु के चपेटा लगने से आगे चलकर मिलेगा। राम मनुष्य हैं : ऐसी वाणी बोलते हुए रे अभिमानी ! तुम्हारी जीभ नहीं गिर पड़ती ? तुम्हारी जीभ गिरेगी इसमे सन्देह नही। पर सिरो के साथ रणांगण में गिरेगी।

व्याख्या : दुर्वाद का फल चपेटा है। सो इस समय नही मिल रहा है। क्योंकि यह अनुकूल देशकाल नही है। आगे चलकर मिलेगा। यथा : चहुँ दिसि चपेटन्हि मारि नखन्हि विदारि तेहि व्याकुल कियो।

अब अङ्गदजी ऐसे मनुज अनेक का उत्तर देते हुए कहते हैं कि तुम जान करके भी अभिमान वश उनको मनुज कहते हो। इसका फल तो यही है कि ऐसी अकल्याणकर बात बोलनेवाली जीभ गिर जाय। क्योंकि जिह्वा का फल तो सरकार की स्तुति है। यथा : रसना साँपिनि वदन बिल, जे न जपहिं हरि नाम। तुलसी प्रेम न राम सो, ताहि विधाता बाम। सो जीभ गिरने मे जो देर हो रही है वह इसलिए कि वह जीभ समरांगण मे सिरो के समेत गिरेगी। यह अपराध इतना बड़ा है कि गाली नही जा सकता।

सो. सो[1] नर क्यों दसकंध, बालि बधेउ जेहि एक सर।
बीसहु लोचन अंध, धिग तव जनम कुजाति जड़॥३३॥

अर्थ : हे दसकण्ठ ! जिसने एक बाण से बालि को मारा वह मनुष्य कैसे है ? तुम बीसो आंखो से अन्धे हो। तुम कुजाति हो जड हो। तुम्हारे जन्म को धिक्कार है।

व्याख्या : अमानुष कर्म दिखलाते हुए अङ्गदजी कहते हैं कि उन्होने बालि को एक बाण से मारा। रामजी ने जब प्रतिज्ञा की कि : सुनु सुग्रीव मैं मारिहौं बालिहि एकहि बान। तब सुग्रीव को विश्वास नही हुआ कि एक बाण से बालि मारा जा सकता है। बोल बैठे कि : बालि महाबल अति रनधीरा। जब परीक्षा लेने पर विश्वास हुआ तो साथ ही साथ यह ज्ञान भी हुआ कि ये मनुष्य नही हैं। ईश्वर हैं। यथा : देखि अमित बल बाढी प्रीती। बालि बधब इन्ह भइ परतीती। उपजा ज्ञान बचन तब बोला। नाथ कृपा मन भयउ अलोला। अत रामजी मनुष्य

१. यहाँ काव्यलिङ्ग अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नही हैं। सुग्रीव को दो आँखें हैं। उन्होंने पहिचान लिया। तुम्हे बीस आँखें हैं। तुम नही पहिचान सकते। क्या किसी आँख से कुछ नही सूझता ?

साधु समाज न जाकर लेखा। राम भगत महु जासु न रेखा। जाय जिअत जग सो महि भारू। जननी जौबन बिटप कुठारू। अत तुम्हारे जीवन को धिक्कार है। तू पितृ पितामह क्रम मे न पडके मातामह के क्रम मे पडा। अत तू कुजाति है और तू जडमति है। इसलिए जड है।

दो तव सोनित की प्यास, तृषित राम सायक निकर।
तजौ तोहि तेहि त्रास, कटु जल्पक निसिचर अधम ॥३३ क॥

अर्थ रामजी के बाण तेरे रक्त के प्यासे हो रहे हैं। रे कटुवादी अधम राक्षस ! उसी भय से मै तुम्हे छोड देता हूँ।

व्याख्या प्यासे का पेय यदि कोई हरण कर ले तो वे उसपर अत्यन्त क्रुद्ध हो जाते है। रामजी के बाणो को तेरे रक्त की पिपासा है। यदि मैं तुम्हे मार डालूँ तो वे मुझपर बडे क्रुद्ध हो जावेंगे और मै उनके क्रोध से डरता हूँ। इससे तुझे नही मारता। नही तो निशिचर होने से अधम होने से तथा कटु जल्पक होने से तू सब प्रकार से वध्य है।

मैं तव दसन तोरिबे लायक। आयसु मोहि न दीन्ह रघुनायक ॥
अस रिसि होत दसौ मुख तोरौ। लंका गहि समुद्र महँ बोरौ ॥१॥

अर्थ मैं तेरे दाँत तोडने मे समर्थ हूँ। पर मुझे रघुनायक ने आज्ञा नही दी। ऐसा क्रोध होता है कि तेरे दसो मुख को तोड डालूँ और लंका को उठाकर समुद्र मे डुबा दूँ।

व्याख्या मरकट हीन करहु महि जाई। जिअत धरहुँ तापस दोउ भाई। का उत्तर देते हुए अङ्गदजी कहते है कि ये जो भागे जाते है इनकी गिनती क्या है। मैं तेरे दाँत तोडने मे समर्थ हूँ। सरकार ने मुझे केवल बतकही की आज्ञा दी है। यथा काज हमार तासु हित होई। रिपुसन करेहु बतकही सोई। इसका अभिप्राय ही यही है कि कोई उपद्रव न कर बैठना।

मैं समर्थ भी हूँ और मुझे क्रोध भी ऐसा है कि तेरे सब मुखों को खण्डित कर दूँ जिन मुखो से तेरे ऐसी बेतुकी बातें निकली हैं और मही को राक्षसहीन करने के लिए लंका को उठाकर समुद्र मे डुबा दूँ। तेरे एक मुख ने राम की निन्दा की है। पर मेरा क्रोध इतना है कि उसी एक को तोडकर शान्त न होगा। दसो को ताड डालूँ और लंका को समुद्र मे डुबा दूँ तो शान्त होगा।

गूलरि फल समान तव लंका। बसहु मध्य तुम जंतु असंका ॥
मैं बानर फल खात न बारा। आयसु दीन्ह न राम उदारा ॥२॥

अर्थ गूलर के फल के समान तेरी लंका है। उसी मे तुमलोग कीडों की

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भाँति निःशङ्क होकर बसते हो। मैं वानर ठहरा। मुझे फल खाने में देर नहीं। पर उदार रामजी ने आज्ञा न दी।

व्याख्या : गूलर के फल के भीतर जन्तुओं को बाह्य जगत् से कोई सम्बन्ध नहीं रहता। वे निडर होकर उसी गूलर फल में बसते हैं। इसी भाँति लंकापुरी भी संसार भर से असम्बद्ध है। यथा : खाईं सिंधु गभीर अति चारिहिं दिसि फिरि आव। मैं ऐसा बन्दर हूँ कि इस लंका को गूलर के फल के समान भक्षण कर सकता हूँ अर्थात् लंका के लिए मैं कालस्वरूप हूँ। यथा : ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्मांड अनेक निकाया। जीव चराचर जन्तु समाना। भीतर बसहिं न जानहिं आना। ते फल भच्छक कठिन कराला। तव भय डरत सदा सोउ काला। मैं ऐसा बन्दर नहीं हूँ कि तुम्हारे राक्षस मुझे पकड़कर मार डालें। निर्गलितार्थ यह कि सम्पूर्ण लंका को विध्वंस करना मेरे लिए खेल है और तेरी उक्तियों से मुझे क्रोध भी ऐसा ही है। पर स्वामी हमारा बड़ा उदार है। शत्रु का भी अहित नहीं चाहता। यदि तुम सीताजी को देकर मिल जाओ तो तुम्हारा अपराध क्षमा हो सकता है। उन्होंने आज्ञा नहीं दी और बिना उनकी आज्ञा हम फल नहीं खाते। यथा : सिंधु पार प्रभु डेरा कीन्हा। सकल कपिन्ह कहँ आयसु दीन्हा। खाहु जाइ फल मूल सुहाये। सुनत भालु कपि जहँ तहँ धाये।

जुगुति सुनत रावन मुसुकाई। मूढ़ सिखिहि कहँ बहुत झुठाई॥
बालि न कबहुँ गाल अस मारा। मिलि तपसिन्ह तैं भयेसि लबारा॥३॥

अर्थ : युक्ति सुनते ही रावण मुसकराया। कहने लगा कि मूढ़! तूने ऐसी झुठाई कहाँ सीखी? बालि ने तो कभी ऐसी शेखी नहीं बघाड़ी। तपस्वियों के साथ से तू भी झूठा हो गया।

व्याख्या : अङ्गदजी ने जानबूझकर ऐसी बात कही जिससे रावण उन्हें झूठा कहे और तब उन्हें बल प्रदर्शन का अवसर मिले। इससे अधिक उसे निरुत्तर करने का कोई उपाय नहीं था। अङ्गदजी की युक्ति काम कर गयी। रावण मुसकुरा पड़े। कहने लगे कि तूने इतना झूठ कहाँ से सीखा? तू मूढ़ है। तुझे इतना परिज्ञान नहीं है कि मैं तेरी धमकी में नहीं आ सकता। यदि कहो कि बालि से सीखा तो बालि ऐसा गप्प नहीं हाँकता था। भाव यह कि वह भी गप्प हाँकता था। कहता था कि मैंने रावण को काँख में दाब रक्खा था। पर इतना गप्प नहीं हाँकता था जितना कि तू हाँकता है।

ये तपस्वी झूठ बहुत बोला करते हैं और न हो तो अपनी आयु ही बहुत बड़ी बतलाते हैं। अथवा श्रीरामजी तथा लक्ष्मणजी पर आक्षेप करता है कि ये लोग झूठ बोलते हैं। उनका साथ करते करते तू भी झूठा हो गया।

साँचेहु मैं लबार भुज बीहा। जौं न उपारिउँ तव दस जीहा॥
समुझि राम प्रताप कपि कोपा। सभा माँझ पन करि पद रोपा॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

अर्थ : यदि मैं तेरी दसो जीभ न उखाड लूँ तो सचमुच ही मैं झूठा हूँ। मजी के प्रताप को स्मरण कर अङ्गदजी ने क्रोध किया और सभा मे प्रण करके रोप दिया।

व्याख्या : अङ्गदजी कहते है कि तुझे बीस भुजा होने का अभिमान है तो प्रतिज्ञा सुन। मैं तेरी दसो जीभ उखाड लूँगा अर्थात् तुझे चुप कर दूँगा। प्रतिज्ञा करके अङ्गदजी ने प्रभु के प्रताप का स्मरण किया और क्रोध करके के बीच मे पैर रोप दिया। सभा के बीच मे पैर रोपने का भाव यह कि सम्पूर्ण ा के निवासियो को ललकार है। और तब तक जो राक्षस भागे थे वे लौटकर गये थे।

मम चरन सकसि सठ टारी। फिरहि राम सीता मै हारी॥
हु सुभट सब कह दससीसा। पद गहि धरनि पछारहु कीसा॥५॥

अर्थ : अङ्गदजी ने कहा कि रे शठ! यदि तू मेरा चरण हटा सके तो जी लौट जायँगे। मैं सीता को हारता हूँ। रावण ने कहा : सब वीरो! सुनो बन्दर का पैर पकडकर पृथ्वी पर पटक दो।

व्याख्या : भाव यह कि अभी झूठ सच की परीक्षा हुई जाती है। मैं दूत हूँ सन्धि विग्रह आदि करने का अधिकार है। मैं स्वामी की ओर से हार जीत कर ता हूँ। मैं पैर रोपे हुए हूँ। इस पैर को यदि तुम हटा दो तो रामजी विना युद्ध से लौट जायँगे। मैं उनकी ओर से सीता को हारता हूँ। यह स्वामी की महा हमा और सेवक के वज्र विश्वास का उदाहरण है। यथा : तेहि समाज कियो ठन पन जेहि तौल्यो कैलास। तुलसी प्रभु महिमा कहौं सेवक को बिस्वास।

जिस भाँति अङ्गदजी अपने स्वामी के प्रतिनिधि होकर हार जीत की प्रतिज्ञा ते है उसी भाँति रावण स्वय न उठकर अपने प्रतिनिधि रूप से लङ्का के वीरो आज्ञा देता है कि लो! सब झगडा खतम हुआ जाता है। बस इस बन्दर का पकडकर पृथ्वी पर पछाड दो।

द्रजीत आदिक बलवाना। हरषि उठ जह तह भट नाना॥
टहिं करि बल विपुल उपाई। पद न टरै बैठहि सिरु नाई॥६॥

अर्थ : इन्द्र के जीतनेवाले मेघनाद आदि योद्धा होकर उठ खडे हुए तथा य नाना भट भी खडे हुए। वे बहुत बल लगाकर अनेक उपाय करके झपटते थे। र जब पैर न टला तो सिर नीचे करके बैठ गये।

व्याख्या : वारिदनाद जेठ सुत तासू। भट मह प्रथम लीक जग जासू। सो हले ही मेघनाद उठ पडे। मन मे सोचा कि यह कौन सी बडी बात है और उसके मकक्ष और भी वीर कुमुख अकपन कुलिसरद धूम्रकेतु अतिकाय। एक एक जग ोत सक ऐसे सुभट निकाय। उठ खडे हुए। इनके अतिरिक्त नाना भट भी हर्षित

ankurnagpal108@gmail.com



होकर उठ खड़े हुए कि विना युद्ध किये पैर पकड़ कर गिरा देना कौन सी बड़ी बात है। यह तो हम भी कर सकते है। बड़ी प्रसन्नता है कि सहज मे ही बड़ी भारी बला टली जिसकी चिन्ता हम लोगो को रात दिन थी।

झपेटा मे ही गिरा देना चाहते हैं। फिर पूरी शक्ति लगा देते है। फिर भी काम होते न देखकर नखक्षत आदि करते है। पैर नही टलता तो सिर नीचा करके वैठते हैं। एक अङ्गद द्वारा सबका पराभव हुआ। अङ्गद ने दिखला दिया : मैं वानर फल खात न वारा।

पुनि उठि झपटहिं सुर आराती। टरै न कीस चरन एहि भाँती ॥
पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी। मोह बिटप नहि सकै उपारी ॥७॥

अर्थ : देवशत्रु फिर उठ उठकर झपटते हैं। परन्तु अङ्गदजी का चरण इस भांति नही हिलता जिस भांति कुयोगी पुरुष मोह के वृक्ष को नही उखाड़ सकते।

व्याख्या : जव वल करके सव थक जाते थे तव आकर वैठ जाते थे। दम ले लेकर फिर उठते थे यह समझकर कि इतने वीर बल लगा चुके। अव तो अङ्गद थक ही गये होगे। पर उनका चलाया अङ्गद का पैर नही चलता। यहाँ कवि उपमा देते हैं कि जैसे जिन योगियो के हृदय मे रामप्रेम नही है वे योग करते करते मर जाते हैं पर उनका मोह नही जाता। यथा ' जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नही राम प्रेम परधानू।

दो. भूमि न छाड़त कपि चरन, देखत रिपु मद भाग।
कोटि विघ्न ते संत कर, मन जिमि नीति न त्याग ॥३४॥

अर्थ : अङ्गदजी का पैर पृथ्वी नही छोड़ता। यह देखकर शत्रु का अभिमान दूर हो गया। जैसे कठोर विघ्न होने पर भी सन्त का मन नीति को नही त्यागता।

व्याख्या : यहाँ पृथ्वी की उपमा नीति से है और सन्त की उपमा कपिचरण से है और सुर आराती के झपट की उपमा कोटि विघ्न से है। इतने वीर उठे और थककर वैठ गये। अङ्गदजी का पैर हटा न सके। यह देखकर रावण का अभिमान दूर हो गया। रावण कहते थे : तुम सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ। सो जिसे कूलद्रुम समझते थे वह तो कैलास से भी अधिक अचल प्रमाणित हो रहा है। जिसका पैर उठाया नही उठता उससे युद्ध करने की कौन सी कथा है। वह ठीक कहता है : आयसु पै न दीन्ह रघुनाथा। इस भांति रावण का अभिमान दूर हुआ।

अव कपि के चरण के पृथ्वी न छोड़ने की उपमा सन्त के मन का नीति के न त्यागने से देते है। नीति पथ पर चलने में अनेकानेक बाधाएँ उपस्थित होती हैं। जिनसे अभिभूत होकर सामान्य लोग नीति छोड़ देते हैं पर सन्त की यही परीक्षा है कि चाहे कितने विघ्न आवें पर वे कभी नीति पथ का परित्याग नही कर सकते। यदि नीतिपथ से विचलित हो गये तो वे सन्त नही। न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पद न धीरा.।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कपि बलु देखि सकल हिय हारे। उठा आपु कपि के परचारे॥
गहत चरन कह बालि कुमारा। मम पद गहे न तोर उबारा॥१॥

अर्थ : बन्दर का बल देखकर सबकी हिम्मत छूट गयी। तब अङ्गदजी के ललकारने पर स्वयं उठा। पैर पकड़ते समय बालि के बेटे ने कहा कि मेरे पैर पकड़ने से तेरी रक्षा न होगी।

व्याख्या : जब किसी उपाय से पैर न उठा तब सबका साहस जाता रहा। अब कोई पैर उठाने नहीं आ रहा है। अङ्गदजी ने यह दिखला देना चाहा कि तू केवल निर्भयता का दिखावा करता है। वस्तुतस्तु तू श्रीरामजी के आगमन से भयभीत है। यदि भयभीत न होता तो सबको मेरा चरण पकड़ने को क्यों कहता? कह सकता था कि सीता लङ्का में कैद है। तुम उसे हारने क्या आये हो? बात तो यह है कि राम किसी भाँति फिर जायँ। हम लोगों की रक्षा हो। इसी भावना से रावण ने चरण पकड़ने की आज्ञा दी और इसी अभिलाषा से इन्द्रजीत आदिक योद्धा तैयार हो गये। जब अङ्गदजी ने देख लिया कि अब कोई पैर उठाने नहीं आता है तब रावण को ललकारा कि बहुत कहते थे कि मैंने कैसे कैलास उठाया है। आज तुम्हारा कैलास उठाना देखा जायगा। आओ उठाओ।

रावण रामजी के लौट जाने के इतने इच्छुक थे कि स्वयं राज सिंहासन छोड़कर दूत का पैर पकड़ने चले। साहस तो उनका भी छूटा हुआ था पर ललकार पर उठ ही गये। रावण अङ्गदजी के पास पहुँच गये और झुके पैर उठाने को। अङ्गदजी ज्यों का त्यों पैर रोपे हुए उससे बोले कि मेरे पैर पकड़ने से तेरी रक्षा न होगी। तू पैर नहीं उठा सकेगा। जब तू इतना आर्त्त है कि अपनी रक्षा के लिए उठकर मेरा पैर पकड़ने आया तो :

गहसि न रामचरन सठ जाई। सुनत फिरा मन अति सकुचाई॥
भयेउ तेजहत श्री सब गई। मध्य दिवस जिमि ससि सोहई॥२॥

अर्थ : रे शठ! तू रामजी का चरण क्यों नहीं पकड़ता। सुनते ही मन से बहुत लज्जित होकर लौट आया : वह तेज हत हो गया। उसकी श्री चली गयी। जैसे मध्याह्न के समय चन्द्रमा की गति हो जाती है।

व्याख्या : अङ्गदजी जानते हैं कि यहाँ रामप्रताप काम कर रहा है। रावण भी मेरा पैर नहीं उठा सकता। परन्तु यह नहीं चाहते थे कि वह पैर उठावे और उनका पैर उससे न उठे। क्योंकि ऐसा होने से रावण वध का यश जो रामजी को मिलनेवाला है बहुत कुछ कम हो जायगा। लोग कहेंगे कि जो रावण अङ्गद का पैर नहीं उठा सका उसके मारने से रामजी का कौन सा पुरुषार्थ है। अतः अङ्गदजी ने ऐसी बात कही जिससे रावण का परम हित हो और रामजी का भी कार्य हो। उन्होंने कहा कि जब रामजी के लौट जाने के लिए तुम मुझ दूत का भी चरण ग्रहण कर रहे हो तो इसी भाँति रामजी का चरण ग्रहण करो। जब यहाँ तक के

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


लिए तुम तैयार हो गये तब भी रामजी के चरणग्रहण करने मे पराङ्मुख होना तुम्हारी शठता है।

रावण यह बात सुनते ही अति सङ्कुचित हुए और तुरन्त लौट गये सम्भावित सम्राट् होकर दूत के ललकार पर पैर पकड़ने उठे और वह मजाक करता है। रावण यदि समझते कि वे पैर उठा सकते हैं तो वे ऐसे जीव नही थे कि अङ्गदजी के ऐसा कहने पर सङ्कुचित होकर लौट जाते। उन्होने समझ लिया कि जब इन्द्रजीत इसे नही उठा सकता तो मुझसे भी नही उठेगा; मुझसे बड़ी चूक हुई जो मैं दूत के पैर पकडने उठ पड़ा। अब जो कुछ वह कहता है ठीक है।

यहाँ रावण ऐसे चूके कि उनके पास कोई उत्तर नही है। उनका तेज जाता रहा। बडा भारी पराभव होने से मुखपर से राज्यश्री जाती रही। रामजी प्रबल प्रताप मध्याह्न के सूर्य की भांति ऐसे चमके कि रावण की दशा उस समय के चाँद की भाँति हो गयी। अङ्गदजी ने रामप्रताप का स्मरण करके प्रतिज्ञा की सो रामप्रताप ने पूरा कर दिया।

सिंहासन बैठेउ सिर नाई। मानहु संपति सकल गँवाई ॥
जगदातमा प्रानपति रामा। तासु बिमुख किमि लह बिश्रामा ॥३॥

अर्थ : वह सिर नवाकर सिंहासन पर जा बैठा। मानो उसने सारी सम्पत्ति गँवा दी। रामजी जगत् के आत्मा और प्राणपति है। उनके विमुख को विश्राम कैसे मिलेगा ?

व्याख्या : रावण का गाल बजाना बन्द हो गया। दसो जिह्वाएँ स्तम्भित हो गयी। अङ्गद का प्रण पूरा हुआ। यही दसो जिह्वाओ का उखाड़ना है। जिस तरह पैर न उठा सकने पर सब सिर नीचा करके बैठे थे उसी भांति रावण भी सिंहासन पर सिर नीचा करके बैठे[1]। अतः भयेउ तेज हत कहा। अब मानहु सपति सकल गँवाई से श्री सब गयी इस उक्ति को स्पष्ट करते है।

अब श्री गोस्वामीजी कहते हैं कि रामजी जगत् की आत्मा हैं। अत. रावण की भी आत्मा है। उसके भी प्राण के पति है। ससार को विश्राम आत्मा मे ही मिलता है। क्योंकि वही अत्यन्त प्यारा है। उस जगदम्बा से जो विमुख हुआ उसे विश्राम कहाँ ?

उमा राम की भृकुटि बिलासा। होइ बिस्व पुनि पावै नासा ॥
तृन ते कुलिस कुलिस तृन करई। तासु दूत पन कहु किमि टरई ॥४॥

---

१. दो प्रकार की चतुराई होती है। एक हरि सम्मुख ले जानेवाली और दूसरी विमुख ले जानेवाली। रावण अङ्गद सवाद मे दोनो का सामना पड गया। अन्त मे पहिली चतुराई की विजय हुई। रावण सिर झुकाकर बैठे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : हे उमा ! रामजी के भृकुटि विलास से विश्व उत्पन्न होता है। और लय हो जाता है जो तृण को वज्र और वज्र को तृण बनाता है उसके दूत का पैर कैसे टल सकता है।

व्याख्या : सशय का अवसर देखकर शिवजी स्वयं समाधान किये देते हैं। कहते हैं कि विश्व की उत्पत्ति स्थिति और सहार रामजी के भृकुटि विलास से होता है। अर्थात् जगत् की उत्पत्ति स्थिति तथा लय ऐसा महान् कार्य उनके द्वारा आनायासेन होता है और यह भी भाव है कि एक कल्प जो ब्रह्मदेव का एक दिन है वह रामजी का एक निमिष है। अत: वे ब्रह्मदेव से भी अत्यन्त महान् हैं। तृण को वज्र और वज्र को तृण वे दिन रात बनाया करते हैं। बन्दर तृण से वज्र और राक्षस वज्र से तृण बना रहे हैं। ऐसे समर्थं का जो दूत है उसका पैर कैसे टलेगा। ऐसे समय पर शिवजी उमा को बराबर सावधान किया करते हैं। यथा : उमा न कछु कपि के अधिकाई। प्रभुप्रताप जो कालहि खाई।

पुनि कपि कही नीति विधि नाना। मान न ताहि कालु नियराना ॥
रिपुमद मथि प्रभु सुजस सुनायो। यह कहि चल्यो बालि नृपजायो ॥५॥

अर्थ : फिर अङ्गदजी ने नाना प्रकार की नीति कही। पर उसकी मृत्यु निकट थी। उसने एक न मानी। शत्रु के मद का मन्थन करके प्रभु का सुयश सुनाया और बालि का राजकुमार यह कहकर चला।

व्याख्या : अब अभिमान भंग हो गया है। सम्भव है कि इसे श्रवण का अधिकार प्राप्त हो गया हो। अत. ऊँचा नीचा दिखाते हुए उसे अनेक प्रकार की नीति कह कहकर समझाया। पर रावण का काल सन्निकट था। उसने न माना : कालदड गहि काहु न मारा। हरै धर्म बल बुद्धि बिचारा।

भूमि न छाड़त कपि चरन देखत रिपु मद भाग। इसलिए कहते हैं कि अङ्गदजी ने पहिले शत्रु के मद का मन्थन किया तत्पश्चात् प्रभु का सुयश सुनाया। पहिले तो रावण सुयश सुनता ही नहीं था। उत्तर देने लग जाता था। परन्तु अब निरुत्तर होकर सुन तो लिया पर माना एक नहीं। तब अङ्गदजी अन्त मे यह कहकर वहां से चले कि :

हतउँ न खेत खेलाइ खेलाई। तोहि अबहि का करौ बड़ाई ॥
प्रथमहि तासु तनय कपि मारा। सो सुनि रावन भयउ दुखारा ॥६॥
जातुधान अंगद पन देखी। भय व्याकुल सब भये बिसेखी ॥७॥

अर्थ : तुझे रणक्षेत्र मे खेल खेलाकर न मारूँ तो अभी तुझसे क्या बड़ाई करूँ। अङ्गदजी ने पहिले ही उसके पुत्र का वध किया था। यह सुनकर रावण और भी दुखी हुआ। राक्षस लोग अङ्गद का प्रण देखकर विशेषरूप से व्याकुल हुए।

व्याख्या : थकाकर मारना तथा युद्ध करने के लिए अवसर देते जाना इसी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


को खेलाना कहते हैं। शत्रु को अवसर पाते ही वध कर देने का नियम है। परन्तु अत्यन्त बलवान् लोग शत्रु को अवसर पाने पर भी कई बार छोड़ देते हैं। जिसमें उसको युद्ध का हौसला बाकी न रहे। अङ्गदजी कहते है कि हम लोग तुम्हे खेला खेलाकर मारेंगे। यथा : गहि भूमि पारेउ लात मारेउ बालिसुत प्रभु पहँ गयो। यथा : अस कहि अगद मारेउ लात। अङ्गदजी कहते हैं कि इस समय बड़ाई क्या करूँ। भाव यह कि समरागण मे कहूँगा। यथा : रन ते निलज भाजि गृह आवा। इहाँ आइ बक ध्यान लगावा। इत्यादि।

अङ्गदजी के चले जाने पर राक्षसो ने प्रशरतकुमार के मारे जाने का वृत्तान्त सुनाया। पहिले कहने से रावण पूछते कि कौन कौन उस समय थे और उन्होने बन्दर को क्यो नही मारा। समाचार देनेवाले का बडा उत्तरदायित्व था। अब ऐसे प्रश्न के लिए किसी का मुँह नही रह गया। तब राक्षसो ने समाचार सुना दिया। रावण ने भी चुपके से सुन लिया और बहुत दु खी हुआ।

हनुमान्‌जी का बल देखकर तो सब विकल थे। पर रावण अपनी उक्तियो से धैर्य देता जाता था कि सेनाभर मे एक वही बन्दर बलवान् है। पर आज वह धारणा भी जाती रही। दूसरा बन्दर जो आया। उसके बल का भी वारापार किसी को न मिला। अत वे सब विशेषरूप से भयव्याकुल हुए।

दो. रिपु बल धरषि हरषि कपि, बालितनय बलपुज।
पुलक सरीर नयन जल, गहे रामपद कज॥

## मन्दोदरी का रावण को समझाना : चौथी बार

दो. साँझ जानि दसकंधर, भवन गये बिलखाइ।
मदोदरी रावनहि, बहुरि कहा समुझाइ॥३५॥

अर्थ · शत्रु के बल को रगडकर बालि के पुत्र बलपुज अङ्गद ने प्रसन्न होकर रामजी के चरणकमल को पकडा। सन्ध्या समय जानकर रावण बिलखकर महल मे आये। तब मन्दोदरी ने उस राक्षस को फिर समझाकर कहा।

व्याख्या बल का अर्थ सेना भी होता है। अङ्गदजी ने रावण को और उनके सम्पूर्ण सुभटो का अच्छी तरह से रगड दिया। उनको बतकही के लिए आज्ञा हुई थी। यथा काज हमार तासु हित होई। रिपुसन करेहु बतकही सोई। सो बतकही मे रावण की जिह्वा स्तम्भित कर दिया। इस सफलता पर हर्षित हैं। चलने के समय : स्वय सिद्ध सब काज नाथ मोहि आदर दयउ। अस बिचारि जुवराज तन पुलकित हरषित हिये। और आये तब भी पुलक तन होकर आये। चलने के समय रामदूत के पद प्राप्ति के आनन्द से पुलक उठ रहा था और लौटे तो सरकार के कृपाकटाक्ष के प्रभाव की असीम महिमा का ध्यान करके आनन्द से सजल नयन और पुलकतन हो रहे थे। पूरा दिन रावण की सभा मे बीता।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


रावण सन्ध्या समय सभा से घर जाते थे। यथा : सन्ध्या समय जानि दससीसा। भवन चलेउ निरखत भुज बीसा। सो आज भी सन्ध्या समय घर चले। परन्तु बिलखाकर घर गये। भुज बीस का भरोसा जाता रहा। लड़का मारा गया इस बात का भी बड़ा दुःख है। सभा के बीच मे मानमर्दन हुआ यह ऊपर से। मन्दोदरी तीन बार समझा चुकी है। अन्तिम बार फिर समझाने चली है कि इतनी दुर्दशा पर सम्भव है कि मेरी बातों का कोई प्रभाव पड़े। पर वह निशाचर है। भली बात मान नही सकता।

कंत समुझि मन तजहु कुमतिही। सोह न समर तुमहि रघुपतिही॥
रामानुज लघु रेख खँचाई। सोउ नहि नाघेहु असि मनुसाई॥१॥

अर्थ : हे कन्त! मन मे समझकर कुमति को छोड़ दो। तुम्हारे और रघुपति के बीच की लड़ाई शोभा नही देती। रामजी के छोटे भाई ने छोटी सी रेखा खैंच दी। उसका उल्लघन न कर सके। ऐसा तो तुम्हारा पुरुषार्थ है।

व्याख्या : मन्दोदरी को सभा मे जो जो दुर्गति हुई है उसका अक्षरशः पता है। आज सभा सहित रावण का पराभव अङ्गद द्वारा हुआ है। किसी में इतना पुरुषार्थ नही था कि अङ्गद का पैर हटा सके। अतः आज रावण को यह उत्तर देने का मुँह नही है कि : जौ आवै मरकट कटकाई। जियहि बिचारे निसिचर खाई। कपहि लोकप जाकी त्रासा। तासु नारि सभीत बड़ि हासा। जानेउँ प्रिया तोरि चतुराई। एहि बिधि कहेउ मोर प्रभुताई। इत्यादि। अतः मन्दोदरी बोली। यहाँ कन्त सम्बोधन का भाव यह कि केवल स्त्री ही भाग्य की सगिनी है। अतः उसे भले बुरे मे सम्मति देने का अधिकार है। स्थिति बड़ी गम्भीर है। गाल बजाकर बात टालने से काम न चलेगा। तुमने कुमति का आश्रयण कर रक्खा है उसका परित्याग करो। विभीषण ने ठीक कहा था कि : तव उर कुमति बसी बिपरीता। तुम अनीति कर रहे हो। प्रीति बिरोध समान सन करिअ नीति अस आहि। श्रीरामचन्द्र मे और तुम मे बड़ा भारी अन्तर है। उनसे वैर बढाना बड़ी भारी कुबुद्धि है। अनीति है। अब उस अन्तर को स्पष्ट करती हुई कहती है कि तुम्हारा पुरुषार्थ तो इतना अल्प है कि रामजी की बात तो दूर रहे उनके छोटे भाई ने सीताजी के चारों ओर रक्षा के लिए एक रेखा खैंच दी थी। उसका उल्लघन करके सीताजी का हरण न कर सके। वहाँ जाकर भिक्षा माँगना पड़ा। जब सीताजी रेखा के बाहर आयी तब तुम हरण कर सके। जिसकी खैंची हुई रेखा का उल्लङ्घन करना तुम्हारे सामर्थ्य के बाहर की बात है उससे युद्ध करने की बात मन मे लाना भी अकल्याणकर है। ऐसे बलवान् से युद्ध करने में शोभा नही है। सूर्य के साथ खद्योत का युद्ध कैसा?

पिय तुम्ह ताहि जितब संग्रामा। जाके दूत केर यह कामा॥
कौतुक सिंधु नाँघि तव लंका। आयेउ कपि केहरी असंका॥२॥

अर्थ : हे प्रिय! तुम उसे युद्ध मे जीतोगे? जिसके दूत की ऐसी करणी है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



खेल में ही समुद्र का उल्लङ्घन करके तुम्हारी लंका में वह कपि केसरी बेडर चला आया।

व्याख्या : तुम प्रिय हो। तुम्हारा अनिष्ट न हो इसलिए कहती हूँ कि विचारो तो तुम सीता को जो नही देते हो। वह जीत की आशा से ही नहीं दे रहे हो। सो क्या तुम उन्हें जीत सकोगे? : पीड़ा बढ़ाने के लिए पुत्रवध तथा पैर न उठा सकने का नाम नहीं लेती है। केवल इंगित किये देती है : जिसके दूत की ऐसी करणी है। दूत के योद्धा होने का नियम नही है। उसके सुभट सेनापति और स्वयं उसके सामने तुम क्या कर सकोगे? यह बात भी नही कि सेनाभर में केवल अङ्गद ही बलवान् है। इसके पहिले भी दूत के ही रूप से कपिकेसरी आया था। शौर्य क्रौर्य आदि गुणों से हनुमान्‌जी को कपिकेसरी कहती है। अथवा केसरी के पुत्र होने से कपि केसरी कह रही है। अङ्गद तो सेतु बँधने पर आया है और वह कपि केसरी तो समुद्र लाँघकर आया। समुद्रोल्लघन उसके लिए खेल था। यथा : लीलहि लाँघउँ जलनिधि खारा। उसके पराक्रम और साहस को देखो कि अकेला तुमसे रक्षित जो लङ्कापुरी है उसमें घुस आया।

रखवारे हति बिपिन उजारा। देखत[1] तोहि अच्छ तेहि मारा ॥
जारि सकल पुर कीन्हेहि छारा। कहाँ रहा बल गर्व तुम्हारा ॥३॥

अर्थ : रखवालों को मारकर वन को उजाड़ डाला। तुम्हारे आँखों के सामने अक्षकुमार को मारा नगर को जलाकर छार कर दिया। तब तुम्हारे बल का अभिमान कहाँ रह गया?

व्याख्या : इतनी जबरदस्ती उसने तुम्हारे साथ की। प्राणों से प्यारा मेघनाद सा दुलारा बाग उसने उजाड़ा रक्षकों को मार डाला। तुम्हारे सामने अक्षकुमार का वध किया। सोने की लङ्का जलाकर छार कर दिया। थोड़े से सोने का जलाना कठिन होता है। उसने तुम्हारी सोने की लङ्का जलाई। बेटा मारा सेना का संहार किया और तुम उसका कुछ न कर सके। तुम्हारा बल का अभिमान तो उसी ने तोड़ डाला अब क्या बल का अभिमान करते हो।

अब पति मृषा गाल जनि मारहु। मोर कहा कछु हृदय बिचारहु ॥
पति रघुपतिहि नृपति जनि मानहु। अगजगनाथ अतुल बल जानहु ॥४॥

अर्थ : हे पति! अब झूठी डीग न हाँको मेरा कहा कुछ मन में विचारो। हे स्वामी! रामजी को राजा न मानो। उन्हे चराचर का स्वामी और अतुल बल जानो।

व्याख्या : पति हो। तुम से ही मेरा सौभाग्य है। तुमने किसी के कहने का विचार नही किया। न बेटे का सुना न भाई का सुना न दादा : पुलस्त्य का सुना।

---

१. यहाँ विभावना : तृतीय : अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मैं तुम्हारी अर्धाङ्गिनी हूँ। मेरी बात को तो मन मे विचारो। झूठे गाल बजाने मे कुछ रक्खा नही है। हे स्वामिन्! रघुपति को कोरा नरपति न समझ रक्खो। मनुष्य कही ऐसे होते हैं? जो घटना घट रही है वह मनुष्य के सामर्थ्य की बात नही है। बन्दर समुद्रोल्लघन करके तुम्हारी लङ्का मे प्रविष्ट होकर अशोक वन विध्वस और अक्ष का वध नही कर सकता। बन्दर मे इतना सामर्थ्य नही हो सकता कि उसका पैर कोई न हटा सके। यहाँ परमेश्वरी शक्ति काम कर रही है। जिसके सामने तुम्हारे ऐसे की कुछ नही चल रही है। यह विचारने की बात है। अतः रामजी चराचर के नाथ हैं। तुमने चराचर से द्रोह कर रक्खा है। अत' चराचर की रक्षा के लिए वे आये हुए है उनके बल से हो सब बलवान् है उनके बल का नाप तौल नही है। उनका अपमान न करो।

बान प्रताप जान मारीचा। तासु कहा नहि मानेहि नीचा ॥
जनक सभा अगनित भुव पाला। रहे तुम्हउ बल अतुल बिसाला ॥५॥

अर्थ . बाण का प्रताप मारीच जानता था। तुमने नीचता करके उसका कहना नही माना। जनक की सभा म असरय राजा थे और बडे अतुल बलवाल तुम भी थे।

व्याख्या : उनके बाण का प्रताप मारीच जानता था। उसने तुमको कहा मुनि मख राखन गयउ कुमारा। बिनु फरसर रघुपति मोहि मारा। सत जोजन आयउँ छन माही। तिन सन बैर किये भल नाही। पर तुमने ऐसी नीचता की कि उस हितवादी को गालियाँ दी और अन्त मे उसका प्राण लेकर छोडा। यथा : जाहु भवन कुल कुसल बिचारी। सुनत जरा दीन्हिसि बहु गारी। : इस भाँति मन्दोदरी ने मुनिमख रक्षण की कथा कही अब सीता स्वयम्वर कह रही हैं।

जनक की सभा मे द्वीप द्वीप के राजा इकट्ठे थे। यथा : दीप दीप के भूपति नाना। आये सुनि हम जो पन ठाना। देव दनुज धरि मनुज सरीरा। बिपुल बीर आये रनधीरा। तुम भी अपने को बड़ा अतुल बल माननेवाले वही थे। भाव यह कि उस सभा मे पुरुषार्थ प्रकट करने का अवसर था।

भंजि धनुप जानकी बिआही। तब संग्राम जितेउ किन ताही ॥
सुरपति सुत जानइ बल थोरा। राखा जियत आँखि गहि फोरा ॥६॥
सूपनखा के गति तुम्ह देखी। तदपि हृदय नहि लाज बिसेखी ॥७॥

अर्थ : वहाँ रामजी ने धनुप तोड़कर जानकी को ब्याहा। तब तुमने उन्हे युद्ध मे क्यो नही जीता। इन्द्र के पुत्र ने उनके बल को थोड़ा समझा। उसे जीता तो छोडा पर पकड़कर आँख फोड़ दी। सूर्पणखा की दशा तुमने देखी तो भी तुम्हारे हृदय मे विशेप लज्जा नही है।

व्याख्या . इतने लोग वहाँ एकत्रित थे। पर किसी का तोड़ा धनुप न टूटा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रामजी ने अपने पुरुषार्थ का आश्रयण करके धनुष तोडकर जानकी ब्याहा। यदि जानकी की इच्छा थी तो तुमने धनुष क्यों नहीं तोडा ? यदि कहा कि गुरु का धनुष था इसलिए नहीं तोडा तो मैं पूछती हूँ कि उस समय रामजी का संग्राम में जीतने से तुम्हे किसने रोक रक्खा था ? बात यह थी कि तुम्हारा कुछ किया उस समय भी नहीं हुआ तो इस समय क्या करोगे ? इस भाँति बालकाण्ड की कथा मन्दोदरी ने सुनायी। अयोध्या में सरकार ने अपना पराक्रम कहीं नहीं दिखलाया और यहाँ पराक्रम की चर्चा चल रही है। इसलिए अयोध्या न कहकर आरण्य की कथा कहती हैं।

उनके बल के देखने की इच्छा ही उनके बल को थोडा समझना है। उनमे इतना अपरिमित बल है कि उसे कोई देख नहीं सकता। इन्द्र के बेटे ने परिमित बल माना। इसलिए उसने देखने की इच्छा की। उसकी यह गति हुई कि उसके प्राण पर आ बनी। सारे लोकपालों के यहाँ भागता फिरा। कहीं शरण न मिली तो फिर उन्हीं के शरण गया। सो प्राण तो छोड दिया। पर एक आँख फोड दी। कोई देवता हिल न सके। तुम्हे देवताओं के विजय का अभिमान है। तुमने युद्ध करके देवताओं पर विजय पायी है। उनके एक बाण के सामना का साहस सम्पूर्ण देवमण्डल न कर सका।

बल विक्रम सम्पन्न कामगा कामरूपिणी तुम्हारी बहन सूर्पणखा का उन लोगों ने नाक कान काट लिया। न वही कुछ कर सकी न खर दूषण कुछ कर सके। बहन के नाक कान कटने की लज्जा तो तुम्हे आनी थी पर वह भी तुम्हे विशेष रूप से न आयी। विशेष रूप से आती तो खरदूषण की भाँति धावा बोल देते। चोरी करके बदला चुकाने न चलते।

दो० बधि बिराध खरदूखनहि, लीला हतेउ कबंध।
बालि एक सर मार्‌यो, तेहि जानहु दसकंध ॥३६॥

अर्थ विराध और खरदूषण को मारकर जिसने खेल में कबंध को मारा। एक बाण से जिसने बालि को मारा हे दसकंठ ! उसे जानो।

व्याख्या जब से होश सँभाला है निशाचरों का संहार कर रहे हैं और विशेष रूप से जब से वन में आये हैं। विराध अमर था। खरदूषण तुम्हारे तुल्य बलवान् थे उन्हे मारा। कबंध इन्द्र के वज्र से नहीं मरा। उसे इन लोगों ने खेल में मारा। यहाँ तक आरण्यकाण्ड की कथा हुई। अब किष्किन्धा काण्ड की कथा कहती है।

बालि तुमसे अधिक बलवान् था उसे एक बाण से मारा। हे दसकण्ठ ! उसे जानो कि वह कौन है। उसका मनुष्य का रूप देखकर न भूलो। सुन्दर और लङ्का काण्ड के उनके दूतों का पुरुषार्थ है सो सब मन्दोदरी ऊपर कह आयी है।

जेहि जलनाथ बँधायेउ हेला। उतरे प्रभु दल सहित सुबेला ॥
कारुनीक दिनकर कुलकेतू। दूत पठायेउ तव हित हेतू ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ जिसने खेल मे समुद्र बाँध लिया और जो प्रभु सेना के सहित सुवेल पर उतरे उन्ही कारुनीक सूर्यकुल के पताका ने तुम्हारे कल्याण के लिए दूत भेजा।

व्याख्या सरकार की प्रभुता मन्दोदरी कहती है कि जब से सृष्टि हुई तब से और आज तक किसी ने समुद्र पर पुल नही बांधा। सो इन्होने पांच दिनो मे ऐसा पुल बाँधा जिस पर से इतनी बडी सेना चढकर पार हो गयी। यथा रामचरन पकज उर धरहू। कौतुक एक भालु कपि करहू। करहु सेतु प्रयास कछु नाही। और सेना सहित सुवेल पर उतरे। यथा इहाँ सुवेल सैल रघुबीरा। उतरे सेन सहित अति भीरा। सुवेल लका की छाती पर है। इस से निर्भयता कहा।

परन्तु बात यह है कि रघुवीर युद्धवीर दानवीर तो हैं ही। साथ ही दयावीर भी है। बडी करुणा है। शत्रु का भी अनभल नही करते। यथा अरिहुँ के अनभल कीन्ह न रामा। दूत भेजने की कोई आवश्यकता नही रही। फिर भी तुम्हारे हित के लिए दूत भेजा।

सभा माझ जेहि तव बल मथा। करि बरूथ महु मृगपति जथा॥
अगद हनुमत अनुचर जाके। रनबाँकुरे बीर अति बाँके॥२॥

अर्थ जिसने सभा के बीच मे तुम्हारे बल को मथ डाला। जैसे हाथियो के झुण्ड मे सिंह। अङ्गद और हनुमान् जिसके सेवक हैं। जो रण मे तीखे और बाँके वीर हैं।

व्याख्या उस दूत ने भरी सभा मे हाथ पटककर तुम्हारा मुकुट गिराया। और अपने स्वामी के पास फेंक दिया। तुम्हारे सब सुभट भाग चले। पैर रोप दिया जो किसी का हटाया नही हटा। इस भाति सेना सहित सबके बल का मन्थन किया। किसी का किया कुछ न हुआ। इतने बडे डीलडौलवाले मुँह देखते रह गये। जैसे हाथियो की सभा मे सिंह जा पडे वही तुम लोगो की गति हुई। यथा मत्तगज जुत्थ महुँ पचानन चलि आइ।

जिनके सेवक अङ्गद और हनुमान् है। जिनका पुरुषार्थ देख ही चुके हो ये रण म बडे कुशल है। और अत्यन्त बाँके वीर हैं। उन स्वामी के रण कौशल और शौर्यातिशय का कहना ही क्या है।

तेहि कहुँ पिअ पुनि पुनि नर कहहू। मुधा मान ममता मद बहहू॥
अहह कत कृत राम बिरोधा। काल बिबस मन उपज न बोधा॥३॥

अर्थ हे पति। उसे तुम बार बार नर कहते हो। तुम व्यर्थ ही मान और ममता के अभिमान को ढो रहे हो। हाय! तुमने रामजी से विरोध किया। कालवश हो जाने से मन म ज्ञान नहीं उत्पन्न हो रहा है।

व्याख्या मन्दोदरी अङ्गद सम्वाद सुन चुकी है। रावण को नर कर करेसि बखान। ऐसे मनुज अनेक इत्यादि कहते सुन चुकी है। इसलिए कहती है कि ऐसे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



महान् को तुम बार बार मनुष्य कहकर अपमान करते हो। जिस मान को तुम प्रधानता देते हो। यथा : मोर पराक्रम नहि सुनेहि जितेउँ चराचर झारि। और जिस ममता का तुम्हे भरोसा है। यथा : कुभकरन अस बन्धु मम सुत प्रसिद्ध सकारि। वह सब व्यर्थ है मिथ्या है। रामजी के सामने ये कुछ नही हैं। इन्हे तुम व्यर्थ लिये फिरते हो।

कालदंड गहि काहु न मारा। हरै धर्म बल बुद्धि बिचारा ॥
निकट काल जेहि आवत साईं। तेहि भ्रम होइ तुम्हारेहि नाईं ॥४॥

अर्थ : काल किसी को लाठी लेकर नही मारता। वह धर्म बल बुद्धि और विचार को हरण कर लेता है। हे स्वामी! जिसके निकट काल आता है उसे तुम्हारी ही भाँति भ्रम हो जाता है।

व्याख्या : काल अदृश्य पदार्थ है। वह किसी का दृश्य अस्त्र शस्त्र का प्रयोग करके किसी को नही मारता। फिर भी लक्षणो से जाना जाता है अर्थात् जिसके वह निकट आता है उसके धर्म बल बुद्धि और विचार को वह हरण कर लेता है। उसके निकट आने का लक्षण यही है कि उसे भ्रम हो जाता है। किसी का कहना वह नही सुनता। हित कहनेवाले को वह शत्रु समझता है। वह तुम्हारे ऐसा हो जाता है। भाव यह कि ऐसे पुरुषो के तुम आदर्शरूप हो गये हो। उनके ऐसे तुम नही हुए हो। तुम्हारे ऐसे वे हो जाते है।

शिशुपाल जब कृष्ण भगवान् को गाली देने लगा। समझाने पर स्वय भीष्मजी को खरी खोटी सुनाने लगा तो उन्होने यही कहा कि जिसको ये कृष्ण मारना चाहते है उनकी ऐसी ही बुद्धि हो जाती है। जैसी कि शिशुपाल! तुम्हारी हो गयी है।

दो. दुइ सुत मरे दहेउ पुर, अजहुँ पूर प्रिय देहु।
कृपासिन्धु रघुनाथ भजि, नाथ विमल जसु लेहु ॥३७॥

अर्थ : दो बेटे मारे नगर जलाया। हे प्रिय! अब भी बात समाप्त करो। हे नाथ! कृपा के समुद्र राम को भजकर निर्मल कीर्ति लो।

व्याख्या : तुम्हारे इस रार के कारण दो बेटे मारे गये। नगर जल गया। अर्थात् धन जन दोनों का नाश हुआ। सो जो हुआ सो हुआ यही से इतिश्री करो। पूर देहु का प्रयोग ऐसे ही अर्थ मे हुआ है। यथा सुनु मतिमन्द देहि अब पूरा। उनसे रार न करो उनको भजो। इससे तुम्हारी निर्मल कीर्ति होगी। तुम्हारी प्रसिद्धि तो है परन्तु दुर्यश है। निर्मल यश तो राम भजन से होता है। तुम्हारा हित लक्ष्य करके दूत भेजा। ऐसे कृपासिन्धु को भजो। वे निश्चय कृपा करेंगे सन्देह न करो। कारुनीक शब्द से उपक्रम करके कृपासिन्धु शब्द मे उपसहार करती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नारि वचन सुनि बिसिख समाना । सभा गयउ उठि होत बिहाना ॥
बैठ जाइ सिंहासन फूली । अति अभिमान त्रास सब भूली ॥१॥

अर्थ वाण के समान स्त्री के वचन सुनकर सवेरा होते ही सभा मे चला गया । अति अभिमान से सब भय भूल गया और सिंहासन पर फूलकर बैठा ।

व्याख्या आज रावण के पास उत्तर देने के लिए शब्द नही है । पर भीतर अपने सकल्प पर ही दृढ है । जब जब किसी ने समझाया तो रावण ने बुरा ही माना । भाई को तो लात मारकर निकाल दिया । आज स्त्री बाण सा वचन बोल रही है और रावण सह रहे हैं । जगद् विजयी रावण काम के तो दासानुदास ही ठहरे । अत बाण से वचन सुनते रहे । सवेरा कब होगा इसी की प्रतीक्षा रही । रात को सोये नही इसीलिए जागना नही कहते । केवल लेटे रहे इसलिए उठना कहते हैं । सवेरा होते ही उठकर सभाभवन पहुँचे । किसी की बात एकान्त मे सुनने का अवसर जिस मे न मिले ।

सिंहासन पर आसीन हुए । सभासद् हाथ जोडे खडे हैं । अत्यन्त अभिमान के वेग मे त्रास भूल गये । कल त्रस्त हो गये थे । यथा भवन गयेउ बिलखाइ । आज सब भूल गया । कवि रावण का स्मृतिभ्रंश दिखला रहे हैं ।

## ७१ निशाचर कीस लडाई प्रसग

इहाँ राम अगदहि बोलावा । आइ चरन पकज सिरु नावा ॥
अति आदर समीप बैठारी । बोले बिहँसि कृपाल खरारी ॥२॥

अर्थ यहाँ रामजी ने अङ्गद को बुलाया । उन्होने आकर चरणकमल मे सिर नवाया । कृपालु खरारि रामजी अङ्गद को बडे आदर से पास बिठाकर हँसकर बोले ।

व्याख्या वहाँ लका का हाल कहकर यहाँ रामजी के यहाँ का हाल कहते हैं कि प्रात काल होने पर अङ्गदजी बुलवाये गये । इसके पहिले दिन जब अङ्गद लौटे थे तब सन्ध्या हो गयी । इसलिए बातचीत नही हुई । दिवा निरीक्ष्य वक्तव्य रात्रौ नैव च नैव च । जब लका से लौटे थे तो सजल नयन अति पुलक तन गहे रामपद कज । रात बीत जाने पर वह बात नही रह गयी । इसलिए . सजल नयन अति पुलक तन नही लिखते ।

सरकार जब आदर देते हैं तो अपने निकट बिठाते हैं । हनुमान्जी जब लका से लौटे थे उस समय की बात कवि कहते हैं कि कर गहि परम निकट बैठावा । आज अङ्गदजी को अति आदर से समीप बैठाते हैं । पहिले दिन के कौतुक का स्मरण करके हँसकर बोलते हैं । कृपाल शब्द का प्रयोग कौतुक के प्रसग मे आया है । यथा कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी । यहाँ भी कौतुक कर रहे हैं । अत कृपाल खरारी विशेषण दिया ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बालितनय कौतुक अति मोही। तात सत्य कहु पूछउ तोही॥
रावनु जातुधान कुल टीका। भुजबल अतुल जासु जग लीका॥३॥

अर्थ : हे बालिपुत्र ! मुझे बडा कौतूहल है। हे तात ! मैं तुमसे पूछता हूँ। सच बतलाना। रावण राक्षस कुल का टीका है। उसके बेतौल बल की समार मे धाक है।

व्याख्या : लंका भेजने के समय सरकार ने कहा था : बालितनय बुधि बल गुन धामा। इस समय भी वालितनय सम्बोधन से बुधि वल गुणधाम होना अभिप्रेत है। मुझे कौतुक ही नही बड़ा भारी कौतुक है। क्योकि जो कार्य हुआ है वह महा असम्भव है। जो कौतुक करता है वह पूछने पर कौतुक का पोषक उत्तर भी देता है। इसलिए कहता हूँ कि सच बताना। सरकार को इतना कौतुक है कि सम्वाद का समाचार न पूछकर पहिले मुकुट का ही प्रश्न करते हैं।

जितने राक्षस हैं उनका सरदार रावण है। सभी राक्षस उसके अधीन है। उसकी आज्ञा पर प्राण निछावर करनेवाले हैं और वह स्वयं अतुल बल प्रसिद्ध है। सबको रुलाता है इसलिए रावण कहलाता है। अत: सब प्रकार से दुराधर्ष है।

तासु मुकुट तुम चारि चलाए। कहहु तात कवनी विधि पाए॥
सुनु सर्वज्ञ प्रनत सुखकारी। मुकुट[1] न होहिं भूप गुन चारी॥४॥

अर्थ : उसके चार मुकुट तुमने फेंके। हे तात ! बताओ तुमने कैसे पाये ? हे सर्वज्ञ ! हे प्रणत को सुख देनेवाले ! वे मुकुट नही हैं राजा के चारो गुण हैं।

व्याख्या : ऐसे दुराधर्ष रावण का मुकुट तुमने कैसे पाया ? मुकुट तो राजा के सिर पर रहता है। सिर रहते उसकी ओर कोई आँख उठाकर देख नही सकता। तुम दूत होकर गये थे। सो दूत को राजा के चार मुकुट कैसे हाथ लगे ? यह विधि समझ मे नही आती। सरकार प्रसन्न होते हैं तो ऐसे ही प्रश्न करते है। हनुमान्‌जी से भी ऐसा ही पूछा : कहु कपि रावन पालित लंका। केहि विधि दहेउ दुर्ग अति वंका।

अङ्गदजी उत्तर का उपक्रम करते हुए कहते है कि आप सर्वज्ञ है। आपसे क्या छिपा है। परन्तु प्रणत को यशोभाजन बनाना चाहते हैं। इसलिए इस भाँति पूछ रहे हैं। अत. सुनिये : वे चार मुकुट नही हैं। वे राजा के चार गुण हैं। यहाँ अपह्नुति अलङ्कार है। उपमेय का निषेध करके उपमान का आरोप करते हैं।

साम दान अरु दंड बिभेदा। नृप उर बसहिं नाथ कह वेदा॥
नीति धर्म के चरन सुहाए। अस जिअ जानि नाथ पहिं आए॥५॥

अर्थ : साम, दान, दण्ड और भेद ये चार राजा के हृदय मे वसते हैं। ऐसा

---

१ यहाँ हेतु अपह्नुति अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वेद ने कहा है। ये नीति धर्म के सुन्दर चरण हैं। ऐसा मन मे समझकर नाथ के पास आये हैं।

व्याख्या राजनीति का जो धर्म है उसके चार चरण हैं अर्थात् इन्ही चारो को एकत्र करने से राजनीति का धर्म पूरा होता है। ऐसा वेद ने कहा है। कहने का भाव यह है कि इस बात मे सन्देह को स्थान नही है। वे चारो चरण हैं: साम दान दण्ड और भेद। इनका निवास राजाओ के हृदय मे रहता है। इन्ही के समयोचित बर्ताव से सारी राजनीति चलती है। पहिले ये रावण मे थे। यथा: बहु बिधि खल सीतहि समुझावा। साम दान भय भेद देखावा। अब इन सबो ने रावण को छोडकर सरकार का आश्रय ग्रहण किया है।

दो० धर्म हीन प्रभु पद बिमुख, काल बिबस दससीस।
तेहि परिहरि गुन आये, सुनहु कोसलाधीस ॥३८॥

अर्थ दसशीश धर्म से रहित प्रभुपद के विमुख और काल के वश हो गया है। हे कोसलेश! सुनिये। इसलिए गुण गण रावण को छोडकर आपके पास आये हैं।

व्याख्या: इन तीन लक्षणवालो को चारो गुण साम दान दण्ड और भेद परित्याग करते हैं। वे लक्षण हैं १ धर्म से रहित होना २ प्रभुपद के विमुख होना और ३ काल के वश होना। सो रावण मे ये तीनो लक्षण आगये हैं। धर्महीन भी यदि प्रभुपद विमुख न हो तो उसका सब बन जाता है। यथा: अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्। साधुरेव स मन्तव्य सम्यग्व्यवहितो हि स। जो नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही। तजि मद मोह कपट छल नाना। करौं सद्य तेहि साधु समाना। और यदि धर्महीन और प्रभुपद विमुख भी है तो उसे काल विवश ही समझना चाहिए। सो रावण काल विवश है। चारो गुण उसे त्याग करके प्रभु के पास चले आये। वृणुते हि विमृश्यकारिण गुणलुब्धा स्वयमेव सम्पद। इतने मे ही सक्षेप मे अङ्गदजी ने सब कह दिया।

दो० परम चतुरता स्रवन सुनि, बिहँसे राम उदार।
समाचार पुनि सब कहे, गढ के बालिकुमार ॥३८क॥

अर्थ: राम उदार परम चतुरता सुनते ही हँस पडे। तब बालि के बेटे ने सब समाचार गढ के कह सुनाये।

व्याख्या तुमने रावण के चारो मुकुट कहाँ से पाये। इस प्रश्न के उत्तर मे ही अङ्गदजी ने सब कुछ कह दिया। रावण के यहाँ साम और दान का अभाव है। भेद और दण्ड मे वह असमर्थ है धर्म उसमे छूकर नही है। स्त्री हरण करके भी लौटाना नही चाहता। सरकार के विमुख है। उसके सिर पर काल सवार है। वह बिना युद्ध नही मानेगा। उसके सम्वाद का इतना ही तत्त्व है। सो अङ्गदजी ने युक्ति से अपह्नुति अलङ्कार से उत्तर देने मे कह डाला। यह अङ्गदजी की परम

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चतुरता है। रावण में साम का अभाव यथा : तौ बसीठ पठवत केहि काजा। रिपुसन प्रीति करत नहि लाजा। दान का अभाव यथा : मूढ़ न जानेसि मोहि सुरारी। भेद में असमर्थ यथा : सुनु सठ भेद होइ मन ताके। श्रीरघुबीर हृदय नहिं जाके। दण्ड में असमर्थ यथा : उहाँ सकोप दसानन सब सन कहत रिसाइ। धरहु कपिहि धरि मारहु सुनि अंगद मुसुकाइ। रावण कालवश यथा : पुनि कपि कही नीति बिधि नाना। मान न ताहि काल निअराना। तत्पश्चात् अङ्गदजी ने लंका का सब समाचार कह सुनाया। अर्थात् वहाँ जो बातचीत हुई थी और गढ़ की जो मरम्मत इत्यादि हुई थी सब अङ्गदजी ने वर्णन किया।

रिपु के समाचार जब पाए। राम सचिव सब निकट बुलाए ॥
लंका बाँके चारि दुआरा। केहि बिधि लागिअ करहु बिचारा ॥१॥

अर्थ : जब शत्रु का समाचार पा लिया तब रामजी ने मन्त्रियों को निकट बुलाया और कहा कि लंका के बाँके चार द्वार हैं। सो किस विधि से धावा किया जाय इस बात का विचार करो।

व्याख्या : रावण शत्रु से प्रीति करना लज्जा समझता है। उसने कहा भी कि : रिपुसन प्रीति करत नहि लाजा। अतः अब तो युद्ध ही शेष रहा। अतः मन्त्रणा के लिए रामजी ने मन्त्रियों को अपने पास बुलाया और कहा कि लंका पर धावा करना अब अपरिहार्य है। अतः अब यह विचार होना चाहिए कि किस विधि से लंका पर धावा किया जाय। किसी एक फाटक पर धावा हो या चारों फाटक पर एक साथ धावा बोला जाय। सेना की व्यवस्था क्या होगी ? किसके सेनापतित्व में धावा किया जायगा ? देखरेख किसके जिम्मे रहेगी ? इत्यादि सभी बातें पहले ही विचार कर लेनी चाहिए।

तब कपीस रिच्छेस बिभीषन। सुमिरि हृदय दिनकर कुल भूषन ॥
करि बिचार तिन्ह मंत्र दृढ़ावा। चारि अनी कपि कटकु बनावा ॥२॥

अर्थ : तब वानर के राजा भालू के राजा और विभीषण ने हृदय में सूर्यकुल भूषण का स्मरण करके विचारपूर्वक उन लोगों ने मन्त्र दृढ़ किया और वानरी सेना का चार अनीक सेनामुख बनाया।

व्याख्या : वानरराज और रीछराज तो वस्तुतः सेना के स्वामी हैं। और विभीषण लंका के राज्य के लिए अभिषिक्त हैं। अतः तीनों राजा ही मन्त्र के लिए एकत्रित हुए : लंका का भेद तो विभीषण से ही लगेगा। विभीषणजी लंका का सब-हाल जानते हैं। अतः उनकी सम्मति का मूल्य अधिक है। इन लोगों ने विघ्न-निवारणार्थ तथा निशाचर संहारार्थ सूर्यकुल भूषण का स्मरण किया। श्रीरामजी की साक्षात् उपस्थिति होने पर भी हृदय में उनके स्मरण की आवश्यकता प्रतीत हुई। उन्होने विचार किया कि अपने पास जब सेना यथेष्ट है तो चारों फाटक पर एक साथ धावा बोलना चाहिए। अतः चार सेनामुख बनाया। मुख्य सेना पृथक्

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



थी। जहाँ से चार अनी चारो फाटक पर धावा करेगी। आवश्यकता जहाँ पडती जावेगी वहाँ वीर लोग मुख्य सेना से भेजे जावेंगे।

जथाजोग सेनापति कीन्हे। जूथप सकल बोलि तब लीन्हे ॥
प्रभु प्रताप कहि सब समुझाए। सुनि कपि सिंहनाद करि धाए ॥३॥

अर्थ: उन अनीको के लिए जैसा चाहिए वैसे सेनापति नियत किये। तत्पश्चात् यूथपतियो को बुलाया और सबको प्रभु का प्रताप कहकर समझाया। सुनकर बन्दर लोग सिंहनाद - गर्जन करके दौड पडे।

व्याख्या: उत्तर फाटक की स्वयं रावण रक्षा करते हैं। पूर्व फाटक की रक्षा सेनापति प्रहस्त करते हैं। दक्षिण फाटक की रक्षा महोदर और पश्चिम की मेघनाद करते हैं। अत उत्तर पर धावा करनेवाली अनीक की रक्षा का भार स्वयं सरकार दोनो भाइयो ने अपने ऊपर लिया। सेनापति प्रहस्त के जोड मे सेनापति नील रक्खे गये। महोदर की जोड मे अङ्गद और मेघनाद की जोड मे हनुमान्‌जी रखे गये।

सेनापति के चुनाव के पश्चात् यूथपति बुलाये गये जो उपर्युक्त सेनापतियो के आदेशानुसार सेना सञ्चालन करेंगे। उन्हें समझाया गया कि:

प्रभुप्रताप सम्भव करत, सकल असम्भव काम।
ललकि लीजिये लंकगढ, राखि हृदय श्रीराम ॥१॥
पाहन वन वाहन कियो, जाको प्रबल प्रताप।
करिहि घरौदा लक सोइ, सुजस लीजिये आप ॥२॥
पाइ जासु बल आप सब, पाटयो सिन्धु गभीर।
कहा शक तब लक की, रक्षक श्रीरघुवीर ॥३॥
दुर्गति लंका की कियो, एक वीर हनुमान।
हरयो अकेलेइ बालिसुत, दसकन्धर को मान ॥४॥
आज वीर सिगरे जुटे, लीन्हे कटक अपार।
तापर सर कोदण्ड धर, साथ युगल सरकार ॥५॥
सिंहनाद सुनि आपको, होइ लक आतक।
गरजि परौ रिपु कटक पर, वीर होइ नि शक ॥६॥

अब सेना का उत्साह कहते हैं कि बन्दर वीर सिंह की भाँति गरजकर दौडे।

गर्जहिं तर्जहिं भालु कपीसा। जय रघुबीर कोसलाधीसा ॥
जानत परम दुर्ग अति लंका। प्रभु प्रताप कपि चले असंका ॥४॥
घटाटोप करि चहुँ दिसि घेरी। मुखहि निसान बजावहिं भेरी ॥५॥

अर्थ: जय रघुवीर कोसलाधीश का जयकार लगाते हुए भालु और बन्दर गरजते हैं और डाँटते हैं। लका के किला को अत्यन्त बीहड जानते हुए प्रभु के प्रताप से बन्दर नि शङ्क होकर चले।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उमड घुमडकर चारो ओर से घेर लिया और मुख से ही डंका और भेरी सा शब्द करने लगे।

व्याख्या : भालु और बन्दर रणोत्साह से गर्जन करते हैं। गर्जन के साथ तर्जन भी होता है। शत्रु के प्रति डाँटने में जो शब्द उच्चरित होते हैं उसे तर्जन कहते हैं। अब राम दल का जयकार नारा कहते हैं : जय रघुवीर कोसलाधीस। रघुवीर शब्द से सरकार के पराक्रम और कोसलाधीश पद से प्रताप की घोषणा करते हैं। यथा : सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा।

एक तो दुर्ग पर धावा करना बड़ा कठिन कार्य है। दुर्ग पर से एक धनुर्धर नीचे के सौ धनुर्धर का सामना कर सकता है। दुर्ग शब्द का अर्थ ही यह है कि जहाँ कठिनता से जाया जा सके। सो लका दुर्ग अत्यन्त विकट है। जिसके परकोटा पर चिड़िया उडकर नही बैठ सकती। निकूटाचल के ऊपर यह दुर्ग बना है। ब्रह्मदेव ने ही उसे अति दुर्गम बनाया है। तिसपर मय दानव ने उसे सँवारा है। यथा : विधि निर्मित दुर्गम अति भारी। तेहि मय दानव बहुरि सवारा। उसके निवासियो पर दृष्टि देते हुए कवियो ने कहा है कि लका सर्पों से भरी गुफा है और महा नाग रावण से रक्षित है। यथा : जस पावन रावन नाग महा।

परन्तु प्रभु के प्रताप का बडा प्रभाव बन्दरो पर पड़ा हुआ है। वे लका के स्वरूप को जानते हुए भी नि शङ्क होकर चल पडे। वानरी सेना ने धावा बोल दिया पर यहाँ निशान भेरी कहाँ? कौतुकी बन्दर लोग मुख से ही भेरी निशान बजाते चले। इससे कवि ने धावा करनेवालो की साधन विहीनता का दिग्दर्शन कराया।

जैसे घटा आकाश मे घिर आती है और सम्पूर्ण आकाश को घेर लेती है। उसी भाँति बन्दरो ने लका घेर ली। बाहर से लका का सम्बन्ध विच्छेद हो गया। राक्षसो की ओर से कोई विरोध नही हुआ। रावण की सभा मे यही निर्णय हुआ था कि चुपके रहो। बन्दरो को आजाने दो। यथा : ते सब हँसे मष्ट करि रहहूँ। यहहु कवन भय करिअ विचारा। नर कपि भालु अहार हमारा। बिल्ली चूहा से घिर जाने का विरोध क्यो करे?

दो. जयति राम जय लछिमन, जय कपीस सुग्रीव।
गरजहि सिंहनाद कपि, भालु महाबल सींव ॥३९॥

अर्थ : सिंहनाद करते हुए महा बलसीव भालु और बन्दर कहते हैं कि रामजी की जय हो लक्ष्मणजी की जय हो और बन्दरो के राजा सुग्रीव की जय हो।

व्याख्या : जो शत्रुञ्जय सिंहनाद महावीरजी ने लका दहन के समय किया था : जयत्यतिबलो रामो लक्ष्मणश्च महाबलः। राजा जयति सुग्रीवो राघवेणाभिपालितः। यही सिंहनाद आज सारी वानरी सेना कर रही है। रामजी का नाम सर्व प्रथम लेने से ही सर्वोत्कर्ष कहा। उसके बाद महाबल लक्ष्मणजी का नाम

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लेते है । तत्पश्चात् अपने राजा सुग्रीव का नाम लेते हैं जो श्रीराम द्वारा पालित हैं। अत: उनका नाम पीछे लिया। पहिले कह आये है : गर्जहि तर्जहि भालु कपीसा। पहिले भालु का नाम लिया तब बन्दर का नाम लिया। अब कहते हैं : गर्जहि केहरि नाद कपि भालु। पहिले बन्दर का तत्पश्चात् भालु का नाम लेते हैं। भाव यह कि एक बार भालु की प्रधानता कहते हैं। दूसरी बार बन्दर की प्रधानता कहते है अर्थात् दोनो प्रधान हैं।

लंका भयउ कोलाहलु भारी। सुना दसानन अति अहँकारी ॥
देखहु बनरन्ह केरि ढिठाई। बिहँसि निसाचर सेन बोलाई ॥१॥

अर्थ : लका मे भारी कोलाहल हुआ। अत्यन्त अहकारी रावण ने सुना। बोले कि बन्दरो की ढिठाई देखो और हँसकर सेना बुलायी।

व्याख्या : अङ्गदजी के जाने से ही कोलाहल मच गया था। यथा : भयउ कोलाहल नगर मझारी। आवा कपि लका जेहि जारी। आज तो लङ्का बन्दरो से घिर गयी अत भारी कोलहल मचा। रावण अति अहकारी है। यथा : बैठ जाइ सिंहासन फूली। अति अभिमान त्रास सब भूली। मारे अभिमान के त्रास भूल जाते हैं। इतना बडा भय उपस्थित है पर आप त्रास को भूले हुए है। जब समाचार मिला कि लका बन्दरो से घिर गयी तब कहते है कि देखो बन्दरो की ढिठाई। मानो ये पहिली बार ढिठाई देख रहे हैं। लका का जलाना। वन का विध्वंस। राक्षसी सेना का विनाश। पुत्रो का मरण। मुकुट का गिरना। अङ्गद का पैर रोपना आदि सब भूल बैठे हैं। समाचार सुनकर बन्दरो की ढिठाई पर ठहाका लगाकर हँसते हैं। पहिले ही सभा मे मन्त्रणा होकर निश्चय हो चुका है कि नर वानर किसी गिनती मे नही हैं। अतः उनके लिए कुछ नही करना चाहिए। उन्हे चले आने देना चाहिए। यथा : ते सब हँसे मष्ट करि रहहू। जितेउ सुरासुर तब स्रम नाही। नर बानर केहि लेखे माही। कहहु वचन भय करिअ बिचारा। नर कपि भालु अहार हमारा। सो वे सब आगये। अब भागकर भी नही बच सकते। अत. उन्हे खा जाने के लिए राक्षसी सेना बुलायी गयी।

आये कीस काल के प्रेरे। छुधावंत सब निसिचर मेरे ॥
अस कहि अट्टहास सठ कीन्हा। गृह बैठें अहार बिधि दीन्हा ॥२॥

अर्थ : बन्दर काल की प्रेरणा से आगये हैं और मेरे राक्षस भूखे हैं। ऐसा कहकर उस शठ ने अट्टहास किया कि घर बैठे ब्रह्मा ने आहार भेज दिया।

व्याख्या : रावण कहते हैं कि काल की प्रेरणा इसे कहते हैं कि मेरी पुरी मे इतने बन्दर मरने के लिए चले आये। मेरे राक्षस सब बडे भुक्खड़ हैं इनका पेट ही नही भरता। यथा : कहुँ महिष मानुष धेनु खर अज खल निसाचर भच्छही। ये गधे तक को नही छोडते। सो इनके पेट भरने का बडा भारी सयोग आप से आप जुट गया। यह कहकर आप खूब हँसे। बडी खुशी है कि ब्रह्मदेव हमारा बडा ख्याल

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


रखते हैं। घर बैठे भोजन पहुँचा दिया। रसद के लिए समुद्र पार से व्यवस्था करनी पड़ती थी। यह संयोग ब्रह्मदेव ने बिठाया। नहीं तो नर वानर तो राक्षस का नाम सुनकर भागते हैं। वे मेरी पुरी मे कैसे आते।

सुभट सकल चारिहु दिसि जाहू। धरि धरि भालु कीस सब खाहू ॥
उमा रावनहि अस अभिमाना। जिमि टिट्टिभ खग सूत उताना ॥३॥

अर्थ : योद्धाओ ! चारो दिशाओं मे चले जाओ और पकड़ पकड़कर भालु वन्दरो को खा जाओ। शिवजी कहते हैं कि उमा ! रावण को ऐसा अभिमान है जैसे टिटिहरी पक्षी उतान शयन करती है।

व्याख्या : सेना के आ जाने पर रावण उन योद्धाओ को रणोपयोगी कोई परामर्श नही देते। प्रत्युत उन्हे असावधानता का उपदेश देते हैं कि यह कोई युद्धयात्रा नही है। यहाँ तो मानो भोज में जाना है। सो चारो दिशाओ मे तुम लोग फैल जाओ। वन्दर तो तुम्हारे आहार ही ठहरे उन्हे पकड़ पकड़कर खा जाओ। भागकर बच न जायँ।

शङ्कर भगवान् कहते हैं कि उमा ! रावण को कैसा अभिमान है। उसके ऊपर आकाश फटा चाहता है। स्वय सरकार भाई के साथ उत्तर फाटक पर आ गये हैं और वह इस भयानक आपत्ति का रोकना सैन्यबल से सुकर मान रहा है। पक्षी मात्र छोटे बड़े सब पेट के बल सोते है कि आवश्यकता पड़ने पर अपने पक्षो से काम ले सके। पर टिटिहरी पक्षी छोटे होने पर भी पीठ के बल सोता है कि यदि आकाश भी ऊपर आजाय तो पञ्जो पर रोक रक्खेंगे। सस्कृत में कहावत है कि उत्क्षिप्य टिट्टिभः पादावास्ते भङ्गभयाद्दिवः।

चले निसाचर आयसु मांगी। गहि कर भिंडिपाल बर सांगी ॥
तोमर मुद्गर परस प्रचंडा। सूल कृपान परिघि गिरिखंडा ॥४॥

अर्थ : राक्षस लोग आज्ञा मांगकर हाथो मे भिण्डिपाल : ढेलवाँस सांगी तोमर मुद्गर प्रचण्ड परिघ शूल कृपाण परशु और गिरिखण्ड ले लेकर चले।

व्याख्या : रावण के कह चुकने पर राक्षस आज्ञा मांगकर चले। जाने को आज्ञा हो जाने पर भी आज्ञा मांगने का भाव यह कि सग्राम के विषय मे कुछ और आज्ञा तो नही है। यद्यपि रावण की आज्ञा तो गढ के बाहर निकलकर वन्दरो को पकड़ पकड़कर खा जाने के लिए थी। परन्तु राक्षसो ने दूर से प्रहार करने के लिए ढेलवाँस लिये और सन्निकट से प्रहार के लिए सांगी ली। कुछ एक ने तोमर लोहे की गदा मुँगड़ा और भारी बेवँड़ा लिया और कुछ लोगो ने शूल दुधारी तलवार परशु लिया तथा मतवाला लिया। जिस प्रस्तरखड को आक्रमणकारी सेना के वध के लिए ऊपर से ढकेलते है उसे मतवाला कहते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


जिमि अरुनोपल निकर निहारी। धावहि सठ खग मास अहारी ॥
चोच भग दुख तिनहि न सूझा। तिमि धाये मनुजाद अबूझा ॥५॥

अर्थ जिस भांति लाल पत्थर का समूह देखकर शठ मासाहारी पक्षी उस पर टूट पडते हैं उन्हे चाच भग का दु ख सूझता ही नही। उसी भांति वे नरभक्षक मूर्ख दौड पडे।

व्याख्या रावण भलीभांति इन राक्षसो के स्वभाव को जानते हैं कि इन्हे जहाँ मासभक्षण का लोभ दिखाया गया तहाँ इन्हे आगा पीछा का विचार नही रहता। वही बात हुई। रावण की आज्ञा पाते ही सब खाने के लिए दौड पडे। जैसे लाल पत्थर के समूह को देखकर बाज आदि शिकारी चिडियो को मास का भ्रम हो जाता है और वे उसपर टूटते है पर वे तो पत्थर ठहरे। उनका चोच तोड डालते हैं। उन मूर्ख पक्षिया को इतना ज्ञान कहाँ ? इसी भांति इन अज्ञानी राक्षसो ने रामदल के योद्धाओ को बन्दर समझ लिया। यह न जाना राम कृपा अतुलित बल तिनही। तृन समान त्रैलोकहि गिनही। इनका हम कुछ नही बिगाड सकते। हमारी ही हानि होगी।

दो नानायुध सर चाप धर, जातुधान बलबीर।
कोट कगूरन्हि चढि गये, कोटि कोटि रनधीर ॥४०॥

अर्थ अनेक प्रकार के हथियार और धनुष बाण लेकर करोडो वीर बलवान् राक्षस किले के कगूरो पर चढ गये।

व्याख्या ऊपर राक्षसो की उपमा मासाहारी खगा से दिया। क्योकि वे दुर्ग के कगूरो पर हैं और बन्दरो की उपमा अरुणोपल निकर से दिया। क्योकि ये नीचे हैं। उपर्युक्त आयुधो के अतिरिक्त भी अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र लेकर बलवीर राक्षस किले के कगूरो पर चढ गये। किले का फाटक बन्द है। बन्दर लोग उसे तोडने और प्राकार के उल्लङ्घन कर जाने की झांक म हैं। अत किल के कगूरो पर से प्रहार करने के लिए धनुष बाण धारण किया। प्राकार पर चढने के समय चोट करने के लिए अन्य प्रकार के अस्त्र शस्त्र लिये। राक्षस बलवीर रणधीर हैं। अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित हैं। दुर्ग के कगूरो पर स्थित हैं और वानर अस्त्रहीन शस्त्रहीन दुर्ग के नीचे खडे हैं। ऐसी विषम स्थिति इन लोगो की है।

कोटि कगूरन्हि सोहहि कैसे। मेरु के सृगनि जनु घन बैसे ॥
बाजहि ढोल निसान जुझाऊ। सुनि धुनि होइ भटन्हि मन चाऊ ॥१॥

अर्थ किले के कगूरो पर वे ऐसे शोभायमान हुए जैसे मेरु के शृगो पर बादल बैठे हो। जुझाऊ ढोल और डके बज रहे थे। जिनकी ध्वनि को सुनकर वीरो के मन म उत्साह हो रहा था।

व्याख्या राक्षस लोग चले थे तो बडे चाव से पर बानरी सेना देखकर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उतरकर लड़ने का साहस न हुआ। कोट के कंगूरों पर सुरक्षित स्थान जानकर बैठे। बन्दरों के आक्रमण के रोकने के प्रयत्न मे लगे। कोट सोने का है अतः उसकी उपमा मेरु पर्वत से दी गयी। उसके कंगूरे शृङ्ग की भाँति शोभित थे। उनपर काले काले राक्षसों का समूह जो इकट्ठा हुआ उनकी शोभा बादल सी हुई। स्वभाव से ही बादल पर्वत शृङ्ग पर जमा होते हैं। वानरी सेना मे तो मुख से ही निशान और भेरी बज रही थी। पर राक्षस लोग तो साघन सम्पन्न हैं। उनकी सेना में जुझाऊ बाजे बजे। जुझाऊ बाजे की कार्यकारिता कहते हैं कि उनकी ध्वनि के सुनने से वीरों मे रणोत्साह उत्पन्न होता है।

बाजहिं भेरि नफीरि अपारा। सुनि कादर उर जाँहि दरारा॥
देखि न जाइ कपिन्ह कै ठट्टा। अति बिसाल तनु भालु सुभट्टा॥२॥

अर्थ : कितनी नफीरी और भेरी बजने लगी इसका ठिकाना नही। उनके शब्द से कादरो का कलेजा फटा जाता था। बन्दरों का समूह देखा नही जाता था। सुभट भालु बड़े विशाल शरीर वाले थे।

व्याख्या : नफीरी मुख से बजायी जाती है। उन नफीरियों में वीरो को सुखद मारू राग बज रहा है। यथा : मारू राग सुभट सुखदायी : लोकोक्ति है कि : कौरव पाण्डव जे दल साजे। ते रावण घर बाजे बाजे। अतः अपार कहा। जो ध्वनि वीरो का उत्साहवर्धक वही कादरो के कलेजे को दहलानेवाली है। भेरी तुरही के समान मुख से बजनेवाला बाजा है। राजपुताना मे आज भी बजाया जाता है। नफीरी के साथ भेरी भी बजने लगी। राक्षस लोगो ने रावण के कथनानुसार बन्दरों को भक्ष्य पदार्थ समझ लिया था और बाझ की भाँति झपटे पर बन्दरो को देखकर ऐसे ठण्डे पडे कि उनकी ओर देखते नही बनता। शुक ने ठीक कहा था : अमित नाम भट कठिन कराला। अमित नाग बल बिपुल बिसाला। और भालु तो आकार मे बन्दरों से विशाल होते हैं। उनके बालो से उनमे और भी विशालता तथा भयङ्करता आजाती है।

धावहिं गनहि न अवघट घाटा। पर्वत फोरि करहि गहि बाटा॥
कटकटाहिं कोटिन्ह भट गर्जहि। दसन ओठ काटहि अति तर्जहि॥३॥

अर्थ : वे दौडते थे। खन्दक और उतार की परवाह नही करते थे। पहाड को फोडकर राह बना लेते थे। करोड़ो वीर कटकटाते और गर्जते थे। दाँतों से होठ चबाते हुए डाँटते थे।

व्याख्या : बन्दर भालुओं का यह हाल है कि खन्दक या उतार से उनका वेग रुकता नही है। पहिले से ही ठट्ट लगा है। फिर भी सेना चलती ही चली आ रही है। उत्साह इतना बढ गया है कि खन्दक खाईं डाँकते पर्वत को फोडकर रास्ता बनाते हुए आगे बढे चले आते हैं जिसमे पीछे की सेना को आने मे बाधा न हो। करोड़ो बन्दर बलाभिमान से गर्जते हैं। साथ ही साथ क्रोध भी बढा हुआ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है इसलिए कटकटाकर गर्जते है। बन्दर क्रोध करते हैं तब कटकटाते हैं। क्रोध से भरे हुए दांतो से होठो को चबा रहे हैं और शत्रुओ को देखकर उन्हें नीचे से ही डांटते है। लका के ऊपर और नीचे का दृश्य कहकर युद्धारम्भ का निश्चित चिह्न लडाई के बाजो का बजना भी कहा।

उत रावन इत राम दोहाई। जयति जयति जय परी लराई[1] ॥
निसिचर सिखर समूह ढहावहि। कूदि धरहि कपि फेरि चलावहि ॥४॥

अर्थ उधर से रावण और इधर से राम की दोहाई देते हुए जय जयकार करके लडाई प्रारम्भ हो गयी। राक्षसो ने मतवाले छोडे। बन्दरो ने कूदकर उन्हे पकड लिया और फिर उन्हे उन्ही पर फेंका।

व्याख्या : लडाई के बाजे बजे। वीरो ने गर्जना की। लका के ऊपर से रावण का जय जयकार हुआ। इधर वानरी सेना से रामजी का जयकार हुआ और लडाई हो पडी। पत्थर के बडे बडे कोल्हू बने होते हैं। वे ही मतवाला कहलाते हैं। शत्रु की सेना कुचलने के लिए वे चढती हुई सेना पर छोडे जाते हैं। यहाँ : सिखर समूह से वे ही मतवाले अभिप्रेत हैं। बन्दरो ने जब धावा बोल दिया और लका पर चढ जाने का प्रयत्न करने लगे तब राक्षसो ने मतवाले छोडे। बन्दरो का पराक्रम और लाघव ऐसा बढ़ा चढा है कि उन्हे कूदकर बीच ही से पकड लेते हैं और लका के ऊपर फेकते हैं।

छ [2]धरि कुधर खड प्रचड मरकट भालु गढ पर डारही।
झपटहि चरन गहि पटकि महि भजि चलत बहुरि प्रचारही ॥
अति तरल तरुन प्रताप तर्पहि तमकि गढ चढि चढि गये।
कपि भालु चढि मदिरन्ह जहँ तहँ राम जसु गावत भये ॥

अर्थ . उन पर्वत के प्रचण्ड खण्डो को लेकर बन्दर भालु गढ के ऊपर फेंकने लगे। झपटकर पैर पकडते है और पृथ्वी पर गिरा देते हैं। भाग चलने पर ललकारते हैं। अति तीखे और प्रचण्ड प्रतापवाले डांटते थे। वे क्रोध से उबल करके किले पर चढ गये। बन्दर भालु मकानो पर चढकर जहाँ तहाँ रामयश का गान करने लगे।

व्याख्या पहिली लडाई तो यही हुई कि ऊपर से मतवाले छूटे और नीचे से बन्दरो ने उन्हे उलटकर राक्षसो पर फेंका। अब बन्दर उछलकर राक्षसों का पैर पकडकर पृथ्वी पर पटक देते हैं। भाव यह कि पहाड पर चढ गये। अब प्राकार के नीचे से झपटकर ऊपर खडे हुए। राक्षसो को नीचे फेंक देते है। वे भी

---

१. यह चारो फाटक की लडाई पुनर्वसु नक्षत्र की वर्षा है।

२ यह हरिगीतिका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


इतने बलवान् हैं कि इतने नीचे गिरने पर फिर उठकर भागते हैं। पर बन्दर फिर उन्हे ललकारते हैं। अब तीसरे धावा में प्रचण्ड प्रतापवाले भालु कपि क्रोध करके चढ़ गये और सन्निकट के मकानो पर चढ़कर राम सुयश सुनाने लगे।

दो. एकु एक निसिचर गहि, पुनि कपि चले पराइ।
ऊपर आपुन हेठ भट, गिरहि धरनि पर आइ ॥४१॥

अर्थ : एक एक राक्षस को पकड़कर बन्दर भाग चले और किले के नीचे पृथ्वी पर गिरते थे। परन्तु स्वयं ऊपर होते थे और राक्षसो को नीचे कर लेते थे।

व्याख्या : तीसरे धावा में गढ पर तो चढ़ गये पर थोड़े ही चढ पाये। अतः ऊपर अधिक देर तक ठहर न सके। भागते समय एक एक राक्षस को पकड़कर ऊपर से नीचे गिरते थे। पर उस गिरने मे बन्दरों का यह कौशल होता था कि आप ऊपर होते थे और राक्षस नीचे पड़ जाते थे।

राम प्रताप प्रबल कपि जूथा। मर्दहिं निसिचर सुभट बरूथा ॥
चढ़े दुर्ग पुनि कहँ तहँ बानर। जय रघुबीर प्रताप दिवाकर ॥१॥

अर्थ : रामजी के प्रताप से बन्दरों का जुत्था प्रबल हैं। वे राक्षसों के झुण्डो के समूहो को मर्दन कर रहे थे। बन्दर फिर जहाँ तहाँ किले पर चढ़ गये : जयकार लगाया कि रामजी के प्रतापरूपी सूर्य की जय हो।

व्याख्या : एक लड़के को लेकर भागना कठिन होता है। बन्दर लोग एक एक राक्षस को लेकर कैसे भागे ? इसपर कहते है कि बन्दरो मे राम के प्रताप का बल है। इसलिए राक्षसो के झुण्डों के समूहो का मर्दन करते हैं। नही तो कहाँ राक्षस अग्नि और कहाँ बन्दर तिनके। तिनके और आग की कौन लडाई। फिर बन्दरो ने धावा किया और इस बार : जय रघुवीर प्रताप दिवाकर का जयकार लगाते हुए किले पर चारो ओर से चढ गये। प्रभु प्रताप सब कहि समुझाये। अतः उन लोगो ने प्रभु प्रताप को हृदय मे धारण कर रक्खा है और उसी की दोहाई देते हैं। उसे सूर्य कह रहे है। क्योंकि उसके उदय के अन्धकाररूपी राक्षस भाग गये।

चले निसाचर निकर पराई। प्रबल पवन जिमि घन समुदाई ॥
हाहाकार भयउ पुर भारी। रोवहिं बालक आतुर नारी ॥२॥

अर्थ : राक्षसों का समूह ऐसा भागा जैसे प्रबल वायु के चलने पर घन का समूह भाग चलता है। पुर मे भारी हाहाकर हुआ। बीमार बालक और स्त्रियाँ रो रही है।

व्याख्या : पहिले राक्षस लोग बादल की भाँति घिर आये थे। यथा : मेरु के सृंगन्हि जिमि घन बैसे। सो ऐसे भगे जैसे प्रबल वायु चलने से मेघ भागते हैं। यथा : कबहुँ प्रबल बह मारुत जहँ तहँ मेघ बिलाहि।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


बन्दरो द्वारा लका के घिर जाने से ही लका भयउ कोलाहल भारी। अब तो बन्दर भीतर घुस आये। राजसेना भी भाग खडी हुई। अब रक्षा का कौन उपाय है और न जाने कितने राक्षस लडाई मे काम आ गये। अत बीमार अनाथा स्त्रियाँ और अबोध बालक चारो ओर से रोने लगे। तमाम हाहाकार मच गया।

सब मिलि देहि रावनहि गारी। राजु करत एहि मृत्यु हकारी॥
निज दल बिचल सुनी तेहि काना। फेरि सुभट लकेसु रिसाना॥३॥

अथ सब मिलकर रावण को गाली देने लगे कि राज्य करते हुए यह मृत्यु को आह्वान लाया। अपने दल का भागना सुनकर रावण बिगडा तो भागते हुए योद्धा लौट पडे।

व्याख्या रावण की धाक इतनी थी कि जो बात उसको नापसन्द हो उसकी चर्चा करने मे लोग भयभीत होते थे। परन्तु आज स्त्री बच्चे सब मिलकर रावण को गाली दे रहे हैं कि इसी के अपराध से आज हम लोगो पर इतनी बडी विपत्ति आयी है। यह राजा है रक्षक है इसे रक्षा करनी चाहिए। सो यह सुख से राज करता था। निष्कारण इसने मौत को बुला भेजा। यथा पूँछ हीन बानर जहँ जाइहि। तब सठ निज नाथहि लइ आइहि। सोई हुआ उसका नाथ आगया। अब राक्षसा का सहार हो रहा है। अथवा इसने राक्षसो को कालरात्रिरूपी सीता को लाकर मृत्यु को नेवता दिया। यथा काल राति निसिचर कुल केरी। तेहि सीता पर प्रीति घनेरी।

पर रावण ने जब सुना कि राक्षसी सेना भाग रही है तब बिगडा। यह सुनकर राक्षस लौट पडे। क्योकि अब भागकर बचने का भी रास्ता बन्द हो गया।

जो रनबिमुख सुना मै काना। सो मै हतब कराल कृपाना॥
सरबसु खाइ भोग करि नाना। समरभूमि भये बल्लभ प्राना॥४॥

अथ जो लडाई से भागा और मैंने सुना उसे मै स्वय कराल कृपाण से मारूँगा। सर्वस्व खाकर और नाना प्रकार का भोग करके समरभूमि मे प्राण प्यारा लगने लगा।

व्याख्या रावण ने ससार को दुख दिया पर राक्षसो को सुखी कर रक्खा था। यथा सुखी सकल रजनीचर को हे। कहुँ महिष मानुप धेनु खर अज खल निसाचर भच्छही। राजा लोग इसीलिए सेना का भरण करते है कि युद्ध मे काम आवें। दूसरी बात यह कि रावण वीर है। उसे कादर नापसन्द है। अत कहता है जो रण स भागेगा उसे मै मारूँगा। भागना था तो रण मे गया क्यो? बन्दरा को खाने गये सो उन्ही के भय से भागते हैं। पहिले तो मैने इस बात का लखा नही रक्खा था। पर अब रक्खूँगा। मुझ पता लग जायगा कि अमुक रण छाडकर भागा। उस मैं अपने हाथ स चन्द्रहास द्वारा वध करूँगा। जिस प्राण के बचाने क लिए भागते हैं वह न बचने पावगा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जो कुछ मैंने अर्जन किया सब सेना को खिला दिया और सब भोग इन्हे सुलभ कर दिया। इसलिए कि समरभूमि मे प्राण निछावर करें। सो इन्हे प्राणप्रिय मालूम होने लगा।

उग्र वचन सुनि सकल डेराने। चले क्रोध करि सुभट लजाने ॥
सनमुख मरन बीर कै सोभा। तब तिन्ह तजा प्रानकर लोभा ॥५॥

अर्थ रावण के भयदायक वचन सुनकर सब डरे। योद्धा लज्जित हुए और क्रोध करके चल पडे। सामने मरने मे ही वीर की शोभा है। तब उन लोगो ने प्राण का लोभ छोड दिया।

व्याख्या सो मैं हतब कराल कृपाना यह उग्र वचन है। सब डर उठे कि घर म भी नही बचने पावेंगे। यहाँ रावण मारेगा और सर्वस खाइ भोग करि नाना। समरभूमि भये वल्लभ प्राना। यह सुनकर लजाये। भय क्रोध मे पलट गया। सब लौट पडे कि घर मे घुसे हुए का रावण के हाथ से मरने मे शोभा नही है। समर सम्मुख शत्रु द्वारा मरने मे शोभा है। प्राण देना ही है तो शोभा के साथ देंगे। ऐसा निश्चय करके उन्होने प्राण का लोभ छोडा अर्थात् प्राण पर खेल गये।

दो बहु आयुध धर सुभट सब, भिरहिं पचारि पचारि।
व्याकुल किये भालु कपि, परिघ त्रिसूलन्हि मारि ॥४२॥

अर्थ बहुत से हथियार लिये हुए वीरगण ललकार ललकार कर भिडने लगे। उन्होने परिघ और त्रिशूलो से मारकर भालुओ और बन्दरो को व्याकुल कर दिया।

व्याख्या वही निसिचर हैं जो हवा के प्रबल झोके के सामने मेघ की भाँति भाग चले थे। अब प्राण का लोभ छोडने से दूसरे ही हो गये। पहले बन्दर उन्हे ललकारते थे। यथा भजि चलत बहुरि प्रचारही। अब राक्षस प्रचार प्रचारकर बन्दरो से भिड रहे हैं और परिघ तथा त्रिशूलों से ऐसे लडे कि भालू बन्दर व्याकुल हो गये। बन्दर लोग किले पर चढ गये है। अत अति निकट से लडाई हो रही है। राक्षस लोग परिघ और त्रिशूल से काम ले रहे हैं। बन्दर नि शस्त्र हैं। वृक्षादि भी किले के ऊपर सुलभ नही है।

भय आतुर कपि भागन लागे। जद्यपि उमा जीतिहहिं आगे ॥
कोउ कह कहँ अगद हनुमंता। कहँ नल नील द्विविद बलवंता ॥१॥

अर्थ हे उमा ! भय से आतुर होकर बन्दर भागने लगे। यद्यपि आगे चलकर इनकी जीत होगी। कोई कहने लगा कि अङ्गद हनुमान् कहाँ हैं ? बलवान् नल नील और द्विविद कहाँ हैं ?

व्याख्या परिघ त्रिशूल के चोट से बन्दर गिरने लगे। उनके पास प्रतिकार के योग्य कोई शस्त्र नही था। असहाय होकर साथियो को गिरते देखकर शेष

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सेना व्याकुल हो गयी। बानरी सेना जो बढ़ी चढ़ी आती थी सो रुक गयी। इतना ही नही भगेड भी मच गयी। जिस स्थल मे उमा को शंका होने का योग रहता है वहाँ शिवजी सँभालते हैं। उमा को सम्बोधन करके कहते हैं कि यह शंका न करो कि रामजी की कृपा रहते हुए वन्दर हारे क्यो? हार जीत का निर्णय अन्त मे होता है सो अन्त मे जीत वन्दरो की ही होगी।

जो भाग रहे हैं वे भी बलवान् के बुलाने के लिए दौड़े चले जा रहे हैं। जिनसे आशा है उन्ही को पूछ रहे हैं। कोई हनुमान् अङ्गद को पूछता है। कोई नल नील द्विविद को पूछता है अर्थात् प्रख्यात पौरुष वीरो के लिए पुकार मची। इस समय ऐसे वीरो का काम है जो परिघ और त्रिशूल के प्रहार को न गिनै।

निज दल विकल सुना हनुमाना। पच्छिम द्वार रहा बलवाना ॥
मेघनादु तहँ करै लराई। टूट न द्वार परम कठिनाई ॥२॥

अर्थ : हनुमान् ने सुना कि हमारी सेना भाग रही है। ये बलवान् पश्चिम फाटक पर रहे। वहाँ मेघनाद युद्ध कर रहा था। फाटक टूटता नही था। बड़ी कठिनता थी।

व्याख्या : उधर निज दल विचल सुनी तेहि काना। फेरि सुभट लंकेस रिसाना। यह आसुरी सम्पत्ति है कि भीत भगोडो को तीव्रतर भय दिखलाकर लडने के लिए विवश करना। यथा : भये क्रुद्ध तीनउ भाइ। जो भाजि रन ते जाइ। तेहि हतव हम निज पानि। फिरे मरन मन मह ठानि। इत्यादि। दैवी सम्पत्ति ऐसी नही होती। हनुमान्‌जी ने भी निज दल विकल सुना। पर वन्दरो को डराकर फेरना नही चाहा। स्वय पुरुषार्थ के लिए उद्यत हुए। जब समय आया रामजी ने भी ऐसा ही किया। यथा : राम सैन निज पाछे घाली। चले सकोप महा बलसाली।

जिस समय यह समाचार लगा हनुमान्‌जी पश्चिम फाटक पर थे। वहाँ का सेनापतित्व उन्ही के जिम्मे था। वहाँ की दशा और भी भयानक थी। तीनो ओर के फाटक टूट गये थे। पर जहाँ हनुमान्‌जी थे वह फाटक ही अभीतक टूटा न था। क्योकि मेघनाद वहाँ युद्ध कर रहा था। सामर्थ्य किसकी कि फाटक तक पहुँच जाय।

पवनतनय मन भा अति क्रोधा। गर्जेउ प्रबल काल सम जोधा ॥
कूदि लंकगढ़ ऊपर आवा। गहि गिरि मेघनाद कहुँ धावा ॥३॥

अर्थ : हनुमान्‌जी के मन मे बड़ा क्रोध हुआ। योद्धा हनुमान् प्रबल काल के समान गर्जे। कूदकर गढ के ऊपर चढ गये और पहाड़ लेकर मेघनाद पर दौडे।

व्याख्या : हनुमान्‌जी को फाटक न टूटने पर क्रोध हो ही रहा था कि बानरी सेना के भागने का समाचार लगा। अत: अत्यन्त क्रुद्ध हो गये। तब तो प्रबल काल

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



के समान गर्जे। जिस काल की प्रतिक्रिया न हो वही प्रबल काल है। काल का गर्जन प्राण हरण के लिए ही होता है। मेघनाद पर चोट करना है जो मेघ की भांति गर्जन करता है। उसका गर्जन प्रबल काल के गर्जन के सामने फीका पड गया। केवल गर्जे ही नही पराक्रम भी वैसा ही किया। पर्वत लिये हुए लङ्का ऐसे दुर्ग पर जिस पर चिडिया उडकर नही बैठ सकती थी कूदकर चढ गये। और वही पर्वत लिए मेघनाद पर दौडे कि जिसके कारण से फाटक नही टूटता है उसी को मारना है।

भजेउ रथ सारथी निपाता। ताहि हृदय महुँ मारेसि लाता ॥
दुसरे सूत विकल तेहि जाना। स्यदन घालि तुरत गृह आना ॥४॥

अर्थ रथ को तोडा सारथी को मारा और मेघनाद के हृदय म लात मारी। दूसरा सारथी उसे विकल जानकर रथ म डालकर घर ल आया।

व्याख्या ऐसा पहाड फेंका कि रथ चूर हो गया और सारथी पिस गया। परन्तु मेघनाथ अति लाघव से रथ पर से कूद गया। हनुमान्‌जी का लाघव और भी बढा चढा है। उसके कूदने के समय म ही उसके हृदय म लात मारी। हनुमान्‌जी की मुष्टिका से वह मूच्छित हो चुका था। यथा मुठिका मारि चढा तरु जाई। ताहि एक छन मुरछा आई। इस समय तो लात लगी है। अत केवल मूर्च्छा ही नही हुई। उसके साथ विकलता के चिह्न भी दृष्टिगोचर हुए। राजकुमार है उसके साथ अनेको रथ है। पहिला सारथी तो पहिले ही मर गया था। दूसरे ने मेघनाद को विकल देखकर उसे रथ पर डालकर घर पहुँचा दिया। जिससे ऐसी अवस्था म वन्दरो की चपलता से रक्षा हो।

दो अगद सुनेउ पवनसुत, गढ पर गये अकेल।
रन बाँकुरा वालिसुत, तरकि चढेउ कपि खेल ॥४३॥

अर्थ अङ्गदजी ने सुना कि हनुमान्‌जी किले पर अकेले ही गये तो युद्ध म तीखा वालि का बेटा उछलकर बन्दर के खेल की तरह किले पर चढ गया।

व्याख्या वानरी सेना म अङ्गद हनुमान् की पुकार मची थी। हनुमान्‌जी को पहिले समाचार मिला कि वानरी सेना विचलित हो गयी। सो वे तो पहाड लेकर कूदे। अङ्गदजी को पता लगा कि हनुमान्‌जी गढ पर अकेले गये। अकेले जाना अच्छा न समझकर अङ्गदजी अनायासेन कूदकर चढ गये। अङ्गद का हनुमान्‌जी पर बडा प्रेम है। रावण ने वन्दर कहा। इसपर अङ्गदजी बिगडकर कहते हैं बस रे सठ हनुमान् कपि गयउ जो तव सुत मारि। अत हनुमान्‌जी की सहायता के लिए गये। अङ्गदजी का पराक्रम कहते हैं कि लङ्का के प्राकार पर इस भाँति कूदकर चढ गये जैसे वन्दर खेल म उछल कूद करते हो।

जुद्ध विरुद्ध क्रुद्ध दोउ बन्दर। राम प्रताप सुमिरि उर अतर ॥
रावन भवन चढे द्वौ धाई। करहि कोसलाधीस दोहाई ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ युद्ध मे विरुद्ध दोनो बन्दर क्रुद्ध होकर राम के प्रताप को हृदय मे स्मरण करके रावण महल पर दौडकर चढ गये और कोसलाधीश की दोहाई बोलने लगे।

व्याख्या अङ्गदजी गढ पर चढ जाने के बाद हनुमान्‌जी से मिल गये। अपनी सेना के पराभव से क्रुद्ध हैं। युद्ध मे विरुद्ध होकर पराक्रम दिखाना चाहिए। अत हृदय म रामजी के प्रताप को स्मरण किया। असाध्य साधन उसी से होता है। यथा राम समुझि प्रताप कपि कोपा। सभा मांझ करि पन पद रोपा। विचार किया कि सभी ओर सेना मे गडबडी मची हुई है। कहाँ सँभालें। अत ऐसा उपाय किया कि सब शत्रुओ का ध्यान आक्रमण करने से हटकर घर सँभालने की ओर आकृष्ट हो जाय। अत दौडकर रावण के घर पर चढ गये। राजमहल है। सबसे ऊँचा है। उस पर चढने से लकाभर देख सकेगा कि राजमहल शत्रु के हाथ आगया। अब प्राकार पर युद्ध व्यथ है। सब लोग देख लें इसलिए कोसलाधीश की दोहाई की घोषणा कर रहे हैं।

कलस सहित गहि भवन ढहावा। देखि निसाचरपति भय पावा ॥
नारि वृद कर पीटहि छाती। अब दुइ कपि आये उतपाती ॥२॥

अर्थ उन्होने कलश के सहित महल को पकडकर गिरा दिया देखकर राक्षसो के स्वामी डर गये। स्त्रियाँ लगी छाती पीटने कि अब तो दोनो उत्पाती बन्दर आ गये।

व्याख्या राजमहल ही धराशायी हो गया। लकाभर देखे कि जब राजमहल ही गिरा दिया गया तब हार मे शेष क्या है ? कलश सहित भवन गिरना तो ढकेल कर गिराने से ही सम्भव है। एक झोपडी ढकेल कर गिरायी नही जा सकती। यहाँ तो राजप्रासाद ढकेलकर गिराया जा रहा है। अत इस पौरुष को देखकर दूसरे की कौन कहे स्वय लकापति डर गये। सबका ध्यान इधर खिच गया उधर युद्ध मे स्वभावत ढिलाई आ गयी।

राजमहल गिरते देखकर स्त्रियाँ छाती पीटती हैं कि जब राजमहल का यह हाल है तो हमलोगो का क्या होनेवाला है ? क्योकि दोनो उत्पाती बन्दर एक साथ आ गये हैं। पहिले एक के आने से नगर जला और दूसरे के आने पर भूकप आया। आज तो दोनो एक साथ आये हैं। कौन सा उत्पात करेंगे। क्या ठिकाना है ?

कपि लीला करि तिनहि डेरावहि। रामचद्र कर सुजसु सुनावहि ॥
पुनि करगहि कचन के खभा। कहेन्हि करिअ उतपात अरभा ॥३॥

अर्थ वे बन्दरो की लीला करके उनको डराने लगे और रामचन्द्र का सुयश सुनाने लगे। तत्पश्चात् सोने के खम्भो को हाथ से उठा लिया और कहा कि अब उत्पात का आरम्भ करना चाहिए।

व्याख्या स्त्री अवध्य हैं। अत उन्हे बन्दरो की लीला करके डराते है

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



महा महा मुखिया जे पावहिं । ते पद गहि प्रभु पास चलावहिं ॥
कहइ बिभीषनु तिन्ह के नामा । देहिं राम तिन्हहू निज धामा ॥१॥

अर्थ बडे से बडे मुखिया को पाते थे तो उनका पैर पकडकर सरकार के पास फेंक देते थे । विभीषण उनका नाम बतलाते थे और रामजी उनको भी अपना धाम देते थे ।

व्याख्या · शत्रुसेना मे जो बडे से बडे मुखिया थे वे बडे से बडे पापी भी थे । क्योकि पाप करना भी सामर्थ्य पर निर्भर है । सामान्य राक्षस के वर्णन मे कहा गया है कि देखत भीमरूप सब पापी । निसिचर निकर देव परितापी । करहिं उपद्रव असुर निकाया । नाना रूप धरहिं करि माया । जेहि बिधि होइ धर्म निरमूला । सो सब करहिं बेद प्रतिकूला । अत महा महामुखिया अपने सामर्थ्यानुसार उपद्रव भी अधिक करते थे । वेद प्रतिकूलाचरण भी अधिक करते थे । ऐसो को हनुमान्‌जी और अङ्गदजी पैर पकडकर सरकार के पास फेंक देते थे कि हम लोग इन्हे गति देने मे असमर्थ हैं । इन पर सरकार ख्याल करें ।

वे महा महामुखिया थे । उनका नाम सब जानते थे । विभीषणजी भी जानते थे । अत उनका नाम बोलते थे । जिसमे चित्रगुप्त की वही से नाम कट जाय और सरकार उन्हे अपना धाम देते थे जहाँ से फिर लौटना नही होता · यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परम मम ।

खल मनुजाद द्विजामिष भोगी । पावहिं गति जो जाँचत जोगी ॥
उमा राम मृदु चित करुनाकर । बैर भाव सुमिरत मोहि निसिचर ॥२॥

अर्थ नरभक्षी तथा ब्राह्मणो के मास को भोग माननेवाले वह गति पाते थे जिसकी याचना योगी लोग करते है । हे उमा ! रामजी कोमलचित्त और करुणा की खानि है । मुझे वैर भाव से राक्षस स्मरण करते हैं ।

व्याख्या उन बडे से बडे मुखियाओ के लिए कहते है कि वे मनुष्यभक्षी थे । मास का व्यसन यहाँ तक बढता है कि मनुष्य खाने लगते हैं । मनुष्य का मास अन्य सभी मासों से अधिक स्वादु होता है । अत राक्षसो का प्रधान भोजन मनुष्य है । उसमे भी यदि ब्राह्मण मिल जायँ तब तो मानो बडा ही दुर्लभ पदार्थ मिल गया । अत कहते हैं खल मनुजाद द्विजामिष भोगी । ऐसो को नरक मे भी स्थान नही । सो उन्हे ऐसी गति मिल रही है जो योगियो को भी नही मिलती । योगी उस गति के लिए याचना करते हैं ।

यहाँ सन्देह का स्थल है कि यदि ऐसे पापियो को ऐसी दुर्लभ गति मिली जो योगियो को नही मिलती तो न्याय के लिए स्थान कहाँ है ? इसलिए सन्देह निवारण के लिए शिवजी उमा से कहते हैं कि करुणा न्याय से भी बडी है । सरकार का स्वभाव कोमल है और करुणा की खानि है । यहाँ पर भगवत् स्मरण का माहात्म्य कहते हैं । भगवान् अपनेवाले पर दया करते हैं । चाहे वह वैरभाव से ही क्यो न

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



स्मरण करे। ये राक्षस वैरभाव से स्मरण करते है। सरकार से कोई सम्बन्ध स्थिर कर लेना चाहिए और न हो तो वैरभाव ही सही। उपेक्षा न होनी चाहिए।

देहि परमगति सो जिअ जानी। अस कृपालु को कहहु भवानी ॥
अस प्रभु सुनि न भजहि भ्रम त्यागी। नर मति मंद ते परम अभागी ॥३॥

अर्थ : ऐसा जी मे जानकर उन्हे परम गति देते थे। हे भवानी ! बताओ तो ऐसा कृपालु कौन है। ऐसा सुनकर ऐसे स्वामी को जो भ्रम छोड़कर नही भजते वे मनुष्य मतिमन्द और बडे अभागे हैं।

व्याख्या : भाव कुभाव अनख आलसहूँ। नाम जपत मंगल दसि दिसिहूँ। ये अनख से भजते थे। नारदजी का मत है कि : कामक्रोधादय: तस्मिन्नेव करणीया:। उसी पर काम क्रोधादि करे। भजन से परम गति मिलेगी ही चाहे रीझकर करे चाहे खीझकर करे। यथा : तुलसी अपने ईस को रीझि भजै या खीझ। खेत परेते जामिहैं उलटो सीधो बीज। चित्तरूपी लाख को द्रवीभूत करने के लिए द्वेष भी तापक वस्तु है। भगवान् से द्वेष करनेवाले का चित्त भी द्रवीभूत होकर भगवदाकार से आकारित हो जाता है। बडा दृढ छाप चित्त पर पड जाता है। इससे उसका कल्याण हो जाता है। उस छाप से उसे इस देह से सुख नही मिलता जैसा भक्तो को मिलता है। पर सद्गति मे उनके भेद नही पडता। शिवजी भवानी से आक्षेपार्थक प्रश्न करते है कि हे भवानी ! बतलाओ ऐसा कृपालु कौन है जो द्वेष पूर्वक स्मरण करनेवाले को परमगति दे ? स्मरण करने का तो ख्याल करे और द्वेषभाव पर ध्यान न दे। अर्थात् कोई नही है।

भजनीय मे दो गुण होना चाहिए। एक तो वह समर्थ हो और दूसरे कृपालु हो। सो दोनो गुणो की सरकार मे पराकाष्ठा है। समर्थ ऐसे है कि परमगति दे सकते है और कृपालु ऐसे है कि द्रोह भाव पर ध्यान नही देते। केवल स्मरण करने पर रीझ जाते है ऐसे प्रभु के भजन मे जिसे भ्रान्ति होती है वह मतिमन्द है। जो अवसर चूक जाय वह मतिमन्द है। यथा : अहह मन्द मति अवसर चूका। मनुष्य शरीर पाकर उसने रामजी को नही भजा इसलिए मतिमन्द है और बड़ा भारी अभागा है। क्योंकि सेवा के समय दैव ने उसे भ्रम मे डाल दिया। वह इस भ्रम मे रह गया कि कदाचित् कोई दूसरा इनसे अधिक समर्थ और दयालु प्रभु हो।

काय न कलेस लेस लेत मानि मनकी।
सुमिरे सकुचि रुचि जोगवत जनकी ॥
रीझे बस होत खीझे देत निजधाम रे।
फलत सकल फल कामतर नाम रे ॥ विनय० पद ७१

अंगद अरु हनुमंत प्रवेसा। कीन्ह दुर्ग अस कह अवधेसा ॥
लंका द्वौ कपि सोहहिं कैसे। मथहिं सिंधु दुइ मंदर जैसे ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ : अवधेश रामजी कहने लगे कि हनुमान् अङ्गद ने दुर्ग में प्रवेश किया। सो लंका में उन दोनों बन्दरों की कैसी शोभा हुई। जैसे दो बन्दर समुद्र मथ रहे हों।

व्याख्या : लंका में प्रविष्ट तो वानरी सेना कब की ही हो गयी थी पर यथेष्ट फल न हुआ। अङ्गद और हनुमान् के प्रवेश से अद्भुत दृश्य आँख के सामने आ गया। समुद्र मन्थन के समय मन्दर के घुमने से समुद्र का जल उथल पुथल होने लगा। अतः बड़ा घोर शब्द हुआ। यहाँ लंकारूपी समुद्र में हनुमान् अङ्गद भी दो मन्दर घूम रहे हैं। सो उलय पुलय मचा हुआ है। राक्षसों से हाहाकार का बड़ा घोर शब्द हो रहा है। दो मन्दर कहने का भाव यह कि समुद्र मन्थन में अकेला मन्दर यथेष्ट है और यदि दो मन्दर हों तो कहना ही क्या है। इसी भाँति लंका के मन्थन में दोनों में से एक ही यथेष्ट थे। इस समय तो दोनों अङ्गद हनुमान् मन्थन कर रहे हैं। अस कह अवधेसा का भाव यह कि सरकार श्रीमुख से इन दोनों वीरों का प्रशंसा कर रहे हैं।

दो. भुजबल रिपुदल दल मलि, देखि दिवस कर अंत।
कूदे जुगल बिगत स्रम, आये जहँ भगवंत ॥४५॥

अर्थ : भुजा के बल से शत्रु की सेना का मर्दन करके सन्ध्या का समय जानकर दोनों बिना थकावट के कूदे और जहाँ भगवान् थे वहाँ आये।

व्याख्या : शत्रु की सेना शस्त्रास्त्र से सुसज्जित है। इन दोनों वीरो के पास कोई अस्त्र शस्त्र भी नहीं है। केवल भुजा के बल से उस सेना का ऐसा मर्दन किया कि नितान्त शिथिल हो गयी। इधर सन्ध्या भी हो गयी अतः युद्ध समाप्त करते हैं। कुछ थकावट आने से नहीं। कूदकर ही चढ़े थे और कूदकर ही उतरे। शत्रु के गृह में बेरास्ते जाने का विधान है। मित्र के घर में रास्ते से ही जाने का विधान है। अतः ये लोग कूदकर लंका में गये थे और कूदकर सरकार के पास आ गये।

प्रभु पद कमल सीस तिन्ह नाए। देखि सुभट रघुपति मन भाए ॥
राम कृपा करि जुगल निहारे। भये बिगत स्रम परम सुखारे ॥१॥

अर्थ : उन लोगों ने प्रभु चरण कमल में सिर नवाया। योद्धा देखकर रघुपति के मन में अच्छे लगे। रामजी ने कृपा करके दोनों को देखा तो उनकी थकावट मिट गयी और परम सुखी हो गये।

व्याख्या : विजय करके आ रहे हैं। अतः प्रभु के चरण कमलों में प्रणाम करते हैं। सरकार रघुपति हैं। रघुवंशी स्वभाव से वीर होते हैं। वीर के गुण को ठीक ठीक वीर ही समझते हैं। सरकार इनकी करणी वहीं से देख रहे थे कि लंका की समस्त सेना को केवल इन दो महात्माओं ने मन्थन कर डाला। अतः मालिक को प्रिय लगे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


रामजी ने कृपादृष्टि से उन दोनो सुभटों को देखा। उनकी कृपादृष्टि से शक्ति की वृद्धि होती है। यथा : कृपा दृष्टि कपि भालु बिलोके। भये प्रबल रन रहहिं न रोके। तथा : राम कृपा कपिदल बल बाढ़ा। अतः बल के बढ़ने से थकावट जाती रही और बड़ा सुख प्राप्त हुआ। सुख का कारण मालिक की कृपादृष्टि है।

गये, जानि अंगद हनुमाना। फिरे भालु मर्कट भट नाना॥
जातुधान प्रदोष बल पाई। धाए करि दससीस दोहाई॥२॥

अर्थ : अङ्गद और हनुमान् को गया हुआ जानकर नाना भट भालू और बन्दर लौट चले। राक्षस लोग सन्ध्याकाल का बल पाकर रावण की दोहाई बोलते हुए दौड़ पड़े।

व्याख्या : जब भालू बन्दर को मालूम हो गया कि अङ्गद हनुमान् चले गये तो निश्चय हो गया कि लड़ाई बन्द करने की आज्ञा हो गयी। अतः वे लोग भी लड़ना बन्द करके लौट चले। दिन का अन्त ही प्रदोष का समय है। प्रदोष के समय राक्षसो का बल बहुत बढ़ जाता है। काल का बल बड़ा भारी बल है। वह राक्षसों को मिला और अङ्गद हनुमान् उनका संहार करते थे। सो चले गये इसी समय भालू बन्दर की सेना लौटी तो राक्षस लोग रावण का जयकार करते हुए लौटती सेना के पीछे पीछा करने को दौड़े। गढ़ के नीचे तक चले आये।

निसिचर अनी देखि कपि फिरे। जहँ तहँ कटकटाइ भट भिरे॥
द्वौ दल प्रबल प्रचारि प्रचारी। लरत सुभट नहिं मानहि हारी॥३॥

अर्थ : राक्षसो की सेना देखकर बन्दर लौट पड़े और जहाँ तहाँ कटकटाकर वीर लोग भिड़ गये। दोनों प्रबल सेना ललकार ललकार लड़ती है और सुभट लोग हार नही मान रहे हैं।

व्याख्या : जब बन्दरों ने देखा कि राक्षसी सेना पीछा कर रही है तो लौट पड़े। उन्हे क्रोध हुआ कि हमलोग तो लड़ाई को बन्द मानकर लौट रहे हैं और ये पीछा करके उसे पराङ्मुख होने का रूप देना चाहते हैं। इसलिए कटकटाकर भिड़ गये।

वानरी सेना रामजी के बल से प्रबल है और राक्षसी सेना प्रदोष काल बल से प्रबल हो उठी है। अतः ललकार ललकारकर बड़े उत्साह से लड़ते हुए हार नही मानते। क्योंकि हार न मानने के लिए ही तो पीछा [illegible] बन्दर लौटे हैं और उनकी हार स्थापन के लिए ही राक्षसों ने [illegible] अतः हार मानने को कोई तैयार नही। सुभट हैं ललकार [illegible]

बीर तमीचर सब अति कारे। नाना बरन बलीमुख भारे।
सबल जुगल दल समबल जोधा। कौतुक करत लरत करि क्रोधा॥

अर्थ : राक्षस योद्धा सभी अत्यन्त काले हैं और [illegible] [illegible]

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


हैं। दोनो सेनाएँ बलवान् हैं। बराबर के योद्धा लोग क्रोध करके अनेक प्रकार से भिड रहे है।

व्याख्या रात हो गयी। रंग से पहिचान हो रही है। काले तो भालू भी हैं। पर राक्षस अत्यन्त काले हैं और बन्दर अनेक रंग के हैं। अत्यन्त काला देखकर ही राक्षस का निश्चय और रंग बिरंगा देखकर बन्दर का निश्चय हो रहा है। अन्धकार मे इतनी ही पहिचान सम्भव है।

दोनों सेनाएँ प्रबल हैं और बराबर के जोडे मे लडाई हो रही है। योद्धा लोग अनेक प्रकार से लड रहे हैं। वृक्षो से पत्थरो से अस्त्र शस्त्र से नखो से और दाँतो से लडाई हो रही है।

प्रावृट सरद पयोद घनेरे। लरत मनहु मारुत के प्रेरे ॥
अनिप अकंपन अरु अति काया। बिचलत सेन कीन्हि इन्ह माया ॥५॥
भयेउ निमिष महुँ अति अँधियारा। बृष्टि होइ रुधिरोपल छारा ॥६॥

अर्थ: वर्षा और शरद के बहुत से बादल मानो वायु की प्रेरणा से लड रहे हैं। अकम्पन और अतिकाय नामी सेनापतियो ने सेना को भागते हुए देखकर माया किया। क्षण भर मे घोर अन्धकार हो गया और रुधिर पत्थर और राख की वृष्टि होने लगी।

व्याख्या: वर्षा के बादल काले होते हैं और शरद के बादल अनेक रङ्ग के होते है। सो उस युद्ध की शोभा वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि बन्दर लोग तो मानो शरद के बादल हैं और राक्षस मानो वर्षा के बादल हैं। दोनो मे लडाई होती है। बादल तो पङ्गु हैं। चल फिर नही सकते। फिर वे लडते कैसे हैं। इस पर कवि कहते हैं मानो वायु की प्रेरणा से लड रहे हैं।

फिर भी राक्षसो के पैर उखड गये। बन्दर भालुओं के सामने टिक न सके। तब अकम्पन और अतिकाय ने माया की। ये दोनो राक्षसी सेना के सेनापति थे। शारीरिक बल के न चलने पर राक्षस माया से काम लेते हैं। वही इन लोगो ने भी किया। बादल आते किसी ने न देखा और तमाम अँधेरा हो गया। वर्षा जल की होती है। यहाँ रुधिर पत्थर और छार की वर्षा हो रही है।

दो. देखि निबिडतम दसहु दिसि, कपिदल भयउ खभार।
एकहि एकु न देखई, जहँ तहँ करहिं पुकार ॥४६॥

अर्थ: दसो दिशाओ मे घोर अन्धकार देखकर वानरी सेना मे विषाद छा गया। एक दूसरे को देख नही पा रहे हैं। जहाँ तहाँ से पुकार कर रहे है।

व्याख्या: किसी ओर भी कुछ प्रकाश हो तो उधर ही चल जायँ। पर यहाँ तो दसो दिशाओ मे अन्धकार छाया हुआ है। रात मे बन्दरो को दिखाता नही। उजेली रात हो तो कुछ दिखाई पडे। यहाँ तो घोर अन्धेरा मे आ फँसे। पता नही

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


कि मैं कहाँ हूँ और साथी कहाँ हैं। युद्ध मे साथी से बडी सहायता मिलती है और उधर राक्षसो की दृष्टि का अन्धकार मे भी सञ्चार होता है। अत वे सुभीते मे हैं। अत. वानरी सेना मे हाय हाय मची। जो जहाँ है वह वही से सहायता के लिए पुकार कर रहा है।

सकल मरमु रघुनायक जाना। लिये बोलि अंगद हनुमाना ॥
समाचार सब कहि समुझाए। सुनत कोपि कपिकुंजर धाए ॥१॥

अर्थ . रघुनाथजी ने सब रहस्य जान लिया। उन्होने अङ्गद और हनुमान्जी को बुला लिया। उन्हे सब समाचार कहकर समझा दिया। सुनते ही बन्दरो मे हाथी के समान अङ्गद और हनुमान् क्रोध करके दौडे।

व्याख्या : रघुनायक कहकर अमानुष शक्तिसम्पन्न अवतार कहा। यथा . हैं दससीस मनुज रघुनायक। अर्थात् सुरनायक का रघुनायक होना कहा। सर्वज्ञ है सब जान गये। केवल वृत्तान्त ही नही जाना। उसका मर्म भी जाना कि उस अन्धकार उपद्रव का कारण आसुरी माया है। यदि सहायता न पहुँची तो सारी सेना मारी जायगी। इसलिए अङ्गद हनुमान् को बुलाया और सेना का सब इतिवृत्त कहा। यथा :

जानि दिवस को अन्त जब, आयो इत तुम दोय।
लौट चली बानर चमू, बिरत युद्ध तें होय ॥ ॥
ताहि प्रचारयो दुर्ग तें, उतरि निसाचर सेन।
लरति करति माया जबहि, जीति न सक्यौ बलेन ॥२॥
एहि छन कपिदल अति बिकल, दशदिशि लखि अँधियार।
जाइ सँभारो सेन निज अङ्गद पवन कुमार ॥३॥

सुनते ही क्रुद्ध होकर दोनो वीर दौड पडे। बडे बलवान् होने से अङ्गद हनुमान् को कपिकुञ्जर कहा। ये दोनो सुनते ही सहायता के लिए दौड पडे। राक्षसो की नीचता पर क्रुद्ध हैं। शीघ्र पहुँचने के लिए दौडे।

पुनि कृपाल हँसि चाप चढावा। पावक सायक सपदि चलावा ॥
भयउ प्रकास कतहुँ तम नाही। ग्यान उदय जिमि ससय जाही ॥२॥

अर्थ · फिर कृपाल ने हँसकर धनुष चढाया और तुरन्त अग्निबाण चला दिया। तमाम उँजेला हो गया। अधकार कही नही रह गया। जैसे ज्ञान के उदय होने से सशय नही रह जाता।

व्याख्या : पहिले बन्दरो की सहायता के लिए अङ्गद हनुमान् को भेजा और माया नाश के लिए हँसकर धनुष चढाया। अग्निबाण का प्रयोग किया। उसके प्रकाश से तमाम उँजेला हो गया। उपमा देते हैं कि ज्ञान के उदय से जैसे सशय नष्ट हो जाता है। सशय महा दु खद है। यथा : ससय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लहर पुतकं वहु आता। ज्ञान के उदय से वह नष्ट होता है और परमानन्द की प्राप्ति होती है। सो अन्धकार दूर हुआ और बन्दरों को परमानन्द हुआ। अङ्गद हनुमान् के पहुँचने के पहिले ही माया भी नष्ट हो गयी और उजेला भी हो गया।

भालु बलीमुख पाइ प्रकासा। धाए हरषि बिगत श्रम त्रासा ॥
हनुमान अंगद रन गाजे। हांक सुनत रजनीचर भाजे ॥३॥

अर्थ भालू और बन्दर प्रकाश पाकर दौड़े। उनकी थकावट और डर जाता रहा। हनुमान् और अङ्गद रण मे गर्जे। उनकी हांक सुनते ही राक्षस भाग खड़े हुए।

व्याख्या पहले कपिदल में खभार पडा था। अब प्रकाश पाते ही उनका श्रम और भय जाता रहा। राक्षसी सेना को देखा कि दूर खड़ी है। सो उन पर दौड़ पड़े। तब तक इधर हनुमान् और अङ्गदजी भी पहुँच गये। उनकी गर्जना को राक्षस पहचानते हैं। उन्हें बिना देखे ही उनकी गर्जना से उनके आने का अनुमान करके भागे। एक तो प्रकाश होने से ही हिम्मत छूट गयी थी कि अब तो बन्दर भालू बिना लड़े न मानेंगे और बन्दर भालू दौड़ भी पड़े। तब से जो हनुमान् अङ्गद का गर्जन कान तक पहुँचा तो भागते ही बन पड़ा।

भागत भट पटकहि धरि धरनी। करहिं भालु कपि अद्‌भुत करनी ॥
गहि पद डारहि सागर माही। मकर उरग झख धरि धरि खाही ॥४॥

अर्थ · भागते हुए वीरों को पकडकर पृथ्वी पर पटकते हैं। इस भांति भालु कपि अद्भुत करणी कर रहे हैं। उनका पैर पकडकर समुद्र मे फेंक देते हैं। मगर सर्प और मछलियां पकड़ पकड़कर खा रही हैं।

व्याख्या : बन्दर भालू बहुत दु ख पा चुके थे। अत भागते हुए को भी नहीं छोड़ते। पकडकर पृथिवी पर पटक देते हैं। इतना ही नहीं अद्भुत करणी भी करते हैं। उनका पैर पकडकर समुद्र मे फेंक देते हैं। जलजन्तु उन्हें पकड़ पकड़कर खा रहे हैं।

दो. कछु मारे कछु घायल, कछु गढ़ चले पराइ।
गर्जहि भालु बलीमुख, रिपुदल बल बिचलाइ ॥४७॥

अर्थ : कुछ घायल हुए। कुछ रण मे मारे गये। कुछ गढ पर भाग चले। शत्रु के दलबल को विचल करके भालू और वानर वीर गरजने लगे।

व्याख्या : अब भागते हुओं की दुर्दशा कहते हैं। हनुमान् और अङ्गद को कुछ करना न पड़ा। उनका गर्जना ही यथेष्ट था। वानरी सेना ने ही आसुरी सेना की सब दुर्दशा कर दी। कुछ तो घायल होकर रणभूमि मे गिर गये कुछ मारे गये और कुछ भागकर किले पर चढ गये। अब बन्दर खड़े नीचे से गर्ज रहे हैं कि आओ नीचे तो तुम लोगो की खबर लें और वे नहीं उतरते।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


निसा जानि कपि चारिउ अनी । आए जहाँ कोसला धनी ॥
राम कृपा करि चितवा सबही । भए बिगत स्रम बानर तबही ॥१॥

अर्थ : रात जानकर चारो सेना के बन्दर कोशलेश के पास आये। रामजी ने कृपा करके ज्यों ही देखा त्यो ही बन्दरो की थकावट जाती रही।

व्याख्या : पहिले ही चारो फाटक पर धावा करने के लिए चार सेना बनायी गयी थी। यथा : चार अनी कपि कटक बनावा। सो चारो सेना के बन्दर लोग सरकार के पास आये। राक्षसो की सेना को भगाकर गर्जन करते थे। पर राक्षसी सेना रात होने पर भी युद्ध के लिए नही आयी तब वहाँ से लौट कर सरकार के पास आये।

वीर लोग दिन भर युद्ध करके लौटे हैं। उनके श्रमापनोदन का उपाय होना चाहिए। सो सरकार ने जैसे अङ्गद हनुमान् के श्रमापनोदन का उपाय किया था वही सेवा के लिए भी किया। अर्थात् कृपादृष्टि से देखा। कृपादृष्टि मे बड़ी सामार्थ्य है। देखते ही सबकी थकावट दूर हो गयी। क्योंकि सबके सब निहाल हो गये। यथा :

नाथ हाथ माया प्रपंच सब जीव दोष गुनकाम कालु।
तुलसिदास भलो पोंच रावरो नेकु निरखि कीजिये निहालु॥
विनय० पद १५४

## रावण की सभा

उहाँ दसानन सचिव हँकारे। सब सन कहेसि सुभट जे मारे॥
आधा कटकु कपिन्ह संघारा। कहहु बेगि का करिअ बिचारा॥२॥

अर्थ : वहाँ रावण ने मन्त्रियो को बुलाया और सबसे कहा कि इतने वीर मारे गये। बन्दरो ने आधी सेना मार दी। जल्दी विचार कहो कि क्या करना चाहिए।

व्याख्या : यहाँ का हाल कहकर अब कवि वहाँ अर्थात् रावण के यहाँ का हाल कहते हैं। रावण के पास जितने वीर मारे गये उनकी नामावली और हताहत सैनिको की सूची पेश हुई। जानकर रावण चिन्तित हुए। तुरन्त मन्त्री बुलाये गये। रावण ने सबको बतलाया कि अमुक वीर मारे गये और आधी सेना बन्दरों ने मार गिराया। भाव यह कि तुम लोग कहते थे कि : कहहु कवन भय करिअ विचारा। नर कपि भालु अहार हमारा। सो तुम लोग कुछ न कर सके और राक्षसो का इतना संहार पहिले ही लड़ाई मे हो गया। बन्दरो के प्रधान वीर कोई नही मारे गये। सेना भी कुशल से लौट गयी। सो तुम लोगो के उस विचार से तो बहुत हानि हुई। अब विचारकर बतलाओ कि क्या करना चाहिए।

माल्यवंत अति जरठ निसाचर। रावन मातु पिता मंत्री बर॥
बोला बचन नीति अति पावन। सुनहु तात कछु मोर सिखावन॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ माल्यवन्त नाम का राक्षस बडा बूढा था। वह रावण के नाना का श्रेष्ठ मन्त्री था। वह अत्यन्त पवित्र नीति का वचन बोला। कहने लगा कि हे तात। कुछ मेरा भी कहना मानो।

व्याख्या रावण के पूछने पर अब किसी मन्त्री के मुख से कोई बात नही निकलती। कोई भी यह कहने को तैयार न हुआ कि मैं सब बन्दरो को मारूँगा। वे तो भय और आशा से प्रिय बोलनेवाले थे। घर पर तो वे भी यही विचार करते थे कि नहिं निसिचर कुल केर उबारा। परन्तु यह बात रावण को प्रिय न थी। अत कह नही सकते थे सब के सब चुप हैं। तब माल्यवान् बोले। ये बडे बूढे थे। रावण के नाना का मन्त्रित्व कर चुके थे। रावण को गोद खिलाये हुए हैं। इस समय रावण का मन्त्रित्व कर रहे हैं। इन्ही ने विभीषण का समर्थन किया था।

सबको चुप देखकर धर्मनीति का वचन बोले कि यह समय विचार करने का नहीं है। मेरे सिखावन सुनने का समय है। तुम किसी का सिखावन नही सुनते पर मेरी तो सुनो। तुम्हारे नाना मेरी सुनते थे।

जब ते तुम सीता हरि आनी। असगुन होहिं न जाहिं बखानी ॥
वेद पुरान जासु जस गायो। राम बिमुख काहु न सुख पायो ॥४॥

अर्थ जब से तुम सीताहरण कर लाये तब से ऐसे अपशकुन हो रहे हैं जो वर्णन नही किये जा सकते। जिसके यश का गान वेद पुराण करते है उस राम के विमुख होने से किसी को सुख न मिला।

व्याख्या माल्यवान् कहते हैं कि तुम लोगो को कुछ होश नही है। मैं बैठे बैठे देखा करता हूँ। लका सदा निरापद रहा है। परन्तु जब से तुम सीता को हरण करके ले आये हो तब से ऐसे असगुन लका मे हो रहे हैं कि मैं उनका वर्णन नही कर सकता। पहिले अधर्म से प्रकृति म विकार आता है। पीछे अनिष्ट होता है। वही प्रकृति का विकार ही असगुन है। अत असगुन से अशुभ फल होना निश्चय है। असगुन भविष्य घटना का द्योतक है। कभी खाली नही जाता।

तुमने बडा भारी अधर्म किया है। राम का यश वेद पुराण गान करते हैं। यथा वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्य। उनकी आज्ञा ही धर्म है। उनकी आज्ञा का उल्लघन अधर्म है। सो तुम उनके विमुख हो गये हो। राम जगदात्मा हैं। उनके विमुख होना अपनी आत्मा के विमुख होना है। अत उनके विमुख जो हुआ उसे विश्राम मिल नही सकता। यथा जगदातमा प्राणपति रामा। तासु विमुख किमि लह विश्रामा। पहिले भी जो उनसे विमुख हुए हैं उन्हे सुख नही मिला है।

दो हिरण्याक्ष भ्राता सहित, मधुकैटभ बलवान।
जेहि मारे सोइ अवतरेउ, कृपासिंधु भगवान ॥
कालरूप खल बन दहन, गुनागार घनबोध।
सिव बिरचि जेहि सेवहि, तासो कवन बिरोध ॥४८॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ : भाई के सहित हिरण्याक्ष को तथा बलवान् मधुकैटभ को जिसने मारा था वही कृपासिंधु भगवान् अवतीर्ण हुए हैं। वे कालरूप हैं। खलवन के लिए दावानल हैं। गुणागार और ज्ञानघन हैं। जिसकी शिव ब्रह्म सेवन करते हैं उससे विरोध कैसा ?

व्याख्या : रामविमुख सुख काहु न पावा। इसी बात को स्पष्ट करते हुए माल्यवान कहते हैं कि उनके विरोधी चाहे कैसे ही पुरुषार्थी हो पर वे बच नहीं सकते।

हिरण्याक्ष के ऐसा पुरुषार्थी कौन होगा जो एकाकी गदा लिए हुए त्रैलोक्य में अपना जोड़ खोजता फिरता था। पर उसे कोई न मिला। वह जिसके हाथ से मारा गया। फिर उसके भाई हिरण्यकश्यप सा वरदान से सुरक्षित वीर कौन होगा। जो न रात को मरे न दिन को मरे। न घर के भीतर मरे न बाहर मरे। वह भी जिनके हाथ से मारा गया तथा बलवान मधुकैटभ जिन से डर के स्वयं ब्रह्मदेव जगदम्बा की स्तुति करने लगे। जिनके हाथ से मारे गये। यथा : अतिबल मधुकैटभ जिन मारे। महावीर दिति सुत संहारे। जेहि बलि बाँधि सहजभुज मारा। सोइ अवतरेउ हरन महि भारा। वे ही कृपासिन्धु भगवान् अवतीर्ण हुए है इस बात को मैं जानता हूँ और राक्षस नहीं जानते। इनसे मन्त्रणा करना व्यर्थ है। मै जानता हूँ। मेरी शिक्षा ग्रहण करो।

उन्हें मनुष्य न जानो। वे कालरूप हैं। यथा : कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धः लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्त.। कालरूप तिन कर मैं ताता। सुभ अरु असुभ कर्मफल दाता। खल के वन के लिए दावानल ही हैं। भस्म करके ही छोड़ते हैं। जैसा खलवन हो तदनुसार ही आकार करके उसका दाह करते हैं। जितने सद्गुण हैं उनके वे ही आश्रय है। अत उनसे विरोध करना उचित नहीं। वे किसी से विरोध करते नहीं और विज्ञानघन है। अत: शिव विरञ्चि से सेवित हैं। अन्य जीव उनके सामने क्या हैं ? ता सों तात बैर नहि कीजै। मारे मरिअ जिआये जीजै। जिसके जिलाने से सब जीते हैं 'और मारने से सब मर जाते हैं उनसे विरोध कैसा ? प्रीति विरोध समान सन, करिअ नीति अस आहि। गरुड़ से मच्छड विरोध क्या करेगा।

क से कालरूप ख से खलवनदहन ग से गुनागार घ से घनबोध। मानो माल्यवान रावण को ककहरा पढा रहे है।

परिहरि बैरु देहु बैदेही। भजहु कृपानिधि परम सनेही ॥
ताके बचन बान सम लागे। करिया मुँह करि जाहि अभागे ॥१॥

अर्थ : वैर छोड़कर वैदेही को दे दो। परम स्नेही कृपानिधि को भजो। उसके वचन बाण के समान लगे। बोला कि रे अभागा! काला मुख करके चला जा।

व्याख्या : भाव यह कि तुम्हारा जो निश्चय है कि : तउ मैं जाइ बैर हठि करऊँ। उसे छोड़ो और बैर का मूल वैदेही हरण है सो उन्हे दे दो। तुमने कृपाल

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



और स्नेही ब्रह्मरुद्र का भजन किया था। अब कृपानिधि और परम स्नेही का भजन करो। भाव यह कि तुम कृपानिधि और परम स्नेही से वैर करते हो। सरकार कृपानिधि हैं। यथा : बिगरी सुधारै कृपानिधि की कृपा नई। वे बिगडी बात बना देते हैं। तुमसे जो कुछ बिगडा है सब बना देवेंगे। वे ब्रह्म है जीव पर उनका सहज स्नेह है। यथा : ब्रह्म जीव इव सहज सनेहू। तुम्हारे ऐसे आचरण पर भी तुम्हारे ऊपर उनका स्नेह बना ही हुआ है। कारुनीक दिनकर कुलकेतू। दूत पठायेउ तव हित हेतू।

माल्यवान के वचन परम हितकर थे। पर रावण को बडे बुरे लगे। जैसे किसी ने बाण मारा हो। मन्दोदरी ने भी ऐसे ही वचन कहे थे। उन वचनो का भी चोट बाण सा ही लगा था। यथा : नारि वचन सुनि बिसिख समाना। सभा गयउ उठि होत बिहाना। पर उसे रावण सहन कर गये। मन्त्री के वचन न सह सके। बोले रे अभागा ! तू काला मुँह करके यहाँ से चला जा। हतो वा प्राप्स्यसि स्वर्गं जित्वा वा भोक्ष्यसे महीम्। इस क्षात्र धर्म के तू विरुद्ध बोलता है। तू अभागा है। इतने सुभट मारे गये। आधी सेना समाप्त हो गयी। अब सुलह कैसा ? अब तो सुलह करके मुँह मे कालिख पोतना है। इस प्रकार का मन्त्र देनेवाला तू है। तू अपने मुँह मे कालिख पोत ले। और यहाँ से चला जा मेरा क्रोध बढ रहा है।

बूढ भयेसि नत मरतेउँ तोही। अब जनि नयन देखावसि मोही ॥
तेहि अपने मन अस अनुमाना। बध्यौ चहत एहि कृपानिधाना ॥२॥

अर्थ तू बूढा हुआ नही तो मैं तुझे वध दण्ड देता। अब मुझे आँख न दिखाना। उसने अपने मन मे यह अनुमान किया कि इसे कृपानिधान मारना चाहते हैं।

व्याख्या : समर मन्त्रणा मे ऐसी कच्ची बात बोलनेवाला वध्य है। तू मुझे सिखावन देने चला है। बच्चो की भाँति मुझे ककहरा पढाता है. काल रूप खल बन दहन गुनागार घनबोध। हम लोग खल है ? वृद्धावस्था में बुद्धि मारी जाती है। यथा लिखा बिरचि जरठ मति भोरे। तेरी बुद्धि बूढे होने से मारी गयी। अत. तुझे वध दण्ड तो नही देता पर तू यहाँ से निकल जा और फिर मेरे सामने कभी न आना। नयन देखावसि पाठ प्राचीन मिलता है। वहाँ यह अर्थ करना पडेगा कि रावण के . बरिया मुख करि जाहि अभागे कहने पर माल्यवान के नेत्रो से क्रोध का भाव प्रकट हुआ। इसपर रावण कहता है कि तू वयोवृद्ध है। नही तो मेरे हाथ से तेरा वध हो जायगा।

तब माल्यवान ने अनुमान किया कि मैं इसके नाना का मन्त्री हूँ। मैंने इसे गोद खिलाया है। मैं इसके भल की बात कहता हूँ। यह मुझे गाली देता है। निश्चय इसकी मृत्यु निकट है। रामजी कृपानिधान है। इसका वध करके ससार पर और स्वय इसपर कृपा करना चाहते है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


सो उठि गयउ कहत दुर्बादा। तब सकोप बोलेउ घननादा ॥
कौतुक प्रात देखिअहु मोरा। करिहौं बहुत कहौं का थोरा ॥३॥

अर्थ—वह तो दुर्वाद कहता चला गया। तब क्रुद्ध होकर मेघनाद ने कहा कि सबेरे मेरा तमाशा देखना। मैं बहुत कुछ करूँगा थोड़ा क्या कहूँ।

व्याख्या : पहिले तो नेत्रों में ही क्रोध का भाव व्यक्त हुआ। अब वचन से भी व्यक्त हो रहा है। माल्यवान इतना बड़ा अपमान नहीं सह सकता। जैसे बड़े लोग छोटे से अपमानित होने पर दुर्वाद कहते हुए उठकर चले जाते हैं उसी भाँति माल्यवान भी असाध्य व्याधि देखकर मतिमंद अभागा आदि दुर्वचन बोलता चला गया। माल्यवान् ही थे जिसका रावण इतना सह गया।

रावण ने यह समझकर प्रश्न किया था कि इसपर वीर लोग खड़े होंगे कि मैं युद्ध करूँगा मैं युद्ध करूँगा पर माल्यवान के चले जाने पर भी कोई न बोला। इस पर क्रुद्ध होकर जिसका भटों में प्रथम गणना है वह मेघनाद बोला।

सबेरा होने दीजिए। मैं कौतुक दिखलाऊँगा सब सेना खड़ी तमाशा देखे। देखिए मैं क्या करता हूँ। मेरे लिए वह खेलवाड़ होगा। शत्रु के लिए बहुत हो जायगा। यदि मैं इस समय कहूँ तो थोड़ा ही कह सकूँगा। अर्थात् अवर्णनीय पुरुषार्थ प्रकट करूँगा।

सुनि सुत वचन भरोसा आवा। प्रीति समेत अंक बैठावा ॥

### [1]मेघनाद का गढ़ से उतरकर युद्ध करना

करत बिचार भयउ भिनुसारा। लागे कपि पुनि चहूँ दुआरा ॥४॥

अर्थ—बेटे की बात सुनकर रावण को भरोसा हुआ। प्रेम के साथ गोद में बिठाया। विचार करते ही करते सबेरा हो गया। वानरों ने फिर चारो फाटक पर धावा बोल दिया।

व्याख्या : किसी ने भरोसा नहीं दिया। रावण निराश हो गये थे। बेटे पर बड़ा नाज है सुत प्रसिद्ध सक्रारि। अतः भरोसा हुआ। मानदान के लिए अपनी गोद में बिठा लिया अथवा प्रेम के वशीभूत होकर अंक में स्थान दिया।

तत्पश्चात् विचार होने लगा कि क्या करना चाहिए। समस्या ऐसी कठिन थी कि विचार करने मे ही रात व्यतीत हो गयी विचार समाप्त न हुआ। स्थिर यह हुआ कि उपेक्षा करना ठीक नहीं हुआ। किले पर से तोप चलनी चाहिए। इतना सबेरा हो गया कि बन्दर लोगों ने चारों फाटक पर धावा बोल दिया।

कोपि कपिन्ह दुर्घट गढ़ु घेरा। नगर कोलाहलु भयउ घनेरा ॥
बिबिधायुध धरि निसिचर धाये। गढ़ ते पर्बत सिखर ढहाये ॥५॥

---

१. यह युद्ध पुष्यनक्षत्र की वर्षा है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : क्रोध करके बन्दरो ने दुर्घट गढ को घेर लिया। नगर में बड़ा भारी कोलाहल हुआ। अनेक प्रकार के अस्त्र-शस्त्र लेकर राक्षस दौड़े और किले पर से पर्वत के शिखर गिराये।

व्याख्या : पहिले बन्दर लोग चारो फाटक पर आये फिर क्रोध करके पूरी लका घेर ली जिसमे सब ओर से युद्ध हो। जहाँ से अवसर मिले चढ जायँ। फिर नगर मे भारी कोलाहल हुआ। शब्द सभा तक पहुँचा। राक्षस अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित होकर दौड़ पडे कि जिसमे ऊपर बन्दर चढने न पावें। आकर देखा कि चढ रहे हैं तो किले पर से पहाड के शिखर ढकेलने लगे।

छं. [1]ढाहे महीधर सिखर कोटिन्ह बिबिध बिधि गोला चले।
घहरात जिमि पविपात गर्जत जनु प्रलय के बादले॥
मर्कट बिकट भट जुटत कटत न लटत तन जर्जर भये।
गहि सैल तेहि गढ़ पर चलावहिं जहँ सो तहँ निसिचर हये॥

अर्थ : राक्षसो ने करोडो शिखर ढकेले और अनेक प्रकार के गोले चलने लगे। जो ऐसा वज्रपात के समान घहराते थे और प्रलय के बादल के समान गर्जन करते हैं। विकट वीर वानर जुटते थे कटते थे शरीर जर्जर हो जाता था। तब भी वे शिथिल नही पडते थे। उन्ही पहाडो को लेकर वे गढपर फेकते थे। जिससे जहाँ के तहाँ राक्षस मारे गये।

व्याख्या : असख्य पर्वत शिखर प्राकार के सन्निकट पहुँची हुई सेना से सहार के लिए ढकेले गये। दूरपर स्थित सेना के विनाश के लिए अनेक प्रकार के गोला चले। अर्थात् तोप की मार आरम्भ हुई। यहाँ यह सन्देह न करना चाहिए कि उस समय तोप नहीं थी। बारूद का प्रयोग बहुत प्राचीन काल से चला आता है। शुक्रनीति आदि ग्रन्थ द्रष्टव्य हैं। गोला चलने के समय ऐसा घोर शब्द होता था जैसे प्रलय के बादलो द्वारा वज्रपात के समय होता है। राक्षसी सेना की उपमा बादल से प्रथम दिन के युद्ध मे दे चुके हैं। यथा : मेरु के सृंगन जिमि घन बैसे। आज भारी सेना आयी है। तोपो के चलने से धुआँ भी उठा हुआ है। इससे प्रलय के बादल से उपमा देते हैं। तोपो से अग्नि की लपक निकलती है। उसके बाद गड़-गड़ाहट होती है। अत: उसकी उपमा वज्रपात से दे रहे हैं। मर्कट भी विकट भट हैं। पर्वत और गोलो की मार से छितर-बितर हो जाते हैं पर फिर जुट जाते हैं। चोट से कट जाते हैं। शरीर चिथड़ा हो जाता है पर हार नहीं मानते। रामजी की कृपा से उन्हे अतुलित बल है। राक्षसो के फेंके हुए पर्वतो को बीच मे से ही पकड़कर उन्हे ऊपर इस भाँति फेंकना आरम्भ किया कि राक्षसी सेना जहाँ की तहाँ ही मारी पड़ी।

---

१. यह हरिगति छद है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


दो मेघनाद सुनि स्रवन अस, गढ़ पुनि छेंका आइ।
उतरेउ बीर दुर्ग ते, सनमुख चलेउ बजाइ ॥४९॥

अर्थ मेघनाथ ने कान से सुन पाया कि फिर किला घेर लिया। तब वह श्रेष्ठ वीर किले से उतरकर सामने डंका देकर चला।

व्याख्या मेघनाथ के पास समाचार पहुँचा कि मोरचे पर की सेना मारी गयी। तोप से भी काम न चला। वानरी सेना ने लंका घेर रक्खा है। मेघनाथ बड़ा वीर है। योद्धाओं में उसकी प्रथम गणना है। उसे किले के भीतर से युद्ध करना पसन्द नहीं। किले के भीतर से कमजोर लड़ाई करते हैं। अतः किले से नीचे उतर आया और डंका देकर सरकार के सामने चला। उसने निश्चय किया कि जब हम उन पर धावा बोल देवेंगे तो आप से आप वानरी सेना लंका का घेरा छोड़ देगी। नहीं तो चारों ओर युद्ध हो रहा है किधर किधर हम सँभालें। भाव यह कि जो चाल अङ्गद और हनुमान्‌जी प्रथम दिवस के युद्ध में चले थे वही चाल आज मेघनाथ चल रहा है।

कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता। धन्वी सकल लोक बिख्याता ॥
कहँ नल नील द्विबिद सुग्रीवा। अंगद हनूमंत बल सींवा ॥१॥

अर्थ कहाँ हैं कोसलाधीश दोनों भाई जो कि लोकप्रसिद्ध धनुर्धर हैं कहाँ हैं? नल नील द्विविद सुग्रीव और बल की सीमा अङ्गद और हनुमान् कहाँ हैं?

व्याख्या मेघनाथ ललकारता है कि मैं आज उन दोनों भाइयों से युद्ध करूँगा जिनके धनुर्धर होने की प्रशंसा सम्पूर्ण संसार में है। आज मैं उनकी धनुर्विद्या देखूँगा। तुम लोग हट जाओ क्यों प्राण देने आते हो। उन्हें बुलाओ या दिखला दो कल की लड़ाई में तुम लोग नल नील द्विविद अङ्गद और हनुमान् को सेना विचलित होने के समय खोजते थे। वे ही मालूम होता है तुम्हारी सेना में बलवान् हैं। आज मैं उन्हीं लोगों को खोज रहा हूँ। सो उन लोगों को मेरा सामना करने को बुलाओ या मुझे उन लोगों को दिखला दो कि वे कहाँ हैं?

कहाँ बिभीषनु भ्राता द्रोही। आजु सबहि हठि मारौं ओही ॥
अस कहि कठिन बान संधाने। अतिसय क्रोध स्रवन लगि ताने ॥२॥

अर्थ भाई से विरोध करनेवाला विभीषण कहाँ है। आज मैं उस शठ को हठ करके मारूँगा। ऐसा कहकर उसने कठिन बाण चढ़ाये और अत्यन्त क्रोध से धनुष को कान तक खैंचा।

व्याख्या विभीषण भ्राता द्रोही है। लंकेश बनकर आया है। वह शठ है। भाई से मीठी मीठी बातें करता था। परन्तु हृदय में उसके लंकेश बनने की अभिरुचि रही। प्रधान विरोधी होकर तो वही आया है। आज उसे तो हठ करके मार ही

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



डालूँगा। और लोग तो भागकर बच सकते हैं पर वह भागकर भी मेरे हाथ से न बचेगा। बतला दो उसको कि कहाँ है? मुझे तुम लोगों के मारने से प्रयोजन नहीं है।

उसकी चेतावनी का जब कोई प्रभाव वानरी सेना पर न पड़ा तो उसने कठिन बाणों को चढ़ाया। जिसका रोक न हो सके और अत्यन्त क्रुद्ध होकर कान तक प्रत्यञ्चा खेंचकर बाण छोड़े जिससे दूर तक चोट हो और चोट दबाकर कोई बच न सके।

सरसमूह सो छाड़ै लागा। जनु सपच्छ धावहिं बहु नागा॥
जहँ तहँ परत देखिअहि बानर। सनमुख होइ न सके तेहि अवसर॥३॥

अर्थ: वह बाणों का समूह छोड़ने लगा। मानो बहुत से पङ्खवाले सर्प दौड़ रहे हो। बानर जहाँ तहाँ गिरते हुए दिखाई पड़ने लगे। उस अवसर मे कोई उसके सामने न हो सका।

व्याख्या: कमनेती की कुशलता दिखाते हैं। एक एक बाण नहीं मारता। समूह के समूह छोड़ता है। वे पक्षसहित सर्प मालूम पड़ते हैं। बाण में पंख लगाये जाते हैं इसलिए सपक्ष कहा। विष से बुझाये हुए हैं इसलिए नाग कहा। अथवा फुंकार करते चलते हैं इसलिए नाग कहा। यथा: फुकरत जनु बहु व्याल बन्दरों का किया कुछ नही हो रहा है। जो जहाँ हैं वे वही गिर रहे हैं। किसी की सामर्थ्य नहीं जो मेघनाथ के सामने जा सके।

जह तहँ भागि चले कपि रीछा। बिसरी सबहिं युद्ध कै ईछा॥
सो कपि भालु न रन महँ देखा। कीन्हेसि जेहि न प्रान अवसेखा॥४॥

अर्थ: वानर और भालू जहाँ तहाँ भाग चले। लड़ाई की इच्छा सबको भूल गयी। रण में ऐसा कोई भालू या वानर न दिखाई पड़ा जिसे उसने प्राणावशेष न कर दिया हो।

व्याख्या: वानरी सेना भाग चली। जिन बन्दरों को युद्ध को ऐसी इच्छा थी कि परम क्रोध मीजहिं सब हाथा। आयसु पै न देहि रघुनाथा। मदि गर्द मिलवहिं दससीसा। ऐसइ बचन कहहिं सब कीसा। उनके मन से युद्ध की इच्छा जाती रही। उन्हें स्मरण भी नही है कि कभी उनको युद्ध की इच्छा थी।

मेघनाथ की बाणवर्षा ऐसी भयानक हुई कि जो जीते रहे वे भी प्राणविशेष रह गये। मेघनाथ उत्तर फाटक से बाहर आया है। वही युद्ध कर रहा है वही की यह व्यवस्था हुई।

दो. दसदस सर सब मारेसि, परे भूमि कपि बीर।
सिंहनाद करि गर्जा, मेघनाद बलधीर॥५०॥

अर्थ: उसने सबको दस दस बाण मारे सब वीर धराशायी हुए। बलधीर मेघनाथ सिंहनाद करके गर्जा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : सेना की यह दुर्दशा सुनकर चारों ओर से वीर उधर ही दौड़ पड़े। उन्हें सहायता करने के लिए आते देखकर सबको दस दस बाण मारे। धनुर्वेद में दस दस बाण मारने की कोई विधि है जिससे समूह पर प्रहार करने में सबको दस दस बाण लगते हैं। यथा : दसदस बिसिख उरमाझ, मारे सकल निसिचर नायकां। वे सबके सब वीर पृथ्वी पर गिर गये। तब सेना और वीरों का पराजय करके मेघनाद सिंहनाद करके गरजा। यह विजयसूचक गर्जन है।

देखि पवनसुत कटकु बिहाला। क्रोधवंत जनु धायेउ काला ॥
महासैल एक तुरत उपारा। अतिरिसि मेघनाद पर डारा ॥१॥

अर्थ : हनुमान्‌जी सेना को बिहाल देखकर क्रुद्ध हो काल की भाँति दौड़े। तमककर बड़ा भारी पर्वत उखाड़ लिया और अत्यन्त क्रोध से मेघनाद पर फेंका।

व्याख्या : हनुमान्‌जी पवनतनय हैं। पवन सा ही इनको बल है। पहिले तो विचलित होना सुना था। यथा : निज दल बिकल सुना हनुमाना। पर इस बार तो आँखों देखा कि हमारी सेना बिहाल है। देखा तो बहुतों ने पर किसी का किया कुछ हो न सका। पवनसुत काल की भाँति दौड़े : अट्टहास अमित लय कारी। काल सदा दुरतिक्रम भारी। हनुमान्‌जी का भी अतिक्रमण नहीं हो सकता। अतः काल के ऐसा कहा। काल अपने वेग से ही मारता है। अतः धावा जिमि काला कहा।

महा महीधर अर्थात् ऐसा पहाड़ जो बाण से तोड़ा न जा सके क्रोध से उखाड़ लिया। और सेना को बेहाल देखने से क्रोध बहुत बढ़ा हुआ है। इसलिए बड़े वेग से मेघनाद पर फेंका। मेघनाद उस समय कठिन बाण चला रहा था। उसी समय हनुमान्‌जी ने अप्रतिक्रिय चोट महीधर द्वारा की।

आवत देखि गयो नभ सोई। रथ सारथी तुरग सब खोई ॥
बार बार पचार हनुमाना। निकट न आव मरमु सो जाना ॥२॥

अर्थ : पहाड़ आते देखकर वह आकाश में चला गया पर रथ सारथी और घोड़े समाप्त हो गये। हनुमान्‌जी बार बार ललकारते हैं पर वह मर्म जानता है। इसलिए निकट नहीं आता।

व्याख्या : पहाड़ सिर पर आते देखकर मेघनाद समझ गया कि इससे न बचेंगे। अतः आकाश में चला गया। नीचे नहीं कूदा उसे भय था कि वज्र की भाँति हनुमान्‌जी लात से मारेंगे। पहाड़ रथपर गिरा सो रथ सारथि और घोड़े पिस गये। यह मेघनाद की दूसरी पराजय हनुमान्‌जी द्वारा हुई।

मेघनाद आकाश में ही स्थित है। हनुमान्‌जी नीचे से बार बार ललकारते हैं। वह पहिले बार बार ललकार चुका है। उसके जवाब में इधर से भी ललकार हो रही है। कहँ नल नील द्विविद सुग्रीवा। अंगद हनुमन्त बलसीवा। सो हनुमन्त आ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



गये और बार बार ललकार रहे हैं। यह समय भिड जाने का है पर वह इनके निकट नही आता। मर्म जाना हुआ है कि एक मुक्का मे मूर्च्छित हो गये थे और कल ही लात खानेपर लादकर घर पहुँचाये गये थे और इस समय परम क्रुद्ध हैं। निकट जाने मे कल्याण नही है।

रघुपति निकट गयउ घननादा। नाना भाँति कहेसि दुर्बादा॥
अस्त्र सस्त्र आयुध सब डारे। कौतुकही प्रभु काटि निवारे॥३॥

अर्थ मेघनाद तब रामजी के पास गया और अनेक प्रकार के दुर्वचन कहे। अस्त्र शस्त्र तथा बहुत से हथियार चलाये। सरकार ने खेल मे ही सब काट डाले।

व्याख्या तब तो हनुमान्जी को वही छोडा और सरकार के पास पहुँचा। नाना भाँति से गालियाँ दी। इस भाँति अपना पुण्य क्षीण कर रहा है। क्योंकि भगवदपराध से पुण्य क्षीण होता है। मेघनाद शुभाशुभ कर्म का नाश करके मोक्ष चाहता है। सीताहरण मे इसका अपराध कुछ भी नही अथवा आसुरी प्रकृति है। अत इसने वैर का नाता जोड रक्खा है। ससार स्तुति करता है। यह गाली देता है कि जानबूझकर तुमने झगडा मोल लिया है। तुम्हारी स्त्री हरण की गयी तो इतना क्रोध है सूपणखा अनाथा की नाक कटी सो कुछ नही हुआ?

दुर्वाद का कोई उत्तर न पाकर अस्त्र शस्त्र चलाने लगा। अब सरकार का कौतुक आरम्भ हुआ। अस्त्र शस्त्र काटते हैं पर उसे नही मारते जिसमे उसके जी मे लडाई का हौसला न रह जाय। सरकार तो इसके बाणपर प्रहार करते हैं।

देखि प्रताप मूढ खिसिआना। करै लाग माया बिधि नाना॥
जिमि कोउ करै गरुड से खेला। डर पावै गहि स्वल्प सँपेला॥

अर्थ सरकार का प्रताप देखकर वह मूढ खिसिया गया। तब नाना प्रकार की माया करने लगा। जैसे कोई गरुड से खेलवाड करे और छोटा सा साँप का बच्चा लेकर उसे डरावे।

व्याख्या जिन अस्त्रो को अप्रतिक्रिय समझता था वे सब काटे गये। धन्वी होने का अभिमान टूटा। सामर्थ्य नही चलने पर खिसियाया। प्रभाव देख लेनेपर शरण जाना चाहिए था परन्तु मूढ है। उसे चिढ हुई तब अनेक प्रकार की माया दिखलाने लगा।

उसका भी प्रभाव सरकार पर कुछ न हुआ। यदि गरुड को कोई साँप का बच्चा दिखाकर डरावे तो गरुड पर क्या प्रभाव पडेगा? साँप का बच्चा भी उपेक्षा की वस्तु नही है। पर हम लोगो के लिए गरुड के लिए नही। क्योकि गरुडजी तो बडे बडे सर्पों का ही आहार करते हैं। सर्प का विष उनके मन्त्र से उतर जाता है। साँप के बच्चे से गरुड को क्या भय हो सकता है? इसी भाँति माया का प्रभाव जीव पर पड सकता है। मायानाथ के सामने माया क्या करेगी?

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. जासु प्रबल माया बस, सिव बिरंचि बड़ छोट।
ताहि देखावै निसिचर, निज माया मति खोट ॥५१॥

अर्थ : जिसकी प्रबल माया के विवश शिव विरञ्चि तथा सभी छोटे बडे हैं उसे मन्दबुद्धि निशाचर अपनी आसुरी माया दिखा रहा है।

व्याख्या : जिसकी माया जगत् के कर्ता धर्ता शिव विरञ्चि को मोहन करती है तथा सम्पूर्ण ससार जिसके वश मे है यथा : यन्मायावशवर्ति विश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवा सुराः। शिव विरचि कहँ मोहै को है बपुरा आन। उस प्रभु को यह निशाचर अपनी माया दिखाने चला। यह उसकी मतिमन्दता है। अथवा जब देख लिया कि सच्चे हानिकारक अप्रतिक्रिय अस्त्र शस्त्र का बल जिसपर नही चलता। उसपर माया क्या काम करेगी जो स्वय तत्त्वरहित हैं। अतः उसके माया दिखाने का प्रयास उसके बुद्धिमान्द्य का ही परिचायक है।

नभ चढ़ि बरष बिपुल अगारा। महि ते प्रगट होहि जलधारा ॥
नाना भाँति पिसाच पिसाची। मारु काटु धुनि बोलहि नाची ॥१॥

अर्थ : वह आकाश चढकर अगारो : गोलो की बड़ी वृष्टि करता था। पृथ्वी से पानी की धारा फूट निकलती थी। अनेक प्रकार के पिशाच और पिशाचिनियाँ नाच नाचकर मारो काटो की ध्वनि करती थी।

व्याख्या : आकाश अत्यन्त सूक्ष्म भूत है। वह ऐसी वस्तु नही है जिसपर चढा जा सके। परन्तु मेघनाद आकाश पर चढ जाता है और वहाँ से अङ्गारे बरसाता है। जल बरसते तो सब ने देखा है पर अगारो का बरसना तो किसी ने सुना भी नही। इस वैज्ञानिक युग मे अगारो : गोलो का बरसाना सुना जाता है। असुरो मे कुहक विद्या प्राचीन काल से चली आती है। बीच मे लोप हो गया था। अब फिर वह विद्या प्रकट हुई है और वे अगारे इतने वेग से गिरते थे कि पृथ्वी से फूटकर जलधारा निकल पड़ती थी। सिनेमा का दृश्य दिनदहाड़े रणागण मे दिखला देता था। अकम्पन और अतिकाय ने तो दिन की लडाई मे पहिले अन्धकार उत्पन्न करके तब सिनेमाभवन की भाँति माया के दृश्य दिखाये थे पर मेघनाद उँजेले मे दिखा रहा है। पिशाच पिशाची आदि उग्रजीवो का नाच हो रहा है। भयानक नाच है। ताल टूटने के साथ मारो काटो की धुनि की जाती है।

बिष्टा पूय रुधिर कच हाड़ा। बरषै कबहुँ उपल बहु छाड़ा ॥
बरषि धूरि कीन्हेसि अँधियारा। सूझ न आपन हाथु पसारा ॥२॥

अर्थ : विष्ठा पीव रक्त बाल हड्डियाँ और कभी बहुत से पत्थर और वान्त : उलटी बरसाता था। उसने धूलि वर्षा करके ऐसा अँधियारा कर दिया कि अपना फैलाया हुआ हाथ नही सूझता था।

व्याख्या : वन्दर रीछ लोग देवाश हैं यथा : जो कुछ आयसु ब्रह्मा दीन्हा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

हरखे देव बिलंब न कीन्हा। बनचर देह धरी छिति माही। अतुलित बल प्रताप तिन पाही। सो उनका तेज नष्ट करने के लिए अपवित्र वस्तुओं की वर्षा करता है।

बन्दर लोग तब तक तो भला किसी भाँति सहन कर सकते थे जब तक कि दिखलाई देता था। पर जब धूल की वर्षा उमने की और उससे ऐसा अन्धकार हो गया कि अपना ही हाथ फैलाने पर नही दिखाई पड़ने लगा।

कपि अकुलाने माया देखें। सबकर मरनु बना एहि लेखें॥
कौतुक देखि राम मुसुकाने। भये सभीत सकल कपि जाने॥३॥

अर्थ : माया देखकर वन्दर घबराये कि इस भाँति तो हम लोग सभी मर जायँगे। यह खेल देखकर रामजी मुसुकुराए। समझ लिया कि सभी वन्दर त्रस्त हो गये हैं।

व्याख्या : सबके लिए तो यह अपार माया थी पर रामजी के लिए कौतुक था। वे मुसुकुराए कि इसी लिये यह बाप से कह आया है : कि कौतुक प्रात देखिअहु मोरा। करिहौं बहुत कहौं का थोरा। परन्तु यह मेरे बन्दरो के डराने के लिए बहुत है। वे तो इस दृश्य को सच्चा मानेंगे।

एक बान काटी सब माया। जिमि दिनकर हर तिमिर निकाया॥
कृपादृष्टि कपि भालु बिलोकें। भए प्रबल रन रहहिं न रोकें॥४॥

अर्थ : एक ही बाण से सारी माया काट दी जैसे सूर्य अन्धकार के समूह को नष्ट कर देता है। रामजी ने बानर भालुओ को कृपादृष्टि से देखा जिससे वे इतने हो गये कि रोके नही रुकते थे।

व्याख्या : यहाँ बाण से माया काटी जाती है। सिनेमा का यन्त्र ही तोड़ दिया गया। एक बाण से सब माया वैसी ही कटी जैसे एक सूर्य से सब अन्धकार का नाश हो जाता है। विष्ठा पूय रुधिर कच हड्डी आदि का पता ही नही कि क्या हो गये। न कहीं अंगारे : गोले गिरे थे न पृथ्वी फटी थी। पर सेना प्राणावशेष हो गयी थी। सो सरकार की कृपादृष्टि के देखने से ऐसी प्रबल हो उठी कि रोकने से नही रुकती थी। नही तो सबकी युद्ध की इच्छा ही समाप्त हो गयी थी यथा : बिसरी सबहि युद्ध कै इच्छा।

दो. आयसु माँगि राम पहि, अंगदादि कपि साथ।
लछिमन चले क्रुद्ध होइ, बान सरासन हाथ॥५२॥

अर्थ : तब रामजी से आज्ञा माँगकर अङ्गद आदि बन्दरों के साथ अत्यन्त क्रुद्ध होकर लक्ष्मणजी धनुष बाण हाथ मे लिये हुए चले।

व्याख्या : मेघनाद के अन्याय को नही सह सके। अत: लक्ष्मणजी ने उठकर युद्ध करने की आज्ञा माँगी। क्योंकि मेघनाद सरकार से युद्ध कर रहा था और सरकार उसके ऊपर प्रहार नही करते थे। केवल उसके प्रहारों को व्यर्थ कर देते

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


थे। अत लक्ष्मणजी ने स्वय युद्ध करना चाहा। आज्ञा मिलने पर अङ्गद आदि वीरो के साथ बहुत क्रुद्ध होकर चले। उसने नाना भाँति से सरकार को दुर्वाद कहा है। इसलिए लक्ष्मणजी को बडा क्रोध है। उसने ललकारा भी है कि कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता। इस कारण से भी लक्ष्मणजी का उसके सामने जाना प्राप्त था क्रोध के वेग मे सरकार को प्रणाम करना विस्मरण हो गया।

छतज नयन उर बाहु बिसाला। हिमगिरि निभ तनु कछु एक लाला ॥
इहाँ दसानन सुभट पठाए। नाना शस्त्र अस्त्र गहि धाये ॥१॥

अर्थ लक्ष्मणजी की आँखें रक्त की तरह लाल छाती और भुजायें विशाल और शरीर हिमाचल पर्वत की आभावाला है। पर कुछ लाली भी है। इधर रावण ने योद्धाओ को भेजा। वे अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र लेकर दौडे।

व्याख्या मेघनाद ने सरकार को दुर्वाद कहा है। इससे क्रोध विशेष होने से आँखें रक्त की भाँति लाल हो गई हैं। अवयव सस्थान वीरोचित आकारवाला है अर्थात् छाती और वक्ष स्थल विशाल है। स्वभाव से लक्ष्मणजी का वर्ण हिमालय की भाँति श्वेत है। पर इस समय उस श्वेत वर्ण मे कुछ ललाई क्रोध के कारण आ गयी यथा सीस जटा ससि बदन सुहावा। रिसिबस कछुक अरुन होइ आवा। मेघनाद ने रावण से कहा था कौतुक प्रात देखि अहु मोरा। सो रावण कौतुक देख रहे थे। जब देखा कि सब माया समाप्त हो गई। वानरी सेना की कोई विशेष क्षति नही हुई। तब रावण ने सहायता के लिए योद्धाओ को भेजा। दशानन है सब ओर दृष्टि रखता है। रत्ती-रत्ती का समाचार लगाये रहता है। लक्ष्मणजी युद्ध के लिए उठे हैं। अङ्गदादि बडे बडे वीर साथ हैं। अत लका के प्राय सभी वीरो को सहायतार्थ भेजा।

भूधर नख बिटपायुध धारी। धाए कपि जयराम पुकारी ॥
भिरे सकल जोरिहि सनजोरी। इतउत जयइच्छा नहिं थोरी ॥२॥

अर्थ पर्वत नख और विटपरूपी हथियार धारण किये हुए जयरामजी की ऐसा पुकारकर बन्दर दौड पडे। जोडो से जोडो भिड गयी। इधर और उधर दोनो ओर से जय की थोडी इच्छा नही है।

व्याख्या अस्त्र शस्त्र लिये निशाचरी सेना का धावा देखकर वानरी सेना भी दौड पडी। इनके पास हथियार के नाम से पहाड नख और पेड थे। सात्त्विक कर्त्ता है ईश्वर प्रीत्यर्थ युद्ध करते हैं। अपना स्वार्थ उनका कुछ भी नही है। जयराम के पुकार से अपना उत्साह बढाते हैं तथा शत्रु को सावधान करते हैं। अपनी जोडी खोजने मे कठिनता नही है। स्वामी के साथ वीर लोग योग्यता के क्रम से आ रहे हैं। धर्मयुद्ध हो रहा है। जोडी से जोडी भिडी हुई है। निर्बलो की हत्या नही हो रही है। आज सम्पूर्ण भट लका के और रामदल के उतर पडे हैं। हनुमान् अङ्गद सुग्रीव नील नल द्विविद मयद आदि तथा दुर्मुख सुररिपु अतिकाय अकम्पन आदि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सब वीर युद्ध मे प्रवृत्त हैं। दोनो ओर से जीत की प्रबल इच्छा है। प्राणपण से युद्ध हो रहा है। श्रीराम जय राम जय जय राम : यह महामन्त्र तृण को भी वज्र बनाता है।

मुठिकन्ह लातन्ह दातन्ह काटहि। कपि जयसील मारि पुनि डाटहिं ॥
मारु मारु धरु धरु धरु मारू। सीस तोरि गहि भुजा उपारू ॥३॥

अर्थ : वानर राक्षसो को पजे लात और दाँतो से काटते है। जीत बन्दरो की होती थी। वे मारकर फिर दूसरो को डाँटते थे। मारो मारो धरो धरो पकडो मारो सिर तोडकर पकडकर भुजा उखाड लो।

व्याख्या : बन्दरो को पैर नही होते। चारो हाथ ही होते हैं। अत वे जिस भाँति अगले पजो से नख प्रहार करते थे उसी भाँति पिछले पजो से भी जिन्हे लात कहा गया है नख प्रहार करते थे। नख भी शस्त्र की भाँति काट कर रहे हैं। इसलिए मुष्टि लात और दाँत से भी काटना कहा गया है। केवल काटने मारने मे वीर रस नही है। वीररस डाँटने मे है। जब जयशील होकर वीर डाँटता है कि अन्यायी फिर तू लडने का साहस करेगा : तब वीर रस का परिपाक होता है।

जो सामने आता है उसे मारू जो अपने साथी को पीछे से प्रहार किया चाहता है उसे धरू और जो साथी को मार रहा हो उसे धरूँ मारूँ। मारने की विधि कहते हैं कि शीश तोरू नही टूटता हो तो भुजा उपारू। सग्राम भूमि मे वीरो की इस प्रकार की चिल्लाहट हो रही है।

असि रव पूरि रही नवखडा। धावहि जहँ तह रुड प्रचडा ॥
देखहिं कौतुक नभसुर बृदा। कबहुँक बिसमय कबहुँ अनदा ॥४॥

अर्थ : नवो खण्डो मे ऐसी ध्वनि भर रही है। जहाँ तहाँ प्रचण्ड रुण्ड दौडने लगे। आकाश मे देवगण यह कौतुक देख रहे थे। कभी तो उन्हे विस्मय हो जाता था और कभी आनन्दित हो जाते थे।

व्याख्या : यहाँ अत्युक्ति अलङ्कार है। भाव यह कि ऐसी ध्वनि दिगन्त मे व्याप्त हो रही थी। बडा भारी सग्राम हुआ। अभी तक युद्ध मे रुण्ड नही उठे थे। सो जिधर देखिए उधर ही रुण्ड दौडते दिखाई पडते है। जब तलवार का लडाई थी उस समय रण रस मे मत्त वीर सिर कटने पर भी कुछ देर तक तलवार चलाते हुए लड़ते थे। बहुत से वीरो के कटने पर कोई रुण्ड उठता है लोग कहते हैं कि अन्तिम रुण्ड ऊदल का महाराज पृथ्वीराज की लडाई मे उठा था। फिर रुण्ड नही उठा। वैसा युद्ध यज्ञ हो नही हुआ कि रुण्ड उठे। अब तो युद्ध यज्ञ ही बन्द है, युद्ध के नाम पर नर हत्या होती है।

देवता लोग जिनके लिए यह सब हो रहा है आकाश मे दूर से तमाशा देख रहे हैं। जब निशाचर दल बीस पडता है तब उन्हे विस्मय होता है और जब

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


वानरी सेना बीस पडती है तब आनन्द होता है। आनन्द के जोड़ मे विस्मय शब्द के प्रयोग से उसका अर्थ दु ख करना पडा।

दो. रुधिर गाड़ भरि भरि जमेउ, ऊपर धूरि उडाइ।
जनु अगार रासिन्ह पर, मृतक धूम रह्यो छाइ ॥५३॥

अर्थ : गड्ढो मे भरकर रक्त इकट्ठा हो गया। उस पर धूल उड़कर पड़ी जैसे अङ्गार की राशियो पर राख छा जाय।

व्याख्या : रुधिर गाढा होता है और बहुत शीघ्र जम जाता है। सो युद्ध मे सद्य. रक्त प्रवाह ऐसा बहा कि गड्ढे भर गये और अधिक ऊँचे हो गये। युद्ध मे जो धूलि उठी उससे ढक जाने पर भी लाली चमकती है। उसकी उपमा देते हुए कहते हैं जैसे अङ्गार राशि पर हलकी राख स्वभाव से ही हो जाती है। इस भाँति रणाङ्गण का वर्णन करके वीरो का वर्णन करते है।

घायल बीर बिराजहि कैसे। कुसुमित किंसुक के तरु जैसे॥
लछिमन मेघनाद द्वौ जोधा। भिरहि परसपर करि अति क्रोधा ॥१॥

अर्थ : घायल वीर ऐसी शोभा दे रहे हैं जैसे फूला हुआ टेसू का वृक्ष हो। लक्ष्मण और मेघनाद दोनो योद्धा अत्यन्त क्रोध से एक दूसरे पर प्रहार कर रहे है।

व्याख्या : जब टेसू फूलता है तो सम्पूर्ण जङ्गल लाल हो जाता है। एक एक पेड लाल फूलो से भर उठता है। इसी भाँति घायल वीर लोग घाव के बहुतायत से लाल हो उठे हैं। रणाङ्गण टेसू का वन हो रहा है। सब जोडियो का इस भाँति वर्णन करके प्रधान जोडी लक्ष्मण और मेघनाद के युद्ध का वर्णन करते है। बिना क्रोध का युद्ध हत्या है। युद्धयज्ञ मे क्रोधाग्नि का प्रज्वलित होना अत्यन्त आवश्यक है। यथा . चाप स्रुवा सर आहुति जानू। कोप मोर अति घोर कृसानू। समिध सेन चतुरग सोहाई। महा महीप भये पसु आई। मै एहि परसु काटि बलि दीन्हे। समर जग्य जप कोटिन्ह कीन्हे। अत. सभी जोड़ियो मे क्रोध हो रहा है। पर लक्ष्मण मेघनाद की जोडी मे क्रोध अधिक है। ये दोनो ओर के सिरे के वीर हैं। मेघनाद के विषय मे कहा गया है : बारिदनाद जेठ सुत तासू। भट महुँ प्रथम लीक जग जासू। जेहि न होइ रन सनमुख कोई। सुरपुर नितहि परावन होई। और लक्ष्मणजी के लिए स्वय सरकार कहते हैं . जग महुँ सखा निसाचर जेते। लछिमन हनइ निमिष महुँ तेते।

एकहि एक सकै नहि जीती। निसिचर छल बल करै अनीती॥
क्रोधवंत तब भयउ अनंता। भजेउ रथ सारथी तुरंता ॥२॥

अर्थ : एक दूसरे को जीत नही पा रहे हैं। राक्षस छल के बल से अनीति करता है। तब अनन्त क्रुद्ध हुए उसके रथ और सारथी का विध्वस किया।

*व्याख्या : लक्ष्मणजी के जीतने मे मेघनाद सर्वथा असमर्थ है। लक्ष्मणजी*

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

अनन्त हैं : इनका पराभव हो नही सकता । पर मेघनाद राक्षस है उसे छल के बल से अनीति करने मे कोई हिचक नही है । अत: उसका जीतना लक्ष्मणजी के लिए भी कठिन हो रहा है अथवा लक्ष्मणजी उसे खेला रहे हैं । जिसमे उसका हौसला बाकी न रहे । देखने मे यह मालूम हो रहा है कि : सकहिं नहि जीती ।

मेघनाद रथ पर से युद्ध करता था और लक्ष्मणजी पदाती थे । फिर भी उसे अनीति करते देखकर क्रोध किया अर्थात् वध करने की इच्छा की । अत: पहिले उसे विरथ किया । रथ तोड दिया । सारथी को मार दिया । मेघनाद रक्षा न कर सका । अभी तक रथ रहने दिया था कि तू रथ पर से लड मै पैदल ही तेरा सामना करूँगा ।

नाना बिधि प्रहार कर सेषा । राक्षस भयउ प्रान अवसेषा ॥
रावनसुत निज मन अनुमाना । संकट भयउ हरिहि मम प्राना ॥३॥

अर्थ : लक्ष्मणजी ने अनेक प्रकार से उसपर प्रहार किया । तब तो राक्षस प्राणावशेष हो गया । रावण के बेटे ने मन मे अनुमान किया कि सकट आ पडा है । अब यह मेरा प्राण हरण करेगा ।

*व्याख्या* : लक्ष्मणजी शेष हैं । जैसे शेषजी सहस्रफण से प्रहार करें उस भाँति अति लाघव से नाना प्रकार से ऐसा प्रहार किया कि उसमे प्राणमात्र शेष रह गया । वह अपने को बचा न सका । उसे मालूम होता था कि सहस्रो प्रहार एक साथ हो रहे हैं । मेघनाद ने बन्दरो की सेना को प्राणावशेष कर दिया था यथा : सो कपि भालु न रन महँ देखा । कीन्हेसि जेहि न प्रान अवसेषा । लक्ष्मणजी ने उसके बदले मे इसे प्राणावशेष कर दिया ।

रावण का बेटा युद्ध विद्या मे बडा चतुर है । तुरन्त समझ गया कि पहिले विरथ करके मुझे सकटापन्न अवस्था मे ले आये अब मेरा प्राण लिया चाहते हैं । वह वीरघातिनी साँगी साथ लाया था पर उसे छोडता न था । चाहता था कि अन्य उपाय से काम निकल जायगा । पर जब देखा कि मरा चाहते हैं तो निश्चय किया कि अब साँगी किस दिन काम आयेगी ।

बीर घातिनी छाडेसि सागी । तेजपुज लछिमन उर लागी ॥
मुरछा भई सक्ति के लागें । तब चलि गयउ निकट भय त्यागे ॥४॥

अर्थ : तब उसने वीरघातिनी शक्ति चलायी । वह तेज की पुञ्ज थी । लक्ष्मणजी के हृदय मे लगी । शक्ति के लगने से मूर्च्छा हुई तब भय छोडकर उनके पास चला गया ।

व्याख्या : वीरघातिनी शक्ति प्रख्यातप्रभावा है । जब मेघनाद के चलाने से वह चली तो मालूम हुआ कि तेज का पुञ्ज ऊपर आ गया । वह शक्ति लक्ष्मणजी के हृदय मे लगी । इतना ता उसने कर ही दिया कि लक्ष्मणजी मूर्च्छित हो गये । मेघनाथ लक्ष्मणजी से बहुत भयभीत हो गया था पर मूर्च्छित देखकर लका मे उठा ले

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


जाने के लिए निकट चला गया। उसने समझ लिया कि लक्ष्मणजी अजेय हैं। वीरघातिनी शक्ति भी इनका घात नही कर सकी। अत मूर्च्छा छूटने से पहिले इन्हे लका मे ले जाकर बन्दी कर लेना चाहिए।

दो मेघनाद सम कोटि सत, जोधा रहे उठाइ।
जगदाधार सेष किमि, उठइ चले खिसिआइ ॥५४॥

अर्थ मेघनाद के समान सौ करोड योद्धा लक्ष्मणजी को उठाने लगे। पर जगत् के आधार अनन्त कैसे उठ सकते हैं। अत खिसियाकर सब लौट चले।

व्याख्या यहाँ सम शब्द ईषत् न्यून के अर्थ मे आया है। कोटिशत का अर्थ बहुत है। भाव यह कि मेघनाद ने अकेले ही उठाना चाहा पर जब न उठे तो और भी वीर लोग उसकी सहायता म लग गये। पर लक्ष्मणजी को हिला न सके। सरकार का प्रभाव देखकर मेघनाद खिसियाकर रह गया। यथा देखि प्रभाव मूढ खिसिआना। इस समय लक्ष्मणजी का प्रभाव देख खिसियाकर चला गया। कवि कहते हैं कि लक्ष्मणजी जगदाधार हैं। अनन्त हैं। वे उठ नही सकते। शान्त पदार्थ ही हिलडोल सकता है। लक्ष्मणजी अवतारावस्था मे भी स्वरूप मे ही स्थित हैं।

सुनु गिरिजा क्रोधानल जासू। जारै भुवन चारिदस आसू ॥
सक सग्राम जीति को ताही। सेवहि सुरनर अगजग जाही ॥१॥

अर्थ हे गिरिजा! सुनो जिसके क्रोध की आग चौदहो भुवन को तुरन्त भस्म कर देती है। जिसकी देवता मनुष्य चर अचर सब सेवा करते हैं उसे युद्ध मे कौन जीत सकता है?

व्याख्या कथा कहते कहते महादेवजी गिरिजा को सावधान करते चले जाते हैं। सरकार के अति नर अनुहारी चरित देखने या सुनने से मोह हो जाने की बडी सम्भावना रहती है। अत बार बार श्रोता को सावधान करते रहना चाहिए। अत जब जब अति नर अनुहारी चरित का प्रकरण आ जाता है तब तब शिवजी उमा को सावधान करते हैं।

अग्नि लगने से सम्पूर्ण भुवन नही जल सकता। दीवार आदि शेष रह ही जाता। पर शेष भगवान् की कोपाग्नि इतनी प्रबल है कि सारा ससार तुरन्त भस्म हो जाता है। वही शेष लक्ष्मणजी हैं, इनका क्रोध ही सारे जगत् को भस्म करता है और कुछ करने की आवश्यकता नही। ये यदि सग्राम करें तो इन्हे कौन जीत सकता है? ये सबके स्वामी हैं। जड चेतन मनुष्य देवता सब इनकी सेवा करते हैं। लडने की तो कोई बात ही नही।

यह कौतूहल जानै सोई। जापर कृपा राम कै होई ॥
सध्या भई फिरी दोउ बाहिनी। लगे सँभारन निजनिज अनी ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ : यह कौतुक वही जान सकता है जिसपर रामजी की कृपा हो। सन्ध्या हुई दोनो सेनाएँ लौटी। सब अपनी अपनी सेना को सँभालने लगे।

व्याख्या : यहाँ प्रश्न यह उठता है कि जब ऐसा पराक्रम है तो मूर्च्छा कैसे हुई ? यदि अलौकिक पराक्रमी हैं तो मूर्च्छित कैसे हुए और यदि मूर्च्छित हुए तो उन्हे अलौकिक पराक्रमी कैसे मानें ? इस पर कहते हैं कि इसके जानने का कौतूहल होना बहुत सम्भव है। पर इसका रहस्य वही जानता है जिसपर रामकृपा हो। प्रभु के कृपापात्र वाल्मीकिजी ने कहा : तुम जो कहहु करहु सब साँचा। जस काछिय तस चाहिय नाचा। जो स्वाँग लावे तदनुसार ही अभिनय करना चाहिए। अन्यत्र भी कहा है : नट कृत विकट कपट खगराया। नट सेवकहि न व्यापै माया। सो नर इन्द्रजाल नहि भूला। जापर होइ सो नट अनुकूला। दिन भर युद्ध होता था। साय काल को समाप्त हो जाता था। उस दिन भी सन्ध्या होने पर दोनो सेनाएँ लौट गयी। यूथप लोग अपने अपने यूथ को सँभालने लगे। कौन मारा गया कौन घायल हुआ। कितना घायल हुआ : इत्यादि।

## लक्ष्मण का उपचार

व्यापक ब्रह्म अजित भुवनेश्वर। लछिमन कहाँ बूझ करुनाकर ॥
तब लगि लै आयउ हनुमाना। अनुज देखि प्रभु अति दुखु माना ॥३॥

अर्थ : व्यापक ब्रह्म अजेय सम्पूर्ण भुवनो के ईश्वर करुणाकर पूछते हैं कि लक्ष्मण कहाँ है। तब तक हनुमान्‌जी उन्हे ले आये। भाई को देखकर सरकार ने बहुत दुःख माना।

व्याख्या : व्यापक उसे कहते है जो सर्वत्र हो। पर आकाश भी व्यापक हैं। अत: ब्रह्म कहते है। जिसकी व्यापकता आकाश से भी बढकर है और चेतन है। अत: अजेय हैं। व्याप्य से व्यापक नही जीता जाता। वही भुवनेश्वर हैं। उसका आज्ञा अपेल है और जो इतना होने पर भी कारुणीक है। अपने भक्तो पर बड़ी करुणा करता है ऐसे प्रभु रामजी है।

अब दूसरा कौतुक सुनिये। रामजी अपने स्वरूप को छिपाये हुए सामान्य मनुष्य की भाँति पूछते है। लक्ष्मण युद्ध करने गये थे सो अबतक नही लौटे। वे कहाँ है ? पर कोई उत्तर नही देता। इस अप्रिय समाचार को कोई कहना नही चाहता। तब तक हनुमान्‌जी उन्हे उठा लाये। क्योकि हनुमान्‌जी सरकार के बडे कृपापात्र हैं। यथा : तैं मम प्रिय लछिमनते दूना। इन्द्रजाल के जाननेवाले है। छोटे भाई की दशा मृतप्राय देखकर सरकार बहुत दुःखी दिखाई पडे।

जामवंत कह बैद सुखेना। लंका रहै को पठई लेना ॥
धरि लघुरूप गयउ हनुमंता। आनेउ भवन समेत तुरंता ॥४॥

अर्थ : जाम्बवान् ने कहा : सुषेण वैद्य लंका में रहता है उसे ले आने के

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


लिए किसी को भेजा जाय। हनुमान्‌जी छोटा रूप करके गये और तुरन्त उसे घर के सहित उठा लाये।

व्याख्या : इस समय विभीषण को कहना प्राप्त था परन्तु नही कहते। सोचते हैं कि यदि सुषेण की चिकित्सा से भी लक्ष्मण नही अच्छे हुए तो मेरी क्या परिस्थिति होगी ? सुग्रीवजी की ही बात ठीक पड़ जायगी : जानि न जाइ निसाचर माया। कामरूप केहि कारण आया। सभी कहेंगे : इस भाँति सुषेण द्वारा लक्ष्मण का प्राण विभीषण ने लिया। परन्तु जाम्बवान्‌जी भेद जानते हैं। वह वैद्य है। जान बूझकर कभी हानि नही पहुँचा सकता। अतः जाम्बवान्‌जी ने कहा कि मैं जानता हूँ। लंका का वैद्य सुषेण बड़ा प्रवीण है। उसे लिवा आना चाहिए। पर सुषेण का घर कौन जानता है। लंका मे जाकर सुषेण को लिवा लाने मे समर्थ कौन है ? यह बात विचारणीय थी। हनुमान्‌जी यह सुनते ही आप से आप चल पड़े। इनका घर घर देखा हुआ है। इन्हे सुषेण का औषधालय स्मरण है। जैसा छोटा रूप धारण करके पहिले लंका मे गये थे उसी रूप से गये और सुषेण का घर के सहित उठा लाये। इससे रावण से सुषेण की रक्षा भी हो गयी और सुषेण को यह कहने का अवसर न मिले कि दवा तो घर पर ही छूट गयी।

दो. राम पदारविन्द सिरु, नायउ आइ सुषेन।
कहा नाम गिरि ओषधी, जाहु पवनसुत लेन ॥५५॥

अर्थ : सुषेण ने आकर रामजी के चरण कमलों मे सिर नवाया। उसने पहाड़ और ओषध का नाम बतलाया : आज्ञा हुई कि पवनपुत्र जाओ ले आवो।

व्याख्या : सुषेण भक्ति से प्रभु को प्रणाम करते हैं। यहाँ सब कुछ बड़ी जल्दी से हो रहा है। इसलिए कवि भी बड़ी जल्दी मे हैं। कथा को अति संक्षेप मे कह रहे हैं। सुषेण द्वारा लक्ष्मण का देखना आदि न कहकर सुषेण का वाक्य भी अति संक्षेप मे कह रहे हैं कि उसने पर्वत का नाम जिसपर वह ओषधि होती है और उस ओषधि का भी नाम बतला दिया। कहा कि सूर्योदय के पहिले यह ओषधि आ जानी चाहिए। यहाँ सबसे पूछा गया। कौन कितनी देर मे जा सकता है ? सबने अपना वेग कहा। पर रात भर मे लाने का साहस किसी को भी नही हुआ। केवल राजा सुग्रीव ने कहा कि मैं चार पहर मे ला सकता हूँ। अङ्गदजी ने कहा तीन पहर मे मे ला सकता हूँ। हनुमान्‌जी ने कहा खौलते हुए तेल मे राई छोड़िये। जितने देर मे फूटेगी उतनी देर मे मैं ला दूँगा। अतः पवनसुत को आज्ञा हुई।

रामचरन सरसिज उर राखी। चला प्रभंजनसुत बल भाषी॥
उहाँ दूत एकु मरमु जनावा। रावनु कालिनेमि गृह आवा॥१॥

अर्थ : रामजी के चरण कमलो को हृदय मे रखकर प्रभञ्जन : पवन कुमार अपना बल कथन करके चले। वहाँ एक दूत ने जाकर भेद कहा। रावण कालिनेमि के घर आये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

व्याख्या : रामजी के चरणकमलो को हृदय मे धारण करना ही सब सिद्धियो का अमोघ साधन है। यह ध्यान असाध्यसाधन करता है। अतः हनुमान्‌जी ने पहिले उन चरणो को हृदय मे स्थान दिया। यहाँ प्रभञ्जनतनय कहने का यह भाव है कि माया को ये भञ्जन कर डालनेवाले है। इन्हे कोई मायावी जीत नही सकता। यथा : उठि बहोरि कीन्हेसि बहु माया। जीति न जाय प्रभंजन जाया। तत्पश्चात् आश्वासन देने के लिए अपना बल कहा। यथा :

जौ हौं अब अनुसासन पावौ।
तौ चन्द्रमहि निचोरि चैल ज्यौ आनि सुधा सिर नावौं॥
कै पाताल दलौ व्यालावलि अमृत कुंड महि लावौं।
भेदि भुवन करि भानु बाहिरो तुरत राहु दै तावौं॥
विबुध वेद बरबस आनौं धरितौ प्रभु अनुग कहावौं।
पटकौ मीचनीच मूषक ज्यौं सबहि को पापु बहावौं॥
तुम्हरिहिं कृपा प्रताप तिहारेहि नेकु विलम्ब न लावौं।
दीजै सोइ आयसु तुलसी प्रभु जेहि तुम्हरे मन भावौं॥
: गीतावली ८ ८

इस गडबड मे रावण का एक भेदिया दूत वानरी सेना मे प्रविष्ट हो गया। उसने यह सब बाते देखी सुनी। उसने वहाँ . रावण के यहाँ जाकर सब भेद बतला दिया कि सूर्योदय के पहिले यदि सञ्जीवनी बूटी मिल जाय तो लक्ष्मण जी सकते हैं। यथा : जिएँ कुँअर निसि मिलै मूलिका कीन्ही विनय सुखेन। सो हनुमान्‌जी मूलिका लेने चल पडे। रावण ने देखा कि इस समय कालनेमि का काम है। इसके ऐसा मायावी लका मे कोई है नही। यथा : कालनेमि कलिकपट निधानू। पर इस समय उसका झुकाव निवृत्ति की ओर है। वह इच्छापूर्वक प्रवञ्चनादि कर्म मे प्रवृत्त नही होगा। यदि मै स्वय उसके पास जाऊँ तभी उसका इस काम मे हाथ लगाना सम्भव है। अत. रावण स्वय उठकर कालनेमि के पास गये। अपने स्वार्थ के लिए जब किसी के बलि की आवश्यकता होती है तब रावण स्वय उसके पास जाते है। मारीच के पास भी इसी भाँति गये थे।

दसमुख कहा मरमु तेहि सुना। पुनि पुनि कालनेमि सिरु धुना॥
देखत तुमहि नगरु जेहि जारा। तासु पथ को रोकन पारा॥२॥

अर्थ . रावण ने कहा उसने मर्म सुना। लगा बार बार सिर पीटने बोला कि तुम्हारे देखते जिसने नगर जला दिया उसके रास्ते को कौन रोक सकता है।

व्याख्या : रावण ने वही भेद कालनेमि से कहा जो दूत से सुना था। अभिप्राय यह कि तुम हनुमान्‌जी का रास्ता रोको। पहाड़ तक रात मे जाने न पावे। बस इतने ही मे शत्रु का पराजय निश्चित है।

कालनेमि अपनी बेबसी पर सिर पीटने लगा। समझा कि कार्य सिद्धि असम्भव है। हनुमान् किसी के वश मे नही। लका से मकान सहित वैद्य को उठा ले गया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इनका किया कुछ हुआ नही। मुझे उसका रास्ता रोकने को कहते हैं। रावण उत्तर दे सकता है कि मुझे पता नहीं लगा। इसलिए कालनेमि नगर का उदाहरण देते हैं कि मैं हनुमान् के सामने क्या हूँ। आप देखते रह गये। उसने नगर जला दिया। मेरा भी घर जल गया। न आपका किया कुछ हुआ न मेरा किया कुछ हुआ न किसी का किया कुछ हुआ। वह मूलिका लेने चला है। उसका रास्ता कौन रोक सकता है? इस प्रयत्न मे मृत्यु तो ध्रुव है। कार्य होना नहीं है। भाव यह कि स्वय आप भी नही रोक सकते तो मेरी क्या गिनती है?

भजि रघुपति करु हित आपना। छाड़हु नाथ मृषा जल्पना॥
नीलकंज तनु सुन्दर स्यामा। हृदय राखु लोचन अभिरामा॥३॥

अर्थ : रघुपति का भजन करके अपना कल्याण कीजिये। इस निस्तत्त्व कथा को छोड़िये। नीलकमल के समान श्यामसुन्दर नयनाभिराम को हृदय मे धारण कीजिये।

व्याख्या : रघुपति कहकर रघुकुल मे अवतार होना जो तापनीय श्रुति मे कहा गया है उसी ओर लक्ष्य करता है। देवता लोग भी निर्विशेष ब्रह्म के जानने मे असमर्थ हैं। वे भी अवतार का ही भजन करते हैं। आप अपना अनहित रघुपति से विरोध करके कर रहे हैं। उनकी सेवकाई में ही जीव का हित है। यथा : हित हमार सियपति सेवकाई। जो बातें आप कह रहे हैं वे सब निस्तत्त्व हैं। कभी होनेवाली नही हैं झूठी हैं। इन्हे सत्य कोई कर नही सकता। आप नाथ हैं अत आपके भले की बात कह रहा हूँ।

राम लोचनाभिराम हैं। उनका नीलकमल सा सुन्दर शरीर हृदय मे स्थान देने योग्य है। वह मङ्गलमय अतिपावन पावन हैं। उन्हे हृदय मे धारण करने से सुख भी है और परम कल्याण भी है।

मै तै मोर मूढता त्यागू। महामोह निसि सूतत जागू॥
काल व्याल कर भच्छक जोई। सपनेहुँ समर कि जीतिअ सोई॥४॥

अर्थ : मैं तैं और मेरा यही मूढ़ता है। इसे छोड़िये। महामोह रूपी रात्रि मे सो रहे हो सो जागो। जो कालरूपी व्याल का भक्षक है वह क्या स्वप्न मे भी रण मे जीता जायगा।

व्याख्या : कालनेमि कपट निधान होनेपर भी मारीच के ढग का भक्त तथा ज्ञानी भी था। उसने रावण को दिव्य ज्ञान का उपदेश दिया। उसने पहिले माया के स्वरूप का निरूपण किया कि मैं तैं और मोर यही मूढ़ता है। यथा : अहं ममेत्य-विद्येय व्यवहारस्तथानयो। मैं और मेरा ऐसी बुद्धि तथा इनका व्यवहार अविद्या है जबकि आत्मा आकाश वायु अग्नि जल और पृथ्वी से सर्वथा पृथक् है तो कौन बुद्धिमान् व्यक्ति शरीर मे आत्मबुद्धि करेगा। फिर देह के उपभोग्य गृहक्षेत्रादि मे तथा पुत्र पौत्रादि मे कौन विद्वान् अपनापन मानेगा? देह मे आत्म बुद्धि तथा पुत्र

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

कलत्रादि से ममता मूढ़ता : बेवकूफी है यह त्यागना योग्य है। मोह निसा सब सोवनिहारा। देखहि सपन अनेक प्रकारा। आप जागिये आप सोये हुए हैं। वस्तुतस्तु स्वप्न देख रहे हैं और अपने को जगा हुआ मान रहे हैं। विषय विलास मे जिसका चित्त है वह सो रहा है। उससे विराग होना ही जागना है। यथा : जानिअ तबहि जीव जग जागा। जब सब विषय बिलास बिरागा।

अगजग जीव नाग नर देवा। नाथ सकल जगु काल कलेवा। अंड कटाह अमित लयकारी। काल सदा दुरतिक्रम भारी। इस जगत् मे सब काल के वश है। रामजी कालव्याल के भक्षक हैं। काल के भी काल हैं। उन्हें जीतने के स्वप्न देखने का भी प्रश्न नही है। आप जीत नही सकते। व्यर्थ मे परिजन परिवार का संहार क्यो करा रहे हैं।

दो. सुनि दसकंठ रिसान अति, तेहि मन कीन्ह बिचार।
रामदूत कर मरौं बरु, यह खल रत मलभार ॥५६॥

अर्थ : यह सुनकर रावण बहुत बिगड़ा। तब कालिनेमि ने मन मे विचार किया कि राम के दूत के हाथ से मरना अच्छा है। यह खल तो पाप के भार मे अनुरक्त है।

व्याख्या : उपदेशो हि मूर्खाणा प्रकोपाय न शान्तये। उपदेश सुनकर मूढ को क्रोध आता है शान्ति नही होती। सो रावण उपदेश सुनकर बिगड़ खडे हुए। मारने को तैयार हुए जैसे मारीच पर बिगडे थे। यथा : गुरु जिमि मूढ करसि मम बोधा। कहु जग मोहि समान को जोधा। कालनेमि ने देखा कि यदि इसकी बात नही मानते तो यह मारता है और मानते हैं तो हनुमान्‌जी के हाथ से मरते हैं। मैं तो बँचता नही। तब रामदूत के हाथ से मरना भला है। मार खाकर लंकिनी कहती है : तात मोर अति पुन्य बहूता। देखेउँ नयन राम कर दूता। इसके हाथ से मरना अच्छा नही है। यह रामजी के विमुख है। अतः मल भार मे रत है।

यथा : मोह जनित मल लाग बिबिध कोटिउ जतन न जाई।
जनम जनम अभ्यास निरत चित अधिक अधिक अधिकाई॥
नयन मलिन परनारि निरखि मन मलिन विषय संग लागे।
हृदय मलिन बासना मान मद जीव सहज सुख त्यागे॥
पर निन्दा सुनि श्रवण मलिन भए बचन दोष पर गाए।
सब प्रकार मलभार लाग निज नाथ चरन बिसराये॥

अस कहि चला रचिसि मग माया। सर मंदिर बर बाग बनाया॥
मारुत सुत देखा सुभ आस्रम। मुनिहि बूझि जल पिअउँ जाइ स्रम॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर चला रास्ते मे माया रची। तालाब श्रेष्ठ मन्दिर और बाग बनाया। पवनपुत्र ने देखा कि आश्रम अच्छा है। मुनिजी से आज्ञा लेकर जल पीवें तो थकावट मिटे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या : यह कहकर चला कि अच्छा रामदूत के हाथ से मरने जाता हूँ। अघटित घटना पटीयसी माया का लक्षण है। उसने माया रची। अघटित घटना की पटुता देखिये। हनुमान्‌जी से पीछे चला और आगे निकल गया। क्षण भर मे तालाब मन्दिर और श्रेष्ठ बाग लगाया और उसी रास्ते में ऐसे स्थान पर बनाया जहाँ पहुँचने पर हनुमान्‌जी को प्यास लग जाय और खेल में समुद्रोल्लङ्घन करनेवाले को थकावट आ जाय। ये सब अघटित घटना है। उसने माया का प्रयोग सर मन्दिर बाग बनाने मे ही नही किया। उसने माया का प्रभाव हनुमान्‌जी पर भी डाला। उनके वेग को स्तम्भनी विद्या से रोका। हनुमान्‌जी को उस स्तम्भनी विद्या का अतिक्रमण करते हुए आगे बढना पड़ा। इससे श्रम भी हुआ और जहाँ उसने चाहा वहाँ प्यास भी लगी। सर मन्दिर वर बाग बनाया का अर्थ इतना ही करना चाहिए कि सर मन्दिर बाग को ऐसा सँवारा कि शुभ मालूम पडे। बनाना का अर्थ सँवारना होता है। यथा : बसन भरत निज हाथ बनाये। आज भी इसका प्रयोग सँवारने के अर्थ मे होता है। यथा : खूब बना बनाकर लिखो। अर्थात् पहिले के बने हुए सर मन्दिर और बाग को मुनि के आश्रम का रूप दे दिया। देखनेवाले समझें कि मुनिजी सर मे स्नान करते हैं। बाग का फल फूल खाते हैं। मन्दिर में पूजा करते हैं। इनका संसार से कोई सम्बन्ध नही है।

मारुतसुत कहने का भाव यह कि देवांश हैं। शुद्ध स्थल का ही जल ग्रहण करते हैं। माया के अवरोध से चलने मे श्रम अधिक हुआ। उसी के प्रभाव से प्यास भी लगी। शुभ आश्रम का तालाब है। मुनिजी से रक्षित है। इसके जल के शुद्ध होने मे संदेह नही। बिना स्वामी की आज्ञा तालाब का भी जल हनुमान्‌जी पीना नही चाहते। अतः प्यास और श्रम निवारण के लिए मुनिजी से आज्ञा लेना निश्चय किया और मुनिजी के पास गये।

राच्छस कपट वेप तहँ सोहा। मायापति दूतहि चह मोहा॥
जाइ पवनसुत नायेउ माथा। लाग सो कहै रामगुन गाथा॥२॥

अर्थ : राक्षस वहाँ कपटवेष में विराजमान था। मायापति के दूत को मोहना चाहता था। पवनसुत ने जाकर प्रणाम किया। वह लगा रामजी की गुणगाथा का वर्णन करने।

व्याख्या : आश्रम बनाकर कालनेमि स्वयं मुनि बनकर बैठा हनुमान्‌जी को मोह मे डालने के लिए। मुनि का स्वाग बिना लिए हनुमान्‌जी के मोहन का अन्य उपाय न था। स्रक् चन्दन वनितादिक पर हनुमान्‌जी मोहित होनेवाले न थे वह इस बात को खूब समझता था। मायापति सेवक सन माया। करिअत उलटि परइ सुरराया। यह नही समझा। उसने मायापति के सेवक का वध चाहा। अतः स्वयं मारा जायगा।

हनुमान्‌जी ने उसे मुनि समझ जाकर प्रणाम किया। लखि सुवेप जग वचक जेऊ। वेप प्रताप पूजिअहि तेऊ। उसने देखा कि माया काम कर गयी। हनुमान् ने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

मुझे नही पहिचाना। अतः उसने और माया फैलाया। जानता था कि रामगुण-गाथा के ये बड़े रसिक हैं : यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्। बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्। अतः रामजी की गुणगाथा कहना आरम्भ किया। यह समझकर कि यदि ये सुनने लगेंगे तो कार्य मे देर होगी और देर होना हमारा इष्ट है। यदि जल्दी मे होगे तब भी मुझ पर इनकी श्रद्धा होगी।

होत महा रन रावन रामहि। जितिहहिं रामु न संसय यामहि॥
इहाँ भये मैं देखौ भाई। ग्यान दृष्टि बलु मोहि अधिकाई॥३॥

अर्थ : रावण और राम मे बड़ा भारी सग्राम हो रहा है। रामजी की जीत निश्चय है। इसमे सशय को स्थान नही। मैं यही से देख रहा हूँ। मुझमे ज्ञानदृष्टि का बल बढा हुआ है।

व्याख्या : कालनेमि ने कहा कि इस समय सरकार के चरित्र मे राम रावण सग्राम चल रहा है। रामजी जीतेंगे इसमे सशय नही। भाव यह कि मैं मुनि हूँ। त्रिकालज्ञ हूँ। वर्तमान भी जानता हूँ और भविष्य भी जानता हूँ। लक्ष्यार्थ यह कि तुम्हे सशय है। इसलिए जल्दी मे हो। अभिमानवश समझते हो कि मेरे ओषधि लाने पर ही उनकी विजय निर्भर करती है : अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।

फिर कहता है कि ज्ञान होने से देश काल की बाधा मेरी हट गयी है। यहाँ से ही बैठे बैठे मैं सब देख रहा हूँ। लक्ष्यार्थ यह कि तुम अज्ञानी हो। तुम्हे व्यवधान बाधा कर रहा है। यदि तुम्हे भी ज्ञान होता तो इतने दौड़ने की आवश्यकता न पड़ती। जहाँ के तहाँ रहते हुए भी सब कुछ की प्राप्ति हो जाती।

माँगा जल तेहि दीन्ह कमडल। कह कपि नहि अघाउँ थोरे जल॥
सर मंज्जन करि आतुर आवहु। दीक्षा देउँ ग्यान जेहि पावहु॥४॥

अर्थ : पानी माँगा तो उसने कमण्डल दिया। हनुमान्‌जी ने कहा कि थोड़े जल से मेरी तृप्ति न होगी। बोला कि तालाब मे स्नान करके शीघ्र आवो। तुम्हे मैं दीक्षा दूँ जिससे ज्ञान हो जाय।

व्याख्या : हनुमान्‌जी प्यासे थे कहा पानी चाहिए। इस समय ज्ञान से अधिक मुझे पानी की आवश्यकता है। उसने कमण्डल दिया कि लो पीओ। जल विपाक्त था पर भगवान् की इच्छा। हनुमान्‌जी ने कहा कि इतने जल से मेरा काम न चलेगा। तब उसने मज्जन की आज्ञा दी। यथा : मज्जन कीन्ह पथ श्रम गयऊ। सुचि जल पियत मुदित मन भयऊ। बोला कि जल्दी करो तुम्हे देशकृत बाधा का अतिक्रमण करना है। लौटने पर तुम्हे दीक्षा[1] दे दूँ जिसमे तुम्हे ज्ञान हो जाय। फिर तो कार्य साधन सरल हो जायगा। यही से ओषधि प्राप्ति कर सकोगे।

---

१. दीक्षा में सिद्ध गुरु द्वारा शक्तिपात होने से सद्य. कल्याण होता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. सर पैठत कपि पद गहा, मकरी तब अकुलान ।
मारी सो धरि दिव्य तनु, चली गगन चढ़ि जान ॥५७॥

अर्थ : तालाब में घुसते ही हनुमान्‌जी के पैर को मकरी ने पकड़ लिया तब अकुला गयी। जब मारी गयी तब दिव्य तन पाकर विमान में चढ़कर आकाश को चली।

व्याख्या : उस तालाब में मगरी थी। इसलिए उसने केवल पानी पीने को नहीं कहा स्नान करने को कहा। क्योंकि दीक्षा देना है। जिसमें स्नान करने के समय मगरी उन्हें निगल जाय। हनुमान्‌जी मुनि के वचन पालन के लिए तालाब में स्नान करने को प्रविष्ट हुए। मगरी वहाँ थी ही। उसने निगलने के लिए पैर पकड़ा। हनुमान्‌जी ने उसी पैर को उसके पेट में घुसेड़कर मार डाला। मगरी ने पैर पकड़ा। निगल न सकी। अत: आकुल हुई। मारे जाने पर सुखी हुई। उसका : मकरी का शरीर छूट गया। उसे दिव्य शरीर मिला और उसके लिए विमान आया जिस पर चढ़कर वह स्वर्ग चली।

कपि तव दरस भइउँ नि:पापा। मिटा तात मुनिवर कर सापा ॥
मुनि न होइ यह निसिचर घोरा। मानेहु सत्य वचन कपि मोरा ॥१॥

अर्थ : हे कपि ! तुम्हारे दर्शन से मैं पाप रहित हुई। हे तात ! मुनि श्रेष्ठ का शाप मिट गया। यह मुनि नहीं है। यह घोर निशाचर है। हे कपि ! मेरे वचन को सत्य मानो।

व्याख्या : दिव्य शरीर धारण करने से उसे दिव्य ज्ञान भी हो गया। हनुमान्‌जी ने उसका वध किया इसका उसे क्रोध नहीं है। मकर की योनि से हनुमान्‌जी द्वारा वह मुक्त हुई इसलिए वह कृतज्ञ है। हनुमान्‌जी को खतरे से आगाह कर रही है तथा उस राक्षस को भी राक्षस योनि से मुक्ति पाने का उपाय कर रही है। उसने संक्षेप में पूर्व जन्म की कथा सुनायी। कहने लगी मुनि के शाप से मुझे मकर योनि प्राप्त हुई थी। मैं मुनि की अवज्ञा रूपी पाप का फल भोग रही थी। सो हे कपि ! तुम्हारे दर्शन से वह पाप छूट गया। जिसे तुम मुनि समझ रहे हो यह मुनि नहीं है घोर राक्षस है। ऐसा मायावी है कि तुम भी उसे नहीं लख पा रहे हो। हे कपि ! मैं विमान पर आरूढ़ हूँ। स्वर्ग जा रही हूँ। मैं झूठ नहीं बोल सकती। झूठ बोलने से सद्य: पतन होगा। अत: मेरी बात को सत्य मानो।

अस कहि गई अपछरा जबहीं। निसिचर निकट गयउ कपि तबहीं ॥
कह कपि मुनि गुरु दछिना लेहू। पाछें हमहि मंत्र तुम्ह देहू ॥२॥

अर्थ : ऐसा कहकर ज्यों ही वह अप्सरा गयी त्यों ही उस राक्षस के निकट हनुमान्‌जी गये और बोले कि मुनिजी ! पहिले गुरुदक्षिणा ले लो। मन्त्र मुझे पीछे देना।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

व्याख्या : पहिले दिव्य तन कहा था। अब उसी बात को स्पष्ट करते हैं कि मारे जाने के बाद वह मकरी अप्सरा हो गयी। अर्थात् थोडे दिनों के लिए वह शाप के कारण मकरी हो गयी थी। वस्तुतः वह पहिले भी अप्सरा थी। अब फिर अप्सरा होकर राम कार्य मे विघ्न न हो तथा इस राक्षस का भी उद्धार हो : इसलिए भेद बतलाती हुई विमानारूढ़ हो चली गयी। तब हनुमान्‌जी उस राक्षस के पास चले गये जिसमे उसके भाग जाने का अवसर न मिले। उसने हनुमान्‌जी को निकट आते देखकर समझा कि उसके आज्ञानुसार नहा धोकर आ रहे है। अत. मन्त्र प्रदान का उपक्रम करने लगा। निश्चय कर लिया कि मकरी से भी यह बच गया। अब इसे चेला मूँड़कर बातो मे फँसाना चाहिए। हनुमान्‌जी बड़े बुद्धिमान् हैं। उसे यह नही मालूम होने दिया कि भेद खुल गया। उससे बोले कि पहिले गुरु दक्षिणा ले लो मन्त्र पीछे देना।

सिर लंगूर लपेटि पछारा। निज तनु प्रगटेसि मरती बारा ॥
राम राम कहि छाँड़ेसि प्राना। सुनि मन हरषि चलेउ हनुमाना ॥३॥

अर्थ : उसके सिर को पूँछ मे लपेटकर उसे पृथ्वी पर पटक दिया। उसने मरने के समय अपना शरीर प्रकट कर दिया। राम राम कहकर उसने प्राण छोड़ा। सुनकर मनमे हर्षित हो हनुमान्‌जी चले।

व्याख्या : मन्त्र ग्रहण के पीछे गुरुदक्षिणा दी जाती है और यह कहता है कि पहिले ही ले लो मन्त्र पीछे ग्रहण करूँगा। इसलिए उसने समझा कि कोई बहुमूल्य भूषण युद्ध मे इसके हाथ लगा है। उसी के देने के लिए लालायित है। तब से लो हनुमान्‌जी की पूँछ ऊपर से आकर उसके गले मे लिपट गयी और पूँछ ने ही उसे उठाकर ऐसा पटका कि उसके प्राण पखेरू उड गये। हनुमान्‌जी ने देखा कि यह बडा मायावी है। यदि यह जान जायगा कि मेरा भेद खुल गया तो न जाने कौन सी माया करेगा। अतः कोई दूसरी माया करने का उसे अवसर ही न दिया। उससे बात करने लगे और पूँछ द्वारा उसे कब्जे मे कर लिया। फिर वह कर ही क्या सकता था। हनुमान्‌जी सब भाँति समर्थ थे। यथा : नाम सुमति समरथ हनुमान्। बिना हाथ लगाये पूँछ द्वारा ही उसका काम तमाम कर दिया।

पर कालनेमि बड़ा सयाना था। कपट निधान होने पर भी मन में कपट रखकर उसने मरना न चाहा। मुनि का शरीर त्याग दिया। अपने असली रूप : राक्षस रूप मे आगया और मरने के समय राम राम उच्चारण किया : जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमौ मुकुत होई स्रुति गावा। सो मरते समय उसने परलोक बना लिया। रामनाम के रसिक हनुमान्‌जी उसके मुख से अन्त समय रामनाम निकलते सुनकर हर्षित होकर चल पडे। अब चलने मे आयास नही है।

देखा सैल न औषध चीन्हा। सहसा कपि उपारि गिरि लीन्हा ॥
गहि गिरि निसि नभ धावत भयऊ। अवधपुरी ऊपर कपि गयऊ ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ : पर्वत तो देखा पर औषध का पहिचान न हुआ तो एकाएक पर्वत को ही उखाड़ लिया। पर्वत लिये हुए रात को जो आकाश में दौड़े तो अयोध्यापुरी के ऊपर चले गये।

व्याख्या : हनुमान्‌जी पर्वत के पास पहुँचे। पर्वत पहिचान लिया पर औषध न पहिचान सके। वैद्य ने बताया था कि वह औषधि रात को प्रकाशमान हो जाती है। यही पहिचान थी। अब वहाँ देखते हैं तो जितनी औषधियाँ हैं वे सभी प्रकाशमान हैं। रावण के अनुचरों ने वहाँ पहुँचकर पहिले ही सब औषधियों को माया से प्रकाशमान बना दिया था। तब हनुमान्‌जी ने निश्चय किया कि पर्वत ही उठा ले चलो। वैद्यजी खोज लेंगे। कालनेमिवाली घटना के कारण देर हो रही थी। रात का समय था। पर्वत लिये हुए आकाश मार्ग से उड़े। आकाश में कोई निश्चित मार्ग तो है नही। शाहजहाँपुर : जहाँ कालनेमि मारा गया था और अयोध्या में कुछ बहुत अन्तर नहीं है। भगवदिच्छा हनुमान्‌जी अयोध्यापुरी के ऊपर से चले। यह श्रीराम का कौतूहल है। श्री हनुमान्‌जी को भरत बाहुबल दिखलाना है।

दो. देखा भरत बिसाल अति, निसिचर मन अनुमानि।
बिनु फर सायक मारेउ, चाप श्रवन लगि तानि ॥५८॥

अर्थ : भरतजी ने अति विशाल देखकर अनुमान किया कि कोई राक्षस है। उन्होंने कान तक धनुष चढ़ाकर निशाना बाँधकर तुक्का : बिना फूल का बाण चला दिया।

व्याख्या : अति विशाल राक्षस होते हैं और वे ही रात को चलते हैं। यह जो अयोध्या के ऊपर चला आरहा है यह अति विशालकाय है और रात के समय में आरहा है। अतः अनुमान यही है कि यह राक्षस है। ऐसा हनुमान्‌जी को अयोध्या के ऊपर आते देखकर भरतलाल ने सोचा। अभी तक इसने कोई अपराध नहीं किया है। अतः इसको मार देना भी ठीक नही। पर ठीक ऊपर आकर भारी उपद्रव कर सकता है। अतः इसका आने देना भी ठीक नही। यह सब सोच विचारकर भरतजी ने यह निश्चय किया कि इसे नीचे गिरा देना चाहिए। पर मरे भी नहीं। इसलिए बिना फरके बाण अर्थात् तुक्का से मारा। धनुष को कान तक खींचकर मारा। यह निश्चय करके कि हलका चोट से यह गिरनेवाला भी नहीं है।

परेउ मुरुछि महि लागत सायक। सुमिरत राम राम रघुनायक ॥
सुनि प्रिय वचन भरतु तब धाए। कपि समीप अति आतुर आए ॥१॥

अर्थ : बाण के लगते ही राम राम रघुनायक स्मरण करते हुए मूर्च्छित होकर गिरे। प्रिय वचन सुनकर भरतजी तब दौड़ पडे और बन्दर के पास अत्यन्त आतुर होकर आये।

व्याख्या : बाण लग गया। आकाश से पृथ्वी पर गिरे। चोट गहरी लगी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


मूर्च्छा का प्रभाव आकाश से ही काम करने लगा। पर पूरी अचेतना पृथ्वी पर गिरने से हुई। हनुमानूजी का नाम स्मरण किसी दशा में बन्द नहीं होता। चोट लगने पर भी : राम राम रघुनायक कहते हैं। पूर्णतः अचेतन होने पर ही नामोच्चारण बन्द हुआ। इस नामोच्चारण ने बड़ा काम किया। सरकार से हनुमान्जी का सम्बन्ध भरतजी को व्यक्त हो गया। हनुमान्जी गिरे। पर्वत न गिरा। यथा : पवन राख्यौ गिरि पुर तेहि तेज पियो। हनुमान्जी के ऊपर पर्वत न गिरे अथवा सरकारी प्रजाओं की हानि न हो। इसलिए वायु ने गिरने न दिया और अयोध्यापुरी ने उसके तेज को पी लिया।

भरतजी नाम के बडे प्रेमी हैं। यथा : जबहिं राम कहि लेहि उसासा। उमगत प्रेम मनहुँ चहुँ पासा। द्रवहिं बचन सुनि कुलिस पखाना। पुरजन प्रेम न जाइ बखाना। राम राम रघुनायक : यह वचन बड़ा प्रिय है। इससे यह भी पता चलता है कि हनुमान्जी श्रीराम राम राम इस तारक मन्त्र का जप सदा किया करते हैं। रघुनायक का अर्थ भी राम ही है। सायक के अनुप्रास बैठने के लिए रघुनायक लिखा। अभिप्राय राम शब्द से ही है। यह वचन सुनकर भरतजी दौडे कि हुई तो मुझसे बडी चूक। यह राक्षस नहीं है। राम भक्त जान पड़ता है। सन्निकट पहुँचकर रुके। देखा राक्षस नहीं है कपि है। तब उसे सँभालने के लिए अत्यन्त आतुर होकर आये।

बिकल बिलोकि कीस उर लावा। जागत नहिं बहु भाँति जगावा॥
मुख मलीन मन भये दुखारी। कहत बचन भरि लोचन बारी॥२॥

अर्थ : विकल देखकर वानर को हृदय से लगा लिया। बहुत भाँति से जगाया पर जागे नहीं। भरतजी का मुख मलीन हो गया। बडे दुःखी हुए। आँखों मे आँसू भरकर कहने लगे।

व्याख्या : देखा मरा नहीं है पर विकलता बड़ी है। हाथ पैर पीटता है। कलेजे से लगाया। प्रिय होने से तथा सान्त्वना के लिए भक्त लोग रूप नहीं देखते। हृदय देखते हैं। वानर को भी भक्त होने से हृदय लगाते हैं। अब हनुमान्जी को मूर्च्छा से जगाने का उपाय करने लगे। मूर्च्छा का अन्तर्भाव सुषुप्ति मे है। इसलिए जगाना कहते हैं। चोट के स्थान को हाथ से सहलाया। पानी का छीटा मुख पर दिया। पखा किया। फिर भी हनुमान्जी नहीं जागे। इससे भरतजी का मुख मलीन हो गया। मूर्च्छा मे मृत्यु भी हो जाती है। इससे दु खी हुए कि मेरे हाथ से यह क्या हो पडा ? मुख मलीन : से कायेन। भये दुखारी : से मनसा। कहत बचन भरि लोचन बारी : से वाचा दु खी होना दिखलाया।

जेहि बिधि रामबिमुख मोहि कीन्हा। तेहिं पुनि यह दारुन दुख दीन्हा॥
जौं मोरे मन बच अरु काया। प्रीति रामपदकमल अमाया॥३॥

अर्थ : जिस ब्रह्मा ने मुझे रामजी के विमुख किया। उसी ने यह दारुण दु ख

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भी मुझे दिया। यदि रामजी के चरणकमलो मे मेरी माया रहित प्रीति मनसा वाचा कर्मणा हो।

व्याख्या : कल्याण के लिए कुछ करते हुए यदि अनर्थ हो पडे तो वहाँ ब्रह्मा की मर्जी मानी जाती है कि मैंने तो यह सोचा भी नही था। होनहार बलवान् है। मैंने विमुख होना स्वप्न मे भी नही चाहा था पर विधि ने कर दिया। माँ पगली हो गयी। उसी विधि ने मेरे हाथ से बाण भी छोड़वाया। मैंने तो राक्षस समझा था। रामभक्त नही समझा था।

आज ऐसा समय आगया कि भरतजी को अपनी भक्ति का फल मांगना पड़ा। नही तो महाराज जनक कहते हैं : साधन सिद्धि रामपग नेहू। मोहि लखि परत भरत मत एहू। कार्पण्य छोड़कर अपनी भक्ति की दृढता पर विश्वास करते हैं। इसी से पता लगा कि भरतजी मे कैसी प्रीति है। भरतजी की प्रीति रामजी मे माया रहित है। मैं अरु मोर तोर तैं माया : वह माया उस प्रीति मे नही है। सबके ममता का तागा सरकार के चरणो मे बाँध रक्खा है। उसी प्रीति मे असाध्य साधन का सामर्थ्य है।

तौ कपि होउ बिगत स्रमसूला। जौं मोपर रघुपति अनुकूला ॥
सुनत[1] बचन उठि बैठ कपीसा। कहि जय जयति कोसलाधीसा ॥४॥

अर्थ : तो यह वानर श्रम और शूल से रहित हो। यदि मुझ पर श्रीरामजी अनुकूल हो। वचन सुनते ही वानरो के स्वामी अयोध्यापति का जय जयकार करते हुए उठ बैठे।

व्याख्या : कपि को श्रम और शूल दोनो है। श्रम का अर्थ मूर्च्छा है। यथा : देखि बिभीषन प्रभु श्रम पायेउ। बाण के प्रहार से शूल हो गया है। भरतजी कहते हैं कि यदि मेरी भक्ति मे कचाई हो तो सरकार की अनुकूलता मे तो सन्देह नही है। यथा : गुरु गोसाईं साहिब अनुकूला। अत. सरकार की अनुकूलता के बल पर कपि के श्रम शूल से रहित होने की इच्छा कर रहे हैं। सरकार की अनुकूलता से शूल नहीं रह जाता। यथा : तुम्ह कृपाल जापर अनुकूला। ताहि न ब्याप त्रिबिध भव सूला।

वचन सुनते ही मूर्च्छा चली गयी। जो मूर्च्छा विविध उपाय से न गयी वह इस वचन से चली गयी। जागे तो जय जय कोसलाधीश कहते जगे। मूर्च्छित होने के पहिले राम राम रघुनायक कहकर मूर्च्छा हुई और जागे तो कोसलाधीश की जयकार करते जागे।

दो. लीन्ह कपिहि उर लाइ, पुलकित तन लोचन सजल।
प्रीति न हृदय समाइ, सुमिरि राम रघुकुल तिलक ॥५९॥

---

१. यह चपलात्युक्ति है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : पुलकित शरीर और सजल नेत्र होकर वानर को हृदय से लगाया। रघुकुल तिलक रामजी को स्मरण करके प्रीति हृदय में नही समाती थी।

व्याख्या : वानर को हृदय लगाने के समय भरतजी का अतिप्रेम से शरीर पुलकित और नयन सजल है। मूर्च्छा होने पर आतुर होकर हृदय से लगाया और जागने पर गद्‌गद होकर हृदय से लगाया। सरकार की कृपा से मूर्च्छा गयी। सरकार भक्त पर अनुकूल है। ऐसा समझकर भरतजी के हृदय में प्रीति अत्यन्त बढ़ गयी है। रघुकुल तिलक कहने का भाव यह कि मेरी चूक से कुल में कालिमा लगती। यथा : सुरमहिसुर हरिजन अरु गाई। हमरे कुल इन्ह पर न सुराई। यह विरद मिट जाता। सो सरकार की कृपा से नही मिटा।

अथवा भरतजी ने समझ लिया कि यह रामजी का दूत है। मूर्च्छित होते समय और मूर्च्छा से जागने के समय भी रामजी का ही स्मरण इसने किया। इतनी रात को अयोध्या आया तो अवश्य सरकार के पास से आरहा है। बात कुछ बिगडी हुई है। आजतक अपने से कोई समाचार नही भेजा। आज इतनी रात को दूत भेजते हैं। कारण क्या है ? अत: पूछते हैं :

तात कुसल कहु सुख निधान की। सहित अनुज अरु मातु जानकी॥
कपि सब चरित समास बखाने। भए दुखी मन महुँ पछिताने॥१॥

अर्थ : हे तात ! सुख के धाम रामजी की छोटे भाई और माँ जानकीजी की कुशल कहो। कपि ने संक्षेप में सब चरित कह सुनाया। भरतजी दु:खी हुए और मन मे पछताये।

व्याख्या : भरतजी पहिले सुखनिधान रामजी की कुशल पूछते हैं। यद्यपि सुखनिधान की सदा ही कुशल है। फिर भी दूत के मुख से सुनना चाहते हैं। चुप देखकर लक्ष्मणजी और माँ जानकी की कुशल पूछते हैं। हनुमान्‌जी : सब कुशल है ऐसा नही कह सकते। अत: उन्हे सब चरित्र सीताहरण सुग्रीव मैत्री वालिवध लङ्का पर आक्रमण तथा लक्ष्मणजी को शक्ति लगने का वृत्तान्त संक्षेप में कहना पड़ा। सुनकर भरतजी दु:खी हुए और मन में पछताये। यथा : स्वामि सकट हेतु हौ जड़ जननि जनम्यो जाय। समौ पाइ कहाइ सेवक घट्यो तौ न सहाय।

अहह दैव मै कत जग जायेउँ। प्रभु के एकहु काज न आयेउँ॥
जानि कुअवसरु मन धरि धीरा। पुनि कपि सन बोले बलबीरा॥२॥

अर्थ : हा दैव मैंने क्यों संसार में जन्म लिया। प्रभु के एक काम भी मैं न आया। कुअवसर जानकर मन मे धैर्य धारण करके बलवान् वीर भरतजी हनुमान्‌जी से बोले।

व्याख्या : प्रभु भाई तथा माँ जानकी के सहित कष्ट मे हैं। यह सुनकर दैव को उपालम्भ देते है। अपने को धिक्कारते हैं। अहह धन्य लछिमन बड़ भागी। राम

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पदारबिंद अनुरागी। लक्ष्मण काम आया और मैं न आ सका। लक्ष्मण का जीवन सफल और मेरा निष्फल है। जाय जिअत जग सो महि भारू। जननी जीवन बिटप कुठारू। मैं सरकार के किसी काम न आया। न तो सेवा कर सका न विरह के समय सान्त्वना दे सका। न संग्राम में सहायता कर सका। इस प्रकार भरतजी मन ही मन पछताये। परन्तु पछताने का भी अवसर नहीं है। भरतजी का धैर्य छूट रहा था। उसे सँभाला। बल से जो सहायता हो सकती है उसके लिए बद्धपरिकर हुए' चला प्रभंजनसुत बलभाखी। उस मान का उन्मूलन हो रहा है।

तात गहरु होइहि तोहि जाता। काजु नसाइहि होत प्रभाता॥
चढु मम सायक सैल समेता। पठवौ तोहि जहँ कृपानिकेता॥३॥

अर्थ हे तात! तुम्हे जाने मे देर लगेगी और सवेरा होते काम बिगड जायगा। पर्वत सहित मेरे वाण पर चढो। मै तुम्हे जहाँ कृपानिकेत रामजी हैं वहाँ भेज देता हूँ।

व्याख्या: भरतजी कहते हैं कि तुम थके हो। चोट खाये हो। अभी मूर्च्छा से जगे हो और रात में ही तुम्हे वहाँ पहुँचना है। वैद्य ने जैसा कहा है वैसा ही होना चाहिए। यदि जाने मे सवेरा हो गया तो जाकर ही क्या होगा? वाण से अधिक तीव्र गति किसी की नहीं हो सकती। अत तुम्हे बाण पर बिठलाकर सरकार के पास भेजे देता हूँ। तुम चढो मेरे वाण पर और इस पर्वत को भी ले लो। मैं अभी लका तुम्हे पहुँचाता हूँ। श्रीभरतजी की कृपा से श्रीराम के पास पहुँचा जाता है। जीवमात्र प्रभु को प्राप्त कर सकते हैं।

सुनि कपि मन उपजा अभिमाना। मोरे भार चलिहि किमि बाना॥
राम प्रभाव बिचारि बहोरी। बदि चरन कह कपि करजोरी॥४॥

अर्थ यह सुनकर हनुमान्‌जी को अभिमान उत्पन्न हुआ कि मेरे बोझ से वाण कैसे चलेगा? फिर रामजी का प्रभाव सोचकर चरण वन्दना करके बोले।

व्याख्या अभिमान उपजा नष्ट होने के लिए। पर्वत के बोझ से बाण न चलेगा। यह प्रश्न नहीं उठा। प्रश्न यह उठा कि मेरे बोझ से वाण कैसे चलेगा। वाण थोडा सा भी बोझ नहीं सह सकता। पर्वत सहित मुझे बाण पर रखकर फेंक देना क्या साधारण व्यापार है। मेरे बोझ के सामने पर्वत का बोझा कुछ नहीं है। भरतजी कैसे वाण पर चढाकर फेंकने मे समर्थ होगे? फिर हनुमान्‌जी ने विचार से काम लिया। रामजी के प्रभाव से क्या नहीं हो सकता। गरुड सुमेरु रेनु सम ताही। रामकृपा करि चितवा जाही। अत निरभिमान होकर भरतजी की वन्दना करते हैं और हाथ जोडकर अति विनम्र भाव से बोलते हैं।

तव प्रताप उर राखि गोसाईं। जैहौं रामबान की नाईं॥
भरत हरषि तब आयसु दयऊ। पद सिरनाइ चलत कपि भयऊ॥५॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : हे स्वामी ! मैं आपका प्रताप हृदय में रखकर रामजी के बाण की भाँति जाऊँगा। भरतजी ने हर्षित होकर आज्ञा दी और चरणों में सिर नवाकर हनुमान्‌जी चले।

व्याख्या : हनुमान्‌जी ने कहा कि बाण पर न चढ़कर आपका प्रताप ही हृदय में रख्खे लेता हूँ। क्योंकि मुख्य काम करनेवाला आपका प्रताप है। नही तो बोझा ले जाने का काम बाण का नही है। आपके प्रताप के बल से मैं रामबाण की भाँति जाऊँगा। यथा : जिमि अमोघ रघुपति कर बाना। एही भाँति चला हनुमाना।

हनुमान्‌जी की प्रताप पर इतनी श्रद्धा देखकर हर्षित हुए। आज्ञा दे दी। समझ लिया कि अवश्य कार्य होगा। हनुमान्‌जी विदाई के लिए दूसरा प्रणाम करते हैं।

दो. भरत बाहुबल सीलगुन, प्रभुपद प्रीति अपार।
मन महुँ जात सराहत, पुनिपुनि पवन कुमार ॥६०॥

अर्थ : पवनपुत्र भरतजी का बाहुबल शील गुण और प्रभु के चरणों में अपार प्रीति की मन ही मन प्रशंसा करते हुए चले जाते हैं।

व्याख्या : बाहुबल यथा : चढु मम सायक सैल समेता।
पठवौं तोहि जहँ कृपानिकेता॥
शील यथा : सुनि प्रिय बचन भरत उठि धाए।
कपि समीप अति आतुर आए॥
गुण यथा : अहह दैव मैं कत जग जायेउँ।
प्रभु के एकहु काज न आयेउँ॥
जानि कुअवसरु मन धरि धीरा।
पुनि कपि सन बोले बल बीरा॥
प्रभुपद प्रीति यथा : जौं मोरे मन बच अरु काया।
प्रीति रामपद कमल अमाया॥
तौ कपि होउ बिगत स्रमसूला।
जो मोपर रघुपति अनुकूला॥

ये चार बातें जो हनुमान्‌जी ने भरतजी में पायीं वे अप्रतिम थी। अतः हृदय में उन्ही की प्रशसा करते हुए हनुमान्‌जी चले। यहाँ हनुमान्‌जी की मुदिता कवि ने दिखलाई।

उहाँ राम लछिमनहि निहारी। बोले बचन मनुज अनुसारी॥
अर्ध राति गइ कपि नहिं आयउ। राम उठाइ अनुज उर लायउ॥१॥

अर्थ : वहाँ रामजी लक्ष्मण को देखकर मनुष्यों की तरह वचन कहने लगे। आधी रात बीत गयी। हनुमान्‌जी नही आये। यह कहकर छोटे भाई को उठाकर हृदय से लगा लिया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : कवि अपने मन से हनुमान्‌जी के साथ हैं। अतः रामजी का समाचार कहते समय उहाँ कह रहे हैं। लक्ष्मण लाल सरकार को अतिप्रिय हैं। यथा : जोगवहिं प्रभु सिय लखनहिं कैसे। पलक बिलोचन गोलक जैसे। उनको एक बारगी सञ्ज्ञाशून्य देखकर चेतना के लौटने का कोई लक्षण न देखकर इस भाँति बोलने लगे जैसे सामान्य मनुष्य बोलते हैं। मनुज चरित कर अज अविनासी : का उदाहरण है।

रामजी कहते हैं कि आधी रात तो बीत गयी और अभी हनुमान् नहीं आया। कहा था : तैलाग्नेः सर्षपस्य स्फुटनरवपरस्तत्र गत्वात्र चैमि : हनुमन्नाटके। खौलते हुए तेल मे सर्षप के फूटने मे जो शब्द होता है उतनी देर मे वहाँ जाकर लौट आऊँगा। सो अभी तक नही आया। क्या बाधा उपस्थित हुई। हनुमान् के आने मे यदि अधिक विलम्ब हुआ तो लक्ष्मण के प्राण नही बचेगे। यह भावना मन मे उठते ही शोकसागर उमग उठा। रामजी ने छोटे भाई को उठाया और हृदय से लगा लिया।

सकहु न दुखित देखि मोहि काऊ। बधु सदा तव मृदुल सुभाऊ॥
मम हित लागि तजेहु पितु माता। सहेहु बिपिन हिम आतप बाता॥२॥

अर्थ : हे भाई! तुम मुझे कभी दुःखित नहीं देख सके। तुम्हारा स्वभाव सदा से ही कोमल है। तुमने मेरे लिए माता पिता को छोडा और वन मे पाला और लू सहा।

व्याख्या : शोक के वेग मे मूर्च्छित भाई से इस भाँति बातें कर रहे हैं मानो वह सचेत हैं। उन्हे बन्धु कहकर सम्बोधन करते हैं। भाव यह : होहिं कुठायँसु बधु सहाए। ओड़िअहि हाथ असनिहु के घाए। तुम मेरे विपत्ति के सहायक हो। तुम्हारा ऐसा मृदुल स्वभाव है और मेरे प्रति ऐसा स्नेह है कि तुम मुझे दुखित नही देख सकते। इसके प्रमाण के लिए दूर नही जाना है। तुमने मेरे लिए माता पिता का परित्याग किया। यथा : गुरु पितु मातु न जानहुँ काहू। कहहुँ सुभाउ नाथ पतिआहू। सुरदुर्लभ सुख छोड़कर मेरे लिए वन मे आकर हिमपात, आतप, वात, झञ्झावात आदि सहन किया।

सो अनुराग कहाँ अब भाई। उठहु न सुनि मम बच बिकलाई॥
जौं जनत्यौं बन बंधु बिछोहू। पिता बचन मनत्यौं नहिं ओहू॥३॥

अर्थ : हे भाई! वह प्रेम कहाँ गया। मेरे वचन की व्याकुलता सुनकर उठते क्यो नही? यदि मैं जानता कि वन मे भाई का वियोग होगा तो मैं पिता का वह वचन भी नही मानता।

व्याख्या : श्री रामजी इस भाँति बोल रहे हैं मानो लक्ष्मणजी सुन रहे हैं। कहते हैं कि तुम भाई हो। तुम्हे प्रेम बनाये रखना चाहिए। तुम मुझे दुखित नही देख सके। जब कभी मैं विकल हो जाता था तो तुम्हीं प्रेम से समझाते थे। यथा :

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लछिमन समुझाये बहुभाँती। पूछत चले लता तरु पाँती। इस समय मेरी विकलता की वाणी सुनकर क्यों नहीं उठते ?

तो क्या तुम न बोलोगे ? तुम्हारा विछोह ही हो गया ? मैं नहीं जानता था कि वन में जाने से बन्धु विछोह होगा। यदि मैं जानता तो मै वन न आता। पिता का वचन मानकर ही मैं चौदह वर्ष के लिए वन में आया। पीछे से पिताजी ने उस अवधि का सङ्कोच कर दिया और सुमन्त्र से कहा : रथ चढ़ाइ देखराइ बन फिरेउ गये दिन चारि। यदि मुझे मालूम होता कि वन में जाने से तुम्हारा विछोह होगा तो चौदह वर्ष की कौन कहे मैं चार दिनवाला भी वचन न मानता। मुझे तो पिता के वचन से अधिक भाई का सङ्कोच प्रतीत होता है। यथा : तासु बचन मेटत मन सोचू। तेहि ते अधिक तुम्हार संकोचू। फिर भाई के विछोह के सामने मेरे लिए पिता का वचन न मानना ही उपादेय था। अब प्रश्न यह उठता है कि भाई पर इतना प्रेम क्यों ? इस पर कहते हैं :

**सुत बित्त नारि भवन परिवारा। होहिं जाहिं जग बारहिं बारा॥**
**अस बिचारि जिय जागहु ताता। मिलइ न जगत सहोदर भ्राता॥४॥**

अर्थ : पुत्र धन स्त्री घर और परिवार ये तो बार बार जगत् में होते जाते हैं। हे तात ! ऐसा विचार करके जाग जाओ कि संसार में सहोदर भाई नहीं मिलते।

व्याख्या : ससार मे तीन एषणाएँ प्रबल होती है। यथा : सुत बित नारि ईषणा तीनी। इनका छूटना कठिन कार्य है। घर और परिवार का सुख भी बड़ा सुख है। यह छोडा नहीं जाता। यथा : मम हित लागि भवन सुख त्यागे। पर ये पाँचो आगमापायी हैं। आते जाते रहते हैं। इन सबको मैं छोड़ सकता हूँ। पर सहोदर भाई नहीं छोड़े जा सकते क्योंकि सबसे दुर्लभ हैं। अर्थात् तुम मुझे परम दुर्लभ हो। मुझे तुम्हारा सा भाई कहाँ मिलेगा ? यहाँ सरकार लक्ष्मणजी को सहोदर न होने पर भी सहोदर कहते हैं।

**यथा पंख बिनु खग अति दीना। मनि बिनु फनि करिवर कर हीना॥**
**अस मम जीवनबंधु बिनु तोही। जौं जड़ दैव जियावै मोही॥५॥**

अर्थ : जैसे पक्ष के बिना पक्षी मणि के बिना सर्प और शुण्ड के बिना हाथी अत्यन्त दीन होता है वैसा ही मेरा जीवन तुम्हारे बिना है। यदि जड़ दैव मुझे जीवित रक्खे तो।

व्याख्या : पक्ष के बिना पक्षी असहाय है। वह किसी समय हिंस्र जन्तु का ग्रास हो सकता है। ऐसा ही मैं तुम्हारे बिना असहाय हूँ। यथा : मेरो सब पुरुषारथ थाको। बिपति बँटावनिहार बधु बिनु करो भरोसो काको। सुनु सुग्रीव साँचेहू मोपर फेरयौ बदन बिधाता। ऐसे समय समर संकट हौ तज्यौ लखन सो भ्राता। जैसे मणि के बिना सर्प विहाल हो जाता है वैसे ही मै तुम्हारे बिना विहाल हूँ। हाथी का शुण्ड ही सर्वस्व है। बिना शुण्ड के हाथी जल भी नहीं पी सकता और काम करना तो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दूर की बात है। भाव यह कि बिना पक्ष के पक्षी बिना मणि के सर्प और बिना शुण्ड के हाथी का जीवन हो नही सकता। इसी भाँति तुम्हारे बिना मै जीवित न रहूँगा। परन्तु दैव जड है। पूर्वजन्मकृत कर्म तद्दैवमिति कथ्यते। उसे दया नही है। कदाचित् वह मुझे मरने न दे तो भी मेरा जीवन तुम्हारे बिना अति दीनावस्था मे बीतेगा।

जैहौ अवध कवन मुँहु लाई। नारिहेतु प्रिय भाइ गँवाई ॥
बरु अपजसु सहत्यौ जगमाही। नारि हानि बिसेष छति नाही ॥६॥

अर्थ स्त्री के लिए प्रिय भाई को खोकर मैं किस मुँह से अयोध्या जाऊँगा। चाहे ससार मे अपयश ही सहता। क्योकि स्त्री की हानि कोई बडी भारी हानि नही है।

व्याख्या यदि जड दैव ने मुझे मरने न दिया तो कौन मुँह लेकर अयोध्या जायेंगे। जहाँ भरत सा भाई बैठा है। जिसने भाईपन के लिए राज्य ठुकरा दिया और प्राण निछावर करने के लिए तैयार बैठा है। सुमित्रा ऐसी माँ बैठी है जिसने "तात तुम्हार मातु बैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही। कहकर अपने पुत्र को मेरे साथ वन भेज दिया। प्रजावर्ग मुझे विचारमूढ कहेगे। क्योकि स्त्री के लिए मैंने प्रिय भाई खो दिया है अल्पस्य हेतोर्बहु हातुमिच्छन् विचारमूढ प्रतिभासि मे त्वम्।

मृत्यु से अधिक कष्टदायक अपयश है। उसे मै सह जाता। क्योकि तुम्हारा बिछोह उससे भी अधिक कष्टदायक है। स्त्रीसम्बन्धिनी क्षति पूरी की जा सकती है। क्योकि पुत्रप्रयोजना भार्या सो पुत्रोत्पत्ति दूसरी स्त्री से भी हो सकती है। अत स्त्री की हानि विशेष हानि नही है। भाव यह कि जानकी सी स्त्री नही मिल सकती। फिर भी स्त्री मिल सकती है। भाई तो नही मिल सकता।

अब अपलोकु सोकु सुत तोरा। सहिहि निठुर कठोर उर मोरा ॥
निज जननी के एकु कुमारा। तात तासु तुम प्रान अधारा ॥७॥

अर्थ हे सुत! मेरा निष्ठुर कठोर हृदय अब यह अपयश और तुम्हारा शोक सहन करेगा। तुम अपनी माता के एक ही पुत्र हो। इसलिए हे तात! तुम उसके प्राण के आधार हो।

व्याख्या अब तो अपयश और शोक दोनो सहना पडा। स्त्री हरण का अपयश सब अपयशो से बडा है और पुत्र शोक सब शोको से बडा है। सरकार का लक्ष्मणजी पर पुत्र सा प्रेम था। मेरा हृदय ऐसा निष्ठुर है कि उस अपयश को भी सह जायेगा और ऐसा कठोर है कि उस शोक को भी सह जायगा। मेरा हृदय विदीर्ण होनेवाला नही है।

तुमसे ही सुमित्रा माता अपने को पुत्रवती मानती है। यथा पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भगत जासु सुत होई। नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। राम

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बिमुख सुत ते हित जानी……भूरिभाग भाजन भयेउ मोहि समेत बलि जाउँ। जौ तुम्हरे मन छाडि छल कीन्ह रामपद ठाउँ। प्रिय शत्रुघ्न भी है। पर प्राणाधार तुम ही हो। अर्थ ठीक बिठाने के लिए यहाँ एक का अर्थ प्रधान किया जा सकता है। यथा : एकै धर्म एक व्रत नेमा। काय बचन मन पति पद प्रेमा।

सौंपेसि मोहि तुमहि गहि पानी। सब बिधि सुखद परम हित जानी॥
उतरु काह दैहौ तेहि जाई। उठि किन मोहि सिखावहु भाई॥८॥

अर्थ : मुझे सब विधि से सुख देनेवाला और हितचिन्तक समझकर तुम्हे हाथ पकड़कर मुझे सौंपा था। मै अब जाकर उसे क्या उत्तर दूँगा। हे भाई! तुम उठकर मुझे सिखाते क्यो नही।

व्याख्या : तात तुम्हार मातु बैदेही। पिता राम सब भाँति सनेही। तुम कहँ बन सब भाँति सुपासू। सग पितु मातु राम सिय जासू। यह कहना ही सुमित्राजी का हाथ पकड़कर सौपना है। सरकार ने कहा था : बिदा मातु सन आवहुँ मांगी। लक्ष्मणजी माता के पास विदा मांगने गये। मां ने सहर्ष विदा कर दिया। कहने लगी : जौं पै सीय राम बन जाही। अवध तुम्हार काजु कछु नाही। तुम्हरेहि भाग रामु बन जाहो। दूसर हेतु तात कछु नाही। इससे अधिक हाथ पकडकर सौंपना और क्या होता है ?

वहाँ जायेंगे तो उस मां को क्या उत्तर देंगे। जहाँ मुझसे उत्तर नही फुरता था वहाँ तुम मेरी ओर से उत्तर देते थे। परशुरामजी ने जब पूछा : सेवक सो जो करै सेवकाई। अरि करनी करि करिअ लराई। तो इस बात का उत्तर तुम्ही ने दिया। मां के पूछने का क्या उत्तर दूँगा। मुझे नही सूझता। तुम उठकर मुझे उत्तर समझा दो।

बहु बिधि सोचत सोच बिमोचन। स्रवत सलिल राजिव दल लोचन॥
उमा एक अखंड रघुराई। नरगति भगत कृपालु देखाई॥९॥

अर्थ सोच विमोचन राम बहुत प्रकार से सोचने लगे। उनके कमलदल से नेत्रो से आँसू गिर रहे थे। हे उमा! रघुराई तो एक और अखण्ड हैं। भक्तो पर कृपा करनेवाले रामजी ने मनुष्यो की दशा दिखलायी।

व्याख्या : जो सोचविमोचन है। ससार के सोच को दूर करनेवाले हैं। वे बहुत प्रकार से सोच रहे हैं। यहाँ प्रादेशमात्र दिखलाया गया है। वस्तुत' इस प्रकार सोचना भी मनुष्य दशा का अभिनय है। सरकार भक्त पर कृपा करनेवाले हैं। अभिनय भी उनकी भक्तवत्सलता से पूर्ण होता है। नही तो सरकार एक और अखण्ड हैं। उनसे पृथक् कुछ है नही। उन्हे सयोग वियोग कैसा ?

दो. प्रभु प्रलाप सुनि कान, बिकल भए बानर निकर।
आइ गयउ हनुमान, जिमि करुणा महँ बीर रस॥६१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ : प्रभु के अनर्थक वचन कान से सुनकर बानरसमूह विकल हो गया। तबतक हनुमान्जी आगये। जिस भाँति करुणारस मे वीररस का प्रवेश हो जाय।

व्याख्या : प्रलाप अनर्थक वचन को कहते हैं। प्रलापोऽनर्थक वच इत्यमर। यहाँ : पिता वचन मनत्यौं नहिं ओहू। मिलैं न जगत सहोदर भ्राता। निज जननी के एक कुमारा। सौंपेसि मोहि तुमहि गहि पानी। ये सब वचन अनर्थक हैं। इनके अर्थ करने मे खीचातानी करनी पडती है। वस्तुत यहाँ प्रलापका अभिनय है। कवि स्पष्ट किये देते हैं : प्रभु प्रलाप सुनि कान।

प्रभु के मुख से अनर्थक वचन सुनकर बानरगण विकल हो उठे। सरकार के चरणो मे वानरो का इतना प्रेम है कि सरकार को दु ख मे वे नही देख सकते। सो इस समय लक्ष्मणजी की सशयावस्था है। औषध लेने हनुमान्जी गये। वे लौटे नही। शोक मे सरकार की यह अवस्था है कि अनर्थक वचन बोल रहे हैं। क्या होनेवाला है इसे सोचकर बानरगण विकल हो गये। इतने ही मे हनुमान्जी आगये। इनके आते ही बात दूसरी हो गयी। सब मे आशा का सचार तथा उत्साह हो उठा। कवि उपमा देते हैं कि जैसे करुणारस मे एकाएक बीररस का उदय हो जाय तो तुरन्त परिस्थिति पलटा खा जाती है।

हरषि राम भेटेउ हनुमाना। अति कृतग्य प्रभु परम सुजाना॥
तुरत बैद तब कीन्हि उपाई। उठि बैठे लछिमनु हरषाई॥१॥

अर्थ : रामजी हर्षित होकर हनुमान्जी से मिले। परम सुजान प्रभु अति कृतज्ञ हैं। वैद्य ने तुरन्त उपाय किया और लक्ष्मणजी प्रसन्न होकर उठ बैठे।

व्याख्या : कवि सरकार की अतिकृतज्ञता और परम सुजानता दिखलाते हैं। अभी लक्ष्मणजी अच्छे भी नही हुए पर सरकार ने हनुमान्जी को गले लगा लिया। दवा देने पर ध्यान उतना नही हनुमान्जी के सत्कार पर जितना ध्यान है। परिष्वङ्ग से अधिक सरकार के पास कुछ देने को नही है। क्योकि ब्रह्मसस्पर्श का सुख ही आत्यन्तिक सुख है। इसके साथ यह भी बात है कि लक्ष्मणजी के अच्छे हो जाने पर उन्हे भेंटना अनिवार्य हो पडता। तत्पश्चात् हनुमान्जी से मिलने मे अतिकृतज्ञता का भाव न रह जाता। इसलिये परम सुजान प्रभु ने पहिले हनुमान्जी को ही गले लगाया।

इधर वैद्यजी की तत्परता दिखलाते है कि उपाय करने मे उन्होने तनिक भी विलम्ब न किया। हनुमान्जी औषधि नही लाये पर्वत ही उखाड लाये थे। अत. वैद्यजी पर्वत पर चढकर तुरन्त औषधि लाकर जैसा उपचार करना चाहिए ठीक ठीक किया। कवि को भी जल्दी है। अत अति सक्षेप मे कहते हैं : तुरत बैद तब कीन्ह उपाई। अब उस दिव्य औषधि का चमत्कार कहते हैं कि उपचार होते देर नही और लक्ष्मणजी हर्षित होकर उठ बैठे। इतने गहिरे घाव की पीडा भी शेष नही रही।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

हृदय लाइ प्रभु भेटेउ भ्राता। हरषे सकल भालु कपिव्राता ॥
कपि पुनि बैद तहाँ पहुँचावा। जेहि बिधि तबहि ताहि लै आवा ॥२॥

अर्थ : प्रभु ने भाई को हृदय से लगाकर आलिङ्गन किया। तब हनुमान्‌जी वैदराज को उसी भाँति वहाँ पहुँचा दिया जिस भाँति कि उसे उठा लाये थे।

व्याख्या : भाई को उठाने के लिए कितना विलाप किया था। मूर्च्छितावस्था में उठाकर हृदय से लगाया था। यथा : राम उठाइ अनुज उर लायउ। विलाप करते करते प्रलाप करने लगे : उतर ताहि देहौ का जाई। उठि किन मोहि समुझावहु भाई। सो भाई उठ बैठे। अत सरकार ने आनन्द से हृदय लगाकार आलिङ्गन किया। प्रभु का विलाप सुनकर बन्दर समाज विकल हो उठा था। वह इस दृश्य को देखकर हर्षित हो उठा। घोर जय जय ध्वनि हुई।

अब वैद्यजी से मिलने का समय आया। पर ग्रन्थ में वैद्य से मिलने या कृतज्ञता प्रकाशन भी नही लिखा। क्योकि इसी बीच हनुमान्‌जी जिस विधि से उन्हे लाये थे उसी विधि से अर्थात् भवन सहित लङ्का पहुँचा दिया। हनुमान्‌जी जानते थे कि वैद्यजी का किसी प्रकार का यहाँ सत्कार होना उनके लिए बहुत ही बुरा होगा। रावण उन्हे जीता न छोडेगा। वैद्य का पवित्र कर्त्तव्य है कि शत्रु-मित्र का ध्यान न करके आर्त की पीडा का हरण करना। यहाँ तक तो रावण के यहाँ भी क्षम्य समझा जायगा पर शत्रु के दिये हुए सम्मान को स्वीकार करना रावण न सह सकेगा और सरकार कृतज्ञ है। अवश्य ही सत्कार करेगे। अतः जब तक दोनो भाई मिलें तब तक हनुमान्‌जी उसे लङ्का पहुँचा आये।

## ७२. कुम्भकर्ण बल पौरुष संहार प्रसंग

यह बृत्तान्त दसानन सुनेउ। अति बिषाद पुनि पुनि सिर धुनेउ ॥
ब्याकुल कुंभकरन पहि आवा। बिबिध जतन करि ताहि जगावा ॥३॥

अर्थ : यह समाचार रावण को लगा। उसने अत्यन्त विषाद से सिर पीटा। व्याकुल होकर कुम्भकर्ण के पास गया और बहुत प्रकार के यत्न करके उसे जगाया।

व्याख्या : लक्ष्मणजी के अच्छे होते ही वानरी सेना का जय जयकार और सिंहनाद सुनाई पडा। पूछा क्या बात है। दूतो ने लक्ष्मणजी के जी उठने का समाचार दिया। सुनते ही रावण को बडा विषाद हुआ। जय की आशा पर पानी फिर गया। इतने वीरो के वध के बाद उस ओर का एक बडा वीर गिरा वह भी उठ खड़ा हुआ। मेघनाद का सब पुरुषार्थ समाप्त हुआ। वीरघातिनी साँगी भी हाथ से जाती रही। सचमुच लक्ष्मण काल है अब इसके हाथ से रक्षा नही। वैद्य हमारा और काम आगया उन लोगो के। हम लोग वैद्य का ले जाना भी नही रोक सके। मालूम होता है कालनेमि भी हनुमान् के हाथ से मारा गया। यह सब सोचकर रावण को बडा विषाद हुआ। लगा बीसो हाथ से दसों सिर पिटने। इसीलिए यहाँ रावण न कहकर दशानन कहा। रावण वैद्य पर नाराज नही हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

सवेरा होते ही फिर वानरी सेना से काम पड़ेगा। अब कौन वीर है। जिसे भेजें इस चिन्ता से व्याकुल होकर कुम्भकर्ण के पास गया। कुम्भकर्ण का बड़ा भरोसा रावण को है। यथा : कुम्भ करण सम बंधु मम। कुम्भकर्ण की कच्ची नींद थी। अभी सोने का काल पूरा नहीं हुआ था। उनको जगाना साधारण व्यापार नहीं था। पुकारकर उन्हें कोई नहीं जगा सकता था। अतः उनके जगाने के लिए अनेक यत्न करने पड़े। अनेक प्रकार के बाजे बजाये गये। मुद्गर गदा आदि से उसे मारने लगे। फिर भी वह न जगा तो उसके ऊपर सहस्रों हाथी घुमाये गये। भगवान् वाल्मीकि कहते हैं वानरणानां महस्रश्च शरीरेऽस्य प्रधावितम्। कुम्भकर्णस्तदा बुद्ध्वा स्पर्शं परमबुध्यत। तब कहीं कुम्भकर्ण जागे। श्रीगोस्वामीजी ने संक्षेप में कहा कि बहुत यत्न करके उसे जगाया।

जागा निसिचरु देखिअ कैसा। मानहु काल देह धरि बैसा॥
कुंभकरन बूझा कहु भाई। काहे तव मुख रहे सुखाई॥४॥

अर्थ : वह राक्षस जगा तो ऐसा मालूम पड़ा कि मानो काल देह धारण करके बैठा हुआ। कुम्भकर्ण ने पूछा कि भाई! तुम्हारे मुख सूख क्यों रहे हैं।

व्याख्या : जब जागकर कुम्भकर्ण उठ बैठा तब वह कैसा मालूम पड़ा। इस पर कवि कहते हैं कि मानों वीभत्स रस के अधिष्ठाता स्वयं काल ही शरीर धारण करके आकर बैठ गये हों। लङ्काकाण्ड में दो के ही शरीर का वर्णन मिलता है। यथा : अंगद दीख दसानन बैसे। सहित प्रान कज्जल गिरि जैसे। भुजा बिटप सिर सृंग समाना। रोमावली लता तरु नाना। उसमें रावण तो सहित प्राण कज्जल गिरि के समान थे। पर कुम्भकर्ण तो साक्षात् क लरूप दिखाई पड़ रहा था। कच्ची नींद से उठा है। अतः अधिक भयानक मालूम पड़ता है।

कुम्भकर्ण ने जब रावण को देखा तो विषाद के लक्षण स्पष्ट दिखाई पड़े तो पूछता है कि तुम्हारे मुख सूखे हुए क्यों हैं? देव दानव का मुख तो तुम्हारे भय से सूखा करता है। वह कौन सा भय है जिसके कारण से तुम्हारा मुख सूखा हुआ है। आज तक मैंने तुम्हारा मुख सूखा हुआ नहीं देखा। अपने जगाये जाने और रावण के सूखे चेहरे से किसी भारी भय के उपस्थित होने का अनुमान करता है।

कथा कही सब तेहि अभिमानी। जेहि प्रकार सीता हरि आनी॥
तात कपिन्ह सब निसिचर मारे। महा महा जोधा संहारे॥५॥

अर्थ : तब उस अभिमानी ने सब कथा कह सुनायी : जिस प्रकार से सीता को हर लाया था। हे तात! बन्दरों ने सब राक्षसों को मार डाला। बड़े बड़े योद्धाओं का संहार कर दिया।

व्याख्या : रावण ने कुम्भकर्ण से सूर्पणखा नासिकाच्छेदन, खरदूषण वध सीताहरण लङ्कादाह सेतुबन्ध आदि सब कथा सुनाई। परन्तु रावण स्वभाव से

ankurnagpal108@gmail.com


अभिमानी है। यद्यपि ये कथाएँ उसके अपकर्ष से भरी हैं। फिर भी उसने इन कथाओ को इस ढग से कहा। जिसमे अपना गौरव बना रहे।

अब आश्चर्य करता है कि मैंने तो यह सोचा था कि यदि वानरी सेना आ जायगी तो ये भूखे राक्षस उन्हे खाकर तृप्त होगे। सो बात उलटी पड गई। वानरो ने ही राक्षसो को मार डाला। सामान्य राक्षसो को ही नही महा महा योद्धाओ को मार डाला। यथा महा महा मुखिया जे पावहिं। ते पद गहि प्रभु पास चलावहिं। कहहिं विभीषन तिन्हके नामा। देहिं राम तिन्हहूँ निज धामा।

दुर्मुख सुररिपु मनुज अहारी। भट अतिकाय अकपन भारी॥
अपर महोदर आदिक बीरा। परे समर महि सब रनधीरा॥६॥

अर्थ दुर्मुख देवशत्रु नरान्तक अतिकाय और अकम्पन भारी भट थे और दूसरे महोदर आदिक रणधीर वीर सब खेत रहे।

व्याख्या बडे बडे योद्धाओ का मारा जाना कहकर अब जगद्विख्यात योद्धाओ का निधन कहता है। दुर्मुख देवान्तक नरान्तक अतिकाय इन चार को रावण महाभट मानता है। इसके अतिरिक्त महोदर को रणधीर वीर मानता है। आदिक से वज्रदष्ट्र धूम्रकेतु आदि का ग्रहण है। यथा कुमुख अकपन कुलिसरद धूम्रकेतु अतिकाय। एक एक जग जीत सक ऐसे सुभट निकाय। रावण के कहने का तात्पर्य यह कि अब लका वीरो से शून्य सी हो रही है। युद्ध ठन गया है। अब तुम्हारी अतीव आवश्यकता पड गई। अत तुम्हारी नीद पूरी होने के पहिले तुम्हे जगाया है। इस भाँति रावण ने अपने मुख सूखने तथा चिन्ता का कारण कह सुनाया।

दो सुनि दसकधर बचन तब, कुभकरनु बिलखान।
जगदबा हरि आनि अब, सठ चाहत कल्यान॥६२॥

अर्थ दसशीष की वाणी सुनकर कुम्भकर्ण रो पडा। बोला: शठ! तू जगदम्बा का हरण करके अब कल्याण चाहता है।

व्याख्या अपने स्वजन महा महा सुभटो का निधन सुनकर कुम्भकर्ण रो पडा। क्योकि एक साथ ही उसे इतने आत्मीयो के मरण का समाचार मिला। वह एकदम स्थिति को समझ गया। रावण को कुल संहार का कारण समझकर बिगड उठा और शठ सम्बोधन करके बोला। जिस भाँति साधु राजाओ ने सीताजी को पहचान लिया। यथा सिख हमार सुनि परम पुनीता। जगदम्बा जानहु जिअ सीता। उसी भाँति नारदजीके उपदेश से उसने समझ लिया कि रामजी की स्त्री जगदम्बा सीताको इसने हरण किया। श्रीरामावतार हम लोगो के वध के लिए हुआ है। सो इसने सीता हरण करके राक्षसो के सहार का मार्ग निर्मल कर दिया। इसलिए कहता है कि जगदम्बा को हरण करके कल्याण चाहना शठता है। पूर्व मे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


भी शुम्भ निशुम्भादि की ऐसी ही भावना हुई थी। 'मा वा ममानुजं वापि निशुम्भ-मुरुविक्रमम्। भज त्व चञ्चलापाङ्गि रत्नभूतासि वै यतः। इत्यादि शुम्भ ने भी जगदम्बा से यही कहलाया था कि हे चञ्चल नेत्रवाली! तू मुझे या मेरे भाई को जैसी तेरी इच्छा हो स्वीकार कर ले। क्योकि तू स्त्रियो मे रत्न है और हम लोग रत्नभुक् हैं और इसी प्रयत्न में शुम्भ निशुम्भ का संहार हो गया और तुमने तो जगदम्बा को हरण करके लका मे लाकर बिठा दिया है। तुम्हारा कल्याण कैसे होगा? तुम्हारा कल्याण का चाहना असाध्य साधन है।

भल न कीन्ह तै निसिचर नाहा। अब मोहि आइ जगाएहि काहा॥
अजहूँ तात त्यागि अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना॥१॥

अर्थ : हे राक्षसो के राजा! तुमने अच्छा नही किया। अब आकर मुझे क्या जगाया। हे तात! अब भी अभिमान को छोड़ो और राम को भजो तो कल्याण होगा।

व्याख्या : तुम राक्षसो के नाथ हो। तुम्हे ऐसा कर्म न करना चाहिए जिससे सब राक्षसों का नाश हो जाय। देखो तुम्हारे अपराध से राक्षस मात्र का संहार हो रहा है। मुझे जगाया तो तुमने पर काम बिगड़ने पर। अब मेरे जागने से क्या होगा। जगदम्बा का हरण हो गया है। इस समय जो खड़ा होगा सो सब मारा जायगा।

तुमने सीताहरण की जो कथा सुनाई तथा अब तक की कथा कही : उसमे अभिमान भरा है। अभिमान के कारण न तो यथार्थ बात समझ में आती है और न भजन हो सकता है। तुम्हारे अभिमान ने तुम्हे इस दर्जे तक पहुँचाया। अपने कल्याण के लिए तुमने हमे जगाया। सो कल्याण तो हमारे जागकर युद्ध करने से नही होगा। अभिमान के परित्याग करने और राम के भजने से अब भी सम्भव है।

है दससीस मनुज रघुनायक। जाके हनूमान से पायक॥
अहह बंधु तै कीन्हि खोटाई। प्रथमहि मोहि न सुनायेहि आई॥२॥

अर्थ : हे दसशीश! राम क्या मनुष्य हैं जिन्हे हनुमान् ऐसे दूत हैं, शोक है कि बन्धु होकर तुमने खोटापान किया जो पहिले ही आकर मुझे ये सब बातें न सुनाया।

व्याख्या : सिर तो तुम्हे कहने को दस हैं पर मोटी सी बात समझ मे नही आयी। हनुमान् की करणी तुमने आँखो देखी : कौतुक सिंधु बाँधि तब लंका। आयेउ कपि केसरी असका। रखवारे हति विपिन उजारा। देखत तोहि अच्छ तेहि मारा। जारि सकलपुर कीन्हेसि छारा। ऐसा हनुमान् जिसका दासत्व करता है वह क्या मनुष्य है। अभिमानके कारण ही तुम्हे अब भी हनुमान् बन्दर और राम नर मालूम हो रहे हैं।

तुम बन्धु हो, ऐसे कार्यके ठाननेके पहिले तुम्हे मुझसे सम्मति लेनी चाहिए

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



थी सो तुमने नही कया। जब हनुमान् दूत होकर आया था भला तब तो आकर मुझे सब बातें सुनाते। यह न करना तुम्हारा खोटापन है। तुमने बन्धु के योग्य कार्य न किया। इस बात का शोक है। अथवा तुम बन्धु हो, कुठाहर मे सहायता करना मेरा कर्तव्य है। यदि दूसरे ने ऐसा कार्य किया होता तो वह मेरे द्वारा दण्डनीय होता।

कीन्हहु प्रभु बिरोध तेहि देवक। सिव बिरंचि सुर जाके सेवक ॥
नारद मुनि मोहि ग्यान जो कहा। कहतेउँ तोहि समय निरबहा ॥३॥

अर्थ तुमने उस समर्थ देवता का विरोध किया जिसके शिव ब्रह्मादि देव सेवक है। नारद मुनि ने जो ज्ञान मुझसे कहा था वह मैं तुम्हे सुनाता। पर अब उसका समय निकल गया।

व्याख्या तुम देवताओका विरोध तो करते ही थे पर करते करते तुमने यहाँ तक कर डाला कि उस समर्थ देव से विरोध कर लिया। जिसके शिव और ब्रह्मादि सेवक हैं। शिव और ब्रह्मा का ही तुम्हे बल है। मैं नही समझता था कि तुमसे ऐसी मूर्खता होगी कि उनके स्वामी से तुम वैर मोल लोगे। यदि तुम मुझसे पहिले कहे होते तो मैं वह ज्ञान तुम्हे सुनाता जो नारद[1] मुनि ने मुझसे कहा था पर वह समय तो हाथ से निकल गया। अब तो युद्ध छिड गया और इतने आत्मीय मारे गये। अब उस ज्ञानका प्रकाश करना व्यर्थ है।

अब भरि अंक भेटु मोहि भाई। लोचन सुफल करौ मै जाई ॥
स्यामगात सरसीरुह लोचन। देखौ जाइ तापत्रय मोचन ॥४॥

अर्थ हे भाई! अब अङ्क भर के मुझसे मिल ला। मैं जाकर अपने नेत्रो का सफल करूँ। श्याम शरीर और कमल लोचन तीनो तापो के मिटानेवाले का दर्शन करूँ।

व्याख्या तुम भाई हो। मेरी तुम्हारी अन्तिम भेंट है। इसलिए जी भरकर भेंट लो फिर मिलना नही होगा। अब तो मैं अपने नेत्रो को सफल करने जा रहा हूँ। सरकार का ध्यान कह रहा है कि श्याम शरीर है और कमल ऐसी आँखें हैं

---

१ एक दिन रात के समय कुम्भकर्ण विशालापुरी के पर्वत पर बैठे थे कि नारदजी को आते हुए देखा। कुम्भकर्ण ने पूछा कि महात्मा! कहाँ से आ रहे हो? उन्होने कहा कि मैं देवताओ की सभा से आ रहा हूँ। वहाँ की व्यवस्था सुनो। तुम दोनो भाइयो से बहुत दुःखी होकर देवता लोग विष्णु के शरण गये और प्रार्थना किया कि आप त्रैलोक्य के कण्टक रावण को मारिये। ब्रह्मदेव ने उसका निधन मनुष्य के हाथो निश्चित किया है। अत उसके मारने के लिए आप नरावतार धारण कीजिये। विष्णु ने कहा ऐसा ही होगा। सो महाविष्णु सत्यसङ्कल्प ईश्वर रघुकुल में राम होकर अवतीर्ण होगे। वह तुम लोगो का बध करेगे। यह कहकर मुनिजी चल गये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जिससे आधिभौतिक आधिदैविक और आध्यात्मिक ताप मिट जाता है। तथा : मामवलोकय पंकज लोचन। कृपा बिलोकन सोच बिमोचन। कुम्भकर्ण के वाक्यों में सरकार की भक्ति भरी है। पहले के राक्षस भी जानते थे कि नेत्रो की सफलता हरिदर्शन में ही है।

दो. रामरूप गुन सुमिरत, मगन भयेउ छन एक।
रावन माँगेहु कोटि घट, मद अरु महिष अनेक ॥६३॥

अर्थ : रामजी के रूप और गुण को स्मरण करके एक क्षण के लिए मग्न हो गया। तब रावण ने करोड़ो घडा मद्य और बहुत से भैंसे माँगे।

व्याख्या : सरकार का रूप और गुण दोनों का स्मरण किया। बिना अनुभव के स्मरण होता नही है। अतः मालूम होता है कि नारदजी से सुनकर ध्यान में उसने अनुभव किया था। केवल रूप के स्मरण से काष्ठ पाषाणमयी मूर्ति की भाँति मूर्ति ध्यान मे आती है। यदि साथ साथ गुणों का भी स्मरण हो तब जीती जागती मूर्ति ध्यान मे आ सकती है। अतः दोनो का स्मरण किया और स्मरण करते ही एक क्षण के लिए मग्न हो गया। देहाध्यास जाता रहा। रावण ने देखा कि कामे तो बिगड़ा चाहता है। वह इनकी प्रकृति से खूब वाकिफ : परिचित था जानता था कि जहाँ इनके सामने इनका प्रिय भक्ष्य और पेय आया तहाँ इनका ज्ञान ध्यान सब गया। अतः उसने तुरन्त कोटिघट मद्य माँगा। इतने से कम में कुम्भकर्ण को तृप्ति नही हो सकती थी। मद्य पीनेवालो के लिए चिखना चाहिए। जिसे वे बीच बीच में खाते जायँ। अतः चिखना के स्थान में अनेक महिष माँगे।

महिष खाइ करि मदिरा पाना। गर्जा बज्राघात समाना ॥
कुम्भकरन दुर्मद रन रंगा। चला दुर्ग तजि सेन न संगा ॥१॥

अर्थ : भैंसे खाकर और मद्य पीकर वह वज्रपात की भाँति गरजा। कुम्भकर्ण रणरङ्ग मे दुर्मद था। वह बिना सेना साथ लिये किले के बाहर निकलकर चला।

व्याख्या : सामग्री पहिले से प्रस्तुत थी। रावण के इशारे की देर थी। सब सामान आ गया। कुम्भकर्ण की दृष्टि बहिर्मुख होते ही खाद्य पेय पर पड़ी। खाना पीना आरम्भ कर दिया। जब खा पी चुका तो मस्त होकर गर्जा। मालूम हुआ कि बिजली गिरी। गर्जकर आप चल पड़े। भाई से मिलना भूल गये। रणरङ्ग मे उसका मद आज तक कोई चूर्ण न कर सका। इसलिए दुर्मद है। दुर्ग से रक्षा होती है। उसके बाहर निकल पड़ा और सेना भी साथ न ली। किसी को कुछ गिनता नहीं। मुझे किसी रक्षा की क्या आवश्यकता है ? वानर भालु के लङ्का घेरने के पहिले ही बाहर निकल पड़ा।

देखि बिभीषनु आगे आयेउ। परेउ चरन निज नाम सुनायेउ ॥
अनुज उठाइ हृदय तेहि लायो। रघुपति भगत जानि मन भायो ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : देख करके विभीषण आगे आया। चरणों पर गिरा और अपना नाम सुनाया। उसने उठाकर भाई को कलेजे से लगा लिया। रामजी का भक्त जान करके मनमें अच्छा लगा।

व्याख्या : विभीषण ने देखा कि बड़े भाई साहब चले आ रहे हैं। इनसे विदा नही हुए थे। लङ्का छोड़ने के समय ये सो रहे थे। उस समय जगाये भी नही जा सकते थे। अतः इस समय उनके सामने गये। उनके चरणो पर गिरे। वह मद से मत्त था। उसका पहिचानना कठिन था। अतः अपना नाम सुनाया कि मैं विभीषण आपको प्रणाम करता हूँ।

छोटा भाई है। इस लिए कुम्भकर्ण ने उसे उठाकर हृदय से लगा लिया। समझता था कि यह अन्तिम भेंट है। रावण मन में नही भाया था। यथा : भल न कीन्ह तैं निसिचर नाहा। अब मोहि आइ जगाएहि काहा। क्योंकि रामजी का वैरी था। वैरभाव से भजन करनेवाले को रसोत्पत्ति नही होती। अतः उनकी भागवतो मे गणना नही है। विभीषण पर कुम्भकर्ण का प्रेम है। क्योंकि महाभागवत हैं।

तात लात रावण मोहि मारा। कहत परमहित मन्त्र बिचारा॥
तेहिं गलानि रघुपति पहिं आयेउँ। देखि दीन प्रभु के मन भायेउँ॥३॥

अर्थ : हे तात ! रावण ने मन्त्र विचार के समय परमहित करते हुए मुझे लात से मारा। उसी ग्लानि से रामजी के पास आया। दीन जानकर मैं सरकार को प्रिय लगा।

व्याख्या : विभीषण जानते हैं कि कुम्भकर्ण कम से कम अपने घर के लिए वाजिब पसन्द है। यद्यपि मुझसे प्रेम है। फिर भी रावण के सङ्कोच से सरकार से लड़ने जा रहा है। अतः अपने विरोधी दल मे आने का कारण कह रहे है।

मुझे रावण ने लात मारा : शूल मारता गदा मारता खड्ग मारता तो मुझे कष्ट नही था। किन्तु मुझे लात मारा। मैं तपस्या मे शरीक यथा : कीन्ह बिबिध तप तीनिउ भाई। राज्य मे शरीक यथा : करत राज लंका सठ त्यागी। सेवा मे शरीक यथा : सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्ह महँ जीभ बिचारी। सो मुझे लात मारा। वह भी भरी सभा मे जबकि मन्त्र विचार हो रहा था। उस समय सबको सब कुछ कहने का अधिकार होता है और मैंने तो परमहित कहा था।

विभीषण कहते हैं कि वही ग्लानि मेरे हृदय मे बैठ गयी। संभावित कहँ अपजस लाहू। मरन कोटि सम दारुन दाहू। मैं संसार में मुख दिखलाने लायक नही रह गया। 'जिअसि सदा सठ मोर जिआवा। रिपु कर पच्छ मूढ़ तोहि भावा। सठ मिलु जाइ तिन्हहि कहु नीती। इस भाँति मेरी भर्त्सना करके मेरा त्याग किया। दूसरी जगह कही शरण नही थी। यथा : नाहिन मोहि और कतहुँ कछु जैसे काग जहाज को। अतः मैं दीन होकर प्रभु के शरण आया। मेरी दशा पर उन्होने दया की। उनको दीन प्यारे होते हैं। यह उनका स्वभाव है। यथा ' बदौं सीताराम पद जिनहि परम प्रिय खिन्न।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


सुनु सुत भयउ काल बस रावन । सो कि मान अब परम सिखावन ॥
धन्य धन्य तैं धन्य बिभीषन । भयेउ तात निसिचर कुल भूषन ॥४॥
बंधु बंस तैं कीन्ह उजागर । भजेहु राम सोभा सुखसागर ॥५॥

अर्थ : बेटा ! सुनो रावण काल के वश हो गया । वह क्या अब परम शिक्षा मान सकता है ? हे विभीषण तुम धन्य हो धन्य हो धन्य हो । हे तात ! तुम निशिचर कुल में भूषण हुए । हे बन्धु ! तुमने वंश को उजागर कर दिया । तुमने शोभा और सुख के सागर रामजी का भजन किया ।

व्याख्या : कुम्भकर्ण अत्यन्त प्रेम से विभीषण को पुत्र कहता है । अथवा उसी को नरक से उद्धार करनेवाला समझकर पुत्र कह रहा है । जब कोई अत्यन्तहित सिखावन न सुने तो समझ लेना चाहिए कि इसका बड़ा अनिष्ट होनेवाला है । यह भवितव्यता के वश है । नहीं तो हितवचन किसे अच्छा नहीं लगता । जो काल के वश हो जाते हैं वे दीप बुझने का गन्ध नहीं सूँघ सकते । ध्रुव को नहीं देख सकते और न अतिहित वचन सुन सकते हैं । यथा : दीपनिर्वाणगन्धञ्च ध्रुवञ्चातिहितं वचः । न जिघ्रन्ति न पश्यन्ति न शृण्वन्ति गतायुषः । सो रावण कालवश हो गया है । मैंने भी कहा : अजहूँ तात त्यागि अभिमाना । भजहु राम होइहि कल्याना । इसके उत्तर में जब मद्य और महिष आया तब मैं समझ गया कि मेरी बात मन में नहीं बैठी । युद्ध की तैयारी के लिए यह सब हो रहा है ।

भूयोर्थ में तीन बार धन्य शब्द का प्रयोग किया । अथवा निशिचरकुल-भूषण होने के लिए प्रथम बार धन्य कहा । वंश उजागर करने के कारण दूसरी बार धन्य कहा । रामजी के भजन करने के कारण तीसरी बार धन्य कहा । भाव यह कि तुम निशिचरकुल-भूषण हुए । निशिचर का नाम कोई सबेरे उठकर नहीं लेता । सो तुम पुण्यश्लोक हो गये । अब सब लोग सबेरे उठकर तुम्हारा नाम लेवेंगे । तुम्हारे कारण वंश उजागर हुआ । यथा : सो कुल धन्य उमा सुनु जगत पूज्य सुपुनीत । श्रीरघुबीर परायन जेहि नर उपज बिनीत । कारण देता है कि तुमने शोभासुखसागर रामजी का भजन किया और सबने तो द्रोह किया । मैं भी द्रोह करने ही जा रहा हूँ । अतः तुम्ही अकेले भजन करनेवाले निकले । शोभासागर के भजन करते समय भी सुख और सुखसागर की प्राप्ति ही जीवमात्र का इष्ट है ।

दो. बचन कर्म मन कपटु तजि, भजेहु राम रनधीर ।
जाहु न निजपर सूझ मोहि, भयेउँ काल बस बीर ॥६४॥

अर्थ : मनसा वाचा कर्मणा कपट छोड़कर रणधीर रामजी का भजन करना । अब जाओ मुझे अपना पराया नहीं सूझ रहा है । हे वीर ! मैं काल के वश हो गया हूँ ।

व्याख्या : कुम्भकर्ण ने देखा कि जब वह ग्लानि के कारण रामजी के पास गया है तो ग्लानि के कारण के हट जाने से पलट भी सकता है । अतः शिक्षा दे रहे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

हैं कि राक्षसी प्रकृति से सावधान रहना। रणधीर राम के भजन में मनसा वाचा कर्मणा कपट को स्थान न मिलने पावे। वे रणधीर हैं। मुझको रावण को सबको मारेंगे। तुम सच्चे हृदय से सहायता करना। अब मेरा या रावण का कोई सङ्कोच नहीं। यथा : करइ स्वामि हित सेवक सोई। दूषन कोटि देइ किन कोई। अब मैं भी कालवश हो गया। क्योंकि मुझे भी अपना पराया नहीं सूझ रहा है। यही काल विवश का लक्षण है। यथा : निकट काल जेहि आवत साईं। तेहि भ्रम होइ तुम्हारहि नाईं। मैं बहुत अपने को सँभाले हूँ। फिर भी मेरी तबियत मेरे हाथ में नहीं है। नहीं जानता किस समय क्या कर बैठूँ। अतः तुम भी मेरे सामने से चले जाओ। मेरा ठिकाना नहीं। कहीं तुम्हारे ऊपर ही चोट न कर बैठूँ।

बंधुबचन सुनि चला बिभीषन। आयेउ जहँ त्रैलोक बिभूषन॥
नाथ भूधराकार सरीरा। कुम्भकरन आवत रनधीरा॥१॥

अर्थ : भाई का वचन सुनकर विभीषणजी चले। और जहां त्रैलोक्य विभूषण रामजी थे वहाँ आये। : बोले हे नाथ ! पर्वताकार शरीरवाला रणधीर कुम्भकर्ण आरहा है।

व्याख्या : जो कुम्भकर्ण ने कहा कि : जाहु न निज पर सूझ मोहि। विभीषणजी तुरन्त लौट पड़े कि बात ठीक है। इनका क्या ठिकाना। भयेउ काल बस बीर। कहकर उन्होंने स्पष्ट ही कह दिया कि मैं युद्ध करके मरूँगा। अब मेरा प्रहार आरम्भ होगा। उस समय तुम भी मिल जाओगे तो मार ही डालूँगा। इसलिए चले जाओ। अतः विभीषण ने प्रणाम भी न किया और तुरन्त लौट पड़े और सीधे सरकार के पास आये। निशिचर कुलभूषण त्रैलोक्य विभूषण के पास आये। भाव यह कि यह बड़ा वीर है। यह दूसरे के मान का नहीं है।

सरकार को सूचना देते हैं कि आप मेरे नाथ हैं अथवा सारे समाज के नाथ हैं। सो समाज पर भारी संकट उपस्थित है। यह देखिये जो पर्वताकार दिखलाई पड़ता है। यह रणधीर कुम्भकर्ण है। सरकार को ही लक्ष्य करके चला आरहा है। पर्वताकार शरीर से उसका पराक्रम और रणधीर से उसका युद्ध कौशल भी द्योतित किया।

एतना कपिन सुना जब काना। किलकिलाइ धाए बलवाना॥
लिये उठाइ बिटप अरु भूधर। कटकटाइ डारहिं ता ऊपर॥२॥

अर्थ : इतनी बात कान से सुनते ही बलवान् बन्दर लोग किलकारी देते हुए दौड़े। पेड़ और पर्वत उखाड़ लिया और कटकटाकर उसके ऊपर डालने लगे।

व्याख्या : विभीषण ने तो सरकार से अर्ज किया। परन्तु वहाँ पर प्रधान बन्दर थे, उन लोगों ने सुन लिया कि सरकार को लक्ष्य करके आरहा है। अतः इसे रास्ते में ही मार गिराना चाहिए। यह निश्चय करके बड़े उत्साह से दौड़े। देखा कि सचमुच वह तो साक्षात् पर्वत ही है। अतः इसकी सेवा पर्वत और वृक्ष से ही

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ · फिर उसने नल नील को पृथिवी पर पछाड दिया और भी योद्धाओ को जहाँ तहाँ पटककर डाल दिया। बन्दरो की सेना भाग चली। अत्यन्त भय से सन्त्रस्त हो गयी। कोई सामने नही आरहा है।

व्याख्या अभी तक तो कुम्भकर्ण ने वानरी सेना पर प्रहार ही नही किया था। उनके चोटो को कुछ न गिनता हुआ लोचन सुफल करने के लिए बढता ही चला जाता था। पर हनुमान्‌जी के घूँसे से वह समझ गया कि शत्रु उपेक्षा करने लायक नही है। अत प्रधान प्रधान बन्दरो पर चोट करने लगा। सेनापति नील तथा नल को पृथिवी पर पटक दिया। घर से कोई शस्त्र लेकर चला नही है। शस्त्र की आवश्यकता नही समझता था कि भुजबल ही यथेष्ट है। जिसे पाया उसे पृथिवी पर पटका। ऐसे बडे बडे वीरो के गिरने से वानरी सेना मे भगदड मच गयी। सब बन्दर भालु अत्यन्त डर गये। किसी का साहस सामने जाने का नही रहा।

दो. अगदादि कपि मुरछित, करि समेत सुग्रीव।
काँख दाबि कपिराज कहुँ, चला अमित बलसींव ॥६५॥

अर्थ अङ्गदादि बन्दरा को सुग्रीव के सहित मूर्च्छित कर दिया और सुग्रीव को काँख मे दबाकर अमित बलसींव चल पडा।

व्याख्या अब वानरी सेना मे अङ्गद और सुग्रीव दो ही रह गये थे। सो इनको भी मूर्च्छित किया। सुग्रीव को पहिचानता था। इन्हे काँख मे दबाकर लंका की ओर चला। सुग्रीव के पकडे जाने से उसने अपनी जीत मान ली। रावण ने कहा था कि बन्दरो ने राक्षसो को मारा और बडे बडे योद्धाओ का सहार किया। कुम्भकर्ण रावण के पास सुग्रीव का शरीर लेकर चले। इस प्रमाण मे कि वानरी सेना का सत्यानाश हो गया। कुम्भकर्ण अमित बलसींव है। सुग्रीव ऐसे योद्धा को काँख मे दाबे चला जा रहा है। मानो वाली द्वारा रावण के काँख मे दाबे जाने का बदला चुका रहा है।

उमा करत रघुपति नरलीला। खेल गरुड जिमि अहिगन मीला ॥
भृकुटि भग जो कालहि खाई। ताहि कि सोहै ऐसि लराई ॥१॥

अर्थ हे उमा! रघुपति नरलीला करते है। जैसे गरुड साँपो म मिलकर खेल करे। जिसका भृकुटि विलास काल को खा जाता है। उसे क्या ऐसी लडाई शोभा देती है?

व्याख्या जहाँ किसी प्रकार की कच्चाइ सरकार की ओर से दिखायी पडती है तुरन्त वही शिवजी अपने श्रोता को सावधान करते जाते हैं। यहाँ सरकार सीधे सीधे नरलीला कर रहे हैं। सेना मारी जा रही है। सेनापति लोग घायल मूर्च्छित हैं। मित्र राजा जिसकी सेना लेकर चढाई हुई है शत्रु द्वारा पकडा गया। सरकार का किया कुछ हो नही रहा है। ऐसे स्थलो मे ही लोगो को मोह होता है। अत शिवजी कहते हैं कि यह सरकार की नरलीला है। यथा जस काछिअ तस चाहिअ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नाचा। अतः मनुष्य का अनुकरण करते हुए खेल कर रहे हैं। उन्हें किसी प्रकार का कुछ भी न भय है न अनिष्ट की शङ्का है। बिगड़ती हुई बात को जहाँ से चाहें सँभाल सकते हैं। जैसे गरुड़ कौतुकवश साँपो में मिलकर खेले। साँपों को पता नहीं कि यह गरुड़ हैं। उसे सामान्य जीव समझकर उस पर अपना पौरुष दिखलावें और गरुड़ कौतुक वश उस पौरुष से अपने को पराभूत सा दिखलावें। यह गरुड़ का विनोद है। सर्प तो उनके भक्ष्य हैं। सर्पों से उन्हें भय कैसा।

भृकुटि मध्य में आज्ञाचक्र है। वहीं से आज्ञा होती है। प्रभु लोगों के इच्छानुरूप अनुचर केवल भृकुटि विलास देखकर आचरण करते हैं। यहाँ तो भृकुटि विलास में ही यह सामर्थ्य है कि काल को खा जावे। संकल्पमात्र से काल की इतिश्री हो जाय। यथा : उमा काल मर जाकी इच्छा। ऐसे प्रभु को क्या ऐसी लड़ाई शोभा देती है? भाव यह कि रावणादि ने तो काल के भय से तप करके व्याज से अमरत्व माँगा। फिर भी अमरत्व नहीं मिला। काल के वश में ही रह गये। उस काल की स्थिति भी जिसकी इच्छा पर निर्भर करती है। उसकी लड़ाई काल से तो शोभा देती ही नहीं। कुम्भकर्णादि तो काल के कलेवा हैं। इनके साथ क्या शोभा देगी। युद्ध की शोभा तो बराबरवाले से है और सरकार के बराबर कोई है नहीं। न हो सकता है। अतः रणशोभा के लिए कभी पराभूत से हो जाते हैं। यथा : रनसोभा लगि आपु बँधावा।

जगपावनि कीरति बिस्तरिहहिं। गाइ गाइ भवनिधि नर तरिहहिं॥
मुरुछा गइ मारुतसुत जागा। सुग्रीवहि तब खोजन लागा॥२॥

अर्थ : संसार को पवित्र करनेवाली कीर्ति का लोग विस्तार करेंगे। जिसका गान करके ससार सागर का लोग सन्तरण करेंगे। मूर्च्छा गयी। हनुमान्‌जी जागे। तब सुग्रीव को खोजने लगे।

व्याख्या : प्रश्न उठेगा कि सरकार तब ऐसा युद्ध क्यो करते है कि जिसमें उनकी शोभा नहीं? उसी का उत्तर देते हुए कवि कहते हैं कि लोकोपकार के लिए भक्तों को अभय करने के लिए। परम पद की प्राप्ति बड़ी कठिन है। बड़े बड़े साधनाओ से भी दुष्प्राप्य है। उसकी प्राप्ति भगवद्यश के गान और श्रवण से अनायासेन होती है। उसके गान और श्रवण से पुण्यसस्कार अन्तःकरण मे होता है और उससे अन्तःकरण पवित्र हो जाता है। इसलिए सरकार की कीर्ति को जगपावन कहा है। यथा : तब निज भुजबल राजिव नैना। कौतुक लागि संग कपि सेना। कपिसेन संग संघारि निसिचर राम सीतहि आनिहैं। त्रैलोक पावन सुजस सुर मुनि नारदादि बखानिहैं। जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई। रघुबीर पद पाथोज मधुकर दास तुलसी गावई।

हनुमान्‌जी के मूर्च्छित होने से कपिसेना पर आपत्ति आगयी। वैराग्य के मूर्च्छित होते ही साधन समूह अनाथ हो गये। जब मूर्च्छा बीती तो देखा कि सब वानर वीर रणक्षेत्र में पड़े हैं। कुम्भकर्ण चला गया। पर राजा सुग्रीव नहीं दिखाई

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

पड़ रहे हैं। अत उन्हे खोजने लगे। कही उन्हे कुम्भकर्ण ले तो नही गया। यदि राजा बन्दी हो गये तो युद्ध ही समाप्त हो जायगा।

सुग्रीवहु के मुरुछा बीती। निबुक गयेउ तेति मृतक प्रतीती ॥
काटेसि दसन नासिका काना। गरजि अकास चलेउ तेहि जाना ॥३॥

अर्थ : सुग्रीव भी मूर्च्छा से जागे तो वे : कांख से निकल गये। कुम्भकर्ण ने समझ रक्खा था कि मर गया। उन्होने कुम्भकर्ण के नाक और कान को दांत से काट लिया और गर्जन करके आकाश की ओर चले तब उसने जाना।

व्याख्या : इधर हनुमान्‌जी सुग्रीव को खोज रहे हैं। उधर सुग्रीवजी भी मूर्च्छा से जग गये तो अपने को शत्रु के कांख मे दबा पाया। उसने समझ रक्खा था कि सुग्रीव मर गया। इसलिए उसने सावधानी से नही दबा रक्खा था। अतः सुग्रीवजी उसकी कांख से निकल गये।

सुग्रीवजी अपने इस पराभव को न सह सके। अत. उसे जीत मे परिणत करने के लिए उसके नाक कान को दांत से काट लिया। अति लाघव से काटा बहिन की भांति भाई भी धोखे मे रह गये। नाक कान कट जाने पर सूर्पणखा को पता चला और सुग्रीव जब गर्जन करके आकाश को ओर चले तब कुम्भकर्ण जान पाया।

गहेउ चरन धरि भूमि पसारा। अति लाघव उठि पुनि तेहि मारा ॥
पुनि आयेउ प्रभु पहिं बलवाना। जयति जयति जय कृपानिधाना ॥४॥

अर्थ : उसने सुग्रीव का पैर पकडकर पृथ्वी पर पछाडा पर सुग्रीव ने अत्यन्त फुरती से उठकर फिर उसे मारा। तत्पश्चात् बलवान् सुग्रीव सरकार के पास कृपानिधान की जय हो जय हो जय हो करते हुए आगये।

व्याख्या : कुम्भकर्ण समझ न सके कि क्या हुआ ? देखते हैं कि शत्रु आकाश की ओर मेरे पहुँच से बाहर होने के लिए जा रहा है। पकड़ने को झपटे तो टाँग पकड पाये। उसने पृथ्वी पर पटका परन्तु राजा सुग्रीव मे बडी फुरती है। पृथ्वी पर पहुँचते न पहुँचते उठ गये और फिर उसे मारा और वहाँ से सरकार के पास निकल गये। सुग्रीव के लाघव से स्वय वालि हैरान था। वालि ने बहुत सुग्रीव का पीछा किया था। पर सुग्रीव हाथ न आये। सो यहाँ भी कुम्भकर्ण के हाथ से निकल गये। बड़ी भारी जीत हुई है। कुम्भकर्ण को नाक और कान काटकर आ रहे हैं। अतः सरकार का जयघोष करते उनके पास आये।

नाक कान काटे जिय जानी। फिरा क्रोध करि भै मन ग्लानी ॥
सहज भीम पुनि बिनु स्रु ति नासा। देखत कपिदल उपजी त्रासा ॥५॥

अर्थ : नाक कान कट गया। यह जानकर उसके मन मे बड़ी ग्लानि हुई

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


और वह क्रुद्ध होकर लौट पडा। एक तो वह स्वभाव से ही भयकर था। तिसपर नाक कान भी नही। उसे देखते ही वानरी सेना त्रस्त हो गयी।

व्याख्या जब कुम्भकर्ण को मालूम हुआ कि नाक कान कट गये तो उसके मन मे बडी ग्लानि हुई। बडे प्रसन्न होकर लका आ रहे थे कि जीतकर आ रहा हूँ। वानरराज का शव उपहार रूप मे रावण को देने के लिए कांख मे दाबे लिये जा रहे थे। एकाएक नाक कान कट जाने से सब बात ही बिगड गयी। अब कौन मुँह लेकर लङ्का जांय। अब तो मर जाना ही ठीक है। अत क्रुद्ध होकर वानरी सेना की ओर लौटा।

सौम्य स्वरूप भी बिना नाक कान के भयानक हो जाता है। नासिका मुखमण्डनम्। नाक ही मुख की शोभा है। कुम्भकर्ण तो स्वभाव से ही भयकर थे। अब नाक कान बिना तो महा भयकर हो गये। उसे देखकर ही वानरी सेना सन्त्रस्त हो उठी।

दो जय जय जय रघुबस मनि, धाये कपि दै हूह।
एकहि बार तासु पर, छाडेन्हि गिरि तरु जूह ॥६६॥

अर्थ रघुवशमणि की जय हो जय हो जय हो ऐसा जयकार लगाकर बन्दर हूह करके दौडे। एक साथ ही उस पर पर्वत और पेड का समूह फेंका।

व्याख्या सन्त्रस्त होने पर रघुवशमणि रामजी के नाम का जयकारा लगाया और बानर लोग पर्वत और वृक्ष लिये हुए दौड पडे। चारो ओर से हूह करके दौडे और सबने एक साथ ही उसपर पर्वत और पेड फेंके। वानरी सेना समुद्र की भाँति उमडी हुई चारो ओर से चली आ रही है और सब ओर से पर्वत और वृक्ष के प्रहार हो रहे हैं। भयानक रूप कुम्भकर्ण उस सेना समुद्र के बीच मे पहाड की भाँति दिखाई पड रहे हैं।

कुभकरन रनरग बिरुद्धा। सनमुख चला काल जिमि क्रुद्धा॥
कोटि कोटि कपि धरि धरि खाई। जनु टिड्डी गिरि गुहाँ समाई॥१॥

अर्थ कुम्भकर्ण रणरङ्ग मे विरुद्ध होकर सन्मुख चला मानो क्रुद्ध काल है। करोडो बन्दरो को पकड पकडकर खाये जाता है। मानो टिड्डी पवत की कन्दरा मे समाई जाती हैं।

व्याख्या कुम्भकर्ण रणरङ्ग मे दुर्मद है। सो रणरङ्ग मे विरुद्ध हुआ। जब सोकर जागा था तब कवि ने उपमा दी थी कि जागा निसिचर देखिय कैसा। मानहु काल देह धरि बैसा। इस समय रणरङ्ग विरुद्ध है तो कवि कहते हैं कि क्रुद्ध काल की भाँति मालूम पड रहा है। काल तो यो ही प्राणियो को खाया करता है और यदि क्रुद्ध हो तो सहार उपस्थित हो जाय। यहाँ बन्दरो का सहार उपस्थित हो गया। करोडो बन्दरो को पकड पकडकर खा गया। फाँकता चला जाता है। मुँह चलाने की फुरसत नही। इसीलिए उसके मुख की उपमा गिरिगुहा से दिया और

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बन्दरो की टिड्डी के दल से। सामने बढता बन्दरा का सहार करता चला जाता है। कोई रोकने में समर्थ नही है।

कोटिन्ह गहि सरीर सन मर्दा। कोटिन्ह मीजि मिलव महि गर्दा ॥
मुख नासा स्रवनन्हि की बाटा। निसरि पराहि भालु कपि ठाटा ॥२॥

अर्थ: करोडो को पकड़कर शरीर मे मसल डाला और करोडो को मीजकर पृथ्वी के गर्दे मे मिला दिया। मुँह नाक और कानो के रास्ते से बन्दर और भालुओ के ठट्ट निकलकर भागे जा रहे हैं।

व्याख्या: उसका रणमदमत्त होना वर्णन कर रहे हैं। करोडो बन्दरो को पकडकर शरीर मे मसल रहा है। मानो उबटन अभ्यङ्ग लग रहा है। करोडो को पकडकर पृथ्वी के गर्दे मे मिला रहा है। उनके अस्थिपञ्जर चूर्ण होकर धूलि मे मिल गये। अद्भुत काण्ड उपस्थित है। कुम्भकर्ण का शरीर इतना विस्तृत है कि बहुत बातो का तो उसे स्वय पता नही लगता है। वह बन्दरो को मुँह मे तो डालता चला जाता है पर इस बात का उसे पता नही कि वे पेट मे जाते हैं कि नही। वे मुख नासिका और कान के रास्ते से बाहर निकलकर भागे जा रहे हैं।

रन मदमत्त निसाचर दर्पा। बिस्व ग्रसिहि जनु एहि बिधि अर्पा ॥
मुरे सुभट सब फिरहि न फेरे। सूझ न नयन सुनहि नहि टेरे ॥३॥

अर्थ: रणमद मे मत्त होकर राक्षस ने ऐसा दर्प किया कि ससार को ही निगल जायगा। मानो ब्रह्मा ने उसे अर्पण कर दिया है कि तुम खा जाओ। सुभट लोग ऐसे भागे कि लौटाने से नही लौटते हैं। उन्हे न आँख से दिखायी पडता है और न पुकारने पर सुनाई पडता है।

व्याख्या: रण मदमत्त होकर कुम्भकर्ण वानरी सेना का ऐसा सहार कर रहा है और कोई उसे रोकनेवाला नही है। मानो ब्रह्मा ने उसे ससार ही दे डाला कि वह जिस भाँति चाहे वैसे नाश करे। किसी की सामर्थ्य नही कि हस्तक्षेप कर सके। प्रश्न उठेगा कि बडे बडे वीर वहाँ हैं तो उनकी दशा कहते हैं कि वे सब भाग निकले। यदि कोई उन्हे प्रोत्साहन करके फेरना चाहे तो वे फिरते नही। क्योकि त्रासातिरेक से न तो उन्हे सुझाई पडता है और न पुकारने पर उन्हे सुनाई देता है। त्रास से इन्द्रियाँ व्याकुल है। काम नही करती। केवल किसी प्रकार से भागकर प्राण बचाने के सिवा कुछ सूझ नही रहा है।

कुभकरन कपि फौज बिदारी। सुनि धाई रजनीचर धारी ॥
देखी राम बिकल कटकाई। रिपु अनीक नाना बिधि आई ॥४॥

अर्थ 'कुम्भकर्ण ने शत्रु सेना को तितर बितर कर दिया' यह सुनकर राक्षसी सेना दौड पडी। रामजी ने देखा कि अपनी सेना विकल है। तिसपर शत्रु की सेना अनेक प्रकार की आ पहुँची।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या वानरी सेना के इस प्रकार सहार का हाल जब लका पहुँचा त राक्षसी सेना दौड पडो कि वानरी सेना को निर्मूल करनेका इससे अच्छा समय मिलेगा। कुम्भकर्ण ने जो अकेले कर सकता था किया। सेना का व्यूह टूट गया भगदड मची हुई है। अब उन तितर बितर हुए सैनिकों को कही जमने न देने लिए सेना की आवश्यकता है। इस भगदड के समय यदि हमलोग धावा करके उन खदेडते और मारते जाँय तो नि सन्देह निर्मूल कर देने मे हमलोग समर्थ हो जावेंगे नही तो यह छितराई हुई सेना समय पाकर फिर इकट्ठी हो जायगी। अत राक्षस सेना दौड आयी।

रामजी ने देखा कि यह चाल वानरी सेना को निर्मूल करने के लिए चल गयी है। अत इस नयी आयी हुई सेना का सामना करना चाहिए और अपनी भागते हुई सेना को सँभालना चाहिए। इस समय वानरी सेना बडे सकट मे है। कुछ क नही सकती।

दो सुनु सुग्रीव बिभीषन, अनुज सँभारेहु सैन।
मैं देखौ खल बल दलहि, बोले राजिवनैन ॥६७॥

अर्थ सुग्रीव विभीषण और लक्ष्मण सुनो। तुम लोग वानरी सेना क सँभालो। मैं इस खल के बल और सेना को देखूँगा। यह बात राजीवनयन रामज ने कहा।

व्याख्या यहाँ दो भिन्न भिन्न कार्य हैं एक तो अपनी सेना को सम्भालन और दूसरा कुम्भकर्ण का तथा नयी आयी हुई अनेक प्रकार की राक्षसी सेना का सामन करना। अत पहिला काम तो रामजी ने सुग्रीव विभीषण और लक्ष्मणजी के सुपुर्द किया और दूसरा काम अपने ऊपर लिया। भाव यह कि कुम्भकर्ण तथा नयी आय हुई राक्षसी सेना का वध करने का भार स्वय अपने ऊपर लिया।

कर सारग साजि कटि भाथा। अरिदल दलन चले रघुनाथा ॥
प्रथम कीन्ह प्रभु धनुष टकोरा। रिपुदल बधिर भएउ सुनि सोरा ॥१॥

अर्थ हाथ मे सारङ्ग और कमर मे तरकस साजकर शत्रु सेना का सहार करने रघुनाथजी चले। प्रभु ने पहिले धनुष का टङ्कोर किया। जिसके शब्द से शत्रु की सेना बहरी हो गयी।

व्याख्या सारङ्ग दिव्य धनुष है। यह शत्रु के आघात से कट नही सकता और इससे छूटे हुए बाण बहुत दूर तक काम करते हैं, यह धनुष सरकार को परशुरामजी से मिला था। यथा दखि राम बल निज धनु दीन्हा। सरकार ने उस धनुष को साजा अर्थात् प्रत्यञ्चा चढाया और कमर में अक्षय तूणीर बाँधा। तब शत्रु सेना के सहार के लिए रघुनाथजी चले। कुम्भकर्ण युद्ध करन चले थे तो सेना साथ नहीं लिया। अकेले चले थे। इधर सरकार भी कुम्भकर्ण और उसकी सेना का सामना करने के लिए अकेले ही चले।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जब सरकार अकेले शत्रु की सेना का सामना करने चलते है तो सेना मे गडबड़ पैदा करने के लिए ऐसा धनुष का टङ्कार करते हैं कि उसके शब्द से शत्रु सेना बधिर हो जाती है। यथा : 'प्रभु कीन्ह धनुष टंकोर प्रथम कठोर घोर भयावहा। भये बधिर व्याकुल जातुधान न ज्ञान तेहि अवसर रहा।' यह खरदूषण के युद्धका हाल है। वैसे ही इस बार भी ज्याघोष किया। जिससे राक्षसी सेना बहरी हो गयी।

सत्यसंध छाडे सरलक्षा। काल सर्प जनु चले सपक्षा॥
जहं तहं चले बिपुल नाराचा। लगे कटन भट बिकट पिसाचा॥२॥

अर्थ : सत्यप्रतिज्ञ रामजी ने लाख बाण छोडे। वे पक्षवाले काल सर्प की भाँति चले। जहाँ तहाँ बहुत से नाराच छूटे जिनसे विकट पिशाच भट कटने लगे।

व्याख्या : सरकार सत्यसन्ध हैं। कहकर चले हैं कि मैं देखउँ खलबल दलहि तो अकेले ही सबका सामना करेंगे। अतः एक लाख बाण चलाया अथवा निशाना ऐसा अचूक है कि लाख बाण छोडे खाली कोई न गया। वे बाण काल सर्प के समान थे। जिसे छू लिया वह नहीं बच सकता। बाण अन्तरिक्ष मार्ग से चलते हैं। अतः सप क्षकालसर्प से उपमा दिया। लोहे के बने बाण को नाराच करते हैं। ये नाराच जिधर जिधर से राक्षसी सेना आ रही थी उधर उधर चलाये गये। सो विकटभट पिशाच कटने लगे। पिशितमाचामति इति पिशाचः। मांस खाते हैं इसलिए उनका नाम पिशाच है। अर्थात् खल मनुजाद द्विजामिष भोगी कटने लगे। ये बन्दरो को खाने आये थे इसलिए पिशाच कहा।

कटहिं चरन उर सिर भुज दंडा। बहु तक बीर होहिं सत खंडा॥
घुर्मि घुर्मि घायल महि परही। उठि सँभारि सुभट पुनि लरही॥३॥

अर्थ : पैर छाती सिर और भुजाएँ कट रही थी और बहुत से वीर तो सौ टुकडे हो जाते थे। चक्कर खा खाकर घायल हो पृथिवी पर गिरते थे। सँभालकर वीर फिर उठ जाते थे और लडते थे।

व्याख्या : पहिले कहा कि 'लगे कटन भट बिकट पिसाचा' अब उनके कटने की विधि कहते हैं कि पाँच पाँच टुकड़े होकर गिर रहे हैं। ठीक इसी प्रकार का खरदूषण युद्ध हुआ था। यथा : कर सीस उर भुज चरन। जहँ तहँ लगे महि परन। बाणो का वेग और बढा तो वीर लोग सौ सौ टुकडे होने लगे। यथा खरदूषण के सग्राम मे : भटकटत तन सत खड। पुनि उठत करि पाखड।

बन्दर वीर कुम्भकर्ण के प्रहार से चक्कर खाकर गिरे थे। यथा : घुर्मित घायल परेउ तुरंता। अब राक्षस सरकार के प्रहार से चक्कर खाकर गिरे हैं परन्तु सुभट हैं। सँभालकर उठते हैं और फिर लड़ते हैं।

लागत बान जलद जिमि गाजहिं। बहु तक देखि कठिन सर भाजहिं॥
[illegible] गावहिं॥४॥

~(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ बाण लगने पर बादल की भाँति गर्जते हैं। बहुत से कठिन बाण देखकर भागते हैं। कितने कबन्ध बिना सिर के दौडने लगे और पकडो पकडो मारो मारो यही धुन चढी है। सो यही गा रहे है।

व्याख्या बाणवर्षा हो रही है। 'वर्षा घोर निसाचर रारी।' सो घन गर्जन भी होना चाहिए। इसलिए कहते हैं कि बाण लगते ही ऐसा चिल्लाते हैं मानो बादल गरज रहा है। यथा चिक्करहि लागत बान। धरपत कुधर समान। कितने तो कठिन बाणो को देखकर ही भाग चले। यथा अवलोकि खरतर तीर। मुरि चले निसिचर वीर। अब राक्षसी सेना मे भगदड पडी। सरकार के बाण का लाघव दिखलाते है कि बाण लगते ही सिर उड गया। वह अलग पडा हुआ धरु धरु मारु मारु कह रहा है और धड दौडता चला जा रहा है। यथा नभ उडहि बहु भुज मुड। बिनु मौलि धावहि रुड। शरीर मे इतना प्राण भरा हुआ है कि सिर कटने पर भी दोनो भाग पृथक् पृथक् काम कर रहे हैं। सिर धरु धरु मारु मारु धुन से गान कर रहा है और रुण्ड अलग तलवार चलाते चले जाते हैं। उन्हे शत्रु मित्र की पहिचान नही। मुण्ड गाते चल जा रहे हैं। उन्हे और कोई सुधि नही। बार बार उसी बात के कहने को गाना कहते हैं।

दो, छन महु प्रभु के सायकन्हि, काटे बिकट पिसाच।
पुनि रघुबीर निषग महु, प्रविसे सब नाराच ॥६८॥

अर्थ क्षण भर मे प्रभु के बाणो ने विकट पिशाचो को काट गिराया और तब सब बाण रामजी के तरकस मे प्रवेश कर गये।

व्याख्या लाख बाण छूटे थे। उन्होने क्षण भर मे नाना विधि रिपु अनीक का सहार कर दिया इस सेना मे विकट पिशाच थे, ये किसी भाँति मरनेवाले नही थे। टुकडे हो होकर गिरे फिर माया से उठ खडे होते थे। परन्तु इन बाणो ने उनकी इतिश्री करके ही छोडा। सरकार के अस्त्र-शस्त्र सब सजीव हैं। अपना काम करके सब के सब लौट आये और तरकस मे प्रवेश कर गये। वह अक्षय तूणीर था। बाणा के निकालने पर वह खाली नही होता था। सदा पूर्ण रहता था। इसी भाँति प्रवेश करने से उसमे बाणो की सख्या बढती नही थी।

कुभकरन मन दीख बिचारी। हति छन माझ निसाचर धारी॥
भा अति क्रुद्ध महा बल बीरा। करची मृगनायकनाद गभीरा॥१॥

अर्थ कुम्भकर्ण ने मन मे विचारकर देखा कि एक पलमे राक्षसो सेना मारी गयी। दारुणबल वीर क्रुद्ध हुआ और गम्भीर सिहनाद करके

व्याख्या इतनी शीघ्रता से राक्षसी सेना का सहार हो गया कि कुम्भकर्ण देखते ही रह गये। कुछ करते-धरते न बना। जब सब सेना मारी गयी तब विचार किया कि मेरी सेना तो पूरी की पूरी मारी गयी। इनको सेना तो फिर इकट्ठी हो गयी। अत इसी भाँति इनकी सेना को भी क्षण मात्र मे ही नष्ट करना चाहिए।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अपने पराजय से क्रुद्ध हुआ। वली वीरोमे दारुण है। पराक्रम मे काम लेना चाहता है। अत गम्भीर सिंहनाद किया। और

कोपि महीधर लेइ उपारी। डारैं जहँ मरकट भट भारी ॥
आवत देखि सैल प्रभु भारे। सरन्हि काटि रज सम करि डारे ॥२॥

अर्थ वह क्रोध करके पर्वत उखाड लेता था और जहाँ भारी वानर भट थे वहाँ फेकता था। सरकार ने बडे पर्वतो को आते देखकर बाणोंसे काटकर उन्हे धूलि के समान कर डाला।

व्याख्या कुम्भकर्ण क्रोध करके पर्वत उखाडता है और वहाँ फेंकता है जहाँ बडे बडे सुभट बन्दर सुग्रीव अङ्गदादि इकट्ठे हैं। उसने यह निश्चय किया कि जो काम इन्होने लाख बाण से किया वही काम मैं पर्वतो के प्रहार से करूँगा। मैं भी वानरी सेना को इसी भाँति क्षण भर मे पीस दूँगा। अत पर्वत उखाडता है और उसे निशाना ठीक करके वहाँ फेंकता है जहाँ सुग्रीव, अङ्गद, जाम्बवानादि एकत्रित है। भाव यह कि पहले सुभटो का ही सफाया करो।

सरकार ने देखा बडे-बडे पर्वत चले आ रहे हैं। ये बन्दरो के मान के नही। इनके नीचे तो मेरा वानरी सेना पिस जायगी। अत अपनी सेना की रक्षा के लिए सरकार ने बनैती दिखाई। ऐसी शरवर्षा की कि पर्वत धूल होकर उड गये। रामजी की चोट से कुम्भकर्ण अपनी सेना की रक्षा न कर सके। पर कुम्भकर्ण की चोट से सरकार ने अपनी सेना बचा ली।

पुनि धनु तानि कोपि रघुनायक। छाडे अति कराल बहुसायक ॥
तनमहु प्रबिसि निसरि सर जाही। जिमि दामिनि घनमाझ समाही ॥३॥

अर्थ फिर धनुष तानकर क्रुद्ध होकर रामजी ने बहुत से अत्यन्त कराल बाण छोडे। वे बाण शरीर मे प्रवेश करके पार निकल जाते थे। जैसे बिजली बादल मे समा जाती है।

व्याख्या शत्रु की सेना का सहार करके अपनी सेना की रक्षा करके कुम्भकर्ण पर सरकार टूटे। कहा था मैं देखौं खलबल दलहि। सो खल दल को तो देख चुके। अब खल केवल को देखते हैं। एक तो रघुनायक हैं। दूसरे क्रुद्ध हैं। तीसरे धनुष को ताना है। चौथे बहुत से अति कराल बाण छोड रहे हैं। भाव यह है कि सामान्य बाण कुम्भकर्ण पर काम नही कर सकते। इसलिए अति कराल बाण छोडे। तानने का भाव यह है कि धनुष को कान तक खैंचा जिसमे चोट गहरी हो।

कुम्भकर्ण का शरीर बडा दृढ है। पत्थर की चोट उसे मदार के फल की चोट मालूम होती है। यथा जिमि गज अर्क फलन्हि को मारचो उस कुम्भकर्ण के शरीर मे वे अति कराल बाण घुसकर पार निकल जा रहे हैं। जैसे बिजली चमककर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


बादल में प्रवेश करती है। उस पार निकलकर वाण बिजली की भाँति अदृश्य हो जाते हैं।

सोनित स्रवत सोह तन कारे। जनु कज्जलगिरि गेरु पनारे॥
बिकल बिलोकि भालु कपि धाए। बिहँसा जबहि निकट कपि आए॥४॥

अर्थ : खून बहता हुआ उस काले शरीर पर ऐसा शोभायमान हुआ जैसे काजल के पहाड़ पर गेरू के पनाले शोभित हो। उसे विकल देखकर वन्दर भालू दौड़े पर जब वे निकट आगये तब हँसा।

व्याख्या : काली देह में शोणित स्राव को शोभा हुई। कज्जल के पर्वत के समान कुम्भकर्ण का शरीर : उनमें बाणों के किये हुए क्षतों से जो रक्त की धाराएँ बह निकली उनकी उपमा कवि गेरू के पनाले से दे रहे हैं। वीर की शोभा घायल होने पर अधिक हो जाती है। यथा : घायल वीर विराजहिं कैसे। इस समय कुम्भकर्ण बाणों की चोट से पर्वत न फेंक सका।

उसे विकल देखकर वन्दरों ने धावा बोल दिया। समझा कि इसने हम लोगों का बड़ा संहार किया है। इसका संहार हम लोगों के हाथ होना चाहिए। अब इसे हमलोग मार लेंगे। सरकार को बड़ा परिश्रम पड़ रहा है। सो अब अधिक परिश्रम की आवश्यकता नहीं। अब हमलोग काम बना लेंगे। बन्दरों का धावा देखकर सरकारने बाण चलाना बन्द कर दिया। उसने भी बन्दरों का धावा देखा। चुप रह गया कि इन सबों को निकट आने दो। जब निकट आगये तब जोर से हँसा।

दो. महानाद करि गर्जा, कोटि कोटि गहि कीस।
महि पटकै गजराज इव, सपथ करै दससीस॥६९॥

अर्थ : गर्जन करता हुआ बड़े वेग से दौड़ा। वह करोड़ों वन्दरों को पृथिवी पर इस भाँति पटकता था जैसे हाथी पटकता है और रावण की दोहाई देता था।

व्याख्या : दर्प से गर्जन करता है। इतना बड़ा धीर है कि इतना घायल होने पर भी बड़े वेग से दौड़ा। अब तीसरे प्रकार का युद्ध आरम्भ किया। न तो बन्दरो को खाता है न मर्दन करता है। उन्हे पकड़-पकड़कर हाथी की भाँति घुमाकर जमीन पर पटकता है। जिसमें शरीरके चिथड़े उड़ जायँ और रावण की दोहाई देता है कि एक को जीता न छोड़ूँगा। इस भाँति उसने करोड़ों बन्दरों को पटका। पहिले से ही कवि इसकी गजराज से उपमा देते हैं। पहिले कहा था : जिमि गज आक फलन्हि के मारे अब कहते हैं : महि पटकै गजराज इव।

भागे भालु बलीमुख जूथा। वृकु बिलोकि जिमि मेष बरूथा॥
चले भागि कपि भालु भवानी। बिकल पुकारत आरत बानी॥१॥

अर्थ : भालु और वन्दरों का जूथ भाग चला। जिस भाँति भेड़िये के देखने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



से भेंड भागे। हे भवानी! बन्दर भालु विकल होकर आर्त्तवाणी से पुकार करते हुए भाग चले।

व्याख्या कहां तो भालु कपि उसे विकल देखकर उसे मारने के लिए आये थे वहां ये ही लोग विकल होकर भाग चले। भेडिया कितना ही घायल हो पर लाख भेंड उसका कुछ नही कर सकती। सो भेडिया मे सामर्थ्य है दौडकर भेडो पर चोट करता है। फिर भेड कैसे ठहर सकती हैं। वे जिस भांति मे-मे करती हुई भागती हैं उसी भांति बन्दर भालु भी भाग चले।

आगे-आगे भेंड मे-मे करती भागी जाती हैं और पीछे भयानक भेडिया पीछा करता चला जाता है। वही दशा बन्दर भालुओ की हुई कि वे आर्त्तनाद करते भागे जा रहे है। पीछे कुम्भकर्ण दौडा आ रहा है। एक बार भागे भालु बलीमुख कहा था। अब चले भागि कपि भालु कहते हैं। अर्थात् भागने मे कोई गौण नही है। दोनो की प्रधानता है। इसलिए कवि ने एक स्थल पर कपि को पहिले कहा। दूसरे स्थल पर भालु का नाम पहिले ले रहे हैं। सरकारी सेना का पराजय हो रहा है। इसलिए शिवजी भवानी को सावधान करते है। जैसा ऐसे अवसरो पर करते चले आये हैं।

यह निसिचर दुकालसम अहई। कपिकुल देस परन अब चहई॥
कृपा बारिधर राम खरारी। पाहि पाहि प्रनतारत हारी॥२॥

अर्थ. यह राक्षस तो दुर्भिक्ष की भांति है। बन्दरो के कुलरूपी देश पर पडा चाहता है। हे कृपा वारिवाह खरारि रामजी! हे प्रणत के आर्त्ति के हरण करनेवाले! रक्षा करो रक्षा करो।

व्याख्या: दुर्भिक्ष ऐसी विपत्ति है जो देश के देश पर एक साथ ही पडती है और उसका सहार कर डालती है। अन्य राक्षस भी विपत्ति रूप थे। पर यह तो दुर्भिक्ष रूप है। दुर्भिक्ष किसी देश विशेष मे पडता है यह बन्दर कुलरूपी देश पर पडना चाहता है। दुर्भिक्ष पर किसी का बल नही चलता। इसी भांति इस पर किसी का बल नही चल सकता। बादल यदि कृपा करें तो दुर्भिक्ष दूर हो। इस भांति खरारि राम जो कृपा वारिधर हैं रक्षा करें तो हमारी रक्षा हो सकती है। खरारि कहने का भाव यह कि अकेले शत्रु सेना के सहार मे समर्थ हैं।

सकरुन बचन सुनत भगवाना। चले सुधारि सरासन बाना॥
राम सेन निज पाछे घाली। चले सकोप महा बलसाली॥३॥

अर्थ करुणा युक्त वचन सुनते ही भगवान् धनुष और बाण सुधारकर चले। रामजी ने अपनी सेना को पीछे कर लिया और महाबलशाली क्रुद्ध होकर चले।

व्याख्या. भगवान् षडैश्वर्य सम्पन्न हैं। सकरुण वचन सुनने से विचलित हो उठे। धनुष और बाणो को सुधार लिया जिसमे ठीक काम दे सकें। इतने बडे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : उन भुजाओं के कट जाने पर वह खल कैसा शोभित हुआ जैसे पक्ष छेदन के बाद मन्दरगिरि की शोभा हुई। उग्र भयानक दृष्टि से सरकार को उसने देखा। मानो तीनों लोक को निगलना चाहता है।

व्याख्या : खल की शोभा भुजाछेदन पर ही होती है। क्योंकि वे : पर अकाज भट सहसबाहु से होते है। अब पर अकाज की सामग्री गयी। अतः वह खल शोभित हुआ। सुना जाता है कि पहिले पर्वतों को पक्ष थे। वे उड़ा करते थे। जहाँ पर जा बैठते थे वहाँ के ग्रामादि का संहार हो जाता था। मन्दर भारी पर्वत था। इसके बैठने से भारी संहार होता था। इन्द्र भगवान् ने पर्वतों के पक्षों को काटा। मन्दर के भी दोनों पक्ष काट डाले। तब जैसी मन्दर की शोभा हुई वैसे ही दोनों हाथ कटने पर कुम्भकर्ण की शोभा हुई।

कुम्भकर्ण ने उग्रदृष्टि से तब रामजी को देखा। इस भाँति लोचन सफल कर रहा है। यही तामसी रीति है। लोचन सफल करौं मैं जाई। यह बात रावण से कही थी। उसका साफल्य यों हो रहा है। दोनों हाथ कटने पर भी विकलता नहीं क्रोध की अभिवृद्धि मात्र हो रही है। उसके देखने में निगल जाने का भाव है। केवल रामजी को ही नहीं मानो लोक को निगलना चाहता है।

दो. करि चिक्कार घोर अति, धावा बदन पसारि।
गगन सिद्ध सुर त्रासित, हा हा हेति पुकारि ॥७०॥

अर्थ : अत्यन्त घोर चिग्घाड़ करके मुँह फैलाकर दौड़ा। आकाश में सिद्ध और देवता डर गये। हाय हाय पुकारने लगे।

व्याख्या : फिर उसने अत्यन्त घोर चिग्घाड़ किया। अति वेदना होने से चिग्घाड़ किया और रामजी के निगलने के लिए मुख को फैलाकर दौड़ा। हाथ न होने पर भी मुख से काम लिया चाहता है। रामजी पर यह बड़ी भारी विपत्ति पड़ती देखकर आकाश से रणक्रीडा देखनेवाले सिद्ध और देवता हाय हाय हाय करने लगे। समझा कि रामजी इसके ग्रास मे अब नहीं बचेंगे।

सभय देव करुना निधि जान्यो। स्रवन प्रजंत सरासनु तान्यो॥
बिसिख निकर निसिचर मुख भरेऊ। तदपि महाबल भूमि न परेऊ ॥१॥

अर्थ : करुणानिधि ने जान लिया कि देवता डर गये। सो कान तक धनुष का सन्धान किया और बाणों के समूह से उन्होने राक्षस के मुख को भर दिया। फिर भी महाबल पृथ्वी पर नहीं गिरा।

व्याख्या : देवताओं का हाहाकार सुना। इससे जाना कि देवता लोग त्रस्त हो गये। सरकार करुणानिधि हैं। उनकी आर्ति को दूर करने के लिए धनुष को कान तक खैंचा। कान ही धनुष के खींचने की सीमा है। अभी तक तो बाणों को कुम्भकर्ण की त्वचा से काम पड़ा था। अब उसके वज्र से दाँतों से काम पड़ेगा। इसलिये धनुष को कान तक खैंचा। ओठ से लेकर दाँत, मसूढ़, जिह्वा, लम्बिका

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



आदि मुख के भीतरी भाग सब बाणो से भर गये। मुख बाणो का पञ्जर हो गया। फिर भी कुम्भकर्ण इस महावेदना को सह गया। पृथिवी पर नही गिरा।

सरन्हि भरा मुख सनमुख धावा। कालत्रोन सजीव जनु आवा॥
तव प्रभु कोपि तीव्र सर लीन्हा। धर ते भिन्न तासु सिर कीन्हा॥२॥

अर्थ : मुख बाणो से भरा हुआ वह सन्मुख दौड़ा। जैसे काल का तरकस सजीव होकर चला आता हो। तब प्रभु ने क्रोध करके तीखा बाण लिया और उसके सिर को धड़ से जुदा कर दिया।

व्याख्या : मुख बाणो से भरा हुआ है। ऐसा मालूम पड़ा कि यह काल का तरकस है। तरकस जड़ होता है। चल नही सकता। परन्तु यह तरकस सजीव है और दौड़ता चला आ रहा है। यह राक्षस इतना भयानक है कि कवि इसकी उपमा प्रायेण कालसम्बन्धी ही देते हैं। इसके बैठने की उपमा : मानहु काल देह धरि बैसा। चलने की उपमा : सनमुख चला काल जिमि क्रुद्धा। पड़ने की उपमा : यह निसिचर दुकाल सम अहई। दौड़ने की उपमा : कालत्रोन सजीव जनु धावा।

उसके पराक्रम को देखकर सरकार को क्रोध हुआ। अतः तीक्ष्ण बाण ऐन्द्रास्त्र उठाया और उसके सिर को धड़ से अलग कर दिया।

सो सिरु परेउ दसानन आगे। बिकल भयेउ जिमि फनि मनि त्यागे॥
धरनि धसै धर धाव प्रचंडा। तब प्रभु काटि कीन्ह दुइ खंडा॥३॥
परे भूमि जिमि नभ ते भूधर। हेठ दाबि कपि भालु निसाचर॥

अर्थ : वह सिर जाकर रावण के आगे गिरा। वह ऐसा विकल हुआ जैसे मणि के बिना सर्प। उसका प्रचण्ड धड़ दौड़ने लगा और उससे पृथिवी दबने लगी। तब प्रभु ने काट कर दो टुकड़े कर दिये। वे पृथिवी पर ऐसे गिरे जैसे आकाश से पहाड़ गिरे और बन्दर भालू तथा निशाचरो को नीचे दबा दिया।

व्याख्या : बाण ने केवल सिर ही नही काटा उसे ले जाकर रावण के आगे गिरा दिया। सरकार के अस्त्र शस्त्र सब सजीव है। यह रावण को उपहार रूप मे भेजा गया। रावण को बड़ा अभिमान था कि : कुम्भकर्ण अस बन्धु मम सुत प्रसिद्ध सक्रारि। सो कुम्भकर्ण तो गये। अब शक्रारि की पारी है। हनुमान्‌जी और अङ्गदजी भी ऐसे ही उपहार रावण को दे चुके हैं। यथा : रावन आगे परहिं ते जनु फूटहिं दधिकुण्ड। पर यह सरकार का भेजा हुआ उपहार बेजोड़ था। इसे देखने पर रावण का हाल बिना मणि के सर्प सा हो गया। यथा : मनि बिनु फनि जियै व्याकुल बेहाल रे। कुम्भकर्ण के बाद भी रावण जीवे। पर उसकी व्याकुलता और बेहालता नही गयी।

कुम्भकर्ण का रुण्ड उठा और वह दौड़ने लगा। उसके बोझ से पृथिवी दबने लगी। इस उपद्रव की शान्ति के लिए सरकार ने उस धड़ के भी दो टुकड़े किये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वे टुकड़े इतने विशाल थे कि उनके गिरने से दोनों पक्ष की हानि हुई। बन्दर भालु भी दबे और राक्षस भी दबे।

तासु तेज प्रभु बदन समाना। सुरमुनि सबहि अचंभव माना॥
सुर दुन्दुभी बजावहिं हरखहिं। असतुति करहिं सुमन बहु बर्षहि॥४॥

अर्थ : उसका तेज सरकार के मुख में समा गया। देवताओं और मुनियों ने आश्चर्य माना। आकाश में दुन्दुभी बजाते हैं और हर्षित होते हैं। देवता लोग स्तुति करके फूल बरसाते हैं।

व्याख्या : कुम्भकर्ण के शरीर से तब तेज निकला और सरकार के मुख मे चला गया अर्थात् सरकारी तेज में उसका तेज लीन हो गया। कुम्भकर्ण को सायुज्य मुक्ति हुई। ऐसे बड़े खल को ऐसी सद्‌गति कैसे मिली? इस बात पर देवताओं को भी आश्चर्य हुआ और मुनियों को भी आश्चर्य हुआ।

आज लंका के ऊपर देवताओं की दुन्दुभी बज रही है। जो सभीत होकर भृकुटी देखते रहे वे आज रावण के इतने बड़े अनिष्ट पर निर्भय होकर दुन्दुभी बजा रहे हैं। रावण ने भय के द्वारा देवताओं को अपनाना चाहा। यथा : तब मारिहौ कि छाड़िहौ भली भाँति अपनाइ। पर भय से कोई अपनाया नही जा सकता। ऊपर से आज्ञाकारी भी हो जायँ। पर भीतर से वैर ही बढ़ता है।

करि बिनती सुर सकल सिधाए। तेही समय देवरिषि आए॥
गगनोपरि हरि गुन गन गाये। रुचिर बीररस प्रभु मन भाये॥५॥
बेगि हतहु खल कहि मुनि गए। राम समर महि सोहत भए॥६॥

अर्थ : बिनती करके सब देवता चले गये। उसी समय नारदजी आये। आकाश पर से ही रामजी के गुणगण का गान किया। जो कि सुन्दर वीररस मे होने से सरकार के मन में अच्छे लगे : खल को जल्दी मारिये। यह कहकर मुनिजी चले गये और रामजी रणभूमि में शोभित हुए।

व्याख्या : विजय स्तुति करके देवता लोग चले गये। युद्ध देखने आये थे। कुम्भकर्ण का वध हो जाने से उस दिन का युद्ध समाप्त हुआ। अतः स्तुति करके चले गये। उसी समय भगवान् वीणापाणि नारदजी आगये। शिष्य को सद्‌गति से हर्षित होकर आये है और यह कहने आये हैं कि खल का शीघ्र वध कीजिये। भाव यह कि इस खल के वध के बाद मेघनाद खल आयेगा। इष्टदेव के बल पर युद्ध करेगा। इष्टदेव की मानरक्षा के लिए। रणशोभा के लिए आप बँध जायँगे। इतना ही बहुत है। इन्द्र की भाँति यदि बन्दी करके लंका ले जायगा तो कथा बहुत बढ़ेगी। अतः जल्दी कीजियेगा। नारदजी नीचे नही आये। आकाश मार्ग से ही सरकार के गुणगणो का गान किया। समयोपयोगी राग और पद्य में गान किया। वह वीररस से भरी हुई स्तुति सरकार को प्रिय लगी। साहित्य और सङ्गीत के योग से सरकार प्रसन्न हो गये। यथा : मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तेजोवर्धक गान के बाद सरकार को प्रसन्न देखकर मुनिजी यह कहकर चले गये कि : खल को शीघ्र मारिये। रणशोभा के लिए अधिक न खेलाइये। रामजी रणभूमि मे शोभित हुए। इस खल के वध के बाद जो शोभा सरकार की रणभूमि मे हुई उसे अब वर्णन करते हैं। विजय के पश्चात् तुरन्त ही देवताओ की स्तुति होने लगी। उसके बाद नारदजी आगये। कवि को वर्णन का अवसर ही नही मिला। अत. अब उस झाँकी का वर्णन कर रहे हैं।

[1]छं. संग्राम भूमि बिराज रघुपति अतुल बल कोसलधनी।
स्रमबिंदु मुख राजीव लोचन रुचिर तन सोनितकनी॥
भुजबल जुगल फेरत सर सरासन भालु कपि चहुँदिसि बने।
कह दास तुलसी कहि न सक छबि सेष जेहि आनन घने॥

अर्थ : जिसके बल का तौल नही है ऐसे कोसलाधीश रघुपति संग्रामभूमि मे शोभित हुए। कमल से नेत्रवाले मुख पर पसीने की बूंद और सुन्दर शरीर पर रक्त के कण शोभायमान थे। दोनो हाथो से धनुष और बाण फेर रहे हैं और वानर भालु चारो ओर से घेरे हुए हैं। तुलसीदासजी कहते हैं कि इस छवि को शेष भी वर्णन नही कर सकते जिन्हे बहुत से मुख हैं।

व्याख्या : लंका पर चढाई करने मे समर्थ कोशलधनी ही हैं। रघुनाथ से उपक्रम करके। यथा : कर सारंग साजि कटि भाथा। अरि दल दलन चले रघुनाथा। रघुपति से उपसहार करते हैं। पहिले महा बलशाली कहा था। अब अतुलबल कहते हैं। क्योकि महाबल वीर का वध किया है। मुख पर श्रमविन्दु आ जाने से सरकार के मुखकमल की बडी शोभा हो जाती है। कुम्भकर्ण रक्त के छीटे श्याम शरीर पर पडे हुए हैं। इससे शरीर की अधिक शोभा हो रही है। दोनो हाथो से धनुष बाण फेर रहे हैं। बन्दर और भालू चारो ओर से घेरकर शोभा देख रहे हैं। इस रणाङ्गन मे वानरी सेना के बीच जैसी शोभा सरकार की हुई उसे सहस्र मुखवाले शेष भी नही कह सकते। कवि को तो एक ही मुख है। कैसे कहे? यहाँ कहने मे मुख की अधिकता पर लक्ष्य है। इसलिए श्रुति शारदा का उल्लेख नही किया अथवा श्रुति शारदा ने तो देखा ही नही। शेष का तो लक्ष्मणरूप से देखा हुआ है। फिर भी वे नही कह सकते।

दो. निसिचर अधम मलाकर, ताहि दीन्ह निज धाम।
गिरिजा ते नर मंदमति, जे न भजहिं श्रीराम॥७१॥

अर्थ : राक्षस अधम और पाप का घर था। उसे अपना धाम दिया। हे गिरिजे! वे मनुष्य मन्दमति हैं जो श्रीराम को नही भजते।

---

१. यह हरिगीतिका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : जन्म से राक्षस जिससे कोई साधन नहीं हो सकता उसमें भी यह अधम था। यथा : करै पान सोवै षट मासा। जागत होइ तिहूँ पुर त्रासा। पाप का तो घर ही था। यथा : सहज पाप प्रिय तामस देहा। यथा उलूकहि तम पर नेहा। ऐसे पापी को अपना धाम दिया। यद् गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परमं मम। जहाँ जाकर फिर लौटना नहीं होता वह धाम सरकार का है। भाव यह कि श्रीराम ऐसे कृपालु और ऐसे समर्थ हैं कि अपने से वैर का सम्बन्ध रखनेवाले को निज धाम दिया। ऐसे श्रीराम का जिसने नरतन पाकर भजन न किया उसके मन्दमति होने मे सन्देह नहीं। *यथा : नरतन भवसागर कहँ बेरो। सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो।* कर्णधार सद्गुरु दृढ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा। जो न तरै भवसागर नर समाज अस पाइ। सो कृतनिन्दक मंदमति आतमहन गति जाइ। पहिले कुम्भकर्ण की सायुज्यमुक्ति कहा। यहाँ सालोक्य मुक्ति कह रहे हैं। यहाँ कल्पभेद होने से मुक्ति मे भेद कहा। यह कथा शिवजी पार्वतीजी से कह रहे हैं। इसलिए ज्ञानघाट के वक्ता बोले।

दिन के अंत फिरीं दोउ अनी। समर भई सुभटन्ह स्रम घनी॥
रामकृपा कपिदल बलु बाढा। जिमि तृन पाइ लाग अति डाढ़ा॥१॥

अर्थ : दिन के अन्त में दोनो सेनाएँ लौटी। युद्ध मे सुभटों को बड़ी थकावट हुई। रामजी की कृपा से वानरी सेना का बल बढ़ गया। जैसे तृण पाकर वन की आग अधिक बढ़ जाती है।

व्याख्या : कुम्भकर्ण का युद्ध कई दिन तक चलता रहा। सायंकाल को लड़ाई समाप्त हुई *तब दोनो सेनाएँ लौटी। यद्यपि दोनों सेनाओं का संहार बहुत* हुआ था पर नि.शेष कोई भी नहीं हुई थी। राक्षस भी बहुत से भागकर बच गये थे। यथा : बहुतक देखि कठिन सर भाजहि और सरकार की प्रतिज्ञा है कि : समर विमुख मैं हतौ न काहू। वे ही सब लौटे। जो लौटे वे भी दिनभर युद्ध करते करते क्षीणबल हो गये थे। यहाँ वानरी सेना का बल रामजी की कृपा से बहुत बढ़ गया। जैसे क्षीण अग्नि भी तृण पाकर दावानल हो जाती है। जिन्हे थोड़ा भी प्राण था वे कूदते हुए रणागन से चले आये।

छीजहिं निसिचर दिन अरु राती। निजमुख कहे सुकृति जेहि भाँती॥

## ७३. मेघनाद बल पौरुष संहार प्रसंग

बहु बिलाप दसकंधर करई। बंधुसीस पुनि पुनि उर धरई॥२॥

अर्थ : राक्षस दिन रात घटते जाते हैं। जैसे अपने मुख कहने से पुण्य घटता है। रावण ने बड़ा विलाप किया। बार बार भाई के सिर को हृदय से लगाया।

व्याख्या : परन्तु *राक्षस दिन रात छीजते जाते हैं। दिन में युद्ध में* मारे जाते हैं और जो घायल हैं वे रात को मर जाते हैं। कवि उपमा देते है कि जैसे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अपने मुख से कहने से अपना पुण्य छीज जाता है : अपने मुख से कहने से बढ़कर पुण्य निर्मूल करने का सरल मार्ग दूसरा नहीं। राजा ययाति का इन्द्रपद के अतिक्रमण करने योग्य महापुण्य कथनमात्र से तत्क्षण नष्ट हो गया।

सो सिर परेउ दसानन आगे। बिकल भयउ जिमि फनिमनि त्यागे : से प्रसङ्ग छोड़ा था। अब फिर वहीं से आरम्भ करते हैं। आज रावण सबसे अधिक विलाप करते हैं। दशकन्धर है : दसो मुँह से रोते है। अतिप्रिय था। इसलिए उसके सिर को बार-बार छाती से लगाते हैं। होहिं कुठाँय सुबंधु सहाए। सोचते हैं कि मेरे लिए इसकी यह दशा हुई। नहीं तो यह लड़ना नहीं चाहता था। कह दिया : अजहुँ तात त्यागहु अभिमाना। भजहु राम होइहि कल्याना। मेरी इच्छा मे विघात न हो इसलिए इसने जान-बूझकर प्राण दे दिया। ऐसा भाई कहाँ मिलेगा इत्यादि।

रोवहिं नारि हृदय हति पानी। तासु तेज बल विपुल बखानी ॥
मेघनाद तेहि अवसर आएउ। कहि बहु कथा पिता समझाएउ ॥३॥

अर्थ : स्त्रियाँ हाथ से छाती पीटकर रो रही हैं और उसके तेज बल का बड़ा बखान कर रही हैं। उसी अवसर पर मेघनाद आया। उसने बहुत सी कथाएँ कहकर बाप को समझाया।

व्याख्या : रावण सिर को छाती मे लगाकर रोते है। स्त्रियाँ अपनी छाती पीट पीटकर रो रही थी। राजमहल मे कोहराम मचा था। रोने के समय मृत व्यक्ति के गुण का वर्णन भी स्त्रियाँ करती हैं। सो कुम्भकर्ण के बल तेज का वर्णन करती हुई विलाप करती हैं। कुम्भकर्ण राजा नहीं थे। अत रानियाँ न कहकर स्त्रियाँ लिखते हैं। कुम्भकर्ण मे रूप गुण शीलादि सद्गुण तो कोई थे नहीं। अत. उसके तेज बल का वर्णन हो रहा था।

अब लङ्का मे रावण को दिलासा देनेवाला कोई न रहा। कोई क्या कहके रावण को समझावे। उस अवसर पर मेघनाद आया। इसका भी रावण को बड़ा गर्व था। यथा : कुम्भकर्ण अस बंधु मम सुत प्रसिद्ध सक्रारि। सो कुम्भकर्ण तो गये। अब तो शक्रारि मेघनाद का ही भरोसा है। सो मेघनाद आया। उसने बहुत सी कथाएँ कहकर बाप को समझाया। हिरण्याक्ष हिरण्यकशिपु के सामने ही मारा गया। पर हिरण्यकशिपु ने सब स्त्रियो को दिलासा दिया और भाई का वैर लिया। आप सबको समझाइये और शत्रु से वैर चुकाइये। आपके विलाप करने पर तो सबकी हिम्मत ही छूट जायगी। आपको चिन्ता करने के लिए स्थान कहाँ है। मैं चाचा का वैर चुकाऊँगा। आपको कुछ करना धरना नहीं पड़ेगा। यद्यपि मध्यम तात बध अनरथ भयउ महान। करहिं विलाप तथापि नहिं तुमसे धीर सुजान। एकाकी तुमहीं सकौ तीनि लोक कहँ जीति। याते चिन्ता जनि करौ क्षुद्र जनन की रीति। विधि की दीन्ही शक्ति तोहि कवच धनुष अरु बान। खर सहस्र संयुक्त रथ घन इव शब्द महान। देव दनुज भुज बल जिते तुमने केतिक बार। क्यों न होइगो अस्त्र

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बलते राघव सहार। बैठि रहहु तुम करब हम सदल शत्रु को नास। जैसे करैं विहँगपति सब विधि व्याल विनास। इस भाँति मेघनाद के समझाने पर रावण को दिलासा हो गयी।

देखेहु कालि मोरि मनुसाई। अबहिं बहुत का करौं बड़ाई॥
इष्टदेव सें बर रथ पाएउँ। सो बलु तात न तोहि देखाएउँ॥४॥

अर्थ : कल मेरा पुरुषार्थ देखियेगा। अभी बहुत बडाई क्या करूँ। इष्टदेव से मैंने वरदान पाया है और रथ पाया है। उस बल को तो मैंने आपको दिखाया ही नही।

व्याख्या : पहिले कहा था कि कौतुक तात देखियहु मोरा। सो उस दिन लक्ष्मण को शक्ति लगी : वह तो मेरा कौतुक था। कल मैं अपना पुरुषार्थ दिखलाऊँगा। वह पुरुषार्थ बहुत बडा है। उसकी बड़ाई इस समय न करूँगा। दिखला देने पर ससार बडाई करेगा।

मेघनाद रावणादि सभी आस्तिक थे। मेघनाद की इष्ट देवता निकुम्भिला देवी थी। उन्ही से उसे वरदान मिला था और रथ मिला था। उसी की चर्चा करता है। कहता है कि उस इष्टदेव से मिले पुरुषार्थ के दिखाने का आजतक अवसर ही नही आया। इसलिए आपको न दिखा सका। अब अवसर आगया है : कल दिखलाऊँगा। उस दिन की लडाई इसके सामने खेल थी। क्योंकि मै अपने बल से लड रहा था। कल इष्टदेव के बल से उन्ही के दिये हुए रथ पर चढकर लडूँगा।

एहि विधि जल्पत भयउ विहाना। चहुँ दुआर लागे कपि नाना॥
इत कपि भालु काल सम बीरा। उत रजनीचर अति रनधीरा॥५॥
लरहिं सुभट निज निज जय हेतू। बरनि न जाइ समर खगकेतू॥

अर्थ : इस भाँति बकवाद करते-करते सवेरा हो गया। चारो फाटको पर अनेक बन्दरो ने धावा किया। इधर बन्दर और भालु काल के समान वीर थे। उधर राक्षस युद्ध मे अत्यन्त दक्ष थे। अपनी-अपनी जीत के लिए वीर लोग लड़ रहे हैं। हे गरुडजी! उस युद्ध का वर्णन नही हो सकता।

व्याख्या : इस विधि से पिता के समझाने मे अपना पुरुषार्थ वर्णन करने लगा कि सबेरा हो गया। कवि ने इसको बकवाद 'जल्पना कहा। अपने पुरुषार्थ का वर्णन बकवाद ही है। यथा : जनि जल्पना करि सुयस नासहि। इतनी देर हुई कि बन्दर चारो फाटक पर आगये। केवल कुम्भकर्ण की लडाई मे बन्दर फाटक तक नही पहुँच सके थे।

रामजी की कृपा से बन्दरो का बल बढा हुआ है। इसलिए कवि उन्हे कालसम वीर कह रहे हैं। ये विना प्राण लिये न मानेंगे। उधर राक्षस वीर रणकौशल मे बडे पण्डित है। जल्दी काबू मे आते नही।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



फिर चारो फाटक पर युद्ध आरम्भ हुआ। फाटक बन्द नही है। बाहर निकलकर राक्षस लड रहे हैं। भुसुण्डिजी गरुड से कहते हैं कि वह युद्ध वर्णन नही किया जा सकता है। इसी युद्ध मे गरुड को मोह हुआ है। इसलिए भुसुण्डिजी बोल रहे हैं।

दो. मेघनाद मायामय रथ चढि गएउ अकास।
गर्जेउ अट्टहास करि भा कपि कटकहिं त्रास ॥७२॥

अर्थ मेघनाद माया के रचे हुए रथ पर चढकर आकाश मे चला गया और प्रलयकाल के बादल के समान गरजा। वानरी सेना सन्त्रस्त हो उठी।

व्याख्या : जो मेघनाद ने कहा था तदनुसार वह इष्टदेव से मिले हुए मायामय रथ पर चढकर आकाश मे चला गया। मायामय रथ है। आकाश मे चलता है। न किसी को वह रथ दिखाई पडे और न रथी। जब आकाश मे पहुँचा तब गरजा। वैसे ही उसका गर्जन मेघ की भाँति होता था। आज तो वह प्रलयकाल के मेघ की भाँति गरजा। सब बन्दर भालु चौकन्ने होकर ऊपर आकाश मे देखते है। वहाँ कही कुछ नही और गर्जन इतना घोर सुनाई पडता है। इस गर्जन से राक्षस नही डरे क्योकि यह गर्जन उन्ही के पक्ष से था। डरे बन्दर जिनके प्रतिकूल गर्जन हो रहा था। सन्त्रस्त इसलिए हुए कि गर्जनेवाला अदृश्य है। अदृश्य रहकर जो चाहे सो कोई भी कर सकता है। यह अप्राकृत दृश्य सर्वथा भयजनक था।

सक्ति सूल तरवारि कृपाना। अस्त्र सस्त्र कुलिसायुध नाना॥
डारै परसु परिघ पाषाना। लागेउ वृष्टि करै बहु बाना॥१॥

अर्थ वह बरछी, शूल, तलवार, कृपाण, अस्त्र, शस्त्र, वज्र और अनेक प्रकार के हथियार फरसा, बेंवडा, पत्थर और अगणित बाणो की वर्षा करने लगा।

व्याख्या पहिली लडाई मे विष्ठा पूय रुधिर कच हाड बरसा था। अब अस्त्र शस्त्र बरस रहा है। शक्ति बरछी को कहते हैं। त्रिशूल को शूल भी कहते हैं। यथा शिवजी को शूलपाणि कहते हैं। एक ओर धार जिसमे रहती है उसे तलवार कहते हैं और दुधारी तलवार को कृपाण कहते हैं। फेंककर मारनेवाले हथियार को अस्त्र और हाथ से चलाया जानेवाला शस्त्र कहलाता है। कुलिश वज्र को कहते है। परशु गँडासा को कहते है। परिघ बेंवडे को कहते हैं। इन सब हथियारो की वर्षा मेघनाद करने लगा और बाणो की तो झडी लगा दी। प्रलय पयोद की भाँति गरजा था। अत प्रलय करनेवाली वृष्टि भी कर रहा है।

दस दिसि रहे बान नभ छाई। मानहु मघा[1] मेघ झरि लाई॥
धरु धरु मारु सुनिअ धुनि काना। जो मारै तेहि कोउ न जाना॥२॥

---

१ यह लडाई मघानक्षत्र की वर्षा है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ : दसो दिशाओमे बाण छा गये। मानो मघा नक्षत्र का मेघ झरी लगाये हुए है। धरो धरो मारो कान मे शब्द सुनाई पडता है। पर जा मारता है उसे कोई नही जानता।

व्याख्या : अन्यत्र कहा हुआ है कि : बरसा घोर निसाचर रारी। सो दो महीने सावन और भादो वर्षा के है। पर वर्षा आषाढ से ही प्रारम्भ हो जाती है। इस समय मघा बरस रही है। इससे मालूम होता है कि सावन खतम हो गया। चार नक्षत्र बरस चुके। आषाढ की गिनती ग्रीष्म ऋतु मे है। सो मृगशिरा की वर्षा दवँगरा तो खरदूषण का सग्राम है। आर्द्रा की वर्षा लङ्कादाह मे हुई। पुनर्वसु की वर्षा चारो फाटक की लडाई है। पुष्य की वर्षा मेघनाद युद्ध है। जिसमे लक्ष्मण को शक्ति लगी थी। आश्लेषा की वर्षा कुम्भकर्ण का बध था। इस समय मानो मघा की वर्षा हो रही है। दसो दिशाओ मे बाणो का झर लगा हुआ है। जैसे मघा नक्षत्र मे झर लगता है।

दसो दिशाओ मे पकड़ो पकडो मारो मारो का शब्द सुनाई पड रहा है। मार भी पड रही है। परन्तु मारनेवाला कही दिखलाई नही पडता। मारनेवाला ही पकडो पकडो मारो मारो बोलता है। सो यह शब्द तो सब ओर से आ रहा है। अत. यह निश्चय नही हो पाता कि मारनेवाला कहाँ है? वर्षा के जल की बूँद की चोट सही नही जाती। क्योकि इतने ऊपर से गिरती है। यहाँ अस्त्र गिर रहे है। उनके चोट के असह्य होने मे सन्देह ही क्या है। इससे बढकर कपट युद्ध और क्या होगा कि मारनेवाले का ही पता नही।

गहि गिरितरु अकास कपि धावहिं। देखहि तेहि न दुखित फिरि आवहिं॥
अवघट घाट बाट गिरि कदर। माया बल कीन्हेसि सर पंजर॥३॥

अर्थ : वानर पर्वत और वृक्ष लेकर आकाश मे दौडते हैं पर उसे नही देख पाते। दुखी होकर लौट आते हैं। खड्ढा घाट रास्तो और गुफाओ को माया के बल से उसने बाणो का पिंजडा बना दिया।

व्याख्या : एक बात से निश्चय होता है कि शत्रु आकाश मे है। क्योकि वही से अस्त्र शस्त्र गिर रहे है। रामजी की कृपा से बन्दरो को आकाश मार्ग मे उडने की शक्ति है। यथा ' रामकृपा वल पाइ कपिंदा। भये पक्ष जुत मनहु गिरिंदा। सो शत्रु की खोज मे पर्वत वृक्ष लेकर शस्त्र की बौछार सहते हुए भी बन्दर आकाश मे दौडते हैं कि यदि मिल जाय तो उस पर चोट करें। परन्तु वह तो मायामय रथ पर चढा हुआ अदृश्य हो रहा है। किसी को दिखाई नही पड रहा है। बन्दर घायल हो होकर लौट रहे हैं। यहाँ यह हाल है कि रास्तो मे खडे बाण लगे हैं। ऐसे समय गिरिकन्दर शरण है। गड्ढे शरण हैं, सो उनमे भी बाण ही बाण खोसे हुए हैं। मानो रणाङ्गन बाणो का पिंजडा बना हुआ है। यह मेघनाद का मायाबल है। जो इष्ट देवता से प्राप्त हुआ है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

जाहिं कहाँ व्याकुल भये बंदर। सुरपति बंदि परेउ जनु मंदर ॥
मारुत सुत अंगद नल नीला। कीन्हेसि बिकल सकल बलसीला ॥४॥

अर्थ : अब बन्दर जाते कहाँ ? व्याकुल हो गये। जैसे इन्द्र के बन्दी मे मन्दर पडे हों। हनुमान् अङ्गद नल नील आदि सभी बलवानो को व्याकुल कर दिया।

व्याख्या : भागने के लिए भी रास्ता नही। अतः वानरी सेना व्याकुल हो गयी। जैसे मन्दर इन्द्र की कैद में पड गये हो। यहाँ मन्दर शब्द पर्वत मात्र का उपलक्षण है। हनुमान् अङ्गद नल और नील सिरे के वीर हैं। जो सङ्कट के समय सहाय होते हैं। और भी इनके सदृश जितने वीर हैं सब विकल हो गये। यह इष्टदेव का बल है। इसके सामने कोई बल काम नही दे रहा है। अतः चारो अतिबल रणबाँकुरे भी विकल हो गये। हनुमंत अंगद नील नल अति बल लरत रन बाँकुरे।

पुनि लछिमन सुग्रीव बिभीषन। सरन्हि मारि कीन्हेसि जर्जर तन ॥
पुनि रघुपति सें जूझै लागा। सर छाड़ै होइ लागहिं नागा ॥५॥

अर्थ : तब लक्ष्मण सुग्रीव और विभीषण को बाणोसे मारकर उनके शरीर को जर्जर कर दिया। तत्पश्चात् रामजी से युद्ध करने लगा। मारता था बाण वे साँप होकर लगते थे।

व्याख्या : पहिले सेना को घायल किया। परन्तु उस बाणवर्षा को सहकर भी जिन रणबाँकुरे वीरो ने आकाश मे उसे खोजने का प्रयत्न किया उन्हे भी उसने विकल कर दिया। उन लोगो को बेकाम करने के बाद सिरे के तीनो सरदार सुग्रीव विभीषण और लक्ष्मण को ऐसा घायल किया कि उनके शरीर क्षत विक्षत हो गये। अन्त मे सरकार पर प्रहार करना आरम्भ किया। उन प्रहारो मे यह विचित्रता थी कि उसके बाण सर्प होकर सरकार को बाँधते चले जाते थे। सर्वथा अवध्य देखकर उसने उन्हे नागपाश मे बाँधने की चेष्टा की। स्वयं युद्ध करते समय अलक्ष्य रहने से वह सभी को घायल करने मे कृतकार्य हुआ।

ब्याल पास बस भयउ खरारी। स्ववस अनंत एक अबिकारी ॥
नट इव कपट चरित कर नाना। सदा स्वतन्त्र एक भगवाना ॥६॥
रन सोभा लगि प्रभुहि बँधायो। देखि दसा देवन्ह भय पायो ॥७॥

अर्थ : जो स्ववश हैं अनन्त हैं एक हैं अविकारी हैं ऐसे खर के शत्रु नागपाश से बँध गये। नट की भाँति अनेक चरित्र करते हैं। भगवान् राम सदा स्वतन्त्र हैं। युद्ध की शोभा के लिए अपने को बँधवा लिया। उनकी दशा देखकर देवता तो डर गये।

व्याख्या : सरकार खरारि हैं अर्थात् मायानाथ हैं। यथा : मायानाथ अस कौतुक करयौ देखत परसपर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मरयौ। सो आसुरी माया से पराभूत हुए। जो स्ववश हैं सर्वेश्वर हैं वे व्यालपाशवश हुए। जो

ankurnagpal108@gmail.com

अनन्त है वे बन्धनगत हुए। जो अद्वैत हैं वे द्वैत में आ फँसे। जो अविकारी हैं वे अत्यन्त घायल होकर मूर्च्छित हो गये। ऐसी असंभाव्य घटना कैसे हुई? इसके उत्तर में कवि कहते हैं कि मेघनाद समझता है कि मैने बाँध लिया। पर बँध जाना उनका कपट चरित माया है। नट की भाँति उन्होने बँध जाने का अभिनय किया। यथा : अनेक वेष धरि नृत्य करै नट कोई। सोइ सोइ भाव दिखावै आपुन होइ न सोई। अस रघुपति लीला उरगारी। दनुज विमोह निज जन सुखकारी। नही तो भगवान् राम सदा षडैश्वर्य सम्पन्न हैं। सदा स्वतन्त्र हैं। उन्हे बन्धन हो नही सकता। परन्तु बिना कारण कार्य नही होता। सो कारण यह है कि अब रण की शोभा हुई है। यदि वैरी हुंकार करने से ही भस्म हो जाय। तो पुरुषार्थ का परिचय सो होता है। रण की शोभा नही होती। जब तक रण मे संशय न दिखाई पडे तबतक रण ही क्या हुआ? देवता डर गये कि इसी भाँति इसने इन्द्र को बाँध लिया और इन्द्र सदा के लिए इसके अधीन हो गये।

दो. गिरिजा जासु नाम जपि, नर काटहिं भव पास।
सो कि बंध तर आवइ, ब्यापक बिस्व निवास ॥७३॥

अर्थ : हे गिरिजे! जिसका नाम जपकर नर संसारपाश को काट डालते हैं क्या वह प्रभु बन्ध में आसकता है जो व्यापक है और विश्व का निवासस्थल है।

व्याख्या : शिवजी अपने श्रोता को सावधान करते हैं। क्योंकि इसी अवसर पर गरुड़जी को मोह हुआ था और सरकार की महिमा की ओर ध्यान आकर्षित करते है। कहते हैं कि यह संसारपाश ही बड़ा भारी पाश है। जिसके भीतर ऐसे कितने नागपाश पड़े हुए हैं। उस संसारपाश को जिसके नाम का स्मरण करके मनुष्य काट डालता है। यथा : सेवक सुमिरत नाम सप्रीती। बिनु स्रम प्रबल मोह दल जीती। फिरत सनेह मगन सुख अपने। नाम प्रसाद सोच नही सपने। यह जन्म मरण ही संसारपाश है। यथा : जनम मरन जहँ लगि जगजालू। वह जाल रामनाम के स्मरण से कट जाता है। यथा : जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमौ मुकुत होत स्रुति गावा। उस नामी के बद्ध होने को क्या कथा है क्योंकि वह व्यापक है और विश्वनिवास है। श्री रामजी के मूर्तिमान होने पर भी उसकी व्यापकता तथा अनन्तादि गुणो में अन्तर नही पड़ता। यथा : राम उदर देखेउँ जग नाना। इत्यादि। बन्ध तो परिच्छिन्न पदार्थ का सम्भव है। आकाश का ही बन्ध नही हो सकता चिदाकाश के बन्ध की क्या कथा है।

चरित राम के सगुन भवानी। तरकि न जाहिं बुद्धि बल बानी ॥
अस बिचारि जे तग्य बिरागी। रामहि भजहिं तर्क सब त्यागी ॥१॥

अर्थ : हे भवानी! रामजी के सगुण चरित्र बुद्धि मन वाणी के तर्क में नही आ सक्ते। ऐसा विचार करके तत् पद के जाननेवाले विरागी सब तर्क का त्याग करके राम को भजते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : निर्गुण रूप सुलभ अति सगुन न जानै कोइ। सुगम अगम नाना चरित सुनि मुनि मन भ्रम होइ। त्रिगुणात्मिका माया है। सगुण चरित्र मायामय है और माया अघटितघटनापटीयसी है। जो घटना न घट सके उसे घटाकर दिखा देती है। यहाँ ही व्यापक विश्वनिवासको बँधा हुआ दिखला दिया। यदि बुद्धि के बाहर की बात न हो तो माया ही नही। तिसपर राम की माया अत्यन्त प्रबल है। यथा : सुनु खग प्रबल राम की माया। जो ज्ञानिन्ह कर चित अपहरई। बरिआई बिमोह बस करई। राम स्वयं बुद्धि मन वाणी से अतर्क्य हैं। उनके चरित भी उसी भाँति अतर्क्य हैं। यहाँ तर्क नही चल सकता।

रामजी का चरित अतर्क्य है। ऐसा तज्ञ और वैराग्यवान् जानते हैं। जो तामसी माया को वे उपाधिरूपेण स्वीकार करके जगत् का उपादान कारण होता है और विशुद्ध सत्त्वमयी माया का आश्रयण करके निमित्त कारण होता है उस ब्रह्म को तत् कहा जाता है। उसे जो जाने उसे तज्ञ कहते हैं। जो तज्ञ भी है और वैराग्यवान् है ब्रह्मलोक तक के ऐश्वर्य को तुच्छ माननेवाले हैं राम को वे भजते हैं। यथा : रमन्ते योगिनो यस्मिन् नित्यानन्दे चितात्मनि अतः रामपदेनासौ परब्रह्माभिधीयते। चिदात्मा मे योगी लोग रमण करते हैं। इसलिए रामपद से पर ब्रह्म कहा जाता है और सब तर्क छोड़ देते हैं। क्योंकि तर्क की वहाँ गति नही। यस्यावताररूपाणि समर्चन्ति दिवौकसः। अपश्यन्तः पर रूप नमस्तस्मै महात्मने। विष्णुपुराण। देवतालोग सरकार के अवतार रूप का ही भजन करते हैं। क्योंकि उनका परम रूप बुद्धि मन वाणी के परे है।

ब्याकुल कटकु कीन्ह घननादा। पुनि भा प्रकट कहै दुर्बादा॥
जामवंत कह खल रहु ठाढ़ा। सुनि करि ताहि क्रोध अति बाढ़ा॥२॥

अर्थ : मेघनाद ने सेना को व्याकुल कर दिया। फिर वह प्रकट हुआ और दुर्वचन कहने लगा। जामवन्त ने कहा कि खल! खडा रह। सुनकर उसे बड़ा क्रोध बढा।

व्याख्या : रामजी के विषय मे कहकर अब कटक के विषय मे कह रहे हैं कि सारी सेना को मेघनाद ने व्याकुल कर दिया। ऐसी परिस्थिति मे कटक का व्याकुल होना आश्चर्य नही है। अब तक जीता रहना ही आश्चर्य है। जब मेघनाद ने देख लिया कि अब सेना मे कही कुछ भी नही है तब मायामय रथ को छोडकर और अन्तर्धान होने की माया छोड़कर निर्भय होकर प्रकट हुआ। गाली देना राक्षसी प्रकृति है। पहिले रामजी के सामने गया था तब भी दुर्वचन बोलता था। यथा : रघुपति निकट गयउ घननादा। नाना भाँति करेसि दुर्बादा। इस समय सारी सेना को असमर्थ देखकर गालियाँ दे रहा है। अब जो वध्य है उन्हे बध करने के लिए तथा अवध्य को बाँधकर लंका ले जाने के लिए प्रकट हुआ है।

सरकार को दुर्वचन कह रहा है। इस बात को जाम्बवान् न सह सके। क्योंकि सारी सेना मे ये ही सचेत थे। जिसे रावण कहता था। यथा : जामवंत

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मन्त्री अति बूढा। सो कि होई अब समरारूढा। उस बूढे ने उठकर मेघनाद को ललकारा। यह सरकार की माया है कि इस समय काम करने के लिए जाम्बवान् बचे रहे। इन्हे उतनी चोट नही आयी थी। इनकी ललकार सुनकर मेघनाद आगबबूला हो गया।

बूढ जानि सठ छाडेउ तोही। लागेसि अधम प्रचारै मोही॥
अस कहि तरल त्रिसूल चलायो। जामवत कर गहि सोइ धायो॥३॥

अर्थ रे शठ! तुझे मैंने बूढा समझकर छोड दिया था। सो अधम तू मुझे ही ललकारने लगा? ऐसा कहकर तीखा त्रिशूल उसने चलाया। जाम्बवान् उसे हाथ मे पकडकर दौडे।

व्याख्या · मेघनाद कहता है कि जिस समय मैंने हनुमदादि अङ्गद नल नील आदि बलवानो को मारकर विकल कर दिया था उस समय तुझे बूढा असमर्थ समझकर छोड दिया था। जैसी चोट उन लोगो पर हुई वैसी तुझ पर नही किया। तुझे मेरा कृतज्ञ होना चाहिए। पर तू अधम है। यह नही सोचता कि तू मेरी कृपा से सचेत बना हुआ है। उलटा मुझे ललकारता है। अच्छा तो ले ऐसा कहकर तीखा त्रिशूल चलाया जिससे जाम्बवान् समाप्त ही हो जायें। पर जाम्बवान् ने फुरती से उस त्रिशूल को रास्ते मे ही पकड लिया। अब त्रिशूल जाम्बवान् के हाथ आगया। सो उसी को लेकर जाम्बवान् दौडे।

मारेसि मेघनाद कैं छाती। परा धरनि घुर्मित सुरघाती॥
पुनि रिसान गहि चरन फिरायो। महि पछारि निज बल दिखरायो॥४॥

अर्थ: मेघनाद की छाती मे मारा। देवताओ का शत्रु चक्कर खाकर गिरा। फिर क्रुद्ध होकर उसका पैर पकडकर घुमाया और पृथिवी पर पछाडकर अपना बल दिखलाया।

व्याख्या. मेघनाद का त्रिशूल लेकर मेघनाद की ही छाती मे मारा। यह जाम्बवान्‌जी का रणकौशल है। वानर वीर लोग जिस देवशत्रु के चोट से घुर्मित होकर गिरते थे वही मेघनाद इस समय जाम्बवान्‌जी के चोट से वही चक्कर खाकर गिर रहा है।

मेघनाद की बात से जाम्बवान्‌जी को क्रोध हुआ कि यह बूढा कहकर मेरे बल का अपमान करता है। इसलिए उसका पैर पकडकर उठा लिया और घुमाकर पृथिवी पर पटका कि देख ले मेरा बल।

बरप्रसाद सो मरै न मारा। तब गहि पद लंका पर डारा॥
इहाँ देवरिषि गरुड पठायो। राम समीप सपदि सो आयो॥५॥

अर्थ · वर के प्रसाद से वह मारे नही मरा। तब उसका पैर पकडकर लंका पर फेंक दिया। यहाँ नारदजी ने गरुडजी को भेजा। वह तुरन्त रामजी के पास आये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : जाम्बवान्‌जी ने मेघनाद को मार डालना चाहा। उसके हृदय मे तीखा त्रिशूल मारा। पैर पकड़कर घुमाकर पृथिवी पर पटका। मार डालने मे कोई कसर न रक्खा। फिर भी वह न मरा। जाम्बवान्‌जी ने समझ लिया कि उनके हाथ से उसकी मृत्यु नही है। इसकी रक्षा वरदान द्वारा हो रही है। यथा : इष्टदेव सन वर रथ पायेउँ। तब उसका पैर पकडकर लका पर फेंक दिया। यह जाम्बवान्‌जी का निज बल है कि मेघनाद ऐसे योद्धा को जिसकी वीरो मे प्रथम गणना है पैर पकडकर लका पर फेंक देते हैं।

नारदजी का ध्यान इस युद्ध पर है। इसके पहिले ही कह गये हैं कि बेग हतहु खल। अतः उस खल के वध में शीघ्रता के लिए गरुड़जी को भेजा। गरुडजी तुरन्त रामजी के पास आये। यहाँ आने पर जो दशा रामजी की देखा वही देखकर गरुड़जी को मोह हुआ। यथा : प्रभु बधन समझत बहु भाँती। करत बिचार उरग आराती। ब्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा। माया मोह पार परमीसा। सो अवतरा सुनेउँ जग माही। देखेउँ सो प्रभाव कछु नाही। भव बन्धन ते छूटहि नर जपि जाकर नाम। खर्ब निसाचर बाँधेउ नागपास सोइ राम।

दो. खगपति सब धरि खाए, माया नाग बरूथ।
माया बिगत भये सब, हरखे बानर जूथ॥
गहि गिरि पादप उपल नख, धाये कीस रिसाइ।
चले तमीचर बिकलतर, गढ पर चले पराइ॥७४॥

अर्थ : गरुड ने साँपो के समूह को पकडकर खा लिया। सरकार माया से मुक्त हो गये। माया से मुक्त सम्पूर्ण वानरी सेना हर्षित हो उठी। वानर क्रुद्ध होकर पर्वत, पेड़, पत्थर और नख धारण करके दौडे। राक्षस अति विकल होकर भाग चले और किले पर चढ गये।

व्याख्या : गरुडजी पन्नगारि ठहरे। सब साँपो को खा गये। उनके आगमन के दिव्य प्रभाव से माया भी निवृत्त हो गयी। सबका खेद जाता रहा। माया विनिर्मुक्त होकर बन्दर लोग हर्षित हुए। उनके पक्ष की वायु लगने से सबके घाव पूरे हो गये। वहाँ ऐसा आनन्द हुआ मानो कुछ हुआ ही न था।

अत बन्दर लोग अपने आयुध से सुसज्जित होकर दौडे युद्ध के लिए। उनका आयुध पर्वत, पेड, पत्थर और नख था। जो पीडा उनको इस माया युद्ध मे हुई है इससे बडे क्रुद्ध हैं। राक्षस लोग माया के नष्ट हो जाने से ही विकल थे। अब बन्दर भालुओ के धावे से अधिक विकल हुए। अत. भागकर किले पर चढ गये।

मेघनाद कै मुरछा जागी। पितहि बिलोकि लाज अति लागी॥
तुरत गयउ गिरिबर कदरा। करौ अजयमख अस मन धरा॥१॥

अर्थ : मेघनाद जब मूर्च्छा से जागे तो पिता को देखकर बडी लज्जा लगी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तुरन्त वह पर्वत की कन्दरा मे चला गया। मन मे ठान लिया कि अजय यज्ञ करूँगा।

व्याख्या : मेघनाद ने इष्टदेव के बल का आश्रयण करके जिन लोगो को मूर्च्छित किया था वे लोग तो चङ्गे हो गये पर मेघनाद मूर्च्छित हो पडे हैं। रावण को समाचार मिला। वे भी दौडे वहाँ चले आये। अनेक प्रकार के उपचार होने लगे। अन्ततो गत्वा उन्हे होश हुआ तो देखा लोग घेरे हुए हैं। उपचार हो रहा है। अत मेघनाद लज्जित हुआ और बाप को देखकर तो अत्यन्त लज्जित हुआ। क्योंकि उनसे कहकर चला था कि . देखेउ कालि मोरि मनुसाई। सो यही मनुसाई देख रहे हैं कि बुड्ढे ने टाँग पकडकर लका पर फेंक दिया। जहाँ मृत व्यक्ति की भाँति पडे थे।

लज्जा के मारे उठकर घर नही गया। पर्वत की गुफा मे चला गया। जिसमे किसी को पता न लगे। किसी से कुछ कहा नही। मन मे यह निश्चय किया कि अजय यज्ञ करूँगा। जिसके सिद्ध होने से यजमान अजेय हो जाता है। निर्विघ्न सिद्धि के लिए लका छोडकर पर्वत की कन्दरा मे चला गया। यज्ञ विद्या मे मेघनाद की पटुता कवि दिखला रहे हैं।

इहाँ बिभीषन मंत्र बिचारा। सुनहु नाथ बल अतुल उदारा॥
मेघनाद मख करै अपावन। खल मायावी देव सतावन॥२॥

अर्थ : यहाँ विभीषण ने सलाह दी। कहने लगे कि हे अतुलबल उदार नाथ! सुनिये। ऐसा समाचार है कि दुष्ट मायावी देवताओ को सतानेवाला मेघनाद अपावन यज्ञ कर रहा है।

व्याख्या : विभीषणजी बराबर इस बात की खबर रखते हैं कि लंका मे क्या हो रहा है। उनके चारो मन्त्री कपोत होकर लका मे जाते हैं और सब समाचार दिया करते है। उन लोगो ने मेघनाद के पर्वत की गुफा मे जाने का समाचार दे दिया। विभीषणजी समझ गये कि गुफा मे जाकर क्या करेगा ? अथवा पूरा समाचार उन्हे मिला। उन्होने जाकर सरकार से सब हाल सुनाया कि मेघनाद यज्ञ कर रहा है। मेघनाद के लिए कहते हैं कि वह खल है। दुष्टहृदय है। बडा मयावी है। उसके गतिविधि का थाह नही लगता और देवताओ को सतानेवाला है। उसका यज्ञ भी देवताओ का तृप्तिकारक नही होता। बल्कि उनके तेज का हरण करनेवाला होता है। ससार पावन यज्ञ करता है। मेघनाद अपावन यज्ञ करता है।

जौं प्रभु सिद्ध होइ सो पाइहि। नाथ बेगि रिपु जीति न जाइहि॥
सुनि रघुपति अतिसय सुख माना। बोले अगदादि कपि नाना॥३॥

अर्थ : हे प्रभो! यदि वह सिद्ध हो पावेगा तो हे नाथ! शत्रु का शीघ्र जीतना कठिन हो जायगा। सुनकर रामजी ने बहुत सुख माना और अङ्गद आदि अनेक बानरो को बलाकर कहा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : विभीषणजी का कहना है कि यह यज्ञ विध्वंस करने योग्य है। क्योंकि इसका यजमान मेघनाद खल है। वह यज्ञ भी परोपकार के लिए नही करता। उसके यज्ञ से माया का बल ही बढेगा। उस देव सतावन की आहुति से देवताओ को दुःख होगा। क्योंकि मन्त्र बल से उन्हें आहुति ग्रहण करना पडेगा और उससे निस्तेज होते चले जायँगे। इसमे हवि की आहुति न होगी। अपावन द्रव्य की आहुति होगी। इसलिए यह यज्ञ अपावन है। इसका विध्वस करना ही प्राप्त है। यह सब विभीषणजी इसलिए कहते हैं कि सरकार यज्ञ के रक्षक हैं। कदाचित् यज्ञ विध्वंस के लिए आज्ञा न दें। और उस यज्ञ का फल कह रहे हैं कि यदि यह यज्ञ उसका सिद्ध हो गया तो वह शीघ्र नही जीता जायगा। नारदजी कह गये हैं कि खल को शीघ्र मारिये। अतः यज्ञ विध्वंस के लिए आज्ञा होनी चाहिए।

यह बात सुनकर सरकार को अत्यन्त सुख हुआ। विभीषण की राय ठीक जँची। यज्ञविध्वस से उसकी सिद्धि न होकर उलटा नाश होगा। तुरन्त अङ्गद आदि वीर वानरो को बुलाया। नहि यज्ञसमो रिपु'।

लछिमन संग जाहु सब भाई। करहु बिधंस जज्ञ कर जाई ॥
तुम्ह लछिमन मारेहु रन ओही। देखि सभय सुर दुख अति मोही ॥४॥

अर्थ : सब भाई लक्ष्मण के साथ जाओ और यज्ञ का विध्वस जाकर करो। लक्ष्मण! तुम उसे युद्ध मे मारना। देवताओ को भयभीत देखकर मुझे अत्यन्त दुःख है।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि तुम लोग भाई हो। क्योंकि कुठाहर सहाय होते हो। तुम लोग लक्ष्मण के साथ जाओ। भाव यह कि लक्ष्मण के साथ रहने से तुम लोग उसके वध मे समर्थ होगे अथवा तुम लोग तो यज्ञ का विध्वस करना। उसका वध लक्ष्मण करेंगे।

लक्ष्मण को आज्ञा हो रही है कि तुम उसका वध करना। उसके कारण देवता अत्यन्त सभीत हैं। उनको मैने अभय दिया। यथा : जनि डरपहु मुनि सिद्ध सुरेसा। अथवा प्रभु प्रनाम करि दीन्ह भरोसो। चले मुदित मन भय न खरोसो। उनके सभीत होने से मुझे दुःख हो रहा है। भाव यह कि खेल आगे न बढाना। सरकार लक्ष्मणजी का पुरुषार्थ जानते हैं। वर्णन भी कर चुके हैं। जगमहुँ सखा निसाचर जेते। लछिमन हनइ निमिष महुँ तेते। सरकार का रुख देखकर ही युद्ध लीला को शीघ्र समाप्त नही करते। इसलिए स्पष्ट आज्ञा हो रही है कि उसे मारकर आना।

जामवंत सुग्रीव बिभीषन। सेन समेत रहहुँ तीनिउँ जन ॥
जब रघुबीर दीन्ह अनुसासन। कटि निषंग कसि साजि सरासन ॥५॥

अर्थ : जामवत सुग्रीव और विभीषण! तुम तीनो व्यक्ति सेना के सहित साथ रहो। जब रामजी ने आज्ञा दी तब कमर मे तरकस कसकर और धनुष को चढाकर :

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या ऋक्षराज कपिराज और राक्षसराज तीनो राजाओ को आज्ञा हु कि सेना के साथ रहे। भाव यह कि अङ्गदादि वीरो को तो यज्ञ विध्वस करने व कार्य सौंपा गया और मेघनाद वध का कार्य लक्ष्मणजी को सौंपा गया। ऋक्षे कपीश और लंकेश को सेना सहित साथ रहने का कार्य सौंपा गया कि यदि लव से कुमक मेघनाद की सहायता के लिए आवे तो उसे ये लोग रोकें।

जब रामजी की आज्ञा हो गयी तो लक्ष्मणजी ने कमर मे तरकस कसा औ धनुष को चढाया। भाव यह कि लक्ष्मणजी पहिले से ही तैयार हैं। आज्ञा की देर थी

प्रभु प्रताप उर धरि रनधीरा। बोले घन इव गिरा गंभीरा॥
जौ तेहि आज वधे बिनु आवौ। तौ रघुपति सेवक न कहावौ॥६॥
जौ सत सकर करहि सहाई। तदपि हतौ रन राम दोहाई॥७॥

अर्थ प्रभु के प्रताप को हृदय मे रखकर रणधीर लक्ष्मण बादल की भाँति गम्भीर शब्द से बोले। यदि मैं आज उसे बिना मारे आऊँ तो सरकार का सेवक न कहलाऊँ। यदि सौ शङ्कर भी उसकी सहायता करें तो राम दोहाई उसे तो लडाई मे मार ही डालूँगा।

व्याख्या भक्तो का परम बल प्रभु प्रताप है। अत प्रभु प्रताप को हृदय मे धारण किया। पहिले भी लक्ष्मणजी जब कुछ कहते है तो प्रभु प्रताप के बल से ही कहते हैं। यथा तोरौ छत्रक दण्ड जिमि तव प्रताप बलनाथ। मेघनाद के वध के लिए जा रहे हैं। अत मेघ के समान गम्भीर शब्द से बोले।

शपथ लेते हैं क्योकि पहिली बार युद्ध करने गये थे तो शक्ति लग गयी। हनुमान्‌जी उठाकर लाये। यथा तब लगि लै आये हनुमाना। अत साथियो के विश्वास के लिए शपथ लेते हैं कि इस बार वह मेरे हाथ से बच नही सकता। निश्चय मारूँगा। शपथ भी साधारण नही है। सरकार की आज्ञा वध के लिए इस बार हो चुकी है। अत यदि मैंने वध न किया तो मानो सरकार की आज्ञा भङ्ग की और जो आज्ञा भङ्ग करे वह सेवक कैसा? अत उसके न मारने पर सेवक न कहलाने की शपथ लते हैं।

यदि इस पर सन्देह हो कि वह इष्टदेव के बल से युद्ध करेगा इस पर लक्ष्मणजी कहते हैं कि सहार करनेवाल शङ्कर हैं। इनसे बलवान् कोई नही है। सो यदि सौ शङ्कर भी सहायता करें तो भी उसे युद्ध मे निश्चय मारूँगा। क्योकि मैं भी अपने इष्टदेव का बल पाकर चल रहा हूँ जिससे विधि को विधिता हर को हरता और हरि को हरिता मिलती है। यथा बिधिहि बिधिता हरिहि हरिता हरहि हरता जिन दई। सो जानकीपति मधुर मूरति मोदमय मगलमई।

दो रघुपति चरन नाइ सिरु चलेउ तुरत अनत।
अगद नील मयद नल सग सुभट हनुमत॥७५॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : रामजी के दोनो चरणो की वन्दना करके अनन्त तुरन्त चले। साथ साथ मे अङ्गद नील मयन्द और नल सुभट हनुमान्जी थे।

व्याख्या : पहिली लड़ाई मे जिसमे शक्ति लगी थी लक्ष्मणजी सरकार को प्रणाम करके नही चले थे। यथा : आयसु माँगि राम पहि अंगदादि कपि साथ। लछिमन चले क्रुद्ध होइ बान सरासन हाथ। इस बार प्रणाम करके चले हैं। निश्चय कृतकार्य होगे। सरकार के लिए कहा गया है : बोले अगदादि कपि नाना। उसी आदि शब्द को यहाँ स्पष्ट करते हैं : अंगद नील मयद नल सग सुभट हनुमत।

जाइ कपिन्ह देखा सो बैसा। आहुति देत रुधिर अरु भैंसा॥
कीन्ह कपिन्ह सब जज्ञ बिधंसा। जब न उठइ तब करहिं प्रसंसा॥१॥

अर्थ : बन्दरो ने जाकर उसे बैठा हुआ देखा। रक्त और भैंसे की आहुति दे रहा था। *बन्दरो ने सब यज्ञ विध्वंस कर डाला। फिर भी जब नही उठा तो प्रशसा* करने लगे।

व्याख्या : बन्दरो ने जाकर उसे बैठा देखा। उसने बन्दरो को नही देखा। स्वार्थ मे एकाग्र है। इधर उधर नही देख रहा है। यज्ञ मे दत्तचित्त है। अब यज्ञ की अपावनता कहते हैं। गोघृत के स्थान पर तो रुधिर से काम लेता है और साकला के स्थान मे भैंसे की आहुति दे रहा है। मैं इस अर्धाली को प्रक्षिप्त मानता हूँ।

बन्दरो ने सब यज्ञ विध्वंस कर दिया। पर मेघनाद उठा नही। इस विचार से बैठा है कि ये सब विध्वंस करके चले जायँ तो फिर सम्पन्न कर लूँगा। पर बन्दर भी बडे जानकर हैं। उसकी आसन सिद्धि को भी नष्ट करना चाहते है। जब उन्होने देखा कि यज्ञ को तो हम लोगो ने पूरी तरह से विध्वस कर दिया फिर भी यह उठता नही है तब उसकी प्रशसा करने लगे कि मेघनाद बडे क्षमाशील हैं। साधु हैं। इनका चाहे कोई कितना भी अपकार करे पर तनिक भी क्रोध नही करते। देखो कैसा ध्यान लगाये बैठे हैं। इत्यादि।

तदपि न उठै धरेन्हि कच जाई। लातन्हि हति हति चले पराई॥
लै त्रिसूल धावा[1] कपि भागे। आए जहँ रामानुज आगे॥२॥

अर्थ : फिर भी न उठा तो जाकर उसकी शिखा पकड़ ली और लात मार मारकर भागने लगे। तब त्रिशूल लेकर दौडा। तो बन्दर भागे और लक्ष्मणजी के आगे आगये।

व्याख्या : जब उनकी व्यङ्ग्योक्ति से भी मेघनाद नही उठा तब जाकर उसकी शिखा पकड़ ली कि उठ। फिर भी न उठा तो बन्दरो ने पद्मलत्ती आरम्भ कर दी। लात मार मारकर भागने लगे। सरकारी आज्ञा है : जग्य बिधस करहु तुम जाई। सो जब तक यह आसन परित्याग नही करता तब तक विध्वस्त हुआ भी यज्ञ फिर

---

१ यह लडाई पूर्वाफाल्गुनी नक्षत्र की वर्षा है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

से सम्पन्न किया जा सकता है। अत उसके उठाने के उपाय मे लगे। निश्चय किया कि जगद्विख्यात मानी वीर है। यह लात न सह सकेगा। अस्त्र शस्त्र सब सह लेगा। अत इस पर पञ्चलत्ती उडनी चाहिए।

वही बात हुई। मेघनाद लात न सह सका। त्रिशूल लेकर दौडा। बन्दर भागकर लक्ष्मणजी के आगे गये। बन्दर चाहते भी यही थे कि इसे लक्ष्मणजी तक पहुँचा दें। लक्ष्मणजी उस स्थान पर खडे हैं जहाँ पहुँचकर मेघनाद अन्तर्धान होता है। इसलिए लक्ष्मणजी के आगे पहुँचे और पीछा करता हुआ मेघनाद भी वहाँ पहुँच गया।

**आवा परम क्रोध कर मारा। गर्ज घोर रव बारहि बारा॥**
**कोपि मरुत सुत अगद धाए। हति त्रिसूल उर धरनि गिराए॥३॥**

अर्थ परम क्रोध का मारा हुआ आया। घोर रव से बार बार गरजता था। क्रुद्ध होकर हनुमान् और अङ्गदजी दौडे। उसने त्रिशूल से मारकर पृथिवी पर गिरा दिया।

व्याख्या लात का मारा नही आया। परम क्रोध का मारा आया। लात लगने से उसे बडा क्रोध हुआ था। बार बार घोर गर्जना करता है कि जिस वीर को आना हो आवे। ये लात मारनेवाले तो भाग जाते हैं। हनुमान्जी तथा अङ्गदजी ललकार के सहनेवाले नही। अत ये लोग क्रोध करके दौडे। पर उसने त्रिशूल से मारकर धराशायी कर दिया। यज्ञ लगभग पूरा हो चला था। अत उसमे इस समय इष्टदेव के बल का आवेश है।

**प्रभु कहँ छाडेसि सूल प्रचडा। सरहति कृत अनत जुग खडा॥**
**उठि बहोरि मारुति जुबराजा। हतहि कोपि तेहि घाउ न बाजा॥४॥**

अर्थ प्रभु के ऊपर उसने प्रचण्ड शूल फेंका। अनन्त ने उसे बाण मारकर दो टुकडे कर दिया। फिर उठकर हनुमान् और अङ्गदजी उसे क्रोध करके मारते हैं। पर उसपर चोट चढती ही नही।

व्याख्या हनुमान् और अङ्गदको गिराकर अब लक्ष्मणजी पर चोट करता है। उनपर उसने प्रचण्ड शूल छोडा। जानता है कि वीरघातिनी सागो के सहन करनेवाल पर सामान्य शूल का क्या प्रभाव होगा। अत प्रचण्ड शूल छोडा। पर लक्ष्मणजी अनन्त हैं। प्रभु हैं। इन्होने इसे बीचमे ही काट दिया। इस युद्धम कवि बार बार लक्ष्मणजी को अनन्त कह रहे हैं। जिसका अन्त ही नही उसके अन्त को कोई कैसे पा सकता है।

यद्यपि यज्ञ पूरा नही हुआ है। फिर भी इसका बल इतना बढ गया है कि जिसके एक घूँसे से मेघनाद मूर्च्छित हो गया था। वे हनुमान् तथा उनके समकक्ष वीर अङ्गद उठकर उसपर क्रुद्ध होकर प्रहार कर रहे हैं। पर उसे घाव नही लग रहा है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



फिरे बीर रिपु मरै न मारा । तब धावा करि घोर चिकारा ॥
आवत देखि क्रुद्ध जनु काला । लछिमन छाडे बिसिख कराला ॥५॥

अर्थ : शत्रु मारने से नहीं मरता है। इसलिए वीर लौट पडे। तब घोर चिक्कार करके दौडा। लक्ष्मणजी ने देखा कि यह काल के समान क्रुद्ध होकर आ रहा है। अतः उन्होने कराल बाण छोडा।

व्याख्या : जाम्बवान्‌जी की भाँति अङ्गद और हनुमान्‌जी ने भी समझ लिया कि यह अवध्य है। यथा 'बर प्रसाद सो मरै न मारा। तब लौट पडे। हनुमान् और अङ्गद से पिण्ड छूटते ही वह कुम्भकर्ण की भाँति चिक्कार करके दौडा। यथा : करि चिक्कार घोर अति धावा बदन पसार। तब लक्ष्मणजी ने उसपर कराल बाण का प्रयोग किया। आगे चलकर उस बाण की करालता कहते हैं।

देखिसि आवत पविसम बाना। तुरत भयउ खल अंतरधाना ॥
बिबिध बेष धरि करै लराई। कबहुँक प्रगट कबहुँ दुरि जाई ॥६॥

अर्थ : वज्र के समान बाण को आता देखकर वह खल तुरन्त अन्तर्धान हो गया। अनेक प्रकार का वेष धारण करके युद्ध करने लगा। कभी प्रकट हो जाता था कभी छिप जाता था।

व्याख्या. उसने देखा कि यह बाण तो वज्र के समान कराल है। इसकी प्रतिक्रिया नहीं हो सकती तो अन्तर्धान हो गया। जिसमे लक्ष्य ही ठीक न हो सके। माया से युद्ध कर रहा है। इसी से कवि उसे खल कह रहे है। लक्ष्मणजी के नानाविध प्रहार करने के कौशल जानता है। अतः अनेक प्रकार के वेष धारण करके धोखा देता है। कभी वन्दर या भालु बनकर चोट कर बैठता है। कभी व्याघ्र सिंह बनकर झपट पड़ता है। कभी प्रकट हो जाता है। कभी छिप जाता है। पता ही नहीं चलने पाता कि वह कहाँ है और किधर से क्या करना चाहता है और किधर से कब प्रकट होकर चोट कर बैठेगा ?

देखि अजय रिपु डरपे कीसा। परम क्रुद्ध तब भएउ अहीसा ॥
लछिमन मन अस मंत्र दृढावा। एहि पापिहि मै बहुत खेलावा ॥७॥

अर्थ : शत्रु को अजय देखकर बन्दर डर गये। तब तो सर्पराज परम क्रुद्ध हो गये। इस पापी को मैं बहुत खेला चुका। ऐसा मन्त्र लक्ष्मणजी ने अपने मन मे दृढ किया।

व्याख्या : बन्दरो ने देखा कि अजय यज्ञ पूरा नहीं होने पाया। हम लोगो ने विध्वंस कर दिया। फिर भी यह अजय हो ही गया। अत. डर गये कि यह न मरेगा और सबको मार डालेगा। अपने आश्रितो को डरा हुआ देखकर लक्ष्मणजी परम क्रुद्ध हुए। सर्प जब क्रोध करता है तो प्राण लेता है। लक्ष्मणजी तो सर्पराज है। परम क्रुद्ध हुए हैं। अब मेघनाद को बिना प्राण लिये नहीं छोड सकते।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

मन मे विचार किया कि यह पापी है। धर्मयुद्ध नही करेगा। कपट करता ही चला जायगा। बडे योद्धा छोटे योद्धाओ को युद्ध मे खेलाते हैं जिसमे उसका हौसला बाकी न रह जाय। सो मैं इसे बहुत खेला चुका। अब इसे मार देना ही उचित है। क्योंकि बन्दर बहुत डर गये हैं।

सुमिरि कोसलाधीस प्रतापा। सर संधान कीन्ह करि दापा॥
छाडा बान माँझ उर लागा। मरती बार कपटु सबु त्यागा॥८॥

अर्थ : कोशलाधीश के प्रताप को स्मरण करके दर्प के साथ बाण का सन्धान किया और बाण छोडा जो बीच कलेजे मे लगा। मरती समय उसने सब कपट छोड दिया।

व्याख्या रामजी के प्रताप का स्मरण किया। जिसके द्वारा कार्यसिद्धि होती है और उसी का दर्प करके बाण चलाया। धर्मात्मा सत्यसन्धश्च रामो दाशरथिर्यदि। पौरुषेणाप्रतिद्वन्द्व तदैभ जहि रावणिम्। यदि दाशरथि राम धर्मात्मा और सत्यसन्ध हैं और पौरुष मे कोई उनके समान नही है तो हे बाण! तुम रावण के इस बेटे को मारो। यही लक्ष्मणजी का रामप्रताप का स्मरण और दर्प है। यही रामास्त्र है। इस मन्त्र के उच्चारण से वह बाण रामास्त्र हो गया। उसने उसका कलेजा वेध दिया। मेघनाद समझ गया कि मर रहा हूँ। यावज्जीवन कपट किया है। कपट रखते हुए मरना ठीक नही। अत सब कपट छोडकर अपने स्वरूप मे आगया।

दो. रामानुज कहँ रामु कहँ, अस कहि छाडेसि प्रान।
धन्य धन्य तव जननी, कह अगद हनुमान॥७६॥

अर्थ · रामानुज कहाँ है। राम कहाँ है ऐसा कहकर प्राण छोड दिया। अङ्गद हनुमान् ने कहा कि इन्द्रजित्! तेरी माँ धन्य धन्य है।

व्याख्या राम के भाई कहाँ है। राम कहाँ है। ऐसा कहकर प्राण छोडा। मरने के समय कुल परिवार किसी का स्मरण नही किया। रामानुज और राम का स्मरण किया और वीररस को भी हृदय से जाने न दिया। भगवान्नाम स्मरण करते हुए प्राणत्याग किया। जाकर नाम मरत मुख आवा। अधमौ मुक्त होत स्तुति गावा। सो मेघनाद ने तो जानबूझकर उच्चारण किया। इसलिए अङ्गद हनुमान् ने उसकी माँ की प्रशसा की कि तुम्हारे कारण तुम्हारी माँ पुत्रवती हुई। यथा : पुत्रवती युवती जग सोई। रघुपति भक्त जासु सुत होई। अथवा उन लोगो ने उस माता की प्रशसा की कि जिसके गर्भ से ऐसा पराक्रमी पुत्र हुआ जिसने इन्द्र को जीता और अन्त समय मे मुनिगण से भी दु साध्य रामनामोच्चारण किया। यथा : जन्म जन्म मुनि जतन कराही। अन्त राम कहि आवत नाही। तथा आरम्भ से अन्त तक वीरता का निर्वाह किया। कहँ कोसलाधीस दोउ भ्राता। कहता हुआ लका से पहिले पहल बाहर निकला और अन्त तक उसी भाव का निर्वाह किया। प्राण त्यागते समय भी

ankurnagpal108@gmail.com



रामानुज कहँ राम कहँ कहकर ललकारा। हनुमान् अङ्गद के जन्म से ही उसकी परम गति दिखलायी।

बिनु प्रयास हनुमान उठायो। लका द्वार राखि पुनि आयो ॥
तासु मरन सुनि सुर गधर्बा। चढि बिमान आए नभ सर्बा ॥१॥

अर्थ हनुमान्‌जी ने उसे अनायास ही उठा लिया और लका के फाटक पर उसे रख आये। उसका मरना सुनकर देवता और गन्धर्व सब विमान पर चढकर आकाश मे आगये।

व्याख्या लक्ष्मणजी को मेजनाद ने उठा ले जाने का प्रयत्न किया था पर उठा न सका। पर मेघनाद को हनुमान्‌जी ने अनायास ही उठा लिया और लका के फाटक पर रख आये। भाव यह कि सुषेण आदि को बुलाकर यदि चिकित्सा योग्य हो तो यत्न करो। हम लोग मूर्च्छित या मृत वीर को उठा नही ल जाते। घर पहुँचा देते हैं।

देवता लोग रणाङ्गन देखने नही आये थे। रात को अकस्मात् सग्राम हो गया अथवा मेघनाद के भय से नही आये। जब तक मेघनाद जीता था तब तक लका अजेय थी। अत मेघनाद के वध से भय भी कम हो गया और बडी खुशी हुई। सभी देवता और गन्धर्व विमान पर चढकर आकाश मे आगये।

बरषि सुमन दुदुभी बजावहिं। श्री रघुनाथ विमल जस गावहिं ॥
जय अनत जय जगदाधारा। तुम प्रभु सब देवन्हि निस्तारा ॥२॥

अर्थ फूलो की वर्षा करके दुन्दुभी बजाते हैं और श्रीरघुनाथ के निर्मल यश का गान करते हैं। अनन्त की जय हो। जगदाधार की जय हो। हे प्रभु! तुमने सब देवताओ का उद्धार किया।

व्याख्या देवता लोग पुष्पवृष्टि करके दुन्दुभी बजा रहे हैं और गन्धर्व लोग श्रीरघुबीर के निर्मल यश का गान करते हैं। रावण के जीते ही उसके लडके के मारे जाने पर गान हो रहा है। सरकार का यश त्रैलोक्य पावन है। इसलिए विमल जस कहा। पहल सरकार का यशोगान करके तब लक्ष्मणजी की स्तुति करते हैं।

कहते हैं कि हे अनन्त तुम्हारी जय हो। आपका अन्त है नही। इसलिए मेघनाद अन्त नही पा सका। सब कुछ लय हो जाने पर भी आप रह जाते हैं। इसीलिए शेष कहलाते हैं। य शिष्यते स शेष। जो बच जाय उसे शेष कहते है। अत आप ब्रह्मरूप हैं। आप जगत् के आधार हैं। यथा लच्छन धाम राम प्रिय सकल जगत् आधार। गुरु बसिष्ठ तेहि राखा लछिमन नाम उदार। आपने सब देवताओ का उद्धार कर लिया। इस मेघनाद के कारण देवता कभी कल नहीं पाते थे। यथा जेहि न होय रन सनमुख कोई। सुरपुर नितहि परावन होई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अस्तुति करि सुर सिद्ध सिधाए। लछिमन कृपासिंधु पहिं आए॥

७४. निशिचर निकर मरण प्रसंग ( रावण का प्रथम युद्ध )

सुत वध सुनेउ दसानन जबही। मुरुछित भयउ परेउ महि तबही॥३॥

अर्थ : जब स्तुति करके सुरसिद्ध चले गये तब लक्ष्मणजी कृपासिन्धु के पास आये। दशानन ने जब पुत्र का मारा जाना सुना तभी वह मूर्च्छित होकर पृथिवी पर गिर पड़ा।

व्याख्या : जब तक देवता लोग स्तुति करते थे लक्ष्मणजी उनके सम्मान के लिए वहीं खड़े रहे। जब वे लोग चले गये तब लक्ष्मणजी कृपासिन्धु के पास आये। उन्हीं के अनुशासन से और उन्हीं की कृपा से मेघनाद वध हुआ है।

पहिले समाचार देवताओं को लगा। वे लोग अपावन आहुति पाकर विकल थे। तुरन्त देवदूतों ने समाचार दिया कि लंका द्वार पर मेघनाद का शव रक्खा गया है। उस शव को देखकर राक्षसोंने रावण को समाचार दिया। उसे ऐसी मानसिक चोट हुई कि मूर्च्छित होकर भूमि पर गिर गया। कुम्भकर्ण के वध पर मणि बिना फणि की भाँति विकल हुआ था। पर इस बार तो ऐसा मूर्च्छित हुआ कि पृथिवी पर जा पड़ा।

मन्दोदरी रुदनु कर भारी। उर ताड़न बहु भाँति पुकारी॥
नगर लोग सब ब्याकुल सोचा। सकल कहहिं दसकंधर पोचा॥४॥

अर्थ : मन्दोदरी बड़ी रोई। छाती पीटकर अनेक प्रकार से पुकारने लगी। नगर के लोग व्याकुल होकर सोचने लगे। सब कहते थे कि रावण नीच है।

व्याख्या : मेघनाद के मरने पर अन्तःपुर में हाहाकार मच गया। पर मन्दोदरी बहुत रोई; क्योंकि यह उसी का औरस पुत्र था। अक्षय पहले ही मारा गया था। आज यह भी मारा गया। अक्षय के मरने पर रुदन नहीं कहा। पर इस बार तो उसने भारी रुदन किया। छाती पीटने लगी और मेघनाद को अनेक प्रकार से पुकारने लगी जैसे कोई जीते हुए को। आर्त होकर पुकार करे।

नगर के लोग व्याकुल होकर सोचने लगे कि अब नगर की रक्षा कौन करेगा। मेघनाद का बड़ा बल लंका भर को था। आज उसके मरने से सब अनाथ हो गये। सब कहते है कि रावण बड़ा नीच है। इसी की नीचता का यह परिणाम है कि राक्षस कुल का सहार उपस्थित है। यह नीच अब भी नहीं मानेगा। किसी की सुनता ही नहीं।

दो. तब दसकंठ बिबिध बिधि, समुझाईं सब नारि।
नस्वर रूप जगत सब, देखहु हृदय बिचारि॥७७॥

अर्थ : तब रावण ने अनेक प्रकार से सब स्त्रियो को समझाया कि यह प्रपञ्च ही नश्वररूप है। हृदय मे विचारकर देखो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या आज रावण को कोई समझानेवाला नही है। अत स्वय धैर्य धर कर उठा और स्त्रियो को समझाने लगा कि यह जितना ससार है सभी नाशवान् है। जो पैदा हुआ है वह मरेगा ही। अत विनशनशील के लिए दु ख करना व्यर्थ है। यह मर्त्यलोक है। यहाँ आकर सभी को मरना पडता है। तुम्हे भी मरना पडेगा। हमे भी मरना पडेगा। सभी मृत्यु के मुख मे पडे हैं। अज्ञान से दूसरे के लिए रोते हैं। यथा

ब्रह्मा इन्द्र मुनीश सागर मही मन्वादि दीर्घायु हैं,
वे भी लाख करोड होकर मरे ये जीव अल्पायु हैं।
कोहै मोह अहो ! प्रकाश करता जो शोक को लोक मे,
बुदबुद से तन के मरे मिलन है जो पाँच का पाँच मे ॥१॥
बोते हैं विषवल्लि बीज दुख को जो प्रेम के नाम से,
होते हैं अँसुए भरे अनल के जो नेह के धाम से।
शोकारण्य बढा विशाल इनसे सौ लाख शाखा धरे,
देहो को दहता तुपानल यथा निर्धूम ज्वाला भरे ॥२॥

उत्पन्न होय तन मे वहु कीट भाई।
काढे निकारि तन से उनको सदाई॥
बेटे जिन्हें कहत वे सब भी वही है।
सोखै शरीर यह मोह महत्व ही है ॥३॥
पिता या बेटा या सुहृद यदि हो जायगत जो।
पडा छाती पीटै दुसह दुखसे बुद्धिहत सो॥
बुधोको है झूठे भवजलधि मे नित्य कटुता।
बिछोहो से होता समसुख दृढाती बिराजता ॥४॥
और सभी कुछ कल्पना एक ब्रह्म ही सत्त।
कौन मोह को शोक है लखै एक अलवत्त ॥५॥

तिन्हहि ज्ञान उपदेसा रावन। आपुन मद कथा सुभ पावन॥
पर उपदेस कुसल बहुतेरे। जे आचरहि ते नर न घनेरे ॥१॥

अर्थ : उन्हे तो रावण ने ज्ञान का उपदेश किया। आप तो मन्द थे पर उनकी कथा शुभ पावन थी। दूसरो के उपदेश मे बहुतेरे लोग कुशल होते हैं। परन्तु जो आचरण करते हैं ऐसे लोग बहुत नही होते।

व्याख्या : प्रपञ्च को नश्वर समझकर विचार करने से ही ज्ञान होता है। सो ज्ञान का उपदेश रावण ने दे डाला। यह उपदेश शुभ है और पावन है। परन्तु इसके उपदेष्टा रावण स्वय इस सिद्धान्त को चरितार्थ करनेवाले नही हैं। वे स्वयं मन्द हैं। जिसे नश्वर कहते हैं उसी मे लिप्त हैं। कालनेमि ने कहा : मैं तैं मोर मूढता त्यागू। महा मोह निसि सोवत जागू। सो उस पर वडे नाराज हुए।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कवि कहते हैं कि परोपदेशे पण्डित्यम् तो बहुत लोगो को है पर तदनुसार आचरण करनेवाले कितने हैं। जिन्हे शास्त्र ज्ञान है वे सभी दूसरो को ऐसा उपदेश किया करते हैं। परन्तु यह पण्डिताई उनके किसी काम की नही। वे तो तोते और बन्दर की भाँति बँधे हुए हैं। बँध्यौ कीर मरकट की नाई। अपना स्वार्थ सिद्ध करने के लिए दूसरे को उपदेश देते है। स्त्रियो के रोने से रावण की पीड़ा बढती थी। इसलिए उन्हे समझा-बुझाकर किसी भाँति चुप किया।

निसा सिरानि भएउ भिनुसारा। लगे भालु कपि चारिहुँ द्वारा॥
सुभट बोलाइ दसानन बोला। रन सनमुख जाकर मन डोला॥२॥

अर्थ : रात बीती सबेरा हुआ और भालु बन्दरो ने चारो फाटको पर धावा बोल दिया। सुभटो को बुलाकर रावण बोला : लड़ाई मे सामने जाने पर जिसका मन डांवाडोल हो।

व्याख्या : विपत्तिकरी रात्रि समाप्त नही होती। यथा : जुग सम भइ सिराति न राती। सो वह रात्रि भी समाप्त हुई। सबेरा हुआ। भाव यह कि रात्रि को युद्ध बन्द रहता था। उँजेला होने पर फिर आरम्भ होता था। उँजेला हो गया। युद्धकाल उपस्थित हुआ। वानरो की ओर से बड़ी मुस्तैदी है। बन्दर भालुओ ने चारो फाटक पर धावा बोल दिया। यहाँ लगने का अर्थ आक्रमण करना है। यथा : लका बाँके चार दुआरा। केहि बिधि लागिअ करिअ बिचारा।

अब तो रावण की सेना : शाही फौज शेष है। सो उसमे से सुभटो : सरदारो को बुलाकर रावण ने कहा। जिसमे वे लोग सारे सैनिको तक समाचार पहुँचा दें कि जिसका मन लड़ाई से डरता हो। जो कुछ भी कदराता हो या शत्रु का सामना पडने पर : घोर आघात होने पर जिसके विमुख होने की सम्भावना हो।

सो अबही बरु जाउ पराई। संजुग बिमुख भए न भलाई॥
निजभुज बल मइँ बयरु बढावा। देहौं उतरु जो रिपु चढि आवा॥३॥

*अर्थ :* वह अभी बल्कि भाग जाय। युद्ध मे पराङ्मुख होने मे भलाई नही है। मैंने अपनी भुजाओं के बल पर वैर बढाया है। जो शत्रु चढ़ आया है उसका उत्तर मैं दूँगा।

व्याख्या : वह इसी समय भाग जाय। पहिले मैं भागने पर नाराज हुआ था। यथा : जो रन बिमुख सुना मैं काना। सो मैं हतब कराल कृपाना। सबसु खाइ भोग करि नाना। समर भूमि भयो बल्लभ प्राना। अब मैं छुट्टी देता हूँ। भागना बुरा है। परन्तु समरभूमि से भागना और भी बुरा है। तथा : एकेनापि सुधीरेण सोत्साहेन रण प्रति। सोत्साहं जायते सैन्यं भग्ने भङ्गमवाप्नुयात्। : पं० सं० : एक भी वीर के रण के लिए उत्साह देखकर सेना मे उत्साह हो जाता है। और भागने से सेना भाग खड़ी होती है। इसलिए अभी से भाग जाना ही अच्छा है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यदि कहा जाय हि इस भाँति छुट्टी आप दे रहे हैं तो अकेले आप क्या कर लेंगे ? इस पर रावण कहते कि वैर मैंने बढाया है। सो कुम्भकर्ण या मेघनाद या किसी और के बल पर नही बढाया है। जो शत्रु चढ आया उसका उत्तर मैं दूँगा। मैंने वैर अपने बल के भरोसे बढाया। इसीलिए वैर बढाने म किसी की सम्मति मैंने नही ली। जिसको प्रसन्नतापूर्वक मेरा साथ देना हो तो वह चले नही तो घर बैठे रहे। मैं छुट्टी देता हूँ। रावण को अपने भुजबल का बडा गर्व है। यथा मम भुज सागर बल जल पूरा। जहँ बूडे बहु सुर नर सूरा। बीस पयोधि अगाध अपारा। को अस बीर जो पाइहि पारा।

अस कहि मरुत बेग रथु साजा। बाजे सकल जुझाऊ बाजा॥
चले बीर सब अतुलित बली। जनु कज्जल कै आँधी चली॥४॥
असगुन अमित होहिं तेहि काला। गनै न भुजबल गर्ब बिसाला॥५॥

अर्थ ऐसा कहकर उसने वायुवेगवाला रथ सजाया। सब जुझाऊ बाजा बजने लगे। बेतौल बलवाले वीर चले। जैसे काजल की आँधी वह उठी। उस समय असत्य असगुन होने लगे। पर भुजबल का बडा भारी गर्व था। इसलिए वह उन्हे गिनता न था।

व्याख्या आज सर्वोत्तम रथ जिसमे वायु के समान वेग है साजा गया। जिसमे उस पर सवार होकर सम्पूर्ण वानरी सेना मे विचरण कर सके। रावण के रथारूढ होते ही सब जुझाऊ बाजा बजने लगे। युद्ध का बडा उत्साह है। पहिले चारो फाटक की लडाई मे जुझाऊ बाजे बजे थे। पर बार बार पराभव से उत्साह जाता रहा। कुम्भकर्ण मेघनाद के युद्ध म बाजे न बजे। आज स्वय लकेश युद्ध के लिए चल रहे हैं। अत जुझाऊ बाजे बजे।

सेना चल पडी। सम्राट की सेना शाही फौज है। इसमे छँटे हुए वीर हैं। जो देवसेना से युद्ध कर चुके है। इसलिए कवि अतुलितबली लिख रहे है। रणोत्साह विशेष है अत बडे वेग से सेना चली। सभी राक्षस काले हैं। इसलिए राक्षसी सेना की उपमा काजल की आँधी से दे रहे हैं। भविष्य के अनुकूल प्रकृति मे परिवर्तन पहिले ही होने लगता है। इसलिए उस समय असख्य अपशकुन हुए। रावण महा पण्डित थे। शकुन अपशकुन की उन्हे पूरी जानकारी थी। पर उन्हे अपने भुजबल का इतना अभिमान है कि वे समझते हैं कि अल्पबल लोगो पर ही परिस्थिति की प्रतिकूलता का प्रभाव पडता है। मेरे ऐसे बलवान् तो प्रतिकूल परिस्थिति को अनुकूल बना लते हैं। यथा सिरी गिरे सन्तत सुभ जाही। मुकुट गिरे कस असगुन ताही।

छ अति गर्ब गनै न सगुन असगुन स्रवहि आयुध हाथ ते।
भट गिरत रथ ते बाजिगज चिक्करत भाजहि साथ ते॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



गोमायु गीध कराल खर रव स्वान बोलहिं अति घने।
जनु काल दूत उलूक बोलहिं बचन परम भयावने॥

अर्थ : अत्यन्त अभिमान से सगुन असगुन नही गिनता। हथियार हाथ से छूटे जाते हैं। वीर रथ से नीचे गिर पडते हैं। घोडे हाथी चिग्घाड करके साथ छोडकर भागते हैं। शृगाल और गीध अत्यन्त भयानक शब्द कर रहे हैं। कुत्ते बहुत से रो रहे है। काल के दूत की भाँति उल्लू बडे भयानक शब्द कर रहे हैं।

व्याख्या : रावण को इतना गर्व है कि जब उसे सगुन हुआ तो भी उसने कुछ न गिना। आज असगुन हो रहे है तो उन्हे भी नही गिनता। अपशकुन ऐसे स्पष्ट हो रहे हैं जो किसी को बिना खटके नही रह सकते। वीर युद्ध के लिए चल रहे हैं और हाथ से हथियार गिरा जाता है। ये क्या लडेंगे। रथ पर से रथी नीचे गिर पडते हैं। शत्रु के प्रहार पर ये कैसे जमेंगे। घोडे हाथी बिना प्रहार के ही चिग्घाडकर भागे जाते हैं। संग्राम भूमि मे ये कैसे अडेगे। शृगाल गीध मासाहारी जन्तु भयानक शब्द करते हैं। मास की प्राप्ति उन्हे सुलभ दिखायी पड रही है। कुत्ते असमय मे रो रहे हैं। दिन मे उल्लू परम भयावन शब्द करते हैं। उल्लू का शब्द भयावन होता ही है। पर वे रात को बोलते हैं। सो इस समय तो ऐसा शब्द कर रहे हैं कि मालूम होता है कि ये काल के दूत हैं। सेना की मृत्यु के लिए आह्वान कर रहे हैं।

इस भाँति रावण के प्रयाण मे कवि अपशकुन का होना दिखला रहे हैं। रामजी के प्रयाण मे कह चुके हैं कि : हरषि राम तब कीन्ह पयाना। सगुन भये सुदर सुभ नाना। बारात के प्रयाण के समय उन्हे गिना चुके हैं। इसलिए यहाँ नही गिनाया। रावण के प्रयाण के समय प्रधान प्रधान अपशकुन गिनाये गये।

दो. ताहि कि संपति सगुन सुभ, सपनेहुँ मन बिस्राम।
भूत द्रोह रत मोह बस, राम बिमुख रत काम॥७८॥

अर्थ : जो भूत द्रोहरत हो मोहवश हो राम विमुख हो और काम मे रत हो उसे क्या सम्पत्ति शुभ शकुन और स्वप्न मे भी मन मे विश्राम हो सकता है।

व्याख्या : जो राम विमुख है। वही भूत द्रोहरत मोहवश और कामरत होता है। उसे सम्पत्ति शुभ शकुन और विश्राम हो नही सकता। यथा . राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई। रामबिरोध कुमल चह सठ हठ बस अ'त अग्य। जगदातमा प्रानपति रामा। तासु बिमुख किमि लह बिस्रामा।

चलेउ निसाचर कटकु अपारा। चतुरंगिनी अनी बहु धारा॥
बिबिध भाँति बाहन रथ जाना। बिपुल बरन पताक ध्वज नाना॥१॥

अर्थ : राक्षसो की अपार सेना चली। चतुरङ्गिनी सेना अनेक प्रकार की पंक्तियो से व्यूढ थी। अनेक प्रकार के वाहन रथ और यान अनेक रङ्ग की ध्वजाएँ और पताके थे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : श्रावण की वर्षा समाप्त हुई। अब भादो आरम्भ हुआ। वर्षा घोर निसाचर रारी। पहिले कह आये हैं। जितने पदो मे अभी तक युद्ध कह आये हैं उतने पदो मे रावण युद्ध कहेगे। राक्षसो की अपार सेना चल पड़ी। अपार इसलिए कह रहे हैं कि इस सेना का पार आज तक कोई नही पा सका था। सेना मे रथ, हाथी, घोड़ा और पैदल हैं इसलिए चतुरङ्गिनी कहा। सेना व्यूहबद्ध है। बहुधारा इसलिए कहा कि ऐसी पण्डिताई से व्यूढ है कि जिधर से काम पडे उधर से ही चोट कर सके। चलते ही पहिला असगुन हुआ। वीरो के हाथ से शस्त्र गिरने लगे। यथा स्रवहिं आयुध हाथते।

पहिले पैदल सेना थी। उसके बाद सवार थे। कुछ राक्षस गर्धभ वृषभ आदि वाहनो पर भी थे। इसलिए विविध भाँति वाहन लिखते हैं। पीछे रथ थे तथा अन्य सवारियाँ थी। रथो पर ध्वजा पताका रहता है। सो रथियो के रुचि के अनुसार उनके ध्वजा पताकाओ का रङ्ग था। इसलिए उनके विपुल वर्ण होने का वर्णन करते हैं। इनके चलने पर दूसरा असगुन हुआ। भट गिरहि रथते।

चले मत्त गज जूथ घनेरे। प्राविट जलद मरुत जनु प्रेरे॥
बरन बरन बिरदैत निकाया। समर सूर जानहि बहु माया॥२॥

अर्थ : मतवाले हाथियो के बहुत से समूह चले। माना वायु के उड़ाये हुए बरसात के बादल हैं। अनेक वर्ण के विरुदवाले वीरो का समूह था। जो युद्ध मे बडे लड़ाके और बहुत सी माया जानते थे।

व्याख्या : तत्पश्चात् हाथियो की सेना चली। मालूम पड़ा कि भादो की घटा उमड आई है। बादल जड़ है। उनमे गति नही। इसलिए कहते हैं कि मरुत जनु प्रेरे। अब तोसरा अपशकुन हुआ। बाजि गज चिक्करहि भाजहि साथ ते।

असुरो की भी अनेक जातियाँ होती हैं। यथा : काल का दौहृंदा मौर्या कालकेयास्तथाऽसुरा शतं कुलानि धौम्राणा निर्गच्छन्तु ममाज्ञया · सप्तशती। अथवा अनेकाग के ये सब वीर विरुदवाले थे। ये वाक् सूर नही शमशूर थे और विशेषता यह थी कि बहुत सी माया जानते थे। इनके चलने मे चौथा अपशकुन हुआ। गोमायु गीध कराल खर रव स्वान बोलहि अति घने। जनु काल दूत उलूक बोलहि बचन परम भयावने।

अति बिचित्र बाहनी बिराजी। बीर बसंत सेन जनु साजी॥
चलत कटकु दिगसिंधुर डिगही। छुभित पयोधि कुधर डगमगही॥३॥

अर्थ : अत्यन्त विचित्र सेना शोभायमान हुई। जैसे वीर वसन्त ने सेना सजाई हो। सेना के चलते हुए दिग्गज डगमगाते थे। समुद्र क्षुब्ध हो उठा और पहाड़ हिलने लगे।

व्याख्या : यद्यपि अति विकट सेना थी। परन्तु व्यूहबद्ध होने से और सर्वाङ्ग सम्पन्न होने से उसकी भी शोभा हो रही थी। अति विचित्र इसलिए कहा कि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


षज्जल की आँधी सी होने पर भी सुशोभित है। इसीलिए उपमा देते हैं कि वीर वसन्त ने मानो सेना सजा रक्खी हो। वसन्तऋतु काम का सहायक है। उसकी सेना भी शृंगार रस के उद्दीपन का काम करती है। परन्तु यह सेना वीर वसन्त की है जो शोभायमान होकर वीर रस के उद्दीपन का काम करती है।

जब रामजी ने प्रयाण किया था उस समय का वर्णन करते हुए कवि ने कहा है : चिक्करहिं दिग्गज डोल महि गिरि लोल सागर खरभरे। लगभग वैसा ही वर्णन रावण के प्रयाण मे भी कर रहे हैं। दिग्गज हिल रहे है। समुद्र क्षुब्ध हो रहा है और पहाड डगमगा रहे हैं। भाव यह कि यह प्रधान सेना : शाही फौज बडी भारी है। अभीतक यह बिल्कुल अछूती थी। इसके भार से पृथिवी कम्पमान है।

उठी रेनु रबि गयउ छपाई। मरुत थकित बसुधा अकुलाई ॥
पनव निसान घोर रव बाजहिं। प्रलय समय के घन जनु गाजहिं ॥४॥

अर्थ : धूलि उड़ी तो सूर्य छिप गये। वायु रुक गयी पृथिवी व्याकुल हो गयी। ढोल और डंको का घोर शब्द हो रहा है मानो महाप्रलय के बादल गरज रहे है।

व्याख्या : चतुरङ्गिनी सेना जब चलती है तो आकाश मे धूलि छा जाती है। यथा : नभ धूरि खगमृग भूरि भागे बिकल प्रभु आस्रम गये। धूरि पूरि नभमंडल रहा। राम बोलाइ अनुज सन कहा। लै जानकिहि जाहु गिरिकंदर। आवा निसिचर कटक भयंकर। यह सेना इतनी बड़ी थी कि ऐसी धूलि उठी कि रविमंडल का पता नहीं लग रहा है। रज के कण इतने अधिक हवा मे भर गये कि वायु की गति मन्थर हो गयी। भाव यह कि आकाश से लेकर पृथिवी तक धूलि भर उठी। श्वास-प्रश्वास लेना कठिन हो गया। इससे कहते हैं : बसुधा अकुलाई लक्षणा से अर्थ करना पड़ेगा कि लोग व्याकुल हो उठे।

सेना मे ढोल और डङ्के बज रहे हैं। उत्सव मे ढोल डंके मधुर स्वर मे बजाये जाते है पर यहाँ तो वीर रस के अनुकूल बजाये जा रहे हैं। अतः उनका ऐसा शब्द हो रहा है मानो महाप्रलय के बादल गरज रहे हैं। महाप्रलय अत्यन्त सन्निकट है। चारो फाटक की लड़ाई मे लिखते हैं : बाजहिं ढोल निसान जुझाऊ। सुनि धुनि होइ भटन्ह मन चाऊ।

भेरि नफीरि बाज सहनाई। मारू राग सुभट सुखदाई ॥
केहरिनाद बीर सब करहीं। निज निज बल पौरुष उच्चरहीं ॥५॥

अर्थ : भेरी नफीरी और शहनाई बज रही हैं। मारू राग वीरो को सुख दे रहा है। वीर लोग सिंहनाद कर रहे हैं और अपना-अपना बल पौरुष उद्घोषित कर रहे हैं।

व्याख्या : भेरी नफीरी और शहनाई फूँक से बजनेवाले बाजे हैं। अतः इनमे राग बजते हैं। समयानुकूल यहाँ मारू राग बज रहा है जिसके सुनने से वीर को

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुख होता है। भाव यह कि कादरों का तो कलेजा दहल उठता है। यथा : बार्जाहि भेरि नफीरि अपारा। सुनि कादर उर जाहिं दरारा।

मारू राग सुनने से जब वीरों को आनन्द हुआ तो वे लोग सिंहनाद करने लगे और दर्प से अपने बल पौरुष का उद्घोषण करने लगे जिससे जोश बढ़ चला। यथा : एकहि एक बढ़ावहिं कर्षा। वीर सब करहीं कहने का भाव यह है कि रावण के आज्ञानुसार सेना में ऐसा कोई नहीं है जिसका मन रण सन्मुख क्षुब्ध हो।

कहै दसानन सुनहु सुभट्टा। मर्दहु भालु कपिन्ह के ठट्टा॥
हौं मारिहौं भूप दोउ भाई। अस कहि सनमुख फौज रेंगाई॥६॥
यह सुधि सकल कपिन्ह जब पाई। धाये करि रघुबीर दोहाई॥७॥

अर्थ : रावण ने कहा कि वीरो सुनो। तुम लोग बन्दर और भालुओं की भीड़ का मर्दन करो। दोनों भाई राजा को मैं मारूँगा। ऐसा कहकर सेना को सामने चलाया। यह समाचार जब बन्दरों ने पाया तो रामजी की दोहाई करते हुए दौड़े।

व्याख्या : जब रावण ने देखा कि सैनिकों में वीर रस भर गया। अब और आगे बढ़ने पर युद्ध आरम्भ होगा। तब कार्य विभाग की घोषणा करता हुआ बोला कि वीरो! तुम लोग अपना लक्ष्य भालु बन्दरों के वध पर रक्खो। तुम लोग एक-एक भालु बन्दर के झुण्डों के नाश में समर्थ हो। रामजी का नाम[1] नहीं लेता इसलिए कह रहा है कि दोनों भाई राजा जिन्होंने कुम्भकर्ण मेघनाद का वध किया उनकी चिन्ता छोड़ दो। उन दोनों को मैं अपना भाग कल्पित करता हूँ। उन दोनों को अकेले मैं करूँगा। ऐसी आज्ञा देकर फौज को आगे बढ़ाया।

जब बन्दरों को यह समाचार मिला कि स्वयं रावण बड़ी विशाल सेना लेकर लड़ने आ रहे हैं और सरकार दोनों भाइयों से स्वयं लड़ेंगे। राक्षसी सेना को बन्दरों के संहार के लिए आज्ञा दे दी है। तब उन लोगों ने तुरन्त समझ लिया कि इस अवसर पर उत्तर फाटक पर जो सेना भेजी गयी है उससे काम नहीं चल सकता। अतः प्रधान सेना के बन्दर लोग राजा रामचन्द्र की दोहाई देते दौड़े। यही दोहाई अन्त में लङ्का में फिरनेवाली है। यथा : नगर फिरी रघुबीर दोहाई। दौड़ने का भाव यह कि रास्ते ही में मिलकर स्वागत करना चाहिए।

छं.[2] धाए बिसाल कराल मरकट भालु काल समान ते।
मानहु सपक्ष उड़ाहिं भूधर बृंद नाना बान ते॥
नख दसन सैल महाद्रुमायुध सकल संक न मानहीं।
जयराम रावन मत्त गज मृगराज सुजस बखानहीं॥

---

१. आज भी रावणी सम्प्रदायवाले रामनगर को नामनगर कहते हैं।
२. हरिगीतिका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ विशाल और कराल बन्दर और भालु दौडे। वे काल के समान थे। मानो पक्ष के सहित पहाडो के समूह उड रहे हैं और वे अनेक रङ्ग के हैं। नख दाँत पर्वत और बडे बडे पेड ये ही उनके हथियार हैं और सभी निःशङ्क हैं। रावणरूपी मत्तगजराज के लिए सिंह 'रामजी की जय हो' ऐसा कहकर सुयश का वर्णन कर रहे हैं।

व्याख्या यहाँ न कोई व्यूह है न ध्वजा पताका है न बाजा है न गज रथ तुरंग है न अस्त्र शस्त्र है फिर भी बन्दर भालु काल के समान कराल है और ऐसे विशाल हैं कि उनके दौडने से ऐसी शोभा हो रही है कि मानो अनेक रङ्ग के पहाडो को पख मिल गया है और वे उडे चले जाते हैं। हथियार के नाम से उन्हे नख है पर्वत हैं बडे-बडे पेड हैं फिर भी वे ऐसे सबल हैं कि ऐसी भयानक सेना का उन्हे कुछ भी परवाह नही है। राक्षस लोग अपना अपना बल पौरुष उद्घोषित करते हैं पर ये लोग रामयश का उद्घोष कर रहे हैं कि रावणरूपी मत्तगज के लिए मृगराज रामजी हैं उनकी जय हो। भाव यह कि इन लोगो ने भी कार्य विभाग कर लिया रावण को रामजी के भाग मे कल्पना कर दिया और राक्षसी सेना का सामना करने स्वय दौडे।

दो दुहु दिसि जय जयकार करि, निज निज जोरी जानि।
भिरे बीर इत रामहित, उत रावनहि बखानि ॥७९॥

अर्थ दोनो ओर से जय जयकार करके अपनी-अपनी जोडी जानकर इधर रामजी का और उधर रावण का बखान करके वीर भिड गये।

व्याख्या दोनो सेनाओ की ओर से जय जयकार पहिले हुआ। अब अत्यन्त निकट आने पर भिडने का समय आ गया तब वीरो ने अपनी अपनी जोडी तजवीज कर लिया दुर्बल पर टूट न पडे। युद्धारम्भ के पहिले वीरो ने अपने-अपने स्वामी का बखान किया तब भिड गये। रणाङ्गन भर मे जोडी से जोडी भिड गई। यथा भिरे सकल जोरिहि सन जोरी। इत उत जयइच्छा नहि थोरी। राम रावण की जोडी है। अत सरकार उठ पडे।

रावनु रथी बिरथ रघुबीरा। देखि बिभीषनु भएउ अधीरा ॥
अधिक प्रीति मन भा सदेहा। बदि चरन कह सहित सनेहा ॥१॥

अर्थ रावण रथ पर चढा है और रघुवीर के पास रथ नही यह देखकर विभीषणजी अधीर हो उठ अधिक प्रीति होने से मन मे सन्देह हुआ। चरण वन्दना करके स्नेह के साथ कहा।

व्याख्या रुलानेवाल को रावण कहते हैं। दशानन ऐसे बलवान् अत्याचारी

१ यह लडाई उ[illegible] की चर्चा है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



थे कि उनका नाम ही रावण पड़ गया था। कवि कहते हैं कि एक तो स्वयं रावण तिस पर आज रथ पर चढा हुआ है। पैदल ही प्रतिभट के खोज में दौडता था। यथा : रन मद मत्त फिरइ जग धावा। प्रति भट खोजत कतहुँ न पावा। आज तो रथ पर सवार है। उसका सामना कौन करेगा। यद्यपि रामजी भी रघुकुल मे वीर हैं। युद्ध से हट नही सकते। पर पैदल हैं। इन्हे रथ नही। रथी पैदल का क्या जोड़ है? विभीषणजी यह देखकर अधीर हो उठे। जानते तो पहिले ही से थे कि यहाँ सेना में टुटही घोड़ियाँ भी किसी के पास नही। पर जानना और देखना दो बात है। रावण को देखकर धैर्य छूट गया। विभीषण युद्ध के मर्म को जानते हैं। रथ के सुभीते को समझते है। इसलिए वे ही अधीर हुए। बन्दर न हुए। क्योकि उनमें पदाती रहकर ही युद्ध करने की चाल है। उन्हे रथ के सुभीते का पता ही नही। इसलिए अधीर भी नही हुए।

विभीषणजी को कभी रामजी के विषय में सन्देह नही था। ललकारकर रावण से कह दिया था : राम सत्य संकल्प प्रभु सभा काल बस तोरि। पर प्रेमी का मन पापशंकी होता है। विभीषणजी को अधिक स्नेह के कारण सन्देह उठ गया। अतः प्रेमी के साथ चरण वन्दना करके कहते हैं : बन्दि चरण से शिष्य की शुश्रूषा कहा।

नाथ न रथु नहि तन पदत्राना। केहि विधि जितब वीर बलवाना॥
सुनहु सखा कह कृपा निधाना। जेहि जय होइ सो स्यंदन आना॥२॥

अर्थ : नाथ को न तनत्राण : वर्म है न पदत्राण जूते हैं। किस विधि से वीर बलवान् को जीतेंगे। कृपानिधान ने कहा कि सखा सुनो। जिससे जीत होती है वह रथ ही दूसरा है।

व्याख्या : विभीषणजी कहते हैं कि सरकार के पास रथ नही और शत्रु के पास मरुत वेग रथ है। सरकार के पास तनत्राण वर्म नही है जो शरीर को रक्षा कर सके और न पैर मे जूती है जो गिरे हुए शस्त्र के पैर में गड़ने से रक्षा कर सके। यदि कहिये कि बिना रथ के ही कुम्भकर्ण और मेघनाद को जीता तो उनमे से एक बलवान् और दूसरा वीर था। यह रावण तो वीर भी है और बलवान् भी है। इसके बराबर की सामग्री बिना हुए इसके जीतने की कोई विधि ही नही। अत. पहिले विधि बतला दीजिये तब जाइये। आप हम लोगो के नाथ हैं। ऐसी अवस्था मे हम नही जाने दे सकते।

उत्तर देने मे सरकार ने सखा कहकर सम्बोधन किया। भाव यह कि तुम सखा हो। रहस्य बतलाने के पात्र हो। यथा : भक्तोऽसि मे सखा चेति रहस्यं ह्येतदुत्तमम्। दूसरा कोई वीर होता तो चिढ जाता। ठीक युद्ध के समय तेजोवध की बात कहनेवाला शत्रु समझा जाता। परन्तु सरकार कृपानिधान हैं। विभीषण तो रावण के जय की विधि पूछते थे। सरकार ने उन्हे संसार के जय की विधि बतला दी। कहने लगे कि : मरुत वेग रथ से जय नही होता। जयप्रद रथ दूसरा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है। भाव यह कि वह रथ अब रावण के पास नहीं रह गया। तुम्हारे चले आने के पहिले कुछ टूटी फूटी अवस्था मे था। जिससे उसने सुरासुर का विजय किया था। अब तो उसके पास रथ के दो चक्र शौर्य धैर्य तथा एक घोडा बल मात्र रह गया। उस रथ का शेष भाग तो तुम्हारे गुणगण थे। यथा : तुम सारिखे सन्त प्रिय मोरे। धरहुँ देह नहिं आन निहोरे। तुम्हारे त्याग से उसका विजय रथ ही टूट गया। यथा रावन जबहिं बिभीषन त्यागा। भयउ बिभव बिनु तबहिं अभागा। अब उस जयप्रद रथ का वर्णन करते हैं।

सौरज धीरज तेहि रथ चाका। सत्य सील दृढ ध्वजा पताका ॥
बल बिबेक दम परहित घोरे। छमा कृपा समता रजु जोरे ॥३॥

अर्थ : १ शौर्य और २ धैर्य उस रथ के पहिये हैं। ३ सत्य और ४ शील उसके दृढ ध्वजापताका हैं। ५ बल ६ विवेक ७ दम और परहित ८ घोडे हैं। क्षमा कृपा और समतारूपी ९ रस्सी से जोडे हुए हैं।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि उस रथ के काष्ठ लोहमय चक्र नही होते। उसके चक्र है शौर्य और धैर्य। जैसे बिना चक्र के इस रथ मे गति नही होती उसी भाँति बिना शौर्य धैर्य के उस रथ मे गति नही होती। जिसे शौर्य धैर्य नहीं उसके भाग्य मे विजय नही है। कादर को परलोक की प्राप्ति भी नही होती। ध्वजापताका का दर्शन दूर से ही होता है। उनका बना रहना रथी के सकुशल होने का चिह्न है। सो उस रथ मे वस्त्र धातुमय ध्वजापताका नही लगते। सत्य और शील उस रथ का ध्वजा और पताका है। यदि सत्य शील बना हुआ है तो उस रथ का रथी सुरक्षित है। इसलिए दृढ ध्वजापताका कहा। अथवा यह ध्वजापताका तो शत्रु के काटे कट जाता है। पर सत्य शील ऐसा दृढ ध्वजापताका है जिसे शत्रु काट नही सकता और जो रथ दर्शन से पूर्व ही दृष्टिगोचर होता है। यथा : राम सत्य सकल्प प्रभु सभा कालबस तोर।

प्राचीनकाल के रथो मे चक्र तो दो रहते थे। पर घोडे चार जोते जाते थे। सो उस रथ के घोडे भी दूसरे हैं। उन घोडो का नाम है बल, विवेक, दम और परोपकार। रथ के घोडो की भाँति इन्हे परोपकारक तथा सुशिक्षित होना चाहिए। बिना इसके शौर्य और धैर्यरूपी चक्र मे गति नही आती। केवल बलरूपी घोडा भी शौर्य और धैर्यरूपी चक्र को गति दे सकता है। परन्तु विवेक दम और परहित का सहयोग न होने से वह शौर्य और धैर्य का विनियोग महा अनर्थ मे करेगा। जिस भाँति रावण के शौर्य और धैर्य का विनियोग हो रहा है।

इन घोडो को जोडने के लिए रस्मी चाहिए तो क्षमा कृपा समता रस्सी है। क्षमा कृपा और समतारूपी लडियो को बटकर रस्सी बनी है। वही बल विवेक दम और परहित रूपी घोडो को एक मे जोडने मे समर्थ है।

ईस भजन सारथी सुजाना। बिरति चर्म संतोष कृपाना ॥
दान परसु बुधि सक्ति प्रचंडा। बर बिग्यान कठिन कोदंडा ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

अर्थ : १० महादेव की सेवा सुजान सारथी है। ११ विरति ढाल है और १२ सन्तोष तलवार है। १३. दान गँडासा है और १४ बुद्धि प्रचण्ड शक्ति है और श्रेष्ठ १५. विज्ञान ही कठिन धनुष है।

व्याख्या : यह सब होने पर भी सुजान सारथी होना चाहिए। क्योंकि सारथी ही रथ को लक्ष्य तक पहुँचाता है। सब विघ्नो का अतिक्रमण करता है। घोड़ो का नियमन करता है। रथी की रक्षा करता है। सो उस रथ मे ईशभजन ही सुजान सारथी है। वही धर्म रथ को लक्ष्य की ओर ले जायगा। समस्त विघ्न बाधाओ से रथ को बचाता हुआ घोड़ो मे सामञ्जस्य बनाये रखेगा और रथी की सब प्रकार से रक्षा करेगा। उस रथ का बागडोर ईश भजन के हाथ मे है। यथा : औरउ एक गुपुत मत सबहि कहौं कर जोरि। सकर भजन बिना नर भक्ति न पावइ मोरि। अब रथ का रूपक पूरा हुआ। पर रथ दो प्रकार का होता है। एक विहार रथ और दूसरा युद्ध रथ। युद्ध रथ सब शास्त्रास्त्र से सुसज्जित रहता है। क्योंकि सब कुछ होने पर भी युद्ध तो रथी को ही करना है। यदि रथ पर सब उपकरण न रहेगे तो रथी युद्ध कैसे करेगा ? विजय रथ तो स्पष्ट ही युद्ध के लिए है। अत उसके उपकरणो का वर्णन करते हैं।

युद्धरथ मे ढाल, तलवार, परशु, शक्ति, धनुष, तरकस, बाण और कवच ये सब यथास्थान रक्खे रहते हैं। यहाँ वैराग्य ही ढाल है। यथा . वैराग्यमेवाभयम् वैराग्य ही अभय है। क्योंकि काम क्रोधादिक शत्रुओ की चोट को वैराग्य ही रोकता है। अतः रथी की रक्षा के लिए पहिले वैराग्यरूपी ढाल ही कहा। युद्ध मे केवल बचाने से ही काम नही चलता। शत्रु के वध के लिए अस्त्र शस्त्र चाहिए। इसलिए कहते हैं कि सन्तोष तलवार है। अत्यन्त निकट आये हुए शत्रु का वध तलवार से ही होता है। जो कुछ प्राप्त है उसी मे सन्तोष करना। यह ऐसी पैनी तलवार है कि इसके काट से काम क्रोधादि शत्रु बच नही सकते। यथा : बिनु सतोष न काम नसाही। जिमि लोभहि सोखै सतोषा। नहि सन्तोष त पुनि कछु कहहू।

जो शत्रु तलवार की पहुँच के बाहर हैं उन पर परशु का वार होना चाहिए। यहाँ दान ही परशु है। यथा : दान दुर्गतिनाशनम्। दुर्गति सन्तोष के पहुँच के बाहर की वस्तु है। इसका नाशरूपी परशु से करना चाहिए। परन्तु जाड्य : अज्ञान दानरूपी परशु के भी पहुँच के बाहर को वस्तु है। उसके नाश के लिए बुद्धि प्रचण्ड शक्ति है। बुद्धि को बरछी कहने का भाव यह है कि उसके अग्र भाग मे लोहा लगा रहता है। उसी भाँति धीवृत्ति के अग्र भाग मे चिदाभास रहता है। उसी को ज्ञान कहते हैं। जो जाड्य का नाश करता है। यथा : चिदाभासान्तधीवृत्तिर्ज्ञानं लोहान्त कुन्तवत् : प० द०। इससे परोक्ष आत्मज्ञान हो सकता है।

परन्तु ससार के मूल अविद्या तक उस ज्ञान की भी पहुँच नही है। अत. उसके लिए वर विज्ञानरूपी कठिन धनुष की आवश्यकता है। अपरोक्ष ज्ञान ही वर विज्ञान है। यही ससार के कारणभूत अज्ञान का नाश करता है। यथा : अपरोक्षात्मविज्ञान

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



शाब्दं देशिकपूर्वकम् । संसारकारणाज्ञानतमसश्चण्डभास्कर: । पं० ८० । अपरोक्ष आत्मविज्ञान गुरुमुख से पाया हुआ ससार के कारण अज्ञानरूपी अन्धकार के लिए प्रचण्ड सूर्य है । यह अपरोक्षज्ञान अत्यन्त दृढ होना चाहिए । अत: वर विज्ञान कठिन को दंडा कहा ।

अमल अचल मन त्रोन समाना । सम जम नियम सिलीमुख नाना ॥
कवच अभेद बिप्र गुरुपूजा । एहि सम बिजय उपाय न दूजा ॥५॥
सखा धर्ममय अस रथ जाके । जीतन कहँ न कतहुँ रिपु ताके ॥६॥

अर्थ · १६ निर्मल और निश्चल मन तरकस के समान है और १७ शम यम नियम अनेक प्रकार के बाण हैं । ब्राह्मण और गुरु की पूजा १८. अभेद्य कवच है । इसके समान विजय का दूसरा उपाय नही है । हे सखे ! जिसके पास ऐसा धर्ममय रथ हो उसके लिए जीतने को कही शत्रु नही है ।

व्याख्या : वासनाहीन तथा स्थिरीकृत मन ही तरकस है, उसीमे शम-यम-नियमरूपी बाणो के धारण की क्षमता है । चञ्चल मन मे इसकी योग्यता ही नही होती । शम शान्ति को कहते हैं । यह मोह के जड़ को जला देती है । यथा : जहाँ शान्ति सद्गुरु की हई । तहाँ मोह की जरि जर गई । यम पाँच हैं : ब्रह्मचर्य अहिंसा सत्य अस्तेय और अपरिग्रह । नियम भी पाँच हैं । शौच सन्तोष तप स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान । इन सब के अलग अलग फल कहे गये हैं । ब्रह्मचर्य से वीर्य लाभ होता है । अहिंसा से उसके पास मे वैर त्याग हो जाता है । अस्तेय से सर्वरत्नोपस्थान होता है । अपरिग्रह से जन्मकथन्ता का सम्बोधन होता है । शौच से अपने शरीर मे घृणा और दूसरे से असंसर्ग होता है । सन्तोष से अत्युत्तम सुख लाभ होता है । तप से कार्य सिद्धि होती है । स्वाध्याय से इष्ट देवता संप्रयोग होता है और ईश्वरप्रणिधान से समाधि सिद्धि होती है । परन्तु ज्ञानपूर्वक इनके अनुष्ठान से प्रकाश के आवरण का नाश होता है । सत्य से ख्याति भी होती है और सन्तोष से कामादि का नाश भी होता है । अत: सत्य को ध्वजा और सन्तोष को तलवार भी कहा गया है । अत: अङ्ग की गणना मे इन्हे दो बार नही गिना गया ।

इस पर भी युद्ध मे यदि शत्रु की चोट आ पहुँचे तो उसकी रक्षा के लिए विप्र गुरु पूजा रूपी अभेद्य कवच है जो किसी के काटे नही कट सकता । इस कवच को जो धारण करता है वह सर्वथा शत्रु के प्रहार से निर्भय हो जाता है । विप्र की पूजा कवच है और विप्र गुरु पूजा अभेद्य कवच है । विजय के उपाय तो और भी दूसरे हैं पर इसके समान दूसरा कोई उपाय नही है । किसी उपाय से इस लोक मे जय की प्राप्ति होती है और किसी उपाय से परलोक मे जय की प्राप्ति होती है । परन्तु इससे दोनो लोको का जय होता है । काष्ठमय रथ से क्या होगा ! इस धर्ममय रथ के पास होने से जीतने के लिए कही शत्रु ही नही होते । सब शत्रु जीते हो जिताये हैं । सखा सम्बोधन का भाव ही यही है कि तुम्हे दैवी सम्पत् की प्राप्ति है ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तुम पुलस्त्यवशोचित स्वधर्म पर आरूढ हो। स्वधर्म ही धर्ममय रथ का ढाँचा है। उसे दृढ करो। अठारह अगो से युक्त करो। यथा : चलहिं स्वधर्म निरत स्तुति नीती। नीति भी यही है कि इष्ट धर्मेण योजयेत्। अपने प्रिय को धर्म मे लगा देना चाहिए। लक्ष्मणजी ने सखा निषादराज को धर्म मे लगाया। यथा : सखा परम परमारथ एहू। मन क्रम वचन राम पद नेहू। रामजी ने सखा विभीषण को इस अठारह अगवाले उपदेश द्वारा धर्ममे लगाया। जिस भाँति कृष्ण भगवान् ने अर्जुन को अठारह अध्यायवाली गीता द्वारा धर्ममे लगाया।

दो. महा अजय संसार रिपु, जीत सकै सो बीर।
जाके अस रथ होइ दृढ, सुनहु सखा मतिधीर ॥८०॥

अर्थ : यह ससार रूपी शत्रु बडा अजय है। इसको वही वीर जीत सकता है। जिसके पास ऐसा दृढ रथ हो। हे मतिधीर सखा! सुनो।

व्याख्या : यह ससार बन्धन का कारण है इसलिए शत्रु है। सारा दु ख इसी के कारण से भोगना पडता है। यथा : तब से जीव भयेउ ससारी। छूट न ग्रन्थि न होइ सुखारी। और यह महा अजय है। अनादि काल से प्राणी दु ख उठा रहा है पर इससे छूट नही सकता। जिन्होने इन्द्रादिक को जीता वे भी इसके जीतने मे समर्थ नही हुए। इसे तो वही जीत सकता है जिसके पास ऐसा रथ हो और वह हलचल न हो खूब दृढ हो। फिर भी रथी को वीर होना चाहिए।

रावण अजय है पर ससाररिपु महा अजय है। जब वह इस अठारह अगवाले धर्ममय रथ से जीता जा सकता है तो रावण की बात ही क्या है? वह तो कामादिक का दास है। सखा सम्बोधन से उपक्रम उसी से अभ्यास और उसी से उपसहार करते हैं। भाव यह कि यह बडे हित की बात है। निर्गलितार्थ यह कि तुम चिन्ता न करो। रावण के पास यदि मारुतवेग रथ है तो मेरे पास धर्ममय रथ है। शौर्य यथा : जौ नर तात तदपि अति सूरा। धैर्य यथा : जौ नहि फिरै धीर दोउ भाई। सत्यसील यथा : सत्यसध दृढ व्रत रघुराई। बल यथा : देखि राम बल पौरुष भारी। विवेक यथा : प्रभु करुणामय परम बिबेकी। दम यथा : राम पुनीत बिषय रस रूखे। परहित यथा : बिप्र धेनु सुर सत हित लीन्ह मनुज अवतार। क्षमा यथा : सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा। कृपा यथा : को कृपाल रघुबीर सम। समता यथा : जद्यपि राम सीम समता की। ईश भजन यथा : पूजि-पारथिव नायउ माथा। विरति यथा : नव गयद रघुबीर मन राज अलान समान। छूटि जानि बन गमन सुनि उर अनद अधिकान। सन्तोष यथा : भरत प्रान प्रिय पावहि राजू। बिधि सब बिधि मोहि सम्मुख आजू। दान यथा : जो सपति सिव रावनहि दीन्ह दिये दसमाथ। सो सपदा बिभीषनहि सकुचि दीन्ह रघुनाथ। बुद्धि यथा : राम तेज बल बुधि बिपुलाई। सेष सहस सत सकहि न गाई। विज्ञान यथा : विज्ञानधामावुभौ। शम यम नियम यथा : राम पुनीत बिषय रस रूखे। तथा : भये राम सब बिधि सब लायक। विप्रपद पूजा यथा : बिप्र चरन पकज

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


सिर नावा। गुरुपद पूजा यथा : गुरुपद कमल पलोटत प्रीते। युद्धोपस्थिति का समय ही संशयोच्छेदक ज्ञान के उपदेश के लिए उपयुक्त समय है।

दो. सुनि प्रभु बचन बिभीषनु, हरषि गहे पदकंज।
एहि मिस मोहि उपदेसेहु, राम कृपा सुख पुंज ॥८०क॥

अर्थ : विभीषण ने प्रभु का वचन सुनकर हर्षित होकर चरण कमल पकड़ लिया। समझा : कि इस व्याज से कृपा तथा आनन्द की राशि रामजी ने मुझे उपदेश किया।

व्याख्या : विभीषण अधीर हो उठे थे। सो प्रभु के वचन सुनकर हर्षित हो गये। चरण कमल को पकड़ लिया। इससे शिष्य की कृतकृत्यता दिखलायी। रामजी कृपा की राशि हैं। मैंने रावण के जीतने की विधि पूछा सो उसे बतलाते हुए सरकार ने मुझे संसार सागर सन्तरण का उपाय बतला दिया। कृपा निधान हैं : उत्तर के व्याज से मुझे उपदेश दिया। आनन्द की राशि हैं : मेरे दुःख को दूर करके आनन्दित कर दिया।

दो. उत पचार दसकंधर, इत अंगद हनुमान।
लरत निसाचर भालुकपि, करि निजनिज प्रभु आन ॥८०ख॥

अर्थ : उधर रावण के वीर ललकारते थे और इधर अङ्गद हनुमान् ललकारते थे और राक्षस तथा भालु बन्दर अपने अपने मालिक की दोहाई देकर लड़ रहे थे।

व्याख्या : उत अर्थात् विरोधी पक्ष मे रावण के सुभट लोग अपनी सेना के उत्साह वर्धन के लिए ललकारते हैं और इत अर्थात् अपने पक्ष मे अङ्गद और हनुमान् उत्साह वर्धन कर रहे हैं। दसकठभट-पाठ मे यदि भट शब्द को दसकठ का विशेषण मान लिया तो यह अर्थ करना पडेगा कि उधर से वीर दसकंठ ललकार रहा था। दसकन्धर शब्द हेतु गर्भ है। भाव यह कि दसो कण्ठ से ललकारता है। इस समय अपने सेना का सेनापतित्व स्वय रावण कर रहा है क्योकि उसके प्रधान सेनापति सब मारे गये हैं और इधर प्रधान सेनापति सब बचे है। इसलिए अङ्गद हनुमान् सेना का उत्साह वर्धन कर रहे हैं। दोनो ओर की सेना अपने अपने प्रभुओ की दोहाई देकर उनके लिए प्राण निछावर कर रही हैं।

सुर ब्रह्मादि सिद्ध मुनि नाना। देखत रन नभ चढे बिमाना॥
हमहू उमा रहे तेहि संगा। देखत रामचरित रनरगा ॥१॥

अर्थ : ब्रह्मादि देवता और अनेक सिद्ध मुनि विमान पर चढे हुए थे। हे उमा ! मैं भी उसी साथ मे था और रण रङ्गवाला रामचरित देख रहा था।

व्याख्या : बडा भारी युद्ध हो रहा था। अतः ब्रह्मादि देवता सिद्ध मुनि लोग जिस भाँति यज्ञो के देखने के लिए आते हैं उसी भाँति आये थे। शङ्कर भगवान् कहते है कि मै भी उसी समाज मे था। यह कहने का भाव यह है कि तुम यह न समझना

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कि उस समय १०८७ वर्ष की समाधि लगाये में बैठा था। इसलिए वहाँ उपस्थित नही था। एक शरीर से समाधि लगी थी और दूसरे शरीर से जिस भाँति सब यज्ञो मे उपस्थित होता था : सब भक्तो को उनकी पूजा ग्रहण करके अनुगृहीत करता था उसी भाँति उस युद्ध यज्ञ मे उपस्थित था। बडा भारी लाभ तो वहाँ यह था कि सरकार युद्ध मे कैसा चरित करते हैं यह देखने का अवसर मिला था। उसे देखने के लिए रामचरित रसिक सभी देवगण सिद्धगण मुनिगण विमानो पर चढकर आये थे। क्योकि उसी भाँति युद्ध का पूरा दृश्य दृष्टिगोचर होता था। उमा : सम्बोधन का भाव यह कि तुम उस समय सती शरीर से कैलास मे थी। रामरावणयोर्युद्धं रामरावणयोरिव।

सुभट समर रस दुहु दिसि माते। कपि जयसील राम बल ताते॥
एक एक सन भिरहिं प्रचारहिं। एकन्ह एक मर्दि महि पारहिं॥२॥

अर्थ : दोनो ओर वीर रणरस मे मत्त हो रहे थे। पर जीत बन्दरो की होती थी। क्योकि उन्हे रामजी का बल था। एक एक से भिडते थे और ललकारते थे और एक दूसरे का मर्दन करके पृथिवी पर फेंक देते थे।

व्याख्या वीर लोगो को युद्ध का चाव तो बाजे की ध्वनि सुनकर ही हो उठा था। इस समय तो वे रणमद से मत्त हो रहे थे। रण मे वीरो को नशा सा चढ जाता है। वे अपने होश मे नही रहते। गहरा चोट खाकर शत्रु की प्रशसा करते हैं। मनस्विनामिव सत्त्वप्रहार। यथा कपि बल बिपुल सराहन लागा। सो दोनो ओर के वीर रणमदमत्त होकर युद्ध कर रहे हैं। पर जीत बन्दरो की होती है। क्योकि उन्हे रामजी का बल है। रामो राक्षसमर्दन। श्रुति मे रामनाम की यह व्युत्पत्ति भी दी हुई है। राम कृपा कपि दल बल बाढा। जिमि तृन पाइ लाग अति डाढा। अनेक प्रकार से युद्ध हो रहा है। एक दूसरे से भिडते है और दूसरे को ललकारते हैं कि चलाओ चोट। एक दूसरे को आटे की भाँति मर्दन करके उसे एक पिण्ड की भाँति बनाकर पृथिवी पर डाल देते है।

मारहिं काटहिं धरहिं पछारहिं। सीस तोरि सीसन्ह सन मारहिं॥
उदर बिदारहिं भुजा उपारहिं। गहि पद अवनि पटकि भट डारहिं॥३॥

अर्थ मारते हैं। काटते हैं। पृथिवी पर पछाड देते हैं। सिर तोडकर सिरो से मारते हैं। पेट फाडते हैं। भुजा उखाडते हैं। पैर पकडकर पृथिवी पर पटक देते हैं और डाँटते हैं।

व्याख्या : दाँत से काटते हैं। पेड पत्थर से मारते पूँछ मे लपेटकर पटक देते हैं। यहाँ पर राक्षसो की युद्ध विधि का वर्णन नही करते हैं क्योकि वे अस्त्र शस्त्रादि साधन से सम्पन्न हैं। वर्णन तो करना है बन्दरो के युद्ध विधि का। जिनके पास युद्ध का कोई साधन नही है और जीत रहे हैं। रामबल दिखलाते हुए कहते हैं कि फल तोडने की भाँति राक्षसो के सिरो को तोड लेते हैं और उन्ही सिरो को लेकर दूसरे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पर प्रहार करते हैं। नख से पेट फाड डालते हैं। बल के उत्कर्ष से भुजा उखाड़ लेते हैं। हाथ से पैर पकड़कर पृथिवी पर पटक देते है और डांटते है कि फिर लड़ोगे।

निसिचर भट महि गाड़हि भालू। ऊपर ढारि देहि बहु बालू॥
बीर बलीमुख जुद्ध बिरुद्धे। देखिअत बिपुल काल जनु क्रुद्धे॥४॥

अर्थ : राक्षस वीरों को भालू पृथिवी मे गाड देते थे और उनके ऊपर बालू की ढेरी लगा देते थे। वीर वानर गण युद्ध मे विरुद्ध ऐसे दिखाई पड़ते हैं मानो बहुत से क्रुद्ध काल हैं।

व्याख्या : भालू अपने भोजन का बन्दोबस्त करते हैं। क्योंकि ये माँस खाते हैं। अतः सवेरे कलेवा के लिए निसिचर भट को पृथ्वी मे गाड़ देते है और निशान के लिए उस पर बालू का टीला बना देते हैं। रावण ने जो जो अत्याचार किये थे सबका बदला हनुमान्‌जी ने फेरा। रावण : जेहि जेहि देस धेनु द्विज पावहिं। नगर ग्राम पुर आग लगावहिं। हनुमान्‌जी : उलटि पलटि कपि लंका जारी। कूदि परा पुनि सिंधु मझारी। रावण : गर्जत गर्भ स्रवहिं सुर रवनी। हनुमान्‌जी : गर्भ स्रवहिं सुनि निसिचर नारी। रावण : देइ देवतन्ह गारि प्रचारी। हनुमान्‌जी : बार बार प्रचार हनुमाना। रावण : क्रोधवत तब रावन लीन्हेसि रथ बैठाइ। हनुमान्‌जी : धरि केस नारि निकारि बाहर तेति दीन पुकारही। इत्यादि। परन्तु निसिचर निकर सकल मुनि खाए। इस बात का बदला हनुमान्‌जी नही ले सके थे। वह बदला भालु चुका रहे हैं। राक्षसो को खाते है और दूसरे दिन के कलेवा के लिए पृथिवी मे गाड़कर उनके ऊपर बालू का टीला बना देते थे।

छं.[1] क्रुद्धे कृतात समान कपि तनु स्रवत सोनित राजही।
मर्दहि निसाचर कटकु भट बलवत घन जिमि गाजही॥
मारहिं चपेटन्हि डाँटि दातन्ह काटि लातन्ह मीजही।
चिक्करहिं मर्कट भालु छल बल करहि जेहि खल छीजही॥
धरि गाल फारहि उर बिदारहि गल अंतावरि मेलही।
प्रहलाद पति जनु बिबिध तन धरि समर अंगनि खेलही॥
धरु मारु काटु पछारु घोर गिरा गगन महि भरि रही।
जय राम जो तृन ते कुलिस कर कुलिस ते कर तृन सही॥

अर्थ : काल के समान बन्दर क्रुद्ध है। उनके शरीर से रक्त बह रहा है। उससे उनकी शोभा हो रही है। राक्षसी सेना के वीरो का मर्दन करते हैं और वे बलवान् बादल की भाँति सिंहनाद करते हैं। चपेटा मारते हैं। दाँत से काट लेते हैं और पैरो

---

१. यह हरिगीतिका छन्द है!

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



से रौंद देते हैं। बन्दर भालू चीत्कार करते हैं और ऐसा छलबल करते हैं जिससे खल मारे जाते हैं। पकडकर गाल फाडते हैं। छाती चीर डालते हैं। आँतो को गले मे पहन लेते हैं। मानो नृसिंह भगवान् अनेक रूप धारण करके रणाङ्गण मे क्रीडा कर रहे हैं। पकडो मारो काटो पछाडो . यही ध्वनि आकाश और पृथिवी मे भर रही है। रामजी की जय हो। जो तृण को वज्र और वज्र को तृण निश्चय करके कर देते हैं।

व्याख्या काल बीभत्स रस के अधिष्ठाता है। क्रुद्ध बन्दरो की उपमा काल से दी है। अत यहाँ बीभत्स दृश्य का वर्णन करते हैं। राक्षसो के शस्त्राघात से बन्दरो के शरीर से रक्तस्राव हो रहा है। रक्तस्राव से वीरो की शोभा अधिक बढ जाती है। राक्षसो के शस्त्राघात से बन्दर पीडित नही हैं। क्रुद्ध हैं। अत राक्षसी सेना का मर्दन कर रहे हैं। बन्दर होकर सिंहनाद कर रहे हैं। क्योकि रामकृपा से बल बढा हुआ है। हाथ से राक्षसो को चपेटा मारते हैं। दाँतो से काट लेते हैं और लातो से रौंद डालते हैं। बन्दर भालु चीत्कार करते हैं और मायावी राक्षसो के साथ ऐसा छलबल करते है जिसमे वे मारे जायँ। व्रजन्ति ते मूढधिय पराभव भवन्ति मायाविषु ये न मायिन। वे बेवकूफ हार जाते हैं जो कपटियो के साथ कपट नही करते। अत बन्दर लोग उन मायावियो के साथ छलबल से युद्ध करते हैं।

युद्ध करते करते रणरस भी बढा और बल भी बढा। तब तो एक एक बन्दर भगवान् नृसिंह की प्रतिमूर्ति से दिखाई पडने लगे। वे नखो से राक्षसो का गाल फाड डालते है। कलेजा चीरकर आँत निकाल लेते हैं और उसे माला की भाँति पहन लेते हैं। मानो नृसिंह भगवान् का आवेश उनमे आगया है। युद्ध मे घोर शब्द हो रहा है। पृथिवी मण्डल से आकाश मण्डल तक पकडो मारो काटो पछाडो यही ध्वनि व्याप्त हो रही है। कवि कहते हैं कि रामजी की जय हो। जिनका यह बाना[1] है तृन से कुलिस कुलिस तृन करई। तृण को वज्र और वज्र को तृण बनाया करते हैं। दुर्बल के हाथ से सबल का पराजय कराते है। कहाँ राक्षस वज्र के तुल्य उनके सामने बन्दर भालू तृण के समान है। सो आज वे रामकृपा से वज्र हो गये और राक्षस तृण हो गय। बन्दरो के हाथ से राक्षस मारे जा रहे है।

दो० निजदल बिचलत देखेसि, बीस भुजा दस चाप।
रथ चढि चलेउ दसानन, फिरहु फिरहु करि दाप ॥८१॥

अर्थ अपनी सेना को विचलित देखकर बीस भुजा और दस धनुषवाले दसानन रथ पर चढकर दर्प के साथ लौटो लौटो कहते हुए चल।

व्याख्या बन्दरो ने ऐसा भयङ्कर युद्ध किया कि राक्षसी सेना के पैर उखड

---

१ अम्भोधि स्थलता स्थल जलधिताम् धूलीलव शैलताम् शैलो मृत्कणता तृण कुलिशता वज्र तृणक्षीणताम्। अग्नि शीतलता हिमो दहनतामायाति यस्येच्छया लीलादुर्ललिताद्भुतव्यसनिने तस्मै नमो ब्रह्मणे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



गये। जब रावण ने यह देखा तो उसने बीसो भुजाओ से काम लेने के लिए दस धनुष सँभाले। दसो दिसाओ मे दृष्टि रखने के लिए दसमुख हैं हो। अब दसो दिशा मे प्रहार करने के लिए दस धनुष भी उठाये। रथ पर तो पहिले से ही सवार थे। फिर भी कवि उसकी प्रबलता द्योतित करने के लिए कहते हैं : रथ चढि चलेउ दसानन। रावन ने पहिले ही आज्ञा दे दी थी : रन सनमुख जाकर मन डोला। सो अबही बरु जाउ पराई। संयुग बिमुख भये न भलाई। फिर भी सेना भाग चली। इस पर रावण ने क्रोध नही किया। दर्प करके कहता है कि भागो मत। लौटो देखो कि भालु कपिठट्ठ का कैसे मर्दन किया जाता है। मैंने अपनी भुजा के बल के भरोसे बैर बढाया है। सो देखा मेरे भुजा का बल। मैं बानरो सेना को भी मारूँगा और उन दोनो तपस्वियो को भी।

धाएउ परम क्रुद्ध दसकंधर। सनमुख चले हूह दै बंदर॥
गहिकर पादप उपल पहारा। डारेन्हि तापर एकहि बारा॥१॥

अर्थ : रावण अत्यन्त क्रुद्ध होकर दौडे। बन्दर लोग हूह करके सामने आये और पेड पत्थर और पहाड़ हाथो मे लेकर उसके ऊपर एक साथ फेंकने लगे।

व्याख्या : रावण ने अपनी सेना को विचलित देखकर परम क्रोध के साथ रथ दौडाया। सेना का निरीक्षण पीछे से करता था। सो आगे आकर युद्ध करने के लिए वेग से रथ चलाया। बन्दर ऐसे ढीठ हैं कि रावण को आते देखकर उन भागते हुओ का पीछा छोडा और उसका सामना करने के लिए हूह देकर चले। जिस भाँति कुम्भकर्ण से युद्ध किया था उसी भाँति इससे युद्ध करना ठानकर पेड पत्थर पहाड लेकर सब एक ही साथ उसके ऊपर फकने लगे। बन्दरो ने देख लिया कि यह भी एक के मान का नही है। क्योकि यह भी पर्वताकार है। यथा : अगद दीख दसानन बैसे। सहित प्रान कज्जल गिरि जैसे।

लागहिं सैल बज्र तनु तासू। खड खड होइ फूटहिं आसू॥
चला न अचल रहा रथ रोपी। रन दुर्मद रावन अति कोपी॥२॥

अर्थ : उसके वज्र शरीर मे पहाड टकरकर खाकर शीघ्र टुकडे टुकडे होकर गिर जाते हैं। वह दुर्मद रावण बडा क्रोधी था। वह रथ को रोककर अचल हो गया। चलायमान न हुआ।

व्याख्या : चाहे वज्र पर पत्थर गिरे चाहे वज्र पत्थर पर गिरे बात एक ही है। पत्थर ही टूटेंगे। वज्र का कुछ नही बिगड़ सकता। सो जितने पत्थर पहाड बडे वेग से बन्दरो ने फेंके वे रावण के वज्र से शरीर मे टक्कर खाकर टुकड़े टुकडे हो गये। रावण ने बन्दर भालुओ को आते देखकर रथ रोक दिया कि जिनसे सघर्ष के लिए रथ दौडाया वे स्वय चले आरहे हैं और उनके प्रहार करने पर भी अचल रह गया। क्योकि युद्ध मे उसका मद और भी बढ जाता है महाक्रोधी भी है। क्रोधी प्राण दे देते हैं हटते नही।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इत उत झपटि दपटि कपि जोधा। मर्दइ लाग भएउ अति क्रोधा॥
चले पराइ भालु कपि नाना। त्राहि त्राहि अगद हनुमाना॥३॥

अर्थ इधर उधर झपटकर और दपटकर बन्दर योद्धाओ का मर्दन करने लगा। क्योकि उसे अत्यन्त क्रोध आगया। बन्दर और भालुगण भाग चले। कहने लगे कि हे अङ्गद! हे हनुमान्! रक्षा करो। रक्षा करो।

व्याख्या : कुम्भकर्ण और रावण दोनो भाई रण मे दुर्मद थे। कुम्भकर्ण के लिए पहिले कह आये हैं। कुम्भकर्ण दुर्मद रन रगा। रावण के लिए यहाँ कह रहे हैं। रावण अतिक्रोधी है। उसने धनुष रख दिया कि इनसे खाली हाथ लडेंगे। देखें तो इनका बल कितना है। मैं तो सदा से प्रति भट के खोज मे रहा। यथा प्रतिभट खोजत कतहुँ न पावा। सो इधर उधर जिधर अवसर हाथ लगता है झपटकर बन्दर योद्धाओ का मर्दन करने लगा। कितने तो उसके झपट से और कितने उसके दपट से मरने लगे। अपनी सेना को दिखलाता है कि ऐसे मर्दन किया जाता है। प्रहार से अत्यन्त क्रुद्ध हो गया है।

अब तो बन्दर भालुगण भाग चले। लगे अङ्गद हनुमान् को पुकारने। क्योकि इन्ही के ललकार पर लड रहे थे। उधर का ललकारनेवाला तो सामने आगया। अब आप लोगो की आवश्यकता है। यथा उत प्रचार दसकठ भट इत अगद हनुमान्। आप लोग रक्षा कीजिये। हम लोगो के पेड और पत्थर का प्रहार तो इसके शरीर पर काम नही करते। टूट टूटकर गिर जाते हैं।

पाहि पाहि रघुबीर गोसाईं। यह खल खाइ काल की नाईं॥
तेहि देखे कपि सकल पराने। दसहु चाप सायक सधाने॥४॥

अर्थ हे रघुवीर गोसाईं! रक्षा करो। रक्षा करो। यह खल तो काल की भाँति खाये जाता है। उसने देखा कि सब बन्दर भाग गये। तब दसो धनुषो पर बाण चढाये।

व्याख्या कुम्भकर्ण तो दुकाल था। उसके पजे से हम निकल भी जाते थे। यथा मुख नासा स्रवनन की बाटा। निकसि पराहि भालु कपि ठाटा। दुकाल यथा यह निसिचर दुकाल सम अहई। कपिकुल देस परन अब चहई। पर रावन तो साक्षात् काल है। इसके हाथ से तो कोई बचता ही नही। अत हे रघुवीर गोसाईं! जिस भाँति आपने दुकाल से रक्षा की उसी भाँति काल से भी बचाइये।

रावण ने देखा कि सब बन्दर भाग गये। किसके पीछे रथ दौडायें। ये भाग जाते हैं और फिर जुट जाते हैं। इसलिए इन्हे मार ही डालना चाहिए। रावण की आसुरी बुद्धि है। भागते हुए पर भी शस्त्र चलाना चाहता है। सो उसने दसो धनुषो पर बाण चढाये। बन्दर सब दिशाओ मे भाग रहे हैं। सो किसी ओर से बचने न पावें।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



छ.[1] सधानि धनुसर निकर छाडेसि उरग जिमि उडि लागही ।
रहे पूरि सर धरनी गगन दिसि विदिसि कहँ कपि भागही ॥
भयो अति कोलाहलु बिकल कपिदल भालु बोलहि आतुरे ।
रघुबीर करुनासिधु आरतबधु जनरक्षक हरे ॥

अर्थ धनुष चढाकर उसने बाणो के समूह छोडे जो उडकर सर्प की भाँति लगते थे। पृथिवी आकाश दिशा और विदिशा सर्वत्र बाण भर गये। बन्दर भागें तो कहाँ भागें। बडा भारी कोलाहल हुआ। बन्दर और भालु की सेना विकल होकर पुकार रही है। हे रघुवीर! हे करुणासिन्धु! हे आर्त्तबन्धु! हे जनरक्षक! हे दु खो को हरण करनेवाले!

व्याख्या दसो धनुष सन्धान करके दसो दिशाओ मे बाणो का प्रहार करने लगा। वे उड उडकर साँप की तरह लग रहे थे। साँप की उपमा बाणो से दे रहे हैं। क्योकि वे विष से बुझाये हुए थे। रावण के बाण चलने म इतना लाघव है कि दसो दिशायें बाण से भर गयी। ऊपर नीचे अगल बगल तमाम बाण ही बाण हो गया। हाहाकार मच गया। भालु बन्दर सेना अति विकल हो उठी। बन्दर भालु आतुर होकर बोलने लगे हे हरे! हम लोग दु खी हैं। आप करुणासिन्धु हैं। हम आरत हैं। आप आरतबन्धु है। हम मारे जाते हैं। आप जनरक्षक हैं। इससे युद्ध वीर, दया वीर, दानवीर कहकर रघुवीर होना सार्थक द्योतित किया।

दो निजदल बिकल देखि कटि, कसि निषग धनु हाथ।
लछिमन चले सक्रोप तब, नाइ रामपद माथ ॥८२॥

अर्थ अपनी सेना को विचलित देखकर कमर मे तरकस और हाथ मे धनुष लेकर लक्ष्मण रामजी के चरणो म सिर नवाकर क्रोध करके चले।

व्याख्या अपना कटक विचलित देखकर रावण चला था और अपना कटक विचलित देखकर लक्ष्मणजी चले। रावण रथपर चले। लक्ष्मणजी पैदल चले। सरकार को बन्दरो ने पुकारा। लक्ष्मण को तरकस कसते देखकर सरकार चुप रह गये। रावण क्रुद्ध होकर चले थे। इधर लक्ष्मण क्रुद्ध होकर चले। रावण के अस्त्र शस्त्र सब रथ पर हैं। लक्ष्मणजी तरकस कमर मे कसे हुए हैं। चलने के पहिले रामजी के चरणो मे प्रणाम किया।

रे खल का मारेसि कपि भालू। मोहि बिलोकु तोर मैं कालू ॥
खोजत[2] रहेउँ तोहि सुतघाती। आजु निपाति जुड़ावौ छाती ॥१॥

अर्थ अरे शठ! बानर भालुओ को क्या मारता है। मुझे देख। मैं तेरा काल

---

१ हरिगीतिका छन्द है।
२ यहाँ भाविकालकार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हूँ। रे पुत्रघाती! तुझी को तो मैं खोजता रहा। आज तुझे मारकर छाती ठण्ढी करूँगा।

व्याख्या : लक्ष्मणजी बोले। तू शठ है। समर विमुख के ऊपर प्रहार करता है। बन्दर और भालु अल्पवीर्य हैं। उन पर पुरुषार्थ दिखला रहा है। मुझे देख। भाव यह कि मैंने तेरी बहन का नाक कान काटा, तेरे बेटे को मारा और तुझे मारने को प्रस्तुत हूँ। अथवा जिसने चिट्ठी भेजी थी : सीता देइ मिलहु नत आवा काल तुम्हार। सो मैं तेरा कालरूप आ पहुँचा। अथवा बन्दर भालुओ के लिए तू काल हो रहा है। यथा : यह खल खाइ काल को नाईं। सो तेरा काल मैं हूँ। मुझे देख : कहने का भाव यह कि मुझसे युद्ध कर। रावण को बन्दरो से हटाकर अपनी ओर उन्मुख करते हैं। रावण ने कहा था : हौं मारिहौं भूप दोउ भाई। उसीका उत्तर लक्ष्मणजी की ओर से हो रहा है। रावणसे युद्ध के लिए सरकार स्वय उठे थे। परन्तु समय पाते ही लक्ष्मणजी आगे आगये।

रावण ने कहा कि तूने मेरा पुत्र मारा है। मैं तो तुझी को खोजता था। बानरो को इसलिए मारता था कि ये हटें तो तेरा पता चले। जब से लडका मरा है तब से कलेजा जल रहा है। वह बिना तेरे मारे ठण्ढा हो नही सकता। अत. तुझे आज ही मारूँगा।

अस कहि छाडेसि बान प्रचंडा। लछिमन किए सकल सत खंडा ॥
कोटिन्ह आयुध रावन डारे। तिल प्रवान करि काटि निवारे ॥२॥

अर्थ : ऐसा कहकर उसने प्रचण्ड बाण चलाये। लक्ष्मणने उन सबो के सौ सौ टुकडे कर दिये। करोडो हथियार रावण ने चलाये। परन्तु प्रभु ने : उनको तिल के बराबर करके काट डाला।

व्याख्या : तुझे मारकर छाती ठण्ढी करूँगा। ऐसा कहकर प्रचण्ड बाण चलाये लक्ष्मणजी के वध के लिए। लक्ष्मणजी ने उन्हें काट काटकर सौ-सौ टुकडे कर दिये। बीस हाथवाले बाण मार रहे हैं और दो हाथवाले उनके सौ सौ टुकडे कर रहे हैं। यह लक्ष्मणजी की बनैती है। रावणने देखा कि इन पर बाण काम नही करते तो दूसरे हथियार फेंकने लगे। इधर लक्ष्मणजी के बाणो का वेग बढा तो उन हथियारो को तिल के बराबर टुकडे करके गिराने लगे।

पुनि निज बानन्ह कीन्ह प्रहारा। स्यंदनु भंजि सारथी मारा ॥
सत सत सर मारे दस भाला। गिरिसृंगन्हि जनु प्रविसहिं ब्याला ॥३॥

अर्थ : तत्पश्चात् अपने बाणो का प्रहार किया। रथ को तोड डाला और सारथी को मार दिया। दसो सिरो मे सौ सौ बाण मारे। वे इस भाँति घुस गये जैसे पर्वतकी चोटियो मे साँप घुसते हैं।

व्याख्या : लक्ष्मणजी वीरव्रत हैं। पहिले स्वय प्रहार नही करते। जब रावण के अनेक प्रहार सह चुके रावण भी देख चुके कि उनके प्रहार का कोई फल नहीं

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हो रहा है तब लक्ष्मणजी बाणों से चोट करने लगे। वह मारुत वेग रथ भी तोड दिया और सारथी को भी मार गिराया। रथारूढ रावण अपने रथ और सारथी की रक्षा न कर सके और विरथ हो गये। तब सौ सौ बाण दश सिरो मे मारे। जो उनमे प्रवेश करके उन्ही मे रह गये। रावण पहाड़ की भाँति है। उनके सिर पहाड़ की चोटियो के से हैं। उनमे बाणो के घुसने की उपमा कवि सर्पों के घुसने से देते हैं। पर रावण की खोपडी न जाने कैसी थी कि फिर भी धराशायी नही हुआ।

पुनि सत सर मारा उर मांही। परेउ धरनि तल सुधि कछु नाही ॥
उठा प्रबल पुनि मुरछा जागी। छाँडेसि ब्रह्म दीन्ह जो सागी ॥८॥

अर्थ : फिर सौ बाण छाती मे मारे। पृथिवी पर एकदम अचेत होकर गिरा। प्रबल फिर उठा। मूर्च्छा जाती रही। तब ब्रह्माजी की दी हुई जो सागी थी उसे चला दिया।

व्याख्या : तब सौ बाण हृदय मे मारे। रावण लक्ष्मणजी के बाणो के काटने मे समर्थ न हुए। पृथिवी पर ऐसे गिरे कि कुछ भी चेत न रहा। लक्ष्मणजी ने प्रहार करना बन्द कर दिया।

इतना चोट खाने पर कोई उठ नही सकता। पर रावण बडा बलवान् था। मरा नही उसे केवल मूर्च्छा हो गयी थी। मूर्च्छा गयी। रावण उठ गये। देख लिया कि सचमुच लक्ष्मण काल ही है। यह तो प्राण ले लेगा। तब ब्रह्मदेव की दी हुई सागी छोड़ी थी। ये तपस्या के प्राप्त अस्त्र उसी समय छोडे जाते हैं जब कि शत्रु से रक्षा का कोई उपाय नही रह जाता और वे शत्रु को ले बीतते है।

छं. सो[1] ब्रह्मदत्त प्रचंड शक्ति अनन्त उर लागी सही।
परयो वीर विकल उठाव दसमुख अतुलबल महिमा रही ॥
ब्रह्माण्ड भुवन बिराज जाके एक सिर जिमि रज कनी।
तेहि चह उठावन मूढ रावन जान नहि त्रिभुवन धनी ॥

अर्थ : वह ब्रह्मदेव की दी हुई प्रचण्ड शक्ति अनन्त की छाती मे ठीक लगी। वीर विकल होकर गिरे तो रावण उठाने लगे। बेतौलवाले लक्ष्मणजी की महिमा को न डगा सके : बनी रह गयी। भुवन और ब्रह्माण्ड जिसके सिर पर धूल के कण की भाँति शोभित है उसे मूढ रावण उठाने लगा। त्रिभुवन धनी को जाना नही।

व्याख्या : ब्रह्मदेव की दी हुई अमोघ शक्ति और रावण के हाथ से चली हुई ठीक कलेजे मे जाकर लगी। पर अनन्त का अन्त उसे भी न लगा। लक्ष्मणजी विकल होकर गिरे। प्रधान वीर के मूर्च्छित होने पर रावण की ओर से बराबर प्रयत्न उठा ले जाने का होता है। जिसमे उसे बन्दी करके अपना काम निकाल लें। मेघनाद की

१. हरिगीतिका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



शक्ति लगने पर लक्ष्मणजी गिरे थे। तब मेघनाद ने यही प्रयत्न किया। सुग्रीव के मूर्च्छित होने पर कुम्भकर्ण ने भी ऐसा ही प्रयत्न किया था। इस बार लक्ष्मणजी के मूर्च्छित होने पर रावण भी उसी प्रयत्न मे लगा। पर लक्ष्मणजी न तो मेघनाद के उठाये उठे और न कैलाश उठानेवाले रावण के ही उठाये उठे। लक्ष्मणजी ने केवल ब्रह्मदेव की महिमा की रक्षा के लिए सांगी के प्रहार को स्वीकार कर लिया है, नही तो उनका बल अतुल है, महिमा अतुल है। रावण यदि उन्हे उठा लेता तो वह महिमा न रह जाती। लक्ष्मणजी की महिमा कहते हुए कवि कहते हैं कि चौदहो भुवन सहित ब्रह्माण्ड जिस शेष भगवान् के एक सिर पर धूलि के कणो के समान सुशोभित है। लक्ष्मणजी वही शेष हैं। किसकी सामर्थ्य है कि उनकी इच्छा के विरुद्ध उन्हे उठा ले। इस महिमा को रावण ने न जाना। इसलिए उठाने का प्रयत्न किया।

दो. देखत पवन सुत धाये, बोलत बचन कठोर।
आवत कपिहि हनेउ तेहि, मुष्टि प्रहार प्रघोर ॥८३॥

अर्थ : देखते ही हनुमान्‌जी कठोर वचन बोलते दौडे। परन्तु आते ही उनके हृदय पर उसने अत्यन्त घोर मुष्टि प्रहार किया।

व्याख्या : देखा सबने पर दौडे हनुमान्‌जी। वायु वेग से दौडे इसलिए पवनसुत लिखा। कठोर वचन बोलते हुए कि तू मूढ है, शठ है, खल है, मूर्च्छित वीर को उठा ले जाना चाहता है। अभी तू मूर्च्छित हुआ था। तब हम लोगों ने कुछ न किया। तू पापी है इत्यादि। रावण ने उत्तर न देकर हनुमान्‌जी के हृदय मे यावद्बल घोर मुष्टिका प्रहार किया। क्योंकि लक्ष्मणजी के उठाने के समय हथियार रख दिया था।

जानु टेकि कपि भूमि न गिरा। उठा सँभारि बहुत रिस भरा ॥
मुठिका एक ताहि कपि मारा। परेउ सैल जनु बज्र प्रहारा ॥१॥

अर्थ. घुटना टेककर हनुमान्‌जी पृथिवी पर नही गिरे। अत्यन्त क्रोध मे भरे हुए सँभालकर उठे। हनुमान्‌जी ने उसे एक घूसा मारा। तो ऐसा गिरा जैसे वज्र के प्रहार से पर्वत गिरे।

व्याख्या : रावण के मुष्टि प्रहार से हनुमान्‌जी घुटने के बल आगये। भूमि मे नही गिरे। रावण ने समझा था कि मेरी मुष्टिका न सह सकेंगे। हनुमान्‌जी ने सँभालकर क्रोध से भरे उठकर जब घूसा मारा तब तो रावण ऐसे गिरे जैसे वज्र के प्रहार से पर्वत गिरे। रावण का शरीर वज्र का था। उससे टक्कर खाकर पहाड़ टूट जाते थे। पर हनुमान्‌जी का शरीर ऐसा वज्र है कि उसके मुष्टि प्रहार से रावण पहाड की भाँति पृथिवी पर आपडे।

मुरुछा गै बहोरि सो जागा। कपिबल बिपुल सराहन लागा ॥
धिग धिग मम पौरुष धिग मोही। जौ तै जियत रहेसि सुरद्रोही ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : मूर्च्छा जब बीती तो वह जागा। हनुमान्‌जी के विशाल बल की प्रशंसा करने लगा। हनुमान्‌जी ने कहा कि मेरे पौरुष को बार बार धिक्कार और मुझे धिक्कार है जो हे देवद्रोही ! तू जीता उठ खड़ा हुआ।

व्याख्या : इस दूसरी मूर्च्छा से भी वह जग गया। ऐसा घूसा कभी खाया नहीं था। इसलिए हनुमान्‌जी के बल की विपुलता की प्रशंसा करने लगा। रावण वीर है। हनुमान्‌जी के बल पर ऐसा प्रसन्न हुआ कि अपनी चोट भूल गया। साथ ही साथ यह भाव है कि रावण बड़ा चतुर है। समझता है कि बल की प्रशंसा करने पर दूसरा घूसा न मारेंगे। हनुमान्‌जी के घूसे से मेघनाद भी मूर्च्छित हुआ था। कुम्भकर्ण भी धराशायी हुए थे। आज रावण भी मूर्च्छित हुए।

रावण की प्रशंसा से हनुमान्‌जी को तुष्टि नहीं हुई। परन्तु ग्लानि हुई। कहने लगे कि तू सुरद्रोही है। मैं पवनपुत्र हूँ। तू बाप का बैरी ठहरा। मैंने तुझे घूसा मारा और तू बच गया, तो मेरे पुरुषार्थ को और मुझको भी धिक्कार है। वह बल ही क्या जिसके द्वारा बाप का बैरी नहीं मारा गया। हनुमान्‌जी ने देख लिया कि रावण अब लड़ना नहीं चाहता।

अस कहि लछिमन कहुँ कपि ल्यायो। देखि दसानन बिसमय पायो ॥
कह रघुबीर समुझु जिय भ्राता। तुम्ह कृतांत भच्छक सुरत्राता ॥३॥

अर्थ : ऐसा कहकर हनुमान्‌जी लक्ष्मण को ले आये। देखकर रावण को आश्चर्य हो गया। रामजी ने कहा कि भाई! हृदय मे समझो तुम तो काल के भी भक्षण करनेवाले देवरक्षक हो।

व्याख्या : सरकार ने लक्ष्मणजी की पहले बार की मूर्च्छा मे माधुर्य दिखलाया। इस बार ऐश्वर्य दिखलाते है। हनुमान्‌जी लक्ष्मण को उठा लाये। हनुमान्‌जी के बल को देखकर रावण चकित रह गये। जो रावण के हिलाये न हिले। उसे हनुमान्‌जी अनायास उठाये लिये जा रहे हैं। लक्ष्मणजी को मूर्च्छित देखकर सरकार ने उनके स्वरूप का स्मरण दिलाया। कहा कि भाई ! चेतो। तुम तो कृतान्त भक्षक हो। प्रलयकाल मे सब कुछ संहार करने के बाद जब काल और काली का नृत्य होने लगता है तब नृत्य करते करते काली काल मे लीन हो जाती हैं। तब काल भी नृत्य करते करते जिस अनन्त वस्तु मे लीन हो जाते हैं वही शेष रह जाता है। उसी को शेष कहते हैं। वही सर्वाधार सृष्टि होने पर सबको धारण करते हैं। सुप्तशक्ति असुप्तदृक् परमेश्वर भी उसी पर शयन करते हैं। वही तुम हो। देवताओं की रक्षा के लिए अवतीर्ण हो।

सुनत बचन उठि बैठ कृपाला। गई गगन सो सक्ति कराला ॥
पुनि कोदंड बान गहि धाए। रिपु समीप अति आतुर आए ॥४॥

अर्थ : वचन सुनते ही कृपाल उठ बैठे। वह करालशक्ति आकाश मे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चली गयी। फिर धनुष बाण लेकर दौड़े और अत्यन्त आतुर होकर शत्रु के पास आये।

व्याख्या : सरकार के वचन के सुनते ही स्वरूप का स्मरण हो गया। लक्ष्मणजी बड़े कृपालु हैं। कृपा करके ब्रह्मदेव की मर्यादा की रक्षा के लिए विकलता को स्वीकार किया है। सरकार के वचन को सुनते ही उसका त्याग किया। जानते हैं कि उनकी मूर्च्छा से सरकार को बड़ा कष्ट होता है। अतः तुरन्त उठ बैठे। वह कराल शक्ति आकाश मे लय हो गयी। रावण के काम की न रह गयी।

रावण कही अपनी जीत मानकर चला न जाय। इसलिए धनुष बाण लेकर दौड पडे। तरकस पहिले से ही कसा है। आतुरता ब्रह्मदत्त शक्ति के उत्तर देने के लिए है।

छं.[1] आतुर बहोरि बिभंजि स्यंदनु सूत हति व्याकुल कियो।
गिरचौ धरनि दसकंधर विकलतर बानसत वेध्यो हियो॥
सारथी दूसर घालि रथ तेहि तुरत लंका लै गयो।
रघुबीर बंधु प्रताप पुंज बहोरि प्रभु चरनन नयो॥

अर्थ : आतुरता से फिर रथ को तोड़कर सूत को मारकर रावण को व्याकुल कर दिया। रावण अत्यन्त विकल होकर सौ बाणो से कलेजा छिदा हुआ पृथिवी पर गिरा। दूसरे सारथी ने उसे रथ पर लाद लिया और तुरन्त लका ले गया। रघुवीर के भाई प्रताप के पुञ्ज हैं। उन्होने आकर फिर सरकार के चरणो मे प्रणाम किया।

व्याख्या : लक्ष्मणजी चोट सह चुके हैं। इसलिए जाते ही चोट करते हैं। मरुतवेग रथ को पहिले ही तोड चुके हैं। रावण दूसरे रथ पर है। ऐसे वेग से प्रहार किया कि रथ भी टूटा सारथी भी मरा। रावण का किया कुछ भी न हुआ। घायल होकर पृथिवी पर गिरे। तब देखा गया कि उनका हृदय सौ बाणो से छिदा हुआ है। हालत बहुत खराब है। दूसरा सारथी उन्हे दूसरे रथ पर लादकर लका ले गया। जो रावण इतने ठाटबाट से युद्ध के लिए निकले थे। जिन्हे अकेले दोनो भाइयो के मारने का हौसला था। आज छोटे भाई के मारे अधमरे होकर रथ पर लदे हुए लका लाये जा रहे हैं। इधर लक्ष्मणजी ने आकर सरकार के चरणो मे नमस्कार किया। चले थे तब नमस्कर करके चले थे। लौट के आने पर फिर नमस्कार करते हैं। इसलिए कवि ने बहोरि कहा। जैसा सरकार का पुरुषार्थ है वैसा ही लक्ष्मणजी का है। यह बात रघुवीर बन्धु पद से द्योतित करते हैं और वैसा ही प्रताप है। यह बात प्रताप पद से दिखलाते हैं। यथा : जिनके जस प्रताप के आगे। ससि मलीन रबि सीतल लागे।

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : मूर्च्छा जब बीती तो वह जागा। हनुमान्‌जी के विशाल बल की प्रशंसा करने लगा। हनुमान्‌जी ने कहा कि मेरे पौरुष को बार बार धिक्कार और मुझे धिक्कार है जो हे देवद्रोही ! तू जीता उठ खड़ा हुआ।

व्याख्या : इस दूसरी मूर्च्छा से भी वह जग गया। ऐसा घूसा कभी खाया नहीं था। इसलिए हनुमान्‌जी के बल की विपुलता की प्रशंसा करने लगा। रावण वीर है। हनुमान्‌जी के बल पर ऐसा प्रसन्न हुआ कि अपनी चोट भूल गया। साथ ही साथ यह भाव है कि रावण बड़ा चतुर है। समझता है कि बल की प्रशंसा करने पर दूसरा घूसा न मारेंगे। हनुमान्‌जी के घूसे से मेघनाद भी मूर्च्छित हुआ था। कुम्भकर्ण भी धराशायी हुए थे। आज रावण भी मूर्च्छित हुए।

रावण की प्रशंसा से हनुमान्‌जी को तुष्टि नहीं हुई। परन्तु ग्लानि हुई। कहने लगे कि तू सुरद्रोही है। मैं पवनपुत्र हूँ। तू बाप का वैरी ठहरा। मैंने तुझे घूसा मारा और तू बच गया, तो मेरे पुरुषार्थ को और मुझको भी धिक्कार है। वह बल ही क्या जिसके द्वारा बाप का वैरी नहीं मारा गया। हनुमान्‌जी ने देख लिया कि रावण अब लड़ना नहीं चाहता।

अस कहि लछिमन कहुँ कपि ल्यायो। देखि दसानन बिसमय पायो॥
कह रघुबीर समुझु जिय भ्राता। तुम्ह कृतांत भच्छक सुरत्राता॥३॥

अर्थ : ऐसा कहकर हनुमान्‌जी लक्ष्मण को ले आये। देखकर रावण को आश्चर्य हो गया। रामजी ने कहा कि भाई। हृदय मे समझो तुम तो काल के भी भक्षण करनेवाले देवरक्षक हो।

व्याख्या : सरकार ने लक्ष्मणजी की पहले बार की मूर्च्छा मे माधुर्य दिखलाया। इस बार ऐश्वर्य दिखलाते है। हनुमान्‌जी लक्ष्मण को उठा लाये। हनुमान्‌जी के बल को देखकर रावण चकित रह गये। जो रावण के हिलाये न हिले। उसे हनुमान्‌जी अनायास उठाये लिये जा रहे हैं। लक्ष्मणजी को मूर्च्छित देखकर सरकार ने उनके स्वरूप का स्मरण दिलाया। कहा कि भाई ! चेतो। तुम तो कृतान्त भक्षक हो। प्रलयकाल मे सब कुछ संहार करने के बाद जब काल और काली का नृत्य होने लगता है तब नृत्य करते करते काली काल मे लीन हो जाती हैं। तब काल भी नृत्य करते करते जिस अनन्त वस्तु में लीन हो जाते हैं वही शेष रह जाता है। उसी को शेष कहते है। वही सर्वाधार सृष्टि होने पर सबको धारण करते हैं। सुप्तशक्ति असुप्तदृक् परमेश्वर भी उसी पर शयन करते हैं। वही तुम हो। देवताओं की रक्षा के लिए अवतीर्ण हो।

सुनत बचन उठि बैठ कृपाला। गई गगन सो सक्ति कराला॥
पुनि कोदंड बान गहि धाए। रिपु समीप अति आतुर आए॥४॥

अर्थ : वचन सुनते ही कृपाल उठ बैठे। वह करालशक्ति आकाश मे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चली गयी। फिर धनुष बाण लेकर दौड़े और अत्यन्त आतुर होकर शत्रु के पास आये।

व्याख्या : सरकार के वचन के सुनते ही स्वरूप का स्मरण हो गया। लक्ष्मणजी बड़े कृपालु हैं। कृपा करके ब्रह्मदेव की मर्यादा की रक्षा के लिए विकलता को स्वीकार किया है। सरकार के वचन को सुनते ही उसका त्याग किया। जानते हैं कि उनकी मूर्च्छा से सरकार को बड़ा कष्ट होता है। अतः तुरन्त उठ बैठे। वह कराल शक्ति आकाश मे लय हो गयी। रावण के काम की न रह गयी।

रावण कही अपनी जीत मानकर चला न जाय। इसलिए धनुष बाण लेकर दौड पडे। तरकस पहिले से ही कसा है। आतुरता ब्रह्मदत्त शक्ति के उत्तर देने के लिए है।

छं[1] आतुर बहोरि बिभंजि स्यंदनु सूत हति ब्याकुल कियो।
गिर्‍यौ धरनि दसकंधर बिकलतर बानसत बेध्यो हियो॥
सारथी दूसर घालि रथ तेहि तुरत लंका लै गयो।
रघुबीर बंधु प्रताप पुंज बहोरि प्रभु चरनन नयो॥

अर्थ : आतुरता से फिर रथ को तोडकर सूत को मारकर रावण को व्याकुल कर दिया। रावण अत्यन्त विकल होकर सौ बाणो से कलेजा छिदा हुआ पृथिवी पर गिरा। दूसरे सारथी ने उसे रथ पर लाद लिया और तुरन्त लंका ले गया। रघुवीर के भाई प्रताप के पुञ्ज हैं। उन्होने आकर फिर सरकार के चरणो मे प्रणाम किया।

व्याख्या : लक्ष्मणजी चोट सह चुके हैं। इसलिए जाते ही चोट करते हैं। मरुतवेग रथ को पहिले ही तोड चुके हैं। रावण दूसरे रथ पर है। ऐसे वेग से प्रहार किया कि रथ भी टूटा सारथी भी मरा। रावण का किया कुछ भी न हुआ। घायल होकर पृथिवी पर गिरे। तब देखा गया कि उनका हृदय सौ बाणो से छिदा हुआ है। हालत बहुत खराब है। दूसरा सारथी उन्हे दूसरे रथ पर लादकर लंका ले गया। जो रावण इतने ठाटबाट से युद्ध के लिए निकले थे। जिन्हे अकेले दोनो भाइयो के मारने का हौसला था। आज छोटे भाई के मारे अधमरे होकर रथ पर लदे हुए लंका लाये जा रहे हैं। इधर लक्ष्मणजी ने आकर सरकार के चरणो मे नमस्कार किया। चले थे तब नमस्कार करके चले थे। लौटके आने पर फिर नमस्कार करते हैं। इसलिए कवि ने बहोरि कहा। जैसा सरकार का पुरुषार्थ है वैसा ही लक्ष्मणजी का है। यह बात रघुवीर बन्धु पद से द्योतित करते हैं और वैसा ही प्रताप है। यह बात प्रताप पद से दिखलाते हैं। यथा : जिनके जस प्रताप के आगे। ससि मलीन रवि सीतल लागे।

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



## रावन यज्ञ विध्वंस

दो. उहाँ दसानन जागि करि करै लाग कछु जग्य ।
राम बिरोधी बिजय चह सठ हठ बस अति अग्य ॥८४॥

अर्थ : वहाँ रावण जगकर कोई यज्ञ करने लगा । रामजी के विमुख होकर जीत चाहता है । ऐसा शठ हठी और मूढ है ।

व्याख्या : यहाँ का हाल कहकर अब वहाँ का हाल कहते हैं । रावण मूर्च्छा से जागे । आसुर बल से काम चलते न देखकर देवबल का आश्रयण किया । जो यज्ञ को अनिष्टकर समझते थे । जिनके कारण संसार मे यज्ञ करना दुष्कर व्यापार था : जप जोग बिरागा तप मख भागा स्रवन सुनै दससीसा । आपुन उठि धावै रहै न पावै धरि सब घालै खीसा । आज संकट मे पडने पर स्वयं यज्ञ करने चले । जो जीत देनेवाले हैं । जिनके नाम स्मरण से अत्यन्त प्रबल मोहदल जीता जाता है । उससे विरोध करके विजय चाहता है । शठ है : यज्ञपुरुष की आराधना उन्ही को जीतने के लिए कर रहा है । बडा हठो है । सर्वस्व नाश हुआ जाता है । पर हठ नही छोड़ता । इतना बडा पण्डित होकर ऐसी मूर्खता कर रहा है । इसलिए कवि उसे : अतिअग्य कह रहे हैं ।

इहाँ बिभीषन सब सुधि पाई । सपदि जाइ रघुपतिहि सुनाई ॥
नाथ करै रावन एक जागा । सिद्ध भए नहि मरिहि अभागा ॥१॥

अर्थ : यहाँ विभीषण को सब पता लग गया । तुरन्त जाकर रामजी को सुनाया कि : नाथ ! रावण एक यज्ञ कर रहा है । उसके सिद्ध होने पर अभागा न मरेगा ।

व्याख्या : उधर रावण यज्ञ करने लगे । इधर विभीषण को सब पता लग गया । लंका का पता रखना विभीषण के जिम्मे है । मेघनाद के यज्ञ का भी पता इन्होने ही दिया था । आज रावण के यज्ञ का भी पता इन्हे लग गया । पहिले कहा भी जा चुका है कि इनके चार मन्त्री कबूतर बनकर लका का पता लगाया करते हैं : आज भी युद्ध के समय शिक्षित कबूतरो द्वारा युद्ध के सन्देश आया जाया करते हैं । उसकी प्रतिक्रिया के लिए विभीषणजी ने जाकर रामजी को सुनाया कि रावण कोई एक ऐसा यज्ञ कर रहा है जिसका नाम नही मालूम । पर इतना पता चला है कि उसके सिद्ध हो जाने पर वह मारा नही जा सकेगा । यह अभागा है । इतने दिनो तक इसे यज्ञ करने की फुरसत न मिली । जब सारे कुटुम्ब का नाश हो गया तब अपने जीने के लिए अब यज्ञ करने चला है ।

पठवहु नाथ बेगि भट बंदर । करहिं बिधंस आव दसकंधर ॥
प्रात होत प्रभु सुभट पठाए । हनुमदादि अंगद सब धाए ॥२॥

अर्थ : हे देव ! वीर बन्दरो को शीघ्र भेजिये । वे यज्ञ विध्वंस कर दे और

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रावण आवे। सवेरा होते ही प्रभु ने सुभटो को भेजा। हनुमान् अङ्गदादि सब दौड पडे।

व्याख्या आप देव हैं। आप आज्ञा दीजिये। वीर बन्दर लोग जाकर यज्ञ विध्वस कर दें। यह यज्ञ लका के भीतर तहखाने मे हो रहा है। वहाँ लक्ष्मणजी की आवश्यकता नही है। केवल इतना ही काम है कि यज्ञ विध्वस हो जाय। सो इतना वीर वानर लोग भली भाँति सम्पन्न कर सकते हैं। जहाँ यज्ञ विध्वस हुआ कि रावण यहाँ आया। मैं उनके स्वभाव से भली भाँति परिचित हूँ। यहाँ आने पर सरकार उसका वध कर सकेंगे।

रात भर मे यज्ञ सम्पन्न हो नही सकता था। इसलिए रात को ही बन्दर लोग नही भेजे गये। प्रात काल होते ही सरकार ने हनुमान् अङ्गदादि वीरो को भेजा और वे लोग दौड पडे कि जितना शीघ्र यज्ञ विध्वस हो जाय उतना ही अच्छा अथवा बडे उत्साह से दौड पडे। हनुमान् और अङ्गद लका के भीतरी भाग से अधिक परिचित थे। अत मुखिया बनाकर ये ही भेजे गये।

कौतुक कूदि चढे कपि लका। पैठे रावन भवन असका॥
जग्य करत जबही सो देखा। सकल कपिन्ह भा क्रोध बिसेखा॥३॥

अर्थ · खेल मे ही बन्दर कूदकर लका पर चढ गये और रावण के महल मे नि शङ्क घुस गये। जब उसे यज्ञ करते बन्दरो ने देखा तो उन लोगो को विशेष क्रोध हुआ।

व्याख्या लका का प्राकार इतना ऊँचा था कि उस पर उडकर चिडिया नही बैठ सकती थी। सो उस प्राकार पर खेल मे ही कूदकर चढ गये। फाटक से प्रवेश नही किया। शत्रु के घर मे युद्ध के लिए रास्ते से नही जाने की नीति शास्त्र की आज्ञा है। रावण का महल जहाँ पर प्रवेश करने मे ब्रह्मादिक देव सशङ्क रहते थे: ब्रह्मन्नध्ययनस्य नैष समयस्तूष्णी बहि. स्थीयताम् स्वल्प जल्प बृहस्पते जडमते नैषा सभा वज्रिण.। स्तोत्र सहर नारद स्तुतिकथालापैरल तुम्बुरो सीतारल्लकभल्लभग्न-हृदय. स्वस्थो न लकेश्वर.। प्रतीहारी कहता है कि · ब्रह्मा! यह वेद पढने का समय नही है। चुप होकर बाहर बैठो। और हे जडमति बृहस्पति! तुम थोडा बोलो। यह इन्द्र की सभा नही है। नारद तुम अपनी स्तुति समाप्त करो। तुम्बुर तुम अपना अलाप बन्द करो। सीता के अलक से भग्न हो गया है हृदय जिसका ऐसे लङ्केश्वर की तबीयत ठीक नही है। उस महल मे वीर बन्दर नि.शङ्क घुस गये।

जब उसे यज्ञ करते देखा। भाव यह कि पता नही लगता था कि कहाँ यज्ञ कर रहा है। विभीषण की स्त्री के इङ्गित से पता लगा कि तहखाने मे यज्ञ कर रहा है। तब शिला तोडकर भीतर घुसे और वहाँ उसे यज्ञ करते देखकर बन्दरो को विशेष क्रोध हुआ कि यहाँ छिपा हुआ यह कार्य साधन कर रहा है। इसी उद्गार को स्पष्ट रूप से कहते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रन ते निलज भाजि गृह आवा । इहाँ आइ बक ध्यान लगावा ॥
अस कहि अंगद मारेउ लाता । चितव न सठ स्वारथ मन राता ॥४॥

अर्थ रे निर्लज्ज ! तू रण से भागकर घर आया और यहाँ आकर बगुलाभक्त बन बैठा है। ऐसा कहकर अङ्गद ने लात मारा। परन्तु उस शठ ने देखा भी नही। अपने स्वार्थ में ही मन लगाये रहा।

व्याख्या जिसे लज्जा होती है पर यदि रण से विमुख भी होता है तो अपने घर मे मुख नही दिखलाता। यथा समर सैन तजि गयउ पराई। गयउ न गृह मन बहुत गलानी। तू निर्लज्ज है। रण से भागकर घर आया और यहाँ आकर ध्यान लगाकर बैठा है। सो यह तेरा ध्यान बगलवाला ध्यान है। बगुला मछली पर ध्यान लगाये एक पैर से खडा रहता है। उसका ध्यान पाखण्डमात्र है। इसी भाँति तेरा यज्ञ ध्यानादि भी पाखण्ड मात्र है। यह भगवद् आराधना नही है। ऐसा कहकर अङ्गद ने लात मारा। जिसमे अपमान न सहकर उठ पडे। पर उसने देखा भी नही कि कौन है। अपने स्वार्थ म ही मन लगाये रहा कि भला लात मार क चल जायें। शठ है हठ के वश दुर्गति सहन कर रहा है।

छं[1] नहि चितव जब करि कोप कपि गहि दसन लातन्ह मारही।
धरि केस [2]नारि निकारि बाहेर तेऽतिदीन पुकारही॥
तब उठेउ क्रुद्ध कृतांत सम गहि चरन बानर डारई।
एहि बीच कपिन्ह बिधंस कृत मख देखि मनमहुँ हारई॥

अर्थ जब नही देखा तब बन्दर क्रोध करके दाँत से पकडते और लातो से मारत हैं। बाल पकडकर स्त्रियो को बाहर खैंच ल आये। वे अत्यन्त दीन होकर पुकारने लगी। तब क्रोध करके काल के समान उठा। पकडकर बन्दरो को फेंकने लगा। इसी बीच मे बन्दरो ने यज्ञ विध्वस कर दिया। यह देखकर मन मे उसने हार माना।

व्याख्या जब उसने न देखा तब बन्दर उसे दाँत से पकडकर काटने और लात से मारने लगे। मेघनाद की चोटी पकडकर लात से मारा था। रावण को दाँत काटते हैं। अङ्गदजी ने यह कहा था कि युद्ध मे जब तेरे सिर गिरेंगे तो बन्दर उससे गद का खेल करेंगे। तेरे सिर को लात का ठोकर लगावेंगे। सो रावण को जीते ही लात मारते हैं। फिर भी नही उठा। यजमान को आसन से विचलित करना भी यज्ञविध्वस का अङ्ग है। मेघनाद का पहिले यज्ञ ही विध्वस किया। फिर भी वह न उठा। तब बन्दरो ने समझ लिया कि जब तक यजमान आसन न

---

१ हरिगीतिका छ द है।
२ यह लडाई हस्तनक्षत्र की वर्षा है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



छोडे तब तक यज्ञ की क्षति पूर्ति की जा सकती है। अत यजमान को आस छोडाने के लिए लाचार करने का प्रयत्न यहाँ पहिले ही करने लगे। जब किस प्रकार से नही उठा तो हनुमान्‌जी मन्दोदरी का केश पकडकर वहाँ खेंच लाये यथा जयति मन्दोदरी केश कर्षण निपुण विद्यमान दसकठ भट मुकुटमानी जगदम्बा का केश पकडकर रथ पर बिठाया था। उसी कर्म का यह परिपाक था इन लोगो के कर्म के फल देनेवाले हनुमान्‌जी थे। यथा जयति दुष्ट रावन कुम्भकर पाकारिजित् मर्मभित् कर्मपरिपाकदाता। सम्भव है कि अन्य वन्दरो ने और रानिय की यही गति की हो। सो वे सब पुकार करने लगी। यह रावण नही सह सके काल की भाँति क्रुद्ध होकर उठा तो बन्दरो का पैर पकडकर फकने लगा। इत ही देर मे हनुमान् अङ्गद ने यज्ञ विध्वस कर दिया। देखकर रावण ने मन मे हा मान लिया। इसी यज्ञ का भरोसा था। सो नष्ट हो गया। नष्ट हुआ यज्ञ यजमा का नाश करेगा। अत उपाय उलटा पड गया।

## ७५ रघुपति रावण समर प्रसग

दो जग्य विधसि कुसल कपि, आये रघुपति पास।
चलेउ निसाचर क्रुद्ध होइ, त्यागि जिवन कै आस ॥८५।

अर्थ यज्ञ विध्वस करके सब बन्दर सकुशल रामजी के पास आये। लङ्कापति जीने की आशा छोडकर क्रुद्ध होकर चले।

व्याख्या सब वन्दर यज्ञ विध्वस करके सरकार के पास आगये। एक वन्द भी मारा न गया। तब लका के स्वामी रावण क्रुद्ध होकर चल। बन्दरो से व भारी मानभङ्ग हुआ। इससे क्रुद्ध हैं और यज्ञ विध्वस हो गया इसलिए अप जीवन से हताश हा गये है। लङ्कापति पाठ मे कहने का भाव यह कि फिर भी ब ठाटवाट से चले।

चलत होहिं असि असुभ भयकर। बैठहि गीध उडाइ सिरन्ह पर ॥
भयेउ कालबस काहु न माना। कहेसि बजावहु जुद्ध निसाना ॥१।

अर्थ चलने के समय अत्यन्त भयङ्कर अशुभ हो रहा है। उड उडकर गि सिरो पर बैठते हैं। वह कालवश हो गया था। उसने एक न माना। आज्ञा दे कि जुझाऊ डङ्का वजे।

व्याख्या पहिली ही युद्धयात्रा म बहुत से असगुन हुए। गामायु गीध करा खर रव स्वान रोवहिं अति घने। परन्तु इस बार तो अत्यन्त भयकर अपशकुन हुए गीध उडकर सिरो पर बैठने लगे। परमेश्वर के दिये दस सिर हैं। एक सिर पर गीध को उडाते हैं तो दूसरे पर जाकर बैठते हैं। सैनिको के सिर पर भी गीध उ उडकर बैठ रहे हैं।

रावण अत्यन्त अभिमानी हैं। न शकुन को गिनते है। न अपशकुन को गिन

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हैं। परन्तु वह अपशकुन तो ऐसा भयकर है कि अति अभिमानी भी इसकी उपेक्षा नही कर सकता। पर रावण कालवश है। जो कालवश हो जाता है वह कुछ नही मानता। यथा जाहु न निजपर सूझ मोहि भयउँ कालबस बीर। रावण ने आज्ञा दे दी कि जुझाऊ डङ्का बजे। सब सेना तैयार होकर चले।

चली तमीचर अनी अपारा। बहु गज रथ पदाति असवारा ॥
प्रभु सनमुख धाये खल कैसे। सलभ समूह अनल कहँ जैसे ॥२॥

अर्थ निसाचरो की अपार सेना चली। बहुत से हाथी रथ पैदल और असवार थे। प्रभु के सामने खल कैसे दौडे। जैसे बडी भारी चतुरङ्गिनी सेना थी। पहिली बार भी लगभग इस आशय की अर्धाली कवि ने लिखी है। चलउ निसाचर कटक अपारा। चतुरंगिनी अनी बहुधारा। अर्थात् पहिल युद्ध मे जो कमी हुई थी वह पूरी हो गयी। सारी सेना चल पडी।

राक्षसो मे उत्साह की कमी नही है। जैसे पतङ्गो का दल अग्नि पर टूटता है। इस भाँति वे खल बडे वेग से उड चले। प्रज्वलित अग्नि की ओर फनगे अपने नाश के लिए बडे वेग से दौडते हैं। यथा प्रदीप्त ज्वलन पतङ्गा विशन्ति नाशाय समृद्धवेगा। हनुमान्‌जी ने जो भविष्य वाणी की थी वह चरितार्थ होने जा रही है। निसिचर निकर पतग सम रघुपति बान कृसानु। जननी हृदय धीर धीरु जरे निसाचर जानु। शलभ समूह की भाँति राक्षस उडते चल आते हैं। इसलिए उठी रेनु रबि गयउ छपाई। मरुत थकित बसुधा अकुलाई। आदि वर्णन नही किया।

इहाँ देवतन्ह बिनती कीन्ही। दारुन बिपति हमहिं एहिं दीन्ही ॥
अब जनि राम खेलावहु एही। अतिसय दुखित होति बैदेही ॥३॥

अर्थ यहाँ देवताओ ने विनती की कि इसने हमे दारुण दुःख दिया है। रामजी! अब इसे न खेलाइये। वैदेही अत्यन्त दुःखी हो रही हैं।

व्याख्या अब कवि अपने पक्ष का ब्यौरा सुनाते हैं कि यहाँ देवता लोग पहुँचे। सरकार से बडी विनती की कि इस खल के वध मे शीघ्रता कीजिये। इसे खेलाइये मत। मेघनाद वध के लिए शीघ्रता करने को नारदजी कह गये थे और रावणवध मे शीघ्रता कराने के लिए देवता आये। पहिले अपना दुःख सुनाया। ललकार ललकारकर गाली देता है। कन्या हरण करता है। हम लोगो को मेरु पर्वत के खोह मे छिपाकर प्राण बचाना पडता है। कुछ लोगो को उसके दरबार मे हाजिरी बजानी पडती है। तिस पर अपावन यज्ञ करता है। जिससे हम लोगो को अशुद्ध हवि ग्रहण करना पडता और उससे सद्य तेज नष्ट होता है। पावन यज्ञ होने नही देता इत्यादि। हम लोग तो बहुत दिन से दुःख पा ही रहे हैं। अब वैदेही का दुःख हम लोगो से नही देखा जाता। सरकार कहते थे एक बार कैसेहुँ सुधि जानौं। कालहु जीति निमिष महुँ आनौं। सो उसका समय आगया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



देव बचन सुनि प्रभु मुसकाना । उठि रघुबीर सुधारे बाना ॥
जटाजूट दृढ बाँधे माथे । सोहहिं सुमन बीच बिच गाँथे ॥४॥

अर्थ देवताओ के वचन सुनकर प्रभु मुसकुराये और उठकर बाण सुधारा। जटा का जूट माथे पर कस करके बाँधा। बीच बीच मे उसके फूल गुँथे थे। उनकी शोभा हो रही थी।

व्याख्या देवताओ का वचन अतिसय दुखित होति बैदेही। सुनकर मुसकुराये। वैदेही हरण के लिए ही तो वनवास का प्रपञ्च इन लोगो ने रचा। सो आज वैदेही के दु ख से इतने दु खित हो गये। परन्तु देवताओ की विनती सुनकर रामजी उठ गये और बाण सुधारने लगे। अथवा वीरो के अट्टाहास की भाँति उनका मुसकुराना भी भय सूचक है।

युद्ध के समय मुख के सामने जटा न आजाय इसलिए उसका जूडा बनाकर सिर मे दृढ करके बाँधा। राजकुमार हैं। अत निर्वेद और वीर रस मे भी शृङ्गार की झलक कुछ आ ही जाती है। जटा मे भी बीच बीच मे फूल गुँथे हैं। सरकार के जटाजूट मे होने से उन फूलो की अधिक शोभा हा रही है।

अरुन नयन बारिद तनु स्यामा । अखिल लोक लोचनाभिरामा ॥
कटितट परिकर कस्यो निषगा । कर कोदड कठिन सारगा ॥५॥

अर्थ अरुणारे नयन हैं। शरीर मेघ की भाँति श्याम है जो सम्पूर्ण लोक के नेत्रो को सुख देनेवाला है। कमर मे फेटा और तरकस कसा हुआ है और हाथ मे कठोर सारङ्ग धनुष है।

व्याख्या . जैसे सावन घन की घटा देखकर सम्पूर्ण लोक की आँखें तृप्त हो जाती हैं उसी भाँति सरकार के श्याम शरीर के दर्शन से ससार कृतार्थ होता है। अत उसकी उपमा मेघ से दी। देवताओ की विपत्ति सुनने से क्रोध भी है। अत गुलाबी नेत्र लाल हो रहे हैं। कमरे मे फेटा बाँधा और तरकस कस लिये। निषङ्गा बहुवचन है और हाथ म वही सारङ्ग धनुष लिया जिसके द्वारा कुम्भकर्ण वध हुआ था। निर्गलितार्थ यह कि सरकार स्वय युद्ध के लिए खडे हो गये।

छ[1] सारग कर सुदर निषग सिलीमुखाकर कटि कस्यो ।
भुजदड पीन मनोहरायत उर धरासुरपद लस्यो ॥
कह दास तुलसी जबहिं प्रभु सर चाप कर फेरन लगे ।
ब्रह्माड दिग्गज कमठ अहिमहि सिंधु भूधर डगमगे ॥

अर्थ सुन्दर शाङ्गं धनुष हाथ मे है और बाण का खान अक्षय तुणीर

---

१ हरिगीतिका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कमर मे कसे हुए हैं। सुन्दर मोटी भुजाएँ और चौडी छाती म ब्राह्मण का चरण चिह्न शोभायमान है। तुलसीदासजी कहते हैं कि जिस समय प्रभु हाथ से धनुष बाण फेरने लगे तो ब्रह्माण्ड, दिग्गज, कच्छप, शेष, समुद्र, पृथिवी और पहाड इत्यादि सब डगमगाने लगे।

व्याख्या शार्ङ्ग धनुष दिव्य है और बाणो की खानि तरकस से अक्षय तूणीर अभिप्रेत है। वह भी दिव्य है और उस दिव्य धनुष के सञ्चालन के लिए दिव्य बल से पूर्ण पीन भुजदण्ड है और आयत वक्ष स्थल मे ब्राह्मण के चरण चिह्न होने से दिव्य कवच की सूचना देता है। यथा कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा। ऐसी दिव्य मूर्ति के पराक्रमोन्मुख होने से चाप शर के फेरने से १ ब्रह्माण्ड २ दिग्गज ३ कच्छप ४ शेष ५ पृथिवी ६ समुद्र और ७ पहाड हिलने लगे।

अथवा यहाँ सात क्रिया सरकार ने की। १ मुसकुराने से ब्रह्माण्ड हिला २ उठने से दिग्गज हिले। ३ बाण सुधारने से कच्छप हिले। ४ जटाजूट बाँधने से शेष हिल। ५ कटितट मे निषङ्ग कसने से पृथिवी हिली। ६ हाथ म शार्ङ्ग लने से समुद्र हिला। ७ और फेरने से पहाड हिले।

दो सोभा देखि हरखि सुर बरखहिं सुमन अपार।
जय जय जय करुनानिधि छबि बल गुन अगार ॥८६॥

अर्थ यह छवि देखकर देवता लोग हर्षित हुए। अपार पुष्पो की वर्षा हुई और बोले कि करुणानिधि और छवि बल तथा गुण के आगार प्रभु का जय हो।

व्याख्या इस छवि को देखकर देवता लोग हर्षित हैं। क्योकि यह वीर रस की अपूर्व झाँकी है। इसी से मनोरथ पूर्ण होगा। अत अपार फूलो की वर्षा की। राक्षसो की अपार सेना का नाश करेंगे। अत यदि एक निशाचर वध के उपलक्ष मे एक फूल भी चढ़ावें तो अपार फूल चढाना प्राप्त था। कहते हैं कि प्रभो! आप गुणो के धाम हैं। यथा देव बचन सुनि प्रभु मुसुकाना। उठि रघुबीर सुधारे बाना। आप ज्ञान के धाम है। यथा उर धरासुर पद लस्यो। यह आपके ज्ञान धाम होने का चिह्न है। आप बलधाम है। आपके युद्ध के लिए प्रस्तुत होने मे ब्रह्माण्ड आदि हिल रहे हैं। आपकी जय हो। जय हो कहकर स्तुति करत हैं।

एही बीच निसाचर अनी। कसमसात आई अति घनी ॥
देखि चले सनमुख कपि भट्टा। प्रलयकाल के जनु घनघट्टा ॥१॥

अर्थ इसी बीच मे अतिघनी निशाचरी सेना कसमस करती हुई आयी। देख करक बानर वीर सामने चल जैसे प्रलय काल की घनघटा हो।

व्याख्या : पुष्पवर्षा और स्तुति हो रही थी कि निशाचरी सेना आगयी। युद्ध का बडा उत्साह है। बडे प्रात काल ही आगयी। बानरी सेना को चारो फाटक पर पहुँचने का अवसर न मिला। सेना बहुत बडी है फिर भी इतनी घनी है कि

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सैनिक एक दूसरे से सटे हुए आ रहे हैं। पहिले उपमा दे चुके हैं। सेना तो कज्जल की आँधी सी आ रही है और हाथी का समूह वर्षा के बादल सा है। ऐसी सेना को आती देखकर इधर से वानरी सेना चली जैसे प्रलयकाल की घनघटा उठी हो। प्रलयकाल की घनघटा लाल पीली हरी आदि अनेक रंग की होती है। इधर बन्दर अनेक रङ्ग के हैं। अतः उनका समूह प्रलयकाल के घनघटा से उपमित किया गया। यथा : महाबली निसिचर सब कारे। नाना रंग भालु कपि भारे।

बहु कृपान तरवारि चमंकहिं। जनु दहदिसि दामिनी दमकहिं ॥
गज रथ तुरग चिकार कठोरा। गर्जहि मनहुँ बलाहक घोरा ॥२॥

अर्थ : बहुत सी तलवारें तथा कृपाण चमक रहे हैं। मानो दसों दिशाओं में बिजली चमक रही है हाथी और रथ के घोड़े कठोर चिग्घाड़ कर रहे हैं, मानो बादल घोर गर्जन कर रहे हैं।

व्याख्या : नंगी तलवार लिये योद्धा चले आ रहे हैं। पंक्ति की पंक्ति नंगी तलवार लिये हुए है। उन पर प्रातःकाल के सूर्य की किरणें पड रही हैं। इसलिए चमक अधिक है। सेना के चलने से चमक स्थिर नहीं है। अतः उस चमक की उपमा बिजली की दमक से दे रहे हैं जो दिशाओं में चमक रही है।

पहिली सेना जब आयी थी उसमे भी वाजि गज चिक्कार करते थे। इस बार की चढ़ाई में कठोर चिक्कार कर रहे हैं। यह भी महा अशुभ है। नहीं तो : गर्जहि गजघटा धुनि घोरा। रथरव बाजि हिंस चहुओरा। यहाँ रथतुरग का अर्थ रथ का घोड़ा किया गया। यदि रथ और घोडा किया जाय तो यह अर्थ करना पड़ेगा कि रथ से भी चिक्कार के शब्द सुनाई पड रहे हैं। इनकी उपमा घोर बादल के गर्जन से दे रहे हैं।

कपि लंगूर बिपुल नभ छाए। मनहुँ इंद्रधनु उए सुहाए ॥
उठै धूरि मानहु जलधारा। बान बुंद भै वृष्टि[१] अपारा ॥३॥

अर्थ : बन्दरों की बहुत सी पूँछे आकाश में छायी हुई हैं। जैसे सुन्दर इन्द्रधनु उदय हुआ हो। धूलि ऐसी उठी मानो जल की धारा है और बाणरूपी बूँदों की अपार वृष्टि हुई।

व्याख्या : वर्षा का रूपक बिना इन्द्रधनुष के वर्णन किये पूरा नहीं होगा। सो कहते हैं कि आवेश से बन्दरों ने पूँछे उठा रक्खी हैं। जिस जिस रङ्ग के बन्दर हैं उसी उसी रङ्ग की उनकी पूछें हैं। सतरंगे बन्दर हैं। अतः उनके पूछों के समूह की इन्द्रधनु ऐसी शोभा है। प्रलय घन के समान वानरी सेना चली है। सो पच्चिबद्ध पूँछों की शोभा कह रहे हैं। सेना के चलने से जो धूलि उठी उसने पृथिवी आकाश को

१ यह लड़ाई चित्रानक्षत्र की वर्षा है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



एक कर दिया। जिस भाँति मेघो से जलधारा छूटने से आकाश और पृथिवी एक हो जाती है। कवि युद्ध से अलग खडे होकर दृश्य देख रहे हैं। जहाँ वृष्टि न होती हो वहाँ से ही देखने से जलधारा की शोभा दिखाई पडती है। अब आती हुई जलधारा की बूँदें पृथिवी पर पडनी चाहिए। सो जैसे पहिली बूँदे फट् फट् शब्द करती हुई पृथिवी पर पड़ती हैं इसी भाँति ऊपर से बाण पडने लगे। दोनो सेनाएँ बाण के चोट की दूरी पर आगयी।

दुहुँ दिसि पर्बत करहिं प्रहारा। बज्रपात जनु बारहिं बारा ॥
रघुपति कोपि बान झरि लाई। घायल भे निसिचर समुदाई ॥४॥

अर्थ : दोनो ओर से पर्वत की चोट चलने लगी। मानो बार बार वज्रपात हो रहा है। रामजी ने क्रोध करके बाणो की झरी लगा दी। राक्षसो का समूह घायल हो गया।

व्याख्या : अब सेनाएँ और निकट आगयी। पत्थर के चोट की दूरी पर आगयी। तो दोनो ओर से पत्थर का प्रहार प्रारम्भ हुआ। आज राक्षसी दल से भी पत्थर चल रहा है। देख लिया कि युद्ध मे पत्थर की चोट के सामने हथियार काम नही करते। अत: राक्षस भी आज पर्वत लेकर आये है। पर्वत से पर्वत टक्कर खा रहे हैं। अतः बार बार वज्रपात होने से उपमा दे रहे हैं। वज्रपात का शब्द गर्जन के शब्द से अधिक होता है।

उधर राक्षसी सेना की ओर से बाण चलने लगे। पहिली लडाई मे रावण ने अपनी बनैती दिखायी थी। यथा : सन्धानि धनु सर निकर छाडे उरग जिमि उडि लागही। रहे पूरि सर धरनी गगन दिसि बिदिसि कहँ कपि भागही। अत इस बार सरकार स्वय खडे होकर बाणो की झर लगा दिया। केवल बाण बाण दिखाई पड़ रहे हैं। न धनुष न तरकस न सन्धान न खेंचना न छोडना कुछ दिखाई नही पड रहा है। एक कदम राक्षसी सेना आगे नही बढ सकती। बन्दरो की सेना भी जहाँ की तहाँ रह गयी। रावण भी मुँह देखते रह गये। किसी का किया कुछ हुआ नही। निशाचरी सेना की सेना घायल हो गयी।

लागत बान बीर चिक्करही। घुर्मि घुर्मि जहँ तहँ महि परही ॥
स्रवहि सैल जनु निर्झर बारी। सोनित सरि कादर भयकारी ॥५॥

अर्थ : बाण लगते ही वीर चिग्घाड़ने लगते थे। घूम घूमकर जो जहाँ सो तहाँ ही पृथिवी पर गिरने लगे। जैसे पर्वत झरना द्वारा पानी बहता है वैसे ही कायरो को भयभीत करनेवाली रक्त की नदी बह चली।

व्याख्या : यद्यपि बाणो की झरी लगी थी फिर भी बाणो का वेग हल्का नही है। बाण लगते ही वीर चिग्घाड उठते हैं। जिसे बाण लगा वह वही घूमकर गिरा। रावण के बाण साँप की भाँति उडकर लगते थे। साँप मे विष चाहे जैसा हो पर घाव गहरा नही कर सकता। यहाँ तो झरने की भाँति रक्त की धार बह चली।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अगणित वीर गिरे हैं। सबके शरीर से झरने के जल की भाँति रक्तस्राव हो रहा है। बहुत से झरने के जल एकत्रित होकर ही नदी बहती है सो रक्त की नदी बह चली। सबके शरीर से झरने के जल को बह चली। रक्त जब तक गरम रहता है तभी तक उसमे द्रवता रहती है। जहाँ ठण्ढा पडा तहाँ जम जाता है। यहाँ एक साथ इतना रक्त बहा कि उसकी नदी बह चली। उसे देखकर कादर के तो प्राणपखेरू उड जायँ।

छं.[1] कादर भयकर रुधिर सरिता चली परम अपावनी।
दोउ कूल दल रथ रेत चक्र अवर्त बहति भयावनी॥
जल जंतु गज पदचर तुरग खर बिबिध बाहन को गने।
सर सक्ति तोमर सर्प चाप तरग चर्म कमठ घने॥

अर्थ : कादरो को भय उपजानेवाली रक्त की परम अपावन नदी बह चली। दोनो दल उसके दोनो किनारे थे। रथ बालू और पहिये भँवर थे। भयानकरूप से नदी बह रही थी। हाथी पैदल घोडे गधे और अगणित वाहन ही उसमे जलजन्तु रूप थे। बाण बरछी और तोमर सर्प रूप थे। धनुष लहर और ढाल कछुए थे।

व्याख्या : कादर को तो रक्त देखते ही चक्कर आता है। रक्तनदी के देखने मे तो वे सर्वथा असमर्थ हैं। नदी पावनी होती है पर रक्तनदी परम अपावनी है। भीभत्स रस की पराकाष्ठा है। ऐसी नदी इतने बडे सग्राम मे न बही और न बहेगी। अत भाद्रपद कृष्ण त्रयोदशी की बाढ है। भाद्रकृष्णत्रयोदश्या :श्रीगङ्गा यत्र तिष्ठति। गगागर्भ. स विज्ञेयस्तटस्तु तदनन्तरम्। भादो बदी तेरस की जहाँ तक गङ्गा रहे तहाँ तक गङ्गागर्भ समझना चाहिए। किनारा तो उसके बाद है। अत भादो बदी तेरस तक की बाढ को बाढ की सीमा माना गया है। वह रक्त की नदी दोनो दल के बीच से बही। इसलिए दोनो दल उसके किनारे हुए युद्ध मे टूटे हुए रथ मानो किनारे के बालू है। रथ के चक्र मानो नदी के भँवर है। मरे हुए हाथी घोडा पैदल गधे आदि वाहन मानो उस नदी के जलजन्तु हैं। बाण बरछा तोमर आदि शस्त्र सीधे-सीधे होते हैं। वे वीरो के हाथ से छूटे हुए पडे हैं। वे ही मानो सर्प हैं और गोलाकार ढाल ही मानो कछुवे हैं।

दो. बीर परहिं जनु तीरतरु, मज्जा बह जनु फेन।
कादर देखत डरहिं तेहि, सुभटन के मन चैन॥८७॥

अर्थ : वीर लोग तीर के पेडो की भाँति गिर रहे हैं। चरबी फेन की भाँति बह रही है। कायर तो उसे देखकर डरते हैं। पर वीरो के मन मे चैन है।

व्याख्या : जब नदी बढती है तो तट के वृक्ष गिरने लगते हैं। इसीलिये तट के वृक्ष सदा मृत्यु के मुख मे रहते हैं। रावण ने कहा . तुम सुग्रीव कूलद्रुम दोऊ। नदी मे बाढ आने से फेन बहने लगता है। यहाँ रक्तनदी मे चर्वी बह रही है।

---

१ हरिगीतिका छन्द।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सोनित सरि कादर भयकारी : से उपक्रम करके : कादर देखि डरहिं तेहि कहकर उपसंहार करते हैं। ऐसी नदी को देखकर वीरों को प्रसन्नता होती है। क्योंकि उनकी वीरता की परख तो उसी समय है। उन्हें वहाँ युद्धयज्ञ की दृष्टि होती है। कादर को हिंसा ही हिंसा दिखाई पडती है।

मज्जहिं भूत पिसाच बेताला। प्रमथ महा झोटिंग कराला॥
काक कंक लै भुजा उड़ाही। एक ते छीनि एक धरि खाही॥१॥

अर्थ : भूत, पिशाच, बेताल, रुद्रगण तथा कराल महाभैरव वहाँ स्नान कर रहे हैं। कौवे और चील्ह भुजा लेकर उडते हैं। एक से छीनकर दूसरे पकडकर खा जाते हैं।

व्याख्या : भूत नीचे दर्जे के देवगण हैं। पिशाच मांस खानेवाले प्रेतगण हैं। छाया सा रूप रखनेवाले प्रेत को बेताल कहते हैं। ये लोग तथा रुद्रगण और कराल महाभैरव उसमे नहाने वाले हैं। इन्द्रद्युम्न पर्व लग गया है। गङ्गाजी जब बहुत बढ जाती हैं तब यह पर्व लगता है। काशी के लोग ही इस पर्व से परिचित हैं।

बिना महाभैरव के इतना बड़ा संहार हो नही सकता। सो वे भी आगये। सद्य शोणित के प्रेमी रुद्रगण भी पहुँच गये। यथा भूषण कराल कपाल कर सब सद्य सोनित तन भरे। इन्हे ताजा शोणित इतना प्रिय है कि उसीमे इनका स्नान होता है। युद्धमे इनका आगमन होता है। स्थूल दृष्टि से नही देखे जाते।

चील्ह और कौवे मासभक्षी पक्षी हैं, जहाँ कसाइयो की दूकान होती है वहाँ ये बहुत से उडते दिखाई पडते हैं। संग्राम मे ही इनकी इच्छा पूर्ति होती है। सो बहुत से काककङ्क आये हुए है। उन्होने पेट भर लिया और संग्रह के लिए कटी हुई भुजा लेकर उड चले। पता पाकर नये काककङ्क चले आ रहे थे। उन्हे ये रास्ते मे मिले। वे इनसे भुजाओ को छीनने लगे।

एक कहहिं ऐसिउ सौंघाई। सठहु तुम्हार दरिद्र न जाई॥
कहँरत भट घायलतट गिरे। जहँ तहँ मनहु अर्ध जल परे॥२॥

अर्थ : एक ने कहा कि इतनी बहुतायतमे भी दुष्ट! तुम्हारा दारिद्रय नही दूर होता। घायल वीर कराहते हुए तट पर गिरे हैं। जहाँ तहाँ मानो : मृतक आधे जल मे पडे हुए है।

व्याख्या : उनमे कुछ समझदार काककङ्क रहे। वे उन छीनछोर करनेवालो से बोले कि दुष्टो! इतनी बहुतायत यहाँ मास की है। क्या घाटा है जो छीनछोर करते हो। तुम्हारा दरिद्र स्वभाव पड गया है जो नही छूटता। भाव यह कि ऊपर मासभक्षी पक्षी आपस मे मास के लिए लड रहे थे। इसस यह न समझना कि उस रणभूमि मे मास की कमी थी। उनका स्वभाव ही ऐसा है। इसलिए लड रहे थे।

पहले कह आये हैं कि वीर परहिं जनु तीरतरु। सो उनमें से कुछ एक के प्राण बाकी हैं। वे कराहते हुए गिरे हैं। आधे बाहर और आधे रक्तनदी के भीतर पडे हुए

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हैं। उनकी उपमा नदी किनारे लाये हुए आसन्न मरण की भाँति जो कि आधा जल मे और आधा जल के बाहर रख दिये जाते हैं।

खैचहि गीध आँत तट भएँ। जनु बंसी खेलत चित दएँ॥
बहु भट बहहिं चढे खग जाही। जनु नावरि खेलहिं सरि माही॥३॥

अर्थ : कही गीध किनारे पर से आँत खैंच रहे हैं। जैसे मन लगाकर मछली का शिकार खेलते हो। बहुत से योद्धा बहे जा रहे हैं। उन पर पक्षी बैठे हुए हैं मानो नदी मे नावरि खेल रहे हैं।

व्याख्या : कुछ मर गये हैं और नदी मे आ पडे हैं। उनकी आँत गीध तट पर से खैंच रहे हैं। उनकी उपमा उन मछली मारनेवालो से है जो पानी मे वसी डालकर मछली फँसाते हैं।

कविने नदी का पूरा रूपक खैंचा है। जब नदीमे बाढ आती है तो उसकी सैर करने के लिए लोग नावो पर विहार करते हैं। जिसे नावरि खेलना कहा जाता है। उन मुर्दों मे से जो नदी के वेग मे आ पडे वे बहे जा रहे हैं। पक्षी आकर उन पर बैठ जाते हैं। उनकी उपमा नावरि खेलनेवालो से है।

जोगिनि भरि भरि खप्पर संचहि। भूत पिसाच बधू नभ नंचहि॥
भट कपाल करताल बजावहि। चामुंडा नाना विधि गावहि॥४॥

अर्थ : योगिनियाँ खप्पर भर भरकर सञ्चय कर रही हैं। भूत पिशाच की वधू आकाश मे नाच रही हैं। वीर लोगो के कपाल को बजाकर ताल दे रही हैं और चामुण्डा अनेक प्रकार का गान कर रही हैं।

व्याख्या : प्रेतयोनि विशेष को योगिनी कहते हैं। उन्होंने जी भरकर रक्त पान तो कर लिया। अब कल के लिए खप्पर मे रक्त भर भरकर सञ्चित कर रही हैं। भूत पिशाच की वधू आनन्द के आकाश मे नृत्य कर रही हैं। इतना ही नही चण्ड मुण्ड की वध करनेवाली काली भी प्रकट हो गयी। यस्माच्चण्डञ्च मुण्डञ्च गृहीत्वा त्वमुपागता। चामुण्डेति ततो लोके ख्याता देवी भविष्यति। देवी ने काली से कहा कि तुम चण्ड और मुण्ड का सिर लेकर आयी। इसलिए तुम्हारा नाम चामुण्डा होगा। सो चामुण्डा भी प्रकट होकर आनन्द से वीरो के मुण्डको बजा बजाकर अनेक प्रकार से गान करने लगी। पार्ष्णिग्राहाङ्कुशग्राहियोधघण्टासमन्वितान्। समादायैक-हस्तेन मुखे चिक्षेप वारणान्। तथैव योध तुरगै. रथ सारथिना सह। निक्षिप्य वक्त्रे दशनै. चर्वयन्त्यतिभैरवम्। उन काली देवी का यह हाल था कि एक हाथ से हाथी घण्टा हाथीवान् और योधा को पकड़कर मुख मे डाल लेती थी। उसी भाँति सारथी, रथी, रथ और घोड़ो को मुख मे डालकर बडे भयंकर रीति से चबाती थी। वे भी आज सन्तुष्ट होकर गान कर रही हैं। इससे आश्विन के नवरात्र मे ब्रह्मदेव द्वारा रावण वध के लिए देवी के जगाने का जो कथा है उसका भी इङ्गित मिलता है कि कालिका भगवती लका मे आगयीं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जंबुक निकर कटक्कट कट्टहिं । खाहिं हुहाहिं अघाहिं दपट्टहिं ॥
कोटिन्ह रुण्ड मुंड बिनु डोल्लहिं । सीस परे महि जय जय बोल्लहिं ॥५॥

अर्थ : गीदड़ोंका झुण्ड कटाकट काट रहा है। खा रहा है। हुआँ हुआँ करता है। डपटता है। करोड़ो धड़ बिना सिर के चल रहे हैं और सिर पृथिवी पर पड़े हुए जय जय बोल रहे हैं।

व्याख्या : शृगालो का समूह भी पहुँच गया। ये शवोको काट काटकर खाने लगे और आनन्द से हुआँ हुआँ करने लगे। पेट भर जाने पर नवागन्तुको को डपटने लगे। भाव यह कि आकाश मे पृथिवी पर सर्वत्र अति भयानक और बीभत्स दृश्य है।

रुण्ड तो कुम्भकर्ण के युद्ध मे भी उठे थे। लाखो सेना के मारे जाने पर कही एक रुण्ड उठता है। इस काल मे सुनते है कि ऊदल का रुण्ड उठा था। सो यहाँ करोड़ो रुण्ड उठे। जीत की धुन उनके सिर पर ऐसी सवार है कि सिर कटने पर भी युद्ध के लिए बढते चले जाते है और उनका मुण्ड पृथिवी पर पड़ा जय जय बोल रहा है।

छं.[1] बोल्लहिं जो जय जय मुंड रुंड प्रचंड सिर बिनु धावहीं ।
खप्परन्हि खग्ग अलुज्झि जुज्झहिं सुभट भटन्ह ढहावहीं ॥
बानर निसाचर निकर मर्दहिं रामबल दर्पित भए ।
संग्राम अंगन सुभट सोवहिं रामसर निकरन्हि हए ॥

अर्थ . कही मुण्ड जय जय बोलते थे। कही प्रचण्ड रुण्ड बिना सिर के दौड़ते थे। वे खोपड़ियो मे तथा खड्ग से उलझकर जूझते थे। कही अच्छे योद्धा दूसरे योद्धा को गिरा रहे थे। राक्षसो के समूह को मर्दन करके घमण्ड से भालू और बन्दर गरजते थे। रामजी के बाणो से मारे हुए योद्धा रणाङ्गन मे सो रहे थे।

व्याख्या : रुण्ड अन्धो को भाँति दौड़ते है। क्योकि सिर तो उन्हे है नही। वह तो पृथिवी पर पड़ा हुआ अलग जय जय कर रहा है। अत वे रुण्ड योगिनियो के खप्पर अथवा वीरो के खड्ग से उलझकर जूझ जाते हैं अर्थात् गिर जाते हैं। अथवा सुभट लोग भटो को गिरा देते हैं। रुण्ड यदि गिरा तो फिर नहीं उठ सकता। मर ही जायगा। बचे बचाये निशाचरो को भालु कपि मर्दन कर रहे हैं। उनका दर्प बढ गया है कि हम लोगो ने राक्षसो का संहार कर दिया। संग्राम भूमि मे जहाँ देखिये तहाँ रामजी के बाणो के मारे हुए वीर सो रहे हैं। अर्थात् मरे पड़े हैं।

दो. रावन हृदय बिचारा भा निसिचर संघार ।
मैं अकेल कपि भालु बहु, माया करौं अपार ॥८८॥

---

१ हरिगीतिका छन्द।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : रावण ने हृदय मे विचार किया कि राक्षसो का तो संहार हो गया। मैं अकेला हूँ। भालु बन्दर बहुत हैं। ऐसी माया रचूँ कि जिसका पार न हो।

व्याख्या : निसिचर हीन करउँ महि : यह प्रतिज्ञा पूरी हुई। रावण के मन ने कह दिया कि राक्षसो का संहार हो गया। अकेला मैं बचा हूँ। बन्दर भालु बहुत हैं। इनसे लड़ना मुझसे साध्य नही है। जो सेना बची है वह नही के बराबर है। रावण अपने को अकेला समझ रहे हैं। अतः अब ऐसी ऐसी माया करनी चाहिए कि इन सबो को उसका पार हाथ न लगे। इनके समझ मे न आवे कि असली मालिक कौन है। कुम्भकर्ण ने भी सेना का संहार देखा था। यथा : कुभकरन मन दीख बिचारी। हतौ छन मांझ निसाचर धारी। पर उसने बल से काम लिया। रावण माया से काम लेना चाहते है।

देवन्ह प्रभुहि पयादे देखा। उपजा उर अति छोभ बिसेखा॥
सुरपति निज रथु तुरत पठावा। हरख सहित मातलि लै आवा॥१॥

अर्थ : देवताओ ने सरकार को पैदल देखा। हृदय मे अत्यन्त विशेष क्षोभ उत्पन्न हुआ। इन्द्र ने अपना रथ तुरन्त भेज दिया। मातलि हर्षित होकर ले आया।

व्याख्या : पहिले कहा जा चुका है कि देवता लोग विनती करने आये थे। उसी समय निशाचरी सेना आयी। सरकार पैदल ही लडने चले। इस बात को देवताओ ने देखा। इधर रावण को रथ पर देखा। विभीषण की भाँति देवताओ के हृदय मे भी अति विशेष क्षोभ हुआ। अर्थात् वे भी अत्यन्त अधीर हो उठे। रावण का पराक्रम जानते हैं। सो इस समय रथारूढ है। देखा तो देवताओ ने उसी समय पर कवि को उस कथा के लिखने का अवसर अब मिला।

सुरपति हैं। इनका रथ भी सब देवताओके रथ से उत्तम है। उसे उन्होने तुरन्त भेजा। जल्दी इस बात की है कि सरकार बड़ी फुरती से निशाचरी सेना का संहार कर रहे हैं। अब राम रावण युद्ध हुआ ही चाहता है। सो उस युद्ध के आरम्भ होने के पहिले ही रथ पहुँच जाना चाहिए। इन्द्र भगवान् ने मातलि : अपने सारथी को आज्ञा दी कि तुरन्त रथ लेकर जाओ। मातलि बड़े हर्षित हुए कि अभी तक तो मुझे इन्द्र के सारथी होने का गौरव प्राप्त था। अब स्वय रामजी के सारथी होने जा रहे हैं। अत. बहुत प्रसन्न होकर रथ ले आये।

तेज पुंज रथ दिब्य अनूपा। बिहँसि चढे कोसलपुर भूपा॥
चंचल तुरग मनोहर चारी। अजर अमर मन सम गति कारी॥२॥

अर्थ : वह तेज पुंज रथ दिव्य था। कोशलपुर भूप उस पर हँसकर चढ गये। उसमे मन के हरण करनेवाले चार चञ्चल घोड़े थे जो अजर अमर और मन के सदृश वेगवाले थे।

व्याख्या : अब कवि उस रथ का, वर्णन करते हैं। साक्षात् देवराज का रथ है। अतः लौकिक रथ नही हो सकता। उसकी गति स्वर्ग से मृत्युलोक तक है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इसलिए दिव्य कहा। तेजपुञ्ज से काष्ठादि का अभाव कहा। उसका उपादान कारण तेज था। अत संग्राम मे तोडा नही जा सकता था। अत दूसरा कोई रथ ऐसा नही था जिससे उसकी उपमा दी जा सके।

घोडे के चञ्चल होने की ही प्रशसा है। यथा अपइ वजरत धरत पग धरनी और सुन्दर होने की प्रशसा है। सो इस रथ के घोडे सर्वलक्षण सम्पन्न हैं। देखने मे मनोहर हैं। चञ्चल हैं। रावण मरुत वेग रथ पर बैठते हैं। ये घोडे मन के समान गतिवाले हैं। अत रथ की भी गति मन के समान हुई। रावण के रथ को लक्ष्मणजी ने कई बार तोडा था। घोडे भी मारे थे। पर यह रथ शत्रु द्वारा न तो तोडा जा सकता था। न घोडे मारे जा सकते थे। क्योकि अजर अमर थे।

रथारूढ रघुनाथहि देखी। धाए कपि बल पाइ बिसेखी ॥
सही न जाइ कपिन्ह कै मारी। तब रावन माया बिस्तारी ॥३॥

अर्थ रामजी को रथारूढ़ देखकर बन्दर लोग विशेष बल पाकर दौडे। बन्दरो की चोट रावण सह न सके। तब उन्होने माया का विस्तार किया।

व्याख्या रामजी ने पैदल ही सम्पूर्ण राक्षसी सेना का संहार किया। अब तो रथारूढ हैं। अब इन्हे कौन पा सकता है। अत मालिक के उत्कर्ष से सेवको का बल बढ गया। सेवको को मालिक का बल रहता है। अब बन्दर रावण को मारने दौडे। क्योकि वे ही बच रहे थे। सो खूब पर्वत वृक्षादि से आघात किया।

पहिले बन्दरो ने जो आघात किया उसे रावण सह गये। लागहिं सैल बज्र तृन तासू। खड खड होइ फूटहिं आँसू। चला न अचल रहा रथ रोपी। रन दुर्मद रावन अति कोपी। पर इस बार बन्दरो ने ऐसा पिटान पीटा कि शरीर ढीला पड गया। अब चोट नही सही जाती। तब रावण ने माया फैलायी। कौन सी माया फैलाना चाहिए इस बात का निश्चय उसने पहिले ही कर रक्खा है कि अमुक माया का कोई पार न पा सकेगा।

सो माया रघुबीरहि बाँची। लछिमन कपिन्ह सो मानी साँची ॥
देखी कपिन्ह निसाचर अनी। अनुज सहित बहु कोसलधनी ॥४॥

अर्थ उस माया को रघुवीर ने ही समझा। वानरो ने और लक्ष्मण ने उसे सच्चा ही समझा। बन्दरो ने राक्षसो की सेना मे लक्ष्मण के सहित बहुत से रामचन्द्र को देखा।

व्याख्या जिस वर्णमाला से जो परिचित होता है उस वर्णमाला के लेख को वही बाँच सकता है। इसी भाँति जिस माया से जो परिचित होता है वही उसके मर्म को समझ सकता है। सरकार मायापति हैं। उनकी माया के वशवर्ती ब्रह्मादिक देवता और असुर सभी हैं। वे सभी माया को जानते हैं। उन्होने ता समझ लिया कि यह माया है। उसका भेद उनके सामने तो खुला ही खुलाया

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



था। लक्ष्मणजी और वन्दर उस माया को नही समझ सके। उन लोगों ने उसे सच्ची ही मान लिया। रज्जु के सर्प से तभी तक भय रहता है जब तक यह ज्ञान नही होता कि यह रज्जु है। ज्ञान होने पर सर्प दिखाई पड़ने पर भी भय नही होता। सो लक्ष्मणजी और बानरी सेना रज्जु को नही पहिचान सके। यह रज्जुस्थानीय राक्षसो की बची बचाई सेना थी। माया द्वारा वे ही राक्षस लक्ष्मणजी तथा वन्दरो को राम और लक्ष्मण दिखायी पड़ने लगे।

छं.[1] बहु राम लछिमन देखि मर्कट भालु मन अति अपडरे।
जनु चित्रलिखित समेत लछिमन जहँ सो तहँ चितवहिं खरे॥
निज सेन चकित बिलोकि हँसि सर चाप सजि कोसलधनी।
माया हरी हरि निमिष महुँ हरषी सकल मरकट अनी॥

अर्थ : बहुत से राम और लक्ष्मण को देखकर वन्दर और भालु मिथ्या भय से डर गये। लक्ष्मण के सहित वे मानों चित्र मे लिखे हुए हैं। इस भाँति खडे देखने लगे। अपनी सेना को चकित देखकर हँसकर कोशलाधीश ने धनुष बाण चढाकर एक निमिष मे माया हरण कर ली। तब तो बानरी सेना प्रसन्न हो गयी।

व्याख्या : अब बन्दर भालु राक्षसो को राम लक्ष्मण देख रहे हैं। किस पर प्रहार करें। अथवा राम और लक्ष्मण की आज्ञा से ही वे सब काम करते थे। सो इतने राम लक्ष्मण हो गये कि पता नही चलता कि जिनकी हम आज्ञा मानते थे वे इनमें से कौन हैं ? अब किसकी आज्ञा मानें। यह अद्भुत दृश्य देखकर वे सब स्तब्ध हो गये। लक्ष्मणजी वन्दरो के सहित इस भाँति खडे देख रहे हैं। जैसे चित्र मे लिखा हुआ व्यक्ति बिना पलक गिराये निश्चल रहता है। अपनी सेना को चकित देखकर सरकार हँस पडे कि लक्ष्मण भी धोखा खा गये। रावण ने दर्पणास्त्र का प्रयोग किया था। जिससे राम लक्ष्मण के प्रतिबिम्ब का आवरण राक्षसो पर पड रहा था। सो सरकार ने धनुष बाण सन्धान करके उस दर्पणास्त्र को काट दिया। प्रतिबिम्ब का आवरण दूर हो गया। पलक पडते पडते माया दूर हो गयी। बानरी सेना प्रसन्न हो उठी।

दो. बहुरि राम सब तन चितइ बोले बचन गँभीर।
द्वंदजुद्ध देखहु सकल स्रमित भए अति बीर॥८९॥

अर्थ : फिर रामजी सबकी ओर देखकर गम्भीर वाणी बोले कि सब कोई अब द्वन्द्व युद्ध देखो। वीर लोग अत्यन्त थक गये हैं।

व्याख्या : तब रामजी ने सबकी ओर देखा। जान गये कि वीर लोग युद्ध करते करते अत्यन्त थक गये हैं। दूसरा भाव सबकी ओर देखकर बोलने का यह

१ हरिगीतिका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है कि यह आज्ञा सबके लिए है कि तुम लोग तमाशा देखो। द्वन्द्व युद्ध मेरे और रावण के बीच होने दो। तुम लोग इतने थक गये हो कि लड़ने लायक नहीं हो। सरकार का वचन ऐसा गम्भीर था कि सारी सेना ने सुना और तात्पर्य की दृष्टि से भी गम्भीर था। रावण के मनोरथ को भी पूर्ण करना चाहते हैं। वह अब अकेले लड़ना चाहता है। यथा : मैं अकेल कपि भालु बहु। और अकेले उस मायावी से कोई लड़ नहीं सकता। अतः मैं उससे अकेले लड़ूंगा।

अस कहि रथ रघुनाथ चलावा। बिप्रचरन पंकज सिर नावा॥
तब लंकेस क्रोध उर छावा। गर्जत तर्जत सनमुख आवा॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर रामजी ने रथ चलाया। ब्राह्मण के चरण कमलों में सिर नवाया। तब तो लंकेश के हृदय में क्रोध छा गया। गरजता हुआ और डाँटता हुआ सामने आया।

व्याख्या : सबको युद्ध से विरत करके रामजी ने मातलि को आज्ञा दी कि रावण के सामने रथ ले चलो। यह रथ उस धर्मरथ का मानो प्रतीक होकर आया जिसका वर्णन विभीषण से कर चुके हैं। कवच के स्थान पर रामजी ने ब्राह्मण के चरण कमलों को प्रणाम किया : कवच अभेद बिप्र गुरु पूजा। अर्थात् गुरु वसिष्ठजी के चरण कमलों को प्रणाम किया। आगे कहेंगे भी : गुरु बसिष्ठ कुलपूज्य हमारे। इनकी कृपा दनुज रन मारे।

श्री रामजी को युद्ध के लिए आते देखकर रावण को बड़ा क्रोध हुआ कि इसने जानबूझकर मुझसे लड़ाई मोल ली। मेरे कुल का संहार किया। अब मेरे प्राण लेने के लिए रथारूढ़ हुआ चला आरहा है। रथ देखकर और भी क्रोध बढ़ा। मातलि को पहिचानता है। देखो इन्द्र ने दगा किया। अपना रथ भेज दिया। जब उसे मेघनाद ने बाँध लिया था तब ब्रह्मदेव ने यह कहकर उसे छोड़ाया था कि यह तुम्हारी आज्ञा में रहेगा। सो इस गाढ़े समय में शत्रु के पास अपना रथ भेज दिया। गर्जता है डराने के लिए। डाँटता है कि मँगनी के रथ पर चढ़कर रथवाले बने हो। उसने भी सारथी को आज्ञा दी कि शत्रु के सम्मुख रथ ले चलो।

जीतेहु[१] जे भट संजुग माँही। सुनु तापस मैं तिन्ह सम नाँही॥
रावन नाम जगत जस जाना। लोकप जाके बंदीखाना॥२॥

अर्थ : जिन वीरों को तुमने लड़ाई में जीता है। तपस्वी! सुन। मैं उनके समान नहीं हूँ। मेरा नाम रावण है। मेरा यश संसार जानता है कि मेरे जेलखाने में लोकपाल बन्द रहते हैं।

व्याख्या : तापस सम्बोधन करने से रावण का भाव यह कि तू अपने धर्म का अतिक्रमण कर रहा है : तापस बेष बिसेष उदासी रहने का मुझे वचन है।

---

१ यहाँ प्रतिषेध[illegible]

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तुझसे युद्ध से क्या सम्बन्ध। युद्ध करके तू पिता के वचन का उल्लघन कर रहा है। तू खरदूषणादि के धोखे से मेरे सामने आरहा है। सो मुझे वैसा न समझना। जिनको तूने रण में जीता है उन्हें कौन जानता है। मैं रावण हूँ। मेरा यश संसार जानता है कि मैं रुलाकर छोडता हूँ : रावयतीति रावणः। मेरे वन्दी गृह मे लोकपाल पड़े रोया करते हैं। साधारण लोगों की गिनती ही क्या है।

खरदूषन कबंध तुम्ह मारा। बधेहु ब्याध इव बालि बिचारा ॥
निसिचर निकर सुभट संघारेहु। कुंभकरन घननादहि मारेहु ॥३॥

अर्थ : तुमने खरदूषण और कबन्ध को मारा। बाली बिचारे को व्याध की भाँति मारा। निशिचर समूह तथा सुभटों का संहार किया। कुम्भकर्ण मेघनाद को मारा।

व्याख्या : तुमसे मेरा बड़ा भारी वैर है। तुमने मेरा बड़ा अनिष्ट किया है। तुम मुझसे वैर पर वैर करते ही चले आते हो। पहिला वैर तो यही किया कि खरदूषण को मारा। दूसरा वैर यह किया कि मेरे मित्र बाली बिचारे को व्याध की भाँति छिपकर मार डाला। तीसरा वैर यह कि तुमने राक्षसो का सहार कर दिया। चौथा यह कि कुम्भकर्ण और मेघनाद को मारा। मेघनाद को यद्यपि लक्ष्मणजी ने मारा पर उन्होने रामजी की आज्ञा से मारा। यथा : तुम लछिमन रन मारेहु ओही। देखि सभय सुर दुख अति मोही। अतः उसके वध के भी प्रयोजक कर्ता रामजी ही हुए। इतने वैरो का बदला मुझे चुकाना है : ऐसी ही बात लक्ष्मणजी से भी कही थी। यथा : खोजत रहेउँ तोहि सुतघाती।

आजु बयरु सब लेउँ निबाही। जौ रन भूप भाजि नहि जाही ॥
आजु करौ खलु काल हवाले। परेहु कठिन रावन के पाले ॥४॥

अर्थ : हे राजा ! यदि आज तू लड़ाई से भाग न गया तो मैं सब वैर चुका लूँगा। आज निश्चय तुम्हे काल के सुपुर्द कर दूँगा। अब तो कठिन रावण के पाले पड़ गये हो।

व्याख्या : इन सब वैरो से कलेजा जल रहा था। आज तू सामने पड़ गया है। सो सब वैरो का बदला चुका लूँगा। यदि भाग गया तो दूसरी बात है। जिस भाँति सरकार ने खरदूषण से कहा था : जौं न होइ बल घर फिरि जाहू। समर बिमुख मैं हतौ न काहू। वैसी ही बात आज रावण कह रहा है। उसके कहने का भाव यह है कि यदि अब भी तुम भाग जाओ तो यह भय मत करो कि रावण पीछा करेगा। मैं छोड़ दूँगा।

नही तो आज निश्चय ही तुम्हें काल के सुपुर्द कर दूँगा। अर्थात् मार ही डालूँगा। काल मेरे वश में है। यथा: भुजबल जितेउ काल जमसाईं। रावण कठिन है। वह शत्रु पर दया करना जानता ही नहीं। उसके पाले जो पड़ा वह किसी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भाँति बच नहीं सकता। खल कहने का भाव यह कि तू खल है। निष्कारण दूसरे का अपकार करता है। मेरा अपकार तुमने निष्कारण किया। सूर्पणखा के नाक कान काटने का कोई कारण नहीं था।

सुनि दुर्बचन कालबस जाना। बिहँसि बचन कह कृपानिधाना॥
सत्य सत्य सब तव प्रभुताई। जल्पसि जनि देखाउ मनुसाई॥५॥

अर्थ : दुर्वचन सुनकर उसे काल के वश जान लिया। कृपानिधान ने हँसकर कहा कि तेरी सब प्रभुता सच्ची है सच्ची पर बक मत पौरुष दिखला।

व्याख्या : उसके दुर्वचन को सुनकर सरकार ने समझ लिया कि इसे मानसिक सन्निपात हो गया है। इसलिए दुर्वचन कह रहा है। यथा : सन्नपात जल्पसि दुर्बादा। भयेसि कालबस खल मनुजादा। रावण दुर्वचन कहकर भी क्रुद्ध है। सरकार दुर्वचन सुनकर भी हँसते हैं। हँसने का कारण उसका डराना है। कृपानिधान हैं। उसके दुर्वचन पर भी क्रोध नहीं है। उसे उपदेश करने की कृपा करते हैं।

अर्धाङ्गीकार मे सत्य सत्य कहते है। दसमुख सभा दीखि कपि जाई। कहि न जाइ कछु अति प्रभुताई। कर जोरे सुर दिसिप बिनीता। भृकुटि बिलोकत सकल सभीता। अत: सरकार कहते हैं कि जो अपनी दो प्रभुताई तुमने कही है १ रावन नाम जगत जस जाना और २ लोकप जाके बन्दीखाना। सो दोनो सत्य है। पर यहाँ तो युद्ध करना है। सूर समर करनी करहि कहि न जनावहि आप। विद्यमान रन पाइ रिपु कायर कथहि प्रताप। अत: समर मे प्रताप कथन जल्पना : बकवाद मात्र है। वहाँ तो पुरुषार्थ दिखाना चाहिए। अत. बकवक मत कर पुरुषार्थ दिखला।

छं.[१] जनि जल्पना करि सुजसु नासहि नीति सुनहि करहि छमा।
संसार महु पूरुष त्रिबिध पाटल रसाल पनस समा॥
एक सुमन प्रद एक सुमन फल एक फलहि केवल लागही।
एक कहहि कहहिं करहि अपर एक करहिं कहत न बागही॥

अर्थ : जल्पना करके अपनी कीर्ति का नाश न कर। क्षमा करके नीति सुन। संसार मे तीन प्रकार के पुरुष होते हैं। गुलाब आम और कटहल के सदृश। एक फूल देते है। एक फूल फल दोनो देते है और एक केवल फल ही देते है। एक कहते है। एक कहते भी हैं और करते भी हैं। एक कर देते है। कहते नही फिरते।

व्याख्या : समर मे जल्पना करने से सुयश का नाश होता है। लोग समझते हैं कि यह कादर है कुछ कर नही सकता। इसलिए प्रताप कथन कर रहा है। क्रोध को रोको क्षमा करो और नीति सुनो। संसार में तीन प्रकार के पुरुष होते हैं। कोई गुलाब सा होता है। कोई आम सा और कोई कटहल सा। गुलाब केवल सुन्दर

---

१. यहाँ गूढोत्तर अलंकार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुन्दर फूल देता है। फल के नाम से वहाँ कुछ भी नहीं। अतः जिन लोगो की उपमा गुलाब से दी गयी है 'उनसे बड़ी वडी बातें सुन लो करना धरना कुछ नही। आम का फूल भी बड़ा सुगन्धित होता है और फल तो जगद्विख्यात है। अत. जिनकी आम से उपमा दी गयी है वे कहते भी हैं और कर भी दिखाते हैं। कटहल का पेड सीधे सीधे फल देता है। फूल उसमे होता ही नही। अतः जिनकी कटहल से उपमा दी गयी है वे कर दिखाते हैं। कहते कुछ नही। निर्गलितार्थ यह कि मैं कटहल की भाँति हूँ कर दिखाऊँगा कहूँगा कुछ भी नही। मेरा भाई आम की भाँति है। वह कहता भी है और कर भी दिखलाता है। तुम गुलाब के से हो। बड़ी बड़ी वात करते हो पर कर कुछ न सकोगे।

दो. राम वचन सुनि विहंसा, मोहि सिखावत ज्ञान।
वैर करत तब नहि डरे, अब लागे प्रिय प्रान ॥९०॥

अर्थ: रामजी का वचन सुनकर हँसा कि मुझे ज्ञान सिखाता है। वैर करते तो नही डरा। अब प्राण प्रिय लग रहा है।

व्याख्या: रावण भी रामजी की बात सुनकर हँसे। पर यहाँ हँसी भी क्रोध की हँसी है कि कल का छोकड़ा मुझे ज्ञान सिखाने चला है। ससार को तो मै ज्ञान सिखलाऊँ। यह क्षत्रिय अल्पवयस्क अल्पश्रुत मुझ महापण्डित को ज्ञान सिखाता है। कहता है क्षमा करो। नही क्षमा करूँगा। तेरा अपराध क्षमा योग्य नही है। सूर्पणखा का नाक कान काटना मुझसे वैर मोल लेना है। सो वैर मोल ले लेने मे ही डरने का समय था। जिसे प्राणप्रिय हो वह मेरा अनिष्टाचरण न करे। सो तब तो न डरे। अनिष्टाचरण कर बैठे। तब प्राण प्रिय न लगा। अब फलकाल उपस्थित है। इस समय प्राणप्रिय लगने से तुम बच नही सकते।

कहि दुर्बचन क्रुद्ध दसकंधर। कुलिस समान लाग छाडै सर॥
नानाकार सिलीमुख धाये। दिसि अरु बिदिसि गगन महि छाये॥१॥

अर्थ: दुर्वचन कहकर क्रुद्ध रावण वज्र के समान बाण छोड़ने लगा। अनेक प्रकार के आकारवाले बाण वेग से चले। वे दिशा विदिशा आकाश और पृथिवी पर छा गये।

व्याख्या: वैर करते समय तो न डरे मुझे चुनौती दिया। ऐसा कहकर सूर्पणखा नासिकाच्छेदन की ओर इङ्गित करके उस विषय पर उत्तर प्रत्युत्तर न चाहकर वह वज्र समान बाण क्रुद्ध होकर छोड़ने लगा। रावण ने अपने मुख से स्पष्ट कभी सूर्पणखा नासिकाच्छेदन की चर्चा नही की। अङ्गदजी ने ताना भी दिया: नाक कान बिनु भगिनि निहारी। छमा कीन्ह तुम धर्म विचारी। तब भी उसने उस विषय पर कुछ नही कहा। यह ऐसी मार्मिक चोट रावण पर बैठी है कि उसके स्मरण से ही वह लज्जा का अनुभव करता है। सरकार ने दुर्वचन सुनकर उसे कालवश जाना और हँस दिया। यह दुर्वचन कहकर भी क्रुद्ध है। बन्दरो पर शर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



निकर छोडा। लक्ष्मणजी पर प्रचण्ड बाण छोडा। अब सरकार पर वज्र के तुल्य बाण छोड रहा है। बाण के अर्धचन्द्र आदि अनेक आकार होते हैं। सो अनेक प्रकार के बाण छोडने से अपना लाघव दिखला रहा है कि चारो दिशाओ और चारो विदिशाओ तथा ऊपर और नीचे बाण ही बाण दिखाई पडने लगे।

पावक सर छाडे रघुबीरा। छन महुँ जरे निसाचर तीरा ॥
छाडिसि तीव्र सक्ति खिसिआई। बान सग प्रभु फेरि पठाई ॥२॥

अर्थ सरकार ने आग्नेयास्त्र छोडा। राक्षस के सब तीर जल गये। तब खीझकर उसने तीव्र शक्ति चलायी प्रभु ने बाण के साथ उसे लौटा दिया।

व्याख्या इन सब बाणो के उत्तर में सरकार ने आग्नेयास्त्र का प्रयोग कर दिया। उस अस्त्र ने उसके चलाये हुए सब तीरो को जला दिया। उसने देखा कि बाण की वर्षा निष्फल गयी। इसी भाँति और भी वर्षा निष्फल जायगी। अत उसने अमोघशक्ति जो जल न सके न निष्फल जा सके उसे चला दिया। सरकार ने बनैती की पराकाष्ठा दिखला दी। बाण के चोट से उसका रुख फेर दिया और दूसरे बाणो द्वारा रावण के पास लौटा दिया कि इसे किसी अनजान पर चलाना।

कोटिन्ह चक्र त्रिसूल पबारइ। बिनु प्रयास प्रभु काटि निवारइ ॥
निफल होहि रावन सर कैसे। खल के सकल मनोरथ जैसे ॥३॥

अर्थ उसने करोडो चक्र और त्रिशूल चलाये। सबो को सरकार ने अनायास ही काट गिराया। राक्षस के बाण किस भाँति निष्फल हो रहे हैं जैसे खल के सब मनोरथ।

व्याख्या बाणवर्षा भी निष्फल गयी। शक्ति ने भी काम नही किया तो अन्य अस्त्रो से काम लेने लगा। चक्र चलाने लगा तो करोडो चक्र चलाया। उससे भी काम न होते देखकर त्रिशूल चलाना आरम्भ किया। तो करोडो त्रिशूल ही चलाता चला जा रहा है। परन्तु सरकार ने उनमे से एक एक को काट गिराया और उन्हे कुछ भी आयास न हुआ।

कवि कहते हैं कि रावण के अस्त्र इस भाँति निष्फल हो रहे हैं जैसे खल के सभी मनोरथ निष्फल होते हैं। यहाँ पर शर शब्द अस्त्र मात्र का उपलक्षण है। खल के मनोरथ यदि कही सफल हो तो ससार का ही नाश हो जाय। अत यह नियम है कि खल के सभी मनोरथ निष्फल होते हैं। मनोरथ तो सभी के कुछ न कुछ निष्फल होते हैं। पर सफल भी होते हैं। खल मे यह विशेषता है कि उसका कोई भी मनोरथ पूर्ण नही होता।

तब सत बान सारथी मारेसि। परेउ भूमि जय राम पुकारेसि ॥
राम कृपाकरि सूत उठावा। तब प्रभु परम क्रोध कहुँ पावा ॥४॥

अर्थ तब उसने सौ बाण सारथी को मारा। वह पृथिवी पर गिर गया और

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उसने रामजी की जय पुकारा। रामजी ने कृपा करके सारथी को उठाया तब प्रभु परमक्रोध को प्राप्त हुए।

व्याख्या : रावण ने जब देखा कि रथी पर कोई बल नही चल रहा है। तो एकाएक सारथि पर चोट कर दिया। जानता है कि मातलि इन्द्र का सारथि है। बडे बडे सग्राम मे इसने असुरों के अस्त्रो को सहन किया है। दश पाँच बाण से इसका कुछ न होगा। इसलिए उस पर सौ बाण से एक साथ चोट कर बैठा। मातलि पृथिवी पर जा गिरे और रामजी की जय पुकारा। भाव यह कि मृत्युकाल उपस्थित समझकर रामजी का स्मरण किया। अथवा सहायता के लिए रामजी को पुकारा। अमर भी अवध्य नही होते। इतनी ही विशेषता है कि उनकी मृत्यु कठिनता से होती है। यथा : सकौ तोर अरि अमरहु मारी।

रामजी ने कृपा करके सारथि को उठाया। उनके कृपापूर्वक स्पर्श से उसकी पीडा जाती रही। *यथा : कर परस सुग्रीव सरीरा। तनु भा कुलिस गयी सब पीरा।* सारथि पर चोट आ जाना रथी की असावधानी का द्योतक है। अत सरकार ने परम क्रोध दिखलाया। उन्हे क्रोध नही आया। बल्कि वे ही क्रोध को प्राप्त हुए।

छ.[1] भए क्रुद्ध जुद्ध बिरुद्ध रघुपति त्रोन सायक कसमसे।
कोदंड धुनि अतिचंड सुनि मनुजाद भय मारुत ग्रसे॥
मंदोदरी उर कंप कंपित कमठ भू भूधर त्रसे।
चिक्करहिं दिग्गज दसन गहि महि देखि कौतुक सुर हँसे॥

अर्थ : विरुद्ध युद्ध से रामजी क्रुद्ध हुए तो तरकस मे बाण कसमस करने लगे। धनुप की टङ्कार अत्यन्त तीव्र सुनकर राक्षसो को तो डर की बाई चढ गयी। मन्दोदरी का कलेजा काँपने लगा। समुद्र कमठ पृथिवी और पर्वत डर गये। दिग्गज लोग दाँत से पृथिवी को पकड़कर चिग्घाड़ने लगे यह कौतुक देखकर देवता हँसे।

व्याख्या · यहाँ विरुद्ध युद्ध का अर्थ है रथी को छोड सारथि को मारा है। सारथि के आहत होने से क्रुद्ध हुए हैं। सरकार को क्रुद्ध जानकर अग्रसर होने के लिए तरकस के बाण कसमस करने लगे। पहिले निशाचर सेना कसमस करती आयी। उन्हे समाप्त करके बाण अब रावण का रक्त पीने के लिए कसमस कर रहे हैं। यथा : तव सोनित की प्यास तृपित राम सायक निकर। तब सरकार ने धनुप का टकार किया। उसका ऐसा शब्द हुआ कि मन्दोदरी का कलेजा काँपने लगा। समुद्र क्षुब्ध हो गया। पृथिवी हिल गयी और पर्वत डगमगाने लगे। कमठ भी स्थिर न रह सके। अथवा समुद्रादि के अधिष्ठातृदेवता डर गये। ब्रह्माण्ड खण्ड समझकर दिग्गजो ने पृथिवी दाँत से पकड़ ली फिर भी नही सँभलती तो चिक्कार करने लगे।

---

१. यह हरिगीतिका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यह कौतुक देवताओं ने देखा तो प्रसन्नता से हँसे कि अब रावण को अच्छे से काम पड़ा है। श्रीरामजी के पाले स्वयं पड़ गया।

दो. तानेउ चाप स्रवन लगि, छाड़े बिसिख कराल।
राम मार्गन गन चले, लहलहात जनु ब्याल ॥९१॥

अर्थ : कान तक धनुष खींचकर कराल बाण छोडे। रामजी के बाण ऐसे लहलहाते हुए चले जैसे साँप।

व्याख्या : सरकार क्रुद्ध हैं। इसलिए गहरी चोट करने के लिए कान तक धनुष खैंचा। यही तक धनुष खैंचने की अवधि है। शार्ंगधनुष इतना अधिक खैंचा गया और उस पर कराल बाण चढाये गये। छूटने पर वे बाण लहलहाते हुए आकाश मार्ग से ऐसे चले जैसे साँप उड़ चलते हैं। अनेक बाणों के साथ चलने से लहलहाना कहा।

चले बान सपच्छ जनु उरगा। प्रथमहि हत्यो सारथी तुरगा ॥
रथ बिभंजि हति केतु पताका। गर्जा अति अतर बलु थाका ॥१॥

अर्थ : पखवाले सर्प की भाँति बाण चले तो पहिले उन्होंने सारथि और घोडे मारे। रथ को तोडा। ध्वजा पताका काटा। रावण भीतर से थक गया। पर बाहर से अत्यन्त गर्जन किया।

व्याख्या . बाणो को साँपो से उपमा दिया कि ये प्राण लेकर छोडेंगे। साँप उडते नही। अत बाणो की उपमा सपक्ष सर्प से दिया। दूसरा भाव यह कि बाणो का आकार सर्प सा होता है और उसमे मयूर चील्ह आदि के पक्ष भी लगाये जाते हैं। इसलिए सपक्ष सर्प की उपमा दी। रावण ने सारथि पर चोट की थी। यहाँ सारथि घोडा रथ ध्वजा और पताका सब पर चोट हुआ। सारथि भी मर गया। घोडे भी मर गये। रथ टुकडे टुकड़े हो गया। ध्वजा पताका धराशायी हुआ। रावण विरथ हुए। कुछ किया न हुआ। ध्वजा पताका की भी रक्षा न कर सके। पृथिवी पर आ पडे। भीतर से तो तबीयत ने हार मान ली। पर अपना दर्प द्योतन के लिए अत्यन्त गर्जन करने लगे कि मैं थका नही हूँ। ध्वजा पताका गिरने से रथी पर विपत्ति सूचित होती है। अतः आप अत्यन्त गरजे जिसमे सब जान जायँ कि कोई विपत्ति नही है।

तुरत आन रथ चढि खिसिआना। अस्त्र सस्त्र छाड़ेसि बिधि नाना ॥
बिफल होइ सब उद्यम ताके। जिमि परद्रोह निरत मनसाके ॥२॥

अर्थ : तुरन्त दूसरे रथ पर चढ गया और खीझकर अनेक प्रकार के अस्त्र शस्त्र छोडने लगा। उसके सब प्रयत्न व्यर्थ जा रहे हैं जैसे दूसरे के द्रोह मे मन लगानेवाले का मनोरथ निष्फल हो जाता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : एक रथ टूटा। दूसरा तैयार है। लंका मे रथो की कमी नही है। युद्ध के समय अनेक अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित रथ प्रस्तुत रहते हैं। रावण दूसरे रथ पर सवार हो गये। नाना प्रकार के अस्त्र शस्त्र छोड़ने लगे। सरकार के स्वभाव से परिचित हो गये हैं कि जब तक शत्रु अस्त्र शस्त्र चलाता रहे तब तक उन्हे काटते ही रहते हैं। जब वह चलाना बन्द कर दे तब समझते है कि वीर ने मुझे प्रहार के लिए अवसर दिया। तब अपने अस्त्र छोड़ते हैं। अतः रावण चोट पर चोट करते ही जाते हैं।

जिसका मन परद्रोह मे निरत रहता है उसके सब यत्न निष्फल होते हैं। उसी भाँति रावण के सब यत्न निष्फल जा रहे हैं। पहिले भी लगभग ऐसी ही बात कह आये हैं। यथा : विफल होहिं रावन सर कैसे। खल के सकल मनोरथ जैसे। परद्रोह निरत और खल पर्यायवाची शब्द हैं। दोनो उपमाओ मे भेद इतना ही है कि पहिले मनोरथ होता है और उद्यम उसके बाद आरम्भ होता है। अत पहिले मनोरथ का विफल होना कहा। अब उद्यम का निष्फल होना कह रहे हैं। रावण के मनोरथ पहिले आप से आप सिद्ध होते थे। यथा : सुख संपति सुत सेन सहाई। जय प्रताप बलबुद्धि बड़ाई। नित नूतन सब बाढ़त जाई। जिमि प्रतिलाभ लोभ अधिकाई। सो इस युद्ध मे नही हुआ। मनोरथ सब निष्फल गये। तब उद्यम आरम्भ हुआ। वे भी व्यर्थ पड़ते जाते हैं।

तब रावन दस सूल चलावा। बाजि चारि महि मारि गिरावा ॥
तुरत उठाइ कोपि रघुनायक। खैंचि सरासन छाड़े सायक ॥३॥

अर्थ : तब रावण ने दश शूल चलाये और चारो घोड़ो को मारकर पृथिवी पर गिरा दिया। रामजी ने तुरन्त घोड़ो को उठाया और धनुष को खैंचकर बाण चलाये।

व्याख्या : रावण अपने रथ टूटने का बदला लेना चाहता है। पहिले उसने सारथि को मारा। पर वह नही मरा। रामजी के कर स्पर्श से स्वस्थ हो गया। फिर अवसर पाकर उसने घोड़ो पर दस शूल चला दिये। तीन तीन अगले और दो दो पिछले घोडो पर। घोड़े चारो पृथिवी पर गिर गये। सरकार ने तुरन्त उन्हे भी उठाया। वे भी स्वस्थ हो गये। देख लिया कि शत्रु का यह भी उद्यम व्यर्थ गया। तब धनुष को खैंचकर प्रहार के लिए बाण छोड़ने लगे।

रावन सिर सरोज बनचारी। चलि रघुबीर [1]सिलीमुख धारी ॥
दस दस बान भाल दस मारे। निसरि गये चले रुधिर पनारे ॥४॥

अर्थ : रावण के सिररूपी कमलवन में विचरण करनेवाले रघुवीर के बाण

---

१, यहाँ श्लेषालंकार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रूपी भौंरो की पक्ति चली। दस दस बाण दसो सिर मे मारे। वे पार हो गये और रक्त के पनाले बह चले।

व्याख्या : फिर सरकार को रथ पर से कूदकर घोडे उठाने पड़े। अब फिर क्रुद्ध होकर बाण चलाये। अभी तक रावण पर बाण नही चलाया था। रात के प्यासे भौंरो की पक्ति प्रात काल कमलवन मे मकरन्द पान के लिए वेग से जाती है। इसी भाँति रघुनाथजी के बाणोकी पक्ति रावण के मस्तको के रक्त से अपनी प्यास बुझाने के लिये चली। अङ्गदजी ने पहिले कहा था कि रामजी के बाण तेरे रक्त के प्यासे हो रहे है। उसी का साफल्य दिखला रहे है। सिलीमुख शब्द मे श्लेष है। इसका अर्थ बाण भी है और भौरा भी है। यहाँ कमलवन के पक्ष मे भौंरा अर्थ होगा और रावण सिर के पक्ष मे बाण अर्थ होगा। ये बाण उसके सिरो मे घुसकर रक्त पीने लगे। फिर भी रावण न गिरा।

तब एक एक सिर मे दस दस बाण मारे। इस भाँति सौ बाण चलाये जो कि सिर म छेदकर पार निकल गये। सौ पनाले रक्त के बह चले। यथेष्ट समझकर सरकार ने बाण मारना बन्द कर दिया। यहाँ यह भी देखने लायक है कि सरकार के बाणो के काटने मे रावण असमर्थ है।

स्रवत रुधिर धावा बलवाना। प्रभु पुनि कृत धनु सर संधाना॥
तीस तीर रघुबीर पवारे। भुजन्ह समेत सीस महि पारे॥५॥

अर्थ : बलवान् रावण रक्त बह रहा है फिर भी दौडा। तब फिर सरकार ने धनुष बाण चढाये और तीस बाण मारा। भुजा के समेत सिर पृथिवी पर गिर गये।

व्याख्या : रावण महा बलवान् है। उन चोटो की परवाह न करता हुआ रुधिर बहता हुआ ही दौड़ा। तब तो और भी कड़ी मात्रा देने के लिए सरकार ने धनुष पर बाण सन्धान किया। इस बार तीस बाण ऐसे मारे कि उनमे से दस बाणो ने दस सिर काटे और बीस बाणो ने बीसो भुजायें काटी और ऐसा काटा कि तस्मा बाकी न रहा। सिर और भुजायें कटकर पृथिवी पर गिर गयी।

काटत ही पुनि भये नबीने। राम बहोरि भुजा सिर छीने॥
कटत झटिति पुनि नूतन भए। प्रभु बहु बार बाहु सिर हए॥६॥

अर्थ : काटते ही फिर नये सिर और भुजायें हो गयी। रामजी ने फिर सिर और भुजायें काटी। कटते ही फिर नये निकल पड़े। सरकार ने बार बार सिर और भुजाओ को काटा।

व्याख्या : महा आश्चर्य हो गया। सिर कटने पर कोई जीता नही। एक सामान्य क्षत के अच्छे होने मे समय लगता है। यहाँ देखिये तो नये सिर और नई भुजायें निकल आई। रामजी ने आश्चर्य न करके फिर सिर और भुजाओ को काटा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तो कटते ही तुरन्त दूसरे सिर और दूसरी भुजायें निकल आयी। इस भाँति सरकार ने अनेकों बार सिर और भुजायें काटी। रावण बड़े धैर्य से सिर और भुजाओं के कटने की वेदना सहन कर रहे हैं। शङ्कर की अपूर्व आराधना का अद्भुत चमत्कार प्रकट हुआ है।

पुनि पुनि प्रभु काटत भुज सीसा। अति कौतुकी कोसलाधीसा॥
रहे[1] छाइ नभ सिर अरु बाहू। मानहु अमित केतु अरु राहू॥७॥

अर्थ : बार बार सरकार सिर और भुजायें काटते हैं। कोशलाधीश भी बड़े कौतुकी हैं। आकाश सिर और भुजाओं से पट गया। मानो अगणित राहु और केतु प्रकट हो गये।

व्याख्या : सिर और बाहु नये निकलते ही चले जा रहे हैं और सरकार काटते ही चले जा रहे हैं। उन्हें आश्चर्य न हुआ। बड़ा कौतुक न हुआ कि देखो कैसे नये सिर और नये बाहु निकलते चले आ रहे हैं। कवि कहते हैं कि कोशलाधीश बड़े कौतुकी हैं। तो कौतुकिअन्ह आलस नाही। कौतुकी को आलस्य नही होता। यह नही ख्याल करते कि जब यही हाल है तो कहाँ तक सिर भुजा काटेंगे। अति कौतुकी हैं। काटते ही चले जाते हैं। संग्राम में भी कौतुक करना इन्ही का काम है। इनके सेना संग्रह में भी कौतुक था। यथा : कौतुक लागि संग कपि सेना। सेना प्रयाण में भी कौतुक था। यथा : कौतुक देखि सुमन बहु बरखी। सेतुबन्ध में भी कौतुक यथा : कौतुक एक भालु कपि करहू। बाण चलाने में कौतुक यथा : अस कौतुक करि राम सर प्रबिसेउ आइ निषंग। धनुष टङ्कार में कौतुक यथा : देखि कौतुक सुर हँसे। इस समय सिर-भुजच्छेदन मे कौतुक हो रहा है। अब और कौतुक देखिये। वे काटे हुए सिर और भुजा पृथिवी पर नही गिरते। आकाश मे चले जाते हैं और वहाँ ऐसी शोभा दे रहे हैं जैसे अगणित राहु केतुओं से आकाश भरा हुआ है। सिर राहु की भाँति और बाहु केतु की भाँति शोभित हो रहे हैं।

छं.[2] जनु राहु केतु अनेक नभ पथ स्रवत सोनित धावहीं।
रघुबीर तीर प्रचंड लागहिं भूमि गिरन न पावहीं॥
एक एक सर सिर निकर छेदे नभ उड़त इमि सोहहीं।
जनु कोपि दिनकर कर निकर जहँ तहँ बिधुतुद पोहहीं॥

अर्थ : मानो अनेक राहु और केतु आकाशमार्ग में रक्त बहाते हुए दौड़ते हैं। रामजी के प्रचण्ड बाण जा लगते हैं। इसलिए पृथिवी पर गिरने नही पाते। एक एक बाण से सिर समूहो को बेधा। वे आकाश मे उड़ते ऐसे शोभित हैं जैसे क्रोध करके सूर्य की किरणें जहाँ तहाँ राहुओं को गूँथ रही हों।

---

१. यहाँ विशेषालंकार है।
२. हरिगीतिका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : बड़ा ही अद्भुत भयानक दृश्य है। बाणो के वेग से सिर और बाहु उड़ उड़कर राहु केतु की भाँति तमाम आकाश मे छाये हुए हैं। उनमे से रक्त गिर रहा है। साथ ही साथ बनैती की अद्भुत कला का भी प्रदर्शन हो रहा है। बाणों के चोट से वे सिर पृथिवी पर गिरने नही पा रहे हैं। तत्पश्चात् एक एक बाण से वे सिर एक दूसरे मे गुँथे जा रहे है। उसकी उपमा कवि देते हैं कि मानो सूर्य की किरणें क्रोध करके जहाँ जहाँ राहु मिलते हैं उन्हे गूँथती चली जा रही है।

दो. जिमि जिमि प्रभु हर तासु सिर, तिमि तिमि होहि अपार।
सेवत विषय विबर्ध जिमि, नित नित नूतन मार ॥९२॥

अर्थ : जैसे जैसे सरकार उसके सिरो को काटते है वैसे ही वे अपार होते चले जाते हैं। विषय की सेवा करते करते जैसे नित्य नया काम बढ़ता जाता है।

व्याख्या : इधर सिर कटता है उधर कटे हुए सिरो की संख्या अपार होती जाती है। न जातु काम कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एव विवर्धते। कामो के उपभोग से काम का कभी शमन नही होता। हवि से अग्नि की भाँति बढ़ता ही जाता है। इसी भाँति जितना सिर काटा जाता है उतना ही सिर सख्या बढ़ती ही जाती है। जैसे अग्नि मे जितना हवि डाला जाता है। उतना ही बढ़ता जाता है।

दसमुख देखि सिरन्ह कै बाढ़ी। बिसरा मरन भई रिस गाढ़ी ॥
गर्जेउ मूढ महा अभिमानी। धाएउ दसहु सरासन तानी ॥१॥

अर्थ : रावण सिरो की बढ़ती देखकर मरना भूल गया। उसे बड़ा क्रोध हुआ। महा अभिमानी मूढ गर्जा और दसो धनुष तानकर दौड़ा।

व्याख्या : पहिले तो रावण गड़बड़ा गया। सिर बाहु बराबर कटते जाते हैं। बेबसी की हालत मे पड़ गया। पर है बड़ा धीर। देखा कि सिर और बाहु निकलते ही जाते है और निकलते ही जावेंगे। इसके पहिले उसे भी मालूम नही था कि मुझमे यह शक्ति है कि सिर बाहु कटने पर नये निकलते जावेंगे। सो उसे बड़ा भरोसा हो गया। पहिले जो मृत्यु सिर पर खड़ी थी उसका स्मरण भी जाता रहा। समझा कि मैं इनका मारा नही मर सकता। सिर काटनेवाले के बराबर कोई शत्रु नही है। सो यह सिर काटता ही चला जाता है। मुझे तो नये सिर निकल रहे है। इसका सिर यदि मैं काट सका तो इसको तो सिर न निकलेगा। यदि एक बार भी सिर काट सकें तो जीत मेरी है। शत्रु भी थका ही होगा।

कवि कहते हैं कि रावण मूढ़ है। नही समझता है कि सिर काटने मे कोई मतलब नही है। यह तो उनका कौतुक है। विभीषण इस बात को समझते हैं। रावण महा अभिमानी है। उसे तुरन्त अभिमान उपजा कि अब मुझे कौन मार सकता है। तपस्वी को मैं मारूँगा। उसका एक धनुष मेरे दस धनुष का सामना नही कर सकता। अतः दसो धनुष तानकर दौड़ा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



समर भूमि दसकंधर कोप्यो। बरपि बान रघुपति रथ तोप्यो ॥
दंड एक रथु देखि न परेऊ। जनु निहार महु दिनकर दुरेऊ ॥२॥

अर्थ . रणभूमि मे रावण ने क्रोध किया और बाणो की वर्षा से रामजी का रथ तोप दिया। एक दण्ड तक रथ दिखायी न पडा। जैसे कुहरे मे सूर्य छिप जायँ।

व्याख्या . सिर कटने के समय बडे विपत्ति मे पकडकर दु खी हो गया था। अपनी अद्भुत शक्ति देखकर उत्साह बढा। अत क्रोध करके दसो धनुषो से बाण बरसाने लगा। रथ को ढक दिया। घोडा और रथ समेत रामचन्द्रजी का पता नही। सरकार को सबकी रक्षा करना कठिन हो पडा।

चौबीस मिनट तक यही दशा रही। रथ घोडे सारथि और रथी सभी सुरक्षित थे। पर दिखायी नही पडते थे। सूर्य ज्यो की त्यो रथ सारथि के साथ सुरक्षित रहते हैं। पर कोहरे की ओट से दिखायी नही पडते। इसी भाँति रामजी दिखायी न पडे। बाण ही बाण चारो ओर दिखायी पडते थे।

हाहाकार सुरन्ह जब कीन्हा। तब प्रभु कोपि कारमुक लीन्हा ॥
सर निवारि रिपु के सिर काटे। ते दिसि बिदिसि गगन महि पाटे ॥३॥

अर्थ : जब देवताओ मे हाहाकार मचा तब सरकार ने क्रोध करके धनुष उठाया और बाणो को काटकर शत्रु के सिर काटे। उनसे दिशा विदिशा आकाश और पृथिवी पट गयी।

व्याख्या · ऐसे ही बाण वर्षा मे वीर मारे जाते। अत देवताओ मे हायहाय मच गयी। तव प्रभु कोपि कारमुक लीन्हा। इससे अगस्त्य ऋषि द्वारा आदित्यहृदय के उपदेश की ओर इङ्गित किया। धनुष यदि रखा नही तो लेने का प्रसङ्ग कहाँ से आ पडा ?

ततो युद्धपरिश्रान्त समरे चिन्तया स्थितम्। रावण चाग्रतो दृष्ट्वा युद्धाय समुपस्थितम्। सरकार ने लाघव दिखाते हुए शत्रु के बाणो को नष्ट करके शत्रु के सिर काटे। सिर निकलते ही गये। सरकार उसे काटते ही गये। इतने सिर काटे कि दसो दिशाओ मे सिर ही सिर भर गये।

काटे सिर नभ मारग धावहिं। जय जय धुनि करि भय उपजावहिं ॥
कहँ लछिमनु सुग्रीव कपीसा। कहँ रघुबीर कोसलाधीसा ॥४॥

अर्थ कटे हुए सिर आकाश मार्ग से दौड रहे है। जय जय शब्द बोलकर भय उत्पन्न करते हैं और कहते हैं कि कहाँ लक्ष्मण हैं। कहाँ हनुमान् हैं। कहाँ सुग्रीव हैं और कोशलाधीश राम कहाँ हैं ?

व्याख्या अब रावण ने नया रास्ता पकडा। उसके कटे सिर पक्षियो की भाँति आकाश मे दौडने लगे और जयजय बोलने लगे। यह दृश्य और भी भयावना हुआ जब वे सिर कहने लगे कि कहाँ हैं लक्ष्मण ? हनुमान् कहाँ हैं ? सुग्रीव कहाँ हैं ?

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



और कोशलाधीश राम कहाँ है ? जहाँ सिर काटने को दौड रहे हैं और नाम ले लेकर खोज रहे हैं वहाँ की भयानकता का कौन वर्णन कर सकता है ?

छं.[1] कहँ राम कहि सिर निकर धाये देखि मरकट भजि चले ।
संधानि धनु रघुबंसमनि हँसि सरन्हि सिर बेधे भले ॥
सिर मालिका कर कालिका गहि बृंद बृंदन्हि बहु मिली ।
करि रुधिर सर मज्जन मनहु संग्राम बट पूजन चली ॥

अर्थ : राम कहाँ हैं ऐसा कहकर सिर समूह दौडे । देखकर बन्दर भाग चले । धनुष सन्धान करके तब रघुवशमणि ने हँसकर बाणो से सिरो को भली भाँति वेध डाला । कालिकाएँ हाथो मे सिरो की माला लेकर एक झुण्ड दूसरे से मिली । मानो रुधिर की नदी मे स्नान करके सग्राम बट को पूजने जाती है ।

व्याख्या : रावण के मुण्डो का दौडना और उनका कहाँ है राम ? इत्यादि बोलना सुनकर बन्दर डर गये और भाग चले । उनका भागना देखकर सरकार हँसे और बाणो से सिरो को ऐसा बेधा कि सिरो की मालाएँ हो गयी । या यो कहिये कि मुण्डमाल बन गये । रावण के मुण्डमाल कालिका देवी को अर्पण हुए । वे रुधिर की नदी मे स्नान तो पहले ही कर चुकी थी । अब मुण्डमाल ले लेकर एक दूसरे से मिलकर कालिकाओ का झुण्ड हो गया और वे जब समराङ्गण मे आयी तो ऐसी शोभा हुई जैसे स्त्रियाँ स्नान करके माला लेकर बटसावित्री व्रत मे बट का पूजन करने चलती हैं । यहाँ कालिकाओ की उपमा स्त्रियो से मुण्डमाल की उपमा पुष्पमाल से और रणाङ्गण की उपमा बट से दी गयी ।

दो पुनि [2]दसकंठ क्रुद्ध होइ, छाडी सक्ति प्रचड ।
चली बिभीषन सनमुख, मनहु काल को दड ॥९३॥

अर्थ फिर रावण ने अति कोप करके प्रचण्ड शक्ति छोडी । जो विभीषण के सामने चली जैसे काल का दण्ड चलता है ।

व्याख्या मालूम होता है कि जब से मातलि गिरे हैं तब से सारथि का काम विभीषण कर रहे हैं । रावण ने देखा कि प्रचण्ड शक्ति लक्ष्मण को मारी गयी । फिर भी लक्ष्मण बच गये । यथा : सो ब्रह्मदत्त प्रचड सक्ति अनन्त उर लागी सही । यदि राम पर चलायी जावेगी तो नि सन्देह बच जायँगे । इस समय विभीषण मेरा बडा भारी शत्रु हुआ है । शत्रु का सारथि बना हुआ है । इसी को मारना चाहिए । यह तो निश्चय मर जायगा । जिसकी शरण मे यह गया है उसी के सामने इसका तो वध कर ही डालना चाहिए । मैं कह भी चुका हूँ : होइहि जब कर कोट

---

१ हरिगीतिका छन्द है ।

२ प्रत्यनीकालकार है ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अभागी। अतः रावण ने क्रोध करके प्रचण्ड शक्ति छोड़ी। उसके लक्ष्य विभीषण थे। इसलिए कवि कहते हैं कि काल के दण्ड की भाँति विभीषण के सन्मुख चली। जैसे काल के दण्ड से कोई नहीं बच सकता उसी भाँति विभीषण भी नहीं बच सकते।

आवत देखि सक्ति खर घोरा। प्रनतारति भंजन पन मोरा॥
तुरत बिभीषनु पाछें मेला। सनमुख राम सहेउ सोइ सेला॥१॥

अर्थ : तीखे धार की शक्ति को आते देखकर सरकार ने अपने प्रणतार्तिहर विरद को सँभाला। तुरन्त विभीषण को पीछे ढकेल दिया और स्वयं रामजी ने उस शक्ति को अपने ऊपर ले लिया।

व्याख्या : सरकार ने देखा कि इस तीखी शक्ति से विभीषण तो नहीं बचते और यदि विभीषण मरे तो मेरा प्रणतार्तिहर बाना भी गिर जायगा। अतः सरकार ने अपना बाना सँभाला उसे गिरने न दिया। विभीषण से कहने का भी अवसर नहीं है कि हट जाओ। अतः उसे पीछे ढकेल दिया और उस अमोघ शक्ति को अपने ऊपर लिया। कह चुके थे : जौ सभीत आवा सरनाई। रखिहौं ताहि प्रान की नाई। सो प्राण से अधिक मानकर रक्षा की।

लागि सक्ति मुरुछा कछु भई। प्रभुकृत खेलु सुरन्ह बिकलई॥
देखि बिभीषनु प्रभु स्रम पायो। गहि कर गदा क्रुद्ध होइ धायो॥२॥

अर्थ : शक्ति के लगने से सरकार को कुछ मूर्च्छा आ गयी। सरकार के इस खेल ने देवताओं को विकल कर दिया। विभीषण ने देखा कि सरकार को कुछ मूर्च्छा हो गयी तो हाथ में गदा लिये हुए क्रुद्ध होकर दौड़ा।

व्याख्या : अमोघ शक्ति है। अतः उसे व्यर्थ न जाना चाहिए। सरकार ने शक्ति की मर्यादा सुरक्षित रखने के लिए उसे मान लिया। मूर्च्छा सी आगयी। यह उनके लिए खेल था। पर देवता लोग तो विकल हो गये।

रथी की रक्षा सारथि का परम कर्तव्य है। यहाँ कोई उपाय रक्षा का नहीं। रावण पापी है। मूर्च्छित वीर पर भी प्रहार कर सकता है। अतः यदि इससे युद्ध करूँ तो बहुत सम्भव है कि इस बीच में सरकार सचेत हो जायँ। अथवा मेरे लिये सरकार ने चोट सहा है। मैं प्राण देकर भी इसकी रक्षा करूँगा। विभीषणजी का जहाँ तहाँ गदापाणिर्विभीषणः करके वर्णन हुआ है। गदा इनके पास सदा रहती थी उसी को लेकर दौड़े।

रे कुभाग्य सठ मंद कुबुद्धे। तैं सुर नर मुनि नाग बिरुद्धे॥
सादर सिव कहुँ सीस चढ़ाए। एक एक के कोटिन्ह पाए॥३॥

अर्थ : अरे अभागा, शठ, मन्द, दुर्बुद्धि, तूने देवता मनुष्य मुनि और नागों का विरोध किया। आदर के साथ शिवजी को सिर चढ़ाया। सो एक एक के बदले करोड़ों पा चुका।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : तू अभागा है। जो देवता यज्ञ से पूजित होकर इष्ट कामना की पूर्ति करते हैं : उनसे तूने विरोध किया। यथा : इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः। तू शठ है। मनुष्य के हाथ अपना वध जानकर भी तूने मनुष्य से विरोध किया। नर के कर आपन बध बाँची। हँस्यौ जानि विधि गिरा असाँची। तू मन्द है। उदासीन तपस्वी वन मे रहनेवाले मुनियों से विरोध किया जो संसार से कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहते। तू दुर्बुद्धि है : जिन नागों को शिवजी भूषण बनाये रहते हैं उनसे तूने विरोध किया। वे लोग तुझसे विरोध करने नहीं आये। तू नाहक उनके पीछे पड़ा। यथा : किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पर्थहिं लागा। इस भाँति तूने भूतद्रोह किया। चौदह भुवन एक पति होई। भूतद्रोह तिष्ठै नहिं सोई। अतः तुम्हारा वध तो कितना पहिले ही हो गया होता।

तू ने एक महान् पुण्य किया था कि आदर के साथ शिवजी को सिर चढाया था। शिवार्पण की हुई वस्तु अनन्त गुणित होकर प्राप्त होती है। सो एक एक सिर के बदले करोड़ो पा चुका।

तेहि कारन खल अब लगि बाँच्यो। अब तव काल सीस पर नाच्यो॥
रामबिमुख सठ चहसि संपदा। अस कहि हनेसि माँझ उर गदा॥४॥

अर्थ : रे खल! उसी कारण से तू अब तक बचता आया। पर अब तेरा काल तेरे सिर पर नाच रहा है। रे शठ! राम के विमुख होकर सम्पदा चाहता है। ऐसा कहकर बीच हृदय में गदा मारा।

व्याख्या : उसी शिवार्पण के प्रसाद से तू आज तक बचता आया है और अब तक बचा हुआ है। नहीं तो पहिले बार के सिर कटने पर ही मर गया होता। पर अब तेरा सब पुण्य समाप्त हो गया। क्योंकि तूने सरकार पर शक्ति प्रहार कर दिया। जीव ईश्वर का प्रतिबिम्ब है। बिम्ब पर प्रहार होने से प्रतिबिम्ब कैसे बचेगा। अथवा : मुनिजन धनसर्वस सिव प्राणा को तेरी शक्ति लग गयी। अतः सिर चढानेवाला पुण्य समाप्त हो गया। अब तेरे सिर पर काल नाच रहा है। तेरे मरने मे देर नहीं है। वध की इच्छा से ही हृदय के मध्य भाग पर विभीषण ने गदा प्रहार किया।

छं.[1] उरमाझ गदा प्रहार घोर कठोर लागत महि परयो।
दसबदन सोनित स्रवत पुनि सँभारि धायो रिसि भरयो॥
दोउ भिरे अतिबल मल्ल जुद्ध बिरुद्ध एकु एकहि हनै।
रघुबीर बल दर्पित बिभीषनु घालि नहिं ताकहुँ गनै॥

अर्थ : हृदय के बीच में गदा का घोर और कठोर प्रहार लगते ही पृथिवी पर

१. हरिगीतिका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जा पड़ा। दसोमुख से रुधिर उगलते हुए सँभालकर क्रोध से भरा दौड़ा। दोनों अति बलवान् मल्लयुद्ध में भिड़ गये। विरुद्ध होकर एक दूसरे को मार रहे हैं। रघुवीर के बल से गर्वित विभीषण उसे पासङ्ग के बराबर भी नही गिनता।

व्याख्या : हृदय के मध्य मे मुष्टिका का प्रहार भी बहुत है। यहाँ गदा का प्रहार कठोर प्रहार है। सो विभीषण ने कसकर मारा है। इसलिए घोर कहा। ऐसे प्रहार के लगते ही रावण रथ से पृथिवी पर आ पड़े। दसोमुख से रुधिर उगलने लगे। पहिले तो चकरा गये। फिर सँभालकर क्रोध से भरे हुए दौड़े। विभीषणजी भी भिड़ गये। दोनों भाई अति बलवान् है। पहिले भी रावण ने विभीषण में निर्बलता का दोष कभी नही दिया। विभीषणजी को वह भीरु समझता था। यथा : बन्धु हमार भीरु अति सोऊ। दोनों में मल्लयुद्ध हो गया और दोनों एक दूसरे के विरुद्ध होकर प्रहार करते थे। सो यद्यपि रावण दसगुणित सामग्री से सम्पन्न थे। बीस हाथ और दस सिर था। पर विभीषण को सरकार का बल था। यथा : जनहि मोर बल निज बल ताही। अतः विभीषण ने उसे पासंग बराबर भी नही माना। कवि ने यहाँ पर धालि शब्द का प्रयोग किया है। जिसका अर्थ घेलुआ कहा जा सकता है : सौदे के अन्त में कुछ ऊपर से जो देते हैं उसे घेलुआ कहते हैं। मुहावरे का ख्याल करके मैंने पासंग अर्थ किया।

दो. उमा विभीषनु रावनहि सनमुख चितव कि काउ।
सो अब भिरत काल ज्यौं श्रीरघुवीर प्रभाउ ॥९४॥

अर्थ : शिवजी कहते हैं कि उमा! विभीषण कभी रावण के सम्मुख आँख उठाकर न देख सके। वह जो काल समान भिड़ रहा है : यह रघुवीर का प्रभाव है।

व्याख्या : विभीषणजी ने स्वयं हनुमान्‌जी से कहा था : सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्ह महुँ जीभ बिचारी। विभीषण सामान्य राक्षसों से भी दबकर रहते थे। रावण के सामने आँख उठाकर देखने की कथा ही क्या है। वही विभीषण जो लात खाकर लंका से निकाले गये थे आज रावण से किस बूते पर लड़ रहे हैं? शिवजी कहते हैं कि विभीषण रामजी के प्रभाव से काल के समान लड़ रहे हैं। भाव यह कि विभीषण का साहस इतना बढा हुआ है कि समझते हैं कि यह मेरा कुछ नहीं कर सकता। मैं इसे मार डालूँगा। यथा : राम प्रताप प्रबल कपि जूथा। मर्दहि निसिचर निकर बरूथा। उमा को सन्देह हुआ कि विभीषण का साहस रावण से लड़ने का कैसे हुआ। इस पर शिवजी ने यह उत्तर दिया।

देखा स्रमित बिभीषनु भारी। धावा हनूमान गिरिधारी ॥
रथ तुरंग सारथी निपाता। हृदय माँझ तेहि मारेसि लाता ॥१॥

अर्थ : हनुमान्‌जी ने देखा कि विभीषण बहुत थक गये हैं। तो हनुमान्‌जी पर्वत लेकर दौड़े। रथ, घोड़ा और सारथि को मारा और रावण के हृदय में लात मारा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : तू अभागा है। जो देवता यज्ञ से पूजित होकर इष्ट कामना की पूर्ति करते हैं उनसे तूने विरोध किया। यथा : इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविता । तू शठ है। मनुष्य के हाथ अपना वध जानकर भी तूने मनुष्य से विरोध किया। नर के कर आपन बध बाँची। हँस्यो जानि बिधि गिरा असाँची। तू मन्द है। उदासीन तपस्वी वन मे रहनेवाले मुनियो से विरोध किया जो संसार से कोई सम्बन्ध नही रखना चाहते। तू दुर्बुद्धि है। जिन नागो को शिवजी भूषण बनाये रहते हैं उनसे तूने विरोध किया। वे लोग तुझसे विरोध करने नही आये। तू नाहक उनके पीछे पडा। यथा : किंनर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पंथहि लागा। इस भाँति तूने भूतद्रोह किया। चौदह भुवन एक पति होई। भूतद्रोह तिष्ठै नहि सोई। अत तुम्हारा वध तो कितना पहिले ही हो गया होता।

तू ने एक महान् पुण्य किया था कि आदर के साथ शिवजी को सिर चढाया था। शिवार्पण की हुई वस्तु अनन्त गुणित होकर प्राप्त होती है। सो एक एक सिर के बदले करोडो पा चुका।

तेहि कारन खल अब लगि बाँच्यो। अब तव काल सीस पर नाच्यो ॥
रामबिमुख सठ चहसि संपदा। अस कहि हनेसि माँझ उर गदा ॥४॥

अर्थ : रे खल ! उसी कारण से तू अब तक बचता आया। पर अब तेरा काल तेरे सिर पर नाच रहा है। रे शठ ! राम के विमुख होकर सम्पदा चाहता है। ऐसा कहकर बीच हृदय मे गदा मारा।

व्याख्या : उसी शिवार्पण के प्रसाद से तू आज तक बचता आया है और अब तक बचा हुआ है। नही तो पहिले बार के सिर कटने पर ही मर गया होता। पर अब तेरा सब पुण्य समाप्त हो गया। क्योकि तूने सरकार पर शक्ति प्रहार कर दिया। जीव ईश्वर का प्रतिबिम्ब है। बिम्ब पर प्रहार होने से प्रतिबिम्ब कैसे बचेगा। अथवा : मुनिजन धनसर्वस सिव प्राणा को तेरी शक्ति लग गयी। अतः सिर चढानेवाला पुण्य समाप्त हो गया। अब तेरे सिर पर काल नाच रहा है। तेरे मरने मे देर नही है। *वध की इच्छा से ही हृदय के मध्य भाग पर विभीषण ने गदा प्रहार किया।*

छं.[1] उरमाझ गदा प्रहार घोर कठोर लागत महि परयो।
दसबदन सोनित स्रवत पुनि सँभारि धायो रिसि भरयो ॥
दोउ भिरे अतिबल मल्ल जुद्ध बिरुद्ध एकु एकहि हनै।
रघुबीर बल दर्पित बिभीषनु घालि नहि ताकहुँ गनै ॥

अर्थ : हृदय के बीच मे गदा का घोर और कठोर प्रहार लगते ही पृथिवी पर

१ हरिगीतिका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जा पड़ा। दसोमुख से रुधिर उगलते हुए सँभालकर क्रोध से भरा दौड़ा। दोनों अति बलवान् मल्लयुद्ध में भिड़ गये। विरुद्ध होकर एक दूसरे को मार रहे हैं। रघुवीर के बल से गर्वित विभीषण उसे पासङ्ग के बराबर भी नही गिनता।

व्याख्या : हृदय के मध्य में मुष्टिका का प्रहार भी बहुत है। यहाँ गदा का प्रहार कठोर प्रहार है। सो विभीषण ने कसकर मारा है। इसलिए घोर कहा। ऐसे प्रहार के लगते ही रावण रथ से पृथिवी पर आ पड़े। दसोमुख से रुधिर उगलने लगे। पहिले तो चकरा गये। फिर सँभालकर क्रोध से भरे हुए दौडे। विभीषणजी भी भिड़ गये। दोनों भाई अति बलवान् है। पहिले भी रावण ने विभीषण में निर्बलता का दोष कभी नही दिया। विभीषणजी को वह भीरु समझता था। यथा : बन्धु हमार भीरु अति सोऊ। दोनों में मल्लयुद्ध हो गया और दोनों एक दूसरे के विरुद्ध होकर प्रहार करते थे। सो यद्यपि रावण दसगुणित सामग्री से सम्पन्न थे। बीस हाथ और दस सिर था। पर विभीषण को सरकार का बल था। यथा : जनहि मोर बल निज बल ताही। अतः विभीषण ने उसे पासंग बराबर भी नही माना। कवि ने यहाँ पर घालि शब्द का प्रयोग किया है। जिसका अर्थ घेलुआ कहा जा सकता है : सौदे के अन्त में कुछ ऊपर से जो देते हैं उसे घेलुआ कहते हैं। मुहावरे का ख्याल करके मैंने पासंग अर्थ किया।

दो. उमा विभीषनु रावनहि सनमुख चितव कि काउ।
सो अब भिरत काल ज्यौ श्रीरघुबीर प्रभाउ ॥९४॥

अर्थ : शिवजी कहते हैं कि उमा ! विभीषण कभी रावण के सम्मुख आँख उठाकर न देख सके। वह जो काल समान भिड़ रहा है : यह रघुवीर का प्रभाव है।

व्याख्या : विभीषणजी ने स्वयं हनुमान्‌जी से कहा था : सुनहु पवनसुत रहनि हमारी। जिमि दसनन्ह महुँ जीभ बिचारी। विभीषण सामान्य राक्षसों से भी दबकर रहते थे। रावण के सामने आँख उठाकर देखने की कथा ही क्या है। वही विभीषण जो लात खाकर लंका से निकाले गये थे आज रावण से किस बूते पर लड़ रहे हैं ? शिवजी कहते हैं कि विभीषण रामजी के प्रभाव से काल के समान लड़ रहे हैं। भाव यह कि विभीषण का साहस इतना बढा हुआ है कि समझते हैं कि यह मेरा कुछ नही कर सकता। मैं इसे मार डालूँगा। यथा : राम प्रताप प्रबल कपि जूथा। मर्दहि निसिचर निकर बरूथा। उमा को सन्देह हुआ कि विभीषण का साहस रावण से लड़ने का कैसे हुआ। इस पर शिवजी ने यह उत्तर दिया।

देखा स्रमित बिभीषनु भारी। धावा हनूमान गिरिधारी ॥
रथ तुरंग सारथी निपाता। हृदय माँझ तेहि मारेसि लाता ॥१॥

अर्थ : हनुमान्‌जी ने देखा कि विभीषण बहुत थक गये हैं। तो हनुमान्‌जी पर्वत लेकर दौड़े। रथ, घोड़ा और सारथि को मारा और रावण के हृदय में लात मारा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या सरकार के मूर्च्छित होते ही हनुमान्‌जी दौड़नेवाले थे। तब तक देखा कि विभीषण लड गये। वे ही उस समय निकट थे। सारथि का काम करते थे। अत हनुमान्‌जी खडे होकर युद्ध की गतिविधि देखते रहे। देखा कि विभीषण थक गये। अब रावण प्रबल पड रहा है। कही विभीषण का वध न हो जाय। अत पहाड लेकर दौडे। उसे तो रावण के रथ पर फेंका। जिससे दबकर रथ चूर हो गया। सारथि और घोडे पिस गये और स्वय पहुँचकर रावण को लात मारा। रावण के लिए कवि कह आये हैं बिसरा मरण भई रिसि गाढी। अत रावण का पराक्रम इस समय बहुत बढा हुआ है। यह निश्चय हो जाता कि मुझे कोई मार नही सकता और साथ ही साथ गाढी रिसि होने से मानसिक स्थिति बडी बलवती हो जाती है और मानसिक स्थिति पर ही बहुत कुछ जय पराजय निर्भर करता है।

ठाढ रहा अति कपित गाता। गएउ बिभीषनु जहँ जनत्राता॥
पुनि रावन कपि हतेउ पचारी। चलेउ गगन कपि पूँछ पसारी॥२॥

अर्थ शरीर अत्यन्त काँपने लगा। पर खडा रह गया। विभीषणजी भक्त-रक्षक रामजी के पास गये। फिर रावण ने उन्हें ललकारकर मारा। हनुमान्‌जी पूँछ फैलाकर आकाश मे चले।

व्याख्या जो रावण हनुमान्‌जी की मुष्टिका न सहकर धराशायी हुआ था वही इस समय हृदय मे लात मारने से भी नही गिरता है। यद्यपि उसका शरीर अत्यन्त काँपने लगा। पर खडा रह गया। विभीषणजी ने देखा कि हनुमान्‌जी आगये। अब मेरी आवश्यकता नही। तो सरकार के पास उन्हे सँभालने के लिए चले गये।

कम्प शान्त होते ही रावण ने हनुमान्‌जी को ललकारकर मारा। हनुमान्‌जी पर उस प्रहार का कोई प्रभाव न पडा। उन्होने चाहा कि रावण को वहाँ से हटा ले जायँ। सरकार मूर्च्छित हैं। इस समय रावण का यहाँ रहना अच्छा नही। अत आप आकाश मे चल। प्रहार होने पर दूसरी जगह हटने का अर्थ भागना है। जिसमे रावण भागना समझकर पीछा करे। तिस पर आप ने पूँछ फैला दी। जिसमे क्रोधावेश मे उसी को पकडकर मेरे साथ ही जहाँ मैं जा रहा हूँ वही चला आवे।

गहेसि पूँछ कपि सहित उडाना। पुनि फिरि भिरेउ प्रबल हनुमाना॥
लरत अकास जुगल सम जोधा। एकहि एकु हनत करि क्रोधा॥३॥

अर्थ पूँछ पकडकर हनुमान्‌जी के साथ ही उड चला। तब तो प्रबल हनुमान्‌जी घूमकर लड गये। दोनो बराबरी के योद्धा आकाश मे भिड गये। एक दूसरे पर क्रोध करके प्रहार करने लगे।

व्याख्या हनुमान्‌जी बुद्धिमतावरिष्ठ हैं। उनकी युक्ति काम कर गयी। रावण अत्यन्त क्रुद्धावस्था मे हनुमान्‌जी की चाल को न समझ सका। पकड ली पूँछ कि कहाँ जाता है और हनुमान्‌जी के साथ ही उडा। हनुमान्‌जी प्रबल हैं। निर्बलता

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



के कारण भागे नही हैं। जब देख लिया कि जितनी दूर इसे लाना चहते थे उतनी दूर यह चला आया तो घूमकर भिड़ गये। रावण उन्हे भागता हुआ समझकर जोश मे पीछा करते ही चले गये।

अब आकाश मे युद्ध आरम्भ हुआ। दोनो योद्धाओ मे बराबरी का युद्ध होने लगा। एक दूसरे पर क्रोध करके प्रहार कर रहे हैं। गिरता कोई नही है। यह आकाश युद्ध अद्भुत हुआ।

सोहहिं नभ छल बल बहु करही। कज्जलगिरि सुमेरु जनु लरही ॥
बुधि बल निसिचरु परै न पारचो। तब मारुत सुत प्रभु संभारचो ॥४॥

अर्थ : बहुत से दांवपेंच करते हुए आकाश मे ऐसे शोभित हुए जैसे कज्जलगिरि और सुमेरु लड रहे हों। वुद्धिवल से वह राक्षस गिराये न गिरा तब हनुमान्‌जी ने सरकार को सँभाला।

व्याख्या : दोनो वीर आकाश मे दांवपेंच कर रहे हैं। रावण कज्जल के पर्वत के समान काले और भारी हैं। इधर हनुमान्‌जी सुमेरु पर्वत की भांति विशाल और सोने के रङ्ग के हैं। यथा : पीतस्ताम्रमुख: कपि:। अत: ऐसी शोभा हो रही है मानो कज्जलगिरि और सुमेरु मे युद्ध आकाश मण्डल मे हो रहा है।

इस समय रावण ऐसा युद्ध कर रहा है कि न तो दांवपेंच से और न बल से ही गिराया जा सकता है। तब हनुमान्‌जी ने सरकार को सँभाला। हनुमान्‌जी सरकार की मानसी मूर्ति सदा हृदय मे रखते है और समय समय पर दरिद्र के धन की भांति उसे सँभाला करते हैं कि कही गिर न जाय। यथा : मन माधव को नेकु निहारहि। सुनु सठ सदा रंक के धन ज्यों पुनि पुनि प्रभुहि सँभारहि। रावण के न गिरने पर हनुमान्‌जी को सन्देह हुआ कि क्या बात है। यह गिरता क्यो नही ? क्या सरकार मेरे हृदय से निकल गये। अत हनुमान्‌जी ने सरकार को सँभाला।

छं.[1] संभारि श्रीरघुबीर धीर प्रचारि कपि रावन हन्यौ।
महिपरत पुनि उठि लरत देवन्ह जुगल कहुँ जयजय भन्यौ ॥
हनुमंत संकट देखि मर्कट भालु क्रोधातुर चले।
रनमत्त रावन सकल सुभट प्रचड भुजबल दलमले ॥

अर्थ : श्रीरघुवीर धीर को सँभालकर हनुमान्‌जी ने ललकारकर रावण को मारा। पृथिवी पर गिरते और फिर उठकर लड़ते हुए दोनो की जय जयकार देवताओ ने की। हनुमान्‌जो का सकट देखकर बन्दर और भालु क्रुद्ध होकर चले। रण मे मत्त रावण ने सभी सुभटों को प्रचण्ड भुजाओ के बल से छिन्न भिन्न कर दिया।

व्याख्या : सरकार के वीर धीर भाव की मूर्ति को हृदय मे धारण करके

१. हरिगीतिका छन्द।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ललकारकर हनुमान्‌जी ने रावण को मारा। तो इस बार रावण पृथिवी पर गिर गया। परन्तु फिर उठकर लड़ने लगा। यह लड़ाई ऐसी बराबरी की हुई कि देवताओं को दोनों का जयकार बोलना पड़ा। देवता हैं : असत्य भाषण नहीं कर सकते। जब बराबरी का युद्ध होने लगता है तब दोनों ओर सङ्कट उपस्थित होता है। रावण के पक्ष में तो इस समय कोई ऐसा है नहीं जो सहायता कर सके। पर हनुमान्‌जी के पक्षवाले सभी हैं। सो बन्दर और भालु क्रोध में आतुर होकर चले। जब बन्दर भालु रावण पर टूट पड़े तब हनुमान्‌जी युद्ध से विरत हो गये। रावण को भी दम लेने का अवकाश मिला। बन्दर भालु उसका क्या कर सकते थे। सो उन्हें उसने भुजाओं के बल से ही छिन्न भिन्न कर दिया।

दो. तब रघुबीर प्रचारे, धाये कीस प्रचंड।
कपिदल प्रबल देखि तेहि, कीन्ह प्रगट पाखंड ॥९५॥

अर्थ तब श्रीरघुवीर के ललकारने पर प्रचण्ड वीर बानर दौड़े। बानरों के प्रबल दल को देखकर रावण ने माया प्रकट की।

व्याख्या : सरकार मूर्च्छा से जागे तो बन्दर भालुओं का रावण के हाथ से विध्वंस होते देखा। तब रामजी ने ललकारा। इनकी आज्ञा पर बन्दरों में जो प्रचण्ड वीर थे अङ्गद नीलादि वे दौड़े। रावण ने देखा कि यह दल जो युद्ध के लिए आ रहा है मेरे मान का नहीं है। तब उसने माया प्रकट की। राक्षस जब देखते हैं कि बल काम न करेगा तब अपने परम बल माया का आश्रयण करते हैं।

अंतरधान भएउ छन एका। पुनि प्रगटे खल रूप अनेका ॥
रघुपति कटक भालु कपि जेते। जहँ तहँ प्रगट दसानन तेते ॥१॥

अर्थ : वह खल एक क्षण के लिए अन्तर्धान हो गया और तब अनेक रूप प्रकट किया। रामजी की सेना में जितने बन्दर भालु थे जहाँ तहाँ उतने ही दशानन प्रकट हो गये।

व्याख्या . प्रचण्ड बानर वीर तो दौड़े पर रावण का पता नहीं। वह अन्तर्धान हो गया। वीर लोग इधर उधर देखते हैं कि वह गया कहाँ ? तब तक सबके सामने एक एक रावण मौजूद हो गये या तो कहीं रावण नहीं। क्षणभर बाद सम्पूर्ण रणाङ्गन में रावण ही रावण हो गये।

देखे कपिन्ह अमित दससीसा। जहँ तहँ भजे भालु अरु कीसा ॥
भागे बानर धरहिं न धीरा। त्राहि त्राहि लछिमन रघुबीरा ॥२॥

अर्थ : बन्दरों ने अगणित रावण देखे तब तो भालु भी भागे और विकट बीर बन्दर भी भागे। बन्दर ऐसे भागे कि धैर्य धारण ही नहीं करते। पुकारते हैं कि हे लक्ष्मण ! हे रघुबीर रक्षा करो, रक्षा करो।

व्याख्या . अपने सामने एकाएक रावण को देखकर जो चौंके तो जिधर देखते

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हैं उधर रावण ही रावण। इस दृश्य के देखते ही बन्दर भालु ऐसे भयभीत हुए कि प्राण लेकर भागे। धैर्य धारण करके कोई यह नही देख रहा है कि आखिर इतने रावण कर क्या रहे हैं। किसी को मारते काटते हैं या नही। उनका धैर्य ऐसा छूटा कि भागते ही चले जाते हैं। कोई लौटकर देखता ही नही। रक्षा के लिए लक्ष्मणजी और रामजी को पुकारते हैं। क्योकि अप्रतिक्रिय सङ्कट के समय वे ही सहाय होते और उन्ही का बल बन्दर भालुओ को है।

दह दिसि धावहि कोटिन्ह रावन। गर्जहिं घोर कठोर भयावन ॥
डरे सकल सुर चले पराई। जय कै आस तजहु अब भाई ॥३॥

अर्थ दसो दिशाओ मे करोडो रावण दौडते हैं। घोर कठोर और भयावन गर्जन कर रहे हैं। सब देवता डर गये और भाग चले। कहने लगे कि भाई ! अब जीत की आशा छोड दो।

व्याख्या चारो दिशा चारो विदिशा ऊपर और नीचे करोडो रावण दौड रहे हैं। सेना को तितर बितर करके ऐसा भगाना चाहते है कि फिर इकट्ठी न हो सके। प्रधान ज्ञानेन्द्रिय चक्षु और श्रोत्र ही हैं। सो दोनो पर आसुरी माया का अधिकार हो गया है। नेत्र करोडो रावण देख रहे हैं और कान उनका घोर कठोर और भयावन गर्जन सुन रहे हैं। उच्च स्वर होने से घोर कर्णकर्कश होने से कठोर और हृदय को कँपानेवाला होने से भयावन कहा। इस शब्द से सभी भालु बन्दर समझते हैं कि आया मेरे सिर पर। अत अधिक वेग से भागते है।

माया साधारण नही है। वह बन्दर भालु पर ही नही देवताओ पर भी काम कर गयी। वे भी ऐसा ही दृश्य देखते और ऐसे ही शब्द सुनते हैं। टाकी बायस्कोप म भी अनेक रावण दौड सकते हैं। भयानक शब्द कर सकते है। पर किसी को मार काट नही सकते। रावण की माया टाकी बायस्कोप की माया से कहीं बढकर थी। वह दिन दहाडे रणाङ्गन मे काम करती थी। देवताओ पर उसने काम किया। वे भी डर गये। नीचे बन्दर भालु भागे। ऊपर आकाश म देवता भाग चले। आपस मे कहने लगे कि अब जीतने की आशा छोडो।

सब सुर जिते[1] एक दसकधर। अब बहु भए तकहु गिरिकदर ॥
रहे बिरचि सभु मुनि ज्ञानी। जिन्ह जिन्ह प्रभु महिमा कछु जानी ॥४॥

अर्थ सब देवताओ को एक रावण न जीत लिया। अब तो बहुत हुए। अब पहाड की कन्दरा ताको। ब्रह्मा शम्भु और मुनि ज्ञानी रह गये। जिन लोगो ने प्रभु की कुछ महिमा जानी थी।

व्याख्या जीत की आशा छोडने का कारण कहते हैं कि अकेले रावण ने तो सब देवताओ को जीत लिया था। अब तो असख्य रावण हो गये। इतने रावण

---

१ यहाँ मीलितालकार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कैसे जीते जायेंगे। अतः जैसे पहिले बचे थे वही रास्ता पकड़ना चाहिए। रावन आवत सुनउ सकोहा। देवन्ह तकेउ मेरु गिरि खोहा। अत. हम लोगो को मेरुगिरि का खोह ही शरण है। यहाँ से जितनी जल्दी हो निकल जाना ही ठीक है।

ये देवता लोग सरकार की महिमा से वस्तुतः अनभिज्ञ थे। ज्ञानी देवता शम्भु और ब्रह्मा तथा ज्ञानी मुनि सरकार की अनन्त महिमा से थोड़ा बहुत परिचित थे। वे समझते थे कि यह माया है। वस्तुस्थिति नही है, यह सरकार के सामने कितने देर तक ठहरेगी।

छं.[1] जाना प्रताप ते रहे निर्भय कपिन्ह रिपु माने फुरे।
चले बिचलि मर्कट भालु सकल कृपालु पाहि भयातुरे॥
हनुमंत अंगद नील नल अति बल लरत रन बाकुरे।
मर्दहि दसानन कोटि कोटिन्ह कपटभू भट अंकुरे॥

अर्थ : जो प्रताप जानते थे वे निर्भय थे। बन्दरो ने शत्रुओ को सच्चा माना। भय से विकल होकर हे कृपाल ! रक्षा करो पुकारते हुए भाग चले। हनुमान् अगद नील और नल ये रणबाँकुरे अत्यन्त बली लड़ रहे हैं। करोडो रावणो को पकड पकड़कर रगड रहे हैं। पर ये माया से उत्पन्न होनेवाले योद्धा अकुर की भाँति निकल पडते थे।

व्याख्या : उन ज्ञानियो ने सरकार के प्रताप को जान पाया था। इसलिए निर्भय थे। पर बन्दरो ने तो उन रावणो को सच्चा जाना। अत. वे भयातुर होकर हे कृपाल ! रक्षा करो ऐसा पुकारते हुए भाग चले। परन्तु उनमे भी रणबाकुरे अति बलवान् वीर थे। जैसे हनुमान् अङ्गद नील और नल। ये भागनेवाले नही। इन्होने उन रावणो से लडना आरम्भ किया तो वे कुछ ठहरते नही। एक को कौन कहे वे करोडो रावण पर झपटते हैं और उन्हे रगड देते हैं। मानो हवा से लड़ रहे है। अपने समझ मे मर्दन करते है पर जहाँ पर मर्दन करते हैं वही से दूसरे रावण निकल पडते हैं। भाव यह कि वे रावणो को मर्दन करते-करते हैरान हैं।

दो. सुर बानर देखे बिकल, हँस्यो कोसलाधीस।
सजि सारग एक सर, हते सकल दससीस॥९६॥

अर्थ : देवताओ और बानरो को विकल देखकर कोशलाधीश हँसे और धनुष को सज्जित करके एक बाण से सब रावणो को मार दिया।

व्याख्या : सरकार ने देखा कि देवता लोग चुपके चुपके भागे जाते हैं। बन्दर लोग त्राहि त्राहि चिल्लाते भागे जा रहे हैं। सुभट लोग हवा से लड़ रहे हैं पर विकल सब हैं। इस पर सरकार हँसे कि देवता भी धोखा खा गये। तब धनुष सन्धान

---

१. हरिगीतिका छ द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



करके एक बाण से उन सब माया से बने हुए रावणो को मार दिया। जिस भाँति एक रावण से अगणित रावणो का प्रकट होना अद्भुत हुआ उसी भाँति एक बाण से सबका मारा जाना भी महा अद्भुत हुआ।

प्रभु छन महुँ माया सब काटी। जिमि रबि उए जाहि तम फाटी॥
रावनु एक देखि सुर हरखे। फिरे सुमन बहु प्रभु पर बरखे॥१॥

अर्थ सरकार ने एक क्षण मे सब माया काट दी। जैसे सूर्योदय होने से अन्धकार फट जाता है। रावण को अकेला देखकर देवता प्रसन्न हुए लौट पडे और सरकार पर बडी पुष्पवृष्टि की।

व्याख्या जिस भाँति रावण को माया प्रकट करने मे एक क्षण लगा था। यथा अन्तरधान भयउ छन एका। पुनि प्रगटेउ खल रूप अनेका। उसी भाँति माया के कटने मे भी एक ही क्षण लगा। सरकार ने अनायास ही सब माया दूर कर दी। जिस भाँति सूर्योदय होने पर अन्धकार आपसे आप फट जाता है। सूर्यनारायण को कोई आयास नही करना पडता। नारायण तो अपने ही को प्रकाशित करते हैं। उनका किया हुआ अन्धकार दूर नही होता। चन्द्रमा को अन्धकार दूर करने मे पराक्रम करना पडता है। यथा मत्त नाग तम कुंभ बिदारी। ससि केसरी गगन बन चारी। सूर्य उदय हुए और अन्धकार आपसे आप नष्ट हो जाता है। इसी भाँति सरकार के बाणरूपी सूर्य के उदय होते ही मायान्धकार जिसमे ये भ्रमात्मक दृश्य दिखाई पडते थे आपसे आप ही नष्ट हो गया नही तो हनुमान् अङ्गद नील नल बडा पराक्रम करके उस माया से लड रहे थे पर वह दूर नही होती थी।

बन्दरो ने तो उलटकर भी नही देखा कि क्या हो रहा है पर देवता उलटकर देखते थे कि कही हमारा पीछा तो कोई रावण नही कर रहा है क्योकि ऊपर भी बहुत से रावण दौड रहे थे। उन्होने देखा कि अकस्मात् सब रावण बेपता हो गये। रणाङ्गन मे केवल एक ही रावण रह गया। तब तो देवता लोग लौट आये और मारे खुशी के सरकार पर पुष्प वृष्टि करने लगे।

भुज उठाइ रघुपति कपि फेरे। फिरे एक एकन्ह तब टेरे॥
प्रभु बल पाइ भालु कपि धाए। तरल तमकि संजुग महि आए॥२॥

अर्थ भुजा उठाकर सरकार ने बन्दरो को लौटाया। वे सब एक दूसरे के पुकारने पर लौटे। सरकार का बल पाकर भालु बन्दर दौड पडे और फुरती से क्रुद्ध हुए रणाङ्गन मे आये।

व्याख्या . बन्दरो को लौटाने मे सरकार को भुजा उठाकर बुलाना पडा। जिन बन्दरो ने सरकार का भुजा उठाना देखा उन्होने आगे के भागते हुओ को पुकारकर लौटने को कहा और उन लोगो ने आगेवालो को पुकारा। इस भाँति वानरी सेना लौट पडी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बन्दरो ने देखा कि मैदान खाली है सब रावण नष्ट हो गये। तब तो वे दौड़ पडे और बड़ी तेजी से अमर्षयुक्त होकर समराङ्गन मे आये। एक रावण से लड़ने के लिए उन्हे उत्साह है। उन्हे रामजी का बल है। उन्ही को सङ्कट के समय पुकारते हैं और वे ही सहाय होते हैं। भुजा के उठाने का तात्पर्य भी अभयदान है। अतः उनके बल पाने से बन्दर भालुओ मे नवीन प्राण का सञ्चार हुआ।

अस्तुति करत देवतन्हि देखे। भएउ एक मैं इन्हके लेखे ॥
सठहु सदा तुम्ह मोर मरायल। अस कहि कोपि गगन पर धायल ॥३॥

अर्थ : देवताओ को स्तुति करते देखा। क्या मै इनके लिए भी अकेला हो गया। हे शठो ! तुम सदा मेरे पीटे हुए हो ऐसा कहकर आकाश मार्ग मे दौड़ा।

व्याख्या : देवताओ ने सरकार के ऊपर पुष्पवृष्टि की। तत्पश्चात् स्तुति करने लगे। रावण इसे सहन नही कर सके। ये सब सदा मेरी स्तुति करते थे सो आज मेरा पराभव देखकर शत्रु की स्तुति मेरे सामने कर रहे हैं। मैं भले ही राम के लिए बन्दर भालुओ के लिए अकेला हो गया हूँ तो फिर क्या इनके लिए भी अकेला हो गया ? इनके लिए अकेला ही मै बहुत हूँ।

रावण ने ललकारा कि दुष्टो ! तुम तो सदा मुझसे पीटे गये हो। अतः मेरी ही स्तुति करनी तुम्हे प्राप्त है। इस तपस्वी ने तुम्हे कब पीटा जो इसकी स्तुति करते हो। रावण उचित अनुचित की परख बल के तारतम्य से करते हैं। अतः देवताओं को दण्ड देने के लिए क्रुद्ध होकर आकाश मार्ग मे दौड़े।

हाहाकार करत सुर भागे। खलहु जाहु कहँ मोरे आगे ॥
देखि बिकल सुर अंगद धायो। कूदि चरन गहि भूमि गिरायो ॥४॥

अर्थ : देवता लोग हाहाकार करते हुए भागे। दुष्टो ! मेरे सामने से कहाँ भागकर जा सकोगे। देवताओ को विकल देखकर अङ्गदजी दौड़े और कूदकर उसकी टाँग पकड़कर पृथिवी पर गिरा दिया।

व्याख्या : रावण को अपनी ओर आग बबूला होकर आते देखकर देवता लोग उत्तर की ओर भाग चले। रावण से बचने के लिए एक मात्र शरण मेरु पर्वत की गुफाएँ थी। जहाँ पापियो की गति नही है। रावण ने ललकारा कि दुष्टो ! मेरे सामने से तुम भागकर भी नही बच सकते। दिग्विजय के समय तुम लोग मेरा सामना पड़ने के पहले ही भाग गये थे। यथा : दिगपालन के लोक सुहाये। सूने सकल दसानन पाये।

अङ्गदजी ने देखा कि देवता लोग विकल है। इनकी सहायता करनी चाहिए। मैंने कह भी रक्खा है : हतौं न खेत खेलाइ खेलाई। सो खेलाने के लिए दौड़े। उड़े नही। कूदकर उसकी टाँग पकड़ ली और पृथिवी पर गिरा दिया। हनुमान्जी की इसने पूँछ पकड़ी थी। अतः अङ्गदजी ने उसकी टाँग पकड़कर पटका।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



छं.[1] गहि भूमि पारयौ लात मारयौ बालिसुत प्रभुपहि गयो ।
संभारि उठि दसकंठ घोर कठोर रव गर्जत भयो ॥
करि दाप चाप चढाइ दस सधानि सर बहु बरपई ।
किए सकल भट घायल भयाकुल देखि निज बल हरपई ॥

अर्थ : अङ्गद ने उसे पकड़कर : पृथिवी पर गिराया । लात मारा और रामजी के पास चले गये । सँभालकर रावण उठा और घोर कठोर ध्वनि से गर्जा । दर्प करके दस धनुष चढाकर और बाण सन्धान करके बाण वर्षा करने लगा । सब वीरो को घायल और भयाकुल कर दिया और अपने बल को देखकर हर्षित होने लगा ।

व्याख्या : विभीषण को इसने लात मारकर निकाला है । उसका फल यह मिल रहा है कि बराबर लात खाता ही जाता है । यज्ञ विध्वस के समय अङ्गद ने लात मारा था फिर हनुमान्‌जी ने रणाङ्गन मे लात मारी । इस समय फिर अङ्गद ने लात मारी । इसीलिए कवि अङ्गद न कहकर बालिसुत कह रहे हैं । दूसरा किसे यह सामर्थ्य है कि रावण को पैर पकडकर पटके और लात मारे । मारकर प्रभु के पास चले गये । समझा कि यह जल्दी नही उठेगा ।

पर रावण सँभालकर उठे । लज्जित नही हुए । घोर कठोर ध्वनि से गर्जन करने लगे । दर्प से दसो धनुओ से बाण की वर्षा आरम्भ की और सब बन्दरो को घायल और भय से आकुल कर दिया । तब अपना बल देखकर बडे प्रसन्न हुए कि ठीक है : बीस पयोधि अगाध अपारा । को अस बीर जो पाइहि पारा ।

दो. तब रघुपति रावन के सीस भुजा सर चाप ।
काटे बहुत बढे पुनि जिमि तीरथ कर पाप ॥९७॥

अर्थ तब रामजी ने रावण के सिर भुजा और दसो धनुषो को काटा और वे फिर बहुत से हो गये जैसे तीर्थ मे किया हुआ पाप ।

व्याख्या रामजी ने सेना को अभय देकर लौटाया था । अत त्राहि त्राहि होने के पहिले ही रावण पर टूटे और एक साथ ही उसके सिर भुजा बाण और धनुप को काट दिया । बाण वर्षा बन्द हो गयी । परन्तु फिर सब ठीक हो गया । सिर बाहु दूसरे निकल आये और धनुप बाण तो बहुत से रथ पर रखे ही होते हैं । बार बार काटने पर भी सिर और भुजायें फिर ज्यो की त्यो हो जाती हैं । जैसे तीर्थ पाप को काट देता है । पर तीर्थ मे किया हुआ पाप बहुत बढ जाता है । तनिक सी असावधानी मे फिर पाप ज्यों का त्यों हो जाता है । तीर्थ उपजाऊ भूमि है । उसमे पाप पुण्य दोनों बीज अत्यधिक पनप जाते हैं ।

---

१. हरिगीतिका छन्द है ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सिर भुज बाढि देखि रिपु केरी। भालु कपिन्ह रिसि भई घनेरी ॥
मरत न मूढ कटेहुँ भुज सीसा। धाए कोपि भालु भट कीसा ॥१॥

अर्थ शत्रु के सिर और भुजा की बढती देखकर भालु और बन्दरो को बडा क्रोध हुआ कि यह मूढ़ सिर के कटने पर भी नही मरता है। अत भालु और वीर बन्दर क्रोध करके दौडे।

व्याख्या शत्रु की इस प्रकार की बढोत्तरी बन्दर भालुओ से न देखा गया। कार्य मे सफलता होते न देखकर रिसि हुई और सरकार को सिर भुजा छेदन मे कितना परिश्रम पडता है इसे सोचकर घनेरी रिसि हुई। जिसका ससार मे चित्त लगा रहता है वह जल्दी नही मरता है और मर भी जाय तो प्रेत होकर यही रहता है। यह जीवित प्रेत है। सिर कटने पर भी नही मरता। वालि ज्ञानी था। जो अचल करौ तन राखहु प्राना। सरकार के ऐसा कहने पर भी जीना न चाहा। यह मूढ है। इतनी दुर्दशा और इतनी पीडा पाने पर भी जीना चाहता है। मरणान्त कष्ट अगणित बार भोग चुका और भोगता जाता है। फिर भी जीने के लिए लड रहा है। यह सिर भुज काटने से नही मरेगा। इसे कुचल डालना चाहिए। ऐसा विचारकर क्रुद्ध होकर वीर भालु और बन्दर दौडे। सरकार ने बाण चलाना बन्द कर दिया।

बालि तनय मारुति नल नीला। बानरराज दुबिद बलसीला ॥
बिटप महीधर करहिं प्रहारा। सोइ गिरितरु गहि कपिन्ह सो मारा ॥२॥

अर्थ वालि का बेटा, पवनतनय, नल, नील, द्विविद आदि बलवान् पेड और पहाडो से प्रहार कर रहे हैं। उन्ही पहाडो और पेडो से उसने बन्दरो को मारा।

व्याख्या इस बार मन्त्र दृढ करके स्वय राजा सुग्रीव सुभटो के साथ झपटे और पेड तथा पहाडो का प्रहार करने लगे। इस प्रहार करने मे सुग्रीव के साथ प्रधान वीर थे। अङ्गद हनुमान् नल नील द्विविद आदि। वीर प्रहार कर रहे हैं। पर रावण को दस सिर और बीस भुजाएँ हैं। अत सबके फेंके हुए पत्थर और पेडो को वह रोक लेता है और उन्ही को उन सुभटो पर फेंकता है।

एक नखन्हि रिपु बपुष बिदारी। भागि चलहिं एक लातन्ह मारी ॥
तब नल नील सिरन्हि चढ़ि गयेऊ। नखन्हि लिलार बिदारत भयेऊ ॥३॥

अर्थ कोई उसके देह को नखो से फाडकर और कोई लात मारकर भागते हैं। तब नल नील उसके सिरो पर चढ गये और नखो से उसका माथा फाड डाला।

व्याख्या पत्थर पेड से लडनेवाली विधि ठीक न पडी। तब बन्दरो ने दूसरा रास्ता पकडा। कोई नख से उसके शरीर मे क्षत करके भागता है। जब वह उस पर झपटता है तब से दूसरा उसे लात मार कर भागता है। इस प्रकार से चारो ओर से उस पर चोट लगने लगी। तब तक नल नील कूद करके उसके सिर पर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चढ़ गये। रावण रणमदमत्त है। उसे पता नहीं। उन लोगों ने इसके ललाट को फाड़ डाला। युद्ध की गरमी में उसे इस बात का भी पता नहीं।

रुधिर देखि बिषाद उर भारी। तिन्हहि धरन कहुँ भुजा पसारी॥
गहे न जाँहि करन्हि पर फिरहीं। जनु जुग मधुप कमलबन चरहीं॥४॥

अर्थ : रुधिर देखकर उस देवशत्रु ने उनके पकड़ने के लिए भुजा फैलायी। वे पकड़ में नहीं आते। सिरों के ऊपर घूम रहे हैं। जैसे दो भौंरे कमलवन में विचरते हों।

व्याख्या : जब रक्त बहकर आँखों में आया तब उसे पता चला। देखा कि रक्त है पसीना नहीं है। तब उनको पकड़ने के लिए उसने हाथ बढाये। ये महात्मा एक सिर से दूसरे पर कूद गये। उधर हाथ पहुँचा तो तीसरे पर कूद गये। जिस भाँति जैसे एक शिखर से बन्दर दूसरे पर और दूसरे से तीसरे पर कूद जाते हैं उसी भाँति ये सिरों पर चौकड़ी लगाने लगे। कवि उपमा देते हैं कि जैसे दो भौंरे कमलवन में विहार करते हों। रावण का सिर कमलवन हुआ और नल नील भौंरे की भाँति शोभित हुए। रावण के हाथ नहीं लग रहे हैं।

कोपि कूदि द्वौ धरेसि बहोरी। महि पटकत भजे भुजा मरोरी॥
पुनि सकोप दस धनु कर लीन्हे। सरन्ह मारि घायल कपि कीन्हे॥५॥

अर्थ : उसने क्रोध करके कूदकर दोनों को पकड़ा। पृथिवी पर पटकते समय वे भुजाओं को मरोड़ कर भागे। तब तो क्रोध करके उसने दसो धनुष उठाये और बाणों के आघात से बन्दरो को घायल कर दिया।

व्याख्या : रावण ने देखा कि ये तो यों ही सिर पर कूदा करेंगे। सिर के ऊपर मैं देख नहीं सकता। अत: ये इस भाँति हाथ न लगेंगे। इसलिए उछला। नल नील नीचे पड़ गये। तुरन्त उसने पकड़ लिया। चाहा कि दोनों को पृथिवी पर पटक दूँ। तबतक वे दोनों उसके हाथों को मरोड़कर निकल भागे। इस युद्ध में भालु सम्मिलित नहीं थे।

तब तो उसे बड़ा क्रोध हुआ कि ये यों न मानेंगे। मैं तो चाहता था कि जो जिस शस्त्र से लड़े उससे उसी शस्त्र से लड़ूँ। पर ये अन्यायी हैं। इन्हें बाण से मारूँ। अत: दस धनुष उसने दसों हाथों से उठाये और बाणों के अघात से बन्दरों को घायल कर दिया।

हनुमदादि मुरुछित करि बंदर। पाइ प्रदोष हरष दसकंधर॥
मुरुछित देखि सकल कपि बीरा। जामवंत धाएउ रनधीरा॥६॥

अर्थ : हनुमान् आदिक वीरों को मूर्च्छित करके प्रदोष का समय पाकर रावण हर्षित हुआ। सब वीर बन्दरों को मूर्च्छित देखकर रणधीर जामवन्त दौड़े।

व्याख्या : रावण के बाणों के आघात से हनुमान् आदिक वीर मूर्च्छित हो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



गये। तब से सन्ध्या हो चली। प्रदोष काल के आते ही राक्षसो का बल बढता है। इसलिए रावण हर्षित हुए। बूढे जाम्बवान् तबतक नही बोलते जबतक देखते हैं कि अपने ओर के वीर लड रहे हैं। जब देखते है कि अपनी ओर से कोई लडनेवाला नही रह गया तब उठते हैं और करामात कर दिखाते हैं। मेघनाद द्वारा सबके मूच्छित होने पर जाम्बवान् जी उठे थे। अब रावण द्वारा सबके मूच्छित होने पर रणधीर जाम्बवान्‌जी दौडे।

संग भालु भूधर तरु धारी। मारन लगे पचारि पचारी ॥
भयेउ क्रुद्ध रावनु बलवाना। गहि पदि महि पटकै भट नाना ॥७॥
देखि भालुपति निजदल घाता। कोपि माझ उर मारेसि लाता ॥८॥

अर्थ साथ मे भालु पहाड और पेड लिये हुए उसे ललकारकर मारने लगे। रावण बलवान् क्रुद्ध हुआ और पैर पकडकर बहुत से भटो को पटकने लगा। भालुपति ने अपनी सेना का वध देखकर क्रुद्ध होकर बीच हृदय मे लात मारी।

व्याख्या जाम्बवान्‌जी के साथ भालुओ की सेना पहाड और वृक्ष लिये चली। जाम्बवान्‌जी की सेना अलग है। उसमे भालु ही भालु हैं। बन्दर एक नही। ये बाणो की परवाह न करके रावण के पास पहुँच गये। भालु लोग ललकार ललकारकर रावण को वृक्षो और पर्वतो से मारने लगे। बाण दूर से चलता है। निकट आ जाने पर बाण नही चल सकता। रावण बडा बलवान् है उसने धनुष रख दिया और क्रुद्ध होकर भालुओ का पैर पकड पकडकर पृथिवी पर पटकने लगा। जाम्बवान् ने देखा कि यह मेरी सेना का सहार ही कर डालेगा। सो क्रोध करके उसके रथ पर चढ गये और उसके बीच हृदय मे लात मारा।

छं[1] उर लात घात प्रचड लागत बिकल रथ ते महि परा।
गहे भालु बीसहु कर मनहु कमलन्ह बसे निसि मधुकरा ॥
मुरुछित बिलोकि बहोरि पदहति भालुपति प्रभु पहि गयो।
निसि जानि स्यदन घालि तेहि तब सूत जतनु करत भयो ॥

अर्थ लात का प्रचण्ड आघात लगते ही विकल होकर रथ से पृथिवी पर गिरा। बीसो हाथो मे भालुओ को पकडे हुए जैसे भौरे रात के समय कमल मे बस गये हो। मूच्छित देखकर फिर लात मारकर जाम्बवान्‌जी प्रभु के पास चले गये। रात आयी देखकर सारथि उसे रथ पर लादकर उपाय करने लगा।

व्याख्या जाम्बवान्‌जी के लात का आघात ऐसा प्रचण्ड लगा कि रावण छटपटाता हुआ रथ से पृथिवी पर आ पडा। फिर भी भालुओ को बीसो हाथो से पकडे हुए था। भालू की सेना उसके रथ पर आक्रमण कर रही थी और वह बीसो

---

१ हरिगीतिका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हाथो से भालुओ को पकड पकडकर पृथिवी पर पटक रहा था। उसी समय उसे लात लगी और वह भालुओ को पकडे हुए गिरा। उसी की उपमा कवि देते हैं कि मानो कमलो मे रात को भौंरे बस गये हो। रावण के हाथ कमल वन से उपमित है और भालु भौरो से।

रावण के गिरने पर जाम्बवान् ने दूसरी लात फिर लगायी। जिसमे ये कुछ देर के लिए लेटे रहे और सेना विश्राम करे तब जाम्बवान् सरकारके पास चले गये। इधर से मूर्च्छित वीर के बन्दी करने का यत्न कभी नही किया जाता। रावण के सारथि ने देखा कि रात हो गयी। अत उसने रावण को रथ पर लाद लिया और उसकी रक्षा का उपाय करने लगा।

दो० मुरुछा बिगत भालु कपि सब आये प्रभु पास।
निसिचर सकल रावनहि घेरि रहे अति त्रास ॥९८॥

अर्थ . मूर्च्छा बीत जाने पर सब बन्दर भालु प्रभु के पास आये सब राक्षस रावण को अत्यन्त त्रस्त होकर घेरे रहे।

व्याख्या सब बन्दर भालुओ की मूर्च्छा गयी और वे सरकार के पास आगये पर रावण की मूर्च्छा नही गयी। सूत उन्हे उसी दशा मे लका ले गया। अब राक्षसो के आधार एक मात्र रावण रह गये हैं। उनकी दशा चिन्तनीय है। क्या जाने मूर्च्छा से उठते हैं या नही। अत अत्यन्त त्रस्त होकर राक्षस लोग रावण को घेरे रहे।

## सीता विलाप

तेही निसि सीता पहि जाई। त्रिजटा कहि सब कथा सुनाई॥
सिर भुज बाढि सुनत रिपु केरी। सीता उर भै त्रास घनेरी॥१॥

अर्थ उसी रात को सीताजी के पास जाकर त्रिजटा ने सब कथा कह सुनायी। शत्रु के सिर और भुजा को वृद्धि की बात सुनने से सीताजी के हृदय मे बडा भय उत्पन्न हुआ।

व्याख्या त्रिजटा ने ही सपना सुनाया था। यथा यह सपना मैं कहौं पुकारी। होइहि सत्य गये दिन चारी। उसी की पूर्ति होते देखकर उसी रात को जिसमे रावण मूर्च्छित पडा था और राक्षस लोग उसे घेरे खडे थे। त्रिजटा सीताजी के पास गयी और युद्ध की सब कथा सुनायी कि कुम्भकर्ण मारा गया। मेघनाद मारा गया। अब रावण स्वय युद्ध कर रहा है। रामजी उसके सिर और भुजाओ को काटे जा रहे हैं और उसे नये सिर और भुजाएँ निकलती जा रही हैं। इस समय तो जाम्बवान् के आघात से मृतप्राय लङ्का मे पडा हुआ है। उपचार हो रहा है। इत्यादि सब बातें सुनायी।

सीताजी ने जब सुना कि शत्रु के सिर भुजा कटने पर नयी सिर भुजाएँ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



निकल रही हैं। तब तो सीताजी बहुत डर गयी। जिसे सिर कटने पर नया सिर निकले उसकी मूर्च्छा से क्या हानि होगी ? और वह मर ही कैसे सकता है।

मुख मलीन उपजी मन चिंता। त्रिजटा सन बोली तब सीता॥
होइहि काह कहसि किन माता। केहि बिधि मरिहि बिस्वदुखदाता॥२॥

अर्थ उनका मुख मलीन हो गया और मन मे चिन्ता उत्पन्न हो गयी। तब सीताजी त्रिजटा से बोली कि हे माता ! क्या होगा ? यह तू क्यो नही बतलाती। यह विश्व दु खदाता किस विधि से मरेगा ?

व्याख्या कुम्भकर्ण मेघनाद वध कथा से मुखकमल खिल उठा था। सो रावण के सिर भुजा बढने की कथा सुनने से मलीन हो गया। हृद्गत भाव का प्रभाव तुरन्त मुख पर पडता है। मन मे चिन्ता उत्पन्न हुई। इसी से मुख मलीन हो गया। तब सशय निवारण के लिए सीताजी ने त्रिजटा से कहा।

त्रिजटा से उन्होने माता का नाता मान रक्खा है और उसकी भविष्यद् वाणी पर विश्वास करती है इसलिए उसे माता सम्बोधन करके पूछती हैं कि तूने जो कथा कही उससे इतना ही मालूम हुआ कि युद्ध मे क्या क्या हुआ। पर तूने यह नही बतलाया कि होगा क्या ? यह रावण मुझ ही को नही दु ख देता यह विश्वभर को दु ख देता है। भूतद्रोही है। यह कैसे मरेगा ?

रघुपति सर सिर कटेहु न मरई। बिधि बिपरीत चरित सब करई॥
मोर अभाग्य जियावत ओही। जेहि हौ हरिपद कमल बिछोही॥३॥

अर्थ रघुपति के बाणो से सिर कटने पर नही मरता है। ब्रह्मदेव विपरीत ही सब चरित्र करता है। मेरा अभाग्य उसे जिला रहा है जिसने मेरा हरिचरणो से बिछोह करा रक्खा है।

व्याख्या सिर कटने पर कोई जी नही सकता। यही ब्रह्मदेव का बनाया नियम है। तिस पर रघुपति के बाण अमोघ हैं जिस काम के लिए प्रयुक्त होते हैं उसे बिना किये नहीं लौटते। यह भी ब्रह्मदेव का नियम है। बिना सिर काटे ही उन्होने कितने राक्षस मारे। सो उनके बाण के कटने से नही मरता। इसके तो सब चरित्र ही विधि के विपरीत हो रहे हैं। स्वय देवता लोग जब अनेक रावण देखकर भागे तो कहना ही पडेगा कि इसके सब चरित विधि विपरीत है।

सामर्थ्य रहते कोई अपना सिर नही कटने देता। जब उसका बल न चला तभी सरकार ने उसका सिर काटा और कोई जिलानेवाला दिखाई नही पडता। तब प्रश्न यह है कि उस जिलाता कौन है ? कौन ऐसा सामर्थ्यवान् है जो सिर कटे हुए को दूसरा सिर प्रदान करके जिला दे ? तो मुझे तो ऐसा सामर्थ्यवान् अपना अभाग्य ही दिखलाई पडता है जिसने सरकार के चरण से मेरा विछोह करा दिया। सूर्य से प्रभा को पृथक् कर दिया। चन्द्रिका को चन्द्र से बिछोह करा दिया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जेहिं कृत कपट कनक मृग झूठा। अजहुँ सो देव मोहि पर रूठा ॥
जेहिं बिधि मोहि दुख दुसह सहाए। लछिमन कहुँ कटु बचन कहाए ॥४॥

अर्थ : जिसने सोने का झूठा कपट मृग बनाया वह देव अब भी रूठा हुआ है। जिस विधि ने मुझे दुःसह दुःख सहाये। लक्ष्मण को कटु वचन कहलाया।

व्याख्या : पूर्व जन्म के किये हुए कर्म को ही देव कहते हैं। वही भाग्य कहलाता है। उसी ने सोने का झूठा मायामृग बनाया। नहीं तो, कहीं सोने का मृग होता है ? असम्भवं हेममृगस्य जन्म। उसे जिस देव ने कर दिखलाया मालूम होता है कि इतना दुख देने पर भी वह सन्तुष्ट नहीं हुआ। अब भी मुझ से रूठा हुआ है।

कर्म तो जड़ है स्वयं फल देने में असमर्थ है। सुभ अरु असुभ कर्म अनुहारी। ईस देइ फल हृदय विचारी। अतः जिस कर्म फलदाता विधि ने मुझ से ऐसे बड़े दुःख को सहवाया। मैं वियोग के वचन नहीं सह सकती थी। सो मैंने इतने दिन का वियोग कैसे सहा ? विधि में ही यह सामर्थ्य है कि इतना दुःख मुझसे भोगवाया। इतना ही नहीं लक्ष्मण ऐसे देवर क्या कटु वचन कहने के पात्र हैं। क्या मैंने अपने होश में लक्ष्मण को कटु वचन कहा ? केवल उस बलवान् दैव की प्रेरणा से ही मेरे मुख से ऐसे वचन निकल पड़े।

रघुपति बिरह सबिष सर[1] भारी। तकि तकि मार बार बहु मारी ॥
ऐसहु दुख जो राखु मम प्राना। सोइ बिधि ताहि जिआव न आना ॥५॥

अर्थ : रघुपति विरहरूपी भारी विषैले बाण ताक ताककर मुझे कामदेव ने अनेक बार मारे। ऐसे दुःख में भी, जो मुझे जिला रहा है वही विधाता रावण को जिलाता है दूसरा नहीं।

व्याख्या : रघुपति विरहरूपी बाण बड़े विषैले हैं। वे सच्चे प्रेमी का प्राण लेकर ही मानते हैं। सो बाण ऐसा विषम और काम ऐसे अद्वितीय धन्वीने निशाना बाँधकर मुझे बार बार मारा और मैं नहीं मरी। उस बाण के मर्मभेदी दुःख में जिसने मेरे प्राण नहीं निकलने दिया। यथा : बिरह अगिनि तनु तूल सरीरा। स्वास जरै छन माहिं सरीरा। सो शरीर जलने न दिया। मुझे जिलाया। उस विधाता में ऐसी जिलाने की शक्ति है। दूसरे में नहीं है। अतः वही विधाता उसे जिला रहा है।

बहु बिधि करति बिलाप जानकी। करि करि सुरति कृपानिधान की ॥
कह त्रिजटा सुनु राजकुमारी। उर सर लागत मरै सुरारी ॥६॥
प्रभु ताते उर हतै न तेही। एहि के हृदय बसत बैदेही ॥७॥

अर्थ : कृपानिधान की याद करके जानकी जो बहुत प्रकार से विलाप करने

---

1. यहाँ निदर्शना द्वितीय अलंकार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लगी। त्रिजटा ने कहा कि राजकुमारी! सुनो यह देवशत्रु कलेजे मे बाण लगे मरेगा। प्रभु इस कारण से हृदय मे बाण नही मारते कि इसके हृदय मे वे बसती हैं।

व्याख्या देवता लोग वैदेही के अतिशय दु खित होने का समाचार सरक को दे चुके हैं। उसी बात को कवि यहाँ दिखला रहे हैं कि वैदेही अनेक प्रका विलाप करने लगी। जो ऊपर दिखलाया गया है वह तो प्रादेशमात्र है। जित कृपानिधानका स्मरण करती हैं उतनी ही व्यथा बढती है और उतना ही विल करती है।

तब त्रिजटा ने केहि बिधि मरिहि बिस्व दुखदाता। इसका उत्तर देते कहा कि सिर काटने से वह नही मरेगा। कलेजे मे बाण मारने से मरेगा। सिर क पर न मरने का कारण है। उसका सिर तो कभी कट चुका है। ये सिर शिवनिर्माल्य हैं। ये नही घटेंगे। अत इसके मरने की विधि यही है कि इसके कल मे बाण मारें। तब प्रश्न यह उठता है कि फिर सरकार उसके कलेजे मे बाण नही मारते? इसके उत्तर मे कहती है कि उसके हृदय मे जानकी बसती हैं। सरक इस बात को जानते हैं। इसीलिए हृदय मे नही मारते।

छ एहि के हृदय बस जानकी जानकी उर मम बास है।
मम उदर भुवन अनेक लागत बान सबको नास है॥
सुनि बचन हरष बिषाद मन अति देखि पुनि त्रिजटा कहा।
अब मरिहि रिपु एहि बिधि सुनहि सुदरि तजहि ससय महा॥

अर्थ इसके हृदय मे जानकी बसती हैं और जानकी के हृदयमे मेरा बास और मेरे हृदय मे भुवननिकाय है। बाण लगने से सब नष्ट हो जायँगे। वचन स करके मन में बडा हर्ष विषाद हुआ। यह देखकर त्रिजटाने कहा कि अब इस वि से रावण मरेगा। हे सुन्दरि! सुनो और बडे भारी सशय का त्याग करो।

व्याख्या तुम्हारा अभाग्य उसे नही जिला रहा है। बल्कि तुम्हारे कारण वह जी रहा है। सरकार उसके हृदय मे बाण नही मारते कि कही असमय में महा प्रलय न हो जाय। क्योंकि वे जानते हैं कि इसके हृदय मे जानकी का निवा है। जिस जानकी के लिए उसका कुम्भकर्ण ऐसा भाई मारा गया। मेघनाद ऐस बेटा मारा गया। स्वयं उसका अगणित बार सिर कटा और फिर उन्हे देना नह चाहता। अत स्पष्ट है कि उसके हृदय मे जानकी बसती हैं। मनोमय मूर्ति व भावना ऐसी दृढ हो गयी है कि उस मनोमय मूर्ति मे और जानकी मे भेद नही र गया और उसी भाँति जानकी के हृदय मे मेरा वास है और मेरे उदर में असंख ब्रह्माण्ड हैं। यथा राम उदर देखेउ जग नाना। यदि मैं बाण मारूँगा तो ये नश्व

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ब्रह्माण्ड सब के सभी नष्ट हो जायँगे राम जानकी तो अनादि मिथुन हैं। इनका तो बाण से कुछ होना नहीं है। नश्वर हैं रावण और ब्रह्माण्ड निकाय। सो रावण के साथ ब्रह्माण्डो का नाश हो जायगा। जानकीजी को उसके मरने की सम्भावना सुनकर अतिहर्ष हुआ। पर साथ ही विषाद भी बडा भारी हुआ कि तब तो उसके मरने का उपाय नही के बराबर है। सीताजी को अतिविषण्ण देखकर त्रिजटा फिर बोली कि हे सुन्दरी! अब शत्रु के मरने की विधि सुन लो और बडे भारी संशय को छोड दो। रावण नि सन्देह मारा जायगा।

दो काटत सिर होइहि बिकल, छुटि जाइहि तब ध्यान।
तब रावनहि हृदय महुँ, मरिहहिं राम सुजान ॥९९॥

अर्थ सिर काटते काटते जब विकल होगा तब ध्यान छूट जायगा और तब रामसुजान उसके हृदय मे मारेंगे।

व्याख्या इस बात पर भी ध्यान करो कि रावण को कितनी भारी वेदना हो रही है। सिर भुज कटने पर दूसरा सिर भुज तो निकलता जाता है। पर सिर भुज कटने की जो अतीव तीव्र वेदना है वह तो हर बार हो ही रही है। यह तो उसी का अपूर्व धैर्य है कि ऐसी दशा मे भी उसके हृदय से तुम्हारा ध्यान नही छूटता। परन्तु यह धैर्य कितने दिनों तक चलेगा। अन्त मे वेदना सहते सहते यह विकल हो जायगा। तब ध्यान भी छूट जायगा। रामजी बडे सुजान हैं। वे जो सिर भुज काटते ही चले जाते हैं इसका भी कुछ तात्पर्य है। जब वे जान लेंगे कि ध्यान छूट गया। तब हृदय मे बाण मारेंगे।

अस कहि बहुत भाँति समुझाई। पुनि त्रिजटा निज भवन सिधाई ॥
राम सुभाउ सुमिरि बैदेही। उपजी बिरह बिथा अति तेही ॥१॥

अर्थ ऐसा कहकर और बहुत प्रकार से समझाकर फिर त्रिजटा अपने घर चली गयी। रामजी के स्वभाव को स्मरण करके वैदेही को अत्यन्त विरह की व्यथा हुई।

व्याख्या : त्रिजटा रामचरण रत थी और विवेक मे निपुण थी। उसने रावण के वध की विधि बतलाने के बाद सीताजी को अनेक प्रकार से समझाया। यथा

हिय नहि मानहु ग्लानि तुम अब बिधि नहि प्रतिकूल।
बैदेही मो कह भयउ सपन सुमगल मूल ॥
मृषा होइ नहि सपन मम यह जानै सब कोय।
सोई मोहि दिखात जब जैसी होनी होय ॥
लंक दहन निसिचर मरन भई बात सब साँच।
रावन बध की बातहू होइ सकत नहि काँच ॥
बडे बडे जोधा जिते रहे लकागढ माहि।
सब के सर मारे गये जिमि दिन रैन नसाहि ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कपिदल के योधा कुसल जिसके रक्षक राम।
सो कैसे दसकंठ को नहि जीतिहि संग्राम॥
द्वै भुजसे दससीस अरु बारबार भुज बीस।
हरत करत कौतुक समर कुसल कोसलाधीस॥
करि न सकत रावन कछू राम सामुहे आय।
रावन वध अब होइगो बेटी जनि घबराय॥

तत्पश्चात् त्रिजटा अपने घर चली गयी। यह यथावश्यक सीताजी के पास ठहरती थी फिर घर चली जाती थी। पहिले भी यह इसी भाँति घर चली गयी थी। यथा : निसि न अनल मिल सुनु सुकुमारी। अस कहि सो निज भवन सिधारी। वह आश्वासन देने के लिए आजाती थी।

त्रिजटा ने रावण वध की विधि बतलाते हुए रामजी के स्वभाव की चर्चा कर दी। जगत् के हित के लिए वध में विलम्ब कर रहे हैं और स्वयं संकट सह रहे हैं। अब जगदम्बा की मनोवृत्ति रामजी के स्वभाव की ओर लग गयी। अस सुभाउ कहुँ सुनौं न देखौं। केहि खगेस रघुपति सम लेखौं। अतः उनकी विरह व्यथा अधिक बढ़ गयी।

**निसिहि ससिहि निंदति बहु भाँती। जुग सम भई सिराति न राती॥**
**करति बिलाप मनहि मन भारी। राम बिरह जानकी दुखारी॥२॥**

अर्थ : रात्रि को और चन्द्रमा की बहुत भाँति निन्दा करती है। रात्रि युग के समान हो गयी। बीतती ही नहीं। मन ही मन भारी विलाप कर रही हैं। रामजी के विरह में जानकीजी दुखी हैं।

व्याख्या : विरही को रात्रि कालरात्रि के समान हो जाती है काटे नहीं कटती। मानो वह युग के समान हो गयी। मन की अवस्था के अनुकूल अल्पकाल भी बहुत बड़ा और बहुत काल भी अल्प सा प्रतीत होता है। बन्दरों को अयोध्या में छः महीने का समय कुछ मालूम ही न हुआ। जात न जान्यो दिवस निसि गये मास षट बीति। और लंका में सीताजी को एक रात्रि युग के समान हो गयी। अतः रात्रि की निन्दा करती हैं। इसी भाँति चन्द्रमा भी विरह में अति दुःखद है। इसलिए उसकी भी निन्दा करती हैं। यथा : संतत दुखद सखी रजनीकर। यद्यपि है दारुन बड़वानल राख्यो है जलधि गँभीर धीर तर। ताहू ते परम कठिन जान्यो ससि तज्यो पिता तब भएउ ब्योमचर। सकल बिकार कोष बिरहिन रिपु काहें याहि सराहत सुरनर। तुलसिदास त्रैलोक्य मान्य भयो, कारन इहै गह्यो गिरिजा बर। कृ० गी० : ३१

पास में सहानुभूति करनेवाला नहीं है। जिससे विरहव्यथा कहे। कहेहू ते कछु दुःख घटि होई। काहि कहौं यह जान न कोई। अतः मन ही मन भारी विलाप कर रही हैं। जिसका क्षणभर का विरह सह्य नहीं था। यथा : चालति न भुजबल्ली

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बिलोकनि बिरह भय बस जानकी। उसी प्रभु से इतने दीर्घकाल का विरह हुआ। अतः जानकी दुःखी हैं। अतिसय दुखित होत बैदेही। जो देवताओं ने निवेदन किया था उसे यहाँ स्पष्ट करके कवि ने दिखला दिया।

जब अति भएउ बिरह-उर दाहू। फरकेउ बाम नयन अरु बाहू ॥
सगुन बिचारि धरी मन धीरा। अब मिलिहहि कृपालु रघुबीरा ॥३॥

अर्थ : जब हृदय में अत्यन्त विरह का दाह उठा तब बायीं आँख और भुजा फरकी। सगुन विचारकर मन में धीरज धारण किया कि अब कृपाल रघुबीर मिलेंगे।

व्याख्या : इस भाँति विरह का दाह जब हृदय में बहुत बढ़ा उसी समय सगुन हुआ। जब से भगवती लङ्का में आयी हैं तब से यह दूसरी बार सगुन हो रहा है। पहिला सगुन सरकार के प्रस्थान के समय हुआ था। यथा : फरकि बाम अंग जनु कहि देई। आज वाम नेत्र और बाहु फड़क रहे हैं। स्त्रियों का वाम अंग फड़कना शुभ है और : सगुन प्रतीति भेंट प्रियकेरी। सगुन से प्रिय के भेंट का विश्वास होता है।

अतः सगुन का विचार करके धैर्य धारण किया। नहीं तो धैर्य छूट गया था। मन में विश्वास हुआ कि अब सरकार से भेंट होगी।

## ७६. रावण वध प्रसंग

इहाँ अर्ध निसि रावनु जागा। निज सारथि सन खीझन लागा ॥
सठ रन भूमि छड़ायसि मोही। धिग धिग अधम मंदमति तोही ॥४॥

अर्थ : यहाँ आधी रात को रावण जगा। तब अपने सारथि पर बिगड़ा कि शठ ! तैने मुझसे रणभूमि छोड़ा दी। रे अधम। मन्दमति तुझे धिक्कार है।

व्याख्या : कवि इस समय लङ्का में जानकीजी के पास हैं। अतः लंका को इहाँ कहते हैं। लंका में रावण की मूर्च्छा आधी रात को बीती। दोपहर तक मूर्च्छित पड़ा रहा। होश में आने पर अपने को लंका में पाया। समझ गया कि यहाँ सारथि ले आया। अब उसे जीने की आशा तो है नहीं पर अपनी वीरता पर धब्बा नहीं लगने देना चाहता। अतः सारथि पर बिगड़ा। कहने लगा कि तू शठ है। मेरा मुख्य काम बिगाड़ दिया। दिखावावाला काम किया। रणभूमि न छोड़ना ही वीर का मुख्य काम है। वीर को रणभूमि इतनी प्रिय होती है कि उसी का आलिङ्गन करके महानिद्रा को प्राप्त होते हैं। उसे तूने छुड़ा दिया। तू अधम और मन्दमति दोनों है। इसलिए तुझे बार बार धिक्कार है। तू अधम है। क्योंकि इस क्षणभंगुर जीवन को ही सब कुछ मानता है। तू मन्दमति है। अवसर चूक गया। प्राण संशय के समय रथी को मरने के लिए घर लाना मन्दमति का काम है। तुझे अपना प्राण प्यारा था तो तू चला आता। मुझे रणभूमि से यहाँ क्यों लाया ?

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तेहिं पद गहि बहु बिधि समुझावा । भोर भए रथ चढ़ि पुनि धावा ॥
सुनि आगवनु दसानन केरा । कपिदल खरभर भएउ घनेरा ॥५॥
जहँ तहँ भूधर बिटप उपारी । धाए कटकटाइ भट भारी ॥६॥

अर्थ : उसने रावण का पैर पकड़कर बहुत प्रकार से समझाया। सवेरा होते ही रथ पर चढ़कर दौड़ा। रावण का आगमन सुनकर वानरी सेना में बड़ी खलबली मची। जहाँ तहाँ से पर्वत और पेड़ उखाड़कर कटकटाकर भारी भट दौड़े।

व्याख्या : अपराध के क्षमापन के लिए सारथि ने रावण के पैर पकड़ लिये। शान्त होने पर उसे अनेक प्रकार से समझाया। यथा : मूच्छित प्रभुहि बिलोकि सो अन्यायी रीछेस। कीन्हेसि कठिन प्रहार पुनि करन हेतु नि:शेष। ये अनीतिरत भालु कपि चपल बिगत मर्याद। समर धर्म लंघन करत इनहि न हर्ष बिषाद। याते प्रभुहि चढाइ रथ लै आयों मैं लंक। करहि उचित उपचार सब जामे होइ निशंक। रक्षा मूच्छित बीर को मुख्य सारथी धर्म। लै आयों प्रभु को इहाँ जानिबूझि सब मर्म। रावण ने उसके विनय के औचित्य को मान लिया। पर इस इन्तजार में रहा कि कब सवेरा हो और मै रणभूमि में जाऊँ। सवेरा होते ही रथ पर सवार होकर दौड़ा। अभी बन्दर तैयार भी नही थे। इतने सवेरे कभी धावा नही हुआ था। यह नहीं समझा था कि रावण की ओर से इतनी मुस्तैदी होगी। कल बानरो का बड़ा भारी मर्दन हुआ था। इसलिए खलबली मची। आज रावण के साथ बड़ी सेना नही है। फिर भी : निज भुजबल मै बैर बढावा। इसी बात पर दृढ़ता किये हुए रथ पर चला आरहा है। भारी भट बन्दर क्रोध करके पर्वत और वृक्ष उखाड़कर दौड़े।

छं.[1] धाए जो मर्कट बिकट भालु कराल कर भूधर धरा।
अति कोपि करहिं प्रहार मारत भजि चले रजनीचरा ॥
बिचलाइ दल बलवंत कीसन्ह घेरि पुनि रावन लियो।
चहुदिसि चपेटन्हि मारि नखन्हि बिदारि तेहिं ब्याकुल कियो ॥

अर्थ : कराल भालु और विकट बन्दर जो पर्वत लेकर दौड़े तो अत्यन्त क्रोध करके मारने लगे। राक्षस भाग निकले। तब सेना को भगाकर बलवान् बन्दरों ने रावण को घेर लिया। चारो ओर से चपेटा मारकर और नखों से खरोचकर उसे व्याकुल कर दिया।

व्याख्या : पहिले जो भट भारी कहा था उसीको स्पष्ट करते हैं कि विकट बन्दर और कराल भालु पहाड़ हाथ में लेकर दौड़े। उन्होने निश्चय कर लिया कि पहिले इसकी जो कुछ बची बचायी सेना है इसे मार भगाया जाय। तब रावण पर प्रहार किया जाय। अत. पहिले सेना पर टूटे और पत्थरों का ऐसा प्रहार किया कि

१. हरिगीतिका छन्द। यह लड़ाई वर्षा का अन्तिम नक्षत्र स्वाती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मे धनुष बाण लिये हुए हैं जिसमे उनसे कोई भाग कर भी न बच सके। योगिनियां प्रकट हुईं। वे मार-काट के लिए तलवार और एक हाथ मे नरकपाल लिये हुए थी। उसमे भर भरकर ताजा खून पीती और आनन्द से नृत्य कर रही थी और रावण का गुणगान करती थी कि बडे उपकारी हैं। हम लोगो को आवाहन करके बुलाया है। यहां खान पान का बडा सुभीता है। रक्त मांस की बहुतायत है।

[1]छ धरु मारु बोलहिं घोर। रहि पूरि धुनि चहुं ओर ॥
मुख बाइ धावहिं खान। तब लगे कीस परान ॥
जहं जाहि मर्कट भागि। तहं बरत देखहिं आगि ॥
भए बिकल बानर भालु। पुनि लाग बरखै बालु ॥

अर्थ घोर शब्द मे धरो मारो बोलती थी। यह ध्वनि चारो ओर भर गयी। जहां बन्दर भागकर जाते हैं वहां आग जलती देखते हैं। वानर भालु विकल हो गये। फिर बालू बरसने लगा।

व्याख्या पहिले तो बन्दरो को देखकर गायी नाची। अब लगी : धरु मारु बोलने सो बडे घोर रव से सब दिशायें प्रतिध्वनित हो उठी। अब बन्दरो की ओर उन्मुख हुईं। अब तक बन्दर लोग हिम्मत किये हुए डटे रहे। तलवार लिये हैं परन्तु मारती नही। धरु मारु धुनि कर रही हैं पर न किसी को मारती हैं न काटती हैं। दृश्य भयानक अवश्य है पर वास्तविक हानि कुछ नही थी। अत बन्दर भागे नही पर जब मुख फैलाकर खाने दौडी तब तो बन्दर भागे। इतना बडा मुख फैलाया कि एक ही ग्रास कर जायें। माया से सबके आंखो पर पट्टी बंधी हुई है। जहां बन्दर भालु भागकर जाते हैं वहां आग जलती हुई देखते हैं। बन्दर कभी आग छूते नही बहुत डरते हैं। भालु को तो बडे बडे बाल होते हैं। वे भी बहुत डरते हैं। बन्दर भालु विकल हुए कि कहां जायें। तब से बालू रेत की वर्षा होने लगी। आंख नही खोल सकते दम घुटा जाता है। पता नही कि सेना का क्या हाल है। सबको योगिनियां खा गयी कि कोई बचा भी है। अभी तक तो मैं बचा हूं पर कितने देर तक बच सकूंगा। यह दशा बन्दर भालुओं की हुई।

छ. जहं तहं थकित करि कीस। गर्जेउ बहुरि दससीस ॥
लछिमन कपीस समेत। भए सकल बीर अचेत ॥
हा राम हा रघुनाथ। कहि सुभट मीजहिं हाथ ॥
एहि बिधि सकल बल तोरि। तेहि कीन्ह कपट बहोरि ॥

अर्थ. बन्दरो का जहां तहां स्थगित करके फिर रावण गर्जा। लक्ष्मण और

---

१ यह तोमर छद है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुग्रीव के सहित सब वीर अचेत हो गये। हा राम! हा रघुनाथ! कहकर सब वीर हाथ मलते थे। इस प्रकार से सबका बल तोड़कर उसने फिर माया की।

व्याख्या : जो बन्दर जहाँ थे वे वहीं थककर बैठ गये। तब रावण गर्जे कि है किसी में दम? कहाँ गये चपेटा मारनेवाले? और किसकी बात कही जाय। सभी वीर अचेत हो गये। लक्ष्मण और सुग्रीव को भी वही दशा हो गयी। हा राम! हा रघुनाथ! कहाँ रहे हैं। मरती समय सरकार का दर्शन भी नहीं पा सकते। क्या करें आँखों में बालू भरा हुआ है। यदि देख पाते तो इस गर्जन का उत्तर देते। कुछ करते नहीं बन रहा है। इसलिए हाथ मलते हैं। इस भाँति सब सेना भंग कर दिया। सबका बल तोड़ दिया। पर सरकार पर माया कुछ काम नहीं कर रही है। अतः उसने फिर माया की।

छं. प्रगटेसि बिपुल हनुमान। धाए गहे पाषान ॥
तिन्ह रामु घेरे जाइ। चहुँ दिसि बरूथ बनाइ ॥
मारहु धरहु जनि जाइ। कटकटहिं पूछ उठाइ ॥
दह दिसि लँगूर बिराज। तेहि मध्य कोसलराज ॥

अर्थ : उसने बहुत से हनुमान् प्रकट किये जो पत्थर लेकर दौड़े। उन्होंने रामजी को जाकर घेर लिया। चारों ओर सेना बना ली। मारो पकड़ो भाग न जाने पावे ऐसा कहते हैं और पूँछ उठाकर कटकटाते हैं। दसों दिशाओं में पूँछें शोभा दे रही थी। उनके मध्य में रामजी थे।

व्याख्या : यह समझकर कि हनुमान्जी ही वानरी सेना के प्राण हैं। इन्हीं का रामजी को भी बड़ा भरोसा है। जब बहुत से हनुमान् को अपना विरोध करते देखेंगे तो इनका भी साहस छूट जायगा। अतः उसने बहुत से हनुमान् प्रगट किये। वे पत्थर ले लेकर दौड़े और अपनी सेना बनाकर रामजी को चारो ओर से घेर लिया। भाव यह कि तुम्हारा एक हनुमान् इतने हनुमानों के सामने क्या करेगा? और वे हनुमान् पूँछ उठाकर कटकटा रहे हैं और कहते हैं कि पकड़ो मारो भागकर निकल न जाने पावे। सरकार रथ पर हैं। अतः दशो दिशायें हनुमानों के पूँछों से घिर गयी। बीच में रामजी हैं और चारो ओर पूँछ ही पूँछ है।

छं. तेहि मध्य कोसलराज सुंदर स्याम तन सोभा लही।
जनु इंद्रधनुष अनेक की बर बारि तुंग तमालही ॥
प्रभु देखि हरष बिषाद उर सुर बदत जय जय जय करी।
रघुबीर एकहि तीर कोपि निमेष महुँ माया हरी ॥[1]

अर्थ : उसके बीच में कोशलाधीश के सुन्दर श्याम शरीर ने ऐसी शोभा पायी

1. यह हरिगीतिका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जैसे ऊँचे तमाल वृक्ष को इन्द्रधनुष की बाड लगी हो। सरकार को देखकर देवताओ के हृदय मे हर्ष और विषाद है। वे जय जय-जय कर रहे हैं। रघुवीर ने क्रोध करके एक ही तीर से माया हरण कर ली।

व्याख्या : चारो ओर पूँछो का वर्तुलाकार घेरा है और उसके बीच मे भी सरकार के श्यामसुन्दर शरीर की शोभा हो रही है। कवि उपमा देते हैं कि जैसे ऊँचे तमाल वृक्ष के चारो ओर इन्द्रधनुष की बाड़ लगी हो। वृक्षो के फल को सुरक्षित रखने के लिए उनके चारो ओर काँटो का घेरा बनाया जाता है जिसे बाड़ कहते हैं। यहाँ सरकार का श्यामसुन्दर शरीर ऊँचे, तमाल वृक्ष सा शोभायमान है। ऊँचे रथ पर आरूढ़ होने से, ऊँचे तमाल से उपमित किया और पूँछो के घेरे का इन्द्रधनुष की बाड से उपमित किया।

देवताओ को उस झाँकी के दर्शन से हर्ष हुआ। पर सरकार के घिर जाने से विषाद हुआ। संशयावस्था मे पडे हुए देवताओ ने जय जयकार किया। जिसमे सरकार को अपने स्वरूप का स्मरण हो आवे। इतनी बडी घनी माया हुई है और ये मानो अपने स्वरूप को भूले बैठे हैं। रावण के माया की कार्यकारिता पूरी हो जाने पर सरकार ने एक तीर से क्रोध करके पलक पडने मात्र मे माया हरण कर ली। सरकार के तीर दिव्य हैं ये माया हरण मे भी समर्थ हैं।

छं.[1] माया बिगत कपि भालु हरषे बिटप गिरि गहि सब फिरे।
सर निकर छाँडे राम रावन बाहु सिर पुनि महि गिरे॥
श्रीराम रावन समर चरित अनेक कल्प जे गावही।
सतसेष सारद निगम कवि तेउ तदपि पार न पावही॥

अर्थ : माया के दूर हो जाने से बन्दर भालु हर्षित हुए और पेड तथा पर्वत लेकर सब लौटे। रामजी ने बाणो के समूह छोडे जिससे रावण के बाहु और सिर फिर पृथ्वी पर गिरे। श्रीराम रावण का समर चरित्र अनेक कल्पतक जो गान करते हैं बेचारे शेष हो, चाहे शारदा हो, चाहे वेद हो, चाहे कवि हो तथापि वे भी पार नही पाते।

व्याख्या : माया जो हटी तो कही कुछ नही। जैसे कोई घोर दुःस्वप्न देखते देखते जाग पडे वैसे हर्षित हुए। जहाँ तक भागे थे वही से लौट पडे और युद्ध की इच्छा से लौटे। अतः पर्वत वृक्ष लिये हुए लौटे।

अब सरकार बाण मारने लगे। रावण के सिर और भुजा फिर पृथिवी मे गिरे। भाव यह कि राम रावण युद्ध फिर आरम्भ हुआ। कवि कहते हैं कि राम रावण युद्ध मे जो जो घटनाएँ हुई उनका वर्णन, यदि शेष शारदा वेद तथा कवि सब लोग अनेक कल्प तक करें फिर भी पार नही पा सकते। रामरावणयोर्युद्ध

१. यह हरिगीतिका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रामरावणयोरिव। भाव यह कि राम रावण के युद्ध का अन्त नही, वह प्रत्येक ब्रह्माण्ड और प्रत्येक पिण्ड मे होता रहता है और अनेक प्रकार से होता रहता है। अत उसका पार है ही नही। सभी गान करनेवाले अपने सामर्थ्यानुरूप ही गान करेंगे और सबको कहना पडेगा कि इसका अन्त नहीं चाहे वे शेष शारदा निगम कवि ही क्यो न हो। यथा

बपुष ब्रह्माड सुप्रवृत्ति लका दुर्गरचित मन दनुजमय रूपधारी।
विविध कोषौघ अति रुचिर मन्दिर निकर सत्व गुन प्रमुख त्रैकटककारी॥
कुनप अभिमान सागर भयकर घोर विपुल अवगाह दुस्तर अपार।
नक्र रागादि सकुल मनोरथ सकल सग सकल्प बीची विकार॥
मोहदसमौलि तद्भ्रात अहकार पाकारिजित काम विश्रामहारी।
लोभ अतिकाय मत्सर महोदर दुष्ट क्रोध पापिष्ट विबुधातकारी॥
द्वेष दुर्मुख दभ खर अकपन कपट दर्प मनुजाद मद सूलपानी।
अमित बल परम दुर्जय निसाचर निकर सहित षड्वर्ग गोजातुधानी॥
जीव भवदघ्रि सेवक विभीषन बसत मध्य दुष्टाटवी ग्रसित चिता।
नियम यम सकल सुरलोक लोकेस लकेस बसनाथ अत्यत भीता॥
ग्यान अवधेस गृह गेहनी भक्ति शुभ तत्र अवतार भूभार हर्ता।
भक्त सकष्ट अवलोकि पितु वाक्य कृत गवन किया गहन वैदेहिभर्ता॥
कैवल्य साधन अखिल भालु मर्कट विकट ग्यान सुग्रीव कृतजलधि सेतू।
प्रबल वैराग्य दारुन प्रभजनतनय विषम बन भवन इव धूमकेतू॥
दुष्ट दनुजेस निर्वंसकृत दासहित विस्व दुख हरन बोधैकरासी।
अनुज जानकी सहित हरि सर्वदा दास तुलसी हृदय कमलवासी॥
विनय० पद ५८

दो० ताके गुनगन कछु कहे, जडमति तुलसीदास।
जिमि निज बल अनुरूप ते, माछी उडै अकास॥१०१॥
काटे सिर भुज बार बहु, मरत न भट लकेस।
प्रभु क्रीडत मुनि सिद्ध सुर, व्याकुल देखि कलेस॥

अर्थ उनके कुछ गुण जडमति तुलसीदास ने कहे जैसे अपने बल के अनुरूप मक्खी आकाश मे उडती है। बहुत बार सिर भुज कटने पर भी वीर लङ्कापति मरता नही। प्रभु तो खेल करते हैं। पर सिद्ध देवता और मुनि क्लेश देखकर व्याकुल हैं।

व्याख्या जिसके गुण गण का वर्णन शेष शारदा वेद तथा कवि ये विमलमति नही कर सकते उसके कुछ गुणगण जडमति तुलसीदास ने कहे। आकाश अपार है उसका पार गरुड आदि महापराक्रमी भी नही पा सकते। तथापि अल्प पराक्रम मक्खी उडना नही बन्द करती अपने उडान भर उडती है। कवि कहते हैं कि राम के

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



गुण आकाश की भाँति अनन्त है। उसका पार शेष शारदारूपी गरुड को नहीं मिलता। फिर भी मक्खी की भाँति अपने उडान भर उडा जो वर्णन कर सका सो मैंने वर्णन किया।

त्रिजटा ने कहा था कि सिर काटते काटते जब विकल होगा तब ध्यान छूटेगा परन्तु रावण ऐसा योद्धा है कि उसके सिर कटते जाते हैं असह्य वेदना सहता जाता है पर ऐसा विकल नही होता कि ध्यान छूट जाय। अत मरता नही। सरकार के लिए तो इतने बार का घोर परिश्रम खेल है। पर सुर सिद्ध मुनि सरकार का कठोर श्रम जो सिर काटने मे पड रहा है देखकर व्याकुल हो गये। रावण के कष्ट पर किसी का ध्यान नही है क्योंकि उसने कितने सिर अन्यायपूर्वक काटे हैं। उन्ही का फल भोग रहा है।

काटत बढहिं सीस समुदाई। जिमि प्रति लाभ लोभ अधिकाई॥
मरै न रिपुस्रम भएउ बिसेखा। राम बिभीषन तन तब देखा॥१॥

अर्थ काटने पर सिर का समूह बढता ही जाता है। जैसे लाभ प्रति लाभ लोभ बढता है। शत्रु मरता नही और परिश्रम बहुत हुआ। तब रामजी ने विभीषण की ओर देखा।

व्याख्या • लाभ के लिए ही लोभ होता है। अत लाभ होने पर लोभ शान्त होना चाहिए पर ऐसा नही होता। जितना लाभ द्वारा लोभ शान्त का प्रयत्न करता जाय उतनी लोभ मे अभिवृद्धि होती ही जाती है। लोभ समाप्त नही होता। वही गति रावण के सिरो की है। उसे सरकार काटते हैं समाप्ति के लिए। पर उनकी समाप्ति नही होती वृद्धि होती ही जाती है।

रावण का शरीर वज्र है। जिस पर टक्कर खाकर पर्वत चूर हो जाते हैं। उसके सिर काटने मे बडा परिश्रम है। सो सरकार काटते काटते थक गये। सिर कटा तहाँ वह व्यक्ति मरा। यहाँ असख्य बार सिर काटा गया पर शत्रु मरता नही है। तब रामजी ने विभीषण की ओर देखा। भाव यह कि विभीषण से सलाह पूछते हैं।

उमा काल मर जाकी ईछा। सोइ प्रभु जन कर प्रीती परीछा॥
सुनु सर्बग्य चराचर नायक। प्रनतपाल सुरमुनि सुखदायक॥२॥

अर्थ हे उमा! जिसके सकल्प मात्र से काल मर जाता है। सो प्रभु भक्त की प्रीति की परीक्षा करते हैं। हे सर्वज्ञ, चराचरनायक, प्रणतपाल, सुरमुनिसुखदायक! सुनो।

व्याख्या विशेष विशेष अवसर पर शिवजी अपने श्रोता को सरकार का उत्कर्ष कहकर सावधान करते जाते हैं। यहाँ सशय को स्थान है कि रावण ऐसे कीट के वध के लिए स्वय महाप्रभु को विभीषण से उपाय पूछने की आवश्यकता क्यो पडी? क्या उनकी सर्वज्ञता मे कोई त्रुटि है? चराचर नायक सर्वशक्तिमान्

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रावणवध में असमर्थ क्यों हो रहे हैं ? अतः शिवजी कहते हैं कि उमा ! सर्वभक्षक काल भी जिसके संकल्पमात्र से मर जाता है। जो काल काल है उसके सामने रावण क्या है ? यहाँ सरकार भक्त की प्रीति की परीक्षा कर रहे हैं कि विभीषण की सर्वात्मना प्रीति मुझ पर है या नहीं। भाई पर प्रीति हृदय में कहीं छिपी तो नहीं पड़ी हुई है ? क्योंकि इसे मालूम है कि रावण सिर कटने से नहीं मरेगा। जिस भाँति वह मरेगा सो उपाय यह जानता है। मुझे कितनी बार सिर काटते हो गया पर यह कुछ नहीं कहता है। अतः पूछकर देख लें कि बतलाता है या नहीं। जिसके ऊपर भक्त की कुछ भी प्रीति हो उसका वध कैसे करें ? सुग्रीव ने भी जब कह दिया : बन्धु न होइ मोर यह काला। तब बालिवध किया। यहाँ भी जब विभीषण स्वयं वध का उपाय बतलावेंगे तब रावण का वध करेंगे। अतः विभीषणजी की ओर देखा।

विभीषणजी आशय समझ गये। उत्तर देते हैं कि सरकार सर्वज्ञ हैं। चराचर नायक हैं। सर्वशक्तिमान् हैं। सब कुछ जानते हैं। सब कुछ कर सकते हैं। मुझे कष्ट न हो इस बात पर इतना ध्यान है। क्योंकि मैं प्रणत हूँ और साथ ही साथ सुरमुनि-सुखदायक है सुरमुनि का धैर्य छूट जा रहा है। यथा : प्रभु क्रीडत सुरसिद्ध मुनि व्याकुल देखि कलेस। अतः क्रीडा को अधिक नहीं बढ़ाना चाहते हैं। अतः सुनिये।

नाभिकुंड पियूष बस जाके। नाथ जियत रावन बल ताके॥
सुनत बिभीषन बचन कृपाला। हरषि गहे कर बान कराला॥३॥

अर्थ : इसके नाभिकुण्ड में अमृत बसता है उसी के बल से रावण जीता है। विभीषण के वचन को सुनते ही कृपाल ने हर्षित होकर कराल बाण हाथ में लिये।

व्याख्या : विभीषण साधु हैं। मरने की विधि न बतलाकर रावण के जीने का कारण बतला रहे हैं। कहते हैं कि रावण के नाभिकुण्ड में अमृत बसता है। सभी के शरीर के भीतर के चन्द्रमण्डल से जो सहस्रार में है अमृतस्राव होता है। उसे नाभि में स्थित सूर्य पीते जाते हैं। फिर भी उसी स्राव से मनुष्य जीता है। रावण ने योग्य के विपरीत क्रिया द्वारा सूर्य को ऊपर और चन्द्र को नीचे कर रक्खा है। इसलिए इसके अमृत को सूर्य पी नहीं पाते। वह नाभि देश में इकट्ठा होता जाता है। उसी के बल से रावण जीता है।

सरकार कृपाल हैं। तीनों लोकों पर कृपा करना चाहते हैं। स्वयं रावण पर भी कृपा करना चाहते हैं। क्योंकि अन्यायी का वध उसके कल्याण का कारण होता है। विभीषणजी की सलाह से हर्षित हुए और कराल बाण को हाथ में लिया। जिसके द्वारा रावणवध किया चाहते हैं।

असगुन होन लगे तब नाना। रोवहिं खर सृगाल बहु स्वाना॥
बोलहिं खग जग आरति हेतू। प्रगट भए नभ जहँ तहँ केतू॥४॥

ankurnagpal108@gmail.com



दस दिसि दाह होन अति लागा। भएउ पर्व बिनु रबि उपरागा॥
मंदोदरि उर कंपति भारी। प्रतिमा स्रवहिं नयन मग बारी॥५॥

अर्थ : तब नाना प्रकार के अपशकुन होने लगे। बहुत से गीदड़ गधे और कुत्ते रोने लगे। जिनका बोलना अत्यन्त आर्त्ति का कारण है वे पक्षी बोलने लगे। आकाश में जहाँ तहाँ केतु प्रकट हो गये। दसों दिशाओं में दाह होने लगा। बिना अमावस्या के ही सूर्य ग्रहण लग गया। मन्दोदरी का हृदय बहुत काँपने लगा। देवमूर्त्तियों के आँख से जल बह चला।

व्याख्या : सरकार ने इधर हाथ में कराल बाण लिया और उधर अपशकुन प्रकट हुए। रावण अत्यन्त अत्याचारी होने पर भी बड़े महान् व्यक्ति थे। ब्रह्मसृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसवर्ती नरनारी। उनका मृत्युरूप जो बाण था उसके प्रयोग के समय महा उत्पात सूचक अपशकुन हुए। बहुत से शृगाल खर और श्वान रोने लगे। रावण की युद्धयात्रा के समय भी अपशकुन हुए। पर इतने नहीं। अत्यन्त आर्त्ति के हेतु जिन खगों का बोलना है। यथा : गीध उलूक आदि। वे भी बोलने लगे : जनु कालदूत उलूक बोलहिं बचन परम भयावने। दिन के समय आकाश में केतुओं का उदय हुआ। केतु अनेक हैं। उनकी संख्या लगभग सौ के हैं। उनमें से कोई कभी उदय होते हैं। सो बहुत से प्रकट हो गये। दसो दिशाओं में दिग्दाह होने लगा। आश्विन सुदी नवमी को रावण बध हुआ। न तो उस दिन अमावस्या थी न पूर्णिमा। अतः किसी ग्रहण का योग नहीं था। सो सूर्य ग्रहण लग गया। प्रकृति में विक्षोभ हो गया। सरकार के धनुष के टङ्कार पर ही मन्दोदरी का हृदय काँपा था। सो इस समय अत्यन्त कम्पित हो रहा है। देवता प्रतिमाओं के आँख से जल बह रहा है। यह वैष्णव उत्पात है।

छं.[1] प्रतिमा स्रवहिं पविपात नभ अति बात बह डोलति मही।
बरषहिं बलाहक रुधिर कचरज असुभ अति सक को कही॥
उतपात अमित बिलोकि नभ सुर बिकल बोलहिं जयजये।
सुर सभय जानि कृपाल रघुपति चाप सर जोरत भये॥

अर्थ : देवप्रतिमाएँ रोती हैं। आकाश से वज्रपात होता है। बड़े वेग से हवा बहती है। पृथिवी काँप रही है। मेघ रक्त बाल और धूलि की वर्षा कर रहे हैं। अत्यन्त अवर्णनीय अशुभ हो रहे हैं। अगणित उत्पात देख करके आकाश में देवतालाग जय जय बोलने लगे। देवताओं को भयभीत जानकर कृपालु रामजी धनुष पर बाणों को जोड़ने लगे।

व्याख्या : इतने उत्पात एक साथ ही बाण हाथ में लेते ही हुए। आकाश से

1. हरिगीतिका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वज्रपात हुआ। अन्तरिक्ष में वायु अति वेग से वह उठी। पृथिवी पर बादलों ने रक्त बालू और धूलि की वर्षा कर दी। असंख्य उत्पात को एक साथ होते देखकर आकाश में देवता विकल हो उठे कि पृथिवी अराम या अरावण हुआ चाहती है। अतः रामजी के कल्याण के लिए जय जय किया। अथवा सरकार को सूचना देने के लिए जय जय किया कि यही समय है रावणवध का। सो इसे जीतिये। सरकार ने देखा कि देवता भयभीत हो गये। अतः उस बाण को धनुष पर चढ़ाया और उसके साथ अन्य बाणों को भी जोड़ा।

दो. खैंचि सरासन स्रवन लगि, छाड़े सर एकतीस।
रघुनायक सायक चले, मानहु काल फनीस ॥१०२॥

अर्थ : कान तक धनुष खैंचकर एकतीस बाण चलाये। रामजी के बाण कालसर्प की भाँति चले।

व्याख्या : कान तक धनुष को खैंचा, बाण को अधिक गति देने के लिए। पहिले तीस बाण चलाते थे। अब उस कराल बाण के साथ तीस और जोड़े। सब बाणों से पृथक् पृथक् काम लेना है। इसलिए जोड़ने में विधि से काम लेना पड़ा। जब बाण छूटे तो ऐसे चले जैसे कालसर्प चले। ये प्राण लेवेंगे। इसलिए कालसर्प से उपमित किया।

सायक एक नाभि सर सोखा। अपर लगे सिर भुज करि रोषा॥
ले सिर बाहु चले नाराचा। सिर भुज हीन रुण्ड महि नाचा ॥१॥

अर्थ : एक बाण ने नाभि में के कुण्ड को सोख लिया और क्रोध करके शेष तीस में से दस सिर में लगे और बीस बीस बाण बाहु में लगे। सिर और बाहु को लेकर नाराच चले। सिर और भुजा से हीन होकर धड़ पृथिवी पर नाचने लगा।

व्याख्या : विभीषणजी ने बतलाया था कि : नाभि कुण्ड पियूष बस जाके। नाथ जियत रावण बल ताके। सो उस कुण्ड को उस कराल बाण ने सोख लिया। शेष तीस सिर और बाहों में लगे और उन्हें काटकर ले चले। शरीर में प्राण भरा हुआ है गिरा नहीं और युद्ध का प्रयत्न कर रहा है। अतः बिना सिर भुजा के रुण्ड पृथिवी पर नाच रहा है। सरकार के बाण सजीव हैं। सरकारी प्रेरणानुसार कार्य करते हैं।

धरनि धसै धर धाव प्रचंडा। तब प्रभु सर हति कृत जुग खंडा॥
गर्जेउ मरत घोर रव भारी। कहाँ रामु रन हतौं प्रचारी ॥२॥

अर्थ : प्रचण्ड धड़ के दौड़ने से पृथिवी धँसने लगी। तब प्रभु ने बाण मार कर दो टुकड़े कर दिये। मरते समय घोर ध्वनि से गर्जन किया। राम कहाँ है? ललकारकर रण में मारूँगा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : पहिले धड़ नाचा फिर दौड़ने लगा। पूर्वाभ्यासानुसार कार्य हो रहा है। प्रचण्ड धड़ है। सेष कमठ सहि सकें न भारा। सो पृथिवी धँसने लगी। तब सरकार ने उसे काटकर दो टुकड़े कर दिया। जिसमें बोझ हलका हो जाय। तब जाकर धड़ गिरा और दौड़ना रुका।

अब दूसरे प्रकार का मरण कहते हैं। जहाँ सिर नहीं कटता हृदय में बाण लगता है वही वीर चिक्कार करते हैं। अतः जिस कल्प के रावण के सिर न कटे केवल हृदय या नाभि में बाण लगा। वह मरने के समय घोर रव से गर्जा कि कहाँ हैं राम। अभी लड़ाई में ललकार कर मारता हूँ। मरण के समय दृष्टि धुँधली हो गयी है। अतः कहाँ हैं राम कहता है। हृदय में भाव भरा है कि : आज बैर सब लेउँ निबाही। वही मरती समय कहता है : रन हतौं प्रचारी। अन्त समय भगवन्नाम उच्चारण किया। नहीं तो रावण कभी राम ऐसा उच्चारण करते ही नहीं थे।

डोली भूमि गिरत दसकंधर। छुभित सिंधु सरि दिग्गज भूधर॥
धरनि परेउ द्वौ खण्ड बढ़ाई। चापि भालु मर्कट समुदाई॥३॥

अर्थ : रावण के गिरने से पृथिवी डोल गयी। समुद्र, नदियाँ, दिग्गज और पहाड़ क्षुब्ध हो उठे। दोनों खण्डों को बढ़ाता हुआ बन्दर भालु के समूह को दबाकर वह पृथिवी पर गिरा।

व्याख्या : रावण के चलने पर नित्य ही भूकम्प होता था। यथा : तब बलनाथ डोल नित धरनी। अतः उसके धड़ गिरने से पृथिवी डोल गयी और इतने जोर से डोली कि समुद्र, नदी, दिग्गज, पहाड़, सभी चञ्चल हो गये।

धड़ के दो टुकड़े होने पर भी उनमें बढ़ने का सामर्थ्य है। वे बहुत बड़े होकर गिरे। जिससे बन्दर और भालु के समूह दब गये। जिस भाँति हनुमान्‌जी ने मूर्च्छित होते हुए शत्रु सेना का नाश किया था। यथा : परतिहुँ बार कटकु संहारा।

मंदोदरि आगे भुज सीसा। धरि सर चले जहाँ जगदीसा॥
प्रविसे सब निषंग महुँ जाई। देखि सुरन्ह दुंदुभी बजाई॥४॥

अर्थ : मन्दोदरी के आगे भुजा और सिर रखकर बाण जगदीश के पास चले। सब तरकस में प्रवेश कर गये। देखकर देवताओं ने दुन्दुभी बजायी।

व्याख्या : लै सिर बाहु चले नाराचा। पहिले कह आये हैं। अब उन्हीं की कथा कहते हैं कि वे उन सिर और बाहुओं को ले जाकर मन्दोदरी के आगे रख दिया और फिर वहाँ से लौट पड़े। सो जहाँ सरकार थे वहाँ आये और निषङ्ग में प्रवेश कर गये। उनका कार्य समाप्त हो गया। सरकार ने इसी भाँति कुम्भकर्ण का सिर रावण के पास भेज दिया था। यथा : सो सिर परा दसानन आगे। भाव यह कि वैर मरणान्त रहता है। मरणान्तानि वैराणि। अतः सिर को और्ध्वदैहिक कृत्य के लिए उसके अधिकारी के पास भेज देते हैं। यदि कोई सती होना चाहे तो उसके लिए सिर मौजूद है। समर भूमि में उसकी रक्षा नहीं हो सकती।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बाणों ने चार क्रियायें की। पहली यह कि उन्होंने सिर काटे। दूसरी यह कि लेजाकर मन्दोदरी के पास रख आये। तीसरी यह कि वहाँ से रामजी के पास लौट आये और चौथे यह कि आप से आप निषङ्ग में प्रवेश कर गये। देवताओं ने तब समझा कि इसकी वध क्रिया पूरी हो गयी। बाणो के निषङ्ग प्रवेश के समय देवताओ ने दुन्दुभी बजाई कि अब जीत पूरी हुई।

तासु तेजु समान प्रभु आनन। हरषे देखि संभु चतुरानन ॥
जय जय धुनि पूरी ब्रह्मंडा। जय रघुबीर प्रबल भुजदंडा ॥५॥
बरषहि सुमन देव मुनि बृंदा। जय कृपाल जय जयति मुकुंदा ॥६॥

अर्थ : उसका तेज सरकार के मुख मे समा गया। देखकर शिवजी तथा ब्रह्माजी हर्षित हुए। जय जय ध्वनि ब्रह्माण्ड मे भर उठी। प्रबल भुजदण्डवाले रघुवीर की जय। देवता और मुनिगण फूल बरसा रहे हैं। कहते हैं कृपाल की जय हो। मुक्ति देनेवाले की जय हो। जय हो।

व्याख्या : रावण शम्भु चतुरानन का भक्त था। उसके तेज को प्रभु के मुख में समाते देखकर ये देवता प्रसन्न हो गये कि भक्त को परम गति की प्राप्ति हुई और देवता तथा मुनियो का हर्षित होना नही कहते। वे लोग तो आश्चर्य में आगये। यथा : अधम सिरोमनि तव पद पावा। यह हमरे मन बिसमय आवा।

चारों ओर से जयध्वनि हुई। रघुवीर के प्रबल भुजदण्ड का उत्कर्ष है। नही तो रावण के भुजदण्ड के सामने कोई टिकता न था। यथा : भुजबल बिस्व बस्य करि राखेसि कोउ न स्वतंत्र। देवता और मुनि आकाश में हैं। वही से फूल बरसाते हैं और कहते हैं :

छं.[1] जय कृपाकंद मुकुंद द्वंद हरन सरन सुखप्रद प्रभो।
खलदल बिदारन परम कारन कारुनीक सदा बिभो ॥
सुर सुमन बरखहि हरष संकुल बाज दुंदुभि गह गही।
संग्राम अंगन राम अंग अनंग बहु सोभा लही ॥

अर्थ : कृपा के बादल मुक्ति के देनेवाले, द्वन्द्व के हरण करनेवाले, शरणागत को सुख देनेवाले समर्थ, खल दल के नाश करनेवाले, परम कारण, कारुणीक और सदा व्यापक की जय हो। देवता सिद्ध मुनि और गन्धर्व हर्षित हुए। गहगही दुन्दुभी बजी। संग्राम भूमि मे रामजी के अङ्गो ने अनेक कामदेव की शोभा प्राप्त की।

व्याख्या : सरकार कृपा के बादल है। कृपा की वृष्टि सब पर करते हैं। प्रेय तो देते ही हैं। श्रेय : मुक्ति भी देते हैं। अभी रावण ऐसे अधम को मुक्ति दिया और संसार सुखी हो गया। सरकार द्वन्द्व का हरण करते हैं। सुख दुःखादि जोड़े

१. हरिगीतिका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ही द्वन्द्व हैं। दु.ख के साथ मे रहनेवाला सुख भी दु ख रूप ही है। महात्माओं का कथन है कि दु ख दुःख नही है। स्वल्प सुख ही दु ख है। नाल्पे सुखमस्ति यद्वै भूमा तत्सुखम्। अल्प मे सुख नही है। जो टिकाऊ हो उसमे सुख है। अतः भूमा सुख देने के लिए द्वन्द्व का हरण करते हैं। सरकार शरणागतवत्सल हैं और समर्थ हैं। असमर्थ शरणागतवत्सल होने पर भी सुखप्रद नही हो सकता। शरणागत विभीषण को लङ्का का राजतिलक दिया। उसे रावण वध करके पूरा किया। इतना कहकर अवतार का प्रथम कारण साधु परित्राण दिखलाया। अब दूसरा कारण दुष्कृत विनाश दिखलाते हैं कि सरकार खल और उसके दल के विदारण के परम कारण हैं। खलदल का विदारण तो लक्ष्मणजी तथा हनुमदादि बीरो ने भी किया। अत' वे कारण हुए। परन्तु परम कारण आप ही हैं। यथा : कपि जयसील राम बल ताते। सरकार कारुणीक हैं। करुणा करके आप ने ही प्रतिज्ञा की थी : निसिचर हीन करौं महि। सो पूरा किया और उन्हे भी करुणा करके परम गति दिया। यथा : उमा राम मृदुचित करुणाकर। बैर भाव सुमिरत मोहि निसिचर। देहि परम गति सो जिअ जानी। अस कृपाल को कहहू भवानी। और यह सब होते हुए भी आपकी व्यापकता मे कोई अन्तर न पड़ा। व्यापक न बाधा देता है, न बाधा पाता है। वह स्थिति सरकार की ज्यो की त्यो बनी रही और अचिन्त्य दिव्यलीला शक्ति द्वारा सब कार्य सम्पादन हो गया।

इस भांति आकाश मे देवता सिद्ध मुनि और गन्धर्व हर्षित हुए और खूब दुन्दुभी बजी और सग्राम भूमि मे सरकार की ऐसी शोभा हुई कि अङ्ग अङ्ग मे अनेक कामदेवो की छवि छायी हुई थी। यथा : अंग अंग पर वारि अहि कोटि कोटि सत काम।

[1]छ. सिर जटा मुकुट प्रसून बिच बिच अति मनोहर राजही।
जनु नील गिरिपर तडितपटल समेत उडुगन भ्राजही॥
भुजदड सर कोदंड फेरत रुधिर कन तन अति बने।
जनु रायमुनी तमाल पर बैठी बिपुल सुख आपने॥

अर्थ : सिर पर जटा मुकुट है। जिसके बीच बीच मे फूल अत्यन्त सुन्दर शोभायमान हैं मानो नील पर्वत पर बिजलियो का समूह तारागणो के साथ शोभायमान हैं। भुजदण्डो से धनुष बाण फेर रहे हैं। शरीर मे रक्त के बिन्दु ऐसी शोभा दे रहे हैं जैसे बहुत सी रायमुनी पक्षी तमाल वृक्ष पर अपने सुख से बैठी हुई हो।

व्याख्या : अब सरकार की शोभा कहते हैं कि सिर पर जटा का ही मुकुट बना हुआ है और उसमे जहाँ तहाँ सुन्दर फूल गुथे हुए हैं। कवि उपमा देते हैं कि

---

१ यह हरिगीतिका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जैसे नीलमणि पर्वत पर बिजली का समूह इकट्ठा हो गया हो और बहुत से तारे उतर आये हों। यहाँ सरकार के शरीरकी उपमा नीलमणिके पर्वत से दी गयी है और जटामुकुट की उपमा तडित पटल से दो गयी और मनोहर फूलो की उपमा तारागण से दी गयी। जटा में ऐसी चमक है कि उसकी उपमा सर्वत्र तडित पटल से ही दी गयी है। यथा : मरकत सैल पर लरत दामिनि कोटि सों जुग भुजग ज्यों।

भुजदण्ड से धनुष बाण फेर रहे हैं। सरकार का स्वभाव है। धनुष बाण को सदा ठोक रखने के लिए फेरा करते हैं। यथा : कर कमलन्हि धनु सायक फेरत। जिय की जरनि हरत हँसि हेरत। और क्या कहा जाय सरकार के शरीर पर आजाने से फूलों की शोभा आकाश मण्डल के तारे सी हो गयी। अभी युद्ध समाप्त किया है। अतः शरीर रक्त रंजित है। श्याम शरीर पर उन रक्त बिन्दुओं की भी ऐसी शोभा हुई कि जैसे रायमुनी चिड़ियायें तमाल वृक्ष पर सुख से बैठी हों। हिलती डोलती नहीं। सरकार के शरीर की उपमा तमाल वृक्ष से और रक्त बिन्दुओं की उपमा रायमुनी से दी गयी।

दो. कृपा दृष्टि करि वृष्टि, प्रभु अभय किये सुर वृंद।
भालु कीस सब हरखे, जय सुखधाम मुकुंद ॥१०३॥

अर्थ : कृपादृष्टि की वृष्टि करके प्रभु ने देवगण को अभय किया। बन्दर भालु हर्षित हुए। सुखधाम मुकुन्द की जय हो।

व्याख्या : देवताओं ने सरकार की स्तुति : कृपा वारिधर रूप में की। सो कृपादृष्टि की वृष्टि की। सरकार ने उनकी ओर कृपा करके देखा। सरकार का अवलोकन शोक विमोचन है। यथा : मामवलोकय पंकजलोचन। कृपा विलोकनि सोच विमोचन। सो देवता लोग अभय हो गये कि जब सरकार की हम पर कृपा है तो फिर भय किसका? इधर रावण वध के बाद सरकार की वीर रस की झाँकी का दर्शन और उसपर देवताओं द्वारा पुष्पवृष्टि और जय जयकार से बन्दर भालु हर्षित हुए। उन्होंने भी सुखधाम मुकुन्द की जय जयकार किया। बन्दर भालु हैं। बड़ी स्तुति नहीं कर सकते। फिर भी सारभूत बात कह दिया कि सुखदाता और मोक्षदाता की जय हो।

## ७७. मन्दोदरी शोक प्रसंग

पति सिर देखत मंदोदरी। मुरुछित बिकल धरनि खसि परी॥
जुवति वृंद रोवत उठि धाईं। तेहि उठाय रावन पहिं आईं॥१॥

अर्थ : पति का सिर देखते ही मन्दोदरी विकल और मूर्च्छित होकर पृथिवी पर गिर गयी। स्त्रियाँ रोती हुई दौड़ी। उसे उठाकर रावण के पास आयीं।

व्याख्या : मन्दोदरि आगे भुज सीसा। धरि सर चले जहाँ जगदीसा। यहाँ से प्रसङ्ग छूटा हुआ है। फिर वहाँ से उठाते हैं। भुजा से पहिचान नहीं हुआ। पर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



खाते हैं। राम विरोधी के लिए यह अनुचित नही है। हे पति ! कालविवश होने से तुमने कहना नही माना। चराचर के नाथ को तुमने मनुष्य जान लिया।

व्याख्या : ब्रह्मा का सब प्रपञ्च ईश्वराधीन है। यथा : ईस अधीन जीव गति जानी। सब तुम्हारे अधीन हो गया था। क्योकि दिक्पाल ईश्वर के बाहुरूप हैं। सो वे ही तुमसे भयभीत होकर सिर झुकाते थे। यथा : दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरहिं ते सिर नावे। तब तिनके के सदृश अन्य जीवो की क्या गिनती थी। तुम्हारा ऐश्वर्य ऐसा था। अब तुम्हारे सिर और भुजाओ को जम्बुक खाते हैं। भाव यह कि अति दीन हीन के शव को लोग जम्बुक का आहार नही बनने देते। कफन मे लपेटकर सुरक्षित रूप से उसे श्मशान पहुँचाते हैं। तुम्हारे ऐसे ऐश्वर्यशाली की यह गति नही होनी चाहिए थी। पर तुम रामविमुख हो गये। इसलिए इसे अनुचित नही कह सकते : जेहि तन दियो ताहि बिसरायेउ ऐसो निमक हरामी। हे पति ! तुम तो सदा मेरा कहना मान जाते थे। परन्तु कालविवश होने से मेरा कहना भी नही माना। मैने बार बार समझाया : बिस्वरूप रघुबस मनि करहु बचन बिस्वास। हिरण्याक्ष भ्राता सहित मधुकैटभ बलवान। जेहि मारे सोइ अवतरेउ कृपासिंधु भगवान। परन्तु तुमने नही माना। मोहवश तुमने चराचर नाथ को मनुष्य जान लिया। उनका अपमान किया।

छं.[१] जान्यो मनुज करि दनुज कानन दहन पावक हरि स्वयं।
जेहि नमत सिव ब्रह्मादि सुर पिय भजेहु नहि करुनामयं॥
आजन्म ते परद्रोह रत पापौघमय तव तनु अयं।
तुम्हहू दियो निजधाम राम नमामि ब्रह्म निरामयं॥

अर्थ : राक्षसो के कुल के दहन करवेवाले अग्नि स्वयं हरि को तुमने मनुष्य जान लिया। जिसे शिव ब्रह्मादि देवता नमस्कार करते हैं उस करुणामय को तुमने नही भजा। जन्म से ही परद्रोह मे तुम रत थे। तुम्हारी यह देह पाप समूहमय है। सो तुम्हे भी अपना धाम दिया। ऐसे निर्विकार ब्रह्म राम को मै नमस्कार करती हूँ।

व्याख्या : राक्षस वन के लिए जो दावानल हैं। जब से अवतीर्ण हुए राक्षस वध करते ही चले आते हैं। खरदूषण बध के समय कह ही दिया : यद्यपि मनुज दनुज कुल घालक। उस अशेष कारण से परे स्वय हरि को तुमने मनुष्य जान लिया। वन का महा वृक्ष जैसे दावानल से खेल करने चले तो उसकी जो गति होती है वही तुम्हारी भी हुई। वे भस्म करनेवाले अग्नि ही नहीं हैं वे बडे करुणामय हैं। ऐसे प्रभु हैं कि उनका शिव ब्रह्मादि देवता भजन करते हैं। सो तुमने उनका भजन नही किया। मैं कहती ही रह गयी : तासु भजन कीजिय तँह भर्ता। जो कर्त्ता

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पालक संहर्ता। सुत कहँ राज समर्पि बन जाइ भजिय रघुनाथ। फिर भी वे ऐसे करुणामय है कि तुम्हारे सरीखे व्यक्ति को भी जिसका शरीर ही पापमय है जिसने जन्म से ही परद्रोह ही किया उसे भी अपना धाम दिया। ऐसे निर्विकार ब्रह्म को मैं नमस्कार करती हूँ।

दो. अहह नाथ रघुनाथ सम, कृपासिंधु नहिं आन।
जोगि बृंद दुर्लभ गति, तोहि दीन्ह भगवान॥१०४॥

अर्थ : अहो नाथ! रघुनाथ के समान दूसरा कौन है। क्योंकि जो योगियों को दुर्लभ परमगति है वही भगवान् ने तुम्हें दिया।

व्याख्या : कृपासिन्धु को रावण ने नहीं भजा। इसलिए खेद प्रकट करती है। कहती है कि ऐसा कृपासिन्धु कौन होगा? तुम क्या ऊर्ध्वगति के पात्र थे? तुम्हें गति देने की इच्छा या सामर्थ्य किसे हो सकती थी? सो भगवान् ने तुम्हे मुनि दुर्लभ परमगति दिया। परमगति की प्राप्ति तो तुम्हें हुई। फिर भी यह पछतावा मुझे रह गया कि ऐसे प्रभु को तुमने भजा नहीं।

मन्दोदरी बचन सुनि काना। सुरमुनि सिद्ध सबन्हि सुख माना॥
अज महेस नारद सनकादी। जे मुनिबर परमारथवादी॥१॥

अर्थ : मन्दोदरी के वचन कान से सुनकर देवता मुनि और सिद्धों ने सुख माना। ब्रह्मा शिव नारद और सनक आदि जो श्रेष्ठ मुनि ब्रह्मवादी थे।

व्याख्या : मन्दोदरी का विलाप भी नहीं पुकार भी नहीं बल्कि प्रामाणिक वचन थे। ऐसा वचन कभी ऐसी स्त्री के मुख से नहीं सुने गये जिसका पति मारा गया हो। दूसरे से सुनते तो विश्वास न होता। इसलिए कहते हैं कि अपने कानो से सुनकर सुर मुनि सिद्ध जो विमान पर बैठे रण देख रहे थे सबके हृदय में सुख उपजा।

अज साक्षात् ब्रह्मदेव, नारद अज्ञान के खण्डव करनेवाले, महेश्वर साक्षात् दक्षिणामूर्ति और सनकादि सिद्ध निवृत्त मार्ग के प्रवर्तक और भी जो मुनि परमार्थ कथन करनेवाले थे। एक ब्रह्म ही परमार्थ है और सब स्वप्न के तुल्य मिथ्या हैं। इस सिद्धान्तवाले :

भरि लोचन रघुपतिहि निहारी। प्रेम मगन सब भए सुखारी॥
रुदनु करत बिलोकि सब नारी। गयउ बिभीषनु मन दुख भारी॥२॥

अर्थ : सब लोग छविसमुद्र रामजी को देखकर प्रेम में मग्न होकर सुखी हुए। सब स्त्रियों को रोती देखकर विभीषण के मन में बड़ा दुःख हुआ और वहाँ गये।

व्याख्या : अरूप अस्पर्श अगन्ध का ध्यान करनेवाले छविसमुद्र हरि के रूप को देखकर प्रेम में मग्न होकर सुखी हुए। सुनि गुनगान समाधि बिसारी। सादर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रसम लंका में नही हुई। अतः लंका मे तिलक देने के लिए लक्ष्मणजी को बुलाया। अपना प्रतिनिधि बनाकर लक्ष्मणजी को भेजते है।

लक्ष्मणजी को आज्ञा हो रही है और साथ ही साथ राजा सुग्रीव युवराज अङ्गद सेनापति नील नल ऋक्षेश जाम्बवान् तथा नीतिनिपुण हनुमान्‌जी को भी आज्ञा हो रही है। इन्ही सात में अपनी ओर के सब बड़े बड़े सरदार आगये। अथवा नयशील शब्द का अन्वय सबके साथ है।

सब मिलि जाहु बिभीषन साथा। सारेहु तिलक कहेउ रघुनाथा॥
पिता बचन मैं नगर न आवौ। आपु सरिस कपि अनुज पठावौ॥२॥

अर्थ : सब लोग मिलकर विभीषण के साथ जाओ और इनको तिलक दो। पिता के वचन से मैं नगर मे नही जाता। अतः अपने समान बानर तथा छोटे भाई को भेजता हूँ।

व्याख्या : उपर्युक्त छः व्यक्तियों तथा अनुज को सरकार अपने समान मानते है। अतः इनको आज्ञा देते हैं कि तुम लोग नीति मे निपुण हो। ऐसी नीति बर्तना जिसमे लंका निवासी इन्हे राजा माने। रावण वध हो जाने से लका तुम लोगो का विक्रमार्जित राज्य है। जब से तुम लोग जाकर गद्दो न दोगे तब तक प्रजा का सन्देह न जायगा। चलता तो मैं स्वय इन्हे गद्दी देने परन्तु पिताजी का वचन ऐसा है जिसके कारण मै नगर मे नही जा सकता। अतः तिलक देने के लिए अपने प्रतिनिधि रूप से अपने सखा तुम लोगो को भेज रहा हूँ। तुम लोग विभीषणजी को आगे करके लका जाओ।

तुरत चले कपि सुनि प्रभु बचना। कीन्ही जाइ तिलक कै रचना॥
सादर सिंघासन बैठारी। तिलकु सारि अस्तुति अनुसारी॥३॥

अर्थ : बानर सरकार का वचन सुनकर तुरन्त चल पड़े और जाकर तिलक का आयोजन किया। आदर के सहित सिंहासन पर विभीषणजी को बिठाया। तिलक दिया और स्तुति करने लगे।

व्याख्या : यद्यपि आज्ञा लक्ष्मणजी को हुई पर सब सरदार वहाँ पर थे। उन्होने बात सुन ली। लक्ष्मणजी को सरकार की आज्ञा सुनानी न पड़ी। वे लोग चल पड़े। नीतिनिपुण हनुमदादि सरदारो ने अभिषेकोत्सव किया। नगरवासियो को बुलवाया। बड़े सम्मान के साथ विभीषणजी को रावण के सिंहासन पर बिठलाया और सब लोगो ने उनकी स्तुति की। विभीषणजी का भाग्य है कि लक्ष्मण सुग्रीव हनुमदादि उनकी स्तुति करते हैं। अतः विभीषण की सभा रावण की सभा से भी बढकर हुई।

जोरि पानि सबही सिर नाए। सहित बिभीषन प्रभु पहिं आए॥
तब रघुबीर बोलि कपि लीन्हे। कहि प्रिय बचन सुखी सब कीन्हे॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : हाथ जोडकर सबने सिर झुकाये और विभीषण के साथ सरकार के पास आये। तब रामजी ने बन्दरो को बुलाया और प्रिय वचन कहकर सबको सुखी किया।

व्याख्या : सबने हाथ जोडकर सिर नवाया। भाव यह कि हम लोग तुम्हारी आज्ञा मे हैं। हम लोग लका के स्वामी नही स्वामी आप हैं। वह सिंहासन विश्व-प्रणम्य है। आज उस पर साधु विभीषण विराजमान हैं। विभीषणजी ने भी रसम मात्र अदा किया। वहाँ ठहरे नही। सबको साथ लिये सरकार के पास आये। रावण वध के बाद पहिला कार्य सरकार ने यह किया कि विभीषण को राज्य दिया। अब दूसरा कार्य यह कर रहे हैं कि धन्यवाद देने के लिए वानरो को बुलाया और ऐसा प्रिय वचन कहा जिसे सुनकर वे कृतकृत्य हो गये। तुलसी कहत पुकार के सुनो सकल दे कान। हेमदान गजदान ते बडो दान सनमान।

[1]छ. किये सुखी कहि बानी सुधासम बल तुम्हारे रिपु हयो।
पायो विभीषनु राज तिहुँपुर जस तुम्हारो नित नयो॥
मोहि सहित सुभ कीरति तुम्हारी परमप्रीति जे गाइहै।
संसार सिंधु अपारपार प्रयास बिनु नर पाइहै॥

अर्थ : अमृत के समान बातें कहकर सबको सुखी कर दिया। कहा कि तुम्हारे बल से मैंने शत्रु को मारा और विभीषण ने राज्य पाया। तीनो लोक मे तुम्हारा यश नित्य नया रहेगा। मेरे साथ जो तुम्हारी शुभ कीर्ति परम प्रेम से गान करेगा वह इस अपार ससारसमुद्र का पार बिना प्रयास ही पा जायगा।

व्याख्या : अमृत राजसम्मानम्। राजा का सम्मान अमृत है। सो सरकार इतना बडा सम्मान करते हैं। कह रहे हैं कि तुम्हारे बल से मैंने शत्रु को मारा। तुम यदि मेरा साथ न देते तो मेरे किये क्या हो सकता था। सो तुम्हारी सहायता से मैं समर सागर पार ही नही गया अपनी प्रतिज्ञा पूरी करने मे भी समर्थ हुआ। विभीषण ने राज्य पाया। यह यश तुम्हारा इस ससार मे नित्य नया रहेगा। अथवा अपूर्व होगा जो न पहिले हुआ था न पीछे सम्भव है।

अब कीर्तिगान की फलश्रुति कहते हैं कि समुद्र पार होना कठिन व्यापार है। बडे प्रयास से साध्य है और ससारसागर के पार होना तो महा दुस्तर है। महाप्रयास से भी अशक्य है। सो तुम्हारी कीर्ति गान करने से : साथ साथ मेरी भी कीर्ति रहेगी : बिना प्रयास लोग पार पा जावेंगे। सरकार के श्रीमुख से ऐसा कथन करने से यशोगान की महिमा अचल हो गयी।

दो. प्रभु के बचन स्रवन सुनि, नहिं अघाहिं कपि पुंज।
बार बार सिर नावहिं, गहहिं सकल पदकंज॥१०६॥

---

१ हरिगीतिका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : सरकार के वचन कान से सुनकर बन्दर समूह अघाते नही। बार बार सिर झुकाते हैं और चरणकमल पकड़ते हैं।

व्याख्या : श्रवणामृत वचन है। इससे बन्दर सुनकर अघाते नही है। मालिक ऐसे वचन सेवक से नही कहते। कृतकृत्य होकर बन्दर बार बार प्रणाम करते हैं। सोचते हैं कि प्रात.काल मेरा कोई नाम नही लेता। सो हमारे कीर्तिगान से ससार भवसागर से पार होगा। अब हमारे पार होने मे तो सन्देह ही नही है।

## ७९. सीता रघुपति मिलन प्रसङ्ग

पुनि प्रभु बोलि लिएउ हनुमाना। लंका जाहु कहेउ भगवाना॥
समाचार जानकिहि सुनावहु। तासु कुसल लै तुम चलि आवहु॥१॥

अर्थ फिर रामजी ने हनुमान्‌जी को बुला लिया और कहा कि लका जाओ। समाचार जानकी को सुनाओ और उनकी कुशल जानकर तुम चले आओ।

व्याख्या : वानरो को भी कृतकृत्य करने के बाद प्रभु ने हनुमान्‌जी को बुलाया सीताजी का समाचार लेने के लिए। हनुमान्‌जी भी वचनबद्ध हो चुके हैं : कछुक दिवस जननी धरु धीरा। कपिन्ह सहित अइहहिं रघुबीरा। निसिचर मारि तोहि लै जैहहिं। अत हनुमान्‌जी को आज्ञा हो रही है और ये ही जानते भी हैं कि सीताजी कहाँ हैं। आज्ञा हुई कि लका जाओ और विजय का समाचार जानकीजी को सुनाओ। विजय का समाचार मेरी ओर से जाना चाहिए। जब से हमारी ओर से समाचार न जायगा जानकी विश्वास न करेंगी। इतने बड़े आनन्द समाचार सुनाने का श्रेय तुमको ही मिलना चाहिए। साथ न लेते आना। केवल कुशल समाचार लेकर आओ। पहिले भी हनुमान्‌जी को भेजने के समय ऐसी ही आज्ञा हुई थी। यथा : कहि बल बिरह बेगि तुम्ह आयेहु। रावण ने कहा था . मास दिवस महँ कहा न माना। तौ मैं मारब काढि कृपाना। सो युद्ध मे अधिक समय लग गया। अत कुशल जानने की आवश्यकता है। सरकार ने सीताजी की कुशल जानने के पहिले विभीषण को राज्य और बन्दरो को धन्यवाद देने की आवश्यक्ता समझी।

तब हनुमंत नगर महुँ आए। सुनि निसिचरी निसाचर धाए॥
बहु प्रकार तिन्ह पूजा कीन्ही। जनकसुता दिखाइ पुनि दीन्ही॥२॥

अर्थ : तब हनुमान्‌जी नगर मे आये। सुनकर राक्षसी राक्षस दौड़े। बहुत प्रकार से उन लोगो ने पूजा की और तब जानकीजी को ले जाकर दिखला दिया।

व्याख्या : आज हनुमान्‌जी प्रच्छन्न वेष से नही गये। हनुमान्‌जी का लका मे जाना घटना विशेष है। इनका नाम लंकाभयंकर है। इसके भ्रम से अंगद के जाने पर कोलाहल मच गया। भयउ कोलाहल नगर मझारी। आवा कपि लंका जेहि जारी। सो कोलाहल तो अब भी हुआ। पर परिस्थिति बदल गयी। कहाँ तो : मारहिं चरन करहिं बहु हाँसी। और कहाँ पूजन के लिए दौड़े। राक्षसियाँ अलग दौड़ी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



आ रही हैं। राक्षस अलग दौडे आ रहे हैं। पूजन के लिए होड लगी हुई है। पूजक श्रद्धा सामग्री तथा विधि भेद से अनेक प्रकार से पूजा हुई। हनुमान्‌जी को पूछना न पडा। वे सब समझ गये कि सीताजी के लिए आये हैं। सो सीधे मार्ग से ले जाकर दर्शन करा दिया।

दूरहि ते प्रनामु कपि कीन्हा। रघुपति दूत जानकी चीन्हा ॥
कहहु तात प्रभु कृपानिकेता। कुसल अनुज कपि सेन समेता ॥३॥

अर्थ हनुमान्‌जी ने दूर से ही प्रणाम किया। जानकीजी ने पहिचान लिया कि रामजी का दूत है। बोली हे तात! बतलाओ कृपानिकेत प्रभु भाई और वानरी सेना के साथ सकुशल तो हैं ?

व्याख्या पहिले दर्शन मे प्रणाम तक करने का अवसर नही था। देखि मनहि मन कीन्ह प्रनामा। आज सब बाधायें दूर हो गयी हैं। दूर से ही हनुमान्‌जी प्रणाम करते हैं। भगवती ने दूतरूप से परिचय पाया था। अत प्रणाम करते ही पहिचान गयी कि यह सरकारी दूत है। अत पूछती हैं। पहिले कपिसेना का पता नही था। अत दो की कुशल पूछा था। यथा अब कहु कुसल जाउँ बलिहारी। अनुज सहित सुखभवन खरारी। आज तीन का कुशल पूछती हैं कृपानिकेतकी अनुज की तथा कपिसेना की।

सब बिधि कुसल कोसलाधीसा। मातु समर जीत्यो दससीसा ॥
अबिचल राजु बिभीषनु पायो। सुनि कपि बचन हरष उर छायो ॥४॥

अर्थ कोशलाधीश सब विधि से कुशल हैं। माता! सरकार ने युद्ध मे रावण को जीता। विभीषण ने अटल राज्य पाया। हनुमान्‌जी का वचन सुनकर हृदय मे आनन्द छा गया।

व्याख्या पहिले कुशल पूछने पर कहा था मातु कुसल प्रभु अनुज समेता। तव दुख दुखी सुकृपानिकेता। एक दुख था। इसलिए सब विधि कुशल नही कहा। आज किसी प्रकार की चिन्ता या दुख नही है। इसलिए सब विधि कुशल कह रहे हैं। सेना तथा अनुज की कुशल भी सब विधि के अन्तर्गत है। भगवती को रावण के सिर भुज के बढने के समाचार से बडी चिन्ता थी केहि बिधि मरिहि बिस्व दुखदाता। अत कहते हैं मातु समर जीतेउ दससीसा। और यही समाचार सुनाना भी था। साथ ही साथ हनुमान्‌जी ने यह भी कहा कि विभीषण को अटल राज्य मिला। भाव यह कि रावण का राज्य अटल नही था। उसने छीन छोर कर लिया था। विभीषण को तो सरकार राज्य दे रहे हैं। किसकी सामर्थ्य है कि उसे चलायमान कर सके। विभीषण के हृदय मे सरकार के चरण हैं। ये बातें भगवती ने औरो के मुख से भी सुना था। पर पूरा विश्वास नही था। न जाने किस अभिप्राय से कह रहे हैं। पर हनुमान्‌जी पर पूरा विश्वास है। अत हृदय मे हर्ष भर गया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



छं.[1] अति हरष मन तन पुलक लोचन सजल कह पुनि पुनि रमा।
का देउँ तोहि त्रैलोक महुँ कपि किमपि नहि बानी समा ॥
सुनु मातु मैं पायों अखिल जगराज आजु न संसयं।
रनजीति रिपुदल बंधु जुत पस्यामि राममनामयं ॥

अर्थ : मन मे अत्यन्त हर्ष है। शरीर में रोमाञ्च हैं। आँखो मे आनन्दाश्रु भरे हुए रमा बार बार कह रही हैं कि त्रैलोक्य मे मैं तुझे क्या दूँ। हनुमान् तुम्हारी वाणी के समान तो कुछ भी नही है। माता सुनो मैं सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का राज्य आज पा गया। इसमे सन्देह नही है। क्योकि युद्ध मे शत्रु को जीतकर तथा उसकी सेना को जीतकर भाई सहित रामजी को मैं सकुशल देख रहा हूँ।

व्याख्या : कवि ने यहाँ जानकीजी का हर्ष तन मन वचन तीनो से दिखलाया। सात्त्विक भाव होने से तन मे पुलक है। लोचन सजल है। यहाँ पर भगवती जनकनन्दिनी को रमा कहकर उनका ऐश्वर्याधिष्ठात्री देवी होना द्योतित किया। उन्हे त्रैलोक्य के ऐश्वर्य पर अधिकार है। अतः वे कहती हैं कि क्या दूँ। शुभ समाचार देनेवाले को पुरस्कार देने की विधि है। समाचार के सुखद होने के तारतम्यानुकूल पुरस्कार मे भी तारतम्य होता है। अतः कहती हैं कि इस समाचार समान तो त्रैलोक्य मे कुछ भी नही है। अतः जो तुम्हे रुचे सो बोलो।

हनुमान् ने कहा कि माँ! आज तो मुझे तीनो लोको का राज्य मिल गया। *त्रैलोक्य की सब वस्तुयें उसी के अन्तर्गत हैं।* मेरे तो सर्वस्व सरकार हैं। उन्होने रिपुदल जीता इससे मैंने इस लोक का राज्य पा लिया। बन्धुयुत हैं इसलिए पाताल का राज्य पाया और सरकार को अनामय देख रहा हूँ इसलिए स्वर्ग का राज्य पा लिया।

दो. सुनु सुत सदगुन सकल तव हृदय बसहुँ हनुमंत।
सानुकूल कोसलपति रहहुँ समेत अनंत ॥१०७॥

अर्थ : हे पुत्र हनुमान्! सुनो सब सद्गुण तुम्हारे हृदय मे बसें और अनन्त सहित रामजी तुम पर प्रसन्न रहें।

व्याख्या : हनुमान् की बात सुनकर जगदम्बा ने विचार किया कि अखिल जगत् से बढकर तो अखिल सद्गुण है। अत. हनुमान् को अखिल सद्गुण देना चाहिए। बोली कि सब सद्गुण तुम्हारे हृदय मे निवास करें और भक्तो के सुख देनेवाले लक्ष्मणजी तथा त्रिविध भवशूल के निवारण करनेवाले रामजी की अनुकूलता सदा तुम पर बनी रहे। यथा : तुम्ह कृपाल जापर अनुकूला। ताहि न ब्याप त्रिबिध भवसूला।

---

१ हरिगीतिका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अब सोइ जतनु करहु तुम्ह ताता। देखौं नयन स्याम मृदुगाता ॥
तब हनुमान रामपहि जाई। जनकसुता कै कुसल सुनाई ॥१॥

अर्थ : हे तात ! अब तुम वही उपाय करो जिसमे श्याम और कोमल शरीर रामजी को आंख से देखूं। तब हनुमान्जी ने रामजी के पास जाकर जानकीजी की कुशल सुनायी।

व्याख्या : भाव यह कि यह यत्न भी तुम्हारे ही किये होगा। कार्यं सिद्धिहंनूमति। कार्य सिद्धि तो हनुमान्जी मे ही प्रतिष्ठित है। तुम्हारे यत्न से ही सब हुआ है। कबहुँ नयन मम सीतल ताता। होइहहिं निरखि स्याम मृदु गाता। मैंने तुमसे कहा था। सो वह समय तुमने ला दिया। कण्टक दूर हो गया। अब आँख से भी दिखला दो।

सुनकर हनुमान्जी चल पडे। प्रणाम भी नही किया। इससे यह द्योतन किया कि अभी लौटता हूं। आज्ञा हुई थी : तासु कुसल लै तुम चलि आवहु। सो जाकर रामजी से कुशल सुनाया। सन्देश भी सुनाया कि अविलम्ब दर्शन चाहती हैं।

सुनि संदेसु भानुकुल भूषन। बोलि लिए युवराज बिभीषन ॥
मारुतसुत के संग सिधावहु। सादर जनकसुतहि लै आवहु ॥२॥

अर्थ : सन्देश सुनकर सूर्यकुल भूषण ने युवराज अङ्गदजी और विभीषण को बुला लिया और कहा कि हनुमान्जी के साथ चले जाओ और आदर के साथ श्रीजनकनन्दिनी को ले आवो।

व्याख्या : कार्य करने मे प्रधानता मां ने हनुमान्जी को ही दिया था। अतः इधर रामजी भी इन्ही को प्रधानता देते हैं। अङ्गद और विभीषण को बुलाकर हनुमान्जी के साथ जाने को कहते हैं। कपिसेना की ओर से प्रतिनिधि युवराज अङ्गदजी हैं और राक्षस समाज के राजा विभीषणजी है। इनके लेने जाने से आदर सूचित होगा। सरकार भानुकुल भूषण हैं। कुल की मर्यादा के अनुसार कार्य किया चाहते है। अतः आज्ञा देते हैं कि आदर के साथ लाओ अर्थात् कृसतन सीस जटा एक बेनी : इस वेष मे न लाना। असस्कृत रूप मे पति के पास जाना निषिद्ध है। राजा जनक की बेटी हैं। अत' उसी ठाट बाट से ले आवो।

तुरतहिं सकल गए जहँ सीता। सेवहिं सब निसिचरी बिनीता ॥
बेगि बिभीषण तिन्हहि सिखायो। तिन्ह बहुबिधि मज्जन करवायो ॥३॥

अर्थ : सब तुरन्त ही सीता जहां थी वहां गये। देखा कि सब राक्षसी विनय से सेवा कर रही हैं। विभीषण ने जल्दी से उन्हे सिखाया और उन्होने आदर के साथ सीताजी को नहलाया।

व्याख्या : आज्ञा की देर थी। सबको भगवतीजी के दर्शन की उत्सुकता है। तुरन्त ये लोग सीताजी के यहां गये। वहां जाकर देखा कि राक्षसी सब बडे विनय

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ीताजी की सेवा कर रही हैं। त्रिजटा ने पहिले ही कहा था : सीतहि सेइ करौ अपना। तब से सब सेवा मे लगी हैं।

भगवती को मज्जन कराना है। अत: निशिचरियो को समझाकर आज्ञा वे सब भी राजमहल की परिचारिकायें हैं। मज्जन शृङ्गारादि कराना ती हैं।

प्रकार भूषन पहिराए। सिबिका रुचिर साजि पुनि लाए ॥
र हरषि चढ़ी बैदेही। सुमिरि राम सुखधाम सनेही ॥४॥

अर्थ : बहुत प्रकार से गहने पहनाये और फिर सुन्दर पालकी साजकर लाये। पर वैदेही सुखधाम और स्नेही रामजी को स्मरण करके हर्षित होकर चढ़ी।

व्याख्या : भूषण पहनाने का भी अनेक प्रकार है। उसे सब नही जानते। महल की सेविकायें ही जानती है। मज्जन के बाद भूषण का विधान है। सो ह प्रकार से भूषण पहिराये। तब सरकार के पास ले जाने के लिए सुन्दर की मँगायी।

उस पर सीताजी हर्षित होकर चढी। सरकार के पास जा रही हैं। जब ण ने मारने के लिए तलवार निकाली थी उस समय परम स्नेही रामजी का ण किया था। यथा : सुमिरि अवधपति परम सनेही। आज वह दिन आया है मिलने जा रही है। अत: पुन: सुखधाम स्नेही को स्मरण किया।

ानि रक्षक चहुँ पासा। चले सकल मन परम हुलासा ॥
 भालु कीस सब आये। रक्षक कोपि निवारन धाये ॥५॥

अर्थ : चारो ओर छडी लिये परम उल्लास के साथ रक्षक चले। रीछ बानर ा के लिए आये। तब रक्षक क्रोध से रोकने दौड़े।

व्याख्या : चारो ओर वेत्रपाणि : चोबदार रक्षक चले। उनके मन मे भी हुलास है कि जन्म भर तो राक्षसियो की सेवा मे बीता। भला इतनी सेवा ाती के भी करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। इनका कार्य है कि कोई उचित दूरी धिक सवारी के निकट न आने पावे। इधर जगज्जननी के दर्शन की भालु री को बडी अभिलाषा है। सो सवारी आते देखकर भगवती के दर्शन के लिए की वे निकट चले गये। रक्षक लोग उनके सन्निकट आने से क्रुद्ध हुए। उन्हे ने के लिए दौडे। जिन भालु बन्दरो ने राक्षसो का संहार किया वे आज ाणि रक्षको के क्रोध करने पर हट रहे हैं।

रघुबीर कहा मम मानहु। सीतहि सखा पयादें आनहु ॥
 कपि जननी की नाईं। बिहसि कहा रघुबीर गोसाईं ॥६॥

अर्थ रामजी ने कहा कि मेरा कहना मानो। सखा! सीता को पैदल ही

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ले आवो। बन्दर लोग माता की भाँति दर्शन करें। ऐसा रघुवीर गोसाईं ने हँसकर कहा।

व्याख्या : बात पर जोर देने के लिए सरकार कहते हैं कि मेरा कहना मानो। सीता को पैदल लाओ। सीता को पैदल लाना अति अनुचित समझकर सरकार के प्रथम कथन की उपेक्षा की थी। क्योंकि सखा हैं। कुछ अपने मन की कर ही सकते हैं और ऐसा करने के लिए कारण सुनना चाहते हैं। केवल आज्ञा नहीं चल सकती।

सरकार हँसे कि मेरी आज्ञा पर प्राण निछावर करनेवाले लोग सीता के पैदल लाने की आज्ञा मानने के अनिच्छुक हैं। अतः कहते हैं कि मेरा कहना मानो बन्दरों को माँ की भाँति देखने का अवसर दो। इनके निकट जाने मे रोक क्यो ?

सुनि प्रभु बचन भालु कपि हरषे। नभते सुरन्ह सुमन बहु बरषे ॥
सीता प्रथम अनल महु राखी। प्रगट कीन्हि चह अंतर साखी ॥७॥

अर्थ : प्रभु का वचन सुनकर भालु बन्दर हर्षित हुए। आकाश से देवताओं ने फूल बरसाये। सीताजी को पहिले अग्नि मे रक्खा था सो अन्तःसाक्षी भगवान् उन्हे प्रकट करना चाहते हैं।

व्याख्या : बन्दर भालुओ के मन की बात सरकार ने कही। इसलिए वे हरषे और देवताओ ने स्वामी के सेवक मनोरञ्जन स्वभाव पर प्रसन्न होकर पुष्पवृष्टि की। सीता हरण के पहिले ही सरकार ने सीताजी को अग्नि मे रख दिया था। यथा : तुम्ह पावक महुँ करहु निवासा। जौं लगि करौं निसाचर नासा। उस आज्ञा को मानकर सीताजी अपना प्रतिबिम्ब वहाँ रखकर अग्नि मे समा गयी। अतः रावण ने प्रतिबिम्ब रूपा सीता का हरण किया। वही प्रतिबिम्ब रूपा सीताजी आगयी। सरकार सबके अन्तःसाक्षी है। उनसे कुछ छिपी नहीं है। उन्हे बिम्बरूपी सीता को अग्नि से बाहर निकालना है और प्रतिबिम्ब को बिम्ब मे लय करना है तथा लौकिक कलङ्क का प्रक्षालन करना है। इसलिए जो शत्रु ऐसे समय कह सकते थे वे बातें स्वयं कहने लगे।

दो. तेहि कारन करुनानिधि कहे कछुक दुर्बाद।
सुनत जातुधानी सब लागीं करै बिषाद ॥१०८॥

अर्थ : उस कारण से करुणायतन ने कुछ दुर्वाद[1] कहे। जिसे सुनकर सब राक्षसियाँ विषाद करने लगी।

व्याख्या : प्रकट करने के लिए दुर्वाद कह रहे हैं। करुणायतन हैं। कोई दुर्वाद न कह सके। इसलिए अग्नि परीक्षा ले रहे हैं। राक्षसियाँ विषाद करने लगी

१. किसी प्रतिष्ठित व्यक्ति से तुम अपनी सफाई दो . कहना ही दुर्वाद है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कि ऐसी साध्वी को कह क्या रहे हैं। भगवती के गुण ऐसे हैं कि उनपर राक्षसियाँ मुग्ध हैं।

प्रभुके वचन सीस धरि सीता। बोली मन क्रम वचन पुनीता ॥
लछिमन होहु धरम के नेगी। पावक प्रगट करहु तुम्ह वेगी ॥१॥

अर्थ : प्रभु के वचन को सीताजी ने सिर पर धारण किया। मनसा वाचा कर्मणा पुनीत जनकनन्दनी वोली : लक्ष्मण! तुम धर्म के नेगी बनो और शीघ्र अग्नि प्रकट करो।

व्याख्या : प्रभु के वचन सुनकर राक्षसियाँ जो साथ पहुँचाने आयी थी विषाद करने लगी। पर सीताजी ने उनके वचन को सिर पर धारण किया। उन वचनों से ज्ञात हुआ कि यदि तुम शुद्ध हो तो सबके सामने परीक्षा दो। तभी मैं तुम्हे ग्रहण कर सकता हूँ। अशुद्ध होने का आक्षेप ही दुर्वाद है। पराये घर मे इतने दिनो तक रही हुई स्त्री को मैं नही ग्रहण कर सकता। सीताजी ने प्रभु के ऐसे आक्षेप को उचित समझा। प्रभु हैं : इन्हे मेरी परीक्षा लेने का अधिकार है। मैं मनसा वाचा कर्मणा पवित्र हूँ। मुझे परीक्षा लेने से भय क्या ? और विना परीक्षा दिये लौकिक कलङ्क कैसे मिटेगा ? अतः लक्ष्मणजी से बोली। यह सीताजी का विवेक है।

लक्ष्मणजी से कहने का भाव यह कि तुम देवर हो। तुम्हे अग्नि देने का अधिकार है। तुम अरणि मन्थन करके अग्नि शीघ्र प्रकट करो। अग्नि प्रकट करने का नेग होता है सो नेग तुम्हे क्या दूँ। तुम्हे धर्म होगा यही नेग है। यह सीताजी की धर्मनिष्ठा है। जल्दी प्रकट करो। इस आज्ञा मे विरह भरा हुआ है। जबतक अग्नि परीक्षा नही हो जाती तबतक सयोग होने पर भी वियोग ही है। सरकार से कुछ न कहकर लक्ष्मणजी से कहना सीताजी की विनम्रता है।

सुनि लछिमन सीता कै बानी। बिरह बिवेक धर्म निति सानी ॥
लोचन सजल जोरि कर दोऊ। प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ ॥२॥

*अर्थ : लक्ष्मणजी ने सीता की विरह विवेक धर्म और नम्रता युक्त वाणी सुनी।* उनके नेत्रो मे जल भर आया। हाथ जोडा। पर प्रभु से वे भी कुछ कह न सके।

व्याख्या : सीताजी की विरह विवेक धर्म नीति सानी वाणी सुनकर लक्ष्मणजी समझ गये कि ये अग्नि परीक्षा दिया चाहती हैं। उनकी आँखो मे आँसू भर आया कि क्या सीताजी को अग्नि परीक्षा देनी होगी ? हनुमान्‌जी से तथा राक्षसियो से सीताजी की सब बातें मालूम होने पर भी क्या अग्नि परीक्षा की आवश्यकता है ? अतः कुछ कहना चाहते हैं। परन्तु प्रभु से उन्हे भी कुछ कहने का साहस नही होता। भाव यह कि हनुमान् सुग्रीव आदि भी कहना चाहते थे। पर कह नही सकते थे।

देखि राम रुख लछिमनु धाए। पावक प्रकटि काठ बहु लाए ॥
पावक प्रबल देखि बैदेही। हृदय हरष नहि भय कछु तेही ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : रामजी का रुख देखकर लक्ष्मण दौड़े। अग्नि प्रकट करके बहुत स काठ ले आये। वैदेही ने जब देखा कि अग्नि प्रज्वलित हो गयी तो उनके हृदय हर्ष हुआ। भय कुछ भी न हुआ।

व्याख्या : लक्ष्मणजी ने रामजी का रुख देखा कि इनकी भी इच्छा है। स दौड़े। क्योंकि भगवती की आज्ञा शीघ्रता के लिए है। पहिले अग्नि प्रकट किया परन्तु यहाँ थोड़े काठ से काम नहीं चलनेवाला था। अत: बहुत सा काठ लाये यहाँ ख्याल करने की बात है कि काठनक लाने के लिए बन्दरों को आज्ञा नहीं द जा रही है। लक्ष्मणजी ही सब कार्य अपने हाथ कर रहे हैं।

पावक प्रबल अर्थात् भस्म करने योग्य अग्नि को प्रज्वलित देखकर सीताज को भय नहीं है : हर्ष है। दोष युक्त व्यक्ति का अग्नि के समीप जाने का साहस नह होता। एकदम निर्दोष व्यक्ति ही को प्रवेश का साहस हो सकता है। सो यहाँ प्रवे: करने के लिए उत्साह है। जो अशोक वाटिका में अङ्गार के लिए लालायित थी औ न मिला। अङ्गार के सदृश अङ्गुलीयक को देखकर हर्ष हुआ था। यथा : जनु असो अंगार दीन्ह हरषि उठि कर गहेउ। उसे अग्निराशि की प्राप्ति से भय न होकर ह होने का पर्याप्त कारण है। इस अग्नि से कलङ्क नष्ट होगा। इसलिए हर्ष है। निर्दो हैं। इसलिए भय नहीं है।

जौं मन बच क्रम मम उर माहीं। तजि रघुबीर आन गति नाहीं ॥
तौ कृसानु सबकै गति जाना। मो कहुँ होहु श्रीखंड समाना ॥४॥

अर्थ . यदि मनसा वाचा कर्मणा मेरे हृदय मे रामजी को छोड़कर अन्यगि न हो तो हे अग्नि ! तुम सबकी गति जानते हो मेरे लिए चन्दन हो जाओ।

व्याख्या : अग्निप्रवेश के पूर्व संकल्प लेना पड़ता है और उस सकल्प व रचना बड़ी सावधानी से की जाती है। जिसमे उससे न्यूनातिरिक्त भाव का द्योत न हो। अत. भगवती सकल्प लेती हैं कि मनसा वाचा कर्मणा रामजी को छोड़क मेरे हृदय में अन्यगति नहीं है। मनसा यथा : सुनु दसमुख खद्योत प्रकासा। कब कि नलनी करइ बिकासा। वचसा यथा : सो भुज कठ कि तव असि घोरा। सु सठ अस प्रवान पन मोरा। कर्मणा यथा : तृन धरि ओट कहति वैदेही।

हे कृशानु ! तुम्हारे कृश अणु होने से तुम सर्वत्र व्याप्त हो। तुम सबकी गति जानते हो। तुम सबको जलानेवाले हो। यदि मनसा .वाचा कर्मणा रघुवीर क छोड़कर दूसरी गति न हो तो मेरे लिए चन्दन के समान शीतल हो जाओ। तुम्हार मेरे लिए शीतल होना ही मेरी शुद्धि मे प्रमाण है।

छं.[१] श्रीखंड सम पावक प्रबेसु कियो सुमिरि प्रभु मैथिली।
जय कोसलेस महेस बंदित चरनरति अति निर्मली ॥

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रतिबिम्ब अरु लौकिक कलंक प्रचंड पावक महु जरे।
प्रभु चरित काहु न लखे नभ सुरसिद्ध मुनि देखहि खरे ॥

अर्थ : मैथिली जानकीजी प्रभु का स्मरण करके चन्दन की भाँति अग्नि में प्रवेश कर गयी। शिवजी से वन्दित कोशलेश के चरण की अति निर्मल रति की जय हो। प्रतिबिम्ब और लौकिक कलङ्क तो प्रचण्ड अग्नि में जल गये। प्रभु के चरित को कोई लख न पाया। आकाश मे देवता सिद्ध मुनि खड़े देखते ही रह गये।

व्याख्या : प्रभु के चरणों में जगदम्बा का इतना प्रेम है कि अग्निप्रवेश के समय भी प्रभु का स्मरण करती हैं। तत्पश्चात् अग्नि मे उसी भांति प्रविष्ट हुईं जैसे चन्दन मे कोई प्रवेश करे। भाव यह कि कुछ भी उष्णता का अनुभव नही हुआ और अग्निराशि के भीतर चली गयी। चारो ओर ज्वालामाल है और बीच में सीताजी खड़ी हैं। अग्नि का कोई प्रभाव नही पड़ रहा है। ऐसे समय कवि कहते हैं अथवा चारो ओर से सब लोग कहते हैं कि रामजी के महेश वन्दित चरणो के प्रेम की जय हो। चारों ओर से जयजयकार हो रहा है। अब यहाँ पर प्रभु ने चरित्र किया। जिसे किसी ने न लखा। देवता सिद्ध मुनि जो आकाश मे थे और अति उत्सुकता से खड़े होकर यह दृश्य देखते थे वे भी न लख सके। वह चरित्र क्या है उसे वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि यह अद्भुत चरित्र हुआ। यदि प्रतिबिम्ब जल जाय तो कलङ्क नही जलता और यदि कलङ्क जल जाय तो प्रतिबिम्ब नही जलता। यहाँ दोनो ही जल गये और किसी को पता न चला।

बात यह है कि प्रतिबिम्ब और कलङ्क जलनेवाली वस्तु नही है। यथा : घृतपूरन कराह अन्तर्गत ससि प्रतिबिंब लखावै। इंधन अनल लगाइ कल्पसत औटत नास न पावै। अतः लक्षणा से यह अर्थ करना पड़ेगा कि नष्ट हो गये। यहाँ जलने का अर्थ लक्षणा से नष्ट होना करना ही पड़ेगा। प्रतिबिम्ब का बिम्ब मे लय हो जाना ही नष्ट होना है और किसी भाँति प्रतिबिम्ब नष्ट नही होता। बिम्बभूता सीता पहिले से ही अग्नि मे थी। उन्ही मे यह प्रतिबिम्बभूता सीता लय हो गयी। अतः प्रतिबिम्ब को पृथक् स्थिति भी नही रह गयी और कलङ्क भी धुल गया। यह प्रभु का चरित्र है : नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न रामसम जान जथारथ।

छं.[१] धरि रूप पावक पानि गहि स्री सत्य स्रुति जग विदित जो।
जिमि छीर सागर इंदिरा रामहि समर्पी आनि सो ॥
सो राम बाम बिभाग राजति रुचिर अति सोभा भली।
नवनील नीरज निकट मानहुँ कनकपंकज की कली ॥

अर्थ : तब अग्निदेव ब्राह्मण का रूप धारण करके श्रुति विदित सत्य श्री को

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हाथ पकडे हुए लाकर श्री रामजी को इस प्रकार समर्पित किया जैसे क्षीरसागर ने विष्णु भगवान् को लक्ष्मी समर्पित की थी। सो रामजी के वामभाग मे ऐसी सुशोभित हुई जैसे नये नीले कमल के पास स्वर्णकमल की कली हो।

व्याख्या ब्राह्मण का रूप धारण किये हुए अग्निदेव निकले। जो लका मे गयी थी वह सत्य श्रुतिविदित लक्ष्मी नही थी। उनका अपहरण हो नही सकता था। अत. जो अपहृत हुई थी वे प्रतिबिम्बभूता थी। अब अग्निदेव उन श्रुतिविदित सत्यलक्ष्मी को लिये हुए निकले। इन्दिरा 'लक्ष्मी तो सनातनी वैष्णवी शक्ति है। फिर भी क्षीरसागर ने जिस भाँति इन्दिरा को विष्णु भगवान् को सुपुर्द किया उसी भाँति अग्निदेव ने भी श्रुतिविदित श्री जनकनन्दिनी को रामजी के सुपुर्द किया। रामजी ने स्वीकार किया। वामभाग मे आसन दिया। भगवती की श्रृगारित मूर्ति हैं। इसलिए : रुचिर अति सोभा भली ' कहते हैं। उपमा देते हैं कि श्याम गौर जोडी ऐसी विराजमान हुई जैसे श्याम कमल के साथ स्वर्णकमल की कली विराजमान हो। सरकार खिले हुए हैं। इसलिए नवनील नीरज से उपमा दी। भगवती सकुचित हैं। इसलिए कली से उपमा देते हैं।

दो. बरषहिं सुमन हरषि सुर, बाजहिं गगन निसान।
गावहिं किन्नर सुरबधू, नाचहिं चढीं बिमान॥
जनकसुता समेत प्रभु, सोभा अमित अपार।
देखि भालु कपि हरषे, जय रघुपति सुखसार॥१०९॥

अर्थ. देवता हर्षित होकर फूल बरसाते हैं। आकाश मे डङ्के बज रहे हैं। किन्नर लोग गा रहे हैं और अप्सरायें विमान पर चढी नाच रही है। श्री जानकी के सहित प्रभु की अमित अपार शोभा है। देखकर बन्दर भालु आनन्दित हो उठे। बोले सुखसार रघुपति की जय हो।

व्याख्या. जगदम्बा जानकीजी को सरकार के सहित विराजमान देखकर देवता हर्षित होकर फूल बरसाने लगे। पहिले जानकीजी के दुःख से दुःखित थे। सरकार से निवेदन भी किया था ' अब जनि नाथ खेलावहु एही। अतिसय दुखित होत बैदेही। पुष्पवर्षा से युगल मूर्ति की पूजा है। किन्नर गन्धर्व गानेवाले देवयोनि हैं। सो उन्होने आनन्दातिरेक से गान आरम्भ किया और स्वर्वेश्या उर्वशी आदि विमान पर ही नाचने लगी। भावार्थ यह कि इस समय आकाश मे भी आमोद प्रमोद हो रहा है।

सरकार की शोभा अपार है। एक एक अग मे अनेक कामदेव की छबि है। यथा : सग्राम अगन राम अग अनग बहु सोभा लही। इस समय साक्षात् लक्ष्मी जानकीजी के साथ होने से अमित अपार शोभा हो गयी। भालु बन्दरो ने युगल मूर्ति की झाँकी नही देखी थी। आज पहिली बार देख रहे हैं। अत हर्षित हुए। कहने लगे कि सुख के भी सारभूत आनन्द के भी आनन्द देनेवाले रघुपति की जय हो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तब रघुपति अनुसासन पाई। मातलि चलेउ चरन सिरु नाई ॥

## ८०. देवस्तुति प्रसंग

आये देव सदा स्वारथी। बचन कहहिं जनु परमारथी ॥१॥

अर्थ : तब रामजी की आज्ञा पाकर मातलि चरणो मे सिर झुकाकर चले। सदा स्वारथी देवता लोग आये और ऐसी बात बोलते हैं मानो परमार्थी हैं।

व्याख्या : जब सरकार वैदेहीजी के साथ विराजमान हो गये तब मातलि ने जाने के लिए आज्ञा माँगी। इन्द्र का सारथि है। समझता है कि जबतक जानकीजी न आजायँ तबतक कार्य पूरा हुआ नही मानना चाहिए। युद्ध की आशका बनी ही है। पर अब वह आगयी। अब सब पूर्ण हो गया। अत: जाना चाहता है। सरकार ने भी आज्ञा दे दी। मातलि रथ लेकर चले। यद्यपि कृतकार्य होकर जा रहे हैं फिर भी हर्षित नही हैं। आने के समय हर्षित थे। यथा : हरष सहित मातलि ले आवा। सरकार का साथ छोडना उसे भी अखरता है। अत: प्रणाम करके चला।

स्वार्थी तो सब ससार है। पर देवलोक मे सदा स्वार्थ बना रहता है। परमार्थ की ओर इनकी दृष्टि ही नही जाती। भोगातिरेक से उन्हे ज्ञान होता ही नही। अत सदा स्वार्थ परायण रहते है। स्वार्थ पूरा हुआ तो आपहुँचे। नही तो तिन्हहि सोहाइ न अवध बधावा। चोरहि चदिनि रात न भावा। सारद बोलि बिनय सुर करही। बारहि बार पाँव लै परही। बिपति हमारि बिलोकि बडि मातु करिअ सोइ आजु। रामु जाहि बन राजु तजि होइ सकल सुर काज। इनका स्वार्थ ही सर्वस्व है। मित्र शत्रु कोई नही। पर बात परमार्थी की भाँति बोलते हैं।

दीनबधु दयाल रघुराया। देव कीन्हि देवन्ह पर दाया ॥
बिस्व द्रोह रत यह खल कामी। निज अघ गएउ कुमारग गामी ॥२॥

अर्थ : हे दीनबन्धु! हे दीनदयाल! हे रघुराया! हे देव! आपने देवो पर दया की। यह खल विश्वद्रोहरत और कामी था। कुमार्गगामी अपने ही पाप से गया।

व्याख्या हे रघुराया! आप दीनबन्धु हैं। सकट के समय उनके सहाय होते हैं। यथा : होहि कुठाँय सुबन्धु सहायें। आप दयालु हैं। दूसरे के दु ख से दु खी होते हैं। हम लोग रावण के कारण दीन हो रहे थे। यथा मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकजा। सरकार ने भूमि भार हरण करके हम लोगो को निर्भय किया। आप दयालु देव हैं। आपने हम लोगो पर दया की।

यह रावण ऐसा खल था कि विश्व के द्रोह मे सदा लगा रहता था। यह पृथिवी के लिए महारोग रूप हो गया था। दससीस बिनासन बीस भुजा। कृत दूरि महामहि भूरि रुजा। तिस पर कामी था देव यक्ष गन्धर्व नर किन्नर नाग कुमारि। जीति बरी निज बाहुबल बहु सुदर बर नारि। सो अपने पाप से गया। सीताहरण किया और माँगने से दिया नही। कुमार्गगामी इसी भाँति अपने पाप से ही मारे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


जाते हैं। उनके मारने के लिए कोई पृथक् प्रयत्न करना नहीं पड़ता। सरकार ने उसे नहीं मारा। उसी ने ही सरकार को मारने के लिए लाचार किया।

तुम्ह समरूप ब्रह्म अबिनासी। सदा एकरस सहज उदासी॥
अकल अगुन अज अनघ अनामय। अजित अमोघसक्ति करुनामय॥३॥

अर्थ : आप समरूप, ब्रह्म, अविनाशी, सदा एकरस, स्वभाव से ही उदासीन, निष्कल, निर्गुण, जन्मरहित, दोषरहित, निर्विकार, अजेय, निष्फल न जानेवाली शक्ति और करुणामय हैं।

व्याख्या : आप तो समरूप हैं। न आपको कोई द्वेष्य है न प्रिय है। देश से काल से आपका परिच्छेद नहीं है। आप में कभी कोई परिवर्तन नहीं होता। इसलिए सदा एकरस हैं। अतः अजन्मा हैं। स्वभाव से ही उदासीन हैं। संसार से सम्पर्क नहीं रखते। आप निरवयव हैं। गुणातीत हैं। आपका जन्म नहीं होता। न आप में कोई दोष है न विकार है। आप जीते नहीं जा सकते क्योंकि आप अमोघ शक्तिरूप हैं। सत्य संकल्प हैं फिर भी करुणामय हैं। भक्तों के लिए अपनी अचिन्त्य लीलाशक्ति द्वारा अवतीर्ण होते हैं।

मीन कमठ सूकर नरहरी। बामन परसुराम बपुधरी॥
जब जब नाथ सुरन्ह दुख पायो। नाना तनु धरि तुमहि नसायो॥४॥

अर्थ : मत्स्य, कच्छप, वाराह, नृसिंह, वामन और परशुराम रूप धारण किया। जब जब हे नाथ! देवताओं ने दुःख पाया तब तब अनेक शरीर धारण करके तुमने ही उनका नाश किया।

व्याख्या : आपने मत्स्यावतार धारण करके वेदों का उद्धार किया। कच्छपावतार धारण करके आपने अपने पीठ पर मन्दराचल धारण किया। जिससे समुद्र मन्थन हो सका और देवताओं ने अमृत पाया। वाराहावतार धारण करके आपने देवतापी महा बलवान् हिरण्याक्ष को मारा। नृसिंहावतार धारण करके महा प्रतापी हिरण्यकशिपु का संहार किया। परशुरामावतार धारण करके अन्यायी क्षत्रियों का संहार किया। रामावतार के पूर्व के छः अवतारों का वर्णन करके कहते हैं कि इनके अतिरिक्त सरकार के आवेशावतार विभवावतार आदि सहस्रों अवतार होते हैं। निदान सरकार ही देवताओं के शरण हैं। जब जब देवताओं को दुःख पड़ा तब तब अनेक शरीर धारण करके आपने ही उन्हें दुःख विनिर्मुक्त किया।

यह खल मलिन सदा सुरद्रोही। काम लोभ मद रत अति कोही॥
अधम सिरोमनि तव पद पावा। यह हमरे मन बिसमय आवा॥५॥

अर्थ : यह मलिन खल सदा देवताओं का द्रोही था। काम लोभ मद में रत था और बड़ा क्रोधी था। वह भी हे कृपालु : आपके धाम में चला गया। इस बात का हम लोगों को बड़ा आश्चर्य हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या अब प्रसक्त सातवाँ अवतार कहते हैं। यद्यपि हिरण्याक्ष और हिरण्यकशिपु भी सुरद्रोही थे। पर रावण तो पापमूल सुरद्रोही था। इसकी आज्ञा से धर्म निर्मूल की विधि निर्णय करके शासन चलता था। यथा जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला। और सुरद्रोही तो इतना बडा था कि देवताओ को क्षुधाक्षीण बलहीन करके मारना चाहता था। और नरक के चार रास्ते हैं। यथा काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पथ। सो इसने चारो को अपनाया था। अत इसे सद्य नरक प्राप्ति होनी चहिए थी। सो वह सीधे आपके धाम मे चला गया। जहाँ से फिर लौटना नही होता। यह बडे भारी आश्चर्य की बात हुई। आप कृपालु हैं। आपकी करुणा की शक्ति अचिन्त्य है। आप करुणा परवश होकर ही वध करते हैं। जिसमे आपके शररूपी तीर्थ मे शरीर त्यागकर सच्ची गति को प्राप्त हो।

हम देवता परम अधिकारी। स्वारथ रत तव भगति बिसारी ॥
भव प्रवाह सतत हम परे। अब प्रभु पाहि सरन अनुसरे ॥६॥

अर्थ हम देवता परम अधिकारी हैं। स्वार्थ परायण होकर आपकी भक्ति को भूले हुए हैं। हम सदा ससार के प्रवाह मे पडे हैं। हे प्रभो अब रक्षा करो। हम शरण आये हुए हैं।

व्याख्या रावण तो राक्षस था इसलिए अनधिकारी था। उससे यदि बिगड गया तो कोई बडी बात नही हुई। हम तो देवता हैं। परम अधिकारी हैं। हमे तो ब्रह्मज्ञानी होना चाहिए। सो हम स्वार्थ मे ऐसे फँसे कि आपकी भक्ति भूल बैठे। स्वार्थान्ध होकर हम लोग वस्तुत सरकार के वनवास के कारण हुए। जिससे अत्यन्त कष्ट सरकार को हुआ अपनी चूक स्पष्ट दिखाई पडती है कि हम भव प्रवाह मे पडे हैं। अत हम लोग शरण मे आये हैं। अब रक्षा कीजिये। पहिले तो स्वार्थवश अपराध किया। अब काम निकलने पर फिर स्वार्थ वशीभूत होकर अपराध क्षमापन के लिए शरण मे पहुँच गये।

यह गुणग्राम विशाखा नक्षत्र है। इसमे चार तारे तोरण की भाँति चमकते हैं। इसी भाँति इस स्तुति मे भी चार बातें हैं। १ सरकार ने दया की। २ पहिले भी जब दु ख पडा सरकार सहाय हुए। ३ महा पापी रावण को निज धाम दिया और ४ हम भव प्रवाह मे पडे हैं हमारी रक्षा हो। ये चार बातें अलग अलग दयारूपी तागे मे गुथी हुई तोरणाकार हैं। अत विशाखा से उपमित हैं। इसकी फलश्रुति है मन्त्र महामनि विषय व्यालके।

दो. करि बिनती सुरसिद्ध सब, रहे जहँ तहँ कर जोरि।
अति सप्रेम तन पुलकि बिधि, अस्तुति करत बहोरि ॥११०॥

अर्थ बिनती करके देवता और सिद्ध लोग जहाँ के तहाँ खडे रहे। अत्यन्त प्रेम से ब्रह्मदेव फिर से स्तुति करने लगे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सरकार के गुणगण ही ऐसे हैं कि सिद्ध मुनीन्द्र कवि को उन्ही के गान करने मे विश्राम मिलता है। यथा विश्रामस्थानमेक कविवरवचसाम्।

सरकार का यश पावन है इसका गान करके मनुष्य भवसागर पार हो जाते हैं। यह रावण बडा भारी क्रूर दुष्ट सर्प था जो प्राणियो के प्राण का नाशक था। जो उद्वेग करनेवाले है वे साँप ही हैं। यथा ये नृशसा दुरात्मान प्राणिना प्राणनाशका। उद्वेजकाश्चभूताना व्याला इव भवन्ति ते। उसे कोई काबू मे न ला सका था। सरकार ने उसे सर्प भक्षक गरुड की भाँति पकड लिया। ऐसी शोभा ऐसा गुण और ऐसा पराक्रम सरकार मे ही है।

जनरजन भजन सोक भय। गत क्रोध सदा प्रभु बोध मय॥
अवतार उदार अपारगुन। महिभार बिभजन ज्ञानघन॥३॥

अर्थ · भक्तो को सुख देनेवाले शोक और भय को दूर करनेवाले क्रोध रहित और सदा बोधमय प्रभु हैं। आपका उदार अवतार है। आपके गुण अपार हैं। आप पृथिवी के भार को दूर करनेवाले और ज्ञानघन हैं।

व्याख्या भक्त भगवान् को प्रिय हैं। अत भगवान् जनरञ्जन हैं। आगत और अनागत दु खो के दूर करनेवाले हैं। क्रोध तो कभी करते ही नही। यथा जेहि करुनाकर कीन्ह न कोहू क्योकि सदा बोधमय हैं। जिस काम क्रोध से प्रेरित होकर मनुष्य पापाचरण नही करता वह काम क्रोध नही है। वह काम क्रोधाभास है। अत जहाँ जहाँ पर सरकार का क्रोध दिखलाया गया है वहाँ क्रोधाभास ही समझना चाहिए। क्योकि सरकार बोधमय है। वहाँ क्रोध को स्थान कहाँ? सरकार के ही अवतार तो अनेक हुए। पर जैसी उदारता इस अवतार मे देखी जाती है वैसी अन्यत्र नही देखी जाती। ब्रह्मदेव को भी सरकार के गुणो का पारावार नही मिलता। अत कहते हैं अपारगुन। परद्रोही पृथिवी के भार है। पृथिवी कहती है गिरिसर सिधु भार नहि मोही। जस मोहि गरुअ एक परद्रोही। उनका सहार करके पृथिवी का भार उतारा। अब सरकार का मुख्यरूप कहते हैं कि ज्ञानघन हैं। ठोस ज्ञानरूप है। जिसमे किसी अन्य वस्तु का स्थान नही है।

अज व्यापकमेकमनादि सदा। करुनाकर राम नमामि मुदा॥
रघुबस बिभूषन दूषनहा। कृतभूप बिभीषनु दीन रहा॥४॥

अर्थ आप अज हैं, व्यापक हैं, एक हैं, अनादि हैं, सदा करुणा करनेवाल हैं, मै प्रसन्न होकर नमस्कार करता हूँ। हे रघुवश विभूषण! आप दूषण के नाश करनेवाले हैं। आपने विभीषण को जो दीन था राजा बना दिया।

व्याख्या आपका जन्म नही होता। क्योकि आप सर्वव्यापक है। अद्वैत हैं और अनादि हैं। जन्म परिच्छिन्न सद्वय और सादि का होता है। हे राम! आप सदा करुणाकर हैं। आपकी करुणा मे कभी अन्तर नही पडता। क्रोध करते दिखाई पडने पर भी चित्त से करुणा कभी नही हटती। मैं आपको प्रसन्न होकर नमस्कार करता

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हूँ। सभीत होकर देवता रावण को भी नमस्कार करते थे। यथा : दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरहि ते सिर नाव। परन्तु आपको आनन्द परिप्लुत होकर मैं नमस्कार करता हूँ।

हे रघुकुल के भूषण आप दूषण के नाश करनेवाले हैं : यहाँ दूषण शब्द श्लिष्ट है। दूषण नामी राक्षस का भी सरकार ने वध किया और दूषण अर्थात् दोष को भी हरण करनेवाले हैं। आपने विभीषण के दीनतारूपी दोष का हरण करके राजा बना दिया।

गुन ग्यान निधान अमान अजं। नित राम नमामि बिभु बिरजं ॥
भुजदंड प्रचंड प्रताप बलं। खलवृंद निकंद महा कुसलं ॥५॥

अर्थ : गुण और ज्ञान के निधान, अमान, अज, विभु और विरज राम को मैं नित्य नमस्कार करता हूँ। आपके भुजदण्ड का प्रताप और बल प्रचण्ड है। खल वृन्द के नाश मे आप बड़े कुशल हैं।

व्याख्या : गुण अर्थात् कल्याण गुणगणो के निधान हैं और सम्पूर्ण विद्याओं के निधान हैं तथा आप अमान हैं। आप मे इयत्ता नही है : मीयते इति मानम्। अथवा अभिमान नही है। अभिमान जीव को होता है ईश्वर को नही। यथा : माया वस्य जीव अभिमानी। ईस वस्य माया गुन खानी। आप अजन्मा हैं। व्यापक हैं तथा निर्माय हैं। आपके भुजदण्ड का प्रचण्ड प्रताप और बल है : यथा : असरव पूरि रही नव खडा। जय रघुवीर प्रबल भुज दडा। और खलवृन्द के सहार मे बडे निपुण हैं। ऐसी युक्ति किया कि खलवृन्द आपसे आप आ आकर आपके शरानल मे पतङ्ग हो गये। यथा : कहा अनुज सन सैन बुझाई। लछिमन अति लाघव सो नाक कान बिनु कीन्ह। ताके कर रावन कहँ मनहुँ चुनौती दीन्ह। जिस युक्ति से खल मारे जायँ वैसी युक्ति करके आप उन्हे मार ही डालते हैं। यथा : खरदूषन बिराध वध पडित। रावण सिर कटने पर भी नही मरता था। उसके नाभि कुण्ड सुधा को सर से शोषण करके मारा।

बिनु कारन दीन दयाल हितं। छबिधाम नमामि रमासहितं ॥
भवतारन कारन काज परं। मन संभव दारुन दोष हरं ॥६॥

अर्थ : आप बिना कारण ही दीन पर दया करते हैं और कल्याण करते हैं और शोभा के धाम हैं। आपको लक्ष्मी के सहित नमस्कार है। आप ससार से पार करनेवाले हैं और कार्य कारण से परे हैं और मन से उत्पन्न होनेवाले दारुण दोष के हरण करनेवाले हैं।

व्याख्या : बिना कारण ही दीन पर दया करते हैं और उनका हिताचरण करते हैं। यथा : कबहुँक करि करुना नरदेही। देइ ईस बिनु हेतु सनेही। आप शोभाधाम हैं। राक्षसी सूर्पणखा नाक कटने पर भी कहती है : सोभा धाम राम अस नामा। लक्ष्मी के सहित आपको मैं नमस्कार करता हूँ। अथवा छविधाम लक्ष्मी के साथ मैं

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

आपको नमस्कार करता हूँ। भावार्थ यह कि आप भी छविधाम है और रमारूप सीताजी भी छविधाम हैं। यथा विष्णु चारि भुज विधि मुख चारी। बिकट बेष मुख पंच पुरारी। अपर देव अस कोउ न आही। एहि छवि सखि पटतरिए जाही। तथा गिरा मुखर तन अर्ध भवानी। रति अति दुखित अतनु पति जानी। विष बारुनी बंधु प्रिय जेही। कहिय रमा सम किमि वैदेही।

भवाम्भोधि के सन्तरण चाहनेवाले के लिए आपका चरण ही एकमात्र नौका है। यथा यत्पादप्लवमेकमेव हि भवाम्भोधेस्तितीर्षावताम्। अत आप भवतारण हैं। आप अशेष कारण से परे हैं। ससार मे कार्य कारण की परम्परा चलती है। घट कार्य है। उसका कारण पृथिवी है। पर पृथिवी भी कार्य है। उसका कारण जल है। पर जल भी कार्य है। उसका कारण अग्नि है। इस भाँति कार्य कारण की परम्परा प्रकृति तक चली जाती है। आप उससे भी परे हैं। यथा प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी।

दुःख का मूल मनोमय जगत् है। ईश्वरकृत द्वैत बन्ध का कारण नही है। जीव ने जो उसमे द्वैत की मानसिक सृष्टि की है वही बन्ध का कारण होती है। ईश्वरकृत स्त्री बन्ध का कारण नही है मनोमयी स्त्री ही बन्ध का कारण है। उस बन्ध से आप ही मुक्ति देने मे समर्थ हैं। इसलिए कहते हैं मन सभव दारुण दुःख हर। अथवा मानस रोग बड़े दारुण है। वे किसी भाँति नष्ट नही होते। रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान श्रद्धा अतिरूरी। एहि बिधि भलेहि सो रोग नसाही। नाहित कोटि जतन नहिं जाही।

सर चाप मनोहर त्रोन धर। जलजारुन लोचन भूपवर ॥
सुख मंदिर सुंदर श्रीरमन। मदमार मुधा ममता समन ॥७॥

अर्थ मन के हरण करनेवाले धनुष बाण और तरकस धारण करनेवाले हैं। लाल कमल से आपके नेत्र हैं। राजाओ मे आप श्रेष्ठ है। आप सुख के घर हैं। सुन्दर हैं। लक्ष्मी के पति हैं। मद मार और झूठी ममता के शमन करनेवाले है।

व्याख्या आपका अच्छेद्य धनुष कराल बाण तथा अक्षय तूणीर सब मन के हरण करनेवाले हैं। भक्त लोग तूण बाण धनुर्धारी राम को हृदय मे बसाना चाहते है। आपके लाल कमल से सुन्दर नेत्र चक्रवर्ती के चिन्ह है। आप राजाओ मे श्रेष्ठ हैं। अपने चरित्र से राजाओ का धर्मोपदेश करते है। ससार सुख का भिखारी है और आप सुख के मन्दिर है। ससार लक्ष्मी का कृपाकटाक्ष चाहता है और आप उनके पति हैं। मोहप्रद मद शोकप्रद काम और बन्धप्रद मिथ्या ममता इन्हे आप नाश करके परम पद देते हैं।

अनवद्य अखंड न गोचर गो। सब रूप सदा सब होइ न गो ॥
इति बेद बदंति न दंतकथा। रबि आतप भिन्न न भिन्न जथा ॥८॥

अर्थ आप अनिन्दित हैं। अखण्ड है। इन्द्रियो के विषय नही हैं। आप सदा

ankurnagpal108@gmail.com



सर्वरूप हैं फिर भी सब हो नही गये हैं ऐसा वेद कहते हैं। दन्त कथा : बकवाद नहीं है। जैसे सूर्य और सूर्य का प्रकाश अलग भी है नही भी है।

व्याख्या : ससार अवद्य है। सखण्ड है। इन्द्रिय का विषय है। सरकार अनवद्य है अखण्ड हैं। इन्द्रियातीत हैं। एकरस होने से अनवद्य हैं। परिपूर्ण होने से अखण्ड हैं। स्थूल सूक्ष्म से परे होनेसे इन्द्रियातीत हैं। सर्वरूप होने पर भी अरूप हैं। अपने चिद्वपु का उल्लङ्घन नही करते। यह बात मन मे जल्दी नही बैठती। क्योकि दोनो विरुद्ध हैं। इसलिए कहते हैं कि इसे दन्तकथा न समझना चाहिए। यह बात वेद कहते हैं। फिर भी समझने के लिए दृष्टान्त चाहिए। इसलिए दृष्टान्त भी देते हैं। जैसे सूर्य धूप से अभिन्न भी है और भिन्न भी है। सूर्य से पृथक् धूप क्या है? फिर भी धूप सूर्य नही है। वेद सरकार को अरूपमस्पर्शमगन्धम् कहकर भी वर्णन करता है और सर्वरूप सर्वरस सर्वगन्ध कहकर भी वर्णन करता है।

कृतकृत्य विभो सब बानर ए। निरखति तवानन सादर ए ॥
धिग जीवन देवसरीर हरे। तव भक्ति बिना भव भूलि परे ॥९॥

अर्थ : हे विभो! ये बन्दर कृतकृत्य हैं जो आपका मुख आदर के साथ देख रहे हैं। हे हरे! देव शरीर के जीवन को धिक्कार है। जो तुम्हारी भक्ति बिना ससार मे भूले पडे हैं।

व्याख्या : हे प्रभो! ये बन्दर कृतकृत्य हो गये। इनका कर्तव्य समाप्त हो गया। जीवन धारण करके उसे इन्होने सरकार की सेवा मे लगाया और अब कृतकृत्य होकर आपके मुख का दर्शन कर रहे हैं। इतने देवता आये हुए हैं पर उनकी ओर देखने के लिए इन्हे अवकाश नही है। ये भवदीय मुखावलोकन मे ही दत्तचित्त हैं। अत: ये कृतकृत्य हैं। देव शरीर पाकर ही क्या हुआ? यदि हरि मे भक्ति नही हुई और देवसुलभ ऐश्वर्य मे ही भूले रह गये। बानरो ने सरकार की सेवा की और देवताओ ने सरकार से सेवा ली। इसलिए वानरो को धन्यवाद और देवताओ को धिक्कार है।

अब दीनदयाल दया करिए। मति मोरि बिभेदकरी हरिए ॥
जेहि ते बिपरीत क्रिया करिए। दुख सो सुख मानि सुखी चरिए ॥१०॥

अर्थ : हे दीनदयाल! अब दया करिये। मेरी विभेदकरी बुद्धि को हरण कर लीजिये जिससे मैं विपरीत क्रिया करूँ। दु:ख से सुख मानकर सुखी हो विचरूँ।

व्याख्या : ब्रह्मदेव कहते हैं कि मै दीन हूँ आप दीनदयाल हैं। मुझ दीन पर दया कीजिये। विभेदकारी बुद्धि होने से मैं ब्रह्मपद पाकर भी दीन हूँ। क्योकि द्वितीयाद्वै भय भवति दूसरे से भय होता ही है। मुझे अभय कर दीजिये। ब्रह्मपद देने पर भी भय बना ही है। बुद्धि के प्रेरक आप है। आपके ही हरण करने से विभेदकरी बुद्धि दूर होगी। तब विपरीत क्रिया करने मे समर्थ हूँगा। जिसे लोग दु:ख कहते हैं उसी को सुख मान सकूँगा और तब सुखी होकर विचरण करूँगा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



छं. खल खंडन मंडन रम्य छमा । पदपंकंज सेवित संभु उमा ॥
नृपनायक दे बरदानमिद । चरनाबुज प्रेमु सदा सुभदं ॥१॥

अर्थ : आप खलो के खण्डन करनेवाले और पृथिवी के सुन्दर अलङ्कार हैं। आपके चरण कमल शिव पार्वती द्वारा सेवित हैं। हे नृपनायक ! यह वरदान दीजिये कि आपके सदा शुभ देनेवाले चरण कमल मे प्रेम हो।

व्याख्या : यहाँ पर अवतार के दोनो कृत्य दिखलाये खल खण्डन कहकर दुष्कृतो का विनाश कहा और मण्डन रम्य छमा कहकर साधुपरित्राण दिखलाया। सबसे बडे महादेव हैं सो सस्त्रीक होकर चरणो की सेवा करते हैं। सरकार ने रावण वध किया है अतः नृपनायक कह रहे हैं। अथवा माधुर्य के उपासक है अत. नृप नायक कहते हैं। ऐसी खुशी के समय स्तुति करनेवाले राजाओ के यहाँ से पुरस्कार पाते हैं। सरकार नृपनायक हैं। मुँह माँगा दीजिये। यही वरदान है कि सदा शुभ देनेवाले चरण कमल का प्रेम मुझे हो।

दो. बिनय कीन्हि चतुरानन, प्रेम पुलक अति गात।
सोभासिंधु बिलोकत, लोचन नही अघात ॥१११॥

अर्थ : बहुत भाँति से अति पुलकित शरीर होकर ब्रह्मदेव ने विनय किया। रामजी का मुख देखते हुए आँखें नही अघाती थी।

व्याख्या : अति सप्रेम तनु पुलकि बिधि अस्तुति करत बहोरि से उपक्रम करके विनय कीन्हि चतुरानन कहकर उपसहार करते हैं। विनय कीन्हि चतुरानन से वचन द्वारा प्रेम कहा। प्रेम पुलकि अति गात से तन से प्रेम कहा। सोभासिंधु बिलोकत लोचन नहि अघात से मन से प्रेम कहा।

यह अनुराधा नक्षत्र है। इसमे चार तारे चमकते है। भक्तपुज सा आकार है। इस गुणग्राम मे एक बार जयकार और तीन बार नमस्कार है। यही चार तारो की चमक है। बिना क्रम के भात के ढेर की भाँति गुणगण कहे गये हैं। पूर्वापर क्रम भी नही है। द्विरुक्तियाँ भी हैं। इसलिए भक्त पुजाकार समझा गया। मेटत कठिन कुअंक भाल के। यही फलश्रुति है।

तेहि अवसर दसरथ तहँ आए । तनय बिलोकि नयन जल छाए ॥
अनुज सहित प्रभु बदन कीन्हा । आसिरबाद पिता तब दीन्हा ॥१॥

-अर्थ : उसी अवसर पर वहाँ दशरथजी आये। बेटो को देखकर आँख मे आँसू भर आया। भाई के सहित सरकार ने वन्दना की। तब पिता ने आशीर्वाद दिया।

व्याख्या : सरकार ने जटायु से कहा था : सीताहरन तात जनि कहेहु पिता सन जाइ। जौ मैं राम त कुल सहित कहिहि दसानन आइ। सो वह वचन चरितार्थ हुआ। दशरथजी को समाचार मिल गया। वे ब्रह्मदेव की स्तुति के समय आये। हा जानकी लखन हा रघुवर। हा पितु हित चित चातक जलधर : कहते हुए जिसने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्राण त्याग किया था आज उसे देखकर आँख मे आँसू क्यो न भर आये। देवता रामजी को ब्रह्म देखते हैं। हाथ बाँधे खडे हैं। पर चक्रवर्तीजी उन्हे बेटा ही देखते है। चौदह वर्ष के बाद आज दृष्टिगोचर हुए हैं। अत आँखो मे आनन्दाश्रु भर आया।

बेटो को देखा बहू को नही। पूर्व जन्म मे भी इनकी यही गति थी। सरकार का प्रादुर्भाव जगदम्बा के साथ हुआ था। पर उन्होने सरकार को ही देखा। सरकार ने कहा भी : आदि सक्ति जेहि जग उपजाया। सोउ अवतरिहि मोरि यह माया। फिर भी कुछ नही। सरकार के देखने पर इनकी वृत्ति दूसरी ओर जाती ही नही। जगदम्बा की ओर से वन्दना भी नही हुई। दोनो बेटो को प्रणाम करते हुए देखकर पिता ने आशीर्वाद दिया। इन्द्रलोक जाने पर भी देवताओ तथा महर्षियो का साथ होने पर भी चक्रवर्तीजी का वात्सल्य भाव ज्यो का त्यो बना हुआ है।

तात सकल तव पुन्य प्रभाऊ। जीत्यो अजय निसाचर राऊ ॥
सुनि सुत बचन प्रीति अति बाढी। नयन सलिल रोमावलि ठाढी ॥२॥

अर्थ : हे तात ! यह सब आपके पुण्य का प्रभाव है जो मैंने अजेय निशाचरराज को जीता। बेटे का वचन सुन करके अत्यन्त प्रीति बढी। आँखो मे आँसू भर आये। रोगटे खडे हो गये।

व्याख्या : पिता के पुण्य से पुत्र की अभिवृद्धि होती है। इसी भाव को मन मे रखकर सरकार कहते हैं कि आपके पुण्य के प्रभाव से मेरे लिए असम्भव सम्भव हो गया। निशाचरराज अजेय था। सिर काटने पर उसे नये सिर निकल आते थे। उसे मैंने मारा। उसमे मेरा पुरुषार्थ नही। आपके पुण्य का प्रभाव ही ऐसा है। यथा ' सखि सब करव पुरारि पुन्य पयोनिधि भूप दोउ।

चक्रवर्तीजी को अत्यन्त प्रीति तो थी ही बेटे का वचन सुनकर वह और बढ गयी। सात्त्विक भाव हुआ। मेरे बेटे ने रावण को मारा। उसे अपना पराक्रम न मानकर मेरे पुण्य का प्रभाव मान रहा है। कैसी पितृभक्ति है। राउ सुनाइ दीन्ह बनबासू। सुनि मन भयउ न हरष हरासू चक्रवर्तीजी वात्सल्य मे लीन है।

रघुपति प्रथम प्रेम अनुमाना। चितै पितहि दीन्हेउ दृढ ग्याना ॥
तातें उमा मोच्छ नहि पायो। दसरथ भेद भगति मन लायो ॥३॥

अर्थ : रामजी ने पहिले के प्रेम का अनुमान करके देखने के द्वारा पिताजी को दृढ ज्ञान दिया। हे उमा ! दशरथजी ने भेद भक्ति मे मन लगाया था। इसलिए मोक्ष नही पाया।

व्याख्या : सरकार ने अनुमान किया कि इन्हे पूर्व जन्म का प्रेम बना हुआ है। मुझे ये अब भी पुत्र ही मान रहे हैं। यद्यपि ये : धर्म धुरधर नृप ऋषि ज्ञानी हैं। पर वरदान के प्रभाव से वह ज्ञान आवृत हो जाता है। यथा सुत विवेक तव पद रति होऊ। मोहि बड मूढ कहौ किन कोऊ। अत: पश्यन्ती द्वारा पिता को दृढ ज्ञान

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दिया जिसके आवृत होने की सम्भावना नही। वाणी की चार अवस्थायें हैं। परा पश्यन्ती मध्यमा और वैखरी। पश्यन्ती नाम ही इसलिए पडा है कि देखने के द्वारा अपना हृद्‌गतभाव पूरा का पूरा दूसरे को अवगत कराया जा सकता है। पुत्र द्वारा पिता को उपदेश मिलने मे शोभा नही। इससे वैखरी मे उपदेश नही दिया।

शिवजी शङ्का उठने का अवसर जानकर उमा से कहते हैं कि उमा। चक्रवर्तीजी को मोक्ष नही मिला। क्योकि उन्होने भेद भक्ति मे मन लगाया था। भेदाभेद की दृष्टि से भक्ति के दो भेद हैं। एक अभेदभक्ति और दूसरी भेदभक्ति। जिन्हे तत्त्वज्ञान नही हुआ और शास्त्र से जानकर अहं ब्रह्मास्मि ऐसी उपासना करते हैं उनकी उपासना अभेदभक्ति है। वह फलकाल मे तत्त्वज्ञान मे परिणत हो जाती है और जो भेद मानकर सम्बन्धविशेष की कल्पना करके उपासना करते हैं उनकी उपासना भेदभक्ति कहलाती है। उन्हे मोक्ष नही मिलता। उन्हे धाम मिलता है।

सगुनोपासक मोच्छ न लेही। तिन्ह कहुँ रामभगति निज देही॥
बार बार करि प्रभुहि प्रनामा। दसरथ हरषि गए सुरधामा॥४॥

अर्थ : सगुण उपासना करनेवाले मोक्ष नही लेते। उन्हे रामजी अपनी भक्ति देते हैं। बार बार सरकार को प्रणाम करके दशरथजी हर्षित होकर सुरधाम गये।

व्याख्या . ब्रह्म के सगुण और निगुण दो रूप हैं। दोनो रूपो के पृथक् पृथक् भजन करनेवाले हैं। फलकाल मे दोनो के सामने मुक्ति उपस्थित होती है। निर्गुणोपासक को मुमुक्षा होती है। अत वे मुक्त हो जाते हैं। पर सगुणोपासक को मुमुक्षा नही होती। वे मुक्ति को स्वीकार नही करते तथापि मुक्ति बलपूर्वक आती है। यथा ' राम भजत सोइ मुक्ति गोसाईं। अन इच्छित आवै बरिआईं। सगुणोपासक फिर भी मुक्ति का निरादर करते हैं। उन्हे भक्ति ही अच्छी लगती है। यथा : अस बिचारि हरि भगत सयाने। मुक्ति निरादर भगति लोभाने। तब रामजी उन्हे सिद्धा भक्ति प्रदान करते हैं। दृढ ज्ञान हो जाने से दशरथजी के यहाँ भी मुक्ति उपस्थित हुई। पर उन्होने स्वीकार नही किया। वे सयाने भक्त थे। तब रामजी ने उन्हे सिद्धाभक्ति दी।

दृढ ज्ञान न मिला होता तो दशरथजी को जाने मे बडा कष्ट होता। अब जाने के समय रामजी प्रणाम नही करते। क्योकि दृढ ज्ञान होने से सामर्थ्य हट गया है। ऐश्वर्य का ज्ञान हो गया है। अब बेटा की दृष्टि नही है। प्रभु की दृष्टि है। इसलिए दशरथजी ही बार बार प्रणाम करते हैं। सिद्धाभक्ति की प्राप्ति से हर्षित होकर जहाँ से आये थे वही चले गये। प्रभु ने स्वय कहा है : एहि बिचारि पंडित मोहि भजही। पायेहुँ ज्ञान भगति नहि तजही। ऐसी भक्ति अद्वैत से भी सुन्दर है।

दो. अनुज जानकी सहित प्रभु, कुसल कोसलाधीस।
सोभा देखि हरषि मन, अस्तुति कर सुर ईस॥११२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : छोटे भाई तथा जानकी के सहित कोशलाधीश को कुशल देखकर तथा उनकी शोभा देखकर देवराज मन में आनन्दित होकर स्तुति करने लगे।

व्याख्या : रावण का सामना पड़ने पर कुशल रहना असाध्य व्यापार है। उसी कुशल के लिए रथ भेजा था। अब अनुज जानकी सहित सरकार को कुशल देखकर छवि देखते हैं। बारात के समय में छवि देखकर कृतकृत्य हुए हैं। यथा : रामहि चितव सुरेस सुजाना। गौतम स्राप परम हित माना। इस समय युगल मूर्ति की छवि देखकर अत्यन्त हर्षित होकर स्तुति करते हैं। सोभा देखि : कर्मणा। हरषि मन : मनसा। अस्तुति कर : वाचा हर्ष है।

छं.[1] जय राम सोभा धाम। दायक प्रनत बिस्राम ॥
धृत त्रोनबर सर चाप। भुज दंड प्रबल प्रताप ॥१॥
जय दूषनारि खरारि। मर्दन निसाचर धारि ॥
यह दुष्ट मारेउ नाथ। भए देव सकल सनाथ ॥२॥

अर्थ : शोभा के धाम प्रणत को विश्राम देनेवाले रामजी की जय हो। तरकस और श्रेष्ठ धनुष और बाण धारण करनेवाले, प्रबल भुजदण्ड और प्रतापवाले हो। हे खर और दूषण के शत्रु और राक्षसी सेना के मर्दन करनेवाले! तुम्हारी जय हो। हे नाथ! आपने इस दुष्ट को मारा तो सब देवता सनाथ हो गये।

व्याख्या : देवराज को छवि देखने से बड़ा हर्ष हुआ। अतः पहिले उसी का वर्णन करते हुए जयकार करते हैं। जो सरकार को देखता है उसके मन में उनके शोभा धाम होने की भावना उठती है। देवराज भी शोभाधाम कहते हैं और राक्षसी सूर्पणखा भी : सोभा धाम राम अस नामा कहती है। सरकार एक बार भी प्रणाम करनेवाले को अपना लेते हैं। यथा : सकृत प्रणाम किये अपनाये। विभीषण के एक प्रणाम पर ही प्रसन्न होकर लंका का राज्य दे दिया। इसलिए कहते हैं कि प्रणत को विश्राम देनेवाले की जय हो।

जय राम सोभा धाम : से रूप कहा। दायक प्रनत बिस्राम : से गुण कहा। अब शौर्य कहते हैं कि युद्ध के लिए सदा सन्नद्ध रहते हैं। शर चाप तूणीर सहित ही आपका ध्यान भक्त लोग करते हैं। अब वीर्य कहते हैं कि भुजदण्ड का प्रताप बड़ा प्रबल है। तीनों लोक मे ध्वनि हो रही है : जय रघुबीर प्रबल भुजदंडा।

सरकार का व्यक्ति विशेष से कोई वैर नहीं है। उनको कठोरता और दूषण से वैर है। यहाँ खर और दूषण शब्द में श्लेष है। खर और दूषण नाम के राक्षस को मारा। इसलिए दूषणारि खरारि हैं अथवा खरः : कठोरता और दोष को नाश करनेवाले हैं। इसलिए दूषणारि खरारि कहा। अथवा खर और दूषण से देवता भयभीत रहते थे। उनके वध से सुख की प्राप्ति हुई। इसलिए दूषणारि खरारि कहा।

१. यह तोमर छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ये माता पिता और देवता के न माननेवाले, साधुओं से सेवा करानेवाले निसिचर है। उनकी सेना का आपने मर्दन कर दिया। भाव यह कि उनका जोर टूट गया। अब रावण की ओर इङ्गित करके कहते हैं कि इस दुष्ट को जो आपने मारा इससे तो सब देवता सनाथ हो गये। भाव यह कि इसके मारे देवता अनाथ हो रहे थे। इसके ऊपर ब्रह्मदेव की भी कुछ चलती नही थी। यथा : ब्रह्मा सब जाना मन अनुमाना मोर कछू न बसाई। सो इसके मारे जाने से देवता लोगो ने समझ लिया कि हमारे ऊपर भी एक नाथ है जिसने हमारे भय को दूर किया।

छं. जय हरन धरनी भार। महिमा उदार अपार॥
जय रावनारि कृपाल। किए जातुधान बिहाल॥३॥
लंकेस अति बल गर्व। किए बस्य सुर गंधर्व॥
मुनि सिद्ध खग नर नाग। हठि पंथ सबके लाग॥४॥

अर्थ : पृथिवी के भार के हरण करनेवाले तथा उदार और अपार महिमावाले की जय हो। हे रावण के शत्रु, हे कृपालु, आपकी जय हो। आपने राक्षसो को बेहाल कर दिया। रावण को अत्यन्त बल का अभिमान था। उसने देवता और गन्धर्व सबको वश कर रक्खा था। मुनि सिद्ध मनुष्य पक्षी और नाग सबके पीछे हठ करके पडा था।

व्याख्या : रावण की दुष्टता को ही स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि इसके कारण अतिशय धर्म की हानि हुई। पाप के बोझ से पृथिवी दब चली। व्याकुल होकर वह देवता मुनियो के यहाँ गयी। उनका भी किया कुछ न हुआ। तब सब मिलकर ब्रह्मा के पास गये। शिवजी भी उस समाज मे रहे। पर किसी का कुछ वश न चला। तब सबो ने आपको पुकारा। आपने पृथिवी का भार हरण किया। आपकी जय हो। आपकी महिमा ऐसी उदार अपार है कि किसी व्यक्ति को किसी काल मे उसका थाह न मिला। यथा : अस रघुपति महिमा अवगाहा। तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा। यह आपकी बडी कृपा हुई कि आपने जगत् के रुलानेवाले रावण का बध किया। इसके कारण ससार बेहाल था। राक्षस सब सुखी थे। जैसा चाहते थे अत्याचार करते थे। जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहिं बेद प्रतिकूला। सो कृपाल आपने ऐसी कृपा की कि संसार सुखी हो गया और निसाचर गण बेहाल हो गये। उनका कोई रक्षक न रह गया।

लङ्केश को अपने बल का बडा गर्व था। विभीषण से कहने लगा : कहति न सठ अस को जग माही। भुज बल जाहि जिता मैं नाही। अङ्गदजी से कहने लगा : हरगिरि मथन निरखि मम बाहू। पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू। देवता गन्धर्वादि सबको वश कर रक्खा था। बेद पढ़ैं बिधि सभु सभीत पुजावन रावन सो नित आवैं। दानव देव दयावने दीन दुखी दिन दूरिहि ते सिर नावैं। मुनि सिद्ध खग नाग सभी उससे अपनी रक्षा चाहते थे। पर वह सबके पीछे पडा रहता था। यथा : किन्नर सिद्ध मनुज सुर नागा। हठि सबही के पथहि लागा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



छं. पर द्रोह रत अति दुष्ट। पायो सो फलु पापिष्ट ॥
अब सुनहु दीन दयाल। राजीव नयन बिसाल ॥५॥
मोहि रहा अति अभिमान। नहि कोउ मोहि समान ॥
अब देखि प्रभु पद कंज। गत मान प्रद दुख पुंज ॥६॥

अर्थ : वह परद्रोह में लगा रहनेवाला बड़ा दुष्ट था। उस पापी ने उसका फल पाया। हे दीनदयाल ! हे विशाल राजीवनयन ! मुझे बड़ा अभिमान था कि मेरे समान कोई नही है। सो सरकार के चरणकमलों के दर्शन से वह दु:ख समूह का देनेवाला मान चला गया।

व्याख्या : यह रावण ऐसा दुष्ट था कि इसकी स्त्रियों ने उसके लिए रोते समय कहा : आजन्मते परद्रोहरत पापौघमय तव तनुअयं। उसका फल इस पापी ने पाया कि उसके कुल में कोई उसके लिए रोनेवाला न रह गया। यथा : रामबिमुख अस हाल तुम्हारा। रहा न कुल कोउ रोवनहारा। सरकार दीनदयाल हैं। मैं अब दीन हूँ। अतः कहता हूँ। यथा : जब लगि मैं न दीन दयाल तें मैं न दास तैं स्वामी। तब लगि सब दुख सह्यौं कह्यौ नहिं जद्यपि अन्तरयामी। ससार मे दो बडे अभिमानी थे : एक मै दूसरा रावण। रावण को अपने बल का बड़ा गर्व था और मुझे शतक्रतु होने का गर्व था। ससार मे मुझे छोड़कर दूसरा कोई शतक्रतु नही है। मेरा अमरावती मे निवास है। मुझे देवताओं की सेना है। वज्र आयुध है। इत्यादि।

अब सरकार के दर्शन से वह महादुखद अभिमान चला गया। निज स्वरूप की प्राप्ति हुई। यथा : मम दर्सन फल परम अनूपा। जोव पाव निज सहज सरूपा।

छं. कोउ ब्रह्म निर्गुन ध्याव। अव्यक्त जेहि स्रुति गाव ॥
मोहि भाव कोसल भूप। श्रीराम सगुन सरूप ॥७॥
बैदेहि अनुज समेत। मम हृदय करहु निकेत ॥
मोहि जानिये निज दास। दे भक्ति रमानिवास ॥८॥

अर्थ : कोई निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करता है। जिसे वेद अव्यक्त कहकर गान करता है। पर मुझे तो कोशलेन्द्र श्रीराम का सगुण रूप अच्छा लगता है। वैदेही और लक्ष्मण सहित मेरे हृदय मे रहिये। मुझे निजदास करके जानिये। हे रमानिवास भक्ति दीजिये।

व्याख्या : चित्त का आश्रय ब्रह्म है। वह स्वभाव से ही दो प्रकार का है। मूर्त और अमूर्त। अथवा अपर और पर। यथा : आश्रयश्चेतसो ब्रह्म द्विधा तच्च स्वभावतः। भूप मूर्तममूर्तंञ्च परञ्चापरमेव च : वि. ७४७। अर्थात् निर्गुण ब्रह्म पर रूप है और सगुण ब्रह्म अपर रूप है। इन्द्र भगवान् कहते हैं कि कोई निर्गुण ब्रह्म

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



देहवालों को अव्यक्त विषयक गति दुःखपूर्वक होती है। क्लेशोऽधिकतरस्तेषाम-व्यक्तासक्तचेतसाम्। अव्यक्ता हि गतिर्दुःखं देहवद्भिरवाप्यते। गीता। इसलिए बहुत कम लोग निर्गुण ब्रह्म का ध्यान करते हैं। भावार्थ यह कि इन्द्र भी निर्गुण ब्रह्म का ध्यान नहीं करते। क्योंकि अव्यक्त रूप वेदमात्र से ही जाना जाता है : तं त्वौपनिषदं पुरुषं पृच्छामि। वे कहते हैं कि मुझे तो कोसलभूप श्रीराम का सगुण स्वरूप ही अच्छा लगता है : यस्यावताररूपाणि समर्चन्ति दिवौकसः। अपश्यन्तः परं रूपं नमस्तस्मै महात्मने। विष्णु पुराणे। जिसके अवतार रूपों का देवता पूजा करते हैं क्योंकि उनके रूप को नहीं देख सकते। उस महात्मा को नमस्कार है। श्रीराम कहने से परशुराम और बलराम का व्यावर्तन किया। इन्द्र को अवतारों में भी श्रीरामावतार का स्वरूप प्रिय है। प्रार्थना करते हैं कि वैदेही और लक्ष्मण सहित मेरे हृदय को घर बनाइये। मुझे निज दास जानिये। क्योंकि आपको निज दास अत्यन्त ही प्रिय हैं। यथा : तेहि ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा। अन्त में भक्ति प्राप्ति के लिए प्रार्थना करते हैं।

छं.[१] दे भक्ति रमानिवास त्रासहरन सरन सुख दायकं।
सुखधाम राम नमामि काम अनेक छवि रघुनायकं॥
सुरबृंद रंजन द्वंद भंजन मनुजतनु अतुलित बलं।
ब्रह्मादि संकरसेव्य राम नमामि करुना कोमलं॥

अर्थ : हे रमा निवास! भक्ति दीजिये। आप त्रास के हरण करनेवाले शरण में आये हुए को सुख देनेवाले हैं। सुखधाम हैं। आप में अनेकों काम की छवि है। ऐसे राम रघुनायक को मैं नमस्कार करता हूँ। आप सुर गण को सुख देनेवाले द्वन्द के नाश करनेवाले और मनुष्य शरीर में भी अतुलित बलवाले हैं। ब्रह्मा और शंकर से सेव्य हैं और करुणा से कोमल हैं। ऐसे राम को मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : जाकी कृपा कटाक्ष सुर चाहत चितव न सोइ। राम पदारबिंदति करति सुभावहि खोइ। अतः रमा निवास कहकर महा ऐश्वर्य कहा। भजनीय के गुण कहते हैं कि आप त्रासहरण हैं। आर्तजनों के आश्रय हैं। शरणागत को सुख देनेवाले हैं। आपने आर्त बिभीषण का त्रास भी हरण किया और उसे लंकापति बना दिया। सुख के धाम तो आप ही हैं। आपके ही सुख के लेश से संसार सुखी होता है। आपका सौन्दर्य ऐसा है कि जिसके सामने कोटि काम का भी सौन्दर्य फीका है। आप देवताओं की विपत्ति टारनेवाले हैं। आप द्वन्द्व के नाश करनेवाले हैं। द्वन्द ही बड़ी भारी विपत्ति है। मैं स्वयं मान के नाश का सुख अनुभव कर रहा हूँ। शरीर मनुष्य का धारण किये हुए हैं और बल का तौल नहीं। आपकी करुणा ऐसी कोमल है कि सर्वशक्तिमान् होने पर भी अपने भक्तों के लिए मनुष्य शरीर धारण किया।

१. हरिगीतिका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


आप शंकर और ब्रह्मा से भी सेवित हैं। मैं आपको नमस्कार करता हूँ। भाव यह है कि शरण्य मे जो गुण ईप्सित हैं सरकार मे वे सब पूर्ण उत्कर्ष रूप से हैं।

दो. अब करि कृपा बिलोकि मोहि आएसु देहु कृपाल।
काह करौं सुनि प्रिय बचन बोले दीन दयाल ॥११३॥

अर्थ : हे कृपालु ! अब कृपा करके मुझे देखकर आज्ञा दीजिये कि मैं क्या करूँ ? इस प्रिय वचन को सुनकर दीनदयाल बोले।

व्याख्या : इन्द्रजी ने अपनी स्तुति मे कहा : अब सुनहु दीनदयाल। सो दीन दयाल ने इन्द्र को दीन देखकर दया की। अर्थात् उनके प्रार्थनानुसार उनकी ओर कृपा दृष्टि से देखा और उनकी सेवा की स्वीकृति के रूप से उन्हे आज्ञा दे रहे हैं। क्योकि : आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा।

यह गुणग्राम ज्येष्ठा नक्षत्र है। इसमे तीन तारे चमकते हैं। आकार कुण्डल सा है। इस स्तुति मे १. प्रभु का हृदय मे निवास माँगना २. भक्ति माँगना ३ आज्ञा माँगना। ये ही तीन तारे हैं। राम शोभाधाम से स्तुति प्रारम्भ करके राम नमामि से उपसहार करने से कुण्डलाकार कहा। आदि अन्त के मिलने से वर्तुल रूप हो जाता है। इसमे अपने मान का नाश कहा। यथा : गत मान प्रद दुख पुज। इससे : हरन मोह तम दिनकर कर से। यह फलस्तुति सार्थक हुई।

सुनु सुरपति कपि भालु हमारे। परे भूमि निसिचरन्ह जे मारे॥
मम हित लागि तजे इन्ह प्राना। सकल जिआउ सुरेस सुजाना॥१॥

अर्थ : हे देवराज सुनो। हमारे बन्दर और भालु जिन्हे राक्षसो ने मार डाला है भूमि पर पडे हुए हैं। मेरे हित के लिए इन्होने प्राण त्याग किया है। हे सुरेश सुजान इन सबको जिलाओ।

व्याख्या . सुरपति सम्बोधन का भाव यह कि आप अमरो के राजा हैं। अमृत पर अधिकार है। आपके योग्य कार्य दिया जाता है। सग्राम मे राक्षसो के मारे हुए हमारे बन्दर भालु खेत आये हैं : राम कहँ जेहि आपनो तेहि भजु तुलसीदास। हम सम पुन्य पुज जग थोरे। जिन्हहि रामु जानत करि मोरे। इत्यादि उक्तियो से उन महा भाग्यवानो की महा महिमा कहा है। जिन्हे रामजी अपना समझते हैं। ऐसे भाग्यवान् वे वानर भालु हैं जो सग्राम मे काम आये हैं।

मदीय होने का कारण कहते हैं कि इन्होंने मेरे लिए प्राण परित्याग किया। पत्र, पुष्प, फल, तोय अर्पण करनेवाले तो बहुत हैं। पर प्राण अर्पण करनेवाले तो ये बन्दर भालु हैं। इन्हे मेरा हित प्रिय था। अपना प्राण प्रिय नही था।

अतः इन्हे प्राण प्रसाद रूप से मिलना चाहिए। आप सुरेश हैं : इन्हे जिलाने मे समर्थ हैं और सुजान हैं। समझ सकते हैं कि अपने आश्रितो की रक्षा मेरा परम कर्तव्य है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुनु खगेस प्रभु कै यह बानी । अति अगाध जानहि मुनि ग्यानी ॥
प्रभु सक त्रिभुवन मारि जियाई । केवल सक्रहि दीन्हि बडाई ॥२॥

अर्थ हे गरुडजी ! प्रभु की यह वाणी अत्यन्त अगाध है। इस ज्ञानी मुनि जानते है। प्रभु तीनो भुवन को मारकर जिला सकते हैं। उन्होने केवल इन्द्र को बडाई दी।

व्याख्या भुसुण्डिजी गरुड से कहते हैं कि प्रभु होकर एसी वाणी बोलत हैं मानो उन्हे मारने जिलाने की शक्ति ही नही है। अत इन्द्र से वरदान मांगकर बन्दर भालुओ को जिलाकर बन्दर भालुओ के ऋण से उऋण होना चाहत हैं। परन्तु इसका बडा गहरा अर्थ है। जिसे ज्ञानी मुनि ही समझ सकते हैं। जितना प्रसङ्ग से जाना जाता है। उतना लिखा जा रहा है। सरकार अपने मारने जिलाने की शक्ति को जनाना नही चाहते। जिसम बन्दर भालुओ का यश फीका न पडने पावे। रावण वध से इन्द्र कृतज्ञ हैं। अत उनसे बन्दर भालुओ के जिलाने का कार्य लकर उन्हे ऋणी होने के सकोच से मुक्त करना चहते हैं। इन्द्र की महिमा बढाना चाहते हैं। बन्दर और रीछ दवताओ के अश थे। अत उनका उपकार दवराज के हाथ से कराना चाहते हैं। ज्ञानी मुनि ही समझ सकते हैं यथा अनेक भेष धरि नृत्य करै नट कोइ। सोइ सोइ भाव दिखावै आपुन होइ न सोइ। यह भी सरकार का अभिनय है। सरकार तीनो भुवन को मार सकते हैं और फिर उसे जिला सकते हैं। इसमे उन्हे काई आयास नही है। बन्दर भालुओ को जिलाना उनके लिए कौन सी बडी बात थी ? सरकार की इच्छा केवल इन्द्र को बडाई देने की थी।

सुधा बरषि कपि भालु जिआए। हरषि उठे सब प्रभु पहि आए ॥
सुधा बृष्टि भै दुहु दल ऊपर । जिए भालु कपि नहि रजनीचर ॥३॥

अथ अमृत की वर्षा करके बन्दर भालुओ को जिला दिया। सब हर्षित होकर उठे और प्रभु के पास आये। अमृत की वर्षा तो दोनो दलो पर हुई पर बन्दर भालु ही जीये। राक्षस नही जीये।

व्याख्या इन्द्र ने अमृत की वर्षा कर दी और बन्दर भालु जी उठे पूर स्वस्थ होकर। जैसे कोई सोकर उठता हो। सब बडे प्रसन्न होकर प्रभु के पास आगये। जितनी बडी वानरी सेना आया थी फिर उतनी ही बडी हो गयी। एक बन्दर या भालु कम न हुए। पूरे समराङ्गन मे अमृत की वर्षा हुई। क्योकि जहाँ राक्षस गिरे थे वही बन्दर भालु भी गिरे थे। परन्तु अमृत की शक्ति ने बन्दर भालुओ पर काम किया राक्षसो पर नही काम किया। अत बन्दर भालु जी उठे। राक्षस मरे ही पडे रह गये।

रामाकार भए तिन्हके मन । मुक्त भए छूटे भव बधन ॥
सुर असिक सब कपि अरु रीछा । जिए सकल रघुपति की ईछा ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ उनके मन रामाकार हो गये थे। वे रण मे शरीर त्यागकर मुक्त हो गये। उनका भव बन्धन छूट गया। बन्दर भालु देवताओ के अश थे। वे रामजी की इच्छा से जी गये।

व्याख्या राक्षस सरकार को वैर भाव से स्मरण करते थे। इस भाँति उनका मन रामाकार हो गया था। तिस पर सग्राम मे वे शस्त्रपूत हाकर मरे थे। अत वे ब्रह्मपद को प्राप्त हो गये थे। अब वे लौट नही सकते। अत नही जी सके।

बन्दर भालु भी प्रेम से स्मरण करनेवाले थे। उनके मन भी रामाकार थे। उन्होने भी रण मे शरीर छोडा था। पर वे ब्रह्मपद को नही प्राप्त हुए। क्योकि देवाश थे। यावदधिकार अधिकारी की मुक्ति नही होती। तिसपर सरकार की इच्छा थी कि मेरे सैनिक एक भी कम न होने पावें। इसलिए जी उठे। भाव यह कि जिलाने मारने मे अमृत या विप समर्थ नही है। भगवदिच्छा से अमृत भी विप हो जाता है और विप भी अमृत हो जाता है।

राम सरिस को दीन हितकारी। कीन्हे मुकुत निसाचर झारी ॥
खल मलधाम कामरत रावन। गति पाई जो मुनिवर पावन ॥५॥

अर्थ रामजी के समान दीनहितकारी कौन होगा जिसने समस्त निशाचरो को मुक्त कर दिया। यह रावण खल मलधाम और कामरत था। सो उसने ऐसी गति पायी जिसे मुनि नही पाते अथवा जिसे पवित्र मुनि पाते।

व्याख्या उमा राम सम हित जग माही। गुरु पितु मातु बधु प्रभु नाही। सरकार सबके हित हैं और विशेष करके दीनहित हैं। जितने राक्षस युद्ध मे मारे गये सभी को सरकार ने मुक्ति दी। उमा राम मृदुचित करुनाकर। वैर भाव सुमिरत मोहि निसिचर। देहि परम भगति सो जिय जानी। अस कृपालु को कहहु भवानी।

तिनमे रावण तो सबसे बढकर था। खल होने से कमकाण्ड से विमुख था। मलधाम होनेसे ज्ञान काण्ड से विमुख था। कामरत होने से उपासना काण्ड से विमुख था। इसके सन्तरण का कोई उपाय ही नही था। उसे सरकार ने ऐसी गति दी जो श्रेष्ठ मुनियो को दुर्लभ है। यथा तासु तेज समान प्रभु आनन। हरपे देखि सभु चतुरानन।

दो सुमन बरखि सब सुर चले, चढि चढि रुचिर बिमान।
देखि सुअवसर राम पहिं, आए सभु सुजान ॥

अर्थ फूलो की वर्षा करके सब देवता लोग सुन्दर सुन्दर विमानो पर चढकर चले। तब सुजान शिवजी सुअवसर देखकर रामजी के पास आये।

व्याख्या आए देव सदा स्वारथी कहकर कवि ने यह दिखलाया था कि देवता लोग आकाश से उतरकर पृथिवी पर सरकार के पास आये। स्तुति की। फूलो की वर्षा की। अब फिर अपने अपने सुन्दर सुन्दर विमाना पर चढकर जाने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लगे। तब सुजान शिवजी सुअवसर देखकर आये। सीताहरण के समय कुअवसर जानकर, सन्निकट पहुँच जानेपर भी भेंट नही की। रावण ने मनुष्य के हाथ से अपना मरण माँगा था। शिवजी के जाने से सरकार ने गुप्तरूपसे अवतीर्ण होने का भेद खुल जाता। अत भेंट करने का वह उपयुक्त समय नही था। अब रावणवध हो चुका। ब्रह्मादि देवता प्रत्यक्ष करके स्तुति कर रहे हैं। अत. अब गोपन का कारण न रह गया और परमानन्द का अवसर प्राप्त है। अत सुजान शम्भु सुअवसर देखकर आये।

दो परम प्रीति कर जोरि जुग, नलिन नयन भरि बारि।
पुलकित तन गदगद गिरा, बिनय करत त्रिपुरारि ॥११४॥

अर्थ बडी भारी प्रीति से दोना हाथ जोडकर और कमल से आँखो मे आँसू भरकर पुलकित शरीर और गद्गद कण्ठ से त्रिपुरारि स्तुति करते हैं।

व्याख्या परम प्रीति द्वारा मन से, कर जोरि जुग नलिननयन भरि बारि पुलकित तन द्वारा तन से तथा गदगद गिरा बिनय करत द्वारा वचन से प्रेम कवि ने वर्णन किया। त्रिपुर को जिस देवाधिदेव महादेव ने वध किया वे स्तुति कर रहे हैं।

मामभिरक्षय रघुकुल नायक। धृत बर चाप रुचिर कर सायक ॥
मोह महा घन पटल प्रभजन। सम्य बिपिन अनल सुर रजन ॥१॥

अर्थ हे रघुकुलनायक! हाथ मे श्रेष्ठ धनुप और सुन्दर बाण धारण किये महामोह रूपी घन समूह के लिए वायुरूप, सशयरूपी वन के लिए अग्निरूप मेरी रक्षा कीजिये।

व्याख्या रघुकुलनायक कहने का भाव यह कि रघुकुल मे माँगनेवाले को नही नही करते और आप उस कुल के नायक हैं। जो माँगता हूँ उसे दीजिये। आपने रावण वध करके देवताओ की रक्षा की। पर मेरे लिए मोहरूपी रावण है। उससे मेरी रक्षा कीजिये। यथा मोहदसमौलि बिनय०। यदि कहिये कि अभी युद्ध करके श्रान्त है। इस पर कहते है कि युद्ध के लिए सनद्ध तो हैं। सुन्दर धनुप बाण धारण किये हुए हैं। दशानन को एक सिर और दो बाहु थे। पर प्रभाव विस्तार के समय दस सिर और बीस भुजा हो जाते थे। इसी भाँति प्रभाव विस्तार के समय मोह को भी सशयादि अनेक सिर भुज हो जाते है। महामोह महाघन पटल है। ज्ञान रवि को ढकने म समर्थ है। घनपटल का नाश वायु द्वारा ही होता है। इसी भाँति महामोहरूपी घन समूह के नाश मे आप ही समर्थ हैं। उभय कोटि अवलम्बी ज्ञान को सशय कहते हैं। सशय बडा दु खदायी है. नाय लोकोस्ति न परो न सुख सशयात्मन। अत सशय को वन कहा। इसमे पडकर पथिक पथभ्रष्ट होकर महा दु ख पाता है। इस सशयरूपी वन के नाश के लिए आप दावानल हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सगुन अगुन गुन मंदिर सुंदर। भ्रम तम प्रबल प्रताप दिवाकर ॥
काम क्रोध मद गज पंचानन। बसहु निरंतर जन मन कानन ॥२॥

अर्थ : सगुण, निर्गुण, गुणों के घर, सुन्दर, भ्रमरूपी अन्धकार के लिए प्रबल प्रतापवाले सूर्य, काम, क्रोध, मदरूपी हाथियों के लिए सिंह रूप, सदा भक्तों के मन रूपी वन में निवास कीजिये।

व्याख्या : आप सगुण ब्रह्म होते हुए भी निर्गुण हैं। सुन्दर अर्थात् कल्याण विधायक गुणों के घर हैं। सगुण ब्रह्म में तीनों गुणो का समावेश है। परन्तु शुद्ध सत्त्व गुण का आश्रय होने से सरकार सम्पूर्ण कल्याण गुणगण के मन्दिर हैं। भ्रम ज्ञानका आवरक है। इसलिए उसकी उपमा तम से दिया गया। उसके लिए आप प्रबल प्रतापवाले सूर्य हैं। प्रबल प्रताप दिवाकर कहने का भाव यह है कि वहाँ भ्रम के लेश का भी ठहरना असम्भव है। भक्तो का मन वन है। इसमे काम क्रोध और मदरूपी हाथी रहते हैं। इस वन मे आप सिंहरूप से सदा वसिये। भाव यह कि जिस वन में सिंह बसता है उसे हाथी छोड़ देते हैं। काम क्रोधादि दोष हाथीरूप हैं। क्योंकि बड़े बलवान् हैं। ये भक्तों के हृदय को दूषित कर देते हैं। इनके लिए आप सिंह है। आपके निरन्तर निवास से भक्त काम क्रोधादि से सदा के लिए निर्भय हो जाता है।

विषय मनोरथ पुंज कंज वन। प्रबल तुषार उदार पारमन ॥
भव बारिधि मंदर परमं दर। बारय तारय संसृति दुस्तर ॥३॥

अर्थ : विषय मनोरथ समूह कमल का वन है। हे मन से परे! उसके लिए आप उदार तुषार : पाला हैं। हे संसार समुद्र मन्थन के लिए मन्दररूप! बड़े भारी भय को निवारण कीजिये और अपार संसार से पार कीजिये।

व्याख्या : विषय के मनोरथ देखने में बड़े रमणीय हैं। इसलिए उसे कमल वन कहा। आप मन से परे हैं। आप तक मनोरथ की गन्ध नही। इतना ही नही आप ऐसे उदार हैं कि आपकी कृपा से सम्पूर्ण विषय मनोरथो का ऐसा नाश होता है जैसा पाला पड़ने से सम्पूर्ण कुञ्ज बनो का नाश हो जाता है।

संसार समुद्र है। इसमे अमृत विष सन्त खल आदि मिले जुले हैं। यथा : बंदौं बिधिपद रेनु भव बारिधि जेहि कीन्ह जहँ। संत सुधा ससि धेनु प्रगटे खल विष बारुनी। बिना मन्थन के सार निकल नही सकता। अतः सागर का मन्थन किया गया। सागर के मन्थन योग्य मन्थनदण्ड मन्दर पर्वत था। उसी के द्वारा मन्थन करने से अमृत प्रकट हुआ। इसी भाँति संसार सागर का मन्थन करके मुक्तिरूपी अमृत प्रकट करने में सरकार ही समर्थ हैं। जब देवताओ को असुरो से बड़ा भय उत्पन्न हुआ तब समुद्र मन्थन की योजना उठायी गयी। उसी से अन्ततः देवताओं का भय दूर हुआ। अतः संसार सागर के मन्दर रूप भगवान् से प्रार्थना करते हैं कि महाभय को दूर कीजिये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उसीको स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि ससृति सन्निपातका दु ख अत्यन्त दारुण है। उसे कृपा करके नष्ट कीजिये। यथा . ससृति सन्निपात दारुन दुख बिनु हरि कृपा न नासै।

स्याम गात राजीव बिलोचन। दीनबधु प्रनतारति मोचन ॥
अनुज जानकी सहित निरतर। बसहु राम नृप मम उर अतर ॥४॥
मुनि रजन महिमडल मडन। तुलसिदास प्रभु त्रास बिखडन ॥५॥

अर्थ श्याम शरीरवाले, कमल ऐसे नेत्रवाले, दीनबन्धु प्रणत की आर्ति को हरण करनेवाले राजा राम मेरे हृदय मे छोटे भाई और जानकी के सहित सदा बसो। हे तुलसिदास के प्रभु ! आप मुनिगणको सुख देनेवाले हैं और पृथिवी की शोभा हैं तथा भय के दूर करनेवाल हैं।

व्याख्या . श्याम शरीर स्वभाव से ही सुन्दर है। मङ्गलमय है। अति पावन को भी पवित्रता देनेवाला है। इसी भाँति सरकारका राजीव कमल नयन मे कृपा दृष्टि रहती है। यह दृष्टि महा असम्भवको सम्भव करनेवाली है। यथा कृपा दृष्टि कपि भालु बिलोके। भये प्रबलरन रहहि न रोके। आप दोनोके कुअवसर पर सहाय होते हैं। आपके नमस्कार करनेवाले की आर्ति नहीं रह जाती। आपके प्रणाम को महा महिमा है। अब सरकार वन छोडकर राज्य पर जानेवाले हैं। अत कहते है कि हे राजा राम ! आप लक्ष्मण और जानकी सहित मेरे हृदयमे वास कोजिये। भाव यह कि जिस त्रिकोण की प्रार्थना करके देवता रावण के भय से विनिर्मुक्त हुए उसी त्रिकोण को शकर भगवान् हृदय मे बसाने की प्रार्थना करते है। यथा :

हेमाभया द्विभुजया सर्वालकृतया चिता।
श्लिष्ट कमलधारिण्या पुष्ट कोशलजात्मज ॥
दक्षिणे लक्ष्मणेनाथ सधनुष्पाणिना पुन।
हेमाभेनानुजेनैव सदा कोणत्रयं भवेत् ॥
एव त्रिकोणरूप स्यात् त देवा ये समाययु।
स्तुति चक्रुश्च जगत पति कल्पतरौ स्थितम् ॥

अर्थ सुवर्ण के रगवाली, दो भुजावाली, सब आभूषणो से आभूषित, कमल धारण किये हुए चित् शक्तिसे आश्लिष्ट कौसल्याके पुत्र पुष्ट रामजी। उनके दक्षिण म स्वर्ण वर्ण धनुष हाथ मे लिये हुए उनके छोटे भाई लक्ष्मणजी। इस भाँति त्रिकोण हुआ। उसी के देवता शरण मे गये। मुनिरजन महि मण्डल मण्डन। तुलसीदास प्रभु त्रास बिखडन। इस अर्धाली का अन्वय आगे के दोहे के साथ है। रावण वध से मुनि सुखी हुए। उनका त्रास जाता रहा और पृथिवी का बड़ा भारी रोग दूर हो गया। अत महिमण्डल शोभित हो गया। रोगी की सुन्दरता नष्ट हो जाती है। स्वस्थ होने पर फिर लौट आती है। अथवा सरकार पृथिवी के हाररूप हैं। यथा इद्रनील हाटक मुकतामनि जनु पहिरे महि हार। इसलिए महिमण्डल मण्डन हे। इन विशेषणो से सम्बोधन करके कहते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


दो० नाथ जबहि कोसलपुरी, होइहि तिलक तुम्हार।
कृपासिंधु मैं आउब, देखन चरित उदार ॥११५॥

अर्थ : हे नाथ ! जब अयोध्या में आपका राज्याभिषेक होगा तब हे कृपा-सिन्धु मैं उस उदार चरित को देखने आऊँगा।

व्याख्या : आप अखिल लोक के नाथ हैं। मुनिरंजन हैं। महिमण्डल मण्डन हैं। त्रास विखण्डन हैं। आप कृपासिन्धु हैं। इतनी कृपा है कि ऐसे महामहिम होने पर भी अयोध्यामें अपना राज्याभिषेक स्वीकार करेंगे। अखिल लोकाधिपति होकर भी अयोध्याधिपति बनेंगे। इस उदार चरित को देखने की मुझे बड़ी लालसा है। सो उसे देखने के लिए मैं आऊँगा। और देवताओं की स्तुति हो चुकी। वे अभिषेक के समय नहीं आवेंगे। परन्तु शंकर भगवान् उस समय आने की आज्ञा माँगते हैं।

यह शिवजी की स्तुति मूल नक्षत्र है। इसमें दश तारे चमकते हैं। १ महामोह २ संशय ३ भ्रम ४ कामादि ५ विषय मनोरथ ६ भव ७ भय ८ संसृति ९ आर्ति १० त्रास का नाश ही दसों तारों की चमक है। इस स्तुति में फिर आने की पूँछ लगी हुई है। इसलिए यह पुच्छाकार है। सम्पूर्ण स्तुति में सेवक की रक्षा ही कही गयी है। इसलिए इसकी फलस्तुति सेवकसालि पाल जलधर से कही गयी है।

करि बिनती जब संभु सिधाये। तब प्रभु निकट बिभीषनु आये ॥
नाइ चरन सिरु कह मृदु बानी। बिनय सुनहु प्रभु सारँगपानी ॥१॥

अर्थ : विनती करके जब शिवजी चले गये। तब सरकार के पास विभीषणजी आये। चरणोंमें सिर झुकाया और कोमल वाणी बोले कि शार्ङ्गपाणि प्रभु मेरी विनती सुनो।

व्याख्या : शिवजी की स्तुति अन्त में होती है। शिवजी के स्तुति करके चले जाने पर स्पष्ट हो गया कि देवताओं की स्तुति समाप्त हो गयी। तब सरकार के निकट विभीषणजी गये। जब तक देवता स्तुति करते थे तब तक दूर खड़े थे। कुछ कहना है इसलिए प्रणाम किया और कहा कि मेरी विनती सुनिये। शार्ङ्गपाणि सम्बोधन का भाव यह कि अभी तक आप धनुष धारण किये हुए हैं। युद्ध के लिए सन्नद्ध हैं। मेरी विनय सुनिये। अब विश्राम करिये। अथवा शार्ङ्गपाणि से साक्षात् महाविष्णु होना कहा। अपना घर पवित्र करने की प्रार्थना करनेवाले हैं।

सकुल सदल प्रभु रावन मार्‌यो। पावन जसु त्रिभुवन बिस्तार्‌यो ॥
दीन मलीन हीन मति जाती। मो पर कृपा कीन्हि बहु भाँती ॥२॥

अर्थ : कुल और सेना के सहित आपने रावण को मारा और अपने पवित्र यश को तीनों भुवन में फैला दिया। मुझ दीन मलिन बुद्धहीन और जातिहीन पर बहुत प्रकार से कृपा किया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : जो कुछ करना था। सो आप सब कर चुके। रावण को कुल और सेना सहित मार चुके। इस भाँति निसिचर हीन करउँ महि : इस प्रतिज्ञा को पूरी कर चुके। विभीषणजी अपने को रावण के कुल का नही मानते। क्योंकि सदोष हो चुके हैं। विभीषणजी कहते हैं कि आपके इस अद्भुत पराक्रम का पवित्र यश तीनो लोक मे फैल गया। यथा ' जय जय धुनि पूरी ब्रह्मंडा। जय रघुवीर प्रबल भुजदंडा। यह यश पावन है : क्योंकि इसे सुनने से गाने से कहने से और समझने से परमपद की प्राप्ति होती है। विभीषणजी कार्पण्य दिखाते हुए अपने को मन से दीन कर्म से मलिन और बुद्धि तथा जाति से हीन कहते हैं। ऐसे के ऊपर कोई कृपा नही करता। सो सरकार ने मुझ पर बहुत भाँति से कृपा की। मुझे अपना सखा बनाया। मेरे लिये साँगी सहा। भक्ति का वरदान दिया। लंका का राजा बनाया। इस भाँति बहुत प्रकार से कृपा की। अब तो लंका मेरा घर हुआ। रावण का नही रह गया। अब इतनी कृपा और कीजिये कि उसे अपने चरणरज से पवित्र कीजिये और वहाँ राजोपचार के साथ स्नान कीजिये। जिसमे लड़ाई की थकावट मिट जाय। विभीषणजी को वह समय याद है जब कि सरकार ने विशेष रूप से श्रान्त होकर उनकी ओर देखा था।

अब जन गृह पुनीत प्रभु कीजे। मज्जन करिअ समर स्रम छीजे ॥
देखि कोस मंदिर संपदा। देहु कृपाल कपिन्ह कहुँ मुदा ॥३॥

अर्थ : अब इस दास के घर को सरकार पवित्र करें और समर के श्रमापनोदनार्थ मङ्गल स्नान करें। कोष सम्पदा और घरो को देखकर प्रसन्न होकर बन्दरो को दीजिये।

व्याख्या : लंका मेरा घर तो हुआ। पर उसकी अपवित्रता न गयी। कहुँ महिष मानुष धेनु अज खर खल निसाचर भच्छही। सरकार के चरणो के चले जाने से वह पवित्र हो जायगा। सरकार थके हुए हैं : बिना मङ्गल स्नान के थकावट शीघ्र दूर न होगी और यथार्थ रूप से मङ्गल स्नान तो वहीं पर चलने से होना सम्भव है। वहाँ स्नानगृह आदि सब सामग्री प्रस्तुत है। तीसरी बात यह है कि सरकार ने न अभी कोष का निरीक्षण किया न वहाँ के घरो को ही देखा न वह सम्पदा ही देखी जो रावण ने तीनो लोको से ला-लाकर इकट्ठी कर रक्खी है। अत. उनका निरीक्षण करें और उन्हे वानरी सेना मे वितरण करें। बन्दर लोग घर जायँगें तो लोग पूछेंगे कि लंका विजय मे तुम्हे क्या मिला ? अत. वे खाली हाथ घर न जाँय। यहाँ सम्पदा का कोई घाटा नही।

सब बिधि नाथ मोहि अपनाइअ। पुनि मोहि सहित अवधपुर जाइअ ॥
सुनत बचन मृदु दीन दयाला। सजल भये द्वौ नयन बिसाला ॥४॥

अर्थ . हे नाथ ! मुझे सब प्रकार से अपनाइये और फिर मेरे साथ अयोध्या

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जाइये। कोमल वचन सुनते ही दीन दयाल रामजी की दोनो बडी-बडी आँखो मे जल भर आया।

व्याख्या सरकार ने बहुत प्रकार से अपनाया पर सब भाँति नही अपनाया। जब मेरी सम्पत्ति का उपयोग अपनी सम्पत्ति की भाँति नही किया तब मैं अपने को पूरी तरह से अपनाया हुआ कैसे मानूं। तत्पश्चात् अपने साथ मुझे अयोध्या ले चलिये जिसमे वहाँ भी मेरा सबसे परिचय हो जाय तब सम्बन्ध दृढ होगा।

नाइ चरन सिर कह मृदुबानी से उपक्रम और सुनत वचन मृदु से उपसहार। सरकार दीन दयाल हैं। नेत्रो मे जल भर आया। सरकार विभीषण का सब कहा करते हैं पर यह नही कर सकते। एक इनसे भी बडा प्रेमी दु खी है महादीन हो रहा है। उसके स्मरण से सरकार के नेत्रो मे जल आ गया।

दो. तोर कोस गृह मोर सब सत्य वचन सुनु भ्रात।
भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प समजात॥
तापस वेष गात कृस जपत निरंतर मोहि।
देखौ वेगि सो जतनु करु सखा निहोरौ तोहि॥
बीते अवधि जाउँ जौ जियत न पावौ वीर।
सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु पुनि पुनि पुलक सरीर॥११६॥
करेहु कल्प भर राजु तुम्ह मोहि सुमिरेहु मन माँहि।
पुनि मम धाम पाइहहु जहाँ सत सब जाहि॥

अर्थ : हे भाई! तेरा कोष और घर सब मेरा है। यह बात सच है पर भरत की दशा का स्मरण करके मुझे एक पल कल्प के समान बीत रहा है। तपस्वी का वेष धारण किये हुए और दुर्बल शरीर जो मेरा निरन्तर जप कर रहा है. ऐसे भरत को मैं जल्दी देखूँ ऐसा उपाय करो। मैं तुम्हारा निहोरा करता हूँ। अवधि बीतने पर यदि जाऊँगा तो भाई को जीता न पाऊँगा। भरत की प्रीति को स्मरण कर प्रभु बार बार पुलकायमान हो रहे हैं। तुम पूरे कल्प भर राज्य करना और मुझे मन मे स्मरण करना तत्पश्चात् तुम मेरे धाम को प्राप्त होगे। जहाँ सब सन्त लोग जाते हैं।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि सब प्रकार से अपनाने मे जो त्रुटि है, उसे मैं मिटाये देता हूँ। तुम्हारा घर और सम्पत्ति सब मेरी है। मैंने सब स्वीकार कर लिया। मैं तुम्हे भाई मानता हूँ। मेरा वचन सत्य है। रामो द्विर्नव भाषते। परन्तु तुम्हारे घर जाना मङ्गल स्नान करना नही हो सकता। मुझे भरत को दशा का स्मरण हो रहा है। मुझे समय एकदम नही है। एक पल मेरे लिए कल्प हो रहा है मुझे भाई के दर्शन की प्यास है। भरतजी का दैन्य कहते हैं : भरतजी ने सब भोग त्याग रक्खा है। तपस्वी वेष बनाये विरह व्यथा से दुर्बल मेरा ही स्मरण रात

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

दिन कर रहे हैं। यथा : बैठे देखि कुसासन जटामुकुट कृसगात। राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात। मुझे विश्राम भरत के शीघ्र दर्शन में है और मैं इतना शीघ्र वहाँ पहुँच नही सकता। अतः तुम्हारा निहोरा मुझ पर है : ऐसा उपाय करो कि मैं भरत को शीघ्रातिशीघ्र देख सकूँ।

देर करके पहुँचने में बड़ा भारी अनर्थ है वह भाई मेरा ऐसा है कि अवधि बीतते ही प्राण त्याग करेगा। वीर भाई को भी कहते हैं शूर को भी कहते हैं। वह भाई वीर है उसे शरीर छोड़ने मे भी कुछ आगा पीछा न होगा। यथा : तुलसी बीते अवध प्रथम दिन जौ रघुवीर न ऐहौ। तौ प्रभु चरन सरोज सपथ जीवत परिजनहि न पैहौ। इस भाँति कहते हुए भरत की प्रीति का स्मरण करके सरकार को बार बार पुलक हो रहा है।

अब विभीषण को आज्ञा तथा शिक्षा देते हैं। तुम कल्पान्त तक राज्य करना। अर्थात् जबतक चन्द्र सूर्य हैं तबतक करना। बाहर से राजा बने रहना और मन से मेरा स्मरण करना। लोग यह न समझें कि विभीषण सब छोड़कर साधु हो गया पर रहना भीतर से साधु होकर मुझे विस्मरण न करना। राजा बने रहने से गति में भेद न होगी। अन्त मे तुम्हे मेरा धाम प्राप्त होगा : जहाँ सन्त लोग जाते है जहाँ जाने से फिर लौटना नही होता। यद्गत्वा न निवर्तन्ते तद्धाम परम मम।

सुनत बिभीषन बचन रामके। हरषि गहे पद कृपाधाम के ॥
बानर भालु सकल हरखाने। गहि प्रभुपद गुन बिमल बखाने ॥१॥

अर्थ : विभीषण रामजी के वचन सुनकर हर्षित होकर कृपाधाम के चरण पकड़ लिये। सब वन्दर भालु हर्षित हो गये और प्रभु के चरणो को पकड़कर निर्मल गुणों का वर्णन करने लगे।

व्याख्या : रामजी के ऐसे वचन मानो रघुकुल की रक्षा अब विभीषण के ही हाथ मे है। स्वयं जो कुछ किया वह कुछ नही। अब विभीषण का निहोरा अपने ऊपर ले रहे हैं अथवा सब भाँति अपनाने की प्रार्थना स्वीकृत हो गयी : इससे हर्षित हो रहे हैं अथवा अन्त में अपने धाम देने की प्रतिज्ञा से हर्षित होकर प्रभु के चरण पकड़ लिये। इधर बन्दर भालु अलग हर्षित हुए कि परमपद मे जब विभीषण का प्रवेश हुआ तो हम लोगो का रोक कैसे होगा। अथवा सरकार के सन्निधान से भालु बन्दरों की ऐसी साधुवृत्ति हुई कि विभीषणजी के अभ्युदय से आनन्दित होकर सरकार के चरणों को पकड़कर निर्मल गुण गणो का गान करने लगे। हर्षित सब हुए पर जिनकी योग्यता थी उन्होंने ही चरणों को पकड़कर गुणगान किया। प्रभु गुणगान के पहले श्रीचरणो का ध्यान स्मरण अवश्य कर लेना चाहिए।

बहुरि बिभीषन भवन सिधाये। मनि गन बसन बिमान भराये ॥
ले पुष्पक प्रभु आगे राखा। हंसि करि कृपासिंधु अस भाखा ॥२॥

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ विभीषणजी फिर घर गये विमान को मणिगण से भराया। पुष्पक को लेकर सरकार के सामने रक्खा। कृपासिन्धु हँसकर यह बोले।

व्याख्या तब विभीषण घर गये। सरकार को अयोध्या पहुँचाने के उपाय के लिए विभीषणजी ने निश्चय किया कि पुष्पक विमान सरकार को उपहार रूप मे देना चाहिए। केवल विमान ही नही उसे मणिगणो से भर भी दिया। सरकार ने स्वीकार कर लिया है कि तुम्हारा सब कोषादि मेरा है। अत उस स्वीकृति के साफल्य के लिए मणिगण विमान मे भरे गये। सोने की लङ्का है वहाँ सोने का कौन मूल्य है।

इस भाँति पुष्पक को पूर्ण करके सरकार के आगे रक्खा। भाव यह है कि इसम से जो इच्छा हो बन्दर भालुओ को दिया जाय। अयोध्या पहुँचाने मे यह पुष्पक विमान समर्थ है। यह सरकार के नजर है। सरकार हँसकर बोले। भरत के शीघ्रातिशीघ्र दर्शन की चिन्ता मिटी इससे हँसे। अथवा इन मणिगणो के ग्राहक न हम हैं और न हमारी सेना है पर विभीषण का मन रखना है। इसलिए हँसकर बोल रहे हैं। यथा हृदय अनुग्रह इन्दु प्रकासा। सूचत किरन मनोहर हासा।

चढि बिमान सुनु सखा बिभीषन। गगन जाइ बरषहु पट भूषन॥
नभ पर जाइ बिभीषन तबही। बरषि दिये मनि अंबर सबही॥३॥

अर्थ हे सखा विभीषण! विमान पर चढकर आकाश मे जाकर मणि वस्त्र की वर्षा करो तब विभीषण ने आकाश मे जाकर सब मणि और वस्त्रो को बरस दिया।

व्याख्या सरकार ने आज्ञा दी कि सखा विभीषण इसी विमान पर चढकर आकाश मे चले जाओ और वहाँ से पट भूषणो की वर्षा वानरी सेना पर करो। अस्त्र शस्त्र की तो वर्षा कितनी बार वानरी सेना पर हो चुकी है। अब मणि भूषण की वर्षा होने दो। इतनी बडी सेना मे मणि भूषण इसी भाँति वितरण भी किया जा सकता है। एक एक बन्दर को बुला बुलाकर मणि भूषण देना असाध्य व्यापार है।

तदनुसार विभीषणजी ने आकाश मे जाकर सब भूषण वसनो को बरस दिया। विभीषणजी ये मणि भूषण वसन वानरी सेना के ही लिए लाये थे उन्ही को देना चाहते थे सरकार को नही। पूर्णकाम को कोई क्या दे सकता है। उनके लिए तो स्वय पुष्पक था।

जोइ जोइ मन भावै सोइ लेही। मनि मुख मेलि डारि कपि देही॥
हँसे राम श्री अनुजसमेता। परम कौतुकी कृपानिकेता॥४॥

अर्थ जिसे जो देखने मे अच्छा लगता है। वही बन्दर लेते हैं और मणि को मुख म डालकर उगल देते हैं। रामजी सीताजी तथा छोटे भाई के सहित हँस रहे हैं। कृपानिकेत परम कौतुकी हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : वर्षा होने से मणि भूषण वसन तमाम पृथिवी पर बिखर गये। रुचि की विचित्रता के अनुरूप बन्दर लोग पसन्द करके ले रहे हैं। फल समझकर मणियोंको मुख मे डालते हैं और स्वाद हीन तथा कठोर मालूम होने पर उगल देते हैं। यह दृश्य देखकर सरकार भी हँस रहे हैं। जानकीजी और लक्ष्मणजी भी हँस रहे हैं। सरकार कृपा के घर हैं और बड़े कौतुकी हैं। विभीषण पर कृपा है, उनकी सम्पत्ति स्वीकार की जा रही है और जिन्हे दी जा रही है उन्हे उसके उपयोग का ही ज्ञान नही है। उनके विकृत आचरण से सबको हँसी आरही है। यह सरकार का विनोद है।

दो. मुनि जेहि ध्यान न पावहिं, नेति नेति कह वेद।
कृपासिंधु सोइ कपिन्ह सन, करत अनेक बिनोद॥
उमा जोग जप दान तप, नाना मख व्रत नेम।
रामु कृपा नहि करहि तस, जसि निःकेवल प्रेम॥११७॥

अर्थ . जिसे मुनि ध्यान मे नही पाते और जिसे वेद नेति नेति कहता है। वही कृपासिन्धु बन्दरो के साथ अनेक विनोद करते हैं। हे उमा ! योग जप दान तप नाना व्रत यज्ञ और नियम से रामजी वैसी कृपा नही करते जैसी कि विशुद्ध प्रेम से करते हैं।

व्याख्या : इन्द्रियगोचर होना तो बड़ी दूर की बात है। ध्यान में भी जो मुनि लोगो के नही आते सामान्य लोगों की गणना क्या है और वेद भी यह नही यह नही कहकर निरूपण करता है। अर्थात् जो मन वाणी के अगोचर है वह प्रभु कृपासिन्धु हैं। कृपा करके इन्द्रियगोचर होकर बन्दरों के साथ अनेक प्रकार का विनोद कर रहे हैं। बन्दरो से पूछते हैं कि मणि कैसा है ? वे कहते हैं कि सरकार देखने मे ही सुन्दर हैं पर किसी काम का नही है। न इसमे स्वाद है न गन्ध है इत्यादि। वेद और विनोद का जोड़ नही। इसलिए तुक नही बैठने दिया।

शंकर भगवान् उमा से सरकार का स्वभाव कहते है : योग जप दान तप व्रत और नियम ये ही छः कारण भगवत् कृपा के हैं। इन्हे मुनि लोग वेद विधि से आचरण करते हैं। अतः उन पर सरकार की कृपा होती है पर ऐसी नही होती कि प्रत्यक्ष होकर उनसे विनोद करें। ऐसी कृपा तो जप योग नेम व्रत वर्जित प्रेम से ही होती है। बन्दर कर्म के अनधिकारी हैं। इनमे सिवा प्रेम के और क्या है ? पर उसी प्रेम के सरकार परवश है। उनके साथ बैठकर विनोद कर रहे हैं।

भालु कपिन्ह पट भूषन पाए। पहिरि पहिरि रघुपति पहिं आए॥
नाना जिनिस देखि प्रभु कीसा। पुनि पुनि हँसत कोसलाधीसा॥१॥

अर्थ : भालु और बन्दरो ने गहने कपड़े पाये तो उन्हे पहनकर रामजी के

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पास आये। अनेक रूप मे बन्दरो को देखकर कोशलाधीश रामजी बार बार हँसते हैं।

व्याख्या : बन्दर भालु का गहने कपड़े से क्या सम्बन्ध ? वे न स्वय रक्खें न दूसरे का रहने दें। यदि दैवात् उनके हाथ गहना कपड़ा लग जाय तो उसे नष्ट करके ही मानें। परन्तु यह गहना कपड़ा की वर्षा तो उनके लिए सरकारी आज्ञा से हो रही है। अत उनके प्रति आदर है। लोगो को गहना कपड़ा पहने देखा है इसलिए उन्हे महाप्रसाद समझकर धारण किया। राजा के यहाँ से जो कुछ वस्त्राभूषण पुरस्कार रूप से मिले उसे धारण करके राजा के सामने उनकी प्रसन्नता के लिए जाने का नियम है। अथवा कृतज्ञता प्रकाश के लिए पहन पहनकर सरकार के पास आये।

बन्दर भालु के वस्त्राभूषण धारण करने से विचित्र शोभा हुई। धारण तो उन लोगो ने कर लिया पर धारण करना आता नही। अत और भी अद्भुत मूर्ति हो गये हैं। इनके दर्शन से हँसी रोके नही रुकती। सरकार तो कोशलाधीश हैं। वस्त्राभूषण धारण की बारीकी को जानते हैं। अतः बार बार हँसते हैं।

चितै सबन्ह पर कीन्ही दाया। बोले मृदुल बचन रघुराया ॥
तुम्हरे बल मै रावनु मार्‌यो। तिलकु बिभीषन कहुँ पुनि सार्‌यो ॥२॥

अर्थ : देखकर सब पर दया की और रघुपति कोमल वचन बोले। तुम्हारे बल से मैंने रावण को मारा और फिर विभीषण को तिलक भी कर दिया।

व्याख्या : सरकार की कृपादृष्टि से श्रमापनोदन होता है। यथा : राम कृपा करि चितवा सबही। भये बिगतस्रम बानर तबही। अपना श्रमापनोदन न किया पर बन्दरो का कृपावलोकन से कर दिया। सरकार की कृपा से निरन्तर कुशल होता है। देवता मनुष्य और मुनियो पर कृपा होती है। सो भालु बन्दर के निरन्तर कुशल के लिए उनपर दया की।

उनको बड़ाई देते हुए बोले कि रावणवध जो मैने किया वह तुम लोगो के बल से हुआ नहीं तो अकेले मेरा किया क्या होता। इसी भाँति विभीषण को राज्य देकर जो अपनी प्रतिज्ञा पूरी की वह भी तुम लोगो के बल से ही सम्पन्न हुआ। तुम लोगो द्वारा मेरा बड़ा उपकार हुआ। मेरे कार्य करने के लिए तुम लोगो ने अपना घर छोड़ रक्खा है सो अब मेरा सब कार्य तुम लोगो की सहायता से सम्पन्न हो गया।

निज निज गृह अब तुम्ह सब जाहू। सुमिरेहु मोहि डरपहु जनि काहू ॥
बचन सुनत प्रेमाकुल बानर। जोरि पानि बोले सब सादर ॥३॥

अर्थ : अब तुम लोग अपने घर चले जाओ। मेरा स्मरण करते रहना और किसी से नही डरना। वचन सुनते ही बन्दर लोग प्रेम से आकुल हो उठे। सब हाथ जोड़कर आदर के साथ बोले।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : अब तुम लोग अपने अपने घर जाओ। अब जिस भाँति आये हो उसी भाँति किष्किन्धा लौटने की अवश्यकता नही जहाँ से जिसका घर सीधा पड़े उसी रास्ते चले जाओ। संगठन का कार्य समाप्त हो गया। तुम लोग अपने घर की ओर रवाना हो जाओ तब हम अपने घर की ओर प्रस्थान करें। सरकार पुरस्कार रूप मे उन्हे अभय दान दे रहे हैं और शिक्षा रूप मे सदा अपने स्मरण के लिए कह रहे हैं। भावार्थ यह कि बन्दर भालु का न तो धन से कोई उपकार हो सकता है और न किसी सूक्ष्मतत्त्व के उपदेश की उनमे पात्रता है। अतः सब उपदेशो का सार उन्हे दो मोटी मोटी बातो मे बतला दिया कि मुझे स्मरण करते रहना और किसी से डरना नही। मेरा वरद हस्त सदा तुम्हारे सिर पर रहेगा।

सरकार द्वारा अपनी इतनी बड़ाई के वचन को वे सँभाल न सके। प्रेम के आवेग से व्याकुल हो उठे। मन से प्रेमाकुल तन से पानि जोरि और वचन से बोले सब सादर। एक ही भाव सबके हृदय से उठा। अतः सबका एक साथ एक ही वचन बोलना कहते हैं।

प्रभु जोइ कहहु तुम्हहि सब सोहा। हमरे होत बचन सुनि मोहा॥
दीन जानि कपि किए सनाथा। तुम्ह त्रैलोक ईस रघुनाथा॥४॥

अर्थ : प्रभो! आप जो कुछ कहें सभी आपको शोभा देता है पर ऐसा वचन सुनकर हम लोगो को मोह होता है। हे रघुनाथ! आप त्रैलोक्य के ईश हैं हम लोगो को दीन जानकर आपने सनाथ किया।

व्याख्या : भाव यह कि कैसे कहे कि सरकार का कहना ठीक नही है हम तो सरकार के बल से निशाचरो से लड़े नही तो कहाँ हम तृणराशि और कहाँ निशाचर अग्नि! हमारी उनकी लड़ाई कैसी पर हम जयशील सरकारी बल से हुए। यथा : कपि जयसील राम बल ताते। स्वामी को सभी कुछ शोभा देता है वह यदि अपने पुरुषार्थ का सेवक पर आरोप करे तब भी शोभा है। पर हम लोगो को तो ऐसे वचन से मोह होता है। यथा : सुनि प्रभु बचन मोह मति करषी।

*हम सरकार के स्वरूप को जानते हैं। सरकार त्रैलोक्य के स्वामी हैं। अवतार* धारण करके रघुकुल को सनाथ किया है। सरकार दीनानाथ हैं : दीन जानकर हम लोगो को सनाथ किया है। नही तो बन्दरो का नाथ कोई बनना नही चाहता। त्रैलोक्य के नाथ होने से आप सबके नाथ हैं। तब निज भुजबल राजिव नैना। कौतुक लागि संग कपि सैना। आपको राक्षसो का रणमद हम लोगो के हाथ से चूर्ण कराना था।

सुनि प्रभु बचन लाज हम मरही। मसक कहूँ खगपति हित करही॥
देखि रामरुख बानर रीछा। प्रेम मगन नहि गृह कै ईछा॥५॥

अर्थ : प्रभु का वचन सुनकर हम लज्जा से मरे जाते हैं। मच्छर कही गरुड

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



की सहायता कर सकता है। रामजी का रुख देखकर बन्दर भालु प्रेम मे मग्न हो गये। उन्हे घर की इच्छा नही रह गयी।

व्याख्या बन्दर भालु कहते हैं कि प्रभु के वचन से हम तो लज्जा से मरे जाते हैं। बडे की स्तुति से छोटे को लज्जा होती है। स्तुति के गुणो की हमारे मे सम्भावना नही। अत हमारे लिए सरकार द्वारा स्तुति अतीव लज्जाजनक है। गरुड यदि कहे कि वाताशन नागो को मैने मच्छरो की सहायता से वध किया तो गरुड की तो बडाई है कि वह मच्छरो को महिमा प्रदान कर रहा है। पर मच्छरो को तो कही डूबने को स्थान नही है।

सरकार का रुख है कि बन्दर भालु घर जायँ। उनको घर की इच्छा नही। वे सरकार के प्रेम मे मग्न हैं। सरकार को छोडना नही चाहते। घर की ओर चित्त की वृत्ति जाती ही नही बिसरे गृह सपनेहु सुधि नाही। जिमि परद्रोह सन्त मन माही। रुख देख लिया कि इन्होने विदा कर दिया। क्योकि ऐसा कहकर सरकार विमान पर सवार हो गये।

दो प्रभु प्रेरित कपि भालु सब, रामरूप उर राखि।
हरष विषाद सहित चले, विनय विबिध बिधि भाखि॥
कपिपति नील रीछपति, अगद नल हनुमान।
सहित बिभीषन अपर जे, जूथप कपि बलवान॥
कहि न सकहि कछु प्रेम बस, भरि भरि लोचन बारि।
सनमुख चितवहि रामतन, नयन निमेष निबारि॥११८॥

अर्थ प्रभु से प्रेरित होकर सब बन्दर भालु रामजी के रूप को हृदय मे रखकर अनेक प्रकार से विनती करके हर्ष विषाद सहित चले। जामवन्त, सुग्रीव, नल, अङ्गद आदि और हनुमान्जी तथा विभीषण के सहित और जितने बलवान् यूथपति बन्दर थे वे सब प्रेमवश कुछ नही कह सकते थे। आँखो मे आँसू भरा हुआ रामजी की ओर निर्निमेष नेत्र से देख रहे थे।

व्याख्या अन्तर्यामी की प्रेरणा बडी बलवती है। इतना प्रेम होने पर भी चलने को तैयार हो गये। परन्तु प्रस्थान होने के पहिले रामजी के रूप को हृदय मे रख लिया और अनेक प्रकार की विनती करके चल पडे। घर जाने का हर्ष और प्रभु के वियोग का विषाद भी है। बन्दरो को घर जाने की इच्छा ही नही थी। पर अन्तर्यामी की प्रेरणा से घर जाने की इच्छा हो गयी।

परन्तु जाम्बवान्, सुग्रीव, नल, अङ्गद, हनुमान् और विभीषण तथा अन्य बलवान् यूथप नही गये। बलवान् यूथपो मे भी तो बल सरकारी है। उन पर विशेष कृपा है। अत विशेष बलवान् हैं।

अन्य बन्दरो ने विविध प्रकार से विनय भी की। पर ये लोग तो बोलने मे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भी समर्थं नही हुए। प्रेम के वश मे हो गये हैं। प्रेमातिशय से वे सरकार को आँख से ओट करना नही चाहते। अत निर्निमेष नेत्रो से दर्शन कर रहे है।

अतिसय प्रीति देखि रघुराई। लीन्हे सकल बिमान चढाई ॥
मन महु बिप्र चरन सिर नाये। उत्तर दिसिहि बिमान चलाये ॥१॥

अर्थ. रघुराई रामजी ने अत्यन्त प्रीति देखकर सबको विमान पर चढा लिया। मन मे ब्राह्मण के चरण का नमस्कार किया और विमान को उत्तर की ओर चलाया।

व्याख्या सामान्य वानर सैनिको से बडे बडे सरदारो की प्रीति कही बढी चढी है। सरकार ने देखा इन्हें अत्यन्त प्रीति है। उनको तो घर जाने की दबी हुई इच्छा भी थी। इन्हे वह भी नही। ये लोग विभीषण की भाँति अयोध्या जाना चाहते हैं। अत सरकार ने सबको विमान पर चढ़ा लिया। मन मे ब्रह्मकुल को प्रणाम किया। क्योकि पहिले सरकार वही जाना चाहते हैं। यह ब्रह्मकुल दण्डकारण्य मे था। आरण्यकाण्ड का मङ्गलाचरण करते हुए कवि ने ब्रह्मकुल को प्रणाम किया है। यथा : मूल धर्मतरोर्विवेकजलधे पूर्णेन्दुमानन्ददं। वैराग्याम्बुजभास्करं ह्यघघन-ध्वान्तापहं तापहं। मोहाम्भोधरपूगपाटनविधौ स्व सम्भव सकरं वदे ब्रह्मकुल कलकसमन श्रीरामभूपप्रिय। आरण्यकाण्ड की टोका मे इस श्लोक का अर्थ दिया गया है। भावार्थ यह है कि ब्रह्मकुल अष्टमूर्ति शङ्कररूप है। अयोध्या की सीमा तमसा से चलते समय सरकार ने शङ्करजी को प्रणाम करके यात्रा की। यथा राम लखन सिय जान चढि सभु चरन सिरु नाइ। सचिव चलायेउ तुरत रथ इत उत खोज दुराइ। अब घर लौटते समय ब्रह्मकुलरूप शङ्कर को प्रणाम करते हैं। ब्रह्मकुल के लिए ही निशाचर हीन पृथिवी करने की प्रतिज्ञा की थी। वह प्रतिज्ञा पूर्ण हुई। ब्रह्मकुल से ही सुरद्रोहियो के वध का मन्त्र लिया था। अत पहिले उसी ब्रह्मकुल मे जाना चाहते हैं। यथा कुम्भजादि मुनि नायक नाना। गये राम सबके अस्थाना। अत. प्रस्थान के समय शकररूप ब्रह्मकुल को प्रणाम करते हैं। विमान को भी अयोध्या चलने का आदेश न देकर केवल इतना ही आदेश दिया कि उत्तर की ओर चलो।

चलत बिमान कोलाहलु होई। जय रघुबीर कहै सब कोई ॥
सिंहासनु अति उच्च मनोहर। श्री समेत प्रभु बैठे तापर ॥२॥

विमान चलते समय बडा शब्द हुआ। सब लोग रघुवीर की जय। ऐसा बोल रहे हैं। अत्यन्त ऊँचा और मनोहर सिंहासन है। उस पर सरकार सीताजी के साथ बैठे।

व्याख्या . आज तो सबका अनुभूत विषय है कि वायुयान चलते समय बडा शब्द होता है। तिसपर स्वय विमानारूढ बानरवीर जयध्वनि कर रहे हैं। नीचे से बानरी सेना सरकार को विमान पर जाते हुए देखकर जयकार कर रही है। सबको अत्यन्त उत्साह है। अत जयकार पर जयकार लगता ही जा रहा है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उस विमान पर स्वामी के बैठने के लिए अत्यन्त ऊँचा और सुन्दर सिंहासन बना हुआ है जिससे कि नीचे का सब दृश्य दिखाई पड़े। उस सिंहासन पर सरकार सीता के सहित बैठे।

## ८१ अवध प्रयाण प्रसंग

राजत रामु सहित भामिनी। मेरु शृंग जनु घनदामिनी॥
रुचिर बिमानु चलेउ अति आतुर। कीन्ही सुमन बृष्टि हरषे सुर॥३॥

अर्थ : भामिनी स्त्री के सहित रामजी शोभित हुए। जैसे मेरु के शृङ्ग पर बादल बिजली सहित हो। सुन्दर विमान अत्यन्त आतुर होकर चला। देवताओं ने फूल बरसाया और हर्षित हुए।

व्याख्या : राम शब्द का अर्थ ही यही है कि : राजते यो महीस्थितः। बिना सीताजी के रामजी की वैसी शोभा नहीं थी। आज भगवती के साथ बड़ी शोभा हुई। श्री गोस्वामीजी उपमा देते हैं कि जैसे मेरु के शृङ्ग पर घन दामिनी की शोभा हो। पुष्पक की उपमा मेरु से है और अति उच्च मनोहर सिंहासन की उपमा शिखर से है। उसके ऊपर रामजी मेघ श्याम सुशोभित हैं और उनके अङ्क में भगवती जनक नन्दिनी की दामिनी की सी शोभा है। भगवती इस समय संकुचित नहीं जब कि कनक पङ्कज की कली की उपमा दी गयी थी। वे इधर उधर देख रही हैं। इसलिए चञ्चलता को लक्ष्य में रखकर दामिनी की उपमा दी गयी और वर्ण भी उनका बिजली सा है।

वह सुन्दर विमान जिसका नाम पुष्पक है। आकाश में ऐसा मालूम होता है मानो आकाशरूपी सरोवर में फूल खिला हो। वह आतुर होकर चला। वह मनोजव विमान है। स्वामी के मन की गति के अनुसार उसकी गति होती है। सरकार को अत्यन्त उत्सुकता है। अतः वह आतुर होकर चला। देवता लोग भी शोभा देखकर हर्षित हुए और मङ्गल के लिए पुष्पवृष्टि की।

परम सुखद चलि त्रिबिध बयारी। सागर सर सरि निर्मल बारी॥
सगुन होहिं सुंदर चहुँ पासा। मन प्रसन्न निर्मल नभ आसा॥४॥

अर्थ : परम सुख देनेवाली शीतल मन्द सुगन्ध वायु चली। समुद्र तालाब नदी का जल निर्मल हो गया। चारों ओर सुन्दर सगुन होने लगे। मन प्रसन्न है और आकाश की दिशाएँ निर्मल हैं।

व्याख्या : शीतल मन्द सुगन्ध वायु सुखद होती ही है। पर उस समय की त्रिविध वायु परम सुखद थी। समुद्र तालाब तथा नदी में निर्मल जल हो गया। भाव यह कि प्रकृति में सुखावह परिवर्तन हुआ : परम सुखद चलि त्रिबिध बयारी : से वायु में परिवर्तन कहा। सागर सर सरि निर्मल बारी : से जल में परिवर्तन कहा। सगुन होहि सुन्दर चहुँ पासा : से पृथिवी कहा। निर्मल नभ आसा : से तेज तथा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



आकाश में परिवर्तन कहा और सबसे बड़ी बात यह कहा कि : मन प्रसन्न। यह बडा भारी सगुन है। यथा : सगुन होइ सुंदर सकल मन प्रसन्न सब केर। प्रभु आगमन जनाव जनु नगर रम्य चहुँ फेर।

कह रघुबीर देखु रन सीता। लछिमन इहाँ हत्यो इंद्रजीता॥
हनूमान अंगद के मारे। रन महि परे निसाचर भारे॥
कुंभकरन रावन द्वौ भाई। इहाँ हते सुरमुनि दुखदाई॥५॥

अर्थ : रामजी ने कहा सीते! रणभूमि को देखो यहाँ लक्ष्मण ने इन्द्रजीत को मारा है। यहाँ हनुमान् और अङ्गद के मारे रण में बडे बडे राक्षस पड़े हुए हैं। सुर मुनि के दु.ख देनेवाले दोनों भाई कुम्भकर्ण और रावण को यहाँ मारा है।

व्याख्या : सरकार इतने ऊँचे पर हैं कि वहाँ से सम्पूर्ण रणभूमि दिखायी पड़ रही है। जहाँ कही कोई घटना विशेष हो पड़ती है वह भूमि ऐतिहासिक स्थल हो जाता है और विशेषतः यह रणभूमि तो ऐसी है। जहाँ रामजी ने युद्ध यज्ञ सम्पादन किया है। अतः उस पुण्य भूमि को सीताजी को दिखला रहे हैं। अङ्गुल्या निर्देश करके बतला रहे हैं कि यहाँ इन्द्र के जीतनेवाले मेघनाद को लक्ष्मणजी ने मारा है। विमान ऊपर चढ़कर एक बार मण्डलाकार गति किया। उसी समय सरकार दिखला रहे हैं। महा महा मुखिया जे पावहिं। ते पद गहि प्रभु पास चलावहिं। उस युद्ध स्थल को दिखलाते हुए सरकार कहते हैं कि यहाँ महा मुखियों को हनुमान् अङ्गद ने मारा है। तब से वह स्थल आगया जहाँ रावण कुम्भकर्ण मरे थे। ये दोनो भाई एक ही स्थान मे मारे गये थे। अतः उसे दिखाते हुए कहते हैं कि : सुर मुनि दुखदाई : दोनो भाई कुम्भकर्ण और रावण को मैंने मारा।

दो. इहाँ सेतु बाँधेउ अरु, थापेउँ सिव सुखधाम।
सीता सहित कृपानिधि, संभुहि कीन्ह प्रनाम॥
जहँ तहँ कृपासिंधु बन, कीन्ह बास बिस्राम।
सकल देखाए जानकिहि, कहे सबन्हि के नाम॥११९॥

अर्थ : यहाँ सेतु बाँधा और यहाँ सुखधाम शिवजी को स्थापना की। सीता के सहित कृपायतन ने शिवजी को प्रणाम किया। जहाँ जहाँ करुणासिन्धु बसे थे या विश्राम किया था। वह सब जानकीजी को दिखाया और सबका नाम बताया।

व्याख्या : दिखलाने के व्याज से सरकार वह सब कथाएँ भी कह रहे हैं जो जो जानकीजी की अनुपस्थिति मे हुई थी। विमान का वेग दिखलाते हैं कि बात की बात मे विमान सौ योजन आ गया। तब सरकार कहते हैं कि यही सेतु बाँधा और सुखधाम शिवजी की स्थापना की। स्थापना मे जानकीजी नहीं थी। अतः विधि को पूरी करने के लिए सरकार सस्त्रीक प्रणाम कर रहे हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सरकार करुणासिन्धु हैं। सीताजी के विरह में एक वन से दूसरे में भटकते फिरे हैं। कहीं बस गये तो कहीं विश्राम ही किया। उन सब स्थलों को जानकीजी को दिखलाया। जानकीजी उन स्थलों को नहीं जानती थीं और उनका नाम बतलाया। यथा : यह पम्पासर है। यह ऋष्यमूक है। यह प्रवर्षणगिरि है। बिना नाम जाने जानना न जानना बराबर हो जाता है।

तुरत बिमान तहाँ चलि आवा। दंडक बन जहँ परम सुहावा॥
कुंभजादि मुनि नायक नाना। गए राम सबके असथाना॥१॥

अर्थ : विमान तुरन्त वहाँ चला आया। जहाँ कि परम सुहावन दण्डक वन था। अगस्त्य आदि अनेक मुनीश वहाँ थे। रामजी सबके स्थानों पर गये।

व्याख्या : विमान में बड़ा वेग है। बात की बात में दण्डक वन पहुँच गया। दण्डक वन को सरकार ने सुहावन किया था। इसलिए वह परम सोहावा हो गया था। अगस्त्यजी ने कहा था : दण्डक वन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिवर कर हरहू। अगस्त्यजी का आश्रम दण्डक वन के सन्निकट था। दण्डक वन में उस समय ऋषि नहीं रहते थे। सरकार के निवास करने पर आने जाने लगे थे। अगस्त्यादि मुनि अर्थात् अगस्त्यजी के भाई तथा सुतीक्ष्ण आदि शरभंग ऋषि के आश्रम से लेकर अगस्त्यजी के आश्रम के बीच में रामजी ने बहुत दिनों तक अनेक ऋषियों के आश्रमों में निवास किया था। यथा : सकल मुनिन्ह के आस्रमन्हि जाइ जाइ सुख दीन्ह। सो रामजी सबके आश्रमों पर विदा लेने गये। इस प्रान्त में अगस्त्य मुनि सबसे प्रधान थे। अतः प्रधानतः उन्हीं का नाम लेते हैं।

सकल रिषिन्ह सन पाइ असीसा। चित्रकूट आएउ जगदीसा॥
तहँ करि मुनिन्ह केर संतोषा। चला बिमान तहाँ ते चोखा॥२॥

अर्थ : सब मुनियों से आशीर्वाद पाकर जगदीश चित्रकूट आये। वहाँ मुनियों का सन्तोष किया। वहाँ से चोखा विमान चला।

व्याख्या : सब मुनियों ने सरकार से फरियाद किया था। यथा : निसिचर निकर सकल मुनि खाये। इसपर सरकार ने प्रतिज्ञा की थी : निसिचर हीन करउँ महि। सो पूरी करके आ रहे हैं। अब मुनियों को राक्षसों से कोई भय नहीं रह गया। अतः सन्तुष्ट होकर आशीर्वाद दे रहे हैं। अथवा आशीर्वाद देकर विदा कर रहे हैं।

जगदीश हैं। नरतन सन्त सुर के हितार्थ धारण कर रक्खा है। यथा : नर तन धरेउ सन्त सुर काजा। कहहु करहु जस प्राकृत राजा। स्तुति सेतु पालक राम तुम जगदीस माया जानकी। वहा मुनियों का सन्तोष किया। चित्रकूट से चलते समय अति प्रसन्न मुनियों ने विदा नहीं किया था। यथा : केहि बिधि कहौं जाहु अब स्वामी। सब दरसी तुम अंतरयामी। अतः उन्होंने लौटते समय

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मिलकर सन्तोष किया। तब वहाँ से विमान पर चढ़कर चले। विमान का वेग और बढ़ा इसलिए चोखा कहते है।

बहुरि राम जानकिहि देखाई। जमुना कलिमल हरनि सोहाई॥
पुनि देखी सुरसरी पुनीता। राम कहा प्रनामु करु सीता॥३॥

अर्थ : फिर रामजी ने कलिमल को हरण करनेवाली सुन्दर यमुनाजी का सीताजी को दर्शन कराया। फिर पवित्र गंगाजी को देखा। रामजी ने कहा कि सीते ! प्रणाम करो।

व्याख्या : जितने पुण्य स्थल रास्ते मे पड़ते जाते हैं उन सबको रामजी दिखलाते जाते है। पहिले युद्ध यज्ञभूमि दिखलायी। सेतुसिन्धु दिखलाया। रामेश्वर दिखलाया। जिन जिन स्थानों पर विश्राम और निवास करके उन्हे तीर्थीभूत बनाया था उन्हे दिखलाया। अब चित्रकूट से विमान के ऊपर उठते ही कलियुग के मल की हरण करनेवाली यमुना दिखायी पड़ी। यमुना का माहात्म्य कहते हैं कि ये कलियुग के मल को हरण करती हैं। अन्यमलों की गणना ही क्या है। जब से सीताजी को यमुना दिखलाते हैं तब से गंगाजी दिखायी पड़ गयी। अतः रामजी कहते हैं कि सीते ! प्रणाम करो। यहाँ दोनो को एक साथ ही प्रणाम है। गंगाजी पवित्रता की सीमा हैं। अतः सुरसरी पुनीता कहते हैं।

तीरथ पति पुनि देखु प्रयागा। देखत जनम कोटि अघ भागा॥
देखु परम पावनि पुनि बेनी। हरनि सोक हरि लोक निसेनी॥४॥
पुनि देखु अवधपुरी अति पावनि। त्रिविध ताप भवरोग नसावनि॥५॥

अर्थ : फिर तीर्थराज प्रयाग को देखो जिसके दर्शन से करोड़ जन्म के पाप भागते हैं। फिर परम पवित्र त्रिवेणीजी का दर्शन करो जो शोक का हरण करनेवाली और हरिलोक के लिए सीढ़ी रूप हैं। फिर अति पवित्र अयोध्यापुरी देखो जो तीनो ताप और भवरोग को नाश करनेवाली है।

व्याख्या : विमान इतने ऊँचे पर है और उसका वेग इतना है कि तब से प्रयागराज की प्रान्तभूमि दिखायी पड़ी। प्रयागराज तीर्थों के राजा हैं। कलुष पुञ्ज के लिए मृगराज है। अतः वे अमिट पाप जो कोटिजन्म से पीछा नही छोड़ते इनके दर्शन से भाग निकलते हैं। प्रयाग में भी त्रिवेणी का बड़ा माहात्म्य है। वह आध्यात्मिक आधिदैविक और और आधिभौतिक ताप को नाश करती हैं। इस भाँति दोषापनोदन करके कल्याण का विधान करती है। आप स्वयं विष्णु लोक के लिए निसेनी : सीढ़ी रूप हो जाती हैं। अर्थात् उनका आश्रयण करने से विष्णु लोक की प्राप्ति होती है। इतनी ऊँचाई पर विमान है कि त्रिवेणी पहुँचने के पहिले ही अयोध्यापुरी दिखायी पड़ी। उसका माहात्म्य कहते है कि वह तीनों ताप के नाश के साथ साथ भवरोग का ही नाश कर देती है। यथा : अवध तजे तन नहिं ससारा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो० सीता सहित अवध कहुँ कीन्ह कृपाल प्रनाम।
सजल नयन तन पुलकित पुनि पुनि हरषित राम॥
पुनि प्रभु आइ त्रिबेनी हरषित मज्जनु कीन्हि।
कपिन्ह सहित बिप्रन्ह कहुँ दान बिबिध बिधि दीन्हि॥१२०॥

अर्थ : तब कृपाल रामजी ने सीता के साथ योध्या को प्रणाम किया। सजल नयन और पुलकित होकर बार-बार हर्षित होने लगे। फिर हर्षित होकर सरकार ने त्रिवेणी मे मज्जन किया और बन्दरोके सहित ब्राह्मणोको अनेक प्रकार के दान दिये।

व्याख्या : अयोध्या के दृष्टिगोचर होते ही लक्ष्मण और सीताजी के सहित रामजी ने अवध को प्रणाम किया। वन जाते समय भी प्रणाम किया था। यथा : चले हृदय अवधहिं सिरु नाई। अब लौटते समय भी प्रणाम करते हैं। अयोध्या पर सरकार का बडा प्रेम है। उसे जन्मभूमि मानते हैं। चौदह वर्ष के बाद उसका दर्शन हो रहा है। अत हर्षातिरेक से सात्त्विक भाव हो गया। नेत्रों मे जल भर आया और शरीर मे पुलक हो गया।

प्रयागराज के प्रति सरकार की बड़ी श्रद्धा है। वन जाते समय चित्रकूट का सीधा रास्ता छोड़कर प्रयागराज गये। लौटते समय तो आकाश मार्ग से आ रहे हैं। अतः अत्यन्त त्वरा होने पर भी यहाँ उतरे। प्रयागराज मे भी त्रिवेणी का बडा माहात्म्य है। क्योकि यही तीर्थराज का सिंहासन है। आज त्रिवेणी स्नान कर रहे हैं। इस बात का हर्ष है। स्नान के बाद दान का विधान है। अत सरकार ने अनेक विधान से ब्राह्मणो को दान दिया और सरकार के साथ बन्दरो ने भी दान दिया। वन जाते समय जब सरकार ने प्रयाग स्नान किया उस समय दान की चर्चा कवि ने नही की। यथा . मुदित नहाइ कीन्ह सिव सेवा। पूजि यथा बिधि तीरथ देवा। सरकार लका विजय करके आ रहे हैं कम से कम समुद्र से उपहार मे मिले हुए रत्न तो पास मे हैं ही। यथा : कनक थार भरि मनिगन नाना। बिप्ररूप आये तजि माना। बन्दरो के पास भी मणि भूषण का घाटा नही। अतः सबका विविध प्रकार से दान करना कहा।

प्रभु हनुमंतहि कहा बुझाई। धरि बटु रूप अवधपुर जाई॥
भरतहि कुसल हमारि सुनाएहु। समाचार लै तुम्ह चलि आएहु॥१॥

अर्थ : सरकार ने हनुमान्‌जी को समझाकर कहा कि ब्रह्मचारी का वेष धारण करके अयोध्या जाओ। भरतजी को हमारी कुशल सुनाओ और समाचार लेकर तुम चले आओ।

व्याख्या : सरकार जानते हैं कि समाचार सुनाने मे हनुमान्‌जी बडे कुशल हैं। बुद्धिमता वरिष्ठ हैं। अत उन्ही को भरतजी के पास भेजते हैं और समझाकर कहते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



आइ कहो मोते बहुरि भरत हृदय की बात।
मुख बिकार आकार ते जो कछु तुमहि लखात॥
भरयो सकल सुख भोगते हयगय रथ सब साज।
काको मन डोलत नहीं पाइ बपौती राज॥
जो कछुहू रुचि भरत के मन में होवें आज।
सारी बसुधा को वही करैं अकटक राज॥

और यह भी कहते हैं कि तुम ब्रह्मचारी वेष से जाना। अर्थात् जिस वेष से मुझसे मिले थे उसी वेष से भरतजी से मिलना जिसमें भरतजी से मिलने में सुभीता हो और यह समाचार भरतजी पहिले तुम्हारे मुँह से सुने। तभी उनके आकार चेष्टा से हृद्गत भाव का ठीक थाह लग सकेगा। भरतजी को हम लोगों का समाचार सुनकर घर का सब समाचार . माँ लोग सब जीवित हैं कि नहीं? प्रजावर्ग सब सुखी तो हैं? इत्यादि लेकर तुम चले आना। यह न समझना कि विमान आता ही होगा। व्यर्थ क्यों जायँ? हम तुम्हारी बाट शृंगवेरपुर में जोहते रहेंगे।

तुरत पवनसुत गवनत भएऊ। तब प्रभु भरद्वाज पहिं गएऊ॥
नाना विधि मुनि पूजा कीन्ही। अस्तुति करि पुनि आसिष दीन्ही॥२॥

अर्थ: हनुमान्‌जी तुरन्त चल पड़े। तब सरकार भरद्वाजजी के पास गये। नाना प्रकार से मुनिजी ने पूजा की स्तुति की और तब आशीर्वाद दिया।

व्याख्या: हनुमान्‌जी तुरन्त बड़े वेग से चले। इसलिए पवनसुत शब्द का प्रयोग किया। तब सरकार जगम तीर्थराज भरद्वाजजी के आश्रम पर गये। सरकार बड़ी शीघ्रता में हैं। अतः कवि भी शीघ्रता कर रहे हैं। अत्यन्त सक्षेप में कथा कह रहे हैं। वन जाने के समय जब उनके पास गये थे तब भी उन्होंने पूजा की थी। यथा: कुसल प्रस्न करि आसिष दीन्हे। पूजि प्रेम परिपूरन कीन्हे। अब वन से लौटने के समय नाना प्रकार से पूजा की। स्तुति करके आशीर्वाद दिया।

मुनिपद वंदि जुगल कर जोरी। चढ़ि विमान प्रभु चले बहोरी॥
इहाँ निषाद सुना हरि आए। नाव नाव कहँ लोग बुलाए॥३॥

अर्थ: मुनि के चरणकमलों की वन्दना दोनों हाथों को जोड़कर की और विमान पर चढ़कर प्रभु फिर चले। यहाँ निषाद ने सुना कि सरकार आगये वह नाव नाव कहकर लोगों को पुकारने लगा।

व्याख्या: निषादराज के दूत चित्रकूट फैले हुए हैं। प्रयागराज के दूत ने समाचार दिया कि सरकार आ गये। निषादराज नाव नाव कहकर पुकार रहे हैं। अपने पास बुलाकर नाव लाने को नहीं कहते। इतनी उत्सुकता बढ़ी हुई है अपने पार जाने के लिए नाव चाहते हैं।

सुरसरि नाघि जान जब आयो। उतरेउ तट प्रभु आयसु पायो॥
तब सीता पूजी सुरसरी। बहु प्रकार पुनि चरनन्हि परी॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : गंगा पार करके जब विमान आया तब सरकार की आज्ञा पाकर किनारे पर उतरा। तब सीताजी ने गंगाजी की पूजा की और अनेक प्रकार से चरणों में गिरी।

व्याख्या : तब तक पुष्पक विमान गंगा पार आगया। सरकार प्रयागराज में उतरे। त्रिवेणी स्नान किया। भरद्वाजजी से मिले। इतनी देर में शृंगवेरपुर खबर पहुँच गयी। सरकार भी विमान द्वारा तबतक पहुँच गये। गंगा पार करने पर सरकार की आज्ञा से पुष्पक तट पर उतर पड़ा। सीताजी ने मनौती की थी : पति देवर संग कुसल बहोरी। आइ करौं जेहि पूजा तोरी। सो बात पूरी हुई। पति देवर के साथ सकुशल लौटी। अतः फिर गंगाजी का पूजन किया और कृतज्ञता प्रकाश के लिए बहुत प्रकार से दण्डवत प्रणाम किया।

दीन्हि असीस हरषि मन गंगा। सुंदरि तव अहिवात अभंगा॥
सुनत गुहा धाएउ प्रेमाकुल। आएउ निकट परम सुख संकुल॥५॥

अर्थ : गङ्गाजी ने प्रसन्नमन से आशीर्वाद दिया कि सुन्दरी! तेरा सौभाग्य अचल हो। सुनते ही निषादराज प्रेम से आकुल होकर दौड़ा और अत्यन्त सुख से भरा हुआ निकट आया।

व्याख्या : वन जाते समय सीताजी के विनय पर गङ्गाजी ने आशीर्वाद दिया था। उस वाणी का प्रादुर्भाव गङ्गा जल से हुआ कि : प्राननाथ देवर सहित कुसल कोसला आय। पूजहि सब मन कामना सुजस रहिहि जग छाय। वह आशीर्वाद अक्षरशः पूरा हुआ। अब लौटने पर सीताजी से पूजा पाकर सौभाग्य विषयक आशीर्वाद देती हैं। क्योंकि यही आशीर्वाद शेष था।

यह आशीर्वाद भी विमल वारि द्वारा वैखरी वाणी में प्रकट हुआ। निषादराज ने सुना। समझ लिया कि सरकार पार आगये। गङ्गापूजा हो गयी। गङ्गाजी आशीर्वाद दे रही हैं। अतः निषादराज दौड़ पड़े। प्रेम मे आकुल हो उठे। न तो प्रिय बन्धुओं को समाचार दिया न भेंट के लिए कुछ लिया।

प्रभुहि सहित बिलोकि बैदेही। परेउ अवनि तन सुधि नहि तेही॥
प्रीति परम बिलोकि रघुराई। हरषि उठाइ लियेउ उर लाई॥६॥

अर्थ : सरकार को विदेहराज की पुत्री के साथ देखकर वह पृथिवी पर गिर पड़ा। उसे शरीर की सुधि नहीं रही। उसकी परम प्रीति देखकर रामजी ने प्रसन्न होकर उसे हृदय से लगा लिया।

व्याख्या : वैदेही हरण तथा लंका पर चढ़ाई का हाल सुन चुका था। हनुमान्‌जी ने जो कुछ भरत से कहा है वह सब उसे मालूम है। आज वैदेही के साथ सरकार को देखकर वह लंका विजय का अनुमान करके आनन्द के वेग को न सहकर पृथिवी पर गिर जाता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रघुराई रामजी ने निषादराज की परम प्रीति की व्याकुलता देखी तो उसे उठाकर हृदय से लगाते है। परिष्वङ्ग प्रदान करते हैं। बिना इतनी प्रीति के परिष्वङ्ग प्रदान होता नहीं। आनन्दातिरेक में भी मृत्यु होती है। अतः आश्वासन के लिए उठाकर हृदय से लगा लिया।

छं. लिये हृदय लाइ कृपानिधान सुजान राम रमापती।
बैठारि परम समीप बूझी कुसल सो कर बीनती॥
अब कुसल पदपंकज बिलोकि बिरंचि संकर सेव्य जे।
सुखधाम पूरन काम राम नमामि राम नमामि ते॥

अर्थ : सुजान रमापति कृपानिधान राम ने उसे हृदय से लगा लिया और अत्यन्त निकट बैठाकर उसका कुशल मङ्गल पूछा। वह विनती करने लगा : वह विनय करने लगा कि ब्रह्मा और शिव से सेवित इन चरण कमलों को देखकर अब कुशल है। हे सुखधाम पूर्णकाम राम आपको नमस्कार है नमस्कार है।

व्याख्या : रामजी कृपानिधान हैं : उसे हृदय लगाकर कृपा किया। सुजान हैं : गुणग्राहकता दिखलाया। रमापति हैं : सौशील्य दिखलाया : अब जानौ मैं श्री चतुराई। भजी तुमहि सब देव बिहाई। उसे अत्यन्त आदर दिया। अपने सन्निकट बिठाया और कुशल पूछा। उसने विनती की कि ब्रह्मदेव और शिव से सेव्य जो चरणकमल हैं उनके दर्शन से अब कुशल है। जब दर्शन नहीं होते थे तब की दशा इस समय याद करना नहीं चाहता। कहता है कि हे सुखधाम पूर्णकाम राम आपको बारम्बार नमस्कार है।

छं.[1] सब भाँति अधम निषाद सो हरि भरत ज्यों उर लाइयो।
मतिमंद तुलसीदास सो प्रभु मोहबस बिसराइयो॥
यह रावनारि चरित्र पावन रामपद रतिप्रद सदा।
कामादि हर बिग्यान कर सुरसिद्ध मुनि गावहिं मुदा॥

अर्थ : निषाद सब भाँति से अधम था। उसे हरि ने भरत की भाँति हृदय से लगा लिया। तुलसीदासजी कहते हैं कि रे मतिमन्द : मन ऐसे प्रभु को मोह के वश भुलवा दिया। यह रावणारि रामजी का चरित्र सदा रामजी के चरणों मे रति देनेवाला है। कामादिकों का हरण करनेवाला है। विज्ञान करनेवाला है। इसे देवता सिद्ध और मुनि प्रसन्न होकर गान करते हैं।

व्याख्या : सरकार अधमोद्धारण है। निषादराज तो सभी प्रकार से अधम था। यथा : लोक बेद सब भाँतिहि नीचा। जासु छाँह छुइ लेइअ सींचा। सो उसे

---

१. हरिगीतिका छन्द है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

भरत ऐसे भाई की भाँति हृदय से लगा लिया। ऐसे मालिक का तो दिन रात चिन्तन करना चाहिए। जो अज्ञानवश उसे भुलावे वह मतिमन्द है। अब सम्पूर्ण लंकाकाण्ड की फलस्तुति कहते हैं। सरकार अघमोद्धारण है। परन्तु विश्वकण्टक के नाश करनेवाले हैं। रावण भूतद्रोही विश्वकण्टक था। उसका कुल और दल के साथ वध किया। इसलिए प्रभु को रावणारि कहते हैं। अतः रावणारि चरित्र से लंकाकाण्ड की कथा अभिप्रेत है। यह कथा पवित्र है। पाप को हरण करती है। रामजी के चरणो मे भक्ति देती है। कामादि दोषो को दूर करके विज्ञान सम्पादन करती है। अतः वेद के काण्डत्रय का इसमे समावेश है। अत सुरसिद्ध और मुनि हर्षित होकर गान करते हैं। क्योंकि इसमे अल्पायास से महाफल है। अथवा पावन है। इसलिए सुरगान करते हैं। रामपद रतिप्रद है। इसलिए सिद्ध गान करते हैं। कामादि हर विज्ञानकर हैं। इसलिए मुनि गान करते है।

दो. समर विजय रघुवीर के, चरित जे सुनहिं सुजान।
बिजय बिबेक बिभूति नित, तिन्हहि देहि भगवान॥
यह कलिकाल मलायतन, मन करि देखु बिचार।
श्री रघुनाथ नामु तजि, नाहिन आन अधार॥१२१॥

अर्थ: जो सुजान सरकार के समरविजय चरित को सुनते हैं उन्हे भगवान् नित्य विजय विवेक और विभूति देते हैं। हे मन! विचार करके देख। यह कलियुग मल: पाप का घर है। इसमे सिवा राम नाम के कोई दूसरा आधार नही है।

व्याख्या: इस काण्ड की कथा मे श्रीरघुनाथ के समरविजय चरित्र का वर्णन है। इसके श्रवण का सम्यक् फल सुजान को ही मिलता है। जो पिण्ड तथा ब्रह्माण्ड मे रामजी के समर विजय का जानकार है उस श्रोता पर प्रसन्न होकर भगवान् उसे दोनो प्रकार की विजय देते हैं। शत्रु पर भी वह विजय पाता है और ससार शत्रु पर भी विजय पाता है। अतः उसे नित्य विभूति की प्राप्ति होती है।

यह कलियुग बड़ा कराल है। इसमे स्वभाव से चित्त का झुकाव पाप की ओर होता है और जितने साधन हैं वे निर्मल चित्त से ही साध्य हैं। अतः सब साधन करते हुए भी उन पर भरोसा नही किया जा सकता। यथा: एहि कलिकाल सकल साधन तरु है श्रम फलनि फरोसो। नाहिन आवत आन भरोसो। इस काल मे एकमात्र आधार एकमात्र भरोसा रामनाम का है। यथा: बहुमत मुनि बहु पंथ पुरानिन जहाँ तहाँ झगरो सा। गुरु कह्यो रामभजन नीको मोहि लागत राजडगरो सो। सियावर रामचन्द्र की जय!

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने
विमलविज्ञानसंपादनो नाम
षष्ठ: सोपान: समाप्त।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

श्रीराम

श्रीगणेशाय नमः । श्रीगुरवे नमः

# श्रीरामचरितमानस

## उत्तरकाण्ड : सप्तम सोपान

## सटीक

### मङ्गलाचरण

श्लो. [1]केकीकंठाभ[2] नीलं [3]उरवरविलसद्विप्रपादाब्जचिह्न[4]
शोभाढ्यं पीतवस्त्रं सरसिजनयनं सर्वदा सुप्रसन्नं ।
पाणौ नाराचचापं कपिनिकरयुतं वन्धुना सेव्यमानं
नौमीढ्यं जानकीशं रघुवरमनिशं पुष्पकारूढरामं ॥

अर्थ : मोर के कण्ठ की दीप्ति सा जिनका वर्ण नील है। श्रेष्ठ वक्षःस्थल पर जिनके ब्राह्मण के चरण की छाप विराजमान है। जो शोभा के धनी हैं। पीताम्बर धारण किये हुए हैं। कमल से नेत्रवाले है। सदा सुप्रसन्न हैं। हाथ में धनुष बाण धारण किये हैं और जो वानरों के समूह से युक्त भाई से सेवित और पुष्पक विमान पर सवार हैं। ऐसे जानकी के पति पूज्य रघुवर राम को मैं निरन्तर नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : उत्तरकाण्ड को सातवीं मोक्षपुरी द्वारावती माना गया है। द्वारावती में श्रीकृष्ण भगवान् ने राज्य किया है। इसी भाँति उत्तरकाण्ड में सरकार ने गुणातीत अरु भोग पुरन्दर होकर राज्य भोग किया है। द्वारका सोने की थी और उत्तरकाण्ड में अयोध्या का वर्णन करते हुए भी कवि लिखते हैं : मनि खंभ भीति

---

१. यह स्रग्धरा छन्द है। २. इह छन्दानुरोधेन वर्णान्तं गुरुलाघवम्। प्राकृत में छन्द के अनुरोध से वर्ण गुरु या लघु कर दिये जाते हैं। ३. सुरवर पाठ भी माना गया है। ४. मो विन्दुः उस प्राकृतसूत्र से चिह्नम् आदि का चिह्न रूप हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बिरचि बिरची कनक मनि मरकत खेंची द्वारका श्रीकृष्ण भगवान् के साथ गयी। यहाँ अयोध्या के विषय में भी कहा जाता है कि सारी अयोध्या रामजी के साथ परम धाम चली गयी। अत उत्तरकाण्ड को द्वारावती माना।

सरकार रावण वध करके पुष्पकारूढ होकर अयोध्या आरहे हैं। कवि उसी दृश्य को आँख के सामने रखता हुआ वन्दना कर रहा है। अश्वारूढ, रथारूढ रघुनायक का वर्णन हो चुका है। अत अब पुष्पकारूढ का वर्णन किया जा रहा है। पुष्पकारूढ रूप से सरकार का दर्शन श्रीगोस्वामीजी को श्रीअवध में होने की जनश्रुति है। अत पुष्पकारूढ राम रघुवर की नित्य वन्दना श्रीगोस्वामीजी करते हैं। जानकीश और बन्धुना सेव्यमान कहकर प्रधान त्रिकोण का वर्णन किया। यथा रामतापनीये हेमाभया द्विभुजया सर्वालङ्कृतया चिता। श्लिष्ट कमलधारिण्या पुष्ट कोशलजात्मज। दक्षिणे लक्ष्मणेनाथ सधनुष्पाणिना पुन। हेमाभेनानुजेनैव तदा कोणत्रय भवेत् एव त्रिकोणरूप स्यात् त देवा ये समाययु। सब अलङ्कारों से युक्त दो भुजावाली स्वर्ण वर्णवाली चिद्रूपिणी सीताजी से समाश्लिष्ट कौसल्या के पुत्र रामजी हैं। उनके दक्षिण स्वर्णवर्ण हाथ में धनुष धारण किये हुए लक्ष्मणजी हैं। इस भाँति त्रिकोण हुआ उसी के शरण में देवता लोग रावण वध के लिए गये थे। अत रावण के वध के पश्चात् उसी त्रिकोण रूप से श्रीगोस्वामीजी लौटना कहते हैं और उसे पूज्य कहते हैं। अब झाँकी का वर्णन करते हैं कि मोर के गल के रंग सी नीलिमा सरकार की है। मोर के गल की नीलिमा में एक प्रकार की चमक भी रहती है। सौन्दर्यातिशय द्योतन के लिए उसकी उपमा देते हैं। बरात से बारात में चलते समय भी उपमा दी थी। केकिकण्ठद्युति स्यामल अगा। तडित विनिन्दक बसन सुरगा। विप्रचरण का वर्णन भी बहुत दिनों के बाद आया है। शैशवरूप की झाँकी के समय कहा था विप्रचरण देखत मन लोभा। लङ्का के युद्ध में भी कहा उर धरासुर पद लस्यो या आज कहते हैं उरवर विलसद्विप्रपादाब्जचिह्न इतने बीच में ऐश्वर्य छिपाया गया। अत विप्रचरण चिह्न अव्यक्त रूप में था। अब छिपाने की आवश्यकता नहीं है। अत चरणचिह्न व्यक्त हो गया। अत कवि भी वर्णन करते हैं। क्योंकि विप्रचरणचिह्न ही सरकार के सब देवताओं से उत्कृष्ट होने का तमगा है। यद्यपि अभी तक सरकार वल्कल ही धारण किये हुए हैं पर सरकार के धारण करने से उसकी ऐसी शोभा बढ गयी है कि पीताम्बर मालूम पडता है। नयन कमल सौन्दर्य का निधान है। ऐसी आँखें किसी की नहीं और सदा की भाँति प्रसन्न हैं। इनकी प्रसन्नता में विकार आता ही नहीं। वनवास मिलने पर प्रसन्न। यथा मुख प्रसन्न चित चौगुन चाऊ। मिटा सोचु जनि राखै राऊ। राज्य पर लौटते हैं तो भी प्रसन्न। इसलिए गोस्वामीजी कहते हैं सर्वदा सुप्रसन्न। धनुषबाण श्रीरामावतार का विशेष चिह्न है। जिस भाँति श्रीकृष्णजी मुरलीधर हैं उसी भाँति श्रीरामजी धनुधर हैं। अवकाश में भी धनुर्भाग सुधारा करते हैं। यथा कर कमलन्हि धनुसायक फेरत। जियकी जरनि हरत हँसि हेरत। यथा दुहुँकर कमल सुधारत बाना। यह लकेस मन्त्र लगि काना। विजयी वानर सेना को साथ लिए

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

हुए हैं। अत वानरी सेना के बीच मे पुष्पक पर शोभायमान तीनो मूर्ति की अपूर्व शोभा हो रही है। इसी झांकी को नित्य श्रीगोस्वामीजी प्रणाम करते हैं।

श्लो कोशलेन्द्रपदकजमजुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ।
जानकीकरसरोजलालितौ चिन्तकम्य मनभृङ्गसङ्गिनौ ॥२॥

अर्थ कोशल के स्वामी के सुन्दर कमल से दोनो चरण जो कि कोमल हैं। और ब्रह्मा तथा महादेवजी से वन्दित हैं। जानकीजी के करकमलो से सेवित हैं। वे ध्यान करनेवालो के मनरूपी भौंरो के साथी हो।

व्याख्या कोशलेन्द्र कहकर इस काण्ड मे जैसे सरकार का कोशलपुर की राजगद्दी पर बैठना कहा। इन्द्र के समान राजभोगो की स्वीकृति कहा। यथा गुनातीत अरु भोग पुरदर। सुन्दर कोमल चरणकमलो को ब्रह्मा और शिव से वन्दित कहकर दिव्य ऐश्वर्य कहा। कोई यह न समझ ल कि प्राकृत राजा की भाँति केवल पृथिवी के ही राजा थे। राज्य स्वीकार करने के बाद बडी भीडभाड रहती है। सभी चरणसेवा के लिए उत्सुक रहते हैं। सेवा के लिए ब्रह्मा और शिवजी को भी अवसर मिलना कठिन रहता है। वन्दना मात्र कर लते हैं। जानकीजी बडी सावधानी से उन कोमल चरणो की सेवा करती हैं कि कही कडा हाथ उन चरणो पर न पड जाय। यथा गुर्वर्थं त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवन पद्मपद्भ्या प्रियाया पाणिस्पर्शाक्षमाभ्या मृजितपथिरुजो यो हरीन्द्रानुजाभ्याम्। श्रीमद्भागवत मे शुकदेवजी कहते हैं कि जिसने पिता की आज्ञा से राज्य छोडा और उन चरणो से बन बन फिरे। जो कि जानकीजी के करकमल के स्पर्श को नही सह सकते थे उन चरणो तक मन से भी गति होना कठिन है। अत श्रीगोस्वामीजी प्रार्थना करते हैं वे चरणकमल ही कृपा करके ध्यान करनेवाल के मनरूपी भौंरे के साथ साथ रहे। मनरूपी भौंरे म यह सामर्थ्य नही कि उन कमलो तक पहुँच सके। श्रीचरण जब वन बन फिरते रहे तो जन मन के पास भी आजायँ यही अभिलाषा है।

श्लो कुदु[1] इदुदर गौर सुन्दर अम्बिकापतिमभीष्टसिद्धिद।
कारुणीककलकंजलोचन नौमि शङ्करमनङ्गमोचन ॥३॥

अर्थ कुन्द के फूल, चन्द्रमा और शख की भाँति गोरे और सुन्दर, अम्बिका के पति को, मनोवाञ्छित सिद्धि देनेवाल, कारुणीक तथा सुन्दर कमल ऐसे नयनवाले कामदेव से छोडनेवाले शङ्कर को मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या सरकार नीलसरोरुह नीलमणिनील नीरधर श्याम हैं और शङ्कर भगवान् कुन्द इन्दु दर गौर है। कुन्द से गन्ध कहा। इन्दु से आह्लादकत्व कहा और शङ्ख से गौरवर्ण होना कहा। अम्बिकापति कहकर जगत्पिता होना कहा। यथा जगत मातु पितु संभु भवानी। तेहि सृंगार न कहौं बखानी। अभीष्ट सिद्धिद

१ नयुवर्णस्यात्वे। प्रा सू.। इ या उ की सधि भिन्न वर्ण से नही होती।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कहकर उदारता कहा। यथा : इच्छित फल बिनु सिव अवराधे। लहिय न कोटि जोग जप साधे। कारुणीक कहकर दीनदयालुता कहा। यथा : दीन दयालु द्रवत सुठि थोरे। सकत न देखि दीन कर जोरे। सुन्दर कमल नेत्र कहकर सुन्दरता कहा। कामदेव को इन्ही ने अनङ्ग किया है। यथा : अब ते रति तव नाथ कर होइहि नाम अनंग। अत: उससे पिण्ड छुड़ाने में भी यही समर्थ हैं। इनकी कृपा जिस पर हो जाय काम उसके पास नहीं जा सकता। इनका नाम प्रणतकल्पतरु है। इसलिए शङ्कर कहे जाते हैं। अत: गोस्वामीजी वन्दना करते हैं कि कृपा कीजिये।

## ८२. नगर निकट आगमन विधि प्रसंग

दो. रहा[1] एक दिन अवधि कर, अति आरत पुर लोग।
जहँ तहँ सोचहिं नारिनर, कृस तन राम वियोग॥
सगुन होहिं सुन्दर सकल, मन प्रसन्न सब केर।
प्रभु आगमन जनाव जनु, नगर रम्य चहुँ फेर॥
कौसल्यादि मातु सब, मन अनंद अस होइ।
आयउ प्रभु सिय अनुज जुत, कहन चहत अब कोइ॥
भरत नयन भुज दच्छिन, फरकत बारहि बार।
जानि सगुन मन हरख अति, लागे करन विचार॥१॥

अर्थ : अवधि का एक दिन शेष रहा। अतएव नगर के लोग अत्यन्त आतुर हो उठे। रामजी के वियोग में दुबले हुए स्त्री पुरुष जहाँ तहाँ सोच करने लगे। तब तक सुन्दर शकुन होने लगे। सबका मन प्रसन्न हो उठा। नगर चारों ओर से रमणीक होकर मानो प्रभु के आगमन को सूचित कर रहा था।

कौसल्या आदि सब माताओं के मन में ऐसा आनन्द हो रहा था मानो कोई अभी आकर कहना चाहता था कि प्रभु सीताजी और लक्ष्मणजी के साथ आ गये। भरतजी की दाहिनी आँख और दाहिनी भुजा बार बार फड़क रही थी। शकुन जानकर मनमे बड़ा हर्ष हुआ। तब विचार करने लगे।

व्याख्या : यह चौदह वर्ष की अवधि का अन्तिम दिन है। दूसरे दिन रामजी को आ जाना चाहिए। दूर दूर तक चर छूटे हैं। पर आने की खबर कही से नही आ रही है। जब अभी तक कही पता नही है तब कल कैसे आ जायेंगे। यह समझकर पुर के लोग अत्यन्त आर्त हो रहे हैं। जैसे जल के अत्यन्त कम हो जाने पर मछलियाँ अत्यन्त आर्त हो जाती हैं। कौसल्याम्बाने पहिले ही कहा था : अवधि अंबु प्रिय परिजन मीना। तुम करुनाकर धरम धुरीना। अस बिचारि सोइ

---

१. यहाँ से उमा के सातवें प्रश्न : राज बैठि कीन्ही बहु लीला। सकल कहहु संकर सुख लीला। का उत्तर आरम्भ होता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

करेहु उपाई। सबहि जिअत जेहि भेंटेहु आई। सब नरनारी जहाँ तहाँ सोच रहे हैं। निदहिं आपु सराहहिं मीना। धिग जीवन रघुबीर बिहीना। जौं पै प्रिय बियोगु बिधि कीन्हा। तौ कस मरनु न माँगे दीन्हा। दशा उनकी यह है कि रामजी के वियोग मे दुबले हो गये हैं।

अभी तक प्रभु का समाचार तो नही मिला और लोग सोच रहे है पर भीतर से मन प्रसन्न होता चला आ रहा है। अयोध्या सरकार के वियोग मे भयानक दिखायी पडी थी। यथा : लागति अवध भयावनि भारी। मानहुँ काल राति अँधियारी। अब रमणीय दिखायी पडती है मानो प्रभु के आगमन की सूचना दे रही अयोध्यापुरी सनाथ होने जा रही है। इसी से प्रभु शब्द का प्रयोग किया।

चौदह वर्ष के बाद आज कौसल्या आदि माताओ के मन मे आप से आप आनन्द का उद्रेक हो रहा है। ऐसा बोध हो रहा है कि सीताजी और लक्ष्मणजी के सहित सरकार के आगमन की कोई सूचना दिया ही चाहता है। जिस भाँति विपत्ति के आने के पहिले उसकी छाया आ जाती है। ग्रहण लगने के पहिले ही वेध लग जाता है। उसी भाँति आनन्द के आगमन के पहिले उसका प्रकाश आ जाता है।

भरतजी को सुधबुध नही है। सरकार के ध्यान मे मग्न है। पुलकगात हिय सिय रघुबीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू। जब उनकी दक्षिण भुजाएँ और नेत्र बार बार फडकने लगे तब ख्याल हुआ कि यह तो सगुन हो रहा है। मन मे अत्यन्त हर्ष हुआ। क्योकि सगुन प्रतीति भेट प्रिय केरी। तब विचार करने लगे।

रहेउ एकु दिनु अवधि अधारा। समुझत मन दुख भएउ अपारा॥
कारन कवन नाथु नहि आएउ। जानि कुटिल किधौ मोहि बिसराएउ॥१॥

अर्थ : अवधि का आधारभूत एक दिन रह गया। यह समझते हुए मन मे अपार दु:ख हुआ कि क्या कारण है कि नाथ नही आये। क्या मुझे कुटिल जानकर उन्होने भुला दिया।

व्याख्या : सरकार के वनवास की अवधि और अवधवासियो के जीवन की एक ही है। यथा : विषम बियोग न जाइ बखाना। अवधि आस सब राखहि प्राना। अवधि पूरी होने के पहिले ही कम से कम यह समाचार तो मिल जाना ही चाहिए कि सरकार आ गये और इतनी दूरी पर हैं। पर ऐसा कोई समाचार नही मिला। अतः यही सिद्ध है कि नही आये। ऐसा समझते ही मन मे ऐसा दु:ख हुआ जिसका पारावार नही।

भरतजी अपने मन में कारण ढूँढ रहे हैं कि न आने का क्या कारण हुआ। क्या लक्ष्मणजी नही अच्छे हुए? क्या लका मे अभी युद्ध चल ही रहा है पर प्रभु के प्रताप के जानकार भरतजी के मन मे ये कारण यथेष्ट नही प्रतीत हुए। तब कहते हैं कि क्या मुझे कुटिल जानकर उन्होने भुला दिया। मैंने कहा था : तुलसी

ankurnagpal108@gmail.com



बीते अवधि प्रथम दिन जौं रघुवीर न आइहौं। तौ प्रभु चरन सरोज सपथ जीवत परिजनहि न पइहौं। सो मेरी प्रतिज्ञा भूलने योग्य नही थी। क्या सरकार ने मुझे कुटिल समझकर उस प्रतिज्ञा को दम्भ मात्र समझा। इसलिए मुझे भुला दिया? भरतजी को बड़ी आस्था है कि सरकार कम से कम मुझे तो नही भूल सकते और बात भी ऐसी ही थी। यथा : भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कलप सम जात। भरतजी सोचते है कि देखो कैसे कुअवसर में मैंने हनुमान् को बाण मारा। मुझे कुटिल समझने के लिए यथेष्ट कारण है तो क्या इससे मुझे भुला देना ही उचित समझा?

अहह धन्य लछिमनु बड़ भागी। राम पदारविंद अनुरागी॥
कपटी कुटिल मोहि प्रभु चीन्हा। ताते नाथ संग नहि लीन्हा॥२॥

अर्थ : अहो! बड़भागी तो लक्ष्मण हैं जो रामजी के चरण कमलों के अनुरागी हैं। प्रभु ने मुझे कपटी कुटिल पहिचाना। इसलिए नाथ ने सङ्ग नही लिया।

व्याख्या : धन्य तो लक्ष्मणजी हैं। जिन्होंने स्वामी के कार्य के लिए ललकार कर शत्रुओं से लोहा लिया। मेरे भाग्य में यह सेवा नही थी। अतः लक्ष्मणजी छोटे होने पर भी भाग्य में बड़े हैं। उन्हें रामजी के चरणों में सच्चा अनुराग है। मेरा अनुराग झूठा है। मैं कपटी और कुटिल हूँ। मैं सठ सब अनरथ कर हेतू। बैठि बात सब सुनहुँ सचेतू। सो सरकार ने मुझे ठीक पहिचान लिया। मैं कहता रहा : न तरु फेरिअहि बंधु दोउ नाथ चलौं मैं साथ। पर सरकार ने साथ न लिया।

जौं करनी समुझै प्रभु मोरी। नहि निस्तार कलप सत कोरी॥
जन अवगुन प्रभु मान न काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ॥३॥

अर्थ : यदि प्रभु मेरी करणी पर ध्यान दें तो मेरा निस्तार करोड़ कल्प मे भी नही हो सकता। पर प्रभु अपने जन के अवगुण को गिनते ही नही। क्योंकि दीनबन्धु हैं और स्वभाव उनका अत्यन्त कोमल है।

व्याख्या : भरतजी मन में कहते हैं कि सरकार का मुझे कपटी कुटिल समझना ठीक है। मेरी करणी ही ऐसी है। मेरे कारण राज्याभिषेक रुका। चौदह वर्ष का बनवास हुआ। पिता की मृत्यु हुई। वन में सीताहरण हुआ। राक्षसों से संग्राम ठना। लक्ष्मणजी घायल हुए। हनुमानजी सञ्जीवनी बूटी लाने के लिए भेजे गये। सो उन्हे मैंने बाण मारा। मेरी इन करणियों पर सरकार यदि ध्यान दें तो मेरा निस्तार अनन्त काल तक नहीं हो सकता।

परन्तु मुझे सरकार के स्वभाव का भरोसा है। मैं उनका जन : तदीय हूँ और वे जन के अवगुण को भी मानते नहीं। यथा : अपराध अगाध भये जन ते अपने उर आनत नाहिन जू। इत्यादि। मैं दीन हूँ और वे दीनबन्धु हैं। अत्यन्त कोमल स्वभाव हैं। तुरन्त द्रवीभूत हो जाते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


मोरे जिअ भरोस दृढ सोई। मिलिहहिं रामु सगुन सुभ होई ॥
बीते अवधि रहहि जौं प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना ॥४॥

अर्थ उसी का पक्का भरोसा मेरे मन मे है। रामजी मिलेंगे शुभ शकुन हो रहा है। यदि अवधि बीतने पर भी मैं जीता रह गया तब तो मेरे समान अधम जगत् मे कौन होगा ?

व्याख्या अपनी करनी को सोचकर रामजी के स्वभाव मे विकार कल्पना करना ठीक नही जंचता। सरकार दीनबन्धु हैं। अत्यन्त मृदुल स्वभाव हैं। मेरी करनी पर ध्यान देकर मेरा परित्याग नही करेंगे। मैं दीन हूँ और वे दीनदयाल हैं। निश्चय दया करेंगे। दृढ भरोसा यही है और इसी की पुष्टि शुभ सकुन से हो रहा है। अत रामजी मिलेंगे। यथा यद्यपि मम अवगुन अपार ससार योग्य रघुराया। तुलसिदास निज गुन बिचार करुनानिधान करु दाया।

प्रेमी का चित्त सदा पापशङ्की होता है। अत भरतजी फिर सोचते हैं कि मिलना निश्चय होने पर भी अवधि के भीतर ही मिलाप होना चाहिए। अवधि बीतने के साथ ही मेरे प्राणो का विसर्जन होना चाहिए। परन्तु मुझ अपने प्राणो का विश्वास नही। यह कई बार धोखा दे चुका है। सरकार का बनवास सुनने पर भी यह नही गया। यथा बिनु पनहिन्ह पयादेहि पाँये। सकर साखि रहेउँ एहिघाये। जब आँखो से बल्कल बसन पहिने देखा उस समय भी इन्हे चला जाना था पर ये नहीं गये। यथा अब सबु आँखिन्ह देखेउँ आई। जिअत जीव जड सबइ सहाई। अत इसका क्या ठिकाना है। सम्भव है कि अवधि बीतने पर भी यह न जाय। तब तो मेरे सा अधम कौन होगा ? सरकार के चरण की शपथ भी झूठ ही पड जायगी। यथा तौ प्रभु चरन सरोज सपथ जिवत परिजनहि न पैहौ।

दो राम बिरह सागर महुँ, भरतु मगन मन होत।
बिप्र रूप धरि पवन सुत, आइ गयउ जनु पोत ॥
बैठे देखि कुसासन, जटा मुकुट कृस गात।
राम राम रघुपति जपत, स्रवत नयन जल जात ॥१॥

अर्थ रामजी के बिरह सागर मे भरतजी डूब रहे थे। इतने म ब्राह्मण का रूप धारण करके पवन पुत्र हनुमान्जी जहाज की भांति आगये। देखा कि भरतजी कुशा के आसन पर बैठे हुए हैं। शरीर दुर्बल हो रहा है। सिर पर जटा का ही मुकुट है। राम राम रघुपति ऐसा जप कर रहे हैं और उनको आँख से आँसू बह रहे हैं।

व्याख्या भरतजी के दु ख का पारावार नहीं है। प्राण सकट उपस्थित है। इसीसे बिरह सागर में भरतजी का डूबना कहते हैं। तब से जहाज आगया। सरकार की आज्ञा हनुमान्जी को हुई थी कि धरि बटुरूप अवध पुर जाई। भरतहि कुसल हमारि सुनायेहु। अत विप्ररूप धारण करके हनुमान्जी आगये। मानो डूबते हुए

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



को जहाज का सहारा मिल गया। इसी भाँति हनुमान्‌जी द्वारा सीताजी की भी रक्षा हुई। यथा : बूड़त बिरह जलधि हनुमाना। भयउ तात मो कहुँ जल जाना। हनुमान्‌जी ने जाकर भरतजी को देखा। जिस अवस्था में चौदह वर्ष पहिले नन्दि ग्राम में ठहरे थे ठीक वही अवस्था चली जा रही है। यथा : पहिले : महि खनि कुस साथरी सँवारी। सो : बैठे देखि कुसासन। पहिले : जटा जूट सिर मुनि पट धारी… देह दिनहि दिन दूबरि होई। सो अब : जटा मुकुट कृस गात। पहिले : पुलक गात हिय सिय रघुबीरू। जीह नाम जप लोचन नीरू। सो अब राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जल जात।

देखत हनूमान अति हरषेउ। पुलक गात लोचन जलु बरषेउ॥
मन महुँ बहुत भाँति सुख मानी। बोलेउ स्रवन सुधा सम बानी॥१॥

अर्थ : देखते ही हनुमान्‌जी को बड़ा आनन्द हुआ। उनके रोंगटे खड़े हो गये। आँख से आँसू की झर लग गयी। मन में बहुत प्रकार से सुख माना और श्रवणामृत वाणी बोले।

व्याख्या : हनुमान्‌जी भरतजी की ऐसी दशा देखकर बड़े हर्षित हुए। मैत्री करुणा मुदिता और उपेक्षा का नित्य वास महात्माओं के हृदय में रहता है। सो भरतजी का रामानुराग देखकर हनुमान्‌जी के हृदय में मुदिता का उदय हुआ। हनुमान्‌जी को रघुनाथ कीर्तन बड़ा प्रिय है। यथा : यत्र यत्र रघुनाथकीर्तनं तत्र तत्र कृतमस्तकाञ्जलिम्। बाष्पवारिपरिपूर्णलोचनं मारुतिं नमत राक्षसान्तकम्। जहाँ जहाँ रघुनाथजी का कीर्तन होता है वहाँ वहाँ मस्तक पर अञ्जुलि बाँधे हुए आँखों में आँसू भरे हुए उपस्थित हो जाते हैं। सो यहाँ परम भक्त भरतजी को : राम राम रघुपति : नामका कीर्तन करते हुए देखकर सात्त्विक भाव हुआ। रोमाञ्च हो गया और आँसू की झर लग गयी। : श्री मारुति को राम नाम सुना के प्रसन्न कर लेना चाहिए।

हनुमान्‌जी को भरतजी के देखने से बहुत प्रकार से सुख हुआ। भरतजी सरकार के विरह से अतिव्याकुल हैं। अतः आशा बँधी कि अब राज्याभिषेक भी देखेंगे। ऐसे परम भक्त को ऐसे अवसर पर परमानन्द का समाचार देने का सुअवसर भी मिला। अतः भरत के श्रवण के लिए अमृत सी वाणी बोले। ऐसे अवसर पर हनुमान्‌जी श्रवणामृत वाणी बोलते ही हैं। सीताजी के विरह सागर में मग्न होते समय भी ऐसी ही वाणी बोले। भगवती कहती हैं कि : स्रवनामृत जेहि कथा सुनाई। कही सो प्रगट होत किन भाई।

जासु बिरह सोचहु दिन राती। रटहु निरंतर गुनगन, पाँती॥
रघुकुल[१] तिलक सुजन सुखदाता। आयेउ कुसल देव मुनित्राता॥२॥

---

१. यहाँ हेतु अलंकार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ  जिसके विरह म दिन रात सोचा करते हो और जिसके गुण गण की पक्तिया को निरन्तर रटा करते हो वही रघुकुल के तिलक सुजन के सुख देनेवाले और देवता तथा मुनियो के रक्षक कुशल पूर्वक आगये।

व्याख्या  रामजी आगये ऐसा हनुमान्जी ने नही कहा। जिस भाँति अकस्मात् शोक के[1] समाचार का धक्का मन मे लगता है उसी भाँति अति आनन्द क समाचार का भी धक्का लगता है। अत आकाक्षा पूर्वक अभिमुख करने के लिए कहते हैं कि जिसके विरह मे दिन रात सोचते हो। इससे यह भी सूचित किया कि वक्ता उनके हृद्गत भावो से भली भाँति परिचित है। बात को और भी स्पष्ट करते हुए कहते हैं कि जिसके गुण गणो का निरन्तर रट लगाये रहते हो। अब उनके गुणगण कहते हैं कि वे रघुकुल तिलक सुजन सुखदाता और देव मुनि त्राता हैं। इसस राक्षसो का विनाश भी सूचित किया। इस भाँति परोक्षरूप से रामजी की कहकर बतलाते हैं कि वे कुशल मे आगये। आकाक्षा बनी रहने देने के लिए पूरा समाचार नही दिया।

रिपुरन जीति सुजस सुर गावत। सीता सहित अनुज प्रभु आवत॥
सुनत[1] बचन बिसरे सब दूखा। तृषावत जिमि पाइ पियूषा॥३॥

अर्थ  देवताओ द्वारा यश गाया जा रहा रहा है। शत्रु को जीतकर सीताजी और छोटे भाई के साथ सरकार आरहे हैं। यह बात सुनते ही भरतजी को सब दु ख भूल गया है। जैसे प्यासे को अमृत मिलने से सब दु ख भूल जाता है।

व्याख्या  हनुमान्जी से ही भरतजी को राक्षसो से सग्राम का पता चला था। यथा  कपि सब चरित समास बखाने। भये दुखी मनमँहु पछिताने। अत पहिले रण का ही समाचार देते हैं  रिपुरन जीति सुजस सुर गावत। रावण बध के बाद देवताओ की स्तुति देख चुके हैं। उसीका वर्णन कर रहे हैं। अब पूरा समाचार से आकाक्षा पूरी करते हुए कहते हैं  सीता सहित अनुज प्रभु आवत।

विरह व्यथा हानि ग्लानि आदि जितने दु ख थे ये सब भरतजी इस बचन के सुनते ही भूल गये। आयेउ कुसल देव मुनि त्राता  इस वचन से सब दु ख नही गया था। क्योकि सीताजी और लक्ष्मणजी विषयक उसमे कोई चर्चा नही थी और सुनि रन घायल लखन परे हैं आदि समाचार सुन चुके हैं। अत सीताजी तथा लक्ष्मण के विषय मे बडी चिन्ता थी। सीता सहित अनुज प्रभु आवत  इस वचन से सब दु ख से ऐसा भूला जैसे प्यासे को अमृत मिलने से सब दु ख भूल जाता है। प्यासा महा कष्ट मे रहता है। उसका कण्ठ सूख जाता है। शरीर म आग लगी रहती है। उसे पानी चाहिए सो अमृत मिला। भरतजी को राम लक्ष्मण जानकी के आगमन के समाचार सुनने को प्यास है। सो यह समाचार मिला कि शत्रुओ पर विजय प्राप्त हुई। देवता लोग सुयश गा रहे हैं और राम लक्ष्मण जानकी आरहे हैं।

---

१ यहाँ प्रहर्षण द्वितीय अलकार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अतः इस समाचार मे स्वाद और तोष चाहे हुए समाचार से अधिक था। इसलिए अमृत प्राप्ति से उपमा दी।

को तुम तात कहाँ तें आए। मोहि परम प्रिय बचन सुनाए ॥
मारुत सुत मै कपि हनुमाना। नाम मोर सुनु कृपा निधाना ॥४॥

अर्थ : हे तात ! तुम कौन हो ? कहाँ से आये हो ? मुझे तुमने परम प्रिय वचन सुनाया है। मैं पवन पुत्र हनुमान् नामी बन्दर हूँ। हे कृपानिधान ! सुनिये मेरा यही नाम है

व्याख्या : परमप्रिय समाचार देनेवाला भी परमप्रिय हो जाता है। इससे भरतजी तात सम्बोधन करते हैं। ब्राह्मण रूप मे हनुमान्‌जी को देखकर नही पहिचान सके। अपने भेजे हुए दूतो मे से भी नही मालूम होते। इसलिए भरतजी दो प्रश्न करते हैं। १ तुम कौन हो ? २ कहाँ से आये हो ? प्रश्न पूछने का कारण देते हैं कि मोहि परम प्रिय बचन सुनाये। ऐसे वचन सुनानेवाले का परिचय पाना आवश्यक है। तुम्हे निषादराज ने भेजा है या भरद्वाज मुनि ने भेजा है या और किसी मेरे भेजे हुए दूतो मे से किसी ने भेजा है या सरकार ने ही भेजा है ? भेजनेवाले का भी पता लगने से दृढ विश्वास होगा।

पहिले प्रश्न का उत्तर देते हुए हनुमान्‌जी कहते हैं कि मै पवन का पुत्र हूँ। भाव यह कि मेरा पवन के समान वेग है। बहुत दूर से भी क्षण भर मे आ सकता हूँ। दूसरी बात यह है कि जो रूप आप मेरा देख रहे हैं वह मेरा यथार्थ रूप नही है। मैं कपि हूँ हनुमान् मेरा नाम है। इतना कहने से हनुमान्‌जी ने वह परिचय दे दिया जो कि भरतजी के बाण से मूर्च्छित होने पर जागने के बाद दिया था। अब दूसरे प्रश्न का भी उत्तर देते हैं।

दीन बन्धु रघुपति कर किंकर। सुनत भरत भेंटे उठि सादर ॥
मिलत प्रेमु नहि हृदय समाता। नयन स्रवत जल पुलकित गाता ॥५॥

अर्थ : मैं दीनबन्धु रघुपति का सेवक हूँ। सुनते ही भरतजी उठकर आदर के साथ मिले। मिलने मे प्रेम हृदय मे समाता नही था। आँखो से आँसू बह रहे थे और रोमाञ्च हो रहा था।

व्याख्या : सरकार की आज्ञा थी इसलिए हनुमान्‌जी ब्राह्मण के रूप मे आये पर महात्मा से दुराव नही होना चाहिए। इसलिए अपना कपि होना प्रकट किया। बडे के सामने पिता के नाम के साथ अपने नाम लेने की विधि है इसलिए पिता का भी नाम लिया। भरतजी ने तात सम्बोधन किया था। इसलिए हनुमान्‌जी उन्हे कृपानिधान कहकर सम्बोधन कर रहे हैं। अब दूसरे प्रश्न कहाँ ते आये का उत्तर देते कहते हैं। बन्दर को सेवक रूप मे स्वीकार करनेवाला दूसरा दीनबन्धु कौन है सिवा रघुपति के ? मैं उन्ही का किंकर हूँ। भाव यह है कि उन्ही का भेजा आ रहा हूँ। सुनते ही आदर के लिए भरतजी उठकर खडे हो गये और हनुमान्‌जी से

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


गले मिले। या यों कहिये कि प्रेमाधिक्य के कारण हनुमान्‌जी से चिपक गये। प्रेम इतना बढ़ा हुआ है कि हृदय में उसके लिए यथेष्ट स्थान नहीं है। अतः वह अश्रु के मिस से तथा पुलक के मिस से बाहर व्यक्त होकर रोम रोम से निकल रहा है।

कपि तव[1] दरस सकल दुख बीते। मिले आजु मोहि राम पिरीते ॥
बार बार बूझी कुसलाता। तो कहुँ देउँ काह सुनु भ्राता ॥६॥

अर्थ : हे कपि ! तुम्हारे दर्शन से सब दु.ख समाप्त हो गये। आज मुझे प्यारे रामजी ही मिल गये। बार बार कुशल पूछा। सुनो तुम्हे क्या दूँ ?

व्याख्या : हनुमान्‌जी का वचन सुनने से ही भरतजी का सब दुख भूल गया। यथा : सुनत बचन बिसरे सब दूखा। अतः कहते हैं कि कपि तव दरस सकल दुख बीते। भरतजी का वचन सबके ध्यान देने योग्य है। हनुमान्‌जी के दर्शन से सब दुःखों का नाश होता है। भरतजी कहते हैं कि सब दुःख तो रामजी के दर्शन से मिटता है। यथा : सब दुख मिटिहि राम पद पेखी सो तुम्हारे दर्शन से मिट गया। अतः तुम्हारा मिलना और प्यारे राम का मिलना एक ही बात है। भाव यह कि तुम्हारे द्वारा रामजी कल मिलने के बदले आज ही मिल गये। अतः तुम्हारे द्वारा प्राण की रक्षा हुई तुम्हारा दर्शन रामजी के दर्शन के तुल्य है। प्यारे का पत्र प्यारा होता है। प्यारे का दूत प्यारा होता है।

भरतजी को एक बार कुशल पूछने में सन्तोष नहीं। बार बार कुशल पूछते हैं। प्रेमी को प्रेमपात्र के कुशल सुनने मे इतना सुख है कि बार बार सुनना चाहता है। शुभ समाचार देनेवाले को राजाओ के यहाँ से पुरस्कार मिलता है। यथा : प्रथम जाइ जिन बचन सुनाये। भूषन बसन भूरि तिन पाये। अतः भाई का सम्बन्ध जोड़ते हुए पूछते हैं कि तुम्हे क्या दें ? जो माँगो सो दें।

यह संदेस सरिस जगमाही। करि बिचार देखेउ कछु नाही ॥
नाहिन तात उरिन मैं तोही। अब प्रभु चरित सुनावहु मोही ॥७॥

अर्थ : इस सन्देश के सदृश संसार मे कुछ है नहीं। मैंने विचार करके देख लिया। हे तात ! मैं तुमसे उऋण नहीं हूं अब मुझे प्रभु का चरित सुनावो।

व्याख्या : यदि कहा जाय कि पूछते क्यो हो ? अपने मन से समझकर जो उचित समझो सो दो। इस पर कहते हैं कि बदले मे समान मूल्य वस्तु देनी चाहिए। सो मैने विचार करके देख लिया कि ससार मे तो कोई ऐसा पदार्थ नहीं है जो इस सन्देश के तुल्य हो। अतः तुम्हारी जो इच्छा हो सो बतलाओ वही दूँ। हनुमान्‌जी को चुप देखकर भरतजी ने समझ लिया कि यह रामकिङ्कर है। ब्रह्मपद के वैभव का विरागी है इसे कोई क्या दे सकता है ? इसलिए कहते हैं कि मै तुमसे

१. यहाँ विशेष : द्वितीय : अलकार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उऋण नही। हनुमान्‌जी ने घर भर को ऋणी बनाया। रामजी ऋणी थे लक्ष्मणजी थे ही सीताजी थी ही आज भरतजी भी ऋणी हो रहे हैं। हनुमान्‌जी ने प्रथम मिलन में प्रभु का चरित्र संक्षेप में कहा था। क्योंकि बड़ी जल्दी में थे अब कोई जल्दी नही है। अतः प्रभु चरित के रसिक भरतजी सब चरित ब्यौरेवार सुनना चाहते हैं। भरतजी श्रोता हनुमान्‌जी वक्ता नन्दिग्राम में राम कथा हो रही है।

तब हनुमंत नाइ पद माथा। कहे सकल रघुपति गुन गाथा ॥
कहु कपि कबहुँ कृपाल गुसाईं। सुमिरहि मोहि निज दास की नाईं ॥८॥

अर्थ : तब हनुमान्‌जी ने चरणों मे सिर नवाकर रामजी के सब गुणों की गाथा कह सुनायी। हे कपि ! कहो कि कभी कृपाल स्वामी रामजी मुझे निज दास की भांति स्मरण करते हैं ?

व्याख्या : यहाँ वक्ता ही श्रोता को प्रणाम करके रामचरित्र का कथन कर रहा है। क्योकि हनुमान्‌जी सन्देशहर की भाँति चरित्र वर्णन करते हैं। 'यहाँ सब चरित्र वर्णन से अभिप्राय ब्यौरेवार वर्णन से है। नही तो लक्ष्मणजी के लिए संजोवनी बूटी लाने के समय भरतजी से संक्षेप में प्रभु चरित कह चुके हैं। यथा : कपि सब चरित समास बखाने।

चरित्र सुनने पर भरतजी प्रश्न करते हैं कि हनुमान्‌जी ! कभी सरकार भी मेरा स्मरण निज दास की भाँति करते हैं ? भाव यह कि प्रेमी को इस बात के सुनने की बड़ी उत्सुकता रहती है कि उसका प्रेम पात्र भी उसे स्मरण करता है। अतः भरतजी पूछते हैं। निज दास कहने का भाव यह कि सरकार को निज दास बडे प्रिय होते हैं। यथा : तेहि ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा। भरतजी कहते हैं कि सरकार कृपाल हैं। अन्तर्यामी भी प्रभु हैं। सम्भव है कि कभी निजदास की भाँति स्मरण किया हो।

छं. निज दास ज्यौं रघुवंस भूपन कबहु मम सुमिरन करयौ।
सुनि भरत बचन विनीत अति कपि पुलक तन चरनन्हि परयौ ॥
रघुवीर निज मुख जासु गुनगन कहत अगजगनाथ जो।
काहे न होइ बिनीत परम पुनीत सद्गुन सिधु सो ॥

अर्थ : अपने दास की भाँति रघुवंश भूषण ने क्या कभी मेरा भी स्मरण किया है ? भरतजी का ऐसा अत्यन्त विनीत वचन सुनकर हनुमान्‌जी को रोमाञ्च हो गया और वे चरणो पर गिर गये। जो रघुवीर चराचर के स्वामी है। वे जिसके गुण गण का अपने मुख से वर्णन करते है वह ऐसा विनीत परम पुनीत और सद्गुण का सिन्धु क्यों न हो ?

व्याख्या : सुमिरहिं मोहि निज दास की नाईं : इस पुरइन का कमल है : निज दास ज्यौ रघुवंश भूपन कबहुँ मम सुमिरन करयौ। भरतजी को प्रभु द्वारा निजदास

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


की भाँति स्मरण किये जाने की बडी उत्कण्ठा है। भाई की भाँति स्मरण किये जाने की नही। दास का पद कितना बडा है यह बात इतने से ही समझ लेना चाहिए। क्योंकि प्रभु निजदास मे और अपने मे अन्तर नही मानते। आगे कहेगे कि भरतहि मोहि कछु अन्तर काऊ। यह अति विनीत वचन है जिसमे अभिमान का कही गन्ध भी नही है और प्रेम भरा पडा है। ऐसे वचन को सुनने से हनुमान्‌जी को पुलक हो गया और वे भरतजी की महत्ता का अनुभव करते हुए उनके चरणो पर गिर पडे और बोले कि सरकार चराचर के नाथ हैं। जिसके गुणगण का अपने मुख से बखान करते हैं उसे परम विनीत परम पुनीत और सद्‌गुण सिन्धु होना ही चाहिए। भाव यह है कि आप के इसी विनय पावनता और गुणो पर प्रभु आसक्त हैं। और आप के गुणगणो की अपने मुख से प्रशसा किया करते हैं। यथा : भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात। तापस वेष गात कृस जपत निरन्तर मोहिं। देखौ वेगि सो जतनु करु सखा निहोरौं तोहि। बीते अवधि जाउँ जौं जिअत न पावौं वीर। सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु पुनि पुनि पुलक सरीर। निज दास ज्यों रघुवश भूषन कबहुँ मम सुमिरन करयो। यह प्रश्न ही भरतजी की परम विनीतता का द्योतक है। सुनत बचन बिसरे सब दूखा। तृषावन्त जिमि पाइ पियूखा। यह उनके परम पावनता का द्योतक है। और बैठे देखि कुसासन जटामुकुट कृसगात। राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात। यह उनके सद्‌गुणो का द्योतक है। यथा यस्यातिभक्ति।

दो राम प्रानप्रिय नाथ तुम्ह, सत्य बचन मम तात।
पुनि पुनि मिलत भरत सुनि, हर्ष न हृदय समात ॥२॥

अर्थ हे नाथ! तुम रामजी को प्राण के समान प्यारे हो। हे तात मेरा वचन सत्य है। यह सुनकर भरतजी बार बार मिलते हैं और हर्ष हृदय मे समाता नही।

व्याख्या वाक्य के तात्पर्यार्थ के ग्रहण करनेवाले हनुमान्‌जी ने तुरन्त समझ लिया कि भरतजी के प्रश्न का यह अभिप्राय है कि सरकार को मैं प्रिय हूँ या नही ? इस पर कहते हैं आप रामजी को प्राण से प्यारे हैं। इसीलिए हनुमान्‌जी नाथ कहकर सम्बोधन करते हैं कि मैं आप मे।उन मे अन्तर नही देखता : जैसे वे मेरे नाथ हैं वैसे ही आप भी हैं। सत्य वचन मम तात : कहने का भाव यह है कि मैं हनुमान् हूँ। मेरा वचन सदा सत्य होता है। अथवा प्रेम से कातर चित्त को विश्वास दिलाने के लिए कहते हैं कि मैं आप के सन्तोष के लिए नही कहता हूँ। जो वस्तु स्थिति है सो कहता हूँ। भरतजी ने हनुमान्‌जी से भाई का नाता जोड रक्खा है। इसलिए हनुमान्‌जी तात सम्बोधन करते हैं। यह सुनकर भरतजी प्रेमोद्रेक मे हनुमान्‌जी को बार बार हृदय लगाते हैं। क्योंकि उन्हे हनुमान्‌जी के वचन से ऐसा हर्ष हुआ है जो हृदय मे समाता नही।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उऋण नहीं। हनुमान्‌जी ने घर भर को ऋणी बनाया। रामजी ऋणी थे लक्ष्मणजी थे ही सीताजी थी ही आज भरतजी भी ऋणी हो रहे हैं। हनुमान्‌जी ने प्रथम मिलन में प्रभु का चरित्र संक्षेप मे कहा था। क्योंकि बडी जल्दी मे थे अब कोई जल्दी नही है। अत: प्रभु चरित के रसिक भरतजी सब चरित ब्यौरेवार सुनना चाहते हैं। भरतजी श्रोता हनुमान्‌जी वक्ता नन्दिग्राम में राम कथा हो रही है।

तब हनुमंत नाइ पद माथा। कहे सकल रघुपति गुन गाथा॥
कहु कपि कबहुँ कृपाल गुसाईं। सुमिरहि मोहि निज दास की नाईं॥८॥

अर्थ : तब हनुमान्‌जी ने चरणो मे सिर नवाकर रामजी के सब गुणो की गाथा कह सुनायी। हे कपि ! कहो कि कभी कृपाल स्वामी रामजी मुझे निज दास की भाँति स्मरण करते हैं ?

व्याख्या : यहाँ वक्ता ही श्रोता को प्रणाम करके रामचरित्र का कथन कर रहा है। क्योंकि हनुमान्‌जी सन्देशहर की भाँति चरित्र वर्णन करते हैं। यहाँ सब चरित्र वर्णन से अभिप्राय ब्यौरेवार वर्णन से है। नही तो लक्ष्मणजी के लिए सजीवनी बूटी लाने के समय भरतजी से संक्षेप मे प्रभु चरित कह चुके हैं। यथा : कपि सब चरित समास बखाने।

चरित्र सुनने पर भरतजी प्रश्न करते हैं कि हनुमान्‌जी ! कभी सरकार भी मेरा स्मरण निज दास की भाँति करते हैं ? भाव यह कि प्रेमी को इस बात के सुनने की बडी उत्सुकता रहती है कि उसका प्रेम पात्र भी उसे स्मरण करता है। अत: भरतजी पूछते हैं। निज दास कहने का भाव यह कि सरकार को निज दास बडे प्रिय होते हैं। यथा : तेहि ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा। भरतजी कहते हैं कि सरकार कृपाल हैं। अन्तर्यामी भी प्रभु है। सम्भव है कि कभी निजदास की भाँति स्मरण किया हो।

छं. निज दास ज्यौं रघुबंस भूषन कबहु मम सुमिरन करयौ।
सुनि भरत बचन बिनीत अति कपि पुलक तन चरनन्हि परयौ॥
रघुबीर निज मुख जासु गुनगन कहत अगजगनाथ जो।
काहे न होइ बिनीत परम पुनीत सद्‌गुन सिंधु सो॥

अर्थ : अपने दास की भाँति रघुवंश भूषण ने क्या कभी मेरा भी स्मरण किया है ? भरतजी का ऐसा अत्यन्त विनीत वचन सुनकर हनुमान्‌जी को रोमाञ्च हो गया और वे चरणों पर गिर गये। जो रघुवीर चराचर के स्वामी हैं। वे जिसके गुण गण का अपने मुख से वर्णन करते हैं वह ऐसा विनीत परम पुनीत और सद्‌गुण का सिन्धु क्यो न हो ?

व्याख्या : सुमिरहिं मोहि निज दास की नाईं : इस पुरइन का कमल है : निज दास ज्यौं रघुबंस भूषन कबहुँ मम सुमिरन करयो। भरतजी को प्रभु द्वारा निजदास

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



की भाँति स्मरण किये जाने की बड़ी उत्कण्ठा है। भाई की भाँति स्मरण किये जाने की नही। दास का पद कितना बड़ा है यह बात इतने से ही समझ लेना चाहिए। क्योकि प्रभु निजदास मे और अपने मे अन्तर नही मानते। आगे कहेगे कि : भरतहि मोहि कछु अन्तर काऊ। यह अति विनीत वचन है जिसमे अभिमान का कही गन्ध भी नही है और प्रेम भरा पडा है। ऐसे वचन को सुनने से हनुमान्‌जी को पुलक हो गया और वे भरतजी की महत्ता का अनुभव करते हुए उनके चरणो पर गिर पडे और बोले कि सरकार चराचर के नाथ हैं। जिसके गुणगण का अपने मुख से बखान करते हैं उसे परम बिनीत परम पुनीत और सद्‌गुण सिन्धु होना ही चाहिए। भाव यह है कि आप के इसी विनय पावनता और गुणो पर प्रभु आसक्त हैं। और आप के गुणगणो की अपने मुख से प्रशसा किया करते हैं। यथा : भरत दसा सुमिरत मोहि निमिष कल्प सम जात। तापस वेष गात कृस जपत निरन्तर मोहि। देखै वेगि सो जतनु करु सखा निहोरौं तोहि। बीते अवधि जाउँ जौं जिअत न पावौ वीर। सुमिरत अनुज प्रीति प्रभु पुनि पुनि पुलक सरीर। निज दास ज्यो रघुवश भूषन कबहुँ मम सुमिरन करयो। यह प्रश्न ही भरतजी की परम विनीतता का द्योतक है। सुनत बचन विसरे सब दूखा। तृषावन्त जिमि पाइ पियूखा। यह उनके परम पावनता का द्योतक है। और वैठे देखि कुसासन जटामुकुट कृसगात। राम राम रघुपति जपत स्रवत नयन जलजात। यह उनके सद्‌गुणो का द्योतक है। यथा : यस्यास्तिभक्ति।

दो. राम प्रानप्रिय नाथ तुम्ह, सत्य वचन मम तात।
पुनि पुनि मिलत भरत सुनि, हर्ष न हृदय समात ॥२॥

अर्थ : हे नाथ! तुम रामजी को प्राण के समान प्यारे हो। हे तात मेरा वचन सत्य है। यह सुनकर भरतजी वार वार मिलते हैं और हर्ष हृदय में समाता नही।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सो. भरत चरन सिरु नाइ, तुरित गयउ कपि राम पहिं।
कही कुसल सब जाइ, हरषि चलेउ प्रभु जान चढि ॥२॥

अर्थ : भरतजी के चरणो मे सिर नवाकर तुरन्त हनुमान्जी रामजी के पास गये और जाकर सब कुशल कहा। और प्रभु हर्षित होकर विमानारूढ होकर चले।

व्याख्या : प्रेमियो के प्रेम की गाथा समाप्त नही होती। अत: हनुमान्जी ने बिदाई के लिए भरतजी के चरणो मे प्रणाम किया। सरकार हनुमान्जी के आसरे : इन्तजार ठहरे हुए हैं। अत: हनुमान्जी को त्वरा है। तुरन्त रामजी के पास पहुँच गये। रामजी के पास जाने मे कवि कपि शब्द का प्रयोग करते हैं भाव यह कि ब्राह्मण का रूप त्याग करके अपने स्वरूप से रामजी के पास गये और जाकरके सब कुशल कहा। यद्यपि हनुमान्जी ने राजकुल का कोई कुशल नही पूछा और न भरतजी ने उस विषय मे कुछ कहा। तथापि भरतजी के सरकार के बार बार कुशल पूछने से ही राजकुल का कुशल ध्वनित था अथवा : तब लगि कुसल न जीव कहँ सपनेहुँ मन विस्राम। जब लगि भजत न राम कहँ सोक धाम तजि काम। यहाँ सम्पूर्ण नगर भजन मे दत्तचित्त है। जहँ तहँ सोचहिं नारिनर कृसतन राम वियोग। भरतजी के लिए कहना ही क्या है? अत. सब कुशल के रास्ते मे लगे हैं। यहाँ अकुशल कहाँ से हो सकता है? यह सब बात रामजी से कही। सरकार ने देख लिया कि सब लोग मेरे आगमन के लिए आर्त हैं। अत: यान पर चढकर चले। नही तो निषाद के आश्रम से आगे न बढते।

हरषि भरत कोसलपुर आए। समाचार सब गुरहिं सुनाए ॥
पुनि मंदिर महुँ बात जनाई। आवत नगर कुसल रघुराई ॥१॥

अर्थ हर्षित होकर भरतजी अयोध्यापुरी मे आये। सब समाचार गुरुजी को सुनाया। तत्पश्चात् घर मे खबर दी कि सरकार सकुशल नगर मे आ रहे है।

व्याख्या : नन्दिगाँव करि परन कुटीरा। कीन्ह निवासु धरमधुर धीरा। चौदह वर्ष से भरतजी नन्दिग्राम मे ठहरे हुए हैं। जब से सरकार नगर छोडे हुए हैं तब से भरतजी भी छोडे बैठे हैं। सरकार का आना सुनकर हर्षित होकर नगर मे आये तो पहिले गुरुजी के पास गये। रघुकुल की गुरुचरणो मे अपार भक्ति है। महाराज चक्रवर्तीजी का यही रास्ता था कि जो बात हो पहिले गुरुजी को सुनायी जाय। उसी मार्ग का अनुसरण करते हुए भरतजी ने गुरुजी के पास जाकर हनुमान्जी का आना और समाचार देना आदि सब बातें सुनायी। तत्पश्चात् घर गये। जाते ही समाचार कहलाया कि सरकार सकुशल नगर मे आ रहे हैं। कौसल्यादि मातु सब मन अनन्द अस होइ। आयेउ प्रभु सिय अनुज जुत कहन चहत अब कोइ। तब से समाचार आ ही तो गया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुनत सकल जननी उठि धाईं। कहि प्रभु कुसल भरत समुझाईं ॥
समाचार पुरबासिन्ह पाए। नर अरु नारि हरषि सब धाए ॥२॥

अर्थ : सुनते ही सब माताएँ उठकर दौड़ पड़ीं। तब सब कुशल कहकर भरतजी ने समझाया। पुरवासियों ने समाचार पाया तो सब स्त्री और पुरुष हर्षित होकर दौड़े।

अति उत्कण्ठा से कौसल्यादि माताएँ समाचार सुनते ही भरतजी के मुख से सुसवाद सुनने के लिए उठकर दौड़ पड़ीं। भरतजी ने प्रभु का कुशल कहकर समझाया। यथा :

जीति गढलङ्क बङ्क लखन सिय के संग, कुशल अनन्द सब भाँति रघुराई हैं।
वृन्दारक वृन्दनते वंदित अमन्द बलकीरति सुछन्द तिहुँलोक सरसाई हैं ॥
विजयी विमान चढ़े आवत सुजान, आइ दूत हनुमान् ऐसी खबर जनाई हैं।
वेगि साजो आरती सुमंगल कलस साजि आज महाराज रघुराज की अवाई है ॥

इतने में तमाम नगर में बात फैल गयी। जैसे वनवास की बात नगर में फैल गयी किसी घोषणा विशेष की आवश्यकता न हुई। नगर व्यापि गई बात सुतीछी। छुवत चढ़ी जनु सब तन बीछी। उसी भाँति नगर में आने की बात भी तमाम नगर में व्याप गयी। क्या स्त्री क्या पुरुष सब हर्षित होकर सरकार के दर्शन के लिए दौड़ पड़े।

दधि दुर्बा रोचन फल फूला। नव तुलसीदल मंगल मूला ॥
भरि भरि हेमथार भामिनी। गावत चलीं सिंधुरगामिनी ॥३॥

अर्थ : दही दूब गोरोचन फल फूल और मङ्गलमूल ताजा तुलसीदल सोने के थारों में गजगामिनी स्त्रियाँ भर भर के चलीं।

व्याख्या : स्त्री लोग मङ्गल थार साजने के लिए दौड़ीं। बिना मङ्गलथार के महाराज का स्वागत कैसे करें। ये उपर्युक्त छ वस्तुएँ मङ्गल हैं। उनमें नवीन तुलसीदल मङ्गलमूल है। नवीन तुलसीदल कहने का भाव यह है कि पत्रों में बिल्वदल और तुलसीदल ऐसे हैं जो सूखे हुए भी देवार्पण के योग्य होते हैं। पर मङ्गल में सूखे का ग्रहण नहीं है। अतः नव तुलसीदल कहा। इन छ वस्तुओं को थार में साजती नहीं हैं। शीघ्रता के कारण भर लेती हैं। थार भरकर मङ्गलगान करती हुई घर से चलीं इतना उत्साह स्त्रियों का कहा। वे गजगामिनी स्वाभाविक चाल उनकी गज की भाँति है। भामिनी से शरीर का सौन्दर्य और गजगामिनी से गति का सौन्दर्य कहा।

जे जैसेहि तैसेहि उठि धावहिं। बाल बृद्ध कहँ संग न लावहिं ॥
एक एकन्ह कहुँ बूझहिं भाई। तुम्ह देखे दयाल रघुराई ॥४॥

अर्थ : जो जिस दशा में है वह वैसे ही उठकर दौड़ता है। बूढ़ों और

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बच्चो को कोई साथ नही ले रहा है। एक दूसरे से पूछते हैं कि भाई तुमने दयाल रघुराई को देखा है ?

व्याख्या स्त्रियो का हाल कहकर अब पुरुषो का हाल कहते है कि जो जिस अवस्था मे था वह उसी भाँति दौड पडा। सामान्य रीति है कि घर के बाहर निकलते समय लोग वस्त्रादि को धारण करके ही बाहर निकलते हैं। पर सरकार के दर्शन के लिए ऐसे आर्त्त है कि किसी को कपडा पहन लेने की सुधि नही। अथवा इतनी त्वरा है कि वस्त्रादि धारण मे जो विलम्ब होगा वह उन्हे सह्य नही है। जैसी दशा मे है उसी दशा मे दौड पडे। अथवा जिस काम मे लगे हैं। उस काम को वैसे ही अधूरा छोडकर दौड पडे। सम्पत्ति अरक्षित छोडकर ही घर से निकल गये।

दौडे तो सब पर किसी को पता नही कि सरकार किधर से आ रहे हैं। अत सभी पूछनेवाल हैं कि तुमने सरकार को देखा। पर यह कहनेवाला कोई नही कि मैं देखकर आ रहा हूँ। इस रास्ते चल जाओ। ऐसे अवसर का गोलमाल भी शोभा की वृद्धि करता है। यथा पुर खरभर सोभा अधिकाई।

अवधपुरी प्रभु आवत जानी। भई सकल सोभा कै खानी॥
बहइ सुहावन त्रिविध समीरा। भइ सरजू अति निर्मल नीरा॥५॥

अर्थ अवधपुरी सरकार को आते जानकर सब शोभा की खानि हो गयी। त्रिविध वायु सुहावनी बहने लगी और सरयू अत्यन्त निर्मल जलवाली हो गयी।

*व्याख्या पुरी की अधिष्ठात्री देवता ने जान लिया कि सरकार आ रहे है।* अत शोभा की खानि हो गयी। सरकार के बिना वह भयावन हो गयी थी। यथा लागति अवध भयावन भारी। मानहुँ काल राति अँधियारी। हाट बाट नहि जाइ निहारी। जनु पुर दहँ दिसि लागि दवारी। घर मसान परिजन जनु भूता। सुत हित मीत मनहुँ जमदूता। भरतजी से सब प्रकार से पालित होने पर भी अनाथ सी थी। आज सनाथ हो रही है।

। अवध की शोभा सरयू से और सरयू की शोभा अवध से है। अत दोनो का वर्णन साथ ही आता है। सरकार के न रहने के समय सरित सरोवर देखि न जाही। सो सरयू का जल अत्यन्त निर्मल हो गया। त्रिविध समीर अर्थात् शीतल, मन्द, सुगन्ध वायु का चलना मङ्गल है। सो वह भी चल पडा।

दो हरषित गुर परिजन अनुज, भूसुर बृंद समेत।
चले भरत मन प्रेम अति, सनमुख कृपा निकेत॥३ क॥

अर्थ अत्यन्त आनन्द से गुरुजी कुटुम्बी छोटे भाई तथा ब्राह्मणो के समूह के साथ भरतजी अति प्रेमयुक्त मन से कृपानिकेत की ओर चल।

व्याख्या भरतजी ने साथ म गुरुजी को कुटुम्बियो को शत्रुघ्नजी को और ब्राह्मणो को लिया। इन्हे मालूम है कि सरकार विमान द्वारा आकाश मार्ग से आ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रहे हैं। अतः दक्षिण की ओर चले। क्योंकि उधर से ही सरकार आवेंगे। सनमुख स्वामि बिमुख दुख दोषू। इसलिए सबको हर्षित लिखते हैं और अत्यन्त प्रेम मन में है। यथा : भरत प्रेम तेहि समय जस तस कहि सकहिं न सेषु। कबिहि अगम जिमि ब्रह्मसुख अह मम मलिन जनेषु।

दो. बहुतक चढ़ीं अटारिन्ह, निरखहिं गगन बिमान।
देखि मधुर सुर हरषित, करहिं सुमंगल गान ॥३ ख॥
राका ससि रघुपति पुर, सिंधु देखि हरषान।
बढ़ेउ कोलाहल करत जनु, नारि तरंग समान ॥३॥

अर्थ : बहुत सी स्त्रियाँ अटारियों पर चढ़ी हुई आकाश में विमान देखती थी, और देखकर हर्षित हो मधुर स्वर से सुमङ्गल गान करती थी। पूर्णचन्द्र के समान रामचन्द्र को देखकर समुद्र के समान पुर हर्षित हो उठा और अटारियों पर चढ़ी हुई स्त्रियों के गाने से ऐसी शोभा हुई मानो समुद्र में तरंग उठ रही हो और उसके कारण कोलाहल होता हो।

व्याख्या : कुलवधुएँ जो बाहर नहीं निकल सकती थीं अटारी पर चढ़ गयीं और विमान देखने लगीं। जब विमान दृष्टिगोचर हुआ तो हर्षित होकर सुमङ्गल गान करने लगी। इस भाँति अवधपुरी की अपूर्व शोभा हुई। प्रत्येक अटारियों पर गान करती हुई कुलवधुओं के कारण मानो अयोध्या अधिक ऊँची हो गयी और प्रत्येक अटारियों पर मङ्गलगान होने से ऊपर कोलाहल होने लगा। कवि कहते हैं कि पुष्पकारूढ़ रामचन्द्र मानो पूर्णचन्द्र उदय हो गये। पूर्णचन्द्र के उदय होने पर समुद्र बढ़ता है। उसमें कोलाहल करती हुई तरंगें उठती हैं। सो रामचन्द्ररूपी पूर्णचन्द्र को देखकर अवधपुररूपी समुद्र बढा और उसके ऊपरी भाग में लहरों की भाँति स्त्रियाँ कोलाहल करती हुई शोभित हुईं।

इहाँ भानुकुल कमल दिवाकर। कपिन्ह देखावत नगरु मनोहर॥
सुनु कपीस अंगद लंकेसा। पावन पुरी रुचिर एह देसा॥१॥

अर्थ : यहाँ सूर्यकुल कमल के सूर्य रामजी बन्दरों को सुन्दर नगर दिखला रहे हैं। हे सुग्रीव, अङ्गद और विभीषण सुनो : यह पुरी पवित्र और यह देश सुन्दर है।

व्याख्या : यहाँ कवि सरकार के साथ पुष्पक पर अपने को मान रहे हैं। इसलिए इहाँ कहते है। क्योंकि भक्त भगवान् दोनो यहाँ एकत्रित हैं। नहीं तो नियम यह है कि कवि अपने को भक्तो के साथ मानते हैं। सूर्यकुल कमल के सूर्य कहने का भाव यह कि इनके उदय से सूर्यकुल खिल उठता है। जब पुष्पक पर चले थे तब सीताजी को न देखा हुआ दृश्य उन्हे दिखलाते थे। यथा : इहाँ सेतु बाँधेउ अरु थापेउँ सिव सुखधाम। इत्यादि। पर जब अवधपुरी दिखलायी पड़ी तब बन्दरों को दिखलाने लगे। क्योंकि उनका नहीं देखा हुआ था। सीताजी तो अवध मे सरकार के साथ बारह वर्ष रह चुकी थी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कपीश सुग्रीव बन्दरों के राजा हैं। अङ्गदजी युवराज हैं। लङ्केश विभीषण निशाचरो के राजा हैं। ये लोग अपने अपने राज्य के शासक हैं। ये पुरी और देश के बनावट के जानने मे चतुर हैं। अतः पुरी के दिखलाने मे इन्ही को सम्बोधन करते हैं। अथवा इनके सम्बोधन से सम्पूर्ण वानरो के सम्बोधन का अन्तर्भाव है। सरकार कहते हैं कि यह देश मनका हरण करनेवाला है। समतल और उपजाऊ है। पर्वतादि के कारण बीहड़ नही है और यह राजधानी पावन है। मोक्षदायिका पुरियो मे प्रथम है। अयोध्यापुरी मस्तके।

जद्यपि सब बैकुण्ठ बखाना। बेद पुरान बिदित जग जाना॥
अवधपुरी सम प्रिय नहि सोऊ। यह प्रसंग जानइ कोउ कोऊ॥२॥

अर्थ : यद्यपि सबने वैकुण्ठ की प्रशसा की है। वह वेद और पुराणो मे विदित है और सभी जानते भी है। पर अवधपुरी के समान मुझे वह भी प्रिय नही है। इस प्रसङ्ग को बिरले जानते हैं।

व्याख्या : सभी वक्ताओ ने वैकुण्ठ की प्रशसा की है। क्योकि सब लोको से उसका उत्कर्ष सबसे अधिक है। यथा : सुनु मति मद लोक बैकुंठा। बैकुण्ठ के अत्यन्त मनोहर होने से उसकी सब लोग प्रशसा करते हैं और यह बात प्रसिद्ध है कि परम पुनीत होने से वेद और पुराणो ने भी उसका यश गान किया है। मुझे भी वह प्रिय है। वहाँ मै निवास करता हूँ और : श्रीपतिपुर बैकुण्ठ निवासी : कहलाता हूँ। पर अयोध्या के समान मुझे बैकुण्ठ भी प्यारा नही। इस बात को अधिकारी ही जानते हैं सब लोग नही जानते है। इस गुप्त रहस्य को सब जान भी नही सकते। क्योकि : अवध प्रभाव जान तब प्रानी। जब उर बसहि राम धनुपानी। कवनेउँ जनम अवध बस जोई। राम परायण सो परि होई। अवध अति दुर्लभा राम भक्ति देनेवाला है। अत· अति प्यारा है।

जनमभूमि मम पुरी सुहावनि। उत्तर दिसि बह सरयू पावनि॥
जा मज्जन तें बिनहि प्रयासा। मम समीप नर पावहि बासा॥३॥

अर्थ : यह सुहावनी पुरी मेरी जन्म-भूमि है। इसके उत्तर पुनीत सरयू नदी बहती है। जिसमे स्नान करने से बिना परिश्रम ही मनुष्य मेरे समीप निवास पाता है।

व्याख्या : अब अयोध्यापुरी के बैकुण्ठ से भी अधिक प्रिय होने का कारण कहते हैं। वैकुण्ठ मेरी जन्म भूमि नही है। उसमे सरयू नही बहती। सुहावनी अयोध्या मेरी जन्म भूमि है। माँ कौसल्या के समक्ष है। बन्दौ कौसल्या दिसि प्राची। कीरति जासु सकल जग माची। प्रगटेउ जहँ रघुपति ससि चारू। बिस्व सुखद खल कमल तुषारू। मेरा जब अवतार होता है तब अयोध्या मे ही होता है। दूसरी बडी भारी बात यह है कि इसके उत्तर की ओर सरयू नदी बहती है। मेरे सन्निकट निवास बडे भारी पुण्य का फल है। उसके सम्पादन मे बड़ा भारी आयास करना पडता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पर सरयू मे स्नान करने से मेरा सन्निधान बिना आयास के ही प्राप्त होता है। अर्थात् सरयू स्नायी को सामीप्य मुक्ति बिना परिश्रम होती है।

अति प्रिय मोहि इहाँ के बासी। मम धामदा पुरी सुखरासी ॥
हरषे सब कपि सुनि प्रभु बानी। धन्य अवध जो राम बखानी ॥४॥

अर्थ : यहाँ के निवासी मुझे अत्यन्त प्यारे हैं। यह सुखराशि पुरी मेरे धाम को देनेवाली है। सब बन्दर सरकार की वाणी सुनकर प्रसन्न हो गये कि अवध धन्य है। जिसकी प्रशसा स्वय रामजी करते हैं।

व्याख्या : सरकार के कहने का भाव यह है कि वैकुण्ठ के निवासी भी मुझे उतने प्रिय नही जितने कि अवधवासी मुझे प्रिय हैं। ब्राह्मण का अपमान करने से बैकुण्ठवासी जय और विजय का वहाँ से पतन हो गया और साक्षात् जगदम्बिका सीताजी के निन्दा करनेवाले को अयोध्यावासी होने के कारण उत्कर्ष की प्राप्ति हुई। यथा : सिय निन्दक अघओघ नसाये। लोक बिसोक बनाइ बसाये। यह पुरी मेरे धाम को देती है और देय वस्तु से दाता के बडे होने का नियम है।

सरकार की वाणी कभी अन्यथा हो नही सकती। उसे सुनकर सब बन्दर हर्षित हुए कि अब तो हमे कुछ दिनो के लिए अवधवास की भी प्राप्ति होगी। सरयू स्नान भी सुलभ होगा। अयोध्या को धन्य धन्य कहने लगे। क्योकि इस पुरी की महिमा स्वय सरकार ने हम लोगो को वर्णन करके सुनाया।

दो. आवत देखि लोग सब, कृपासिन्धु भगवान।
नगर निकट प्रभु प्रेरेउ, उतरेउ भूमि बिमान ॥४ क.
उतरि कहेउ प्रभु पुष्पकहि, तुम्ह कुबेर पहिं जाहु।
प्रेरित राम चलेउ सो, हरष बिरह अति ताहु ॥४ ख.

अर्थ : सब लोगो को आते देखकर कृपासिन्धु भगवान् ने नगर के निकट पुष्पक को प्रेरणा की और वह पृथिवी पर उतर पडा। प्रभु ने उतरकर पुष्पक से कहा कि तुम कुबेर के पास जाओ। रामजी से प्रेरित होकर वह चला। उसे भी अत्यन्त हर्ष और विरह हुआ।

व्याख्या : सरकार कृपासिन्धु हैं। उन्होने देखा कि मेरे स्वागत के लिए सब लोग पैदल चले आ रहे है। अत. नगर के पास ही विमान को रोक दिया। वही विमान पृथिवी पर उतर आया। सरकार समाज के साथ वही उतर पडे और उतरते ही पुष्पक को आज्ञा हुई कि तुम कुबेर के पास जाओ। सरकार ने विमान का अयोध्या या लङ्का मे रहना पसन्द नही किया। मर्त्यलोक का अकल्याण ही वायुयान से होगा। कल्याण नही होगा। इसलिए उसे नही रक्खा। दूसरा कारण यह भी था कि वह तप द्वारा कुबेर से ही अर्जित था। रावण ने उसे बलपूर्वक हरण किया था। अतः उसे उसके स्वामी के पास भेज दिया। इससे पुष्पक को हर्ष हुआ। पर जाते समय रामजी के वियोग का उसे अत्यन्त विरह व्यथा भी हुई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



आए भरत सग सब लोगा । कृस तन श्रीरघुवीर बियोगा ॥
बामदेव बसिष्ठ मुनि नायक । देखे प्रभु महि धरि धनु सायक ॥१॥

अर्थ भरतजी के साथ सब लोग आये । श्रीरघुवीर के वियोग से दुबले हो रहे थे । वामदेव और वसिष्ठ मुनिनायक का दर्शन सरकार ने पृथिवी पर धनुप बाण रखकर किया ।

व्याख्या ' हरषित गुरुपरिजन अनुज भूसुर वृन्द समेत । चले भरत मन प्रेम अति सनमुख कृपा निकेत । सो सब लोग आगये । सरकार ने देखा कि सब लोग कृशतनु हैं । कोई घाटा किसी को नही । पर मेरे वियोग से दुर्बल हो रहे हैं । पहिले कहा गया है पय अहार फल असन एक निसि भोजन एक लोग । जहँ तहँ सोचत नारि नर कृसतन रामवियोग ।

वामदेव ऋषि गर्भज्ञानी और वसिष्ठजी गुरु थे । श्रीरामचन्द्र के आवरण में बारह ऋषि हैं । उनमे पहिले वसिष्ठ, वामदेव हैं । वसिष्ठ, वामदेव का साथ देखा जाता है । काशी मे वसिष्ठ वामदेव के नाम से एक ही स्थान मे दो लिङ्ग स्थापित हैं । समाज के आगे आगे ये ही दोनो महात्मा थे । अत सरकार की दृष्टि पहले इन्ही दोनों महात्माओ पर पडी । इन्हे देखते ही सरकार ने धनुप बाण को पृथिवी पर रख दिया ।

धाइ धरे गुरु चरन सरोरुह । अनुज सहित अति पुलक तनोरुह ॥
भेटि कुसल बूझी मुनिराया । हमरे कुसल तुम्हारिहि दाया ॥२॥

अर्थ भाई के साथ दौडकर गुरुजी का चरण पकड लिया । शरीर अत्यन्त पुलकित हो रहा था । मुनिराज ने गले लगाकर कुशल पूछा बोले ' कि आपकी ही दया से सब कुशल है ।

व्याख्या चित्रकूट में भी गुरुजी से मिले थे । पर वहां तो दण्ड प्रणाम करते चले थे । यथा गुरहि देखि सानुज अनुरागे । दड प्रनाम करन प्रभु लागे । मुनिवर धाइ लिये उर लाई । दण्ड प्रणाम करते आते देखकर वसिष्ठजी दौड पडे । इस बार भी दौड पडेंगे । इस भय से सरकार ने स्वयं दौडकर गुरुजी का चरण पकड लिया । अति प्रेम से सरकार और लक्ष्मणजी को अत्यन्त पुलक हो रहा था । रामहि सुमिरत रन भिरत देत परत गुरुपाय । तुलसी जाहि न पुलक तन सो जग जीवत जाय । गुरुजी ने प्रेम से गले लगा लिया और कुशल पूछा । सरकार उत्तर देते हैं कि हम लोगो की कुशल तो आपकी दया से होती है । भरतजी ने वसिष्ठजी से कहा था ' भानु बस भये भूप घनेरे । अधिक एक ते एक बडेरे । जनम हेतु सब कहँ पितु माता । करम सुभासुभ देइ बिधाता । दलि दुख सजइ सकल कल्याना । असि असीस राउरि जग-जाना । वही भाव रामजी का हमरी कुसल तुम्हारिहि दाया कहने से है ।

सकल द्विजन्ह मिलि नायेउ माथा । धरम धुरधर रघुकुल नाथा ॥
गहे भरत पुनि प्रभुपद पकज । नमत जिनहि सुर मुनि सकर अज ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ सब ब्राह्मणो से मिलकर प्रणाम किया। रघुकुल नाथ धर्म की धुरी के धारण करनेवाले हैं। तब भरतजी ने सरकार के चरण पकडे। जिनको शिव ब्रह्मा देवता और मुनि नमस्कार किया करते हैं।

व्याख्या : गुरुजी के बाद ब्राह्मणो की पारी थी। सरकार ने सब ब्राह्मणो से मिलकर प्रणाम किया। पहिले मिलते है। पीछे प्रणाम करते हैं। क्योकि ब्राह्मण लोग प्रणाम का अवसर नही दे रहे हैं और गले लगा लेते हैं। इतना अधिक प्रेम भरतजी से है पर उसे रोके हुए है। धर्माचरण के प्रधान अङ्ग गो और ब्राह्मण हैं। सरकार धर्म धुरन्धर है। अत सब कृत्यो को रोककर पहिले उनसे मिलकर मर्यादा पालन कर रहे हैं।

सब ब्राह्मणो से सरकार जब मिल चुके तब भरतजी ने चरण पकडे। हृदय मे यह भाव है कि इन्ही चरणो को शिव ब्रह्मादि देवगण तथा मुनिगण नमस्कार किया करते हैं। भरतजी के चरण पकडने मे प्रणाम के अतिरिक्त भाव भी है। भरतजी ने चरण पकडे हुए ही दण्डवत् किया। स्नेह के कारण भयभीत हैं कि कही फिर इन चरणों का वियोग न हो जाय। जैसे : मनु सतरूपा पडे दडइव गहि पद पानी।

परे भूमि नहि उठत उठाए। बर करि कृपासिंधु उर लाए ॥
स्यामल गात रोम भए ठाढे। नव राजीव नयन जल बाढे ॥४॥

अर्थ : भरतजी पृथिवी पर लोटे हुए हैं। उठाने से उठते नही। तब कृपासिन्धु ने बल लगाकर उन्हे उठाकर हृदय से लगाया। श्याम शरीर में पुलक हो गया। नवीन कमल से नेत्र मे जल भर आया।

व्याख्या : भरतजी भूमि पर पडे रहने मे सुखी हैं। सरकार उठने के लिए इङ्गित करते हैं। पर नही उठते। यथा : प्रेम मगन तेहि उठब न भावा। सरकार का उनका पृथिवी पर पडा रहना सह्य नही। अत: बल करके उन्हे उठा लिया और हृदय से लगाया। भावुक कवि को भरत के प्रति बल प्रयोग का लिखना भी सह्य नही है। अत: बर लिखा। र और ल मे भेद नही माना गया है। हृदय मे लगाने से सरकार को सात्त्विक भाव हुआ। रोंगटे खडे हो गये और कमल ऐसे नेत्रो में जल भर आया। श्यामलगात को रोमाञ्च हो आने से अधिक शोभा हो जाती है। उसी भाँति कमलनयन मे जल भर जाने से नेत्रो की अधिक शोभा हो जाती है। अत: कवि शोभा वर्णन करने लगे।

छ. राजीव लोचन स्रवत जल तन ललित पुलकावलि बनी।
अति प्रेम हृदय लगाइ अनुजहि मिले प्रभु त्रिभुवन धनी ॥
प्रभु मिलत अनुजहि सोह मोपहि जाति नहि उपमा कही।
जनु प्रेम अरु सिंगार तनु धरि मिले बर सुषमा लही ॥

अर्थ : कमल ऐसे नेत्र से जल गिर रहा था। शरीर मे सुन्दर रोमाञ्च हो रहा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



। त्रिभुवनधनी सरकार अत्यन्त प्रेम से हृदय लगाकर छोटे भाई से मिले। सरकार टे भाई से मिलते हुए शोभित हुए। मुझसे उपमा नही कही जाती। मानो प्रेम और ङ्गार शरीर धारण करके मिलते हुए परम शोभा पा रहे हैं।

व्याख्या : स्यामल गात रोम भये ठाढे। नव राजीव नयन जल बाढे। इस रइन का यह कमल है। पुरइन मे नयन जल बाढे यह कली लगी थी। उसी का कास कमल रूप मे हुआ। बढा हुआ जल वह चला। सरकार त्रिभुवन के मालिक । परन्तु भाई से मिलने मे उस ऐश्वर्य का कोई ध्यान नही है। अत्यन्त प्रेम हृदय लगाकर भाई से मिले। पहिले कह चुके हैं : परम प्रेम पूरन दोउ भाई। न बुधि चित अहमिति बिसराई। कहहु सुप्रेम प्रकट को करई। केहि छाया कवि ति अनुसरई। अतः यहाँ समास से कहते हैं अति प्रेम से मिले। यहाँ प्रभु के मिलने जो शोभा हुई उसकी उपमा कवि कहते हैं कि मुझसे कहते नही बनता। क्योंकि रीरी की उपमा अशरीरी के साथ देना ठीक नही है। परन्तु दूसरी उपमा भी कोई ही। इसलिए कहते हैं कि मानो प्रेम और शृङ्गार शरीर धारण करके मिल रहे । प्रेम शृङ्गार रस के हिस्से की चीज है। प्रेम से शृङ्गार की और शृङ्गार से म की शोभा है। अत दोनो के मिलने मे बडी भारी शोभा हुई।

छं. बूझत कृपा निधि कुसल भरतहि बचन बेगि न आवई।
सुनु सिवा सो सुख बचन मन ते भिन्न जान जो पावई॥
अब कुसल कोसल नाथ आरत जानि जन दरसन दियो।
बूड़त बिरह बारीस कृपानिधान मोहि कर गहि लियो॥

अर्थ : कृपानिधि रामजी कुशल पूछते हैं। भरतजी के मुख से बात शीघ्र नही नकलती। हे शिवा! वह सुख वचन और मन से भिन्न है। उसे जो पाता है वही तानता है। हे कोशलनाथ! अब कुशल है जो आपने आर्त्त जानकर अपने भक्त को र्शन दिया। विरह के समुद्र मे मुझ डूबते हुए को आपने हाथ पकडकर चा लिया।

व्याख्या : सरकार कृपानिधि हैं। हनुमान्‌जी द्वारा कुशल समाचार मिल जाने पर भी आदर के लिए कुशल पूछते है। भरतजी का यह हाल है कि तुरन्त उत्तर देनेका यत्न करते हैं। परन्तु वाणी ठीक काम नही कर रही है। शङ्कर भगवान् उमा से कहते हैं कि वह सुख ही ऐसा है कि उसमे मग्न हुआ पुरुष ऐसा शिथिल हो जाता है कि जल्दी उसके मुखसे बात नही निकलती। वह सुख वचन मन से भिन्न है। अर्थात् अनिर्वचनीय है। उसे केवल पानेवाला जानता है। अन्त मे अपने को सँभालकर भरतजी ने कोशलनाथ कहकर सम्बोधन किया। आपके बिना कोशलपुरी अनाथ थी। आप पूर्णकाम है। आपके आगमन का कारण जन का आर्तिभञ्जन है। यथा 'बीते अवधि रहहि जौ प्राना। अधम कवन जग मोहि समाना। अब अपनी आर्त्ति कहते हैं कि मैं तो विरहसागर मे डूब रहा था। जहाज

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रूप हनुमान्‌जी आये। हाथ पकड़कर सरकार ने उबार लिया। हाथ पकड़कर उबारनेवाले के सामने जहाज की कृतज्ञता नही प्रकाशित की जाती। अतः हनुमान्‌जी की चर्चा नही की।

दो. पुनि प्रभु हरषि सत्रुहन, भेटें हृदय लगाय।
लछिमनु भरत मिले तब, परम प्रेम दोउ भाइ ॥५॥

अर्थ : फिर प्रभु ने हर्षित होकर शत्रुघ्न को हृदय से लगा लिया तब लक्ष्मण भरत दोनो भाई अत्यन्त प्रेम पूर्वक मिले।

व्याख्या : भरतजी के मिलने के बाद सरकार हर्षित होकर शत्रुघ्नजी को हृदय से लगाकर मिले। भरतजी के साथ ही शत्रुघ्नजी का प्रणाम करना मान लेना चाहिए। क्योंकि सरकार का सामना होते ही प्रणाम प्राप्त हो गया था। जब तक रामजी भरत से मिल रहे थे तबतक कोई किसी से नही मिला। जब उनसे मिलकर सरकार शत्रुघ्नजी से मिले तब भरतजी लक्ष्मणजी से मिले। परम प्रेम से दोनो भाइयों का मिलाप हुआ। जब तक भरतजी से नही मिले तब तक अवसर रहते भी लक्ष्मणजी शत्रुघ्न से नही मिले। भरतजी से मिलने की प्रतीक्षा मे थे।

भरतानुज लछिमनु पुनि भेटे। दुसह बिरह संभव दुख मेटे ॥
सीता चरन भरत सिरु नावा। अनुज समेत परम सुख पावा ॥१॥

अर्थ : फिर लक्ष्मणजी भरतजी के छोटे भाई से मिले और विरह से उत्पन्न दुःसह ताप को मिटाया। सीताजीके चरण मे भरतजी ने भाई के साथ सिर नवाया और परम सुख पाया।

व्याख्या : जब भरतजी से मिल चुके तब उनके छोटे भाई से मिले। यद्यपि शत्रुघ्नजी सहोदर भाई लक्ष्मणजी के हैं। परन्तु साथ रहने से जैसे रामानुज लक्ष्मणजी कहलाये उसी भाँति शत्रुघ्नजी भरतानुज कहलाये। अलग अलग साथ रहने से दोनो भाइयो के प्रेम मे काई घाटा नही था। इसी बात को दिखलाते हुए कवि लिखते हैं कि विरहसम्भव दुःसह दुःख को मिटाया। फिर भाई शत्रुघ्न के साथ भरतजीने सीताजी के चरणो मे सिर झुकाया। जगदम्बा के चरण मे प्रणत होने मे ही दोनो भाइयो ने परम सुख पाया। क्योंकि देखा कि भगवती स्नेह मे मग्न हैं। यथा : सीय असीस दीन्ह मन माही। मगन सनेह देह सुधि नाही।

प्रभु बिलोकि हरषे पुरबासी। जनित बियोग बिपति सब नासी ॥
प्रेमातुर सब लोग निहारी। कौतुक कीन्ह कृपाल खरारी ॥२॥

अर्थ : सरकार को देखकर पुरवासी हर्षित हुए। वियोग से उत्पन्न विपत्ति उनकी नष्ट हो गयी। सब लोगो को प्रेमातुर देखकर खर के शत्रु कृपाल ने कौतुक किया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या सरकार के दर्शन से पुरवासी सनाथ हो गये। अत हर्षित हो उठे। सरकार के वियोग से जो दुख उनपर आ पड़ा था यथा राम वियोग कुरोग बिगोए। यथा परिहरि भूपन भोग सुख जिअत अवधि की आस सो दुख उनका दूर हुआ। अब ये लोग प्रेमातुर हैं। सरकार से मिलना चाहते हैं। इतने बडे जन समूह से मिलना अल्पकाल मे हो नही सकता और विलम्ब उन लोगो को असह्य हो रहा है। सरकार बडे कृपालु हैं। अत उस समय एक कौतुक किया। अघटित घटना का सम्भव करना उनके लिए कौतुक है। कौतुक करने के प्रसङ्ग म कवि खरारि विशेषण देते हैं। भाव यह कि जैसा कौतुक खर के वध म किया था। यथा सुरमुनि सभय प्रभु देखि मायानाथ अस कौतुक कर्यो। देखत परस्पर राम करि संग्राम रिपुदल लरि मर्यो। उसी प्रकार का कौतुक इस समय भी किया।

अमित रूप प्रकटे तेहि काला। जथाजोग मिले सबहि कृपाला ॥
कृपादृष्टि रघुबीर बिलोकी। किए सकल नरनारि बिसोकी ॥३॥

अर्थ असख्य रूप उस समय प्रकट किया और कृपाल यथायोग्य सबसे मिले। रघुवीर ने कृपा दृष्टि से देखकर सब नरनारियो को विशोक कर दिया।

व्याख्या सरकार ने उस समय अपना असख्यरूप प्रकट किया और यथायोग्य सबसे मिले। किसी के गले मिले। किसी को हाथ से स्पर्श किया। किसी को प्रेमपूर्वक देखा। किसी से कुछ बोल दिया। इस भाँति जिसके साथ जिस तरह से मिलना उचित था उस तरह सबसे मिले। सूर्य के बिना जैसे कमल कोष और कोकी दीन हो जाते है उसी भाँति प्रजावर्ग सरकार के बिना शोकाकुल हो रहे थे। सो सबको कृपादृष्टि से देखकर विशोक किया। देवता लोग भयभीत थे। उन्हे कृपादृष्टि से अभय करते चले आ रहे हैं। यथा कृपादृष्टि करि वृष्टि प्रभु अभय किये सुर वृन्द। यहाँ लोग शोकाकुल थे। अत इन्हे कृपादृष्टि से विशोक करते हैं।

छनमहि सबहि मिले भगवाना। उमा मरमु यह काहु न जाना ॥
एहि बिधि सबहि सुखी करि रामा। आगे चले सीलगुन धामा ॥४॥
कौसल्यादि मातु सब धाई। निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई ॥५॥

अर्थ भगवान् क्षण भर मे सबसे मिले। हे उमा! यह मर्म किसी ने नही जाना। इस प्रकार से शील गुण धाम रामजी सबको सुखी करके आगे चले। कौसल्या आदिक सब माताएँ दौडी जैसे बच्चे को देखकर नयी ब्याई हुई गाय दौडे।

व्याख्या अमित रूप प्रकट करके सरकार एक ही समय मे सबसे मिले। जिस कार्य का होना दीर्घकाल म भी सम्भव नहीं था वह क्षण भर मे हुआ। भगवान् हैं। सभी ऐश्वर्य इनम हैं। इच्छामात्र से अनेक रूप हो गये लका के संग्राम मे रावण ने जब असख्य रूप अपना प्रकट किया था यथा रघुपति कटक भालु कपि जेते। जहँ तहँ प्रकट दसानन तेते। तब रामजी का अमित रूप धारण करना

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



आश्चर्य नही है। ईश्वरी माया को कोई जान नही सकता। जिस पर उनको कृपा महादेवजी की भाँति हो वही जान सकता है।

इस विधि से सबको सुखी कर लिया तब माताओं से मिलने के लिए आगे बढे। माताओं की सवारी प्रजावर्ग के पीछे थी। बिना सबको सुखी किये आगे न बढ़ना सरकार का शील है और अमित रूप होकर सबको सुखी करना गुण है। इसलिए शील गुण धाम विशेषण दिया।

सरकार के आगमन का समाचार सुनकर कौसल्यादि माताएँ उठकर दौड़ी थीं। अब देखकर जिस प्रेम से उठकर दौड़ी उसका उदाहरण देते हुए गोस्वामीजो कहते है कि जैसे बछड़े को देखकर नयी ब्याई हुई गाय दौड़ती है। नया ब्याई हुई गाय बछडे पर बड़ा हो प्रेम करती है। वैसा प्रेम अन्य जीवों में नही देखा जाता। अत: कवि ने उसी की उपमा दो।

छं. जनु धेनु बालक बच्छ तजि गृह चरन बन पर बस गईं।
दिन अन्त पुररुख स्रवत थन हुंकार करि धावत भईं॥
अति प्रेम प्रभु सब मातु भेटी बचन मृदु बहुविधि कहे।
गइ विषम बिपति बियोग भव तिन्ह हरष सुख अगनित लहे॥

अर्थ : जैसे नयी ब्याई हुई गाय बछडे को घर पर छोड़कर चरने के लिए वन में पराये वश में पड़ी होने से गयी हो और दिन के अन्त होने पर पुर की ओर थन से दूध गिराती हुई हुँकार करके दौडे। अत्यन्त प्रेम से सरकार सब माताओं से मिले और बहुत प्रकार से कोमल वचन बोले। वियोग से उत्पन्न विषम विपत्ति दूर हुई और सबको हर्ष हुआ और अगणित सुख मिला।

व्याख्या : यह छन्द निरखि बच्छ जनु धेनु लवाई। इस पुरइन का कमल है। इसमें नई ब्याई हुई अर्थात् लवाई शब्द का प्रयोग छन्द के अनुरोध से नही किया। पर बालक बच्छ कहकर वही भाव प्रकट कर दिया। यही नियम है कि बछड़े का लोग घर पर रख लेते है और गाय को वन में चरने के लिए हांक ले जाते हैं। वन में गाय चरती तो है पर मन उसका अपने छोटे बच्चे पर लगा रहता है। उसका दिन कटना कठिन हो जाता है। ज्योंही दिन समाप्त होकर गोधूलि वेला आती है वह घर की ओर अत्यन्त प्रेम से थनो से दूध टपकाती हुई हुँकार करके दौडती है। यही दशा माताओ की हुई। जैसे गाय बछड़े का वियोग नही चाहती परन्तु परवश है। मालिक उसे वनमें चरने के लिए हांक देता है और उसे जाना पड़ता है और बछड़े से वियोग हो जाता है। इसी भाँति महाराज चक्रवर्तीजी के वरदान के कारण माताओं का रामजी से वियोग हो गया था। 'वियोग की अवधि समाप्त होने पर रामजी को देखकर वे भी अत्यन्त वात्सल्य से थन से दूध गिराती हुई : और रुलाई रोकती हुई हुङ्कार करके दौड़ पड़ी। उपमा मे समानधर्म लिया जाता है। यहाँ गौ और बछड़े के वियोग मात्र मे समानता है। वन जाने में समानता नही है। अत: उसी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अंश का ग्रहण किया गया। अथवा अयोध्या तो रामजी के साथ रहती है। जहाँ राम नहीं वहाँ अयोध्या कहाँ। यथा अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइ दिवस जहँ भानु प्रकासू। अत रामजी वन जाने पर भी अयोध्या में ही रहे और माँ लोग घर रहती हुई भी माना वन में रहीं। अतः रामजी को देखकर उनका उसी भाँति दौड़ना कहा। अत्यन्त प्रेम से उनकी छातियों में दूध आ गया और इतने दिन के वियोग के दुःख सहन करने से सयोग में रुलाई आगयी। मङ्गल जानकर उसे रोका। फिर भी हुँकार निकल ही पड़ा। सरकार अत्यन्त प्रेम के साथ सब माताओं से मिले। जैसे माँ वात्सल्य से भरी हुई बच्चे को अनेक प्यार के शब्दों से सम्बोधन करती है। यथा : बहुरि बच्छ कहि लाल कहि रघुपति रघुबर तात। उसी भाँति अत्यन्त प्रेम से बच्चा भी माँ को, माँ मेरी माँ, अम्ब, जननी आदि मृदु वचनों से सम्बोधन करता है। यहाँ रामजी ने उसी भाँति बहुत प्रकार के मृदु वचन कहे। सरकार के वियोग में विपत्ति तो सबको थी। पर माताओं को तो बड़ी भारी विपत्ति थी। सो सब दूर हो गयी। उनके हर्ष और सुख का अन्त नहीं रह गया।

दो. भेंटेउ तनय सुमित्रा, राम चरन रति जानि।
रामहि मिलत कइकई, हृदय बहुत सकुचानि ॥६ क.

अर्थ . रामजी के चरणों में प्रेम है। यह जानकर सुमित्राजी बेटे लक्ष्मणजी से मिलीं। रामजी से मिलते हुए कैकेयी मन में बड़ी सङ्कुचित हुईं।

व्याख्या माँ सुमित्रा लक्ष्मणजी से मिलीं। हृदय में यह भाव था कि इसके कारण मैं पुत्रवती हुई। उनका यह सिद्धान्त है : पुत्रवती युवती जग सोई। रघुपति भगत जासु सुत होई। नतरु बाँझ भलि बादि बियानी। राम विमुख सुत से हित जानी। इस भाँति रामजी में सुमित्राजी का अत्यन्त प्रेम दिखलाया। प्रेम के विवश माँ कैकेयी भी दौड़ी। परन्तु मिलते समय उन्हें बड़ा सङ्कोच हुआ कि मैंने किसी का कहना नहीं माना। मैंने ही हठ करके इन्हें वन भेजा। मैं किस मुँह से मिलूँ। यथा . होत प्रात मुनि वेष धरि, जौं न राम बन जाहिं। मोर मरन राउर अजस नृप समुझिय मन माहीं। सखी लोग कहती ही रह गयीं ' भरतहि अवसि देहु युवराजू। कानन काह राम कर काजू। पर कैकेयी ने एक भी न सुना। अत. मिलने के समय अपनी करणी विचारकर सङ्कुचित हो गयी।

दो. लछिमनु सब मातन्ह मिलि, हरषे आसिष पाइ।
कैकइ कहँ पुनि पुनि मिले, मनकर छोभ न जाइ ॥६ ख.

अर्थ ' लक्ष्मणजी सब माताओं से मिले और आशीर्वाद पाकर हर्षित हुए। पर कैकेयी से तो बार बार मिले। परन्तु मन का क्षोभ नहीं जा रहा है।

व्याख्या : सुमित्राजी से मिलने के बाद लक्ष्मणजी सब माताओं से मिले। सबने उन्हें आशीर्वाद दिया। इसलिए हर्षित हुए। आशीर्वाद पाना लिखने से ही प्रणाम अनुमित है। परन्तु कैकेयी से बार बार मिले मन का क्षोभ मिटाने के लिए।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सो नही मिट रहा है। भाव यह है कि चित्रकूट मे जब माताएँ गयी थी तब लक्ष्मणजी कैकेयी से नही मिले। यथा : प्रथम राम भेटी कैकेई। सरल सुभाय भगति मति भेई। इस बात का पश्चात्ताप लक्ष्मणजी के हृदय में था। अतः हृदय का क्षोभ मिटाने के लिए बार बार कैकेयी से मिले। फिर भी क्षोभ नही गया।

सासुन्ह सबन्हि मिली बैदेही। चरनन्हि लागि हरष अति तेही ॥
देहि असीस बूझि कुसलाता। होइ अचल तुम्हार अहिवाता ॥१॥

अर्थ : सब सासों से वैदेही चरणों पर गिरकर मिली। उन्हे अत्यन्त हर्ष था। सास सब कुशल पूछकर आशीर्वाद देती थी कि तुम्हारा सौभाग्य अचल हो।

व्याख्या : दोनों भाइयों के मिलने के बाद जानकीजी सास लोगों के चरणों की वन्दना करके मिली। सासों पर बड़ा प्रेम है। पहिले कह भी चुकी हैं : प्रिय परिवार मातु सम सासू। अतः उनसे मिलने मे सीताजी को बड़ा हर्ष है। अथवा वन जाने के समय सीताजी ने कहा था : सेवा समय दैव बन दीन्हा। मोर मनोरथ सफल न कीन्हा। सो मनोरथ सफल का अवसर प्राप्त होने से अत्यन्त हर्ष है।

सास लोग कुशल पूछती हैं और प्रसन्न होकर आशीर्वाद देती हैं। हिन्दू समाज मे आज भी यही स्त्रियो के लिए एक आशीर्वाद है कि तुम्हारा सोहाग बना रहे : वही आशीर्वाद दे रही हैं।

सब रघुपति मुख कमल बिलोकहिं। मंगल जानि नयन जल रोकहिं ॥
कनक थार आरती उतारहिं। बार बार प्रभु गात निहारहिं ॥२॥

अर्थ : सब रामजी के मुख कमल को देखती हैं और मङ्गल समय समझकर आँसू रोक रही हैं। सोने के थार में आरती कर रही हैं। बार बार सरकार के शरीर को निहारती हैं।

व्याख्या : सब माताएँ रामजी के मुख कमल को देख रही हैं। प्रजा वर्ग दूर से दर्शन करते हैं। अतः उनके लिए मुख की उपमा चन्द्रमा से देते हैं। यथा : रामचन्द मुखचन्द निहारी। पर माता लोग तो निकट से देख रही हैं। इसलिए कमल से उपमा दे रहे हैं। इतने दिनो के बाद प्रिय पुत्र के दर्शन से आँखो मे आँसू भरा चला आता है। पर उसे गिरने से रोकती हैं। क्योकि आँसू गिरना अमङ्गल का चिह्न है और इस समय महामङ्गल उपस्थित है।

सरकार इतने दिनो के बाद घर लौटे हैं और लंका विजय करके आ रहे हैं। अतः माताएँ सोने के थारो मे आरती उतार रही है और सरकार के शरीर को बार बार देखती हैं। वात्सल्य रस का उत्कर्ष है। पुत्र सभी के प्रियदर्शन होते हैं। यहाँ तो प्राणाराम राम पुत्र रूप से प्राप्त हैं।

नाना भाँति निछावरि करही। परमानंद हरष उर भरही ॥
कौसल्या पुनि पुनि रघुबीरहिं। चितवत कृपासिधु रनधीरहि ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : नाना प्रकार की निछावर करती है। परम आनन्द और हर्ष को हृदय मे भर रही हैं। कौसल्या माता बार बार कृपा सिन्धु रणधीर रघुवीर को देखती हैं।

व्याख्या : महाराज के घर का निछावर है। भूषण, वसन, हाथी, घोडा, हेम, गो, हीरा आदि सभी प्रकार की वस्तुओ का निछावर हो रहा है। बहुत दिनो से हृदय में दुःख भरा हुआ है। अतः उसे हटाकर हर्ष और परमानन्द भर रही हैं। पुत्र के दर्शन से हर्ष और भगवद्दर्शन से परमानन्द हो रहा है। वीर जननी कौसल्याम्बा बार बार अपने वीर रणधीर पुत्र को देखती हैं जो कृपासिन्धु भी हैं। पुत्र के गुणों का उत्कर्ष जानकर माता को बड़ा आनन्द हो रहा है। अतः बार बार देख रही है।

हृदयँ बिचारति बारहिं बारा। कवन भाँति लंकापति मारा ॥
अति सुकुमार[1] जुगल मेरे बारे। निसिचर सुभट महाबल भारे ॥४॥

अर्थ : मनमें बार बार विचार करती है कि किस प्रकार इन्होने लकेश रावण का वध किया। मेरे दोनो बेटे अत्यन्त सुकुमार हैं। राक्षस बड़े योद्धा और भारी महाबल थे।

व्याख्या : माँ मुख से नही कहती पर हृदय मे विचार करती है। फिर भी मन मे बात बैठती नही। इनके द्वारा लकेश्वर रावण का वध कैसे हुआ ? ऐसे मृदु शरीर से सग्राम मे रावणकृत आघातो का सहन कैसे हुआ। जिसे पूर्व पुरुष अनरण्य नही सह सके। मेरे दोनो लडके अत्यन्त सुकुमार हैं। इन्हे काम पडा राक्षसों से जो कि बडे योद्धा और बलवान् थे। कुमुख अकपन कुलिसरद धूम्रकेतु अतिकाय। एक एक जग जीत सक ऐसे सुभट निकाय। बारिदनाद जेठ सुत तासू। भट महुँ प्रथम लीक जग जासू। दस सिर ताहि बीस भुज दडा। रावन नाम बीर बरिबडा। इत्यादि इन सबो को अति सुकुमार दोनो भाइयो ने कैसे वध किया ?

दो. लछिमन अरु सीता सहित, प्रभुहि बिलोकति मातु।
परमानंद मगन मन, पुनि पुनि पुलकित गात ॥७॥

अर्थ : लक्ष्मणजी और सीताजी के सहित प्रभु को माता देखती है। परमानन्द से उनका मन मग्न है और बार बार शरीर मे पुलकावली उठ रही है।

व्याख्या : ये ही तीनो मूर्तियाँ वन मे गयी थी। इनका दर्शन दुर्लभ था। यथा : सुदिन सुघरी तात कब होइहि। जननी जिअत बदन बिधु जोइहि। फिरिहि दसा बिधि बहुरि कि मोरी। देखिहौं नयन मनोहर जोरी। सो दशा फिरी। मनोहर जोडी आँख के सामने है। वह सुदिन और सुघडी आगयी। माता बिधु बदन

१ यहाँ असम्भव अलकार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


देखने के लिए जीवित है। अत: मन मे परमानन्द है। शरीर में सात्त्विक भाव होने से पुलकावली छायी हुई है।

लंकापति कपीस नल नीला। जामवंत अंगद सुभ सीला॥
हनुमदादि सब बानर बीरा। धरे मनोहर मनुज सरीरा॥१॥

अर्थ : शुभ शील लङ्कापति विभीषण, कपीस सुग्रीव, नल, नील, और अङ्गद तथा हनुमान् आदिक सब वीर सुन्दर मनुष्य का शरीर धारण किये हुए हैं।

व्याख्या : १. विभीषण २ सुग्रीव ३ नल ४ नील ५ अङ्गद ६. जामवन्त ये शुभशील हैं तथा ७. हनुमान् आदिक वीर बन्दर भी शुभशील हैं। क्योंकि इनका सरकार पर अतिशय प्रेम है। लङ्काविजय के बाद सब बन्दरो को सरकार ने बिदा कर दिया। पर ये लोग नही गये। यथा : १. कपिपति २. नील ३. रीछपति ४. अंगद ५. नल ६. हनुमान् सहित ७ विभीषन। अपर जे जूथप कपि बलवान। कहि न सकहिं कछु प्रेम बस भरि भरि लोचन बारि। सनमुख चितवहिं राम तन नयन निमेष निबारि। अतिसय प्रीति देखि रघुराई। लीन्हे सकल बिमान चढाई। अत्यन्त बलवान् वीरों मे भी ये ही सात प्रधान थे। रावण ने भी निर्बल सिद्ध करने लिए इन्ही सातों का नाम लेकर दोष दिखलाया था। यथा : १.२. तुम सुग्रीव कूल द्रुम दोऊ। ३ अनुज हमार भीरु अति सोऊ। सिल्प कर्म जानत ४.५. नल नील। ६. जामवन्त मन्त्री अति बूढा। ७. है कपि एक महा बलसीला। इनका अतिशय प्रेम सरकार पर था। ये महाबलवान् थे और इनमें यथेप्सित रूप धारण करने की भी शक्ति थी। इन लोगों ने सुन्दर मनुष्य का शरीर धारण कर लिया था। फिर भी अपने पूर्व रूप से मेल खाता था कि ये मनुष्य रूप मे भी पहिचाने जाते थे। सरकार का रुख देखकर ही इन लोगों ने मनुष्य रूप धारण किया। भरतजी के पास हनुमान्जी को भेजते समय सरकार ने कहा कि बटु रूप धारण करके भरतजी के पास जाओ। बानर रूप से जाने में प्रजा मे उद्वेग होगा। बात समझकर इन महात्माओ ने मनोहर मनुज रूप धारण कर लिया।

भरत सनेहु सील ब्रत नेमा। सादर सब बरनहिं अति प्रेमा॥
देखि नगरबासिन्ह कै रीती। सकल सराहहि प्रभुपद प्रीती॥२॥

अर्थ : भरतजी के स्नेह शील व्रत और नेम का सब आदर और अति प्रेम के साथ वर्णन करते हैं। नगरवासियों की रीति देखकर सब प्रभु के चरणो की प्रीति की प्रशसा करते हैं।

व्याख्या : भरत का स्नेह यथा : बूडत बिरह बारीस कृपानिधान, मोहि करगहि लियो। भरत का शील यथा : अब कुसल कोसल नाथ आरत जानि जन दरसन दियो। भरत का व्रत नेम यथा : बैठे देखि कुसासन जटा मुकुट कृसगात। इत्यादि। ये बानर वीर लोगों ने भरत के स्नेह, शील, व्रत और नेम को आँखों से देखा। अत: सब लोग उनके इन गुणो का वर्णन अत्यन्त प्रेम से कर रहे हैं। ये लोग

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



महात्मा हैं। इनके हृदय मे मैत्री, मुदिता, करुणा और उपेक्षा वास करती है ईर्ष्या नही। इन लोगो ने नगरवासियां की रीति भी आँखो से देखी। यथा : प्रभु बिलोकि हरखे पुरबासी। जनित बियोग बिपति सब नासी। प्रेमातुर सब लोग निहारी। अत. उनके प्रभु पद प्रीति की सब लाग सराहना करते हैं कि प्रजावर्ग मे राजा पर ऐसी प्रीति कही देखी नही जाती।

पुनि रघुपति सब सखा बोलाए। मुनि पद लागहु सकल सिखाए ॥
गुरुबसिष्ठ कुल पूज्य हमारे। इन्ह की कृपा दनुज रन मारे ॥३॥

अर्थ: फिर रामजी ने सब सखाओ को बुलाया और सबको सिखाया कि मुनिजी के चरणो की वन्दना करो। ये मुनि वसिष्ठ हैं। हमारे कुल के पूज्य हैं। इनकी कृपा से मैंने राक्षसो को रण मे मारा है।

व्याख्या: भेंट मिलाप के बाद इस बात की आवश्यकता पडी कि जो लोग लका से साथ आये हैं उनका परिचय दें। गुरुजी को परिचय देने से ही सबको परिचय मिल जायगा। अत पहिले सखाओ को सिखाया कि गुरुजी के चरणो की वन्दना करो। ये ही गुरु वसिष्ठ हैं। ये हमारे कुल पूज्य हैं। हमारे कुल मे इनकी पूजा होती आयी है। इस कहने से सरकार ने गुरुजी का अत्यन्त चिरजीवी होना बतलाया। अब महिमा कहते हैं कि इनके आशीर्वाद से ही हम लागो का अशुभ दूर होकर कल्याण होता है। तथा: इन्ह की कृपा दनुज रन मारे।

ए सब सखा सुनहु मुनि मेरे। भए समर सागर कहँ बेरे ॥
मम हित लागि जनम इन हारे। भरतहु ते मोहि अधिक पिआरे ॥४॥
सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। निमिष निमिष उपजत सुख नए ॥५॥

अर्थ: हे मुनिजी! सुनो। ये सब मेरे सखा है। ये ही युद्ध समुद्र मे मेरे लिये बेडा हुए। मेरे लिये इन लोगो ने अपना जन्म हार दिया। ये मुझे भरतजी से भी अधिक प्यारे हैं। प्रभु के वचन सुनकर सब मग्न हो गये। प्रत्येक क्षण मे अपूर्व सुख उत्पन्न होने लगे।

व्याख्या सरकार बन्दरो का परिचय मुनिजी को देते हैं। कहते हैं कि ये सब मेरे सखा है। इनका मेरा बराबरी का दर्जा है। इनका सखित्व सुनिये। लका की लडाई मेरे लिए तो समुद्र हो गयी। उस समुद्र के लिए ये जहाजो बेडा हो गये और आपकी कृपा अनुकूल मारुत हो गयी। मेरे लिए इन लोगा ने प्राण निछावर कर दिया। समझ लिया कि हमारा जन्म ही इनकी ओर से जूझने के लिए हुआ है। अत ये लोग भरतजी से भी अधिक प्यारे हैं। भरतजी तो मेरे भाई हैं। होहिं कुठायँ सुबन्धु सहायँ। उनका मेरे लिए कष्ट उठाना प्राप्त था। पर इनसे तो कोई सम्बन्ध नही था। मैं नर और ये बानर। नर बानर का सङ्ग कैसा? सो इन लोगो ने मेरा ऐसा साथ दिया अत भरतजी से भी प्यारे हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सरकार का वचन सुनकर सब मग्न हो गये कि सरकार हमारी इतनी बड़ाई गुरुजी से करते हैं। सुख समुद्र में मग्न हैं। नयी नयी आनन्द की लहरें आरही हैं। इन लोगों ने सरकार को समर सागर से पार किया और सरकार ने इन्हें सुख सागर में डुबा दिया।

दो. कौसल्या के चरनन्हि, पुनि तिन्ह नाएउ माथ।
आसिष दीन्हे हरषि तुम्ह, प्रिय मम जिमि रघुनाथ ॥८ क.
सुमन वृष्टि नभ संकुल, भवन चले सुखकंद।
चढ़ी अटारिन्ह देखहिं, नगर नारि बर वृंद ॥८॥

अर्थ : कौसल्याजी के चरणो में फिर उन्होंने सिर झुकाया। आशीर्वाद दिया और कहा कि तुम लोग मुझे वैसे ही प्रिय हो जैसे रामजी प्रिय हैं। फूलों की वर्षा से आकाश भर गया। सुख के मेघ श्रीरामजी घर चले। नगर की श्रेष्ठ स्त्रियाँ अटारियों पर चढी हुई देख रही हैं।

व्याख्या : पहिले महाराज की आज्ञा से वसिष्ठजी के चरणों में सिर नावाया था। अब कौसल्याजी के चरणो मे सिर नवा रहे हैं। परिचय देने की आवश्यकता नहीं है। गुरुजी के परिचय देने से ही सबको सखाओं का परिचय हो गया और सखा लोग मिलने की रीति से ही भगवती कौसल्या को पहिचान गये। उनके प्रणाम करने पर कौसल्याम्बा ने आशीर्वाद दिया और : तुम्ह प्रियमम जिमि रघुनाथ। कह कर उन पर अपनी प्रीति दिखलायी।

यहाँ का कार्य पूरा करके सरकार घर चले। कवि यहाँ पर सुखकन्द विशेषण देकर दिखला रहे हैं कि रास्ते में आनन्द की वर्षा होती जारही है। उसी को स्पष्ट करते हुए कहते हैं 'कि ऐसे फूलो की वर्षा हुई कि आकाश पुष्पमय हो गया। इस शोभा को नगरके लोग अटारियों पर चढकर' देख रहे हैं। नीचे से शोभा देखने के लिए यथेष्ट स्थान नहीं है। यह पुष्पवृष्टि नगरवासियो की ओर से है।

कंचन कलस विचित्र सँवारे। सबहि धरे सजि निज निज द्वारे ॥
बंदनवार पताका केतू। सबन्हि बनाए मंगल हेतू ॥१॥

अर्थ : सोने के कलश विचित्र रूप से सँवार कर सबने अपने अपने द्वार पर सजाकर रख छोड़ा था। सबने वन्दनवार ध्वजा और पताका मङ्गल के कारण लगा रक्खा था।

व्याख्या : अवध की सम्पत्ति का दिग्दर्शन कराते हुए कहते हैं कि सबके द्वार पर स्वागत के लिए सुवर्ण के मङ्गल घट रक्खे हुए हैं। उस पर सिन्दूरादि का लेप किया हुआ है। जिससे उनकी विचित्र शोभा हो रही है। यथा : छुहे पुरट घट सहज सुहाए। मदन सकुचि जनु नीड बनाए।

द्वार पर नीचे सुवर्ण घट रक्खा हुआ है। ऊपर अनेक प्रकार के बन्दनवार

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बाँधे गये है। यथा : रचे विविध बिधि बंदनबारे। मनहुँ पाकरिपु चाप सँवारे। मकान के ऊपर केतु पताका शोभायमान है। राज्य की ओर से कोई घोषणा नही है। प्रजावर्ग को स्नेह इतना है कि प्रत्येक व्यक्ति समझ रहा है कि मेरे घर मङ्गल उपस्थित है।

**बीथी सकल सुगंध सिंचाई। गजमनि रचि बहु चौक पुराई॥**
**नाना भाँति सुमंगल साजे। हरषि नगर निसान बहु बाजे॥२॥**

अर्थ : सब गलियाँ सुगन्धित द्रव्य से सीची गयी। गजमुक्ताओ से सजाकर बहुत से चौके पुराये गये। अनेक भाँति के सुन्दर मङ्गल साज सजाये गये। हर्षित होकर नगर मे बहुत से डङ्के बजने लगे।

व्याख्या : नगर की छोटी बडी सभी गलियाँ सुगन्ध से सीची गयी केवल जल से नही। राज मार्ग का छिडकाव नही कहते। क्योंकि वह तो राजा की प्रसन्नताके लिए दिखावा मात्र है। आँटे या पत्थर के चूरो से चौक नही पूरे गये। गजमणि को ऐसा सजाया मानो चौक पूरा हुआ हो। नानाभाँति के सुमङ्गल साजे गये : दधि दुर्वा रोचन फल फूला। नव तुलसीदल मगल मूला। ये सब द्रव्य हेमथार मे भरकर रक्खे गये। केले के खम्मे रोपे गये। वितान ताने गये। आम के पल्लव आदि लटकाये गये और नगर मे बहुत स्थानो पर हर्षोद्रेक से निशान बजने का प्रबन्ध था।

यहाँ पर ध्यान रखने की बात है कि स्वर्ण के मङ्गल कलश तो कम से कम सबके द्वार पर हैं। परन्तु गजमणि का चौक तथा निशान का बजना सबके यहाँ नही है। जो समर्थ हैं उन्ही के यहाँ ऐसी योजनाएँ हैं। पर उसकी भी सख्या थोडी नही है।

**जहँ तहँ नारि निछावरि करही। देहिं असीस हरष उर भरही॥**
**कंचन थार आरती नाना। जुवती सजें करहिं सुभ गाना॥३॥**

अर्थ : जहाँ तहाँ स्त्रियाँ निछावर कर रही हैं। आशीर्वाद देती हैं और हृदय को हर्ष से पूरित कर रही हैं। सोने के थारो में अनेक प्रकार की आरती साजे हुए युवतियाँ मङ्गलगान कर रही हैं।

व्याख्या : रानी लोग तो नाना भाँति से निछावर करती हैं। सब लोग इस भाँति निछावर नही कर सकते। फिर भी रास्ते मे निछावर होती जाती है। स्त्रियाँ निछावर करती हैं। आशीर्वाद भी देती हैं। माँ लोग : परमानन्द हरष उर भरही। और प्रजावर्ग : देहिं असीस हरष उर भरही। भाव यह कि चौदह वर्ष तक हृदय सुख से रीता था। अत. उसमे हर्ष भर रही हैं।

सोने के थारो मे अनेक प्रकार की आरतियाँ साजे हुए युवतियाँ मङ्गलगान कर रही हैं। तात्पर्य यह है कि अयोध्या मे चारो ओर उत्साह दिखायी पड रहा है। उत्साह से स्त्रियाँ नाना प्रकार से आरती साज रक्खी हैं। बत्तियो की संख्या के भेद से तथा सजावट के भेद से आरतियो मे भेद होता है। इसलिए नाना भाँति कहा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



करहिं आरती आरतिहरकें। रघुकुल कमल बिपिन दिनकर कें ॥
पुर सोभा संपति कल्याना। निगम सेष सारदा बखाना ॥४॥
तेउ यह चरित देख ठगि रहही। उमा तासु गुन नर किमि कहही ॥५॥

अर्थ आर्त्ति के हरनेवाले सूर्यकुलरूपी कमल वन के सूर्य की वे आरती करती हैं। पुर की शोभा सम्पत्ति और कल्याण का बखान वेद शेष और सरस्वती ने किया है। वे भी यह चरित्र देखकर ठगे से रह जाते हैं। हे उमा! तब उसके गुण को मनुष्य कैसे कहें।

व्याख्या आर्तिहार जो भगवान् हैं उनकी आरती हो रही है। सरकार स्वय रघुकुल कमल के सूर्य हैं। उनकी आरती करना सूर्य को दीपक दिखाना है। पर भक्त अपने हृदय के उत्साह को व्यक्त कैसे करें। अत. आरती कर रहे हैं। यथा ' हरति सब आरती आरती रामकी। विनयपद ४८

यद्यपि अवध सदैव सुहावनि। रामपुरी मगलमय पावनि है। अवधपुरी का वर्णन तीनो लोक के वक्ताओ ने किया है। सदैव सोहावनि : शब्द से शोभा कहा। मङ्गलमय से सुख सम्पत्ति कहा। पावनि ' कहकर कल्याणमय कहा। अथवा पुर की शोभा का वर्णन निगम ने किया। सम्पत्ति का शेष ने किया और कल्याण क शारदा ने किया।

वे भी सरकार के पुर प्रवेश का चरित्र देखकर स्तब्ध रह गये। मानो उनका मन किसी ने ठग लिया। कुछ कहते नही बनता। शकर भगवान् कहते हैं कि उनका वर्णन मनुष्य कैसे कर सकते हैं। मनुष्य तो सब प्रकार से अल्पवीर्य हैं। भाव यह कि मनुष्य लोक मे यह चरित्र हुआ है। अत मनुष्य उसका वर्णन करना चाहेंगे। पर उनके वर्णन मे वह बात आ नही सकती। उनके वर्णन से कोई यह न समझ ले कि अयोध्या मे इतना ही और ऐसा ही उत्साह हुआ।

दो. नारि कुमुदिनी अवध सर, रघुपति बिरह दिनेस।
अस्त भये बिगसत भईं, निरखि रामु राकेस ॥९ क.
होहिं सगुन सुभ बिबिध बिधि, बाजहिं गगन निसान।
पुरनर नारि सनाथ करि, भवन चले भगवान ॥९ ख.

अर्थ : अयोध्यारूपी सरोवर मे स्त्रियाँरूपी कुमुदिनी थी। रामजी के विरह रूपी सूर्य के अस्त होने पर रामचन्द्ररूपी पूर्ण चन्द्र को देखकर विकसित हो गयी। अनेक प्रकार के शुभ सगुन होते थे। आकाश मे डके बज रहे थे। पुर के पुरुष और स्त्रियो को सनाथ करके भगवान् रामचन्द्र महल मे चले।

व्याख्या ' रघुपति विरह दिनेश के उदय से अवध सर की कुमुदिनी स्त्रियाँ दीन हो रही थीं। चौदह वर्ष तक उसी दशा मे रही। आज वह सूर्य अस्त हो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



गये और रामचन्द्ररूपी पूर्णचन्द्र का उदय हुआ। उनके दर्शनमात्र से वे सब की सब खिल उठी। सूर्यास्त और पूर्णचन्द्र का उदय एक साथ ही होता है। कुमुदिनियो के खिलने का ससार मे अन्य कोई उपाय नही है जब चन्द्रोदय हो तभी वे खिलती हैं।

विवाह प्रकरण मे सगुनो का विस्तृत वर्णन कर चुके हैं। इसलिए यहाँ नही करते। इतना ही कर रहे हैं कि अनेक प्रकार के शुभ शकुन हो रहे हैं। भगवती प्रकृति शकुनो द्वारा अपने उत्साह को पृथिवी पर प्रकट कर रही हैं और डङ्का बजाकर देवता लोग आकाश मे उत्साह प्रकट कर रहे हैं। इस भाँति सरकारी सवारी जा रही है। दर्शन करके पुर के नरनारी सनाथ हो रहे हैं। सवारी महल तक पहुँची तब भगवान् महल मे चले।

प्रभु जानी कैकई लजानी। प्रथम तासु गृह गए भवानी॥
ताहि प्रबोधि बहुत सुख दीन्हा। पुनि निज भवन गवनु हरि कीन्हा॥१॥

अर्थ सरकार ने जान लिया था कि कैकेयी लज्जित हो रही हैं। सो पहिले उन्ही के महल मे गये। उन्हे समझाबुझाकर बहुत सुख दिया। तत्पश्चात् अपने भवन मे प्रवेश किया।

व्याख्या लक्ष्मणजी ने कैकेयी के सङ्कोच को जाना। अत उनके सन्तोष के लिए बार बार मिले। सरकार ने भी उसी समय जाना था पर बार बार मिलना ही उनकी सन्तुष्टि के लिए यथेष्ट नही समझा। अत उनके सङ्कोच को मिटाने के लिए उनके महल मे गये। कैकेयी ने जो कहा था मोपर करहिं सनेह बिसेखी। मैं करि प्रीति परीछा देखी। सो सरकार इस विकट परीक्षा मे भी उत्तीर्ण हुए। उसी महल से वन जाने के लिए बाहर निकले थे। आज लौटकर भी पहिले उसी महल मे गये। नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न राम सम जान जथारथ। ससार जान ले कि महारानी कैकेयी का वही सत्कार है जो महाराज के समय मे था। कैकेयी को भी सन्तोष हो कि राजमाता होने की प्रतिष्ठा उसी को प्राप्त है। जिसे पाने के लिए उसने वन भेजा था। पग परि कीन्ह प्रबोध बहोरी। काल कर्म बिधि सिर धरि खोरी। उसी को सफल करके दिखला दिया। फिर भगवती कैकेयी को समझा बुझाकर बहुत सुख दिया। बोले

सुख सोहाग सम्पति सुजस त्यागि अगइ अपमान।
जननि कियो तैं लोक हित तो सम कौन महान॥
विधि दीन्हे यह काज तोहि मैं जानत सो बात।
निज जननी ते अधिक तू याते मोहि सोहात॥

छ तेरे ही प्रताप बध भयउ दसानन को,
तेरे ही प्रसाद भार भूमि को उतरिगो।
जमि गयो शासन बहोरि पाकशासन को,
श्रुति अनुशासन पताल लो पसरिगो॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तेरे ही प्रताप विजय आनन्द निहाल आज,
विषम विषाद सुर संतन को टरिगा।
पूरि महिमंडल अखण्डलपुरी लौं जस,
तेरे ही प्रसाद रघुबंशिन्ह को भरिगो॥
पितहि दियौं जो ज्ञान सो अम्ब देत हौं तोहि।
पूरण ब्रह्म अनादि अज अस विचारि भजु मोहि॥

कृपासिंधु तब मंदिर गए। पुर नर नारि सुखी सब भए॥

## रामाभिषेक प्रसङ्ग

गुरु बसिष्ठ द्विज लिए बोलाई। आजु सुघरी सुदिन समुदाई॥२॥

अर्थ : कृपासिन्धु रामजी घर गये तब पुर के नरनारी सब सुखी हुए। गुरु वसिष्ठजी ने ब्राह्मणो को बुला लिया। बोले कि आज सुघडी और सुदिन का समुदाय है।

व्याख्या : सरकार के कैकेयी के महल मे जाने से प्रजावर्ग मे खलबली पड़ गयी कि इसी महल से वनवास का व्रत लेकर निकले थे। फिर आते ही उसी महल मे गये। कैकेयी फिर कोई कुचाल न चले। बहुत से लोग संशय मे पड़ गये। कृपासिन्धु के आशय को न समझ सके। पर जब कैकेयी के महल से निकलकर अपने मन्दिर मे गये तब सब पुर के नर नारि सुखी हुए।

गुरु वसिष्ठ ने ब्राह्मणो को बुलवा लिया। ब्राह्मण वचनात् कार्य करना है और उनसे कहा कि आज का मुहूर्त बहुत अच्छा है। पुष्य नक्षत्र भी है और भी योग लग्न ग्रह सब अच्छे हैं। राज्याभिषेक ऐसे ही मुहूर्त मे करना चाहिए। गुरुजी बिना पूछे मुहूर्त बतलाते हैं। चक्रवर्तीजी के पूछने पर भी नही बतलाया कह दिया : सुदिन सुमगल तबहि जब राम होहिं जुवराज।

सब द्विज देहु हरषि अनुसासन। रामचन्द्र बैठहिं सिघासन॥
मुनि बसिष्ठ के बचन सुहाए। सुनत सकल बिप्रन्ह अति भाए॥३॥

अर्थ : सब ब्राह्मण लोग हर्षित होकर आज्ञा दो रामचन्द्र सिंहासन पर बैठें। वसिष्ठ मुनिजी के सोहाये वचन सुनते ही सब ब्राह्मणो को बड़ा अच्छा लगा।

व्याख्या : वसिष्ठजी बोले कि सब ब्राह्मण हर्षित होकर आज्ञा दो। मेरे दबाव से नही। महाराज दशरथ ने भरत को राज्य दिया। यथा : देहु भरत कहँ राज बजाई। भरत को राज्य स्वीकार नही। रामजी के नही रहने पर चौदह वर्ष तक रामजी की पादुका को सिंहासनासीन करके भरतजी ने राज्य चलाया। अतः भरत तो अपनी ओर से रामजी को राजा बना चुके हैं और रावण वध से भी सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के राजा हो चुके। क्योकि रावण का शासन सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड पर था। यथा : ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनुधारी। दसमुख बसवर्ती नर नारी। अब रामचन्द्र का सिंहासन पर बैठना मात्र शेष है। सो रामचन्द्र ब्राह्मणों की आज्ञा न टालेंगे। अतः

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



आप लोगों की आज्ञा प्रार्थनीय है। रामचन्द्र के मन से पाप स्पर्श की शङ्का दूर होनी चाहिए। आप लोगों की आज्ञा से वह दूर हो जायगी। शिवजी के धनुष तोड़ने के समय भी ऐसी शङ्का की निवृत्ति के लिए ब्राह्मणों की आज्ञा से ही धनुपभंग किया। यथा : राम मुनिन्ह सन आयसु माँगा।

सभी ब्राह्मण लोग रामजी पर वसिष्ठजी सा ही प्रेम करते थे। यथा : बिप्र सहित परिवार गोसाईं। करहिं छोहु सब रौरेहि नाईं। अतः उन लोगों को रामजी के अभिषेक विषयक वचन बहुत ही अच्छा लगा। सबकी यही सम्मति हुई कि आज ही अभिषेक होना चाहिए।

कहहिं वचन मृदु विप्र अनेका। जग अभिराम राम अभिषेका ॥
अब मुनिवर बिलम्बु नहि कीजै। महाराज कहुँ तिलक करीजै ॥४॥

*अर्थ : अनेक मृदु वचन ब्राह्मण लोग कहने लगे कि रामजी का अभिषेक* जगत् के लिए सुखद है। अब मुनिराज ! देर न कीजिये। महाराज को तिलक कर दीजिये।

व्याख्या : ब्राह्मण लोग अनेक मृदु वचन कहने लगे। उन वचनों का आशय यह था कि रामजी के अभिषेक से संसार का कल्याण है। सबको सोहाता है। यथा : रामराज अभिषेक सुनि हिय हरखे नरनारि। लगे सुमंगल सजन सब बिधि अनुकूल बिचारी। कनक सिंहासन सीय समेता। बैठहिं रामु होइ चितचेता। इत्यादि।

ब्राह्मणों ने कहा कि अब अभिषेक में विलम्ब न होना चाहिए। पहले अभिषेक में आपने कहा था : बेग बिलम्ब न करिअ नृप साजिय सकल समाज। यदि महाराज उसी दिन रामजी को राज्य दे दिये होते तो विघ्न को अवसर न मिलता। एक दिन के विलम्ब में विघ्न हो गया। अतः इस बार विलम्ब न होने पावे। महाराज तो वे हैं ही तिलक मात्र शेष है। सो आप कुलगुरु हैं। आप तिलक कर दीजिये। महाराज दशरथजी भी कह चुके है : सुबस बसिहि फिरि अवध सोहाई। सब गुनधाम राम प्रभुताई। करिहहिं भाइ सकल सेवकाई। होइहि तिहुँ पुर राम बड़ाई।

दो. तब मुनि कहेउ सुमंत्र सन, सुनत चलेउ हरखाइ।
रथ अनेक बहु बाजि गज, तुरत सँवारे जाइ ॥१० क.
जहँ तहँ धावन पठइ पुनि, मंगल द्रव्य मँगाइ।
हरख समेत बसिष्ठ पद, पुनि सिरु नायेउ आइ ॥१० ख.

अर्थ : तब मुनिजी ने सुमन्त्र से कहा। वे सुनते ही हर्षित होकर चले। अनेक रथ और बहुत से हाथी घोड़े तुरन्त सजाये। जहाँ तहाँ हरकारों को भेजकर मङ्गल द्रव्य मँगाया और हर्ष समेत वसिष्ठजी के चरणों में फिर सिर झुकाया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : रामजी के न लौटने का सन्देश राजा को देने के बाद से सुमन्त्रजी का पता नही है। घर से बाहर नही निकलते। महाराज का देहावसान हुआ। भरतजी आये। और्ध्वदेहिक क्रिया हुई। भरत सभा हुई। सब लोग चित्रकूट गये। लौटे। जनकजी आये। भरतजी नन्दिग्राम मे रहने लगे। पर कही सुमन्त्र का नाम नही है : अस कहि सचिव बचन रहि गयऊ। हानि गलानि सोच बस भयऊ। उसी समय से सुमन्त्रजी हानि ग्लानि और सोच वश हो गये। चौदह वर्ष तक किसी को मुख न दिखलाया। आज सरकार बन से लौटे है तो सुमन्त्रजी भी घर के बाहर निकले। मुनिजी ने सुमन्त्रजी को रथ बाजि गज सँवारने के लिए तथा मङ्गल द्रव्य लाने की आज्ञा दी। तुरन्त नमस्कार करके चले।

सब अभिषेक का सामान महाराज चक्रवर्तीजी के समय का एकत्रित किया हुआ रक्खा है। जो वस्तुएँ चौदह वर्ष तक टिक नही सकती उन्ही को मँगाना है। औषध मूल फूल फल पाना। तथा सुतीर्थों के जल इत्यादि को मँगाना था। सुग्रीव अगद जाम्बवान् और हनुमान्‌जी चारो समुद्र का जल ले आये। जहाँ तहाँ शेष मङ्गल द्रव्य के लिए हरकारे भेजे गये। रथ अनेक बहु बाजि गज सँवारने के लिए तो आज्ञा मात्र की देर थी। सब सामान प्रस्तुत करके प्रसन्नता के साथ लौटकर फिर वसिष्ठजी को नमस्कार किया। भाव यह कि सब सामान ठीक है।

अवध पुरी अति रुचिर बनाई। देवन्ह सुमन वृष्टि झरलाई ॥
राम कहा सेवकन्ह बुलाई। प्रथम सखन्ह अन्हवावहु जाई ॥१॥

अर्थ : अयोध्यापुरी को अत्यन्त सुन्दर सजाया गया। देवताओ ने फूलो की वर्षा की झर लगा दी। रामजी ने सेवको को बुलाकर कहा कि पहिले जाकर सखाओ को नहलाओ।

व्याख्या : इस समय तिलक के लिए जल्दी है। उसी दिन तिलक होना है। सामान बहुत कुछ करना है। कवि भी जल्दी मे है। वसिष्ठजी ने सुमन्त्र से कहा। बस इतना ही लिखा। क्या कहा ? इसे बाद के साज सामान से अनुमान करना होगा : रथ अनेक बहु बाजि गज तुरत सँवारेउ जाइ : से लेकर अवध पुरी अति रुचिर बनाई : तक उसी का वर्णन है। यद्यपि अवध सदैव सोहावनि। रामपुरी मगल मय पावनि। तदपि प्रीति कै रीति सुहाई। मगल रचना रची बनाई। अतः कहते हैं कि अयोध्या पुरी अति सुन्दर साजी गयी। देवताओ ने फूलो के वर्षा की झर बाँध दी। इससे शोभा और भी बढ गयी।

सरकार ने देखा कि सेवक लोग मेरे मज्जन की व्यवस्था कर रहे हैं। विभीषणजी ने प्रार्थना की थी कि : मज्जन करिय समर स्रम छीजे। परन्तु सरकार ने बिना भरतजी से मिले मज्जन करना स्वीकार नही किया। अब भरत मिलाप हो चुका। अभिषेक के पहिले मज्जन करना आवश्यक है। इसलिए सेवको को मज्जन करने की व्यवस्था करते देखकर बुलाया और आज्ञा दी कि पहिले जाकर मेरे सखाओ को मज्जन कराओ। उसके बाद मैं मज्जन करूँगा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुनत बचन जहँ तहँ जन धाए। सुग्रीवादि तुरत अन्हवाए ॥
पुनि करुना निधि भरतु हँकारे। निजकर राम जटा निरुआरे ॥२॥

अर्थ : वचन सुनते ही सेवक लोग दौड़े और सुग्रीवादि को तुरन्त मज्जन कराया। तत्पश्चात् करुणानिधि ने भरतजी को बुलाया और अपने हाथ से उनकी जटा को सुलझाया।

व्याख्या : सरकार के सखा हैं। उन्हें पृथक् पृथक् महलो मे ठहराया गया। स्वयं रामजी के महल मे सुग्रीव ठहराये गये हैं। अतः जहाँ जहाँ वे लोग ठहरे थे वहाँ वहाँ मङ्गल स्नान कराने के लिए सेवक दौड़ गये और तुरन्त उन लोगो को मज्जन करवाया : नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न राम सम जान जथारथ। अपने मज्जन करने के पहिले सखाओ के मज्जन कराने मे नीति प्रीति परमार्थ और स्वार्थ का चमत्कृत समिश्रण है।

सरकार करुणानिधि हैं। भरतजी अभिषेक की तैयारी मे लगे हैं। सो उन्हे बुला लिया और उनके मङ्गल स्नान कराने के लिए अपने हाथ से उनकी जटा को सुलझाया। जिसमे एक भी बाल भरतजी का बाँका न हो और सुलझाने में किसी प्रकार का कष्ट बोध न हो। सरकार के लिए ही भरतजी ने जटा धारण की। अतः सरकार के हाथ से उस जटा का सुलझाना शोभा देता है। यहाँ पर यह अनुमान कर लेना होगा कि भरतजी की जटा को सरकार द्वारा सुलझाते देखकर लक्ष्मणजी ने अपनी जटा स्वयं सुलझा ली। अथवा मन्त्रियो ने सुलझा दिया। अथवा श्रीभरतजी ने गोद मे बैठाकर सुलझा दिया। अत॰ लालन योग लखन लघु लोने।

अन्हवाए प्रभु तीनिउ भाई। भगत बछल कृपाल रघुराई ॥
भरत भाग्य प्रभु कोमलताई। सेप कोटिसत सकहिं न गाई ॥३॥

अर्थ : सरकार ने तीनो भाइयो को नहलाया। क्योकि रघुराई कृपाल और भक्तवत्सल हैं। भरतजी के भाग्य और सरकार को कोमलता को सौ कोटि शेष भी वर्णन नही कर सकते।

व्याख्या : स्वयं सरकार ने तीनो भाइयो को मङ्गल स्नान करवाया। तीनो भाई सरकार के भक्त हैं। सरकार से छोटे हैं। अत. सरकार का उन पर स्नेह है। कृपा है और नीति भी यही है। इसलिए कवि ने यहाँ सरकार के लिए तीन विशेषण दिये : भक्त वत्सल, कृपाल और रघुराई। गोस्वामीजी कहते हैं कि सरकार का हाथ सिर पर पडना बडे भाग्य की बात है। यथा : प्रभु कर पकज कपि के सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा। सो सरकार भरतजी की जटा अपने हाथ से सुलझा रहे हैं। भरत के भाग्य का और सरकार की कोमलता का वर्णन सौ कोटि शेष से भी नही हो सकता। जिन्हे सहस्र मुख हैं और दो सहस्र जिह्वाएँ हैं। उसे एक जिह्वावाला मनुष्य क्या वर्णन कर सकता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


पुनि निज जटा राम बिबराए । गुरु अनुसासन माँगि नहाए ॥
करि मज्जन प्रभु भूषन साजे । अंग अनग देखि सत लाजे ॥४॥

अर्थ . फिर रामजी ने अपनी जटा को फोडा और गुरुजी की आज्ञा पाकर स्नान किया । स्नान के बाद सरकार ने आभूषण सजाया । अङ्गो को देखकर सैकडो काम लज्जित हो गये ।

व्याख्या . तीनो भाइयो के स्नान कराने के बाद सरकार ने अपनी जटा को बिबराया । अर्थात् उलझे हुए बालो को खैंचकर अलग किया । भरतजी की जटा की भाँति सुलझाया नही । सरकार की प्रसन्नता भाइयो को सुख देने मे है अपने आराम मे नही । स्वय मङ्गल स्नान के लिए गुरुजी से आज्ञा मांगी । मिलने पर स्नान किया । यह मङ्गल स्नान काम्य था । अत इसके बाद नित्य कृत्य नही कहते । भूषणो का साजाना कहते हैं । चौदह वर्ष के बाद मङ्गल स्नान हो रहा है और भूषण साजा जा रहा है । भूषण धारण करने का विधान शास्त्र मे है कि पुन राजा के लिए । तथापि अभिषेक के अवसर पर तो अनिवार्य है । अतः सरकार ने भूषण सजाये । यहाँ दिखावा का लेश भी नही है । जब उचित नही था तब किसी के कहने पर भी अभिषेक के लिए तैयार नही हुए और जब अभिषेक का स्वीकार करना उचित बोध हुआ तब उसके स्वीकार करने मे टालमटोल भी नही किया । सरकार के शरीर को भूषित देखकर कोटि काम की छवि फीकी पड गयी । क्योकि रामजी की शोभा शत कोटि काम से देना वैसा ही है जैसे सूर्य को शोभा की शत कोटि जुगनू की शोभा के साथ उपमा देना । यथा उपमा न कोउ कह दास तुलसी कतहु कवि कोविद कहैं । जिमि कोटिसत खद्योत सम रबि कहत अति लघुता लहैं ।

दो. सासुन्ह सादर जानकिहि, मज्जन तुरत कराइ ।
दिब्य बसन बर भूषन, अग अग सजे बनाइ ॥११ क.
राम बाम दिसि सोभति, रमा रूप गुन खानि ।
देखि मातु सब हरषी, जनम सुफल निज जानि ॥११ ख.
सुनु खगेस तेहि अवसर, ब्रह्मा सिव मुनि बृंद ।
चढि बिमान आए सब, सुर देखन्ह सुखकंद ॥११॥

अर्थ · सासुओ ने आदर के साथ तुरन्त जानकीजी का मज्जन कराया और दिव्य कपडे और श्रेष्ठ गहने प्रत्येक अङ्ग मे सँवारकर सजाया ।

रूप और गुण की खानि लक्ष्मी रामजी की बायी ओर शोभित हुईं । देखकर सब माता लोग अपना जन्म सुफल जानकर हर्षित हुईं ।

हे पक्षिराज ! उस समय ब्रह्माजी शिवजी मुनि लोग तथा सब देवता लोग विमानो पर चढकर सुख की वर्षा करनेवाले रामजी को देखने के लिए आये ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या वसिष्ठजी की आज्ञा सबको विदित हो गयी। सरकार का मज्जन सुनकर अभिषेक म भगवती की अनिवार्य आवश्यकता जानकर सब सास लोग लिपट गयी। दासियो की वहाँ गति नही है। सरकार ने स्वय मज्जन करके भूपण साजा। वीर हैं विशेष शृगार नही करते। पर भगवती की दूसरी बात है। महारानियाँ मज्जन कराके स्वय उनका शृगार कर रही हैं। अत अग अग मे सँवार सँवारकर गहने साज रही हैं।

शृङ्गार कर लेने के बाद ले जाकर रामजी के वाम भाग मे बिठा दिया। अभिषेके पत्नी वामत ऐसा शास्त्र का वचन है। रामजी के वाम दिशा मे रमा की ही शोभा हो सकती है। यह वह रमा हैं जिन्हे आदि शक्ति कहा गया है। यथा : वाम भाग सोहति अनुकूला। आदि सक्ति छबि निधि जग मूला। उपजहिं जासु अस गुन खानी। अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी। सो ऐसी शोभा हुई जिसे देखकर माताओ ने अपना जन्म सफल समझा। यही एक अभिलाष शेष रहा था। जिसकी पूर्ति चक्रवर्तीजी न देख सके। उसकी पूर्ति माताएँ देख रही हैं।

देवताओ की भक्ति दिखलाते हुए उपासना घाट के वक्ता भुसुण्डिजी अपने श्रोता गरुडजी को सम्बोधन करते हुए कहते हैं कि सरकार के सिंहासनारूढ होने का समय जानकर स्वय ब्रह्मदेव तथा शङ्करजी अन्य देवताओ तथा मुनियो के सहित विमानो पर सवार होकर आये। सरकार आनन्द वारिवाह हैं। आनन्द की वर्षा होगी। उस आनन्द से हम वञ्चित न रह जायँ इस आशय से उपस्थित हुए।

प्रभु बिलोकि मनिमनु अनुरागा। तुरत दिब्य सिंघासनु माँगा॥
रबि सम तेज सो बरनि न जाई। बैठे रामु द्विजन्ह सिर नाई॥१॥

अर्थ सरकार को देखकर मुनि वशिष्ठ के मन मे अनुराग हुआ। तुरन्त ही दिव्य सिंहासन माँगा। उसका तेज सूर्य के समान था। उसका वर्णन नही हो सकता। ब्राह्मणा को प्रणाम करके रामजी उस पर बैठे।

व्याख्या माताओ का देखना कहकर अब गुरुजी का देखना कवि कहते हैं। गुरुजी के हृदय मे भी प्रभु को देखकर अनुराग हुआ। सोचने लगे कि इस मूर्ति के लिए भौतिक सिंहासन उपयुक्त नही है। अत गुरुजी ने दिव्य सिंहासन माँगा। गुरुजी का तपोबल कहते हैं कि दिव्य लोक से दिव्य सिंहासन आ गया। उस सिंहासन का तेज सूर्य के समान था और ऐसा अलौकिक था कि उसका वर्णन नही हो सकता। ब्रह्मण्य देव ने ब्राह्मणो को प्रणाम किया और उस सिंहासन पर बैठे। लका के सग्राम मे दिव्य रथ आया था। यथा तेज पुज रथ दिव्य अनूपा। हरखि चढे कोसलपुर भूपा। उसी कौशलपुर भूप का दिव्य सिंहासनारूढ होना कहते हैं।

जनक सुता समेत रघुराई। पेखि प्रहरपे मुनि समुदाई॥
बेद मत्र तब द्विजन्ह उचारे। नभ सुर मुनि जय जयति पुकारे॥२॥

अथ जनकसुता के साथ रामजी को देखकर मुनि समाज अत्यन्त हर्षित

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


हुआ। तब ब्राह्मणोने वेद मन्त्र का उच्चारण किया और आकाश मे देवता और मुनियो ने जय जयकार किया।

व्याख्या : जनकसुता कहने का भाव यह कि मुनियो का बडा स्नेह जनकजी पर है। मुनि लोग भी उनसे ज्ञान अर्जन करते हैं। यथा : जासु ज्ञान रवि भव निसि नासा। बचन किरन मुनि कमल बिकासा। सो जनक सुता समेत रामजी को सिंहासनारूढ देखकर मुनि समाज को बडा आनन्द हुआ। पहिले माताओ का देखना कहा। फिर गुरुजी का देखना कहा। तत्पश्चात् मुनिसमाज का देखना कहते हैं। माताओ ने देखकर जन्म सफल माना। गुरुजी ने देखकर तपोबल से दिव्य सिंहासन मँगाया। मुनि लोगो ने देखकर वेद मन्त्रो का उच्चारण जो समयोपयुक्त था किया। अब देवताओका देखना कहते हैं। वे लोग विमानो पर आकाश मे थे। वही से ऐसा जय जयकार किया जो पृथिवी तक गूँज उठा। नीचे स्वस्त्ययन की ध्वनि हुई। ऊपर आकाश मे जयध्वनि हुई।

प्रथम तिलक बसिष्ठ मुनि कीन्हा। पुनि सब बिप्रन्ह आयसु दीन्हा॥
सुत बिलोकि हरषी महतारी। बार बार आरती उतारी॥३॥

अर्थ : पहिले वसिष्ठ मुनिजी ने तिलक किया। तत्पश्चात् अन्य ब्राह्मणो को आज्ञा दी। बेटे को देखकर माताएँ हर्षित हुईं और बार बार आरती उतारी।

व्याख्या : इस प्रकार वेद ध्वनि और जय ध्वनि के बीच मे वसिष्ठ मुनिजी ने जो कि रघुकुल के कुल पूज्य थे पहिले तिलक किया। वसिष्ठजी कुलपूज्य होने के अतिरिक्त मुनियो मे श्रेष्ठ और ब्राह्मणो मे अग्रगण्य थे। साक्षात् ब्रह्मदेव के पुत्र थे। उनकी आज्ञा हुई तब और ब्राह्मणो ने तिलक किया।

जिस अभिषेक के लिए इतनी आकुलता थी : इस अभिषेक से अभिषिक्त बेटे को देखकर माँ हर्षित हुई। माँ लोगो की पुत्र भावना ही दृढ है। वे बेटे को अभिषिक्त देखकर फूली नही समाती। किसी को सपत्नी के पुत्र का भाव नही है। एक बार की आरती मे किसी को सन्तोष नही। अत बार बार आरती उतार रही हैं। पहिली बार जो आरती हुई थी वह तो स्वागत विषयक थी। इस बार की आरती अभिषेक के उपलक्ष्य मे है।

बिप्रन्ह दान बिबिध बिधि दीन्हे। जाचक सकल अजाचक कीन्हे॥
सिंघासन पर त्रिभुवन साईं। देखि सुरन्ह दुन्दुभी बजाईं॥४॥

अर्थ : माताओ ने ब्राह्मणो को अनेक प्रकार का दान दिया। समस्त याचको को अयाचक कर दिया। सिंहासन पर त्रिभुवन के स्वामी को देखकर देवताओ ने नगाडे बजाये।

व्याख्या : यहाँ देय के भेद से दान विधि का भेद कह रहे हैं। यहाँ दान भिक्षा नही है। यजमान अपने कल्याण के लिए अभिषेक के समय अनेक प्रकार का दान करता है। माताएँ उसी प्रथा का अनुसरण कर रही हैं। याचक ब्राह्मणो से

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पृथक् हैं। उन्हे इतना दिया गया कि उनकी भिक्षावृत्ति छूट गयी। वे अपने पैरो पर खडे हो गये।

अवध के सिंहासन पर त्रिभुवन के स्वामी को आसीन देखकर देवताओ ने हर्षित होकर डङ्के बजाये। जिस प्रभु के लिए इतनी उत्कण्ठा थी कि : कहँ पाइय प्रभु करिअ पुकारा। वही प्रभु आज अवध के राज्य पर सिंहासनारूढ हो रहे हैं। देवताओ के मनोरथ का साफल्य इससे अधिक और क्या हो सकता है।

छं. नभ दुंदुभी बाजहिं बिपुल गंधर्ब किन्नर गावही।
नाचहिं अपरछरावृंद परमानंद सुरमुनि पावही॥
भरतादि अनुज बिभीषनागद हनुमदादि समेत ते।
गहे छत्र चामर ब्यजनधनु असि चर्म सक्ति बिराजते॥
श्री सहित दिनकर बंस भूषन काम बहु छबि सोहई।
नव अंबुधर बरगात अंबर पीत सुर मन मोहई॥
मुकुटांगदादि बिचित्र भूषन अंग अंगन्हि प्रति सजे।
अंभोजनयन बिसाल उर भुज धन्य नर निरखंति जे॥

अर्थ : आकाश मे बहुत से नगाड़े बज रहे हैं गन्धर्व और किन्नर गा रहे हैं। अप्सराएँ नाच रही हैं देवता और मुनि आनन्द पा रहे हैं। भरतजी आदि छोटे भाई विभीषण अङ्गद और हनुमान् आदि छत्र चामर पखा तलवार ढाल और शक्ति धारण किये शोभायमान हैं।

सीताजी के साथ सूर्यकुल के भूषण रामजी मे बहुत से कामदेव की शोभा हो रही है तथा नये बादल की भाँति श्रेष्ठ शरीर और पीत वस्त्र देवताओं के मन को मोहित कर रहा है। मुकुट, बिजायठ आदि विचित्र गहने प्रत्येक अङ्ग मे शोभायमान है। कमल सी आँखे हैं। छाती और भुजायें विशाल हैं। वे पुरुष धन्य हैं जो ऐसे स्वरूप का दर्शन करते हैं।

व्याख्या : आकाश मे बडा उत्सव है देवता लोग दुन्दुभी बजा रहे हैं। गन्धर्व और किन्नर देवयोनि हैं सङ्गीत के पडित होते है। वे लोग इस उत्सव मे गान करने लगे। जब गान और वाद्य दोनो होने लगा तो उसकी पूर्ति के लिए स्वर्वेश्या उर्वशी इत्यादि ने नृत्य आरम्भ कर दिया। देवता और मुनि भी परमानन्द प्राप्त करने लगे। क्योकि यह सङ्गीत भगवद्विषयक था।

सरकार के अस्त्र शस्त्र के धारण करने के लिए दिव्य सामर्थ्य अपेक्षित है। अत: लङ्कापति ने धनुष अङ्गद ने ढाल तलवार और हनुमान्जी ने शक्ति धारण कर रक्खा है। ये ही रामायुध हैं। सरकार की खवासी मे स्वय भाई लोग खड़े हो गये। भरतजी छत्र लगाये हैं। लक्ष्मणजी चँवर कर रहे हैं। शत्रुघ्नजी पंखा झल रहे हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


आज सबकी अभिलाषा पूरी हो रही है। चौदह वर्ष पहले से ही यह अभिलाषा हो रही है कि : कनक सिंहासन सीय समेता। बैठहिं राम होइ चित चेता। सो सूर्यकुल के भूषण सीताजी के सहित दिव्य सिंहासनपर विराजमान हैं। छबि की पराकाष्ठा कामदेव में मानी जाती है। सो : राम काम सत कोटि सुभग तन। करोड़ों काम की छवि से शोभायमान हैं। काम सबको मोहित करता है। पर मुनियों पर उसका बल नहीं चलता। पर सरकार की सांवली मूर्ति और दामिनीवर्ण वस्त्र तो मुनियों के मन को भी मोहित कर रहा है। सिर पर मुकुट भुजाओं में अङ्गद, और गले मे पदिकहार आदि आभूषण एक से एक अपूर्व सजे हुए हैं। अङ्ग के उदार होने से गहने भी खिलते हैं। अतः गोस्वामीजी कहते हैं कि कमल सी आंखें और विशाल वक्षःस्थल की ऐसी शोभा हो रही है। उस छवि के दर्शन करनेवाले मनुष्यों का बड़ा पुण्य था। इसमें सन्देह नहीं है। सुकृती, पुण्यवान् और धन्य ये सब शब्द पर्यायवाची हैं।

दो. वह सोभा समाज सुख, कहत न बनै खगेस।
बरनैं सारद सेष स्रुति, सो रस जान महेस ॥१२ क.

अर्थ : हे पक्षिराज ! वह शोभा वह समाज और वह आनन्द कहते नहीं बनता। उसका वर्णन शेष और वेद करते हैं। पर उस रस को महादेवजी जानते हैं।

दो. भिन्न भिन्न अस्तुति करि, गए सुर निज निज धाम।
बंदी बेष बेद सब, आए जहँ श्रीराम ॥१२ ख.

प्रभु सर्वज्ञ कीन्ह अति, आदर कृपा निधान।
लखेउ न काहूँ मरमु कछु, लगे करन गुन गान ॥१२॥

अर्थ : अलग अलग स्तुति करके देवता लोग अपने अपने लोक को गये। तब वन्दीजन का वेष धारण करके वेद लोग श्रीरामजी के पास आये।

कृपा निधान सर्वज्ञ प्रभु ने अत्यन्त आदर किया। किसी ने इस मर्म को कुछ भी नहीं लखा और वे गुण गान करने लगे।

व्याख्या : सिय सहित दिनकर बंस भूपन काम बहु छवि सोहई। इत्यादि से शोभा कहा। भरतादि अनुज विभीषनांगद हनुमदादि समेत ते। से समाज कहा और नाचहि अपछरावृंद परमानंद सुर मुनि पावहीं। से सुख कहा। भुसुण्डिजी कहते हैं कि मुझसे कहते नहीं बनता। शारदा शेष और श्रुति स्वर्गलोक पाताललोक और मृत्युलोक के प्रधान वक्ता हैं। वे वर्णन करते हैं पर वे भी उस रस को नहीं जानते। उस महारस को महादेवजी जानते हैं। यथा : जेहि सुभ लागि पुरारि असुभ बेष कृतसिव सुखद।

तत्पश्चात् देवताओंने जो कि विमान पर चढ चढकर आये थे स्तुति की। सबने भिन्न भिन्न स्तुति की। रुचि वैचित्र्य के कारण स्तुतियां एक सी नहीं हो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सकतीं। सरकार की मूर्ति का दर्शन भावनानुसार पृथक् पृथक् रूप मे होता है फिर स्तुति मे साम्य सम्भव नही है। दूसरी बात यह भी है कि अवर्णनीय पदार्थ की स्तुति भिन्न भिन्न प्रकार की ही होगी। सरकार इस समय नरभूपाल का अभिनय कर रहे हैं। इसलिए वेद लोग भी बन्दी के रूप मे यश वर्णन करने के लिए आये।

सरकार सर्वज्ञ हैं। जान गये कि इस वेष मे वेद लोग आये हुए हैं। अतः अत्यन्त आदर किया। उठकर खडे हो गये। ऊँचे दर्जे के बन्दियो की अब भी ताजीम राजदरबार से होती है। वेद सरकार के वाक्य हैं। अपने वाक्य का अत्यन्त आदर करना ही धर्म है। यथा रामो द्विर्नाभिभाषते। और लोग इस बात को न लख सके। समझा कि बन्दीजन यशोगान के लिए आये हैं। अब उनका किया हुआ गुणगान कहते हैं।

छ जय सगुन निर्गुन रूप रूप अनूप भूप सिरोमने।
दसकंधरादि प्रचंड निसिचर प्रबल खल भुजबल हने॥
अवतार नर संसार भार बिभंजि दारुन दुख दहे।
जय प्रनतपाल दयाल प्रभु संजुक्त सक्ति नमामहे[१]॥

अर्थ हे[२] सगुणरूप निर्गुणरूप अनूपरूप वाले राजाओं के शिरोमणि आपकी जय हो! आपने दशकन्धर आदि प्रचण्ड निशिचर प्रबल खलो को भुजाओ के बल से मारा। आपने मनुष्य का अवतार धारण करके ससार के भार को दूर करके दारुण दु ख को भस्म कर दिया। ऐसे प्रणतपाल कृपाल की जय हो, शक्ति के सहित मैं आपको नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या ब्रह्म के दो रूप हैं। एक निर्गुण और दूसरा सगुण। सर्वैश्वर्यमय विभु परमेश्वर मे ही सम्भव है कि वे सगुण और निर्गुण रूप से एककालावच्छेदेन अवस्थान करते है। भगवान् गीता मे अर्जुन से कहते हैं मत्स्थानि सर्वभूतानि न चाह तेष्ववस्थित । न च मत्स्थानि भूतानि पश्य मे योगमैश्वरम्। सब भूत मेरे मे स्थित नही भी हैं। मेरे ऐश्वर योग को देखो। अत सरकार का अनूप रूप है। अथवा निरुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहै। जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहै। सरकार के लिए जो उपमाएँ दी जा सकती हैं वे अत्यन्त लघु हैं। इसीलिए भी सरकार का रूप अनूप है। तापनीय श्रुति मे राम

१ आनुकूल्यस्य सकल्प ।
२ आश्रयश्चेतसो ब्रह्म द्विधा तच्च स्वभावत । भूप मूर्तममूर्तञ्च परञ्चापरमेव च।
वि पु ६ ७ ४७

अर्थ हे राजन्! चित्त का आश्रय ब्रह्म है जो कि स्वभाव से ही मूर्त अमूर्त अथवा पर अपर रूप से दो प्रकार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नाम की व्युत्पत्ति करते हुए कहा गया है : राज्यार्हाणां महीभृताम् धर्ममार्गं चरित्रेण राति इति रामः। अर्थात् राज्य के योग्य राजाओं को जो धर्ममार्ग अपने चरित्र द्वारा प्रदान करते हैं उसे राम कहते हैं। अतः श्रीरामावतार को भूपशिरोमणि कहा। अब उसी अवतार का दिव्य कर्म कहते हैं कि दशकन्धर आदि प्रचण्ड निशिचर जो कि अजेय थे और कुम्भकर्ण खरदूषण विराधादि प्रबल खलों को भुजाओं के बल से मारा। यथा : तब निज भुज बल राजिव नैना। कौतुक लागि संग कपि सैना। कपि सैन संग सँघारि निसिचर राम सीतहि आनिहैं। श्रीरामावतार में माया से मनुष्य का रूप धारण करके संसार का भार उतारकर सज्जनों के दारुण दुःख को दूर किया। इससे दुष्कृतों का विनाश तथा साधुपरित्राण रूपी अवतार के प्रयोजन की सिद्धि भी दिखलाया। प्रणतपाल कृपाल कहकर विभीषण को लङ्का के राज्य का दान तथा देवताओं को अभय दान का दिया जाना भी द्योतित किया। इस समय आह्लादिनी शक्ति जगदम्बा जानकीजी के साथ सिंहासनारूढ़ हैं। अतः दोनों की जय जयकार करते हुए वेद वन्दना करते हैं। प्रभु का उत्कर्ष स्थापन करते हुए उनके अनुकूलाचरण की इच्छा प्रकट करते हैं।

छं. तव विषम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे।
भवपंथ भ्रमत अमित दिवस निसिकाल कर्म गुननि भरे॥
जे नाथ करि करुना बिलोके त्रिविध दुख ते निर्बहे।
भव खेद छेदन दच्छ हम कहुँ रच्छ राम नमाम हे[1]॥

अर्थ : हे हरे! आपकी विषम माया के वश में देवता असुर नाग मनुष्य तथा चराचर हैं। काल कर्म और गुणों से भरे हुए अगणित रात दिन संसार के रास्ते में घूमा करते हैं। जिसको नाथ ने करुणा करके देखा वे तीनों प्रकार के दुःख के पार हो गये। हे संसार के दुःख के नाश करने में दक्ष राम हम लोगों की रक्षा कीजिये। हम आपको नमस्कार करते हैं।

व्याख्या : परमेश्वरी माया बड़ी विषम है। उसका पार पाना किसी के सामर्थ्य के भीतर की बात नहीं है। गीता में भगवान् कहते हैं : दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। भुसुण्डीजी कहते हैं : सुनु खग प्रबल राम कै माया। जो ज्ञानिन्ह कर चित अपहरई। बरिआई बिमोह बस करई। वन्दना में भी कह आये हैं। यन्मायावशवर्तिविश्वमखिलं ब्रह्मादिदेवासुराः। वही बात यहाँ कही जा रही है : तव विषम माया बस सुरासुर नाग नर अग जग हरे। ये सुरासुर नाग नर चराचर माया से प्रेरित होकर काल कर्म स्वभाव गुण से घिरे हुए चक्कर खाया करते हैं। यथा : फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म स्वभाव गुन घेरा। फिर मरते हैं फिर जनमते हैं। इसी भाँति संसार चक्र में पड़े हुए कष्ट पाते हैं। यथा :

---

१. रक्षिष्यतीति विश्वासः।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



आकर चारि लाख चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी। अपने पुरुषार्थ से कोई इस चक्कर से निकल नही सकता। जिसके ऊपर सरकार की कृपा होती है वही इन त्रिविध दैहिक दैविक भौतिक तापो का पार पाता है। यथा : मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते। भगवान् कहते हैं कि जो मेरे ही शरण मे आ जाते हैं वे ही माया का पार पाते हैं अर्थात् शरण मे आने से सरकार की उनपर कृपादृष्टि होती है। फिर उन्हे तीनो ताप पीडा नही पहुँचा सकते। सरकार ही ससार के दुःख के विनाश करने मे दक्ष हैं, अतः वेद कहते हैं कि हे रामजी ! हम लोगो की रक्षा कीजिये। हम आपके शरण है। इस भाँति प्रभु के द्वारा रक्षा प्राप्ति का विश्वास प्रकट करते हैं।

छ जे ग्यान मान बिमत्त तव भव हरनि भगति न आदरी।
ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी॥
बिस्वास करि सब आस परिहरि दास तव जे होइ रहे।
जपि नाम तव बिनु स्रम तरहिं भव नाथ सो समरामहे[१]॥

अर्थ जो ज्ञान के अभिमान मे मतवाले होकर आपकी भव हरनेवाली भक्ति का आदर नही करते हे हरे ! उनका सुरदुर्लभ पद पाकर भी पतन होता है। हम इस बात को देखते हैं और जो विश्वास करके सब आशा छोडकर, आपके दास होकर रहते है वे आपका नाम जपकर बिना परिश्रम के ससार को तर जाते हैं। नाथ ! हम लोग आपका स्मरण करते है।

व्याख्या : कुछ लोग ऐसे हैं, जिन्हे अपने ज्ञान का अभिमान हो जाता है। वे यह नही समझते कि मान तो अज्ञान का लक्षण है। मान का अभाव ही तो ज्ञान है। यथा ज्ञान मान जहँ एकौ नाही। अत वे विमत्त हैं मतवाले है वे भक्ति का आदर नही करते। वे नही जानते कि निरुपास्ति ज्ञान से पतन होता है। वे सुरदुर्लभ पद पाकर भी गिर जाते हैं। अर्थात् विज्ञान दीप के प्रज्वलित करने मे समर्थ भी हो जाते हैं। फिर भी उपासना रहित होने से उनका पतन हो जाता है। वे चिद् जड ग्रन्थि खोलने मे समर्थ नही होते और विज्ञान दीप भी बुझ जाता है। यथा :

छोरत ग्रन्थि जानि खगराया। बिघ्न अनेक करै तब माया॥
कलबल छल करि जाहिं समीपा। अचल बात बुझावहिं दीपा॥
जौं तेहि बिघ्न बुद्धि नहिं बाधी। तब बहोरि सुर करहिं उपाधी॥
इन्द्री द्वार झरोखा नाना। तहँ तहँ सुर बैठे करि थाना॥
आवत देखहिं बिषय बयारी। ते हठि देहिं कपाट उघारी॥

१ प्रातिकूल्यस्य वर्जनम्।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जब सो प्रभंजन उरगृह जाई। तबहि दीप बिज्ञान बुझाई॥
ग्रन्थि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ बिषय बतासा॥

दो. तब फिरि जीव बिबिध बिधि पावइ संसृत क्लेस।
हरि माया अति दुस्तर तरि न जाइ बिहगेस॥

परन्तु जो विश्वास करते हैं कि रामजी मेरी रक्षा करेंगे। रक्षिष्यतीति विश्वास: अन्य साधनों की आशा छोड़कर आप के दास होकर रहते हैं। जैसे दास को मात्र स्वामी की ही आशा रहती है उसी भाँति जिसे केवल सरकार की ही आशा रहती है। यथा : बनै तो रघुबर ते बनै या बिगरै भरपूर। तुलसी बनै जो और ते ता बनिवे महँ धूर। ऐसे विश्वासी दास केवल सरकार का नाम जप करके संसार सागर के पार हो जाते हैं। यथा : नाम लेत भव सिन्धु सुखाहीं। करहु बिचार सुजन मन माहीं। अत: वेद लोग कहते हैं कि संसार के दु:ख के मिटाने मे केवल सरकार ही दक्ष हैं। अत: हम लोगों की रक्षा कीजिये, हम आपको नमस्कार करते हैं। इस भाँति भक्ति के अनादर का कुपरिणाम दिखलाकर प्रतिकूलाचरण की निन्दा करते हैं।

छं. जे चरन सिव अज पूज्य रज सुभ परसि मुनि पतिनी तरी।
नख निर्गता मुनि बन्दिता त्रैलोक पावन सुरसरी॥
ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे।
पद कंज द्वंद मुकुन्द राम रमेस नित्य भजामहे[1]॥

अर्थ : जो चरण शिवजी और ब्रह्मदेव से पूज्य हैं। जिसके रज को स्पर्श करके मुनि की स्त्री तर गयी। जिसके नख से निकली हुई त्रैलोक्य पावनी गंगाजी की वन्दना मुनि लोग करते हैं। ध्वज वज्र अंकुश और कमल से युक्त किन चरणों में वन में फिरते हुए काँटे चुभे हैं ? अर्थात् कोई नही। इसलिए ऐसे रमा के पति मुकुन्द रामजी के दोनों पद कमलों को हम नित्य नमस्कार करते हैं।

व्याख्या : पहिले छन्द में स्वरूप वर्णन किया। दूसरे में माया का वर्णन किया। तीसरे में नाम की महिमा कही। अब चरणों की महिमा कहते हैं कि सृष्टिकर्ता ब्रह्मदेव और देवदेव महादेव सबके पूज्य हैं। पर ये चरण उनके भी पूज्य हैं। जिसके एक बार सम्बन्ध होने से रज में ऐसी महिमा आगयी कि उसके स्पर्श से बड़ा भारी पाप करनेवाली अहल्या तर गयी। यथा : परसि जासु पद पंकज धूरी। तरी अहल्या कृत अघभूरी। जिन चरणों के नख से गंगाजी उत्पन्न हुई। जिनकी मुनि लोग वन्दना करते हैं। और जो तीनों लोक को पवित्र कर रही हैं। जिन चरणो ने भक्तों के लिए इतने कष्ट उठाये कि वन में फिरते हुए उनमे काँटे चुभे।

---

१. गोप्तृत्ववरणं तथा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सिवा इन चरणो के ध्वज कुलिश अङ्कुश और कञ्ज के चिन्हो के धारण करनेवाले[1] किन चरणो ने भक्तो के लिए ऐसे कष्ट स्वीकार किये हैं। अत ऐसे पूज्य ऐसे पावन ऐसे भक्तवत्सल चरण मुक्ति दाता लक्ष्मीपति रामजी के हैं। वेद लोग कहते हैं कि हम लोग उनका नित्य भजन करते हैं। ऐसे प्रभु से शीघ्रातिशीघ्र रक्षा की आशा की जाती है। अत गोप्तारूप से वेद प्रभु का ही वरण करते हैं।

छ अब्यक्त मूलमनादि तरु त्वच चारि निगमागम भने।
पट्कध शाखा पचबीस अनेक पर्न सुमन घने॥
फल जुगल विधि कटु मधुर बेलि अकेलि जेहि आस्रित रहे।
पल्लवत फूलत नवल नित ससार बिटप नमाम हे[2]॥

अर्थ अव्यक्त जिसकी जड है वह पेड अनादि है। वेदो और शास्त्रो ने कहा है कि उसकी चार त्वचाएँ हैं। छ तने हैं पचीस शाखाएँ। अनेक पत्ते और बहुत से फूल हैं। उसमे दो प्रकार के फल हैं। एक कटु है और दूसरा मधुर है। और वेलि केवल उसी के आश्रित हैं जो नित्य पत्र फूल से युक्त नया बना रहता है। ऐसे ससार वृक्ष को हम लोग नमस्कार करते हैं।

व्याख्या ससार के अभिन्न निमित्तोपादान होने से सरकार को ससार वृक्ष रूप से वर्णन करते हैं। वृक्ष को मूल होता है। उसके वपन का काल होता है। उसको त्वचाएँ होती हैं। उसका तना होता है। शाखाएँ होती हैं। पत्ते होते हैं। समय पर फूल होते है। फल होते हैं। उस पर बेलि भी चढ़ती है।

इस ससार वृक्ष का अव्यक्त प्रकृति मूल है और यह वृक्ष सनातन है। चार अवस्थाएँ जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति तुरीय चार त्वचाएँ हैं और षड्‌र्मि अस्ति जायते वर्धते विपरिणमते अपक्षीयते विनश्यति। ये ही छ स्कन्ध तने हैं। पचीस तत्त्व[3] इसकी पचीस शाखाएँ हैं। विविध वासनाएँ उसके अनेक पत्ते और बहुत से कर्म उसके फूल हैं। उसके दु ख दो प्रकार के फल हैं। जो कि क्रम से मधुर और कटु हैं। और अनादि शक्ति रूपी वेलि सदा उसके आश्रित रहती हैं। वह नित्य पत्ते और फूल से युक्त रहता है। और प्रतिक्षण परिवर्तनशील होने से

---

१ कुछ लोग किन का अर्थ घट्ठा करते हैं। पर काँटो के चुभने पर भी घठ्ठे का न पडना उन चरणो की विशपता है। यथा कठिन भूमि कोमल पद गामी। कवन हेतु विचारहु बन स्वामी।

२ आत्मनिक्षेप।

३ मूलप्रकृतिरविकृतिर्महदाद्या प्रकृतिविकृतय सप्त।
षोडशकस्तु विकार न प्रकृतिर्न विकृति पुरुष।

मूलप्रकृति महत् अहकार पञ्च तन्मात्रा पञ्च महाभूत दश इन्द्रिय और मन एव पुरुष ये २५ तत्त्व हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वह सदा नया ही रहता है। वेद लोग कहते हैं कि ऐसे ससार वृक्ष को हम लोग नमस्कार करते हैं। विश्वरूप प्रभु का वर्णन करके आत्मनिवेदन द्योतित करते हैं।

छं. जे ब्रह्म अजमद्वैतमनुभवगम्यमनपर ध्यावहीं।
ते कहहुँ जानहुँ नाथ हम तव सगुन जसु नित गावहीं॥
करुनायतन प्रभु सदगुनाकर देव येह बर मांगहीं।
मन वचन कर्म विकार तजि तव चरन हम अनुरागहीं[1]॥

अर्थ : जो अजन्मा अद्वैत अनुभवगम्य और मन से परे ब्रह्म का ध्यान करते हैं हे नाथ! वे कहें और जानें। हम तो आपके सगुण यश का नित्य गान करते हैं। हे करुणा के धाम प्रभु! सद्गुणो के आकर देव यह वर हम मांगते हैं कि मनसा वाचा कर्मणा विकार को त्यागकर हम आप के चरणो मे अनुराग करें।

व्याख्या : यस्यावताररूपाणि समर्चन्ति दिवौकस। अपश्यन्त परं रूपम् नमस्तस्मै महात्मने। विष्णुपुराणे। जिसके अवतार के रूपो की देवता लोग पूजा करते हैं उसके पर रूप को नही जान सकते उस महात्मा को नमस्कार।

ब्रह्म के दो रूप हैं पर और अपर। अज अद्वैत अनुभवगम्य मनगोतीत रूप पर है। सगुण रूप अपर है। पर रूप देवताओ से भी नही जाना जाता। अत वेद कहते हैं कि जो पर रूप का ध्यान करते हैं वे पररूप को कहे और जानें। न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति न मनो न विद्मो न विजानीमो अन्यदेव तद्विदितादथोऽविदितादधि। न वहाँ आँख जाती है न वाणी जाती है। न मन जाता है, उसे हमलोग नही जानते हैं। वह विदित से भी भिन्न है और अविदित से भी भिन्न है। इसलिए वेद कहते हैं कि हम तो सगुण यश का नित्य गान करते हैं। करुणायतन और सद्गुणाकर होना तो अपर रूप मे ही बनता है। अत हम उनसे यह वर मांगते हैं कि आप सबके हृदय के प्रेरक हैं। आप ऐसी प्रेरणा कीजिये कि हम मनसा वाचा कर्मणा विकारो को काम क्रोधादि त्याग करके आप के चरणो मे अनुराग करें। भक्ति को कृपासाध्य मानकर अपना कार्पण्य प्रकट करते है।

दो. सबके देखत वेदन्ह, बिनती कीन्हि उदार।
अन्तरधान भये पुनि, गए ब्रह्म आगार॥१३ क.
बैनतेय सुनु सभु तब, आए जहँ रघुबीर।
बिनय करत गदगद गिरा, पूरित पुलक सरीर॥१३ ख.

अर्थ : सबके देखते हुए वेदो ने उदार विनती की फिर वे अन्तर्धान हो गये और ब्रह्मलोक चले गये। हे गरुडजी! सुनो तब शिवजी रघुवीर रामजी के पास आये। गद्गद वाणी से स्तुति करने लगे। उनके शरीर पुलक से पूर्ण थे।

---

१ कार्पण्यम्।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या यह वेद स्तुति पूर्वाषाढ नक्षत्र है। इसमे दो तारे चमकते हैं—सगुण और निर्गुण इसकी गजदन्त ऐसी आकृति है। जो मुख से बाहर निकलने पर फिर भीतर नही जाता। अर्थात् वही प्रमाण है। वेदवाणी है अत उसकी फलश्रुति है अभिमत दानि देव तरुवर से देव यह वर मांगही कहकर अभिमत ही मांग रहे हैं। अत इनकी स्तुति देव तरुवर सी उदार है। सब लोग वेदो को स्तुति करते देख रहे थे पर स्तुति समाप्त होते ही वे अन्तर्धान हो गये। अर्थात् आते और स्तुति करते सबने देखा जाते किसी ने नही देखा। वे लोग ब्रह्मलोक से आये थे और वही चले गये। ब्रह्मलोक म ही शरीरधारी वेदो का रहना सुना जाता है। स्तुति मे छ छन्द हैं। प्रत्येक छन्द मे एक एक विधि शरणागति की है। यथा १ आनुकूल्यस्य सकल्प २ प्रातिकूल्यस्य वर्जनम् ३ रक्षिष्यतीति विश्वासो ४ गोप्तृत्ववरण तथा ५ आत्मनिक्षेप ६ कार्पण्ये षड्विधा शरणागति। प्रायेण एक एक छन्द एक वेद का कथित तथा पीछे के दो छन्द सब वेदो के कथित माने जाते हैं। पर ऐसी बात तो नही मालूम होती। जिस भांति पिछले दो छन्दो मे नमाम है तथा अनुरागही उत्तम पुरुष के बहुवचन की क्रिया आई है वैसे ही पहिले चार छन्दो मे भी नमामहे स्मरामहे आदि क्रिया आई हैं।

अभिषेक की कथा के प्रधान वक्ता भुसुण्डिजी हैं। अत इस प्रसङ्ग मे बार बार गरुड सम्बोधन आ रहा है। उपासनाघाट के वक्ता होने से इस प्रसङ्ग मे उनकी प्रधानता है। वेदो के ब्रह्मलोक चल जाने के बाद सबके अन्त मे शिवजी आये। आये तो सबके पहिले से हैं पर आकाश मे विमान पर थे। स्तुति करने के लिए पास मे सबसे पीछे आये। क्योकि इस आनन्द के वे ही जौहरी हैं। पहिले से ही आने के लिए आदेश प्राप्त कर चुके हैं। यथा नाथ जबहिं कोसलपुरी होइहि तिलकु तुम्हार। कृपासिन्धु मै आउब देखन्ह चरित उदार। अत आये और प्रेमाधिक्य के कारण उन्हे सम्पूर्ण शरीर मे पुलक हो रहा था और गला भर आया था। ऐसी दशा मे स्तुति करने लगे।

छ जयराम[१] रमारमन समन, भवताप भयाकुल पाहि जन।
अवधेस सुरेस रमेस बिभो, सरनागत मांगत पाहि प्रभो॥
दससीस बिनासन बीस भुजा, कृत दूरि महा महि भूरि रुजा।
रजनीचर बृंद पतग रहे, सर पावक तेज प्रचड दहे॥

अर्थ हे रमा रमन भव ताप शमन राम आपकी जय हो। भवताप के भय से व्याकुल इस जनकी रक्षा कीजिये। हे अवधेश! हे सुरेश! हे रमेश! हे प्रभो! मैं शरणागत मांगता हूं—मेरी रक्षा कीजिये। आप दस सिर और बीस भुजावाले का

---

१ यह तोटक छन्द है। इसमे १२ अक्षरो का एक पाद होता है। चार सगण आते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नाश करनेवाले हैं। पृथिवी के बडे भारी रोग को आपने दूर किया। राक्षसो के समूह फनगे थे। वे आपके बाण के प्रचण्ड तेज से जल गये।

व्याख्या : शङ्कर भगवान् ने आते ही रामजी का जय जयकार किया। देखा कि : राम बाम दिसि सोभित रमारूप गुन खानि। अत रमारमन कहा। स्तुति मे भगवती को भी सम्मिलित करते हैं। क्योकि उस रस को महादेवजी जानते हैं। शृगार रस के सम्मिश्रण से भक्ति रस का बडा भारी उत्कर्ष होता है। इस बात के पूरे जानकार भक्तिशास्त्र के मूल प्रवर्तक शङ्कर भगवान् हैं। कह भी आये हैं कि : सो रस जान महेस ससार के ताप का भय युगल मूर्ति की उपासना से ही नष्ट होता है। शिवजी को ससार का ताप नही है। पर लोकशिक्षा के लिए अपने को भयाकुल मान रहे हैं। अभी वेदो ने कहा है कि : ते पाइ सुरदुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी। अत: प्रार्थना है कि उस भय से निर्भय कीजिये। आपके नाम के प्रताप से भव भय भजन होता है। यथा : भव भय भजन नाम प्रतापू। आप अवधेश हैं। परन्तु : सो महिमा समुझत प्रभु केरी। यह बरनत हीनता घनेरी। अत सुरेश कहा पर वह भी छोटा जँचा तब रमेश कहा। पर यह भी ठीक नही मालूम हुआ। क्योकि : देखे सिव विधि विष्णु अनेका। अमित प्रभाव एक ते एका। अनेक विष्णु हैं। उनकी शक्ति रमा भी अनेक हैं तब विभु कहा। सभीत होकर शरण आये हैं। अत कहते हैं पाहि प्रभो। यथा : कहेसि पुकारि प्रनत हित पाही।

अब श्रीरामावतार के दुष्कृत विनाश रूपी दिव्य कर्म का वर्णन करते है कि पिण्ड मे रोग होता है। उससे क्रमश शरीर ही नष्ट हो जाता है। उन रोगो मे ज्वर बहुत बडा है। कहा है कि ज्वरस्त्रिपादस्त्रिशिरा सर्वरोगाग्रजो बली। ज्वर के तीन पैर हैं, तीन सिर हैं। वह सब रोगोका बडा भाई है और बलवान् है। सज्वरा एव जायन्ते सज्वरा एव म्रियन्ते। लोग ज्वर के साथ ही उत्पन्न होते हैं और ज्वर के सहित ही मरते हैं। सो जिस भाँति पिण्ड मे रोग होता है उसी भाँति ब्रह्माण्ड मे भी रोग हो जाता है। यह रावणरूपी बडा भारी रोग ब्रह्माण्ड मे हो गया था। यदि इसका नाश न किया जाता तो यह ब्रह्माण्ड को ही ले बढता। इस रोग को दस *सिर और बीस हाथ थे। इसे मारकर महामहि जो ब्रह्माण्ड है उसके बडे भारी रोग* को दूर किया। और ब्रह्माण्ड मे राक्षसो का समूह फनगो की भाँति बहुत हो गया था। इन राक्षसो ने मुनियो को खा डाला था। उनके लिए आपका बाण अग्नि हो गया। जिसमे सभी राक्षस शलभ हो गये। कहा भी है निसिचर निकर पतग सम रघुपति बान कृसानु। जननी हृदय धीर धरु जरे निसाचर जानु।

छ महि मडल मडन चारु तर, धृत सायक चाप निषग वरं।
मद मोह महा ममता रजनी, तम पुज दिवाकर तेज अनी ॥
मनजात किरात निपात किए, मृग लोग कुभोग सरेन हिए।
हतिनाथ अनाथन्हि पाहि हरे, बिषयावन पाँवर भूलि परे ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ आप पृथिवी के अति सुन्दर शृङ्गार हैं। आपने वाण धनुष और निषग धारण कर रक्खा है। मद महामोह और ममता रूपी रात्रि के अन्धकार समूह के लिए आप तेज पुज सूर्य हैं। कामदेव रूपी किरात ने मनुष्य रूपी हिरणो के हृदय मे कुभोग रूपी बाण मारकर उनका नाश किया है। उसे मारकर हे नाथ ! अनाथो की रक्षा कीजिये। ये नीच विषयरूपी वन मे भूल पडे हैं।

व्याख्या आप महिमण्डल को रोगहीन करके उसके चारुत्तर मण्डन करनेवाले हैं। यथा इन्द्र नील हाटक मुकुतामणि जगु पहिरे महि हार। आपके पदार्पण से महि मण्डल सुशोभित हुआ। धनुष बाण तूणीर धारण से शोभा और भी अधिक बढ गयी। मीन कमठ सूकर नर हरी। वामन परसुराम बपु धरी। सो सबने पृथिवी का मण्डन किया। पर ऐसी शोभा नही हुई। चक्रधर से भी शाभा अधिक कोदण्ड धर मे हैं। यथा तुलसी मस्तक तब नवै जब धनुष बान ल्यौ हाथ। मोहरूपी रात्रि है। उसमे भी ममता अँधियारी रात है। यथा मोह निसा सब सोवनि हारा। ममता तरुन तमी अँधियारी। राग द्वेष उलूक सुखकारी। इस रात मे मद अन्धकार है। यथा त्यागहु तम अभिमान। और मोह अन्धा बनाता है। यथा मोह न अन्ध कीन्ह केहि केही। अत दोनो मिलकर तमपुञ्ज हो गये। सरकार तेज समूहवाले सूर्य हैं। अन्धकार का तो आपके द्वारा नाश होता ही है। मोह रात्रि भी नष्ट हो जाती है। यथा प्रथम अविद्या निसा सिरानी।

उक्त रावण से भी बडा बटमार डकैत है। जिसे काम कहते हैं इसके सामने लोग कैसे हो जाते हैं जैसे किरात के सामने मृग। मृग किरात का कुछ बिगाड नही सकता और किरात उनको बाण से बेध देता है। इसी भाँति यह काम लोगो को कुभोग रूपी बाण से हृदय मे मारता है। सरकार ! उस किरात का वध करके लोगो की रक्षा करें। ये लोग विषय वन के वासी नही हैं। आनन्दसिन्धु के वासी हैं। विषय वन मे भूल के पड गये हैं।

छ बहुरोग बियोगन्हि लोग हए, भवदंघ्रि निरादर के फल ए।
भव सिंधु अगाध परे नरते, पद पकज प्रेमु न जे करते ॥
अति दीन मलीन दुखी नितही,जिन्हके पद पकज प्रीति नही।
अवलब भवत कथा जिन्हकें, प्रिय सत अनत सदा तिन्हके ॥

अर्थ बहुत से रोग वियोग से लोग मारे हुए हैं। आपके चरणो के निरादर का यह फल है। जो लोग चरण कमल से प्रम नही करते वे अपार भव सिन्धु मे पडे हुए हैं। वे अति दीन मलिन और नित्य दुखी रहते हैं जिन्हे प्रभु चरण कमल मे प्रीति नही है। जिन्हें आपकी कथा आधार हाती है उन्हे सन्त और अनन्त सदा प्रिय होते हैं।

व्याख्या तीनो दोषो मे काम प्रधान है। क्योकि यह बात स्थानीय है। यथा काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा। पित्त पगु कफ

ankurnagpal108@gmail.com



पंगु' पगवो मलधातवः। वायुना यत्र नीयन्ते तत्र वर्षन्ति मेघवत्। क्रोध और लोभ पित्त और कफ की भाँति वायुरूपी काम के प्रेरणा से ही काम करते हैं। अन्य रोग भी काम के ही कारण से हैं। सयोग से रोग होता है और सयोग न रहने पर वियोग होता है। इसी चक्र मे पडे हुए लोग मारे पड रहे हैं। सरकारी चरण के निरादर का फल पा रहे हैं।

शरीर और मन का हाल कह के पुरुषार्थ का हाल कहते हैं कि भवप्रवाह मे लोग पडे हुए उसी मे बहे चले जा रहे हैं। उससे निकलने का प्रयत्न नही करते। बहे जाने मे ही पुरुषार्थ मान रहे हैं। देवताओ ने कहा ' भवप्रवाह सन्तत हम परे। यह सरकारी चरणो मे प्रेम न होने का फल है।

लोग आशा से दीन पाप से मलिन और कर्मों से नित्य दु खी हैं कभी सुखी न हुए। क्योकि उनका सरकारी चरणो मे प्रेम नही है। चरणो मे प्रेम होता तो काम का किया कुछ न होता।

इस प्रकार भवसागर मे पडे। दु ख झेलनेवालो के लिए क्या अवलम्ब है? इस पर कहते हैं कि सरकार की कथा एकमात्र अवलम्ब है। जिसने कथा का अवलम्ब ग्रहण किया उसे विषय सीठा हो जाता है। तब सन्त तथा भगवान् उसे प्रिय हो जाते हैं।

छ. नहि राग न लोभ न मान मदा, तिन्हके सम बैभव वा बिपदा।
एहितें तव सेवक होत मुदा, मुनि त्यागत जोग भरोस सदा॥
करि प्रेमु निरन्तर नेमु लिये, पदपंकज सेवत सुद्ध हिए।
सम मानि निरादर आदरही, सब सत सुखी विचरंति मही॥

अर्थ : उन्हे न राग है न लोभ है। न मान है और न मद है। उन्हे वैभव और विपत्ति समान हैं। इसीलिए मुनि लोग बडी प्रसन्नता से आप के सेवक हो जाते हैं और सदा योग का भरोसा छोडे रहते है। वे प्रेम करते हुए नियम के साथ सदा शुद्ध हृदय से आपके चरण कमलो की सेवा करते हैं। आदर और निरादर को समान मानकर सब सन्त सुखो होकर पृथिवी पर विचरते हैं।

व्याख्या : जिसे सन्त और अनन्त प्रिय लगने लगें उसका राग, लोभ, मान और मद दूर हो जाता है। इनके दूर हो जाने से फिर सम्पदा से हर्ष और विपत्ति से विषाद नही होता। दोनो उसके लिए समान हो जाता है। वह प्रसन्नतापूर्वक आपका सेवक हो जाता है। आपकी सेवा मे ही उसको सुख मिलता है। अन्तराय के अधिक्य से वह योग का भरोसा नही करता। क्योकि बिना रामप्रेम के योग भी कुयोग हो जाता है। अत' जिसके कारण से योग की कुयोगता जानी रहती है। उसी भक्ति को प्रसन्नतापूर्वक स्वीकार करते हैं। वे सदा प्रेम करते हुए नियम के साथ आपके चरण कमलो की सेवा शुद्ध हृदय से करते हैं। यथा ' स्वामिहि सर्वभाव छल त्यागो। लोक के आदर और निरादर की वे परवाह नही करते।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यथा : भलो कहत विनु जानही, बिनु जाने अपवाद। ते नर गादुर जानि जिय, करिअ न हर्ष विषाद। प्रभु जानत सब बिनहि जनाये। कहहु कवनि सिधि लोक रिझाये।

छं. मुनि मानस पंकज भृंग भजे। रघुबीर महारन धीर अजे ॥
तव नाम जपामि नमामि हरी। भव रोग महामद मान अरी ॥
गुन सील कृपा परमायतनं। प्रनमामि निरंतर श्रीरमनं ॥
रघुनंद निकंदय द्वंद घनं। महिपाल बिलोकय दीनजनं ॥

अर्थ : मुनि के मानसरूपी कमल के भौंरे को मै भजता हूँ। रघुबीर महारणधीर और अजय हैं। हे हरि! मैं आप के नाम को जपता हूँ और नमस्कार करता हूँ। आप भवरोग महामद और मान के शत्रु हैं। गुणशील और कृपा के परम आयतन श्रीरमण को मैं निरन्तर प्रणाम करता हूँ। हे रघुनन्दन! घने द्वन्द्व का नाश कीजिये। हे महिपाल! दीनजन पर दृष्टि डालिये।

व्याख्या : सरकार रघुकुल मे वीर हैं। कालहुँ डरहिं न रन रघुवंसी। उनमे भी आपका महान् उत्कर्ष है। आप महारणधीर हैं और अजय है। यथा : जीति को सकै अजय रघुराई। इतने पर भी आप मुनिमानस रूपी पङ्कज के भौरे हैं। रस लेने के लिए आप से आप पहुँच जाते है। शिवजी कहते हैं कि मैं तो ऐसे भौंरे को भजता हूँ। सरकार भव रोग महामद और मान के अरि हैं। उन्हे रहने नही देते। यथा : तुम कृपाल जापर अनुकूला। ताहि न ब्याप त्रिबिध भवसूला। जन अभिमान न राखहि काऊ। दीन बंधु अति मृदुल सुभाऊ। अत: शिवजी कहते हैं कि ऐसे प्रभु का मैं नाम जपता हूँ और उसे प्रणाम करता हूँ जिसमे भवरोग मान और मद पास न फटकने पावे। सरकार गुणशील और कृपा के परम आयतन हैं। क्योकि श्रीरमण हैं। यथा अब जानी मैं श्री चतुराई। भजी तुमहि सब देव बिहाई। सरकार के ऐसे गुणो पर मुग्ध होकर ही भगवती श्री ने उनका वरण किया। अतः शिवजी कहते हैं कि मैं निरन्तर आपको प्रणाम करता हूँ। क्योकि इतनी ही सेवा आपकी सम्भव है। यथा : मोपहिं होइ न प्रति उपकारा। बंदौं तव पद बारहिं बारा। दुःख सुख शीतोष्ण आदि द्वन्द्व ही विपत्ति है और संसार का फन्दा है। हे रघुनन्दन! उसका नाश कीजिये और दीन जनकी ओर देखिये। क्योकि वेद भगवान् अभी कह गये हैं कि : जे नाथ करि करुना बिलोके दुख तिन निर्वहे। भवखेद छेदन दच्छ हम कहँ रच्छ राम नमामहे।

दो. बार बार वर माँगौ, हरखि देहु श्रीरंग।
पद सरोज अनपायिनी, भगति सदा सतसंग ॥१४ क.
बरनि उमापति राम गुन, हरखि गए कैलास।
तब प्रभु कपिन्ह दिवाये, सब विधि सुख प्रद बास ॥१४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ : हे श्रीपति ! मैं बार बार वर माँगता हूँ। आप हर्षित होकर दीजिये कि मुझे आपके पद कमल मे विघ्न रहित भक्ति हो और सदा सत्सङ्ग मिलता रहे।

उमापति महादेवजी रामजी के गुण वर्णन करके हर्षित होकर कैलास गये। तब प्रभु ने बन्दरो को सब प्रकार का आनन्दप्रद निवास स्थान दिलवाया।

व्याख्या : सरकार से स्तुति करके भक्ति तो सभी मांगते हैं। पर शिवजी भक्ति और सत्सङ्ग दोनो मांगते हैं अर्थात् कारण और कार्य दोनो मांगते हैं। सत्सङ्ग के कारण ही भक्ति होती है। यथा : अस बिचारि जो कर सतसगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहगा। और सत्सङ्ग से अलौकिक सुख को प्राप्ति होती है। यथा : तात स्वर्ग अपवर्ग सुख, धरिअ तुला एक अग। तूल न ताहि सकल मिलि, जो सुख लव सतसग। यह स्तुति उत्तराषाढ नक्षत्र है। दो तारे चमकते हैं श्रीरमण से उपक्रम करके श्रीरग से ही उपसहार करते है। चार पावे की भांति चार लोट् लकार का प्रयोग है। दो बार पाहि तीसरे निकन्दय और चौथे बिलोकय। इस स्तुति मे सत्सङ्ग मांगा गया है। अत इसकी फलश्रुति सेवत सुलभ सुखद हरि हरसे। हरिहर को कुछ नही करना पडता। उनकी सेवा मे ही सब सामर्थ्य है। इसी भांति इस स्तुति मे सब सामर्थ्य है।

उपामति कहने का भाव यह कि उमा साथ नही है। शिवजी गृहस्थी स्वीकार किये हुए हैं। गृह कैलास है। वहाँ जाना है। उदार चरित देखकर हर्षित है। अत. हर्षित होकर कैलास जाना कहा। शङ्करजी की स्तुति के बाद उस दिन का कार्य समाप्त हुआ। तब सरकार ने कपियो के सब भांति के सुखप्रद वास की व्यवस्था की। सुख प्रद वास तो पहिले से ही मिला हुआ है। पर अब ऐसे वास की व्यवस्था की गयी जहाँ से सरकार के दर्शन मे अधिक सुविधा है।

सुनु खगपति यह कथा पावनी। त्रिबिध ताप भवभय दावनी ॥
महाराज कर सुभ अभिषेका। सुनत लहहिं नर बिरति बिवेका ॥१॥

अर्थ : हे पक्षिराट् ! यह कथा पवित्र करनेवाली है। तीनो प्रकार के ताप और भव भय को दमन करनेवाली है। महाराज के शुभ अभिषेक को सुनने से मनुष्य वैराग्य और विवेक को प्राप्त होता है।

व्याख्या. केवल रामाभिषेक की फलश्रुति कहते हैं कि यह कथा सञ्चित प्रारब्ध और क्रियमाण तीनो प्रकार के कर्मों के दुष्परिणाम को नाश करती है। अत. अन्य मे कथाओ से इसके फल मे विशेषता कहा। पावनी से सञ्चित पापो का नाश कहा। आध्यात्मिक आधिदैविक तथा आधिभौतिक इन तीनों प्रकार के ताप के नाश से प्रारब्ध दु खो का भी नाश कहा। भव भय दावनी : कहकर भावी कष्टो का. जन्म मरण के दु.खो का भी नाश दिखलाया।

महाराज रामचन्द्र के अभिषेक से जगत् का मङ्गल हुआ। इसलिए शुभ कहा। जो लोग निष्काम भाव से इसे सुनते हैं उन्हे वैराग्य और विवेक होता है। आगे चलकर सकाम भाव से सुनने गानेवाले का फल कहेंगे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जे सकाम नर सुनहिं जे गावहिं । सुख संपति नाना बिधि पावहिं ॥
सुर दुर्लभ सुख करि जग माहीं । अंतकाल रघुपति पुर जाहीं ॥२॥

अर्थ : जो पुरुष कामना मन में रखकर सुनते या गान करते हैं वे नाना प्रकार के सुख और सम्पत्ति के भागी होते हैं। संसार में सुर दुर्लभ सुख करके मरने पर साकेत धाम को प्राप्त होते हैं।

व्याख्या : यह कथा नाना प्रकार की सुख सम्पत्ति देनेवाली है। भिन्नरुचिर्हि लोकः। सबकी कामना एक सी नहीं होती। यह कथा सब पूरी कर देती है। यद्यपि वक्ता और श्रोता की सांसारिक ही कामना रही फिर भी इस कथा का इतना प्रताप है कि मरने के बाद उन्हें साकेत धाम की प्राप्ति होती है। अर्थात् सकाम सुननेवाले के भी सब पाप नष्ट हो जाते हैं और ऐसा अलौकिक पुण्य होता है जिससे सरकार के धाम साकेत की प्राप्ति होती है।

सुनहिं बिमुक्त बिरत अरु बिषई । लहहिं भगति गति संपति नई ॥
खगपति राम कथा मैं बरनी । स्वमति बिलास त्रास दुख हरनी ॥३॥

अर्थ : इस कथा को यदि विमुक्त विरत या विषयी सुनते हैं तो उन्हें भक्ति गति और अपूर्व सम्पत्ति की प्राप्ति होती है। हे पक्षिराट्! मैंने यह त्रास दुःख हरणी राम कथा अपनी बुद्धि के अनुसार वर्णन की।

व्याख्या : संसार मे तीन प्रकार के जीव हैं। यथा : विषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिबिध जीव जग वेद बखाने। सो इस कथा से तीनों का कल्याण होता है। विमुक्त से यहाँ जीवन्मुक्त अभिप्रेत है। जीवन्मुक्त को कुछ कर्तव्य शेष नहीं है। फिर भी वे कथा सुनते हैं। यथा : जीवन्मुक्त महा मुनि जेऊ। हरि गुन सुनहिं निरंतर तेऊ। सुनि गुनगान समाधि बिसारी। सादर सुनहिं परम अधिकारी। ऐसे सुननेवाले को भक्ति की प्राप्ति होती है : आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्यहैतुकी भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः। यहाँ विरत से साधक का ग्रहण है। उन्हें गति अर्थात् सिद्धि की प्राप्ति होती है और विषयी जीव तो सदा सम्पत्ति के भूखे रहते हैं। अतः उनका भी मनोरथ पूरा होता है। उन्हें ऐसी सम्पत्ति मिलती है जिससे राम पद सम्मुख होने मे उन्हें सहायता मिले। क्योंकि : जरउ सो संपति सदन सुख सुहृत मातु पितु भाइ। सनमुख होत जो राम पद करइ न सहस सहाइ। सुनु खगपति यह कथा पावनी से उपक्रम और : खगपति राम कथा मैं बरनी से उपसंहार किया। भुसुण्डिजी कहते हैं कि यह कथा पूरी तरह से नहीं कही जा सकती। अपनी बुद्धि के अनुसार ही इसका लोग वर्णन करते हैं। सो मैंने स्वमति के अनुसार वर्णन की। यह कथा भविष्य पीड़ा के त्रास और वर्तमान पीडा के दुःख को हरण करनेवाली है।

बिरति बिबेक भगति दृढ करनी । मोह नदी कहँ सुन्दर तरनी ॥
नित नव मंगल कोसल पुरी । हरषित रहहिं लोग सब कुरी ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ : यह कथा विरति विवेक और भक्ति को दृढ़ करनेवाली है और मोहनदी के लिए तो सुन्दर नाव है। कोसलपुरी में नित्य नया मंगल होने लगा और सब जाति के लोग हर्षित रहने लगे।

व्याख्या : जिसे विरति विवेक और भक्ति पहिले से ही उसकी विरति विवेक और भक्ति इस कथा के कहने सुनने से दृढ़भूमिक हो जाती है। राम कथा ही ऐसी है कि इसके सामने भव सागर सङ्कुचित होकर मोह नदी हो जाता है। उसे राम कथा नाव की भाँति पार उतारनेवाली है। पर सरकार के अभिषेक की कथा तो सुन्दर नाव है अर्थात् अन्य कथाओं की अपेक्षा अधिक सुखद है।

सरकार के अभिषेक के बाद से फिर नये नये मङ्गल अवध में होने आरम्भ हो गये जैसे व्याह करके आने पर होते थे। यथा : जब ते राम ब्याहि घर आये। नित नव मंगल मोद बधाये। सब जाति के लोग सुखी रहते थे। जाति व्यवस्था सब पृथक् पृथक् थी और सब लोग सुखी थे। जबतक चौदह वर्ष सरकार का वनवास था तबतक लोग दीन मलिन थे : कोक कोकी कमल दीन विहीन तमारि।

नित नइ प्रीति राम पद पंकज। सबके जिअहि नमत सिव मुनि अज ॥
मंगन बहु प्रकार पहिराए। द्विजन्ह दान नाना बिधि पाए ॥५॥

अर्थ : सबको रामजी के चरणों मे जिन्हे शिव मुनि और ब्रह्मा नमस्कार करते हैं। नित्य नयी प्रीति हो रही थी। याचकों को बहुत प्रकार से कपड़े पहनाये गये और ब्राह्मणों ने अनेक प्रकार के दान पाये।

व्याख्या : हर्षित रहने का कारण कहते हैं कि सरकार के चरणो में प्रीति पुरानी नही होने पाती। नित्य नवीन होती जाती है। उन चरणो का प्रभाव ही ऐसा है कि उनमें एक बार चित्त लग जाने से फिर हटता ही नहीं। शिव मुनि और ब्रह्मा नित्य नमस्कार किया करते हैं।

पहिले माताओं ने याचको को अयाचक कर दिया था। सरकारी आज्ञा हुई उन्हे नाना प्रकार के कपड़े भी पहिना दो। जिसमें दरिद्र वेष से घर न जायें और ब्राह्मणों को अनेक प्रकार के दान दिये गये। यह दान सरकार की ओर से हुआ।

दो. ब्रह्मानंद मगन कपि, सबके प्रभु पद प्रीती।
जात न जाने दिवस तिन्ह, गये मास पट बीती ॥१५॥[1]

अर्थ : बन्दर सब ब्रह्मानन्द मे मग्न थे। सबको प्रभु के चरणों में प्रीति थी। उन्हे रात दिन के बीतने का पता न चला। छः महीने बीत गये।

व्याख्या : क्या अद्भुत लीला है। बन्दर ब्रह्मानन्द में मग्न हैं। बन्दरो में ब्रह्मानन्द की पात्रता के आने का कारण कहते हैं कि सबको प्रभु के चरणों में प्रीति

---

१. उत्तरकाण्ड प्रारम्भ से यहाँ तक १५ दोहापर्यन्त नित्य नियम से पाठ करने पर यथायोग्य लाभ अवश्य होता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



थी। सरकार के चरणो मे प्रीति होने से मोक्ष सुख सुलभ हो जाता है। यथा : तथा मोक्षु सुख सुनु खगराई। रहि न सकै हरि भगति बिहाई। उस ब्रह्मानन्द मे सब ऐसे मग्न हुए कि उन्हे दिन रात के बीतने का पता नही। आनन्दातिरेक में छः महीने बीत गये।

बिसरे गृह सपनेहुँ सुधि नाही। जिमि पर द्रोह संत मन नाही ॥
तब रघुपति सब सखा बोलाए। आइ सबन्हि सादर सिरु नाए ॥१॥

अर्थ : घर भूल गया। सपने मे भी याद नही पड़ता। जिस भाँति सन्त के मन मे पर द्रोह की याद नही आती। तब रामजी ने सब सखाओं को बुलाया। सबने आदर के साथ आकर सिर नवाया।

व्याख्या : मदिरा मन्दान्ध की भाँति ब्रह्मानन्द मे मग्न कपि लोग खाते पीते सोते थे। उन्हे सपने मे भी घर की याद न आयी। इसकी उपमा देते हुए श्री गोस्वामीजी कहते हैं कि जिस भाँति सन्त को कभी पर द्रोह का सपना भी नही होता। मनसा वाचा कर्मणा परोपकार करना सन्त का सहज स्वभाव है। उन्हे परद्रोह का संस्कार ही नही। इसलिए सपने में भी परद्रोह की याद नही आती। यहाँ बानरो की उपमा सन्तो से दी और घर की उपमा परद्रोह से और ब्रह्मानन्द साधारण धर्म बतलाया जो ब्रह्मानन्द मे मग्न हैं। उसे देह की सुधि भी नही रहती। घर उसे क्यो याद पडने लगा। अथवा ऐसा सत्कार उनका अवध मे हुआ कि वे घर भूल गये। प्रवास मे असुविधा का अनुभव होने से ही घर याद आता है।

छः महीना बीतने पर सबकी तलबी एक साथ हुई। पहिले मुनिपद लगने के लिए बुलाया था। फिर बीच मे बुलाहट नही हुई। अपनी खुशी से जब चाहते थे आ जाते थे। सबकी बुलाहट एक साथ हुई। अतः सब आये। सरकार का व्यवहार उनके साथ सखा की भाँति था। पर वे स्वामी सेवक सा व्यवहार रखते थे। आकर सादर प्रणाम करते हैं।

परम प्रीति समीप बैठारे। भगत सुखद मृदु बचन उचारे ॥
तुम्ह अति कीन्हि मोरि सेवकाई। मुख पर केहि बिधि करौं बड़ाई ॥२॥

अर्थ : परम प्रीति के साथ अपने पास बिठाया। भक्तो को सुख देनेवाले रामजी ने तब मृदु वचन कहा। तुम लोगो ने मेरी बड़ी ही सेवा की। मुख पर किस प्रकार से बडाई करूँ।

व्याख्या : सखाओ पर प्रेम तो है ही पर इस समय उन्हे विदा करना है। अतः परम प्रीति के साथ पास बिठाना कहते हैं। अथवा सरकार ने छः महीने तक आसरा देखा कि अब ये लोग घर जाने के लिए कहेंगे। अब कहेंगे। जब देख लिया कि ये लोग तो घर ही भूल गये तो सरकार का उन पर परम प्रेम हुआ। सरकार ने ऐसा मृदु वचन कहा जिससे उन्हे सुख उपजे। सरकार को उन्हे घर भेजना है। उनके बाल बच्चे उत्सुकता के साथ उनका रास्ता देखते होंगे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


सरकार ने कहा कि तुम लोगो ने मेरी बडी भारी सेवा की। सरकार के प्रेम मे घर भूल जाना यह सरकार की बड़ी भारी सेवा है। साधुओ मे यह एक बडी भारी बड़ाई है : जो गृहस्थो मे हो नही सकती : कि वे घर का परित्याग करके भूले रहते हैं। अत: कहते हैं कि जो जो सेवा तुम लोगो ने की उसकी बड़ाई करनी चाहिए। बड़ाई की शोभा पीठ पीछे करने मे है। सामने बड़ाई की गिनती मुँह देखी बात मे हो जाती है।

ताते मोहिं तुम अति प्रिय लागे। मम हित लागि भवन सुख त्यागे ॥
अनुज राज संपति वैदेही। देह गेह परिवार सनेही ॥३॥

अर्थ : मेरे लिए तुम लोगो ने घर का सुख छोड़ा। इसलिए तुम लोग मुझे अत्यन्त प्रिय लगे। छोटे भाई, राज्य, सम्पत्ति, वैदेही, देह, घर, परिवार और प्रेमी।

व्याख्या : सब सुखो मे घर का सुख सबसे बडा है। गृह सुख के लिए मनुष्य क्या नही करता। दिवसस्याष्टमे भागे शाकं पचति यद्‌गृहे। अनृणी चाऽप्रवासी च स वारिचर मोदते। दिन के आठवें भाग मे जिसके घर मे शाक बन जाता है उसे यदि ऋण नही है और वह परदेश मे नही है तो वह सुखी है। अतः सरकार कहते हैं कि मैं तुम लोगो को इतना प्रिय हूँ कि मेरे लिये तुम लोगो ने घर का सुख छोड दिया। अत तुम लोग मुझे अत्यन्त प्रिय हो। भाई, राज्य, सम्पत्ति, स्त्री, देह, घर परिवार और प्रेमी ये ही प्रेमास्पद हैं। सरकार कहते हैं कि मुझे भी ये प्रिय हैं। भाई प्रिय यथा : राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। राज्य प्रिय यथा : अवधपुरी सम प्रिय नहिं सोऊ। सम्पत्ति प्रिय यथा : सपति सब रघुपति के आही। जो बिनु जतन चलौं तजि ताही। तौ परिनाम न मोरि भलाई। वैदेही प्रिय यथा : अतिसय प्रिय करुना निधान की। देह प्रिय यथा : सब के देह परम प्रिय स्वामी। गेह प्रिय यथा : मम हित लागि भवन सुख त्यागे। परिवार प्रिय यथा : कहहुँ सुभाव न कुलहि प्रससी।

सब मम प्रिय नहि तुमहि समाना। मृषा न कहौं मोर यह बाना ॥
सब के प्रिय सेवक यह नीती। मोरे अधिक दास पर प्रीती ॥४॥

अर्थ : मुझे सब प्रिय हैं। परन्तु तुम्हारे समान नही। मेरा यह बाना है कि मैं झूठ नही कहता। ऐसी नीति है कि सबको सेवक प्रिय होते हैं पर मुझे दास पर अधिक प्रीति होती है।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि तुम लोग मुझे : अनुज राज सपति वैदेही। देह गेह परिवार सनेही। सबसे अधिक प्रिय हो। भाव यह है कि सखाओ के मन मे यह बात न आवे कि हम लोग सरकार को अधिक प्रिय नही हैं। सभी प्रेमास्पदो का तो सग्रह कर रक्खा है। हमारा ही त्याग क्यो करते हैं। अत सरकार कहते हैं कि तुम लोग सबसे अधिक प्रिय हो। घर जाने को कहूँगा। इसलिए प्रेम मे न्यूनता न समझना और यह भी न समझना कि मैं तुम लोगो की प्रसन्नता के लिए

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मुँहदेखी कह रहा हूँ। मैं असत्य कहता हो नही। यह मेरा प्रण है। फिर भी अधिक प्रिय होने का कारण होना चाहिए। इस पर कहते हैं कि सम्बन्धियो से अधिक प्रीति सेवा करनेवालों पर सबको होती है। ऐसी नीति है। यथा : सुखदाई सोई सगो सगो शत्रु बिनु हेत। दुखदाई तन की व्यथा बन बूटी सुख देत। पर मुझे तो दास पर अधिक प्रीति होती है। यथा : तिन्हते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा। तुम लोगो को मेरी ही गति है दूसरी आशा नही है। अतः मुझे अत्यन्त प्रिय हो।

दो. अब गृह जाहु सखा सब, भजेहु मोहि दृढ़ नेम।
सदा सर्बगत सब हित, जानि करेहु अति प्रेम ॥१६॥

अर्थ : हे सखा लोग ! अब तुम लोग घर जाओ और दृढ नियम करके मेरा भजन करना। सब काल मे सब देश मे और सबके हित मे मुझे जानकर अत्यन्त प्रेम मुझ पर करना।

व्याख्या : सरकार का कहना है कि तुम लोगो ने अत्यन्त सेवकाई मेरी की। इससे अधिक सेवकाई मुझसे सहन नही होती। अतः तुम लोग अपने घर जाओ। मेरा भजन घर मे भी हो सकता है। पर उसके लिए दृढ नियम की आवश्यकता है। नही तो : गृह कारज नाना जंजाला मे लोग भूल जाते हैं और यह न समझना कि मैं इस समय केवल अयोध्या मे हूँ। मैं सब काल में सब देश मे रहता हूँ। सबका हित किया करता हूँ। ऐसा समझकर जहाँ हो वही से अत्यन्त प्रेम करना। प्रेम से हम घर मे भी प्रकट हो जायँगे।

सुनि प्रभु बचन मगन सब भए। को हम कहाँ बिसरि तन गए ॥
एकटक रहे जोरि कर आगे। सकहिं न कछु कहि अति अनुरागे ॥१॥

अर्थ : प्रभु का वचन सुनकर सब मग्न हो गये। वे शरीर की सुधबुध भूल गये। उन्हे इस बात का पता न रह गया कि हम कौन है और कहाँ हैं। हाथ जोडकर आगे खड़े एकटक से देखा किये। अत्यन्त प्रेम के कारण कुछ कहने मे भी असमर्थ हो गये।

व्याख्या : प्रभु की ऐसी वाणी जो कि भक्तसुखद और मृदु थी सुनकर सब मग्न हो गये। पहिले तो घर ही भूला था। अब तो देह भी भूल गया। न अपनी सुधि रह गयी न दूसरे की। हम कौन हैं यह भी पता न रहा और न यह ख्याल रह गया कि हम कहाँ हैं। कहि न सकहि कछु प्रेम बस भरि भरि लोचन बारि। सनमुख चितवहि राम तन नयन निमेष निवारि। हाथ जोडे सामने खडे हैं। कहना चाहते हैं परन्तु प्रेम मे इतने विह्वल हैं कि कह नही सकते।

परम प्रेमु तिन कर प्रभु देखा। कहा बिबिध बिधि ग्यान बिसेखा ॥
प्रभु सनमुख कछु कहन न पारहिं। पुनि पुनि चरन सरोज निहारहिं ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ : सरकार ने उनका परम प्रेम देखा तो अनेक प्रकार से विशेष ज्ञान कहा। सरकार के सामने कुछ कह नहीं सकते। बार बार चरण कमल देखते हैं।

व्याख्या : लंका से चलने के समय : अतिसय प्रीति देखि रघुराई। लीन्हे सकल बिमान चढाई। परन्तु इस बार परम प्रेम देखकर ज्ञानोपदेश किया। क्योंकि प्रेम का वेग ज्ञान से ही रुकता है और प्रेम की पराकाष्ठा भी ज्ञान है जहाँ प्रेमी और प्रेमास्पद मे भेद नही रह जाता। जी मे बात के बिठाने के लिए अनेक प्रकार से कहा। विशेष ज्ञान से यहाँ विज्ञान अभिप्रेत है। शत्रु भी : प्रभु बिलोकि सर सकहिं न डारी। बन्धु भी : प्रभु सन कछु कहि सकत न ओऊ। इस भाँति सखा भी प्रभु के सन्मुख कुछ भी कहने मे असमर्थ हुए। बहुत कुछ कहना चाहते हैं पर वाणी खुलती नहीं। ऐसी प्रभुता है कि सामने देखा नही जाता। बार बार चरण कमल का दर्शन कर रहे हैं। भाव यह कि अब इन चरणो का दर्शन दुर्लभ होनेवाला है।

तब प्रभु भूषन बसन मगाए। नाना रग अनूप सोहाए॥
सुग्रीवहि प्रथमहि पहिराए। बसन भरत निज हाथ बनाए॥३॥

अर्थ : तब सरकार ने गहने कपडे मँगवाये जो कि अनेक रङ्ग के थे। बेजोड थे और सुन्दर थे। पहिले सुग्रीव को पहिनाया। कपडे को भरतजी अपने हाथ से सँवारे।

व्याख्या : समझाने के बाद बिदाई की तैयारी कर दी। बिदाई मे महाराजो के यहाँ से कपडे मिलते हैं। जिन्हे सरोपाव कहते हैं। आभूषण भी मिलते हैं। सो अनेक रग के कपडे मँगाये। यहाँ बानर सरदार भी अनेक रङ्ग के थे। सो जिस रग का कपडा जिसे खिले उस रंग का उसे दिया जाय। इसलिए अनेक रग के कपडे मँगाये। वे ऐसे सुन्दर थे कि उनकी उपमा नही है। वैसे ही गहने भी बेजोड थे। सुग्रीव कपिराज थे और सरकार से उनकी अग्नि साक्षिक मैत्री थी। उन्होने कहा भी था : सब प्रकार करिहौं सेवकाई। जेहि बिधि मिलिहि जानकी आई। और तदनुसार सेवकाई भी की थी और सरकार ने इन्हे अपने हाथ से तिलक नही दिया था। इसलिए पहिले अपने हाथ से सुग्रीव को ही गहना कपडा पहनाया। राजाओ का पहनाना ऐसा ही होता है कि कपडो को शरीर से स्पर्श मात्र करा देते हैं। शेष कार्य तो कामदार लोग कर देते हैं। इसी भाँति सरकार ने पहना दिया और उसे भरतजी ने अपने हाथ से ठीक ठीक साज दिया।

प्रभु प्रेरित लछिमन पहिराए। लकापति रघुपति मन भाए॥
अंगदि बैठ रहा नहि डोला। प्रीति देखि प्रभु ताहि न बोला॥४॥

अर्थ : सरकार की प्रेरणा से रघुपति के मन मे अच्छे मालूम होनेवाले लङ्कापति को लक्ष्मणजी ने पहनाया। अङ्गद बैठे ही रह गये बोले नही। उनकी प्रीति देखकर सरकार ने उनसे कुछ नही कहा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : जिस समय सरकार कपिपति को पहनाने लगे उसी समय लक्ष्मणजी को प्रेरणा की कि लङ्कापति विभीषण को पहनावें। ये सरकार के मन भाये लङ्कापति थे। इन्हे सरकार ने अपने हाथ से तिलक किया था। यथा : अस कहि राम तिलक तेहि सारा। सुमन वृष्टि नभ भयउ अपारा। अतः लक्ष्मणजी ने इन्हे पहनाया और अपने हाथ से कपडे को सजा भी दिया। इसीलिए किसी दूसरे द्वारा जाना नही कहते। अङ्गदजी उठे ही नही। बैठे ही रह गये। प्रभु ने उनकी प्रीति समझ ली। अतः उन्हे छेड़ना उचित नही समझा। दूसरे लोग भी कही अङ्गद का ही रास्ता न पकडें।

दो. जामवंत नीलादि सब, पहिराये रघुनाथ।
हिय धरि राम रूप सब, चले नाइ पद माथ॥१७ क.

अर्थ : जामवन्त और नीलादि को रामजी ने अपने हाथ से पहनाया। रामजी के रूप को हृदय मे रखकर सब लोक सिर नवाकर चले।

व्याख्या : तत्पश्चात् ऋक्षराज जाम्बवान् सेनापति नील तथा अन्य वानर सरदारो को सरकार ने अपने हाथ से पहनाया। सामान्य वानर लोग तो लङ्का मे ही आकाश से वर्षा किये गये गहने कपडे पा गये थे। यथा : भालु कपिन्ह पट भूषन पाये। पहिरि पहिरि रघुपति पहँ आये। उनकी लङ्का से ही बिदाई हो गयी थी। यहाँ तो केवल सरदार लोग साथ आये थे। इनकी बिदाई सरकार अपने हाथ से अनूप भूषण वसन पहनाकर कर रहे हैं। बिदाई होने पर सब लोग प्रणाम करके चले। पर प्रभु रूप को हृदय मे ध्यान करने के लिए रख लिया। आज्ञा भी पा चुके हैं : भजेहु मोहि दृढ नेम। सो बिना ध्यान किये दूर से भजन कैसे हो सकता था।

दो. तब अंगद उठि नाइ सिरु, सजल नयन कर जोरि।
अति बिनीत बोले बचन, मनहु प्रेम रस बोरि॥१७ ख.

अर्थ तब अङ्गद ने उठकर सिर नवाया। उनकी आंखो मे जल भरा था। हाथ जोडकर अत्यन्त विनययुक्त वचन बोले। मानो वह प्रेम रस मे डुबाया हुआ था।

व्याख्या सबके चले जाने पर अङ्गदजी उठे। सबके चले जाने पर उठने का भाव ही यही है कि अङ्गदजी को कुछ कहना है। उन्होने उठकर प्रणाम किया। उनकी आँखो मे जल भरा था। हाथ जोड़कर वचन बोले। वह वचन कैसा था इस पर कवि कहते हैं मानो प्रेम सुधा से पागा हुआ था। यहाँ : तब अगद उठि नाइ सिर कहने से अङ्गदजी का कर्मणा प्रेम कहा। अति बिनीत बोले बचन : से वाचा प्रेम कहा। मनहु प्रेम रस बोरि : से मनसा प्रेम कहा। विनीत वचन भी प्रेम रस से भरा न हो तो उसमे मधुरता नही आती।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुनु सर्वज्ञ कृपा सुख सिंधो। दीन दयाकर आरत बंधो॥
मरती बेर नाथ मोहि बाली। गयउ तुम्हारेहिं कोछें घाली॥१॥

अर्थ : हे सर्वज्ञ ! हे कृपा और सुख के सिन्धु ! हे दीनो पर दया करनेवाले ! आर्तों के बन्धु सुनो। मरने के समय बालि मुझे आपके ही गोद मे डाल गया।

व्याख्या : सर्वज्ञ को क्या जनावें। कृपा सुखसिन्धु से कृपा करने की प्रार्थना क्या करें ? आप दीनदयाल हैं मैं दीन हूँ। आप आर्त्तबन्धु हैं मैं आर्त्त हूँ। अत: मेरी बात सुनिये। और लोगों मे और मुझ मे बडा अन्तर है। मरते समय वालि ने मुझे आप की ही गोद मे डाला। यथा : यह तनय मम सम विनय बल कल्यानप्रद प्रभु लीजिये। गहि बाँह सुर नरनाह आपन दास अंगद कीजिये। सुग्रीव की गोद मे नही डाला और आप ने अस्वीकार नही किया। मरती बार के विनय को कोई सामान्य पुरुष भी यथासाध्य उपेक्षित नही करता। आप तो दीन दयाकर हैं। आपको सुपुर्द करके तब प्राण त्याग किया। इसलिए मैं अनन्यगतिक हूँ आर्त्त हूँ और आप आर्त्तबन्धु हैं।

असरन सरन विरद संभारी। मोहि जनि तजहु भगत हितकारी॥
मोरे तुम्ह प्रभु गुर पितु माता। जाउँ कहाँ तजि पद जलजाता॥२॥

अर्थ : अशरण शरण विरद का सँभाल करते हुए मेरा परित्याग न कीजिये। आप भक्त के हित करनेवाले हैं। मेरे तो आप ही गुरु पिता और माता हैं। आपके पदकमल को छोड़कर मैं कहाँ जाऊँ ?

व्याख्या : अङ्गदजी कहते हैं कि आपका विरद अशरणशरण है और मुझे कही शरण नही है। मेरे परित्याग से सरकारी विरद गिर जायगा। और लोगो को तो शरण है। घर बार सब कुछ है। हमे तो कुछ नही है। मुझे जाने को कहियेगा तो मैं कहाँ जाऊँ ? मेरे तो आप ही प्रभु हैं। जो लोग गये हैं उनमे किसी के प्रभु घर पर हैं। किसी के गुरु घर पर हैं। किसी के माता पिता घर पर हैं। मेरे तो आप ही सब कुछ हैं। पिताजी मुझे आपका दास बना गये हैं। अत: आप ही मेरे प्रभु और माता पिता हैं। अनेक प्रकार के ज्ञान का उपदेश भी अभी मिला है। अत: गुरु भी आप ही हैं। सो आप यहाँ हैं मैं कहाँ जाऊँ ?

तुम्हइ बिचारि कहहु नरनाहा। प्रभु तजि भवन काजु मम काहा॥
बालक ग्यान बुद्धि बल हीना। राखहु सरन नाथ जनदीना॥३॥

अर्थ : हे नरनाथ ! आप ही विचारकर कहिये कि सरकार को छोड़कर घर मे मेरा क्या काम है ? मैं बालक हूँ। मुझे ज्ञान बुद्धि और बल नही है। मुझे दीन जन जानकर शरण मे रख लीजिये।

व्याख्या : मैं बालक हूँ। अल्प वयस्क हूँ। मुझे संसार का अनुभव नही है। मैं ज्ञानी भी नही हूँ कि मानापमान को समान समझूँ। बुद्धि बल भी नही। अपना

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भी कोई नही। राज्य सुग्रीव का है सो बाप का वैरी है। माँ भी उसी के हाथ मे है। आप ही विचार करिये कि वहाँ मेरा कौन है? वहाँ मेरी कुशल कैसे हो सकती है? मै दीन हूँ। मुझे कही ठिकाना नही। ऐसा जानकर मुझे शरण में रख लीजिये।

नीच टहल गृह कै सब करिहौं। पद पंकज बिलोकि भव तरिहौं॥
अस कहि चरन परेउ प्रभु पाही। अब जनि नाथ कहहु गृह जाही॥४॥

अर्थ: मै घर की छोटी से छोटी सेवा करूँगा। और चरणकमल का दर्शन करते हुए संसार सागर से पार हो जाऊँगा। ऐसा कहकर चरण पर गिर गये कि सरकार रक्षा करें और अब घर जाने को न कहे।

व्याख्या: यदि कहा जाय कि यहाँ रहकर क्या करोगे? तो इस पर कहते हैं कि घर का झाडू बहारू दिया करूँगा। सरकार की सेवा करने के लिए बहुत लोग हैं। मैं तो चरण दर्शन करते करते संसार सागर के पार हो जाऊँगा। इस भाँति लोक परलोक दोनो बन जायगा। ऐसा कहकर अङ्गदजी पाहि पाहि करते हुए चरणो मे गिर गये और कहा कि अब मुझे घर जाने के लिए आज्ञा न दी जाय। आज्ञा मिलने पर मानना ही पड़ेगा। यथा: रामरजाइ मेटि मन माँही। देखा सुना कतहुँ कोउ नाही।

दो. अंगद बचन बिनीत सुनि, रघुपति करुना सीव।
प्रभु उठाइ उर लाएउ, सजल नयन राजीव॥१८ क.

अर्थ: अङ्गद की विनीत वचन सुनकर करुणासीव रामजी प्रभु ने उठाकर हृदय से लगा लिया और सरकार के कमल ऐसी आँखो मे जल भर आया।

व्याख्या: अङ्गद पर सरकार का बड़ा प्रेम है: राज दीन्ह सुग्रीव कहँ अगद कहँ जुवराज। बड़ी आस्था है। रावण के यहाँ इन्ही को दूत बनाकर भेजा था। सो अङ्गद का ऐसा वचन सुनकर: सरकार करुणा की सीमा हैं। वालि द्वारा गोद मे डाला हुआ स्मरण करके बडी करुणा हुई। कमल ऐसे नेत्रो मे जल भर आया। पैर गिरे हुए अङ्गद को उठाकर हृदय से लगा लिया।

दो. निज उरमाल बसन मनि, बालि तनय पहिराइ।
बिदा कीन्हि भगवान तब, बहु प्रकार समुझाइ॥१८ ख.

अर्थ: अपने गले की माला कपडा तथा मणि बालि के बेटे को पहिनाकर बहुत प्रकार से समझाकर भगवान् ने बिदा किया।

व्याख्या: सीधे सीधे प्रसाद अङ्गदजी को सरकार के हाथ से प्राप्त हो रहा है। अपने गले की माला पहना दो। कपडे पहनाये। अपने गले की मणि पहना दी। अङ्गद का बड़ा भारी सम्मान हुआ और बड़ी भारी रक्षा को व्यवस्था को गयो। और तब सरकार ने बहुत प्रकार से समझाया। यथा:

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



राज काज सब तुम करत सब बिधि तव अधिकार।
मन वच क्रम पालिय प्रजहिं कीजिय राज सँभार॥
राजा द्रष्टा ह्वै रहत काज करत युवराज।
राज सँभारो आपनो होय सुखी कपिराज॥
अंगद तुमहिं कुदृष्टि से ताकि सकै नहि कोय।
मैं दीन्ह्यौ युवराज पद सो न अन्यथा होय॥
हेम हार बालिहिं दयो रक्षा हित सुरराज।
तव हित निज उर माल मणि पहिरावत हौ आज॥

भरत अनुज सौमित्रि समेता। पठवन चले भगत कृत चेता॥
अंगद हृदय प्रेमु नहि थोरा। फिरि फिरि चितव राम की ओरा॥१॥

अर्थ : भक्तो पर ध्यान रखनेवाले रामजी भरत शत्रुघ्न और लक्ष्मणजी के साथ पहुँचाने चले। अङ्गद के हृदय मे थोडा प्रेम नही है। घूम घूमकर रामजी की ओर देखते जा रहे हैं।

व्याख्या : भरत और उनके अनुज से शत्रुघ्न को बोध है अथवा अनुज से लक्ष्मण और सौमित्रि से शत्रुघ्न का बोध है। यहाँ पर स्पष्ट है कि भक्त कृत चेता से भगवान् का अभिप्राय है। अतएव भगतकृत चेता शब्द यहाँ रामजी पर ही घटाना उचित है। भक्त का कृत उन्ही पर है। अत भक्त के कृत का ध्यान करके स्वयं पहुँचाने चले।

थोडा प्रेम होने से बिदाई के बाद सीधे घर का रास्ता पकडते। परन्तु अङ्गदजी घूम घूमकर सरकार की ओर देखते हैं। दर्शन की प्यास जाती नही। बड़ा भारी सभा भवन है। इसके बाहर जाने के लिए कुछ दूर चलना पड़ा है।

बार बार कर दंड प्रनामा। मन अस रहन कहहिं मोहि रामा॥
राम बिलोकनि बोलनि चलनी। सुमिरि सुमिरि सोचत हँसि मिलनी॥२॥

अर्थ : बार बार दण्डवत् प्रणाम करते हैं। मन मे यह भाव है कि रामजी हमे रहने के लिए कह दें। रामजी का देखना बोलना चलना और हँसकर मिलना स्मरण करके अङ्गदजी सोचते हैं।

व्याख्या : जब जब घूमकर देखते हैं तब तब दण्डवत् प्रणाम करते हैं। मन के भीतर यह आशा लगाये हुए हैं कि इस बार रामजी कह देंगे कि अच्छा तुम रह जाओ। सरकार का सन्निधान अङ्गदजी से छोड़ते नही बनता। सभी देखते हैं, बोलते हैं, चलते हैं, मिलते हैं, पर रामजी का देखना बोलना चलना और मिलना कुछ दूसरा ही है। इनकी एक एक क्रिया मे अङ्गविक्षेप में शोभा है। अलौकिकता है: वियुक्त होने के समय सब स्मरण हो रही हैं। सोचते हैं कि अब ऐसी शोभाओं का दर्शन कहाँ मिलेगा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रभु रुख देखि बिनय बहु भाखी। चलेउ हृदय पद पकज राखी ॥
अति आदर सब करि पहुँचाए। भाइन्ह सहित भरत पुनि आए ॥३॥

अर्थ सरकार का रुख देखकर बहुत कुछ विनय किया और चरण कमल को हृदय मे रखकर चले। अत्यन्त आदर के साथ सब बन्दरो को पहुँचाकर भाइयो के साथ भरतजी लौटकर आगये।

व्याख्या अङ्गदजी ने सरकार का रुख देख लिया कि नही रक्खेंगे तब ठहर गये। बहुत कुछ विनती की। यह विनती कृपा बनाये रखने के लिए है। इससे स्पष्ट है कि रामजी पहुँचाने चल रहे हैं। सब लोग रामजी के रूप को हृदय मे रखकर चले। पर अङ्गदजी चरण कमल को हृदय मे रखकर चले। सरकार वही से लौट गये। पर भरतजी छोटे भाइयो के साथ सब बन्दरो को राजधानी की सीमा तक पहुँचाया और तब लौट आये।

तब सुग्रीव चरन गहि नाना। भाँति बिनय कीन्हे हनुमाना ॥
दिन दस करि रघुपति पद सेवा। पुनि तव चरन देखिहौ देवा ॥४॥

अर्थ तब सुग्रीव का चरण पकडकर हनुमान्जी ने नाना प्रकार से विनती की और कहा कि दस दिन और रामजी की सेवा करके हे देव! तब आपके चरणो का दर्शन करूँगा।

व्याख्या भरतजी के लौटने पर हनुमान्जी ने राजा सुग्रीव का चरण पकडा। वे बन्दरो के राजा हैं। सरकार के मित्र हैं। सूर्य के अश होने से गुरुपुत्र हैं। अत सब भाँति पूज्य हैं। अत रामजी की सेवा मे ठहर जाने के लिए इनसे छुट्टी ले रहे हैं। यहाँ दस दिन से अभिप्राय थोडे दिनो से है। सरकार की सेवा से तृप्ति नही होती। अत और ठहरना चाहते हैं। रामजी की ओर से इनकी विदाई भी नही हुई है। हनुमान्जी का कहना है कि थोडे दिन अयोध्या मे और ठहरकर मैं किष्किन्धा मे आ जाऊँगा।

पुन्यपुज तुम पवन कुमारा। सेवहु जाइ कृपा आगारा ॥
अस कहि कपि सब चले तुरता। अगद कहै सुनहु हनुमता ॥५॥

अर्थ हे पवनकुमार! तुम पुण्यपुज हो। जाकर कृपा निधान की सेवा करो। ऐसा कहकर बन्दर लोग तुरन्त चल पडे। पर अङ्गद ने कहा कि हनुमान्जी! सुनो।

व्याख्या राजा सुग्रीव ने कहा कि हनुमान्जी पुण्यपुञ्ज तुम्ही हो। तुम्हारी बिदाई सरकार की ओर से नही हुई। वे तुम्हे छोडना नहीं चाहते और तुम्हारा मन उन्हे छोडने को नही चाहता। अत तुम्हारी सदा के लिए छुट्टी है जाओ। कृपानिधान की सेवा करो। सुग्रीव की यह आज्ञा हुई और सब बन्दरो ने इसका अनुमोदन किया और सब तुरन्त चल पडे। पर अङ्गदजी ठहर गये। हनुमान्जी से कहने लगे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. कहेहु दंडवत प्रभु सैं, तुमहि कहौं कर जोरि।
बार बार रघुनायकहिं, सुरति करायहु मोरि ॥१९ क.

अर्थ : सरकार से मेरी दण्डवत् कहना यह मैं आप से हाथ जोड़ कर कहता हूँ और बार बार रघुनायक को मेरी याद दिलाना।

व्याख्या : अङ्गदजी कहते है कि मेरी दण्डवत् सरकार से कहना। यह परोक्ष की दण्डवत् है। प्रणाम करने में अङ्गदजी अघाते नही और हनुमान्‌जी से हाथ जोड़कर विनय करते हैं कि राजकार्य का भार बड़ा गुरु : भारी होता है। सरकार मुझे भूल जायँगे। सो तुम मेरी याद दिलाते रहना जिसमें सरकार की दृष्टि मुझ पर बनी रहे। जीवका निस्तार सरकार के छोह से ही सम्भव है। यथा : नाथ जीव तव माया मोहा। सो निस्तरै तुम्हारेहि छोहा।

अस कहि चलेहु बालि सुत, फिरि आएउ हनुमंत।
तासु प्रीति प्रभु मन कही, मगन भए भगवंत ॥१९ ख.
कुलिसहु[1] चाहि कठोर अति, कोमल कुसुमहु चाहि।
चित्त खगेस राम कर, समुझि परै कहु काहि ॥१९ ग.

अर्थ : ऐसा कहकर बालिपुत्र अङ्गदजी चले और हनुमान्‌जी लौट आये और उनका प्रेम प्रभु से कहा तो भगवान् मग्न हो गये।

वज्र से भी कठिन और कुसुम से भी कोमल चित्त रामजी का है। हे पक्षिराट्! क्या किसी के समझ मे आ सकता है?

व्याख्या : साथी लोग आगे बढ गये। साथ जाना है। इसलिए अङ्गदजी ऐसा कहकर चल पडे। यहाँ अङ्गदजी को बालिसुत कहने से उनका बुद्धि बल गुण धाम होना कहा। अङ्गदजी की बात सुनकर हनुमान्‌जी लौट आये। कवि सरकार के साथ थे। इसलिए कहते हैं : फिरि आयेउ हनुमत। अङ्गदजी ने कहा था : बार बार रघुनायकहिं सुरति कराएउ मोरि। सो हनुमान्‌जीने कार्य प्रारम्भ कर दिया। आते ही अङ्गदजी के प्रेम की कथा प्रभु को सुनायी। सरकार सुनकर प्रेम में मग्न हो गये।

सरकार के चरित्र लोकोत्तर हैं। श्रीगोस्वामीजी कहते हैं कि यहाँ मनुष्य की गति नही। कही तो उनका चित्त वज्रसे भी कठोर और कही फूल से भी अधिक कोमल मालूम पड़ता है। अङ्गद का विनय सुनकर अस्मदादि का हृदय द्रवीभूत हो जाता है। परन्तु सरकार द्रवीभूत नही हुए। मोहि जनि तजहु भगत हितकारी। अब जनि नाथ कहहु गृह जाही। आदि बहुत कुछ कहा। पर प्रभु का रुख नहीं बदला। यथा : प्रभु रुख देखि विनय बहु भाषी। चलेउ हृदय पद पंकज राखी। यहाँ वज्र से भी अधिक कठोर मालूम होता है। पर जब हनुमान्‌जी ने उनकी प्रीति

---

१. यहाँ प्रतीप : तृतीय अलंकार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कही तो आप प्रेम मे डूबाडूब हो गये। यहाँ कुसुम से भी अधिक कोमल मालूम होता है। अत इस लोकोत्तर चरित्र का किसी के समझ मे आ जाना ही आश्चर्य है।

पुनि कृपालु लियो बोलि निषादा। दीन्हे भूषन बसन प्रसादा ॥
जाहु भवन मम सुमिरन करेहू। मन क्रम बचन धर्म अनुसरेहू ॥१॥

अर्थ फिर कृपालु ने निषादराज को बुला भेजा। उसे प्रसाद रूप से गहने कपडे दिये। कहा कि घर जाओ मेरा स्मरण करना और मनसा वाचा कर्मणा धर्माचरण करना।

व्याख्या सखाओ की विदाई के बाद निषादराज की बुलाहट हुई। इसकी विदाई नही हो रही है। अति सन्निकट का रहनेवाला है। इसे गहने कपडे प्रसाद रूप से मिले। सरकार कृपालु हैं। बन्दरो को कहा अब गृह जाहु सखा सब। इसी भांति इसे भी कहते हैं। निषादराज भी छ महीने बीत गये अयोध्या से सिंगरौर न गये।

अत रामजी कहते हैं कि घर जाओ। मेरा स्मरण करना। मेरे स्मरण से ही सब कल्याण है। परन्तु मनसा वाचा कर्मणा धर्म पालन करना। राज मैत्री से प्रमाद न करना यही अनुशासन है। इस उपदेश का पालन करने से जीव कल्याणभागी होता है।

तुम मम सखा भरत सम भ्राता। सदा रहेहु पुर आवत जाता ॥
बचन सुनत उपजा सुख भारी। परेउ चरन भरि लोचन बारी ॥२॥

अर्थ तुम मेरे सखा हो। भरत के समान भाई हो। राजधानी मे सदा आते जाते रहना। वचन सुनते ही बडा भारी सुख हुआ। आंखो मे आँसू भरकर चरणो मे गिरा।

व्याख्या तुम सखा हो और भाइयो मे भरत के समान हो। भरत के समान ही मेरे वियोग के ताप से तप्त रहे हो। तुम तो बहुत निकट ही रहते हो। सदा यहाँ आते जाते रहना। जब इच्छा हो चल आना और जब इच्छा हो चल जाना। निषादराज को सरकार का वचन सुनकर बडा आनन्द हुआ कि मेरी गिनती भाइयो मे हुई और भरतजी का दर्जा मिला। मेरे लिए अवारितद्वार है। आनन्द से उसे सात्विक भाव हुआ। प्रेमाश्रु से आंखें भर गयी और चरणो पर गिर पडा।

चरन नलिन उर धरि गृह आवा। प्रभु सुभाउ परिजनन्हि सुनावा ॥
रघुपति चरित देखि पुरबासी। पुनि पुनि कहहिं धन्य सुखरासी ॥३॥

अर्थ चरण कमल को हृदय मे धारण करके घर आया और सरकार का स्वभाव अपने कुटुम्बियो को सुनाया। रामजी के चरित को देखकर पुरवासी बार बार कहते हैं कि सुख की राशि रामजी धन्य हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या : अङ्गदजी की भाँति इसने भी प्रभु के चरण को हृदय मे धारण किया और घर आया। सरकार के स्वभाव पर इतना अनुरक्त है कि कुटुम्बियो को इकट्ठा करके प्रभु के स्वभाव का वर्णन किया। पुरवासी लोग सरकार का चरित्र देखते हैं कि बन्दरो की विदाई हो रही है। निषाद की बिदाई हो रही है। अत: सब कहते हैं कि सरकार धन्य है : धन्य है। सुख की राशि हैं। छोटो को इतनी बडाई देते हैं।

राम राज बैठे त्रैलोका। हरषित भए गए सब सोका॥
बयरु न कर काहू सन कोई। राम प्रताप बिषमता खोई॥४॥

अर्थ : रामजी राज्य पर बैठे। तीनो लोक हर्षित हुए और सब शोक गया। कोई किसी से बैर नही करता था। रामजी के प्रताप से विषमता जाती रही।

व्याख्या : सरकार के सिंहासनारूढ होते ही तीनो लोक आनन्दित हो उठा। क्योकि सबका शोक दूर हो गया। कालस्य कारण राजा कालो वा राजकारणम्। इति ते सशयो मा भूद् राजा कालस्य कारणम्। काल का कारण राजा है या राजा का काल कारण है इस विषय मे सन्देह नही करना चाहिए। राजा ही काल का कारण है। राजा के बुरे भले होने के साथ काल पलटा खा जाता है। अत: त्रिलोक हर्षित हुआ। उसका शोक जाता रहा। अर्थात् भूमा आनन्द मे निमग्न हुआ।

उनकी विषमता रामजी के प्रताप से नष्ट हो गयी। अतः सब मे समता आगयी। अतः किसी से कोई बैर नही करता था। विषमता ही शोक का मूल है। उसके नष्ट होते ही शोक नष्ट हो गया।

## ८४. पुरवर्णन तथा अनेक नृपनीतिप्रसङ्ग

दो. बरनाश्रम निज निज धरम, निरत बेद पथ लोग।
चलहिं सदा पावहिं सुखहिं, नहिं भय सोक न रोग॥२०॥

अर्थ : सब लोग अपने वर्ण और अपने आश्रम धर्म मे लगे हुए वेद के अनुसार आचरण करते थे। सदा सुख ही पाते थे। उन्हे भय शोक और रोग नही होता था।

व्याख्या : वैषम्य सृष्टि है और साम्य ही प्रलय है। जबतक ससार को बना रहना है तबतक उसमे ऊँचा नीचा का व्यवहार बना ही रहेगा। इसे कोई मिटा नही सकता। अतः भगवान् ने उच्च नीच भेदवाली सृष्टि रचकर : उनके हिताहित के परिज्ञान के लिए वेदो का निर्माण किया। जिस भाँति पिता पुत्रो को उत्पन्न करके : उन्हें कर्तव्याकर्तव्य का ज्ञान कराने के लिए शिक्षा की व्यवस्था करता है। आज भी वेद को छोडकर कोई आदि उपदेष्टा उपलब्ध नही है। अत: वेदादि शास्त्र के अनुसरण से ही ससार को सुख होगा। उसके अनादर से भय शोक और रोग अवश्यम्भावी है। जिस मात्रा से जो जाने या बिना जाने वेदादि शास्त्रो का अनुसरण करता है या विरोध करता है उसी मात्रा से वह सुखी या दुःखी होता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भगवान् शाण्डिल्य ने यही बात 'निर्मायोच्चावच श्रुतीश्च निर्ममे पितृवत्। इस सूत्र मे कही है।

[1]वेद मे जिसकी विधि है उसे धर्म और जिसका निषेध है उसे अधर्म कहते हैं। उस धर्म के भी दो भेद हैं एक [2]सनातन धर्म और वर्णाश्रम धर्म। सनातन धर्म मनुष्य मात्र के लिए है। वही मनुष्य मे मनुष्यता है। इसका वर्णन स्वय नारायण ने अपने मुख से किया है। सत्य, दया, तप, शौच, तितिक्षा, विचार, शम, दम, अहिंसा, ब्रह्मचर्य, त्याग, स्वाध्याय, सीधापन, सन्तोष, समदृष्टि, सेवा, ग्राम्य सुखो से क्रमश उपरम, मनुष्यो के विपरीत भावना पर विचार, मौन, आत्मविचार, यथायोग्य प्राणियो मे अन्नादि का विभाग, उनमे आत्म देवता बुद्धि और विशेषत मनुष्यो मे भगवान् का श्रवण, कीर्तन, स्मरण बडो के पथ का अनुसरण, पूजा, नमस्कार, दास्य, सखा, आत्मसमर्पण, यही तीस लक्षणवाला धर्म सभी मनुष्यो के लिए है। इसी से सर्वात्मा भगवान् तुष्ट होते हैं। ये लक्षण जितने ही अधिक मनुष्य मे मिलें उतनी ही अधिक मनुष्यता उसमे समझनी चाहिए। कोई भी इसकी सचाई परख सकता है। यही सनातन धर्म है। आजकल सनातन धर्म और वर्णाश्रम धर्म शब्द के प्रयोग मे बडा गोलमाल हो रहा है।

सनातन धर्म मनुष्य मात्र के लिए है और वर्णाश्रम धर्म केवल उनके लिए है जिनके सस्कार अविच्छिन्न चले आते हैं तथा जिनके जन्म और कर्म शुद्ध हैं। यथा सस्कारा यत्राविच्छिन्ना स द्विजोऽजो जगादयम्। इज्याध्ययनदानानि विहितानि द्विजन्मनाम्। जन्मकर्मावदातानां क्रियाश्चाश्रमचोदिता। भाग० स्कन्ध ७ अ० ११ ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य और शूद्र ये ही चार वर्ण हैं और ब्रह्मचर्य गार्हस्थ्य वानप्रस्थ और सन्यास ये ही चार आश्रम हैं। ये अपने अपने कर्म मे अभिरत होने से सिद्धि को प्राप्त होते हैं। दूसरे के धर्म मे अभिरत होना पाप है। यथा 'श्रेयान् स्वधर्मो विगुण परधर्मो भयावह। अपना गुणहीन धर्म भी अच्छा है। क्योकि पर धर्म भयावह होता है। राजा दण्डधरो गुरु है। उसका कर्तव्य है कि किसी को अपने धर्म से डिगने न दें। श्रीरामचन्द्र ने ऐसा किया। अत उनके राज्य मे सुख ही सुख रहा। किसी को भय शोक या रोग नही होने पाया। वर्णाश्रम धर्म मे निरत लोग वेद पथ से चलते थे। अर्थात् त्रिंशल्लक्षणवाले सनातन धर्म का पालन करते थे।

---

१ चोदनालक्षणोऽर्थो धर्म।

२ वक्ष्ये सनातन धर्म नारायणमुखाच्छ्रुतम् सत्य दया तप शौचम् तितिक्षेक्षाशमो दम। अहिंसा ब्रह्मचर्यंश्चत्याग स्वाध्याय आर्जवम्। सन्तोष समदृक् सेवा ग्राम्येहोपरम शनै। नृणा विपर्ययेहेक्षा मौनमात्मविमर्शनम्। अन्नाद्यादे सविभागो भूतेभ्यश्च यथार्हत। तेष्वात्म देवताबुद्धि सुतरा नृपु पाण्डव। श्रवण कीर्तन चास्य स्मरण महता गते। सेवेज्यावनतिर्दास्य सख्यमात्मसमर्पणम्। नृणामयम् परो धर्म सर्वेषा समुदाहृत। त्रिंशल्लक्षणवान् राजन् सर्वात्मा येन तुष्यति। भा० ७ स्क० ११ अ०।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दैहिक दैविक भौतिक तापा। रामराज नहि काहुहि ब्यापा॥
सब नर करहिं परसपर प्रीती। चलहिं स्वधर्म निरत स्रुति नीती॥१॥

अर्थ राम राज्य मे आध्यात्मिक आधिभौतिक और आधिदैविक ताप किसी को नही व्यापा। सब लोग एक दूसरे से प्रीति करते थे। वेद की रीति से अपने धर्मानुसार चलते थे।

व्याख्या ऊपर कह आये हैं बैर न कर काहू सन कोई। परन्तु राम राज्य मे इतना ही नही था। इतना तो उपेक्षा से भी होता है। यहाँ तो सब आपस मे प्रेम करते थे। अत दैहिक ताप नही होता था राग द्वष से धातुवैषम्य होकर ही दैहिक ताप होता है और स्वधर्म निरत होकर यज्ञ यागादिक करने से दैविक ताप नही होता था। यथा इष्टान् भोगान् हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविता। यज्ञ से पूजित होकर देवता लोग इष्ट भोग प्रदान करते हैं। श्रुति रीति मे निरत होने से भौतिक ताप नहीं होता। पञ्चभूत अधर्माचरण के न होने से दूषित नही होते। अत भौतिक ताप नही होता था। अथवा अधर्माचरण के अभाव से उसका फल दु ख नही होता था।

चारिहु चरन धरम जग माँही। पूरि रहा सपनेहु अघ नाँही॥
राम भगति रत नर अरु नारी। सकल परम गति के अधिकारी॥२॥

अर्थ ससार मे धर्म चारो चरणो से पूर्ण हो रहा था। पाप का सपना भी नही था। स्त्री पुरुष सब राम भक्ति मे लगे हुए थे। सब परमगति के अधिकारी थे।

व्याख्या धर्म के चार चरण कहे गये हैं। तप शौच दया सत्यम् इति पादाः प्रकीर्तिता। एक तप दूसरा शौच तीसरी दया और चौथा सत्य। युग के ह्रास के साथ धर्म का ह्रास भी होता है। रामावतार त्रेता के अन्त म होता है। अत नियम यह है कि उस समय एक चरण अर्थात् तप का ह्रास हो जाय। परन्तु ऐसा नही हुआ। क्योकि राजा ही युग है। राजा हि युगम् राजा के पूर्ण धर्मात्मा होने से प्रजा आप से आप धर्मात्मा हो जाती है। पाप का सस्कार भी किसी को नही। अत किसी का पाप का सपना भी नही होता था। स्त्री और पुरुष सब रामजी की भक्ति मे रत थे। इसलिए मोक्ष के अधिकारी हो गये थे। मोक्ष लते न थे। यथा सगुन उपासक मोक्ष न लही। तिन कहँ राम भगति निज देही। चारिहु चरन पूरि जग माही से कर्मकाण्ड कहा। राम भगति रत से उपासनाकाण्ड कहा और परमगति के अधिकारी से ज्ञानकाण्ड कहा।

अल्प मृत्यु नहि कवनिउ पीरा। सब सुदर सब बिरुज सरीरा॥
नहि दरिद्र कोउ दुखी न दीना। नहि कोउ अबुध न लच्छन हीना॥३॥

अर्थ न कोई अल्पायु होता था न किसी को कोई पीडा थी। सब सुन्दर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



और सब निरोग थे। न कोई दरिद्र था न दीन था। न कोई मूर्ख था और न कोई कुलक्षण था।

व्याख्या : अल्पायु होना पीडित होना कुरूप होना रोगी होना दरिद्र होना दीन होना मूर्ख होना कुलक्षण होना : यह सब पाप का फल है। सो ये सब कोई बातें अवधवासियो मे दिखाई नही पडती थी। भाव यह कि सब पुण्यात्माओं ने ही उस समय अवध मे जन्म ग्रहण किया था और पुण्याचरण करते थे। अतः दु खी होने का कोई योग ही नही था। जाम्बवानजी ने जो कहा वही न्याय यहाँ समझ लेना चाहिए : हम सब सेवक अति बड़ भागी। सतत सगुन ब्रह्म अनुरागी। निज इच्छा प्रभु अवतरइ सुर महि गोद्विज लागि। सगुन उपासक सग तहँ रहहि मोक्ष सुख त्यागि।

सब निर्दंभ धर्मरत पुनी। नर अरु नारि चतुर सब गुनी॥
सब गुनज्ञ पडित सब ज्ञानी। सब कृतज्ञ नहि कपट सयानी॥४॥

अर्थ : सब दम्भ से रहित धर्म मे रत और दयावान थे। सब स्त्री और पुरुष चतुर और गुणी थे। सब गुणो के जाननेवाले पण्डित और ज्ञानी थे। सब उपकार माननेवाले थे। कपट की चतुरता किसी मे नही थी।

व्याख्या : अब लोगो के वर्तमान जन्म का पुण्य कहते है। दम्भ धर्म का नाशक है। यथा : करउँ जो कछु धरउँ रचि पचि सुकृत सिला बटोरि। पैठि उर बरबस कृपानिधि दभ लेत अँजोरि। स्त्री पुरुष सब लोग दम्भ रहित होकर धर्माचरण करते थे। वे पुण्यात्मा लोक द्वय के साधन मे चतुर थे। गुण दूषक नही थे। गुणो के जाननेवाले थे। गतासूनगतासूश्च नानुशोचन्ति पण्डिता.। अथवा क्रियावान् स च पण्डितः। जो मर गये और जो नही मरे हैं उनका सोच न करनेवाले को पण्डित कहते हैं। अथवा क्रियावान् को पण्डित कहते हैं। जो सब मे ब्रह्म को समान देखते हैं उन्हे ज्ञानी कहते है। कृतेपु प्रतिकर्तव्य ह्येष धर्म सनातन.। जो उपकार करे उसका प्रत्युपकार करना सनातन धर्म है। ये सब गुण उन लोगो मे थे। कपट करने मे चतुर कोई नही था। अल्प मृत्यु नहि कवनिउ पीरा से कालकृत दु ख का न होना कहा। नहि दरिद्र कोउ दुखी न दीना से कर्म कृत दु ख न होना कहा। सब निर्दंभ धर्मरत पुनी से स्वभाव कृत दु ख का न होना कहा। तथा · सब गुनज्ञ पडित सब ज्ञानी से गुण कृत दु ख का न होना कहा।

दो. रामराज नभगेस सुनु, सचराचर जग माहि।
काल कर्म सुभाव गुन, कृत दुख काहुहि नाहि॥२१॥

अर्थ : हे पक्षिराट् सुनो। रामजी के राज्य मे चर अचर सहित जगत् में काल कर्म गुण और स्वभाव का किया हुआ दु'ख किसी को नही था।

व्याख्या · आकर चारि लाख चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अविनासी। फिरत सदा माया कर फेरा। काल कर्म स्वभाव गुन घेरा। काल कर्म स्वभाव और

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



गुण के घेरे में तो लोग थे। पर उनके होने से जो दु ख होता है वह किसी को नही था। यथा : उमा अवध बासी नर नारि कृतारथ रूप। ब्रह्म सच्चिदानद घन रघुनायक जहँ भूप।

भूमि सप्त सागर मेखला। एक भूप रघुपति कोसला ॥
भुअन अनेक रोम प्रति जासू। यह प्रभुता कछु बहुत न तासू ॥१॥

अर्थ : सातो समुद्र मेखला हैं जिसकी ऐसी भूमि के एक राजा कोशल के रघुपति रामजी थे। जिसके एक एक रोम मे अनेक भुवन हैं। उसके लिए यह प्रभुता कुछ बड़ी नही है।

व्याख्या : श्रीरामजी का शासन केवल जम्बूद्वीप पर ही नही था। अन्य छ' द्वीप भी उन्ही के शासन मे थे। जम्बूद्वीप के चारो ओर लवण समुद्र है। उसी का पूरा पूरा पता हम लोगो को नही है। हम लोग जम्बूद्वीप के कुछ अंश को ही पृथिवी जानते है। शेष छः द्वीप पृथिवी के खण्ड होते हुए भी दिव्य हैं। वे स्थूल दृष्टि से देखे नही जा सकते। सूर्य में सयम करने से ही सम्पूर्ण भुवन का ज्ञान होता है। यथा : सूर्ये सयमात् भुवनज्ञानम् : यो. सू. : शेष छ समुद्र और द्वीप स्थूल दृष्टि से देखे नही जाते। सो सरकार सातो द्वीप के सम्राट् थे।

सरकार के अखण्ड रूप का वर्णन करते हुए कहा गया है : दिखरावा मातहि निज अद्भुत रूप अखड। रोम रोम प्रति लागे कोटि कोटि ब्रह्मड। ऐसे प्रभु को एक ब्रह्माण्ड का अधिपति बतलाना तो उसकी महिमा को घटाना है। इस प्रकार बड़ाई यदि जीव के लिए करते तो उसकी महिमा का बढाना कहा जा सकता है।

सो महिमा समुझत प्रभु केरी। यह बरनत हीनता घनेरी ॥
सो महिमा खगेस जिन जानी। फिर एहि चरित तिन्हु रति मानी ॥२॥

अर्थ : सरकार की उस महिमा पर ध्यान देने से ऐसे वर्णन करने मे तो बडी हीनता है। पर हे पक्षिराट् ! जिसने वह महिमा जान रक्खी है वह भी इस चरित्र मे प्रेम करता है।

व्याख्या : सरकार की उस महिमा पर ध्यान देने से निस्सन्देह ऐसे वर्णन मे उनकी हीनता है। जैसे किसी सम्राट् को कोई ग्रामपति कहकर वर्णन करे तो सम्राट् की उसमे हीनता होगी। परन्तु कवि कहते हैं कि मैं तो ऐश्वर्य वर्णन करने नही चला हूँ। मैं तो माधुर्य वर्णन करनेवाला हूँ। पर माधुर्य मे ऐसा ऐश्वर्य लक्षित होता है जिसका वर्णन किया गया है।

भुसुण्डिजी कहते हैं कि उस महिमा के जानकर भी तो इस चरित्र मे प्रेम करते हैं। भाव यह है कि जो सम्राट् की महिमा को जानता है उसी को सम्राट् के साधारण मनुष्यों मे मिलकर व्यवहार करने के गौरव का पता चलेगा। अतः कहा गया है : जीवन्मुक्त ब्रह्म पर चरित सुनहि तजि ध्यान। जे हरि कथा न करहि रति तिनके हिय पाखान।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


सोउ जानेकर फल येह लीला। कहहिं महा मुनिबर दमसीला ॥
राम राज कर सुख संपदा। बरनि न सकै फनीस सारदा ॥३॥

अर्थ : उस जानने का फल यह लीला है। इस बात को दमशील महामुनि कहते हैं। रामराज्य के सुख सम्पदा को शेष शारदा नहीं कह सकते।

व्याख्या : उस महिमा के जाननेवालों के भी इस चरित में रति मानने का कारण देते हैं कि यह लीला उस महिमा के जानने का फल है। उस महिमा के जाननेवाले ब्रह्मादिक की प्रार्थना पर ही सरकार ने अवतार ग्रहण करके यह लीला की। जिस महिमा को वे जानते थे उस महिमावाली मूर्ति से काम न चला। जिस भाँति वृक्ष से काम नहीं चलता उसके फल से काम चलता है उसी भाँति भुवन अनेक रोम प्रति जासू से काम न चला। उन्होंने राम रूप से अवतीर्ण होकर लीला की। तब संसार कृतकृत्य हो सका। अतः तब तब कथा मुनी सन्ह गाई। जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।

रामराज्य के सुख सम्पदा का वर्णन करते हुए गोस्वामीजी ने कहा है कि कामधुक् महि कामतरु तरु उपल मनिगन लाल : हो गये। फिर भी कहते हैं कि उसे स्वर्ग की वक्ता सरस्वती तथा पाताल लोक के वक्ता शेष भी वर्णन नहीं कर सकते। मनुष्य लोक के वक्ता क्या कह सकेंगे। भाव यह कि माधुर्य में भी अपूर्व ऐश्वर्य है।

सब उदार सब पर उपकारी। बिप्र चरन सेवक नरनारी ॥
एक नारि ब्रतरत सब झारी। ते मन बच क्रम पति हितकारी ॥४॥

अर्थ : सब लोग उदार थे सब पर उपकारी थे। स्त्री पुरुष ब्राह्मण के चरणों के सेवक थे। सब एक नारीव्रत थे और सब नारी मनसा वाचा कर्मणा पति की हितकारिणी थीं।

व्याख्या : इतनी सम्पदा थी और उसे लोग सार्थक करते थे। क्योंकि सब उदार और परोपकारी थे। उनकी सम्पत्ति का विनियोग दान में होता था। यथा : सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। और दूसरी बात यह थी कि ब्राह्मण के चरणों के सेवक स्त्री पुरुष सब थे। पुण्य एक जग महँ नहिं दूजा। मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा। यथा राजा तथा प्रजा। सरकार एक नारीव्रत थे। अत. सम्पूर्ण प्रजा एक नारीव्रत हो गयी। स्त्रियाँ सब पतिव्रता थीं। यथा : एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय बचन मन पति पद प्रेमा। एवं सारी प्रजा पुण्यवान् थी।

दो. दंड[1] जतिन्हकर भेद जहँ, नर्तक नृत्य समाज।
जीतहु मनहि सुनिअ अस, रामचन्द्र कें राज ॥२२॥

---

१ यहाँ परिसंख्या अलंकार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : यतियों के हाथ मे दण्ड था। नर्तक नृत्य समाज मे ही भेद था तथा जोतने की वस्तु केवल मन था। ऐसा रामराज्य मे सुना जाता है।

व्याख्या : कवि कहते हैं कि रामराज्य के विषय मे सुना जाता है कि उसमे दण्ड का व्यवहार ही नही था। क्योंकि कोई अपराधी ही नही था। दण्ड नामक वस्तु सन्यासियो के हाथ मे था कि अमुक एकदण्डी हैं और अमुक त्रिदण्डी हैं। भेद बुद्धि नर्तक नृत्य समाज मे ही थी। यहाँ सूक्ष्मातिसूक्ष्म भेद मे ही पण्डिताई है। जीतने के लिए कोई शत्रु नही था। केवल मन के जीतने की ही वहाँ चर्चा थी।

फूलहिं फरहिं सदा तरु कानन। रहहिं एक सग गज पचानन ॥
खग मृग सहज बयरु बिसराई। सबन्हि परसपर प्रीति बढाई ॥२॥

अर्थ : वन के वृक्ष सदा फूलते फलते थे। हाथी और सिंह एक साथ रहते थे। पशु पक्षी स्वाभाविक वैर भूलकर सबो ने आपस मे प्रीति बढा ली थी।

व्याख्या : अब वन की समृद्धि कहते हैं। पहिले सरकार जहाँ जहाँ निवास करते थे वहाँ वन के पेड कालगति का परित्याग करके फलने लगते थे। यथा : सब तरु फरे राम हित लागी। रितु अरु कुरितु काल गति त्यागी। अब तो सरकार सिंहासनारूढ हो गये। अत वनो के वृक्ष सदा फूलने फलने लगे। धर्म राज्य मे पृथिवी कामधेनु हो जाती है। खग और मृग स्वाभाविक वैर भूल गये। जैसे काक और उलूक मे सहज वैर है। अश्व और महिष मे सहज वैर है। इन सबो ने आपस मे प्रेम कर लिया। इसी भाँति हाथी और सिंह एक साथ रहने लगे। जिस वन मे सिंह आजाता है उस वन को हाथी छोड देते हैं। सो एक साथ रहने लगे। शङ्का उठती है कि तब सिंह क्या घास खाते थे? उत्तर दिया जा सकता है कि दूध पीते थे।

कूजहिं खग मृग नाना बृंदा। अभय चरहिं बन करहिं अनदा ॥
सीतल सुरभि पवन बह मन्दा। गुजत अलि लै चलि मकरदा ॥३॥

अर्थ पक्षी कलरव करते थे। मृगो के समूह वनो मे निर्भय चरते थे और आनन्द करते थे। शीतल मन्द सुगन्ध वायु बहती थी और भौंरे फूलो का रस लेकर गुञ्जार करते चलते थे।

व्याख्या . सरस वन मे ही पक्षी और मृग रहते हैं। पर ये सदा सशङ्क रहते हैं। कहा है कि *सहवासी काचो गिलैं पुरजन पाक प्रवीन। कालछेप केहि मिलि करहिं तुलसी खग मृग मीन।* अब किसी को किसी से भय नही रह गया। अत पक्षी चहचहा रहे हैं। मृग वन मे कलोल करते हैं। किसी को किसी से भय नही है। वन का हिम आतप वात दु सह होता है। परन्तु रामराज्य मे उसका बहना बन्द हो गया। शीतल मन्द सुगन्ध पवन बहता है। भौंरे स्वय तो तृप्त हो गये। तत्पश्चात् मकरन्द लेकर इकट्ठा करने के लिए आनन्द से गुञ्जार करते चलते थे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


लता बिटप मागे मधु चवही। मन भावतो धेनु पय स्रवही ॥
ससि संपन्न सदा रह धरनी। त्रेता भै सतजुग कै करनी ॥४॥

अर्थ : लता और विटप मांगने से मधु शहद गिराते थे। और जितना चाहे उतना दूध गाय देती थी। पृथिवी सदा धान्य से पूर्ण रहती थी। त्रेता में सत्ययुग का हाल हो गया।

व्याख्या : जो सिद्धियाँ मधु विद्या से होती थी वे आप से आप होने लगी। वृक्ष प्रार्थना सुनते थे मांगने पर यथेप्सित मधु गिरा देते थे और गाय से जितने दूध की आवश्यकता होती थी दूध लेते थे। पृथिवी कभी धान्य से खाली नही रहती थी। यह सब सत्ययुग मे होता था। एक पाद का ह्रास होने से त्रेता में यह बात नही होती थी। अत. चारो चरण धर्म के होने से त्रेता मे सत्यगुण आगया। इसलिए कहते हैं : राजा हि युगमुच्यते।

प्रकटी गिरिन्ह बिबिध मनि खानी। जगदातमा भूप जग जानी ॥
सरिता सकल बहहिं बरबारी। सीतल अमल स्वादु सुख कारी ॥५॥

अर्थ : जगदात्मा को जगत् का राजा जानकर पर्वतो ने अनेक प्रकार की खानें प्रकट करदी। नदियाँ उत्तम जल बहने लगी। जो शीतल निर्मल स्वादिष्ट और सुखकारी था।

व्याख्या : पर्वतो मे से आप से आप नाना की मणियो की खानें प्रकट होने लगी। पर्वतो की ओर से यह सेवा सरकार की होने लगी। खानें राजा की सम्पत्ति मानी जाती हैं। जगदात्मा ही जब राजा है तो उन्ही की सब वस्तुएँ हैं। यह जानकर 'त्वदीय वस्तु गोविन्द तुभ्यमेव समर्पये : इसी न्याय से पर्वत खानो को प्रकट करने लगे।

नदियो के जल मे भेद होता है किसी का जल उत्तम होता है किसी का नही। शीतल निर्मल स्वादिष्ट और सुखकारी होना ही जल की श्रेष्ठता है। सो ये गुण सभी नदियो के जलो मे पाया जाने लगा। यह नदियो की सरकार के प्रति सेवा है। भावार्थ यह कि प्रकृति की कल्याणवहा प्रवृत्ति हो गयी।

सागर निज मरजादा रहही। डारहिं रतन तटन्हि नर लहही ॥
सरसिज संकुल सकल तड़ागा। अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा ॥६॥

अर्थ : समुद्र अपनी मर्यादा मे रहने लगे। वे किनारो पर रत्न फेंक देते थे जो लोगो को मिलते थे। दशो दिशाओ के विभाग अत्यन्त प्रसन्न थे।

व्याख्या : समुद्र के मर्यादा त्याग से खण्ड प्रलय हो जाता है सो समुद्र अपनी मर्यादा का कभी अतिक्रमण नही करते थे। उनका नाम ही रत्नाकर है। आजकल जिस भांति समुद्र के ज्वारभाटा मे जब पानी घटता बढता है तो अगणित घोंघे,

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


सीपियाँ और शङ्ख तट पर आजाते हैं। उस समय उसी भाँति रत्न तट पर आजाते थे। जो लोगो को अनायास ही प्राप्त होते थे।

जितने तालाब थे सब कमलो से सुशोभित थे। तालाब की शोभा कमलो से ही होती है। वायु की मलिनता से ही दिशा के विभाग स्पष्ट नही मालूम होते। जब वायु शुद्ध रहती है तो दसो दिशायें स्पष्ट दृष्टिगोचर होती हैं।

दो. बिधु महि पूर मयूखन्हि, रबि तप जेतनहि काज।
मागें बारिद देहिं जल, रामचंद्र कें राज ॥२३॥

अर्थ : चन्द्रमा पृथ्वी को अपने किरणो से आप्लावित करते थे। और सूर्य भी आवश्यकतानुसार ही तपते थे। रामचन्द्र के राज मे माँगने से मेघ वर्षा करते थे।

व्याख्या : सारा संसार सरस हो उठा। सुधाकर सुधा से पृथिवी को पूर्ण करते थे। सूर्यनारायण भी पूषण होकर पोषण करते थे. शोषण नही आवश्यकतानुसार ही तपते थे। अतिवृष्टि अनावृष्टि का नाम नही। जब लोग जल माँगते थे तब वर्षा होती थी : चारो चरण से धर्म के वर्त जाने से सारी प्रकृति अनुकूल हो गयी। पञ्च महाभूत की प्रवृत्ति सुखमय हो गयी : पृथिवी यथा : ससि सम्पन्न सदा रह धरनी। इत्यादि। जल यथा : सरिता सकल बहहिं बरबारी। इत्यादि। तेज यथा : रबि तप जेतनहि काज। वायु यथा : सीतल सुरभि पवन बह मंदा। आकाश यथा : अति प्रसन्न दस दिसा बिभागा।

कोटिन्ह बाजिमेध प्रभु कीन्हे। दान अनेक द्विजन्ह कहुँ दीन्हे ॥
स्रुतिपथ पालक धर्म धुरंधर। गुनातीत अरु भोग पुरंदर ॥१॥

अर्थ : सरकार ने करोड़ो अश्वमेध किये। ब्राह्मणों को अनेक दान दिये। सरकार वेदमाग के पालन करनेवाले धर्म की धुरी धारण करनेवाले गुणो से परे और भोग में तो साक्षात् इन्द्र हैं।

व्याख्या : सरकार ने करोड़ों अश्वमेध यज्ञ किये। अश्वमेध पुण्य की अवधि है। अश्वमेध यज्ञ मे साल भर तो घोड़ा ही घूमता है। फिर करोड़ो अश्वमेध कैसे सम्भव है? यह शङ्का उठ सकती है। एक अश्वमेध करके जो दक्षिणा ब्राह्मणो को दी जाती है उसको जितना गुणा अधिक करके दिया जाता है उतने अश्वमेध का फल होता है। अतः करोड़ो अश्वमेध करना असम्भव नही था। भरतजी की सम्मति न होने से राजसूय नही किया। बहिर्वेदी दान भी बहुत किया। सरकार ने वेदमार्ग से सबको चलाया अतः उन्हें श्रुतिपथ पालक कहते हैं और स्वयं धर्म का कभी परित्याग नही किया इसलिए धर्मधुरन्धर कहते हैं। भोग मे इन्द्र के समान होने पर भी सदा गुणातीतावस्था मे ही रहे। ९९ रास तो रामावतार मे ही हुए। सौवाँ रास कृष्णावतार मे किया। यह सब राम रहस्य के अन्तर्गत है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पति अनुकूल सदा रह सीता । सोभाखानि सुसील बिनीता ॥
जानति कृपासिंधु प्रभुताई । सेवति चरनकमल मनु लाई ॥२॥

अर्थ : शोभा की खानि सुशील और विनीत सीताजी सदा पति के अनुकूल रहती थी । कृपासिन्धु की प्रभुताई जानती थी । मन लगाकर चरण कमल की सेवा करती थी ।

व्याख्या : राज्य का हाल कहकर राजा का हाल कहा । अब महारानी का हाल कहते हैं कि महारानी सीताजी सदा पति के अनुकूल रहती थी । अपने धर्म पर दृढ थी । भगवती शोभा की खानि हैं । जासु अंस उपजहिं गुनखानी । अगनित लच्छि उमा ब्रह्मानी । वय से शोभा मे अन्तर नही आता । क्योंकि शोभा खानि हैं । सम्राज्ञी होने से शोल और विनय मे अन्त नही । जैसा पहिले थी वैसा ही पट्टाभिषिक्ता महिषी होने पर भी बनी हैं । शील और विनय मे कोई अन्तर नही हुआ ।

सरकार की माधुर्य लीला मे उन्हे ऐश्वर्य का विस्मरण नही है । अत. उनकी कृपा और प्रभुता दोनो को जानती हैं । अत मन लगाकर चरण कमल की सेवा करती हैं । चरणकमल की सेवा की पूरी अधिकारिणी जगदम्बा ही हैं । यथा : जानकी करसरोजलालितौ ।

यद्यपि गृह सेवक सेवकिनी । बिपुल सकल सेवाबिधि गुनी ॥
निजकर गृह परिचर्या करई । रामचन्द्र आयसु अनुसरई ॥३॥

अर्थ यद्यपि घर मे सेवक और दासियाँ बहुत थी और वे सब सेवाविधि की जानकर थी । फिर भी सीताजी घर का कार्य स्वय करती थी । और रामजी की आज्ञा का पालन करती थी ।

व्याख्या सम्राट् का महल है । दास दासियो का घाटा नही है और यह भी नही कि वे सेवा विधि से अनभिज्ञ हो । फिर भी स्त्री धर्म को देखते हुए भगवती अपने हाथो से घर का कार्य करती थो । स्त्रियो को पाक बनाने से अग्निहोत्र का फल होता है । इसी भाँति गृह मार्जनादि के अनेक फल धर्मशास्त्र बतलाते हैं । अत' गृह कार्य करना स्त्रियो का धर्म है । इसे दूसरे पर नही छोडना चाहिए । सो जगदम्बा घर का कार्य स्वय करती थी और सरकार का आज्ञापालन करती थी ।

जेहि बिधि कृपासिंधु सुख मानइ । सोइ कर श्री सेवा बिधि जानइ ॥
कौसल्यादि सासु गृह माँही । सेवइ सबन्हि मान मद नाही ॥४॥
उमा रमा ब्रह्मादि बंदिता । जगदम्बा संततमनिंदिता ॥५॥

अर्थ · जिस विधि से कृपासिन्धु रामजी सुख मानते थे लक्ष्मी वही करती थो । वे सेवा की विधि जानती थी । घर मे कौसल्या आदि सास थी । सब की सेवा करती थी । उन्हे मान या मद नही था । उमा रमा और ब्रह्माणी से वन्दित जगत् जननी सदा ही अनिन्दिता हैं ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या : सीताजी को अपना सुख सुख ही नही है। सरकार के सुख से ही वे सुखी हैं। वह सेवा की विधि जानती हैं। सेव्य के स्वभाव को पहिचानकर उसके रुख को देखकर तदनुकूल करना ही सेवा विधि है। अत: जिस प्रकार से सरकार सुखी होते थे वही सीताजी करती थी।

केवल पति ही की सेवा नही। घर मे कौसल्या आदि सास हैं। सीताजी उनकी सेवा मे भी सुख मानती थी। अपना परम कर्तव्य समझती थी। बनवास के समय इन्हे यही दुःख था कि सासो की सेवा छूटी जाती है। यथा : सेवा समय दैव बन दीन्हा। मोर मनोरथ सफल न कीन्हा। अत: उनकी सेवा करके अपना मनोरथ सफल करती थी। पट्टाभिषिक्ता महिषी होने का न मान था न मद था।

उमा रमा ब्रह्माणी इनके अंश से उत्पन्न हुई हैं। अत अंशी की सदा वन्दना करती हैं। महिमा इतनी अधिक है : जगत् की जननी हैं। उनकी सास कौन हो सकती है यदि सेवा न करें तो भी उनकी निन्दा नही हो सकती। आदि सक्ति जेहि जग उपजाया। सो अवतरिहि मोरि यह माया।

दो. जासु कृपा कटाक्ष सुर, चाहत चितव न सोइ।
राम पदारबिंद रति, रहत सुभावहि खोइ ॥२४॥

अर्थ : जिनके कृपा कटाक्ष को देवता चाहते हैं और वह नही देखती। वे अपने स्वभाव को छोड़कर रामजी के चरण कमलो मे रत हैं।

व्याख्या : जगदम्बा का कृपाकटाक्ष देवता चाहते हैं। लोकपाल होने के लिए उनकी कृपाकटाक्ष के लिए बडा भारी पुण्यसमूह होना चाहिए। वह भगवती महालक्ष्मी अपने स्वाभाविक चाञ्चल्य को छोडकर रामजी के चरणविन्द की सेवा कर रही हैं। यद्यपि परम चपल श्री सतत थिर न रहति कतहूँ। हरिपद पकज पाइ अचल भइ करम बचन मनहूँ। सीता परित्याग विषयक प्रश्न ही उमा ने नही किया। अत: वह कथा मानस मे नही कही गयी। प्रश्न नही करने का कारण यह था कि उमा ने सती शरीर से परीक्षा करके देख लिया था कि वस्तुत: सीताराम इस अनादि मिथुन मे वियोग सम्भव ही नही है।

सेवहि सानुकूल सब भाई। रामचरण रति अति अधिकाई ॥
प्रभु मुख कमल बिलोकत रहही। कबहुँ कृपालु हमहि कछु कहही ॥१॥

अर्थ : सब भाई सानुकूल रहकर सेवा करते थे। रामचरण मे उनकी प्रीति अत्यन्त बढी हुई थी। सरकार के मुख कमल को देखा करते थे कि कभी मेरे लिए कोई आज्ञा हो।

व्याख्या : चक्रवर्तीजी ने पहिले ही कहा था : करिहहि भाइ सकल सेवकाई। वैसा ही यहाँ हो रहा है। भय या आशा से सेवा नही करते अपने को कृतार्थ करने के लिए सेवा करते हैं। इसीलिए सानुकूल कहा। रामजी के चरणो मे उनकी प्रीति इतनी बढी चढी है कि उनकी सेवा मे ही उन्हे सुखबोध होता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सेवा करनेवालो का घाटा नही है। रामजी के ध्यान मे भाइयो की ही सेवा का उल्लेख है। इससे यह सिद्ध होता है कि भाई लोग सदा साथ रहते थे।

भाई लोग सदा मुँह जोहा करते थे कि कौन जाने किस समय मुझे आज्ञा देने की सरकार कृपा करें। अथवा आज्ञा पाने की उत्कण्ठा थी कि कभी कृपा करके मुझे भी किसी काम के लिए आज्ञा दें। क्योकि आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। सो ऐसी सेवा का भी अवसर प्राप्त हो। सरकार पूर्णकाम हैं। उन्हे कोई आवश्यकता नही। उनको आज्ञा देना कृपा करना है। इसीलिए यहाँ कृपाल विशेषण दिया।

राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। नाना भाँति सिखावहिं नीती ॥
हरखित रहहिं नगर के लोगा। करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा ॥२॥

अर्थ रामजी भाइयो पर प्रीति करते थे। उन्हे अनेक प्रकार की नीति सिखलाते थे। नगर के लोग हर्षित रहते थे और सब सुरदुर्लभ भोग करते थे।

व्याख्या भाई लोग तो रामजी से प्रीति करते ही थे पर रामजी भी उनसे प्रीति करते थे। यह बात भी नही थी कि कम बोलते हो। उन्हे सदा नीति की शिक्षा दिया करते थे। नीतिशास्त्र बडा गहन है। इसकी शिक्षा की सदा आवश्यक्ता रहती है। यथा सचिव धर्म रुचि हरि पद प्रीति। नृप हित हेतु सिखव नित नीति। भाइयो की हित कामना से नीति की शिक्षा दिया करते थे।

महारानी का हाल कहकर भाइयो का हाल कहा। अब नगरवासियो का हाल कहते हैं कि मन कामना की पूर्ति से हर्षित रहते हैं। ये लोग पञ्चदेव की उपासना करके यही माँगते थे कि राजा राम जानकी रानी। आनद अवधि अवध रजधानी। इत्यादि। उन्हें रामजी के राज्य मे ऐसा सुखभोग मिलता था जो कि सुरपुर मे भी दुर्लभ है। यथा जे सुख सुरपुर सपनेहुँ नाही। क्योकि : रिधि सिधि सपति नदी सुहाई। उमगि अवध अबुधि कहुँ आई।

अहनिसि बिधिहि मनावत रहही। श्रीरघुबीर चरन रति चहही ॥
दुइ सुत सुदर सीता जाये। लवकुस बेद पुरानन्हि गाये ॥३॥

अर्थ रात दिन ब्रह्मदेव को मनाते रहते थे। उन्हे श्रीरघुबीर के चरणो मे प्रेम की चाह थी। सीताजी को दो सुन्दर बेटे हुए। जिनका नाम लव कुश वेद पुराणो मे विदित है।

व्याख्या अयोध्या के वासी सब प्रेमा भक्तिवाले हैं। उन्हे दूसरी किसी वस्तु की चाह नही है। उन्ह केवल सरकार के चरण रति की चाह है। इसलिए ब्रह्मदेव से उसी के मिलने की प्रार्थना रात दिन करते हैं। दूसरी वस्तु की चाह रहने से भक्ति की प्राप्ति भी नही होती। यथा नान्यास्पृहा रघुपते हृदयेऽस्मदीये सत्य वदामि च भवानखिलान्तरात्मा। भक्ति प्रयच्छ रघुपुगवनिर्भरा मे कामादिदोषरहित कुरु मानसञ्च।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

अब अपत्य का उल्लेख करते हैं। सीताजी को दो बेटे हुए। जिनका नाम लव कुश था। सीताजाये : से बनवासावस्था में उनका जन्मा कहा। अयोध्या में जन्मोत्सव नही हुआ। अतः जन्मोत्सव का उल्लेख नही करते। उन्हे कुछ दिनों तक पिता का नाम भी नहीं मालूम था। इसलिए : सीताजाये कहते हैं। सीताजाये : से उन्हें शक्ति पुत्र कहा। उनका माहात्म्य वेद पुराणों मे वर्णित है।

दोउ बिजई बिनई गुन मंदिर। हरि प्रतिबिम्ब मनहु अति सुंदर ॥
दुइ दुइ सुत सब भ्रातन्ह केरें। भये रूप गुन सील घनेरे ॥४॥

अर्थ : दोनों विजयी विनयी और गुण के मन्दिर मानो भगवान् के अति सुन्दर प्रतिविम्ब थे। दो दो बेटे सब भाइयो को हुए। उन्हे रूप गुण और शील भी बहुत था।

व्याख्या : लव और कुश के विजय की गाथा रामाश्वमेध प्रकरण पद्मपुराण पातालखण्ड मे हैं। इतने बड़े बीर होने पर भी वे बडे विनयी थे। भावार्थ यह कि विद्या पाकर विनययुक्त थे। विद्या से विनय और विनय से पात्रता होती है। यथा : विद्या ददाति विनयं विनयाद् याति पात्रताम्। अतः गुनमन्दिर कहा। उनका स्वरूप ठीक रामजी का सा था। इसलिए अति सुन्दर प्रतिविम्ब कहा।

भरतजी लक्ष्मणजी और शत्रुघ्न को भी दो दो बेटे हुए। इनमें भी रूप गुण और शील की कमी नहीं थी। इन लोगो का वर्णन करते हुए केशव कवि कहते हैं : लव कुश अपने भरत के नंदन पुष्कर तक्ष। लछिमन के अंगद भये चित्रकेतु रण दक्ष।

भले पुत्र शत्रुघ्न द्वै दीप जाए। सदा साधु पूरे भले भाग पाए।
सदा शत्रुहन्ता हने शत्रु छाती। सुबाहू बड़ो दूसरो शत्रुघाती।

दो. ग्यान गिरा गोतीत अज, माया गुन मन पार।
सोइ सच्चिदानंद घन, कर नर चरित उदार ॥२५॥

अर्थ : जो ज्ञान वाणी और इन्द्रिय से परे हैं अजन्मा हैं माया मन और गुणों से अतीत हैं वे ही सच्चिदानन्द उदार नर चरित्र कर रहे हैं।

व्याख्या : जिसके लिए वेद कहते हैं कि : न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग् गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथोऽविदितादधि। उस प्रभु तक न आंख की पहुँच है न वाणी की पहुँच न मन की पहुँच है। इसलिए उसे न कोई जानता है न बतला सकता है। वही सच्चिदानन्द घन उदार नर चरित्र कर रहे हैं। अतः जो सुख सम्पत्ति का वर्णन इस प्रसङ्ग में हो रहा है उसके असम्भव होने की कल्पना नही करनी चाहिए।

प्रात काल सरऊ करि मज्जन। बैठहि सभा संग द्विज सज्जन ॥
बेद पुरान बसिष्ठ बखानहि। सुनहि राम जद्यपि सब जानहि ॥१॥

अर्थ : प्रातःकाल सरयू स्नान करके सभा में ब्राह्मणो और सज्जनो के साथ

ankurnagpal108@gmail.com


बैठ जाते थे। वसिष्ठजी वेद और पुराण का व्याख्यान करते थे। यद्यपि जानते सब थे फिर भी रामजी सुनते थे।

व्याख्या प्रात काल सरयू मे स्नान करते थे पुण्य काल मे पुण्य तीर्थं स्नान। अवगाह स्नान का विधान है। प्रात स्नान के अन्तर्गत नित्यकृत्य भी है। राजकार्य देखने के लिए नित्यकृत्य के बाद सभा मे आजाते थे। धर्मशास्त्र की आज्ञा है कि ब्राह्मणो और सज्जनो के साथ सभागृह मे प्रवेश करे। सभा मे किस वर्ण के कितने लोग रहे इसका भी नियम है। अत सग द्विज सज्जन कहा। जिनसे राज कार्य मे सहायता मिले।

सभा मे कोई फिरियादी नही है। कोई मुकदमा नही है। शासन की प्रशसा यही है कि न्यायालय हो पर उसमे मुकदमे न हो। बन्दीगृह हो पर उसमे बन्दी न हो। अत सभागृह मे वेद पुराण की व्याख्या हो रही है। वसिष्ठजी वक्ता हैं। रामजी श्रोता हैं। यह बात नही है कि रामजी जानते न हो। फिर भी गुरुजी का किया हुआ व्याख्यान चित्त देकर सुनते हैं। शास्त्र का व्यसन सरकार को बचपन से है। यथा वेद पुराण सुनहि मनलाई। आपु कहहि अनुजन्ह समुझाई। सरकार के नित्य प्रति वेद पुराण सुनने से प्रजा की रुचि भी वेद पुराण सुनने की होती थी। इस भाँति धर्मका स्रोत वहाँ से ही बहता था।

अनुजन्ह सजुत भोजनु करही। देखि सकल जननी सुख भरही॥
भरत शत्रुहन दोनो भाई। सहित पवन सुत उपबन जाई॥२॥

अर्थ छोटे भाइया के साथ भोजन करते हैं। देखकर सब माताएँ सुख से भर जाती हैं। भरत और शत्रुघ्न दोनो भाई हनुमान्जी के साथ बाग मे जाकर

व्याख्या साथ मे भोजन करना प्रेम का लक्षण है। इष्टजन के साथ भोजन करने मे आनन्द विशेष है। यथा इष्टजनै सह भुक्त भुक्तम्। जहाँ प्रीति नही वहाँ भोजन भी साथ नही होता। भोजन के समय माताएँ आजाती हैं। वे सब बेटो मे परस्पर प्रीति देखकर आनन्द से भर उठती थी। अपराह्ण मे भरत शत्रुघ्न दोनो भाई हनुमान्जी को साथ लकर बाग म चल जाते थे। सरकार ने जो चरित्र बन मे किया वह भरत शत्रुघ्न पूरी तरह नही जानते। अत वह सब चरित्र सुनने के लिए हनुमान्जी को साथ ले जाते थे।

बूझहि बैठि राम गुन गाहा। कह हनुमान सुमति अवगाहा॥
सुनत विमल गुन अति सुख पावहिं। बहुरि बहुरि करि बिनय कहावहिं॥३॥

अर्थ बैठकर रामजी की गुणगाथा पूछते थे और अथाह सुमतिवाले हनुमान्जी कहते थे। निर्मल गुणो को सुनकर अत्यन्त सुख पाते थे और बार बार विनय करके कहते थे।

व्याख्या बाग मे बैठकर दोनो भाई हनुमान्जी से सरकार के किष्किन्धाकाण्ड से लङ्काकाण्ड तक की कथा के विषय मे प्रश्न करते थे। क्योकि चरित्र के उक्त भागो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



के हनुमान्‌जी प्रत्यक्ष द्रष्टा थे। हनुमान्‌जी की सुमति का थाह नहीं था। वे सरकार के गुणगणों के सच्चे जौहरी थे। अतः गुणों की गाथा का ठीक ठीक वर्णन करते थे। हनुमान्‌जी वक्ता और भरत शत्रुघ्न श्रोता। अवध के बाग में भी रामचरित की कथा हो रही है।

सरकार द्वारा सुग्रीव की आर्त्ति का हरण विभीषण को राज्य प्रदानादि निर्मल गुणों को सुनकर दोनों भाइयों को अत्यन्त सुख होता था। ये लोग कथा के ऐसे रसिक थे कि हनुमान्‌जी से सुनकर तृप्त नहीं होते थे। बार बार उनसे विनय करके कथा कहलाते थे और श्रवण का आनन्द लूटते थे। यथा : रामचरित जे सुनत अघाहीं। रस विसेष जाना तिन नाहीं।

सबके गृह गृह होहिं पुराना। रामचरित पावन बिधि नाना ॥
नर अरु नारि राम गुन गानहिं। करहिं दिवसनिसि जात न जानहिं ॥४॥

अर्थ : सब के यहाँ घर घर पुराण होता था। नाना प्रकार के पवित्र राम चरित्र होते थे। स्त्री पुरुष रामजी के गुणों का ही गान करते थे। वे रात दिन का बीतना नहीं जानते थे।

व्याख्या : तीसरे पहर पुराण सुनने की विधि है। अतः सबके घरों के पुराण की कथाएँ होती थीं। सभी पुराणों में रामचरित्र है। यथा : पावन पर्वत बेद पुराना। राम कथा रुचिराकर नाना। अथवा भगवद् चरित्र से ही पुराण भरे पड़े हैं। वे सभी रामचरित्र ही हैं। राजा तथा प्रजा का यह ज्वलन्त उदाहरण है। यथा : बेद पुरान बसिष्ठ बखानहिं। सुनहिं राम जद्यपि सब जानहिं। अतः सबके गृह गृह होहिं पुराना। पुराण के सुनने के सभी अधिकारी हैं। अतः सबके घरों में पुराण का होना कहते हैं। धर्म के प्रचार का यह बड़ा भारी साधन है। महाराज ने कोई आज्ञा नहीं निकाली कि सब कोई पुराण सुना करें। स्वयं सुनना आरम्भ कर दिया। प्रजा उनका आप से आप अनुकरण करने लगी।

प्रजा सरकार की इतनी अनुरक्त है कि दिन रात उन्हीं का गुणगान करती है। अपना काम भी करते हैं और गुणगान भी हो रहा है। एवं उनका ऐसा सुखमय जीवन व्यतीत हो रहा है कि उन्हें दिन रात के बीतने का भान भी नहीं है।

दो. अवध पुरी बासिन्ह कर, सुख सम्पदा समाज।
सहस सेष नहिं कहि सकहिं, जहँ नृप राम बिराज ॥२६॥

अर्थ : अवधपुरी के रहनेवालों का सुख सम्पदा और समाज ऐसा था कि उसका वर्णन सहस्र शेष नहीं कर सकते। क्योंकि वहाँ स्वयं राजा रामचन्द्र विराजमान थे।

व्याख्या : सरकार के सिंहासनारूढ होने से तीनों लोक में से शोक भाग गया पर अवधपुरी की बात तो कही ही नहीं जा सकती। सहस्र शेष नहीं कर सकते ऐसा कहने का तात्पर्य ही यही है। अवधपुरी तो स्वयं राजधानी ठहरी वहाँ स्वयं

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सरकार विराजमान है। अतः वहाँ के सुखसम्पदा समाज का कौन वर्णन कर सकता है। सुख यथा : करहिं सकल सुर दुर्लभ भोगा। सम्पदा यथा : कामधुक महि कामतरु तरु उपल मनि गन लाल। समाज यथा ' वह सोभा समाज सुख कहत न बनै खगेस।

नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा ॥
दिन प्रति सकल अयोध्या आवहिं। देखि नगरु बिरागु बिसरावहिं ॥१॥

अर्थ : नारद आदि और सनकादि मुनीश्वर कोशलाधीश के दर्शन के लिए प्रतिदिन अयोध्या आते थे। नगर देखकर उनका विराग भूल जाता था।

व्याख्या : नारदादि देवर्षि और सनक सनन्दन सनातन सनत्कुमारादि सिद्ध सरकार के दर्शन के लिए नित्य ब्रह्मलोक से अयोध्या आते हैं। जनकजी ने कहा है : इन्हहि बिलोकत अति अनुरागा। बरबस ब्रह्म सुखहिं मन त्यागा। सो उन लोगो का ऐसा अनुराग बढा हुआ है कि ब्रह्मलोक से नित्य सरकार के दर्शन के लिए अयोध्या आते हैं। यथा : सोई सुख लवलेस जिन बारक सपनेहुँ लहेउ। ते नहि गनहि खगेस ब्रह्म सुखहि सज्जन सुमति। नगर ऐसा सुन्दर बना है कि उसे देखने से उन्हे विराग भूल जाता है इच्छा नही होती जाने की। तब दूसरो की क्या गिनती है।

जातरूप मनि रचित अटारी। नाना रंग रुचिर गच ढारी ॥
पुर चहुँ पास कोट अति सुंदर। रचे कंगूरा रंग रंग बर ॥२॥

अर्थ : सोना और मणि जड़ी हुई अटारियाँ थी। नाना रङ्ग के सुन्दर ढले हुए गच्च थे। पुर के चारों ओर अत्यन्त सुन्दर किलाबन्दी थी। जिसमे रङ्ग रङ्ग के श्रेष्ठ कंगूरे बने हुए थे।

व्याख्या : अब सुन्दरता कहते हैं : सोने की अटारियाँ थी जिनमें मणि जड़े हुए थे। ढले हुए फर्श थे। प्राचीन काल में पत्थर गलाकर ढालने की विद्या मालूम थी। दक्षिण के मन्दिरों में ऐसे ऐसे विशाल पत्थर मन्दिरो में लगे हुए हैं जिन्हे देखकर मानना पड़ता है कि ये ढले हुए हैं : यह तो हुई नगर के भीतर के मकानों की बात। राजधानी के चारो ओर रक्षा के लिए किलाबन्दी थी और उसकी सुन्दरता बढाने के लिए उसमें अनेक रङ्ग के कंगूरे बने हुए थे।

नव गृह निकर अनीक बनाई। जनु घेरी अमरावति आई ॥
महि बहु रंग रचित गच काँचा। जो बिलोकि मुनिबर मनु नाँचा ॥३॥

अर्थ : नवग्रह के समूहों ने मानो सेना बनाकर अमरावती को घेर रक्खा है। पृथिवी अनेक रंग के काँचो के फर्श से सँवारकर सजाई गयी थी। जिन्हे देखकर श्रेष्ठ मुनियों का मन नाच उठता था।

व्याख्या : अब राजधानी के चारों ओर किलाबन्दी के बुर्ज : कंगूरे : कैसी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



शोभा दे रहे हैं। उसकी उपमा कवि देते हैं कि मानो इन्द्रपुरी को नवग्रहों के समूह सेना रूप से रक्षा कर रहे हैं। कगूरे अनेक रङ्ग के थे। इसलिए उनकी उपमा नवग्रहों के समूह से दिया गया क्योंकि नवग्रहों के रङ्ग पृथक् पृथक् हैं। नगरी की उपमा इन्द्रपुरी से दी गयी। क्योंकि ससार मे ऐसी सुन्दर दूसरी पुरी है नही। इन्द्रपुरी की रक्षा करना नवग्रहों के लिए उचित कार्य भी है।

धवल धाम ऊपर नभ चुंबत। कलस मनहु रबि ससि दुति निदत ॥
बहु मनि रचित झरोखा भ्राजहिं। गृह गृह प्रति मनि दीप बिराजहिं ॥४॥

अर्थ श्वेत रङ्ग के घर ऊपर से आकाश चूम रहे हैं। कलश मानो सूर्य चन्द्र के ज्योति की निन्दा कर रहे हैं। मणियों की बनी हुई खिडकियाँ शोभा पा रही हैं। घर घर मे मणि के दीप जल रहे हैं।

व्याख्या घरो की शोभा सफेदी से ही है। सो सफेद घर इतने ऊँचे हैं कि आकाश से लगे हुए दिखाई देते हैं। आकाश मे तो सूर्य चन्द्र हैं तो इन घरो के कलश भी ऐसे चमकीले हैं कि सूर्यचन्द्र की ज्योति उनके सामने दबती हैं।

खिडकियो मे शोभा के लिए मणियाँ जडी हुई हैं और प्रत्येक घरो मे मणि के दीप विराजमान हैं। भाव यह कि अयोध्या की सम्पत्ति का वर्णन नही हो सकता।

छ मनि दीप राजहिं भवन भ्राजहिं देहली बिद्रुम रची।
मनि खभ भीति बिरचि बिरची कनक मनि मरकत खची ॥
सुदर मनोहर मदिरायत अजिर रुचिर फटिक रचे।
प्रति द्वार द्वार कपाट पुरट बनाइ बहु बज्रन्हि खँचे ॥

अर्थ घरो मे मणि के दीपक शोभा दे रहे थे। देहलियाँ मूँगें की बनी हुई थी। मणि के खम्भे थे। सोने की दीवारो को ब्रह्मदेव ने मणि और मरकत का काम बनाकर विरचा था। सुन्दर मनोहर लम्बे चौडे घर थे। जिनमे स्फटिक के सुन्दर आँगन थे। प्रत्येक द्वारो मे सोने के किवाड बनाकर बहुत से हीरे जड दिये गये थे।

व्याख्या मणि के दीपो से घर जगमगा रहे थे। उनकी देहलियाँ भी मूँगे की बनी थी। मणि के खम्भो और सोने की दीवारें जो कि मरकत और मणि से जटित थी मणि के दीपो से जगमगा रही थी। इन खम्भो और दीवारो को ब्रह्मदेव ने बनाया था। भाव यह कि अयोध्यापुरी ने अपने दिव्य रूप को भली भाँति प्रकट कर दिया था। यहाँ सब दिव्य रचनायें थी। मानुषी रचना ही नही थी। उसी का वर्णन करते हुए कहते हैं। इतने बहुमूल्य पदार्थों से बने हुए होने पर भी सब घर लम्बे चौडे थे। जिसमे रहनेवालो को सङ्कीर्णता का अनुभव न हो। आँगन स्फटिक मणि के थे। द्वार मे सुवर्ण के कपाट लगे थे जिनमे हीरे का काम किया हुआ था।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो० चारु चित्र साला गृह, गृह प्रति लखे बनाइ।
राम चरित जे निरख मुनि, ते मन लेहिं चोराइ ॥२७॥

अर्थ घर घर मे सुन्दर चित्रशाला सँवारकर लिखे गये थे। वहाँ लिखा हुआ राम चरित जो मुनि देखते हैं उनके मन को चुरा लेता है।

व्याख्या इतने पर भी घर का शृङ्गार पूरा नही हुआ। सबके घरो मे चित्रशालायें हैं। जिनमे सुन्दर सुन्दर चित्र बने हुए हैं और वे चित्र भर रामजी की लीला सम्बन्धी हैं। आजकल भी लोग चित्रो से कमरा सुसज्जित करते हैं और उन चित्रो से मालिक मकान की रुचि का पता लगता है। इस प्रकार के चित्रो का प्रभाव गृहनिवासियो पर बिना जाने पडता है। यहाँ तो प्रजा सब सरकार की एक एक बाता पर आसक्त है। चित्रशालाओ मे सब राम चरित्र चित्रित है और ऐसे खूबी से चित्रित है कि जिन्हे देखने से मुनि का भी मन मोहित हो जाय। राम चरित्र के मुनिगण रसिक होते हैं।

सुमन बाटिका सबहि लगाई। बिबिध भाँति करि जतन बनाई ॥
लता ललित बहु जाति सोहाई। फूलहि सदा बसन्त की नाई ॥१॥

अर्थ सबने फुलवारियाँ लगा रक्खी थी। वे अनेक प्रकार की थी। बडे यत्न से लगायी गयी थी। अनेक प्रकार की लतायें सुन्दर थी जो कि वसन्तऋतु की भाँति फूल रही थी।

व्याख्या गरीब से गरीब के घर मे भी फुलवारी है और वह अनेक प्रकार के यत्न करके बनाई गयी है। पूजा के लिए स्वास्थ्यवर्धन के लिए तथा शोभा के लिए फुलवारी की बडी आवश्यकता है। इससे यह भी कहा कि सबका काम अल्पायास से ही चलता था। फुलवारी लगाने तथा उसकी रक्षा करने मे सब समर्थ थे।

अनेक रङ्ग के फूलो की लतायें लगायी गयी थी। जिनसे लतामण्डप बन गये थे। लतायें वसन्तऋतु मे फूलती हैं पर ये सदा फूली रहती थी। अत सब ऋतुओ मे शोभा बनी रहती थी।

गुंजत मधुकर मुखर मनोहर। मारुत त्रिबिध सदा बह सुंदर ॥
नाना खग बालकन्ह जिआये। बोलत मधुर उडात सुहाये ॥२॥

अर्थ मनोहर शब्द करनेवाले भौंरे गूँजते थे और तीनो प्रकार का सुन्दर वायु सदा बहता था। बच्चों ने अनेक प्रकार के पक्षियो को जिला रक्खा था। जिनकी बोली मधुर और उडान सुन्दर थी।

व्याख्या लताओ के फूलने से फुलवारी म भौंरो की भीड लगी रहती थी। मकरन्द पान करते समय तथा उसे लेकर चलते समय भौरे गूँजा करते हैं। इनकी गूज सबको प्रिय है। बन के प्रसङ्ग मे भी कह आये हैं सीतल सुरभि पवन बह

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मन्दा। परन्तु यह तो फुलवारी है। इसमे कुछ विशेषता होनी चाहिए। अतः कवि ने सुन्दर शब्द और जोड़ दिया। भाव यह कि वन के त्रिविध मारुत से फुलवारी का त्रिविध मारुत अधिक सुहावना है।

बच्चों ने ऐसे पक्षियों को जिला रक्खा था जिनकी उड़ान भी सुन्दर होती है और बोली भी मधुर होती है। कबूतरों के उड़ान की कलाबाजी के रसिक आज भी कबूतर जिलाते हैं। यह तो पिंजरे या दरबे में रहनेवाले पक्षियों का वृत्तान्त हुआ। अब बाहर के पक्षियों का वृत्तान्त सुनिये।

मोर हंस सारस पारावत। भवनन्हि पर सोभा अति पावत ॥
जहँ तहँ देखहिं निज परछाहीं। बहु बिधि कूजहिं नृत्य कराहीं ॥३॥

अर्थ : मोर हंस सारस और कबूतर घरों के ऊपर अत्यन्त शोभा पा रहे थे। जहाँ तहाँ अपनी परछाहीं : छाया देखते और बहुत प्रकार से कूदते और नृत्य करते थे।

व्याख्या : मयूर हंस सारस और पारावत पक्षी स्वभाव से ही शोभायमान हैं पर जब ये मकानों पर जा बैठते हैं तो इनकी शोभा और भी बढ़ जाती है। इनकी बहुतायत थी। अतः ये मकानो के ऊपर अटारियों पर प्रायेण बैठे दिखाई पड़ते थे। जातरूप मनि रचित अटारी। नाना रंग रुचिर गच ढारी। अतः वहाँ उनका प्रतिबिम्ब पड़ता था। जिन्हे देखकर उन्हें अपना साथी मिल जाने का भ्रम होता था और वे हर्ष से कूदने और नाचने लगते थे।

सुक सारिका पढ़ावहिं बालक। कहहु राम रघुपति जन पालक ॥
राजदुआर सकल बिधि चारू। बीथीं चौहट रुचिर बजारू ॥४॥

अर्थ : बालक लोग तोता और मैना पढाते थे कि राम रघुपति जन पालक कहो। राजद्वार सब प्रकार से सुन्दर था। गलियाँ चौराहे और बाजार सब सुन्दर थे।

व्याख्या : पिंजरे में जो शुक सारिका हैं उन्हें बालक पढाते हैं। बाप का पढ़ाना देखकर उनका अनुकरण करते हैं। उनका पढ़ाना यही है कि बोलो : राम रघुपति जन पालक। आज भी तोता मैना भारत मे इसी भाँति पढ़ाये जाते हैं। भृगुपति परशुरामजी का भी नाम राम ही है पर वे तो रघुपति राम के गुणों पर मुग्ध थे। जिनसे उनका पालन होता था। अतः राम रघुपति जन पालक शब्द ही उन्हे प्रिय था।

अब राजद्वार का वर्णन करते हैं। उसे सब प्रकार से सुन्दर होना चाहिए। अतः कहते हैं : राज दुआर सकल बिधि चारू। अच्छे मकानात होते हुए भी यदि राजद्वार शानदार न हुआ तो सब फीका हो जाता है। गली चौराहे और बाजार सब ऐसे सुन्दर हैं कि कहे नही जा सकते।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



छं. बाजार रुचिर न बनै बरनत बस्तु बिनु गथ पाइये।
जहँ भूप रमा निवास तहँ की संपदा किमि गाइये॥
बैठे बजाज सराफ बनिक अनेक मनहु कुबेर ते।
सब सुखी सब सच्चरित सुन्दर नारि नर सिसु जरठ जे॥

अर्थ : बाजार ऐसे सुन्दर थे कि उनका वर्णन नही हो सकता। वहाँ वस्तुयें बिना मूल्य की मिलती थी। जहाँ लक्ष्मीपति ही राजा हैं वहाँ की सम्पदा का कैसे वर्णन किया जाय। अनेक बजाज सराफ और बनिये वहाँ कुबेर की भाँति बैठते थे और स्त्री पुरुष बालक वृद्ध जितने थे वे सब के सब सुन्दर सुखी और सच्चरित्र थे।

व्याख्या : बाजार ऐसा सुन्दर कि वर्णन नही हो सकता। वहाँ बिना मूल्य दिये ही वस्तु मिलती थी। जिसको जो आवश्यकता हो बाजार से ले आवे। मूल्य देने की आवश्यकता नही। इसलिए कहते है कि कुबेर की भाँति वैठे हुए बजाज सराफ और बनिये सब वस्तुयें बिना मूल्य बाँटा करते थे। वर्णाश्रम अपने अपने धर्म पर चले तभी ऐसा सम्भव है। जब सब लोग अपना कर्तव्य ईश्वर प्रीत्यर्थ पालन करेंगे और अपना निर्वाह यज्ञशिष्ट से करेंगे तभी बजाज सराफ बनियो के पास बिना मूल्य वस्तुएँ पहुँचा करेंगी और वे बिना मूल्य वितरण कर सकेंगे। जिस नगर मे स्वयं लक्ष्मीपति राजा हैं वहाँ लक्ष्मी स्वय विराजमान रहेगी। कुबेर की ही आज्ञा से सम्पत्ति का वितरण ससार मे होता है। उसी प्रकार बजाज सराफ बनियो के यहाँ से सब लोगो को ईप्सित वस्तुएँ प्राप्त होती थी। अत: सब सुखी थे। राजा के सच्चरित्र होने से सब सच्चरित्र थे। देवताओ की पुष्पो से पूजा करने के प्रताप से सब सुन्दर थे अथवा श्रीरामजी की प्रजा होने से उन्हे सब सुख प्राप्त था।

दो. उत्तर दिसि सरयू वह, निर्मल जल गभीर।
बाँधे घाट मनोहर, स्वल्प पक नहिं तीर॥२८॥

अर्थ : उत्तर दिशा मे सरयू नदी वहती थी। जिनका जल निर्मल और गम्भीर था सुन्दर सुन्दर घाट बँधे थे तीर पर तनिक भी कीचड न था।

व्याख्या : उत्तर दिशा मे सरयू नदी बहती है। वह गहरी है और जल उसका निर्मल है। राम राज्य मे सरिता सकल बहहि बरवारी। सीतल अमल स्वादु सुखकारी। फिर सरयू के लिए कहना ही क्या है। प्रजा के सुभीते के लिए घाट बँधा हुआ था और राज्य की ओर से ऐसी व्यवस्था थी कि तीर पर कीचड न रहने पावे।

दूरि फराक रुचिर सो घाटा। जहँ जल पिअहि बाजि गज ठाटा॥
पनिघट परम मनोहर नाना। तहाँ न पुरुष करहि असनाना॥१॥

अर्थ वह घाट सुन्दर लम्बा चौडा अलग दूर पर था। जहाँ घोडो और

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हाथियो के झुण्ड पानी पीया करते थे। अनेक प्रकार के अत्यन्त सुन्दर पनिघट थे। जहाँ पुरुष स्नान नही करते थे।

व्याख्या हाथी घोडो के पानी पीने के लिए नगर से दूर अलग गो घाट बना था। जिसमे नदी का जल गन्दा न हो। वह घाट बडा लम्बा चौडा था। क्योकि वहाँ हाथी और घोडो के झुण्ड के झुण्ड जल पोते थे तथा नहलाये जाते थे। वह घाट भी सुन्दर बना था। उपयोगिता के साथ ही साथ सुन्दरता का भी पूरा ध्यान रक्खा जाता था।

और घाट तो सभी मनोहर थे पर पनिघट परम सुन्दर बनाये गये थे। क्योकि वहाँ सुन्दरियाँ स्नान करती थी पुरुष वहाँ नही नहाते थे। राजाज्ञा की आवश्यकता नही थी स्वय पुरुष लोग वहाँ स्नान करने नहीं जाते थे। पनिघट भी अनेक थे जिसमे किसी को दूर न पडे।

राजघाट सब विधि सुन्दर वर। मज्जहि तहाँ बरन चारिउ नर ॥
तीर तीर देवन्ह के मदिर। चहुँ दिसि तिन्हके उपवन सुन्दर ॥२॥

अर्थ · राजघाट सब प्रकार से सुन्दर था। वहाँ चारो वर्ण के पुरुष नहाया करते थे। किनारे किनारे देवताओ के मन्दिर थे जिनके चारो ओर सुन्दर उपवन लगे थे।

व्याख्या · जहाँ चारो वर्ण के लोग स्नान करते थे। उसका नाम राजघाट था। यह सरकारी घाट समझा जाता था। यहाँ स्वय सरकार स्नान करने आते थे। अत सभी प्रकार से सुन्दर बना था। अर्थात् शोभा मे तथा कारीगरी मे सब घाटो से अच्छा था।

स्नान सन्ध्या के बाद पूजन तथा यात्रा की आवश्यकता पडती है। इसलिए नदी के किनारे देवताओ के मन्दिर बने थे। जिसमे स्नान करने के बाद लोग जल चढाने जाते थे। अनेक मन्दिर थे जिसमे जिसका जो इष्टदेव हो उसकी पूजा आराधना करे। मन्दिर के चारो ओर उपवन लगे थे जहाँ से पूजन करनेवाले पत्र पुष्प और फल प्राप्त कर सकें।

कहुँ कहुँ सरिता तीर उदासी। बसहि ग्यान रत मुनि संन्यासी ॥
तीर तीर तुलसिका सुहाई। बृंद बृंद बहु मुनिन्ह लगाई ॥३॥

अर्थ · कही कही नदी के तीर पर उदासी और ज्ञानरत मुनि तथा सन्यासी बसते थे। किनारे किनारे सुन्दर तुलसी के झुण्ड मुनियो ने लगा रक्खे थे।

व्याख्या उदासी विरक्त गृहस्थ को कहते हैं। अथवा कुटीचक बहूदक आदि तीर मे कुटियाँ बनाये हैं। इनकी संख्या थोडी है इसलिए कही कही कहा। मुनियो ने तुलसी के समूह तीर तीर पर लगा रक्खे हैं। पूजन मे तुलसी का बहुत काम पडता है। लोग सहस्रदल तुलसी से भगवान् का पूजन करते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पुर सोभा कछु बरनि न जाई। बाहिर नगर परम रुचिराई ॥
देखत पुरी अखिल अघ भागा। बन उपवन बापिका तडागा ॥४॥

अर्थ : पुर की शोभा कुछ वर्णन नही की जा सकती। नगर के बाहर भी बडी सुन्दरता थी। पुरी के दर्शन से सम्पूर्ण पाप भाग जाते थे। वन उपवन बावली और तालाब थे।

व्याख्या : नारदादि सनकादि मुनीसा। दर्शन ला‚ग कोसलाधीसा। दिन प्रति सकल अजोध्या आवहिं। देखि नगर बिराग बिसरावहिं। पहले कह आये हैं उसी प्रकरण का उपसहार करते हुए कहते हैं कि पुर की शोभा अवर्णनीय है। नगर के बाहर भी बडी मनोहरता है। वह दृश्य अन्य प्रकार का है जहाँ लोग हवा खाने जाते हैं।

केवल सुन्दरता ही नही परम पावनी पुरी है। दर्शन से सब पाप भाग जाते हैं। जिन्होने पुरी मे प्रवेश नही किया केवल दर्शन किया उनके सब पाप नष्ट हो गये। पुरी मे प्रवेश करनेवाले के पुण्य का क्या कहना है। वहाँ के वन उपवन बावली और तालाब सब परम पावन हैं।

छं. बापी तडाग अनूप कूप मनोहरायत सोहही।
सोपान सुन्दर नीर निरमल देखि सुर मुनि मोहही ॥
बहुरग कज अनेक खग कूजहि मधुप गुंजारही।
आराम रम्य पिकादि खगरव जनु पथिक हँकारही ॥

अर्थ : बावली और तालाब ऐसे हैं जिनकी उपमा नही। बडे बडे कूएँ मन के हरण करनेवाले शोभायमान हैं। जिनकी सीढियाँ सुन्दर हैं और जल निर्मल है। उन्हें देखकर देवताओ और मुनियो का मन मोहित हो जाता है। बहुत रग के कमल हैं। बहुत सी चिडिया कूजती हैं। भौंरे गूंज रहे हैं। सुन्दर बागो मे कोयल आदि पक्षी के शब्द मानो पथिक को पुकार रहे हैं।

व्याख्या : पुरी के बाहरी भाग का वर्णन हो रहा है। नगर वन उपवन बावली और तालाबो से घिरा हुआ है। वे बावली और तालाब बेजोड हैं ऐसे कही देखे नही जाते। कूएँ भी बडे बडे और मनोहर है। उनमे भी सुन्दर सीढियाँ बनायी हुई हैं। सब मे निर्मल जल है इनकी पावनता पहले ही कह चुके हैं। इन्हे देखकर मनुष्य तो मोहित हो ही जाते हैं। स्वर्ग के देवता और विगतस्पृह मुनि लोगो का चित्त मोहित हो जाता है। मज्जन पान की इच्छा हो जाती है। वहाँ से जाने की इच्छा नही होती। जलाशयो की शोभा अनेक रग के कमलो से बढ रही है। चिडियो के चहचहाहट और भौंरो के गुञ्जार से शब्दायमान हो रहे हैं। सुन्दर बगीचो मे कोयल आदि पक्षियो का बोलना इतना सुहावन है कि मानो वे आतिथ्य सत्कार के लिए पथिको को बुला रहे है। भाव यह कि उनके शब्द सुनने से पथिक का चित्त चाह जाता है कि यहाँ विश्राम कर लें।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. रमानाथ जहँ राजा, सो पुर बरनि कि जाइ।
अनिमादिक सुख संपदा, रही अवध सब छाइ ॥२९॥

जहाँ स्वयं लक्ष्मीपति राजा हैं। क्या उस पुर का वर्णन किया जा सकता है। अणिमादिक सुख और सम्पदा अवध मे छा रही है।

व्याख्या : अवध के उस समय का वैभव वर्णनातीत था। साक्षात् लक्ष्मीपति वहाँ राजा के रूप मे विराजमान थे। अत. लक्ष्मीजी का वह मुख्य निवासस्थान था और जहाँ लक्ष्मी रहेगी वही अणिमादिक सिद्धियाँ हाथ जोड़े उपस्थित रहेगी। यथा : तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरे। वही सब सुख और सम्पदा रहेगी। क्योंकि लक्ष्मी ही उनकी अधिष्ठात्री देवी हैं। भावार्थ यह कि आलौकिक वैभव था। अवधपुरी बासिन्ह कर सुख सम्पदा समाज। सहस सेष नहि कहि सकहिं नर नृप राम बिराज। से जिस प्रकरण का उपक्रम किया था उसका इस दोहे से उपसंहार कर रहे हैं।

जह तहँ नर रघुपति गुन गावहिं। बैठि परसपर इहै सिखावहिं॥
भजहु प्रनत प्रतिपालक रामहि। सोभा सील रूप गुन धामहि ॥१॥

अर्थ : जहाँ तहाँ मनुष्य रघुपति का गुणगान करते हैं। बैठकर आपस मे यही उपदेश देते हैं कि शरणागत के पालन करनेवाले राम को भजो। जो कि शोभा शील रूप और गुणो के धाम हैं।

व्याख्या : पहिले कह आये हैं कि 'नर अरु नारि राम गुन गानहि। करहिं दिवस निसि जात न जानहि। उसी बात को स्पष्ट करते हुए कवि कहते हैं कि जहाँ है वह वही सरकार के गुणो का गान करता है। उसी मे उन्हे सुखबोध होता है। यदि कही दो चार आदमी इकट्ठे बैठ गये तो एक दूसरे को उपदेश देते हैं। अर्थ काम की शिक्षा नही देते न मोक्ष की शिक्षा देते हैं। यही सिखाते हैं कि रामजी को भजो। रामजी मे ही भजनीय के सब गुण हैं। रामजी प्रणतपाल हैं। एक प्रणाम मे प्रसन्न हो जाते हैं। यथा : सकृत प्रनाम प्रनत जस बरनत सुनत कहत फिरि गाउ। रामजी शोभाधाम है उनके भजन मे आनन्द है। शीलधाम है। प्रणत जन के अपराध पर ध्यान नही देते। यथा 'अपराध अगाध भये जन ते अपने उर आनत नाहिन जू। रूप धाम पर आसक्ति होते देर नही लगती। गुणधाम के भजन से सुख का लाभ होता है। भजन मे साधन सौकर्य है उसमे भी रामजी के भजन मे उसका और भी उत्कर्ष है।

जलज बिलोचन स्यामल गातहि। पलक नयन इव सेवक त्रातहि॥
धृत सर रुचिर चाप तूनीरहि। संत कंज बन रबि रन धीरहि ॥२॥

अर्थ : कमल नेत्र और श्याम शरीरवाले को आँख के पलक की भाँति सेवक की रक्षा करनेवाले को बाण सुन्दर धनुष और तरकस धारण करनेवाले को सन्तरूपी कमल वन के लिए तथा रणधीर को।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : ऊपर सोभा सील रूप गुन धामहि : कह आये हैं उसी को क्रम से दिखलाते हैं। शोभा यथा . जलज विलोचन स्यामल गातहि। शील यथा : पलक नयन इव सेवक त्रातहि। रूप यथा : धृत सर रुचिर चाप तूनीरहिं। गुण यथा : सन्त कंज वन रवि रन धीरहिं। सरकार का श्यामल रूप ऐसा मङ्गलमय है कि उसी पर भक्त लोग अपने चित्तरूपी सोने को कसौटी की भाँति कसते हैं। यथा : स्याम रूप सुचि रुचिर कसौटी चित्त कंचनहिं कसेहौं। और कमल से नयन भक्तो के सोच के हरनेवाले हैं यथा : मामवलोकय पंकजलोचन। कृपा विलोकनि सोच विमोचन। इसलिए उन्हे भजने के लिए उपदेश दे रहे हैं। सरकार का स्वभाव वर्णन करके भी भजन पर ही अधिक बल देते हैं। कहते हैं कि रामजी इस भाँति सेवक की रक्षा करते हैं जैसे पलक नयन की रक्षा करता है। सुन्दर धनुष बाण और तरकस बांधने से रूप मे अधिक उत्कर्ष आजाता है। धनुष बाण भक्तो की रक्षा तथा दुष्ट के नाश का प्रतीक है। सरकार के उदय से सन्तरूपी कमल वन खिल उठता है। जिस भाँति रणधीर सूर्य मन्देह नामी राक्षसो का वध करके कमल वन को प्रसन्न करते हैं। उसी भाँति रामजी भी खलो का विनाश करके सन्तो को अभय करते हैं।

काल कराल ब्याल खगराजहि। नमत राम अकाम मम ताजहि ॥
लोभ मोह मृग जूथ किरातहिं। मनसिज करिहरि जन सुख दातहि ॥३॥

अर्थ : कराल काल रूपी सर्प के लिए गरुड़ रूप को मेरे मुकुट रूप अकाम रामको लोभ मोह रूपी मृगो के लिए किरातरूप को कामरूपी हाथी के लिए सिंहरूप को तथा सुखदाता को नमस्कार करो।

व्याख्या : काल सर्प की भाँति चुपके से आकर प्राण हरण करता है। वह भारी दुरतिक्रम है। इसलिए कराल कहा। रामजी उसके भी भक्षक हैं। इसलिए गरुड रूप कहा। यथा काल ब्याल कर भक्षक जोई। यहाँ पर नमत के स्थान पर नमामि होता तो दूसरे प्रकार से अर्थ किया जाता कि : ममता जहि। ममता का हनन करो। परन्तु नमत पाठ होने से : मम ताजहि का अर्थ : मेरे मुकुट को : सिरताज को यही अर्थ करना प्रसंगानुकूल है। सरकार लोभ मोह आदि मृगो के लिए किरात रूप हैं। किरात का काम ही मृगो का बध है। यथा : हम जड जीव जीव गनघाती। सब से बलवान् काम है। इसलिए इसकी उपमा हाथी से दिया। उसके लिए सरकार सिंह है। इनका नाश करके भक्त को सुख देते हैं।

संसय सोक निबिडतम भानुहि। दनुज गहन वन दहन कृसानुहि ॥
जनकसुता समेत रघुबीरहि। कस न भजहु भजन भवभीरहि ॥४॥

अर्थ . संशय और शोक रूपी घोर अन्धकार के लिए सूर्य रूप को तथा राक्षस रूपी घने वन के जलाने के लिए अग्निरूप को। जानकीजी के सहित रघुवीर को क्यो नही भजते। संसार के दु:ख के नाश करनेवाले हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : संशय से यह लोक और परलोक दोनो नष्ट हो जाते हैं। सुख कही नही मिलता। यथा : नायं लोकोऽस्ति न परो न सुख सशयात्मन.। शोक सद्य: बुद्धि का हरण करनेवाला है। यथा : सोक कनक लोचन मति छोनी। हरी विमल गुन गन जग जोनी। अत. इन्हे अदर्शन रूप घोर अन्धकार कहा गया है। इसके लिए रामजी सूर्य रूप हैं। अनायासेन नाश कर देते हैं। अविद्या निशा ही नष्ट हो जाती है। भाव यह कि रामजी के भजन से सशय और शोक का नाश हो जाता है।

राक्षसो को तो रामजी ऐसा नाश करते हैं जैसे घने बन को आग जला देती है। बन के नाश करने मे अग्नि सा सामर्थ्य किसी को नही है। पहिले पद मे भीतरी शत्रु का नाश कहा। अब इस पद से बाहरी शत्रु का नाश कहते हैं। जनकसुता के साथ श्रीरघुवीर ससार के दु ख को नाश करते हैं। जनकसुता क्लेशहारिणी और सर्वश्रेयस्करी है और सरकार की वल्लभा है। अत. उनके साथ रामजी को क्यो नही भजते? जहाँ पर श्री रामजी का ध्यान कहा गया है वहाँ जनकसुता के साथ ही कहा गया है। यथा . सीता पार्श्वगता सरोरुहकरा विद्युन्निभा राघवम्। पश्यन्ती मुकुटाङ्गदादिविविधाकल्पोज्ज्वलाग भजे।

बहु बासनामसक हिमरासिहि। सदा एक रस अज अबिनासिहि॥
मुनि रजन भंजन महि भारहि। तुलसिदास के प्रभुहि उदारहि॥५॥

अर्थ : बहुत सी वासना रूपी मच्छडो के लिए पालारूप को सदा एक रस। अजन्मा और अविनाशी को मुनियो को सुख देनेवाले तथा पृथिवी के भार के हरण करनेवाले को तथा तुलसीदास के उदार प्रभु को क्यो नही भजते।

व्याख्या : जिस भाँति मच्छड पीड़ा देते है उसी भाँति वासना सदा पीड़ा दिया करती है। हिम पाला के त्रास से उनका वल बहुत कुछ कम हो जाता है। यथा : मसक दस बीते हिम त्रासा। सरकार तो उनके लिए हिमराशि हैं। जहाँ सरकार हैं वहाँ वासना पास नही फटक सकती।

अव सरकार का स्वरूप कहते हैं कि वे ही एक ऐसे हैं जो सदा एकरस रहते हैं। शेष सभी कुछ परिवर्तनशील है। इसलिए इनका जन्म नही होता। जिनका जन्म नही होता उनका नाश भी नही होता। भाव यह कि जलज विलोचन स्यामल गात आदि कहने से इन्हे मनुष्य न समझ लेना। यह तो उनका मायिक रूप हैं। वस्तुत. ये सदा एकरस अज अविनाशी हैं।

इनका अवतार ही : परित्राणाय साधूना विनाशाय च दुष्कृताम्। हुआ करता है। ऐसे उदार हैं कि तुलसीदास के प्रभु हो गये। नही तो ऐसे जड़मति का प्रभु होना कौन स्वीकार करेगा?

दो. एहि बिधि नगर नारि नर, करहिं राम गुनगान।
सानुकूल सब पर रहहिं, संतत कृपानिधान॥३०॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : इस विधि से नगर के नारी नर सदा रामजी के गुणो का गान करते थे और कृपानिधान भी सब पर सदा सानुकूल रहते थे ।

व्याख्या : गान करने की विधि दिखाने के लिए कवि ने यहाँ प्रादेश मात्र कहा । स्त्री पुरुष सबको राम गुनगान मे सुख बोध होता है। सरकार कृपानिधान हैं। उनके गान पर रीझे हुए हैं। अयोध्या भर गवैया नही है। पर रोना गाना सभी को आता है। जैसा जो गा सकता है वैसा गाता है। पर सरकार कृपानिधान हैं। सदा सब पर सानुकूल रहते हैं। कहा भी है कि : नाहं वसामि वैकुण्ठे योगिना हृदये न च। मद्भक्ता यत्र गायन्ति तत्र तिष्ठामि नारद।

यह स्तुति अभिजित् नक्षत्र है। अभिजित् को मिलाकर २८ नक्षत्र माने गये हैं। नही तो नक्षत्र की सख्या २७ की ही है। अभिजित् मे तीन तारे चमकते हैं। इस स्तुति मे भी तीन बाते चमकती हैं। १ भजहु २ नमत और ३ कसन भजहु। इसका त्रिभुज रूप है। तीन अर्धालियो का एक भुज है। नौ अर्धालियो मे स्तुति समाप्त है : सुकवि सरद नभ मन उडगन से। यह फलश्रुति है।

जब ते राम प्रताप खगेसा। उदित भयउ अति प्रबल दिनेसा ॥
पूरि प्रकास रहेउ तिहुँलोका। बहुतेन्ह सुख बहुतन्ह मन सोका ॥१॥

अर्थ : हे पक्षिराट्! जब से रामजी के प्रताप का अति प्रबल सूर्य उदय हुआ तब से तीनो लोक मे प्रकाश भर गया। बहुतो को सुख हुआ और बहुतो के मन मे शोक हुआ।

व्याख्या : श्रीरामजी के प्रताप का सूर्य तो मिथिलापुरी मे ही उदय हो गया था। यथा उदित उदय गिरि मच पर रघुवर बाल पतग। पर बढते बढते वह सरकार के सिंहासनारूढ होने पर अति प्रबल हो गया। ऐसा कभी नही होता कि किसी के प्रताप के बढने से सबको सुख हो। यदि भले का प्रताप बढा तो भलो को सुख और बुरो को दुःख होता है। यदि बुरे का प्रताप बढा तो बुरो को सुख और भलो को दुःख होता है। पर सुख दुःख की परख सज्जनो के ही सुख दुःख से है। अधिक मनुष्यो के अधिक सुख को लक्ष्य माननेवाला सिद्धान्त ठीक नही। यदि दुष्ट की ही सख्या अधिक हुई तो सज्जनो का कोई ठिकाना न रह जायगा।

श्रीरामजी के प्रतापरूपी सूर्य के अतिप्रबल होने से तीनो लोक मे प्रकाश भर गया। इससे बहुतो को सुख हुआ और बहुतो के मन मे शोक हुआ।

जिन्हहि सोकते कहहुँ बखानी। प्रथम अविद्या निसा नसानी ॥
अघ उलूक जहँ तहाँ लुकाने। काम क्रोध कैरव सकुचाने ॥२॥

अर्थ : जिन्हे शोक हुआ उन्हे बखान कर कहता हूँ। पहिले तो अविद्या रात्रि नष्ट हो गयी। पापरूपी उल्लू जहाँ तहाँ छिप गये और काम क्रोधरूपी काईं के फूल सङ्कुचित हो गये।

व्याख्या : राम प्रतापरूपी सूर्य के उदय से जिन्हे शोक हुआ पहिले उन्ही का

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


वर्णन करते हैं। क्योंकि यह सुनने पर जानने के लिए उत्सुकता होती है कि रामजी के प्रताप से किसको दुःख हुआ ? सूर्योदय से पहिली बात यह होती है कि रात्रि नष्ट होती है। अदर्शनात्मक होने से अविद्या को रात्रि कहा गया है। सो राम प्रतापरूपी सूर्य के अति प्रबल होने से अविद्या रूपी रात्रि नष्ट हो गयी। उल्लू को रात्रि में ही सूझता है। दिन में सूझता ही नहीं। इसी भाँति पाप रूपी उल्लू का प्रचार अविद्या निशा में ही होता है। दिन के प्रखर प्रकाश में वह किसी अँधेरे कन्दरा आदिक स्थानों में छिप जाते हैं। कहीं पता नहीं चलता। इसी भाँति रामराज्य में पाप वेपता हो गये। काम क्रोध वस्तुतः एक ही वस्तु है। काम पर आघात होने से वही क्रोधरूप में परिणत हो जाता है। यथा काम एष क्रोध एष रजोगुणसमुद्भव। महाशनो महापाप्मा विद्ध्येनमिह वैरिणम्। उसकी उपमा कैरव कोईं से दिया। यह फूल रात को ही खिलता है। सूर्योदय होने पर सिकुड़ जाता है। इस भाँति अविद्या निशा में काम क्रोध खिले रहते हैं। रामराज्य में सङ्कुचित हो जाते हैं।

**बिबिध कर्म गुन काल सुभाऊ। ए चकोर सुख लहहिं न काऊ॥**
**मत्सर मोह मान मद चोरा। इन्हकर हुनर न कवनिहु ओरा॥३॥**

अर्थ : अनेक प्रकार के कर्म गुण काल और स्वभाव ये चकोर हैं। इन्हें कभी सुख न मिला। मत्सर मोह मान मद चोर हैं। इनका हुनर किसी ओर नहीं चलता।

व्याख्या : कर्मों के अनेक भेद हैं। यथा कायिक वाचिक मानसिक अथवा सञ्चित प्रारब्ध और क्रियमाण तथा गुण काल और स्वभाव। इन्हीं द्वारा जीव जन्म मरण के चक्र में पड़ा घूमता है। यथा फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा। इनकी उपमा चकोर से दिया। क्योंकि इनको अविद्या निशा में ही सुख मिलना सम्भव है। विज्ञान दिन में इन्हें कभी सुख नहीं मिलता।

मत्सर मान मोह मद इन चारों को चोर कहा। क्योंकि चोर की भाँति ये अविद्या निशा में अपना हुनर दिखाते हैं। हृदय रूपी घर में पैठकर सद्गुण रूपी धन का अपहरण करते हैं। यथा मम हृदय भवन प्रभु तोरा। तहँ बसे आइ बहु चोरा। अति कठिन करहिं बर जोरा। मानहिं नहिं विनय निहोरा। तम मोह लोभ अँहकारा। इत्यादि। सो रामराज्य में अविद्या के नाश से इनकी कला नहीं चलती। लोक और वेद कहीं भी इनकी दाल नहीं गलती।

**धर्म तड़ाग ग्यान बिग्याना। ए पंकज बिकसे बिधिनाना॥**
**सुख संतोष बिराग बिबेका। बिगत सोक ए कोक अनेका॥४॥**

अर्थ : धर्म रूपी तालाब में ज्ञान विज्ञान रूपी अनेक प्रकार के कमल खिल उठे। सुख सन्तोष विराग विवेक रूपी अनेक चकवाक शोकरहित हो गये।

व्याख्या : अब जिन्हें सुख है उनका वर्णन करते हैं। जहाँ धर्म है वहीं ज्ञान विज्ञान के होने की भी सम्भावना है। जहाँ धर्म नहीं वहाँ ज्ञान विज्ञान की चर्चा ही क्या है। यथा धर्म ते बिरति योग ते ज्ञाना। इसीलिए धर्म को तालाब और

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ज्ञान विज्ञान को कमल कहा। अविद्या निशा मे ये सङ्कुचितावस्था में पड़े रहते हैं। रामप्रताप रवि के उदय होते ही ये खिल उठे।

सुख सन्तोष विराग और विवेक की उपमा कोक से दी। कोक जलपक्षी है। जल के किनारे ही रहता है। इसी भाँति सन्तोष सुख विराग विवेक ये भी धर्म तडाग का आश्रयण करके रहते हैं। अविद्या निशा मे इनका अपने अधिकारियों से वियोग रहता है। राम प्रताप सूर्य के उदय होने से इनका संयोग अधिकारियों से हो जाता है। अतः इनका शोक चला गया। हर्षित हो उठे।

दो. यह प्रताप रबि जाके, उर जब करै प्रकास।
पछिले बाढ़हि प्रथम जे, कहे ते पावहिं नास ॥३१॥

अर्थ : यह प्रताप सूर्य जब जिसके हृदय मे प्रकाश करता है तो जिनका वर्णन पीछे किया गया वे बढते हैं और जिनका वर्णन पहिले किया गया उनका नाश होता है।

व्याख्या : जब राम राज्य हुआ और रामजी का प्रताप सूर्य चमका तब उपर्युक्त बातें हुईं। पर यह बात नही कि वे बातें अब नही। इस समय भी जिसके हृदय मे जब राम प्रताप रूपी सूर्य का उदय होता है उस समय विविध कर्म, गुण, काल, स्वभाव, मत्सर, मान मोह मद का नाश होता है और धर्म ज्ञान, विज्ञान, सुख, सन्तोष विराग विवेक की बढोत्तरी होती है। नाम एवं श्रीराम चरित का आश्रय लेने से राम प्रताप हृदय में अवश्य आ जाता है।

भ्रातन्ह सहित रामु एक बारा। संग परम प्रिय पवन कुमारा ॥
सुन्दर उपबन देखन गये। सब तरु कुसुमित पल्लव नये ॥१॥

अर्थ : भाइयो के सहित रामजी सङ्ग मे परम प्रिय हनुमान्‌जी को लिये हुए सुन्दर उपवन देखने गये। सब पेड़ फूले और नये पत्ते लग गये थे।

व्याख्या : रामजी चाहे कार्य के समय भाइयो को साथ न रक्खें पर आमोद प्रमोद के समय उन्हे अवश्य साथ रखते थे। कह भी आये हैं : बैठहिं सभा सग द्विज सज्जन। पर : अनुजन्ह संजुत भोजन करही। सभा का कार्य करते समय चाहे भाई साथ न रहे पर भोजन के समय अवश्य रहे। क्योंकि भाइयो पर प्रीति रही। यथा : राम करहिं भ्रातन्ह पर प्रीती। परन्तु हनुमान्‌जी पर बड़ी प्रीति थी। यथा : तैं मम प्रिय लछिमन ते दूना। अतः उपवन मे जाने के समय भाइयों और हनुमान्‌जी को साथ ले लिया। वसन्त ऋतु के कारण उपवन की अधिक शोभा हो रही थी। पेडो मे फूल लग रहे थे। नये पत्ते निकल आये थे।

जानि समय सनकादिक आये। तेज पुंज गुन सील सोहाये ॥
ब्रह्मानन्द सदालय लीना। देखत बालक बहुकालीना ॥२॥

अर्थ : अवसर जानकर सनकादिक आये। मानो तेज के पुञ्ज ही थे और

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


उनके गुण और शील भी सुन्दर थे। वे ब्रह्मानन्द मे सदा लीन रहते थे। देखने मे तो बालक मालूम होते थे परन्तु थे बहुत दिन के।

व्याख्या सनकादि से सनक सनन्दन सनातन सनत्कुमार चारो महात्माओ का आना कहा। प्राय ये लोग साथ ही रहते हैं। ये लोग सरकार के दर्शन के लिए नित्य ही ब्रह्मलोक से अयोध्या आया करते थे। यथा नारदादि सनकादि मुनीसा। दरसन लागि कोसलाधीसा। दिन प्रति सकल अयोध्या आवहिं। पर दर्शन करके चले जाते थे। कुछ कहने सुनने का अवसर नही मिलता था। अवकाश होने पर ही उपवन जाना होता है। अत सरकार को उपवन मे देखकर निश्चय किया कि यही अवसर है। अत प्रभु के पास गये।

उनका वर्णन करते हुए कवि कहते हैं कि ये लोग ऐसे तेजस्वी थे कि मालूम होता था कि चार तेजोराशियाँ चली आ रही हैं। ये सन्तो के सिरताज थे। इसलिए इनमे सुहाये गुण भी थे। आचरण भी सुन्दर थे। ये सदा ब्रह्मानन्द मे निमग्न रहा करते थे। इनकी सदा पाँच वर्ष के बालक की सी अवस्था बनी रहती है। परन्तु ये ब्रह्मा के प्रथम मानस पुत्र हैं। हरि शरणम् मन्त्र जप प्रभाव से सदा बालक रूप मे ही रहते है।

**रूप धरे जनु चारिउ बेदा। समदरसी मुनि बिगत बिभेदा॥**
**आसा बसन ब्यसन यह तिनही। रघुपति चरित होहिं तहँ सुनही॥३॥**

अर्थ : मानो मूर्तिमान चारो वेद हो। वे समदर्शी और भेदभाव रहित हैं। उनका दिगम्बर वेष है और यही एक व्यसन है कि जहाँ रामजी का चरित कहा जाता हो वहाँ जाकर सुना करते हैं।

व्याख्या : चारो ऐसे ज्ञान के निधान हैं कि उन्हे मूर्तिमान् वेद कहा जा सकता है। वे सब मे ब्रह्म को समान देखते हैं। उन्हें भेदभाव है ही नही। भाव यह कि निवृत्ति मार्ग के ये ही चारो परम गुरु हैं। सृष्टि के आदि में नारायण ने इन्हें ही निवृत्ति मार्ग का उपदेश किया था और इन्ही से निवृत्ति मार्ग का प्रचार हुआ।

ये सदा दिगम्बर, नग्न रहते हैं और देखने में ये पाँच वर्ष के बालक जान पडते हैं। इन लोगो ने तपस्या करके यही वरदान प्राप्त किया है कि हम लोगो की अवस्था सदा पाँच वर्ष के बालको सी बनी रहे। अत सृष्टि के आदि में उत्पन्न होने पर भी ये वैवस्वतमनु के २४वी चतुर्युगी मे पाँच वर्ष के बालक ही जान पडते थे फिर भी इनमे एक व्यसन था। अनावश्यक बात मे लग्न होने को ही व्यसन कहते हैं : जो ब्रह्मानन्द मे लवलीन रहे। उसे चरित्र श्रवण की कोई आवश्यकता नही। पर ये जहाँ रामजी का चरित्र वर्णन हो वहीं सुनने चले जाते हैं। इसलिए कवि कहते हैं कि उनमे इस बात का व्यसन तो अवश्य था। भाव यह कि सबके लिये रामचरित्र का श्रवण उपयोगी है। यथा : जीवन मुकुत महामुनि जेऊ। हरिगुन सुनहि निरंतर तेऊ। विषयिन्ह कहँ पुनि हरिगुन ग्रामा। स्रवन सुखद अरु मन अभिरामा। ते जड जीव निजात्मक घाती। जिनहि न रघुपति कथा सोहाती।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तहाँ रहे सनकादि भवानी । जहँ घट संभव मुनिवर ग्यानी ॥
राम कथा मुनिवर बहु बरनी । ग्यानजोनि पावक जिमि अरनी ॥४॥

अर्थ हे भवानी ! सनकादि वहाँ थे जहाँ विज्ञानी मुनि अगस्त्यजी रहते हैं। श्रेष्ठ मुनि ने रामजी की बहुत सी कथायें कही जो कि ज्ञानाग्नि की उत्पत्ति के लिए अरणी के समान हैं।

व्याख्या इस समय सनकादिक ब्रह्मलोक से नहीं आ रहे हैं। रामचरित सुनने के व्यसनी हैं। अगस्त्यजी के यहाँ रामचरित होता था। उसीको सुनने के लिए गये थे। अगस्त्यजी रामचरित्र के बहुत बडे आचार्य हैं। स्वयं शिवजी उनकी कही कथा सुनने जाते हैं। यथा राम कथा मुनिबर्य बखानी। सुनी महेस परम सुख मानी। यहाँ यह भी ध्यान देने योग्य बात है कि साक्षात् सरकार का दर्शन छोडकर सनकादि महर्षि सरकार का चरित्र सुनने गये। अत सिद्ध है कि कथा श्रवण साक्षात् दर्शन से कम नहीं है।

अब रामकथा की महिमा कहते हैं कि इसके मन्थन से अर्थात् श्रवण मनन निदिध्यासन से ज्ञान प्रकट होता है। जैसे अरणी के मन्थन से अग्नि प्रकट होती है। जिस भाँति अरणी में अग्नि अव्यक्तरूप से नखानख भरी है। मन्थन से उसका प्राकट्य होता है। इसी भाँति रामकथा मे ज्ञान अव्यक्त रूप से भरा पडा है। श्रवण मनन निदिध्यासन से प्रकट होता है। दूसरी बात यह है कि अग्नि के प्रकट होने के अन्य उपाय भी हे। पर उन उपायो से प्रकट हुई अग्नि अशुद्ध होती है। अरणी के मन्थन से प्रकटी हुई अग्नि ही शुद्ध मानी जाती है। यज्ञादि क्रिया उसी से सम्पन्न होती है। इसी भाँति शुद्ध ज्ञान तो रामचरित्र से ही प्रकट होता है। यथा ज्ञानमार्गं चरित्रेण रातीति राम । ऐसी भी व्युत्पत्ति तापनीय श्रुति मे पायी जाती है।

दो देखि राम मुनि आवत, हरखि दण्डवत कीन्ह ।
स्वागत पूछि पीतपट, प्रभु बैठन कहँ दीन्ह ॥३२॥

अर्थ रामजी ने मुनियो को आते देखकर हर्षित होकर दण्डवत् किया और स्वागत पूछकर स्वय अपना पीताम्बर बैठने के लिए दिया।

व्याख्या जिस भाँति विरतिरत गृहस्थ विष्णुभक्त को देखकर मारे आनन्द के नाच उठता है। यथा लछिमन देखु मोरगन नाचत बारिद पेखि। गृही विरतरत हरष जस विष्णु भगत कहुँ देखि। उसी भाँति सरकार भी सनकादिक को आते देखकर हर्षित हुए और दण्डवत प्रणाम किया। ऐसी प्रतिष्ठा सरकार ने किसी की नही की। स्वागत पूजा और अपना उत्तरीय उतारकर उनके आसन के लिए बिछा दिया। सम्राट् के यहाँ आसनो का घाटा नही रहता। यहाँ उत्तरीय वस्त्र को आसन कल्पना करना सनकादिक की अत्यन्त प्रतिष्ठा है।

कीन्ह दंडवत तीनिउ भाई । सहित पवनसुत सुख अधिकाई ॥
मुनि रघुपति छवि अतुल बिलोकी । भए मगन मन सके न रोकी ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : तीनों भाइयों ने उन्हें हनुमान्‌जी के सहित दण्डवत् प्रणाम किया। सबको बड़ा सुख हुआ। मुनि सरकार की अतुलित छवि देखकर मग्न हो गये और मन को रोक न सके।

व्याख्या : सरकार के दण्डवत् करने और आसन देने के बाद भरत, लक्ष्मण, शत्रुघ्न और हनुमान्‌जी ने दण्डवत् किया। इन लोगों को भी बड़ा सुख हुआ। तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला एक अंग। तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सत संग।

सनकादि मुनि हैं। दु:ख में इनका मन उद्विग्न नही होता। सुख चाहते नहीं वीतराग भय क्रोध स्थितप्रज्ञ हैं। सुरूप कुरूप सब इनके लिए समान हैं। पर सरकार की छवि ऐसी अनुपम है कि उनके देखने से मग्न हो गये। मन के रोकने का अभ्यास है। अतः सरकार के दर्शन करने पर मन को क्षुब्ध जानकर रोकना चाहा। पर रुक न सका। यहाँ न रुकने मे ही मन की प्रशंसा है। यथा : अवलोकिहौं सोच बिमोचन को ठगि सी रही जे न ठगे धिकसे।

स्यामलगात सरोरुह लोचन। सुन्दरता मंदिर भव मोचन॥
एकटक रहे निमेष न लावहि। प्रभु कर जोरे सीस नवावहि॥२॥

अर्थ : श्याम शरीर कमल से नेत्र सुन्दरता के निवास संसार से छुड़ानेवाले को एकटक देखने लगे। पलक नही पड़ती। सरकार हाथ जोड़े प्रणाम कर रहे हैं।

व्याख्या : स्याम सरीर सुभाय सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन। सो उस श्याम स्वरूप को देखते है जो कि सुन्दरता का घर है। तथा : कहहु सखी अस को तनु धारी। जो न मोह यह रूप निहारी। और कमल से नेत्र संसार पाश से छुड़ानेवाले हैं। यथा : मामवलोकय पंकज लोचन कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन। ऐसी मूर्ति का सनकादिक एकटक होकर दर्शन कर रहे हैं। पलक भी नहीं गिराते जिसमें निमिष मात्र का भी व्यवधान दर्शन में पड़े और सरकार अत्यन्त श्रद्धा होने के कारण हाथ जोड़े हुए पुनः पुनः नमस्कार कर रहे हैं।

तिन्हकै दसा देखि रघुबीरा। स्रवत नयन जल पुलक सरीरा॥
कर गहि प्रभु मुनिवर बैठारे। परम मनोहर बचन उचारे॥३॥

अर्थ : उनकी दशा सरकार ने देखी कि आंखो से आंसू बह रहा है और शरीर में पुलकावली व्याप्त है। सरकार ने हाथ पकड़ पकड़कर श्रेष्ठ मुनियो को बिठाया। और परम मनोहर वचन बोले।

व्याख्या : सरकार ने उनकी दशा देखी कि आँखों से अश्रु की धारा बह रही है। सात्त्विक भाव हुआ है। शरीर में रोमाञ्च है। इससे उनके आन्तरिक दशा का अनुभव हुआ कि इतने प्रेम में मग्न हैं कि इन्हें इस बात की भी सुधि नहीं है कि उनके लिए सरकार ने अपना उत्तरीय बैठने को बिछा दिया है। न उन्हें बैठने की सुधि है। अतः हाथ पकड़ पकड़कर उन्हें आसन पर बिठाया। तब परम मनोहर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वचन बोले जिसमें मन का सङ्ग श्रवण के साथ हो जाय। रूप से ध्यान खिचकर बातचीत पर आजायँ।

आजु धन्य मै सुनहु मुनीसा। तुम्हरे दरस जाहि अघ खीसा ॥
बड़े भाग पाइब सत संगा। बिनहि प्रयास होइ भव भंगा ॥४॥

अर्थ : हे मुनीश ! सुनिये आज मैं धन्य हुआ। क्योंकि आपके दर्शन से पाप कट जाते हैं। बड़े भाग्य से सत्सग की प्राप्ति होती है। उससे अनायास ही संसार मिट जाता है।

व्याख्या : मुख दीखत पातक हरे परसत कर्म बिलाहिं। वचन सुनत मन मोहगत पूरब भाग मिलाहिं। अत: सरकार कहते हैं कि आज मैं धन्य हुआ। उसका कारण भी स्वयं ही देते हैं कि आप लोगो के दर्शन से पाप नष्ट हो जाते हैं और पुण्य की वृद्धि होती। क्योंकि सत्सङ्ग की प्राप्ति थोड़े पुण्यवालो को नही होती। सन्त तो सभी जगह सदा सुलभ हैं। यथा : सबहिं सुलभ सब दिन सब देसा। सेवत सादर समन कलेसा। फिर भी सत्सङ्ग की प्राप्ति नही होती। सन्त विभीषणजी सदा लंका मे ही रहे पर राक्षसो को सत्सङ्ग की प्राप्ति न हुई। अत: जब सत्सङ्ग हो वही घड़ी धन्य है। यथा : धन्य घरी सोई जब सत संगा। सत्सङ्ग का माहात्म्य कहते हुए सरकार बतलाते हैं कि सत्सङ्ग द्वारा आवागमन के नष्ट होने मे प्रयास नही होता। अन्य साधनो से भी भव भङ्ग होता है। पर वह अधिक प्रयाससाध्य है।

दो. संत संग अपवर्ग कर, कामी भव कर पंथ।
कहहिं संत कवि कोविद, स्रुति पुरान सद ग्रंथ ॥३३॥

अर्थ : पण्डित कवि वेद पुराण और सद् ग्रन्थ सभी कहते हैं कि सन्त मोक्ष के पन्थ है और कामी संसार के पन्थ हैं।

व्याख्या : सन्त कवि कोविद आप्त हैं। श्रुति पुराण सद्ग्रन्थ आप्तवाक्य हैं। अत: परम प्रमाण हैं। इन सबका यह मत है कि सन्त लोग मोक्ष के मार्गरूप हैं। यथा : मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई। सो जानब सत संग प्रभाऊ। लोकहुँ वेद न आन उपाऊ। इसी भाँति कामी भव के पन्थ रूप हैं। यथा : काम क्रोध मद लोभ सब नाथ नरक के पन्थ। सब परिहरि रघुबीरहिं भजहु भजहिं जेहि सन्त।

सुनि प्रभु बचन हरख मुनि चारी। पुलकित तन अस्तुति अनुसारी ॥
जय भगवत अनंत अनामय। अनघ अनेक एक करुनामय ॥१॥

अर्थ : प्रभु के वचन सुनकर चारो मुनि हर्षित हुए। पुलकित शरीर होकर स्तुति करने लगे। हे भगवान् ! आप की जय हो। आप अन्तर्हित दोष रहित और पाप रहित हैं। एक हैं और करुणामय है।

व्याख्या : प्रभु के वचन सुनकर चारो मुनि हर्षित हो गये कि जब सरकार ने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



श्रीमुख से हमे सन्त कह दिया तो अब हम लोग सचमुच सन्त हो गये। हर्ष से मारे शरीर म पुलक हो गया और लगे स्तुति करने। मन से हर्षित हुए। तन से पुलकित हुए। वचन से स्तुति करने लगे। उत्कर्ष वस्तुत आपका ही है क्योंकि आप भगवान् नित्य षडैश्वर्य सम्पन्न हैं। अनादि तो छ पदार्थ है। पर उनम से पाँच सान्त हैं। एक आप ही अनन्त हैं। अत निर्विकार भी आप ही हैं। विकारवान् कभी न कभी अवश्य नाश को प्राप्त होता है। आप ही अनघ हैं अर्थात् शुद्ध सच्चिदानन्द हैं। आप मे विजातीय पदार्थ का मेल नही है। आप सजातीय विजातीय तथा स्वगत भेद से शून्य है। फिर भी माया से अनेक रूप धारण करते हैं इसलिए अनेक भी हैं। आप करुणावतार हैं। यथा करुणामय मृदु राम सुभाऊ।

जय निर्गुन जय जय गुन सागर। सुख मदिर सुन्दर अति नागर ॥
जय इदिरा रमन जय भूधर। अनुपम अज अनादि सोभाकर ॥२॥

अर्थ हे निर्गुण ! आप की जय हो। हे गुण के समुद्र ! आप की जय हो ! जय जय हो ! सुख के घर सुन्दर और अत्यन्त चतुर लक्ष्मीपति आप की जय हो। हे पृथिवी के धारण करनेवाल आप की जय हो। हे अनुपम, अजन्मा अनादि और शोभा की खानि !

व्याख्या आप सत्त्व रजस् तमस् से परे होने से निर्गुण हैं और गुणो के अधिष्ठान होने से गुणसागर है। स्वय आनन्द सिन्धु होने से सुख मन्दिर हैं। सब कुछ करते हुए भी आप सदा निष्क्रिय बने रहते हैं। इसलिए अति नागर हैं अथवा कोसलकुमार होने से अति नागर हैं। यथा जल सीकर महि रज गनि जाही। रघुपति चरित न बरनि सिराही। आप इन्दिरा रमण हैं ?आपके शीलादि गुणको देखकर ही लक्ष्मी ने आपका वरण किया है। यथा अब जानी मैं श्री चतुराई। भजी तुमहि सब देव बिहाई। आप ही शेष कमठ अथवा वाराह रूप से पृथिवी को धारण किये हुए हैं। अत आप ही भूधर हैं। यथा न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यश। आपका जन्म नही होता आप माया मानुष रूप हैं। क्योकि आप अनादि हैं। आपके रूप के लश को पाकर ही अति सुन्दर कहलानेवालो की शोभा है। *यथा सभु बिरचि बिष्णु भगवाना। उपजहि जासु अस ते नाना भगवाना। अत* आप शोभाकर हैं।

ग्यान निधान अमान मान प्रद। पावन सुजस पुरान वेद वद ॥
तज्ञ कृतज्ञ अज्ञता भजन। नाम अनेक अनाम निरजन ॥३॥

अर्थ आप ज्ञान के निधान मान रहित हैं। पर अमान को मान के देनेवाले हैं आपके पावन सुयश का वेद वर्णन करता है। आप तत्त्व के ज्ञाता उपकार के माननेवाले और अज्ञता के नाश करनेवाल हैं। आपके अनेक नाम ह फिर भी आप नाम रहित तथा लेप रहित हैं।

व्याख्या आप ज्ञान के निधान हैं क्योकि सबके प्रकाशक हैं। यथा सहज

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



प्रकास रूप भगवाना। आप अपरिच्छिन्न हैं इसलिए अमान हैं और अमान अर्थात् अहङ्कार रहित सन्तो को मान देनेवाले है। यह सुयश ऐसा पवित्र है कि इसका वर्णन वेद और पुराण करता है। यथा कृत भूप विभीषन दीन रहा।

आप ही तत्पद के जानकार हैं। दूसरे को उस पद की जानकारी आप ही की कृपा से होती है। यथा सोइ जानै जेहि देहु जनाई और आप कृतज्ञ हैं। यथा अति कृतज्ञ प्रभु परम सुजाना। आप ही भक्तो से कार्य कराते हैं और आप ही कृतज्ञ होते हैं। आप ही अज्ञानका नाश करते हैं। सर्वनाम होने से आप के अनेक नाम हैं। फिर भी आप अनाम है क्योकि सर्व रूप हैं और निर्लेप हैं।

सर्व सर्वगत सर्व उरालय। बससि सदा हम कहुँ परिपालय॥
द्वद बिपति भव फद बिभजय। हृदि बसि राम काम मद गजय॥४॥

अर्थ आप ही सब है सबमे व्याप्त हैं और सबके हृदय रूपी घर मे वास करते हैं। अत १ हमारा पालन कीजिये। द्वन्द्व विपत्ति और २ ससार के जाल को काट दीजिये। हे रामजी! हृदय मे बस कर काम और मद को नष्ट कीजिये। भावार्थ यह कि सरकार के हृदय मे निवास करने से ही काम भाग जायगा। सगुण रूप से प्रकट होने से ही कामादिक का नाश होता है।

व्याख्या आप ही व्यापक हैं और आप ही व्याप्य हैं। अत आप ही सर्व हैं और आप ही सर्वगत हैं और आप ही अन्तर्यामी होकर सबके हृदय मे बसते हैं। यथा ईश्वर सर्वभूताना हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। अत हमारा पालन भी आप ही करिये दूसरा कोई पालक हो नही सकता। अब पालन करने की विधि कहते हैं कि सुख दु ख शीतोष्ण म ही द्वन्द्व हैं विपत्ति रूप हैं। १ सो द्वन्द्व को दूर कीजिये और २ ससार का दुस्तर जाल है। इसका नाश हृदय मे बसकर करिये। भावार्थ यह कि सगुण रूप से हृदय मे बसकर हमारा पालन कीजिये।

दो परमानद कृपायतन, मनपर पूरन काम।
प्रेम भगति अनपायनी, देहु हमहिं श्रीराम॥३४॥

अर्थ हे परमानन्द कृपाके भवन मन से परे और पूर्ण काम श्रीराम अनपायिनी प्रेमाभक्ति हमे कृपा करके दीजिये।

व्याख्या दु खाननुविद्ध सुख रूप आप हैं। आप कृपा के घर हैं। कृपायतन से ही याचना करने से मन कामना पूर्ण होती है। आप मनसे भी परे हैं। अत आप मे ही मनोभिलाष पूर्ण करने का सामर्थ्य है। आप पूर्णकाम हैं जिसकी कामना स्वय पूर्ण न हुई हो, वह दूसरे की कामना क्या पूर्ण करेगा? प्रेमाभक्ति जिसमे विघ्न न हो उसे कृपा करके दीजिये क्योकि वह क्रियासाध्य नही है कृपासाध्य है। यह दोहा

---

१ दीपकावृत्ति प्रथम अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रूपी कमल : देहु भगति रघुपति अति पावनि। इस पुरइन से निकला है। अतः अनपायिनी भक्ति के गुण पुरइन से ही जाने जायँगे।

देहु भगति रघुपति अति पावनि। त्रिबिध ताप भवदाप नसावनि ॥
प्रनत काम सुर धेनु कलप तरु। होइ प्रसन्न दीजै प्रभु यह बरु ॥१॥

अर्थ : हे रघुपते ! अति पवित्र भक्ति दीजिये जो कि तीनो ताप और ससार के अभिमान को दूर करनेवाली है। हे प्रणतकी कामना के लिए कामधेनु तथा कल्पवृक्ष ! प्रसन्न होकर प्रभो ! यह वर दीजिये।

व्याख्या : अति पावनी भक्ति प्रेमाभक्ति है। यथा : प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभ्यन्तर मल कबहुँ कि जाई। उसी प्रेमा भक्ति से त्रिविध ताप दूर होता है। क्योंकि : भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अबिद्या नासा। उसीसे भवदाप दूर होता है। यथा : तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकै कछु निज प्रभुताई।

सरकार प्रणत के लिए कामधेनु भी हैं और कल्पवृक्ष भी हैं। अर्थात् जगदम्बा तथा जगत्पिता के रूप से कामना पूर्ण करते हैं। यथा : सुनु सेवक सुरतरु सुरधेनू। केवल सेवक के लिए ही सुखद नहीं प्रणत के लिए भी आप कामधेनु और कल्पवृक्ष हैं। मैं प्रणत हूँ और वर माँगता हूँ। आप अभिमत देनेवाले हैं। यथा : मागत अभिमत पाव जग राउ रंक भल पोच। अनपायिनी भक्ति की बड़ी चाह है। इसलिए तीन बार देहु कहा। पहिली स्तुति समाप्त हुई।

भव बारिधि कुंभज रघुनायक। सेवत सुलभ सकल सुखदायक ॥
मन संभव दारुन दुख दारय। दीनबंधु समता बिसतारय ॥२॥

अर्थ : हे रघुनायक ! आप ससार सागर के लिए अगस्त्य हैं। सेवक को सुलभ हैं और सब सुख देनेवाले हैं। मनसे उत्पन्न हुए दारुण दुखका नाश कीजिये। हे दीनबन्धो ! समताका विस्तार कीजिये।

व्याख्या : यद्यपि मनुष्यरूप सरकार का है परन्तु अति विस्तृत भवसागर के सोखने के लिए आप अगस्त्यरूप हैं। यद्यपि आपकी प्राप्ति अतिदुर्लभ है। यथा : अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। तथापि आप सेवक को सुलभ हैं। यथा : सेवत सुलभ सकल सुखदायक। प्रनत पाल सचराचर नायक। सेवक सुखद सुभग सब अंगा। और उसे सब प्रकार से सुख देते हैं। यथा : सहज बानि सेवक सुखदायक।

मन से जो दुःख उत्पन्न होते हैं वे बड़े कठिन है। यथा : जाने ते छीजहिं कछु पापी। नास न पावहिं जन परितापी। एक ब्याधि बस नर मरहिं ए असाधि बहु ब्याधि। पीडहिं सतत जीव कहुँ सो किमि लहै समाधि। सो आप इस दुःख का नाश कीजिये। आप दीनबन्धु हैं। मैं दीन हो रहा हूँ। आप समता का विस्तार कीजिये। भाव यह कि विषमता के कारण ही मानस रोग पीड़ा दे रहे हैं। समता के विस्तार से इनका आपही आप नाश हो जायगा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



आस। त्रास इरषादि निवारक। विनय बिबेक बिरति बिसतारक ॥
भूप मौलि मनि मडन धरनी। देहि भगति ससृति सरि तरनी ॥३॥

अर्थ हे आशा त्रास तथा ईर्ष्यादि के निवारण करनेवाले। विनय विवेक और विरति के विस्तार करनेवाले। पृथिवी को अलकृत करनेवाले राजाओ के शिरोमणि। ससार नदी क लिए नाव रूप भक्ति हमे दीजिये।

व्याख्या आप ईर्ष्यादि मनोविकार को दूर करनेवाले हैं। इष्ट प्राप्ति की आशा और अनिष्ट प्राप्ति का त्रास होता है। दूसरे के उत्कर्ष से ईर्ष्या होती है। जे पामर भये दास आस के ते सबही के चेरे। रघुपति कृपा आस जीति जिन ते सेवक हरि केरे। उत्थायोत्थाय बाद्धव्य महद्भयमुपस्थितम्। मरणव्याधिशोकाना किमद्य निपतिष्यति। मरण व्याधि और शोक किस समय आ पडेगा। इसका त्रास सभी का रहता है। ईर्ष्या के कारण बिना आग के ही मनुष्य जला करता है। सरकार की कृपा से ये सब दोष दूर हो जाते है। केवल दोषापनयन ही नही होता गुणाधान भी होता है। विनय विवेक और विरति का विस्तार होता है। बिनय बडा भारी गुण है। इसी से पात्रता होती है। यथा विनयात् याति पात्रताम्। बिना विवेक के तो मनुष्य आँख रहते अन्धा होता है। यथा तेहि करि विमल विवेक विलोचन। और विरति तो ज्ञान और योग का प्रधान साधन है। इन सब गुणो का विस्तार होता है। राम शब्द का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ तापनीय श्रुति मे किया गया है राजते यो महीस्थित। इसी बात को भूप मौलि मनि मडन धरनी कहकर स्पष्ट किया गया। अपने चरित्र से राजाओ को धर्ममार्ग का उपदेश देते हैं। यथा राज्याहार्णा महीभृता धर्ममार्गं चरित्रेण रातीति राम। सो हे रामजी। भक्ति दीजिये जो कि ससार सरिता के लिए तरणी रूप है। नाव पर आरूढ होकर मनुष्य नदी मे विहार करता फिरता है और उसे जल का स्पर्श नही होता। इसी प्रकार भक्त ससार मे रहते हुए भी निर्लेप रहता है। यहाँ तक दूसरी स्तुति है। तीसरी म हाथ लगाते हैं।

मुनि मन मानस हस निरतर। चरन कमल वदित अज सकर ॥
रघुकुल केतु सेतु स्रुति रक्षक। कालकर्म सुभाउ गुन भक्षक ॥४॥
तारन तरन हरन सब दूपन। तुलसिदास प्रभु त्रिभुवन भूपन ॥५॥

अर्थ हे मुनियो के मन रूपी मानससर के हस। आपके चरण कमल ब्रह्मदेव और शङ्कर से वन्दित हैं। आप रघुकुल को पताका हैं वेद रूपी पुल के रक्षक हैं काल कर्म स्वभाव और गुण के भक्षक हैं आप तारण तरण हैं और सब दूपणो के हरण करनेवाले हैं। तुलसीदास के प्रभु तीनो लोक के भूपण हैं।

व्याख्या सरकार मुनियो के मन रूपी मानससरोवर के हस हैं। निरन्तर वही निवास करते हैं। मुनियो के मानस की शोभा आप से है और स्वय आपकी उसमे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


विहार करने मे सुख है। चरणकमल की ऐसी महिमा है कि जगत् के कल्याण करनेवाल ब्रह्मदेव और शङ्कर अपने कल्याण के लिए उनकी वन्दना किया करते हैं।

रघुकुलकेतु कहने से रघुकुल मे अवतार कहा। चिन्मयेऽस्मिन् महाविष्णौ जाते दाशरथे हरौ। रघो कुलेऽखिल राति राजते यो महीस्थित । सेतु स्तुति रक्षक कहने से अवतार का कारण कहा और काल कर्म स्वभाव गुन भक्षक कहने से भव बन्धन का नाश करनेवाला कहा। काल कर्म गुण स्वभाव ही बन्धन है। इन्ही से बँधा हुआ जीव चौरासी लक्ष योनि मे फिरा करता है। इसके आप भक्षक हैं। अत जो तर गये हैं उनके तारनेवाले आप ही है। इसलिए तारण-तरण कहा। सरकार की कृपा से दूषण भूषण हो जाते हैं। यथा दूषन भे भूषन सरिस सुजस चारु चहुँ ओर। और ऐसे कृपा निधान हैं किन्तु आपको तुलसीदास ऐसे शठ की भी सेवा स्वीकार है। सरकार से ही तीनो लोक की शोभा है। अथवा तीनो लोक चरणचिह्न से अकित हैं। अत त्रिभुवन भूषण कहा। तीसरी स्तुति अधूरी ही रह गयी। आकाक्षा नही प्रकट कर सकें। अत इसका स्वरूप त्रिविक्रम सा है। जिन्होने सम्पूर्ण जगत् दो पैर से नाप लिया। तीसरा अधूरा ही रह गया। उससे राजा बलि को नापा।

दो० बार बार अस्तुति करि, प्रेमु सहित सिरु नाइ।
ब्रह्मलोक सनकादि गे, अति अभीष्ट बर पाइ ॥३५॥

अर्थ बार बार स्तुति करके और प्रेम के सहित वन्दना करके सनकादि मुनि अति अभीष्ट वर पाकर ब्रह्म लोक गये।

व्याख्या यह स्तुति सनकादि चारो भाइयो की है क्योकि बार बार स्तुति करना कहते हैं। स्तुति भी प्रेम सहित किया और प्रेम सहित प्रणाम किया। सरकार ने एवमस्तु नही कहा पर अति अभीष्ट वर जो प्रेमाभक्ति थी वह मिल गयी। अत ब्रह्मलोक चल गये। यह श्रवण नक्षत्र है। इसम तीन तारे चमकते हैं १ प्रेम भगति अनपायिनी देहु २ देहु भगति और ३ देहि भगति ये तीन तारे हैं। सेवक सुलभ सकल सुखदायक से फलश्रुति कहा। यथा राम भगतजन जीवन धन से।

सनकादिक बिधिधि लोक सिधाये। भ्रातन्ह राम चरन सिर नाये ॥
पूछत प्रभुहि सकल सकुचाही। चितवहि सब मारुत सुत पाही ॥१॥

अर्थ सनकादिक तो ब्रह्मलोक गये। भाइयो ने रामजी के चरणो म सिर नवाया। प्रभु से पूछते हुए सब सङ्कोच करते थे। सब हनुमान्जी की ओर देखने लगे।

व्याख्या पूर्व के दोहा का यह पद पुरइन है सनकादिक विधि लोक सिधाये। सरकार ने सनकादिक के आने पर उनका बडा मान किया और उन्हे सन्त समझकर सन्त की स्तुति भी की। इसी से भाइयो के हृदय म सन्त के लक्षण जानने की उत्कण्ठा हुइ। अत तद्विषयक प्रश्न करने के लिए भाइयो ने प्रणाम किया। सरकार

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


ने जब उन लोगो की ओर देखा तो नीचे देखने लगे। पूछने मे सङ्कोच है क्योंकि सन्त शब्द इतना प्रसिद्ध है कि उसके लक्षण पूछने मे ढिठाई समझी जा सकती है। हनुमान्‌जी के लिए सब माफ है। अतः सब लोग हनुमान्‌जी की ओर देखते हैं कि हम लोगो की ओर से तुम उत्तर दो।

सुनी चहहि प्रभु मुख कै बानी। जो सुनि होइ सकल भ्रमहानी॥
अंतरजामी प्रभु सभ जाना। बूझत कहहु काह हनुमाना॥२॥

अर्थ : प्रभु के श्रीमुख की वाणी सुनना चाहते है जिसके सुनने से सम्पूर्ण भ्रम की हानि होती है अन्तर्यामी प्रभु ने सब जान लिया। बोले हनुमान्‌जी! कहो क्या बात है।

व्याख्या : प्रभु मुख कमल विलोकत रहही। कबहुँ कृपाल हमहि कछु कहही। अत सबको श्रीमुख के वचन सुनने की अभिलाषा रहती है। इस समय चित्त मे जिज्ञासा भी उत्पन्न हो गयी है। सकल भ्रम की हानि तो प्रभु की वाणी से ही होगी। उस वाणी मे ही ऐसा प्रभाव है। उपदेश वैचित्र्य नही। वह तो वैसा ही होता है जैसा शास्त्र मे लिखा है।

अन्तर्यामी ईश्वर से कुछ छिपा नही है। यथा : तुम से कछु न छिपी करुना निधि तुम हो अतरजामी। यह जान लिया कि सबको इच्छा है कि हनुमान्‌जी वार्तारम्भ करें। अत. हनुमान्‌जी से पूछते हैं कि तुम ही कहो कि ये लोग क्या कहना चाहते हैं बडे भाई और छोटे भाइयो मे इतना प्रश्रय : अदब होना। यह भारत की सस्कृति है।

जोरि पानि कह तब हनुमंता। सुनहु दीन दयाल भगवंता॥
नाथ भरत कछु पूछन चहही। प्रस्न करत मन सकुचत अहही॥३॥

अर्थ : हनुमान्‌जी ने तब हाथ जोड़कर कहा कि हे दीनदयाल भगवान् सुनो। हे नाथ! भरतजी कुछ पूछना चाहते है पर प्रश्न करने मे मन सङ्कुचित हो रहा है।

व्याख्या : हनुमान्‌जी हाथ जोडकर बोले। साक्षात् प्रश्न करने पर चुप नही रह सकते। दीनदयाल भगवान् कहकर सम्बोधन किया। सोचा कि मेरे ऊपर इतनी कृपा कि जहाँ भाई नही बोल सकते वहाँ मेरे बोलने का अधिकार हुआ। निदरि गनी आदर गरीब पै रीति सदा चलि आई। अतः दीनदयाल कहा और अन्तर्यामी होने से भगवान् कहा।

हनुमान्‌जी ज्ञानिनामग्रगण्य हैं। तुरन्त समझ गये कि सब भाइयो का प्रष्टव्यविषयक एक ही है। अभी सन्त का आगमन हुआ है और सरकार ने इतना आदर किया है। अत· सन्त के विषय मे ही सबकी जिज्ञासा है। ऐसे अवसर मे मुख्य प्रश्नकर्त्ता भरतजी हैं। अत. कहते हैं कि नाथ! भरतजी कुछ पूछना चाहते हैं पर प्रश्न करने मे सङ्कोच कर रहे है। कारण यह है कि वह प्रश्न ऐसा है कि जिसे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुनकर सरकार कह सकते हैं कि इसे तो तुम जानते हो। फिर व्यर्थ प्रश्न क्यो कर रहे हो।

तुम्ह जानहु कपि मोर सुभाऊ। भरतहि मोहि कछु अतर काऊ ॥
सुनि प्रभु बचन भरत गहे चरना। सुनहु नाथ प्रनतारति हरना ॥४॥

अर्थ : हनुमान्‌जी! तुम तो मेरे स्वभाव को जानते हो। क्या भरत मे और मेरे मे कोई अन्तर है। प्रभु का वचन सुनकर भरतजी ने चरण पकड़ लिया और बोले हे प्रणतार्तिहरण नाथ!

व्याख्या : सरकार ने कहा कि हनुमान्‌जी! तुम मेरे स्वभाव को जानते हो कि मुझे भरत स्वभाव से ही प्रिय हैं। यथा : राम प्रान प्रिय नाथ तुम्ह सत्य बचन मम तात। जो हनुमान्‌जी ने भरतजी से कहा था उसी की पुष्टि हो रही है। प्राणप्रिय से क्या अन्तर है। सङ्कोच तो अन्तर होने से होता है। जब अन्तर ही नही तब जो चाहो सो बोलो। दूसरी बात यह है कि जब भरत मे और मुझमे अन्तर ही नही तब प्रश्न का उद्‌गम शोक मोह सन्देह कहाँ से होगा।

भरतजी ने यह वचन सुनकर सरकार का चरण पकड लिया। भाव यह कि इन चरणो के आश्रय से ही मेरा कल्याण है अथवा चरण पकडने से प्रणाम अभिप्रेत है। भाव यह कि मैं प्रणत हूँ और सरकार प्रणतार्तिनाशन स्वामी हैं।

दो० नाथ न मोहि संदेह कछु, सपनेहु सोक न मोह।
केवल कृपा तुम्हारिहि, कृपानंद संदोह ॥३६॥

अर्थ : हे नाथ! मुझे कुछ भी सन्देह नही है और शोक मोह तो सपने मे भी नही है। हे कृपानन्द सन्दोह! यह केवल आपकी कृपा का फल है।

व्याख्या : शोक मोह ससारवृक्ष का बीज है। इन्ही के होने से सन्देह भी होता है। सो भरतजी कहते हैं कि ये सब मुझे कुछ भी नही है। बिना सन्देह हो बोध की दृढता के लिए पूछता हूँ। मुझ मे कोई साधन नही है पर सरकार के कृपा की सामर्थ्य ऐसी है कि मुझे ससार की बाधा नही है। सब लोग सरकार को चिदानन्द सन्दोह कहते हैं। पर भरतजी कृपानन्द सन्दोह कहते हैं। निर्गुण ब्रह्म चिदानन्द सन्दोह हैं। पर सगुण ब्रह्म तो कृपानन्द हैं। परोपकारकैवल्ये तोलयित्वा जनार्दनः। गुर्वीमुपकृति मत्वा अवतारान् दशाग्रहीत्।

करौ कृपानिधि एक ढिठाई। मैं सेवक तुम्ह जन सुखदाई ॥
सतन कै महिमा रघुराई। बहुविधि वेद पुरानन्ह गाई ॥१॥

अर्थ : हे कृपानिधे! मैं एक ढिठाई करता हूँ। मैं सेवक हूँ और आप भक्तो के सुख देनेवाले हैं। हे रघुराई! सन्तो की महिमा बहुत भाँति से वेद पुराणो मे गायी गयी है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या भरतजी कहते है मैं ढिठाई करता हूँ। आप क्षमा करेंगे। आप कृपा के समुद्र है। कृपा की तरङ्गें उठा करती हैं। मेरी ढिठाई को उन्ही तरङ्गो से ढक लेंगे। जन सुखदायी स्वामी से सेवक ढिठाई कर बैठता हूँ। यथा . आरति मोर नाथ कर छोहू। दुहु मिलि कीन्ह ढीठ हठि मोहू।

वेद पुराणो मे सन्तो की महिमा अनेक प्रकार से वर्णित है। क्योकि : खल अघ अगुन साधु गुन गाहा। उभय अपार उदधि अवगाहा। जितने सद्गुण हैं सो सब सब साधु के हैं। अत वेद पुराणो ने उन्ही का गान किया है।

श्री मुख तुम्ह पुनि कीन्हि बडाई। तिन्ह पर प्रभुहि प्रीति अधिकाई ॥
सुना चहौ प्रभु तिन्ह कर लक्षन। कृपासिधु गुन ग्यान बिचक्षन ॥२॥

अर्थ तिस पर आपने श्रीमुख से उनकी बडाई की है। उनपर सरकार की प्रीति भी अधिक है। हे प्रभो! मैं उनका लक्षण सुनना चाहता हूँ। आप कृपा के समुद्र और गुण तथा ज्ञान मे निपुण हैं।

व्याख्या वेद पुराण मे तो महिमा कथित ही है। तिसपर सरकार ने अभी उनकी कितनी बडाई की है। उनके आने से अपने को धन्य माना। उनके दर्शन से पाप का नाश कहा। उन्हे अपवर्ग का द्वार कहा। उनके बैठने के लिए अपना उत्तरीय बिछा दिया।

अव्याप्ति अतिव्याप्ति और असम्भव दोष वर्जित जो वर्णन है उसी को लक्षण कहते हैं। भरतजी कहते हैं कि मैं सन्तो का लक्षण सुनना चाहता हूँ जिसमे सन्तो की पहिचान मे भ्रम न हो। सरकार कृपासिन्धु हैं। कृपा करके बतलाइये। सरकार गुणज्ञान म विचक्षण हैं। दूसरा इस बात को कैसे कहेगा। क्योकि नीति प्रीति परमारथ स्वारथ। कोउ न राम सम जान जथारथ।

सत असत भेद बिलगाई। प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई ॥
संतन्ह के लच्छन सुनु भ्राता। अगिनित स्रुति पुरान बिख्याता ॥३॥

अर्थ सन्त और असन्त के भेद को अलग अलग करके हे प्रणतपाल मुझे समझाकर कहिये। हे भाई सन्तन के लक्षण सुनो जो कि असख्य श्रुति तथा पुराणो मे प्रसिद्ध है।

व्याख्या विधि प्रपञ्च गुण और अवगुण मिलाकर बना है। अत गुण दोष का विवेचन बडा कठिन है। भरतजी कहते हैं कि सन्त और असन्त का भेद अलग अलग समझाकर मुझे बतलाइये। आप उसका विवेक कर सकते हैं। अलग अलग गुण दोष को किसी ने देखा नही। जहाँ देखिये वहाँ गुण मे दोष का अनुवेध और दोष मे गुण का अनुवेध देखा जाता है। अत शीघ्र समझ में नही आता। सरकार प्रणतपाल हैं। मैं प्रणत हूँ मुझे समझाकर कहिये।

भरतजी स्वामीभाव रखते हैं। सरकार भ्रातृभाव रखते हैं। अत उत्तर देते हुए भाई सम्बोधन देते हैं। वेदो का कोई अन्त नही है। यथा अनन्ता वै वेदा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भरद्वाज। भगवान् इन्द्र ने कहा कि भरद्वाज वेद का तो अन्त नही है। सो सब मे साक्षात् या परम्परा करके सन्त का ही निरूपण है। पुराणो म भी वही बात है पुराण श्रुति के उपोद्बलक है।

सत असतन्हि कै असि करनी। जिमि कुठार चदन आचरनी ॥
काटै परसु मलय सुनु भाई। निज गुन देइ सुगध बसाई ॥४॥

अर्थ सन्त और असन्त की ऐसी करनी है जैसा कुठार और चन्दन आचरण करते हैं। हे भाई। परशु चन्दन को काटता है और वह अपना गुण सुगन्ध उसमे बसा देता है।

व्याख्या सन्त और असन्त का पहिचान उनकी करणी से होता है। कुठार की भाँति असन्त आचरण करते हैं और चन्दन की भाँति सन्त का आचरण होता है। कुठार चन्दन को काटता है। काटना कष्ट देने की पराकाष्ठा है। सन्त और असन्त दोनो को जड से उपमा दिया। भाव यह कि दोनो जड की भाँति आचरण करते हैं मानो दु ख सुख इन्हे है ही नही। अथवा भाव यह है कि सन्त असन्त के किसी जाति विशेष मे होने का नियम नही है। जड मे भी हो सकते हैं। सन्त वेष सन्त होने का अव्यभिचारी लक्षण नही हैं। सन्त की करणी होना अव्यभिचारी लक्षण है। यथा उमा संत कै इहै बडाई। मद करत जो करै भलाई।

कुठार चन्दन को काटता है। चन्दन काटना जानता ही नही। चन्दन ने कुठार का कुछ बिगाडा नही। चन्दन सबको प्रिय है। इसलिए कुठार उसे काटता है। अपने स्वभाव को कुठार नही छोडता और न चन्दन अपने स्वभाव को छोडता है। अपना गुण कुठार को यथासम्भव दे देता है। कुठार अपना दोष चन्दन को नही दे सकता।

दो ताते सुर सीसन्ह चढत, जग वल्लभ श्री खड।
अनल दाहि पीटत घनहि, परसु वदन यह दड ॥३७॥

अर्थ इसलिए 'देवताओ के सिर पर चढता है। चन्दन जगत् को प्यारा है और आग म तपाकर हथौडे से पीटते हैं। कुल्हाडे के मुख फल को यह दण्ड जाता है।

व्याख्या चन्दन मे ऐसी शान्ति सहनशीलता और परोपकार है। इस कारण देवताओ के सिर पर चढता है। उसके सिर पर चढाने स दवता प्रसन्न होत हैं। संसार को प्यारा है। लक्ष्मी का अश कहा जाता है। कुठार की करणी कुठार की दुर्दशा का कारण है। उसके मुख फल को पहिले आग मे तपाया जाता है। पीछे निहाई पर रखकर हथौडे से पीटते हैं। यह दण्ड कुठार को मिलता है।

बिषय अलपट सील गुनाकर। पर दुख दुख सुख सुख देखे पर ॥
सम अभूत रिपु बिमद बिरागी। लोभामरष भय त्यागी ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : विषय से तृष्णा रहित शील और गुणो की खान है। पराया दु ख देखकर दु.खी और सुख देखकर सुखी होते हैं। समान भाव रखनेवाले अजातशत्रु मद से रहित और वैराग्यवान् होते हैं तथा लोभ, अमर्ष, हर्ष और भय को त्यागे रहते हैं।

व्याख्या : उमा सन्त कै इहै बड़ाई। मंद करत जो करै भलाई। यह सन्त का पहिला लक्षण है। अब दूसरा करते हैं। सन्त लोग भी जीवन धारण के लिए कुछ विषय का सेवन करते ही हैं। पर उसमे आसक्त नही होते। इसलिए विषय अलम्पट कहा। सेवत बिषय विवर्ध जिमि नित नित नूतन मार। यह बात उसमें नही होती। सदाचार और सद्‌गुण के तो वे खानि ही होते हैं। खान मे कितनी वस्तु होती है, सो गिनायी नही जा सकती। इसी भाँति सन्त के गुणो की सख्या नही है। यथा : सुनु मुनि साधुन के गुन जेते। कहि न सकहिं सारद स्रुति तेते। दु शील निर्गुणी ऐसे नही हो सकते। वे अपने दु ख सुख को नही गिनते। पराये सुख से सुखी और पराये दु ख से दु खी होते हैं। यथा : पर दु ख द्रवहिं सत सुपुनीता।

सम से शान्ति कहा। यथा : तुलसी जो पानी भया, बहुरि न पावक होय। वे अजातशत्रु होते हैं उनका कोई शत्रु नही होता। वे सारे ससार को निज प्रभुमय देखते हैं। यथा : निज प्रभु मय देखहिं जगत, कासन करहिं बिरोध। न उन्हे मद होता है न राग होता है। उन्हे विराग का भी मद नही। वे सभी विकार से रहित होते हैं। लोभ अमर्ष हर्ष और भय को उन लोगो ने त्याग किया है।

**कोमल चित दीनन्ह पर दाया। मन बच क्रम मम भगति अमाया ॥**
**सबहि मान प्रद आपु अमानी। भरत प्रान सम मम ते प्रानी ॥२॥**

अर्थ : उनका चित्त कोमल होता है। दीन पर दया करते हैं। मनसा वाचा कर्मणा मुझमे निष्कपट भक्ति करते हैं। सबको मान देते हैं और स्वय मान से दूर रहते हैं। हे भरतजी ! ऐसे प्राणी मुझे प्राण के समान हैं।

व्याख्या : उनका ऐसा कोमल चित्त होता है कि दूसरे का दु ख देख नही सकते। यथा : सत हृदय नवनीत समाना। कहा कबिन्ह परि कहै न जाना। निज परिताप द्रवै नवनीता। पर दु ख द्रवहिं सत सुपुनीता। अत. दीनो पर उनकी सदा दया रहती है। कहा गया है कि कपट रहित प्रेम मनुष्य लोक मे नही होता। यथा : कैतवरहितं प्रेम न भवति मानुषे लोके। यदि भवति कस्य विरहो विरहे सत्यपि को जीवति। पर सन्तो के भगवच्चरणारविन्द मे मनसा वाचा कर्मणा कैतव रहित प्रेम होता है।

वे लोग सबके सम्मान करनेवाले होते हैं। स्वय मान नही चाहते। यथा : मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवत। भरतजी ने कहा था : तिन पर प्रभुहि कृपा अधिकाई। उसी बात की पुष्टि करते हुए सरकार कहते हैं कि ऐसे लोग मुझे प्राण के समान प्रिय है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


विगत काम मम नाम परायन। सान्ति बिरति बिनती मुदितायन ॥
सीतलता सरलता मयत्री। द्विज पद प्रेम धरम जनयित्री ॥३॥

अर्थ : कामना रहित होकर मेरे नाम मे लगे रहते हैं। शान्ति वैराग्य विनय और मुदिता के तो मानो घर ही है। शीतलता सरलता मैत्री और धर्म को उत्पन्न करनेवाली ब्राह्मणों के चरणो मे प्रीति।

व्याख्या : अब तीसरा प्रकार कहते हैं। विगत काम से विषय अलम्पट कहा। ये नाम के उपासक हैं। इनका सिद्धान्त है ब्रह्म राम ते नाम बड बरदायक बरदानि। रामचरित सत कोटि मँह लिय महेस जिय जानि। शान्ति से शम विरति से वैराग्य कहा। विनती से सबहि मान प्रद आपु अमानी कहा। मुदितायन से पर दुःख दुःख सुख सुख देखे पर कहा।

शीतलता से : तुलसी जो पानी भया बहुरि न पावक होइ कहा। सरलता से महात्मा होना कहा। यथा : मनस्येकं वचस्येक कर्मण्येकं महात्मनाम्। मैत्री से धर्मात्माओं पर प्रेम कहा। द्विजपद प्रीति से हरितोषण व्रत कहा। यथा : हरितोषन व्रत द्विज सेवकाई। पुन्य एक जग महु नही दूजा। मन क्रम बचन विप्रपद पूजा। जिसे ब्राह्मण के चरण में प्रीति ही नही वह धर्मात्मा हो नही सकता।

ये सब लच्छन बसहिं जासु उर। जानहु तात संत संतत फुर ॥
सम दम नियम नीति नहि डोलहिं। परुष बचन कबहूँ नहि बोलहिं ॥४॥

अर्थ : ये सब लक्षण जिनके हृदय मे बसते हैं हे तात! उसे सच्चा सन्त जानना। शम दम नियम और नीति से कभी चलायमान नहीं होते और कठोर वचन कभी बोलते नहो।

व्याख्या : ये आठो सब सन्त के लक्षण हैं। असन्त इनकी नकल नही कर सकता। तिलक छाप तो वह भी लगा लेता है। सन्तों के हृदय में उपर्युक्त लक्षण बसते हैं। कभी इनका वियोग नही होता। नीके हैं साधु सबै तुलसी पै तेइ रघुबीर के सेवक साँचे। कवितावली ७ ११८ :

अब चौथा प्रकार कहते हैं। शम अन्तरिन्द्रिय दमन को कहते हैं। दम बाह्येन्द्रिय दमन को कहते हैं। शौचसन्तोषतपःस्वाध्यायेश्वरप्रणिधानानि नियमाः। नीति से सदाचार अथवा न्यायप्रियता कहा। यथा : नीति विरोध मोहाय न मोही। कठोर वचन तो बोलते ही नही। क्रुद्धयन्त न प्रतिक्रुध्येत् आक्रुष्टः कुशल वदेत्। क्रोध के बदले में क्रोध न करे। गाली देनेवाले का भी कल्याण मनावे।

दो. निंदा अस्तुति उभय सम, ममता मम पद कंज।
ते सज्जन मम प्रान प्रिय, गुन मंदिर सुख पुंज ॥३८॥

अर्थ : जिन्हें निन्दा और स्तुति दोनों बराबर और जिनकी मेरे चरणकमलों में ममता है। ऐसे गुणमन्दिर सुखपुञ्ज सज्जन मुझे प्राण प्रिय होते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : जिन्हे निन्दा या स्तुति सुनकर चित्त पर किसी प्रकार का प्रभाव नही पडता। संसार में कही ममता नही केवल सरकार के चरणों में जिन्हें ममता है। यथा : सब कर ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरि डोरी। ऐसे सज्जन गुणमन्दिर सुखपुञ्ज भगवान् में ममता करने से स्वयं गुणमन्दिर सुखपुञ्ज हो जाते हैं। उन पर भगवान् की प्राण के समान ममता होती है।

इस प्रकरण में भगवान् ने तीनों प्रकार के सन्तों अर्थात् भक्तियोगी ज्ञानयोगी और कर्मयोगियो के लक्षण कहे। विषय अलंपट सील गुनाकर से लेकर भरत प्रानसम मम ते प्रानी तक भक्तियोगियों का वर्णन है। उसमे कहा भी गया है कि : मम वच क्रम मम भगति अमाया। और बिगत काम मम नाम परायन से लेकर : सन्त सतत फुर तक ज्ञानी भक्त का वर्णन है। क्योंकि उनका परम शरण नाम बतलाया गया है और नाम से ज्ञानमार्ग की प्राप्ति होती है। यथा : ज्ञानमार्गं तु नामतः। रामतापनीये। तथा संत सतत फुर कहकर वही भाव द्योतित किया। जो कि : ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम् कहकर प्रकाशित किया गया है। इसी भाँति: सम दम नियम नीति नहि डोलहि। से : गुन मंदिर सुख पुंज कर्मयोगी भक्त का वर्णन है। क्योकि नीति नहि डोलहि तथा गुणमन्दिर शब्दो से उनका क्रियाकौशल द्योतित करते हैं। योगः कर्मसु कौशलम्।

सुनहु असंतन केर सुभाऊ। भूलेहु संगति करिअ न काऊ॥
तिन्हकर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहि घालै हरहाई॥१॥

अर्थ : असन्तो का स्वभाव सुनो। भूलकर भी उनका साथ कभी न करना। उनका साथ सदा दु:खदायी है। जैसे हडहा गाय कपिला का नाश करती है।

व्याख्या : यहाँ तक सन्तो का लक्षण कहा। अब: संत असंत भेद बिलगाई। प्रनतपाल मोहि कहहु बुझाई। इस प्रश्न का उत्तर दे रहे हैं। यहाँ स्वभाव ही लक्षण है। लक्षण कहने के पहले सावधान करते हैं कि लक्षण घटता है या नही इस बात के जानने के लिए भी साथ न करना। चूक से संगति हो जाय तो लक्षण मिलते दूर हो जाना।

असन्तो का सग सदा अर्थात् दोनो लोको में दु:ख देनेवाला है। सग करने से उनके साथ रहना ही होगा। तब वे उसी भाँति विपत्ति मे डालेंगे जैसे हड़हा के साथ कपिला का नाश होता है। हड़हा दुष्ट गाय दूध न दे। लात भी मारे। रात को दूसरो का खेत चरे। यह कथा प्रसिद्ध है कि हड़हा फुसलाकर कपिला को खेत चरने ले गयी। खेत के मालिक को आते देखकर हडहा तो भाग गयी और कपिला बिचारी भाग न सकी और पकडी गयी।

खलन्ह[1] हृदय अति ताप बिसेखी। जरहिं सदा पर संपति देखी॥
जहँ कहुँ निंदा सुनहि पराई। हरषहि मनहु परी निधि पाई॥२॥

१. यहाँ उल्लास. गुण से दोष अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : खलों के हृदय में अत्यन्त विशेष ताप रहता है। सदा परायी सम्पत्ति देखकर जला करते हैं। जहाँ कहीं परायी निन्दा सुनते हैं तो ऐसे हर्षित होते हैं मानो पड़ी हुई निधि मिल गयी।

व्याख्या : संसार का ताप तो सभी को सन्तप्त करता है। पर उनमें विशेषता है वे परायी सम्पत्ति देखकर जला करते हैं। संसार में सम्पत्तिवालों की कमी नहीं है। इसलिए खलों को अति विशेष ताप होता है। उनके दुःख का पारावार नहीं।

बड़े परिश्रम करने पर भी निधि का इकट्ठा होना दुर्लभ है। सो यदि अनायास पड़ी हुई निधि किसी को मिल जाय तो उसे बड़ा भारी हर्ष होता है। परिश्रम कुछ न पड़ा और चिराभीप्सित पदार्थ की प्राप्ति हो गयी। वैसी ही प्रसन्नता खलों को परायी निन्दा सुनने से होती है। दूसरे को अपयश देने में उन्हें बड़ा परिश्रम करना पड़ता है। तब जाकर कहीं उसकी निन्दा प्रख्यात होती है। सो उन्हें परिश्रम भी कुछ नहीं करना पड़ा और दूसरे की निन्दा सुनने में आ गयी। इससे उनके आनन्द का ठिकाना नहीं।

काम क्रोध मद लोभ परायन। निर्दय कपटी कुटिल मलायन ॥
बयरु अकारन सब काहू सों। जो कर हित अनहित ताहू सो ॥३॥

अर्थ : काम क्रोध मद और लोभ ही उनका परम शरण है। वे निर्दयी कपटी कुटिल और मल के घर हैं। निष्कारण वैर सबसे रखते हैं। जो हित करता है उससे भी वैर रखते हैं।

व्याख्या : खलों का परम शरण काम क्रोध और लोभ है : जे ताकहिं पर धन पर दारा। पर धन और परदारा ही उनका परम लक्ष्य है। दया के समान दूसरा धर्म नहीं। सो दया उनके पास नहीं फटक सकती। परधन परदारा की प्राप्ति सरलता से नहीं होती। जिससे उनकी प्राप्ति होती है वह कपट है। कपट सरल पुरुष कर नहीं सकता। वह तो कुटिल से ही सम्भव है। सो उन्हें कपट और कुटिलता का घाटा नहीं है। लोभ परायण होने से मलायन हैं। लोभी क्या नहीं करता।

उनको वैर करने के लिए कारण नहीं ढूँढ़ना पड़ता। प्राणीमात्र उन्हें वैरी मालूम पड़ते हैं। वे आजन्मतः परद्रोहरत हैं। वे सहज सुहृद से भी वैर करते हैं। दुःख देने का उनका स्वभाव है। उसमें उन्हें आनन्द मिलता है। बिना कारण कार्य होता नहीं। पर वे ऐसे समर्थ हैं कि बिना कारण वैर पैदा कर लेते हैं।

झूठइ लेना झूठइ देना। झूठहि भोजन झूठ चबेना ॥
बोलहिं मधुर बचन जिमि मोरा। खाहि महा अहि हृदय कठोरा ॥४॥

अर्थ : झूठ ही ग्रहण करते हैं। झूठ ही देते हैं। झूठ ही उनका भोजन है और चर्वण भी झूठ ही है। मोर की भाँति मीठी वाणी बोलते हैं और हृदय ऐसा कठोर है कि बड़ा साँप भी खा जाते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : लेना देना का अर्थ व्यवहार है। सब व्यवहार उनका झूठा है। सत्य के निकट ही नही जाते। बिना झूठ के उनका पेट नही भरता। न मनोविनोद होता है। लेंगे तो झूठ कहकर। कभी सच्ची बात न कहेंगे। देंगे तब भी झूठ बात कहकर। झूठ से ही जीते हैं झूठ से ही तोष है।

सम्पूर्ण शरीर पर सज्जन के चिह्न हैं। देखे सो मोहित हो जायँ और बोली भी बडी मीठी परन्तु मन घोर है। उनकी उपमा मोर से दी गयी है। जिसका ऊपरी स्वरूप बड़ा सुन्दर होता है। पर हृदय ऐसा कठोर है कि विषधर सर्प खाकर पचा जाता है।

दो० परद्रोही परदार रत, परधन पर अपवाद।
ते नर पावर पापमय, देह धरे मनुजाद ॥३९॥

अर्थ जो परद्रोही, परदार, परधन और पर अपवाद मे रत हैं। वे मनुष्य पामर पापमय हैं। वे मनुष्य रूप मे राक्षस हैं।

व्याख्या मनुष्य के खानेवाले को मनुजाद कहते हैं। यथा . खल मनुजाद द्विजामिष भोगी। वे यदि मनुष्य रूप धारण कर लें तो उनका पहिचानना कठिन है। सरकार उनकी पहिचान बतलाते हैं कि ये लक्षण जिनमे हो उनसे सावधान रहना। वे ही नरदेह धरे मनुजाद हैं। जो दूसरे के द्रोह मे दत्तचित्त रहता हो। दूसरे की स्त्री और धन मे जो रत हो। जो दूसरे की निन्दा करने मे सुख मानता हो। वह वस्तुत मनुजाद है। राक्षस है। केवल शरीर उसका मनुष्य सा है। यथा . करहिं उपद्रव असुर निकाया। नाना रूप धरहिं कर माया।

लोभइ ओढन लोभइ डासन। सिस्नोदर पर जमपुर त्रास न ॥
काहू के जौं सुनहिं बडाई। स्वास लेहिं जनु जूडी आई ॥१॥

अर्थ उनका लोभ ही ओढना और लोभ ही बिछौना है। वे लिङ्ग और पेट मे ही लगे रहते हैं। उन्हें यमपुर का डर नहीं होता। यदि किसी की बडाई सुने तो ऐसा श्वास लेते हैं मानो उन्हे जडैया बोखार आगया हो।

व्याख्या शयन काल मे भी उन्हे लोभ नही छोडता। लोभ मे ही उन्हे विश्राम मिलता है। सब बातें ही उनकी विलक्षण हैं। उनका भोजन विचित्र। उनका विश्राम विचित्र। दिन रात जिह्वा और उपस्थ के फेर मे पडे रहते हैं। उन्हे यमपुर का भय नही है। वे कहते हैं कि यमपुर की कल्पना झूठी है। मानो उनके न मानने से यमपुर का अस्तित्व ही लुप्त हो जायगा।

दूसरे की निन्दा सुनने से उन्हे बडा हर्ष होता है। यदि कही उन्हे दूसरे की प्रशंसा सुनायी पडे तो उन्हे बडा दाह होता है। कुछ कर सकते नही। बडाई करने-वाले का पक्ष प्रबल होता है तो लम्बी लम्बी साँस लेने लगते हैं। विकल हो जाते हैं। उनकी दशा ऐसी हो जाती है मानो उन्हे जडैया बोखार आगया हो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


जब काहू कै देखैं बिपती । सुखी भये मानहुँ जग नृपती ॥
स्वारथ रत परिवार बिरोधी । लम्पट काम लोभ अति क्रोधी ॥२॥

अर्थ : यदि किसी की विपत्ति देखें तो ऐसे सुखी हो मानो उन्हे संसार भर का राज्य मिल गया हो। वे स्वार्थ मे लगे हुए परिवार के विरोधी होते हैं। वे काम लोभ मे आसक्त अत्यन्त क्रोधी होते हैं।

व्याख्या : निन्दा सुनने से तो निधिप्राप्ति का उन्हे सुख होता है और यदि कही किसी की विपत्ति देखने का सौभाग्य हो जाय तो ऐसे कृतकृत्य हो जाते हैं मानो उनको ससार का एकच्छत्र राज्य मिल गया। अपने सुख से सुखी नही दूसरे के दु:ख से ही उन्हे सुख मिलता है। विचित्र जीव होते हैं।

वे सीधे सीधे अपना स्वार्थ देखते हैं। परिवार का स्वार्थ एक दूसरे पर निर्भर रहता है। इसलिए वे परिवार के विरोधी होते हैं। परिवार के भी धन और स्त्री हरण मे उन्हे हिचक : आगा पीछा नही होता। तनिक सी भी अपनी हानि उन्हे सह्य नही है। अत. क्रोध की अति मात्रा उनमे होती है।

मातु पिता गुरु बिप्र न मानहिं । आपु गये अरु घालहिं आनहिं ॥
करहिं मोहवस द्रोह परावा । संत सग हरि कथा न भावा ॥३॥

अर्थ : माँ बाप गुरु और ब्राह्मण को नही मानते। आप तो नष्ट ही हैं दूसरे को भी नष्ट करते हैं। मोहवश दूसरे से द्रोह करते हैं। उन्हे अच्छो का साथ और भगवान् की कथा अच्छी नही लगती।

व्याख्या : माता पिता और आचार्य ये तीनो गुरु हैं। इन्हे देवता मानना चाहिए। वेद कहते हैं मातृ देवो भव। पितृ देवो भव। आचार्य देवो भव। सब वर्णों के ब्राह्मण गुरु होते हैं। उनकी सेवा करना हरितोषण व्रत है। सो वे किसी को नही मानते। सन्मार्ग से पतित हो गये हैं और अनेक युक्तियाँ देकर दूसरो को भी ऐसा पाठ पढाते हैं कि वह भी उन्ही की भाँति पतित हो जाय।

दूसरे का द्रोह अज्ञान के वश होकर करते हैं। उन्हे इस बात का ज्ञान नही है कि परद्रोह बडा पाप है। *अथवा निष्काम* द्रोह करते हैं विचार नही करते *कि* द्रोह का कोई कारण नही है। खलो का यह प्रधान लक्षण है कि उन्हे सन्त का सङ्ग और भगवान् की कथा अच्छी नही लगती। जिन्हे सन्त का सङ्ग न रुचे भगवत्कथा मे जिसकी प्रीति न हो वे असन्त है। इसमे सन्देह नही। यथा ' जौ करि कष्ट जाइ पुनि कोई। जातहि नीद जुडाई होई। जडता जाड बिषम उर लागा। गयेहुँ न मज्जन पाव अभागा।

अवगुन सिंधु मंद मति कामी । वेद विदूषक पर धन स्वामी ॥
बिप्र द्रोह सुर द्रोह बिसेषा । दंभ कपट जिअ धरे सुवेषा ॥४॥

अर्थ : वे अवगुण के समुद्र होते हैं। उनकी बुद्धि मन्द होती है। वे कामी वेदो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



की खिल्ली उडानेवाले पराये धन के स्वामी होते हैं। वे विशेष रूप से ब्राह्मण द्रोह और देव द्रोह करते हैं। उनके हृदय मे तो दम्भ कपट रहता है। पर वेष अच्छा बनाये रहते है।

व्याख्या : अवगुण के तो समुद्र ही हैं। उन्ही से निकलकर अवगुण संसार मे फैला है। वे मन्दमति हैं। अवसर चूक रहे है। फिर मनुष्य देह नही मिलने की। विपयी हैं। विषय सुख को ही सुख सर्वस्व मान रक्खा है। भांडो की भांति वेद की दिल्लगी उड़ाया करते हैं। वेद पाठ का नकल करते हैं और दूसरे का धन तो मानो उन्ही का है। वे द्रोही तो सबके होते हैं पर ब्राह्मण और देवता पर उनकी अधिक चोट होती है। ब्राह्मण और देवता पर श्रद्धा रहने से ही ससार अधोगति प्राप्ति से बच सकता है। ब्राह्मण द्रोह और देव द्रोह करना और विश्व द्रोह करना एक ही बात है। क्योकि ऐसा करने से दैवी सहायता मिलनी बन्द हो जाती है और ससार विपत्ति के गर्त मे जा पडता है। बाहर से साधु वेष बनाये हुए हैं। पर भीतर उनके दम्भ और कपट भरा हुआ है।

दो. ऐसे अधम मनुज खल, कृत जुग त्रेता नाहि।
द्वापर कछुक बृंद बहु, होइहहि कलिजुग माहि ॥४०॥

अर्थ : ऐसे अधम खल मनुष्य सत्ययुग और त्रेता मे नही होते। द्वापर मे थोडे से ऐसे होते हैं और इनकी बहुतायत कलियुग मे होती है।

व्याख्या : ऐसे अधम खल राक्षसो मे भले ही हो पर मनुष्यो मे ऐसे सत्ययुग और त्रेता मे नही होते। क्योकि ये दोनो युग उनकी उत्पत्ति के अनुकूल नही है। यथा : सुद्ध सत्त्व समता बिग्याना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना। सत्व बहुत रज कछु रति कर्मा। सब बिधि सुख त्रेता कर धर्मा। द्वापर मे मनुष्य जाति मे ऐसे अधम खल उत्पन्न हो जाते हैं क्योंकि : बहुरज स्वल्प सत्व कछु तामस। द्वापर हर्ष सोक भय मानस। पर कलियुग मे ऐसे मनुष्य बहुत होते हैं क्योकि : तामस बहुत रजोगुन थोरा। कलिसुभाव बिरोध चहुँ ओरा।

परहित सरिस धरम नहि भाई। परपीडा सम नहि अधमाई ॥
निरनय सकल पुरान बेद कर। कहेउ तात जानहि कोबिद नर ॥१॥

अर्थ : दूसरे के हित करने के समान कोई धर्म नही है। दूसरे को पीडा देने के समान कोई पाप नही है। सब वेद और पुराण का यही निर्णय है सो मैंने कहा। इसे पण्डित लोग जानते हैं।

व्याख्या : सब धर्मो से बडा धर्म है परोपकार। परम धर्म स्रुति बिदित अहिंसा। धर्म कि दया सरिस हरिजाना। इत्यादि वचन इसी के पोषक हैं। दयावन्त प्राणी ही परोपकार कर सकता है। निर्दय से क्या उपकार होगा। इसी भांति : नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहि ते सहहि महाभव भीरा। हिंसा पर अति प्रीति तिन

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


के पार्वाहि कौन मिति इत्यादि वचन परपीडा की अधमाई के द्योतक हैं। निर्दय पुरुष ही परपीडा कर सकता है।

श्रीरामजी कहते हैं कि सब पुराण और वेदो का यही निर्णय है। यथा : अष्टादशपुराणेषु व्यासस्य वचनद्वयम्। परोपकारः पुण्याय पापाय परपीडनम्। वेदो के विभाग करनेवाले तथा सब पुराणो के रचयिता व्यासजी ने यही निर्णय किया। इसीलिए यही वेद और पुराण का निर्णय है। व्यासजी मुनियो मे श्रेष्ठ हैं। यथा : मुनीनामप्यह व्यास'। अत: इनसे बडा पण्डित भी कौन है? यह सरकार की मर्यादापालकता है कि अपने वचन के प्रमाण मे वेद पुराण और पण्डितो का मत उद्धृत करते हैं।

नर सरीर धरि जे पर पीरा। करहि ते सहहि महा भव भीरा ॥
करहि मोह बस नर अघ नाना। स्वारथ रत पर लोक नसाना ॥२॥

अर्थ : मनुष्य का शरीर धारणकर जो दूसरे को पीडा देते हैं वे ससार का महाकष्ट भोगते हैं। मोहवश होकर मनुष्य अनेक प्रकार के पाप करते हैं। स्वार्थ मे लोक का नाश कर डालते हैं।

व्याख्या : पशु आदि स्वभाव से परपीडा करते हैं। उन्हे उसका प्रत्यवाय नहीं होता। क्योकि उन्हे ज्ञान नही है। उनका शरीर ससार सागर के सन्तरण का साधन नही है। मनुष्य शरीर तो बडे भाग्य से मिलता है। कभी ईश्वर करुणा करके नरशरीर दे देते हैं। यह शरीर साधन धाम और मोक्ष का द्वार है। इसे पाकर भी जो परपीडा मे रत हुआ वह तो आत्मघाती की गति को प्राप्त होगा। अर्थात् उसे कुत्ते शूकर आदि की योनि प्राप्त होगी। यथा . जो न तरै भव सागर नर समाज अस पाइ। सो कृत निंदक मद मति आतम हन गति जाइ।

जितनी मानसिक व्याधियाँ हैं उनका मूल मोह है। नर शरीर मे सब सामान ससार सन्तरण का भगवान् जुटा देते हैं। यथा : नर तन भव बारिधि कहुँ बेरो। सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो। कर्णधार सद्गुरु दृढ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा। सो सबका निरादर करके पाप करते है। स्वार्थ के लिए परमार्थ बिगाडते हैं।

काल रूप तिन्ह कहँ मैं भ्राता। सुभ अरु असुभ कर्म फल दाता ॥
अस बिचारि जे परम सयाने। भजहि मोहि ससृति दुख जाने ॥३॥

अर्थ : उनके लिए मैं काल रूप हूँ। शुभ और अशुभ कर्मों का फल देता हूँ : ऐसा विचारकर बडे सयाने लोग ससार को दु खरूप जानकर मुझे भजते हैं।

व्याख्या : जो नर शरीर धारण करके संसार सागर मे ही पडे है पार जाने का यत्न करते ही नहीं उनसे शुभाशुभ कर्म होते ही रहते हैं। उनके कर्मों का मैं कालरूप होकर फल देता हूँ। जिस भाँति वृक्ष काल पाकर फलते है उसी भाँति काल पाकर कर्म भी फल देते हैं। उस फल भोगने मे फिर कर्म होता है। फिर उसका फल भोगना पडता है। इस भाँति उन्हें कभी शान्ति की प्राप्ति नही होती।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



परमेश्वर ही फलदाता काल है। काल कोई दूसरी वस्तु नही है। यथा : कालोऽस्मि लोकक्षयकृत् प्रवृद्धः लोकान् समाहर्तुमिह प्रवृत्त'। जब विश्वरूप के दर्शन से अर्जुन विस्मयाविष्ट हुए। पूछने लगे कि हे उग्ररूप आप कौन हैं ? तो भगवान् ने कहा मैं काल हूँ लोक के सहार करने मे प्रवृत्त हुआ हूँ।

इसलिए सयाने लोग तो स्वार्थ के वशीभूत नही होते। पाप नही करते पुण्य करते हैं। पर पुण्य भी तो बन्धन का कारण है। उसका भी फल तो भोगना ही पडेगा। सोने की बेडी भी तो बेडी है। इसलिए परम सयाने लोग संसार को दु खमय जानकर परमेश्वर को भजते हैं जिसमे बन्धन से विनिर्मुक्त हो जाय।

त्यागहिं कर्म सुभासुभ दायक। भजहिं मोहि सुर नर मुनि नायक॥
संत असंतन के गुन भाखे। ते न परहिं भव जिन्ह लखि राखे॥४॥

अर्थ · शुभ और अशुभ देनेवाले कर्म को छोडकर मुझ सुरनर मुनि नायक को भजते हैं। मैंने सन्त और असन्तो के गुण कहे। जिन्होने इन्हे जान रखा है ये संसार मे नही पडते।

व्याख्या : सरकार के भजन करनेवाले काम्य कर्म और निषिद्ध कर्मों का त्याग करते हैं। सरकार सुर नर और मुनि के स्वामी हैं। सब के अभीष्ट की पूर्त्ति करते हैं। उनके भजन से अभीष्ट की पूर्ति भी होती है और ससार सागर का सन्तरण भी होता है।

श्रीरामजी कहते है कि मैंने सन्त और असन्तो के गुण कहे। इन गुणो से सन्त और असन्त का पहिचान हो जायगा। जो लोग इन गुणो को पृथक् पृथक् मन मे बिठा लेंगे वे खल के लक्षण से बचेंगे। अतः ससार सागर मे गिरने से बच जायँगे।

दो. सुनहु तात माया कृत, गुन अरु दोष अनेक।
गुन यह उभय न देखिअहिं, देखिय सो अविवेक॥४१॥

अर्थ : हे तात सुनो माया के किये हुए गुण और दोष बहुत हैं। विवेक यही है कि गुण और दोष दोनो न देखे जायँ। उनका देखा जाना ही अविवेक है।

व्याख्या : न सब गुण ही कहे जा सकते हैं और न दोष ही कहे जा सकते हैं। ये दोनो माया के कार्य हैं। इनकी सख्या नही है। मिथ्या माया के कार्य भी मिथ्या ही हैं। मिथ्या मृगजल का वर्णन भी मिथ्या है। वे माया के कार्य हैं। अत इन पर दृष्टिपात न करना ही विवेक है। माया के कार्य मे सलग्न होना अविवेक है। यहाँ अविवेक के विरुद्ध प्रयुक्त होने से गुण का अर्थ विवेक करना चाहिए। जिसे नित्यानित्य वस्तु का विवेक है वह माया के कार्य अनित्य गुण दोष पर दृष्टिपात नही कर सकता। यथा : ग्यान मान जहँ एकौ नाही। देख ब्रह्म समान सब माही।

श्रीमुख बचन सुनत सब भाई। हरषे प्रेम न हृदय समाई॥
करहिं बिनय अति बारहिं बारा। हनूमान हिय हरष अपारा॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : सरकार के श्रीमुख के वचन सुनकर सब भाई हर्षित हुए। उनके हृदय प्रेम समाता नही बार बार विनय करते हैं। हनुमान्‌जी के हृदय मे अपार हर्ष है।

व्याख्या : तीनो भाई प्रभु के मुख की वाणी सुनना चाहते थे। यथा : सुनी चहैं प्रभु मुख कै बानी। जो सुनि होइ सकल भ्रम हानी। सो सुना। बात जानी हुई पर प्रभु के मुख से सुनकर उसी बात से ऐसा हर्ष हुआ कि हृदय मे समाता नही। यदि हृदय मे समाता तो चुप रह जाते। नही समाया। इसलिए अति विनय बारम्बार कर रहे हैं। अति विनय से श्रोता की कृतकृत्यता कहा और बारम्बार से कृतज्ञता कहा। हनुमान्‌जी के हर्ष का पारावार नही है। वे आनन्द मे मग्न हैं। हनुमान्‌जी अति प्रेमी हैं। अत उन्हे अपार हर्ष हुआ। साधु सन्त के रखवारे रामदुलारे हैं। अत अपार हर्ष है।

पुनि रघुपति निज मंदिर गये। एहि बिधि चरित करत नित नये॥
बार बार नारद मुनि आवहिं। चरित पुनीत राम के गावहिं॥२॥

अर्थ : तब रामजी अपने महल मे गये। इस भाँति नित्य नये चरित्र करते हैं। नारद मुनि बार बार आते हैं और रामजी के पवित्र चरित्र का गान करते है।

व्याख्या : सनकादि मिलन और सन्त असन्त गुण वर्णन के बाद सरकार महल मे पधारे। गुणातीत अरु भोग पुरंदर हैं। सो चरित्र मे दोनो बातें दिखलायी। सायंकाल का समय है। अत घर गये। इस विधि से नित्य नये सुखदायक चरित्र करते हैं। यहाँ प्रादेशमात्र दिखला दिया।

नारद मुनिजी तो बार बार आते हैं। पर वह आना दूसरा है और मिलने के लिए आना दूसरी बात है। सनकादि तो एक बार मिलने के लिए आये। उन्हे अनपायिनी भक्ति माँगना था। सो मिल गयी। पर नारदजी बार बार आते थे। सरकार के सामने उनका चरित्र गान करते थे। क्योकि जानते हैं कि सरकार को अपने भक्तो का गान बडा प्रिय है और उसके गान से अपनी वाणी भी पुनीत और सुफल होती है।

नित नव चरित देखि मुनि जाहीं। ब्रह्मलोक सब कथा कहाहीं॥
सुनि बिरंचि अतिसय सुख मानहिं। पुनि पुनि तात करहि गुन गानहिं॥३॥

अर्थ : मुनिजी नित्य नये चरित्र देखकर जाते हैं और ब्रह्मलोक मे सब कथा सुनाते हैं। सुनकर ब्रह्मदेव को बडा सुख होता है। कहते हैं हे तात! बार बार गुणो का गान करो।

व्याख्या : पहिले कह आये हैं : एहि बिधि चरित करत नित नये। उन चरित्रो को देखकर मुनिजी ब्रह्मलोक जाते हैं और वे चरित्र ऐसे हैं कि ब्रह्मलोक मे उनके सुनने की उत्सुकता है। नारदजी नित्य जा जाकर वे चरित्र ब्रह्मलोक मे वर्णन करते है। सुनकर ब्रह्मलोक निवासी निहाल होते हैं और ब्रह्मदेव को तो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अत्यन्त सुख होता है। क्योंकि जो जितना बड़ा है उसे उतना ही अधिक आनन्द आता है। अतः ब्रह्मदेव की नारदजी को बारम्बार उन चरित्रों के गान करने के लिए आज्ञा होती है।

सनकादिक नारदहि सराहहिं। यद्यपि ब्रह्म निरत मुनि आहहिं ॥
सुनि गुन गान समाधि बिसारी। सादर सुनहिं परम अधिकारी ॥४॥

अर्थ . सनकादिक यद्यपि ब्रह्मनिष्ठ हैं तथापि नारदजी की प्रशंसा करते हैं। वे परम अधिकारी हैं। गुणगान सुनकर समाधि भूल जाते थे और आदर के साथ सुनते थे।

व्याख्या : सनकादि नारदजी के भी गुरु हैं। नारदजी को उन्होंने ब्रह्मविद्या का उपदेश किया है। ब्रह्मानन्द में लयलीन मुनि को श्रवण की कोई आवश्यकता नहीं है। फिर भी भगवद् गुण कीर्तन में इतना आनन्द है कि वे नारदजी के सङ्कीर्तन की प्रशंसा करते हैं। ब्रह्मनिष्ठ होने से वे परम अधिकारी हैं। उनकी समाधि लगी ही रहती है। पर नारदजी के सङ्कीर्तन से वे समाधि भूल जाते हैं और आदर के साथ श्रवण करते हैं। समाधि भङ्ग से क्रोध नहीं करते बल्कि उपकार मानते हैं।

दो. जीवन्मुक्त ब्रह्म पर, चरित सुनहिं तजि ध्यान।
जे हरि कथा न करहिं रति, तिनके हिय पाषान ॥४२॥

अर्थ : जीवन्मुक्त ब्रह्मनिष्ठ ध्यान छोड़कर कथा सुनते हैं। अतः जिन्हें हरिकथा में प्रेम नहीं होता उनका हृदय पत्थर है।

व्याख्या : राम कथा में ऐसा रस है कि उससे तृप्ति होती नहीं। यथा : राम चरित जे सुनत अघाहीं। रस बिसेष जाना तिन नाहीं। सो उस कथा से जीवन्मुक्त ब्रह्मनिष्ठ हृदय विगलित हो उठता है। वे ध्यान छोड़कर कथा सुनने लगते हैं। जो भगवत्कथा में प्रेम नहीं करते उनका हृदय पत्थर है। भाव यह कि वे स्थावरों के तुल्य हैं।

एक बार रघुनाथ बोलाये। गुर द्विज पुरबासी सब आये ॥
बैठे गुरु मुनि अरु द्विज सज्जन। बोले बचन भगत भव भंजन ॥१॥

अर्थ : एक बार रामजी ने बुलवाया। गुरु ब्राह्मण और सब पुरवासी आये। सभा में गुरु मुनि ब्राह्मण और सज्जन बैठे। तब भक्त के भव को दूर करनेवाले रामजी बोले।

व्याख्या : राजा दण्डधरो गुरुः। जिस भाँति गुरु को शिष्य के परलोक की जिम्मेदारी रहती है उसी भाँति राजा को प्रजा के लोक परलोक दोनों की जिम्मेदारी रहती है। वह दण्ड देकर भी प्रजा को सन्मार्ग पर चलाता है। अयोध्या लौकिक सुखों से परिपूर्ण है। धर्म भी चारों चरण से हैं। तथापि श्रीमुख द्वारा उपदेश देने के लिए बुलवाया। [illegible]

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जाय उसके विषय मे किसी को अनौचित्य की शङ्का न हो। क्योंकि राजा विशाम्पति है। वैश्य जाति तक उसका शासन चलता है। यथा : अथो परीक्षिद् द्विजवर्य शिक्षया मही महाभागवतो शशास ह।

छोटे भाई मुनि और सज्जन पहिले से ही बैठे थे। जो लोग बुलवाने पर आये वे भी आकर सभा मे बैठ गये। तब भक्तो के भय को दूर करनेवाले रामजी बोले। भाव यह कि भक्तो के जन्म मरण रूपी भय को नष्ट करने के लिए।

सुनहु सकल पुरजन मम बानी। कहौ न कछु ममता उर आनी ॥
नहि अनीति नहि कछु प्रभुताई। सुनहु करहु जो तुम्हहि सोहाई ॥२॥

अर्थ : सब पुरजनो ! मेरी बात सुनो। मैं कुछ ममता मन मे लाकर नही कह रहा हूँ। न इसमे अनीति है न प्रभुता है। मेरी बातें सुन लो फिर जैसी इच्छा हो वैसा करो।

व्याख्या : सरकार सब पुरजनो को सम्बोधन करके कहते हैं। गुरु और द्विज साक्षी के लिए हैं। जिसमे यदि अधर्म से धर्म को पीडा हो तो रोकें। मम वाणी से उपदेश का सङ्केत करते हैं आज्ञा नही देते। और यह भी कहे देते हैं कि यह न समझना कि मैं अपने किसी प्रयोजन की सिद्धि के लिए कह रहा हूँ।

मैं कोई अनुचित बात न कहूँगा और राजा होने के नाते प्रभुता के बल से भी कोई कार्य कराना नही चाहता। मैं जो कहता हूँ उसे सुन लो। फिर जैसी इच्छा हो वैसा करो। मैं यह नही कहता कि जैसा मैं कहता हूँ वैसा ही करो। विचार लो जिसमे हित बोध हो सो करो।

सोइ सेवक प्रियतम मम सोई। मम अनुसासन मानै जोई ॥
जौं अनीति कछु भाखौं भाई। तौ मोहि बरजेहु भय बिसराई ॥३॥

अर्थ : वही मेरा सेवक है और वही मुझे बहुत प्यारा है जो मेरी आज्ञा मानता है। हे भाई ! यदि मैं अनीति कहूँ तो भय छोडकर मुझे रोकना।

व्याख्या : सरकार कहते हैं कि जो तुम्हारे जी मे आवे सो करो। परन्तु मेरा सेवक वही और मुझे सबसे प्यारा वही है जो मेरी आज्ञा मानता हो। यदि कोई मेरी पूजा तो बडी भारी करे और आज्ञा न मानता हो तब वह न तो मेरा सेवक है न प्रियतम है। वेदादि शास्त्र ही सरकार के वचन हैं। यथा मारुत स्वास निगम निज बानी। श्रुतिस्मृती ममैवाज्ञे।

यह कोई अनुचित बात नही है। सबको अपना आज्ञापालक प्रिय लगता है। अब सरकार सबको बोलने का अवसर देते हैं कि मेरी बातो मे यदि किसी को कोई बात अनुचित मालूम हो तो वह निर्भय होकर मुझे रोके। मैं बुरा न मानूँगा। यह न डरे कि राजा की बात को मैं कैसे काटूँ। सभा मे जाकर अनुचित बोलनेवाला और न बोलनेवाला दोनो पापी होते हैं। अब्रुवन् विब्रुवन् वापि नरो भवति किल्विषी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


बडे भाग मानुप तन पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा ॥
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा। पाइ न जेहिं परलोक संवारा ॥४॥

अर्थ : बडे भाग्य से मनुष्य शरीर मिलता है। सद्ग्रन्थो ने कहा है कि यह देवताओ को दुर्लभ है। यह साधनो का धाम है और मोक्ष का द्वार है। इसे पाकर जिसने परलोक न सवारा।

व्याख्या : बडे भाग मानुप तन पावा : से भाव यह कि मौका चूकने लायक नही है। बार बार यह शरीर नही मिलता। अन्य शरीरो मे तो प्रकृति के परवश ही काम करना पडता है। व्याघ्र लाख वर्ष पहिले जैसे रहते थे वैसे ही अब भी रहते हैं। मनुष्य बीस वर्ष पहिले जैसे रहता था वैसे अब नही रहता। यह प्रकृति के शासन के अतिक्रमण का सामर्थ्य रखता है। देवता लोग इसे चाहते हैं पर मिलती नही। अज्ञातार्थ ज्ञापक उत्तम जितने ग्रन्थ हैं उनमे यही वर्णन है। इस विषय मे मतभेद नही है।

सुरदुर्लभ इसलिए कहते हैं कि देव शरीर मे दिव्य भोग से पुण्य क्षीण होता है और नया पुण्य कमाया नही जा सकता। मनुष्य देह से ही पुण्य की कमायी हो सकती है। इसीलिए इसे साधन धाम कहा। इसी देह से साधन चतुष्टय सम्पादन करके ब्रह्म जिज्ञासा से मोक्ष भी सम्भव है। इसी से मोक्ष द्वार कहा। इस लोक को तो यथासाध्य सब जीव सँवारते हैं। आहार निद्रा भय मैथुन इन्ही म इस लोक की उन्नति सीमित है। उसी की उन्नति ही इह लोक सँवारना है। पर आहार निद्रा भय मैथुन सब योनियो मे सुलभ हैं। परलोक का ख्याल तो मनुष्य योनि मे ही होता है। अत परलोक का सँवारना मनुष्य योनि के हिस्से की बात है। सो इस योनि को पाकर जिसने परलोक न सँवारा।

दो. सो परत्र दुख पावै, सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि, मिथ्या दोष लगाइ ॥४३॥

अर्थ . वह परलोक मे दु ख पाता है और सिर पीटकर पछताता है और काल को कर्म को और ईश्वर को झूठमूठ दोष लगाता है।

व्याख्या : वह परलोक मे दु ख पाता है। वहाँ सिवा भोगने के दूसरा उपाय नही है। पछताने की पराकाष्ठा सिर पीटना है। काल को दोष लगता है कि समय बडा बुरा आया है। भाग्य को दोष देता है कि मेरा भाग्य बडा खोटा था। ईश्वर को दाव देता है कि मेरा सत्यानाश ईश्वर ने किया। अपना दोष नही देता। काहु न कोउ दुख सुख कर दाता। निज कृत कर्म भोग सब भ्राता।

एहि तन कर फल विषय न भाई। स्वर्गौ स्वल्प अत दुखदाई ॥
नरतनु पाइ बिपय मनु देही। पलटि सुधा ते सठ विष लेही ॥१॥

अर्थ : हे भाई ! इस शरीर का फल विषय नही है। स्वर्ग भी थोडे दिन के

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लिए है। अन्त मे दु ख ही देता है। जो नरशरीर पाकर विषय मे मन देते हैं वे शठ हैं। अमृत देकर पलटे मे विष लेते हैं।

व्याख्या : कूकर शूकर आदि देहो का फल विषय हैं। क्योकि उनकी पहुँच विषयानन्द ही तक है। मनुष्य शरीर का फल विषय नही है। क्योकि उसकी पहुँच ब्रह्मानन्द तक हो सकती है। स्वर्ग मे दिव्य भोग है। पर स्वर्ग सुख टिकाऊ नही। मनुष्य शरीर के किये हुए पुण्य का भोग मात्र है। जिस भाँति खेती से उत्पन्न किया हुआ अन्न खाने पीने से नित्य छीजता जाता है। उसी प्रकार उपार्जित किया हुआ पुण्य विषयभोग से छीजने लगता है। पुण्य क्षीण होने पर एक क्षण भी स्वर्ग मे स्थिति नही रह सकती। वह तुरन्त वहाँ से गिरा दिया जाता है। अत. वह स्वर्ग सुख भी अल्प होने से दु खरूप ही है। सुख तो वही है जो टिकाऊ है 'यद्वै भूमा तत्सुखम् नाल्पे सुखमस्ति।

नरतन सुधा है। क्योकि उससे अमृत पद की प्राप्ति हो सकती है। उसी के लिए यत्न करना मनुष्य शरीर का सद्व्यय है। विषय मे लगकर मनुष्य शरीर को खोना उसका अपव्यय है। अत' जिसने मनुष्य शरीर पाकर विषय मे मन लगाया उसने मानो अमृत देखकर पलटे मे विष लिया। क्योकि जिससे आत्मज्ञान सध सकता था उससे उसने कूकर शूकर योनि का रास्ता साफ किया। यथा : असुर्या नामते लोका अन्धेन तमसावृता। तास्ते प्रेत्याभिगच्छन्ति ये के चात्महनो जना ।

ताहि कबहुँ भल कहै न कोई। गुंजा ग्रहै परस मनि खोई ॥
आकर चारि लच्छ चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अबिनासी ॥२॥

अर्थ : उसे क्या कोई भला कह सकता है जो पारसमणि को खोकर गुञ्जा प्राप्त करता है। यह अविनाशी जीव चार खानि और चौरासी लाख योनियो मे घूमता फिरता है।

व्याख्या : यह नर शरीर पारस है। जिस भाँति पारस निकृष्ट धातु . लोहे को सोना बना देता है उसी भाँति इसे पाकर जीव शिव हो सकता है। गुञ्जा अर्थात् घुँघची देखने मे बडी सुन्दर है। पर है विष। इसी भाँति विषयोपभोग आपातमधुर हैं। पर है बडा हानिकर। पारस को फेंककर गुञ्जा ग्रहण करनेवाले ने अपनी समझ मे तो ठीक ही किया। बेढँगे पारस को देकर रगीले गुञ्जो की प्राप्ति की। केवल बाह्यरूप देखा गुण न पहिचाना। वह भले ही अपने मन से भला बना रहे। पर कोई भी उसे भला नही कहेगा। अपनी हानि करनेवालो को कोई भला नही कहता। अपनी हानि भी की और दुर्यश का भागी भी बना। अमृत को पलटकर विष लेनेवाला जानबूझकर अनर्थ मे गिरनेवाला है और पारस देकर गुञ्जा लेनेवाला अनजान है। रूप पर आसक्त हो गया।

यह जीव तो अविनाशी है और शरीर नाशवान् है। इस शरीर के नाश होने पर दूसरी देह मिलेगी। पर कौन देह मिलेगी इसका ठिकाना नही। उद्भिज स्वेदज

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अण्डज और जरायुज : ये चार खानि है। इन चारो मे अवान्तर भेद करके चौरासी लाख योनियाँ हैं। उन्ही मे यह जीव भटकता फिरता है। कभी देवता होता है, कभी राक्षस होता है, कभी पशु होता है, कभी पक्षी होता है, कभी कीट पतङ्ग होता है, कभी स्थावर योनि को प्राप्त होता है।

फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म स्वभाव गुन घेरा ॥
कबहुँक करि करुना नर देही। देत ईस बिनु हेतु सनेही ॥३॥

अर्थ : वह सदा माया की प्रेरणा से काल कर्म स्वभाव और गुणो से घिरा हुआ घूमा करता है। कभी करुणा करके निष्कारण प्रेम करनेवाले ईश्वर मनुष्य शरीर दे देते हैं।

व्याख्या : नाचत ही निसि दिवस मर्यो। तब ही ते न भयो हरि थिर जब ते जिव नाम धर्यो। बहुबासना बिबिध कंचुकि भूपन लोभादि भर्यो। चर अरु अचर गगन जल थल मे कौन स्वाग न कर्यो। यहाँ अनेक योनियो में जन्म लेना ही नाचना है। इसकी प्रेरणा करनेवाली माया है। यथा : जो माया सब जगहि नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा। यह जीव स्वेच्छा से नही नाचता। अत्यन्त दुखी होकर नाचता है। इसीलिए कहा : निसि दिवस मर्यो। माया ने उसे काल कर्म स्वभाव और गुण से बाँध रक्खा है। काल कर्म गुण स्वभाव के घेरा के भीतर नाचा करता है। इसका उल्लङ्घन नही कर सकता।

ईश्वर बडा कृपालु है। यथा : हेतु रहित जुग जग उपकारी। तुम तुम्हार सेवक असुरारी। वह बिना कारण कृपा करता है। पशु पक्षी कीटादि देह से तो कोई कर्म ऐसा हो नही सकता जिससे मनुष्य शरीर मिले। ईश्वर ही कृपा करके कभी जीव को मनुष्य शरीर दे देता है। यह जानकर कि इसे कष्ट उठाते बहुत दिन हुए। एक अवसर इसे देना चाहिए जिससे ऊपर उठ सके। चार कृपा से कल्याण कहा गया है। उनमे से पहिली कृपा हुई ईश्वर कृपा। मनुष्य शरीर मिल गया।

नर तन भव बारिधि कहुँ बेरो। सनमुख मरुत अनुग्रह मेरो ॥
करनधार सदगुरु दृढ नावा। दुर्लभ साजु सुलभ करि पावा ॥४॥

अर्थ : मनुष्य शरीर भवसागर के लिए बेडा है। मेरी कृपा उसके लिए अनुकूल पवन है। उस दृढ नाव का सद्गुरु कर्णधार है। इस भाँति दुर्लभ साज अनायास प्राप्त हो गया।

व्याख्या : भवसागर सन्तरण के लिए प्रधान साधन नरतन ईश्वर की कृपा से मिल गया। सन्तरण चाहनेवाले पर सरकार की ओर भी कृपा होती है। वह अनुकूल वायु रूप हो जाती है। सद्गुरु भी मिल ही जाते हैं। यथा : सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। अत. यह दुर्लभ साज मनुष्य शरीर पाने से सुलभ हो गया। यथा :

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं प्लवं सुकल्पं गुरुकर्णधारम्।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितम् पुमान् भवाब्धिं न तरेत् स आत्महा ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. जो न तरै भव सागर, नर समाज अस पाइ।
सो कृतनिंदक मंदमति, आतमा हन गति जाय ॥४४॥

अर्थ : जो ऐसा नर समाज पाकर भी भवसागर पार नही होता। वह कृतघ्न मन्दबुद्धि आत्मघाती की गति को प्राप्त होता है।

व्याख्या : गुरुकृपा से शास्त्रकृपा भी हो जाती है अब केवल आत्म कृपा की आवश्यकता है। इतना होने पर भी यदि उसने ससार सन्तरण नही चाहा और जिस ईश्वर ने इतनी कृपा को उसे मिथ्या दोष लगाया वह कृतनिन्दक मन्दमति है। इतना बडा सुअवसर चूक गया। ऐसे को शूकर कूकर की योनि मिलती है। आत्मघाती के लिए यही दण्ड है।

जौ परलोक इहाँ सुख चहहू। सुनि मम बचन हृदय दृढ गहहू ॥
सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान स्रुति गाई ॥१॥

अर्थ : यदि इस लोक और परलोक मे सुख चाहते हो तो मेरे वचन को सुनकर मन मे खूब बैठा लो। यह रास्ता सुलभ और सुखद है। मेरी भक्ति का वर्णन पुराण श्रुतियो मे है।

व्याख्या : सुख सब चाहता है दु ख कोई नही चाहता। इस लोक मे जिन बातो से सुख मिलता है परलोक मे उनसे दु ख होता है। जो लोग यहाँ दु ख उठाकर परलोक सँवारते हैं उन्हे परलोक मे तो सुख मिलता है पर इस लोक मे कष्ट उठाना पडता है। परन्तु ऐसा भी एक रास्ता है जिससे यहाँ भी सुख हो और परलोक मे भी सुख हो। और वह रास्ता भक्ति का है। यह रास्ता सुलभ है और सुखद भी है। यथा : कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा। बैर न बिग्रह आसन त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा। मेरे इस बात को खूब मन मे बिठा लो और यह रास्ता शास्त्रानुमोदित भी है। यथा : स्रुति सम्मत हरि भगति पथ सजुत बिरति बिबेक। तेहि न चलहिं नर मोह बस कल्पहि पथ अनेक।

ग्यान अगम प्रत्यूह अनेका। साधन कठिन न मन कहुँ टेका ॥
करत कष्ट बहु पावै कोऊ। भगतिहीन मोहि प्रिय नहि सोऊ ॥२॥

अर्थ : ज्ञान अगम है और उसमे अनेक विघ्न हैं। साधन भी कठिन है और मन को आधार नही है। अनुष्ठान मे उसके बडा कष्ट है। फिर भी किसी किसी को प्राप्त होता है। भक्ति के बिना वह भी मुझे प्रिय नही है।

व्याख्या : ज्ञान की बडी महिमा है। यथा : नहि ज्ञानेन सदृश पवित्रमिह विद्यते। ज्ञान के ऐसा पवित्र यहाँ कुछ भी नही है। परन्तु वह बडा कठिन है और उसके अनुष्ठान मे विघ्न भी बहुत हैं। यथा : कहत कठिन समुझत कठिन साधन विवेक। होइ घुनाच्छर न्याय जौं पुनि प्रत्यूह अनेक। इसे तलवार की धार

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



महात्माओ ने बतलाया है। यथा ग्यान पथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहि बारा। निरालम्ब पथ है। इसलिए महात्मा सूरदास के शब्दो मे : निराधार मन चकरित धावत।

उसके अनुष्ठान मे बडा कष्ट है। यथा सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जौ हरि कृपा हृदय बस आई। जप तप व्रत यम नियम अपारा। जे स्रुति कह सुभ धरम अचारा। तेइ तृन हरि त चरै जब गाई। इत्यादि। हरि माया अति दुस्तर तरनि जाइ विहगेस। मनुष्याणा सहस्रेषु कश्चिद् यतति सिद्धये। यततामपि सिद्धाना कश्चिन्मा वेत्ति तत्वत। यत्न करनेवाले सिद्धो म से भी किसी को ही ज्ञान की दशा की प्राप्ति होती है। कोटि विरक्त मध्य स्रुति कहई। सम्यक ग्यान सकृत कोउ लहई। फिर भी वह भक्त के समान प्रिय नही। यथा मोरे प्रौढ तनय सम ग्यानी। बालक सुत सम दास अमानी।

भगति सुतत्र सकल सुख खानी। बिनु सत सग न पावहि प्रानी ॥
पुन्य पुज बिनु मिलहि न सता। सत सगति ससृति कर अता ॥३॥

अर्थ भक्ति स्वतन्त्र है और सब सुखो की खानि है। उसे बिना सत्सङ्ग के प्राणी पा नही सकता। बिना पुण्य पुञ्ज के सन्त मिलते नही। उनके सङ्ग से ससार का अन्त हो जाता है।

व्याख्या कर्म और ज्ञान को भक्ति की सहायता की आवश्यकता है। यथा सो सब कर्म धर्म जरि जाऊ। जहँ न राम पद पकज भाऊ। जोग कुजोग ज्ञान अग्यानू। जँह नहि राम प्रेम परधानू। और भक्ति को किसी की सहायता की आवश्यकता नहीं। यथा रीझत राम सनेह निसोते। रामहि केवल प्रेम पियारा। अत भक्ति स्वतन्त्र है और सब सुख की खानि है। यथा राम भगति मनि उर बस जाके। दुख लवलेस न सपनेहुँ ताके। परन्तु भक्ति की प्राप्ति बिना सत्सङ्ग के होती नही। यथा बिनु सतसग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग। मोह गये बिनु राम पद होइ न दृढ अनुराग।

सत संगति मुद मगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला। सब साधन से पुण्य पुञ्ज अभिप्रेत है। पुण्य पुञ्ज के उदय से सन्त का सङ्ग होता है। सन्त सङ्ग से ससार का अन्त होता है। क्योकि वही मोक्ष का माग है। यथा सत सग अपवर्ग कर कामी भव कर पन्थ।

पुन्य एक जग महु नहि दूजा। मन क्रम बचन बिप्रपद पूजा ॥
सानुकूल तेहि पर मुनि देवा। जो तजि कपटु करै द्विज सेवा ॥४॥

अर्थ : संसार में एक ही पुण्य है दूसरा नही। वह यह कि मनसा वाचा कर्मणा ब्राह्मण की सेवा करे। उस पर मुनि और देवता प्रसन्न रहते हैं जो कपट छोडकर ब्राह्मण की सेवा करता है।

व्याख्या सत्सङ्ग के लिए पुण्य समूह को आवश्यकता है। अत सर्वोत्कृष्ट

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


पुण्य बतलाते हैं : ब्राह्मण की सेवा से बढकर दूसरा पुण्य नही है : वर्णाना ब्राह्मणो गुरु । वेदपाठी भवेद् विप्र । इसलिए गोस्वामीजी ने प्रायेण विप्र पद का ही व्यवहार किया है। पुण्य कर्म मे विप्र पूजन अनिवार्य है। विप्र सेवा भी कपट रहित होकर करे। कपट सहित सेवा करना वर्जित है। कपट सहित सेवा अपने शूद्र जन्म मे भुशुण्डिजी ने किया। तेहि सेवौं मैं कपट समेता। द्विज दयाल अति नीति निकेता। गुरुजी से विद्या तो ले ली। पर बाद इसके गुरुजी का द्रोह करने लगे। यथा : गुरु कर द्रोह करौं दिन राती। सो ऐसा न होना चाहिए।

दो. औरउ एक गुपुत मत, सबहि कहउँ कर जोरि।
सकर भजन बिना नर, भगति न पावै मोरि ॥४५॥

अर्थ : और भी एक गुप्त मत है। उसे मैं सबसे हाथ जोडकर कहता हूँ कि शङ्कर के भजन बिना मनुष्य मेरी भक्ति नही पाता।

व्याख्या शङ्कर के भजन के बिना राम भक्ति नही होती। यथा . सिव सेवा कर फल सुत सोई। अविरल भक्ति राम पद होई। जेहि पर कृपा न करहि पुरारी। सो न पाव मुनि भगति हमारी। इस गुप्त मत को सरकार ने प्रकट कर दिया और तदनुसार कार्य करने के लिए सबसे हाथ जोडकर कहते हैं। हाथ जोडकर भी हित की बात समझायी जाती है। यथा : बिनती करौं जोरि कर रावन। सुनहु मान तजि मोर सिखावन। परन्तु देखने मे यही आता है कि चौडे : स्पष्ट कह देने पर भी यह बात गुप्त ही रह गयी। आग्रही लोग रामायण को प्रमाण मानते हुए भी यह मानने को तैयार नही होते कि बिना शिवसेवा के राम भक्ति नही होती। शङ्कर भगवान् भक्तिपथ के आचार्य हैं। आचार्योपासन बिना भक्ति पथ मे प्रवेश कैसे होगा ? स्वय मानस आचार्य ही कई वार विनय पद मे शिवजी से भक्ति मांगते हैं। मानस मे कृपा प्रसाद प्राप्त करते हैं।

कहहु भगति पथ कवन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा ॥
सरल सुभाव न मन कुटिलाई। जथालाभ संतोष सदाई ॥१॥

अर्थ . बतलाओ तो भक्ति पथ मे क्या परिश्रम है। उसमे न योग करना पडता है न यज्ञ करना पडता है न तप करना पडता है और न उपवास करना पडता है। सरल स्वभाव हो। मन मे कुटिलता न हो। जो मिले उसी मे सन्तोष करे।

व्याख्या : पहिले कह आये हैं : सुलभ सुखद मारग यह भाई। भगति मोरि पुरान श्रुति गाई। उसी की यहाँ व्याख्या करते हैं कि भक्तिपथ मे कोई आयास नही है। योगपथ मे जिस भाँति मन को मारना पडता है। इस पथ मे मन को मारना नहीं पडता। तप की भाँति कोई बडा आयोजन नही करना पडता। तप की भाँति शरीर को सुखाना नही पडता। जप की भाँति अनुष्ठान के नियमो का पालन नही करना पडता। उपवास की भाँति भूखो नही मरना पडता। कपट करने मे बुद्धि को आयास होता है। कुटिलता के संभालने मे मन को आयास होता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


इसमे कोई आयास नही है और सुख बहुत है : सन्तोषादनुत्तमसुखलाभः। सन्तोष से ऐसे सुख का लाभ होता है जिससे उत्तम सुख ही नही है।

भावार्थ यह है कि भक्तिपथ मे योग यज्ञ जप तप उपवास की आवश्यकता ही नही है। अपना स्वभाव सरल बनाये रहे। मन मे कुटिलता को स्थान न दे। और जो मिल जाय उसी मे सदा सन्तोष करे।

मोर दास कहाइ नर आसा। करै तौ कहहु कहाँ बिस्वासा॥
बहुत कहौं का कथा बढाई। एहि आचरन बस्य मै भाई॥२॥

अर्थ मेरा दास कहलाकर यदि मनुष्य की आशा करता है तो कहो उसे विश्वास कहाँ है। बहुत कथा बढाकर क्या कहूँ। हे भाई! मैं इस आचरण से उसके वश मे रहता हूँ।

व्याख्या : जिसने भक्ति मार्ग का अवलम्बन किया उसे मेरा ही भरोसा करना चाहिए। दूसरे की आशा न रखना चाहिए। क्योंकि दूसरे की आशा रखनेवाले को सबका दास बनकर रहना पडता है। यथा : जे पामर भये दास आसके ते सबही के चेरे। रघुपति कृपा आस जीती जिन ते सेवक हरि केरे। जो दूसरे की आशा रखता है वह मेरा दास नही। क्योंकि उसे मुझ पर विश्वास नही है और जिसे मुझ पर विश्वास ही नही वह मेरा दास कैसे है। वह केवल दास का स्वाँग बनाये है जिसमे उसे लोग मेरा दास समझें। उसे तो मनुष्यो की आशा बँधी हुई है। वह उन्ही का दास है।

यह : यथा लाभ सन्तोष सदाई। इस पद की व्याख्या है। अब : सरल सुभाव न मन कुटिलाई की व्याख्या करते हैं। कहते हैं कि मैं बात को बढाकर नही कहता। सक्षेप मे कहता हूँ कि निम्नलिखित रीति से चलनेवाले के मैं वश मे ही जाता हूँ। मैं भाई : कहने का भाव यह है कि मैं स्ववश हूँ। यथा : परबस जीव स्वबस भगवंता। सो मैं ऐसे आचरण करनेवाले के वश मे हो जाता हूँ। अब वह आचरण बतलाते हैं—

बैर न बिग्रह आस न त्रासा। सुखमय ताहि सदा सब आसा॥
अनारभ अनिकेत अमानी। अनघ अरोष दक्ष बिग्यानी॥३॥

अर्थ न किसी से वैर है न झगडा है न किसी की आशा है और न किसी का डर है। ऐसे पुरुष को सब दिशाएँ सुखमय हो जाती हैं। जो सर्वारम्भपरित्यागी है, आश्रयहीन है, मानहीन, पापहीन, रोषहीन है, निपुण और विज्ञानवान् है।

व्याख्या : निज प्रभुमय जो जगत् को देखता है। वह किसी से वैर नही कर सकता। झगडा फिर किससे हो। वह किसी व्यक्ति विशेष से न आशा कर सकता है और न डर सकता है। ऐसे पुरुष को तो चारो ओर सुख ही सुख है।

वह किसी कार्य का आरम्भ नही करता। जिसमे प्रवृत्त है उस कार्य से द्वेष नही करता है और निवृत्ति की काक्षा नही रखता। न द्वेष्टि सप्रवृत्तानि न

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



निवृत्तानि कांक्षति। उसे मानापमान भी नही है। वह किसी घर को अपना नहीं समझता। पाप और रोष वह कर नही सकता। वह तो दक्ष और विज्ञानी हो जाता है। क्योंकि वह ईश्वरमय सब जग को देख रहा है।

प्रीति सदा सज्जन संसर्गा। तृन सम बिषय स्वर्ग अपबर्गा ॥
भगति पक्षहठ नहि सठताई। दुष्ट तर्क सब दूरि वहाई ॥४॥

अर्थ : सज्जनों के संसर्ग मे उसे सदा प्रेम रहता है। विषय स्वर्ग और अपवर्ग को वह तृण समान मानता है। उसे भक्ति पक्ष का हठ तो है पर शठता नही है और दुष्ट तर्कों को तो पास नही फटकने देता।

व्याख्या : उसकी प्रीति सदा सज्जन संसर्ग मे है। उसीसे उसी मे ऐसा सुख मिलता है कि उसे विषय सुख स्वर्ग सुख तथा अपवर्ग सुख तृण के समान मालूम होता है। यथा : तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला इक अंग। तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सत संग।

वह भक्ति पक्ष को दृढ़ करके पकड़े रहता है। क्योंकि भक्ति में ही ऐसा सामर्थ्य है कि वह शाप को भी वरदान बना देती है। यथा : भगति पक्ष हठ करि रहेउँ दीन्ह महा ऋषि शाप। मुनि दुर्लभ बर पायेउँ देखहु भजन प्रताप। परन्तु वह ज्ञानादि साधनो का विरोध नही करता। अपने मन मे शठता को स्थान नही देता। अर्थात् कपट चतुराई से बात नही छिपाता। वेद विरुद्ध तर्क के निकट नही जाता। कर्कश तर्क विवाद से दूर रहता है।

दो. मम गुन ग्राम नाम रत, गत ममता मद मोह।
ताकर सुख सोइ जानै, परानंद संदोह ॥४६॥

अर्थ : जो मेरे गुण ग्राम और नाम में रत है। जिसे ममता मद और मोह नही है। वही इस बात के सुख को जानता है। जो सुख परानन्द का समूह है।

व्याख्या : जो संसार की चर्चा मे न लगकर मेरे गुणग्राम और नाम में लगे रहते हैं। मेरा नाम लेते हैं। मेरी स्तुति करते हैं। उनकी ममता मेरे में हो जाती है। उन्हे न तो मद होता है न मोह होता है। ऐसा होने से उसे ऐसे परमानन्द सुख समूह की प्राप्ति होती है जिसे वही जानता है : मोह दरिद्र निकट नहि आवा। लोभ बात नहि ताहि बुझावा। हारिहि सकल सलभ समुदाई। जातहि जासु समीप जरहि मदादिक सलभ सब।

सुनत सुधा सम बचन राम के। गहे सबन्हि पद कृपा धाम के ॥
जननि जनक गुरु बंधु हमारे। कृपानिधान प्रान ते प्यारे ॥१॥

अर्थ : रामजी के अमृत के समान वचन सुनकर सबने कृपाधाम के चरण पकड लिये। बोले कि आप ही हमारे माता पिता गुरु और बन्धु हैं। आप ही कृपानिधान है और प्राण से भी प्यारे हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या जब सरकार का उपदेश समाप्त हुआ तब पुरजन बोले। जब तक उपदेश होता रहा तब तक अमृत सी वाणी का श्रवण पुट से पान करते रहे। स्वाद और तोष से तृप्त हो रहे थे। कृतज्ञता प्रकाश के लिए सबो ने चरण पकड लिया। मन मे यह बात उठी कि सरकार कृपा के धाम हैं। कितनी बडी कृपा हम लोगो पर है। बुलाकर हम लोगो के लिए कैसा हितकर उपदेश दिया।

सभी सरकार के भक्त हैं। सबने अपनी ममता की वृत्तियो को इकट्ठी करके और उसे बटकर सरकार के चरणो मे बाँध रक्खा है। इसलिए कहते हैं कि सरकार ही हमारे सब कुछ हैं। माता पिता गुरु और बन्धु सबको प्यारे होते हैं और सबसे प्यारा प्राण होता है। सो सरकार ही मेरे पिता माता गुरु और बन्धु हैं : चारो नाते सरकार से ही हैं। अव्यक्त रूप से माता हैं। पुरुष रूप से पिता हैं। राजा रूप से गुरु हैं। कुठाहर सहाय होने से बन्धु हैं अपनी ओर से कृपा निधान हैं और हमारी ओर से प्राण से प्यारे हैं। मोहि तोहि नाते अनेक मानिये जो भावे। सो प्रेम सभी नातो को सरकार ने मान रक्खा है।

तनु धनु धाम राम हितकारी। सब बिधि तुम प्रनतारतहारी॥
अस सिख तुम्ह बिनु देइ न कोऊ। मातु पिता स्वारथ रत ओऊ॥१॥

अर्थ : आप ही हमारे तन धन और धाम हैं। हे प्रणत के आर्ति के हरण करनेवाले! आप ही सब प्रकार से हितकारी हैं। ऐसी शिक्षा आप के बिना कोई देता नही। माता पिता हैं पर वे भी स्वार्थ मे रत हैं।

व्याख्या : चैतन्य जीवो मे माता पिता गुरु और बन्धु हितकारी होने से प्यारे होते हैं और जड पदार्थ मे तन धन और धाम हितकारी होने से प्यारे हैं। इतने ही प्रेमपात्र हैं। सो आप हमारे लिए सर्वस्व हैं। आप ही माता पिता गुरु और बन्धु हैं तथा आप ही तन धन और धाम हैं।

आप ही हमे दोनो लोक के कल्याण का मार्ग बतला रहे हैं। यथा : जोनि तरै भवसागर नर समाज अस पाइ। सो कृतनिंदक मंदमति आतमहन गति जाइ। तथा . जो परलोक इहाँ सुख चहहूँ। इत्यादि उपदेश देते हैं ऐसी शिक्षा देनेवाला कौन है ? सब अपने स्वार्थ को लक्ष्य करके शिक्षा देनेवाले हैं। माता पिता भी जो शिक्षा देते हैं उसका कारण यही है कि वे बेटे के लिए साभिलाष हैं। उनके द्वारा बडे होने पर उन्हे सेवा की आशा है। अत मातु पिता बालकन्हि बुलावहिं। उदर भरै सोई धर्म सिखावहिं। उनके परलोक की चिन्ता माता पिता भी नही करते। सरकार हमारे पालने मे तो दत्तचित्त हैं ही हमारे परलोक की भी सरकार को चिन्ता है।

हेतु रहित जग जुग उपकारी। तुम्ह तुम्हार सेवक असुरारी॥
स्वारथ मीत सकल जग माँही। सपनेहु प्रभु परमारथ नाही॥२॥

अर्थ . हे असुरारि निष्कारण दोनो लोको के उपकार करनेवाले दो ही हैं :

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



आप और आपके सेवक। सम्पूर्ण संसार मे सब स्वार्थ के मित्र हैं। परमार्थ का सहायक कोई सपने मे भी नही है।

व्याख्या : माता पिता की शिक्षा सहेतुक है। उन्हे अपने बच्चों से प्रत्युपकार की आशा है। इसलिए इस लोक के कल्याण की शिक्षा देते हैं। शिक्षा देनेवाले का लक्ष्य सदा स्वार्थ रहता है। परन्तु अपना स्वार्थ न रखकर दोनों लोक के उपकार करनेवाले तो दो ही हैं तीसरा हो नही सकता। एक आप और दूसरा आपका सेवक। क्योंकि आपका सेवक आपका ही अनुसरण करता है। यथा : सेवक भयो पवन पूत साहिब अनुहरत। श्री हनुमान्‌जी भी चारो युग मे अपना प्रताप प्रकटकर जीवों का उपकार करते हैं।

हे प्रभो ! सुर नर मुनि सबकै यह रीती। स्वारथ लागि करहिं सब प्रीती। परमार्थ के लिए कोई प्रीति नही करता। जहाँ स्वार्थ मे भेद पडा वहाँ प्रीति गयी। परमार्थ के लिए प्रीति का कोई स्वप्न भी नही देखता। कोई समझ भी नही सकता कि परमार्थ के लिए प्रीति कैसी होती है।

सबके बचन प्रेमरस साने। सुनि रघुनाथ हृदय हरषाने ॥
निज निज गृह गए आयसु पाई। बरनत प्रभु बतकही सुहाई ॥३॥

अर्थ : प्रेम रस से सना हुआ सबका वचन सुनकर रामजी प्रसन्न हो गये। आज्ञा पाकर सब लोग अपने घर गये और प्रभु की बातचीत का वर्णन आपस में करते गये।

व्याख्या : सरकार का स्वभाव है कि प्रेमरस साने वचन से ही प्रसन्न होते हैं। यथा : रामहि केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननिहारा। अतः प्रजाओं की प्रेम परिप्लुत वाणी सुनकर सरकार प्रसन्न हो गये। गुरु की प्रसन्नता शिष्य की कृतकृत्यता पर होती है। प्रजा कृतकृत्य हो गयी। इससे सरकार को हर्ष हुआ क्योंकि राजा दण्डधर गुरु हैं।

सब लोग आज्ञा पाकर आये थे। अब कृतकृत्य होकर आज्ञा पाकर ही अपने अपने घर जा रहे हैं। अतः प्रभु से जो बातचीत हुई उसका वर्णन आपस मे करते जा रहे हैं। कथन का अनुकथन करने से सिद्ध है कि उपदेश का प्रभाव सब पर पडा। यथा : सुनि अनुकथन परसपर होई। पथिक समाज सोह सरि सोई।

दो. उमा अवधवासी नर, नारि कृतारथ रूप।
ब्रह्म सच्चिदानंद घन, रघुनायक जहँ भूप ॥४७॥

अर्थ : हे उमा ! अयोध्यावासी नर नारी सब कृतार्थ रूप हैं। जहाँ सच्चिदानन्दघन स्वयं रामजी राजा हैं।

व्याख्या : यहाँ पर शिवजी पार्वती से कहते हैं कि राजा सच्चिदानन्द घन ब्रह्म राम राजा हैं वहाँ प्रजा कृतार्थरूप क्यों न हो। राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः। राजानमनुवर्तन्ते यथा राजा तथा प्रजा। राजा के धर्मात्मा होने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पर प्रजा धर्मात्मा होती है। पापी होने पर पापी होती है। सम होने पर सम होती है। राजा का ही अनुसरण प्रजा करती है। जैसा राजा होता है वैसी ही प्रजा होती है। यहाँ ब्रह्म राम राजा हैं। अतः प्रजा भी ब्रह्ममय है। अतः कृतकृत्य है।

यहाँ शिवजी के उमा को सावधान करने का कारण यह है कि उनका प्रश्न है : प्रजा सहित रघुबंस मनि किमि गवने निज धाम। अतः ग्रन्थकार बतलाये देते हैं कि अयोध्या में राजा प्रजा मे भेद नही रह गया। प्रजा भी सब ब्रह्ममय हो गयी। अतः राजा के साथ ही उनके धाम में चली गयी। इसमें कोई आश्चर्य न मानना।

एक बार बसिष्ठ मुनि आए। जहाँ रामु सुखधाम सुहाए ॥
अति आदर रघुनायक कीन्हा। पद पखारि पादोदक लीन्हा ॥१॥

अर्थ : एक बार जहाँ सुख के धाम नयनाभिराम रामजी थे वहाँ वसिष्ठ मुनि आये। सरकार ने अत्यन्त आदर किया। चरण धोकर चरणामृत लिया।

व्याख्या : वसिष्ठजी ने जान लिया कि सरकार की साकेतयात्रा निकट है। वसिष्ठजी नित्य ही वेद पुराण की कथा कहने आते थे। अतः यहाँ एकान्त में आने में कुछ अभिप्राय है। यहाँ ग्रन्थकार ने रामजी को दो विशेषण दिया : सुखधाम और सुहाये। सो सुखधाम से कमनीय गुणगणों का होना तथा सुहाये से कमनीय रूप का होना कहा। इन्ही वसिष्ठजी ने नामकरण के अवसर पर कहा था : सो सुख धाम राम अस नामा। अखिल लोक दायक बिस्रामा। अतः विश्राम के लिए सुखधाम के यहाँ आये।

सरकार रघुनायक हैं। मुनियों का इनके यहाँ बड़ा आदर है। उनमें वसिष्ठजी सबसे श्रेष्ठ हैं और गुरु हैं। इनका अत्यन्त आदर किया। पम्पासर में नारद मुनि आये तो लक्ष्मणजी ने पैर धोया था। यथा : लछिमन सादर चरन पखारे। यहाँ सरकार ने स्वयं चरण धोये और चरणामृत लिया।

राम सुनहु मुनि कह कर जोरी। कृपासिन्धु बिनती कछु मोरी ॥
देखि देखि आचरन तुम्हारा। होत मोह मम हृदयँ अपारा ॥२॥

अर्थ : मुनि ने हाथ जोड़कर कहा कि हे कृपा के समुद्र रामजी ! मेरी कुछ विनती सुनिये। आपका आचरण देखकर मेरे मनमे अपार मोह होता है।

व्याख्या : इस प्रकार के आदर को मुनिजी बहुत दिन से सह रहे थे। आज नही सह सके। खुल पड़े। हाथ जोड़कर बोले। मुनिजी सदा राम ही सम्बोधन करते थे। आज कृपासिन्धु कहने का भाव यह कि मेरे ऊपर भी कृपा हो। पुरजन पर तो कृपा किया स्वयं उनके सामने अपने स्वरूप का वर्णन कर दिया। यथा : भगति मोरि पुरान स्रुति गाई। परन्तु मेरे साथ वैसा अपनाइत का व्यवहार नही किया। अब इस आदर से काम न चलेगा। जब होता है आप ही विनती करते हैं। मुझे विनती का अवसर ही नही देते। सो आज मेरी विनती सुनिये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सत् शिष्य की भाँति जो आचरण आप मेरे साथ करते हैं गुरुचरण प्रक्षालन चरणोदक ग्रहण आदि करते हैं। इससे मेरे मन मे अपार मोह होता है। वार बार प्रयत्न करने पर भी हठात् तुम्हारे ऊपर नरबुद्धि होने लगती है। यही अपार मोह है जिसका पार पाना मेरे लिए कठिन हो रहा है और मोह से कभी कल्याण हो नही सकता।

महिमा अमित्त वेद नहि जाना। मैं केहि भाँति कहौ भगवाना॥
उपरोहित्य कर्म अति मदा। वेद पुरान सुमृति कर निंदा॥३॥

अर्थ आपकी अपार महिमा को वेद भी नही जानते। हे भगवान्! मैं उसे कैसे वर्णन कर सकता हूँ। पौरोहित्यकर्म अत्यन्त नीच है। वेद पुराण और स्मृति मे उसकी निन्दा की गयी है।

व्याख्या आपके आचरण से मुझे बलात् नरबुद्धि होती है। पर महिमा आपकी ऐसी है जिसे वेद भी नही जानता कहे कैसे? जिसे वेद नही कह सक्ते जो साक्षात् आपकी वाणी है उसे मैं कैसे कहूँ। मैं तो जीव हूँ। ऐसे महामहिम का इतना आदर करना मेरे सहन शक्ति से बाहर की बात हुई जाती है। यदि इस पर कहिये कि जब तुम यह बात जानते ही थे तो पुरोहित क्यो हुए? पुरोहिती मे सब प्रकार का आदर स्वीकार करना पडता है और जब पुरोहित हुए तब पाद प्रक्षालनादि से क्यो घबराते हो।

इस पर कहते हैं कि मैं जानता था कि पौरोहित्य कर्म अत्यन्त मन्द है। मैं इसे ब्रह्मदेव के देने पर भी स्वीकार नही करता था। क्योंकि वेद पुराण और स्मृतियो मे इसकी निन्दा लिखी है। ब्राह्मण को अपरिग्रहवृत्ति होना चाहिए। शिलोञ्छादि से ही निर्वाह करना चाहिए।

जब न लेउ मैं तब विधि मोही। कहा लाभ आगे सुत तोही॥
परमातमा ब्रह्म नर रूपा। होइहि रघुकुल भूपन भूपा॥४॥

अर्थ : जब मैंने अस्वीकार किया तब ब्रह्मदेव ने मुझसे कहा बेटे! आगे चलकर तुम्हें इससे लाभ होगा। परमात्मा ब्रह्म नर रूप धारण करके रघुकुल भूषण राजा होंगे।

व्याख्या . जब ब्रह्मदेव मुझे रघुकुल को पुरोहिती देने लगे तब मैंने उसे अस्वीकार किया कि आप पिता होकर मुझे ऐसे गर्हित कार्य मे क्यो नियुक्त कर रहे हैं। तब वह ब्रह्मदेव ने प्रेम से मुझे समझाया कि इस समय तो कार्य तुम्हें मन्द जान पडता है। क्योंकि इसम सब प्रकार का प्रतिग्रह लेना पडता है। जिससे तप का क्षय होता है। जो जिसका अन्न खाता है वह उसका पाप खाता है। परन्तु इसके स्वीकार करने से आगे चलकर बडा लाभ तुम्हें होगा। जब रघुकुल मे परमात्मा ब्रह्म का अवतार होगा तब उनकी प्राप्ति तुम्हें यजमान के रूप से होगी। रघुकुल के राजा लोग दान मे तुम्हें क्या नही देंगे। पर उसमे तुम लाभ नहीं देखते

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हो। ब्रह्मप्राप्ति को ही लाभ मानते हो। वह लाभ तुम्हे इसी मन्द कर्म के स्वीकार करने से होगा।

दो. तब मै हृदय बिचारा, जोग जग्य ब्रत दान।
जा कहुँ करिअ सो पैहौं, धर्म न एहि सम आन ॥४८॥

अर्थ : तब मैंने हृदय मे विचारा कि योग यज्ञ व्रत और दान जिसके पाने के निमित्त किया जाता है उसकी प्राप्ति जिस कर्म से हो उसके बराबर धर्म और कुछ नही है।

व्याख्या : योग यज्ञ तप और दान इसलिए किया जाता है कि इससे भगवत्प्राप्ति होगी। पौरोहित्य इसलिए गर्हित है कि इससे योग और व्रत में बाधा पडती है और याजन तथा प्रतिग्रह स्वीकार करना पडता है। जिससे तप नष्ट हो जाता है। अतः पौरोहित्य ब्रह्मप्राप्ति का साधक न होकर बाधक है। मुझे जब इसके द्वारा ब्रह्म प्राप्ति होनेवाली है तो मेरे लिए पौरोहित्य हो साधन है। ऐसा विचार करके मैंने पौरोहित्य को ही सबसे बडा धर्म मान लिया। अर्थात् मैंने आपके प्रीत्यर्थं पौरोहित्य स्वीकार किया।

जप तप नियम जोग निज धर्मा। स्रुति सम्भव नाना सुभ कर्मा ॥
ग्यान दया दम तीरथ मज्जन। जहँ लगि धरम कहत स्रुति सज्जन ॥१॥

अर्थ : जप, तप, नियम, योग, स्वधर्म, वेद विहित अनेक विधि के कर्म, ज्ञान, दया, दम, तीर्थावगाहन और जहाँतक धर्म वेद और सज्जनो ने बतलाया है।

व्याख्या : सभी यज्ञो मे १ जप यज्ञ उत्तम बतलाया गया है। यथा : यज्ञानां जपयज्ञोस्मि। २. तप तो मानो सब सिद्धियों का मूल स्रोत है। यथा : तप बल रचै प्रपंच विधाता। तप बल बिष्णु सकल जगत्राता। तप बल संभु करहिं संहारा। तप बल सेष धरहिं महि भारा। इत्यादि ३ नियम अर्थात् शौच सन्तोष तप. स्वाध्याय ईश्वरप्रणिधानानि नियमाः। अथवा अपना स्वीकृत नियम। यथा : आयसु होय तो रहहुँ सनेमा। तथा : सजम नियम नीति नहि डोलहिं। काष्ठजिह्व स्वामी कहते हैं : जगत् मे उन्ह ही को है रग जिनके नेम अभग। ४. वेद विहित नाना प्रकार के शुभ कर्म अर्थात् श्येन यागादि नही। वेद ने तो श्येनयाग की भी विधि बतलायी है। पर वह शुभ नही है। उससे नरक होता है। अतः वेद विहित वे कर्म जो शुभ फल दाता हो ५ योग से सिद्धियाँ होती हैं। यथा : जन्ममन्त्रौषधसमाधिजाः सिद्धयः। इनमे से समाधिज सिद्धि को ही सर्वश्रेष्ठ माना गया है। ६ स्वधर्म जिसके लिए कहा गया है कि सदोष होने पर भी उसका परित्याग न करे। स्वधर्म मे मर जाना भी श्रेष्ठ है। क्योंकि परधर्म भयावह होता है। ७ ज्ञान जिसके बराबर पवित्र कुछ है नही : सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यति। ज्ञानमयी नौका से ही सब पापो के पार जाया जाता है। ज्ञानाग्नि से ही सब कर्म भस्म होते हैं। ८ दया जिसके बराबर कोई धर्म नही है। ९ दम अर्थात् इन्द्रिय निग्रह। जिसके बिना सत्पथ मे चलने की

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



योग्यता ही नही होती। १०, तीर्थावगाहन तारने से ही उसका तीर्थ नाम पड़ा है। इसका बड़ा प्रभाव शास्त्रो मे वर्णित है और भी ११ जितना धर्म वेद और सज्जन लोग कहते हैं अर्थात् सज्जनो की स्थापित की हुई मर्यादाओ और वेद की मर्यादा का पालन।

आगम निगम पुरान अनेका। पढ़े सुने कर फल प्रभु एका॥
तव पद पंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुंदर॥२॥

अर्थ : शास्त्र वेद और अनेक पुराणो के पढ़ने सुनने का एक ही फल है। आपके चरणारविन्दो मे निरन्तर प्रेम हो। सब साधनो का यही सुन्दर फल है।

व्याख्या : अज्ञातार्थ ज्ञापक १२ शास्त्र १३ वेद तथा १४. पुराण और उप पुराण हैं इनके पढ़ने का फल अलग है और सुनने का फल अलग है। इसी भांति उपर्युक्त चौदहो साधन के फल पृथक् वर्णित हैं। पर वसिष्ठजी कहते हैं कि वे सब सुन्दर नही हैं। क्योकि वे वास्तविक फल नही हैं। सुन्दर फल तो आपके चरणरविन्दों मे निरन्तर प्रीति का होना ही है। यथा . सबकर फल हरि भगति भवानी। लाभ कि रघुपति भगति अकुंठा इत्यादि।

छूटै मल कि मलहि के धोएँ। घृत कि पाव कोइ बारि बिलोएँ॥
प्रेम भगति जल बिनु रघुराई। अभि अंतर मल कबहुँ कि जाई॥३॥

अर्थ . क्या मल मल के धोने से छूट सकता है। क्या किसी को जल के मन्थन करने से घी मिल सकता है। हे रघुराई! क्या प्रेम भक्ति के बिना अन्त करण का मालिन्य कभी दूर हो सकता है? कर्मणा कर्मनिर्हारो न ह्यात्यन्तिक इष्यते। भाग०।

व्याख्या : भाव यह है कि कर्म से कर्म का नाश कभी नही हो सकता। उससे तो कर्म की शृङ्खला और भी दृढ होती है। ज्ञान घृत की प्राप्ति नही होती। यथा : मोह जनित मल लाग बिबिध बिधि कोटिहु जतन न जाई। जनम जनम अभ्यास निरत चित अधिक अधिक लपटाई। नयन मलिन परनारि निरखि मन मलिन बिषय सँग लागे। हृदय मलिन बासना मान मद जीव सहज सुख त्यागे। परनिंदा सुनि स्रवन मलिन भे बचन दोष परगाये। सब प्रकार मल भार लाग निज नाथ चरन बिसराये। तुलसिदास ब्रत दान ज्ञान तप सुद्धि हेतु स्रुति गावे। रामचरन अनुराग नीर बिनु मल अति नास न पावे। विनय पद ८२।

प्रेमा भक्ति से ही भीतर का मल दूर हो सकता है और साधनो से स्थूल मल मात्र दूर होते हैं। पर सूक्ष्म मल जिसे अन्त करण की मलिनता कहते हैं। वह प्रेमा भक्ति बिना दूर होती नही। यथा ' कथ बिना रोमहर्षं द्रवता चेतसा विना। विनाऽनन्दाश्रुकलया शुद्धयेत् भक्त्या विनाशय.। और भक्ति से ही ज्ञान होता है। भक्तिर्ज्ञानाय कल्पते। बिना भजन के भव सन्तरण चाहना वारि मन्थन करके घृत चाहना है। यथा : बारि मथे बरु होय घृत सिकता ते बरु तेल। बिनु हरि भजन न भव तरिय यह सिद्धान्त अपेल।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


सोइ सर्वज्ञ तज्ञ सोइ पंडित। सोइ गुन गृह बिज्ञान अखंडित॥
दक्ष सकल लक्षन जुत सोई। जाके पद सरोज रति होई॥४॥

अर्थ : वही सर्वज्ञ है वही पण्डित है वही गुणो का घर और अखण्ड विज्ञानी है वही निपुण और वही सब लक्षणो से युक्त है जिसे आपके चरणो मे प्रीति हो।

व्याख्या : हृदय के मल दूर होने से आप से आप ब्रह्म भासित होता है। अत. बिना योग साधन के ही वह सर्वज्ञ है। बिना श्रवण मनन निदिध्यासन के ही उसे तत्पद का ज्ञान हो जाता है। बिना शास्त्र पढे ही वह पण्डित हो जाता है। यथा . समुझत कहब करब तुम्ह जोई। धर्म सार जग होइहि सोई। बिना शिक्षा पाये ही वह गुण गृह है। उसी का विज्ञान अखण्डित है। क्योकि उसका पतन नही होता।

वही दक्ष है क्रिया कुशल है क्योकि वह आविर्भूत प्रकाश हो जाता है। वही सब लक्षणो से युक्त भाग्यवान् है। क्योकि भगवत् प्राप्ति उसी को होगी। अन्य सुलक्षणवाले भी कुलक्षणी है। दक्ष होने पर भी गँवार है। आपके चरणकमल की भक्ति ही सब कुछ है। यथा : यस्यास्ति भक्तिर्भगवत्यकिंचना सर्वे गुणैस्तत्र समासते सुरा'।

दो. नाथ एक बर माँगौ, राम कृपा करि देहु।
जन्म जन्म प्रभुपद कमल, कबहुँ घटै जनि नेहु॥४९॥

अर्थ : हे नाथ राम! एक वर माँगता हूँ। सो कृपा करके दीजिये कि सरकार के चरणकमलो की प्रीति किसी जन्म मे घटने न पावे।

व्याख्या · यहाँ वसिष्ठजी नाथ कहकर सम्बोधन करते है। एकान्त मे भेंट हुई। इसी से वर माँग रहे हैं। जो वह माँगना है वह तो वसिष्ठजी को प्राप्त है। अत: कहते हैं कि मेरा प्रेम जा आप पर है वह किसी जन्म मे न घटे। मुक्ति नही माँगते। भक्त होकर जन्म होना माँगते है। अधिकारी हैं : जन्म लेकर जगत् का कल्याण करना चाहते है। यहाँ सीताजी का उल्लेख नही है। पहिले गुरुजी के आने पर कहा था : गहे चरन सिय सहित बहोरी। चारो भाई हनुमान्‌जी के साथ उपवन देखने गये। उसी समय से सीताजी का उल्लेख ग्रन्थकर्ता नही करते। अत. यह मालूम होता है कि ये कथाएँ सीता वनवास के बाद की हैं।

अस कहि मुनि बसिष्ट गृह आये। कृपासिंधु कें मन अति भाये॥
हनूमान भरतादिक भ्राता। संग लिए सेवक सुखदाता॥१॥

अर्थ : ऐसा कहकर वसिष्ठ मुनि घर आये। कृपासिन्धु रामजी के मन मे बहुत अच्छे लगे। हनुमान्‌जी और भरतादि भाइयो को साथ मे लिए हुए सेवको को सुख देनेवाले रामजी।

व्याख्या सरकार ने सब सुन लिया परन्तु बोले कुछ नही। बडो के वरदान माँगने पर सरकार एवमस्तु ऐसा नही कहते। मौन रह जाना ही स्वीकृति है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वसिष्ठजी यह बात जानते हैं। अतः जो कहना था सो कहकर घर आये। उनकी बातें कृपासिन्धु को बडी अच्छी लगी। क्योंकि वसिष्ठजी की बातें प्रेम से भरी हुई थी। इतने बड़े ज्ञानी होकर भी भक्ति का ही वर माँगते हैं।

महा प्रस्थान का उपक्रम है। सरकार का स्वभाव है कि सेवक को सुख दिया करते हैं। यथा : सहज बानि सेवक सुखदायक। जिसमे सेवको को सुख हो वैसा ही करते हैं। अतः हनुमान्‌जी तथा भरत आदि भाइयो को साथ लिये हुए हैं : जनमें एक संग सब भाई। भोजन सयन केलि लरिकाई। कर्नबेध उपवीत बिवाहू। संग संग सब भयहु उछाहू। अतः महा प्रस्थान भी साथ ही होगा।

## उमा के आठवें प्रश्न का उत्तर

पुनि कृपाल पुर बाहेर गए। गज रथ तुरग मँगावत भये॥
देखि कृपा करि सकल सराहे। दिये उचित निज निज तेइँ चाहे॥१॥

अर्थ : तत्पश्चात् कृपाल रामजी पुर से बाहर गये। हाथी घोड़ा और रथ सब वहीं मँगवाया। रामजी ने कृपा करके सबकी प्रशंसा की और जिन्होंने जो चाहा उन्हे वही उचित समझकर दिया।

व्याख्या : तत्पश्चात् कृपाल अयोध्या नगर के बाहर चले गये। कृपाल कहने का भाव यह कि कृपा के कारण ही सरकार के मन मे यह भाव था : बिमल बस यह अनुचित एकू। बन्धु बिहाइ बडेहि अभिषेकू। अत आठो पुत्रो को राज्य देंगे। यहाँ जानबूझकर कवि वियोग वर्णन नही करते जिसमे लोग कठोर कवि उन्हे न कहे। इतना ही लिखते हैं कि नगर के बाहर जाकर गज रथ[1] तुरग मँगाये। बड़ी भारी सेना है। अतः सब गज तुरग का जमाव नगर के भीतर नहीं हो सकता। सरकार ने कृपा करके सबको सराहना की। जिनको देना है उनकी सराहना की और देय वस्तु गज रथ तुरग को सराहना की। सरकार को सराहना करने से सब धन्य हो गये। यथा : धन्य अवध जो राम बखानी। पुत्रो और भ्रातुष्पुत्रों में उनका विभाग कर दिया। यह विभाग उन लोगो की इच्छा के अनुसार हुआ और उन लोगो ने भी उचित माँग की। यहाँ गज रथ तुरग उपलक्षण है। सम्पूर्ण राज्य का विभाग हुआ। सबको यथेप्सित सेना दे दी गयी।

हरन सकल स्रम प्रभु स्रम पाई। गए जहाँ सीतल अँवराई॥
भरत दीन्ह निज बसन डसाई। बैठे प्रभु सेवहिं सब भाई॥२॥

अर्थ : सकल श्रम के हरण करनेवाले प्रभु थक गये तब शीतल आम की

---

१. अभिषिक्तौ सुतावङ्के प्रतिष्ठाप्य पुरे तत । रथानान्तु सहस्राणि नागानामयुतानि च । दश चाश्वसहस्राणि एकैकस्य धनं ददौ । इत्यादि वाल्मीकीये । अभिषेक करके दोनों पुत्रों को गोद मे बिठाया और पुर मे स्थापन करके हजार रथ दस हजार हाथी दस हजार घोड़े एक एक को दिये । इत्यादि ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

ारी मे चले गये। भरतजी ने अपना उत्तरीय बिछा दिया। प्रभु बैठ गये और ब भाई लोग सेवा करने लगे।

व्याख्या सरकार ही सबके विश्राम देनेवाले हैं। सो लौकिक व्यवहार ऐसा है कि उनकी थकावट का वर्णन किया जाता है। सामान्य गृहस्थी का विभाग बडा कठिन होता है। यहाँ तो साम्राज्य का विभाग था। अत थकावट का वर्णन करते हैं। थकावट होने पर ठण्ढी जगह की आवश्यकता है। अत शीतल अमराई मे जाना कहते है। नगर के बाहर गये हुए हैं। अत वहाँ शीतल स्थान अमराई है। अब यहाँ से पुर मे लौटना नही कहेंगे।

अति प्रेम से भरतजी ने अपना उत्तरीय वसन बिछा दिया। सरकार बैठ गये और सब भाई सेवा मे लग गये। पाद सवाहनादि क्रिया मे दत्तचित्त हुए। यहाँ सरकार का सेवा स्वीकार करना ही बडी भारी कृपा है।

मारुतसुत तब मारुत करई। पुलक बपुष लोचन जल बहई ॥
हनूमान सम नहि बडभागी। नहि कोउ रामचरन अनुरागी ॥
गिरिजा जासु प्रीति सेवकाई। बार बार प्रभु निज मुख गाई ॥४॥

अर्थ तब हनुमान्‌जी हवा करने लगे। उन्हे रोमाञ्च हो गया और प्रेमाश्रु का प्रवाह चला। हनुमान्‌जी के समान न तो कोई बडभागी है और न कोई रामचरन का अनुरागी है। शिवजी कहते हैं कि हे गिरजे! जिसकी प्रीति और सेवकाई का गान बार बार प्रभु ने श्रीमुख से किया।

व्याख्या सब भाई सेवा मे लग गये। तब हनुमान्‌जी हवा करने लगे। सरकार की सेवा मे हनुमान्‌जी को इतना प्रेम उमगता है कि शरीर पुलकित हो उठता है और नेत्र से अश्रु की धारा चलती है। अवधवासी सभी रामानुरागी हैं। अत सभी बडभागी हैं। परन्तु हनुमान्‌जी सा न कोई रामानुरागी है और न कोई बडभागी है। सरकार ने किसी की सेवकाई का वर्णन नही किया। जब वर्णन किया तो हनुमान्‌जी के प्रेम और सेवकाई का वर्णन किया। भाव यह है कि अवध की सम्पूर्ण प्रजा कृतार्थ रूप है। सभी सरकार के साथ ही प्रस्थान करेगे। सगुन उपासक सग तब रहहि मोक्ष सुख त्यागि। सो मोक्ष सुखानुभूति के लिए सरकार के साथ ही प्रयाण करेंगे। परन्तु हनुमान्‌जी को मोक्ष सुख प्रिय नही है। सरकार का भजन प्रिय है और बिना शरीर के भजन होता नही। अत हनुमान्‌जी भजन के लिए यही ठहर जावेंगे।[1]

---

१. हनूमानपि त प्राह नत्वा राम प्रहृष्टधी। त्वन्नाम स्मरतो राम न तृप्यति मनो मम। अतस्त्वन्नाम सतत स्मरन् स्थास्यामि भूतले। यावत्स्थास्यति ते नाम लोके तावत्कलेवरम्। अध्यात्मरामायण। पुनश्च इस धरातल पर एक भी जीव जबतक रामनाम लेनेवाला कथावाचक रहेगा श्रीमारुति यही रहेंगे। ऐसा वर श्रीरघुनाथजी से हनुमान्‌जी ने माँगा है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. तेहि अवसर मुनि नारद, आए करतल बीन।
गावन लगे राम कल, कीरति सदा नवीन ॥५०॥

अर्थ : उस समय नारदमुनि वीणा लिये पहुँच गये और रामजी की सदा सुन्दर कीर्ति का गान करने लगे।

व्याख्या : नारदजी तो नित्य ही अवध आया करते हैं। परन्तु इस समय जी का आना दूसरे ही अभिप्राय से है। वीणा भी बज रही है। कीर्ति का गान ो रहा है। नारदजी ऐसे गान करनेवाले गान कर रहे हैं और वीणा सा वाद्य रहा है और गान का विषय रामजी की सुन्दर कीर्ति है जो कभी पुरानी होती हीं। जब गान की जावे तभी नवीन मालूम होती है। अतः वह प्रस्थान का अलौकिक आनन्दमय था।

वलोकय पंकज लोचन। कृपा बिलोकनि सोकबिमोचन ॥
तामरस स्याम काम अरि। हृदय कंज मकरंद मधुप हरि ॥१॥

अर्थ : हे कमलनयन! हे शोक विमोचन! कृपादृष्टि से मुझे देखिये। नील ा के समान श्याम राम! आप काम के शत्रु हैं। हे हरि! हृदय कमल के न्द के लिए आप भौंरे हैं।

व्याख्या : नारदजी ने जो गान किया उसे कवि यहाँ पर लिखते हैं। पहिले उनकी प्रार्थना हुई कि मुझे कृपादृष्टि से देखिये। कृपादृष्टि आपकी भक्तों को ा करनेवाली है। यथा : कृपादृष्टि करि वृष्टि प्रभु अभय किये सुरवृन्द और ालोचन की दृष्टि अपनी ओर होने से देखने में भी बड़ा आनन्द है। इसलिए अवलोकन को शोकविमोचन कह रहे हैं।

काम के शत्रु दो हैं : एक गौर वर्ण और एक श्याम वर्ण। सो यहाँ नीलतामरस ा काम अरि को सम्बोधन कर रहे हैं : पद कमल परागा रस अनुरागा। कमल में मकरन्द होता है उसी भाँति हृत्कमल का मकरन्द अनुराग है। उस ागरूपी मकरन्द के ग्राहक आप भ्रमररूप हैं। अर्थात् जिस हृदय में अनुराग ा है उस हृदय में आप सदा विराजमान रहते हैं।

ुधान बरूथ बल भंजन। मुनि सज्जन रंजन अघ गंजन ॥
र ससि नव बृंद बलाहक। असरन सरन दीन जन गाहक ॥२॥

अर्थ : आप राक्षसों के सेना के बल के तोड़नेवाले हैं। मुनि और सज्जन को देनेवाले तथा पाप के नाश करनेवाले हैं। आप ब्राह्मण समूहरूपी नये धान लए बादल रूप हैं। आप अशरण के शरण और दीन जनों के ग्राहक हैं।

व्याख्या : आपने राक्षसों की सेना का नाश कर दिया। मुनि और सज्जनों रक्षा कर ली तथा पृथिवी का भार हरण कर लिया। अर्थात् अवतार ग्रहण के ा प्रयोजन : साधु परित्राण और दुष्कृतो का विनाश पूरे हो गये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


धान के पौदो की जल की बडी प्यास रहती है। उन्हे तृप्त करनेवाला बादल ही है। इसी भाँति ब्राह्मणो को सरकार को प्यास रहती है। उनके पालन के लिए आप कृपावारिधर हैं। जिसे कोई शरण नही उसके शरण आप हैं। दीनो को कौन पूछता है उनके ग्राहक तो आप ही हैं। अर्थात् : मुनि सिद्ध सकल सुर परम भयातुर नमत नाथ पदकजा। सो सरकार ने सबके दु ख को दूर किया।

भुज बल बिपुल भार महि खंडित। खरदूषन बिराध बध पंडित ॥
रावनादि सुखरूप भूप बर। जय दसरथ कुल कुमुद सुधाकर ॥२॥

अर्थ : भुजाओ के बडे भारी बल से आपने पृथिवी के भार का खण्डन किया। आप खरदूषण और विराध के बध मे पडित है। हे रावण के शत्रु सुख के रूप श्रेष्ठ भूपाल दशरथ कुलरूपी कुमुद के लिए चन्द्र रूप आपकी जय हो।

व्याख्या : आपने अपनी भुजाओ के बल से पृथिवी का भार उतार दिया। भाव यह कि जिस कार्य के लिए अवतार धारण किया था सो हो गया। वानरो की सेना जो आपने साथ मे ली थी वह तो कौतुक के लिए थी। यथा : तब निज भुज बल राजिव नैना। कौतुक लागि सग कपि सैना। राक्षसो के सहार मे आपने भुज बल से काम लिया और जहाँ आवश्यक पडा वहाँ पडिताई भी दिखलाया। खरदूषण तथा विराध के वध मे बल से काम चलनेवाला नही था। खरदूषण शस्त्रो से छिन्न भिन्न होकर भी नही मरते थे। यथा : महि परत पुनि उठि लरत मरत न करत माया अति घनी। विराध भी अस्थि मात्र अवशेष होने पर भी नही मरता था। इन दोनो के वध मे सरकार ने पण्डिताई दिखलायी। यथा : सुर मुनि सभय प्रभु देखि माया नाथ अति कौतुक करयो। देखहिं परसपर राम करि सग्राम रिपुदल लरि मरयो। तथा : खनिगर्त गोपित बिराधा' विनय।

रावण सबको रुलानेवाला था। उसका वध करके सरकार ने संसार को सुखी कर दिया। अत' आप राजाओ मे श्रेष्ठ है। आप साक्षात् सुख रूप हैं। सभी को आप से सुख मिलता है पर दशरथ कुल तो विशेष रूप से सुखी है। जैसे सुधाकर से ससार सुखी होता है पर कुमुद कुल तो चन्द्रोदय होने से ही खिलता है। चन्द्रमा का पक्षपात कुमुद कुल के खिल उठने का कारण नही है। चन्द्रमा तो समान रूप से अमृत की वर्षा सब पर करते हैं। पर कुमुद कुल का चन्द्रके प्रति अधिक प्रेम ही उसके खिलने का कारण है।

सुजसु पुरान बिदित निगमागम। गावत सुरमुनि संत समागम ॥
कारुनीक ब्यलीक मद खडन। सब बिधि कुसल कोसला मंडन ॥
कलिमल मथन नाम ममताहन। तुलसिदास प्रभु पाहि प्रनत जन ॥३॥

अर्थ : आपका सुयश पुराण वेद और शास्त्रो मे विदित है। देवता मुनि और सन्त एकत्र होकर उसका गान करते हैं। हे कारुणीक मिथ्याभिमान के खण्डन करने-वाले अथवा वालिके मदके खण्डन करनेवाले हे कोसलपुर के भूषण आप सब प्रकार

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



से निपुण हैं। आपका नाम कलियुग के मलका नाश करनेवाला तथा ममता को दूर करनेवाला है। यह जन प्रणत हैं। हे तुलसीदास के प्रभु ! रक्षा करो।

व्याख्या : गावत ब्रह्मादिक मुनि नारद। बालमीकि बिज्ञान बिसारद। सुक सनकादि सम्भु अरु सारद। बरनि पवन सुत कीरति नीकी। गावत बेद पुरान अष्टदस। इत्यादि सभी आप के सुयश का गान करते हैं। आप के गुणों की घोषणा करते हैं कि आप करुणाकर हैं। आप मिथ्याभिमान को दूर करनेवाले हैं। मै सेवक रघुपति पति मोरे। यह अभिमान सच्चा है। इसके बने रहने के लिए भक्तों की प्रार्थना रहती है। हे कोसलपुर के राजा आप सभी प्रकार से कुशल हैं। ज्ञान मार्ग की प्राप्ति आपके नाम से होती है। क्योंकि वह कलियुग के मल को दूर करता है और ममता को नष्ट करता है। नारदजी कहते है कि मैं आपको नमस्कार करता हूँ। आप मेरी रक्षा कीजिये।

इस स्तुति में नाम रूप लीला और धाम ये चार तारे चमकते हैं। यह धनिष्ठा नक्षत्र है। इसमें कलि मल मथन नाम ममता हन : कहकर नाम कहा। स्याम तामरस कहकर रूप कहा। जातुधान बरूथ बलभंजन : कहकर लीला कहा। तथा कोसलामंडन कहकर धाम कहा। ये ही चार तारे इसमे चमकते है। इस स्तुति में सरकार के गुणों की घोषणा है। यथा : सुजसु पुरान विदित निगमागम। गावत सुर मुनि सत समागम। इसलिए इसको मर्दलाकार माना। इसकी फलश्रुति है : सकल सुकृत फल भूरि भोग से।

दो. प्रेम सहित मुनि नारद, बरनि राम गुन ग्राम।
सोभासिंधु हृदयँ धरि, गये जहाँ बिधि धाम ॥५१॥

अर्थ : प्रेम सहित नारद मुनि रामजी के गुण ग्राम का वर्णन करके और शोभासिन्धु रामजी को अपने हृदय में रखकर ब्रह्मलोक चले गये।

व्याख्या : यही सरकार को हृदय में रखने की कुञ्जी है कि उनके गुणग्रामों को प्रेम सहित गावे। नारदजी ने प्रेम के सहित सरकार के गुणों का गान किया। तो सरकार उनके हृदय में चले गये और नारदजी उन्हें लिये हुए ब्रह्मलोक चले गये। भक्त के हृदय से ही बाहर निकलकर अवतार धारण किया था। यथा : बंचेहु मोहि जवनि धरि देहा। सोइ तनु धरहु स्राप मम एहा। और भक्त हृदय ही उनका निज धाम है। यथा : जाहि न चाहिअ कबहुँ कछु तुम्ह सन सहज सनेहु। बसहु निरन्तर तासु मन सो राउर निज गेहु। उसी में चले गये। प्रजा सहित रघुबंश मनि किमि गवने निज धाम। इस प्रश्न का यही उत्तर महादेवजी देते हैं : सगुणोपासक प्रजा मोक्ष सुख को छोड़कर सरकार के मर्त्य धाम मे पधारने से आई थी। सो अब मोक्ष सुख प्राप्ति के लिए सरकार के साथ चली गयी। यथा : निज इच्छा अवतरइ प्रभु सुर महि गो द्विज लागि। सगुन उपासक सँग तब रहहिं मोक्ष सुख त्यागि। और तब नारदजी ब्रह्मलाक चले गये। बैकुण्ठ साकेत गोलोक महा कैलास आदि ब्रह्मलोक के ही भेद हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


## कथोपसहार

गिरिजा सुनहु बिसद यह कथा । मै सब कही मोरि मति जथा ॥
राम चरित सत कोटि अपारा । स्रुति सारदा न बरनै पारा ॥१॥

अर्थ : हे पार्वति ! सुनो इस निर्मल कथा को अपनी बुद्धि के अनुसार मैंने सब कह दी। राम चरित्र सौ करोड है और अपार है। वेद और शारदा भी वर्णन नही कर सकती।

व्याख्या : कथा विषयक अन्तिम प्रश्न के उत्तर की समाप्ति दिखलाते हैं। कथा को निर्मल कहते हैं क्योंकि यह अभ्यन्तर मल को धोनेवाली है। सब कह दिया कहने का भाव यह है प्रजा सहित रघुबस मनि किमि गवने निज धाम। इस प्रश्न का भी उत्तर कह दिया। यह कथा ही ऐसी है कि यथामति कही जाती है। क्योंकि इस कथा की सीमा नहीं है। अब सीमा न होने का कारण कहते हैं कि राम चरित्र एक तो है नही सौ करोड हैं और उनमे एक एक का पारावार नहीं है। न वेद ही सब वर्णन कर सकते हैं न शारदा ही सब वर्णन कर सकती हैं। जो आकाश की भाँति असीम हो उसका पार कोई कैसे पा सकता है।

रामु अनत अनत गुनानी । जनम करम अनत नामानी ॥
जलसीकर महिरज गनि जाही । रघुपति चरित न बरनि सिराही ॥२॥

अर्थ . राम अनन्त हैं। उनके गुण अनन्त हैं। उनके जन्म कर्म और नाम अनन्त हैं। जल की बूँदे और पृथिवी के कण चाहे गिन लिये जायँ पर रामजी के चरित्र वर्णन करके समाप्त नही किये जा सकते।

व्याख्या रामजी का अन्त नही है। यथा नभ सत कोटि अमित अवकासा। राम के गुणो का भी अन्त नही है। यथा राम अमित गुन सागर थाह कि पावै कोइ। राम के अवतार भी अनन्त हैं। यथा कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरही। चारु चरित नाना बिधि करही। अथवा : अवतारा ह्यसख्येया हरे सत्त्वनिधेर्द्विजा। और प्रत्येक अवतार मे नाना विधि से चरित करते है। अत कर्म भी अनन्त हैं और उसके नामो का भी अन्त नही है। क्योंकि प्रत्येक अभिधान के वही एक अभिधेय है। अत उसके नाम का भी अन्त नही है। उनका गरीबनेवाज भी नाम है। गईबहोरी भी नाम है साहब भी नाम है इत्यादि।

जल सीकर की गिनती कौन कर सकता है। पृथिवी के कणो की गणना कैसे सम्भव है। पर यदि वह भी सम्भव हो जाय तो भी रामजी के गुणो की गणना असम्भव है। एक एक अणु परमाणु मे विशेषता है। इसीलिए विशेष को अनन्त माना गया है। वे सब विशेषता भी तो रामजी की ही कृति है। अत उनके चरित की गिनती कैसे हो सकती है।

बिमल कथा हरिपद दायनी । भगति होइ सुनि अनपायनी ॥
उमा कहेउ सब कथा सुहाई । जो भसुडि खगपतिहि सुनाई ॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : यह निर्मल कथा हरिपद की देनेवाली है। इसके सुनने से अनपायिनी भक्ति होती है। हे उमा ! मैंने वह सब सुहाई कथा कही। जो भुसुंडि ने गरुड को सुनायी थी।

व्याख्या : रामजी की कथा मे मल नही है। क्योकि यह पापनाशिनी है। यह कथा हरिपद दायिनी हैं। सरयूजी भी हरिपददायिनी हैं। यथा : जा मज्जन ते बिनहि प्रयासा। मम समीप नर पावहि बासा। इसी भाँति यह सरयू काव्य की कथा भी हरिपद दायिनी है। इसके सुनने से अनपायिनी भक्ति होती है। उसी भक्ति मे अपाय : विघ्न नही होता। जो अनपायिनी भक्ति बडे साधनो के करने पर मुनियो को मिली है वह इस कथा के सुनने से प्राप्त होती।

उपक्रम मे कहा था : सुनु सुभ कथा भवानि रामचरित मानस बिमल। कहा भुसुंडि बखानि सुना विहग नायक गरुड। अत: उपसहार मे भी वही बात कह रहे हैं। जो भुसुंडि खगपतिहि सुनाई। स्वय मानस के रचयिता कह रहे हैं कि भुसुण्डि से कही हुई कथा मैंने तुम्हे सुनाया। यह सनातन रीति है कि अहकार से विमूढ होकर अपने को कर्ता नही मानना चाहिए। ज्ञान विज्ञान सब सनातन है। अत: पहिले के कहे हुए सवाद को प्रमाण मे देकर तब उपदेश देना उचित है। भगवान् आदि गुरु श्रीकृष्णजी भी गीता की परम्परा कहते हुए अपने ही प्रथम कथन को प्रमाण मे देकर गीता का उपदेश करते हैं। यथा : इमं विवस्वते योग प्रोक्तवानहमव्ययम्। विवस्वान् मनवे प्राह मनुरिक्ष्वाकवेऽब्रवीत्। एव परम्पराप्राप्तमिम राजर्षयो विदु:। इत्यादि।

कछुक रामगुन कहेउँ बखानी। अब का कहउँ सो कहहु भवानी ॥
सुनि सुभ कथा उमा हरषानी। बोली अति बिनीत मृदु बानी ॥४॥
धन्य धन्य मै धन्य पुरारी। सुनेउँ रामगुन भव भयहारी ॥५॥

अर्थ : थोडा सा रामजी के गुणो को बखानकर कहा। अब क्या कहूँ उसे हे भवानी बतलाओ। शुभ कथा सुनकर उमा प्रसन्न हो गयी और अति विनीत मृदु वाणी बोली। हे पुरारी ! मैं धन्य हूँ धन्य हूँ। धन्य हूँ। मैंने ससार के भय को नाश करनेवाले राम गुणो को सुना।

व्याख्या : रामजी की कथा जो हो सका सो सब कहा और प्रसङ्गात् कुछ रामजी के गुणों का भी वर्णन किया। मैंने पहिले कहा था : सो सम्वाद उदार जेहि विधि भा आगे कहव : उसे कहना है और तुमने राम रहस्य विषयक भी प्रश्न किया है। सो इनमे से अब क्या कहे सो तुम्ही बतलाओ।

अब श्रोता का कृतकृत्य होना कहते हैं। पार्वतीजी कथा सुनकर कृतकृत्य हो गयी। इसी बात को गोस्वामीजी उमा हरषानी कहकर ध्वनित करते हैं। कृतज्ञता प्रकाश के लिए अति विनीत मृदु वाणी बोली। वक्ता को धन्य कहना विनीत वाणी है और सुनने से अपने को धन्य कहना अति विनीत वाणी है। धन्य होने का

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


कारण कहती हैं कि रामजी के गुणों को सुना : जिनके श्रवण मात्र से संसार का भय नष्ट होता है। जिसने रामजी के गुणों को सुना उसे संसार का भय नही रह जाता।

दो. तुम्हरी कृपा कृपायतन, अब कृतकृत्य न मोह।
जानेउँ रामप्रताप प्रभु, चितानंद संदोह ॥५२॥

अर्थ : हे कृपायतन तुम्हारी कृपा से अब मै कृतकृत्य हो गयी। अब मुझे मोह नही है। मैंने चिदानन्द सन्दोह रामजी के प्रताप का जाना।

व्याख्या : शङ्कर भगवान् ने कहा : अजहुँ न छाया मिटत तुम्हारी। स्वयं भी स्वीकार किया था : अजहूँ कछु संशय मन मोरे। अब कहती है कि आप की कृपा से मोह चला गया। अतः मैं कृतकृत्य हो गयी। मन मे जो संशय उठा था : तिन्ह नृप सुतहिं कीन्ह परनामा। कहि सच्चिदानन्द परधामा। वह सशय बिलकुल दूर हो गया। चिदानन्द सन्दोह राम हैं। उनके प्रताप की मुझे जानकारी हो गयी। इसी प्रकार का सन्देह गरुड़जी को हुआ था कि सो अवतरा सुनेउ जगमाही। देखेउँ सो अभाव कछु नाही।

दो. नाथ तवानन ससि स्रवत, कथा सुधा रघुबीर।
स्रवन पुटन्हि मन पान करि, नहि अघात मति धीर ॥५२॥

अर्थ : हे नाथ ! आप के मुखचन्द्र से रघुवीर के कथामृत की झरी को कान रूपी दोने से पीकर हे मतिधीर ! मेरा मन नहीं अघाता।

व्याख्या : कथा सुधा के लिए सुधाकर महेश का मुखचन्द्र है। जगदम्बा महेशमुखचन्द्र की चकोरी हैं। रूप सुधा का नयनपुट से सदा पान किया करती हैं। इस समय तो कथा सुधा का भी श्रवणपुट से पान कर रही थी। कथा समाप्त होने पर अपनी कृतकृत्यता तो कही पर उसके साथ साथ यह भी कह रही हैं कि मेरा मन कथा सुधा के पान से भरा नही और भी कथा सुनना चाहता है। आप मतिधीर हैं। आप इसे समझ सकते हैं। मुझे और भी कथा सुनाइये।

राम चरित जे सुनत अघाही। रस बिसेष जाना तिन्ह नाही॥
जीवन् मुकुत महा मुनि जेऊ। हरि गुन सुनहि निरंतर तेऊ ॥१॥

अर्थ : जिसका मन राम चरित्र सुनने से ऊब उठता है उसने रस विशेष को जान नही पाया। जो जीवन्मुक्त महामुनि हैं वे भी श्रीहरि के गुणों को निरन्तर सुना करते हैं।

व्याख्या : भगवती स्वयं रामचरित सुनते सुनते नही अघाईं और दूसरे के लिए कहती हैं कि सुनते सुनते जो अघा जाते हैं उन्हे इस चरित्र का रस मिला नही। रामचरित्र मे एक विशेष रस है जिसके आस्वादन करनेवाले की प्यास नित्य बढती जाती है। कभी उससे जी ऊबता ही नही। ऐसा स्वाद और कही

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नही है। दो एक बार सुनने से ही मन भर जाता है कि वह तो वही बात है जिसे मैं सुन चुका हूँ। रामचरित्र सुनने मे भी जो यही बात कहे तो समझ लीजिये कि इसे उस रस विशेष का अनुभव ही नही हुआ। सूक्ष्म रस का स्वाद लेने के लिए परिष्कृत ग्रहण शक्ति चाहिए। जिस भाँति गुड खानेवाले को अगूर फीका लगता है। उसी भाँति पापात्मा को रामचरित्र का स्वाद नही मिलता।

महामुनि जो जीवन्मुक्त है उन्हे कोई कामना नही है। निवृत्ततर्ष हैं जो दुःख से घबराते नही। जिसे सुख की इच्छा नही जिन्हे राग द्वेष और भय नही है। जिनका चित्त स्थिर हो गया है उन्हे मुनि कहते हैं। उनमे भी जो श्रेष्ठ हैं जीवन्मुक्त है। उन्हे महामुनि कहते हैं। वे भी बराबर हरिगुण सुना करते हैं कभी ऊबते नही। यथा सुनि गुनगान समाधि बिसारी। सारद सुनहि परम अधिकारी।

भवसागर चह पार जो पावा। रामकथा ताकहुँ दृढ नावा॥
बिषइन्ह कहँ पुनि हरि गुनग्रामा। स्रवन सुखद अरु मन अभिरामा॥२॥

अर्थ जो ससार सागर के पार जाना चाहता है उसके लिए राम कथा दृढ नाव है। जो विषय मे ही लुब्ध हैं उन्हे भी श्रीहरि के गुणग्राम सुनने से कानो को सुख मिलता है और मन को प्रिय लगता है।

व्याख्या बिषयी साधक सिद्ध सयाने। त्रिबिध जीव जग बेद बखाने। तीन प्रकार के जीव वेद ने कहे हैं। चौथा कोई प्रकार नही है। सो सिद्ध सयाने का वृत्तान्त तो ऊपर की चौपाई मे कह आये है। अब साधक का वृत्तान्त कहते हैं। जीवन्मुक्त तो ससार सागर के पार पहुँच चुके है। परन्तु जो पार नही पहुँचे हैं किन्तु पार जाना चाहते हैं वे साधक है। उनके लिए रामकथा दृढ नाव है। इसके आश्रयण करनेवाला डूबता नहीं पार पहुँच ही जाता है। कर्म कथा को वेदो ने अदृढ नौका कहा है। वह पार पहुँचाने मे असमर्थ हैं। अत साधक लोग इसका परित्याग कर नही सकते। यथा जो सुनत गावत कहत समुझत परम पद नर पावई।

अब रह गये विषयी लोग। जो न तो पार पहुँचे हैं और न पार जाना चाहते हैं। उनका मन विषय में ही शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध मे ही लगा है। वे विषय कथा मे ही सुख पाते हैं उनके लिए ग्रन्थकार कहते है कि रामकथा मे उनका भी मन लगता है। क्योकि इसमे दिव्यातिदिव्यविषयो का वर्णन है और यह कथा मीठी है। सुनने मे सुख उपजता है और मन को शान्ति प्रदान करती है।

स्रवनवत अस को जग माही। जाहि न रघुपति चरित सोहाही॥
ते जड जीव निजात्मक घाती। जिन्हहि न रघुपति कथा सोहाती॥३॥

अर्थ ऐसा कानवाला ससार मे कौन है जिसे रामजी की कथा अच्छी नही लगती। वे जड जीव अपना आत्मघात करनेवाले हैं जिन्हे रामजी की कथा अच्छी नहीं लगती।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या : जिन्हे कान है उन्हे तो राम कथा अच्छी लगेगी ही। जिन्हे अच्छी नही लगती उन्हे समझना चाहिए कि श्रवणेन्द्रिय है ही नही। वे जड हैं। उनके कान कठपुतली के कान से बने हुए हैं। उन्होने अपनी आत्मा का हवन कर दिया। घोर हिंसक हैं। पाप से उनकी बुद्धि अत्यन्त कलुषित हो गयी है। उन्हे कूकर सूकर की योनि प्राप्त होनेवाली है। यथा : १ निवृत्ततर्षैरुपगीयमानात् २ भवौषधात् ३ श्रोत्रमनोभिरामात्। क उत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात्।

हरि चरित्र मानस तुम्ह गावा। सुनि मै नाथ अमित सुख पावा ॥

## उमा के छः प्रश्न

तुम्ह जो कही यह कथा सुहाई। कागभसुंडि गरुड़ प्रति गाई ॥४॥

अर्थ : हे नाथ! आपने रामचरित्र का गान किया। उसे सुनकर मैंने असीम सुख पाया। आपने जो यह कहा कि इस कथा को कागभुसुण्डि ने गरुडजी से कही थी।

व्याख्या : उमा कहती हैं कि आपने कथा के उपक्रम मे जो कहा था : रामचरित मानस एहि नामा। सुनत स्रवन पाइअ बिस्रामा। मनकरि बिषय अनल बन जरई। होय सुखी जो एहि सर परई। सो वैसा ही हुआ। मुझे ऐसा सुख हुआ जिसकी सीमा नहीं। परन्तु आपने यह कहा : उमा कहेउँ सब कथा सुहाई। जो भुसुंडि खगपतिहि सुनाई। पहिले भी कहा था : सुनु सुभ कथा भवानि रामचरित मानस बिमल। कहा भुसुंडि बखानि सुना बिहग नायक गरुड। सो संवाद उदार जेहि बिधि भा आगे कहब। उसी के बारे मे शंका करती हैं। भाव यह कि शिवजी ने पूछा था : अबका कहौं सो कहहु भवानी। उसी के उत्तर मे कह रही हैं कि इस शंका का समाधान कर दीजिये।

दो. बिरति ज्ञान बिज्ञान दृढ़, रामचरित अति नेह।
बायस तन रघुपति भगति, मोहि परम संदेह ॥५३॥

अर्थ : वैराग्य ज्ञान और विज्ञान मे जो दृढ है और जिसका रामजी के चरणो मे अत्यन्त स्नेह है उसे काक शरीर प्राप्ति और उस शरीर मे भी रामजी की भक्ति की प्राप्ति। इस विषय मे मुझे बडा भारी सन्देह है।

व्याख्या : जिसे वैराग्य ज्ञान विज्ञान दृढ हो। उसकी मुक्ति होनी चाहिए। जिसे रामचरित मे अति प्रेम हो उसे कृतकृत्य होना चाहिए। उसे चाण्डाल पक्षी काक की शरीर कैसे मिली : सनमुख होई जीव मोहि जबही। जन्मकोटि अघ नासहि तबही। जो नर होई चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही। तजि मद मोह कपट छल नाना। करौं सद्य तेहि साधु समाना। कोटि बिप्र बध लागहि जाहू। आए सरन तजौं नहि ताहू। सो जिसे रामचरण मे अतिस्नेह है। उसे पाप रह कहाँ गया जिससे उसे काक शरीर की प्राप्ति हुई? यदि काक शरीर मिला तो भी काक

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



र मे राम भक्ति कैसे हुई। राम भक्ति तो सब पुण्यो का फल है। काक शरीर फल के सर्वथा अयोग्य है। अतः इस विषय मे तो मुझे परम सन्देह है।

सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्म व्रत धारी॥
सील कोटिक महँ कोई। बिषय बिमुख बिरागरत होई॥१॥

अर्थ : हे पुरारि ! सहस्रो मनुष्यो मे कोई एक धर्म व्रत धारण करनेवाला होता करोडो धर्मशीलो मे कोई एक विषय से हटकर वैराग्यवान् होता है।

व्याख्या : पहिले तो धर्मव्रत होना कठिन है। स्वाभाविकी प्रवृत्ति को ऐसा बनाने मे हजारो मनुष्यो मे से कोई एक सफल होता है। जिसकी प्रवृत्ति ऐसा हो गयी वही धर्मशील है। वही धर्माचरण का व्रत निबाह सकता है। शेष ष्टपतित हो जाते हैं। धर्म व्रत निबाह नही सकते।

धर्माचरण का मुख्य फल यही है कि उसको वैराग्य हो गया। यथा : धर्म ते ति योग ते ज्ञाना। सो उस मुख्य फल की प्राप्ति करोडो मे से किसी एक को होती करोड़ो धर्मशीलो मे से कोई एक ही विरक्त होने मे समर्थ होता है।

टि बिरक्त मध्य स्रुति कहई। सम्यक ज्ञान सकृत कोउ लहई॥
नवंत कोटिक महुँ कोऊ। जीवन मुक्त सकृत जग सोऊ॥२॥

अर्थ : वेद कहता है कि करोडो वैराग्यवानो मे से सम्यक् ज्ञान किसी एक को होता है और करोडो ज्ञानियो मे से जीवन्मुक्त तो कोई एक ही होता है।

व्याख्या : ऐसा ही नियम है। इसलिए कहते हैं कि वेद ऐसा कहता है कि रोडो वैराग्यवानो मे से किसी एक को ही सम्यक् ज्ञान होता है। वैराग्य से योग सिद्धि होती है और योग सिद्धि से सम्यक् ज्ञान होता है। यथा धर्म ते बिरति ग ते ज्ञाना। सम्यक् ज्ञान से अभिप्राय है अभ्रान्त ज्ञान का। ऐसे अभ्रान्त नवालो मे जीवन्मुक्ति की दशा तो करोडो मे किसी एक को ही प्राप्त होती है। नका भोजनाच्छादनादि व्यवहार भी लोगो की दृष्टि मे है अपनी दृष्टि से वे कुछ ी करते। *उनका शरीर प्रारब्ध बल से चलता है।*

न्ह सहस्र महुँ सब सुख खानी। दुर्लभ ब्रह्म लीन बिज्ञानी॥
र्म सील बिरक्त अरु ज्ञानी। जीवनमुक्त ब्रह्म पर प्रानी॥३॥

अर्थ ऐसे सहस्रो मे से सब सुख की खानि ब्रह्मलीन विज्ञानी दुर्लभ हैं। र्मशील, विरक्त, ज्ञानी, जीवन्मुक्त और ब्रह्मलीन प्राणी।

व्याख्या : हजारो जीवन्मुक्तो मे से कोई ही ब्रह्मलीन विज्ञानी होता है। जो दा ब्रह्मानन्द मे ही लवलीन रहता है उन्हे ब्रह्मलीन विज्ञानी कहते हैं। यथा : ह्मानद सदा लयलीना। देखत बालक बहु कालीना। इस भाँति दुर्लभ साधनो के । पाँच दर्जे हुए : १ धर्मशील २ विरक्त ३ ज्ञानी ४ जीवनमुक्त और ५ विज्ञानी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


सब ते सो दुर्लभ सुरराया। राम भगति रत गत मद माया ॥
सो हरि भगति काग किमि पाई। बिस्वनाथ मोहि कहहु बुझाई ॥४॥

अर्थ हे महादेव ! इन सबसे वह दुर्लभ है जो राम भक्ति मे रत हो और मद माया जिसकी छूट गयी हो। उस हरिभक्ति को काक ने कहाँ से पायी ? हे विश्वनाथ मुझे समझाकर कहो।

व्याख्या : परन्तु वेदोदित समस्त साधनो का फल तो हरिभक्ति है। यथा : तीर्थाटिन साधन समुदाई। योग बिराग ज्ञान निपुनाई। नाना कर्म धर्म ब्रत दाना। सजम दम जप तप ब्रत नाना। भूत दया द्विज गुरु सेवकाई। बिद्या बिनय बिबेक बडाई। जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरि भगति भवानी। यहाँ भक्ति से अभिप्राय मद माया रहित हरिभक्ति अर्थात् प्रेमा भक्ति से है। उमा को इसलिए परम सन्देह हुआ कि जो हरिभक्ति ब्रह्मलीन विज्ञानियो को दुर्लभ है उसे चाण्डाल पक्षी ने कैसे पाया ? भाव यह कि यह प्रेमा भक्ति काग मे होने की कोई सम्भावना नही। यह भक्ति या तो उसे काग शरीर मे ही उपजी हो या पूर्व जन्म से ही हो। पूर्वजन्म से हो नही सकती। क्योकि प्रेमा भक्तिवाले को काग शरीर नही मिल सकता। अत यही मानना पडेगा कि इसी शरीर मे प्रेमा भक्ति प्राप्त हुई। पर यह भी असम्भव है। जो नारकी जीव नरक भोग के उपरान्त उस सस्कार से काक जन्म पाया उसे काक शरीर मे जिससे कोई पुरुषार्थ नही हो सकता प्रेमा भक्ति का उपजना महा असम्भव से भी असम्भव है। इसलिए कहती हैं कि हे विश्वनाथ ! मुझे समझाकर कहो। परम सन्देह समझाकर कहने से ही जाता है।

दो राम परायन ज्ञान रत, गुनागार मति धीर।
नाथ कहहु केहि कारन, पाएउ काक सरीर ॥५४॥

अर्थ · राम ही जिसके परम शरण हैं। जो ज्ञान मे रत है। गुणो का भण्डार है और मति धीर अर्थात् स्थितप्रज्ञ हैं उसे काक शरीर किस कारण से मिला।

व्याख्या : राम परायण को साकेत लोक की प्राप्ति होनी चाहिए। ज्ञानरत को मोक्ष होना चाहिए। गुणागार मतिधीर को यदि किसी कारण से जन्म भी हो तो पवित्र श्रीमान् के घर मे या योगी के घर मे जन्म होना चाहिए। उसका जन्म काक योनि मे कैसे हुआ ? भुसुण्डिजी मे ये सब भी गुण विद्यमान हैं और उनका काक शरीर भी है। इन दोनो बातो मे सामञ्जस्य नहीं बैठता। यह पहला प्रश्न है।

यह प्रभु चरित पवित्र सोहावा। कहहु कृपाल काग कहँ पावा ॥
तुम्ह केहि भाँति सुना मदनारी। कहहु मोहि अति कौतुक भारी ॥१॥

अर्थ . यह प्रभु का पवित्र और सुन्दर चरित्र हे कृपाल ! कौए ने कहाँ पाया ? और हेमदनारि तुमने कैसे सुना ? यह अति भारी कौतुक है। मुझे बताइये।

व्याख्या यह प्रभु का चरित्र है। सुन्दर है और पवित्र है। यथा पुण्यं पापहर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


सदाशिवकर विज्ञानभक्तिप्रद मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम् । श्रीमद्राम-चरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये । ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवाः । ऐसे सुन्दर पवित्र वस्तु के सन्निकट कोई काक को जाने नहीं देता और उनकी स्वयं प्रवृत्ति इस ओर नहीं होती । यथा : अति खल जे बिषयी बक कागा । एहि सर निकट न जाहिं अभागा । अत. काक इसका पात्र किसी भाँति नहीं हो सकता । उसे मिला कहाँ से : यह दूसरा प्रश्न है । और सबसे बडा कौतुक तो यह है कि काग जब कहता था तो आप कैसे जाकर उसके श्रोता बने । आप कामारि हैं और काक कामी पक्षी है । यथा : कामी काक बलाक बिचारे । सो कामी वक्ता हो और कामारि श्रोता हो इससे बढकर आश्चर्य क्या होगा ? यह तीसरा प्रश्न है ।

गरुड महाज्ञानी गुनरासी । हरिसेवक अति निकट निवासी ॥
तेहि केहि हेतु कागसन जाई । सुनी कथा मुनि निकर बिहाई ॥२॥

अर्थ : गरुड महाज्ञानी हैं । गुण की राशि हैं । हरि के सेवक हैं । उनके अत्यन्त निकट रहते हैं । वे किस कारण से मुनि समूह को छोडकर कौए से कथा सुनने गये ।

व्याख्या अब चौथा प्रश्न करती हैं कि नियम तो यही है कि अपने से उत्कृष्ट के यहाँ ही लोग कथा सुनने जाते हैं । यहाँ तो गरुडजी श्रोता हैं । कहाँ महाज्ञानी गरुड कहाँ मति मन्द काक । कहाँ वे गुणो की राशि और कहाँ यह छली मलिन । कहाँ वह बैकुण्ठ मे भगवान् के अति निकट रहनेवाले और कहाँ यह नारकी पक्षी अपवित्र स्थलो मे बिचरनेवाला । सो ऐसे के यहाँ गरुडजी कथा सुनने क्यो गये ? क्या बैकुण्ठ मे मुनि उन्हें नहीं मिले ?

कहहु कवन बिधि भा संवादा । दोउ हरि भगत काग उरगादा ॥
गौरि गिरा सुनि सरल सुहाई । बोले सिव सादर सुख पाई ॥३॥

अर्थ . बताइये उनमे संवाद किस विधि से हुआ । काग और गरुड दोनो हरिभक्त थे । गौरीजी की सरल और सुन्दर वाणी सुनकर शिवजी सुख पाकर आदर के साथ बोले ।

व्याख्या यह पाँचवाँ प्रश्न विधि विषयक है । सम्बाद होने मे भी विधि है । यथा ' सादर चरन सरोज पखारे । अति पुनीत आसन बैठारे । करि पूजा मुनि सुयस बखानी । बोले अति पुनीत मृदुबानी । नाथ एक संसउ बड मोरे । करगत बेद तत्त्व सब तोरे । इत्यादि । सो गरुड ने क्या काक का पूजन किया ? और स्तुति की कि वेद के तत्त्व सब आपको हस्तामलक है ? कथा प्रारम्भ के पहिले कुछ विधि का पालन तो हुआ ही होगा । उसे भी मैं सुनना चाहती हूँ ।

धर्मशास्त्र की आज्ञा है : नापृष्ट कस्यचिद् ब्रूयात् न चान्यायेन पृच्छत । बिना पूछे किसी से कुछ न कहना चाहिए और अन्याय से पूछने पर भी कुछ न कहना चाहिए । उसी बात को यहाँ दिखलाते हैं कि उमा की वाणी सुन्दर और सरल सुनकर शिवजी को सुख हुआ और आदर से बोले । उमा ने विनीत भाव से

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


और ऐसे सरल हृदय से प्रश्न किया कि वक्ता का मन प्रसन्न हो गया और बिना वक्ता के प्रसन्न हुए वह आदर से कथा नही कह सकता ।

## उमा के तीसरे प्रश्न का उत्तर

धन्य सती पावनि मति तोरी । रघुपति चरन प्रीति नहि थोरी ॥
सुनहु परम पुनीत इतिहासा । जो सुनि सकल सोक श्रम नासा ॥४॥
उपजै राम चरन बिस्वासा । भवनिधि तर नर बिनहि प्रयासा ॥५॥

अर्थ : हे सती ! तुम धन्य हो । तुम्हारी मति अतिपवित्र है । तुम्हे रामजी के चरणो मे थोडी प्रीति नही है । अब परम पवित्र इतिहास सुनो जिसे सुनने से सब शोक और भ्रमो का नाश होता है । रामजी के चरणो मे विश्वास होता है और बिना प्रयास के मनुष्य ससार सागर के पार हो जाता है ।

व्याख्या : पावन मति द्योतित करने के लिए यहाँ पहिले ही सती सम्बोधन दिया । जिसकी पावन मति होगी उसी के मन मे ऐसी अधिकार विषयक शङ्का उठेगी । जिसे रामजी के चरणो मे अधिक प्रीति होगी उसी के हृदय मे कथा की इतनी महिमा का ध्यान आवेगा । महेश मुखचन्द्र चकोरी होने से सतीत्व भी स्पष्ट है । यथा : नाथ तवानन ससि स्रवत कथा सुधा रघुबीर । स्रवन पुटन्हि मन पान करि नहि अघात मति धीर । अथवा उमा के पूर्व जन्म की याद दिलाने के लिए उस जन्म के नाम से सम्बोधन किया । क्योकि उत्तर देने मे उस जन्म की कथा भी थोडी सी कहनी है ।

अब इस कथा की महिमा कहते हैं कि यह इतिहास परम पुनीत है । क्योकि परम भागवत भुसुण्डिजी का इतिहास है । यथा : या निर्वृतिस्तनुभृतां तव पादपद्मध्यानाद् भवज्जनकथा श्रवणेन वास्यात् । सा ब्रह्मणि स्वमहिमन्यपि नाथ मा भूत् किं त्वन्तकासि लुलितात् पतता विमानात् । इसके सुनने से सभी शोक और भ्रम का नाश होता है । शोक और भ्रम का कारण कहते हैं कि इसके सुनने से श्रीरामजी के चरणो मे विश्वास उपजता है और विश्वास उपजने से शोक और भ्रम का ऐसा नाश होता है कि बिना प्रयास ही मनुष्य ससार सागर के पार हो जाता है । क्योकि शोक और मोह दो ही ससार के बीज हैं । इनके नष्ट होने से फिर ससार बाधा नही कर सकता ।

दो० ऐसिअ प्रस्न बिहग पति, कीन्हि काग सन जाइ ।
सो सब सादर कहिहौ, सुनहु उमा मन लाइ ॥५५॥

अर्थ : ऐसा ही प्रश्न गरुड ने काग से जाकर किया । वह सब आदर के साथ कहूँगा । हे उमा ! इसे मन लगाकर सुनो ।

व्याख्या : ऐसा ही प्रश्न तुम्हे काग देह कैसे मिला यथा : काग देह केहि कारण पाई । तात सकल मोहि कहहु बुझाई : गरुडजी ने भुसुण्डिजी से किया था ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इस प्रसङ्ग को आदर के साथ मैं कहूँगा क्योंकि यह परम पवित्र है। तुम भी मन लगाकर सुनो। भाव यह कि पवित्र चरित्र श्रोता को तभी पवित्र करता है जब कि वह मन लगाकर सुनता है।

मै जिमि कथा सुनी भव मोचनि । सो प्रसंग सुनु सुमुखि सुलोचनि ॥
प्रथम दक्ष गृह तव अवतारा । सती नाम तब रहा तुम्हारा ॥१॥

अर्थ : मैंने जिस भाँति यह भवमोचनी कथा सुनी हे सुमुखि हे सुलोचनि ! वह प्रसङ्ग अब सुनो। पहिले दक्ष के घर तुम्हारा अवतार हुआ था। उस समय तुम्हारा नाम सती था।

व्याख्या : उमा के पाँच प्रश्नों मे से तीसरे का उत्तर पहिले देते हैं। इसी प्रश्न के विषय मे उमा ने कहा था कि मुझे अति भारी कौतुक है। अत पहिले उसी का उत्तर देते हैं। उमा ने प्रश्न करते हुए शिवजी के मुख तथा वाणी की सुन्दरता सूचक शब्द कहे थे। यथा : नाथ तवानन ससि स्रवत कथा सुधा रघुबीर। अतः उत्तर देते समय शिवजी भी उमा के मुख और नेत्र के शोभा सूचक सम्बोधन दे रहे हैं। यथा : सो प्रसग सुनु सुमुखि सुलोचनि। जिस भाँति भगवत्कथा भवसागर पार करने के लिए नौका रूप है उसी भाँति भागवत की कथा भी है।

भगवती उमा यद्यपि नित्या है। जगन्मूर्ति हैं। उन्हीं से यह ससार व्याप्त है। फिर भी उनके अवतार हुआ करते है। सो शिवजी उनके पूर्व अवतार की याद दिलाते हैं। कहते हैं कि इसके पहिले तुम्हारा अवतार दक्ष प्रजापति के यहाँ हुआ था। उस अवतार मे तुम्हारा नाम उमा नही था। माँ बाप ने सती नाम रक्खा था।

दक्ष जज्ञ तव भा अपमाना । तुम्ह अति क्रोध तजे तब प्राना ॥
मम अनुचरन्ह कीन्ह मख भंगा । जानहु तुम्ह सो सकल प्रसंगा ॥२॥

अर्थ : दक्ष के यज्ञ मे तुम्हारा अपमान हुआ। तुमने अत्यन्त क्रोध से प्राण परित्याग किया। मेरे गणों ने दक्ष का यज्ञ विध्वस किया तुमको वह सब बातें मालूम ही हैं।

व्याख्या : अपने कथा सुनने की घटना का समय निर्धारित करते हुए कहते हैं कि उस अवतार मे जब दक्ष के यज्ञ मे तुम्हारा अपमान हुआ। यथा : दक्ष न कछु पूछी कुसलाता। सतिहि बिलोकि जरे सब गाता। पति का अपमान साध्वी के लिए : उसका इतना बडा अपमान है कि उसे वह नही सह सकती। यथा : सिव अपमान न जाइ सहि हृदय न होइ प्रबोध। सकल सभहि हठि हटकि पुनि बोली बचन सक्रोध : इत्यादि। अस कहि योग अगिनि तनु जारा। भयउ सकल मख हाहाकारा। तथा : वीरभद्र करि कोप पठाये। जज्ञ बिधस जाइ तिन कीन्हा। शिवजी कहते हैं कि तुम्हारी सब बातें जानी हुई हैं। जीवों की भाँति मोह से घिरी बुद्धि न होने के कारण पूर्व[illegible]

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तब अति सोच भयो मन मोरे। दुखी भएउँ बियोग प्रिय तोरे ॥
सुदर बन गिरि सरित तडागा। कौतुक देखत फिरो बेरागा ॥३॥

अर्थ तब मेरे मन मे अत्यन्त सोच हुआ और हे प्रिये! मैं तेरे वियोग मे दु खी हुआ। सुन्दर वन पर्वत सरित और तालाबों का कौतुक राग रहित होकर देखता फिरता था।

व्याख्या: पहिले याज्ञवल्क्यजी कह आये हैं: जदपि अकाम तदपि भगवाना। भगत बिरह दुख दुखित सुजाना। सो ऐसे दु खी हुए कि सती के शरीर को सिरपर धारण किये हुए घूमने लगे। सूर्य की किरणो मे सुदर्शन को प्रविष्ट करके विष्णु भगवान् ने उस शरीर को टुकडे टुकडे करके गिरा दिया। यह कथा पुराणो मे है।

अब अपनी लीला कहते हैं। जबते सती जाइ तनु त्यागा। तब से सिव मन भयउ बिरागा। जपहिं सदा रघुनायक नामा। जहँ तहँ सुनहिं राम गुन ग्रामा। अत कैलास मे रहना कुछ दिनो तक छोड दिया था। परिव्राजक होकर प्रकृति की शोभा देखते फिरते थे। अथवा जगन्मूर्ति भगवती की ही शोभा देखते फिरते थे।

गिरिसुमेर उत्तर दिसि दूरी। नील सैल एक सुदर भूरी ॥
तासु कनकमय सिखर सुहाए। चारि चारु मोरे मन भाए ॥४॥

अर्थ: उत्तर दिशा मे बहुत दूर पर सुमेरु पर्वत है। वहाँ एक नील पर्वत है जो अत्यन्त सुन्दर है। उस पर्वत पर चार सुवर्णमय शिखर हैं। वे ऐसे सुन्दर हैं कि मुझे बहुत अच्छे लगे।

व्याख्या: जिस सुमेरु पर्वत की चर्चा शिवजी कर रहे हैं वह हिमालय की शृखला मे नही है। वह कैलास से भी बहुत दूर उत्तर मे है। सुमेरु पर्वत उत्तर दिशा की परम सीमा है। उसी के अन्तर्गत एक पर्वत है जिसे नीलगिरि कहते हैं। वह सुमेरुगिरि देवताओ का निवास स्थान है। वहाँ उच्च कोटि के महात्मा ही जा सकते हैं। उस नीलगिरि के चार शिखर थे जो बडे सुन्दर और सुवर्णमय थे।

भौगोलिक स्थिति यह है कि भारत वर्ष के उत्तर किंपुरुषवर्ष है और उसके भी उत्तर हरिवर्ष है। हरिवर्ष के उत्तर इलावृतवर्ष है जिसके मध्य मे मेरुपर्वत है। यह उत्तर की परा सीमा है। यह निरश देश है। मेरु के भी उस पार इलावृतवर्ष और रम्यकवर्ष की सीमाभूत नीलगिरि पर्वत है।

तिन्ह पर एक एक बिटप बिसाला। बट पीपर पाकरी रसाला ॥
सैलोपरि सर सुन्दर सोहा। मनि सोपान देखि मन मोहा ॥५॥

अर्थ: उन पर क्रम से बरगद पीपल पाकर और आम के एक एक वृक्ष हैं। पर्वत पर सुन्दर तालाब शोभायमान हैं। जिसमे मणि की सोढियाँ लगी हैं। जिन्हे देखकर मन मोह जाता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : यह दिव्य सृष्टि का वर्णन है। उसका वर्णन लौकिक भाषा मे इसी भाँति किया जाता है। उस शिखरो पर एक एक दिव्य वृक्ष हैं। एक पर वट का पेड़ है। दूसरे पर अश्वत्थ वृक्ष है। तीसरे पर पाकर का पेड है और चौथे पर आम का पेड़ है। उस पर्वत पर मानससर की भाँति सुन्दर सर हैं। यह सरोवर भी दिव्य है। इसकी मणिमय दिव्य सीढियाँ हैं। यह भुसुण्डिजी के आश्रम का वर्णन है कि शिवजी को भी मनोहर मालूम होता है। श्रीगुरु भगवान् के वरदान का प्रभाव है।

दो. सीतल अमल मधुर जल, जलज बिपुल बहु रंग।
कूजत कलरव हंस गन, गुंजत मंजुल भृंग ॥५६॥

अर्थ : उसका जल शीतल निर्मल और मधुर है। उसमे अनेक रंग के कमल हैं। हंस लोग मीठे शब्द से कूज रहे हैं और भँवरें सुन्दर गूँज रहे हैं।

व्याख्या : शीतल से सुख स्पर्श कहा। अमल से निर्मल रूप कहा। जलज से गन्ध कहा। मधुर से रस कहा कूजत और गूँजत से शब्द कहा। इस भाँति उस तालाब को सर्वेन्द्रिय तर्पक बतलाया।

तेहि गिरि रुचिर बसै खग सोई। तासु नास कलपात न होइ ॥
माया कृत गुन दोष अनेका। मोह मनोज आदि अबिबेका ॥१॥

अर्थ : उस सुन्दर पर्वत पर वह पक्षी बसता है जिसका कल्प के अन्त मे भी नाश नही होता। मायाकृत गुण दोष बहुत से हैं : मोह काम अविवेक आदि।

व्याख्या : शिवजी कहते हैं कि उस नीलगिरि पर वह पक्षी बसता है। जिसका वर्णन पहिले कर चुके हैं। ऐसे पवित्र स्थल मे रहनेवाले को काक कैसे कहे। दूसरी बात यह है कि इन्द्र आदि देवता की भी आयु एक मन्वन्तर है और चौदह मन्वन्तर का एक कल्प होता है। एक कल्प मे चौदह इन्द्र बदलते हैं। कल्पान्त मे सूर्य चन्द्र भी नही रह जाते। तमाम प्रलय हो जाता है। तीन लोक का नाश हो जाता है पर उस पक्षी का नाश नही होता।

पहिले कह आये है : सुनहु तात माया कृत गुन अरु दोष अनेक। गुन यह उभय न देखिअहि देखिअ सो अबिबेक। उन मायाकृत गुण और दोष को न देखना चाहिए। इस बात की शिक्षा दी जाती है। सो वे गुण दोष तथा मोह काम अविवेक आदि।

रहे ब्यापि समस्त जग माही। तेहि गिरि निकट कबहु नहि जाही ॥
तहँ बसि हरिहि भजै जिमि कागा। सो सुनु उमा सहित अनुरागा ॥२॥

अर्थ : समस्त ससार मे व्याप्त हो रहे हैं। परन्तु उस पर्वत के सन्निकट नही जाते। वहाँ बसकर कौआ जिस भाँति हरि का भजन करता है उसे उमा अनुराग के सहित सुनो।

व्याख्या : संसार मे कोई स्थल ही ऐसा नहीं है जहाँ मायाकृत गुण दोष

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तथा काम क्रोध मोह अविवेकादि का प्रवेश न हो। परन्तु वहाँ इन सबकी गति ही नही है। वे उस पर्वत के निकट नही जा सकते। भाव यह कि वह स्थल ससार से निराला है।

वहाँ रहकर जिस भाँति वह पक्षी भगवान् को भजता है वह सुनने योग्य है। जिसका कल्पान्त मे नाश नही होता। उसका दिन भी सामान्य नही हो सकता। जब मन्वन्तर से कम आयुवाले पितरो का दिन एक पक्ष का होता है और देवताओ का दिन छ महीने का होता है। तब कल्पान्त मे नाश न होनेवाले का दिन भी तदनुसार बडा होना चाहिए। प्रसङ्ग देखने से पता चलता है कि भुसुण्डिजी का दिन एक चतुर्युगी के बराबर होता है। अत प्रत्येक चतुर्युगी के भुसुण्डिजी के हरि भजन की दिन चर्या शिवजी कहते हैं और उसे अनुराग के साथ श्रवण करने के लिए श्रोता को सावधान करते हैं।

पीपर तरु तर ध्यान सो धरई। जाप जज्ञ पाकरि तर करई॥
आँब छाँह कर मानस पूजा। तजि हरि भजन काज नहि दूजा॥३॥

अर्थ पीपल के वृक्ष के नीचे वह ध्यान करता था। पाकर के तले जप यज्ञ करता था। आम के तले मानस पूजन करता था। हरि भजन छोडकर उसे दूसरा काम ही न था।

व्याख्या ध्यान प्रथम जुग मख बिधि दूजे। द्वापर परितोषत प्रभु पूजे। कलि केवल मल मूल मलीना। पाप पयोनिधि जनमन मीना। कलियुग केवल हरिगुन गाहा। गावत नर पावहि भव थाहा। सो सत्ययुग भर वह पीपल के तले ध्यान करता था। त्रेता म यज्ञ की विधि है और उसे यज्ञ का अधिकार नही। अत पाकर के तले जपयज्ञ करता था। द्वापर मे पूजा का विधान है और पूजा मे भी काक का अधिकार नही। अत आम तले मानस पूजा करता था। उसे सिवा हरिभजन के दूसरा काम ही नही।

बर तर कह हरि कथा प्रसगा। आवहि सुनहि अनेक बिहगा॥
राम चरित बिचित्र बिधि नाना। प्रेम सहित कर सादर गाना॥४॥

अर्थ बरगद के तले वह भगवान का कथा प्रसङ्ग कहता था और अनेक पक्षी सुनने आते थे। रामजी के विचित्र चरित्रो को नाना प्रकार से प्रेम के सहित सादर गान करता था।

व्याख्या कलियुग मे हरिगुण गाथा गान का विधान है। अत कलियुग मे वह बरगद तल भगवान् की कथा कहता था। कथा पक्षी भाषा मे होती थी। अत अनेक पक्षी सुनने आते थे। राम चरित कल्प भेद के कारण विचित्र हैं। यथा कल्प भेद हरिचरित सोहाये। भाँति अनेक मुनीसन्ह गाये। उन्ही चरित्रो को भुसुण्डिजी नाना प्रकार से आदर के साथ साथ बडे प्रेम से गान करते थे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

सुनहिं सकल मति बिमल मराला। बसहिं निरंतर जो तेहि ताला ॥
जब मैं जाइ सो कौतुक देखा। उर उपजा आनंद बिसेखा ॥५॥

अर्थ : उसे निर्मल बुद्धिवाले सब हंस सुनते थे जो सदा उसी ताल में रहते थे। जब मैंने जाकर वह कौतुक देखा तो मेरे मन में विशेष आनन्द हुआ।

व्याख्या : शिवजी कहते हैं कि जिन हंसों के बारे में मैं कह आया हूँ : कूजत कलरव हंस गन। वे सब हंस बड़े निर्मल बुद्धिवाले थे। वे सदा उस ताल में बसते थे और भुसुण्डिजी की कही हुई राम कथा सुनते थे। जब मैंने यह कौतुक देखा कि वक्ता काक और श्रोता हंस : कथा रामजी की हो रही है। तो मेरे मन में विशेष आनन्द हुआ। विरह जन्य दुःख जाता रहा। इतना घूमे परन्तु दुःखी ही रहे शान्ति यहाँ जाने पर हुई।

दो. तब कछु काल मराल तनु, धरि तहँ कीन्ह निवास।
सादर सुनि रघुपति गुन, पुनि आयेउँ कैलास ॥५७॥

अर्थ : तब कुछ समय तक मैंने हंस रूप धारण करके वहीं निवास किया। आदर के साथ राम गुण का श्रवण करके फिर कैलास चला आया।

व्याख्या : मैंने यह कौतुक देखा। उन लोगों ने मुझे नहीं देखा। मैं भी हंस रूप धारण करके उनमें जा मिला। अपने रूप से जाने में रस भङ्ग हो जाता। कथा बन्द हो जाती। भुसुण्डिजी मेरे सामने वक्ता बनकर व्यासासन पर न बैठते। मैं उसी रूप से वहाँ कुछ दिनों तक ठहरा रहा। कथा सम्पूर्ण होने पर कैलास लौट आया। घूमना बन्द कर दिया क्योंकि चित्त में शान्ति आगयी। कथा महाप्रभावा है।

गिरिजा कहेउँ सो सब इतिहासा। मैं जेहि समय गएउ खग पासा ॥
अब सो कथा सुनहु जेहिं हेतू। गएउ काग पहँ खगकुलकेतू ॥१॥

अर्थ : हे पार्वती मैंने वह सब इतिहास कहा कि मैं जिस समय उस पक्षी के पास गया। अब वह कथा सुनो जिस कारण से पक्षिराट् गरुड़ काक के पास गये।

व्याख्या : सुनहु परम पुनीत इतिहासा से उपक्रम करके यहाँ उपसंहार करते हैं। यह परमपावन इतिहास है। इसमें जगदम्बा का दक्ष गृह में अवतार, शिवजी यज्ञ भाग न मिलने पर सती का क्रोध, सती के शरीर त्याग पर शिवजी का बिराग, नील शैल पर जाना, भुसुण्डि द्वारा कथित कथा श्रवण, शान्ति लाभ वर्णन है। यहाँ गिरिजा के तीसरे प्रश्न का उत्तर समाप्त हुआ।

सो केहि हेतु काग सन जाई। सुनी कथा मुनि निकर बिहाई। इस चौथे प्रश्न का उत्तर आरम्भ होता है। गरुड़जी का नीलगिरि पर जाना निर्हेतुक नहीं हुआ। खग कुल केतु ने काग के पास जाना सोचा भी नहीं था। वे मुनि के पास हो गये। पर कार्य कारण ऐसा आ पड़ा कि उन्हें जाना पड़ा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



## उमा के चौथे प्रश्न उत्तर

जब रघुनाथ कीन्ह रण क्रीडा । समुझत चरित होत मोहि व्रीड़ा ॥
इन्द्रजीत कर आपु बँधायो । तब नारद मुनि गरुड पठायो ॥२॥

अर्थ जब रामजी ने रण लीला की उस चरित को स्मरण करके मुझे सङ्कोच होता है । इन्द्रजीत के हाथ से आपने अपने को बँधवा लिया । तब नारद मुनि ने गरुड को भेजा ।

व्याख्या व्याल पास बस भयउ खरारी । स्ववस अनत एक अविकारी । रन सोभा लगि प्रभुहि बँधायो । देखि दसा देवन्ह भय पायो । अपने आप इन्द्रजीत के हाथ से बँधवा लेना यह सरकार की रणक्रीडा थी । नही तो मेघनाद का क्या सामर्थ्यं था कि सरकार को बाँध लेता । उस चरित्र को स्मरण करके मुझे सङ्कोच होता है कि मेरे स्वामी उस निशिचर के हाथ से बँध गये ।

अपने को बँधवा लेने का कारण कहते हैं कि उसने इन्द्र को जीता था और इन्द्र कुछ न कर सके । उसी भाँति अपने को एक बार बँधवा लेने से इन्द्र के मान की रक्षा होगी । अत अपने को बाँध लेने दिया । ऐसे बँधे कि कोई छुडानेवाला नही । तब नारद मुनि ने गरुड को भेजा कि जाओ अपने स्वामी को छुडाओ । नारदजी को विशेष चिन्ता हुई : मोर साप करि अगीकारा । सहत राम नाना दुख भारा । अत तुरन्त गरुड लोक पहुँचे और वहाँ से गरुडजी को भेजा कि तुम्हारे स्वामी युद्ध मे बँध गये है जाकर उन्हे छुडाओ ।

बंधन काटि गये उरगादा । उपजा हृदय प्रचंड विषादा ॥
प्रभु बंधन समुझत बहु भाँती । करत विचार उरग आराती ॥३॥

अर्थ : गरुडजी बन्धन काटकर गये । पर उनके हृदय मे प्रचण्ड विषाद उपजा । प्रभुके बन्धन को बहुत भाँति से मन मे बिठाते हुए सर्पों के शत्रु विचार करने लगे ।

व्याख्या ' यदि बन्धन काटकर न जाते तो बिषाद न होता । जो बन्धन रामजी का काटा न कटा उसे उन्होने काटा । इस बात पर हर्ष होना चाहता था । पर उन्हे बिषाद हुआ । बिषाद का कारण यह हुआ कि उनके मनमे अनेक तर्क उठने लगे । यथा ' ससय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता । दुखद लहरि कुतर्क बहु व्राता । सर्प से ग्रसे हुए प्राणी की सी दशा हो गयी । मन मे बात बिठाते है कि प्रभु का बन्धन किसी भाँति सम्भव है पर बात बैठती नही । मुनिजो ने कहा है कि प्रभु का अवतार हुआ हैं । वह अन्यथा हो नही सकता । वे उरग आराती हैं । उनके विचार मे सर्प की कोई महत्ता हो नही है ।

व्यापक ब्रह्म बिरज बागीसा । माया मोह पार परमीसा ॥
सो अवतरा सुनेउ जगमाही । देखेउँ सो प्रभाव कछु नाही ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com

अर्थ . व्यापक ब्रह्म रज से रहित वाणी के प्रभु माया मोह से परे परमेश्वर ने ।सार मे अवतार धारण किया। ऐसा सुना पर वैसा प्रभाव तो कुछ भी दिखाई ा पड़ा।

व्याख्या : जितनी बातें हैं वे सब न बँधने के ही पोषक हैं। व्यापक को बन्धन ऽसे ? ब्रह्म बद्ध कैसे होगा ? रजोगुण बन्धन का कारण है। विरज के बन्धन का ारण ही नही। वाक्पति को मोह कैसे ? जो मोह माया पार है वह सीमित कैसे हो ।कता है। बन्धन जीव को होता है परमेश्वर को बन्धन कैसे सम्भव है।

अवतार उसी का हुआ ऐसा सुना। वह अप्रमाण नही है। बह पावक प्रगटै ।सि माही। नारद बचन अन्यथा नाही। परन्तु वह प्रभाव कुछ भी न देखा। जीव ो बँधने पर जो दशा होती है वही देखा।

दो. भव बंधन ते छूटहि नर, जपि जाकर नाम।
खर्ब निसाचर बाँधेउ, नाग पास सोइ राम ॥५८॥

अर्थ : जिसका नाम जपकर मनुष्य भव बन्धन से छूट जाते हैं। उसी राम को ुच्छ निशाचर ने नागपाश मे बाँध लिया।

व्याख्या : नामरूप दुइ ईस उपाधी। सो उपाधि के आश्रयण से जब भवबन्धन े मुक्ति होती है तब उस प्रभु को बन्धन कैसे सम्भव हैं। बन्धन असम्भव जिसे बँधा ुआ पाया उसका बाँधा जाना असम्भव। जिसने बाँधा उसमे बाँधने का सामर्थ्य असम्भव। अत· बन्धन हुआ कैसे। उस राम को क्षुद्र राक्षस बांधे यह किसी भाँति सम्भव नही।

नाना भाँति मनहि समुझावा। प्रगट न ज्ञान हृदय भ्रम छावा ॥
खेद खिन्न मन तर्क बढाई। भयउ मोहबस तुम्हरिहि नाई ॥१॥

अर्थ : अनेक प्रकार से मन को समझाया। परन्तु ज्ञान प्रकट नही हुआ हृदय मे भ्रम छाया हुआ था। खेद से खिन्न मन मे तर्क बढाकर तुम्हारी ही भाँति मोहवश हो गये।

व्याख्या : बडे लोग किसी वेष मे छिपते नही। नृसिंह वाराहादि अवतार हुए तो क्या वे किसी भाँति छिप सके ? उनका प्रभाव प्रकट हो ही गया। उस नीच निशाचर द्वारा बाँधे जाने पर जो दशा सामान्य जीव की होती है वही दशा रामजी की थी। कुछ भी अन्तर नही था तब कैसे कहे कि अवतार हुआ है ?

लीन्हे नर अवतारहू, ब्रह्म कि नर होइ जाय।
ढकी राखहूँ मे अगिनि कानन सकै जराय॥
जहाँ छवो ऐश्वर्य को अति महान उत्कर्ष।
तहाँ बंध की क्या कथा सदा मुक्ति निष्कर्ष॥
मृषा होइ नहि कह्यो जो मुनि सुजान सर्वज्ञ।
पै परिपूरण ब्रह्म किमि होइ सकै अल्पज्ञ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इस भाँति मन को बहुत समझाया। परन्तु प्रत्यक्ष के सामने आप्तवाक्य का बल नहीं चला। हृदय में तो भ्रम छाया हुआ था। अत ज्ञान ढँक गया था। भ्रम की निवृत्ति हो तो ज्ञान का प्रकाश हो।

मन मे तर्क के बढाने से खेद उत्पन्न हुआ। उससे गरुडजी खिन्न हो गये। कर्कश तर्क करने से विषाद होता ही है। अमर्यादित तर्क से बडी भारी हानि होती है। गरुडजी ऐसे महात्मा मोह के वश हो गये। शिवजी उमा से कहते हैं कि जैसे तुम मोह के वश हो गयी थी। तुम पर उपदेश काम नहीं करता था उसी भाँति गरुडजी पर भी उनके मन के उपदेश ने काम न किया।

ब्याकुल गएउ देवरिषि पाहीं। कहेसि जो ससय निज मन माहीं ॥
सुनि नारदहिं लागि अति दाया। सुनु खग प्रबल राम कै माया ॥२॥

अर्थ प्रसन्न होकर नारदजी के पास जाकर मङ्गलमय समाचार सुनाना था। सो व्याकुल होकर नारदजी के पास गया और जो सशय अपने मन मे था उसे कह सुनाया। सुनकर नारदजी को बडी दया आयी। बोले हे खग ! रामजी की माया बडी प्रबल है।

व्याख्या गरुडजी महात्मा हैं। सशय सहन नहीं कर सकते। उसके मिटाने के लिए तुरन्त कटिबद्ध हो गये। व्याकुल होकर उन्हीं नारदजी के पास गये। जिन्होंने अवतार बतलाकर बन्धन काटने के लिए भेजा था। देवरिषि कहने का भाव यह कि गरुडजी देवता हैं। अत देवयोनि मे जो ऋषि हैं उन्हीं के पास जाना उनका स्वभाव से ही प्राप्त था। होइ न बिमल बिराग उर गुरुसन किये दुराव। अत अपने मन का संशय उनसे कह डाला।

व्याख्या नारदजी सन्त हैं। भुक्तभोग हैं। दूसरे के दु ख को देख नहीं सकते। गरुडजी को दु खी देखकर उन्हें बडी दया आयी। गरुडजी को खग सम्बोधन करते हैं। क्योंकि रामजी की माया के सामने गरुडजी भी एक साधारण खग के ही तुल्य हैं। कहने लगे कि जिस राम के प्रभाव को देखने की तुम्हें इच्छा है इस समय तुम उसी की माया से मोहित हो।

जो ज्ञानिन्ह कर चित अपहरई। बरिआईं बिमोह बस करई ॥
जेहि बहु बार नचावा मोही। सोइ ब्यापी बिहंग पति तोही ॥३॥

अर्थ जो ज्ञानियों के ज्ञान को हरण करती है और बलपूर्वक उसे विशेष मोह मे डाल देती है। जिसने अनेक बार मुझे नचाया है। वही हे विहङ्गपति ! तुम्हें व्याप्त हो गयी।

व्याख्या : सरकार की माया मे बडा सामर्थ्य है। उसके सामने किसी ज्ञानी का ज्ञान ध्यान नहीं चलता। ज्ञानी ज्ञानबल लगाते ही रहते हैं और मोहवश हो जाते हैं। यथा ज्ञानिनामपि चेतासि दवी भगवती हि सा। बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति। गरुड महाज्ञानी गुनरासी। हरि सेवक अति निकट निवासी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


इन्हें माया कहाँ ? पर राम की माया ऐसी है कि जिसने इन्हें भी मोह में डाल दिया। गरुड़जी प्रभाव देखने के लिए उत्सुक थे। सो उनका प्रभाव उनकी माया ही है। अतः माया अपना बल दिखला रही है।

इस माया ने अनेक बार मेरे : नारद के चित्त का अपहरण किया जो नाच नचाना चाहा मुझे नाचना पड़ा। हे पक्षिराट् वही तुम्हें व्याप्त हो गयी है।

महा मोह उपजा उर तोरे। मिटिहि न वेगि कहे खग मोरे ॥
चतुरानन पहँ जाहु खगेसा। सोइ करेहु जेहि होइ निदेसा ॥४॥

अर्थ : तुम्हारे हृदय में महामोह उत्पन्न हुआ है वह मेरे कहने से जल्दी नहीं मिटेगा। तुम ब्रह्मदेव के पास जाओ। वे जो आज्ञा दें वही करो।

व्याख्या : नारदजी समझ रहे है कि गरुड़जी के मोह होने में कोई रहस्य है। अतः समझाने बुझाने से यह नही जा सकता। वह रहस्य क्या है : यह मैं नहीं जानता। ब्रह्मदेव जिनके चारमुखों से चारों वेदों का प्रादुर्भाव हुआ है अवश्य जानते होगे। अतः वे ही उपाय बतला सक्ते हैं। अतः नारदजी कहते हैं कि मैं तो स्वयं इस माया के वश पड़कर नाच चुका हूँ। अतः मेरे कहने से यह जल्दी छूटने-वाली नहीं। ब्रह्मदेव इसके छूटने का उपाय बतलायेंगे। तुम उन्हीं के पास चले जाओ। मैं तो एक स्थान पर बहुत देर रहता नही और सब संशयों का भङ्ग बिना बहुत काल तक सत्सङ्ग किये होता नही।

दो. अस कहि चले देव रिषि, करत राम गुन गान।
हरि माया बल बरनत, पुनि पुनि परम सुजान ॥५९॥

अर्थ : ऐसा कहकर नारदजी रामगुन गान करते चले। परम सुजान मुनिजी हरिमाया के बल का बार बार वर्णन करते जाते थे।

व्याख्या : इतना कहकर नारदजी गरुड़ लोक से चल दिये। समाचार सुनने के लिए ही वहाँ ठहर गये थे। गरुड़जी खड़े ही रह गये। देवऋषिजी बड़े सुजान हैं। दिन रात हरिगुन गान किया करते हैं। जितना आवश्यक है उतनी ही बातचीत करते हैं। गरुड़जी से उन्हें उतना ही कहना रहा। शापवश एक स्थान में अधिक ठहरना नहीं होता। अतः गुनगान करते चले। निर्गुण का कौन सा गुण गावें ? अतः सरकार की माया का प्रभाव वर्णन ही सरकार का गुणगान है। अतः उसी का वर्णन करते चले।

तब खगपति बिरंचि पहिं गएऊ। निज संदेह सुनावत भएऊ ॥
सुनि बिरंचि रामहि सिरु नावा। समुझि प्रताप प्रेम अति छावा ॥१॥

अर्थ : तब गरुड़जी ब्रह्मदेव के पास गये और अपना सन्देह कह सुनाया। सुन करके ब्रह्मदेव ने रामजी की माया को सिर नवाया। प्रताप समझकर प्रेम हृदय में छा गया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तेहि मम पद सादर सिरु नावा । पुनि आपन संदेहु सुनावा ॥
सुनि ताकरि बिनीत मृदु बानी । प्रेम सहित मै कहेउँ भवानी ॥१॥

अर्थ : उसने मेरे चरणो मे आदर के सहित सिर नवाया और तब अपना सन्देह सुनाया। उसकी विनीत मृदु वाणी सुनकर हे भवानी! मैंने प्रेम के साथ कहा।

व्याख्या : यद्यपि गरुडजी अत्यन्त आतुर थे। फिर भी जिज्ञासु मे जो गुण होना चाहिए उसमे भेद नही पडा। शिवजी कहते हैं कि उन्होने आदर के साथ प्रणाम किया और तत्पश्चात् अपना सन्देह कह सुनाया। गरुडजी जहाँ जाते हैं निःसङ्कोच अपना सन्देह कह डालते है। क्योंकि उन्हे मालूम है : होइ न बिमल बिबेक उर गुरुसन किये दुराव। नारदजी के पास गये तब : कहेसि जो ससय निज मन माही। ब्रह्मा के पास गये तब : निज सदेह सुनावत भयऊ। अब शिवजी से : पुनि आपन सदेह सुनावा।

नियम यही है कि प्रश्नकर्ता विनीत मृदु वाणी मे अपना सन्देह कहे। विनीत मृदु वाणी से ही वक्ता को प्रेम होता है और वह श्रोता की अभिलाषा पूर्ण करता है। शिवजी को समाधान नही करना है दूसरी जगह भेजना है। गरुड़जी के उत्साह भङ्ग होने की सम्भावना है कि जिसके पास मैं जाता हूँ वह अपनी बला टालता है। दूसरी जगह भेजता है। ये भी दूसरी जगह भेज रहे हैं। अतः शिवजी प्रेम के सहित बोले जिसमे विश्वास मन मे उपजे। यथा : कपि के बचन सप्रेम सुनि उपजा मन बिस्वास। यहाँ पर शिवजी द्वारा भवानी के सम्बोधन करने का यह भाव है कि तुम जानती हो कि ऐसे समय में उपदेश निष्फल जाता है। मुख्य कारण हटना चाहिए।

मिलेहु गरुड मारग महँ मोही । कवन भाँति समुझावौ तोही ॥
तबहि होइ सब ससय भगा । जब बहु काल करिअ सतसगा ॥२॥

अर्थ : गरुडजी! तुम मुझे रास्ते मे मिले : किस प्रकार से तुम्हे समझाऊँ। जब बहुत दिनो तक सत्सङ्ग किया जाय तब सब सशय दूर होते हैं।

व्याख्या : शिवजी कहते है कि यदि घर पर मिले होते तो तुम्हे समझाते। वक्ता जब एकाग्र बैठा हुआ हो तब अवसर देखकर प्रश्न करने का विधान है। इस समय मैं रास्ता चल रहा हूँ। तुम भी चञ्चल हो मै भी चञ्चल हूँ तुम्हे कैसे समझाऊँ। दो टप्पी बात से सशय दूर नही होता। जिसे अपना सब सशय दूर करना हो वह बहुत काल तक सत्सङ्ग करे।

सुनिअ तहाँ हरि कथा सुहाई । नाना भाँति मुनिन्ह जो गाई ॥
जेहि महुँ आदि मध्य अवसाना । प्रभु प्रतिपाद्य राम भगवाना ॥३॥

अर्थ : वहाँ हरि की सुन्दर कथा सुने जिसे मुनियो ने नाना भाँति से गान

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



किया है। जिसके आदि मध्य और अन्त में प्रभु भगवान् राम का प्रतिपादन होता है।

व्याख्या : संशय का निरसन केवल उत्तर दे देने से ठीक ठीक नही होता। जब भगवान् की कथा सुने और नाना भाँति की कथा जो मुनियो ने गाई है उन्हे सुने तब सशय दूर होता है। इसलिए शिवजी ने अपने मानस में चार कल्पों की राम कथा को स्थान दिया है।

श्रीराम कथा के आदि मध्य और अन्त मे प्रभु राम भगवान् का प्रतिपादन रहता है। जब जब वेदान्त वेद्य पुरुष अवतीर्ण होते हैं तब तब उनकी यश कथा का भी रामायण रूप से मुनियो द्वारा प्रादुर्भाव होता है। वह कथा वेद के तुल्य होती है। जिस भाँति सम्पूर्ण वेद में एक मात्र भगवान् वेद्य हैं। यथा : वेदैश्च सर्वैरहमेव वेद्यः। उसी भाँति रामकथा में भी सर्वत्र राम ही वेद्य हैं।

नित हरि कथा होति जहँ भाई। पठवौं तहाँ सुनहु तुम्ह जाई॥
जाइहि सुनत सकल संदेहा। रामचरन होइहि अतिनेहा॥४॥

अर्थ : हे भाई जहाँ सदा हरि की कथा होती है मैं तुमको वही भेजता हूँ। तुम जाकर सुनो। सुनते ही सारा सन्देह जाता रहेगा और रामजी के चरणो में अत्यन्त प्रेम होगा।

व्याख्या : तुम्हे वहाँ जाना चाहिए जहाँ नित्य राम कथा होती हो। न तो नारदजी नित्य कथा कहते हैं न ब्रह्माजी कहते हैं और न मैं नित्य कथा कहता हूँ। मैं तुम्हे वहाँ भेजता हूँ जहाँ नित्य कथा होती है। वहाँ से तुम्हे दूसरी जगह जाना न होगा। वहाँ जाकर कुछ कहना सुनना नही है। कथा नित्य होती है तुम भी जाकर श्रोता बन जाओ। कथा सुनने से ही सन्देह जाता है और रामजी के चरणों मे अत्यन्त स्नेह उपजता है। मैं आशीर्वाद भी देता हूँ।

दो. बिनु सत संग न हरि कथा, तेहि बिनु मोह न भाग।
मोह गए बिनु रामपद, होइ न दृढ़ अनुराग॥६१॥

अर्थ : बिना सत्सङ्ग के हरिकथा होती नही और उसके बिना मोह भागता नही और बिना मोह के भागे रामचरण में दृढ़ अनुराग होता नही।

व्याख्या : हरिकथा सत्सङ्ग में ही होती है। सत्सङ्ग मे तो कामकथा चला ही करती है। जहाँ हरि भक्ति नही है वहाँ हरि कथा होती भी नही। अतः हरिकथा श्रवण करना चाहनेवाले को सत्सङ्ग करना चाहिए। हरिकथा से ही मोह भागता है दूसरा उपाय मोह भगाने का कोई है नही। हरि कथा में ही ऐसा सामर्थ्य है कि उसके सुनने से सब मानसिक व्याधियों का मूल तथा सब प्रकार शूलों का देनेवाला मोह वहाँ ठहर नही सकता और जब तक मोह बना हुआ है तब तक रामचरण मे दृढ अनुराग होता नही। अतः रामचरणों मे दृढ अनुराग चाहनेवाले को सत्सङ्ग ढूँढना चाहिए।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मिलहिं न रघुपति बिनु अनुरागा। किए जोग तप ज्ञान बिरागा ॥
उत्तर दिसि सुन्दर गिरि नीला। तहँ रह काग भुसुण्डि सुसीला ॥१॥

अर्थ रामजी बिना अनुराग के नही मिलते। चाहे योग जप ज्ञान विराग कितना भी किये जायँ। उत्तर दिशा मे एक सुन्दर पर्वत है जिसे नीलगिरि कहते हैं। वहाँ भुसुण्डि नाम का एक सुशील काग रहता है।

व्याख्या रामजी का राग तो जीव मात्र पर सदा रहता है। यथा सब मम प्रिय सब मम उपजाये। जीव को भी उचित है कि ऐसे सहज सनेही से अनुराग करे। बिना अनुराग के उसका सब किया हुआ व्यर्थ है। सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न राम पद पकज भाऊ। जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहिं राम प्रेम परधानू। योग जप ज्ञान विराग सबकी उपयोगिता है। इनके फल अलग हैं। ये यदि भक्ति के साथ किये जायँ तो भगवत् प्राप्ति के कारण भी होते हैं। पर बिना भक्ति के केवल इनके भरोसे भगवत् प्राप्ति असम्भव है।

गरुडजी के लिए केवल इतना कह देना ही यथेष्ट है कि उत्तर दिशा मे एक पर्वत है जिसको नीलगिरि कहते हैं। दक्षिण भारत मे भी एक नीलगिरि है। इसलिए उत्तर कहा। वहाँ भुसुण्डि नाम का एक काग रहता है। वह बडा सुशील है सदाचारी है। वह भजन करता ही रहता है दूसरा काम ही उसे नही है।

राम भगति पथ परम प्रबीना। ज्ञानी गुन गृह बहु कालीना ॥
रामकथा सो कहइ निरंतर। सादर सुनहिं बिबिध बिहँग बर ॥२॥

अर्थ राम भक्ति के पथ म तो वह बडा प्रवीण है। ज्ञानी है। गुणो का घर है और बहुत दिनो का है। वह सदा रामकथा कहा करता है और अनेक प्रकार के श्रेष्ठ पक्षी आदर के साथ सुना करते हैं।

व्याख्या काक का शरीर मात्र है। उसमे काक के किसी दोष का स्पर्श भी नही है और गुण का तो वह आगार है। भक्ति पथ का बडा भारी जानकार है। केवल भक्त ही नही ज्ञानी भी है और चिरञ्जीवी है। वह सदा रामकथा कहता है किसी दिन कथा बन्द नही होती। वहाँ जाकर खाली न लौटोगे। तुम्हारी प्रजा वहाँ कथा सुनने जाती है। तुम्हारे जाने से वे सब भी सनाथ होगे। पक्षी समाज मे उसका बडा आदर है। श्रेष्ठ पक्षी हस लोग वहाँ के नित्य के श्रोता हैं।

जाइ सुनहु तहँ हरि गुन भूरी। होइहि मोह जनित दुख दूरी ॥
मै जब तेहि सब कथा बुझाई। चलेउ हरषि ममपद सिरु नाई ॥३॥

अर्थ . जाकर वही भगवान् के गुण समूह सुनो। मोह से उत्पन्न तुम्हारा दुःख दूर होगा। मैंने जब उसे सब कथा सुनायी तो वह हर्षित होकर मेरे चरणो मे नमस्कार कर के चला।

व्याख्या वहाँ जाकर तुम भगवान् के गुणो को भली भाँति सुनो। वह

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


सत्ताईस कल्प से कथा कहता है। भगवान् के गुण वर्णन में अघाता नहीं। भगवद् गुण श्रवण से मोह छूटेगा। जब कोई भगवान् की कथा सुनता है तो स्वयं प्रभु उसके हृदय में आकर उसके अकल्याणों को दूर करते हैं। अतः तुम्हारा मोहजन्य दुःख वहीं दूर होगा। बहुत गुण सुनने पर यह बात मन में बैठेगी कि प्रभाव गोपन भी उनका गुण ही है।

शिवजी कहते हैं कि जब मैंने यह सब बात गरुडजी को समझाकर कहा : तब तो गरुडजी ने प्रसन्न होकर मेरे चरणों में नमस्कार किया और चल पड़े। प्रयाण के समय हर्ष होना कार्य सिद्धि का लक्षण है। भाव यह कि गरुड़जी को विश्वास हो गया कि अब मेरा मोह छूटेगा।

ताते उमा न मैं समुझावा। रघुपति कृपा मरमु मैं पावा॥
होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सो खोवै चह कृपानिधाना॥४॥

अर्थ : हे उमा ! मैंने उसे इस कारण से नहीं समझाया क्योंकि रामजी की कृपा से मुझे मर्म मालूम हो गया था कि कभी इसने अभिमान किया होगा। उसी को कृपानिधान ने नष्ट करना चाहा।

व्याख्या : शिवजी यदि चाहते तो कैलास लौट आते या अलकापुरी में ही कथा होती। पर उन्हें मर्म मालूम हो गया था। गरुड़जी को मोह हुआ इसका कारण केवल प्रभु बन्धन का दर्शन ही नहीं है। इसका कारण यह है कि कभी इन्होंने अभिमान किया होगा। पक्षिराट् होने के कारण भुसुण्डि को तुच्छ समझा होगा। भुसुण्डिजी की कथा में पधारने में अपने गौरव की हानि समझा होगा। उसी अभिमान के संस्कार को सरकार ने मिटाना चाहा है। इसलिए इन्हें मोह हुआ है। यथा : उर अंकुरेउ गर्व तरु भारी। तुरत सो मैं डारिहौं उपारी। मम पन सरनागत भय हारी। वह कारण नारद ब्रह्मदेव या मेरे समझाने से दूर नहीं हो सकता : यहाँ पर अनेक प्रकार के आख्यान सुने जाते हैं। पर मूल न मिलने से उन्हें स्थान नहीं दिया गया।

कछु तेहि तें पुनि मैं नहिं राखा। समुझै खग खगही कै भाषा॥
प्रभु माया बलवंत भवानी। जाहि न मोह कवन अस ज्ञानी॥३॥

अर्थ : कुछ इस कारण से भी मैंने उसे अपने पास नहीं रखा कि चिड़िया चिड़िया की ही बोली समझती है। हे भवानी ! प्रभु की माया बलवती है। कौन ऐसा ज्ञानी है जिसे वह नहीं मोह लेती।

व्याख्या : एक कारण यह भी था कि श्रोता वक्ता की भाषा एक होनी चाहिए। पक्षी भाषा की कथा में गरुडजी को विशेष आनन्द आवेगा। यद्यपि गरुडजी सस्कृत जानते हैं पर पक्षी होने से भाषा तो उनकी पक्षी भाषा ही है। पक्षी भाषा में चेष्टा इङ्गित आदि से विशेष काम लिया जाता है। भुसुण्डिजी अपने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



श्रोता हंसो के प्रबोध के लिए इसी भाषा का प्रयोग करते हैं यह रहस्य विभाग की भाषा है। रहस्य पक्षी भाषा मे ही कहा जाता है।

राम की माया अति प्रबल है। ऐसा कोई ज्ञानी है ही नही जिसे वह मोह न सकती हो। मोहन न करे यह उसकी कृपा है। पर जब मोहन करना चाहेगी तो कोई बच नही सकता। क्योंकि वह प्रभु की माया है। जब जगत् के स्रष्टा ब्रह्मा को मोह हुआ नार अज्ञान द्यति खण्डयतीति नारद अज्ञान का खण्डन करते हैं। इसलिए नारद कहलाते हैं जब उन्हे मोह हुआ तो सामान्य जीव की गिनती ही क्या है।

दो ज्ञानी भगत सिरोमनि, त्रिभुवनपति कर जान।
ताहि मोह माया नर, पावँर करहिं गुमान ॥६२ क

अर्थ ज्ञानी भक्तो म शिरोमणि और त्रिभुवनपति के वाहन को माया ने मोह लिया। अत नीच मनुष्य ही अभिमान करते हैं।

व्याख्या जो ज्ञान कर्म भक्ति तीनो काण्डो मे बेजोड तिस पर सरकार के ऐसे कृपापात्र कि उन्हे वाहन होने का पद प्राप्त है। जब उन्हे माया ने मोह लिया तब मनुष्य के लिए अभिमान को स्थान कहाँ है। ऐसी अवस्था मे नीच मनुष्य ही अभिमान करते हैं।

दो सिव बिरंचि कहुँ मोहै, को है बपुरा आन।
अस जिय जानि भजहिं मुनि, माया पति भगवान ॥६२ ख

अर्थ शिव और ब्रह्मदेव को मोह लेती है दूसरे बिचारे क्या हैं ? ऐसा मन मे जानकर मुनि लोग मायापति भगवान् को भजते है।

व्याख्या शिव और ब्रह्मा ईश्वरकोटि मे हैं। माया उनका भी मोह लेती है। औरो की तो जीव में गणना है उनकी क्या गिनती है। इसलिए मुनि लोग मायापति को भजते हैं क्योंकि मायापति का कथन है मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते। जो मेरे ही शरण आते हैं वे माया को तर जाते हैं। नही तो मेरी माया गुणमयी है यह उल्लङ्घन नही की जा सकती। अत मुनि लोग अपने स्थितप्रज्ञता का भरोसा नही करते।

## उमा के छठे प्रश्न का उत्तर

गयउ गरुड जहँ बसै भुसुडी। मति अकुठ हरि भगति अखडी॥
देखि सैल प्रसन्न मन भयऊ। माया मोह सोच सब गयऊ॥१॥

अर्थ गरुडजी वहाँ गये जहाँ भुसुण्डी बसते थे। जिसे तीव्रबुद्धि और अखण्ड हरि भक्ति थी। पर्वत के देखते ही प्रसन्न मन हो गया। माया मोह और सब सोच जाता रहा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या शिवजी के चरणो मे प्रणाम करके गरुडजी चले और जहाँ भुसुण्डिजी रहते थे वहाँ पहुँचे। काग मति मन्द होते हैं। यथा . महामन्द मति कारण कागा। पर भुसुण्डिजी की बुद्धि बडी तीव्र थी। बक काग की गणना अति खल और विषयियो मे है। पर भुसुण्डिजी को अखण्ड भक्ति थी। जिसकी धारा टूटती ही नही।

पहिले कह आये हैं कि भुसुण्डिजी नील पर्वत पर रहते थे। सो पर्वत के दर्शन मात्र से गरुडजी का मन प्रसन्न हो गया। जो माया मोह सोच ब्रह्मलोक मे जाने से नही गया कैलास मे नही गया। वह नील पर्वत के दर्शन मात्र से चला गया। परमभक्त के आश्रम की महिमा है।

करि तडाग मज्जन जल पाना। बट तर गयउ हृदय हरषाना॥
बृद्ध बृद्ध बिहग तहँ आए। सुनै राम के चरित सुहाए॥२॥

अर्थ तडाग मे मज्जन किया और जलपान किया। तब हर्षित मन होकर बरगद के तले गये। वहाँ रामजी के सुन्दर चरित्र सुनने के लिए बूढे बूढे पक्षी आये थे।

व्याख्या गरुडजी उडते हुए ऊपर ऊपर जा रहे हैं। अत पर्वत पर चढना नही कहते। शैलोपरि सर सुंदर सोहा। मनि सोपान देखि मन मोहा। उस तडाग को देखकर गरुडजी ने पहिले उसमे स्नान किया और उस पवित्र जल का पान किया। क्योकि हरिचरित्र सुनने जा रहे हैं। गरुडजी ने देखा कि वट वृक्ष के नीचे पक्षियो की भीड जुटी हुई है। समझ लिया कि यही कथा हो रही है। अत हर्षित होकर वही गये। कथा पर लालसा है। इसलिए हर्षित होकर सुनने जा रहे हैं।

बूढे बूढे पक्षी वहाँ एकत्रित हुए थे। चिरञ्जीवी वक्ता के श्रोता भी सब दीर्घजीवी थे। कथा के ऐसे रसिक हैं कि सुनते सुनते बूढे हो गये। पर जी न भरा। सुनने के लिए नित्य प्रस्तुत हो जाते हैं। रामजी के चरित्र ही ऐसे सुहावने हैं कि श्रवणवन्त मात्र को प्रिय लगते हैं। पक्षियो को भी सरकार के चरित्र प्रिय हैं क उत्तमश्लोकगुणानुवादात् पुमान् विरज्येत विना पशुघ्नात्।

कथा अरम्भ करइ सोइ चाहा। तेही समय गएउ खगनाहा॥
आवत देखि सकल खग राजा। हरषेउ वायस सहित समाजा॥३॥

अर्थ . उसने कथा आरम्भ करना चाहा उसी समय गरुडजी गये। सबने देखा कि पक्षिराट् चले आरहे हैं। तो भुसुण्डिजी समाज के सहित हर्षित हो उठे।

व्याख्या . भुसुण्डिजी व्यासासन पर बैठ गये थे। मङ्गलाचरण हो चुका था। कथा प्रारम्भ हुआ ही चाहती थी कि गरुडजी जा पहुँचे। जब काम बनने का होता है तो ऐसा ही अवसर आजाता है। नही तो रास्ते मे भेंट होती है। गरुडजी पक्षिराट् हैं। उनके जाने से पक्षियो म सनसनी फैल गयी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुनत गरुड़ कै गिरा बिनीता। सरल सुप्रेम सुखद सुपुनीता ॥
भयउ तासु मन परम उछाहा। लाग कहै रघुपति गुनगाहा ॥३॥

अर्थ : गरुडजी की विनती, सरल, सप्रेम, सुखद और सुपुनीत वाणी सुनकर उसके मन मे बडा उछाह हुआ। रामजी की गुणो की गाथा कहने लगा।

व्याख्या . विनय आदि पाँचो वाणी के गुण हैं। ऐसी हो वाणी सुनकर कहनेवाले का जी उमगता है। १. विनीत यथा : सदा कृतारथ रूप तुम कह मृदु बचन खगेस। २. सरल यथा : जेहि कर अस्तुति सादर निज मुख कीन्ह महेस। ३ सप्रेम यथा सुनहु तात जेहि कारन आयेउ। सो सब भयेउ दरस तव पायेउँ। ४ सुखद यथा : देखि परम पावन तव आश्रम। गयउ मोह ससय नाना भ्रम। ५ सुपुनीता यथा : अब श्रीरामकथा अति पावनि। सादर तात सुनावहु मोही। बार बार बिनवौं प्रभु तोही। गरुडजी की ऐसी विनती सुनने से भुसुण्डिजी के हृदय मे रामचरित का आविर्भाव हुआ। स्वय रामजी का रूप हृदय मे आगया। अत. आनन्दातिरेक से परम उछाह हुआ। यथा : उमा के पूछने पर . हरहिय रामचरित सब आये। प्रेम पुलक लोचन जल छाये। श्रीरघुनाथ रूप उर आवा। परमानन्द अमित सुख पावा। अत. भुसुण्डिजी ने कहना प्रारम्भ कर दिया।

प्रथमहि अति अनुराग भवानी। रामचरित सर कहेसि बखानी ॥
पुनि नारद कर मोह अपारा। कहेसि बहुरि रावन अवतारा ॥४॥
प्रभु अवतार कथा पुनि गाई। तब सिसु चरित कहेसि मन लाई ॥५॥

अर्थ हे भवानी ! पहिले उसने :१: अति अनुराग से रामचरित सर को बखान कर कहा। तत्पश्चात् २ नारदजी के अपार मोह की कथा कही। फिर ३· रावण का अवतार कहा। तत्पश्चात् :४. प्रभु के अवतार की कथा का गान किया। तब :५· शिशु चरित्र को मन लगाकरकहा।

व्याख्या : प्रयोजन सुनने के पहिले ही अनुराग था। यथा . करि पूजा समेत अनुरागा। अब प्रयोजन सुनने के बाद तो परम अनुराग हुआ। अथवा कथा के प्रारम्भ मे ही कथा माहात्म्य कहने का विधान है। रामचरित सर का बखान ही माहात्म्य कथन है। शिवजी भवानी को सम्बोधन करके कहते हैं कि पहिले उसने मानस का बखान किया। जिसके हस स्वय सरकार हैं। यथा : जय महेस मन मानस हसा। जो भुसुण्डि मन मानस हसा। मुनि मन मानस हस निरतर। श्रीगोस्वामीजी का मत है कि शिवजी के मानस को अविकल रूप से ग्रहण करने मे भुसुण्डिजी तथा याज्ञवल्क्यजी समर्थ थे। अपने को समर्थ नही मानते। अत. अपने मानस का हस ज्ञान विराग विचार को बतलाते हैं। यथा : ज्ञान बिराग बिचार मराला।

माहात्म्य कथनानन्तर श्रीरामावतार का कारण कहते हुए पहिले नारदजी के मोह का प्रसङ्ग कहा। जिसमे नारदजी को काम जय का अभिमान हुआ। उसके उन्मूलन के लिए सरकार ने अपनी माया को प्रेरणा की। जिसने उन्हे ऐसा नचाया

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


कि ब्रह्मचर्य व्रत स्थितप्रज्ञता सब भूल गये और विश्वमोहिनी के न मिलने पर क्रुद्ध होकर स्वयं अपने स्वामी और रुद्रगण को शाप दे डाला।

तत्पश्चात् रावण का अवतार कहा। राम की भाँति रावण भी अवतीर्ण होते हैं। रावण साक्षात् रुद्रगण था। नारदजी के शाप से उसे राक्षस रूप मे अवतीर्ण होना पड़ा। प्रभु भी ऐसे भक्तवत्सल हैं कि भक्त के शाप को प्रमाण मानकर अवतीर्ण हुए। अतः ऐसे प्रभु की अवतार कथा का गान भुसुडिजी करने लगे। भक्त महोत्सव मे ये स्वय सम्मिलित थे। यथा : कागभुसुडि संग हम दोऊ। मनुजरूप जानै नहि कोऊ। परमानन्द प्रेम सुख फूले। बिथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले।

तत्पश्चात् शिशु चरित मन लगाकर कहा। शिशु चरित मे स्वय इन्हे मोह हो गया था। बालक राम ही इनके इष्टदेव हैं। पाँच वर्ष तक बालक राम की सेवा मे भुसुण्डिजी रहते हैं। शिशु चरित मे ही इन्हें दुर्लभ वर मिले हैं। प्रभु की माया का दर्शन किया है। अतः उस चरित को मन लगाकर कहा।

दो. बाल चरित कहि बिबिध बिधि, मन महुँ परम उछाह।
रिपि आगमन कहेसि पुनि, श्रीरघुबीर बिबाह ॥६४॥

अर्थ : तत्पश्चात् :६· अनेक प्रकार से बाल चरित कहा। इसके कहने मे मन मे बडा उत्साह था। फिर :७. ऋषि का आगमन कहकर :८: श्रीरघुबीर का विवाह कहा।

व्याख्या : बाल चरित्र बडा आनन्दमय है। अतः उसे तो अनेक विधि से वर्णन किया। उनके वर्णन मे भुसुण्डिजी को बड़ा उत्साह था। उसी चरित्र मे लुब्ध होकर तो ये नील पर्वत छोडकर अयोध्या मे पाँच वर्ष रह जाते हैं। सरकार के पन्द्रह वर्ष के हो जाने पर विश्वामित्रजी का आगमन हुआ और मुनिजी राक्षसो से अपने यज्ञ की रक्षा के बहाने रघुवीर को : श्रीसीताजी से व्याह कराने के लिए माँग ले गये और जनकपुर मे धनुष भङ्ग के बाद सीताजी से उनका विवाह अगहन सुदी पञ्चमी को हुआ।

बहुरि राम अभिषेक प्रसंगा। पुनि नृप बचन राज रस भंगा॥
पुरबासिन्ह कर बिरह बिषादा। कहेसि राम लछिमन संबादा॥१॥

अर्थ : फिर :९· रामजी के अभिषेक का प्रसङ्ग तत्पश्चात् १०· राजा के वचन से राज रस का भंग :११: पुरवासियो का विरह विषाद और :१२: राम लक्ष्मण का सवाद कहा।

व्याख्या : रामजी के अभिषेक का प्रसङ्ग व्याह करने के बारह वर्ष बाद उनके वर्ष गाँठ के समय आया। रामजी के सत्ताइसवी वर्षगाँठ के उपलक्ष्य मे चक्रवर्तीजी का दरबार हुआ। उस दिन रामनवमी को पुनर्वसु नक्षत्र था। चक्रवर्तीजी ने दूसरे ही दिन पुष्य नक्षत्र मे रामजी का अभिषेक करना चाहा। रात को ही महारानी कैकेयी ने भरत को राज्य और रामजी को चौदह वर्ष के लिए वनवास माँगा। राजा वचनबद्ध हो चुके थे। अतः राजरस भङ्ग हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दूसरे दिन दशमी को सवेरा होते ही यह समाचार पुरवासियों को मिला। यथा : नगर ब्यापि गई बात सुतीछी। छुअत चढ़ी जनु सब तन बीछी। रामजी के विरह से पुरवासियों को बड़ा विषाद हुआ। लक्ष्मणजी भी साथ वन जाने को तैयार हुए। सरकार ने बहुत चाहा कि लक्ष्मणजी न जायँ पर वे रुके नहीं।

विपिन गवनु केवट अनुरागा। सुरसरि उतरि निवास प्रयागा॥
बालमीकि प्रभु मिलन बखाना। चित्रकूट जिमि बसे भगवाना॥२॥

अर्थ :१३ वन गमन केवट का प्रेम :१४: गङ्गा पार उतरकर प्रयाग में निवास। :१५: वाल्मीकि और प्रभु का मिलन तथा :१६: जिस भाँति चित्रकूट में भगवान् बसे वह सब उसने बखानकर कहा।

व्याख्या : दशमी के दिन सरकार वन चले। उस दिन तमसा तीर निवास किया। आधी रात को वहाँ से रथ पर रवाना होकर एकादशी को शृङ्गवेरपुर पहुँचे। द्वादशी के दिन गङ्गापार जाने के लिए केवट से नाव माँगी। वह नहीं लाया। उसके आज्ञा न मानने में इतना अनुराग भरा था कि आजतक वह प्रसंग बड़े प्रेम से गान किया जाता है। उस दिन गङ्गा पार जाकर सरकार ने मार्ग में एक पेड़ तले विश्राम किया। त्रयोदशी को प्रयागराज पहुँचे और उस रात को भरद्वाज के आश्रम में विश्राम किया। चतुर्दशी को यमुना पार जाकर निषादराज को बिदा किया और रास्ते में ही रात को टिक गये। पूर्णिमा को वाल्मीकिजी से मिलकर चित्रकूट में निवास किया।

सचिवागमनु नगर नृप मरना। भरतागवनु प्रेम बहु बरना॥
करि नृपक्रिया संग पुरबासी। भरतु गए जहँ प्रभु सुखरासी॥३॥

अर्थ :१७ मन्त्री का नगर को लौटना राजा का मरना :१८ भरतजी का आना तथा उनके प्रेम का वर्णन बहुत प्रकार से किया। १९ राजा की क्रिया करके पुरवासियों के साथ २०. भरतजी जहाँ सुखराशि प्रभु थे वहाँ गये।

व्याख्या : उसी पूर्णिमा को सुमन्तजी अयोध्या लौटे। समाचार सुनकर महाराज दशरथ ने प्राणत्याग किया। भरतजी को केकयदेश में समाचार भेजने और उनके अयोध्या आने में पूरा पखवारा लग गया। वैशाख चढ़ते ही भरतजी अयोध्या आये। चक्रवर्तीजी की और्ध्वदैहिक क्रिया की। ज्येष्ठ लगते ही भरतजी पुरवासियों के साथ चित्रकूट चले। एकादशी के लगभग रामजी से भेंट हुई।

पुनि रघुपति बहु बिधि समुझाए। लै पादुका अवधपुर आए॥
भरत रहनि सुरपति सुत करनी। प्रभु अरु अत्रि भेंट पुनि बरनी॥४॥

अर्थ :२१: फिर रामजी ने भरतजी का बहुत तरह से समझाया। :२२ भरतजी उनकी पादुका लेकर अयोध्या आये। :२३: भरतजी का आचरण :२४ इन्द्र के बेटे की करनी तत्पश्चात् :२५: प्रभु और अत्रिजी का मिलना उसने वर्णन किया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : भरतजी का बहुत बडा आग्रह था कि रामजी अयोध्या लौट चलें। परन्तु रामजी ने नही लौटना चाहा और बहुत कुछ समझा बुझाकर भरतजी को लौटाया और वे प्रभु को चरणपादुका लेकर अयोध्या आये। आषाढ चढते भरतजी का अयोध्या लौटना हुआ। वहाँ आकर उन्होने सरकार की चरणपादुका को सिंहासनारूढ किया। उसी से आज्ञा माँग माँगकर पुर का कार्य करने लगे। नन्दिग्राम मे पर्णकुटी बनाकर वही निवास किया। उनके नेम व्रत को देखकर मुनि लोगो को भी सङ्कोच होता था। इधर रामजी पर्णशाला मे लक्ष्मण और सीता सहित सानन्द निवास करने लगे। चार चातुर्मास उनका चित्रकूट मे ही बीता। इन्द्र के बेटे जयन्त ने रामजी का बल देखने के लिए काक रूप धारण करके सीताजी के चरण मे चोच मारा। रामजी के बाण चलाने पर भागा। इन्द्रलोक ब्रह्मलोक आदि मे भागता फिरा। पर बाण ने पीछा न छोडा। अन्त मे नारदजी के उपदेश से रामजी के ही शरण मे गया। सरकार ने उसकी एक आँख फोडकर उसे जीता छोड दिया। तत्पश्चात् रामजी चित्रकूट छोडकर चलते समय अत्रिजी से मिले। अनसूयाजी ने सीताजी को स्त्रीधर्म का उपदेश दिया।

दो. कहि बिराध बध जेहि बिधि, देह तजी सरभंग।
बरनि सुतीछन प्रीति पुनि, प्रभु अगस्ति सत संग ॥६५॥

अर्थ :२६: विराध वध करके जिस भाँति :२७ शरभङ्ग ने शरीर त्याग किया वह भी कहा। :२८: सुतीक्ष्ण की प्रीति वर्णन करके तत्पश्चात् :२९: प्रभु का अगस्त्यजी से सत्सङ्ग कहा।

व्याख्या : रास्ते मे विराध असुर मिला। सरकार ने उसका वध किया और उसे पृथिवी खोदकर गाड दिया। तत्पश्चात् शरभङ्ग से मिले। वे ब्रह्मलोक जाते थे। सरकार का आना सुनकर रुक गये। सरकार का दर्शन होने पर चिता बनाकर योगाग्निसे शरीर भस्म किया। शरभङ्ग के आश्रम मे सरकार के बनवास के चार वर्ष पूरे हुए। आगे बढने पर मुनियो के अस्थि समूह को देखकर निशिचरहीन महि करने की प्रतिज्ञा की। तत्पश्चात् छः वर्ष तक मुनियो के आश्रमो मे घूमते रहे। तत्पश्चात् सुतीक्ष्णजी के आश्रम मे आये। उनकी प्रीति देखकर बडे सन्तुष्ट हुए और उनके साथ अगस्त्यजी के आश्रम मे गये। वहाँ लगभग एक वर्ष रहे।

कहि दंडकबन पावनताई। गीध मइत्री पुनि तेहि गाई ॥
पुनि प्रभु पंचबटी कृतबासा। भंजी सकल मुनिन्ह की त्रासा ॥१॥

अर्थ :३० दण्डक वन का पवित्र होना कहकर उसने :३१: गीध मैत्री का गान किया। तत्पश्चात् :३२ प्रभु पञ्चवटी मे बसे और :३३: सब मुनियो के त्रास को दूर किया।

व्याख्या : अगस्त्यजी की प्रार्थना थी : दंडक बन पुनीत प्रभु करहू। उग्र साप मुनिबर कर हरहू। सरकार के पधारने से शुक्राचार्य का शाप दूर हुआ और

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दण्डक वन पवित्र हो गया। रास्ते मे गीधराज जटायु से भेंट हुई। ये चक्रवर्तीजी के मित्र थे। इनसे सरकार ने मिलकर उस प्राचीन प्रीति को और भी बढाया। इसलिए उसका गान करना कहते हैं।

सम्भवत आश्विन मास मे सरकार पञ्चवटी आये। अश्वत्थ, वट, पाकर, आम्र और आँवले के पेड के एकत्र स्थापन से पञ्चवटी बनती है। वहीं सरकार ने निवास किया। इनके निवास से मुनि लोग निर्भय हो गये। किसी राक्षस का सामर्थ्य नही कि उनसे बोल सके। सूपणखा रावण से शिकायत करती है : जिन्हकर भुजबल पाइ दसानन। अभय भये विचरत मुनि कानन।

पुनि लछिमन उपदेस अनूपा। सूपनखा जिमि कीन्हि कुरूपा ॥
खरदूषन बध बहुरि बखाना। जिमि सबु मरमु दसानन जाना ॥२॥

अर्थ फिर ३४ लक्ष्मणजी को अनूप उपदेश दिया तथा ३५ जिस भाँति सूर्पणखा को कुरूप किया और ३६ खरदूषण का वध किया इसे बखानकर कहा और ३७ जिस भाँति सब मर्म का पता रावण को चला।

व्याख्या लक्ष्मण को उपदेश सरकार ने दिया जिसे रामगीता कहते हैं। सम्भवत इस गीता का उपदेश भी भगवद्गीता के उपदेश की भाँति अगहन मे ही हुआ। इस गीता के उपदेश का ही विस्तार सम्पूर्ण मानस मे है इसलिए अनूप कहा। सूर्पणखा का विरूप करण माघशुक्ल त्रयोदशी को हुआ। नासिका मुखमण्डनम्। मुख की शोभा नाक है। उसे सरकार से प्रेरित होकर लक्ष्मणजी ने काटा। इन्द्र का इतना सामर्थ्य नही था कि सूर्पणखा की नाक काट सकें। यह समाचार पाकर खर-दूषण ने फाल्गुन कृष्ण द्वितीया को रामजी पर चढाई की और तीसरे दिन फाल्गुन कृष्ण चतुर्थी को सब मारे गये। पञ्चमी को सूर्पणखा विलाप करती हुई लका गयी और सब इतिवृत्त रावण को सुनाया।

दसकधर मारीच बतकही। जेहि बिधि भई सो सब तेहि कही ॥
पुनि माया सीता कर हरना। श्रीरघुबीर बिरह कछु बरना ॥३॥

अर्थ ३८ रावण और मारीच मे जो बातचीत हुई सो सब भुशुण्डिजी ने कही। तत्पश्चात् ३९ माया की सीता का हरण तथा ४० श्रीरघुवीर का थोडा विरह वर्णन किया।

व्याख्या सूर्पणखा से सब कथा सुनकर रावण मारीच के पास सप्तमी को गये। मारीच ने बहुत समझाया पर रावण ने नहीं माना। मारीच को मारने के लिए तैयार हो गया। तब मारीच माया का मृग बनकर रामजी को दूर ले गया। मरते समय लक्ष्मण को रामजी के स्वर से पुकारा। लक्ष्मणजी के भी चल जाने पर रावण ने फाल्गुन कृष्ण अष्टमी को मायासीता का हरण किया। तत्पश्चात् भुसुण्डिजी ने सीताजी के तथा रामजी के विरह का थोडा बहुत वर्णन किया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पुनि प्रभु गीध क्रिया जिमि कीन्ही । वधि कवंध सवरिहि गति दीन्ही ॥
वहुरि विरह करनत रघुवीरा । जेहि विधि गए सरोवर तीरा ॥४॥

अर्थ :४१: फिर प्रभु ने जैसे गीध की क्रिया की और :४२: कबन्ध का वध करके शवरी को गति दी। तत्पश्चात् :४३: विरह वर्णन करते हुए रघुवीर जिस भाँति सरोवर के तीर पहुँचे।

व्याख्या : सीताजी का विलाप सुनकर जटायु ने रावण से युद्ध किया। अन्त मे पक्षच्छेदन कर देने से गीधराज घायल होकर पृथिवी पर गिरे। इन्होने ही रामजी को सीता हरण का पता दिया। तत्पश्चात् परलोकगामी हुए। रामजी ने उनकी और्ध्वदैहिक क्रिया अपने हाथ से की। रास्ते में कबन्ध राक्षस को मारा। तत्पश्चात् शवरी के आश्रम मे गये। उसका सत्कार ग्रहण किया और उसे मोक्ष दिया। तत्पश्चात् सीताजी को खोजते हुए दोनो भाई नासिक से कर्नाटक देश और क्रौञ्चारण्य का उल्लघन करते हुए तीन महीने में पम्पासर पहुँचे।

चो. प्रभु नारद संवाद कहि, मारुति मिलन प्रसंग।
पुनि सुग्रीव मिताई, वालि प्रान कर भंग ॥६६॥
कपिहि तिलक करि प्रभुकृत, सैल प्रवरपन वास।
वरनत वरखा सरदरितु, राम रोप कपि त्रास ॥६६ क.

अर्थ :४४: सरकार और नारद का सवाद कहकर :४५: हनुमान्‌जी से भेंट होने की कथा कही। तत्पश्चात् :४६: सुग्रीव से मित्रता और :४७: बालिवध कहा। :४८: सुग्रीव को तिलक देकर सरकार ने प्रवर्पणगिरि पर वास किया। :४९: शरद और :५०: वर्षा का वर्णन करना तथा :५१: रामजी का रोप करना और :५२: सुग्रीव का त्रस्त हो उठना कहा।

व्याख्या : सरकार को विरहवन्त देखकर नारदजी को बड़ा कष्ट हुआ। उन्ही का शाप था : मम अपकार कीन्ह तुम भारी। नारि बिरह तुम होव दुखारी। सरकार उसी को अङ्गीकार करके कष्ट उठा रहे थे। उसी बात का स्मरण करके नारदजी को सरकार के दर्शन की बडी उत्कण्ठा हुई। सो पम्पासर पर जाकर मिले। राम नाम की श्रेष्ठता का वरदान माँगा। अपनी शङ्का का समाधान पूछा और सन्त का लक्षण सुना। रामजी ज्येष्ठ के अन्त मे हनुमान्‌जी से मिले। सुग्रीव से अग्निसाक्षिक मैत्री हुई। तत्पश्चात् उन्होने वालि को मारा और सुग्रीव को राज्य दिया। चातुर्मास आजाने से सरकार प्रवर्पणगिरि पर ठहर गये। वर्षा बीती शरद आया। पर सुग्रीव ने कोई खवर न ली। इसलिए रामजी ने रोप किया। लक्ष्मणजी किष्किन्धा गये : धनुप चढाइ कहा तब जारि करौं पुर छार। सुग्रीव भयभीत हुए और कार्तिक कृष्ण दशमी को लक्ष्मणजी के साथ साथ रामजी के पास गये।

जेहि विधि कपिपति कीस पठाए। सीता खोज सकल दिसि धाए ॥
विवर प्रवेस कीन्ह जेहि भाँती। कपिन्ह वहोरि मिला संपाती ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ :५३: जिस प्रकार सुग्रीव ने बन्दरों को भेजा और वे सीताजी के खोजने के लिए सब दिशाओं मे दौड़े। :५४: जिस भाँति विवर में प्रवेश किया और :५५: बन्दरों से सम्पाती मिला।

व्याख्या : एक महीने का समय देकर सुग्रीवजी ने बन्दरों को चारों दिशाओं में सीताजी के खोजने के लिए भेजा। ताकीद कर दी कि जो महीने भर में न लौटा और सीताजी का समाचार भी न लाया उसे मैं अपने हाथ से मारूँगा। उसी दिन कार्तिक कृष्ण दशमी को ही बन्दर लोग रवाना हो गये। सीताजी के खोज में शरीर की सुधि भूल गये। घने जंगल में रास्ता भूल गये और बिना जल के मरने लगे। हनुमान्‌जी ने पहाड़ पर चढ़कर देखा कि एक स्थान में विवर के भीतर जलपक्षी प्रवेश कर रहे हैं। जल का अनुमान करके सब बन्दरों ने उसमें प्रवेश किया। वहाँ तपस्विनी से भेंट हुई। सब ने सर में जल पिया फल खाया। उसी विवर में एक महीने की अवधि बीत गयी। तपस्विनी ने सबको दिलासा दिया और तपोबल से समुद्र के किनारे पहुँचा दिया। वहाँ सम्पाती : जटायु के बड़े भाई से भेंट हुई। उसने सीताजी का पता बतलाया।

सुनि सब कथा समीर कुमारा। नाघत भयो पयोधि अपारा॥
लंका कपि प्रवेस जिमि कीन्हा। पुनि सीतहि धीरजु जिमि दीन्हा॥२॥

अर्थ :५६: सब कथा सुनकर हनुमान्‌जी :५७: अपार समुद्र का उल्लंघन कर गये। :५८: फिर लंका मे जैसे हनुमान्‌जी ने प्रवेश किया और :५९: जिस भाँति सीताजी को धीरज दिया।

व्याख्या : सम्पाती ने बतला दिया कि समुद्र के उसपार लंका के उपवन में सीताजी बैठी सोच रही हैं। जो सौ योजन समुद्र का उल्लंघन करे वह रामकार्य कर सकता है। पर किसी का साहस नहीं हुआ। हनुमान्‌जी ने अगहन वदी एकादशी को समुद्रोल्लघन किया। द्वादशी को सीताजी का दर्शन करके उन्हे धैर्य बँधाया तब अशोक वाटिका के फलो से पारण किया।

बन उजारि रावनहि प्रबोधी। पुरदहि नांघेउ बहुरि पयोधी॥
आये कपि सब जहँ रघुराई। बैदेही की कुसल सुनाई॥३॥

अर्थ :६०: अशोक वन को उजाड़कर और :६१: रावण को समझाकर :६२: लंका जलाकर हनुमान्‌जी फिर :६३: समुद्र डाँक गये। :६४: सब बन्दर रामजी के पास आये और :६५: सीताजी की कुशल सुनायी।

व्याख्या : फल खाने मे हनुमान्‌जी का राक्षसों से युद्ध हुआ। मेघनाद उन्हे बाँधकर रावण की सभा में ले गया। रावण से वार्तालाप हुआ। हनुमान्‌जी ने उसे बहुत समझाया। उसने हनुमान्‌जी के पूँछ जलाने की आज्ञा दी। पूँछमें आग लगने पर हनुमान्‌जी ने त्रयोदशी को लका जलायी। चतुर्दशी को हनुमान्‌जी समुद्र पार करके अपने साथियो से भेंट की। सबके सब रामजी के पास चले। सात दिन रास्ते

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



में लगे। अगहन सुदी सप्तमी को रामजी का दर्शन किया और सीताजी का कुशल सुनाया।

सेन समेत जथा रघुवीरा। उतरे जाइ वारिनिधि तीरा॥
मिला बिभीषनु जेहि बिधि आई। सागर निग्रह कथा सुनाई॥४॥

अर्थ :६६: सेना के समेत जिस भाँति रामजी जाकर समुद्र के तीर पर उतरे। :६७: जिस भाँति विभीषण जाकर मिला और :६८: समुद पर रामजी के रोष करने की कथा सुनायी।

व्याख्या : अगहन सुदी अष्टमी को रामजी ने वानरी सेना के साथ विजय यात्रा की। सात दिन तक बराबर सेना चलती गयी और पूर्णिमा के दिन समुद्र के तट पर जा पहुँची। इसके आगे सेना की गति नहीं थी। यह समाचार रावण को मिला। मन्त्रणा के लिए सभा हुई। विभीषण ने सीता के लौटा देने का मन्त्र दिया। रावण ने क्रुद्ध होकर उसे लात मारकर निकाल दिया। तब विभीषण आकर रामजी से मिला। रामजी ने उसे लंका का तिलक दे दिया। विभीषण की राय से रामजी ने समुद्र से सत्याग्रह किया। तीन दिन बीत गया तब रामजी रुष्ट हुए और समुद्र को अग्निवाण से शोषण करने को तैयार हुए। समुद्र सन्तरण के लिए मन्त्रिमण्डल की बैठक पूस बदी पञ्चमी को हुई। रामजी षष्ठी को विनय करने समुद्र तट पर गये। नवमी को समुद्रजी शरण आये।

दो. सेतु बाँधि कपि सेन जिमि, उतरी सागर पार।
गयउ बसीठी बीर बर, जेहि बिधि बालिकुमार॥६७॥
निसिचर कीस लराई बर, निसि बिबिध प्रकार।
कुंभकरन घननाद कर, बल पौरुष संघार॥६७ क॥

अर्थ :६९: सेतु बाँधकर जिस भाँति वानरी सेना समुद्र पार उतरी और :७०: अङ्गदजी जिस भाँति दूत होकर गये। :७१: राक्षस और बन्दरों की लड़ाई अनेक प्रकार से भुसुण्डिजी ने वर्णन किया तथा :७२: कुम्भकर्ण और :७३: मेघनाद के बल पौरुष और संहार का वर्णन किया।

व्याख्या : चार दिनों में सेतुबन्धन का कार्य समाप्त हुआ। पूस बदी त्रयोदशी को सेतु तैयार हो गया। पूस सुदी १२ को रामजी ने प्रयाण किया और पूर्णमासी को सुवेल पर्वत पर उतरे। माघ सुदी प्रतिपदा को अङ्गद दूत बनकर गये। छः महीने तक चारो फाटक की लड़ाई होती रही। श्रावण सुदी प्रतिपदा को लक्ष्मणजी को शक्ति लगी। श्रावण सुदी ६ और सप्तमी दो दिन कुम्भकर्ण के जगाने में लगा। कुम्भकर्ण अष्टमी को रणाङ्गण मे आये। सात दिन युद्ध करके पूर्णिमा को मारे गये। भाद्रपद बदी द्वादशी को मेघनाद वध दो दिन के युद्ध के बाद हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


निसिचर निकर मरन बिधि नाना। रघुपति रावन समर बखाना॥
रावन बध मदोदरि सोका। राजु बिभीषन देव असोका॥

अर्थ ७४ नाना प्रकार से राक्षसो का मरना ७५ राम रावण का युद्ध होना वर्णन किया। ७६ रावण का मारा जाना ७७ मन्दोदरी का विलाप ७८ विभीषण को राज्य और देवताओ का शोक रहित होना।

व्याख्या बडी भारी सेना लेकर रावण युद्ध के लिए भाद्रपक्ष कृष्ण अमावस्या को निकले। इस युद्ध मे वडा भारी सहार राक्षसो का हुआ। आश्विन शुक्ल प्रतिपदा को दूसरी बार रावण सेना लेकर आये। द्वितीया से राम रावण का द्वन्द्व युद्ध प्रारम्भ हुआ। नवमी को रावण का वध हुआ। रानी मन्दोदरी ने समराङ्गण मे आकर विलाप किया। विजयोत्सव दशमी के दिन मनाया गया। त्रयोदशी को विभीषण का राज्याभिषेक हुआ। तब देवता शोकरहित हो गये।

सीता रघुपति मिलन बहोरी। सुरन्ह कीन्ह अस्तुति कर जोरी॥
पुनि पुष्पक चढ़ि कपिन्ह समेता। अवध चले प्रभु कृपानिकेता॥२॥

अर्थ ७९ तत्पश्चात् सीता और रामजी का मिलना ८० देवताओ का हाथ जोडकर स्तुति करना ८१ तत्पश्चात् सेना सहित पुष्पक पर चढकर सरकार की अवध यात्रा हुई।

व्याख्या आश्विन शुक्ला चतुर्दशी को सीता का रामजी के साथ मिलन हुआ। देवता लोगो की स्तुति शरद् पूर्णिमा को हुई। कार्तिक वदी प्रतिपदा को विभीषणजी मणि भूषण से भरकर पुष्पक विमान लाये और सरकार की आज्ञा से आकाश मे जाकर बानरी सेना मे मणि भूषण की वर्षा की। द्वितीया को सरकार पुष्पक पर सेना सहित सवार होकर अयोध्या चले।

जेहि बिधि राम नगर निज आए। बायस बिसद चरित सब गाए॥
कहेसि बहोरि राम अभिषेका। पुर बरनन नृपनीति अनेका॥३॥

अर्थ ८२ जिस विधि से रामजी नगर के निकट पहुँचे। उस निर्मल चरित का भुसुण्डिजी ने गान किया। ८३ तत्पश्चात् रामजी का अभिषेक ८४ पुर वर्णन और अनेक राजनीति का वर्णन किया।

व्याख्या वरदान आदि से तिथिवद्ध मास माना जाता है। पाण्डवो के बनवास मे भी तिथिवद्ध मास ही माना गया। सौर वर्ष तिथिवद्ध मासवाले साल से बारह दिन बडा होता है। इस भाँति चौदह वर्ष म एक सौ असठ दिन का फरक पडता है। इसलिए चौदह वर्ष चैत सुदी नवमी को पूरा न होकर कार्तिक वदी पञ्चमी को ही पूरा हो गया। सो ठीक पञ्चमी के दिन सरकार भरद्वाज के आश्रम पर पहुँच गये। सप्तमी को भरत मिलाप हुआ। अष्टमी को पुष्ययोग म रामजी का अभिषेक हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तत्पश्चात् अयोध्या की कैसी शोभा हुई। रामराज्य मे किस भाँति सत्ययुग की भाँति चारो चरण से धर्म का स्थापन हुआ। यह सब भुसुण्डिजी ने वर्णन किया।

कथा समस्त भुसुडि बखानी। जो मै तुम सन कही भवानी॥
सुनि सब रामकथा खगनाहा। कहत बचन मन परम उछाहा॥४॥

अर्थ : भुसुण्डिजी ने वह सब कथा कह डाली जो कि मैंने हे भवानी! तुमने कहा है। रामजी की कथा सुनकर गरुडजी ने बडे उछाह से भरे हुए मन से वचन कहे।

व्याख्या शिवजी ने उमा से कहा कि यहाँ समास से मैंने कथा कही। पर भुसुण्डिजी ने उसी भाँति से विस्तार पूर्वक कथा गरुडजी को सुनायी जैसा कि मैंने तुम्हे सुनाया था। व्यास समास दोनो भाँति से कहने से ही बात मन मे बैठती है। अतः दोनो भाँति से मैंने तुम्हे कथा सुनायी दी।

भुसुण्डिजी को कथा प्रारम्भ करने के पहिले ही उछाह हुआ। यथा : भयउ तासु मन परम उछाहा। लाग कहै रघुपति गुन गाहा। गरुडजी की कथा सुनने पर उछाह हुआ। शिवजी ने कहा था . जाइहि सुनत सकल संदेहा। राम चरन उपजहि दृढ नेहा। सो ठीक ठीक वैसा ही हुआ : गरुडजी कहते हैं।

सो गएउ मोर संदेह सुनेउँ सकल रघुपति चरित।
भयउ रामपद नेह तव प्रसाद बायस तिलक॥६८ क.

अर्थ : मेरा सन्देह जाता रहा। मैंने सब रामचरित सुना। रामजी के चरणो मे हे वायसतिलक! तुम्हारे प्रसाद से प्रेम हुआ।

व्याख्या नारदजी ने सब सुनकर कहा था : महामोह उपजा उर तोरे। मिटिहि न बेगि कहे खग मोरे। सो भुसुण्डिजी के प्रसाद से वह मोह मिट गया। रामजी का सब चरित्र श्रवण किया। उसका फल यह हुआ कि गरुडजी को रामजी के चरणो मे प्रेम हुआ। भावार्थ यह कि महात्माओ की कृपा से ही मोह मिटता है और कथा श्रवण से भगवद्भक्ति होती है। यथा : बिनु सत्सग न हरि कथा तेहि बिनु मोह न भाग। मोह गये बिनु रामपद होइ न दृढ अनुराग।

सो मोहि भयेउ अति मोह प्रभु बंधन रन महु निरखि।
चिदानन्द संदोह राम बिकल कारन कवन॥६८॥

अर्थ : प्रभु का रण मे बन्धन देखकर मुझे अत्यन्त मोह हुआ। चिदानन्द की राशि राम विकल हैं इसका क्या कारण है।

व्याख्या : नारदजी ने कहा था महा मोह उपजा उर तोरे। उसी बात को स्वीकार करते हुए गरुडजी कहते हैं कि मोह के चले जाने पर मुझे मालूम हो रहा है कि मुझे अति मोह हो गया था। अपने स्वरूप का अज्ञान मोह है और ईश्वर के स्वरूप के प्रति अज्ञान [illegible] अभिमान तो जीव मे होता

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है। ईश्वर मे अभिमान कहाँ ? बन्ध और मोक्ष तो जीव के लिए हैं। नित्यमुक्त ईश्वर को बन्ध कहाँ ? सभी शरीर उनका है। उन्हे जैसा अपना शरीर वैसा ही दूसरा शरीर। शरीर के बन्ध से उनका सम्बन्ध क्या ? जीव जिस भाँति अपने को बँध जाने से परतन्त्र मानता है वैसी ही व्याकुलता की कल्पना ईश्वर मे भी करता है। दिग्भ्रम उसे हुआ है। कहता है कि सूर्य ही पश्चिम मे उदय हुआ है। देहाभिमान उसे है। उसी देहाभिमान की कल्पना ईश्वर मे करता है। देह को विकलता से चिदानन्द सन्दोह को विकल मान रहा है और उस विकलता का कारण तलाश कर रहा है। यही महामोह है।

देखि चरित अति नर अनुसारी। भयउ हृदयँ मम संसय भारी ॥
सोई भ्रम अब हितकरि मै माना। कीन्ह अनुग्रह कृपा निधाना ॥१॥

अर्थ : एकदम मनुष्य का सा चरित्र देखकर मेरे मन मे भारी सशय हुआ। उसी भ्रम को अब मैं कल्याणकारी समझता हूँ। कृपानिधान ने बड़ा अनुग्रह किया।

व्याख्या : वह चरित्र मिश्रब्रह्म का सा नही था। एकदम मनुष्य का सा था। युद्ध मे बँध जाने से जैसे विकल हो जाते हैं ठीक वैसा ही अभिनय सरकार ने किया था। यथा : एक बार अतिसै सब चरित किये रघुबीर। जब चरित्र मे अत्यन्त नरानुकरण करते हैं उस समय देखनेवाले को बिना मोह हुए नही रहता। उमा को मोह हुआ। गरुडजी को मोह हुआ। स्वय भुसुण्डिजी को मोह हुआ। नर अनुहारी चरित्र से सशय होता है और अति नर अनुहारी से भारी संशय होता है।

अब मालूम होता है कि वह भ्रम भी हितकर था। कृपानिधान के अनुग्रह से हुआ था। कृपानिधान है। भ्रम भी उत्पन्न कर देते हैं भलाई के लिए। यह रामचरण मे दृढ नेह होने का उदाहरण है। कहते हैं कि जब भ्रम छूटा तब मालूम कि यह हितकर था। नही तो पहले प्रचण्ड विषाद उपजा था।

जौ अति आतप व्याकुल होई। तरु छाया सुख जानै सोई ॥
जौं [1]नहि होत मोह अति मोही। मिलतेउँ तात कवन बिधि तोही ॥२॥

अर्थ : जो धूप से अत्यन्त विकल होता है उसी को पेड की छाया का सुख अनुभूत होता है। यदि मुझे मोह न हुआ होता तो तुमसे कैसे मिलता ?

व्याख्या : तरु छाया मे सुख है पर मालूम नही होता। जल मे मिठास है पर मालूम नही होती। रसना स्वय जलीय पदार्थ है। इससे जल की मिठास का पता नही चलता। पर जब हरीतकी सेवन से उसमे रूखापन आजाता है तब उसे जल की मिठास का पता चलता है। इसी भाँति मनुष्य मे शीतलता है। इसलिए

१. यहाँ लेशालङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तरु छाया का सुख अभिव्यक्त नही होता। जब अति आतप से शीतलता तिरोहित होती है तब तरुछाया के सुख का अनुभव होता है।

गरुडजी का भुसुण्डिजी से भेंट होने की कोई विधि ही नही थी। होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सो खोवै चह कृपानिधाना। मन मे अभिमान था कि मैं पक्षिराट् हूँ। भुसुण्डि शकुनाधम सब भांति अपावन हैं। उसी अभिमान के नाश के लिए ऐसा भ्रम हुआ। गरुडजी कहते हैं कि ससाररूपी पतग के घोर किरणो से मैं जल रहा था। आप सन्त हैं। विटप स्थानीय हैं। यथा सत बिटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबन्ह कै करनी। आपकी छाया मे मेरी रक्षा हुई। आतप से विकल होने से ही तरुछाया की खोज हुई और तब आप मिले।

सुनतेउँ किमि हरिकथा सुहाई। अति बिचित्र बहुबिधि तुम्ह गाई॥
निगमागम पुरान मत एहा। कहहिं सिद्ध मुनि नहि सदेहा॥३॥

अर्थ उस सुन्दर हरिकथा को मैं कैसे सुनता जिस अति विचित्र कथा का गान बहुत विधि से आपने किया है। वेद शास्त्र का यही मत है। सिद्ध मुनि भी कहते हैं इसमे सन्देह नही।

व्याख्या हरिकथा श्रवण ही ससार पतग के घोर किरणो से सन्तप्त पुरुषो के लिए एकमात्र शरणप्रद तरुछाया है। आप वृक्ष हैं। हरि कथा आपकी छाया है। भ्रम होने से ही आपकी प्राप्ति हुई और हरिकथा सुनने का सौभाग्य हुआ। यह छाया अति विचित्र है। शीतल होने पर भी प्रकाशमय है। उसके द्वारा अनेक प्रकार से आप ने मेरी रक्षा की।

गरुडजी कहते हैं कि स्वत प्रमाण वेद और परत प्रमाण शास्त्र और पुराण तथा शिष्ट सिद्ध मुनि सबका इस विषय मे ऐकमत्य है। इसलिए सन्देह नही है

सत बिसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहि रामु कृपा करि जेही॥
राम कृपा तव दरसन भएऊ। तव प्रसाद सब ससय गएऊ॥४॥

अर्थ उसे विशुद्ध सन्त की सगति मिलती है जिसे रामजी कृपा करके देखते हैं। रामकृपा से आपका दर्शन हुआ और आपके प्रसाद से मेरा सशय गया।

व्याख्या सशय निवारण का सद्य कारण रामकृपा नही है। सद्य कारण तो आपकी कृपा है। रामकृपा सशय निरसन का परम्परागत कारण है। यथा बिनु हरि कृपा मिलहिं नहि सता। सत सगति ससृति कर अता। सन्त सर्वत्र हैं। परन्तु बिना हरि की कृपा के उनकी प्राप्ति नही होती। यथा सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। फिर भी मिलते नही। राम कृपा हो तब मिले। विधि प्रपच गुन अवगुन साना। साधु असाधु सुजाति कुजाती। सन्तो मे भी कुछ न कुछ दोष दिखायी पडता है। अत विशुद्ध सन्त का मिलना हरिकृपा से ही सम्भव है। वर्णाश्रम धर्म का आश्रय करके श्रीभगवान् का परमभक्त ही विशुद्ध सन्त है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

दो मुनि बिहग पति बानी, सहित बिनय अनुराग ।
पुलकि गात लोचन सजल, मन हरषेउ अति काग ॥६९ क

अर्थ पक्षिराट् की विनय और अनुराग युक्त वाणी सुनकर भुसुण्डिजी को पुलक हो गया और नेत्र मे जल भर आया और वे मन मे बडे प्रसन्न हुए ।

व्याख्या विनय और अनुराग सहित वाणी सुनने से ही सन्त महात्माओ की प्रसन्नता होती है । गरुडजी विहगपति है । उनकी प्रेम भरी विगताभिमान वाणी सुनने स भुसु ण्डजी को ऐसा हर्ष हुआ कि वह पुलक और आनन्दाश्रु के मिस से प्रकट हो गया । विनय के सहित यथा राम कृ ग तव दरसन भयऊ । अनुराग के सहित यथा मिलतेउँ तात कवन विधि तोही । गरुडजी महासाधु हैं । अत उनके सत्सङ्ग से भुसुण्डिजी को भी बडा हर्ष हुआ ।

दो स्रोता सुमति सुसील सुचि, कथा रसिक हरिदास ।
पाइ उमा अति गोप्यमपि, सज्जन करहिं प्रकास ॥६९॥

अर्थ हे उमा ! श्रोता यदि सुमति, सुशील, शुचि, कथारसिक और हरिदास मिल जाय तो सज्जन अत्यन्त गोप्य छिपाये जाने योग्य बात को भी कह डालते हैं ।

व्याख्या गरुडजी से बहुत कुछ राम रहस्य भुसुण्डिजी वर्णन करनेवाले हैं । इसीका उपक्रम करते हुए शिवजी पार्वती को सम्बोधन करते हुए कहते हैं कि गुणवान् श्राता के मिलने पर सज्जन लोग रहस्य की बात भी प्रकट कर देते है । तुमने पूछा था औरो राम रहस्य अनेका । कहहु नाथ अति बिमल बिबेका । सो भुसुण्डिजी राम रहस्य का वर्णन अब करेंगे । क्योकि गरुडजी गुणवान् श्रोता थे । गरुडजी की १ सुमति का तो इसी से पता चलता है कि मोह होते ही उसके निवारण के उपाय मे तुरन्त लग गये । नारदजी के पास गये । ब्रह्म लोक गये । मेरे पास आये और मेरे कहने पर भुसुण्डिजी के यहाँ प्रसन्न होकर गये । २ सुशील है । कहते हैं 'सोइ भ्रम अब हित करि मैं जाना । कीन्ह अनुग्रह कृपानिधाना । ३ शुचि हैं । इसलिए कहते हैं जो नहि होत मोह अति मोही । मिलतेउँ तात कवन विधि तोही । ४ कथा रसिक हैं । इसलिए कहते हैं सुनतेउँ किमि हरि कथा सोहाई । अति बिचित्र बहु बिधि तुम्ह गाई । और ५ हरिदास हैं । इसलिए उनके मन मे यह बात उठी सत विसुद्ध मिलहिं परि तेही । चितवहिं रामकृपा करि जेही । राम कृपा तव दरसन भयऊ । तव प्रसाद सब ससय गयऊ ।

बोलेउ कागभुसुंडि बहोरी । नभगनाथ पर प्रीति न थोरी ॥
सब बिधि नाथ पूज्य तुम्ह मेरे । कृपापाल रघुनायक केरे ॥१॥

अर्थ तत्पश्चात् भुसुण्डिजी बोले । क्योकि पक्षिराट् पर उनकी बडी प्रीति

ankurnagpal108@gmail.com



थी। कहा कि हे नाथ ! सब प्रकार से आप मेरे पूज्य हैं। क्योंकि रघुनायक के कृपापात्र हैं।

व्याख्या : विहंगपति की विनय अनुरागयुक्त वाणी सुनकर भुसुण्डिजी कहते हैं कि आप तो सबके पूज्य हैं। जो विष्णु भगवान् का अर्चन करता है उसे आपकी पूजा करनी पड़ती है। क्योंकि आप भगवान् के कृपापात्र हैं। सदा भगवान् के सम्मुख आपकी स्थिति रहती है। हरि मन्दिर के सामने ही गरुड़ स्तम्भ रहता है और मेरे तो सब विधि से पूज्य हैं। १ पक्षियो के राजा होने से २ जाति मे श्रेष्ठ होने से ३ अतिथि होने से और ४. सरकार के बन्धन काटने के निमित्त होने से। महात्मा लोग कभी अन्यथा नही कहते। भुसुण्डिजो को वस्तुतः इन कारणो से गरुडजी पर बड़ी प्रीति थी।

तुमहि न संसय मोह न माया। मो पर नाथ कीन्हि तुम दाया ॥
पठै मोह[1] मिस खगपति तोही। रघुपति दीन्ह बड़ाई मोही ॥२॥

अर्थ : तुम्हे न संशय है न मोह है और न माया है। हे नाथ ! मुझ पर आपने दया की। रामजी ने मोह के बहाने से तुम्हे भेज कर मुझे बडाई दी।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते है कि आप तो नित्ययुक्त हो। आपको सशय मोह और माया कहाँ ? जिसे मोह होता है उसे इतना ज्ञान कहाँ कि मुझे मोह हुआ है। आपके मोह छुडाने के प्रयत्न से ही सिद्ध है कि वह मोह आगन्तुक था। आपने मुझ पर दया की जो स्वय चले आये। उचित तो यह था कि आप मुझे बुला भेजते। यथा : तदपि उचित जन बोलि सप्रीती। पठिइअ काज नाथ अस नीती। बात यह है कि सरकार को मुझे बडाई देना था। इसलिए उनकी प्रेरणा से मोहाभास आपको हो गया। जा बात शिवजी ने कहा था : होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सोइ खोवै चह कृपानिधाना। उसी बातको भुसुण्डिजी दूसरे शब्दो मे कह रहे हैं।

तुम निज मोह कही खगसाईं। सो नहि कछु आचरज गोसाईं ॥
नारद भव बिरंचि सनकादी। जे मुनिनायक आतमवादी ॥३॥

अर्थ : हे पक्षिराट् ! आपने जो अपना मोह कहा है वह कोई आश्चर्य की बात नही है। नारद, शिव, ब्रह्मा, सनकादिक मुनि तथा और भी मुनियो मे श्रेष्ठ आत्मवादी है।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि आपने जो कहा : मोहि भयो अति मोह प्रभु बधन रन महु निरखि। सो कोई आश्चर्य की बात नही है। क्योंकि : जौं सब के रह ज्ञान एक रस। ईस्वर जीवहि भेद कहहु कस। आप बहुत बडे होने पर भी पक्षी हैं। मैं मुनियो की बात कहता हूँ और उनकी जो आत्मवादी हैं। जिन्हे ससार शशश्रृंग

१. यहाँ लेशालङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



की भाँति असत् प्रतीत होता है तथा सनकादिक की बात कहता हूँ जो ब्रह्मानन्द मे सदा लवलीन रहते हैं। नारदजी की बात कहता हूँ जो हरिहर को प्रिय हैं। तथा स्वय सृष्टिकर्ता ब्रह्मा और सहारकर्त्ता शिवजी की बात कहता हूँ।

मोह न अंध कीन्ह केहि केही। को जग काम नचाव न जेही ॥
तृष्णा केहि न कीन्ह बौराहा। केहि कर हृदय क्रोध नहि दाहा ॥४॥

अर्थ : मोह ने किसे अन्धा नही कर दिया। काम ने किसे नही नचाया। तृष्णा ने किसे पागल नही बनाया। किसके हृदय को क्रोधने नही जलाया।

व्याख्या · ससार मे जो है उस पर कभी न कभी काम क्रोधादि का दौरा हो जाता है · व्यापि रह्यौ ससार महँ माया कटक प्रचड। ससार मे तो ये सदा व्याप्त रहते हैं। बडे लोगो को ये वश मे नही रख सकते। पर कभी कभी उन पर भी इनका प्रभाव चल जाता है। इससे उनकी बडाई मे भेद नही पडता। जिन बडो बडो का मैंने उल्लेख किया है उन पर भी कभी न कभी इनका प्रभाव पड़ चुका है और भविष्य मे भी पडने का भय है। यथा · सिव चतुरानन जाहि डेराही। अत ऐसा ही आगन्तुक प्रभाव आप पर भी पड गया।

मोह अन्धकार का रूप ही है। इसके प्राबल्य के समय ज्ञान विरागरूपी आँखो का प्रचार रुक जाता है। अत: यह कभी न कभी सब पर प्रभाव डाल देता हैं। काम के कारण ही ससार जन्म मरण के जाल मे पडा हुआ है। यथा : नाचत ही निसि दिवस मर्यौ। तबही ते न भये हरि थिर जब ते जिव नाम धर्यौ। बहु वासना बिबिध कचुकि भूषन लोभादि भर्यौ। चर अरु अचर गगन जल थल मे कौन न स्वाँग कर्यौ। तृष्णा से उन्माद हो जाता है। वह अपने होश मे ही नही रहता। ससार उस पर हँसता है। पर वह कुछ ख्याल नही करता · लोलुप भ्रमत गृह पसु ज्यो जहँ तहँ सिर पदत्रान बजै। तदपि अधम बिचरत तेहि मारग कबहु न मूढ लँजै। क्रोध कलेजा जलाता है। जिस पर क्रोध होता है उसको हानि तो पीछे पहुँचावेगा। पहिले तो उसी का कलेजा जलाता है। क्रुद्ध पाप न कुर्यात् क· क्रुद्धो हन्याद् गुरूनपि। क्रोध से जीव कौन सा पाप नही करता ? क्रोधी अपने गुरु को भी मारता है। क्रोध पाप का मूल।

दो. ग्यानी तापस सूर कबि, कोबिद गुन आगार।
केहि कै लोभ बिडंबना, कीन्हि न येहि ससार ॥७० क.
श्रीमद बक्र न कीन्ह केहि, प्रभुता बधिर न काहि।
मृगलोचनि के नयन सर, को अस लाग न जाहि ॥७०॥

अर्थ : ज्ञानी, तपस्वी, शूर, कवि, पण्डित और गुणनिधान मे ऐसा कौन है जिसकी दुर्दशा इस ससार मे लोभ ने न की हो। धन मद ने किसे टेढा नही बनाया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


प्रभुता ने किसे वहरा नहीं वनाया तथा मृगनयनी के नयन का बाण ऐसा कौन है जिसे न लगा हो।

व्याख्या : आशा की डोरी गले में बँधी हुई पशु की भाँति लोभी कहाँ कहाँ नाचता नहीं फिरता। धूम समूह निरखि चातक ज्यों तृषित जानि मति घन की। नहि तहँ सीतलता न वारि पुनि हानि होत लोचन को। ज्यो गच काच विलोकि श्येन जड़ छाँह आपने तनकी। टूटत अति आतुर अहार बस छति बिसारि आनन की। सो इस लोभ से वँधा कौन है? साधन चतुष्टयसम्पन्न ज्ञानी विषयविमुख तपस्वी मरण को तृण मानने वाले शूर क्रान्तिदर्शी कवि, जीवन मरण को न सोचने वाले पण्डित और आदरणीय गुणागार सभी इसके फन्दे में फँस जाते हैं।

धनमद होते ही सरल पुरुष भी कुटिल हो जाता है। वह समझने लगता है कि जो कोई मुझसे मिलता है वह मुझसे ऐंठने आता है। अतः वह सबसे कुटिलता का व्यवहार करता है। जबतक मनुष्य को प्रभुता की प्राप्ति नहीं होती तबतक वह सबकी बातें सुनता है। प्रभुता हाथ में आते ही उसकी सुनने की शक्ति हो जाती रहती है। दीनो की पुकार उसके कानतक पहुँचती ही नहीं और सब वाणी से कराल मृगनयनी के नयन बाण है। इसका मारा हुआ तुरन्त सुध बुध खो वैठता है। इससे भी बचनेवाला कोई दिखायी नहीं पड़ता। भावार्थ यह : नारि नयन सर जाहि न लागा। घोर क्रोध तम निसि जो जागा। लोभ पास जेहि गर न वँधाया। सो नर तुम्ह समान रघुराया।

गुनकृत सन्यपात नहि केही। कोउ न मान मद तजेउ निवेही ॥
जौवन ज्वर केहि नहि वलकावा। ममता केहि कर जसु न नसावा ॥१॥

अर्थ : गुण से उत्पन्न सन्निपात किसे नहीं हुआ। मान मद ने किसे निर्दोष छोड़ दिया? जवानी के ज्वर ने किसे नहीं कम्पमान किया। ममता ने किसकी कीर्ति नहीं नष्ट की।

व्याख्या : गुण से काम क्रोध लोभ तीनों का योग है। काम वात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा। प्रीति करै जो तिनिउ भाई। उपजै सन्निपात दुःख दाई। तथा : सन्यपात जल्पसि दुर्बादा। भयेसि कालबस खल मनजादा। गुण होने से उसका मद बिना हुए नहीं रहता। मत्सर मान मोह मद को चोर कहा है। यथा : मत्सर मान मोह मद चोरा। ये सद्गुणो को चुरा लेते हैं। सद्गुणों का नाश मान मद द्वारा होता है। निवेही अर्थात् निश्छिद्र निर्दोष भावार्थ यह कि मान मद के कारण सभी मे दोष आ जाते हैं।

यौवन ज्वर है। सर्वरोगाग्रजो वली। यह सब रोगों से बलवान् है और यह यह सबको होता है। सज्वरा एव जायन्ते। सज्वरा एव म्रियन्ते। यह मानसिक ज्वर दो प्रकार का होता हैं। यथा : जुग बिधि ज्वर मत्सर अविवेका। इससे तो कोई वचता नहीं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


यश परोपकार से होता है। रागद्वेष से परोपकार तो दूर गया परोपकार ही हो पड़ता है और ममतारूपी तमिस्रा में राग द्वेष का बोलबाला सदा रहता है। यथा : ममता तरुन तमी अँधियारी। राग द्वेष उलूक सुखकारी। अतः ममता से यश का नाश होता ही है और ममता से कोई बचा भी नहीं है।

मच्छर काहि कलंक न लावा। काहि न सोक समीर डोलावा ॥
चिन्ता साँपिनि को न खाया। को जग जाहि न ब्यापी माया ॥२॥

अर्थ : मत्सर ने किसे कलङ्क नहीं लगाया और शोकरूपी वायु ने किसे चलायमान नहीं किया। चिन्ता सापिनी ने किसे नहीं दंशन किया। संसार में कौन है जिसे माया नहीं व्यापी ?

व्याख्या : जिसे मत्सर है वह उदार हो नहीं सकता। उसका स्वभाव निश्चय कार्पण्य से उपहत हो जाता है। फलतः उसे कलङ्क लगता है। शोक से धैर्य छूट जाता है। शोकसन्तप्त पुरुष विचलित हो उठता है। शोक संसार वृक्ष का बीज है। जब तक शोक है तब तक ब्रह्म ज्ञान हो नहीं सकता। उस शोक ने किसे विचलित नहीं किया। चिन्ता साँपिनी है। चपके आकर दशन कर लेती है। उससे कुतर्क की लहर उठती है जो महा दुःखद है। यह प्राण लेकर ही छोड़ती है। जो संसार मे आया उसे माया व्यापती ही है। यथा : भूमि परत भा ढावर पानी। जिमि जीवहिं माया लपटानी। पानी जब जमीन मे गिरा तो ढावर होगा ही। इसी भाँति जो संसार में आया उसे माया व्यापेगी ही।

कीट मनोरथ दारु सरीरा। जेहि न लाग घुन को अस धीरा ॥
सुत बित लोक ईषना तीनी। केहिकै मति इन्ह कृत न मलीनी ॥३॥

अर्थ : मनोरथ कीट है। शरीर लकड़ी है। ऐसा धीर कौन है जिसे घुन नहीं लगा। पुत्रैषणा वित्तैषणा और लोकैषणा ये तीन एषणायें हैं। किसकी बुद्धि को इनने मलिन नहीं किया।

व्याख्या : मनोराज्य करते करते शरीर निस्सार हो जाता है। मनोरथ शरीर के सार को खा जाता है। ऊपर से ज्यों का त्यों बने रहने पर भी भीतर से पोला पड़ जाता है। धीर मनोरथ नहीं करते। फिर भी मनोरथ उनके शरीर को निःसार करके ही मानता है।

जितनी सांसारिक इच्छाएँ हैं वे पुत्र धन और लोक के ही अन्तर्गत हैं। इनके चाह से बुद्धि मलिन हो जाती है। सो कोई भी इन एषणाओ से नहीं बचा है। अतः सबकी बुद्धि मे मलिनता आ ही जाती है।

यह सब माया कर परिवारा। प्रबल अमित को बरनै पारा ॥
सिव चतुरानन जाहि डेराही। अपर जीव केहि लेखे माँही ॥४॥

अर्थ : यह सब माया का परिवार है। प्रबल है और असंख्य है। इसका कौन

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



वर्णन कर सकता है। शिव और ब्रह्मा जिनसे डरते हैं दूसरे जीव किस गिनती मे हैं।

व्याख्या : अठारह जो बहुत प्रसिद्ध हैं उनका नाम गिना दिया पर ये गिने नही जा सकते। एक एक के असख्य भेद हैं और सब के सब बडे प्रबल हैं। जीते नही जा सकते। इन सबका वर्णन कौन कर सकता है। ये सब माया के बाल बच्चे हैं : तस्य हेतुरविद्या। सब पर प्रभाव डालकर माया के वश मे रखते हैं।

सबके बड़े शिव और ब्रह्मा हैं। ये ईश्वर कोटि मे हैं। फिर भी माया के परिवार से सदा सावधान रहते हैं। क्योकि ये उन पर भी प्रभाव डालने मे समर्थ हैं। फिर जीवो की क्या गिनती है। यथा : माया बस्य जीव अभिमानी।

दो. ब्यापि रहेउ संसार महु, माया कटक प्रचंड।
सेनापति कामादि भट, दंभ कपट पाखंड ॥७१ क.
सो दासी रघुबीर कै, समुझे मिथ्या सोपि।
छूट न रामकृपा बिनु, नाथ कहौ पद रोपि ॥७१॥

अर्थ : माया की प्रचण्ड सेना ससार मे व्याप्त रही है। उनके सेनापति कामादि हैं और दम्भ कपट पाखण्ड आदि योद्धा हैं। वह रामजी की दासी है और वह भी विचार करने पर मिथ्या ही ठहरती है। वह बिना रामकृपा के छूट नही सकती। इस बात की मैं प्रतिज्ञा करके कहता हूँ।

व्याख्या : यह माया की सेना किसी विशेष स्थल मे नहीं रहती। सम्पूर्ण ससार मे व्याप्त होकर स्थित है। और बलवती ऐसी है कि सबको वश मे किये हुए स्थित है। काम क्रोध और लोभ इसके सेनापति है। ये सेना का सञ्चालन करते हैं। दम्भ कपट पाखण्ड योद्धा हैं। ऐसी महाप्रभावा माया रामजी की दासी है। यथा : माया खलु नर्तकी बिचारी। और वह अविचार से सिद्ध है। विचार करने पर वह नहीं ठहरती। इसलिए उसे मिथ्या कहते है फिर भी उससे रक्षा नही। रामजी की कृपा हो तो छूटे अन्यथा इसका छूटना असम्भव है। भुसुण्डिजी प्रतिज्ञा करते हैं कि अन्य कोई उपाय इससे बचने का नही है।

जो माया सब जगहिं नचावा। जासु चरित लखि काहु न पावा॥
सोइ प्रभु भ्रूबिलास खगराजा। नाच नटी इव सहित समाजा ॥१॥

अर्थ : जिस माया ने सम्पूर्ण ससार को नचाया और जिसके चरित्र को कोई लख नही पाया। वही सरकार के भौंह के इशारे पर हे खगराज ! समाज के सहित नटी की भाँति नाचती है।

व्याख्या : जिसकी सेना ऐसी प्रबल जिसके सेनापति ऐसे प्रचण्ड। जो स्वय ऐसी प्रभावशालिनी कि सम्पूर्ण ससार को नचाया करती है। उसके चरित्र को कोई जान नही सकता। 'कैसा भी कोई पण्डित हो पर कहो न कही उसे भ्रम रह

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हो जाता है। यथा अज्ञान पुरतस्तेषा भाति कक्षासु कासु च। अत. मानना पडेगा कि उसके चरित्र को कोई लख नही पाता। एक दुष्ट अतिसय दु ख रूपा। जा बस जीव परा भव कूपा।

भुसुण्डिजी कहते हैं कि हे गरुडजी वह महा प्रभावा माया सरकार के भ्रूविलास से अपने समाज के साथ नटी की भाँति नाचती है। वह स्वय नटी सी हो जाती है और उसके योद्धा तथा सेनापति समाजो की भाँति उसके नाचने मे योग देते हैं। कहा है ' माया खलु नर्तकी विचारी। माया स्वय असती है और मिथ्या भाव दिखाकर लोगो को ठगा करती है। यथा : लव निमेष महँ भुवन निकाया। रचै जासु अनुसासन माया। श्रीपति निज माया तब प्रेरी। सुनहु कठिन करनी तेहि केरी। बिरचेउ मगमहुँ नगर तेहि, सत जोजन बिस्तार। श्रीनिवास पुर ते अधिक रचना बिबिध प्रकार। तेहि पुर बसै सीलनिधि राजा। अगनित हयगय सेन समाजा। बिस्व मोहिनी तासु कुमारी। श्रीबिमोह जिसु रूप निहारी। सोइ हरि माया सब गुन खानी। सोभा तासु कि जाइ बखानी। करै स्वयबर सो नृप बाला। आये तहँ अगनित महिपाला। इत्यादि जिस पर सरकार सानुकूल हो जाते हैं। उससे माया अत्यन्त डरा करती है। यथा भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया।

सोइ सच्चिदानद घन रामा। अज बिज्ञान रूप बल धामा॥
ब्यापक ब्याप्य अखड अनता। अखिल अमोघ सक्ति भगवता॥२॥

अर्थ : रामजी वही सच्चिदानन्दघन हैं। अज है। विज्ञानरूप हैं और बलधाम है। वही व्यापक हैं। वही व्याप्य हैं। वही अखण्ड हैं। अनन्त हैं। पूर्ण है। अमोघ शक्ति हैं।

व्याख्या जीवकी मायापरतन्त्रता तथा माया की ईश्वरपरतन्त्रता वर्णन करके अब कहते है कि वही मायी राम हैं। उनके ऊपर माया का कोई प्रभाव नही पड सकता। इसी बात को दिखलाने के लिए उनका यथार्थ रूप वर्णन करते हैं। माया तो असत् जड दु खरूपा है और रामजी सत् चित् आनन्द घनरूप है। घन कहने का भाव यह कि माया के प्रवेश के लिए सूक्ष्मातिसूक्ष्म छिद्र भी नही है अथवा रामजी सच्चिदानन्द दिनेश है। उनके सम्मुख मोह तम जा नही सकता। रामजी अजन्मा है। उनका जन्म होता ही नही। हुआ भी नहीं। उनके जन्म कर्म दिव्य है। उनकी योगमाया द्वारा जन्म हुआ सा प्रतीत होता है। वे विज्ञानरूप हैं। अज्ञान की वहाँ पहुँच कहाँ ? वे बलधाम है। उन्ही से बल पाकर माया ससार की सृष्टि करती है। उनसे पृथक् माया कुछ ठहरती ही नही। उन पर प्रभाव क्या डालगी ? वही व्यापक है और वही व्याप्य है। वे सर्वरूप हैं। अन्य भी उनसे पृथक् कोई वस्तु नही है। वे निरश होते हुए भी अनन्त हैं। अन्त तो परिच्छिन्न पदार्थ का होता है। वे पूर्ण हैं। अमोघ शक्ति रूप है। उनसे पृथक् जो कुछ है सब माघ है :

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्यर्थ है। वे ही भगवान् हैं, समस्त ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान, वैराग्य के अक्षय भण्डार हैं।

अगुन अदभ्र गिरा गोतीता। सब दरसी अनवद्य अजीता ॥
निर्मम निराकार निर्मोहा। नित्य निरंजन सुख संदोहा ॥३॥

अर्थ : निर्गुण, अनल्प, वाणी और इन्द्रियों से परे, सर्वद्रष्टा, दोषरहित, अजित, निर्मल, निराकार, मोहरहित, नित्य निर्लेप और सुखराशि हैं।

व्याख्या : वे गुणत्रय सत्त्व रज तम से परे हैं। ब्रह्म हैं, सम्पूर्ण हैं। अतः : न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाक् गच्छति नो मनः। वहाँ मन वाणी की गति नही है। वे सबके देखनेवाले हैं। अतः वे जाने नही जा सकते। यथा : विज्ञातार वा अरे केन विजानीयात्। सदा ब्रह्म की ही जय है। क्योंकि वही उत्कृष्ट है। अतः वे अजित हैं। निर्मल भी वही हैं। उनमे विजातीय द्रव्य का प्रवेश नही है। अपरिच्छिन्न होने से वे आकाश की भाँति निराकार हैं। अतः उन तक मोह की गति नही है। विकलता तो मोह से होती है। वे तो नित्यनिर्लेप है और सुख की राशि हैं।

प्रकृति पार प्रभु सब उरबासी। ब्रह्म निरीह बिरज अबिनासी ॥
इहाँ मोह कर कारन नांही। रबि सनमुख तम कबहुँक कि जाँही ॥४॥

अर्थ : प्रभु प्रकृति से परे हैं। सबके उर मे वास करनेवाले है। ब्रह्म है। चेष्टा रहित हैं। रज रहित तथा नाश रहित हैं। यहाँ मोह का कारण नही है। क्या सूर्य के सामने कभी अन्धकार जा सकता है ?

व्याख्या : सत्त्व रज और तम की साम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं। यही सृष्टि का मूल है। परन्तु सरकार तो इससे भी परे हैं। फिर भी सभी का हृदयदेश उनके आविर्भाव का स्थान है। यथा : ईश्वर : सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। वही ब्रह्म हैं। वही निरीह हैं। क्योंकि चेष्टा तो परिच्छिन्न पदार्थ मे होती है। वे ही दुःख से रहित अविनाशी हैं। शेष सब कुछ विनाशी है।

मोह का कारण है अभिमान। यथा : संसृति मूल सूल प्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना। राम ब्रह्म में अभिमान ही नही है। अहमिति अभिमान जीव का धर्म है। अभिमान अन्धकार है। यथा : त्यागहु तम अभिमान। यह राम सच्चिदानन्द दिनेश के सामने जा नही सकता। अतः कहते हैं कि यहाँ मोह का कारण नही है। और सब जगह मोह का कारण : अभिमान है। अतः वहाँ मोह का प्रभाव चल सकता है।

दो. भगत हेतु भगवान प्रभु, राम धरेउ तनु भूप।
किये चरित पावन परम, प्राकृत नर अनुरूप ॥७२ क.
जथा अनेक वेष धरि, नृत्य करै नट कोइ।
सोइ सोइ भाव देखावै, आपु न होइ न सोइ ॥७२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ भक्तो के लिए भगवान् प्रभु रामजी ने राजा का रूप धारण किया और साधारण मनुष्यो के अनुरूप परम पावन चरित्र किये। जिस भाँति कोई नट अनेक वेप घर कर अभिनय करता है और जैसा वैसा दिखलता है। पर आप वैसा नही हो जाता।

व्याख्या सरकार ने भूपरूप भक्त के लिए धारण किया। भाव यह कि जीवो की भाँति कर्म के परतन्त्र होकर देह नही धारण किया। जन्म ग्रहण करने म उनकी स्वतन्त्रता है। उन्होने अपने भक्ता पर अनुग्रह करने के लिए देह धारण किया और प्राकृत नरो की भाँति चरित्र किया। पर वे परम पावन थे। भक्त नारद ने शाप दिया बचेउ मोहि जवन धरि देहा। सोइ तनु धरहु श्राप मम एहा। मम अपकार कीन्ह तुम भारी। नारि विरह तुम होव दुखारी। अत तदनुसार देह धारण करके नारी विरह मे दुखारी होने का अभिनय किया।

नट अनेक वेष धारण करके नृत्य करता है। जिस समय जैसा वेप धारण करता है उस समय वैमा ही अभिनय करता है। पर जैसा वह अभिनय करता है वैसा वह नही हा जाता। इसीलिए यहाँ पर उस प्रभु की उपमा नट से दी गयी है। वह अनेक अवतार धारण करता है। यथा मीन कमठ सूकर नर हरी। बामन परसुराम बपुधरी। जिस समय जैसा वेप धारण करता है वैसा ही अभिनय करता है। रामावतार मे तो एक ही समय दो वेप धारण करके एकदम एक दूसरे से विरुद्ध भाव के अभिनय का उदाहरण राम परशुराम सम्वाद म पाया जाता है। ऐसे सभी प्रकार के अभिनय उसकी लीला है। इसी भाँति युद्ध के अभिनय मे शत्रु के हाथ बँध जाना और तदनुकूल विकलता प्रदर्शन लोलामात्र है। वस्तुत विकलता से उस समय भी उनका कोई सम्बन्ध नही था। क्योकि व तो सहज आनन्द के निधान हैं।

असि रघुपति लीला उरगारी। दनुज बिमोहनि जन सुखकारी॥
जे मति मलिन बिपय बस कामी। प्रभु पर मोह धरहिं इमि स्वामी॥१॥

अथ हे गरुडजी! रामजी की ऐसी लीला है कि वह दानवो को मोह डालती है और भक्तो का कल्याण करती है। जो मलिन बुद्धिवाले विपयवश्य कामी हैं हे स्वामी! वे प्रभु पर इस प्रकार से मोह का आरोप करते हैं।

व्याख्या रघुपति स श्री रामावतार कहा। सरकार का प्राकृत नर के अनुरूप चरित्र करना वैसा ही भाव दिखलाना और स्वय वैसा न होना लीला है। यथा उमा राम गुन गूढ पडित मुनि पावहि बिरति। पावहि माह बिमूढ जे हरि बिमुख न धर्म रति। रघुपति की लीला ऐसी ही गूढ है कि आसुरी सम्पत्तिवालो का उससे मोह हाता है और जो भगवान् के भक्त है दैवा सम्पत्तिवाले हैं उन्हे सुख होता है।

कारण कहते हैं कि आसुरी सम्पत्तिवाल विपयवश कामी होते हैं। उनकी बुद्धि मलिन होती है। उस बुद्धि मालिन्य के तीन भेद है १ बुद्धि मान्द्य २ कुतर्क और ३ विपर्यय दुराग्रह। इन्ही कारणो से मनुष्य विमूढ हा जाता है। भगवान् को

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लीला मे उसे मोह होता है। अर्थात् वर्तमान ज्ञान के चार प्रतिबन्ध कहे: १ विषयासक्ति २ बुद्धिमान्द्य ३ कुतर्क और ४ विपर्यय दुराग्रह। इनमे से विषयासक्ति ही सबका मूल है।

नयन दोष जाकहु जब होई। पीत बरन ससि कहुँ कह सोई ॥
जब जेहि दिसि भ्रम होइ खगेसा। सो कह पच्छिम उएउ दिनेसा ॥२॥

अर्थ : जब जिनकी आँखो मे दोष होता है तो वह कहता है कि चन्द्रमा का रग पीला है और जब जिसको दिग् भ्रम होता है तो हे गरुडजी! वह कहता है कि सूर्य पश्चिम मे उदय हुए हैं।

व्याख्या : विषयासक्त स्वय विषय मे लगा हुआ है। सरकार की प्राकृत नर अनुरूप लीला को देखकर उन्हे अपनी भाँति विषयासक्त मान बैठता है। उसमे इतनी घोर आसक्ति है कि वह उनकी लीला पर अभिनय की दृष्टि कर नही सकता। उदाहरण देते हैं कि काच कामलादि दोषवाले को पित्त के दोष से चन्द्र पीले मालूम पडते हैं। चन्द्र श्वेत हैं। दोष उसकी दृष्टि मे हैं जिसके कारण से वह चन्द्र को पीला देख रहा है। इसी भाँति विषयासक्त पुरुष लोकसग्रही पूर्ण ज्ञानी के कर्मों को आसक्तिरहित नही मान सकता।

बुद्धिमान्द्यवालो की उपमा दिग्भ्रमवालो से दी गयी है। यह दिग्भ्रम बुद्धिमान्द्य से कभी हो जाता है तो उसे मालूम पडता है कि सूर्य पश्चिम दिशा से उदय हो रहे हैं। वह स्वय जानता है कि सूर्य जब उदय होगे तब पूर्व से ही होगे। लोग भी उसकी मूढता पर हँस रहे हैं। पर वह अपने अनुभव को क्या करे उसे वैसा ही मालूम हो रहा है। इसी भाँति मन्दबुद्धि सरकार की लीला का उलटा अर्थ लगाता है। वे तो कामियो की दीनता का अभिनय करते हैं। पर वह समझता है कि इन्हे स्त्री विरह का पार नही मिल रहा है।

नौकारूढ चलत जग देखा। अचल मोह बस आपुहि लेखा ॥
बालक भ्रमहि न भ्रमहि गृहादी। कहहि परसपर मिथ्या बादी ॥३॥

अर्थ : नाव पर सवार ससार को नो चलता हुआ देखता है और अज्ञान वश अपने को निश्चल समझता है। बालक नही घूमते घर आदि ही घूम रहे हैं ऐसी बातें झूठे आपस मे कहा करते हैं।

व्याख्या : जो कोई नाव पर सवार होता है उसे संसार चलता हुआ दिखायी पडता है और स्वय स्थिरता का अनुभव करता है। फिर भी वही अपने अनुभव को सत्य नही मानता। उसे वह भ्रम समझता है। परन्तु कुतर्की कहते हैं कि प्रत्यक्ष ही सब प्रमाणो मे ज्येष्ठ और श्रेष्ठ है। प्रत्यक्ष पूर्वक ही अनुमानादि की प्रवृत्ति होती है। अत किसी अवस्था मे प्रत्यक्ष का अवहेलन नही किया जा सकता। हम लोग हाथ पैर बिना हिलाये हुए बैठे हैं और प्रत्यक्ष देखते हैं कि ससार चलता है। इसे अप्रमाण कैसे माना जा सकता है। इसी भाँति प्रत्यक्ष नागपाश मे बँधे हुए

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रामजी को वे नित्यमुक्त नही मान सक्ते। यथा : खेद खिन्न मन तर्क बढाई। भयउ मोह बस तुम्हरिहि नाई। खर्ब निसाचर बाँधेउ नाग पास सोई राम।

विपर्यय दुराग्रहवाले तो नाहक झगडा खडा करते हैं। स्वय जानते हैं कि बात ऐसी नही है। फिर भी दुराग्रह वश वही गीत गाये जाते हैं। लडके घुमरी खेलते हैं तो गृह वृक्षादि जो उनके एक ओर थे दूसरी ओर हो जाते हैं। तो विपर्यय दुराग्रही कहते हैं कि लडके नही घूम रहे हैं। गृह आदिक ही घूम रहे हैं। वे मिथ्यावादी हैं। उन्हे मिथ्या प्रिय है। अत परस्पर ऐसी ही बातें करते हैं। वे प्रमाण मे उन लडको को देंगे जो घुमरी खेल रहे थे। उन्हे तो स्पष्ट ही गृह आदिक घूमता प्रतीत होता है। इसी भाँति बातें बनाया करते हैं मिथ्या माहुर सज्जनहि खलहि गरल सम साँच। यथा : तेहि रावन कहँ लघु कहसि नर कर करसि बखान। रे कपि बर्बर खर्ब खल अब जाना तव ज्ञान।

हरि बिषइक अस मोह बिहगा। सपनेहु नहि अग्यान प्रसगा ॥
माया बस मतिमंद अभागी। हृदय जवनिका बहु बिधि लागी ॥४॥
ते सठ हठबस ससय करही। निज अग्यान राम पर धरही ॥५॥

अर्थ : हे गरुडजी! हरि विषयक ऐसा ही मोह होता है। वहाँ तो स्वप्न मे भी अज्ञान का प्रसङ्ग नही है। माया के वश मतिमन्द अभागी लोग जिनके हृदय पर अनेक प्रकार से पर्दा पडा हुआ है वे ही शठ हठ के वश होकर सशय करते हैं और अपने अज्ञान का आरोप रामजी पर करते हैं।

व्याख्या : हरि विषयक मोह भी वैसा ही है। जैसा कि काच कामलादि दोषवाले को, दिग्भ्रमवाले को, नौकारूढ को तथा विपर्यय दुराग्रही को होता है। रामजी मे तो मोह का कोई प्रसग ही नही है। यथा : राम सच्चिदानन्द दिनेसा। नहि तहँ मोह निसा लवलेसा। यदि स्वप्न मे भी ऐसा प्रसग आपडे तो समझना चाहिए कि वह स्वप्न हरिविषयक था ही नही।

जो भवभजन पदविमुख अभागी हैं वे माया के वश मे पडे हुए हैं। मतिमन्द हैं। उनके हृदय मे अनेक प्रकार के आवरण पडे हुए हैं। उन्हे रामरूप का ज्ञान नही हो सकता। अज्ञानेनावृत ज्ञान तेन मुह्यन्ति जन्तव। वे अपने सशय के दूर करने का प्रयत्न नही करते। यत्नपूर्वक उस सशय को बनाये रखते हैं। अत उन्हे शठ कहा। शठ को अपने हृदय मे अपने पक्ष का बहुत बडा आग्रह होता है। उसे वह छोडना नही चाहता। वह अपने अज्ञान का आरोप राम पर करता है। जिस भाँति स्वय अज्ञानी होकर दु ख भोगता है उसी भाँति रामजी को भी जानता है।

दो० काम क्रोध मद लोभ रत, गृहासक्त दुख रूप।
ते किमि जानहि रघुपतिहि, मूढ परे तम कूप ॥७३ क॥
निर्गुन रूप सुलभ अति, सगुन जानि नहि कोइ।
सुगम अगम नाना चरित, सुनि मुनि मन भ्रम होइ ॥७३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ जो काम क्रोध मद और लोभ मे लगे हुए हैं। घर मे लिप्त हैं। दु ख के रूप हैं। वे रघुपति को कैसे जानेंगे। वे मूढ ता अन्धकार के कुएँ मे पडे हुए है। निर्गुण रूप अत्यन्त सुलभ है। सगुण को ही कोई नही जानता। सगुण चरित्र ऐसे सुगम और अगम है कि उन्हे सुनकर मुनि के भी मन मे भ्रम होता है।

व्याख्या काम क्रोध मद और लोभ तो चारो नरक के पन्थ हैं। सो जो उस रास्ते पर लगे हुए है वे गृह मे लिप्त रहते हैं। उन्हे ससाररूपी कूप के मण्डूक समझना चाहिए। वह प्रकृति पार पुरुष को जान नही सकते।

प्रकृति पार पुरुष को जानना अत्यन्त सुलभ है। क्योकि उसमे कुछ करना धरना नही है। केवल चुप होकर बैठ जाने से वह जाना जाता है। यथा सद्वस्तु शुद्ध त्वस्माभिर्निश्चितैरनुभूयते। तूष्णी स्थितौ न शून्यत्व शून्यबुद्धेश्च वर्जनात्। पञ्चदशी। अत उसे अत्यन्त सुलभ कहा। परन्तु सगुण ब्रह्म को कोई नही जानता। वह तो मायी है। बिना माया को जाने वह जाना नही जा सकता और माया सत्त्वासत्व से अनिर्वचनीया है। उसे कोई कैसे जान सकता है। अत उन मायी का चरित्र ऐसा है कि समझ मे ही नही आता। यथा कुलिसहु चाहि कठोर अति कोमल कुसुमहु चाहि। चित खगेस अस राम कर समुझि परै कहु काहि।

## राम रहस्य उमा के ग्यारहवे प्रश्न का उत्तर

सुनु खगेस रघुपति प्रभुताई। कहौ जथामति कथा सुहाई॥
जेहि बिधि मोह भयउ प्रभु मोही। सोउ सब कथा सुनावौ तोही॥१॥

अर्थ हे पक्षिराट्। रघुपति की प्रभुता सुनिये। मैं बुद्धि के अनुसार सुन्दर कथा कहता हूँ। हे प्रभो! जिस प्रकार मुझे मोह हुआ है वह सब कथा तुम्हे सुनाता हूँ।

व्याख्या ऊपर कह आये हैं अस रघुपति लीला उरगारी। दनुज बिमोहनि जन सुखकारी। सो दनुज बिमोहनि का निरूपण करके अब सुखकारित्व दिखलाते हैं। सरकार की प्रभुता का वणन करते हैं। उसका वर्णन यथामति ही हो सकता है। कहते हैं कि यह न समझना कि गुझ ही को मोह हुआ। नही मुझे भी मोह हुआ था। मैं भी उससे बचा नही हूँ। उसके सुनाने म सरकार की प्रभुता का वर्णन है। यह तुम्हारे ऐसे पात्र से ही कहा जा सकता है।

रामकृपा भाजन तुम ताता। हरिगुन प्रीति मोहि सुखदाता॥
ताते नहि कछु तुमहि दुरावौ। परम रहस्य मनोहर गावौ॥२॥

अर्थ हे तात! तुम रामजी के कृपापात्र हो। तुम्हे हरि के गुणो पर प्रीति है। मुझे सुख देनेवाले हो। इसलिए तुम से कुछ छिपाता नही। मनोहर परम रहस्य का वर्णन कर रहा हूँ।

व्याख्या रहस्य सबसे नही कहा जाता। मैं जो इस समय वर्णन करूँगा वह रहस्य ही नही परम रहस्य है। अत्यन्त गोप्य है। परन्तु आप से छिपाया नही

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जा सकता। क्योकि आपमे उसके जानने की पात्रता है। रहस्य जानने के वे ही पात्र हैं जिन पर भगवत्कृपा हो। आप पर भगवत्कृपा है। क्योकि आप रघुनायक के प्रिय दास हैं। जिन्हे सरकार के गुणगण प्रिय लगें उनसे भी रहस्य नही छिपाया जाता। यथा श्रोता सुमति सुसील सुचि कथा रसिक हरिदास। पाइ उमा अतिगोप्यमपि सज्जन करहिं प्रकास। तीसरी बात यह है कि जो अपने को सुख दे उससे भी रहस्य नही छिपाया जाता। आपने मेरे यहाँ आकर मुझ पर दया की। मुझे सन्तसग का सुख हुआ। अत आप से रहस्य नही छिपाया जा सकता।

सुनहु राम कर सहज सुभाऊ। जन अभिमान न राखहिं काऊ॥
ससृत मूल सूल प्रद नाना। सकल सोक दायक अभिमाना॥३॥

अर्थ रामजी का सहज स्वभाव सुनो। वे भक्त का अभिमान कभी रहने नही देते। अभिमान ससार का मूल है और नाना प्रकार के शूल का देनेवाला है। सभी शोको का भी देनेवाला है।

व्याख्या भुसुण्डिजी रामजी का स्वभाव जानते हैं क्योंकि उन्हे रामभजन छोडकर दूसरी बात अच्छी नही लगती। यथा तजि हरिभजन काज नही दूजा। शिवजी ने उमा से कहा उमा राम सुभाव जेहि जाना। ताहि भजन तजि भाव न आना। अत यह सिद्ध है कि भुसुण्डिजी रामजी के स्वभाव के जानकार हैं। अत भुसुण्डिजी जैसा रामजी का स्वभाव बतलावें वही ठीक है नही तो राम के स्वभाव को पहिचानना बडा कठिन कार्य है। सो भुसुण्डिजी रामजी का स्वभाव गरुडजी को बतलाते हैं कि वे भक्त के अभिमान को तो कभी रहने ही नही देते। यथा करुनानिधि मन दीख बिचारी। उर अकुरेउ गर्ब तरु भारी। बेगि सो मैं डारिहौं उखारी। पन हमार सेवक हितकारी। भक्त के हित के लिए उसका अभिमान भङ्ग करते हैं। क्याकि अभिमान से बडा अनिष्ट होता है। अभिमान ही ससार का मूल है। इसी के कारण अनेक प्रकार के शूल होते हैं। अनेक प्रकार का शोक होता है।

ताते करहिं कृपानिधि दूरी। सेवक पर ममता अतिभूरी॥
जिमि सिसु तन ब्रन होइ गोसाईं। मातु चिराव कठिन की नाईं॥४॥

अर्थ इसलिए कृपानिधि उसे दूर करते हैं। उन्हे सेवक पर बडी कृपा है। जैसे बच्चे के शरीर म फोडा हो जाय तो माता उसको कठिन चित्त करके चिरवा देती है।

व्याख्या सरकार भक्त का मङ्गल चाहते हैं। उसे शूल तथा शोक से बचाना चाहते हैं। अत उसके अभिमान को भङ्ग कर देते हैं। मान भङ्ग से बडा दुःख होता है। पर उस दुःख को सरकार नही गिनते। उसके भविष्य के सुख पर उनकी दृष्टि रहती है। मान भङ्ग होने से भक्त दुःखी होता है। रो पडता है। अधीर हो जाता है। पर जब तक उसका अभिमान निमूल न हो जाय तब तक सरकार निष्ठुर होकर उसमे से अभिमान के लश को भी बिना निकाल नही छोडते। वह निष्ठुरता नही है

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



परम कृपा है। जैसे छोटे बच्चे को फोडा होने पर माँ छाता कडा करके उसपर छुरा चलवाती है। नही तो उस बच्चे के एक रक्तबिन्दु के लिए वह अपना जीवन निछावर कर देती। परन्तु उस समय बच्चे के रोने धोने को और उसके धैर्य त्याग का कुछ भी ध्यान नही करती। बच्चा यदि प्रौढ हो जाय तो उसका फोडा नही चिरवाती। जानती है कि यह समझदार हो गया। अपना फोडा स्वय चिरवा लेगा।

दो. जदपि प्रथम दुख पावै, रोवै बाल अधीर।
व्याधि नास हित जननी, गनति न सो सिसु पीर ॥७४ क.
तिमि रघुपति निज दासकर, हरहिं मान हित लागि।
तुलसिदास ऐसे प्रभुहिं, कस न भजहु भ्रम त्यागि ॥७४॥

अर्थ : यद्यपि पहिले दु ख पाता है और अधीर होकर बच्चा रोता है। परन्तु व्याधि के नाश के लिए माँ उसके दु ख को गिनती नही। इसी भाँति रामजी अपने दास के मान को उसके हित के लिए हरण करते हैं। तुलसीदास ऐसे प्रभु को भ्रम छोडकर क्यो नही भजता।

व्याख्या : जिस भाँति फोडा होने से वेदना होती है और वह बढ़ती ही जाती है। यदि वह फोडा न चीरा जाय तो घातक सिद्ध होता है और कई फोडे तो ऐसे विषैले होते हैं कि उन्हे पैदा होते ही चीर देना चाहिए। माता यह समझती है छोटा बच्चा उसे नही समझता। वह नही चाहता उसके फोडेको कोई स्पर्श करे। परन्तु माता बलपूर्वक उसके फोडे को चिरवाती है। बच्चे के रोने धोने पर कुछ भी ध्यान नही देती। उस समय की उसकी कठोरता वस्तुत कृपालुता है। इसी भाँति परमेश्वर अपने भक्त के अभिमान का छेदन करते हैं। तब उसे बडा कष्ट होता है। वह बहुत दु खी होता है। विलाप करता है। परन्तु प्रभु कठोर होकर उसका अभिमान छेदन कर देते हैं। वह कठोरता नही है दयालुता है। गोस्वामीजी कहते हैं कि ऐसे माता के समान प्रेम करनेवाले प्रभु को तू भ्रम छोडकर क्यों नही भजता ? जब कष्ट आवे तो समझना चाहिए कि परमेश्वर की ओर से उसके भले के लिए कष्ट आया हुआ है और उसे उनकी कृपा समझकर सहन करे और भजन मे अधिक दत्तचित्त हो।

रामकृपा आपनि जडताई। कहौं खगेस सुनहु मन लाई॥
जब जब राम मनुज तनु धरहीं। भक्त हेतु लीला बहु करहीं ॥१॥

अर्थ : हे पक्षिराट्! मैं रामजी की कृपा और अपनी जडता का हाल कहता हूँ। मन लगाकर सुनिये। जब जब रामजी मनुष्य शरीर धारण करते हैं और भक्तों के लिए बहुत सी लीला करते हैं।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि रामजी की कृपा और अपनी जडताई अर्थात् मोह का वर्णन करता हूँ। सरकार जडता पर क्रोध नहीं करते। कृपा करते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रामजी की कृपा की महत्ता तो मेरी जडता सुनने पर ही मालूम पडेगी। अतः मेरी जडता भी रामकृपा के सम्बन्ध से एकाग्रचित्त द्वारा सुनने योग्य है।

रामजी अनेक शरीर धारण करते हैं। कभी मीन का कभी कमठ का कभी शूकरादि का भी शरीर धारण करते हैं। परन्तु जब मनुजशरीर धारण करते हैं तब भक्त के लिए अनेक लीला करते हैं। भाव यह कि सभी अवतार भक्त के लिए ही होते हैं। परन्तु मीन कमठादि अवतार मे बहुत लीला नहीं होती। बहुत सी लीलाओ का समावेश मनुष्य अवतार मे ही सम्भव है। सरकार की जितनी चेष्टाएँ होती हैं सब भक्तों के लिए होती हैं। अपना कोई प्रयोजन नहीं रहता। क्योंकि रामजी पूर्णकाम हैं।

तब तब अवध पुरी मैं जाऊँ। बाल चरित बिलोकि हरषाऊँ ॥
जनम महोत्सव देखौं जाई। बर्ष पाँच तहँ रहउ लुभाई ॥२॥

अर्थ तब तब मैं अवधपुरी जाता हूँ और बालचरित्र देखकर हर्षित होता हूँ। वहाँ जाकर जन्म महोत्सव देखता हूँ और पाँच वर्ष तक वहीं लुभाया हुआ रह जाता हूँ।

व्याख्या नरलीला तो सरकार की वामन परशुरामादि अवतारो मे भी होती है पर मैं नही जाता। मैं तो तब जाता हूँ जब अवधपुरी मे अवतार होता है। अर्थात् श्रीरामावतार का बालचरित्र देखने जाता हूँ। उस चरित्र को देखकर मुझे बड़ा हर्ष होता है। अन्य अवतारो के बालचरित्र मे उतना आनन्द कहाँ। चक्रवर्ती के राजकुमार मे जितना बालचरित्र का अवकाश है उतना अन्य बालको के चरित्र मे नही होता।

जन्म महोत्सव के समय ही मैं पहुँच जाता हूँ। यथा कागभुसुंडि संग हम दोऊ। मनुज रूप जानै नहि कोऊ। परमानंद प्रेम सुख फूले। बीथिन्ह फिरहिं मगन मन भूले। भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैं शङ्करजी के चले आने पर भी पाँच वर्ष वहाँ ठहर जाता हूँ। मैं ऐसा लुब्ध हो जाता हूँ कि वे चरण मुझसे छूटते ही नही।

श्रीरामावतार कल्प में एक ही बार होता है। उसे देखने भुसुण्डिजी बराबर जाया करते है। जैसे लोग हर साल रामलीला देखने जाया करते हैं।

इष्ट देव मम बालक रामा। सोभा बपुष कोटिसत कामा ॥
निज प्रभु बदन निहारि निहारी। लोचन सुफल करौं उरगारी ॥३॥
लघुबायस बपु धरि हरि संगा। देखौं बाल चरित बहुरंगा ॥४॥

अर्थ मेरे इष्टदेव बालमुकुन्द हैं। जिनके शरीर मे सौ करोड कामदेव की शोभा है। हे गरुडजी! मैं अपने प्रभु का वदन देख देखकर अपनी आँखो को सफल किया करता हूँ। छोटे कौए का रूप बनाकर हरि के साथ साथ उनके बहुरंगी चरित्र को देखा करता हूँ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या · भुसुण्डिजी कहते हैं कि बालक राम ही मेरे इष्टदेव हैं। क्योंकि गुरुजी से उन्ही की उपासना मुझे मिली थी। यथा · बालक रूप राम कर ध्याना। कहेउ मोहि मुनि कृपानिधाना। अत पाँच वर्ष तक मैं अपने इष्टमूर्तिका दर्शन करता रहा। बालरूप मे जो शोभा रहती है बडे होने पर वह बात नही रह जाती। अत पांच वर्ष तक ही मैं रहता हूँ। सरकार का सौन्दर्य सौ करोड कामदेव से भी कही बढकर है। पाँच वर्ष तक उसी शोभा को देखता हूँ और नेत्रो को सुफल करता हूँ। मैं भी अपना रूप छोटे काग सा बना लेता हूँ जहाँ जहाँ सरकार जाते हैं वहाँ वहाँ मैं भी पहुँच जाता हूँ और बहुरङ्गा बालचरित्र देखता हूँ। यथा ·

कबहूँ ससि माँगत आरि करैं कबहुँ प्रतिबिम्ब निहारि डरैं।
कबहूँ करताल बजाइ के नाचत मातु सबै मन मोद भरैं॥
कबहूँ रिसिआइ कहैं हठिके पुनि लेत सोई जेहि लागि अरैं।
अवधेस के बालक चारि सदा तुलसी मन मंदिर मे बिहरैं॥

दो० लरिकाई जहँ जहँ फिरहिं, तहँ तहँ संग उडाउँ।
जूठन परे अजिर महुँ, सो उठाइ कर खाउँ॥७५ क.
एक बार अति सै सब, चरित किये रघुबीर।
सुमिरत प्रभु लीला सोइ, पुलकित भयउ सरीर॥७५॥

अर्थ बचपन में जहाँ जहाँ फिरते हैं वहाँ वहाँ मैं भी साथ साथ उडता जाता हूँ। आँगन मे जो जूठा गिरता है उसे उठाकर खा जाता हूँ। एक बार रघुबीर ने सभी चरित्र अत्यन्त अधिकता से किया। अथवा शिशु चरित्र अति अधिकता से किया। प्रभु की वह लीला स्मरण करके भुसुण्डिजी का शरीर पुलकित हो उठा।

व्याख्या · बचपन मे स्थिरता कहाँ ? बच्चे फिरा ही करते हैं। नीचे वे घूमते फिरते थे ऊपर ऊपर मैं उडता था। जिसमे मुख का सामना बना रहे। यथा . निज प्रभु बदन निहारि निहारी। लोचन सुफल करौं उरगारी। घूम घूमकर खाना लडकपन मे ही होता है। अत आँगन मे जूठन गिरता था उसी को मै चुगकर खाता था। यज्ञोच्छिष्ट ग्रहण की बडी महिमा है और यह तो साक्षात् यज्ञपुरुष का उच्छिष्ट था।

अति सैसव पाठ मानने से यह अर्थ करना पडेगा कि बचपन की लीला मे अत्यन्त अधिकता हुई और अति सय सब पाठ मानने से यह अर्थ करना होगा कि सभी लीला मे अतिशयता हुई। श्रीवल्लभसम्प्रदाय भी एक रामावतार को पूर्णावतार मानता है। श्रीगोस्वामीजी भी एक रामावतार को ब्रह्म का अवतार मानते हैं। अत उसी अवतार मे लीला की अतिशयता कही जा सकती है। उसी का वर्णन यहाँ भुसुण्डिजी कर रहे हैं। वह लीला ऐसी हुई कि उसके स्मरण से भुसुण्डिजी को पुलक हो गया।

कहै भुसुण्डि सुनहु खगनायक। रामचरित सेवक सुखदायक॥
नृप मंदिर सुन्दर सब भाँती। खचित कनक मनि नाना जाती॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ : भुसुण्डिजी कहने लगे कि हे पक्षिराट् ! सुनो। रामजी का चरित सेवक को सुख देनेवाला है। राजा का घर सब प्रकार से सुन्दर है। सोने के भवन बने हुए हैं। उनमें अनेक जाति की मणियाँ लगी हुई हैं।

व्याख्या : प्रभु की लीला का स्मरण करते ही भुसुण्डिजी आनन्द में मग्न हो गये। तत्पश्चात् गरुड़जी को सम्बोधन करके कहने लगे कि रामजी का चरित्र सेवक के सुख देने के लिए है। जो जो चरित्र करते हैं सो सब सेवक के सुख के लिए करते हैं। यथा :

राज मराल बिराजत बिहरत जे हर हृदय तड़ाग।
ते नृप अजिर जानु कर धावत धरन चटक चल काग॥
सिद्ध सिहात सराहत मुनिगन कहैं सुर किन्नर नाग।
ह्वै बरु बिहँग बिलोकिय बालक बसि पुर उपबन बाग॥
परिजन सहित राय रानिन्ह कियो मज्जन प्रेम प्रयाग।
तुलसी फल ताके चारो मनि मरकत पंकज राग॥ गीता०

अयोध्या में सभी मन्दिर सुन्दर हैं परन्तु महाराज का भवन सब भाँति सुन्दर है। सोने में अनेक प्रकार के मणि जड़े हुए हैं। वैकुण्ठ की भाँति है। मानो उसे ब्रह्मदेव ने लक्ष्मीजी के विलास के लिए सँवार कर बनाया है। यथा : हाटक मनि रत्न खचित रचित इन्द्र मंदिराभ इंदिरा निवास सदन विधि रच्यो सँवारी।

बरनि न जाइ रुचिर अंगनाई। जहँ खेलहिं नित चारिउ भाई॥
बाल बिनोद करत रघुराई। बिचरत अजिर जननि सुखदाई॥२॥

अर्थ : सुन्दर आँगन का वर्णन नहीं किया जा सकता जहाँ नित्य चारों भाई खेलते थे। बाल क्रीड़ा करते हुए रामजी आँगन में विचरते थे। जिससे माताओं को सुख होता था।

व्याख्या : कवि कहते हैं कि भवन का वर्णन किया। पर आँगन का वर्णन करते नहीं बनता। यह चारो भाइयों के खेलने के लिए सजाया गया है। चारो भाई तीनों महारानियों के महलों से आकर नित्य यही खेलते है। सरकार का बाल विनोद माताओं के सुख के लिए है। सखी कहती हैं :

नेकु बिलोकु री रघुबरनि।
चारि फल त्रिपुरारि तोको दियो कर नृपघरनि॥
बाल भूषन बसन तन सुंदर रुचिर रज भरनि।
परसपर खेलनि अजिर उठि चलनि गिरि गिरिपरनि॥
झुकनि झाँकनि छाँह सो किलकनि नटनि हठि लरनि।
तोतरी बोलनि बिलोकनि मोहनी मन हरनि॥
सखि बचन सुनि कौसिला लखि सुढर पासे ढरनि।
लेति भरि भरि अंक सैंतति पैंत जनु दुहु करनि॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चरित निरखत बिबुध तुलसी ओट दै जल धरनि।
चहत सुर सुरपति भयो सुरपति भयो चहै तरनि॥

मरकत मृदुल कलेवर स्यामा। अंग अंग प्रति छबि बहु कामा॥
नव राजीव अरुन मृदु चरना। पदज रुचिर नख ससि दुति हरना॥३॥

अर्थ : नीलमणि की भाँति श्यामल शरीर कोमल था। अङ्ग अङ्ग में अनेक कामदेवों की छवि थी। नये कमल से लाल और कोमल चरण थे। उँगलियाँ सुन्दर थी और नख चन्द्र की द्युति को हरण करते थे।

व्याख्या : शरीर की उपमा नीलमणि से देते हैं परन्तु वह मृदुल नहीं है। शरीर तो मृदुल भी है। पहिले कहा था : सोभा वपुष कोटि सत कामा। इसलिए एक एक अङ्ग पर अनेक काम की छवि बतला रहे हैं। यहाँ नखशिख वर्णन है। मनु शतरूपा के प्रसंग में कह आये हैं : नील सरोरुह नीलमनि नील नीर धर स्याम। यहाँ केवल नीलमणि से उपमा दिया। सरोरुह और नीरधर से उपमा बालकाण्ड में दे आये हैं। यथा : काम कोटि छबि धाम सरीरा। नीलकंज बारिद गंभीरा।

चरणों की उपमा कमल से दी। परन्तु उसमें इतनी मृदुता और अरुणिमा कहाँ ? जिनकी हाथों से सेवा करते स्वयं जनकनन्दनी के कर कमल कड़े मालूम होते थे। यथा : गुर्वर्थे त्यक्तराज्यो व्यचरदनुवनं पद पद्भ्यां प्रियायाः पाणिस्पर्शाक्षमाभ्याम्। इत्यादि तथा : बसी मानहु चरन कमलनि अरुनता तजि तरनि। सुन्दर उँगलियाँ और नखों की शोभा चन्द्र की द्युति को हरण करनेवाली हैं। इसी से भक्तों के हृदय का अन्धकार दूर होगा।

ललित अंक कुलिसादिक चारी। नूपुर चारु मधुर रवकारी॥
चारु पुरट मनि रचित बनाई। कटि किंकिनि कल मुखर सुहाई॥४॥

अर्थ : कुलिश आदिक चारों के सुन्दर चिह्न हैं। मधुर शब्द करनेवाला नूपुर है। सुन्दर सोना और मणि द्वारा रचकर बनायी हुई कमर की करधनी शब्द करनेवाली शोभित थी।

व्याख्या : यहाँ अङ्क से चरणों की रेखा ही समझनी चाहिए। बालकाण्ड में : रेख कुलिस ध्वज अंकुस सोहे। एक कंज छूट गया था। सो यहाँ चार कहकर पूरा करते हैं। उत्तर में चारों को गिनाया है। यथा : ध्वज कुलिस अंकुस कंज जुत बन फिरत कंटक किन लहे। नूपुर की ध्वनि ऐसी मधुर है कि मुनि के मन को मोहती है।

कटिकिंकिणी भी शब्द करती है पर नूपुर इतनी नहीं। 'नूपुर रवकारी है। किंकिणी कल मधुर है। स्वायम्भू मनु के प्रकरण में जो शिख नख वर्णन आया है। उसमें किंकिणी का वर्णन नहीं है। क्योंकि वह बालरूप का वर्णन नहीं था।

दो. रेखा त्रय सुन्दर उदर, नाभी रुचिर गंभीर।
उर आयत भ्राजत बिबिध, बाल बिभूषण चीर॥७६॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ पेट मे सुन्दर तीन रेखाएँ हैं। नाभि सुन्दर और गहरी है और चौडी छाती पर अनेक गहने बच्चो के लायक और कपडे शोभित हैं।

व्याख्या उदर त्रय रेखा का सभी जगह वर्णन है। बालकाण्ड मे, नाभि गभीर जान जिन देखा कहा। मनु के प्रकरण मे, नाभि मनोहर लेत जनु जमुनभवर छबि छीन कहा। बालकाण्ड मे कहा उर मनिमाल पदिक की सोभा। बिप्र चरन देखत मन लोभा। बालरूप होने से उर श्रीवत्स रुचिर बनमाला। पदिकहार भूषन मनि जाला। नही कहा।

अरुन पानि नख करज मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुन्दर॥
कन्ध बाल केहरि दर ग्रीवा। चारु चिबुक आनन छवि सीवा॥१॥

अर्थ लाल हथेली नख और उँगलियाँ सुन्दर थी। विशाल बाहु मे सुन्दर आभूषण थे। सिंह के बच्चे सा कन्धा और शख सी ग्रीवा थी। ठुड्ढा सुन्दर और मुख तो छवि की सीमा था।

व्याख्या लघु लघु लोहित ललित है। पद्पानि अधर इक रग। सरकार की हथेली तलवा और ओठ ये तीनो एक रग लाल है। छोटी छोटी गाडियाँ अँगुरियाँ छबीली छोटी नख जोति मोती मानो कमल दलनि पर। छोटे छोटे पैरो मे छोटी छोटी उँगलियाँ हैं। जिनमे नख की ऐसी ज्योति है जैसे कमल के दलो पर मोती बिठाये गये हो। बाहु विशाल मे ही सुन्दर विभूषण की शोभा होती है।

वीरो के कन्धे सिंह से होते हैं। सो सरकार के कन्धे बचपन मे ही सिंह के बच्चे के कन्धो से हैं। ग्रीवा की उपमा शख से दी जाती है। ठुड्ढी की कोई उपमा ही नही है। मुख का सौन्दर्य ऐसा है मानो यह सुन्दरता की सीमा है। ऐसी या इससे अधिक शोभा हो ही नही सकती।

कलबल बचन अधर अरुनारे। दुइ दुइ दसन बिसद बरवारे॥
ललित कपोल मनोहर नासा। सकल सुखद ससि कर सम हासा॥२॥

अर्थ अस्पष्ट वचन और लाल ओठ थे। छोटे छोटे उज्ज्वल दो दो दाँत भी आगये थे। सुन्दर कपोल और मनहरण करनेवाली नासिका और सबका सुख देनेवाली चन्द्र के किरण सी हँसी थी।

व्याख्या बाल बोल बिनु अर्थ के सुनि देत पदारथ चारि। जनु इन बचननि ते भये सुरतरु तापस त्रिपुरारि। जब बचपन मे दो छोटे छोटे दाँत निकल आते है तो उस समय मुखकी अद्भुत शोभा हो जाती है। ऐसा दर्पण सा कपोल है कि उसमे कुण्डल की झलक प्रकट हो पडती है। यथा तन मृदु मजुल मेचकताई। झलकति बाल बिभूषन झाई। हृदय अनुग्रह इंदु प्रकासा। सूचत किरन मनोहर हासा।

नील कज लोचन भवमोचन। भ्राजत भाल तिलक गोरोचन॥
बिकट भ्रुकुटि सम स्रवन सुहाये। कुचित कच मेचक छवि छाये॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ : नील कमल से नेत्र ससार के हरण करनेवाले थे। माथे मे गोरोचन का तिलक था। टेढी भृकुटि थी। समान कान सुन्दर थे और काले घुँघुराले बालो की छवि छायी हुई थी।

व्याख्या : सरकार के दृष्टिपात से ससार का शोक जाता रहता है। यथा : मामवलोकय पकजलोचन। कृपा बिलोकनि सोच बिमोचन। इसलिए यहाँ लोचन को भवमोचन कह रहे हैं। गोरोचन का तिलक भाल मे बडा शोभायमान हो रहा है। टेढी भृकुटी की ही शोभा है। उसी की उपमा काम के धनुष से दी जाती है और सीप के समान कान तुल्य आकार के थे और सरकार के घुँघराले बाल छटे हुए ऐसी शोभा दे रहे हैं मानो छवि छायी हुई है।

पीत झीनि झिंगुली तन सोही। किलकनि चितवनि भावति मोही ॥
रूपरासि नृप अजिर बिहारि। नाचहिं निज प्रतिबिंब निहारि ॥४॥

अर्थ : शरीर पर पीली और बारीक झँगुली शोभा दे रही थी। उनका किलकना और देखना मुझे सोहाता था। राजा के आँगन मे विहार करनेवाले रूपराशि अपना प्रतिबिम्ब देखकर नाचते थे।

व्याख्या : सरकार की श्यामता नीलमणि की सी है। उस पर पीला कुरता जो बच्चे पहनते हैं जिसे झँगुली कहते हैं उसे पहने हुए हैं। वह झँगुली महीन कपडे की है। अतः उसमे से नीलिमा झलक रही है। बच्चो की आनन्द भरी वाणी और आनन्दमय चितवन मुझे बहुत ही प्यारी लगती थी।

स्वय रूप की राशि है। राजा के आँगन मे खेल रहे हैं। राजा का आँगन कहने का भाव यह कि मणियो से जडा हुआ है। जिधर देखते हैं उनका प्रतिबिम्ब दिखायी पडता है। सो प्रतिबिम्ब इतना सुन्दर है कि उसे देखकर नाचने हैं अथवा दूसरा साथी आया जानकर हर्ष से नाच रहे हैं।

मोहि सन करहिं बिबिध बिधि क्रीडा। बरनत मोहि होति अति ब्रीड़ा ॥
किलकत मोहि धरन जब धावहिं। चलौं भागि तब पूप देखावहिं ॥५॥

अर्थ : मुझसे अनेक प्रकार का खेल करते थे। उसके वर्णन मे मुझे अत्यन्त लज्जा मालूम होती है। किलकते हुए मुझे पकडने को वे जब दौडते थे तब मैं भाग चलता था तो मुझे पूआ दिखाते थे।

व्याख्या : बच्चे जैसा खेल चिडियो को देखकर करते हैं ठीक उसी भाँति मुझे देखकर करते थे। कभी पकडने दौडते हैं। कभी डर जाते हैं। कभी प्रसन्न होते हैं इत्यादि। उसके वर्णन मे मुझे अत्यन्त लज्जा होती है कि सरकार मे ऐसे ऐसे भावो को कैसे वर्णन करूँ। पर उन्हे अभिनय मे सङ्कोच नही होता था।

बच्चों की भाँति किलकारी मारते हुए मुझे पकडने दौड़ते थे। तो मैं भी रसपोषण के लिए भाग चलता था। अथवा यदि मुझे पकड लेते तो शान्ति करनी पडती और फिर मेरे साथ रहने मे बडी बाधा उपस्थित होती। इसलिए मैं भाग

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



चलता था तो मुझे निकट बुलाने के लिए पूआ दिखलाते थे कि इसको लालच से यह चला आवेगा।

दो. आवत निकट हँसहि प्रभु, भाजत रुदन कराहिं।
जाउँ समीप गहन पद, फिरि फिरि चितै पराहिं ॥७७ क.

अर्थ : सन्निकट आने पर हँसते थे। मेरे भागने पर रोते थे। जब मैं चरण ग्रहण के लिए निकट आ जाता था तो लौट लौटकर देखते हुए भागे जाते थे।

व्याख्या : सरकारी इच्छा समझकर मैं निकट चला आता था। तो बड़े प्रसन्न होते थे। हँसने लगते थे। फिर पकड़ न लें इसलिए भागने से रोने लगते थे। सरकार के रोने पर मैं चरण स्पर्श के लिए जब अधिक निकट आ जाता था तब उठकर भागते थे और फिर फिर कर देखते भी जाते थे कि मैं पीछा तो नहीं कर रहा हूँ।

दो. प्राकृत सिसु इव लीला, देखि भयउ मोहि मोह।
कौन चरित्र करत प्रभु, चिदानंद संदोह ॥७७॥

अर्थ : साधारण बच्चों की सी लीला देखकर मुझे मोह हो गया कि सच्चिदानन्दघन भगवान् यह कौन सा चरित्र कर रहे हैं।

व्याख्या : जिस भाँति सामान्य बच्चे लीला करते हैं ठीक वैसी ही लीला सरकार कर रहे थे। आठ महीना साथ रहते बीता। एक लीला भी ऐश्वर्य सूचक नहीं किया। और बार तो एकाध लीला ऐश्वर्य सूचक भी हो जाती थी। इस बार कुछ नहीं। सरकार के बाल भाव के माधुर्य से मोह हो गया। सरकार के वास्तव रूप को भुसुण्डिजी जानते थे कि चिदानन्द सन्दोह हैं। अतः एकदम मनुष्य के बच्चों का सा अभिनय मे मोह हुआ कि क्या मनुष्य ही तो नहीं है। स्वयं चिदानन्द सन्दोह के योग्य क्या ऐसी लीला है? भुसुण्डिजी का भाव यह कि रणाङ्गन मे लीला देखकर तुम्हे मोह हुआ और नृपाङ्गन मे लीला देखकर मुझे मोह हुआ।

एतना मन आनत खगराया। रघुपति प्रेरित ब्यापी माया ॥
सो माया न दुखद मोहि काही। आन जीव इव संसृति नाही ॥१॥

अर्थ : हे पक्षिराट्! इतनी बात मन मे आते ही रघुपति की प्रेरणा से माया व्याप गयी। वह माया मुझे किसी भाँति दुःखदायी नहीं हुई। क्योंकि अन्य जीवों की भाँति संसार सम्बन्धी नहीं थी।

व्याख्या : सरकार यह कैसा चरित्र कर रहे हैं। चिदानन्द सन्दोह लड़कपन कर रहे हैं। ऐसा ही मोह गरुड़ को हुआ कि : चिदानन्द सन्दोह राम विकल कारण कवन : भुसुण्डिजी और गरुडजी दोनों सरकार के यथार्थ रूप के जाननेवाले हैं कि सरकार चिदानन्द सन्दोह हैं। यहाँ विकार की सम्भावना ही नहीं है। यह तो इनका चरित्र है। पर क्या यह चरित्र इनके योग्य है? यदि अभिनय भी मान लें तो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इस दर्जे तक अभिनय नहीं होता। बस इतनी बात के मन में आने की देर थी सरकार की प्रेरणा हुई और भुसुण्डिजी को माया व्याप गयी।

भुसुण्डिजी कहते हैं कि वह माया दुःख देनेवाली अविद्या माया नहीं थी। क्योंकि : रामचरित सेवक सुखदायक। रामजी की लीला तो सेवक के सुख के लिए होती है। अतः वह माया भी सुख देनेवाली अपरा विद्या थी। जीवों को जैसी सांसारिक माया व्यापती है वैसी नही थी। यथा : हरि माया बस जगत भ्रमाहि। तिनहि कहत कछु अघटित नाही।

नाथ इहाँ कछु कारन आना। सुनहु सो सावधान हरिजाना ॥
ग्यान अखंड एक सीतावर। माया बस्य जीव सचराचर ॥२॥

अर्थ : हे नाथ ! यहाँ कुछ और ही कारण है। उसे हे गरुड़जी सावधान होकर सुनिये। अखण्ड ज्ञान रूप तो अकेले सीतापति हैं और चराचर जीव सब माया के वश में हैं।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि जिस अशुद्धसत्त्वा माया के वश पड़े जीव दुःख पाते हैं उस माया की प्रेरणा सरकार ने नही की। शुद्धसत्त्वा माया की प्रेरणा की। वह दुःखद नही हुई। फिर माया की प्रेरणा हुई ही क्यों ? जिसने आप को मोह में डाल दिया। इस प्रश्न को मन में रखकर उत्तर देते हैं और उसे सावधान होकर सुनने के लिए गरुड़जी से कहते हैं।

एक अखण्ड ज्ञान तो सीतापति रामचन्द्रजी को है। वही मायापति हैं। वही सर्वज्ञ ईश्वर हैं। और बाकी जितने चराचर जीव हैं। ये अशुद्धसत्त्वा माया के वश में है। इनके ऊपर माया का आधिपत्य है : जो ग्यानिन्ह कर चित अपहरई। बरिआई बिमोह बस करई।

जौं सब के रह ग्यान एकरस। ईस्वर जीवहि भेद कहहु कस ॥
माया बस्य जीव अभिमानी। ईस बस्य माया गुनखानी ॥३॥

अर्थ : यदि सबको एकरस ज्ञान बना रह जाय तो फिर ईश्वर और जीव में भेद ही क्या रह जायगा। जीव में अभिमान होता है वह माया के वश में रहता है। और गुणखानि माया ईश्वर के वश में रहती है।

व्याख्या : ईश्वर और जीव दोनों चेतन हैं। दोनों में भेद इतना ही है कि ईश्वर मे सदा ज्ञान एक रस बना रहता है। जीव का ज्ञान सदा एक रस नही रहता। माया द्वारा विक्षेप हुआ करता है।

क्योंकि जीव में अभिमान मौजूद है और वह संसार का मूल है। अतः उसके साथ संसार बँधा हुआ है वह माया के वश में रहता है। ईश्वर में अभिमान नही है अतः वह संसारी नही है। वह माया का प्रभु है। माया उनके वश में है। अतः उनका ज्ञान एक रस है। माया गुणखानी : कहने का भाव यह है कि माया

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



त्रिगुणात्मिका है। अतः जो माया के वश्य में है उनके ऊपर सत्व रजस् और तमस् सदा काम किया करते है। अतः उनके ज्ञान में उत्कर्ष और अपकर्ष हुआ करता है।

परवस जीव स्ववस भगवंता। जीव अनेक एक श्रीकंता॥
मुधाभेद जद्यपि कृत माया। बिनु हरि जाइ न कोटि उपाया॥४॥

अर्थ : जीव परवश है भगवान् स्वतन्त्र हैं। जीव अनेक हैं श्रीकान्त एक हैं। यद्यपि माया ने झूठा ही भेद कर रखा है। पर बिना भगवान् के वह करोड़ उपायों, से भी नहीं जा सकता।

व्याख्या : अतः जीव परतन्त्र है। जीव माया के वश है और माया ईश्वर के वश है। अतः जीव महा परतन्त्र है। एक तो यही भेद ईश्वर और जीव में है। दूसरा यह भी भेद है कि जीव असख्य हैं पर ईश्वर एक ही है। श्रीकन्त शब्द से यहाँ ईश्वर का मायापति होना दिखलाया।

यदि प्रश्न हो कि चेतन चेतन में भेद कैसा ? तो कहते हैं कि वह भेद यद्यपि झूठा है। यथा : जड़ चेतनहि ग्रंथि परिगई। जदपि मृषा छूटत कठिनई। पर छूटना कठिन है उनके एकमात्र उपाय भगवान् हैं। उन्ही के कृपा से वह छूट सकती है।

दो. रामचन्द्र के भजन बिनु, जो चह पद निरवान।
ग्यानवंत अपि सो नर, पसु बिनु पूंछ बिषान॥७८ क.
राकापति षोडश उअहि, तारागन समुदाइ।
सकल गिरिन्ह दव लाइये, बिनु रबि रात न जाइ॥७८॥

अर्थ : रामचन्द्र के भजन बिना जो निर्वाण पद चाहता है वह ज्ञानवान् होने पर भी बिना सीग पूँछ का पशु है। सोलह कलापूर्ण चन्द्र उदय हो और सम्पूर्ण तारागण भी उदय हों और सब पर्वतो मे भी आग लगा दी जाय परन्तु बिना सूर्य के रात नही जा सकती।

व्याख्या : वाण शरीर को कहते हैं। निर्वाण पद अर्थात् वह पद जिसमें शरीर से सम्बन्ध न रहे अर्थात् कैवल्य पद। यथा : अति दुर्लभ कैवल्य परम पद। संत पुरान निगम आगम वद। उस पद को जो चाहे और रामचन्द्र का भजन करे। अर्थात् जो उसका यथार्थ साधन है उसकी उपेक्षा करे और साध्य की इच्छा करे ऐसी इच्छा करनेवाले पशु हैं उसे बुद्धि नही है। इतनी बात की कसर है कि पशु को सीग पूँछ होती है उसे नही है। भावार्थ यह कि उसका शरीरमात्र मनुष्य का है। पर वह पशु के समान ही अविवेकी है।

क्योकि मोहरात्रि के जाने पर ही निर्वाणपद की प्राप्ति सम्भव है। पर वह बिना सूर्य की सहायता के ही रात्रि का नाश चाहता है। भले हो वह ज्ञानी हो और, ज्ञान दीप जलाने मे समर्थ भी हो फिर भी दीप के प्रकाश से रात्रि नही जाती। राम सच्चिदानन्द दिनेश की आवश्यकता पड़ती है। इसलिए कि कहते है दीप की

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



क्या गिनती है। सोलहो चन्द्रमा उदय हो और तारे भी सब रहे। उनकी सहायता के लिए सम्पूर्ण पर्वतो मे भी आग जलायी जाय तो क्या रात्रि नष्ट होगी? क्योकि रात्रि को नष्ट करनेवाले एकमात्र सूर्य हैं और दूसरा कोई नही है। अत मोहनिशा राम सच्चिदानन्द दिनेश के उदय से ही नष्ट हो सकती है।

ऐसहि हरि बिनु भजन खगेसा। मिटइ न जीवन केर कलेसा॥
हरि सेवकहिं न ब्याप अबिद्या। प्रभु प्रेरित ब्यापै तेहि बिद्या॥१॥

अर्थ . ऐसे ही हरि हैं। हे खगेश! बिना उनके भजन के जीवो का क्लेश नही मिटता। हरि सेवक को अविद्या नही व्यापती। हरि की प्रेरणा से उसे विद्या व्यापती है।

व्याख्या जैसे निशा के लिए सूर्य हैं। वैसे ही मोहनिशा के लिए हरि हैं। बिना हरि के मोहनिशा जा नही सकती। जब रामप्रतापरूपी सूर्य हृदय मे प्रकाश करता है तब अविद्यानिशा नष्ट होती है। यथा यह प्रताप रबि जाके उर जब करै प्रकास। पिछले बाढहिं प्रथम जे कहे ते पावहिं नास।

भजन करने से ही रामप्रतापरूपी सूर्य भक्त के हृदय मे प्रकाश करता है। इसलिए हरिसेवक को अविद्या नही व्यापती। पर उसका भी ज्ञान एकरस नही रहता। कभी कभी हरि की प्रेरणा से उसे विद्या व्यापती है। यथा जो मन प्रीति सो रामनामहिं रातो। तुलसी राम प्रसाद सो तिहुँ ताप न तातो।

तातें नास न होइ दासकर। भेद भगति बाढै बिहग बर॥
भ्रम ते चकित राम मोहि देखा। बिहँसे सो सुनु चरित बिसेखा॥२॥

अर्थ इसलिए दास का नाश नही होता। हे पक्षिराट्! उसकी भेद भक्ति बढ जाती है। जब रामजी ने मुझे भ्रम से चकित देखा तो हँसे। अब उस विशेष चरित को सुनो।

व्याख्या जिसे अविद्या व्यापती है उसका नाश हो जाता है। यथा सङ्गात् सञ्जायते काम कामात् क्रोधोऽभिजायते। क्रोधाद् भवति सम्मोह सम्मोहात् स्मृतिविभ्रम। स्मृतिभ्रंशाद् बुद्धिनाशो बुद्धिनाशात् प्रणश्यति। भक्त का नाश नही होता। विद्या के व्यापने से उसकी भेद भक्ति बढती है। विद्या के प्रभाव से उसे दिव्य दृष्टि हो जाती है। वह सरकार के ऐश्वर्य का दर्शन करता है। सरकार के उत्कर्ष ज्ञान से भेद भक्ति बढती है। यही भक्तो को इष्ट है। यथा सगुनोपासक मोक्ष न लही। तिन्ह कहुँ राम भगति निज देही।

भुसुण्डिजी कहते हैं कि सरकार का चरित्र देखकर मुझे मोह हुआ। मन मे सोचने लगा कौन चरित्र करत प्रभु चिदानन्द सन्दोह। रामजी ने भ्रम से चकित मुझे देखा। मेरी अविद्या के हटाने के लिए विद्या माया की प्रेरणा की। अत हँसे। माया हास बाहु दिगपाला। लोग समझते हैं कि काग को देखकर प्रसन्न हो रहे हैं। उनका हँसना ही चरित्र विशेष है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तेहि कौतुक कर मरम न काहू। जाना अनुज न मातु पिताहू ॥
जानु पानि धाए मोहि धरना। स्यामल गात अरुन कर चरना ॥३॥

अर्थ : उस कौतुक का मर्म किसी ने न जाना। भाई तथा माता पिता किसी को भी पता न चला। घुटने और हाथ के बल से मुझे पकड़ने दौड़े। साँवला शरीर और हाथ पाँव लाल थे।

व्याख्या : अब वह चरित्र कहते हैं। सरकार का वह कौतुक था एक खेल था। उसका मर्म किसी ने न पाया। भाई लोग साथ खेलते थे। माता पिता सुरक्षा के लिए सदा उन पर दृष्टि रखते थे। यथा : जीवन तरु जिमि जोगवइ राऊ। पलक नयन फनि मनि जेहि भाँती। जोगवहिं जननि सकल दिन राती। उन सब लोगो ने कौतुक तो देखा कि काक को पकड़ने के लिए दौड़े हैं। परन्तु उसका मर्म क्या था यह किसी ने न पाया। सब ने ही उसे बाललीला समझा।

अभी सरकार आठ महीने के हैं। खड़े नही हो सकते हाथ और घुटनों के बल से चलते हैं। उसी भाँति भुसुण्डिजी को पकड़ने दौड़े। भुसुण्डिजी उस समय की छवि कहते हैं। सरकार दौड़े चले आते हैं। इन्हे भी भागना है ऐसे अवसर मे जैसा रूप दृष्टिगोचर हुआ उसे कहते है : स्याम सरीर सुभाय सुहावन। सोभा कोटि मनोज लजावन। सम्पूर्ण शरीर स्याम है। केवल करतल पादतल लाल है। जिनसे इस समय काम ले रहे हैं।

तब मैं भागि चलेउँ उरगारी। राम गहन कहुँ भुजा पसारी ॥
जिमि जिमि दूरि उड़ाउँ अकासा। तहँ भुज हरि देखौ निज पासा ॥४॥

अर्थ : हे गरुड़जी ! तब मै भाग चला और रामजी ने पकड़ने के लिए हाथ फैलाया। जितना मैं आकाश मे उड़ता चला गया वहाँ वहाँ मैंने भुजा को और रामजी को अपने पास पाया।

व्याख्या : तब मै भाग चला। पक्षी का भागना आकाश में उड़ना ही है। भाव यह कि जिस समय भुसुण्डिजी भ्रम से चकित थे उस समय आँगन मे ही बैठे थे। इसलिए सरकार पकड़ने दौड़े। जिस भाँति बच्चे चिड़िया को देखकर उसे पकड़ने के लिए दौड़ पड़ते हैं। जिस भाँति लड़को को दौड़ते देखकर पक्षी भाग जाते हैं उसी भाँति काग भुसुण्डिजी भी भाग चले और ऊपर जाते हुए पक्षी को पकड़ने के लिए जिस भाँति बच्चे हाथ फैलाते हैं वैसा ही सरकार ने भी फैलाया। यहाँ तक तो स्वाभाविक लीला हुई इसे सभी ने देखा।

अब जो अलौकिकता हुई उसे कहते हैं कि उड़ने पर भी मैं दूर नही हो पाता था। रामजी और उनकी भुजा पास ही दिखाई पड़ती थी। मैं आकाश में उड़ता हो चला गया। पर भुजा को और रामजी को अपने पास ही पाता था।

दो. ब्रह्मलोक लगि गयउँ मैं, चितएउँ पाछु उड़ात।
जुग अंगुल कर बीच सब, राम भुजहि मोहि तात ॥७९ क.

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सप्तावरन भेद करि, जहाँ लगें गति मोरि।
गयउँ तहाँ प्रभु भुज निरखि, व्याकुल भयउँ वहोरि ॥७९॥

अर्थ · मैं ब्रह्मलोक तक गया और उडते हुए लौटकर पीछे देखा तो सब मेरे और रामजी के भुजा के बीच के दो अँगुल के फासला मे ही था। मैंने तब सातो आवरण पार करके जहाँ तक मेरी गति थी गया। वहाँ भी सरकार की भुजा देखकर व्याकुल हो उठा।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैं ऊपर उडता ही चला गया। जब ब्रह्मलोक तक पहुँचा तब पलटकर देखा तो रामजी की भुजा मे और मुझ मे दो अँगुल का बीच फासला है और अयोध्या से लेकर ब्रह्मलोक तक का दृश्य उसी दो अगुल के बीच मे हैं। तब तो मैं ब्रह्मलोक से भी ऊपर चला : अव्याहत गति सभु प्रसादा। सात आवरण जो पृथिवी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अहन्तत्त्व, महत्तत्त्व के हैं उन्हे भी भेद करके और ऊपर लोकालोक तक गया। उसके आगे गति नही है। वहाँ भी सरकारी भुजा को पास पाकर तत्पश्चात् व्याकुल हो गया। अब कहाँ जायँ ? सर्वत. पाणिपाद से भागकर कोई जायगा कहाँ ? वे जब जिसे पकडना चाहते हैं तब उनसे भागकर कोई बच भी नही सकता।

मूदेंउ नयन त्रसित जब भयेऊँ। पुनि चितवत कोसलपुर गयेऊँ ॥
मोहि विलोकि राम मुसुकाही। बिहँसत तुरत गयेउँ मुख माही ॥१॥

अर्थ : जब मैं डर गया तो मैंने आँखें मीच ली। फिर जो देखा तो कोसलपुर मे पहुँच गया। मुझे देखकर रामजी मुसकुरा रहे हैं। उनके हँसते ही मैं उनके मुख में चला गया।

व्याख्या : सरकार की माया देखकर सभी भयभीत हो जाते हैं। अर्जुन भयभीत हुए : भयेन च प्रव्यथित मनो मे। सती भयभीत हो गयी। हृदय कप तन सुधि कछु नाही। नयन मूँद बैठी मँन माही। कौसल्या जी भयभीत हो गयी। यथा : तन पुलकित मुख वचन न आवा। नयन मूँदि चरनन्हि सिरु नावा। इसी भाँति भुसुण्डिजी भी जब डर गये तो आँखें मूँद ली। माया के वेग के देखने मे अपने को असमर्थ पाया। अब और आश्चर्य देखिये। आँख मूँदा सप्तावरण के बाहर और आँख खुली तब अपने को अयोध्या में पाया। इसका छोटा सा दृष्टान्त किष्किन्धाकाण्ड मे है : नयन मूँदि पुनि देखहिं वीरा। ठाढे सकल सिंधु के तीरा।

पहिली हँसी मे भागने का उत्तर दिया कि बाहर भी सब मैं ही हूँ। कहाँ भागकर जाओगे। अब दूसरी हँसी मे यह दिखला रहे हैं कि मेरे भीतर बाहर मे कोई भेद नही है : यदन्तर तद्बाह्य यद्वाह्य तदनतरम्। शरीर धारण करने पर भी मेरे व्यापकपने मे कुछ भी भेद नही आया है। मैं इस समय अल्प शरीर धारण किये हूँ फिर भी सब कुछ मेरे भीतर है। आकर स्वय देख लो। अत मुँह के भीतर प्रवेश करा दिया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उदर माँझ सुनु अडजराया। देखेउँ बहु ब्रह्माड निकाया ॥
अति बिचित्र तहँ लोक अनेका। रचना अधिक एक ते एका ॥२॥

अर्थ हे गरुडजी ! पेट के भीतर मैंने बहुत से ब्रह्माण्डो का समूह देखा। वहाँ अत्यन्त विचित्र अनेक लोक थे और एक की रचना दूसरे से अधिक थी।

व्याख्या कौसल्याजी को बाहर दिखलाया। भुसुण्डिजी को भीतर बहुत ब्रह्माण्ड दिखलाया। सतीजी को जहाँ का तहाँ सब कुछ दिखलाया। अब भीतर का हाल कहते है कि ब्रह्माण्डो के गुच्छे असंख्य हैं। यथा ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्माण्ड अनेक निकाया। जीव चराचर जतु समाना। भीतर बसहिं न जानहि आना। जिस भाँति इस ब्रह्माण्ड मे अनेक लोक है और उन लोको की रचना एक दूसरे से भिन्न है। उसी भाँति उन सब ब्रह्माण्डो मे अनेक लोक हैं। पर एक ब्रह्माण्ड की रचना दूसरे से मेल नही खाती। नियम सर्वत्र एक से पर रचना कही भी एक सी नहीं।

कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगनित उडगन रबि रजनीसा ॥
अगनित लोकपाल जम काला। अगनित भूधर भूमि बिसाला ॥३॥

अर्थ करोडो ब्रह्मा और शिव थे। असंख्य तारे सूर्य और चन्द्र थे। असंख्य लोकपाल यम और काल थे। असख्य बडे बडे विशाल पहाड और पृथिवी रही।

व्याख्या उन ब्रह्माण्डो मे भी सृष्टि ब्रह्मा द्वारा और सहार शिवजी द्वारा होता है। अत प्रति ब्रह्माण्ड ब्रह्मा और शिवजी भी थे। इसलिए उनकी भी संख्या नही कही जा सकती। इसी भाँति सूर्य और चन्द्रमा तथा तारागण की भी कोई सख्या नहीं थी। उन उन ब्रह्माण्डो मे अनेक लोक थे और उनके लोकपाल यम काल आदि की भी सख्या नही कही जा सकती। जैसे यहाँ पृथिवी है वैसे ही उन ब्रह्माण्डो मे भी बडी बडी पृथिवी और बडे बडे पर्वत थे। इस प्रकरण के अनुकूल वर्णन नारायणोपनिषद् मे है।

ये सब बातें अब विज्ञान से सिद्ध हो रही हैं। पृथिवी के अति सन्निकट चन्द्रग्रह है। दूरवीक्षण यन्त्र से उनमे पहाड तथा नदियाँ दृष्टिगोचर होती। मङ्गल ग्रह के विषय मे वैज्ञानिकों की राय है कि आकर्षण के भेद से वहाँ के निवासी पृथिवी के निवासियो की अपेक्षा बडे दीर्घकाय होगे। इतनी बातें तो दूरवीक्षण यन्त्र से मालूम हुई है। पर यह कथा तो भुसुण्डिजी कह रहे हैं। जो उन ब्रह्माण्डो की यथेष्ट सैर कर चुके हैं।

सागर सरिसर बिपिन अपारा। नाना भाँति सृष्टि बिस्तारा ॥
सुर मुनि सिद्ध नाग नर किन्नर। चारि प्रकार जीव सचराचर ॥४॥

अर्थ समुद्र नदी तालाब और अपार जगल थे। नाना भाँति सृष्टि का

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विस्तार था। देवता मुनि सिद्ध नाना मनुष्य और किन्नरादि चार प्रकार के चराचर जीव।

व्याख्या : उन ब्रह्माण्डों में भी समुद्र नदी तालाब और वन थे और बहुत बड़े बड़े थे। परन्तु सब अनेक भाँति के थे। इस भाँति सृष्टि के विस्तार का कोई ठिकाना न दिखाई पड़ा। वहाँ भी देवता मुनि सिद्ध नर किन्नर तथा स्वेदज उद्भिज जरायुज अण्डज भेद से चार प्रकार के चराचर जीव थे। परन्तु सर्वत्र वैचित्र्य का राज्य था : यही वैचित्र्य ईश्वर की सिद्धि का भारी प्रमाण है। मान भी लिया जाय कि सब कुछ प्रकृति ने बनाया पर इस वैचित्र्य को किसने बनाया ? जड़ प्रकृति इस विचित्रता का निर्माण कैसे कर सकती है ?

दो. जो नहि देखा नहि सुना, जो मनहु न समाइ।
सो सब अद्भुत देखेउं, बरनि कवनि विधि जाइ ॥८० क.
एक एक ब्रह्मांड मंहु, रहौ बरष सत एक।
एहि बिधि देखत फिरौ मैं, अंड कटाह अनेक ॥८०॥

अर्थ : जो न कभी देखा और जो न कभी सुना और जो बातें मन में भी नहीं समाती उन सब अद्भुतों को देखा। वर्णन कैसे किया जा सकता है। एक एक ब्रह्माण्ड में एक एक सौ वर्षों तक रहा। इस भाँति अनेक ब्रह्माण्ड कटाहों को देखता फिरा।

व्याख्या : अपनी जानकारी तो इतनी ही है जितना कि देखा सुना गया है और जो नही देखा सुना गया है उनमे भी ऐसी बातें हैं जो मन के दौड़ के भीतर हैं। पर इन सबसे विलक्षण वस्तुएँ मैंने देखी। अब उसका वर्णन कैसे हो ? वर्णन तो देखी सुनी वस्तुओं को ही लेकर होता है।

ऐसी अद्भुत अद्भुत वस्तुओं को देखकर कौतूहल बढा तो वहाँ ठहर ठहरकर पूरे ब्रह्माण्ड की सैर करने लगे। एक ब्रह्माण्ड के सैर मे उन्हे एक सौ वर्ष लगते थे। इसी भाँति धैर्य के साथ भुसुण्डिजी ब्रह्माण्डो का निरीक्षण करने लगे। इस भाँति अनेक ब्रह्माण्ड देख डाले पर विचित्रता बढती ही गयी। माया के दर्शन का थाह न लगा।

लोक लोक प्रतिभिन्न बिधाता। भिन्न बिस्नु सिव मनु दिसि त्राता ॥
नर गंधर्ब भूत बेताला। किन्नर निसिचर पसु खग ब्याला ॥१॥

अर्थ : प्रत्येक लोक में भिन्न भिन्न ब्रह्मदेव थे। विष्णु भी भिन्न थे एवं शिव मनु और दिक्पाल भी भिन्न थे। इसी भाँति, मनुष्य, गन्धर्व, भूत, वेताल, किन्नर, निशिचर, पशु, पक्षी और सर्प थे।

व्याख्या : यहाँ लोक शब्द से ब्रह्माण्ड का ग्रहण है अथवा ब्रह्मलोक का ग्रहण है। वेद मे वर्णित है कि किसी ब्रह्माण्ड के पाँच मुख के ब्रह्मा हैं। किसी के

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



छ मुख के हैं। इसी भाँति किसी ब्रह्माण्ड के सहस्र मुख के ब्रह्मदेव हैं। सभी ब्रह्माण्डो मे ब्रह्मलोक विष्णुलोक शिवलोकादि हैं। व्यवस्था सर्वत्र की एक सी है। केवल सृष्टि मे वैचित्र्य है। विष्णु शिवादि दूसरे प्रकार के हैं। सभी ब्रह्माण्डो मे मन्वन्तर वर्तते हैं। वहाँ मनु हैं सभी मे दिक्पाल हैं। भेद उनके रूपो मे है फिर भी वे जान पड़ते हैं कि ये विष्णु हैं, ये शिव हैं, ये दिक्पाल हैं, ये मनुष्य हैं, ये भूत हैं, ये पशु हैं, ये पक्षी हैं इत्यादि। जैसे एक ब्रह्माण्ड मे रूपो मे भेद रहते हुए भी देवदत्त यज्ञदत्त आदि सभी मनुष्य हैं वैसे ही अनेक ब्रह्माण्डो की सृष्टि मे भेद होते हुए भी सभी जातियाँ पहिचानी जाती हैं।

देव दनुज गन नाना जाती। सकल जीव तहँ आनहि भाँती ॥
महि सरि सागर सर गिरि नाना। सब प्रपंच तहँ आनै आना ॥२॥

अर्थ : देवता दानव की नाना जातियाँ थी। सब प्रपञ्च ही वहाँ का दूसरे प्रकार का था। पृथिवी नदी समुद्र पर्वत सब नाना प्रकार के थे।

व्याख्या : जैसे यहाँ सब मनुष्य एक से होने पर भी उनमे भिन्नता है वैसे ही एक ब्रह्माण्ड की मनुष्य जाति दूसरे ब्रह्माण्ड के मनुष्य जाति से भिन्न प्रकार हैं। फिर भी वे मनुष्य ही होते हैं और पहचाने जाते हैं। यह बात केवल मनुष्य जाति मे ही हो ऐसी बात नही है। देव दनुजादि सम्पूर्ण जीवो की ही यही दशा है। इतना ही नही पृथिवी नदी समुद्र पर्वत आदि स्थावर सृष्टियो मे भी भेद है। एक ब्रह्माण्ड के पहाड और नदियाँ दूसरे ब्रह्माण्ड के पहाड और नदियो से भिन्न हैं। फिर भी वे वहाँ पहाड और नदी आदि का ही काम देते हैं। विष्णुपुराण कहता है कि ससार मे चार अगुल स्थान भी ऐसा नही है जहाँ सृष्टि न हो।

अण्डकोस प्रति प्रति निज रूपा। देखेउ जिनस अनेक अनूपा ॥
अवधपुरी प्रति भुवन निनारी। सरजू भिन्न भिन्न नर नारी ॥३॥

अर्थ : प्रति ब्रह्माण्ड मे मैंने अपने रूप को अनेक प्रकार का और अनुपम देखा। प्रत्येक भुवन मे अयोध्या भी न्यारी ही प्रकार की सरयू नदी भी भिन्न प्रकार की और नर नारी भी भिन्न प्रकार के थे।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि जिस ब्रह्माण्ड मे मैं जाता था उस ब्रह्माण्ड के काग के जैसा रूप मेरा हो जाता था। इस भाँति मैं भी न जाने कितने प्रकार का बना और वे रूप ऐसे थे जिनसे दूसरे ब्रह्माण्ड के रूप से उपमा नही दी जा सकती। प्रति ब्रह्माण्ड मे अयोध्यापुरी भी अन्य प्रकार की। सरयू नदी भी भिन्न प्रकार की और नर नारी भी अनेक प्रकार के थे। जैसा काल का नियम है कि एक दिन दूसरे दिन जैसा होता हुआ भी ठीक वैसा नही होता। उसी भाँति देश का भी नियम है कि एक ब्रह्माण्ड दूसरे जैसा होता हुआ भी ठीक वैसा नही होता। स्पष्ट बात है कि उन ब्रह्माण्डो का ऐसा प्रभाव है कि जो जीव वहाँ जाते हैं वे भी उसी प्रकार के हो जाते हैं जिस प्रकार के जीव वहाँ बसते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दसरथ कौसिल्या सुनु ताता । विविध रूप भरतादिक भ्राता ॥
प्रति ब्रह्माण्ड राम अवतारा । देखेउँ बाल बिनोद अपारा ॥४॥

अर्थ : हे तात ! सुनो अनेक रूप के दशरथ कौसल्या तथा भरतादिक भाई थे । प्रत्येक ब्रह्माण्ड मे रामजी का अवतार हुआ था और वहाँ वहाँ अपार बाल-विनोद देखा ।

व्याख्या : भाव यह कि जिस अवस्था में इस ब्रह्माण्ड को देखा वही दशा सब ब्रह्माण्डो की थी । सभी ब्रह्माण्डो मे रावण का उपद्रव था । यथा : ब्रह्म सृष्टि जहँ लगि तनु धारी । दसमुख बसवर्ती नर नारी अत सभी ब्रह्माण्ड मे दशरथ कौसल्या के घर मे रामावतार हो गया था । भेद यही था कि दशरथ कौसल्या तथा भरतादिक भ्राताओ का रूप प्रत्येक ब्रह्माण्ड मे भिन्न प्रकार का था । प्रत्येक ब्रह्माण्ड मे उस समय सरकार की बाल्यावस्था थी और बाल विनोद करते थे । सो भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैने अपार बाल विनोद देखे ।

दो. भिन्नु भिन्नु मैं दीख सबु, अति बिचित्र हरि जान ।
अगनित भुवन फिरेउँ प्रभु, राम न देखेउ आन ॥८१ क.
सोइ सिसुपन सोइ सोभा, सोइ कृपाल रघुबीर ।
भुवन भुवन देखत फिरौं, प्रेरित मोह समीर ॥८१॥

अर्थ : हे गरुड़जी ! यह सब अति विचित्र मैंने प्रति भुवन मे देखा । इस भाँति असख्य भुवनो मे मैं घूमता फिरा पर राम दूसरे प्रकार के नहीं दिखाई पड़े । वही बचपन वही शोभा और वहीं कृपालु रामजी थे । मोहरूपी वायु से प्रेरित होकर प्रत्येक भुवन मे यही देखता फिरा ।

व्याख्या : अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड मे सर्वत्र विचित्रता है । वहाँ कोई वस्तु एक सी नही । अयोध्या सरयू और अवधवासियो मे तो विचित्रता थी ही दशरथ कौसल्या तथा भरतादि भ्राता भी सब ब्रह्माण्ड के विचित्र थे । एकरसता केवल सरकार में है । असख्य ब्रह्माण्ड मे भुसुण्डिजी घूमे परन्तु राम दूसरे नही दिखाई पडे । इस एकरसता मे महा विलक्षणता है कि सरकार का स्वरूप सब ब्रह्माण्ड की सृष्टि से मेल खाता है । उसी स्वरूप से वे अगणित स्वरूपवाले दशरथ कौसल्या के पुत्र तथा भरतादि के भाई मालूम होते थे । शिशुपन से वय कहा । शोभा से रूप कहा । कृपाल से स्वभाव कहा । अर्थात् वय रूप और स्वभाव मे कुछ भी भेद नही । भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैं अपने काबू मे नही था । मोह मुझे जहाँ ले जाता था वहाँ मैं जाता था । अत प्रत्येक ब्रह्माण्ड मे मैं यह दृश्य देखता फिरा ।

भ्रमत मोहि ब्रह्मांड अनेका । बीते मनहुँ कल्प सत एका ॥
फिरत फिरत निज आस्रम आयउँ । तहँ पुनि रहि कछु काल गवाँयउँ ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ मुझे अनेक ब्रह्माण्डो मे घूमते घूमते मानो एक सौ कल्प बीत गये। घूमते घूमते अपने आश्रम मे आगया और कुछ दिन वही बिताया।

व्याख्या ४३,२७,००० मानव वर्षों का एक महायुग होता है और कल्प तो ८,६४,००००००० वर्षों का होता है। इस भाँति सौ कल्पो तक भुसुण्डीजी ब्रह्माण्डो की सैर करते रहे। अत उन्होने ८,६४,००००००० ब्रह्माण्डो की सैर की। अन्त मे घूमते घामते अपने आश्रम मे चले आये तो वही ठहर गये और वही रहने लगे। कुछ दिन यो ही बीता। यहाँ कवि बीते मनहु कल्प सत एका कहते हैं। भाव यह कि भुसुण्डिजी को इतना काल मालूम हुआ। वस्तुत उतना बीता नही। सिद्धान्त यह दिखलाया कि देशकाल की कल्पना भी सब मायामय है कही थोडा देश और थोडे काल मे अधिक की प्रतीति होती है। कही अधिक मे थोडे की। ये सब करामात माया के हैं।

निज प्रभु जन्म अवध सुनि पायेहुँ। निर्भर प्रेम हरषि उठि धायेउँ॥
देखेउँ जन्म महोत्सव जाई। जेहि बिधि प्रथम कहा मैं गाई॥२॥

अर्थ . अपने प्रभु का अवध मे जन्म होना सुन पाया तो प्रेम मे भरा हुआ हर्षित हो उठकर दौडा। वहाँ जाकर जन्म महोत्सव देखा जैसा कि पहिले मैं वर्णन कर चुका हूँ।

व्याख्या भुसुण्डिजी कहते हैं वहाँ रहते रहते प्रभु के अवतार होने का पता लगा, कल्प कल्प प्रति प्रभु अवतरही। चारु चरित नाना विधि करही। सो एक सौ कल्प तो अनेक ब्रह्माण्डो के देखने मे बीत चुके थे। एक सौ एकवें मे अपने आश्रम मे पहुँच गये। अत इसमे भी रामावतार हुआ। देवता लोग गर्भस्तुति के लिए सुमेरु पर्वत से चले। उन्ही से सुना। अत जन्म महोत्सव के देखने की लालच से दौड पडे। जाकर देखा भी और उसी विधि से देखा जैसा पहिले कह चुके हैं। अथवा जन्म महोत्सव वैसा ही हुआ जैसा वर्णन कर आये हैं।

राम उदर देखेउँ जग नाना। देखत बनै न जाइ बखाना॥
तहँ पुनि देखेउँ राम सुजाना। मायापति कृपाल भगवाना॥३॥

अर्थ रामजी के उदर मे अनेक जगत् देखा जो देखते ही बनते हैं कहते नही बनते। वहाँ फिर राम सुजान को देखा। जो माया के पति कृपालु और षडैश्वर्य सम्पन्न थे।

व्याख्या . उदर माँझ सुनु अण्डजराया। देखेउँ बहु ब्रह्माड निकाया। कहकर जिस प्रसङ्ग का आरम्भ किया था उसी का राम उदर देखेउँ जग नाना कहकर उपसहार कर रहे हैं। वे ब्रह्माण्ड ऐसे सुन्दर थे कि देखते ही बन पडता था और ऐसे अद्भुत थे कि उनका बखान नही हो सकता। जिस ब्रह्माण्ड मे वे रामजी के उदर मे गये थे, उनके उदर म भी वही ब्रह्माण्ड देख रहे है। उसमे उनका आश्रम है अयोध्या है जहाँ जन्म महोत्सव हो रहा था। जन्मोत्सव के बाद कुछ बडे होने पर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैंने उसी मायापति कृपाल भगवान् सुजान रामचन्द्र को देखा। बात समझ मे न आयी कि क्या बात है मैं रामजी के पेट के भीतर हूँ कि बाहर हूँ।

करौं विचार वहोरि वहोरी। मोह कलिल ब्यापित मति मोरी ॥
उभय घरी मँह मै सव देखा। भयउँ भ्रमित मन मोह विसेखा ॥४॥

अर्थ मैं बार बार विचार करता हूँ। मेरी बुद्धि मोहरूपी कीचड से व्याप्त हो रही थी। मैंने यह सब दो घडी मे देखा। मेरे मन मे विशेष मोह बढ गया थकावट आ गयी।

व्याख्या भुसुण्डिजी बार बार विचार करते हैं कि मैं कहाँ हूँ। क्या देखता हूँ। मैं तो रामजी के पेट मे चला गया था। पेट मे इतने ब्रह्माण्ड कहाँ से आये। जिसमे रामजी थे वह ब्रह्माण्ड कहाँ से आगया। स्वय रामजी अपने पेट मे कैसे चले आये। कोई निर्णय नही कर पाते। उनकी बुद्धि मोह के दलदल मे फँस गयी। भुसुण्डिजी कहते हैं कि यह सब मैंने दो घडी मे देखा। बात समझ मे नही आयी। मोह और बढ गया। इस प्रपञ्च को देखते देखते मैं थक गया।

दो देखि कृपाल विकल मोहि, बिहँसे तव रघुवीर।
विहँसत ही मुख वाहेर, आयेउँ सुनु मति धीर ॥८२ क.
सोइ लरिकाई मोसन, करन लगे पुनि राम।
कोटि भाँति समुझावौं, मन न लहै बिश्राम ॥८२॥

अर्थ कृपालु राम मुझे विकल देखकर हँस पडे। हे मतिधीर! उनके हँसते ही मैं मुख से बाहर निकल आया वही लडकपन रामजी फिर मुझसे करने लगे। अब मैं अपने मनको कोटि भाँति से समझाता हूँ परन्तु उसे विश्राम नही होता।

व्याख्या सरकार कृपालु हैं दास की विकलता सह्य नही है अत फिर हँस पडे। भुसुडिजी कहते हैं कि पहिल हँसने मे मैं पेट के भीतर चला गया था और इस बार के हँसने मे बाहर निकल आया। माया ही मन है और मनोविकास ही हास है। अत दूसरे हास म माया पलटा खा गयी। मै बाहर आगया। आवत निकट हँसहिं प्रभु भाजत रुदन कराहिं। जाउँ समीप गहन पद पुनि पुनि चितै पराहिं। यह लीला फिर आरम्भ हुई। समझना तो यह चाहा था कि कौन चरित्र करत प्रभु चिदानद सदोह। वह बात तो समझ मे आयी नही और अगनित आश्चर्य की बातें सामने आगयी। जो कुछ भी समझ नही पडती। मनको भुसुडिजी समझाते हैं कि हरिकी माया अघटितघटनापटीयसी है। वह सब कुछ कर सकती है। इत्यादि परन्तु मनको शान्ति नहीं होती। प्रत्यक्ष देखी हुई बात को माया कैसे कह दें। सौ कल्प के अनुभव को दो घडी का अनुभव कैसे स्वीकार लें।

चरित माधुरी को यथा पार न परै लखाय।
तथा महा ऐश्वर्य की महिमा कही न जाय ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कल्प होइ छन में जहाँ बिन्दुहि सिंधु समाय।
तहाँ बुद्धि की कौन गति नाहक मन भरमाय॥
अणु ते छोटो श्रुति कहैं नभ ते अधिक महान्।
अतिहि दूर अतिही निकट अति अद्भुत भगवान॥
सो कछु निज आँखिन लख्यो पै मन नाहि समाय।
ज्यों ज्यों सुरझावन चह्यों त्यों त्यों मति अरझाय॥
कहाँ महामहिमा अगम कहँ शैशव खेलवार।
एहि असमंजस ते भक्त केहि विधि ते निस्तार॥

देखि चरित येह सो प्रभुताई। समुझत देह दसा बिसराई॥
धरनि परेउँ मुख आवन बाता। त्राहि त्राहि आरत जन त्राता॥१॥

अर्थ : यह चरित्र देखकर और वह प्रभुता समझकर मुझे देहकी दशा भूल गयी। मैं पृथिवीपर लोट गया। मुँह से बात नहीं निकलती थी। हे आर्तों के रक्षा करनेवाले! रक्षा करो रक्षा करो : यही कहने लगा।

व्याख्या : चरित्र तो ऐसा कर रहे हैं जैसा कोई प्राकृत बालक करता हो : आवत निकट हँसहि प्रभु भाजत रुदन कराहि। जाउँ समीप गहन पद फिरि फिरि चितै पराहि। और प्रभुता ऐसी है कि कोटिन्ह चतुरानन गौरीसा। अगनित उडगन रवि रजनीसा। इत्यादि : पेट में हैं। इन दोनो बातों का सामञ्जस्य बिठाने मे देहका ऐसा विस्मरण हो गया कि मैं खडा न रह सका पृथिवी पर जा पड़ा। ऐसा प्रेम मन मे उमगा कि मुझसे कोई वाणी न निकल सकी त्राहि त्राहि करने लगा। भुसुंडिजी मुख से बाहर होने पर भी माया से विनिर्मुक्त नही हैं। आश्चर्य और भी बढ गया। सर्वाश्चर्यमय हरि के ऐश्वर्य और माधुर्य दोनो रूप के दर्शन से महा आनन्द भी है और महा आश्चर्य भी है। लीला एकबारगी समझ मे नहीं आ रही है। माया के वेग के सहने मे एकदम असमर्थ होकर आर्त हो गये और त्राहि त्राहि करके शरणागत हुए।

प्रेमाकुल प्रभु मोहि बिलोकी। निज माया प्रभुता तब रोकी॥
करसरोज प्रभु मम सिर धरेऊ। दीन दयाल सकल दुख हरेऊ॥२॥

अर्थ : सरकार ने मुझे प्रेम मे व्याकुल देखकर अपनी माया की प्रभुता को रोका। दीनदयाल ने मेरे सिर पर कमल सा हाथ रक्खा और सब दु:ख हरण कर लिया।

व्याख्या : प्रेमाधिक्य में बडी व्याकुलता होती है। सयोग मे भी वियोग सा कष्ट होने लगता है। इतने बडे प्रभु की इतनी बड़ी कृपा कि मुझ ऐसे तुच्छ के साथ खेल रहे हैं और मेरी इतनी ढिठाई कि वे पकडने चलते हैं तो मैं भागकर उनसे बचना चाहता हूँ। मुझे इतना भी ज्ञान नही कि वे सर्वत्र हैं। उनके भीतर बाहर का भेद नही है। मेरे सन्देह मिटाने के लिए अपनी अनन्त प्रभुता मे से थोड़ी सी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दिखा देने का कष्ट भी किया। फिर भी अप्रसन्नता नही वही लड़कपन मुझसे फिर करना आरम्भ कर दिया। यह बचपन का अज्ञान और इतनी बड़ी महा प्रभुता दोनो का एकत्र अवस्थान कैसे है? इस प्रकार सरकार के गुणग्रामों के स्मरण स अनुराग का समुद्र उमड़ पड़ा। भुसुंडिजी को उसमे निमग्न होते देखकर अपनी माया की प्रभुता को रोक दिया। उन्ही की प्रेरणा से माया प्रभुता दिखला रही थी। विकल देखकर विहँसे थे। प्रेमाकुल देखकर माया को रोकते हैं।

अब रोकने की प्रक्रिया कहते हैं कि सरकार ने मेरे सिरपर हाथ रख दिया। जिसके लिए महाभक्त लोग लालायित रहते हैं। यथा : प्रभु करपकज कपि के सीसा। सुमिरि सो दसा मगन गौरीसा। तथा : कबहुँ सो करसरोज रघुनायक रखिहौ नाथ सीस मेरे। जेहि कर अभय किये जन आरत बारक बिबस नाम टेरे। सीतल सुखद छाँह जेहि कर की मेटति पाप ताप माया। निसिबासर तेहि कर सरोज की चाहत तुलसिदास छाया।

कीन्ह राम मोहि बिगत बिमोहा। सेवक सुखद कृपा संदोहा॥
प्रभुता प्रथम बिचारि बिचारी। मन महँ होइ हरख अति भारी॥३॥

अर्थ : रामजी ने मुझे मोह से विनिर्मुक्त कर दिया। क्योंकि सेवक को सुख देनेवाले और कृपानिधान हैं। पहिली प्रभुता को विचार विचारकर मेरे मन मे बड़ा हर्ष हो रहा था।

व्याख्या : मोह के जाने का अन्य उपाय नही। उनकी कृपा से ही मोह छूटता है। यथा : क्रोध मनोज लोभ मद माया। छूटहि सकल राम की दाया। और रामजी सेवक सुखद तथा कृपासन्दोह है। हम अपने को उनकी कृपा का पात्र नही बनाते। अपने ही अभिमान मे भूले रहते है। आर्त नही होते।

अब मोहमुक्त होने से पहिली प्रभुता के वारम्बार विचार से मन मे बड़ा भारी हर्ष होने लगा। आश्चर्य हर्ष मे परिणत हो गया। मूढ को माधुर्य देखकर ऐश्वर्य पर अविश्वास होता है और भक्त को माधुर्य देखकर बड़ा आनन्द होता है।

भगत बछलता प्रभु कै देखी। उपजी मम उर प्रीति बिसेखी॥
सजल नयन पुलकित कर जोरी। कीन्हिउ बहुबिधि बिनय बहोरी॥४॥

अर्थ : प्रभु की भक्तवत्सलता देखकर मेरे हृदय मे विशेष प्रीति उपजी। आँखो मे आँसू भर आया। रोगटे खडे हो गये। हाथ जोड़कर बहुत विधि से मैंने विनय किया।

व्याख्या : सरकार ऐसे भक्तवत्सल हैं कि भक्त के लिए ही बहुत सी लीला कर रहे हैं और उसमे यदि भक्त को भ्रम हो तो उसे दूर करने के लिए उसे अपने पेट मे ले जाकर ऐश्वर्य का प्रदर्शन कर देते हैं। भक्त से कोई छिपाव नही। वह देखने मे असमर्थ होता है। त्राहि त्राहि करता है तो जैसे वह सुखी हो वैसा कर देते हैं। काग के सिर पर भी वह अभय देनेवाला हाथ घूमता है। यह देखकर भुसुण्डिजीके हृदय

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मे विशेष प्रीति का उदय हुआ। यथा : भेद भक्ति बाढै बिहग वर। विद्या को प्रेरणा से यही पात्पर्य था। तब भुसुण्डिजी को सात्त्विक भाव हुआ। आनन्द मे विभोर होकर अनेक भाँति से स्तुति करने लगे।

दो. सुनि सप्रेम मम बानी, देखि दीन निज दास।
बचन सुखद गंभीर मृदु, बोले रमा निवास ॥८३ क.
कागभुसुडो माँगु बर, अति प्रसन्न मोहि जानि।
अनिमादिक सिधि अपर रिधि, मोक्ष सकल सुखखानि ॥८३॥

अर्थ मेरी प्रेम भरी वाणी सुनकर और मुझे दीन तथा निज दास जानकर सुख देनेवाली गम्भीर और मृदु वाणी रमानिवास भगवान् बोले।

व्याख्या : रामहि केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननिहारा। अत. भुसुण्डिजी की प्रेम भरी वाणी सुनकर भगवान् प्रसन्न हो गये। रमानिवास हैं। सम्पूर्ण ऐश्वर्य के स्वामी हैं। अत सुखद मृदु और गम्भीर वाणी बोले ' काग भुसुडी माँगु बर। यह वाणी का सुखदातृत्व है : अति प्रसन्न मोहि जानि। यह मृदुता है और . अनिमादिक सिधि अपर रिधि मोक्ष सकल सुख खानि। यह गम्भीरता है। चारो फल देने की बात वाणी मे है। फिर भी भक्त की परीक्षा हो रही है।

ग्यान बिबेक बिरति बिग्याना। मुनि दुरलभ गुन जे जग नाना ॥
आजु देउँ सब ससय नाही। माँगु जो तोहि भाव मन माही ॥१॥

अर्थ . ज्ञान विवेक वैराग्य विज्ञानादि जो ससार मे प्रख्यात मुनिदुर्लभ गुण हैं वे सब आज तुझे देता हूँ। इसम सशय नही। जो तुझे अच्छा लगे सो माँग।

व्याख्या . दो सुख हैं। एक प्रेय और दूसरा श्रेय। सासारिक सुख प्रेय कहलाता है और मोक्ष श्रेय कहलाता है। सो जो प्रेय चाहता है उसके हाथ से श्रेय निकल जाता है और श्रेय चाहनेवाले को प्रेय छोडना पडता है। दिव्यातिदिव्य वैषयिक सुख सभी प्रेय के अन्तर्गत हैं। सरकार अणिमादिक आठो सिद्धियाँ तथा सम्पूर्ण ऋद्धियाँ अर्थात् ऐश्वर्य देने को . अर्थात् प्रेय देने को प्रस्तुत हैं। तथा सकल सुखखानि मुक्ति देने को तैयार हैं अर्थात् श्रेय के लिए भी तैयार हैं।

परन्तु कैसा ही सुखी प्राणी हो यदि उसमे गुण नही है तो उसकी शोभा नही। सुरदुर्लभ सुख देना कहकर अब मुनिदुर्लभ गुण ज्ञान विवेक वैराग्य विज्ञान देने को कहते हैं। सबकी अनायास प्राप्ति तुझे आज होगी। ये सब तो मैं अपने मन से देने को तैयार हूँ। यदि इनसे अतिरिक्त कुछ दूसरी वस्तु तू चाहता हो तो उसे माँग मैं वह भी दूँगा।

सुनि प्रभु बचन अधिक अनुरागेउँ। मन अनुमान करन तब लागेउँ ॥
प्रभु कह देन सकल सुख सही। भगति आपनी देन न कही ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : प्रभु का वचन सुनकर मैं अधिक प्रेम में आगया और मन में अनुमान करने लगा कि प्रभु ने सब सुख देना तो कहा पर अपनी भक्ति देना नहीं कहा।

व्याख्या : पहिले ही प्रभु की भक्तवत्सलता देखकर हृदय में विशेष प्रीति उत्पन्न हुई थी। अब प्रभु के उपर्युक्त वचन सुनकर अधिक अनुराग बढ़ा। तब मन में तर्क करने लगा कि प्रभु ने अन्त में कहा कि जो तुझे अच्छा लगे सो माँग। तो क्या प्रभु के कहने में कोई सुख छूट गया? यदि छूटा तो क्या छूटा? यह तर्क मन में उठा। देखा कि बड़ा भारी सुख छूट गया है। भक्ति की तो चर्चा भी इसमें सरकार ने नहीं की। अपनी भक्ति माँगने की चर्चा स्वयं न करेंगे। इसलिए अन्त में कहा कि : मांगु जो तोहि भाव मन माँहीं।

भगति हीन गुन सब सुख ऐसे। लवन बिना बहु बिंजन जैसे ॥
भजन हीन सुख कवने काजा। अस बिचारि बोलेउँ खगराजा ॥३॥

अर्थ : भक्ति के बिना गुण और सम्पूर्ण सुख कैसा है? जैसा बिना लवण का बहुत सा व्यञ्जन। भजन हीन सुख किस काम का? ऐसा विचारकर हे खगराज! मैं बोला।

व्याख्या : यदि सरकार की भक्ति ही नहीं तो इन गुणों और सुखों को लेकर क्या करना है? : तव पदपंकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुंदर। भक्ति बिना तो सभी निष्फल हैं। अलोना व्यञ्जन किस काम का? स्वाद तो भक्ति है। इसी के योग से सभी साधन स्वादु हो उठते हैं और इसके बिना सब फीके रहते हैं।

जब सुख स्वरूप रघुवंश मणि का भजन ही न हुआ तो अन्य सुख किस काम का? जब क्लेश ही नहीं मिटा तो सुख लेकर क्या होगा? यथा : ऐसेहिं हरि बिनु-भजन खगेसा। मिटइ न जीवन केर कलेसा। यह सब विचारकर हे खगराज! मैं बोला।

जौं प्रभु होइ प्रसन्न बर देहू। मोपर करहु कृपा अरु नेहू ॥
मन भावत बर मागौं स्वामी। तुम्ह उदार उर अंतरजामी ॥४॥

अर्थ : यदि प्रभु प्रसन्न होकर वर दे रहे हैं और यदि मुझपर कृपा और प्रेम है तो मैं मनचाहा वर माँगता हूँ। सरकार उदार हैं और हृदय के प्रेरक हैं।

व्याख्या : सरकार ने कहा कि : कागभुसुंडो माँगु बर अति प्रसन्न मोहि जानि। सरकार स्वयं प्रसन्न होकर वर माँगने को कह रहे हैं। मैंने वर के लिए कोई तपस्या नहीं की है। सरकार की मुझपर कृपा है और स्नेह है। इसलिए वर दे रहे हैं। तब तो मैं जो चाहता हूँ सो लूँगा। उदार से ही ईप्सित की प्राप्ति होती है। फिर सरकार-सा उदार कौन होगा? और यह बात भी है कि सरकार सबके हृदय के प्रेरक हैं। सरकार की प्रेरणा भी है तभी मैं यह माँग रहा हूँ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो० अबिरल भक्ति बिसुद्ध तव, स्रुति पुरान जो गाव।
जेहि खोजत जोगीस मुनि, प्रभु प्रसाद कोउ पाव ॥८४ क
भगत कल्पतरु प्रनत हित, कृपा सिंधु सुखधाम।
सोइ निज भक्ति मोहि प्रभु, देहु दया करि राम ॥८४॥

अर्थ जो आपकी अविच्छिन्न विशुद्ध भक्ति है जिसे वेद पुराण गाता है। योगेश्वर और मुनि जिसे खोजते हैं। पर सरकार की कृपा से किसी को ही मिलती है। हे भक्तकल्पतरु! हे प्रणतहित! हे कृपासिन्धु! हे सुखधाम राम! वही अपनी भक्ति मुझे कृपा कर दीजिये।

व्याख्या जो भक्ति सदा बनी रहे कभी उसमे भङ्ग न हो उसे अविरल कहते हैं और जो भक्ति फलाभिषङ्ग रहित हो उसे विशुद्ध कहते हैं। जो विरति और विवेक के साथ हो उसे श्रुतिसम्मत कहते हैं। यहाँ भुसुण्डिजी विशेषणत्रयविशिष्ट भक्ति चाहते हैं। और उसी के विषय मे कहते हैं कि योगीन्द्र मुनीन्द्र उसी भक्ति की खोज मे रहते हैं पर मिलती नही। प्रभु के प्रसाद से किसी को मिल जाती है। उसी दुर्लभ भक्ति के लिए कहते हैं कि कृपा करके मुझे दीजिये। सरकार भगत कल्पतरु हैं इसलिए अविरल भक्ति दीजिये। प्रणतहित हैं इसलिए विशुद्ध भक्ति दीजिये। कृपासिन्धु हैं इसलिए श्रुतिसम्मत भक्ति दीजिये और सुखधाम हैं इसलिए दुलभा भक्ति दीजिये। यद्यपि भक्ति एक ही है पर सरकार के विशेषणो के साथ भक्ति के विशेषणो को मेल खाते देखकर पृथक् पृथक् करके दिखायी गयी हैं।

एवमस्तु कहि रघुकुल नायक। बोले बचन परम सुखदायक ॥
सुनु बायस तइ सहज सयाना। काहे न माँगसि अस बरदाना ॥१॥

अर्थ रघुकुलनायक एवमस्तु कहकर परम सुखदायक वचन बोले। हे वायस! सुन तैं स्वभाव से ही सयाना है तू ऐसा वरदान क्यो न माँगे।

व्याख्या प्रिय के वचन तो प्रिय होते ही हैं। उनके व्यग्य वचन और भी प्रिय होते हैं। यथा मन ही मन महेस मुसुकाही। हरि के व्यग वचन नहि जाही। अति प्रिय बचन सुनत प्रिय केरे। भृगिहि प्ररि सकल गन टेरे। सो यहाँ पर सरकार व्यग्य से भुसुण्डिजी को सम्बोधन करते हैं। अत वह वचन परम सुखदायक है। अथवा एवमस्तु ऐसा ही हो यह वचन परम सुखदायक है और व्यग्य के साथ जो आगे कहेगे वह परम सुखदायक है।

यहाँ वायस सम्बोधन मे व्यग्य है। पक्षिणा वायसा धूर्ता। पक्षियो मे वायस धूर्त होते हैं इसलिए कहते हैं कि स्वभाव से ही सयाना है। मेरे बतलाये हुए सुरदुलभ गुणो पर नही गया। अपने मन का ऐसा वरदान माँगा जिसमे सब कुछ मिल जाय।

सब सुख खानि भगति तैं माँगी। नहि जग कोउ तोहि सम बडभागी ॥
जो मुनि कोटि जतन नहि लहही। जे जप जोग अनल तन दहही ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : संसार में कोई तुझ सा बड़भागी नही है। क्योंकि सब सुखों की खानि उस भक्ति को तैने माँगी। जिस भक्ति को मुनि जो कि जप योग की अग्नि में देह को जलाया करते हैं। करोड़ों यत्न करने पर भी नही प्राप्त करते।

व्याख्या : पहिले कहा है कि मोक्ष सकल सुख खानि अब कहते हैं सब सुख खानि भगति। भाव यह कि ज्ञानहि भगतिहि नहि कछु भेदा। उभय हरहिं भव सभव खेदा। इसलिए दोनों सुख की खानि कही गयी। फिर भी भक्ति माँगनेवाला बड़भागी है क्योंकि भक्ति से भगवान् वश्य हो जाते हैं। यथा : निर्वान दायक क्रोध जाकर भगति अवसहि बस करी।

भगवान् कहते हैं कि जो भक्ति तैने माँगा है वह परं दुर्लभ है। भक्तियो मे भी अविरल भक्ति और वह भी विशुद्ध तिसपर श्रुतिसम्मत भक्ति मुनियो को भी करोड़ो यत्न से नही मिलती। कैसे मुनि ? जिन्होंने कि जप और योगाग्नि से शरीर को तपा रक्खा है : ऐसी दुर्लभा भक्ति तैने माँगी।

रीझेउँ देखि तोरि चतुराई। माँगेहु भगति मोहि अति भाई ॥
सुनु बिहंग प्रसाद अब मोरे। सब सुभगुन बसिहहिं उर तोरे ॥३॥

अर्थ : तेरी चतुराई देखकर मैं रीझ गया। तूने भक्ति माँगा जो मुझे अत्यन्त प्यारी है। हे पक्षि! सुन अब मेरी कृपा से सब शुभगुण तेरे हृदय मे बसेंगे।

व्याख्या : भजन मे चतुराई बड़ी बाधक है। यथा : मन क्रम बचन छाड़ि चतुराई। भजत कृपा करिहहिं रघुराई। पर भगवान् कहते हैं कि तेरी चतुराई ऐसी है कि मैं उस पर रीझ गया। क्योंकि तूने ऐसी वस्तु माँगी जो मुझे अत्यन्त अच्छी लगती है। यथा : भक्तिवन्त अति नीचउ प्रानी। मोह प्रान प्रिय असि मम बानी।

भक्ति पर सरकार का बड़ा अनुग्रह होता है। अत. कहते हैं कि तू पक्षी है। फिर भी मेरी कृपा से अब सब शुभगुण तेरे हृदय मे निवास करेंगे। जिस पर सरकार की कृपा होती है उसी को शुभगुण वरण करते हैं।

भगति ग्यान बिग्यान बिरागा। जोग चरित्र रहस्य बिभागा ॥
जानब तैं सबही कर भेदा। मम प्रसाद नहि साधन खेदा ॥४॥

अर्थ : भक्ति, ज्ञान, विज्ञान, विराग, योग, चरित्र और रहस्य विभाग तैं इन सब का भेद मेरे प्रसाद से जानेगा साधन का कष्ट तुझे उठाना न पड़ेगा।

व्याख्या : जिससे ऐसा बोध होता है कि मैं बुद्धि प्राण मन देह और अहङ्कारादि से विलक्षण हूँ : नित्य शुद्ध बुद्ध चेतन आत्मा हूँ वही ज्ञान है। जिस जिस समय इसका साक्षात् अनुभव होता है उस समय इसी को विज्ञान कहते हैं। इस लोक और परलोक के फल भोग से मन के हटने को विराग कहते हैं। समाधि को योग कहते हैं। अवतार की लीला को चरित्र कहते हैं। चरित्र का वह विभाग जो कि गोप्य है उसे रहस्य कहते हैं। परम प्रेम को भक्ति कहते हैं। भक्ति की प्राप्ति से शेष सबा की प्राप्ति हो जाती है। इसलिए भक्ति को पहिले कहा। भगवान् कहते

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है कि तू इन सब के भेद को जानेगा। और उस जानकारी के लिए जिन साधनों की आवश्यकता होती है और उसमे जो आयास होता है वह आयास मेरी कृपा से तुझे न होगा और तू सब जान जायगा।

दो. माया संभव भ्रम सब, अब न ब्यापिहहि तोहि।
जानेसु ब्रह्म अनादि अज, अगुन गुनाकर मोहि ॥८५ क.
मोहि भगत प्रिय संतत, अस बिचारि सुनु काग।
काय बचन मन मम पद, करेसु अचल अनुराग ॥८५॥

अर्थ : माया से उत्पन्न जो भ्रम हैं वे सब तुम्हे अब न व्यापेंगे। मुझे ब्रह्म अनादि अज अगुण और गुणाकर जानना। मुझे सदा भक्त प्रिय हैं ऐसा विचार करके हे काग सुन! मनसा वाचा कर्मणा मेरे चरण मे अचल अनुराग करना।

व्याख्या : भगवान् कहते हैं कि माया से उत्पन्न जो भ्रम है वे अब तुझे न व्यापेंगे। मैंने तेरे लिए माया की प्रभुता अब रोक दी है। मुझ बालक रूप राम को अनादिब्रह्म जानना मेरा जन्म नही होता। मैं नित्य निर्गुण होने पर भी गुणों का आकर हूँ ऐसा मुझे समझना। यही दिव्य जन्म कर्म है।

इस भाँति ज्ञान कथन करके अब भक्ति कहते हैं कि मुझे सदा भक्त प्यारे हैं। भक्त के लिए मैं शरीर धारण करता हूँ और सब कुछ करता हूँ। ऐसी मेरी प्रीति समझकर मेरे चरणो मे अचल प्रेम रखना। मन्मना भव मद्भक्तो मद्याजी मां नमस्कुरु। वर देने पर भी उपदेश देने का तात्पर्य यह है कि ईश्वर कृपा तो हो चुकी। अब आत्मकृपा मे प्रमाद न करना। अपनी ओर से त्रुटि न आने देना जो अलभ्य वस्तु मिली है उसकी रक्षा करना।

अब सुनु परम बिमल मम बानी। सत्य सुगम निगमादि बखानी ॥
निज सिद्धान्त सुनावौ तोही। सुनि मन धरु सब तजि भजु मोही ॥१॥

अर्थ : अब परम निर्मल मेरी वाणी सुनो। जो कि सत्य है सुगम है और जिसे वेदादि शास्त्रो ने वर्णन किया है। अपना सिद्धान्त तुम्हे सुनाता हूँ। सुनकर मन मे धारण करो कि सब छोडकर मुझे भजो।

व्याख्या : सत्य वाणी ही निर्मल वाणी है। वह यदि क्लिष्ट न हो तो परम निर्मल है और वह यदि वेदादि शास्त्रोक्त भी हो तब तो वह ईश्वरीय वाणी ही है। यहाँ पर अपना सिद्धान्त कह रहे हैं अतः पर विमलादि विशेषण दिया। अब कहते हैं कि इस वाणी को सुनकर मन मे धारण करो मन से निकल न जाने न पावे। वह यह है कि : सर्वं त्यक्त्वा हरिं भजेत्। सब काम छोडकर भगवान् का भजन करे। यह बात नही कि सब काम से छुट्टी पालेंगे तब भजन करेंगे। बात यह होनी चाहिए कि भजन से छुट्टी पालेंगे तब दूसरा काम करेंगे। पूरा श्लोक ऐसा है : शत विहाय भोक्तव्यं सहस्रं स्नानमाचरेत्। लक्षं विहाय दातव्यं सर्वं त्यक्त्वा हरिं भजेत्।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अथवा सुख सपति परिवार बडाई। सब परिहरि करिहौं सेवकाई। ये सब राम भगति के बाधक। कहहिं सन्त तव पद अवराधक। सत्रु मित्र सुख दु ख जग माही। माया कृत परमारथ नाही। अब प्रभु कृपा करहु एहि भाँति। सब तजि भजन करौ दिन राती।

मम मायासभव ससारा। जीव चराचर बिबिध प्रकारा ॥
सब मम प्रिय सब मम उपजाये। सब ते अधिक मनुज मोहि भाये ॥२॥

अर्थ यह ससार मेरी माया से उत्पन्न है। अनेक प्रकार के जो जीव हैं सो सब मुझे प्रिय हैं। क्योकि मैंने इन्हे उत्पन्न किया है। सबसे अधिक मुझे मनुष्य अच्छे लगते हैं।

व्याख्या भगवान् कहते हैं आदि सक्ति जेहि जग उपजाया। सो अवतरिय मोरि यह माया। लव निमेष महँ भुवन निकाया। रचै जासु अनुसासन माया। भगवद्गीता मे भी कहा है, मम योनिर्महद्ब्रह्म तस्मिन् गर्भं दधाम्यहम्। सम्भव सर्वभूताना ततो भवति भारत। अह बीजप्रद पिता। जितने चराचर जीव हैं वे मेरी माया से उत्पन्न हैं, मैंने उन्हे उत्पन्न किया है। इसलिए सब मुझ प्रिय हैं। जीवमात्र मे कोई मुझे अप्रिय नही है। अत प्राणिमात्र पर सद्भावना करनी चाहिए। इनमे भी मनुष्य मुझे बहुत अच्छे लगते हैं। क्योकि इसी देहम मेरी भक्ति उदय होती है। यथा मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिय पीके।

तिन्ह महँ द्विज द्विज महँ स्रुति धारी। तिन महँ निगम धर्म अनुसारी ॥
तिनमहुँ प्रिय विरक्त पुनि ग्यानी। ग्यानिहु ते अतिप्रिय विग्यानी ॥३॥

अर्थ इनमे ब्राह्मण और उनमे भी श्रोत्रिय उनमे भी वैदिक धर्म पालन करनेवाला उनमे भी विरक्त और उनमे भी ज्ञानी। ज्ञानियो मे भी विज्ञानी अत्यन्त प्रिय है।

व्याख्या सरकार कहते हैं कि मनुष्यो म भी मुझे ब्राह्मण प्रिय है क्योकि जाति आयु और भोग पूर्व जन्म के कर्मानुसार मिलता है। जो पूर्व जन्म मे रमणीयाचरण हैं वे ब्राह्मण क्षत्रियादि होते हैं। इस जन्म म शील गुण हीन होने पर भी पूर्व जन्म के पुण्य से वे पूजे जाते हैं। जैसे धनी के लडके बिना पुरुषार्थ धन के भागी होते हैं। यथा पूजिअ बिप्र सील गुन हीना। सूद्र न गुन गन ग्यान प्रबीना। सुनु गधर्ब कहौं मैं तोही। मोहि न सोहाय ब्रह्मकुलद्रोही। अथवा यथा तुलसी अश्वत्थ वट आदि के अपने कल्याण मे असमर्थ होने पर भी पूजनेवाले का कल्याण तो हो ही जाता है। इसी भाँति ब्राह्मण जाति के भी पूजन से कल्याण है।

उनमे भी श्रुतिधारी अधिक प्रिय हैं क्योकि उनमे वेद प्रतिष्ठित हैं। उनके लिए तो भक्ति के साधन म कहा गया है प्रथमहि बिप्र चरन अति प्रीती। ऐसे ब्राह्मणो

१ यहाँ सारालङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मे भी जो नियम धर्मानुसारी हैं वे अधिक प्रिय हैं। क्योंकि वे पूरे ब्राह्मण हैं। उनमे तप श्रुति और जन्म तीनो हैं। यथा तप श्रुतश्च योनिश्च ह्येतद्ब्राह्मणकारकम्। तप श्रुताभ्या यो हीन जातिब्राह्मण एव स।

उनमे भी जो विरक्त हैं वे और भी अधिक प्रिय हैं। यथा नर सहस्र महँ सुनहु पुरारी। कोउ एक होइ धर्मब्रतधारी। धर्म सील कोटिक महँ कोई। बिषय बिमुख बिराग रत होई। कोटि बिरक्त मध्य स्रुति कहई। सम्यक ज्ञान सकृत कोउ लहई। तिन सहस्र महँ सब सुखखानी। दुर्लभ ब्रह्मलीन बिज्ञानी। इसलिए सरकार कहते हैं कि विरक्तो म भी मुझे ज्ञानी प्रिय हैं और उनसे भी अधिक विज्ञानी प्रिय है।

तिन्ह ते पुनि मोहि प्रिय निज दासा। जेहि गति मोरि न दूसरि आसा॥
पुनि पुनि सत्य कहौ तोहि पाही। मोहि सेवक सम प्रिय कोउ नाही॥४॥

अर्थ उनसे भी मुझे अपना दास प्रिय है जिसे मेरी ही गति है। दूसरी आशा नही है। बार बार तुझसे सत्य कहता हूँ कि मुझे सेवक सा प्रिय कोई नही।

व्याख्या सरकार का वचन है कि मोरे प्रौढ तनय सम ज्ञानी। बालक सुतसम दास अमानी। प्रौढ भये तेहि सुत पर माता। प्रीति करै नहि पाछिल बाता। एहि बिचारि पडित मोहि भजही। पायेहु ज्ञान भगति नहि तजही। अत दास विज्ञानी से भी प्रिय है। अब दास की परिभाषा कहते हैं कि जिस भाँति शिशु को माता ही गति रहती है उसे दूसरी आशा नही। इसी भाँति दास की गति प्रभु हैं। उसे दूसरे की आशा नही। दूसरे की हुई तो वह दास कैसा? मोर दास कहाइ नर आसा। करै तो कहहु कहाँ बिस्वासा।

भुसुण्डिजी को आश्वासन देते हुए सरकार कहते हैं कि बार बार तुझसे सत्य कहता हूँ कि सेवक के समान मुझे कोई प्रिय नही है। यहाँ सेवक और दास एकही अर्थ म आया है। विज्ञान की भाँति सेवक ने सब अभिमान का त्याग किया है फिर भी सेवक सेव्य भाव बनाये रखता है। यथा अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मैं सेवक रघुपति पति मोरे।

भगति हीन बिरंचि किन होई। सब जीवहु सम प्रिय मोहि सोई॥
भगतिवत अति नीचउ प्रानी। मोहि प्रान प्रिय असि मम बानी॥५॥

अर्थ यदि ब्रह्मदेव भी भक्तिहीन हो तो वे भी मुझे सब जीवो की भाँति ही प्रिय हैं और यदि अति नीच प्राणी भी भक्त हो तो वह मुझे प्राणप्रिय है यह मेरा वचन है।

व्याख्या यथा रामहि केवल प्रेम पियारा। जानि लेहु जो जाननिहारा। जो रामजी से प्रेम करता है उससे वे विशेष प्रेम करते हैं। नही तो प्राणिमात्र सरकार के प्रिय है। ब्रह्मदेव का बडा ऊँचा दर्जा है। पर वे भी सरकार को प्रिय तभी हो सकते हैं यदि उनम भक्ति हो। नही तो इतना ऊचा पद पाने पर भी सरकार के प्रेम म उच्चपद नही प्राप्त कर सकते और यदि कोई अति नीच है जासु

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



छाँह छुई लेइअ सोचा। उसे भी यदि भक्ति है तो भले ही संसार उसे कुछ न समझे पर है वह सरकार का प्यारा। यथा : तुलसी भगत स्वपच भलो भजै रैनदिन राम ऊँचो कुल केहि काम को जहाँ न हरि को नाम। अति ऊँचे भूधरन्ह पै भुजग के अस्थान। तुलसी अति नीचे सुखद ऊख अन्न अरु पान।

दो. सुचि सुसील सेवक सुमति, प्रियकहु काहि न लाग।
स्रुति पुरान कह नीति असि, सावधान सुनु काग ॥८६॥

अर्थ : पवित्र, सुशील, सुमति सेवक कहो किसे प्रिय नहीं लगेगा। हे काग सावधान होकर सुन। वेद पुराण ने ऐसी ही नीति बतलायी है।

व्याख्या : भाव यह कि प्रभु जो इस प्रकार से भुसुण्डिजी पर कृपा कर रहे हैं उसका कारण बतलाते हैं कि एव गुणगण विशिष्ट सेवक सबको प्रिय होते हैं। वेद पुराण की भी यही नीति है। सो तू शुचि, सुशील, सुमति सेवक है अतः मुझे प्रिय है। भुसुण्डिजी की सुशीलता यथा : जौं प्रभु होइ प्रसन्न बर देहू। मो पर करहु कृपा अरु नेहू। मन भावत बर मांगौं स्वामी। तुम्ह उदार उर अन्तरजामी। भुसुण्डिजी की शुचिता यथा : भजन हीन सुख कौने काजा। भुसुण्डिजी की सुमति यथा : प्रभु कह देन सकल सुख सही। भगति आपनी देन न कही। भगति हीन गुन सब सुख कैसे। लवन बिना बहु बिंजन जैसे।

एक पिता के बिपुल कुमारा। होहिं पृथक गुन सील अचारा ॥
कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता। कोउ धनवंत सूर कोउ दाता ॥१॥

अर्थ : एक पिता के बहुत से लड़के होते हैं। पर उनका गुण शील और आचार पृथक् पृथक् होता है। कोई पण्डित होता है कोई तपस्वी होता है कोई जानकार होता है। कोई धनी होता है कोई शूर होता है कोई दाता होता है।

व्याख्या : उपर्युक्त सिद्धान्त को अब उदाहरण देकर समझाते हैं। जिसमें कोई यह न कहे कि सरकार भी पक्षपात करते हैं। भक्त के ऊपर अनुग्रह विशेष होना नीति है और वह श्रुति पुराण से अनुमोदित है। यहां पिता पुत्र का उदाहरण देकर उस नीति को समझाया। इस जगत् के सरकार पिता हैं। यथा : पिताहमस्य जगतः माता धाता पितामहः। अतः पिता पुत्रका उदाहरण बिल्कुल ठीक बैठता है। एक पिता के अनेक पुत्र होते हैं पर वे एक से नहीं होते। इसी भाँति सब प्राणी संसार के अमृतस्य पुत्राः भगवान् के पुत्र होने पर भी एकसे नहीं हैं। रूपमें तो भेद है ही सबके गुण कर्म स्वभाव में भी भेद है। उसीको दिखाते हुए कहते हैं कि सबके गुण शील और आचार अलग अलग होते हैं।

पिता एक है इसलिए सबका रक्त मांस एक है। एक प्रकार से सबका पालन पोषण हुआ है। एक प्रकार की शिक्षा दीक्षा मिली है फिर भी सबको विद्या नहीं होती। किसी एक को होती है। सब तपस्वी नहीं होते कोई एक होता है। इसी भाँति

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उनमे से कोई एक ज्ञानी होता है। कोई धनी हो जाता है। कोई वीर निकलता है कोई दाता होता है।

कोउ सर्बग्य धर्मरत कोई। सब पर पितहि प्रीति सम होई॥
कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा। सपनेहु जान न दूसर धर्मा॥२॥

अर्थ : कोई सर्वज्ञ होता है कोई धर्मरत होता है। पिता की उन सब पर समान प्रीति होती है। कोई मनसा वाचा कर्मणा पिता का भक्त होता है सपने मे भी दूसरा धर्म नही जानता।

व्याख्या : कोई उनमे से सर्वज्ञ होता है। ऐसी शङ्का न करनी चाहिए कि नहि सर्वं सर्वं वेत्ति : सर्वज्ञ कोई होही नही सकता। क्योकि शास्त्रो मे सर्वज्ञ का लक्षण दिया हुआ है। परचित्तस्थित देशकालाद्यन्तरित तथा। यो जानाति समस्तार्थं स सर्वज्ञो निगद्यते। देशकालादि से अन्तर पडे हुए को तथा दूसरो के चित्त की बातो को जो जान लेता है। जो समस्त अर्थो को जानता है उसे सर्वज्ञ कहते हैं। अर्थात् यहाँ सर्वज्ञ से योगी का ग्रहण है और कोई धर्मात्मा होता है। एव गुण शील और आचार मे भेद रहते हुए भी सब पर पिता की प्रीति समान होती है। गुण शील तथा आचार के उत्कर्षापकर्ष से पिता की प्रीति मे उत्कर्षापकर्ष नही होता। पिता की प्रीति सब पर समान होती है। अर्थात् पाण्डित्य, तपस्या, ज्ञान, धन, शौर्य, उदारता, सर्वज्ञता और धर्म मे इतनी सामर्थ्य नही है कि पिता की प्रीति के साम्य मे अन्तर डाल सके।

अब एक पुत्र ऐसा है जो उपर्युक्त सभी गुणो से रहित है। परन्तु मनसा वाचा कर्मणा पिता का भक्त है। दूसरे धर्म का वह सपना भी नही देखता। अर्थात् उसकी बडी दृढ भक्ति पिता पर है।

सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना। जद्यपि सो सब भाँति अयाना॥
एहि बिधि जीव चराचर जेते। त्रिजग देव नर असुर समेते॥३॥

अर्थ : वह पुत्र पिता को प्रान के समान प्यारा है। यद्यपि वह सब भाँति से अज्ञ है। इसी प्रकार से जितने चराचर जीव हैं क्या तिर्यग् योनि क्या देवयोनि क्या नर योनि क्या असुर योनि।

व्याख्या : सब पुत्रो पर तो पिता की समान ममता है। सब पिता को प्यारे हैं पर वह भक्त पुत्र प्राण सा प्यारा है। भले ही उसमे विद्या तपस्या शूरतादि गुण नही है। भक्त के ऊपर अधिक प्यार न होना ही विषमता है। उसका प्राण के समान प्यारा होना ही पिता की समता है। रामजी जो पिता को प्राण से अधिक प्यारे थे इसका कारण भी यही था कि श्रीरामचन्द्रजी पिता के भक्त भी सबसे अधिक थे। लक्ष्मणजी ने कठोर वचन कहे भरतजी भी इतना कह बैठे कि भूप प्रतीति तोर किमि कीन्ही। मरन काल बिधि मति हरि लीन्ही। परन्तु रामजी ने

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यही कहा कि पिता दीन्ह मोहि कानन राजू। जहँ सब भाँति मोर बड काजू। अत. ऐसे पुत्र का प्राण समान प्रिय होना नीति सम्मत है।

यही न्याय परमेश्वर का सब जीवो के साथ है। तिर्यंग् योनि अज्ञानी है। देवता बडे पुण्यात्मा हैं। मनुष्य मध्यम कोटि के है। असुर निकृष्ट कोटि के हैं पर भगवान् को सब प्रिय हैं। उनमे वैषम्य नही।

अखिल बिस्व यह मोर उपाया। सब पर मोहि बराबरि दाया॥
तिन्ह महँ जो परिहरि मद माया। भजहि मोहि मन बच अरु काया॥४॥

अर्थ : यह सम्पूर्ण ससार मेरा उपजाया हुआ है। अत सब पर मेरी दया समान है। उनमे से मद माया छोडकर मुझे मन वचन और कर्म से जो भजन करते हैं।

व्याख्या अब उस उदाहरण को समझाकर कहते हैं कि जैसे पिता की अपने सब बच्चो पर चाहे गुणी हो चाहे निर्गुणी हो समान प्रीति होती है। वैसे ही सम्पूर्ण प्राणी मेरे बाल बच्चे हैं मुझे सब पर प्रीति है देवता पर भी और राक्षस पर भी परन्तु जिस भाँति पिता को भक्त बच्चा प्राण सा प्यारा होता है उसी भाँति प्राणियो मे से जो मद माया छोडकर मुझे मन वचन कर्म से भजते हैं वे प्यारे है। मद माया बिना छोडे ईश्वर का भजन सम्भव नही। जिसको किसी प्रकार का मद है जिसके हृदय मे कपट है वह विनयी नही हो सकता और न सरल हो सकता और जिसम बिनय और सरलता नही है उससे भजन ठीक तरह से हो नही सकता।

दो. पुरुष नपुसक नारि वा, जीव चराचर कोइ।
सर्ब भाव भज कपट तजि, मोहि परम प्रिय सोइ॥८७ क.

सो. सत्य कहौ खग तोहि, सुचि सेवक मम प्रान प्रिय।
अस बिचारि भजु मोहि, परिहरि आस भरोस सब॥८७॥

अर्थ चाहे पुरुष हो नपुंसक हो नारी हो अथवा कोई भी चराचर जीव हो। जो सर्व भाव से मुझे कपट छोडकर भजता है वही मुझे परम प्रिय हैं। हे पक्षी। मैं तुझसे सत्य कहता हूँ कि शुचि सेवक मुझे प्राण सा प्यारा है। ऐसा विचार करके सब आशा भरोसा छोडकर मुझे भजो।

व्याख्या : अपने पिता की भक्ति करने का सबको अधिकार है। इसी भाँति मेरी भक्ति करने का सबको अधिकार है। पर उस भक्ति मे दिखावा न हो। प्रीति सच्ची चाहिए। कपट प्रीति से काम नही चलता। अत भगवान् कहते हैं कि यहाँ जाति पाँति का टण्टा नही। पुण्य यानि हीन योनि का विचार नही। बडे छोटे का विचार नही। जो कोई भगवान् को कपट छोडकर भजे वही उन्हे प्राणप्रिय हो जाता है। जीव सभी प्रिय हैं पर प्राणप्रिय होने का रास्ता तो भजन है। अन्य गुणो से

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


पदवी बढेगी पर प्रिय न बन सकेगा। ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित होना और भगवान् को प्रिय होना दो बात है। यह नियम नही कि जो ऊँचे पद पर हैं वह भगवान् को प्रिय हैं।

शुचि सेवक से प्रसङ्ग उठा था। यथा : सुचि सुसील सेवक सुमति प्रिय कहु कहि न लाग और सुचि सेवक कहकर समाप्त करते हैं। भाव यह कि वह मुझे प्राण प्रिय है। अत मुझे प्रिय होना हो तो सब आशा भरोसा छोडकर मुझे भजो।

कबहूँ काल न ब्यापिहि तोही। सुमिरेसि भजेसि निरंतर मोही ॥
प्रभु बचनामृत सुनि न अघाऊँ। तन पुलकित मन अति हरखाऊँ ॥१॥

अर्थ कभी तुझे काल नही व्यापेगा। निरन्तर मेरा स्मरण भजन करते रहना। प्रभु के अमृत से वचन सुनने से तृप्ति नही होती थी। मेरे शरीर में पुलक था और मन हर्षित हो रहा था।

व्याख्या . परिवर्तन का कारण काल है। सो उसकी गति तेरे लिए बन्द कर दी जाती है। परन्तु आत्मकृपा मे न चूकना मेरे स्मरण भजन मे अन्तर न पडने पावे। अन्तर पडने से ही काल का घात बैठता है। यथा : नाम पाहरू दिवस निसि ध्यान तुम्हार कपाट। लोचन निज पद जंत्रित प्रान जाहिं केहि बाट। मृत्यु तो प्रमाद ही है। प्रमादो वै मृत्यु'। भुसुण्डिजी पहिले काक्षामृत्यु थे। यथा ' कामरूप इच्छा मरन ग्यान बिराग निधान। अब अमर हो गये। सरकार की ओर से मरण की नियति हटा ली गयी।

बोले बचन परम सुख दायक से उपक्रम करके प्रभु बचनामृत सुनि न अघाऊँ से उपसहार कर रहे हैं। वरदान से तो तृप्ति हुई पर सरकार के वचनामृत से तृप्ति नही हुई। उसके सुनने से ऐसा सुख उपजता था कि शरीर पुलकित हो रहा था और मन मे हर्ष बढता जाता था।

सो सुख जानै मन अरु काना। नहि रसना पहि जाइ बखाना ॥
प्रभु सोभा सुख जानहि नयना। कहि किमि सकहि तिनहि नहि बयना ॥२॥

अर्थ : वह सुख मन और कान जानता है। जिह्वा द्वारा कहा नही जा सकता। प्रभु की शोभा का सुख आँखें जानती हैं पर वे कहे कैसे उन्हे वाणी नहीं है।

व्याख्या भुसुण्डिजी को ब्रह्म सस्पर्श का अत्यन्त सुख मिल रहा है। श्रवणेन्द्रिय द्वारा सरकार की वाणी हृदयङ्गम हो रही है और सरकार का रूप चक्षु इन्द्रिय द्वारा प्रत्यक्ष हो रहा है। अत मन दो प्रकार से ब्रह्म साक्षात्कार कर रहा है। चक्षु और श्रोत्र दोना ज्ञानेन्द्रियाँ हैं। मन के योग से ये दिव्याति दिव्य विषय का भोग कर रही हैं। रसना तो कर्मेन्द्रिय है : उस सुख के उपभोग मे इसका प्रवेश ही नही तो यह कहे कैसे ? दूसरी बात यह है कि इसका नाम ही रसना है। इसमे रस नही इसीलिए इसे वैखरी कहते हैं . यह इस महारस का वर्णन कैसे करे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बहु बिधि मोहि प्रबोधि सुख देई । लगे करन सिसु कौतुक तेई ॥
सजल नयन कछु मुख करि रूखा । चितइ मातु लागी अति भूखा ॥३॥

अर्थ : बहुत प्रकार से मुझे समझा बुझाकर सुख दिया। फिर वही लड़कपन का कौतुक फिर करने लगे। आँखों मे आँसू भरकर और कुछ रूखा चेहरा करके माँ को देखा। क्योकि बडी भूख लग गयी थी।

व्याख्या : शाश्वत जगद्गुरु ने बहुत प्रकार से ज्ञानोपदेश किया और इस भाँति भी सुख दिया। सरकार विदाई के समय विरहजन्य पीड़ा के कम करने के लिए ज्ञानोपदेश करते हैं। यथा :

नहि अन्तर नहि बाह्य जहँ, नही देश नहि काल।
चित्सुख रूप सरूप मम, बाकी माया जाल ॥१॥
माया में सब सम्भवत, कछू असम्भव नाहि।
याते मायिक रूप में, अगनित भुवन लखाहि ॥२॥
विना नियम जस सपन में देश काल को भान।
तै सोइ माया रूप में, देश काल पहिचान ॥३॥
प्रकटत कतहूँ माधुरी ऐश्वर भाव छिपाय।
होत प्रकट ऐश्वर्य कहुँ, सो माधुरी दुराय ॥४॥
मैं समान दुहुरूप मे, एसो जिय ठहराय।
लीला निरखत माधुरी बुध जन मन हरखाय ॥५॥

अब उस प्रसङ्ग को समाप्त करके फिर वही शिशुपन की लीला आरम्भ कर दी। बचपन में जब बहुत भूख लगती है तभी बच्चे खेल से विरत होते हैं। सो खेलते खेलते बहुत देर लग गयी अतः बड़ी भूख लगी। आँखों मे आँसू आ गये माँ की ओर कुछ रूखा चेहरा करके देखा। माँ बराबर मुँह देखा करती है। समझ गयी कि इन्हे भूख लग गयी अब रोया चाहते हैं।

देखि मातु आतुर उठि धाई । कहि मृदु बचन लिए उर लाई ॥
गोद राखि कराव पय पाना । रघुपति चरित ललित कर गाना ॥४॥

अर्थ : देखकर माँ आतुर होकर दौड़ पड़ी और मृदु वचन कहकर हृदय से लगा लिया। गोद मे लेकर दूध पिलाने लगी और रघुपति के सुन्दर चरित का गान करने लगी।

व्याख्या : बच्चे को भूखा देखकर माँ उठकर दौड़ पड़ी। दासी को लाने की आज्ञा नही देती स्वयं दौड़ पडती हैं। प्यार के शब्दो से सम्बोधन करती हुई गोद में रखकर दूध पिलाती है। दूध पिलाने के समय बच्चो को सुलाने के लिए माँ मधुगान भी करती है। यथा :

ललन लोने लेरुआ बलि मैया।
सुख सोइये नीद बेरिया भई चारु चरित चारयो भइया ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कहत मल्हाइ लाइ उर छिन छिन छगन छबीले छोटे छैया।
मोदकन्द कुल कुमुदचन्द मेरे रामचन्द्र रघुरैया॥
रघुपति बालकेलि संतन की सुभग सुखद सुरगैया।
तुलसी दुहि पीवत सुख जीवत पय सप्रेम घने घैया॥
इत्यादि : गीतावली

सो. जेहि सुख लागि पुरारि, असुभ वेष कृत सिव सुखद।
अवधपुरी नर नारि, तेहि सुखमँहु संतत मगन॥८८ क.
सोई सुख लवलेस, जिन बारक सपनेहु लहेउ।
ते नहि गनहिं खगेस, ब्रह्म सुखहिं सज्जन सुमति॥८८ ख.

अर्थ : जिस सुख के लिए त्रिपुरारि शिवजी ने सुख देनेवाले होकर अशुभ वेष बना लिया है। अवधपुर के नर नारी तो उस सुख मे सदा मग्न रहते हैं। उस सुख का लवलेश जिसने एक बार भी सपने मे पाया है हे खगेश! वह सज्जन सुमति ब्रह्मानन्द को भी नही गिनता।

व्याख्या : पुरारि कहकर शिवजी का अचिन्त्य सामर्थ्य और ऐश्वर्य कहा। उन्हे कोई सुख दुर्लभ नही है। फिर भी ध्यान मे शृंगाररस को बाधक समझकर सदा उसके प्रतिकूल अशुभ वेष धारण किये रहते हैं। यथा 'नहि स्वात्मारामं विषयमृगतृष्णा भ्रमयति। उन्हे रामजी की क्रीडा बडी प्रिय है। उसी के ध्यानजन्य सुख मे आनन्दित रहना चाहते है। यहाँ सभी अवधवासी नर नारी उस सुख मे सदा मग्न रहते हैं।

श्री गोस्वामीजी कहते हैं कि वह सुख ब्रह्मानन्द से भी बहुत अधिक है। यथा त्वत्साक्षात्करणाह्लादविशुद्धाब्धिस्थितस्य मे। सुखानि गोष्पदायन्ते ब्राह्मण्यपि जगद्गुरो। ब्रह्म चक्षु का विषय नही है। यथा : यच्चक्षुषा न पश्यन्ति। मनोवृत्तिका ब्रह्माकार होना ही ब्रह्मानन्द है। उसी वृत्ति मे जो आनन्द प्रतिफलित होता है उसी को ब्रह्मानन्द कहते हैं परन्तु योग माया द्वारा वह महाप्रभु अपने को भक्तोका नयनगोचर भी बना देता है। अतः लीलामूर्ति के साक्षात्कार मे केवल मानसिक साक्षात्कार : सो भी अमूर्त के साक्षात्कार से कही अधिक आनन्द होगा इसमे सन्देह नही।

मैं पुनि अवध रहेउँ कछु काला। देखेउँ बालबिनोद रसाला॥
राम प्रसाद भगति बर पायेउँ। प्रभुपद बंदि निजास्रम आयेउँ॥१॥

अर्थ : मै फिर अवध मे कुछ काल रहा और रसीला बालविनोद देखता रहा। रामजी के प्रसाद से भक्तिवर पाया और सरकार के चरणो की वन्दना करके अपने आश्रम मे चला आया।

व्याख्या : भुसुण्डिजी का नियम था कि पाँच वर्षतक अवध मे रहकर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बालविनोद देखते थे। और तत्पश्चात् अपने आश्रम पर चले आते थे। तदनुसार इस बार भी किया। यहाँ कछु काल से वही पाँच वर्ष का अवशिष्ट काल अभिप्रेत है। अब बालविनोद के देखने में मोह नहीं है बड़ा आनन्द आया इसलिए रसाल कहते हैं। यहाँ भक्ति से भी वही भक्ति अभिप्रेत है जो मुनियों को दुर्लभ है। नहीं तो लोमशऋषि तो आशीर्वाद देही चुके थे कि : रामभक्ति अविरल उर तोरे। बसिहि सदा प्रसाद अब मोरे। अतः इस बार मुनिदुर्लभ भक्ति वर पाकर अपने आश्रम को लौटे। चलने के समय चरण वन्दना किया।

तब ते मोहि न व्यापी माया। जब ते रघुनायक अपनाया ॥
यह सब गुप्त चरित मै गावा। हरिमाया जिमि मोहि नचावा ॥२॥

अर्थ : तब मुझे माया नही व्यापी जब से रामजी ने मुझे अपना बना लिया। यह सब गुप्त चरित्र मैंने कहा जिस भाँति हरिमाया ने मुझे नचाया।

व्याख्या : रामकृपा आपन जड़ताई। कहहुँ खगेस सुनहु मनलाई : से जिस प्रसङ्ग को उठाया था उसे यहाँ समाप्त करते हैं। कहते हैं कि राम कृपा से मेरी जड़ता चली गयी। रामजी ने अपना कर लिया मेरा मन सरकार में ऐसा लगा कि फिर मुझे माया नही व्यापी। भाव यह कि मेरे सिर पर जब से हाथ भगवान् ने रक्खा तब से मुझे अपना लिया। तेहि कौतुक कर मर्म न काहू। जाना अनुज न मातु पिताहू। इसलिए कहते हैं कि यह सरकार का गुप्त चरित्र है। इसे सब नही जानते और जो जानते हैं वे प्रकाश नहीं करते। क्योंकि इस गुप्त चरित्र के समझने के अधिकारी नही मिलते। आप अधिकारी हैं इसलिए आप से कहा। हरिमाया के वश में मैं भी नाच चुका हूँ कोई इससे बचा नही है। इसलिए आप अपने लिए आश्चर्य न कीजिये।

निज अनुभव अब कहौ खगेसा। बिनु हरिभजन न जाहि कलेसा ॥
रामकृपा बिनु सुनु खगराई। जानि न जाइ राम प्रभुताई ॥३॥

अर्थ : हे पक्षिराट्! अब मैं अपना अनुभव कहता हूँ कि बिना हरि भजन के क्लेश जाते नही। हे पक्षिराट्! सुनो बिना राम कृपा के रामजी की प्रभुता जानी नही जाती।

व्याख्या : सरकार ने कहा : जानब तैं सबही कर भेदा। मम प्रसाद नहि साधन खेदा। सो उनके प्रसाद से जो अनुभव मुझे हुआ उसे भी सुनाता हूँ। क्लेश पाँच प्रकार के होते हैं : अविद्याऽस्मितारागद्वेषाभिनिवेशाः क्लेशाः। यो० सू० १. अविद्या २. अस्मिता ३. राग ४. द्वेष और ५. अभिनिवेश। अनित्य अशुचि दुःख और अनात्म को नित्य शुचि और आत्मा समझना अविद्या है। पुरुष और बुद्धि की एकात्मता को अस्मिता कहते हैं। सुख के अनुसारी होनेवाले ज्ञान को राग और दुःख के अनुसरण करनेवाले ज्ञान विशेष को द्वेष कहते हैं और मरण भय को अभिनिवेश कहते हैं। इन्ही के कारण प्राणिमात्र दुःखी हैं। उन दुःखों के हटाने के

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उपायो से शास्त्र भरे पडे हैं। पर मेरा अनुभव यह है कि बिना हरि भजन के ये दूर होते नही। यथा :

नाहि न आवत आन भरोसो।
एहिकाल सकल साधन तरु है स्रम फलनि फरोसो।।
तप तीरथ उपवास दान मख जेहि जो रुचै करोसो।
पाएहि पै जानिबो करम फल भरि भरि वेद परोसो।।
आगम विधि जप जाग करत नर सरत न काज खरोसो।
सुख सपनेहु न जोग सिधि साधन रोग वियोग धरोसो।।
काम क्रोध मद लोभ मोह मिलि ज्ञान विराग हरोसो।
बिगरत मन सन्यास लेत जल नावत आम घरोसो।।
बहुमत सुनि बहुपथ पुराननि जहाँ तहाँ झगरोसो।
गुरु कह्यौ राम भजन नीको मोहि लगत राज डगरोसो।।

विनय पद १७३

जिसकी दासी माया के वशवर्ती ब्रह्मादिक देवता और असुर हैं अन्यजीवो की क्या गिनती है। उस महाप्रभु को प्रभुता को दिनरात देखता हुआ भी संसार नही जानता। जिस पर उनकी कृपा होती है वही जान सकता है।

जाने बिनु न होइ परतीती। बिनु परतीति होइ नहि प्रीती।।
प्रीति बिना नहि भगति दिढाई। जिमि खगपति जलकै चिकनाई ।।४।।

अर्थ : बिना जाने प्रतीति नही होती और बिना प्रतीति प्रीति नही होती। प्रीति बिना भक्ति दृढ नही होती। हे खगेश! जैसे जल की चिकनाई दृढ नही होती।

व्याख्या : जब उनके भजन से क्लेश मिटता है तो ससार उनका भजन क्यो नही करता ? इस पर भुसुण्डिजी कहते हैं कि संसार उनकी प्रभुता को नही जानता। इसलिए उसे विश्वास नही होता कि उनके भजन से सब क्लेश मिट सक्ते हैं। यदि विश्वास हो कि उनके भजन से क्लेश मिट जाते हैं तो उन पर प्रीति क्यो न हो : जेहिते कछु निज स्वारथ होई। तेहिपर ममता कर सब कोई। फिर भी भजन करते तो लोग देखे जाते हैं और क्लेश मे भी पडे हुए हैं। इस पर कहते हैं कि वह भजन दृढ नही है। क्योकि उन्हे भजनीय भगवान् मे प्रीति नही है। यथा : रामहि सुमिरत रन भिरत देत परत गुरु पाय। तुलसी जिन्हहि न पुलकतन ते जन जीवन जाय। उनका भजन वैसा ही है जैसा जल का चिकनापन। चिकनापन तो स्नेह : तेल घी आदि मे है। पानी का चिकनापन तो नाममात्र के लिए है। इसी भांति उनका भजन भी नाममात्र के लिए है।

सो. बिनु गुरु होइ कि ज्ञान, ज्ञान कि होइ विराग बिनु।
गावहि वेद पुरान सुख कि लहिअ हरि भगति बिनु।।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कोउ बिस्राम कि पाव, तात सहज संतोष बिनु।
चलै कि जल बिनु नाव कोटि जतन पचि पचि मरिअ ॥८९॥

अर्थ : क्या ज्ञान बिना गुरु के हो सकता है और क्या बिना विराग के ही ज्ञान हो जायगा। वेद पुराण कहते हैं कि क्या बिना भक्ति के सुख मिल सकता है। हे तात! क्या बिना सहज सन्तोष के किसी को विश्राम मिल सकता है। क्या बिना जल के नाव चल सकती है। चाहे कोई करोड़ यत्न करके प्राण दे दे।

व्याख्या : गुरु साक्षात् परमेश्वर के अनुग्रह शक्ति के स्वरूप होते हैं। बिना गुरु के ज्ञान हो नहीं सकता। सभी वस्तु के ज्ञान के लिए गुरु की आवश्यकता होती है कि पुनः अदृश्य वस्तु का ज्ञान तो बिना गुरु हो ही नहीं सकता। यथा : स गुरुमेवाभिगच्छेत् श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्। एकलव्य ने द्रोणाचार्य की मिट्टी की प्रतिमा बनाकर उससे शस्त्रविद्या सीखी थी। यह कथा महाभारत मे प्रसिद्ध है। परन्तु बिना विराग के केवल गुरु से भी काम नहीं चलता। बिना विराग के परिश्रम करनेवाले की वही गति होती है जो कि उस नाविक की हुई जिसने नाव को घाट से छोड़ा नहीं और रात भर खेता रहा। प्रात काल उँजेला होने पर उसने देखा कि वह जहाँ की तहाँ ही है। उसका सारा परिश्रम व्यर्थ गया। अतः वेद पुराण ज्ञान के लिए गुरु और वैराग्य दोनों की उपयोगिता अपरिहार्य बतलाते हैं।

गुरु और वैराग्य की सहायता से ज्ञान तो हो जाता है पर उससे सुख नहीं मिलता। सुख तो हरिभक्ति से ही मिलता है। राजप्रासाद : महल या नाना प्रकार के व्यञ्जन के दर्शन : ज्ञान से न तो राजा की कृपा की प्राप्ति होती है न क्षुधा की शान्ति होती है। इसी भाँति शुष्क ज्ञान काम नहीं देता। राजमहल मे जाकर राजा की प्रसन्नता प्राप्त करने से आनन्द मिलता है। वही हाल भोजन का है। क्षुधा शान्ति तो भोजन के ज्ञान से नहीं होती खाने से होती है। भगवान् नारद ने यही बात कही है : राजगृह भोजनादिषु तथैव दृष्टत्वात्। ना० सू० ३१। न तेन राजपरितोषः। ३२। तस्मात् सैव ग्राह्या मुमुक्षुभिः। ३३। अत. मुमुक्षुओं को भक्ति ही ग्रहण करनी चाहिए।

न जातु कामः कामानामुपभोगेन शाम्यति। हविषा कृष्णवर्त्मेव भूय एवाभिवर्धते। कामों के उपभोग से काम की शान्ति नहीं होती। अग्नि मे घी डालने की भाँति वह तो बढ़ता ही जावेगा। स्वाभाविक सन्तोष से अर्थात् सर्वथा सन्तोष धारण कर लेने से ही विश्राम मिलता है। विश्राम तभीतक बना है जबतक सन्तोष है। नाव तभीतक चलती रहेगी जबतक जल है।

बिनु संतोष न काम नसाहीं। काम अछत सुख सपनेहु नाहीं॥
राम भजन बिनु मिटहिं न कामा। थल बिहीन तरु कबहुँकि जामा॥१॥

अर्थ : बिना सन्तोष के कामनाश नहीं होता और काम के रहते सुख स्वप्न मे भी नहीं मिलता। राम के भजन बिना काम मिटता नहीं। क्या बिना थल के कहीं पेड़ जमता है?

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या सन्तोष करने से ही काम का नाश होता है। वह महाशन : बड़ा खानेवाला है। उसकी तृप्ति नहीं होती और काम का नाश हो तब विश्राम सुख मिले। सन्तोष से काम का नाश तो हो जाता है अर्थात् विरोधी भावना से उपमर्दित होकर तनुभाव को प्राप्त हो जाता है। उसका आत्यन्तिक नाश तो तभी सम्भव है जब राम भजन से उनका संस्कार भी मिट जाय। यथा ऊसर बरसै तृन नहि जामा। जिमि हरिजन हिय उपज न कामा। तब काम वृक्ष के उगने के लिए स्थल ही न रह जायगा।

बिनु बिज्ञान कि समता आवै। कोउ अवकास कि नभ बिनु पावै॥
श्रद्धा बिना धरमु नहि होई। बिनु महि गंध कि पावै कोई॥२॥

अर्थ बिना विज्ञान के क्या कभी समता आती है। क्या कोई बिना आकाश के ही अवकाश पा सकता है। श्रद्धा के बिना धर्म हो नहीं सकता। जिस भाँति बिना पृथिवी के गन्ध की प्राप्ति नहीं हो सकती।

व्याख्या भोजन करिअ तृपिति हित लागी। जिमि सो असन पचव जठरागी। अस हरि भगति सुगम सुखदाई। को अस मूढ न जाहि सुहाई। सो भजन की उपमा भोजन से दी गयी है। भोजन व्यञ्जन है। उसमे अनेक पदार्थ होते हैं। पार्थिव जलीय तैजस वायवीय और आकाशीय। उन्ही से यह पाञ्चभौतिक शरीर चलता है। इसमे सन्देह नही कि लवण बिना व्यञ्जन फीका होता है पर केवल लवण भी तो खाया नही जाता। एवम् भजन भी समता, श्रद्धा, तप, शील, आत्मसुख संयुक्त ही होता है। अत यहाँ पर इन्ही पांचो का उदाहरण देते हुए ग्रन्थकार कहते हैं कि बिना विज्ञान के ब्रह्म साक्षात्कार के समता नहो आती। क्योकि सृष्टि मे तो सर्वत्र विषमता ही विषमता है। सम बुद्धि तो बिना राममय जगत् देखे हो नही सकती और समबुद्धि ही विज्ञान है। जैसे बिना आकाश के कही अवकाश नही मिल सकता उसी भाँति बिना विज्ञान के समता नही आसकती। आकाश का उदाहरण देकर अब पृथिवी का उदाहरण देते हैं कि जैसे गन्धवती पृथिवी। बिना पृथिवी के गन्ध की प्राप्ति नही हो सकती। उसी भाँति बिना श्रद्धा के धर्म की प्राप्ति नही हो सकती अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतञ्च यत्। असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह।

बिनु तप तेज कि कर बिस्तारा। जल बिनु रस कि होइ संसारा॥
सील कि मिल बिनु बुध सेवकाई। जिमि बिनु तेज न रूप गुसाईं॥३॥

अर्थ बिना तप के कही तेज विस्तार कर सकता है। बिना जल के कही संसार मे रस हो सकता है। बिना पण्डित की सेवा के कही शील की प्राप्ति हो सकती है जैसे हे गोसाईं। बिना तेज के रूप नही हो सकता।

व्याख्या अब जल का उदाहरण देते है कि जैसे बिना जल के संसार मे रस नही होता उसी भाँति बिना तप के तेज अशुद्धि क्षय नही होता। सो तप भी भजन का अङ्ग है। जो तपस्वी नही वह भजन क्या करेगा? अब तेज का उदाहरण देते

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हैं कि जैसे बिना तेज के रूप नहीं होता वैसे ही बिना पण्डित की सेवा किये शील नही होता। शील मे सब ऐश्वर्य का वास है। दु:शील भक्त कैसे हो सकता है। अतः ये सब उदाहरण उपयुक्त हैं।

निज सुख बिनु मन होइ कि थीरा। परस कि होइ बिहीन समीरा॥
कवनिउ सिद्धि कि बिनु बिस्वासा। बिनु हरि भजन न भवभय नासा॥४॥

*अर्थ : आत्मसुख बिना क्या मन स्थिर हो सकता है क्या बिना वायु के स्पर्श* हो सकता है। बिना विश्वास के क्या कोई सिद्धि हो सकती है। बिना हरि भजन के भवभय नाश नही हो सकता।

व्याख्या : अब वायु का उदाहरण देते हैं कि बिना वायु के स्पर्श नही हो सकता। इसी भाँति बिना आत्मसुख के मन स्थिर नही हो सकता। आत्म सुख ही इतना बड़ा सुख है कि उनके प्राप्त होने पर उससे अधिक सुख का होना सम्भव नही होता। अतः मन स्थिर हो जाता है। दूसरी ओर नही जाता। भक्ति मे उसी जगदात्मा राम मे ही मन लगाकर भक्त परम आनन्द को प्राप्त होता है। *यथा* : सा न कामयमाना निरोधरूपत्वात्। ना० सू० ७।

इसी भाँति विश्वास भी भक्ति मे अपरिहार्य है। विश्वास बिना तो कोई भी सिद्धि नही हो सकती। जब अनुष्ठानो को ही विश्वास नही तो सिद्धि कैसे होगी। इतने उदाहरण देकर कवि निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि हरि भजन बिना भवभय का नाश नही होता। भवभय भजन अन्य उपाय से असम्भव है। यथा : भजेउ राम आपु भवचापू। भव भय भंजन नाम प्रतापू। भवानीशङ्करौ वन्दे श्रद्धाविश्वासरूपिणौ। *याभ्यां विना न पश्यन्ति सिद्धा स्वान्तस्थमीश्वरम्।*

दो. बिनु बिस्वास भगति नहिं, तेहि बिनु द्रवहिं न राम।
राम कृपा बिनु सपनेहु, जीव न लह बिस्राम॥९० क.
सो. अस बिचारि मति धीर, तजि कुतर्क संसय सकल।
भजहु राम रघुबीर, करुनाकर सुन्दर सुखद॥९० ख.

अर्थ : बिना विश्वास के भक्ति नही और भक्ति बिना रामजी द्रवीभूत नही होते और रामकृपा बिना जीव को स्वप्न मे भी विश्राम नही मिलता। हे मतिधीर! ऐसा विचारकर और सब कुतर्क और संशय को छोड़कर करुणाकर सुखद सुन्दर रघुबीर को भजो।

व्याख्या : जब विश्वास ही नही तब भक्ति कैसे होगी। पहिले तो भजनीय पर विश्वास होना चाहिए कि वे अवश्य रक्षा करेंगे। यथा : रक्षिष्यतीति विश्वासः। जब विश्वास होता है तब चरणो मे मन ठहरता है अर्थात् भक्ति होती है और जब भक्ति होती है तब सरकार कृपा करते हैं। यथा : भजत कृपा करिहैं रघुराई। और सरकार की कृपा होने से मन को विश्राम मिलता है। *यथा* : जाकी कृपा लवलेस

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ते मतिमद तुलसीदासहू। पायेउ परम विस्राम राम समान प्रभु नाही कहूँ। अत' यह सिद्ध हुआ कि बिना हरिभक्ति के सुख की प्राप्ति नही हो सकती। संशय छोडने से छूटता है। शुष्क तर्क कुतर्क है। इससे कभी कल्याण नही हाता। मतिधोर इनका त्याग करते हैं। अत गरुडजी! करुणाकर सुन्दर सुखद रघुबीर को भजो। उनके भजन मे सुख ही सुख है। यथा तुलसिदास सब भाँति सकल सुख जौं चाहीस मन मेरो। तौ भजु राम काम सब पूरन करहिं कृपानिधि तेरो।

निजमति सरिस नाथ मै गाई। प्रभु प्रताप महिमा खगराई॥
कहेउ न कछु करि जुगुति बिसेखी। यह सब मै निज नयनन्हि देखी॥१॥

अर्थ हे पक्षिराट्! मैंने अपनी वुद्धि के अनुसार प्रभु के प्रताप की महिमा का गान किया। मैंने कोई विशेष युक्ति से नही कहा। यह सब मेरे आँखो देखी हुई बात है।

व्याख्या पहिल कह आये हैं कि सुनु खगेस रघुपति प्रभुताई। कहउँ जथामति कथा सुहाई उसी का उपसहार करते हुए कहते हैं निज मति सरिस नाथ मैं गाई। प्रभुताई और प्रभु का प्रताप या महिमा एक बात है। यह अपने अपने मति अनुसार ही गान किया जा सकता है। इसका पार तो निगम सेप शिव भी नही पा सकते। यथा निज निज मति मुनि हरि गुन गावहिं। निगम सेप सिव पार न पावहिं। राम गहन कहँ भुजा पसारी से लकर देखि चरित यह सो प्रभुताई। समुझत देह दसा बिसराई तक प्रभुता का वर्णन किया। अब कहते हैं कि जो कुछ मैंने बातें कही है वे मेरी आँखा देखी हैं। इसके वर्णन म युक्ति को स्थान नही दिया। युक्ति से वर्णन ज्योतिषी लोग करते हैं। वे भी सूर्य चन्द्र ग्रह नक्षत्र मण्डल ब्रह्माण्ड के विषय मे बहुत कुछ अपनी युक्ति के बल से कहते हैं। उनकी वे सब बातें अनुमानसिद्ध हैं पर मैंने तो अपनी आंखो से देखा है।

महिमा नाम रूप गुन गाथा। सकल अमित अनत रघुनाथा॥
निज निज मति मुनि हरिगुन गावहि। निगम सेप सिव पार न पावहि॥२॥

अर्थ रामजी की महिमा, नाम, रूप सभी अनन्त और असीम है। अपनी अपनी बुद्धि के अनुसार मुनि लाग हरिगुण का गान करते हैं। वेद शेष और महेश पार नही पाते।

व्याख्या सरकार की महिमा, नाम, रूप और गुण गाथा की अनन्तता अपेक्षाकृत नही है। वह वेद शेष और महेश के लिए भी अनन्त और असीम है। नाम रूप लीला और धाम का आश्रयण करके प्रभु के विषय मे कुछ कहा जा सकता है। यहाँ गुण गाथ से लीला और महिमा से धाम अभिप्रेत है। भगवती श्रुति कहती है कि वह अपनी महिमा म प्रतिष्ठित है। ये ही चारो सरकार के विग्रह हैं। यथा 'रामस्य नाम रूपञ्च लीला धाम परात्परम्। एतच्चतुर्विध प्राहु साक्षाद् रामस्य

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विग्रहः। सो ये चारो अनन्त और अमित हैं। अतः गान करनेवाला अपने यावद्बुद्धि-बलोदय ही गान कर सकता है।

तुम्हहि आदि खग मसक प्रजंता। नभ उड़ाहिं नहिं पावहिं अंता ॥
तिमि रघुपति महिमा अवगाहा। तात कबहुँ कोउ पाव कि थाहा ॥३॥

अर्थ : पक्षियों मे तुमसे लेकर मच्छड़ तक आकाश मे उड़ते हैं लेकिन उसका थाह नही मिलता। उसी भाँति रघुपति की महिमा अथाह है। हे तात ! उसका थाह कोई पा नही सकता।

व्याख्या : महिमा की अनन्तता तथा अमितत्व दिखलाकर अब उसका अथाह होना भी कहते हैं। उदाहरण देते हुए कहते हैं कि आकाश में उड़नेवालो मे आप सबसे श्रेष्ठ हैं महापराक्रमी हैं और मच्छड़ अत्यन्त अल्पपराक्रम है। आकाश का थाह न आपको ही मिला न मच्छड़ को ही मिला क्योंकि उसका थाह है ही नही। इसी भाँति सरकार की महिमा का वारपार ( थाह ) है नही। कोई पावेगा कैसे ? फिर भी न आपने उड़ना बन्द किया न मच्छड ने। इसी भाँति प्रभु की महिमा का वर्णन शेष महेश भी करते हैं और तुलसीदास भी करते हैं : बुध बरनहि हरि जस अस जानी। करहि पुनीत सुफल निज बानी।

राम[1] काम सत कोटि सुभग तन। दुर्गा कोटि अमित अरि मर्दन ॥
सक्र कोटि सत सरिस बिलासा। नभ सत कोटि अमित अवकासा ॥४॥

अर्थ : रामजी सौ कोटि काम की भाँति सुन्दर शरीरवाले हैं। अमित कोटि दुर्गा के समान शत्रु सहारक हैं। सौ कोटि इन्द्र के समान उनका विभव विलास है और सौ कोटि आकाश की भाँति अनन्त अवकाश है।

व्याख्या : उसी महिमा का अब कुछ दिग्दर्शन कराते हैं। कहते हैं कि राम मे सौ कोटि काम सी सुन्दरता है। ससार मे सुन्दरता की सीमा काम ही माना गया है। परन्तु राम की सुन्दरता के आगे काम की सुन्दरता कुछ भी नही क्योंकि वे काम के भी काम हैं। साक्षान्मन्मथमन्मथ: है। उनकी सुन्दरता के लेश को पाकर काम सुन्दर है। सभी शक्तियो के मूलस्रोत होने से प्रभु को दुर्गा कोटि अमित अरि-मर्दन कहा। यथा : पाइ जासु बल बिरचति माया। जाके बल बिरचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा।

विलास की परा सीमा इन्द्र तक है क्योंकि वही देवराज है। रावण के विलास के वर्णन मे भी कवि ने विलास के जाँचने के लिए इन्द्र के विलास को ही मानदण्ड बनाया। यथा : सुनासीर सत सरिस सो संतत करै बिलास। अतः रावण के विलास की भी नाप हो गयी। यहाँ तो सक्र कोटि सत सरिस बिलासा कहते हैं। भाव यह कि इनके विलास के सामने इन्द्र के विलास की कुछ गिनती नही। महात्माओ से

---

१. यहाँ उल्लेख ' द्वितीय : अलङ्कार है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुना है कि ९९ रास तो रामावतार मे ही हुआ है और ये रास चौदह वनो मे हुआ करते थे। उमा राम की भृकुटि बिलासा। होइ बिस्व पुनि पावइ नासा। उनके विलास के सामने इन्द्र का विलास क्या है। यथा सूख हाड ले भाग सठ स्वान निरखि मृगराज। छीन लेइ जनि जानि जड तिमि सुरपतिहि न लाज। सौ इन्द्र के आनन्द इतना बृहस्पति को आनन्द है। उनका सौगुना प्रजापति को और राम तो आनन्दरूप ही हैं।

पर इन सब बातो के सुनने से कोई सरकार को परिच्छिन्न न मान ले इसलिए कहते हैं कि उनमे सौ कोटि आकाश सा अवकाश है। सन्देह उठ सकता है कि आकाश तो अनन्त है। अब अनन्त का शत कोटि कैसे सम्भव है? बात यह कि सरकार तो साक्षात् चिदाकाश हैं और चिदाकाश के एक एक अणु म भूताकाश हैं। अत एक एक चिदणु के पृथक् पृथक् भूताकाश है। अत नभ शतकोटि अमित अवकाश बन जाता है।

सरकार के गुणो का पारावार नही पर उतना ही प्रकट करते हैं जितने की जहाँ आवश्यकता है।

दो मरुत कोटि सत बिपुल बल, रबि सत कोटि प्रकास।
ससि सत कोटि सो सीतल, समन सकल भव त्रास ॥९१ क
काल कोटि सत सरिस अति, दुस्तर दुर्ग दुरत।
धूमकेतु सत कोटि सम, दुराधर्ष भगवत ॥९१ ख

अर्थ सौ कोटि वायुदेव की भाँति उनको बडा बल है। सौ कोटि सूर्य सा प्रकाश है। सौ कोटि चन्द्रमा की भाँति वे शीतल सब भवत्रास के हरण करनेवाले हैं। सौ कोटि काल के समान अत्यन्त दुस्तर दुर्गम और अन्त रहित हैं और सौ करोड धूमकेतुओ की भाँति भगवान् दुराधर्ष हैं।

व्याख्या बल तो वायु मे ही है। वायु को रोककर ही ससार बल प्रदर्शन करता है। परन्तु उस वायु म भी बल प्रदाता सरकार हैं। बिना उनकी कृपा वायुदेव एक तिनका नही हिला सकते। केनोपनिषत् म इसका विस्तार है। अत वायु का बल उनके सामने कुछ भी नही। ससार सूय के प्रकाश से प्रकाशित होता है पर जिस प्रकाश से सूय प्रकाशित होते है वह तो रामचन्द्र का ही प्रकाश है। इसलिए सूर्य का प्रकाश उनके प्रकाश के सामने नगण्य है। च द्रमा शीतलता देते हैं। परन्तु दु ख से सन्तप्त हृदय पुरुष को तो उनकी शीतलता से शीतलता नही आती। परन्तु सरकार ऐसे शीतल है कि उनकी शीतलता से भवताप से सन्तप्त हृदय शीतल हो जाता है। अत उस शीतलता के सामने चन्द्र की शीतलता क्या है?

अड कटाह अमित लयकारी। काल सदा दुरतिक्रम भारी। इसलिए उसे दुस्तर दुर्ग दुरन्त कहा पर वह काल तो उनके हाथ मे रहता है। यथा लव निमेष परमान जुग बर्ष कल्पसर चड। भजसि न मन तेहि राम कहँ काल जासु को दड।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अतः काल की दुस्तरता दुर्गमता और दुरन्तरता उनके सामने कुछ नहीं है। इसी भांति धूमकेतु संसार को आर्ति देनेवाले हैं। परन्तु जिसके भृकुटि विलास से असख्य धूम्रकेतु की सृष्टि और लय हुआ करता है। यथा : उमा राम की भृकुटि बिलासा। होइ बिस्व पुनि पावइ नासा। उस प्रभु की दुराधर्षता के सामने धूम्रकेतु की दुराधर्षता क्या है। अथवा धूम्रकेतु का अर्थ अग्नि किया जाय तो भी वही बात है। अग्नि की दुराधर्षता सरकार की दुराधर्षता के सामने कुछ भी नहीं है।

प्रभु अगाध सत कोटि पताला। समन कोटि सत सरिस कराला॥
तीरथ अमित कोटि सत पावन। नाम अखिल अघपुंज नसावन॥१॥

अर्थ : सौ कोटि पाताल की भांति प्रभु अथाह हैं। सौ कोटि यमराज की भांति कराल हैं। अमित शत कोटि तीर्थ के समान पवित्र हैं। उनका नाम सम्पूर्ण पापपुञ्ज का नाश करता है।

व्याख्या : सरकार की अवतीर्ण मूर्ति अद्भुत है। उस छोटी सी मूर्ति मे ही सब कुछ है जो कुछ कि हम लोग जानते या सुनते हैं वह सब उसमे उत्कर्ष के साथ वर्तमान है। उसको प्राप्ति होने पर कुछ प्राप्त होना बच नही जाता। उसका वर्णन अशक्य है तथापि ग्रन्थकार जिस भांति मुनिगण ने प्रथम वर्णन किया है तदनुसार भुसुण्डि स्तुति के मिससे स्वय स्तुति कर रहे हैं।

गहराई मे पाताल लोक प्रसिद्ध है। फिर भी पाताल की गहराई की सीमा है पर रामजी की गहराई की सीमा नही है। जैसा कि स्वय भुसुण्डिजी अनुभव कर चुके है। अत. पाताल की गहराई सरकार की गहराई के सामने तुच्छ है। करालता मे यमराज की ख्याति है। परन्तु सरकार तो यम के भी यम है। यथा : मृत्युर्यस्योपसेचनम्। यमराज तो चटनी हैं इसलिए उन्हे सौ कोटि यम से भी कराल कहा।

ससार मे तीर्थ पवित्र करनेवाले हैं पर उन तीर्थ को तीर्थ बनानेवाले तो सरकार के भक्त हैं। यथा : तीर्थीकुर्वन्ति तीर्थानि। इसीलिए कहते हैं कि सरकार अमित कोटि तीर्थ के समान पवित्र हैं। उनके नाम मे इतना सामर्थ्य है कि वह सम्पूर्ण पापपुञ्ज का नाश कर देता है।

हिम गिरि कोटि अचल रघुबीरा। सिंधु कोटि सत सम गंभीरा॥
कामधेनु सत कोटि समाना। सकल काम दायक भगवाना॥२॥

अर्थ : रघुवीर करोड़ो हिमालय की भांति अचल और सौ करोड समुद्र की भांति गम्भीर हैं और भगवान् सौ करोड कामधेनु के समान सब कामनाओ के देनेवाले हैं।

व्याख्या . पर्वत स्थान परिवर्तन नही करते। इसी से उनका नाम ही अचल है। तिस पर हिमवान् सब पर्वतो के राजा है। वे कभी नही डिगते परन्तु भूकम्पादि मे वे भी हिल उठते हैं पर सरकार तो सर्वव्यापी हैं अनन्त हैं। उनसे व्यतिरिक्त कोई

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



स्थान ही नही है। अर्थात् उनके हिलने की जगह नही है। इसलिए उनको सौ करोड हिमवान् की भाँति अचल बतलाते हैं।

कामधेनु कामना पूरी करती है। धर्म अर्थ काम सब कुछ देती है पर मोक्ष या भक्ति नही देती और ये ही दोनो सब सुखखानि हैं। यथा मोक्ष सकल सुखखानि तथा सब सुखखानि भगति तै माँगी और सरकार मुक्ति और भक्ति दोना देते हैं। इसलिए उन्हे शत कोटि कामधेनु के समान सकल कामना का पूर्ण करनेवाला कहा।

सारद कोटि अमित चतुराई। विधिसत कोटि सृष्टि निपुनाई ॥
बिष्णु कोटि सत पालन करता। रुद्र कोटि सत सम संघरता ॥३॥

अर्थ अमित कोटि शारदा के समान चतुराई है। सौ करोड ब्रह्मदेव के समान सृष्टि की निपुणाई है। सरकार सौ करोड विष्णु के समान पालन करनेवाले तथा सौ करोड रुद्र के समान संहार करनेवाले हैं।

व्याख्या संसार मे कवि बडे चतुर समझे जाते हैं। जो चतुर नही है वह कवि हो नही सकता। सो कवियो मे चतुरता वाणी के प्रताप से है और वाणी के भी प्रेरक प्रभु हैं। यथा सारद दारुनारि सम स्वामी। राम सूत्रधर अंतरजामी। जेहिपर कृपा करहिं जन जानी। कवि उर अजिर नचावहि बानी। अत सारद कोटि अमित चतुराई कहा। सम्भु बिरंचि बिष्णु भगवाना। उपजहिं जासु अंस ते नाना। ये त्रिदेव जिसके अंश से अनेक प्रकार के उत्पन्न होते हैं उसे शतकोटि विरंचि शतकोटि विष्णु शतकोटि रुद्र के तुल्य कहना प्राप्त ही है। अथवा हरिहिं हरिता सिवहिं सिवता बिधिहिं बिधिता जो दई। सो जानकी पति मधुर मूरति मोदमय मंगल मई।

धनद कोटि सत सम धनवाना। माया कोटि प्रपंच निधाना ॥
भार धरन सत कोटि अहीसा। निरवधि निरुपम प्रभु जगदीसा ॥४॥

अर्थ सौ करोड कुबेर की भाँति धनवान हैं और करोड माया की भाँति प्रपञ्च निधान हैं सौ करोड शेषनाग की भाँति भार धारण करनेवाले हैं। जगत्के प्रभु ईश्वर की न अवधि है और न उपमा है।

व्याख्या कुबेरादि दिक्पाल जिसकी कृपाकटाक्ष से अपने पदो पर प्रतिष्ठित हैं। उस लक्ष्मीजी के जो पति है उन्हे सौ कोटि कुबेर के समान कहना कौन सी बडी बात है। यथा लोकप होहिं बिलोकत तोरे। तोहि सेवहिं सब सिधि कर जोरे। यथा जासु कृपा कटाक्ष सुर चाहत चितवन सोइ। राम पदारबिंदरति करति सुभावहि खोइ। देखी माया सब बिधि गाढी। अति सभीत जोरे कर ठाढी। जिसके सामने सब विधि गाढ़ी माया हाथ जोडे खडी रहती है। उसका वर्णन कवि लोग माया कोटि प्रपंच निधाना करके कहते हैं। जिसकी सत्ता से माया का अस्तित्व है उसे शतकोटि माया सा कहना भी अल्प ही है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



शेषनाग पृथिवी का भार सदा धारण किये रहते हैं। परन्तु जिसके बल से उनमें भार धरण की क्षमता है उस प्रभु को : भार धारन सत कोटि अहीसा : कहना कुछ बहुत नहीं है। यथा : जा बल सीस धरत सहसानन। अंड कोस समेत गिरि कानन। २५ : यह भुसुण्डिकृत स्तुति शततारक नक्षत्र है। इसकी फलश्रुति जग हित निरुपधि साधु लोग से है। इस स्तुति में बार बार शतकोटि शब्द चमकता है। यही तारों की चमक है। राम से ही उपक्रम और राम से ही उपसंहार है। अतः वर्तुलाकार आकृति है। दुर्गादि देवताओं की उपमा दी गयी है। वे सोपाधिक हित हैं रामजी निरुपाधि हित हैं।

छं. निरुपम न उपमा आन राम समान राम निगम कहै।
जिमि कोटि सत खद्योत सम रवि कहत अति लघुता लहै॥
एहि भाँति निज निज मति बिलास मुनीस हरहिं बखानहीं।
प्रभु भावगाहक अति कृपाल सप्रेम सुनि सुख मानहीं॥

अर्थ : रामजी निरुपम हैं उनकी दूसरी कोई उपमा नहीं है। रामजी के समान राम ही है। ऐसा वेद कहता है। जैसे सौ करोड़ जुगनू के समान सूर्य को कहने से उनकी बड़ी हेठी : लघुता होती है। इसी भाँति अपने अपने बुद्धि की दौड़ के अनुसार मुनीश लोग उनका वर्णन करते हैं। प्रभु भाव ग्राहक अत्यन्त कृपाल हैं। प्रेम सहित कहना : सुनकर सुख पाते हैं।

व्याख्या : न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः। सरकार की दूसरी कोई उपमा नहीं है। उनकी उपमा वे ही हैं ऐसा वेद कहता है। रामजी के समान रामजी को ही कहना अनन्योपमालङ्कार है। अर्थात् वेद को भी जब दूसरी उपमा नहीं मिली तो लाचार होकर उन्हीं को उनकी उपमा बनाया। क्योंकि सब उपमाएँ अत्यन्त ही छोटी जँची। जैसे कोई सूर्य की उपमा सौ कोटि जुगनू से दे। सो सौ कोटि जुगनू सूर्य के सामने क्या है ? कुछ भी नहीं। इसी भाँति यहाँ जो कुछ शतकोटि करके कहा गया है उसे वैसा ही समझना चाहिए। उससे रामजी की बड़ाई नहीं हुई बल्कि ऐसी उपमा देने से उनकी लघुता हुई। ऐसी अवस्था में वर्णन करनेवाले को कुछ न कुछ कहना पड़ता है। मुनि लोगों ने अपनी बुद्धि के अनुसार सरकार की प्रशंसा की है और अतिकृपाल भावग्राहक भगवान् लघुता पर ध्यान नहीं देते। सप्रेम वचन सुनकर सुख मानते हैं।

दो. राम अमित गुन सागर, थाह कि पावै कोइ।
संतन्ह सन जस कछु सुनेउँ, तुम्हहि सुनाएउँ सोइ॥९२ क.

अर्थ : रामजी असंख्य गुणों के समुद्र हैं। क्या उनका कोई पार पा सकता है। सन्तों से जो कुछ सुना वही तुम्हें सुनाया।

व्याख्या : रामजी मे असंख्य गुण हैं और एक एक गुण एक एक समुद्र है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इस समुद्र का तो थाह भी मिल जाता है। उन समुद्रो का थाह नही। भाव यह कि कोई यह न समझ ले कि उपर्युक्त बाईस गुण ही सरकार मे हैं। अथवा यदि हैं भी तो थोड़े हैं। इसलिए कहते हैं कि क्या उनके असंख्य गुणरूपी समुद्रो की थाह कोई पा सकता है। अतः सन्तों के मुख से जो सुना है वही तुम्हे सुना दिया। उनके गुण के जौहरी सन्त ही हैं।

सो. भावबस्य भगवान सुख निधान करुना भवन।
तजि ममता मद मान भजिय सदा सीतारवन ॥९२ ख.

अर्थ : भगवान् सुखनिधान करुणाभवन भाव के वश्य हैं। इसलिए ममता मद और मान को छोडकर सदा सीतारमण को भजिये।

व्याख्या : भगवान् सर्वतन्त्र स्वतन्त्र हैं। उनके समान ही कोई नही। उनसे बढकर कोई क्या होगा। अतः सब कुछ उनके वश मे है। परन्तु वे सुखनिधान है। करुणाभवन हैं। इसलिए करुणा करके भक्तिभाव के वश में रहते हैं। भक्त के वश रहने मे उनका आनन्द प्रतिहत नही होता। अत' ममता मद और मान का परित्याग करके सदा सीतारमण को ही भजना चाहिए। ममता मद और मान के होने से भजन दम्भमात्र रह जाता है। इनका बिना परित्याग किये भजन हो नही सकता। यथा : सबकै ममता ताग बटोरी। मम पद मनहि बाँध बरडोरी। समदरसी इच्छा कछु नाही। हरख सोक भय नहि मनमाँही।

सुनि भुसुण्डि के बचन सुहाए। हरषित खगपति पंख फुलाए ॥
नयन नीर मन अति हरखाना। श्रीरघुबर प्रताप उर आना ॥१॥

अर्थ : भुसुण्डिजी के सुहाये वचन सुनकर हर्षित हो गरुड़जी ने पंख फुलाये। उनकी आँखों मे आँसू आ गये। मन मे बडे हर्षित हुए और रामजी के प्रताप को हृदय मे धारण किया।

व्याख्या : सुहाये के साथ भाये का जोड है। यहाँ भाये नही कहा तो उसका फल कहा। आनन्द से जिस भाँति रोमाञ्च होता है उसी भाँति आनन्द से पक्षी पख फुलाते है। गरुड़जी पक्षिराट् हैं। इन्हे आनन्द हुआ तो इन्होंने भी पंख फुलाया। आँखो मे आँसू आ गया। हृदय मे हर्ष हुआ। कारण यह कि भुसुण्डिजी के वचन से रामजी का प्रताप हृदय मे आया। रामजी के प्रताप मे बड़ा सामर्थ्य है। जब यह हृदय मे आता है तो अचिन्त्य कार्य करा देता है। यथा : प्रभुप्रताप उर सहज असंका। रन बाँकुरा बालिसुत बंका। समुझि रामप्रताप कपि कोपा। पद करि सभा माँझ पद रोपा। रामप्रताप सुमिरि मनमाँही। करहु सेतु प्रयास कछु नाही। जानत परम दुर्ग अति लंका। प्रभुप्रताप कपि चले असंका। इत्यादि।

पाछिल मोह समुझि पछिताना। ब्रह्म अनादि मनुज करि जाना ॥
पुनि पुनि काग चरन सिरनावा। जानि राम सम प्रेम बढ़ावा ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : पिछला मोह समझकर पछताया कि अनादि ब्रह्म को मैंने मनुष्य जाना। बार बार काग के चरणो मे सिर झुकाया और राम के समान जानकर प्रेम बढाया।

व्याख्या : जब प्रभु का प्रताप हृदय मे आया तब सम्यक् ज्ञान हुआ। लगे पछताने कि मुझसे सरकार का अपमान हो गया। जो मैंने अनादि ब्रह्म को मनुष्य जान लिया। श्री गीताजी मे भगवान् ने कहा है कि मैंने मनुष्य का शरीर धारण किया है। इसलिए मूढ लोग मेरा अपमान करते हैं। मेरे परम भाव को नही जानते कि मैं लोक का महेश्वर हूँ।

अब शिष्य की कृतकृत्यता कहते हैं कि बार बार काग के चरण मे सिर नवाया। इस बात पर ध्यान भी नही है कि यह काग है मैं गरुड हूँ। जिससे अपना उपकार हो वह चाहे कोई हो अपना मान्य है और पूज्य है। भुसुण्डिजी द्वारा तो महामोह दूर हुआ भक्ति की प्राप्ति हुई अत इन्हे रामजी के समान जाना। भक्त और भगवान् मे भेद न्ही है। अत भुसुण्डिजी के चरणो मे प्रेम बढाया।

गुर बिनु भवनिधि तरै न कोई। जौ बिरंचि संकर सम होई॥
संसय सर्प ग्रसेउ मोहि ताता। दुखद लहर कुतर्क बहु ब्राता॥३॥

अर्थ : गुरु के बिना भवसमुद्र के पार कोई नही जा सकता। चाहे वह ब्रह्मा और शङ्कर के तुल्य ही क्यो न हो संशय रूपी सर्प ने हे तात ! मुझे ग्रस लिया था। जिससे कुतर्करूपी बहुत सी दुःखद लहरें आ रही थी।

व्याख्या : जिस भाँति कर्णधार के बिना नाव समुद्र पार नही जा सकती उसी भाँति गुरु के बिना कोई अपने पुरुषार्थ से भवसागर के पार नही जा सकता। यथा नृदेहमाद्य सुलभ सुदुर्लभ प्लव सुकल्प गुरुकर्णधारणम्। मयानुकूलेन नभस्वतेरितम् पुमान् भवाब्धि न तरेत् स आत्महा।

गरुडजी कहते हैं कि मेरी क्या गिनती ? ब्रह्मा और शङ्कर सा भी पुरुषार्थी बिना गुरु के भवसागर पार नही जा सकता। अत: भवसागर सन्तरण के लिए गुरु की अपरिहार्य आवश्यकता है। आप गुरु मिल गये। अत भवसन्तरण मुझे सुलभ हो गया। यही इस बात का भी पता लगता है कि उस समयतक गरुडजी ने गुरु नही किया था। समझते थे कि मुझे गुरु की क्या आवश्यकता है। यथा होइहि कीन्ह कबहुँ अभिमाना। सो खोवै चह कृपा निधाना। गरुडजी कहते हैं कि मैं सर्पों को ग्रसा करता हूँ। मेरा मन्त्र पढकर गारुडी लोग सर्प से काटे हुए लोगो को जिला लते हैं। पर यह संशय सर्प ऐसा प्रबल है कि इसने मुझे ग्रस लिया था और जिस भाँति साँप के काटे हुए का लहर आती है उसी भाँति मेरे मन मे कुतर्क की दुःखद लहर उठने लगी थी।

तव सरूप गारुडि रघुनायक। मोहि जियाउ जन सुखदायक॥
तव प्रसाद मम मोह नसाना। राम रहस्य अनूपम जाना॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : तुम्हारा स्वरूप रामजी का गारुडी : हे जनसुखदायक ! उसने मुझे जिला लिया। तुम्हारे प्रसाद से मेरा मोह नष्ट हुआ। मैंने रामजी का अनुपम रहस्य जाना।

व्याख्या : रघुनायक गरुड़ हैं। तुम उनके भक्त गारुडी हो। यथा : ससय सर्प ग्रमन उरगाद'। समन सुकर्कस तर्कविपादः। जन के सुखदायक हो। मै मर रहा था। मुझे दु खद लहर आ रही थी। आपने मुझे जिलाया।

विनिमय मे कुछ न चाहकर जो उपकार किया वही कृपा है। कृपा तो मुझपर बडे बडे लोगो ने की। पर मेरा मोह नही गया। आपके प्रसाद से गया। जिसे सर्प काटता है उस पर बडे बडे लोग कृपा करते हैं। पर किसी का किया कुछ नही होता। गारुडी कृपा करें तो कल्याण हो। सरकार का यह अनुपम रहस्य है कि अवतीर्ण रूप मे पूर्णता ज्यो की त्यो बनी रहती है। रहस्य भी अनेक हैं पर इसके जोड़ के नही।

## भुसुण्डि चरित : पहिले दूसरे और तीसरे प्रश्न का उत्तर

दो. ताहि प्रसंसि बिबिध बिधि, सीस नाइ कर जोरि।
वचन बिनीत सप्रेम मृदु, बोलेउ गरुड़ बहोरि ॥९३ क.
प्रभु अपने अविवेक ते, बूझौं स्वामी तोहि।
कृपा सिंधु सादर कहहु, जानि दास निज मोहि ॥९३ क.

अर्थ : उसकी अनेक विधि से प्रशसा करके सिर नवाकर हाथ जोड़कर प्रेम युक्त विनीत मृदु बचन फिर गरुडजी बोले। हे प्रभो! मैं अपने अविवेक से हे स्वामी! आप से पूछता हूँ। हे कृपासिन्धु! मुझे अपना दास जानकर आदर के साथ कहिये।

व्याख्या : कृतकृत्य होने से गरुडजी ने अनेक प्रकार से भुसुण्डिजी की स्तुति की। सीस नाइ कर जोरि से कर्मणा : सप्रेम से मनसा और मृदु विनीत वचन बोलेउ से वाचा प्रह्वीभाव ' नम्रता कहा। स्तुति के बाद फिर बोलने से यह मालूम होता है कि गरुडजी कोई प्रश्न करना चाहते हैं।

गरुडजी जो कहते हैं कि मैं अपने अविवेक से पूछना चाहता हूँ। यह वस्तुतः भक्त का कार्पण्य है। यह रामजी विषयक अविवेक नही है। देह पर उत्कर्षापकर्ष लेकर ही यह प्रश्न है। अत. अविवेक कहा। गरुडजी कहते हैं कि मैं आपका दास हूँ आप स्वामी हैं। इस नाते मैं कुछ बातें आपके सम्बन्ध मे पूछना चाहता हूँ। सो दास यदि स्वामी के विषय मे जानकारी के लिए पूछे तो उसे धृष्टता न समझकर आदर के साथ कहना चाहिए।

तुम सर्बज्ञ तज्ञ तमपारा। सुमति सुसील सरल आचारा ॥
ज्ञान बिरति बिज्ञान निवासा। रघुनायक के तुम प्रिय दासा ॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ आप सर्वज्ञ हैं तत्पद के जाननेवाले हैं। तम के पार हैं सुमति सुशील और सरल आचार हैं। ज्ञान वैराग्य और विज्ञान के निवास हैं और रामजी के प्रिय दास हैं।

व्याख्या गरुडजी भुसुण्डिजी से कहते हैं कि आप सर्वज्ञ हैं। अपने ज्ञान से आपको तीनो काल करतलगत आमलक के समान है। अर्थात् भूत भविष्य भी आपके लिए वर्तमान के ही तुल्य है। अत आप बतला सकते हैं कि वर्तमान शरीर पूर्व जन्म के किस कर्म का फल है। जो तत्पद का जाननेवाला हो उसे शरीर की प्राप्ति नहीं होनी चाहिए। जो तम से पार हो वह देव शरीर का अधिकारी है। सुमति सुशील सरल आचार को भी रमणीय योनि मिलनी चाहिए। ज्ञान वैराग्य और विज्ञान धाम मुक्ति के अधिकारी हैं और रघुनायक के प्रिय दास नित्य मुक्ति सुख मे लीन रहते हैं। आप मे ये सब गुण हैं।

कारन कवन देह यह पाई। तात सकल मोहि कहहु बुझाई ॥
राम चरित सर सुन्दर स्वामी। पाएउ कहाँ सुनहु नभगामी ॥२॥

अर्थ क्या कारण है कि आप ने यह देह पायी? हे तात यह सब बात मुझे समझाकर कहिये। हे स्वामी! यह सुन्दर रामचरित सर नभगामी होते हुए आप ने कहाँ पाया।

व्याख्या ऐसे गुणवाले को यदि देह भी मिले तो उत्तम देह मिलनी चाहिए। यह शकुनाधम सब भाँति अपावन देह आप को मिलने का क्या कारण है? यह बात मेरे मन में नही बैठती इसलिए इसे समझाकर कहिये। यह पहिला प्रश्न हुआ। अब दूसरा प्रश्न करते है कि यदि यह शरीर मिल ही गयी तो इसके अनुकूल आचरण भी होना चाहिए। बक काग तो रामचरित सर के निकट नही जाते उन्हे इसकी प्राप्ति कहाँ? वे नभगामी हैं जहाँ उन्हे सम्बुक भेक सेवार मिलता है वहाँ वे चले जाते हैं। यह रामचरितसर देवलोक मे भी दुर्लभ है सो आप का यह कहाँ से मिल गया?

नाथ सुना मैं अस सिव पाही। महा प्रलयहुँ नास तव नाही ॥
मृषा वचन नहि ईस्वर कहई। सोउ मोरे मन ससय अहई ॥३॥

अर्थ हे नाथ! मैंने शिवजी से यह सुना है कि महा प्रलय मे भी आपका नाश नहीं होता। ईश्वर मिथ्या वचन कहते नही सो यह संशय भी मेरे मन मे है।

व्याख्या इस संसार म अमरत्व भी आपेक्षिक है। देवता लोक अमर हैं क्योकि वे एक मन्वन्तर तक जीते हैं। यहाँ काल से अभय करने का अर्थ भी कल्पान्त जीवन है। विभीषणजी को कियो कृपाल अभय काल्हु ते। काल से अभय कर दिया। इसका अर्थ यह हुआ कि वे कल्पान्तजीवी हो गये। महाप्रलय म उनका भी देहावसान होगा। पर शिवजी ने कहा है कि तेहि गिरि रुचिर बसै खग सोई। जासु नास कल्पान्त न होई। आपका देहावसान महा प्रलय मे भी नहीं होता। ईश्वर मिथ्या

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कह नही सकते और महा प्रलय मे कोई बच नही सकता। यह संशय भी गरुड़जी कहते हैं कि मेरे मन में हैं।

अग जग जीव नाग नर देवा। नाथ सकल जग काल कलेवा ॥
अंड कटाह अमित लयकारी। काल सदा दुरित क्रम भारी ॥४॥

अर्थ : चराचर जीव नाग नर और देवता हे नाथ! सम्पूर्ण संसार काल का कलेवा है। असख्य अण्ड कटाह का लय करनेवाला काल है। काल कभी भी उल्लंघन करने योग्य नही है।

व्याख्या : चराचर जितने जीव हैं। चाहे वे पातालवासी नाग हों चाहे मर्त्यलोक निवासी मनुष्य हों। चाहे स्वर्गलोक निवासी देवता हो सभी काल के कलेवा हैं। काल का पेट कभी नही भरता। पहिले जीवो का कलेवा करता है पीछे असख्य ब्रह्माण्डों को खा जाता है। काल का कोई उल्लघन करने मे समर्थ नही है। यथा :

ऊमरि तरु बिसाल तव माया। फल ब्रह्माण्ड अनेक निकाया ॥
जीव चराचर जन्तु समाना। भीतर बसहि न जानहि आना ॥
ते फल भक्षक कठिन कराला। तव भय डरत सदा सोउ काला ॥

दो. तुम्हहिन ब्यापत काल अति, कराल कारन कवन।
मोहि सो कहहु कृपाल, ज्ञान प्रभाउ कि योग बल ॥९४ क.
प्रभु तव आस्रम आएउ, मोर मोह भ्रम भाग।
कारन कवन सो नाथ सब, कहहु सहित अनुराग ॥९४॥

अर्थ : आप को अति कराल काल नही व्यापता : इसका कारण क्या है हे कृपाल! सो मुझसे कहिये कि यह ज्ञान का प्रभाव है कि योग का बल है।

हे प्रभो! तुम्हारे आश्रम मे आने से मेरा मोह भ्रम भाग गया। इसका कारण क्या है सो सब हे नाथ! अनुराग के साथ कहिये।

व्याख्या : जो काल सबको व्यापता है वह आप को क्यो नही व्यापता। बिना कारण के कार्य नही होता। अत: इस विशेषता के लिए भी कोई विशेष कारण होना चाहिए। आप सर्वज्ञ हैं : उस कारण को मुझे बतलाइये क्योंकि मैं आपका दास हूं। यह आपके ज्ञान का प्रभाव है कि आपके योग का बल है? ज्ञान और योग का ही महा प्रभाव सुनने में आता है। ये मोक्ष तक देने मे समर्थ है। अत: अनुमान तो यही होता है कि इन्ही दोनो मे से किसी का यह प्रभाव होगा।

चौथा प्रश्न यह है कि मेरा मोह भ्रम ऐसा निकट था कि ब्रह्मलोक तथा कैलास जाने पर भी नही गया और आप के आश्रम मे आने से भाग गया। सो आप के आश्रम की इतनी बडो महिमा कैसे हो गयो? इसका कारण अनुराग के साथ कहिये क्योकि इससे मेरा बड़ा कल्याण हुआ है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रुड़गिरा सुनि हरषेउ कागा। बोलेउ उमा परम अनुरागा॥
न्य धन्य तव मति उरगारी। प्रस्न तुम्हारि मोहि अति प्यारी॥१॥

अर्थ : हे उमा ! गरुड़जी वाणी सुनकर भुसुण्डिजी हर्षित हुए और अत्यन्त नुराग के साथ बोले। हे गरुड़ ! तुम्हारी मति धन्य है धन्य है ! तुम्हारा प्रश्न मुझे त्यन्त प्यारा मालूम हुआ।

व्याख्या : गरुड़जी प्रश्न करने में भयभीत थे कि मेरे प्रश्न से काग भुसुण्डिजी प्रसन्न न हो जाँय। अतः पहिले ही अपने अविवेक की चर्चा करते हैं। यथा : प्रभु पने अबिबेक ते बूझौं स्वामी तोहि। कृपासिन्धु सादर कहहु जानि दास निज ोहि। इस भाँति आदर के साथ उत्तर पाने की प्रार्थना भी करते हैं। परन्तु गरुड़जी प्रश्न से भुसुण्डिजी को हर्ष हुआ। क्योंकि उसके उत्तर में उन महात्माओं के शोगान का इन्हें अवसर मिलेगा जिन्होंने कि इनपर करुणा की थी। शिवजी उमा कहते हैं कि उमा ! भुसुण्डिजी अनुराग के साथ बोले। कोरे कोरे आदर से अनुराग ी महत्ता अधिक है।

भुसुण्डिजी इतने प्रसन्न हुए कि ऐसा प्रश्न करने से गरुड़जी की मति को धन्य न्य कहने लगे। क्योंकि इस प्रश्न के उत्तर में बड़ा भारी लोकहित साधन की ामग्री है। कहने लगे कि प्रश्न तुम्हारा मुझे बड़ा प्यारा मालूम हुआ। इसके उत्तर मुझे अपने प्रिय विषय का निरूपण करना होगा।

नि तव प्रस्न सप्रेम सुहाई। बहुत जनम की सुधि मोहि आई॥
व निज कथा कहौ मै गाई। तात सुनहु सादर मन लाई॥२॥

अर्थ : प्रेम युक्त सुन्दर तुम्हारा वचन सुनकर मुझे बहुत जन्मों की स्मृति हो यी। अब मैं अपनी कथा गाकर कहता हूँ। हे तात ! आदर के साथ मन गाकर सुनो।

व्याख्या : गरुड़जी वचन सप्रेम विनीत मृदु बोले थे। इसलिए भुसुण्डिजी हते हैं कि सप्रेम सोहाई वाणी सुनकर मुझे बहुत जन्म की सुधि आगयी। सोहाई ही मृदु और विनीत का अन्तर्भाव है। भुसुण्डिजी कहते हैं कि इस प्रश्न के त्तर से मेरे बहुत से जन्मो का सम्बन्ध है। सो सबके सब मुझे याद पड़ गये। ही तो उन सबो को भूला हुआ बैठा था।

अभी तक तो रघुनाथजी की कथा कहता था। अब अपनी कथा कहूँगा और स्तार के साथ कहूँगा। अब सुनने मे तुम्हारी ओर से उपेक्षा न हो। अतः मन गाकर सुनने को कहते हैं। इसमे बहुत सी उपदेशप्रद बातें हैं। उपेक्षा होने से नसे लाभ न होगा और मेरा परिश्रम व्यर्थ जायगा।

प तप मख सम दम ब्रत दाना। बिरति बिबेक जोग बिज्ञाना॥
यकर फल रघुपति पद प्रेमा। तेहि बिनु कोउ न पावै छेमा॥३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : जप, तप, यज्ञ, शम, दम, व्रत, दान, विरति, विवेक, योग और विज्ञान, सबका फल रामजी के चरणो मे प्रेम है। उसके बिना किसी का कल्याण नही होता।

व्याख्या : जप, तप, व्रत, यज्ञ, शम, दम, दान, ये सब वेदविहित कर्म हैं। इनके करने से शुभ फल होता है। परन्तु वे भी यदि भगवत् प्रीत्यर्थ न किये जायँ तो बन्ध के कारण होते है : यज्ञार्थात् कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबन्धनः। और विरति विवेक योग विज्ञान से भी निरुपास्ति होने से पतन होता है। जोग कुजोग ग्यान अग्यानू। जहँ नहि राम प्रेम परधानू। यदि यह सब कुछ करने पर भी रामचन्द्र पदपङ्कज मे प्रेम न हुआ तो सब व्यर्थ हैं। अतः तव पद पकज प्रीति निरंतर। सब साधन कर यह फल सुन्दर। इसके बिना किसी का क्षेम नही होता। अर्थात् अन्य साधनो मे फल लगते हैं। योग तो हो जाता है पर क्षेम नही होता। यथा : राम बिमुख संपति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई। सजल मूल जिन्ह सरितन्ह नाही। बरपि गये पुनि तबहि सुखाही।

एहि तन राम भगति मैं पाई। तातें मोहि ममता अधिकाई ॥
जेहि ते कछु निज स्वारथ होई। तेहि पर ममता कर सब कोई ॥४॥

अर्थ : इस शरीर से मैंने रामभक्ति पायी है। इससे मुझे बड़ी ममता है। जिससे कुछ अपना स्वार्थ होता है उस पर सब लोग ममता करते हैं।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि शरीर तो मैंने बहुत पायी। पर किसी मे रामभक्ति न हुई। मुझे तो काक शरीर मे ही भक्ति मिली। इसलिए इस पर ममता विशेष है। भाव यह कि जो शरीर मिलता थी उस पर कुछ ममता हो ही जाती थी। पर उनसे किसी से वास्तविक कल्याण नही हुआ। पर इस शरीर मे रामभक्ति की प्राप्ति हुई इससे इस पर मेरी ममता है। मैं इसी शरीर मे प्रसन्न हूँ। क्योंकि शरीर मिलने का साफल्य तो इसी से हुआ।

ससार की भी यही रीति है कि जिससे अपना कुछ काम निकलता है उस पर सब लोग ममता करते हैं। सुर नर मुनि सबकै यह रीती। स्वारथ लागि करहि सब प्रीती। मेरा काम तो इस शरीर से निकला। अतः इस पर मेरी ममता होना प्राप्त है। दूसरो को भले ही यह अधम शरीर जान पड़े। पर मुझे तो यह प्रिय है।

सो. पन्नगारि असि नीति स्रुतिसम्मत सज्जन कहहि।
अति नीचहु सन प्रीति, करिअ जानि निज परम हित ॥९५ क.
पाट कीटते होइ, तेहि तें पाटंबर रुचिर।
कृमि पालै सब कोइ, परम अपावन प्रानसम ॥९५॥

अर्थ : हे गरुड़जी ! ऐसी नीति है। वह श्रुति सम्मत है और शिष्टानुमोदित है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अति नीच से भी अपना परम हित जानकर प्रीति करनी चाहिए। रेशम कीड़े से होता है। उससे सुन्दर रेशमी वस्त्र बनता है। परन्तु उस परम अपावन कीड़े को सब लोग प्राण के समान पालते हैं।

व्याख्या : नीति भी अनेक प्रकार की होती है। कूटनीति की भी नीति में ही गिनती है। परन्तु वह धर्मविरुद्ध है। यह नीति श्रुतिसम्मत है धर्मानुकूल है और शिष्ट लोग इसके अनुसार आचरण करते हैं तथा उपदेश देते हैं कि यद्यपि नीच का साथ निन्दित है पर यदि वह अपना परम हित हो तो उससे प्रीति करनी चाहिए। भाव यह कि यह काक शरीर पक्षियों में चाण्डाल शरीर है। अति नीच है। पर यह मेरा परम हित है। इसलिए इससे प्रीति करता हूँ।

रेशम का उदाहरण देते हैं कि रेशम तो कीड़े से प्राप्त होता है। वही कोप बनाता है जिससे रेशम बनता है और उस रेशम से अपना परम हित सधता है। उससे पाटाम्बर बनता है। इसलिए उस कीड़े को लोग पालते हैं। वह कीड़ा परम अपावन है। अपने मुख के राल से अपने चारों ओर कोप बनाता है। पर उसकी अपावनता पर कोई दृष्टिपात नहीं करता और बड़े यत्न से उसे पालता है।

स्वारथ सांच जीव कह एहा। मन क्रम वचन रामपद नेहा॥
सोइ पावन सोइ सुभग सरीरा। जो तनु पाइ भजै रघुबीरा॥१॥

अर्थ : जीव के लिए यही सच्चा स्वार्थ है कि मनसा वाचा कर्मणा रामजी के चरणों में स्नेह हो। वही शरीर पवित्र है और सुन्दर है जिसे पाकर रामजी का भजन हो।

व्याख्या : संसार स्वार्थ भी नहीं जानता। झूठे स्वार्थ में पड़ा है। इसी से देह गेह कुटुम्बादि मे रत है। विनाशी पदार्थो मे प्रेम करना कच्चा स्वार्थ है। अविनाशी तो राम हैं। अतः उन्ही में प्रेम लगाना सच्चा स्वार्थ है। अतः यदि स्वार्थ ही साधन करना है तो सच्चा स्वार्थ साधन करिये।

शरीर तो सभी रक्त मांस अस्थि चर्मादि का बना हुआ घृणास्पद है। मनुज देह सुर साधु सराहत सो सनेह सिय पीके। मनुष्य देह मे यही विशेषता है कि इसके द्वारा रामजी के चरणों में प्रेम हो सकता है। यदि मनुष्य शरीर से भी प्रभु चरणो मे प्रेम न हुआ तो : काज कहा नरतन धरि सारयो। फिर मनुष्य देह से लाभ क्या हुआ ? अतः सिद्धान्त यही हुआ कि जिसी देह से राम भजन हो वही पवित्र है। वही सुन्दर है। यथा : बिनु हरिभजन इंदारुन को फल तजत नहीं करुआई।

राम बिमुख लहि बिधिसम देही। कबि कोबिद न प्रसंसहिं तेही॥
रामभगति एहिं तन उर जामी। तातें मोहि परम प्रिय स्वामी॥२॥

अर्थ : राम विमुख को यदि विधि के समान देह मिले तो भी पण्डित कवि उसकी प्रशंसा नही करते। इस शरीर में ही मेरे हृदय में रामभक्ति उगी। इसलिए हे स्वामी ! यह मुझे परम प्रिय है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

व्याख्या : देहधारियो में सर्वोत्तम ब्रह्मदेव हैं। उन्ही के शरीर से सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड की उत्पत्ति है। उसमे सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड के रचने की शक्ति है। परन्तु ऐसी देह को भी पाकर जो कोई रामविमुख हो तो विवेकी पण्डित उसकी प्रशंसा नही करते। क्योकि उससे परम कल्याण नही हुआ। इद शरीर कौन्तेय क्षेत्रमित्यभिधीयते। इसी शरीर को खेत कहा गया है। सो रामभक्ति के लिए मेरी काकदेह गुरुदत्त होने से उपजाऊ हो गयी और शरीर मेरे लिए ऊसर हो रह गये। इसलिए यह शरीर मुझे परम प्रिय है।

तजौ न तनु निज इच्छा मरना। तनु बिनु बेद भजन नहि बरना॥
प्रथम मोह मोहि बहुत बिगोवा। रामबिमुख सुख कबहुँ न सोवा॥३॥

अर्थ : मै काक्षामृत्यु हूँ। इसलिए शरीर नही छोडता। क्योकि वेद कहता है कि बिना शरीर का भजन नही होता। पहिले मोह ने मुझे बहुत कष्ट दिया। राम के विमुख रहकर मैं कभी सुख से नही सोया।

व्याख्या : तीसरे प्रश्न : तुमहि न व्यापत काल अति कराल कारन कवन का उत्तर : गुरुजी द्वारा मुझे इच्छा मरण का आशीर्वाद मिला। जब शरीर छोड़ने की इच्छा हो तभी छोड सकते हैं। परन्तु मैं इसे छोड़ता नही। क्योकि वेद कहते हैं कि शरीर के न रहने से भजन नही हो सकता। सगुण उपासक मोच्छ न लेही। तिनकहँ राम भगति निज देही। मुझे भजन मे जो सुख है वह मोक्ष मे भी नही है।

मोह दरिद्र है। वह जीव को लक्ष्मीपति से विरुद्ध किये रहता है। उसी मोह ने मुझे पहिले बहुत कष्ट दिया। मोह के कारण शोक बना हो रहता था। वह सदा मुझे राम विमुख बनाये रहा। अतः मैं सदा कष्ट पाता रहा। राम विमुख होने से सुख कभी न मिला। सदा चिन्ताग्रस्त रहा सुख से कभी न सोया।

नाना जनम करम पुनि नाना। किए जोग जप तप मख दाना॥
कवन जोनि जन्मेउँ जहँ नाही। मै खगेस भ्रमि भ्रमि जग माहीं॥४॥

अर्थ : अनेको जन्मो मे मैंने अनेको कर्म योग जप यज्ञ और दान किये। हे पक्षिराट्! वह कौन सी योनि है जिसमे मैंने इस ससार मे घूम घूमकर नही जन्म लिया।

व्याख्या : आकर चारि लाख चौरासी। जोनि भ्रमत यह जिव अविनासी। फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म सुभाव गुन घेरा। इस भाँति कितने जन्म मे मनुष्य भी हुए और योग, जप, तप, यज्ञ और दान भी किया। परन्तु ससृति का अन्त नही हुआ। कर्म से कर्म शृंखला बढ़ती ही गयी और जन्म मरण के चक्कर मे पड़ा रहा।

देखेउँ करि सब करम गोसाईं। सुखी न भएउ अबहिंकी नाईं॥
सुधि मोहि नाथ जनम बहु केरी। सिव प्रसाद मति मोह न घेरी॥५॥

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : हे गोसाईं ! सब कर्म करके मैंने देख लिया। जैसा इस समय सुखी हूँ वैसा सुखी कभी न हुआ। हे नाथ ! मुझे बहुत से जन्मों की याद है। शिवजी की कृपा से मेरी बुद्धि को मोह घेर न सका।

व्याख्या : मैंने सब कर्म किये सबका फल देखा। सुख के लिए कर्म किया सुख मिला भी। पर जैसा मैं इस काकशरीर में राम भजन के प्रभाव से सुखी हूँ वैसा सुख तो कभी नहीं मिला। मुझे सब जन्मों को याद बनी है। शिवजी के प्रसाद से मोह मेरी मति घेर न सका। पूर्व जन्म के स्मरण न रहने का यही कारण है कि बुद्धि को मोह घेर लेता है। परन्तु मुझे शिवजी ने आशीर्वाद दिया था : कौनेहु जन्म मिटिहि नहि ग्याना। सुनहि सूद्र मम वचन प्रमाना। इसलिए मैं पूर्व जन्मानुभूत सुखों से वर्तमान शरीर के सुख का मिलान कर सकता हूँ।

दो. प्रथम जन्म के चरित अब, कहौं सुनहु बिहगेस।
सुनि प्रभुपद रति उपजै, जाते मिटहि कलेस ॥९६ क.
पूरब कल्प एक प्रभु, जुग कलिजुग मल मूल।
नर अरु नारि अधर्म रत, सकल निगम प्रतिकूल ॥९६॥

अर्थ : हे पक्षिराट् ! मैं पहिले जन्म का चरित अब कहता हूँ उसे सुनो। उसके सुनने से प्रभु के चरणों मे प्रेम उपजता है। जिस प्रेम के द्वारा क्लेश मिट जाते हैं। पूर्व कल्प में एक मल का मूल कलियुग नाम का युग था। जिसमें हे प्रभो ! नर और नारी अधर्म मे रत थे और सब वेद के विरुद्ध थे।

व्याख्या : चौरासी लाख योनि भोगते भोगते पूर्व कल्प के किसी एक कलियुग में पहिले पहल मनुष्य योनि मिली। यही क्रम है धीरे धीरे उन्नति होती है। उस जन्म का अपना चरित कहते हैं। उसकी फलश्रुति है कि उसके सुनने से रामजी के चरणों में प्रीति होती है और उससे क्लेश मिटता है। उपदेश करने में सङ्कोच न होना चाहिए। अतः अपने चरित्र की फलश्रुति स्वयं कहते हैं।

पूर्व कल्प से यहाँ कम से कम अट्ठाईसवें पूर्व कल्प की कथा अभिप्रेत है। क्योंकि सत्ताईस कल्प तो भुसुण्डिजी को नीलगिरि पर्वत पर रहते बीता। यथा : इहाँ बसत मोहि सुनु खगईसा। बीते कल्प सात अरु बीसा। जिस भाँति सब ऋतुओं के धर्म पृथक् पृथक् हैं इसी भाँति सब युगो के धर्म भी पृथक् पृथक् हैं। इनमें कलियुग बड़ा मलिन है मल का मूल है। इसमे नर नारी सब पापी होते हैं और वेदविरुद्धाचरण करते हैं।

तेहि कलिजुग कोसलपुर जाई। जनमत भयेउ सूद्र तन पाई ॥
सिव सेवक मन क्रम अरु बानी। आन देव निंदक अभिमानी ॥१॥

अर्थ : उस कलियुग में मैं अयोध्या जाकर शूद्र शरीर पाकर जन्मा। मनसा वाचा कर्मणा मैं शिवजी का सेवक था। पर था अभिमानी। अन्य देवताओं की निन्दा करता था।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि वह पहिला जन्म मेरा यद्यपि शूद्रयोनि म और कलियुग मे हुआ फिर भी अयोध्या म हुआ। काल विपरीत होने पर भी देश अनुकूल था। शूद्र शरीर से यज्ञादिक म अधिकार नही होता और कलियुग म स्वभाव से ही लोगा की नीच प्रवृत्ति होती है। कर्म की विचित्रता दिखलाते हुए कहते हैं कि अच्छी बात मुझमे यह थी कि मैं नास्तिक नही था। मनसा वाचा कर्मणा शिवभक्त था और बुराई यह थी कि मैं अभिमानी था। दूसरे देवताओं की निन्दा करता था। दूसरे देवता की निन्दा करने म अनन्यता समझता था। शिवादन्य न जानामि शिव से अन्य किसी को मैं नही जानता। इस प्रकार की अनन्यता नही थी।

धनमद मत्त परम बाचाला। उग्र बुद्धि उर दंभ बिसाला॥
जदपि रहेउँ रघुपति रजधानी। तदपि न कछु महिमा तब जानी॥२॥

अर्थ मैं धन के मद मे मतवाला हो गया था। बडा बकवादी था। बुद्धि बडी उग्र थी और हृदय म बडा दम्भ था। यद्यपि रामजी की राजधानी म रहता था। फिर भी उस समय उसकी कुछ भी महिमा नही जानता था।

व्याख्या कनक कनक से सौ गुनी मादकता अधिकात। वह पाये बौरात है यह खाये बौरात। धतूरे स अधिक सोने म मादकता नशा है। क्योंकि धतूरा खाने से आदमी पागल हो जाता और सोना के पाने से पागल हो जाता है। भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैं धनी था इसलिए मुझे धन का मद था। तिस पर भी बड़ा दोष यह था कि मुखर बकवाका था। सोचिय सूद्र बिप्र अवमानी। मुखर मान प्रिय ग्यान गुमानी। सो उग्र बुद्धि और वादप्रिय होने से मैं ज्ञानगुमानी भी था। बाहर से सब को दिखलाता था कि मै बडा धार्मिक हूँ। अत बडा भारी दाम्भिक भी था।

अयोध्या रामजी की राजधानी है यह बात ससार जानता है। श्रीअयोध्याजी मे रहकर उसकी महिमा जानना एक विचित्र बात है। भारत वर्ष मे तो सर्वत्र प्रख्यात है कि अयोध्या सात मोक्षपुरियो मे से प्रथम है। अत महात्मागण सदा श्रीअयोध्याजी मे बसते हैं। भुसुण्डिजी कहते हैं कि उस समय मुझे श्रीअयोध्याजी क निवास की महिमा का परिज्ञान नहीं था।

अब जाना मैं अवध प्रभावा। निगमागम पुरान अस गावा॥
कवनेहु जनम अवध बस जोई। राम परायन सो परि होई॥३॥

अर्थ अब मैंने अवध का प्रभाव जाना। वेद शास्त्र और पुराण ने ऐसा गान किया है जो कोई किसी जन्म में यदि अवधवास करता है तो वह भली भाँति रामपरायण होता है।

व्याख्या भुसुण्डिजी कहते हैं कि अवध के प्रभाव का पता तो मुझ इस जन्म मे लगा जब कि अवध वास का फल मुझे मिला और वेद पुराण शास्त्र भी कहते है कि किसी जन्म मे जब अवध म वास हुआ रहता है तब वह राम परायण होता

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है। अर्थात् धाम भी सरकार का विग्रह है। उससे एक वार भी सम्बन्ध हो जाने से फिर वह सम्बन्ध टूटता नही फल देकर ही रहता है। वेद पुराण शास्त्र ने कहा है कि किसी जन्म मे भी जिसे अवधवास का सौभाग्य प्राप्त हुआ है उसे राम भक्ति होकर रहेगी।

अवध प्रभाव जान तब प्रानी। जब उर बसहि राम धनुपानी॥
सो कलिकाल कठिन उरगारी। पाप परायन सब नर नारी॥४॥

अर्थ : अवध की प्रभुता प्राणी तब जान पाता है जब हृदय मे धनुंधर रामजी निवास करते हैं। हे गरुडजी! यह कलिकाल बडा कठिन था उसमे सब नरनारी पापी हो गये थे।

व्याख्या : अवध का प्रभाव प्राणी के हृदय मे तब ठीक ठीक आता है जब उसका हृदय स्वय अवध हो जाय। तहइँ अवध जहँ राम निवासू। तहइँ दिवस जहँ भानु प्रकासू। जहाँ सूर्य का प्रकाश हो वही दिन है और जहाँ राम का निवास हो वही अवध है। सो जब धनुंधर रामजी हृदय मे वसें लोभ मोह मत्सर मद मान से हृदय शुद्ध हो। यथा : तब लगि हृदय बसत खल नाना। लोभ मोह मत्सर मद माना। जब लगि उर न बसत रघुनाथा। धरे चाप सायक कटि भाथा। अर्थात् जब सरकार के बसने से हृदय प्रकाशमान हो तब अयोध्या का माहात्म्य मन मे आवे। उस महिमा का पता लगे जिसके बल से रामजी का अवतार अयोध्या छोडकर अन्यत्र हो नही सकता।

अब कलिकाल की कथा कहते हैं कि वह कलिकाल बडा कठिन था। पाप के समुद्र मे नर नारियो का मन मछली हो गया था। पाप में ही उनको सुख मिलता था। समय वैसा बर्त रहा था उसके उल्लङ्घन मे सभी असमर्थ थे।

दो. कलिमल ग्रसे धरम सब, लुप्त भए सद ग्रंथ।
दभिन्ह निज मति कलपि करि, प्रगट कीन्ह बहु पंथ॥९७ क.
भये लोग सब मोह बस, लोभ ग्रसे सुभ कर्म।
सुनु हरि जान ज्ञाननिधि, कहौ कछुक कलिधर्म॥९७॥

अर्थ : सब धर्मों को कलियुग के मल ने ग्रस लिया था। सद्ग्रन्थ सब लुप्त हो गये थे। दम्भियो ने अपने अपने मतो की कल्पना करके बहुत से पथ प्रकट कर दिये थे। सब लोग मोह के वशीभूत थे और शुभ कर्मों को लोभ ने ग्रस लिया था। हे ज्ञाननिधि गरुडजी अब थोड़ा सा कलियुग का धर्म सुनो।

व्याख्या : तामस बहुत रजोगुन थोरा। कलि प्रभाव विरोध चहुँ ओरा। यह कलियुग का मल है। इसका अनुवेध सभी धर्मों मे हो गया था। सात्त्विक कर्म कोई नही करता था। जो लोग धर्म करते भी थे वे तामस धर्म करते थे। सद्ग्रन्थ प्रचार विहीन होने से लुप्त हो गये। मार्ग कही पता नही कि कैसे चलें। महाजनो येन गतः

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



स पन्थाः । सो सद्ग्रन्थो के लोप से यह भी पता नही चलता था कि बडे लोग किस रास्ते से गये हैं। ऐसा सुअवसर पाकर दम्भियो ने अपना अपना नया पन्थ कल्पना करके चलाया। जिससे चलनेवाले और भी पथभ्रष्ट हो जाते थे।

सब लोग अज्ञानवश आहार निद्रा भय मैथुन को ही लक्ष्य माने हुए चलते थे। जितने शुभ कर्म थे। उनपर लोभ का अधिकार हो गया था। शुभकर्म होना दुष्कर व्यापार था। भुमुण्डिजो कहते हैं कि अब थोडा सा कलि धर्म भी सुनो।

बरन धरम नहि आस्रम चारी। स्रुति बिरोधरत सब नरनारी ॥
द्विज स्रुति बेचक भूप प्रजासन। कोउ नहि मान निगम अनुसासन ॥१॥

अर्थ : न वर्ण धर्म है न चार आश्रम हैं। सब नर नारी वेद के विरोध म लगे हुए हैं। ब्राह्मण वेद बेंचते हैं राजा प्रजा को खाकर जीते हैं। काई भी वेद की आज्ञा नही मानता।

व्याख्या ससार का कल्याण वेद की आज्ञा मानने मे है दूसरी भाँति से सम्भव नही। वेद की आज्ञा अव्याहत रखने के लिए ही चार वर्ण और चार आश्रम हैं। ये यदि अपने अपने धर्म पर चल तो काई कष्ट आ नही सकता। यथा 'बरणास्रम निज निज धरम निरत वेद पथ लोग। चलहि सदा पावहि सुखहि नहि भय सोक न रोग। सो कलियुग मे वर्ण धर्म ही नही रह जाता। आश्रम विभाग मिट जाता है। नर नारी आसुर भाव को प्राप्त हो जाते हैं। जेहि बिधि होइ धरम निर्मूला। सो सब करहि बेद प्रतिकूला।

ब्राह्मण का धर्म विद्यादान है सो ब्राह्मण विद्यादान बन्द कर देंगे। विनियम म धन लकर तब वेद पढावेंगे। विष्णुशर्मा ने कहा नाह विद्याविक्रय शासनशतेनापि करोमि। यद्यपि अध्यापन ब्राह्मणो की जोविका है सो विद्या पढा चुकने के बाद गुरुदक्षिणा रूप से शिष्य के सामर्थ्यानुसार ग्रहण करने का विधान है। सो सब बातें जाती रही। ब्राह्मण वेतन भोगी होकर वेद पढाने लगते हैं।

राजा का धर्म है कि प्रजा को और सपुत्र की भाँति पालन करें। सो राजा प्रजा को अपनी जीविका बना करके धन शोषण करते हैं। उनके न देने पर उन्हे दण्ड देते हैं। प्रजा पालन का उन्हे ध्यान भी नही। प्रजा का कष्ट देकर अपना पालन करना ही उनको खाकर जीना है।

ब्राह्मण और क्षत्रिय के विहिताचरण स ही लोक व्यवहार ठीक चलता है। जब ये दोना अपने मर्यादा से च्युत हो जाते हैं तब और लोग भी स्वच्छन्दाचार मे रत हो जाते है। वेद को आज्ञा की परवाह नही करते।

मारग सोइ जा कहु जोइ भावा। पडित सोइ जो गाल बजावा ॥
मिथ्यारभ दभ रत जोई। ता कहु सत कहै सब कोई ॥२॥

अर्थ जो जिसे अच्छा लगे उसी को वह रास्ता मानता है। जो लम्बी लम्बो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बातें करे वही पण्डित है। जिसका आरम्भ ही मिथ्या हो। जो दम्भ में दत्तचित्त हो उसी को सब सन्त कहते है। '

व्याख्या : जिस रास्ते से पिता चले हो जिस रास्ते से पितामह चले हो और वह भलो का रास्ता हो उसी को पकडने से कल्याण होता है। महाजनो येन गतः स पन्थाः। परन्तु कलियुग में जिसे जैसा अच्छा लगे वही रास्ता वह पकड़ता है। इसका परिणाम बडा भयङ्कर है। स्वच्छन्दाचार से मनुष्य नष्ट हो जाता है। मार्ग की परिभाषा ही बदल गयी। इसी भाँति शब्दो के दुष्प्रयोग से बडा अनिष्ट होता है। परमार्थ ज्ञाता को पण्डित कहा जाता है। सो लम्बी लम्बी बातें करनेवाले को सब लोग एकमत होकर पण्डित मान लेते हैं। वह नेता हो जाता है और लोग उसी का अनुसरण करते हैं।

जो दम्भरत हैं दिखाने के लिए धर्म की ध्वजा उठाये हुए हैं। जिन्होने आरम्भ से ही झूठ को लक्ष्य बना रक्खा है। दूसरे को ठगना ही ध्येय बना रक्खा है। ऐसे बिडाल व्रती बकव्रती को चाहे वह कोई हो सब लोग सन्त कहते हैं। सन्त की परीक्षा इसी मे है कि मन्द करत जो करै भलाई। परन्तु इतनी परख किसी को नही।

सोइ सयान जो परधन हारी। जो कर दंभ सो बड़ आचारी ॥
जो कह झूठ मसखरी नाना। कलियुग सोइ गुनवंत बखाना ॥३॥

अर्थ : जो दूसरे का धन हरण करे वही सयाना है। जो दम्भ करे वह बडा भारी आचारवान् है। जिसे झूठ कहना मसखरी करना आता है। कलियुग में वही गुणी माना जाता है।

व्याख्या : वस्तुतः दूसरे का धन हरण करनेवाला बडा मूर्ख है। जिसने अन्यायोपार्जित द्रव्य से अपना कल्याण माना क्योकि अन्यायोपार्जित द्रव्य दश वर्ष तक ही ठहरता है। उसके लिए उसने अपना परलोक बिगाडा। परन्तु कलियुग मे उस महा मूर्ख को ही लोग सयाना कहेगे। क्योकि लोग भी परलोक पर विश्वास न करनेवाले तथा ऐहिक सुखको ही सर्वस्व माननेवाले होगे। परवित्त हरण करनेवाली बुद्धि ही उनके लिए प्रशसा के योग्य होगी।

जो दिखाने के लिए धर्म का ढोग बनाये हो उसे लोग आचारवान् मानेंगे। लोगो में सच्चे झूठे की परख जाती रहेगी। जिसे झूठ बोलने की विद्या मालूम है और जिसे लोगो को हँसाना आता हो। कलियुग मे उसकी गिनती गुणी जनो मे होगी। वस्तुतः वह महा निर्गुणी है। मिथ्या भाषण महा निन्दित दोष है। मिथ्याभाषी के लिए अवीची नाम का नरक बना हुआ है। जो सब नरको के नीचे है। मसखरे महा-निर्लज्ज होते हैं। सो इन बडे बडे दोषो की कलियुग मे गुणो मे गणना होगी।

निराचार जो स्रुतिपथ त्यागी। कलिजुग सोइ ज्ञानी सो बिरागी ॥
जाके नख अरु जटा बिसाला। सो तापस प्रसिद्ध कलिकाला ॥४॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ जो आचारभ्रष्ट वेदमार्ग को छोडे हुए हैं कलियुग मे वे ही ज्ञानी और वे ही विरागी है। जिसे नख और जटा लम्बी लम्बी है वही कलिकाल मे प्रसिद्ध तपस्वी कहलाता है।

व्याख्या आचार प्रथमो धर्म। आचार ही प्रथम धर्म है। स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धि विन्दति मानव। अपने कर्म धर्मसे ईश्वर की अर्चना करके लोग सिद्धि को प्राप्त करते हैं। सो जिसने आचार का त्याग किया उसे वैराग्य का उदय कैसे होगा ? और विना वैराग्य के ज्ञान भी कैसे होगा ? पहिले स्वधर्माचरण करके जब वैराग्य तथा ज्ञान अर्जन करता है तब वह विधि निषेध से परे होता है। फिर भी वह लोकसग्रह के लिए निषिद्धाचरण नही करता। नही तो शुना तत्त्वदृशाश्चैव को भेदोऽशुचिभक्षणे। कुत्ते मे और तत्त्वदर्शी मे अशुचि भक्षण समान होने से भेद क्या रह जायगा ?

बहुत दिनो तक क्षौर न कराने से हाथ पैर के नख बहुत वढ जाते हैं। जिससे वे सर्वथा कर्ममार्ग से परिभ्रष्ट हो जाते है। सिर के केश भी सिमिटकर जटारूप मे परिणत हो जाते हैं। कलिकाल मे ऐसे पुरुषो की प्रसिद्धि तपस्वी रूप से हो जाती है।

दो. असुभ वेष भूषन धरे, भक्षाभक्ष जे खाहि।
तेइ जोगी तेइ सिद्ध नर, पूजित कलि जुग माहि॥९८ क.

सो जे अपकारी चार तिन्ह कर गौरव मान्य तेइ।
मन क्रम बचन लवार, ते वक्ता कलिकाल महुँ॥९८॥

अर्थ अशुभ वेष और भूषण धारण करके जो भक्ष्याभक्ष्य खाते है वे योगी हैं। वे सिद्ध हैं। वे ही कलियुग मे पूज्य हैं। जो अपकारी चुगुल है उन्ही की बडाई और उन्ही का मान है। जो मनसा वाचा कर्मणा झूठे हैं वे ही कलियुग मे वक्ता हैं।

व्याख्या नख आदि के बढा लने से तथा मलिन रहने से उनका वेष अशुभ है। अस्थि की माला आदि धारण से जिसका भूषण भी अशुभ है। भक्ष्य और अभक्ष्य सव कुछ खाने से जो महा अपवित्र हैं ऐसे पुरुष को लोग योगी मानते हैं। सिद्ध मानते है और उन्ही की पूजा होती है। अन्य युगो म ऐसे पतितो का कोई मुख भी नही देखता। सब बिधि सोचिय पर अपकारी। निज तन पोषक निर्दय भारी। पिसुन पराय पाप कहि दही। ये दोनो महा दुर्गुण जिसम हो उसी की बडी प्रतिष्ठा और उसी की बडी मान्यता होती है। दुनिया भर के झूठे वक्ता माने जाते हैं। यह कलियुग की अद्भुत लीला है। युग का प्रभाव ऐसा बलवान् है कि स्वभावत सबकी प्रवृत्ति विपरीतार्थ मे होती है।

नारि विवस नर सकल गोसाई। नाचहि नट मरकट की नाई॥
सूद्र द्विजन्ह उपदेसहि ज्ञाना। मेलि जनेऊ लेहि कुदाना॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : हे गोसाईं ! जितने नर हैं वे सब नारी के वशीभूत रहते हैं और नटके बन्दर की भाँति नाचते हैं। शूद्र ब्राह्मणो को ज्ञान उपदेश करते हैं और यज्ञोपवीत पहनकर कुदान लेते हैं।

व्याख्या . नियम यह है कि स्त्री पुरुष के वश मे रहे। बचपन मे पिता के वश मे, यौवन मे पति के वश मे, वार्धक्य मे पुत्र के वश मे रहे। क्योकि स्त्री मे स्वतन्त्रता की योग्यता नही है। यथा ' पिता रक्षति कौमारे भर्ता रक्षति यौवने। पुत्रास्तु स्थाविरे भावे न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति। सो इसका ठीक उलटा कलियुग मे होता है। पुरुष ही स्त्री के वशीभूत होकर रहते हैं। वह जो नाच नचाती है वही नाच नाचते हैं। मानो स्त्री नट है और पुरुष उसका पाला हुआ बन्दर है। वह उस स्त्री से प्रेरित होकर लज्जा छोडकर जहाँ तहाँ नाचा करता है। यथा . धन्य कीस जो निज प्रभु काजा। जहँ तहँ नाचहिं परिहरि लाजा। नाचि कूद कर लोग रिझाई। पति हित करहिं धरम निपुनाई।

शूद्र को ज्ञान होने पर भी ज्ञानोपदेश का अधिकार नही है। विदुरजी ऐसे ज्ञानी ने धृतराष्ट्र के तद्विषयक प्रश्न के उत्तर मे कहा कि मैं शूद्रयोनि मे उत्पन्न हूँ। इसलिए इससे अधिक नही कह सकता। मैं सनतसुजात ऋषि का आवाहन करता हूँ। वे आकर तुम्हे उत्तर देंगे। तदनुसार ऋषिजी ने आकर राजा धृतराष्ट्र को ज्ञानोपदेश किया। सो शूद्र ब्राह्मणो को ज्ञानोपदेश करेंगे। इतना ही नही वे अपने गले मे यज्ञोपवीत डाल लेंगे। जिसमे लोग उन्हे ब्राह्मण समझें और गङ्गादितीर्थ के तट पर निषिद्ध दान ग्रहण करेंगे। ब्राह्मणो को भी जिनकी जीविका प्रतिग्रह है दान लेने से रोका गया है। उन्हे शिलोञ्छ वृत्ति की सम्मति धर्मशास्त्र ने दिया है। कुदान ग्रहण करने से आज भी ब्राह्मण दूर भागते हैं। उस कुदान के ग्रहण के लिए शूद्र लोगों को ठगने के लिए जनेव पहन लेते हैं जिसमे लोग उन्हे ब्राह्मण समझें और कुदान ग्रहण करते हैं।

सब नर काम लोभरत क्रोधी। वेद विप्र स्रुति संत विरोधी ॥
गुन मंदिर सुन्दर पति त्यागी। भजहिं नारि पर पुरुष अभागी ॥२॥

अर्थ . सभी लोग कामी लोभी और क्रोधी होगे। वे वेद विप्र गुरु और सन्तों का विरोध करते हैं। स्त्रियाँ परम गुणी और सुन्दर पति का परित्याग करके अभागी पर पुरुष को भजती हैं।

व्याख्या . काम क्रोध और लोभ नरक के द्वार है और आत्मा का नाश करनेवाले हैं। यथा त्रिविध नरकस्येद द्वार नाशनमात्मन। काम क्रोधस्तथा लोभस्तस्मादेतत् त्रयं त्यजेत्। इसलिए इनके त्याग का विधान है। कलियुग मे सभी कामी क्रोधी और लोभी होते हैं। नरक के लिए पूरी तैयारी रहती है। वेद विप्र गुरु और सन्त की कृपा से ही मनुष्य का कल्याण होता है। सो इन्ही से लोग वैर करते हैं उनका कल्याण कैसे हो? जिसका पूजन होना चाहिए उनसे ही वैर करते हैं। इस भाँति अपना दोनो लोक अपने हाथ से बिगाडते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



स्त्रीधर्म है कि गुणहीन पति का भी भजन करें। यथा : वृद्ध रोग बस जड धनहीना। अंध बधिर क्रोधी अतिदीना। ऐसेउ पति कर किय अपमाना। नारि पाव जमपुर दुख नाना। पति बंचक पर पति रति करई। रौरव नरक कल्पसत परई। सो कलियुग की स्त्रियाँ गुणमन्दिर सुन्दर पति का त्याग करके निर्गुण कुरूप पर पुरुष का अभागिनी भजेंगी। भावार्थ यह कि वे भी अपने नरक का रास्ता ठीक करने मे दत्तचित्त रहती हैं। एकइ धर्म एक व्रत नेमा। काय बचन मन पतिपद प्रेमा। उस धर्म का हठ पूर्वक परित्याग करती है।

सौभागिनी बिभूषन हीना। बिधवन्ह के सृंगार नवीना॥
गुरु सिख अंध बधिर कर लेखा। एक न सुनहि एक नहि देखा॥३॥

अर्थ सोहागिनी स्त्री को तो गहना नही और विधवा के नये नये शृंगार होते हैं। गुरु और शिष्य मे अन्धे और बहरे का हिसाब है। एक देखता नही दूसरा सुनता नही।

व्याख्या अलङ्कार का धारण करना सौभाग्य का चिह्न है। कुछ अलङ्कार तो ऐसे हैं जिन्हे सौभाग्यवती स्त्री सदा धारण किये रहती हैं। सो कलियुग मे सौभाग्यवतियो को तो आभूषण से विरक्ति रहती है। उनका आभूषण धारण करना पति का आदर है। उसे वे नही करती और विधवा जिनको आभूषण निषिद्ध है वे नित्य नया शृंगार किये रहती हैं। उनका शृंगार पर पुरुष के आकर्षण के लिए ही है।

गुरु ही मार्गप्रदर्शक है। कर्णधार है। यथा कर्णधार सद्‌गुरु दृढ नावा। सो यदि वही अन्धा हो तो बेडा पार कैसे हो सकता है। शिष्य भी यदि एकलव्य की भाँति हो तो अपने पुरुषार्थ और गुरुभक्ति से काम निकाल सकता है। यहाँ शिष्य बहरा है। वह गुरु की सुनता ही नही। यदि गुरु आँखवाले भी हो तो उसका कल्याण नही कर सकते। सो कलियुग मे यह बडा भारी साधन ही मारा पडा।

हरै सिष्य धन सोक न हरई। सो गुर घोर नरक महु परई॥
मातु पिता बालकन्हि बोलावहिं। उदर भरै सोइ धर्म सिखावहिं॥४॥

अर्थ जो गुरु शिष्य का धन हरण करता है और शोकहरण नही करता वह घोर नरक मे पडता है। माता पिता बालकों को बुलाते हैं और जिसमे पेट भरे वही धर्म सिखाते हैं।

व्याख्या बिना शिष्य का कल्याण किये उससे धन स्वीकार करना गुरु के लिए उचित नही है। पर यहाँ तो गुरु अन्धे हैं शिष्य बहरा है। तब शिष्य का सम्बन्ध यही रह गया कि गुरुजी शिष्य का धन हरण करने के लिए ही गुरु बनते हैं। इस भाँति गुरु अनवसर धन ग्रहण करने का फल घोर नरक है। ऐसे गुरु शिष्य का उद्धार क्या करेंगे। अपने नरक का रास्ता सीधा कर रहे हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



माता पिता तो आदि गुरु हैं। उन्हीं की शिक्षा का संस्कार बच्चों पर अमिट पड़ता है। यन्नवे भाजने लग्नः संस्कारो नान्यथा भवेत्। उनकी यह गति है कि लड़के को शिक्षा देने के लिए बुलाते हैं और शिक्षा यह देते हैं कि जिससे पेट भरे वही धर्म है। अर्थात् जो कुछ धर्म की भावना उसमे पहिले से हो वह भी नष्ट हो जाय। यह धर्म की कलियुगी परिभाषा सर्वनाश का कारण होता है। ऐसे माता पिता के पुत्र धर्म के लिए कैसे कष्ट सह सकते हैं। वे वैषयिक सुख के लिए क्या नहीं कर सकते।

दो. ब्रह्मज्ञान बिनु नारि नर, करहि न दूसरि बात।
कौडी लागि मोह बस, करहिं बिप्र गुरघात ॥९९ क.
बादहि सूद्र द्विजन्ह सन, हम तुम्ह ते कछु घाटि।
जानै ब्रह्म सो बिप्रवर, आँखि देखावहि डांटि ॥९९॥

अर्थ : स्त्री पुरुष बिना ब्रह्म[1] ज्ञान के दूसरी बात नही करते और कौड़ी के के लिए मोह वश होकर ब्राह्मण और गुरु का बध करते हैं।

शूद्र ब्राह्मणों से विवाद करते हैं कि क्या हम तुमसे कुछ कम हैं। जो ब्रह्म को जाने वही ब्राह्मण है : ऐसा कह कर डांटते हैं और आंख दिखाते हैं।

व्याख्या : कलियुग में स्त्री पुरुष सब विचित्र ब्रह्मज्ञानी होते हैं। दिन रात ब्रह्मज्ञान की बातें करते हैं। अद्वितीय हैं। यहाँ नानात्व कुछ भी नही है। व्यवहार की बातों में भी उनका अद्वैतवाद चलता है। पर वह सब स्वार्थ के लिए। शास्त्र की आज्ञा है : भावाद्वैतं सदा कुर्यात् क्रियाद्वैतं न कर्हिचित्। सर्वत्राद्वैतं कुर्यात् नाद्वैतं गुरुणा सह। सदा भावाद्वैत करना चाहिए। क्रिया में अद्वैत कही न होने पावे। सर्वत्र अद्वैत को स्थान दे। गुरु के साथ अद्वैत न करे। सो यहाँ क्रियाद्वैत ही करते हैं। भावाद्वैत कभी नहीं। कौड़ी के लिए ब्रह्मवध गुरुवध तक कर डालते हैं।

शूद्र को वाचाल नही होना चाहिए। ब्राह्मण की निन्दा कभी नही करनी चाहिए। ज्ञानगुमानी नहीं होना चाहिए। इन बातों से उसका परलोक बिगडता है। यथा : सोचिय सूद्र बिप्र अवमानी। मुखर मान प्रिय ग्यानगुमानी। सो कलियुग में शूद्र वादप्रिय होते हैं। ब्राह्मणों से विवाद करते हैं कि क्या मैं तुमसे कुछ कम हूं। बराबरी की धुन में अनधिकार चेष्टा करते हैं, शास्त्रमर्यादा भङ्ग करते हैं, वैर बाँधते हैं, कहते हैं : ब्रह्म जानाति इति ब्राह्मणः। जो ब्रह्म को जाने वह ब्राह्मण है। यदि उनसे कोई कहता है : ब्रह्म जानाति ब्रह्मज्ञ. होता है ब्राह्मण नहीं होता :

---

१. प्रत्यस्तमितभेदं यत् सत्तामात्रमगोचरम्। वचसामात्मसंवेद्यं तद् ज्ञानं ब्रह्मसंज्ञितम्। वि. पु.। जिसमें सम्पूर्ण भेदज्ञान शान्त हो जाते हैं। जो सत्ता मात्र और वाणी का अविषय है तथा स्वयं ही अनुभव का विषय है। यही ब्रह्मज्ञान कहलाता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ब्रह्मणोऽपत्य पुमान् ब्राह्मण. होता है तो डाँटकर आँख दिखाते हैं कि चुप रहो बहुत मत बोलो।

परत्रिय लंपट कपट सयाने। मोह द्रोह ममता लपटाने ॥
तेइ अभेद बादी ग्यानी नर। देखा मैं चरित्र कलिजुग कर ॥१॥

अर्थ : परस्त्री का लोभी कपट मे चतुर मोह द्रोह और ममता मे लिप्त : ऐसे लोग अभेदवादी ज्ञानी बनते हैं। मैंने कलियुग का चरित्र देखा।

व्याख्या : पाणिगृहीता में सन्तोष नही। परस्त्री की बडी चाह। परन्तु कपट चतुर हैं लखाई नही पडते। यथा : कपट चतुर नहि परैं लखाई। उन्हे काम भी है क्रोध भी है मोह ममता मे लिपटे हुए भी हैं। पर अपने इन दोषो को अभेदवाद करके छिपाते हैं। ज्ञानी बनते हैं और लोग भी उन्हे अभेदवादी ज्ञानी मानते हैं। वस्तुत: उनमे अविद्या के पाँचो पर्व मौजूद हैं। मोह से अविद्या कहा। ममता से : अस्मिता कहा। परत्रिय लम्पट से : राग कहा। द्रोह से द्वेष कहा और कपट सयाने से : अभिनिवेश कहा और मुख से अभेदवादी बनते हैं। कहते हैं : निस्त्रैगुण्ये पथि विचरतां को विधिः को निषेधः। भुसुण्डिजी कहते हैं कि यह चरित्र मैंने कलियुग का देखा कि सबकी बुद्धि तामसी हो गयी है।

आपु गए अरु तिन्हहूँ घालहिं। जे कहुँ सत मारग प्रति पालहिं ॥
कल्प कल्प भर एक एक नरका। परहि जे दूषहि स्रुति करि तरका ॥२॥

अर्थ : स्वय तो नष्ट हो गये ही हैं। पर जो लोग सन्मार्ग का प्रतिपालन करते हैं उन्हे भी नष्ट करते हैं। जो लोग तर्क से वेद को दूषित ठहराते हैं वे लोग एक कल्प तक प्रत्येक नरक भोगते हैं।

व्याख्या : स्वय नष्ट परान् नाशयति। आप तो सन्मार्ग से पतित हो गये हैं। यवनोच्छिष्ट भोजन, यवन सहवास, यवनानी गमन, स्वधर्म त्याग, परधर्माभिरुचि, मर्यादा भङ्ग आदि दोष से पतित हो गये हैं। परन्तु जो लोग सन्मार्ग पर आरूढ हैं। उनके पतन के लिए अनेक यत्न करते हैं। अपने को आगे बढा हुआ और सन्मार्ग-गामी को पिछडा हुआ उद्घोषित करते हैं। जाति पाँति तोडक मण्डल स्थापित करते हैं। शिक्षा क्रम पलटते है, नाटक, उपन्यास, कहानी, सिनेमा, सङ्गीत द्वारा ऐसा प्रचार करते हैं जिससे आप से आप लोगो का पतन हो। इनसे काम नहीं चलता तो धर्मध्वंसकारी कानून बनाते हैं और उससे समाजहित का दम्भ रचते हैं। वेदों को मनुष्य का बनाया हुआ बतलाते हैं और भगीरथप्रयत्न करके देश के इतिहास को पलट देते हैं। निदान : जेहि बिधि होइ धर्म निर्मूला। सो सब करहि बेद प्रतिकूला।

अब ऐसा करनेवाले की गति कहते हैं कि तर्क से वेद को कलङ्कित करनेवाले के लिए प्रत्येक नरक मे एक कल्प के लिए निवास मिलता है। तर्क की कोई प्रतिष्ठा नही है। एक तार्किक को उससे बडा तार्किक हरा देता है और वह अपने से बडे

ankurnagpal108@gmail.com



तार्किक से हार जाता है। अतः अमर्यादित तर्क नही होना चाहिए। तर्कशास्त्र वेद की रक्षा के लिए बना है। शास्त्र के सिद्धान्तों के समझने के लिए बना है। तीखी तलवार से गोवध भी हो सकता है और गोरक्षा भी हो सकती है। परन्तु उससे गोरक्षा ही उपादेय है गोवध नही। इसी भाँति तर्क से वेदमर्यादा का स्थापन ही उचित है। उसके द्वारा वेद का खण्डन अथवा उसमे दोषारोपण करना बड़ा भारी पाप है। क्योंकि ऐसा करने से सन्मार्ग बिगड़ता है। लोग पथभ्रष्ट किये जाते हैं। अपना ही पाप कौन कम है। सो संसार को पथभ्रष्ट करने का पाप जिसने अपने ऊपर लिया शास्त्र वध का पाप जिसे लगा उसका ऐसा घोर दण्ड ही न्याय है। इस बात को उद्घोषित कर देना भी उचित है। जिसमें लोग सावधान हो जायँ।

जे बरनाधम तेलि कुम्हारा। स्वपच किरात कोल कलवारा ॥
नारि मुई घर संपति नासी। मूड़ मुड़ाइ होंहि संन्यासी ॥३॥

अर्थ : जो अवम वर्ण है। अर्थात् तेली, कुम्हार, डोम, कोल, कलवार, इनकी जब स्त्री मर जाती है घर की सम्पत्ति नष्ट हो जाती है तो सिर मुण्डन कराके संन्यासी हो जाते हैं।

व्याख्या : संन्यासी अर्थात् भिक्षु होने का अधिकार केवल ब्राह्मण शरीर को है क्षत्रिय को भी नही। उसे यदि ज्ञान हो भी जाय तो लिङ्ग धारण करे। भिक्षु न हो। यथा : आरत काहु न करइ कुकरमू। माँगहिं भीख त्यागी निज धर्मू। सो जब क्षत्रिय के लिए यह विधान है तो वैश्यादिक के लिए कुछ कहना नही है। सो कलियुग मे यह होता है कि अधम वर्ण के लोग जिनका जल भी नही चलता जैसे तेली, कुम्भकार, चाण्डाल, किरात, कोल तथा मद्य विक्रेता कलवार भी संन्यासी होते हैं। उनके संन्यास ग्रहण का कारण वैराग्य नही है गृह सुख का नाश कारण है। दरिद्र हो गये। स्त्री भी मर गयी। कोई ठिकाना नही। तो संन्यासी होकर माँग खायेंगे। सन्यासी होने का विधान है। शिखा यज्ञोपवीत का त्याग भी शास्त्रविधि से होना चाहिए। सो उन्हे किसी बात की परवाह नही। सिर मुँड़ाकर और काषाय वस्त्र धारण करके अपने आप संन्यासी हो जाते हैं।

ते बिप्रन्ह सन आपु पुजावहिं। उभय लोक निज हाथ नसावहिं ॥
बिप्र निरच्छर लोलुप कामी। निराचार सठ बृषलीस्वामी ॥४॥

अर्थ : वे ब्राह्मणों से अपने को पुजवाते हैं। दोनों लोक का नाश अपने हाथों करते हैं। ब्राह्मण को अक्षर से भेंट नही रहती। वे लालची कामी आचार रहित और शूद्री के स्वामी होते हैं।

व्याख्या : ये अधम वर्ण ब्राह्मणो से अपने को पुजवाते हैं। कहते हैं : दण्ड-ग्रहणमात्रेण नरो नारायणो भवेत्। मैं स्वयं नारायण हूँ। पत्थर के देवताओं में क्या रक्खा है मेरी पूजा करो। जाति आयु और भोग पूर्व कर्मानुसार होता है। जिनका रमणीय आचरण होता है वे रमणीय योनि ब्राह्मण या क्षत्रिय जाति मे जन्म ग्रहण

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



करते हैं। जिनका पूर्व जन्म मे कपूय आचरण होता है वे चाण्डाल योनि शूकर कूकर योनि मे उत्पन्न होते हैं। अत ब्राह्मण की पूजा पूर्व जन्म के कर्मानुसार होती है। उनको इस जन्म के कर्मं का फल दूसरे जन्मो मे मिलेगा। अत. शीलगुण हीन ब्राह्मण की पूजा अश्वत्थ वृक्ष या तुलसी की भाँति होती है। गुणगण ज्ञान मे प्रवीण होने पर भी शूद्र की पूजा नही होती। दूसरे जन्म मे जब उसके रमणीय आचरण का फल मिलेगा तब उसकी भी पूजा होगी। पुनर्जन्म न माननेवाले के समझ मे वर्णाश्रम धर्म नही आ सकता। सो अधमवर्ण शास्त्र का अवहेलन करके सन्यासी बना। उसकी पूजा सन्यासी समझकर ब्राह्मण करेंगे ही उस पूजा को स्वीकार करके उस अधम वर्ण ने अपने दोनो लोको को नष्ट किया। उसे अपने भेद खुलने का सदा भय बना रहता है और खुल जाने पर बडी अपकीर्त्ति होती है। इस भाँति उसका यह लोक भी विगडा। परलोक को तो उसने खूब ही विगाडा। उसके लिए लिखना व्यर्थ है।

यह भी नही कि ब्राह्मण कलियुग के प्रभाव से बचे हो। उनका भी भारी पतन होता है। ब्राह्मण का महत्त्व बडा है तो उनके साथ साथ उनकी जिम्मेदारी भी बडी है। उन्हे निष्काम होकर षडङ्ग वेद पढना चाहिए। उन्हे तपस्वी होना चाहिए। सो कलि म वे सब बातें तो गयी। षडङ्गवेद का जानना तो दूर गया। उन्हे अक्षर का भी ज्ञान नही। तप की चर्चा क्या ? वे कामी, लोभी, आचार विहीन, यहाँ तक कि शूद्रो को घर मे डाल लते हैं। जिनके ससर्ग से उनका सद्य पतन होता है।

सूद्र करहिं जप तप व्रत दाना। बैठि बरासन कहहिं पुराना॥
सब नर कल्पित करहिं अचारा। जाइ न बरनि अनीति अपारा॥५॥

अर्थ शूद्र लोग जप तप व्रत दान करते हैं। व्यासासन पर बैठकर पुराण कहते हैं। सब लोग मनमाना आचरण करते हैं। अपार अनीति का वर्णन नही हो सकता।

व्याख्या सबकी प्रवृत्ति ही युग के प्रताप से उलटी हो जाती है। जिसका जप व्रत दान करना क्या कहना स्वधर्म है वे उसके निकट नही जाते और जिनका स्वधर्म तीनो वर्णो की सेवा है उन्ह ब्राह्मण धर्म मे रुचि उत्पन्न होती है। शोक मोहाभिभूत प्राणी स्वधर्म पर चल नही सकता। शूद्र की ब्रह्म कर्म मे प्रवृत्ति उसके पतन का कारण है। सेवा म ही प्रवृत्ति होना उसका तप है। उसी से उसकी सिद्धि होती है। राजा युधिष्ठिर के यज्ञ मे महा ज्ञानी होने पर भी चाण्डाल ने पूजा स्वीकार नही की अपने सेवा धर्म पर ही डँटा रह गया। सो कलियुग मे शूद्र ब्राह्मणोचित कर्म करेंगे और ब्राह्मणो के अधिकार का भी भोग करेंगे।

यह प्रादेशमात्र दिखला दिया गया। फल यह कि सब लोग मनमाना आचार करेंगे। शास्त्र विहित मार्ग पर कोई न चलेगा। परलोक माननेवालो की यह गति कही जा रही है। अज्ञातार्थ ज्ञापकत्व शास्त्र का लक्षण है। परलोक का कोई सवाद

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



किसी को नहीं मालूम उसमें अपनी मनमानी कल्पना करना मूर्खता है। यः शास्त्रविधिमुत्सृज्य वर्तते कामकारतः। न स सिद्धिमवाप्नोति न सुखं न परां गतिम्। तस्माच्छास्त्रं प्रमाणन्ते कार्याकार्यव्यवस्थितौ। ज्ञात्वा शास्त्रविधानोक्तं कर्म कर्त्तुमिहार्हसि। अतः कलियुग में ऐसी अनीति होती है जिसका वर्णन नहीं किया जा सकता।

दो. भए बरनसंकर कलि, भिन्न सेतु सब लोग।
करहिं पाप पावहिं दुख, भय रुज सोक बियोग ॥१०० क.
स्रुति संमत हरि भगति पथ, संजुत बिरति बिबेक।
तेहि न चलहिं नर मोह बस, कल्पहि पंथ अनेक ॥१००॥

अर्थ : कलियुग में लोग वर्णसंकर हो गये और धर्मसेतु से सब पृथक् हो गये। पाप करते हैं। दुःख पाते हैं। भय रोग शोक और वियोग होता रहता है। श्रुतिसम्मत हरिभक्त पथ वैराग्य और विवेक के साथ बना है। उस पर लोग मोहवश नहीं चलते और अनेक पन्थ की कल्पना करते हैं।

व्याख्या : अन्य युगों मे कही कहीं कर्मसंकरता दिखाई पड़ती है। कलियुग में पहिले कर्मसंकरता दिखलाकर पीछे वर्णसंकरता दिखलाया। लोग वर्णसंकर हो गये : सामान्योऽयं धर्मसेतुर्नराणाम्। धर्म का सेतु मनुष्य मात्र के लिए सामान्य है। धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः। धीर्विद्यासत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्। इसी सामान्य धर्म के आधार पर विशेष धर्म भी खड़े हैं। सो इस धर्मसेतु पर कोई नही चलता। सब पाप करते हैं और उसका फल भय रोग शोक वियोगादि दुःख पाते हैं।

कर्मपथ कहकर अब भक्ति पथ कहते हैं कि भक्तिपथ श्रुतिसम्मत है। उसके साथ वैराग्य और विवेक का होना आवश्यक है। भक्ति माता है। विरति विवेक उसके बच्चे हैं। बच्चे के साथ माता प्रसन्न रहती है। इस सर्वश्रेष्ठ मार्ग के रहते हुए लोग अज्ञानवश उस पर नहीं चलते और नये नये पंथों की कल्पना करते हैं। अनादि ईश्वर का अनादि वेद आज्ञा है। उसके अनुसार अनादि भक्तिपथ है। उसे छोड़कर मनुष्य का कल्पित नये नये पन्थों पर चलना कलियुग के ही प्रभाव का द्योतक है।

छं. बहु दाम सँवारहिं धाम जती। बिषया हरि लीन्हि रही बिरती ॥
तपसी धनवंत दरिद्र गृही। कलि कौतुक तात न जात कही ॥

अर्थ : संन्यासी बहुत साधन और धाम सँवारते हैं। वैराग्य रहा उसे विषय ने हर लिया। तपस्वी तो धनी हैं और गृहस्थ दरिद्र हैं। हे तात! कलियुग का कौतुक कहा नहीं जा सकता।

व्याख्या : जिन्होंने विधि पूर्वक संन्यास लिया अब उनका हाल कहते हैं कि वे धन धाम सँवारने में लग गये। धन धाम [illegible] करके ही संन्यास

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



लिया जाता है। सो संन्यास लेकर फिर धन धाम के सँवारने में लग गये। फिर भी थोड़े में सन्तोष नहीं है। बहुत धन और बहुत से धाम का संग्रह करने लगे। जिसे त्याग किया उसी का ग्रहण करने से वान्ताशी : कुत्ते हो गये अथवा बहुत से फन्दे सँवारने लगे लोगों के फँसाने के लिए : दाम फन्दे को भी कहते हैं और धाम सँवारने लगे यह दिखाने के लिए कि इसमें महात्मा लोग रहकर साधन भजन करेंगे। प्रश्न यह उठता है कि तब उन्होंने संन्यास क्यों लिया ? इसके उत्तर में कहते हैं कि सन्यास लेने के समय वैराग्य रहा। उसे विषय ने हरण कर लिया। यथा : बिगरत मन संन्यास लेत जल नावत आम घरो सो।

अब वानप्रस्थ और गृहस्थ का हाल कहते हैं। वानप्रस्थ आश्रम ही तपस्या के लिए है। इसका धर्म इतना कठोर है कि कलियुग में इसका निषेध कर दिया गया है। वे वन में रहें। कठोर से कठोर तप करें। मृत्यु का आसरा देखते रहें। उनसे धन से कोई सम्बन्ध नहीं। बिना जोता बोया अन्न खावें। उसे कूटे नही पीसे नही इत्यादि। सो वे धनी बने बैठे हैं। उनको लोग धन ले जाकर देते हैं। स्वयं भी पतित होते हैं। उन्हे भी पतित करते हैं और जिन्हे धन की आवश्यकता है उन गृहस्थों को कोई नही देता। वे दरिद्र हैं। तपस्वी के पास धन जाकर अचल हो जाता है। क्योंकि उन्हें कोई खर्च नही। गृहस्थ के पास धन टिकता नही। क्योंकि उन्हें सहस्रों प्रकार के खर्च हैं। अतः वे दरिद्र बने रहते हैं। भुसुण्डिजी कहते हैं कि यह कलियुग का खेल है। उनके खेल का ही वर्णन होना कठिन है। धर्म के इस प्रकार विपरीत होने मे कलियुग का कोई लाभ नही है। पर मन वहलाव के लिए वे ऐसा किया करते हैं।

कुलवंति निकारहिं नारि सती। गृह आनहि चेरि निबेरि गती॥
सुत मानहि मातु पिता तब लौं। अबलानन दीख नही जब लौ॥

अर्थ : सत्कुल प्रसूता और सती स्त्री को घर से बाहर निकाल देते हैं और दासी को अचल रूप से लाकर घर मे स्थापन करते हैं। बेटे माँ बाप को तभी तक मानते हैं जब तक उनकी आँख स्त्री पर नही पड़ती।

व्याख्या : गृहस्थों का यह हाल है कि जाति मे उत्तम करनी मे उत्तम सती साध्वी को तो लोग घर से बाहर निकाल देते हैं। उनका कुल शील उन्हें पसन्द नहीं और दासी : रखेली को घर मे ला बिठाते हैं। जिसमे न कुल है न शील है और उसे नही निकालते। व्यभिचारिणी के हाव भाव कटाक्ष में मुग्ध रहते हैं। कुल शीलवाली स्त्रियों मे यह विद्या कहाँ ? वह ऐसी हो नही सकती। यह पुरुषो की स्वाद पराङ्मुखता है।

स्त्री पर दृष्टि पड़ने से पुत्र पिता माता का मानना छोड़ देते हैं। सस्त्रीक होकर माता पिता को सेवा का अधिक सुभीता है। स्त्रियो के लिए तो यह स्वाभाविक है और शास्त्र सम्मत भी है कि पति के प्रेम के सामने माता पिता का प्रेम दब जाना चाहिए। परन्तु ऐसा भाव पुरुष मे नही होना चाहिए। सो कलियुग

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मे ऐसा ही होता है। स्त्रियाँ भले ही माता पिता का प्रेम न छोडे पर पुरुष तो छोड ही देते हैं। मातृदेवो भव पितृदेवो भव। यह वेद की आज्ञा है। पिता धर्म. पिता कर्म पिता हि परमा गति.। पितरि प्रीतिमापन्ने प्रीयन्ते सर्वदेवता । पिता ही धर्म है पिता ही कर्म है पिता ही परमगति है। पिता के प्रसन्न होने पर सब देवता प्रसन्न हो जाते है। ऐसा धर्मशास्त्र कहता है। गृहस्थ होने पर माता पिता की सेवा ही प्रधान है। वह मूल धर्म ही छूट जाता है।

ससुरारि पियारि लगी जब ते। रिपु रूप कुटुब भये तब तें ॥
नृप पाप परायन धर्म नही। कर दड बिडब प्रजा तिनही ॥

अर्थ . जब से ससुराल प्यारी लगी तब से तो कुटुम्ब के लोग शत्रु लगने लगे। राजा पापपरायण हैं धर्मपरायण नही। नित्य ही प्रजाओ मे दण्ड की विडम्बना किया करते हैं।

व्याख्या : ब्याह होते ही माँ बाप का मानना बन्द हो जाता है। जहाँ ससुराल मे आना जाना प्रारम्भ हुआ : लोकोक्ति है कि श्वशुरगृहनिवास स्वर्गतुल्यो नराणाम्। श्वशुरालय मे दामाद की बडी खातिरी होती है। अत ससुराल का प्यारा लगना कुछ बुरी बात नही है। परन्तु उस आवभगत मे अपने स्वरूप को भूल जाना बुरा है। तहाँ लोग ससुराल के प्यार मे ऐसे भूलते है कि उन्हे अपने कुटुम्ब के लोग शत्रु दिखाई पडने लगते है। ब्याह होने से अपना पक्ष बलवान् होता है। सो ये मूर्ख अपने पक्ष से ही शत्रुता कर लेते हैं।

कलियुग मे राजाओ का यह हाल है कि पाप ही उनका शरण हैं। उन्हे पाप का ही भरोसा है। सदा पाप मे लिप्त रहते हैं। राजा का प्रधान कार्य धर्म रक्षा है। वे आठो लोकपालो के अश रूप माने जाते हैं। वे यदि पाप परायण हुए तब धर्म के लिए स्थान कहाँ है? राजा दण्डधरो गुरु कहलाता है। राजा दण्ड के बल से प्रजा को सन्मार्ग मे चलाता है। उसके तथा लोक के कल्याण के लिए अपराधी को दण्ड देता है। परन्तु पाप परायण राजा ऐसा नही करता। वह दण्ड देता है अपने लाभ के लिए। दण्ड को धर्म रूप माना गया है। सो पापी राजा के राज्य मे दण्ड की विडम्बना मात्र होती है। अदण्डय को दण्ड होता है और दण्डनीय आनन्द करते हैं।

छ. धनवत कुलीन मलीन अपी। द्विज चिन्ह जनेउ उघार तपी ॥
नहि मान पुरानन्ह वेदहि जो। हरि सेवक सत सही कलि सो ॥

अर्थ : मलिन भी धनी कुलीन हैं। ब्राह्मण का चिह्न जनेउ और तपस्वी का चिह्न नङ्गा रहना है। जा पुराण और वेद को नही मानता वही कलियुग मे हरिदास सच्चा सन्त है।

व्याख्या . चाहे उसके कुल मे रजवीर्य की शुद्धि न हो। पर यदि वह धनी है तो कुलीन माना जाता है। अर्थात् धनी होना ही कुलीन होने का यथेष्ट **प्रमाण** माना

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जाता है और गले मे जनेउ का पडा रहना ही ब्राह्मणत्व का प्रमाण रह जाता है और जिसने कपडे उतार दिये वही तपस्वी गिना जाता है। भावार्थ यह कि कलियुग मे जनता की बुद्धि विकृत हो जाती है। उसमे सार ग्रहण का सर्वथा अभाव हो जाता है।

पिता माता के सत्कर्म का पुत्र दायी नही माना जाता। कुलीन होना मानो कोई गुण ही नही है। धनी होना ही मानो सब कुछ है। जनेउ के साथ कुछ कर्म भी है जिसे जनेउधारी को करना होता है। बिना उनके जनेउ का मूल्य क्या है। इसी भाँति परमहस परिव्राजक महा विरक्त ही दिगम्बर हो सकता है। कपडे फेंक देना तो नङ्गा हो जाना है। वह दण्डनीय है तपस्वी नही है। ऐसो के आदर करने से मर्यादा भङ्ग होती है। परन्तु कलियुग मे यही सब होता है . आज्ञा सम न सुसाहिब सेवा। आज्ञा मानना ही वडी भारी सेवा है। वेद पुराण भगवान् की आज्ञा है जो उसे नही मानता वह हरि का द्रोही है हरि का दास नही है। वह सन्त नही है वह दुष्ट है। कलियुग मे सच्चा सन्त और सच्चा हरिदास उसे ही कहेगे जो वेद पुराण न मानता हो। पुराण वेद माननेवाला यथेच्छाचारी न हो सकता है और न यथेच्छाचार का उपदेश दे सकता है। ये सब बातें तो न माननेवाला ही कर सकता है। अत यथेच्छाचारियो को वही अनुकूल पडता है। इसलिए उसे ही हरिदास और सन्त मानते हैं।

कवि बृंद उदार दुनी न सुनी। गुन दूषक ब्रात न कोपि गुनी ॥
कलि बारहि बार दुकाल परैं। बिनु अन्न दुखी सब लोग मरैं ॥

अर्थ · कवि समाज उदार ससार मे सुनायी नही पडता। सब गुणो मे दोष देखनेवाले हैं। गुणी कोई नही। कलि मे बारम्बार अकाल पडता है। लोग अन्न के बिना दु खो होकर मरते हैं।

व्याख्या : कवि ही मर्त्य को अमर बनाता है। कवि की वाणी मे इतनी सामर्थ्य है कि लोग उसे चाह से याद करते हैं भूलना नही चाहते। अत कवि को उदार तो कम से कम होना ही चाहिए। परन्तु कलियुग में कवि की उदारता सुनी नही जाती। समालोचना दुनिया भर की कर डालेंगे पर उनका बनाया शुद्ध दो पक्ति पद्य भी न बनेगा। जिन्हे देखिये वह गुण मे दोष देने को तैयार है। पर गुणी खोजिये तो एक न मिलें। कलि मे दोना फसलें रबी खरीफ की मारी जाती है। अत. बार बार दुकाल पडना कहा।

दो. सुनु खगेस कलि कपट हठ, दभ द्वेष पाखड।
मान मोह मारादि मद, ब्यापि रहे ब्रह्मड ॥
तामस धरमु करहिं नर, जप तप मख ब्रत दान।
देव न बरषहिं धरनि पर, बए न जामहि धान ॥१०१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : हे गरुड़ ! कलियुग में कपट हठ दम्भ द्वेष पाखण्ड मान मोह मारादि ब्रह्माण्ड व्यापे रहते हैं। लोग जप तप मख व्रत दान तो करते हैं। पर सबको तामसिक बनाकर करते हैं। देव पृथिवी पर वरसते नही और बोने पर धान्य नही उगते।

व्याख्या : कपट हठ दम्भ पाखण्डादि का उल्लेख कही कही अन्य युगों में भी पाया जाता है। अन्य युगो मे जब ऐसी घटनाएँ होती थी तो वे भविष्य में शिक्षा ग्रहण के लिए लिख ली जाती थी। पर कलियुग में तो ये सब दोष सारे ब्रह्माण्ड मे व्याप जाते हैं। इनका लेखा कहाँ तक किया जाय। श्रीरामजी कहते हैं : ऐसे अधम मनुज खल कृत जुग त्रेता नाहि। द्वापर कछुक बृंद बहु होइहैं कलिजुग माहि।

लोग धर्म करने चलते हैं तो तामस धर्म कर डालते हैं : अनुबन्धं क्षयं हिंसामनपेक्ष्य च पौरुषम्। मोहादारभ्यते कर्म यत्तत्तामसमुच्यते। अयुक्तः प्राकृतः स्तब्धः शठो नैष्कृतिकोऽलसः। विषादी दीर्घसूत्री च कर्ता तामस उच्यते। बुरे भले परिणाम शरीर और धन का व्यय पर पीड़ा और अपने सामर्थ्य की परवाह न करके अविवेक से जो कर्म आरम्भ करते हैं उसे तामस कहा जाता है। असावधान, विवेकशून्य, अनम्र, हठी, निर्दय, आलसी, विषादी, दीर्घसूत्री कर्ता को तामस कहते हैं। इन दोषों के कारण जप, तप, व्रत, यज्ञ और दान भी तामस धर्म हो जाते हैं। फल यह होता है कि उचित समय पर देव वर्षा नही करते और पृथिवी की उर्वरा शक्ति ही जाती रहती है।

अबला कचभूषन भूरि छुधा। धन हीन दुखी ममता बहुधा॥
सुख चाहहिं मूढ न धर्मरता। मति थोरि कठोरि न कोमलता॥१॥

अर्थ : स्त्रियो के बाल ही भूषण है और भूख बड़ी है। धन से हीन दु.खी हैं फिर भी ममता बहुत हैं। धर्म मे रत नही हैं फिर भी बेवकूफ सुख चाहते हैं। बुद्धि थोड़ी है फिर भी कठोर है उसमें कोमलता नही।

व्याख्या : स्त्रियाँ अपने बाल अनेक प्रकार से गूँथेंगी। उसी को आभूषण समझेंगी अथवा दरिद्रता के कारण भूषण न पहन सकेंगी। बाल को ही साज बाज कर शृङ्गार करेंगी। उन्हे भूख बहुत लगेगी। अर्थात् ये कलियुगी स्त्री के लक्षण हैं। लोग बिना धन के दुःखी हैं। धर्म मे रुचि होनी चाहिए। सो न होकर उनकी ममता और बढ़ती है। यथा : अबुध कुटुम्बी जनु धन हीना।

सुख तो सभी चाहते हैं। इसीलिए सबको धर्माचरण का विधान है। क्योंकि धर्म से ही सुख होता है। यदि सुख के लिए धर्म छोड़कर कोई और उपाय हो तो धर्म की आवश्यकता नही। यथा : सुखी मीन सब एक रस अति अगाध जलमाहि। जथा धर्मसीलन्ह के दिन सुख सजुत जाहि। अतः धर्म ही सुख का कारण है। कारण से ही कार्य की सिद्धि होती है। अतः सुख चाहनेवाले को धर्माचरण करना चाहिए। यहाँ सुख तो चाहते हैं पर धर्म में मन नही लगाते। इसीलिए इन्हें मूढ कहा गया। बुद्धि भी थोड़ी है। यह नही समझते बिना कारण के कार्य कैसे होगा ? और वह भी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



डी कठोर है क्रूर है। उसमे कोमलता अर्थात् दयालुता का स्पर्श भी नही। अत समे सात्त्विक धर्मानुष्ठान की योग्यता ही नही है पुण्यस्य फलमिच्छन्ति पुण्यं च्छन्ति मानवा। न पापफलमिच्छन्ति पाप कुर्वन्ति यत्नत।

र पीडित रोग न भोग कही। अभिमान बिरोध अकारन ही॥
घु जीवन सवत पचदसा। कलपात न नास गुमान असा॥२॥

अर्थ लोग रोग से पीडित हैं कही भोग नही है। बिना कारण ही अभिमान और विरोध करते हैं। पन्द्रह वर्ष का छोटा सा जीवन है और अभिमान ऐसा है कि कल्पान्त मे भी न मरेंगे।

व्याख्या निर्धन का दुख कहकर अब धनवानो का दुख कहते हैं। जो धनवान् हैं वे रोगी है। उन्हे सुख की सामग्री तो है पर उसके उपभोग की उन्हे सामर्थ्य नही। वे रोग ग्रस्त होकर पीडित हैं। अत कही भोग नही है। दरिद्र को साधन हीनता से और धनी को सामर्थ्य हीनता से भोग की प्राप्ति ही नही है। ऐसे लोग दीन होगे किसी से विरोध न करेंगे पर ऐसी बात नही है। दुखी हैं उन्हें अभिमान होने का कारण नही है फिर भी निष्कारण अभिमान करते हैं। विरोध के तीन कारण होते हैं मित्र भूमि और हिरण्य। यहाँ एक भी नही फिर भी विरोध करते हैं। ऐसो का कुशल कैसे सम्भव है। यथा जिमि चह कुसल अकारन कोही।

मनुष्यो की आयु घट गयी। पन्द्रह वर्ष ही पूर्णायु समझी जाने लगी। फिर भी धर्म की अभिरुचि नही समझते है कि कल्पान्त मे भी मेरा नाश न होगा गृहीत इव केशेषु मृत्युना धर्ममाचरेत्। इसका ठीक उलटा आचरण करते हैं।

कलिकाल बिहाल किए मनुजा। नहि मानत कोउ अनुजा तनुजा॥
नहि तोप बिचार न सीतलता। सब जाति कुजाति भये मंगता॥३॥

अर्थ कलियुग ने मनुष्यो को बेहाल कर दिया। कोई बहन बेटी नही पहचानता। तोप विचार और शीलता तो है नही। सब जाति कुजाति मङ्गन हो गये।

व्याख्या पशुओ मे तो अनुजा तनुजा की पहिचान स्वभाव से ही नही। मनुष्यो मे शास्त्र के अनुशासन से इसका बडा विचार है अनुज बधू भगिनी सुत नारी। सुनु सठ ये कन्या सम चारी। इन्है कुदृष्टि बिलोकै जोई। ताहि बधे कछु पाप न होई। सो लोग ऐसे अचेत हो गये कि उन्ह कुछ भी बिचार न रह गया। अपने समझ मे आगे बढते पशुश्रेणी म आगये।

सन्तोप विचार और शान्ति ये ऐसे गुण हैं कि इनके प्रभाव से व्यवहार भी सुखकारी होता है। परलोक के लिए तो सुखकारी रूप से ये प्रसिद्ध हैं ही। यथा सम सन्तोप दया विवेकते ब्यौहारी सुख कारी। एपणा त्रय त्याग पर ही भिक्षा का अधिकार है। सो भी ब्राह्मण को गौर्वोढार घावितारं तुरगी दीन सूते ब्राह्मणी याचितारम्। वैश्या दक्षं कर्मकारन्तु शूद्री दातुं मत्तुं मद्विधा राजपुत्री। गो ढोनवाले

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मुर्दों की भाँति जोनेवालो मे तनुपोषक की गिनती है सो कलियुग मे सब तनुपोषक हो जायेंगे। दूसरे के हित के लिए दु ख उठानेवाले कहो न मिलेंगे और लोग घूम घूम कर दूसरा की निन्दा करेंगे। निन्दा करना उनका पेशा हो जायगा। ससार उनकी कदर करेगा।

दो सुनु व्यालारि कराल कलि मल, मल अवगुन आगार।
गुनौ बहुत कलिकाल कर, बिनु प्रयास निस्तार ॥१०२ क
कृत जुग त्रेता द्वापर, पूजा मख अरु जोग।
जो गति होइ सो कलि हरि नाम ते पावहिं लोग ॥१०२॥

अर्थ हे गरुडजो! सुनो यह कराल कलि मल और अवगुण का तो घर है। परन्तु इसके गुण भी बहुत हैं। क्योकि इसम बिना परिश्रम निस्तार हो जाता है।

सत्ययुग त्रेता और द्वापर मे पूजा यज्ञ और योग से जो गति होती है सा कलियुग म केवल भगवन्नाम से लोग प्राप्त करते हैं।

व्याख्या जुग कलियुग मल मूल से उपक्रम करके मल अवगुन आगार से उपसहार करते हैं। यद्यपि कलियुग दोषो की खानि है पर विधि प्रपच गुन अवगुन साना। कलियुग के गुण भी बहुत है। अन्य युगो मे बहुत बडा पुरुषार्थ करने से निस्तार होता है। पर कलियुग मे निस्तार पाने मे कोई प्रयास नहीं है।

जब सत्ययुग था तब लोग योग करके भव सन्तरण करते थे। त्रेता म योग साधन कठिन हो गया। क्योकि उसमे रजका प्रवेश हो गया। अत यज्ञ सम्पादन करके लोग भवसन्तरण करते थे। द्वापर म तमोगुण के प्रवेश से यज्ञ सम्पादन भी कठिन हो गया। तब भगवत् पूजन करके लोग ससार सागर पार हो जाते थे। परन्तु कलियुग मे तमोबाहुल्य स पूजन भी कठिन हो गया। अत हरिनाम स्मरण से ही ससार सागर पार पाने का विधान इस युग मे है। इसलिए कहा जा सकता है कि कलियुग मे बडा भारी गुण भी है। कलि मे नामसेवा ही प्रधान है।

कृत जुग सब जोगी बिज्ञानी। करि हरिध्यान तरहिं भव प्रानी ॥
त्रेता बिबिध यज्ञ नर करही। प्रभुहिं समर्पि करम भव तरही ॥१॥

अर्थ सत्य युग म सभी योगी विज्ञानी होते हैं। हरिका ध्यान करके प्राणी ससार सागर के पार हो जाते हैं। त्रेता मे अनेक प्रकार के यज्ञ करते हैं और उसके फल को प्रभुको अर्पण करके भवसागर पार होते हैं।

व्याख्या शुद्ध सत्व समता बिग्याना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना। सत्ययुग म शुद्ध सत्त्व गुण बरतता है। अत समता और विज्ञान सुलभ है। सब प्रसन्न रहते हैं। प्रसन्नचेता की बुद्धि सुव्यवस्थित रहती ह। यथा प्रसन्नचेतसो ह्याशु बुद्धि पर्यव तिष्ठते। अत सत्ययुग का समय योग विज्ञान के अनुकूल हाता है। अत हरि का ध्यान करके प्राणी भवसागर के पार पहुँच जाता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



त्रेता मे सत्त्वगुण बहुत होता है परन्तु कुछ रजका भी योग हो जाता है। रति कर्म का प्रचार हो जाता है। अथवा कर्म मे रति होती है और याग निर्विकार-चित्तैकसाध्य है। स्त्री या कर्म उसमे महा विघ्न हैं। अतः वह समय यज्ञ के अनुकूल पड़ता है। क्योंकि सस्त्रीक होकर ही यज्ञ का सम्पादन किया जाता है। अत: लोग अनेक प्रकार के यज्ञ करते हैं और कर्म फल भगवान् को अर्पण करके कर्मयोग द्वारा ससार सागर के पार हो जाते हैं।

द्वापर करि रघुपति पद पूजा। नर भव तरहिं उपाय न दूजा ॥
कलिजुग केवल हरिगुन गाहा। गावत नर पावहिं भव थाहा ॥२॥

अर्थ : द्वापर मे रघुपति के चरणो की पूजा करके लोग ससारत्तरण करते हैं। दूसरा उपाय नही है। कलियुग मे केवल हरिगुण की गाथा का गान करके लोग संसार का थाह पा जाते हैं।

व्याख्या : बहु रज सत्व स्वल्प कछु तामस। द्वापर हर्ष शोक भय मानस। द्वापर मे रजोगुण बहुत बढ जाता है। कुछ तामस का भी प्रवेश रहता है। सत्त्व भी बहुत थोडा रहता है। अत. द्वापर मे लोगों के मन मे हर्ष शोक और भय का अधिकार हो जाता है। यज्ञ मे तनिकसी अविधि होने से फल मे बड़ा उलट पलट हो जाता है। यज्ञ के बराबर दूसरा शत्रु भी नही है। अविधि हो जाने से वह यजमान का उलटा अकल्याण करता है। बड़े बडे यज्ञ प्रभूत धन धान्य तथा आयाससाध्य हैं। द्वापर मे उनसे लाभ की आशा बहुत कम हो जाती है। अत उस समय के अनुकूल पूजा है। जिसमे वर्षों का समय न लगकर घण्टो का हिसाब है।

कलियुग मे पूजन भी दुष्कर हो जाता है। हर्ष शोक और भय का प्रभाव मन पर पड़ा करता है। अत. पूजा के भी अभिचाररूप मे परिणत हो जाने का भय रहता है। अतः इस युग मे हरिगुण गाथा के गान से ससार समुद्र ही नही रह जाता। उसका थाह मिल जाता है। डूबने का भय जाता रहता है। पार जाना सरल हो जाता है। सन्तरण की आवश्यकता नही रह जाती। गान करने मे आयास बहुत कम है। इसलिए यहाँ सन्तरण नहीं कहा। यथा : कृते यद् ध्यायतो विष्णु त्रेतायां यजतो मखै.। द्वापरे परिचर्यायां कलौ तद्धरिकीर्तनात्।

कलिजुग जोग न जग्य न ग्याना। एक अधार राम गुन गाना ॥
सब भरोस तजि जो भज रामहि। प्रेम समेत गाव गुन ग्रामहि ॥३॥

अर्थ : कलियुग मे न योग है न यज्ञ है न ज्ञान है। केवल राम गुणगान ही एक मात्र आधार है। सब भरोसा छोड़कर जो राम को भजता है प्रेम के सहित गुण समूह का गान करता है।

व्याख्या : एहि कलिकाल सकल साधन फल भये सम फलनि फरोसो। इसलिए कहते हैं कि कलिजुग जोग न जज्ञ न ग्याना। भाव यह कि इनका भरोसा नही। समय इनके प्रतिकूल है जैसे धान की खेती चैत में नही होती। करने लगिये तो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बडी कठिनता पडती है और ईप्सित फलप्रसू नही होती। इसी भांति अन्य साधनो के लिए कलियुग अनुकूल समय नही है। इस मे तो केवल रामगुणगान ही आधार है।

अत. जिसने काल का विचार करके सब साधनो का भरोसा त्याग दिया। राम के भजन मे लग गया प्रेम के सहित रामजी के गुण ग्राम का गान आरम्भ कर दिया। गुणो के गान करने से उनका संस्कार मन पर पडता है। रामजी के गुणो का सस्कार मन पर पडने से ही सम्पूर्ण अशुभ सस्कार नष्ट हो जाते हैं।

सो भवतर कछु संसय नाही। नाम प्रताप प्रगट कलि माही॥
कलिकर एक पुनीत प्रतापा। मानस पुन्य होइ नहि पापा॥४॥

अर्थ : वह ससार तर जाता है। इसमे सन्देह नही है। नाम का प्रताप कलियुग मे प्रकट है। कलियुग का एक पवित्र प्रताप है कि मानस पुण्य होता है पाप नही होता।

व्याख्या : चहुँ जुग चहुँ स्रुति नाम प्रभाऊ। कलि विसेष नहि आन उपाऊ। योग मे तो नाम का बडा प्रताप योगशास्त्र ने स्वीकार किया है। ईश्वरप्रणिधानाद्वा तज्जपस्तदर्थभावनम्। ईश्वर पर प्रेम करने से समाधि की सिद्धि माना है और नाम के जप तथा अर्थ की भावना का उपदेश किया है। यज्ञ तो नाम ग्रहण पूर्वक हवि दान से ही किया जाता है। पूजा मे तो पदे पदे नाम ग्रहण पूर्वक नमस्कार करके ही वस्तु अर्पण की जाती है। यदि इन तीनो मे से नाम हटा दें तो ये कुछ रह नही जाते। इसलिए कहते हैं कि 'चहुँ जुग चहुँ स्रुति नाम प्रभाऊ। कलि विसेष नहि आन उपाऊ। और कलियुग मे तो कोई दूसरा उपाय नही है। यथा : तेन तप्त हुत दत्तमेवाखिल तेन सर्वं कृत कर्मजालम्। येन श्रीरामनामामृत पानकृतमनिशमनवद्य मवलोक्य कालम्। अत उसके भाव सन्तरण मे सशय नही है। उसे थाह मिल जाता है। ऐसा नाम का प्रताप कलियुग मे प्रकट है। जो चाहे वह जप करके इसका प्रभाव देखले।

यह तो नाम का प्रताप हुआ। अब स्वय कलियुग का एक पवित्र प्रताप सुनिये। यद्यपि कलियुग तो दोष का समुद्र ही है। परन्तु इस मे एक महान् गुण है कि इस मे मानस पुण्य होता है पाप नही। यथा : ब्रह्मवैवर्त्त ३ ९० १२९। कलर्दोषनिधे तात गुण एको महानपि। मानसञ्च भवेत् पुण्य सुकृत नहि दुष्कृतम्। मनसे शुभ सकल्प करने का भी पुण्य है और अशुभ सकल्प उठने का भी पाप है। सो वह पाप कलियुग मे नही होता। यदि वह पाप भी होता तो कलियुग मे शायद ही किसी का निस्तार होता।

दो. कलिजुग सम जुग आन नहि, जौ नर कर बिस्वास।
गाइ राम गुन गन बिमल, भवतर बिनहि प्रयास॥१०३ क.
प्रगट चारिपद धरम के, कलिमहुँ एक प्रधान।
जेन केन बिधि दीन्हे, दान करै कल्यान॥१०३॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ : कलियुग के समान दूसरा युग नही है यदि मनुष्य विश्वास करे। इसमे रामजी के निर्मल गुणगण गान करके मनुष्य बिना परिश्रम ससार तर जाता है। चार पाद धर्म के प्रकट हैं। उनमे से एक कलियुग मे प्रधान है। जिस किसी विधि से भी करने से दान कल्याण करता है।

व्याख्या : कोई भी सिद्धि बिना विश्वास नही होती। लोगो को विश्वास नही होता कि रामजी के गुणगान मात्र से बिना प्रयास भव सन्तरण कैसे हो सकता है। इसलिए गुणगान नही करते। यदि विश्वास होता तो बिना गुणगान किये रहा न जाता। भुसुण्डिजी कहते हैं विश्वास की कमी से ही कलियुगी प्राणियो की दुर्गति होती है। नही तो जहाँ राम गुणगान से ही भव सन्तरण है वहाँ लोगो के दुर्गति होने का प्रश्न ही क्या है। यदि इस दृष्टि से देखा जाय तो कलियुग ही धन्य है।

सत्य दया तप और दान ये ही चार पाद धर्म के हैं। कलियुग मे तीन पादो से धर्म का ह्रास हो जाता हैं। इस युग मे दान ही प्रधान है। दान धर्म महा कठिन है। दान मे पात्रापात्र का बडा बखेडा है। दान का बडा विधान है पर भुसुण्डिजी कहते हैं कि कलियुग मे जिस किसी विधि से दान करे। दान की नाव पहाड चढती है।

नित जुग धर्म होहिं सब केरे। हृदय राम माया के प्रेरे ॥
सुद्ध सत्व समता विज्ञाना। कृत प्रभाव प्रसन्न मन जाना ॥१॥

अर्थ : रामजी की माया की प्रेरणा से सबके हृदय मे नित्य युग धर्म हुआ करते हैं। सत्ययुग के प्रभाव से शुद्ध सत्त्वगुण समता और विज्ञान द्वारा प्रसन्न मन रहता है।

व्याख्या : जिस भाँति ससार मे चार हजार दिव्य वर्ष तक सत्ययुग तीन हजार दिव्य वर्ष तक त्रेता दो हजार दिव्य वर्ष तक द्वापर और एक हजार दिव्य वर्ष तक कलियुग क्रम से बीतता है उसी भाँति रामजी की माया की प्रेरणा से मनुष्यो के हृदय मे भी नित्य सत्ययुग त्रेता द्वापर और कलियुग वर्त्तता है। ग्रह की महादशा मे जिस भाँति अवान्तर दशाएँ आती हैं उसी भाँति मनुष्य के हृदय मे भी नित्य चारो युग का चक्र चला करता है। जब सत्ययुग वर्तने लगता है तब शुद्ध सत्त्वगुण का उदय होता है। मन मे ममता और विज्ञान तथा प्रसन्नता रहती है। ऐसे अवसर पर योग ज्ञान विज्ञान के साधन के लिए अनुकूलता रहती है।

सत्य बहुत रज कछु रति करमा। सब बिधि सुख त्रेता कर धरमा ॥
बहु रज स्वल्प सत्व कछु तामस। द्वापर धरम हरप भय मानस ॥२॥

अर्थ : सत्त्व बहुत हो थोडा रज हो और कर्म मे रति हो : ऐसा त्रेता का धर्म सब भाँति सुखद है। बहुत रज और थोडा थोडा सत्त्व और तम हो : ऐसे द्वापरके धर्म मे हर्ष शोक और भय मन मे होते हैं।

व्याख्या . जब हृदय मे त्रेता वर्तता है उस समय सत्त्व अधिक और रज थोडा होता है और कर्म अर्थात् वैदिक कर्म यज्ञ यागादि मे प्रीति होती है। यह

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अवसर यज्ञ यागादि के लिए अनुकूल पड़ता है। इसमे सब प्रकार से सुख ही सुख है। यथा : देवान् भावयतानेन ते देवा भावयन्तु व'। परस्परं भावयन्त: श्रेय' परमवाप्स्यथ। यज्ञ से देवताओ की भावना करने से देवता याज्ञिक की वृद्धि करते हैं। इस भाँति परस्पर भावना करने से परमश्रेय को प्राप्त होते हैं।

जब हृदय पर बहुत रजोगुण और थोड़े थोडे सत्व और तम का अधिकार होता है तब द्वापर वर्तता है इसलिए मन मे हर्ष शोक और भय का भी उदय होता है। इस मे पूजा भी अनूकूल होती है। क्योंकि पूजा में घण्टो का हिसाब है महीनो सालो का नही।

तामस बहुत रजो गुन थोरा। कलि प्रभाव विरोध चहुँ ओरा॥
बुध जुग धरमु जानि मन माही। तजि अधरम रति धरम कराही॥३॥

अर्थ : तमोगुण बहुत और थोडा सा रज कलियुग मे वर्तता है। इसका स्वभाव है कि चारो ओर विरोध होता है। पण्डित मन मे युग धर्म को समझकर अधर्म का त्याग करके धर्म मे मन लगाते हैं।

व्याख्या : जब हृदय मे तमोगुण के बाहुल्य और रज की स्वल्पताका उदय होता है तब कलियुग के स्वभावानुसार चारो विरोध रहता है। ऐसे अवसर पर सिवा नाम जप के और कोई साधन सम्भव नही। भुसुण्डिजी कहते हैं कि पण्डित लोग लक्षण से समझ लेते हैं कि मेरे मन मे कौन सा युग वर्त रहा है और अधर्म का परित्याग करके धर्म मे मन लगाते हैं। ईश्वर की प्रेरणा से नित्य युगधर्म हृदय मे वर्तता है उससे लाभ उठाना साधक का काम है। साधक युगो के लक्षण ज्ञान से समझ सकता है कि कौन सा युग किस समय उसके हृदय मे वर्त रहा है तदनुकूल साधन से उस समय काम लेता है। स्वय भुसुण्डिजी इसी भाँति साधन करते थे। यथा : पीपर तरु तर ध्यान सो धरई। जाप जग्य पाकर तर करई। आम छाँहकर मानस पूजा। तजि हरि भजन काज नहि दूजा। बट तर कह हरि कथा प्रसगा।

युग के अनुसार रामजी की माया के अनुसार लोगो के हृदय मे युग धर्म वर्तता है। सबकी प्रवृत्ति ही युग धर्मानुकूल हो जाती है। उस समय पण्डित का काम है कि युगधर्म से सावधान होकर अधर्म का त्याग करके धर्म मे मन लगावे।

काल धरम नहि ब्यापहिं ताही। रघुपति चरन प्रीति अति जाही॥
नट कृत बिकट कपट खगराया। नट सेवकहि न ब्यापै माया॥४॥

अर्थ : कालधर्म उसे नही व्यापता जिसे रामजी के चरण मे अति प्रीति हो। हे पक्षिराट्! नट विकट माया फैलाता है पर नटसेवक को माया नही व्यापती।

व्याख्या : कालधर्म को प्रेरक रामजी की माया है। माया का बल उस पर नही चलता जिसे रामजी के चरणो मे अत्यन्त प्रीति होती है। क्योंकि उसके हृदय मे भक्ति का साम्राज्य रहता है और भक्ति से माया अत्यन्त भयभीत रहती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



यथा : भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अतिमाया। अत: रामोपासक को कालधर्म नही व्यापता।

ऐसी ही स्थिति लोक मे भी देखी जाती है। नट ऐसी माया फैलाता है कि सबकी दृष्टि उसी के संकल्पानुसार काम करने लगती है। सब लोग देखते हैं कि नट ने कोल्हू सिर पर उठा लिया और लिये खड़ा है। सब लोग बड़ा आश्चर्य करते हैं। पर नटका सेवक जानता है कि नट स्वय कोल्हू पर खडा है। लोग ही उलटा देखते हैं पर उसे नट की माया नही व्यापती। क्योंकि उसके लिए नट का संकल्प नही है।

दो. हरि माया कृत दोष गुन, बिनु हरि भजन न जाहि।
भजिय राम तजि काम सब, अस बिचारि मन माहि ॥१०४ क.

अर्थ : हरिमाया के निर्मित दोष और गुण बिना हरिभजन के जाते नही। ऐसा मन मे विचार करके सब काम को छोड़कर रामजी का भजन करना चाहिए।

व्याख्या : माया अनेक प्रकार की होती है। दैवी माया आसुरी माया मानुषी माया इत्यादि। और इनके निर्मित दोष और गुण भी विभिन्न प्रभाववाले होते हैं और उपाय से जाते भी रहते हैं पर रामजी की माया बड़ी प्रबल है। यथा : सुनु खग प्रबल राम की माया। इसका निर्मित : काल धर्म : दोष गुण किसी के हटाये नही हटता। यह हरि भजन से ही जाता है। भगवान् ने भी स्वयं कहा है : दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। मामेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते। इसलिए सब कामनाओं का परित्याग करके रामजी का भजन करना चाहिए। जिसमे कालधर्म बाधा न कर सके।

तेहि कलिकाल बरष बहु, बसेउँ अवध बिहगेस।
परेउ दुकाल बिपति बस, तब मै गयउँ बिदेस ॥१०४॥

अर्थ : उस कलिकाल में हे गरुड़जी! मैं बहुत वर्षो तक अवध मे रहा। दुकाल पडा तो विपत्ति के वश मे विदेश चला गया।

व्याख्या : कवनेउँ जनम अवध बस जोई। राम परायन सो हरि होई। सो भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैंने अनेक वर्षों तक अवध वास किया। अवध की महिमा न जानने से उर मे उग्रबुद्धि और विशाल दम्भ होने से तथा पापपरायण समय : कलियुग होने से तीर्थवास की कोई विधि भी नही पालन कर सके। कलियुग मे बारम्बार दुकाल पड़ता है। बिना अन्न के दु:खी होकर लोग मरने लगते हैं। सो दुकाल पड़ ही गया। मुझे भी ऐसी विपत्ति आयी कि देश छोड़कर भाग गया।

गयेउँ उजेनी सुनु उरगारी। दीन मलीन दरिद्र दुखारी॥
गए काल कछु संपति पाई। तहँ पुनि करौं संभु सेवकाई ॥१॥

अर्थ : हे पक्षिराट्! सुनो मैं दीन मलिन दरिद्र और दुःखी होकर उज्जैन

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


गया। कुछ काल बीतने पर मुझे कुछ सम्पत्ति मिल गयी और फिर मैं शिवजी की सेवा मे लग गया।

व्याख्या : मालव देश मे सदा सुकाल रहता है। इसलिए मैं उज्जैन चला गया। प्रारब्ध ने फिर साथ दिया। सात मोक्षपुरियो मे से उज्जैन भी एक पुरी है। अयोध्या छूटा तो अवन्तिका : उज्जैन पुरी की प्राप्ति हुई। वहाँ मैं बड़ी दीन दशा मे पहुँचा। पास कुछ नही था। शरीर से मलिन और मन से दुःखी था।

कुछ दिन वहाँ रहते रहते कुछ धन हो गया। इस विपत्ति में पडने से शिवजी की सेवा छूट गयी थी। विपत्ति दूर हो जाने पर फिर भुसुण्डिजी ने शिवजी की सेवा प्रारम्भ कर दी। उज्जैन मे प्रधान देव महाकालेश्वर हैं। उनकी सेवा पूजा मे लग गया।

विप्र एक वैदिक सिव पूजा। करै सदा तेहि काजु न दूजा॥
परम साधु परमारथ बिंदक। संभु उपासक नहि हरिनिन्दक॥२॥

अर्थ : एक ब्राह्मण शिवजी की वैदिक पूजा करता था। उसे कोई दूसरा काम न था। वह परम साधु परमार्थ का ज्ञाता था। शम्भु की उपासना करता था। परन्तु हरिनिन्दक नही था।

व्याख्या : जब भुसुण्डिजी मन्दिर मे जाते थे तो देखते थे ब्राह्मण देवता की वैदिक विधान से शिवजी की पूजा चल रही है। उन्हे शिवजी की पूजा छोडकर दूसरा कोई काम ही नही था। वे महात्मा परम साधु थे। समान चित्त थे। उनका कोई हित अनहित नही था। परमार्थ पथ मे बड़े चतुर थे। उसी के सुधारने मे दिन रात लगे रहते थे। मनसा वाचा कर्मणा शिवजी के उपासक थे। परन्तु भुसुण्डिजी की भाँति हरिनिन्दक नही थे।

तेहि सेवौं मैं कपटसमेता। द्विज दयाल अति नीति निकेता॥
बाहिज नम्र देखि मोहि साईं। बिप्र पढाव पुत्र की नाईं॥३॥

अर्थ : उनकी मैं कपट के साथ सेवा करने लगा। ब्राह्मणदेवता बड़े दयालु और नीति के मानो घर थे। मुझे बाहर से नम्र देखकर ब्राह्मण देवता ने पुत्र की भाँति पढना प्रारम्भ कर दिया।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि उस ब्राह्मण की मैं सेवा करने लगा। पर अपने आन्तरिक भावो को उनसे छिपाये रहता था। उन्होने नहीं जान पाया कि यह : धन मदमत्त परम बाचाला। उग्र बुद्धि उर दंभ बिसाला। सिव सेवक मन क्रम अरु बानी। आन देव निन्दक अभिमानी है। ब्राह्मण देवता बडे दयालु थे। नीतिमान् थे। उन्होने विनिमय मे बिना कुछ दिये सेवा लेना नही चाहा और बाहरी बरताव मेरा बडा नम्र था। अतः मुझे वे परमार्थज्ञान देने के लिए पुत्र की भाँति पढाने लगे। हृदय मे उनके यह भाव था कि यह जल्दी पढ लिख ले। उनके मन में कपट नही था।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



संभु मंत्र मोहि द्विजबर दीन्हा । सुभ उपदेस विविध विधि कीन्हा ॥
जपौं मंत्र सिव मंदिर जाई । हृदय दंभ अहमिति अधिकाई ॥४॥

अर्थ उस श्रेष्ठ ब्राह्मण ने मुझे शिवजी का मन्त्र दिया और अनेक प्रकार का शुभ उपदेश दिया। मैं शिवमन्दिर मे जाकर शिव मन्त्र का जप करता था। हृदय मे दम्भ और अहङ्कार अधिक हो गया।

व्याख्या ब्राह्मण देवता विद्यागुरु तो थे ही दीक्षा गुरु भी वे ही हुए। मुझे विद्वान् बनाकर तब शिव मन्त्र से दीक्षित किया। दीक्षोपरान्त किस किस भाँति से उपासना की जाती है उसकी पद्धति मन्त्र जप का विधान तथा आचरण सम्बन्धी बहुत से उपदेश दिये जिसमे मेरा अन्धकार दूर हो।

अब तो मैं शिवमन्दिर मे जाकर जप करने लगा। उधर गुरुजी की पूजा होती थी इधर मेरा जप होता था। दम्भ और अभिमान तो मुझमे पहिले ही से था। अब इतनी बडी बडाई पाकर ऐसे शिवभक्त का शिष्यत्व प्राप्त करके दम्भ और अभिमान ऐसा बढा कि मैं उसे छिपा न सका।

दो. मैं खल मल संकुल मति, नीच जाति बस मोह ।
हरिजन द्विज देखे जरौं, करौं बिष्णु कर द्रोह ॥१०५ क.
सो. गुर नित मोहि प्रबोध, दुखित देखि आचरण मम ।
मोहि उपजइ अति क्रोध, दंभिहि नीति कि भावई ॥१०५॥

अर्थ : मै खल था। मेरी बुद्धि पाप से भरी थी। जाति मे नीच था। हरिजन और ब्राह्मणो को देखकर जलता था और विष्णु का द्रोह करता था। गुरुजी मुझे नित्य समझाते थे। मेरा आचरण देखकर दु खी होते थे। पर मुझे बडा क्रोध होता था। क्या दम्भी को नीति अच्छी लगती है।

व्याख्या : मैं स्वभाव से खल था। गुरुजी स्वभाव से परम साधु थे। मैं मलसङ्कुलमति था। वे नीतिनिकेत थे। मैं नीच जाति था। वे वैदिक ब्राह्मण थे। मैं मोहवश था। वे परमार्थ विन्दक थे। मैं विष्णुद्रोही था। वे ऐसे नही थे। मैं हरिजन और द्विज को देखकर जलता था और वे दयालु थे। अतः गुरुजी के और मेरे स्वभाव मे आकाश पाताल का अन्तर था। दीक्षा न मिलने तक मैं बाहर से नम्र रहा। मिल जाने पर मेरे सभी गुण धीरे धीरे खुलने लगे।

मेरे अज्ञान के दूर करने के लिए गुरुजी नित्य ही मुझे समझाते बुझाते थे। मेरा आचरण देखकर दु खी होते थे। क्योकि शिष्यापराधे गुरोर्दण्डः। शिष्य गुरु का ऐसा सम्बन्ध है जो परलोक के लिए होता ही है। गुरुजी एक बार कहकर चुप नही रह गये। नित्य नियम से मुझे उपदेश करने लगे। क्योकि बार बार कहने से विषय भी समझ मे आ जाता है पर मैं था दम्भी। मुझे गुरुजी की नीति अच्छी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नही लगती थी। उनके नित्य के समझाने से ऐसा क्रोध होने लगा जो सहन की सीमा के बाहर था।

बडे कष्ट ते सुकृतधन सग्रह करत सुजान।
हरत छनक यह दम्भ सम घातक शत्रु न आन॥
गिरे स्वर्ग ते सुकृत निज मुख ते कहे ययाति।
कहाँ पुण्य को गध जहँ दभ चलै दिनराति॥
या ते जप तप नेम व्रत करिये सहित छिपाव।
सुकृत कोष सचय करत होय कतहुँ लखाव॥
हरिगन द्विजगन ते सदा अपने को लघु मान।
जंगम मूरति शभु की जानि धरिय सनमान॥
सपनेहुँ इनको द्रोह सुत सकल अमङ्गल मूल।
एहि अपराध अगाध ते होत शभु प्रतिकूल॥
जो चाहे कल्याण निज रहे दभ ते दूर।
हरिजन तिन चरनन सदा करै प्रेम भरिपूर॥

**एक बार गुर लीन्ह बोलाई। मोहि नीति बहु भाँति सिखाई॥**
**सिव सेवा कै फल सुत सोई। अबिरल भगति राम पद होई॥१॥**

अर्थ एकबार गुरुजी ने बुला लिया और मुझे बहुत भांति से नीति सिखाई कहा बेटा! शिवजी की सेवा का फल हो यह है कि रामजी के चरणो मे अविरल भक्ति हो।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि अब मैंने गुरुजी के यहाँ जाना छोड दिया। पर गुरुजी ने मुझे नही छोडा। मुझे एकबार बुला लिया क्योकि मेरे आचरण से वे दु खी थे। समझाने के लिए बुलाया था अनेक प्रकार से नीति का उपदेश दिया। जिसमे मेरा आचरण सुधरे। मैं हरिजन तथा ब्राह्मणो को देखकर न जलूँ और विष्णु का द्रोह छोड दूँ। नीति यही है प्रिय का स्नेह भाजन भी प्रिय के समान हो है। तुमको शिवजी प्रिय हैं तो तुम्हे उनके स्नेह भाजन रामजी से भी वैसे ही प्रीति करनी चाहिए जैसी शिवजी से करते हो। शिवजी को ब्राह्मण साधु प्रिय हैं। अत उनसे भी प्रीति करनी चाहिए। शिवभक्त होकर उनके प्रेमभाजन रामजी से द्रोह करना ठीक रास्ता नही है। यथा प्रिय सम प्रिय सनेह भाजन सखि प्रीति रीति जग जानी। भूषन भूति गरल परिहरि कै हर मूरति उर आनी। मज्जन पान कियो कै सुरसरि कर्मनास जल छानी। पूँछ सो प्रम विरोध सीग सो यहि विचार हित हानी।

यदि शिवजी के भक्त की प्रीति रामचरणो मे न हुई तो उसकी शिवभक्ति हो निष्फल गयी। क्योकि रामभक्ति शिवभक्ति का फल है। स्वय रामजी ने कहा है कि औरो एक गुप्त मत, सबहि कहो कर जोरि। सकर भजन बिना नर भगति न पावै मोरि।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

रामहि भजहिं तात सिव धाता । नर पांवर कै केतिक बाता ॥
जासु चरन अज सिव अनुरागी । तासु द्रोह सुख चहसि अभागी ॥२॥

अर्थ : हे तात ! शिवजी और ब्रह्माजी स्वयं राम को भजते हैं। भला नीच मनुष्य की क्या गिनती है। जिसके चरणो के शिव और ब्रह्मा अनुरागी हैं तू उनसे द्रोह करके सुख चाहता है।

व्याख्या : शिव और ब्रह्मा ईश्वरकोटि मे हैं। वे भी जिस रामजी को भजते हैं। यथा : कौसलेन्द्रपदकञ्जमञ्जुलौ कोमलावजमहेशवन्दितौ। तू मनुष्यो मे भी नीच तेरी किस गिनती मे गिनती है जो तू राम को नही भजता। जिन चरणो जी कृपा से शिव को शिवपद और ब्रह्मदेव को ब्रह्मपद मिला है। हरिहिं हरिता सिवहि सिवता बिधिहि बिधिता जो दई। सो जानकी पति मधुर मूरति मोदमय मंगलमई। जिनके विरोधी को कही विश्राम नही मिलता। यथा : राम बिमुख थल नरक न लहही। उससे तू विरोध करता है। तू अभागी है तुझे सुख कैसे मिलेगा ? सुखसरूप रघुवंशमणि से तो तूने वैर ठान रक्खा है।

हर कहुँ करि सेवक गुर कहेऊ। सुनि खगनाथ हृदय मम दहेऊ ॥
अधम जाति मै बिद्या पाए। भएउ जथा अहि दूध पिआए ॥३॥

अर्थ : गुरुजी ने शिवजी को रामजी का सेवक बतला दिया। यह सुनकर तो मेरा कलेजा जल उठा। मैं अधम जाति था। हे पक्षिराट्। मैं विद्या पाने से ऐसा हो गया कि जैसा सांप दूध पिलाने से हो जाता है।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैंने यावज्जीवन शिवजी के उत्कर्ष और विष्णु के अपकर्ष के स्थापन मे बिताया। शिवभक्तो मे श्रेष्ठ जानकर इन्हे गुरु बनाया। सो यही शिवजी को हरिसेवक कहने लगे। इन्होंने मेरे साथ बड़ा विश्वास-घात किया। सो मेरा कलेजा जल उठा। भाव यह कि गुरुजी के उपदेश से मुझे क्रोध बढ़ा शान्ति न हुई। कारण देते हैं कि अधम जाति विद्या का अधिकारी नही है। विद्या पाने से उनका दोष बढ़ता है। माता से भी शतगुणित हितैषिणी श्रुति ने जो अधम जाति को विद्या का अधिकार नहीं दिया सो किसी द्वेष के वश होकर नही। विद्या प्राप्ति से अधम जाति की बड़ी हानि होती है। वही हुआ मैं गुरुद्रोही हो गया। पय पान भुजङ्गाना केवल विषवर्धनम्। सांप को दूध पिलाने से विष ही बढ़ा।

मानी कुटिल कुभाग्य कुजाती। गुरकर द्रोह करौं दिन राती ॥
अति दयाल गुरु स्वल्प न क्रोधा। पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा ॥४॥

अर्थ : मैं अभिमानी, कुटिल, कुभाग्य, कुजाति था। सो गुरु का द्रोह मैं रात दिन करने लगा। गुरुजी बड़े दयानिधान थे उन्हें कुछ भी क्रोध न हुआ। वे सुबोध बार बार मुझे सिखाते ही रहे।

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या मैं उपदेश का पात्र नही था। मैं अभिमानी था अत उनकी शिक्षा पर ध्यान नही देता था। प्रत्युत मुझे बुरा लगता था कि ये बार बार मुझे सिखाने लगते हैं। इस भांति अपना गुरु होना द्योतित करते हैं। मैं कुटिल था गुरुजी के सरल उपदेश मे मुझे वक्रता की कल्पना होती थी। चलइ जोंक जल वक्र गति जद्यपि सलिल समान। मैं समझता था कि ये मुझे शिवजी की आराधना से गिराना चाहते हैं। अकेले स्वय सर्वश्रेष्ठ शिवयोगी बने रहना चाहते हैं। मेरी उन्नति सहन नही कर सकते। अब मैं गुरुजी का द्रोह दिनरात करने लगा। निन्दा से बढ़कर दूसरा द्रोह नही है। जिससे यशोमयी देह मारी पडती है।

परन्तु गुरुजी की दया का भी पारावार नही था। उन्हे क्रोध का नाम नही। वे इसकी अविद्या के नाश के यत्न मे सदा तत्पर रहते थे। बारम्बार समय पाकर उपदेश दिया करते थे। बारम्बार उपदेश देने से बात मन मे जम जाती है।

जेहि ते नीच बडाई पावा। सो प्रथमहि हठि ताहि नसावा॥
धूम अनल सभव सुनु भाई। तेहि बुझाव घन पदवी पाई॥५॥

अर्थ जिससे नीच बडाई पाता है उसे वह हठ पूर्वक पहिले ही नष्ट करता है। हे भाई! धूआँ अग्नि से उत्पन्न है पर बादल की पदवी पाकर उसे बुझा देता है।

व्याख्या यह नियम है कि नीच जिससे बडाई पाता है पहिला काम वह यह करता है कि अपने उपकारी का नाश करता है। यही नीच का लक्षण है। कृतेपु प्रतिकर्तव्यमेष धर्म सनातन। जिसने अपने साथ भलाई की उसके साथ भलाई करना सनातन धर्म है। परन्तु नीच अपने उपकारी के साथ अपघात करता है। भुसुण्डिजी कहते है कि मुझे गुरुजी से विद्या मिली दीक्षा मिली। स्वदेशे पूज्यते राजा विद्वान् सर्वत्र पूज्यते। अत बडाई प्राप्त की परन्तु गुरुजी के रहते बडाई पूरी नही होती। अत मैं गुरुजी का द्रोह दिन रात करने लगा। अथवा नीच का स्वभाव ही ऐसा होता है। अत स्वभावानुसार द्रोह करने लगा।

उदाहरण देते हैं कि 'धूमो ज्योति सलिलमरुता सन्निपात क्व मेघ। धूम, ज्योति, जल और हवा मिलकर मेघ बनते हैं। अग्नि के कारण ही धूम की ऐसी उच्चगति होती है कि मेघ हो जाता है। मेघ के चार उपादान कारण हैं। उनमे से धूम का सूक्ष्म अंश भी कारण का ही वध करता है।

रज मग परी निरादर रहई। सब कर पग प्रहार नित सहई॥
मरुत उडाइ प्रथम तेहि भरई। पुनि नृप नयन किरीटन्हि परई॥६॥

अर्थ धूलि रास्ते म पडी हुई अनाहृत रहती है। सबके पैरो की ठोकर सहा करती है। हवा उसे उडाती है तो पहिल वह उसीको भर देती है। फिर राजा की आँख और मुकुट मे पडती है।

व्याख्या सब से बडा अनादर धूलिका है। वह रास्ते मे पडी रहती है। दिन रात लात खाया करती है। उसे हवा ही एक ऐसी वस्तु है जो ऊपर उठाती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


परन्तु धूलि नीच है। वह पहिले हवा को ही मलिन करती है। फिर राजा के आँखो और मुकुटों पर पडती है। राजा ने उसे कभी लात नही मारा था। भाव यह कि नीच जब बड़ाई पाते हैं तो पहिला चोट उनका उसपर होता है जिसके कारण बड़ाई पाया। दूसरा चोट उस पर होता है जिसने कभी अपकार नही किया। अपने अपकारी पर तो वह अन्त मे चोट करता है। इस भाँति नीचे गिरकर उस बड़ाई को भी नष्ट करता है जो उसे प्राप्त हुई थी।

सुनु खगपति अस समुझि प्रसंगा। बुध नहि करहिं अधम कर संगा॥
कबि कोबिद गावहिं असि नीती। खलसन कलह न भल नहि प्रीती॥७॥

अर्थ : हे पक्षिराट्! सुनो ऐसा प्रसङ्ग समझकर पण्डित लोग अधम का साथ नही करते। कवि पण्डित ऐसी नीति वतलाते हैं कि खल के साथ न झगड़ा अच्छा न प्रीति अच्छी।

व्याख्या : पण्डित जानते हैं कि : मिलत एक दारुन दुख देही। बिछुरत एक प्रान हरि लेही। अतः वे इस प्रसङ्ग को खूब समझते हैं कि अधम पहिले अपने उपकारी पर ही टूटते हैं। अतः वे लोग अधम का सङ्ग नही करते। गुरुजी भी यदि ऐसा जानते तो मेरा संग्रह कभी न करते। उन्होने मेरी बाहरी नम्रता से धोखा खाया।

पण्डित कवि ही संसार के सच्चे नेता है। उन्ही के वचन लोगो के हृदय पर अधिकार कर लेते हैं और लोग समय समय पर उन वचनो का प्रमाण दिया करते हैं। उन कवि कोविदो ने इस नीति की प्रशसा की है कि खल के साथ न कलह अच्छा न प्रेम अच्छा। खल कलह विद्या के पण्डित है। उसमे उन्हे कौन जीत सकता है और यदि उनके साथ कोई प्रीति करे तो मिलत एक दारुन दुख देही : इस नीति के अनुसार उनसे दु.ख ही पावेगा। अतः उनसे न प्रीति अच्छी न कलह अच्छा।

उदासीन नित रहिअ गोसाईं। खल परिहरिअ स्वान की नाईं॥
मै खल हृदय कपट कुटिलाई। गुरुहित कहै न मोहि सुहाई॥८॥

अर्थ : हे गोसाईं! नित्य उदासीन रहिये और खल का परित्याग कुत्ते की भाँति करिये। मैं खल था मेरे हृदय मे कुटिलाई थी। गुरुजी भले की बात कहते थे पर मुझे अच्छी नही लगती थी।

व्याख्या : सत्सङ्ग को परम उपादेय माननेवाले भुसुण्डिजी असत् सङ्ग को वैसा ही हेय मानते हैं। कहते हैं कि खल के प्रति सदा उदासीन भाव बनाये रहना चाहिए। उसको कुत्ते के समान त्यागना चाहिए। कुत्ते को दूर से कौर दे दीजिये। पर उसे पास न फटकने दीजिये। नीचमल्पप्रदानेन। कुत्ता के सम्पर्क से धर्म कर्म की हानि होगी। उससे वैर करने से वह काटेगा भूँकेगा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मैं सामान्य खल नही था। कपट कुटिलाई मेरे हृदय मे रहती थी। लखाई नही पडती थी। गुरुजी मेरे हित की बात मुझे समझाते थे। पर उनको बातें मुझे अच्छी नही लगती थी। उनकी बातो को हृदय मे स्थान देना तो दूर की बात है। उपदेशो हि मूर्खाणा प्रकोपाय न शान्तये।

दो. एक बार हर मंदिर, जपत रहेउँ सिव नाम।
गुर आएउ अभिमान तें, उठि नहि कीन्ह प्रनाम ॥१०६ क.
सो दयाल नहि कहेउ कछु, उर न रोष लवलेस।
अति अघ गुर अपमानता, सहि नहि सके महेस ॥१०६॥

अर्थ : एक बार शिव मन्दिर मे शिवजी का नाम मैं जप कर रहा था कि गुरुजी आ गये। मैंने उठकर प्रणाम तक नही किया। वे दयालु थे उन्होने कुछ भी नही कहा। उनके हृदय मे रोष का लेश नही हुआ। पर गुरु के अपमान रूपी महापाप को महादेवजी नही सह सके।

व्याख्या : पूजन करने के समय यदि गुरुजी आ जाँय तो इष्टदेवता का पूजन बन्द हो जाता है। शेष सामग्री से गुरुजी के पूजन का विधान है। यहाँ भुसुण्डिजी मन्दिर मे बैठकर मन्त्रजप भी नही करते थे। नाम जप करते थे। नामजप सभी अवस्था मे हो सकता है। अत आसन छोडने मे कोई बाधा किसी प्रकार की नही थी। अत: कहते हैं कि फिर भी मैंने न अभ्युत्थान दिया न प्रणाम ही किया। यह भी नही कि नाम जप मे ऐसे लीन हो गये हो कि उनको गुरुजी के आने की सुधि ही न हो। उन्होने गुरुजी को आते देखा उठकर प्रणाम करने के औचित्य की बात मन मे आयी पर अभिमान वश नही उठे। अब तो हम गुरुजी से अधिक हो गये। अब उन्हे हमे देखकर उठना चाहिए। जिस भाँति शुकदेवजी के आगमन पर वसिष्ठादि ने अभ्युत्थान दिया था। द्वैतवादी के लिए तो कहना ही क्या। अद्वैतवादी के लिए भी गुरु से अद्वैत भाव रखना मना है। यथा : नाद्वैत गुरुणा सह :

गुरुजी की दया की सीमा नही थी। उन्होने इस अपमान पर ध्यान भी नही दिया। न कुछ बोले और न हृदय मे कुछ अप्रसन्न हुए। पर परहित के लिए विषम गरल पान करनेवाले महादेव इस पापरूपी महा विष को नही सह सके। उनके मन्दिर मे शिष्य ने गुरु का अपमान उनका भक्त बन के किया।

मदिर माझ भई नभबानी। रे हतभाग्य अग्य अभिमानी ॥
जद्यपि तव गुर के नहि क्रोधा। अति कृपाल चित सम्यक बोधा ॥१॥

अर्थ मन्दिर मे आकाश वाणी हुई कि रे अभागे मूर्ख अभिमानी! यद्यपि तेरे गुरु को क्रोध नही है। वे अत्यन्त कृपालु हैं और उनके हृदय मे पूर्ण ज्ञान है।

व्याख्या : मन्दिर के आकाश मे आकाश वाणी हुई। क्योकि मन्दिर मे ही शिवजी के होने का उसके हृदय मे भाव था। अर्थात् महाकाश मे नही हुई मठाकाश

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मे हुई। भुसुण्डि को हतभाग्य अज्ञ और अभिमानी शब्दो से सम्बोधन किया। गुरुजी ने कहा था : तासु विमुख सुख चहेसि अभागी। सरकार के चरण के विमुख होने से अभागी कहा। गुरुजी की महिमा को न जाना इसलिए अज्ञ कहा। गुरुजी के आने पर उठकर प्रणाम नही किया इसलिए अभिमानी कहा।

यद्यपि जिसका अपराध तूने किया उसे क्रोध नही है। कारण यह कि वे महापुरुष अति कृपाल हैं। क्षमासारा हि साधव । साधु पुरुष बडे क्षमाशील होते है और दूसरी बात यह कि उन्हे भेददृष्टि नही है पूर्ण ज्ञानी हैं। ऐसे गुरु के अपमान करने से अपराध और भी बढ गया।

तदपि साप सठ देइ हौ तोही। नीति बिरोध सुहाइ न मोही ॥
जौ नहि दंड करौ खल तोरा। भ्रष्ट होइ स्रुतिमारग मोरा ॥२॥

अर्थ : रे शठ ! फिर भी तुझे मैं शाप दूँगा। क्योकि नीति का विरोध मुझे अच्छा नही लगता। रे खल ! यदि मैं तेरा दण्ड नही करता हूँ। तो मेरा वेद का मार्ग नष्ट हो जायगा।

व्याख्या : तेरे हृदय मे बडा भारी पक्ष है हठ है। अत तू शठ है। निष्कारण गुरु का अपकार करता है इसलिए खल है। अपराध तूने ऐसा किया कि गुरुजी को शाप देना प्राप्त था। पर उन्होंने नही दिया। पर मैं तुझे शाप दूँगा क्योकि नीति का विरोध मुझे अच्छा नही लगता। गुरुजी ने क्षमा कर दिया। पर मैं क्षमा न करूँगा। यदि मैं क्षमा कर दूँ और तुझे दण्ड न दूँ तो मेरा वेद का मार्ग बिगड जायगा। तेरे गुरुजी अधिकारी नही हैं मैं अधिकारी हूँ। अपने वेदमार्ग की रक्षा के लिए दण्ड दूँगा। दण्ड. शास्ति प्रजा सर्वा दण्ड एवाभिरक्षति। दण्ड सुप्तेषु जागर्ति दण्ड धर्मं विदुर्बुधा ।

जे सठ गुरसन इरषा करही। रौरव नरक कोटि जुग परही ॥
त्रिजग जोनि पुनि धरहि सरीरा। अयुत जनम भरि पावहि पीरा ॥३॥

अर्थ : जो शठ गुरु से ईर्षा करते हैं वे कोटि युग तक रौरव नरक मे पडते हैं। वे तिर्यक् योनि मे शरीर धारण करते हैं और दस हजार जन्म तक पीडा पाते हैं।

व्याख्या : ईर्षा किसी से न करनी चाहिए। पर जो ऐसे पापी हैं कि गुरु से ईर्षा करते हैं उन्हें कोटि युग तक अर्थात् दस हजार कल्प तक नरक भोगना पडता है। नरक से निकलने पर भी उस सस्कार के दूर करने मे दस सहस्र पशुयोनि मे जन्म लेना पडता है तब उसकी शुद्धि होती है। तैने वही पाप कर डाला।

बैठि रहेसि अजगर इव पापी। सर्प होहि खल मल मति ब्यापी ॥
महा बिटप कोटर महुँ जाई। रहु अधमाधम अधगति पाई ॥४॥

अर्थ : रे पापी तू अजगर की भाँति बैठा रह गया। रे खल रे मलिनबुद्धि !

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तू सर्प हो और महा विटप के खोखले मे जाकर रे नीचातिनीच ! तू अघोगति प्राप्त करके रह ।

व्याख्या : अजगर हिल डोल नही सकता । तू तो मनुष्य था तू तो हिल डोल सकता था । फिर भी गुरुजी के आने पर तू अजगर की भाँति अपने आसन से हिला नही । तू खल है । गुरु से खलता करता है तुझे गुरु ने विद्या दी पर तेरी वुद्धि सर्प की भाँति मलिन है । तुझे विद्या देना साँप को दूध पिलाना था । तूने सर्प सा आचरण किया । इसलिए तू सर्प हो । तूने मन्दिर मे गुरुजी का अपमान किया । इसलिए तू किसी बडे भारी पेड के खोखले मे जाकर अधोगति को प्राप्त हो । क्योकि तू नीचो मे भी महानीच है । बैठा रहा इसलिए तू अघम है । प्रणाम भी नही किया इसलिए अधमाघम है ।

दो. हाहाकार कीन्ह गुर, दारुन सुनि सिव स्राप ।
कंपित मोहि बिलोकि अति, उर उपजा परिताप ॥१०७ क.
करि दंडवत सप्रेम द्विज, सिव सनमुख करि जोरि ।
बिनय करत गदगद स्वर, समुझि घोर गति मोरि ॥१०७॥

अर्थ : शिवजी का दारुण शाप सुनकर गुरुजी ने हाहाकार किया । मुझे काँपता हुआ देखकर उनके हृदय मे अत्यन्त परिताप उत्पन्न हुआ ।

प्रेम के साथ दण्डवत् करके ब्राह्मण देवता शिवजी के सामने हाथ जोडकर गद्गद वाणी से मेरी घोर गति समझकर विनय करने लगे ।

व्याख्या : राखै गुरु जौ कोप विधाता । गुरुजी का काम आपड़ा : शिवजी ने क्रोध किया । अब इसकी रक्षा कैसे हो । अत: दारुण शाप सुनकर गुरुजी ने हाहाकार किया । भुसुण्डिजी हाहाकार भी नही कर सके काँपने लगे । गुरुजी ऐसे दयालु थे कि मुझे काँपते देखकर उन्हे बडा दु ख हुआ । जिसके कारण क्रोध होता है उसी के शान्त किये क्रोध शान्त होता है । शिवजी के क्रोध से रक्षा दूसरा नही कर सकता । वे ही प्रसन्न हो तो काम चले ।

अत' गुरुजी ने तुरन्त दण्डवत् किया और शिवजी के सामने हाथ जोडकर विनय करने लगे । शिवजी ने ही क्रोध किया है । अत: उन्ही के सामने विनय करते हैं । प्रेम के सहित विनय करने से ही यथार्थ फल की प्राप्ति होती है । गद्गद वाणी गुरुजी की हो रही है । क्योकि भुसुण्डिजी को घोरगति स्मरण करके दया का उद्रेक हो उठा ।

श्लो. नमामीशमीशान निर्वाण रूपं । विभुं व्यापकं ब्रह्म वेदस्वरूपं ॥
निजं निर्गुणं निर्विकल्पं निरीहं । चिदाकाशमाकाशवासं भजेहं ॥

अर्थ : ईश, ईशान, निर्वाण रूप, विभु, व्यापक, ब्रह्म, वेद स्वरूप को मैं

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नमस्कार करता हूँ और निज, निर्गुण, निर्विकल्प, निरीह, चिदाकाश, आकाशवास को मै भजता हूँ।

व्याख्या : स हि सर्वं ईष्टे : वही सबका मालिक है। सबका नियन्ता है। इसलिए उसे ईशान कहते हैं। अहमात्मा गुडाकेशः सर्वभूताशयस्थित.। उसी की प्रेरणा से ही सब कुछ होता है। वही मोक्ष रूप भी है। देशत कालतः वस्तुतः अपरिच्छिन्न होने से उसे विभु व्यापक और ब्रह्म कहा। अथवा निर्वाण रूप होने से आनन्द रूप कहा। विभु व्यापक और ब्रह्म कहने से सद्रूप कहा। अब वेद स्वरूप कहने से उन्हे ज्ञानरूप कहते हैं। ऐसे प्रभु को प्रणाम करते हैं।

निज से सर्वमय कहा। क्योकि प्रथम पुरुष, मध्यम पुरुष, उत्तम पुरुष, तीनों मे अनुगत है। निर्गुण से निर्विशेष कहा। शब्दज्ञानानुपाती वस्तुशून्यो विकल्पः। सभी सांसारिक ज्ञान वैकल्पिक हैं। निर्विकल्प तो निज निर्गुण रूप है वही स्वतः सिद्ध है। निरीह से निर्विकार कहा। चिदाकाश कहकर जडता और परिच्छेद दोनो का व्यावर्तन किया। एक एक चिदणु मे भूताकाश पडे हैं। अतः भूताकाशो का निवास स्थान कहा। ऐसे महाप्रभु का भजन करना कहते हैं।

निराकारमोंकारमूलं तुरीयं। गिराज्ञान गोतीतमीशं गिरीशं ॥
कराल महाकाल कालं कृपालं। गुणागार संसार पारं नतोऽहं ॥

अर्थ : निराकार, ओङ्कार के मूल, तुरीय, गिरा, ज्ञान और इन्द्रियो से परे गिरीश ईश हैं। वे ही कराल महाकाल के भी काल हैं। वे ही कृपाल हैं। वे ही गुणागार हैं और वे ही ससार के पार है उन्ही को मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : निराकार से निरवयव कहा। फलतः अविनाशी भी कहा। सर्वसहर्ता होने से कराल कहा। परिच्छिन्न काल को कहते हैं। अखण्ड दण्डायमान काल महाकाल है। उसके भी काल रूप है अर्थात् कालातीत है। ओङ्कार मूल कहने से अर्धमात्रा ही तुरीय है। तुरीय कहकर श्रीरामचन्द्र से अभेद कहा। क्योकि वे भी तुरीय ही हैं। यथा : तुरीयमेव केवलम्। गिरा ज्ञान गोतीत से ब्रह्मरूप कहा। यथा : न तत्र चक्षुर्गच्छति नवाग्गच्छति नो मनो न विद्मो न विजानीमो यथैतदनुशिष्यात् अन्यदेव तद्विदितादथोऽविदितादधि। ईश शब्द शिवजी के लिए रूढ है। दूसरो के लिए गौण है। यहाँ तो स्पष्ट : गिरीश ईशम् कहा है। अर्थात् कैलास वासी ईश। ऐसे प्रभु का भजन करना कहते हैं। यहाँ तक कैलासनाथ का निर्गुण रूप कहा। अब सगुण रूप कहते हैं।

तुषाराद्रि संकाश गौरं गभीरं। मनोभूत कोटिप्रभा श्री शरीरं ॥
स्फुरन्मौलिकल्लोलिनी चारु गंगा। लसद् भाल बालेन्दु कंठे भुजगा ॥

अर्थ : हिमालय की भाँति गौर वर्ण है गम्भीर है। करोडो कामदेव की सी प्रभा और शोभा शरीर मे है। लहरें मारती हुई सुन्दर गङ्गा सिर पर चमक रही है। बालचन्द्र सिर पर और कण्ठ मे सर्प शोभित है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : गौर शरीर है उस स्वरूप मे गम्भीरता है। हिमालय का बर्फ निर्मल और आभायुक्त है। इसी से हिमालय से वर्ण उपमित है। फिर भी प्रभा और शोभा करोड़ो काम सी है। जटाजूट मे गङ्गाजी चक्कर काट रही हैं। सूक्ष्मरूप से नही लहरें मारती हुई वह रही हैं। त्रिभुवनतारिणी को शीष पर रख छोड़ा है। द्वितीया के चन्द्रमा को मस्तक पर धारण किया है। इससे दीनवत्सलता प्रकट है और गले मे साँप लपेट रक्खा है। इससे सर्वाभिभावकता द्योतित होता है। काल को गले का हार बनाया है।

चलत्कुंडलं भ्रूसुनेत्रं विशालं। प्रसन्नाननं नीलकंठं दयालं॥
मृगाधीश चर्माबरं मुंडमालं। प्रियं शंकरं सर्वनाथं भजामि॥

अर्थ : कानो मे कुण्डल हिल रहे हैं। भौहे सुन्दर हैं। विशाल नेत्र हैं। मुख पर प्रसन्नता है। नीलकण्ठ है, बड़ी दया है। व्याघ्राम्बर धारण किये हुए हैं। मुण्डमाल पहने हुए हैं। प्रिय शङ्कर सबके स्वामी हैं उन्ही को मैं भजता हूँ।

व्याख्या : कुण्डल की झलक को अत्यन्त चमक से उसका हिलना कहा अथवा आनन्द के उद्रेक मे सिर हिलाते हैं। अतः कुण्डल हिल रहा है। काम के धनुप सी भौंह बड़ी सुन्दर है। विशाल कमल से नेत्र हैं। हृदय मे अनुग्रह है। अत. मुख प्रसन्न है : जरत सकल सुरबृंद विषम गरल जेहि पान किय। तेहि न भजसि मन मंद को कृपाल संकर सरिस। नीलकण्ठ होना ही उनके महादेव होने का प्रमाण है। इसीलिए साथ ही दयाल कहा। क्रोध को जय किया है इसलिए व्याघ्राम्बर हैं। विश्वरूप हैं इसलिए मुण्डमाल है। सब मुण्ड उन्ही के हैं। व्याघ्राम्बर धारण करने तथा मुण्डमाली होने पर भी प्रिय हैं क्योंकि शङ्कर हैं। कल्याण करनेवाले हैं। सब के नाथ हैं। उन्ही का मैं भजन करता हूँ।

प्रचंडं प्रकृष्टं प्रगल्भं परेशं। अखंडं अजं भानु कोटि प्रकासं॥
त्रय. शूल निर्मूलनं शूलपाणिं। भजेहं भवानीपतिं भावगम्यं॥

अर्थ : प्रचण्ड, श्रेष्ठ, प्रगल्भ, परेश, अखण्ड, अज, कोटि सूर्य के समान प्रकाशवाले तीनो शूल के निर्मूल करनेवाले शूलपाणि भावगम्य भवानीपति को मैं भजता हूँ।

व्याख्या : प्रचण्ड से बलातिशय कहा। प्रकृष्ट से गुणातिशय कहा। प्रगल्भ से दुर्दमनीयता कहा। परेश से परमेश्वर कहा। अखण्ड से पूर्ण कहा : पूर्णमद. पूर्णमिदं पूर्णात्पूर्णमुदच्यते। पूर्णस्य पूर्णमादाय पूर्णमेवावशिष्यते। वह भी पूर्ण है यह भी पूर्ण है। पूर्ण से पूर्ण ही निकलता है और पूर्ण मे से पूर्ण अंश निकल जाता है फिर भी पूर्ण बच जाता है। अत. वह निरवयव है। इसीलिए अज हैं। सावयव पदार्थ का ही जन्म है निरवयव का जन्म नही होता। फिर भी कार्यकारिता ऐसी है कि कोटि सूर्य का सा प्रकाश है। क्योंकि वह ज्योतियो का भी ज्योति है। यथा : ज्योतिषामपि तज्ज्योतिस्तमस परमुच्यते। वह ज्योतियो की भी ज्योति है उसे तम से परे कहा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



गया है। वह शूलपाणि है शूल उसके वशवर्ती हैं। अत: त्रिविध शूल का वही निर्मूल करनेवाला है। क्योंकि तमोरूपी अविद्या ही सब क्लेशों का मूल है और अविद्या का नाश उसी के प्रकाश से होता है। जो ज्योतियों का भी ज्योति है अर्थात् चित्प्रकाश है वही भवानीपति अर्थात् महामायापति भाव से ही जाना जाता है। अत: द्विजदेव कहते हैं कि उन्हीं का मैं भजन करता हूँ।

कलातीत कल्याण कल्पांतकारी। सदा सज्जनानंद दाता पुरारी ॥
चिदानन्द संदोह मोहापहारी। प्रसीद प्रसीद प्रभो मन्मथारी ॥

अर्थ : आप कलाओं से परे कल्याण तथा कल्पान्त करनेवाले हैं। आप त्रिपुर के नाश करनेवाले सदा सज्जनों को आनन्द देनेवाले हैं। आप चिदानन्द की राशि हैं। मोह के हरण करनेवाले हैं। कामदेव के शत्रु हैं। आप कृपा करें कृपा करें।

व्याख्या : निष्कल ब्रह्म होने से कलातीत कहा। एष सर्वज्ञ एष सर्वेश्वर एष सर्वान्तर्यामी एष योनि: सर्वस्य प्रलयाप्ययौ हि भूतानाम्। यह सर्वज्ञ है। सर्वेश्वर है। सर्वान्तर्यामी है। सबके उत्पत्तिस्थान हैं। प्राणियों के सृष्टि प्रलय रूप हैं। ऐसा श्रुति कहती है इसलिए कल्याणकल्पान्तकारी कहा। सज्जनों की रक्षा के लिए ही त्रिपुर का नाश किया। जिसमें एक सहस्र वर्ष तक लक्ष्य बाँधे रह जाना पड़ा। इसलिए सज्जनानन्ददाता पुरारी कहा।

शिवजी की मूर्ति प्राकृत नहीं है सच्चिदानन्दमयी है। उसकी उपासना से मोह का नाश होता है। काम के तो शत्रु ही हैं। अत: द्विजदेव प्रार्थना कर रहे हैं कि आप प्रसन्न हो प्रसन्न हो। मेरे मोह और काम का नाश करें।

न यावद् उमानाथ पादारविंदं। भजन्तीह लोके परे वा नराणां ॥
न तावत्सुखं शांति संताप नाशं। प्रसीद प्रभो सर्व भूताधिवासं ॥

अर्थ : जब तक उमा नाथ के चरणकमल का भजन मनुष्य नहीं करते तब तक इस लोक या परलोक में वह सुख नहीं पाते और शोक सन्ताप का नाश नहीं होता। हे समस्त जीवों के निवासस्थान प्रभो! आप प्रसन्न हो।

व्याख्या : उमा माया है शिव भगवान् उनके पति हैं। यथा : तुम माया भगवान सिव सकल जगत पितु मात। अत: जब तक मनुष्य मायानाथ शिव को नहीं भजता तब तक माया के फन्दे में पड़ा हुआ दु:ख पाता है। उसे न इस लोक में सुख मिलता है : न परलोक में सुख मिलता है न शान्ति मिलती है न सन्ताप का नाश होता है। द्विजदेव कहते हैं कि हे सर्वभूताधिवास! हे सर्वाधिष्ठान! आप प्रसन्न हों आपकी प्रसन्नता से ही मायाबन्धन से विनिर्मुक्त होकर सुखी होना सम्भव है।

न जानामि योगं जपं नैव पूजां। नतोऽहं सदा सर्वदा शंभु तुभ्यं ॥
जराजन्म दु:खौघ तातप्यमानं। प्रभो पाहि आपन्नमामीश शंभो ॥

अर्थ : न मैं योग जप जानता हूँ न पूजा जानता हूँ। हे शम्भो! मैं तो सदा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



और सब समय आप ही को नमस्कार करता हूँ। हे प्रभो ! बुढापा और दु खो के समूह से जलते हुए मुझ दु खी का दु खो से रक्षा कीजिये। हे ईश्वर ! हे शम्भु ! मै आपको नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : सतयुग त्रेता द्वापर पूजा मख अरु जोग। सो मैं तीनो युग के धर्मों मे से कोई भी नही जानता। मैं तो सदा सर्वदा आपको नमस्कार करता हूँ। द्विजदेव यद्यपि दिन रात वैदिक पूजा ही शिवजी की किया करते थे। परन्तु यथार्थ शिवपूजा क्या है उसे समझते हुए उन्हे अपनी उपासना अकिञ्चित्कर मालूम होती थी। अत. अपने साधनो का भरोसा न करके शिवजी की कृपा का भरोसा किये हुए सदा नमो नम. का आश्रय ग्रहण किये हुए हैं। अब शिवजी से जरामरण से छुटकारा पाने के लिए प्रार्थना करते हैं।

रुद्राष्टकमिदं प्रोक्तं विप्रेण हरतुष्टये।
ये पठन्ति नरा भक्त्या तेषां शम्भु प्रसीदति ॥

अर्थ : यह रुद्राष्टक शिवजी को सन्तुष्ट करने के लिए ब्राह्मण द्वारा कहा गया है। इसका पाठ जो भक्तिपूर्वक करते हैं उन पर शिवजी प्रसन्न होते हैं।

व्याख्या . इस स्तोत्र का नाम रुद्राष्टक है। इसके ऋषि द्विजदेव हैं। हर की तुष्टि मे इसका विनियोग है। यह स्तुति पूर्वाभाद्रपद नक्षत्र हैं। इसमे दो तारे सगुण निर्गुण चमकते हैं। इसकी मञ्चाकृति है। मञ्च विश्राम के लिए होता है। यह स्तुति भी विश्राम के लिए है।

दो. सुनि बिनती सर्बग्य सिव, देखि बिप्र अनुरागु।
पुनि मंदिर नभ बानी, भइ द्विजबर बर मांगु ॥१०८ क.
जौ प्रसन्न प्रभु मोपर, नाथ दीन पर नेहु।
निज पद भगति देइ प्रभु, पुनि दूसर बर देहु ॥१०८ ख.
तव माया बस जीव जड, सतत फिरहि भुलान।
तेहि पर क्रोध न करिअ प्रभु, कृपासिंधु भगवान ॥१०८ ग.
संकर दीन दयाल अब, इहि पर होहु कृपाल।
साप अनुग्रह होइ जेहि, नाथ थोरही काल ॥१०८॥

अर्थ : सर्वज्ञ शिवजी ने यह विनती सुनी। ब्राह्मण का प्रेम देखकर फिर मन्दिर मे आकाश वाणी हुई कि हे द्विजश्रेष्ठ वर मांगो।

हे प्रभो ! यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और हे नाथ ! यदि दीन पर आपका स्नेह है तो अपने चरणकमलो की दृढ भक्ति दीजिये। फिर दूसरा यह वर दीजिये कि : आपकी माया के वश सदा जीव भूले फिरते रहते हैं। हे कृपा के समुद्र भगवान् ! उन पर क्रोध न कीजिये।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हे दीनों पर दया करनेवाले शङ्कर ! अब इस पर कृपालु होइये। जिससे हे नाथ ! थोड़े ही समय में इसका शाप से छुटकारा हो जाय।

व्याख्या : शिवजी सर्वज्ञ हैं। भूत भविष्य सब जानते हैं। जब ब्राह्मण की विनती सुनी और उनका प्रेम देखा तो उनकी प्रेरणा से फिर मन्दिर में आकाश-वाणी हुई : वरं ब्रूहि वरं ब्रूहि। परन्तु द्विजवर सम्बोधन करके हुई। जिसमें भुसुण्डि अपने प्रति न समझ लें। शिवजी आशुतोष हैं थोड़े में ही प्रसन्न होते है। यथा : दीन दयाल द्रवत सुठि थोरे। सकत न देखि दीन कर जोरे। ब्राह्मण जन्म से ही दीन होते हैं। इसी से भगवान् को प्रिय हैं। यथा : दीनं सूते ब्राह्मणी याचितारम्।

शिवजी का कोप या अनुग्रह अमोघ है। अतः ब्राह्मण बोले कि यदि आप मुझ पर प्रसन्न हैं और दीन पर स्नेह है तो दुर्लभ वर माँगता हूँ वही दीजिये। वह दुर्लभ वर यह है कि अपने चरणकमलों की दृढ़ भक्ति दीजिये। सरकार ने दो बार वर वर कहा। इसलिए दूसरा वर भी दीजिये।

परबस जीव स्वबस भगवन्ता। जीव तो परवश है। आपकी माया के वश हैं वह जैसा नचाती है वह वैसा ही जीव नाचता है। वह जड़ है। यथा : संघातश्चेतना धृतिः। वह सदा अपने स्वरूप को भूला हुआ फिरता है। वस्तुतः उसका कोई अपराध नही है। सरकार कृपासिन्धु हैं। भगवान् हैं। उसके अपराध पर दृष्टि न दीजिये। वह दया का पात्र है क्रोध का नही। देखिये सरकार के क्रोध करने पर किस भाँति काँप रहा है।

हे कल्याण करनेवाले ! आप से कल्याण ही होता है। क्रोध करके भी आप कल्याण ही करते हैं। आपने उसे क्रोध करके शाप दिया। इससे भी उसका कल्याण ही हुआ। गुरुद्रोह करने से जो नरक होता है वह तो इसे होगा नही क्योंकि आप ने दण्ड दे दिया। अब यह दीन है : इसपर कृपा करके शापानुग्रह करिये। सर्प तो इसे होना ही पड़ेगा पर थोड़े ही दिन के लिए हो। आपक वचन की अमोघता भी बनी रहे और शापानुग्रह भी हो जावे।

एहि कर होइ परम कल्याना। सोइ करहु अब कृपानिधाना॥
बिप्र गिरा सुनि परहित सानी। एवमस्तु तब भइ नभ बानी॥१॥

अर्थ : हे कृपानिधान ! अब वही कीजिये जिसमें इसका परम कल्याण हो। परोपकार से सनी हुई ब्राह्मण की वाणी सुनकर तब फिर आकाश मे शब्द हुआ : एवमस्तु ऐसा ही हो।

व्याख्या : राखै गुरु जो कोप बिधाता। इस समय शिवजी के कोप से गुरु रक्षा कर रहे हैं। शापानुग्रह ही नहीं माँगा यह भी माँग रहे हैं कि इसका अब परम कल्याण हो ऐसा ही कीजिये। आप कृपानिधान हैं इस पर भी कृपा कीजिये। आप ईश्वर हैं जीव की दुर्गति सुगति आपके हाथ मे है। आप के चाहने से ही इसका परम कल्याण सम्भव है। अतः दूसरा वर यही है कि इसका अब परम कल्याण हो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


ब्राह्मण की वाणी परहित से सनी थी। अपने लिए जो दृढ भक्ति मांगा उसमे भी परहित सना हुआ था। जब दृढ भक्ति हो जायगी तो भक्त के मनोरथ की अवश्य पूर्ति करेंगे। सो शिवजी ने देखा कि यह ब्राह्मण तो परहित के लिए वर मांगता है। अतः आकाशवाणी द्वारा एवमस्तु कहा। एवमस्तु शब्द दोनो वरदानो के प्रति कहा गया।

जदपि कीन्ह एहि दारुन पापा। मैं पुनि दीन्ह क्रोध करि स्रापा॥
तदपि तुम्हारि साधुता देखी। करिहौं येहि पर कृपा बिसेखी॥२॥

अर्थ : यद्यपि इसने घोर पाप किया है और मैंने इसे क्रोध करके शाप भी दे दिया। फिर भी तुम्हारी साधुता देखकर इस पर विशेष कृपा करूँगा।

व्याख्या : आकाशवाणी कह रही है कि इसका ऐसा घोर पाप है कि क्षमा योग्य नही है। सद्यः फल इसका होना चाहिए। अत्युग्रपुण्यपापानामिहैव फलमश्नुते। त्रिभिर्वर्षैस्त्रिभिर्मासै त्रिभि· पक्षैस्त्रिभिर्दिनैः। सो मैने क्रोध करके दण्डपात भी कर दिया इसे शाप भी दे दिया। अब इसमे किसी प्रकार के परिवर्तन के लिए स्थान नही है। पर मैं तुम्हारी साधुता से बडा प्रसन्न हूँ। यथा : पर उपकार वचन मन काया। सत सहज सुभाव खगराया। तुम सन्त हो तुम्हारे ख्याल से इस पर विशेष कृपा करूँगा। क्योकि मेरी कृपा ही कल्याण रूपी है।

छमासील जे पर उपकारी। ते द्विज मोहि प्रिय जथा खरारी॥
मोर साप द्विज ब्यर्थ न जाइहि। जनम सहस अवस्य यह पाइहि॥३॥

अर्थ : हे ब्राह्मण! जो क्षमाशील और परोपकारी हैं वे मुझे विष्णु भगवान् की भाँति प्यारे है। मेरा शाप तो व्यर्थ जा नही सकता। यह हजार शरीर अवश्य पावेगा।

व्याख्या : शिवजी कहते हैं कि मुझे सबसे प्यारे विष्णु भगवान् है। पर वे भी मुझे विष्णु से ही प्यारे हैं जो क्षमाशील और परोपकारी हैं। भाव यह है कि तुम मे ये सब गुण हैं। अत. तुम भी मुझे विष्णु के सदृश ही प्यारे हो। तुम्हारे सङ्कोच से मैं इसका परम कल्याण करूँगा। इतना तो होकर ही रहेगा कि हजारो बार इसे शरीर धारण करना होगा। यहाँ हजार से अयुत · दस हजार ही अभिप्रेत है। क्योकि अन्य कोई सख्या दी नही है।

जनमत मरत दुसह दुख होई। येहि स्वल्पौ नहि ब्यापिहि सोई॥
कवनेउ जनम मिटिहि नहि ग्याना। सुनहि सूद्र मम बचन प्रवाना॥४॥

अर्थ · जन्म लेने और मरने मे असह्य दु ख होता है। सो इसे कुछ भी न होगा। किसी जन्म मे भी इसका ज्ञान नही मिटेगा। हे शूद्र! मेरे प्रमाण वचन सुन।

व्याख्या · जन्म के लिए शाप हो गया। वह अन्यथा नही हो सकता। पर ब्राह्मण के सङ्कोच से शापानुग्रह कर रहे है। कहते हैं कि जन्म तो होगा पर जन्मते

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



और मरते समय जो बड़ा भारी दुःख होता है सो न होगा। मर्तव्यमिति यद्दुःखं पुरुषस्योपजायते। शक्यते नानुमानेन परेण परिवर्णितुम्। इसी भाँति जन्म में भी योनियन्त्र से बाहर होने में असह्य दुःख होता है। जब ये दुःख ही न होंगे तो जन्म मरण होता रहे हानि ही क्या है।

एक बात और है कि एक जन्म की स्मृति दूसरे जन्म में मोह के कारण नहीं रहती। शिवजी ने भुशुण्डि को उससे भी विनिर्मुक्त किया। कह दिया कि : कवनेउ जन्म मिटिहि नहिं ग्याना। तभी भुसुण्डिजी कहते हैं : सुधि मोहि नाथ जन्म बहु केरी। सिव प्रसाद मति मोह न घेरी। ज्ञान देकर शिवजी अब भक्ति देते हैं। अतः भुसुण्डिजी को सम्बोधन करके कहते हैं कि मेरे वचन प्रमाण हैं उसे सुन।

रघुपति पुरी जनम तव भयऊ। पुनि तैं मम सेवा मन दएऊ ॥
पुरी प्रभाव अनुग्रह मोरे। राम भगति उपजिहि उर तोरे ॥५॥

अर्थ : रामजी की पुरी में तुम्हारा जन्म हुआ। तिस पर तुमने सेवा में मन लगाया। अतः पुरी के प्रभाव और मेरे अनुग्रह से रामजी की भक्ति तेरे हृदय में उपजेगी।

व्याख्या : पहिली बात यह है कि जो किसी जन्म में भी अवध वास करता है वह घूमघामकर राम परायण हो ही जाता है। यथा : कवनेहु जन्म अवध बस जोई। राम परायण सो परि होई। और तेरा तो जन्म ही अवध में हुआ है। अतः राम परायण होने की योग्यता का बीज तुझ में पड़ चुका है। दूसरी बात यह है कि मेरी सेवा करने का फल भी यही है कि उसे रामजी के चरणों में भक्ति हो। यथा : सिव सेवाकर फल सुत सोई। अविरल भक्ति रामपद होई। मैं सेवा से प्रसन्न होकर अपने सेवक को रामभक्ति देता हूँ। तूने मेरी सेवा में मन लगाया। सो रामभक्ति देनेवाले दोनों कारण तुझ में एकत्रित हो गये। अतः पुरी के प्रभाव तथा मेरी कृपा से रामभक्ति तेरे हृदय में उपजेगी।

ब्राह्मण देवता ने जो दूसरा वरदान शिवजी से माँगा था कि इसका परम कल्याण हो सो शिवजी ने रामभक्ति दी। यथा : सबकर फल रघुपति पद प्रेमा। तेहि बिनु कोउ न पावै छेमा।

सुनु मम बचन सत्य अब भाई। हरि तोषन ब्रत द्विज सेवकाई ॥
अब जनि करहि बिप्र अपमाना। जानेसु संत अनंत समाना ॥६॥

अर्थ : हे भाई ! अब मेरी सच्ची बात सुनो। ब्राह्मण की सेवा करना हरितोषण व्रत है। अब ब्राह्मण का अपमान न करना। सन्त को अनन्त के समान जानना।

व्याख्या : पहिले शिवजी ने शूद्र कहकर सम्बोधन किया था। अब भक्ति दे दिया इसलिए भाई कहकर सम्बोधन करते हैं। सत्य इसलिए कहते हैं कि जिसमें अर्थवाद का भ्रम न हो और यह सत्य बात है कि यह एक व्रत है जिसे हरितोषण

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


व्रत कहते हैं। इस व्रत से भगवान् तुष्ट हो जाते हैं। वह व्रत ब्राह्मण की सेवा है। सो अब ब्राह्मण का अपमान न करना। ब्राह्मण की सेवा करना। अपमान करने से मेरे वरदान देने पर भी पतन होने की आशङ्का है। सदा यह भावना रखना कि सन्त और भगवन्त मे कोई अन्तर नही है। भुसुण्डिजी हरिजन और द्विज को देखने से जलते थे। अतः ऐसा उपदेश दिया।

इंद्र कुलिस मम सूल बिसाला। कालदंड हरिचक्र कराला ॥
जो इन्हकर मारा नहिं मरई। बिप्र द्रोह पावक सो जरई ॥७॥

अर्थ · इन्द्र का वज्र और मेरा त्रिशूल विशाल है। काल का दण्ड तथा विष्णु का चक्र कराल है। जो इनका मारा नही मरता वह ब्राह्मणो के द्रोह रूपी आग मे पडकर भस्म हो जाता है।

व्याख्या : अब प्रश्न यह उठता है कि क्या शिवजी के वरदान के बाद भी पतन का भय है। क्या कोई ऐसी भी वस्तु है जो शिव के वरदान से भी प्रबल हो। इस पर कहते हैं कि चार अस्त्र अमोघ हैं। इन्द्र का वज्र मेरा त्रिशूल काल का दण्ड और विष्णु भगवान् का चक्र : यदि कोई इनसे भी अवध्य हो तो वह भी ब्राह्मण के द्रोहाग्नि से नही बच सकता। अतः ब्राह्मण के अपमान को छोड़कर और प्रकार तेरे पतन का नही है। अत. उससे सावधान रहना।

अस बिबेक राखेहु मन माही। तुम्ह कहं जग दुर्लभ कछु नाहीं ॥
अवरउ एक अवसिषा मोरी। अप्रतिहत गति होइहि तोरी ॥८॥

अर्थ · ऐसा विवेक मन मे रखना : तुमको संसार मे कुछ भी दुर्लभ न होगा। और भी मेरा एक आशीर्वाद है कि तुम्हारी गति कही रुकेगी नही।

व्याख्या : पावक और विप्ररोप पावक मे बडा अन्तर है। अग्नि तो दाह्य वस्तु का दाह करता है और ब्राह्मण की द्रोहाग्नि तो सम्पूर्ण कल्याण का दाह कर देती है। इस विवेक को मन मे रखना हरितोषण व्रत करना। तुम्हारे लिए कुछ भी दुर्लभ न होगा। जो चाहोगे मिल जायगा। अवढर दानी जब द्रवीभूत होते हैं तो क्या नही देते। कहते हैं कि उपर्युक्त बातें तो सब द्विजदेव के वरदान के अन्तर्गत हैं। अब मै एक आशीर्वाद भी अपनी ओर से देता हूँ कि तेरी गति कही रुकेगी नही। चाहे कैलास मे जाओ चाहे बैकुण्ठ जाओ चाहे मेरु पर्वत पर जाओ।

दो. सुनि सिव बचन हरषि गुर, एवमस्तु इति भाखि।
मोहि प्रबोधि गए गृह, संभु चरन उर राखि ॥१०९ क.
प्रेरित काल बिधि गिरि, जाइ भएउँ मै ब्याल।
पुनि प्रयास बिनु सो तनु, तजेउँ गए कछु काल ॥१०९

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



जोइ तन धरौं तजौं पुनि, अनायास हरिजान।
जिमि नूतन पट पहिरै, नर परिहरै पुरान ॥१०९ ग.
सिव राखी स्रुति नीति अरु, मैं नहिं पावा क्लेस।
एहि बिधि धरेउँ बिबिध तनु, ज्ञान न गएउ खगेस ॥१०९॥

अर्थ : शिवजी का वचन सुनकर गुरुजी हर्षित होकर एवमस्तु ऐसा बोलकर हृदय में शम्भु चरण को रखकर घर चले गये।

काल की प्रेरणा से मैं विन्ध्याचल जाकर साँप हुआ। फिर कुछ काल बीतने पर उस शरीर को अनायास छोड़ दिया।

जो ही शरीर धारण करता उसी को हे गरुड़जी अनायास ही छोड़ देता। जैसे नया कपड़ा पहनकर मनुष्य पुराना छोड़ देता है।

शिवजी ने वेद की नीति की रक्षा की और मुझे क्लेश भी नहीं हुआ। इस भाँति अनेक शरीर धारण किया पर हे पक्षिराट्, मेरा ज्ञान बराबर बना रहा।

व्याख्या : सुनु मम बचन सत्य अब भाई। हरि तोषन ब्रत द्विज सेवकाई। से लेकर अवरउ एक आसिखा मोरी। अप्रतिहत गति होइहि तोरी। तक शिवजी का बचन है। इसके पहिले जो कहा था सो वरदान विषयक था। शाप सुनकर गुरुजी ने हाहाकार किया था। आशीर्वाद सुनकर हर्षित हो गये। एवमस्तु कहकर उस आशीर्वाद का अनुमोदन करते है कि यही मेरी भी इच्छा थी। अब इसका परम कल्याण हो गया।

दो. अल्प कष्ट ही में मिट्यो सङ्कट बिकट तुम्हार।
करुणानिधि शंकर कियो तोपै कृपा अपार॥
शापानुग्रह कीन्ह पुनि दीन्ह सुभग वरदान।
अनायास जेहि ते सधे मुदमङ्गल कल्यान॥
जन्म मरन को नष्ट नहिं बाध ज्ञान को होय।
रामभक्ति उर अंकुरित जीवन मुक्ती सोय॥
*जाकी गति प्रतिहृत नही ताको बड़ अधिकार।*
सुरपुर हरिपुर नागपुर सो करि सकत बिहार॥
सावधान ह्वै हिय धरो जो दीन्ह्यौ उपदेश।
कीन्हे द्विज अपमान बिनु संभव तोहि न क्लेश॥

शिवजी का वर सुना कि : कौनेउ जनम मिटिहि नहिं ग्यान। अत: उसे ज्ञानोपदेश करने लगे कि इस समय का दिया हुआ ज्ञान सदा के लिए स्थायी हो जायगा। अत: शिष्य का कल्याण करके अपने को कृतकृत्य माना और घर चले गये।

शरीर छूटने का भी देश काल निश्चित है। उसी देश और उसी काल मे शरीर छूटेगा। शिवजी काल के काल हैं। उनकी इच्छानुसार काल की प्रेरणा से मैं विन्ध्यगिरि चला गया और वहाँ शूद्र का शरीर छूटकर मुझे सर्पका शरीर मिला।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



शिवजी ने कहा ही था कि 'सर्प होहु खल मल मति व्यापी। मुझे मरने का दुख नही हुआ। जन्म लेने का कष्ट नही हुआ। कुछ काल के बाद सर्पवाला शरीर भी छूटा उसमे भी कोई आयास नही हुआ। बल्कि दूसरा शरीर मिलने मे प्रसन्नता ही रही। अत उपमा देते हैं कि जैसे कोई नया कपडा पहनकर पुराना उतार देता है।

शिवजी ने वेद की नीति की रक्षा भी की। यथा 'जौ नहि दड करौं खल तोरा। भ्रष्ट होइ स्रुति मारग मोरा। सो श्रुति मार्ग की रक्षा शिवजी ने की। मुझे दण्ड दिया और मुझे क्लेश भी नही हुआ। मेरे ऊपर उनकी ऐसी कृपा हो गयी कि जन्म मरण के क्लेश से तो मै उमी समय विनिर्मुक्त हो गया। इस प्रकार शाप मे कहे हुए जन्म समूह की सख्या की पूर्ति हुई। और मेरा ज्ञान ज्यो का त्यो बना रहा।

त्रिजग देव नर जो तनु धरऊँ। तहँ तहँ राम भजन अनुसरऊँ॥
एक सूल मोहि बिसर न काऊ। गुरु कर कोमल सील सुभाऊ॥१॥

अर्थ तिर्यक्, देवता या नर जो ही शरीर मैं धारण करता था वहाँ वहाँ रामजी का भजन करता था। एक शूल मुझ कभी नही भूलता था और वह था गुरुजी का कोमल शील और स्वभाव।

व्याख्या तिर्यक् योनि तामस है। देवयोनि सात्त्विक है। नर योनि राजस है। सो शरीर तो कर्मवश सब प्रकार के मिलते गये। पर ज्ञान ज्यो का त्यो बना रहा। शिवजी की कृपा से भक्ति भी रामजी की हो गयी। अत भजन मेरा चलता रहा। यथा जेहि जोनि जन्मौं कर्म बस तहँ राम पद अनुरागऊँ।

वियोग मे प्रेमी के गुण शूल की भाँति चुभते हैं। बिछुरत एक प्रान हरि लेही। सो अति कृपाल गुरु स्वल्प न क्रोधा। पुनि पुनि मोहि सिखाव सुबोधा। यह कोमल शील स्वभाव आज भी हृदय म चुभता है कि ऐसे महापुरुष से मैं द्रोह करता रहा। अपने मे दोष रहने से गुण का दर्शन नही होता। अत उस समय गुरुजी के गुणो की कदर नही कर सका। आज उन्हें स्मरण करके पश्चात्ताप होता है।

चरम देह द्विज कै मै पाई। सुर दुर्लभ पुरान स्रुति गाई॥
खेलौं तहूँ बालकन्ह मीला। करौं सकल रघुनायक लीला॥२॥

अर्थ मैंने अन्तिम शरीर ब्राह्मण का पाया। जिसे पुराण और वेद देवदुर्लभ बतलाते हैं। मै वहाँ बालको से मिलकर खेलता था और रामजी की सब लीलाएँ करता था।

व्याख्या ब्राह्मण शरीर से मुक्ति की अधिक सम्भावना रहती है। शाप से जो शरीर मिलता गया उनमे यह ब्राह्मण शरीर अन्तिम था। अथवा जिस शरीर से मुक्ति होती है पुरुष आवागमन से मुक्त होता है उसे चरम शरीर कहते हैं। मनुष्य का शरीर सुरदुर्लभ है। यथा बडे भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ग्रन्यन्ह गावा। उस पर भी ब्राह्मण शरीर प्राप्त करना बड़े पुण्य का फल है। इसमें वेद पुराणादि सभी प्रमाण हैं।

शापमुक्त होते ही परम कल्याण का मार्ग हाथ लगा। श्रीरामजी की लीला में वचपन से ही अनुराग हुआ। लड़कों मे खेलने के समय रामलीला का अभिनय ही खेलता था। मम लीला रति अति मन माही : का साफल्य।

प्रौढ़ भए मोहिं पिता पढ़ावा। समुझौं सुनौं गुनौं नहि भावा॥
मन तें सकल बासना भागी। केवल रामचरन लय लागी॥३॥

अर्थ : बड़े होने पर मुझे पिता ने पढ़ाया। मैं समझता था सुनता था मनन करता था। फिर भी मुझे अच्छा नही लगता था। मन से सब वासना जाती रही। केवल रामचरण मे लव लग गयी।

*व्याख्या : लालयेत् पञ्चवर्षाणि दशवर्षाणि ताडयेत्। प्राप्ते तु षोडशे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत्।* पाँच वर्ष तक बच्चों का लाड़प्यार करना चाहिए। दस वर्ष तक ताड़ना करना चाहिए। सोलहवाँ वर्ष लगने पर पुत्र के साथ मित्र की भाँति बरताव करनी चाहिए। सो पाँच वर्ष तक बच्चों के साथ खेलते रहे। जब पढ़ने योग्य हुए तो स्वयं उनके पिताजी पढ़ाने लगे। पिताजी की आज्ञा से भुसुण्डिजी पढने लगे। पाठ ग्रहण के समय समझने का प्रयत्न करने लगे। तत्पश्चात् उसका मनन भी करते थे। परन्तु अच्छा नही लगता था। क्योंकि मन से सब वासनाएँ भाग गयी। विद्या की भी वासना नही रह गयी। केवल रामजी के चरणों में लव लग गया।

कहु खगेस अस कवन अभागी। खरी सेव सुरधेनुहि त्यागी॥
प्रेम मगन मोहि कछु न सोहाई। हारेउ पिता पढ़ाइ पढ़ाई॥४॥

अर्थ : हे पक्षिराट् बतलाइये ऐसा कौन अभागी है जो कामधेनु का परित्याग करके गधी की सेवा करे। मैं प्रेम में मग्न था। मुझे कुछ भी अच्छा नही लगता था। पिताजी पढा पढ़ाकर हार गये।

व्याख्या : कुछ लोग ऐसे हैं जो गधी की सेवा करते हैं। पर भाग्यवान् कोई गधी की सेवा नही करता। प्रायेण अभागे लोग ही गधी की सेवा करते हैं। उन्हें गाय प्राप्त नही है। अतः गधी की सेवा की ही जीविका करते हैं। यदि गाय की प्राप्ति उन्हे हो तो वे भी गधी की सेवा न करें। ऐसा अभागो तो कोई भी न मिलेगा जो कामधेनु के मिलने पर उसका त्याग करके खरी : गधी का सेवन करे। सो भुसुण्डिजी कहते हैं कि मुझे शिवजी की कृपा से रामचरण में आसक्ति की प्राप्ति हो गयी थी। उसे त्याग करके कुहक विद्या वैषयिक वासना की ओर प्रवृत्ति मुझे किसी प्रकार से नही होती थी।

मै प्रेम में मग्न था मुझे कुछ भी अच्छा नहीं लगता था और विना अच्छा लगे विद्या आती नही। पिताजी परिश्रम करके पढ़ाते थे। मैं उनकी आज्ञा मानकर

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पढ़ने मे परिश्रम भी करता था। परन्तु मन के न लगने से मुझे विद्या आती नही थी। अत: पिताजी भी हार गये। समझ लिया कि यह न पढेगा।

भए काल बस जब पितु माता। मइ बन गएउँ भजन जन त्राता ॥
जहँ जहँ बिपिन मुनीस्वर पावौं। आस्रम जाइ जाइ सिर नावौं ॥५॥

अर्थ: जब पिता माता मर गये। तब मैं भक्तो के रक्षक भगवान् के भजन के लिए वन मे गया। जहाँ जहाँ वन मे मुनीश्वरो को पाता था उनके आश्रमो में जाकर उनकी वन्दना करता था।

व्याख्या: पहिले पिता मरे पीछे माता मरी। मैं वैराग्य होने पर भी उनके जीवन काल तक उनकी सेवा मे ही रहा। क्योकि माता पिता की सेवा छोडकर वनस्थ होने का विधान नही है। जब माता पिता दोनो मर गये तब मैं वन मे भगवान् के भजन के लिए गया। भगवान् जनत्राता हैं। वन मे भी रक्षा करते हैं। अरक्षितस्तिष्ठति देवरक्षित:। जिसे सासारिक विषय नही सोहाता है उनके लिए वन ही शरण हैं। जन सबाध से दूर रहकर ही ठीक रीति से भजन हो सकता है। अत: मैं वन मे चला गया।

वन मे मुनीश्वरो के आश्रम मिले। अब मेरी भक्ति हरिजन और ब्राह्मणो पर हो गयी थी। अत: उनके आश्रमो मे जा जाकर उन्हें प्रणाम करता था।

बूझौं तिन्हहि राम गुन गाहा। कहहि सुनौं हरषित खगनाहा ॥
सुनत फिरौं हरिगुन अनुबादा। अब्याहत गति संभु प्रसादा ॥६॥

अर्थ: उन लोगो से मैं रामगुण गाथा पूछता था। वे कहते थे और हे पक्षिराट्! मैं हर्षित होकर सुनता था। भगवान् का गुणानुवाद सुनता था। शिवजी की कृपा से मेरी गति कही रुकती नही थी।

व्याख्या: मुनीश्वरो को प्रणाम करके मैं रामजी की गुणगाथा विषयक प्रश्न करता था। वे कृपा करके कहते थे और मैं आनन्द से सुनता था। कथा सुनने से मेरी तृप्ति नही होती थी। अत: मैं एक आश्रम से दूसरे आश्रम मे कथा सुनता फिरता था। इस भाँति उत्तर की ओर बढता ही चला गया। जाते जाते ऐसे द्वीपो मे पहुँचा जहाँ मनुष्य की गति नही थी। पर मेरी गति रुकती नही थी। शिवजी का आशीर्वाद था कि: अव्याहत गति होइहि तोरी।

छूटी त्रिबिधि ईषना गाढ़ी। एक लालसा उर अति बाढ़ी ॥
राम चरन बारिज जब देखौं। तब निज जनम सफल करि लेखौं ॥७॥

अर्थ: तीनो प्रकार की गाढी एषणा छूट गयी। एक लालसा मन मे अत्यन्त बढ गयी कि जब रामजी के चरण कमलो का दर्शन करूँ तब अपने जन्म को सुफल मानूँ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : सरकार के चरणों के दर्शन की लालसा तो पहिले से थी। परन्तु जब तक पुत्रैषणा वित्तैषणा लोकैषणा बनी रहती है तबतक वह लालसा विरल रहती है। एषणात्रय ऐसी गाढ़ी होती है कि जल्दी छूटती नही पर मेरी तीनों प्रकार की एषणा छूट गयी। अतः एक लालसा मन मे अत्यन्त बढ गयी। वह वासना यह थी कि रामजी के चरणों का दर्शन हो तब मैं अपना जन्म सुफल समझूँ। यथा : उर अभिलाष निरन्तर होई। देखि अनयन परम प्रभु सोई। क्योंकि जन्म का फल तो सरकार का साक्षात्कार ही है। दर्शन होने पर फिर जन्म नही होता। यथा : नयन वंत रघुबरहि बिलोकी। पाइ नयन फल होहि बिसोकी।

जेहि पूछौं सोइ मुनि अस कहई। ईस्वर सर्बभूतमय अहई॥
निर्गुन मत नहि मोहि सुहाई। सगुन ब्रह्मरति उर अधिकाई॥८॥

अर्थ : जिस मुनि से मैं पूछता था वही कहते थे कि ईश्वर तो सर्वभूतमय हैं। निर्गुण मत मुझे अच्छा नही लगता था। सगुण ब्रह्म की भक्ति हृदय में बढी हुई थी।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि तब मैं मुनियों से दर्शन का उपाय पूछने लगा। पर जिस मुनि से पूछता था वही कह देता था कि ईश्वर तो परिच्छिन्न नही है जो दृष्टिगोचर हो सके। वह अपरिच्छिन्न है सर्वभूतमय है। समष्टि रूप है। उसका नित्य ही दर्शन है। श्रुति भी कहती है कि : नक्षत्राणि रूपम्। बाहर क्या है? पृथिवी अप तेज वायु हैं। ईश्वर का दर्शन करना हो तो हृदय में दर्शन करो। मन की आँखों से दर्शन होगा : ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति। वह मांसचक्षु से नही देखा जाता।

परन्तु यह निर्गुण मत मुझे अच्छा नही लगता था। उन महात्माओं को निर्गुण मत ही पसन्द था। वे परम अधिकारी थे। मुझे सगुण ब्रह्म की भक्ति बढ़ी हुई थी। अतः मेरी प्रवृत्ति उस ओर नही हुई।

दो. गुरु के बचन सुरति करि, राम चरन मनु लाग।
रघुपति जस गावत फिरौं, छन छन नव अनुराग॥११०॥

### प्रसङ्गात् उमा के नवें प्रश्न का उत्तर

मेरु सिखर बट छाया, मुनि लोमस आसीन।
देखि चरन सिर नाएउँ, बचन कहेउँ अति दीन॥११० क.
सुनि मम बचन बिनीत मृदु, मुनि कृपाल खगराज।
मोहि सादर पूछत भए, द्विज आइहु केहि काज॥११० ख.
तब मै कहा कृपानिधि, तुम सरबज्ञ सुजान।
सगुन ब्रह्म अवराधना, मोहि कहहु भगवान॥११० ग.

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ गुरु के वचनो को स्मरण करके रामजी के चरणो मे मन लगा रामजी का यश गाता फिरता था। क्षण क्षण मे नया अनुराग उत्पन्न होता था।

सुमेरु पर्वत पर वट वृक्ष की छाया मे लोमश मुनि बैठे थे। देखकर मैंने सिर नवाया और अत्यन्त दीन वचन कहे।

हे पक्षिराट्! मुनिजी बडे कृपालु थे। मेरे विनीत और मृदु वचन सुनकर मुझसे आदर के साथ पूछने लगे कि ब्राह्मण! किस काम से आये हो।

तब मैंने कहा कि हे कृपानिधे! तुम सर्वज्ञ और सुजान हो। सगुण ब्रह्म की आराधना हे भगवन्! मुझे बतलाइये।

व्याख्या निर्गुण मत के अच्छा न लगने का कारण कहते हैं कि गुरुजी के वचनो को याद करके रामजी के चरणो मे मन लग गया था। गुरुजी ने कहा था कि मिच सेवाकर फल सुत सोई। अबिरल भक्ति रामपद होई। रामहि भजहि तात सिव धाता। नर पाँवर कर केतिक बाता। इत्यादि। अत उन्ही के चरणो मे मन लगा उन्ही का कीर्तन करते घूमता था। पहिले श्रवण हुआ अब कीर्तन होने लगा।

कीर्तन करते करते आगे बढते चले जाते थे यहाँ तक कि मेरु पर्वत पर पहुँच गये। जहाँ मनुष्य की गति ही नही है। वहाँ देखा कि वट वृक्ष की छाया मे लोमश ऋषि बैठे हैं। पर्वतो मे उत्तम मेरु मुनियो मे उत्तम लोमश वृक्षो मे उत्तम वट वृक्ष। सो यहाँ सब सयोग जुट गया था। बडे बडे लोम देखकर पहिचाना कि यही लोमश ऋषि है। जाकर प्रणाम किया और अति दीन वचन बोले अर्थात् मुनिजी के शरण गये।

भुसुण्डिजी कहते हैं कि हे गरुडजी! लोमश मुनि स्वभाव से ही बडे कृपालु थे। मेरे कोमल और विनीत वचन सुनकर उन्हे दया हुई। उन्होने मुझसे आदर के साथ पूछा। मुनिजी महा सिद्ध थे। शापानुग्रह मे समर्थ थे। अत मेरे मनोभिलाष के पूर्ण करने के लिए पूछा कि ब्राह्मण! तुम्हे क्या चाहिए।

तब मैंने कहा कि हे कृपा के समुद्र! आप तो सर्वज्ञ हैं और सुजान हैं। मन की बात जानते हैं। मेरी दशा आप से छिपी नही है। यथा राम सुजान जान जनजीव। मुझे सगुण ब्रह्म की आराधना की इच्छा है। उसे मुझे कोई नही बतलाता। आप कृपा करके बतलाइये।

तब मुनीस रघुपति गुन गाथा। कहे कछुक सादर खगनाथा॥
ब्रह्मज्ञान रत मुनि बिज्ञानी। मोहि परम अधिकारी जानी॥१॥

अर्थ हे पक्षिराट्! तब मुनीश्वर ने आदर के साथ रघुपति की कुछ गुणगाथा कही। परम विज्ञानी मुनि ब्रह्मज्ञान मे निरत थे। उन्होने मुझे परम अधिकारी जानकर

व्याख्या महर्षि लोमश मुनियो मे श्रेष्ठ थे। बडे मनन करनेवाले थे। शिष्य के प्ररोचनार्थ उसके पूछे हुए विषय का थोडा सा आदर के साथ वर्णन किया।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


आदर के साथ मुझसे पूछा था और पूछने पर आदर के साथ रघुनाथ के गुण गाथ कुछ कहे। अर्थात् संक्षेप से कहा विस्तार नहीं किया। क्योंकि मुनिजी विज्ञानी थे ब्रह्मलीन थे। ब्रह्मज्ञान में निरत थे और मुझे उन्होंने परम अधिकारी जाना। सामान्य अधिकारी के लिए कर्मकाण्ड है। मध्यम के लिए उपासनाकाण्ड है और परम अधिकारी के लिए ज्ञानकाण्ड है। अतः मुनिजी ने देखा कि यह साधनसम्पन्न है। इसे ब्रह्मज्ञान ही देना चाहिए। साधन चार बतलाये गये हैं। १. नित्यानित्य वस्तु विवेक। २. इहामुत्रार्थफल भोगविराग। ३. शमादि षट् साधना सम्पत्ति और ४. मुमुक्षुत्व। सो पहिला साधन भुशुण्डिजी मे था ही। यथा : समुझों सुनों गुनों नहि भावा। २. दूसरा साधन भी था। यथा : मन ते सकल कामना भागी। ३. तीसरा साधन भी था। यथा : मैं बन गयउँ भजन जन त्राता। केवल मुझमे चौथे की अर्थात् मुमुक्षुत्व की कमी थी। अतः मुनिजी ने मुझे परम अधिकारी जाना।

अतः मेरी जिज्ञासानुसार उत्तम नही दिया। मैंने उनसे सगुण उपासना पूछा तो उन्होने रघुनाथजी के गुणों का थोड़ा सा वर्णन करके निर्गुणोपासना ही कथन करना चाहा।

लागे करन ब्रह्म उपदेसा। अज अद्वैत अगुन हृदयेसा॥
अकल अनीह अनाम अरूपा। अनुभव गम्य अखंड अनूपा॥२॥

अर्थ : ब्रह्म का उपदेश करने लगे। जो अजन्मा है अद्वैत है निर्गुण है और हृदय का स्वामी है। कला से रहित इच्छा से रहित नाम से रहित और रूप से रहित अनुभव से जानने योग्य खण्ड रहित और उपमा रहित है।

व्याख्या : गोस्वामीजी ने ब्रह्म से निर्गुण और राम पद से प्रधानतः सगुण का ग्रहण किया है। यहाँ ब्रह्म उपदेश से निर्गुणोपासना अभिप्रेत है। पहले ब्रह्म का स्वरूप कहते हैं कि १. वह अज है : उसका जन्म नही होता। अनादि अपरिच्छिन्न का जन्म कैसे सम्भव है। त्रिकालाबाध्य सत्यत्व होने से २. अद्वैत कहा। गुणातीत होने से ३. अगुण कहा। सर्वान्तर्यामी होने से ४. हृदयेश कहा। निरवयव होने से ५ अकल कहा। अकाम होने से ६. अनीह कहा। नाम रूप माया का कार्य है और ब्रह्म गुणातीत माया से परे है। अतः ७. अनाम ८. अरूप कहा। इतना होने पर भी वह ९. अनुभवगम्य है। उसका अनुभव होता है। वही उसके अस्तित्व का प्रमाण है। अच्छेद्य होने से १०. अखण्ड है अथवा निरंश होने से अखण्ड है। जगत् से विलक्षण होने से ११. अनुपम हैं।

मन गोतीत अमल अविनासी। निर्विकार निरवधि सुखरासी॥
सो तैं ताहि तोहि नहि भेदा। बारि बीचि इव गावहि बेदा॥३॥

अर्थ : मन और इन्द्रियो से परे निर्मल, नाश रहित, विकार रहित, निःसीम और सुख की राशि हैं। वही तुम हो। तुम मे और उसमे भेद नही। जैसे जल और तरङ्ग मे भेद नही है। ऐसा वेद कहते है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : १२. वह मन और इन्द्रिय से परे हैं। अर्थात् वह प्रत्यक्ष का विषय नही है। यथा : मन समेत जेहि जान न बानी। तरकि न सर्कहि सकल अनुमानी। १३. वह निर्मल है। किसी विजातीय द्रव्य का उसमे स्पर्श भी नही। १४. उसका नाश भी कभी नही होता। अर्थात् वह सद्रूप है। वह १५ निर्विकार है अर्थात् एकरस है १६ वह निरवधि है अर्थात् उसकी सीमा नही है। वह १७. सुख राशि है अर्थात् आनन्दघन है। इस भाँति निर्गुण ब्रह्म का प्रतिपादन करके बतलाया कि वह तू है : तुझमे उसमे भेद नही है। ऐसा वेद कहता है कि जिस भाँति जल और तरङ्ग मे भेद नही है उसी भाँति निर्गुण ब्रह्म मे और जीव मे भेद नही है। इस रीति से महर्षि लोमश ने भुसुण्डिजी को तत्त्वमसि महावाक्य का उपदेश किया।

बिबिध भाँति मोहि मुनि समुझावा। निर्गुन मत मम हृदय न आवा ॥
पुनि मैं कहेउँ नाइ पद सीसा। सगुन उपासन कहहु मुनीसा ॥४॥

अर्थ : मुनिजी ने मुझे अनेक भाँति से समझाया। परन्तु निर्गुण मत मेरे मन मे नही बैठा। फिर मैंने चरणो मे सिर झुकाकर कहा कि हे मुनीश ! सगुण उपासना कहिये।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि मेरे मन मे यह बात नही बैठी। जीव ईश्वर कैसे हो सकता है ? तब मुनिजी ने भाग त्याग आदि अनेक युक्तियो से मुझे समझाया। मेरे नही समझने पर मुनिजी अप्रसन्न नही हुए। यह महा उपदेश शीघ्र मन मे जमता नही। अतः मुनिजी ने अनेक युक्तियो से उस बात को मेरे मन मे बिठाना चाहा।

तब मैंने चरणो मे सिर नवाया कि बात सब ठीक है। मुझे शिरोधार्य है। पर मैंने यह पूछा नही था। मैंने तो सगुणोपासना पूछा था। उसे मुझे बताइये। निर्गुणोपासना तो सभी मुनि कहते थे। आप तो मुनीश हैं। आप सगुणोपासना जानते हैं। आप वही मुझे बतलाइये। अर्थात् मोहि अनुहरत सिखावन देहू।

राम भगति जल मम मन मीना। किमि बिलगाइ मुनीस प्रबीना ॥
सोइ उपदेस कहहु करि दाया। निज नयनन्हि देखौं रघुराया ॥५॥

अर्थ : राम की भक्ति जल है। मेरा मन मछली है। हे प्रवीण मुनीश्वर ! वह कैसे अलग हो सकता है। आप दया करके वही उपदेश कीजिये। जिसमे मै अपनी आँखो से रामजी को देखूँ।

व्याख्या : मछली से कहना कि तू बन्धन मे पडी है। जल से बाहर नही निकल सकती। मैं तेरा बन्धन दूर करूँगा। जल से बाहर निकालूँगा। यह सकल्प ही मछली के लिए महा अशुभ है। मछली जल को बन्धन नही मानती। जल उसका प्राण है। भुसुण्डिजी कहते हैं कि भक्ति भी मेरे लिए वही है जो मछली के लिए जल है। मैं भक्ति को नही छोड़ सकता। सोतैं ताहि तोहि नहि भेदा कहना भक्ति से पृथक् करने के समान है। अस अभिमान जाइ जनि भोरे। मै सेवक रघुपति पति मोरे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भले ही आपका उपदेश सर्वोत्तम हो। पर यह मुझसे साध्य नहीं है। अतः आप मुझपर दया करिये। मेरी रुचि समझकर उसके अनुसार उपदेश दीजिये। मुझे वह उपाय बतलाइये जिसमें रघुराई को अपने आँखों से देखूँ। अनुभव गम्य से मेरा काम नहीं चलेगा :

भरि लोचन बिलोकि अवधेसा। तब सुनिहौं निर्गुन उपदेसा॥
मुनि पुनि कहि हरि कथा अनूपा। खण्डि सगुन मत अगुन निरूपा॥

अर्थ : अवधेश को आँख भरकर देखकर तब निर्गुण उपदेश सुनूँगा। तब मुनिजी ने हरि की अनूप कथा कहकर सगुन मत का खण्डन करके निर्गुण का निरूपण किया।

व्याख्या : कोई लालसा न रहे तब निर्गुण उपदेश की पात्रता आती है। इस समय मुझमे पात्रता नहीं है। अवधेश के दर्शन की लालसा है। आपके बतलाये हुए साधन से अवधेश का दर्शन कर लूँ। मेरी लालसा पूरी हो जाय तब में निर्गुण उपदेश सुनूँ। आपका उपदेश शिरोधार्य है पर इस समय नहीं।

मुनिजी ने भुसुण्डिजी की बात सुनकर भगवान् की अनूप कथा सुनायी। भगवान् की माया का अघटितघटनापटुत्व का वर्णन किया। पहिले गुण गाथा कहा था। इस बार चरित कहा। उपसंहार मे सगुण मत का खण्डन किया कि इतना होते हुए भी सब माया ही है। भगवान् ने स्वयं कहा है : सम्भवाम्यात्ममायया। वास्तविक रूप निर्गुण ही है।

तब मै निर्गुन मत करि दूरी। सगुन निरूपेउँ करि हठ भूरी॥
उत्तर प्रति उत्तर मैं कीन्हा। मुनि तन भए क्रोध के चीन्हा॥७॥

अर्थ : तब मैंने निर्गुण मत को दूर करके बड़े हठ से सगुण का निरूपण किया। मैंने जब उत्तर प्रत्युत्तर किया तो मुनि के शरीर पर क्रोध के चिह्न प्रकट हुए।

व्याख्या : मुनिजी की बात सुनकर भुसुण्डिजी ने देखा कि मुनिजी तो खण्डन मण्डन पर आगये। ये तो मेरे पक्ष का ही लोप किया चाहते हैं। अतः भुसुण्डिजी अब तक तो श्रोता रहे पर अब प्रतिवादी बन बैठे। पहिले उनके निर्गुण मत को ही दूर किया। निर्गुण निष्क्रिय को कोई ज्ञान का विषयीभूत कैसे कर सकता है? निर्गुण का अर्थ ही सर्वगुणमय है। निराकार का अर्थ ही सर्वाकार है। अनाम का अर्थ ही सर्वनाम है और अरूप का अर्थ ही सर्वरूप है। इस बात पर मैंने बड़ा हठ किया। क्योंकि मुनिजी की युक्ति से मेरा पक्ष ही गिर रहा था।

मुनिजी ने उत्तर दिया। मैंने उसका भी उत्तर दिया। तब तो मुनिजी के शरीर पर क्रोध के चिह्न प्रकट हुए। उन्होंने देखा कि मैंने तो इसे जिज्ञासु समझा था। जिज्ञासु का कोई पक्ष नही होता। मेरी बात के समझने का प्रयत्न न करके यह तो मेरे पक्ष के खण्डन पर तुल गया। अतः उन्हें क्रोध हुआ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सुनु प्रभु बहुत अवग्या किये। उपज क्रोध ग्यानिन के हिये ॥
अति संघर्षन जो कर कोई। अनल प्रगट चन्दन ते होई ॥८॥

अर्थ : हे प्रभो ! सुनो बहुत अवहेलना करने पर ज्ञानियों के हृदय में भी क्रोध उत्पन्न हो जाता है। यदि कोई अधिक रगडा करे तो चन्दन से भी आग प्रकट हो जाती है।

व्याख्या : यह बात नही है कि ज्ञानी को क्रोध होता ही न हो। बहुत अवज्ञा करने से क्रोध होता है। भेद इतना ही है कि सामान्य लोगो को थोडी सी अवज्ञा मे ही क्रोध हो जाता है। ज्ञानियो को ऐसा नही होता। यदि कोई अवज्ञा करने पर तुल ही जाय तो उन्हे भी क्रोध हो जाता है। उदाहरण देते हैं कि शमी आदि काष्ठो को थोड़ा सा रगडने से अग्नि प्रगट हो जाती है। पर चन्दन बडा शीतल है। उसमे नही प्रकट होती। परन्तु यदि कोई अत्यन्त रगडा करे तो उससे भी आग प्रकट होती है। भाव यह कि मुनिजी बडे दयालु थे। फिर भी मेरे अधिक अवहेलना करने से उन्हे क्रोध आगया। इसमे दोष मेरा था।

दो. बारंबार सकोप मुनि, करै निरूपन ग्यान।
मैं अपने मन बैठि तब, करौं बिबिध अनुमान ॥
क्रोध कि द्वैतबुद्धि बिनु, द्वैत कि बिनु अज्ञान।
मायावस परिछिन्न जड़, जीव कि ईस समान ॥१११॥

अर्थ : बारम्बार मुनि जी क्रोध पूर्वक ज्ञान निरूपण करने लगे। तब मैं अपने मन मे बैठकर अनेक प्रकार के तर्क करने लगा : क्या बिना द्वैतबुद्धि के क्रोध होता है और क्या बिना अज्ञान के द्वैतबुद्धि होती है ? जीव जड़ है। मायावश और परिच्छिन्न है। वह ईश के समान कैसे होगा ?

व्याख्या : पहिले तो मुनिजी के शरीर मे क्रोध के चिह्न प्रकट हुए। भुसुण्डिजी कहते हैं कि फिर भी मैं उत्तर प्रत्युत्तर करता ही चला गया। अब क्रोध और बढा। मुनिजी कुपित होकर ज्ञान का निरूपण करने लगे। मैने उनकी उक्तियो और युक्तियो पर ध्यान नही दिया। जब वे मुझे समझाने के लिए विषय का परिष्कार करते थे तब मैं बैठकर अनेक प्रकार का अनुमान करता था। उन अनेक प्रकार के अनुमानो को दिखलाते हैं।

अद्वैत बुद्धि मे क्रोध बनता नही। जब दो है ही नही तो कैसा क्रोध ? कौन करे ? और किस पर किया जाय ? अज्ञान से ही द्वैतबुद्धि होती है। मुनिजी क्रोध कर रहे हैं, अत उनमे द्वैतबुद्धि है। फलतः अज्ञान भी नही है। जब स्वय इनमे अज्ञान है तो ज्ञान की आशा किससे की जाय। ईश्वर मायापति है। जीव मायावश है। ईश्वर अपरिच्छिन्न है। जीव परिच्छिन्न है। ईश्वर चिद्रूप है। जीव जड़ रूप है। उसकी ईश्वर से क्या समानता है। अतः आक्षेपात्मक प्रश्न अपने मन मे करते हैं : जीव कि ईस समान।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कबहुँक दुख सब कर हित ताके। तेहि कि दरिद्र परस मनि जाके ॥
पर द्रोही कि होंहि निःसंका। कामी पुनि कि रहहि अकलंका ॥१॥

अर्थ : सबका कल्याण चाहनेवाले को क्या कभी दुःख होता है। जिसके पास पारस मणि हो क्या उसको दारिद्रय हो सकता है ? परद्रोही क्या निर्भय रह सकता है ? और क्या कामी निष्कलङ्क रह सकता है ?

व्याख्या : जिस भाँति महर्षि लोमश ने अज अद्वैतादि सत्रह बातें ब्रह्म में दिखलाकर उसका जीव में अभेद दिखलाया। उसी भाँति भुसुण्डिजी १७ बातें जीव सम्बन्धी दिखलाते हैं। जिनसे भेद सिद्ध होता है। ब्रह्म सम्बन्धी जितनी बातें दिखलायी गयी हैं उनमे से कोई पुरुषव्यापारतन्त्र नही है और भुसुण्ड जिन सत्रह बातों—१. दुःख २. शङ्का ३. कलङ्क ४. वशनाश ५. कर्म ६. सुमति ७. शुभगति ८. भव ९. सुख १०. राज ११. अर्थ १२. यश १३. अयश १४. लाभ १५. हानि १६. घोर अघ १७. धर्म को जीव में दिखलाते है। वे सबकी सब पुरुष व्यापार तन्त्र है। अतः इन युक्तियों से तथा अन्य बहुत सी युक्तियों से भी जीव का ब्रह्म के समान न होना सिद्ध करते हैं। यहाँ पर सत्रहो बाते आक्षेपात्मक प्रश्न के रूप मे कही गयी हैं। जिनका उत्तर नहीं है।

क्या सबका कल्याण चाहनेवाले को भी दुःख होता है। अर्थात् दूसरे के अहित चिन्तन विना दुःख होता नही। जो दूसरे को दुःख पहुँचावेगा उसे बिना दुःख मिले रह नही सकता। यदि अपने को दुःख हो तो समझ लेना चाहिए कि मुझसे किसी प्राणी को किसी समय अवश्य दुःख पहुँचा था। जिसके पास पारस मणि है उसे दरिद्रता कहाँ ? पारस गुन अवगुन नहि जानत कंचन करत खरो। जिसके पास पारस है वह लोहे को सोना बना सकता है। उसे दारिद्रय कहाँ से आवेगा। मोह को दरिद्र कहा गया है। यथा : मोह दरिद्र निकट नहि आवा। जिसके पास परहित रूपी पारस है उसके पास मोह दरिद्र नही जा सकता। यथा : परहित बस जिनके मन माही। तिन कहँ जग दुर्लभ कछु नाही। परद्रोही का निःशङ्क होना असम्भव है। परद्रोही सदा सावधान रहते हैं। अस्त्र शस्त्र से सुसज्जित रहते हैं। शरीर रक्षक अथवा सेना साथ रखते है। इसी भाँति कामी का निष्कलङ्क रहना असम्भव है। सेवत विषय विवर्ध जिमि नित नित नूतन मार। परस्त्रीगामी न होने पर भी कामी होने से राजा ययाति को कलङ्क लगा। उन्होने पुत्र से यौवन लेकर विषयोपभोग किया।

बंस कि रह द्विज अनहित कीन्हे। कर्म कि होंहि स्वरूपहिं चीन्हे ॥
काहू सुमति कि खल संग जामी। सुभगति पाव कि परत्रियगामी ॥२॥

अर्थ : ब्राह्मण का अपकार करने से कही वंश रहता है ? स्वरूप ज्ञान होने पर क्या कर्म होता है ? क्या खल के संग से किसी को सुमति हुई है ? परस्त्रीगामी को क्या कभी सुगति मिल सकती है ?

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : ब्राह्मणद्रोही का वंश नही चलता। उसका वश चलना असम्भव है। बच्चा बच्ची होने को ही वश चलना नही कहते। मनुष्य का वश पशुसतान से नही चल सकता। यथा : पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भगत जासु सुत होई। न तरु बाझ भलि बादि बिआनी। राम बिमुख सुत ते हित जानी।

स्वरूप ज्ञान जिसे हो जाता है उससे कर्म हो नही सकता। वह कोई क्रिया नही करता। लोगो के देखने मे भले ही वह भिक्षाटनादि कर्म करता हो। पर अपनी दृष्टि मे वह कुछ नही करता। लोगो का देखना उसके नैष्कर्म्य सिद्धि मे बाधक हो नही सकता। यथा : प्रकृते क्रियमाणानि गुणै कर्माणि सर्वश। अहङ्कारविमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते।

खल के सङ्ग से कुमति उत्पन्न होती है। यथा : तिनकर संग सदा दुखदाई। जिमि कपिलहि घालइ हरहाई। सुनहु असतन्ह केर सुभाऊ। भूलेहु सगति करिअ न काऊ। इत्यादि। उनके सग मे सुमति के उत्पन्न होने की बात तो सर्वथा असम्भव है। तथा : करि कुसग चाहत कुसल तुलसी मन अफसोस। महिमा घटी समुद्र की रावन बसा परोस। को न कुसगति पाइ नसाई। रहै न नीच मते चतुराई।

इसी भाँति परस्त्रीगामी की शुभ गति नही हो सकती। यथा : जो आपन चाहइ कल्याना। सुजसु सुमति सुभगति सुख नाना। सो परनारि लिलार गोसाई। तजौ चौथि के चद की नाई। तथा : सेवक सुख चह मान भिखारी। व्यसनी धन सुभगति व्यभिचारी। लोभी जस चह चार गुमानी। नभ दुहि दूध चहत ए प्रानी। अत व्यभिचारी की शुभ गति होनी सर्वथा असम्भव है।

भव कि परहि परमात्मा बिन्दक। सुखी कि होहि कबहु हरि निंदक ॥
राज कि रहै नीति बिनु जाने। अघ कि रहहि हरि चरित बखाने ॥३॥

अर्थ : परमार्थ का जाननेवाला क्या कभी ससार सागर मे पड सकता है ? हरि निन्दक क्या कभी सुखी रह सकता है ? बिना नीति जाने क्या राज्य रह सकता है ? भगवान् के चरित का गान करने से क्या पाप रह सकता है ?

व्याख्या : अपि चेदसि पापेभ्य सर्वेभ्य: पापकृत्तम:। सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं सन्तरिष्यसि। बडा भारी पापी भी ज्ञान नौका का आश्रय करके सब पापो को तर जाता है। ज्ञानाग्नि: सर्वकर्माणि भस्मसात् कुरुतेऽर्जुन। ज्ञान की अग्नि सब कर्मों को जला देती है। ज्ञानी के सञ्चित कर्म सब भस्म हो जाते हैं। क्रियमाण से उसका लेप नही होता। प्रारब्ध कर्म का भोग समाप्त होते ही वह मुक्त हो जाता है। वह आवागमन से परे हो जाता है। वह लौटता नही : न स पुनरावर्त्तते। इसलिए परमार्थ के जाननेवाले का भवसागर मे पड़ना महा असम्भव है।

पर निंदा सम अघ न गिरीसा। परनिन्दा के समान कोई बडा पाप नही हैं। तिसपर हरिहर निन्दक के तो जिह्वा छेदन का विधान है। उसने वाणी का बडा भारी दुरुपयोग किया। उसने सर्वात्मा हरि का अपमान किया। इस भाँति स्वय

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अपनो आत्मा के प्रतिकूलाचरण किया। उसे सुख कहाँ? उसको कही सुख नही मिल सकता।

सोचिय नृपति जो नीति न जाना। नीति न जानने वाला राजा शोचनीय हो जाता है। क्योंकि नीति न जानने से वह ठीक प्रजा पालन न कर सकेगा। इससे उसका परलोक विगड़ेगा: उसे नरक होगा। वह राज्य की रक्षा भी नही कर सकेगा। उसका राज्य चला जायगा। अतः नीति नही जाननेवाले का राज्य टिक नही सकता।

भगवान् सबके हृदय में निवास करते हैं। वे जब अपनी कथा सुनते हैं तो कथन करनेवाले के सम्पूर्ण अकल्याण का नाश कर देते हैं। यथा: कलियुग केवल हरि गुन गाहा। गावत नर पावहि भव थाहा। कहहिं सुनहि अनुमोदन करही। ते गोपद इव भवनिधि तरही।

पावन जस कि पुन्य बिनु होई। बिनु अघ अजस कि पावै कोई॥
लाभु कि कछु हरि भगति समाना। जेहि गावहिं स्रुति संत पुराना॥४॥

अर्थ: पवित्र करनेवाला यश क्या बिना पुण्य के होता है? और बिना पाप के क्या किसी का दुर्यश होता है? जिस भक्ति का गान श्रुति सन्त पुराण करते हैं उसके समान क्या कोई लाभ है?

व्याख्या: पुण्य करने से ही मनुष्य पुण्यश्लोक होता है। उसका नाम लोग प्रात काल उठकर लेते हैं। यथा: पुण्यश्लोको नलो राजा पुण्यश्लोको युधिष्ठिरः। पुण्यश्लोका च वैदेही पुण्यश्लोको जनार्दनः। और पाप करने से दुर्यश होता है पापी का नाम कोई सवेरे नही लेता। ख्याति दोनो की होती है: पुण्यात्मा की भी और पापात्मा की भी। परन्तु पुण्यात्मा की ख्याति का सुयश और पापात्मा की ख्याति का नाम दुर्यश है। अतः बिना पुण्य के सुयश और बिना पाप के दुर्यश नही होता।

वस्तु के अच्छे बुरे का परिचय उसके फल से होता है। भक्ति के लिए श्रुति सन्त पुराण सभी कहते हैं कि सब साधनों का फल हरिभक्ति है। यथा: तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ग्यान निपुनाई। नाना कर्म धर्म व्रत दाना। संजम दम तप मख नाना। भूत दया द्विज गुरु सेवकाई। विद्या विनय विवेक बडाई। जहँ लगि साधन वेद बखानी। सबकर फल हरि भगति भवानी। अर्थात् हरिभक्ति से बढकर कोई लाभ नही है।

हानि कि जग एहि सम कछु भाई। भजिय न रामहि नर तन पाई॥
अघ कि पिसुनता सम कछु आना। धर्म कि दया सरिस हरिजाना॥५॥

अर्थ: हे भाई! ससार मे क्या इसके समान कोई हानि है कि मनुष्यशरीर पाकर राम को न भजे। हे गरुड़जी तामस को छोड़कर क्या पाप कोई अन्य वस्तु है या दया के समान कोई अन्य धर्म है?

व्याख्या: बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रन्थन्हि गावा। साधन

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

धाम मोक्ष कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक सँवारा। सो परत्र दु ख पावै सिर धुनि धुनि पछिताइ। कालहि कर्महि ईश्वरहि मिथ्या दोष लगाइ। अत. मनुष्यशरीर पाकर भी हरिभजन न करने से बढकर कोई हानि हो नही सकती।

सत्वगुण मे जो स्थित हैं उनकी ऊर्ध्व गति होती है। राजस वृत्तिवाले मध्य मे स्थित होते हैं परन्तु तमोगुण वृत्तिवालो की अधोगति होती है। अत. तामस कर्म ही पाप है। तामस धर्म का भी अनिष्ट फल है। अतः तामस कर्म से अन्य कोई पाप नही है। जहाँ. अघ कि पिसुनता सम कछु आना पाठ है वहाँ यह अर्थ करना होगा कि चुगलखोरी से बढकर कोई पाप नही है। भगवान् मनु कहते हैं. परीवादात् खरो भवति श्वावै भवति निन्दक। सच्चा दोष कहने से गधा का जन्म होता है और झूठा दोष कहने से कुत्ते का जन्म होता है। अत पिशुनता से बढकर कोई पाप नही है।

अहिंसा परम धर्म है। हिंसा पीडा पहुँचाने को कहते हैं। किसी को पीडा नही पहुँचाना ही अहिंसा है। दूसरे शब्द मे इसे दया कह सकते हैं। अतः दया परम धर्म हुआ। अत. इसके समान दूसरा धर्म नही है। माया वस परिछिन्न जड जीव कि ईस समान। कहकर ग्रन्थकार १७ उदाहरण देते हैं। यहाँ ईश शब्द ब्रह्म के लिए ही आया है। यथा. लागे करन ब्रह्म उपदेसा। १ अज २ अद्वैत ३. अगुन ४ हृदयेसा। इत्यादि और उसके बाद ही कहते हैं सो तैं ताहि ताहि नहि भेदा। इसी पर त्वपद जीव के तीन विशेषण देते हुए भुसुण्डिजी तर्क उठाते हैं कि १ मायावस २ परिछिन्न ३ जड ४ जीव कि ईस समान और इसी की पुष्टि मे सत्रह उदाहरण देते हैं। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि तत्पद के एक एक लक्षण को त्वपद के लक्षण से मिलान करके उसका समान होना असम्भव सिद्ध करते हैं। यथा

१ ब्रह्म अज है। सबहित रूपो पारसवाले को दरिद्रतारूपी दु ख आ नही सकता। उसी भाँति अजन्मा मायावश जीव हो नही सकता। माया वश जीव होना असम्भव है।

अद्वैत है। जिस भाँति परद्रोही का नि शङ्क होना असम्भव है उसी भाँति परिच्छिन्न जीव का अद्वैत होना असम्भव है।

३ अगुण है। जिस भाँति कामी का निष्कलङ्क होना असम्भव है उसी भाँति मायावश जीव का अगुण होना असम्भव है।

४ हृदयेश है। द्विज का अनहित करने से जैसे वश चलना असम्भव है उसी भाँति जड का हृदयेश होना असम्भव है।

५ अकल है। जिस भाँति स्वरूप ज्ञान होने पर कर्म होना असम्भव है उसी भाँति परिच्छिन्न का अकल होना असम्भव है।

६ अनीह है। जिस भाँति खल के सग मे सुमति का आविर्भाव असम्भव है उसी भाँति मायावश का अनीह होना असम्भव है।

७ अमान है। जिस भाँति परतियगामी की शुभगति असम्भव है उसी भाँति मायावश का अमान होना असम्भव है।

ankurnagpal108@gmail.com



८. अरूप है। जिस भाँति परमार्थ ज्ञाता का ससार मे पडना असम्भव है उसी भाँति परिच्छिन्न का अरूप होना असम्भव है।

९ अनुभवगम्य है। जिस भाँति हरिनिन्दक का सुखी होना असम्भव है उसी भाँति जड का स्वयप्रकाश होना असम्भव है।

१० अखण्ड है। जिस भाँति बिना नीति जाने राज्य का रहना असम्भव है उसी भाँति परिच्छिन्न का अखण्ड होना असम्भव है।

११ अनूप है। जिस भाँति हरि चरित बखानने से पाप का रहना असम्भव है उसी भाँति जीव का अनूप होना असम्भव है : जीवत्व प्राणधारणात्।

१२. मन गोतीत है। जिस भाँति विना पुण्य के पावन यश का होना असम्भव है। उसी भाँति मायावश का मनगातीत होना असम्भव है।

१३ अमल है। जिस भाँति विना पाप के दुर्यश होना असम्भव है उसी भाँति मायावश का अमल होना असम्भव है।

१४ अविनाशी है। जिस भाँति हरिभक्ति के समान किसी लाभ का होना असम्भव है उसी भाँति परिच्छिन्न का अविनाशी होना असम्भव है।

१५ निर्विकार। जिस भाँति नरतन पाकर भजन न करने के समान दूसरी हानि नही हो सकती उसी भाँति मायावश निर्विकार नही हो सकता।

१६ निरवधि। जिस भाँति पिशुनता के समान दूसरा पाप नही हो सकता उसी भाँति परिच्छिन्न निरवधि भी नही हो सकता।

१७ सुखरासी। जिस भाँति कोई धर्म दया के समान नही हो सकता उसी भाँति जड सुखराशि नही हो सकता।

यहि विधि अमित जुगुति मन गुनेऊँ। मुनि उपदेस न सादर सुनेउँ ॥
पुनि पुनि सगुन पच्छ मैं रोपा। तब मुनि बोलेउ बचन सकोपा ॥६॥

अर्थ : इस प्रकार से अनगिनत युक्तियाँ मैं मन मे गुनता था। मुनिजी के उपदेश को आदर के साथ नही सुना। बार बार मैंने सगुण पक्ष उठाया तब मुनिजी क्रोध युक्त वाणी बोले।

व्याख्या : इस भाँति ईश्वर और जीव की भेदप्रतिपादक असख्य युक्तियाँ मैं मन ही मन गढता गया। मुनिजी का उपदेश सर्वथा उपादेय था। वे वेद प्रमाण से अपने पक्ष की पुष्टि करते थे। छान्दोग्य श्रुति है। सदेव सोम्येदमग्र आसीत् एकमेवाद्वितीयम्। इस वाक्य से सृष्टि के पहिले स्वगतादि भेद शून्य तत्त्वमसि नामरूप रहित वस्तु का प्रतिपादन है। वह सद्वस्तु सृष्टि के बाद इस समय भी विचार दृष्टि से वैसा ही है। स्थूलादि तीन शरीरो से विलक्षण उनका साक्षी सद्वस्तु त्वपद। से लक्षित है। अत इस महावाक्य मे स्थित असि पद से तत् त्वं पदो का समानाधिकरण होता है। इन सब बातो का उपदेश मुनिजी ने दिया। परन्तु भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैंने आदर के साथ मुनिजी का उपदेश नही सुना। जब वह उपदेश देते थे तब मैं दूसरी दूसरी बातें मन मे सोचता था। यही मुनिजी के उपदेश का अनादर है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



इतना ही नही मैंने बार बार सगुण पक्ष का आरोप किया। सगुण पक्ष को ही ठीक ठहराया। निर्गुण पक्ष मे ही ब्रह्म जीव की एकता बनती है सगुण पक्ष मे ब्रह्म जीव की एकता बन नही सकती। इसलिए मैंने सगुण पक्ष का आरोप किया। मेरी ऐसी मनोवृत्ति को देखकर मुनिजी क्रोध से बोले।

मूढ परम सिख देउँ न मानसि। उत्तर प्रति उत्तर बहु आनसि॥
सत्य बचन बिस्वास न करही। बायस इव सबही ते डरही॥७॥

अर्थ रे मूढ! मैं परम शिक्षा देता हूँ। तू नही मानता उत्तर प्रत्युत्तर बहुत करता है। सच्ची बात पर विश्वास नही करता कौए की भाँति सबसे डरता है।

व्याख्या क्रोध से मुनिजी बोलते हैं। अत मूढ सम्बोधन करते हैं। मूढ़ कहने का कारण देते हैं कि मैं अत्यन्त उत्तम शिक्षा दे रहा हूँ। भक्ति का उपदेश मध्यम अधिकारी के लिए है। तुझ परम अधिकारी जानकर परम उपदेश ब्रह्मोपदेश दे रहा हूँ। यथा मोहि परम अधिकारी जानी। लागे करन ब्रह्म उपदेसा। सो तू नही मान रहा है। उलटा शास्त्रार्थ करने को तैयार है। उत्तर प्रत्युत्तर करता है। उपदेश को मन म बिठाने का यत्न ही नही करता है। मैं वेद का महावाक्य कह रहा हूँ। उस सत्योक्ति पर विश्वास नही करता। जैसे काग अति सज्जन अपने पालनेवाले से भी डरता है। इसी भाँति सहस्र माता की भाँति हितैषणी श्रुति को भी तू सन्देह की दृष्टि से देखता है।

सठ स्वपक्ष तव हृदय बिसाला। सपदि होहि पक्षी चंडाला॥
लीन्हि स्राप मैं सीस चढाई। नहि कछु भय न दीनता आई॥८॥

अर्थ रे शठ! तेरे हृदय म अपना बडा भारी पक्ष है। इसलिए तू सद्य चाण्डाल पक्षी हो जा। मैने शाप को शिरोधार्य किया। न मुझे कोई भय हुआ और न दीनता ही आयी।

व्याख्या मैं वेद वाक्य कहता हूँ। जिसमे भ्रम प्रमाद वञ्चनादि दोष को कोई स्थान ही नही। फिर भी तू अपना ही पक्ष स्थापन करता जाता है। इसलिए तू पक्षी हो जा। अनधिकारी की भाँति तू वेद के उपदेश से दूर भागता है। इसलिए पक्षियो मे भी चाण्डाल अर्थात् कौआ हो जा। वेद की अवज्ञा अत्युग्र पाप है। अत तुझे तुरन्त फल मिले।

महा प्रसाद कहकर भुसुण्डिजी ने शाप को शिरोधार्य किया। मन से भी विरोध नही किया। शाप से उन्हे कोई भय नही हुआ। शिवजी के शाप के समय तो ऐसे भयभीत हो गये थे कि काँपने लगे थे। पर इस बार न भय हुआ और न मन मे दीनता आयी कि कौआ होकर किस दुर्दशा को प्राप्त होगे।

दो तुरत भयउ मैं काग तब, पुनि मुनि पद सिरु नाइ।
सुमिरि राम रघुबंस मनि, हरषित चलेउँ उडाइ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उमा जे राम चरन रत, बिगत काम मद क्रोध।
निज प्रभु मय देखहिं जगत, केहि सन करहिं बिरोध ॥११२॥

अर्थ मैं तुरन्त कौआ हो गया। फिर मुनिजी के चरणो मे सिर नवाकर रघुवशमणि रामजी का स्मरण करके प्रसन्न होकर उड चला। हे उमा! जो राम चरण मे रत हैं और काम मद क्रोध से रहित हैं वे ससार को निज प्रभुमय देखते हैं। वे विरोध किससे करें।

व्याख्या मुनिजी का शाप इतना दारुण था कि प्रकृति के आपूर से भुसुण्डिजी तुरन्त ब्राह्मण से काग हो गये। आने के समय देखि चरन सिर नायेउँ वचन कहेउँ अति दीन। काग हो जाने पर भी चलने के समय मुनि के चरणो मे सिर झुकाया। व्यवहार मे कोई अन्तर नही पडा। सिवा इसके दीन वचन नहीं कहा। क्योकि मन मे दीनता आयी ही नही।

शिवजी बोले उमा! जो रामचरण रत होता है उसे काम मद क्रोध होता नही। काम मद क्रोध यदि हो तो समझना चाहिए कि उसे प्रभु के चरणो मे रति है ही नही। स्पृहा होने से ही काम मद क्रोध होता है। राम भक्त को अन्य स्पृहा रहती नही। इसलिए काम मद क्रोध नही होता और वे अनन्य भक्त सम्पूर्ण जगत् को राममय देखते हैं। यथा सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमत। मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवत। अत वे विरोध किसी से कर नही सकते।

सुनु खगेस नहि कछु रिषि दूषन। उर प्रेरक रघुबस बिभूषन॥
कृपा सिंधु मुनि मति करि भोरी। लीन्ही प्रेम परीक्षा मोरी॥१॥

अर्थ हे खगेश! सुनो इसमे ऋषिजी का कोई दोष नही था। रघुवश विभूषण हृदय मे प्रेरणा करनेवाले हैं। कृपासिन्धु ने मुनि की मति भोरी करके मेरी प्रेम परीक्षा ले ली।

व्याख्या दोष की प्राप्ति हुई। तभी निषेध करते हैं। देखने से मालूम होता है कि इसमे अपराध मुनिजी का है। जो वस्तु जो पुरुष नहीं चाहता उसे बल पूर्वक उसके गले उतारना उचित नही है। भुसुण्डिजी सगुणोपासना जानना चाहते थे। उन्हे निर्गुणोपासना बतलाना और न ग्रहण करने पर शाप देना महा अनुचित है। परन्तु भुसुण्डिजी कहते हैं कि उनका कोई दोष नही। उमा दारु जोषित की नाईं। सबहि नचावत राम गोसाईं। रघुवश विभूषण हैं बिना परीक्षा लिए कुछ करना नही चाहते। उन्होंने मुनि की मति को भोरी कर दी ज्ञानी मूढ न कोइ जेहि जस रघुपति करहिं और मेरे प्रेम की परीक्षा ली। ज्ञान से ही प्रेम दबता है। यथा परम प्रेमु तिनकर प्रभु देखा। कहा विविध विधि ज्ञान विसेखा। अत मुनिजी से ज्ञानोपदेश करवाया। प्रेम के पथ मे ज्ञानोपदेश विघ्नाचरण है। इसीलिए कहा कि नव रस जप तप जोग विरागा। ते सब जलचर चारु तडागा। सो परीक्षा मे भुसुण्डिजी खरे उतरे। शाप को सिर चढाया पर अपने लक्ष्य से न डिगे।

ankurnagpal108@gmail.com



मन बच क्रम मोहि निजजन जाना । मुनि मति पुनि फेरी भगवाना ।।
रिषि मम महत सीलता देखी । राम चरन बिस्वास बिसेखी ।।२।।

अर्थ : मनसा वाचा कर्मणा अपना भक्त जान लिया । तब मुनिजी की बुद्धि को भगवान् ने फेर दिया । ऋषि ने मेरी बड़ी भारी सहनशीलता देखी और रामजी के चरणों में विशेष विश्वास देखा ।

व्याख्या : परीक्षा करके देख लिया कि यह मनसा वाचा कर्मणा मेरा दास है । मनसा यथा : राम भगति जल मम मन मीना । किमि बिलगाइ मुनीस प्रवीना । वाचा यथा : सोइ उपदेस करहु करि दाया । निज नयनन्हि देखौं रघुराया । कर्मणा यथा : जहँ जहँ बिपिन म्नुनीवर पावौं । आस्रम जाइ जाइ सिर नावौं । दास वही होता है जिसे रामजी को छोड़कर दूसरे का भरोसा न हो । अतः जब पूरी तरह से दास जान लिया : भुसुण्डिजी परीक्षा मे खरे उतर गये : तब भगवान् ने मुनिजी की मति को घुमाया । भोरी मति थी उस समय शाप दिया । बुद्धि ठिकाने आते ही भुसुण्डिजी के गुण दृष्टिगोचर हुए । इतनी सहनशीलता कि काग हो जाने पर भी न भय हुआ और न दीनता हुई और यह भी देख लिया कि इसे रामजी के चरणो में विशेष रूप से विश्वास है । इसी से न तो भयभीत हुआ न दीनता आयी । इसे निर्गुण ब्रह्म मे विश्वास न हो यह बात नही है । पर सगुण ब्रह्म रामजी पर विशेष विश्वास है ।

अति बिसमय पुनि पुनि पछिताई । सादर मुनि मोहि लीन्ह बोलाई ।।
मम परितोष बिबिध बिधि कीन्हा । हरषित राम मंत्र तब दीन्हा ।।३।।

अर्थ : अत्यन्त विस्मय के साथ बार बार पछताकर आदर के साथ मुनिजी ने मुझे बुला लिया । मेरी अनेक प्रकार से दिलजोई की और प्रसन्न होकर मुझे राम मन्त्र दिया ।

व्याख्या : मुनिजी को मेरी सहनशीलता और बरताव पर बड़ा विस्मय हुआ । बार बार पछताने लगे यह मैंने क्या कर डाला । इसका अपराध कुछ भी नही । वह कहता था कि मुझ से सगुण उपासना कहिये । उसकी रुचि के प्रतिकूल मैंने निर्गुण उपासना पर क्यो हठ किया । यदि उसने नही माना तो मेरी क्या हानि हुई जो मैंने उसे शाप दे डाला । मुनिजी ने अप्रसन्न होकर भुसुण्डिजी का अनादर किया । मूढ कहा अब आदर के साथ बुलाया । अपनी कठोरता के सम्मार्जन के लिए कोमल शब्दो से मेरी दिलजोई की समझाया कि सविधि उपासना करने से रामजी का दर्शन होता है । बेगि बिलब न कीजिये लीजिय उपदेस । महा मंत्र जपिये सोइ जो जपत महेस । अतः पहिली बात इष्टदेवता के मन्त्र से दीक्षित होना है । सो मुनिजी स्वयं प्रसन्न होकर भुसुण्डिजी को राम मन्त्र की दीक्षा दी । मुनिजी की इतनी कृपा हुई कि मेरा काग शरीर होने पर भी मुझे दीक्षा दी । राम मन्त्र का अधिकार जीव मात्र को है ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बालक रूप राम कर ध्याना । कहेउ मोहि मुनि कृपा निधाना ॥
सुंदर सुखद मोहि अति भावा । सो प्रथमहि मैं तुम्हहि सुनावा ॥४॥

अर्थ : कृपा निधान गुरुजी ने मुझे बालक रूप रामजी का ध्यान बतलाया। वह सुन्दर और सुखद था। तुझे जो कि पहिले ही मैं सुना चुका हूँ।

व्याख्या : मुनिजी स्वभाव से ही कृपानिधान थे। प्रसन्न होकर मन्त्र भी दिया और ध्यान भी बतलाया। रामजी के बालरूप का ध्यान बतलाया। यही ध्यान शिवजी भी करते हैं। यथा : बन्दौं बाल रूप सोइ रामू। वह ध्यान बड़ा सुन्दर सुख देनेवाला था। मुझे बड़ा प्यारा लगा। मैं पहले ही उसका वर्णन तुम से कर चुका हूँ। यथा :

मरकत मृदुल कलेवर स्यामा। अंग अंग प्रति छबि बहु कामा॥
नव राजीव अरुन मृदु चरना। पदज रुचिर नख ससि दुति हरना॥
ललित अंक कुलिसादिक चारी। नूपुर चारु मधुर रवकारी॥
चारु पुरट मनि रचित बनाई। कटि किंकिनि कल मुखर सुहाई॥
रेखा त्रय सुंदर उदर नाभी रुचिर गंभीर।
उर आयत भ्राजत बिबिध बाल बिभूषन चीर॥
अरुन पानि नख करज मनोहर। बाहु बिसाल बिभूषन सुंदर॥
कंध बाल केहरि दर ग्रीवा। चारु चिबुक आनन छबि सींवा॥
कलबल बचन अधर अरुनारे। दुइ दुइ दसन बिसद बरबारे॥
ललित कपोल मनोहर नासा। सकल सुखद ससि कर सम हासा॥
नील कंज लोचन भव मोचन। भ्राजत भाल तिलक गोरोचन॥
बिकट भृकुटि सम स्रवन सुहाए। कुंचित कच मेचक छबि छाए॥
पीत झीनि झिंगुली तन सोही। किल कनि चितवनि भावति मोही॥

मुनि मोहि कछुक काल तहँ राखा। राम चरित मानस तब भाखा॥
सादर मोहि यह कथा सुनाई। पुनि बोले मुनि गिरा सुहाई॥५॥

अर्थ : मुनिजी ने मुझे कुछ समय तक वहाँ ठहराया तब मुझसे रामचरित मानस कहा। आदर के साथ मुनिजी ने यह कथा सुनायी और तब सुन्दर वाणी बोले।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि मुनिजी ने पहिले राममन्त्र की दीक्षा दी। इष्टदेव के ध्यानपूर्वक ही जप होना चाहिए। अतः बालकरूप राम का ध्यान बतलाया। नाम और रूप के बाद लीला क्रम प्राप्त है। इसलिए मुनिजी ने वहाँ ठहरा लिया। भाव यह कि दीक्षा पा लेने के बाद साधन के लिए मैं दूसरे स्थान पर जाने के लिए तैयार हुआ। पर गुरुजी ने रोक लिया कि अभी शिक्षा पूरी नहीं हुई है। अतः श्रीशिवजी कृत रामचरित मानस श्रीशिवजी की प्रेरणा से मुझे सुनाया। यथा : सोइ सिव कागभुसुण्डिहि दीन्हा। रामभगति अधिकारी चीन्हा। लोमश ऋषि द्वारा कागभुसुण्डि को सुनवाया। इस लिए दीन्हा लिखते हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



आदर के साथ मुनिजी ने यह कथा भुसुण्डिजी को सुनाया और तब ग्रन्थ की परम्परा तथा अधिकारी आदि भेद बतलाया। इसीसे कहते हैं कि सुहाई वाणीवाले जो भुसुण्डिजी को बड़ी प्रिय लगी।

राम चरित सरगुप्त सुहावा। संभु प्रसाद तात मैं पावा ॥
तोहि निज भगत रामकर जानी। ताते मैं सब कहेउँ बखानी ॥६॥

अर्थ : यह सुन्दर रामचरित सर गुप्त था। महादेवजी के प्रसाद से हे तात ! मुझे मिला। तुझे रामजी का निज भक्त जान लिया। इसलिए मैंने सब वर्णन करके कहा।

व्याख्या : रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा। इसलिए कहते हैं कि यह रामचरित सर गुप्त था। शिवजी के मन मे रहने से दुर्गम था। यथा : यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमम्। बिना शिवजी की कृपा इसका मिलना असाध्य था। श्रीलोमशजी कहते हैं कि मुझे शिवजी के प्रसाद से मिला। मैंने भी गुप्त ही रक्खा। जब देख लिया कि तुम रामजी के निज दास हो तब तुमसे सब वर्णन किया अर्थात् रहस्य के साथ कह सुनाया। पहिले विद्याएँ बडी गुप्त रक्खी जाती थी अधिकारी को ही दी जाती थी। इस काल मे सुलभता अधिक कर दी गयी है। क्योंकि अधिकारी के अभाव से विद्या ही लुप्त हो जाती।

राम भगति जिनके उर नाही। कबहुँ न तात कहिअ तिन पाही ॥
मुनि मोहि विविध भाँति समुझावा। मै सप्रेम मुनि पद सिरु नावा ॥७॥

अर्थ : हे तात ! जिनके हृदय मे रामभक्ति न हो उससे कभी नही कहना चाहिए। मुनिजी ने मुझे अनेक प्रकार से समझाया। मैंने प्रेम के साथ मुनिजी के चरणो में प्रणाम किया।

व्याख्या : अधिकारी कहकर अब अनधिकारी बतलाते हैं कि इस कथा के अधिकारी वे हैं जिनके हृदय मे रामभक्ति है उन्ही से इसे कहना चाहिए। जिसे भक्ति नही है उसे कभी नही सुनाना चाहिए क्योंकि इससे उनका अकल्याण होगा। यथा :

उमा राम गुन गूढ पंडित मुनि पावहिं बिरति।
पावहि मोह बिमूढ जे हरि बिमुख न धर्मरति ॥

मुनिजी ने भुसुण्डिजी को अनेक प्रकार से समझाया कि :

मुक्तामणि माणिक माल गले कपि को नहि भूलि पिन्हाइये जू।
नहि होश त्रिदोष भयो जेहि को तेहि को नहि खीर खवाइये जू ॥
मद पान किये जो बकै दुर्वाद तिन्है नहि भूलि सिखाइये जू।
जिनको नहि रामते नेह तिन्है रघुबीर कथा न सुनाइये जू ॥
मान घटै प्रभुको अपमान कथा को महा महिमा दबि जावै।
दाह बढै अपने उरमे अरु औरनहू को उछाह नसावै ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पाप बढ़ै परिताप बढ़ै सुनि दाप बढ़ै शठता बढ़ि जावै।
भक्ति नही जिनको तिनको कोउ जो रघुवीर चरित्र सुनावै॥

लाभ अपरिमित होय जिमि हरि चरित्र से तात।
अन अधिकारी को दिये तथा हानि होइ जात॥
याते राम चरित्र सर उरमे राखिय गोय।
सज्जन पाइ प्रकासिये जेहि सुख दुहु दिसि होय॥

अथवा मानस पूजा अनेक प्रकार से समझाया। यथा . श्राम छांह कर मानस पूजा। भाव यह कि नाम जप ध्यान मानस पूजा और राम गुणगान से रामजी का दर्शन होता है। शिक्षा समाप्त होने पर सप्रेम वन्दना है। अपिच .

निगम अगम साहब सुगम राम सादिली चाह।
अबु असन अवलोकियत सुलभ सबै जग माह॥

निजकर कमल परसि मम सीसा। हरखित आसिष दीन्ह मुनीसा॥
राम भगति अविरल उर तोरे। बसिहि सदा प्रसाद अब मोरे॥८॥

अर्थ : अपने कर कमल से मेरे सिर को छूकर मुनिजी ने हर्षित होकर आशीर्वाद दिया। रामजी की अविरल भक्ति तेरे हृदय मे अब मेरे प्रसाद से बसे।

व्याख्या : गुरुजी ने अत्यन्त कृपा से सिर पर हाथ फेरा। अर्थात् अभय हस्त सिर पर रखा और मुनीश्वर हैं : उनका आशीर्वाद अमोघ है सो उन्होंने हर्षित होकर आशीर्वाद दिया : राम भगति अनुपम सुखमूला। मिलइ जो संत होंहि अनुकूला। शिवजी की कृपा से भक्ति जमी। सन्त की कृपा से अविरल भक्ति मिली। मुनिजी कहते हैं कि तुम्हारे मन मे मेरे प्रसाद से बसे अर्थात् तैल धारावत् अविच्छिन्न प्रवाह चलता रहे।

दो. सदा राम प्रिय होव तुम्ह, सुभ गुन भवन अमान।
कामरूप इच्छा मरन, ग्यान विराग निधान॥११३॥

अर्थ : तुम सदा रामजी को प्रिय हो शुभ गुणो के भवन हो फिर भी तुम्हे मान न हो। तुम कामरूप काक्षामृत्यु और ज्ञान वैराग्य के निधान हो।

व्याख्या : मुनिजी ने काक होने का शाप दिया था। उसका परिमार्जन आशीर्वाद से कर रहे हैं। काक किसी को प्रिय नही होता सो तुम रामजी को प्रिय हो। काक अवगुण भवन होता है सो तुम शुभ गुण भवन हो और फिर भी तुम्हे मान न हो अर्थात् तुम्हारा ज्ञान अचल रहे। यथा : ज्ञान मान जहँ एको नाही। देख ब्रह्म समान सब माही। तुम्हे ऐसी शक्ति हो कि जो शरीर चाहो अपना बनालो। यह आवश्यक नहीं है कि तुम यावज्जीवन काग ही बने रहो। तुम मृत्यु से भी अभय हो जाओ। जब तुम चाहो तभी तुम्हारी मृत्यु हो और ज्ञान वैराग्य के निधान हो जाओ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. जेहि आस्रम तुम बसव मुनि, सुमिरत श्री भगवंत ।
ब्यापिहि तहँ न अविद्या, जोजन एक प्रजंत ॥११३ क.

अर्थ : जिस आश्रम में तुम श्री भगवान् का स्मरण करते हुए बसोगे। वहाँ एक योजन पर्यन्त विद्या न व्यापेगी।

व्याख्या : काक राम चरित मानस के सन्निकट नही जाते। यथा : तेहि कारण आवत हिय हारे। कामी काक बलाक बिचारे। पर तुम्हारा ऐसा महत्त्व होगा कि यहाँ से जाकर जहाँ तुम अपना निवास साधन भजन के लिए करोगे। वहाँ एक योजन पर्यन्त अविद्या न व्यापेगी। यथा : रह्यो ब्यापि समस्त जग माहीं। तेहि गिरि निकट कबहुँ नहि जाही। अतः विघ्नरहित होकर तुम रामजी का ध्यान जप मानस पूजा और राम गुणगान करो। इसी से भगवद् अनुग्रह की प्राप्ति होगी। तुम्हे अविद्या न व्यापने का वर शिवजी दे चके है। यथा : कवनेउँ जन्म मिटिहि नहि ग्याना। अतः मैं यह वर देता हूँ कि : जेहि आस्रम तुम बसब मुनि इत्यादि।

काल करम गुन दोष सुभाऊ। कछु दुख तुमहि न ब्यापिहि काऊ ॥
राम रहस्य ललित विधि नाना। गुप्त प्रकट इतिहास पुराना ॥१॥

अर्थ : काल कर्म गुण दोष और स्वभाव का कुछ भी दुःख तुम्हें कभी नही व्यापेगा। रामजी के सुन्दर नाना विधि रहस्य और गुप्त तथा प्रकट इतिहास पुराण।

व्याख्या : काक का मलिन स्वभाव नही मिटता। वायस पालिअहि अति अनुरागा। होहि निरामिष कबहु कि कागा। परन्तु तुम अविद्या की परिधि के बाहर निकल जाओगे। संसार काल कर्म गुण स्वभाव के घेरा में पड़ा हुआ भवाटवी मे भटकता फिरता है। यथा : फिरत सदा माया कर प्रेरा। काल कर्म स्वभाव गुन घेरा। सो ये तुम्हे कभी कुछ भी बाधा न करेंगे।

रामजी की कथा में सुन्दर रहस्य विभाग है। जिनकी कथा की जानकारी जनसाधारण को नही है। इतिहास पुराणो मे भी कुछ अंश प्रकट हैं और कुछ गुप्त हैं। जिसे लोग नही जानते। अनधिकारियो के हाथ में पड़ जाने से उनका उससे अकल्याण होगा। इसलिए वे गुप्त रक्खे गये हैं। जो अंश प्रकट है उनका भी सम्यक् ज्ञान बहुत कठिन है।

बिनु स्रम तुम्ह जानब सब सोऊ। नित नव नेह राम पद होऊ ॥
जो इच्छा करिहहु मन मांही। हरि प्रसाद कछु दुर्लभ नाही ॥२॥

अर्थ : अनायास ही तुम्हे सबका ज्ञान हो जायगा। तुम्हे रामजी के चरण मे नित्य नया स्नेह हो। जो इच्छा तुम मन मे करोगे श्रीहरि के प्रसाद से कुछ भी तुम्हें दुर्लभ नही होगा।

व्याख्या : काक मन्दमति होते हैं। उन्हे विद्या कहाँ ? मेधावी पुरुषो को भी विद्योपार्जन मे बड़ा आयास होता है। सो तुम राम रहस्य और गुप्त प्रगट

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पुराणेतिहास के जानकार हो जाओगे। काक अभागे होते हैं पर तुम ऐसे भाग्यवान् होगे कि तुम्हे श्रीरामजी के चरणो मे नित्य नयी प्रीति होगी और जो इच्छा तुम्हारे मन मे उठेगी श्रीहरि की कृपा से तुम्हे सबकी प्राप्ति होगी।

सुनि मुनि आसिष सुनु मति धीरा। ब्रह्म गिरा भइ गगन गँभीरा ॥
एवमस्तु तव बच मुनि ग्यानी। यह मम भगत करम मन बानी ॥३॥

अर्थ हे मतिधीर! सुनो मुनि का आशीर्वाद सुनकर आकाश मे ब्रह्म की वाणी का आविर्भाव हुआ। हे मुनि ज्ञानी! जो तुमने वचन कहे वैसा ही हो। यह मनसा वाचा कर्मणा मेरा भक्त है।

व्याख्या राम ब्रह्म मुनिजी का आशीर्वाद सुनते रहे कि कोई त्रुटि हो तो पूरी की जाय। पर ज्ञानी मुनि ने मुझे जो देना प्राप्त था सब दे डाला। निर्गुण ब्रह्म की वाणी है। पता नही चलता कि कहाँ से हो रही है। इसलिए गँभीरा कहा। सगुण ब्रह्म की वाणी होती तो कुछ पता भी चलता। यथा मदिर माझ भई नभबानी। उस आकाशवाणी ने मुनिजी के आशीर्वचन का अनुमोदन किया। वह आकाशवाणी मुनिजी के प्रति हुई। पर भुसुण्डिजी को भी सुनाई पडती थी। आकाशवाणी ने अपने अनुमोदन का कारण भी बतलाया कि यह मेरा मनसा वाचा कर्मणा भक्त है। भाव यह कि रामजी का सच्चा भक्त सब विद्याओ का ज्ञान अनायास प्राप्त करता है और उसकी अभिलाषा को भगवान् स्वय पूरा कर देते हैं।

सुनि नभ गिरा हरष मोहि भयऊ। प्रेम मगन सब ससय गयऊ ॥
करि बिनती मुनि आयसु पाई। पद सरोज पुनि पुनि सिरु नाई ॥४॥

अर्थ आकाशवाणी सुनकर मुझे हर्ष हुआ। मैं प्रेम मे मग्न हो गया और मेरा सशय सब दूर हो गया। विनती करके और मुनिजी की अनुमति पाकर उनके चरण कमल मे बार बार प्रणाम करके।

व्याख्या आकाशवाणी सुनने पर तो रामजी के साक्षात्कार की दृढ आशा हो गयी। इसलिए भुसुण्डिजी हर्षित हो उठे। जिसे दर्शन देना है वह स्वय एवमस्तु कह रहा है। अत भुसुण्डिजी प्रेम मे मग्न हो गये। मन मे सशय था कि जो इच्छा करिहहु मन माही मुनिजी ने कहा है उसमे रामजी के दर्शन की इच्छा का अन्तर्भाव है या नही है। वह सशय भी मिट गया। क्योकि आकाशवाणी ने मान लिया कि भुसुण्डिजी मनसा वाचा कर्मणा भक्त हैं। मुनिजी के प्रत्येक आशीर्वाद पर सशय होता था। मुझे भक्ति नही है इसलिए मुनिजी इतना आशीर्वाद दे रहे हैं। क्या मेरे मन मे कही छिपी हुई अमर होने की अच्छा है इत्यादि सब सशय चल गये।

मनोरथ पूर्ण होने पर मुनिजी की स्तुति की विनय किया विदा माँगा और अत्यन्त प्रेम होने से अथवा कृतकृत्य होने से बार बार चरणो मे गिरे। आज्ञा पाया। इससे द्योतित होता है कि विदा माँगा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


हरख सहित एहि आस्रम आयेउ । प्रभु प्रसाद दुर्लभ वर पायेउ ॥
इहाँ बसत मोहि सुनु खगईसा । बीते कलप सात अरु बीसा ॥५॥

अर्थ हर्षित होकर मैं इस आश्रम मे आया। प्रभु के प्रसाद से दुर्लभ वर मिला। इहाँ बसते हुए मुझे हे गरुडजी! सुनो सत्ताईस कल्प बीत गये।

व्याख्या : मुनिजी से भेंट होने के पहिले दिन शाप मिला। अन्तिम दिन आशीर्वाद मिला। आकाशवाणी हुई। श्रावण प्रत्यक्ष हुआ। अब चाक्षुप प्रत्यक्ष की भी आशा दृढ हुई। अथवा स्वय प्रभु ने स्वीकार कर लिया कि : यह मम भगत करम मन बानी। अत. हर्षित होकर इस आश्रम मे आया : दुर्लभ वर जेहि आस्रम तुम बसब पुनि सुमिरत श्रीभगवत। ब्यापिहि तहँ न अविद्या जोजन एक प्रजत। ऐसा वर कभी किसी को मिलते नही सुना गया। यह सब प्रभु के प्रसाद से हुआ। मुनिजी शाप या वर मे निमित्त मात्र थे।

अब भुसुण्डिजी कहते हैं कि यह सब कथा आज से २७ कल्प पहिले की है। क्योंकि इस आश्रम मे आये मुझे २७ कल्प बीत चुके। आप तो इस कल्प के गरुड हैं।

करौं सदा रघुपति गुन गाना । सादर सुनहि बिहग सुजाना ॥
जब जब अवध पुरी रघुबीरा । धरहिं भगत हित मनुज सरीरा ॥६॥

अर्थ : सदा रघुपति का गुणगान किया करता हूँ। सुजान पक्षी उसे आदर के साथ सुनते हैं। जब रामजी अयोध्या मे भक्त के लिए मनुष्य शरीर धारण करते हैं।

व्याख्या : जब से आया हूँ तभी से कथा कहता हूँ कथा कहते कहते २७ कल्प बीते। सुजान पक्षी मेरी कथा को सुना करते हैं। न कहते कहते मैं थकता हूँ न सुनते सुनते वे थकें। क्योंकि : रामचरित जे सुनत अघाही। रस बिसेष जाना तिन नाही। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि पक्षी भाषा मे कथा होती रही।

प्रत्येक कल्प मे एक बार रामावतार होता है। यद्यपि प्रभु के अनन्त अवतार हैं और देवयोनि तिर्यक् योनि मे भी होते हैं। परन्तु अयोध्या म मनुष्य योनि मे रामावतार होता है। उसका कारण होता है भक्त हित। यथा : तुम सारिखे संत प्रिय मोरे। धरौं देह नहि आन निहोरे।

तब तब जाइ राम पुर रहऊँ । सिसु लीला बिलोकि सुख लहऊँ ॥
पुनि उर राखि राम सिसुरूपा । निज आस्रम आवौं खग भूपा ॥७॥

अर्थ : तब तब जाकर मै रामपुर मे रहता हूँ। शिशु लीला देखकर सुख प्राप्त करता हूँ। फिर रामजी के शिशु रूप को हृदय मे रखकर हे खगनाथ! मै अपने आश्रम मे लौट आता हूँ।

व्याख्या : भुसुण्डिजी कहते हैं कि मेरे इष्टदेव बालक राम हैं। सो प्रत्येक कल्प के वैवस्वत मन्वन्तर के किसी त्रेता मे अवतीर्ण होते हैं। इस प्रकार २७ बार तब से सरकार का अवतार श्रीअवध मे हो चुका। मैं यहां से कही जाता नही

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



और न कथा बन्द होती है। परन्तु श्रीरामावतार होने पर मैं श्रीअयोध्याजी जाता हूँ और वहाँ सरकार की शिशुलीला के दर्शन का आनन्द लेता हूँ। बस उतने ही दिन कथा बन्द रहती है। बाललीला देखकर सरकार के बाल रूप को हृदय में रखकर अपने आश्रम में लौट आता हूँ। मुझे सदा सरकार के शिशु रूप का प्रत्यक्ष होता रहता है। प्रत्येक कल्प में पाँच वर्ष तक चाक्षुष प्रत्यक्ष होता रहता है। अन्य समय में मानस प्रत्यक्ष होता रहता है।

कथा सकल मै तुमहि सुनाई। काग देह जेहि कारन पाई॥
कहेउँ तात सब प्रस्न तुम्हारी। राम भगति महिमा अति भारी॥८॥

अर्थ : सब कथा मैंने तुम्हें सुनाया। जिस कारण से मैंने काग शरीर पाया। हे तात ! मैंने तुम्हारे सब प्रश्नों का उत्तर दे दिया। रामजी की भक्ति की महिमा बड़ी भारी है।

व्याख्या : कारन कौन देह यह पाई। का उत्तर समाप्त करते हुए कहते हैं कि कथा सकल मै तुमहि सुनाई। काग देह जेहि कारन पाई। तीन प्रश्न और भी तुमने किया था। यथा : १. राम चरित सर सुंदर स्वामी। पायेउ कहाँ कहहु नभगामी। २. तुमहि न व्यापत काल अति कराल कारन कवन। ३. प्रभु तव आश्रम आयेउ मोर मोह भ्रम भाग। सो इन तीनों का उत्तर पहिले ही वरदान प्रसङ्ग में हो गया है। अतः कहते हैं कि : कहेउ तात सब प्रस्न तुम्हारी। अब सबका उपसंहार करते हुए कहते हैं कि रामभक्ति की महिमा बड़ी भारी है। वह असाध्य साधन में समर्थ है।

दो. ताते यह तनु मोहि प्रिय, भयउ राम पद नेह।
निज प्रभु दर्शन पायेउँ, गये सकल संदेह॥
भगति पच्छ हठ करि रहेउँ, दीन्ह महा रिषि स्राप।
मुनि दुर्लभ वर पायेउँ, देखहु भजन प्रताप॥११४॥

अर्थ : इसलिए यह शरीर मुझे प्रिय है कि इससे श्रीरामजी के चरणों में स्नेह हुआ। अपने प्रभु का दर्शन पाया। सब सन्देह चला गया।

भक्तिपक्ष पर हठ करके डॅट गया। महर्षि ने शाप दे दिया। मुझे मुनिदुर्लभ वर मिल गया। भजन का प्रताप देखो।

व्याख्या : गरुड़जी की ओर से प्रश्न उठा ही चाहता है कि आप तो कागरूप हैं। अतः छोड़िये कागरूप को। अतः स्वयं कहते हैं कि मुझे यही शरीर प्रिय है इसे नहीं छोड़ूँगा। मेरा कल्याण तो इसी शरीर से हुआ है। इसी शरीर में रामभक्ति दृढ़ हुई। रामजी का दर्शन इसी शरीर से हुआ। सब संशय नष्ट हुए। यथा : सुनि नभ गिरा हरष मोहि भयऊ। प्रेम मगन सब संसय गयऊ।

अब भक्ति की अति भारी महिमा कहते हैं कि मैंने भक्तिपक्ष के स्थानपर मे

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



हठ से काम लिया। यथा : तब मैं निर्गुन मति करि दूरी। सगुन निरूपहुँ करि हठ भूरी। निर्गुण मत्त को दूर कर देने से सगुण का निरूपण नही हो सकता। यथा : जो गुन रहित सगुन सोइ कैसे। जल हिम उपल बिलग नहिं जैसे। जल के दूर करने से हिम उपल की स्थिति कैसे रह जायगी। इसी भाँति निर्गुण के दूर करने से सगुण की स्थिति नही रह सकती। फिर भी मैं निर्गुण का खण्डन करके सगुण के स्थापन मे हठ करता रहा। मेरे हठ से नाराज होकर महर्षि लोमश ने शाप दे दिया। पर भक्ति की ऐसी महिमा है कि भगवान् ने महर्षिजी के मति को पलट दिया। महर्षिजी अपने किये पर पछताये और मुझे बुलाकर मुनि दुर्लभ वर दिये। अब आप स्वयं भजन का प्रताप देख सकते हैं।

सत पञ्च चौपाई प्रारम्भ : उमा के ग्यारहवें प्रश्न का प्रसङ्गात् उत्तर

जे असि भगति जानि परिहरही। केवल ग्यान हेतु स्रम करही॥
ते जड़ कामधेनु गृह त्यागी। खोजत आकु फिरहिं पय लागी॥१॥

अर्थ : जो लोग ऐसी भक्ति को जानबूझकर छोड़ देते हैं। केवल ज्ञान के लिए श्रम करते हैं। वे जड़ घर मे कामधेनु को छोड़कर दूध के लिए मदार खोजते फिरते हैं।

व्याख्या : जो कोई भक्ति के इस महा प्रभाव को जानकर भी उसका परित्याग करते हैं और केवल ज्ञान अर्थात् निरुपास्तिज्ञान के लिए परिश्रम करते हैं वे मूर्ख हैं। पण्डितलोग उसी साधन को स्वीकार करते हैं जो सर्वथा साध्य हो। जानबूझकर ऐसे साधन को त्याग करके अतिदुरूह साधन मे हाथ लगाना मूर्खता है। अति सुलभ और अति सुखकारी भक्ति को छोड़कर महा असाध्य विघ्नबहुल निरुपास्ति ज्ञानपंथ का स्वीकार करना वैसा ही है जैसे दूध को चाहनेवाला घर मे रहती हुई कामधेनु को छोड़कर दूध के लिए मंदार को खोजता फिरे। मंदार मे भी दूध होता है। पर वह दु:खद है। सुखद नही। भक्ति स्वभाव से ही मनुष्य मे होती है। पर ज्ञान के लिए तो प्रयत्न करना होता है।

सुनु खगेस हरि भगति बिहाई। जो सुख चहहिं आन उपाई॥
ते सठ महा सिंधु बिनु तरनी। पैरि पार चाहहिं जड़ करनी॥२॥

अर्थ : हे खगेश ! सुनो जो लोग हरिभक्ति छोड़कर दूसरे उपाय से सुख चाहते हैं वे शठ हैं। बिना नाव के अपनी जड़ करणी से तैरकर बड़े भारी समुद्र को पार किया चाहते हैं।

व्याख्या : सुख ही सबका ध्येय है। कोई भी दु:ख नही चाहता। उस सुख को प्राप्ति का उपाय केवल भक्ति है। दूसरा कोई उपाय नही है। स्वर्ग सुख भी टिकाऊ नही हैं। जो टिकाऊ है वही सुख है। स्वल्प सुख भी दु:ख रूप ही है उससे सुख न होना ही अच्छा। जिस भाँति महा सिन्धु के पार जाने का साधन जहाज है। वैसे ही सुख का साधन हरि भक्ति है और उपायों से सुख चाहना वैसा ही है जैसे जड़ करणी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



कोई महा समुद्र को तैर कर पार करना चाहे। जड़ करणी जहाज द्वारा भी पार नही जा सकता । तैरकर क्या पार जायगा । जड़ करणी अर्थात् विचारहीन करणी ।

सुनि भुसुंडि के वचन भवानी । बोलेउ गरुड़ हरपि मृदु बानी ॥
तव प्रसाद प्रभु मम उर माही । संसय सोक मोह भ्रम नाही ॥३॥

अर्थ : हे भवानी ! भुसुण्डि के वचन सुनकर गरुड़ हर्षित होकर मृदुवानी बोले । हे प्रभो ! तुम्हारी कृपा से मेरे हृदय में शोक मोह और भ्रम नहीं है ।

व्याख्या : गरुड़जी ने जो प्रश्न किये थे उसका उत्तर समाप्त हो गया । अब गरुड़जी फिर कुछ पूछेंगे । दूसरा प्रसङ्ग आरम्भ होगा । उसका उपक्रम करते हुए शिवजी भवानी को सम्बोधन करके गरुड़ का हर्षित होकर मृदुवाणी बोलना कहते हैं ।

उभयकोटि : अवलम्बी ज्ञान को संशय इष्टनाश के दुःख को शोक विपरीत ज्ञान को भ्रम और अज्ञान को मोह कहते हैं । इन सबका मूल मोह है । उसका नाश गरुड़जी पहले ही कह चुके हैं । यथा : प्रभु प्रसाद मम मोह नसाना । उसी बात की पुष्टि करते हुए कहते हैं कि आप के प्रसाद से मुझे संशय शोक मोह और भ्रम अब कुछ नहीं है ।

सुनेउ पुनीत राम गुन ग्रामा । तुम्हरी कृपा लहेउँ बिस्रामा ॥
एक बात प्रभु पूछौं तोही । कहहु बुझाइ कृपानिधि मोही ॥४॥

अर्थ : रामजी के पुनीत गुण ग्रामों को तुम्हारी कृपा से सुना और विश्राम पाया । हे प्रभो ! एक बात तुमसे पूछता हूँ सो हे कृपानिधे ! मुझे समझाकर कहिये ।

व्याख्या : सरकार को संग्राम में बँधे हुए देखकर गरुड़जी संशय शोक मोह भ्रम में जा पड़े थे और विषण्ण हो गये थे । सो प्रभु के पुनीत गुणग्राम के सुनने से वह सब दूर हुआ और विश्राम को प्राप्त हुए । फिर भी एक शंका उठ खड़ी हुई । अतः कहते हैं कि यद्यपि आप उसका उत्तर संक्षेप में कह चुके हैं । यथा : जे अस भगति जानि परिहरहीं । केवल ज्ञान हेतु स्रम करहीं । ते सठ कामधेनु गृह त्यागी । खोजत आक फिरहिं पय लागी । पर उतने से सन्तोष नहीं है । अतः कृपया समझा कर कहिये ।

कहहिं संत मुनि वेद पुराना । नहि कछु दुर्लभ ग्यान समाना ॥
सोइ मुनि तुम्ह सन कहेउ गोसाईं । नहि आदरेहु भगति की नाईं ॥५॥

अर्थ : सन्त मुनि वेद और पुराण कहते हैं कि ज्ञान के समान कोई वस्तु दुर्लभ नही है । हे गोसाईं ! वही मुनिने तुमसे कहा । सो तुमने उसका भक्तिसा आदर नही किया ।

व्याख्या : गीता में स्वयं भगवान् ने कहा है कि : नहि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते । संसार में ज्ञान के सदृश पवित्र दूसरा कुछ नही है । वेद पुराण तथा आप्त पुरुषों का भी यही मत है ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



उसी ज्ञान का निरूपण मुनिजी कर रहे थे। पर आपने उसका आदर वैसा नही किया जैसा भक्तिका किया। इसका कोई विशेष कारण होना चाहिए।

ग्यानहि भगतिहि अंतर केता। सकल कहहु प्रभु कृपानिकेता ॥
सुनि उरगारि बचन सुख माना। सादर बोलेउ काग सुजाना ॥६॥

अर्थ : हे प्रभु कृपानिकेत! ज्ञान और भक्ति मे कितना अन्तर है। सो सब कहिये। उरगारि गरुड़ का वचन सुनकर भुसुण्डिजी ने सुख माना तब आदर के सहित सुजान काग जी बोले।

व्याख्या : ईश्वर के जानने को ज्ञान और उनमें परम प्रेम को भक्ति कहते है। यहाँ जो ज्ञेय हैं वही परम प्रेमास्पद है। अतः ज्ञान और भक्ति मे पूरा पूरा सामानाधिकरण्य है। अन्तर के तारतम्य से ही आदर का तारतम्य होता है। अन्तर कुछ मालूम नही पड़ता : सो साधन या सिद्धि में जहाँ जहाँ जितना अन्तर हो उसे कृपा करके बतलाने की प्रार्थना गरुड़जी ने की।

उत्तम वक्ता पाकर श्रोतागण ही कृतार्थ नही होते। गुणी श्रोता पाकर वक्ता भी कृतार्थ होते हैं। गरुड़जी के मनको राम प्रेम से सरस देखा। अतः सुजान भुसुण्डिजी आदर के साथ बोले।

भगतिहि ग्यानहि नहिं कछु भेदा। उभय हरहिं भवसंभव खेदा ॥
नाथ मुनीस कहहिं कछु अंतर। सावधान सोउ सुनु विहंगवर ॥७॥

अर्थ : भक्ति और ज्ञान मे कुछ भी भेद नही है। दोनों संसार मे पैदा हुए दुःख को हरण करते हैं। हे नाथ! मुनीश लोग तथापि कुछ भेद बतलाते हैं उसे भी हे पक्षिश्रेष्ठ! सावधानी से सुनो।

व्याख्या : जब भगवद् गीता में ज्ञानी की गणना भक्तों मे है और भक्ति की गणना ज्ञानी मे हैं तो दोनों मे भेद कैसे कहा जाय। तत्त्वज्ञान और संवादी भ्रम में कोई भेद नही है। मणिप्रभा में मणिवुद्धि होना यद्यपि भ्रम है तथापि उसकी प्राप्ति के लिए दौड़ते हुए पुरुष को मणि की प्राप्ति होती है। अतः मणिप्राप्ति रूपी फल के समान होने से अभेद कहा। ज्ञान और भक्ति दोनो का एक फल है कि जीव संसार के दुःखों से छूट जाता है। अब शङ्का यह होती है कि फिर भक्ति का विशेष आदर क्यो किया?

इस पर कहते हैं कि मुनीशो को वह सूक्ष्म अन्तर दिखलाई पड़ा है। उसी को प्रमाण मानकर भुसुण्डिजीने भक्ति के प्रति अधिक आदर दिखलाया। अब भुसुण्डिजी कहते हैं कि वह अन्तर सूक्ष्म है। इसलिए सावधान होकर सुनो।

ग्यान बिराग जोग बिग्याना। ए सब पुरुष सुनहु हरिजाना ॥
पुरुष प्रताप प्रबल सब भाँती। अबला अबल सहज जड़ जाती ॥८॥

अर्थ : हे हरिवाहन! सुनो ज्ञान विराग योग और विज्ञान ये सब पुरुष हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पुरुष का प्रताप सब भाँति से प्रबल होता है और अबला स्त्रियाँ स्वभाव से ही निर्बल और जड़ जाति हैं।

व्याख्या : ज्ञान विराग योग और विज्ञान कोई रूपवान् पदार्थ नही हैं कि इनके लिङ्ग का निर्णय हो सके। इनका प्रताप सब भाँति प्रबल है। ये स्वावलम्बी हैं इनमे पुरुषार्थ हैं। ममता ताग के तोड़ने मे समर्थ है। इसलिए इन्हे पुरुष कहा : इसी भाँति अरूप पदार्थ यदि स्वावलम्बी न हो। किसी के आश्रित हो ममता ताग के तोड़ने मे समर्थ न हो तो उसे स्त्री कहेगे। अतः माया स्त्री है जड जाति है।

दो. पुरुष त्याग सक नारिहि, जो विरक्त मतिधीर।
नतु कामी विषयावस, विमुख जो पद रघुबीर ॥११५॥

अर्थ : जो विरक्त मतिधीर पुरुष हैं वे स्त्री का त्याग कर सकते हैं। पर कामी विषय के वश हुए और राम विमुख ऐसा नही कर सकते।

व्याख्या : पुरुष और स्त्री मे भोक्तृ-भोग्य सम्बन्ध है। इसलिए वह उसे नहीं छोड़ सकता पर जिस पुरुष के हृदय मे ज्ञान विराग है वह स्त्री को छोड़ सकता है उसे काम पीड़ा नही पहुँचा सकता। यथा : ब्रह्मचर्य व्रत रत मति धीरा। तुमहि को करइ मनोभव पीरा।

जो कामी विषयवश है जो रामविमुख है वह स्त्री नही छोड़ सकता। वह समझता है कि अमुक स्त्री मुझे चाहती है। मुझे चाव से देखती है। छाती से दबाकर गले लगाती है। वह ज्ञानियो की भाँति यह नही समझ सकता कि मांस और हड्डी की बनी हुई स्त्री क्या देखेगी और क्या इच्छा करेगी। देखनेवाला तो अमूर्त पुरुष है।

सो. सो मुनि ग्यान निधान, मृगनयनी बिधु मुख निरखि।
बिबस होहिं हरिजान, नारि बिस्व माया प्रकट ॥११५ क॥

अर्थ : हे गरुड़जी वे ज्ञाननिधान मुनि भी मृगनयनी चन्द्रमुखी को देखकर विवश हो जाते हैं। विश्व मे स्त्री मूर्तिमती माया है।

व्याख्या : ऐसे ज्ञाननिधान जिन्होंने मुनिपदवी प्राप्त कर ली है। वे भी मृगनयनी चन्द्रमुखी पर दृष्टि पड़ जाने से उसके सौन्दर्यातिशय पर लट्टू हो जाते हैं। क्योंकि इस ससार मे प्रत्यक्ष माया तो स्त्री ही है। अति सुन्दरी स्त्री भी क्या है एक घिनावनी दुर्गन्धमयी पुतली है। अस्थिपञ्जर पर मांस का लेप है और उस पर चमड़ा मढ़ा है। सौन्दर्य कोई वस्तु नहीं है। वह तो केवल अविचार से सिद्ध है। उसमें ज्ञान ध्यान का डूब जाना यही माया की प्रबलता है। भाव यह कि पुरुष का स्त्री के आकर्षण से बचना महा कठिन है।

इहाँ न पक्षपात कछु राखौं। वेद पुरान संत मत भाखौं॥
मोह न नारि नारि के रूपा। पन्नगारि यह रीति अनूपा॥१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ यहाँ पर मैं कुछ पक्षपात नही करता। वेद पुराण और सन्त का मत कह रहा हूँ। स्त्री के रूप पर स्त्री मोहित नही होती। गरुडजी यह रीति अनुपम है।

व्याख्या भुसुण्डिजी के कहने का भाव यह है कि पहिले मैंने भक्ति का पक्षपात किया था और उससे मुझे लाभ भी हुआ। यथा भगति पच्छ हठ करि रहेउँ, दीन्ह महा रिषि साप। मुनि दुर्लभ वर पायेउ देखहु भजन प्रताप। इससे न समझना कि यहाँ भी पक्षपात कर रहा हूँ। यहाँ पर मैं शिष्टानुमोदित वेद और पुराण का मत कह रहा हूँ।

पु शक्ति और स्त्री शक्ति मे भोक्तृ भोग्य भाव होने से आकर्षण है। स्त्री स्त्री मे साम्य होने के कारण आकर्षण नही है। अत स्त्री के रूप पर स्त्री मोहित नही होती। आकर्षण न होने की रीति ऐसी व्यापक है कि निर्जीव पदार्थ मे भी इस नियम का बाध नही दिखाई पड़ता। इसलिए इसे अनूप कहा।

माया भगति सुनहु तुम्ह दोऊ। नारि बर्ग जानै सब कोऊ॥
पुनि रघुबीरहि भगति पियारी। माया खलु नर्तकी बिचारी॥२॥

अर्थ तुम सुनो माया और भक्ति दोनो स्त्री वर्ग हैं। यह बात कोई जानता है। तिसपर रामजी को भक्ति प्यारी है। माया बिचारी तो निश्चय करके नर्तकी नाचनेवाली है।

व्याख्या जिस भाँति स्वावलम्बी और पुरुषार्थी होने से ज्ञान विरागादि पुरुष माने गये हैं उसी भाँति पराश्रित होने से ममता ताग के तोड़ने मे असमर्थ होने से माया और भक्ति को स्त्री माना गया हैं। इसमे किसी को विप्रतिपत्ति नही है। सभी ऐसा ही मानते हैं। स्त्री होने से इन दोनो मे परस्पर आकर्षण नही है। अत भक्ति माया पर मोहित नही होती।

दूसरी बात यह है कि अनन्या होने स उसकी ममता रामजी पर होने से भक्ति रामजी को प्यारी है और माया तो मिथ्याभाव दिखलाकर लोगो को ठगा करती है। उसकी ममता विषयो म है। इसलिए उसे नर्तकी कहा। कहाँ पट्टाभिषिक्ता महिषी और कहाँ नर्तकी ? इसलिए माया को बिचारी कहा।

भगतिहि सानुकूल रघुराया। ताते तेहि डरपति अति माया॥
राम भगति निरुपम निरुपाधी। बसै जासु उर सदा अबाधी॥३॥

अर्थ रघुराज भक्ति के सानुकूल रहते हैं इसलिए माया उससे बहुत डरती है। निरुपाधि निरुपम रामभक्ति जिसके हृदय मे अबाधितरूप से वसती है।

व्याख्या भक्ति रामजी को बहुत प्यारी है। वे सदा उसके अनुकूल रहते हैं। यथा रघुपति भगत भगति बस अहही। सुधि करि अम्बरीष दुर्वासा। भये सुर सुरपति निपट निरासा। अत भक्ति से माया बहुत डरती है। उसे जितना डर रामजी से नहीं उतना डर भक्ति से है। क्योकि रामजी सभी के अधिष्ठान हैं किसी के विरोधी नही हैं। पर भक्ति का स्वभाव माया से सर्वथा विरुद्ध है। यथा देखी माया सब

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विधि गाढी। अति सभीत जोरे कर ठाढी। देखा जीव नचावै जाही। देखी भगति जो छोरै ताही।

साधन चार हैं : १ कर्म योग २. अष्टाङ्ग योग ३ ज्ञान योग और ४ भक्ति योग। इनमे से भक्ति योग की कोई उपमा नही है। क्योंकि सबको भक्ति की सहायता की अपेक्षा रहती है। पर भक्ति को किसी की अपेक्षा नही। यथा : सो सुतन्त्र अवलम्ब न आना। तेहि आधीन ग्यान विज्ञाना। तथा : सो सब करम धरम जरि जाऊँ। जहँ न राम पद पकज भाऊ। जोग कुजोग ज्ञान अज्ञानू। जहँ नहि राम प्रेम परधानू। अत रामभक्ति अनुपम है। यह भक्ति कामना-पुर सर नही होनी चाहिए : नही तो गौणी हो जायगी। निष्काम भजन ही निरुपाधि भक्ति है। ज्ञान होने पर जगत् का बाध हो जाता है। सो भक्ति का बाध न होने पावे। यथा : सो अनन्य जाके असि मति न टरइ हनुमन्त। मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवत। तथा : भक्त्यर्थं कल्पित द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम्।

तेहि बिलोकि माया सकुचाई। करि न सकै कछु निज प्रभुताई ॥
अस बिचारि जे मुनि बिग्यानी। जाचहिं भगति सकल सुखखानी ॥४॥

अर्थ : उसे देखकर मायाको सकोच होता है। अपनी प्रभुता कुछ कर नही सकती। ऐसा विचार करके जो विज्ञानी मुनि हैं वे सब सुखखानि भक्ति माँगते हैं।

व्याख्या : जिसके हृदय मे उपर्युक्त गुण युक्त भक्ति बसती है। उनके स्वरूप मे अन्तर पड जाता है। विषय रस से रूखापन और रामरस से सरसता उसके चेहरे से टपकती है। यथा : सोह सैल गिरिजा गृह आये। जिमि जन रामभगति के पाये। अत: उसे देखकर माया सकुचित हो जाती है कि यहाँ मेरा बल नही चलेगा। यथा : मैं तोहि अब जान्यौं ससार। बाँधि न सकहि मोहि हरि के बल प्रकट कपट आगार। देखत ही कमनीय कछू, नाहिन पुनि किये विचार। ज्यौं कदली तरु मध्य निहारत, कबहुँ न निकसत सार। सुनु खल छल बल कोटि किये, बस होहिं न भगत उदार। सहित सहाय तहाँ बसि अब, जेहि हृदय न नदकुमार।

ऐसा विचारकर विज्ञानी मुनि भी अनपायिनी भक्ति माँगते हैं। क्योंकि वह कृपासाध्य है। क्रियासाध्य नही है। साधन भक्ति से अन्त करण शुद्ध होने पर केवल सिद्धा भक्ति की चाह रह जाती है। वही सुख की जननी है। यथा : सुख कि लहिय हरि भगति बिनु।

दो. यह रहस्य रघुनाथ कर, बेगि न जानै कोइ।
जो जानै रघुपति कृपा, सपनेहु मोह न होइ ॥११६॥

अर्थ : श्रीरघुनाथ के इस रहस्य को जल्दी कोई जान नही पाता। यदि रघुपति की कृपा से जान ले तो उसे सपने मे भी मोह नही होता।

व्याख्या : चरित्र विषयक रहस्य कहकर अब साधनविषयक रहस्य कहते हैं। माया का बल ज्ञान पर चल जाता है। भक्ति पर नही चलता। यह रहस्य है। जल्दी

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



श्रुतिपुराण छूटने के बहुत से उपाय बतलाते हैं पर छूटती नही। गाँठ पर गाँठ पड़ती ही चली जाती है। कितनी बार अगाध पण्डित्य के अभिमान की एक गाँठ और पड़ गयी। छूटना तो दूर की बात है। श्रुति पुराण सत्यवादी हैं ठीक बतलाते हैं। पर हम चाहने पर भी वैसा नही कर सकते। कारण कहते हैं।

जीव हृदय तम मोह बिसेखी। ग्रन्थि छूटि किमि परै न देखी ॥
अस संजोग ईस जब करई। तबहु कदाचित सो निरुअरई ॥४॥

अर्थ : जीव के हृदय में मोहरूपी अन्धकार बहुत है। गाँठ छूटे कैसे ? दिखाई तो पड़ती ही नही। ऐसा संयोग यदि ईश्वर कर दे तब भी कदाचित् ही वह छूटे।

उन ईश का किया हुआ संयोग इस प्रकार हो कि सात्त्विकी श्रद्धा हरि की कृपा से हृदय में बसे और उस श्रद्धा द्वारा खूब धर्माचरण हो। जिसमें श्रद्धा पुष्ट होती जाय और धर्म के साथ से रज और तम के अभिभूत होने से सात्त्विक भाव उत्पन्न हो। तब श्रद्धा द्रवीभूत होती है।

तब भलीभाँति वश किये हुए काम संकल्प रहित मन की वृत्ति लगाकर अपनी श्रद्धा को अचल कर ले : नही तो सात्त्विकभाव के हटाते समय श्रद्धा छटक जा सकती है। और दृढ विश्वास करके अहिंसा में प्रतिष्ठित हो जाय। प्राणिमात्र को अभय दान दे।

जबतक हृदय में दया का प्रादुर्भाव नही होता तबतक समझना चाहिए कि परमधर्म का उदय नही हुआ। इस प्रकार अहिंसा में प्रतिष्ठित होने पर निष्कामता से अहिंसागत कामना के अंश को दूर करे।

कामना के अंश को दूर करने से जो ताप होता है उसे क्षमा द्वारा तोष से दूर करे और जब शीतल निष्काम दयाभाव हो जाय तो उसे वृत्ति से ठोस करे।

तब उस शीतल ठोस निष्काम दयाभाव को दमपूर्वक गुरु शास्त्रोपदेश : हितकर सत्यवाणी के अनुसार विचार से मुदिता मन्थन करे : अर्थात् विचार शास्त्र मर्यादा के भीतर ही शास्त्र विरुद्ध विषय का समावेश न हो। : विचार करे कि संसार दु खमय है। हम जीव इसमे पड़े हुए क्लेश उठा रहे हैं। इस दुःख की अत्यन्त निवृत्ति कैसे होगी : इत्यादि।

इन विचारो से साधक जिस निश्चय पर पहुँचेगा वही वैराग्य है। विचारों से इस निश्चय पर पहुँचेगा कि सब विषय अनित्य है और दुःख को योनि है। चाहे इस लोक के हो या परलोक के। तब उनसे अपने आप ही हटेगा। जब चित्त में विराग आजायगा तब वह विषयो को छोड़ सकेगा और तब उसे योग का अधिकार होगा।

योग चित्तवृत्ति का निरोध है। वैराग्य से चित्तवृत्ति के निरोध की योग्यता प्राप्त होती है। परन्तु शुभाशुभ कर्म का संस्कार उसमे बाधक होता है। इसलिए बुद्धि द्वारा शुभाशुभ कर्म संस्कार के दूर करते ही चित्त योग में प्रतिष्ठित हो जाता है। ममता नष्ट हो जाती है और सत् वस्तु में एकाग्रता होती है। तब तत् पद का ज्ञान अर्थात् परोक्षज्ञान होता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तव विज्ञान निरूपिणी : उपनिषद्जन्य बुद्धि उस परोक्षज्ञान ... चित्त में जमाकर समता में स्थापन करती है।

*अब त्वं पदार्थ का शोधन शेष है। अतः इस प्रकार परोक्षज्ञानी ध्यान में स्थित* होकर अपने को स्थूल सूक्ष्म और कारण तीनों शरीरों से पृथक् भावना करके अर्थात् त्वं पदार्थ का शोधन करके तुरीयावस्था को प्राप्त होता है। फिर तुरीयावस्था के संस्कारों को एकीभूत करके परोक्षज्ञान में मिला देता है। यह असि पद है।

तब शब्दानुविद्ध समाधि में स्थित होने से आत्मानुभव प्रकाश उत्पन्न होता है और वह : सोऽहमस्मि वृत्तिवाला अपरोक्ष होता है। यह मोहान्धकार को मिटा देता है।

परन्तु अभी चित् जड़ ग्रन्थि बनी हुई है। विज्ञानरूपिणी बुद्धि इस प्रकाश में ग्रन्थिभेदन कर सकती है। यदि ग्रन्थिभेदन हो गया तो मिथ्याध्यास सदा के लिए मिट गया और सहज रूप कैवल्य की प्राप्ति हो गयी। यही परमपद है।

इसी ज्ञान सिद्धान्त को सुगमता से समझाने के लिए दीपक के सुन्दर रूपक में नीचे विशदरूप से वर्णन करेंगे।

व्याख्या : गाँठ हृदय मे पड़ी हुई है और वहाँ तमोगुण का आधिक्य है। बोध का प्रसार नही होता। गाँठ ही नही दिखाई पड़ती। फिर छूटे कैसे ?

महादेव की यदि कृपा हो संयोग पर संयोग बैठता चला जाय : क्योंकि सबुइ सुलभ जग जीव कहँ भये ईस अनुकूल। फिर भी कदाचित् वह छूटे। भाव यह कि उन संयोगों से ठीक ठीक लाभ उठाना और सावधानी से क्रम का निर्वाह करना महा कठिन है। तनक सो चूक से बना बनाया काम बिगड़ता है। अतः बहुत सम्भव तो यही है कि संयोग जुट जाने पर भी न खुले। संयोगों का क्रमबद्ध वर्णन करते हैं।

सात्विक श्रद्धा धेनु सुहाई। जौं हरिकृपा हृदय बस आई ॥
जप तप व्रत जम नियम अपारा। जे स्रुति कह सुभ धर्म अचारा ॥५॥

अर्थ : सात्त्विकी श्रद्धारूपी नयी ब्याई हुई गौ यदि हरिकृपा से हृदय में आकर बसेरा ले। अपार जप, तप, व्रत, यम, नियम जिन्हें वेद ने शुभ धर्म आचरण कहा है।

व्याख्या : राजसी तामसी श्रद्धा भी धेनु हैं पर वे सोहाई नहीं है। राजसी तामसी श्रद्धा तो यक्ष राक्षस तथा भूत प्रेत के प्रति होती है : बछड़ेवाली गाय को ही धेनु कहते हैं। बिना सत्त्वगुण के अधिष्ठाता हरि की कृपा सात्त्विकी श्रद्धा की प्राप्ति नही होती। अँधेरे में धेनु भड़कती है ठहरती नही। हरि की कृपा हो तो ठहरे।

विधिवत् गुरु द्वारा उपदिष्ट वेदाविरुद्ध मन्त्र के अभ्यास को जप कहते हैं। विध्युक्त कृच्छ्र चान्द्रायणदि द्वारा शरीर के शोषण को तप कहते हैं। वेदोक्त विधि निषेध के निर्वाह को व्रत कहते हैं। अहिंसा सत्य अस्तेय ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह ये पाँच यम हैं। शौच सन्तोष तप स्वाध्याय ... ये पाँच नियम हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



१ सदा सर्वदा किसी भी प्राणी मे द्रोह न रखने को अहिंसा कहते हैं २ मनसा वाचा कर्मणा भूतहित यथार्थ भाषण को सत्य कहते हैं। ३ मनसा वाचा कर्मणा दूसरे के द्रव्य मे स्पृहा न रखने को अस्तेय कहते हैं। ४ स्मरणादि अष्टविध मैथुन के अभाव को ब्रह्मचर्य कहते हैं। ५ विषयो के अर्जन रक्षण क्षय और सङ्ग से हिंसादि दोष होते हैं। अत उनके अस्वीकार को अपरिग्रह कहते हैं।

१ देह और मन के मल को दूर करना शौच है। २ प्राप्त साधन से अधिक पैदा करने की अनिच्छा को सन्तोष कहते हैं। ३ जाडा गरमी भूख प्यास आदि द्वन्द्व के सहने को तप कहते हैं। ४ मोक्ष शास्त्र के पढ़ने या प्रणव के जप को स्वाध्याय कहते हैं। ५ सब कर्मों को ईश्वरार्पण कर देना ईश्वरप्रणिधान हैं। ये सब एक एक असाध्य हैं इसलिए अपार कहा। इनके अतिरिक्त और शुभ धर्माचार यज्ञदानादि जिनके करने के लिए वेद की आज्ञा है।

तेइ तृन हरित चरै जव गाई। भाव बच्छ सिसु पाय पेन्हाई ॥
नोइनि वृत्ति पात्र बिस्वासा। निर्मल मन अहीर निज दासा ॥६॥

अर्थ उस हरे तृण को जब गाय चरे और भावरूपी बछडा पाकर उनके थन मे दूध आजाय। वृत्ति को नोइनि विश्वास को दोहनी और दासीभूत निर्मल मन को अहीर बनावे।

व्याख्या ये जप तप आदि छओ प्रकार के सरस तृण को श्रद्धा रूपी गाय पेट भरकर जब चरे तब सात्त्विक भावरूपी बछडे को पाकर उसके थन मे दूध उतर आवेगा। अर्थात् सानन्द आचरित धर्म भावोपहृत न होने से सात्त्विक परिणाम रूप से फलोन्मुख होगा। दूहने के समय जिस रस्सी से गाय के पिछले दोनो पैर बाँध देते हैं उसे नोइनि कहते हैं। अर्थात् वृत्ति को उस समय श्रद्धा के चरणो मे लगा दे। विश्वास को दोहनी बनावे तब वृत्ति द्वारा श्रद्धारूपी गाय को निश्चल करके विश्वासरूपी दोहनी मे निर्मल वशीकृत मनरूपी अहीर द्वारा उसका दोहन करे।

परम धरम मय पय दुहि भाई। अवटइ अनल अकाम बनाई ॥
तोष मरुत तव छमा जुडावै। धृति सम जावन देइ जमावै ॥७॥

अर्थ हे भाई! परम धर्ममय दूध दुहकर उसे अकाम की आग बनाकर औटे तब क्षमा उसे तोषरूपी हवा से ठण्डा करे और धृति का जावन समान उचित मात्रा मे देकर जमावे।

व्याख्या उनका सात्त्विक परिणाम परम धर्म है। परम धर्म सार्वभौम अहिंसा है। यथा परम धर्म स्रुति बिदित अहिंसा। यह सर्वभौम अहिंसा उपर्युक्त छओ साधनो का सार है। उसे अकामरूपी अग्नि से औटे। अर्थात् उसमे से कामवासना दूर करे। विश्वासरूपी पात्र मे ही यह सब प्रक्रिया हो रही है।

कामाश दूर करने मे वह परम धर्म सन्तप्त हो उठता है। उसे तोषरूपी हवा से ठण्ढा करने का काम क्षमा द्वारा होगा। प्रियाप्रिय म ताडन पूजन मे सहन शक्ति

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



का नाम क्षमा है। वही क्षमा धैर्यरूपी जावन उचित मात्रा में देकर दूध को जमावे अर्थात् घनीभूत करे।

मुदिता मथै बिचार मथानी। दम अधार रजु सत्य सुबानी॥
तब मथि काढि लेइ नवनीता। बिमल बिराग सुभग सुपुनीता॥८॥

अर्थ : मुदिता विचार की मथानी से जिसका दम आधार और सत्य सुवाणी डोरी हो उस दही को मथे। तब दही मथकर सुन्दर पवित्र विरागरूपी मक्खन निकाल ले।

व्याख्या : दही जमाने तक क्षमा का काम था। अब मथने के लिए मुदिता आयी। दूसरे के सुख से आनन्दित होनेवाले गुण को मुदिता कहते हैं। मुदिता विचार के मथानी से मथने लगी। यथा :

काहु न कोउ सुख दुख कर दाता। निज कृत कर्म भोग सब भ्राता॥
जोग बियोग भोग भल मंदा। हित अनहित मध्यम भ्रम फंदा॥
जनमु मरनु जहँ लगि जग जालू। संपति बिपति करम अरु कालू॥
धरनि धाम धन पुर परिवारू। सरगु नरकु जहँ लगि ब्यवहारू॥
देखिय सुनिय गुनिअ मन माही। मोह मूल परमारथ नाही॥

सपने होइ भिखारि नृप, रंक नाकपति होइ।
जागे लाभु न हानि कछु, तिमि प्रपंच जिअ जोइ॥

मोह निसा सब सोवनिहारा। देखिअ सपन अनेक प्रकारा॥
एहि जग जामिनि जागहि जोगी। परमारथी प्रपंच बियोगी॥
जानिअ तबहि जीव जग जागा। जब सब विषय बिलास बिरागा॥ इत्यादि

उस विचार का आधार इन्द्रियदमन था। उसके बिना सब विचार निराधार हो जाते हैं और सत्योक्ति रस्सी है। जिसके खिचाव से विचार मथानी घूमती है। सत्य सुवाणी का भाव यह कि सत्य होती हुई भी वह वाणी वञ्चिता भ्रान्ता और प्रतिपत्तिशून्या न हो।

तब विराग का उदय होता है। उसी को मक्खन कहा है। वह दूध सा सुभग है। दूध पुनीत था यह सुपुनीत है। अब तक तो विश्वास के आधार पर काम चला। यदि विश्वास मे त्रुटि हो तो सब परिश्रम निष्फल है। पर वैराग्य के उदय होने पर तो अनुभव होने लगेगा। इसलिए कहते हैं : काढ़ि लेइ नवनीता। मक्खन को अलग कर ले।

दो. जोग अगिनि करि प्रकट तब, कर्म सुभासुभ लाइ।
बुद्धि सिरावै ग्यान घृत, ममता मल जरि जाइ॥११७॥

अर्थ : शुभाशुभ कर्म को लगाकर शरीर मे योगाग्नि को प्रकट करके बुद्धि ज्ञान घृत को तैयार करे। जिसमे ममतारूपी मल जल जाय।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : जब से हरिकृपा से श्रद्धा हृदय में आयी है। तभी से स्वाभाविकी प्रवृत्ति का शास्त्रीया होना प्रारम्भ हो गया। अर्थात् जाने या बिना जाने चित्तवृत्ति के निरोध का प्रयत्न चल पड़ा। अब वैराग्य के योग से चित्तवृत्ति का निरोध हो गया। यही योग है।

शुभ कर्म को शुक्ल अशुभ को कृष्ण और मिश्र को शुक्लकृष्ण कहते हैं। पर योगियो का कर्म तीनों से अलग अशुक्लाकृष्ण होता है। इसी से योग को अग्नि कहते हैं। यह शुभाशुभ कर्मो को जलाता हुआ प्रकट होता है।

विराग मे भी यह भाव रहा कि सब विषय विलास मेरे वश में है। मैं इनके वश मे नही हूँ। अत: उसमें भी ममता का संस्कार था जिसे मल कहते हैं। सो बुद्धि उस मक्खन को इस भाँति से योगाग्नि पर पकावे कि ममता मल जल जाय। इस भाँति तत् पदार्थ का शोधन हुआ।

दो. तब बिग्यान निरूपिनी, बुद्धि बिसद घृत पाइ।
चित्त दिया भरि धरै दृढ़, समता दियटि बनाइ ॥११७ क.

अर्थ : तब विज्ञान निरूपण करनेवाली बुद्धि स्वच्छ घी पाकर चित्तरूपी दीया में भरे और समता को दीवट : दीपकाधार बनाकर उस पर दृढ़ करके स्थापन करे।

व्याख्या : गुरु वेदान्त वाक्य से जो ब्रह्मात्मैक्य का अनुभव होता है। उसे विज्ञाननिरूपिणी बुद्धि कहते हैं! तत् पद के शोधन करने से ही बुद्धि विज्ञाननिरूपिणी हो गयी। यह समता के आधार पर चित्त में उस ज्ञान को भरकर स्थापन करे। यथा : ग्यान मान जहँ एकौ नाही। देख ब्रह्म समान सब माही।

तब साधक की साधु पदवी होती है। साधु का चरित्र कपास के चरित्र के समान है। यथा : साधु चरित सुभ सरिस कपासू। निरस बिसद गुन मय फल जासू।

दो. तीनि अवस्था तीनि गुन, तेहि कपास ते काढ़ि।
तूल तुरीय सँवारि पुनि, बाती करै सुगाढ़ि ॥११७ ख.

अर्थ : तीन अवस्था रूपी तीन गुणो को उस कपास से दूर करके तुरीयरूपी रूई को सँवारकर अच्छी मोटी बत्ती बनावे।

व्याख्या : इस कमल की पुरइन बालकाण्ड के प्रारम्भ से आयी है। यथा : साधु चरित सुभ सरिस कपासू। सत्वप्रधान जाग्रत्, रज.प्रधान स्वप्न और तम:प्रधान सुषुप्ति ये ही तीन अवस्था हैं। उन्हें साधक क्रमश: अपने तीनो शरीरों : स्थूल सूक्ष्म और कारण से दूर करे। तब रूईरूप तुरीय अवस्था को सँवारकर उसको अच्छी मोटी बत्ती बनाये। घनावस्था को प्राप्त हो। पाञ्चभौतिक देह को स्थूल शरीर कहते हैं। पांच ज्ञानेन्द्रिय, पांच कर्मेन्द्रिय, पञ्चप्राण, मन और बुद्धि के समूह को सूक्ष्म शरीर कहते हैं। इन दोनो का कारण आत्मा का अज्ञान आत्मा के आभास से युक्त

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



होकर कारण शरीर कहलाता है। तीनो शरीर और तीनो अवस्था से आत्मा का पृथक् अनुभव ही त्व पद का शोधन है।

सो. एहि बिधि लेसै दीप, तेज रासि बिग्यान मय।
जातहिं जासु समीप, जरहिं मदादिक सलभ सब ॥११७॥

अर्थ : इस विधान से तेजराशि विज्ञान मय दीपक जलावे। जिसके समीप जाने से मदादि सब पतङ्ग जल जायँ।

व्याख्या : दीप प्रज्वलित करने के बहुत विधान हैं। पर वे मोक्षोपयोगी नही हैं। अतः उपर्युक्त विधान से ही दीपक जले। कही कोई त्रुटि न होने पावे। दीपक जलाने मे बत्ती को घी मे डालकर अग्नि से प्रज्वलित करना होता है। यहाँ पर तत्पदार्थ और त्व-पदार्थ के शोधन पूर्वक दोनो के ऐक्य का निदिध्यासन ही दीप का प्रज्वलित करना है।

यह दीया तेजराशि होता है। इसके निकट मदादिक शलभ नही जा सक्ते। जायँ तो जल जायँ और यह दीपक विज्ञानमय है। इससे अपरोक्षज्ञान होता है। इसलिए इसे विज्ञानमय कहा।

सोहमस्मि इति वृत्ति अखंडा। दीप सिखा सोइ परम प्रचंडा॥
आतम अनुभव सुख सुप्रकासा। तब भवमूल भेदभ्रम नासा॥१॥

अर्थ : वह मैं हूँ : ऐसी अखण्ड वृत्ति ही उस दीये की प्रचण्ड शिखा है। आत्मानुभव सुख उसका सुन्दर प्रकाश है। तब संसार के मूल भेदभ्रम का नाश होता है।

व्याख्या : सो तैं तोहि ताहि नहि भेदा : तत्त्वमसि। इस महावाक्य से जो प्रत्यभिज्ञा होती है। वही सोऽहमस्मि है अर्थात् वह मैं हूँ। यही अपरोक्ष ज्ञानवृत्ति दीप की प्रचण्ड लौ है। यह वृत्ति बराबर बनी रहे। यह माया के कटक के नाश मे समर्थ है।

इस अखण्ड वृत्ति से आत्मानुभवक सुख होता है। यही इस दीप का सुन्दर प्रकाश है।

भेददृष्टि ही ससार का मूल है। स्वरूपाज्ञान से ही भेदभ्रम होता है। श्री गोस्वामीजी कहते हैं : मायावस सरूप बिसरायो। तेहि भ्रम ते नाना दुख पायो। इस आत्मानुभव सुख के प्रकाश से भेद भ्रम मिट जाता है।

प्रबल अबिद्या कर परिवारा। मोह आदि तम मिटै अपारा॥
तब सोइ बुद्धि पाइ उँजियारा। उर गृह बैठि ग्रन्थि निरुआरा॥२॥

अर्थ : प्रबल अविद्या के परिवार मोह आदि अपार तम मिट जाते हैं। तब वही विज्ञानरूपिणी बुद्धि हृदयरूपी घर मे बैठकर गाँठ छोड़ती है।

व्याख्या : काम, तृष्णा, क्रोध, लोभ, लोभमद, मान, मद, मत्सर इत्यादि प्रबल

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अविद्या के बाल बच्चे हैं। ये सब तमोरूप हैं। इनका पारावार नहीं। पर ये इस दीपक की ज्योति के आगे नहीं ठहरते मिट जाते हैं।

विज्ञानरूपिणी बुद्धि ही ग्रन्थि के खोलने मे समर्थ है। पर अंधेरे मे उससे कुछ करते धरते नही बनता था। अब जो आत्मानुभव सुख का उजेला मिला तो ग्रन्थि स्पष्ट भासने लगी। तब वह बुद्धि हृदयरूपी घर मे बैठकर अर्थात् संप्रज्ञात समाधि में बैठकर गांठ खोलने लगी।

**छोरन ग्रन्थि पाव जौ सोई। तौ यह जीव कृतारथ होई॥**
**छोरत ग्रन्थि जानि खगराया। बिघन अनेक करै तब माया॥३॥**

अर्थ : यदि वह बुद्धि चिद् जड़ ग्रन्थि खोल सकें तो जीव कृतार्थ हो जाय। हे पक्षियों के राजा! गांठ को छूटती हुई जानकर माया अनेक विघ्न करती है।

व्याख्या : अहङ्कार के साथ तादात्म्य किये हुए अपने स्वरूप को भूला हुआ अनादि काल से जीव निद्रित पडा हुआ संसार का स्वप्न जनन मरण सुख दुःखादि का अनुभव कर रहा है। निर्विघ्न सप्रज्ञात समाधि सिद्ध होने से वह भ्रान्तिजन्य ग्रन्थि नष्ट हो जाती है। वह निद्रा से जागकर कृतकृत्य हो जाता है। फिर तो स्वराज्य सुख तो उसका कही गया था नही। केवल निद्रादोष से अभिभूत हो रहा था सो प्राप्त हो जाता है। चिद् जड़ ग्रन्थि का छूटना और निद्रा भङ्ग होना एक बात है। यदि बाधा उपस्थित न हो तो बुद्धि ग्रन्थि को खोल ले। परन्तु ऐसे अवसर पर माया विघ्न करने पर तुल जाती है। क्योंकि वह देखती है कि एक जीव उसके अधिकार से बाहर जाया चाहता है।

**रिद्धि सिद्धि प्रेरै बहु भाई। बुद्धिहि लोभ दिखावहि आई॥**
**कल बल छल करि जाहि समीपा। अंचल बात बुझावहि दीपा॥४॥**

अर्थ : हे भाई! बहुत सी ऋद्धि सिद्धियो को प्रेरणा करती है और आकर बुद्धि को ललचाती है। कल बल छल से समीप जाकर अञ्चल की हवा से दीपक बुझा देती है।

व्याख्या : ऋद्धि ऐश्वर्य को कहते हैं। अणिमा, महिमा, गरिमा, लघिमा, प्राप्ति, प्राकाम्य, ईशित्व और वशित्व, ये आठ सिद्धियाँ हैं। विज्ञानरूपिणी बुद्धि ही सब कुछ करनेवाली है। अत माया उसी को फुसलाती है ऐश्वर्य और सिद्धियो का लोभ दिखलाती है। स्वय उसके पास उपस्थित होकर उपाय से काम लेती है। उससे काम न चला तो बल का भी प्रयोग करती है। नही तो छल से उसके पास जाकर अञ्चल की हवा से दीपक बुझाकर ही मानती है।

स्त्रियाँ अञ्चल से ही दीपक बुझाती हैं। यहाँ अञ्चल बात से तात्पर्य विषय समीर है।

भाव यह कि बडे बडे धनी मानी धन देने के लिए उपस्थित होते है। बहुत

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सी सिद्धियाँ उसमें दिखलाई पड़ने लग जाती हैं। यदि जीव उस आनन्द में आ गया तो ज्ञानदीप का निर्वाण हो जाता है।

होइ बुद्धि जौ परम सयानी। तिन्ह तनु चितव न अनहित जानी॥
जौ तेहि बिघ्न बुद्धि नहि बाधी। तौ बहोरि सुर करहिं उपाधी॥५॥

अर्थ : यदि बुद्धि परम सयानी हो तो माया को अनहित समझकर उसकी ओर दृष्टिपात न करे। यदि उस बुद्धि को विघ्नबाधा न पहुँचा सके तो फिर देवता लोग उपद्रव करते हैं।

व्याख्या : माया का व्यवहार हित के ऐसा होता है। सामान्य बुद्धि तो उसके जाल में फँस ही जाती है। यदि बुद्धि परम सयानी हो तो वह माया की ओर आँख उठाकर न देखे। ग्रन्थि छोड़ने में दत्तचित्त रहे। यदि बुद्धि ने माया की ओर आँख न उठाया तो उसके पास जाने की माया को सामर्थ्य नही है।

यदि माया की कोई कला नही चली तो देवता लोग उपाधि करने लगते हैं : जिसमें ग्रन्थि छूटने न पावे और जीव द्वारा जो भोग उनको मिला करता है उसमें बाधा न हो। क्योंकि जीव देवताओं का पशु है। इस लोक और परलोक दोनों में देवताओ द्वारा उपभुक्त होता है।

इन्द्रिय द्वार झरोखा नाना। तँह तँह सुर बैठे करि थाना॥
आवत देखहिं विषय बयारी। ते हठि देंहि कपाट उघारी॥६॥

अर्थ : देह गृह मे इन्द्रिय द्वार ही नाना प्रकार के झरोखे हैं। जिनमें देवता गद्दी लगाये बैठे हैं। जब विषय रूपी हवा के झोके को आते देखते हैं तो बलपूर्वक किवाड़ खोल देते हैं।

व्याख्या : इन्द्रियाँ सूक्ष्म हैं दिखाई नही पडती। उनका गोलक ही झरोखा है। इन इन्द्रियो के देवता हैं : श्रोत्र के दिक् त्वक् के वायु चक्षु के सूर्य रसना के वरुण घ्राण के अश्विनीकुमार वाक् के वह्नि हाथ के इन्द्र पाद के विष्णु, वायु के मृत्यु और उपस्थ के प्रजापति देवता हैं। ये अपने अपने गोलकों पर आसन जमाये रहते हैं।

बुद्धि आसन और मुद्रा द्वारा इन्द्रिय द्वार झरोखे को बन्द करके उर गृह मे बैठी जडग्रन्थि के खोलने मे संलग्न है। माया की प्रेरणा से विषय के झोके आने लगते हैं। उस समय बुद्धि मना करती ही रह जाती है। पर देवता झरोखा के पल्ले खोल ही देते हैं।

जब सो प्रभंजन उर गृह जाई। तबहि दीप बिज्ञान बुझाई॥
ग्रन्थि न छूटि मिटा सो प्रकासा। बुद्धि बिकल भइ विषय बतासा॥७॥

अर्थ : जब वह हवा का झोंका हृदयरूपी घर के भीतर जाता है तो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विज्ञान दीप बुझ जाता है। गाँठ भी न छूटी वह उजेला भी मिट गया और विषय वायु से बुद्धि विकल हो गयी।

व्याख्या झरोखे का कपाट खुलते ही हवा का झोका भीतर पहुँचा। दिव्य विषय आप से आप उपस्थित हो गये। फिर तो एक पल म दीवट कही गयी। दीया कही गिरा। बत्ती कही बुझकर उड गयी। सब किया कराया नष्ट हो गया। साधक दिव्य विषयो मे लिप्त हो गया।

प्रचण्ड विषय के हवा के वेग को वृत्तिजन्य ज्ञानदीप नही सह सकता। इतने परिश्रम से किये हुए साधन के नष्ट हो जाने से एव विषय के झोको के चपेट से बुद्धि विकल हो जाती है।

इन्द्रिय सुरन्ह न ज्ञान सुहाई। बिषय भोग पर प्रीति सदाई॥
बिषय समीर बुद्धि कृत भोरी। तेहि बिधि दीप को बार बहोरी॥८॥

अर्थ इन्द्रिय के देवताओ की प्रीति सदा विषय भोगो पर रहती है। उन्हे ज्ञान नही अच्छा लगता। विषय वायु ने बुद्धि को बावली बना दिया। अब उस विधि से फिर दीप कौन जलाता है।

व्याख्या इन्द्रिय के देवताओ को ज्ञान के अच्छा न लगने का कारण यह है कि ज्ञान होने से प्राणी विषय विमुख हो जाता है। अतएव देवताओं के भोग मे कमी आने लगती है। सृष्टि के आरम्भ मे जब ब्रह्मदेव ने मनुष्य की रचना की तो देवता लोग बडे प्रसन्न हुए कि इससे हमारा काम चलेगा। अत देवता लोग इन्द्रियो के रूप से यथास्थान अङ्गो म प्रवेश कर गये। अत ऐसे भोग साधन का विषय विमुख होना उन्हे प्रिय कैसे होगा।

अत उनकी प्रेरणा से विषय का अन्धड बन्द नही होता। उसम पडकर सयानी बुद्धि भी बावली हो गयी। वही दीप जलानेवाली ठहरी। अब फिर उस विधि से दीप कौन जलाता है। फिर तो उस जन्म मे दुबारा दीप का जलना असम्भव हो जाता है।

दो तब फिरि जीव बिबिध बिधि, पावइ ससृति क्लेस।
हरि माया अति दुस्तर, तरि न जाइ बिहगेस॥११८ क

अर्थ तब फिर जीव अनेक प्रकार के ससारी क्लेश पाता है। हरिमाया अति दुस्तर है। हे पक्षिराट! वह पार नही की जा सकती।

व्याख्या फिर तो जीव की वही अवस्था हो गयी जो कि सात्त्विकी श्रद्धा के हृदय मे आने के पहिले थी। भाव यह कि अनन्त काल से जीव ज्ञानदीप के उद्योग मे है। अनेक जन्म मे दीप जला और बुझा पर ग्रन्थि न छूट पाई ससार ज्यो का त्यो बना रह गया। जन्म मरण सुख दु खादि न छूटे। यह हरि की माया है। इसका सन्तरण महा कठिन है। यथा दैवी ह्येषा गुणमयी मम माया दुरत्यया। जो ज्ञानिहु कर चित अपहरई। बरिआईं बिमोह बस करई।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दो. कहत कठिन समुझत कठिन, साधत कठिन बिबेक।
होइ घुनाच्छर न्याय ज्यों, पुनि प्रत्यूह अनेक ॥११८॥

अर्थ : कहना कठिन समझना कठिन साधन कठिन और विवेक कठिन है। यदि घुणाक्षर न्याय से हो भी जाय फिर भी अनेक विघ्न हैं।

व्याख्या : यह विषय ऐसा है कि इसके कहने के लिए उपयुक्त शब्द नहीं मिलते। यदि कहा भी जाय तो बुद्धिदोष से उसका समझना कठिन हो जाता है। यदि किसी भाँति कहते सुनते भी बने तो साधन कठिन है। यमादि एक एक साधन असाध्य हैं। सब होने पर भी विवेक होना महा कठिन है। यथा : सुनिय गुनिय समुझिय समुझाइय दसा हृदय नहि आवै। जेहि अनुभव बिनु मोह जनित दारुन भव बिपति नसावै। काठ मे घुन लग जाता है तो दैवयोग से कभी कोई अक्षर भी बन जाता है। इस भाँति दैवयोग से यदि साधन ठीक उतर जाय फिर भी बहुत से विघ्न ऐसे उपस्थित हो जाते हैं जो चित् जड़ ग्रन्थि नहीं खोलने देते।

ग्यानपंथ कृपान कै धारा। परत खगेस होइ नहिं बारा॥
जो निर्बिघ्न पंथ निरबहई। सो कैवल्य परमपद लहई॥१॥

अर्थ : ज्ञानमार्ग तलवार की धार है। इस पर से गिरते हे गरुड़! देर नहीं लगती। यदि विघ्न को अतिक्रमण करता हुआ रास्ता पार करे तो कैवल्य पद पावे।

व्याख्या : ज्ञानमार्ग को : क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया। कहा गया है। जैसे तलवार की धार पर चलना कठिन है। तनकसा समता मे वैषम्य आया कि पतन हुआ। वैसा ही ज्ञानमार्ग पर चलना है। इस मार्ग से पतन होते देर नहीं लगती। यदि किसी भाँति पार पा जाय तो परम पद की जिसे कैवल्य कहते हैं प्राप्ति हो।

अति दुर्लभ कैवल्य परमपद। संत पुरान निगम आगम बद॥
राम भजत सोइ मुकुति गोसाईं। अन इच्छित आवै बरिआईं॥२॥

अर्थ : कैवल्य परमपद अतिदुर्लभ है। सन्त पुराण वेद शास्त्र ऐसा ही कहते हैं। हे गोसाईं! राम को भजते भजते वही मुक्ति बलपूर्वक आती है।

व्याख्या : चित् जड़ ग्रन्थि विमोक ही कैवल्यपद है। ऊपर दिखाया जा चुका है कि यह कितना दुर्लभ है। शिष्ट लोग तथा पुराण वेद शास्त्र सभी ने कैवल्य मुक्ति को ही परमश्रेय कहा है। इसमे किसी को विप्रतिपत्ति नहीं है। सबका एक मत है।

उस कैवल्यमुक्ति की प्राप्ति का सरल उपाय कहते हैं कि राम के भजने से मुमुक्षा न होने पर भी वह मुक्ति बलपूर्वक आती है। ज्ञानमार्ग मे मुमुक्षा की अपरिहार्य आवश्यकता है। भक्त को मुमुक्षा रहती ही नहीं। क्योंकि वह ममता का त्याग नहीं करता। बल्कि उसी ममता को ससार से हटाकर राम मे लगा देता है और ज्ञानी को ममता का त्याग करना पडता है। यथा : ममता त्याग करहिं जिमि ज्ञानी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



राम के भजन से प्रत्यक् चेतन[1] का अधिगम और अन्तराय का अभाव होता है। ममता की डोरी राम में लगने से, तत्पदवाच्य का दर्शन तो उसे होता ही है साथ ही साथ उसे त्वं पद वाच्य का भी दर्शन होता है। यथा : मम दर्सन फल परम अनूपा। जोव पाव निज सहज सरूपा। तत्पश्चात् भेदासहिष्णु भक्ति दोनों का ऐक्य कर देती है। इस प्रकार मुक्ति बलपूर्वक आती है। ऐसी अवस्था में यदि सेवक सेव्य भाव अटल रह जाय तभी मुक्ति रुक सकती है नही तो बिना चाहे भी मुक्ति हो जाती है। यथा : सो अनन्य जाकें असि मति न टरै हनुमंत। मैं सेवक सचराचर रूप स्वामि भगवंत। यही मुक्ति का बलपूर्वक आना है। इसका कारण कहते हैं।

जिमि थल बिनु जल रहि न सकाई। कोटि भाँति कोउ करै उपाई॥
तथा मोक्ष सुख सुनु खगराई। रहि न सकै हरि भगति बिहाई॥३॥

*अर्थ : जैसे थल के बिना जल नहीं रह सकता चाहे कोई कोटि भाँति उपाय करे। वैसे ही हे गरुड! मोक्षसुख हरिभक्त को छोड़कर ठहर नहीं सकता।*

व्याख्या : जिस भाँति जल और थल में आधाराधेय सम्बन्ध है उसी भाँति मोक्षसुख और हरिभक्त में आधाराधेय सम्बन्ध है। मोक्ष होने के पहिले साधन द्वारा मुक्ति के सान्निध्य से मोक्षसुख का अनुभव होने लगता है। चाहे अहन्ता को भगवच्चरणों में बाँधने से अर्थात् अहंग्रहोपासना से मोक्ष सुख मिले। चाहे ममता को उन चरणों में बाँधने से मोक्षसुख मिले उसके मूल में तो हरिभक्त ही है। पर अन्य उपायों से जप तप मखादि कर्मों से भी जहाँ मोक्षसुख प्राप्त हो वहाँ भी हरिभक्ति अनुमित है। क्योंकि जहाँ जल ही जल हो वहाँ भी अनुमान करना पड़ेगा कि आधार रूप में थल विद्यमान है।

अस बिचारि हरिभगत सयाने। मुकुति निरादर भगति लुभाने॥
भगति करत बिनु जतन प्रयासा। संसृति मूल अबिद्या नासा॥४॥

अर्थ : ऐसा विचारकर ही तो सयाने हरिभक्त भक्ति के लोभ मे पड़कर मुक्ति का निरादर करते हैं। भजन करते हुए बिना यत्न और प्रयास के संसार के मूल अविद्या का नाश हो जाता है।

व्याख्या : सयाने लोगो की यह रीति है कि उपेय से अधिक उपाय का आदर करते है। काम से अधिक अर्थ का आदर करते हैं। इसी भाँति सयाने हरिभक्त यह विचार करके कि भक्ति को छोड़कर मोक्षसुख के लिए कोई अन्य आधार नही है भक्ति पर ही रीझे रहते हैं। स्वयं भी मोक्ष की इच्छा नही रखते और दूसरों को भी मुक्ति छोड़कर भजन का ही उपदेश देते हैं।

यत्न और प्रयास तो ज्ञानमार्ग में हैं। भक्ति में सबसे ममता हटाकर राम में जोड़ना है और किसी यत्न तथा प्रयास की आवश्यकता नही है। यथा : कहहु भगति

---

१. ईश्वरप्रणिधानाद्वा। ततः प्रत्यक् चेतनाधिगमोऽन्तरायाभावश्च। यो.।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पथ कौन प्रयासा। जोग न मख जप तप उपवासा। भजन करते करते आप से आप अविद्या का नाश हो जाता है। अनित्य, अशुचि, दुःख और अनात्म मे नित्य शुचि सुख और आत्मा के अभान को अविद्या कहते हैं। यही संसार का मूल है।

ममता की डोरी भगवच्चरणों में लग जाने से मन खीचातानी से छूटकर स्थिति को प्राप्त होता है। केवल अस्मिता मात्र रह जाती है जिसे ज्योतिष्मती प्रवृत्ति कहते है। इससे प्रकाश होता है और सब मे समान रूप से ब्रह्म दिखाई पड़ने लगता है और साधक हर्ष शोक से छूट जाता है। यही ममता ससार मे होने से अन्धकारमयी अविद्या थी और वही ईश्वरप्रणिधान से ज्योतिष्मती विद्या हो गयी। यथा : हरि सेवकहि न व्याप अविद्या। प्रभुप्रेरित व्यापै तेहि विद्या।

भोजन करिअ तृपिति हित लागी। जिमि सो असन पचव जठरागी॥
असि हरिभगति सुगम सुखदाई। को अस मूढ न जाहि सुहाई॥५॥

अर्थ : भोजन तृप्ति और हित के लिए किया जाता है और जैसे उस भोजन को जठराग्नि पचाती है ऐसा ही हरिभजन सुगम और सुखदाई है। ऐसा कौन मूढ है जिसे यह अच्छा नही लगता?

व्याख्या : अब भजन की सुकरता और स्वाभाविकता कहते हैं। मुक्तिसम्पादन करने के लिए ज्ञानमार्ग मे अनेक प्रक्रिया विधिविधान के साथ यथाक्रम बड़ी सावधानी के साथ करनी पडती है। ज्ञान दीप प्रज्वलित करना असाधारण धैर्य और श्रम का काम है। भगवद्भजन मे ये बातें नही होती।

शरीर मे रात दिन श्रवण, स्पर्शन, रसन, घ्राण तथा गमनादिक क्रियाओ से क्षय हुआ करता है उसकी पूर्ति के लिए शरीर भोजन चाहता है। उसी चाह का नाम क्षुधा है। उसी को तृप्ति के लिए और शरीर के हित के लिए भोजन किया जाता है। भोजन करने मे किसी को श्रमबोध नही होता है बल्कि स्वाद भी मिलता है और शरीर की अस्वस्थता जाती रहती है। उस भोजन को जठराग्नि पचाती है रस बनता है। रक्त बनता है। शरीर की पुष्टि होती है। भोजन करनेवाले को कुछ करना नही पड़ता है। आप से आप सब होता रहता है। ऐसा तो कोई मूढ नही है जिसे भोजन अच्छा नही लगता हो।

ठीक ऐसी ही गति भजन की है। जिसकी मानसिक देह स्वस्थ है उसे भजन की भूख : जलन होती है। यथा : सुनु नृप जासु विमुख पछिताही। जासु भजन विनु जरनि न जाही। भजन करने मे स्वाद मिलता है। मानसिक पुष्टि होती है। अविद्या जाती रहती है। मोक्षसुख सुलभ हो जाता है। कैसे क्या होता है। इस बात के जानने की कोई आवश्यकता भजन करनेवाले को नही होती। जिसे भजन अच्छा न लगे वह बड़ा भारी मूढ है। उसे कोई बड़ा भारी मानसिक बीमारी मन्दाग्नि की भाँति हो गयी है।

दो. सेवक सेव्य भाव विनु, भव न तरिअ उरगारि।
भजहु राम पद पंकज, अस सिद्धान्त विचारि॥११९॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : सेवक सेव्य भाव के बिना हे गरुड़ जी ! संसार सागर पार नही किया जा सकता। ऐसा सिद्धान्त विचार करके रामपद कञ्ज का भजन करना चाहिए।

व्याख्या : व्यवहार में स्वभाव से ही स्वस्वामिभाव सम्बन्ध ईश्वर और जीव मे सिद्ध है। स्वस्वामिभाव सम्बन्ध ही सब सम्बन्धों का मूल है। अवयवायवी आधाराधेय प्रतियोग्यनुयोगी विशेषणविशेष्य भावादि अन्यान्य सम्बन्ध इसी के अवान्तर भेद हैं। स्व स्वामिभाव तथा सेवक सेव्यभाव एक ही बात है। मैं उसका हूँ। वह मेरा है। मैं वही हूँ। तस्यैवाहं ममैवासौ स एवाहमिति त्रिधा : इन भावों से जो भजन माना गया है उसका भी मूल सेवकसेव्य भाव ही है। सामान्य पुरुष भी सेवा से प्रसन्न होकर सेवक को क्या नहीं दे देता। फिर उस दयासागर भक्तवत्सल परमकृतज्ञ के लिए कहना ही क्या वह प्रसन्न होकर सेवक का उद्धार मृत्युसंसार सागर से कर देता है। जीव अपने प्रयत्न से संसार सागर नही पार कर सकता। यही सिद्धान्त है।

दो. जो चेतन कहँ जड करै, जड़हि करै चैतन्य।
अस समरथ रघुनायकहि, भजहि जीव ते धन्य ॥११९ क.

अर्थ : जो चेतन को जड़ और जड़ को चेतन बनाता है। ऐसे समर्थ रघुनायक को जो जीव भजते हैं वे धन्य हैं।

व्याख्या : चेतन को जड़ और जड़ को चेतन बनाने का सामर्थ्य ही सब सामर्थ्यों से बडा है। चित् शक्ति तो सर्वत्र ही समान रूप से अवस्थित है। पर चेतन के अधिक विकास से ही ब्रह्मदेव सब से बड़े हैं और सङ्कोच से ही मशक छोटा है। अतः समर्थ वही है जो चेतन के सङ्कोच विकास का नियमन करता हो। यह शक्ति सरकार मे है। यथा : मसकहि करइ बिरंचि प्रभु अजहि मसक ते हीन। अतः सरकार के भजन करनेवाले धन्य हैं। भाग्यहीन अल्प पुरुषार्थ का भजन करते हैं।

## श्रीभक्ति चिन्तामणि प्रसंग

कहेउँ ज्ञान सिद्धान्त बुझाई। सुनहु भगति मनिकै प्रभुताई ॥
राम भगति चिंतामनि सुन्दर। बसै गरुड़ जाकें उर अंतर ॥१॥

अर्थ . ज्ञान के सिद्धान्त को मैंने समझाकर कहा अब भक्तिमणि की प्रभुता सुनो। रामभक्ति सुन्दर चिन्तामणि है। हे गरुड ! यह जिसके हृदय मे वसती है।

व्याख्या : ज्ञान के सिद्धान्त को शुक बन्दर तथा दीप के उदाहरण से समझा कर कहा। ज्ञान का सिद्धान्त ही सिद्धान्त है। ज्ञान से पृथक् तो अज्ञान है। वह किसी विचारशील को मान्य नहीं हो सकता। भक्ति का भी वही सिद्धान्त है। यदि दूसरा सिद्धान्त होता तो : ज्ञानहि भगतिहि नहि कछु भेदा। यह बात नही कही जा सकती थी। ज्ञान और भक्ति दोनो अविद्या तम को दूर करते हैं। भेद इतना ही है कि एक दीप है तो दूसरा मणि है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



ममता के तागो के संसार से छूटकर भगवच्चरण मे लग जाने से मन खीचातानी से बचकर स्थिर हो जाता है। उसकी दशा स्वच्छ मणि सी हो जाती है। जैसे स्फटिकमणि अपने उपाश्रय के रँग से रग जाती है। उसी भाँति मन भी ग्रहीता पुरुष के आलम्बन से उसी रंग मे रँग जाता है। इसी को तत्स्थतदञ्जनता-समापत्ति कहते हैं। इसी भाँति भक्त का मन भी अविद्यान्धकार के नाश मे समर्थ है। ज्ञानदीप की प्रभुता कह चुके हैं अब रामभक्ति चिन्तामणि की प्रभुता कहते हैं।

भक्ति मणि है पर रामभक्ति तो सुन्दर चिन्तामणि है। जिस भाँति रामजी सब से उत्कृष्ट हैं उसी भाँति उनकी भक्ति भी सबसे उत्कृष्ट है। अन्य देवताओ की भक्ति मणि है। रामभक्ति चिन्तामणि है। : असन वसन सब वस्तु विविध विधि सब मनि मह रह जैसे। यह सम्पूर्ण कामनाओ को भी पूर्ण करती है और अविद्यान्धकार भी दूर करती है। यह मणि सुन्दर भी है इसके हृदय मे धारण करने से पुरुष की शोभा होती है। यथा : सोह सैल गिरिजा गृह आये। जिमि जन रामभगति के पाये। इस हृदय के भीतर धारण करना चाहिए बाहरी दिखावा से हानि है।

परम प्रकास रूप दिन राती। नहि कछु चहिय दिया घृत बाती ॥
मोह दरिद्र निकट नहि आवा। लोभ बात नहि ताहि बुझावा ॥२॥

अर्थ : यह चिन्तामणि परम प्रकाश रूप दिन रात बनी रहती है। दीया वत्ती घी की कोई आवश्यकता नही। न तो इसके निकट मोह दरिद्र आता है और न लोभ वायु इसे बुझा पाता है।

व्याख्या : दीप के प्रकाशरूप बनाये रखने के लिए दीयट घी और वत्ती की आवश्यकता होती है। फिर भी दिन को उसका प्रकश फीका पड जाता है। अभेद ज्ञान होने पर सोऽहमस्मि वृत्ति फीकी पड जाती है। पर मणिदीप का प्रकाश सदा बना रहता है। उसे दीया घी और वत्ती की आवश्यकता नही। इसी भाँति रामभक्ति चिन्तामणि के लिए चित्त दीया मे ज्ञान घृत और तुरीय रूपी वत्ती की आवश्यकता नही है। और विज्ञान विहान होने पर उसकी चमक और बढ जाती जाती है : भक्त्यर्थं[1] कल्पित द्वैतमद्वैतादपि सुन्दरम्। मोह दरिद्र के भाग्य मे मुनिचनरूपी राम नही है। जब ममता वृत्ति राम मे लग गयी तब मोह को निकट आने के लिए मार्ग ही नही रह गया। राम से अधिक सुन्दर कोई विषय है ही नही। अतः लोभ वायु उसका कोई अपकार नही कर सक्ता।

प्रबल अविद्या तम मिटि जाई। हारहि सकल सलभ समुदाई ॥
खल कामादि निकट नहि जाही। बसै भगति जाके उर माही ॥३॥

अर्थ : अविद्या का प्रबल अन्धकार मिट जाता है और शलभो का समुदाय

१. भक्ति लिए कल्पित द्वैत अद्वैत से भी सुन्दर है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पथभ्रष्ट किया करते है। यथा साखी शब्दी दोहरा कहि कहनी उपखान। भगति निरूपहि भगत कलि निन्दहि बेद पुरान। दोहावली

पावन पर्बत बेद पुराना। रामकथा रुचिराकर नाना॥
मर्मी सज्जन सुमति कुदारी। ज्ञान बिराग नयन उरगारी॥७॥

अर्थ वेद पुराण पवित्र पर्वत हैं जिनमे रामकथा रूपी नाना प्रकार की सुन्दर खाने हैं। भेद जाननेवाले सज्जन है। सुमति कुदारी है और हे उरगारि! ज्ञानविराग आँख हैं।

व्याख्या वेद पुराण पावन पर्वत माने गये हैं। विचार करने से ही इनकी उपयोगिता का पता चलता है। इन्ही के कारण ससार धृत है। प्रजाओ के धारण करनेवाल धर्मो के ये ही आद्य उपदेष्टा हैं। इन्ही मे त्रिवर्ग की कथाएँ भरी पडी हैं। इन्ही के बीच रामकथा भी है। परन्तु रामकथावाली सुन्दर खान कहाँ पर है। इसका पता बिना मर्मी सज्जन के लग नही सकता। गुरुचरणोपासक सज्जन लोग ही इस खानि के मर्मी हैं।

सुमति कुदारी कहने का भाव यह है कि मर्मी ऐसा ठीक पता दे देते हैं कि अकेला आदमी भी कृतकार्य हो सकता है। पर उसके पास सुमति रूपी कुदाल होना चाहिए। कुमति होने से वह त्रिवग मे ही फँसकर रह जायगा। फिर भी उसे ज्ञान और विराग रूपी आँखें चाहिए। नही तो उसे रामकथा किसी साधारण राजकुमार का इतिवृत्त मालूम पडेगा।

भाव सहित खोजै जो प्रानी। पाव भगति मनि सब सुखखानी॥
मोरे मन प्रभु अस बिस्वासा। राम त अधिक राम कर दासा॥८॥

अर्थ भाव सहित जो प्राणी खोजेगा वह सब सुखखानि भक्तिमणि पावेगा। हे प्रभो! मेरे मन मे तो ऐसा विश्वास है कि रामजी के दास रामजी से भी अधिक हैं।

व्याख्या भाव सहित खोजने का तात्पर्य यह है कि साधन भक्ति द्वारा उसका भगवच्चरणानुराग से परिचय होना चाहिए। तब रामकथा की प्राप्ति के बाद उसे सिद्धा भक्ति अर्थात् भक्ति चिन्तामणि की प्राप्ति हो सकेगी।

वैधी और रागानुगा इन दोनो प्रकार की भक्ति की गिनती साधन भक्ति मे है। शास्त्रो के उपदेश सुनकर जब प्राणी का अनुराग भगवच्चरणो मे होता है तो उसे वैधी कहते हैं और स्वाभाविक अनुराग से भजन मे प्रवृत्त होने को रागानुगा कहते हैं। इनका फलस्वरूप सिद्ध भक्ति है। यह स्वयं सब सुखो की खानि है। अविरला, अनपायिनी, सिद्धिरूपा आदि इसके अनेक नाम हैं।

भुसुण्डिजी अपना विश्वास कहते हैं कि मैं रामजी के दास को रामजी से भी अधिक मानता हूँ। रामजी के सेवक की बडी महिमा है। पर दास तो अपने को स्वामी के हाथ बेंच देता है। स्वामी का उस पर कृपा, कोप, वध और बन्ध का

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अधिकार होता है। उसे स्वामी की ही गति है। दूसरी आशा नहीं। यथा : जेहि गति मोरि न दूसरी आसा। अतः वह सरकार को अतिप्रिय हैं और वे ही रामप्राप्ति के द्वारभूत हो जाते हैं। अतः कृतज्ञ हृदय के लिए वे रामजी से भी अधिक हैं।

राम सिंधु घन सज्जन धीरा। चन्दन तरु हरि संत समीरा॥
सब कर फल हरि भगति सुहाई। सो बिनु संत न काहू पाई॥९॥

अर्थ : रामजी समुद्र और पण्डित सज्जन बादल हैं। हरि चन्दनतरु है और सन्त समीर है। सबका फल सुन्दर हरिभक्ति है। उसे सिवा सन्त के किसी ने नहीं पाया।

व्याख्या : समुद्र ही जल का अक्षय भण्डार है। नदी कूप आदि मे जहाँ कही जल दिखाई पड़ता है वह किसी न किसी भाँति समुद्र से ही आया है। पर समुद्र तक सबकी गति नहीं है। जिनकी गति भी है वे भी समुद्र से साक्षात् लाभ नहीं उठा सकते। बादल मे ही ऐसा सामर्थ्य है कि देश के देश को जल से प्लावित करते हैं। इसी भाँति रामजी समुद्र हैं। उनसे साक्षात् उपकार जगत् का वैसा नहीं होता जैसा कि धीर सज्जनो द्वारा होता है। वे बादल की भाँति रामयश की वर्षा करके प्रान्त के प्रान्त को राममय कर देते हैं।

हरि तो चन्दनवृक्ष है। उन तक सब लोग नहीं पहुँच सकते। पर यह सामर्थ्य गन्धवाह में ही है कि चन्दन के गन्ध को लेकर अन्य वृक्षो के सार में बसा दे। इसी भाँति यह शक्ति सन्तो मे ही है कि मनुष्य के अन्तःकरण को सदा के लिए भगवद्भाव से भावित कर दे। साधन भक्ति सिद्धा भक्ति में परिणत हो जाय। तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ग्यान निपुनाई। नाना कर्म धर्म व्रत दाना। सम जम दम तप व्रत मख नाना। भूत दया गुरु द्विज सेवकाई। विद्या विनय विवेक बड़ाई। जहँ लगि साधन वेद बखानी। सब कर फल हरिभगति भवानी। सो सुहाई भक्ति अर्थात् निष्काम भक्ति सन्त के हिस्से की वस्तु है। क्योंकि सन्त को सुमति का स्वामी कहा गया है। यथा : संत सुमति तिय सुभग सिंगारू। और सुमति ही भक्ति की भूमिका है। *अतः सिद्धाभक्ति का अधिकारी सिवा सन्तो के* दूसरे नहीं हैं।

अस बिचार जोइ कर सत संगा। राम भगति तेहि सुलभ बिहंगा॥१०॥

अर्थ : ऐसा विचार करके जो सत्सङ्ग करता है। हे विहङ्ग लोग! उसे राम भक्ति सुलभ है।

व्याख्या : अपने वक्तव्य का निष्कर्ष कहते हुए भुसुण्डिजी अपने समस्त श्रोताओं को सम्बोधन करते हैं। विहङ्ग योनि में कोई साधन नहीं हो सकता। पर सत्सङ्ग वे भी कर सकते हैं। अतः राम से अधिक राम के दास को मानकर जो सत्सङ्ग करते हैं उन्हे अनायासेन रामभक्ति की प्राप्ति होती है। सन्त लोग स्वभाव से ही रामभक्ति के प्रचार मे दत्तचित्त रहते हैं। अपने सग करनेवाले को भक्ति

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



देने मे कृपणता क्यों करेंगे। सत्सङ्ग से सुमति की प्राप्ति भी हो जाती है। यथा : सठ सुधरहिं सत सगति पाई। पारस परस कुधातु सुहाई।

दो. ब्रह्म पयोनिधि मंदर, ज्ञान संत सुर आहि।
कथा सुधा मथि काढहिं, भगति मधुरता जाहि ॥१२० क.
विरति चर्म असि ज्ञान मद, लोभ मोह रिपु मारि।
जय पाइय सो हरि भगति, देखु खगेस विचारि ॥१२०॥

अर्थ . वेद क्षीरसागर है ज्ञान मन्दर है सन्त देवता हैं वे मथकर कथामृत निकालते हैं। जिसकी मिठास भक्ति है। वैराग्य की ढाल और ज्ञान की तलवार से मद लोभ मोहादि शत्रुओ को मारकर जो विजय मिलती है वह हरिभक्ति है। हे खगेश! विचारकर देख लो।

व्याख्या · जिस भाँति क्षीरसागर को मन्दर द्वारा मन्थन करके देवासुरो ने अमृत निकाला था। जिसकी मधुरता की थाप सम्पूर्ण संसार मे है। उसी प्रकार वेद रूपी समुद्र के मन्थन करनेवाले देवस्थानीय सन्त लोग हैं। वे ही ज्ञान रूपी मन्दराचल से वेदसिन्धु का मन्थन करते हैं। तभी राम कथा रूपी अमृत का प्रादुर्भाव होता है। यथा तब सब कथा मुनीसन्ह गाई। परम प्रबन्ध विचित्र बनाई। जिन्होने असस्कृत बुद्धि से ही मन्थन किया है उन्हें तो वेद गँवारो का गीत ही मालूम हुआ उस अमृत की मधुरता भक्ति है। भक्ति की मधुरता सर्वजन प्रत्यक्ष है। इसके लिए अन्य प्रमाणकी आवश्यकता नही है।

श्री रामावतार जब होता है। तब रामयश वेद का भी रामायण रूप से अवतार होता है। यथा वेद प्राचेतसाद्‌ासीत् साक्षाद् रामायणात्मना।

यह शरीर दो राजाओं का देश है। अपने अपने अधिकार के लिए दोनो मे नित्य लडाई रहती है। एक ओर मोह राजा है और कामादि उसके सहायक हैं। दूसरी ओर विवेक राजा है और वैराग्यादि उसके सहायक हैं। यह लडाई अनादि काल से चली आती है। कभी एक बीस पड जाता है कभी दूसरा बीस पडता है। इसी द्वन्द्व मे पडकर ज्ञानेन्द्रिय कर्मेन्द्रिय प्राणादि प्रजा अतिपीडित हो रहे हैं। जब कथामृत पान से विवेकादि का बल बढ जाता है तब वे वैराग्यरूपी ढाल से शत्रु के प्रहार को निष्फल करके ज्ञान रूपी खड्ग से मद मोह लोभादि शत्रु को मारकर विजय प्राप्त करते हैं। यथा : जीति मोह महिपाल दल सहित विवेक भुआल। करत अकटक राजपुर सुख सम्पदा सुकाल।

इतनी बडी लडाई के बाद फल यह हुआ कि ससार की ओर से मन हटकर राम मे लगा और यही भक्ति है। अब चाहे कोई अभेद भक्ति करे या भेद भक्ति करे पर है सब भक्ति ही।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



## सप्तप्रश्नप्रसङ्ग : उमा के बारहवें प्रश्न का प्रसङ्गात् उत्तर

पुनि सप्रेम बोलेउ खगराऊ। जौं कृपाल मोहि ऊपर भाऊ॥
नाथ मोहि निज सेवक जानी। सप्त प्रस्न मम कहहु बखानी॥१॥

अर्थ : फिर प्रेम के सहित पक्षिराज बोले कि हे कृपालु! यदि आपका मेरे ऊपर : कृपा : भाव है तो मुझे अपना सेवक जानकर मेरे सात प्रश्नों को बखान : कर कहिये।

व्याख्या : गरुड़जी जिज्ञासा से आर्त होकर गुरु के प्रेम पर विश्वास दिखलाते हुए प्रश्न करते हैं। निज सेवक पर स्वामी की अत्यन्त कृपा रहती है। यथा : निज दास ज्यों रघुवंस भूषन कबहु मम सुमिरन करयो। अतः कहते हैं कि निज सेवक जानकर सात प्रश्नों का उत्तर दीजिये। इन्हीं सात प्रश्नों में साध्य साधन और साधक विषयक सब बातें आजायेंगी। १. भोगायतन २. अनुकूलवेदनीय भोग ३. प्रतिकूलवेदनीय भोग ४. भोक्ता ५. अनुकूल भोग का कारण ६. प्रतिकूल भोग का कारण और ७. भोक्ता की अवस्था के कारण विषयक प्रश्न हैं। ये प्रश्न : जो प्रभु मैं पूछा नहि होई। सोउ दयाल जनि राखहु गोई। के उत्तर में निरूपण किये गये हैं।

प्रथमहि कहहु नाथ मति धीरा। सबते दुर्लभ कवन सरीरा॥
बड़ दुख कवन कवन सुख भारी। सोउ संछेपहि कहहु बिचारी॥२॥
संत असंत मरम तुम जानहु। तिन्ह कर सहज सुभाव बखानहु॥
कवन पुन्य स्रुति बिदित बिसाला। कहहु कवन अघ परम कराला॥३॥
मानस रोग कहहु समुझाई। तुम्ह सर्बज्ञ कृपा अधिकाई॥
तात सुनहु सादर अति प्रीती। मैं संछेप कहौं यह नीती॥४॥

अर्थ : हे मतिधीर नाथ! पहले यह बतलाइये कि सबसे दुर्लभ कौन शरीर है। कौन दुःख बड़ा है कौन सुख भारी है इसे भी संक्षेप से विचारकर कहिये। तुम सन्त असन्त के मर्म को जानते हो। सो उनके सहज स्वभाव का वर्णन करो। वेद विदित विशाल पुण्य कौन सा है और कौन परम कराल पाप है? तुम सर्वज्ञ हो और तुम्हें कृपा भी अधिक है। सो मानसरोग समझाकर कहो। हे तात! आदर और प्रीति के साथ सुनो। मैं संक्षेप से यह नीति कहता हूँ।

व्याख्या : गरुड़जी कहते हैं कि आपने असंख्य ब्रह्माण्ड के जीवों के शरीर देखे हैं। आप बतलाइये कि सबसे दुर्लभ कौन शरीर है। सुख दुःख सबका अनुभूत विषय है। इसमें केवल इतना ही जानना है कि सबसे बड़ा सुख और सब दुःखों से बड़ा दुःख कौन है। तुम्ह सन्त भी रह चुके हो और असन्त भी रह चुके हो। अतः तुम मर्मज्ञ हो उनका सहज स्वभाव वर्णन करो। सब कल्याणों का मूल पुण्य है और सब आपत्तियों का मूल पाप है। अतः वेद विदित विशाल पुण्य और परम कराल पाप क्या है? इसे बतलाइये। मानस रोग को सो समझाकर कहिये। आप से कुछ

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



छिपा भी नही है और आप मे अधिक कृपा भी है। अत. आप से मनोरथ पूर्ति की प्रबल आशा है।

भुसुण्डिजी ने कहा कि मैं सक्षेप से इस नीति का वर्णन करूँगा। अतः आदर के साथ अति प्रीति से सुनो। आदर के साथ अति प्रीति से सुना हुआ ही हृदय मे अङ्कित होता है।

नर तन सम नहि कवनिउ देही। जीव चराचर जाचत जेही ॥
नरक स्वर्ग अपवर्ग निसेनी। ज्ञान बिराग भगति सुभ देनी ॥५॥

अर्थ : नरदेह के समान कोई देह नही है। जिसे चराचर प्राणो माँगा करते हैं। ज्ञान वैराग्य और शुभ भक्ति की देनेवाली स्वर्ग और मोक्ष की सीढी है।

व्याख्या · प्रश्न है · सब ते दुर्लभ कवन सरीरा। उत्तर हो रहा है कि नर शरीर के समान कोई देह नही है। कारण देते हैं कि चराचर प्राणी मात्र को उसकी चाह रहती है। शास्त्र कहता है कि स्थावर जीव भी अन्त.सज्ञ होते हैं। अत· उनका भी चाहना बन सकता है। अन्य शरीर से कोई पुरुषार्थ नही बनता और मनुष्य शरीर की प्राप्ति केवल परमेश्वर की कृपा से ही होती है। यथा : कबहुकि करि करुना नर देही। देई ईस विनु हेतु सनेही। इसी शरीर से पाप करके लोक नरकगामी होते हैं। पुण्य करके स्वर्ग भोगते हैं और ज्ञान विराग द्वारा मुक्ति प्राप्त करते हैं अथवा कल्याणमयी भक्ति की प्राप्ति होती है। जो सब सुखखानि है। सीढी से ऊपर चढना नीचे उतरना दोनो होता है।

सो तनु धरि हरि भजहि न जे नर। होहि विषयरत मंद मंदतर ॥
काँचु किरिच बदले ते लेही। करते डारि परसमनि देही ॥६॥

अर्थ उस शरीर को धारण करके जो मनुष्य विषयरत होकर मन्द होते जाते हैं हरि को नही भजते वे हाथ से पारस को फेंककर उसके बदले मे काँच का टुकडा लेते हैं।

व्याख्या : मन तो एक क्षण स्थिर रहता नही। वह चाहे काम को भजे चाहे राम को भजे। जो ऐसा दुर्लभ शरीर पाकर काम को भजता है। जो कि पशु शरीर मे भी सुलभ है और इस भाँति अपना अध पतन करता रहता है। यथा : सेवत विषय विवर्ध जिमि नित नित नूतन मार। वह ऐसा अभागा है कि हाथ मे आये हुए पारस को फेक रहा है और शीशे के टुकडो को उसके बदले मे ले रहा है। नर शरीर पारस है। इसके सदुपयोग से नित्यानन्द की प्राप्ति हो सकती है और विषय काँच का टुकडा है। किसी काम का नही। केवल उसमे सुखाभास की चमक है। उसी को सच्चा सुख मानकर जीव जन्म मरण के जाल मे पडा हुआ दु.ख झेलता है।

नहि दरिद्र सम दुख जग माही। सत मिलन सम सुख जग नाही ॥
पर उपकार बचन मन काया। सत सहज सुभाउ खगराया ॥७॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


अर्थ . ससार मे न तो दरिद्रता के समान दु ख है। न सन्त के मिलने कोई सुख है। हे खगराज ! मनसा वाचा कर्मणा परोपकार करना। सन्तो सहज : पैदाइशी स्वभाव है।

व्याख्या इस ससार मे स्वल्प से स्वल्प सुख के लिए कीमत चुक पडती है। दरिद्र के पास कीमत चुकाने के लिए कुछ नही है पर चाह बहुत अत उसे कभी कोई सुख मिलता ही नही और चाह सुख भी बनी रहती है। व वह महा दु खी है। परमहस परिव्राजक के पास कुछ नही रहता। पर उन्हे च भी नही है। इसलिए वह राजाओ का भी महाराज है। उन्हे दरिद्र कोई न कहता। क्योकि सच्ची दरिद्रता तो मोह है। यथा मोह दरिद्र निकट नहि आव सात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिअ तुला एक अग। तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख सतसग। अत सतसग से बडा सुख काई नही है। क्योकि सतसग स्वय सुख होने पर भी परम कल्याण का कारण है।

सन्त पैदा होते हैं। बनाये नहीं जाते। सन्त वही है जिसका मनसा वा कर्मणा परोपकार करने का पैदाइशी स्वभाव हो। जो सिखाने पढने से परोपक होते हैं वे सन्त के समान हैं। समान शब्द किञ्चित् न्यून के अर्थ मे आता है। यथ जौं नर होइ चराचर द्रोही। आवै सभय सरन तकि मोही। तजि मद मोह क छल नाना। करै सद्य तेहि साधु समाना।

सत सहहि दुख परहित लागी। परदुख हेतु असत अभागी॥
भूर्ज तरू सम संत कृपाला। परहित नित सह बिपति बिसाला॥८

अर्थ · सन्त पराये हित के लिए दु ख सहते हैं और असन्त अभागे पर दु ख के लिए दु ख सहते हैं। कृपाल सन्त भोजपत्र के समान है। पराये हित लिए नित्य विशाल विपत्तियाँ भोगा करते हैं।

व्याख्या · जो ससार मे आया है उसे दु ख भोगना ही पडता है। पर सन्त का हृदय अत्यन्त कोमल होता है। उसे दूसरे का दु ख देखते बनता नही। उसके प्रतिकार मे लग जाते हैं। इस भाँति उनके दु ख का भोग भी हो जाता और परोपकाररूपी परम धर्म की प्राप्ति भी होती रहती है। असन्त का हृदय व कठोर होता है। उनको दूसरे के दु ख को देखकर सुख होता है। अत· वे दूसरे दु ख देने मे यत्नशील होते हैं। उस यत्न मे उन्हे दु ख होता है। अत. सच्चा सु उनके भाग्य में नही है। जब तक जीते हैं दूसरे का सुख देखकर जलते हैं। म पर अपकारी को नरक होता ही है। अत. उन्हे अभागी कहा।

कृपालु सन्तकी उपमा भोजपत्र के पेड से दी गयी है। पेड तो सभी परोपक हैं। पर इस पेड मे ऐसा दूसरे के हित के लिए भारी विपत्ति सहनेवाला कोई नहीं है। जैसे शरीर मे चमडो है वैसे ही पेड के लिए छाल है। यह पेड नित्य अपना छाल देता है। भूर्जतरु के छाल का ही भोजपत्र कहते हैं। उसे छीलकर उस पर पुस्तक लिखी जाती है। यन्त्र लिखे जाते हैं। पहाड पर पर उस

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



पुड़िया भी बाँधते हैं। चमड़ी दे देना क्लेश की पराकाष्ठा है। उसे भी सन्त भूर्जतरु के समान परोपकार के लिए स्वीकार करते हैं।

सन इव खल पर बंधन करई। खाल कढ़ाइ बिपति सहि मरई ॥
खल बिनु स्वारथ पर अपकारी। अहि मूषक इव सुनु उरगारी ॥९॥

अर्थ : सन की भाँति खल दूसरे का बन्धन करता है और स्वयं खाल निकलवाकर विपत्ति सहकर मर जाता है। हे उरगारि : गरुड़जी ! सुनो सर्प और चूहे की भाँति खल निःस्वार्थ भाव से दूसरे का अपकार करता है।

व्याख्या : जिस भाँति सन्त परोपकार के लिए दुःख को दुःख नहीं मानते। उसी भाँति खल भी परोपकार के लिए दुःख को दुःख नहीं मानते। सनई की छाल उखाड़कर ही रस्सी बनायी जाती है जिससे दूसरे बाँधे जाते हैं। सनई पानी में डूबोकर सड़ाई जाती है। तब उसकी छाल को अलग करके रस्सी बनायी जाती है। इसी भाँति खल भी दुर्दशापूर्वक अपनी मृत्यु स्वीकार करते हैं : यदि उससे किसी का अपकार होता हो।

पर संपदा बिनासि नसाही। जिमि ससि हति हिमि उपल बिलाही ॥
दुष्ट उदय जग अनरथ हेतू। जथा प्रसिद्ध अधम ग्रह केतू ॥१०॥

अर्थ : खल दूसरो की सम्पत्ति का नाश करके स्वयं भी नष्ट हो जाते हैं। जैसे ओला खेती का नाश करके स्वयं गल जाता है। दुष्ट का उदय संसार में अनर्थ का कारण है। जैसे ग्रहो मे अधम केतु का उदय होता है।

व्याख्या : जिस भाँति ओले खेती का नाश करने के लिए स्वर्ग से पृथिवी पर गिर पडते हैं और खेती का संहार करके स्वयं भी गल जाते हैं। ठीक इसी रीति से परसम्पदा नाश चाहनेवालों का अधः पतन नाश करने के समय ही होता है। नाश की क्रिया की समाप्ति के बाद वे भी नहीं बचते। गल कर पानी हो जाते हैं।

जब जब संसार पर मुसीबत आयी है तब तब उसका कारण दुष्ट का उदय ही होता है। दुष्ट की जब उन्नति होगी तब वह अपनी प्रभुता का उपयोग संसार के दुःख देने में ही करेगा। अतः उसकी उन्नति की उपमा धूमकेतु के उदय से दिया है। धूमकेतु को अधम ग्रह कहा। क्योंकि जब यह उदय होते हैं तब पीड़ा ही पहुँचाते हैं। कभी शुभ फल देते ही नहीं। देश के देश पर आफत ढहाते हैं।

संत उदय संतत सुखकारी। बिस्व सुखद जिमि इंदु तमारी ॥
परम धरम स्रुति बिदित अहिंसा। पर निंदा सम अघ न गिरीसा ॥११॥

अर्थ : सन्त का उदय सदा हितकारी होता है। जैसे चन्द्रमा और सूर्य संसार को सुख देनेवाले होते हैं। वेद विदित परम धर्म अहिंसा है और परनिन्दारूपी हिमालय के समान दूसरा पाप नहीं है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : जिस भाँति सूर्य और चन्द्रमा के उदय से विश्व का घना सम्बन्ध है। सूर्य चन्द्र से ही ससार को प्रकाश मिलता है। ताप तथा ठण्ढक मिलती है। सब व्यवहार चलता है। यथा जगहित हेतु विमल विधु पूषन। सन्त लोगो से भी उसी भाँति ससार को दिव्य प्रकाश मिलता है। सन्तो से ही विधि निषेध की प्रवृत्ति मिलती है। संसार मे जो कुछ थोडा बहुत सुख है सो सन्तो की कृपा का ही फल है। सन्तो से दिन रात जगत् का हित हुआ करता है। अत उनका उदय भी नित्य है। दुष्ट के उदय के समय भी इनका उदय तो रहता ही है। क्योकि इनके बिना ससार चल नही सकता।

प्रश्न हुआ था कौन धर्म श्रुति विदित विसाला। उत्तर दिया जाता है परम धर्म श्रुति विदित अहिंसा। यथा अहिंसा परमो धर्म। सर्वथा सर्वदा प्राणी मात्र से द्रोह न करने को अहिंसा कहते हैं। अहिंसा ही सब यम नियमो का मूल है। जाति देश काल और समय मे भी यदि इसमे व्यभिचार न हो तो यह महाव्रत हो जाता है।

जिस भाँति हिमालय पर्वतो का राजा है उसी भाँति निन्दा सब पापो से बडा पाप है। झूठे दोष कथन को निन्दा कहते हैं। सच्चा दोष कथन भी बडा पाप है। जो जिसका दोष कहता है वह उसकी कीर्तिमयी शरीर का हनन करता है। असत्य पर्वत के समान बडा पाप है। नहि असत्य सम पातकपुजा। गिरि सम होहि कि कोटिक गुंजा। वही असत्य जब पर दोष कथन से प्रगुणीकृत हुआ तब वह पर्वतराज हिमालय के तुल्य हो गया।

हरिगुर निंदक दादुर होई। जन्म सहस्र पाव तनु सोई॥
द्विज निंदक बहु नरक भोग करि। जग जनमै वायस सरीर धरि॥१२॥

अर्थ हरि और गुरु की निन्दा करनेवाला मेढक होता है और सहस्र जन्म तक वही शरीर पाता चला जाता है। ब्राह्मण की निन्दा करनेवाला बहुत नरक भोग करके कौवे का शरीर धारण करके जन्म लेता है।

व्याख्या मनुष्य योनि से ही भगवद् गुणानुवाद किया जा सकता है। यही इस योनि की विशेषता है। इस विशेषता का इतना बडा दुरुपयोग जिसने किया कि हरि और उनकी कृपा के साधन के उपदेष्टा गुरु की निन्दा की। उस निन्दा से यद्यपि हरि और गुरु की कोई क्षति नही हुई। पर उसने व्यर्थ का टर टर करने मे अपना जन्म गँवाया। इसलिए दूसरे जन्म म मनुष्य की योनि छीन ली गयी और व्यर्थ की टर टर करनेवाली मेढक की यानि मिली। उसने अनन्त की निन्दा की। इसलिए सहस्रो जन्म तक उस मेढक की ही योनि मिलती रहेगी।

पूर्वजन्म के कर्मों के विपाक से ही जाति आयु और भोग की प्राप्ति होती है। अपने उत्कर्ष के लिए प्रयत्न न करके स्वयं द्विज शरीरप्राप्ति की चेष्टा न करके जो ईर्ष्यावश द्विज की निन्दा करते हैं वे द्विजनिन्दक हैं। गा ब्राह्मण ही वैदिक धर्म के मूल हैं। एक मे गव्य निहित है और दूसर म मन्त्र प्रतिष्ठित है। अत ब्राह्मण की

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



निन्दा प्रकारान्तर से वेदमार्ग की ही निन्दा हुई। अतः ऐसे निन्दकको अनेक प्रकार के नरक भोगने पड़ते हैं। नरक भोग के बाद भी उस महान् पातक का इतना प्रबल संस्कार होता है कि उसे कौए की योनि मिलती है।

द्विज निन्दक को अपना बड़ा भारी पक्ष रहता है। उसके आगे वह वेदशास्त्र का अनादर करता है और स्वयं समयोपयोगी धर्मशास्त्र निर्माण का दावा करता है। जाति पाँति तोड़ने की अनेक चेष्टा करता है। सत्य वचन पर विश्वास नहीं करता। कौए की भाँति डरा करता है कि यही ऋषियो ने वेद शास्त्र ब्राह्मणो के लाभ के लिए तो नहीं बनाया : इत्यादि। यथा सत्य वचन बिस्वास न करही। बायस इव सबही ते डरही। सठ स्वपक्ष तब हृदय बिसाला। सपदि होहि पक्षी चडाला। यही कारण है कि जिससे उसे कौए की योनि मिलती है।

सुर स्रुति निंदक जे अभिमानी। रौरव नरक परहि ते प्रानी॥
होहि उलूक संत निंदारत। मोह निसा प्रिय ग्यान भानु गत॥१३॥

अर्थ : जो अभिमानी प्राणी देवता और वेद की निन्दा करते हैं वे रौरव नरक मे पड़ते हैं। सन्त की निन्दा में लगे हुए उल्लू होते हैं। ज्ञानरूपी सूर्य के अस्त हो जाने पर जो मोहनिशा होती है वही उन्हे प्यारी है।

व्याख्या : वेद ही आदि शास्त्र है। वेद के ज्ञान से ही संसार मे प्रकाश है। जितने प्रचलित मत हैं उनमे से वेदोदित धर्म निकाल लिया जाय तो उनमे कुछ नहीं रह जाता। अतः सबके सब वेदोपजीवी हैं। परमेश्वर के उस आदि उपदेश की जो निन्दा करता है वह श्रुतिनिन्दक है। वेद प्रतिपाद्य देवता लोग ही ससार के अधिकारी हैं। चारो ओर से विश्व की रक्षा किया करते हैं। उनकी निन्दा करनेवाला सुरनिन्दक है। वह निन्दक रौरव नरक मे पड़ता है। यहाँ रौरव शब्द उपलक्षण है। रौरव महारौरव कालसूत्र अन्धतामिस्र तथा अवीची सबका बोधक है। श्रुति तथा देवताओ ने उसका कुछ नहीं बिगाड़ा। पर अनुशासन उसे सह्य नहीं है : केवल अभिमान वश निन्दा करता है। इसलिए उसे अभिमानी कहा।

सन्त लोग राम सुयश की वर्षा करके ससार को मङ्गलमय बनाया करते हैं। वे ही ज्ञानभानु हैं उन्ही के वचन के प्रकाश से हृदय की कली विकसित होती है। उनकी जो निन्दा करता है वह निःसन्देह प्रकाश का वैरी है। वह अविद्यान्धकार मे ही रहना चाहता है। इसी जन्म में उसमे उल्लू के लक्षण घटते हैं। मरने पर उसको उलूक की योनि मिलनी स्वभावसिद्ध है।

सबकै निन्दा जे जड़ करही। ते चमगादुर होइ अवतरही॥
सुनहु तात अब मानस रोगा। जिन्ह तें दुख पावहि सब लोगा॥१४॥

अर्थ : जो अज्ञानी सबकी निन्दा करते हैं वे चमगादड़ होकर जन्म ग्रहण करते हैं। हे तात! अब मानस रोगो को सुनो जिनसे सब लोग दु ख पाते हैं।

व्याख्या : १. हरि गुरु २. द्विज ३. सुर श्रुति और ४. सन्त। इनमे से एक

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



एक की निन्दा करनेवालो की गति पृथक् पृथक् कहकर अब सबको निन्दा करनेवाले को गति कहते हैं कि ऐसे जडो को चमगीदड की योनि मिलती है।

चमगादुर देह मे ही उपर्युक्त चारो निन्दको की प्रवृत्ति चरितार्थ होती है। चमगादुर मेढक की भाँति सदा शब्द किया करता है। कौए की भाँति छली मलिन और अविश्वासी होता है। मुख से मल त्याग करता है। उलटा लटका रहता है। इस भाँति जीतेजी नरक भोगता है। उल्लू की भाँति उसे अन्धकार प्रिय है। पापियो के मुकुटमणि होने से उनके जन्म को अवतार कहा।

प्रश्न हुआ था 'मानस रोग कहहु समुझाई। उत्तर देते हुए श्रोता को सावधान करने के लिए : सुनहु तात कहते हैं। यह प्रश्न बडा मार्मिक है। इसका सम्बन्ध भवसागर सन्तरण से है। जिस भाँति स्थूल शरीर मे रोग होते हैं उसी भाँति सूक्ष्म शरीर मे भी रोग होते हैं। थोडा सा परिचय के लिए शारीरक रोगो से उनकी तुलना की जायगी : पूर्व सवाद ज्ञान भक्ति भेद प्रकरण मे इन सातो प्रश्नो के बीज हैं। वे मानसिक रोग ऐसे भयानक हैं कि इनसे सब लोग दु ख पा रहे हैं और उन्हे यह पता भी नही है कि उन्हे रोग हुआ है।

मोह सकल ब्याधिन कर मूला। तेहिते पुनि उपजहि बहु सूला ॥
काम बात कफ लोभ अपारा। क्रोध पित्त नित छाती जारा ॥१५॥

अर्थ · सब व्याधियो का मूल मोह है। उसीसे अनेक प्रकार के शूल उठते हैं। काम वात है और अपार लोभ कफ है और क्रोध नित्य छाती जलानेवाला पित्त है।

व्याख्या : शारीरिक और मानसिक सभी रोगो का मूल मोह अज्ञान है। शारीरिक रोगो का मूलभूत प्रज्ञापराध भी अज्ञान के ही अन्तर्गत है। उसीसे मिथ्याहार विहार होता है। जो आठ प्रकार के शूलो का कारण है। इसी भाँति अज्ञान से सस्पर्शन भोगो मे प्रवृत्ति होती है और उससे अनेक प्रकार के मानसिक शूल होते हैं।

जिस भाँति यह स्थूल शरीर वात कफ और पित्त से धृत हैं उसी भाँति मानसिक शरीर काम राग क्रोध द्वेष और लोभ तृष्णा से धृत है। परन्तु ये ही जब साम्यावस्था छोडकर कुपित हो जाते है तो शरीरो मे रोग के कारण होते हैं।

काम की उपमा वात से दी गयी है क्योकि यही गतिशील है। कफ और पित्त को जहाँ ले जाता है वही जाकर मेघ की भाँति वर्षा करते हैं। इसी भाँति मानसिक शरीर मे काम नेता है। स्थूल शरीर मे न कफ का पार मिलता है और न मानसिक शरीर मे लोभ का पार है। पित्त भी अग्नि है। यह कुपित होकर कलेजे मे दाह उत्पन्न करता है। इसी भाँति क्रोध भी अग्नि है। इससे दाह होना सर्वजन प्रत्यक्ष है। अत. लोभ की कफ से और पित्त की क्रोध से उपमा दी गयी है।

प्रीति करहिं जौ तीनिउ भाई। उपजै सन्यपात दुखदाई ॥
बिषय मनोरथ दुर्गम नाना। ते सब सूल नाम को जाना ॥१६॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : यदि तीनो भाई प्रीति करें तो दु खदायी सन्निपात उत्पन्न होता है। वपथ के अनेक दुर्गम मनोरथ शूल हैं। उनके नाम कौन जान सकता है।

व्याख्या · वात वफ और पित्त ये तीनो भाई हैं। पर तीनो प्रीति नही करते। अकेले भी रोग उत्पन्न करने मे समर्थ है। यदि आपस मे प्रीति करके तीनो प्रधान हो जायँ तो सन्निपात होकर मनुष्य काल के वशीभूत हो जाता है। इसी भाँति यदि काम क्रोध लोभ तीनो बढें तो मानसिक शरीर का पतन अनिवार्य है। इसमे वडा दु ख होता है। प्रलाप भी होता है। यथा : सन्यपात जल्पसि दुर्बादा। भयेसि काल बस खल मनुजादा।

शब्द स्पर्श रूप रस गन्ध : ये पाँच विषय हैं। इनमे से एक एक के अनेक भेद हैं। अत इनसे असख्य मनोरथ उत्पन्न होते हैं। मनोरथ सब के सब दु खदायी हैं। ये ही दु ख रूप मे परिणत हो जाते हैं इसीलिए इन्हे शूल वहा। यद्यपि वफकृत पित्तकृत भी शूल होते हैं पर सबो का प्रभु वात ही है। इसी भाँति क्रोधकृत लोभकृत भी शूल होते हैं। पर प्रभु सबका काम ही है।

ममता दादु कडु इरषाई। हरष विषाद गरह वहुताई॥
पर सुख देखि जरनि सोइ छई। कुष्ट दुष्टता मन कुटिलाई॥१७॥

अर्थ ममता दाद और ईर्षा खुजली है। हर्ष और विषाद बहुत से ग्रह हैं। पराया सुख को देखकर जलना · क्षयी रोग है और दुष्टता मनकी कुटिलता कुष्ठ रोग है।

व्याख्या शरीर के मल से उत्पन्न जूँ लीख आदि से दद्रु मण्डलवाली फुनसियाँ होती हैं। इसके खुजाने मे बडा सुख मिलता है परन्तु पीछे से वडा कष्ट होता है। इसकी गिनती क्षुद्र कुष्ठ मे है।

ममता की भी यही दशा है। यह मन की क्षुद्र दुष्टता है। ममता के सघर्ष मे वडा सुख मिलता है पर अन्त मे कडा कष्ट होता है। शरीर से उत्पन्न बाल बच्चे तथा सम्बन्धियो मे ममता होती है। इसीलिए इसे दद्रु रोग से उपमित किया।

कण्डु का नाम ही खुजली है यह भी क्षुद्र कुष्ठ है। जूँ और लीख इसके भी कारण हैं। खुजली म छोटी फुनसियाँ वहुत होती हैं पर उनका कोई मण्डल नही होता। खुजली मे दाह होता है।

इसकी उपमा ईर्षा से दी गयी है। ईर्षा के विषयो की कमी नही है। इसीसे छोटी छोटी फुनसियो की भाँति मानसिक शरीर म विकार होता है। उन विकृतस्थलो से मलस्राव हाता है। उसम दाह होता है। इसलिए ईर्षा को कण्डु कहा।

यहाँ ग्रह से वैद्यक मे माने हुए ग्रह अभिप्रेत हैं। उसम देव, असुर, गन्धर्व, यक्ष, पिशाच, राक्षसादि अनेक ग्रह कहे गये है जो उन्माद उत्पन्न करते हैं। किसी ग्रह मे मनुष्य हर्षित होता है और किसी मे विषादयुक्त होता है पर है उन्माद ही। इसी भाँति मनुष्य से हर्ष विषाद की अनेक चेष्टाएँ होती हैं। पर वे सब उन्मत्त चेष्टा की

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भाँति परिणाम मे दुःख देनेवाली होती हैं। इसीलिए हर्ष विषाद को ग्रह की बहुतायत कहा।

पराया सुख देखकर जिसे जलन पैदा हो। समझ लीजिए कि उसे क्षयी की बीमारी हो गयी। ससार मे किसी न किसी को तो सुख रहेगा ही। अत उसकी जलन जा नही सकती। यह जलन उसके सद्गुणो का क्षय करती ही रहेगी। मत्सर और अविवेक रूपी ज्वर उसे सदा बना रहेगा। मानसिक शरीर का नाश करके ही छोडेगा। क्षयी छ प्रकार का होता है। काम क्रोधादि शत्रु भी छ माने गये हैं। अत मानसिक क्षयी का भी छ प्रकार का होना युक्तियुक्त है।

कुष्ठ रोग सब रोगो से विशेष घृणित है। इससे शरीर ही बिगड जाता है। उसके शरीर से दुर्गन्ध आती है। कोई उसे पास नही बैठने देता है।

कुटिलता ही कुष्ठ है। कुटिल का दुर्नाम होता है। कोई उसके साथ व्यवहार नही चाहता। उसके ससर्ग से दूसरो म भी कुटिलता आ जाती है। इसलिए कुटिलता को कुष्ठ रोग कहा।

अहकार अति दुखद डमरुआ। दभ कपट मद मान नहरुआ॥
तृस्ना उदर वृद्धि अति भारी। त्रिविध ईपना तरुन तिजारी॥१८॥

अर्थ अहकार अति दुःख देनेवाला डमरुआ रोग है और दम्भ, कपट, मद और मान नहरुआ है। तृष्णा विषय प्राप्ति की इच्छा अत्यन्त भारी उदर वृद्धि है और तीनो ऐषणाएँ बलवान तिजारी रोग हैं।

व्याख्या ससृत मूल सूल प्रद नाना। सकल सोकदायक अभिमाना। अहङ्कार से रूप बेढङ्गा हो जाता है। उसकी शकल देखने से चिढ होती है। डमरुआ सम्भवत गलगण्ड रोग को कहते हैं। बँधा हुआ शोथ जो गल मे मुष्क की भाँति लटकता है उसे गलगण्ड कहते हैं। गलगण्ड के रोगी को सूई के चुभने की सी पीडा होती है। उसको देखने से लोगो को चिढ सी मालूम होती है। रोग बढ जाने से श्वास लने मे पीडा होती है। इसलिए अहङ्कार को डमरुआ कहा।

नहरुआ स्नायुज रोग है। दोष कुपित होकर शोथ पूर्वक पैर म घाव कर देते हैं। उसम अनेक कीट एकत्रित होकर सूत्राकार म बाहर निकलते हैं और बढते जाते है। बडे यत्न से उस सूत्र की रक्षा की जाती है। यदि किसी प्रकार से टूट जाय तो बडा अनर्थ करता है।

इसी भाँति ढकोसला, छल, मद और मान ये सब सम्बद्ध होकर एक सूत्र म परिणत हो जाते हैं। ये बढते ही जाते हैं। बडे प्रयत्न से इनकी रक्षा करनी पडती है। यदि भङ्ग हो जाय तो बडा कष्ट होता है। इसलिए दम्भ कपट मद मान को नहरुआ रोग कहा।

विषय प्राप्ति की प्यास को तृष्णा कहते हैं। यह प्यास मिटती नही। दिन पर दिन बढती जाती है। शरीर घटता जाता है। बल क्षीण हुआ जाता है पर तृष्णा की वृद्धि नही रुकती। इसी भाँति जिसे उदर रोग हो जाता है उसका

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



शरीर और बल घटने लगता है पर उदर बढ़ता ही जाता है। इसीलिए तृष्णा को उदरवृद्धि से उपमित किया।

सुत वित लोक ईषना तीनी। केहिके मति इन्ह कृत न मलीनी। इन्ही तीनो एषणाओ को तरुण तिजारी से उपमित किया है। क्योकि तरुण तिजारी बडे वेग से जाडा देकर आती है। त्रिविध एषणा म भी रह रहकर भारी जडता उत्पन्न हो जाती है और छूटती भी बडी कठिनता से है।

जुग विधि ज्वर मत्सर अविवेका। कहँ लगि कहौ कुरोग अनेका ॥१९॥

अर्थ मत्सर और अविवेक दोनो प्रकार के ज्वर हैं। कहाँ तक कहूँ अनेक कुरोग हैं।

व्याख्या देह, इन्द्रिय और मन को ताप पहुँचानेवाला सब रोगो से ज्येष्ठ और बलवान् रोग ज्वर है। पहिले जो महेश्वर के कोप से उत्पन्न हुआ। उसे माहेश्वर कहते हैं। उसके आठ भेद हैं। पीछे से श्रीकृष्ण के कोप से वैष्णव ज्वर उत्पन्न हुआ। उसके पाँच भेद है। पहिले को आम और दूसरे को विषम कहते हैं।

जिस भाँति स्थूल शरीर मे आम ज्वर और विषम ज्वर होता है उसी भाँति सूक्ष्म शरीर मे अविवेक और मात्सर्य है। अविवेक भी देहेन्द्रिय मनस्तापी है और मत्सर स्वभावगत होकर सन्ताप पहुँचाया करता है। इसलिए आमज्वर से अविवेक उपमित है और मात्सर्य से विषमज्वर उपमित है।

इस भाँति अनेक कुरोग हैं। कहाँ तक गिनाया जाय। दिग्दर्शन के लिए ग्यारह रोगो का परिचय दिया गया है। जिसकी दवा नही है उसी को कुरोग कहते हैं।

दो एक व्याधि बस नर मरहिं, ए असाधि बहु व्याधि।
पीडहि सतत जीव कहुँ, सो किमि लहै समाधि ॥१२१ क.

अर्थ एक व्याधि के वश मे पड जाने से मनुष्य मर जाता है। ये तो असाध्य व्याधियाँ हैं और बहुत हैं। ये सदा जीवो को पीडा दिया करती हैं। फिर जीव समाधि को कैसे प्राप्त हो।

व्याख्या एक व्याधि के वश मे पड जाने पर फिर रक्षा नही है और यहाँ तो एक एक व्याधियाँ असाध्य हैं और सभी सबको हैं। अत प्रमाद से रक्षा नही और प्रमाद ही मृत्यु है। जितने रोग हैं सबकी पीडाएँ पृथक् प्रकार की हैं। उन पीडाओ का अनुभव करता हुआ पुरुष दिनरात विकल रहा है

जिस भाँति विकार रहित शरीर का होना शारीरिक स्वास्थ्य है। उसी भाँति मन का निर्विकार होना अर्थात् समाधि मानसिक स्वास्थ्य है। अत ऐसी अवस्था म समाधि सर्वथा असम्भव है।

दो नेम धर्म आचार तप, ज्ञान जज्ञ जप दान।
भेषज पुनि कोटिन्ह नहि, रोग जाहिं हरिजान ॥१२१॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : नियम धर्म आचार तप ज्ञान, यज्ञ, जप, दान, इत्यादि करोड़ों दवाएँ हैं। पर हे गरुड़जी ! रोग जाता नही।

व्याख्या : शौच, सन्तोष, तप, स्वाध्याय और ईश्वरप्रणिधान नियम हैं। श्रुति स्मृति सदाचारानुकूल आचरण ही आचार है। स्वधर्मानुष्ठान तप है। समदर्शित्व ज्ञान है देव प्रीत्यर्थं द्रव्य दान यज्ञ है। मन्त्र का वार वार पाठ जप है। अपना स्वत्व हटाकर दूसरे का स्वत्व स्थापन करना दान है। ये ही सब रोगो की औषध है और सम्पूर्ण वेद पुराण ओषधि से भरे पड़े हैं। पर इनसे रोग भले ही कुछ देर के लिए दब जाय पर निर्मूल नही होते। अतः ये प्रकृत औषध नही हैं।

एहि विधि सकल जीव जग रोगी। सोक हर्ष भय प्रीति बियोगी ॥
मानस रोग कछुक मै गाए। हहिं सबके लखि बिरलेन्हि पाए ॥१॥

अर्थ : इस विधि से ससार के सब जीव रोगी हैं। सबको शोक, हर्ष, भय, प्रीति और वियोग है। कुछ तो मानस रोग मैंने गाकर कहे। ये हैं तो सबको पर विरलों ही ने जान पाया है।

व्याख्या : इन रोगो से संसार के जीव जन्तु तक रोगी हैं। केवल मनुष्य चिकित्सा के लिए यत्न कर सकता है और प्राणी तो कुछ कर भी नही सकते। रोगों के कारण सब दुर्दशाग्रस्त हैं। कभी हर्ष से उछल पड़ते है। कभी शोक सागर में डूब जाते हैं। कभी भयभीत हो उठते हैं। कभी प्रेम में मग्न हो जाते हैं और कभी वियोग मे पड़े हाय हाय करते हैं।

मानस रोगों की यह विशेषता है कि रोगी को यह पता भी नही चलता कि हम रोग से दु खी हो रहे हैं। वह दु ख के कारण को वाहर खोजता है। ऐसा ही कोई विरला पुरुष जान पाता है कि मैं रुग्ण हूँ और मुझे अमुक रोग पीड़ा दे रहा है।

जानेतें छीजहि कछु पापी। नास न पावहिं जन परतापी ॥
विषय कुपथ्य पाइ अंकुरे। मुनिहु हृदय का नर बापुरे ॥२॥

अर्थ : जान लेने से ये पापी कुछ छीजते हैं। पर ये जनपरितापी नाश को नही प्राप्त होते। मुनि के हृदय में भी विषय कुपथ्य पाकर अङ्कुरित हो उठते हैं। मनुष्य बेचारे क्या हैं।

व्याख्या : काम क्रोधादि को पापी जनपरितापी कहा। क्योंकि ये सबको पीड़ित किया करते हैं और न चाहने पर भी बलात् पाप करा ही देते हैं। ये मित्र रूप से आकर सद्गुणो का हरण करते हैं। इन्हे लोग शत्रु रूप से नहीं जानते। यदि जान जायँ तो बलात् आ जाने पर भी उन पर अहित भावना होने से उनका वेग क्षीण हो जाता है। औषध के प्रयोग से प्रसुप्त ये तनु या विच्छिन्नावस्था को प्राप्त हो जाते हैं। पर निर्मूल नहीं होते।

मानस रोग के लिए विषय कुपथ्य है। सो जहाँ विषय की प्राप्ति हुई वहाँ ये

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मुनियो के हृदय मे भी अङ्कुरित हो उठते हैं। मनुष्य बेचारो की क्या गिनती है। यथा देखि रूप मुनि बिरति बिसारी। बडी बार लगि रहे निहारी।

रामकृपा नासहिं सब रोगा। जौ इहि भाँति बनै सजोगा॥
सद्गुरु बैद बचन बिस्वासा। सजम यह न बिषय कै आसा॥३॥

अर्थ यदि इस भाँति सयोग जुट जाय तो रामकृपा से सब रोग नष्ट हो जाते हैं। सद्गुरु वैद्य के वचन पर विश्वास हो। सयम यह है कि विषय की आशा न हो।

व्याख्या सूर्य नारायण की कृपा तो बराबर होती ही आती है। पर रूई का गट्ठा नही जलता। सूर्यकान्तमणि और जलानेवाला दोनो इकट्ठे हो जाय तो गट्ठा जला जलाया ही है। इसी भाँति रामकृपा तो बराबर होती चली आ रही है। पर कोई आत्मकृपावाला सूर्यकान्तमणि लेकर जलाने आवे तो ये क्लेश जले जलाये ही हैं।

सब रोगो का जड मोह है। उसके नाश होने पर सब रोग अपने आप नष्ट हो जाते है। वैद्य, अधिकारी रोगी, सयम, औषध और अनुपान इकट्ठे हो जाँय तो सिद्धि निश्चित है।

जिसके वचन से मोह का नाश हो वह सद्गुरु हैं। जिस भाँति वैद्य रोगी के रोग को पहिचानकर उसकी अवस्था के अनुसार औषध का विधान करता है। उसी भाँति सद्गुरु शिष्य के मानसिक रोगा का तारतम्य समझकर तदनुसार मन्त्र ध्यानादि की व्यवस्था करता है। वैद्य के यदि निदान मे चूक हुई तो उपयुक्त औषध नही दे सकेगा। अत सद्वैद्य की ही चिकित्सा करनी चाहिए। यहाँ सद्गुरु ही सद्वैद्य है। उसके वचन पर विश्वास होना चाहिए और उसे जिस भाँति रोगी को कुपथ्य से बचना आवश्यक है। उसी भाँति साधक को भी विषय की आशा का परित्याग आवश्यक है।

रघुपति भगति सजीवनि मूरी। अनूपान श्रद्धा अति रूरी॥
एहि बिधि भलेहि रोग नसाही। नाहित जतन कोटि नहि जाही॥४॥

अर्थ रघुपति भक्ति ही सजीवनी बूटी है और अतिसुन्दर श्रद्धा ही अनुपान है। इस विधि से सुभीते के साथ रोग नष्ट होते हैं। नही तो कोटि यत्न से भी नही जाते।

व्याख्या जिस भाँति असाध्य रोगो के प्रशमन मे सञ्जीवनी बूटी ही समर्थ है। उसी भाँति इन मानसिक रोगो के निर्मूलन मे सगुण ब्रह्म रामकी भक्ति ही समर्थ है। वेद पुराण रूपी पावन पर्वत म ही यह बूटी प्राप्त है। इस बूटी के भी सजातीय और स्वगत भेद है। इसी भाँति उपासना की प्रक्रियाओ म भी भेद है। वैद्यरूपी सद्गुरु ही जानते हैं कि कौन सा मन्त्र किस प्रकृति के पुरुष के अनुकूल होगा इत्यादि।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तथा अतिशुद्ध सात्त्विकी श्रद्धा के साथ दीक्षा ग्रहण तथा अनुष्ठान ही अनुपान है। औषध के प्रभाव को यथेप्सित कार्य करने मे प्रवृत्त करता है।

असाध्य रोगो से ग्रस्त मन भक्ति करने में सर्वथा असमर्थ है। अतः रोगो को दूर करने के लिए उसे सद्गुरु द्वारा राममन्त्र की दीक्षा लेनी चाहिए। यथा : वेगि विलम्ब न कीजिये लीजै उपदेस। महामन्त्र जपिये सोई जो जपत महेस। विनय गुरु के उपदेश पर विश्वास करके चलना चाहिए। सात्त्विकी श्रद्धा के साथ अनुष्ठान करना चाहिए। यही विधि है। श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ की दी हुई दीक्षा अमोघ है। उसका प्रभाव विना पडे नही रह सकता। भक्ति के जाग उठने पर काम क्रोधादि से भय नही रह जाता। भक्त के सामने सदा सगुण ब्रह्म की दिव्यातिदिव्य कल्याणमयी मूर्ति रहती है। स्थूल विषय उसे नही जँचते। इस विधि से अल्पायास से ही रोगो का नाश होता है। अन्य साधनो से निर्मूल हो नही सकते।

जानिअ तब मन बिरुज गोसाँई। जब उर बल बिराग अधिकाई ॥
सुमति छुधा बाढै नित नई। बिषय आस दुर्बलता गई ॥५॥

अर्थ : तब मनको नीरोग समझना जब हृदय मे विरागरूपी बल बढे। हे गोसाईं! जब सुमतिरूपी भूख नित्य नयी बढने लगी और विषयाशारूपी दुर्बलता चली गयी।

व्याख्या : जिस भाँति स्थूल शरीर मे भूख है। उसी भाँति मानसिक शरीर मे सुमति है। यही भजन के लिए जलन पैदा करती है। यही भजन का परिपाक करके विरागरूपी बल बढाती है। सञ्जीवनी भक्ति कुमति का नाश करके सुमति बढ़ाती है। रोग विनिर्मुक्त होने पर नित्य नयी भूख बढती है। इसी भाँति मानसिक रोग नष्ट होने पर भजन की ओर प्रवृत्ति बढती ही जाती है। विषय की आशा को तो सयम के समय से ही छोड रक्खी थी। पर वह गयी नही थी। विराग बल के बढ जाने से वह आप से आप चली जाती है। रोग विनिर्मुक्त मन का यही लक्षण है कि विराग बढ़े और सरकार के चरणो मे अनुराग बढता जाय।

बिमल ग्यान जल जब सो नहाई। तब रह राम भगति उर छाई ॥
सिव अज सुकसनकादिक नारद। जे मुनि ब्रह्म बिचार बिसारद ॥६॥

अर्थ : निर्मल ज्ञान जल से जब वह नहाता है। तब रामभक्ति उसके हृदय मे छा जाती है। शिव, ब्रह्मा, शुक, सनकादि, नारद और जितने मुनि ब्रह्म विचार में विशारद हैं।

व्याख्या : संशय रहित ज्ञान ही गुरु उपदेश का फल है। जबतक भजन करते करते मन मे प्रबल वैराग्य न हो जाय तबतक वह निर्मल ज्ञान का अधिकारी नही है। उसे ज्ञान जल से स्नान न कराना चाहिए। भली भाँति रोग विनिर्मुक्त तथा पुष्ट देखकर तभी वैद्य रोगविनिर्मुक्त स्नान कराते हैं। गुरुजी ज्ञानोपदेश करते हैं तब मनोमल, शोक, हर्ष, भय प्रीति और वियोग मिट जाता है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



तब सिद्धा भक्ति हृदय मे छा जाती है और जब भक्ति बस गयी तब माया की प्रभुता नही चलती। यथा :

सेवत साधु द्वैत भय भागे। श्री रघुवीर चरन लय लागे॥
अनुराग सों निज रूप जो जग ते बिलच्छन देखिये।
सतोष सम सीतल सदा दम देहवत न लेखिये।
निरमल निरामय एकरस तेहि हरप सोक न ब्यापई।
त्रैलोक पावन सो सदा जाकी दसा ऐसी भई। विनय

' शिवजी ब्रह्मदेव, शुकदेव, सनकादिक और नारद ये महात्मा ब्रह्मविद्या सम्प्रदाय प्रवर्तक हैं और भी जितने मुनि ब्रह्म विचार मे विशारद हैं। जो ये लोग कहे वही प्रमाण है। सो '

सब कर मत खगनायक एहा। करिअ राम पद पंकज नेहा॥
स्रुति पुरान सब ग्रन्थ कहाहीं। रघुपति भगति बिना सुख नाहीं॥७॥

अर्थ हे खगनायक! सबका यही मत है कि रामजी के चरण कमलों मे प्रेम करना चाहिए। वेद पुराण और सब ग्रन्थ कहते हैं कि रघुपति की भक्ति के बिना सुख नही है।

व्याख्या : इन सभी महामहिम महात्माओ का यह मत है कि राम आनन्द सिन्धु हैं। सुख की राशि हैं। उनके चरणकमलो मे प्रेम करने से सब सुख तुरन्त सुलभ होते हैं। यथा बिनु बिराग जप जाग जोग ब्रत बिनु तप बिनु तनु त्यागे। सब सुख सुलभ सद्य तुलसी प्रभुपद प्रयाग अनुरागे। सभी आप्तो का ऐकमत्य कहकर अब सभी आप्तवाक्यो का ऐकमत्य कहते हैं कि वेद पुराण तथा सब सद्ग्रन्थो का यही मत है कि बिना रघुपतिभक्ति के सुख नही है और सुख की चाह सभी को रहती है। अतः रघुपति भक्ति का समर्थन सब महात्मा एक स्वर से करते हैं। यथा : इहै कह्यो सुनु बेद चहूँ। श्री रघुबीर चरन चिंतन तजि नाहिन ठौर कहूँ।

कमठ पीठि जामहि बरु बारा। बन्ध्यासुत बरु काहुहि मारा॥
फूलहि नभ बरु बहु बिधि फूला। जीव न लह सुख हरि प्रतिकूला॥८॥

अर्थ : चाहे कछुए के पीठ मे बाल जमे। चाहे वन्ध्या स्त्री का बेटा किसी को मारे चाहे अकाश मे अनेक प्रकार के फूल फूलें पर जीव हरि के प्रतिकूल होने से सुख नही पाता।

व्याख्या : कछुए को बाल होता ही नही फिर उसकी पीठ मे तो हड्डी है। उसमे बाल जम ही नही सकता। सो ऐसी अनहोनी बात चाहे हो जाय। इसी भाँति वन्ध्या को बेटा होना और उसका किसी को मारना किसी प्रकार से सम्भव ही नही। आकाश मे फूल फूलना भी महा असम्भव है। सो ऐसी न घटनेवाली घटनाएँ चाहे घट जायँ। पर हरि के प्रतिकूल होने पर जीवको सुख मिले यह बात हो नही सकती। यथा : मातु मृत्यु पितु समन समाना। सुधा होइ बिप सुनु हरिजाना। मित्र करै सत

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



रिपु कै करनी। ता कहँ विबुध नदी वैतरनी। सब जग ताहि अनलहु ते ताता। जो रघुबीर बिमुख सुनु भ्राता।

तृषा जाइ बरु मृगजल पाना। बरु जामहि सससीस बिषाना॥
अंधकार बरु रबिहि नसावै। राम बिमुख न जीव सुख पावै॥९॥

अर्थ : चाहे मृग जलपान से प्यास चली जाय और चाहे खरगोश के सिर मे सीग जम जाय। चाहे अन्धकार सूर्य का नाश कर दे पर राम के विमुख होकर जीव सुख नही पाता।

व्याख्या : मरुभूमि मे सूर्य की प्रखर किरणो के चमक में जल ही जल दिखायी देता है। उसको पीने के लिए दौड़ते मृग मर जाते हैं। उसीको मृगजल कहते हैं। वहाँ जल का एक बूंद भी नही। वहाँ प्यास और बढती है। प्यास बुझाने की तो वहाँ कोई बात ही नहीं है। केवल जल का मिथ्या भान होता है।

खरगोश के सीग का होना मिथ्या नही। तीन काल मे असत् है। उसका मिथ्या भान भी नही होता। अन्धकार सूर्य के उदय होते ही नष्ट हो जाता है। वह सूर्य का नाश क्या करेगा? सो चाहे मृगजल से प्यास बुझे : खरगोश को सीध हो और अन्धकार सूर्य का नाश कर दे पर रामविमुख होने से जीव को सुख नही मिल सकता। जो आनन्द सिन्धु सुखराशि हैं। सीकर से लेकर त्रैलोक्य का प्रकाश करता है। उसीके जो विमुख हो गया वह सुख कैसे पावेगा। उसकी सम्पत्ति प्रभुताई चली जायगी। यथा : राम विमुख सम्पति प्रभुताई। जाइ रही पाई बिनु पाई।

हिम ते अनल प्रगट बरु होई। बिमुख राम सुख पाव न कोई॥१०॥

अर्थ : चाहे पाला से अग्नि प्रकट हो जाय पर राम के विमुख होने से कोई सुख नही पाता।

व्याख्या : पाला अग्नि के सन्निकट नही जाता। उससे अग्नि क्या पैदा होगी? इसी भाँति जिसके प्राणाराम राम विमुख हुए उसके सन्निकट सुख नही जा सकता। उसे सुख की प्राप्ति कहाँ से होगी? यथा : सुनु दसकठ कहौ प्रन रोपी। विमुख राम त्राता नहि कोपी।

दो. बारि मथे घृत होइ बरु, सिकतातें बरु तेल।
बिनु हरिभजन न भव तरिअ, यह सिद्धान्त अपेल॥१२२ क.

अर्थ : जल का मन्थन करनेसे चाहे घी निकले। बालू से चाहे तेल निकले पर बिना हरिभजन संसार सन्तरण नही हो सकता। यह सिद्धान्त अटल है।

व्याख्या : जो वस्तु जिसमे सूक्ष्म रूप से अवस्थान करती है। वही प्रयत्न करने पर उसमे से निकलती भी है। दूध मे घृत सूक्ष्म रूप से अवस्थान करता है तिल मे तेल सूक्ष्म रूप से अवस्थान करता है। अतः प्रयत्न करने पर प्रगट भी होत

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



है। जल में घी सूक्ष्म रूप से भी अवस्थान नहीं करता। बालू में तेल सूक्ष्म रूप से भी अवस्थान नहीं करता। अतः हज़ार प्रयत्न करने से भी नहीं निकल सकता। इसी भाँति भव सन्तरण का सामर्थ्य हरि भजन में निहित है। अतः जिस साधन में हरि भजन निहित नहीं है उससे संसार सन्तरण नहीं हो सकता। यह तत्त्वदर्शियों का निश्चय है। अतः इसे अटल सिद्धान्त कहते हैं। यथा : नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सतः। उभयोरपि दृष्टोऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्वदर्शिभिः।

यहाँ पाँच बार सुख का निषेध किया। यथा : १. भगति बिना सुख नाही २ जीवन लह सुख ३. न जीव सुख पावै ४. सुख पाव न कोई और ५. न भव तरिअ। इसका भावार्थ यह कि बिना हरि भजन के पाँचों प्रकार के सुख : १. योगानन्द २ आत्मानन्द ३. अद्वैतानन्द ४. विद्यानन्द और ५. विषयानन्द मे से किसी का भी होना सम्भव नहीं। यह क्रम से दिखलाया।

दो. मसकहि करै बिरंचि प्रभु, अजहि मसक ते हीन।
अस बिचारि तजि संसय, रामहि भजहि प्रबीन॥१२२॥

अर्थ : प्रभु मच्छर को ब्रह्मा बनाते हैं और ब्रह्मा को मच्छर से भी छोटा कर देते हैं। ऐसा विचारकर सशय रहित हो जानकार लोग राम को भजते हैं।

व्याख्या : सरकार का सामर्थ्य कहते हैं। वे मच्छर को ब्रह्मदेव बनाते हैं। ब्रह्मदेव को मच्छर से भी तुच्छ बना देते हैं। ऐसी उनकी प्रभुता है। जो आज ब्रह्मदेव हैं निश्चय किसी समय वे मसक योनि मे थे और जो आज मच्छर हैं सम्भव है कि वह किसी समय ब्रह्मा रहा हो। क्योंकि ब्रह्मलोक से भी पतन सुना जाता है। आब्रह्मभुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन। ते पाइ सुर दुर्लभ पदादपि परत हम देखत हरी।

अनन्तकाल से हमलोग कल्याण के लिए प्रयत्न करते चले आये हैं। पर जिसे कल्याण कहते हैं वह तो नहीं हुआ। अतः समर्थ का आश्रय ग्रहण ही एक मात्र उपाय है। प्रवीण लोग इसलिए सशय छोड़कर राम को भजते हैं। संशय छोड़ने से छूटता है। इसीलिए शकरजी कहते हैं : तजि संसय भजु राम पद।

श्लो. विनिश्चितं वदामि ते, न अन्यथा वचासि मे।
हरिं नरा भजंति येऽतिदुस्तरं तरंति ते॥

अर्थ : मैं तुमसे निश्चय बात कहता हूँ। मेरी बातें अन्यथा नहीं होतीं। जो नरहरि को भजते हैं वे अति दुस्तर को तर जाते हैं।

व्याख्या : भुसुण्डिजी तर्क वितर्क से अच्छी तरह से संशयापनोदन करके अब सबका निर्गलितार्थ अपना सिद्धान्त कहते हैं और श्रोता की आस्था को दृढ करने के लिए यह भी कहते हैं कि मेरी बातें अन्यथा नहीं होती। अतः सन्देह न करो। जो

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


नर हरि का भजन करते हैं वे अतिदुस्तर भवसागर को तर जाते हैं। उनका बेड़ा पार है। इसमें सन्देह नहीं है।

## परिशिष्ट

कहेउ नाथ हरिचरित अनूपा। ब्यास समास स्वमति अनुरूपा ॥
स्रुति सिद्धान्त इहै उरगारी। राम भजिय सब काम बिसारी ॥१॥

अर्थ : हे नाथ! मैंने अनूप हरि चरित अपनी मति के अनुसार विस्तार और संक्षेप से कहा। हे उरगारि! वेदों का यही सिद्धान्त है कि सब काम भुलाकर राम को भजे।

व्याख्या : हरिचरित्त वेदमार्ग संस्थापन के लिए होता है। एवं वेदोदित सम्पूर्ण आदेश स्वयं पालन करके जीते जागते रूप मे भगवान् सबके सामने आदर्श खड़ा कर देते हैं। हरि ने रामावतार में जो चरित किया सो वस्तुतः अनूप है। कही किसी अवतार में ये बातें नही पायी जाती। यथा : ऐसी अनूप कहै तुलसी रघुनायक की अगुनी गुन गाहै। आरत दीन अनाथ को रघुनाथ करें निज हाथ की छाहें : कवितावली। जगत् से विलक्षण रामजी के नाम, रूप, लीला और धाम सभी अनूप हैं। उन्हें अपनी बुद्धि के अनुसार कही विस्तार से कहा है और कही सक्षेप से कहा है।

काम का अर्थ सुख भी है। जबतक दूसरे सुख याद हैं तबतक भजन नही हो सकता। अतः विषय से मन फेरकर ऐसा भगवान् मे लगावे कि सचमुच विषय और कार्य सब विस्मृत हो जायँ। यही वेद का सिद्धान्त है। ऐसे भूलनेवाले का कामकाज भगवान् को याद रहता है। यथा : अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्य्युपासते। तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्। करउँ सदा तिन्हकै रखवारी। जिमि बालकहि राख महतारी।

प्रभु रघुपति तजि सेइय काही। मोहिसे सठ पर ममता जाही ॥
तुम्ह बिज्ञान रूप नहि मोहा। नाथ कीन्हि मोपर अति छोहा ॥२॥

अर्थ : रघुपति : ऐसे प्रभु को छोड़कर किसकी सेवा करें जिसकी मुझ जैसे सठ पर ममता है। तुम विज्ञान रूप हो। तुम्हें मोह नही है। हे नाथ! तुमने मुझपर बड़ा छोह किया।

व्याख्या : सठ सेवक महा दुःखदायी होता है। उसपर ममता नही हो सकती। वह तो मालिक के लिए शूल के समान है। सेवक सठ नृप कृपिन कुनारी। कपटी मित्र सूल समचारी। फिर भी सेवक होने के नाते रामजी की उनपर ममता रहती है। अतः कहते हैं कि राम में ही स्वामी के सब गुणों का उत्कर्ष है। अतः वे ही सेवन करने योग्य हैं। उनके ऐसा भी कोई दूसरा प्रभु होता तो उन्हे छोड़कर उसीको भजते। यहाँ तो उनके समान ही कोई नही। बढकर कहाँ से मिलेगा ?

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भुसुण्डिजी गरुड़जी से कहते हैं कि तुम वेदमय हो : महा ज्ञानी हो। यथा : सामध्वनिशरीरस्त्व वाहन: परमेष्ठिन:। मात्स्ये। गरुड महा ज्ञानी गुन रासी। हरि सेवक अति निकट निवासी। ज्ञानी के ही सम्मुख मोह नही ठहरता तो विज्ञान रूप महा ज्ञानी के सम्मुख कैसे ठहरेगा।

भुसुण्डिजी ने इतना उपदेश भी दिया। फिर भी यह भाव बना है कि गरुड़जी को मोह नही। वे केवल मुझे बड़ाई देने के लिए यहाँ आये हैं। यही सन्त का लक्षण है : कोमल बानी संत की स्रवै अमृत मय आइ। तुलसी ताहि कठोर मन सुनत मैन होइ जाइ।

पूँछिहु रामकथा अति पावनि। सुक सनकादि संभु मन भावनि ॥
सत संगति दुर्लभ संसारा। निमिष दंड भरि एकौ बारा ॥३॥

अर्थ : तुमने अति पावनी रामकथा पूछी जो शुक सनकादि और शम्भु की मन भावनी है। संसार में निमिष दण्ड भर एक बार भी सत्सङ्ग दुर्लभ है।

व्याख्या : तुम समझते थे कि तुम्हे मोह था। पर मेरी समझ मे वह मोह नही था विद्या थी। यथा : प्रभु सेवकहिं न व्याप अविद्या। प्रभु प्रेरित व्यापै तेहि बिद्या। क्योंकि जिसे रामकथा की जिज्ञासा है उसे मोह कहाँ ? इसलिए मैं कहता हूँ कि तुम विज्ञान रूप नहि मोहा। जो बात शुक सनकादि शम्भु को अच्छी लगती है वही तुम्हे भी अच्छी लगी। जिसे मोह होता है उसकी रुचि बिगड़ जाती है। यथा : काम भुजंग डसत जब जाही। विषय निंब कटु लगत न ताही।

देखु गरुड़ निज हृदय बिचारी। मै रघुबीर भजन अधिकारी ॥
सकुनाधम सब भाँति अपावन। प्रभु मोहि कीन्ह बिदित जग पावन ॥४॥

अर्थ : हे गरुड़जी ! अपने हृदय मे विचारकर देखो क्या मैं रघुवीर के भजन का अधिकारी हूँ। मैं पक्षियो मे अधम सब भाँति से अपवित्र हूँ : प्रभु ने मुझे प्रख्यात जगपावन बना दिया।

व्याख्या : मुख से भजन करने की बात करना बहुत सुगम है। पर वस्तुत: भजन करना बड़ा कठिन है। योगी ही यथार्थ भजन कर सकता है : सा कस्मै परमप्रेमरूपा च। भक्ति परमेश्वर मे परमप्रेमरूपा है और निरोधरूपा है। यथा :

रघुपति भगति करत कठिनाई।
कहत सुगम करनी अपार जानै सोइ जेहि बनि आई ॥
जो जेहि कला कुसल ताकहँ सोइ सुलभ सदा सुखकारी।
सफरी सनमुख जल प्रवाह सुरसरी बहै गज भारी ॥
सक्ल दृश्य निज उदर मेलि सोवै निद्रा तजि जोगी।
सोइ हरिपद अनुभवै परम सुख अतिशय द्वैत वियोगी ॥
सोक मोह भय हरख दिवस निसि देस काल तहँ नाही।
तुलसीदास यहि दसा हीन संसय निर्मूल न जाही ॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


जब एकाग्र और निरुद्ध चित्त में भक्ति की योग्यता है तब सब से भयभीत रहनेवाले मन्दमति काग को वह अधिकार कैसे प्राप्त हो सकता है जो मनुष्य को भी दुर्लभ है।

भुसुण्डिजी कहते हैं कि मैं पक्षियों में चाण्डाल कौआ सभी भाँति से अपावन हूँ। कौए की जाति अपावन, आहार अपावन, बुद्धि अपावन, स्वभाव अपावन, रुचि अपावन, करणी अपावन, सो प्रभु ने मुझे प्रसिद्ध जग पावन कर दिया। आप कैलास से यहाँ मुझसे मिलने आये।

दो. आजु धन्य मैं धन्य अति, जद्यपि सब विधि हीन।
निज जन जानि राम मोहि, संत समागम दीन ॥१२३ क.

अर्थ : सब विधि हीन होने पर भी आज मैं धन्य हूँ अति धन्य हूँ जो अपना जन जानकर रामजी ने सन्त समागम दिया।

व्याख्या : पीपर के नीचे ध्यान पाकर के नीचे जप यज्ञ आम के नीचे मानस पूजा करने के बाद वट तले कथा कहने के लिए भुसुण्डिजी आये। उसी समय गरुड़जी का आगमन हुआ। गरुड़जी को त्रेता में मोह हुआ। द्वापर ब्रह्मलोक के आते जाने में बीता। ब्रह्मलोक के क्षण बीतने में यहाँ युग बीत जाता है। काल का मान सर्वत्र बराबर नहीं। पितरों का एक दिनरात मनुष्य मान से एक महीने का होता है। देवताओं का एक दिनरात मनुष्यों का १२ महीने का होता है। ब्रह्मदेव का दिनरात १४ मन्वन्तर का होता है। २७ कल्प तक कथा कहनेवाले भुसुण्डिजी का एक दिन सम्भवत: चार युगों का होता है। प्रत्येक युगों के धर्मों का निर्वाह करते हुए भुसुण्डिजी कलियुग में रामकथा कहते हैं। अत: दिन के अन्त में राम कथा प्रारम्भ भी हुई और समाप्त भी हो गयी। इसीलिए भुसुण्डिजी आजु धन्य मैं धन्य अति कहते हैं। उस समय भुसुण्डिजी की आयु उनके मान से : ३६५ × २७ = ७५ : ७५ वर्ष के ऊपर थी। क्योंकि इतने दिन तो उन्हें नीलशैल पर रहते हो गया था।

सो भुसुण्डिजी कहते हैं कि इतने दिन मुझे यहाँ रहते हुआ। पर आज मैं अति धन्य हुआ क्योंकि आज मुझे रामजी की कृपा से आप से सन्त का समागम हुआ। यथा : धन्य घरी सोइ जेहि सत संगा। संत विसुद्ध मिलहिं परि तेही। चितवहिं रामकृपा करि जेही।

दो. नाथ जथामति भाखेउँ, राखेउँ नहि कछु गोइ।
चरित सिंधु रघुनायक, थाह कि पावै कोइ ॥१२३॥

अर्थ : हे नाथ ! मैंने अपने मति के अनुसार कहा कुछ छिपाया नहीं। रघुनाथ के चरित सिन्धु का कौन थाह पा सकता है।

व्याख्या : यह न समझना कि इतना ही रामचरित है। राम की कथा के

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



विस्तार का अन्त नही है। अतः यह रीति है कि अपनी बुद्धि के अनुसार भगवान् के गुणो का गान किया जाय।

महात्मा लोग गूढ तत्त्व का वर्णन नही करते। परन्तु आर्त अधिकारी से छिपाते भी नही। सो कही आपको यह सन्देह न हो कि कुछ गूढ तत्त्व भुशुण्डि ने छिपा रक्खा। इसलिए कहे देता हूँ कि मैंने छिपाया कुछ नही। मेरी जानकारी ही इतनी थी। बात यह है कि समुद्र का थाह और पार चाहे कोई पा जाय पर रघुनायक के चरित्र सिन्धु का पार कोई पा नही सकता।

सुमिरि राम के गुनगन नाना। पुनि पुनि हरख भुसुंडि सुजाना ॥
महिमा निगम नेति करि गाई। अतुलित बल प्रताप प्रभुताई ॥१॥

अर्थ : रामजी के नाना गुणों का स्मरण करके बार बार सुजान भुशुण्डिजी हर्षित हुए : और बोले कि : वेदने नेति नेति कहकर महिमा का गान किया : रघुराई का : बल प्रताप प्रभुताई अतुलित है।

व्याख्या : आत्मारामाश्च मुनयो निर्ग्रन्था अप्युरुक्रमे। कुर्वन्त्यहैतुकी भक्तिमित्थंभूतगुणो हरिः। आत्माराम मुनि लोग जिनकी चित् जड ग्रन्थि खुल गयी है वे भी परमेश्वर मे अहैतुकी भक्ति करते हैं क्योकि हरि के गुणगण ही ऐसे हैं। अतः उनके गुण गणों का स्मरण करके भुसुण्डिजी बार बार हर्षित होते हैं। पुनः पुनः उनको पुलक हो रहा है। भुसुण्डिजी बोले :

सरकार की ऐसी महिमा है कि उसका गान वेद भी नेति नेति कह के करता है। न वह स्थूल है न सूक्ष्म है। उसे इदमित्थ करके शृङ्गिग्राह न्याय से कुछ नही कह सकते। जिस भाँति उनकी महिमा का अन्त नही उसी भाँति उनके बल का भी नाप जोख नहीं। क्योकि जिसे जो कुछ बल है वह उन्ही के बल का लवलेश है। यथा : सुनु रावण ब्रह्मांड निकाया। पाइ जासु बल बिरचति माया। जाके बल बिरंचि हरि ईसा। पालत सृजत हरत दससीसा। इत्यादि।

सामर्थ्य होने से ही प्रताप होता है। पर प्रताप बल से अलग काम करता है। यथा : काहू बैठन कहा न ओही। राखि को सकै राम कर द्रोही।

सिव अज पूज्य चरन रघुराई। मोपर कृपा परम मृदुलाई ॥
अस सुभाउ कहुँ सुनौ न देखौं। केहि खगेस रघुपति सम लेखौं ॥२॥

अर्थ : रघुराई के चरण शिव ब्रह्मा से पूज्य हैं फिर भी मुझ पर परम कृपा और परम मृदुता है। ऐसा स्वभाव न कही सुना जाता है न देखा जाता है। हे खगेश ! किसे रघुपति के समान माना जाय।

व्याख्या : ऐसी महिमा है कि एक देव को दोनों चरणो के पूजन का अवसर नही मिलता। एक को पूजा शिवजी करते हैं तो दूसरे को ब्रह्मदेव करते हैं। महिमा ऐसी, बल ऐसा, प्रताप ऐसा, पूजा ऐसी, फिर भी कोमलता ऐसी कि मुझ काग पर ऐसी कृपा की कि अपने पार्षद साक्षात् गरुड़जी को मेरे पास भेजकर मुझे बड़ाई दी।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


मुझे सत्सङ्ग दिया यह प्रभु की बड़ी कृपा है और मोह जिससे सन्त को मेरे यहाँ कथा सुनने को भेजा यह मृदुता है। जिसमें मुझे मालूम भी न हो कि मेरे ऊपर कृपा हो रही है।

ऐसा स्वभाव न तो कहीं इतिहास पुराण में सुना गया और न तो देखने में आया। स्वामी सेवक का ऋणी किसी देश में नहीं होता। पर ये प्रभु अपने को सेवक का ऋणी भी मान लेते हैं। ऐसा दीन दयाल कोई है नही अतः उनके समान के लिए जिज्ञासा ही रह गयी।

साधक सिद्ध बिमुक्त उदासी। कवि कोबिद कृतग्य संन्यासी ॥
जोगी सूर सुतापस ग्यानी। धर्म निरत पंडित बिग्यानी ॥३॥

अर्थ : १. साधक २. सिद्ध ३. विरक्त. ४. उदासी ५. कवि ६. कोविद ७. कृतज्ञ और ८. संन्यासी ९. योगी १०. शूर ११. अच्छे तपस्वी १२. ज्ञानी १३. धर्म निरत और १४. विज्ञानी पण्डित।

व्याख्या : जो सिद्धि के लिए प्रयत्नशील है : उन्हें साधक कहते हैं। जिन्हें सिद्धि प्राप्त हो गई है : वे सिद्ध कहलाते हैं। इस लोक और परलोक के सुख की इच्छा न रखनेवाले को विरक्त कहते हैं। वैराग्यवान् गृहस्थ को उदासी कहते हैं। क्रान्तिदर्शी को कवि कहते हैं। दूरदर्शी को कोविद कहते हैं। उपकार माननेवाले को कृतज्ञ कहते हैं और त्यागी को संन्यासी कहते हैं।

अविद्या रात्रि में जागनेवाले को योगी कहते हैं। मृत्यु को तृण समझनेवाले को शूर कहते है। उपवासादि व्रत करनेवाले को तापस कहते है। अभेददर्शी को ज्ञानी कहते हैं। वर्णाश्रम धर्म में निरत वेद पथ पर चलनेवाले को धर्म निरत कहते हैं। परमार्थज्ञाता पण्डित को विज्ञानी पण्डित कहते है।

तरहिं न बिनु सेए मम स्वामी। राम नमामि नमामि नमामी ॥
सरन गयें मो से अघरासी। होंहि सुद्ध नमामि अबिनासी ॥४॥

अर्थ : मेरे स्वामी की बिना सेवा किये नही तर सकते। अतः रामजी को बारम्बबार नमस्कार है। जिसके शरण जाने पर मुझसे पापपुञ्ज भी शुद्ध होते हैं। ऐसे अविनाशी को नमस्कार है।

व्याख्या : साधक से लेकर विज्ञानी तक चौदहो की परम सिद्धि रामभक्ति पर निर्भर है। बिना रामभक्ति के भवसागर नही तर सकते। माया के वश मे आही जाते हैं। अतः ईश्वरकृपा के लिए भजन परमावश्यक है। उनके कर्मों का पुण्य फल तो भगवान् देगा ही। पर उस फल से भवसन्तरण नही हो सकता। सन्तरण तो भक्ति से ही होता है। अतः मनसा वाचा कर्मणा प्रणाम करते हैं। अतः तीन बार नमामि कहा।

कैसा भी पापी हो कभी यह न समझे कि मेरा पाप क्षमा नहीं किया जा सकता। पापी का पाप करुणाकर की करुणा से बड़ा नही हो सकता। ब्रह्महत्या से

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



बड़ा पाप नही है। प्राणिमात्र के द्रोह से बढकर और बडा अघ कौन सा होगा? ऐसा का पाप भी शरण जाने से कट जाता है। जीव जभी से भजन करना प्रारम्भ करेगा भगवान् उसके अनन्त जन्मो का पाप नष्ट करके अपना लेंगे। वे गई बहोरि हैं पूर्व के सभी श्वांस को भजन मे जोड देते हैं। जीव का उद्धार कर ही देते हैं। अत शीघ्र ही श्रीहरिशरण हो के भजन नामरटन परमावश्यक है। द्रष्टव्य गीतावली विभीषणशरणागति सुन्दरकाण्ड।

जो स्वय विनाशी है वह दूसरे की क्या रक्षा कर सकता है? उस अविनाशी के प्रणाम की महा महिमा है। अत उसी को प्रणाम करते हैं। शरणागति मे यह आवश्यक है कि वह अपने को अपराधो का आलय अकिञ्चन और अगतिक माने और सरकार से प्रार्थना करे कि आप ही मेरे लिए उपायभूत हो जायँ। यथा • अहमेवापराधानामालयोऽकिञ्चनोऽगति। त्वमेवोपायभूतो मे भवेति प्रार्थना मति। अत भुसुण्डिजी अपने को बडा भारी अघराशि कहकर अपना शुद्ध होना शरणागत के शुद्ध होने के उदाहरण रूप म उपस्थित करते हैं।

दो जासु नाम भव भेषज, हरन घोर त्रय सूल।
सो कृपाल मोहि तोपर, सदा रहहु अनुकूल॥१२४ क.

अर्थ जिनका नाम ससार रोग के लिए औषध है। जो आधिदैविक आधिभौतिक आध्यात्मिक तीनो शूलो को हरण करनेवाला है वह कृपालु मेरे ऊपर तथा तुम पर अनुकूल रहे।

व्याख्या नाम की अचित्य शक्ति है। यथा नाम प्रभाव सही जो कहै सोई सिला सरोरुह जाम्यौ। जिसके नाम से ज्ञानोत्पत्ति होती है काशी मे उसी नाम के बल से शिवजी मुक्ति वितरण करते हैं। वही तीनो शूल का हरण करनेवाला है। तापो की करणभूता तामसिक और राजसिक वृत्तियाँ हैं। वे ही क्रमश मूढा और घोरा कहलाती है। नामको भवभेषज कहकर उससे मूढा वृत्तिका नाश दिखलाया और घोर शब्द से राजसिक वृत्ति का भी नाश व्यञ्जित किया।

दो सुनि भुसुडि के बचन सुभ, देखि रामपद नेह।
बोलेउ प्रम सहित गिरा, गरुड बिगत सदेह॥१२४॥

अर्थ भुसुण्डिजी के शुभ वचन सुनकर और राम पद म स्नेह देखकर गरुडजी सन्देह रहित होकर प्रेमयुक्त वाणी बोले।

व्याख्या भुसुण्डिजी के बचन से भवभ्रम छूटा। आनन्द का अनुभव हुआ। इससे वचन को शुभ कहा। प्रमाणो म देखना सुनना ही बडा प्रमाण गिना जाता है। सो दोनो से ही भुसुण्डिजी की भक्ति का ही पता चला। यहाँ से भुसुण्डिजी का कथन समाप्त हो गया। सवाद की समाप्ति पर श्रोता द्वारा कृतज्ञता प्रकट करना उचित है। सो सच्ची कृतज्ञता बिना प्रेम के नही होती। अत गरुडजी का प्रेमपूर्वक बोलना कहत हैं।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मै कृतकृत्य भयेउँ तव बानी। सुनि रघुबीर भगति रस सानी ॥
राम चरन नूतन रति भई। माया जनित बिपति सब गई ॥१॥

अर्थ : मैं रघुबीर के भक्तिरस से सनी हुई तुम्हारी वाणी : सुनने से कृतकृत्य हुआ। रामजी के चरणों मे नयी रति हुई और माया से उत्पन्न सब विपत्तियाँ जाती रही।

व्याख्या : सशय निर्मूल होने पर दृढ विश्वास हुआ। वक्ता कहते हैं कि : आजु धन्य मैं धन्य अति और श्रोता कहते हैं कि मै : कृतकृत्य भयउँ। रामकथा ही ऐसी है कि इससे वक्ता धन्य और श्रोता कृतकृत्य होता है। दूसरी बात यह है कि नारद की वाणी सुनी। ब्रह्मा की सुनी। शङ्कर की सुनी। पर कृतकृत्य तो तुम्हारी वाणी से हुआ।

पहिले जो भक्ति थी वह दूसरे प्रकार की थी। यह अनुपम सुखमूला भक्ति आपके आशीर्वाद देते ही मेरे हृदय मे प्रकट हुई और माया से उत्पन्न अस्मिता तथा रागादि दोष चले गये।

मोह जलधि बोहित तुम भये। मो कहुँ नाथ बिबिध सुख दये ॥
मो पहिं होइ न प्रति उपकारा। बंदौ तव पद बारहि बारा ॥२॥

अर्थ : मोह समुद्र के लिए आप जहाज हो गये और मुझे अनेक प्रकार के सुख दिये। मुझसे प्रत्युपकार नही हो सकता। अत. तुम्हारे चरण की वन्दना बार बार करता हूँ।

व्याख्या : साधारण नियम तो यही है कि गुरु, कर्णधार मात्र होता है। मोह समुद्र पार करने के लिए अपने शरीर को जहाज बनाना पड़ता है। पर आप तो स्वयं मेरे लिए जहाज हो गये। मुझे कुछ करना ही नही पडा। आपके उपदेशामृत के श्रवण से मोह दूर हो गया और ज्ञान, विज्ञान, विवेक, विरति तथा मुनि दुर्लभ गुण सब आप की कृपा से प्राप्त हुए और ये ही सच्चे सुख हैं।

उपकारी का प्रत्युपकार करना सनातन धर्म है। बदले मे समान मूल्य का द्रव्य देना चाहिए। भक्ति चिन्तामणि का कोई मूल्य नही है। अत. मैं आपका ऋण चुका नही सकता। सिवा बारम्बार प्रणाम करने के और मैं कर क्या सकता हूँ।

पूरन काम राम अनुरागी। तुम सम तात न कोउ बड़भागी ॥
संत बिटप सरिता गिरि धरनी। परहित हेतु सबन्ह कै करनी ॥३॥

अर्थ : तुम पूर्णकाम हो। रामानुरागी हो। तुम्हारे समान कोई भाग्यवान् नही है। सन्त, वृक्ष, नदी, पर्वत और पृथिवी। इन सबकी करणी पराये हित के लिए होती है।

व्याख्या : दूसरी बात यह भी है कि तुम पूर्णकाम हो। तुम्हे कोई देना भी चाहे तो क्या दे ? तिस पर रामानुरागी हो : धन धान्य ऐश्वर्य को स्वीकार करते ही

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



नही। यथा रमा बिलास राम अनुरागी। तजत वमन जिमि जन बडभागी। भगवान् मे स्वार्थ के लिए भी प्रीति करनेवाले बडभागी हैं। पर तुम तो नि स्वार्थ प्रीति करनेवाले हो। इसलिए सबसे बढकर हो।

सन्त विटप सरिता गिरि धरणी अपने लिए कुछ नही करते। इनकी सम्पत्ति दूसरो के लिए है। इनके काम कभी नही आती। भाव यह कि आपको न प्रत्युपकार की इच्छा है और न कोई आपका प्रत्युपकार कर सकता है। सन्त विटप सरिता गिरि धरणी से सब उपकृत हैं। पर कोई यदि उनका प्रत्युपकार करना चाहे तो सिवा प्रणाम करने के और क्या कर सकता है? अब इन पाँचो मे भी सन्त के प्रथम उल्लेख का कारण कहते हैं।

सत हृदय नवनीत समाना। कहा कविन्ह परि कहै न जाना ॥
निज परिताप द्रवै नवनीता। पर दुख द्रवहि सत सुपुनीता ॥४॥

अर्थ सन्त के हृदय को कवियो ने मक्खन सा कहा है। पर उनसे कहते न बना अपने परिताप से मक्खन द्रवीभूत होता है। पर पुनीत सत दूसरे के दु ख से द्रवीभूत होते हैं।

व्याख्या विटप सरिता गिरिधरनी जड है। सुख दु ख का अनुभव भी इन्हे तारतम्यानुसार बहुत न्यून ही होता है। परन्तु सन्त जो कुछ करते हैं वे हृदय की कोमलता के कारण करते हैं। कवियो ने इनके हृदय की उपमा मक्खन से दिया। पर कहना होगा कि उनसे कहते न बना मक्खन तो अपने दु ख से द्रवीभूत होता है। पर सन्त तो दूसरे के दु ख से द्रवीभूत होते हैं। इनकी कोई उपमा नही है। यथा कहि सक न सारद सेष नारद सुनत पदपकज कहे।

जीव जन्म सफल मम भयऊ। तव प्रसाद सब ससय गयऊ ॥
जानेहु सदा मोहि निज किंकर। पुनि पुनि उमा कहै बिहगबर ॥५॥

अर्थ मेरा तो जीवन जन्म सफल हो गया। तुम्हारे प्रसाद से सब सशय चला गया। मुझे सदा अपना आज्ञाकारी समझियेगा। हे उमा! ऐसा बार बार गरुडजी ने कहा।

व्याख्या बिना हरिभक्ति हृदय मे आये प्राणी का जीवन जन्म निष्फल है। यथा

तिन्ह ते खर सूकर स्वान भल जडता बस ते न कहैं कछुवे।
तुलसी जेहि राम तें नेहु नही सो सही पसु पूँछ विषान न द्वै।
जननी कत भार मुई दस मास भई किन बाँझ गयी किन च्वै।
जरि जाउ सो जीवन जानकीनाथ जिये जग मे तुम्हरो बिनु ह्वै।

गरुडजी गुरुदक्षिणा का ऋण न चुका पाने के कारण सदा के लिए दासत्व स्वीकार करते हैं। वाक्य को यथार्थ रूप मे ग्रहण के लिए बार बार कहते हैं। जिसमे उनका वाक्य विनय प्रदर्शन रूप मे गृहीत न हो।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com


दो. तासु चरन सिर नाइ करि, प्रेम सहित मतिधीर ।
गयउ गरुड़ बैकुण्ठ तब, हृदय राखि रघुबीर ॥१२५ क.

अर्थ : उनके चरणों में प्रेम सहित सिर नवाकर मतिधीर गरुड़जी रघुवीर को हृदय में रखकर वैकुण्ठ गये ।

व्याख्या : जब गरुड़जी आये तब प्रणाम नहीं लिखा। पक्षिराट् के भाव से आये थे : इसलिए कागभुसुण्डि ने पूजा की। अब सत्सङ्ग से वह भाव जाता रहा। अतः मनसा वाचा कर्मणा प्रणाम करते हैं और भुसुण्डिजी भी उसे स्वीकार करते हैं।

काग का उपदेश सद्यः फलीभूत हुआ। हृदय में प्रचण्ड विषाद लेकर आये थे सो अब हृदय में रघुवीर को रखकर जा रहे हैं। कथा महाप्रभावा है। सद्यो हृद्यवरुध्यतेऽत्र कृतिभिः सुश्रूषुभिस्तत्क्षणात्। श्रीहरि सद्यः हृदय में अवश्य आ ही जाते हैं।

## उमा शम्भु सम्वाद का उपसंहार

दो. गिरिजा संत समागम, सम न लाभ कछु आन ।
बिनु हरिकृपा न होइ सो, गावहि बेद पुरान ॥१२५॥

अर्थ : हे गिरिजे ! सन्त समागम के समान कोई लाभ नही है। परन्तु बिना हरि की कृपा वह होता नही : ऐसा वेद पुराण कहते हे।

व्याख्या : मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहि जतन जहाँ जेहि पाई। सो जानब सत संग प्रभाऊ। लोकहुँ बेद न आन उपाऊ। अतः सत्सङ्ग से बड़ा लाभ कोई है नही। परन्तु जब भगवान् की कृपा हो तभी सतसङ्गति मिलती है। यथा : जब द्रवै दीन दयाल राघव साधु संगति पाइये। जेहि दरस परस समागमादिक पाप रासि नसाइये। यद्यपि सबहि सुलभ सब दिन सब देसा। पर जिसपर भगवत्कृपा नही है उसे नही मिलता। उन्हे कुभावना घेरे रहती है। सब बुरे ही दिखायी पड़ते हैं।

कहेउँ परम पुनीत इतिहासा। सुनत स्रवन छूटहि भव पासा ॥
प्रनत कलप तरु करुना पुंजा। उपजै प्रीति राम पद कंजा ॥१॥

अर्थ : मैंने परम पुनीत इतिहास कहा। जिसके सुनने से भवपाश छूटता है और जो करुणापुञ्ज कल्पतरु रामजी हैं उनके चरणो में प्रीति उपजती है।

व्याख्या : शङ्कर भगवान् भी सब प्रश्नों का उत्तर देकर कथा का उपसंहार करते हैं। कहते हैं कि यह इतिहास ऐसा पुनीत है कि केवल इसके सुनने से न केवल भावपाश जगजाल छूट जाता है। अपितु भगवान् के चरण कमल मे प्रीति उपजती है। जन्म मरण ही सक्षेप में जग जाल है।

श्रीरामजी प्रणतकल्पतरु हैं। यथा : देव देवतरु सरिस सुभाऊ। सनमुख विमुख न काहुहि काऊ। जाइ निकट पहिचानि तरु, छाँह समनि सब सोच। माँगत

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अभिमत पाव जग, राउ रंक भल पोच। रामजी न किसी के सम्मुख हैं न विमुख हैं। जो उनकी उपासना करता है : प्रणाम करता है उसे अभीष्ट की प्राप्ति होती है। इतना ही नही श्रीरामजी के चरण कमलो मे प्रीति उपजती है।

भाव यह कि हरिभजन से हरिकृपा उससे सत्सङ्ग की प्राप्ति सत्सङ्ग से हरिकथा श्रवण उससे मोह का नाश और श्रीचरणो मे अनुराग यही क्रम है।

मन क्रम बचन जनित अघ जाई। सुनहि जे कथा स्रवन मनु लाई ॥
तीर्थाटन साधन समुदाई। जोग बिराग ग्यान निपुनाई ॥२॥

अर्थ : मन तन वचन से किये हुए पाप नष्ट होते हैं यदि कथा मन लगाकर सुनी जाय। तीर्थयात्रा और साधन समूह योग विराग ज्ञान की निपुणता :

व्याख्या : हरिकथा सुनने मे इतना ही कर्तव्य है कि उसमे तन्मय हो जाय। बस इतने से ही मनुष्य निष्पाप हो जाता है। सुनत स्रवन छूटे भवपासा से ज्ञानकाण्ड का फल कहा। उपजै प्रीति रामपद कंजा से उपासना काण्ड का फल कहा। अब मन क्रम वचन जनित अघ जाई से कर्मकाण्ड का फल कहते हैं। तीर्थ यात्रा सिद्धि की प्राप्ति का यत्न. योग वैराग्य और ज्ञान की निपुणता।

नाना कर्म धर्म ब्रत दाना। संयम दम जप तप मख नाना ॥
भूतदया द्विज गुर सेवकाई। बिद्या बिनय बिबेक बड़ाई ॥३॥

अर्थ : नाना कर्म. धर्म. व्रत. दान. संयम. दम. जप. तप. नाना प्रकार के यज्ञ. प्राणी मात्र पर दया ,ब्राह्मण और गुरु की सेवा. विद्या. विनय. विवेक की बडाई।

व्याख्या : जीव को तारता है इसलिए तीर्थ कहलाता है। राग वैषम्य और बहिर्मुखता का प्रिय न होना ही योग विराग ज्ञान निपुणाई है। नित्य नैमित्तक और काम्य भेद से कर्म तीन प्रकार के होते है। धर्म के भी वर्णाश्रमानुसार अनेक भेद हैं। व्रत के भी चान्द्रायणादि अनेक भेद है। दाता प्रतिग्रहीता और देय के भेद से दान के भी अनेक भेद हैं। मन को वश करना सयम और इन्द्रियो को वश करना दम है। उपवासादि तप है। अश्वमेध राजसूयादि यज्ञ है। प्राणिमात्र पर दया करना परम धर्म है। गुरु द्विज की सेवा करना परम कल्याण का मार्ग है। विद्या भी चौदह कही गयी है। विनय विद्या का फल है। विवेक की इतनी बडाई है कि उसके बिना विद्या भी निष्फल है।

जहँ लगि साधन बेद बखानी। सब कर फल हरिभगति भवानी ॥
सो रघुनाथ भगति स्रुति गाई। रामकृपा काहूँ एक पाई ॥४॥

अर्थ : जितने साधनो का वेद ने बखान किया है हे भवानी! उन सबो का फल हरिभक्ति है। उस रघुनाथ भक्ति को वेद ने कहा कि वह रामजी की कृपा से किसी एक को मिलती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



व्याख्या : उपर्युक्त १६ साधनो के अतिरिक्त जितने साधनो की वेद ने प्रशसा की है उनका फल हरिभक्ति है। अर्थात् जिस साधन का फल हरिभक्ति नही है वह साधन प्रशसा के योग्य नही है। वह भक्ति वेद प्रतिपादित है। यथा : स्रुति सम्मत हरि भगति पथ सयुत बिरति बिवेक। तेहि न चलहि नर मोह बस कल्पहि पथ अनेक। अत: वह भक्ति रामजी की कृपा से किसी किसी को मिलती है। यथा : कहुँ कहुँ वृष्टि सारदी थोरी। कोउ एक पाव भगति जिमि मोरी।

दो. मुनि दुर्लभ हरि भगति नर, पावहि बिनहि प्रयास।
जे येह कथा निरन्तर, सुनहि मानि बिस्वास ॥१२६॥

अर्थ . मुनिदुर्लभ हरिभक्ति को वे मनुष्य बिना प्रयास पा जाते हैं। जो इस कथा को विश्वास मानकर निरन्तर सुना करते हैं।

व्याख्या : सनकादि, वसिष्ठ, नारद, अत्रि, शरभङ्ग, सुतीक्ष्णादि को इस भक्ति के लिए वरदान मांगना पडा। वही भक्ति अनायास भी मिल सकती है। परन्तु दो बात उसमे हैं। एक तो यह कि इस कथा पर विश्वास करके सुने और दूसरे यह कि सुनने मे व्यवधान न पड़ने पाये। निरन्तर विश्वास मानकर सुनने से ही उसके अन्त.करण मे इसका दृढभूमिक सस्कार पडेगा। अन्त करण द्रुत होकर रामरँग से रँग उठेगा यही भक्ति है।

सो सरबज्ञ गुनी सोइ ग्याता। सोइ महि मंडित पंडित दाता ॥
धर्म परायन सोइ कुल त्राता। राम चरण जाकर मन राता ॥१॥

अर्थ : वही सर्वज्ञ है, वही गुणी है, वही ज्ञाता है, वही पृथिवी मे सुन्दर पण्डित है, वही दाता है, वही धर्म परायण है, वही कुल का रक्षक है जिसका मन श्रीराम के चरणो मे लग गया।

व्याख्या : जो पृथक् पृथक् सब बातो को जाने : भूत भविष्य वर्तमान का जिसे ज्ञान हो उसे सर्वज्ञ कहते हैं। जो दैव या मानुष शिल्प का जानकार हो उसे गुणी कहते हैं। जिसे परमार्थ का ज्ञान हो उसे ज्ञाता कहते हैं। सार्वभौम विद्वान् महि मण्डित पण्डित है। उदार पुरुष को दाता कहते हैं। वेद की आज्ञा पालन करनेवाले को धर्मपरायण कहते हैं। कुल की रक्षा करनेवाले को कुलत्राता कहते हैं।

जिसका मन रामरग मे रँग गया वही सर्वज्ञ, गुणी, ज्ञाता, पण्डित, धर्मात्मा और कुलरक्षक है। जिस बात की कमी उसमे है वह पूरी हो जायगी। पर यदि रामरग मे नही रँगा है तो उसके सब गुण व्यर्थ हैं। तेन तप्त हुत दत्तमेवाखिलं तेन सर्वं कृत कर्मजाल। येन श्रीरामनामामृत पानकृतमनिशमनवद्यमवलोक्य काल। विनय : सो सब करम धरम जरि जाऊ। जहँ न राम पद पंकज भाऊ।

नीति निपुन सोइ परम सयाना। स्रुति सिद्धात नीक तेहि जाना ॥
सोइ कवि कोविद सोइ रनधीरा। जो छल छाँड़ि भजै रघुबीरा ॥२॥

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ : वही नीतिनिपुण है। वही परम सयाना है। उसी ने श्रुति सिद्धान्त को भली भाँति जान पाया है। वही कवि है, वही दूरदर्शी है, वही योद्धा है, जो छल छोड़कर राम को भजता है।

व्याख्या : दम्भ, कपट, स्वार्थादि छल है। भजन मे इनका प्रवेश नही होना चाहिए। जो निष्काम भाव से भगवद् भजन करता है वही नीतिनिपुण है। वही परम सयाना है। वेद के सिद्धान्त को उसी ने समझ पाया है। वही क्रान्तिदर्शी है। वही दूरदर्शी है। काम क्रोधादि अनेक शत्रुओ को वही जीत सकता है। यथा : सूर सुजान सपूत सुलच्छन गनियत गुन गरुआई। बिनु हरि भजन इनारुन के फल तजत नहीं करुआई।

धन्य देस सो जहँ सुरसरी। धन्य नारि पतिब्रत अनुसरी ॥
धन्य सो भूप नीति जो करई। धन्य सो द्विज निज धरम न टरइ ॥३॥

अर्थ : वह देश धन्य है जहाँ गङ्गाजी हैं। वह स्त्री धन्य है जिसने पतिव्रत का अनुसरण किया। वह राजा धन्य है जिसने नीति का पालन किया। वह द्विज धन्य है जो अपने धर्म से नही हटा।

व्याख्या : धन्य पुण्यवान् को कहते हैं। जिस देश मे गङ्गा हैं वहाँ के लोगो का पाप रहने नही पाता। यथा : प्रायश्चित्त तु तत्रैव यत्र गङ्गा न विद्यते। इसलिए वह पुण्य देश है। स्त्रियाँ स्वभाव से ही अपावन हैं। पति की सेवा से उन्हे शुभगति होती हैं। अत. वे धन्य हैं। यथा : सहज अपावनि नारि पति सेवत सुभगति लहइ। जस गावत स्रुति चारि अजहुँ तुलसिका हरिहि प्रिय। जिस राजा के राज्य मे अनीति नही है वह दूसरा कोई धर्म करे या न करे वह धन्य है। ब्राह्मण मे तप और श्रुत दोनो होना चाहिए। स्वधर्माचरण हो तप है। अत: स्वधर्माचरण करनेवाला ब्राह्मण धन्य है। नही तो सोचिय बिप्र जो बेद बिहीना। तजि निज धर्म बिषय लयलीना।

सो धन धन्य प्रथम गति जाकी। धन्य पुन्य रत मति सोइ पाकी ॥
धन्य घरी सोइ जब सत संगा। धन्य जन्म द्विज भगति अभंगा ॥४॥

अर्थ : वह धन्य है जिसकी पहिली गति हुई। वह पक्की मति धन्य है जो पुण्य मे लगी हुई है। वह घड़ी धन्य है जो सत् सङ्ग मे बीते। वह जन्म धन्य है। जिसमे ब्राह्मण मे अचल भक्ति हो।

व्याख्या : धन की तीन गति होती है : १ दान २. भोग और ३ नाश। चौथी कोई गति नही है। जिस धन का दान या भोग नही होता वह नष्ट हो जाता है। धन्य वही धन है जो दान मे दिया जाय।

पक्की पुण्यरत मति वही है जिसमे फलाकाक्षा की कचाई न हो। यथा : करै जे धरम करम मन बानी। बासुदेव अर्पित नृप ग्यानी। सत सगति दुर्लभ ससारा। निमिप दण्ड भरि एको बारा। यह अमोघ है। बिना कल्याण किए रहती नही। अत: जो समय सत सगति मे बीतता है वह धन्य है। ब्राह्मणो मे अटल

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



भक्ति होने से जन्म धन्य होता है। क्योंकि द्विजभक्ति से भगवान् सन्तुष्ट होते हैं। यथा : हरितोषन व्रत द्विज सेवकाई। यथा : प्रभु ब्रह्मण्य देव मैं जाना। मोहि निति पिता तजेउ भगवाना।

दो. सो कुल धन्य उमा सुनु, जगत पूज्य सुपुनीत।
श्री रघुबीर परायन, जेहि नर उपज बिनीत ॥१२७॥

अर्थ : जिस कुल मे श्रीरघुवीर परायण विनीत पुरुष पैदा होता है हे उमा ! सुनो वही कुल धन्य है। जगत् पूज्य है और सुपुनीत है।

व्याख्या : जिस कुल मे पापरहित कुलपावन साधु उत्पन्न होता है उसके पिता इक्कीस पीढी पितरो के साथ पवित्र हो जाते हैं। यथा : त्रिसप्तभि: पिता पूतः पितृभिः सह तेऽनघ। यत् साधोऽस्य गृहे जातो भवान् वै कुलपावनः। श्रीमद्भा० ७ १० १८

मति अनुरूप कथा मै भाखी। जद्यपि प्रथम गुप्त करि राखी ॥
तव मन प्रीति देखि अधिकाई। तौ मै रघुपति कथा सुनाई ॥१॥

अर्थ : अपनी वुद्धि के अनुसार मैंने कथा कही। यद्यपि पहिले मैंने गुप्त करके रक्खी थी। तुम्हारे मन मे अधिक प्रीति देखकर तभी मैंने रघुपति की कथा सुनाई।

व्याख्या : कथा की इयत्ता न होने से यह कथा मति अनुरूप ही कही जा सकती है। इसकी रचना किये हुए बहुत दिन हुए। परन्तु तुम्हे सुनाया नही। जब देखा कि तुम्हारे मन मे सुनने की उत्कट इच्छा है तब रामजी की कथा तुम्हें मैंने सुनायी। यदि अधिक प्रीति न देखता तो न सुनाता। अधिक प्रीति न होने से श्रोता द्वारा कथा का अनादर होता है। इससे उसका अकल्याण होता है। वक्ता का मनोभङ्ग होता है। लाभ किसी को नही होता।

यह न कहिअ सठही हठ सीलहि। जो मन लाइ न सुन हरि लीलहि ॥
कहिअ न लोभहि क्रोधहि कामहि। जो न भजै सचराचर स्वामिहि ॥२॥

अर्थ : इसे कभी कपटी दुराग्रही से न कहना जो कि मन लगाकर हरि की लीला को न सुने। लोभी क्रोधी और कामी से भी नही कहना चाहिए जो चराचर के स्वामी को नही भजता।

व्याख्या : कपटी को शठ और दुराग्रही को हठी कहते हैं : मीठी बातें सठ करे करिके महा बिगार। अत: इस कथा को शठ और हठशील को नही सुनाना चाहिए। क्योकि वह मन लगाकर कथा नही सुनेगा। ऐसे लोगो को सुनाने से दु:ख उपजता है। श्रोता वक्ता किसी का कल्याण नही होता।

लोभी क्रोधी और कामी परधन परद्रोही और परदारा का भजन करते हैं। नरक पन्थ के पथिक हैं। ये चराचर के स्वामी को नही भजेंगे। इनका इष्टदेव मोह है। ये कथा मन से नही सुनेंगे और उपद्रव खड़ा करेंगे।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



द्विज द्रोहिहि न सुनाइय कबहूँ । सुरपति सरिस होइ नृप जबहूँ ॥
रामकथा के तेइ अधिकारी । जिन्हके सत संगति अति प्यारी ॥३॥

अर्थ : ब्राह्मण द्रोही को तो कभी न सुनाना । चाहे वह इन्द्र के समान राजा क्यो न हो । रामकथा के वे ही अधिकारी हैं जिन्हे सत्सगति अत्यन्त प्यारी है ।

व्याख्या : द्विजद्रोही भागवत धर्म के प्रतिकूल चलानेवाला है । वह प्रभु को पसन्द नही है । अत उसे सुनाने के लिए अतिनिषेध है । यथा : सुनु गंधर्व कहौं मैं तोही । मोहि न सोहाइ ब्रह्मकुल द्रोही । अत: उसके अधिकार का भय अथवा कृपा का लोभ न करे । इन्द्र ने सौ यज्ञ किये । इसीलिए शतक्रतु कहलाते हैं । सो उनके याज्ञिक होने की भी परवाह न करे ।

अनधिकारियो का परिचय देकर अब अधिकारियो का परिचय देते हैं : जिन्हें सत्सगति अति प्यारी है । वह यदि अनधिकारी भी हो तो अधिकारी हो जायगा । यथा : सठ सुधरहिं सत सगति पाई । पारस परस कुधातु सोहाई । अत: वह रामकथा का अधिकारी है ।

गुरुपद प्रीति नीतिरत जेई । द्विज सेवक अधिकारी तेई ॥
ता कहुँ यह बिसेषि सुखदाई । जाहि प्रानप्रिय श्रीरघुराई ॥४॥

अर्थ : जिन्हे गुरुचरणो प्रीति है । जो नीतिरत हैं । द्विज सेवक हैं । वे ही अधिकारी हैं । जिसे श्रीरघुराई प्राणप्रिय हैं । उसे यह विशेष सुखदाई है ।

व्याख्या : गुरुचरणो का प्रेमी परमार्थ पथ का पथिक है और जो नीतिरत है वह प्रभु का प्यारा है । परमार्थपथपथिक को छोडकर द्विजसेवक दूसरा कोई हो नही सकता । अभिमानी कभी दीन दरिद्र ब्राह्मण को बडा नही मान सकता । जो अभिमान रहित नही है । वह सापत, ताड़त, परुषवक्ता ब्राह्मण को पूज्य कैसे मानेगा ? जो ईश्वर को कर्मफल का दाता नही मानता वह शील गुण हीन ब्राह्मण पर पूज्य दृष्टि कैसे रख सकेगा । अत: द्विज सेवक इस कथा का अधिकारी है । जिसको प्रभु के स्वरूप का ज्ञान है उसीको वे प्राणप्रिय हैं । अत: उसे उनकी कथा अधिक सुखदायिनी मालूम होगी ।

दो. राम चरन रति जो चह, अथवा पद निर्बान ।
भाव सहित सो येहि कथा, करौ स्रवन पुट पान ॥१२८॥

अर्थ : जो रामचरण मे रति चाहता हो या निर्वाण पद चाहता हो । वह मन लगाकर इस कथा को कान के प्याले से पीवे ।

व्याख्या : विषय और अधिकारी का निरूपण करके अब प्रयोजन कहते हैं कि रामकथा के दो मुख्य प्रयोजन हैं । या तो पराभक्ति या कैवल्यमुक्ति । विषय और प्रयोजन मे साधक साध्यभाव सम्बन्ध है ।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मन लगाकर कथा को सुने जिसमें इसकी छाप मन पर पड़े। छाप न पड़ने से प्रयोजन की सिद्धि न होगी। यह कथा अमृत है। कानो को प्याला बनाकर इसे स्वाद ले लेकर पीये।

रामकथा गिरिजा मै बरनी। कलिमल समनि मनोमल हरनी॥
संसृत रोग सजीवन मूरी। राम कथा गावहिं स्रुति सूरी॥१॥

अर्थ : हे गिरिजे ! मैंने कलिमल का नाश करनेवाली मनोमल को दूर करने वाली रामकथा का वर्णन किया। संसार रोग के लिए सञ्जीवनी बूटी रामकथा है। : इसे वेद और पण्डित गाते हैं।

व्याख्या : गिरिजा ने प्रश्न किया था : बरनहु रघुबर बिमल जस, स्रुति सिद्धान्त निचोरि। उत्तर हो रहा है : रामकथा गिरिजा मैं बरनी। समयकृत दोष जिसका प्रभाव सब पर पड़ता है उसे कलिमय शब्द से उपलक्षित किया और व्यक्तिगत अन्तःकरण के मल को मनोमल कहा। दोनों को रामकथा दूर करती है।

यहाँ संसाररूपी रोग के शमन के लिए तीन प्रकार की दवा कही गयी है : १. चूर्ण : अमिअ मूरिमय चूरनु चारू। समन सकल भव रुज परिवारू। २. गोली : रघुपति भगति सजीवन मूरी। अनूपान स्रद्धा अति रूरी। और ३. अर्क भाव सहित : जो यह कथा करै स्रवन पुट पान। वेद मे जो कुछ कहा गया है उसका साक्षात् या परम्परया राम से सम्बन्ध है। अतः वेद में रामकथा ही है और परमार्थ ज्ञाता पण्डित लोग भी रामकथा ही कहा करते हैं।

एहि मह रुचिर सप्त सोपाना। रघुपति भगति केर पंथाना॥
अति हरिकृपा जाहि पर होई। पाँव देइ एहि मारग सोई॥२॥

अर्थ : इसमे सुन्दर सात सोपान हैं। ये सब राम चरित्र के रास्ते हैं। अत्यन्त हरिकृपा जिस पर होती है वह इस रास्ते पर पैर देता है।

व्याख्या : सातो प्रबन्ध काण्ड ही सात सीढ़ियाँ हैं। सब सोपान पृथक् पृथक् भक्ति के मार्ग है। यह अद्भुत सरोवर है जिसमे प्रत्येक सोपान से जल की प्राप्ति होती है और प्रत्येक सोपान के जल के पृथक् पृथक् गुण हैं। जो प्रत्येक काण्ड के अन्त मे फलश्रुति रूप से कहे गये हैं।

हरिकृपा से नरशरीर मिला विशेष कृपा से सत्सङ्ग मिला। रामकथा सुनने मे आयी। परन्तु सुन लेना एक बात है पर उसे कार्यरूप मे परिणत करना दुष्कर कार्य है। इस ओर प्रवृत्ति ही किसी की नही होती। जिसपर भगवान् की अतिकृपा होती है वही इस ओर पैर उठाता है।

मनकामना सिद्ध नर पावा। जे यह कथा कपट तजि गावा॥
कहहिं सुनहि अनुमोदन करही। ते गोपद इव भवनिधि तरही॥३॥

अर्थ : जिसने इस ... पट छोड़कर गाया। उसका मनोरथ सिद्ध

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



गया। जो कहते सुनते या अनुमोदन करते हैं वे भवसागर को गोपद की भाँति तर जाते हैं।

व्याख्या : कामना सिद्धि के लिए संकल्पपूर्वक अनुष्ठान करते हैं। यहाँ की बात ही निराली है। किसी फल की अभिलाषा न रखकर कथा का गान करे। मनोरथ आप से आप सिद्ध हुआ करते हैं। रामायण प्रतिपादित राम को ब्रह्म जानकर उसकी कथा कहना, सुनना या कहने सुनने मे प्रोत्साहन देने का यह फल है कि अनायास वे भवसागर के पार हो जाते हैं।

सुनि सब कथा हृदय अति भाई। गिरिजा बोली गिरा सोहाई ॥
नाथ कृपा मम गत संदेहा। रामचरन उपजेउ नव नेहा ॥४॥

अर्थ : यह कथा सुनकर मन मे जब बहुत अच्छी लगी तब गिरिजाजी सुन्दर वाणी बोलीं : नाथ की कृपा से मेरा सन्देह दूर हो गया और राम चरण मे अपूर्व प्रेम उत्पन्न हुआ।

व्याख्या : गिरिजा के प्रश्न शिवजी को अच्छे लगे थे। इसी भाँति शङ्करजी का उत्तर गिरजा को पसन्द आया। अब श्रोता की ओर से कृतज्ञता प्रकट करना शेष रहा। सो प्रकट कर रही हैं। कहती हैं कि जो सन्देह मुझे था : जौ नृपतनय तो ब्रह्म किमि नारि बिरह मति भोरि। सो आपकी कृपा से मिट गया। पहिले भी रामचरण मे नेह था। पर अब जो नेह हुआ है वह अपूर्व है। इसलिए नवनेहा कहा।

दो. मैं कृतकृत्य भइउँ अब, तव प्रसाद बिस्वेस।
उपजी रामभगति दृढ़, बीते सकल कलेस ॥१२९॥

अर्थ : हे विश्वनाथ ! मैं अब तुम्हारी कृपा से कृतकृत्य हो गयी। दृढ राम-भक्ति उपजी और सब क्लेश दूर हो गये।

व्याख्या : जबतक कोई कर्तव्य शेष रहता है तबतक कृतकृत्यता नहीं होती और जबतक क्लेश बना है तबतक कर्तव्य से पिण्ड नहीं छूटता सो विश्वनाथ की कृपा से सब संशय समाप्त हो गये और संशय के नाश होने पर भक्ति मे दृढता आगयी। गिरिजा कृतकृत्य हुईं और ज्ञानघाट की कथा समाप्त हो गयी। उपासनाघाट की कथा समाप्त होने पर गरुड़ का वैकुण्ठ जाना कहा। यहाँ श्रोता वक्ता को वहीं कैलास मे रहना है। इसलिए आना जाना नहीं कहा।

## भरद्वाज याज्ञवल्क्य संवाद का उपसंहार : दक्षिण घाट की समाप्ति

यह सुभ संभु उमा संबादा। सुख संपादन समन बिषादा ॥
भव भंजन गंजन संदेहा। जन रंजन सज्जन प्रिय एहा ॥१॥

अर्थ : यह शुभ शम्भु उमा सम्वाद सुख का सम्पादन और विषादों का शमन करनेवाला है। भव का भञ्जन : सन्देहों का नाश : भक्तों का रञ्जन करनेवाला और

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



सज्जनो को प्रिय है। याज्ञवल्क्यजी भरद्वाज से कहते हैं कि उपर्युक्त सम्वाद की महा महिमा है।

व्याख्या : विषाद योग होने पर ही हमारे यहाँ उपदेश की विधि है। यहाँ पहिले उमाको विषाद हुआ था। यथा : अस संसय मन भयउ अपारा। होइ न हृदय प्रबोध प्रचार। इस सम्वाद मे वह विषाद मिटा। रामचरण में नव नेह हुआ। इसलिए याज्ञवल्क्य भरद्वाज से कहते हैं कि इस सम्वाद से केवल विषाद मिटता है। इतना ही नही भावात्मक सुख भी होता है। दुःख का नाश और सुख की प्राप्ति : इतना ही पुरुषार्थ है। सो इस सम्वाद के सुनने से दोनो होता है। ससार का बन्धन छूट जाता है। भक्तो का हृदय रामरङ्ग मे रँग जाता है। अत. सज्जनों को प्रिय है।

राम उपासक जे जगमाही। एहि सम प्रिय तिनके कछु नाही ॥
रघुपति कृपा जथामति गावा। मै यह पावन चरित सुहावा ॥२॥

अर्थ : ससार मे जितने राम उपासक हैं उन्हे इसके समान कुछ भी प्रिय नही है। मैंने इस सुन्दर चरित्र को रघुपति की कृपा से यथामति गा दिया।

व्याख्या : अब सम्प्रदाय विशेष को लक्ष्य करके कहते है कि जिसके इष्टदेव रामचन्द्र हैं। जिन्होंने राममन्त्र ग्रहण किया है जो सुतीक्ष्ण की भाँति भूपरूप में आसक्त हैं। चतुर्भुज रूप भी हृदय मे आने पर जिनका ध्यानभङ्ग होता है। ये उन रामोपासको के लिए तो यह देह और प्राण से भी बढकर प्यारा है।

भगवान् याज्ञवल्क्यजी कहते हैं कि मुझे जो कुछ कहना था कह दिया। छिपाया कुछ नही : इस भाँति कर्मघाट की समाप्ति कही। यहाँ पर भरद्वाजजी का कृतज्ञता प्रकाश करना भी न लिखा। क्योकि कथा सुनने मे वे ऐसे मग्न हो गये कि बीच मे एक प्रश्न भी नही किया। याज्ञवल्क्यजी के बारबार सम्बोधन करने पर भी सावधान नही होते थे। अतः काल पाइ मुनि सुनु सोइ राजा : कहने के बाद याज्ञवल्क्यजी ने सम्बोधन करना भी बन्द कर दिया। भरद्वाजजी की समाहितावस्था बढती गयी। अतः कृतज्ञता प्रकाशन न कर सके। अब केवल गोस्वामीजी बोल रहे हैं।

एहि कलि काल न साधन दूजा। जोग जज्ञ जप तप व्रत पूजा ॥
रामहि सुमिरिअ गाइअ रामहि। संतत सुनिअ राम गुन ग्रामहि ॥३॥

अर्थ : इस कलिकाल मे दूसरा साधन, योग, यज्ञ, जप, तप, व्रत, पूजा कुछ भी नही है। राम का सुमिरन करना चाहिए। राम को गाना चाहिए। राम के गुण ग्राम को सुनना चाहिए।

व्याख्या : श्रीगोस्वामीजी अपने मन से कह रहे हैं कि इस समय घोर कलिकाल तप रहा है। खलमण्डली में ही धर्म निबहने नही पाता।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



के निर्मूलन के लिए ही योग कटिबद्ध हो। धर्म ही लोगों के आँख का काँटा हो गया हो वहाँ योग, यज्ञ, तप, व्रत, पूजा का निर्वाह कैसे होगा ?

अतः रामनाम का स्मरण करना चाहिए। मुख से बोलना चाहिए। केवल मानसिकजप इस काल के लिए पर्याप्त नहीं है। वक्ता यदि मिलते जायँ तो सदा गुणग्राम सुना करे। श्रोता मिल जायँ तो उन्हे सुनावे। कोई न मिले तो बैठकर सुमिरन करे।

जासु पतित पावन बड़बाना। गावहिं कवि स्रुति संत पुराना ॥
ताहि भजिअ मन तजि कुटिलाई। राम भजे गति केहि नहि पाई ॥४॥

अर्थ : जिसका बड़ा विरद पतितपावन है। कवि वेद पुराण सन्त सब यही गाते हैं। हे मन ! उसे तू कुटिलता छोड़कर भज। क्योंकि राम को भजने से किसे गति नहीं मिली।

व्याख्या : श्रीरामचन्द्र के बहुत से विरद हैं। इनमे से पतितपावन विरद बड़ा है। इस दरबार से कितने पतित तरे। इसका लेखाजोखा नही हो सकता। इस युग मे पाप समुद्र के हम लोग मछली हो रहे हैं और उनका पतितपावन बाना हैं। सो ऐसे ही विरदवाले को भजना चाहिए।

कवि और सन्त आप्त हैं। वेद और पुराण आप्तवाक्य हैं। अत शब्द प्रमाण से सिद्ध हुआ कि रामचन्द्र का बड़ा विरद पतितपावन है। वेद पुराण प्रभु का यशोगान करनेवाले वन्दी हैं। अतः उन्होंने विरद कहा।

श्रीगोस्वामीजी अपने प्रधान श्रोता मन से कहते हैं कि इस दरबार से किसी के निराश होने का कोई कारण नही है। कुटिलाई छोड़कर चला आवे अर्थात् भजन करे। इतना ही उसका काम है। बाकी प्रभु स्वयं कर लेते हैं। कैसा भी पापी हो, अधम हो, चराचर द्रोही हो, ब्रह्मघाती हो यहाँ सबका गुजारा हो जाता है। एक कपटी के लिए स्थान नहीं है। कपट छोड़कर वह भी चला आवे तो उसका भी कल्याण हो जाता है।

छं. पाई न केहि गति पतितपावन राम भजि सुनु सठ मना।
गनिका अजामिल ब्याध गीध गजादि खल तारे घना ॥

अर्थ : हे शठ मना ! सुन : पतितपावन राम को भजनकर किसने गति नही पायी ? गणिका, अजामिल, व्याध, गीध, गज आदि बहुतेरे पापी तर गये।

व्याख्या : राम पतितपावन हैं। जैसे ही जीव भजन के लिए उनके सम्मुख होता है। तैसे ही वे उसके करोड़ो जन्म के पापो का नाश कर देते है और जहाँ मद मोह कपटादि को छोड़कर शरण मे आया तहाँ उसे तुरन्त साधु के समान बना लेते हैं। भजन करने के कारण कृपा बनाये रखते हैं। पाँच खलो की नजीर दी जाती है जो भजन करने से तर गये। १. गणिका के अज्ञान की कौन सीमा है जिसने क्षणिक सुख के लिए शतकोटि कल्प के दु ख पर ध्यान न दिया। २ अजामिल

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



की अस्मिता का क्या अन्त जिसने जन्मभर पाप ही कमाया। घोर संकट के समय भी परमेश्वर को न पुकारकर लड़के को पुकारा। व्याध के राग का क्या ठिकाना। जो कुटुम्ब के राग मे पड़ा हुआ हिंसा ही करता रहा और गीध को द्वेषयुक्त जीविका ही थी। यथा : गीध अधम खल आमिष भोगी। गज ने प्राण की रक्षा के लिए भगवान को ही पुकारा। अतः इन पाँचो मे प्रधानतः अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश का आधिक्य था। इसलिए पाँच उदाहरण दिये गये। भजन से सब तर गये।

आभीर जवन किरात खस स्वपचादि अति अघरूप जे।
कहि नाम वारक तेपि पावन होहिं राम नमामि ते॥

अर्थ : आभीर, यवन, किरात, खश, चाण्डाल आदि जो पापरूप हैं वे भी एक बार जिसके नाम लेने से पवित्र होते हैं ऐसे राम को मैं नमस्कार करता हूँ।

व्याख्या : उपर्युक्त जातियाँ अघरूप हैं। लोक और वेद सब भाँति से नीच हैं। इन योनियो मे जन्म होना पूर्व पाप का परिणाम है। इन योनियो मे जन्म लेकर जो एक बार भी भगवान् का नाम लेता है सो पवित्र हो जाता है। नाम मे ऐसी पापदाहिका शक्ति है कि उनके पापो को भी भस्म कर देती है। यथा : बिवसहु जासु नाम नर कहही। जनम अनेक रचित अघ दहही। सादर सुमिरन जे नर करही। भव वारिधि गोपद इव तरही।

रघुबंस भूषन चरित यह नर कहहि सुनहि जे गावही।
कलिमल मनोमल धोइ बिनु स्रम रामधाम सिधावही॥

अर्थ : रघुवश भूषन के चरित्र को जो स्त्री पुरुष गाते हैं या सुनते हैं वे कलि के और मन के मल को धोकर अनायास रामधाम को चले जाते हैं।

व्याख्या : एक तो यह युग मलिन तिस पर मन मलिन। फिर सुगति की कौन आशा है। पर भगवान् के चरित गान से दोनो छूट जाते है। जीव रामधाम की प्राप्ति का अधिकारी होता है जहाँ से पुनरावृत्ति नही होती। अन्य साधनो मे बड़ा आयास है। पर यह साधन ऐसा है कि गाते बजाते रामधाम चले जाइये।

सतपंच चौपाई मनोहर जानि जो नर उर धरैं।
दारुन अविद्या पंच जनित विकार श्रीरघुबर हरैं॥

अर्थ : एक सौ पाँच चौपाइयो को जो कोई जानकर हृदय मे धारण करता है उसके दारुण अविद्या से उत्पन्न पाँचो विकारो को श्री रामजी हरण करते हैं।

व्याख्या : अन्तिम १०५ चौपाइयो के धारण करने की पृथक् फलश्रुति है। सम्पूर्ण ग्रन्थ के धारण करने मे जो असमर्थ हैं उनके लिए इसका विधान है। चौपाइयाँ मनोहर हैं। धारण करते असुविधा भी नही है। बात इतनी ही है कि तोते की तरह धारण न करे। जानकर धारण करने से ही कथित फल होगा।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



साधक का काम इतना ही है कि १०५ चौपाइयों[1] को धारण कर ले। उसके पञ्चपर्वा अविद्या का नाश तो स्वयं रामजी करेंगे। अविद्या का नाश तथा रामप्रताप सूर्य का उदय दो वस्तु नहीं है।

छं. सुंदर सुजान कृपानिधान अनाथ पर कर प्रीति जो।
सो एक राम अकाम हित निर्बान प्रद सम आन को॥
जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहू।
पायउ परम बिस्राम रामसमान प्रभु नाहीं कहूँ॥३॥

*अर्थ :* जो सुन्दर हैं सुजान हैं कृपा निधान है। जो अनाथ पर प्रीति करते हैं। वह केवल अकाम हित रामजी हैं। निर्वाण देनेवाला उनसा कौन है। जिसकी कृपा के लवलेश से मतिमन्द तुलसीदास ने भी परम विश्राम पाया। रामजी सा प्रभु कहीं है नही।

*व्याख्या :* भजनीय यदि सुन्दर हो तो चित्त का आकर्षण होता है। बड़ा सुख मिलता है और यदि वह सुजान भी हो हृदय की बात समझ लेता हो तो सुख का उत्कर्ष अधिक बढ जाता है। तिस पर यदि उसमें घनी कृपा हो तब कहना ही क्या है? सो रघुनाथजी मे सभी गुण हैं। अतः उनके भजन करने में भी बड़ा आनन्द है। उनका स्वभाव ऐसा है कि वे अनाथ पर प्रीति करते हैं। इसीलिए उनका एक नाम अनाथनाथ है। अनाथ पर प्रीति करनेवाला तो संसार में कोई है नही एक राम ही ऐसे हैं। क्योकि जिसकी कामना शेष है वह अनाथ का क्या कल्याण कर सकता है। रामजी अकाम हैं। अतः वे ही अनाथ के हित में समर्थ हैं। कृपा उनकी इतनी है कि शत्रुओं को भी निर्वाण पद देनेवाले है। यथा : राम राम कहि तनु तजहिं पावहिं पद निर्वान। अतः कहते हैं कि इस भाँति निर्वाण देनेवाला कोई दूसरा स्वामी नही है। उदाहरण में कवि अपने को देते हैं कि जिसकी कृपा के लव का भी लेश मात्र पाकर मेरे ऐसा मतिमन्द भी परम विश्राम के पाने में समर्थ हुआ। श्री गोस्वामीजी ने ग्रन्थारम्भ स्वान्तःसुखाय किया था। सो ग्रन्थ समाप्ति के पहिले ही उन्हे परम विश्राम मिल गया। अतः कहते हैं कि : परम विश्राम ऐसा पद मुझ से मतिमन्द को देनेवाला कौन है। निर्गलितार्थ यही हुआ कि रामजी सा प्रभु कही है नही।

दो. मोसम दीन न दीनहित, तुम समान रघुबीर।
अस बिचारि रघुबंस मनि, हरहु बिषम भव भीर॥१३०॥

*अर्थ :* हे रघुवीर! न मुझसा कोई दीन है और न तुम्हारे समान कोई

---

१. इस सतपञ्च चौपाई की विस्तृत टीका भी मैंने लिखी थी जो मानससंघ पो. रामवन : सतना से छपी है और प्राप्त हो सकती है।

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



दीनहित है। ऐसा विचार करके हे रघुवशमणि ! विषम सासारिक दु:ख का हरण कीजिये।

व्याख्या : सभी पुरुषार्थ से हीन गोस्वामीजी अपने को मानते हैं। यथा : करमठ कठमलिया कहैं ज्ञानी ज्ञान विहीन। तुलसी त्रिपथ विहाइ गो राम दुआरे दीन। जे जनमे कलिकाल कराला। करतव वायस वेष मराला। चलत कुपथ वेद मग छाड़े। कपट कलेवर कलिमल भाँडे। तिन महँ प्रथम रेख जग मोरी। धीग धरम ध्वज धधरच घोरी। अत कहते हैं कि मुझसा कोई दीन नहीं है और सरकार का तो विरद ही दीनहित है। आपका तो नाम पतित पावन है। आपको दान अत्यन्त प्यारे हैं। यथा : काको नाम पतित पावन जग केहि अति दीन पियारे। खग मृग व्याध पखान विटप जड जवन कवन सुर तारे। अत न मेरा कोई जोड ससार मे है और न आपका कोई जोड है। मेरा उद्धार आप ही कर सकते हैं। ऐसा विचार करके हे रघुवशमणि ! आप के वश मे याचक को नकरात्मक उत्तर नहीं मिलता। यथा : मगन लहहि न जिनके नाही। आप तो उस वश मे मणि हैं। मेरा यही माँगना है कि विषम भवभोर का हरण कीजिये। आप इसे पूरा कीजिये। विचार लीजिये : है कोई मेरे विषम भवभीर के हरण मे समर्थ ?

दो. कामिहि नारि पियारि जिमि, लोभिहि प्रिय जिमि दाम।
तिमि रघुनाथ निरतर, प्रिय लागहु मोहि राम ॥१३१॥

अर्थ : कामी को जिस भाँति स्त्री प्रिय होती है और लोभी को जैसे धन प्रिय होता है। उसी भाँति हे रघुनाथजी ! आप सदा मुझे प्रिय लगिये।

व्याख्या · हरहु विषम भव भीर कहने से तो यह तात्पर्य निकलता है कि तुम ससार से छुटकारा चाहते हो। अत. क्या तुम्हारी इच्छा मोक्ष की है। इस पर श्री गोस्वामीजी कहते हैं कि नहीं मुझे तो श्री चरणो का प्रेम चाहिए। प्रेम ऐसा चाहिए जैसा कि कामी का प्रेम स्त्री पर होता है। प्रिया के विरह की दशा मे कामी की ऐसी अवस्था हो जाती है कि उसे ससार ही स्त्रीमय हो जाती है। यथा : देखहिं परसपर नारिमय जे ब्रह्ममय देखत रहे। इसी भाँति मुझे ससार राममय दिखलाई पडे। यह तो वियोगावस्था की बात हुई। अब सयोगावस्था की बात कहते हैं कि जैसे लोभी को दाम प्रिय होता है वैसे ही सरकार मुझे प्रिय हो। लोभी दिन रात धन को सँभालता रहता है कि कहीं धन गिर न जाय। उसी भाँति मेरा चित्त सदा आप के सँभालने मे लगा रहे। यथा : मन माधव को नेकु निहारहिं। सुनु सठ सदा रक के धन ज्यों पुनि पुनि सँभारहि। वार वार रघुवीर सभारी।

श्लो. यत्पूर्वं प्रभुणा कृतं सुकविना श्रीशम्भुना दुर्गमम्
श्रीमद्रामपदाब्जभक्तिमनिशं प्राप्त्यै तु रामायणम्।
मत्वा तद्रघुनाथनामनिरतं स्वान्तस्तम.शान्तये
भाषाबद्धमिदञ्चकार तुलसीदासस्तथा

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



अर्थ सुन्दर सूक्ष्मदर्शी प्रभु शम्भु ने पहिले जिस रामायण की रचना श्रीरामजी के चरणो की निरन्तर भक्ति प्राप्त के लिए की थी और उसी को तुलसीदास ने रामनाम मे तत्पर पाकर अपने अन्त करण के अन्धकार की शान्ति के लिए भाषा मे यह मानस रचा।

व्याख्या प्रभु शम्भु सुकवि हैं। यथा कविं पुराणमनुशासितारमणोरणीयांसमनुस्मरेद्य। बडे सूक्ष्मदर्शी हैं उन्होने पहिले रामायण की रचना की। उसमे ऐसी सूक्ष्मदर्शिता से काम लिया गया था कि वह दुर्गम हो गयी थी और उसे रचकर उन्होने अपने मानस मे ही रख छोडा था। यथा रचि महेस निज मानस राखा। पाइ सुसमउ सिवा सन भाखा। ताते रामचरित मानस वर। धरेउ नाम हिय हेरि हरषि हर। सोइ सिव काग भुसुण्डिहि दीन्हा। राम भगति अधिकारी चीन्हा। श्रीशम्भु के रचने का प्रयोजन यह था कि इसके द्वारा श्रीरामजी के चरण कमलो की अनपायिनी भक्ति प्राप्त हो। उसी परम्परा से गुरु द्वारा श्रीगोस्वामीजी को उस रामकृपा की प्राप्ति हुई। उस रामायण को रामनाम परक पाकर श्रीगोस्वामीजी को बडी अभिरुचि हुई कि इसे भाषाबद्ध करें तो मेरे अन्त करण का अन्धकार दूर हो। यथा भाषाबद्ध करबि मैं सोई। मोरे मन प्रबोध जेहि होई। अत गोस्वामीजी ने उसे भाषाबद्ध किया। यहाँ लिट का प्रयोग किया। जो कि परोक्ष अर्थ मे किया जाता है। यथा भाषाबद्धमिदञ्चकार इससे यह पता लगता है कि इस ग्रन्थ की रचना समाधि अवस्था मे हुई है। यथा उमगेउ प्रेम प्रमोद प्रवाहू। चली सुभग कविता सरिता सो। राम विमल जस जल भरिता सो। रामपरक होने से अभिरुचि का कारण यह है कि रामनाम गोस्वामीजी को राम से भी प्यारा है। यथा प्रिय रामनाम ते जाहि न रामो।

श्लो पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं<br>
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभं।<br>
श्रीमद्रामचरित्रमानसमिदं भक्त्यावगाहन्ति ये<br>
ते संसारपतङ्गघोरकिरणैर्दह्यन्ति नो मानवा ॥२॥

अर्थ यह श्रीरामचरितमानस पुण्य है। पाप हरण करनेवाला है। सदा मगल करनेवाला है। विज्ञान भक्ति का देनेवाला है। माया मोह और मल का दूर करनेवाला है। सुन्दर निर्मल है। प्रेमरूपी जल का सर है और शुभ है। इसमे जो भक्ति से स्नान करते हैं वे मनुष्य ससाररूपी घोर रविकर से सतप्त नही होते।

व्याख्या यह श्रीयुक्त रामचरितमानस पुण्यरूप है। इसलिए पाप का हरण करता है और पाप ही दु ख का कारण है। उमे यह हरण कर लेता है। अत यह सदा मङ्गल करनेवाला है। परम मगल तो दो ही है ज्ञान या भक्ति। यह दोनो देता है जो जिसे पसन्द हो उसे वह ग्रहण करे। यथा रामचरन रति जो चह अथवा पद निर्वान। भाव सहित सो येहि कथा करौ स्रवनपुट पान। माया मोह और

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

ankurnagpal108@gmail.com



मल का हरण करनेवाला है। यहाँ माया से : आवरण शक्ति मोह से : विक्षेप शक्ति और मल का इसमें अभाव कहा। अतः कहते हैं कि यह अत्यन्त निर्मल है और शुभ प्रेम वारि से परिपूर्ण है।

पुण्यं से बालकाण्ड की महिमा कही। पापहरं से अयोध्याकाण्ड की। सदा शिवकरं से अरण्यकाण्ड की। विज्ञान भक्तिप्रदं से किष्किन्धाकाण्ड की। मायामोह-मलापहं से सुन्दरकाण्ड की और विमलं से लंकाकाण्ड की तथा प्रेमाम्बुपूरं से उत्तरकाण्ड की महिमा कही। यह शुभ शंभु उमा सम्बादरूप से सुखसम्पादन और विषाद शमन है। यथा : यह सुभ सम्भु उमा संबादा। सुख संपादन समन बिषादा। इसलिए सम्बादरूप से यह शुभ है।

इस मानस सरोवररूपी श्रीरामचरित में जो स्नान करते हैं अर्थात् कहते सुनते और अनुमोदन करते हैं उन्हें मध्याह्नार्कमरीचिका सन्ताप नहीं देती। नहीं तो : तृषित निरखि रबिकर भव बारी। फिरिहहिं मृग जिमि जीव दुखारी। इसमें अवगाहन करनेवाला तीनों ताप से छूट जाते हैं।

यह अट्ठाइसवीं स्तुति श्री गोस्वामीजीकृत है। इसे रेवती नक्षत्र माना गया है। इसकी मर्दलाकार आकृति है। डङ्का दिया जा रहा है कि : ये अवगाहन्ति ते न दह्यन्ति। इसमें ३२ तारे चमकते हैं। यथा : १. रामहि सुमिरिअ २. गाइअ रामहि ३. सुनिअ रामगुन ग्रामहि ४. भजिअ तजि कुटिलाई : ये चार भक्त के कर्तव्य और दश उदाहरण यथा : १. गनिका २. अजामिल ३. व्याध ४. गीध ५. गजादि खल तारे घना। ६. आभीर ७. जवन ८. किरात ९. खस १०. स्वपचादि अति अघ रूपजे। ग्यारह गुण भगवान् के यथा : १. सुन्दर २. सुजान ३. कृपानिधान ४. अनाथ पर कर प्रीति जो ५. सो एक ६. अकामहित ७. निर्वान प्रद ८. प्रभु ९. दीन हित १०. रघुबीर ११. रघुवंश मणि। सात गुण चरित्र के यथा ; १. पुण्य २. पापहर ३. शिवकर ४. विज्ञान भक्तिप्रद ५. माया मोह मलापह ६. सुविमल ७. प्रेमाम्बुपूर शुभ। ४+१०+११+७=३२ इस स्तुति में ये बत्तीस तारे चमकते हैं। रघुवंश भूषण कहके भी बत्तीस ही कहा। आभूषण ३२ प्रकार के माने जाते हैं।

श्रीरामचरित को मानस सर माना है। वकार जल बीज है। इसलिए इस ग्रन्थ को गोस्वामीजी ने वकार से आरम्भ किया। यथा : वर्णानामर्थसंघानाम् और अब वकार से ही समाप्त करते हैं। यथा : दह्यन्ति नो मानवाः।

इति श्रीरामचरितमानसे सकलकलिकलुषविध्वंसने
अविरलहरिभक्तिसंपादनो नाम
सप्तमः सोपानः समाप्तः
शुभमस्तु मंगलमस्तु हरिः

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)

हे राम चरित, आकण्ठ भरित
तुलसी कृत मानस राजहस
तव विमल वश है धन्य धन्य
शुचि सरल शान्त, सेवी एकान्त तुमसा न अन्य ।
ज्ञानी वैराग्य विचारवान
तव गुन रुझान है धन्य धन्य
सशय वर्जित, बहुजन चर्चित तुमसा न अन्य ।
युत युक्ति युक्त समुचित प्रमान
तव व्याख्यान है धन्य धन्य
भ्रम भजन छम, सुन्दर मनरम तुमसा न अन्य ।
अति रुचिर विरचिता विधि नौका
तव विजया टीका है धन्य धन्य
हे यश काय, हम निर उपाय तुमसा न अन्य ।
कर 'बचक' मन क्रम बचन वरण
तव चरण शरण है धन्य धन्य
तुमसा न अन्य ।

—लक्ष्मीकान्त मिश्र

(Please Do Not Take Unnecessary Printouts)